॥ ओ३म् ॥

पाणिनीय
अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

प्रथमो भागः
(प्रथमद्वितीयाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्य

।। ओ३म् ।।

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

प्रथमो भागः

(प्रथमद्वितीयाध्यायात्मकः)

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए. पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी,

रोहतक–१२४००१ (हरयाणा)

प्रतिपादित-विषयाणां सूची-पत्रम्

सं०	विषया:	पृष्ठाङ्का:
	प्रथमाध्यायस्य प्रथम: पाद:	
१.	गुरुवन्दना	१
२.	व्याकरणशास्त्रप्रारम्भ:	१
३.	प्रत्याहारप्रकरणम्	२
४.	संस्कृतवर्णमाला	७
५.	गुणवृद्धिप्रकरणम्	९
६.	संयोग-संज्ञा	१७
७.	अनुनासिक-संज्ञा	१७
८.	सवर्ण-संज्ञा	१८
९.	प्रगृह्यसंज्ञाप्रकरणम्	१९
१०.	घु-संज्ञा	२५
११.	आद्यन्तवद्भाव:	२६
१२.	घ-संज्ञा	२६
१३.	संख्या-संज्ञा	२७
१४.	षट्-संज्ञा	२८
१५.	निष्ठा-संज्ञा	२९
१६.	सर्वनामसंज्ञाप्रकरणम्	३०
१७.	अव्ययसंज्ञाप्रकरणम्	३८
१८.	सर्वनामस्थानसंज्ञा	४३
१९.	विभाषा-संज्ञा	४४
२०.	सम्प्रसारणसंज्ञा	४६
२१.	आगम-विधि:	४७
२२.	आदेशप्रकरणम्	४९
२३.	स्थानिवत्प्रकरणम्	५६
२४.	लोपप्रकरणम्	६५
२५.	टि-संज्ञा	६८
२६.	उपधा-संज्ञा	६९
२७.	सप्तम्या-अर्थनिर्देश:	७०
२८.	पञ्चम्या-अर्थनिर्देश:	७०
२९.	शब्दग्रहणप्रकरणम्	७१
३०.	वृद्धसंज्ञाप्रकरणम्	७५
	प्रथमाध्यायस्य द्वितीय: पाद:	
१.	ङित्प्रकरणम्	७७
२.	कित्प्रकरणम्	८०
३.	ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञा:	१०१
४.	ह्रस्वदीर्घप्लुतानां स्थानिनियम:	१०२
५.	स्वरप्रकरणम्	१०३
६.	अपृक्त-संज्ञा	११३
७.	कर्मधारय-संज्ञा	११४
८.	उपसर्जन-संज्ञा	११४
९.	प्रातिपदिकप्रकरणम्	११६
१०.	उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक्	१२०
११.	गोणीशब्दस्येकारादेश:	१२१
१२.	पूर्वाचार्यमतस्थापना	१२१
१३.	पूर्वाचार्यमतखण्डनम्	१२३
१४.	वचनप्रकरणम्	१२७
१५.	एकशेषप्रकरणम्	१३१
	प्रथमाध्यायस्य तृतीय: पाद:	
१.	धातु-संज्ञा	१३८
२.	इत्संज्ञाप्रकरणम्	१३९
३.	यथासंख्यविधि:	१४६
४.	अधिकारलक्षणम्	१४६
५.	आत्मनेपदप्रकरणम्	१४७
६.	परस्मैपदप्रकरणम्	१९५
	प्रथमाध्यायस्य चतुर्थ: पाद:	
१.	एकसंज्ञाधिकार:	२११
२.	तुल्यबलविरोधे परं कार्यम्	२११
३.	नदीसंज्ञाप्रकरणम्	२१३
४.	घिसंज्ञाप्रकरणम्	२१५
५.	लघु-संज्ञा	२१७
६.	गुरुसंज्ञाप्रकरणम्	२१७
७.	अङ्ग-संज्ञा	२१९
८.	पदसंज्ञाप्रकरणम्	२२०
९.	भसंज्ञाप्रकरणम्	२२४
१०.	वचनविधानम्	२२७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
११.	कारकप्रकरणम्	
	(१) कारकाधिकारः	२२८
	(२) अपादानसंज्ञा	२२८
	(३) सम्प्रदानसंज्ञा	२३३
	(४) करण-संज्ञा	२४१
	(५) अधिकरण संज्ञा	२४४
	(६) कर्मसंज्ञा	२४७
	(७) कर्तृसंज्ञा	२५२
	(८) हेतुः कर्तृसंज्ञा च	२५२
१२.	निपातसंज्ञाप्रकरणम्	
	(१) चादयः शब्दाः	२५४
	(२) प्रादयः शब्दाः	२५५
	(३) उपसर्ग-संज्ञा	२५५
	(४) गतिसंज्ञाप्रकरणम्	२५६
	(५) कर्मप्रवचनीयसंज्ञाप्रकरणम्	२७१
१३.	परस्मैपदसंज्ञा	२८३
१४.	आत्मनेपद-संज्ञा	२८३
१५.	प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञाः	२८४
१६.	एकवचन-द्विवचन-बहुवचनसंज्ञाः	२८५
१७.	विभक्ति-संज्ञा	२८६
१८.	पुरुषविधानम्	२८७
१९.	संहिता-संज्ञा	२८१
२०.	अवसान-संज्ञा	२८१

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	पदविधिः	२९३
२.	पराङ्गवद्भावः	२६४
३.	समाससंज्ञाधिकारः	२९५
	{१} अव्ययीभावप्रकरणम्	२९६
	{२} तत्पुरुषप्रकरणम्	
	(१) द्विगुतत्पुरुषः	३१२
	(२) द्वितीयातत्पुरुषः	३१३
	(३) तृतीयातत्पुरुषः	३१७
	(४) चतुर्थीतत्पुरुषः	३२२
	(५) पञ्चमीतत्पुरुषः	३२३
	(६) सप्तमीतत्पुरुषः	३२६
	(७) समानाधिकरण-तत्पुरुषः (कर्मधारयः)	३३३

द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	(क) तत्पुरुषः	
	(१) पूर्वादयः (एकदेशिना)	३५७
	(२) अर्धम् (एकदेशिना)	३५८
	(३) द्वितीयादीनां विकल्पः (एकदेशिना)	३५९
	(४) प्राप्तापन्नयोर्विकल्पः (द्वितीयातत्पुरुषः)	३६०
	(५) कालवाचिनः	३६१
	(६) नञ्-शब्दः	३६१
	(७) ईषत्-शब्दः	३६२
	(८) षष्ठीतत्पुरुषः	३६२
	(९) कुगतिप्रादितत्पुरुषः	३७०
	(१०) उपपदतत्पुरुषः	३७१
	{३} बहुव्रीहिप्रकरणम्	३७४
	{४} द्वन्द्वसमासः	३८०
	{५} समासपदानां प्रयोगविधिः	३८१

द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अनभिहिताधिकारः	३८९
२.	द्वितीयाविभक्तिप्रकरणम्	३८९
३.	चतुर्थीविभक्तिप्रकरणम्	३९८
४.	तृतीयाविभक्तिप्रकरणम्	४०२
५.	पञ्चमीविभक्तिप्रकरणम्	४०९
६.	सप्तमीविभक्तिप्रकरणम्	४१७
७.	प्रथमाविभक्तिप्रकरणम्	४२५
८.	षष्ठीविभक्तिप्रकरणम्	४२८

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	द्विगु-एकवद्भावः	४४९
२.	द्वन्द्व-एकवद्भावप्रकरणम्	४४९
३.	समासलिङ्गप्रकरणम्	४६५
४.	आदेशप्रकरणम् (अन्वादेशे)	४८०
५.	आर्धधातुकप्रकरणम्	४८४
६.	प्रत्ययलुक्प्रकरणम्	५०४
७.	डारौरसादेशाः।	५३५

ओं नम ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

भूमिका

अष्टाध्याया-प्रणेता आहिकमुनि पाणिनि

संस्कृत भाषा के अद्वितीय व्याकरण–शास्त्र (शब्द-विद्या) के प्रणेता आहिक मुनि पाणिनि के जीवन के विषय में जो सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर उनका संक्षिप्त जीवन-परिचय निम्नलिखित है–

नाम–

श्री पुरुषोत्तमदेव ने त्रिकाण्डशेषकोश में पाणिनि मुनि के–पाणिन, पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय और आहिक इन छः नामों का उल्लेख किया है। जिनकी व्याख्या अधोलिखित है–

१. पाणिन–

काशिकाकार पं० जयादित्य ने **'मात्रोपज्ञोपक्रमछाये नपुंसके'** (६।२।१४) के उदाहरणों में लिखा है– **'पाणिनोपज्ञमकालकं व्याकरणम्'** अर्थात् पाणिन ने सर्वप्रथम काललक्षण से रहित व्याकरण शास्त्र की रचना की। अष्टाध्यायी के **'गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च'** (६।४।१६५) सूत्र में पाणिन शब्द की सिद्धि की गई है– **'पणिनोऽपत्यम्–पाणिनः'**, **'पाणिन'** शब्द गोत्रप्रत्ययान्त है अर्थात् पणिन का पौत्र **'पाणिन'** कहाता है।

२. पाणिनि–

यह अष्टाध्यायी के प्रणेता का लोकप्रसिद्ध नाम है। **'पणिनस्यापत्यम्–पाणिनिः'**। यहां **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय है। यह युव-प्रत्ययान्त नाम है। पणिन् का प्रपौत्र **'पाणिनि'** कहलाता है।

३. दाक्षीपुत्र–

इस नाम का उल्लेख पंतजलि ने महाभाष्य में इस प्रकार किया है–

सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः।
एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते।।

(महा० १।१।२०)

इस पद्य में पाणिनि को 'दाक्षीपुत्र' कहा गया है। इससे विदित होता है कि पाणिनि की माता दक्ष गोत्र की थी। उसका निज–नाम अज्ञात है। पाणिनि का मामा दाक्षायण व्याडि था।

४. शालङ्कि–

म० म० पं० शिवदत्त शर्मा का मत है कि यह पाणिनि का नाम अपत्यार्थक है अर्थात् पाणिनि के पिता का नाम शलङ्क था। **'शलङ्कस्यापत्यम्–शालङ्किः'**। शलङ्क का पुत्र शालङ्कि कहाता है। (महा० नवा० भूमिका निर्णयसागरसंस्करण पृ० १४)।

५. शालातुरीय–

१. अष्टाध्यायी के **'तूदीशलातुर०'** (४।३।८४) सूत्र के अनुसार जिसके पूर्वजों का अभिजन=निवास स्थान शलातुर हो, उसे शालातुरीय कहते हैं। गणरत्नमहोदधि के लेखक **वर्धमान** ने पाणिनि को शालातुरीय लिखा है– **'शालातुरीयस्तत्रभवान् पाणिनिः'** (पृ० १)।

२. वलभी के एक शिलालेख में पाणिनिशास्त्र को **'शालातुरीय तन्त्र'** कहा गया है। (शीलादित्य सप्तम का लेख, शिलालेख पृ० १६५)।

३. चीनी यात्री श्यूआन् च्युआङ् सप्तम शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के स्थल-मार्ग से भारत आते हुए शलातुर ठहरा था। उसने लिखा है कि उद्भाण्ड के लगभग बीस लि (लगभग ४ मील) पर शलातुर स्थान था। यह वही जगह है जहां ऋषि पाणिनि का ज़न्म हुआ था। जिन्होंने शब्दविद्या की रचना की थी (बील, सियुकि १।११४)।

शलातुर की पहचान लहुर नाम गांव के साथ की गई थी।

टि०– काबुल और सिन्धु के संगम पर ओहिन्द (प्राचीन उद्भाण्डपुर) है। वहां से ठीक चार मील उत्तर-पश्चिम की ओर 'लहुर' गांव है। मरदान से ओहिन्द जानेवाली बसें 'लहुर' होकर जाती हैं (पा० का० भारतवर्ष)। अब यह गांव अफगानिस्तान में है।

६. आहिक–

'आहिकनामा मुनिर्गोत्रनाम्ना विख्यातः' अर्थात् आहिक नामक मुनि लोक में अपने गोत्र (पाणिनि) नाम से प्रसिद्ध हुआ। इससे विदित होता है कि पाणिनि का पितृ-कृत नाम 'आहिक' था।

पाणिनि विषयक अनुश्रुति

पाणिनि मुनि के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में निम्नलिखित अनुश्रुतियां उपलब्ध होती हैं।

१. सोमदेव के कथासरित्सागर और क्षेमेन्द्र की बृहत् कथामञ्जरी में पाणिनि के सम्बन्ध में इतिवृत्त कहानी के रूप में मिलता है। इसके अनुसार पाणिनि मुनि आचार्य 'वर्ष' के मन्दबुद्धि शिष्य थे। फिसड्डीपन से दुःखित होकर पाणिनि तप करने हिमालय

पर चले गए और वहां शिव को प्रसन्न करके नया व्याकरण शास्त्र प्राप्त किया– **'प्राप्तं व्याकरणं नवम्'** । कात्यायन छात्रावस्था में और उसके बाद भी पाणिनि के प्रतिद्वन्द्वी थे। पाणिनि के व्याकरण ने ऐन्द्र व्याकरण की जगह ले ली। नन्दवंश के सम्राट् से पाणिनि की मित्रता होगई और सम्राट् ने उनके शास्त्र को सम्मानित किया। (पा. का. भारतवर्ष पृ० १५)।

२. बौद्ध संस्कृत साहित्य के **'मंजुश्री-मूलकल्प'** नामक ग्रन्थ में लिखा है– पुष्पपुर में शूरसेन के अनन्तर नन्द राजा होगा। वहां मगध की राजधानी में अनेक विचारशील विद्वान् राजा की सभा में होंगे। राजा उनका धन से सम्मान करेगा। बौद्ध ब्राह्मण वररुचि (कात्यायन) उसका मन्त्री होगा। **राजा का परम मित्र पाणिनि होगा** (पा० का० भारतवर्ष पृ० १५)।

३. राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इस अनुश्रुति की परम्परा में ही यह उल्लेख किया है कि पाटलिपुत्र में शास्त्रकार परीक्षा हुआ करती थी। उस परीक्षा में उववर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, वररुचि और पतंजलि ने उत्तीर्ण होकर यश प्राप्त किया। ये सब आचार्य शास्त्रों के प्रणेता हुए हैं।

टि०– "श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा, अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनि-पिङ्गलाविह व्याडिः, वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः (पा० का० भारतवर्ष पृ० १५)।

उपवर्ष के भाई आचार्य वर्ष पाणिनि के गुरु थे। पाणिनि प्रसिद्ध शास्त्रकार हैं। अतः उन्होंने अपना नया व्याकरणशास्त्र पाटलिपुत्र की शास्त्रकार-परीक्षा में प्रस्तुत किया होगा। छन्दशास्त्र के प्रणेता पिंगल पाणिनि के अनुज (छोटे भाई) थे। दक्ष गोत्र में उत्पन्न व्याडि पाणिनि के मामा थे। व्याडि ने सूत्र शैली में व्याकरणशास्त्र पर अपना, 'संग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा था जो पंतजलि के समय विद्यमान था। पंतजलि ने इसकी प्रशंसा में लिखा है– **'शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः'** (महा० २।३।६६)। अर्थात् दाक्षायण व्याडि की 'संग्रह' नामक रचना बड़ी सोहणी है।

चीनी यात्री–

चीनी यात्री श्यूआन् चुआङ् (६४५ ई० में) स्वयं 'शलातुर' गये थे। उन्होंने पाणिनि के विषय में इस प्रकार लिखा है–

"ऋषियों ने अपने-अपने मत के अनुसार अलग-अलग व्याकरण लिखे। मनुष्य इनका अध्ययन करते रहे किन्तु जो मन्दबुद्धि थे वे इनसे काम चलाने में असमर्थ थे। फिर मनुष्यों की आयु भी घटकर सौ वर्ष रह गई थी। ***ऐसे समय में ऋषि पाणिनि का जन्म हुआ।*** *जन्म से ही सब विषयों में उनकी जानकारी बढ़ी-चढ़ी थी। समय की मन्दता और अव्यवस्था को देखकर पाणिनि ने साहित्य और बोलचाल की भाषा के अनिश्चित और अशुद्ध प्रयोगों एवं नियमों में सुधार करना चाहा। उनकी इच्छा थी कि*

नियम निश्चित करें और अशुद्ध प्रयोगों को ठीक करें। उन्होंने शुद्ध सामग्री के संग्रह के लिए यात्रा की। उस समय ईश्वरदेव से उनकी भेंट हुई जिनसे उन्होंने अपनी योजना बताई। ईश्वरदेव ने कहा– यह अद्भुत है, मैं इसमें तुम्हारी सहायता करूंगा। ऋषि पाणिनि उनसे उपदेश प्राप्त करके एकान्त स्थान में चले गए। वहां उन्होंने निरन्तर परिश्रम किया और अपने मन की सारी शक्ति लगाई।

इस प्रकार अनेक शब्दों का संग्रह करके उन्होंने व्याकरण का एक ग्रन्थ बनाया जो एक सहस्र श्लोक परिमाण का था। आरम्भ से लेकर उस समय तक अक्षरों और शब्दों के विषय में जितना ज्ञान था, उसमें से कुछ भी न छोड़ते हुए सम्पूर्ण सामग्री उसमें सन्निविष्ट कर दी गई। समाप्त करने के बाद उन्होंने इस ग्रन्थ को राजा के पास भेजा जिसने उसका बहुत सम्मान किया और आज्ञा दी कि राज्य भर में इसका प्रचार किया जाये और शिक्षा दी जाये। और यह भी कहा कि ***जो आदि से अन्त तक इसे कण्ठ करेगा उसे एक सहस्र स्वर्णमुद्रा का पुरस्कार मिलेगा।*** *तब से इस ग्रन्थ को आचार्यों ने स्वीकार किया और अविकल रूप में सब के हित के लिए इसे वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखते रहे। यही कारण है कि इस नगर के विद्वान् ब्राह्मण व्याकरणशास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं और उनकी प्रतिभा बहुत अच्छी है। (सियुकि पृ० ११४-११५) (पा०का० भारतवर्ष पृ० १७)।*

पाणिनि का स्थिति काल

पाणिनि मुनि के स्थितिकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। पाणिनिकालीन भारतवर्ष के लेखक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं–

१. "बौद्ध एवं ब्राह्मण साहित्य में प्राचीन अनुश्रुति है कि पाणिनि किसी नन्दवंशीय राजा के समकालीन थे। तिब्बती लेखक तारानाथ ने पाणिनि और नन्दराज की सम-सामयिकता स्वीकार की है। (बौद्ध धर्म का इतिहास पृ० १६०८)।

सोमदेव ने कथासरितसागर में और क्षेमेन्द्र ने बृहत् कथामंजरी में लिखा है कि पाणिनि नन्दराजा की सभा में पाटलिपुत्र गये थे।

बौद्ध ग्रन्थ मञ्जुश्री मूलकल्प से इस परम्परा का समर्थन होता है। उसके अनुसार पुष्पपुर में नन्दराजा होगा और **पाणिनि नामक ब्राह्मण उसका अन्तरङ्ग मित्र होगा।** मगध की राजधानी में अनेक तार्किक ब्राह्मण राजा की सभा में होंगे और राजा उन्हें दान-मान से सम्मानित करेगा।" (मञ्जुश्री मूलकल्प पटल ५३, पृ० ६११)।

ताराचन्द के अनुसार नन्दवंशीय सम्राट् महापद्मनन्द के पिता नन्द **पाणिनि के मित्र थे।** महानन्दिन् का नाम **महानन्द** या केवल **नन्द** था। ये ही **पाणिनि के** समकालीन और संरक्षक मगध वंश के सम्राट् थे। जिनका समय पांचवीं शती ई० पूर्व **के मध्यभाग में था (पा०का० भारतवर्ष पृ० ४७२-७३)।**

२. **'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास'** नामक ग्रन्थ के रचयिता महाविद्वान्

पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखते हैं– "हम प्राचीन वाङ्मय के अनुशीलन से इस परिणाम परे पहुंचे हैं कि पाणिनि विक्रम से २८०० वर्ष प्राचीन है" (पृ० १३६)।

पाणिनि की अष्टाध्यायी

नाम–

महाभाष्य में पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीन नाम मिलते हैं– (१) अष्टक– **अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्येति–अष्टकम्** (४।१।५८)। (२) **पाणिनीय– पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्** (४।३।१०१)। (३) **वृत्तिसूत्र– न ब्रूमो वृत्तिसूत्रप्रामाण्यादिति किं तर्हि ? वार्तिकवचनप्रामाण्यादिति** (२।१।१)।

पाणिनि मुनि की अनुपम रचना 'अष्टाध्यायी' के नाम से ही लोक में प्रसिद्ध है– **अष्टानामध्यायानां समाहारः–अष्टाध्यायी।** इसमें आठ अध्याय हैं इसलिए इसे अष्टाध्यायी कहते हैं। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के प्रारम्भ में 'अथ शब्दानुशासनम्' में अपने शास्त्र का नाम **'शब्दानुशासन'** लिखा है।

ग्रन्थ–परिमाण–

गुरु–शिष्य परम्परा से अष्टाध्यायी के मूल पाठ को लोगों ने कण्ठस्थ रखा है। आज भी वेदपाठी श्रोत्रिय लोग छः वेदांगों में अष्टाध्यायी को कण्ठस्थ करते हैं। स्वरसिद्धान्तचन्द्रिका के अनुसार अष्टाध्यायी की सूत्र संख्या ३९९५ है जिसमें १४ प्रत्याहार सूत्र भी सम्मिलित हैं।

चतुःसहस्री सूत्राणां पञ्चसूत्रविवर्जिता।
अष्टाध्यायी पाणिनीया सूत्रैर्माहेश्वरैः सह।।

(स्व०च० श्लोक १५)

अष्टाध्यायी का एक सहस्र श्लोक परिमाण माना जाता है उसका अभिप्राय यह है कि अष्टाध्यायी के अक्षरों की गणना करके अनुष्टुप् छन्द के ३२ अक्षरों से उनका भाग दिया जाता है। इस प्रकार से अष्टाध्यायी ग्रन्थ का एक सहस्र श्लोक परिमाण बनता है। यह ग्रन्थ–परिमाण की प्राचीन पद्धति है।

कात्यायन की श्रद्धा–

कात्यायन मुनि पाणिनीय अष्टाध्यायी के सब से योग्य, प्रतिभाशाली व्याख्याता हुए हैं। उन्होंने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक रचकर उनकी तुलनात्मक शैली से समीक्षा की है। कात्यायन की बहुमुखी समीक्षा से पाणिनीय अष्टाध्यायी लोक में तप गई। कात्यायन पाणिनि के प्रतिद्वन्द्वी नहीं थे अपितु उन्होंने पाणिनि के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् होकर अपना अन्तिम वार्तिक भक्तिभरे शब्दों में समाप्त किया है– **"भगवतः पाणिनेः सिद्धम्"** (८।४।६८) यहां कात्यायन ने पाणिनि को **'भगवान्'** शब्द से स्मरण किया है।

पतंजलि की श्रद्धा–

१. पाणिनि और कात्यायन के शास्त्रों का अध्ययन करते हुए पतंजलि मुनि ने अपने पाण्डित्य की अमिट छाप महाभाष्य में लगाई है। पाणिनि की महिमा और प्रामाणिकता को स्वीकार करते हुए उन्होंने भी पाणिनि के लिए **'भगवान्'** शब्द का प्रयोग किया है– **'भगवतः पाणिनेराचार्यस्य सिद्धम्'** (८।४।६८)।

२. पतंजलि ने पाणिनि को **'प्रमाणभूत आचार्य'** की उपाधि दी है– **'प्रमाणभूत आचार्यः प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म'** (महा० १।१।१)।

३. पतंजलि ने पाणिनि के लिए **'अनल्पमति आचार्य'** विशेषण का प्रयोग किया है (महा० १।४।५१)। इससे पाणिनि मुनि की बौद्धिक विशालता का परिचय मिलता है।

४. एक स्थान पर पतंजलि ने पाणिनि को **'वृत्तज्ञ आचार्य'** लिखा है (महा० १।३।३) पाणिनि वृत्त अर्थात् शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के यथार्थ ज्ञाता आचार्य थे।

५. पतंजलि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी को **'सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्'** बताया है (महा० २।१।५८)। अर्थात् पाणिनि मुनि का अष्टाध्यायी नामक शब्दशास्त्र सभी वेद-परिषदों (चरणों) से सम्बन्ध रखता है।

६. पतंजलि के समय पाणिनीय अष्टाध्यायी का अध्ययन प्रारम्भिक कक्षाओं तक फैल गया था। अतः उन्होंने लिखा है– **आकुमारं यशः पाणिनेः, एषाऽस्य यशसो मर्यादा** (महा० १।४।८९)।

पण्डित जयादित्य–

काशिकावृत्ति के रचयिता पं० जयादित्य **'उदक् च विपाशः'** (४।२।७४) सूत्र की वृत्ति में लिखते हैं– **'महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य'** अर्थात् सूत्रकार पाणिनि की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है।

पाश्चात्य विद्वानों की श्रद्धा

श्री कात्यायन आदि भारतीय वैयाकरणों के स्वर में पाश्चात्य विद्वानों ने भी पाणिनीय अष्टाध्यायी की इन शब्दों में मुक्तकण्ठ से श्लाघा की है–

१. **प्रो० मोनियर विलियम्स–** संस्कृत व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी देश ने अब तक सामने नहीं रखा।

२. **प्रो० मैक्समूलर–** हिन्दुओं के व्याकरण में अन्वय की योग्यता संसार की किसी जाति के व्याकरण-साहित्य से बढ़-चढ़ कर है।

३. **कोलब्रुक–** व्याकरण के वे नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गए थे और उनकी शैली अत्यन्त प्रतिभापूर्ण थी।

४. **सर डब्ल्यू-डब्ल्यू हण्टर–** संसार के व्याकरणों में पाणिनि का व्याकरण चोटी का है। उसकी वर्ण-शुद्धता, भाषा का धात्वन्वय सिद्धान्त और प्रयोगविधियां

अद्वितीय एवं अपूर्व हैं। यह मानव-मस्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है।

५. **प्रो० टी० शेरवात्सकी**– पाणिनीय व्याकरण इन्सानी दिमाग की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक है।

६. **चीनी यात्री ह्यूनसांग**– ऋषि ने पूर्ण मन से शब्द भण्डार से शब्द चुनने आरम्भ किये और १००० दोहों में सारी व्युत्पत्ति रची। प्रत्येक दोहा ३२ अक्षर का था। इसमें प्राचीन और नवीन सम्पूर्ण लिखित ज्ञान समाप्त होगया। शब्द और अक्षर विषयक कोई भी बात छूटने नहीं पाई (ह्यूनसांग वाटर्स का अनुवाद भाग १, पृ० २२१)।

(संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास– पृ० १४१-४२ युधिष्ठिर मीमांसक)।

अष्टाध्यायी के शिक्षक पाणिनि

१. अष्टाध्यायी के प्रथम शिक्षक पाणिनि मुनि थे। पतंजलि मुनि लिखते हैं– **'उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्'** (महा० ३।२।१०८) अर्थात् कौत्स पाणिनि मुनि के पास शिक्षा प्राप्त करने आये, वे पाणिनि के शिष्य थे।

२. काशिकाकार पं० जयादित्य ने लिखा है– **अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्, उपशुश्रूवान् कौत्सः पाणिनिम्** (का० ३।२।१०८) अर्थात् कौत्स पाणिनि के **अन्तेवासी** थे और उनसे व्याकरणशास्त्र पढ़ते थे।

३. पतंजलि मुनि लिखते हैं– **पाणिनि ने आकडारादेका संज्ञा** (१।४।१) तथा **प्राक्कडारादेका संज्ञा** (१।४।१) यह सूत्र दोनों प्रकार से अपने शिष्यों को पढ़ाया। **उभयथा ह्याचार्येण शिष्याः सूत्रं प्रतिपादिताः** (महा० १।४।१)।

पाणिनि की अन्य रचनायें

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि मुनि के शिक्षा, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिकोष और लिङ्गानुशासन ये पांच शब्द-विद्या सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। वास्तव में ये अष्टाध्यायी के ही पूरक ग्रन्थ हैं। पाणिनि मुनि ने ये शिक्षा आदि ग्रन्थ अष्टाध्यायी की रचना से पहले बनाये। जैसे कि पतञ्जलि मुनि ने गणपाठ के विषय में लिखा है– **स पूर्वपाठः, अयं पुनः पाठः** (महा० १।१।१४) अर्थात् गणपाठ पाणिनि की पूर्व रचना है और अष्टाध्यायी अपर-रचना है।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक **'पातालविजय'** और **'जाम्बवती विजय'** नामक पाणिनि मुनि की दो काव्य-रचनायें भी मानते हैं।

निर्वाण–

पाणिनि मुनि की मृत्यु के विषय में पञ्चतन्त्र में प्रसङ्गवश किसी प्राचीन ग्रन्थ से एक श्लोक उद्धृत किया गया है कि– **'सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः'** (मित्रसम्प्राप्ति श्लोक ३६) इससे विदित होता है कि पाणिनि मुनि का प्राणहरण

एक शेर के द्वारा किया गया।

वैयाकरणों में किवदन्ती है कि पाणिनि मुनि की मृत्यु त्रयोदशी के दिन हुई थी। अतः पाणिनीय वैयाकरण प्रत्येक त्रयोदशी को अवकाश रखते हैं। यह परिपाटी काशी में आज तक वर्तमान है।

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः।।

अष्टाध्यायी-शिक्षा का इतिहास

अष्टाध्यायी के पुनरुद्धारक

१. स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती

हरयाणा के एक गौड़ ब्राह्मण प्रकाण्ड विद्वान् हुये हैं। उनके प्रथमाश्रम का नाम तो ज्ञात नहीं है किन्तु वे संन्यासी होकर पूर्णानन्द सरस्वती नाम से विख्यात हुए। पं० लेखराम जी ने इनका स्थान हरद्वार लिखा है। गुरुवर विरजानन्द के शिष्य श्री नवनीत जी के पुत्र श्री गोविन्ददत्त के कथनानुसार स्वामी पूर्णानन्द जी मूलतः मथुरा के निवासी थे। इनके गुरु आनन्द स्वामी दण्डी थे। ये वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी के उच्चकोटि के विद्वान् थे किन्तु अष्टाध्यायी आदि आर्ष ग्रन्थों के बड़े श्रद्धालु थे। सुना जाता है कि सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में इनकी आयु १०० वर्ष से अधिक थी। इस प्रसिद्धि के अनुसार इनका जन्म १७४७ ई० के लगभग का था।

स्वा० पूर्णानन्द सरस्वती की विद्या और तप की महिमा सुनकर एक तरुण तपस्वी व्रजलाल इनके चरण-शरण में आया और इनसे संन्यास-दीक्षा लेकर विरजानन्द सरस्वती नाम पाया। उस समय के ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य भी स्वा० पूर्णानन्द सरस्वती के शिष्य थे। स्वा० विरजानन्द ने इनसे वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी पढ़ी तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी के प्रति विशिष्ट श्रद्धा भी दायभाग में प्राप्त की। इस प्रकार स्वा० पूर्णानन्द स्वा० विरजानन्द के दीक्षा-गुरु तथा शिक्षा गुरु भी थे। स्वा० पूर्णानन्द ने वै०सि० कौमुदी समाप्त कराके पातञ्जल व्याकरण महाभाष्य के अध्ययन के लिए काशी जाने की प्रेरणा की। उस समय महाभाष्य के नवाह्निक (अष्टा० प्रथमाध्याय का प्रथमपाद) तथा अंगाधिकार (अष्टा० षष्ठाध्याय का चतुर्थपाद और सप्तमाध्याय) पढ़ने का ही प्रलचन था। विरजानन्द महाभाष्य के अध्ययन के लिए दूसरे ही दिन एक छात्र के साथ हरद्वार से काशी की ओर चल पड़े।

आपने **सौन्दर्य लहरी** की एक संस्कृत टीका लिखी थी। इस टीका का हस्तलेख तथा स्वामी पूर्णानन्द जी के हाथ से लिखी **दक्षिणामूर्ति संहिता** की पुस्तक पं०

गोविन्ददत्त जी मथुरा के संग्रह में सुरक्षित है। एक वेदान्तविषयक ग्रन्थ श्री गंगादत्त जी के पुत्र विदुरदत्त जी के घर बेलोन (बुलन्दशहर) में विद्यमान है।

श्री देवेन्द्र बाबू के अनुसार ये हरयाणा के मूल निवासी थे। पं० युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि ये मूलतः मथुरा के निवासी थे। ये मथुरा में दण्डी घाट पर कुटिया डालकर वर्षों तक तपस्या करते रहे। इस घाट का निर्माण आपके शिष्य किशनसिद्ध महलवाले चतुर्वेदी ने कराया था। दण्डी पूर्णानन्द जी यहां चिरकाल तक रहे अतः यह दण्डी घाट के नाम से प्रसिद्ध हो गया। दण्डी विरजानन्द भी कुछ समय इस घाट पर बनी कुटिया में रहे थे।

२. स्वामी विरजानन्द सरस्वती

बाल्यकाल—

पंजाब प्रान्त के जालन्धर नगर से ९ मील पश्चिम में स्थित कर्तारपुर नगर के समीप बेई नामक नदी के तट पर गंगापुर नामक एक ग्राम था। बेई नदी की किसी बाढ़ ने उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया। अतः अब उसका नाममात्र ही शेष रह गया है। उस गंगापुर नामक ग्राम में एक सारस्वत ब्राह्मण नारायणदत्त शर्मा रहते थे। ये शारद शाखा के ब्राह्मण थे। उनका गोत्र भारद्वाज था। इनके घर में पौरोहित्य के अतिरिक्त वस्त्रों की छपाई का भी काम होता था। पं० नारायणदत्त के घर १७७८ ई० में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम व्रजलाल रखा गया। इनके बड़े भाई का नाम धर्मचन्द था। पांच-छः वर्ष की अवस्था में शीतला (चेचक) रोग से इनकी आंखें जाती रहीं।

बालक व्रजलाल का विद्यारम्भ पांचवें वर्ष में तथा उपनयन संस्कार आठवें वर्ष में किया गया। इस बालक ने अपने पूज्य पिता जी से ही संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। अमर कोष कण्ठस्थ कर लिया और सारस्वत व्याकरण हलन्त पुंलिंग प्रकरण तक पढ़ लिया था कि इनके पिता जी का स्वर्गवास होगया। घर पर ही पञ्चतन्त्र, हितोपदेश भी पढ़ा था, और संस्कृतभाषण का अच्छा अभ्यास होगया था। पिता जी के स्वर्गवास के कुछ समय पश्चात् माता सरस्वती जी का भी स्वर्गवास हो गया।

गृहत्याग—

माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् ये १२ वर्ष की अवस्था में अपने बड़े भाई धर्मचन्द के आश्रित होगए। भाई और भावज के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से खिन्न होकर एक दिन बिना किसी से कहे-सुने घर से निकल पड़े। निर्भीकता से मार्ग पूछते हुए चलते रहे। जब कोई उनसे कुछ पूछता था तो ये संस्कृतभाषा में ही उत्तर देते थे।

घोर तप—

व्रजलाल देशाटन करते हुए ऋषीकेश पहुंचे और वहां घोर तप आरम्भ किया।

गंगा की जलधारा में खड़े होकर गायत्री मन्त्र का जप करते रहे। एक दिन रात्रि में एक आकाशवाणी सुनाई दी– **"तुम्हारा जो कुछ होना था, वह हो चुका, अब तुम यहां से चले जाओ"**। इस वाणी को सुनकर ये हरद्वार चले गए।

संन्यास दीक्षा–

हरद्वार में आपने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास दीक्षा लेकर विरजानन्द सरस्वती नाम पाया तथा उनसे वै०सि० कौमुदी का अध्ययन किया। अष्टाध्यायी के कुछ सूत्र भी कण्ठस्थ किये। गुरुवर की प्रेरणा से आप महाभाष्य के अध्ययन के लिए हरद्वार से काशी चले गए।

काशी निवास–

(१८००-१८११ ई०) काशी में विरजानन्द मनोरमा, शेखर आदि ग्रन्थ स्थान-स्थान पर जाकर पढ़ आते थे। पाठ को सुनकर मेधा बुद्धि से अनायास ही हृदयंगम कर लेते थे। यहां इन्होंने जिज्ञासु शिष्यों को पढ़ाना भी आरम्भ कर दिया था। आपने काशी में पं० गौरीशंकर से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया। आपने अपने **शब्द-बोध** नामक ग्रन्थ की पुष्पिका में पं० गौरीशंकर को गुरुवर के रूप में स्मरण किया है। यह ग्रन्थ आपने अलवरनरेश श्री विनयसिंह को व्याकरणशास्त्र पढ़ाने के लिए लिखा था। आज यह ग्रन्थ अलवर के राजकीय पुस्तकालय सरस्वती भण्डारागार में ३३३४ नं० पर सुरक्षित है।

महाभाष्य की खोज–

काशी में ५-६ मास के घोर परिश्रम के उपरान्त आपको महाभाष्य का एक हस्तलेख प्राप्त हुआ जो कि बहुत अशुद्ध था। स्वामी विरजानन्द तथा उनके शिष्य स्वामी दयानन्द की कृपा से आगे चलकर तो अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का पुस्तक सर्वसुलभ होगया था किन्तु उस समय ये ग्रन्थ अति दुर्लभ थे। अष्टाध्यायी पुस्तक दशग्रन्थी ऋग्वेदी ब्राह्मणों के घर में पढ़ा जाता था और वह भी कुछ शुद्ध और कुछ अशुद्ध। ऋग्वेदी ब्राह्मण अपने ग्रन्थों को किसी को दिखाते भी नहीं थे। वे ऐसा करना अपने धर्म- विरुद्ध मानते थे।

अष्टाध्यायी की दुर्लभता के कारण उस समय वै०सि० कौमुदी में भी अष्टाध्यायी के अध्याय, पाद और सूत्र की संख्या नहीं लिखी थी अतः कौमुदी का अध्ययन उस समय अत्यन्त शुष्क विषय था।

कौमुदीपाठी पण्डित–

१. एक दिन काशी में आपने किसी कौमुदीपाठी पण्डित से प्रश्न किया कि **'हलन्त्यम्'** (१।३।३) में दो पद हैं और उसकी वृत्ति में **'उपदेशेऽन्त्यं हल् इत् स्यात्'**

में चार पद हैं। इन दो पदों की अनुवृत्ति किस सूत्र से आयी है ? क्या इसी प्रकार अन्य सूत्रों की अनुवृत्ति के मूल सूत्र भी बता सकते हैं ? इस प्रश्न का उस पण्डित के पास कोई उत्तर नहीं था क्योंकि इसका उत्तर केवल अष्टाध्यायीपाठी छात्र/पण्डित ही दे सकता है।

२. एक दिन आपने एक और प्रश्न काशी के किसी पण्डित से किया था कि **"पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्"** इस परिभाषा के अनुसार कौमुदी में वर्णित **अनन्तर** तथा **उत्तर** विधियों को जानते हो ? इस परिभाषा का कार्य अष्टाध्यायी क्रम के ज्ञान से ही समझा जा सकता है क्योंकि कौमुदीक्रम में यह परिभाषा निरर्थक हो जाती है।

अध्ययन–

आपने काशी में पं० गौरीशंकर जी से व्याकरण महाभाष्य का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आपने वहां वेदान्त, मीमांसा और न्यायशास्त्र का अध्ययन तथा अध्यापन भी किया। आप काशी में लगभग १२ वर्ष रहे। अध्ययन-अध्यापन में अत्यन्त मेधावी होने से काशी में 'प्रज्ञाचक्षु' नाम से प्रसिद्ध होगये थे

कलकत्ता–निवास (१८१५–२१ ई०)

अध्ययन–

आप काशीनिवास के पश्चात् कई वर्ष गया में रहकर १८१५ ई० में कलकत्ता चले गए थे। उस समय **कलकत्ता भारत की राजधानी थी।** यहां आपने साहित्य दर्पण, कुवलयानन्द, काव्यप्रकाश, रस गंगाधर तथा नव्य एवं प्राच्य न्यायशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, संगीत, वीणावादन, रत्नपरीक्षा आदि नाना कलाओं में कुशलता प्राप्त की।

आप भागीरथी की परिक्रमापूर्वक विद्या अध्ययन करके अपने गुरुवर स्वामी पूर्णानन्द जी से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हरद्वार पधारे। विद्या-अध्ययन का सब समाचार सुनाया। गुरुवर की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही।

अलवरनरेश के गुरु

अध्यापन–

आप हरद्वार से शूकर क्षेत्र में आकर १८२३ से १८३२ ई० तक पठन-पाठन तथा योगसाधाना करते रहे। एक दिन वहां अलवरनरेश श्री विनयसिंह से मुलाकात होगई। नरेश की व्याकरणशास्त्र अध्ययन की प्रार्थना पर आप १८३२ ई० में अलवर चले गए। वहां आपने श्री विनयसिंह को व्याकरणशास्त्र पढ़ाने के लिए 'शब्दबोध' नामक ग्रन्थ लिखा जो आज भी अलवर के राजकीय पुस्तकालय सरस्वती भण्डारागार में सं० ३३३४

पर सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त दण्डी जी ने अलवर नरेश को रघुवंश, विदुरप्रजागर और तर्कसंग्रह आदि ग्रन्थ पढ़ाये। गुरुवर के आशीर्वाद से श्री विनयसिंह अच्छे संस्कृतज्ञ और संस्कृतभाषण में भी कुशल होगए थे।

एक दिन दण्डी जी तो यथासमय पाठ पढ़ाने के लिए उपस्थित होगए किन्तु श्री विनयसिंह उपस्थित नहीं हुए। पूर्व प्रतिज्ञा अनुसार दण्डी जी ने अलवर से जाने का निश्चय कर लिया। श्री विनयसिंह ने २५०० रुपये की सुवर्ण-मुद्रा देकर गुरुवर को सत्कारपूर्वक विदा किया। दण्डी जी अलवर से पुनः शूकरक्षेत्र (सोरों) आगए।

मथुरा—निवास (१८४५—६८ ई०)

पाठशाला—

दण्डी जी १८४५ ई० ग्रीष्मकाल में सोरों से मथुरा पधारे। ये प्रथम गतश्रम नारायण के मन्दिर में ठहरे। लगभग एक वर्ष के पश्चात् दण्डी जी ने मथुरा के एक रईस श्री केदारनाथ खत्री से २ रुपये मासिक किराये पर एक घर ले लिया। जो गतश्रम नारायण के मन्दिर से १६-१७ दुकानें होली दरवाजे की ओर विद्यमान था। यही दण्डी जी की पाठशाला थी। दण्डी जी यहां लगभग २२ वर्ष तक व्याकरणशास्त्र पढ़ाते रहे। स्वामी दयानन्द ने भी इसी पाठशाला में विद्या-अध्ययन किया था।

उन दिनों सौ से अधिक संस्कृत-अध्यापक मथुरा में संस्कृत पढ़ाते थे। यह एक लघु काशी कहलाती थे। श्री केशवदेव आदि कितने ही संस्कृत-अध्यापक दण्डी जी के शिष्य बन गए और उनसे व्याकरण-शास्त्र पढ़ने लगे थे।

अष्टाध्यायी का लोप—

अष्टाध्यायी के प्रवक्ता आहिक मुनि पाणिनि का काल महाभारत से लगभग ३०० वर्ष पश्चात् का है। अनुमानतः १५०० ई० पूर्व महामुनि पतंजलि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर **'व्याकरण महाभाष्य'** नामक ग्रन्थरत्न की रचना की थी। पाणिनि-काल से लेकर १६०० ई० पूर्व तक अष्टाध्यायी शास्त्र का पठन-पाठन चलता रहा। कुछ समय पश्चात् शब्द-सिद्धि के लिए प्रक्रिया ग्रन्थ लिखे गए उनका अध्ययन केवल शब्द-सिद्धि के लिए ही किया जाता था किन्तु पं० भट्टोजि दीक्षित (१५१८ ई०) ने अष्टाध्यायी की प्राचीन शिक्षा-पद्धति का लोप करके नई शिक्षा-परिपाटी चलाई और उसके प्रचारार्थ वै०सि० कौमुदी नामक ग्रन्थ की रचना की।

अष्टाध्यायी की खोज—

महावैयाकरण आहिकमुनि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी नामक रचना में सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र को एक सहस्र अनुष्टुप् छन्दों में बान्ध दिया था। अष्टाध्यायी के अक्षरों की गणना करके अनुष्टुप् छन्द में विद्यमान ३२ अक्षरों से भाग करने पर अष्टाध्यायी का एक सहस्र अनुष्टुप् छन्दों का परिमाण बनता है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ की

अनुष्टुप छन्द में गणना करने की यह प्राचीन पद्धति है।

दण्डी जी को अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थविषयक श्रद्धा अपने गुरुवर स्वा० पूर्णानन्द से दायभाग में प्राप्त हो चुकी थी। वे मथुरा की पाठशाला में अष्टाध्यायी के सूत्रक्रम की श्रेष्ठता का वर्णन अपने छात्रों से प्रायशः करते रहते थे। मथुरा-निवास के समय दण्डी जी मदनमोहन मन्दिर के अध्यक्ष गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल के पुत्र श्री रमणलाल को एक पालकी में बैठकर पढ़ाने जाया करते थे। एक दिन दण्डी जी ने पालकी में जाते समय मार्ग में एक दशग्रन्थी दाक्षिणात्य ऋग्वेदी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी का सूत्रपाठ करते सुना। तत्पश्चात् दण्डी जी ने ४-५ दिन उस ब्राह्मण को अपनी पाठशाला में बुलाकर अष्टाध्यायी का सूत्रपाठ सुना। उस सूत्रपाठ में यत्र-तत्र अशुद्धियां थी अतः दण्डी जी ने उससे अष्टाध्यायी का पुस्तक मंगवाकर पुनः उसका पारायण सुना। इससे दण्डी जी को अष्टाध्यायी के एक पुस्तक की जानकारी प्राप्त हो गई।

अजाद्युक्ति का चमत्कार—

वै०सि० कौमुदी में **अजाद्यतष्टाप्** (४।१।४) पर लिखा है— **"अजाद्युक्तिर्ङीषो ङीपश्च बाधनाय"**। एक बार मथुरा के विद्वानों में **'अजाद्युक्ति'** पद के विषय में शास्त्रार्थ छिड़ गया कि इस पद में कौनसा समास है। स्वा० विरजानन्द के शिष्य गंगदत्त और रंगदत्त चौबे ने षष्ठी तत्पुरुष समास बतलाया और स्वयं स्वामी विरजानन्द भी यही समास मानते थे किन्तु श्रीकृष्ण शास्त्री तथा उनके शिष्य इस पद में सप्तमी तत्पुरुष समास के पक्षपाती थे। बात काशी तक पहुंच गई। काशी की पण्डित—सभा ने विपुल दक्षिणा लेकर श्रीकृष्ण शास्त्री के पक्ष में अपना मिथ्या मत लिखकर भेज दिया। विद्या की ठेकेदार काशी की पण्डित-सभा के इस मिथ्या-निर्णय से स्वामी विरजानन्द को बड़ा धक्का लगा और दण्डी जी ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि— **"अनार्ष ग्रन्थ अनर्थ का मूल हैं।"** और कहा कि— **"भट्टोजि मूर्ख था"**। इस प्रकार दण्डी जी की पाठशाला में अनार्ष ग्रन्थों का बहिष्कार और अष्टाध्यायी आदि आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन का युग आरम्भ होगया।

अब दण्डी जी वै०सि० कौमुदी तथा उसके व्याख्या ग्रन्थों के प्रति केवल वीतराग ही नहीं अपितु घोर द्वेषी बन गए। वे कहने लगे कि कुत्सित (निन्दित) तीन हैं— **"सूत्रक्रम तोड़कर अध्ययन-मार्ग बिगाड़नेवाले भट्टोजि आदि प्रथम कुत्सित हैं। उनके ग्रन्थ दूसरे कुत्सित हैं। उन ग्रन्थों के पढ़ने-पढ़ानेहारे तीसरे कुत्सित हैं। ये तीनों मिलकर कुत्सितत्रय अथवा कत्त्रि कहाते हैं।"**

कौमुदी का यमुना-अर्पण—

उन दिनों दण्डी जी से दो दाक्षिणात्य भाई भट्ट गोपीनाथ और सोमनाथ व्याकरण-शास्त्र पढ़ते थे। दण्डी जी ने उनको आज्ञा दी कि— **"कत्त्रिकृत इस अवकर (कूडा) को अर्थात्**

कौमुदी, मनोरमा और शेखर आदि को यमुना में प्रवाहित कर वस्त्रसहित स्नान करके आओ।" इन दोनों छात्रों ने ऐसा न करके उन ग्रन्थों को अपने घर रख लिया और आकर गुरुवर से कह दिया कि हमने उन ग्रन्थों को यमुना में प्रवाहित कर दिया है। दण्डी जी को किसी छात्र से पता चल गया कि इन्होंने ऐसा नहीं किया है, अतः उन दोनों छात्रों को दण्डी जी ने अपनी पाठशाला से सदा के लिए निकाल दिया।

अष्टाध्यायी की प्राप्ति–

दण्डी जी को पूर्वोक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण के घर पर अष्टाध्यायी का पुस्तक है, यह तो ज्ञात हो ही चुका था। अतः दण्डी जी ने उनके घर से अष्टाध्यायी का पुस्तक खोजकर लाने के लिए अपने छात्रों को आज्ञा दी। वे आज्ञाकारी शिष्य महान् प्रयत्न करके दूसरे दिन अष्टाध्यायी का एक पुस्तक खोजकर लाये। उसमें अनेक पत्र लुप्त थे। दण्डी जी को अनेक दाक्षिणात्य ब्राह्मणों से बहुत प्रार्थना करने पर बड़े कष्ट से यह एक पुस्तक प्राप्त हुआ था।

अष्टाध्यायी का पाठ–

अब इसी एक पुस्तक पर दण्डी जी की पाठशाला में छात्रों के पाठ चलने लगे। अन्य पुस्तकों की खोज भी चलती रही। दण्डी जी ने उस एक पुस्तक की प्रतिलिपियां पुस्तक-लेखकों को तीन-तीन, चार-चार रुपये देकर करवा ली। शनैः शनैः अष्टाध्यायी के पाठार्थी छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। इस अष्टाध्यायी के पाठ का शोर काशी नगरी तक पहुंच गया। अब काशी के कौमुदी पाठक पण्डित भी अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ का विचार करने लगे। अब पुस्तक-विक्रेता भी अष्टाध्यायी का पुस्तक छापने लगे। आरम्भ में इस पुस्तक का मूल्य चौदह आने था। अष्टाध्यायी के अधिक प्रचलन से यह पुस्तक दो आने में मिलने लगा।

महाभाष्य का स्मरण–

अष्टाध्यायी की प्राप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण महाभाष्य की खोज आरम्भ हुई। दण्डी जी ने महाभाष्य नवाह्निक (प्रथम अध्याय का प्रथम पाद) काशी में ही कण्ठस्थ कर लिया था। सम्भव है कि महाभाष्य का अंगाधिकार (षष्ठ अध्याय का चतुर्थ पाद और सप्तम अध्याय) भी वहां कण्ठस्थ किया हो क्योंकि उन दिनों उपर्युक्त महाभाष्य-भाग का ही पठन-पाठन प्रचलित था। अब सम्पूर्ण महाभाष्य का पुस्तक प्राप्त करके दण्डी जी अपने शिष्य वनमाली चौबे से रात्रि में महाभाष्य सुनकर पांच पत्र प्रतिदिन कण्ठस्थ करते थे। प्रातःकाल जो भी छात्र पाठशाला में पहले आता था उसे महाभाष्य के पत्र पकड़ाकर अपना स्मरण किया हुआ पाठ सुनाया करते थे कि पाठ ठीक स्मरण हुआ कि नहीं। उस समय दण्डी जी की आयु ८१ वर्ष की थी किन्तु वे अपनी आयु इस आर्ष शिक्षा-युग से ही गिनते थे। दण्डी जी कहा करते थे–

अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोऽन्यत् पुस्तकं यत्तु तत् सर्वं धूर्तचेष्टितम्।।

अर्थ– अष्टाध्यायी और महाभाष्य दो ही व्याकरण के पुस्तक हैं। इनसे भिन्न सब पुस्तक धूर्तों की लीला है।

अष्टाध्यायी का प्रचार–

अब दण्डी जी के प्रभाव से काशी में भी अष्टाध्यायी सूत्रपाठ कण्ठस्थ कराना, कौमुदी पढ़ाते हुए अनुवृत्तियां बताना आरम्भ हो गया था। वै०सि० कौमुदी की पुस्तकों में सूत्रों के पते छपने लगे थे। काशी के एक विद्वान् श्री ओरम्भट विश्वरूप ने वै०सि० कौमुदी ग्रन्थ को अष्टाध्यायी सूत्रपाठ क्रम में व्यवस्थित करके उस पर 'व्याकरण-दीपिका' नामक टीका लिखी। जगाधरी निवासी पं० हरनामदत्त ने काशी में जाकर सम्पूर्ण महाभाष्य पं० बालशास्त्री से पढ़ा और आजीवन अन्य नव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त महाभाष्य भी अपने शिष्यों को पढ़ाते रहे। इस प्रकार दण्डी जी के घोर-परिश्रम से अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पठन-पाठन पुनः प्रचलित होगया।

शिष्यमण्डल–

मथुरा-निवास काल में स्वामी विरजानन्द से निम्नलिखित प्रसिद्ध जनों ने व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। अंगदराम, बुद्धसेन, उदयप्रकाश, युगलकिशोर, गंगदत्त, रंगदत्त, नन्दजी, रमणलाल गोस्वामी, श्यामलाल पण्डा, वनमाली, **दयानन्द सरस्वती**, नवनीत कविवर, ग्वाल कवि।

निर्वाण–

दण्डी जी ने अष्टाध्यायी आदि आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन तथा प्रभुभक्ति में रहकर ९० वर्ष की अवस्था में उदरशूल से दिनांक १४ सितम्बर १८६८ को अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

अन्तिम समय उनके शिष्य वनमाली आदि रोने लगे। दण्डी जी ने पूछा क्यों रोते हो? शिष्यों ने कहा– **अब हमें अष्टाध्यायी कौन पढ़ायेगा?** दण्डी जी ने अष्टाध्यायी का पुस्तक मंगवाया और उसे हाथ में लेकर कहा– **"मैं इस में प्रविष्ट होता हूं, जो कुछ पूछना हो, इससे पूछना"**।

दण्डी जी के निर्वाण का समाचार जब उनके प्रिय शिष्य **स्वामी दयानन्द** ने शहबाजपुर में वेदप्रचार करते हुए सुना तब उन्होंने कहा था– **'आज व्याकरण का सूर्य अस्त होगया है'**।

उत्तराधिकारी–

दण्डी जी ने मृत्यु से दो मास पूर्व अपने पुस्तक, पात्र, वस्त्र तथा ३०० रुपये का

उत्तराधिकार-पत्र (वसीयतनामा) अपने शिष्य युगलकिशोर के नाम लिखकर रजिस्टर्ड करा दिया था। पं० **युगलकिशोर** दण्डी जी के प्रथम सुयोग्य शिष्य थे जो दण्डी जी के मथुरा-आगमन से लेकर उनके निर्वाण-काल तक अध्ययनपरायण तथा सेवापराण भी रहे। ये दण्डी जी के निर्वाण के उपरान्त गुरुवर की गद्दी पर बैठकर आजीवन अष्टाध्यायी आदि आर्ष ग्रन्थ पढ़ाते रहे।

अष्टाध्यायी के महान् प्रचारक पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु पं० युगलकिशोर के शिष्य थे। आर्यजगत् के उद्‌भट विद्वान् व्याकरणशास्त्र का इतिहास आदि आकर ग्रन्थों के लेखक पं० युधिष्ठिर मीमांसक पूज्य जिज्ञासु जी के शिष्य थे। माननीय मीमांसक जी के शिष्य डॉ० विजयपाल जी आजकल पाणिनीय महाविद्यालय बहालगढ़ (सोनीपत) में अष्टाध्यायी आदि आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन यज्ञ के ब्रह्मा हैं।

३. स्वामी दयानन्द सरस्वती

बाल्यकाल—

मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में श्री कृष्णलाल जी तिवारी के घर सम्वत् १८८१ मूल नक्षत्र में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम मूलशंकर रखा गया। इनकी माता का नाम यशोदा बाई था। इनके पिता निष्ठावान् शैव भक्त थे। अतः दश वर्ष की आयु में मूलशंकर से मूर्तिपूजा कराना आरम्भ कर दिया। १४वें वर्ष के आरम्भ में दिनांक २२ फरवरी १८३८ ई० गुरुवार को मूलशंकर ने शिवरात्रि का व्रत रखा। यह जागरण इनके पिता के बनाये हुए कुबेरनाथ के मन्दिर में किया गया। इस जागरण में चूहों को शिव-पिण्डी पर चढ़कर चावल खाते देखकर मूलशंकर की मूर्तिपूजा से आस्था उठ गई।

गृहत्याग—

मूलशंकर का विवाह होने को ही था कि ये गृह-बन्धन से बचने के लिए और सच्चे शिव के दर्शन करने के लिए १८४६ ई० में लगभग २१ वर्ष की अवस्था में घर से निकल पड़े। योगिजनों की तलाश में फिरते रहे। सायला में ब्रह्मचारी बनकर शुद्ध चैतन्य नाम धराया। कार्तिक स्नान के शुभअवसर पर दिनांक ३।११।१८४६ ई० को सिद्धपुर पहुंच गए। यहां इनके पिता जी ने इन्हें जा पकड़ा और इन्हें घर ले आये किन्तु ये चौथे दिन ही रात को फिर भाग गए।

संन्यास दीक्षा—

मूलशंकर अनेक स्थानों पर विद्याग्रहण करते रहे और राजयोग भी सीखते रहे। १८४८ ई० में चाणोदकन्याली में स्वामी परमानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली और स्वामी दयानन्द सरस्वती बन गए। १८५४ ई० के अन्त में हरद्वार-कुम्भ के मेले

में पहुंचे। १८५५ ई० में योगियों की खोज में केदारनाथ और जोशीमठ के शंकराचार्य ने इन्हें हरद्वार में स्वामी पूर्णानन्द के पास जाकर विद्या-अध्ययन की सम्मति दी। दयानन्द इस पर्वतयात्रा से लौटकर १८५५ ई० में लगभग १०८ वर्षीय अतिवृद्ध संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द के पास पहुंचे। वे अब अतिवृद्ध होने से मौनी बन गये थे, पढ़ाते नहीं थे। उन्होंने लिखकर दयानन्द को अपने शिष्य विरजानन्द के पास मथुरा जाने की प्रेरणा दी।

विद्या-अध्ययन–

स्वामी दयानन्द १८५७ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में व्यस्त होगए और स्वामी पूर्णानन्द के आदेशानुसार मथुरा न जा सके। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पश्चात् दिनांक १४ नवम्बर १८६० ई० बुधवार को स्वामी दयानन्द ने मथुरा जाकर स्वामी विरजानन्द दण्डी की पाठशाला का दरवाजा खटखटाया और उनके शिष्य बन गए। दयानन्द ने दण्डी जी से अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तदर्शन और वेदार्थ की पद्धति आदि का अध्ययन किया। आर्ष ग्रन्थों की महिमा और अनार्ष ग्रन्थों की हीनता का रहस्य समझा। वेदार्थ की कुंजी भी मिल गई। सच्चा गुरु और सत्य का मार्ग उपलब्ध होगया। दयानन्द ने १८६३ ई० तक यहां गुरुवर की सेवा में रहकर वेदामृत का पान किया।

गुरुदक्षिणा–

शिक्षा-समाप्ति पर दयानन्द गुरु-दक्षिणा में लौंग लेकर गुरुवर की सेवा में उपस्थित हुए। लौंग दण्डी जी का प्रिय पदार्थ था। विरजानन्द बोले– **दयानन्द! तुम्हारी यह भक्तिपूर्ण भेंट स्वीकार है, रख दो। इतने मात्र से गुरु-दक्षिणा पूर्ण न होगी। गुरुदक्षिणा में मुझे तुमसे और कुछ मांगना है, क्या तुम मेरी मांगी वस्तु मुझे दे सकोगे?** दयानन्द बोले– **मेरा रोम-रोम आपके आदेशार्थ समर्पित है, आप आदेश करिये।** विरजानन्द ने कहा– **दयानन्द! देश में घोर अज्ञान फैला हुआ है। स्वार्थी लोग जनता को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। तुम इस अविद्या-अन्धकार के निवारण के लिए सर्वात्मना प्रयत्न करो। दयानन्द ने सहर्ष तथास्तु,** कहकर अपना सारा जीवन, **वेद, अष्टाध्यायी, महाभाष्य** आदि आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार में लगा दिया।

अष्टाध्यायी की शिक्षा–पद्धति

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश (समु० ३) में अष्टाध्यायी की पठन-पाठनविधि का इस प्रकार विधान किया है–

१. **शिक्षा–** प्रथम पाणिनिमुनि कृत शिक्षा जो कि सूत्र रूप है उसकी रीति अर्थात्– इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न और करण है, जैसे **'प'** इसका ओष्ठ स्थान स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी करण कहाता है। इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता, पिता और आचार्य सिखलावें।

२. **अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति–** प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ जैसे- **वृद्धिरादैच्,** फिर पदच्छेद जैसे– वृद्धिः, आत्, ऐच्, फिर समास– आच्च ऐच्च आदैच्, और अर्थ जैसे– **आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते,** अर्थात् आ, ऐ, औ, की वृद्धि संज्ञा है। **तः परो यस्मात् स तपरः, तादपि परस्तपरः।** तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है। इससे क्या सिद्ध हुआ– जो अकार से परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं। तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व, प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई।

उदा०– (१) **भागः।** यहां भज् धातु से घञ् प्रत्यय के करने पर घ, ञ् की इत्संज्ञा होकर लोप होगया। पश्चात् '**भज् अ**' यहां जकार के पूर्व, भकार-उत्तर अकार को वृद्धिसंज्ञक आकार होगया है, तो भाज्, पुनः ज् को ग् हो, अकार के साथ मिलकर 'भागः' ऐसा प्रयोग हुआ। (२) **अध्यायः।** यहां अधिपूर्वक इङ् धातु से ह्रस्व इ के स्थान में घञ् प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि और उसको आय् हो, मिलकर '**अध्यायः**' ऐसा प्रयोग हुआ। (३) **नायकः।** यहां नीञ् धातु से दीर्घ ईकार के स्थान में ण्वुल् प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि और आय् होकर मिलकर '**नायकः**' ऐसा प्रयोग हुआ। (४) **स्तावकः।** यहां स्तु धातु से ण्वुल् प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में औ वृद्धि, आव् आदेश होकर अकार में मिल गया तो '**स्तावकः**' ऐसा प्रयोग हुआ। (५) **कारकः।** कृञ् धातु के आगे लोप, वु के स्थान में अक– आदेश, और अकार के स्थान में आर् वृद्धि होकर '**कारकः**' सिद्ध हुआ।

जो जो सूत्र आगे-पीछे के, प्रयोग में लगें उनका कार्य सब बतलाया जाये और सिलेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला-दिखला कर कच्चा रूप धरके जैसे– **भज्+घञ्+सु,** इस प्रकार धरके प्रथम धातु के अकार का लोप, पश्चात् घकार का, फिर ञ् का लोप होकर **भज्+अ+सु** ऐसा रहा। फिर अ को आ वृद्धि और ज् के स्थान में ग् होने से **भाग+अ+सु,** पुनः अकार में मिल जाने से **भाग+सु** रहा। अब उकार की इत्संज्ञा, लोप हो जाने के पश्चात् '**भाग र्**' ऐसा रहा। अब रेफ के स्थान में (:) विसर्जनीय होकर (**भागः**) यह रूप सिद्ध हुआ।

जिस जिस सूत्र से जो जो कार्य होता है, उस उस को पढ़-पढ़ा के और लिखवाकर कार्य कराता जाये। इस प्रकार पढ़ने-पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है।

एक बार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा के धातु, अर्थ सहित दश लकारों के रूप तथा प्रक्रियासहित सूत्रों का उत्सर्ग अपवादपूर्वक ज्ञान करावे। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुबन्त का विषय अच्छी प्रकार पढ़ावे।

३. **अष्टाध्यायी द्वितीयावृत्ति–** दूसरी बार शंका, समाधान, वार्तिक कारिका परिभाषा की घटनापूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीयावृत्ति पढ़ावे।

४. **महाभाष्य–** तत्पश्चात् महाभाष्य पढ़ावे अर्थात् जो बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी और विद्यावृद्धि के चाहनेवाले नित्य पढ़ें-पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और

डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़कर तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों को व्याकरण से जानकर अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं, किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में नहीं करना पड़ता।

५. **अष्टाध्यायी की महिमा**– **जितना बोध अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य के पढ़ने से ३ वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत चन्द्रिका, कौमुदी और मनोरमा आदि पढ़ने से ५० पचास वर्ष में भी नहीं हो सकता**, क्योंकि महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से जो महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है।

६. **आर्षग्रन्थों की महिमा**– महर्षि लोगों का आशय, जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण करने में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है, और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, **जैसे पहाड़ का खोदना और कौड़ी का लाभ होना, और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना।**

७. **परित्याज्य ग्रन्थ**– अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं, उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो-जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वे वे जालग्रन्थ समझने चाहिएं। **शिक्षा**– 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा' इत्यादि शिक्षा ग्रन्थ। **व्याकरण**– कातन्त्र, सारस्वत चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमा आदि।

८. **अध्ययन–काल (व्याकरण)**

ग्रन्थ का नाम	सत्यार्थप्रकाश	संस्कारविधि
	वर्ष–मास	वर्ष–मास
शिक्षा	० – ०	० – १
अष्टाध्यायी (प्रथमावृत्ति)	१ – ०	१ – ०
धातुपाठ आदि	० – ६	० – ६
अष्टाध्यायी (द्वितीयावृत्ति)	० – ८	० – ८
महाभाष्य	१ – ६	१ – ९
	योग = ३ – ८	४ – ०

९. **प्रकाशित ग्रन्थ**– स्वामी दयानन्द ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्बन्धी निम्नलिखित १४ ग्रन्थ संस्कृत और आर्यभाषा में लिखकर वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित किये हैं– (१) वर्णोच्चारण शिक्षा। (२) सन्धिविषय। (३) नामिक। (४) कारकीय। (५) सामासिक। (६) स्त्रैणताद्धित। (७) अव्ययार्थ। (८) आख्यातिक। (९) सौवर। (१०) पारिभाषिक। (११) धातुपाठ। (१२) गणपाठ। (१३) उणादिकोष (संस्कृत

व्याख्या) (१४) अष्टाध्यायीभाष्य।

स्वामी दयानन्द ने अपने गुरुवर की आज्ञा के पालन में तत्पर होकर इस प्रकार से अष्टाध्यायी आदि आर्षग्रन्थों के अध्ययन का पथ प्रशस्त कर दिया।

४. पण्डित उदयप्रकाश

आपका जन्म मथुरा के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप मथुरा के कौमुदी-अध्यापकों में सर्वश्रेष्ठ अध्यापक माने जाते थे। समस्त टीका-ग्रन्थ उनकी जिह्वा पर नाचते थे। इनसे दण्डी जी का कौमुदी आदि ग्रन्थों का खण्डन सहा न गया अतः संवत् १९२० में इनका दण्डी जी से एक शास्त्रार्थ निश्चित होगया। निश्चय हुआ कि जो हारे वह दूसरे का शिष्य बन उससे पढ़े और उसके सिद्धान्त का अनुयायी बने। इस शास्त्रार्थ में दण्डी जी से परास्त होकर इन्होंने दण्डी जी का शिष्यत्व स्वीकार किया और उनसे अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़े और आजीवन उनका प्रचार किया।

पं० उदयप्रकाश के एक अन्तरंग सखा पं० मणिराम व्याकरण, काव्यशास्त्र और तर्कभाषा के महान् विद्वान् थे। वे पं० उदयप्रकाश के प्रभाव से दण्डी जी के शिष्य बन गए थे। एक बार पं० मणिराम ने दण्डी जी से कहा था-- **भगवन्! मेरे सखा पं० उदयप्रकाश जी जिस दिन से आपके पास अध्ययन करते हैं, उसी दिन से मैं भी आपका छात्र हूं।** मैं दो-दो चार-चार मास मथुरा में रहकर आपसे अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढूंगा।

आपने स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य के विरोध में यजुर्वेद की स्वर-संचारिणी व्याख्या लिखी थी। यह लीथो प्रेस में छपी थी। इस ग्रन्थ की एक प्रति रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ (सोनीपत) के संग्रह में विद्यमान है।

५. पण्डित गंगादत्त
(स्वामी शुद्धबोध तीर्थ)

आपका जन्म ग्राम बैलोन जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०) में १८६६ ई० में हुआ। आपके पिता पं० हेमराज वैद्य एक सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपने चौथी श्रेणी तक ग्राम में ही शिक्षा प्राप्त की। खुर्जा में पं० हरसहाय गौड़ भटियाना से लघु कौमुदी तथा पं० किशोरीलाल से ज्योतिष पढ़ी। तत्पश्चात् आपने १८८७ ई० से १८८९ तक मथुरा में श्री दण्डी जी के शिष्य पं० उदयप्रकाश से अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। आप महाभाष्य पर्यन्त व्याकरण-अध्ययन की इच्छा से मथुरा गए थे किन्तु आपके गुरुवर पं० उदयप्रकाश जी का १९४५ वि० कार्तिक शु० ९ सोमवार (दिनांक १२।११।१८८८ ई०) को स्वर्गवास होगया और आपकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। अतः आप १८८८ ई० में विद्या-अध्ययन के लिए काशी चले गए। आपने वहां पं० काशीनाथ शास्त्री से नव्यव्याकरण और दर्शनशास्त्र

का अध्ययन किया। पं० हरनामदत्त भाष्याचार्य (जगाधरी निवासी) से सम्पूर्ण महाभाष्य पढ़ा।

काशी-निवास के समय स्वामी दर्शनानन्द (पं० कृपाराम शर्मा), पं० भीमसेन शर्मा और पं० आर्यमुनि आदि आर्य विद्वानों से आपकी मित्रता होगई थी। आपने वहां अष्टाध्यायी की काशिका नामक वृत्ति का सम्पादन किया था।

आपने १८९६ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा संचालित वैदिक आश्रम (उपदेशक श्रेणी) जालान्धर का प्रबन्ध तथा अध्यापन कार्य सम्भाला। १९०१ ई० में गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम आचार्य बने। आप ही काशी के उद्भट विद्वान् पं० काशीनाथ को गुरुकुल कांगड़ी लाये। गुरुकुल-निवास काल में आपने अष्टाध्यायी पर एक संक्षिप्त व्याख्या लिखी। १९०७ में आपने स्वामी दर्शनानन्द द्वारा संचालित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पद को सुशोभित किया। १९१५ ई० में आपने ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधा संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी शुद्धबोध तीर्थ नाम पाया।

गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के पुराने सुयोग्य स्नातक आपके ही शिष्य थे। पं० भीमसेन शास्त्री (कोटा) तथा पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री (नांगलोई) ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आपसे ही अष्टाध्यायी और महाभाष्य का अध्ययन किया था। आपका १९९० आश्विन शु० ७ भौम (मंगलवार) (दि. १६।९।१९३३ ई०) को स्वर्गवास होगया।

६. आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती)

जन्म—

आपका जन्म फाल्गुन संवत् १९६२ (दि० १० फरवरी १९०६) को ग्राम नांगलोई (दिल्ली) में एक वैश्य परिवार में हुआ। आपका पैतृक नाम राजालाल, माता का नाम यमुनादेवी और पिता का नाम मा० प्यारेलाल था। आपके पूज्य पिता दिल्ली के विद्यालयों में गणित के श्रेष्ठ अध्यापक माने जाते थे।

शिक्षा—

आपने १९२१ ई० में नेशनल यूनिवर्सिटी अलीगढ़ से मैट्रिक परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। आप अंग्रेजी-पद्धति की शिक्षा को छोड़कर प्राचीन पद्धति से संस्कृतभाषा आदि के अध्ययन के लिए दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर पहुंचे और वहां पं० विश्वबन्धु शास्त्री के आचार्यत्व में संस्कृतभाषा का अध्ययन आरम्भ किया। आप वहां की विद्या-भूषण परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। तत्पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री परीक्षा भी उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (उ०प्र०) में प्रविष्ट होकर गुरुवर श्री शुद्धबोध तीर्थ (पं० गंगादत्त शर्मा) से अष्टाध्यायी महाभाष्य, न्यायदर्शन और वेद-वेदांग का अध्ययन किया।

आर्ष गुरुकुल की स्थापना–

आपने श्रावण शुक्ला पूर्णिमा १९९१ वि० (दि० ८ अगस्त १९३४ ई०) को पंचकुइया रोड़ नई दिल्ली के एक क्वाटर में गुरुवर शुद्धबोध तीर्थ की स्मृति में श्रीमद् दयानन्द वेद विद्यालय नामक आर्ष गुरुकुल की स्थापना की। इस गुरुकुल की स्थापना के समय आपके पास केवल दो छात्र तथा सवा छ: आने (वर्तमान ३८ न० पै०) कोष में थे। तत्पश्चात् दिल्ली यमुना-तट पर पर्णकुटीर बनाकर आर्षपाठविधि से अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि ग्रन्थों का पठन-पाठन रूप सारस्वत यज्ञ चलता रहा। सन् १९४० में युसुफ सराय के निकट ४-५ बीधा भूमि गुरुकुल को दान में मिल गई। अत: गुरुकुल यमुना-तट से स्थायी रूप में यहीं आगया। आपने अपने यौवन-काल के २०-२५ वर्ष इस गुरुकुल की सेवा में होम दिये। इस गुरुकुल की यश-सुरभि सब दिशाओं में फैल गई। आजकल आपके ही पौत्र-शिष्य ब्र० हरिदेव इस गुरुकुल का संचालन कर रहे हैं। आज यह गुरुकुल अष्टाध्यायी और महाभाष्य आदि की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र है। इसके अतिरिक्त आपने गुरुकुल बुकलाना (मेरठ) तथा खेड़ा-खुर्द (दिल्ली) में गुरुकुलों की स्थापना की। आज गुरुकुल खेड़ा खुर्द भी आर्ष शिक्षा पद्धति का उत्तम शिक्षण-संस्थान है। अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थों के सुव्यवस्थित पठन-पाठन के लिए सर्वप्रथम आर्ष गुरुकुल का पुण्य श्रेय आपको ही जाता है।

साहित्य रचना–

आपने अपने गुरुकुलों में प्रचलित आर्षपाठविधि की दृष्टि से संस्कृत-प्रदीपिका (१-२ भाग), पाणिनीय वर्णोच्चारण शिक्षा, अष्टाध्यायी-शब्दानुशासनम्, संस्कृत-व्याकरण प्रकाश, संस्कृत-पथ, गद्यमयं महाभारतम्, सरलं संस्कृतम् आदि अनेक ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित कराये। आपकी विशिष्ट रचना **'सिद्धान्त कौमुदी की अन्त्येष्टि'** ने तो पौराणिक वैयाकरण जगत् में खलबली मचा दी। आपके **'दयानन्द सन्देश'** नामक मासिक पत्र के **स्वराज्य, कर्मवीर, असिधारा** और **दिलजला** नामक विशेषांकों को लोग आज तक ढूंढते फिरते हैं। आपके **योगी का आत्मचरित्र, पांतजलयोगसूत्रभाष्यम्** आदि ग्रन्थ योगिजनों के अत्यन्त प्रिय हैं।

संन्यास दीक्षा–

आप दिनांक १३ अप्रैल १९६८ ई० वैशाखी के शुभ पर्व पर **स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती** से संन्यास-आश्रम की दीक्षा लेकर **स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती** बन गए। आपने योग-विद्या के प्रचार के लिए योगधाम (ज्वालापुर) की स्थापना की। आजकल आपके ही **शिष्य स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती** (स्नातक-गुरुकुल झज्जर) इस योगधाम का बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ संचालन कर रहे हैं और समस्त भारत में योग-विद्या के प्रचार

में रत हैं। ग्राम बोन्तापल्ली जिला मेदक (आ०प्र०) में पातंजल योग मठ की स्थापना की। आज इस मठ का संचालन आपकी शिष्या **ब्रह्म० योगभारती** कर रही है।

शिष्यमण्डल—

आपके पावन चरणों में बैठकर जिन्होंने अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थों के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त किया उन प्रमुख आर्य विद्वानों के नाम ये हैं– पं० सुरेन्द्र कुमार शास्त्री अलीगढ़ (उ०प्र०), पं० विश्वप्रिय शास्त्री लेदरपुर (बिजनौर), पं० बुद्धदेव शास्त्री लेदरपुर (बिजनौर), पं० श्रुतिकान्त (मद्रास), पं० भद्रसेन (मद्रास), ब्र० भगवान्देव आचार्य (नरेला), पं० विश्वदेव शास्त्री कैलाशनगर दिल्ली, डॉ० वेदव्रत आलोक (सुपुत्र) आदि।

आपके द्वारा लगाया गया एक तरुवर **'श्रीमद् दयानन्द वेद विद्यालय गोतमनगर, नई दिल्ली'** अष्टाध्यायी आदि आर्षग्रन्थों के शिक्षार्थी छात्रों को अनुपम शरण प्रदान कर रहा है और इस तरुवर की छाया में बैठकर कितने ही ब्रह्मचारी आज वेदामृत का पान कर रहे हैं।

७. ब्र० भगवान्देव आचार्य (स्वामी ओमानन्द सरस्वती)

जन्म—

आपका जन्म चैत्र बदी८ सं० १९६७ वि० तदनुसार मार्च १९१० ई० में दिल्ली के सुप्रसिद्ध उपनगर नरेला (मामूरपुर) में एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय-परिवार में चौ० कनकसिंह के घर हुआ। आपके पूज्य पिता महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त एवं दृढ़ आर्यसमाजी थे।

शिक्षा—

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा नरेला में हुई और आपने उच्च शिक्षा सैंट स्टीफन कॉलेज दिल्ली में प्रारम्भ की। अंग्रेज-सरकार के भारतीयों पर घोर अत्याचारों को देखकर आपको अंग्रेजी-शिक्षा तथा सभ्यता से घोर घृणा होगई। सत्यार्थप्रकाश आदि महर्षिकृत ग्रन्थों में लिखित आर्ष शिक्षा पद्धति के प्रति अगाध श्रद्धा बढ़ने लगी अतः आपने कॉलेज-शिक्षा को मध्य में ही लात मारकर पवित्र आर्ष शिक्षा पद्धति की शरण ली। आर्ष शिक्षा प्रणाली के अनन्य अनुरक्त भक्त आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री के चरणों में बैठकर दयानन्द वेद विद्यालय दिल्ली में अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थों का अध्ययन किया। गुरुकुल चित्तौडगढ़ में स्वामी व्रतानन्द जी महाराज से पाणिनीय व्याकरण-शास्त्र का परिशीलन किया। गुरुकुल रावलपिण्डी में पं० मुक्तिराम (स्वामी

आत्मानन्द सरस्वती) से योगदर्शन, यौगिक क्रिया तथा आयुर्वेद आदि की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् अपने जन्म-स्थान नरेला में **"विद्यार्थी-आश्रम"** की स्थापना करके अष्टाध्यायी आदि आर्षग्रन्थों के पठन-पाठन यज्ञ का शुभारम्भ कर दिया।

गुरुकुल झज्जर के आचार्य–

झज्जर निवासी पं० विश्वम्भरदत्त ने १३८ बीघा भूमि में स्वामी श्रद्धानन्द के करकमलों से आधारशिला रखवाकर १६ मई १९१५ को गुरुकुल झज्जर की स्थापना की। गुरुकुल की रात-दिन चिन्ता तथा साथियों के विश्वासघात से निराश होकर आप गुरुकुल छोड़कर हरद्वार की ओर चले गए। मुजफ्फरनगर के निकट रतेरा नामक ग्राम में आपका स्वर्गवास होगया। आपके स्वर्गवास के पश्चात् गुरुकुल के सभी सहयोगी निराश होगए और गुरुकुल बन्द होगया। अब किसी को आशा नहीं रही कि यहां गुरुकुल चल सकेगा।

आर्यसमाज की विभूति स्वामी ब्रह्मानन्द जी तथा स्वामी परमानन्द जी महाराज ने दिनांक २ मार्च १९२० ई० को गुरुकुल का पुनः संचालन करने का कार्य अपने हाथों में लिया। इन दोनों महापुरुषों ने लगभग १६ वर्ष तक इस गुरुकुल का संचालन किया। स्वामी आत्मानन्द जी उन दिनों सह-अधिष्ठाता के पद पर सेवा करते रहे। दौर्भाग्य से सन् १९४० ई० में गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता स्वामी परमानन्द जी का स्वर्गवास होगया। स्वामी ब्रह्मानन्द जी अतिवृद्ध होगए थे। पुनरपि वे यथा-तथा गुरुकुल को चलाते रहे। इस प्रकार गुरुकुल पर फिर निराशा के बादल छागए।

नवजीवन का संचार–

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती बरहाणा (रोहतक) तथा श्री छोटूराम राठी खरहर (रोहतक) के आग्रह पर **ब्रह्मचारी भगवान्देव जी** ने २२ सितम्बर १९४२ ई० को गुरुकुल का आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता पद सम्भाल लिया। आपने महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित गुरुकुल शिक्षा पद्धति के अनुसार इस संस्था को एक आदर्श गुरुकुल के रूप में संचालन का दृढ़ निश्चय किया। आपकी प्रार्थना पर आपके ही बाल्यकाल के शिक्षक श्री **मा० धर्मसिंह** झिंझोली (सोनीपत) ने गुरुकुल के संरक्षक एवं अधिष्ठाता पद का कार्यभार ३ अक्तूबर १९४५ ई० को ग्रहण कर लिया। गुरुकुल वेदविद्यालय गोतमनगर दिल्ली के आपके ही सहपाठी **पं० विश्वप्रिय शास्त्री** ने १२ नवम्बर १९४५ को गुरुकुल के उपाचार्य पद को सुशोभित किया। श्री **फतहसिंह** जी रैय्या (रोहतक) सन् १९४६ के उत्तरार्ध में गुरुकुल के अन्न-भण्डार, गोशाला तथा पाकशाला आदि कार्यों के संचालन में जुट गये। इसलिए आप आज भी **'भण्डारी'** उपनाम से प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार इस त्रि-विभूति की सेवा से गुरुकुल पुनः सुचारु रूप से चलने लगा।

गुरुकुल में नव-जीवन का संचार होगया। एक मुर्झाते हुए तरु को जलधारा मिलगई। एक टिम-टिमाते हुए दीपक में तैल डाल दिया गया। एक अनाथ बालक को माता-पिता-भाई मिल गए। पं० विश्वम्भरदत्त जी का तप फलने लगा। श्रद्धेय आचार्य भगवान्‌देव (वर्तमान- स्वामी ओमानन्द सरस्वती) जी के आचार्यत्व में आज यह गुरुकुल प्रगति के शिखर पर है। आज गुरुकुल में निम्नलिखित विभाग समाज की सेवा में समर्पित हैं–

१. विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय।
२. आर्य गोशाला (भारत में प्रसिद्ध)।
३. धर्मार्थ औषधालय (कैंसर आदि असाध्य रोगों की चिकित्सा)।
४. आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला।
५. सुधारक (मासिक-पत्रिका)।
६. •हरयाणा साहित्य संस्थान (आर्षग्रन्थों का प्रकाशनविभाग)
७. हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय (अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त)।
८. मुनि देवराज शोध संस्थान।
९. श्रीमद् दयानन्दार्ष विद्यापीठ (आर्षपाठ विधि के अनुसार शिक्षा देनेवाले सभी गुरुकुलों का एक संघटन तथा महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से सम्बद्ध)।
१०. महर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास (संस्कृत भाषा के विकास के लिए छात्रवृत्ति, विद्वानों का सम्मान तथा आर्षग्रन्थों का प्रकाशन)।

एक दिव्य पुरुष–

गुरुकुल झज्जर के महान् आचार्य भगवान्‌देव (स्वामी ओमानन्द सरस्वती) नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वीतराग संन्यासी, सन्तशिरोमणि, परम तपस्वी, संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ और महान् इतिहासवेत्ता, एक दिव्य पुरुष हैं। आपने ऐतिहासिक, नैतिक, वैद्यक, समाजसुधार और ब्रह्मचर्यविषयक कितने ही ग्रन्थों की रचना की है। आप अष्टाध्यायी महाभाष्य तथा वेदादि शास्त्रों के प्रकाशक और महान् प्रचारक हैं। आपकी सेवाओं के फलस्वरूप हरयाणा सरकार ने आपको **'संस्कृत पण्डित'** तथा भारत सरकार ने **'राष्ट्रीय पण्डित'** की उपाधि से पुरस्कृत किया है।

आप एक व्यक्ति नहीं अपितु स्वयं ने एक संस्था हैं। आप **कन्या गुरुकुल नरेला दिल्ली** के तथा **श्रीमद् दयानन्दार्षविद्या पीठ गुरुकुल झज्जर** के कुलपति, **यतिमण्डल भारत** तथा **आर्यप्रतिनिधि हरयाणा** के प्रधान, **परोपकारिणी सभा अजमेर** के का० प्रधान, **महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**, रोहतक तथा **गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरद्वार** की शिष्टपरिषद् के सदस्य, **सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली** के अन्तरंग सदस्य और **अखिल भारतीय इतिहास-परिषद्** (भारत-सरकार) के परामर्शदाता हैं।

आर्षपाठ विधि के द्वारा वैदिक विद्वान् तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी तैयार करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करके यथार्थ आदर्श

स्वरूप को प्रस्तुत करना आपके जीवन का परम लक्ष्य है।

आज भी आप ८७ वर्ष की आयु में आर्षपाठ विधि, साहित्य-प्रकाशन, ऐतिहासिक-अनुसन्धान, आयुर्वैदिक चिकित्सा, शराबबन्दी आन्दोलन, वेदप्रचार आदि के माध्यम से संसार के उपकार में लगे हुए हैं।

८. पं० विश्वप्रिय शास्त्री

जन्म, शिक्षा–

आपका जन्म २१ अप्रैल १९२१ में जिला बिजनौर के लेदरपुर ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री फतेहसिंह ग्राम के मुखिया थे। आप अपने चार बहिन-भाइयों में से सब से छोटे थे। आपके छोटे भाई खेमसिंह ग्राम के मुखिया रहे हैं। आपकी बहिन बसन्ती तथा पूज्या माता जी का आपकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवास होगया था। अत: आप मातृ-स्नेह से वञ्चित रहे। ग्राम में विद्यालय नहीं था अत: नदी पार करके समीपवर्ती शेरकोट उप-नगर में पढ़ने जाना पड़ता था। आप बुद्धिमत्ता के कारण कक्षा में सर्वप्रथम रहते अत: आपको छात्रवृत्ति मिलती थी और फीस भी मुआफ थी। आपने १९३७ में विद्यालय से मिडल परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३८ से १९४५ तक आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री के चरणों में बैठकर दयानन्द वेद विद्यालय में अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् आपने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से विद्यारत्न, एजूकेशन बोर्ड उत्तरप्रदेश से हाईस्कूल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्यरत्न, पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री और दरभंगा विश्वविद्यालय से आचार्य परीक्षा योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की।

आप श्रद्धेय आचार्य भगवान्देव जी के दयानन्द वेदविद्यालय दिल्ली के सहपाठी थे। आपको सम्पूर्ण पाणिनीय अष्टाध्यायी एवं व्याकरणशास्त्र कण्ठस्थ था। आप संस्कृत-भाषाके उद्‌भट विद्वान् थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जयावती स्नातिका गुरुकुल सासनी संस्कृत-भाषा की विदुषी है। आपकी पुत्री डॉ० सुवीरा और पुत्र वेदप्रिय, ब्रह्मप्रिय, सर्वप्रिय, आनन्दप्रिय और विजयप्रिय संस्कृतभाषा तथा भारतीय संस्कृति के अनुरागी हैं।

गुरुकुल के उपाचार्य–

गुरुकुल झज्जर के आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता ब्रह्म० भगवान्देव जी के आग्रह पर आपने दिनांक १२ नवम्बर १९४५ को गुरुकुल के उपाचार्य पद को सुशोभित किया। आपके आगमन से पूर्व आचार्य भगवान्देव जी ही ब्रह्मचारियों को पाणिनीय शिक्षा अष्टाध्यायी, काशिका तथा आर्य-सिद्धान्त पढ़ाते रहे। गुरुकुल के लिए अन्न-धन संग्रह का कार्य भी अत्यन्त आवश्यक था। अत: आचार्य भगवान्देव जी को उक्त आवश्यक कार्य में अति व्यस्त रहने के कारण अध्यापन-कार्य के लिए समय नहीं मिलता था। पं० विश्वप्रिय शास्त्री के उपाचार्य पद का कार्यभार सम्भाल लेने पर आचार्य भगवान्देव जी

अध्यापन-कार्य से निश्चिन्त होगए। अब पं० विश्वप्रिय शास्त्री ब्रह्मचारियों को वर्णोच्चारण शिक्षा, अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि पाणिनीय व्याकरण शास्त्र पढ़ाने लगे।

आप ब्रह्मचर्य-काल में गुरुकुल में ही रहते थे। गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश के पश्चात् झज्जर नगर में रहने लगे। प्रतिदिन झज्जर से आते और सायंकाल पढ़ाकर चले जाते थे। उन दिनों पठन-पाठन कार्य में कोई अवकाश नहीं होता था। **'स्वाध्याये नास्त्यनध्यायः'** के आदेश का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता था। अतः आप गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी अध्यापन-यज्ञ में कोई अनध्याय (छुट्टी) नहीं रखते थे। **यह एक गृहस्थ के लिए परम तप है।**

आपने १९४५ ई० से १९५५ ई० दश वर्ष तक एक आदर्श उपाचार्य के रूप में शिक्षा-सत्र का संचालन किया। आपके चरणों में बैठकर जिन छात्रों ने पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया उनके कुछ नाम निम्नलिखित हैं–

१. पं० यज्ञदेव शास्त्री लूलोढ, रेवाड़ी (हरयाणा)।
२. पं० वेदव्रत शास्त्री अजीतपुरा, त० चिड़ावा, जिला झुंझुनूं (राज०)।
३. पं० सुदर्शनदेव आचार्य बालन्द, रोहतक (हरयाणा)।
४. पं० सत्यव्रत आचार्य सुलतान बाजार, हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश)।
५. पं० सत्यवीर शास्त्री डालावास, भिवानी (हरयाणा)।
६. पं० महावीर मीमांसक छतेरा माजरा, सोनीपत (हरयाणा)।
७. पं० राजवीर शास्त्री फजलगढ़, मेरठ (उत्तरप्रदेश)।
८. पं० मनुदेव शास्त्री डालावास, भिवानी (हरयाणा)।
९. डॉ० सोमवीर चमराड़ा, करनाल (हरयाणा)।
१०. पं० यशपाल आचार्य सतनालीकाबास, महेन्द्रगढ़ (हरयाणा)।
११. श्री मनुदेव योगी (स्वामी सत्यपति) फरमाणा रोहतक (हरयाणा)।
१२. पं० धर्मपाल शास्त्री, बोरी, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)।
१३. पं० धर्मव्रत शास्त्री चुड़ेला, झूंझनूं (राजस्थान)।
१४. पं० वेदपाल शास्त्री झोझूकलां (भिवानी) हरयाणा।

आपकी अध्यापन-कार्य के अतिरिक्त लेखन-कार्य में विशेष रुचि थी। आपके वैदिक-सिद्धान्त तथा सामयिक समस्याओं के समाधान में आर्यजगत् तथा दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते रहते थे। आचार्य हरिदेव गुरुकुल गोतमनगर दिल्ली ने **'तम्बाकू का नशा'** नामक आपकी एक रचना प्रकाशित कराई है। आपके महत्त्वपूर्ण लेख निम्नलिखित हैं–

१. पंजाब का हिन्दी आन्दोलन।
२. महर्षि दयानन्द और स्वराज्य।

३. मलेरिया का उपाय।
४. काल का निर्धारण (सृष्टि संवत्)।
५. शारीरिक पतन का कारण : तम्बाकू।
६. गीता और अहिंसा।
७. संस्कृत की व्यापक ध्वनियां (पाण्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित है)।
८. राजनीति और महर्षि दयानन्द।
९. दहेज-प्रथा।
१०. महर्षि दयानन्द और दहेजप्रथा।
११. जन्दावस्ता और वेद।
१२. हिन्दी रक्षा सत्याग्रह।
१३. उचित उपाय (हिन्दी-रक्षा)।
१४. वास्तविक तर्पण।
१५. चाय का मानव-देह पर दुष्प्रभाव।
१६. क्या वेद में वशिष्ठ का इतिहास है ?
१७. भाषाओं का विकास।
१८. महाभारतकालीन अद्भुत शस्त्रों की झांकी।
१९. महर्षि दयानन्द और गोरक्षा।
२०. सिद्धान्त कौमुदी की अन्त्येष्टि के लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान।

खेद है कि आप १८ जून १९६५ ई० में विशूचिका रोग से लगभग ४६ वर्ष की आयु में ही हमें छोड़कर स्वर्गधाम चले गए। गुरुवर ! आपके द्वारा प्रारम्भ किया गया पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का पठन-पाठन रूप यज्ञ आपके तप से अबाध गति से चल रहा है और उसकी सुगन्धि भारत के सभी प्रान्तों में फैल रही है। अब श्री विजयपाल योगार्थी गुरुकुल में आर्ष शिक्षा महायज्ञ का संचालन कर रहे हैं।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

दिनांक ११ अक्तूबर १९९६ को जनकपुरी नई दिल्ली आर्यसमाज के उत्सव पर स्वामी ओमानन्द जी पधारे और उनका रात्रि-सभा में वेद-विषयक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ और मुझे प्रेरणात्मक आशीर्वाद दिया कि तुम अष्टाध्यायी का एक अच्छा भाष्य लिख दो। मैं उसे प्रकाशित कर दूंगा। श्रद्धेय स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से ही यह **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक अष्टाध्यायी का भाष्य पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। स्वामी जी महाराज ने ही **'ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास'** गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) की ओर से प्रकाशित किया है।

इस में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों की पदच्छेद, विभक्ति, समास, अन्वय, अर्थ और उदाहरण आत्मक संस्कृतभाषा में व्याख्या की गई है और **आर्यभाषा** नामक हिन्दी टीका में सूत्रों का पदोल्लेख सहित, अर्थ, उदाहरण, उदाहरणों का हिन्दी भाषा में अर्थ और उदाहरणों की कच्ची सिद्धि भी दी गई है। कहीं-कहीं विशेष' नामक सन्दर्भ में विषय को सुस्पष्ट किया गया है।

मैंने सन् १९४७ से ५१ तक श्रद्धेय पं० आचार्य भगवान्देव जी तथा गुरुवर विश्वप्रिय शास्त्री जी के चरणों में बैठकर पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। आज ५० वर्ष के पश्चात् स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से यह पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम् नामक प्रयास पाठकवृन्द की सेवा में प्रस्तुत किया है। इसमें यदि कोई गुण दिखाई देता है वह सब मेरे गुरुजनों का शुभ आशीर्वाद है और जितने भी इसमें दोष दृष्टिगोचर हो रहे हैं वह सब मेरी अल्पज्ञता ही समझनी चाहिए।

संस्कृत व्याकरणशास्त्र एक विशाल अरण्यानी है। इसमें मुझ जैसे साधारण व्याकरण-विद्यार्थी से भूल-चूक रह जाना कोई बड़ी बात नहीं है। यदि कोई भूल दृष्टिगोचर हो तो वैयाकरण विद्वान् मुझे सूचित करने का अनुग्रह करें जिस से उसे आगामी संस्करण में बहिष्कृत किया जा सके।

धन्यवाद–

मेरे बड़े भाई पं० वेदव्रत जी शास्त्री (सहपाठी) ने उत्तम मुद्रणकार्य तथा स्थान-स्थान पर संशोधन के सुझावों से कृतार्थ किया है। आर्ष गुरुकुल नरेला की स्नातिका श्रीमती सावित्री शास्त्री जनता कालोनी, रोहतक ने पाण्डुलिपि तैयार करने में सहयोग प्रदान किया है। श्री सुरेन्द्रकुमार चतुर्वेदी ने उत्तम टंकण कार्य किया है। तदर्थ ये मेरे अतिधन्यवाद के पात्र हैं।

–सुदर्शनदेव आचार्य
संस्कृत सेवा संस्थान
७७६/३४ हरिसिंह कालोनी, रोहतक

ग्रन्थकार—

पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य

जन्म–

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचन के लेखक पं० सुदर्शनदेव आचार्य का जन्म माघ शुक्ला पंचमी सं० १९९१ वि० तदनुसार ८ फरवरी १९३५ ई० को ग्राम बालन्द (रोहतक) में महाशय शिवदत्त आर्य एवं श्रीमती रजकां देवी के घर हुआ।

शिक्षा–

आपके पूज्य पिता दृढ़ आर्यसमाजी थे। अतः ऋषिभक्त पिता ने अपने होनहार पुत्र को प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त आर्ष शिक्षा पद्धति से वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के लिए ७ फरवरी १९४७ ई० को आर्य-भजनोपदेशक चौ० नौनन्दसिंह (स्वामी नित्यानन्द) कलोई सूरा (रोहतक) के साथ गुरुकुल झज्जर (रोहतक) भेज दिया। वहां पर आपने श्रद्धेय आचार्य भगवान्देव जी तथा महावैयाकरण पं० विश्वप्रिय शास्त्री आदि विद्वानों के चरणों में बैठकर शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र, काव्यालंकार, दर्शनशास्त्र, उपनिषद्, गीता, रामायण, मनुस्मृति, संस्कृत-साहित्य एवं वेदों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् आप गुरुकुल में ही प्रधानाध्यापक के पद पर अध्यापन-कार्य करते रहे।

आपने सन् १९५७ में पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री, सन् १९६२ में व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १९६७ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरद्वार से एम०ए० (संस्कृत) में सर्वप्रथम रहे। सन् १९७७ में इसी विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा संचालित दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर, भटिण्डा में आप ७ वर्ष तक आचार्य रहे। तत्पश्चात् सन् १९६८ से १९९५ तक हरयाणा प्रशासन के विद्यालय तथा महाविद्यालयों में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर सेवा करते रहे। आप ३० दिसम्बर १९९५ को राजकीय सेवा से निवृत्त होकर आर्यप्रतिनिधि सभा हरयाणा के वेदप्रचाराधिष्ठाता एवं सर्वहितकारी के सह-सम्पादक के रूप में सेवाकार्य कर रहे हैं।

साहित्य-रचना–

आपने शिक्षा-सेवा के साथ-साथ निम्नलिखित साहित्य-रचना की है–

१. **वेदभाष्य-विबोध** (यजुर्वेद का ४०वां अध्याय)।

२. दयानन्द यजुर्वेदभाष्य भास्कर (४ भाग)।
३. दयानन्द ऋग्वेदभाष्य भास्कर (२ भाग)।
४. शिक्षा वेदांग परम्परा एवं सिद्धान्त (मुद्रणालय में)।
५. वर्णोच्चारण-शिक्षा (विबोधवृत्ति)।
६. दयानन्द सन्ध्याहवन पद्धति।
७. वैदिक उपासना पद्धति।
८. बाल संस्कारविधि (संस्कृत)।
९. वर्षेष्टि यज्ञपद्धति।
१०. व्याकरण कारिकाप्रकाश।
११. लिङ्गानुशासनवृत्ति।
१२. व्याकरणशास्त्राम् (दो भाग)।
१३. ब्रह्मचर्यामृतम्।
१४. पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती जीवन-चरित्र।

पुरस्कार–

आपकी उक्त साहित्य-सेवा के फलस्वरूप **'आर्यसमाज सान्ताक्रुज, बम्बई'** ने दिनांक २८ जनवरी १९९६ को आपको वेद-वेदांग पुरस्कार से सम्मानित किया है।

आप आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हैं। आपने अपनी साहित्य-रचना की शृंखला में **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक यह नयी रचना व्याकरण-जिज्ञासु छात्र-छात्राओं तथा स्वाध्यायशील पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की है। आशा है इससे व्याकरण-शास्त्र के क्षेत्र में पाठकवृन्द को अवश्य ही नया प्रकाश तथा लाभ प्राप्त होगा।

संचालक–

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
दयानन्दमठ, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ४६८७४,
S.T.D. : ०१२६२

वेदव्रत शास्त्री
मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा,
१६-७-१९९७ ई०

प्रकाशकीय–वक्तव्य

पवित्र वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेदों के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष में छः अंग है। इनमें व्याकरण-शास्त्र को वेद-शरीर का मुख माना गया है अर्थात् यह वेदों का एक मुख्य अंग है। महर्षि पतंजलि लिखते हैं– **'प्रधानं षट्स्वङ्गेषु व्याकरणं, प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति'** अर्थात् वेदों के छः अंगों में व्याकरण-शास्त्र प्रधान है और प्रधान में किया हुआ यत्न सफल होता है।

श्रीमद्दयानन्दार्ष विद्यापीठ गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) के अधीन आज लगभग ३० गुरुकुल चल रहे हैं। जिनमें मुख्य रूप से पाणिनीय व्याकरण-शास्त्र का पठन-पाठन होता है। बहुत दिनों से इच्छा थी कि अपने गुरुकुलों में चल रहे व्याकरण-शास्त्र के पठन-पाठन की सुविधा के लिए पाणिनीय अष्टाध्यायी की संस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) में एक उत्कृष्ट व्याख्या लिखकर प्रकाशित की जाये। हर्ष का विषय है कि अपने ही गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक पं० सुदर्शनदेव आचार्य ने मेरी इच्छा के अनुरूप अष्टाध्यायी की संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में उत्तम व्याख्या लिखी है जिसे ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। यह **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक ग्रन्थ निम्नलिखित पांच भागों में प्रकाशित किया जायेगा–

१. प्रभम भाग (प्रथम-द्वितीय अध्याय)।
२. द्वितीय भाग (तृतीय अध्याय)।
३. तृतीय भाग (चतुर्थ-पञ्चम अध्याय)।
४. चतुर्थ भाग (षष्ठ अध्याय)।
५. पञ्चम भाग (सप्तम-अष्टम अध्याय)।

श्रावणी उपाकर्म (२०५४ वि०) के शुभ अवसर पर **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** का प्रथम भाग पाठकवृन्द की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। शेष चार भाग भी शीघ्र प्रकाशित किये जायेंगे।

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी भाष्य (पांचों भागों) का मूल्य ५०० रुपये है। प्रथम भाग लेकर सम्पूर्ण भाष्य के ग्राहक बननेवाले पाठकों को पांचों भाग ४०० रुपये में दिये जायेंगे।

–ओमानन्द सरस्वती
आचार्य
गुरुकुल झज्जर (हरयाणा)

२०-७-१९९७
गुरुपूर्णिमा

अष्टाध्यायी के पुनरुद्धारक
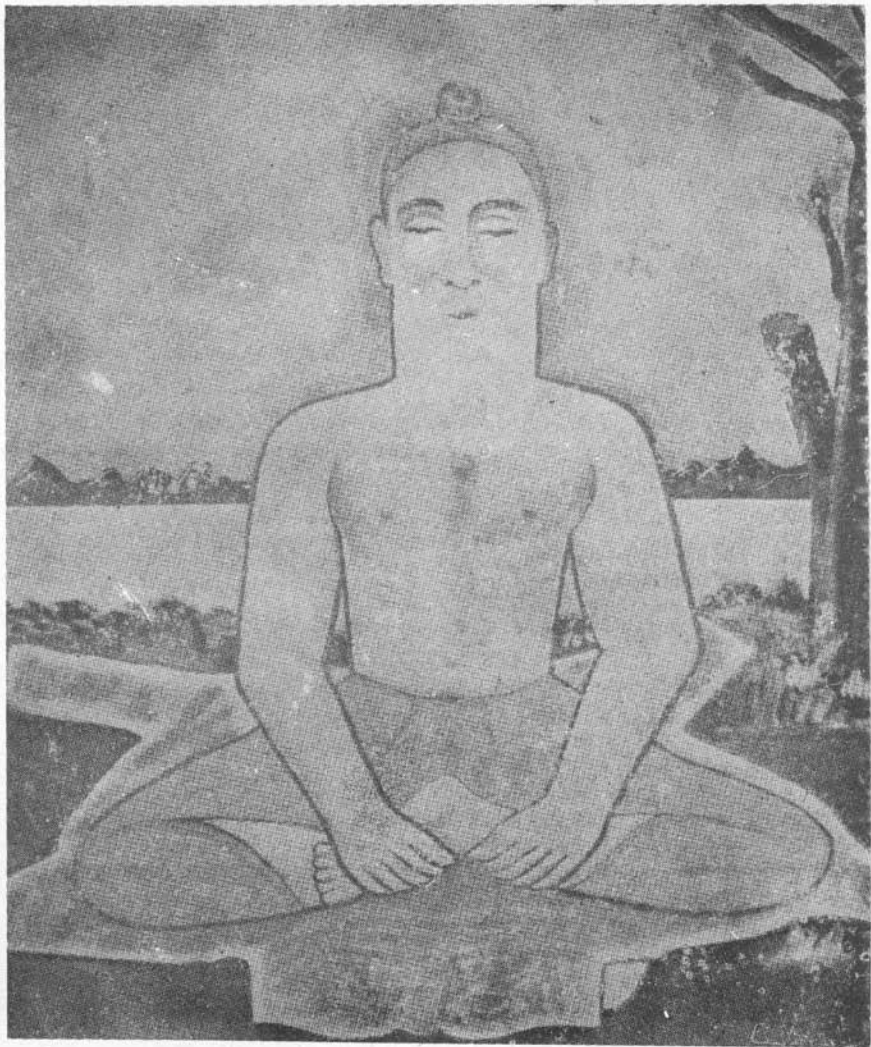
स्वामी विरजानन्द सरस्वती

अष्टाध्यायी-महाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोऽन्यत् पुस्तकं यत्तुं तत्सर्वं धूर्तचेष्टितम्।।

—विरजानन्द सरस्वती

अष्टाध्यायी के महान् प्रचारक
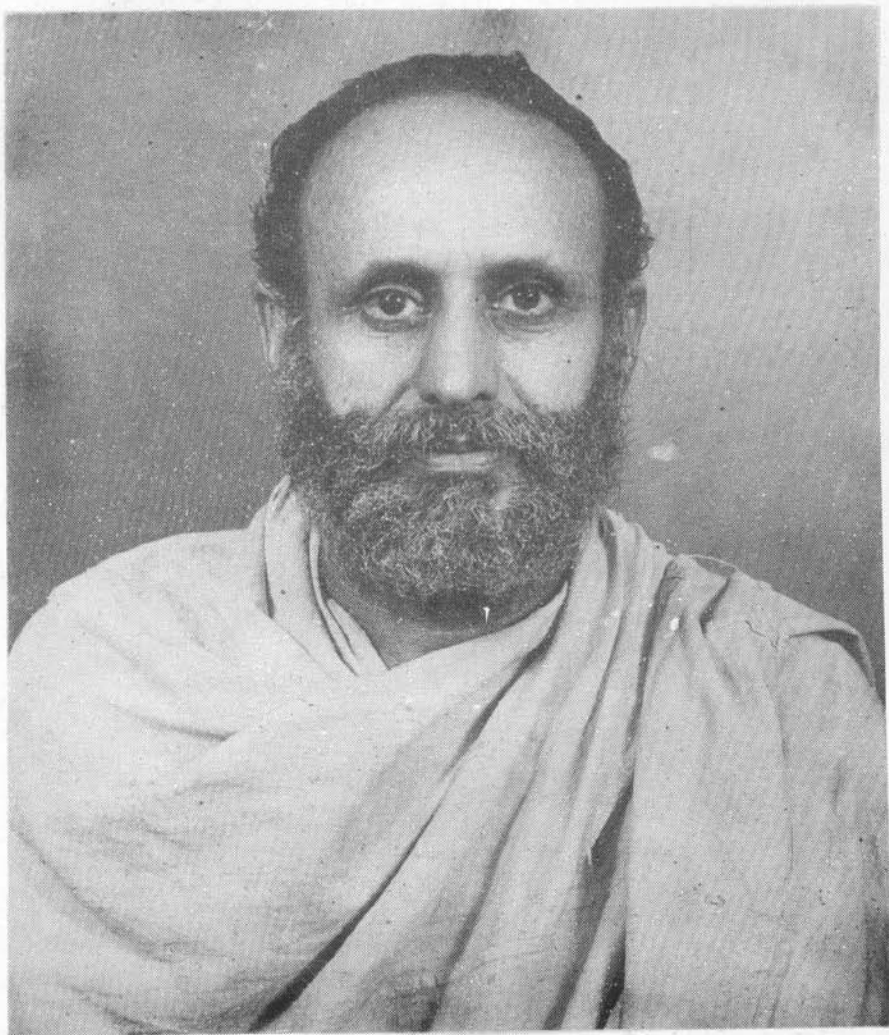
स्वामी ओमानन्द सरस्वती

ओमानन्दं ममाचार्यं पाणिनीयस्य प्रकाशकम्।
पुरातत्त्वरस्य वेत्तारं वन्दे भिषग्वरं गुरुम्।।

—सुदर्शनदेवः

अष्टाध्यायी के महोपध्याय
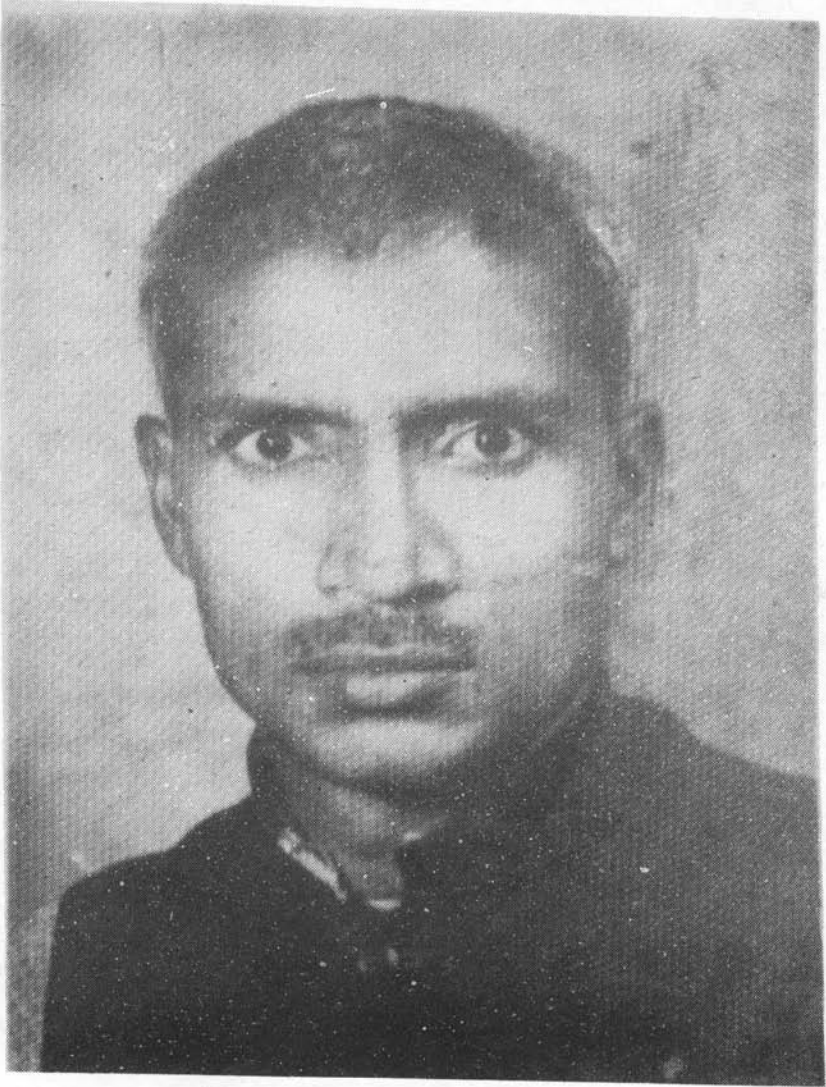
पण्डित विश्वप्रिय शास्त्री

विश्वप्रियमुपाध्यायं पाणिनीयस्य पाठकम्।
गुरुवर्यं सदा वन्दे शब्दविद्याविचक्षणम्।।

—सुदर्शनदेवः

‘पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्’

के

लेखक
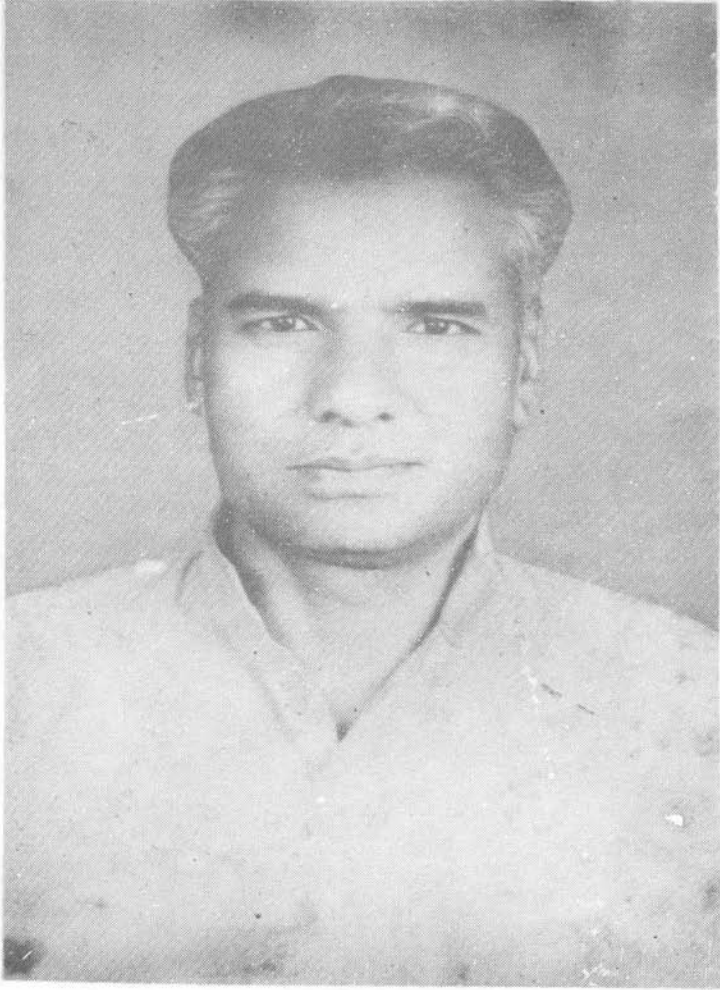
पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य

यदधीतं सुविज्ञातं गुरुमुखसमाश्रितम्।
स्मरन् गुरुजनं पूज्यं पाणिनीयं लिखाम्यहम्।।

श्रावणी उपाकर्म
२०५४ वि०

—सुदर्शनदेवाचार्यः

ओं सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

अथ पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

गुरुवन्दना

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः।१।
भगवान्देवमाचार्यं विश्वप्रियं च पण्डितम्।
गुरुवर्यं सदा वन्दे वेद-वेदाङ्गपाठकम्।२।
बालानां सुखबोधाय विदुषां विमर्शाय च।
अष्टाध्यायीप्रवचनं क्रियते कामधुङ् मया।३।

व्याकरणशास्त्रप्रारम्भः

अथ शब्दानुशासनम्।१।

प०वि०-अथ अव्ययपदम्। शब्दानुशासनम्।१।१।

स०-शब्दानाम् अनुशासनमिति शब्दानुशासनम्। (षष्ठीतत्पुरुषः)

अर्थः- शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। केषां शब्दानामनुशासनम्? लौकिकानां वैदिकानां च। लौकिकस्तावत्-गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकास्तावत्-अग्निमीळे पुरोहितम्। इषे त्वोर्जे त्वा। अग्न आयाहि वीतये। शन्नो देवीरभिष्टये इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(शब्दानुशासनम्) अब शब्दानुशासन=व्याकरण शास्त्र का (अथ) आरम्भ किया जाता है।

*जिसमें शब्दों का उपदेश हो उसे 'शब्दानुशासन' कहते हैं। यहां किन शब्दों का उपदेश किया जाता है? लौकिक और वैदिक शब्दों का। लौकिक शब्द कैसे होते हैं? जैसे-गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, शकुनिः, मृगः, ब्राह्मणः इत्यादि। वैदिक शब्द कैसे होते हैं? जैसे **अग्निमीळे पुरोहितम्** (ऋ० १।१।१) **इषे त्वोर्जे त्वा** (यजु० १।१।) **अग्न आयाहि वीतये** (साम० १।१।१) **शन्नो देवीरभिष्टये०** (अथर्व० १।६।१) इत्यादि।*

अथ प्रत्याहारप्रकरणम्-

अ इ उ ण्।१।

प०वि०-अ इ उ ण् १।१।

अर्थ-अ, इ, उ इत्येतान् वर्णान् उपदिश्यान्ते णकारमितं करोति, अण् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अ इ उ ण्) अ, इ, उ इन तीन वर्णों का उपदेश करके अन्त में णकार अनुबन्ध किया है, 'अण्' प्रत्याहार के लिये। 'अण्' कहने से 'उरण् रपरः' (अ० १।१।५१) इत्यादि स्थलों पर अ, इ, उ इन तीन वर्णों का ग्रहण किया जाता है।

यहां 'इण्' आदि प्रत्याहार भी सम्भव है, किन्तु पाणिनि मुनि को अपने शब्दानुशासन में 'अण्' प्रत्याहार की ही आवश्यकता है।

ऋ लृ क्।२।

प०वि०-ऋ लृ क् १।१।

अर्थ-ऋ लृ इत्येतौ वर्णौ पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते ककारमितं करोति, अक्, इक्, उक् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋ लृ क्) ऋ, लृ इन दो वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में ककार अनुबन्ध किया गया है, अक्, इक्, उक् इन तीन प्रत्याहारों के लिये। अक्-'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।१०१)। इक्-'इको गुणवृद्धी' (१।१।३१)। उक्-उगितश्च (४।१।६) इत्यादि।

ए ओ ङ्।३।

प०वि०-ए ओ ङ् १।१

अर्थ-ए ओ इत्येतौ वर्णावुपदिश्यान्ते ङकारमितं करोति, एङ् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ए ओ ङ्) ए ओ इन दो वर्णों का उपदेश करके अन्त में ङकार अनुबन्ध किया है, एङ् प्रत्याहार के लिये। एङ्-अदेङ् गुणः (१।१।२) इत्यादि।

ऐ औ च्।४।

प०वि०-ऐ औच्। १।१

अर्थः-ऐ, औ इत्येतौ वर्णौ पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते चकारमितं करोति, अच्, इच्, एच्, ऐच् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऐ औच्) ऐ, औ इन दो वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में चकार अनुबन्ध किया है, अच्, इच्, एच्, ऐच् प्रत्याहारों के लिये। अच्-अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१।१।५७) इच्-इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च (६।३।६८) एच्-एचोऽयवायावः (६।१।७८)। ऐच्-वृद्धिरादैच् (१।१।१)।

ह य व र ट्।५।

प०वि०-ह य व र ट् १।१।

अर्थः-ह, य, व, र इत्येतान् पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते टकारमितं करोति, अट् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ह य व र ट्) ह, य, व, र इन चार वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में टकार अनुबन्ध किया गया है, अट् प्रत्याहार के लिये। अट्-शश्छोऽटि (८।४।६३) इत्यादि।

लण्।६।

प०वि०-लण् १।१।

अर्थः-(लण्) ल इत्येकं वर्णं पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते णकारमितं करोति, अण्, इण्, यण् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लण्) ल इस एक वर्ण का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में णकार अनुबन्ध किया है, अण्, इण्, यण् प्रत्याहारों के लिये। अण्-अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः (१।१।६७) इण्-इण्कोः (८।३।५७) यण्-इको यणचि (६।१।७७) इत्यादि।

विशेष-अण् दो प्रत्याहार बनाये हैं। पहला अ इ उ ण् सूत्र में और दूसरा इस सूत्र में। इस सूत्रवाले अण् का अष्टाध्यायी में केवल अणुदित्सर्वस्य चाप्रत्ययः (१।१।६७) इसी सूत्र में ग्रहण किया जाता है। अन्यत्र सर्वत्र अष्टाध्यायी में 'अ इ उ ण्' के अण् प्रत्याहार का ग्रहण होता है।

ञ म ङ ण न म्।७।

प०वि०-ञ म ङ ण न म् १।१।

अर्थः-ञ, म, ङ, ण न इत्येतान् पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते मकारमितं करोति, अम्, यम्, ङम् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ञ म ङ न म्) ञ, म, ङ, ण, न इन पांच वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में मकार अनुबन्ध किया है, अम्, यम्, ङम् प्रत्याहारों

के लिये। अम्-पुमः खय्यम्परे (८।३।६) यम्-हलो यमां यमि लोपः (८।४।६४) ङम्-ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (८।३।३२) इत्यादि।

विशेष-पाणिनिमुनिप्रणीत उणादिकोष में एक ञम् प्रत्याहार भी मिलता है-ञम्-ञमन्ताड्डः (उणा० १।११४)।

झ भ ञ्।८।

प०वि०-झ भ ञ् १।१।

अर्थः-झ भ इत्येतौ वर्णौ पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते ञकारमितं करोति, यञ् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(झ भ ञ्) झ भ इन दो वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में ञकार अनुबन्ध किया है, यञ् प्रत्याहार के लिये। यञ्-अतो दीर्घो यञि (७।३।१७१) इत्यादि।

घ ढ ध ष्।९।

प०वि०-घ ढ ध ष् १।१।

अर्थः-घ, ढ, ध इत्येतान् पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते षकारमितं करोति, झष् भष् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(घ ढ ध ष्) घ, ढ, ध इन तीन वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में षकार अनुबन्ध किया है, झष्, भष् प्रत्याहारों के लिये। झष्, भष्-एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८।२।३७) इत्यादि।

ज ब ग ड द श्।१०।

प०वि०-ज ब ग ड द श् १।१।

अर्थः-ज ब ग ड द इत्येतान् पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते शकारमितं करोति, अश्, हश् वश्, जश्, झश्, बश् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ज ब ग ड द श्) ज, ब, ग, ड, द इन पांच वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में शकार अनुबन्ध किया है, अश्, हश्, वश्, जश्, झस्, बश् प्रत्याहारों के लिये। अश्-भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि (८।३।१७) हश्-हशि च (६।१।११४) वश्-नेड्वशि कृति (७।२।८) जश्, झश्-झलां जश् झशि (८।४।५३) बश्-एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८।२।३७) इत्यादि।

ख फ छ ठ थ च ट त व्।११।

प०वि०-ख फ छ ठ थ च ट त व् १।१।

अर्थः-ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त इत्येतान् वर्णान् उपदिश्यान्ते वकारमितं करोति, छव् प्रत्याहारार्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ख फ छ ठ थ च ट त व्) ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त इन आठ वर्णों का उपदेश करके अन्त में वकार अनुबन्ध किया है, छव् प्रत्याहार के लिये। छव्-नश्छव्यप्रशान् (८।३।७)

विशेष-यहां ख, फ का ग्रहण उत्तर प्रत्याहारों के लिये है। यहां छ वर्ण से प्रत्याहार ग्रहण किया गया है।

क प य्।१२।

प०वि०- क प य् १।१।

अर्थः-क, प इत्येतौ वर्णौ पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते यकारमितं करोति, यय्, मय्, झय्, खय् प्रत्याहारार्थम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(क प य्) क, प इन दो वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का उपदेश करके अन्त में यकार अनुबन्ध किया है। यय्, मय्, झय्, खय् प्रत्याहारों के लिये। यय्-**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** (८।४।५८) मय्-**मय उञो वो वा** (८।३।३३) झय्-**झयो होऽन्यतरस्याम्** (८।४।६२) खय्-**पुमः खय्यम्परे** (८।३।६) इत्यादि।*

विशेष-कात्यायनमुनिप्रणीत वार्तिकसूत्रों में एक चय् प्रत्याहार भी मिलता है। चय्-चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः (अ० ८।४।५८)

श ष स र्।१३।

प०वि०-श ष स र् १।१।

अर्थः-श ष स इत्येतान् पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते रेफमितं करोति, यर्, झर्, खर्, चर्, शर् प्रत्याहारार्थम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(श ष स र्) श ष स इन तीन वर्णों का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके अन्त में रेफ अनुबन्ध किया है, यर्, झर्, खर्, चर् शर् प्रत्याहारों के लिये। यर्-**यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** (८।४।४५) झर्-**झरो झरि सवर्णे** (८।४।६५) खर्-**खरि च** (८।४।५५) चर्-**अभ्यासे चर् च** (८।४।५४) शर्-**शर्पूर्वाः खयः** (७।४।६१) इत्यादि।*

ह ल्।१४।

प०वि०-हल् १।१।

अर्थः-ह प्रत्येकं वर्णं पूर्वांश्च वर्णान् उपदिश्यान्ते लकारमितं करोति, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल् प्रत्याहारार्थम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(हल्) ह, इस एक वर्ण का तथा पूर्व वर्णों का भी उपदेश करके __अन्त__ में लकार अनुबन्ध किया है, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल् प्रत्याहारों के लिये। __अल्-अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा__ (१।१।६५) हल्-हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७) वल्-लोपो व्योर्वलि (६।१।६६) रल्-रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (१।२।२६) झल्-झलो झलि (८।२।२६) शल्-शल इगुपधादनिटः क्सः (३।१।४५) इत्यादि।

एकस्मान् ङञणवटा द्वाभ्यां षस्त्रिभ्य एव कणमाः स्युः।
ज्ञेयौ चयौ चतुर्भ्यो रः पञ्चभ्यः शलौ षड्भ्यः।।

आर्यभाषा-अर्थ-जिन प्रत्याहार सूत्रों में ङ ञ ण व ट अनुबन्ध हैं उनमें एक प्रत्याहार बनता है। जहां ष अनुबन्ध है वहां दो प्रत्याहार बनते हैं। जहां क ण म अनुबन्ध हैं वहां तीन प्रत्याहार बनते हैं। जहां च य अनुबन्ध हैं वहां चार अनुबन्ध बनते हैं। जहां र अनुबन्ध है वहां पाच प्रत्याहार बनते हैं और जहां श, ल अनुबन्ध हैं वहां छः प्रत्याहार बनते हैं।

	प्रत्याहार सूत्र	प्रत्याहार	संख्या
१.	अ इ उ ण्	अण्	१
२.	ऋ ऌ क्	अक् इक् उक्	३
३.	ए ओ ङ्	एङ्	१
४.	ऐ औ च्	अच् इच् एच् ऐच्	४
५.	ह य व र ट्	अट्	१
६.	लण्	अण् इण् यण्	३
७.	ञ म ङ ण न म्	अम् यम् ङम्	३
८.	झ भ ञ्	यञ्	१
९.	घ ढ ध ष्	झष् भष्	२
१०.	ज ब ग ड द श्	अश् हश् वश् झश् जश् बश्	६
११.	ख फ छ ठ थ च ट त व्	छव्	१
१२.	क प य्	यय् मय् झय् खय्	४
१३.	श ष स र्	यर् झर् खर् चर् शर्	५
१४.	हल्	अल् हल् वल् रल् झल् शल्	६
			योग=४१

विशेष—ये १४ चौदह प्रत्याहार सूत्र हैं। प्रत्याहार का अर्थ संक्षेप है। वैयाकरण सिद्धान्त-कौमुदी के रचयिता पं० भट्टोजिदीक्षित आदि इन्हें माहेश्वरसूत्र (शिवसूत्र) मानते हैं। जैसा कि नन्दिकेश्वरकृत काशिका में लिखा है—

नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्
एतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

व्याकरण महाभाष्य के रचयिता महर्षि पतञ्जलि और महर्षि दयानन्द आदि का मत है कि ये १४ चौदह सूत्र पाणिनि-प्रणीत ही हैं।

इति प्रत्याहारप्रकरणम्।

संस्कृत वर्णमाला

पाणिनि मुनि ने इन प्रत्याहार सूत्रों में अण् आदि ४१ प्रत्याहारों के लिये आवश्यक वर्णों का ही ग्रहण किया है। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार संस्कृत वर्णमाला में निम्नलिखित ६३ तरेसठ वर्ण हैं :-

स्वर

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
अ	आ	अ ३
इ	ई	इ ३
उ	ऊ	उ ३
ऋ	ॠ	ऋ ३
ऌ	×	ऌ ३
×	ए	ए ३
×	ऐ	ऐ ३
×	ओ	ओ ३
×	औ	औ ३
५	८	९ (२२)

व्यञ्जन

क वर्ग-	क ख ग घ ङ।
च वर्ग-	च छ ज झ ञ।
ट वर्ग-	ट ठ ड ढ ण।
त वर्ग-	त थ द ध न।
प वर्ग-	प फ ब भ म।
अन्तःस्थ-	य र ल व।
ऊष्म-	श ष स ह। (३३)

अयोगवाह

विसर्जनीय	ꣶ ह्रस्व
जिह्वामूलीय	ꣷ दीर्घ
उपध्मानीय	ँ अनुनासिक
अनुस्वार	ळ {चार याम} (८)

२२ स्वर, ३३ व्यञ्जन, ८ अयोगवाह=६३

अथ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः

गुणवृद्धिप्रकरणम्

वृद्धि-संज्ञा–

(१) वृद्धिरादैच्।१।

प०वि०–वृद्धिः १।१ आदैच् १।१।

स०–आत् च ऐच् च एतयोः समाहार आदैच् (समाहारद्वन्द्वः)। तः परो यस्मात् स तपरः, तादपि परस्तपरः (बहुव्रीहिः समासः)

अर्थः–तपराणाम् आकार-ऐकार-औकाराणां वृद्धि-संज्ञा भवति।

उदा०–(आकारः) आश्वलायनः। शालीयः। मालीयः। (ऐकारः) ऐतिकायनः। (औकारः) औपगवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आदैच्) आ+त्+ऐच् अर्थात् तपर आकार, ऐकार और औकार की (वृद्धिः) वृद्धि संज्ञा होती है।

उदा०–(आकार) आश्वलायनः। अश्वलायन का पुत्र। शालीयः। शाला में रहनेवाला गृहस्थ। मालीयः। माला में रहनेवाला पुष्प। (ऐकार) ऐतिकायनः। इतिक का पुत्र। (औकार)-औपगवः। उपगु का पुत्र।

सिद्धि*–*(१) आश्वलायनः। *अश्वल+फक्। आश्वल्+आयन। आश्वलायन+सु। आश्वलायनः। यहां अश्वल शब्द से अपत्य अर्थ में **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।८८) से फक् प्रत्यय, **'आयनेय०'** (७।१।२) से फ के स्थान में आयन-आदेश और **'किति च'**(७।१।११८) से आदि वृद्धि होती है।*

*(२) **शालीयः।** शाला+छ। शाल्+ईय। शालीय+सु। शालीयः। यहां शाला शब्द के आदि में वृद्धिसंज्ञक आकार के होने से उसकी **'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्'** (१।१।७३) से वृद्ध संज्ञा होकर **'वृद्धाच्छः'** (४।१।११४) से छ प्रत्यय होता है। छ के स्थान में **'आयनेय०'** (७।१।२) से ईय-आदेश होता है। ऐसे ही माला शब्द से-**मालीयः।***

*(३) **ऐतिकायनः।** इतिक+फक्। ऐतिक्+आयन। ऐतिकायन+सु। ऐतिकायनः। यहां इतिक शब्द से अपत्य अर्थ में **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।८८) से फक् प्रत्यय, **'आयनेय०'** (७।१।२) से फ के स्थान में आयन-आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से आदि वृद्धि होती है।*

(४) **औपगवः ।** उपगु+अण् । औपगो+अ । औपगव+सु । औपगवः । यहां उपगु शब्द से अपत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अण् प्रत्यय और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदि वृद्धि होती है। यहां **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से उपगु के अन्त्य उकार को गुण होता है।

विशेष-आदैच् पद के मध्य में 'त्' किसलिये लगाया गया है? आ+त्+ऐच् । अष्टाध्यायी में अनेक स्थानों पर 'त्' लगाकर वर्णों का निर्देश किया गया है। उन वर्णों को तपर कहते हैं। यहां आ और ऐच् के मध्य में त् लगाया गया है। इसलिये देहली-दीपक न्याय से आ और ऐच् दोनों तपर हैं। जैसे घर की देहली पर रखा हुआ दीपक दोनों ओर अपना प्रकाश फैलाता है, वैसे यहां दोनों के मध्य में विद्यमान त् आ और ऐच् दोनों को तपर करता है। **तः परो यस्मात् स तपरः, तादपि परस्तपरः ।** जिससे त् परे है उसे तपर कहते हैं और जो त् से परे है वह भी तपर कहाता है। अष्टाध्यायी में वर्णों को तपर करने का प्रयोजन यह है कि **'तपरस्तत्कालस्य'** (१।१।७०) अर्थात् तपर वर्ण तत्काल के ग्राहक होते हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत जिस भी काल के वर्ण के साथ त् लगाया जाता है, वह उसी काल के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा निरनुनासिक और सानुनासिक वर्णों का ग्राहक होता है।

इस प्रकार तपर वर्ण अपने छः प्रकार के स्वरूप का ग्रहण करता है, शेष का नहीं। अतः यहां छः प्रकार के आकार, ऐकार और औकार की वृद्धि संज्ञा का विधान किया है। इसे निम्नलिखित अकार के १८ अठारह भेदों की रीति से यथावत् समझ लेवें :-

	स्वर	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
१.	उदात्त-	अ	आ	अ३
२.	अनुदात्त-	अ॒	आ॒	अ॒३
३.	स्वरित-	अ॑	आ॑	अ॑३ (निरनुनासिक)
४.	उदात्त-	अँ	आँ	अँ३
५.	अनुदात्त-	अ॒ँ	आ॒ँ	अ॒ँ३
६.	स्वरित-	अ॑ँ	अ॑ँ	अ॑ँ (सानुनासिक)

इकार आदि वर्णों के भी भेद इसी प्रकार से होते हैं। उन्हें महर्षि दयानन्दप्रणीत **'वर्णोच्चारण शिक्षा'** से समझ लेवें। ह्रस्व वर्ण की एक मात्रा, दीर्घ वर्ण की दो मात्रा और प्लुत वर्ण की तीन मात्राएं होती हैं। स्वस्थ मनुष्य के अंगूठे की नाड़ी की धड़कन से मात्रा काल की गणना की जाती है। एक धड़कन का एक मात्रा काल होता है।

☆ ☆ ☆

गुणसंज्ञा–

(२) अदेङ् गुणः ।२।

प०वि०–अदेङ् १।१ गुणः १।१

स०–अत् च एङ् च एतयोः समाहारः–अदेङ् (समाहारद्वन्द्वः)। तः परो यस्मात् स तपरः, तादपि परस्तपरः। (बहुव्रीहिः)

अर्थः–तपराणाम् अकार-एकार-ओकाराणां गुणसंज्ञा भवति।

उदा०–(अकारः) कर्त्ता। हर्ता। (एकारः) जेता। नेता। (ओकारः) होता। पोता।

आर्यभाषा-अर्थ-(अदेङ्) अ+त्+एङ् अर्थात् तपर अकार, एकार और ओकार की (गुणः) गुण संज्ञा होती है।

उदा०–(अकार) कर्त्ता। करनेवाला। हर्ता। हरनेवाला। (एकार) जेता। जीतनेवाला। नेता। ले जानेवाला। (ओकार) होता। हवन करनेवाला। पोता। पवित्र करनेवाला।

सिद्धि-(१) कर्त्ता। कृ+तृच्। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्त् अनङ्+स्। कर्तन्+स्। कर्तान्+स्। कर्तान्+०। कर्ता। यहां डुकृञ् करणे (तनादि०उ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से तृच् प्रत्यय करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' के ऋ को 'अ' गुण होता है और वह 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपर हो जाता है-अर्। यहां 'ऋदुशनस्०' (७।१।९४) से कर्तृ के ऋ को अनङ् आदेश, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से सु का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से न् का लोप होता है। कर्त्ता। करनेवाला। इसी प्रकार हृञ् हरणे (भ्वा०उ०) धातु से 'हर्ता' शब्द सिद्ध होता है।

(२) जेता। जि+तृच्। जे+तृ। जेतृ+सु। जेत अनङ्+सु। जेतन्+स्। जेतान्+स्। जेतान्+०। जेता। यहां जि जये (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से 'जि' के 'इ' को ए गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। इसी प्रकार 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'नेता' शब्द सिद्ध होता है।

(३) होता। हु+तृच्। हो+तृ। होतृ+सु। होत् अनङ्+स्। होतन्+स्। होतान्+०। होता। यहां 'हु दानादनयोरादाने चेत्येके' (अदा० प०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से हु के 'उ' को 'ओ' गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं। इसी प्रकार पूञ् पवने (क्र्या०उ०) धातु से 'पोता' शब्द सिद्ध होता है।

विशेष-अदेङ् पद में अ और एङ् के मध्य में त् लगाया गया है। अतः पूर्वोक्त विधि से अ और एङ् दोनों तपर हैं। ये तपर होने से 'तपरस्तत्कालस्य' (१।१।७०) से

तत्काल का ग्रहण करते हैं। अतः यहां उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा निरनुनासिक और सानुनासिक भेद से छः प्रकार के अकार, एकार और ओकार की गुण संज्ञा होती है।

गुणवृद्धिस्थानम्—

(३) इको गुणवृद्धी।३।

प०वि०–इकः ६।१ गुण-वृद्धी १।२।

स०–गुणश्च वृद्धिश्च ते गुणवृद्धी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०–'वृद्धिरादैच्' इत्यस्माद् वृद्धिः, 'अदेङ् गुणः' इत्यस्माच्च गुण इत्यनुवर्तते।

अन्वय–गुणवृद्धिभ्यां गुवृद्धी इकः।

अर्थः–गुणवृद्धिभ्यां शब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपस्थितं भवति।

उदा०–**गुणः**–(इ) जेता। नेता। (उ) होता। पोता। (ऋ) **कर्ता**। हर्ता। **वृद्धिः** (इ) अचैषीत्। अनैषीत्। (उ) अस्तावीत्। अलावीत्। (ऋ) अकार्षीत् अहार्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ–*यहां **'वृद्धिरादैच्'** से वृद्धि और **'अदेङ् गुणः'** से गुण पद की अनुवृत्ति आती है। (गुणवृद्धिभ्याम्) गुण और वृद्धि शब्दों के द्वारा जहां (गुणवृद्धी) गुण और वृद्धि का विधान किया जाता है, वहां (इकः) यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है। इससे शास्त्र में इक् के स्थान में गुण और वृद्धि होती है।*

उदा०-गुण-(इ) जेता। जीतनेवाला। नेता। ले जानेवाला। (उ) होता। हवन करनेवाला। पोता। पवित्र करनेवाला। (ऋ) कर्ता। करनेवाला। हर्ता। हरनेवाला।

वृद्धि-(इ) अचैषीत्। उसने चुना। अनैषीत्। वह ले गया। (उ) अस्तावीत्। उसने स्तुति की। अलावीत्। उसने काटा। (ऋ) अकार्षीत्। उसने किया। अहार्षीत्। उसने हरण किया।

सिद्धि-(१) जेता। *जि+तृच्। जि+तृ। जेतृ+सु। जेता यहां जि जये (भ्वादि) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से जि धातु के इक् को गुण होता है। इसी प्रकार **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से 'नेता' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **होता।** हु+तृच्। हु+तृ। होतृ+सु। होता। यहां 'हु **दानादनयोरादाने चेत्येके'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'हु' धातु के इक् को गुण होता है। इसी प्रकार **पूञ् पवने** (क्रया०उ०) धातु से **'पोता'** शब्द सिद्ध होता है।*

(३) कर्ता। कृ+तृच्। कृ+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना० उ०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से कृ धातु के इक् के स्थान में 'अ' गुण होता है और वह 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपर हो जाता है। इसी प्रकार 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से हर्ता शब्द सिद्ध होता है।

(४) अचैषीत्। चि+लुङ्। अट्+चि+च्लि+तिप्। अ+चि+सिच्+ति। अ+चि+स्+ईट्+त्। अ+चै+ष्+ई+त्। अचैषीत्। यहां चिञ् चयने धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से च्लि प्रत्यय, 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से च्लि के स्थान में सिच् आदेश और 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।१।१) से चि धातु के इक् को वृद्धि होती है। यहां 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से अट् आगम और 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।८६) से ईट् आगम होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। अचैषीत्=उसने चयन किया।

इसी प्रकार अनैषीत्, अस्तावीत्, अलावीत्, अकार्षीत् अहार्षीत् शब्द सिद्ध करें।

गुणवृद्धि–तालिका

(५) इक्	गुण	वृद्धि
इ	ए	ऐ
उ	ओ	औ
ऋ	अर्	आर्
लृ	×	×

गुणवृद्धि-प्रतिषेधः–

(४) न धातुलोप आर्धधातुके।४।

प०वि०–न अव्ययपदम्। धातुलोपे ७।१। आर्धधातुके ७।१।

स०–धातुं लोपयतीति धातुलोपः, तस्मिन् धातुलोपे (उपपदसमासः) धातोरवयवस्य लोप इति धातुलोपः तस्मिन्–धातुलोपे (मध्यपदलोपी समासः)।

अनु०–'इको गुणवृद्धी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातुलोप आर्धधातुक इको गुणवृद्धी न।

अर्थः–धातुलोपे आर्धधातुके प्रत्यये परत इकः स्थाने गुणवृद्धी न भवतः।

उदा०–गुणः– (इ) चेचियः। (उ) लोलुवः। पोपुवः। वृद्धिः–(ऋ) मरीमृजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुलोपे) यदि धातु के अवयव का लोप करनेवाला (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो (इकः) इक् के स्थान में (गुणवृद्धी) गुण और वृद्धि (न) नहीं होती है।

उदा०-गुण-(इ) चेचियः। अधिक चुननेवाला। लोलुवः। अधिक काटनेवाला। पोपुवः। अधिक पवित्र करनेवाला। वृद्धिः-(ऋ) मरीमृजः। अधिक शुद्ध करनेवाला।

*सिद्धि-(१) **चेचियः**। चेचिय+अच्। चेचिय+अ। चेचिय+सु। चेचियः। यहां यङन्त **चिञ् चयने** (स्वा०उ०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से अच् प्रत्यय करने पर **'यङोऽचि च'** (२।४।७४) से यङ् का लुक् हो जाता है। यङ् का लोप धातु के एक अवयव का लोप है और उसका लोप करनेवाला 'अच्' प्रत्यय आर्धधातुक है। यङ् का लोप होने के पश्चात् आर्धधातुक अच् प्रत्यय के परे रहने पर 'चेचि' धातु के इक् को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण प्राप्त होता है। उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। तत्पश्चात् **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से इयङ् आदेश हो जाता है।*

*(२) **लोलुवः**। लोलूय+अच्। लोलू+अ। लोल् उवङ्+अ। लोलुव्+अ। लोलुवः। यहां यङन्त **लूञ् लवने** (क्रया०उ०) धातु से पूर्ववत् अच् प्रत्यय और यङ् का लुक् हो जाने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण प्राप्त होता है। उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। तत्पश्चात् **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से उवङ् आदेश हो जाता है। इसी प्रकार **पूञ् पवने** (क्रया०उ०) धातु से **'पोपुवः'** शब्द सिद्ध होता है।*

*(३) **मरीमृजः**। मरीमृज्+अच्। मरीमृज्+अ। मरीमृज+सु। मरीमृजः। यहां यङन्त **मृजूष् शुद्धौ** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् अच् प्रत्यय **'मृजेर्वृद्धिः'** (७।२।११४) से धातुस्थ इक् (ऋ) को वृद्धि प्राप्त होती है, उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

(५) क्ङिति च।५।

प०वि०-क्ङिति ७।१। च अव्ययपदम्।

स०-गश्च, कश्च, ङश्च ते क्क्ङः, इच्च इच्च इच्च ते इतः। क्क्ङ इतो यस्य स क्क्ङित्, तस्मिन्-क्क्ङिति। (इतरेतरद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०-इको गुणवृद्धी, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्ङिति च इको गुणवृद्धी न।

अर्थः-गिति किति ङिति च प्रत्यये परतः इकः स्थाने गुणवृद्धी न भवतः।

उदा०-(गिति) जिष्णुः। भूष्णुः। (किति) चितः। चितवान्। स्तुतः।

स्तुतवान्। मृष्टः। मृष्टवान्। (ङिति) चिनुतः। चिन्वन्ति। मृष्टः। मृजन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्ङिति) गित्, कित् और ङित् प्रत्यय के परे होने पर (च) भी (इकः) इक् के स्थान में (गुणवृद्धी) गुण और वृद्धि (न) नहीं होती है।

उदा०-(गित्) जिष्णुः। जीतनेवाला। भूष्णुः। सत्तावाला। (कित्) चितः, चितवान्। चयन किया। स्तुतः, स्तुतवान्। स्तुति की। मृष्टः, मृष्टवान्। शुद्ध किया। (ङित्) चिनुतः, वे दोनों चुनते हैं। चिन्वन्ति। वे सब चुनते हैं।

सिद्धि-(१) जिष्णुः। जि+ग्स्नु। जि+स्नु। जिष्णु+सु। जिष्णुः। यहां जि जये (भ्वा०प०) धातु से 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' (३।२।१३८) से ग्स्नु प्रत्यय करने पर जि धातु के इक् को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण प्राप्त होता हैं किन्तु ग्स्नु प्रत्यय के गित् होने से गुण का प्रतिषेध हो जाता है।

(२) भूष्णुः। भू+ग्स्नु। भू+स्नु। भूष्णु+सु। भूष्णुः। यहां भू सत्तायाम् (भ्वा०प०) धातु से 'भुवश्च' (३।२।१४०) से ग्स्नु प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) चितः। चि+क्त। चि+त। चित+सु। चितः। यहां चिञ् चयने (स्वा०उ०) धातु से क्त प्रत्यय करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८०) से चि धातु के इक् को गुण प्राप्त होता है किन्तु क्त प्रत्यय के कित् होने से गुण का प्रतिषेध हो जाता है।

(४) चितवान्। चि+क्तवतु। चि+तवत्। चितवत्+सु। चितवान्। यहां चि धातु से क्तवतु प्रत्यय है। शेष पूर्ववत् है।

(५) मृष्टः। मृज्+क्त। यहां मृजूष् शुद्धौ (अदा०प०) धातु से क्त प्रत्यय करने पर 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से मृज् धातु के इक् को वृद्धि प्राप्त होती है, किन्तु क्त प्रत्यय के कित् होने से वृद्धि का निषेध हो जाता है।

(६) मृष्टवान्। यहां मृजूष् शुद्धौ (अदा०प०) धातु से क्तवतु प्रत्यय है। शेष पूर्ववत् है।

(७) चिनुतः। चि+लट्। चि+श्नु+तस्। चि+नु+तस्। चिनुतः। यहां चि धातु से लट्लकार में तस् प्रत्यय और श्नु विकरण प्रत्यय करने पर यह पद सिद्ध होता है। तस् प्रत्यय के परे होने पर श्नु के इक् को तथा श्नु प्रत्यय के परे होने पर चि धातु के इक् को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण प्राप्त होता है, किन्तु तस् प्रत्यय और श्नु प्रत्यय के ङित् होने से गुण का प्रतिषेध हो जाता है। तस् और श्नु प्रत्यय सार्वधातुकमपित् (१।२।४) से ङित् माने जाते हैं। ऐसे ही-चिन्वन्ति।

(८) मृष्टः। मृज्+लट्। मृज्+शप्+तस्। मृज+०+तस्। मृज्+तस्। मृष्टः। यहां मृजूष् शुद्धौ (अदा०प०) धातु से तस् प्रत्यय है। उसके परे रहने पर मृज् धातु के इक् को मृजेर्वृद्धिः (७।२।११४) से वृद्धि प्राप्त होती है, किन्तु तस् प्रत्यय के ङित् होने से वृद्धि का प्रतिषेध हो जाता है।

*विशेष-प्रश्न-यहां सूत्रार्थ में गित्, कित् और ङित् प्रत्यय के परे रहने पर इक् के स्थान में प्राप्त गुण और वृद्धि का प्रतिषेध किया है, किन्तु **क्ङिति च** सूत्र में तो कित् और ङित् प्रत्यय के परे रहने पर गुण और वृद्धि का प्रतिषेध दिखाई दे रहा है ?*

*उत्तर-यहां वैयाकरण लोग गकार का चर्त्वभूत उपदेश मानते हैं। ग्+क्+ङ्=ग्क्ङ्। यहां **खरि च** (८।४।५६) से ग् को चर् क् हो जाता है-क्क्ङ्। यहां **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** (८।४।४५) से द्वितीय क् को अनुनासिक ङ् हो जाता है-क्ङ्ङ्। यहां **हलो यमां यमि लोपः** (८।४।६४) से मध्यस्थ ङ् का लोप हो जाता है। क्ङ्। क्ङिति च। इस प्रकार यहां चर्त्वभूत गकार का उपदेश किया गया है।*

(६) दीधीवेवीटाम्।६।

प०वि०-दीधी-वेवी-इटाम् ६।३

स०-दीधीश्च वेवीश्च इट् च ते-दीधीवेवीटः, तेषाम्-दीधीवेवीटाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-इको गुणवृद्धी, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीधीवेवीटाम् इको गुणवृद्धी न।

अर्थः-दीधी-वेवी-इटाम् इकः स्थाने गुणवृद्धी न भवतः।

उदा०-(दीधी) आदीध्यनम्। आदीध्यकः। (वेवी) आवेव्यनम्। आवेव्यकः। (इट्) श्वः कणिता।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(दीधीवेवीटाम्) दीधी, वेवी और इट् के (इकः) इक् के स्थान में (गुणवृद्धी) गुण और वृद्धि (न) नहीं होती है।*

उदा०-(दीधी) आदीध्यनम्। चमकना। आदीध्यकः। चमकनेवाला। (वेवी) आवेव्यनम्। गति आदि करना। आवेव्यकः। गति आदि करनेवाला। (इट्) श्वः कणिता। वह कल आवाज करेगा।

*सिद्धि-(१) **आदीध्यनम्।** आङ्+दीधी+ल्युट्। आ+दीधी+अन। आदीध्यन+सु। आदीध्यनम्। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः'** (अदा०आ०) धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से धातुस्थ ई को गुण प्राप्त होता है, किन्तु इस सूत्र से गुण का प्रतिषेध हो जाता है।*

*(२) **आदीध्यकः।** आङ्+दीधी+ण्वुल्। आ+दीधी+अक। आदीध्यक+सु। आदीध्यकः। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः'** (अदा०आ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से ण्वुल् प्रत्यय करने पर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि प्राप्त होती है, किन्तु इस सूत्र से वृद्धि का प्रतिषेध हो जाता है।*

(३) आवेव्यनम् और आवेव्यकः शब्दों की सिद्धि आङ्पूर्वक वेवीङ् वेतिना तुल्ये (अदा० आ०) धातु से आदीध्यनम् और आदीध्यकः के समान समझें।

(४) श्वः कणिता। कण्+लुट्। कण्+तिप्। कण्+डा। कण्+तास्+आ। कण्+इट्+तास्+आ। कण्+इ+त्+आ। कणिता। यहां कण शब्दार्थः (भ्वादि०प०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) लुट् प्रत्यय करने पर और तास् के टि भाग का लोप हो जाने पर 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से इट् को गुण प्राप्त होता है, किन्तु इस सूत्र से गुण का प्रतिषेध हो जाता है।

संयोगसंज्ञा–

(१) हलोऽनन्तराः संयोगः।७।

प०वि–हलः १।३ अनन्तराः १।३ संयोगः।७।१।

स०–हल् च हल् च तौ हलौ। हल् च, हल् च, हल् च ते हलः, हलौ च हलश्च ते हलः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न विद्यतेऽन्तरं येषु तेऽनन्तराः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–अनन्तरा हलः संयोगः।

अर्थः–अनन्तरा (व्यवधानरहिताः) हलः संयोगसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–अग्निः। अश्वः। कर्णः। इन्द्रः। चन्द्रः। उष्ट्रः। राष्ट्रम्। भ्राष्ट्रम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(अनन्तराः) अचों के व्यवधान से रहित (हलः) हलों की (संयोगः) संयोग संज्ञा होती है।

उदा०–अग्निः। आग। अश्वः। घोड़ा। कर्णः। कान। इन्द्रः। राजा। चन्द्रः। चांद। उष्ट्रः। ऊंट। राष्ट्रम्। राज्य। भ्राष्ट्रम्। दाने भूनने का पात्र।

सिद्धि–(१) अग्निः। अ+ग्+न्+इ+ः=अग्निः। यहां ग्–न् की संयोग संज्ञा है।

(२) अश्वः। अ+श्+व्+अ+ः=अश्व। यहां श्–व् की संयोग संज्ञा है।

(३) इन्द्रः। इ+न्+द्+र्+अ+ः=इन्द्रः। यहां न्+द्+र् की संयोग संज्ञा है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेवें। संयोग संज्ञा का फल यह है कि 'संयोगे गुरु' (१।४।११) से संयोग परे होने पर, पूर्व ह्रस्व वर्ण भी गुरु माना जाता है।

अनुनासिकसंज्ञा–

(१) मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः।८।

प०वि०–मुखनासिकावचनः १।१ अनुनासिकः १।१

स०–मुखं च नासिका च एतयोः समाहारः–मुखनासिकम्। ईषद्

वचनम्-आवचनम्। मुखनासिकम् आवचनं यस्य स मुखनासिकावचनः (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः-मुखनासिकावचनो वर्णोऽनुनासिक-संज्ञको भवति।

उदा०-अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्र पुत्रे। चन आँ इन्द्रः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(मुखनासिकावचनः) मुख और नासिका से उच्चारण किये जानेवाले वर्ण की (अनुनासिकः) अनुनासिक संज्ञा होती है।*

उदा०-अभ्र आँ अपः। गभीर आँ उग्र पुत्रे। चन आँ इन्द्रः।

सिद्धि-*आँ-यहां **'आङोऽनुनासिकश्छन्दसि'** (६।१।११६) से आ को अनुनासिक हो जाता है। इसका उच्चारण मुख सहित नासिका से किया जाता है। अतः यह अनुनासिक है।*

सवर्णसंज्ञा–

(१) तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्।६।

प०वि०-तुल्यास्यप्रयत्नम् १।१ सवर्णम् १।१।

स०-आस्यं मुखम्। आस्ये भवमिति आस्यम्। आस्ये प्रयत्न इति आस्यप्रयत्नः। तुल्य आस्यप्रयत्नो यस्य तत् तुल्यास्यप्रयत्नम्। (सप्तमीतत्पुरुषगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः-येषां वर्णानां तुल्य आस्ये प्रयत्नस्ते परस्परं सवर्णसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-दण्डाग्रम्। खट्वाग्रम्। दधीन्द्रः। मधूदकम्। पितृणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(तुलास्यप्रयत्नम्) जिन वर्णों का आस्य=मुख में तुल्य प्रयत्न है, उनकी परस्पर (सवर्णम्) सवर्ण संज्ञा होती है।*

उदा०-दण्डाग्रम्। दण्ड का अग्रभाग। खट्वाग्रम्। खाट का अग्रभाग। दधीन्द्रः। दही का स्वामी। मधूकदम्। मधुर जल। पितृणम्। पिता का ऋण।

सिद्धि-*(१) **दण्डाग्रम्।** दण्ड+अग्रम्। दण्डाग्रम्। यहां दोनों अकारों का मुख में होनेवाला विवृत प्रयत्न तुल्य है। अतः उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा है। सवर्ण संज्ञा होने से **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।१०१) से दीर्घ एकादेश हो जाता है।*

(२) खट्वा+अग्रम्। खट्वाग्रम्। दधि+इन्द्र। दधीन्द्र। मधु+उदकम्। मधूदकम्। पितृ+ऋणम्। पितृणम्। यहां भी 'दण्डाग्रम्' के समान ही कार्य जानें।

विशेष-वर्णों के आभ्यन्तर और बाह्य भेद से दो प्रकार के प्रयत्न होते हैं। सवर्ण संज्ञा में आभ्यन्तर अर्थात् मुख के अन्दर होनेवाले प्रयत्नों का ग्रहण किया जाता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न-स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, संवृत और विवृत भेद से चार प्रकार का होता है। उसे महर्षि दयानन्द प्रणीत पाणिनीय शिक्षा की व्याख्या 'वर्णोच्चारण शिक्षा' से यथावत् समझ लेवें।

सवर्णसंज्ञाप्रतिषेधः–

(२) नाज्झलौ ।१०।

प०वि०–न अव्ययपदम्। अच्-हलौ १।२

स०–अच् च हल् च तौ–अज्झलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तुल्यास्यप्रयत्नम् अज्झलौ सवर्णं न।

अर्थः–तुलास्यप्रयत्नावपि अच्-हलौ परस्परं सवर्णसंज्ञकौ न भवतः।

उदा०–दण्डहस्तः। दधिशीतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुलास्यप्रयत्नम्) तुल्य स्थान और तुल्य आभ्यन्तर प्रयत्नवाले (अच्-हलौ) अच् और हल् वर्णों की परस्पर (सवर्णम्) सवर्णसंज्ञा (न) नहीं होती है।

उदा०–दण्डहस्तः। दण्ड है हाथ में जिसके वह। दधि-शीतम्। ठण्डी दही।

सिद्धि-(१) दण्डहस्तः। यहां अ और ह का स्थान कण्ठ है। अ का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत और ह का आभ्यन्तर प्रयत्न ईषद् विवृत है। इस प्रकार अ और ह का स्थान और प्रयत्न में सादृश्य है किन्तु 'अ' अच् और 'ह' हल् है। अतः इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा नहीं होती है। सवर्ण संज्ञा न होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।१०१) से सवर्ण दीर्घत्व नहीं होता है।

(२) दधिशीतम्-यहां इकार और शकार का स्थान तुल्य है और पूर्ववत् प्रयत्न की भी समानता है। यहां भी पूर्वोक्त कारण से सवर्ण संज्ञा नहीं होती है।

प्रगृह्यसंज्ञाप्रकरणम्

ईदूदेदन्तं द्विवचनम्–

(१) ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्।११।

प०वि०–ईत्-ऊत्-एद् १।१ द्विवचनम् १।१ प्रगृह्यम् १।१।

स०–इत् च ऊत् च एत् च एतेषां समाहारः–ईदूदेद् (समाहारद्वन्द्वः)

अर्थः–ईदन्तम्, ऊदन्तम्, एदन्तम् च द्विवचनं शब्दरूपं प्रगृह्यसंज्ञकं भवति।

उदा०-(ईदन्तम्) अग्नी इति। (ऊदन्तम्) वायू इति। (एदन्तम्) माले इति। पचेते इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(ईत्-ऊत्-एत्) ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त (द्विवचनम्) द्विवचनान्त पद की (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उदा०-(ईकारान्त) अग्नी इति। (ऊकारान्त) वायू इति। (एकारान्त) माले इति, पचेते इति।

*सिद्धि-(१) **अग्नी इति।** यहां अग्नी पद ईकारान्त द्विवचन है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से यह **'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्'** (६।१।१२५) से प्रकृतिभाव से रहता है। **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।१०१) से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है।*

*(२) **वायू इति।** यहां वायू पद ऊकारान्त द्विवचन है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। **'इको यणचि'** (६।१।७७) से प्राप्त यण्-आदेश (व्) नहीं होता है।*

*(३) **माले इति।** यहां माले पद एकारान्त द्विवचन है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृतिभाव से रहता है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से प्राप्त अयादेश नहीं होता है।*

अदसो मात्परमीदूदेत्–

(२) अदसो मात्।१२।

प०वि०-अदसः ६।१ मात् ५।१।

अनु०-ईदूदेत् प्रगृह्यम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अदसो मात् ईदूदेत् प्रगृह्यम्।

अर्थः-अदसो मकारात् परम् ईदूदेत् प्रगृह्यसंज्ञकं भवति।

उदा०-(ईत्) अमी अत्र। (ऊत्) अमू अत्र। (एत्) एकारस्य नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अदसः) अदस् शब्द के (मात्) म से परे (ईदूदेत्) ई, ऊ, ए की (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उदा०-(ई) अमी अत्र। (ऊ) अमू अत्र। (ए) ए का उदाहरण नहीं है।

*सिद्धि-(१) **अमी अत्र।** यहां अदस् शब्द के मकार से उत्तर ई की प्रगृह्य संज्ञा होने से यह **'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्'** (६।१।११५) से प्रकृति भाव से रहता है। **'इको यणचि'** (६।१।७७) से प्राप्त यण् आदेश (य्) नहीं होता है।*

*(२) **अमू अत्र।** यहां सब कार्य 'अमी अत्र' के समान है।*

शे-आदेशः–

(३) शे ।१३।

प०वि०–'शे' इत्यविभक्तिको निर्देशः।

अनु०–'प्रगृह्यम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–शे प्रगृह्यम्।

अर्थः–'शे' इति सुपामादेशः प्रगृह्यसंज्ञको भवति।

उदा०–युष्मे इति। त्वे इति। मे इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(शे) 'शे' सुप्-आदेश की (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उदा०–युष्मे इति। त्वे इति। मे इति। युष्मे=तुम्हारा। त्वे=तेरा। मे=मेरा।

*सिद्धि-(१) **युष्मे इति।** 'युष्मे' यहां **'सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः'** (७।१।३९) से सुप् के स्थान में वैदिक भाषा में 'शे' आदेश है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा **होने** से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से प्राप्त **अय्** आदेश नहीं होता है।*

(२) त्वे इति, मे इति-यहां सब कार्य 'युष्मे इति' के समान है।

एकाच् निपातः–

(४) निपात एकाजनाङ्।१४।

प०वि०–निपातः १।१ एकाच् १।१ अनाङ् १।१।

स०–एकश्चासौ अच् इति एकाच् (कर्मधारयः)। न आङिति अनाङ् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्रगृह्यम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अनाङ् एकाच् निपातः प्रगृह्यम्।

अर्थः–आङ्भिन्न एकाच् निपातः प्रगृह्यसंज्ञको भवति।

उदा०–अ अपेहि। इ इन्द्रं पश्य। उ उत्तिष्ठ। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनाङ्) आङ् को छोड़कर (एकाच्) एक अच् स्वरूप (निपातः) निपात की (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उदा०–अ अपेहि। रे ! दूर हट। इ इन्द्रं पश्य। रे ! राजा को देख। उ उत्तिष्ठ। रे ! खड़ा हो। आ एवं नु मन्यसे। क्या तू ऐसा मानता है ? आ एवं किल तत्। क्या वह ऐसा है ?

सिद्धि-(१) अ अपेहि । यहां 'अ' एकाच् मात्र निपात है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृतिभाव से रहता है। 'अक: सवर्णे दीर्घ:' (६।१।१०१) से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है।

(२) इ इन्द्रं पश्य आदि उदाहरणों में भी 'अ अपेहि' के समान कार्य समझ लेवें।

ओदन्त-निपात:-

(५) ओत्।१५।

प०वि०-ओत् १।१

अनु०-निपात:, प्रगृह्यम् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-ओत् निपात: प्रगृह्यम्।

अर्थ:-ओकारान्तो निपात: प्रगृह्यसंज्ञको भवति।

उदा०-आहो इति। उताहो इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(ओत्) ओकारान्त (निपात:) निपात की (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

उदा०-आहो इति। उताहो इति। आहो। हां ! उताहो। अथवा।

सिद्धि-(१) आहो इति। यहां 'आहो' ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। 'एचोऽयवायाव:' (६।१।७८) से प्राप्त अव् आदेश नहीं होता है।

(२) अताहो इति। सब कार्य 'आहो इति' के समान है।

सम्बुद्धि-ओकार:-

(६) सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे।१६।

प०वि०-सम्बुद्धौ ७।१ शाकल्यस्य ६।१ इतौ ७।१ अनार्षे ७।१

स०-ऋषिणा प्रोक्तमिति आर्षम्, न आर्षम् अनार्षम्, तस्मिन् अनार्षे (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-ओत्, प्रगृह्यम् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-सम्बुद्धौ ओत् प्रगृह्यं शाकल्यस्य अनार्षे इतौ।

अर्थ:-सम्बुद्धिनिमित्तको य ओकार: स प्रगृह्यसंज्ञको भवति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन, अनार्षे (अवैदिके) इतिशब्दे परत:।

उदा०-वायो इति (शाकल्यमते) वायविति (पाणिनिमते)।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्बुद्धौ) सम्बुद्धिनिमित्तक जो (ओत्) ओकार है उसकी (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है। (अनार्षे) अवैदिक (इतौ) इति शब्द के परे होने पर।

उदा०-वायो इति (शाकल्य के मत में) वायविति (पाणिनि के मत में)।

सिद्धि-वायो इति। यहां वायो पद में सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार है। इसकी शाकल्य आचार्य के मत में प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। यहां 'एचोऽयवायाव:' (६।१।७८) से अव्-आदेश नहीं होता है।

(२) वायविति। वायो+इति=वायविति। यहां ओकार की पाणिनि मुनि के मत में प्रगृह्य संज्ञा न होने से 'एचोऽयवायाव:' (६।१।७८) से अव्-आदेश हो जाता है।

उञ, ऊँ–

(७) उञ ऊँ।१७।

प०वि०-उञ: ६।१ ऊँ १।१।

अनु०-शाकल्यस्येतावनार्षे, प्रगृह्यम् इति चानुवर्तते।

अस्य सूत्रस्य योगविभागं कृत्वा व्याख्या क्रियते–

(क) उञः।

अन्वयः-उञ: शाकल्यस्य प्रगृह्यम् अनार्षे इतौ।

अर्थः-उञ: शब्दस्य शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसंज्ञा भवति, अनार्षे (अवैदिके) इति शब्दे परत:। उ इति (शकल्यमते) विति (पाणिनिमते)।

आर्यभाषा-अर्थ-(उञ:) उञ् शब्द की (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है, (अनार्षे) अवैदिक (इतौ) इति शब्द के परे होने पर।

उदा०-उ इति (शाकल्य के मत में) विति (पाणिनि के मत में) उ=वितर्क (विचार करना)।

सिद्धि-(१) उ इति। यहां उञ् की शाकल्य आचार्य के मत में प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृतिभाव से रहता है। यहां 'इको यणचि' (६।१।७७) से प्राप्त यण्-आदेश (व्) नहीं होता।

(२) विति-उ+इति=विति। यहां उञ् की पाणिनि मुनि के मत में प्रगृह्यसंज्ञा न होने से 'इको यणचि' (६।१।७७) से प्राप्त यण् आदेश (व्) हो जाता है।

(ख) ऊँ।

अन्वयः-उञ ऊँ शाकल्यस्य प्रगृह्यम् अनार्षे **इतौ।**

अनु०:-उञ इत्यनुवर्तते।

अर्थः-उञः स्थाने ऊँ आदेशो भवति, स च शाकल्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसंज्ञको भवति, अनार्षे (अवैदिके) इति शब्दे परतः।

उदा०-ऊँ इति।

आर्यभाषा-अर्थः-(उञः) उञ् के स्थान में (ऊँ) ऊँ आदेश होता है और उसकी (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है। (अनार्षे) अवैदिक (इतौ) इति शब्द के परे होने पर।

उदा०-ऊँ इति। ऊँ=वितर्क (विचार करना)।

सिद्धि-(१) ऊँ इति-यहां उञ् के स्थान में सानुनासिक ऊँ आदेश है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। 'इको यणचि' (६।१।७७) से प्राप्त यण् आदेश (व्) नहीं होता है।

(२) ऊँ इति। यह किसी व्यक्ति की रोषोक्ति है।

सप्तम्यर्थकावीदूतौ-

(८) ईदूतौ च सप्तम्यर्थे।१८।

प०वि०-ईत्-ऊतौ १।२ च अव्ययपदम्। सप्तमी-अर्थे ७।१।

स०-ईत् च ऊत् च तौ-ईदूतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सप्तम्या अर्थ इति सप्तम्यर्थः, तस्मिन्-सप्तम्यर्थे। (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-प्रगृह्यम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यर्थे ईदूतौ च प्रगृह्यम्।

अर्थः-सप्तम्यर्थे वर्तमानौ ईकारान्त-ऊकारान्तौ शब्दौ च प्रगृह्यसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(ईकारान्तः) मामकी इति। सोमो गौरी अधिश्रितः। (ऋ० ९।१२।३) (ऊकारान्तः) तनू इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी-अर्थे) सप्तमी विभक्ति के अर्थ में विद्यमान (ईद्-ऊतौ) ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द की (च) भी (प्रगृह्यम्) प्रगृह्य संज्ञा होती है।

*उदा०-(ईकारान्त) **मामकी इति।** मामकी। मेरे में। **सोमो गौरी अधिश्रितः।** (ऋ० ९।१२।३) चन्द्रमा सूर्य पर आश्रित है। ऊकारान्त-**तनू इति।** तनू। शरीर में।*

*सिद्धि-(१) **मामकी इति।** यहां मामकी पद सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है-मामक्याम्। इसके ईकार की प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृति भाव से रहता है। 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।१०१) से प्राप्त सवर्ण दीर्घ नहीं होता है।*

*(२) **सोमो गौरी अधिश्रितः।** यहां गौरी पद सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है-गौर्याम्। इसके ईकार की प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृतिभाव से रहता है। 'इको यणचि' (६।१।७७) से प्राप्त (य्) आदेश नहीं होता है।*

*(३) **तनू इति।** यहां तनू पद सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है-तन्वाम्। इसके ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा होने से यह पूर्ववत् प्रकृतिभाव से रहता है। 'इको यणचि' (६।१।७७) से प्राप्त यण्-आदेश (व्) नहीं होता है।*

घु-संज्ञा—

दाधा घ्वदाप्।१६।

प०वि०-दाधाः १।३ घु १।१ अदाप् १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)

स०-दाश्च धौ च ते दाधाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दाप् च दैप् चेति दाप्। न दाप् अदाप् (नञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-अदाप् दाधा घु।

अर्थः-दाप्-दैप्-भिन्ना दारूपा धारूपौ च धातू घुसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-दारूपाश्चत्वारो धातवः-डुदाञ् दाने-**प्रणिददाति।** दाण् दाने **प्रणिदास्यति।** दो अवखण्डने-**प्रणिद्यति।** देङ् रक्षणे-**प्रणिदयते।** धारूपौ द्वौ धातू-डुधाञ् धारणपोषणयोः-**प्रणिदधाति।** धेट् पाने-**प्रणिधयते** वत्सो मातरम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(दा-धाः) दा रूप और धा रूप धातुओं की (घु) घु संज्ञा होती है। (अदाप्) दाप् और दैप् धातु को छोड़कर। दा रूप चार धातु हैं-डुदाञ् दाने (जुहोत्या०उ०) प्रणिददाति। प्रदान करता है। दाण् दाने (भ्वादि०प०) प्रणिदास्यति। प्रदान करेगा। दो अवखण्डने (दिवा०प०) पणिद्यति। खण्डित करता है। देङ् रक्षणे (भ्वादि० आ०)। प्रणिदयते। रक्षा करता है। धा रूप दो धातु हैं-डुधाञ् धारणपोषणयोः (जुहोत्या०उ०) प्रणिदधाति। धारण-पोषण करता है। धेट् पाने (भ्वादि०) प्रणिधयति वत्सो मातरम्। बछड़ा माता का दूध पीता है।

*सिद्धि-(१) **प्रणिददाति।** प्र+नि+ददाति=प्रणिददाति। यहां दा धातु की घु संज्ञा होने से 'नेर्गदनदपतपदघु०' (८।४।१७) से नि को णत्व हो जाता है। अन्यत्र भी ऐसा ही समझें।*

(२) यहां अदाप् कहकर दाप् लवने भ्वादि और दैप् शोधने (भ्वादि) धातुरूपों की घु संज्ञा का निषेध किया है। इससे दाप् लवने-दातं बर्हिः। कटा हुआ दर्भ। दैप् शोधने अवदातं मुखम्। शुद्ध मुख। यहां घु संज्ञा नहीं होती। घु संज्ञा न होने से यहां 'दो दद् घोः' (७।४।४७) से दा के स्थान में दद्-आदेश नहीं होता है।

आद्यन्तवद्भावः–

आद्यन्तवदेकस्मिन् ।२०।

प०वि०–आदि-अन्तवद् अव्ययपदम्। एकस्मिन् ७।१।

स०–आदिश्च अन्तश्च तौ आद्यन्तौ, तयोः–आद्यन्तयोः, आद्यन्तयोरिव आद्यन्तवत् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–एकस्मिन् आद्यन्तवत्।

अर्थः–एकस्मिन् वर्णेऽपि आदिवद् अन्तवच्च कार्यं भवति

उदा०–(आदिवत्) औपगवः। (अन्तवत्) आभ्याम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(एकस्मिन्) एक वर्ण में भी (आदि-अन्तवत्) आदि और अन्त के समान कार्य होता है। व्याकरणशास्त्र में आदि और अन्त को कहे हुये कार्य एक वर्ण में सिद्ध नहीं हो सकते, इसलिए यह अतिदेश=तुल्यता विधान आरम्भ किया गया है।

उदा०-(आदिवत्) औपगवः। उपगु का पुत्र। (अन्तवत्) आभ्याम्। इन दोनों के द्वारा।

*सिद्धि-(१) **औपगवः।** उपगु+अण्। उपगु+अ। औपगो+अ। औपगव+अ। औपगव+सु। औपगवः। यहां जैसे **आद्युदात्तश्च** (३।१।३) से तव्य आदि प्रत्यय आद्युदात्त होते हैं। वैसे 'अण्' प्रत्यय का एक वर्ण 'अ' भी इस अतिदेश से आद्युदात्त होता है।*

*(२) **आभ्याम्।** इदम्+भ्याम्। अ+भ्याम्। आ+भ्याम्। आभ्याम्। यहां जैसे 'सुपि च' (७।३।१०८) से रामाभ्याम् आदि में अकारान्त पद को दीर्घ होता है, वैसे '**आभ्याम्**' में भी एक वर्ण 'अ' को इस अतिदेश से अकारान्त मानकर दीर्घ हो जाता है।*

जैसे लोक में देखा जाता है कि देवदत्त का एक ही पुत्र है। उसका वही आदिम, वही मध्यम और वही अन्तिम पुत्र होता है, वैसे व्याकरणशास्त्र में एक वर्ण को भी आदिम और अन्तिम वर्ण मानकर कार्य किया जाता है।

घ-संज्ञा–

तरप् तमपौ घः ।२१।

प०वि०–तरप्-तमपौ १।२ घः १।१

स०–तरप् च तमप् च तौ–तरप्-तमपौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-तरप्-तमपौ प्रत्ययौ घ-संज्ञकौ भवतः।

उदा०-(तरप्) कुमारितरा। (तमप्) कुमारितमा।

आर्यभाषा-अर्थ-(तरप्-तमपौ) तरप् और तमप् प्रत्यय की (घः) घ संज्ञा होती है।

उदा०-(तरप्) कुमारितरा। दो में अधिक कुमारी। (तमप्) कुमारितमा। सब में अधिक कुमारी।

*सिद्धि-(१) **कुमारितरा।** कुमारी+तरप्। कुमारी+तर। कुमारितर+टाप्। कुमारितर+आ। कुमारितरा+सु। कुमारितरा। यहां तरप् प्रत्यय की घ-संज्ञा होने से '**घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः**' (६।३।४३) से 'कुमारी' शब्द का ह्रस्व हो जाता है।*

*(२) **कुमारितमा।** कुमारी+तमप्। कुमारितमा। शेष कार्य 'कुमारितरा' के समान है।*

संख्या-संज्ञा-

बहुगणवतुडति संख्या।२२।

प०वि०-बहु-गण-वतु-डति १।१ संख्या १।१।

स०-बहुश्च गणश्च वतुश्च डतिश्च एतेषां समाहारः-बहुगणवतुडति (समाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-बहु-गणशब्दौ वतुप्रत्ययान्ता डतिप्रत्ययान्ताश्च शब्दाः संख्या संज्ञका भवन्ति।

उदा०-(बहुः) बहुकृत्वः। बहुधा। बहुकः। बहुशः। (गणः) गणकृत्वः। गणधा। गणकः। गणशः। (वतुप्रत्ययान्तः) तावत्कृत्वः। तावद्धा। तावत्कः। तावच्छः। (डतिप्रत्ययान्तः) कतिकृत्वः। कतिधा। कतिकः। कतिशः।

आर्यभाषा-अर्थः-(बहु-गण-वतु-डति) बहु और गण शब्द की तथा वतु-प्रत्ययान्त और डति प्रत्ययान्त शब्द की (संख्या) संख्यासंज्ञा होती है।

उदा०-(बहु) बहुकृत्वः। बहुत बार। बहुधा। बहुत प्रकार से। बहुकः। बहुतों से खरीदा हुआ। बहुशः। बहुतों को। (गण) गणकृत्वः। गणधा। गणकः। गणशः। अर्थ पूर्ववत् है। (वतुप्रत्ययान्त) तावत्कृत्वः। उतनी बार। तावद्धा। उतने प्रकार से। तावत्कः। उतने से खरीदा हुआ। तावच्छः। उतनों को। (डतिप्रत्ययान्त) कतिकृत्वः। कितनी बार। कतिधा। कितने प्रकार से। कतिकः। कितने प्रकार से खरीदा हुआ। कतिशः। कितनों को।

*सिद्धि-(१) **बहुकृत्वः।** बहु+कृत्वसुच्। बहु+कृत्वस्। बहुकृत्वः। यहां बहु शब्द की संख्या संज्ञा होने से **'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्'** (५।४।१७) से कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।*

*(२) **बहुधा।** बहु+धा। बहुधा। यहां बहु शब्द की संख्या संज्ञा होने से **'संख्याया विधार्थे धा'** (५।३।४२) से 'धा' प्रत्यय होता है।*

*(३) **बहुकः।** बहु+कन्। बहु+क। बहुक+सु। बहुकः। यहां बहु शब्द की संख्या संज्ञा होने से **'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्'** (५।१।२२) से कन् प्रत्यय होता है।*

*(४) **बहुशः।** बहु+शस्। बहुशः। यहां बहु शब्द की संख्या संज्ञा होने से **'बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्'** (५।४।४२) से शस् प्रत्यय होता है।*

(५) गणकृत्वः आदि में सब कार्य 'बहुकृत्वः' आदि के समान समझें।

*(६) **तावत्कृत्वः।** तद्+वतुप्। तद्+वत्। त+वत्। तावत्। तावत्+कृत्वसुच्। तावत्+कृत्वस्। तावत्कृत्वः। यहां प्रथम तद् शब्द से **'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्'** (५।२।३९) से वतुप् प्रत्यय होता है, तत्पश्चात् वतु-प्रत्ययान्त तावत् शब्द की संख्या संज्ञा होने से 'बहुकृत्वः' आदि के समान इससे कृत्वसुच् आदि प्रत्यय होते हैं।*

*(७) **कतिकृत्वः।** किम्+डति। किम्+अति। क+अति। कति। कति+कृत्वसुच्। कति+कृत्वस्। कतिकृत्वः। यहां प्रथम किम् शब्द से **'किमः संख्यापरिमाणे डति च'** (५।२।४१) से डति प्रत्यय होता है, तत्पश्चात् डतिप्रत्ययान्त कति शब्द की संख्या संज्ञा होने से 'बहुकृत्वः' आदि के समान इससे 'कृत्वसुच्' आदि प्रत्यय होते हैं।*

षट्-संज्ञा—

(१) ष्णान्ता षट्।२३।

प०वि०-ष्णान्ता १।१ षट् १।१।

स०-षश्च णश्च तौ-ष्णौ, अन्तश्च अन्तश्च तौ-अन्तौ। ष्णौ अन्तौ यस्याः सा ष्णान्ता (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ष्णान्ता संख्या षट्।

अर्थः-षकारान्ता नकारान्ता च या संख्या सा षट्संज्ञिका भवति।

उदा०-(षकारान्ता) षट् तिष्ठन्ति। षट् पश्य। (नकारान्ता) पञ्च तिष्ठन्ति। पञ्च पश्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(*ष्-णान्ता*) *षकारान्त और नकारान्त (संख्या) संख्यावाची शब्द की (षट्) षट् संज्ञा होती है।*

उदा०-(षकारान्त) षट् तिष्ठन्ति। छः बैठते हैं। षट् पश्य। छः को देख। (नकारान्त) पञ्च तिष्ठन्ति। पांच बैठते हैं। पञ्च पश्य। पांचों को देख। इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **षट् तिष्ठन्ति।** षष्+जस्। षष्+अस्। षष्+०। षड्। षट्। यहां 'षष्' शब्द की षट् संज्ञा होने से **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) से जस् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **षट् पश्य।** षष्+शस्। षष्+अस्। षष्+०। षड्। षट्। यहां 'षष्' शब्द की षट् संज्ञा होने से पूर्ववत् शस् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(३) **पञ्च तिष्ठन्ति। पञ्च पश्य।** यहां पञ्चन् शब्द से सब कार्य 'षट्' के समान समझें।*

डति-प्रत्ययान्तः--

(२) डति च।२४।

प०वि०-डति १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्या, षट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-डति संख्या च षट्।

अर्थः-डति-प्रत्यायान्ता या संख्या साऽपि षट्संज्ञिका भवति।

उदा०-कति तिष्ठन्ति। कति पश्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(डति) डति-प्रत्ययान्त (संख्या) संख्यावाची शब्द की (च) भी (षट्) संज्ञा होती है।

उदा०-कति तिष्ठन्ति। कितने बैठते हैं। कति पश्य। कितनों को देख।

*सिद्धि-(१) **कति तिष्ठन्ति।** किम्+डति। किम्+अति। क्+अति। कति। कति+जस्। कति+०। कति। यहां डति-प्रत्ययान्त कति शब्द की षट् संज्ञा होने से **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२१) से जस् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **कति पश्य।** कति+शस्। कति+०। कति। यहां डति प्रत्ययान्त कति शब्द की षट् संज्ञा होने से पूर्ववत् शस् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

निष्ठा-संज्ञा--

क्तक्तवतू निष्ठा।२५।

प०वि०-क्त-क्तवतू १।२ निष्ठा १।१।

स०-क्तश्च क्तवतुश्च तौ क्तक्तुवतू (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-क्त-क्तवतू प्रत्ययौ निष्ठा-संज्ञकौ भवतः।

उदा०-(क्त) कृतः। भुक्तः। (क्तवतु) कृतवान्। भुक्तवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्त-क्तवतू) क्त और क्तवतु प्रत्यय की (निष्ठा) निष्ठा संज्ञा होती है।

उदा०-(क्त) कृतः। किया। भुक्तः। खाया। क्तवतु-कृतवान्। किया। भुक्तवान्। खाया।

सिद्धि-(१) कृतः। कृ+क्त। कृ+त। कृत+सु। कृतः। यहां डुकृञ् करणे (तना०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) सूत्र से क्त प्रत्यय भूतकाल में विधान किया गया है।

(२) कृतवान्। कृ+क्तवतु। कृ+तवत्। कृ+तव+नुम्+त्। कृ+तव+न्+त्। कृ+तवन्। कृतवन्+सु। कृतवान्+सु। कृतवान्+०। कृतवान्। यहां डुकृञ् करणे धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) सूत्र से भूतकाल में क्तवतु प्रत्यय किया गया है। यहां 'उगिदचां सर्वनामस्थाने चाधातोः' (७।१।७०) से नुम् का आगम और 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।४।८) से दीर्घ होता है।

विशेष-क्त और क्तवतु ये दोनों प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क्त प्रत्यय प्रायशः कर्मवाच्य में और क्तवतु प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है।

सर्वनामसंज्ञाप्रकरणम्

सर्वादयः-

(१)सर्वादीनि सर्वनामानि।२६।

प०वि०-सर्वादीनि १।३ सर्वनामानि १।३।

स०-सर्व आदिर्येषां तानीमानि-सर्वादीनि (बहुव्रीहिः समासः)।

अर्थः-सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञकानि भवन्ति।

उदा०-(सर्वः) सर्वे। सर्वस्मै। सर्वस्मात्। सर्वस्मिन्। सर्वकः। (विश्वः) विश्वे। विश्वस्मै। विश्वस्मात्। विश्वस्मिन्। विश्वकः।

सर्वादिगणः-सर्व। विश्व। अभ। उभय। डतर। डतम। कतर। कतम। इतर। अन्यतर। त्व। त्वत्। नेम। सम। सिम। पूर्वपरावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद्। यद्। एतद्। इदम् अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम्। इति सर्वादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है।

उदा०-(सर्व) सर्वे। सब। सर्वस्मै। सबके लिये। सर्वस्मात्। सब से। सर्वस्मिन्। सब में। सर्वकः। सब। (विश्व) विश्वे। विश्वस्मै। विश्वस्मात्। विश्वस्मिन्। विश्वकः। इत्यादि। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) सर्वे। सर्व+जस्। सर्व+शी। सर्व+ई। सर्वे। यहां सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से जस् के स्थान में शी आदेश होता है।

(२) सर्वस्मै। सर्व+ङे। सर्व+स्मै। सर्वस्मै। यहां सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'सर्वनाम्नः स्मै' (७।१।१४) से 'ङे' के स्थान में 'स्मै' आदेश होता है।

(३) सर्वस्मात्। सर्व+ङसि। सर्व+स्मात्। सर्वस्मात्। यहां सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' (७।१।१५) से 'ङसि' के स्थान में 'स्मात्' आदेश होता है।

(४) सर्वस्मिन्। सर्व+ङि। सर्व+स्मिन्। सर्वस्मिन्। यहां सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से पूर्ववत् 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' आदेश होता है।

(५) सर्वकः। सर्व+अकच्+अ। सर्व+अक+अ। सर्वक+सु। सर्वकः। यहां सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' (५।३।७१) से टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है।

(६) 'विश्वे' आदि शब्दों की सिद्धि 'सर्वे' आदि शब्दों से समान समझें।

सर्वनामसंज्ञाविकल्पः-

(२) विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ।२७।

प०वि०-विभाषा १।१ दिक्-समासे ७।१ बहुव्रीहौ ७।१।

स०-दिशां समासः इति दिक् समासः, तस्मिन् दिक्-समासे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-सर्वादीनि सर्वनामानि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ दिक्समासे सर्वादीनि सर्वनामानि।

अर्थः-बहुव्रीहिसंज्ञके दिग्वाचिशब्दानां समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि विकल्पेन सर्वनामसंज्ञकानि भवन्ति।

उदा०-उत्तरस्याः पूर्वस्याश्चान्तराला दिक्-उत्तरपूर्वा। उत्तरपूर्वस्यै। उत्तपूर्वायै। दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्चान्तराला दिक् दक्षिणपूर्वा। दक्षिणपूर्वस्यै। दक्षिणपूर्वायै।

आर्यभाषा-अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि नामक (दिक्समासे) दिशावाची शब्दों के समास में (सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है।

उदा०-उत्तरपूर्वस्यै। उत्तरपूर्वायै। उत्तर-पूर्वा दिशा के लिये। दक्षिणपूर्वस्यै। दक्षिणपूर्वायै। दक्षिण-पूर्वा दिशा के लिये।

*सिद्धि-(१) **उत्तरपूर्वस्यै।** उत्तरस्याः पूर्वस्याश्चान्तराला दिक् उत्तरपूर्वा। यहां 'दिङ्नामान्यन्तराले' (२।२।२६) से बहुव्रीहि समास है। उत्तरपूर्वा+ङे। उत्तरपूर्वा+स्याट्+ए। उत्तरपूर्वा+स्या+ए। उत्तरपूर्वस्यै। यहां सर्वनाम संज्ञा होने से '**सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च**' (७।३।११४) से प्रत्यय को स्याट् का आगम और अङ्ग को ह्रस्व हो जाता है।*

*(२) **उत्तरपूर्वायै।** उत्तरपूर्वा+ङे। उत्तरपूर्वा+याट्+ए। उत्तरपूर्वा+या+ए। उत्तरपूर्वायै। यहां सर्वनाम संज्ञा न होने से '**याडापः**' (७।३।११३) से प्रत्यय को याट् आगम होता है।*

(३) दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्चान्तराला दिक् दक्षिणपूर्वा। तस्मै दक्षिणपूर्वस्यै अथवा दक्षिणपूर्वायै। यहां सब कार्य पूर्ववत् है।

सर्वनामसंज्ञाप्रतिषेध--

(३) न बहुव्रीहौ।२९।

प०वि०-न अव्ययपदम्। बहुव्रीहौ ७।१।

अनु०-सर्वादीनि सर्वनामानि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सर्वादीनि सर्वनामानि न।

अर्थः-बहुव्रीहिसमासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति।

उदा०-प्रियं विश्वं यस्य सः-प्रियविश्वः, तस्मै प्रियविश्वाय। द्वावन्यौ यस्य सः-द्व्यन्यः, तस्मै द्व्यन्याय।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा (न) नहीं होती है।*

उदा०-प्रियं विश्वं यस्य सः-प्रियविश्वः, तस्मै प्रियविश्वाय। प्रिय है विश्व जिसका उसके लिये। द्वावन्यौ यस्य सः-द्व्यन्यः, तस्मै द्व्यन्याय। दो अन्य पुत्रादि जिसके उसके लिये।

*सिद्धि-(१) **प्रियविश्वाय।** प्रियविश्व+ङे। प्रियविश्व+य। प्रियविश्वा+य। प्रियविश्वाय। यहां विश्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से '**ङेर्यः**' (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है।*

*२) **द्व्यन्याय।** यहां सब कार्य प्रियविश्वाय के समान है।*

(४) तृतीयासमासे।२९।

प०वि०-तृतीयासमासे ७।१।

स०-तृतीयया समास इति तृतीयासमासः, तस्मिन्-तृतीयासमासे (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-सर्वादीनि सर्वनामानि न इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयासमासे सर्वादीनि सर्वनामानि न।

अर्थः-तृतीयासमासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति।

उदा०-मासेन पूर्व इति मासपूर्वः, तस्मै मासपूर्वाय। संवत्सरेण पूर्व इति संवत्सरपूर्वः, तस्मै संवत्सरपूर्वाय।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(तृतीयासमासे) तृतीयासमास में (सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा (न) नहीं होती है।

उदा०-मासेन पूर्व इति मासपूर्वः, तस्मै मासपूर्वाय। मास से पूर्व के लिये। संवत्सरेण पूर्व इति संवत्सरपूर्वः, तस्मै संवत्सरपूर्वाय। वर्ष से पूर्व के लिये।

__सिद्धि-(१) मासपूर्वाय।__ मासपूर्व+ङे। मासपूर्वा+य। मासपूर्वाय। यहां तृतीया समास में 'पूर्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से 'ङेर्यः' (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है।

(२) __संवत्सरपूर्वाय।__ यहां सब कार्य 'मासपूर्वाय' के समान है।

(५) द्वन्द्वे च।३०।

प०वि०-द्वन्द्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'सर्वादीनि सर्वनामानि न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्वन्द्वे च सर्वादीनि सर्वनामानि न।

अर्थः-द्वन्द्वे समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञकानि न भवन्ति।

उदा०-पूर्वे चाऽपरे च ते पूर्वापराः, तेषां-पूर्वापराणाम्। कतरे च कतमे च ते-कतरकतमाः, तेषाम्-कतरकतमानाम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (च) भी (सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा (न) नहीं होती है।

उदा०-पूर्वे चापरे च ते पूर्वापराः, तेषाम्-पूर्वापराणाम्। पूर्व और अपरों का। कतरे च कतमे च ते कतरकतमाः, तेषाम्-__कतरकतमानाम्__। कौन-कौन सों का।

__सिद्धि-(१) पूर्वापराणाम्।__ पूर्वापर+आम्। पूर्वापर+नुट्+आम्। पूर्वापर+न्+आम्। पूर्वापरा+नाम्। पूर्वापराणाम्। यहां द्वन्द्व समास में सर्वादि शब्दों की सर्वनाम संज्ञा न होने से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (७।१।५४) से 'आम्' प्रत्यय को नुट् आगम होता है। '__आमि सर्वनाम्नः सुट्__' (७।१।५२) से सुट् आगम नहीं होता है।

(२) __कतरकतमानाम्।__ यहां सब कार्य 'पूर्वापराणाम्' के समान है।

जसि सर्वनामसंज्ञाविकल्पः–

(६) विभाषा जसि।३१।

प०वि०–विभाषा १।१ जसि ७।१।

अनु०–द्वन्द्वे, सर्वादीनि सर्वनामानि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–द्वन्द्वे सर्वादीनि विभाषा सर्वनामानि जसि।

अर्थः–द्वन्द्वे समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि जसि परतो विकल्पेन सर्वनामसंज्ञकानि भवन्ति।

उदा०–कतरे च कतमे च ते–कतरकतमे। कतरे च कतमे च ते–कतरकतमाः।

आर्यभाषा–अर्थ–(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (सर्वादीनि) सर्व आदि शब्दों की (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है।

उदा०–कतरे च कतमे च ते कतरकतमे। कतरे च कतमे च ते कतरकतमाः। कौन-कौन से।

सिद्धि–(१) कतरकतमे। कतरकतम+जस्। कतरकतम+शी। कतरकतम+ई। कतरकतमे। यहां सर्वनाम संज्ञा होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

(२) कतरकतमाः। कतरकतम+जस्। कतरकतम+अस्। कतरकतमाः। यहां सर्वनाम संज्ञा न होने से पूर्ववत् 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है।

प्रथमादिशब्दाः–

(७) प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च।३२।

प०वि०–प्रथम-चरम-तय-अल्प-अर्ध-कतिपय-नेमाः १।३। च अव्ययपदम्।

स०–प्रथमश्च चरमश्च तयश्च अल्पश्च अर्धश्च कतिपयश्च नेमश्च ते प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सर्वनामानि विभाषा जसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रथम० नेमाश्च जसि विभाषा सर्वनामानि।

अर्थः–प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाः शब्दा अपि जसि परतो विकल्पेन सर्वनामसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–(प्रथमः) प्रथमे। प्रथमाः। (चरमः) चरमे। चरमाः। (तयः) द्वितये। द्वितयाः। (अल्पः) अल्पे। अल्पाः। (अर्धः) अर्धे। अर्धाः। (कतिपयः) कतिपये। कतिपयाः। (नेमः) नेमे। नेमाः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(प्रथम०) प्रथम, चरम, तय, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम शब्दों की (च) भी (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है।*

उदा०-(प्रथम) प्रथमे। प्रथमाः। पहले। (चरम) चरमे। चरमाः। अन्तिम। (तय) द्वितये, द्वितयाः। दो अवयवोंवाले। (अर्ध) अर्धे। अर्धाः। आधे। (कतिपय) कतिपये। कतिपयाः। कई। (नेम) नेमे। नेमाः। आधे।

सिद्धि-(१) प्रथमे। *प्रथम+जस्। प्रथम+शी। प्रथम+ई। प्रथमे। यहां प्रथम शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है।*

(२) प्रथमाः। *प्रथम+जस्। प्रथम+अस्। प्रथमाः। यहां प्रथम शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है।*

(३) द्वितये। *द्वि+तयप्। द्वि+तय। द्वितय+जस्। द्वितय+शी। द्वितय+ई। द्वितये। सूत्र में 'तय' कहने से तयप्-प्रत्ययान्त शब्द का ग्रहण किया जाता है। यहां प्रथम द्वि शब्द से '**संख्याया अवयवे तयप्**' (५।२।४२) से तयप् प्रत्यय होता है। शेष कार्य 'प्रथमे' के समान है।*

(४) चरमे, चरमाः आदि पदों की सिद्धि प्रथम शब्द के समान समझें।

पूर्वादयः शब्दाः–

(८) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायाम-संज्ञायाम्।३३।

प०वि०–पूर्व-पर-अवर-दक्षिण-उत्तर-अपर-अधराणि १।३ व्यवस्थायाम् ७।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०–पूर्वश्च परश्च अवरश्च दक्षिणश्च उत्तरश्च अपरश्च अधरं च तानीमानि-पूर्वापरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–सर्वनामानि विभाषा जसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पूर्व० अधराणि विभाषा जसि सर्वनामानि व्यवस्थायाम् असंज्ञायाम्।

अर्थः-पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि शब्दरूपाणि जसि परतो विकल्पेन सर्वनामसंज्ञकानि भवन्ति व्यवस्थायाम् असंज्ञायां च गम्यमानायाम्।

उदा०-(पूर्वः) पूर्वे। पूर्वाः। (परः) परे। पराः। (अवरः) अवरे। अवराः। (दक्षिणः) दक्षिणे। दक्षिणाः। (उत्तरः) उत्तरे। उत्तराः। (अपरः) अपरे। अपराः। (अधरः) अधरे। अधराः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(पूर्व०) पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर और अधर* ***शब्दों की*** *(जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है, यदि वहां (व्यवस्थायाम्) व्यवस्था और (असंज्ञायाम्) असंज्ञा हो।*

उदा०-(पूर्व) पूर्वे। पूर्वाः। पहले। (पर) परे। पराः। दूसरे। (अवर) अवरे। अवराः। इधरवाले। (दक्षिण) दक्षिणे। दक्षिणाः। दक्षिणवाले। (उत्तर) उत्तरे। उत्तराः। उत्तरवाले। (अपर) अपरे। अपराः। दूसरे। (अधर) अधरे। अधराः। निचले।

सिद्धि-(१) पूर्वे। *पूर्व+अस्। पूर्व+शी। पूर्व+ई। पूर्वे। यहां पूर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से* ***'जसः शी'*** *(७।१।१७) से जस् के स्थान में 'शी' आदेश होता है।*

(२) पूर्वाः। *पूर्व+जस्। पूर्व+अस्। पूर्वाः। यहां पूर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से पूर्ववत् 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है।*

विशेष-व्यवस्था का क्या लक्षण है? ***'स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था'*** *अपने अभिधेय की अपेक्षा से अवधि (मर्यादा) के नियम को व्यवस्था कहते हैं। यहां व्यवस्था में ही पूर्व आदि शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है, अन्यत्र नहीं। जैसे* ***'दक्षिणा इमे गायकाः'*** *यहां दक्षिण शब्द व्यवस्था का द्योतक नहीं है, अपितु प्रवीण अर्थ का वाचक है, अतः यहां सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।*

यहां ***'असंज्ञायाम्'*** *का ग्रहण इसलिए किया गया है कि संज्ञा विशेष में पूर्व आदि शब्दों की सर्वनाम संज्ञा न हो। जैसे 'उत्तराः कुरवः' यहां उत्तर शब्द कुरु की संज्ञा विशेष है। अतः यहां सर्वनाम संज्ञा नहीं होती है।*

स्वशब्दः-

(६) स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।३४।

प०वि०-स्वम् १।१ अज्ञातिधनाख्यायाम् ७।१।

स०-ज्ञातिश्च धनं च ते ज्ञाति धने, तयोः ज्ञातिधनयोः। ज्ञातिधनयोराख्या इति ज्ञातिधनाख्या। न ज्ञाति-धनाख्या इति अज्ञातिधनाख्या, तस्याम्-अज्ञातिधनाख्यायाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व-षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-सर्वनामानि विभाषा जसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्वं जसि विभाषा सर्वनामानि अज्ञाति-धनाख्यायाम्।

अर्थः-स्वं शब्दो जसि परतो विकल्पेन सर्वनामसंज्ञको भवति, ज्ञाति-धनाख्यां वर्जयित्वा।

उदा०-स्वे पुत्राः। स्वाः पुत्राः। स्वे गावः। स्वाः गावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वम्) स्व शब्द की (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है। (अज्ञाति-धनाख्यायाम्) यदि वह 'स्व' शब्द ज्ञाति और धन अर्थ का वाचक न हो।

उदा०-(स्व) स्वे पुत्राः। स्वाः पुत्राः। अपने पुत्र। स्वे गावः। स्वाः गावः। अपने बैल। यहां स्व शब्द आत्मीय अर्थ का वाचक है। ज्ञाति और धन का नहीं।

यहां ज्ञाति अर्थ का इसलिये निषेध किया है कि यहां सर्वनाम संज्ञा न हो-स्वा ज्ञातयः। ज्ञाति=परिवार। यहां धन अर्थ का निषेध इसलिये किया है कि यहां सर्वनाम संज्ञा न हो-प्रभूताः स्वा न दीयन्ते। प्रभूत धन नहीं दिये जाते। प्रभूताः स्वा न भुज्यन्ते। प्रभूत धन नहीं भोगे जाते।

सिद्धि-(१) स्वे पुत्राः। स्व+जस्। स्व+शी। स्व+ई। स्वे। यहां 'स्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से जस् के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

(२) स्वाः पुत्राः। स्व+जस्। स्व+अस्। स्वाः। यहां स्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से 'जस्' के स्थान में पूर्ववत् 'शी' आदेश नहीं होता है।

अन्तरशब्दः-

(१०) अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः।३५।

प०वि०-अन्तरम् १।१ बहिर्योग-उपसंव्यानयोः ७।२।

स०-बहिर्योगश्च उपसंव्यानं च ते-बहिर्योगोपसंव्याने, तयोः बहिर्योगोपसंव्यानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सर्वनामानि विभाषा जसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बहिर्योगोपसव्यानयोः अन्तरं जसि विभाषा सर्वनामानि।

अर्थः-बहिर्योगे उपसंव्याने चार्थेऽन्तरं-शब्दो जसि परतो विकल्पेन सर्वनामसंज्ञको भवति।

उदा०-(बहिर्योगे) अन्तरे गृहाः। अन्तरा गृहाः। (उपसंव्याने) अन्तरे शाटकाः। अन्तराः शाटकाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्तरम्) अन्तर शब्द की (जसि) जस् प्रत्यय परे रहने पर (विभाषा) विकल्प से (सर्वनामानि) सर्वनाम संज्ञा होती है। (बहिर्योग-उपसंव्यानयोः) यदि वहां बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ हो।

उदा०-(बहिर्योग) अन्तरे गृहाः। अन्तरा गृहाः। नगर से बाहर के चाण्डाल आदि के घर। (उपसंव्यान) अन्तरे शाटकाः। अन्तराः शाटकाः। परिधान के योग्य धोती।

सिद्धि-(१) अन्तरे गृहाः। अन्तर+जस्। अन्तर+शी। अन्तर+ई। अन्तरे। यहां अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा होने से 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

(२) अन्तरा गृहाः। अन्तर+जस्। अन्तर+अस्। अन्तराः। यहां अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा न होने से पूर्ववत् 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है।

*(३) यहां बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ का कथन इसलिये किया गया है कि अन्तर शब्द की यहां सर्वनाम संज्ञा न हो- '**अनयोर्ग्रामयोरन्तरे तापसः प्रतिवसति**' इन दो ग्रामों के बीच में एक तपस्वी रहता है। यहां अन्तर शब्द मध्य अर्थ का वाचक है, बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ का नहीं।*

अव्ययसंज्ञाप्रकरणम्

स्वरादिनिपाताः-

(१) स्वरादिनिपातमव्ययम्।२६।

प०वि०-स्वरादिनिपातम् १।१ अव्ययम् १।१।

स०-स्वर् आदिर्येषां ते-स्वरादयः। स्वरादयश्च निपाताश्च एतेषां समाहारः-स्वरादिनिपातम्। (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-स्वरादिगणे पठिता निपातसंज्ञकाश्च शब्दा अव्ययसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-स्वरादयः-स्वर्। अन्तर्। प्रातर्। निपाताः-च। वा। ह। अह। एव।

स्वरादिगणः-स्वर्। अन्तर्। प्रातर्। एते। अन्तोदात्ताः पठ्यन्ते। पुनर् आद्युदात्तः। सनुतर्। उच्चैस्। नीचैस्। शनैस्। ऋधक्। आरात्। ऋते। युगपत्। पृथक्। एतेऽपि सनुतर्प्रभृतयोऽन्तोदात्ताः पठ्यन्ते। ह्यस्। श्वस्। दिवा। रात्रौ। सायम्। चिरम्। मनाक्। ईषत्। जोषम्। तूष्णीम्। बहिस्। आविस्। अवस्। अधस्। समया। निकषा। स्वयम्। मृषा।

नक्तम्। नञ्। हेतौ। अद्धा। इद्धा। सामि। एतेऽपि ह्यंस्प्रभृतयोऽन्तोदात्ताः। पठ्यन्ते। वत्-वदन्तमव्ययसंज्ञं भवति, ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्। सन्। सनात्। सनत्। तिरस्। एते आद्युदात्ताः पठ्यन्ते। अन्तरा, अयमन्तोदात्तः। अन्तरेण। ज्योक्। कम्। शम्। सना। सहसा। विना। नाना। स्वस्ति। स्वधा। अलम्। वषट्। अन्यत्। अस्ति। उपांशु। क्षमा। विहायसा। दोषा। मुधा। मिथ्या। क्त्वातोसुन्कसुनः, कृन्मकारान्तः सन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च। पुरा। मिथो। मिथस्। प्रवाहुकम्। आर्यहलम्। अभीक्ष्णम्। साकम्। सार्धम्। समम्। नमस्। हिरुक्। तसलादियस्तद्धिता एधाच्पर्यन्ताः। शस्-तसी। कृत्वसुच्। सुच्। आच्-थालौ। च्व्यर्थाश्च। अम्। आम्। प्रतान्। प्रशान्। आकृतिगणोऽयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वरादि-निपातम्) स्वर आदि शब्दों की तथा निपातसंज्ञक शब्दों की (अव्ययम्) अव्यय संज्ञा होती है।

उदा०-(स्वरादि) स्वर्। अन्तर्। प्रातर् इत्यादि। (निपात) च। वा। ह। अह। एव इत्यादि।

'प्रागीश्वरान्निपाताः' (१।४।५६) इस अधिकार में निपातों का वर्णन किया जायेगा।

अव्यय का लक्षण :-

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।।

जो शब्द पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में, प्रथमादि सब विभक्तियों में, एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में समान होता है, जो इनमें विविध रूपों को प्राप्त नहीं होता है, उसे अव्यय कहते हैं।

असर्वविभक्तिस्तद्धितः-

(२) तद्धितश्चासर्वविभक्तिः।३७।

प०वि०-तद्धितः १।१ च अव्ययपदम्। असर्वविभक्तिः १।१।

स०-नोत्पद्यन्ते सर्वा विभक्तयो यस्मात् सः-असर्वविभक्तिः (बहुव्रीहिः समासः)

अनु०-'अव्ययम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असर्वविभक्तिस्तद्धितश्च अव्ययम्।

अर्थः-असर्वविभक्तिस्तद्धितप्रत्ययान्तः शब्दोऽव्ययसंज्ञको भवति।

उदा०-(पञ्चमी) ततः। यतः। (सप्तमी) तत्र। यत्र। तदा। यदा।

आर्यभाषा-अर्थ-*(असर्वविभक्तिः) सब विभक्तियों से रहित (तद्धितः) तद्धित प्रत्ययान्त शब्द की (च) भी (अव्ययम्) अव्यय संज्ञा होती है।*

उदा०-(पञ्चमी) ततः। वहां से। यतः। जहां से। (सप्तमी) तत्र। वहां। यत्र। जहां। तदा। तब। यदा। कब।

सिद्धि-(१) ततः। *तत्+ङसि+तस्। तत्+तस्। त अ+तस्। त+तस्। ततः। यहां पञ्चम्यन्त तत् शब्द से* ***'पञ्चम्यास्तसिल्'*** *(५।३।७) से तद्धित तसिल् प्रत्यय होता है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) के तत् के त् को अकार आदेश और 'अतो गुणे' (६।१।९७) से दोनों अकारों को पररूप एकादेश होता है। 'ततः' शब्द पञ्चमी विभक्ति के ही अर्थ का बोधक है, सब विभक्तियों का नहीं। अतः इसकी अव्यय संज्ञा है।*

(२) यतः। *यत् शब्द से सब कार्य 'तत्' के समान समझें।*

(३) तत्र। *तत्+ङि+त्रल्। तत्+त्र। त अ+त्र। त+त्र। तत्र। यहां सप्तम्यन्त तत् शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' (५।३।१०) से तद्धित त्रल् प्रत्यय है। शेष कार्य 'ततः' के समान है। तत्र शब्द सप्तमी विभक्ति के ही अर्थ का बोधक है, सब विभक्तियों का नहीं। अतः इसकी अव्यय संज्ञा है।*

(४) यत्र। *यत् शब्द से सब कार्य 'तत्र' के समान समझें।*

(५) *तदा और यदा यहां सप्तम्यन्त तत् और यत् शब्द से* ***'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा'*** *(५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष- *'तद्धिताः' (४।१।७६) से लेकर पञ्चम अध्याय के अन्त तक तद्धित का अधिकार है। इस अधिकार के प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।*

मेजन्तः कृत्-

(३) कृन्मेजन्तः।३८।

प०वि०-कृत् १।१ म्-एजन्तः १।१। मश्च एच्च तौ मेचौ। अन्तश्च अन्तश्च तौ-अन्तौ। मेचौ अन्तौ चस्य सः-मेजन्तः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'अव्ययम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मेजन्तः कृत् अव्ययम्।

अर्थः-मकारान्त एजन्तश्च कृत्प्रत्ययान्तः शब्दोऽव्ययसंज्ञको भवति।

उदा०-(मकारान्तः) स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते। (एजन्तः) वक्षे रायः। ता वामेषे रथानाम्। क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे।

आर्यभाषा-अर्थ-(म्-एजन्तः) मकारान्त और एजन्त (कृत्) कृत् प्रत्ययान्त शब्द की (अव्ययम्) अव्यय संज्ञा होती है।

*उदा०-(मकारान्त) **स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते**। स्वादिष्ट बनाकर खाता है। **सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते**। घृतादि से समृद्ध बनाकर खाता है। **लवणङ्कारं भुङ्क्ते**। नमकीन बनाकर खाता है। (एजन्त) **वक्षे रायः। ता वामेषे रथानाम्। क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे। वक्षे।** कहने के लिये। **एषे।** गति के लिये। **जीवसे।** जीने के लिये। **दृशे।** देखने के लिये।*

*सिद्धि-(१) स्वादुङ्कारम्। स्वादुम्+कृ+णमुल्। स्वादुम्+कृ+अम्। स्वादुम्+कार्+अम्। स्वादुङ्कारम्। यहां **'स्वादुमि णमुल्'** (३।४।२६) से स्वादुम् शब्द के उपपद होने पर **डुकृञ् करणे** (त०उ०) धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। यह मकारान्त कृत्प्रत्ययान्त शब्द होने से इसकी अव्यय संज्ञा है।*

*(२) **वक्षे।** वच्+से। वक्+षे। वक्षे। यहां **वच् परिभाषणे** (अदा०प०) धातु से **'तुमर्थे सेसेन०'** (३।४।९) से 'से' प्रत्यय होता है। यहां **'चोः कुः'** (८।२।३०) से कुत्व तथा **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। यहां एजन्त कृत् प्रत्ययान्त शब्द होने से इसकी अव्यय संज्ञा है।*

*(३) **एषे।** इण्+से। इ+से। ए+से। एषे। यहां **इण् गतौ** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'से' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **जीवसे।** जीव+असे। जीवसे। यहां **जीव 'प्राणधारणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'असे' प्रत्यय होता है।*

*(५) **दृशे।** दृश्+केन। दृश्+ए। दृशे। यहां **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'दृशे विख्ये च'** (३।४।११) से केन-प्रत्ययान्त निपातन किया गया है।*

(६) कृदतिङ् (३।१।९३) से लेकर तृतीय अध्याय के अन्त तक 'कृत्' का अधिकार है। इस अधिकार के प्रत्ययों को 'कृत्' प्रत्यय कहते हैं।

*(७) मकारान्त और एजन्त कृत् प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय संज्ञा होने से **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सुप्' का लुक् हो जाता है।*

क्त्वादयः–

(४) क्त्वातोसुन्कसुनः ।३६।

प०वि०–क्त्वा–तोसुन्–कसुनः १।३।

स०–क्त्वा च तोसुन् च कसुन् च ते–क्त्वातोसुन्कसुनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अव्ययम्, कृत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्त्वा–तोसुन्कसुनः कृत् अव्ययम्।

अर्थः–क्त्वाप्रत्ययान्तः, तोसुन्प्रत्ययान्तः, कसुन्प्रत्ययान्तश्च शब्दोऽव्ययसंज्ञको भवति।

उदा०–(क्त्वा) कृत्वा। हृत्वा। (तोसुन्) पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः (काठक० ८।३)। पुरा वत्सानामपाकर्तोः (कसुन्) पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (यजु० १।२८)। पुरा जर्तृभ्य आतृदः।

आर्यभाषा–अर्थ–(क्त्वा–तोसुन्–कसुनः) क्त्वा, तोसुन् और कसुन् (कृत्) प्रत्ययान्त शब्द की (अव्ययम्) अव्यय संज्ञा होती है।

उदा०–(क्त्वा) कृत्वा। करके। हृत्वा। हरण करके। तोसुन्–पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। पुरा वत्सानामपाकर्तोः। कसुन्–पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्। पुरा जर्तृभ्य आतृदः। उदेतोः। उदय होना। अपाकर्तोः। दूर करने के लिये। विसृपः। फैलाना। वितृदः। हिंसा आदि करना।

*सिद्धि–(१) **कृत्वा।** कृ+क्त्वा। कृ+त्वा। कृत्वा। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय होता है।*

*(२) **हृत्वा।** यहां **हृञ् हरणे** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् क्त्वा प्रत्यय है।*

*(३) **उदेतोः।** उत्+इण्+तोसुन्। उत्+इ+तोस्। उत्+ए+तोस्। उदेतोः। यहां उत् उपसर्ग पूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से **'भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्'** (३।४।१६) से तोसुन् प्रत्यय होता है।*

*(४) **अपाकर्तोः।** अप+आङ्+कृ+तोसुन्। अप+आ+कर्+तोस्। अपाकर्तोः। यहां अप और आङ् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय होता है।*

*(५) **विसृपः।** वि+सृप्+कसुन्। वि+सृप्+अस्। विसृपः। यहां वि उपसर्गपूर्वक **'सृप्लृ'** गतौ (भ्वा०प०) धातु से **'सृपितृदोः कसुन्'** (३।४।१६) से 'कसुन्' प्रत्यय होता है।*

*(६) **वितृदः।** वि+तृद्+कसुन्। यहां वि उपसर्गपूर्वक **'उतृदिर् हिंसानादरयोः'** (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'कसुन्' प्रत्यय है।*

*यहां क्त्वा, तोसुन्, और कसुन् कृत् प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय संज्ञा होने से **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से सुप् का लुक् हो जाता है।*

अव्ययीभावसमासः-

(५) अव्ययीभावश्च ।४०।

प०वि०-अव्ययीभावः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'अव्ययम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावश्च अव्ययम्।

अर्थः-अव्ययीभावसमासोऽपि अव्ययसंज्ञको भवति।

उदा०-अग्नेः समीपमिति उपाग्नि। प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययीभावः) अव्ययीभाव समासवाले शब्द की (च) भी (अव्ययम्) अव्यय संज्ञा होती है। अग्नेः समीपमिति उपाग्नि। अग्नि के समीप। प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति। प्रत्येक अग्नि में पतंग गिरते हैं।

*सिद्धि-(१) **उपाग्नि।** उप+अग्नि। उपाग्नि+सु। उपाग्नि। यहां **'अव्ययं विभक्तिसमीप०'** (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है। अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा होने से **'अव्ययदाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सुप्' का लुक् हो जाता है।*

*(२) **प्रत्यग्नि।** अग्निम् अग्निं प्रति इति प्रत्यग्नि। प्रति+अग्नि। प्रत्यग्नि। यहां सब कार्य उपाग्नि के समान है।*

सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा

शि-प्रत्ययः–

(१) शि सर्वनामस्थानम् ।४१।

प०वि०-शि १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) सर्वनामस्थानम् १।१।

अर्थः-शि-प्रत्ययः सर्वनामसंज्ञको भवति।

उदा०-कुण्डानि तिष्ठन्ति। कुण्डानि पश्य।

*आर्यभाषा-अर्थ-(शि) शि प्रत्यय की (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। उदा०-**कुण्डानि तिष्ठन्ति।** कुण्ड विद्यमान हैं। कुण्डानि पश्य। कुण्डों को देख।*

*सिद्धि-(१) **कुण्डानि तिष्ठन्ति।** कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड+नुम्+इ। कुण्ड++न्+इ। कुण्डा+न्+इ। कुण्डानि। यहां **'जश्शसोः शि'** (७।१।२०) से जस् के स्थान में 'शि' आदेश होता है और उसकी यहां सर्वनामस्थान संज्ञा की जाती है।*

'नपुंसकस्य झलचः' (७।१।७२) से अङ्ग को नुम् का आगम और ***'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'*** *(६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है।*

(२) कुण्डानि पश्य। कुण्ड+शस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड+नुम्+इ। कुण्ड+न्+इ। कुण्डा+न्+इ। कुण्डानि। यहां सब कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-सर्वनामस्थान *यह पूर्वाचार्यों की संज्ञा है। पाणिनि मुनि ने इस महती संज्ञा को अपने शब्दानुशासन में उसी रूप में स्वीकार कर लिया है।*

सुट् प्रत्ययः-

(२) सुडनपुंसकस्य।४२।

प०वि०-सुट् १।१ अनपुंसकस्य ६।१।

स०-न नपुंसकम् इति अनपुंसकम्, तस्य-अनपुंसकस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सर्वनामस्थानम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनपुंसकस्य सुट् सर्वनामस्थानम्।

अर्थः-नपुंसकभिन्नस्य शब्दस्य सुट् प्रत्ययः सर्वनामस्थानसंज्ञको भवति।

उदा०-राजा। राजानौ। राजानः। राजानम्। राजानौ।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अनपुंसकस्य) नपुंसकलिंग से भिन्न (सुट्) सुट् प्रत्ययों की (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। सु, औ, जस्, अम्, औट् यहां सु से लेकर औट् के टकार से प्रत्याहार बनाया गया है। इन पांच प्रत्ययों को 'सुट्' कहते हैं।*

उदा०-राजा। राजानौ। राजानः। राजानम्। राजानौ।

सिद्धि-*(१) राजा। राजन्+सु। राजान्+सु। राजान्+०। राजान्। राजा। यहां सु प्रत्यय की सर्वनामस्थान संज्ञा होने से* ***'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'*** *(६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है।* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६८) से 'सु' का लोप तथा* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

(२) राजानौ। आदि शब्दों की सिद्धि 'राजा' शब्द के समान समझें।

विभाषा संज्ञा-

(१) न वेति विभाषा।४३।

प०वि०-न अव्ययपदम्। वा अव्ययपदम्। इति अव्ययपदम्। विभाषा १।१।

अर्थः-निषेध-विकल्पौ विभाषा संज्ञकौ भवतः।

उदा०-शुशाव। शुशुवतुः। शिश्वाय। शिश्वियतुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(न, वा इति) निषेध और विकल्प की (विभाषा) विभाषा संज्ञा होती है। शुशाव। वह बढ़ा। शुशुवतुः। वे दोनों बढ़े। शिश्वाय। शिश्वियतुः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) शुशाव। श्वि+लिट्। श्वि+तिप्। श्वि+णल्। श्वि+अ। शुट्+अ। शु+अ। शु+शु+अ। शु+शौ+अ। शु+शाव्+अ। शुशाव। यहां 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०आ०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।१।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८१) से तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश, 'विभाषा श्वेः' (६।१।३०) से व् को उ सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०८) से इ को पूर्वरूप उ, 'अचो ञ्णिति' (७।१।११५) से उ को वृद्धि औ, 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से औ को आव् आदेश होता है। यहां एक पक्ष में 'विभाषा श्वेः' ६।१।३०) से व् को उ सम्प्रसारण होगया।

(२) शिश्वाय। श्वि+लिट्। श्वि+तिप्। श्वि+णल्। श्वि+अ। श्वि+श्वि+अ। शि+श्वि+अ। शि+श्वै+अ। शि+श्वाय्+अ। शिश्वाय। यहां 'विभाषा श्वेः' (६।१।३०) से दूसरे पक्ष में सम्प्रसारण नहीं हुआ, अपितु श्वि धातु को 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से द्वित्व 'अचो ञ्णिति' (७।१।११५) से वृद्धि और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से आय् आदेश होता है। इस प्रकार विभाषा के बल से श्वि धातु के लिट्लकार में दो रूप बनते हैं।

विशेष-प्रश्न-यहां न और वा की विभाषा संज्ञा की गई है। वा की ही विभाषा संज्ञा क्यों न की जाये। न कि विभाषा संज्ञा करने का क्या लाभ है ?

उत्तर-इस शब्दशास्त्र में प्राप्त, अप्राप्त और उभयत्र तीन प्रकार की विभाषा हैं। जो किसी की प्राप्ति में विभाषा का आरम्भ किया जाता है उसे प्राप्त विभाषा कहते हैं। जो किसी की अप्राप्ति में विभाषा का आरम्भ किया जाता है उसे अप्राप्त विभाषा कहते हैं। जो किसी की प्राप्ति में तथा किसी की अप्राप्ति में विभाषा का आरम्भ किया जाता है उसे उभयत्र विभाषा कहते हैं। विभाषा के प्रकरण में पहले प्राप्त और अप्राप्त विषय को 'न' के द्वारा सम किया जाता है। उस विषय के समीकरण के पश्चात् वहां 'वा' के द्वारा विकल्प का विधान किया जाता है। जैसे 'विभाषा श्वेः' (६।१।३०) से श्वि धातु को लिट् और यङ् में विभाषा सम्प्रसारण का विधान किया गया है। यहां 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से कित् विषय में नित्य सम्प्रसारण की प्राप्ति थी और यङ् प्रत्यय के ङित् होने से ङित् विषय में किसी से सम्प्रसारण की प्राप्ति थी ही नहीं। इसलिये प्रथम 'न' के द्वारा विषय का समीकरण किया जाता है कि किसी से प्राप्ति थी अथवा नहीं थी। यदि थी तो उसे 'न' के कुठार से हटा दिया जाता है और 'वा' से विकल्प कर दिया जाता है। इसलिये न और वा दोनों की विभाषा संज्ञा की गई है।

प्रश्न–यहां इति शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है ?

उत्तर–इस शब्दशास्त्र में ***'स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा'*** *(१।१।६८) से शब्द का अपना रूप ग्रहण किया जाता है। जैसे-***'अग्नेर्ढक्'*** *(४।२।३३) कहा तो अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय किया जाता है, उसके अर्थ अंगार से नहीं। यदि सूत्र में* ***'न वा विभाषा'*** *इतना ही कहा जाये तो न और वा शब्दों की विभाषा संज्ञा हो जाये जो कि आचार्य पाणिनि को अभीष्ट नहीं है। अतः यहां इतिकरण अर्थ ग्रहण के लिये किया गया है। इससे न और वा शब्दों का जो निषेध और विकल्प अर्थ है उसकी विभाषा संज्ञा होती है, न और वा शब्दों की नहीं।*

सम्प्रसारणसंज्ञा–

(१) इग् यणः सम्प्रसारणम्।४४।

प०वि०–इक् १।१ यणः ६।१ सम्प्रसारणम् १।१।

अन्वयः–यण इक् सम्प्रसारणम्।

अर्थः–यणः स्थाने यो भूतो भावी वा इक् स सम्प्रसारणसंज्ञको भवति।

उदा०–य् (इ) इष्टम्। व् (उ) उप्तम्। र् (ऋ) गृहीतम्। ल (ऌ) ×।

आर्यभाषा–अर्थ–(यणः) *यण् के स्थान में जो भूत अथवा भावी (इक्) इक् है, उसकी (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण संज्ञा होती है।*

उदा०–य् (इ) इष्टम्। यज्ञ किया। व् (उ) उप्तम्। बोया। र् (ऋ) गृहीतम्। ग्रहण किया। ल् (ऌ) ×।

सिद्धि–(१) इष्टम्। *यज्+क्त। यज्+त। इ अज्+त। इज्+त। इष्+त। इष्+ट। इष्ट+सु। इष्टम्। यहां* ***'यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु'*** *(भ्वा०उ०) धातु से* ***'निष्ठा'*** *(३।२।१०२) से भूतकाल में क्त प्रत्यय,* ***'वचिस्वपियजादीनां किति'*** *(६।१।१५) से 'य्' को 'इ' सम्प्रसारण,* ***'सम्प्रसारणाच्च'*** *(६।१।१०८) से 'अ' को पूर्वरूप 'इ'* ***'व्रश्च भ्रस्ज०'*** *(८।२।३०) से 'ज्' को 'ष्' तथा* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से 'त' को 'ट' होता है।*

(२) उप्तम्। *वप्+क्त। वप्+त। उ अ प्+त। उप्+त। उप्त+सु। उप्तम्। यहां* ***'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च'*** *(भ्वादि) धातु से पूर्ववत् क्त प्रत्यय और पूर्ववत् 'व' को 'उ' सम्प्रसाण होकर 'अ' को पूर्वरूप 'उ' होता है।*

(३) गृहीतम्। *ग्रह्+क्त। ग्रह+त। गृ ह्+त। गृह्+त। गृह्+इट्+त। गृह+इ+त। गृह+ई+त। गृहीत+सु। गृहीतम्। यहां* ***'ग्रह उपादाने'*** *(क्र्या०प०) धातु से*

पूर्ववत् क्त प्रत्यय और पूर्ववत् 'र्' को 'ऋ' सम्प्रसारण होकर 'अ' को पूर्वरूप 'ऋ' होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।१।३५) से 'इट्' का आगम और उसे 'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' (७।२।३०) से दीर्घ होता है।

विशेष-प्रश्न-यहां यण् के स्थान में भूत और भावी इक् की सम्प्रसारण संज्ञा की गई है। भूत और भावी से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर-इस शब्दशास्त्र में सम्प्रसारणविषयक दो प्रकार का विधान मिलता है। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से कहा गया है कि वच् आदि धातुओं को सम्प्रसारण हो जाये। जब यहां य् के स्थान में इ, व् के स्थान में उ और र् के स्थान में ऋ हो जाता है, तब यह कहते हैं कि सम्प्रसारण होगया है और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०८) में कहा गया है कि सम्प्रसारण से पर वर्ण को पूर्वरूप एकादेश हो जाये। यह भूत सम्प्रसारण है। इसलिये यहां यण् के स्थान में भूत और भावी दोनों अवस्थावाले इक् की सम्प्रसारण संज्ञा की गई है।

आगमविधि

टित्-कितौ–

(१) आद्यन्तौ टकितौ।४५।

प०वि०-आदि-अन्तौ १।२ टकितौ १।२।

स०-आदिश्च अन्तश्च तौ-आद्यन्तौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। टश्च कश्च तौ-टकौ। इच्च इच्च तौ-इतौ। टकौ इतौ ययोस्तौ-टकितौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-ट-कितौ आद्यन्तौ।

अर्थः-टित्-कितावागमौ यथासंख्यमादावन्ते च भवतः।

उदा०-(टित्) लविता। (कित्) भीषयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(ट-कितौ) टित् और कित् आगम यथासंख्य (आदि-अन्तौ) आदि और अन्त में होते हैं। टित् आगम जिसको विधान किया गया है उसके आदि में होता है और कित् आगम जिसको विधान किया गया है उसके अन्त में होता है।

उदा०-(टित्) लविता। काटनेवाला। (कित्) भीषयते। वह डराता है।

सिद्धि-(१) लविता। लू+तृच्। लू+इट्+तृ। लो+इ+तृ। लव्+इ+तृ। लवितृ+सु। लवित अनङ्+सु। लवितन्+सु। लवितान+स्। लवितान्+०। लविता। यहां 'लूञ् छेदने' (क्रया०उ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' ३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय, 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' (७।२।३५) से 'तृच्' प्रत्यय के आदि में 'इट्' का आगम, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'

*(७।३।८४) से अङ्ग को गुण, **'एचोऽयवायाव:'** (६।१।६८) से 'अव्' आदेश, **'ऋदुशनस०'** (७।१।९४) से अङ्ग के 'ऋ' को 'अनङ्' आदेश, **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६८) से 'सु' का लोप और **'नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से न का लोप होता है। इस सूत्र से 'इट्' का आगम टित् होने से 'तृच्' प्रत्यय के आदि में किया जाता है।*

*(२) **भीषयते।** भी+णिच्। भी+षुक्+इ। भी+ष्+इ। भीषि+लट्। भीषि+त। भीषि+शप्+त। भीषि+अ+त। भीषे+अ+त। भीषय्+अ+ते। भीषयते। यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, **'भियो हेतुभये षुक्'** (७।३।४०) से अङ्ग को 'षुक्' का आगम **'सनाद्यन्ता धातव:'** (३।१।३२) से णिजन्त की धातु संज्ञा होकर, उससे **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'त' आदेश, **कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय, **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।८४) से अंग को गुण, **'एचोऽयवायाव:'** (६।१।६८) से 'अव्' आदेश और **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'त' प्रत्यय के टि भाग को एकार आदेश होता है। यहां 'षुक्' आगम कित् होने से 'भी' अंग के अन्त में किया गया है।*

मित्–

(२) मिदचोऽन्त्यात् पर:।४६।

प०वि०–मित् १।१ अच: ५।१ अन्त्यात् ५।१ पर: १।१।

स०–म इत् यस्य स मित् (बहुव्रीहि:)। अन्ते भवम् अन्त्यम् तस्मात्-अन्त्यात् (तद्धितवृत्ति:)।

अन्वय:–अन्त्याद् अच: परो मित्।

अर्थ:–अचां मध्ये योऽन्त्योऽच्, तस्मात्परो मिद् आगमो भवति।

उदा०–अवरुणद्धि। मुञ्चति। पयांसि।

आर्यभाषा-अर्थ–*(मित्) मित् आगम (अन्त्यात्) अन्तिम (अच:) अच् से (पर:) परे होता है।*

उदा०–अवरुणद्धि। रोकता है। मुञ्चति। छोड़ता है। पयांसि। नाना प्रकार के जल।

सिद्धि–*(१) **अवरुणद्धि।** अव+रुध्+लट्। अव+रुध्+तिप्। अव+रुश्नम् ध्+ति। अव+रुनध्+ति। अव+रुनध्+धि। अव+रुन्द्+धि। अव+रुणद्+धि। अवरुणद्धि। २ अव उपसर्गपूर्वक **'रुधिर् आवरणे'** (रुधा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) . 'लट्' प्रत्यय, **'तिप् तस् झि०'** (३।४।७८) से ल् के स्थान में 'तिप्' आदेश, **'रुधादिभ्य:***

*श्नम्' (३ ।१ ।७८) से 'श्नम्' के मित् होने से रुध धातु के अन्तिम अच् से परे 'श्नम्' होता है और 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८ ।२ ।४०) से तिप् प्रत्यय के तकार को धकार आदेश, 'झलां जश् झशि' (८ ।४ ।५३) से रुध् के धकार को जश् दकार आदेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८ ।४ ।१) से नकार को णकार आदेश होता है।*

*(२) **मुञ्चति।** मुच्+लट्। मुच्+श+तिप्। मुच्+अ+ति। मुनुम् च्+अ+ति। मुन् च्+अ+ति। मु ँ च्+अ+ति। मुञ् च+अ+ति। मुञ्चति। यहां **'मृच्लृ मोचने'** (तु०प०) धातु से **'तुदादिभ्यः शः'** (३ ।१ ।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय, **'शे मुचादीनाम्'** (७ ।१ ।५९) से नुम् आगम, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८ ।३ ।२४) से न् को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८ ।४ ।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण ञकार होता है। 'नुम्' के मित् होने से वह 'मुच्' धातु के अन्तिम अच् से परे होता है।*

*(३) **पयांसि।** पयस्+जस्। पयस्+शि। पय नुम् स्+इ। पय न् स्+इ। पयान् स्+इ। पयांस्+इ। पयांसि। यहां **'नपुंसकस्य झलचः'** (७ ।१ ।७२) से पयस् शब्द को नुम् आगम उसके अन्तिम अच् से परे होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६ ।४ ।१०) से अंग को दीर्घ तथा पूर्ववत् नकार को ँ अनुस्वार होता है।*

आदेशप्रकरणम्

ह्रस्वादेशः-

(१) एच इग्घ्रस्वादेशे।४७।

प०वि०-एचः ६ ।१ इक् १ ।१ ह्रस्वादेशे ७ ।१।

स०-ह्रस्वश्चासौ आदेशः, ह्रस्वादेशः, तस्मिन्-ह्रस्वादेशे (कर्मधारय तत्पुरुषः)।

अन्वयः-एचो ह्रस्वादेशे इक्।

अर्थः-ह्रस्वादेशे कर्त्तव्ये एचः स्थाने इक्-आदेशो भवति।

उदा०-ओ (उ) उपगु। ऐ (इ) अतिरि। औ (उ) अतिनु।

आर्यभाषा-अर्थ-(एचः) *एच् के स्थान में (ह्रस्वादेशे) ह्रस्व आदेश करने में (इक्) इक् ही होता **है, अन्य नहीं।***

उदा०-ओ (उ) *उपगु। गौ के समीप। ऐ (इ) अतिरि। धन को जीतनेवाला। औ (उ) अतिनु। नौका को लांघनेवाला।*

सिद्धि-(१) उपगु। *उप+गो। उपगो। उपगु+सु। उपगु। गोः समीपमिति उपगु। हां 'अव्ययं विभक्तिसमीप०' (२ ।१ ।६) से अव्ययीभाव समास है। **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** १ ।२ ।४८) से 'गो' के ओकार को 'उकार' **ह्रस्वादेश (उ) होता है।***

(२) अतिरि। अति+रै। अति+रि। अतिरि+सु। अतिरि। रायमतिक्रान्तमिति अतिरि ब्राह्मणकुलम्। यहां 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' (वा० २।२।१८) से प्रादिसमास, 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' (१।२।४७) से नपुंसकलिंग में 'रै' के ऐकार को इकार ह्रस्वादेश होता है।

(३) अतिनु। अति+नौ। अतिनु+सु। अतिनु। नावमतिक्रान्तमिति अतिनु कुलम्। यहां भी पूर्ववत् समास तथा 'औ' को उकार ह्रस्वादेश होता है।

आदेशे षष्ठी-अर्थः—

(२) षष्ठी स्थानेयोगा।४६।

प०वि०–षष्ठी १।१ स्थानेयोगा १।१।

स०–स्थाने योगो यस्याः सा स्थानेयोगा (बहुव्रीहिः) अत्र निपातनात् सप्तम्या अलुक्।

अर्थः–आदेशे कर्त्तव्येऽनियतसम्बन्धा षष्ठी स्थानेयोगा भवति।

उदा०–**अस्तेर्भूः**–भविता। भवितुम्। भवितव्यम्। **ब्रुवो वचिः**–वक्ता। वक्तुम्। वक्तव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ–*इस शब्दशास्त्र में जो षष्ठी विभक्ति अनियत योगवाली सुनाई देती है, वह (स्थानेयोगा) 'स्थाने' शब्द के योगवाली होती है, अन्य योगवाली नहीं। **अस्तेर्भूः** (२।४।५२) भविता। होनेवाला। भवितुम्। होने के लिये। भवितव्यम्। होना चाहिये। 'ब्रुवो वचिः' (२।४।५३) वक्ता। बोलनेवाला। वक्तुम्। बोलने के लिये। वक्तव्यम्। बोलना चाहिये।*

सिद्धि–*(१) **अस्तेर्भूः।** सूत्र के 'अस्तेः' पद में षष्ठी विभक्ति है। उसका अर्थ यह किया जाता है कि 'अस्ति' के स्थान में 'भू' आदेश होता है, आर्धधातुकविषय में। जैसे कि 'भविता' आदि उदाहरणों में स्पष्ट है।*

(२) 'ब्रुवो वचिः' (२।४।५३) सूत्र के 'ब्रुवः' पद में षष्ठी विभक्ति है। उसका अर्थ यह किया जाता है कि 'ब्रू' के स्थान में वच् आदेश होता है, आर्धधातुक विषय में। जैसा कि 'वक्ता' आदि उदाहरणों में स्पष्ट है।

विशेष–*(१) यहां स्थान शब्द प्रसंगवाची है। जैसे **'दर्भाणां स्थाने शरैः प्रस्तरितव्यम्'** अर्थात् दर्भ के स्थान में शर बिछने चाहियें। यहां यही समझा जाता है कि दर्भ के प्रसंग में शरों का प्रस्तार करना चाहिये, वैसे 'अस्तेर्भूः' (२।४।५२) कहने पर यही समझना चाहिये कि 'अस्' धातु के प्रसंग में 'भू' आदेश होता है।*

(२) षष्ठी विभक्ति के स्व, स्वामी, अनन्तर, समीप, समूह, विकार और अवयव आदि अनेक अर्थ हैं। जितने भी षष्ठी विभक्ति के अर्थ सम्भव हैं, उन सब की प्राप्ति में

यहां यह नियम किया जाता है कि व्याकरणशास्त्र में अनियत सम्बन्धवाली षष्ठी विभक्ति का 'स्थाने' शब्द का योग करके अर्थ किया जाये।

*(३) स्थाने योगो यस्याः सा स्थानेयोगा। यहां **'व्यधिकरण बहुव्रीहि'** समास है; समानाधिकरण नहीं। पाणिनिमुनि के इसी वचन से यहां निपातन से सप्तमी विभक्ति का अलुक् माना जाता है।*

सदृशतम आदेशः–

(३) स्थानेऽन्तरतमः।४६।

प०वि०–स्थाने ७।१ अन्तरतमः १।१।

अनु०–'षष्ठी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठीस्थानेऽन्तरतमः (आदेशः)।

अर्थः–षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने प्राप्यमाणानाम् आदेशानां अन्तरतमः। सदृशतम आदेशो भवति। तच्च सादृश्यं स्थान-अर्थ-गुण-प्रमाण-भेदतश्चतुर्विधं भवति।

उदा०–(स्थानतः) दण्डाग्रम्। खट्वाग्रम्। (अर्थतः) वतण्डी चासौ युवतिश्चेति वातण्ड्ययुवतिः। (गुणतः) पाकः। त्यागः रागः। (प्रमाणतः) अमुष्मै। अमूभ्याम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(षष्ठी) षष्ठी विभक्ति से निर्दिष्ट के (स्थाने) स्थाने में प्राप्त होनेवाले आदेशों में से (अन्तरतमः) सदृशतम आदेश ही किया जाता है। किसी के स्थान में आदेश करते समय स्थान, अर्थ, गुण और प्रमाण भेद से चार प्रकार का आन्तर्य (सादृश्य) देखा जाता है।

उदा०-(स्थान) दण्डाग्रम्। दण्ड का अग्रभाग। खट्वाग्रम्। खाट का अग्रभाग। (अर्थ) वतण्डी चासौ युवतिश्चेति वातड्ययुवतिः। वतण्डी युवति (गुण) पाकः। पकाना। त्यागः। छोड़ना। रागः। रंगना। (प्रमाण) अमुष्मै। उसके लिये। अमूभ्याम्। उन दोनों के द्वारा।

*सिद्धि-(१) **स्थान।** दण्ड+अग्रम्। दण्डाग्रम्। यहां **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।१०१) **से दो** अकारों के स्थान में एक **कण्ठ्य** आकार ही दीर्घ होता है। ऐसे ही खट्वा+अग्रम्। खट्वाग्रम्।*

*(२) **अर्थ।** वतण्डी चासौ युवतिश्चेति वातण्ड्ययुवतिः। यहां वतण्ड शब्द से **स्त्री**-अपत्य अर्थ में **'वतण्डाच्च'** (४।१।१०८) से 'यञ्' प्रत्यय, उसका **'स्त्रियाम्'** (४।१।३) से लुक्, **'शाङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से 'ङीन्' प्रत्यय, **'यस्येति च'***

(६ ।४ ।१४८) से अकार का लोप और 'पोटायुवति०' (२ ।१ ।६५) से कर्मधारय समास होता है। यहां 'पुंवत् कर्मधारय०' (६ ।३ ।४२) से पुंवद्भाव करते समय अर्थ के सादृश्य से वतण्ड शब्द का अपत्यवाची वातण्ड्य शब्द ही आदेश होता है, वतण्ड शब्द नहीं।

(३) गुण। पाकः। पच्+घञ्। पाच्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः। यहां 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७ ।३ ।५२) से कुत्व करते समय अल्पप्राण तथा अघोषगुणवाले चकार के स्थान में अल्पप्राण तथा अघोषगुणवाला ककार ही आदेश होता है।

इसी प्रकार त्यज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर 'त्यागः' शब्द सिद्ध होता है। यहां भी घोष तथा अल्पप्राण गुणवाले जकार के स्थान में घोष तथा अल्पप्राण गुणवाला गकार ही आदेश होता है।

(४) प्रमाण। अमुष्मै। अदस्+ङे। अदस्+स्मै। अमु+ष्मै। अमुष्मै। यहां 'अदसोऽसेर्दादु दो मः' (८ ।२ ।८०) से अकार के स्थान में उकार आदेश करते समय ह्रस्व प्रमाणवाले 'अ' के स्थान में ह्रस्व प्रमाणवाला 'उ' ही आदेश होता है और अमुभ्याम्, यहां उक्तसूत्र से दीर्घ आकार के स्थान में दीर्घ प्रमाणवाला दीर्घ ऊकार ही आदेश होता है।

विशेष-प्रश्न- 'षष्ठी स्थानेयोगा' (१ ।१ ।४९) से स्थाने पद की अनुवृत्ति की जा सकती है, फिर यहां 'स्थाने' पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तर-यहां 'स्थाने' पद का पुनः ग्रहण इसलिये किया गया है कि 'यत्रानेकविधानान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्यं बलीयः' (परिभाषा) जहां अनेक प्रकार का आन्तर्य (सादृश्य) हो वहां स्थानकृत आन्तर्य को ही बलवान् माना जाये। जैसे-चेता, स्तोता इत्यादि में चि और स्तु आदि धातुओं को गुण कार्य करते समय प्रमाणकृत सादृश्य से ह्रस्व इ और उ के स्थान में ह्रस्व 'अ' गुण प्राप्त होता है, किन्तु स्थानकृत आन्तर्य के बलवान् होने से इ के स्थान में ए तथा उ के स्थान में ओ गुण किया जाता है।

रपर आदेशः-

(४) उरण् रपरः ।५०।

प०वि०-उः ६ ।१ अण् १ ।१ रपरः १ ।१।

स०-रः परो यस्मात् स रपरः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-ऋकारस्य स्थाने विधीयमानोऽण् आदेशो रपरो भवति।

उदा०-(अ) कर्त्ता। हर्ता। (इ) किरति। गिरति। (उ) द्वैमातुरः। त्रैमातुरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उः) ऋ वर्ण के स्थान में विधीयमान (अण्) अण् आदेश (रपरः) रपर होता है। जिससे परे र हो उसे रपर कहते हैं। अण्=अ, इ, उ।

*उदा०-(अ) **कर्त्ता**। करनेवाला। हर्ता। हरण करनेवाला। (इ) किरति। वह फैंकता है। गिरति। वह निगलता है। (उ) द्वैमातुरः। दो माताओं का पुत्र। त्रैमातुरः। तीन माताओं का पुत्र (राम)।*

***सिद्धि-(१) कर्त्ता।** कृ+तृच्। कृ+तृ। क् अर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्त्ता। यहां 'सर्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से कृ अंग के ऋ को 'अ' गुण होता है और प्रकृत सूत्र से उसे रपर किया जाता है-अर्।*

*(२) **किरति।** कॄ+लट्। कॄ+तिप्। कॄ+श+ति। कॄ+अ+ति। क् इर्+अ+ति। किरति। यहां '**ॠत इद् धातोः**' (७।१।१००) से कॄ अंग के 'ॠ' के स्थान में 'इ' आदेश होता है और प्रकृत सूत्र से उसे रपर किया जाता है-इर्।*

*(३) **द्वैमातुरः।** द्विमातृ+अण्। द्वैमातुर+अ। द्वैमातुर+सु। द्वैमातुरः। यहां 'द्विमातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में '**मातुरुत् संख्यासंभद्रपूर्वायाः**' (४।१।११५) से अण् प्रत्यय और मातृ शब्द के ऋकार को उकार आदेश होता है। प्रकृत सूत्र से उसे रपर किया जाता है-उर्।*

अन्त्य आदेशः-

(५) अलोऽन्त्यस्य।५१।

प०वि०-अलः ६।१ अन्त्यस्य ६।१। अन्ते भवम्-अन्त्यम्, तस्य-अन्त्यस्य (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-'षष्ठी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठी (आदेशः) अन्त्यस्यालः।

अर्थः-षष्ठीनिर्दिष्टस्य य आदेशः सोऽन्त्यस्यालः स्थाने वेदितव्यः।

उदा०-इद् गोण्याः-पञ्चगोणिः। दशगोणिः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(षष्ठी) षष्ठी विभक्ति का निर्देश करके कहा हुआ आदेश (अन्त्यस्य) अन्तिम (अलः) अल् के स्थान में होता है। इद्**गोण्याः**-पञ्चगोणिः। पांच गोणी परिमाण से खरीदा हुआ। **दशगोणिः।** दश गोणी परिमाण से खरीदा हुआ।*

***सिद्धि-पञ्चगोणिः।** पञ्चगोणी+ठक्। पञ्चगोणी+०। पञ्चगोण् इ+०। पञ्चगोणि+सु। पञ्चगोणिः। 'पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीत इति पञ्चगोणिः। यहां '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगुसमास करके, '**तेन क्रीतम्**' (५।१।३७) से क्रीत अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय, '**अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्**' (५।१।२८) से ठक् प्रत्यय का लुक् होता है। तत्पश्चात् '**इद् गोण्याः**' (१।२।५०) से विहित इकार आदेश प्रकृत सूत्र से अन्तिम अल् के स्थान में किया जाता है। इसी प्रकार से दशभिर्गोणीभिः क्रीत इति दशगोणिः। गोणी=परिमाणविशेष।*

ङित्-आदेश–

(६) ङिच्च।५२।

प०वि०–ङित् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–ङ इत् यस्य स ङित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–षष्ठी अलोऽन्त्यस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठी (आदेशः) ङिच्च अन्त्यस्यालः।

अर्थः–षष्ठीनिर्दिष्टस्य यो ङित् आदेशः **सोऽपि अन्त्यस्यालः** स्थाने वेदितव्यः।

उदा०–**आनङ् ऋतो द्वन्द्वे**–मातापित**रौ**। **होतापोता**रौ।

*आर्यभाषा–अर्थ–(षष्ठी) षष्ठी विभक्ति **का निर्देश करके** कहा हुआ **(ङित्)** ङित् आदेश (च) भी (अन्त्यस्य) अन्तिम (अलः) अल् **के स्थान में** होता है।*

*उदा०–**आनङ् ऋतो द्वन्द्वे**–मातापितरौ। **माता और** पिता। **होतापोतारौ**। होता और पोता (पवित्र करनेवाला)।*

*सिद्धि–(१) **मातापितरौ**। माता च पिता च तौ माताপितरौ। **मातृ+पितृ+औ**। मात् आनङ् पितर्+औ। मातापितरौ। यहां 'आनङ् **ऋतो द्वन्द्वे**' (६।३।२५) से विहित ङित् आनङ् आदेश मातृ शब्द **के अन्तिम** ऋ के स्थान में होता है। इसी प्रकार से होता च पोता च तौ होतापोता**रौ**। **होतृ**+पोतृ+औ। होतापोतारौ।*

*विशेष–प्रश्न–**जीवताद् भवान्**, जीवतात् त्वम्। यहां 'तुह्योस्तातङाशिष्यन्तरस्याम्' (७।१।३५) से तु **और हि के स्थान** में विहित ङित् तातङ् आदेश अन्तिम अल् के स्थान **में क्यों** नहीं होता?*

*उत्तर–तातङ् आदेश में ङित्करण 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण के प्रतिषेध के लिये है, अतः वह अन्तिम अल् के स्थान में न होकर **'अनेकाल्शित्सर्वस्य'** (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। आनङ् के ङित्व का अन्य **कोई प्रयोजन** नहीं, अतः वह अन्तिम अल् के स्थान में होता है।*

पर आदेशः–

(७) आदेः परस्य।५३।

प०वि०–आदेः ६।१ परस्य ६।१।

अनु०–षष्ठी, अल, इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठी परस्यादेरलः।

अर्थः-षष्ठी निर्दिष्टस्य परस्य निर्दिश्यमानं कार्यम् आदेरलः स्थाने वेदितव्यम्।

उदा०-ईदासः-आसीनः। **द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप** ईत्-द्वीपम्। अन्तरीपम्। समीपम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(षष्ठी) षष्ठी विभक्ति का निर्देश करके (परस्य) पर के स्थान में कहा हुआ आदेश (आदेः) आदिम (अलः) अल् के स्थान में होता है।

उदा०-ईदासः-आसीनः। बैठा हुआ। द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्-द्वीपम्। द्वीप। अन्तरीपम्। अन्तरीप। समीपम्। पास।

सिद्धि-(१) आसीनः। आस्+लट्। आस्+शानच्। आस्+आन्। आस्+शप्+आन्। आस्+०+आन। आस्+ईन। आसीन+सु। आसीनः। यहां 'आस् उपवेशने' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' से 'लट्' प्रत्यय, 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (३।२।१२४) से लट् के स्थान में 'शानच्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होकर 'ईदासः' ७।२।८३) से आस् से परे 'आन' को कहा ईकार आदेश प्रकृत सूत्र से 'आन' के आदिम आ के स्थान में किया जाता है।

(२) द्वीपम्। द्विर्गता आपो यस्मिन् तद् द्वीपम्। द्वि+अप्। द्वि+ईप्। द्वीप+अ। द्वीप+सु। द्वीपम् यहां 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' (६।३।९७) से द्वि से पर 'अप्' को ईकार आदेश का विधान किया गया है। वह प्रकृत सूत्र से 'अप्' के आदिम अकार के स्थान में किया जाता है। तत्पश्चात् 'ऋक्पूरब्धू०' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है।

(३) इसी प्रकार अन्तर्गता आपो यस्मिन् तद् अन्तरीपम्। संगता आपो यस्मिन् तत् समीपम्। अन्तर्+अप्=अन्तरीपम्। सम्+अप्=समीपम्।

सर्वादेशः-

(८) अनेकाल्शित् सर्वस्य।५४।

प०वि०-अनेकाल्-शित् १।१ सर्वस्य ६।१।

स०-अनेकाल् च शिच्च एतयोः समाहारः-अनेकाल्शित् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'षष्ठी अलः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठी अनेकाल् शित् सर्वस्यालः।

अर्थः-षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने अनेकाल् शिच्च य आदेशः स सर्वस्यालः स्थाने वेदितव्यः ।

उदा०-(अनेकाल्) **अस्तेर्भूः**-भविता। भवितुम्। भवितव्यम्। (शित्) **जशशसोः शि**-कुण्डानि तिष्ठन्ति। कुण्डानि पश्य।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(षष्ठी) षष्ठी विभक्ति का निर्देश करके कहा हुआ (अनेकाल-शित्) अनेक अल्वाला तथा शित् आदेश (सर्वस्य) समस्त अल् के स्थान में होता है।*

*उदा०-(अनेकाल्) **अस्तेर्भूः**-भविता। भवितुम्। भवितव्यम्। (शित्) **जश्शसोः शि**-कुण्डानि तिष्ठन्ति। कुण्डानि पश्य। अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) भविता। *अस्+तृच्। भू+तृ। भू+इट्+तृ। भो+इ+तृ। भव्+इ+तृ। भवितृ+सु। भविता। यहां **'अस्तेर्भूः'** (२।४।५२) से आर्धधातुक विषय में 'अस्' धातु के स्थान में 'भू' आदेश का विधान किया है। भू आदेश अनेक अल्वाला होने से प्रकृत सूत्र से समस्त 'अस्' धातु के स्थान में किया जाता है।*

(२) कुण्डानि। *कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड नुम्+इ। कुण्डन्+इ। कुण्डान्+इ। कुण्डानि। यहां **'जश्शसोः'** (७।१।२०) से 'जस्' और 'शस्' प्रत्यय के स्थान में 'शि' आदेश का विधान किया है। वह शित् होने से प्रकृत् सूत्र से समस्त 'जस्' और 'शस्' प्रत्यय के स्थान में किया जाता है।*

स्थानिवत्प्रकरणम्

अनल्विधिः–

(१) स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ।५५।

प०वि०-स्थानिवत् अव्ययपदम्, आदेशः १।१ अनल्विधौ ७।१।

स्थानमस्यास्तीति स्थानी। तेन स्थानिना। स्थानिना तुल्यमिति स्थानिवत् (तद्धितवृत्तिः)।

स०-अलोविधिरिति अल्विधिः। न अल्विधिरिति अनल्विधिः, तस्मिन् अनल्विधौ (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-आदेशः स्थानिवद् अनल्विधौ।

अर्थः-आदेशः स्थानिवद् भवति, अनल्विधौ कर्त्तव्ये (अल्विधिं वर्जयित्वा) अत्र धातु-अङ्ग-कृत्-तद्धित-अव्यय-सुप्-तिङ्-पदादेशाः प्रयोजयन्ति।

उदा०-(धातुः) **अस्तेर्भूः**-भविता। भवितुम्। भवितव्यम्। (अङ्गम्) **किमः कः**-केन। काभ्याम् कैः। (कृत्) **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**-प्रकृत्य। प्रहृत्य। (तद्धितः) **ठस्येकः**-दाधिकम्। **युवोरनाकौ**-अद्यतनम्। (अव्ययम्) **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**-प्रकृत्य। प्रहृत्य। (सुप्) **ङेर्यः**-वृक्षाय। प्लक्षाय। (तिङ्) तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः-अकुरुताम्। अकुरुत। (पदम्) **बहुवचनस्य वस्नसौ**-ग्रामो वः स्वम्। जनपदो नः स्वम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनल्-विधौ) अनेक अल् की विधि करने में (आदेशः) किया हुआ कोई आदेश (स्थानिवत्) स्थानी के समान होता है। धातु, अङ्ग, कृत्, तद्धित, अव्यय, सुप्, तिङ् और पद के आदेश इसके उदाहरण हैं।

*उदा०-(१) **धातु**। धातु के स्थान में किया गया आदेश धातु के समान होता है। जैसे 'अस्तेर्भूः' (२।४।५२) भविता। भवितु। भवितव्यम्। यहां आर्धधातुक विषय में 'अस्' धातु से विहित 'तव्यत्' आदि प्रत्यय 'भू' धातु से भी होते हैं।*

*(२) **अङ्ग**। अङ्ग के स्थान में किया गया आदेश अङ्ग के समान होता है। जैसे-केन, काभ्याम्, कैः। यहां 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में किये 'क' आदेश से भी इन, दीर्घत्व और ऐस् भाव होता है।*

*(३) **कृत्**। कृत् प्रत्यय के स्थान में किया गया आदेश कृत् के समान होता है। जैसे-प्रकृत्य, प्रहृत्य। यहां '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है। उसके परे होने पर भी '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७१) से तुक् आगम हो जाता है।*

*(४) **तद्धित**। तद्धित प्रत्यय के स्थान में किया गया आदेश तद्धित के समान होता है। जैसे-दाधिकम्। अद्यतनम्। यहां 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ' के स्थान में किया 'इक्' आदेश तथा '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में किया 'अन' आदेश तद्धित के समान होता है। इससे '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है।*

*(क) **दाधिकम्**। दधि+ठक्। दधि+इक् अ। दध्+इक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

*(ख) **अद्यतनम्**। अद्य+ट्यु। अद्य+अन। अद्य+तुट्+अन। अद्य+त्+अन। अद्यतन+सु। अद्यतनम्। यहां '**सायंचिरं०**' (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम होता है।*

*(५) **अव्यय**। अव्यय के स्थान में किया गया आदेश अव्यय के समान होता है। जैसे-प्रकृत्य प्रहृत्य। यहां अव्यय 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान में '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से किया गया 'ल्यप्' आदेश भी अव्यय होता है। '**क्त्वातोसुन्कसुनः**'*

(१।१।४०) से क्त्वा प्रत्ययान्त की अव्यय संज्ञा होती है। यहां ल्यप् आदेश अवस्था में भी अव्यय संज्ञा होने से ***'अव्ययादाप्सुपः'*** *(२।४।८२) से सुप् का लुक् हो जाता है।*

(६) ***सुप्।*** *सुप् के स्थान में किया गया आदेश सुप् के समान होता है, जैसे-वृक्षाय, प्लक्षाय। वृक्ष+ङे। वृक्ष+य। वृक्षा+य। वृक्षाय। यहां* ***'ङेर्यः'*** *(७।१।१२) से 'ङे' के स्थान में किया गया 'य' आदेश सुप् के समान होता है। इससे* ***'सुपि च'*** *(७।३।१०२) से अङ्ग को दीर्घ हो जाता है।*

(७) ***तिङ्।*** *तिङ् के स्थान में किया गया आदेश तिङ् के समान होता है, जैसे-अकुरुताम्, अकुरुत। यहां* ***'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'*** *(३।४।१०१) से 'तस्' के स्थान में किया गया 'ताम्' और 'तम्' आदेश तिङ् के समान होता है। इससे उसकी* ***'सुप्तिङन्तं पदम्'*** *(१।४।१४) से पद संज्ञा हो जाती है।*

(८) ***पद।*** *पद के स्थान में किया गया आदेश पद के समान होता है। जैसे-**ग्रामो वः स्वम्। जनपदो नः स्वम्।** यहां* ***'बहुवचनस्य वस्नसौ'*** *(८।१।२१) से 'युष्माकम्' और 'अस्माकम्' आदि पद के स्थान में किया गया 'वस्' और 'नस्' आदेश पद के समान होता है। इससे यहां* ***'पदस्य'*** *(८।१।१६) से 'वस्' और 'नस्' के सकार को रुत्व हो जाता है।*

पूर्वविधिः–

(२) अचः परस्मिन् पूर्वविधौ।५६)

प०वि०–अचः ६।१ परस्मिन् ७।१ (निमित्तसप्तमी) पूर्वविधौ ७।१।

स०–पूर्वस्य विधिरिति पूर्वविधिः, तस्मिन् पूर्वविधौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–स्थानिवत् आदेशः, इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–परस्मिन् अचः पूर्वविधौ स्थानिवत्।

अर्थः–परनिमित्तकोऽच् आदेशः पूर्वविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवद् भवति।

उदा०–पटयति। अवधीत्। बहुखट्वकः।

आर्यभाषा-अर्थ–*(परस्मिन्) पर के कारण से किया गया (अचः) अच् के स्थान में (आदेशः) कोई आदेश (पूर्वविधौ) उससे पूर्व की कोई विधि करने में (स्थानिवत्) स्थानी के समान होता है।*

उदा०–पटयति। पटु को कहता है। अवधीत्। उसने वध किया। बहुखट्वकः। बहुत खाटोंवाला।

सिद्धि-(१) पटयति। *पटुमाचष्टे पटयति। पटु+णिच्। पट्+इ। पटि+शप्+ति। पटे+अ+ति। पट् अय्+अ+ति। पटयति। यहां 'पटु' शब्द से* ***'तत्करोति तदाचष्टे'***

(वा० ३।१।२६) से णिच् प्रत्यय, 'णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य' (वा० ६।४।१५५) से पटु के टि-भाग का लोप हो जाने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधा अकार को वृद्धि प्राप्त होती है, किन्तु टि-लोप रूप अच्-आदेश को स्थानिवत् मानने से पूर्वविधि वृद्धि नहीं होती है।

*(२) **अवधीत्।** हन्+लुङ्। अट्+वध्+च्लि+तिप्। अ+वध्+सिच्+ति। अ+वध्+स्+त्। अ+वध्+इट्+स्+ईट्+त्। अ+वध्+इ+स्+ई+त्। अ+वध्+इ+०+ई+त्। अवधीत्। यहां 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से लुङ्लकार में अकारान्त वध् आदेश होता है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से उसके अकार का लोप हो जाता है, उस अकार लोपरूप अच्-आदेश को स्थानिवत् मानने से 'अतो हलादेर्लघोः' (७।२।७) से पूर्वविधि हलन्तलक्षणावृद्धि नहीं होती है।*

*(३) **बहुखट्वकः।** बह्व्यः खट्वा यस्य स बहुखट्वकः। बहु+खट्वा+कप्। बहु+खट्व+क। बहुखट्वक+सु। बहुखट्वकः। यहां 'आपोऽन्तरस्याम्' (७।४।१५) से आ को ह्रस्व होता है। इस ह्रस्व रूप अच् आदेश को स्थानिवत् मानने से 'ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम्' (६।२।१७४) से खकारस्थ अकार को पूर्वविधि उदात्त स्वर नहीं होता है, किन्तु 'कपि पूर्वम्' (६।२।१७३) से उत्तर पद को अन्तोदात्त स्वर ही होता है।*

स्थानिवत्प्रतिषेधः–

(३) न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घ-जश्चर्विधिषु।५७।

प०वि०–न अव्ययपदम्। पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर्-विधिषु ७।३।

स०–पदान्तश्च द्विर्वचनं च वरेश्च यलोपश्च स्वरश्च सवर्ण च अनुस्वारश्च दीर्घश्च जश् च चर् च ते-पदान्तद्विर्वचन-वरे-यलोपस्वर-सवर्णानुस्वार दीर्घ जश् चरः,तेषाम्-पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार-दीर्घजश्चराम्। पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरां विधय इति पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधयः, तेषु-पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु। (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अचः परस्मिन् पूर्वविधौ स्थानिवत् आदेशः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पदान्त० विधिषु परस्मिन् अचः पूर्वविधौ स्थानिवत् न।

अर्थः-पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-**दीर्घ**-जश्-चर्-विधिषु कर्त्तव्येषु परनिमित्तकोऽच आदेशः पूर्वविधौ **कर्त्तव्ये** स्थानिवन्न भवति।

उदा०-(१) **पदान्तः।** कौ स्तः। यौ स्तः। तानि सन्ति। यानि सन्ति। (२) **द्विर्वचनम्।** दद्ध्यत्र। मद्ध्वत्र। (३) **वरे।** अप्सु यायावरः प्रवपेत पिण्डान्। (४) **यलोपः।** कण्डूतिः। (५) **स्वरः।** चिकीर्षकः। जिहीर्षकः। (६) **सवर्णम्।** शिण्ढि। पिण्ढि। (७) **अनुस्वारः।** शिंषन्ति। पिंशन्ति। (८) **दीर्घः।** प्रतिदीव्ना। प्रतिदीव्ने। (९) **जश्।** सग्धिश्च मे, सपीतिश्च मे बब्धां ते हरी धानाः। (१०) **चर्।** जक्षतुः। जक्षुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदान्त०) पदान्त, द्विर्वचन, वरे, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश् और चर् सम्बन्धी विधि के करने में (अचः) अच् के स्थान में किया गया (परस्मिन्) पर के कारण से (आदेशः) कोई आदेश (पूर्वविधौ) पूर्व की कोई विधि करने में (स्थानिवत्) स्थानी के समान (न) नहीं होता है।

उदा०-(१) पदान्त। कौ स्तः। दो कौन हैं। यौ स्तः। जो दो हैं। तानि सन्ति। वे हैं। यानि सन्ति। जो हैं। (२) द्विर्वचन। दद्ध्यत्र। यहां दही है। मद्ध्वत्र। यहां मधु है। (३) वरे। अप्सु यायावरः प्रवपेत पिण्डान्। यायावरः। घूमनेवाला। (४) यलोप। कण्डूतिः। खाज। (५) स्वर। चिकीर्षकः। करने का इच्छुक। जिहीर्षकः। हरने का इच्छुक। (६) सवर्ण। शिण्ढि। तू पृथक् कर। पिण्ढि। तू पीस। (७) अनुस्वार। शिंषन्ति। पृथक् करते हैं। पिंशन्ति। पीसते हैं। (८) दीर्घ। प्रतिदीव्ना। प्रतिदिन से। प्रतिदिव्ने। प्रतिदिन के लिये। (९) जश्। सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे बब्धां ते हरी धानाः। सग्धिः=समान भोजन। सपीतिः=समान पान। (१०) चर्। जक्षतुः। उन दोनों ने खाया। जक्षुः। उन सबने खाया।

सिद्धि-(१) पदान्तविधि। *(कौ स्तः) अस्+लट्। अस्+शप्+तस्। अस्+०+तस्। अस्+तस्। स्+तस्। स्तः। यहां 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से ङित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे होने पर अस् धातु के अकार का लोप होता है।* ***यह अकार लोप परिनिमित्तक अच् आदेश है, यह पूर्व की विधि*** *'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से* ***'कौ' को आव् आदेश करने में स्थानिवत् नहीं होता है।*** *यदि वह स्थानिवत् हो जाये तो यहां प्राप्त 'आव्' आदेश हो जाये। इसी प्रकार 'तानि सन्ति' में 'इको यणचि' (६।१।७०) से 'तानि' को यण्-आदेश नहीं होता है।*

(२) द्विर्वचनविधि। *(दद्ध्यत्र) दधि+अत्र। दध् च्+अत्र। दध् ध् य्+ अत्र। दद्ध्यत्र। यहां 'इको यणचि' (६।१।७७) से 'यण्' आदेश, 'अनचि च' (८।४।४७)*

से धकार को द्विर्वचन और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से पूर्व धकार को जश् दकार होता है। **यहां यण् परनिमित्तक अय्-आदेश है, यह 'अनचि च' (८।४।४७) से धकार को द्विर्वचन करने में स्थानिवत् नहीं होता है।** यदि यह स्थानिवत् हो जाये तो उक्त द्विर्वचन नहीं हो सकता। इसी प्रकार मद्ध्वत्र।

(३) **वरेविधि।** (यायावरः) या+यङ्। या या+य। या या य+वरच्। या या य+वर। या या+वर। या या व र+सु। यायावरः। यहां **'या गतौ'** (अदा०प०) धातु से **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।२।२२) से 'यङ्' प्रत्यय, उससे **'यश्च यङः'** (३।२।१७६) **से कृत्** वरच् प्रत्यय, 'अतो लोपः' (६।४।४८) से अकार का लोप, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से 'य' का लोप होता है। यहां अकार-लोप **परनिमित्तक अच्-आदेश है। यदि यह स्थानिवत् हो जाये तो 'यङ्' को मानकर** 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से आकार का लोप हो जाये।

(४) **यलोपविधि।** (कण्डूतिः) कण्डू+यक्। कण्डूय+क्तिच्। कण्डूय+ति। कण्डू+ति। कण्डूति+सु। कण्डूतिः। यहां **'कण्ड्वादिभ्यो यक्'** (३।१।२७) से 'यक्' प्रत्यय उससे **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) से **'क्तिच्'** प्रत्यय, 'अतो लोपः' (६।४।४८) से परनिमित्तक अकार का लोप, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से य का लोप होता है। **यदि य के लोप की पूर्वविधि करने में अकार-लोप रूप अच्-आदेश स्थानिवत् हो जाये तो 'य' का लोप न हो सके।** अकार-लोप के स्थानिवत् न होने से य का लोप हो जाता है।

(५) **स्वरविधिः।** (चिकीर्षकः) चिकीर्ष+ण्वुल्। चिकीर्ष्+अक्। चिकीर्षक+सु। चिकीर्षकः। यहां सनन्त 'चिकीर्ष' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से ण्वुल् प्रत्यय, 'अतो लोपः' (६।४।४८) से **अकार का लोप होता है। उसके स्थानिवत् न होने से 'लिति' (६।१।१९३) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् ईकार को उदात्त स्वर हो जाता है।** यदि अकार लोप रूप परनिमित्तक अच्-आदेश स्थानिवत् हो जाये तो प्रत्यय से पूर्ववर्ती ईकार को उदात्त स्वर नहीं हो सकता। अकार लोप के स्थानिवत् न होने से ईकार को उदात्त स्वर हो जाता है। इसी प्रकार जिहीर्षकः।*

(६) **सवर्णविधि।** (शिण्ढि) शिष्+लोट्। शिष्+सिप्। शिष्+हि। शिष्+धि। शिष्+ढि। शि श्नम् ष्+ढि। शि न ष्+ढि। शि न् ष्+ढि। शि ं ढि। शिण् ं ढि। शि ं ड् ढि। शि ं ढि। शिण् ढि। शिण्ढि। यहां शिष्लृ विशेषणे (रुधा०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से लोट् प्रत्यय, 'तिप् तस् झि०' (३।४।७८) से ल् के स्थान में तिप् आदेश, 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सि' के स्थान में अपित् 'हि' आदेश, **'हुझल्भ्यो हेर्धिः'** ६।४।८७) से 'हि' को 'धि' आदेश, 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।४।७८) से विकरण 'श्नम्' प्रत्यय, 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) **से परनिमित्तक श्नम् के अकार का लोप, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से पूर्वविधि न् को अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य**

यथि परसवर्णः' (८।४।५८) से अनुस्वार को पूर्वविधि परसवर्ण ण् करते **समय परनिमित्तक** अच् आदेश रूप अकार का लोप स्थानिवत् नहीं होता है। यदि वह स्थानिवत् हो जाये तो अनुस्वार को परसवर्ण नहीं हो सके। अकार लोप स्थानिवत् नहीं होता इसलिये अनुस्वार को परसवर्ण हो जाता है। इसी प्रकार **'पिष्लृ पेषणे'** (रुधादि०) से पिण्ढि।

(७) **अनुस्वारविधि।** (शिंषन्ति) शिष्+लट्। शिष्+झि। शिष्+अन्ति। शि श्नम् ष्+अन्ति। शि न् ष्+अन्ति। शि ष्+अन्ति। शिंषन्ति। यहां 'शिष्लृ विशेषणे' (रुधादि०) से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से ल् के स्थान में 'झि' आदेश, **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ' को 'अन्त' आदेश, **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से विकरण 'श्नम्' प्रत्यय, **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से परनिमित्तक 'श्नम्' के अकार का लोप, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) **से न को अनुस्वार करते समय परनिमित्तक अच् आदेश रूप अकार का लोप स्थानिवत् नहीं होता है।** यदि वह स्थानितवत् हो जाये तो 'न्' को अनुस्वार नहीं हो सकता। अकार लोप के स्थानिवत् न होने से 'न्' को अनुस्वार हो जाता है।

(८) **दीर्घविधि।** (प्रतिदीव्ना) प्रतिदिवन्+टा। प्रतिदीवन्+आ। प्रतिदीव्ना। यहां **'अल्लोपोऽनः'** (६।४।१३४) **से अकार का लोप परनिमित्तक अच्-आदेश है। वह 'हलि च'** (८।३।७७) **से पूर्वविधि दीर्घ करने में स्थानिवत् नहीं होता है।** यदि वह स्थानिवत् हो जाये तो हल् परे न रहने से दीर्घ नहीं हो सकता, अकार लोप के स्थानिवत् न होने से दीर्घ हो जाता है।

(९) **जश्विधि।** (सग्धिः) अद्+क्तिन्। घस्लृ+ति। घस्+ति। घ्स्+ति। घ्+ति। घ्+धि। ग्+धि। ग्धि+सु। ग्धिः। समाना ग्धिरिति सग्धिः। यहां **'अद् भक्षणे'** (अद०प०) से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय, **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।३९) से अद् के स्थान में घस्लृ आदेश, **'घसिभसोर्हलि च'** (६।४।१००) से 'घस्' की उपधा का लोप परनिमित्तक अच् आदेश है। वह **'झलां जश् झषि'** (८।४।५३) से पूर्वविधि जशत्व ग् करते समय स्थानिवत् नहीं होता है। यदि वह स्थानिवत् हो जाये तो 'घ्' को जशत्व नहीं हो सकता। अकार लोप के स्थानिवत् न होने से जशत्व हो जाता है।

(१०) **चर्विधि।** (जक्षतुः) अद्+लिट्। अद्+तस्। अद्+अतुस्। घस्लृ+अतुस्। घस्+अतुस्। घ् स्+अतुस्। घस् घस्+अतुस्। घ+घस्+अतुस्। ज+घ्स्+अतुस्। ज+क्स्+अतुस्। ज+क्+ष्+अतुस्। जक्षतुः। यहां **'अद् भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तस्' प्रत्यय, **'परस्मैपदानां णलतुस्०'** (३।४।८२) से तस् के स्थान में 'अतुस्' आदेश, **'लिट्यन्यतरस्याम्'** (३।१।४) से अद् के स्थान में 'घस्लृ' आदेश, **'गमहनजनखनघसां०'** (६।४।९७) **से घस् की उपधा अकार का लोप परनिमित्तक अच्-आदेश है। यदि वह**

स्थानिवत् हो जाये तो 'खरि च' (८।४।५५) से पूर्वविधि 'घ' को चर् 'क्' नहीं हो सकता। अकार लोप के स्थानिवत् न होने से 'घ' को चर् 'क' हो जाता है।

इस प्रकार परनिमित्तक अच्-आदेश पदान्त आदि विधि करने में उस अच् आदेश से पूर्ववर्ण सम्बन्धी कोई विधि करने में स्थानिवत् नहीं होता है, जिससे कि अच् आदेश से पूर्ववर्ण को वह प्राप्त विधि की जा सके।

द्विर्वचनविधिः–

(४) द्विर्वचनेऽचि ।५६।

प०वि०–द्विर्वचने ७।१ अचि ७।१

अनु०–(निमित्तसप्तमी)। 'अचः स्थानिवत् आदेशः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–द्विर्वचनेऽचि अच आदेशः स्थानिवत्।

अर्थः–द्विर्वचननिमित्तेऽचि परतोऽच आदेशः स्थानिवत् भवति, द्विर्वचन एव कर्त्तव्ये। अत्र आल्लोप-उपधालोप-णिलोप-यण्-अय् अव्-आय्-आवादेशाः प्रयोजयन्ति।

उदा०–(१) **आल्लोपः।** पपतुः। पपुः। (२) **उपधालोपः।** जघ्नतुः जघ्नुः। (३) **णिलोपः।** आटिटत् (४) **यण्।** चक्रतुः। चक्रुः। (५) **अय्।** निनय। (६) **अव्।** लुलव। (७) **आय्।** निनाय। (८) **आव्।** लुलाव।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(द्विर्वचने) द्विर्वचन के निमित्त (अचि) अच् के परे होने पर (परस्मिन्) पर के कारण से किया गया (अचः) अच् के स्थान में (आदेशः) कोई आदेश (द्विर्वचने) केवल द्विर्वचन करने के लिये ही (स्थानिवत्) स्थानिवत् होता है। इसके (१) आल्लोप, (२) उपधालोप, (३) णिलोप, (४) यण्, (५) अय्, (६) अव् (७) आय् और (८) आव् आदेश प्रयोजन हैं।

उदा०–आल्लोप। पपतुः। उन दोनों ने पीया। पपुः। उन सबने पीया। उपधा। जघ्नतुः। उन दोनों ने मारा। जघ्नुः। उन सबने मारा। णिलोप। आटिटत्। उसने घुमाया। यण्। चक्रतुः। चक्रुः। उन सबने किया। अय्। निनय। मैंने लिया। अव्। लुलव। मैंने काटा। आय्। निनाय। वह ले गया। आव्। लुलाव। उसने काटा।

सिद्धि-(१) __आल्लोप।__ (पपतुः) पा+लिट्। पा+तस्। पा+अतुस्। प्+अतुस्। पा+पा+अतुस्। प+प्+अतुस्। पपतुः। यहां __'परोक्षे लिट्'__ (३।१।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, __'तिप्तस्झि०'__ (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश, __'आतो लोप इटि च'__ (६।४।६४) से पा धातु के आकार का लोप परनिमित्तक अच्-आदेश है, वह केवल __'लिटि धातोरनभ्यासस्य'__ (६।१।८) से 'पा' धातु को द्विर्वचन करने में स्थानिवत् हो जाता है, जिससे धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्विर्वचन हो सके। इसी प्रकार से-पपुः।

(२) **उपधा लोप।** (जघ्नतुः) हन्+लिट्। हन्+तस्। हन्+अतुस्। हन्+अतुस्। हन्+हन्+अतुस्। ह+हन्+अतुस्। झ+हन्+अतुस्। ज+हन्+अतुस्। जघ्नतुः। यहां **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय, **'गमहनजनखनघसां०'** (६।४।९८) से किया गया उपधा का लोप परनिमित्त अच्-आदेश है, वह केवल पूर्ववत् हन् धातु को द्विर्वचन करने में स्थानिवत् हो जाता है, जिससे धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्विर्वचन हो सके। इसी प्रकार से-जघ्नुः।

(३) **णिलोप।** (आटिटत्) अट्+णिच्। आट्+इ। आटि+लुङ्। आट्+आटि+च्लि+तिप्। आ+आटि+चङ्+ति। आ+आटि+अ+त्। आ+आट्+अ+त्। आ+आटि+टि+अ+त्। आ आटि ट्+अ+त्। आटिटत्। यहां **'अट् गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, **'अत उपधायाः'** ७।२।११६) से धातु की उपधा को वृद्धि, णिजन्त 'आटि' धातु से 'लुङ्' (३।१।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णि' का लोप हो जाने पर 'चङि' (६।१।११) से अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन प्राप्त नहीं होता है, णि लोप के स्थानिवत् हो जाने से आटि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव 'टि' को 'टि-टि' द्विर्वचन हो जाता है।

(४) **यण् आदेश।** (चक्रतुः) कृ+लिट्। कृ+तस्। कृ+अतुस्। क्र्+अतुस्। कृ+कृ+अतुस्। कृ+कर्+अतुस्। क् अ+क्र्+अतुस्। च+क्र्+अतुस्। चक्रतुः। यहां पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय करने पर **'इको यणचि'** (६।१।७७) से 'कृ' धातु के 'ऋ' को यण् 'र्' आदेश करने पर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से अच् के अभाव में प्रथम एकाच् अवयव को द्विर्वचन प्राप्त नहीं होता है। यहां यण्-आदेश को स्थानिवत् मानकर 'कृ' धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व हो जाता है।

(५) **अय् आदेश।** (निनय) नी+लिट्। नी+मिप्। नी+णल्। नी+अ। ने+अ। न् अय्+अ। ने+ने+अ। नि+नय्+अ। निनय। यहां **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'मिप्' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुस्०'** (३।४।८२) से मिप् के स्थान में 'णल्' आदेश **'णलुत्तमो वा'** (७।१।९१) से उत्तम पुरुष के णल् का विकल्प से 'णित्व' **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अंग को गुण, **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से अय् आदेश। उसे स्थानिवत् मानकर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'ने' को द्विर्वचन होता है।

(६) **आय् आदेश।** (निनाय) नी+लिट्। नी+मिप्। नी+णल्। नी+अ। नै+अ। न् आय्+य। नै+नै+अ। नि+नाय्+अ। निनाय। यहां पूर्ववत् लिट् प्रत्यय, **'णलुत्तमो वा'** (७।१।९१) से णल् के णित्त्व पक्ष में **'अचो ञ्णिति'** (७।१।११५) से अंग को वृद्धि, **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से आय् आदेश। उसे स्थानिवत् मानकर पूर्ववत् 'नै' को द्विर्वचन होता है।

(७) अव् आदेश। (लुलव) लूञ् छेदने (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय। शेष सब कार्य निनय के सहाय से समझ लें।

(८) आव् आदेश। (लुलाव) लूञ् छेदने (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय। शेष कार्य निनाय के सहाय से समझ लें।

लोप-प्रकरणम्

लोप-संज्ञा–

(१) अदर्शनं लोपः।५६।

प०वि०–अदर्शनम् १।१ लोपः१।१।

स०–न दर्शनमिति अदर्शमिति अदर्शनम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'न वेति विभाषा' इत्यस्मात्–मण्डूकप्लुत्या 'इति' शब्दोऽनुवर्तते।

अन्वयः–अदर्शनम् इति लोपः।

अर्थः–वर्णस्यादर्शनम् (विनाशः) इति लोपसंज्ञकं भवति।

उदा०–गौधेरः। पचेरन्। जीरदानुः।

आर्यभाषा–अर्थ–(अदर्शनम्) अदर्शन, अश्रवण, अनुच्चारण, अनुपलब्धि, अभाव और वर्णविनाश ये पर्यायवाची हैं, (इति) इन शब्दों से जो अर्थ कहा जाता है, उसकी (लोपः) लोप संज्ञा होती है।

उदा०–गौधेरः। गोहेरा। पचेरन्। वे सब पकावें। जीरदानुः। प्राण को धारण करनेवाला जीव।

सिद्धि–(१) गौधेरः। गोधा+ढ्रक्। गोधा+एय्र। गोधा+ए०र। गोध्+एर्। गौध्+एर। गौधेर+सु। गौधेरः। यहां गोधा शब्द से 'गोधाया ढ्रक्' (४।१।१२९) से 'ढ्रक' प्रत्यय, 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में एय् आदेश और उसके य् का 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से लोप हो जाता है। उसकी लोप संज्ञा है।

(२) पचेरन्। पच्+लिङ्। पच्+झ। पच्+रन्। पच्+शप्+रन्। पच्+अ+रन्। पच्+अ+सीयुट्+रन्। पच्+अ+इय्+रन्। पच्+ई+रन्। पचेरन्। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से 'विधिनिमन्त्रणा०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय, 'तिप्तसझि०' (३।४।७८) से ल् के स्थान में झ आदेश, 'झस्य रन्' (३।४।१०५) से झ के स्थान में रन् आदेश, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'सीयुट्' से सकार का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से 'सीयुट्' के य् का लोप होता है, उसकी लोप संज्ञा है।

(४) जीरदानुः। जीव्+रदानुक्। जीव+रदानु। जीरदानुः। यहां 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से 'जीवे रदानुक्' (उणादि०) (२।३।२) से 'रदानुक्' प्रत्यय करने पर

'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से 'व्' का लोप होता है। उसकी लोप संज्ञा है।

विशेष-इस व्याकरणशास्त्र में 'स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा' (१।१।६८) से शब्द के अपने रूप का ही ग्रहण किया जाता है, उसके अर्थ का नहीं। यहां 'न वेति विभाषा' (१।१।४४) से मण्डूकप्लुति न्याय से 'इति' शब्द के सहाय से यहां अदर्शनं शब्द के अर्थ की लोप संज्ञा होती है।

लुक्-श्लु-लुप्-संज्ञाः—

(२) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः।६०।

प०वि०-प्रत्ययस्य ६।१ लुक्-श्लु-लुपः १।३।

स०-लुक् च श्लुश्च लुप् च ते-लुक्श्लुलुपः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अदर्शनम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-लुक्श्लुलुपभिः प्रत्ययस्य अदर्शनं लुक्श्लुलुपः।

अर्थः-लुक्-श्लु-लुप्शब्दैः प्रत्ययस्यादर्शनं लुक्-श्लुलुप्संज्ञकं भवति।

उदा०-(लुक्) अत्ति। (श्लुः) जुहोति। (लुप्) वरणाः।

आर्यभाषा-अर्थ-लुक्, श्लु, लुप् शब्दों के द्वारा (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अदर्शनम्) लोप की (लुक्-श्लु-लुपः) लुक्, श्लु और लुप् संज्ञा होती है।

उदा०-(लुक्) अत्ति। वह खाता है। श्लु। जुहोति। वह होम करता है। लुप्। वरणाः। एक जनपद का नाम है।

सिद्धि-(१) लुक्। अत्ति। अद्+लट्। अद्+तिप्। अद्+शप्+ति। अद्+०+ति। अत्ति। यहां अद् भक्षणे (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।१।१२३) से लट् प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और उसका 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से लुक् होता है। अतः 'शप्' प्रत्यय के अदर्शन की यहां 'लुक्' संज्ञा है।

(२) श्लु। (जुहोति) हु+लट्। हु+शप्+तिप्। हु+०+ति। हु+हु+ति। हु+हो+ति। जु+हो+ति। जुहोति। यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से पूर्ववत् लट् प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से शप् को श्लु होता है। तत्पश्चात् 'श्लौ' (६।१।१०) से हु धातु को द्विर्वचन होता है। यहां शप् प्रत्यय के अदर्शन की 'श्लु' संज्ञा है।

(३) लुप्। (वरणाः) वरण+अण्+जस्। वरण+अ+अस्। वरण++०+अस्। वरणाः। यहां 'वरणादिभ्यश्च' (४।२।८२) से 'अण्' प्रत्यय 'लुप्' होता है। उसकी 'लुप्' संज्ञा है।

विशेष-किसी वर्ण के अदर्शन को लोप कहते हैं और किसी प्रत्यय विशेष के अदर्शन को लुक्, श्लु और लुप् कहा जाता है।

प्रत्ययलक्षणकार्यम्-

(३) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्।६१।

प०वि०-प्रत्ययलोपे ७।१ प्रत्ययलक्षणम् १।१।

स०-प्रत्ययस्य लोप इति प्रत्ययलोपः, तस्मिन्-प्रत्ययलोपे (षष्ठी तत्पुरुषः) प्रत्ययलक्षणं यस्य तत् प्रत्ययलक्षणम्, प्रत्ययहेतुकमित्यर्थः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-प्रत्ययस्य लोपे सति प्रत्ययलक्षणम् (प्रत्ययहेतुकम्) कार्यं भवति।

उदा०-अग्निचित्। सोमसुत्। अधोक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रत्ययलोपे) किसी प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी (प्रत्ययलक्षणम्) प्रत्ययहेतुक कार्य हो जाता है।

*उदा०-**अग्निचित्।** अग्नि का चयन करनेवाला। **सोमसुत्।** सोम का सवन करनेवाला। **अधोक्।** उसने दुहा।*

*सिद्धि-(१) **अग्निचित्।** अग्नि+अम्+चि+क्विप्। अग्नि+चि+वि। अग्नि+चि+तुक्+वि। अग्निचि+त्+वि। अग्निचित्+०। अग्निचित्+सु। अग्निचित्+०। अग्निचित्। यहां **'अग्नौ चेः'** (३।२।९१) से अग्नि कर्म उपपद होने पर **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय, **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७१) से तुक् आगम, तत्पश्चात् **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (१।४।१४) से प्रत्यय लक्षण कार्य पदसंज्ञा हो जाती है।*

*(२) **सोमसुत्।** यहां **'सोमे सुञः'** (३।२।९०) से सोम कर्म उपपद **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य 'अग्निचित्' के समान है।*

*(३) **अधोक्।** दुह्+लङ्। अट्+दुह्+तिप्। अ+दुह्+शप्+ति। अ+दुह्+०+त्। अदोह्+तु। अदोह्+०। अदोध्। अधोध्। अधोग्। अधोक्। यहां **'दादेर्धातोर्घः'** (८।१।३२) से हकार को घकार, **'एकाचो बशो भष्०'** (८।२।२७) से दकार को भष् धकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से पदान्त में 'घ' को जश् गकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से 'ग्' को चर् ककार होता है। 'अधोक्' यहां 'हल्याड्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से तिप् प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (१।४।१४) से प्रत्यय लक्षण कार्य पदसंज्ञा होती है।*

प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधः–

(४) न लुमताऽङ्गस्य।६३। (६२)

प०वि०–न अव्ययपदम्। लुमता ३।१ अङ्गस्य ६।१।

लु अस्मिन्नस्तीति लुमान्, तेन-लुमता (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्, इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–लुमता प्रत्ययलोपेऽङ्गस्य प्रत्ययलक्षणं न।

अर्थः–लुमता शब्देन प्रत्ययलोपे सति अङ्गस्य प्रत्ययलक्षणं कार्यं न भवति।

उदा०–(लुक्) मृष्टः। (श्लुः) जुहुतः। (लुप्) गर्गाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुमता) लुमान्। लुक्, श्लु और लुप् के द्वारा (प्रत्ययलोपे) प्रत्यय का लोप हो जाने पर (अङ्गस्य) जो अङ्ग है उसको (प्रत्ययलक्षणम्) प्रत्ययहेतुक कार्य (न) नहीं होता है।

उदा०–(लुक्) मृष्टः। वे दोनों शुद्ध करते हैं। (श्लु) जुहुतः। वे दोनों होम करते हैं। (लुप्) पञ्चालाः। पंचाल जनपद के निवासी।

*सिद्धि-(१) **लुक्।** (मृष्टः) मृज्+लट्। मज्+तस्। मृज्+शप्+तस्। मृज्+अ+तस्। मृज्+०+तस्। मृष्+तस्। मृष्+टस्। मृष्टः। यहां **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से शप् का लुक् हो जाने पर, प्रत्यय लक्षण कार्य **'मृजेर्वृद्धिः'** (७।२।११४) से अङ्ग को वृद्धि नहीं होती है।*

*(२) **श्लु।** (जुहुतः) हु+लट्। हु+तस्। हु+शप्+तस्। हु+अ+तस्। हु+०+तस्। हु+हु+तस्। झु+हु+तस्। जु+हु+तस्। जुहुतः। यहां **'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके'** (जु०प०) धातु से **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से शप् का श्लु हो जाने पर, प्रत्यय लक्षण कार्य **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण नहीं होता है।*

*(३) **लुप्।** (पञ्चालाः) पञ्चाला+अण्+तस्। पञ्चाल+अ+अस्। पञ्चाल+०+अस्। पञ्चालाः। पञ्चालानां जनपदो निवासः पञ्चालाः। यहां **'तस्य निवासः'** (४।२।६८) से 'अण्' प्रत्यय और उसका **'जनपदे लुप्'** (४।१।८१) से लुप् हो जाने पर **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से प्राप्त प्रत्यय लक्षण कार्य आदि वृद्धि नहीं होती है।*

टि-संज्ञा–

(१) अचोऽन्त्यादि टि।६३।

प०वि०–अचः ६।१ अन्त्यादि १।१ टि १।१।

स०–अन्ते भवोऽन्त्यः। अन्त्य आदिर्यस्य तद्-अन्त्यादि (बहुव्रीहिः)

अर्थः-अचां मध्ये योऽन्त्योऽच्, तदादि शब्दरूपं टिसंज्ञकं भवति।

उदा०-अग्निचित्। सोमसुत्। पचेते। पचेथे।

आर्यभाषा-अर्थ-(अचाम्) अचों के मध्य में (अन्त्यादि) जो अन्त्य अच् है और वह अन्त्य अच् जिस हल्-समुदाय के आदि में है, उस शब्द की (टि) टि संज्ञा होती है।

*उदा०-**अग्निचित्।** अग्नि का चयन करनेवाला। **सोमसुत्।** सोम का सवन करनेवाला। **पचेते।** वे दोनों पकाते हैं। **पचेथे।** तुम दोनों पकाते हो।*

*सिद्धि-(१) **अग्निचित्।** यहां अन्तिम अच् 'इ' है और वह त् हल् के आदि में है, इसलिये यहां 'इत्' शब्द की 'टि' संज्ञा है। इसी प्रकार (२) 'सोमसुत्' में 'उत्' शब्द की 'टि' संज्ञा होती है।*

*(३) **पचेते।** पच्+लट्। पच्+शप्+आताम्। पच्+अ+आताम्। पच्+अ+इयताम्। पच्+अ+इ० ते। पचेते। यहां 'आताम्' प्रत्यय में 'आम्' भाग की 'टि' संज्ञा होती है और उसे 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'ए' आदेश हो जाता है। इसी प्रकार 'पचेथे' में 'आथाम्' प्रत्यय के 'आम्' भाग की टि संज्ञा है और उसे पूर्ववत् 'ए' आदेश होता है।*

विशेष-यहां अग्निचित् आदि उदाहरण टि संज्ञा को समझाने के लिए दिये गये हैं। उनमें टि संज्ञा का कोई कार्य नहीं है।

उपधा-संज्ञा-

अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा।६४।

प०वि०-अलः ५।१ अन्त्यात् ५।१ पूर्वः १।१ उपधा १।१

अन्ते भवम् अन्त्यम् तस्मात् अन्त्यात् (तद्धितवृत्तिः)।

अन्वयः-अन्त्याद् अलः पूर्व उपधा।

अर्थः-धात्वादिवर्णसमुदायेऽन्त्याद् अलः पूर्वो यो वर्णः स उपधा संज्ञको भवति भवति।

उदा०-(भिद्) भेत्ता। (छिद्) छेत्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-धातु आदि वर्णसमुदाय में (अन्त्यात्) अन्तिम (अलः) अल् से (पूर्वः) पहला जो वर्ण है, उसकी (उपधा) उपधा संज्ञा होती है। जैसे पच् और पठ् यहां अकार की उपधा संज्ञा है। भिद् और छिद् यहां इकार की उपधा संज्ञा है। बुध् और युध् यहां उकार की उपधा संज्ञा है। वृत् और वृध् यहां ऋकार की उपधा संज्ञा है। व्याकरणशास्त्र में उपधा के अनेक कार्य किये जाते हैं। जो यथास्थान उपलब्ध हो जायेंगे।

सप्तम्या-अर्थनिर्देशः--

(१) तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य।६५।

प०वि०-तस्मिन् ७।१ इति अव्ययपदम्, निर्दिष्टे ७।१ पूर्वस्य ६।१।

अर्थः-तस्मिन्निति सप्तम्या निर्दिष्टे व्यवधानरहितस्य पूर्वस्य कार्यं भवति।

उदा०-**इको यणचि**-दध्यत्र। मध्वत्र।

*आर्यभाषा-अर्थ-(तस्मिन् इति) सप्तमी विभक्ति के द्वारा (निर्दिष्टे) किसी का निर्देश करने पर वहां (पूर्वस्य) पूर्व को कार्य होता है, उत्तर को नहीं। जैसे-**'इको यणचि'** (६।१।७७) यहां 'अचि' का सप्तमी विभक्ति से निर्देश किया गया है। अतः यहां अच् के परे होने पर पूर्ववर्ण को कार्य किया जाता है। दधि+अत्र। दध्यत्र। मधु+अत्र। मध्वत्र। इत्यादि।*

*विशेष-इस व्याकरणशास्त्र में **'स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा'** (१।१।६८) से शब्द का अपना रूप ही ग्रहण किया जाता है। यहां 'तस्मिन्' शब्द का जो सप्तमी अर्थ है, वह ग्रहण किया जाता है, तस्मिन् शब्द नहीं।*

पञ्चम्या-अर्थनिर्देशः--

(१) तस्मादित्युत्तरस्य।६६।

प०वि०-तस्मात् ५।१ इति अव्ययपदम्, उत्तरस्य ६।१।

अर्थः-तस्मादिति पञ्चम्यानिर्दिष्टे व्यवधानरहितस्योत्तरस्य कार्यं भवति।

उदा०-तिङ्ङतिङः-ओदनं पचति।

*आर्यभाषा-अर्थ-(तस्मात् इति) पञ्चमी विभक्ति के द्वारा (निर्दिष्टे) किसी अर्थ का निर्देश करने पर वहां (उत्तरस्य) उत्तर को कार्य होता है, पूर्व को नहीं। जैसे **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) तिङ् १।१ अतिङः ५।१ अतिङन्त से उत्तर तिङन्त पद को अनुदात्त होता है। जैसे-ओदनं पचति। वह चावल पकाता है।*

विशेष-यहां भी पूर्ववत् 'तस्मात्' शब्द के साथ 'इति' शब्द का प्रयोग करने से 'तस्मात्' शब्द का जो पञ्चमी अर्थ है, वह ग्रहण किया जाता है, 'तस्मात्' शब्द नहीं।

शब्दग्रहणप्रकरणम्

स्वरूपग्रहणम्–

(१) स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा।६७।

प०वि०-स्वम् १।१ रूपम् १।१ शब्दस्य ६।१ अशब्दसंज्ञा १।१।

स०-शब्दस्य संज्ञा इति शब्दसंज्ञा, न शब्दसंज्ञा इति अशब्दसंज्ञा (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः-अस्मिन् व्याकरणशास्त्रे शब्दस्य स्वकीयं रूपं ग्राह्यं भवति, व्याकरणसंज्ञां वर्जयित्वा।

उदा०-**अग्नेर्ढक्।** आग्नेयम्। **दध्नष्ठक्**-दाधिकम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-इस व्याकरणशास्त्र में (शब्दस्य) शब्द का (स्वम्) अपना (रूपम्) रूप ग्रहण किया जाता है, उसका अर्थ नहीं (अशब्दसंज्ञा) शब्दशास्त्र की संज्ञा को छोड़कर। शब्दशास्त्र की जो वृद्धि आदि संज्ञायें हैं, वहां वृद्धि आदि शब्दों का ग्रहण नहीं किया जाता अपितु जिसकी ये वृद्धि आदि संज्ञायें की हैं, उनका ही ग्रहण किया जाता है। __'अग्नेर्ढक्'__ (४।२।३३) आग्नेयम् अष्टाकपालं निर्वपेत्। यहां अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः अग्नि शब्द का ही यहां ग्रहण किया जाता है, उसके अर्थ अङ्गार का नहीं और न ही उसके पर्यायवाची ज्वलन, पावक और धूमकेतु आदि का ग्रहण होता है। __आग्नेयम्।__ अग्नि देवतावाली हवि। __दाधिकम्।__ दही में संस्कृत लवण आदि।

__सिद्धि-(अग्नेयम्।__ अग्नि+ढक्। अग्नि+एय्। आग्न्+एय्। आग्न्+एय। आग्नेय+सु। आग्नेयम्। यहां __'अग्नेर्ढक्'__ (४।२।३३) से ढक् प्रत्यय, __'आयनेय०'__ (७।१।२) से 'ढ' के स्थान में 'एय्' आदेश, __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से इकार का लोप और __'किति च'__ (७।२।११८) से आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही __दाधिकम्।__

(२) यहां अग्नि शब्द से 'ढक्' प्रत्यय कहा गया है वह उसके __अर्थ__ अंगार से तथा उसके पर्यायवाची ज्वलन आदि से नहीं होता है।

सवर्णग्रहणम्-

(२) अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः।६८।

प०वि०-अण्-उदित् १।१ सवर्णस्य ६।१ च अव्ययम्, अप्रत्ययः १।१।

स०-अण् च उदित् च एतयोः समाहारः अणुदित् (समाहारद्वन्द्वः) न प्रत्यय इति अप्रत्ययः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-स्वं रूपम्, इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अणुदित् सवर्णस्य स्वं रूपं चाप्रत्ययः ।

अर्थः-अण् उदिच्च वर्णः सवर्णस्य स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति, प्रत्ययं वर्जयित्वा ।

उदा०-(अण्) **आद्गुणः**-खट्वेन्द्रः । **'क्यचि च'**-मालीयति । **यस्येति च**-मालीयः । (उदित्) **लशक्वतद्धिते । चुटू ।**

आर्यभाषा-अर्थ-*(अण्-उदित्) अण् और उदित् (सवर्णस्य) सवर्णों का और (स्वम्) अपने (रूपम्) रूप का (च) भी ग्राहक होता है (अप्रत्ययः) प्रत्यय को छोड़कर।*

उदा०-(अण्) 'आद्गुणः' खट्वेन्द्रः । खाट का राजा। 'क्यचि च' मालीयति। किसी वस्तु को माला के समान धारण करता है। 'यस्येति च'-मालीयः । माला में रहनेवाला पुष्प आदि। इत्यादि स्थानों पर अकार आदि को कार्य कहने पर वहां ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और निरनुनासिक तथा सानुनासिक भेद से युक्त १८ अठारह प्रकार के अकार आदि का ग्रहण किया जाता है। अकार के १८ भेद 'वृद्धिरादैच्' (१।१।१) सूत्र के प्रवचन में दिखा दिये हैं, वहां देख लेवें। (उदित्) 'लशक्वतद्धिते' (१।३।८) यहां 'कु' से कवर्ग और 'चुटू'(१।३।७) यहां चु से चवर्ग और टु से टवर्ग का ग्रहण किया जाता है।

विशेष-*प्रत्याहार सूत्रों में दो (अण्) प्रत्याहार बनाये गये हैं, एक* ***'अइउण्'*** *(६।१।८७) में तथा दूसरा 'लण्' सूत्र में। 'लण्' सूत्र में जो अण् प्रत्याहार बनाया गया है उसका प्रयोग केवल इसी सूत्र में किया गया है। अन्यत्र सर्वत्र 'अ इ उ ण्' के अण् प्रत्याहार का ही प्रयोग किया गया है।*

सिद्धि-(१) खट्वेन्द्रः । *खट्वा+इन्द्रः । खट्वेन्द्रः । यहां* ***'आद्गुण'*** *से 'अ' से परे 'अच्' को कहा गुणरूप एकादेश सवर्ण ग्रहण से 'आ' से परे भी अच् को गुणरूप एकादेश हो जाता है।*

(२) मालीयति । *माला+क्यच् । माली+य। मालीय+लट् । मालीय+शप्+तिप् । मालीय+अ+ति । मालीयति । यहां* ***'क्यचि च'*** *(७।४।३३) से 'अ' को कहा ईकार-आदेश सवर्ण ग्रहण से 'आ' के स्थान में भी हो जाता है।*

(३) मालीयः । *माला+छ। माल्+ईय। मालीय+सु। मालीयः। यहां* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से 'अ' का लोप होता है किन्तु सवर्ण ग्रहण से 'आ' का भी लोप हो जाता है।*

तत्कालग्रहणम्-

(३) तपरस्तत्कालस्य ।६६ ।

प०वि०-तपरः १।१ तत्कालस्य ६।१ ।

स०-तः परो यस्मात् सः-तपरः (बहुव्रीहिः)। तादपि परस्तपरः

(पञ्चमीतत्पुरुषः)। तस्य कालस्तत्कालः, तत्काल इव कालो यस्य सः-तत्कालः, तस्य तत्कालस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'स्वं रूपम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तपरस्तत्कालस्य स्वं रूपम्।

अर्थः-तपरो वर्णस्तत्कालस्य स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति।

उदा०-**'अतो भिस ऐस्'**-वृक्षैः। प्लक्षैः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तपरः) तपर वर्ण (तत्कालस्य) अपने तुल्यकालवाले वर्ण का (सवर्णस्य) और गुणान्तर से युक्त सवर्ण का तथा (स्वम्) अपने(रूपम्) रूप का ग्राहक होता है।

*उदा०- **'अतो भिस ऐस्'** (७।१।९) वृक्षैः। वृक्षों के द्वारा। प्लक्षैः। प्लक्षों के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) वृक्षैः। वृक्ष+भिस्। वृक्ष+ऐस्। वृक्षैस्। वृक्षैः। यहां **'अतो भिस ऐस्'** (७।१।९) में 'अ' को तपर करके निर्देश किया गया है कि उससे उत्तर 'भिस्' प्रत्यय को 'ऐस्' आदेश हो जाये। अतः उसके तुल्य कालवाले 'अ' से उत्तर ही 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है, उससे भिन्न कालवाले 'आ' से उत्तर नहीं, जैसे रमाभिः।*

*विशेष-तपर की व्याख्या **'वृद्धिरादैच्'** (१।१।१) के प्रवचन में लिख दी है, वहां देख लेवें।*

अन्त्येन सहादिग्रहणम्-

(४) आदिरन्त्येन सहेता।७०।

प०वि०-आदिः १।१ अन्त्येन ३।१ सह अव्ययम्, इता ३।१।

अन्ते भवम् अन्त्यम् तेन-अन्त्येन (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-स्वं रूपम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आदिरन्त्येन इता सह स्वं रूपम्।

अर्थः-आदिर्वर्णोऽन्त्येन इता वर्णेन सह, तन्मध्ये पतितानां स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति।

उदा०-अण्। अक्। अच्। हल्। सुप्। तिङ्।

आर्यभाषा-अर्थ-(आदिः) आदिमवर्ण (अन्त्येन) अन्तिम (इता) इत् संज्ञावाले वर्ण के (सह) साथ ग्रहण किया जाता हुआ उसके मध्य में पतित वर्णों का तथा (स्वम्) अपने (रूपम्) रूप का भी ग्राहक होता है।

उदा०-अण्। अक्। अच्। हल्। सुप्। तिङ्। इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **अण्**। यह 'अ इ उ ण्' सूत्र में प्रत्याहार है 'अण्' कहने से अ, इ, उ, वर्णों का ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार अक्, अच् और हल् को समझ लेवें।*

(२) सुप्। *सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप्। यहां सु से लेकर प् तक एक 'सुप्' प्रत्याहार बनाया गया है। सु अन्तिम इत् प् वर्ण के साथ उसके मध्य में पतित प्रत्ययों का और अपने रूप का भी ग्राहक होता है। अतः 'सुप्' कहने से सु आदि २१ इक्कीस प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है।*

(३) तिङ्। *तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप् वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्। यहां 'ति' से लेकर 'ङ्' तक एक 'तिङ्' प्रत्याहार बनाया गया है। ति अन्तिम वर्ण ङ् के साथ उसके मध्य में पतित प्रत्ययों का और अपने रूप का भी ग्राहक होता है। अतः 'तिङ्' कहने से तिप् आदि १८ अठारह प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है।*

तदन्तग्रहणम्—

(५) येन विधिस्तदन्तस्य।७१।

प०वि०–येन ३।१ विधिः १।१ तदन्तस्य ६।१।

स०–सोऽन्ते यस्य सः–तदन्तः, तस्य–तदन्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–स्वं रूपम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–येन विधिः स तदन्तस्य स्वं रूपम्।

अर्थः–येन विशेषणेन विधिर्विधीयते स तदन्तस्य (आत्मान्तस्य समुदायस्य) स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति।

उदा०–एरच्। जयः। चयः। अयः। **ओरावश्यके**–अवश्यलाव्यम्। अवश्यपाव्यम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(येन) जिस विशेषण से (विधिः) कोई विधि की जाती है वह (तदन्तस्य) आत्मान्त समुदाय की और (स्वम्) अपने (रूपम्) रूप की भी ग्राहक होती है।

उदा०–एरच्। *जयः। जीतना। चयः। चुनना। अयः। गति करना।* ***ओरावश्यके।*** *अवश्यलाव्यम्। अवश्य काटने योग्य। अवश्यपाव्यम्। अवश्य पवित्र करने योग्य।*

सिद्धि–(१) जयः। *जि+अच्। जे+अ+। ज् अय्+अ। जय+सु। जयः। यहां जि जये (भ्वा०प०) धातु से 'एरच्' (३।३।५६) इकारान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है। यहां 'इ' कहने से इकारान्त का ग्रहण किया जाता है। चिञ् चयने (स्वा०उ०) धातु से 'चयः'।*

(२) अयः। *इ+अच्। ए+अ। अय्+अ। अय+सु। अयः। यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'एरच्' (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय होता है। यह धातु 'इ' स्वरूप है अतः स्वरूप ग्रहण से 'इ' धातु से भी अच् प्रत्यय हो जाता है।*

(३) अवश्यलाव्यम्। अवश्य+लू+ण्यत्। अवश्य+लौ+य। अवश्य+लाव्+य। अवश्यलाव्य+सु। अवश्यलाव्यम्। यहां 'ओरावश्यके' (३।१।१२५) से आवश्यकता द्योतित होने पर 'लूञ् लवने' (क्र्या०उ०) धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान किया है। यहां 'ओ' कहने से ओकारान्त का ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार 'पूञ् पवने' (क्रयादि०) धातु से अवश्यपाव्यम्।

वृद्धसंज्ञाप्रकरणम्

वृद्धसंज्ञा–

(१) वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्।७२।

प०वि०–वृद्धिः १।१ यस्य ६।१ अचाम् ६।३ आदिः १।१ तद् १।१ वृद्धम् १।१।

अन्वयः–यस्याचामादिर्वृद्धिस्तद् वृद्धम्।

अर्थः–यस्य वर्णसमुदायस्याचां मध्ये आदिमोऽच् वृद्धिसंज्ञको भवति, स वर्णसमुदायो वृद्धसंज्ञको **भवति**।

उदा०–वृद्धाच्छः–शालीयः। मालीयः।

आर्यभाषा–अर्थ–(यस्य) जिस वर्णसमुदाय के (अचाम्) अचों में (आदिः) आदिम अच् (वृद्धिः) वृद्धि संज्ञावाला होता है (तत्) उस वर्ण समुदाय की (वृद्धम्) वृद्ध संज्ञा होती है।

उदा०–वृद्धाच्छ–शालीयः। मालीयः।

सिद्धि–(१) शालीयः। शाला+छ। शाला+ईय। शाल्+ईय। शालीय+सु। शालीयः। यहां शाला शब्द का आदिम अच् 'आ' वृद्धि संज्ञावाला है, अतः इसकी वृद्ध संज्ञा होने से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से 'छ' को 'ईय' आदेश हो जाता है। इसी प्रकार माला शब्द से–मालीयः।

त्यदादयः–

(२) त्यदादीनि च।७३।

प०प०–त्यद्-आदीनि १।३ च अव्ययम्।

स०–त्यद् आदिर्येषां तानीमानि त्यदादीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–'वृद्धम्' इत्युनवर्तते।

अन्वयः–त्यदादीनि च वृद्धम्।

अर्थः–त्यदादीनि **शब्दरू**पाणि च वृद्धसंज्ञकानि भवन्ति।

उदा०–त्यद्–**त्यदीयम्**। तद्–तदीयम्। एतद्–एतदीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(त्यद्-आदीनि) त्यद् आदि शब्दों की (च) भी (वृद्धम्) वृद्ध संज्ञा होती है। त्यदीयम्। तदीयम्। एतदीयम्।

सिद्धि-(१) त्यदीयम्। त्यद्+छ। त्यद्+ईय् अ। त्यदीय+सु। त्यदीयम्। यहां 'त्यद्' शब्द की वृद्ध संज्ञा होने से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है और 'छ' को पूर्ववत् 'ईय्' आदेश हो जाता है। इसी प्रकार 'तद्' शब्द से 'तदीयम्' और 'एतद्' शब्द से 'एतदीयम्' समझें।

***विशेष**-त्यद् आदि शब्दों का सर्वादिगण में पाठ किया गया है। त्यद् आदि शब्द ये हैं-त्यद्। तद्। यद्। एतद्। इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम्।*

प्राग्देशीय एङ्-

(३) एङ् प्राचां देशे।७४।

प०वि०-एङ् १।१ प्राचाम् ६।३ देशे ७।१।

अनु०-'यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यस्याचामादिरेङ् प्राचां देशे वृद्धम्।

अर्थः-यस्य वर्णसमुदायस्यादिमोऽच् एङ् भवति, स वर्णसमुदायः प्राचां देशेऽभिधेये वृद्धसंज्ञको भवति।

उदा०-एणीपचनीयः। भोजकटीयः। गोनर्दीयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यस्य) जिस वर्णसमुदाय के (अचाम्) अचों में (आदिः) आदिम अच् (एङ्) एङ् हो, उसकी (प्राचाम्) पूर्व दिशा के (देशे) देश के कथन में (वृद्धम्) वृद्ध संज्ञा होती है।

उदा०-एणीपचनीयः। भोजकटीयः। गोनर्दीयः।

सिद्धि-एणीपचनीयः। एणीपचन+छ। एणीपचन+इय् अ। एणीपचनीय+सु। एणीपचनीयः। यहां एणीपचन शब्द की वृद्ध संज्ञा होने से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है और उसको पूर्ववत् 'ईय्' आदेश हो जाता है। इसी प्रकार 'भोजकट' शब्द से 'भोजकटीयः' और गोनर्द शब्द से 'गोनर्दीयः' समझें।

प्राची और उदीची का विभाजन-

प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदके यथा।
विदुषां शब्दसिद्ध्यर्थं सा नः पातु शरावती॥।

अर्थ-जैसे हंस नीर और क्षीर को पृथक्-पृथक् कर देता है, वैसे वैयाकरण विद्वानों की शब्द-सिद्धि के लिये पूर्व और उत्तर देश का शरावती (साबरमती) नदी विभाग कर देती है।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

ङित्-प्रकरणम्

अञ्णित्प्रत्ययाः—

(१) गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्।१।

प०वि–गाङ्–कुटादिभ्यः ५।३ अञ्णित् १।१ ङित् १।१।

स०–कुट आदिर्येषां ते–कुटादयः, गाङ् च कुटादयश्च ते–गाङ्–कुटादयः, तेभ्यः–गाङ्कुटादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ञश्च णश्च तौ–ञ्णौ। इच्च इच्च तौ–इतौ। ञ्णौ इतौ यस्य सः–ञ्णित्। न ञ्णित् इति अञ्णित् (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः) ङ इत् यस्य सः–ङित् (बहुव्रीहिः)।

अर्थः–गाङ्–आदेशात् कुटादिभ्यश्च धातुभ्यः परे ञित्–णिद्भिन्नाः प्रत्यया ङिद्वद् भवन्ति।

उदा०–**(गाङ्–आदेशात्)** अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। **(कुटादिभ्यः)** कुटिता। कुटितुम्। कुटितव्यम्। उत्पुटिता। उत्पुटितुम्। उत्पुटितव्यम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(गाङ्–कुटादिभ्यः) गाङ् आदेश और कुट आदि धातुओं से परे (अञ्णित्) ञित् और णित् से भिन्न प्रत्यय (ङित्) ङिद्वत् होते हैं।

उदा०–(गाङ्) अध्यगीष्ट। उसने पढ़ा। अध्यगीषाताम्। उन दोनों ने पढ़ा। अध्यगीषत। उन सबने पढ़ा। (कुटादि) कुटिता। कुटिलता करनेवाला। कुटितुम्। कुटिलता करने के लिये। कुटितव्यम्। कुटिलता करनी चाहिये। उत्पुटिता। जोड़नेवाला। उत्पुटितुम्। जोड़ने के लिये। उत्पुटितव्यम्। जोड़ना चाहिये।

*सिद्धि–**(१) अध्यगीष्ट।** इङ्+लुङ्। इ+ल्। गाङ्+च्लि+ल्। अ+गा+सिच्+त। अ+गा स्+त्। अ+ग् ई+स्+त। अ+गी+ष्+ट। अगीष्ट। अधि+अगीष्ट। अध्यगीष्ट।*

*यहां **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' **प्रत्यय,** **'विभाषा लुङ्लृङोः'** (अ० २।४।५०) से 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश **'घुमास्थागापाजहातिसां हलि'** (६।४।६६) से ईत्व करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४)*

*से अङ्ग को गुण प्राप्त होता है, किन्तु इस सूत्र से 'सिच्' प्रत्यय के 'ङित्' हो जाने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

*(२) **कुटिता।** कुट्+तृच्। कुट्+इट्+तृ। कुट्+इ+तृ। कुटितृ+सु। कुटित् अनङ्+स्। कुटितन्+स्। कुटितान्+स्। कुटितान्+०। कुटिता।*

*यहां '**कुट कौटिल्ये**' (तु०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय, '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से उसे 'इट्' का आगम होने पर '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।२।८६) से अङ्ग को लघूपध गुण प्राप्त होता है। इस सूत्र से 'तृच्' प्रत्यय के 'ङित्' हो जाने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। इसी प्रकार से कुट्+तुमुन्। कुटितुम्। कुट+तव्यत्। कुटितव्यम्। उत् उपसर्गपूर्वक पुट धातु से उत्पुटिता आदि शब्द सिद्ध होते हैं।*

*(३) **कुटादिः।** कुट कौटिल्ये। पुट संश्लेषणे। कुच सङ्कोचने। गुज शब्दे। गुड रक्षायाम्। डिप क्षेपे। छुर छेदने। स्फुट विकसने। मुट आक्षेप-प्रमर्दनयोः। त्रुट छेदने। तुट कलहकर्मणि। चुट, छुट छेदने। जुड बन्धने। कड मदे। लुट संश्लेषणे। लुठ इत्येके। कृड घनत्वे। कुड बाल्ये। पुड उत्सर्गे। घुट प्रतिघाते। तुड तोडने। थुड, स्थुड संवरणे। खुड, छुड इत्येके। स्फुर स्फुरणे। स्फर इत्येके। स्फुल सञ्चलने। फुल इत्येके। स्फुड, चुड, ब्रड संवरणे। क्रुड, भृड निमज्जने। गुरी उद्यमने। णू स्तवने। धू विधूनने। गु पुरीषोत्सर्गे। ध्रु गतिस्थैर्ययोः। ध्रुव इत्येके। कूङ् शब्दे। कुङ् शब्द इत्येके। (इति कुटादिगणः)।*

***विशेष**-यहां 'गाङ्' से '**विभाषा लुङ्लृङोः**' (अ० २।४।५०) से 'इङ्' के स्थान में विहित 'गाङ्' आदेश का ग्रहण किया जाता है, '**गाङ् गतौ**' (भ्वा०आ०) धातु का नहीं, क्योंकि 'गाङ्' आदेश को 'ङित्' करने का अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।*

इडादिप्रत्ययः–

(२) विज इट्।२।

प०वि०–विजः ५।१ इट् १।१।

अनु०–'ङित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–विज इट् ङित्।

अर्थः–विजो धातोः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वद् भवति।

उदा०–(विज) उद्विजिता। उद्विजितुम्। उद्विजितव्यम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(विजः) विज धातु से परे (इट्) इडादि प्रत्यय (ङित्) ङिद्वत् होता है।*

उदा०-उद्विजिता। डरनेवाला। उद्विजितुम्। डरने के लिये। उद्विजितव्यम्। डरना चाहिये।

सिद्धि-(१) उद्विजिता। विज्+तृच्। विज्+इट्+तृ। विज्+इ+तृ। विजितृ+सु। विजित् अनङ्+स्। विजितन्+स्। विजितान्+स्। विजितान्+०। विजिता। उत्+विजिता। उद्विजिता।

*यहां उत् उपसर्गपूर्वक **'ओविजी भय-सञ्चलनयोः'** (तु०आ०) धातु से **'ण्वुल्-तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय और उसको **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' का आगम करने पर **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) अङ्ग को लघूपध गुण प्राप्त होता है। इस सूत्र से इडादि 'तृच्' प्रत्यय के 'ङित्' हो जाने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

ङिद्विकल्पः-

(३) विभाषोर्णोः।३।

प०वि०-विभाषा १।१ ऊर्णोः ५।१।

अनु०-'ङित्, इट्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्णोरिड् विभाषा ङित्।

अर्थः-ऊर्णो धातोः पर इडादिप्रत्ययो विकल्पेन ङिद्वद् भवति।

उदा०-(ऊर्णु) प्रोर्णुविता। प्रोर्णविता।

आर्यभाषा-अर्थ- *(ऊर्णोः) ऊर्णु धातु से परे (इट्) इडादिप्रत्यय (विभाषा) विकल्प से (ङित्) ङिद्वत् होता है।*

उदा०-(ऊर्णु) प्रोर्णुविता। प्रोर्णविता। ढकनेवाला।

*सिद्धि-(१) **प्रोर्णुविता।** ऊर्णु+तृच्। ऊर्णु+इट्+तृ। ऊर्णु+इ+तृ। ऊर्ण् उवङ्+इ+तृ। ऊर्ण् उव्+इ+तृ। ऊर्णुवितृ+सु। ऊर्णुविता। प्र+ऊर्णुविता। प्रोर्णुविता।*

*यहां **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय, **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से उसे 'इट्' का आगम होने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण प्राप्त होता है, किन्तु इस सूत्र से इडादि 'तृच्' प्रत्यय के 'ङित्' हो जाने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। तत्पश्चात् यथाप्राप्त **'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ'** (६।४।७७) से अङ्ग को 'उवङ्' आदेश होता है।*

*(२) **प्रोर्णविता।** ऊर्णु+तृच्। ऊर्णु+इट्+तृ। ऊर्णु+इ+तृ। ऊर्णो+इ+तृ। ऊर्ण् अव्+इ+तृ। ऊर्णवितृ+सु। ऊर्णविता। प्र+ऊर्णविता। प्रोर्णविता।*

*यहां पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय और उसको 'इट्' का आगम करने पर विभाषा वचन से इडादि 'तृच्' प्रत्यय के 'ङित्' न होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण हो जाता है और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से 'अव्' आदेश होता है।*

अपित् सार्वधातुकम्–

(४) सार्वधातुकमपित्।४।

प०वि०–सार्वधातुकम् १।१ अपित् १।१।

स०–प इत् यस्य सः–पित्। न पित् इति अपित् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'ङित्' इत्यनुवर्त्तते।

अन्वयः–अपित् सार्वधातुकं ङित्।

अर्थः–पिद्भिन्नः सार्वधातुकप्रत्ययो ङिद्वद्भवति।

उदा०–कुरुतः। कुर्वन्ति। चिनुतः। चिन्वन्ति।

आर्यभाषा–अर्थ–(अपित्) पित् से भिन्न (सार्वधातुकम्) सार्वधातुक प्रत्यय (ङित्) ङिद्वद् होते हैं।

उदा०–कुरुतः। वे दोनों करते हैं। कुर्वन्ति वे सब करते हैं। चिनुतः। वे दोनों चुनते हैं। चिन्वन्ति। वे सब चुनते हैं।

सिद्धि–(१) कुरुतः। कृ+लट्। कृ+तस्। क् उ र्+उ+तस्। कुरुतः।

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश, **'तनादिकृञ्भ्य० उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' अङ्ग को गुण, **'अत उत् सर्वधातुके'** (६।४।११०) से अङ्ग के 'अ' को उकार आदेश होता है।*

*'तस्' प्रत्यय सार्वधातुक है, उसके परे होने पर भी **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग 'उ' को गुण प्राप्त होता है, किन्तु इस सूत्र से अपित् 'तस्' प्रत्यय के ङित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

*विशेष– **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) से तिङ् और शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा की गई है। इस सूत्र से उन सार्वधातुक प्रत्ययों में पित् को छोड़कर शेष प्रत्यय 'ङित्' हो जाते हैं। तिङ् प्रत्यय निम्नलिखित हैं–तिप्, तस्, झि, सिप्, थस् थ, मिप्, वस् मस्, त, आताम् झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्।*

कित्-प्रकरणम्

अपित् लिट् प्रत्ययः–

(१) असंयोगाल्लिट् कित्।५।

प०वि०–असंयोगात् ५।१। लिट् १।१ कित् १।१।

स०-न संयोग इति-असंयोगः, तस्मात्-असंयोगात् (नञ्तत्पुरुषः) क इत् यस्य सः-कित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'अपित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असंयोगाद् अपित् लिट् कित्।

अर्थः-असंयोगान्ताद् धातोः परः पिद्भिन्नो लिट्प्रत्ययः किद्वद् भवति।

उदा०-(भिद्) बिभिदतुः। बिभिदुः। (छिद्) चिच्छिदतुः। चिच्छिदुः। (यज्) ईजतुः। ईजुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(असंयोगात्) संयोग जिसके अन्त में न हो, उस धातु से परे (अपित्) पित् से भिन्न (लिट्) लिट् प्रत्यय (कित्) किदवत् होता है।

*उदा०-(भिद्) **बिभिदतुः**। उन दोनों ने भेदन किया। **बिभिदुः**। उन सबने भेदन किया। (छिद्) **चिच्छिदतुः**। उन दोनों ने छेदन किया। **चिच्छिदुः**। उन सबने छेदन किया। (यज्) ईजतुः। उन दोनों यज्ञ किया। ईजुः। उन सबने यज्ञ किया।*

*सिद्धि-(१) **बिभिदतुः**। भिद्+लिट्। भिद्+तस्। भिद्+अतुस्। भिद्+भिद्+अतुस्। बि+भिद्+अतुस्। बिभिदतुः।*

*यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश, **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश, **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्विर्वचन, **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५८) से अभ्यास के भकार को जश् बकार होता है।*

*यहां लिट् प्रत्यय के कित् होने से **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त अङ्ग को लघूपध गुण नहीं होता है। इसी प्रकार से **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०प०) धातु से 'चिच्छिदतुः' आदि शब्द सिद्ध होते हैं।*

*(२) ईजतुः। यज्+लिट्। यज्+तस्। यज्+अतुस्। इ अ ज्+**अतुस्**। इज्+इज्+अतुस्। इ+इज्+अतुस्। ईजतुः।*

*यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' **प्रत्यय**। यहां लिट् प्रत्यय के कित् होने से **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'यज्' **धातु** को सम्प्रसारण होता है। **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०८) से 'अ' को पूर्वरूप तथा **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।१०१) से दीर्घ ई हो जाता है।*

लिट्प्रत्ययः–

(२) इन्धिभवतिभ्यां च।६।

प०वि०–इन्धि-भवतिभ्याम् ५।२ च अव्ययम्। इन्धिश्च भवतिश्च तौ–इन्धिभवती, ताभ्याम्–इन्धिभवतिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–'लिट् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इन्धिभवतिभ्यां च लिट् कित्।

अर्थः–इन्धिभवतिभ्यामपि धातुभ्यां परो लिट् प्रत्ययः किद्वद् भवति।

उदा०–**(इन्धिः)** पुत्र ईधे अथर्वणः। समीधे दस्युहन्ततमम्। **(भवतिः)** बभूव।

*आर्यभाषा-**अर्थ**–(इन्धि-भवतिभ्याम्) इन्धि और भवति धातु से परे (च) भी (लिट्) लिट् प्रत्यय **(कित्)** किद्वत् होता है।*

*उदा०–(इन्धि) **पुत्र** ईधे **अथर्वणः**। अथर्व का पुत्र प्रकाशित होता है। (ऋ० ६।१६।१४)। समीधे दस्युहन्ततम्। मैं दस्यु के घातक को प्रकाशित करता हूं। (ऋ० ६।१६।१५)। (भवति) बभूव। वह हुआ।*

***सिद्धि**–(१) **ईधे**। इन्ध्+लिट्। इन्ध्+त। इन्ध्+एश्। इन्ध्+इन्ध्+ए। इ+इन्ध्+ए। इ+इध्+ए। ईधे।*

*यहां **'ञिइन्धी दीप्तौ'** (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय, **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'एश्' आदेश, **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'इन्ध्' धातु को द्विर्वचन, **'हलादिः शेषः'** (७।४।८२) से अभ्यास कार्य होता है।*

*यहां 'लिट्' प्रत्यय 'कित्' होने से **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से उपधा-नकार का लोप होता है। तत्पश्चात् **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।१०१) से दीर्घत्व (ई) होता है। सम्+ईधे। समीधे।*

(२) बभूव। भू+लिट्। भू+णल्। भू+अ। भू+भू+अ। भ् अ+भू+अ। ब+भू+वुक्+अ। ब+भू+व्+अ। बभूव।

*यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय तथा भू धातु को पूर्ववत् द्विर्वचन, **'भवतेरः'** (७।४।७३) से धातु के अभ्यास ऊकार को अकार आदेश होता है।*

*यहां लिट् प्रत्यय कित् होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है। तत्पश्चात् **'भुवो वुक्***

लुङ्लिटोः' (६।४।८८) से 'भू' धातु को 'वुक्' का आगम तथा 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५८) से 'भू' धातु के अभ्यास भकार को जश् बकार होता है।

विशेष-पाणिनि मुनि अपने शब्दशास्त्र में 'इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे' इस गुरुवचन के अनुसार धातु का निर्देश 'इक्' प्रत्यय और 'श्तिप्' प्रत्यय लगाकर करते हैं। जैसे कि यहां इन्धि धातु का 'इक्' प्रत्यय और भू धातु का 'श्तिप्' प्रत्यय लगाकर निर्देश किया है। अन्यत्र भी ऐसा ही समझें।

क्त्वाप्रत्ययः-

(३) मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा।७।

प०वि०-मृड-मृद-गुध-कुष-क्लिश-वद-वसः ५।१ क्त्वा १।१।

स०-मृडश्च मृदश्च गुधश्च कुषश्च क्लिशश्च वदश्च वस् च एतेषां समाहारः-मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवस्, तस्मात्-मृडमृदगुधकुष-क्लिशवदवसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मृड० वसः क्त्वा कित्।

अर्थः-मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसिभ्यो धातुभ्यः क्त्वा प्रत्ययः किद्वद् भवति।

उदा०-(मृड) मृडित्वा। (मृद) मृदित्वा। (गुध) गुधित्वा। (कुष) कुषित्वा। (क्लिश) क्लिशित्वा। (वद) उदित्वा। (वस) उषित्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद और वस धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (कित्) कित् होता है।

उदा०-(मृड) मृडित्वा। सुखी करके। (मृद) मृदित्वा। मसलकर। (गुध) गुधित्वा। रुष्ट होकर। (कुष) कुषित्वा। निष्कर्ष निकालकर। (क्लिश) क्लिशित्वा। क्लेश पाकर। (वद) उदित्वा। बोलकर। (वस) उषित्वा। रहकर।

सिद्धि-(१) मृडित्वा। मृड्+क्त्वा। मृड्+इट्+त्वा। मृड्+इ+त्वा। मृडित्वा+सु। मृडित्वा।

यहां 'मृड सुखने' (तु०प०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' का आगम होता है।

यहां 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से अङ्ग को प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।

*इसी प्रकार **'मृद क्षोदे'** (क्र्या०प०) **मुध रोधे** (क्र्या०प०) **कुष निष्कर्षे** (क्र्या०प०) **क्लिशू विबाधने** (क्र्या०प०) धातु से 'मृदित्वा' आदि शब्दों की सिद्धि करें।*

*(२) **उदित्वा।** वद्+क्त्वा। वद्+इट्+त्वा। वद्+इ+त्वा। उ अ द्+इ+त्वा। उद्+इ+त्वा। उदित्वा+सु। उदित्वा।*

*यहां **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम होने पर, 'क्त्वा' प्रत्यय के 'कित्' होने से **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'वद्' धातु को सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०८) से 'अ' को पूर्वरूप 'उ' हो जाता है।*

*यहां **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से अङ्ग को लघूपध गुण प्राप्त होता है। 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

*(३) **उषित्वा।** वस्+क्त्वा। वस्+इट्+त्वा। वस्+इट्+त्वा। वस्+इ+त्वा। उ अ स्+इ+त्वा। उस्+इ+त्वा। उष्+इ+त्वा। उषित्वा+सु। उषित्वा।*

*यहां **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय, इट् आगम और सम्प्रसारण कार्य होता है।*

*यहां पूर्ववत् लघूपध गुण प्राप्त होता है। 'क्त्वा' प्रत्यय के 'कित्' होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। यहां **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से 'वस्' धातु के सकार को मूर्धन्य षकार होता है।*

***विशेष-प्रश्न-**क्त्वा प्रत्यय स्वयं कित् है, फिर उसे यहां कित् क्यों किया गया है?*

*उत्तर-आगे **'न क्त्वा सेट्'** (अ० १।२।१८) से सेट् (इट् सहित) 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् होने का निषेध किया गया है। अतः 'मृड' आदि धातुओं से 'सेट्' क्त्वा प्रत्यय को फिर कित् विधान किया गया है।*

क्त्वासनौ-

(४) रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः सँश्च।८।

प०वि०-रुद-विद-मुष-ग्रहि-स्वपि-प्रच्छः ५।१ सन् १।१। च अव्ययम्।

स०-रुदश्च विदश्च मुषश्च ग्रहिश्च स्वपिश्च प्रच्छ् च एतेषां समाहारः-रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छ्, तस्मात्-रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'क्त्वा कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-रुद० प्रच्छः क्त्वा सँश्च कित्।

अर्थः-रुदविदमुषग्रहिस्वपि प्रच्छिभ्यो धातुभ्यः क्त्वा-सनौ प्रत्ययौ किद्वद् भवतः।

उदा०-(रुद) क्त्वा-रुदित्वा। सन्-रुरुदिषति। (विद) क्त्वा-विदित्वा। सन्-विविदिशषति। (मुष) क्त्वा-मुषित्वा। सन्-मुमुषिषति। (ग्रहि) क्त्वा गृहीत्वा। सन्-जिघृक्षति। (प्रच्छ) क्त्वा-पृष्ट्वा। सन्-पिपृच्छिषति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(रुद०) रुद, विद, मुष, ग्रहि, स्वपि और प्रच्छ धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (सन् च) और सन् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होता है।*

उदा०-(रुद) क्त्वा। रुदित्वा। रोकर। सन्। रुरुदिषति। रोना चाहता है। (विद) क्त्वा। विदित्वा। जानकर। सन्-विविदिषति। जानना चाहता है। (मुष) क्त्वा। मुषित्वा। चोरी करके। सन्-मुमुषिषति। चोरी करना चाहता है। (ग्रहि) क्त्वा-गृहीत्वा। लेकर। सन्-जिघृक्षति। लेना चाहता है। (प्रच्छ) क्त्वा। पृष्ट्वा। पूछकर। सन्-पिपृच्छिषति। पूछना चाहता है।

सिद्धि-*(१)* ***रुदित्वा।*** *रुद्+क्त्वा। रुद्+इट्+त्वा। रुद्+इ+त्वा। रुदित्वा+सु। रुदित्वा।*

यहां ***'रुदिर् अश्रुविमोचने'*** *(अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम होने पर* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से 'रुद्' धातु को लघूपध गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् होने से* ***'क्ङिति च'*** *(१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। इसी प्रकार से* ***'विद ज्ञाने'*** *(अदा०प०)* ***'मुष स्तेये'*** *(क्र्या०प०) धातु से विदित्वा और मुषित्वा शब्द सिद्ध करें।*

(२) ***गृहीत्वा।*** *ग्रह्+क्त्वा। ग्रह+इट्+त्वा। ग्रह+इ+त्वा। गृ अ ह्+इ+त्वा। गृह+ई+त्वा। गृहीत्वा+सु। गृहीत्वा।*

यहां ***'ग्रह उपादाने'*** *(क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम होने पर 'क्त्वा' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'ग्रह्' धातु को* ***'ग्रहिज्यावपि०'*** *(अ० ६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है।* ***'सम्प्रसारणाच्च'*** *(६।१।१०८) से 'अ' को पूर्वरूप हो जाता है।* ***'ग्रहोऽलिटि दीर्घः'*** *(७।२।३७) से 'इट्' को दीर्घ होता है।*

इसी प्रकार ***'ञिष्वप् शये'*** *(अदा०प०) तथा* ***'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्'*** *(तु०प०) धातु से सुप्त्वा और पृष्ट्वा शब्द सिद्ध करें।*

(३) ***रुरुदिषति।*** *रुद्+सन्। रुद्+रुद्+स। रु+रुद्+इट्+स। रु+रुद्+इ+स। रुरुदिष+लट्। रुरुदिषे+ल्। रुरुदिष+शप्+तिप्। रुरुदष+अ+ति। रुरुदिषति।*

*यहां '**रुदिर् अश्रुविमोचने**' (अ०द०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन, पूर्ववत् 'इट्' का आगम, '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से 'सन्' के सकार को षत्व होता है।*

*यहां 'सन्' प्रत्यय के किद्वत् होने से '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का '**क्ङिति च**' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। इसी प्रकार 'विद **ज्ञाने**' आदि धातुओं से '**विविदिषति**' आदि शब्द सिद्ध करें।*

झलादिसन्प्रत्ययः–

(५) इको झल्।६।

प०वि०–इकः ५।१ झल् १।१।

अनु०–'सन् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इको झल् सन् कित्।

अर्थः–इगन्ताद् धातोः परो झलादिः सन्प्रत्ययः किद्वद् भवति।

उदा०–(इ) चिचीषति। (उ) तुष्टूषति। (ऋ) चिकीर्षति। जिहीर्षति।

***आर्यभाषा-अर्थ**–(इकः) इगन्त धातु से परे (झल्) झल्-आदि (सन्) सन् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होता है। इक्=इ, उ, ऋ।*

***उदा०**–(इ) चिचीषति। चुनना चाहता है। (उ) तुष्टूषति। स्तुति करना चाहता है। (ऋ) चिकीर्षति। करना चाहता है। जिहीर्षति। हरना चाहता है।*

***सिद्धि**–(१) **चिचीषति**। चि+सन्। चि+चि+स। चि+ची+ष। चिचीष+लट्। चिचीष+शप्+तिप्। चिचीष+अ+ति। चिचीषति।*

*यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय तथा 'चि' धातु को द्विर्वचन करने पर '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'चि' धातु को गुण प्राप्त होता है। उसका 'सन्' प्रत्यय के कित् होने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।*

*इसी प्रकार '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अ०उ०) '**डुकृञ् करणे**' (त०उ०) '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से तुष्टूषति आदि शब्द सिद्ध करें।*

***विशेष-प्रश्न**–झल् आदि सन् किसे कहते हैं ?*

***उत्तर**–शुद्ध सन् को झलादि सन् कहते हैं और सेट् (इट्-सहित) सन् को **अजादि सन्** कहते हैं।*

(६) हलन्ताच्च।१०।

प०वि०-हल् १।१ अन्तात् ५।१ च अव्ययम्।

अनु०-'इको झल् सन् कित्' इत्यनुवर्तते। अन्तशब्दोऽत्र समीपवाची।

अन्वयः-इकोऽन्ताद् हल् च झल् सन् कित्।

अर्थः-इकः समीपाद् यो हल् तस्मात् परोऽपि झलादिः सन्प्रत्ययः किदवद् भवति।

उदा०-(इ) भिद्। बिभित्सति। (उ) बुध्। बुभुत्सति। (ऋ) ×।

आर्यभाषा-अर्थ-(इको) इक् के (अन्तात्) समीपवर्ती (हल्) हल् से परे (च) भी (झल्) आदि (सन्) सन् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होता है। यहां 'अन्त' शब्द समीपवाची है।

उदा०-(इ) भिद्। बिभित्सति। वह भेदन करना चाहता है। (उ) बुध्। बुभुत्सति। वह जानना चाहता है। (ऋ) ×।

सिद्धि-(१) बिभित्सति। भिद्+सन्। भिद्+भिद्+स। बि+भित्+स। बिभित्स+लट्। बिभित्स+शप्+ति। बिभित्स+अ+ति। बिभित्सति।

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'भिद्' धातु को द्विर्वचन करने पर 'पुगन्तलघूपस्य च' (७।३।८६) से 'भिद्' धातु को लघूपध गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'सन्' प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से उसका निषेध हो जाता है।

इसी प्रकार 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०) धातु से बुभुत्सति शब्द सिद्ध करें।

लिङ्सिचौ--

(७) लिङ्सिचावात्मनेपदेषु।११।

प०वि०-लिङ्-सिचौ १।१ आत्मनेपदेषु ७।३।

स०-लिङ् च सिच् च तौ-लिङ्सिचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'इकः, हलन्ताच्च, झल् कित्' इत्यनुवर्तते। 'सन्' इति निवृत्तम्।

अन्वयः-इकोऽन्ताद् हल् झल् लिङ्सिचावात्मनेषु कित्।

अर्थः-इकः समीपाद् यो हल्, तस्मात् परौ झलादी लिङ्सिचौ प्रत्ययौ, आत्मनेपदेषु किद्वद् भवतः।

उदा०-(भिद्) लिङ्-भित्सीष्ट। सिच्-अभित्त। (बुध) लिङ्-भुत्सीष्ट। सिच्-अबुद्ध।

आर्यभाषा-अर्थ-(इकः) इक् के (अन्तात्) समीपवर्ती (हल्) हल् से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद विषयक (झल्) झलादि (लिङ्-सिचौ) लिङ् और सिच् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होते हैं।

उदा०-(भिद्) लिङ्-भित्सीष्ट। वह भेदन करे। सिच्-अभित्त। उसने भेदन किया। (बुध्) लिङ्-भुत्सीष्ट। वह जाने। सिच्-अबुद्ध। उसने जाना।

*सिद्धि-(१) **भित्सीष्ट।** भिद्+लिङ्। भिद्+सीयुट्+ल्। भिद्+सीय्+त। भिद्+सीय्+सुट्+त। भिद्+सीय्+स्+त। भित्+सी+ष्+ट। भित्सीष्ट।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय, **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से **'सीयुट्'** तथा **'सुट्तिथोः'** (३।४।१०७) से 'सुट्' का आगम होने पर **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भिद्' धातु को लघूपध गुण प्राप्त होता है किन्तु 'लिङ्' प्रत्यय के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। इसी प्रकार **बुध अवगमने** (भ्वा०प०) धातु से 'भुत्सीष्ट' शब्द सिद्ध करें।*

*(२) **अभित्त।** भिद्+लुङ्। भिद्+च्लि+ल्। भिद्+सिच्+त। अट्+भिद्+स्+त। अ+भित्+०+त। अभित्त।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होने पर भिद् धातु को **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपध गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'सिच्' प्रत्यय के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

*इसी प्रकार **'बुध अवगमने'** (भ्वा०प०) धातु से **'अबुद्ध'** सिद्ध करें।*

(८) उश्च।१२।

प०वि०-उः ५।१ च अव्ययम्।

अनु०-'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु झल् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उश्च झल् लिङ्सिचावात्मनेपदेषु कित्।

अर्थः-ऋकारान्ताद् धातोः परौ झलादी लिङ्सिचावात्मनेपदेषु किद्वद् भवतः।

उदा०-(कृ) लिङ्-कृषीष्ट। (हृ) हृषीष्ट। (क) सिच्-अकृत। (हृ) अहृत।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(उः) ऋकारान्त धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद विषयक (झल्) झल् आदि (लिङ्सिचौ) लिङ् और सिच् प्रत्यय (कित्) किदवत् होते हैं।*

उदा०-(कृ) लिङ्-कृषीष्ट। वह करे। (हृ) हृषीष्ट। वह हरण करे। (कृ) सिच्-अकृत। उसने किया। (हृ) अहृत। उसने हरण किया।

***सिद्धि-(१) कृषीष्ट।** कृ+लिङ्। कृ+सीयुट्+ल्। कृ+सीय्+त। कृ+सीय्+सुट्+त। कृ+सीय्+स्+त। कृ+सी+ष्+ट। कृषीष्ट।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु के गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'लिङ्' प्रत्यय के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है। इसी प्रकार **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०प०) धातु से हृषीष्ट शब्द सिद्ध करें।*

***(२) अकृत।** कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+त। अ+कृ+स्+त। अ+कृ+०+त। अकृत।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' और 'सिच्' आदेश करने पर 'कृ' धातु को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'सिच्' प्रत्यय के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।*

*इसी प्रकार **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'अहृत'** शब्द सिद्ध करें।*

(६) वा गमः ।१३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, गमः ५।१।

अनु०-'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु झल् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गमो झल् लिङ्सिवाचात्मनेपदेषु वा कित्।

अर्थः-गमो धातोः परौ झलादी लिङ्सिचावात्मनेपदेषु विकल्पेन किद्वद् भवतः।

उदा०-(लिङ्) संगसीष्ट। संगंसीष्ट। **(सिच्)** समगत। समगंस्त।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(गमः) गम् धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपदविषयक (झल्) आदि (लिङ्सिचौ) लिङ् और सिच् प्रत्यय (वा) विकल्प से (कित्) किद्वत् होते हैं।*

उदा०-(लिङ्) संगसीष्ट। संगंसीष्ट। वह संगति करे। समगत। समगंस्त। उसने संगति की।

***सिद्धि-(१) संगसीष्ट।** सम्+गम्+लिङ्। सम्+गम्+ल्। सम्+गम्+सीयुट्+ल्। सम्+गम्+सीय्+त। सम्+गम्+सीय्+सुट्+त। सम्+गम्+सी+स्+त। सम्+गम्+सी+ष्+ट। सं+गं+सी+ष्+ट। संगसीष्ट।*

*यहां 'सम्' उपसर्ग पूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय तथा सीयुट् और **'सुट्'** आगम के होने पर 'लिङ्' के कित् होने से **'अनुदात्तोपदेश-***

वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति' (६।४।३७) से गम् धातु के अनुनासिक का लोप हो जाता है। विकल्प पक्ष में जहां 'लिङ्' प्रत्यय कित् नहीं होता है, वहां अनुनासिक का लोप नहीं होता है-संगंसीष्ट।

(२) समगत। सम्+गम्+लुङ्। सम्+अट्+गम्+च्लि+ल्। सम्+अ+गम्+स्+त। सम्+अ+गं+स्+त। सम्+अ+ग+०+त। समगत।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' और 'सिच्' आदेश करने पर 'सिच्' के कित् होने से पूर्ववत् 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'गम्' धातु के अनुनासिक का लोप हो जाता है। विकल्प पक्ष में जहां 'सिच्' प्रत्यय कित् नहीं होता वहां अनुनासिक का लोप नहीं होता है-समगंस्त।

विशेष-'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु परस्मैपद है किन्तु 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' (१।३।२९) से 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'गम्' धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है।

सिच् प्रत्ययः-

(१०) हनः सिच्।१४।

प०वि०-हनः ५।१ सिच् १।१

अनु०-'आत्मनेपदेषु कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हनः सिच् आत्मनेपदेषु कित्।

अर्थः-हनो धातोः परः सिच् प्रत्यय आत्मनेपदेषु किद्वद् भवति।

उदा०-(सिच्) आहत। आहसाताम्। आहसत।

आर्यभाषा-अर्थ-(हनः) हन् धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपदविषयक (सिच्) सिच् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होता है।

उदा०-(सिच्) आहत। उसने धक्का दिया। आहसाताम्। उन दोनों ने धक्का दिया। आहसत। उन सबने धक्का दिया।

सिद्धि-(१) आहत। आङ्+हन्+लुङ्। आ+अट् हन्+च्लि+ल्। आ+हन्+सिच्+त। आ+हन्+स्+त। आ+हं+स्+त। आ+ह+०+त। आहत।

यहां 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' और 'सिच्' आदेश करने पर 'सिच्' प्रत्यय के 'कित्' होने से हन् धातु के अनुनासिक का 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से लोप हो जाता है।

विशेष-'हन् हिंसागत्योः (अदा०प०) धातु परस्मैपदी है, किन्तु 'आङो यमहनः' (१।३।२८) से आङ्पूर्वक 'हन्' धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है।

(११) यमो गन्धने।१५।

प०वि०-यमः ५।१ गन्धने ७।१।

अनु०-'आत्मनेषु सिच् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गन्धने यमः सिच् कित्।

अर्थः-गन्धनेऽर्थे वर्तमानाद् यमो धातोः परः सिच् प्रत्ययः किद्वद् भवति।

उदा०-(सिच्) उदायत। उदायसाताम्। उदायसत।

आर्यभाषा-अर्थ-(यमः) यम् धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपदविषयक (सिच्) सिच् प्रत्यय (कित्) किद्वत् होता है।

*उदा०-**उदायत**। उसने चुगली की। **उदायसाताम्**। उन दोनों ने चुगली की। **उदायसत**। उन सबने चुगली की।*

*सिद्धि-(१) **उदायत**। (आङ्) यम्+लुङ्। आ+अट्+यम्+च्लि+ल्। आ+यम्+सिच्+त। आ+यम्+सिच्+त। आ+यं+स्+त। आ+य+स्+त। आ+य+०+त। आयत। उत्+आयत। उदायत।*

*यहां पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' और 'सिच्' आदेश करने पर 'सिच्' प्रत्यय के कित् होने से पूर्ववत् '**अनुदात्तपदेश०**' (६।४।३७) से 'यम्' धातु के अनुनासिक का लोप हो जाता है।*

***विशेष**-(१) 'यमु उपरमे' (भ्वा०प०) धातु परस्मैपदी है, किन्तु '**आङो यमहनः**' (१।३।२८) से आङ्पूर्वक 'यम्' धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है।*

*(२) धातु पाठ में '**यमु उपरमे**' अर्थ का पाठ है। '**अनेकार्था हि धातवो भवन्ति**' के प्रमाण से 'यम्' धातु गन्धन अर्थ में भी प्रयुक्त होती है। **गन्धन**। चुगली करना। रहस्य खोलना।*

(१२) विभाषोपयमने।१६।

प०वि०-विभाषा १।१ उपयमने ७।१।

अनु०-'यम आत्मनेपदेषु सिच् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपयमने यमः सिच् आत्मनेपदेषु विभाषा कित्।

अर्थः-उपयमनेऽर्थे वर्तमानाद् यमो धातोः परः सिच् प्रत्यय आत्मनेपदेषु विकल्पेन किदवद् भवति।

उदा०-(सिच्) उपायत कन्यां देवदत्तः। उपायंस्त कन्यां देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपयमने) विवाह करने अर्थ में विद्यमान (यम:) यम धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद विषयक (सिच्) सिच् प्रत्यय (विभाषा) विकल्प से (कित्) किद्वत् होता है।

उदा०-यम्-उपायत कन्यां देवदत्त:। उपायंस्त कन्यां देवदत्त:। देवदत्त ने कन्या से विवाह किया।

सिद्धि-(१) उपायत। यहां सब कार्य 'उदायत' के समान हैं। जहां 'सिच्' प्रत्यय कित् हो जाता है वहां पूर्ववत् 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'यम्' धातु के अनुनासिक का लोप हो जाता है और विकल्पपक्ष में जहां 'सिच्' प्रत्यय कित् नहीं होता है, वहां अनुनासिक का लोप नहीं होता है-उपायंस्त।

विशेष-धातुपाठ में 'यमु उपरमे' (भ्वा०उ०) ऐसा पाठ है। 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' के प्रमाण से 'यम्' धातु विवाह करने अर्थ में भी प्रयुक्त होती है।

(१३) स्थाघ्वोरिच्च।१७।

प०वि०-स्थाघ्वो:, पञ्चम्यर्थे ६।२, इत् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्थाश्च घुश्च तौ-स्थाघू, तयो:-स्थाघ्वो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-'आत्मनेपदेषु सिच् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-स्थाघ्वो: सिज् आत्मनेपदेषु कित् इच्च।

अर्थ:-स्था-घुभ्यां धातुभ्यां पर: सिच् प्रत्यय आत्मनेपदेषु किद्वद् भवति, धातोरन्त्यवर्णस्य चेकारादेशो भवति।

उदा०-स्था। **(सिच्)** उपास्थित। उपास्थिषाताम्। उपास्थिषत। घु **(सिच्)** अदित। अधित।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्था-घ्वो:) स्था और घु संज्ञावाली धातु से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपदविषयक (सिच्) सिच् प्रत्यय (कित्) किदवत् होता है। (इत् च) और धातु के अन्त्य वर्ण को इकार आदेश भी होता है।

उदा०-(स्था) उपास्थित। वह उपस्थित हुआ। उपास्थिषाताम्। वे दोनों उपस्थित हुये। उपास्थिषत। वे सब उपस्थित हुये। (घु) अदित। उसने दिया। अधित। उसने धारण किया।

सिद्धि-(१) उपास्थित। स्था+लुङ्। अट्+स्था+च्लि+ल्। अ+स्था+सिच्+त। अ+स्था+स्+त। अ+स्थ् इ+स्+त। अ+स्थि+०+त। अस्थित। उप+अस्थित। उपास्थित।

यहां 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय तथा 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' प्रत्यय का लोप हो जाने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्यक्षलक्षणम्' (१।१।६२) से उसे प्रत्यय लक्षण मानकर 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (८।३।८४) से

'स्थि' को गुण प्राप्त होता है, किन्तु 'सिच्' प्रत्यय के कित् हो जाने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का निषेध हो जाता है।

इसी प्रकार घुसंज्ञक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) तथा 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'अदित' और 'अधित' शब्द सिद्ध करें।

विशेष-धातुपाठ में 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु परस्मैपद है किन्तु 'उपाद् देवपूजासंगतिकरणमित्रीकरणपथेष्विति वाच्यम्' (वा० १।३।२५) से आत्मनेपद का विधान किया गया है।

क्त्वाकित्त्वप्रतिषेधः—

(१४) न क्त्वा सेट्।१८।

प०वि०-न अव्ययपदम्, क्त्वा १।१ सेट् १।१।

अनु०-इटा सहेति सेट् (बहुव्रीहिः)। 'कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सेट् क्त्वा किद् न।

अर्थः-सेट् क्त्वाप्रत्ययः किद्वद् न भवति।

उदा०-(दिव्) देवित्वा। **(वृतु)** वर्तित्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(सेट्) इट् आगमवाला (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (कित्) कित् (न) नहीं माना जाता है।

उदा०-(दिव्) देवित्वा। क्रीडा आदि करके। (वृतु) वर्तित्वा। होकर।

सिद्धि-(१) देवित्वा। दिव्+क्त्वा। दिव्+इट्+त्वा। देव+इ+त्वा। देवित्वा+सु। देवित्वा।

यहां 'दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु' (दि०प०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय, उसे 'आर्धधातुधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होने पर, सेट् 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् न होने से 'दिव्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण हो जाता है।

इसी प्रकार 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से वर्तित्वा शब्द शब्द सिद्ध करें।

निष्ठाकित्त्वप्रतिषेधः—

(१५) निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः।१६।

प०वि०-निष्ठा १।१ शीङ्-स्विदि-मिदि-क्ष्विदि-धृषः ५।१।

स०-शीङ् च स्विदिश्च मिदिश्च क्ष्विदिश्च धृष् च एतेषां

समाहार:-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृष्, तस्मात्-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृष: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-'न सेट् कित्' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-शीङ्० धृष: सेट् निष्ठा किद् न।

अर्थ:-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषिभ्यो धातुभ्य: पर: सेट् निष्ठाप्रत्यय: किद्वद् न भवति।

उदा०-(शीङ्) शयित:, शयितवान्। **(स्विदि)** प्रस्वेदित:। प्रस्वेदितवान्। **(मिदि)** प्रमेदित:। प्रमेदितवान्। **(क्ष्विदि)** प्रक्ष्वेदित:। प्रक्ष्वेदितवान्। **(धृष्)** प्रधर्षित:। प्रधर्षितवान्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(शीङ्०) शीङ्, स्विदि, मिदि, क्ष्विदि और धृष् धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला। (निष्ठा) क्त और क्तवतु प्रत्यय (कित्) कित् (न) नहीं माना जाता है।

उदा०-__(शीङ्)__ शयित:। शयितवान्। सोया। __(स्विदि)__ प्रस्वेदित:। प्रस्वेदितवान्। पसीना बहाया। __(मिदि)__ प्रमेदित:। प्रमेदितवान्। स्नेह किया। __(क्ष्विदि)__ प्रक्ष्वेदित:। प्रक्ष्वेदितवान्। स्नेह किया/मुक्त किया। __(धृष्)__ प्रधर्षित:। प्रधर्षितवान्। धमकाया।

__सिद्धि-(१) शयित:।__ शीङ्+क्त। शी+इट्+त। शे+इ+त। श् अय्+इ+त। शयित+सु। शयित:।

यहां __'शीङ् स्वप्ने'__ (अदा०आ०) धातु से __'निष्ठा'__ (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय, उसे __'आर्धधातुकस्येड्वलादे:'__ (७।२।३५) से 'इट्' का आगम होने पर, सेट् 'क्त' प्रत्यय के कित् न रहने से शीङ् धातु को __'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'__ (७।३।८४) से गुण हो जाता है और __'एचोऽयवायाव:'__ (६।१।७८) से 'अय्' आदेश होता है। इसी प्रकार __'क्तवतु'__ प्रत्यय लगाकर __शयितवान्__ शब्द सिद्ध करें।

(२) __'ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे'__ (दिवादि०), __'ञिमिदा स्नेहने'__ (दि०आ०) __'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयो:'__ (दिवा०प०) और __'ञिधृषा प्रागल्भ्ये'__ (स्वा०प०) धातु से क्रमश: 'प्रस्वेदित:' आदि शब्द सिद्ध करें। यहां सर्वत्र सेट् निष्ठा प्रत्यय के कित् न मानने से __'पुगन्तलघूपधस्य च'__ (७।३।८६) से धातु को लघूपध गुण हो जाता है।

(१६) मृषस्तितिक्षायाम्।२०।

प०वि०-मृष: ५।१ तितिक्षायाम् ७।१।

अनु०-'सेट् निष्ठा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तितिक्षायां मृष: सेट् निष्ठा किद् न।

अर्थः-तितिक्षार्थे वर्तमानाद् मृषो धातोः परः सेट् निष्ठाप्रत्ययः किद्वद् न भवति।

उदा०-(मृष्) मर्षितः। मर्षितवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(मृषः) मृष् धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला (निष्ठा) क्त और क्तवतु प्रत्यय (कित्) कित् (न) नहीं माना जाता है।

उदा०-(मृष्) मर्षितः। मर्षितवान्। द्वन्द्वों को सहन किया।

सिद्धि-(१) मर्षितः। मृष्+क्त। मृष+इट्+त। म् अर् ष्+इ+त। मर्षित+सु। मर्षितः।

यहां 'मृष तितिक्षायाम्' (दि०उ०) धातु से पूर्ववत् निष्ठाप्रत्यय और इट् का आगम होने पर सेट् निष्ठाप्रत्यय के कित् न रहने से मृष् धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण हो जाता है। इसी प्रकार 'मृष्' धातु से क्तवतु प्रत्यय लगाकर मर्षितवान् शब्द सिद्ध करें।

(२) भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, हानि-लाभ और मान-अपमान रूप द्वन्द्वों का सहन करना तितिक्षा कहलाती है।

निष्ठाकित्त्वविकल्पः-

(१७) उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्।२१।

प०वि०-उत्-उपधात् ५।१ भाव-आदिकर्मणोः ७।२ अन्तरस्याम् अव्ययम्।

स०-उद् उपधायां यस्य सः-उदुपधः, तस्मात्-उदुपधात् (बहुव्रीहिः)। भावश्च आदिकर्म च ते भावादिकर्मणी, तयोः-भावादिकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'सेट् निष्ठा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उदुपधाद् भावकर्मणोः सेट् निष्ठाऽन्यतरस्यां किद् न।

अर्थः-उदुपधाद् धातोः परो भावे आदिकर्मणि च वर्तमानः सेट् निष्ठाप्रत्ययो विकल्पेन किद्वद् न भवति।

उदा०-(द्युत्) **भावे**-द्युतितमनेन। द्योतितमनेन। **(आदिकर्मणि)** प्रद्युतितः। प्रद्योतितः। **(मुद) भावे**-मुदितमनेन। मोदितमनेन **(आदिकर्मणि)** प्रमुदितः। प्रमोदितः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उत्-उपधात्) उकार उपधावाली धातु से (सेट्) इट् आगमवाला (निष्ठा) क्त प्रत्यय (भाव-आदिकर्मणोः) भाववाच्य और आदिकर्म अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कित्) कित् (न) नहीं होता है।

उदा०-(द्युत्) भाव-द्युतितम् अनेन। द्योतितम् अनेन। इसके द्वारा चमका गया। आदिकर्म-प्रद्युतितः। प्रद्योतितः। उसने चमकना प्रारम्भ किया। (मुद्) भाव-मुदितम् अनेन। मोदितम् अनेन। आदिकर्म-प्रमुदितः। प्रमोदितः। उसने प्रसन्न होना प्रारम्भ किया।

*सिद्धि-(१) **द्युतितम्।** द्युत्+क्त। द्युत्+इट्+त। द्युत्+इ+त। द्युतित+सु। द्युतितम्।*

*यहां 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु के **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' का आगम होने पर एक पक्ष में 'क्त' प्रत्यय को कित् मानने से **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है।*

*(२) **द्योतितम्।** यहां विकल्प पक्ष में 'क्त' प्रत्यय को 'कित्' न मानने से 'द्युत्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण हो जाता है।*

(३) 'मुद हर्षे' (भ्वादि०) धातु से मुदितम् आदि शब्द सिद्ध करें।

*(४) **'धात्वर्थो भावः'** धातु के अर्थ मात्र को कहना 'भाव' कहलाता है। **आदिकर्म** शब्द का अर्थ क्रिया का प्रारम्भ करना है।*

*(५) **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२६) सूत्र से 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा की गई है। भाव और आदिकर्म में 'क्तवतु' प्रत्यय नहीं होता। इसलिये यहां 'क्त' प्रत्यय के उदाहरण दिये गये हैं।*

*(६) यहां **'अन्यतरस्याम्'** एक व्यवस्थित विभाषा है। इसलिये 'शप्' विकरण की उकार-उपधावाली धातुओं से परे ही भाव और आदिकर्म अर्थ में सेट् 'क्त' प्रत्यय विकल्प से कित् होता है। अन्य विकरण की उकार उपधावाली धातुओं से परे भाव और आदिकर्म अर्थ में सेट् 'क्त' प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होता है। जैसे-**गुध परिवेष्टने** (दिवादि०) **गुधितमनेन** इत्यादि।*

निष्ठाक्त्वाकित्त्वप्रतिषेधः-

(१८) पूङः क्त्वा च।२२।

प०वि०-पूङः ५।१ क्त्वा १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'सेट् निष्ठा कित् न' इत्यनुवर्तते। अत्र 'अन्यतरस्याम्' इति नानुवर्तते, अग्रिमे सूत्रे 'वा' इति वचनात्।

अन्वयः-पूङः सेट् निष्ठा क्त्वा च किद् न।

अर्थः-पूङो धातोः परः सेट् निष्ठा क्त्वा च प्रत्ययः किद्वद् न भवति।

उदा०-(पूङ्) निष्ठा-पवितः, पवितवान्। **क्त्वा**-पवित्वा।

*आर्यभाषा-अर्थ-(पूङः) पूङ् धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला (निष्ठा) **क्त**, क्तवतु प्रत्यय (च) और (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (कित्) कित् (न) नहीं माना जाता है।*

*उदा०-(पूङ्) निष्ठा-पवितः। पवितवान्। पवित्र किया। **क्त्वा-पवित्वा**। पवित्र करके।*

सिद्धि-(१) पवितः। पूङ्+क्त। पू+इट्+त। पो+इ+त्। प् अव्+इ+त। पवित+सु। पवितः।

*यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और 'पूङश्च' (७।२।५१) 'इट्' का आगम होने पर 'क्त' प्रत्यय को कित् न मानने से पू धातु को 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।३।८४) से गुण हो जाता है। 'एचोऽयवायाव:' (६।१।७८) से 'आय्' आदेश होता है। इसी प्रकार 'क्तवतु' और 'क्त्वा' प्रत्यय करके **पवितवान्** और **पवित्वा** शब्द सिद्ध करें।*

*(२) 'न क्त्वा सेट्' (१।२।१८) से सेट् 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् मानने का **निषेध** किया गया है। पूङ् धातु से सेट् 'क्त्वा' प्रत्यय को पुनः कित् न मानने का कथन यहां के लिये नहीं अपितु आगे के लिये किया गया है।*

क्त्वाकित्त्वविकल्पः–

(१६) नोपधात् थफान्ताद् वा। २३।

प०वि०-न-उपधात् ५।१ थ-फान्तात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-न उपधायां यस्य सः-नोपधः, तस्मात्-नोपधात्। (बहुव्रीहिः)। थश्च फश्च तौ-थफौ। थफावन्ते यस्य सः-थफान्तः, तस्मात्-थफान्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'सेट् क्त्वा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नोपधात् थफान्तात् सेट् क्त्वा वा किद् न।

अर्थः-नकारोपधात् थकारान्तात् फकारान्ताच्च धातोः परः सेट् क्त्वाप्रत्ययो विकल्पेन किद्वद् न भवति।

उदा०-थकारान्तात् (ग्रन्थ) ग्रथित्वा। ग्रन्थित्वा। **फकारान्तात्** (गुम्फ) गुफित्वा। गुम्फित्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(न-उपधात्) नकार उपधावाली (थ-फान्तात्) थकारान्त और फकारान्त धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (वा) विकल्प से (कित्) कित् (न) नहीं होता है।

उदा०-थकारान्त (ग्रन्थ) ग्रथित्वा। ग्रन्थित्वा। गांठ लगाकर। श्रथित्वा। श्रन्थित्वा। ढीला करके/छोड़कर। फकारान्त (गुम्फ) गुफित्वा, गुम्फित्वा। गूंथकर।

सिद्धि-(१) ग्रथित्वा। ग्रन्थ्+क्त्वा। ग्रन्थ्+इट्+त्वा। ग्रथ्+इ+त्वा। ग्रथित्वा+सु। ग्रथित्वा।

यहां 'ग्रन्थ सन्दर्भे' (क्र्या०प०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' का आगम होने पर एक पक्ष में 'क्त्वा' को कित् मानने से 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से धातु के अनुनासिक न् (ं) का लोप हो जाता है। विकल्प पक्ष में जहां क्त्वा प्रत्यय को कित् नहीं माना जाता है, वहां धातु के अनुनासिक न् (ं) का लोप नहीं होता है-ग्रन्थित्वा।

(२) इसी प्रकार 'श्रन्थ विमोचन प्रतिहर्षयोः' (क्र्या०प०) धातु से श्रथित्त्वा और श्रन्थित्त्वा शब्द सिद्ध करें और 'गुम्फ ग्रन्थे' (तु०प०) धातु से गुफित्वा और गुम्फित्वा शब्द सिद्ध करें।

विशेष- 'न क्त्वा सेट्' (१।२।१८) सूत्र से सेट् 'क्त्वा' को कित् मानने का निषेध किया गया है। यहां कहा गया है कि सेट् 'क्त्वा' प्रत्यय विकल्प से कित् नहीं होता है। 'न वेति विभाषा' (१।१।४४) के वचन से यहां नकार से पूर्व प्राप्ति 'न क्त्वा सेट्' (१।१।१८) को हटा दिया जाता है और 'वा' से विकल्प कर दिया जाता है। आगामी विभाषा सूत्रों में भी ऐसा ही समझें।

(२०) वञ्चिलुञ्च्यृतश्च।२४।

प०वि०-वञ्चि-लुञ्चि-ऋतः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-वञ्चिश्च लुञ्चिश्च ऋत् च एतेषां समाहारः-वञ्चिलुञ्च्यृत्, तस्मात्-वञ्चिलुञ्च्यृतः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'सेट् क्त्वा वा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वञ्चिलुञ्च्यृतश्च सेट् क्त्वा वा किद् न।

अर्थः-वञ्चिलुञ्च्यृतिभ्यो धातुभ्यः परः सेट् क्त्वाप्रत्ययो विकल्पेन किदवद् न भवति।

उदा०-(वञ्चि) वचित्वा। वञ्चित्वा। **(लुञ्चि)** लुचित्वा। **लुञ्चित्वा**। **(ऋत)** ऋतित्वा अर्तित्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(वञ्चि०) वञ्चि, लुञ्चि और ऋत् धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (वा) विकल्प से (कित्) कित् (न) नहीं होता है।

उदा०-(वञ्चि) वचित्वा। वञ्चित्वा। ठगकर। (लुञ्चि) लुचित्वा। लुञ्चित्वा। हराकर। (ऋत्) ऋतित्वा। अर्तित्वा। घृणा करके।

*सिद्धि-(१) **वचित्वा।** वञ्च्+क्त्वा। वञ्च्+इट्+त्वा। वच्+इ+त्वा। वचित्वा+सु। वचित्वा।*

*यहां 'वञ्चु गत्यर्थः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और उसे पूर्ववत् 'इट्' का आगम होने पर 'क्त्वा' प्रत्यय को एक पक्ष में कित् मानकर '**अनुदात्तोपदेश०**' (६।४।३७) से वञ्च् धातु के अनुनासिक 'ञ्' का लोप हो जाता है। दूसरे पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् न मानने से वञ्च् धातु के अनुनासिक 'ञ्' का लोप नहीं होता है। इसी प्रकार लुञ्च् अपनयने (भ्वादि०) धातु से लुचित्वा और लुञ्चित्वा शब्द सिद्ध करें।*

*(२) **ऋतित्वा।** ऋत्+क्त्वा। ऋत्+इट्+त्वा। ऋतित्वा+सु। ऋतित्वा।*

*यहां '**ऋत घृणायाम्**' (माधव०) यह सौत्र धातु है। इससे पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम होने पर, 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् मानने से '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से लघूपध गुण नहीं होता है। दूसरे पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् न मानने से लघूपध गुण हो जाता है-अर्तित्वा।*

(२१) तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य।२५।

प०वि०-तृषि-मृषि-कृशेः ५।१ काश्यपस्य ६।१।

स०-तृषिश्च मृषिश्च कृशिश्च एतेषां समाहारः-तृषिमृषिकृशि, तस्मात्-तृषिमृषिकृशेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'सेट् क्त्वा वा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृषिमृषिकृशेः सेट् क्त्वा वा किद् न काश्यपस्य।

अर्थः-तृषिमृषिकृशिभ्यो धातुभ्यः परः सेट् क्त्वाप्रत्ययो विकल्पेन किदवद् न भवति, काश्यपस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-(तृषि) तृषित्वा। तर्षित्वा। (मृषि) मृषित्वा। मर्षित्वा। (कृशि) कृशित्वा। कर्शित्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृषि०) तृषि, मृषि और कृशि धातु से परे (सेट्) इट् आगमवाला (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (वा) विकल्प से (कित्) कित् (न) नहीं होता है। (काश्यपस्य) काश्यप आचार्य के मत में।

उदा०-(तृषि) तृषित्वा। तर्षित्वा। प्यासा होकर। (मृषि) मृषित्वा-मृषित्वा। मर्षित्वा। द्वन्द्व सहन करके। (कृशि) कृशित्वा। कर्शित्वा। पतला करके।

सिद्धि-(१) तृषित्वा। तृष्+क्त्वा। तृष+इट्+त्वा। तृषित्वा+सु। तृषित्वा।

यहां 'तृष पिपासायाम्' (दिवा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम होने पर, 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् मानकर 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। दूसरे पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् न मानने से तृष धातु को लघूपध गुण हो जाता है-तर्षित्वा।

इसी प्रकार 'मृष तितिक्षायाम्' (दि०प०) धातु से मृषित्वा और मर्षित्वा शब्द सिद्ध करें। 'कृश तनूकरणे' (दि०प०) धातु से कृशित्वा और कर्शित्वा शब्द सिद्ध करें। मृषित्वा। द्वन्द्वों का सहन करके। सुख-दुःख आदि के जोड़े को द्वन्द्व कहते हैं।

विशेष-पाणिनि मुनि किसी आचार्य का नाम ग्रहण विकल्प के लिये करते हैं, किन्तु यहां काश्यप आचार्य का नामग्रहण पूजा के लिये है कि इस विषय में काश्यप आचार्य का भी यही मत है, क्योंकि यहां विकल्प के लिये तो 'वा' की अनुवृत्ति है ही।

क्त्वासन्कित्त्वविकल्पः-

(२२) रलो व्युपधाद्धलादेः सँश्च।२६।

प०वि०-रलः ५।१ उ-इ-उपधात् ५।१ हलादेः ५।१ सन् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-उश्च इश्च तौ-वी, वी उपधायां यस्य सः-व्युपधः, तस्मात्-व्युपधात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। हल् आदिर्यस्य सः-हलादिः, तस्मात्-हलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सेट् क्त्वा वा कित् न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-रलो व्युपधाद् हलादेः सेट् क्त्वा सँश्च वा किद् न।

अर्थः-रलन्ताद् उकारोपधाद् इकारोपधाच्च हलादेर्धातोः परः सेट् क्त्वा सँश्च प्रत्ययो विकल्पेन किद्वद् न भवति।

उदा०-उकारोपधात् (द्युत्) क्त्वा-द्युतित्वा। द्योतित्वा। **सन्-**दिद्युतिषति। दिद्योतिषति। **इकारोपधात् (लिख्)** क्त्वा-लिखित्वा। लेखित्वा। **सन्-**लिलिखिषति। लिलेखिषति।

आर्यभाषा-अर्थ-(रल्) रल् अन्तवाली (उ-इ-उपधात्) उकार और इकार उपधावाली (हलादेः) हल् आदिवाली धातु से (सेट्) इट् आगमवाला (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय (च) और (सन्) सन्प्रत्यय (वा) विकल्प से (कित्) किद्वत् (न) नहीं होता है।

उदा०-उकार-उपधावाली धातु (द्युत्) क्त्वा-द्युतित्वा, द्योतित्वा। चमक कर। सन्-दिद्युतिषते, दिद्योतिषते। चमकना चाहता है। इकार-उपधावाली धातु (लिख्)

क्त्वा-लिखित्वा, लेखित्वा। लिखकर। सन्-लिलिखिषति, लिलेखिषति। लिखना चाहता है।

सिद्धि-(१) द्युतित्वा। द्युत्+क्त्वा। द्युत्+इट्+त्वा। द्युतित्वा+सु। द्युतित्वा।

यहां 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और 'इट्' का आगम करने पर, 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् मानकर 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। दूसरे पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय को कित् न मानने से द्युत् धातु को प्राप्त लघूपध गुण हो जाता है-द्योतित्वा।

इसी प्रकार 'लिख अक्षरविन्यासे' (तु०प०) धातु से लिखित्वा और लेखित्वा शब्द सिद्ध करें।

(२) दिद्युतिषते। द्युत+सन्। द्युत्+इट्+स। द्युत्+द्युत्+इ+स। द् इ उ त्+द्युत्+इ+स। दि+द्युत्+इ+ष। दिद्युतिष+लट्। दिद्योतिषते।

यहां 'द्युत् दीप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, और पूर्ववत् 'इट्' का आगम होने पर, 'सन्' प्रत्यय को कित् मानकर 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से द्युत् धातु को प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। दूसरे पक्ष में 'सन्' प्रत्यय को कित् न मानने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से द्युत् धातु को लघूपध गुण हो जाता है-दिद्योतिषते।

इसी प्रकार 'लिख अक्षरविन्यासे' (तुदादि०) धातु से लिलिखिषति और लिलेखिषति शब्द सिद्ध करें।

ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञाः–

(१) ऊकालोऽज् ह्रस्वदीर्घप्लुतः।२७।

प०वि०–उ–ऊ–उ३कालः १।१ अच् १।१ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १।१।

स०–उश्च ऊश्च ऊ३श्च ते–वः, तेषाम्–वाम्। वां काल इव कालो यस्य सः–ऊकालः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः) ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च एतेषां समाहारः–ह्रस्वदीर्घप्लुतः (समाहारद्वन्द्वः) समाहारे पुंस्त्वं छान्दसम्।

अर्थः–उ, ऊ, उ३ इत्येवं कालोऽच्, यथासंख्यं ह्रस्व–दीर्घ–प्लुतसंज्ञको भवति।

उदा०–(उकालः) दधि। मधु। (ऊकालः) कुमारी। गौरी। (उ३कालः) देवदत्त३ अत्र न्वसि।

आर्यभाषा-अर्थ-(उ-ऊ-उ३कालः) उ, ऊ और उ३ के काल के समान जिसका काल है, उस (अच्) स्वर की यथासंख्य (ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत) ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञा होती है।

उदा०-(उकाल) दधि। मधु। (ऊकाल) कुमारी। गौरी। (ऊ३काल) देवदत्त३ अत्र न्वसि।

ऊकालस्वर-तालिका

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	योग
अ	आ	अ३	
इ	ई	इ३	
उ	ऊ	उ३	
ऋ	ॠ	ऋ३	
ऌ	×	ऌ३	
×	ए	ए३	
×	ऐ	ऐ३	
×	ओ	ओ३	
×	औ	औ३	
५	८	९	२२

*विशेष-(१) "स्वरों की ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा हैं। इनके उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अंगुष्ठ की मूल की नाड़ी एक बार गति करती है उतने समय में ह्रस्व, उससे दूने काल में दीर्घ और उससे तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण करना चाहिये" **(महर्षि दयानन्दकृत वर्णोच्चारणशिक्षा)**।*

(२) 'ऊकाल' यहां उ-ऊ-ऊ३काल इन तीनों का प्रश्लिष्ट उपदेश किया गया है।

*(३) 'ह्रस्वदीर्घप्लुतः' यहां ह्रस्वश्च दीर्घश्च, प्लुतश्च एतेषां समाहारः- 'ह्रस्वदीर्घप्लुतम्' इस द्वन्द्व एकवद्भाव में **'ह्रस्वदीर्घप्लुतम्'** ऐसा पद होना चाहिये, क्योंकि **'स नपुंसकम्'** (२।४।१७) से द्वन्द्व एकवद्भाव में नपुंसकलिङ्ग होता है। इसका उत्तर यह है कि **"छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति"** सूत्रों की रचना छन्द के समान है। जैसे छन्द में लिङ्ग का व्यत्यय होता है, वैसे यहां भी यह लिङ्ग-व्यत्यय समझना चाहिये।*

ह्रस्वदीर्घप्लुतानां स्थानिनियमः-

(२) अचश्च।२८।

प०वि०-अचः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'अच् ह्रस्वदीर्घप्लुतः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वदीर्घप्लुतोऽच् अचश्च।

अर्थः-ह्रस्वः, दीर्घः, प्लुत इत्येवं यो विधीयमानोऽच् सोऽच एव स्थाने भवति।

उदा०-ह्रस्वः (रै) अतिरि। (गो) उपगु। (नौ) अतिनु। दीर्घः (चि) चीयते। (श्रु) श्रूयते। प्लुतः (अ) देवदत्त३। यज्ञदत्त३।

आर्यभाषा-अर्थ-(ह्रस्वदीर्घप्लुतः) ह्रस्व हो जाये, दीर्घ हो जाये, प्लुत हो जाये, जब शब्दशास्त्र में ऐसा कहा जाये तब (च) वह पूर्वोक्त ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत (अचः) अच् स्वर के स्थान में ही होता है। यह स्थानी का नियमन करनेवाला परिभाषा-सूत्र है।

उदा०-ह्रस्व (रै) अतिरि। (गो) उपगु। (नौ) अतिनु। दीर्घ (चि) चीयते। (श्रु) श्रूयते। प्लुत (अ) देवदत्त३। यज्ञदत्त३।

*सिद्धि-(१) **अतिरि।** अति+रै। अति+रि। अतिरि+सु। अतिरि। रायमतिक्रान्तमिति अतिरि कुलम्। यहां **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से ह्रस्व होता है। अतिरिकुलम्=रै (धन) का अतिक्रमण करनेवाला कुल। नावमतिक्रान्तमिति अतिनुकुलम्। नौका का अतिक्रमण करनेवाला कुल। अतिक्रमण=जीतना।*

*(२) **चीयते।** चि+लट्। चि+त। चि+यक्+त। चि+य+ते। ची+य+त। चीयते।*

*यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से यक् प्रत्यय और 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से चि धातु को दीर्घ हो जाता है। इसी प्रकार श्रु श्रवणे (स्वा०प०) धातु से-श्रूयते। **चीयते।** चुना जाता है। **श्रूयते।** सुना जाता है।*

*(३) **देवदत्त३।** यहां 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' (८।२।८२) से सम्बोधन में वाक्य की टि को प्लुत किया गया है-आगच्छ **भो! माणवक देवदत्त३।** हे बालक! देवदत्त तू आ।*

स्वरप्रकरणम्

उदात्तसंज्ञा–

(१) उच्चैरुदात्तः।२६।

प०वि०-उच्चैः अव्ययपदम्, उदात्तः १।१।

अनु०-'अच्' इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-उच्चैरज् उदात्तः।

अर्थः-कण्ठादीनां स्थानानामुच्चैर्भागे निष्पन्नोऽच्, उदात्तसंज्ञको भवति।

उदा०-ये। के। ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(उच्चैः) कण्ठ आदि स्थानों के ऊचे भाग से उत्पन्न होनेवाले (अच्) स्वर की (उदात्तः) उदात्त संज्ञा होती है।

उदा०-ये। के। ते।

विशेष-(१) आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य। आयामो गात्राणां निग्रहः। दारुण्यं स्वरस्य, दारुणता रूक्षता। अणुता खस्य, कण्ठस्य संवृतता। उच्चैःकराणि शब्दस्य (व्याकरणमहाभाष्यम् १।२।२९)

अर्थः-शरीर के अवयवों का निग्रह करना, स्वर की रूक्षता और कण्ठ की संवृतता ये शब्द के उच्चैःकरण के हेतु हैं।

(२) ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं होता है। सामवेद में उदात्त स्वर एक अङ्क (१) का चिह्न दिया जाता है।

(३) यहां वर्ण की ध्वनिकृत उच्चता नहीं, अपितु स्थानकृत उच्चता है। जिस वर्ण का जो स्थान है और वहां जो उच्चता है, उस स्थान से उच्चारण किये गये स्वर षड्ज आदि स्वरों के समान अभ्यास से ही उपलब्ध होता है।

अनुदात्तसंज्ञा–

(२) नीचैरनुदात्तः।३०।

प०वि०-नीचैः अव्ययपदम्, अनुदात्तः १।१।

अनु०-'अच्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नीचैरज् अनुदात्तः।

अर्थः-कण्ठादीनां स्थानानां नीचैर्भागे निष्पन्नोऽच्, अनुदात्तसंज्ञको भवति। त्व। सम। सिम।

आर्यभाषा-अर्थ-(नीचैः) कण्ठ आदि स्थानों के (नीचैः) नीचे भाग से उत्पन्न होनेवाले (अच्) स्वर की (अनुदात्तः) अनुदात्त संज्ञा होती है। त्वम्। कोई। सम। सब। सिम। सब।

सिद्धि-(१) त्व। यह 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (१।१।२७) सर्वादिगण में अनुदात्त पढ़ा गया है। इसी प्रकार वहां 'सम' और 'सिम' शब्द भी अनुदात्त पढ़े गये हैं।

*विशेष-(१) **अन्वसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य।** अन्वसर्गो गात्राणां शिथिलता। मार्दवं स्वरस्य मृदुता=स्निग्धता। उरुता खस्य, महत्ता कण्ठस्य नीचैःकराणि शब्दस्य (व्याकरणमहाभाष्यम् १।२।३०)*

अर्थ-शरीर के अवयवों की शिथिलता, स्वर की कोमलता और कण्ठ की महत्ता ये शब्द के नीचैःकरण के हेतु हैं।

(२) ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में अनुदात्त स्वर पर ऐसा चिह्न (–) लगता है। सामवेद में अनुदात्त का चिह्न (३क) स्वर के ऊपर लिखा जाता है।

(३) यहां वर्ण का ध्वनिकृत नीचत्व नहीं है, अपितु स्थानकृत नीचत्व है। जिस वर्ण का जो स्थान है और वहां जो नीचा भाग है, उस स्थान से उच्चारण किये गये स्वर को अनुदात्त कहते हैं। यह स्वर षड्ज आदि स्वरों के समान अभ्यास से ही उपलब्ध होता है।

स्वरितसंज्ञा–

(३) समाहारः स्वरितः।३१।

प०वि०–समाहारः १।१ स्वरितः १।१।

अनु०–'अच्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उदात्तानुदात्तयोः समाहारोऽच् स्वरितः।

अर्थः–उदात्तानुदात्तयोर्यः समाहारोऽच्, स स्वरितसंज्ञको भवति।

उदा०–क्व। शिक्यम्। कन्या। सामान्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समाहारः) उदात्त और अनुदात्त स्वर के समाहारवाले (अच्) स्वर की (स्वरितः) स्वरित संज्ञा होती है। क्व। कहां। शिक्यम्। छिक्का। कन्या। प्रसिद्ध। सामान्यः। सामवेद में कुशल।

*सिद्धि-(१) **क्व**। किम्+ङि+अत्। किम्+अ। कु+अ। क् व्+अ। क्व+सु। क्व। यहां किम् शब्द से '**किमोऽत्**' (५।३।१२) से 'अत्' प्रत्यय और '**कु तिहोः**' से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश है। 'अत्' प्रत्यय के तित् होने से '**तित् स्वरितम्**' (६।१।१८५) से स्वरित होता है।*

*(२) **शिक्यम्। कन्या**। ये दोनों शब्द '**तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः**' (फिट्० ४।८) से अन्तस्वरित हैं। '**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**' (६।१।१५२) से शेष अच् अनुदात्त होता है।*

*(३) **सामान्यः**। सामन्+यत्। सामान्+य। सामान्य+सु। सामान्यः। यहां 'तत्र साधुः' (४।४।९८) से यत् प्रत्यय और '**तित् स्वरितम्**' (१।१।१७९) से स्वरित और शेष अच् पूर्ववत् अनुदात्त होता है। सामसु साधुः-सामान्यः।*

विशेष-(१) ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में स्वरित का ऐसा (꣡) ऊर्ध्वरेखात्मकचिह्न अक्षर के ऊपर लगाया जाता है। सामवेद में स्वरित स्वर का चिह्न (२) अक्षर के ऊपर दिया जाता है।

स्वरिते उदात्तभागः–

(४) तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्।३२।

प०वि०–तस्य ६।१ आदितः अव्ययपदम्, उदात्तम् १।१ अर्धह्रस्वम् १।१।

स०–अर्धं ह्रस्वस्येति, अर्धह्रस्वम् (तत्पुरुषः)।

अन्वयः–तस्य स्वरितस्यादितोऽर्धह्रस्वम् उदात्तम्।

अर्थः–तस्योदात्तानुदात्तसमाहारस्य स्वरितस्वरस्यादौ, अर्धह्रस्वमात्र-

मुदात्तं शेषं चानुदात्तं भवति।

उदा०–क्व॑। शिक्य॑म्। कन्या॑। सामान्य॑:।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्य) उस उदात्त और अनुदात्त स्वर के समाहारवाले ***स्वरित*** *स्वर के (आदितः) आदि में (अर्धह्रस्वम्) आधी ह्रस्व मात्रा (उदात्तम्) उदात्त होती है* ***और*** *शेष मात्रा अनुदात्त होती है।*

उदा०–क्वे॑। शिक्य॑म्। कन्या॑। सामान्य॑:।

सिद्धि-(१) ***क्वे॑।*** *यहां ह्रस्व स्वरित में आदिम आधी मात्रा उदात्त और आधी मात्रा अनुदात्त है। इसी प्रकार से-शिक्य॑म् में भी।*

(२) ***कन्या॑।*** *यहां दीर्घ स्वरित में आदिम आधी मात्रा उदात्त और शेष डेढ़ अनुदात्त है। इसी प्रकार से 'सामान्य॑:' में भी।*

(३) ***माणवक॑३।*** *यहां स्वरित में आदिम आधी मात्रा उदात्त और शेष अढ़ाई मात्रा अनुदात्त है।*

विशेष–*यहां महाभाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं कि '**समाहार**' ऐसा कहने पर यहां सन्देह उत्पन्न होता है कि स्वरित में कितना भाग उदात्त है और कितना भाग अनुदात्त है और उसमें भी किस अवकाश में उदात्त और किस अवकाश में अनुदात्त है। आचार्य पाणिनि मुनि ने इस सूत्र के द्वारा हमारा मित्र बनकर यह बतलाया है कि स्वरित आदि में आधी मात्रा भाग उदात्त है और शेष भाग अनुदात्त होता है।*

(व्याकरणमहाभाष्यम् १।२।३२)।

स्वरों के भेद

(१) ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और उदात्त, अनुदात्त स्वरित तथा निरनुनासिक और सानुनासिक स्वरों के भेद हैं। उन्हें अधोलिखित तालिका से समझ लेवें।

स्वर	ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत	
उदात्त	अ	आ	अ३	
अनुदात्त	अ॒	आ॒	अ॒३	
स्वरित	अ॑	आ॑	अ॑३	
				निरनुनासिक
उदात्त	अँ	आँ	अँ३	
अनुदात्त	अँ॒	आँ॒	अँ॒३	
स्वरित	अँ॑	आँ॑	अँ॑३	
				सानुनासिक

इस प्रकार 'अ' स्वर के १८ अठारह भेद होते हैं।

(२) 'लृ वर्णस्य दीर्घा न सन्ति, तं द्वादशभेदं प्रचक्षते।' लृ वर्ण के दीर्घ भेद नहीं होते हैं अतः उसके १२ बारह भेद हैं।

(३) 'सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति, तान्यपि द्वादशप्रभेदानि।' (पाणिनीयशिक्षा) सन्ध्यक्षर अर्थात् ए, ऐ, ओ, औ के ह्रस्व भेद नहीं होते हैं। इसलिये उनके भी १२ बारह १२ बारह ही भेद हैं।

एकश्रुतिस्वरः--

(५) एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ।३३।

प०वि०-एकश्रुति १।१ दूरात् ५।१ सम्बुद्धौ ७।१।

स०-एका श्रुतिर्यस्य तत्-एकश्रुति (बहुव्रीहिः) श्रुतिः=श्रवणम्।

अन्वयः-दूरात् सम्बुद्धावुदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुति।

अर्थः-दूरात् सम्बोधने उदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुतिस्वरो भवति।

उदा०-आगच्छ भो माणवक देवदत्त३।

*आर्यभाषा-अर्थ-(दूरात्) किसी को दूर से (सम्बुद्धौ) सम्बोधित करनेवाले वाक्य में (एकश्रुति) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का एकश्रुति स्वर होता है। **आगच्छ भो माणवक देवदत्त३।** हे बालक देवदत्त तू आ।*

विशेष-(१) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर के अविभाग एवं तिरोधान को एकश्रुति कहते हैं। किसी को दूर से सबोधित करते समय उस वाक्य में उदात्त आदि स्वरों का एक जैसा श्रवण होता है। पृथक्-पृथक् श्रवण नहीं होता है।

(२) शब्दशास्त्र में सम्बोधन के एकवचन को 'एकवचनं सम्बुद्धिः' (२।३।४९) के अनुसार 'सम्बुद्धि' कहते हैं। किन्तु यहां सम्बुद्धि शब्द से सम्बोधन का ग्रहण किया जाता है।

(६) यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु।३४।

प०वि०-यज्ञकर्मणि ७।१ अजप-न्यूङ्ख-सामसु ७।३।

स०-यज्ञस्य कर्मेति यज्ञकर्म, तस्मिन्-यज्ञकर्मणि (षष्ठीतत्पुरुषः)। जपश्च न्यूङ्खश्च साम च तानि-जपन्यूङ्खसामानि, न जपन्यूङ्खसामानीति, अजपन्यूङ्खसाभानि, तेषु-अजपन्यूङ्खसामसु (इतरेतरद्वन्द्वगर्भितनञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-'एकश्रुति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञकर्मणि उदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुति, अजपन्यूङ्ख-सामसु।

अर्थः-यज्ञकर्मणि, उदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुतिस्वरो भवति, जपन्यूङ्खसामानि वर्जयित्वा। यथा-

(१) ओ३म् अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेताँसि जिन्वतो३म्। यजु० ३।१२।
(२) ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहातन। यजु० ३।१।

आर्यभाषा-अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का (एकश्रुति) एकश्रुति स्वर होता है (अजपन्यूङ्ख-साम्यसु) जप, न्यङ्ख और सामवेद को छोड़कर। जैसे-

(१) ओ३म् अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेताँसि जिन्वतो३म्। यजु० ३।१२।
(२) ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहातन। यजु० ३।१।

विशेष-(प्रश्न) जप किसे कहते हैं।

उत्तर-अनुकरण मन्त्र को 'जप' कहते हैं। इसका ओठों से ही धीरे-धीरे उच्चारण किया जाता है। यह पास में बैठे हुये व्यक्ति को भी सुनाई नहीं देता है।

(प्रश्न) न्यूङ्ख किसे कहते हैं।

(उत्तर) (१) बारह ओकारों को न्यूङ्ख कहते हैं। उनमें कुछ उदात्त हैं और कुछ अनुदात्त हैं। किन्तु उनका यज्ञकर्म में एकश्रुति स्वर नहीं होता है।

(२) न्यूङ्खास्तु पृष्ठ्ये षडहे होतृवेदे प्रसिद्धा ओकारा द्वादश-पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वां यं तो ओ ओ ओ३ ओ ओ ओ ओ३ ओ ओ ओ३ सुषाव हर्यश्वाद्रिः कात्यायनश्रौतसूत्रभाष्ये (१।१९४) कर्कः।

(३) आश्वलायनश्रौतसूत्र (७।११) में पढ़े हुये निगद विशेष को न्यूङ्ख कहते हैं।

(प्रश्न) साम किसे कहते हैं।

(उत्तर) (१) वाक्य विशेष में स्थित गीत को साम कहते हैं। जैसे-ए३ विश्वं समत्रिणं दह३। साम में एकश्रुति स्वर नहीं होता है।

(२) सामवेद के गान को साम कहते हैं।

एकश्रुतिविकल्पः–

(७) उच्चैस्तरां वा वषट्कारः।३५।

प०वि०–उच्चैस्तराम् अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्, वषट्कारः १।१।

अनु०–'यज्ञकर्मणि, एकश्रुतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि वषट्कारो वा उच्चैस्तराम्।

अर्थः–यज्ञकर्मणि वौषट् शब्दो विकल्पेन उदात्ततरो भवति, पक्षे चैकश्रुतिस्वरो भवति।

उदा०–**उदात्ततरः**–सोमस्याग्नेर्वीही३वौषट्। **एकश्रुतिस्वरः**–सोमस्याग्नेर्वीही३ वौषट्। वषट्कारः सरस्वती (मैत्रायणी संहिता ३।११।५)

__आर्यभाषा-अर्थ__-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (वषट्कारः) वौषट् शब्द (वा) विकल्प से (उच्चस्तैराम्) उदात्ततर होता है। द्वितीय पक्ष में एकश्रुति स्वर होता है। __उदात्ततर__-सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट्। __एकश्रुति__-सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट्।

__विशेष__-(१) यहां वषट्कार शब्द से वौषट् शब्द का ग्रहण किया जाता है। __प्रश्न__-यदि ऐसा है तो वौषट् शब्द का उपदेश क्यों नहीं किया ? __उत्तर__-विचित्रता के लिये। पाणिनिमुनि के सूत्रों की रचना विचित्र है। (पं० जयादित्य)।

(२) महर्षि दयानन्द ने अपने अष्टाध्यायीभाष्य में __'वषट्कार'__ शब्द का ही ग्रहण किया है, 'वौषट्' शब्द का नहीं और यहां __'वषट्कारः'__ सरस्वती उदाहरण दिया है।

(८) विभाषा छन्दसि।३६।

प०वि–विभाषा १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–'एकश्रुति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि उदात्तानुदात्तस्वरितानां विभाषा एकश्रुति।

अर्थः–छन्दसि। वेदस्वाध्यायकाले उदात्तानुदात्तस्वरितानां विकल्पेनैकश्रुतिस्वरो भवति। पक्षे उदात्तानुदात्तस्वरितानां श्रवणमपि भवति। यथा–

(१) ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। ऋग्० १।१।१।

(२) ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा

मा वस्तेन ईशत माघशँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि। यजु० १।१।

(३) ओ३म् अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि। साम० १।१।१।

(४) ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे। अथर्व० १।१।१।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेद के स्वाध्यायकाल में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों की (विभाषा) विकल्प से (एकश्रुति) एकश्रुति होती है। द्वितीय पक्ष में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का श्रवण भी होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

विशेष-(१) कई आचार्यों का ऐसा मत है कि यह एक व्यवस्थित विभाषा (विकल्प) है। व्यवस्था यह है कि मन्त्रभाग में नित्य उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वर होता है और ब्राह्मणभाग में नित्य एकश्रुति होती है।

(२) श्री भट्टाचार्य का कहना है कि **'इच्छासंहितयोरार्षे छन्दो वेदे च छन्दसि'** *के अनुसार छन्द शब्द के इच्छा, संहिता, आर्षवचन, वेद और अनुष्टुप् आदि छन्द* ***अर्थ*** *में छन्द शब्द का प्रयोग होता है। इसलिये लौकिक संस्कृत भाषा में भी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित की विकल्प से एकश्रुति होती है।*

एकश्रुतिप्रतिषेधः-

(६) न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ३७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, सुब्रह्मण्यायाम् ७।१ स्वरितस्य ६।१। तु अव्ययपदम्, उदात्तः १।१।

अनु०-'एकश्रुति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुब्रह्मण्यायाम् उदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुति न स्वरितस्य तूदात्तः।

अर्थः-सुब्रह्मण्यानिगदे उदात्तानुदात्तस्वरितानामेकश्रुतिस्वरो न भवति, किन्तु तत्र स्वरितस्य स्थाने उदात्तादेशो भवति।

उदा०-सुब्रह्मण्यो३मिन्द्रागच्छ, हरिव आगच्छ, मेधातिथिर्मेष वृषणश्वस्य मेने, गौरवस्कन्दिन्नहिल्लायै जारः कौशिक ब्राह्मण, गौतम ब्रुवाण, श्वः सुत्यामागच्छ मघवन्। शतपथब्राह्मणम् ३।३।४।७।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुब्रह्मण्यायाम्) सुब्रह्मण्या नामक निगद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित की (एकश्रुति) एकश्रुति (न) नहीं होती है, (तु) किन्तु वहां (स्वरितस्य) स्वरित को (उदात्तः) उदात्त आदेश होता है।

उदा०-सुब्रह्मण्यो३मिन्द्रागच्छ, हरिव आगच्छ, मेधातिथिर्मेष वृषणश्वस्य मेने, गौरवस्कन्दिन्नहिल्लायै जारः कौशिक ब्राह्मण, गौतम ब्रुवाण, श्वः सुत्यामागच्छ मघवन्। शतपथब्राह्मणम् ३।३।४।७।

विशेष-शतपथब्राह्मण में तृतीय काण्ड, तृतीय प्रपाठक, चतुर्थ ब्राह्मण की सतरहवीं कण्डिका को लेकर बीसवीं कण्डिका तक जो वेदमन्त्र का व्याख्यानरूप पाठ है, उसे सुब्रह्मण्या निगद कहते हैं। उसमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित की एकश्रुति का यहां निषेध किया है।

(१०) देवब्रह्मणोरनुदात्तः।३८।

प०वि०-देव-ब्रह्मणोः ६।२ अनुदात्तः १।१। देवश्च ब्रह्मा च तौ देव-ब्रह्मणौ, तयोः-देवब्रह्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुब्रह्मण्यायाम् एकश्रुति न स्वरितस्य अनुदात्तः।

अन्वयः-सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोरेकश्रुति न स्वरितस्तु अनुदात्तः।

अर्थः-सुब्रह्मण्यायां निगदे देवब्रह्मणोः शब्दयोरेकश्रुतिस्वरो न भवति किन्तु तत्र स्वरितस्य स्थानेऽनुदात्तः स्वरो भवति।

उदा०-देवा ब्रह्माण आगच्छत।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुब्रह्मण्यायाम्) सुब्रह्मण्या नामक निगद में (देव-ब्रह्मणोः) देव और ब्रह्मन् शब्द का (एकश्रुति) एकश्रुति स्वर (न) नहीं होता है (तु) किन्तु (स्वरितस्य) स्वरित स्वर को (अनुदात्तः) अनुदात्त स्वर होता है।

उदा०- देवाः, ब्रह्माणः। यहां इन दोनों पदों को 'आमन्त्रितस्य च' (अ० ६।१।१८) से आद्युदात्त करने पर तथा शेष वर्णों को 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५८) से अनुदात्त हो जाने पर 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित हो जाता है, तत्पश्चात् इस सूत्र से उस स्वरित को अनुदात्त आदेश होता है। देवाः। ब्रह्माणः।

एकश्रुतिः-

(११) स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्।३९।

प०वि०-स्वरितात् ५।१ संहितायाम् ७।१ अनुदात्तानाम् ६।३।

स०-अनुदात्तश्च अनुदात्तश्च अनुदात्तश्च तेऽनुदात्ताः, तेषाम्-अनुदात्तानाम् (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०-'एकश्रुति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्वरिताद् अनुदात्तानामेकश्रुति।

अर्थः-संहितायां विषये स्वरितात् परेषाम् अनुदात्तानामेकश्रुति भवति।

उदा०-इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि (ऋ० १० ।७५ ।५)। माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि ?

आर्यभाषा-अर्थ-*(संहितायाम्) संहिता विषय में (स्वरितात्) स्वरित स्वर से परे (अनुदात्तानाम्) अनुदात्त स्वरों के स्थान में (एकश्रुति) एकश्रुति स्वर होता है।*

उदा०- उदा०-इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि (ऋ० १० ।७५ ।५)। माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि ?

सिद्धि-(१) इमं मे०। *यहां 'इमम्' यह आन्तोदात्त पद है। 'मे' यह अनुदात्त पद है। यहां* ***'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'*** *(८ ।४ ।६६) से स्वरित हो जाता है। इस स्वरित से परे इस सूत्र से गङ्गे आदि अनुदात्त पदों में एकश्रुति स्वर होता है।*

(२) माणवक जटिलकाध्यापक०। *यहां प्रथम आमन्त्रित 'माणवक' शब्द* ***'आमन्त्रितस्य च'*** *(६ ।१ ।१९८) से आद्युदात्त,* ***'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'*** *(६ ।१ ।१५८) से उसके प्रथम अक्षर को छोड़कर सब अनुदात्त हो जाता है।* ***'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'*** *(८ ।४ ।६६) से स्वरित करने पर परवर्ती अनुदात्त स्वरों के स्थान में एकश्रुति स्वर होता है।*

अनुदात्ततरः-

(१२) उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ।४०।

प०वि०-उदात्त-स्वरितपरस्य ६ ।१ सन्नतरः १ ।१।

स०-उदात्तश्च स्वरितश्च तौ-उदात्तस्वरितौ, परश्च परश्च तौ-परौ, उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात् सः-उदात्तस्वरितपरः, तस्य-उदात्तस्वरितपरस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अनुदात्तानाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उदात्तस्वरितपरस्यानुदात्तस्य सन्नतरः।

अर्थः-उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चाऽनुदात्तस्य स्थाने सन्नतरः= अनुदात्ततर आदेशो भवति।

उदा०-(उदात्तपरस्य) देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः। इमं मे सरस्वति शुतुद्रि। (स्वरितपरस्य) अध्यापक क्व।

आर्यभाषा-अर्थ-(उदात्त-स्वरितपरस्य) उदात्त-परक तथा स्वरित-परक (अनुदात्तानाम्) अनुदात्त स्वर के स्थान में (सन्नतरः) अनुदात्ततर स्वर आदेश होता है।

उदा०-देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः। सरस्वति शुतुद्रि।

*(१) **मातरोऽपः।** यहां 'मातरः' यह अनुदात्त पद है। 'अपः' **'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः'** (६।१।१७१) से अन्तोदात्त है और उसका 'अ' अनुदात्त है। दोनों अनुदात्त अकारों का एकादेश 'ओ' अनुदात्त होता है। उसको उदात्त परे होने पर अनुदात्ततर आदेश होता है, अर्थात् वह अनुदात्ततर हो जाता है।*

*(२) **सरस्वति शुतुद्रि।** यहां 'शुतुद्रि' यह आमन्त्रित पद पाद के आदि में है। उसको **अनुदात्तं सर्वमपादादौ'** (८।१।१८) से अनुदात्त नहीं होता है। इसलिये उसका प्रथम अक्षर 'शु' उदात्त है। उसके परे होने पर 'सरस्वति' के 'अनुदात्त' 'इ' को अनुदात्ततर आदेश होता है।*

__विशेष-__'सन्नतर' यह अनुदात्त की पूर्वाचार्यों की संज्ञा है।

अपृक्तसंज्ञा—

(१) अपृक्त एकाल् प्रत्ययः।४१।

प०वि०-अपृक्तः १।१ एकाल् १।१ प्रत्ययः १।१।

स०-एकश्चासावल् इति एकाल् (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अन्वयः-एकाल् प्रत्ययोऽपृक्तः।

अर्थः-एकाल् प्रत्ययोऽपृक्तसंज्ञको भवति। एकशब्दोऽसहायवाची।

उदा०-घृतस्पृक्। अर्धभाक्। पादभाक्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(एकाल्-प्रत्ययः) एक अल् रूप प्रत्यय की (अपृक्तः) अपृक्त संज्ञा होती है। यहां एक शब्द असहायवाची है।

*उदा०-**घृतस्पृक्।** घृत+स्पृश्+क्विन्। घृत+स्पृश्+वि। घृत+स्पृश्+व्। घृत+स्पृश्+०। घृतस्पृश्। घृतस्पृश्+सु। घृतस्पृक्।*

*यहां घृत उपपदवाली **'स्पृश संस्पर्शने'** (तु०प०) धातु से **'स्पृशोऽनुदके क्विन्'** (३।२।५८) क्विन् प्रत्यय और उसकी इस सूत्र से 'अपृक्त' संज्ञा होकर **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६७) से उसका लोप हो जाता है। यहां **'क्विन् प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से कुत्व होता है।*

*(२) **अर्धभाक्।** अर्ध+भज्+ण्वि। अर्ध+भज्+वि। अर्ध+भाज्+व्। अर्ध+भाज्+०। अर्धभाज्+सु। अर्धभाक्।*

*यहां अर्ध उपपदवाली **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से **'भजो ण्विः'** (३।२।६२) से 'ण्वि' प्रत्यय और उसकी इस सूत्र से अपृक्त संज्ञा होकर उसका पूर्ववत् लोप हो जाता*

है। यहां 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से पदान्त 'ज्' को 'ग्' तथा 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

कर्मधारयसंज्ञा–

(१) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।४२।

प०वि०–तत्पुरुषः १।१ समानाधिकरणः १।१ कर्मधारयः १।१।

स०–समानम् अधिकरणं यस्य सः–समानाधिकरणः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–समानाधिकरणस्तत्पुरुषः समासः कर्मधारयसंज्ञको भवति।

उदा०–परमं च तद् राज्यं चेति–परमराज्यम्। उत्तमं च तद् राज्यं चेति–उत्तमराज्यम्।

*आर्यभाषा–**अर्थ**–(समानाधिकरणः) समान अभिधेयवाले (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास की (कर्मधारयः) कर्मधारय संज्ञा होती है। यहां अधिकरण शब्द अभिधेय अर्थ का वाचक है।*

*उदा०–परमं च तद् राज्यं चेति **परमराज्यम्**। बड़ा राज्य। उत्तमं च तद् राज्यं चेति **उत्तमराज्यम्**। श्रेष्ठ राज्य।*

*सिद्धि–(१) **परमराज्यम्**। यहां 'राज्य' शब्द कर्मधारय समास में है। अतः **'अकर्मधारयेराज्यम्'** (६।२।१३०) से उत्तरपद में आद्युदात्त स्वर नहीं होता है। इसी प्रकार से **उत्तम राज्यम्**।*

*(२) यहां **'परमराज्यम्'** पद के **परम** और राज्य दोनों पदों का अधिकरण=अभिधेय=वाच्यार्थ समाने=एक है। अतः यहां समानाधिकरण है। जहां समानाधिकरण होता है वहां समान लिङ्ग, समान वचन और समान ही विभक्ति होती है।*

उपसर्जनसंज्ञा–

(१) प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्।४३।

प०वि०–प्रथमानिर्दिष्टम् १।१ समासे ७।१ उपसर्जनम् १।१।

स०–प्रथमया निर्दिष्टम् इति प्रथमानिर्दिष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अन्वयः–समासे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनम्।

अर्थः–समासे=समासप्रकरणे प्रथमया विभक्त्या निर्दिष्टं पदम् उपसर्जनसंज्ञकं भवति।

उदा०-द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः-कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः। **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।** शङ्कुलया खण्ड इति शङ्कुलखण्डः, इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ-(समासे) समास-प्रकरण में (प्रथमा-निर्दिष्टम्) प्रथमा विभक्ति से निर्देश किये हुये पद की (उपसर्जनम्) उपसर्जन संज्ञा होती है। अष्टाध्यायी द्वितीय अध्याय के प्रथम और द्वितीय पाद में समास का प्रकरण है। उन सूत्रों में जिन पदों का प्रथमा विभक्ति लगाकर उपदेश किया है, उनकी यहां उपसर्जन संज्ञा की गई है। जैसे- ***द्वितीया श्रितातीतपतितप्राप्तापन्नैः***-*कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः।* ***तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन***-*शङ्कुलया खण्ड इति शङ्कुलखण्डः।* ***चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः***-*यूपाय दारु इति यूपदारु।* ***पञ्चमी भयेन*** *सिंहाद्भयम् इति सिंहभयम्।* ***षष्ठी***-*राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः।* ***सप्तमी-शौण्डैः***-*अक्षेषु शौण्ड इति अक्षशौण्डः।*

सिद्धि-(१) कष्टश्रितः। *कष्टं श्रित इति 'कष्टश्रितः' यहां* ***'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त्यप्राप्तापन्नैः'*** *(२।१।२४) से द्वितीया तत्पुरुष समास होता है। यहां समास विधायक सूत्र के* ***'द्वितीया'*** *पद में प्रथमा विभक्ति लगाकर निर्देश किया गया है। उसकी यहां उपसर्जन संज्ञा की है।*

उपसर्जन संज्ञा का लाभ यह है कि समास में दो पद होते हैं। उनका समास करते समय किस पद का पहले और किस पद का बाद में प्रयोग किया जाये? जिस पद की उपसर्जन संज्ञा है, उसका ***'उपसर्जनं पूर्वम्'*** *(२।२।३०) से पहले प्रयोग किया जाता है। जैसे-'कष्टश्रितः' में* ***द्वितीयान्त पद 'कष्टम्'*** *है, उसका समस्त पद में पहले प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेवें।*

(२) एकविभक्ति चापूर्वनिपाते।४४।

प०वि०-एकविभक्ति १।१ च अव्ययपदम्, अपूर्वनिपाते ७।१।

स०-एका विभक्तिर्यस्य तद्-एकविभक्ति (बहुव्रीहिः)। पूर्वश्चासौ निपातश्चेति-पूर्वनिपातः, न पूर्वनिपात इति अपूर्वनिपातः, तस्मिन्-अपूर्वनिपाते (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'समासे, उपसर्जनम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-समासे एकविभक्ति च उपसर्जमपूर्वनिपाते।

अर्थः-समासे विधीयमाने यद् एकविभक्तिकं पदं तद् उपसर्जनसंज्ञकं भवति, पूर्वनिपातम् उपसर्जनकार्यं वर्जयित्वा।

उदा०-**निष्क्रान्त:** कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बि:। **निष्क्रान्तं कौशाम्ब्या** इति निष्कौशाम्बिम्, इत्यादि। **कौशाम्बी**=प्रयागनगरम्। इलाहाबाद इति लौकिका:।

***आर्यभाषा*-*अर्थ*-**(*समासे*) *समास-विधान में* (*एकविभक्ति*) *जो पद नियत विभक्तिवाला होता है, उसकी* (*च*) *भी* (*उपसर्जनम्*) *उपसर्जन संज्ञा होती है, किन्तु* (*अपूर्वनिपाते*) *उसका समास में पूर्व प्रयोग नहीं होता है।*

उदा०-प्रथमा-*निष्क्रान्त: कौशम्ब्या इति निष्कौशाम्बि:।* ***द्वितीया***-*निष्क्रान्तं कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बिम्।* ***तृतीया***-*निष्क्रान्तेन कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बिना।* ***चतुर्थी***-*निष्क्रान्ताय कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बये।* ***पञ्चमी***-*निष्क्रान्तात् कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बे:।* ***षष्ठी***-*निष्क्रान्तस्य* ***कौशाम्ब्या*** *इति निष्कौशाम्बे:।* ***सप्तमी***-*निष्क्रान्ते कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बौ। निष्कौशाम्बि:=कौशाम्बी (प्रयाग) से निकला हुआ।*

सिद्धि-*(१)* ***निष्कौशाम्बि:।*** *यहां* ***'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:'*** *(वा० २।२।१८)* ***इस*** *वार्तिक से समास करने पर पूर्वपद के नानाविभक्तिवाला होने पर भी उत्तरपद* ***'कौशाम्ब्या:'*** *पञ्चमी विभक्तिवाला ही रहता है। अत: वह एक विभक्तिवाला पद होने से उसकी यहां उपसर्जन संज्ञा की गई है।* ***'उपसर्जनं पूर्वम्'*** *(२।२।३०) से उपसर्जन संज्ञावाले पद का समस्त पद में पहले प्रयोग किया जाता है, किन्तु इस एक विभक्तिवाले उपसर्जन-संज्ञक पद का पूर्व प्रयोग नहीं होता है। यहां 'कौशाम्बी' शब्द की उपसर्जन संज्ञा होने से 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (१।२।४८) से ह्रस्व हो जाता है।*

प्रातिपदिकप्रकरणम्

प्रातिपदिक-संज्ञा-

(१) अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्।४५।

प०वि०-अर्थवत् १।१ अधातु: १।१ अप्रत्यय: १।१ प्रातिपदिकम् १।१।

स०-अर्थोऽस्यास्तीति अर्थवत् (तद्धितवृत्ति:)। न धातु:-अधातु: (नञ्तत्पुरुष:)। न प्रत्यय:-अप्रत्यय: (नञ्तत्पुरुष:)।

अन्वय:-अर्थवत् प्रातिपदिकमधातुरप्रत्यय:।

अर्थ:-अर्थवत् शब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञकं भवति, धातुं प्रत्ययं च वर्जयित्वा।

उदा०-डित्थ:। **कपित्थ:।** कुण्डम्। **वनम् इत्यादि।**

आर्यभाषा-अर्थ-(अर्थवत्) अर्थवान् शब्द की (प्रातिपदिकम्) प्रातिपदिक संज्ञा होती है, किन्तु (अधातुः) धातु को छोड़कर तथा (अप्रत्ययः) प्रत्यय को छोड़कर। धातु और प्रत्यय भी अर्थवान् शब्द हैं, उनकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है।

उदा०-डित्थः। कपित्थः। कुण्डम्। वनम् इत्यादि।

***सिद्धि-(१) डित्थः।** डित्थ+सु। डित्थ+स्। डित्थ+र्। डित्थ+ः। डित्थ। 'डित्थ' किसी व्यक्ति का नाम है। उसके अर्थवान् होने से उसकी यहां प्रातिपदिक संज्ञा की गई है। जिसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है उससे **'स्वौजस्०'** (४।१।२) से सु, औ, जस् आदि प्रत्यय होते हैं।*

(२) अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय से आरम्भ करके पञ्चम अध्याय के अन्त तक प्रातिपदिक का अधिकार है। वहां पाणिनिमुनि ने प्रातिपदिक से स्त्री-प्रत्यय और तद्धित प्रत्ययों का विधान किया है।

प्रातिपदिक-संज्ञा-

(२) कृत्तद्धितसमासाश्च।४६।

प०वि०-कृत्-तद्धित-समासाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-कृत् च तद्धितश्च समासश्च ते-कृत्तद्धितसमासाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'प्रादिपदिकम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कृत्तद्धितसमासाश्च प्रातिपदिकम्।

अर्थः-कृत्प्रत्ययान्ताः, तद्धितप्रत्ययान्ताः शब्दाः, समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-(कृत्प्रत्ययान्ताः) कारकः। हारकः। **कर्ता।** हर्ता। **(तद्धितप्रत्ययान्ताः)** औपगवः। **कापटवः। (समासः)** राज**पुरुषः।** कष्टश्रितः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृत्-तद्धित-समासाः) कृत्-प्रत्ययान्त, तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों की और समास की (प्रातिपदिकम्) प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

*उदा०-(कृत्) कारकः। करनेवाला। हारकः। करनेवाला। कर्ता। करनेवाला। हर्ता। हरनेवाला। **(तद्धित)** औपगवः। उपगु का पुत्र। कापटवः। कपटु का पुत्र। **(समासः)** राजपुरुषः। राजा का पुरुष। ब्राह्मणकम्बलः। ब्राह्मण का कम्बल।*

***सिद्धि-(१) कारकः।** कृ+ण्वुल्। कृ+वु। कृ+अक। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से **कृत् ण्वुल्** प्रत्यय, **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अङ्ग को वृद्धि होती है। 'ण्वुल्' कृत्-संज्ञक प्रत्यय है। कारक शब्द को कृदन्त होने से उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'कारक' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार **'हृञ् हरणे'** (भ्वादि०) धातु से 'हारकः' शब्द सिद्ध करें।*

*(२) **कर्ता।** कृ+तृच्। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता। यहां पूर्ववत् कृ धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय करने पर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है। 'तृच्' प्रत्यय कृत्संज्ञक है। कर्तृ शब्द के कृदन्त होने से उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने से पूर्ववत् 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार **'हृञ् हरणे'** धातु से हर्ता शब्द सिद्ध करें।*

*(३) **औपगवः।** उपगु+अण्। औपगु+अ। औपगो+अ। औपगव्+अ। औपगव+अ। औपगव+सु। औपगवः।*

*यहां उपगु शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में तद्धित अण्प्रत्यय, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अङ्ग को गुण होता है। 'अण्' प्रत्यय के तद्धित होने से **'औपगवः'** की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और उससे पूर्ववत् 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार 'कपटु' शब्द से कापटवः शब्द सिद्ध करें।*

*(४) **राजपुरुषः।** राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः। यहां **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। यहां समास की प्रातिपदिक संज्ञा की है। अतः इससे पूर्ववत् 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणस्य कम्बल इति ब्राह्मणकम्बलः।*

*विशेष-(१) **'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'** (१।४।४५) से प्रत्यय की प्रातिपदिक संज्ञा का पर्युदास प्रतिषेध किया गया था किन्तु इस सूत्र के द्वारा कृत् और तद्धित प्रत्यय की प्रातिपादिक संज्ञा का विधान किया गया है।*

(२) समास में पदों का समुदाय होता है। अर्थवान् पदसमुदाय में केवल समास की ही प्रातिपदिक संज्ञा का नियम किया गया है। इससे वाक्यरूप पदसमुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है-देवदत्तो वेदं पठति।

प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः–

(३) ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य।४७।

प०वि०–ह्रस्वः १।१ नपुंसके ७।१ प्रातिपदिकस्य ६।१।

अन्वयः–नपुंसके प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः।

अर्थः–नपुंसकलिङ्गेऽर्थे वर्तमानस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति।

उदा०-(रै) अतिरि कुलम्। (नौ) अतिनु कुलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग अर्थ में विद्यमान (प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक के अन्तिम अच् को (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।

उदा०-(रै) अतिरि कुलम्। धन को जीतनेवाला कुल। (नौ) अतिनु कुलम्। नौका को जीतनेवाला कुल।

*सिद्धि-(१) अतिरि। अति+रै। अति+रि। अतिरि+सु। अतिरि। यहां '**अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया**' (वा० २।२।१८) से प्रादि-समास है। '**रायम् अतिक्रान्तमिति अतिरि कुलम्**' यहां 'अतिरि' शब्द 'कुलम्' का विशेषण होने से नपुंसकलिङ्ग अर्थ में विद्यमान है, अतः उसे इस सूत्र से ह्रस्व हो जाता है। '**एच इग्घ्रस्वादेशे**' (१।१।४८) से 'एच्' के स्थान में 'इक्' ही ह्रस्व होता है। इसी प्रकार से '**नावमतिक्रान्तमिति अतिनु कुलम्**' समझें।*

प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः–

(४) गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य।४८।

प०वि०-गो-स्त्रियोः ६।२ उपसर्जनस्य ६।१।

स०-गौश्च स्त्री च ते-गोस्त्रियौ, तयोः-गोस्त्रियोः। (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'ह्रस्वः, प्रातिपदिकस्य' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनस्य गोस्त्रियोः प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः।

अर्थः-उपसर्जनगोशब्दान्तस्य, उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति।

उदा०-(**उपसर्जनगोशब्दान्तस्य**) चित्रा गावो यस्य सः-चित्रगुः। शबला गावो यस्य सः-शबलगुः। (**उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य**) निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्जनस्य) उपसर्जन संज्ञावाले (गो-स्त्रियोः) गो-शब्दान्त तथा स्त्रीप्रत्ययान्त (प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक के अन्त्य अच् को (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।

उदा०-(उपसर्जनगोशब्दान्त) चित्रा गावो यस्य सः-चित्रगुः। शबला गावो यस्य सः-शबलगुः। (उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्त) निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बिः।

*सिद्धि-(१) चित्रगुः। चित्र+गो+सु। यहां '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। सूत्र में 'अनेकम्' पद प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट होने से बहुव्रीहि*

समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं। यहां बहुव्रीहि समास में गो शब्द के उपसर्जन होने से गोशब्दान्त प्रातिपदिक 'चित्रगो' शब्द को ह्रस्व हो जाता है।

*(२) **निष्कौशाम्बिः।** निस्+कौशाम्बी। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या इति निष्कौशाम्बिः। यहां '**निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः**' (वा० २।२।१८) से प्रादि समास है और '**एकविभक्ति चापूर्वनिपाते**' से स्त्रीप्रत्ययान्त कौशाम्बी शब्द की उपसर्जन संज्ञा है। इस सूत्र से उसे ह्रस्व का विधान किया गया है।*

उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक्–

(१) लुक् तद्धितलुकि।४६।

प०वि०–लुक् १।१ तद्धितलुकि ७।१।

स०–तद्धितस्य लुक् इति तद्धितलुक्, तस्मिन्-तद्धितलुकि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'स्त्री, उपसर्जनस्य' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तद्धितलुकि उपसर्जनस्य स्त्रीप्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः–तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति, उपसर्जनस्य स्त्रीप्रत्ययस्यापि लुग् भवति।

उदा०–पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्येति-पञ्चेन्द्रः। पञ्चभिः शष्कुलीभिः क्रीत इति पञ्चशष्कुलिः। आमलक्याः फलमिति आमलकम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(तद्धित-लुकि) तद्धितप्रत्यय का लुक् हो जाने पर (उपसर्जनस्य) उपसर्जनसंज्ञावाले (स्त्रियः) स्त्रीप्रत्यय का (लुक्) लुक् हो जाता है।*

उदा०-पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्येति-पञ्चेन्द्रः। वह पुरोडाश जिसकी पांच इन्द्राणियां स्वामिनी हैं। दशेन्द्राण्यो देवता अस्येति-दशेन्द्रः। वह पुरोडाश जिसकी दस इन्द्राणियां स्वामिनी हैं। पञ्चभिः शष्कुलीभिः क्रीत इति पञ्चशष्कुलिः। पांच कचोरियों से खरीदा हुआ पदार्थ। आमलक्याः फलमिति आमलकम्। आंवला फल।

*(१) **पञ्चेन्द्रः।** पञ्च+इन्द्राणी+अण्। पञ्च+इन्द्राणी+०। पञ्चेन्द्र+सु। पञ्चेन्द्रः। यहां '**साऽस्य देवता**' (४।२।२४) से तद्धित 'अण्' प्रत्यय, उसका '**द्विगोर्लुगपत्ये**' (४।१।८८) से लुक् हो जाने पर इस सूत्र से इन्द्राणी शब्द में विद्यमान स्त्री-प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। इसी प्रकार से दशेन्द्रः।*

*(२) **पञ्चशष्कुलिः।** पञ्च+शष्कुली+अण्। पञ्च+शष्कुली+०। पञ्च+शष्कुलि+सु। पञ्चशष्कुलिः। यहां 'तेन क्रीतम्' (५।१।३७) से तद्धित 'अण्' प्रत्यय और पूर्ववत् उसका लुक् हो जाने पर इस सूत्र से शष्कुली शब्द में विद्यमान स्त्री-प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।*

(३) आमलकम्। आमलकी+अण्। आमलकी+०। आमलक+सु। आमलकम्। यहां 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' (४।३।१३५) से विकार और अवयव अर्थ में तद्धित अण् प्रत्यय और उसका 'फले लुक्' (४।३।१६३) से लुक् हो जाने पर आमलकी शब्द में विद्यमान स्त्री-प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।

गोणीशब्दस्य इकारादेशः–

इद् गोण्याः।५०।

प०वि०–इत् १।१ गोण्याः १।१।

अनु०–'तद्धितलुकि' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तद्धितलुकि गोण्या इत्।

अर्थः–तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति गोणीशब्दस्य इकारादेशो भवति। पूर्वसूत्रेण लुकि प्राप्ते तदपवाद इकारादेशो विधीयते।

उदा०–पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीत इति पञ्चगोणिः पटः। दशभिर्गोणीभिः क्रीत इति दशगोणिः पटः।

आर्यभाषा–अर्थ–(गोण्याः) *गोणी शब्द से विहित (तद्धित-लुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर, उस गोणी शब्द के अन्त्य अच् को (इत्) इकार आदेश होता है। पूर्वसूत्र से स्त्रीप्रत्यय के लुक् करने का विधान किया गया था। इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का लुक् न होकर इकार आदेश का विधान किया है।*

उदा०–पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीत इति पञ्चगोणिः पटः। दशभिर्गोणीभिः क्रीत इति दशगोणिः पटः। पांच वा दश गोणी देकर खरीदा हुआ कपड़ा।

सिद्धि–(१) पञ्चगोणिः। *पञ्चगोणी+अण्। पञ्चगोणी+०। पञ्चगोणि+सु। पञ्चगोणिः। यहां 'तेन क्रीतम्' (५।१।३७) से तद्धित अण् प्रत्यय और उसका पूर्ववत् लुक् हो जाने पर गोणी शब्द में विद्यमान स्त्रीप्रत्यय को इस सूत्र से इकार आदेश हो जाता है। गोणी=एकद्रोण (२० सेर)।*

पूर्वाचार्यमतस्थापना

लिङ्गवचनस्य पूर्ववद्भावः–

(१) लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने।५१।

प०वि०–लुपि ७।१, युक्तवद् अव्ययपदम्, व्यक्तिवचने १।२।

स०–युक्तेन तुल्यमिति युक्तवत् (तद्धितवृत्तिः)। व्यक्तिश्च वचनं च ते–व्यक्तिवचने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तद्धितलुपि व्यक्तिवचने।

अर्थः-तद्धितप्रत्ययस्य लुपि सति व्यक्तिवचने=लिङ्गसंख्ये युक्तवत्=पूर्ववद् भवतः। पञ्चाला नाम क्षत्रियाः, तेषां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। कुरवः। मगधाः। मत्स्याः। अङ्गाः। बङ्गा। सुह्माः। पुण्ड्राः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुपि) तद्धित प्रत्यय का लुप् हो जाने पर (व्यक्ति-वचने) लिङ्ग और संख्या (युक्तवत्) जिससे वह प्रत्यय युक्त किया था उस प्रकृति के ही समान होते हैं।

उदा०-पञ्चाला नाम क्षत्रियाः, तेषां निवासो जनपदः पञ्चाला कुरवः। मगधाः। मत्स्याः। अङ्गा। बङ्गा। सुह्माः। पुण्ड्राः।

*सिद्धि-(१) पञ्चालाः। पञ्चाल+अण्। पञ्चाल+०। पञ्चाल+जस्। पाञ्चालाः। यहां क्षत्रियवाची पुंलिङ्ग बहुवचन विषय पञ्चाल शब्द से **'तस्य निवासः'** ४।२।६।९) से तद्धित अण् प्रत्यय और 'जनपदे लुप्' (४।२।८१) से उसका लुप् हो जाने पर पञ्चाल शब्द के लिङ्ग और वचन पूर्ववत् रहते हैं।*

विशेष-व्यक्ति और वचन क्रमशः लिङ्ग और संख्या की पूर्वाचार्यकृत संज्ञायें हैं।

विशेषणानामपि लिङ्गवचनस्य पूर्ववद्भावः-

(२) विशेषणानां चाजातेः।५२।

प०वि०-विशेषणानाम् ६।३ च अव्ययपदम्, अजातेः ६।१।

स०-विशेषणं च विशेषणं च विशेषणं च तानि-विशेषणानि, तेषाम्-विशेषणानाम् (एकशेषद्वन्द्वः) न जातिरिति-अजातिः, तस्याः-अजातेः।

अनु०-'लुपि युक्तवद व्यक्तिवचने' इति सर्वमनुवर्तते।

अन्वयः-तद्धितलुपि विशेषणानां च व्यक्तिवचने युक्तवद् अजातेः।

अर्थः-तद्धितप्रत्ययस्य लुपि सति तस्य विशेषणानामपि व्यक्तिवचने= लिङ्गसंख्ये युक्तवत्=पूर्ववद् भवतः, जातिं वर्जयित्वा।

उदा०-पञ्चाला नाम क्षत्रियाः, तेषां निवासो जनपदः पञ्चालाः, ते रमणीयाः, बह्वन्नाः, बहुक्षीरघृताः बहुमाल्यफलाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुपि) प्रत्यय का लुप् हो जाने पर (विशेषणानाम्) विशेषणवाची शब्दों के (च) भी (व्यक्ति-वचने) लिङ्ग और वचन (युक्तवत्) जिससे वह प्रत्यय युक्त किया था उस प्रकृति के समान ही होते हैं (अजातेः) जातिवाची विशेषणों को छोड़कर।

उदा०-पञ्चाला नाम क्षत्रियाः, तेषां निवासो जनपदः पञ्चालाः। ते-रमणीयाः, बहवन्नाः, बहुक्षीरघृताः, बहुमाल्यफलाः। पञ्चाल नामक क्षत्रियों का पञ्चाल नामक जनपद सुन्दर, बहुत अन्नवाला, बहुत दूध और घीवाला और बहुत फूल और फलवाला है।

सिद्धि-(१) पञ्चाला रमणीयाः। यहां पञ्चाल शब्द से पूर्ववत् तद्धित प्रत्यय के लुप् हो जाने पर उसके विशेषणवाची रमणीय आदि शब्दों के लिङ्ग और वचन भी युक्तवत् (प्रकृतिवत्) रहते हैं।

पूर्वाचार्यमतखण्डनम्

युक्तवद्भाववचनमशिष्यम्–

(१) तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्।५३।

प०वि०-तत् १।१ अशिष्यम् १।१ संज्ञा-प्रमाणत्वात् ५।१।

स०-शासितुं योग्यं शिष्यम्, न शिष्यमिति-अशिष्यम् (नञ्तत्पुरुषः), संज्ञायाः प्रमाणमिति संज्ञाप्रमाणम् (षष्ठीतत्पुरुषः), संज्ञाप्रमाणस्य भाव इति संज्ञाप्रमाणत्वम्, तस्मात्-संज्ञाप्रमाणत्वात् (तद्धितवृत्तिः)।

अर्थः-तद् युक्तवद्भाववचनं अशिष्यम्=न कर्त्तव्यम्, संज्ञाप्रमाणत्वात्=लोकप्रमाणत्वात्।

उदा०-पञ्चालाः, वरणाः। जनपदसंज्ञा एताः। अत्र लिङ्गवचनं लोकसिद्धमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(तद्) वह पूर्वोक्त युक्तवद् भाव (अशिष्यम्) उपदेश करने के योग्य नहीं है, क्योंकि (संज्ञा-प्रमाणत्वात्) संज्ञा के प्रमाण होने से।

प्रत्यय का लुप् हो जाने पर शब्द के लिङ्ग और वचन को युक्तवत्=पूर्ववत् बनाये रखने के लिये पूर्वाचार्यों ने जो सूत्र बनाये हैं, उनका पाणिनिमुनि ने यहां खण्डन किया है कि उस युक्तवद् भाव के उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 'पञ्चालाः' आदि शब्द कोई योगजन्य शब्द नहीं हैं, अपितु ये संज्ञा शब्द हैं। ये जनपद की संज्ञायें हैं। उनमें लिङ्ग और वचन स्वभावसिद्ध हैं, यत्नसाध्य नहीं। जैसे आपः, दाराः, गृहाः, सिकलाः, वर्षाः आदि शब्दों के लिङ्ग और वचन संज्ञाप्रमाण से सिद्ध हैं।

लुब्विधायकसूत्रमशिष्यम्–

(२) लुब् योगाप्रख्यानात्।५४।

प०वि०-लुप् १।१ योग-अप्रख्यानात् ५।१।

स०-न प्रख्यानमिति अप्रख्यानम् (नञ्तत्पुरुषः)। योगस्य

अप्रख्यानमिति योगाप्रख्यानम्, तस्मात्-योगाप्रख्यानात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'अशिष्यम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-लुब् अशिष्यं योगाप्रख्यानात्।

अर्थः-लुप्-विधायकं सूत्रमपि अशिष्यम्=न वक्तव्यम्, योगाप्रख्यानात्= सम्बन्धस्याऽप्रसिद्धत्वात्।

उदा०-पञ्चालाः। वरणाः। एता देशविशेषस्य संज्ञाः, न हि निवाससम्बन्धादेव पञ्चालाः कथ्यन्ते, न हि वृक्षविशेषसम्बन्धादेव ते 'वरणाः' इत्युच्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुप्) विधायक सूत्र भी (अशिष्यम्) उपदेश करने के योग्य नहीं है, क्योंकि (रोग अप्रख्यानात्) योग=सम्बन्ध के अप्रसिद्ध होने से।

उदा०-पञ्चालाः। वरणाः।

*सिद्धि-लुप् का विधान करनेवाले **'जनपदे लुप्'** (४।२।८१) और **'वरणादिभ्यश्च'** (४।२।८२) सूत्रों के उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वरण नाम वृक्षविशेष के योग से 'वरणाः' शब्द प्रख्यात होगया है; ऐसी बात नहीं है किन्तु ये तो जनपद आदि की संज्ञायें ही हैं। इसलिये यहां **'तस्य निवासः'** (४।२।६९) तथा **'अदूरभवश्च'** (४।२।७०) से तद्धित प्रत्यय ही नहीं हो सकता, फिर उसे लुप् करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।*

योगप्रमाणेऽपि दोषदर्शनम्-

३) योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्।५५।

प०वि०-योगप्रमाणे ७।१ च अव्ययपदम्, तदभावे ७।१। अदर्शनम् १।१, स्यात् क्रियापदम्।

स०-योगस्य प्रमाणमिति योगप्रमाणम्, तस्मिन् योगप्रमाणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। तस्याभाव इति तदभावः, तस्मिन्-तदभावे (षष्ठीतत्पुरुषः)। न दर्शनमिति अदर्शनम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'लुप् अशिष्यम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-योगप्रमाणे च तद् अशिष्यं तदभावेऽदर्शनं स्यात्।

अर्थः-योगप्रमाणे=सम्बन्धविशेषस्य प्रमाणे सत्यपि लुप्-विधायकं सूत्रम् अशिष्यम्=न वक्तव्यम्, यतो हि तदभावे=सम्बन्धविशेषस्याभावे तस्य शब्दप्रयोगस्यापि अदर्शनम्=लोपः स्यात्, न च तथा भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(योगप्रमाणे) यदि योग=सम्बन्धविशेष को प्रमाण मान लेने पर (च) भी (लुप्) लुप् विधायक सूत्र (अशिष्यम्) उपदेश करने योग्य नहीं है क्योंकि (तदभावे) उस योग सम्बन्धविशेष का अभाव हो जाने पर (अदर्शनम्) उस शब्द के प्रयोग का भी लोप (स्यात्) हो जाना चाहिये।

सिद्धि-यदि कोई आचार्य यह कहता है कि 'पञ्चालाः' नामक क्षत्रियों के निवास के योग से उस जनपद का नाम 'पञ्चालाः' है और 'वरणाः' नामक वृक्षविशेष के योग से किसी जनपद का नाम 'वरणाः' है तो यह नाम योग (सम्बन्ध) के अभाव में नहीं रहना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं है। अब उन क्षत्रियों के सम्बन्ध के विना भी उस जनपद को 'पञ्चालाः' कहा जाता है और 'वरण' नामक वृक्षविशेष के सम्बन्ध के विना भी 'वरणाः' कहा जारहा है। रोहितक (रोहेड़ा) वन न रहने पर भी रोहतक कहा जारहा है।

प्रकृतिप्रत्ययार्थवचनमशिष्यम्-

(४) प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्।५६।

प०वि०-प्रधान-प्रत्ययार्थवचनम् १।१ अर्थस्य ६।१ अन्यप्रमाणत्वात् ५।१।

स०-प्रधानं च प्रत्ययश्च तौ-प्रधानप्रत्ययौ, तयोः-प्रधानप्रत्ययोः, अर्थस्य वचनम् इति अर्थवचनम्, प्रधानप्रत्यययोरर्थवचनमिति प्रधानप्रत्ययार्थवचनम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। अन्यस्य प्रमाणमिति-अन्यप्रमाणम्, अन्यप्रमाणस्य भावोऽन्यप्रमाणत्वम्, तस्मात्-अन्यप्रमाणत्वात् (षष्ठीतत्पुरुषगर्भिततद्धितवृत्तिः)।

अनु०-'अशिष्यम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रधानप्रत्ययार्थवचनं चाशिष्यमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्।

अर्थः-प्रधानार्थवचनं प्रत्ययार्थवचनं चाशिष्यम्=न वक्तव्यम्, अर्थस्याऽन्यप्रमाणत्वात्=लोकप्रमाणत्वात्। शास्त्रादन्यो लोकः।

पुरा वैयाकरणैः **'प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं सह ब्रूतः', प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः'** इति प्रधानार्थवचनं प्रत्ययार्थवचनं च कृतम्। तत् पाणिनिः प्रत्याचष्टे-प्रधानार्थवचनं प्रत्ययार्थवचनं च लोकप्रमाणत एव सिद्धम्। 'राजपुरुषमानय' इत्युक्ते न राजानमानयन्ति, न च पुरुषमात्रम्, अपितु राजविशिष्टः पुरुष आनीयते। 'औपगवमानय' इत्युक्ते नोपगुमानयन्ति न

चापत्यमात्रम्, अपितु उपगुविशिष्टमपत्यमानीयते। लोको हि प्रधानार्थवचनं च सम्यग् अवगच्छति, किं तत्र शास्त्रप्रयासेन ?

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रधान-प्रत्ययार्थवचनम्) प्रधानार्थ और प्रत्ययार्थ का कथन भी (अशिष्यम्) उपदेश करने के योग्य नहीं है क्योंकि (अर्थस्य) अर्थ के सम्बन्ध में (अन्यप्रमाणत्वात्) शास्त्र से अन्य=लोक को ही प्रमाण मानने से।

*सिद्धि-पूर्वाचार्यों ने **"प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं सह ब्रूत'"** अर्थात् प्रधान और उपसर्जन=गौण दोनों पद मिलकर समास में प्रधान अर्थ का कथन करते हैं।, **'प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः'** प्रकृति और प्रत्यय मिलकर प्रत्ययार्थ का कथन करते हैं, इस प्रकार के सूत्र बनाये थे। इस विषय में पाणिनिमुनि का मत यह है कि इस प्रकार के सूत्र-उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शब्दों के द्वारा अर्थ का कथन स्वाभाविक है, पारिभाषिक नहीं और वह लोक-प्रमाण से सिद्ध हो जाता है। जिन लोगों ने व्याकरण नहीं पढ़ा वे भी, जब यह कहा जाता है कि **'राजपुरुषमानय'** अर्थात् राजपुरुष को बुलाओ तो वे राजविशिष्ट पुरुष को ले आते हैं, राजा को अथवा पुरुषमात्र को नहीं लाते। जो प्रयोजन लोक से सिद्ध है, उसमें शास्त्र उपदेश रूप प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ?*

कालोपसर्जनलक्षणमशिष्यम्–

(५) कालोपसर्जने च तुल्यम्।५७।

प०वि०–काल-उपसर्जने १।२ च अव्ययपदम्, तुल्यम् १।१।

स०–कालश्च उपसर्जनं च ते-कालोपसर्जने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–'अशिष्यम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–कालोपसर्जने च तुल्यम् अशिष्यम्।

अर्थः–काल उपसर्जनं च पूर्वेण तुल्यम् अशिष्यम्=न वक्तव्यम्, तत्रापि लोकप्रमाणत्वात्।

पुरा वैयाकरणैः **'आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशनाद् एषोऽद्यतनः कालः'** इति काललक्षणं कृतम्, **'अप्रधानमुपसर्जनम्'** इति चोपसर्जन-लक्षणं कृतम्। तत् पाणिनिः प्रत्याचष्टे-इदं काललक्षणमुपसर्जनलक्षणं च लोकप्रमाणत एव सिद्धम्, किं तत्र शास्त्रप्रयत्नेन ?

*आर्यभाषा-अर्थ-(काल-उपसर्जने) काल और उपसर्जन (च) भी (तुल्यम्) **पूर्व के** समान (अशिष्यम्) उपदेश करने योग्य नहीं हैं क्योंकि उनमें भी (अन्यप्रमाणत्वात्) **शास्त्र से अन्य=लोक को ही प्रमाण मानने से।***

*सिद्धि–कुछ वैयाकरणों ने काल और उपसर्जन की परिभाषायें की हैं। जैसे- '**आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशनात्, एषोऽद्यतनः कालः**' अर्थात् उठने से लेकर सोने तक के काल को अद्यतन काल कहते हैं। '**अहरुभयतोऽर्धरात्रम् एषोऽद्यतनः कालः**' अर्धरात्रि के दोनों ओर जो दिन है, उसे अद्यतन काल कहा जाता है। '**अप्रधानमुपसर्जनम्**' अप्रधान को उपसर्जन कहते हैं। इस विषय में पाणिनिमुनि का मत यह है कि काल और उपसर्जन के लक्षण-उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह लोकप्रमाण से ही सिद्ध हो जाता है। जिन लोगों ने व्याकरण नहीं पढ़ा वे भी ऐसा कहते हैं कि '**इदमस्माभिरद्य कृतम्, इदं श्वः कर्त्तव्यम्, इदं ह्यः कृतम्**' इत्यादि। इसी प्रकार 'उपसर्जनं वयमत्र गृहे ग्रामे वा' ऐसा कहने पर लोक में यह समझा जाता है कि हम इस घर में अथवा ग्राम में अप्रधान हैं। अतः जो अर्थ लोक से सिद्ध है, उसमें शास्त्र के द्वारा प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है?*

वचनप्रकरणम्

एकवचने बहुवचनविकल्पः–

(१) जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्।५८।

प०वि०–जाति-आख्यायाम् ७।१ एकस्मिन् ७।१ बहुवचनम् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययम्।

स०–जातेराख्या इति जात्याख्या, तस्याम्–जात्याख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–जात्याख्यायामेकस्मिन् अन्यतरस्यां बहुवचनम्।

अर्थः–जाति-आख्यामेकस्मिन्नर्थे विकल्पेन बहुवचनं भवति।

उदा०–(एकवचनम्) सम्पन्नो यवः। सम्पन्नो व्रीहिः। पूर्ववया ब्राह्मणो प्रत्युत्थेयः। **(बहुवचनम्)** सम्पन्ना यवाः। सम्पन्ना व्रीहयः। पूर्ववयसो ब्राह्मणाः प्रत्युत्थेयाः।

आर्यभाषा–अर्थ–(जाति-आख्यायाम्) जाति का कथन करते समय (एकस्मिन्) एकवचन में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (बहुवचन) बहुवचन होता है।

*उदा०–**(एकवचन)** सम्पन्नो यवः। **(बहुवचन)** सम्पन्ना यवाः। समृद्ध जौ। **(एकवचन)** सम्पन्नो व्रीहिः। **(बहुवचन)** सम्पन्ना व्रीहयः। समृद्ध चावल। **(एकवचन)** पूर्ववया ब्राह्मणः प्रत्युत्थेयः। **(बहुवचन)** पूर्ववयसो ब्राह्मणा प्रत्युत्थेयाः। पूर्वज ब्राह्मण का प्रत्युत्थानपूर्वक आदर करना चाहिये।*

विशेष-जाति एक अर्थ की वाचक होती है, इसलिये उसमें 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' (१।४।२२) से एकवचन ही हो सकता है। इस सूत्र से एकार्थवाची जाति शब्द में बहुवचन का भी उपदेश किया है।

एकवचने द्विवचने च बहुवचनविकल्पः-

(२) अस्मदो द्वयोश्च।५६।

प०वि०-अस्मदः ६।१ द्वयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

अनु०-'एकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अस्मद एकस्मिन् द्वयोश्चान्यतरस्यां बहुवचनम्।

अर्थः-अस्मद्-शब्दस्यैकवचने द्विवचने च विकल्पेन बहुवचनं भवति।

उदा०-(**एकवचने**) अहं ब्रवीमि। वयं ब्रूमः। (**द्विवचने**) आवां ब्रूवः। वयं ब्रूमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्मदः) अस्मद् शब्द के प्रयोग में (एकस्मिन्) एकवचन में और (द्वयोः) द्विवचन में (च) भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (बहुवचनम्) बहुवचन होता है।

उदा०-एकवचन में बहुवचन-अहं ब्रवीमि। मैं बोलता हूं। वयं ब्रूमः। हम बोलते हैं। (द्विवचन में बहुवचन) आवां ब्रूवः। हम दोनों बोलते हैं। वयं ब्रूमः। हम सब बोलते हैं।

द्विवचने बहुवचनविकल्पः-

(३) फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे।६०।

प०वि०-फल्गुनी-प्रोष्ठपदानाम् ६।३ च अव्ययपदम्, नक्षत्रे ७।१।

स०-फल्गुन्यौ च प्रोष्ठपदे च ताः-फल्गुनीप्रोष्ठपदाः, तासाम्-फल्गुनीप्रोष्ठपदानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'द्वयोः, बहुवचनम्, अन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नक्षत्रे फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च द्वयोर्बहुवचनमन्यतरस्याम्।

अर्थः-नक्षत्रवाचिनां फल्गुनी-प्रोष्ठपदानां च द्विवचने विकल्पेन बहुवचनं भवति।

उदा०-(**फल्गुनी**) **द्विवचनम्**-कदा पूर्वे फल्गुन्यौ। **बहुवचनम्**-कदा पूर्वाः फल्गुन्यः। (**प्रोष्ठपदा**) द्विवचनम्-कदा पूर्वे प्रोष्ठपदे। **बहुवचनम्**-कदा पूर्वाः प्रोष्ठपदाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(नक्षत्रे) नक्षत्रवाची (फल्गुनी-प्रोष्ठपदयोः) फल्गुनी और प्रोष्ठपदा शब्दों के (द्वयोः) द्विवचन में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (बहुवचनम्) बहुवचन होता है।

*उदा०-(फल्गुनी) **द्विवचन**-कदा पूर्वे फल्गुन्यः। **बहुवचन**-कदा पूर्वाः फल्गुन्यः। पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र कब है? **(प्रोष्ठपदा)** द्विवचन-कदा पूर्वे प्रोष्ठपदे। **बहुवचन**-कदा पूर्वाः प्रोष्ठपदाः। पूर्वा प्रोष्ठपदा नक्षत्र कब है?*

*विशेष-(१) **नक्षत्रों के नाम**-अश्विनी (अश्वयुक्)। भरणी। कृत्तिका। रोहिणी। मृगशीर्ष (मृगशिरः, आग्रहायणी)। आर्द्रा। पुनर्वसु। पुष्य (सिध्य, तिष्य)। आश्लेषा। मघा। पूर्वा फल्गुनी। उत्तरा फल्गुनी। हस्त। चित्रा। स्वाति। विशाखा। अनुराधा। ज्येष्ठा। मूल। पूर्वाषाढा। उत्तराषाढा। श्रवण। धनिष्ठा (श्रविष्ठा)। शतभिषज्। पूर्वा भाद्रपदा (पूर्वा प्रोष्ठपदा)। उत्तरा भाद्रपदा (उत्तरा प्रोष्ठपदा)। रेवती। ये २७ सत्ताईस नक्षत्र होते हैं।*

*अथर्ववेद का० १९ सू० ७ में २८वें अभिजित् नक्षत्र का भी वर्णन है। '**अष्टाविंशानि शिवानि**' (अ० १९।८।२)।*

(२) पूर्वा फल्गुनी दो नक्षत्रों का नाम है, किन्तु उनके द्विवचन में विकल्प से बहुवचन भी होता है। प्रोष्ठपदा (पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा) भी दो नक्षत्रों का नाम है किन्तु उनके द्विवचन में विकल्प से बहुवचन भी होता है।

द्विवचन-एकवचनविकल्पः-

(४) छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्।६१।

प०वि०-छन्दसि ७।१ पुनर्वस्वोः ६।२ एकवचनम् १।१।

अनु०-'नक्षत्रे द्वयोरन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नक्षत्रे पुनर्वस्वोर्द्वयोरन्यतरस्यामेकवचनम्।

अर्थः-छन्दसि=वैदिकभाषायां नक्षत्रवाचिनोः पुनवस्वोर्द्विवचने विकल्पेन एकवचनं भवति।

उदा०-**(द्विवचनम्)** पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता। **(एकवचनम्)** पुनर्वसुर्नक्षत्रमदितिर्देवता।

पुनर्वसू नाम द्वे नक्षत्रे। तत्र द्वित्वविवक्षायां द्विवचने प्राप्ते पक्षे एकवचनं विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) छन्द विषय में (नक्षत्रे) नक्षत्रवाची (पुनर्वस्वोः) पुनर्वसु शबद के (द्वयोः) द्विवचन में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एकवचनम्) एकवचन होता है।

उदा०-(द्विवचन) पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता। (एकवचन) पुनर्वसुर्नक्षत्रमदितिर्देवता।

*विशेष-पुनर्वसु दो नक्षत्र हैं, उनके द्विवचन में छन्द विषय में एकवचन भी हो जाता है। **पुनर्वसुर्नक्षत्रमदितिर्देवता।** पुनर्वसु नक्षत्र है और अदिति उसका देवता है।*

(५) विशाखयोश्च।६२।

प०वि०-विशाखयो: ७।२ च अव्ययपदम्।

अनु०-'छन्दसि नक्षत्रे द्वयो: एकवचनम्, अन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि नक्षत्रे विशाखायोश्च द्वयोरन्यतरस्यामेकवचनम्।

अर्थ:-छन्दसि=वैदिकभाषायां नक्षत्रवाचिनोर्विशाखयोर्द्विवचने विकल्पेन एकवचनं भवति।

उदा०-(द्विवचनम्) विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता। (एकवचनम्) विशाखा नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता।

विशाखा नाम द्वे नक्षत्रे। तत्र द्वित्वविवक्षायां द्विवचने प्राप्ते पक्षे एकवचनं विधीयते।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(छन्दसि) छन्द विषय में (नक्षत्रे) नक्षत्रवाची (विशाखयो:) विशाखा शब्द के (द्वयो:) द्विवचन में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एकवचनम्) एकवचन होता है। द्विवचन-**विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता।** एकवचन-**विशाखा नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता।***

*विशेष-(१) विशाखा दो नक्षत्र हैं। उनके द्विवचन में छन्द विषय में एकवचन भी हो जाता है। **विशाखा नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता।** विशाखा नक्षत्र है और उसका इन्द्राग्नी देवता है।*

बहुवचने नित्यं द्विवचनम्-

(६) तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्।६३।

प०वि०-तिष्य-पुनर्वस्वो: ६।२ नक्षत्रद्वन्द्वे ७।१ बहुवचनस्य ६।१ द्विवचनम् १।१ नित्यम् १।१।

स०-तिष्यश्च पुनर्वसू च तौ-तिष्य-पुनर्वसू, तयो:-तिष्यपुनर्वस्वो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। नक्षत्राणां द्वन्द्व इति नक्षत्रद्वन्द्व:, तस्मिन् नक्षत्रद्वन्द्वे (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अन्वय:-तिष्य पुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य नित्यं द्विवचनम्।

अर्थः-तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे कर्त्तव्ये बहुवचनस्य स्थाने नित्यं द्विवचनं भवति। उदितौ तिष्यपुनर्वसू दृश्येते।

तिष्यो नाम एकं नक्षत्रम्, पुनर्वसू नाम द्वे नक्षत्रे। तत्र नक्षत्रद्वन्द्वे कर्त्तव्ये बहुत्वविवक्षायां बहुवचने प्राप्ते नित्यं द्विवचनं विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तिष्य-पुनर्वस्वोः) तिष्य और पुनर्वसु शब्दों के (नक्षत्रद्वन्द्वे) नक्षत्रविषयक द्वन्द्व समास में (बहुवचनस्य) बहुवचन के स्थान में (नित्यम्) सदा (द्विवचनम्) द्विवचन होता है।

उदा०-(द्विवचन) उदितौ तिष्यपुनर्वसू दृश्येते। उदित हुये तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्र दिखाई दे रहे हैं।

सिद्धि-(१) तिष्यपुनर्वसू। तिष्यश्च पुनर्वसू च ते-तिष्यपुनर्वसू। (द्वन्द्वसमास) यहां तिष्य एक नक्षत्र है और पुनर्वसु दो नक्षत्र हैं। इनके द्वन्द्व समास में बहुत्व विवक्षा में बहुवचन होना चाहिये किन्तु इस सूत्र से वहां नित्य द्विवचन का ही विधान किया गया है।

एकशेषप्रकरणम्

एकशेषः सरूपाणाम्-

(१) सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ।६४।

प०वि०-सरूपाणाम् ६।३ एकशेषः १।१ एकविभक्तौ ७।१।

स०-समानं रूपं येषां ते-सरूपाः, तेषाम्-सरूपाणाम (बहुव्रीहिः) एकस्य शेष इति एकशेषः (षष्ठीतत्पुरुषः)। एका चासौ विभक्तिश्चेति एकविभक्तिः, तस्याम्-एकविभक्तौ (कर्मधारयः)

अन्वयः-सरूपाणामेकविभक्तावेकशेषः।

अर्थः-सरूपाणां शब्दानामेकविभक्तौ परत एकशेषो भवति, एकः शिष्यते; अन्ये निवर्तन्ते।

उदा०-वृक्षश्च वृक्षश्च तौ-वृक्षौ। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च ते-वृक्षाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(एकविभक्तौ) समान विभक्ति में विद्यमान (सरूपाणाम्) एकरूपवाले शब्दों में (एकशेषः) एक शब्द शेष रहता है, अन्य निवृत्त हो जाते हैं।

उदा०-वृक्षश्च वृक्षश्च तौ वृक्षौ। दो वृक्ष। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च ते वृक्षाः। सब वृक्ष।

विशेष-प्रत्येक अर्थ में शब्द का निवेश आवश्यक होने से एक शब्द से अनेक अर्थों का कथन नहीं किया जा सकता, और चाहते हैं कि एक शब्द से अनेक अर्थों का कथन किया जा सके। इसलिये यहां एकशेष प्रकरण का आरम्भ किया गया है।

यूना सह गोत्रं शेषः–

(२) वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः।६५।

प०वि०–वृद्धः १।१ यूना ३।१ तल्लक्षणः १।१ चेत् अव्ययपदम्, **एव** अव्ययपदम्, विशेषः १।१।

स०–सः (गोत्रप्रत्ययः, युवप्रत्ययश्च) लक्षणम् निमित्तं यस्य **सः**–तल्लक्षणः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–'शेषः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–वृद्धो यूना सह शेषः, तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः।

अर्थः–वृद्धः=गोत्रप्रत्ययान्तः शब्दः, यूना=युवप्रत्ययान्तेन शब्देन **सह** शिष्यते, तत्र यदि तल्लक्षणः=गोत्रप्रत्ययलक्षणो युवप्रत्ययलक्षश्**चैव** **विशेषो** भवति। वृद्ध इति पूर्वाचार्याणां **गोत्रस्य** संज्ञा।

उदा०–गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च तौ–**गार्ग्यौ**। वात्स्यश्च वात्स्यायनश्च **तौ**–वात्स्यौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(यूना) युवप्रत्ययान्त शब्द के साथ (वृद्धः) गोत्रप्रत्ययान्त शब्द (शेषः) शेष रहता है (चेत्) यदि वहां (तत्-लक्षणः) युवा और गोत्र प्रत्यय को बतलानेवाली (एव) ही (विशेषः) विशेषता हो। 'वृद्ध' यह पूर्वाचार्यों की गोत्र की संज्ञा है।

*उदा०-गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च तौ गार्ग्यौ। गार्ग्य और उसका पुत्र गार्ग्यायण, दोनों। **वात्स्यश्च** वात्स्यानश्च तौ वात्स्यौ। वात्स्य और उसका पुत्र वात्स्यायन, दोनों।*

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यौ**। गार्ग्य+गार्ग्यायण+औ। गार्ग्यौ। यहां 'गार्ग्य' शब्द में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय है और तत्पश्चात् गार्ग्य शब्द से '**यञिञोश्च**' (४।१।१०१) से युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय है। गार्ग्य और गार्ग्यायण को **एक** साथ कहने में गोत्रप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शब्द शेष रह जाता है और युवप्रत्ययान्त **गार्ग्यायण** शब्द निवृत्त हो जाता है-गार्ग्यौ।*

गोत्रं स्त्रीशेषस्तस्याः पुंवद्भावश्च–

(३) स्त्री पुंवच्च।६६।

प०वि०–स्त्री १।१ पुंवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

पुंसा तुल्यमिति पुंवत् (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–'शेषः, वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–वृद्धा स्त्री यूना सह शेषः पुंवच्च, तल्लक्षणश्चेदेव **विशेषः**।

अर्थः-वृद्धा=गोत्रप्रत्ययान्ता स्त्री युवप्रत्ययन्तेन शब्देन सह शिष्यते, सा च स्त्री पुंवद् भवति। तत्र यदि तल्लक्षणः=गोत्रप्रत्ययलक्षणो युवप्रत्ययलक्षणश्चैव विशेषो भवति।

उदा०-गार्गी च गार्ग्यायणश्च तौ-गार्ग्यौ। वात्सी च वात्स्यायनश्च तौ-वात्स्यौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(यूना) युवप्रत्ययान्त शब्द के साथ (वृद्धः) वृद्धप्रत्ययान्त (स्त्री) स्त्रीलिङ्ग (च) भी (शेषः) शेष रहता है और वह (पुंवत्) पुंलिङ्ग के तुल्य हो जाता है। (चेत्) यदि वहां (तल्लक्षणः) युवा और गोत्र प्रत्यय को बतलानेवाली (एव) ही (विशेषः) विशेषता हो।

उदा०-गार्गी च गार्ग्यायणश्च तौ गार्ग्यौ। गार्गी और गार्ग्य का पुत्र दोनों। वात्सी च वात्स्यायनश्च तौ वात्स्यौ। वात्सी और वात्स्य का पुत्र दोनों।

सिद्धि-(१) गार्ग्यौ। गार्गी+गार्ग्यायण+औ। गार्ग्यौ। यहां प्रथम गर्ग शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय होता है-गार्ग्य। उससे स्त्रीलिङ्ग में 'यञश्च' (४।१।१६) से ङीप् प्रत्यय होता है-गार्ग्य+ङीप्। गार्ग्य+ई। गार्गी। गोत्रप्रत्ययान्त गार्गी स्त्री और युवप्रत्ययान्त गार्ग्यायण के एक साथ कथन करने में गार्गी स्त्री शेष रह जाती है। उसके पुंवद् भाव होने से 'गार्ग्य' ही शब्द रह जाता है। ऐसे ही-वात्स्यः।

स्त्रिया सह पुमान्-

(४) पुमान् स्त्रिया।६७।

प०वि०-पुमान् १।१ स्त्रिया ३।१।

अनु०-'शेषः, तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पुमान् स्त्रिया सह शेषः, तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः।

अर्थः-पुमान्=पुरुषवाची शब्दः स्त्रीवाचिना शब्देन सह शिष्यते, तत्र यदि तल्लक्षणः=लिङ्गलक्षण एव विशेषो भवति।

उदा०-ब्रह्मणी च ब्राह्मणश्च तौ ब्राह्मणौ। कुक्कुटी च कुक्कुटश्च तौ-कुक्कुटौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्त्रिया) स्त्रीवाची शब्द के साथ (पुमान्) पुरुषवाची शब्द (शेषः) शेष रहता है (चेत्) यदि वहां (तल्लक्षणः) स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग को बतलानेवाली (एव) ही (विशेषः) विशेषता हो।

उदा०-ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च तौ ब्राह्मणौ। ब्राह्मणी और ब्राह्मण दोनों। कुक्कुटी च कुक्कुश्च तौ-कुक्कुटौ। मुर्गी और मुर्गा दोनों।

स्वसृदुहितृभ्यां सह भ्रातृपुत्रौ–

(५) भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्।६८।

प०वि०-भ्रातृ-पुत्रौ १।२ स्वसृ-दुहितृभ्याम् ५।२।

स०-भ्राता च पुत्रश्च तौ-भ्रातृपुत्रौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः), स्वसा च दुहिता च ते-स्वसृदुहितरौ ताभ्याम्-स्वसृदुहितृभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'शेष' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्यां शेषः।

अर्थः-भ्रातृपुत्रौ शब्दौ यथासंख्यं स्वसृदुहितृभ्यां शब्दाभ्यां सह शिष्येते।

उदा०-(भ्राता) स्वसा च भ्राता च तौ-भ्रातरौ (पुत्रः) दुहिता च पुत्रश्च तौ पुत्रौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वसृ-दुहितृभ्याम्) स्वसा और दुहिता शब्द के साथ यथासंख्य (भ्रातृपुत्रौ) भ्राता और पुत्र शब्द (शेषः) शेष रहता है अर्थात् स्वसा के साथ भ्राता और दुहिता के साथ पुत्र।

*उदा०-(भ्राता) स्वसा च भ्राता च तौ **भ्रातरौ**। बहन और भाई। (पुत्र) दुहिता च पुत्रश्च तौ **पुत्रौ**। पुत्री और पुत्र।*

अनपुंसकेन सह नपुंसकं वा चैकवद्भावः–

(६) नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्।६९।

प०वि०-नपुंसकम् १।१ अनपुंसकेन ३।१ एकवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् ७।१।

स०-न नपुंसकम् इति अनपुंसकम्, तेन-अनपुंसकेन (नञ्तत्पुरुषः)। एकेन तुल्यमिति एकवत् (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-'शेषः, तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकमनपुंसकेन शेषः, तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः **अस्य चान्यतरस्यामेकवत्**।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गशब्दोऽनपुंसकलिङ्गशब्देन सह शिष्यते, तत्र यदि तल्लक्षणः=पुलिङ्गलक्षण एव विशेषो भवति, अस्य शेषस्य च नपुंसकलिङ्गशब्दस्य विकल्पेन एकवत् कार्यं भवति, एकवचनं भवतीत्यर्थः।

उदा०-शुक्लश्च कम्बलः, शुक्ला च बृहतिका, शुक्लं च वस्त्रम् तदिदम्-शुक्लम्। तानीमानि-शुक्लानि।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनपुंसकेन) पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग शब्द के साथ (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग शब्द (शेषः) शेष रहता है, (चेत्) यदि वहां (तल्लक्षणः) पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग को बतलानेवाली ही (विशेषः) विशेषता हो। (च) और (अस्य) इस शेष नपुंसक शब्द को (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एकवत्) एक वचन के समान कार्य होता है।

उदा०-शुक्लश्च कम्बलः, शुक्ला च बृहतिका, शुक्लं च वस्त्रम्, तदिदम्-शुक्लम् (एकवचन)। तानीमानि शुक्लानि (बहुवचन)। बृहतिका=दुपट्टा।

मात्रा सह वा पिता–

(७) पिता मात्रा।७०।

प०वि०-पिता १।१ मात्रा ३।१।

स०-'शेषः, अन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पिता मात्रा शेषः।

अर्थः-पितृशब्दो मातृशब्देन सह विकल्पेन शिष्यते, पक्षे मातृशब्दो निवर्तते।

उदा०-माता च पिता च तौ-पितरौ। माता च पिता च तौ-मातापितरौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(मात्रा) माता शब्द के साथ (पिता) पिता शब्द (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शेषः) शेष रहता है।

उदा०-पिता-माता च पिता च तौ पितरौ। माता-पिता-माता च पिता च तौ मातापितरौ। पितरौ=माता और पिता।

श्वश्र्वा सह वा श्वशुरः–

(८) श्वशुरः श्वश्र्वा।७१।

प०वि०-श्वशुरः १।१ श्वश्र्वा ३।१।

अनु०-'शेषः, अन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-श्वशुरः श्वश्र्वा शेषः।

अर्थः-श्वशुरशब्दः श्वश्रूशब्देन सह विकल्पेन शिष्यते। पक्षे श्वश्रूशब्दो निवर्तति।

उदा०-श्वश्रूश्च श्वशुरश्च तौ-श्वशुरौ। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च तौ श्वश्रूश्वशुरौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्वश्र्वा) श्वश्रू शब्द के साथ (श्वशुरः) श्वशुर शब्द (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शेषः) शेष रहता है।

उदा०-श्वश्रूश्च श्वशुरश्च तौ श्वशुरौ। श्वश्रूश्व श्वशुरश्च तौ श्वश्रूश्वशुरौ। श्वशुरौ=सास और ससुर।

सर्वैः सह त्यदादीनि-

(९) त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्।७२।

प०वि०-त्यदादीनि १।३ सर्वैः ३।३ नित्यम् १।१।

स०-त्यद् आदिर्येषां तानीमानि-त्यदादीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'शेषः' इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-त्यदादीनि सर्वैर्नित्यं शेषः।

अर्थः-त्यद्-आदीनि शब्दरूपाणि सर्वैः शब्दैः सह नित्यं शिष्यन्ते।

उदा०-(तद्) स च देवदत्तश्च-तौ। (यद्) यश्च देवदत्तश्च-यौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्वैः) सब शब्दों के साथ (त्यद्-आदीनि) त्यद् आदि शब्द (नित्यम्) सदा (शेषः) शेष रहते हैं।

उदा०-(तद्) स च देवदत्तश्च-तौ। (यद्) यश्च देवदत्तश्च-यौ। तौ=वह और देवदत्त। यौ=जो और देवदत्त।

त्यदादिगण-त्यद्। तद्। यद्। एतद्। इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम्। (सर्वाद्यन्तर्गतः)।

विशेष-यदि त्यद् आदि शब्दों का ही परस्पर कथन किया जाये तो वहां जो परवर्ती शब्द होता है, वह शेष रहता है- स च यश्च-यौ। यश्च कश्च-कौ।

पशुसंघेषु स्त्री-

(१०) ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री।७३।

प०वि०-ग्राम्य-पशुसंघेषु ७।३ अतरुणेषु ७।३ स्त्री १।१।

स०-ग्रामे भवा ग्राम्याः (तद्धितवृत्तिः)। ग्राम्याश्च ते पशव इति

ग्राम्यपशवः, तेषाम्-ग्राम्यपशूनाम्, ग्राम्यपशूनां संघा इति ग्राम्यपशुसंघाः, तेषु-ग्राम्यपशुसंघेषु (कर्मधारयगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। न विद्यन्ते तरुणा येषु ते-अतरुणाः, तेषु-अतरुणेषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'शेषः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अतरुणेषु ग्राम्यपशुसंघेषु स्त्री शेषः।

अर्थः-अतरुणेषु=तरुणरहितेषु ग्रामीणपशूनां संघेषु उच्यमानेषु स्त्री शिष्यते, पुमाँश्च निवर्तते।

उदा०-गावश्च वृषभाश्च ताः-गावः। गाव इमाश्चरन्ति। महिषाश्च महिष्यश्च ताः-महिष्यः। महिष्य इमाश्चरन्ति।

'पुमान् स्त्रियां' (१।२।६७) इति पुंसः शेषत्वे प्राप्तेऽत्र स्त्रीशेषो विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतरुणेषु) तरुण पशुओं से रहित (ग्राम्य-पशुसंघेषु) ग्रामीण पशुसंघों के कथन में (स्त्री) स्त्रीलिङ्ग शब्द (शेषः) शेष रहता है।

उदा०-गावश्च वृषभाश्च ता गावः। गाव इमाश्चरन्ति। ये गौवें चरती हैं। महिष्यश्च महिषाश्च ता महिष्यः। महिष्य इमाश्चरन्ति। ये भैंसें चरती हैं।

विशेष-यहां 'पुमान् स्त्रिया' (अ० १।२।६७) से पुंलिङ्ग शब्द का शेषत्व प्राप्त था, अतः यहां स्त्री शब्द के शेष रहने का उपदेश किया है।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः

धातुसंज्ञा–

भूवादयो धातवः।१।

प०वि०–भूवादयः १।३ धातवः १।३।

स०–(१) भू आदिर्येषां ते भूवादयः (बहुव्रीहिः)। भू+व्+आदयः= भूवादयः। अत्र मङ्गलार्थो वकार इति केचित्। (२) भुवोऽर्थं वदन्तीति भूवादयः (उपपदसमासः)। (३) भूश्च वाश्चेति भूवौ। भूवौ आदी येषां ते भूवादयः (बहुव्रीहिः)। भू इत्येवमादयो वा इत्येवं प्रकारका इत्यर्थः, इत्यन्ये।

अर्थः–क्रियावाचिनो भूवादयः शब्दा धातुसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–(भू सत्तायाम्) भवति। (एध वृद्धौ) एधते। (स्पर्ध संघर्षे) स्पर्धते, इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ–(भूवादयः) क्रियावाची, भू के तुल्य अर्थ को बतलानेवाले शब्दों की (धातवः) धातु संज्ञा होती है।

उदा०–(भू सत्तायाम्) भवति। (एध वृद्धौ) एधते। (स्पर्ध संघर्षे) स्पर्धते, इत्यादि।

सिद्धि–भवति। भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भो+अ+ति। भव्+अ+ति। भवति।

*यहां 'भू' शब्द की धातु संज्ञा होने से, उससे **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से विकरण शप्प्रत्यय **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण तथा **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से 'अव्' आदेश होता है। इसी प्रकार 'एधते' आदि।*

विशेष–(१) भू+आदयः='भ्वादयः' ऐसा पाठ होना चाहिये ? कुछ लोग यहां 'व्' का निर्देश मङ्गलार्थ मानते हैं-भू+व्+आदयः=भूवादयः। कुछ लोग भू+वादयः=भूवादयः, ऐसा स्वीकार करते हैं। किन्हीं का कहना है कि जो भू अर्थवाले जो वा आदि शब्द हैं उनकी धातु संज्ञा होती है।

(१) भूवादीनां वकारोऽयं मङ्गलार्थः प्रयुज्यते।
भुवो वाऽर्थं वदन्तीति भ्वर्था वा वादयः स्मृताः।।

(२) 'धातु' यह पूर्वाचार्यों की संज्ञा है। उन्होंने क्रियावाची शब्दों की यह संज्ञा की है।

इत्संज्ञाप्रकरणम्

अनुनासिकोऽच्–

(१) उपदेशेऽजनुनासिक इत्।२।

प०वि०–उपदेशे ७।१ अच् १।१ अनुनासिकः १।१ इत् १।१।

अन्वयः–उपदेशेऽनुनासिकोऽच् इत्।

अर्थः–पाणिनीय–उपदेशेऽनुनासिकोऽच् इत्–संज्ञको भवति।

उदा०–(एधँ वृद्धौ) एधते। (स्पर्धँ संघर्षे) स्पर्धते।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपदेशे) पाणिनिमुनि के उपदेश में (अनुनासिकः) अनुनासिक गुणवाले (अच्) स्वर की (इत्) इत् संज्ञा होती है।

उदा०–(एधँ वृद्धौ) एधते। वह बढ़ता है। (स्पर्धँ संघर्षे) स्पर्धते। वह संघर्ष करता है।

सिद्धि–(१) एधते। एधँ+लट्। एध्+शप्+त। एध्+अ+ते। एधते।

यहां 'एधँ वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' प्रत्यय, होने पर इस सूत्र से 'एधँ' धातु के अनुनासिक 'अँ' स्वर का लोप होता है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'त्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से विकरण 'शप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-स्पर्धते।

विशेष–अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिकोष, गणपाठ और लिङ्गानुशासन के रूप में पाणिनिमुनि का उपदेश आज उपलब्ध होता है। उसमें इत् (लोप) किये जानेवाले स्वर का अनुनासिक गुण लगाकर उपदेश नहीं किया गया है, किन्तु 'प्रतिज्ञाऽनुनासिक्याः पाणिनीयाः' पाणिनि के शिष्य जिस स्वर की इत् संज्ञा करनी है उसे गुरु के प्रतिज्ञामात्र (कथनमात्र) से अनुनासिक मानते हैं कि अमुक स्वर अनुनासिक है और उसकी इत् संज्ञा कर लेते हैं। यहां 'एधँ' धातु में समझने के लिये अनुनासिक गुण दिखा दिया है।

अन्तिम-हल्–

(२) हलन्त्यम्।३।

प०वि०–हल् १।१ अन्त्यम् १।१।

अनु०–'उपदेशे, इत्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपदेशेऽन्त्यं हल् इत्।

अर्थः–पाणिनीय–उपदेशेऽन्तिमं हल् इत्संज्ञकं भवति।

उदा०-'अइउण्' इति णकारस्य, 'ॠलृक्' इति ककारस्य इत् संज्ञा वेदितव्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपदेशे) पाणिनिमुनि के उपदेश में (अन्त्यम्) अन्तिम (हल्) व्यञ्जन की (इत्) संज्ञा होती है।

उदा०-अइउण्। यहां णकार की इत् संज्ञा है। ॠलृक्। यहां ककार की इत् संज्ञा है, इत्यादि।

इत्संज्ञाप्रतिषेधः (विभक्तिस्थास्तुस्माः)-

(३) न विभक्तौ तुस्माः।४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, विभक्तौ ७।१ तुस्माः १।३।

स०-तुश्च स् च मश्च ते-तुस्माः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'उपदेशे इत्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विभक्तौ तुस्मा इद् न।

अर्थः-पाणिनीय-उपदेशे विभक्तौ वर्तमानानां तवर्ग-सकार-मकाराणाम् इत् संज्ञा न भवति।

उदा०-(तवर्गस्य) वृक्षात्। प्लक्षात्। (सकारस्य) ब्राह्मणाः। पचतः। पचथः। (मकारस्य) अपचताम्। अपचतम्। **'हलन्त्यम्'** (१।३।३) इति इत्संज्ञायां प्राप्तायां प्रतिषेधो विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(विभक्तौ) किसी विभक्ति में विद्यमान (तु-स्-माः) तु=तवर्ग, सकार और मकार की (इत्) इत् संज्ञा (न) नहीं होती है। 'हलन्त्यम्' (अ० १।३।३) से इनकी इत् संज्ञा प्राप्त होती थी, अतः उसका यहां निषेध किया गया है।

उदा०-(तवर्ग) वृक्षात्। वृक्ष से। प्लक्षात्। पीपल या पिलखन वृक्ष से। (सकार) ब्राह्मणाः। सब ब्राह्मण। पचतः। वे दोनों पकाते हैं। पचथः। तुम दोनों पकाते हो। मकार-अपचताम्। उन दोनों ने पकाया। अपचतम्। तुम सबने पकाया।

सिद्धि-(१) वृक्षात्। *वृक्ष+ङसि। वृक्ष+अस्। वृक्ष+आत्। वृक्षात्।*

*यहां वृक्ष शब्द से 'ङसि' प्रत्यय और उसके स्थान में **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'आत्' आदेश होता है। इस सूत्र से विभक्ति संज्ञक 'आत्' के तकार की इत् संज्ञा का निषेध है। इसी प्रकार से-**प्लक्षात्।***

(२) ब्राह्मणाः। ब्राह्मण+जस्। ब्राह्मण+अस्। ब्राह्मणास्। ब्राह्मणारु। ब्राह्मणार्। ब्राह्मणाः।

यहां ब्राह्मण शब्द से विहित विभक्ति संज्ञक प्रत्यय के सकार की इत् संज्ञा नहीं होती है। इसी प्रकार से पच्+तस्=पचतः। पच्+थस्=पचथः।

*(३) **अपचताम्।** पच्+लङ्। अट्+पच्+तस्। अ+पच्+ताम्। अ+पच्+शप्+ताम्। अ+पच्+अ+ताम्। अपचताम्।*

*यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश और उसके स्थान में '**तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः**' (३।१।१०१) से 'ताम्' आदेश होता है। इस सूत्र से विभक्ति संज्ञक 'ताम्' के मकार की इत् संज्ञा नहीं होती है।*

आदिमा ञिटुडवः–

(४) आदिर्ञिटुडवः।५।

प०वि०–आदिः १।१ ञि–टु–डवः १।३।

स०–ञिश्च टुश्च डुश्च ते–ञिटुडवः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उपदेशे, इत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपदेशे आदिर्ञिटुडव इत्।

अर्थः–पाणिनीय–उपदेशे आदौ वर्तमाना ञि–टु–डव इत्–संज्ञका भवति।

उदा०–(ञि) ञिमिदा स्नेहने–मिन्नः। ञिधृषा प्रागल्भ्ये–धृष्टः। ञिइन्धी दीप्तौ–इद्धः। (टु) टुवेपृ कम्पने–वेपथुः। टुओश्वि गतिवृद्ध्योः–श्वयथुः। (डु) डुपचष् पाके–पक्त्रिमम्। डुवप् बीजसन्ताने छेदने च–वप्त्रिमम्। डुकृञ् करणे–कृत्रिमम्।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(आदिः) आदि में विद्यमान (ञि–टु–डवः) ञि, टु, डु इन शब्दों की (इत्) इत् संज्ञा होती है।

__उदा०__–(ञि) ञिमिदा–मिन्नः। स्नेह किया। ञिधृषा–धृष्टः। प्रगल्भता=चतुराई की। ञिक्ष्विदा–क्ष्विण्णः। स्नेह किया, मुक्त किया। ञिइन्धी–इद्धः। प्रदीप्त हुआ। (टु) टुवेपृ–वेपथुः। कम्पन। टुओश्वि–श्वयथुः। गति। वृद्धि। (डु) डुपचष्–पक्त्रिमम्। पकाया हुआ। डुवप्–वप्त्रिमम्। बोया हुआ। डुकृञ्–कृत्रिमम्। बनाया हुआ।

*__सिद्धि__–(१) **मिन्नः।** ञिमिदा+क्त। मिद्+त। मिद्+न। मिन्+न। मिन्न+सु। मिन्नः। यहां '**ञिमिदा स्नेहने**' (दि०प०) धातु से क्त प्रत्यय करने पर इस सूत्र से धातु के 'ञि' की इत् संज्ञा हो जाती है। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) **से निष्ठा के 'त' को न–आदेश तथा पूर्ववर्ती द् को भी न आदेश होता है।***

इसी प्रकार से 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०) 'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः' (दिवादि०) 'ञिइन्धी दीप्तौ' (रुधादि०) इन धातुओं के आदि में विद्यमान 'ञि' की इस सूत्र से इत् संज्ञा होती है। ञिधृषा+क्त। धृष्टः। ञिक्ष्विदा+क्त। क्ष्विण्णः। ञिइन्धी+क्त। इद्धः।

(२) वेपथुः। टुवेपृ+अथुच्। वेप्+अथु। वेपथु+सु। वेपथुः।

यहां 'टुवेपृ कम्पने' (भ्वा०आ०) धातु से 'ट्वितोऽथुच्' (३।३।८९) से 'अथुच्' प्रत्यय होने पर इस सूत्र से धातु के 'टु' की इत् संज्ञा होती है।

(३) पक्त्रिमम्। डुपचष्+क्त्रि। पच्+त्रि। पक्+त्रि। पक्त्रि+मप्। पक्त्रि+म। पक्त्रिम+सु। पक्त्रिमम्।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' (३।३।८८) से 'क्त्रि' प्रत्यय होने पर इस सूत्र से धातु के 'डु' की इत् संज्ञा होती है। 'क्त्रि' प्रत्यय के पश्चात् 'क्त्रेः मम् नित्यम्' (४।४।२०) से नित्य मप् प्रत्यय होता है। पक्त्रिमम्। इसी प्रकार से 'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च' (भ्वा०प०) से वक्त्रिमम् और 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से 'कृत्रिमम्' शब्द सिद्ध करें। वप्त्रिमम्। बोया हुआ अथवा काटा हुआ। कृत्रिमम्। बनाया हुआ।

प्रत्ययस्यादिमः षकारः–

(५) षः प्रत्ययस्य।६।

प०वि०–षः १।१ प्रत्ययस्य ६।१। 'उपदेशे, आदिः, इत्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रत्ययस्यादिः ष इत्।

अर्थः–पाणिनीय–उपदेशे प्रत्ययस्यादिमः षकार इत्–संज्ञको भवति।

उदा०–शिल्पिनि ष्वुन्–नर्तकी। रजकी।

आर्यभाषा–अर्थ–(प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (आदिः) आदि में विद्यमान (षः) ष् की (इत्) इत् संज्ञा होती है। (ष्) शिल्पिनि ष्वुन्–नर्तकी। नाचनेवाली। रजकी। रंगनेवाली।

सिद्धि–(१) नर्तकी। नृत्+ष्वुन्। नृत्+वु। नृत्+अक। नर्त्+अक्। नर्तक+ङीष्। नर्तक+ई। नर्तकी+सु। नर्तकी।

यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दिवा०प०) धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन्' (३।१।१४५) से ष्वुन्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से 'ष्वुन्' के षकार की इत् संज्ञा होती है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। इसी प्रकार 'रञ्ज रागे' (दि०उ०) धातु से ष्वुन् प्रत्यय करने पर रजकी शब्द सिद्ध होता है।

प्रत्ययस्यादिमौ चवर्गटवर्गौ—

(६) चुटू।७।

प०वि०-चु-टू १।२।

स०-चुश्च टुश्च तौ-चुटू (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'उपदेशे, प्रत्ययस्य, आदिः, इत्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे प्रत्ययस्यादिश्चुटू इत्।

अर्थः-पाणिनीय-उपदेशे प्रत्ययस्यादिमौ चवर्ग-टवर्गौ इत्संज्ञकौ भवतः।

उदा०-चवर्ग-(च्) **'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्'** कौञ्जायन्यः। (छ्) छस्य स्थाने ईयादेशो भवति। (ज्) जस्-ब्राह्मणाः। (झ्) झस्य स्थानेऽन्तादेशो भवति। (ञ्) 'शण्डिकादिभ्यो ञ्यः' शाण्डिक्यः। टवर्गः-(ट्) **'चरेष्टः'** कुरुचरी। मद्रचरी। (ठ्) ठस्य स्थाने इकादेशो भवति। (ड्) **'सप्तम्यां जनेर्डः'** उपसरजः। मन्दुरजः। (ढ्) ढस्य स्थाने एयादेशो भवति। (ण्) **'अन्नाण्णः'** आन्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (आदिः) आदि में विद्यमान (चु-टू) चवर्ग और टवर्ग की (इत्) इत् संज्ञा होती है।

*उदा०-चवर्ग (च्) गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्-कौञ्जायन्यः। कुञ्ज के पौत्र। (छ्) छ् को ईय् आदेश हो जाता है। (ज्) जस्-ब्राह्मणाः। सब ब्राह्मण। (झ्) को अन्त आदेश हो जाता है। (ञ्) **शण्डिकादिभ्यो ञ्यः**-शाण्डिक्यः। शण्डिक का अभिजन। पूर्वजों का देश। टवर्ग (ट्) चरेष्टः-**कुरुचरी। कुरु देश में** घूमनेवाली नारी। कुरु=दिल्ली के आस-पास का प्रदेश। मद्रचरी। **मद्रदेश में घूमनेवाली नारी।** (ठ्) ठ् के स्थान में इक् आदेश होता है। (ड्) **सप्तम्यां** जनेर्डः-उपसरजः। **प्रथम बार** गर्भ धारण करने पर उत्पन्न हुआ गाय का बछड़ा। **मन्दुरजः।** घुड़साल में पैदा **होनेवाला।** (ढ्) ढ् को एय् आदेश हो जाता है। (ण्) **अन्नाण्णः-आन्नः।** अन्न को प्राप्त **करनेवाला।***

*सिद्धि-(१) **कौञ्जायन्यः।** कुञ्ज+च्फञ्। कुञ्ज+फ। कुञ्ज+**आयन। कौञ्जायन+ञ्य।** कौञ्जायन्+य। कौञ्जायन्य+सु। **कौञ्जायन्यः।***

*यहां 'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्' (४।१।९८) से कुञ्ज शब्द से **च्फञ्** प्रत्यय करने **पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'च्' की इत् संज्ञा होती है। च्फञ् प्रत्यय के पश्चात् 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' (५।३।११३) से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है।***

(२) ब्राह्मणाः । ब्राह्मण+जस् । ब्राह्मण+अस् । ब्राह्मणाः ।

यहां ब्राह्मण शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) जस् प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'ज्' की इत् संज्ञा होती है।

(३) शाण्डिक्यः । शण्डिक+ञ्य । शण्डिक+य । शाण्डिक्+य । शाण्डिक्य+सु । शाण्डिक्यः ।

यहां शण्डिक शब्द से 'शण्डिकादिभ्यो ञ्यः' (४।३।९२) से 'ञ्य' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'ञ्' की इत् संज्ञा होती है।

(४) कुरुचरी । कुरु+चर्+ट । कुरु+चर्+अ । कुरुचर+ङीप् । कुरुचर+ई । कुरुचरी+सु । कुरुचरी ।

यहां कुरु उपपदवाली 'चर् गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'चरेष्टः' (३।२।१६) से ट प्रत्यय करने पर इस सूत्र के प्रत्यय के 'ट्' की इत् संज्ञा होती है। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।

(५) उपसरजः । उपसर+जन्+ड । उपसर+जन्+अ । उपसर+ज्+अ । उपसरज+सु । उपसरजः ।

यहां उपसर उपपदवाली 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से 'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) से ड प्रत्यय होता है। इस सूत्र से प्रत्यय के 'ड्' की इत् संज्ञा होती है। प्रत्यय के डित् होने से 'डित्त्वादभस्यापि टेर्लोपः' से जन् के टि भाग का लोप हो जाता है।

(६) आन्नः । अन्न+ण । आन्न्+अ । आन्न+सु । आन्नः । यहां 'अन्न' शब्द से 'लब्धा' अर्थ में 'अन्नाण्णः' (४।४।८५) से ण प्रत्यय है। इस सूत्र से ण प्रत्यय के ण् की इत् संज्ञा होती। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है।

अतद्धिता लकारशकारकवर्गाः–

लशक्वतद्धिते ।६।

प०वि०–ल-श्-कु १।१ अतद्धिते ७।१।

स०–लश्च श् च कुश्च एतेषां समाहारः–लशकु (समाहारद्वन्द्वः)। न तद्धित इति अतद्धितः, तस्मिन्–अतद्धिते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'उपदेशे प्रत्ययस्य, आदिः, इत्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपदेशेऽतद्धिते लश्कु इत्।

अर्थः–पाणिनीय–उपदेशे तद्धितवर्जितानां प्रत्ययस्यादौ वर्तमानानां लकार–शकार–कवर्गाणाम् इत् संज्ञा भवति।

उदा०–(ल्) **ल्युट् च**–चयनम्। जनयम्। (श्) **कर्तरि शप्**–भवति। पचति। कवर्गः–(क्) **क्तक्तवतू निष्ठा**–भुक्तः। भुक्तवान्। (ख्) **प्रियवशे**

वदः खच्-प्रियंवदः । वशंवदः । (ग) **ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः**-ग्लास्नुः । जिष्णुः । स्थास्नुः । भूष्णुः । (घ) **भञ्जभासमिदो घुरच्**-भङ्गुरम् । (ङ) **टाङसिङसामिनात्स्याः**-वृक्षात् । वृक्षस्य ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतद्धिते) तद्धित प्रकरण को छोड़कर (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (आदिः) आदि में वर्तमान (ल्-श्-कु) लकार, शकार और कवर्ग की (इत्) इत् संज्ञा होती है।

*उदा०-(ल्) ल्युट् च-चयनम् । चुनना । जयनम् । जीतना । (श्) **कर्तरि शप्**-भवति । होता है । पचति । पकाता है । कवर्ग (क्) **क्तक्तवतू निष्ठा**-भुक्तः । भुक्तवान् । खाया । (ख्) **प्रियवशे** वदः खच्-प्रियंवदः । प्रिय बोलनेवाला । वशंवदः । वश में रहनेवाला, आज्ञाकारी । (ग्) **ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः** । ग्लाश्नुः । ग्लानि करनेवाला । जिष्णुः । जीतनेवाला । स्थास्नुः । स्थिर । भूष्णुः । सत्तावाला । (घ्) **भञ्जभासमिदो घुरच्**-भङ्गुरम् । नष्ट होनेवाला । (ङ्) टाङसिङसामिनात्स्याः-वृक्षात् । वृक्ष से । वृक्षस्य । वृक्ष का ।*

*सिद्धि-(१) **चयनम्** । चि+ल्युट् । चि+यु । चि+अन । चे+अन । चयन+सु । चयनम् ।*

यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से 'ल्युट् च' (३ ।३ ।११५) लुट् प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'ल्' की इत्संज्ञा होती है। ऐसे ही-'जि जये' (भ्वा०प०) से जि+ल्युट् । जयनम् ।

*(२) **भवति** । भू+लट् । भू+शप्+तिप् । भू+अ+ति । भो+अ+ति । भवति ।*

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३ ।२ ।१२३) से प्रत्यय तथा 'तिपतस्झि०' (३ ।४ ।७८) से ल् के स्थान में तिप् आदेश करने पर 'कर्तरि शप्' (३ ।१ ।६८) से शप् प्रत्यय होता है। इस सूत्र से शप् प्रत्यय के 'श्' की इत् संज्ञा होती है। इसी प्रकार से 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से-पचति ।

*(३) **भुक्तः** । भुज्+क्त । भुज्+त । भुक्+त । भुक्त+सु । भुक्तः ।*

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) से क्त प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'क्' की इत् संज्ञा होती है। भुत्+क्तवतु । भुक्तवान् ।

*(४) **प्रियंवदः** । प्रिय+वद्+खच् । प्रिय+वद्+अ । प्रियमुम् अ+वद्+अ । प्रियंवद+अ । प्रियंवद+सु । प्रियंवदः ।*

यहां प्रिय शब्द उपपदवाली 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'प्रियवशे वदः खच्' (३ ।२ ।३८) से 'खच्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से प्रत्यय के 'ख्' की इत् संज्ञा होती है। तत्पश्चात् 'अरुर्द्विषदन्तजन्तस्य मुम्' (६ ।३ ।६७) से उपपद को 'मुम्' का आगम होता है।

*(५) **ग्लास्नुः** । ग्ला+ग्स्नु । ग्ला+स्नु । ग्लास्नु+सु । ग्लास्नुः ।*

यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' (३ ।२ ।१३९) से 'ग्स्नु' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'ग्' की इत् संज्ञा होती है।

(६) भङ्गुरम्। भञ्ज्+घुरच्। भञ्ज्+उर। भङ्ग्+उर। भङ्गुर+सु। भङ्गुरम्।

यहां 'भञ्जो आमर्दने' (रुधा०प०) धातु से 'भञ्जभासमिदो घुरच्' (३।२।१६१) से 'घुरच्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'घ' की इत् संज्ञा होती है। तत्पश्चात् प्रत्यय के घित् होने से 'चजो: कु घिण्ण्यतो:' (७।२।५२) से धातु के 'ज्' को कुत्व गकार हो जाता है।

(७) वृक्षात्। वृक्ष+ङसि। वृक्ष+अस्। वृक्ष+आत्। वृक्षात्।

यहां वृक्ष शब्द से ङसि प्रत्यय करने पर इस सूत्र से प्रत्यय के 'ङ्' की इत् संज्ञा होती है। तत्पश्चात् 'टाङसिङसामिनात्स्या:' (७।१।१२) से 'ङसि' प्रत्यय के स्थान में 'आत्' आदेश होता है। इसी प्रकार से वृक्ष+ङस्। वृक्ष+अस्। वृक्ष+स्य। वृक्षस्य।

इत्संज्ञकस्य लोपः-

तस्य लोपः।६।

प०वि०-तस्य ६।१ लोप: १।१।

अर्थ:-तस्य इत्संज्ञकस्य वर्णस्य लोपो भवति।

उदा०-अइउण्, ऋऌक्। अत्र णकारस्य ककारस्येत्संज्ञायां लोपो विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्य) उस इत् संज्ञावाले अक्षर का (लोप:) लोप होता है।

उदा०-अ इ उ ण्। ऋऌक्। इत्यादि। यहां 'ण्' आदि की इत् संज्ञा होने से उनका लोप हो जाता है। लोप हो जाने से 'अक्' आदि प्रत्याहारों में 'ण्' आदि इत् संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं किया जाता है।

यथासंख्यविधिः-

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्।१०।

प०वि०-यथासङ्ख्यम् १।१ अनुदेश: १।१ समानाम् ६।३। सङ्ख्यामनतिक्रम्य इति यथासङ्ख्यम् (अव्ययीभाव:)।

अन्वय:-समानां यथासङ्ख्यमनुदेश:।

अर्थ:-अस्मिन् शास्त्रे समानाम्=समसङ्ख्यानां शब्दानां यथासङ्ख्यम् अनुदेश:=उच्चारणं भवति।

उदा०-तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड् ढक्छण्ढञ्यक: (४।३।९४) इति।

आर्यभाषा-अर्थ-इस शब्दशास्त्र में (समानाम्) समान संख्यावाले शब्दों का (यथासंख्यम्) संख्या के अनुसार ही (अनुदेश:) उच्चारण किया जाता है। जैसे

'तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः' (४।३।९४) अर्थात् तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार शब्दों से ढक्, छण्, ढञ् और यक् प्रत्यय होते हैं। इस सूत्र से प्रथम शब्द से प्रथम प्रत्यय, द्वितीय शब्द से द्वितीय प्रत्यय, तृतीय शब्द से तृतीय प्रत्यय और चतुर्थ शब्द से चतुर्थ प्रत्यय संख्या के अनुसार किया जाता है, अन्यथा किसी शब्द से कोई भी प्रत्यय होना सम्भव है।

अधिकारलक्षणम्–

स्वरितेनाधिकारः।१०।

प०वि०–स्वरितेन ३।१ अधिकारः १।१।

अर्थः–अस्मिन् शास्त्रे स्वरितेन चिह्नेनाधिकारो वेदितव्यः।

उदा०–**प्रत्ययः** (३।१।१) **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** (४।१।१) **अङ्गस्य** (६।४।१) **भस्य** (६।४।१२९) **पदस्य** (८।४।१२९) इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ–*इस शब्दशास्त्र में स्वरित नामक स्वर चिह्न से (अधिकारः) उस शब्द का अधिकार समझना चाहिये। जैसे-**प्रत्ययः** (३।१।१)। **धातोः** (अ० ३।१।९१)। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** (अ० ४।१।१)। **अङ्गस्य** (अ० ६।४।१)। **भस्य** (अ० ६।४।१२९) **पदस्य** (अ० ८।४।१२९) इत्यादि।*

विशेष–आजकल अष्टाध्यायी में अधिकारवाले शब्दों पर स्वरित स्वर का चिह्न दिखाई नहीं देता है। 'प्रतिज्ञास्वरिताः पाणिनीयाः' इस गुरुवचन से पाणिनिमुनि के शिष्य प्रतिज्ञामात्र से ही अधिकारवाले शब्दों को स्वरित मानते हैं कि यह शब्द स्वरित है, अतः अब इसका यहां अधिकार है। इस शब्द की आगामी सूत्रों में अनुवृत्ति ली जाती है।

आत्मनेपदप्रकरणम्

अनुदात्तेद् ङिच्च धातुः–

(१) अनुदात्तङित आत्मनेपदम्।१२।

प०वि०–अनुदात्त-ङितः ५।१ आत्मनेपदम् १।१।

स०–अनुदात्तश्च ङश्च तौ–अनुदात्तङौ, इच्च इच्च तौ–इतौ। अनुदात्तङौ इतौ यस्य सः–अनुदात्तङित्, तस्मात्–अनुदात्तङितः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः–अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं भवति।

उदा०–(अनुदात्तेत्) **आस् उपवेशने**–आस्ते। **वस् आच्छादने–वस्ते**। **(ङित्) षूङ् प्राणिगर्भविमोचने–सूते। शीङ् स्वप्ने–शेते।**

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुदात्त-ङितः) अनुदात्तेत् और ङित् धातु से (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होता है।

उदा०-(अनुदात्तेत्) आस् उपवेशने-आस्ते। बैठता है। वस् आच्छाने-वस्ते। ढकता है। (ङित्) षूङ् प्राणिगर्भविमोचने-सूते। जन्म लेता है। शीङ् स्वप्ने-शेते। सोता है।

सिद्धि-(१) आस्ते। आस्+लट्। आस्+ल्। आस्+त्। आस्+शप्+त। आस्+०+त। आस्ते।

यहां 'आस् उपदेशने' (अदा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। पाणिनिमुनि ने अपने धातुपाठ में 'आस्' धातु को 'अनुदात्तेत्' पढ़ा है। अतः इससे 'त' आदि आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार से-वस्ते।

(२) सूते। षूङ्+लट्। सू+ल्। सू+त। सू+शप्+त। सू+०+त। सूते।

यहां षूङ् धातु के ङ् की 'हलन्त्यम्' (१।३।३) से इत् संज्ञा होती है। यह ङित् धातु है। ङित् धातु से इस सूत्र से 'त' आदि आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार से-शेते।

विशेष-आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय ये हैं-त। आताम्। झ। थास्। आथाम्। ध्वम्। इट्। वहि। महिङ्। शानच्। कानच्। चानश्। 'तङानावात्मनेपदम्' (१।४।१४०) से इन प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा की गई है।

भाववाच्ये कर्मवाच्ये च-

(२) भावकर्मणोः।१३।

प०वि०-भाव-कर्मणोः ७।२।

स०-भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, तयोः-भावकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'आत्मनेपदम्' इति सर्वत्रानुवर्तते।

अन्वयः-भावकर्मणोरात्मनेपदम्।

अर्थः-भाववाच्ये कर्मवाच्ये चार्थे धातोरात्मनेपदं भवति।

उदा०-(भाववाच्ये) ग्लायते भवता। सुप्यते भवता। आस्यते भवता। **(कर्मवाच्ये)** क्रियते कटो देवदत्तेन। ह्रियते भारो देवदत्तेन। **(कर्मकर्तृवाच्ये)** लूयते केदारः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(भाव-कर्मणोः) भाववाच्य और कर्मवाच्य अर्थ में धातु से (आत्मनेपदम्) आत्मपद होता है।

उदा०-(भाववाच्य) ग्लायते भवता। सुप्यते भवता। आस्यते भवता। (कर्मवाच्य) क्रियते कटो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है। ह्रियते भारो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा भार हरण किया जाता है। (कर्मकर्तृवाच्य) लूयते केदारः स्वयमेव। खेत स्वयं ही कट रहा है।

सिद्धि-(१) क्रियते। कृ+लट्। कृ+त। कृ+यक्+त। क् रिङ्+य+त। क्रि+य+ते। क्रियते।

यहां 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से कर्मवाच्य में लट् प्रत्यय, उसके स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से आत्मनेपद का 'त' आदेश होता है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से भाव और कर्मवाच्य में धातु से 'यक्' प्रत्यय और 'रिङ्शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से धातु के 'ऋ' को 'रिङ्' आदेश होता है। इसी प्रकार 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से ह्रियते और 'लूञ् लवने' (क्रया०उ०) धातु से लूयते शब्द सिद्ध होता है।

विशेष-(१) सकर्मक और अकर्मक भेद से धातु दो प्रकार की होती है। जिनका कोई कर्म मिलता है, उन्हें सकर्मक और जिनका कोई कर्म नहीं मिलता है, उन्हें अकर्मक धातु कहते हैं। 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' (३।४।६९) अर्थात् सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य और कर्तृवाच्य अर्थ में लकार होते हैं। अकर्मक धातुओं से भाववाच्य और कर्तृवाच्य में लकार होते हैं। 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) यह अकर्मक धातु है। इससे भाववाच्य में लकार होता है। ग्लायते भवता। आपके द्वारा ग्लानि की जाती है। इसी प्रकार से 'आस् उपवेशने' (अ०आ०) आस्यते भवता। आपके द्वारा बैठा जाता है। 'ञिष्वप् शये' (अ०आ०) सुप्यते भवता। आपके द्वारा सोया जाता है।

'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु सकर्मक है। इसलिये इससे कर्मवाच्य अर्थ में लकार होता है-क्रियते कटो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है। इसी प्रकार 'हृञ् हरणे' धातु से ह्रियते भारो देवदत्तेन। देवदत्त के द्वारा भार ढोया जाता है।

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं
व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति
शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्।।

अर्थ-जहां क्रियापद कर्तृपद से युक्त होकर 'किम्' शब्द की अपेक्षा करता है उस धातु को विद्वान् लोग सकर्मक कहते हैं और जहां क्रियापद, कर्तृपद से युक्त होकर 'किम्' शब्द की अपेक्षा नहीं करता, उसे अकर्मक धातु कहते हैं।

लज्जासत्तास्थितिजागरणं
वृद्धिक्षयभयजीवनमरणम्।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं
धातुगणं तमकर्मकमाहुः।।

अर्थ-लज्जा, सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, क्षय, भय, जीवन, मरण, शयन, क्रीडा रुचि और दीप्ति अर्थवाली धातु अकर्मक होती हैं।

(२) जहां कर्म, कर्ता बनकर प्रयुक्त होता है, उसे 'कर्मकर्तृवाच्य' कहते हैं। जैसे ***'लूयते केदारः स्वयमेव।*** *खेत अपने आप कट रहा है। यहां 'केदार' शब्द 'कर्मकर्ता' है। जहां कर्म, कर्ता बन जाता है, वहां भी धातु से आत्मनेपद ही होता है। जहां केवल शुद्ध कर्ता होता है, वहां धातु से परस्मैपद का विधान किया गया है। इस विषय को निम्नलिखित रेखाचित्र से समझ लेवें।*

धातु
- सकर्मक — लकार
  - कर्ता
  - कर्म
  - कर्मकर्ता
- अकर्मक — लकार
  - भाव
  - कर्ता
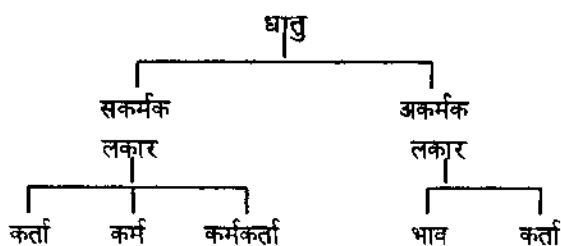
कर्मव्यतिहारे कर्तृवाच्ये-

(३) कर्तरि कर्मव्यतिहारे।१४।

प०वि०-कर्तरि ७।१ कर्म-व्यतिहारे ७।१।

स०-कर्मणो व्यतिहार इति कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। व्यतिहारः=विनिमयः।

अन्वयः-कर्मव्यतिहारे कर्तरि धातोरात्मनेपदम्।

अर्थः-कर्मव्यतिहारे=क्रियाया विनिमयेऽर्थे कर्तृवाच्ये धातोरात्मनेपदं भवति। कर्मशब्दोऽत्र क्रियावाची। कर्मव्यतिहारः=परस्परक्रियाकरणम्।

उदा०-व्यतिलुनते। व्यतिपुनते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मव्यतिहारे) क्रिया-विनिमय अर्थ में विद्यमान धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। यहां 'कर्मव्यतिहार' शब्द में 'कर्म' शब्द क्रियावाची है। 'व्यतिहार' का अर्थ विनिमय है। जहां अन्य सम्बन्धिनी क्रिया को कोई अन्य करता है और इतर सम्बन्धी क्रिया को इतर करता है उसे कर्मव्यतिहार कहते हैं।

उदा०-व्यतिलुनते। परस्पर काटते हैं। व्यतिपुनते। परस्पर पवित्र करते हैं।

सिद्धि-(१) व्यतिलुनते। व्यति+लू+लट्। व्यति+लू+झ। व्यति+लू+अत। व्यति+लू+श्ना+अत। व्यति+लू+ना+अत। व्यति+लू+न्+अते। व्यतिलुनते।

यहां 'लूञ् लवने' (क्र्याo उo) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में आत्मनेपद 'झ' आदेश होता है और 'झ' के स्थान में 'आत्मनेपदेष्वनतः' (७।१।५) से 'अत्' 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से श्ना प्रत्यय और 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से 'श्ना' प्रत्यय के आ का लोप और 'प्वादीनां ह्रस्वः' (७।३।८०) से धातु को ह्रस्व होता है। 'पूञ् पवने' (क्र्याo उo)-व्यतिपुनते।

(२) 'लुञ्' धातु के ञित् होने से 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' (१।३।७२) से आत्मनेपद और परस्मैपद भी हो सकता है, किन्तु कर्मव्यतिहार अर्थ में इस सूत्र से आत्मनेपद ही होता है।

आत्मनेपदप्रतिषेधः-

(४) न गतिहिंसार्थेभ्यः।१५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, गति-हिंसार्थेभ्यः ५।३।

स०-गतिश्च हिंसा च ते-गतिहिंसे, अर्थश्च अर्थश्च तौ-अर्थौ। गतिहिंसे अर्थौ येषां ते गतिहिंसार्थाः, तेभ्यः-गतिहिंसार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मव्यतिहारे गतिहिंसार्थेभ्यः कर्तरि आत्मनेपदं न।

अर्थः-कर्मव्यतिहारे=क्रियाविनिमयेऽर्थे गत्यर्थेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः कर्तृवाच्ये आत्मनेपदं न भवति।

उदा०-(गत्यर्थेभ्यः) व्यतिगच्छन्ति। व्यतिसर्पन्ति। **(हिंसार्थेभ्यः)** व्यतिहिंसन्ति। व्यतिघ्नन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मव्यतिहारे) क्रिया-विनिमय अर्थ में विद्यमान (गतिहिंसार्थेभ्यः) गति और हिंसा अर्थवाली धातुओं से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद (न) नहीं होता है।

उदा०-(गत्यर्थक) व्यतिगच्छन्ति। परस्पर जाते हैं। व्यतिसर्पन्ति। परस्पर सरकते हैं। (हिंसार्थक) व्यतिहिंसन्ति। परस्पर हिंसा करते हैं। व्यतिघ्नन्ति। परस्पर हिंसा/गति करते हैं।

सिद्धि-(१) व्यतिगच्छन्ति। व्यति+गम्+लट्। व्यति+गम्+ल्। व्यति+गम्+झि। व्यति+गम्+अन्ति। व्यति+गम्+शप्+अन्ति। व्यति+गम्+अ+अन्ति। व्यति+गच्छ्+अ+अन्ति। व्यतिगच्छन्ति।

*यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय **और** 'ल्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से परस्मैपद 'झि' आदेश होता है। '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से धातु के 'म्' को 'छ्' आदेश हो जाता है।*

*(२) **व्यतिसर्पन्ति**। सृप्लृ गतौ (भ्वा०प०)।*

*(३) **व्यतिहिंसन्ति**। हिंसि हिंसायाम् (रु०प०)।*

*(४) **व्यतिघ्नन्ति**। हन् हिंसागत्योः (अ०प०)।*

(५) इतरेतरान्योऽन्योपपदाच्च।१६।

प०वि०-इतरेतर-अन्योऽन्योपपदात् ५।१, च अव्ययपदम्।

स०-इतरेतरश्च अन्योऽन्यश्च तौ-इतरेतरान्योऽन्यौ। इतरेतरान्योऽन्यौ, उपपदे यस्य सः-इतरेतरान्योऽन्योपपदः, तस्मात्-इतरेतरान्योऽन्योपपदात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'कर्तरि कर्मव्यतिहारे न' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मव्यतिहारे इतरेतरान्योऽन्योपपदात् धातोः कर्तरि आत्मनेपदं न।

अर्थः-कर्मव्यतिहारेऽर्थे इतरेतरोपपदाद् अन्योऽन्योपपदाच्च धातोः कर्तृवाच्ये आत्मनेपदं न भवति।

उदा०-(इतरेतरोपपदात्) इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति। **(अन्योऽन्योपपदात्)** अन्योऽन्यस्य व्युतिलुनन्ति।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(कर्मव्यतिहारे) क्रिया-विनिमय अर्थ में विद्यमान (इतरेतर-अन्योऽन्योपपदात्) इतरेतर और अन्योऽन्य शब्द उपपदवाली धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(इतरेतर)** इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति। **(अन्योऽन्य)** अन्योऽन्यस्य व्यतिलुनन्ति। एक-दूसरे का काटते हैं।*

*(१) **व्यतिलुनन्ति**। व्यति+लू+लट्। व्यति+लू+ल्। व्यति+लू+झि। व्यति+लू+अन्ति। व्यति+लू+श्ना+अन्ति। व्यति+लू+ना+अन्ति। व्यति+लु+न्+अन्ति। **व्यतिलुनन्ति**।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट् **प्रत्यय** और 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से परस्मैपद 'झि' आदेश होता है। '**क्र्यादिभ्यः श्ना**' (३।१।८१) से श्ना विकरण प्रत्यय, 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से श्ना के **आ** का लोप और '**प्वादीनां ह्रस्वः**' (७।३।८०) से लू धातु को ह्रस्व होता है।*

विश-प्रवेशने (तु०प०)–

(४) नेर्विशः ।७।

प०वि०–नेः ५ ।१ विशः ५ ।१ ।

अनु०–'कर्तरि आत्मनेपदम्' इति सर्वत्रानुवर्तते ।

अन्वयः–नेर्विशः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–नि–उपसर्गपूर्वाद् विशो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–निविशते ।

आर्यभाषा-अर्थ–(नेः) उपसर्ग से परे (विशः) विश् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। निविशते। घुसता है।

सिद्धि–(१) निविशते। नि+विश्+लट्। नि+विश्+त। नि+विश्+श+त। नि+विश्+अ+ते। निविशते।

यहां 'नि' उपसर्ग से परे 'विश प्रवेशने' (तु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और ल् के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

विशेष–(१) इस प्रकरण में प्रायः उपसर्ग से परे धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है। उपसर्ग ये हैं–प्र। परा। अप। सम्। अनु। अव। निस्। दुस्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप।

अनुवृत्ति–'कर्तरि आत्मनेपदम्' की अनुवृत्ति 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' तक है। अतः प्रत्येक सूत्र में इसकी अनुवृत्ति नहीं दिखाई जायेगी।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये (क्र्या०उ०)–

(७) परिव्यवेभ्यः क्रियः ।१८।

प०वि०–परि-वि-अवेभ्यः ५ ।३ क्रियः ५ ।१ ।

स०–परिश्च विश्व अवश्च ते-परिव्यवाः, तेभ्यः-परिव्यवेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अन्वयः–परिव्यवेभ्यः क्रियः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–परि–वि–अव–उपसर्गपूर्वात् क्री–धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–**(परि)** परिक्रीणीते । **(वि)** विक्रीणीते । **(अव)** अवक्रीणीते ।

आर्यभाषा-अर्थ–(परि-वि-अवेभ्यः) परि, वि, अव उपसर्ग से परे (क्रियः) क्री धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०–(परि) परिक्रीणीते। किसी को पैसे से खरीदता है। (वि) विक्रीणते। बेचता है। (अव) अवक्रीणीते। किराये पर लेता है।

*सिद्धि-(१) **परिक्रीणीते।** परि+क्री+लट्। परि+क्री+त। परि+क्री+श्ना+त। परि+क्री+ना+त। परि+क्री+नी+ते। परिक्रीणीते।*

*यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक **'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से श्ना प्रत्यय और 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से 'श्ना' प्रत्यय को ईत्व होता है।*

जि जये (भ्वा०प०)–

(८) विपराभ्यां जेः।१६।

प०वि०–वि-पराभ्याम् ५।२ जेः ५।१।

स०–विश्च पराश्च तौ–विपरौ, ताभ्याम्–विपराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–विपराभ्यां जेः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः–वि-परा-उपसर्गपूर्वाद् जि-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०–(**वि**) विजयते। (**परा**) पराजयते।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(वि-पराभ्याम्) वि और परा अपसर्ग से परे (जेः) जि धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।*

उदा०-(वि) विजयते। जीतता है। (परा) पराजयते। हारता है।

*सिद्धि-(१) **विजयते।** वि+जि+लट्। वि+जि+त। वि+जि+शप्+त। वि+जि+अ+त। वि+जे+अ+ते। विजयते।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक **'जि जये'** (भ्वादि०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।*

डुदाञ् दाने (जु०उ०)–

(९) आङो दोऽनास्यविहरणे।२०।

प०वि०–आङः ५।१ दः ५।१ अनास्यविहरणे ७।१।

स०–आस्यस्य विहरणमिति आस्यविहरणम्, न आस्यविहरणमिति अनास्यविहरणम्, तस्मिन्–अनास्यविहरणे (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः–अनास्यविहरणे आङो दः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः–अनास्यविहरणेऽर्थे आङ्-उपसर्गपूर्वाद् दा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०–विद्यामादत्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनास्यविहरणे) मुख खोलना अर्थ को छोड़कर (आङः) आङ् उपसर्ग से परे (दः) दा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**विद्याम् आदत्ते।** विद्या को ग्रहण करता है।*

*सिद्धि-(१) **आदत्ते।** आङ्+दा+लट्। आ+दा+त। आ+दा+शप्+त। आ+दा+०+त। आ+दा दा+त। आ+द+द्+त। आ+द त्+ते। आदत्ते।*

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से शप् प्रत्यय और 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु और 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्विर्वचन होता है।

*(२) आङ् उपसर्गपूर्वक दा धातु का जहां आस्यविहरण=मुख खोलना अर्थ होता है, वहां उससे परस्मैपद ही होता है। '**व्याददाति पिपीलिका पतङ्गस्य मुखम्**' चींटी पतंग का मुख खोलती है।*

क्रीड़ विहारे (भ्वा०प०)-

(१०) क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च ।२१।

प०वि०-क्रीडः ५।१ अनु-सम्-परिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-अनुश्च सम् च परिश्च ते-अनुसम्परयः, तेभ्यः-अनुसम्परिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'आङः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुसम्परिभ्य आङश्च क्रीडः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-अनु-सम्-परि-उपसर्गपूर्वाद् आङ्-पूर्वाच्च क्रीडो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(अनु) अनुक्रीडते। **(सम्)** संक्रीडते। **(परि)** परिक्रीडते। **(आङ्)** आक्रीडते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनु-सम्-परिभ्यः) अनु, सम्, परि उपसर्ग से (च) और (आङः) आङ् उपसर्ग से परे (क्रीडः) क्रीड् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**अनु-अनुक्रीडते।** अनुकूल खेलता है। **सम्-संक्रीडते।** मिलकर खेलता है। **परि-परिक्रीडते।** सर्वत्र खेलता है। **आ-आक्रीडते।** दिल बहलाता है।*

सिद्धि-(१) अनुक्रीडते। अनु+क्रीड्+लट्। अनु+क्रीड्+शप्+त। अनु+क्रीड्+अ+त। अनुक्रीडते।

यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'क्रीडृ विहारे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और 'ल्' के स्थान में आत्मनेपद 'त' होता है।

ष्ठा गतिनिवृत्तौ (भ्वा०प०)-

(११) समवप्रविभ्यः स्थः।२२।

प०वि०-सम्-अव-प्र-विभ्यः ५।३ स्थः ५।१।

स०-सं च अवश्च प्रश्च विश्च ते-समवप्रवयः, तेभ्यः-समवप्रविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-समवप्रविभ्यः स्थः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सम्-अव-प्र-वि-उपसर्गपूर्वात् स्था-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-**(सम्)** संतिष्ठते। **(अव)** अवतिष्ठते। **(प्र)** प्रतिष्ठते। **(वि)** वितिष्ठते।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्-अव-प्र-विभ्यः) सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग से परे (स्थः) स्था धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-सम्-**संतिष्ठते**। मिलकर रहता है। अव-**अवतिष्ठते**। अवस्थित रहता है। प्र-**प्रतिष्ठते**। प्रस्थान करता है। वि-**वितिष्ठते**। विरुद्ध रहता है।*

*सिद्धि-(१) **संतिष्ठते**। सम्+स्था+लट्। सम्+स्था+शप्+त। सम्+तिष्ठ्+अ+ते। संतिष्ठते।*

*यहां सम् उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप्-प्रत्यय और **'पाघ्राध्मा०'** (७।३।७८) से 'स्था' के स्थान में 'तिष्ठ' आदेश होता है।*

(१२) प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च।२३।

प०वि०-प्रकाशन-स्थेयाख्ययोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-तिष्ठत्यस्मिन्निति स्थेयः, स्थेयस्याऽऽख्या इति स्थेयाख्या। प्रकाशनं च स्थेयाख्या च ते-प्रकाशनस्थेयाख्ये, तयोः-प्रकाशनस्थेयाख्ययोः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'स्थः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च स्थः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-प्रकाशने स्थेयाख्यायां चार्थे स्था-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-प्रकाशनम्=स्वाभिप्रायकथनम्। स्थेयाख्या=विवादपद-निर्णायिकस्य प्रकथनम्। **(प्रकाशने)** तिष्ठते कन्या छात्रेभ्यः। तिष्ठते सरस्वती विद्वद्भ्यः। **(स्थेयाख्या)** स त्वयि तिष्ठते। स मयि तिष्ठते।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रकाशन-स्थेयाख्ययोः) अपने अभिप्राय को प्रकाशित करने और विवादास्पद के निर्णायिक अर्थ में विद्यमान (स्थः) स्था धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(प्रकाशन) **तिष्ठते कन्या छात्रेभ्यः।** कन्या, छात्रों के लिये अपना अभिप्राय प्रकाशित करती है। **तिष्ठते सरस्वती विद्वद्भ्यः।** सरस्वती विद्वानों को अपना रूप प्रकाशित करती है। (स्थेयाख्या) **स त्वयि तिष्ठते।** वह तुझे निर्णायिक मानता है। **स मयि तिष्ठते।** वह मुझे निर्णायिक मानता है।*

(१३) उदोऽनूर्ध्वकर्मणि।२४।

प०वि०-उदः ५।१ अनूर्ध्व-कर्मणि ७।१।

स०-ऊर्ध्वस्य कर्म इति ऊर्ध्वकर्म, न ऊर्ध्वकर्म इति अनूध्वकर्म, तस्मिन्-अनूर्ध्वकर्मणि (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'स्थः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनूर्ध्वकर्मणि उदः स्थः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-अनूर्ध्वकर्मण्यर्थे वर्तमानाद् उद्-उपसर्गपूर्वात् स्था-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(उत्) गेहे उत्तिष्ठते। कुटुम्बे उत्तिष्ठते। कर्मशब्दोऽत्र क्रियावाची।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनूर्ध्व-कर्मणि) ऊर्ध्व-कर्म को छोड़कर (उदः) 'उत्' उपसर्ग से परे (स्थः) स्था धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(उत्) **गेहे उत्तिष्ठते।** घर की उन्नति के लिये प्रयत्न करता है। **कुटुम्बे उत्तिष्ठते।** परिवार की उन्नति के लिये प्रयत्न करता है।*

*यहां ऊर्ध्व-कर्म का निषेध इसलिये किया गया है कि यहां आत्मनेपद न हो-**देवदत्त आसनाद् उत्तिष्ठति। देवदत्त आसन से खड़ा होता है।***

(१४) उपान्मन्त्रकरणे।२५।

प०वि०-उपात् ५।१ मन्त्रकरणे ७।१।

स०-मन्त्रेण करणमिति मन्त्रकरणम्, तस्मिन्-मन्त्रकरणे (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-'स्थः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रकरणे उपात् स्थः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-मन्त्रकरणे=मन्त्रेणाऽनुष्ठानेऽर्थे वर्तमानाद् उप-उपसर्गपूर्वात् स्था-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(उप) उपतिष्ठते। ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते। आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्र-करणे) मन्त्रकरण अर्थ में विद्यमान (उपात्) उप उपसर्ग से परे (स्थः) स्था धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(उप) उपतिष्ठते। ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते। इन्द्रदेवतावाली ऋचा के द्वारा गार्हपत्य अग्नि को प्राप्त करता है। आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते। अग्निदेवतावाली ऋचा से आग्नीध्र को प्राप्त करता है।

*यहां मन्त्रकरण का कथन इसलिये किया गया है कि यहां आत्मनेपद न हो- **भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन।** यौवन से पति को प्राप्त करती है।*

(१५) अकर्मकाच्च।२६।

प०वि०-अकर्मकात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'उपात्, स्थः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपाद् अकर्मकाच्च स्थः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-उप-उपसर्गपूर्वाद् अकर्मकात् स्था-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-यावद्भुक्तम् उपतिष्ठते देवदत्तः। यावदोदनमुपतिष्ठते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपात्) उप-उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक (स्थः) स्था धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-यावद्भुक्तमुपतिष्ठते देवदत्तः। देवदत्त प्रत्येक भोजन में उपस्थित होता है। यावदोदनमुपतिष्ठते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त प्रत्येक ओदन-भोजन में उपस्थित होता है।

सिद्धि-उपतिष्ठते। यहां उप उपसर्गपूर्वक अकर्मक स्था धातु से इस सूत्र से आत्मनेपद है।

तप सन्तापे (भ्वा०प०)-

(१६) उद्विभ्यां तपः।२७।

प०वि०-उद्-विभ्याम् ५।२ तपः ५।१।

स०-उत् च विश्च तौ-उद्वी, ताभ्याम्-उद्विभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अकर्मकात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उद्विभ्याम् अकर्मकात् तपः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-उद्-वि-उपसर्गपूर्वाद् अकर्मकात् तपो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(उत्) उत्तपते। **(वि)** वितपते।

आर्यभाषा-अर्थ-(उद्-विभ्याम्) उत् और वि उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक (तपः) तप धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-उत्-**उत्तपते**। अतिसंतापयुक्त होता है। वि-**वितपते**। सन्ताप को हटाता है।*

*सिद्धि-(१) **उत्तपते**। उत्+तप्+लट्। उत्+तप्+शप्+त। उत्+तप्+अ+ते। उत्तपते।*

*यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**तप संतापे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। ऐसे ही-**वितपते**।*

यम उपरमे (भ्वा०प०) हन् हिंसागत्योः (अ०प०)-

(१७) आङो यमहनः।२८।

प०वि०-आङः ५।१ **यमहनः** ५।१।

स०-यमश्च हन् च एतयोः समाहारः-यमहन्, तस्मात्-यमहनः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'अकर्मकात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आङोऽकर्मकाद्यमहनः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-आङ्-उपसर्गपूर्वाभ्याम् अकर्मकाभ्यां यमहन्भ्यां धातुभ्यां कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(**यम्**) आयच्छते। (**हन्**) आहते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आङः) आङ् उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक (यम-हनः) यम् और हन् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**यम्-आयच्छते।** हाथ पसारता है। **हन्-आहते।** ठोकता है।*

*सिद्धि-(१) **आयच्छते।** आङ्+यम्+लट्। आ+यम्+शप्+त। आ+यम्+अ+त। आ+यच्छ+अ+ते। आयच्छते।*

*यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक '**यम उपरमे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप् प्रत्यय और '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से 'यम्' धातु के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।*

*(२) **आहते।** आङ्+हन्+लट्। आ+हन्+शप्+त। आ+हन्+०+त। आ+ह+ते। आहते।*

*यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक '**हन् हिंसागत्योः**' (अ०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप् प्रत्यय और '**अदिप्रभृतिभ्यः शपः**' (२।४।७२) से शप् का लुक् हो जाता है। '**अनुदात्तोपदेश०**' (६।४।३७) से हन् के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।*

गम्लृ गतौ (भ्वा०प०) ऋच्छ गतौ (तु०प०)-

(१८) समो गम्यृच्छिभ्याम्।२६।

प०वि०-समः ५।१ गमि-ऋच्छिभ्याम् ५।२।

स०-गमिश्च ऋच्छिश्च तौ-गम्यृच्छी, ताभ्याम्-गम्यृच्छिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अकर्मकात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-समोऽकर्मकाभ्यां गम्यृच्छिभ्यां कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सम्-उपसर्गपूर्वाभ्याम् अकर्मकाभ्यां गमि-ऋच्छिभ्यां धातुभ्यां कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(**गमि**) सङ्गच्छते। (**ऋच्छि**) समृच्छते।

आर्यभाषा-अर्थ-(समः) सम् उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक (गमि-ऋच्छिभ्याम्) गमि और ऋच्छि धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(गमि) **सङ्गच्छते।** मिलता है। (**ऋच्छि**) **समृच्छते।** कठोर होता है।*

*सिद्धि-(१) **संगच्छते।** सम्+गम्+लट्। सम्+गम्+शप्+त। सम्+गम्+अ+त। सम्+गच्छ्+अ+ते। संगच्छते।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वादि) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से गम् के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है। संगच्छते=मिलता है। '**ऋच्छ गतौ**' (तु०प०) धातु से-**समृच्छते।***

ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च (भ्वा०उ०)–

(१६) निसमुपविभ्यो ह्वः।३०।

प०वि०-नि-सम्-उप-विभ्यः ५।३ ह्वः ५।१।

स०-निश्च सं च उपश्च विश्च ते-निसमुपवयः, तेभ्यः-निसमुपविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-निसमुपविभ्यो ह्वः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-नि-सम्-उप-वि-उपसर्गपूर्वाद् ह्वा-धातोः परः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(**नि**) निह्वयते। (**सम्**) संह्वयते। (**उप**) उपह्वयते। (**वि**) विह्वयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(नि-सम्-उप-विभ्यः) नि, सम्, उप और वि उपसर्ग से परे (ह्वः) ह्वा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(नि) निह्वयते। (सम्) संह्वयते। (उप) उपह्वयते। (वि) विह्वयते। युद्ध के लिये बुलाता है।

*सिद्धि-(१) **निह्वयते।** नि+ह्वे+लट्। नि+ह्वे+शप्+त। नि+ह्वे+अ+त। निह्वयते।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक '**ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप् प्रत्यय और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७८) से धातु के 'ए' को **अय्** आदेश होता है।*

(२०) स्पर्धायामाङः ।३१।

प०वि०-स्पर्धायाम् ७ ।१ आङः ५ ।१ ।

अनु०-'ह्वः' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-स्पर्धायाम् आङो ह्वः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-आङ्-उपसर्गपूर्वात् स्पर्धायामर्थे वर्तमानाद् ह्वा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०-कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । मल्लो मल्लमाह्वयते ।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्पर्धायाम्) स्पर्धा अर्थ में विद्यमान (आङ्) आङ् उपसर्ग से परे (ह्वः) ह्वा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। दूसरे को पराजित करने की इच्छा को 'स्पर्धा' कहते हैं।

*उदा०-**कृष्णश्चाणूरमाह्वयते।** श्रीकृष्ण चाणूर को पराजित करने की इच्छा से युद्ध के लिये बुलाता है। **मल्लो मल्लमाह्वयते।** एक पहलवान दूसरे पहलवान को पराजित करने की इच्छा से मल्लयुद्ध के लिये बुलाता है।*

डुकृञ् करणे (तना०उ०)-

(२१) गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः ।३२।

प०वि०-गन्धन-अवक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथन-उपयोगेषु ७ ।३ कृञः ५ ।१ ।

स०-गन्धनं च अवक्षेपणं च सेवनं च साहसिक्यं च प्रतियत्नश्च प्रकथनं च उपयोगश्च ते-गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगाः, तेषु-गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अन्वयः-गन्धन०उपयोगेषु कृञः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-गन्धन-अवक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथन-उपयोगेष्वर्थेषु वर्तमानात् कृञो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०-(१) गन्धनम् (सूचनम्) उत्कुरुते । उदाकुरुते । (२) **अवक्षेपणम् (भर्त्सनम्)** श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते । (३) सेवनम् (सेवा)

गणकान् उपकुरुते। शिष्य आचार्यमुपकुरुते। (४) साहसिक्यम् (साहसिक कर्म) परदारान् प्रकुरुते। (५) प्रतियत्नः (गुणान्तराधानम्) एधो दकस्योपस्कुरुते। (६) प्रकथनम् (प्रवचनम्) गाथाः प्रकुरुते। जनापवादान् प्रकुरुते। (७) उपयोगः (धर्मकार्ये विनियोगः) शतं प्रकुरुते। सहस्त्रं प्रकुरुते।

आर्यभाषा-अर्थ- *(गन्धन०) गन्धन, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोग अर्थ में विद्यमान (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।*

(१) गन्धन। *हिंसा। अपकार से युक्त हिंसात्मक सूचना। उत्कुरुते। उदाकुरुते। सूचित करता है।*

(२) अवक्षेपण। *भर्त्सन=धमकाना। श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते। बाज बटेर को धमकाता है।*

(३) सेवन। *सेवा करना। गणकान् उपकुरुते। गणक लोगों की सेवा करता है। गणक=ज्योतिषी। महामात्रानुपकुरुते। महापुरुषों की सेवा करता है।*

(४) साहसिक्य। *साहसिक कार्य करना। परदारान् प्रकुरुते। परदाराओं के प्रति साहसपूर्वक प्रवृत्त होता है।*

(५) प्रतियत्न। *विद्यमान गुण को बदलना। एधो दकस्योपस्कुरुते। इन्धन जल के गुण को बदलता है। दक=उदक (जल)।*

(६) प्रकथन। *जोर से कहना। गाथाः प्रकुरुते। गाथाओं को जोर से कहता है। जनापवादान् प्रकुरुकुते। जन-अपवादों को जोर से कहता है।*

(७) उपयोग। *धर्मार्थ व्यय करना। शतं प्रकुरुते। सौ रुपये धर्मार्थ व्यय करता है। सहस्त्रं प्रकुरुते। हजार रुपये धर्मार्थ व्यय करता है।*

सिद्धि-(१) ***उत्कुरुते।*** *उत्+कृ+लट्। उत्+कृ+उ+त। उत्+कर्+उ+त। उत्+कुर्+उ+ते। उत्कुरुते।*

*यहां 'उत्' उपसर्ग से परे **'डुकृञ् करणे'** (त०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से यहां उ-प्रत्यय होता है। कृ धातु को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से 'अ' को उकार आदेश होता है।*

विशेष- *धातुपाठ में 'कृ' धातु करने अर्थ में पढ़ी गई है किन्तु **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'** इस महाभाष्य-वचन से धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं। यहां 'कृ' धातु के 'गन्धन' आदि सात अर्थ बतलाये गये हैं।*

(२२) अधेः प्रसहने।३३।

प०वि०-अधे: ५।१ प्रसहने ७।१।

अनु०-'कृञः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रहसनेऽधेः कृञः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-अधि-उपसर्गपूर्वात् प्रहसनेऽर्थे वर्तमानात् कृञो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-प्रसहनम्=क्षमाऽभिभवो वा। शत्रुमधिकुरुते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(प्रसहने) क्षमा अथवा अभिभव अर्थ में विद्यमान, (अधेः) अधि उपसर्ग से परे (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-शत्रुमधिकुरुते। शत्रु को क्षमा करता है अथवा शत्रु को दबाता है।

(२३) वेः शब्दकर्मणः।३४।

प०वि०-वेः ५।१ शब्दकर्मणः ५।१।

स०-शब्दः कर्म यस्य सः-शब्दकर्म, तस्मात्-शब्दकर्मणः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'कृञः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वेः शब्दकर्मणः कृञः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-वि-उपसर्गपूर्वात् शब्दकर्मकात् कृञो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-क्रोष्टा स्वरान् विकुरुते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(वेः) वि उपसर्ग से परे (शब्दकर्मणि) शब्दकर्मवाली (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्मवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-__क्रोष्टा स्वरान् विकुरुते__। गीदड़ स्वरों को बिगाड़ता है।

'शब्दकर्म' का कथन इसलिये किया है कि यहां आत्मनेपद न हो-__चित्तं विकरोति कामः__। काम चित्त को विकृत करता है।

__सिद्धि-विकुरुते__। वि+कृ+लट्। पूर्ववत्।

(२४) अकर्मकाच्च ।३५।

प०वि०-अकर्मकात् ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०-न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-'वेः, कृञः' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-वेरकर्मकाच्च कृञः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-वि-उपसर्गपूर्वाद् अकर्मकात् कृञो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०-विकुर्वते सैन्धवाः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(वेः) वि उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-विकुर्वते सैन्धवाः । घोड़े हिनहिनाते हैं।

णीञ् प्रापणे (भ्वा०उ०)--

(२५) सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृति-विगणनव्ययेषु नियः ।३६।

प०वि०-सम्मानन-उत्सञ्जन-आचार्यकरण-ज्ञान-भृति-विगणन-व्ययेषु ७ ।३ नियः ५ ।१ ।

स०-सम्माननं च उत्सञ्जनं च आचार्यकरणं च ज्ञानं च भृतिश्च विगणनं च व्ययश्च ते-सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययाः, तेषु-सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अन्वयः-सम्मानन०व्ययेषु नियः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-सम्मानोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेष्वर्थेषु वर्तमानाद् नियो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०-(सम्मानने) शास्त्रे नयते । शास्त्रसिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः । तेन च शिष्यसम्मानं फलितं भवति । (उत्सञ्जने) दण्डमुन्नयते । उत्क्षिपतीत्यर्थः । (आचार्यकरणे) माणवकमुपनयते । माणवकं विधिनाऽऽत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । उपनयनपूर्वकाध्यापनेन हि उपनेतरि

आचार्यत्वं क्रियते। (ज्ञाने) तत्त्वं नयते। तत्त्वं निश्चिनोतीत्यर्थः। (भृतौ) कर्मकरानुपनयते। भृतिदानेन तान् स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। (विगणने) करं विनयते। विगणनम्=ऋणादेर्निर्यातनम्। राज्ञे देयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः। (व्यये) शतं विनयते। धर्मार्थं शतं विनुयङ्क्ते इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्मानन०) सम्मानन, उत्सञ्जन, आचार्यकरण, ज्ञान, भृति, विगणन और व्यय अर्थ में विद्यमान (नियः) नी धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(सम्मानन) शास्त्रे नयते। आचार्य शास्त्रसिद्धान्त को शिष्यजनों को प्राप्त कराता है, उससे शिष्यों का सम्मान फलित होता है। (उत्सञ्जन) दण्डम् उन्नयते। दण्ड को उठाता है। (आचार्यकरण) माणवकम् उपनयते। आचार्य बालक को विधिपूर्वक अपने समीप रखता है। उपनयनपूर्वक अध्यापन से उपनेता आचार्य बनता है।[१] (ज्ञान) तत्त्वं नयते। तत्त्व का निश्चय करता है। (भृति) कर्मकरान् उपनयते। वेतन के दान से कर्मचारियों को अपने पास रखता है। (विगणन) करं विनयते। विगणन का अर्थ ऋण आदि का चुकाना है। राजा के लिये देयभाग को चुकाकर साफ करता है। (व्यय) शतं विनयते। धर्म के लिये सौ रुपये लगाता है। व्यय शब्द का अर्थ धर्मकार्य के लिये खर्च करना है।

सिद्धि-नयते। नी++लट्+। नी+शप्+त। ने+अ+त। नय्+अ+ते। नयते।

यहां 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप् प्रत्यय है।

(२६) कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि।३७।

प०वि०-कर्तृस्थे ७।१ च अव्ययपदम्, अशरीरे ७।१ कर्मणि ७।१।

स०-कर्तरि तिष्ठतीति कर्तृस्थः, तस्मिन् कर्तृस्थे (उपपदसमासः)। न शरीरम्, अशरीरम्, तस्मिन् अशरीरे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'नियः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्तृस्थेऽशरीरे कर्मणि च नियः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-कर्तृस्थेऽशरीरे कर्मणि च सति नियो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-क्रोधं विनयते। मन्युं विनयते। क्रोधं मन्युं वाऽपगमयतीत्यर्थः।

---

(१) उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ (मनुस्मृति)

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तृस्थे) कर्ता में अवस्थित (अशरीरे) शरीर से भिन्न (कर्मणि) कर्म होने पर (च) भी (नियः) नी धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**क्रोधं विनयते।** क्रोध को दूर करता है। **मन्युं विनयते।** मन्यु को दूर करता है। क्रोध वा मन्यु को हटाना कोई शारीरिक कर्म नहीं है, किन्तु वह देवदत्त आदि कर्ता में अवस्थित मानसिक कर्म है।*

*सिद्धि-**विनयते।** वि+नी+लट्। वि+नी+शप्+त। वि+ने+अ+ते। विनयते।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वादि०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् शप् प्रत्यय होता है।*

क्रमु पादविक्षेपे (भ्वा०प०)-

(२७) वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः।३८।

प०वि०-वृत्ति-सर्ग-तायनेषु ७।३ क्रमः ५।१।

स०-वृत्तिश्च सर्गश्च तायनं च तानि-वृत्तिसर्गतायनानि। तेषु-वृत्तिसर्गतायनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-वृत्तिसर्गतायनेष्वर्थेषु वर्तमानात् क्रमो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(वृत्तौ) ऋचि क्रमतेऽस्य बुद्धिः। वृत्तिरप्रतिबन्धः। न प्रतिहन्यते, इत्यर्थः। (सर्गे) व्याकरणाध्ययनाय क्रमते। सर्ग उत्साहः। उत्सहते, इत्यर्थः। (तायने) क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। तायनं स्फीतता। स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(वृत्ति०) वृत्ति, सर्ग और तायन अर्थ में विद्यमान (क्रमः) क्रम धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(वृत्ति) **ऋचि क्रमतेऽस्य बुद्धिः।** ऋग्वेद में इसकी बुद्धि गति करती है, रुकती नहीं है। वृत्ति का अर्थ न रुकना है। (सर्ग) **व्याकरणाध्ययनाय क्रमते।** व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के लिये उत्साह करता है। सर्ग का अर्थ उत्साह है। (तायन) **क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि।** इस सुयोग्य शिष्य में शास्त्र वृद्धि को प्राप्त होते हैं।*

*सिद्धि-**क्रमते।** क्रम्+लट्। क्रम्+शप्+त। क्रम्+अ+ते। क्रमते।*

यहां 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् 'शप्' प्रत्यय है।

(२८) उपपराभ्याम्।३६।

प०वि०-उप-पराभ्याम् ५।२।

स०-उपश्च पराश्च तौ-उपपरौ। ताभ्याम्-उपपराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वृत्तिसर्गतायनेषु उपपराभ्यां क्रमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-वृत्तिसर्गतायनेष्वर्थेषु वर्तमानाद् उप-परा-उपसर्गपूर्वात् क्रमो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(वृत्तौ) उपक्रमते। पराक्रमते। **न प्रतिहन्यते इत्यर्थः।** (सर्गे) उपक्रमते। पराक्रमते। **उत्सहते इत्यर्थः।** (तायने) उपक्रमते। पराक्रमते। **स्फीतीभवतीत्यर्थः।**

आर्यभाषा-अर्थ-(वृत्ति०) वृत्ति, सर्ग और तायन अर्थ में विद्यमान (उपपराभ्याम्) उप और परा उपसर्ग से परे (क्रमः) क्रम धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(वृत्ति) उपक्रमते। पराक्रमते। रुकता नहीं है। (सर्ग) उपक्रमते। पराक्रमते। उत्साह करता है। (तायन) उपक्रमते। पराक्रमते। बढ़ता है।

*सिद्धि-**उपक्रमते।** उप+क्रम+लट्। उप+क्रम+शप्+त। उप+क्रम+अ+ते। उपक्रमते। यहां 'उप' उपसर्ग से परे 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। ऐसे ही-परा+क्रमते। **पराक्रमते।***

(२९) आङ उद्गमने।४०।

प०वि०-आङः ५।१ उद्गमने ७।१।

अनु०-'क्रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उद्गमने आङः क्रमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-उद्गमनेऽर्थे वर्तमानाद् आङ्-उपसर्गपूर्वात् क्रमो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-आक्रमते आदित्यः । आक्रमते चन्द्रमाः । उदयते इत्यर्थः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(उद्गमने) उदय होने अर्थ में विद्यमान (आङः) आङ् उपसर्ग से परे (क्रमः) क्रम धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-आक्रमते आदित्यः । सूर्य उदय होता है। आक्रमते चन्द्रमाः । चन्द्रमा उदय होता है।

सिद्धि-आक्रमते। आङ्+क्रम्+लट्। आ+क्रम्+शप्+त। आ+क्रम+अ+ते। आक्रमते।

यहां 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'आत्मनेपद' आदेश 'त' होता है।

(३०) वेः पादविहरणे।४१।

प०वि०-वेः ५।१ पाद-विहरणे ७।१।

स०-पादस्य विहरणमिति पादविहरणम्, तस्मिन्-पादविहरणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। विहरणम्=विक्षेपः ।

अनु०-'क्रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पादविहरणे वेः क्रमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-पादविहरणेऽर्थे वर्तमानाद् वि-परस्मात् क्रमो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-सुष्ठु विक्रमते वाजी। साधु विक्रमते वाजी। अश्वः साधु पादविक्षेपं करोतीत्यर्थः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(पादविहरणे) पांव से चलने अर्थ में विद्यमान, वि उपसर्ग से परे (क्रमः) क्रम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-सुष्ठु विक्रमते वाजी। घोड़ा अच्छे प्रकार से चलता है। अश्व आदि की गतिविशेष को विक्रमण कहते हैं।

सिद्धि-विक्रमते। वि+क्रम्+लट्। वि+क्रम्+शप्+त। वि+क्रम्+अ+ते। विक्रमते।

यहां 'वि' उपसर्ग से परे 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

(३१) प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्।४२।

प०वि-प्र-उपाभ्याम् ५।२ समर्थाभ्याम् ५।२।

स०-प्रश्च उपश्च तौ-प्रोपौ, ताभ्याम्-प्रोपाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-समर्थाभ्यां प्रोपाभ्यां क्रमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-समर्थाभ्याम्=तुल्यार्थाभ्यां प्र-उपाभ्यामुपसर्गाभ्यां परस्मात् क्रमो धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(प्रात्) प्रक्रमते भोक्तुम्। (उपात्) उपक्रमते भोक्तुम्। आरभते इत्यर्थः। आदिकर्मणि प्र-उपौ समर्थौ=तुल्यार्थौ भवतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समर्थाभ्याम्) समान अर्थवाले (प्र-उपाभ्याम्) प्र और उप उपसर्ग से परे (क्रमः) क्रम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(प्र) प्रक्रमते भोक्तुम्। खाना आरम्भ करता है। आदिकर्म=क्रिया को आरम्भ करने अर्थ में प्र और उप उपसर्ग समानार्थक होते हैं।

*सिद्धि-प्रक्रमते। प्र+क्रम्+लट्। पूर्ववत्। ऐसे ही-**उपक्रमते**।*

(३२) अनुपसर्गाद् वा।४३।

प०वि०-अनुपसर्गात् ५।१, वा अव्ययपदम्।

स०-न उपसर्ग इति अनुपसर्गः, तस्मात्-अनुपसर्गात् (नञ्तत्पुरुषः)

अनु०-'क्रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गात् कृञः कर्तरि वाऽऽत्मनेपदम्।

अर्थः-अनुपसर्गात्=उपसर्गरहितात् क्रमो धातोः परो कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-क्रमते। क्रामति। गच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (क्रमः) क्रम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (वा) विकल्प से (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-क्रमते। क्रामति।

*सिद्धि-(१) **क्रमते**। क्रम्+लट्। क्रम्+शप्+त। क्रम्+अ+ते। क्रमते। यहां **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' होता है।*

*(२) **क्रामति**। क्रम्+लट्। क्रम्+शप्+तिप्। क्रम्+अ+ति। क्राम्+अ+ति। क्रामति।*

*यहां **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'क्रमः परस्मैपदेषु'** (७।३।७६) से 'क्रम्' धातु को दीर्घ होता है।*

ज्ञा अवबोधने (क्र्या०प०)–

(३३) अपह्नवे ज्ञः ।४४।

प०वि०–अपह्नवे ७ ।१ ज्ञः ५ ।१ ।

अर्थः–अपह्नवे=अपलापेऽर्थे वर्तमानाद् ज्ञा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–शतमपजानीते । सहस्रमपजानीते । शतं सहस्रं वाऽपलपतीत्यर्थः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपह्नवे) मिथ्याभाषण अर्थ में विद्यमान (ज्ञः) ज्ञा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०–शतम् अपजानीते। सौ रुपये के लिये मिथ्याभाषण करता है। सहस्रम् अपजानीते। हजार रुपये के लिये झूठ बोलता है। अप उपसर्गपूर्वक ज्ञा धातु मिथ्याभाषण अर्थ में प्रयुक्त होती है।

सिद्धि-अपजानीते। *अप+ज्ञा+लट्। अप+जा+श्ना+त। अप+ज्ञा+ना+त। अप+जा+नी+ते। अपजानीते।*

यहां 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश और 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३ ।१ ।८१) से 'श्ना' प्रत्यय होता है। 'ज्ञाजनोर्जा' (७ ।३ ।७९) से 'ज्ञा' के स्थान में 'जा' आदेश और 'ई हल्यघोः' (६ ।४ ।११३) से 'श्ना' के 'आ' को 'ई' आदेश होता है।

(३४) अकर्मकाच्च ।४५।

प०वि०–अकर्मकात् ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०–न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–'ज्ञः' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–अकर्मकाच्च ज्ञः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–अकर्मकात्=अकर्मकक्रियावचनात् ज्ञा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–सर्पिषो जानीते । मधुनो जानीते । सर्पिषो मधुनो वा उपायेन भोजने प्रवर्तते इत्यर्थः । सर्पिः=घृतम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्मकात्) अकर्मक क्रियावाची (ज्ञः) ज्ञा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-सर्पिषो जानीते। मधुनो जानीते। घृत/मधु के कारण भोजन में प्रवृत्त होता है।

सिद्धि-जानीते। ज्ञा+लट्। ज्ञा+श्ना+तु। जानीते। पूर्ववत्।

विशेष-प्रश्न-यहां ज्ञा धातु अकर्मक कैसे हैं? उत्तर-यहां सर्पि अथवा मधु ज्ञेय रूप में विवक्षित नहीं है किन्तु ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति करने में करणरूप में विवक्षित है। इसलिये 'सर्पिषो जानीते' यहां 'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे' (२।३।५१) से षष्ठी विभक्ति होती है।

(३५) सम्प्रतिभ्यामनाध्याने।४६।

प०वि०-सम्+प्रतिभ्याम् ५।१ अनाध्याने ७।१।

स०-सं च प्रतिश्च तौ सम्प्रती, ताभ्याम्-संप्रतिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्-आध्यानम्, न आध्यानम् इति अनाध्यानम्, तस्मिन्-अनाध्याने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'ज्ञः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनाध्याने सम्प्रतिभ्यां ज्ञः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-अनाध्याने (उत्कण्ठापूर्वकेऽस्मरणे)ऽर्थे वर्तमानात् सम्प्रतिभ्याम् उपसर्गाभ्यां परस्माद् ज्ञा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-**(सम्)** शतं संजानीते। सहस्रं संजानीते। शतं सहस्रं वाऽवेक्षते इत्यर्थः। **(प्रति)** शतं प्रतिजानीते। सहस्रं प्रतिजानीते। शतं सहस्रं वा अङ्गीकरोतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनाध्याने) उत्कण्ठापूर्वक स्मरण न करने अर्थ में विद्यमान (सम्प्रतीभ्याम्) सम् और प्रति उपसर्ग से परे (ज्ञः) ज्ञा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद आदेश होता है।

उदा०-(सम्) शतं संजानीते। सहस्रं संजानीते। सौ अथवा हजार को ठीक जानता है। (प्रति) शतं प्रतिजानीते। सहस्रं प्रतिजानीते। सो अथवा हजार प्रतिज्ञा करता है।

विशेष-प्रश्न-यहां उत्कण्ठापूर्वक स्मरण अर्थ का किसलिये निषेध किया है? उत्तर-यहां आत्मनेपद न हो-मातुः संजानाति बालः। पितुः संजानाति बालः। बालक माता अथवा पिता को उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करता है।

वद व्यक्तायां वाचि (भ्वा०प०)–

(३६) भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ।४७।

प०वि०–भासन–उपसंभाषा–ज्ञान–यत्न–विमति–उपमन्त्रणेषु ७ ।३ वदः ५ ।१ ।

स०–भासनं च उपसंभाषा च ज्ञानं च यत्नश्च विमतिश्च उपमन्त्रणं च तानि–भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणानि, तेषु–भासनोपसंभाषा–ज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अन्वयः–भासन०उपमन्त्रणेषु वदः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–भासन–उपसंभाषा–ज्ञान–यत्न–विमति–उपमन्त्रणेष्वर्थेषु वर्तमानाद् वदो धातोः कर्तरि आत्मनेपदम् भवति ।

उदा०–**(भासने)** व्याकरणशास्त्रे वदते । भासमानः= दीप्यमानस्तत्र–पदार्थान् व्यक्तीकरोतीत्यर्थः । **(उपसंभाषायाम्)** कर्मकरानुपवदते । उपसान्त्वयतीत्यर्थः । **उपसंभाषा**=उपसान्त्वनम् । **(ज्ञाने)** व्याकरणे वदते । जानाति वदितुमित्यर्थः । **ज्ञानम्**=सम्यगवबोधः । **(यत्ने)** क्षेत्रे वदते । तत्र उत्सहते इत्यर्थः । **यत्नः**=उत्साहः । **(विमतौ)** क्षेत्रे विवदन्ते । गेहे विवदन्ते । तत्र विमतिपतिता विचित्रं भाषन्ते इत्यर्थः । **विमतिः**=नानामतिः । **(उपमन्त्रणे)** कुलभार्यामुपवदते । परदारानुपवदते । उपच्छन्दयतीत्यर्थः । **उपमन्त्रणम्**=रहस्युपच्छन्दनम् ।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(भासन०) भासन, उपसंभाषा, ज्ञान, यत्न, विमति और उपमन्त्रण अर्थ में विद्यमान (वदः) वद् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०–__(भासन)__ व्याकरणशास्त्रे वदते। व्याकरणशास्त्र में दीप्यमान होकर उसके पदार्थों को प्रकाशित करता है। __(उपसंभाषा)__ कर्मकरानुपवदते। नौकरों को सान्त्वना प्रदान करता है। __(ज्ञान)__ व्याकरणशास्त्रे वदते। व्याकरणशास्त्र को बोलना जानता है। __(यत्न)__ क्षेत्रे वदते। क्षेत्रविषयक उत्साह को प्रकट करता है। __(विमति)__ क्षेत्रे विवदन्ते। खेत में नानामति में पड़े हुये विचित्र भाषण करते हैं। __(उपमन्त्रण)__ कुलभार्यामुपवदते। कुलभार्या को बहकाता है। __परदारानुपवदते।__ परदारा को फुसलाता है।

__सिद्धि-वदते।__ वद्+लट्। वद्+शप्+त। वद्+अ+ते। वदते। यहां भासन आदि अर्थ में वद धातु से आत्मनेपद 'त' प्रत्यय है।

(३७) व्यक्तवाचां समुच्चारणे।४८।

प०वि०-व्यक्तवाचाम् ६।३ समुच्चारणे ७।१।

स०-व्यक्ता वाचो येषां ते व्यक्तवाचः, तेषाम्-व्यक्तवाचाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'वदः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्यक्तवाचां समुच्चारणे वदः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-व्यक्तवाचाम्=मनुष्याणां समुच्चारणे=सहोच्चारणेऽर्थे वर्तमानाद् वद-धातोः कर्तरि आत्मनेपदम् भवति।

उदा०-सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः। सम्प्रवदन्ते क्षत्रियाः। मिलित्वा वेदमन्त्रादिकमुच्चारयन्तीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(व्यक्तवाचाम्) व्यक्तवाणीवाले मनुष्यों के (समुच्चारणे) साथ उच्चारण करने अर्थ में विद्यमान (वदः) वद् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः।** ब्राह्मण मिलकर मन्त्रोच्चारण करते हैं। सम्प्रवदन्ते क्षत्रियाः। क्षत्रिय मिलकर मन्त्रोच्चारण करते हैं।*

*सिद्धि-**सम्प्रवदन्ते।** सम+प्र+वद्+लट्। सम्+प्र+वद्+शप्+झ। सम्+प्र+वद्+अ+अन्ते। सम्प्रवदन्ते। यहां सम्-प्र उपसर्गपूर्वक मनुष्यों के समुच्चारण अर्थ में वद् धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद में झ-आदेश होता है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ' के स्थान में अन्त आदेश होता है।*

(३८) अनोरकर्मकात्।४६।

प०वि०-अनोः ५।१ अकर्मकात् ५।१

स०-न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'वदः, व्यक्तवाचाम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्यक्तवाचाम् अनोरकर्मकाद् वदः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-व्यक्तवाग्विषयाद् अकर्मकाद् वद-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-अनुवदते कठः कलापस्य। अनुवदते मौद्‌गः पैप्पलादस्य। **अनु**: सादृश्येऽर्थे वर्तते। यथा कलापोऽधीयानो वदति तथा कठ इति। यथा च पैप्पलादोऽधीयानो वदति तथा मौद्‌ग इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(व्यक्तवाचाम्) मनुष्यवाणी विषयक, (अनोः) अनु उपसर्ग से परे (अकर्मकात्) अकर्मक क्रियावाची (वदः) वद् धातु से परे (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**अनुवदते कठः कलापस्य।** जैसे अध्ययन करता हुआ कलाप बोलता है, वैसे ही कठ बोलता है। अनुवदते मौद्‌गः पैप्लादस्य। जैसे पढ़ता हुआ पैप्लाद बोलता है, वैसे ही मौद्‌ग बोलता है। यहां 'अनु' शब्द सदृश अर्थ का वाचक है।*

*सिद्धि-**अनुवदते।** अनु+वद्+लट्। अनु+वद्+शप्+त। अनु+वद्+अ+ते। अनुवदते। यहां अनु उपसर्गपूर्वक अकर्मक वद् धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश है।*

(३६) विभाषा विप्रलापे।५०।

प०वि०-विभाषा १।१ विप्रलापे ७।१।

अनु०-'वदः, व्यक्तवाचां समुच्चारणे' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-विप्रलापात्मके व्यक्तवाचां समुच्चारणेऽर्थे वर्तमानाद् वद-धातोर्विकल्पेन कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-विप्रवदन्ते सांवत्सराः। विप्रवदन्ति सांवत्सराः। युगपत् परस्परविरोधेन विरुद्धं वदन्तीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विप्रलापे) परस्पर विरुद्ध कथन आत्मक (व्यक्तवाचाम्) मनुष्यों के (समुच्चारणे) साथ उच्चारण करने अर्थ में विद्यमान (वदः) वद् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-विप्रवदन्ते सांवत्सराः। विप्रवदन्ति सांवत्सराः। सांवत्सरिक (ज्योतिषी) लोग एकदम परस्पर प्रतिषेधपूर्वक विरुद्ध बोलते हैं।

*सिद्धि-(१) **विप्रवदन्ते।** वि+प्र+वद्+लट्। वि+प्र+वद्+शप्+झ। वि+प्र+वद्+अन्ते। विप्रवदन्ते। यहां वि-प्र उपसर्गपूर्वक विप्रलाप अर्थ में वद् धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद झ-आदेश है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से (झ) के स्थान में अन्त-आदेश होता है।*

*(२) **विप्रवदन्ति।** वि+प्र+वद्+लट्। वि+प्र+वद्+झि। वि+प्र+वद्+अन्ति। विप्रवदन्ति। यहां वि-प्र उपसर्गपूर्वक विप्रलाप अर्थक वद् धातु से विकल्प पक्ष में लट् के स्थान में परस्मैपद झि-आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

गॄ निगरणे (तु०प०)–

(४०) अवाद् ग्रः ।५१।

प०वि०–अवात् ५ ।१ ग्रः ५ ।१

अन्वयः–अवाद् ग्रः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–अव-उपसर्गपूर्वाद् गॄ-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–अवगिरते । निगिरतीत्यर्थः ।

आर्यभाषा-अर्थ–*(अवात्) अव उपसर्ग से परे (ग्रः) गॄ धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।*

उदा०–अवगिरते। निगलता है।

सिद्धि-(१) अवगिरते। *अव+गॄ+लट्। अव+गॄ+श+त। अव+गॄ+अ+त। अव+ग् इर्+अ+ते। अवगिरते।*

यहां 'गॄ निगरणे' (तु०प०) धातु से लट् प्रत्यय, और उसके स्थान में आत्मनेपद त-आदेश होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय है। 'ॠत इद्धातोः' (७।१।१००) से धातु के 'ॠ' को 'इ' आदेश और वह 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपर है-इर्।

विशेष–*'गॄ निगरणे' यह धातु तुदादिगण में पढ़ी गई है और 'गॄ शब्दे' यह धातु क्र्यादिगण में पढ़ी गई है। यहां तुदादिगण में पठित 'गॄ निगरणे' का ग्रहण होता है क्योंकि 'गॄ शब्दे' का अव उपसर्गपूर्वक प्रयोग नहीं है।*

(४१) समः प्रतिज्ञाने ।५२।

प०वि०–समः ५ ।१ प्रतिज्ञाने ७ ।१ ।

अनु०–'ग्रः' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–प्रतिज्ञाने समः ग्रः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–प्रतिज्ञानेऽर्थे वर्तमानात् सम्-उपसर्गपूर्वाद् गॄ-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–शब्दं नित्यं संगिरते । प्रतिजानातीत्यर्थः । प्रतिज्ञानमभ्युपगमः, स्वीकरणम् ।

आर्यभाषा-अर्थ–*(प्रतिज्ञाने) स्वीकार करने अर्थ में विद्यमान, (समः) सम् उपसर्ग से परे (ग्रः) गॄ धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। शब्दं नित्यं संगिरते। 'शब्द नित्य है' ऐसी प्रतिज्ञा करता है।*

सिद्धि-संगिरते। सम्+गृ+लट्। सम्+गृ+श+त। सम्+गिर्+अ+ते। संगिरते। यहां सम् उपसर्गपूर्वक प्रतिज्ञान अर्थ में 'गृ' धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४२) उदश्चरः सकर्मकात्।५३।

प०वि०-उदः ५।१। चरः ५।१ सकर्मकात् ५।१।

स०-कर्मणा सहेति सकर्मकः, तस्मात्-सकर्मकात् (बहुव्रीहिः)

अन्वयः-सकर्मकाद् उदश्चरः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सकर्मकक्रियावचनाद् उत्-उपसर्गपूर्वात् चर-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-धर्ममुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सकर्मकात्) सकर्मक क्रियावाची, (उदः) उत् उपसर्ग से परे (चरः) चर् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-धर्ममुच्चरते। धर्म का उल्लंघन करता है। गुरुवचनमुच्चरते। गुरुवचन का उल्लंघन करता है।

सिद्धि-उच्चरते। उत्+चर्+लट्। उत्+चर्+शप्+त। उत्+चर्+अ+ते। उच्चरते। यहां उत् उपसर्गपूर्वक सकर्मक चर धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद त-आदेश है।

(४३) समस्तृतीयायुक्तात्।५४।

प०वि०-समः ५।१ तृतीयायुक्तात् ५।१।

स०-तृतीयया युक्त इति तृतीयायुक्तः, तस्मात्-तृतीयायुक्तात् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-'चरः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायुक्तात् समश्चरः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-तृतीयाविभक्तियुक्तात् सम्-उपसर्गात् चर-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-रथेन संचरते। अश्वेन संचरते। रथेनाऽश्वेन वा भ्रमतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायुक्तात्) तृतीया विभक्ति से युक्त (समः) सम् उपसर्ग से परे (चरः) चर् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-रथने संचरते। रथ से घूमता है। अश्वेन संचरते। घोड़े से भ्रमण करता है।

सिद्धि-संरचते। सम्+चर्+लट्। सम्+चर्+शप्+त। सम्+चर्+अ+ते। संचरते। यहां सम् उपसर्गपूर्वक तृतीया विभक्ति से युक्त चर् धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद त-आदेश है।

दाण् दाने (भ्वा०प०)-

(४४) दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे।५५।

प०वि०-दाणः ५।१ च अव्ययपदम्। सा १।१। चेत् अव्ययपदम्। चतुर्थी-अर्थे ७।१।

अनु०-'समः, तृतीयायुक्तात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायुक्तात् समो दाणश्च कर्तरि आत्मनेपदं सा तृतीया चतुर्थ्यर्थे चेत्।

अर्थः-तृतीयाविभक्तियुक्तात् सम्-उपसर्गपूर्वाद् दाण्-धातोरपि कर्तरि आत्मनेपदं भवति, यदि सा तृतीया चतुर्थी-अर्थे भवति।

उदा०-दास्या सम्प्रयच्छते। कामुकः सन् दास्यै ददातीत्यर्थः। कथं पुनस्तृतीया चतुर्थी-अर्थे स्यात्। वक्तव्यमेवैतत्- **'अशिष्टव्यवहारे तृतीया चतुर्थ्यर्थे भवतीति वक्तव्यम्'** इति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायुक्तात्) तृतीया विभक्ति से युक्त (समः) सम् उपसर्ग से परे (दाणः) दाण् धातु से (च) भी (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। (चेत्) यदि (सा) वह तृतीया विभक्ति (चतुर्थी-अर्थे) चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में विद्यमान हो।

उदा०-दास्याः सम्प्रयच्छते। कामुक होकर दासी को कुछ देता है।

सिद्धि-(१) सम्प्रयच्छते। सम्+प्र+दाण्+लट्। सम्+प्र+दा+शप्+त। सम्+प्र+यच्छ्+अ+ते। सम्प्रयच्छते। यहां सम् और प्र उपसर्गपूर्वक 'दाण् दाने' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दाण्' के स्थान में 'यच्छ्' आदेश है।

विशेष-प्रश्न-तृतीया विभक्ति, चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में कैसे होती है ?
उत्तर-अशिष्ट व्यवहार में तृतीया विभक्ति चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में होती है।

उपाद् यमः स्वकरणे।५६।

प०वि०-उपात् ५।१ यमः ५।१ स्वकरणे ७।१।

अन्वयः-स्वकरणे उपाद् यमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-स्वकरणेऽर्थे वर्तमानाद् उप-उपसर्गपूर्वाद् यमो धातोः परः कर्तरि आत्मनेपदं भवति। पाणिग्रहणरूपमिह स्वकरणं गृह्यते न स्वकरणमात्रम्।

उदा०-भार्यामुपयच्छते देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वकरणे) अपना बनाने अर्थ में (उपः) उप-उपसर्ग से परे (यमः) यम धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। यहां पाणिग्रहणरूप स्वकरण अर्थ का ग्रहण किया जाता है, केवल स्वकरणमात्र नहीं।

उदा०-भार्यामुपयच्छते देवदत्तः। देवदत्त पत्नी को अपनाता है (विवाह करता है)।

सिद्धि-उपयच्छते। उप+यम्+लट्। यप+यच्छ्+शप्+त। उप+यच्छ्+अ+ते। उपयच्छते। यहां 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से यम् के 'म्' को 'छ' आदेश होता है।

(४५) ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः।५७।

प०वि०-ज्ञा-श्रु-स्मृ-दृशाम्, पञ्चमी-अर्थे ६।३ सनः ५।१।

स०-ज्ञाश्च श्रुश्च स्मृश्च दृश् च ते-ज्ञाश्रुस्मृदशः, तेषाम्-ज्ञाश्रुस्मृदशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सनः ज्ञाश्रुस्मृदृशां कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सन्नन्तेभ्यो ज्ञा-श्रु-स्मृ-दृशभ्यो धातुभ्यः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-**(ज्ञा)** धर्मं जिज्ञासते। ज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः। **(श्रु)** गुरुं शुश्रूषते। श्रोतुमिच्छतीत्यर्थः। **(स्मृ)** नष्टं सुस्मूर्षति। स्मर्तुमिच्छतीत्यर्थः। **(दृश्)** राजानं दिदृक्षते। द्रष्टुमिच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सनः) सन् प्रत्ययान्त (ज्ञा-श्रु-स्मृ-दशाम्) ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(ज्ञा) धर्मं जिज्ञासते। धर्म को जानना चाहता है। (श्रु) गुरुं शुश्रूषते। गुरु की शुश्रूषा=सेवा करना चाहता है। (स्मृ) नष्टं सुस्मूर्षति। भूले हुये को याद करना चाहता है। (दृश्) राजानं दिदृक्षते। राजा को देखना चाहता है।

*सिद्धि-(१) **जिज्ञासते।** यहां 'ज्ञा अवबोधने' धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन और अभ्यास-कार्य होकर 'जिज्ञास' सन्नन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।*

*(२) **शुश्रूषते।** यहां '**श्रु श्रवणे**' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और '**अज्झनगमां सनि**' (६।४।१६) से धातु को दीर्घ होता है। शेष सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सुस्मूर्षते।** यहां '**स्मृ चिन्तायाम्**' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और द्विर्वचन होकर 'अज्झनगमां सनि' (६।४।१६) से धातु को दीर्घ, उसे '**उदोष्ठ्यपूर्वस्य**' (७।१।१०२) से उकार आदेश '**र्वोरुपधाया दीर्घ इकः**' (८।२।७६) से दीर्घ '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **दिदृक्षते।** यहां '**दृशिर् प्रेक्षणे**' धातु से पूर्ववत् सन् प्रत्यय, धातु को द्विर्वचन, अभ्यास कार्य, '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को अकार आदेश और उसे 'सन्यतः' (७।४।७९) से इकार आदेश होता है। '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८।२।३६) से 'दृश्' धातु के 'श्' को षकार आदेश और उसको '**षढोः कः सि**' (८।२।४१) से ककार आदेश होकर '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से 'षत्व' हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४६) नानोर्ज्ञः ।५८।

प०वि०-न अव्ययपदम् अनोः ५।१ ज्ञः ५।१।

अनु०-'सन्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनोर्ज्ञः सनः कर्तरि आत्मनेपदं न।

अर्थः-अनु-उपसर्गात् सन्नन्ताद् ज्ञा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं न भवति।

उदा०-पुत्रमनुजिज्ञासति। आज्ञापयितुमिच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अनोः) अनु उपसर्ग से परे (सनः) सन् प्रत्ययान्त (ज्ञः) ज्ञा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**पुत्रमनुजिज्ञासति।** पुत्र को आज्ञा देना चाहता है।*

*सिद्धि-**अनुजिज्ञासति।** यहां अनु उपसर्गपूर्वक सन्नन्त ज्ञा धातु से आत्मनेपद का प्रतिषेध होने से लट् के स्थान में तिप्-आदेश होता है। शेष कार्य '**जिज्ञासते**' के समान है।*

(४७) प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ।५९।

प०वि०-प्रति-आङ्भ्याम् ५।२ श्रुवः ५।१।

स०-प्रतिश्च आङ् च तौ प्रत्याङौ, ताभ्याम्-प्रत्याङ्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'न, सनः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रत्याङ्भ्यां सनः श्रुवः कर्तरि आत्मनेपदं न।

अर्थः-प्रत्याङ्भ्यां परस्मात् सन्नन्तात् श्रु-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं न **भवति**।

उदा०-**(प्रतेः)** प्रतिशुश्रूषति। **(आङः)** आशुश्रूषति। प्रतिज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रत्याङ्भ्याम्) प्रति और आङ् उपसर्ग से परे (सनः) सन् प्रत्ययान्त (ज्ञः) ज्ञा धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद (न) नहीं होता है, अपितु परस्मैपद होता है।

उदा०-(प्रति) प्रतिशुश्रूषति। प्रतिज्ञा करना चाहता है। (आङ्) आशुश्रूषति। प्रतिज्ञा करना चाहता है।

सिद्धि-प्रतिशुश्रूषति। *प्रतिशुश्रूष+लट्। प्रतिशुश्रूष+शप्+तिप्। प्रतिशुश्रूष+अ+ति। प्रतिशुश्रूषति।*

*यहां 'प्रति' उपसर्गपूर्वक '**श्रु श्रवणे**' (स्वादि०) सन्नन्त धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश है। ऐसे ही-**आशुश्रूषति।***

शद्लृ शातने (भ्वा०प०)-

(४८) शदेः शितः।६०।

प०वि-शदेः ५।१ शितः ६।१।

स०-श इत् यस्य सः-शित्, तस्य-शितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शितः शदेः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-शित्-प्रत्ययसम्बन्धिनः शद-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-शीयते। तीक्ष्णं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शितः) *शित् प्रत्यय से सम्बन्धित (शदेः) शद् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।*

उदा०-*शीयते। तीक्ष्ण करता है।*

सिद्धि-शीयते। *शद्लृ+लट्। श द्+शप्+त। शद्+अ+त। शीय्+अ+ते। शीयते।*

यहां 'शद्लृ शातने' (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। यहां 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होने से शद् धातु शित् प्रत्यय से सम्बन्धित है। 'पाघ्राध्मा०' (अ०७।३।७८) से 'शद्' के स्थान में 'शीय्' आदेश होता है।

मृङ् प्राणत्यागे (तु०आ०)–

(४६) म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च।६१।

प०वि०–म्रियते: ५।१। लुङ्-लिङो: ६।२ च अव्ययपदम्।

स०–लुङ् च लिङ् च तौ लुङ्लिङौ, तयो:-लुङ्लिङो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–'शित:' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–लुङ्लिङो: शितश्च म्रियते: कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थ:–लुङ्-लिङ्सम्बन्धिन: शित्प्रत्ययसम्बन्धिनश्च मृ-धातो: कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा–**(लुङ्)** अमृत। **(लिङ्)** मृषीष्ट। **(शित्)** म्रियते।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुङ्लिङो:) लुङ्, लिङ्सम्बन्धी (शित:, च) और शित् प्रत्यय सम्बन्धी (म्रियते:) मृ धातु से (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(लुङ्) अमृत। मर गया। (लिङ्) मृषीष्ट। मरे। (शित्) म्रियते। मरता है।

***सिद्धि-(१) अमृत।** मृ+लुङ्। अट्+मृ+च्लि+त। अ+मृ+सिच्+त। अट्+मृ+स्+त। अ+मृ+०+त। अमृत।*

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय, और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, 'च्ले: सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है।

***(२) मृषीष्ट।** मृ+लिङ्। मृ+सीयुट्+त। मृ+सीय्+सुट्+त। मृ+सी+स्+त। मृ+षी+ष्+ट। मृषीष्ट।*

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) धातु से 'विधिनिमन्त्रणा०' (३।३।१६१) से लिङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'लिङ: सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और 'सुट् तिथो:' (३।४।१०७) से 'त' को सुट् आगम होता है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से 'य्' का लोप, 'आदेश-प्रत्यययो:' (८।३।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४१) से टुत्व होता है।

***(३) म्रियते।** मृ+लट्। मृ+श+त। मृ+अ+त। म् रिङ्+अ+त। म् रि+अ+त। म् रियङ्+अ+त। म्रिय्+अ+ते। म्रियते।*

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से विकरण 'श' प्रत्यय होने से मृ धातु शित् प्रत्यय से सम्बन्धित है। 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से 'मृ' धातु को 'रिङ्' आदेश और उसको 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।

विशेष-मृङ् धातु से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद सिद्ध था, फिर यह आत्मनेपद का विधान इस नियम के लिये है कि लुङ्, लिङ्, और शित् प्रत्यय से सम्बन्धित मृङ् धातु से ही आत्मनेपद हो, अन्यत्र न हो।

सन्नन्त-धातुः-

(५०) पूर्ववत् सनः।६२।

प०वि०-पूर्ववत् अव्ययपदम्। सनः ५।१।

पूर्वेण तुल्यमिति पूर्ववत् (तद्धितवृत्तिः)।

अन्वयः-सनः पूर्ववत् कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सनः पूर्वो यो धातुरात्मनेपदी, तेन तुल्यं सन्नन्तादपि कर्तरि आत्मनेपदं भवति। येन निमित्तेन पूर्वं धातोरात्मनेपदं विधीयते तेनैव निमित्तेन सन्नन्तादप्यात्मनेपदं भवतीत्यर्थः।

उदा०-**(आस्)** आस्ते। आसिसिषते। **(शीङ्)** शेते। शिशयिषते।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूर्ववत्) सन् प्रत्यय से पूर्व जो धातु आत्मनेपदी है उसके समान (सनः) सन् प्रत्ययान्त धातु से भी (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(आस्) आस्ते। बैठता है। सन्-आसिसिषते। बैठना चाहता है। **(शीङ्)** शेते। सोता है। सन्-शिशयिषते। सोना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **आसिसिषते।** आस्+सन्। आस्+इट्+स। आस्+इ+स। आसिष। आ सि+सि+ष। आसिसिष+लट्। आसिसिष+शप्+त। आसिसिष+अ+ते। आसिसिषते।*

यहां 'आस् उपवेशने' (अ०आ०) धातु आत्मनेपदी है। उसी निमित्त से, सन् प्रत्यय करने पर भी 'आस्' धातु से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। यहां 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन की विधि होने पर 'अजादेर्द्वितीयस्य' (६।१।२) से द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन होता है।

(२) शिशयिषते। 'शीङ् स्वप्ने' (अ०आ०) धातु आत्मनेपदी है। उसी निमित्त से 'सन्' प्रत्यय करने पर भी 'शीङ्' धातु से आत्मनेपद ही होता है।

अनुप्रयोगी कृञ् (तना०उ०)-

(५१) आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य।६३।

प०वि०-आम्प्रत्ययवत् अव्ययपदम्, कृञः ५ ।१ अनुप्रयोगस्य ६ ।१ ।

स०-आम्प्रत्ययो यस्मात् सः-आम्प्रत्ययः । आम्प्रत्ययस्य इव आम्प्रत्ययवत् (पूर्वं बहुव्रीहिः, तत इवार्थे वतिः प्रत्ययः) ।

अन्वयः-अनुप्रयोगस्य कृञ आम्प्रत्ययवत् कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-अनुप्रयोगस्य कृञ्-धातोराम्प्रत्ययवत् कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०-एधांचक्रे । ईहांचक्रे ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुप्रयोगस्य) अनुप्रयोगवाली (कृञः) कृञ् धातु से आम्प्रत्ययवत् आम् प्रत्यय के समान (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**एधांचक्रे।** वह बढ़ा। **ईहांचक्रे।** उसने प्रयत्न किया।*

*सिद्धि-(१) **एधांचक्रे।** एध्+लिट्। एध्+आम्+ल्। एध्+आम्+ल्+कृ+लिट्। एध्+आम्+कृ+त। एध्+आम्+कृ+कृ+त। एध्+आम्+क+कृ+एश्। एध्+आम्+च+कर्+ए। एधांचक्रे।*

*यहां 'एध वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु आत्मनेपदी है। उससे 'लिट्' प्रत्यय के परे रहने पर **'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः'** (३ ।१ ।३६) से 'आम्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् **'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि'** (३ ।१ ।४०) से 'कृञ्' धातु का अनुप्रयोग होता है। यहां 'आम्' प्रत्यय आत्मनेपदी धातु से किया गया है अतः अनुप्रयोगी 'कृञ्' धातु से भी आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३ ।४ ।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। **'उरत्'** (७ ।४ ।६६) से अभ्यास 'ऋ' को अकार आदेश और **'अभ्यासे चर्च'** (८ ।४ ।५४) से चर्त्व होता है। इसी प्रकार **'ईह चेष्टायाम्'** (भ्वादि० आ०) धातु से 'ईहांचक्रे' शब्द सिद्ध करें।*

युजिर् योगे (रु०प०)-

(५२) प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु।६४।

प०वि०-प्र-उपाभ्याम् ५ ।२ युजेः ५ ।१ अयज्ञपात्रेषु ७ ।३ ।

स०-प्रश्च उपश्च तौ प्रोपौ, ताभ्याम्-प्रोपाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) यज्ञस्य पात्राणीति यज्ञपात्राणि, न यज्ञपात्राणीति अयज्ञपात्राणि, तेषु-अयज्ञपात्रेषु (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः) ।

अन्वयः-अयज्ञपात्रेषु प्रोपाभ्यां युजेः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः-अयज्ञपात्रप्रयोगविषये प्र-उपाभ्याम् उपसर्गाभ्यां परस्माद् युज-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(प्र) प्रयुङ्क्ते। **(उप)** उपयुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(*अयज्ञपात्रेषु*) *यज्ञपात्रों के प्रयोग विषय को छोड़कर* (*प्रोपाभ्याम्*) *प्र और उप उपसर्ग से परे* (*युजः*) *युज् धातु से* (*कर्तरि*) *कर्तृवाच्य में* (*आत्मनेपदम्*) *होता है।*

उदा०-(प्र) प्रयुङ्क्ते। प्रयोग करता है। उपयुङ्क्ते। उपयोग करता है।

सिद्धि-(१) प्रयुङ्क्ते। *प्र+युज्+लट्। प्र+यु श्नम् ज्+त। प्र+यु न ज्+त। प्र+यु न् ज्+त। प्र+यु न् ज्+त। प्र+यु न् ग्+त। प्र+युन्क्+त। प्र+यु ं क्+ते। प्रयुङ्क्ते।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'युजिर् योगे'** (रु०प०) से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। यहां **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय और **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'अ' का लोप, **'चोः कुः'** (८।२।३०) से युज् धातु के ज् को कवर्ग गकार और **'खरि च'** (८।४।५४) से ग् को चर् ककार होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार आदेश और उसको **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से परसवर्ण ङकार होता है। इसी प्रकार उप+युङ्क्ते=उपयुङ्क्ते।*

क्ष्णु तेजने (अ०प०)-

समः क्ष्णुवः।६५।

प०वि०-समः ५।१ क्ष्णुवः ५।१।

अन्वयः-समः क्ष्णुवः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सम उपसर्गात् परस्मात् क्ष्णु-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(सम्) संक्ष्णुते शस्त्रम्। तीक्ष्णं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(*समः*) *सम् उपसर्ग से परे* (*क्ष्णुवः*) *क्ष्णु धातु से* (*कर्तरि*) *कर्तृवाच्य में* (*आत्मनेपदम्*) *आत्मनेपद होता है।*

उदा०-सम्-संक्ष्णुते शस्त्रम्। शस्त्र को तेज करता है।

सिद्धि-(१) संक्ष्णुते। *सम्+क्ष्णु+लट्। सम्+क्ष्णु+शप्+त। सम्+क्ष्णु+०+ते। संक्ष्णुते।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'क्ष्णु तेजने'** (अ०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् हो जाता है।*

भुज पालनाभ्यवहारयोः–

भुजोऽनवने ।६६।

प०वि०–भुजः ५ ।१ अनवने ७ ।१ ।

स०–अवनम्=रक्षणम् । न अवनमिति अनवनम्, तस्मिन–अनवने (नञ्तत्पुरुषः) ।

अन्वयः–अनवने भुजः कर्तरि आत्मनेपदम् ।

अर्थः–अनवनेऽर्थे वर्तमानाद् भुज्–धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति ।

उदा०–ओदनं भुङ्क्ते । अभ्यवहरतीत्यर्थः । 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' इति रुधादिगणे पठ्यते । तस्मादनवने=अपालने (अभ्यवहारे) अर्थे आत्मनेपदं विधीयते ।

आर्यभाषा–अर्थ–(अनवने) खाने–पीने अर्थ में वर्तमान (भुजः) भुज् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०–ओदनं भुङ्क्ते । भात खाता है।

*सिद्धि–**भुङ्क्ते ।** भुज्+लट् । भु श्नम् ज्+त । भु न ज्+त । भुन् ज्+त । भुन् ग्+त । भु न् क् +त । भु ँ क्+ते । भुङ्क्ते ।*

*यहां '**भुज पालनाभ्यवहारयोः**' (रु०आ०) धातु से अभ्यवहार अर्थ में 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। शेष कार्य प्रयुङ्क्ते (अ० १ ।३ ।६४) के समान है।*

ण्यन्तो धातुः–

णेरणौ यत् कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने ।६७।

प०वि०–णेः ५ ।१ अणौ ७ ।१ यत् १ ।१ कर्म १ ।१ णौ ७ ।१ चेत् अव्ययपदम्, कर्ता १ ।१ अनाध्याने ७ ।१ ।

स०–न णिरिति अणिः, तस्मिन्–अणौ (नञ्तत्पुरुषः) । उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम् आध्यानम्, न आध्यानमिति अनाध्यानम्, तस्मिन्–अनाध्याने (नञ्तत्पुरुषः) ।

अन्वयः–अनाध्याने णेः कर्तरि आत्मनेपदम्, अणौ यत् कर्म, णौ चेत् स कर्ता ।

अर्थः-अनाध्यानेऽर्थे वर्तमानाद् णेः=णिजन्ताद् धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति, अणौ=अण्यन्तावस्थायां यत् कर्म णौ=ण्यन्तावस्थायां चेद्=यदि स कर्ता भवति।

उदा०-(**अणौ**) आरोहन्ति **हस्तिनं** हस्तिपकाः। (**णौ**) आरोहयते **हस्ती** स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनाध्याने) उत्कण्ठापूर्वक स्मरण न करने अर्थ में विद्यमान (णेः) णिजन्त धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है, (अणौ) अणिजन्त अवस्था में (यत्) जो (कर्म) है, (णौ) णिजन्त अवस्था में (चेत्) यदि (सः) वह (कर्ता) कर्ता बन जाता है।

*उदा०-(अण्यन्त) आरोहन्ति **हस्तिनं** हस्तिपकाः। पीलवान हाथी पर चढ़ते हैं। **(ण्यन्त) आरोहयते** हस्ती स्वयमेव। हाथी पीलवानों को स्वयं चढ़ाता है।*

***सिद्धि**-(१) **आरोहयते**। आङ्+रुह्+णिच्। आ+रोह्+इ। आरोहि+लट्। आरोहि+शप्+त। आरोहे+अ+ते। आरोहयते।*

यहां आङ्पूर्वक 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) 'णिच्' प्रत्यय, 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से धातु को लघूपध गुण होकर णिजन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

*(२) यहां अण्यन्त अवस्था में जो '**हस्तिनम्**' कर्म है वह ण्यन्त अवस्था में '**हस्ती**' कर्ता बन जाता है।*

*(३) अनाध्यान अर्थात् उत्कण्ठापूर्वक स्मरण अर्थ का इसलिये निषेध किया है कि यहां आत्मनेपद न हो-**स्मरति वनगुल्मस्य कोकिलः**। कोयल वन-झाड़ी को उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करती है। **स्मरयत्येनं वनगुल्मः स्वयमेव**। वन झाड़ी इसे स्वयं स्मरण कराती है।*

ञिभी भये/स्मिङ् ईषद्हसने (भ्वा०आ०)-

भीस्म्योर्हेतुभये।६८।

प०वि०-भी-स्म्योः पञ्चमी-अर्थे ६।२ हेतुभये ७।१।

स०-भीश्च स्मिश्च तौ भीस्मी, तयोः-भीस्म्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हेतोर्भयमिति हेतुभयम्, तस्मिन्-हेतुभये (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-'णेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हेतुभये णेः भीस्म्योः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-हेतुभयेऽर्थे वर्तमानाभ्यां णिजन्ताभ्यां भी-स्मिभ्यां धातुभ्यां कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

हेतुः=प्रयोजकः कर्ता लकारवाच्यः, ततश्चेद् भयं भवति।

उदा०-(भी) जटिलो भीषयते। (स्मि) जटिलो विस्मापयते। अत्र भयग्रहणमुपलक्षणार्थम्, विस्मयोऽपि तत एव।

आर्यभाषा-अर्थ-(हेतुभये) हेतु से भय अर्थ में विद्यमान (णेः) णिजन्त (भीस्म्योः) भी और स्मि धातुओं से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(भी) जटिलो भीषयते। जटावाला डराता है। (स्मि) जटिलो विस्मापयते। जटावाला विस्मित (चकित) करता है।

सिद्धि-(१) भीषयते। भी+णिच्। भी+षुक्+इ। भी+ष्+इ। भीषि+लट्। भीषि+शप्+त। भीषि+अ+त। भीषे+अ+ते। भीषयते।

यहां 'ञिभी भये' (जु०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और 'भियो हेतुभये षुक्' (७।३।४०) से 'षुक्' आगम होकर णिजन्त भीषि धातु से 'लट्' प्रतयय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

(२) विस्मापयते। वि+स्मि+णिच्। वि+स्मि+इ। वि+स्मा+पुक्+इ। वि+स्मा+प्+इ। विस्मापि+शप्+त। विस्मापे+अ+ते। विस्मापयते।

यहां वि उपसर्गपूर्वक 'स्मिङ् ईषद्हसने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और 'नित्यं स्मयतेः' (६।१।५७) से धातु को नित्य आकार आदेश और 'अर्तिह्रीब्ली०' (७।३।३६) से 'पुक्' आगम करने पर णिजन्त 'विस्मापि' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, वञ्चु गतौ (भ्वा०प०)-

गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने।६८।

प०वि०-गृधि-वञ्च्योः, पञ्चमी-अर्थे ६।२ प्रलम्भने। ७।१।

स०-गृधिश्च वञ्चिश्च तौ-गृधिवञ्ची, तयोः-गृधिवञ्च्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णेरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रलम्भने णेर्गृधिवञ्च्योः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-प्रलम्भनेऽर्थे वर्तमानाभ्यां णिजन्ताभ्यां गृधि-वञ्चिभ्यां धातुभ्यां कर्तरि आत्मनेपदं भवति। प्रगल्भनम्=प्रतारणम्।

उदा०-(गृधि) माणवकं गर्धयते। (वञ्चि) माणवकं वञ्चयते। प्रतारयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रलम्भने) ठगने अर्थ में विद्यमान (णेः) णिजन्त (गृधि-वञ्च्योः) गृधि और वञ्चि धातुओं से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-माणवकं गर्धयते। माणवकं वञ्चयते। बालक को ठगता है।

*सिद्धि-(१) **गर्धयते।** गृधु+णिच्। गर्ध्+इ। गर्धि+लट्। गर्धि+शप्+त। गर्धे+अ+ते। गर्धयते।*

*यहां गृधु अभिकाङ्क्षायाम् (दि०प०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, तत्पश्चात् णिजन्त गर्धि धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। इसी प्रकार **'वञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**वञ्चयते।***

लीङ् श्लेषणे (दि०आ०)-

लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च ।७०।

प०वि०-लियः ५।१ सम्मानन-शालीनीकरणयोः ७।२। च अव्ययपदम्।

स०-सम्माननं च शालीनीकरणं च ते-सम्माननशालीनीकरणे, तयोः-सम्माननशालीनीकरणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'णेः, प्रलम्भने' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्माननशालीनीकरणयोश्च णेर्लियः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-सम्मानने शालीनीकरणे प्रलम्भने चार्थे वर्तमानात् णिजन्तात् ली-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(सम्मानने) जटाभिरालापयते। सम्माननम्=पूजा। पूजामधिगच्छतीत्यर्थः। **(शालीनीकरणे)** श्येनो वर्तिकामुल्लापयते। शालीनीकरणम्=न्यग्भावनम्। न्यक् करोतीत्यर्थः। **(प्रलम्भने)** माणवकमुल्लापयते। प्रलम्भनम्=प्रतारणम्। प्रतारयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्मानन-शालीनीकरणयोः) सम्मानन, शालीनीकरण (प्रलम्भने च) और ठगने अर्थ में वर्तमान (णेः) णिजन्त (लियः) ली धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-(सम्मानन) जटाभिरालापयते। जटाओं से पूजा को **प्राप्त होता है।** (शालीनीकरण) श्येनो वर्तिकामुल्लापयते। बाज़ बटेर को दबाता **है।** **(प्रलम्भन)** माणवकमुल्लापयते। बालक को ठगता है/बहकाता है।*

*सिद्धि-(१) **उल्लापयते। उत्+ली+णिच्। उत्+ला+इ। उत्+ला+पुक्+इ। उल्लापि+लट्। उल्लापि+शप्+त। उल्लापे+अ+ते। उल्लापयते।***

यहां 'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, 'विभाषा लीयतेः' (६।१।५१) से धातु को आकार आदेश, 'अर्तिह्रीव्लीo' (७।३।३६) से धातु को 'पुक्' का आगम होकर णिजन्त 'उल्लापि' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

डुकृञ् करणे (तना०उ०)–

मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे।७१।

प०वि०–मिथ्या-उपपदात् ५।१ कृञः ५।१ अभ्यासे ७।१।

स०–मिथ्या उपपदं यस्य सः–मिथ्योपपदः, तस्मात्–मिथ्योपपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–'णेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यासे मिथ्योपपदात् णेः कृञः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः–अभ्यासेऽर्थे वर्तमानाद् मिथ्या-उपपदात् णिजन्तात् कृञ्-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति। अभ्यासः=पुनः-पुनः करणम्, आवृत्तिः।

उदा०–पदं मिथ्या कारयते। पदं स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(अभ्यासे) बार-बार करने अर्थ में विद्यमान (णेः) णिजन्त (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। अभ्यास शब्द का अर्थ बार-बार करना अथवा आवृत्ति है।*

*उदा०–**पदं मिथ्यां कारयते।** एक पद को अनेक बार अशुद्ध उच्चारण करता है।*

स्वरितेत्, ञिच्च धातुः–

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले।७२।

प०वि०–स्वरित-ञितः ५।१ कर्तृ-अभिप्राये ७।१ क्रिया-फले ७।१।

स०–स्वरितश्च ञश्च तौ स्वरितञौ। इच्च इच्च तौ इतौ। स्वरितञौ इतौ यस्य स स्वरितञित्, तस्मात्–स्वरितञितः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)। कर्तारमभिप्रैतीति कर्त्रभिप्रायः, तस्मिन् कर्त्रभिप्राये (उपपदतत्पुरुषः)। क्रियायाः फलमिति क्रियाफलम्, तस्मिन्–क्रियाफले (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–क्रियाफले कर्त्रभिप्राये स्वरितञितः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये सति स्वरितेतो ञितश्च धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-(स्वरितेतः) यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु (भ्वा०उ०) यजते। **(ञितः)** षुञ् अभिषवे (स्वा०उ०) सुनुते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रियाफल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने पर (स्वरितञितः) स्वरितेत् और ञित् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-(स्वरितेत्) 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वादि०उ०) यजते। अपने स्वर्ग आदि फल के लिये यज्ञ करता है। (ञित्) षुञ् अभिषवे (स्वा०उ०) सुनुते। अपने लिये सवन करता है। सवन=सोम आदि ओषधियों का रस निकालना।

सिद्धि-(१) यजते। यज्+लट्। यज्+शप्+त। यज्+अ+ते। यजते।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) स्वरितेत् धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

(२) सुनुते। सु+लट्। सु+श्नु+त। सु+नु+ते। सुनुते।

यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) ञित् धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। 'स्वादिभ्यः श्नुः' (३।१।७३) से श्नु विकरण प्रत्यय है।

विशेष-पाणिनिमुनि के धातुपाठ में उदात्तेत्, अनुदात्तेत् और स्वरितेत् भेद से तीन प्रकार की धातु पढ़ी है। उदात्तेत् का अर्थ परस्मैपदी धातु है। अनुदात्तेत् का अर्थ आत्मनेपदी धातु है। स्वरितेत् का अर्थ उभयपदी धातु है। यदि क्रिया का फल कर्ता को अभप्रेत हो तो स्वरितेत् धातु से आत्मनेपद हो जाता है; अन्यथा परस्मैपद होता है।

इसी प्रकार पाणिनिमुनि के धातुपाठ में कुछ धातु ञित् पढ़ी गई हैं। यदि क्रिया का फल कर्ता को अभिप्रेत हो तो ञित् धातु से आत्मनेपद हो जाता है; अन्यथा परस्मैपद होता है।

वद व्यक्तायां वाचि (भ्वा०प०)-

अपाद् वदः।७३।

प०वि०-अपात् ५।१ वदः ५।१।

अनु०-'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियाफले कर्त्रभिप्रायेऽपाद्वदः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये सति अपात् परस्मात् वद-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-धनकामो न्यायमपवदते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रिया का फल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने पर (अपात्) अप उपसर्ग से परे (वदः) वद् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-धनकामो न्यायमपवदते। धन की कामनावाला न्याय का खण्डन करता है।

सिद्धि-अपवदते। अप+वद्+लट्। अप+वद्+शप्+त। अप+वद्+अ+ते। अपवदते।

यहां अप उपसर्ग से परे 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

णिजन्तो धातुः-

णिचश्च।७४।

प०वि०-णिचः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये णिचश्च कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये सति णिजन्ताद् धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-कटं कारयते। ओदनं पाचयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रिया का फल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने पर (णिचः) णिजन्त धातु से (कर्तरि) कर्तवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

उदा०-कटं कारयते। वह अपने लिये चटाई बनवाता है। ओदनं पाचयते। वह अपने लिये भात पकवाता है।

सिद्धि-कारयते। कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+लट्। कारि+शप्+त। कारे+अ+ते। कारयते।

यहां 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से कृ धातु को वृद्धि होकर णिजन्त कारि धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

इसी प्रकार 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से-पाचयते। यहां पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर पच् धातु को 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि होती है।

यम उपरमे (दि०प०)-

समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे।७५।

प०वि०-सम्-उद्-आङ्भ्यः ५।३ यमः ५।१ अग्रन्थे ७।१।

स०-सम् च उत् च आङ् च ते-समुदाङः, तेभ्यः-समुदाङ्भ्यः

(इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न ग्रन्थ इति अग्रन्थः, तस्मिन्-अग्रन्थे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्त्रभिप्राये क्रियाफले समुदाङ्भ्यो यमः कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये सति **सम्-उत्-आङ्भ्यः** परस्माद् यम-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति। यदि ग्रन्थविषयकः प्रयोगो न भवति।

उदा०-(सम्) व्रीहीन् संयच्छते। (उदः) भारम् उद्यच्छते। (आङ्) वस्त्रमायच्छते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रिया का फल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने पर (समुदाङ्भ्यः) सम्, उत् और आङ् उपसर्ग से परे (यमः) यम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है (अग्रन्थे) यदि वहां ग्रन्थविषयक प्रयोग न हो।

*उदा०-(सम्) **व्रीहीन् संयच्छते।** चावलों को इकट्ठा करते हैं। उत्-**भारमुद्यच्छते।** भार को उठाता है। आङ्-**वस्त्रमायच्छते।** वस्त्र को फैलाता है।*

*सिद्धि-(१) **संयच्छते।** सम्+यम्+लट्। सम्+यम्+शप्+त। सम्+यच्छ्+अ+ते। संयच्छते।*

*यहां सम् उपसर्ग से परे **'यम उपरमे'** (दि०प०) धातु से लट् प्रत्यय करने पर उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। **'इषुगमियमां छः'** (७।३।७७) से 'यम्' धातु के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है। इसी प्रकार उत् और आङ्पूर्वक 'यम्' धातु से-**उद्यच्छते** तथा **आयच्छते।***

*(२) **आयच्छते।** यहां 'आङो यमहनः' (१।३।२८) से आत्मनेपद सिद्ध था। सकर्मक से आत्मनेपद के लिये यह पुनर्वचन किया गया है।*

(३) ग्रन्थविषयक प्रयोग का निषेध इसलिये किया गया है कि यहां आत्मनेपद न हो-**उद्यच्छति चिकित्सां वैद्यः।** वैद्य चिकित्साशास्त्र को उठाता है।

ज्ञा अवबोधने (क्र्या०प०)-

अनुपसर्गाज्ज्ञः।७६।

प०वि०-अनुपसर्गात् ५।१ ज्ञः ५।१।

स०-न उपसर्गोऽनुपसर्गः, तस्मात्-अनुपसर्गात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽनुपसर्गाज्ज्ञ आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये सति, उपसर्गरहिताद् ज्ञा-धातोः कर्तरि आत्मनेपदं भवति।

उदा०-गां जानीते। अश्वं जानीते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रिया का फल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने पर (अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (ज्ञः) ज्ञा-धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है।

*उदा०-**गां जानीते।** अपनी गौ को जानता है। **अश्वं जानीते।** अपने घोड़े को जानता है।*

*सिद्धि-(१) **जानीते।** ज्ञा+लट्। ज्ञा+श्ना+त। जा+ना+त। जा+नी+ते। जानीते।*

यहां 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

उपपदेन प्रतीतिः-

विभाषोपपदेन प्रतीयमाने।७७।

प०वि०-विभाषा १।१ उपपदेन ३।१ प्रतीयमाने ७।१।

अनु०-'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये उपपदेन प्रतीयमाने धातुभ्यो विभाषा कर्तरि आत्मनेपदम्।

अर्थः-क्रियाफले कर्त्रभिप्राये इत्युपपदेन प्रतीयमाने सति पंचसूत्रोक्तेभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन कर्तरि आत्मनेपदं भवति। यथा-

(१) **'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' स्वरितेतः**-स्वं यज्ञं यजते। स्वं यज्ञं यजति। **ञितः**-स्वं कटं कुरुते। स्वं कटं करोति।

(२) **'अपाद् वदः' वदः**-स्वं पुत्रमपवदते। स्वं पुत्रमपवदति।

(३) **'णिचश्च'** स्वं कटं कारयते। स्वं कटं कारयति। स्वमोदनं पाचयते। स्वमोदनं पाचयति।

(४) **'समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे' सम्**-स्वान् व्रीहीन् संयच्छते। स्वान् व्रीहीन् संयच्छति। **उत्**-स्वं भारमुद्यच्छते। स्वं भारमुद्यच्छति। **आङ्**-स्वं वस्त्रमायच्छते। स्वं वस्त्रमायच्छति।

(५) **'अनुपसर्गाज्ज्ञः'** स्वां गां जानीते। स्वां गां जानाति। स्वमश्वं जानीते। स्वमश्वं जानाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाफले) क्रिया के फल (कर्त्रभिप्राये) कर्ता को अभिप्रेत होने (उपपदेन) उपपद शब्द से (प्रतीयमाने) प्रतीति हो जाने पर पूर्व के पांच सूत्रों में विहित धातुओं से (विभाषा) विकल्प से (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद होता है। जैसे-

(१) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले। स्वरितेत्-स्वं यज्ञं यजते। स्वं यज्ञं यजति। अपना यज्ञ करता है। ञित्-स्वं कटं कुरुते। स्वं कटं करोति। अपनी चटाई बनाता है।

(२) अपाद् वदः। वद-स्वं पुत्रमपवदते। स्वं पुत्रमपवदति। अपने पुत्र के विरुद्ध बोलता है।

(३) णिचश्च। स्वं कटं कारयते। स्वं कटं कारयति। अपनी चटाई बनवाता है। स्वमोदनं पाचयते। स्वमोदनं पाचयति। अपना भात पकवाता है।

(४) समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे। सम्-स्वान् व्रीहीन् संयच्छते। स्वान् व्रीहीन् संयच्छति। अपने चावलों को इकट्ठा करता है। उत्-स्वं भारमुद्यच्छते। स्वं भारमुद्यच्छति। अपने भार को उठाता है। आङ्-स्वं वस्त्रमायच्छति। अपने वस्त्र को फैलाता है।

(५) अनुपसर्गाज्ज्ञः। स्वां गां जानीते। स्वां गां जानाति। अपनी गौ को पहचानाता है। स्वमश्वं जानीते। स्वमश्वं जानाति। अपने घोड़े को जानता है।

परस्मैपदप्रकरणम्

शेष-धातुः—

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्।७८।

प०वि०-शेषात् ५।१ कर्तरि ७।१ परस्मैपदम् १।१। उक्तादन्यः शेषः, तस्मात्-शेषात्।

अन्वयः-शेषाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-शेषाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-भवति। याति। वाति। प्रविशति।

आर्यभाषा-अर्थ-(शेषात्) पूर्वोक्त से अन्य शेष धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

उदा०-याति। जाता है। वाति। चलता है। प्रविशति। प्रवेश करता है।

सिद्धि-(१) भवति। भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भू+अ+ति। भो+अ+ति। भव्+अ+ति। भवति।

यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। इसी प्रकार 'या प्रापणे' (अ०प०) तथा 'वा गतिगन्धनयोः' (अ०प०) धातु से याति और वाति शब्द सिद्ध होते हैं।

विशेष-(१) 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से जो आत्मनेपद का विधान किया गया है, भू, या और वा धातु उदात्तेत् होने से उससे शेष (अन्य) हैं, अतः इनसे परस्मैपद होता है।

(२) नेर्विशः (१।३।१७) से नि उपसर्ग से परे विश् धातु से आत्मनेपद का विधान किया है। प्र उपसर्गपूर्वक विश् धातु उससे शेष (अन्य) है। अतः उससे परस्मैपद होता है। प्र+विशति=प्रविशति।

विशेष-प्रश्न- 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' (१।३।१४) से 'कर्तरि' पद की अनुवृत्ति है ही, फिर यहां 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' में 'कर्तरि' पद का ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तर-यहां 'कर्तरि' पद का पुनः ग्रहण इसलिये किया गया है कि जो कर्ता ही कर्ता है। अर्थात् शुद्ध कर्ता है, वहां परस्मैपद हो, किन्तु जो कर्मकर्ता है अर्थात् कर्म से कर्ता बना है, वहां परस्मैपद न हो, अपितु वहां आत्मनेपद हो। देवदत्त ओदनं पचति। पच्यते ओदनं स्वयमेव। भात अपने आप ही पक रहा है।

डुकृञ् करणे (त०उ०)-

अनुपराभ्यां कृञः ।७६।

प०वि०-अनु-पराभ्याम् ५।२ कृञः ५।१।

स०-अनुश्च पराश्च तौ अनुपरौ, ताभ्याम्-अनुपराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'कर्तरि, परस्मैपदम्' इत्यनुवर्तते, आपादसमाप्तेः।

अन्वयः-अनुपराभ्यां कृञः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-अनुपराभ्यां परस्मात् कृञ्-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-(अनु) अनुकरोति। अनुकरणं करोतीत्यर्थः। **(परा)** पराकरोति। दूरं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपराभ्याम्) अनु और परा उपसर्ग से परे (कृञः) कृञ् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

*उदा०-(अनु) **अनुकरोति**। अनुकरण करता है। (परा) **पराकरोति**। दूर करता है।*

सिद्धि-अनुकरोति। अनु+कृ+लट्। अनु+कृ+उ+तिप्। अनु+कर्+ओ+ति। अनुकरोति।

यहां 'अनु' उपसर्ग से परे 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। यहां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु और 'उ' विकरण प्रत्यय को गुण होता है। ऐसे ही-परा+करोति=पराकरोति।

क्षिप प्रेरणे (तु०उ०)–

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः।८०।

प०वि०-अभि-प्रति-अतिभ्यः ५।३ क्षिपः ५।१।

स०-अभिश्च प्रतिश्च अतिश्च ते-अभिप्रत्यतयः, तेभ्यः-अभिप्रत्यतिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-अभि-प्रति-अतिभ्यः परस्मात् क्षिप-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-**(अभि)** अभिक्षिपति। समक्षं क्षिपतीत्यर्थः। **(प्रति)** प्रतिक्षिपति। विरुद्धं क्षिपतीत्यर्थः। **(अति)** अतिक्षिपति। अधिकं क्षिपतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अभि-प्रति-अतिभ्यः) अभि, प्रति और अति उपसर्ग से परे (क्षिपः) क्षिप् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।*

*उदा०-**अभि-अभिक्षिपति।** सामने फैंकता है। **प्रति-प्रतिक्षिपति।** उलटा फैंकता है। अति-अतिक्षिपति। अधिक फैंकता है।*

सिद्धि-अभिक्षिपति। *अभि+क्षिप्+लट्। अभि+क्षिप्+श+तिप्। अभि+क्षिप्+अ+ति। अभिक्षिपति।*

*यहां अभि उपसर्ग से परे **'क्षिप प्रेरणे'** (तु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'तुदादिभ्यः शः'** ३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय होता है। प्रति+क्षिपति=प्रतिक्षिपति। अति+क्षिपति=अतिक्षिपति।*

वह प्रापणे (भ्वा०उ०)–

प्राद् वहः।८१।

प०वि०-प्रात् ५।१ वहः ५।१।

(अनु०)-प्राद् वहः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-प्रात् परस्माद् वह-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-(प्र) प्रवहति। जोर से बहता है।

*सिद्धि-**प्रवहति**। प्र+वह्+लट्। प्र+वह्+शप्+तिप्। प्र+वह्+ अ+ति। प्रवहति।*

*यहां 'प्र' उपसर्ग से परे **'वह प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है।*

मृष तितिक्षायाम् (दि०उ०)–

परेर्मृषः।८२।

प०वि०–परेः ५।१ मृषः ५।१।

अन्वयः–परेर्मृषः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः०–परेः परस्माद् मृष-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०–(परि) परिमृष्यति। सर्वतस्तितिक्षते इत्यर्थः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(परेः) परि उपसर्ग से परे (मृषः) मृष् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।*

*उदा०-(परि) **परिमृष्यति**। सब ओर से सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का सहन करता है।*

*सिद्धि-**परिमृष्यति**। परि+मृष्+लट्। परि+मृष्+श्यन्+तिप्। परि+मृष्+य+ति। परिमृष्यति।*

*यहां 'परि' उपसर्ग से परे **'मृष तितिक्षायाम्'** (दि०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। यहां **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।७८) से 'श्यन्' विकरण प्रत्यय है।*

रमु क्रीडायाम् (भ्वा०आ०)–

व्याङ्परिभ्यो रमः।८३।

प०वि०–वि-आङ्-परिभ्यः ५।३ रमः ५।१।

स०–विश्च आङ् च परिश्च ते-व्याङ्परयः, तेभ्यः-व्याङ्परिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अन्वयः–व्याङ्परिभ्यो रमः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः–वि-आङ्-परिभ्यः परस्मात् रम-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०–(वि) विरमति। तिष्ठतीत्यर्थः। **(आङ्)** आरमति। विश्रामं करोतीत्यर्थः। **(परि)** परिरमति। सर्वतो रमतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(व्याङ्परिभ्यः) वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे (रमः) रम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

*उदा०-(वि) **विरमति।** ठहरता है। **आङ्-आरमति।** विश्राम करता है। **परि-परिरमति।** सब ओर खेलता है।*

सिद्धि-विरमति। *वि+रम्+लट्। वि+रम्+शप्+तिप्। वि+रम्+अ+ति। विरमति।*

*यहां 'वि' उपसर्ग से परे **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। ऐसे ही-आङ्+रमति=आरमति। परि+रमति=परिरमति।*

उपाच्च।८४।

प०वि०-उपात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपाच्च रमः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-उपात् परस्माद् अपि रम्-धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-(उप) देवदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावित-ण्यर्थोऽत्र रमिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपात्) उप उपसर्ग से परे (च) भी (रमः) रम् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

*उदा०-**देवदत्तमुपरमति।** देवदत्त को हटाता है। यहां रम् धातु अन्तर्भावित णिजर्थक है।*

सिद्धि-उपरमति। *उप+रम्+लट्। उप+उप+रम्+शप्+तिप्। उप+रम्+अ+ति। उपरमति।*

*यहां उप उपसर्ग से परे **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है।*

विभाषाऽकर्मकात्।८५।

प०वि०-विभाषा १।१ अकर्मकात् ५।१।

स०- न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्मात्-अकर्मकात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'उपात्, रमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्मकाद् उपाद् रमः कर्तरि विभाषा परस्मैपदम्।

अर्थः-अकर्मकक्रियावचनाद् उपात् परस्माद् रम-धातोः विकल्पेन कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-यावद्भुक्तम् उपरमति। यावद्भुक्तम् उपरमते। भोजनान्निवर्तते इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्मकात्) अकर्मक क्रियावाची, (उपात्) उप उपसर्ग से परे (रमः) रम् धातु से (विभाषा) विकल्प से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में परस्मैपद होता है। पक्ष में आत्मनेपद होता है।

उदा०-यावद्भुक्तम् उपरमति। यावद्भुक्तम् उपरमते। प्रत्येक भोजन से निवृत्त होता है, भोजन नहीं करता है।

बुधादयो धातवः-

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः।८६।

प०वि०-बुध-युध-नश-जन-इङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यः ५।३। णेः ५।१।

स०-बुधश्च युधश्च नशश्च जनश्च इङ् च प्रुश्च द्रुश्च स्रुश्च ते-बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुवः, तेभ्यः बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-णेर्बुध०स्रुभ्यः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-णिजन्तेभ्यो बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो धातुभ्यः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-(बुध) बोधयति। (युध) योधयति। (जन) जनयति। (इङ्) अध्यापयति। (प्रु) प्रावयति। (द्रु) द्रावयति। (स्रु) स्रावयति। **'णिचश्च'** (१।३।७४) इति कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदे प्राप्ते, परस्मैपदं विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(णेः) णिच् प्रत्ययान्त (बुध०) बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु और स्रु धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

उदा०-(बुध्) बोधयति। जनाता है। (युध्) योधयति। लड़ाता है। (नश्) नाशयति। नाश करता है। (जन्) जनयति। उत्पन्न करता है। (इङ्) अध्यापयति। पढ़ाता है। (प्रु) प्रावयति। प्राप्त कराता है। (द्रु) द्रावयति। पिघलाता है। (स्रु) स्रावयति। टपकाता है।

सिद्धि-(१) बोधयति। बुध्+णिच्। बुध्+इ। बोधि+लट्। बोधि+शप्+तिप्। बोधे+अ+ति। बोधयति।

*यहां 'बुध अवगमने' (दि०आ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् णिजन्त 'बोधि' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। 'बुध्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है। इसी प्रकार 'युध सम्प्रहारे' (दि०आ०) धातु से-**योधयति।***

*(२) **नाशयति।** यहां 'णश् अदर्शने' (दिवादि) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'नश्' धातु के उपधा अकार को वृद्धि होती है। शेष पूर्ववत् है।*

(३) जनयति। यहां 'जनी प्रादुर्भावे' (दिवादि) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से जन् धातु के उपधा अकार को वृद्धि प्राप्त होती है, किन्तु 'जनिवध्योश्च' (७।३।३५) से उसका निषेध हो जाता है। शेष पूर्ववत्।

*(४) **अध्यापयति।** अधि+इङ्+णिच्। अधि+इ+इ। अधि+आ+पुक्+इ। अध्यापि+लट्। अध्यापि+शप्+तिप्। अध्यापे+अ+ति। अध्यापयति।*

यहां अधि उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'क्रीङ्जीनां णौ' (६।१।४८) से 'इङ्' धातु को आकार आदेश और 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से 'पुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(५) **प्रावयति।** यहां 'प्रुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'प्रु' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। इसी प्रकार 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) से 'द्रावयति' और 'स्रु गतौ' (भ्वा०न०) से **स्रावयति** शब्द सिद्ध होता है।*

विशेष-यहां 'णिचश्च' (१।३।७४) से क्रियाफल के कर्ता को अभिप्रेत होने पर 'णिचश्च' (१।३।७४) से आत्मनेपद प्राप्त था किन्तु इस सूत्र से परस्मैपद का विधान किया गया है।

निगरणचलनार्थेभ्यश्च।८७।

प०वि०-निगरण-चलनार्थेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-निगरणं च चलनं च ते-निगरणचलने, निगरणचलने अर्थौ येषां ते-निगरणचलनार्थाः, तेभ्यः-निगरणचलनार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'णेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-णेर्निगरणचलनार्थेभ्यश्च कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-णिजन्तेभ्यो निगरणार्थेभ्यश्चलनार्थेभ्यश्च धातुभ्यः कर्तरि **परस्मैपदं** भवति।

उदा०-(निगरणार्थेभ्य:) निगारयति। आशयति। भोजयति। (चलनार्थेभ्य:) चलयति। चोपयति। कम्पयति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(णे:) णिच् प्रत्ययान्त (निगरणचलनार्थेभ्य:) निगलना और चलना अर्थवाली धातुओं से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।*

*उदा०-**(निगरणार्थक) निगारयति।** निगलवाता है। **आशयति।** खिलाता है। **भोजयाति।** भोजन कराता है। **(चलनार्थक) चलयति।** चलाता है। **चोपयति।** मन्द-मन्द चलाता है। **कम्पयति।** कंपाता है।*

*सिद्धि-(१) **निगारयति।** नि+गॄ+णिच्। नि+गार्+इ। निगारि+लट्। निगारि+शप्+तिप्। निगारे+अ+ति। निगारयति।*

*यहां नि उपसर्गपूर्वक **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय करने पर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'गॄ' धातु को वृद्धि होती है। णिजन्त 'निगारि' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है।*

*(२) **आशयति।** यहां **'अश् भोजने'** (क्र्यादि०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से अश् धातु की उपधा को वृद्धि होती है। शेष पूर्ववत् है।*

*(३) **भोजयति।** यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयो:'** (रुधादि) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भुज्' धातु की उपधा को गुण होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(४) **चलयति।** यहां **'चल गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'चल' धातु की उपधा को वृद्धि होती है, किन्तु उसे **'मितां ह्रस्व:'** (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(५) **चोपयति।** यहां **'चुप मन्दायां गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय करने पर 'चुप्' धातु को **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(६) **कम्पयति।** यहां **'कपि चलने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर **'इदितो नुम् धातो:'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है। शेष पूर्ववत् है।*

अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्।८८।

प०वि०-अणौ ७।१ अकर्मकात् ५।१ चित्तवत्कर्तृकात् ५।१।

स०-न णिरिति अणि:, तस्मिन्-अणौ (नञ्तत्पुरुष:)। न विद्यते कर्म यस्य स:-अकर्मक:, तस्मात् अकर्मकात् (बहुव्रीहि:) चित्तवान् कर्ता यस्य स:-चित्तवत्कर्तृक:, तस्मात्-चित्तवत्कर्तृकात् (बहुव्रीहि:)।

अनु०-'णेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अणावकर्मकाद् चित्तवत्कर्तृकाद् णेः कर्तरि परस्मैपदम्।

अर्थः-अण्यन्तावस्थायां यो धातुरकर्मकः, चित्तवत्कर्तृकश्च तस्माद् ण्यन्ताद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०-आस्ते देवदत्तः। आसयति देवदत्तम्। शेते देवदत्तः। शाययति देवदत्तम्। **'णिचश्च'** (१।३।७४) इति कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविवक्षाया-मात्मनेपदे प्राप्ते परस्मैपदं विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अणौ) अण्यन्त अवस्था में जो (अकर्मकात्) अकर्मक क्रियावाची (चित्तवत् कर्तृकात्) चित्तवान् कर्तावाली धातु है, उससे (णेः) ण्यन्त अवस्था में (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

*उदा०-(अण्यन्त अवस्था) आस्ते देवदत्तः। देवदत्त बैठता है। (ण्यन्त अवस्था) **आसयति देवदत्तम्।** देवदत्त को बैठाता है। (अण्यन्त अवस्था) शेते देवदत्तः। देवदत्त सोता है। (ण्यन्त अवस्था) **शाययति देवदत्तम्।** देवदत्त को सुलाता है।*

*सिद्धि-(१) **आसयति।** यहां 'आस् उपवेशने' (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) 'अस्' धातु की उपधा को वृद्धि होती है। शेष पूर्ववत् है।*

*(२) **शाययति।** यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'शीङ्' धातु को वृद्धि होती है।*

*विशेष-यहां क्रिया का फल कर्ता को अभिप्रेत होने पर **'णिचश्च'** (१।३।७४) से आत्मनेपद प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र से परस्मैपद का विधान किया है।*

पादिभ्यः प्रतिषेधः-

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः।८६।

प०वि०-न अव्ययपदम्। पा-दमि-आङ्यम-आङ्यस-परिमुह-रुचि-नृति-वद-वसः ५।१।

स०-पाश्च दमिश्च आङ्यमश्च आङ्यसश्च परिमुहश्च रुचिश्च नृतिश्च वदश्च वस् च एतेषां समाहारः-पादम्याङ्यमाङ्यसपरि-मुहरुचिनृतिवदवस्, तस्मात्-पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'णेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-णेः पा०वसः कर्तरि परस्मैपदं न।

अर्थः-णिजन्तेभ्यः पा-दमि-आङ्यम-आङ्यस-परिमुह-रुचि-नृति-वद-वसिभ्यो धातुभ्यः कर्तरि परस्मैपदं न भवति।

उदा०-(पा) पाययते। **(दमि)** दमयते। **(आङ्यम)** आयामयते। **(आङ्यस)** आयासयते। **(परिमुह)** परिमोहयते। **(रुचि)** रोचयते। **(नृत)** नर्तयते। **(वद)** वादयते। **(वस)** वासयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(णेः) णिजन्त (पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः) पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद और वस् धातु से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपरम्) परस्मैपद (न) नहीं होता है।

उदा०-(पा) पाययते। पिलाता है। (दमि) दमयते। दमन कराता है। (आङ्यम) आयासयते। प्रयत्न कराता है। (परिमुह) परिमोहयते। मोहित करता है। (रुचि) रोचयते। पसन्द कराता है। (नृति) नर्तयते। नचाता है। (वद) वादयते। बुलवाता है। (वस्) वासयते। बसाता है।

*सिद्धि-(१) **पाययते।** पा+णिच्। पा+युक्+इ। पाय्+इ। पायि+लट्। पायि+शप्+त।पाये+अ+ते। पाययते।*

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (१।३।२६) से 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'पायि' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

'पा पाने' (पीना) धातु निगरणार्थक है, अतः 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' (१।३।८७) से परस्मैपद प्राप्त था। इस सूत्र से प्राप्त परस्मैपद का निषेध किया गया है। अतः आत्मनेपद होता है।

*(२) **दमयते।** यहां 'दमु उपरमे' (दिवादि) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'दम्' धातु की उपधा को वृद्धि होती है, किन्तु उसे 'मितां ह्रस्वः' (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है।*

*(३) **आयामयते।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'यमु उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) यम् धातु की उपधा को वृद्धि होती है। इसी प्रकार आङ्पूर्वक 'यसु प्रयत्ने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'आयासयते' शब्द सिद्ध होता है।*

*(४) **परिमोहयते।** यहां परि उपसर्गपूर्वक 'मुह वैचित्ये' (दिवादि) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'मुह' धातु की उपधा को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुण होता है। इसी प्रकार 'रुच दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से **रोचयते।** शब्द सिद्ध होता है।*

*(५) **नर्तयते।** यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दिवादि०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'नृत्' धातु की उपधा को गुण होता है।*

नृती गात्रविक्षेपे (नाचना) धातु के चलनार्थक होने से 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' (१।३।८७) से परस्मैपद प्राप्त था। इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया है।

*(६) **वादयते।** यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वादि०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वद्' धातु की उपधा को वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'वस निवासे' (भ्वादि०) धातु से 'वासयते' शब्द सिद्ध होता है।*

यहां (२-६) 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' (१।२।८८) से परस्मैपद प्राप्त था। इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया है।

क्यषन्तात्–

वा क्यषः।९०।

प०वि०–वा अव्ययपदम्। क्यषः ५।१।

अन्वयः–क्यषः कर्तरि वा परस्मैपदम्।

अर्थः–क्यष्-प्रत्ययान्ताद् धातोर्विकल्पेन कर्तरि परस्मैपदं भवति।

उदा०–(लोहित) लोहितायति। लोहितायते। **(पटपटा)** पटपटायति। पटपटायते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्यषः) क्यष् प्रत्ययान्त धातु से (वा) विकल्प से (कर्तरि) कर्तृवाच्य में (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है।

उदा०-(लोहित) लोहितायति। लोहतायते। जो लोहित (लाल) नहीं है वह लोहित होता है। (पटपट) पटपटायति। पटपटायते। जो पटपट (ध्वनि) नहीं है, वह पटपट होता है।

*सिद्धि-(१) **लोहितायते।** लोहित+क्यष्। लोहित+य। लोहिताय+लट्। लोहिताय+शप्+तिप्। लोहिताय+अ+ति। लोहितायति।*

यहां लोहित शब्द से प्रथम 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' (३।१।१३) से 'क्यष्' प्रत्यय और तत्पश्चात् क्यषन्त 'लोहिताय' धातु से 'लट्' धातु और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। आत्मनेपद पक्ष में लट् के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

*(२) **पटपटायति।** पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पट+पट+आ+पटपटा। पटपटा+क्यष्। पटपटा+य। पटपटाय+लट्। पटपटाय+शप्+तिप्। पटपटाय+अ+ति। पटपटायति।*

यहां प्रथम पटत् शब्द से 'अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्' (५।४।५७) से 'डाच्' प्रत्यय, 'डाचि द्वे भवतः' (वा० ८।१।१२) से पटत् शब्द को द्वित्व, 'तस्य

परमाम्रेडितम्' (८।१।१२) से द्वितीय 'पटत्' शब्द की आम्रेडित संज्ञा 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' (वा० ६।१।९६) से प्रथम पटत् शब्द के त् को पररूप एकादेश होता है और डाच् प्रत्यय के परे होने पर द्वितीय पटत् शब्द के टि-भाग का 'टे:' (६।४।१४३) से लोप हो जाता है। तत्पश्चात् डाच्-प्रत्ययान्त 'पटापटा' शब्द से 'लोहितादिडाज्भ्य: क्यष्' (३।१।१३) से 'क्यष्' प्रत्यय होता है। क्यष्-प्रत्ययान्त 'लोहिताय' शब्द से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। पक्ष में आत्मनेपद 'त' आदेश भी हो जाता है-पटपटायते।

द्युदादिभ्य: (भ्वा०आ०)–

द्युद्भ्यो लुङि।६१।

प०वि०–द्युद्भ्य: ५।३ लुङि ७।१।

अनु०–'वा' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–द्युद्भ्यो वा परस्मैपदं कर्तरि लुङि।

अर्थ:–द्युदादिभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन परस्मैपदं भवति कर्तृवाचिनि लुङि परत:।

उदा०–**(द्युत)** व्यद्युतत्। व्यद्योतिष्ट। **(लुठ)** अलुठत्। अलोठिष्ट, इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्युद्भ्य:) द्युत् आदि धातुओं से परे (वा) विकल्प से (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है। (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(द्युत) व्यद्युत्। व्यद्योतिष्ट। वह चमका। (लुठ) अलुठत्। अलोठिष्ट। उसने लूटा।

*सिद्धि-(१) **व्यद्युतत्।** द्युत्+लुङ्। अट्+द्युत्+च्लि+तिप्। अ+द्युत्+अङ्+त। अ+द्युत्+अ+त्। अद्युतत्। वि+अद्युतत्=व्यद्युतत्।*

*यहां '**द्युत दीप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद तिप् आदेश होता है। '**च्लि लुङि**' (३।१।४३) से च्लि प्रत्यय और '**पुषादिद्युताद्यॢदित: परस्मैपदेषु**' (३।१।५५) से च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है।*

*(२) **व्यद्योतिष्ट।** द्युत्+लुङ्। अट्+द्युत्+च्लि+त। अ+द्युत्+सिच्+त। अ+द्युत्+इट्+स्+त। अ+द्योत्+इ+ष्+ट। अद्योतिष्ट। वि+अद्योतिष्ट=व्यद्योतिष्ट।*

*यहां '**द्युत दीप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। '**च्लि लुङि**' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और '**च्ले: सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और उसको*

'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम, 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से टुत्व होता है। इसी प्रकार 'लुठ उपघाते' (भ्वादि०) से-अलुठत्। अलोठिष्ट।

विशेष-यहां 'द्युद्भ्यः' पद का बहुवचन में निर्देश किया है। अतः इससे 'द्युदादि' अर्थ ग्रहण किया जाता है। द्युदादि धातु निम्नलिखित हैं-

द्युत दीप्तौ। श्विता वर्णे। ञिमिदा स्नेहने। ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः, स्नेहनमोहनयोरित्यके। ञिक्ष्विदा चेत्येके। रुच दीप्तावभिप्रीतौ च। घट परिवर्तने। रुट, लुट, लुठ उपघाते। शुभ दीप्तौ। क्षुभ संचलने। णभ तुभ हिंसायाम्, आद्योऽभावेऽपि। स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु अवस्रंसने। ध्वंसु गतौ। भ्रशु भ्रंशु अधःपतने। स्रम्भु विश्वासे। वृतु वर्तने। वृधु वृद्धौ। शृधु शब्दकुत्सायाम्। स्यन्दू प्रस्रवणे। कृपू सामर्थ्ये। इति द्युदादयो भ्वादिगणे पठ्यन्ते।

वृदादयः (भ्वा०आ०)-

वृद्भ्यः स्यसनोः।६२।

प०वि०-वृद्भ्यः ५।३। स्य-सनोः ७।२।

स०-स्यश्च सन् च तौ-स्यसनौ, तयोः-स्यसनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'वा' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्युद्भ्यो वा परस्मैपदं कर्तरि स्यसनोः।

अर्थः-वृदादिभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन परस्मैपदं भवति कर्तृवाचिनि स्ये सनि च प्रत्यये परतः।

उदा०-वृत् (स्ये) वर्त्स्यति। वर्तिष्यते। अवर्त्स्यत्। अवर्तिष्यत। (सनि) विवृत्सति। विवर्तिषते। वृध् (स्ये) वर्त्स्यति। वर्धिष्यते। अवर्त्स्यत्। अवर्धिष्यत। (सनि) विवृत्सति। विवर्धिषते।

आर्यभाषा-अर्थ-(वृद्भ्यः) 'वृत्' आदि धातुओं से (वा) विकल्प से (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (स्यसनोः) स्य और सन् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-वृत् (स्य) वर्त्स्यति। वर्तिष्यते। वह होगा। अवर्त्स्यत् अवर्त्स्यत। यदि वह होता। (सन्) विवत्सृति। विवर्तिषते। वह होना चाहता है।

सिद्धि-(१) वर्त्स्यति। वृत्+लट्। वृत्+स्य+तिप्। वर्त्+स्य+ति। वर्त्स्यति।

यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'लट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'वृत्' धातु की उपधा को लघूपध गुण होता है।

*(२) **वर्तिष्यते।** वृत्+लृट्। वृत्+स्य+त। वृत्+इट्+स्य+त। वर्त्+इ+ष्य+ते। वर्तिष्यते।*

*यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और उसके स्थान में पक्ष में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् 'स्य' प्रत्यय और उसको **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।*

*(३) **अवर्त्स्यत्।** वृत्+लृङ्। अट्+वृत्+स्य+तिप्। अ+वृत्+स्य+त्। अ+वर्त्+स्य+त्। अवर्त्स्यत्।*

*यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'वृत्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

*(४) **विवृत्सति।** वृत्+सन्। वृत्+वृत्+स। व+वृत्+स। वि+वृत्+स। विवृत्स+लट्। विवृत्स+शप्+तिप्। विवृत्स+अ+ति। विवृत्सति।*

*यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को अकार आदेश और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकार आदेश होता है। तत्पश्चात् सन्नन्त 'विवृत्स' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है।*

*(५) **विवर्तिषते।** वृत्+सन्। वृत्+वृत्+स। व+वृत्+इट्+स। वि+वर्त्+इ+ष। विवर्तिष+लट्। विवर्तिष+शप्+त। विवर्तिष+अ+ते। विवर्तिषते।*

*यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और अभ्यास-कार्य, **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। तत्पश्चात् सन्नन्त 'विवर्तिष' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।*

*इसी प्रकार **'वृधु वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से 'वर्त्स्यति' आदि रूप सिद्ध करें।*

***विशेष**-यहां 'वृद्भ्यः' पद का बहुवचन में निर्देश किया है, अतः इससे 'वृदादि' अर्थ ग्रहण किया जाता है। वृदादि धातु निम्नलिखित हैं-वृतु वर्तने। वृधु वृद्धौ। शृधु शब्दकुत्सायम्। स्यन्दू प्रस्रवणे। कृपू सामर्थ्ये। इति वृदादयो भ्वादिगणे पठयन्ते।*

कृपू सामर्थ्ये (क्लृप्) (भ्वा०आ०)-

लुटि च क्लृपः।६३।

प०वि०-लुटि ७।१ च अव्ययपदम्। क्लृपः ५।१।

अनु०-'वा, स्यसनोः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्लृपो वा परस्मैपदं कर्तरि लुटि स्यसनोश्च।

अर्थः-क्लृपो धातोर्विकल्पेन परस्मैपदं भवति, कर्तृवाचिनि लुटि **स्ये** सनि च प्रत्यये परतः।

उदा०-(लुटि) कल्प्ता। कल्पिता। **(स्ये)** कल्प्स्यति। कल्पिष्यते। अकल्प्स्यत्। अकल्पिष्यत। **(सनि)** चिकल्प्सति चिकल्पिषते।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्लृपः) क्लृप् धातु से (वा) विकल्प से (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुटि) लुट् (च) और स्यसनोः, स्य तथा सन् प्रत्यय के परे होने पर।

*उदा०-(लुट्) कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः। वह कल समर्थ होगा। **(स्य)** कल्प्स्यति कल्पिष्यते। वह समर्थ होगा। अकल्स्यत्। अकल्पिष्यत्। यदि वह समर्थ होता। सन्-चिक्लृप्सति। चिकल्पिषते। वह समर्थ होना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **कल्प्ता।** कृप्+लुट्। कृप्+कल्प्+तास्+तिप्। कल्प्+तास्+डा। कल्प्+त्+आ। कल्प्ता।*

*यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वादि) धातु से **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है और उसके स्थान में **'लुटः प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से 'डा' आदेश होता है। **'डित्यभस्यापि, अनुबन्धकरणसामर्थ्यात्'** (६।४।१४३ महा०) से 'तास्' प्रत्यय के 'टि' भाग का लोप होता है। **'तासि च क्लृपः'** (७।२।६०) से परस्मैपद में 'इट्' आगम का निषेध है। **'कृपो रो लः'** (८।२।१८) से 'कृप्' धातु के 'र' को 'ल्' आदेश होता है।*

*(२) **कल्पिता।** कृप्+लुट्। कल्प्+तास्+त। कल्प्+तास्+डा। कल्प्+इट्+तास्+आ। कल्प्+इ+त्+आ। कल्पिता।*

*यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वादि०) धातु से पूर्ववत् 'लुट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। उसके स्थान में पूर्ववत् डा-आदेश तथा 'तास्' प्रत्यय है। उस **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** से 'इट्' आगम होता है।*

*(३) **कल्प्स्यति।** कृप्+लृट्। कल्प+स्य+तिप्। कल्प+स्य+ति। कल्प्स्यति।*

*यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय होता है। **'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः'** (७।२।५९) से परस्मैपद में 'इट्' आगम का निषेध है।*

*(४) **कल्पिष्यते।** कृप्+लृट्। कल्प्+स्य+त। कल्प्+इट्+स्य+त। कल्प्+इ+ष्य+ते। कल्पिष्यते।*

*यहां **'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वादि)** धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में*

आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् 'स्य' प्रत्यय और उसको **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(५) **अकल्प्स्यत्।** कृप्+लिङ्। अट्+कल्प्+स्य+तिप्। अ+कल्प् स्य+त्। अकल्प्स्यत्।

यहां **'कृपू सामर्थ्ये'** (भ्वादि०) धातु से **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'स्यातासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय है। **'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः'** (७।२।५९) से परस्मैपद में 'इट्' आगम का निषेध है।

(६) **अकल्पिष्यत।** कृप्+लृङ्। अट्+कल्प्+स्य+त। अ+कल्प्+इट्+स्य+त। अ+कल्प्+इ+ष्य+त। अकल्पिष्यत।

यहां **'कृपू सामर्थ्ये'** (भ्वादि०) धातु से पूर्ववत् 'लृङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है। पूर्ववत् 'स्य' प्रत्यय और उसको **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(७) **चिकल्प्सति।** कृप्+सन्। कल्प्+स। कल्प्+कल्प्+स। क+कल्प्+स। कि+कल्प्+स। चि+कल्प्+स। चिकल्प्स+लट्। चिकल्पस+शप्+तिप्। चिकल्प्स्+अ+ति। चिकल्प्सति।

यहां प्रथम **'कृपू सामर्थ्ये'** धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन, **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास के 'अ' को इकारादेश और **'अभ्यासे चर्च'** (८।२।५४) से अभ्यास के 'क' को चर्-आदेश होता है। तत्पश्चात् 'चिकल्प्स' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिप्' आदेश होता है। **'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः'** (७।२।५९) से परस्मैपद में इट् आगम का निषेध है।

(८) **चिकल्पिषते।** कृप्+सन्। कल्प्+स। कल्प्+कल्प्+स। क+कल्प्+इट्+स। कि+कल्प्+इ+स। चि+कल्प्+इ+ष। चिकल्पिष+लट्। चिकल्पिष+शप्+त। चिकल्पिष+अ+ते। चिकल्पिषते।

यहां **'कृपू सामर्थ्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् सन् प्रत्यय और अभ्यास-कार्य है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' का आगम होता है। सन्नन्त 'चिकल्पिष' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में **'कृपू सामर्थ्ये'** (भ्वादि०) धातु पढ़ी है। **'कृपो रो लः'** (८।२।१८) से उसी के रेफ वर्णांश को लकार आदेश होकर 'क्लृप्' रूप बनता है।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

एकसंज्ञाधिकारः–

(१) आकडारादेका संज्ञा।१।

प०वि०–आ अव्ययपदम्। कडारात् ५।१ एका १।१ संज्ञा १।१।

अर्थः–कडारात्=‘कडाराः कर्मधारये’ एतस्मात् आ=अवधेः पूर्वमेका संज्ञा भवतीत्यधिकारोऽयम्। का पुनरसौ ? या पराऽनवकाशा च। वक्ष्यति ह्रस्वं लघु, भिद्–भेत्ता। छिद्–छेत्ता। संयोगे गुरु–शिक्षा। भिक्षा। संयोगपरस्य ह्रस्वस्य लघुसंज्ञा प्राप्नोति, गुरुसंज्ञा च। कडारात् प्राग् एका संज्ञा भवतीति वचनाद् गुरुसंज्ञैव भवति।

*आर्यभाषा–अर्थ–(कडारात्) **‘कडाराः कर्मधारये’** (२।२।३८) इस (आ) अवधि से पहले (एका) एक ही संज्ञा होती है, यह अधिकार है। कौनसी संज्ञा होती है ? जो पर हो और अवकाशरहित हो। जैसे कहेगा कि **‘ह्रस्वं लघु’** (अ० १।४।१०) अर्थात् ह्रस्व वर्ण की लघु संज्ञा होती है, जैसे कि ‘भिद्’ यहां ह्रस्व ‘इ’ की लघुसंज्ञा है। इसलिये ‘भेत्ता’ शब्द में **‘पुगन्तलघूपधस्य च’** (७।३।८६) से ‘लघूपध’ गुण हो जाता है। इसी प्रकार ‘छिद्’ धातु से ‘छेत्ता’ शब्द सिद्ध होता है।*

*‘संयोगे गुरु’ (अ० १।४।११) अर्थात् संयोग परे होने पर ह्रस्व वर्ण की गुरु संज्ञा होती है। जैसे–शिक्षा। भिक्षा। यहां ह्रस्व ‘इ’ की **‘ह्रस्वं लघु’** (अ० १।४।१०) से ह्रस्व संज्ञा प्राप्त होती है और संयोग परे होने से **‘संयोगे गुरु’** (अ० १।४।११) से गुरु संज्ञा भी मिलती है। **‘कडाराः कर्मधारये’** (अ० २।२।३८) तक एक ही संज्ञा होती है, इस एक संज्ञा अधिकार से यहां परवर्तिनी और अवकाशरहित एक गुरु संज्ञा होती है, लघु संज्ञा नहीं। क्योंकि लघु को जहां संयोग परे नहीं है, वहां भिद्, छिद् आदि में अवकाश है।*

तुल्यबलविरोधे परं कार्यम्–

(१) विप्रतिषेधे परं कार्यम्।२।

प०वि०–विप्रतिषेधे ७।१ परम् १।१ कार्यम् १।१।

अर्थः–विप्रतिषेधे=तुल्यबलविरोधे सति परं कार्यं भवति। **यत्र द्वौ** प्रसङ्गौ भिन्नार्थौ, एकस्मिन्नर्थे **युगपत् प्राप्नुतः, स तुल्यबलविरोधो**

विप्रतिषेधः। यथा-'**अतो दीर्घो यञि, सुपि च**' (७।३।१०२) इत्यस्यावकाशः-**वृक्षाभ्याम्। प्लक्षाभ्याम्।** बहुवचने झल्येत् (७।३।१०३) इत्यस्यावकाशः **वृक्षेषु। प्लक्षेषु।** अत्रोभयं प्राप्नोति-**वृक्षेभ्यः। प्लक्षेभ्यः।** अस्मिन् विप्रतिषेधे '**बहुवचने झल्येत्**' (७।३।१०३) इति परं कार्यं भवति।

*आर्यभाषा-अर्थ-(विप्रतिषेधे) तुल्य बल का विरोध होने पर (परम्) परवर्ती (कार्यम्) कार्य होता है। जहां भिन्नार्थक दो कार्य एक अर्थ में एकदम प्राप्त होते हैं, उसे विप्रतिषेध अर्थात् तुल्यबलविरोध कहते हैं। जैसे-'**सुपि च**' (अ० ७।३।१०२) अर्थात् यञादि 'सुप्' प्रत्यय परे होने पर अकारान्त अङ्ग को दीर्घ होता है, इसका अवकाश यहां है-वृक्ष+भ्याम्=वृक्षाभ्याम्। प्लक्ष+भ्याम्=प्लक्षाभ्याम् और '**बहुवचने झल्येत्**' (अ० ७।३।१०३) अर्थात् बहुवचन झलादि 'सुप्' प्रत्यय के परे होने पर अकारान्त अङ्ग को एकार आदेश होता है। इसका अवकाश यहां है-वृक्ष+सुप्=वृक्षेषु। प्लक्ष+सुप्=प्लक्षेषु। किन्तु यहां दोनों की प्राप्ति है-वृक्ष+भ्यस्=वृक्षेभ्यः। प्लक्ष+भ्यस्=प्लक्षेभ्यः। यहां परवर्ती 'बहुवचने झल्येत्' (७।३।१०३) से 'एकार' आदेश होता है।*

नदीसंज्ञाप्रकरणम्

नदीसंज्ञा-

(१) यू स्त्र्याख्यौ नदी।३।

प०वि०-यू इत्यविभक्तिको निर्देशः, स्त्री-आख्यौ १।२ नदी १।१।

स०-ई च ऊ चेति यू (ई+ऊ=यू)। स्त्रियमाचक्षाते इति स्त्र्याख्यौ (उपपदतत्पुरुषः)। अत्र मूलविभुजादिषु दर्शनात् कः प्रत्ययः।

अर्थः-ईकारान्तं ऊकारान्तं च स्त्री-आख्यं शब्दरूपं नदी-संज्ञकं भवति।

उदा०-(ईकारान्तम्) कुमारी। गौरी। लक्ष्मी। शाङ्र्गरवी। (ऊकारान्तम्) ब्रह्मबन्धूः। यवागूः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यू) ईकारान्त और ऊकारान्त (स्त्री-आख्यम्) स्त्रीलिङ्ग शब्द की (नदी) नदी संज्ञा होती है।

उदा०-**(ईकारान्त) कुमारी। गौरी। लक्ष्मीः। शाङ्र्गरवी। (ऊकारान्त) **ब्रह्मबन्धूः। मूर्ख नारी। यवागूः। लापसी।

नदीसंज्ञाप्रतिषेधः–

(२) नेयङुवङ्स्थानावस्त्री।४।

प०वि०–न अव्ययपदम्। इयङ्–उवङ्स्थानौ १।२ अस्त्री १।१

स०–इयङ् च उवङ् च तौ इयङुवङौ, तयोः–इयङुवङोः। इयङुवङोः स्थानमनयोरिति–इयङुवङ्स्थानौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। न स्त्रीति–अस्त्री (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'यू स्त्र्याख्यौ नदी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू नदी न अस्त्री।

अर्थः–इयङ्–उवङ्स्थानौ, स्त्री–आख्यौ, ईकारान्त–ऊकारान्तौ शब्दौ नदी–संज्ञकौ न भवतः, स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा।

उदा०–(ईकारान्तम्) हे श्रीः। (ऊकारान्तम्) हे भ्रूः। अस्त्रीति किमर्थम्? हे स्त्रि।

आर्यभाषा–अर्थ–(इयङ्–उवङ्स्थानौ) इयङ् और उवङ् आदेश का स्थान रखनेवाले (यू) ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द की नदी संज्ञा (न) नहीं होती है।

उदा०–(ईकारान्त) हे श्रीः। (ऊकारान्त) हे भ्रूः।

*यहां नदी संज्ञा न होने से सम्बोधन में **'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः'** (७।३।१०७) से ई और ऊ को ह्रस्व नहीं होता है। 'स्त्री' शब्द की नदी संज्ञा होने से उसे ह्रस्व हो जाता है–हे स्त्रि।*

नदीसंज्ञा-विकल्पः–

(३) वाऽऽमि।५।

प०वि०–वा अव्ययपदम्। आमि ७।१।

अनु०–'यू स्त्र्याख्यौ नदी, इयङुवङ्स्थानावस्त्री' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू वा नदी आमि अस्त्री।

अर्थः–इयङ्–उवङ्स्थानौ स्त्री–आख्यौ ईकारान्त–ऊकारान्तौ शब्दौ विकल्पेन नदीसंज्ञकौ भवतः, आमि प्रत्यये परतः, स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा।

उदा०–ईकारान्तः–(श्रीः) श्रियाम्, श्रीणाम्। ऊकारान्तः–(भ्रूः) भ्रुवाम्, भ्रूणाम्। अस्त्रीति किमर्थम्? स्त्रीणाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(इयङ्-उवङ्स्थानौ) इयङ् और उवङ् आदेश का स्थान रखनेवाले (स्त्री-आख्यौ) स्त्रीलिङ्ग (यू) ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की (वा) विकल्प से (नदी) नदी संज्ञा होती है (आमि) आम् प्रत्यय के परे होने पर (अस्त्री) स्त्री शब्द को छोड़कर।

*उदा०-ईकारान्त-(श्री) श्रियाम्। श्रीणाम्। ऊकारान्त। (भ्रू) भ्रुवाम्। भ्रूणाम्। 'स्त्री' शब्द का निषेध इसलिये किया है कि यहां नदी संज्ञा का निषेध न हो-**स्त्रीणाम्।***

*सिद्धि-(१) **श्रियाम्।** श्री+आम्। श्री+नुट्+आम्। श्री+न्+आम्। श्रीणाम्।*

*यहां पक्ष में नदी संज्ञा होने से **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है।*

*इसी प्रकार 'भ्रू' शब्द से 'आम्' प्रत्यय करने पर भ्रुवाम् और भ्रूणाम् शब्द सिद्ध होते हैं। स्त्री शब्द की नदी संज्ञा होने से **'स्त्रीणाम्'** रूप बनता है।*

ङिति ह्रस्वापि यू वा–

(४) ङिति ह्रस्वश्च।६।

प०वि०-ङिति ७।१ ह्रस्वः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-ङ इत् यस्य सः-ङित्, तस्मिन् ङिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'यू स्त्र्याख्यौ नदी, इयङुवङ्स्थानौ वा, अस्त्री' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ङिति स्त्र्याख्यौ ह्रस्वौ यू इयङुवङ्स्थानौ च यू वा नदी अस्त्री।

अर्थः-ङिति प्रत्यये परतः स्त्री-आख्यौ ह्रस्वौ इकारान्त-उकारान्तौ, इयङ्-उवङ्स्थानौ ईकारान्त-ऊकारान्तौ च शब्दौ विकल्पेन नदी-संज्ञकौ भवतः, स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा।

उदा०-इकारान्तः (कृतिः) कृत्यै। कृतये। उकारान्तः-(धेनुः) धेन्वै। धेनवे। ईकारान्तः-(श्रीः) श्रियै। श्रिये। ऊकारान्तः-(भ्रूः) भ्रुवै। भ्रुवे। अस्त्रीति किमर्थम्? स्त्रियै।

आर्यभाषा-अर्थ-(ङिति) ङित् प्रत्यय परे होने पर (स्त्री-आख्यौ) स्त्रीलिङ्ग (ह्रस्वः) ह्रस्व (यु) इकारान्त और उकारान्त तथा (इयङ्वङ्स्थानौ) इयङ् और उवङ् का स्थान रखनेवाले (यू) ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की (वा) विकल्प से (नदी) नदी संज्ञा होती है, (अस्त्री) स्त्री शब्द को छोड़कर।

*उदा०-इकारान्त-(कृतिः) कृत्यै। कृतये। उकारान्त-(धेनु) धेन्वै। धेनवे। ईकारान्त-(श्री) श्रियै। श्रिये। ऊकारान्त-((भ्रू) भ्रुवै। भ्रुवे। 'अस्त्री' का ग्रहण इसलिये किया गया है कि यहां विकल्प से नदी संज्ञा न हो-**स्त्रियै।***

सिद्धि-(१) कृत्यै । कृति+ङे । कृति+ए । कृति+आट्+ए । कृति+ऐ । कृत्यै ।

*यहां नदी संज्ञा होने से **'आण् नद्याः'** (७ ।३ ।११२) से 'आट्' आगम होता है और 'आटश्च' (६ ।१ ।९०) से वृद्धिरूप एकादेश होता है।*

(२) कृतये । कृति+ङे । कृति+ए । कृते+ए । कृतये ।

*यहां नदी संज्ञा होने से **'शेषो घ्यसखि'** (१ ।४ ।७) से 'घि' संज्ञा होती है। अतः **'घेर्ङिति'** (४ ।३ ।१११) से अङ्ग को गुण हो जाता है।*

इसी प्रकार धेनु, श्री और भ्रू शब्द से उपरिलिखित शब्द रूप सिद्ध करें।

घिसंज्ञाप्रकरणम्

सखिवर्जं शेषो घि–

(१) शेषो घ्यसखि ।७।

प०वि०-शेषः १ ।१ घि १ ।१ असखि १ ।१ ।

स०-न सखि इति असखि (नञ्तत्पुरुषः) ।

अर्थः-शेषोऽत्र घि-संज्ञको भवति, सखिशब्दं वर्जयित्वा। कश्च शेषः ? ह्रस्वमिकारान्तमुकारान्तं यन्न स्त्री-आख्यम्, स्त्री-आख्यं च यन्न नदीसंज्ञकं स शेषः ।

उदा०-इकारान्तम्-(अग्निः) अग्नये । (कृतिः) कृतये । उकारान्तम्-(वायुः) वायवे । (धेनुः) धेनवे । असखीति किमर्थम् ? सख्ये ।

आर्यभाषा-अर्थ-(शेषः) शेष शब्द की यहां (घि) घि संज्ञा होती है (असखि) सखि शब्द को छोड़कर। शेष शब्द कौनसा है ? जो शब्द ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त और स्त्रीलिङ्ग नहीं है और जो स्त्रीलिङ्ग है किन्तु नदी संज्ञक नहीं है वह शब्द शेष है।

उदा०-इकारान्त-(अग्नि) अग्नये। (कृति) कृतये। उकारान्त-(वायु) वायवे। (धेनु) धेनवे। 'असखि' शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि यहां घि संज्ञा न हो-सख्ये ।

सिद्धि-(१) अग्नये । अग्नि+ङे । अग्नि+ए । अग्ने+ए । अग्नये ।

*यहां घि-संज्ञक अग्नि शब्द से 'ङे' प्रत्यय करने पर **'घेर्ङिति'** (७ ।३ ।१११) से अङ्ग को गुण हो जाता है। इसी प्रकार कृति, वायु और धेनु शब्दों से उपरिलिखित शब्दरूप सिद्ध करें।*

*(२) सखि शब्द की घि-संज्ञा न होने से **'घेर्ङिति'** (७ ।३ ।१११) से अङ्ग को गुण नहीं होता है।*

समासे पति-शब्दः–

(२) पतिः समास एव।८।

प०वि०–पतिः १।१ समासे ७।१ एव अव्ययपदम्।

अनु०–'घि' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पतिः समासे एव घि।

अर्थः–पति-शब्दः समास एव घि-संज्ञको भवति।

उदा०–प्रजापतिना। प्रजापतये। 'समासे' इति किमर्थम् ? पत्या। पत्ये।

आर्यभाषा-अर्थ-(पतिः) पति शब्द की (समासे) समास में (एव) ही (घि) संज्ञा होती है।

*उदा०–प्रजापतिना। प्रजापतये। यहां 'समासे' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां 'घि' संज्ञा न हो–**पत्या। पत्ये।***

*सिद्धि-(१) **प्रजापतिना।** प्रजापति+टा। प्रजापति+आ। प्रजापति+ना। प्रजापतिना।*

*यहां षष्ठीतत्पुरुष समास में 'पति' शब्द की 'घि' संज्ञा होने से **'आङो नाऽस्त्रियाम्'** (७।३।१२०) से 'टा' को 'ना' आदेश होता है।*

*(२) **प्रजापतये।** प्रजापति+ङे। प्रजापति+ए। प्रजापते+ए। प्रजापतये।*

*यहां षष्ठीतत्पुरुष समास में 'पति' शब्द की 'घि' संज्ञा होने से **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से घि-संज्ञक अङ्ग को गुण होता है।*

*(३) शुद्ध पति शब्द की 'घि' संज्ञा न होने से उपरिलिखित कार्य नहीं होते हैं-**पत्या। पत्ये।***

षष्ठीयुक्तः पतिशब्दः–

(३) षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा।९।

प०वि०–षष्ठी-युक्तः १।१ छन्दसि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–'पतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि षष्ठीयुक्तः पतिर्वा घि।

अर्थः–छन्दसि विषये षठ्यन्तेन पदेन युक्तः पतिशब्दो विकल्पेन घि-संज्ञको भवति।

उदा०–कुलुञ्चानां पतये नमः। कुलञ्चानां पत्ये नमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वैदिक भाषा में (षष्ठीयुक्तः) षष्ठयन्त पद से युक्त (पतिः) पति शब्द की (वा) विकल्प से (घि) घि-संज्ञा होती है। कुलुञ्चानां पतये नमः। कुलुञ्चानां पत्ये नमः। कुलुञ्च अर्थात् बुरे स्वभाव के कारण दूसरों के पदार्थों को खसोटनेवाले लोगों के स्वामी को नमस्कार है। यहां नमस्कार शब्द का अर्थ सुधार करना है।

*सिद्धि-(१) **पतये।** पति+ङे। पति+ए। पते+ए। पतये। यहां 'पति' शब्द की 'घि' संज्ञा होने से **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से अङ्ग को गुण हो जाता है।*

*(२) **पत्ये।** पति+ङे। पति+ए। पत् य्+ए। पत्ये। यहां पक्ष में 'पति' शब्द की 'घि' संज्ञा न होने से **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से अङ्ग को गुण नहीं होता, अपितु **'इको यणचि'** (६।१।७७) से यण् आदेश होता है।*

लघु-संज्ञा–

(१) ह्रस्वं लघु।१०।

प०वि०–ह्रस्वम् १।१ लघु १।१।

अर्थः–ह्रस्वमक्षरं लघु-संज्ञकं भवति।

उदा०–भिद्-भेत्ता। छिद्-छेत्ता। अ, इ, उ, ऋ, लृ इति पञ्च ह्रस्ववर्णा भवन्ति। तेषां लघु-संज्ञा क्रियते।

*सिद्धि-(१) **भेत्ता।** भिद्-तृच्। भिद्+तृ। भेद्+तृ। भेतृ+सु। भेत्ता।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रु०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय करने पर, 'भिद्' के ह्रस्व 'इ' की लघु संज्ञा होने से **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से अङ्ग को लघूपध गुण हो जाता है।*

*इसी प्रकार **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रु०प०) धातु से 'छेत्ता' शब्द सिद्ध होता है।*

गुरुसंज्ञाप्रकरणम्

संयोगे गुरु–

(१) संयोगे गुरु।११।

प०वि०–संयोगे ७।१ गुरु १।१।

अनु०–'ह्रस्वम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–संयोगे ह्रस्वं गुरु।

अर्थः–संयोगे परतो ह्रस्वम् अक्षरं गुरुसंज्ञकं भवति।

उदा०–शिक्षा। भिक्षा।

आर्यभाषा-अर्थ-(संयोगे) संयोग परे होने पर (ह्रस्वम्) ह्रस्व अक्षर की (गुरु) गुरुसंज्ञा होती है।

उदा०-शिक्षा। भिक्षा।

सिद्धि-शिक्षा। *शिक्ष्+अ। शिक्ष+टाप्। शिक्ष्+आ। शिक्षा+सु। शिक्षा। यहां* ***'शिक्ष विद्योपादने'*** *(भ्वा०आ०) धातु में संयोग (क्+ष्) परे होने पर 'इ' की गुरु संज्ञा होने से* ***'गुरोश्च हल:'*** *(३।३।१०३) से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात्* ***'अजाद्यष्टाप्'*** *(४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

इसी प्रकार ***'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च'*** *(भ्वा०आ०) धातु से 'भिक्षा' शब्द सिद्ध होता है।*

दीर्घमपि–

(२) दीर्घं च।१२।

प०वि०-दीर्घम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'गुरु' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दीर्घं च गुरु।

अर्थः-दीर्घं चाक्षरं गुरु-संज्ञकं भवति।

उदा०-ईहांचक्रे। ऊहांचक्रे।

आर्यभाषा-अर्थ- *(दीर्घम्) दीर्घ अक्षर की (च) भी (गुरु) गुरु संज्ञा होती है।*

उदा०-ईहांचक्रे। उसने चेष्टा की। ऊहांचक्रे। उसने वितर्क किया।

सिद्धि-(१) ईहांचक्रे। *ईह्+आम्। ईहाम्+लिट्। इहाम्+लि। ईहाम्+कृ+लिट्। ईहाम्+कृ कृ+त। इहाम्+क+कृ+एश्। ईहाम्+च+कृ+ए। ईहांचक्रे।*

यहां ***'ईह चेष्टायाम्'*** *(भ्वा०आ०) धातु के गुरुमान् होने से प्रथम* ***'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ:'*** *(३।१।३६) 'आम्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात्* ***'आम:'*** *(२।४।८१) से 'लिट्' प्रत्यय का लुक् होकर* ***'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि'*** *(३।१।४०) से 'कृञ्' का अनुप्रयोग होता है। 'लिट्' प्रत्यय के परे होने पर* ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से 'कृ' धातु को द्विर्वचन,* ***'लिटस्तझयोरेशिरेच्'*** *(३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश,* ***'उरत्'*** *(७।४।६६) से अभ्यास के 'ॠ' को अकार आदेश तथा* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५४) से अभ्यास के 'क्' को चर्-आदेश (च्) होता है।*

ऐसे ही ***'ऊह वितर्के'*** *(भ्वा०आ०) धातु से* ***'ऊहांचक्रे'*** *शब्द सिद्ध होता है।*

अङ्ग-संज्ञा–

(१) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्।१३।

प०वि०–यस्मात् ५।१ प्रत्ययविधिः १।१ तदादि १।१ प्रत्यये ७।१। अङ्गम् १।१।

स०–प्रत्ययस्य विधिरिति प्रत्ययविधिः (षष्ठीतत्पुरुषः)। स आदिर्यस्य तत् तदादि (बहुव्रीहिः)।

अर्थः–यस्माद् धातोः प्रातिपदिकाद् वा प्रत्ययो विधीयते तदादि शब्दंरूपं प्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञकं भवति।

उदा०–कर्ता। हर्ता। करिष्यति। हरिष्यति। औपगवः। कापटवः।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(यस्मात्) जिस धातु वा प्रातिपदिक से (प्रत्ययविधिः) प्रत्यय का विधान किया जाता है (तदादि) वह जिसके आदि में है उस शब्द की (प्रत्यये) प्रत्यय के परे रहने पर ही (अङ्गम्) अङ्ग संज्ञा होती है।*

*उदा०-**कर्ता**। करनेवाला। **हर्ता**। हरण करनेवाला। **करिष्यति**। वह करेगा। **हरिष्यति**। वह हरण करेगा। **औपगवः**। उपगु का पुत्र। **कापटवः**। कपटु का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **कर्ता**। कृ+तृच्। कृ+तृ। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (त०उ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय करने पर 'कृ' धातु की अङ्ग संज्ञा होती है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से इगन्त अङ्ग को गुण हो जाता है। इसी प्रकार '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से 'हर्ता' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **करिष्यति**। कृ+लृट्। कृ+स्य+तिप्। कृ+इट्+स्य+ति। कर्+इ+ष्य+ति। करिष्यति।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (त०उ०) धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय, उसके स्थान में 'तिप्' आदेश और '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय होता है। 'स्य' प्रत्यय के परे होने पर तदादि 'कृ' धातु की अङ्ग संज्ञा होती है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से इगन्त अङ्ग को गुण होता है। इसी प्रकार '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से हरिष्यति शब्द सिद्ध होता है।*

*(३) **औपगवः**। उपगु+अण्। उपगु+अ। औपगु+अ। औपगो+अ। औपगव्+अ। औपगव+सु। औपगवः।*

*यहां 'उपगु' प्रातिपदिक से '**तस्यापत्यम्**' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय होने पर 'उपगु' प्रादिपदिक की अङ्ग संज्ञा होती है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अङ्ग*

*के आदि अच् को वृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।४६) से अङ्ग के उकार को गुण होता है। इसी प्रकार कपटु शब्द से 'अण्' प्रत्यय करने पर **'कापटवः'** शब्द सिद्ध होता है।*

***विशेष*–*अष्टाध्यायी के षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद से लेकर सप्तम अध्याय की समाप्ति तक **'अङ्गस्य'** (६।४।१) का अधिकार है। वहां अङ्गसम्बन्धी कार्यों का विधान किया गया है।*

पदसंज्ञाप्रकरणम्

सुबन्तं तिङन्तं च–

(१) सुप्तिङन्तं पदम्।१४।

प०वि०–सुप्-तिङन्तम् १।१ पदम् १।१।

स०–सुप् च तिङ् च तौ सुप्तिङौ। सुप्तिङावन्ते यस्य तत् सुप्तिगन्तम् (द्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः–सुबन्तं तिङन्तं च शब्दरूपं पद-संज्ञकं भवति।

उदा०–ब्राह्मणाः पठन्ति।

***आर्यभाषा-अर्थ*–*(सुप्तिङन्तम्) सुबन्त और तिङन्त शब्द की (पदम्) पदसंज्ञा होती है।*

उदा०–ब्राह्मणाः पठन्ति। ब्राह्मण पढ़ते हैं।

***सिद्धि*–*(१) **ब्राह्मणाः।** ब्राह्मण+जस्। ब्राह्मण+अस्। ब्राह्मणास्। ब्राह्मणारु। ब्राह्मणार्। ब्राह्मणाः।*

*यहां पद संज्ञा होने से **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'स्' को 'रुत्व' और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से 'र्' को : विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(२) **पठन्ति।** पठ्+लट्। पठ्+शप्+झि। पठ्+अ+अन्ति। पठन्ति।*

*यहां **'पठ व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झि' आदेश, **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ' को 'अन्त' आदेश होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय है।*

*यहां **'पठन्ति'** शब्द की पद संज्ञा होने से **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से अतिङन्त पद से परे तिङन्तपद सर्वानुदात्त हो जाता है।*

***विशेष*–*(१) सुप् प्रत्यय ये हैं-सु। औ। जस्। अम्। औट्। शस्। टा। भ्याम्। भिस्। ङे। भ्याम्। भ्यस्। ङसि। भ्याम्। भ्यस्। ङस्। ओस्। आम्। ङि। ओस्। सुप्। यहां प्रथम सु प्रत्यय को लेकर अन्तिम सुप् प्रत्यय के पकार से 'सुप्' प्रत्याहार बनाया गया है।*

(२) तिङ् प्रत्यय ये हैं-तिप्। तस्। झि। सिप्। थस्। थ। मिप्। वस्। मस्। त। आताम्। झ। थास्। आथाम्। ध्वम्। इट्। वहि। महिङ्। यहां प्रथम 'तिप्' प्रत्यय का 'ति' और अन्तिम 'महिङ्' के ङकार से 'तिङ्' प्रत्याहार बनाया गया है।

नकारान्तं क्यजादिषु–

(२) नः क्ये।१५।

प०वि०–नः १।१ क्ये ७।१।

अनु०–'पदम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–नः क्ये पदम्।

अर्थः–नकारान्तं शब्दरूपं क्ये प्रत्यये परतः पद-संज्ञकं भवति। 'क्ये' इति क्यच्-क्यङ्-क्यषां प्रत्ययानां सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०–(क्यच्) राजीयति। (क्यङ्) राजायते। (क्यष्) वर्मायति। वर्मायते।

आर्यभाषा-अर्थ-(नः) नकारान्त शब्द की (क्ये) क्य प्रत्यय परे होने पर (पदम्) पद संज्ञा होती है। 'क्ये' यहां क्यच्, क्यङ् और क्यष् प्रत्यय का समान रूप से ग्रहण किया गया है।

उदा०-(क्यच्) राजीयति। अपने राजा को चाहता है। (क्यङ्) राजायते। राजा के समान आचरण करता है। वर्मायति। वर्मायते। जो वर्म (कवच) नहीं है, वह वर्म बन रहा है।

*सिद्धि-(१) **राजीयति**। राजन्+क्यच्। राजन्+य। राज+य। राजी+य। राजीय+लट्। राजीय+शप्+तिप्। राजीय+अ+ति। राजयति।*

*यहां 'राजन्' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय करने पर नकारान्त 'राजन्' शब्द की पद संज्ञा होती है। अतः **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप हो जाता है। **'क्यचि च'** (७।४।३३) से ईकार आदेश होता है। तत्पश्चात् **'राजीय'** धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'तिप्' आदेश होता है।*

*(२) **राजायते**। राजन्+क्यङ्। राजन्+य। राज+य। राजा+य। राजाय+लट्। राजाय+शप्+त। राजाय+अ+ते। राजायते।*

*यहां राजन् शब्द से **'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च'** (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय करने पर नकारान्त 'राजन्' शब्द की पद संज्ञा होती है। अतः पूर्ववत् 'न्' का लोप हो जाता है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से दीर्घ होता है। तत्पश्चात् **'राजाय'** धातु से 'लट्' प्रत्यय और ङित् होने से उसके स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश होता है।*

*(३) **वर्मायति।** वर्मन्+क्यष्। वर्मन्+य। वर्म+य। वर्मा+य। वर्माय+लट्। वर्माय+शप्+तिप्। वर्माय+अ+ति। वर्मायति।*

*यहां 'वर्मन्' शब्द से **'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्'** (३।१।१३) से 'क्यष्' प्रत्यय करने पर नकारान्त 'वर्मन्' शब्द की पदसंज्ञा होती है। अतः पूर्ववत् 'न्' का लोप हो जाता है। यहां पूर्ववत् दीर्घ होकर 'वर्माय' धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय होता है। यहां 'वा क्यषः' (१।३।९०) से विकल्प से परस्मैपद होता है। पक्ष में आत्मनेपद-**वर्मायते।***

सिति प्रत्ययेऽपि–

सिति च।१६।

प०वि०-सिति ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-स इत् यस्य सः-सित्, तस्मिन्-सिति (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-सिति च पदम्।

अर्थः-सिति च प्रत्यये परतः पूर्वं पदसंज्ञकं भवति। **'यचि भम्'** (१।४।१८) इति भ-संज्ञां वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्ताद् अपवादः।

उदा०-भवदीयः। ऊर्णायुः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(सिति) सित् प्रत्यय परे होने पर (च) भी पूर्ववर्ती शब्द की (पदम्) पद संज्ञा होती है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से भ-संज्ञा का विधान किया जायेगा। यह उसका पूर्व-अपवाद है।*

उदा०-भवदीयः। आपका। ऊर्णायुः। ऊनवाला (ऊनी)।

***सिद्धि-(१) भवदीयः।** भवत्+छस्। भवत्+ईय। भवद्+ईय। भवदीय+सु। भवदीयः।*

*यहां 'भवत्' शब्द से **'भवतष्ठक्छसौ'** (४।२।११५) से सित् छस् प्रत्यय करने पर 'भवत्' की पद संज्ञा होती है। पद संज्ञा होने से 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से त् को जश् द् हो जाता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

*(२) **ऊर्णायुः।** ऊर्णा+युस्। ऊर्णा+यु। ऊर्णायु+सु। ऊर्णायुः।*

*यहां 'ऊर्णा' शब्द से **'ऊर्णाया युस्'** (५।२।१२३) से सित् 'युस्' प्रत्यय करने पर 'ऊर्णा' शब्द की पद संज्ञा होने से 'यचि भम्' (१।४।१८) से प्राप्त भ-संज्ञा नहीं होती है, अतः **'यस्येति च'** (६।४।१४६) से आकार का लोप भी नहीं होता है।*

असर्वनामस्थानेषु स्वादिषु–

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ।१७।

प०वि०–सु–आदिषु ७।३। असर्वनामस्थाने ७।१।

स०–सु आदिर्येषां ते–स्वादयः, तेषु–स्वादिषु (बहुव्रीहिः)। न सर्वनामस्थानमिति, असर्वनामस्थानम्, तस्मिन्–असर्वनामस्थाने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'पदम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–असर्वनामस्थाने स्वादिषु पूर्वं पदम्।

अर्थः–सर्वनामस्थानवर्जितेषु स्वादिषु प्रत्ययेषु परतः पूर्वं पद–संज्ञकं भवति।

उदा०–राजभ्याम्। राजभिः। राजत्वम्। राजता। राजतरः। राजतमः।

'**स्वादिषु**' इत्यत्र '**स्वौजस्०**' (४।१।१) इति सु–शब्दादारभ्य '**उरः प्रभृतिभ्यः कप्**' (५।४।१५१) इति आ कपः प्रत्यया गृह्यन्ते।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(असर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों को छोड़कर (स्वादिषु) 'सु' आदि प्रत्ययों के परे होने पर पूर्ववर्ती शब्द की (पदम्) पद संज्ञा होती है।

उदा०–राजभ्याम्। दो राजाओं के द्वारा। राजभिः। सब राजाओं के द्वारा। राजत्वम्। राजपना। राजता। राजभाव। राजतरः। दो राजाओं में प्रशंसनीय राजा। राजतमः। सब राजाओं में प्रशंसनीय राजा।

__सिद्धि__–(१) __राजभ्याम्।__ राजन्+भ्याम्। राज+भ्याम्।

यहां 'राजन्' शब्द से 'भ्याम्' प्रत्यय करने पर 'राजन्' शब्द की पद संज्ञा होती है। अतः 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप हो जाता है। इसी प्रकार से–राजन्+भिस्=राजभिः।

(२) __राजत्वम्।__ राजन्+त्व। राज+त्व। राजत्व+सु। राजत्वम्।

यहां 'राजन्' शब्द से '__तस्य भावस्त्वतलौ__' (५।१।११९) से तद्धित 'त्व' प्रत्यय करने पर पूर्ववत् 'न्' का लोप होता है।

(३) __राजता।__ राजन्+तल। राज+त। राजत+टाप्। राज+त+आ। राजता+सु। राजता। तल् प्रत्ययान्त शब्द 'तलन्तः' (लिंगानुशासन) से स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। अतः '__अजाद्यतष्टाप्__' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) __राजतरः।__ राजन्+तरप्। राज+तर। राजतर+सु। राजतरः।

*यहां 'राजन्' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से तद्धित 'तरप्' प्रत्यय करने पर 'राजन्' शब्द की पदसंज्ञा होती है। अतः पूर्ववत् 'न्' का लोप हो जाता है।*

*(५) **राजतमः**। राजन्+तमप्। राज+तम। राजतम+सु। राजतमः।*

*यहां 'राजन्' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय करने पर 'राजन्' शब्द की पदसंज्ञा होती है। अतः पूर्ववत् 'न्' का लोप होता है।*

भसंज्ञाप्रकरणम्

य-अजादौ–

(१) यचि भम्।१८।

प०वि०-य्-अचि ७।१ भम् १।१।

स०-य् च अच् च एतयोः समाहारः-यच्, तस्मिन् यचि (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असर्वनामस्थाने स्वादिषु पूर्वं भम्।

अर्थः-सर्वनामस्थानवर्जितेषु स्वादिषु प्रत्ययेषु यकारादावजादौ च प्रत्यये परतः पूर्वं भ-संज्ञकं भवति।

उदा०-(यकारादौ) गार्ग्यः। वात्स्यः। (अजादौ) दाक्षिः। प्लाक्षिः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(असर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों को छोड़कर (स्वादिषु) 'सु' आदि प्रत्ययों में विद्यमान (यचि) यकारादि और अजादि प्रत्यय के परे होने पर पूर्ववर्ती शब्द की (भम्) 'भ' संज्ञा होती है।

उदा०-(यकारादि) गार्ग्यः। गर्ग का पोता। वात्स्यः। वत्स का पोता। (अजादि) दाक्षिः। दक्ष का पुत्र। प्लाक्षिः। प्लक्ष का पुत्र।

*__सिद्धि__-(१) **गार्ग्यः**। गर्ग+यञ्। गर्ग+य। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।*

*यहां 'गर्ग' शब्द से '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय करने पर 'गर्ग' शब्द की 'भ' संज्ञा होती है। अतः '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से 'गर्ग' के 'अ' का लोप हो जाता है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से आदि वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'वत्स' शब्द से '**वात्स्यः**' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **दाक्षिः**। दक्ष+इञ्। दक्ष्+इ। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः।*

*यहां 'दक्ष' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय करने पर 'दक्ष' शब्द की 'भ' संज्ञा होती। अतः पूर्ववत् दक्ष के 'अ' का लोप हो जाता है। यहां भी पूर्ववत् आदिवृद्धि होती है।*

तकारान्तं मकारान्तं च मत्वर्थे–

(२) तसौ मत्वर्थे।१६।

प०वि०–त–सौ १।२ मतु–अर्थे ७।१।

स०–तश्च सश्च तौ–तसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मतोरर्थ इति मत्वर्थः, तस्मिन्–मत्वर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'भम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तसौ भम् मत्वर्थे।

अर्थः–तकारान्तं सकारान्तं च शब्दरूपं मत्वर्थे प्रत्यये परतो भ–संज्ञकं भवति।

उदा०–(तकारान्तम्) विद्युत्वान् बलाहकः। उदश्वित्वान् घोषः। (सकारान्तम्) पयस्वी। यशस्वी।

आर्यभाषा–अर्थ–(तसौ) तकारान्त और सकारान्त शब्द की (मत्वर्थे) मतु–अर्थीय प्रत्यय परे होने पर (भम्) भ–संज्ञा होती है।

*उदा०–(तकारान्त) **विद्युत्वान् बलाहकः।** बिजलीवाला बादल। **उदश्वित्वान् घोषः।** लस्सीवाली झोंपड़ी अथवा लस्सीवाले ग्वालों की बस्ती। **'घोष आभीरपल्ली स्या'दित्यमरः।** (सकारान्त) **पयस्वी।** दूधवाला। **यशस्वी।** यशवाला।*

*सिद्धि–(१) **विद्युत्वान्।** विद्युत्+मतुप्। विद्युत्+मत्। विद्युत्+वत्। विद्युत्वत्+सु। विद्युत्वनुम्त्+सु। विद्युत्+वान् त्+स्। विद्युत्वान्।*

*यहां तकारान्त विद्युत् शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय और **'झयः'** (८।२।१०) से 'मतुप्' के 'म्' को 'व्' आदेश होता है। 'मतुप्' प्रत्यय के परे होने पर तकारान्त 'विद्युत्' शब्द की भ–संज्ञा होने से **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से 'त' को जश् दकार नहीं होता है।*

*यहां **'उगिदचां सर्वनामस्थाने चाऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** (६।४।८) से **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) दीर्घ से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।३।२३) से 'त्' का लोप हो जाता है। इसी प्रकार तकारान्त 'उदश्वित्' शब्द से मतुप् प्रत्यय करने पर 'उदश्वित्वान्' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **पयस्वी।** पयस्+विनि। पयस्+विन्। पयस्विन्+सु। पयस्वीन्+स्। पयस्वी।*

*यहां सकारान्त 'पयस्' शब्द से **'अस्मायामेधास्रजो विनिः'** (५।२।१२१) से मत्वर्थीय 'विनि' प्रत्यय करने पर सकारान्त 'पयस्' शब्द की भ–संज्ञा होती है। इसलिये यहां **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'पयस्' के 'स्' को 'रु' आदेश नहीं होता है।*

यहां 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप हो जाता है।

वेदेऽयस्मयादीनि–

अयस्मयादीनि छन्दसि।२०।

प०वि०–अयस्मय-आदीनि १।३ छन्दसि ७।१।

स०–अयस्मयम् आदिर्येषां तानीमानि–अयस्मयादीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–भम्, पदम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अयस्मयादीनि भम् पदं च।

अर्थः–छन्दसि=वैदिकभाषायाम् अयस्मयादीनि शब्दरूपाणि साधूनि भवन्ति।

अत्र भ-पदसंज्ञाधिकारे साधुत्वविधानाद् अस्मयादीनां भ-पदसंख्यामुखेन साधुत्वं विधीयते।

उदा०–अयस्मयं वर्म। अयस्मयानि पात्राणि। क्वचिद् भ-संज्ञा पदसंज्ञा चेत्युभयमपि भवति–स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन। 'ऋक्वता' इत्यत्र पदत्वात् कुत्वं तु भवति, परं भत्वाज् जश्त्वं न भवति।

आर्यभाषा–अर्थ– *छन्दसि=वैदिकभाषा में (अयस्मयादीनि) 'अयस्मय' आदि शब्द शुद्ध समझे जाते हैं। यहां 'भ' और 'पद' संज्ञा के अधिकार में 'अयस्मय' आदि शब्दों का साधुत्व विधान किया गया है, अतः इन्हें भ और पदसंज्ञा कार्य विषय में साधु समझना चाहिये।*

उदा०–अयस्मयं वर्म। लोह से बना हुआ कवच। अयस्मयानि पात्राणि। लोहे से बने हुये पात्र (स्टील के बर्तन)। स सुष्टुभा ऋक्वता गणेन।

सिद्धि–(१) अयस्मयम्। *अयस्+मयट्। अयस्+मय। अयस्मय+सु। अयस्मयम्। यहां 'अयस्' शब्द से 'तत्प्रकृतवचने मयट्' (५।४।२१) से 'मयट्' प्रत्यय करने पर 'अयस्' की भ-संज्ञा होती है। भ-संज्ञा होने से 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'स्' को रुत्व नहीं होता है।*

(२) ऋक्वता। *ऋच्+मतुप्। ऋच्+वत्। ऋक्+वत्। ऋक्वत्+टा। ऋक्वता। यहां ऋच् शब्द से 'तदस्यास्मिन्नस्तीति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय और 'मयः' (८।२।१०) से 'मतुप्' के 'म्' को वकारादेश करने पर 'ऋच्' शब्द की पद संज्ञा होने से 'चोः कुः' (८।२।३०) से कुत्व तो हो जाता है, किन्तु भ-संज्ञा होने से 'झलां*

जशोऽन्ते' (८।२।३९) से जश्त्व गकार नहीं होता है। इस प्रकार कहीं-कहीं 'भ' और 'पद' दोनों संज्ञायें भी हो जाती हैं।

विशेष-'अयस्मय' आदि कोई निर्धारित गण नहीं है। इस प्रकार के शब्दों को अयस्मय आदि गण में समझ लेवें।

वचन-विधानम्

बहुवचनम्-

(१) बहुषु बहुवचनम्।२१।

प०वि०-बहुषु १।३ बहुवचनम् १।१।

अर्थः-बहुषु पदार्थेषु उच्यमानेषु बहुवचनं भवति।

उदा०-ब्राह्मणाः पठन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(बहुषु) बहुत पदार्थों के कथन करने में (बहुवचनम्) बहुवचन संज्ञक प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-**ब्राह्मणाः पठन्ति।** ब्राह्मण पढ़ते हैं।*

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणाः।** ब्राह्मण+जस्। ब्राह्मण+अस्। ब्राह्मणाः। यहां बहुत ब्राह्मणों के कथन में बहुवचन संज्ञक 'जस्' प्रत्यय है।*

*(२) **पठन्ति।** पठ्+लट्। पठ्+शप्+झि। पठ्+अ+अन्ति। पठन्ति। यहां पर 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से बहुत्व विवक्षा में बहुवचन संज्ञक 'झि' प्रत्यय होता है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' को 'अन्त' आदेश होता है।*

द्विवचनमेकवचनं च-

(२) द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने।२२।

प०वि०-द्वि-एकयोः ७।२ द्विवचन-एकवचने १।२।

स०-द्वौ च एकश्च तौ द्वि-एकौ, तयोः-द्व्येकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्विवचनं च एकवचनं च ते द्विवचनैकवचने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-द्वि-एकयोः पदार्थयोरुच्यमानयोर्यथासंख्यं द्विवचन-एकवचने भवतः।

उदा०-(द्वित्व-विवक्षायाम्) ब्राह्मणौ पठतः। (एकत्व-विवक्षायाम्) ब्राह्मणः पठति।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्व्येकयोः) दो और एक पदार्थ के कहने में यथासंख्य (द्विवचनैकवचने) द्विवचन और एकवचन संज्ञक प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(द्वित्व-विवक्षा में) ब्राह्मणौ पठतः। दो ब्राह्मण पढ़ते हैं। (एकत्व-विवक्षा में) ब्राह्मणः पठति। एक ब्राह्मण पढ़ता है।

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणौ।** ब्राह्मण+औ। ब्राह्मणौ। यहां दो ब्राह्मणों की विवक्षा में ब्राह्मण शब्द से द्विवचन संज्ञक 'औ' प्रत्यय होता है।*

*(२) **पठतः।** पठ्+लट्। पठ्+शप्+तस्। पठ्+अ+तस्। पठतः। यहां '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) से द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन संज्ञक 'तस्' प्रत्यय होता है।*

*(३) **ब्राह्मणः।** ब्राह्मण+सु। ब्राह्मण+रु। ब्राह्मण+र्। ब्राह्मणः। यहां एक ब्राह्मण की विवक्षा में ब्राह्मण शब्द से एकवचन संज्ञक 'सु' प्रत्यय होता है।*

*(४) **पठति।** पठ्+लट्। पठ्+शप्+तिप्। पठ्+अ+ति। पठति। यहां '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से एकत्व विवक्षा में एकवचन संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय होता है।*

कारकप्रकरणम्

अधिकारः-

कारके।२३।

प०वि०-कारके ७।१।

अर्थः-'कारके' इत्यधिकारोऽयम्, **'तत्प्रयोजको हेतुश्च'** (१।४।५५) इति यावत्। कारकशब्दोऽत्र निमित्तपर्यायः। कारकं हेतुरित्यनर्थान्तरम्। कस्य हेतुः ? क्रियायाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कारके) 'कारके' का 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' (१।४।४५) तक अधिकार है। यहां कारक शब्द निमित्त का पर्यायवाची है। कारक और निमित्त शब्द में कोई अर्थभेद नहीं है। किसका हेतु ? क्रिया का जो हेतु होता है उसे कारक (कारण) कहते हैं।

'कारक' शब्द एक अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है इसका अर्थ 'कारण' है। इस प्रकरण से कारक शब्द से ही व्यवहार किया जाता है।

अपादान-संज्ञा

ध्रुवम्-

(१) ध्रुवमपायेऽपादानम्।२४।

प०वि०-ध्रुवम् १।१ अपाये ७।१ अपादानम् १।१।

अर्थः-अपाये=विभागे सति **यद् ध्रुवम्**=अवधिभूतं **तत् कारकम् अपादान-संज्ञकं भवति।**

उदा०-ग्रामादागच्छति। पर्वतादवरोहति। सार्थाद् हीनः। रथात् पतितः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपाये) दो पदार्थों के विभाग हो जाने पर (ध्रुवम्) जो पदार्थ अवधिरूप हैं, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।

उदा०-ग्रामादागच्छति। वह ग्राम से आता है। पर्वतादवरोहति। वह पर्वत से उतरता है। सार्थाद् हीनः। वह अपने समुदाय से बिछुड़ गया। रथात् पतितः। वह रथ से गिर गया।

सिद्धि-ग्रामादागच्छति देवदत्तः। *देवदत्त ग्राम से आता है। यहां देवदत्त और ग्राम दो पदार्थ हैं, जो प्रथम परस्पर संयुक्त हैं। उन दोनों का अपाय=विभाग (पृथग्भाव) हो जाने पर जो पदार्थ ध्रुव अर्थात् अवधिरूप है कि देवदत्त का कहां से विभाग हुआ है ? उस अवधिरूप कारक (कारण) की अपादान संज्ञा होती है और उसमें* ***'अपादाने पञ्चमी'*** *(२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार* ***'पर्वतादवरोहति'*** *आदि उदाहरणों को समझ लेवें।*

भयहेतुः-

(२) भीत्रार्थानां भयहेतुः।२५।

प०वि०-भी-त्रार्थानाम् ६।३ भय-हेतुः १।१।

स०-भीश्च त्राश्च तौ-भीत्रौ, अर्थश्च अर्थश्च तौ-अर्थौ। भीत्रौ अर्थौ येषां ते भीत्रार्थाः, तेषाम्-भीत्रार्थानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। भयस्य हेतुरिति भयहेतुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भीत्रार्थानां भयहेतुः कारकमपादानम्।

अर्थः-बिभेत्यर्थानां त्रायत्यर्थानां च धातूनां प्रयोगे योभयस्य हेतुः, तत् कारकम् अपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०-(बिभेत्यर्थानाम्) चौरेभ्यो बिभेति। चौरेभ्य उद्विजते। (त्रायत्यर्थानाम्) चौरेभ्यस्त्रायते। चौरेभ्यो रक्षति।

आर्यभाषा-अर्थ-(भी-त्रार्थानाम्) डरना और रक्षा करना अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में (भय-हेतुः) जो भयहेतु रूप (कारकम्) कारक है, उसकी अपादान संज्ञा होती है।

उदा०-(बिभेति अर्थक) चौरेभ्यो बिभेति। वह चोरों से डरता है। चौरेभ्य उद्विजते। वह चोरों से उद्विग्न (व्याकुल) होता है। (त्रायति-अर्थक) चौरेभ्यस्त्रायते। वह चौरों से पालन करता है (पीछा छुड़वाता है)। चौरेभ्यो रक्षति। वह चौरों से रक्षा करता है।

*सिद्धि-**देवदत्तश्चौरेभ्यो बिभेति।** देवदत्त चोरों से डरता है। यहां 'बिभेति' धातु के प्रयोग में भय का हेतु चोर है, अत: उस 'कारक' की अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार **'चौरेभ्य उद्विजते'** आदि में भी समझें।*

असोढः-

(३) पराजेरसोढः ।२६।

प०वि०-परा-जे: ६।१ असोढ: १।१।

स०-सोढुं शक्यते इति सोढः। न सोढ इति असोढ: (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-पराजेरसोढ: कारकमपादनम्।

अर्थ:-परा पूर्वस्य जि-धातोः प्रयोगे योऽसोढोऽर्थ:, तत्कारकम् अपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०-अध्ययनात् पराजयते।

*आर्यभाषा-**अर्थ-**(परा-जे:) परा उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में (असोढ:) जो असह्य पदार्थ है, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।*

उदा०-अध्ययनात् पराजयते। वह अध्ययन से पराजित होता है।

*सिद्धि-**देवदत्तोऽध्ययनात् पराजयते।** देवदत्त अध्ययन कार्य से पराजित होता है। यहां **'पराजयते'** के प्रयोग में देवदत्त के लिये असह्य पदार्थ **'अध्ययन'** है। उस 'कारक' की अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति होती है।*

ईप्सित:-

(४) वारणार्थानामीप्सितः ।२७।

प०वि०-वारण-अर्थानाम् ६।१ ईप्सित: १।१।

स०-वारणम् अर्थो येषां ते वारणार्था:, तेषाम्-वारणार्थानाम् (बहुव्रीहि:)।

अनु०-'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-वारणार्थानामीप्सित: कारकमपादानम्।

अर्थ:-वारणार्थानाम्=निवारणार्थानां धातूनां प्रयोगे य ईप्सितोऽर्थस्तत् कारकमपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०-यवेभ्यो गां वारयति। यवेभ्यो गां निवर्तयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(वारणार्थानाम्) निवारण अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में (ईप्सितः) जो पदार्थ अभीष्ट है, उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।

*उदा०-**यवेभ्यो गां वारयति।** वह जौ के खेत से गाय को हटाता है। **यवेभ्यो गां निवर्तयति।** वह जौ के खेत से गाय को मोड़ता है।*

*सिद्धि-**देवदत्तो यवेभ्यो गां वारयति।** देवदत्त जौ के खेत से गौ को हटाता है। यहां 'वारयति' के प्रयोग में देवदत्त को 'जौ का खेत' अभीष्ट पदार्थ है, प्रिय है, वह उसमें हानि नहीं चाहता है, अतः उस कारक की अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।*

येनादर्शनमिच्छति-

(५) अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति।२८।

प०वि०-अन्तर्द्धौ ७।१ निमित्तसप्तमी। येन ३।१ अदर्शनम् १।१ इच्छति 'क्रियापदम्'।

स०-न दर्शनमिति अदर्शनम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति तत् कारकमपादानम्।

अर्थः-अन्तर्द्धौ=अन्तर्धाननिमित्तम्, येनात्मनोऽदर्शनमिच्छति, तत्कारकमपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०-उपाध्यायाद् अन्तर्धत्ते। उपाध्यायाद् निलीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्तर्धौ) अन्तर्धान के निमित्त (येन) जिससे वह (अदर्शनम्) अपना अदर्शन (इच्छति) चाहता है, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।

उदा०-उपाध्यायाद् अन्तर्धत्ते। अपाध्याय से अन्तर्धान होता है। उपाध्यायाद् निलीयते। उपाध्याय से छुपता है।

*सिद्धि-**छात्र उपाध्यायादन्तर्धत्ते।** छात्र उपाध्याय से अन्तर्धान होता है। यहां छात्र अन्तर्धान के कारण उपाध्याय से अपना अदर्शन चाहता है, अतः उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।*

आख्याता–

(६) आख्यातोपयोगे।२९।

प०वि०–आख्याता १।१ उपयोगे ७।१।

अनु०–'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपयोगे आख्याता कारकमपादानम्।

अर्थः–उपयोगे=नियमपूर्वके विद्याग्रहणे साध्ये य आख्याता=प्रतिपादयिता, तत्कारकमपदानसंज्ञकं भवति।

उदा०–उपाध्यायाद् अधीते। उपाध्यायाद् आगमयति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(उपयोगे) नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में (आख्याता) जो उसका प्रतिपादक है, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है। __उपाध्यायाद् अधीते।__ उपाध्याय से पढ़ता है। __उपाध्यायाद् आगमयति।__ उपाध्याय से विद्या प्राप्त करता है।

__सिद्धि-शिष्य उपाध्यायाद् अधीते।__ शिष्य अपने उपाध्याय से नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करता है। यहां नियमपूर्वक विद्या के ग्रहण करने में उसका प्रतिपादक उपाध्याय है, अतः उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें __'अपादाने पञ्चमी'__ (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।

प्रकृतिः–

(७) जनिकर्तुः प्रकृतिः।३०।

प०वि०–जनि-कर्तुः ६।१ प्रकृतिः १।१।

स०–जनेः कर्ता इति जनिकर्ता, तस्य-जनिकर्तुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–जनिकर्तुः प्रकृतिः कारकमपादानम्।

अर्थः–जनिधातोर्यः कर्ता, तस्य या प्रकृतिः=कारणम्, तत् कारकम् अपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०–शृङ्गाद् शरो जायते। गोमयाद् वृश्चिको जायते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(जनिकर्तुः) 'जनि' धातु का जो कर्ता है, उसकी (प्रकृतिः) जो प्रकृति अर्थात् कारण है, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।

उदा०–शृङ्गाद् शरो जायते। सींग से बाण पैदा होता है। गोमयाद् वृश्चिको जायते। गोबर से बिच्छू पैदा होता है।

*सिद्धि-**शृङ्गाद् शरो जायते।** यहां 'जायते' पद का कर्ता 'शर' है और उसकी प्रकृति (उपादानकरण) शृङ्ग है, अतः उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार **'गोमयाद् वृश्चिको जायते'** समझें।*

प्रभवः–

(८) भुवः प्रभवः।३१।

प०वि०–भुवः ६।१ प्रभवः १।१।

अनु०–'कर्तुः, अपादानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–भुवः कर्तुः प्रभवः कारकमपादानम्।

अर्थः–भुवो धातोर्यः कर्ता, तस्य यः प्रभवोऽर्थस्तत्कारकम् अपादानसंज्ञकं भवति।

उदा०–हिमवतो गङ्गा प्रभवति। काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति। प्रथमत उपलभ्यते इत्यर्थः।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(भुवः) भू धातु का (कर्तुः) जो कर्ता है, उसकी (प्रभवः) जो प्रथम उत्पत्ति स्थान है, (कारकम्) उस कारक की (अपादानम्) अपादान संज्ञा होती है।*

उदा०–हिमवतो गङ्गा प्रभवति। हिमालय से गङ्गा निकलती है। काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति। काश्मीर से वितस्ता नदी निकलती है।

*सिद्धि-**हिमवतो गङ्गा प्रभवति।** हिमालय से गङ्गा नदी निकलती है। यहां 'प्रभवति' का कर्ता 'गङ्गा' है और उसका प्रथम उत्पत्ति स्थान हिमवान् है, अतः उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें **'अपादाने पञ्चमी'** (२।३।२८) से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**'काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति'** समझें।*

सम्प्रदानसंज्ञा

ददाति-कर्मणा यमभिप्रैति–

(१) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्।३२।

प०वि०–कर्मणा ३।१ यम् २।१ अभिप्रैति क्रियापदम्, सः १।१ सम्प्रदानम् १।१।

अन्वयः–कर्ता कर्मणा यम् अभिप्रैति सः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः–कर्ता ददाति-कर्मणा यम् अभिप्रैति=अभीप्सति स कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति। अन्वर्थकसंज्ञाविज्ञानाद् ददाति-कर्मणा इति विज्ञायते।

उदा०-कर्ता (कर्मणा) उपाध्यायाय गां ददाति। माणवकाय भिक्षां ददाति।

आर्यभाषा-अर्थ-*कर्ता (कर्मणा) ददाति-क्रिया के कर्म के द्वारा (यम्) जिसको (अभिप्रैति) प्राप्त करना चाहता है (सः) उस (कारकम्) कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।*

उदा०-उपाध्यायाय गां ददाति। वह उपाध्याय को गाय देता है। माणवकाय भिक्षां ददाति। वह बालक को भिक्षा देता है।

सिद्धि-देवदत्त उपाध्यायाय गां ददाति। *देवदत्त उपाध्याय को गाय देता है। यहां देवदत्त **'ददाति'** क्रिया के कर्म **'गौ'** के द्वारा उपाध्याय को प्राप्त करना चाहता है, उससे सम्बन्धित होता है, अतः **'उपाध्याय'** की सम्प्रदान संज्ञा है। इसलिये उससे **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।*

प्रीयमाणः-

(२) रुच्यार्थानां प्रीयमाणः।३३।

प०वि०-रुचि-अर्थानाम् ६।३ प्रीयमाणः। १।१।

स०-रुचिर्थो येषां ते रुच्यर्थाः, तेषाम्-रुच्यर्थानाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-रुच्यार्थानां प्रीयमाणः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-रुचि=अर्थानां धातूनां प्रयोगे यः प्रीयमाणः=तर्पमाणोऽर्थः, तत् कारकं सम्प्रदान-संज्ञकं भवति।

उदा०-देवदत्ताय रोचते मोदकः। यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः। अन्यकर्तृकोऽभिलाषः=रुचिः। देवदत्तस्थस्याभिलाषस्यात्र मोदकः कर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-*(रुचि-अर्थानाम्) रुचि अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में (प्रीयमाणः) जो तृप्त होनेवाला है (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।*

उदा०-देवदत्ताय रोचते मोदकः। देवदत्त को लड्डू अच्छा लगता है। यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः। यज्ञदत्त को पूड़ा स्वाद लगता है।

*सिद्धि-(१) **देवदत्ताय रोचते मोदकः।** यहां **'रोचते'** धातु के प्रयोग में तृप्त होनेवाला देवदत्त है, अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। इसलिये उसमें **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः।***

*विशेष-धातुपाठ में **'रुच दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) रुच धातु दीप्ति अर्थ में पढ़ी गई है। **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'** धातु अनेकार्थक होती हैं, अतः यहां रुच धातु अभिलाष*

अर्थ में है। अन्य कर्ता में स्थित अभिलाष को रुचि कहते हैं। यहां 'रोचते' का कर्ता मोदक है, अभिलाष उससे भिन्न कर्ता देवदत्त में अवस्थित है।

ज्ञीप्स्यमानः--

(३) श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः।३४।

प०वि०-श्लाघ-ह्नुङ्-स्था-शपाम् ६।३ ज्ञीप्स्यमानः १।३।

स०-श्लाघश्च ह्नुङ् च स्थाश्च शप् च ते-श्लाघह्नुङ्स्थाशपः, तेषाम्-श्लाघह्नुङ्स्थाशपाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ज्ञपयितुमिष्यामाण इति ज्ञीप्स्यमानः। बोधयितुमभिप्रेत इत्यर्थः।

अनु०-'सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-श्लाघ-ह्नुङ्-स्था-शपां धातूनां प्रयोगे यो ज्ञीप्स्यमानः= बोधयितुमभिप्रेतोऽर्थः, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।

उदा०-(श्लाघ) स देवदत्ताय श्लाघते। स देवदत्तं श्लाघमानस्तां श्लाघां तमेव ज्ञपयितुमित्यर्थः। (ह्नुङ्) स देवदत्ताय ह्नुते। स देवदत्तम् अपनयमानस्तदपनयनं तमेव ज्ञपयितुमिच्छतीत्यर्थः। (स्था) स देवदत्ताय तिष्ठते। स देवदत्ते तिष्ठमानस्तामास्थां तमेव ज्ञपयितुमिच्छतीत्यर्थः। (शप्) स देवदत्ताय शपते। स देवदत्तं शपमानस्तदुपालम्भनं तमेव ज्ञपयितुमिच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्लाघह्नुङ्स्थाशपाम्) श्लाघ, ह्नुङ्, स्था और शप् धातु के प्रयोग में (ज्ञीप्स्यमानः) जिसे उस श्लाघा आदि को जनाना अभीष्ट है (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।

*उदा०-(श्लाघ) **स देवदत्ताय श्लाघते।** वह देवदत्त की श्लाघा=प्रशंसा करता है और उस श्लाघा को देवदत्त को जनाना चाहता है। (ह्नुङ्) **स देवदत्ताय ह्नुते।** वह देवदत्त को हटाता है और उस अपनयन को देवदत्त को जनाना चाहता है। (स्था) **स देवदत्ताय तिष्ठते।** वह देवदत्त में आस्था रखता है और उस आस्था को देवदत्त को जनाना चाहता है। (शप्) **स देवदत्ताय शपते।** वह देवदत्त को उपालम्भ (उलाहना) देता है और उस उपालम्भ को देवदत्त को जनाना चाहता है।*

***सिद्धि-(१) स देवदत्ताय श्लाघते।** वह देवदत्त की श्लाघा करता है और उस श्लाघा को देवदत्त को जनाना चाहता है। यहां **'श्लाघ कत्थने'** (भ्वा०आ०) धातु के प्रयोग*

में ईप्स्यमान अर्थ देवदत्त है, अतः उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है। इसलिये उसमें *'चतुर्थी सम्प्रदाने' (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। ऐसा ही सर्वत्र समझें।*

*(२) स **देवदत्ताय तिष्ठते।** यहां 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' (अ० १।३।२३) से 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से आत्मनेपद होता है।*

*(३) **स देवदत्ताय शपते।** यहां 'शप आक्रोशे इति वक्तव्यम्' (१।३।२१) इस वार्तिक से शप् धातु से उपालम्भन अर्थ में आत्मनेपद होता है।*

उत्तमर्णः—

(४) धारेरुत्तमर्णः।३५।

प०वि०-धारेः ६।१ उत्तमर्णः १।१।

स०-ऋणे उत्तम इति उत्तमर्णः (बहुव्रीहिः)। **'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ'** (२।२।३५) इति सप्तम्यन्तस्य ऋणशब्दस्य पूर्वनिपाते प्राप्ते निपातनात् परनिपातः।

अनु०-'सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धारेरुत्तमर्णः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-धारि-धातोः प्रयोगे य उत्तमर्णोऽर्थः, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।

उदा०-स देवदत्ताय शतं धारयति। कस्य चोत्तममृणम्? यदीयं धनम्, यो धनस्वामी स उत्तमर्णः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(धारेः) धारयति धातु के प्रयोग में (उत्तमर्णः) जो ऋण में उत्तम है अर्थात् धन का स्वामी है (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।*

*उदा०-स **देवदत्ताय शतं धारयति।** वह देवदत्त का सौ रुपये का कर्जदार है। **'उत्तमर्ण'** किसे कहते हैं? जो धन का स्वामी है, उसे **'उत्तमर्ण'** कहते हैं। कर्जा लेनेवाले को **'अधमर्ण'** कहा जाता है।*

***सिद्धि-स देवदत्ताय शतं धारयति।** वह देवदत्त का सौ रुपये का कर्जदार है। यहां **'धारयति'** धातु के प्रयोग में 'देवदत्त' उत्तमर्ण है, धन का स्वामी है, अतः उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है। इसलिये उसमें **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।*

ईप्सितः-

(५) स्पृहेरीप्सितः।३६।

प०वि०-स्पृहे: ६।१ ईप्सित: १।१।

अनु०-'सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्पृहेरीत्सितः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-स्पृहि-धातोः प्रयोगे य ईप्सितः=अभिप्रेतोऽर्थः, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।

उदा०-स पुष्पेभ्यः स्पृहयति। स फलेभ्यः स्पृहयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्पृहे:) स्पृहयति धातु के प्रयोग में (ईप्सितः) जो अभिप्रेत एवं अभीष्ट अर्थ है (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।

*उदा०-**स पुष्पेभ्यः स्पृहयति।** वह फूलों को प्राप्त करना चाहता है। **स फलेभ्यः स्पृहयति।** वह फलों को प्राप्त करना चाहता है।*

*सिद्धि-**स पुष्पेभ्यः स्पृहयति।** वह फूलों को प्राप्त करना चाहता है। यहां **'स्पृह ईप्सायाम्'** (चु०उ०) धातु के प्रयोग में अभिप्रेत अर्थ पुष्प है, अतः उस कारक की यहां सम्प्रदान संज्ञा है। इसलिये उसमें **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति होती है।*

यं प्रतिकोपः-

(६) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः।३६।

प०वि०-क्रुध-द्रुह-ईर्ष्य-असूयार्थानाम् ६।३ यम् २।१ प्रति अव्ययपदम्, कोपः १।१।

स०-क्रुधश्च द्रुहश्च ईर्ष्यश्च असूयश्च ते-क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयाः, अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च ते अर्थाः। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूया अर्था येषां ते-क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थाः, तेषाम्-क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-क्रुध-द्रुह-ईर्ष्य-असूयार्थानां धातूनां प्रयोगे यः **'यं प्रति कोपः' अर्थः, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।**

उदा०-क्रोध:=अमर्ष:। द्रोह:=अपकार:। ईर्ष्या=अक्षमा। असूया=गुणेषु दोषारोपणम्। (क्रोधार्थस्य) स देवदत्ताय क्रुध्यति। (द्रोहार्थस्य) स देवदत्ताय द्रुह्यति। (ईर्ष्यार्थस्य) स देवदत्ताय ईर्ष्यति। (असूयार्थस्य) स देवदत्ताय असूयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्) क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या और असूया अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में (यं प्रति कोप:) 'जिसके प्रति क्रोध करना' जो अर्थ है, (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदा०-(क्रोधार्थक) स देवदत्ताय क्रुध्यति। वह देवदत्त के प्रति क्रोध करता है। (द्रोहार्थक) स देवदत्ताय द्रुह्यति। वह देवदत्त के प्रति द्रोह करता है। (ईर्ष्यार्थ) स देवदत्ताय ईर्ष्यति। वह देवदत्त के प्रति ईर्ष्या करता है। (असूयार्थक) स देवदत्ताय असूयति। वह देवदत्त की असूया (निन्दा) करता है।

सिद्धि-(१) स देवदत्ताय क्रुध्यति। *वह देवदत्त के प्रति क्रोध करता है। यहां* ***'क्रुध क्रोपे'*** *(दि०प०) धातु के प्रयोग में 'देवदत्त के प्रति क्रोध' है, अत: उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा है। इसलिये यहां* ***'चतुर्थी सम्प्रदाने'*** *(२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।*

(२) इसी प्रकार ***'द्रुह जिघांसायाम्'*** *(दि०प०)* ***'ईर्ष्य इर्ष्यार्थ:'*** *(भ्वा०प०)* ***'असूय उपतापे'*** *(कण्ड्वादि) धातुओं के प्रयोगों में भी सम्प्रदान संज्ञा समझ लेवें।*

विशेष-क्रोध कोप ही है। द्रोह आदि भी कोप से ही उत्पन्न होते हैं। अत: ***'यं प्रति कोप:'*** *यह सामान्यरूप में कहा गया है।*

कर्मसंज्ञा

यं प्रतिकोप:-

(७) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयो: कर्म।३८।

प०वि०-क्रुध-द्रुहो: ६।२ उपसृष्टयो: ६।२ कर्म १।१।

स०-क्रुधश्च द्रुह् च तौ क्रुधद्रुहौ, तयो:-क्रुधद्रुहो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-'यं प्रति कोप:' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-उपसृष्टयो: क्रुधद्रुहो: यं प्रति कोप: कारकं कर्म।

अर्थ:-उपसृष्टयो:=उपसर्गयुक्तयो: क्रुधद्रुहोर्धात्वो: प्रयोगे य: **'यं प्रति कोप:'** अर्थ:, तत् कारकं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०-(क्रुध:) स देवदत्तम् अभिक्रुध्यति। (द्रुह:) स देवदत्तम् अभिद्रुह्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसृष्टयोः) उपसर्ग से युक्त (क्रुधद्रुहोः) क्रुध् और द्रुह् धातुओं के प्रयोग में (यं प्रति कोपः) 'जिसके प्रति क्रोध करना' जो अर्थ है, (कारकम्) उस कारक की (कर्म) कर्म संज्ञा होती है।

उदा०-(क्रुध) स देवदत्तम् अभिक्रुध्यति। वह देवदत्त के प्रति क्रोध करता है। (द्रुह) से देवदत्तम् अभिद्रुह्यति। वह देवदत्त के प्रति द्रोह करता है।

***सिद्धि-स देवदत्तम् अभिक्रुध्यति।** यहां अभि उपसर्गपूर्वक 'क्रुध कोपे' (दि०प०) धातु के प्रयोग में देवदत्त के प्रति क्रोध है, अतः उस कारक की कर्म संज्ञा है। इसलिये उसमें **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।*

सम्प्रदानसंज्ञा

विप्रश्नः--

(८) राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः।३६।

प०वि०-राधि-ईक्ष्योः ६।२ यस्य ६।१ विप्रश्नः १।१।
राधिश्च ईक्षिश्च तौ-राधीक्षी, तयोः-राधीक्ष्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विविधः प्रश्न इति विप्रश्नः।

अनु०-'सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः कारकं सम्प्रदानम्।

अर्थः-राधि-ईक्ष्योर्धात्वोः प्रयोगे, यस्य विषये विविधः प्रश्न क्रियते, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।

उदा०-(राधि) स देवदत्ताय राध्यति। (ईक्षे) स देवदत्ताय ईक्षते। नैमित्तिकः पृष्टः सन् देवदत्तस्य भाग्यं पर्यालोचयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(राधीक्ष्योः) राधि और ईक्षि धातु के प्रयोग में (यस्य विप्रश्नः) जिसके विषय में विविध प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं, (कारकम्) उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।

*उदा०-(राधि) स **देवदत्ताय राध्यति।** वह नैमित्तिक (ज्योतिषी) देवदत्त के विषय में विविध प्रश्न पूछने पर उसके भाग्य को सिद्ध करता है। (ईक्षि) स **देवदत्ताय ईक्षते।** वह नैमित्तिक देवदत्त के विषय में विविध प्रश्न पूछने पर उसके भाग्य का पर्यालोचन करता है।*

***सिद्धि-स देवदत्ताय राध्यति।** यहां 'राध्यति' **'राध संसिद्धौ'** (दि०प०) धातु के प्रयोग में देवदत्त के विषय में विविध प्रश्न पूछे गये हैं अतः उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा*

(१०) अनुप्रतिगृणश्च।४१।

प०वि०-अनु-प्रतिगृणः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-अनुश्च प्रतिश्च तौ-अनुप्रती, ताभ्याम्-अनुप्रतिभ्याम्। अनुप्रतिभ्यां गृणा, इति अनुप्रतिगृणा, तस्य-अनुप्रतिगृणः (इतरेतरद्वन्द्वगर्भित-पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-'पूर्वस्य कर्ता, सम्प्रदानम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुप्रतिगृणश्च पूर्वस्य कर्ता सम्प्रदानम्।

अर्थः-अनुप्रतिभ्यां परस्य गृणातेर्धातोः प्रयोगेऽपि यः पूर्वस्य **कर्ता**, तत् कारकं सम्प्रदानसंज्ञकं भवति।

उदा०-(अनु) होत्रेऽनुगृणाति। (प्रति) होत्रे प्रतिगृणाति। **होता** प्रथमं शंसति, तमन्यः प्रोत्साहयतीत्यर्थः। अनुपूर्वः प्रतिपूर्वश्च गृणातिः शंसितुः प्रोत्साहनेऽर्थे वर्तते।

*आर्यभाषा-अर्थ-(अनुप्रतिगृणः) अनु और प्रति उपसर्ग से परे 'गृणाति' **'गृ स्तुतौ'** (क्र्या०प०) धातु के प्रयोग में (च) भी (पूर्वस्य कर्ता) जो पूर्व क्रिया का कर्ता है **(कारकः)** उस कारक की (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है।*

*उदा०-(अनु) होत्रेऽनुगृणाति। (प्रति) होत्रे प्रतिगृणाति। प्रथम होता **ऋचा का** उच्चारण करता है, उसे कोई दूसरा प्रोत्साहित करता है।*

*सिद्धि-**होत्रेऽनुगृणाति।** यहां प्रथम वाक्य यह है-**होता शंसति।** इस वाक्य **की** 'शंसति' क्रिया का कर्ता 'होता' है। अतः उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा है। इसलिये **उसमें** **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति होती है।*

विशेष-अनु और प्रति उपसर्गपूर्वक 'गृणाति' धातु शंसिता=ऋचा का उच्चारण करनेवाले को प्रोत्साहित करने अर्थ में प्रयुक्त होती है।

करणसंज्ञा

साधकतमम्-

(१) साधकतमं करणम्।४२।

प०वि०-साधकतमम् १।१ करणम् १।१।

स०-साधकतमं कारकं करणम्।

अर्थः-क्रियायाः सिद्धौ यत् साधकतमं कारकं तत् करणसंज्ञकं भवति।

उदा०-देवदत्तो दात्रेण लुनाति। यज्ञदत्तो परशुना छिनत्ति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-क्रिया की सिद्धि में (साधकतमम्) जो अत्यन्त साधक (कारकम्) कारक है, उसकी (करणम्) करण संज्ञा होती है।

उदा०-__देवदत्तो दात्रेण लुनाति।__ देवदत्त दरांती से लावणी करता है। __यज्ञदत्तो परशुना छिनत्ति।__ यज्ञदत्त कुल्हाड़े से काटता है।

__सिद्धि__-__देवदत्तो दात्रेण लुनाति।__ यहां '__लुनाति__' 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) क्रिया की सिद्धि में 'दात्रम्' अत्यन्त साधक कारक है, अतः उसकी 'करण' संज्ञा होती है। इसलिये उसमें '__कर्तृकरणयोस्तृतीया__' (३।२।१८) से तृतीया विभक्ति होती है। इसी प्रकार-__यज्ञदत्तो परशुना छिनत्ति।__

कर्मसंज्ञा करणसंज्ञा च-

(२) दिवः कर्म च।४३।

प०वि०-दिवः ६।१ कर्म १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'साधकतमं करणम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दिवः साधकतमं कारकं कर्म करणं च।

अर्थः-दिव्-धातोः प्रयोगे यत् साधकतमं कारकं तत् कर्मसंज्ञकं करणसंज्ञकं च भवति।

उदा०-(कर्म) सोऽक्षान् दीव्यति। (करणम्) सोऽक्षैर्दीव्यति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(दिवः) दिव् धातु के प्रयोग में (साधकतमम्) जो अत्यन्त साधक (कारकम्) कारक है उसकी (कर्म) कर्म संज्ञा (च) और (करणम्) करण संज्ञा होती है।

उदा०-(कर्म) __सोऽक्षान् दीव्यति।__ वह पासों से खेलता है। (करण) __सोऽक्षैर्दीव्यति।__ वह पासों से खेलता है।

__सिद्धि__-__सोऽक्षान् दीव्यति।__ यहां 'दीव्यति' '__दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदस्वप्नकान्तिगतिषु__ (दि०प०) धातु के प्रयोग में अत्यन्त साधक '__अक्षम्__' है, अतः उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। इसलिये उसमें '__कर्मणि द्वितीया__' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

(२) __सोऽक्षैर्दीव्यति।__ यहां '__दीव्यति__' धातु के प्रयोग में अत्यन्त साधक 'अक्षम्' है। अतः उस कारक की 'करण संज्ञा होती है। इसलिये उसमें '__कर्तृकरणयोस्तृतीया__' (२।२।१८) से तृतीया विभक्ति हो जाती है।

वा संप्रदानसंज्ञा–

(३) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्।४४।

प०वि०–परिक्रयणे ७।१ सम्प्रदानम् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययम् ७।१।

अनु०–'साधकतमम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–परिक्रयणे साधकतमं कारकमन्यतरस्यां सम्प्रदानम्।

अर्थः–परिक्रयणेऽर्थे वर्तमानं यत् साधकतमं कारकं तद् विकल्पेन सम्प्रदानसंज्ञकं भवति, पक्षे करणसंज्ञकम्।

उदा०–(सम्प्रदानम्) त्वं शताय परिक्रीतोऽनुब्रूहि। (करणम्) त्वं शतेन परिक्रीतोऽनुब्रूहि। त्वं सहस्रेण परिक्रीतोऽनुब्रूहि।

परिक्रयणम्=नियतकालं वेतनादिना स्वीकरणम्, नाऽत्यन्तिकः **क्रय** एव।

*आर्यभाषा–अर्थ–(परिक्रयणे) किसी व्यक्ति को नियत समय तक वेतन आदि **के** द्वारा अपनाने अर्थ में वर्तमान (साधकतम्) जो अत्यन्त साधक (कारकम्) कारक **है**, उसकी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (सम्प्रदानम्) सम्प्रदान संज्ञा होती है, पक्ष में **करण** संज्ञा भी होती है।*

*उदा०–(सम्प्रदान) **त्वं शताय परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** तू सौ रुपये देकर खरीदा **हुआ** मेरे अनुकूल बोल। **त्वं सहस्राय परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** तू हजार रुपये देकर खरीदा हुआ **मेरे** अनुकूल बोल। (करण) **त्वं शतेन परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** तू सौ रुपये से खरीदा हुआ **मेरे** अनुकूल बोल। **त्वं सहस्रेण परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** तू हजार रुपये से खरीदा हुआ मेरे अनुकूल बोल।*

*सिद्धि–(१) **त्वं शताय परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** यहां परिक्रयण अर्थ में अत्यन्त **साधक** **'शतम्'** है। अतः उस कारक की **'सम्प्रदान'** संज्ञा होती है। इसलिये उसमें **'चतुर्थी सम्प्रदाने'** (२।३।१३) से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार–**त्वं सहस्राय परिक्रीतोऽनुब्रूहि।***

*(२) **त्वं शतेन परिक्रीतोऽनुब्रूहि।** यहां परिक्रयण अर्थ में अत्यन्त साधक **'शतम्'** है। अतः उस कारक की पक्ष में करण संज्ञा होती है। इसलिये उसमें **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (३।२।१८) से तृतीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार–**सहस्रेण परिक्रीतोऽनुब्रूहि।***

***विशेष**–**'परिक्रयणम्'** का अर्थ किसी व्यक्ति को नियत समय तक वेतन **आदि** **देकर** अपनाना है, उसे बिलकुल खरीद लेना अर्थ नहीं है।*

अधिकरणसंज्ञा

आधारः-

(१) आधारोऽधिकरणम्।४५।

प०वि०-आधारः १।१ अधिकरणम् १।१।

अन्वयः-आधारः कारकमधिकरणम्।

अर्थः-क्रियायाः सिद्धौ य आधारः, तत् कारकमधिकरणसंज्ञकं भवति।

उदा०-देवदत्तः कटे आस्ते। देवदत्तः कटे शेते। देवदत्तः स्थाल्यां पचति।

आर्यभाषा-अर्थ-(आधारः) क्रिया की सिद्धि में जो उसका आधार है (कारकम्) उस कारक की (अधिकरणम्) अधिकरण संज्ञा होती है।

*उदा०-**देवदत्तः कटे आस्ते।** देवदत्त चटाई पर बैठता है। **देवदत्तः कटे शेते।** देवदत्त चटाई पर सोता है। **देवदत्तः स्थाल्यां पचति।** देवदत्त पतीली में पकाता है।*

*सिद्धि-**देवदत्तः कटे आस्ते।** यहां 'आस्ते' क्रिया का आधार 'कटम्' है। अतः उस कारक की अधिकरण संज्ञा होती है। इसलिये उसमें '**सप्तम्यधिकरणे च**' (२।३।३७) से सप्तमी विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**देवदत्तः कटे शेते। देवदत्तः स्थाल्यां पचति।***

कर्मसंज्ञा-

(२) अधिशीङ्स्थासां कर्म।४६।

प०वि०-अधि-शीङ्-स्था-आसाम् ६।३ कर्म १।१।

स०-शीङ् च स्थाश्च आस् च ते-शीङ्स्थासः, अधेः शीङ्स्थास इति अधिशीङ्स्थासः, तेषाम्-अधिशीङ्स्थासाम् (द्वन्द्वगर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-'आधारः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधिशीङ्स्थासामाधारः कारकमधिकरणम्।

अर्थः-अधेः परेषां शीङ्-स्था-आसां धातूनां प्रयोगे य आधारः, तत् कारकं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०-(अधिशीङ्) देवदत्तो ग्राममधिशेते। (अधिस्था) देवदत्तो ग्राममधितिष्ठति। (अध्यास) देवदत्तो पर्वतमध्यास्ते। पूर्वेणाऽधिकरणसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिशीङ्स्थासाम्) अधि उपसर्ग से परे शीङ्, स्था और **आस्** *धातु के प्रयोग में (आधारः) जो आधार (कारकम्) कारक है, (कर्म) उसकी कर्म* **संज्ञा** *होती है।*

*उदा०-***(अधिशीङ्) देवदत्तो ग्राममधिशेते।** *देवदत्त ग्राम में अधिकारपूर्वक सोता है।* ***(अधिस्था) देवदत्तो ग्राममधितिष्ठति।*** *देवदत्त ग्राम में अधिष्ठाता है।* ***(अध्यास्)*** ***देवदत्ते पर्वतमध्यास्ते।*** *देवदत्त पर्वत पर अधिकारपूर्वक बैठता है।*

*सिद्धि-***देवदत्तो ग्रामधिशेते।** *यहां अधि उपसर्गपूर्वक 'शेते' '***शीङ् स्वप्न***' (अ०आ०) धातु के प्रयोग में '***ग्रामः***' आधार है, अतः उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। इसलिये उसमें '***कर्मणि द्वितीया***' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-***देवदत्तो ग्राममधितिष्ठति।*** *'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०)* ***देवदत्तः पर्वतमध्यास्ते। आस् उपवेशने*** *(अ०आ०)।*

विशेष-पूर्व सूत्र से अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। इस सूत्र से यहां कर्म संज्ञा का विधान किया गया है।

कर्मसंज्ञा-

(३) अभिनिविशश्च।४७।

प०वि०-अभि-नि-विशः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-अभिश्च निश्च तौ-अभिनी, ताभ्याम्-अभिनिभ्याम्। अभिनिभ्यां विश् इति, अभिनिविश्, तस्मात्-अभिनिविशः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-'आधार, कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अभिनिविशश्चाधारः कारकं कर्म।

अर्थः-अभिनिभ्यां परस्य विश्-धातोः प्रयोगे य आधारः, तत् कारकं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०-देवदत्तो ग्राममभिनिविशते। पूर्वेणाधिकरणसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अभिनिविशः) अभि और नि उपसर्ग से परे 'विश' धातु के प्रयोग में (च) भी (आधारः) जो आधार है (कारकम्) उस कारक की (कर्म) कर्म **संज्ञा** *होती है।*

उदा०-देवदत्तो ***ग्राममभिनिविशते।*** *देवदत्त ग्राम के सम्मुख प्रवेश करता है।*

सिद्धि-देवदत्तो ***ग्राममभिनिविशते।*** *यहां अभि और नि उपसर्गपूर्वक 'विश्'* **धातु**

*के प्रयोग में 'ग्राम:' आधार है, अत: उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। इसलिये उसमें **'कर्मणि** द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है।*

*विशेष-यहां **'आधारोऽधिकरणम्'** (१।४।४५) से अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। **इस** सूत्र से कर्म संज्ञा का विधान किया गया है।*

कर्मसंज्ञा-

(४) उपान्वध्याङ्वसः।४८।

प०वि०-उप-अनु-अधि-आङ्-वस: ६।१।

स०-उपश्च अनुश्च अधिश्च आङ् च ते-उपान्वध्याङ:, **तेभ्य:**-उपान्वध्याङ्भ्य:। उपान्वध्याङ्भ्यो वस् इति उपान्वध्याङ्वस्। तस्य उपान्वध्याङ्वस: (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितपञ्चमीतत्पुरुष:)।

अनु०-'आधार:, कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-उपान्वध्याङ्वस आधार: कारकं कर्म।

अर्थ:-उप-अनु-अधि-आङ्भ्य: परस्य वस्-धातो: प्रयोगे य आधार:, तत् कारकं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०-(उपवस:) ग्राममुपवसति सेना। (अनुवस:) ग्राममनुवसति सेना। (अधिवस:) ग्राममधिवसति सेना। (आवस:) ग्राममावसति सेना। पूर्वेणाधिकरणसंज्ञायां प्राप्तायां कर्मसंज्ञा विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपान्वध्याङ्वस:) उप, अनु, अधि और आङ् उपसर्ग से परे ***वस्*** *धातु के प्रयोग में (आधार:) जो आधार है, (कारकम्) उस कारक की (कर्म) कर्म* ***संज्ञा*** *होती है।*

उदा०-(उपवस्) ***ग्राममुपवसति सेना।*** *सेना ग्राम के पास में रहती है। (अनुवस्)* ***ग्राममनुवसति सेना।*** *सेना ग्राम के पिछले भाग में रहती है। (अधिवस्)* ***ग्राममधिवसति सेना।*** *सेना ग्राम के ऊपरले भाग पर रहती है। (आवस्)* ***ग्राममावसति सेना।*** *सेना ग्राम से इधर रहती है।*

सिद्धि-(१) ***ग्राममुपवसति सेना।*** *यहां उप उपसर्ग से परे 'वस्' धातु के प्रयोग में 'ग्राम:' आधार है। अत: उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। इसलिये उसमें* ***'कर्मणि द्वितीया'*** *(२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-* ***ग्राममनुवसति सेना। ग्राममधिवसति सेना। ग्राममावसति सेना।***

विशेष-यहां ***'आधारोऽधिकरणम्'*** *(१।४।४५) से अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। इस सूत्र से कर्म संज्ञा का विधान किया गया है।*

कर्मसंज्ञा

ईप्सिततमम्–

(१) कर्तुरीप्सिततमं कर्म।४६।

प०वि०–कर्तुः ६।१ ईप्सिततमम् १।१ कर्म १।१।

स०–कर्तुः क्रियया यदिप्सिततमम्=प्राप्तुमिष्टतमम्, तत्कारकं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०–देवदत्तः कटं करोति। देवदत्तो ग्रामं गच्छति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तुः) कर्ता का क्रिया के द्वारा (ईप्सिततमम्) जो प्राप्त करना अत्यन्त अभीष्ट है (कारकम्) उस कारक की (कर्म) कर्म संज्ञा होती है।

*उदा०-**देवदत्तः कटं करोति।** देवदत्त चटाई बनाता है। **देवदत्तो ग्रामं गच्छति।** देवदत्त गांव जाता है।*

*सिद्धि-**देवदत्तः कटं करोति।** यहां '**करोति**' क्रिया के द्वारा कर्ता देवदत्त को 'कटः' प्राप्त करना अत्यन्त अभीष्ट है, अतः उस कारक की कर्मसंज्ञा है। इसलिये उसमें '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**देवदत्तो ग्रामं गच्छति।***

अनीप्सितम्–

(२) तथायुक्तं चाऽनीप्सितम्।५०।

प०वि०–तथा अव्ययपदम्। युक्तम् १।१ च अव्ययपदम्, अनीप्सितम् १।१।

स०–न ईप्सितम् इति अनीप्सितम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथा कर्तुरीप्सिततमं कारकं कर्म तथा क्रियया युक्तमनीप्सितं च कारकं कर्म।

अर्थः–यथा कर्तुरीप्सिततमं कारकं क्रियया युक्तं कर्मसंज्ञकं भवति तथाऽनीप्सितमपि कारकं क्रियया युक्तं कर्मसंज्ञकं भवति।

उदा०–देवदत्तो विषं भक्षयति। देवदत्तश्चौरान् पश्यति। देवदत्तो ग्रामं गच्छन् तृणानि स्पृशति।

आर्यभाषा-अर्थ-जैसे (कर्तुः) कर्ता को (ईप्सिततमम्) अत्यन्त अभीष्ट (कारकम्) कारक की क्रिया से युक्त होकर (कर्म) कर्म संज्ञा होती है (तथा) वैसे कर्ता के (अनीप्सितम्) अनिष्ट (कारकम्) कारक की (च) भी (युक्तम्) क्रिया से युक्त होकर (कर्म) कर्म संज्ञा होती है।

*उदा०-**देवदत्तो विषं भक्षयति।** देवदत्त जहर खाता है। **देवदत्तश्चौरान् पश्यति।** देवदत्त चोरों को देखता है। **देवदत्तो ग्रामं गच्छन् तृणानि स्पृशति।** देवदत्त गांव जाता हुआ तिनकों को छूता है।*

*सिद्धि-**देवदत्तो विषं भक्षयति।** यहां देवदत्त कर्ता का अनीप्सित=अनिष्ट 'विषम्' है। उस अनीप्सित कारक की 'भक्षयति' क्रिया के योग में कर्म संज्ञा होती है और इसलिये उसमें **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**देवदत्तश्चौरान् पश्यति। देवदत्तो ग्रामं गच्छन् तृणानि स्पृशति।***

अनुक्तम्-

(३) अकथितं च।५१।

प०वि०-अकथितम् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-न कथितम् इति अकथितम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकथितं कारकं कर्म।

अर्थः-अपादानादिभिः कारकैर्यदकथितं कारकं तत् कर्मसंज्ञकं भवति। परिगणनं कर्त्तव्यम्-

दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षचिञाम्,
उपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ।
ब्रुविशासिगुणेन च यत् सचते,
तदकीर्तितमाचरितं कविना।।

उपयुज्यते इत्युपयोगः=पयःप्रभृति, तस्य निमित्तं गवादिकम्, तस्योपयुज्यमानस्य पयःप्रभृतिनिमित्तस्य गवादिकस्य कर्मसंज्ञा विधीयते। **ब्रुविशास्योश्च** यो गुणः=साधनं प्रधानं कर्म धर्मादिकं, तेन यत् **सचते**=सम्बध्यते तदकथितमुक्तं सूत्रकारेण।

(१) **दुहि**-गोपालो गां दोग्धि पयः। (२) **याचि**-देवदत्तः पौरवं गां याचते। (३) **रुधि**-गोपालो गामवरुणद्धि व्रजम्। (४) **प्रच्छि**-पथिको माणवकं पन्थानं पृच्छति। (५) **भिक्ष**-यज्ञदत्तः पौरवं गां भिक्षते। (६) **चिञ्**-मालाकारो वृक्षमवचिनोति फलानि। (७) **ब्रुवि**-आचार्यो माणवकं धर्मं ब्रूते। (८) **शासि**-आचार्यो माणवकं धर्ममनुशास्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-*अपादान आदि कारकों के द्वारा जो (अकथितम्) न कहा गया कारक है उसकी (कर्म) कर्म संज्ञा होती है। उपरिलिखित कारिका में दुहि आदि आठ धातुओं की गणना की गई है। उसके अनुसार उदाहरण निम्नलिखित है-*

*(१) दुहि-**गोपालो गां दोग्धि पयः।** गवाला गौ से दूध दुहता है। (२) **याचि-देवदत्तः पौरवं गां याचते।** देवदत्त पौरव राजा से एक गौ मांगता है। (३) **रुधि-गोपालो गामवरुणद्धि व्रजम्।** गोपाल गौ को बाड़े में रोकता है। (४) **प्रच्छि-पथिको माणवकं पन्थानं पृच्छति।** पथिक बालक से रास्ता पूछता है। (५) **भिक्ष-यज्ञदत्तो पौरवं गां भिक्षते।** यज्ञदत्त पौरव राजा से एक गौ की भिक्षा मांगता है। (६) **चिञ्-मालाकारो वृक्षमवचिनोति फलानि।** माली वृक्ष से फल चुनता है। (७) **ब्रुवि-आचार्यो माणवकं धर्मं ब्रूते।** आचार्य बालक धर्म बतलाता है। (८) **शासि-आचार्यो माणवकं धर्ममनुशास्ति।** आचार्य बालक को धर्म की शिक्षा देता है।*

सिद्धि-(१) गोपालो गां दोग्धि पयः। *यहां दोग्धि क्रिया, गोपालः कर्ता और पयः कर्म है, किन्तु गौ अकथित कारक है, क्योंकि उसका अपादान आदि कारकों के द्वारा कथन नहीं किया गया। अतः उसकी इस सूत्र से कर्म संज्ञा का विधान किया गया है। इसलिये उसमें **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझ लेवें।*

*(२) इस विधि से 'दुहि' आदि धातु द्विकर्मक कहलाती हैं। इन कर्मों में एक प्रधान और दूसरा कर्म गौण कहलाता है। **गोपालो गां दोग्धि पयः।** यहां 'पयः' प्रधान कर्म है और 'गाम्' गौण कर्म है। उसे ही अकथित कर्म समझें। उपरिलिखित उदाहरणों में रेखांकित पद अकथित कर्म हैं।*

अणौ कर्ता स णौ कर्म-

(४) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ।५२।

प०वि०-गति-बुद्धि-प्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्म-अकर्मकाणाम् ६।३ अणि लुप्तसप्तमी (७।१) कर्ता १।१ सः १।१ णौ ७।१।

स०-गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानं च तानि-गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि। गतिबुद्धिप्रत्यवसानि अर्था येषां ते गतिबुद्धिप्रत्यवसनार्थाः। शब्दः कर्म यस्य स शब्दकर्मा, न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, गतिबुद्धिप्रत्यवसनार्थाश्च शब्दकर्मा च अकर्मकश्च ते-गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाः, तेषाम्-गतिबुद्धिप्रत्यवसनार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम् (बहुव्रीहित्रयगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गति०अकर्मकाणामणि=अणौ यः कर्ता स णौ कर्म।

अर्थः-गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्यवसानार्थानां शब्दकर्मकाणाम् अकर्मकाणां च धातूनाम् अण्यन्तास्थायां यः कर्ता स ण्यन्तावस्थायां कर्मसंज्ञको भवति। यथा-

	धातूनाम्	*अण्यन्तावस्थायां यः कर्ता सः*	*ण्यन्तावस्थायां कर्म*
(१)	*गत्यर्थानाम्*	*(क) गच्छति **माणवको** ग्रामम्*	*गमयति **माणवकं** ग्रामम्।*
	,, ,,	*(ख) याति **माणवको ग्रामम्***	*यापयति **माणवकं** ग्रामम्।*
(२)	*बुद्ध्यर्थानाम्*	*(क) बुध्यते **माणवको** धर्मम्*	*बोधयति **माणवकं** धर्मम्।*
	,, ,,	*(ख) वेत्ति **माणवको** धर्मम्*	*वेदयति **माणवकं** धर्मम्।*
(३)	*प्रत्यवसानार्थानाम्*	*(क) भुङ्क्ते **माणवक** ओदनम्*	*भोजयति **माणवकं** ओदनम्।*
	,, ,,	*(ख) अश्नाति **माणवक** ओदनम्*	*आशयति **माणवकं** ओदनम्।*
(४)	*शब्दकर्मकाणाम्*	*(क) अधीते **माणवको** वेदम्*	*अध्यापयति **माणवकं** वेदम्।*
	,, ,,	*(ख) पठति **माणवको** वेदम्*	*पाठयति **माणवकं** वेदम्।*
(५)	*अकर्मकाणाम्*	*(क) आस्ते देवदत्तः*	*आसयति **देवदत्तम्।***
	,, ,,	*(ख) शेते देवदत्तः*	*शाययति **देवदत्तम्।***

आर्यभाषा-अर्थ-(*गति०*) *गति अर्थवाली, बुद्धि अर्थवाली, खाना-पीना अर्थवाली, शब्दकर्मवाली और अकर्मक धातुओं के प्रयोग में (अणि) अणिजन्त अवस्था में जो (कर्ता) कर्ता है (सः) उसकी (णौ) णिजन्त अवस्था में कर्म संज्ञा होती है।*

*उदा०-जैसे-**(१) गति अर्थवाली**-गच्छति **माणवको** ग्रामम्। बालक गांव जाता है। स गमयति **माणवकं** ग्रामम्। वह बालक को गांव भेजता है। याति **माणवको** ग्रामम्। बालक गांव जाता है। स यापयति **माणवकं** ग्रामम्। वह बालक को गांव भेजता है।*

***(२) बुद्धि अर्थवाली**-बुध्यते **माणवको** धर्मम्। बालक धर्म को जानता है। स बोधयति **माणवकं** धर्मम्। वह बालक को धर्म जनाता है। वेत्ति **माणवको** धर्मम्। बालक धर्म को जानता है। स वेदयति **माणवकं** धर्मम्। वह बालक को धर्म जनाता है।*

*(३) प्रत्यवसानार्थक (खाना-पीना अर्थवाली)-भुङ्क्ते माणवक ओदनम्। बालक भात खाता है। स भोजयति **माणवकम्** ओदनम्। वह बालक को भात खिलाता है। अश्नाति **माणवक** ओदनम्। बालक भात खाता है। स आशयति **माणवकं** ओदनम्। वह बालक को भात खिलाता है।*

*(४) शब्दकर्मवाली-अधीते **माणवको** वेदम्। बालक वेद पढ़ता है। सोऽध्यापयति **माणवकं** वेदम्। वह बालक को वेद पढ़ाता है। पठति **माणवको** वेदम्। बालक वेद पढ़ता है। स पाठयति **माणवकं** वेदम्। वह बालक को वेद पढ़ाता है।*

*(५) अकर्मक-आस्ते **देवदत्तः**। देवदत्त बैठता है। स आसयति **देवदत्तम्**। वह देवदत्त को बैठाता है। शेते **देवदत्तः**। देवदत्त सोता है। स शाययति **देवदत्तम्**। वह देवदत्त को सुलाता है।*

*सिद्धि-(१) गच्छति **माणवको ग्रामम्**। यहां गति अर्थवाली गम् धातु अणिजन्त अवस्था में है। इसका कर्ता 'माणवकः' है। किन्तु जब यह गति अर्थवाली गम् धातु णिजन्त अवस्था में चली जाती है तब इसका कर्ता, कर्म बन जाता है-स **गमयति माणवकं धर्मम्**। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों को भी समझ लेवें।*

कर्मसंज्ञाविकल्पः--

(५) हृक्रोरन्यतरस्याम्।५३।

प०वि०-हृ-क्रोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-हृश्च कृश्च तौ-हृक्रौ, तयोः-हृक्रोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अणि कर्ता स णौ, कर्म' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हृक्रोरणि=अणौ यः कर्ता स णावन्यतरस्यां कर्म।

अर्थः-हृ-क्रोर्धात्वोः प्रयोगेऽण्यन्तावस्थायां यः कर्ता स ण्यन्तावस्थायां विकल्पेन कर्मसंज्ञको भवति, पक्षे कर्तृसंज्ञकश्च। यथा-

	धातोः	अण्यन्तावस्थायां यः कर्ता सः	ण्यन्तावस्थायां विकल्पेन कर्म
(१)	हृञ् हरणे	हरति **माणवको** भारम्	(१) हारयति **माणवकं** भारम्।
	,, ,,	,, ,, ,,	(२) हारयति **माणवकेन** भारम्।
(२)	डुकृञ् करणे	करोति कटं **देवदत्तः**	(१) कारयति कटं **देवदत्तम्**।
	,, ,,	,, ,, ,,	(२) कारयति कटं **देवदत्तेन**।

आर्यभाषा-अर्थ-*(हृक्रोः) हृ और कृ धातु के प्रयोग में (अणि) अण्यन्त अवस्था में जो (कर्ता) है (सः) उसकी (णौ) ण्यन्त अवस्था में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कर्म) कर्म संज्ञा होती है। पक्ष में कर्ता संज्ञा होती है। जैसे-*

*(१) हृञ्-हरति भारं माणवकः। बालक भार ढोता है। **स हारयति भारं माणवकम्** अथवा **स हारयति भारं माणवकेन।** वह बालक से भार ढुलाता है।*

*(२) कृञ्-**करोति कटं देवदत्तः।** देवदत्त चटाई बनाता है। **स कारयति कटं देवदत्तम्** अथवा **स कारयति कटं देवदत्तेन।** वह देवदत्त से चटाई बनवाता है।*

*सिद्धि-**हरति भारं माणवकः।** यहां अणिजन्त अवस्था में हृञ् धातु के प्रयोग में इसका कर्ता 'माणवकः' है। जब यह धातु णिजन्त अवस्था में चली जाती है तब यह 'माणवकः' कर्ता विकल्प से कर्म बन जाता है-**स हारयति भारं माणवकम्।** पक्ष में इसकी कर्ता संज्ञा भी होती है-**स हारयति भारं माणवकेन।** यहां **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से अकथित कर्ता में तृतीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**करोति कटं देवदत्तः। स कारयति कटं देवदत्तम्, अथवा स कारयति कटं देवदत्तेन।***

कर्तृसंज्ञा-

स्वतन्त्रः कर्ता।५४।

प०वि०-स्वतन्त्रः १।१ कर्ता १।१।

अन्वयः-स्वतन्त्रः कारकं कर्ता।

अर्थः-क्रियायाः सिद्धौ यः स्वतन्त्रः, तत्कारकं कर्तृसंज्ञकं भवति।

उदा०-देवदत्तः पचति। यज्ञदत्तः पठति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वतन्त्रः) किसी क्रिया की सिद्धि करने में जो स्वतन्त्र अर्थात् प्रधान है, उस (कारकम्) कारक की कर्ता संज्ञा होती है।

*उदा०-**देवदत्तः पचति।** देवदत्त पकाता है। **यज्ञदत्तः पठति।** यज्ञदत्त पढ़ाता है।*

*सिद्धि-**देवदत्तः पचति।** यहां **'पचति'** क्रिया के सिद्ध करने में देवदत्त स्वतन्त्र अर्थात् प्रधान है अतः उसकी कर्ता संज्ञा होती है। कर्ता संज्ञा होने से **'प्रातिपदिकार्थलिङ्ग-परिमाणवचनमात्रे प्रथमा'** (२।३।४६) से उसमें प्रथमा विभक्ति हो जाती है।*

हेतुः कर्तृसंज्ञा च-

तत्प्रयोजको हेतुश्च।५५।

प०वि०-तत्प्रयोजकः १।१ हेतुः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-तस्य प्रयोजक इति तत्प्रयोजकः (षष्ठीतत्पुरुषः)। अस्मादेव निपातनात् समासः।

अनु०-'कर्ता' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्प्रयोजकः कारकं हेतुः कर्ता च।

अर्थः-तस्य स्वतन्त्रस्य कर्तुर्यः प्रयोजकः, तत् कारकं हेतुसंज्ञकं कर्तृसंज्ञकं च भवति।

उदा०-देवदत्तः कटं करोति। तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते इति यज्ञदत्तो देवदत्तेन कटं कारयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्प्रयोजकः) उस स्वतन्त्र कर्ता का जो प्रेरक है, उस (कारकम्) कारक की (हेतुः) हेतु संज्ञा (कर्ता च) और कर्ता संज्ञा होती है।

*उदा०-**देवदत्तः कटं करोति।** देवदत्त चटाई बनाता है। **तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते इति यज्ञदत्तो देवदत्तेन कटं कारयति।** उसे यज्ञदत्त प्रेरित करता है, अतः यज्ञदत्त देवदत्त से चटाई बनवाता है।*

*सिद्धि-**यज्ञदत्तो देवदत्तेन कटं कारयति।** कर्ता देवदत्त को यज्ञदत्त प्रेरणा करता है, अतः उसकी हेतु संज्ञा है। हेतु संज्ञा होने से '**डुकृञ् करणे**' (त०उ०) धातु से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होता है। प्रेरक यज्ञदत्त की कर्ता संज्ञा भी है अतः उससे '**प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**' (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति हो जाती है।*

अथ निपातसंज्ञाप्रकरणम्

अधिकारः-

(१) प्राग्रीश्वरान्निपाताः।५६।

प०वि०-प्राक् १।१ रीश्वरात् ५।१ निपाताः १।३।

अन्वयः-रीश्वरात् प्राङ् निपाताः।

अर्थः-'**अधिरीश्वरे**' (१।४।९७) इत्येतस्मात् प्राक् निपातसंज्ञका भवन्ति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-च। वा। ह। अह इत्यादिकम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(रीश्वरात्) **अधिरीश्वरे** (१।४।९७) इस सूत्र से पहले-पहले (निपाताः) निपात संज्ञा होती है, यह अधिकार सूत्र है।*

उदा०-च। और। वा। अथवा। ह। निश्चय। अह। आश्चर्य, इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **च।** यहां '**चादयोऽसत्त्वे**' (१।४।५७) से निपात संज्ञा होती है। निपात संज्ञा होने से '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।२६) से इसकी अव्यय संज्ञा हो जाती है। अव्यय संज्ञा होने से '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से सुप् प्रत्यय का लुक् हो जाता है। च+सु+च+०=च। इसी प्रकार-वा। ह। अह, इत्यादि।*

चादय: शब्दा:–

(१) चादयोऽसत्त्वे।५७।

प०वि०–च-आदय: १।३ असत्त्वे ७।१।

स०–च आदिर्येषां ते–चादय: (बहुव्रीहि:)। सत्त्वम्=द्रव्यम्। न सत्त्वमिति–असत्त्वम्, तस्मिन् असत्त्वे (नञ्तत्पुरुष:)।

अन्वय:–असत्त्वे चादयो निपाता:।

अर्थ:–असत्त्वेऽर्थे चादय: शब्दा निपातसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–च। वा। ह। अह इत्यादिकम्।

चादिगण–च। वा। ह। अह। एव। एवम्। नूनम्। शश्वत्। युगपत्। सूपत्। कूपत्। कुवित्। नेत्। चेत्। चण। कच्चित्। यत्र। नह। हन्त। माकिम्। नकिम्। माङ्। (माङो ङकारो विशेषणार्थ: 'माङि लुङ्' इति। इह न भवति–मा भवतु। मा भविष्यति)। नञ्। यावत्। तावत्। त्वा। त्वै। द्वै। रै। श्रौषट्। वौषट्। स्वाहा। वषट्। स्वधा। ओम्। किल। तथा। अथ। सु। स्म। अस्मि। अ। इ। उ। ऋ। लृ। ए। ऐ। ओ। औ। अम्। तक। उञ्। उकञ्। वेलायाम्। मात्रायाम्। यथा। यत्। यम्। तत्। किम्। पुरा। अद्धा। धिक्। हाहा। हे। है। प्याट्। पाट्। थाट्। अहो। उताहो। हो। तुम्। तथाहि। खलु। आम् आहो। अथो। ननु। मन्ये। मिथ्या। असि। ब्रूहि। तु। नु। इति। इव। वत्। चन। बत। इह। आम्। शम्। कम्। अनुकम्। नहिकम्। हिकम्। सुकम्। सत्यम्। ऋतम्। श्रद्धा। इद्धा। मुधा। नोचेत्। नचेत्। नहि। जातु। कथम्। कुत:। कुत्र। अव। अनु। हाहौ। हैहा। ईहा। आहोस्वित्। छम्बद्। खम्। दिष्ट्या। पशु। वद्। सह। आनुषक्। अङ्ग। फट्। ताजक्। अये। अरे। चटु। वाट्। कुम्। खुम्। घुम्। हुम्। आईम्। शीम्। सीम्। वै। इति चादय:।

आर्यभाषा-अर्थ-(असत्त्वे) द्रव्यवाची न होने पर (चादय:) 'च' आदि शब्दों की (निपाता:) निपात संज्ञा होती है।

उदा०–च। और। वा। अथवा। ह। निश्चय। अह। आश्चर्य इत्यादि।

प्रादयः शब्दाः–

(३) प्रादयः।५८।

प०वि०–प्र–आदयः १।३।

स०–प्र आदिर्येषां ते–प्रादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–'असत्त्वे' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–असत्त्वे प्रादयो निपाताः।

अर्थः–असत्त्वेऽर्थे प्रादयः शब्दा निपात-संज्ञका भवन्ति।

उदा०–प्र। परा। अप। सम्। अनु। अव। निस्। दुस्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप। इति विंशतिः प्रादयः।

आर्यभाषा–अर्थ–(असत्त्वे) द्रव्यवाची न होने पर (प्रादयः) प्र आदि शब्दों की (निपाताः) निपात संज्ञा होती है।

उदा०–प्र। परा। आदि बीस निपात उपरिलिखित हैं।

विशेष–इनकी निपात संज्ञा का फल उपरिलिखित चादि के समान है।

उपसर्ग-संज्ञा–

(४) उपसर्गाः क्रियायोगे।५९।

प०वि०–उपसर्गाः १।३ क्रियायोगे ७।१।

स०–क्रियाया योग इति क्रियायोगः, तस्मिन्–क्रियायोगे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'असत्त्वे प्रादयः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–असत्त्वे प्रादयः निपाताः क्रियायोगे उपसर्गाः।

अर्थः–असत्त्वेऽर्थे प्रादयो निपाताः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–प्रणयति। परिणयति। प्रणायकः। परिणायकः।

आर्यभाषा–अर्थ–(असत्त्वे) द्रव्यवाची न होने पर (प्रादयः) प्र आदि निपातों की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (उपसर्गाः) उपसर्ग संज्ञा होती है।

*उदा०–**प्रणयति।** वह बनाता है। **परिणयति।** वह विवाह करता है। **प्रणायकः।** बनानेवाला। **परिणायकः।** विवाह करनेवाला।*

*सिद्धि-प्रणयति। प्र+नयति=प्रणयति। यहां 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा होने से '**उपसर्गाद् समासेऽपि णोपदेशस्य**' (८।४।१४) से उपसर्ग से परे 'न्' को णत्व हो जाता है। इसी प्रकार-परि+नयति=परिणयति। प्र+नायकः=प्रणायकः। परि+नायकः=परिणायकः।*

गतिसंज्ञाप्रकरणम्

(१) गतिश्च।६०।

प०वि०-गतिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'प्रादयः, क्रियायोगे' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियायोगे प्रादयो निपाता गतिश्च।

अर्थः-क्रियायोगे सति प्रादयो निपाता गतिसंज्ञका अपि भवन्ति।

उदा०-प्रकृत्य। प्रकृतम्। प्रकरोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियायोगे) क्रिया का योग होने पर (प्रादयः) 'प्र' आदि निपातों की (गतिः) गति संज्ञा (च) भी होती है।

उदा०-प्रकृत्य। बनाकर। प्रकृतम्। बनाया। प्रकरोति। वह बनाता है।

सिद्धि-(१) प्रकृत्य। प्र+कृ+क्त्वा। प्र+कृ+ल्यप्। प्र+कृ+तुक्+य। प्र+कृ+त्+य्। प्रकृत्य+सु। प्रकृत्य।

*यहां 'प्र' पूर्वक '**डुकृञ् करणे**' (त०उ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय, '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादिसमास, '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश और '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है।*

*(२) प्रकृतम्। प्र+कृतम्=प्रकृतम्। यहां '**गतिरनन्तरः**' (६।२।४९) से गति संज्ञक पूर्व पद 'प्र' प्रकृति स्वर से रहता है। '**उपसर्गाश्चाभिवर्जम्**' (फिट्० ८१) से 'प्र' का आद्युदात्त स्वर है।*

*(३) प्रकरोति। प्र+करोति=प्रकरोति। यहां '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादि समास होता है।*

ऊर्यादयः (दिवः डाच्)-

(२) ऊर्यादिच्विडाचश्च।६१।

प०वि०-ऊरी-अदि-च्वि-डाचः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऊरी आदिर्येषां ते ऊर्यादयः, ऊर्यादयश्च च्विश्च डाच् च ते-ऊर्यादिच्विडाचः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्यादिच्विडाचश्च निपाताः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-ऊरी-आदयः, च्विप्रत्ययान्ता डाच्प्रत्ययान्ताश्च निपाताः क्रियायोगे गतिसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-(ऊरी-आदयः) ऊरीकृत्य। ऊरीकृतम्। यद् ऊरीकरोति। उररीकृत्य उररीकृतम्। यद् उररीकरोति। (च्विप्रत्ययान्तः) शुक्लीकृत्य। शुक्लीकृतम्। यत् शुक्लीकरोति। (डाच्प्रत्ययान्तः) पटपटाकृत्य। पटपटाकृतम्। यत् पटपटा करोति।

च्वि-डाचोः कृभ्वस्तियोगे विधानं कृतम्। तयोः साहचर्याद् ऊरी-आदीनामपि कृभ्वस्तियोगे गतिसंज्ञा विधीयते।

उर्यादिगणः-ऊरी। उररी। अङ्गीकरणे विस्तारे च। पापी। ताली। आताली। वेताली धूसी शकला। संशकला। ध्वंसकला। एते शकलादयो हिंसायाम्। गुलुगुधा पीडार्थे। सजूः सहार्थे। फलू। फली। विक्ली। आक्ली, इति विकारे। आलोष्टी। कराली। केवाली। शेवाली। वर्षाली। मस्मसा। मसमसा। एते हिंसायाम्। वषट्। वौषट्। श्रौषट्। स्वाहा। स्वधा। बन्धा। प्रादुस्। श्रुत्। आविस्। इति ऊर्यादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऊर्यादिच्विडाचः) ऊरी आदि शब्दों की च्वि-प्रत्ययान्त और ***डाच्****-प्रत्ययान्त निपातों की (च) भी (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।*

उदा०-(ऊरी-आदि) ऊरीकृत्य। स्वीकार करके। ऊरीकृतम्। स्वीकार किया। ***यद्*** *ऊरीकरोति। वह जो स्वीकार करता है। उररीकृत्य। स्वीकार करके। उररीकृतम्। स्वीकार किया। यद् उररीकरोति। कि वह स्वीकार करता है। (च्वि-प्रत्ययान्त) शुक्लीकृत्य। सफेद करके। शुक्लीकृतम्। सफेद किया। यत् शुक्लीकरोति। कि वह सफेद करता है। (डाच्-प्रत्ययान्त) पटपटाकृत्य। पटपट शब्द करके। पटपटाकृतम्। पटपट शब्द किया। यत्पटपटाकरोति। कि वह पटपट शब्द करता है।*

सिद्धि-(१) ऊरीकृतम्। *ऊरी+कृ+क्त्वा। ऊरी+कृ+ल्यप्। ऊरी+कृ+तुक्+य। ऊरीकृत्य।*

यहां 'ऊरी' शब्द की 'कृ' धातु के योग में गति संज्ञा होने से ***'कुगतिप्रादयः'*** *(२।२।१८) से गति समास और* ***'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'*** *(७।१।३७)* ***'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है।***

(२) ऊरीकृतम्। ऊरी+कृतम्। ऊरीकृतम्। यहां ऊरी शब्द की गतिसंज्ञा होने से 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गति-समास तथा 'गतिरनन्तरः' (६।२।४) से गतिसंज्ञक पूर्वपद उरी शब्द प्रकृति स्वर से रहता है। उरी शब्द का 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४।१२) से आद्युदात्त स्वर है।

(३) यद् उरीकरोति। उरी+करोति=ऊरीकरोति।

यहां उरी शब्द की गति संज्ञा होने से 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गति-समास होता है। 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से 'करोति' तिङन्त पद को अनुदात्त स्वर मिलता है, किन्तु 'निपातैर्यद्यदि०' (८।१।३०) से उसका निषेध होने पर, तिप् के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर होता है। यहां विकरण प्रत्यय 'उ' का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) आद्युदात्त प्रत्यय स्वर और 'धातोः' (६।१।१६२) से कृ धातु का शेष अनुदात्त स्वर होता है। 'तिङि चोदात्तवति' (८।१।७१) से 'उरी' शब्द का अनुदात्त स्वर हो जाता है। उरीकरोति। इस गति संज्ञा प्रकरण में यह प्रयोजन सर्वत्र समझें। इसी प्रकार-उररीकृत्य। उररीकृतम्। यद् उररीकरोति। ऊरी और उररी दोनों शब्द स्वीकार करने अर्थ में हैं।

(४) शुक्लीकृत्य। शुक्ल+च्वि। शुक्ली+वि। शुक्ली।

यहां 'शुक्ल' शब्द से 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय करने पर 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) से शुक्ल के 'अ' को ईकारादेश होता है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६७) से 'वि' का लोप हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) पटपटाकृत्य। पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पट+पट्+आ। पटपटा।

यहां 'पटत्' शब्द से 'अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्' (८।१।२) से 'डाच्' प्रत्यय 'डाचि द्वे भवतः' (वा० ८।१।१२) से 'पटत्' शब्द को द्वित्व, 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से द्वितीया 'पटत्' शब्द की आम्रेडित संज्ञा 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' (महा० ६।१।९६) से प्रथम 'पटत्' शब्द के 'त्' का पररूप आदेश होता है। 'टेः' (६।४।१४३) से डाच् प्रत्यय के परे 'पटत्' शब्द के टि-भाग 'अत्' का लोप हो जाता है। पटपटा। शेषकार्य पूर्ववत् है।

अनुकरणम् (खाट्)–

(३) अनुकरणं चानितिपरम्।६२।

प०वि०-अनुकरणम् १।१ च अव्ययपदम्। अनिति-परम् १।१।

स०-इतिः परो यस्मात् तत्-इतिपरम्, न इति परम् इति अनितिपरम्। (बहुव्रीहिगर्भिततेतरेतरद्वन्द्वः)।

अनु०-'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनितिपरमनुकरणं निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-अनितिपरम् अनुकरणवाचकं शब्दरूपं क्रियायोगे गतिसंज्ञकं भवति।

उदा०-खाट्कृत्य। खाट्कृतम्। यत् खाट्करोति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अनितिपरम्) जिससे इति शब्द परे नहीं है (अनुकरणम्) उस अनुकरणवाची निपात की (गतिः) गति संज्ञा होती है।*

*उदा०-**खाट्कृत्य**। खाट् आत्मक अनुकरण करके। **खाट्कृतम्**। खाट् आत्मक अनुकरण किया। **यद् खाट्करोति**। कि वह खाट् आत्मक अनुकरण करता है।*

*पहले किसी ने 'खाट्' ऐसा कहा था। दूसरे ने उसका अनुकरण करके **'खाट्'** ऐसा कहा। उस अनुकरणवाची शब्द की इस सूत्र से गति संज्ञा की गई है। गति संज्ञा के सब कार्य पूर्ववत् हैं।*

*'**अनितिपरम्**' का कथन इसलिये किया है कि यहां गति संज्ञा न हो-**खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत्**। उसने खाट् ऐसा शब्द करके थूक दिया।*

सत्-असत्-

(४) आदरानादरयोः सदसती।६३।

प०वि०-आदर-अनादरयोः ७।२ सत्-असती १।२।

स०-आदरश्च अनादरश्च तौ-आदरानादरौ, तयोः-आदरानादरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सत् च असत् च ते सदसती (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आदरानादरयोः सदसती निपातौ क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-आदरेऽनादरे चार्थे यथासंख्यं सत्-असत् निपातौ क्रियायोगे, गतिसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(सत्) सत्कृत्य। सत्कृतम्। यत् सत्करोति। (असत्) असत्कृत्य। असत्कृतम्। यद् असत् करोति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(आदरानादरयोः) आदर और अनादर अर्थ में (सदसती) **सत्** और असत् निपात **की** (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।*

*उदा०-(सत्) **सत्कृत्य**। आदर करके। **सत्कृतम्**। आदर किया। **यत् सत्करोति**। कि वह आदर करता है। (असत्) **असत्कृत्य**। अनादर करके। **यद् असत्करोति**। कि वह अनादर करता है।*

अलम्–

(५) भूषणेऽलम्।६४।

प०वि०–भूषणे ७।१ अलम् १।१।

अनु०–'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–भूषणेऽलम् निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः–भूषणेऽर्थेऽलं निपातः क्रियायोगे गतिसंज्ञको भवति।

उदा०–अलंकृत्य। अलंकृतम्। यद् अलंकरोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूषणे) भूषित करने अर्थ में (अलम्) 'अलम्' निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**अलंकृत्य**। भूषित करके। **अलंकृतम्**। भूषित किया। **यद् अलंकरोति**। कि वह भूषित करता है।*

*विशेष-'अलम्' शब्द के निषेध, सामर्थ्य, पर्याप्त और भूषण ये चार अर्थ हैं। केवल भूषण अर्थ में ही 'अलम्' शब्द की गति संज्ञा होती है, अन्यत्र नहीं। जैसे-**अलं भुक्त्वा ओदनं गतः**। पर्याप्त भात खाकर गया।*

अन्तः–

(६) अन्तरपरिग्रहे।६५।

प०वि०–अन्तः १।१ अपरिग्रहे ७।१।

स०–न परिग्रह इति अपरिग्रहः, तस्मिन्–अपरिग्रहे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अपरिग्रहेऽन्तर् निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः–अपरिग्रहेऽर्थेऽन्तर् निपातः क्रियायोगे गतिसंज्ञको भवति।

उदा०–अन्तर्हत्य। अन्तर्हतम्। यदन्तर्हन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपरिग्रहे) स्वीकार करने अर्थ को छोड़कर (अन्तः) 'अन्तर्' निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**अन्तर्हत्य**। मध्य में मारकर। **अन्तर्हतम्**। मध्य में मारा। **यद् अन्तर्हन्ति**। कि वह मध्य में मारता है।*

*'**अपरिग्रहे**' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां गति **संज्ञा न हो-'अन्तर्हत्वा मूषिकां श्येनो गतः'**। बाज चूहिया को पकड़कर उड़ गया।*

कणे-मनसी–

(७) कणे-मनसी श्रद्धाप्रतीघाते।६६।

प०वि०–कणे-मनसी १।२ श्रद्धाप्रतीघाते ७।१।

स०–कणे च मनश्च ते–कणेमनसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श्रद्धायाः प्रतीघात इति श्रद्धाप्रतीघातः, तस्मिन्–श्रद्धाप्रतीघाते (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–श्रद्धाप्रतीघाते कणेमनसी निपातौ क्रियायोगे गतिः।

अर्थः–श्रद्धाप्रतीघातेऽर्थे कणे-मनसी निपातौ क्रियायोगे गतिसंज्ञकौ भवतः।

उदा०–(कणे) कणेहत्य पयः पिबति। (मनः) मनोहत्य पयः पिबति। तावत् पिबति यावदस्याऽभिलाषो निवृत्तो भवति, श्रद्धा प्रतिहता भवतीत्यर्थः।

आर्यभाषा–अर्थ–(श्रद्धाप्रतिघाते) इच्छा के समाप्त होने अर्थ में (कणेमनसी) कणे और मनस् निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०–(कणे) देवदत्तः **कणेहत्य पयः पिबति**। देवदत्त तीव्र अभिलाषा की निवृत्ति तक दूध पीता है। (मनः) देवदत्तो **मनोहत्य पयः पिबति**। देवदत्त मन की अभिलाषा-निवृत्ति तक दूध पीता है। खूब छककर दूध पीता है।*

*'श्रद्धाप्रतिघाते' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां गति संज्ञा न हो–**कणे हत्वा गतः**। वह अपनी तीव्र अभिलाषा को मारकर चला गया। **मनो हत्वा गतः**। वह मन को मरकर चला गया।*

पुरः–

(८) पुरोऽव्ययम्।६७।

प०वि०–पुरः अव्ययपदम्। अव्ययपदम् १।१।

अनु०–'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययं पुरो निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः–अव्ययं पुरो निपातः क्रियायोगे गति-संज्ञको भवति।

उदा०–पुरस्कृत्य। पुरस्कृतम्। यत् पुरस्करोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययम्) अव्यय (पुरः) 'पुरस्' निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

उदा०-पुरस्कृत्य। सम्मान करके। पुरस्कृतम्। सम्मान किया। यत् पुरस्करोति। कि वह सम्मान करता है।

सिद्धि-पुरस्कृत्य। पुरः+कृ+क्त्वा। पुरः+कृ+ल्यप्। पुरः+कृ+तुक्+य। पुरस्+कृ+त्+य। पुरस्कृत्य।

यहां 'पुरस्' शब्द की गति संज्ञा होने से 'नमस्पुरसोर्गत्योः' (८।३।४०) से 'पुरः' के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

अस्तम्-

अस्तं च।६८।

प०वि०-अस्तम् अव्ययपदम्। च अव्ययपदम्।

अनु०-'क्रियायोगे, गतिः, अव्ययम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययमस्तं च निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-अव्ययम् अस्तं निपातोऽपि क्रियायोगे गति-संज्ञको भवति।

उदा०-अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति। अस्तंगतानि धनानि। यदस्तं-गच्छति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययम्) अव्यय (अस्तम्) 'अस्तम्' निपात की (च) भी (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

उदा०-अस्तंगत्य सविता पुनरुदेति। अस्त होकर सूर्य फिर उदय होता है। अस्तंगतानि धनानि। धन अस्त=समाप्त होगये। यदस्तंगच्छति। कि वह अस्त होता है।

अच्छ-

(१०) अच्छ गत्यर्थवदेषु।६६।

प०वि०-अच्छ अव्ययपदम्। गति-अर्थ-वदेषु ७।३।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः। गत्यर्थाश्च वदश्च ते-गत्यर्थवदाः, तेषु गत्यर्थवदेषु। (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'क्रियायोगे गतिः, अव्ययम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गत्यर्थवदेषु अव्ययम् अच्छ निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-गत्यर्थेषु धातुषु वद-धातौ च परतोऽव्ययम् अच्छ-निपातः क्रियायोगे गतिसंज्ञको भवति।

उदा०-(गत्यर्थेषु) अच्छगत्य। अच्छगतम्। यदच्छगच्छति। (वदतौ) अच्छोद्य। अच्छोदितम्। यदच्छवदति। 'अच्छ' इत्याभिमुख्येऽर्थे वर्तते। 'अच्छगत्य' अभिमुखं गत्वेत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गत्यर्थवदेषु) गति अर्थवाली और वद-धातु के परे होने पर (अव्ययम्) अव्यय (अच्छ) अच्छ निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-(गत्यर्थक) **अच्छगत्य।** अभिमुख जाकर। **अच्छगतम्।** अभिमुख गया। **यदच्छगच्छति।** कि वह अभिमुख जाता है। (वद) **अच्छोद्य।** सामने कहकर। **अच्छोदितम्।** सामने कहा। **यदच्छवदति।** कि वह सामने कहता है।*

अच्छ अव्यय का अभिमुख=सामने अर्थ है।

अदः-

(११) अदोऽनुपदेशे।७०।

प०वि०-अदः १।१ अनुपदेशे ७।१।

स०-उपदेशः=परार्थः प्रयोगः। न उपदेश इति अनुपदेशः। तस्मिन् अनुपदेशे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'क्रियायोगे गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपदेशेऽदो निपातः क्रियायोगे गतिः।

अर्थः-अनुपदेशे=स्वयं बुद्ध्या परामर्शेऽर्थेऽदो निपातः क्रियायोगे गतिसंज्ञको भवति।

उदा०-अदःकृत्य। अदःकृतम्। यददःकरोति।

उपदेशः=परार्थः प्रयोगः। स्वयमेव तु यदा कश्चित् बुद्ध्या परामृशति तदा नास्त्युपदेशः, सोऽस्य विषयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपदेशे) स्वयं बुद्धि से परामर्श करने अर्थ में (अदः) 'अदस्' निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**अदःकृत्य।** यह कार्य करके। **अदःकृतम्।** यह कार्य किया। **यददःकरोति।** कि वह यह कार्य करता है।*

विशेष-दूसरे के लिये किसी शब्द का प्रयोग करना उपदेश कहाता है। जब कोई स्वयं ही अपनी बुद्धि से विचार करता है, तब वह उपदेश नहीं अपितु अनुपदेश है। यही इस सूत्र का विषय है।

तिर:--

(१२) तिरोऽन्तर्द्धौ।७१।

प०वि०-तिर: अव्ययपदम्। अन्तर्द्धौ ७।१।

अनु०-'क्रियायोगे गति:' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अन्तर्द्धौ तिरो निपात: क्रियायोगे गति:।

अर्थ:-अन्तर्द्धौ=व्यवधानेऽर्थे तिरो निपात: क्रियायोगे गतिसंज्ञको भवति।

उदा०-तिरोभूय। तिरोभूतम्। यत् तिरोभवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्तर्द्धौ) छुपने अर्थ में (तिर:) 'तिरस्' निपात की (क्रियायोगे) क्रिया के योग में (गति:) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**तिरोभूय**। छुपकर। **तिरोभूतम्**। छुपा हुआ। यत् **तिरोभवति**। कि वह छुपता है।*

गतिसंज्ञाविकल्प:--

(१३) विभाषा कृञि।७२।

प०वि०-विभाषा १।१ कृञि ७।१।

अनु०-'तिरोऽन्तर्द्धौ, गति:' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अन्तर्द्धौ तिरो निपात: कृञि विभाषा गति:।

अर्थ:-अन्तर्द्धौ=व्यवधानेऽर्थे तिरो निपात: कृञ्-योगे विकल्पेन गतिसंज्ञको भवति।

उदा०-तिरस्कृत्य। तिर:कृत्य। तिरस्कृतम्। तिर:कृतम्। यत् तिरस्करोति। यत् तिर: करोति। पक्षे-तिर:कृत्वा। तिरस्कृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्तर्द्धौ) छुपने अर्थ में (तिर:) तिरस् निपात की (कृञि) कृञ्-धातु के योग में (विभाषा) विकल्प से (गति:) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**तिरस्कृत्य**। **तिर:कृत्य**। छुपकर। **तिरस्कृतम्**। **तिर:कृतम्**। छुपा गया। यत् **तिरस्करोति**। यत् **तिर:करोति**। कि वह छुपता है। विकल्प पक्ष में-**तिर:कृत्वा**। **तिरस्कृत्वा**। छुपकर।*

सिद्धि-(१) तिरस्कृत्य। यहां 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' (८।३।४२) से 'तिरः' शब्द के विसर्जनीय को विकल्प से सकार आदेश होता है। जहां सकार आदेश नहीं होता वहां-तिरःकृत्य।

(२) तिरस्कृत्वा। जहां 'तिरः' शब्द की गतिसंज्ञा नहीं होती वहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गति समास भी नहीं होता। समास के न होने से 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से क्त्वा प्रत्यय को ल्यप् आदेश भी नहीं होता है। यहां भी 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' (८।३।४२) से तिरः शब्द के विसर्जनीय को विकल्प से सकार आदेश होता है। जहां सकार आदेश नहीं होता वहां-तिरःकृत्वा रूप बनता है।

उपाजे-अन्वाजे–

(१४) उपाजेऽन्वाजे।७३।

प०वि०-उपाजे अव्ययपदम्। अन्वाजे अव्ययपदम्।

अनु०-'विभाषा कृञि गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपाजेऽन्वाजे निपातौ कृञि विभाषा गतिः।

अर्थः-उपाजेऽन्वाजे निपातौ कृञ्योगे विकल्पेन गतिसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(उपाजे) उपाजेकृत्य। उपाजे कृत्वा। (अन्वाजे) अन्वाजे कृत्य। अन्वाजे कृत्वा।

उपाजेऽन्वाजे शब्दौ विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ दुर्बलस्य सामर्थ्याऽऽधाने वर्तेते।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपाजेऽन्वाजे) उपाजे और अन्वाजे निपात की (कृञि) कृञ् धातु के योग में (विभाषा) विकल्प से (गतिः) गति संज्ञा होती है।

उदा०-(उपाजे) उपाजेकृत्य। उपाजे कृत्वा। दुर्बल की सहायता करके। (अन्वाजे) अन्वाजेकृत्य। अन्वाजे कृत्वा। दुर्बल की सहायता करके।

सिद्धि-(१) उपाजेकृत्य। यहां 'उपाजे' शब्द की गति संज्ञा होने से 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गति समास होता है। समास होने से 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान में 'ल्यप्' आदेश हो जाता है। पक्ष में जहां 'उपाजे' शब्द की गति संज्ञा नहीं होता वहां समास नहीं होता है। समास न होने से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय को 'ल्यप्' आदेश भी नहीं होता है-उपाजे कृत्वा। इसी प्रकार-अन्वाजे कृत्य। आगामी उदाहरणों में भी ऐसा ही समझें।

विशेष-उपाजे और अन्वाजे ये दोनों निपात विभक्ति प्रतिरूपक हैं। ये दोनों दुर्बल की सहायता करने अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

साक्षादादयः–

(१५) साक्षात्प्रभृतीनि च।७४।

प०वि०-साक्षात्-प्रभृतीनि १।३ च अव्ययपदम्।

स०-साक्षात् प्रभृति येषां तानीमानि-साक्षात्प्रभृतीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'विभाषा कृञि, गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-साक्षात्प्रभृतीनि च निपाताः कृञि विभाषा गतिः।

अर्थः-साक्षात्-प्रभृतीनि निपातरूपाणि च कृञ्योगे विकल्पेन गतिसंज्ञकानि भवन्ति।

उदा०-साक्षात्कृत्य। साक्षात् कृत्वा। मिथ्याकृत्य। मिथ्याकृत्वा, इत्यादिकम्।

साक्षादादिगणः-साक्षात्। मिथ्या। चिन्ता। भद्रा। लोचना। विभाषा। सम्पत्का। आस्था। अमा। श्रद्धा। प्राजर्या। प्राजरुहा। वीजर्या। वीजरुहा। संसर्या। अर्थे। लवणम्। उष्णम्। शीतम्। उदकम्। आर्द्रम्। गतिसंज्ञासंयोगेन लवणादीनां मकारान्तत्वं निपात्यते। अग्नौ। वशे। विकम्पने। विहसने। प्रहसने। प्रतपने। प्रादुस्। नमस्। आविस्। इति साक्षात्प्रभृतीनि।

आर्यभाषा-अर्थ-(साक्षात्प्रभृतीनि) साक्षात् आदि निपातों की (च) भी (कृञि) कृञ् धातु के योग में (विभाषा) विकल्प से (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**साक्षात्कृत्य। साक्षात् कृत्वा।** अप्रत्यक्ष को साक्षात् करके। **मिथ्याकृत्य। मिथ्याकृत्वा।** सत्य को मिथ्या बनाकर।*

उरसि-मनसी–

(१६) अनत्याधान उरसिमनसी।७५।

प०वि०-अनत्याधाने ७।१ उरसि-मनसी १।२।

स०-अत्याधानम्=उपश्लेषणम्। न अत्याधानम् इति अनत्याधानम्, तस्मिन्-अनत्याधाने (नञ्तत्पुरुषः)। उरसिश्च मनसिश्च तौ-उरसिमनसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'विभाषा कृञि, गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनत्याधाने उरसिमनसी निपातौ कृञि विभाषा गतिः ।

अर्थः-अनत्याध्याने=अनुपश्लेषणेऽर्थे उरसि-मनसी निपातौ कृञ्योगे विकल्पेन गतिसंज्ञकौ भवतः ।

उदा०-(अरसि) उरसिकृत्य। उरसि कृत्वा। (मनसि) मनसिकृत्य। मनसि कृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनत्याधाने) ऊपर न रखने अर्थ में (उरसि-मनसी) उरसि और मनसि निपातों की (कृञि) कृञ् धातु के योग में (विभाषा) विकल्प से (गतिः) गति संज्ञा होती है।

उदा०-(उरसि) उरसिकृत्य। उरसि कृत्वा। स्वीकार करके। (मनसि) मनसिकृत्य। मनसि कृत्वा। निश्चय करके।

अनत्याधाने' का कथन इसलिये किया है कि यहां गति संज्ञा न हो- 'उरसि कृत्वा पाणिं शेते' वह हाथ को छाती पर रखकर सोता है।

विशेष-उरसि और मनसि शब्द विभक्ति-प्रतिरूपक निपात हैं।

मध्ये-पदे-निवचने-

(१७) मध्ये पदे निवचने च।७६।

प०वि०-मध्ये अव्ययपदम्। पदे अव्ययपदम्। निवचने अव्ययपदम्। च अव्ययपदम्।

अनु०-'अनत्याधाने विभाषा कृञि गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनत्याधाने मध्ये पदे निवचने च निपाताः कृञि विभाषा गतिः ।

अर्थः-अनत्याधानेऽर्थे मध्ये पदे निवचने इत्येते निपाता अपि कृञ्योगे विकल्पेन गतिसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-(मध्ये) मध्येकृत्य। मध्ये कृत्वा। (पदे) पदेकृत्य। पदे कृत्वा। (निवचने) निवचनेकृत्य। निवचने कृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनत्याधाने) ऊपर न रखने अर्थ में (मध्ये पदे निवचने) मध्ये, पदे और निवचने निपातों की (कृञि) कृञ् धातु के योग में (विभाषा) विकल्प से (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-(मध्ये) मध्येकृत्य। मध्ये कृत्वा। बीच में रखकर। (पदे) **पदेकृत्य। पदे कृत्वा।** पद पर रखकर। (निवचने) निवचनेकृत्य। निवचने कृत्वा। चुप करके, वाणी को संयम में रखकर।*

*सिद्धि-'अनत्याधाने' का कथन इसलिये किया है कि यहां गति संज्ञा न हो-**हस्तिनः पदे कृत्वा शिरः शेते।** सिर को हाथी के पांव पर रखकर सोता है।*

विशेष-मध्ये, पदे और निवचने ये शब्द विभक्ति प्रतिरूपक निपात हैं।

हस्ते, पाणौ-

(१८) नित्यं हस्ते पाणावुपयमने।७७।

प०वि०-नित्यम १।१ हस्ते अव्ययपदम्। पाणौ अव्ययपदम्। उपयमने ७।१।

अनु०-'कृञि गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपयमने हस्ते-पाणौ निपातौ नित्यं गतिः।

अर्थः-उपयमने (दारकर्मणि) अर्थे हस्ते-पाणौ निपातौ कृञ्योगे नित्यं गतिसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(हस्ते) हस्तेकृत्य। (पाणौ) पाणौकृत्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपयमने) विवाह करने अर्थ में (हस्ते-पाणौ) हस्ते और पाणौ निपातों की (नित्यम्) सदा (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-(हस्ते) **हस्तेकृत्य। हस्ते कृत्वा।** विवाह करके। (पाणौ) **पाणौकृत्य। पाणौ कृत्वा।** विवाह करके।*

*'उपयमने' का कथन इसलिये किया है कि यहां गति संज्ञा न हो-**हस्ते कृत्वा कार्षापणं गतः।** कार्षापण को हाथ पर रखकर चला गया। कार्षापण=सिक्का।*

विशेष-हस्ते और पाणौ शब्द विभक्ति प्रतिरूपक निपात हैं।

प्राध्वम्-

(१६) प्राध्वं बन्धने।७८।

प०वि०-प्राध्वम्, अव्ययपदम्। बन्धने ७।१।

अनु०-'नित्यं कृञि गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बन्धने प्राध्वं निपातः कृञि नित्यं गतिः।

अर्थः-बन्धनेऽर्थे प्राध्वं निपातः कृञ्योगे नित्यं गतिसंज्ञको भवति।

उदा०-प्राध्वंकृत्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(बन्धने) बन्धन अर्थ में (प्राध्वम्) प्राध्वम् निपात की (कृञि) कृञ् धातु के योग में (नित्यम्) सदा (गतिः) गति संज्ञा होती है।

*उदा०-**प्राध्वंकृत्य।** बन्धन से अनुकूल बनाकर।*

*'**बन्धने**' का कथन इसलिये किया है कि यहां गति संज्ञा न हो-**प्राध्वं कृत्वा शकटं गतः।** गाड़ी को मार्ग अभिमुख करके चला गया।*

विशेष-'प्राध्वम्' शब्द मकारान्त निपात है। यह अनुकूलता अर्थ में प्रयुक्त होता है।

जीविका-उपनिषदौ-

(२०) जीविकोपनिषदावौपम्ये।७६।

प०वि०-जीविका-उपनिषदौ १।२ औपम्ये ७।१।

स०-जीविका च उपनिषत् च तौ-जीविकोपनिषदौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। उपमाया भाव औपम्यम्, तस्मिन् औपम्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-'नित्यं कृञि गतिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-औपम्ये जीविकोपनिषदौ निपातौ कृञि नित्यं गतिः।

अर्थः-औपम्ये=उपमा-विषये जीविका-उपनिषदौ निपातौ कृञ्योगे नित्यं गतिसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(जीविका) जीविकाकृत्य। (उपनिषत्) उपनिषत्कृत्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(औपम्ये) उपमा विषय में (जीविका-उपनिषदौ) जीविका और उपनिषद् निपातों की (कृञि) कृञ् धातु के योग में (नित्यम्) सदा (गतिः) गति संज्ञा होती है।

उदा०-(जीविका) जीविकाकृत्य। जीविकासी बनाकर। (उपनिषद्) उपनिषत्कृत्य। रहस्य-सा बनाकर।

*'**औपम्ये**' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां गति संज्ञा न हो-**जीविकां कृत्वा गतः।** जीविका बनाकर चला गया। **उपनिषत् कृत्वा गतः। रहस्य बनाकर चला गया।***

गतीनां प्राक् प्रयोगः–

(२१) ते प्राग् धातोः।८०।

प०वि०–ते १।३ प्राक् १।१ धातोः ५।१।

अन्वयः–ते गति-उपसर्गनिपाताः धातोः प्राक्।

अर्थः–ते गतिसंज्ञका उपसर्गसंज्ञकाश्च निपाता धातोः प्राक् प्रयोक्तव्याः।

उदा०–प्रणयति। परिणयति। प्रणायकः। परिणायकः, इत्यादि।

आर्यभाषा-अर्थ-(ते) उन गति संज्ञावाले और उपसर्ग संज्ञावाले निपातों का (धातोः) धातु से (प्राक्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

उदा०-प्रणयति। परिणयति। प्रणायकः। परिणायकः। इत्यादि उदाहरणों में प्र आदि उपसर्ग तथा गतिसंज्ञक शब्दों का धातु से पहले प्रयोग किया गया है। अर्थ पूर्ववत् है।

गतीनां परप्रयोगः–

(२२) छन्दसि परेऽपि।८१।

प०वि०–छन्दसि ७।१ परे १।३ अपि अव्ययपदम्।

अनु०–'ते, धातोः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ते गति-उपसर्गा निपाताश्छन्दसि परेऽपि।

अर्थः–ते गतिसंज्ञका उपसर्गसंज्ञकाश्च निपाताश्छन्दसि=वैदिकभाषायां धातोः परेऽपि प्रागपि च प्रयोक्तव्याः।

उदा०–याति नि हस्तिना। नियाति हस्तिना। हन्ति नि मुष्टिना। निहन्ति मुष्टिना।

एषां गतिसंज्ञकानां शब्दानां परेषां प्रयुज्यमानानां न गतिसंज्ञकार्यं किञ्चिदस्ति। केवलं परप्रयोगेऽपि क्रियायोग एषामस्तीति विज्ञाप्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(ते) उन गति संज्ञावाले तथा उपसर्ग संज्ञावाले निपातों का (छन्दसि) वैदिक भाषा में (धातोः) धातु से (परेऽपि) पर भी और पूर्व भी प्रयोग होता है।

*उदा०-**याति नि हस्तिना। नियाति हस्तिना।** वह हाथी से नित्य जाता है। **हन्ति नि मुष्टिना। निहन्ति मुष्टिना।** वह मुक्के से नित्य मारता है।*

विशेष-इन गति संज्ञावाले और उपसर्ग संज्ञावाले निपातों का धातु से परे प्रयोग होने पर कोई गति संज्ञा सम्बन्धी कार्य नहीं होता है। परप्रयोग होने पर भी इनका केवल क्रिया के साथ योग होता है, यह बतलाया गया है।

गतीनां व्यवहितप्रयोगः–

(२३) व्यवहिताश्च ।८२।

प०वि०–व्यवहिताः १।३ च अव्ययपदम्।

अनु०–'ते, छन्दसि धातोः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ते गति उपसर्गा निपाताश्छन्दसि व्यवहिताश्च।

अर्थः–ते गतिसंज्ञका उपसर्गसंज्ञकाश्च निपाताश्छन्दसि=वैदिकभाषायां धातोर्व्यवहिता अपि भवन्ति।

उदा०–**आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः** (ऋ० ३।४५।१)। **आयाहि** (ऋ० ३।४३।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(ते) उन गति संज्ञावाले और उपसर्ग संज्ञावाले निपातों का (छन्दसि) वैदिकभाषा में (धातोः) धातु से (व्यवहिताः) अन्य शब्दों के व्यवधान में भी प्रयोग होता है।

*उदा०-**आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः** (ऋ० ३।४५।१)। **आयाहि** (ऋ० ३।४३।२)। हे इन्द्र! तुम स्तुति के योग्य, मयूर के समान कोमल रोमवाले घोड़ों से यहां आओ।*

यहां 'आ' उपसर्ग और 'याहि' धातु का 'मन्द्रैः' आदि शब्दों के व्यवधान में भी प्रयोग किया गया है। यहां संज्ञा-सम्बन्धी कोई प्रयोजन नहीं है, केवल क्रिया के साथ योग करना ही प्रयोजन है।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञाप्रकरणम्

अधिकारः–

(१) कर्मवचनीयाः ।८३।

प०वि०–कर्मवचनीयाः १।३।

अर्थः–'कर्मवचनीयाः' इत्यधिकारोऽयम् **'विभाषा कृञि'** (१।४।९७) इति यावत्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मप्रवचनीयाः) इससे आगे **'कर्मप्रवचनीयाः'** का **'विभाषा कृञि'** (१।४।९०) तक अधिकार है। अब **'कर्मप्रवचनीय'** संज्ञा का विधान किया जायेगा।*

अनुः–

(२) अनुर्लक्षणे।८४।

प०वि०–अनु: १।१ लक्षणे ७।१।

अन्वयः–लक्षणेऽनुर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः–लक्षणे (हेतौ) अर्थेऽनुर्निपाता कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०–शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्। अगस्त्यमन्वसिञ्चन् प्रजाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लक्षणे) हेतु अर्थ में (अनुः) अनु निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्।** शाकल्य की संहिता के पाठ के कारण वर्षा हुई। **अगस्त्यमनुन्वसिञ्चन् प्रजाः।** अगस्त्य नक्षत्र को देखने के कारण प्रजा ने सिंचाई आरम्भ की कि अब वर्षा नहीं होगी।*

*सिद्धि-**शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्।** यहां अनु निपात लक्षण=हेतु अर्थ में है, अतः 'हेतौ' (२।३।२३) से तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, किन्तु अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाने से उसके योग में संहिता शब्द में '**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**' (२।३।८) से द्वितीया विभक्ति होती है। इसी प्रकार-**अगस्त्यमन्वसिञ्चन् प्रजाः।***

(३) तृतीयार्थे।८५।

प०वि०–तृतीया-अर्थे ७।१।

स०–तृतीयाया अर्थ इति तृतीयार्थः, तस्मिन्-तृतीयार्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–'अनुः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तृतीयार्थेऽनुर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः–तृतीयार्थेऽनुर्निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०–नदीमन्ववसिता सेना। पर्वतमन्ववसिता सेना, नद्या पर्वतेन वा सम्बद्धा इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयार्थे) तृतीया विभक्ति के अर्थ में (अनुः) अनु निपात की (कर्मवचनीयः) कर्मवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**नदीमन्ववसिता सेना।** सेना नदी के साथ सम्बद्ध है। **पर्वतमन्ववसिता सेना।** सेना पर्वत के साथ सम्बद्ध है।*

*सिद्धि-**नदीमन्ववसिता सेना**। यहां 'अनु' निपात का अर्थ 'सह' (साथ) है। इसलिये 'सहयुक्तेऽप्रधाने' (२।३।१९) से तृतीया विभक्ति प्राप्त थी किन्तु अनु निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से 'नदी' शब्द में '**कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया**' (२।३।८) से* द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

(४) हीने।८६।

प०वि०-हीने ७।१।

अनु०-'अनुः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हीनेऽनुर्निपातः कर्मवचनीयः।

अर्थः-हीने (न्यूने) अर्थेऽनुर्निपातः कर्मवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-अनु शाकटायनं वैयाकरणाः। अन्वर्जुनं योद्धारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हीने) कर्म अर्थ में (अनुः) अनु निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**अनु शाकटायनं वैयाकरणाः**। सब वैयाकरण लोग शाकटायन से कम हैं। **अनु अर्जुनं योद्धारः**। सब योद्धा लोग अर्जुन से कम हैं।*

*सिद्धि-**अनु शाकटायनं वैयाकरणाः**। शाकटायन की अपेक्षा अन्य वैयाकरण हीन हैं। यह अपेक्षाजनित सम्बन्ध में '**षष्ठी शेषे**' (२।३।५०) से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है, किन्तु अनु निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार-**अनु अर्जुनं योद्धारः**।*

उपः-

(५) उपोऽधिके च।८७।

प०वि०-उपः १।१ अधिके ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'हीने' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधिके हीने च उपो निपातः कर्मवचनीयः।

अर्थः-अधिके हीने चार्थे उपो निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-(अधिके) उप खार्यां द्रोणः। उप निष्के कार्षापणम्। (हीने) उप शाकटायनं वैयाकरणाः। उप दयानन्दं वेदभाष्यकाराः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिके) अधिक अर्थ में (हीने च) और हीन अर्थ में (अनुः) अनु निपात की (कर्मवचनीयः) कर्मवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-(अधिक) **उप खार्यां द्रोणः।** द्रोण से खारी अधिक है। **उप निष्के कार्षापणम्।** कार्षापण से निष्क अधिक है। (हीन) **उप शाकटायनं वैयाकरणाः।** सब वैयाकरण लोग शाकटायन से कम हैं। **उप दयानन्दं वेदभाष्यकाराः।** सब वेदभाष्यकार दयानन्द से हीन हैं।*

*सिद्धि-(१) **उप खार्यां द्रोणः।** द्रोण से खारी परिमाण अधिक है। यहां 'उप' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति प्राप्त होती है, किन्तु **'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'** (३।३।९) से कर्मवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति हो जाती है।*

आठ मुट्ठी अनाज=१ कुंचि। ८ कुंचि=१ पुष्कल। ४ पुष्कल=१ आढक। ४ आढक=१ द्रोण। १६ द्रोण=१ खारी।

*(२) **उप निष्के कार्षापणम्।** कार्षापण से निष्क अधिक है। यहां भी पूर्ववत् सब कार्य होता है। कार्षापण=ताम्बे का १६ माशे का सिक्का। निष्क=सोने का १६ माशे का सिक्का।*

*यहां अपेक्षा सम्बन्ध में **'षष्ठी शेषे'** (२।४।५०) षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, कर्मवचनीय संज्ञा होने से सप्तमी विभक्ति होती है।*

अप-परी–

(६) अपपरी वर्जने।८८।

प०वि०-अप-परी १।२ वर्जने ७।१।

स०-अपश्च परिश्च तौ-अपपरी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-वर्जनेऽपपरी निपातौ कर्मवचनीयौ।

अर्थः-वर्जनेऽर्थे अप-परी निपातौ कर्मप्रवचनीयसंज्ञकौ भवतः।

उदा०-(अप) अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। (परि) परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः।

प्रकृतेन सम्बन्धिना, कस्यचिदनभिसम्बन्धे वर्जनमुच्यते।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(वर्जने) निषेध अर्थ में (अप-परी) अप और परि निपातों की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।*

*उदा०-**(अप) अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः।** त्रिगर्त को छोड़कर इन्द्रदेव ने वर्षा की। **(परि) परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः।** त्रिगर्त को छोडकर इन्द्रदेव ने वर्षा की।*

त्रिगर्त-भारत के उत्तर-पश्चिम का एक देश जालन्धर "वर्तमान पंजाब का उत्तर-पूर्वी भाग जो चम्बा से कांगड़ा तक फैला हुआ है, प्राचीन त्रिगर्त देश था। सतलुज,

व्यास और रावी इन तीन नदियों की घाटियों के कारण इसका नाम त्रिगर्त पड़ा।" (पा० का० भारतवर्ष पृ० ४१)।

सिद्धि-(१) अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। *यहां 'अप' निपात शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** (२।३।१०) से इसके योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। इसी प्रकार-**परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः।***

आङ्-

(७) आङ् मर्यादावचने।८६।

प०वि०-आङ् १।१ मर्यादा-वचने ७।१।

स०-मर्यादाया वचनमिति मर्यादावचनम्, तस्मिन्-मर्यादावचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः-मर्यादावचने आङ् निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः-मर्यादावचनेऽर्थे आङ् निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः। आ कुमारं यशः पाणिनेः। आ सांकाश्यात् वृष्टो देवः। आ मथुराया वृष्टो देवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मर्यादावचने) अवधि के कथन में (आङ्) आङ् निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।*

*उदा०-**आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः।** पाटलिपुत्र तक इन्द्रदेव ने वर्षा की। **आ कुमारं यशः पाणिनेः।** पाणिनिमुनि का यश बालकों तक फैला हुआ है। **आ सांकाश्यात् वृष्टो देवः।** सांकाश्य तक इन्द्रदेव ने वर्षा की। **आ मथुराया वृष्टो देवः।** मथुरा तक इन्द्रदेव ने वर्षा की।*

सिद्धि-(१) आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः। *यहां आङ् निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** (२।३।१०) से पञ्चमी विभक्ति होती है।*

*(२) **आ कुमारं यशः पाणिनेः।** यहां 'आङ्' निपात का **'आङ् मर्यादाभिविध्योः'** (२।१।१३) से अव्ययीभाव समास भी होता है। आ+कुमार=आ कुमारम्।*

विशेष-(१) पाटलिपुत्र। *यह एक प्राचीन नगर है। यह मगध देश की राजधानी है। यह शोण और गंगा के संगम पर स्थित है। वर्तमान में इसे पटना कहते हैं। इसे पुष्पपुर और कुसुमनगर भी कहते हैं।*

*(२) **सांकाश्य।** यह जनक के भ्राता कुशध्वज की राजधानी का नाम है।*

प्रति-परि-अनवः–

(७) लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः।९०।

प०वि०–लक्षण–इत्थंभूताख्यान–भाग–वीप्सासु ७।३ प्रति–परि–अनवः १।३।

स०–लक्षणं च इत्थंभूताख्यानं च भागश्च वीप्सा च ताः–लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्साः, तासु–लक्षणेत्थं भूताख्यानभागवीप्सासु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्रतिश्च परिश्च अनुश्च ते–प्रतिपर्यनवः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवो निपाताः कर्मप्रवचनीयाः।

अर्थः–लक्षण–इत्थंभूताख्यान–भाग–वीप्सासु विषयभूतासु प्रति–परि–अनवो निपाताः कर्मप्रवचनीयसंज्ञका भवन्ति।

लक्षणम्=चिह्नम्। कञ्चित्प्रकारमापन्नम् इत्थंभूतम्, इत्थंभूतस्याख्यानम्=इत्थंभूताख्यानम्। भागः=स्वीक्रियमाणोंऽशो भागः। वीप्सा=पदार्थान् व्याप्तुमिच्छा–वीप्सा।

उदा०–

	विषयः	प्रतिः	परिः	अनुः
(१)	लक्षणे	वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्	वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्	वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्।
(२)	इत्थंभूताख्याने	साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति	साधुर्देवदत्तो मातरं परि	साधुर्देवदत्तो मातरमनु।
(३)	भागे	यदत्र मां प्रति स्यात्	यदत्र मां परि स्यात्	यदत्र मामनु स्यात्।
(४)	वीप्सायाम्	वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति	वृक्षं वृक्षं परि सिञ्चति	वृक्षं वृक्षम् अनु सिञ्चति।

आर्यभाषा–अर्थ–(लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु) लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग और वीप्सा विषय में (प्रति–परि–अनवः) प्रति, परि और अनु निपातों की (कर्मप्रवचनीयाः) कर्मवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०–(१) **लक्षण।** (प्रति) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्। (परि) वृक्षं परि विद्योतते विद्युत् (अनु) वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्। वृक्ष को प्राप्त होकर बिजली चमकती है।*

*(२) **इत्थंभूताख्यान।** (प्रति) साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति। (परि) साधुर्देवदत्तो मातरं परि। (अनु) साधुर्देवदत्तो मातरमनु। माता को प्राप्त होकर देवदत्त साधुभाववाला है।*

*(३) **भाग।** (प्रति) यदत्र मां प्रति स्यात्। (परि) यदत्र मां परि स्यात्। (अनु) यदत्रमामनु स्यात्। जो यहां मेरा भाग है, वह मुझे दीजिये।*

(४) वीप्सा। (प्रति) वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति। (परि) वृक्षं वृक्षं परि सिञ्चति। (अनु) वृक्षं वृक्षमनु सिञ्चति। वृक्ष वृक्ष को प्राप्त करके सींचता है।

लक्षण=चिह्न। इत्थभूताख्यान=किसी प्रकार विशेष को प्राप्त हुआ इत्थंभूत कहलाता है। इत्थंभूताख्यान=इत्थंभूत का कथन करना अर्थात् वह उस विषय में कैसा है? भाग=स्वीकार किया जानेवाला अंश। वीप्सा=पदार्थों को व्याप्त करने की इच्छा।

अभिः–

(९) अभिरभागे।९१।

प०वि०–अभिः १।१ अभागे ७।१।

स०–न भाग इति अभागः, तस्मिन्–अभागे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अभागे लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु अभिर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः–भागवर्जितासु लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु विषयभूतासु अभिर्निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति। यथा–

(१) लक्षणे — वृक्षमभि विद्योतते विद्युत्।
(२) इत्थंभूताख्याने — साधुर्देवदत्तो मातरमभि।
(३) वीप्सायाम् — वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति।

आर्यभाषा-अर्थ–(अभागे) भाग विषय को छोड़कर (लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु) लक्षण, इत्थंभूताख्यान और वीप्सा विषय में (अभिः) अभि निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०–(१) **लक्षण। वृक्षमभि विद्योतते विद्युत्।** वृक्ष को प्राप्त होकर बिजली चमकती है।*

*(२) **इत्थभूताख्यान। साधुर्देवदत्तो मातरमभि।** देवदत्त माता को प्राप्त होकर साधु भाववाला है।*

*(३) **वीप्सा। वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति।** वृक्ष-वृक्ष को प्राप्त होकर सींचता है।*

प्रतिः–

(१०) प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः।९२।

प०वि०–प्रतिः १।१ प्रतिनिधि-प्रतिदानयोः ७।२।

स०-प्रतिनिधिश्च प्रतिदानं च ते-प्रतिनिधि-प्रतिदाने, तयो:-प्रतिनिधिप्रतिदानयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अन्वय:-प्रतिनिधिप्रतिदानयो: प्रतिर्निपात: कर्मप्रवचनीय:।

अर्थ:-प्रतिनिधौ प्रतिदाने चार्थे प्रति: शब्द: कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-(प्रतिनिधौ) अभिमन्युरर्जुनत: प्रति:। (प्रतिदाने) माषानस्मै तिलेभ्य: प्रति यच्छति।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रतिनिधिप्रतिदानयो:) प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में (प्रति:) प्रति निपात की (कर्मप्रवचनीय:) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**(प्रतिनिधि) अभिमन्युरर्जुनत: प्रति।** अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है। **(प्रतिदान) माषान् अस्मै तिलेभ्य: प्रतियच्छति।** वह इसे तिलों के बदले में उड़द देता है। **प्रतिनिधि**=मुख्यसदृश। **प्रतिदान**=बदले में देना।*

सिद्धि-अभिमन्युरर्जुनत: प्रति।** यहां 'प्रति' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में '**प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्**' (२।३।११) से पञ्चमी विभक्ति होती है। अर्जुन+तसि=अर्जुनत:। यहां '**अपादाने चाहीयरुहो:**' (५।४।४५) से अपादान में तसि प्रत्यय है। इसी प्रकार-**माषानस्मै तिलेभ्य: प्रतियच्छति।

अधि-परी-

(११) अधिपरी अनर्थकौ।६३।

प०वि०-अधि-परी १।२ अनर्थकौ १।२।

स०-अधिश्च परिश्च तौ-अधिपरी (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। न विद्यतेऽर्थान्तरं ययोस्तौ-अनर्थकौ (बहुव्रीहि:)।

अन्वय:-अनर्थकावधिपरी निपातौ कर्मप्रवचनीयौ।

अर्थ:-अनर्थकौ=अनर्थान्तरौ अधि-परी निपातौ कर्मप्रवचनीयसंज्ञकौ भवत:।

उदा०-(अधि) कुतोऽध्यागच्छति? (परि) कुत: पर्यागच्छति?

आर्यभाषा-अर्थ-(अनर्थकौ) अर्थान्तर से रहित (अधिपरी) 'अधि' और 'परि' निपात की (कर्मप्रवचनीय:) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होता है।

*उदा०-(अधि) **कुतोऽध्यागच्छति।** वह कहां से आता है? (परि) **कुत: पर्यागच्छति**? वह कहां से आता है?*

*सिद्धि-कुतोऽध्यागच्छति। अधि+आगच्छति=अध्यागच्छति। यहां 'अधि' उपपद होने पर 'आगच्छति' के अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है। अतः 'अधि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती। कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से गति संज्ञा नहीं रहती। इसलिये 'गतिरनन्तरः' (६।२।४९) से अनुदात्त स्वर नहीं होता है। इसी प्रकार-**पर्यागच्छति।***

विशेष-जैसे 'गजः' और 'मतङ्गजः' तथा 'वृषः' और 'वृषभः' शब्द अनर्थान्तर (समानार्थक) हैं, वैसे आगच्छति और अध्यागच्छति तथा आगच्छति और पर्यागच्छति शब्द भी अनर्थान्तर हैं।

सुः—

(१२) सुः पूजायाम्।६४।

प०वि०-सुः १।१ पूजायाम् ७।१।

अन्वयः-पूजायां सुर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः-पूजायामर्थे सुर्निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-सु सिक्तं भवता। सु स्तुतं भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूजायाम्) स्तुति करने अर्थ में (सुः) सु निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**सु सिक्तं भवता।** आपने अच्छी सिंचाई की। **सु स्तुतं भवता।** आपने अच्छी स्तुति की।*

*सिद्धि-(१) **सु सिक्तं भवता।** यहां 'सु' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से 'उपसर्ग' संज्ञा नहीं रहती। अतः 'उपसर्गात्सुनोति०' (८।२।६५) से उपसर्ग-आश्रित सकार को षत्व नहीं होता है।*

अतिः—

(१३) अतिरतिक्रमणे च।६५।

प०वि०-अतिः १।१ अतिक्रमणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'पूजायाम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अतिक्रमणे पूजायां चातिर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः-अतिक्रमणे पूजायां चार्थेऽतिर्निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-निष्पन्नेऽपि वस्तूनि क्रियाप्रवृत्तिः=अतिक्रमणमुच्यते। (अतिक्रमणे) अति सिक्तमेव भवता। अति स्तुतमेव भवता। (पूजायाम्) अति सिक्तं भवता। अति स्तुतं भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतिक्रमणे) अतिक्रमण अर्थ में (पूजायाम्) और स्तुति करने अर्थ में (च) भी (अतिः) अति निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। कार्य के सिद्ध होने पर भी क्रिया को चालू रखना अतिक्रमण कहाता है।

*उदा०-**(अतिक्रमण) अति सिक्तमेव भवता।** आपने बहुत ही अधिक सिंचाई की। **अति स्तुतिमेव भवता।** आपने बहुत ही अधिक स्तुति की। **(पूजा) अति सिक्तं भवता।** आपने अच्छी सिंचाई की। **अति स्तुतं भवता।** आपने अच्छी स्तुति की।*

***सिद्धि-(१) अति सिक्तमेव भवता।** यहां 'अति' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा नहीं रहती। अतः 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से उपसर्ग आश्रित सकार को षत्व नहीं होता है।*

अपिः-

(१४) अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु।६६।

प०वि०-अपिः १।१ पदार्थ-सम्भावन-अन्ववसर्ग-गर्हा-समुच्चयेषु ७।३।

स०-पदार्थश्च सम्भावनं च अन्ववसर्गश्च गर्हा च समुच्चयश्च ते-पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयाः, तेषु पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हा-समुच्चयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-पदार्थ०समुच्चयेषु अपिर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः-पदार्थ-सम्भावन-अन्ववसर्ग-गर्हा-समुच्चयेष्वर्थेषु अपिर्निपातः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-(पदार्थे) मधुनोऽपि स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्। (सम्भावने) अपि सिञ्चेत् मूलक-सहस्रम्। अपि स्तुयाद् राजानम्। (अन्ववसर्गे) अपि सिञ्च। अपि स्तुहि। (गर्हायाम्) धिग् जाल्मं देवदत्तम् अपि सिञ्चेत् पलाण्डुम्, अपि स्तुयाद् वृषलम्। (समुच्चये) अपि सिञ्च, अपि स्तुहि। सिञ्च च, स्तुहि चेत्यर्थः।

(१) पदान्तरस्याऽप्रयुज्यमानस्यार्थः पदार्थः। मधुनोऽपि=मधुनो मात्रा, बिन्दुः स्तोकमित्यर्थः। (२) सम्भावनम्=अधिकार्थवचनेन शक्तेरप्रतिघाताविष्करणम् (३) अन्ववसर्गः=कामचाराभ्यनुज्ञानम्। (४) गर्हा=निन्दा। (५) समुच्चयः=संग्रहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदार्थ०) पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग, गर्हा और समुच्चय अर्थ में (अपिः) अपि निपात की (कर्मप्रवचनीयः) कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-(पदार्थ) **मधुनोऽपि स्यात्।** घी की भी मात्रा होनी चाहिये। (सम्भावन) **अपि सिञ्चेन्मूलकसहस्रम्।** वह हजार मूलियों को सींच सकता है। **अपि स्तुयाद् राजानम्।** वह राजा की स्तुति कर सकता है। (अन्ववसर्ग) **अपि सिञ्च।** तू चाहे सींच। **अपि स्तुहि।** तू चाहे स्तुति कर। तेरी इच्छा है। (गर्हा) **धिग् जाल्मं देवदत्तम् अपि सिञ्चेत् पलाण्डुम्, अपि स्तुयाद् वृषलम्।** उस नीच देवदत्त को धिक्कार है जो पलाण्डु (प्याज) को सींचता है, नीच पुरुष की स्तुति करता है। (समुच्चय) **अपि सिञ्च।** तू सींच भी। **अपि स्तुहि।** तू स्तुति भी कर।*

*पदार्थ-(१) अप्रयुक्त पद के अर्थ को ग्रहण कर लेना 'पदार्थ' कहाता है। जैसे **'मधुनोऽपि'** का अर्थ मधु की मात्रा है। यहां अप्रयुक्त 'मात्रा' पद का अर्थ ग्रहण किया जाता है।*

*(२) **सम्भावन**-अधिक अर्थ के कहने से किसी व्यक्तिविशेष को प्रकट करना सम्भावन कहाता है। **अन्ववसर्ग**=कामचार की अनुज्ञा अर्थात् मन-मर्जी करने की आज्ञा देना। गर्हा=निन्दा। समुच्चय=संग्रह।*

*सिद्धि-(१) **मधुनोऽपि स्यात्।** यहां **'अपि'** निपात की की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा नहीं रहती है। अतः यहां **'उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः'** (८।३।८७) से उपसर्ग-आश्रित सकार को षत्व नहीं होता है।*

*(२) **अपि सिञ्चेन्मूलकसहस्रम्।** यहां **'अपि'** निपात की कर्मविचनीय संज्ञा होने सेउपसर्ग संज्ञा नहीं रहती। अतः यहां 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से उपसर्ग-आश्रित सकार को षत्व नहीं होता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझें।*

*(३) **अपि सिञ्च, अपि स्तुहि।** यहां सेचन और स्तुति क्रिया का एक ही कर्ता में समुच्चय किया गया है कि तू सींच भी और स्तुति भी कर।*

(१५) अधिरीश्वरे।६७।

प०वि०-अधिः १।१ ईश्वरे ७।१।

अन्वयः-ईश्वरेऽधिर्निपातः कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः-ईश्वरे=स्व-स्वामिसम्बन्धेऽर्थेऽधिर्निपातः कर्मवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०-(स्वामिनि) अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः। (स्वे) अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः।

ईश्वरः स्वामी, स च स्वमपेक्षते। इयं स्व-स्वामिसम्बन्धे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(ईश्वरे) स्व-स्वामी सम्बन्ध अर्थ में (अधिः) अधि निपात की (कर्मवचनीयः) कर्मवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-(स्वामी) **अधि ब्रह्मदत्ते पाञ्चालाः।** ब्रह्मदत्त पाञ्चालों का स्वामी है। (स्व) **अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः।** पञ्चाल ब्रह्मदत्त के अधीन हैं।*

*सिद्धि-(१) **अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः।** यहां 'अधि' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से **'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'** (३।३।९) से अधि के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। स्व-स्वामी सम्बन्ध में **'षष्ठी शेषे'** (२।३।५०) से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी। कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उसका प्रतिशेष हो जाता है।*

*विशेष-स्व-स्वामी सम्बन्ध में कभी 'स्वामी' का और कभी 'स्व' का प्रधानता से कथन किया जाता है। जब स्वामी का प्रधानता से कथन किया जाता है तब स्वामी (ब्रह्मदत्त) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जब स्व का प्रधानता से कथन किया जाता है तब स्व (पंचाल) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जिसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो उसी में **'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'** (३।३।९) से सप्तमी विभक्ति हो जाती है।*

कृञि विकल्पः–

(१६) विभाषा कृञि।६८।

प०वि०–विभाषा १।१ कृञि ७।१।

अनु०–'अधिरीश्वरे' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ईश्वरेऽधिर्निपातः कृञि विभाषा कर्मप्रवचनीयः।

अर्थः–ईश्वरेऽर्थेऽधिर्निपातः कृञि परतो विकल्पेन कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवति।

उदा०–यदत्र माम् अधि करिष्यति। यदत्र माम् अधिकरिष्यति। ईश्वरो भवति, एवमत्र मां विनियोक्ष्यते, इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ईश्वरे) स्वामी अर्थ में (अधिः) अधि निपात की (कृञि) 'कृञ्' धातु से परे होने पर (विभाषा) विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

*उदा०-**यदत्र माम् अधि करिष्यति। यदत्र माम् अधिकरिष्यति।** वह स्वामी है, इसलिये वह मुझे इस पद पर नियुक्त करेगा।*

*सिद्धि-(१) **यदत्र मामधिकरिष्यति।** यहां 'अधि' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से गति संज्ञा नहीं रहती है। अतः यहां **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) से 'अधि'*

को अनुदात्त स्वर नहीं होता है-अधि करिष्यति। अपितु 'निपाता अनुदात्ताः' (फिट्० ४।१२) से आद्युदात्त प्रकृति स्वर होता है। जहां पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती है वहां भी 'निपातैर्यद्यदि०' (८।१।३०) से अनुदात्त स्वर का निषेध होकर पूर्वपद प्रकृति स्वर ही होता है। अधिकरिष्यति।

इति निपातसंज्ञाप्रकरणम्।

परस्मैपद-संज्ञा–

लः परस्मैपदम्।९९।

प०वि०–लः ६।१ परस्मैपदम् १।१।

अर्थः–लकारादेशाः परस्मैपदसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–तिप्। तस्। झि। सिप्। थस्। थ। मिप्। वस्। मस्। शतृ। क्वसुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लः) लकार के स्थान में होनेवाले आदेशों की (परस्मैपदम्) परस्मैपद संज्ञा होती है।

उदा०–तिप्। तस्। झि। सिप्। थस्। थ। मिप्। वस्। मस्। शतृ। क्वसु।

सिद्धि-(१) तिप्। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदि आदेशों का विधान किया गया है। इस सूत्र से उनकी परस्मैपद संज्ञा की गई है।

(२) शतृ। 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (३।२।१२४) से लट् के स्थान में शतृ-आदेश का विधान किया गया है। इस सूत्र से उसकी परस्मैपद संज्ञा की गई है।

(३) क्वसु। 'क्वसुश्च' (३।२।१०७) से लिट्' के स्थान में 'क्वसु'-आदेश का विधान किया है। इस सू." से उसकी परस्मैपद संज्ञा की गई है।

आत्मनेपद-संज्ञा–

तङानावात्मनेपदम्।१००।

प०वि०–तङ्-आनौ १।२ आत्मनेपदम् १।१।

स०–तङ् च आनश्च तौ-तङानौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–'लः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–लस्तङानावात्मनेपदम्।

अर्थः–लादेशौ तङानौ प्रत्ययावत्मनेपदसंज्ञकौ भवतः। 'तङ्' इति

त-प्रभृति महिङः ङकार पर्यन्तं प्रत्याहारग्रहणम्। 'आन' इति शानच्कानचोर्ग्रहणम्।

उदा०-(तङ्) त। आताम्। झ। थास्। आथाम्। ध्वम्। इट्। वहि। महिङ्। (आन) शानच्। कानच्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लः) लकार के स्थान में होनेवाले (तङानौ) तङ् और आन प्रत्यय की (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद संज्ञा होती है।

उदा०-(तङ्) त। आताम्। झ। थास्। आथाम्। ध्वम्। इट्। वहि। महिङ्। (आन) शानच्। कानच्।

'तङ्' यह 'त' प्रत्यय से लेकर 'महिङ्' के ङकार तक प्रत्याहार ग्रहण किया गया है। 'आन' यह 'शानच्' और 'कानच्' प्रत्यय के सामान्य रूप का ग्रहण है।

सिद्धि-(१) त। *'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदि ९ नौ प्रत्ययों का विधान किया गया है। इस सूत्र से उनकी आत्मनेपद संज्ञा की गई है।*

(२) आन। *'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शानच्' आदेश का विधान किया गया है। इस सूत्र से उसकी आत्मनेपद संज्ञा की गई है।*

(३) आन। *'लिटः कानज्वा' (३।२।१०६) से लिट् के स्थान में 'कानच्' आदेश का विधान किया गया है। इस सूत्र से उसकी आत्मनेपद संज्ञा की गई है।*

प्रथम-मध्यम-उत्तम-संज्ञा—

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः।१०१।

प०वि०-तिङः ६।१ त्रीणि १।३ त्रीणि १।३ प्रथम-मध्यम-उत्तमाः १।३।

अर्थः-प्रथमश्च मध्यमश्च उत्तमश्च ते-प्रथममध्यमोत्तमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

उदा०-तिङ्सम्बन्धीनि-त्रीणि-त्रीणि शब्दरूपाणि यथाक्रमं प्रथम-मध्यम-उत्तमसंज्ञकानि भवन्ति। यथा—

	पुरुषः	*परस्मैपदम्*			*आत्मनेपदम्*		
(१)	*प्रथमः*	*तिप्*	*तस्*	*झि*	*त*	*आताम्*	*झ*
(२)	*मध्यमः*	*सिप्*	*थस्*	*थ*	*थास्*	*आथाम्*	*ध्वम्*
(३)	*उत्तमः*	*मिप्*	*वस्*	*मस्*	*इट्*	*वहि*	*महिङ्*
					९ तङ्		*१८ तिङ्*

आर्यभाषा-अर्थ-(तिङः) तिङ्सम्बन्धी (त्रीणि त्रीणि) तीन-तीन प्रत्ययों की क्रमशः (प्रथममध्यमोत्तमाः) प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञा होती है।

*उदा०-**परस्मैपद**-(प्रथम) तिप्। तस्। झि। (मध्यम) सिप्। थस्। थ। (उत्तम) मिप्। वस्। मस्। **आत्मनेपद**-(प्रथम) त। आताम्। झ। (मध्यम) थास्। आथाम्। ध्वम्। (उत्तम) इट्। वहि। महिङ्।*

***सिद्धि**-तिङ्। 'तिप्' प्रत्यय के 'ति' से लेकर 'महिङ्' प्रत्यय के ङकार से 'तिप्' प्रत्याहार बनाया गया है। लकार के स्थान में होनेवाले 'तिप्' आदि १८ प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं। उनमें प्रथम ९ नौ प्रत्ययों की परस्मैपद संज्ञा है। शेष ९ नौ प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा है। उनके क्रमशः तीन-तीन प्रत्ययों की इस सूत्र से प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञा की गई है।*

एकवचन-द्विवचन-बहुवचन-संज्ञा—

(१) तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः।१०२।

प०वि०-तानि १।३ एकवचन-द्विवचन-बहुवचनानि १।३ एकशः अव्ययपदम्।

स०-एकवचनं च द्विवचनं च बहुवचनं च तानि-एकवचनद्विवचन-बहुवचनानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'तिङस्त्रीणि त्रीणि' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तानि तिङस्त्रीणि त्रीणि एकश एकवचनद्विवचनबहुवचनानि।

अर्थः-तानि तिङ्सम्बन्धीनि त्रीणि त्रीणि शब्दरूपाणि, एकैकं कृत्वा क्रमशः एकवचन-द्विवचन-बहुवचनसंज्ञकानि भवन्ति। यथा—

वचनम्	परस्मैपदम्			आत्मनेपदम्		
एकवचनम्	तिप्	सिप्	मिप्	त	थास्	इट्
द्विवचनम्	तस्	थस्	वस्	आताम्	आथाम्	वहि
बहुवचनम्	झि	थ	मस्	झ	ध्वम्	महिङ् (तिङ्)

आर्यभाषा-अर्थ-(तानि) वे (तिङः) तिङ्सम्बन्धी (त्रीणि त्रीणि) तीन-तीन शब्द क्रमशः (एकवचन-द्विवचन-बहुवचनानि) एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञावाले होते हैं।

उदा०-तिप् एकवचन, तस् द्विवचन और झि बहुवचन है। जैसा कि ऊपर तालिका में दर्शाया गया है।

(२) सुपः ।१०३।

प०वि०-सुपः ६ ।१ ।

अनु०-त्रीणि त्रीणि एकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-सुपस्त्रीणि त्रीणि एकश एकवचनद्विवचनबहुवचनानि ।

अर्थः-सुप्-सम्बन्धीनि त्रीणि त्रीणि शब्दरूपाणि एकैकं कृत्वा एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञकानि भवति । 'सुप्' इति सुप्रत्ययप्रभृति सुपः पकारात् प्रत्याहारग्रहणम् । यथा-

	एकवचनम्	*द्विवचनम्*	*बहुवचनम्*
(१)	*सु*	*औ*	*जस्*
(२)	*अम्*	*औट्*	*शस्*
(३)	*टा*	*भ्याम्*	*भिस्*
(४)	*ङे*	*भ्याम्*	*भ्यस्*
(५)	*ङसि*	*भ्याम्*	*भ्यस्*
(६)	*ङस्*	*ओस्*	*आम्*
(७)	*ङि*	*ओस्*	*सुप् (सुप्)*

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपः) सुप्सम्बन्धी (त्रीणि त्रीणि) तीन-तीन शब्दों की (एकशः) एक-एक करके (एकवचनद्विवचनबहुवचनानि) एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होती है। 'सु' एकवचन, औ द्विवचन और जस् बहुवचन है। 'सुप्' यहां 'सु' प्रत्यय के पकार तक 'सुप्' प्रत्याहार का ग्रहण किया जाता है। शेष संस्कृत-भाग में दी गई तालिका से समझ लेवें।

विभक्ति-संज्ञा-

(१) विभक्तिश्च ।१०४।

प०वि०-विभक्तिः १ ।१ ।

अनु०-'सुपः, तिङः, त्रीणि, त्रीणि' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-सुपस्तिङश्च त्रीणि त्रीणि विभक्तिश्च ।

अर्थः-सुपस्तिङश्च त्रीणि त्रीणि शब्दरूपाणि विभक्तिसंज्ञकान्यपि भवन्ति । यथा-

	विभक्ति	सुपः			तिङः		
(१)	प्रथमा	सु	औ	जस्	तिप्	तस्	झि
(२)	द्वितीया	अम्	औट्	शस्	सिप्	थस्	थ
(३)	तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्	मिप्	वस्	मस्
(४)	चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भिस्	त	आताम्	झ
(५)	पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्	थास्	आथाम्	ध्वम्
(६)	षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्	इट्	वहि	महिङ्
(७)	सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्	×	×	×

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपः) सुप् सम्बन्धी (तिङः) और तिङ् सम्बन्धी (त्रीणि त्रीणि) तीन-तीन प्रत्ययों की (विभक्तिः) विभक्ति संज्ञा (च) भी होती है। सु, औ, जस् प्रथमा विभक्ति हैं। जैसा कि ऊपर तालिका में दर्शाया गया है।

सिद्धि-सुप् और तिङ् सम्बन्धी तीन-तीन प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा की गई है। सुप् सम्बन्धी सु, औ, जस् आदि तीन-तीन प्रत्ययों की प्रथमा विभक्ति आदि संज्ञायें हैं और तिङ् सम्बन्धी 'तिप् तस् झि०' आदि तीन प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा की गई है। विभक्ति संज्ञा का फल यह है कि जस् (सुप्) और तस् (तिङ्) प्रत्यय की 'हलन्त्यम्' (१।३।३) से इत् संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु इनकी विभक्ति संज्ञा होने से 'न विभक्तौ तुस्माः' (१।३।४) से जस् और तस् के सकार की इत् संज्ञा नहीं होती है। इत् संज्ञा न होने 'तस्य लोपः' (१।३।९) से 'स्' का लोप नहीं होता है।

पुरुषविधानम्

मध्यमपुरुषः–

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः।१०४।

प०वि०-युष्मदि ७।१ उपपदे ७।१ समानाधिकरणे ७।१ स्थानिनि ७।१ अपि अव्ययपदम् मध्यमः १।१।

अर्थः-युष्मत्-शब्दे उपपदे, समानाधिकरणे=समानाभिधेये सति, स्थानिनि प्रयुज्यमानेऽपि धातो मध्यमपुरुषो भवति।

उदा०-(स्थानिनिप्रयुज्यमाने) त्वं पचसि। युवां पचथः। यूयं पचथः। (स्थानिनि अप्रयुज्यमाने) पचसि। पचथः। पचथ।

आर्यभाषा-अर्थ-(युष्मदि) युष्मद् शब्द (उपपदे) उपपद होने पर तथा (समानाधिकरणे) एक अभिधेय होने पर (स्थानिनि) युष्मद् शब्द का (प्रयुज्यमानेऽपि)

प्रयोग होने पर तथा प्रयोग न होने पर भी धातु से (मध्यमः) मध्यम पुरुष संज्ञक प्रत्यय होता है।

*उदा०-(स्थानी का प्रयोग होने पर) **त्वं पचसि।** तू पकाता है। **युवां पचथः।** तुम दोनों पकाते हो। **यूयं पचथ।** तुम सब पकाते हो। (स्थानी का प्रयोग न होने पर) पचसि। तू पकाता है। **पचथः।** तुम दोनों पकाते हो। **पचथ।** तुम सब पकाते हो।*

***सिद्धि-(१) त्वं पचसि।** पच्+लट्। पच्+शप्+सिप्। पच्+अ+सि। पचसि। यहां स्थानी युष्मद् शब्द के उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में मध्यम पुरुष संज्ञक 'सिप्' आदेश होता है।*

*(२) **'समानाधिकरण'** का कथन इसलिये है कि 'त्वम्' युष्मद् का एकवचन है इसलिये उसके साथ 'सिप्' एकवचन का प्रत्यय ही रखा जाये। ऐसा न हो कि एकवचन युष्मद् के साथ द्विवचन अथवा बहुवचन का प्रत्यय रख दिया जाये। यह समानाधिकरण नहीं, अपितु व्यधिकरण हो जायेगा।*

*(३) **स्थानी युष्मद्** शब्द का प्रयोग न होने पर भी उसकी विवक्षा में धातु से मध्यम पुरुष संज्ञक प्रत्यय होता है। उसका अर्थ भी वही समझा जाता है, **पचसि**-तू पकाता है।*

प्रहासे मध्यपुरुषः-

प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च।१०६।

प०वि०-प्रहासे ७।१ च अव्ययपदम्, मन्य-उपपदे ७।१ मन्यतेः ५।१ उत्तमः १।१। एकवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०-मन्य उपपदे यस्य स मन्योपपदः, तस्मिन्-मन्योपपदे। (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रहासे च युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मन्योपपदे धातोर्मध्यमः, मन्यतेरुत्तम एकवच्च।

अर्थः-प्रहासे च गम्यमाने युष्मत्-शब्दे उपपदे समानाभिधेये सति स्थानिनि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽपि मन्य-उपपदाद् धातोर्मध्यमः पुरुषो भवति, मन्यतेश्च धातोरुत्तमः पुरुषो भवति, स च एकवद् भवति।

उदा०-कश्चित् कञ्चित् प्रहसन् प्राह-अयि मित्र ! एहि त्वं मन्ये-'अहम् ओदनं भोक्ष्यसे' इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। स्थानिनि

अप्रयुज्यमाने-अयि मित्र ! एहि, मन्ये-'ओदनं भोक्ष्यसे' इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(च) और (प्रहासे) हंसी करने में (युष्मदि) युष्मद् शब्द के (उपपदे) उपपद होने पर तथा (समानाधिकरणे) समान अभिधेय होने पर (स्थानिनि, अपि) स्थानी युष्मद् शब्द का प्रयोग होने पर तथा प्रयोग न होने पर भी (मन्योपपदे) 'मन्ये' उपपदवाली धातु से (मध्यमः) मध्यमपुरुष होता है (मन्यतेश्च) और स्वयं मन्यति धातु से (उत्तमः) उत्तम पुरुष होता है (एकवच्च) और उससे एक वचन ही होता है।

*उदा०-जैसे कोई किसी से हंसी में कहता है कि-**अयि सखे ! एहि, त्वं मन्ये- 'अहम् ओदनं भोक्ष्यसे' इति, न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।** हे मित्र ! आ, तू समझता है कि मैं चावल खाऊंगा, तू चावल नहीं खायेगा, उसे तो अतिथि लोग खा गये। स्थानी युष्मद् शब्द का प्रयोग न होने पर-**अयि सखे ! एहि, मन्ये, 'ओदनं भोक्ष्यसे' इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः'।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **अयि सखे ! एहि, त्वं मन्ये- 'अहम् ओदनं भोक्ष्यसे' इति, न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।** यह किसी व्यक्ति का किसी मित्र के प्रति उपहास-वचन है। यह युष्मद् (त्वम्) शब्द के उपपद होने पर मन्य उपपदवाली 'भुज्' धातु से लृट्लकार मध्यम पुरुष है और उसमें एक वचन ही रहता है। यदि युवाम् और यूयम्, द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग हो तब भी 'मन्ये' पद में उत्तम पुरुष एकवचन ही रहता है। जैसे-**अयि सखायौ ! एतम्, युवां मन्ये- 'आवाम् ओदनं भोक्ष्येथे' इति, न हि भोक्ष्येथे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। अयि सखायः ! एत, यूयं मन्ये- 'वयम् ओदनं भोक्ष्यध्वे' इति, न हि भोक्ष्यध्वे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।***

उत्तम-पुरुषः-

अस्मद्युत्तमः।१०७।

प०वि०-अस्मदि ७।१ उत्तमः १।१।

अनु०-'उपपदे समानाधिकरणे स्थानिनि अपि' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अस्मदि उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि धातोर्मध्यमः।

अर्थः-अस्मत्-शब्दे उपपदे समानाभिधेये सति स्थानिनि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽपि धातोरुत्तमः पुरुषो भवति।

उदा०-(स्थानिनि प्रयुज्यमाने) अहं पचामि। आवां पचावः। वयं पचामः। (स्थानिनि अप्रयुज्यमानेऽपि) पचामि। पचावः। पचामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्मदि) अस्मद् शब्द के (उपपदे) उपपद होने पर तथा (समानाधिकरणे) समान अभिधेये होने पर (स्थानिनि अपि) स्थानी अस्मद् शब्द का प्रयोग होने पर तथा प्रयोग न होने पर भी धातु से (उत्तमः) उत्तम पुरुष होता है।

*उदा०-(स्थानी का प्रयोग होने पर) **अहं पचामि।** मैं पकाता हूं। **आवां पचावः।** हम दोनों पकाते हैं। **वयं पचामः।** हम सब पकाते हैं। (स्थानी का प्रयोग न होने पर) **पचामि।** मैं पकाता हूं। **पचावः।** हम दोनों पकाते हैं। **पचामः।** हम सब पकाते हैं।*

सिद्धि-(१) अहं पचामि।** पच्+लट्। पच्+शप्+मिप्। पच्+अ+मि। पचामि। यहां 'अस्मद्' शब्द के उपपद होने पर **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में उत्तम पुरुष एकवचन 'मिप्' आदेश है। इसी प्रकार-**आवां पचावः। वयं पचामः।

*(२) स्थानी 'अस्मद्' शब्द का प्रयोग न होने पर भी अस्मद् शब्द की विवक्षा में धातु से उत्तम पुरुष होता है-**पचामि। पचावः। पचामः।***

प्रथम-पुरुषः-

शेषे प्रथमः।१०८।

प०वि०-शेषे ७।१ प्रथम १।१।

अनु०-'उपपदे समानाधिकरणे स्थानिनि अपि' इत्यनुवर्तते। उक्तादन्यः शेषः।

अन्वयः-शेषे उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि धातोः प्रथमः।

अर्थः-शेषे=युष्मद्-अस्मद्भिन्ने उपपदे समानाभिधेये सति स्थानिनि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽपि धातोः प्रथमः पुरुषो भवति।

उदा०-(स्थानिनि प्रयुज्यमाने) स पचति। तौ पचतः। ते पचन्ति। रामः पचति। रामौ पचतः। रामाः पचन्ति। (स्थानिनि अप्रयुज्यमानेऽपि) पचति। पचतः। पचन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(शेषे) युष्मद् और अस्मद् शब्द से भिन्न शब्द के (उपपदे) उपपद होने पर तथा (समानाधिकरणे) समान अभिधेय होने पर (स्थानिनि अपि) स्थानी का प्रयोग न होने पर भी धातु से (प्रथमः) प्रथम पुरुष होता है।

*उदा०-(स्थानी का प्रयोग होने पर) **स पचति।** वह पकाता है। **तौ पचतः।** वे दोनों पकाते हैं। **ते पचन्ति।** वे सब पकाते हैं। **रामः पचति।** राम पकाता है। **रामौ***

पचतः। दो राम पकाते हैं। रामाः पचन्ति। सब राम पकाते हैं। (स्थानी का प्रयोग न होने पर) पचति। वह पकाता है। पचतः। वे दोनों पकाते हैं। पचन्ति। वे सब पकाते हैं।

सिद्धि-(१) स पचति। पच्+लट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पचति। यहां युष्मद् और अस्मद् शब्द से भिन्न 'तद्' शब्द के उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में प्रथम पुरुष एकवचन 'तिप्' आदेश है। इसी प्रकार-तौ पचतः। ते पचन्ति। रामः पचति। रामौ पचतः। रामाः पचन्ति।

(२) स्थानी 'तद्' शब्द का प्रयोग न होने पर भी 'तद्' शब्द आदि की विवक्षा में धातु से प्रथम पुरुष होता है-पचति। पचतः। पचन्ति।

संहिता-संज्ञा—

परः सन्निकर्षः संहिता।१०६।

प०वि०-परः १।१ सन्निकर्षः १।१ संहिता १।१। परः=अत्यन्तः। सन्निकर्षः=समीपता।

अर्थः-वर्णानां यः परः सन्निकर्षः स संहितासंज्ञको भवति।

उदा०-दध्यत्र। मध्वत्र।

आर्यभाषा-अर्थ-(परः) वर्णों की जो अत्यन्त (सन्निकर्षः) समीपता है, उसकी (संहिता) संहिता संज्ञा होती है।

उदा०-दध्यत्र। दही यहां पर है। मध्वत्र। मधु यहां पर है।

सिद्धि-(१) दध्यत्र। दधि+अत्र। दध्य्+अत्र। दध्यत्र। यहां 'इको यणचि' (६।१।७७) से इ के स्थान में य् आदेश होकर वर्णों की अत्यन्त समीपता हो जाती है। इसलिये इसे 'संहिता' कहते हैं। इसी प्रकार-मधु+अत्र। मध्व्+अत्र=मध्वत्र।

(२) जहां वर्णों की अत्यन्त समीपता नहीं होती उसे पदपाठ कहते हैं-दधि अत्र। मधु अत्र।

अवसान-संज्ञा—

विरामोऽवसानम्।११०।

प०वि०-विरामः १।१ अवसानम् १।१।

स०-विरम्यतेऽनेनेति विरामः=वर्णानामुच्चारणाभावः।

अर्थः-विरामः=वर्णानामुच्चारणाभावोऽवसान-संज्ञको भवति।

उदा०-दधिँ। मधुँ। वृक्षः। प्लक्षः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(विरामः) वर्णों के उच्चारण के भाव की (अवसानम्) अवसान **संज्ञा** होती है।*

उदा०-दधिँ। मधुँ। वृक्षः। प्लक्षः।

*सिद्धि-**(१) दधिँ।** यहां आगे वर्णों के उच्चारणाभाव में अवसान संज्ञा होने से **'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः'** (८।४।५७) से अवसान में विद्यमान 'दधि' शब्द में अनुनासिक गुण का आधान हो जाता है। इसी प्रकार-**मधुँ।***

*(२) **वृक्षः।** वृक्ष+सु। वृक्ष+स्। वृक्ष+रु। वृक्ष+र्। वृक्ष+ः। वृक्षः। यहां आगे **वर्णों** के उच्चारणाभाव में अवसान संज्ञा होने से **'खरवासनायोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) **से** 'रु' के रेफ को 'ः विसर्जनीय' आदेश हो जाता है। इसी प्रकार-**प्लक्षः।***

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। समाप्तश्चायं प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः

पदविधिः–

(१) समर्थः पदविधिः।१।

प०वि०–समर्थः १।१ पदविधिः १।१।

स०–समर्थः=शक्तः। संगतः सम्बद्धो वाऽर्थो यस्य स **समर्थः** (उत्तरपदलोपी–बहुव्रीहिः)। पदस्य विधिरिति पदविधिः। पदयोर्विधिरिति पदविधिः। पदानां विधिरिति पदविधिः। पदाद् विधिरिति पदविधिः। पदे विधिरिति पदविधिः (सर्वविभक्त्यन्तस्तत्पुरुषः)।

अन्वयः–पदविधिः समर्थः।

अर्थः–अस्मिन् व्याकरणशास्त्रे यः कश्चित् पदविधिः श्रूयते स समर्थो वेदितव्यः। स पुनः समासादिः। वक्ष्यति–**द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** (२।१।२४) इति। कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः। समर्थग्रहणं किम् ? पश्य देवदत्त ! कष्टम्, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्, इत्यादि।

__आर्यभाषा-अर्थ__–इस व्याकरणशास्त्र में जो कोई (पदविधिः) पद-विषयक विधि सुनाई देती है, वह (समर्थः) समर्थ विधि ही जाननी चाहिये। वह विधि समास आदि है। जैसे कि आगे 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' (२।१।२४) आदि सूत्रों से समास का विधान किया जायेगा। जहां दो पदों का एकार्थीभावरूप सामर्थ्य होता है, वहां समास हो जाता है, जैसे– __'कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः'__ और जहां इन दो पदों का परस्पर एकार्थीभाव सम्भव नहीं है, वहां समास विधि नहीं होती है, जैसे कि __'पश्य देवदत्त ! कष्टम्, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्'__ हे देवदत्त ! तू कष्ट को देख कि यह कितना बड़ा कष्ट है और विष्णुमित्र गुरुकुल में पहुंच गया। यहां __'कष्टम्'__ और __'श्रितः'__ पद का कोई एकार्थीभाव नहीं है, अतः ये पद __'असमर्थ'__ हैं, इसलिये इनका समास नहीं होता है।

__विशेष–(१)__ सामर्थ्य एकार्थीभाव और व्यपेक्षा के भेद से दो प्रकार का होता है। जहां अनेक पदों का एक पद, अनेक स्वरों का एक स्वर और अनेक विभक्तियों की

एकविभक्ति हो जाती है, उसे एकार्थीभाव सामर्थ्य कहते हैं और जहां अनेक पद, अनेक स्वर और अनेक विभक्तियां वर्तमान रहती हैं, उसे व्यपेक्षा सामर्थ्य कहते हैं। 'राज्ञः पुरुषः' यहां दो पदों में व्यपेक्षा सामर्थ्य है। 'राजपुरुषः' यहां एकार्थीभाव सामर्थ्य है।

(२) यह महापरिभाषा है। इसकी समस्त व्याकरणशास्त्र में प्रवृत्ति होती है।

पराङ्गवद्भावः—

(१) सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे।२।

प०वि०-सुप् १।१ आमन्त्रिते ७।१ पराङ्गवत् अव्ययपदम्, स्वरे ७।१।

स०-अङ्गेन तुल्यमितिं अङ्गवत् (तद्धितवृत्तिः)। परस्य अङ्गवदिति पराङ्गवत् (षष्ठीतत्पुरुषः)

अन्वयः-आमन्त्रिते सुप् पराङ्वत् स्वरे।

अर्थः-आमन्त्रिते=सम्बोधने परतः सुबन्तं पदं पराङ्गवद् भवति, स्वरे कर्त्तव्ये। सुबन्तमाऽऽमन्त्रितमनुप्रविशति इत्यर्थः।

उदा०-कुण्डे॑नाटन्। पर॑शुना वृश्चन्। मद्रा॑णां राजन्। कश्मी॑राणां राजन्। **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९८) इत्यामन्त्रितस्यादिरुदात्तो भवति। स ससुप्कस्यापि विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आमन्त्रिते) सम्बोधन पद के परे होने पर (सुप्) पूर्ववर्ती सुबन्त पद का (पराङ्गवत्) पराङ्गवद्भाव होता है (स्वरे) स्वरविषयक कार्य के करने में। जो उदात्त आदि स्वर परवर्ती आमन्त्रित पद का है, वही स्वर पूर्ववर्ती सुबन्त पद का भी हो जाता है।

*उदा०-**कुण्डे॑नाटन्।** हे कुण्ड के सहित घूमनेवाले। **परशुना वृश्चन्।** हे कुल्हाड़े से काटनेवाले। **मद्राणां राजन्।** हे मद्रदेश के राजा। **कश्मीराणां राजन्।** हे कश्मीर देश के राजा।*

*सिद्धि-**कुण्डे॑नाटन्।** यहां **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९८) से आमन्त्रित 'अटन्' पद आद्युदात्त है। उसके परे रहने पर पूर्ववर्ती **'कुण्डेन'** सुबन्त पद भी इस सूत्र से पराङ्गवत् होकर आद्युदात्त हो जाता है।*

समाससंज्ञाधिकारः

अधिकारः–

(१) प्राक् कडारात् समासः ।३।

प०वि०–प्राक् अव्ययपदम्, कडारात् ५ ।१ समासः १ ।१ ।

अन्वयः–कडारात् प्राक् समासः ।

अर्थः–कडारशब्दात् प्राक् समाससंज्ञा भवतीत्यधिकारोऽयम् ।

उदा०–वक्ष्यति–'**यथाऽसादृश्ये**' (२ ।१ ।७) इति, यथावृद्धं ब्राह्मणानाऽऽमन्त्रयस्व ।

*आर्यभाषा–अर्थ–(कडारात्) 'कडार' शब्द से (प्राक्) पहले-पहले (समासः) समास संज्ञा होती है, यह अधिकार सूत्र है। '**कडाराः कर्मधारये**' (२ ।२ ।३८) यहां जो 'कडार' शब्द का उच्चारण किया गया है, इससे पहले-पहले 'समास' का अधिकार समझना चाहिये। जैसे कि आगे कहा जायेगा कि '**यथाऽसादृश्ये**' (२ ।१ ।७) असादृश्य अर्थ में 'यथा' शब्द का सुबन्त के साथ समास होता है। '**यथावृद्धं ब्राह्मणानाऽऽमन्त्रयस्व**' जो-जो वृद्ध ब्राह्मण हैं उन्हें भोजन के लिये आमन्त्रित करो। '**यथावृद्धम्**' यहां पूर्वोक्त सूत्र (२ ।१ ।७) से अव्ययीभाव समास है।*

अधिकारः–

सह सुपा ।४।

प०वि०–सह अव्ययपदम्, सुपा ३ ।१ ।

अनु०–द्वितीयसूत्रात् 'सुप्' इति पदमनुवर्तते ।

अन्वयः–सुप् सुपा सह समासः ।

अर्थः–सुबन्तं सुबन्तेन सह समस्यते, इत्यधिकारोऽयम् ।

उदा०–वक्ष्यति–'**द्वितीया श्रितातीतगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः**' (२ ।१ ।२४) इति । द्वितीयान्तं सुबन्तं श्रितादिभिः सुबन्तैः सह समस्यते । कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः, इत्यादि ।

*आर्यभाषा–अर्थ–(सुप्) सुबन्त पद का (सुपा) सुबन्त पद के (सह) साथ (समासः) समास होता है, यह अधिकार सूत्र है। जैसे कि आगे कहा जायेगा कि '**द्वितीया***

*श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै:' (२।१।२४) अर्थात् द्वितीयान्त सुबन्त का श्रित आदि सुबन्तों के साथ समास होता है। **कष्टं श्रित इति कष्टश्रित:।** कष्ट को प्राप्त हुआ। यहां 'कष्टम्' सुबन्त का 'श्रित:' सुबन्त के साथ समास होगया।*

अव्ययीभावप्रकरणम्

अधिकार:-

(१) अव्ययीभाव:।५।

प०वि०-अव्ययीभाव: १।१।

अर्थ:-इत ऊर्ध्वम् अव्ययीभावसंज्ञा भवतीत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-वक्ष्यति-**'यथाऽसादृश्ये'** इति। यथावृद्धं ब्राह्मणानाऽऽमन्त्रयस्व।

*आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययीभाव:) इससे आगे अव्ययीभाव संज्ञा का अधिकार है। आगे कहा जायेगा **'यथाऽसादृश्ये'** (२।१।७) अर्थात् असादृश्य अर्थ में जो **'यथा'** शब्द है उसका जो सुबन्त के साथ समास होता है, उसकी अव्ययीभाव संज्ञा होती है। **'यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व'** जो-जो वृद्ध ब्राह्मण हैं, उन्हें भोजन के लिये आमन्त्रित करो। **'यथावृद्धम्'** यहां अव्ययीभाव समास है।*

अव्ययम्-

(२) अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु।६।

प०वि०-अव्ययम् १।१ विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धि-अर्थाभाव-अत्यय-असम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चात्-यथा-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु ७।३।

स०-विभक्तिश्च समीपं च समृद्धिश्च व्यृद्धिश्च अर्थाभावश्च अत्ययश्च असम्प्रतिश्च शब्दप्रादुर्भावश्च पश्चाच्च यथा च आनुपूर्व्यं च यौगपद्यं च सादृश्यं च सम्पत्तिश्च साकल्यं च अन्तश्च ते-विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावत्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसकल्यान्ता:, विभक्ति०साकल्यान्ता वचनानि येषां ते

विभक्ति०साकल्यान्तवचनाः, तेषु-विभक्ति०साकल्यान्तवचनेषु (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-'सुप् सुपा सह, अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विभक्ति०अन्तवचनेषु अव्ययं सुप् सुपा सह समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-विभक्ति-आदिष्वर्थेषु यदव्ययं सुबन्तं वर्तते तत् समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवन्ति। अत्र वचनशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।

उदा०-(१) **विभक्तिवचने।** स्त्रीष्वधिकृत्येति अधिस्त्रि। कुमारीष्वधिकृत्येति अधिकुमारि। सप्तम्यर्थे यद् अव्ययं तद् विभक्तिवचनम्।

(२) **समीपवचने।** गुरुकुलस्य समीपमिति उपगुरुकुलम्।

(३) **समृद्धिवचने।** मद्राणां समृद्धिरिति सुमद्रम्। मगधानां समृद्धिरिति सुमगधम्। समृद्धिः=ऋद्धेराधिक्यम्।

(४) **व्यृद्धिवचने।** यवनानां व्यृद्धिरिति दुर्यवनम्। व्यृद्धिः=ऋद्धेरभावः।

(५) **अर्थाभाववचने।** मक्षिकाणाभाव इति निर्मक्षिकम्। अर्थाभावः=वस्तुनोऽभावः।

(६) **अत्ययवचने।** अतीतानि हिमानीति निर्हिमम्। अत्ययः=भूतत्वम्, अतिक्रमः।

(७) **असम्प्रतिवचने।** तैसृकं सम्प्रति न युज्यते इति अतितैसृकम्। तैसृकं नाम आच्छादनं, तस्यायमुपभोगकालो नास्तीत्यर्थः।

(८) **शब्दप्रादुर्भाववचने।** पाणिनिशब्दस्य प्रकाश इति इतिपाणिनि। शब्दप्रादुर्भावः=शब्दस्य प्रकाशता। पाणिनिशब्दो लोके प्रकाशत इत्यर्थः।

(९) **पश्चाद्वचने।** रथानां पश्चादिति अनुरथं पादातम्।

(१०) **यथावचने।** यथा शब्दस्य योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्तिः सादृश्यं चेति चत्वारोऽर्थाः। तत्र **योग्यतायाम्**-रूपस्य योग्यमिति अनुरूपम्।

वीप्सायाम्-दिनं दिनं प्रति इति प्रतिदिनम्। **पदार्थानतिवृत्तौ**-शक्तिमनतिक्रम्येति यथाशक्ति। सादृश्ये-'**यथाऽसादृश्ये**' (२।१।७) इति प्रतिषेधं वक्ष्यति।

(११) **आनुपूर्व्यवचने।** ज्येष्ठस्यानुपूर्व्यमिति अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः।

(१२) **यौगपद्यवचने।** युगपच्चक्रमिति सचक्रं धेहि। युगपच्चक्रं धेहीत्यर्थः।

(१३) **सादृश्यवचने।** सदृशः सख्या इति ससखि।

(१४) **सम्पत्तिवचने।** ब्रह्मणः सम्पत्तिरिति सब्रह्म बाभ्रवाणाम्। क्षत्रस्य सम्पत्तिरिति सक्षत्रं शालङ्कायनानाम्। सम्पत्तिः=अनुरूप आत्मभावः, समृद्धेर्भिन्नः।

(१५) **शाकल्यवचने।** तृणानां साकल्यमिति सतृणमभ्यवहरति। साकल्यम्=अशेषता।

(१६) **अन्तवचने।** अग्नेरन्त इति साग्नि अधीते। महाभाष्यस्यान्त इति समहाभाष्यं व्याकरणमधीते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(विभक्ति०) विभक्ति आदि के अर्थों में जो (अव्ययम्) अव्यय सुबन्त है, उसका (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ समास होता है, उस समास की अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

उदा०-(१) __विभक्ति।__ स्त्रीष्वधिकृत्य इति __अधिस्त्रि।__ स्त्री-विषयक कथा। __कुमारीष्वधिकृत्य इति अधिकुमारि।__ कुमारीविषयक कथा। यहां विभक्ति शब्द से सप्तमी विभक्ति का ही ग्रहण किया जाता है, सब विभक्तियों का नहीं।

(२) __समीप। गुरुकुलस्य समीपमिति उपगुरुकुलम्।__ गुरुकुल के पास।

(३) __समृद्धिः। मद्राणां समृद्धिरिति सुमद्रम्।__ मद्रों की सम्पन्नता। __मगधानां समृद्धिरिति सुमगधम्।__ मगधों की सम्पन्नता।

(४) __व्यृद्धि। यवनानां व्यृद्धिरिति दुर्यवनम्।__ यवनों की असम्पन्नता।

(५) __अर्थाभाव। मक्षिकाणामभाव इति निर्मक्षिकम्।__ मक्खियों का अभाव।

(६) __अत्यय। अतीतानि हिमानीति निर्हिमम्।__ हिम का अतिक्रमण।

(७) __असम्प्रति। तैसृकं सम्प्रति न युज्यत इति अतितैसृकम्।__ तैसृक नामक वस्त्र का सेवन करना अब उचित नहीं है। तैसृक=आच्छादन विशेष।

(८) शब्दप्रादुर्भाव। पाणिनिशब्दस्य प्रकाश इति इतिपाणिनि। पाणिनि शब्द को प्रकाशित करना।

(९) पश्चात्। रथानां पश्चाद् इति अनुरथं पादातम्। रथों के पीछे पैदल।

(१०) यथा। इस शब्द के योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य ये चार अर्थ हैं। योग्यता-रूपस्य योग्यमिति अनुरूपम्। रूप के अनुसार। वीप्सा-दिनं दिनं प्रति इति प्रतिदिनम्। वीप्सा=व्यापकता। पदार्थानतिवृत्ति-शक्तिमनतिक्रम्येति यथाशक्ति। शक्ति को न लांघकर। सादृश्य- 'यथाऽसादृश्ये' (२।१।७) से सादृश्य अर्थ में समास का प्रतिषेध किया गया है।

(११) आनुपूर्व्य। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्यमिति अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः। ज्येष्ठ की अनुपूर्वता से आप यहां प्रवेश करें।

(१२) यौगपद्य। युगपच्चक्रमिति सचक्रं धेहि। तू एक साथ चक्र को धारण कर।

(१३) सादृश्य। सदृशः सख्या इति ससखि। सखा के सदृश।

(१४) सम्पत्ति। ब्रह्मणः सम्पत्तिरिति सब्रह्म बाभ्रवाणाम्। बाभ्रवजनों का ब्राह्मणों के साथ आत्मभाव है। क्षत्रस्य सम्पत्तिरिति सक्षत्रं शालङ्कायनानाम्। शालङ्कायनजनों का क्षत्रियों के साथ आत्मभाव है। यहां सम्पत्ति शब्द का समृद्धि अर्थ नहीं है, अपितु आत्मभाव अर्थ है।

(१५) साकल्य। तृणानां साकल्यमिति सतृणमभ्यवहरति। तृणों सहित खाता-पीता है।

(१६) अन्त। अग्नेरन्त इति साग्नि अधीते। अग्नि शब्द के अन्त तक पढ़ता है। महाभाष्यस्यान्त इति समहाभाष्यं व्याकरणमधीते। महाभाष्य के अन्त तक व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करता है।

सिद्धि-(१) अधिस्त्रि। अधि+सु+स्त्री+सुप्। अधि+स्त्री। अधिस्त्री+सु। अधिस्त्रि+सु। अधिस्त्रि।

यहां 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' (२।४।७१) से सु और सुप् प्रत्यय का लुक् होता है। इस सूत्र से अधि अव्यय का स्त्री सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास, उसकी 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा, 'स्वौजस०' (४।१।२) से सुप्-उत्पत्ति, 'अव्ययीभावश्च' (२।२।१८) से नपुंसकभाव, 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' (१।२।४७) से 'स्त्री' शब्द को ह्रस्वत्व, 'अव्ययीभावश्च' (२।२।४२) से अव्ययीभाव समासवाले प्रातिपदिक का अव्ययत्व और 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सुप्' का 'लुक्' होता है।

(२) उपगुरुकुलम्। उप+सु+गुरुकुल+ङस्। उप+गुरुकुल। उपगुरुकुल+सु। उपगुरुकुल+अम्। उपगुरुकुलम्।

यहां 'नाव्ययीभावदतोऽम्त्वपञ्चम्याः' (२।४।८३) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

(३) सचक्रम्। सह+सु+चक्र+टा। सह+चक्र। सचक्र+सु। सचक्र+अम्। सचक्रम्।

यहां 'अव्ययीभावे चाकाले' (६।३।८१) से 'सह' के स्थान में 'स' आदेश होता है। इसी प्रकार से ससखि, सब्रह्म, सतृणम्, साग्नि आदि शब्दों की सिद्धि करें।

यथाऽव्ययम्–

(३) यथाऽसादृश्ये।७।

प०वि०–यथा अव्ययपदम्, असादृश्ये। ७।१।

स०–सदृशस्य भावः सादृश्यम् (तद्धितवृत्तिः)। न सादृश्यमिति असादृश्यम्, तस्मिन्–असादृश्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–'अव्ययं सह सुपा अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–असादृश्ये यथाऽव्ययं सुप् सुपा सह समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः–असादृश्येऽर्थे 'यथा' इत्यव्ययं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति।

उदा०–ये ये वृद्धा इति यथावृद्धम्। यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व।

असादृश्य इति किम्? यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः। अत्र सादृश्येऽर्थे समासो न भवति।

आर्यभाषा–अर्थ–(असादृश्ये) सादृश्य अर्थ को छोड़कर (यथा) 'यथा' इस (अव्ययम्) अव्यय का (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०–**ये ये वृद्धा इति यथावृद्धम्। यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व।** जो जो वृद्ध ब्राह्मण हैं उन्हें भोजन के लिये निमन्त्रित करो।*

सिद्धि–यथावृद्धम्। *यथा+सु+वृद्ध+शस्। यथा+वृद्ध। यथावृद्ध+सु। यथावृद्ध+अम्। यथावृद्धम्।*

यहां 'नाव्ययीभावाद०' (२।४।८३) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश है, शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

विशेष–'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) में 'यथा' अव्यय सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास विधान किया गया है। 'यथा' शब्द के योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और

सादृश्य ये चार अर्थ हैं। यहां यह बतलाया गया है कि 'यथा' अव्यय का सादृश्य अर्थ में अव्ययीभाव समास नहीं होता है, शेष तीन अर्थों में ही होता है। उनके उदाहरण 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) की व्याख्या में दिये गये हैं।

यावद् अव्ययम्–

(४) यावदवधारणे।८।

प०वि०–यावद् अव्ययपदम्, अवधारणे ७।१।

अनु०–'अव्ययम् सह सुपा अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अवधारणे यावद् अव्ययं सुप् सुपा सह समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः–अवधारणेऽर्थे वर्तमानं यावद् इत्यव्ययं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति। अवधारणम्=इयत्तापरिच्छेदः।

उदा०–यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व। अमत्रम्=पात्रम्। यावन्ति पात्राणि सम्भवन्ति पञ्च षड् वा तावतो ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्वेत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अवधारणे) अवधारण अर्थ में वर्तमान (यावद्) यावद् इस (अव्ययम्) अव्यय (सुप्) सुबन्त का (सुपा) समर्थ सुबन्त के साथ (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व।** जितने पात्र सम्भव हैं, पांच वा छः, उतने ब्राह्मणों को भोजन के लिये आमन्त्रित करो।*

__सिद्धि-यावदमत्रम्।__ यावद्+सु+अमत्र+शस्। यावद्+अमन्त्र। यावदमत्र+सु। यावदमत्र+अम्। यावदमत्रम्।

*यहां '**नाव्ययीभावाद०**' (२।४।२३) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।*

सुबन्तम्–

(५) सुप् प्रतिना मात्रार्थे।९।

प०वि०–सुप् १।१ प्रतिना ३।१ मात्रार्थे ७।१।

अनु०–'सुपा सह, अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सुप् मात्रार्थे प्रतिना सुपा सह समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः–सुबन्तं मात्रार्थे वर्तमानेन प्रतिना समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति। मात्रा, बिन्दुः, स्तोकम्, अल्पमिति पर्यायाः। **अस्त्यत्र किञ्चित्** सूपमिति **सूपप्रति** देहि।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुप्) समर्थ सुबन्त का (मात्रार्थे) मात्रा=अल्प अर्थ में वर्तमान (प्रतिना) प्रति (सुपा) समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**अस्त्यत्र किञ्चित् शाकमिति शाकप्रति देहि।** यहां कुछ शाक है, थोड़ा-सा शाक दो। **अस्त्यत्र किञ्चित् सूपमिति सूपप्रति देहि।** यहां कुछ दाल है, थोड़ी-सी दाल दो।*

*सिद्धि-**शाकमिति।** शाक+सु+प्रति+सु। शाकप्रति+सु। शाकप्रति। पूर्ववत्।*

*विशेष-यहां '**सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे**' (२।१।२) से 'सुप्' की अनुवृत्ति सम्भव है, पुनः यहां 'सुप्' का ग्रहण 'अव्ययम्' पद की अनुवृत्ति की निवृत्ति के लिये किया गया है।*

अक्षादयः-

(६) अक्षशलाकासंख्याः परिणा।१०।

प०वि०-अक्ष-शलाका-संख्याः १।३ परिणा ३।१।

स०-अक्षश्च शलाका च संख्या च ताः-अक्षशलाकासंख्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'सुप् सह सुपा अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अक्षशलाकासंख्याः सुपः परिणा सुपा सह समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-अक्षशलाकासंख्याः सुबन्ताः परिणा समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति।

उदा०-(अक्षः) अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथापूर्वं जय इति अक्षपरि। (शलाका) शलाकाभिर्न तथा वृत्तं यथापूर्वं जय इति शलाकापरि। (संख्या) एकपरि। द्विपरि। त्रिपरि। चतुष्परि।

कितवव्यवहारे समासोऽयमभीष्टः। पञ्चिका नाम द्यूतम्, पञ्चभिरक्षैः शलाकाभिर्वा खेल्यते। तत्र यदा सर्वेऽक्षा उत्ताना अवाञ्चो वा पतन्ति तदा पातयिताऽऽक्षिको जयति। तस्यान्यथा पाते सति विघातो जायते-अक्षपरि।

आर्यभाषा-अर्थ-(अक्षशलाकासंख्याः) अक्ष, शलाका और संख्यावाची सुबन्तों का (परिणा) परि समर्थ सुबन्त के साथ (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**(अक्ष) अक्षेणेदं न तथा वृत्तं यथापूर्वं जये इति अक्षपरि।** अक्ष (पासा) ने वैसा वर्ताव नहीं किया जैसा कि पहले जीत में किया था अतः यह '**अक्षपरि**' है।*

*(शलाका) शलाकाभिर्न तथा वृत्तं यथापूर्वं जय इति **शलाकापरि।** ये शलाकायें वैसे नहीं पड़ी जैसे कि पहले जीत में पड़ी थी, अत: यह 'शलाकापरि' है। **(संख्या) एकपरि।** एक अक्ष/शलाका ठीक नहीं पड़ी। द्विपरि। दो अक्ष/शलाका ठीक नहीं पड़ी। त्रिपरि। तीन अक्ष/शलाका ठीक नहीं पड़ी। चतुष्परि। चार अक्ष/शलाका ठीक नहीं पड़ी।*

सिद्धि-अक्षपरि। *अक्ष+सु+परि+टा। अक्षपरि+सु। अक्षपरि। पूर्ववत्।*

विशेष- *यह समास जूआ खेलने के व्यवहार में अभीष्ट है। एक पञ्चिका नामक द्यूत है। जो पांच पासों अथवा पांच शलाकाओं से खेला जाता है। उसमें पांच पासे सीधे अथवा मूधे पड़ते हैं तब डालनेवाला जुआरी जीतता है। उनके अन्यथा पड़ने पर जुआरी को चोट लगती है, तब 'अक्षपरि' आदि कहा जाता है।*

अधिकारः-

(७) विभाषा।११।

प०वि०- विभाषा १।१।

अर्थः- 'विभाषा' इत्यधिकारोऽयम्, **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) इति यावत्। महाविभाषेयम्। अनेन समासप्रकरणे पक्षे वाक्यमपि भवति।

आर्यभाषा-अर्थ- *(विभाषा) 'विभाषा' यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) तक है। यह महाविभाषा है। इससे समास प्रकरण में पक्ष में विग्रहवाक्य भी बना रहता है।*

अपादयः-

(८) अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या।१२।

प०वि०- अप-परि-बहिर्-अञ्चवः १।३ पञ्चम्या ३।१।

स०- अपश्च परिश्च बहिश्च अञ्चुश्च ते-अपपरिबहिरञ्चवः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०- 'सुप्, सह सुपा अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः- अपपरिबहिरञ्चवः सुपः पञ्चम्या सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः- अपपरिबहिरञ्चवः सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन समर्थेन सुबन्तेन विकल्पेन समस्यन्ते, अव्ययीभावश्च समासो भवति।

उदा०-(अप:) अपत्रिगर्तं वृष्टो देव:। अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:। (परि) परित्रिगर्तं वृष्टो देव:। (बहि:) बहिर्ग्रामम्। बहिर्ग्रामात्। (अञ्चु) प्राग्ग्रामम्। प्राग् ग्रामात्।

आर्यभाषा-अर्थ- *(अपपरिबहिरञ्चव:) अप, परि, बहिर् और अञ्चु इन (सुप्) सुबन्तों का (पञ्चम्या) पञ्चम्यन्त (सुप्) सुबन्त के (सह) साथ (समास:) समास होता है और उसकी (अव्ययीभाव:) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।*

*उदा०-**(अप) अपत्रिगर्तं वृष्टो देव:।** त्रिगर्त (जालन्धर) को छोड़कर बादल बरसा। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ। अत: **'पञ्चम्यपाङ्परिभि:'** (२।३।१०) से 'अप' शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होगई। **(परि) परित्रिगर्तं वृष्टो देव:।** त्रिगर्त को छोड़कर बादल बरसा। **परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:।** अर्थ पूर्ववत् है। **(बहि:) बहिर्ग्रामम्।** ग्राम से बाहर। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **बहिर्ग्रामात्।** अर्थ पूर्ववत् है। इसी ज्ञापक के बहिर् शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। **(अञ्चु) प्राग्ग्रामम्।** ग्राम से पूर्व में। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **प्राग् ग्रामात्।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ। यहां **'अन्यारादितर०'** (२।३।२९) से 'अञ्चु' के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है।*

सिद्धि-(१) अपत्रिगर्तम्। *अप+सु+त्रिगर्त+भ्यस्। अपत्रिगर्त+सु। अपत्रिगर्त+अम्। अपत्रिगर्तम्।*

*यहां **'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:'** से सुप् विभक्ति का लुक् और **'नाव्ययीभावाद०'** (२।४।८३) से 'सु' को अम्' आदेश होता है।*

*(२) **प्राग्ग्रामम्।** प्र+अञ्चु+क्विन्। प्र+अञ्च्+वि। प्र+अच्+०। प्राच्+सु। प्राक्+०। प्राक्+सु+ग्राम+ङसि। प्राग्ग्राम+सु। प्राग्गाम+अम्। प्राग्ग्रामम्।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से क्विन् प्रत्यय, **अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप और **'क्विन् प्रत्ययस्य कु:'** (८।२।६२) से कुत्व होता है। इस प्रकार यहां 'अञ्चु' कहने से 'प्राक्' शब्द का ग्रहण किया गया है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आङ्-

(६) आङ् मर्यादाभिविध्यो:।१३।

प०वि०-आङ् १।१ मर्यादा-अभिविध्यो: ७।१।

स०-मर्यादा च अभिविधिश्च तौ-मर्यादाभिविधी, तयो:-मर्यादाभिविध्यो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-'सुप् सुपा सह, पञ्चम्या अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मर्यादाभिविध्योराङ् सुप् पञ्चम्या सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-मर्यादायामभिविधौ चार्थे वर्तमानं आङ् इति सुबन्तं पञ्चम्यन्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, समासश्चाव्ययीभावो भवति।

उदा०-(मर्यादायाम्) आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः। आ पाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः। (अभिविधौ) आकुमारं यशः पाणिनेः। आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः। मर्यादा विना तेन भवति, अभिविधिश्च सह तेन भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(मर्यादाभिविध्योः) मर्यादा और अभिविधि अर्थ में वर्तमान (आङ्) आङ् इस (सुप्) सुबन्त का (पञ्चम्या) पञ्चम्यन्त (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।*

*उदा०-**(मर्यादा) आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः।** पाटलिपुत्र (पटना) तक बादल बरसा। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **आ पाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ। यहां आङ् शब्द के योग में **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** (२।३।१०) से पञ्चमी विभक्ति होती है। **(अभिविधि) आकुमारं यशः पाणिनेः।** मुनिवर पाणिनि का यश कुमारों तक फैला हुआ है। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **आ कुमारेभ्यो यशः पाणिनेः।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां आङ् शब्द के योग में पूर्ववत् पञ्चमी विभक्ति होती है।*

विशेष-*मर्यादा और अभिविधि में अन्तर यह है कि मर्यादा जिस नगर आदि से बतलाई जाती है उसे छोड़कर होती है और अभिविधि उस नगर आदि को साथ लेकर कही जाती है।*

अभिप्रती-

(१०) लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये।१४।

प०वि०-लक्षणेन ३।१ अभि-प्रती १।२ आभिमुख्ये ७।१।

स०-अभिश्च प्रतिश्च तौ-अभिप्रती (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अभिमुखस्य भाव आभिमुख्यम्, तस्मिन्-आभिमुख्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-'सुप् सह सुपा अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आभिमुख्येऽभिप्रती सुपौ लक्षणेन सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-आभिमुख्येऽर्थे वर्तमानौ, अभिप्रती सुबन्तौ लक्षणभूतेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते, अव्ययीभावश्च समासो भवति। लक्षणम्=चिह्नम्।

उदा०-(अभिः) अग्निम् अभीति-अभ्यग्नि। अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति। अग्निम् अभि शलभाः पतन्ति। (प्रतिः) अग्निं प्रतीति-प्रत्यग्नि। प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति। अग्निं प्रति शलभाः पतन्ति। अग्निं लक्ष्यीकृत्य शलभाः पतन्तीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आभिमुख्ये) सामने अर्थ में वर्तमान (अभिप्रती) अभि और प्रति (सुप्) सुबन्तों का (लक्षणेन) चिह्न बने हुये (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**(अभि) अग्निम् अभीति-अभ्यग्नि। अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति।** अग्नि को अभिमुख करके पतङ्ग गिरते हैं। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **अग्निम् अभि शलभाः पतन्ति।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ। **(प्रति) अग्निं प्रतीति-प्रत्यग्नि। प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति।** अग्नि को अभिमुख करके पतङ्ग गिरते हैं। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **अग्निं प्रति शलभाः पतन्ति।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ।*

अनुः-

(११) अनुर्यत्समया।१५।

प०वि०-अनुः १।१ यत्समया अव्ययपदम्।

स०-यस्य समया इति सत्समया (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'लक्षणेन सुप् सुपा सह अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुः सुप् यत्समया लक्षणेन सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-अनुः सुबन्तो यस्य समीपवाची तेन लक्षणभूतेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति। समया=समीपम्।

उदा०-(अनुः) वनस्य अनु इति अनुवनम्। अनुवनमशनिर्गतः। वनस्यानु अशनिर्गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुः) अनु सुन्बन्त (यत्समया) जिसकी समीपता बतलाता है उस (लक्षणेन) चिह्नभूत (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ उसका (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-(अनु) **वनस्य अनु इति अनुवनम्। अनुवनमशनिर्गतः।** विद्युत् वन के समीप चली गई। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **वनस्यानु अशनिर्गतः।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ।*

अनुः—

(१२) यस्य चायामः।१६।

प०वि०-यस्य ६।१ च अव्ययपदम् आयामः १।१।

अनु०-'अनुः, लक्षणेन, सुप्, सुपा सह, अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुः सुप् यस्य चायामस्तेन लक्षणेन सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-अनुः सुबन्तश्च यस्यायामवाची च तेन लक्षणभूतेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति। आयामः=विस्तारः।

उदा०-(अनुः) गङ्गाया अनु इति अनुगङ्गम्। अनुगङ्गं वाराणसी। गङ्गाया अनु वाराणसी। यमुनाया अनु इति अनुयमुनम्। अनुयमुनं मथुरा। यमुनाया अनु मथुरा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुः) अनु सुबन्त, (च) और (यस्य) जिसके (आयामः) विस्तार का वाचक है उस (लक्षणेन) चिह्नभूत (सुपा) समर्थ सुबन्त के साथ उसका (समासः) समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-(अनु) **गङ्गाया अनु इति अनुगङ्गम्। अनुगङ्गं वाराणसी।** बनारस नगरी गङ्गा के तट पर फैली हुई है। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **गङ्गाया अनु वाराणसी।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ। **यमुनाया अनु इति अनुयमुनम्। अनुयमुनं मथुरा।** मथुरा नगरी यमुना के तट पर फैली हुई है। यहां अव्ययीभाव समास होगया। **यमुनाया अनु मथुरा।** अर्थ पूर्ववत् है। यहां अव्ययीभाव समास नहीं हुआ।*

तिष्ठदगु-आदयः—

(१३) तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च।१७।

प०वि०–तिष्ठद्गु-प्रभृतीनि १।३ च अव्ययपदम्।

स०–तिष्ठद्गुप्रभृति येषां तानि तिष्ठद्गुप्रभृतीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–'अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तिष्ठद्गुप्रभृतीनि चाव्ययीभावः।

अर्थः–तिष्ठद्गुप्रभृतीनि शब्दरूपाणि अव्ययीभावसंज्ञकानि भवन्ति। प्रभृतिः=आदिः।

उदा०–तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः।

गणः–तिष्ठद्गु। वहद्गु। आयतीगवम्। खलेबुसम्। खलेयवम्। लूनयवम्। लूयमानयवम्। पूतयवम्। पूयमानयवम्। संहृतयवम्। संह्रियमाणयवम्। संहृतबुसम्। संह्रियमाणबुसम्। एते कालशब्दाः। समभूमि। समपदाति। सुषमम्। विषमम्। निष्षमम्। दुष्षमम्। अपरसमम्। आयतीसमम्। प्राह्णम्। प्ररथम्। प्रमृगम्। प्रदक्षिणम्। अपरदक्षिणम्। संप्रति। असंप्रति। पापसमम्। पुण्यसमम्। इच् कर्मव्यतिहारे। दण्डादण्डि। मुसलामुसलि। इति तिष्ठगुप्रभृतीनि।

आर्यभाषा-अर्थ-(तिष्ठद्गुप्रभृतीनि) तिष्ठद्गु आदि शब्दों की (च) ही (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः।** जिस समय गौवें दोहन के लिये खड़ी हो जाती हैं, उस काल को 'तिष्ठद्गु' कहते हैं।*

*विशेष-यहां 'चकार' निश्चयार्थक है, इससे गण में गठित 'तिष्ठद्गु' आदि शब्दों की ही अव्ययीभाव संज्ञा होती है। इससे **परमं तिष्ठद्गु** यहां परम शब्द का समास नहीं होता है।*

पारे मध्ये—

(१४) पारे मध्ये षष्ठ्या वा।१८।

प०वि०–पारे अव्ययपदम्, मध्ये अव्ययपदम्, षष्ठ्या ३।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-'सुप् सुपा सह अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पारे मध्ये सुपौ षष्ठ्या सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावो वा।

अर्थः-पारे-मध्ये-सुबन्तौ षष्ठ्यन्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते अव्ययीभावश्च विकल्पेन समासो भवन्ति। अव्ययीभावसमासे च तयोरेकारान्तत्वं निपात्यते। वा वचनात् पक्षे षष्ठीसमासोऽपि भवन्ति।

उदा०-(पारम्) पारं गङ्गाया इति पारेगङ्गम्। (मध्यम्) मध्यं गङ्गाया इति मध्येगङ्गम्। अत्राव्ययीभावः। षष्ठीसमासपक्षे-गङ्गायाः पारमिति गङ्गापारम्। गङ्गाया मध्यमिति गङ्गामध्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पारे मध्ये) पार और मध्य सुबन्त का (षष्ठ्या) षष्ठ्यन्त (सुपा) समर्थ सुबन्त के (सह) साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है। अव्ययीभाव समास में पार और मध्य निपातन से एकारान्त होते हैं। (वा) वा वचन से पक्ष में षष्ठी समास भी होता है।

*उदा०-(पार) **पारं गङ्गाया इति पारेगङ्गम्।** गङ्गा के पार यहां अव्ययीभाव समास और निपातन से एकार होगया। (मध्य) **मध्यं गङ्गाया इति मध्येगङ्गम्।** गङ्गा के बीच में। यहां अव्ययीभाव समास और निपातन से एकार होगया। षष्ठीसमास के पक्ष में-गङ्गायाः **पारमिति गङ्गापारम्।** गङ्गा के पार। यहां षष्ठीसमास होगया। गङ्गाया **मध्यमिति गङ्गामध्यम्।** गङ्गा का बीच। यहां षष्ठी समास होगया।*

*सिद्धि-(१) **पारेगङ्गम्।** पार+सु+गङ्गा+ङस्। पारे+गङ्गा। पारेगङ्ग+सु। पारेगङ्गम्।*

*यहां इस सूत्र से अव्ययीभाव समास होने पर **'अव्ययीभावश्च'** (२।४।१८) से नपुंसकलिङ्ग और **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से ह्रस्व होता है। **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से अम् आदेश होता है। ऐसे ही मध्येगङ्गम् अव्ययीभाव पक्ष में इस सूत्र से पारे मध्ये शब्द एकारान्त निपातित हैं।*

*(२) **गङ्गापारम्।** गङ्गा+ङस्+पार+सु। गङ्गापार+सु। गङ्गापारम्।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास होता है।*

संख्या–

(१५) संख्या वंश्येन।१६।

प०वि०-संख्या १।१ वंश्येन ३।१। वंशे भवो वंश्यः, तेन-वंश्येन (तद्धितवृत्तिः)। दिगादिभ्यो यत् (४।३।५४) इति यत् प्रत्ययः।

अनु०-'सुप् सुपा सह अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संख्या सुप् वंश्येन सुपा सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-संख्यावाचि सुबन्तं वंश्यवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवति।

उदा०-द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्याविति-द्विमुनि व्याकरणस्य। पाणिनिः पतञ्जलिश्च। त्रयो मुनयो व्याकरणस्य वंश्या इति त्रिमुनि व्याकरणस्य। पाणिनिः, पतञ्जलिः कात्यायनश्च।

आर्यभाषा-अर्थ-(संख्या) संख्यावाची सुबन्त का (वंश्येन) वंश्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और उसी की (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्याविति-द्विमुनि व्याकरणस्य।** पाणिनि और पतञ्जलि दो मुनि व्याकरणशास्त्र के एक वंश के हैं। **त्रयो मुनयो व्याकरणस्य वंश्या इति त्रिमुनि व्याकरणस्य।** पाणिनि, पतञ्जलि और कात्यायन ये तीन मुनि व्याकरणशास्त्र के एक वंश के हैं।*

विशेष-विद्या और जन्म दो प्रकार से वंश बनता है। यहां विद्या-वंश से अभिप्राय जानना चाहिये।

*सिद्धि-**द्विमुनि।** द्वि+औ+मुनि+औ। द्विमुनि+सु। द्विमुनि। पूर्ववत्। ऐसे ही त्रिमुनि।*

संख्या-

(१६) नदीभिश्च।२०।

प०वि०-नदीभिः ३।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-'संख्या सुप् सह अव्ययीभावः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संख्या सुप् नदीभिः सुब्भिः सह विभाषा समासोऽव्ययीभावः।

अर्थः-संख्यावाचि सुबन्तं नदीवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, अव्ययीभावश्च समासो भवन्ति।

उदा०-सप्तानां गङ्गानां समाहार इति सप्तगङ्गम्। द्वयोर्यमुनयोः समाहार इति द्वियमुनम् पञ्चानां नदीनां समाहार इति पञ्चनदम्। सप्तानां गोदावरीणां समाहार इति सप्तगोदावरम्। **'नदीभिः संख्यायाः समाहारेऽव्ययीभावो वक्तव्यः'** इति वार्तिकेन समाहारेऽयं समासो विधीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(संख्या) संख्यावाची सुबन्त का (नदीभिः) नदीवाची समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है और उसकी (अव्ययीभावः) अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**सप्तानां गङ्गानां समाहार इति सप्तगङ्गम्।** सात गङ्गाओं का समूह। अर्थात् गङ्गा की सात धारायें। **द्वयोर्यमुनयोः समाहार इति द्वियमुनम्।** दो यमुनाओं का समूह। अर्थात् यमुना की दो शाखायें। **पञ्चानां नदीनां समाहार इति पञ्चनदम्।** पांच नदियों का समूह-पंजाब। **सप्तानां गोदावरीणां समाहार इति सप्तगोदावरम्।** सात गोदावरी नदियों का समूह। **नदीभिः संख्यया समाहारेऽव्ययीभावो वक्तव्यः।** इस वार्तिक से समाहार अर्थ में ही यह अव्ययभाव समास किया जाता है।*

*सिद्धि-**सप्तगङ्गम्।** सप्त+आम्+गङ्गा+आम्। सप्तगङ्ग+सु। सप्तगङ्गम्। पूर्ववत् (१।२।१७) 'अतोऽम्' (७।१।२४) से 'सु' को 'अम्' आदेश होता है। ऐसे ही-पञ्चनदम् आदि।*

अन्यपदार्थे सुप्-

अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्।२१।

प०वि०-अन्यपदार्थे ७।१ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-'संख्या' इति निवृत्तम्, 'नदीभिः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अन्यपदार्थे च सुप् नदीभिः सुब्भिः सह विभाषा समासः संज्ञायामव्ययीभावः।

अर्थः-अन्यपदार्थे च वर्तमानं सुबन्तं नदीवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह समस्यते संज्ञायां विषयेऽव्ययीभावश्च समासो भवति। विभाषाऽधिकारेऽयं नित्यसमास एव, यतो हि विग्रहवाक्येन न संज्ञाऽवगम्यते।

उदा०-उन्मत्तगङ्गं नाम देशः। लोहितगङ्गं नाम देशः। कृष्णगङ्गं नाम देशः। शनैर्गङ्गं नाम देशः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्यपदार्थे) अन्यपदार्थ में (च) भी वर्तमान सुबन्त का (नदीभिः) नदीवाची समर्थ सुबन्तों के साथ (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में समास होता है (अव्ययीभावः) और उसकी अव्ययीभाव संज्ञा होती है।

*उदा०-**उन्मत्तगङ्गं नाम देशः।** यह उन्मत्तगङ्ग नामक देश है। **लोहितगङ्गं नाम देशः।** यह लोहितगङ्ग नामक देश है। **कृष्णगङ्गं नाम देशः।** यह कृष्णगङ्ग नामक देश है। **शनैर्गङ्गं नाम देशः।** यह शनैर्गङ्ग नामक देश है।*

*सिद्धि-**उन्मत्तगङ्गम्।** उन्मत्ता+सु+गङ्गा+सु। उन्मत्तगङ्ग+सु। उन्मत्तगङ्गम्।*

*यहां 'स्त्रियाः पुंवद्०' (६।३।३४) से 'उन्मत्ता' शब्द को पुंवद्भाव होता है। शेष कार्य पूर्ववत् (२।१।१७) है। ऐसे ही-**लोहितगङ्गम्, उन्मत्तगङ्गम्।***

***विशेष**-यह विभाषा के अधिकार में भी नित्य समास है क्योंकि विग्रह वाक्य से संज्ञा का ज्ञान नहीं हो सकता।*

इति अव्ययीभावप्रकरणम्।

तत्पुरुषप्रकरणम्

अधिकारः-

(१) तत्पुरुषः।२२।

प०वि०-तत्पुरुषः १।१

अर्थः-'तत्पुरुषः' इत्यधिकारोऽयम्, 'शेषो बहुव्रीहिः' (२।२।२३) इति यावत्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(तत्पुरुषः) यहां से लेकर '**शेषो बहुव्रीहिः**' (२।२।२३) तक तत्पुरुष संज्ञा का अधिकार है।*

द्विगुः-

(२) द्विगुश्च।२३।

प०वि०-द्विगुः १।१ च अव्ययपदम्।

अन्वयः-द्विगुश्च समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-द्विगुश्च समासस्तत्पुरुषसंज्ञको भवति।

उदा०-पञ्चराजी। दशराजी। पञ्चराजम्। दशराजम्। द्विगोस्तत्पुरुषे समासान्ताः प्रयोजनम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(द्विगुः) द्विगु समास की (च) भी तत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**पञ्चराजी। दशराजी। पञ्चराजम्। दशराजम्।** पांच राजाओं का समूह। दश राजाओं का समूह।*

द्विगु समास की तत्पुरुष संज्ञा का यह प्रयोजन है कि उससे समासान्त प्रत्यय हो जाये।

***सिद्धि-पञ्चराजी।** पञ्च+राजन्+टच्। पञ्च+राजन्+अ। पञ्चराज+ङीप्। पञ्च+राज+ई। पञ्चराजी+सु। पञ्चराजी।*

*यहां '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५०) से समाहार अर्थ में द्विगु समास है। इस सूत्र से द्विगु समास की तत्पुरुष संज्ञा की गई है। द्विगुसमास की तत्पुरुष संज्ञा होने*

से 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' (५।४।९१) से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही दशराजी।

द्वितीयातत्पुरुषः--

(१) द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः।२४।

प०वि०-द्वितीया १।१ श्रित-अतीत-पतित-गत-अत्यस्त-प्राप्त-आपन्नैः ३।३।

स०-श्रितश्च अतीतश्च प्राप्तश्च आपन्नश्च ते-श्रित०आपन्नाः, तैः-श्रित०आपन्नैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-द्वितीया सुप् श्रित०आपन्नैः सुब्भिः सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-द्वितीयान्तं सुबन्तं श्रितादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(श्रितः) कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः। (अतीतः) कान्तारम् अतीत इति कान्तारातीतः। (पतितः) नरकं पतित इति नरकपतितः। (गतः) ग्रामं गत इति ग्रामगतः। (अत्यस्तः) तरङ्गान् अत्यस्त इति तरङ्गात्यस्तः। (प्राप्तः) सुखं प्राप्त इति सुखप्राप्तः। (आपन्नः) सुखम् आपन्न इति सुखापन्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(द्वितीया) द्वितीयान्त सुबन्त का (श्रितातीतपतितगतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः) श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न इन समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**(श्रित) कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः।** कष्ट को प्राप्त हुआ। **(अतीत) कान्तारम् अतीत इति कान्तारातीतः।** जङ्गल को लांघा हुआ। **(पतित) नरकं पतित इति नरकपतितः।** नरक में गिरा हुआ। **(गत) ग्रामं गत इति ग्रामगतः।** गांव को गया हुआ। **(अत्यस्त) तरङ्गान् अत्यस्त इति तरङ्गात्यस्तः।** तरङ्गों में फंसा हुआ। **(प्राप्त) सुखं प्राप्त इति सुखप्राप्तः।** सुख को प्राप्त हुआ। **(आपन्न) सुखम् आपन्न इति सुखापन्नः।** सुख को पाया हुआ।*

सिद्धि-कष्टश्रितः। *कष्ट+अम्+श्रित+सु। कष्टश्रित+सु। कष्टश्रितः। ऐसे ही-'**कान्तारातीतः**' आदि।*

स्वयं शब्दः–

(२) स्वयं क्तेन।२५।

प०वि०–स्वयम् अव्ययपदम्, क्तेन ३।१।

अन्वयः–स्वयं सुप् क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः–स्वयमित्यव्ययं सुबन्तं क्तप्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०–स्वयम्–स्वयंधौतौ पादौ। स्वयंविलीनमाज्यम्।

'स्वयम्' इत्यव्ययम् 'आत्मना' इत्यस्यार्थे वर्तते, तस्य द्वितीयया सह सम्बन्धो नोपपद्यतेऽतोऽत्र 'द्वितीया' इति नानुवर्तते।

आर्यभाषा–अर्थ–(स्वयम्) स्वयम् इस अव्यय सुबन्त का (क्तेन) क्त–प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०–**स्वयम्। स्वयं धौतौ पादौ। स्वयंधौतौ पादौ।** खुद धोये हुये पांव। **स्वयं विलीनमाज्यम्। स्वयंविलीनमाज्यम्।** खुद पिघला हुआ घी।*

*'**स्वयम्**' यह अव्यय '**अपने–आप**' अर्थ में है, इसका द्वितीया के साथ सम्बन्ध नहीं बनता है, अतः यहां 'द्वितीया' पद की अनुवृत्ति नहीं है।*

जहां समास होता है वहां दोनों पद एक हो जाते हैं और उनका एक ही स्वर होता है और जहां समास नहीं होता है वहां स्वयं और धौत पद पृथक्–पृथक् रहते हैं तथा उनका प्राप्त स्वर भी पृथक्–पृथक् रहते हैं तथा उनका प्राप्त स्वर भी पृथक्–पृथक् ही होता है।

*सिद्धि–स्वयम्+सु+धौत+सु। स्वयंधौत+सु। स्वयंधौत+अम्। स्वयंधौतम्। ऐसे ही–**स्वयंविलीनम्।***

खट्वाशब्दाः–

(३) खट्वा क्षेपे।२६।

प०वि०–खट्वा १।१ क्षेपे ७।१।

अनु०–द्वितीया, क्तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–खट्वा द्वितीया सुप् क्तेन सुपा सह नित्यं समासः क्षेपे तत्पुरुषः।

अर्थः–खट्वा इति द्वितीयान्तं सुबन्तं क्त–प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते, क्षेपे गम्यमाने, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-खट्वारूढो जाल्मः। खट्वाप्लुतो जाल्मः। खट्वारोहणं विमार्गप्रस्थानस्योपलक्षणम्। सर्व एवाविनीतः खट्वारूढ इत्युच्यते।

विभाषाऽधिकारेऽयं नित्यसमास एव। यतो हि विग्रहवाक्येन क्षेपो न गम्यते। क्षेपः=निन्दा।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(द्वितीया, खट्वा) द्वितीयान्त खट्वा सुबन्त का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है (क्षेपे) निन्दा विषय में और उस समास की (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

__उदा०-खट्वारूढो जाल्मः। खट्वाप्लुतो जाल्मः।__ खाट पर आरोहण किया हुआ दुष्ट। जो ब्रह्मचर्य आश्रम को पूरा न करके पहले ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर जाता है, वह निन्दनीय है, अतः उसे 'खट्वारूढ' कहते हैं।

__सिद्धि-खट्वारूढः।__ खट्वा+अम्+आरूढ+सु। खट्वारूढ+सु। खट्वारूढः। पूर्ववत्। ऐसे ही-__खट्वाप्लुतः।__

__विशेष__-यह विभाषा के अधिकार में भी नित्य समास है क्योंकि विग्रह-वाक्य से क्षेप (निन्दा) की प्रतीति नहीं होती है।

सामिशब्दः-

(४) सामि।२७।

प०वि०-सामि अव्ययपदम्।

अनु०:-'द्वितीया' इति नानुवर्ततेऽव्ययेन सामिशब्देन सह सम्बन्धाभावात्। 'क्तेन' इत्यनुवर्तते। सामिशब्दोऽर्धवाची।

अन्वयः-सामि सुप् क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-'सामि' इत्यव्ययं क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-सामि भुक्तमिति सामिभुक्तम्। सामि पीतमिति सामिपीतम्। सामि कृतमिति सामिकृतम्। यत्र समासस्तत्रैकपद्यमेकस्वर्यं च भवति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(सामि) अर्धवाची अव्यय सामि सुबन्त का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

__उदा०-सामि भुक्तमिति सामिभुक्तम्।__ आधा खाया। __सामि पीतमिति सामिपीतम्।__ आधा पीया। __सामि कृतमिति सामिकृतम्।__ आधा किया। जहां समास है वहां एक पद और एक स्वर होता है।

*सिद्धि-**सामिभुक्तम्**। सामि+सु+भुक्त+सु। सामिभुक्त+सु। सामिभुक्तम्। ऐसे ही-**सामिपीतम्, सामिकृतम्**।*

कालवाचिन:-

काला: ।२८।

प०वि०-काला: १।३।

अनु०-द्वितीया, क्तेन इति चानुवर्तते।

अन्वय:-काला द्वितीया: सुप: क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुष:।

अर्थ:-कालवाचिनो द्वितीयान्ता: सुबन्ता: क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-अह: अति सृता इति अहरतिसृता मुहूर्ता:। मासं प्रमित इति मासप्रमितश्चन्द्रमा:। मासं प्रमातुमारब्ध: प्रतिपदाचन्द्र इत्यर्थ:।

आर्यभाषा-अर्थ-(काला:) कालवाची सुबन्तों का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उस समास की (तत्पुरुष:) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**अह: अतिसृता इति अहरतिसृता मुहूर्ता:**। दिन में गति करनेवाले मुहूर्त। **रात्रिम् अतिसृता इति रात्र्यतिसृता मुहूर्ता:**। रात्रि में गति करनेवाले मुहूर्त। **मासं प्रमित इति मासप्रमितश्चन्द्रमा:**। मास को मापने का आरम्भ करनेवाला प्रतिपदा का चन्द्रमा।*

विशेष-ज्योतिषशास्त्र के अनुसार छ: मुहूर्त ऐसे हैं जब सूर्य उत्तरायण में होता है तब वे आते हैं और जब सूर्य दक्षिणायन में होता है तब वे रात्रि में आते हैं। इन छ: मुहूर्तों का रात्रि और दिन का अत्यन्त संयोग नहीं होता है। अत्यन्तसंयोग अर्थ में आगामी सूत्र में समास विधान किया गया है।

*सिद्धि-**अहरतिसृता:**। अहर्+अम्+अतिसृत+जस्। अहरतिसृत+जस्। अहरतिसृता:। ऐसे ही-**रात्र्यतिसृता:**।*

कालवाचिन:-

अत्यन्तसंयोगे च ।२९।

प०वि०-अत्यन्तसंयोगे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-अत्यन्तश्चासौ संयोग इति अत्यन्तसंयोग: तस्मिन्-अत्यन्तसंयोगे (कर्मधारय:)।

अनु०-काला इत्यनुवर्तते, क्तेन इति निवृत्तम्।

अन्वयः-काला द्वितीयाः सुपः क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-कालवाचिनो द्वितीयान्ताः सुबन्ताः समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन ममस्यन्ते, अत्यन्तसंयोगे गम्यमाने, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-मुहूर्तं सुखमिति मुहूर्तसुखम्। सर्वरात्रं कल्याणी इति सर्वरात्रकल्याणी। सर्वरात्रं शोभना इति सर्वरात्रशोभना।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालाः) कालवाची सुबन्तों का किसी समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (अत्यन्तसंयोगे) अत्यन्तसंयोग अर्थ में और उस समास की (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**मुहूर्तं सुखमिति मुहूर्तसुखम्।** एक मुहूर्तभर सुख। **सर्वरात्रं कल्याणी इति सर्वरात्रकल्याणी।** सारी रात कल्याणवाली रही। **सर्वरात्रं शोभना इति सर्वरात्रशोभना।** सारी रात सोहणी रही।*

विशेष-बीस कला का एक मुहूर्त होता है। पन्द्रह मुहूर्त का एक दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि अर्थात् तीस मुहूर्त के दिन और रात होते हैं।

*सिद्धि-**मुहूर्तसुखम्।** मुहूर्त+अम्+सुख+सु। मुहूर्तसुख+सु। मुहूर्तसुख+अम्। मुहूर्तसुखम्। ऐसे ही-**सर्वरात्रम्** आदि।*

तृतीयातत्पुरुषः--

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।३०।

प०वि०-तृतीया १।१ तत्कृतार्थेन ३।१ गुणवचनेन ३।१।

स०-तेन कृतमिति तत्कृतम्। तत्कृतं च अर्थश्च एतयोः समाहारः-तत्कृतार्थम्, तेन-तत्कृतार्थेन (तृतीयातत्पुरुषगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। गुणं वक्तीति गुणवचनः, तेन-गुणवचनेन (उपपदसमासः) अत्र गुणवचनं तत्कृतार्थेन सह सम्बध्यते।

अन्वयः-तृतीया सुप् तत्कृतार्थेन गुणवचनार्थेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-तृतीयान्तं सुबन्तं तत्कृतेन गुणवचनेन समर्थेन सुबन्तेन, अर्थशब्देन च सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। तत्कृतेन तृतीयान्तार्थकृतेनेत्यभिप्रायः।

उदा०-(तत्कृतेन) शङ्कुलया खण्ड इति शङ्कुलाखण्डः। किरिणा काण इति किरिकाणः। (अर्थेन) धान्येन अर्थ इति धान्यार्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (गुणवचनेन) गुणवाची (तत्कृत-अर्थेन) तत्कृत समर्थ सुबन्त तथा अर्थ शब्द के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उस समास की (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यहां तत्कृत का अर्थ तृतीयान्त पद के अर्थ से किया हुआ खण्ड आदि है।

*उदा०-(तत्कृत) **शङ्कुलया खण्ड इति शङ्कुलाखण्डः।** सरोता से किया हुआ सुपारी आदि का टुकड़ा। **किरिणा काण इति किरिकाणः।** बाण से किया गया काणा। (अर्थ) **धान्येन अर्थ इति धान्यार्थः।** धान्य=अन्न से प्रयोजन।*

*सिद्धि-शङ्कुलाखण्डः। शङ्कुला+टा+खण्ड+सु। खङ्कुलाखण्ड+सु। शङ्कुलाखण्डः। ऐसे ही-**किरिकाणः, धान्यार्थः।***

तृतीया-

(१) पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः।३१।

प०वि०-पूर्व-सदृश-सम-ऊनार्थ-कलह-निपुण-मिश्र-श्लक्ष्णैः ३।३।

स०-पूर्वश्च सदृशश्च समश्च ऊनार्थश्च कलहश्च निपुणश्च मिश्रश्च श्लक्ष्णश्च ते-पूर्व०श्लक्ष्णाः, तैः-पूर्व०श्लक्ष्णैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'तृतीया' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीया सुप् पूर्व०श्लक्ष्णैः सुब्भिः सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-तृतीयान्तं सुबन्तं पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(पूर्वः) मासेन पूर्व इति मासपूर्वः। (सदृशः) पित्रा सदृश इति पितृसदृशः। (समः) पित्रा सम इति पितृसमः। (ऊनार्थः) माषेण ऊनमिति माषोणम्। माषेण विकलम् इति माषविकलम्। (कलहः) असिना कलह इति असिकलहः। (निपुणः) वाचा निपुण इति वाङ् निपुणः। (मिश्रः) गुडेन मिश्र इति गुडमिश्रः। (श्लक्ष्णः) आचारेण श्लक्ष्ण इति आचारश्लक्ष्णः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (पूर्व०श्लक्ष्णैः) पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(पूर्व) **मासेन पूर्व इति मासपूर्वः।** एक मास से पहले। (सदृश) **पित्रा सदृश इति पितृसदृशः।** पिता के समान। (सम) **पित्रा सम इति पितृसमः।** पिता के तुल्य। (ऊनार्थ) **माषेण ऊनमिति माषोणम्।** एक माशा कम। **माषेण विकलमिति माषविकलम्।** एक मासा कम। (कलह) **असिना कलहः।** तलवार से झगड़ा। (निपुण) **वाचा निपुण इति वाङ् निपुणः।** बोलने में चतुर। (मिश्र) **गुडेन मिश्र इति गुडमिश्रः।** गुड़ मिला हुआ। (श्लक्ष्ण) **आचारेण श्लक्ष्णः इति आचारश्लक्ष्णः।** व्यवहार में चिकणा।*

कर्तरि करणे च तृतीया-

(२) कर्तृकरणे कृता बहुलम्।३२।

प०वि०-कर्तृ-करणे ७।१ कृता ३।१ बहुलम् १।१।

स०-कर्ता च करणं च एतयोः समाहारः कर्तृकरणम्, तस्मिन्-कर्तृकरणे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तृतीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्तृकरणे तृतीया सुप् कृता सुपा सह विभाषा बहुलं समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-कर्तरि करणे च वर्तमानं तृतीयान्तं सुबन्तं कृत्-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन बहुलं (क्वचित्) समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(कर्तरि) अहिना हत इति अहिहतः। (करणे) नखैर्निर्भिन्न इति नखनिर्भिन्नः। परशुना छिन्न इति परशुच्छिन्नः।

बहुलवचनाद् दात्रेण लूनवान्, परशुना छिन्नवान् अत्र समासो न भवति। पादहारकः, गलेचोपकः, अत्र समासो भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तृ-करणे) कर्ता और करण कारक में विद्यमान (तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (कृता) कृत् प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से (बहुलम्) कहीं-कहीं समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(कर्ता में) अहिना हत इति अहिहतः। सांप के काटने से मरा हुआ। (करण में) नखैर्निर्भिन्न इति नखनिर्भिन्नः। नाखूनों से नोचा हुआ। परशुना छिन्न इति परशुच्छिन्नः। फरसे से काटा हुआ।

यहां बहुल के कथन से सूत्रोक्त विधि से कहीं समास नहीं होता है। जैसे-दात्रेण लूनवान्। परशुना छिन्नवान् और कहीं समास हो भी जाता है। जैसे-पादहारकः, गलेचोपक इत्यादि।

सिद्धि-अहिहतः। अहि+टा+हत+सु। अहिहत+सु। अहिहतः। ऐसे ही-नखनिर्भिन्नः, परशुच्छिन्नः।

कर्तरि करणे च तृतीया–

(३) कृत्यैरधिकार्थवचने।३३।

प०वि०-कृत्यैः ३।३ अधिकार्थवचने ७।१।

स०-अधिकश्च असावर्थः इति अधिकार्थः, अधिकार्थस्य वचनमिति अधिकार्थवचनम्, तस्मिन्-अधिकार्थवचने (कर्मधारयगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। स्तुतिनिन्दाप्रयुक्तम् अध्यारोपितार्थवचनम् अधिकार्थवचनम्।

अनु०-तृतीया कर्तृकरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्तृकरणे तृतीया सुप् कृत्यैः सुब्भिः सह विभाषा समासोऽधिकार्थवचने तत्पुरुषः।

अर्थः-कर्तरि करणे च वर्तमानं तृतीयान्तं सुबन्तं कृत्य-प्रत्ययान्तैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यतेऽधिकार्थवचने गम्यमाने तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(कर्तरि) श्वभिर्लेह्य इति श्वलेह्यः कूपः। काकैः पेया इति काकपेया नदी। (करणे) वाष्पेण छेद्यानीति वाष्पच्छेद्यानि तृणानि। पूर्वसूत्रस्यैवायं विस्तरः।

आर्यभाषा-अर्थः-(कर्तृ-करणे) कर्ता और करण कारक में विद्यमान (तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (कृत्यैः) कृत्य-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है। (अधिकार्थवचने) किसी की स्तुति या निन्दा को बढ़ाचढ़ाकर कहने अर्थ में और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(कर्ता) श्वभिर्लेह्य इति श्वलेह्यः कूपः। इस कुएं को कुत्ते चाटते हैं। यहां कुएं की बढ़ाचढ़ाकर निन्दा की गई है। काकैः पेया इति काकपेया नदी। इस नदी में कौवे पानी पीते हैं। यहां नदी की बढ़ाचढ़ाकर निन्दा की गई है। (करण) वाष्पेण छेद्यानि इति वाष्पछेद्यानि तृणानि। ये तिनके इतने कोमल हैं कि भाप से कट सकते हैं। यहां तिनकों की कोमलता की बढ़ाचढ़ाकर स्तुति की गई है।

सिद्धि-(१) श्वलेह्यः। श्वन्+भिस्+लेह्य+सु। श्वलेह्य+सु। श्वलेह्यः। यहां 'लेह्यः' पद में 'लिह् आस्वादने' (अ०उ०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से कृत्य संज्ञक ण्यत् प्रत्यय है।

(२) काकपेया। काक+भिस्+पेया+सु। काकपेया+सु। काकपेया। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'अचो यत्' (३।१।९७) से कृत्य संज्ञक यत् प्रत्यय है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।३) से टाप् प्रत्यय होता है। पेय+टाप्=पेया।

विशेष-'कृत्याः' (३।२।९५) से लेकर 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।२।१२४) तक कृत्य-प्रत्ययों का अधिकार है। यहां उनमें से केवल यत् और ण्यत् प्रत्यय का ग्रहण करना अभीष्ट है, शेष तव्यत् आदि प्रत्ययों का नहीं।

व्यञ्जनवाचि-

(४) अन्नेन व्यञ्जनम्।३४।

प०वि०-अन्नेन ३।१ व्यञ्जनम् १।१।

अनु०-'तृतीया' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्यञ्जनं सुप् अन्नेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-व्यञ्जनवाचि तृतीयान्तं सुबन्तम् अन्नवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति। संस्कार्यमोदनादिकमन्नं भवति, संस्कारकं दध्यादिकं च व्यञ्जनमुच्यते।

उदा०-दध्ना उपसिक्त ओदन इति दध्योदनः। क्षीरेण उपसिक्त ओदन इति क्षीरौदनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(व्यञ्जनम्) व्यञ्जनवाची (तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (अन्नेन) अन्नवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। संस्कार करने योग्य ओदन आदि को अन्न कहते हैं और संस्कार के हेतु दही आदि को व्यञ्जन कहते हैं।

उदा०-दध्ना उपसिक्त ओदन इति दध्योदनः। दही से सींचा हुआ भात। क्षीरेण उपसिक्त ओदन इति क्षीरौदनः। दूध से सींचा हुआ भात।

सिद्धि-दध्योदनः । दधि+टा+ओदन+सु । दधि+ओदन । दध्योदन+सु । दध्योदनः । ऐसे ही-क्षीरौदनः ।

मिश्रीकरणवाचि-

(५) भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ।३५।

प०वि०-भक्ष्येण ३ ।१ मिश्रीकरणम् १ ।१ ।

अनु०-'तृतीया' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-मिश्रीकरणं सुप् भक्ष्येण सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः ।

अर्थः-मिश्रीकरणवाचि तृतीयान्तं सुबन्तं भक्ष्यवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । खर-विशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यं भवति तस्य संस्कारकं च मिश्रीकरणमुच्यते ।

उदा०-गुडेन मिश्रा धाना इति गुडधानाः । गुडेन मिश्राः पृथुका इति गुडपृथुकाः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(मिश्रीकरणम्) मिश्रीकरणवाची (तृतीया) तृतीयान्त सुबन्त का (भक्ष्येण) भक्ष्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है । कठोर एवं कोमल खाने योग्य धान आदि पदार्थ को भक्ष्य कहते हैं और उसके संस्कार के हेतु गुड़ आदि पदार्थ को मिश्रीकरण कहते हैं ।

उदा०-गुडेन मिश्रा धाना इति गुडधानाः । गुड़ से मिश्रित धान । गुडेन मिश्राः पृथुका इति गुडपृथुकाः । गुड़ से मिश्रित पृथुक (चिउड़ा) 'पृथुकः 'स्याच्चिपिटकः' इत्यमरः ।

सिद्धि-गुडधानाः । गुड+टा+धान+जस् । गुडधान+जस् । गुडधानाः । ऐसे ही-गुडपृथुकाः ।

चतुर्थीतत्पुरुषः

चतुर्थी-

(१) चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ।३६।

प०वि०-चतुर्थी १ ।१ तदर्थ-अर्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः ३ ।३ ।

स०-तस्मै इदं तदर्थम् । तदर्थं च, अर्थं च बलिश्च हितं च सुखं च रक्षितं च तानि-तदर्थ०रक्षितानि, तेषु-तदर्थ०रक्षितेषु (इतरेतरद्वन्द्वः) ।

अन्वयः-चतुर्थी सुप् तदर्थ०रक्षितैः सुब्भिः सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-चतुर्थ्यन्तं सुबन्तं तदर्थादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(तदर्थम्) तदर्थेन प्रकृतिविकारभावेऽयं समास इष्यते। यूपाय दारु इति युपदारु। कुण्डलाय हिरण्यमिति कुण्डलहिरण्यम्। (अर्थम्) अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता च भवति। ब्राह्मणायायं ब्रह्मणार्थः कम्बलः। ब्राह्मणायेयं ब्राह्मणार्था। ब्राह्मणायेदं ब्राह्मणार्थं पयः। (बलिः) कुबेराय बलिरिति कुबेरबलिः। (हितम्) गवे हितमिति गोहितम्। (सुखम्) गवे सुखमिति गोसुखम्। (रक्षितम्) गवे रक्षितमिति गोरक्षितम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(चतुर्थी) चतुर्थी-अन्त सुबन्त का (तदर्थ०रक्षितैः) तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**(तदर्थ)** यहां तदर्थ का अभिप्राय प्रकृति-विकृतिभाव है। विकृतिवाची चतुर्थ्यन्त सुबन्त का प्रकृतिवाची सुबन्त के साथ समास अभीष्ट है। **यूपाय दारु इति यूपदारु।** यज्ञीय स्तम्भ के लिये लकड़ी। **कुण्डलाय हिरण्यमिति कुण्डलहिरण्यम्।** कान के कुण्डल के लिये सोना। **(अर्थ)** चतुर्थ्यन्त सुबन्त का अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और वह सर्वलिङ्गी होता है। **ब्राह्मणायायं ब्राह्मणार्थः कम्बलः।** ब्राह्मण के लिये कम्बल। **ब्राह्मणायेयं ब्राह्मणार्था यवागूः।** ब्राह्मण के लिये लापसी। **ब्राह्मणायेदं ब्राह्मणार्थं पयः।** ब्राह्मण के लिये दूध या जल। **(बलि) कुबेराय बलिरिति कुबेरबलिः।** राजा कुबेर के लिये कर। **(हित) गवे हितमिति गोहितम्।** गौ के लिये हितकारी। **(सुख) गवे सुखमिति गोसुखम्।** गौ के लिये सुखकारी। **(रक्षित) गवे रक्षितमिति गोरक्षितम्।** गौ के लिये रखी हुई रोटी आदि।*

सिद्धि-यूपदारु। *यूप+ङे+दारु+सु। यूपदारु+सु। यूपदारु। ऐसे ही-**ब्राह्मणार्था, कुबेरबलिः, गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम्।***

पञ्चमीतत्पुरुषः

पञ्चमी–

(१) पञ्चमी भयेन।३७।

प०वि०-पञ्चमी १।१ भयेन ३।१।

अन्वयः-पञ्चमी सुप् भयेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुषः।

अर्थः-पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयशब्देन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(भयम्) चौराद् भयमिति चौरभयम्। वृकेभ्यो भयमिति वृकभयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पञ्चमी) पञ्चमी-अन्त सुबन्त का (भयेन) भय शब्द समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**(भय) चौराद् भयमिति चौरभयम्।** चोर से डर। **वृकेभ्यो भयमिति वृकभयम्।** भेड़ियों से डर।*

सिद्धि-चौरभयम्।** चौर+भ्यस्+भय+सु। चौरभय+सु। चौरभयम्। ऐसे ही-**वृकभयम्।

पञ्चमी—

(२) अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः।३८।

प०वि०-अपेत-अपोढ-मुक्त-पतित-अपत्रस्तैः ३।३ अल्पशः अव्ययपदम्।

स०-अपेतश्च अपोढश्च मुक्तश्च पतितश्च अपत्रस्तश्च ते-अपेत०अपत्रस्ताः, तैः-अपेत०अपत्रस्तैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'पञ्चमी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पञ्चम्यन्तं सुबन्तम् अपेतादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेनाल्पशः समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(अपेतः) सुखादपेत इति सुखापेतः। (अपोढः) कल्पनाया अपोढ इति कल्पनापोढः। (मुक्तः) चक्रात् मुक्त इति चक्रमुक्तः। (पतितः) पर्वतात् पतित इति पर्वतपतितः। (अपत्रस्तः) तरङ्गेभ्योऽपत्रस्त इति तरङ्गापत्रस्तः।

अत्र 'अल्पशः' इति समासस्याल्पविषयतां कथयति। अल्पा पञ्चमी समस्यते, न सर्वा। यथा-प्रासादात् पतितः। भोजनादपत्रस्त इति अत्र समासो न भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(पञ्चमी) पञ्चम्यन्त सुबन्त का (अपेत०अपत्रस्तैः) अपेत आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से (अल्पशः) थोड़ा समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(अपेत) **सुखादपेत इति सुखापेतः।** सुख से वियुक्त हुआ। **(अपोढ) कल्पनाया अपोढ इति कल्पनापोढः।** कल्पना से अतीत। **(मुक्त) चक्रात् मुक्त इति चक्रमुतः।** संसार चक्र से मुक्त हुआ। **(पतित) पर्वतात् पतित इति पर्वतपतितः।** पहाड़ से गिरा हुआ। **(अपत्रस्त) तरङ्गेभ्योऽपत्रस्त इति तरङ्गापत्रस्तः।** जल-तरंगों से व्याकुल हुआ।*

*विशेष-यहां 'अल्पशः' पद समास की अल्पविषयता का कथन करता है। थोड़ी पञ्चमी का समास होता है, सारी का नहीं। जैसे-**प्रासादात् पतितः।** महल से गिरा हुआ। **भोजनादपत्रस्तः।** भोजन से व्याकुल हुआ। यहां समास नहीं होता है।*

*सिद्धि-**सुखापेतः।** सुख+ङसि+अपेत+सु। सुखापेत+सु। सुखापेतः। ऐसे ही-**कल्पनापोढः, चक्रमुक्तः, पर्वतपतितः, तरङ्गापत्रस्तः।***

स्तोकादयः-

(३) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन।३६।

प०वि०-स्तोक-अन्तिक-दूरार्थ-कृच्छ्राणि १।३ क्तेन ३।१।

स०-स्तोकं च अन्तिकं च दूरं च तानि स्तोकान्तिकदूराणि। स्तोकान्तिकदूराणि अर्था येषां ते स्तोकान्तिकदूरार्थाः। स्तोकान्तिकदूरार्थाश्च कृच्छ्रं च तानि-स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-'पञ्चमी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि पञ्चम्यः सुपः क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-स्तोकान्तिकदूरार्थकानि कृच्छ्रशब्दश्च इति पञ्चम्यन्तानि सुबन्तानि क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(स्तोकम्) स्तोकात् मुक्त इति स्तोकान्मुक्तः। स्वल्पात् मुक्त इति स्वल्पान्मुक्तः। (अन्तिकम्) अन्तिकात् आगत इति

अन्तिकादागतः। अभ्याशात् आगत इति अभ्याशादागतः। (दूरम्) दूरात् आगत इति दूरादागतः। विप्रकृष्टात् आगत इति विप्रकृष्टादागतः। (कृच्छ्रम्) कृच्छ्रात् मुक्त इति कृच्छ्रान्मुक्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पञ्चमी) पञ्चमी-अन्त सुबन्त का (स्तोक०कृच्छ्राणि) स्तोक, अन्तिक और दूर तथा इनके अर्थवाले सुबन्तों और कृच्छ्र सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(स्तोक) **स्तोकाद् मुक्त इति स्तोकान्मुक्तः।** थोड़े से मुक्त हुआ। **स्वल्पाद् मुक्त इति स्वल्पान्मुक्तः।** बहुत थोड़े से मुक्त हुआ। **(अन्तिक) अन्तिकाद् आगत इति अन्तिकादागतः।** निकट से आया हुआ। **अभ्याशाद् आगत इति अभ्याशादागतः।** पास से आया हुआ। **(दूर) दूरात् आगत इति दूरादागतः।** दूर से आया हुआ। **विप्रकृष्टाद् आगत इति विप्रकृष्टादागतः।** दूर से आया हुआ। **(कृच्छ्र) कृच्छ्राद् मुक्त इति कृच्छ्रान्मुक्तः।** कष्ट से छूटा हुआ।*

*यहां समास पक्ष में **'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः'** (अष्टा० ६।३।२) से पञ्चमी विभक्ति का अलुक् होता है अर्थात् लोप नहीं होता है।*

*सिद्धि-**स्तोकान्मुक्तः।** स्तोक+ङसि+मुक्त+सु। स्तोकान्मुक्त+सु। स्तोकान्मुक्तः। ऐसे ही-**स्वल्पान्मुक्तः** आदि।*

सप्तमीतत्पुरुषः

सप्तमी-

(१) सप्तमी शौण्डैः।४०।

प०वि०-सप्तमी १।१ शौण्डैः ३।३।

अन्वयः-सप्तमी सुप् शौण्डैः सुब्भिः सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं शौण्डादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(शौण्डः) अक्षेषु शौण्ड इति अक्षशौण्डः। (धूर्तः) अक्षेषु धूर्त इति अक्षधूर्तः, इत्यादि।

शौण्ड। धूर्त। कितव। व्याड। प्रवीण। संवीत। अन्तर। अन्तर् शब्दस्त्वधिकरणप्रधान एव पठ्यते। अधिपटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण। इति शौण्डादिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (शौण्डैः) शौण्ड आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(शौण्डः) अक्षेषु शौण्ड इति अक्षशौण्डः। जूआ खेलने में चतुर। (धूर्तः) अक्षेषु धूर्त इति अक्षधूर्तः। जूआ खेलने में धूर्त।

सिद्धि-अक्षशौण्डः। अक्ष+सुप+शौण्ड+सु। अक्षशौण्ड+सु। अक्षशौण्डः। ऐसे ही-अक्षधूर्तः।

विशेष-यहां 'शौण्डैः' इस बहुवचन निर्देश से शौण्डादि-अर्थ का ग्रहण किया जाता है।

सप्तमी-

(२) सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च।४१।

प०वि०-सिद्ध-शुष्क-पक्व-बन्धैः ३।३ च अव्ययपदम्।

स०-सिद्धश्च शुष्कश्च पक्वश्च बन्धश्च ते-सिद्ध०बन्धाः, तैः-सिद्ध०बन्धैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'सप्तमी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तमी सुप् सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च सुब्भिः सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं सिद्धादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(सिद्धः) सांकाश्ये सिद्ध इति सांकाश्यसिद्धः। (शुष्कः) छायायां शुष्क इति छायाशुष्कः। (पक्वः) स्थाल्यां पक्व इति स्थालीपक्वः। (बन्धः) चक्रे बन्ध इति चक्रबन्धः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (सिद्ध०बन्धैः) सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध समर्थ सुबन्तों के साथ (च) भी (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(सिद्ध) सांकाश्ये सिद्ध इति सांकाश्यसिद्धः। सांकाश्य नगर में बना हुआ। (शुष्क) छायायां शुष्क इति छायाशुष्कः। छाया में सूखा हुआ। (पक्व) स्थाल्यां पक्व इति स्थालीपक्वः। डेगची में पका हुआ। (बन्ध) चक्रे बन्ध इति चक्रबन्धः। संसार चक्र में बंधा हुआ।

सिद्धि-सांकाश्यसिद्धः । सांकाश्य+ङि+सिद्ध+सु । सांकाश्यसिद्ध+सु । सांकाश्यसिद्धः । ऐसे ही-छायाशुष्कः, स्थालीपक्वः, चक्रबन्धः । सांकाश्य=जनक के भ्राता कुशध्वज की राजधानी ।

सप्तमी-

(३) ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ।४२।

प०वि०-ध्वाङ्क्षेण ३ ।१ क्षेपे ७ ।१ ।

अनु०-'सप्तमी' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-सप्तमी सुप् ध्वाङ्क्षेण सुपा सह विभाषा समासः क्षेपे तत्पुरुषः ।

अर्थः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं ध्वाङ्क्षवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, क्षेपे गम्यमाने, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।

उदा०-तीर्थे ध्वाङ्क्ष इति तीर्थध्वाङ्क्षः । तीर्थे काक इति तीर्थकाकः ।

*आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (ध्वाङ्क्षेण) कौवावाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (क्षेपे) निन्दा अर्थ में और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है । **तीर्थे ध्वाङ्क्ष इति तीर्थध्वाङ्क्षः । तीर्थे काक इति तीर्थकाकः ।***

यहां निन्दा यह है कि जैसे कौवे तीर्थ पर चिरकाल तक अवस्थित नहीं रहते, उड़ते रहते हैं, वैसे जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर चिरकाल तक नहीं ठहरता है उसे 'तीर्थकाक' कहते हैं ।

*सिद्धि-**तीर्थध्वाङ्क्षः ।** तीर्थ+ङि+ध्वाङ्क्ष+सु । तीर्थध्वाङ्क्ष+सु । तीर्थध्वाङ्क्षः । ऐसे ही-**तीर्थकाकः ।***

सप्तमी सुप्-

(३) कृत्यैर्ऋणे ।४३।

प०वि०-कृत्यैः ३ ।३ ऋणे ७ ।१ ।

अनु०-'सप्तमी' इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-सप्तमी सुप् कृत्यैः सुब्भिः सह विभाषा समास ऋणे तत्पुरुषः ।

अर्थः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं कृत्य-प्रत्ययान्तैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, ऋणे गम्यमाने, तत्पुरुषश्च समासो भवति ।

उदा०-मासे देयम् ऋणमिति मासदेयम्। संवत्सरे देयम् ऋणमिति संवत्सरदेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (कृत्यैः) कृत्य-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है। (ऋणे) ऋण अर्थ में और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**मासे देयम् ऋणमिति मासदेयम्।** एक मास में चुकाने योग्य ऋण। **संवत्सरे देयमृणमिति संवत्सरदेयम्।** एक साल में चुकाने योग्य ऋण।*

*सिद्धि-**मासदेयम्।** दा+यत्। देय+सु। देयम्। मास्+ङि+देय+सु। मासदेय+सु। मासदेयम्।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से कृत्यसंज्ञक यत् प्रत्यय है। 'ईद्यति' (६।४।६५) से ईकार आदेश और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है। ऐसे ही-**संवत्सरदेयम्।***

*विशेष-कृत्याः (३।१।९५) इस सूत्र से लेकर **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) तक तव्यत् आदि कृत्य प्रत्ययों का विधान किया गया है, किन्तु यहां केवल उनमें से 'यत्' प्रत्यय का ग्रहण करना ही अभीष्ट है।*

सप्तमी–

(४) संज्ञायाम्।४४।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-'सप्तमी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते, संज्ञायां गम्यमानायाम्, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-अरण्येतिलकाः। अरण्येमाषाः। वनेकिंशुकाः। वनेबिल्वकाः। कूपेपिशाचकाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (सुपा) समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा अर्थ में और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**अरण्येतिलकाः।** जंगली तिल। **अरण्येमाषाः।** जंगली उड़द। **वनेकिंशुकाः।** जंगली टेसू। **वनेबिल्वकाः।** जंगली बेलगिरी। **कूपेपिशाचकाः।** कुएं में रहनेवाले राक्षस।*

सिद्धि-अरण्येतिलकाः । अरण्य+ङि+तिलक+जस् । अरण्येतिक+जस् । अरण्येतिलकाः । यहां 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६ ।३ ।७) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।

विशेष-यह विभाषा के अधिकार में नित्य समास है, क्योंकि विग्रहवाक्य से संज्ञा की प्रतीति नहीं हो सकती।

अहोरात्रावयवाः-

(५) क्तेनाहोरात्रावयवाः ।४५ ।

प०वि०-क्तेन ३ ।१ अहोरात्र-अवयवाः १ ।३ ।

स०-अहश्च रात्रिश्च तौ-अहोरात्रौ, तयोः-अहोरात्रयोः, अहोरात्रयोरवयवा इति अहोरात्रावयवाः (द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'सप्तमी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्योऽहोरात्रावयवाः सुपः क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः ।

अर्थः-सप्तम्यन्ता अहरवयवा रात्र्यवयवाश्च सुबन्ताः क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(अहरवयवाः) पूर्वाह्णे कृतमिति पूर्वाह्णकृतम्। अपराह्णे कृतमिति अपराह्णकृतम्। (रात्र्यवयवाः) पूर्वरात्रे कृतमिति पूर्वरात्रकृतम्। अपररात्रे कृतमिति अपररात्रकृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त (अहोरात्रावयवाः) दिन के अवयववाची तथा रात्रि के अवयववाची सुबन्तों का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(दिन के अवयव) **पूर्वाह्णे कृतमिति पूर्वाह्णकृतम्।** दिन के पहले भाग में किया हुआ। **अपराह्णे कृतमिति अपराह्णकृतम्।** दिन के दूसरे भाग में किया हुआ। (रात्रि के अवयव) **पूर्वरात्रे कृतमिति पूर्वरात्रकृतम्।** रात्रि के पहले भाग में किया हुआ। **अपररात्रे कृतमिति अपररात्रकृतम्।** रात्रि के दूसरे भाग में किया हुआ।*

*सिद्धि-**पूर्वाह्णकृतम्।** कृ+क्त। कृत। पूर्वाह्ण+ङि+कृत+सु। पूर्वाह्णकाल+सु। पूर्वाह्णकृतम्। यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) से क्त प्रत्यय, तत्पश्चात् सप्तम्यन्त दिन अवयववाची पूर्वाह्ण शब्द का क्त-प्रत्ययान्त कृत शब्द के साथ समास होता है। ऐसे ही-**अपराह्णकृतम्, पूर्वरात्रकृतम्, अपररात्रकृतम्।***

तत्र-शब्दः--

(६) तत्र।४६।

प०वि०-तत्र अव्ययम्।

अनु०-'सप्तमी, क्तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सप्तमी सुप् क्तेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-'तत्र' इति सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(तत्र) तत्र भुक्तमिति तत्रभुक्तम्। तत्र कृतमिति तत्रकृतम्। समासपक्षे ऐकपद्यमैकस्वर्यं च भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) 'तत्र' इस (सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**तत्र भुक्तमिति तत्रभुक्तम्।** वहां खाया हुआ। **तत्र कृतमिति तत्रकृतम्।** वहां किया हुआ। समास पक्ष में दोनों पदों का एक पद और एक स्वर हो जाता है।*

*सिद्धि-**तत्रभुक्तम्।** भुज्+क्त। भुक्त। तत्र+ङि+भुक्त+सु। तत्र+भुक्त+सु। तत्रभुक्त। यहां प्रथम **'भुज् पालनाभ्यवहारयोः'** (रु०आ०) धातु से क्त-प्रत्यय, तत्पश्चात् 'तत्र' शब्द का क्त-प्रत्ययान्त भुक्त शब्द के साथ समास होता है। ऐसे ही-**तत्रकृतम्।***

सप्तमी--

(७) क्षेपे।४७।

प०वि०-क्षेपे ७।१।

अनु०-'सप्तमी, क्तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तमी सुप् क्तेन सुपा सह विभाषा समासः क्षेपे तत्पुरुषः।

अर्थः-सप्तम्यन्तं सुबन्तं क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, क्षेपे गम्यमाने तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-अवतप्ते नकुलस्थितमिति अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्। अत्र क्षेपोऽयम्-यथाऽवतप्ते नकुला न चिरं स्थातारो भवन्त्येवं कार्याण्यारभ्य यो न चिरं तिष्ठति स उच्यते-अवतप्तेनकुलस्थितं त एतदिति। उदके

विशीर्णमिति उदकेविशीर्णम्। प्रवाहे मूत्रितमिति प्रवाहेमूत्रितम्। भस्मनि हुतमिति भस्मनिहुतम्। निष्फलं यत् क्रियते तदेवमुच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(सप्तमी) सप्तमी-अन्त सुबन्त का (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (क्षेपे) निन्दा अर्थ में और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**अवतप्ते नकुलस्थिमिति अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्।** यहां निन्दा अर्थ यह है कि जैसे तपे हुये स्थान पर नेवले चिरकाल तक अवस्थित नहीं रहते वैसे जो व्यक्ति कार्यों को आरम्भ करके वहां चिरकाल तक अवस्थित नहीं रहता है उसे '**अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्**' ऐसा कहा जाता है। **उदके विशीर्णमिति उदकेविशीर्णम्।** पानी में डाला हुआ। **प्रवाहे मूत्रितमिति प्रवाहेमूत्रितम्।** जलप्रवाह में मूता हुआ। **भस्मनि हुतमिति भस्मनिहुतम्।** राख में आहुत किया हुआ। जो कार्य निष्फल किया जाता है वह ऐसे कहा जाता है।*

*सिद्धि-**अवतप्तेनकुलस्थितम्।** अवतप्त+ङि+नकुलस्थित+सु। अवतप्ते-नकुलस्थित+सु। अवतप्तेनकुलस्थितम्। यहां '**तत्पुरुषे कृति बहुलम्**' (६।३।१२) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।*

पात्रेसम्मिताः-

(८) पात्रेसम्मितादयश्च।४८।

प०वि०-पात्रेसम्मितादयः १।३ च अव्ययम्।

स०-पात्रेसम्मित आदिर्येषां ते-पात्रेसम्मितादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सप्तमी, क्षेपे इति चानुवर्तते।

अर्थः-पात्रेसम्मितादयः सप्तम्यन्ताः समुदाया एव निपात्यन्ते क्षेपे गम्यमाने तत्पुरुषश्च समासो भवति। पात्रेसम्मिताः। पात्रेबहुलाः।

पात्रेसम्मिताः। पात्रेबहुलाः। उदरक्रिमिः। कूपकच्छपः। कूपचूर्णकः। अवटकच्छपः। कूपमण्डूकः। कुम्भमण्डूकः। उदपानमण्डूकः। नगरकाकः। नगरवायसः। मातरिपुरुषः। पिण्डीशूरः। गेहेशूरः। गेहेनर्दी। गेहेक्ष्वेडी। गेहेविजिती। गेहेव्याडः। गेहेतृप्तः। गेहेधृष्टः। गर्भेतृप्तः। आखनिकवकः। गोष्ठेशूरः। गोष्ठेविजिती। गोक्ष्वेडी। गेहेमेही। गोष्ठेपटुः। गोष्ठेपण्डितः। गोष्ठेप्रगल्भः। कर्णेटिट्टिभः। कर्णेचुरचुरा। इति पात्रेसम्मितादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पात्रेसम्मितादयः) 'पात्रेसम्मिताः' इत्यादि समुदाय (च) ही (सप्तमी) सप्तम्यन्त निपातित किये जाते हैं (क्षेपे) निन्दा अर्थ में और वह (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास होता है।

*उदा०-**पात्रेसम्मिताः।** यहां पात्र का अभिप्राय भोजन-पात्र है। जो भोजनकाल में ही सम्मिलित होते हैं, अन्य किसी कार्य में नहीं। **पात्रेबहुलाः।** जो भोजनकाल में ही अधिकतर उपस्थित रहते हैं।*

*सिद्धि-**पात्रेसम्मिताः।** पात्र+ङि+सम्मित+जस्। पात्रेसम्मिताः। यहां निपातन से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है। ऐसे ही-**'पात्रेबहुलाः'** आदि।*

समानाधिकरणतत्पुरुषः (कर्मधारयः)

पूर्वादयः-

(१) पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन।४६।

प०वि०-पूर्वकाल-एक-सर्व-जरत्-पुराण-नव-केवलाः १।३ समानाधिकरणेन ३।१।

स०-पूर्वकालश्च एकश्च सर्वश्च जरत् च पुराणश्च नवश्च केवलश्च ते-पूर्वकाल०केवलाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समानम् अधिकरणं यस्य सः-समानाधिकरणः, तस्मिन्-समानाधिकरणे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सुप्, सह सुपा इति च पूर्ववदनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्व०केवलाः सुपः समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-पूर्वकालवाचिन एकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः सुबन्ताः समानाधिकरणेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(पूर्वकालवाचिनः) स्नातश्चासौ अनुलिप्तश्चेति स्नातानुलिप्तो ब्राह्मणः। कृष्टं च तत् समीकृतं चेति कृष्टसमीकृतं क्षेत्रम्। (एकः) एका चेयं शाटी इति एकशाटी। (सर्वः) सर्वे च ते देवा इति सर्वदेवाः। (जरत्) जरत् चासौ हस्तीति जरद्हस्ती। (पुराणः) पुराणं च तदन्नमिति

पुराणान्नम्। (नवः) नवं च तदन्नमिति नवान्नम्। (केवलः) केवलं च तदन्नमिति केवलान्नम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूर्वकाल०केवलाः) पूर्वकालवाची तथा एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान द्रव्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(पूर्वकाल) **स्नातश्चासौ अनुलिप्त इति स्नातानुलिप्तो ब्राह्मणः।** पहले स्नान किया पश्चात् चन्दन लेप किया हुआ ब्राह्मण। **कृष्टं च तत् समीकृतमिति कृष्टसमीकृतं क्षेत्रम्।** पहले हल चलाया पश्चात् मैज से एक समान किया हुआ खेत। (एक) **एका चेयं शाटीति एकशाटी।** एक साड़ी। (सर्व) **सर्वे च ते देवा इति सर्वदेवाः।** सब विद्वान्। (जरत्) **जरत् चासौ हस्तीति जरद्हस्ती।** बूढ़ा हाथी। (पुराण) **पुराणं च तद् अन्नमिति पुराणान्नम्।** पुराना अनाज। (नव) **नवं च तद् अन्नमिति नवान्नम्।** नया अनाज। (केवल) **केवलं च तद् अन्नमिति केवलान्नम्।** केवल अनाज।*

*सिद्धि-**स्नातानुलिप्तः।** स्नात+सु+अनुलिप्त+सु। स्नातानुलिप्त+सु। स्नातानुलिप्तः। ऐसे ही '**कृष्टसमीकृतम्**' आदि।*

*विशेष-जहां दो पद एक अधिकरण=द्रव्य के वाची होते हैं और उनमें समान विभक्ति समान वचन और समान लिङ्ग होता है उसे समानाधिकरण कहते हैं। '**तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः**' (१।२।४२) से समानाधिकरण तत्पुरुष की कर्मधारय संज्ञा होती है।*

दिक् संख्या च-

(२) दिक्संख्ये संज्ञायाम्।५०।

प०वि०-दिक्-संख्ये १।२ संज्ञायाम् ७।१।

स०-दिक् च संख्या च ते दिक्संख्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दिक्संख्ये सुपौ समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासः संज्ञायां कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-दिग्वाचि संख्यावाचि च सुबन्तं समानाधिकरणेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते संज्ञायां विषये समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(दिक्) पूर्वा चेयम् इषुकामशमी इति पूर्वेषुकामशमी। अपरा चेयम् इषुकामशमी इति अपरेषुकामशमी। (संख्या) पञ्च च ते जना इति पञ्चजनाः। सप्त च ते ऋषय इति सप्तर्षयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दिक्संख्ये) दिशावाची और संख्यावाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(दिक्) **पूर्वा चेयम् इषुकामशमी इति पुर्वेषुकामशमी।** इषुकामशमी नगरी की पूर्व दिशा। **अपरा चेयम् इषुकामशमी इति अपरेषुकामशमी।** इषुकामशमी नगरी की पश्चिम दिशा। **(संख्या) पञ्च च ते जना इति पञ्चजनाः।** पांच जन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद)। **सप्त च ते ऋषय इति सप्तर्षयः।** सात गोत्रकर्त्ता ऋषि (जमदग्नि, गोतम, भरद्वाज, कश्यप, वसिष्ठ, अगस्त्य, विश्वामित्र)।*

*सिद्धि-**पूर्वेषुकाशमी।** पूर्वा+सु। इषुकामशमी+सु। पूर्वेषुकामशमी। ऐसे ही-'**पञ्चजनाः**' आदि।*

दिक् संख्या च-

(३) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च।५१।

प०वि०-तद्धितार्थ-उत्तरपद-समाहारे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-तद्धितस्यार्थ इति तद्धितार्थः। तद्धितार्थश्च उत्तरपदं च समाहारश्च एतेषां समाहारः, तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारम्, तस्मिन्-तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-दिक्संख्ये, समानाधिकरणेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च दिक्संख्ये सुपौ समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे परतः, समाहारे चाभिधेये दिग्वाचि संख्यावाचि च सुबन्तं समानाधिकरणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, समासश्च तत्पुरुषो भवति।

उदा०-तद्धितार्थे (दिक्) पूर्वस्यां शालायां भवः-पौर्वशालः। अपरस्यां शालायां भवः-आपरशालः। **(संख्या)** पञ्चानां नापितानामपत्यम्-

पाञ्चनापितिः। पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इति पाञ्चकपालः पुरोडाशः। **उत्तरपदे (दिक्)** पूर्वा चेयं शालेति पूर्वशाला, पूर्वशाला प्रिया यस्य सः-पूर्वशालप्रियः। अपरा चेयं शालेति अपरशाला, अपरशाला प्रिया यस्य सः-अपरशालप्रियः। **(संख्या)** पञ्च गावो धनं यस्य सः-पञ्चगवधनः। पञ्च नावो धनं यस्य सः-पञ्चनावधनः। **समाहारे (दिक्)** समाहारे दिङ् न सम्भवति, ततो नास्त्युदाहरणम् **(संख्या)** पञ्चानां पूलानां समाहार इति पञ्चपूली। अष्टानामध्यायानां समाहार इति अष्टाध्यायी।

आर्यभाषा-अर्थ-(तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे) तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे होने पर और समाहार वाच्य होने पर (च) भी (दिक्संख्ये) दिशावाची और संख्यावाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**तद्धितार्थ (दिशा)-पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः।** पूर्व दिशा की शाला में रहनेवाला। **अपरस्यां शालायां भवः आपरशालः।** पश्चिम दिशा की शाला में रहनेवाला। **(संख्या) पञ्चानां नापितानामपत्यमिति पाञ्चनापितिः।** पांच नाइयों का पुत्र। यह तब सम्भव है जब एक पत्नी के पांच पति हों। **पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इति पञ्चकपालः।** पांच शरावों में पकाया हुआ पुरोडाश (यज्ञशेष)। **उत्तरपद (दिशा)-पूर्वा चेयं शाला इति पूर्वशाला। पूर्वशाला प्रिया यस्य सः-पूर्वशालप्रियः।** वह जिसे पूर्व दिशा की शाला प्रिय है। **अपरा चेयं शाला इति अपरशाला। अपरशाला प्रिया यस्य सः-अपरशालप्रियः।** वह जिसे पश्चिम दिशा की शाला प्रिय है। **(संख्या) पञ्च गावो धनं यस्य सः-पञ्चगवधनः।** वह जिसके पास पांच गौ धन है। **पञ्च नावो धनं यस्य सः-पञ्चनावधनः।** वह जिसके पास पांच नौका धन है। **समाहार (दिशा)**-समाहार अर्थ में दिशा सम्भव नहीं, अतः कोई उदाहरण नहीं। **(संख्या) पञ्चानां पूलानां समाहार इति पञ्चपूली।** पांच पूलों का समूह। **अष्टानामध्यायानां समाहार इति अष्टाध्यायी।** आठ अध्यायों का समूह।*

*सिद्धि-(१) **पौर्वशालः।** पूर्वा+ङि+शाला+ङि+ञ। पूर्व+शाला+अ। पौर्वशाल्+अ। पौर्वशाल+सु। पौर्वशालः।*

*यहां **'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः'** (४।२।१०७) से 'भव' अर्थ में 'ञ' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से आकार लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **पाञ्चनापितिः।** पञ्च+आम्+नापित+आम्+इञ्। पञ्च+नापित+इ। पाञ्चनापिति+सु। पाञ्चनापितिः।*

यहां 'अत इञ्' (४।२।९५) से 'अपत्य' अर्थ में तद्धित इञ् प्रत्यय है। यहां पूर्ववत् अकार लोप और आदिवृद्धि होती है।

*(३) **पञ्चकपालः।** पञ्च+सुप्+कपाल+सुप्+अण्। पञ्चकपाल+०। पञ्चकपाल+सु। पञ्चकपालः।*

*यहां 'संस्कृतं भक्षाः' (४।२।१६) से संस्कृत अर्थ में तद्धित अण् प्रत्यय है और उसका '**द्विगोर्लुगनपत्ये**' (४।२।८९) से लुक् हो जाता है।*

*(४) **पूर्वशालप्रियः।** पूर्वा+सु+शाला+सु+प्रिया+सु। पूर्वशालप्रिय+सु। पूर्वशालप्रियः।*

*(५) **पञ्चगवधनः।** पञ्च+जस्+गो+जस्+धन+सु। पञ्चगोधन+ पञ्चगो+टच्+धन। पञ्चगव+अ+धन। पञ्चगवधन+सु। पञ्चगवधनः।*

*यहां पञ्च, गौ, धन शब्दों की त्रिपद बहुव्रीहि समास में धन शब्द उत्तरपद में होने पर 'पञ्चगो' की इस सूत्र से तत्पुरुष संज्ञा होती है। अतः यहां '**गोरतद्धितलुकि**' (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। टच् प्रत्यय के परे होने पर '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७५) से गोशब्द के ओकार को अव्-आदेश होता है।*

*(६) **पञ्चनावधनः।** पञ्च+जस्+नौ+जस्+धन+सु। पञ्चनौधन। पञ्च+नौ+टच्+धन। पञ्चनाव्+अ+धन। पञ्चनावधन+सु। पञ्चनावधनः।*

यहां 'नावो द्विगोः' (५।४।९९) से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(७) **पञ्चपूली।** पञ्च+आम्+पूल+आम्। पञ्च+पूल। पञ्चपूल+ङीप्। पञ्चपूल+ई। पञ्चपूली+सु। पञ्चपूली।*

*यहां समाहार अर्थ में संख्यावाची पञ्च शब्द का पूल शब्द के साथ समास है। '**संख्यापूर्वो द्विगुः**' (२।१।५१) से इसकी द्विगु संज्ञा है। स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में '**द्विगोः**' (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**अष्टाध्यायी।***

द्विगुसंज्ञा–

(४) संख्यापूर्वो द्विगुः।५२।

प०वि०-संख्यापूर्वः १।१ द्विगुः १।१।

स०-संख्या पूर्वा यस्मिन् स संख्यापूर्वः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-'**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' इत्यत्र संख्यापूर्वो यः समासः स द्विगुसंज्ञको भवति।

उदा०-**तद्धितार्थे (संख्या)**-पञ्चानां नापितामपत्यमिति पांचनापितिः। पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इति पञ्चकपाल ओदनः। **उत्तरपदे (संख्या)**-पञ्च

गावः समाहृता इति पञ्चगवम्। पञ्चगवं धनं यस्य स पञ्चगवधनः। पञ्च नावः समाहृता इति पञ्चनावम्। पञ्चनावं प्रियं यस्य स पञ्चनावप्रियः। **समाहारे (संख्या)**-पञ्चानां पूलानां समाहार इति पञ्चपूली। अष्टानाम् अध्यायानां समाहार इति अष्टाध्यायी।

आर्यभाषा-अर्थ- 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) इस सूत्र से (संख्यापूर्वः) जो संख्यापूर्ववाला समास है उसकी (द्विगुः) द्विगु संज्ञा होती है और जो दिशापूर्ववाला समास है उसकी कर्मधारय संज्ञा है।

*उदा०-**तद्धितार्थ (संख्या)-पञ्चानां नापितानामपत्यमिति पाञ्चनापितिः।** इत्यादि सब उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ पूर्व सूत्र के भाषार्थ में लिख दिया है।*

कर्मधारयतत्पुरुषः

कुत्सितानि—

(५) कुत्सितानि कुत्सनैः।५३।

प०वि०-कुत्सितानि १।३ कुत्सनैः ३।३।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कुत्सितानि सुपः कुत्सनैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-कुत्सित-वाचीनि सुबन्तानि समानाधिकरणैः कुत्सनवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यन्ते कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-वैयाकरणश्चासौ खसूचिरिति वैयाकरणखसूचिः। याज्ञिकश्चासौ कितव इति याज्ञिककितवः। मीमांसकश्चासौ दुर्दुरूढ इति मीमांसकदुर्दुरूढः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कुत्सितानि) निन्दितवाची सुबन्तों का (समाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (कुत्सनैः) निन्दावाची समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**वैयाकरणश्चासौ खसूचिरिति वैयाकरणखसूचिः।** कोई प्रश्न पूछने पर जो वैयाकरण आकाश की ओर देखता है और उसे कोई उत्तर नहीं सूझता वह 'वैयाकरणखसूचि' कहाता है। **याज्ञिकश्चासौ कितव इति याज्ञिककितवः।** जो याज्ञिक यज्ञ न कराने योग्य यजमान का भी दक्षिणा आदि के लोभ से यज्ञ कराता है वह*

*'याज्ञिककितव' कहाता है। **मीमांसकश्चासौ दुर्दुरूढ इति मीमांसक दुर्दुरूढः।** नास्तिक मीमांसक।*

सिद्धि-वैयाकरणखसूचिः। *वैयाकरण+सु+खसूचि+सु। वैयाकरणखसूचि+सु। वैयाकरणखसूचिः। ऐसे ही-**याज्ञिककितवः, मीमांसकदुर्दुरूढः।***

पापमणकं च-

(६) पापाणके कुत्सितैः।५४।

प०वि०-पाप-अणके १।२ कुत्सितैः ३।३।

स०-पापं च अणकं च ते-पापाणके (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पापाणके सुपौ समानाधिकरणैः कुत्सितैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-पाप-अणके सुबन्ते समानाधिकरणैः कुत्सितवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्येते, कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(पापम्) पापश्चासौ नापित इति पापनापितः। पापश्चासौ कुलाल इति पापकुलालः। (अणकम्) अणकश्चासौ नापित इति अणकनापितः। अणकश्चासौ कुलाल इति अणककुलालः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(पापाणके) पाप और अणक सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (कुत्सितैः) निन्दितवाची समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-(पाप) **पापश्चासौ नापित इति पापनापितः।** सुन्दर बाल न संवारनेवाला निन्दित नाई। **पापश्चासौ कुलाल इति पापकुलालः।** सुन्दर घड़े न बनानेवाला निन्दित कुम्हार। **(अणक) अणकश्चासौ नापित इति अणकनापितः।** निन्दित नाई। **अणकश्चासौ कुलाल इति अणककुलालः।** निन्दित कुम्हार।*

सिद्धि-पापनापितः। *पाप+सु+नापित+सु। पापनापित+सु। पापनापितः। ऐसे ही-**अणकनापितः, पापकुलालः, अणककुलालः।***

उपमानानि-

(७) उपमानानि सामान्यवचनैः।५५।

प०वि०-उपमानानि १।३ सामान्यवचनैः ३।३।

स०-उपमीयतेऽनेनेति उपमानम्, तानि-उपमानानि। सामान्य-

मुक्तवन्त इति सामान्यवचनाः, तैः-सामान्यवचनैः(कृद्वृत्तिः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपमानानि सुपः समानाधिकरणैः सामान्यवचनैः सुब्भिः सह विभाषाः समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-उपमानवाचीनि सुबन्तानि समानाधिकरणैः सामान्यवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-घन इव श्याम इति घनश्यामो देवदत्तः। शस्त्री इव श्यामा इति शस्त्रीश्यामा देवदत्ता।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(उपमानानि) उपमानवाची सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (सामान्यवचनैः) समानतावाची समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**घन इव श्याम इति घनश्यामो देवदत्तः।** बादल के समान सांवला देवदत्त। **शस्त्री इव श्यामा शस्त्रीश्यामा देवदत्ता।** देवदत्ता नामक कन्या आरी के समान सांवले रंग की है।*

__सिद्धि-घनश्यामः।__ घन+सु+श्याम+सु। घनश्याम+सु। घनश्यामः।

*यहां घन शब्द उपमानवाची तथा श्याम शब्द सामान्यवाची है। इन दोनों का कर्मधारयतत्पुरुष समास है। ऐसे ही-**शस्त्रीश्यामा।***

उपमेयम्-

(८) उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे।५६।

प०वि०-उपमितम् १।१ व्याघ्रादिभिः ३।३ सामान्याप्रयोगे ७।१।

स०-व्याघ्र आदिर्येषां ते व्याघ्रादयः, तैः-व्याघ्रादिभिः (बहुव्रीहिः)। न प्रयोग इति अप्रयोगः, सामान्यस्य अप्रयोग इति सामान्याप्रयोगः, तस्मिन्-सामान्यप्रयोगे (नञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपमितं सुप् समानाधिकरणैर्व्याघ्रादिभिः सुब्भिः सह विभाषा समासः सामान्याप्रयोगे कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-उपमितवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैर्व्याघ्रादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, यदि तत्र सामान्यवाचिशब्दस्य प्रयोगो न भवति, कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-पुरुषोऽयं व्याघ्र इव इति पुरुषव्याघ्रः। पुरुषोऽयं सिंह इव इति पुरुषसिंहः। सामान्यवाचिशब्दप्रयोगे समासो न भवति-पुरुषोऽयं व्याघ्र इव शूरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमितम्) उपमेयवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान-अधिकरणवाले (व्याघ्रादिभिः) व्याघ्र आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है, यदि वहां सामान्यवाची शब्द का प्रयोग न हो और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**पुरुषोऽयं व्याघ्र इव इति पुरुषव्याघ्रः।** बाघ (चीता) के समान शूर पुरुष। **'शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे'इत्यमरः। पुरुषोऽयं सिंह इव इति पुरुषसिंहः।** शेर के समान वीर पुरुष।*

*सिद्धि-**पुरुषव्याघ्रः।** पुरुष+सु+व्याघ्र+सु। पुरुषव्याघ्र+सु। पुरुषव्याघ्रः।*

*यहां पुरुष शब्द उपमेयवाची है उसके व्याघ्र शब्द के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास किया गया है। ऐसे ही-**पुरुषसिंहः।***

विशेषणम्-

(६) विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।५७।

प०वि०-विशेषणम् १।१ विशेष्येण ३।१ बहुलम् १।१।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-विशेषणवाचि सुबन्तं समानाधिकरणेन विशेष्यवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह बहुलं समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-नीलं च तद् उत्पलमिति नीलोत्पलम्। रक्तं च तद् उत्पलमिति रक्तोत्पलम्।

अत्र बहुलवचनात् क्वचिन्नित्यसमासो भवति-कृष्णसर्पः। लोहितशालिः। क्वचित् समासो न भवति-रामो जामदग्न्यः। अर्जुनः कार्तवीर्यः। क्वचित् समासविकल्पो भवति-नीलमुत्पलमिति नीलोत्पलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(विशेषणम्) विशेषणवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (विशेष्येण) विशेष्यवाची समर्थ सुबन्त के साथ (बहुलम्) व्यवस्थापूर्वक समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**नीलं च तदुत्पलमिति नीलोत्पलम्।** नीला कमल। **रक्तं च तदुत्पलमिति रक्तोत्पलम्।** लाल कमल।*

*यहां बहुल-वचन से कहीं नित्य समास होता है-**कृष्णसर्पः।** काला सांप। **लोहितशालिः।** लाल चावल। कहीं समास नहीं होता है-**रामो जामदग्न्यः।** जगदग्नि का पुत्र राम। **अर्जुनः कार्तवीर्यः।** कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन। कहीं समास का विकल्प होता है जैसा कि उदाहरण में दर्शाया है। यहां बहुल वचन समास-व्यवस्था के लिये है।*

*सिद्धि-**नीलोत्पलम्।** नील+सु+उत्पल+सु। नीलोत्पल+सु। नीलोत्पलम्।*

यहां विशेषणवाची नील शब्द का विशेष्यवाची उत्पल शब्द के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास किया गया है। ऐसे ही-'रक्तोत्पलम्' आदि।

पूर्वादयः-

(१०) पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यममध्यम-वीराश्च।५८।

प०वि०-पूर्व-अपर-प्रथम-चरम-जघन्य-समान-मध्य-मध्यम-वीराः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-पूर्वश्च अपरश्च प्रथमश्च चरमश्च जघन्यश्च समानश्च मध्यश्च मध्यमश्च वीरश्च ते-पूर्व०वीराः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्व०वीराश्च सुपः समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-पूर्वादयः सुबन्ताः समानाधिकरणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(पूर्वः) पूर्वश्चासौ पुरुष इति पूर्वपुरुषः। (अपरः) अपरश्चासौ पुरुष इति अपरपुरुषः। (प्रथमः) प्रथमश्चासौ पुरुष इति प्रथमपुरुषः। (चरमः) चरमश्चासौ पुरुष इति चरमपुरुषः। (जघन्यः) जघन्यश्चासौ पुरुष इति जघन्यपुरुषः। (समानः) समानश्चासौ पुरुष इति समानपुरुषः।

(मध्यः) मध्यश्चासौ पुरुष इति मध्यपुरुषः। (मध्यमः) मध्यमश्चासौ पुरुष इति मध्यमपुरुषः। (वीरः) वीरश्चासौ पुरुष इति वीरपुरुषः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूर्व०वीराः) पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम तथा वीर सुबन्तों का (च) भी (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(पूर्व) **पूर्वश्चासौ पुरुष इति पूर्वपुरुषः।** पहला पुरुष। (अपर) **अपरश्चासौ पुरुष इति अपरपुरुषः।** दूसरा पुरुष। (प्रथम) **प्रथमश्चासौ पुरुष इति प्रथमपुरुषः।** प्रथम पुरुष। (चरम) **चरमश्चासौ पुरुष इति चरमपुरुषः।** अन्तिम पुरुष। (जघन्य) **जघन्यश्चासौ पुरुष इति जघन्यपुरुषः।** क्रूर पुरुष। (समान) **समानश्चासौ पुरुष इति समानपुरुषः।** सदृश पुरुष। (मध्य) **मध्यश्चासौ पुरुष इति मध्यपुरुषः।** मध्यकोटि का पुरुष। (मध्यम) **मध्यमश्चासौ पुरुष इति मध्यमपुरुषः।** मध्यस्थ पुरुष। (वीर) **वीरश्चासौ पुरुष इति वीरपुरुषः।** वीरपुरुष।*

*सिद्धि-**प्रथमपुरुषः।** प्रथम+सु+पुरुष+सु। प्रथमपुरुष+सु। प्रथमपुरुषः। ऐसे ही-'अपरपुरुषः' आदि।*

श्रेणि-आदयः-

(११) श्रेण्यादयः कृतादिभिः।५६।

प०वि०-श्रेणि-आदयः १।३ कृत-आदिभिः ३।३।

स०-श्रेणिरादिर्येषां ते-श्रेण्यादयः (बहुव्रीहिः)। कृत आदिर्येषां ते-कृतादयः, तैः-कृतादिभिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-श्रेण्यादयः सुपः कृतादिभिः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-श्रेण्यादयः सुबन्ताः समानाधिकरणैः कृतादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यन्ते कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति। **श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्त्तव्यम्।**

उदा०-अश्रेणयः श्रेणयः कृता इति श्रेणिकृताः। अनेके एके कृता इति एककृताः।

श्रेणि। एक। पूग। कुण्ड। राशि। विशिख। निचय। निधान। इन्द्र। देव। मुण्ड। भूत। श्रवण। वदान्य। अध्यापक। ब्राह्मण। क्षत्रिय। पटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण। कृपण। इति श्रेण्यादयः।

कृत। मित। मत। भूत। उक्त। समाज्ञात। समाम्नात। समाख्यात। सम्भावित। अवधारित। निराकृत। अवकल्पित। उपकृत। उपाकृत। इति कृतादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्रेण्यादयः) श्रेणि आदि सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (कृतादिभिः) कृत आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है। श्रेणि आदि में च्वि-प्रत्यय के अर्थ (अभूततद्भाव) का कथन करना चाहिये।

उदा०-अश्रेणयः श्रेणयः कृता इति श्रेणिकृताः। जो पंक्तिबद्ध नहीं थे उन्हें पंक्तिबद्ध किया गया। अनेके एके कृता इति एककृताः। जो एक नहीं थे उन्हें एक किया गया।

सिद्धि-श्रेणिकृता। श्रेणि+जस्+कृत+जस्। श्रेणिकृत+जस्। श्रेणिकृताः। ऐसे ही- 'एककृताः' आदि।

अनञ्-

(१२) क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्।६०।

प०वि०-क्तेन ३।१ नञ्-विशिष्टेन ३।१ अनञ् १।१।

स०-नञा एव विशिष्ट इति नञ्विशिष्टः, तेन-नञ्विशिष्टेन (तृतीयातत्पुरुषः)। न विद्यते नञ् यस्मिन् सः-अनञ् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनञ् क्तः सुप् नञ्विशिष्टेन क्तेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-अनञ्=नञ्रहितं क्तान्तं सुबन्तं समानाधिकरणेन नञ्विशिष्टेन क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-कृतं च तद् अकृतमिति कृताकृतम्। भुक्तं च तद् अभुक्तमिति भुक्ताभुक्तम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनञ्) नञ्रहित क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (नञ्विशिष्टेन) केवल नञ् की विशेषतावाले (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**कृतं च तद् अकृतमिति कृताकृतम्।** जो किया वह न किया हुआ-सा। **भुक्तं च तद् अभुक्तमिति भुक्ताभुक्तम्।** जो खाया वह न खाया हुआ-सा।*

*सिद्धि-कृताकृतम्। कृत+सु+अकृत+सु। कृताकृत+सु। कृताकृतम्। कृ+क्त। कृत+सु+कृतम्। ऐसे ही-**भुक्ताभुक्तम्।***

सहादयः-

(१३) सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः।६१।

प०वि०-सत्-महत्-परम-उत्तम-उत्कृष्टाः १।३ पूज्यमानैः ३।३।

स०-सत् च महत् च परमश्च उत्तमश्च उत्कृष्टश्च ते-सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सन्०उत्कृष्टा सुपः समानाधिकरणैः पूज्यमानैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-सन्महत्परमोत्तमोत्तमत्कृष्टाः सुबन्ताः समानाधिकरणैः पूज्यमानवाचिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यन्ते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(सत्) सच्चासौ पुरुष इति सत्पुरुषः। (महत्) महाँश्चासौ पुरुष इति महापुरुषः। (परमः) परमश्चासौ पुरुष इति परमपुरुषः। (उत्तमः) उत्तमश्चासौ पुरुष इति उत्तमपुरुषः। (उत्कृष्टः) उत्कृष्टश्चासौ पुरुष इति उत्कृष्टपुरुषः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सन्०उत्कृष्टाः) सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (पूज्यमानैः) पूज्यमानवाची समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(सत्) सच्चासौ पुरुष इति सत्पुरुषः। सज्जन। (महत्) महाँश्चासौ पुरुष इति महापुरुषः। महान् पुरुष। (परम) परमश्चासौ पुरुष इति परमपुरुषः। परमपुरुष=परमात्मा। (उत्तम) उत्तमश्चासौ पुरुष इति उत्तमपुरुषः। श्रेष्ठ पुरुष। (उत्कृष्ट) उत्कृष्टश्चासौ पुरुष इति उत्कृष्टपुरुषः। बढ़िया पुरुष।

सिद्धि-सत्पुरुषः। सत्+सु+पुरुष+सु। सत्पुरुष+सु। सत्पुरुषः। ऐसे ही-'महापुरुषः' आदि।

पूज्यमानम्-

(१४) वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्।६२।

प०वि०-वृन्दारक-नाग-कुञ्जरैः ३।३ पूज्यमानम् १।१।

स०-वृन्दारकश्च नागश्च कुञ्जरश्च ते-वृन्दारकनागकुञ्जराः, तैः-वृन्दारकनागकुञ्जरैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूज्यमानं सुप् समानाधिकरणैर्वृन्दारकनागकुञ्जरैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-पूज्यमानवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैर्वृन्दारकनागकुञ्जरैः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, कर्मधारयतत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-(वृन्दारकः) गौश्चासौ वृन्दारक इति गोवृन्दारकः। अश्वश्चासौ वृन्दारक इति अश्ववृन्दारकः। (नागः) गौश्चासौ नाग इति गोनागः। अश्वश्चासौ नाग इति अश्वनागः। (कुञ्जरः) गौश्चासौ कुञ्जर इति गोकुञ्जरः। अश्वश्चासौ कुञ्जर इति अश्वकुञ्जरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूज्यमानम्) पूज्यमानवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (वृन्दारकनागकुञ्जरैः) वृन्दारक, नाग और कुञ्जर समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-(वृन्दारक) गौश्चासौ वृन्दारक इति गोवृन्दारकः। श्रेष्ठ बैल। अश्वश्चासौ वृन्दारक इति अश्ववृन्दारकः। श्रेष्ठ घोड़ा। (नाग) गौश्चासौ नाग इति गोनागः। श्रेष्ठ बैल। अश्वश्चासौ नाग इति अश्वनागः। श्रेष्ठ घोड़ा। (कुञ्जर) गौश्चासौ कुञ्जर इति गोकुञ्जरः। श्रेष्ठ बैल। अश्वश्चासौ कुञ्जर इति अश्वकुञ्जरः। श्रेष्ठ घोड़ा।

सिद्धि-गोवृन्दारकः। गो+सु+वृन्दारक+सु। गोवृन्दारक+सु। गोवृन्दारकः। ऐसे ही-अश्ववृन्दारकः' आदि।

*विशेष-गौ शब्द जब पुंलिङ्ग में प्रयुक्त होता है तब उसका अर्थ बैल और जब स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है तब उसका अर्थ गाय होता है। **अयं गौः।** यह बैल। **इयं गौः।** यह गाय।*

कतरकतमौ-

(१५) कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने।६३।

प०वि०-कतर-कतमौ १।२ जातिपरिप्रश्ने ७।१।

स०-कतरश्च कतमश्च तौ-कतरकतमौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। जातेः परिप्रश्न इति जातिपरिप्रश्नः, तस्मिन्-जातिपरिप्रश्ने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जातिपरिप्रश्ने कतरकतमौ सुपौ समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-जातिपरिप्रश्नेऽर्थे वर्तमानौ कतरकतमौ सुबन्तौ समानाधिकरणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते, समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(कतरः) कतरश्चासौ कठ इति कतरकठः। कतरश्चासौ कलाप इति कतरकलापः। (कतमः) कतमश्चासौ कठ इति कतमकठः। कतमश्चासौ कलाप इति कतमकलापः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जातिपरिप्रश्ने) जाति के पूछने अर्थ में (कतरकतमौ) कतर और कतम सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(कतर) **कतरश्चासौ कठ इति कतरकठः।** इन दोनों में कठ कौन-सा है। **कतरश्चासौ कलाप इति कतरकलापः।** इन दोनों में कलाप कौन-सा है। **(कतम) कतमश्चासौ कठ इति कतमकठः।** इन सब में कठ कौन-सा है। **कतमश्चासौ कलाप इति कतमकलापः।** इन सब में कलाप कौन-सा है।*

सिद्धि-कतरकठः। कतर+सु+कठ+सु। कतरकठ+सु। कतरकठः। ऐसे ही 'कतमकठः' आदि।

किं शब्दः–

(१६) किं क्षेपे।६४।

प०वि०–किम् १।१ क्षेपे ७।१।

अनु०–'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्षेपे किं सुप् समानाधिकरणेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः–क्षेपेऽर्थे वर्तमानं किम् इति सुबन्तं समानाधिकरणवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०–कथंभूतः सखा इति किंसखा। किंसखा योऽभिद्रुह्यति। कथं भूतो राजा इति किंराजा। किं राजा यो न रक्षति प्रजाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्षेपे) निन्दा अर्थ में विद्यमान (किम्) किम् सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०–**कथंभूतः सखा इति किंसखा। किं सखा योऽभिद्रुह्यति।** वह क्या मित्र है जो विश्वासघात करता है। **कथंभूतो राजा इति किंराजा। किं राजा यो न रक्षति प्रजाः।** वह क्या राजा है जो प्रजा की रक्षा नहीं करता है।*

*सिद्धि-**किंसखा।** किम्+सखि+सु। किंसखि+सु। किंसखा।*

*यहां 'किमः क्षेपे' (५।४।७०) से निन्दा अर्थ में समासान्त टच् प्रत्यय का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही–**किंराजा।***

जातिशब्दः–

(१७) पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्-वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः।६५।

प०वि०–पोटा-युवति-स्तोक-कतिपय-गृष्टि-धेनु-वशा-वेहद्-वष्कयणी- प्रवक्तृ-श्रोत्रिय-अध्यापक-धूर्तैः ३।३ जातिः१।१।

स०–पोटा च युवतिश्च स्तोकश्च कतिपयं च गृष्टिश्च धेनुश्च वशा च वेहच्च वष्कयणी च प्रवक्ता च श्रोत्रियश्च अध्यापकश्च धूर्तश्च ते–पोटा०धूर्ताः, तैः–पोटा०धूर्तैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जातिः सुप् समानाधिकरणैः पोटा०धूर्तैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-जातिवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैः पोटादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(पोटा) इभा चेयं पोटा इति इभपोटा। (युवतिः) इभा चेयं युवतिरिति इभयुवतिः। (स्तोकः) अग्निश्चायं स्तोक इति अग्निस्तोकः। (कतिपयम्) उदश्विच्च तत् कतिपयमिति उदश्वित्कतिपयम्। (गृष्टिः) गौश्चेयं गृष्टिरिति गोगृष्टिः। (धेनुः) गौश्चेयं धेनुरिति गोधेनुः। (वशा) गौश्चेयं वशा इति गोवशा। (वेहत्) गौश्चेयं वेहद् इति गोवेहत्। (वष्कयणी) गौश्चेयं वष्कयणी इति गोवष्कयणी। (प्रवक्ता) कठश्चासौ प्रवक्ता इति कठप्रवक्ता। (श्रोत्रियः) कठश्चासौ श्रोत्रिय इति कठश्रोत्रियः। (अध्यापकः) कठश्चासावध्यापक इति कठाध्यापकः। (धूर्तः) कठश्चासौ धूर्त इति कठधूर्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जातिः) जातिवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (पोटा०धूर्तैः) पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहत्, वष्कयणी, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक और धूर्त समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**(पोटा) इभा चेयं पोटा इति इभपोटा।** नपुंसक हथिनी। **(युवति) इभा चेयं युवतिरिति इभयुवतिः।** नौजवान हथिनी। **(स्तोक) अग्निश्चायं स्तोक इति अग्निस्तोकः।** थोड़ी-सी अग्नि। **(कतिपय) उदश्विच्च तत् कतिपयमिति उदश्वित् कतिपयम्।** कुछ लस्सी। **(गृष्टि) गौश्चेयं गृष्टिरिति गोगृष्टिः।** एक बार ब्याई गौ। **(धेनु) गौश्चेयं धेनुरिति गोधेनुः।** ताजा ब्याई गौ। **(वशा) गौश्चेयं वशा इति गोवशा।** वन्ध्या गौ। **(वेहत्) गौश्चेयं वेहद् इति गोवेहत्।** गर्भघातिनी गौ। **(वष्कयणी) गौश्चेयं वष्कयणी इति गोवष्कयणी।** बड़े बछड़ेवाली (बाखड़ी) गौ। **(प्रवक्ता) कठश्चासौ प्रवक्ता इति कठप्रवक्ता।** व्याख्याता कठ। **(श्रोत्रिय) कठश्चासौ श्रोत्रिय इति कठश्रोत्रियः।** वेदपाठी कठ। **(अध्यापक) कठश्चासावध्यापक इति कठाध्यापकः।** अध्यापक कठ। **(धूर्त) कठश्चासौ धूर्त इति कठधूर्तः।** धूर्त कठ। कठ एक मनुष्य जाति का नाम है।*

सिद्धि-इभपोटा। इभा+सु+पोटा+सु। इभपोटा+सु। इभपोटा।

यहां 'पुंवत् कर्मधारये' ६।३।४२) से इभा को पुंवद्भाव होता है। ऐसे ही 'इभयुवति' आदि।

जातिशब्दः-

(१८) प्रशंसावचनैश्च।६६।

प०वि०-प्रशंसावचनैः ३।३ च अव्ययम्।

अनु०-समानाधिकरणेन, जातिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जाति सुप् समानाधिकरणैः प्रशंसावचनैः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-जातिवाचि सुबन्तं समानाधिकरणैः प्रशंसावचनैः समर्थैः सह विकल्पेन समस्यते, समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-गौश्च तत् प्रकाण्डमिति गोप्रकाण्डम्। अश्वश्च तत् प्रकाण्डमिति अश्वप्रकाण्डम्। गौश्चेयं मतल्लिका इति गोमतल्लिका। अश्वश्चेयं मतल्लिका इति अश्वमतल्लिका। एवम् गोमचर्चिका। अश्वमचर्चिका।

अत्र रूढिशब्दाः प्रशंसावचना मतल्लिकादयो गृह्यन्ते। ते च विशिष्टलिङ्गत्वाद् अन्यलिङ्गेऽपि जातिशब्दे स्वलिङ्गोपादाना एव समानाधिकरणा भवन्ति।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(जातिः) जातिवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (प्रशंसावचनैः) प्रशंसावाची समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

__उदा०-गौश्च तत् प्रकाण्डमिति गोप्रकाण्डम्।__ प्रशंसनीय गाय। __अश्वश्च तत् प्रकाण्डमिति अश्वप्रकाण्डम्।__ प्रशंसनीय घोडा। __गौश्चेयं मतल्लिका इति गोमतल्लिका।__ प्रशंसनीय गाय। __अश्वश्चेयं मतल्लिका इति अश्वमतल्लिका।__ प्रशंसनीय घोड़ा। इसी प्रकार-__गोमचर्चिका।__ प्रशंसनीय गाय। __अश्वमचर्चिका।__ प्रशंसनीय घोड़ा।

यहां प्रशंसावाची मतल्लिका आदि रूढि शब्दों का ग्रहण किया जाता है। वे शब्द विशिष्ट लिङ्गवाले होने से, जातिवाची शब्द से भिन्न लिङ्गवाले होने पर भी अपने-अपने लिङ्गवाले रहकर भी समानाधिकरणवाची ही रहते हैं।

सिद्धि-गोप्रकाण्डम्। गो+सु+प्रकाण्ड+सु। गोप्रकाण्ड+सु। गोप्रकाण्डम्। ऐसे ही-'अश्वप्रकाण्डम्' आदि।

युवशब्दः-

(१६) युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः।६७।

प०वि०-युवा १।१ खलति-पलित-वलिन-जरतीभिः ३।३।

स०-खलतिश्च पलितश्च वलिनश्च जरती च ताः-खलति०जरत्यः, ताभिः-खलति०जरतीभिः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-युवा सुप् समानाधिकरणैः खलति०जरतीभिः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-'युवा' इति सुबन्तं समानाधिकरणैः खलति-आदिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-(खलतिः) युवा चासौ खलतिरिति युवखलतिः। (पलितः) युवा चासौ पलित इति युवपलितः। (वलिनः) युवा चासौ वलिन इति युववलिनः। (जरती) युवतिश्चासौ जरती इति युवजरती।

आर्यभाषा-अर्थ-(युवा) 'युवा' इस सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (खलति०जरतीभिः) खलति, पलित, वलिन और जरती सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उस समास की (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(खलति) **युवा चासौ खलतिरिति युवखलतिः।** गंजा युवक। **(पलित) युवा चासौ पलित इति युवपलितः।** सफेद बालोंवाला युवक। **(वलिन) युवा चासौ वलिन इति युववलिनः।** झुरियोंवाला युवक। **(जरती) युवतिश्चासौ जरती इति युवजरती।** बूढी युवति।*

*सिद्धि-(१) **युवखलतिः।** युवन्+सु+खलति+सु। युवखलति+सु। युवखलतिः। यहां 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से न का लोप हो जाता है।*

*(२) **युवजरती।** युवति+सु+जरती+सु। युवन्+जरती+सु। युवजरती+सु। युवजरती। यहां '**पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु**' (६।३।४२) से 'युवति' को पुंवद्भाव होता है। ऐसे ही-'युवपलितः' आदि।*

कृत्यास्तुल्यवाचिनश्च–

(२०) कृत्यतुल्याख्या अजात्या।६८।

प०वि०–कृत्य-तुल्याख्या: १।३ अजात्या ३।१

स०–तुल्यमाचक्षत इति तुल्याख्या:। कृत्याश्च तुल्याख्याश्च ते कृत्यतुल्याख्या: (उपपदगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–कृत्यतुल्याख्या: सुप: समानाधिकरणेनाऽजात्या सुपा सह विभाषा समास: कर्मधारय:।

अर्थ:–कृत्यप्रत्ययान्ता:, तुल्यवाचिनश्च सुबन्ता: समानाधिकरणेनाऽजातिवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०–(कृत्या:) भोज्यं च तदुष्णमिति भोज्योष्णम्। पानीयं च तच्छीतमिति पानीयशीतम्। तुल्याख्या:–तुल्यश्चासौ श्वेत इति तुल्यश्वेत:। तुल्यश्चासौ महानिति तुल्यमहान्। सदृशश्चासौ श्वेत इति सदृशश्वेत:। सदृशश्चासौ महानिति सदृशमहान्।

आर्यभाषा–अर्थ–(कृत्यतुल्याख्या:) कृत्य-प्रत्ययान्त और तुल्यवाची सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (अजात्या) अजातिवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुष:) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०–(कृत्य) **भोज्यं च तदुष्णमिति भोज्योष्णम्।** गर्म खाना। **पानीयं च तच्छीतमिति पानीयशीतम्।** ठण्डा पानी। **तुल्याख्या–तुल्यश्चासौ श्वेत इति तुल्यश्वेत:।** समान सफेद। **तुल्यश्चासौ महानिति तुल्यमहान्।** समान महान्। **सदृशश्चासौ श्वेत इति सदृशश्वेत:।** समान सफेद। **सदृशश्चासौ महानिति सदृशमहान्।** समान महान्।*

*सिद्धि–(१) **भोज्योष्णम्।** भुज्+ण्यत्। भोज्+य। भोज्य+सु। भोज्यम्। भोज्य+सु+उष्ण+सु। भोज्योष्ण+सु। भोज्योष्णम्।*

*यहां प्रथम **'भुज पालनाभ्यवहारयो:'** (रुधा०आ०) भुज धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से ण्यत् कृत्य-प्रत्यय है, तत्पश्चात् कृत्य-प्रत्ययान्त भुज्य शब्द का अजातिवाची (गुणवाची) उष्ण शब्द के साथ कर्मधारय समास है।*

(२) पानीयशीतम्। पा+अनीयर्। पा+अनीय। पानीय+सु। पानीयम्। पानीय+सु+शीत+सु। पानीयशीत+सु। पानीयशीतम्।

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।२।९६) से अनीयर् कृत्य-प्रत्यय है। तत्पश्चात् कृत्य-प्रत्ययान्त पानीय शब्द का अजातिवाची शीत शब्द के साथ कर्मधारय समास है।

वर्णवाची–

(२१) वर्णो वर्णेन।६६।

प०वि-वर्णः १।१ वर्णेन ३।१।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वर्णः सुप् समानाधिकरणेन वर्णेन सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-वर्णविशेषवाचि सुबन्तं समानाधिकरणेन वर्णविशेषवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-कृष्णश्चासौ सारङ्ग इति कृष्णसारङ्गः। लोहितश्चासौ सारङ्ग इति लोहितसारङ्गः। एवम्-कृष्णशबलः। लोहितशबलः।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्णः) रंगविशेषवाची सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (वर्णेन) रंग विशेषवाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**कृष्णश्चासौ सारङ्ग इति कृष्णसारङ्गः।** काला और चितकबरा। **लोहितश्चासौ सारङ्ग इति लोहितसारङ्गः।** लाल और चितकबरा। इसी प्रकार-**कृष्णशबलः।** काला और रंग-बिरंगा। **लोहितशबलः।** लाल और रंगबिरंगा।*

कुमारशब्दः–

(२२) कुमारः श्रमणादिभिः।७०।

प०वि०-कुमारः १।१ श्रमणा-आदिभिः ३।३।

स०-श्रमणा आदिर्येषां ते श्रमणादयः, तैः-श्रमणादिभिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' **इत्यनुवर्तते।**

अन्वयः-कुमारः सुप् समानाधिकरणैः श्रमणादिभिः सुब्भिः सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-'कुमार' इति सुबन्तं समानाधिकरणैः श्रमणादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-कुमारी चासौ श्रमणा इति कुमारश्रमणा। कुमारी चासौ प्रव्रजिता इति कुमारप्रव्रजिता।

येऽत्र श्रमणाऽऽदिषु स्त्रीलिङ्गाः शब्दाः पठ्यन्ते तैः सह कुमारशब्दः स्त्रीलिङ्ग एव समस्यते, ये चाध्यापकादयः पुंलिङ्गशब्दाः पठ्यन्ते तैः सह कुमारशब्दः पुंलिङ्ग एव समस्यते।

श्रमणा। प्रव्रजिता। कुलटा। गर्भिणी। तापसी। दासी। बन्धकी। अध्यापक। अभिरूप। पण्डित। पटु। मृदु। कुशल। चपल। निपुण। इति श्रमणादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कुमारः) कुमार सुबन्त का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (श्रमणाऽऽदिभिः) श्रमणा आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**कुमारी चासौ श्रमणा इति कुमारश्रमणा।** तपस्विनी कुमारी। **कुमारी चासौ प्रव्रजिता इति कुमारप्रव्रजिता।** संन्यासिनी कुमारी।*

जो यहां श्रमणा आदि गण में स्त्रीलिङ्ग शब्द पढ़े हैं उनके साथ कुमार शब्द का स्त्रीलिङ्ग (कुमारी) में समास होता है और जो अध्यापक आदि पुंलिङ्ग शब्द पढ़े हैं उनके साथ पुंलिङ्ग कुमार शब्द का समास होता है।

*सिद्धि-**कुमारश्रमणा।** कुमारी+सु+श्रमणा+सु। कुमारश्रमणा+सु। कुमारश्रमणा।*

*यहां '**पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु**' (६।३।४२) से कुमारी शब्द का पुंवद्भाव होता है। ऐसे ही-'**कुमारप्रव्रजिता**' आदि।*

चतुष्पाद्वाचिनः-

(२३) चतुष्पादो गर्भिण्या।७१।

प०वि०-चतुष्पादः १।३ गर्भिण्या ३।१।

स०-चत्वारः पादा यासां ताः-चतुष्पादः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'समानाधिकरणेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-चतुष्पादः सुपः समानाधिकरणेन गर्भिण्या सुपा सह विभाषा समासः कर्मधारयतत्पुरुषः।

अर्थः-चतुष्पाद्वाचिनः सुबन्ताः समानाधिकरणेन गर्भिणीशब्देन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, समासश्च कर्मधारयतत्पुरुषो भवति।

उदा०-गौश्चासौ गर्भिणी इति गोगर्भिणी। अजा चासौ गर्भिणी इति अजगर्भिणी।

*आर्यभाषा-अर्थ-(चतुष्पादः) चतुष्पाद्वाची सुबन्तों का (समानाधिकरणेन) समान अधिकरणवाले (गर्भिणी) समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है **और** उसकी (तत्पुरुषः) कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**गौश्चासौ गर्भिणी इति गोगर्भिणी।** गर्भिणी गाय। **अजा चासौ गर्भिणी इति अजगर्भिणी।** गर्भिणी बकरी।*

*सिद्धि-**गोगर्भिणी।** गो+सु+गर्भिणी+सु। गोगर्भिणी+सु। गोगर्भिणी। ऐसे ही-**अजगर्भिणी।** यहां पूर्ववत् (६।३।४२) से पुंवद्भाव होता है।*

मयुरव्यंसकाः-

मयूरव्यंसकादयश्च।७२।

प०वि०-मयूरव्यंसकादयः १।३ च अव्ययम्।

स०-मयूरव्यंसक आदिर्येषां ते मयूरव्यंसकादयः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-मयूरव्यंसकादयः समुदाया एव निपात्यन्ते, कर्मधारयतत्पुरुष-संज्ञकाश्च ते भवन्ति।

उदा०-मयूरव्यंसकः। छात्रव्यंसकः, इत्यादिकम्।

मयूरव्यंसकः। छात्रव्यंसकः। काम्बोजमुण्डः। यवनमुण्डः। छन्दसि-हस्तेगृह्य। पादेगृह्य। लाङ्गूलेगृह्य। पुनर्दाय। एहीडादयोऽन्यपदार्थे-एहीडम्। एहियवं वर्तते। एहिवाणिजा क्रिया। अपेहिवाणिजा। प्रेहिवाणिजा। एहिस्वागता। अपेहिस्वागता। प्रेहिस्वागता। एहिद्वितीया। अपेहिद्वितीया। प्रोहकटा। अपोहकटा। प्रोहकर्दमा। अपोहकर्दमा। उद्धरचूडा। आहरचेला।

आहरवसना। आहरवनिता। कृन्तविचक्षणा। उद्धरोत्सृजा। उद्धमविधमा। उत्पचविपचा। उत्पतनिपता। उच्चावचम्। उच्चनीचम्। अपचितोपचितम्। अवचितपराचितम्। निश्चप्रचम्। अकिंचनम्। स्नात्वाकालकः। पीत्वास्थिरकः। भुक्त्वासुहितः। प्रोष्यपापीयान्। उत्पत्यव्याकुला। विपत्यरोहिणी। निषण्णश्यामा। अपेहिप्रधसः। इहपञ्चमी। इहद्वितीया। जहि कर्मणा बहुलमभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति-जहिजोडः। उज्जहिजोड़ः। जहीस्तम्बः। उज्जहिस्तम्ब। आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये-अश्नीतपिबता। पचतभृज्जता। खादतमोदता। खादताचमता। आहरनिवपा। आवपनिष्किरा। उत्पचविपचा। भिन्धिलवणा। छिन्धिविचक्षणा। पचलवणा। पचप्रकूटा। इति मयूरव्यंसकादयः। अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(मयूरव्यंसकादयः) मयूरव्यंसक आदि समुदाय (च) ही निपातित किये जाते हैं और उनकी कर्मधारयतत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-__मयूरव्यंसकः__। मोर के समान चतुर। __छात्रव्यंसकः__। विद्यार्थी के समान चतुर।

सिद्धि-__मयूरव्यंसकः__। मयूर+सु+व्यंसक+सु। मयूरव्यंसक+सु। मयूरव्यंसकः। ऐसे ही- 'छात्रव्यंसकः' आदि।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

तत्पुरुषः

पूर्वादयः–

(१) पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे।१।

प०वि०–पूर्व–अपर–अधर–उत्तरम् १।१। एकदेशिना ३।१ एकाधिकरणे ७।१।

स०–पूर्वं च अपरं च अधरं च उत्तरं च एतेषां समाहारः–पूर्वापराधरोत्तरम् (समाहारद्वन्द्वः)। एकदेशोऽस्यास्तीति एकदेशी, तेन–एकदेशिना (तद्धितवृत्तिः)। एकं च तदधिकरणमिति एकाधिकरणम्, तस्मिन्–एकाधिकरणे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अन्वयः–पूर्वापराधरोत्तरं सुब् एकदेशिना सुपा सह विभाषा समास एकाधिकरणे तत्पुरुषः।

अर्थः–अवयववाचि पूर्वापराधरोत्तरं सुबन्तम् एकदेशिना=अवयविवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, एकाधिकरणे=एकद्रव्येऽभिधेये, तत्पुरुषश्च समासो भवति। षष्ठीतत्पुरुषापवादः।

उदा०–(पूर्वम्) पूर्वं कायस्येति पूर्वकायः। (अपरम्) अपरं कायस्येति अपरकायः। (अधरम्) अधरं कायस्येति अधरकायः। (उत्तरम्) उत्तरं कायस्येति उत्तरकायः।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(पूर्वापराधरोत्तरम्) अवयववाची पूर्व, अपर, अधर और उत्तर सुबन्त का (एकदेशिना) अवयववाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (एकाधिकरणे) यदि एकद्रव्य का कथन करना हो और उस समास की (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह षष्ठीतत्पुरुष समास का अपवाद है।

उदा०–__(पूर्व) पूर्वं कायस्येति पूर्वकायः।__ शरीर का पूर्व भाग। __(अपर) अपरं कायस्येति अपरकायः।__ शरीर का पश्चिम भाग। __(अधर) अधरं कायस्येति अधरकायः।__

*शरीर का नीचे का भाग। (उत्तर) **उत्तरं कायस्येति उत्तरकायः।** शरीर का ऊपर का भाग।*

*सिद्धि-**पूर्वकायः।** पूर्व+सु+काय+ङस्। पूर्व+काय+सु। पूर्वकायः। ऐसे ही-'**अपरकायः**' आदि।*

विशेषः-यहां पूर्व आदि शब्द अवयववाची हैं और काय=शरीर अवयववाची है, उन दोनों का समास किया गया है। दोनों का एक अधिकरण=द्रव्यवाच्य काय= शरीर है।

अर्ध शब्दः-

(२) अर्धं नपुंसकम्।२।

प०वि०-अर्धम् १।१ नपुंसकम् १।१।

अनु०-एकदेशिना, एकाधिकरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकम् अर्धं सुब् एकदेशिना सुपा सह विभाषा समास एकाधिकरणे तत्पुरुषः।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे वर्तमानमवयववाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, एकाधिकरणे=एकद्रव्येऽभिधेये, तत्पुरुषश्च समासो भवति। षष्ठीतत्पुरुषापवादः।

उदा०-अर्धम्-अर्धं पिप्पल्या इति अर्धपिप्पली। अर्धं कोशातक्या इति अर्धकाशातकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान अवयववाची (अर्धम्) अर्ध सुबन्त का (एकदेशिना) अवयववाची समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (एकाधिकरणे) यदि एक अधिकरण=द्रव्य का कथन करना हो और उस समास की (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह षष्ठीतत्पुरुष समास का अपवाद है।

*उदा०-**अर्ध-अर्धं पिप्पल्या इति अर्धपिप्पली।** छोटी पीपल का आधा भाग। **अर्धं कोशातक्या इति अर्धकोशातकी।** तोरी का आधा भाग।*

*सिद्धि-**अर्धपिप्पली।** अर्ध+सु+पिप्पली+ङस्। अर्धपिप्पली+सु। अर्धपिप्पली।*

यहां नपुंसक अर्ध शब्द का एकदेशवाची पिप्पली शब्द के साथ तत्पुरुष समास है।

द्वितीयादीनां विकल्पः–

(३) द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्।३।

प०वि०–द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-तुर्याणि १।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०:–द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं च तुर्यं च तानि द्वितीयतृतीय-चतुर्थतुर्याणि (इतरेतरद्वन्द्वः)।

अनु०–एकदेशिना, एकाधिकरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि सुपोऽन्यतरस्याम् एकदेशिना सुपा सह विभाषा समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः–अवयववाचीनि द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याणि सुबन्तानि अन्यतरस्याम् एकदेशिना=अवयविना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, समासश्च तत्पुरुषो भवति। षष्ठीतत्पुरुषापवादः। अन्यतरस्यां ग्रहणात् पक्षे सोऽपि भवति। विभाषाधिकाराच्च पक्षे विग्रहोऽपि भवति।

उदा०–**द्वितीयम्**–द्वितीयं भिक्षाया इति द्वितीयभिक्षा, भिक्षाद्वितीयं वा। तृतीयम्–तृतीयं भिक्षाया इति तृतीयभिक्षा, भिक्षातृतीयं वा। चतुर्थम्–चतुर्थं भिक्षाया इति चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थं वा। तुर्यम्–तुर्यं भिक्षाया इति तुर्यभिक्षा, भिक्षातुर्यं वा।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(द्वितीय०तुर्याणि) अवयववाची द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य सुबन्तों का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एकदेशिना) अवयवी समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह षष्ठीतत्पुरुष समास का अपवाद है। (अन्यतरस्याम्) के ग्रहण से पक्ष में षष्ठी समास भी होता है। विभाषा का अधिकार होने से पक्ष में विग्रह वाक्य भी होता है।

*उदा०–**(द्वितीय) द्वितीयं भिक्षाया इति द्वितीयभिक्षा, भिक्षाद्वितीयं वा।** भिक्षा का दूसरा भाग। **(तृतीय) तृतीयं भिक्षाया इति तृतीयभिक्षा, भिक्षातृतीयं वा।** भिक्षा का तीसरा भाग। **(चतुर्थ) चतुर्थं भिक्षाया इति चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थं वा।** भिक्षा का चौथा भाग। **(तुर्य) तुर्यं भिक्षाया इति तुर्यभिक्षा, भिक्षातुर्यं वा।** भिक्षा का चौथा भाग।*

__सिद्धि-द्वितीयभिक्षा।__ द्वितीय+सु+भिक्षा+ङस्। द्वितीयभिक्षा+सु। __द्वितीयभिक्षा।__ भिक्षाद्वितीयम्। भिक्षा+ङस्+द्वितीय+सु। भिक्षाद्वितीय+सु। भिक्षाद्वितीयम्। __ऐसे ही-भिक्षातृतीयम्__ आदि।

*विशेष-प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी भिक्षावृत्ति करते थे और उस भिक्षा को लाकर अपने आचार्य को सौंप देते थे। आचार्य उस भिक्षा में से अपने लिये रखकर शेष भिक्षा उन ब्रह्मचारियों में बांट देता था। उस अवस्था में '**द्वितीयभिक्षा**' आदि पदों का व्यवहार किया जाता था।*

प्राप्तापन्नयोर्विकल्पः-

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया।४।

प०वि०-प्राप्ता-आपन्ने १।२ अ १।१, च अव्ययपदम्, द्वितीयया ३।१।

स०-प्राप्ता च आपन्ना च ते प्राप्तापन्ने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अन्यतरस्याम्' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-प्राप्तापन्ने सुबन्ते अन्यतरस्यां द्वितीयान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्येते, प्राप्तापन्नयोश्चाऽकारादेशो भवति। समासश्च तत्पुरुषो भवति। द्वितीयातत्पुरुषापवादः। अन्यतरस्यां ग्रहणात् सोऽपि भवति।

उदा०-प्राप्ता-प्राप्ता जीविकामिति प्राप्तजीविका, जीविकाप्राप्ता वा। आपन्ना-आपन्ना जीविकामिति आपन्नजीविका, जीविकापन्ना वा।

*आर्यभाषा-अर्थ-(प्राप्तापन्ने) प्राप्ता और आपन्ना सुबन्त का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (द्वितीयया) द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है (अ च) और प्राप्ता तथा आपन्ना के आ को अकारादेश होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह द्वितीया तत्पुरुष समास का अपवाद है। '**अन्यतरस्याम्**' वचन से द्वितीया तत्पुरुष समास भी होता है। विभाषा का अधिकार होने से पक्ष में विग्रह वाक्य भी होता है।*

*उदा०-**प्राप्ता जीविकामिति प्राप्तजीविका, जीविकाप्राप्ता वा।** जीविका को प्राप्त हुई नारी। **आपन्ना-आपन्ना जीविकामिति आपन्नजीविका, जीविकापन्ना वा।** जीविका को प्राप्त हुई नारी।*

*सिद्धि-**प्राप्तजीविका।** प्राप्ता+सु+जीविका+अम्। प्राप्त+जीविका+सु। **प्राप्त**जीविका। जीविकाप्राप्ता। जीविका+अम्+प्राप्ता+सु। जीविकाप्राप्त+सु। **जीविका**प्राप्ता।*

कालवाचिनः--

(४) कालाः परिमाणिना।५।

प०वि०-कालाः १।३ परिमाणिना ३।१।

परिमाणमस्यास्तीति परिमाणी, तेन-परिमाणिना (तद्धितवृत्तिः)।

अर्थः-परिमाणवचनाः कालवाचिनः सुबन्ताः परिमाणिवाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। षष्ठीतत्पुरुषापवादः।

उदा०-मासो जातस्येति मासजातः। संवत्सरो जातस्येति संवत्सरजातः। एवम्-द्व्यहजातः। त्र्यहजातः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालाः) परिमाण के वाचक कालवाची सुबन्तों का (परिमाणिना) परिमाणवाले समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह षष्ठीतत्पुरुष समास का अपवाद है।

*उदा०-**मासो जातस्येति मासजातः।** जिसे पैदा हुये एक मास हुआ है। **संवत्सरो जातस्येति संवत्सरजातः।** जिसे पैदा हुये एक वर्ष हुआ है। इसी प्रकार-**द्व्यहजातः।** दो दिन का पैदा हुआ। **त्र्यहजातः।** तीन दिन का पैदा हुआ।*

*सिद्धि-**मासजातः।** मास+सु+जात+ङस्। मासजात+सु। मासजातः।*

नञ् शब्दः--

(५) नञ्।६।

वि०-नञ् अव्ययपदम्।

अर्थः-नञ् इत्यव्ययं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-न ब्राह्मण इति अब्राह्मणः। न वृषल इति अवृषलः।

आर्यभाषा-अर्थ-(नञ्) नञ् इस अव्यय सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**न ब्राह्मण इति अब्राह्मणः।** जो ब्राह्मण नहीं है। **न वृषल इति अवृषलः।** जो वृषल=नीच नहीं है।*

*सिद्धि-**अब्राह्मणः।** नञ्+सु+ब्राह्मण+सु। न+ब्राह्मण। अ+ब्राह्मण। अब्राह्मण+सु। अब्राह्मणः।*

*यहां **'नलोपो नञः'** (६।३।७३) से नञ् के न् का लोप हो जाता है और उसका 'अ' शेष रहता है।*

ईषत्-शब्दः–

(६) ईषदकृता।७।

प०वि०–ईषत् अव्ययपदम्। अकृता ३।१।

स०–न कृत् इति अकृत्, तेन–अकृता (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः–ईषद् इत्यव्ययं सुबन्तं अकृत्प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति। गुणवचनेन सहायं समास इष्यते।

उदा०–ईषच्चासौ कडार इति ईषत्कडारः। ईषच्चासौ पिङ्गल इति ईषत्पिङ्गलः।

आर्यभाषा–अर्थ–(ईषत्) ईषत् इस अव्यय सुबन्त का (अकृता) कृत्-प्रत्ययान्त से भिन्न समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है। यह समास गुणवाची सुबन्त के साथ इष्ट है।

*उदा०–**ईषच्चासौ कडार इति ईषत्कडारः।** थोड़ा भूरा। **ईषच्चासौ पिङ्गल इति ईषत्पिङ्गलः।** थोड़ा भूरा।*

सिद्धि–ईषत्कडारः। ईषत्+सु+कडार+सु। ईषत्कडार+सु। ईषत्कडारः।

षष्ठी-तत्पुरुषः–

(१) षष्ठी।८।

वि०–षष्ठी १।१।

अर्थः–षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०–राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः। ब्राह्मणस्य कम्बल इति ब्राह्मणकम्बलः।

आर्यभाषा–अर्थ–(षष्ठी) षष्ठी–अन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०–**राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः।** राजा का पुरुष, सिपाही आदि। **ब्राह्मणस्य कम्बल इति ब्राह्मणकम्बलः।** ब्राह्मण का कम्बल, जो दक्षिणा में देना है।*

सिद्धि-राजपुरुषः। राजन्+ङस्+पुरुष+सु। राजन्+पुरुष। राजपुरुष+सु। राजपुरुषः।

यहां 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से राजन् पद के न का लोप होता है।

षष्ठीतत्पुरुषः-

(२) याजकादिभिश्च।६।

प०वि०-याजक-आदिभिः ३।३ च अव्ययम्।

स०-याजक आदिर्येषां ते याजकादयः, तैः-याजकादिभिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'षष्ठी' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-षष्ठ्यन्तं सुबन्तं याजकादिभिः समर्थैः सुबन्तैः सह विकल्पेन समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-ब्राह्मणस्य याजक इति ब्राह्मणयाजकः। कृष्णस्य पूजक इति कृष्णपूजकः।

याजक। पूजक। परिचायक। परिषेचक। परिवेषक। स्नातक। अध्यापक। उत्सादक। उद्वर्तक। हर्तृ। वर्तक। होतृ। पोतृ। भर्तृ। रथगणक। पत्तिगणक। इति याजकादयः।

आर्यभाषा-अर्थः-(षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का (याजकादिभिः) याजक आदि समर्थ सुबन्तों के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**ब्राह्मणस्य याजक इति ब्राह्मणयाजकः।** ब्राह्मण का यज्ञ करानेवाला ऋत्विक्। **कृष्णस्य पूजक इति कृष्णपूजकः।** कृष्ण की पूजा करनेवाला अर्जुन।*

षष्ठीतत्पुरुषप्रतिषेधः

षष्ठी (निर्धारणे)-

(३) न निर्धारणे।१०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, निर्धारणे ७।१।

अनु०-'षष्ठी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-निर्धारणे षष्ठी सुप् सुपा सह न समासः।

अर्थ:-निधारणेऽर्थे वर्तमानं षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते। जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्।

उदा०-(जातिः) क्षत्रियो मनुष्याणां शूरतमः। (गुणः) कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा। (क्रिया) धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(निधारणे) निर्धारण अर्थ में वर्तमान (षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास (न) नहीं होता है। जाति गुण और क्रिया के कारण समूह से एक भाग को पृथक् करना निर्धारण कहाता है।

*उदा०-**(जाति) क्षत्रियो मनुष्याणां शूरतमः।** मनुष्यों में क्षत्रिय अधिक शूर होता है। **(गुण) कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरतमा।** गौओं में काली गाय अधिक दूध देनेवाली होती है। **(क्रिया) धावन्नध्वगानां शीघ्रतमः।** मार्ग चलनेवालों में दौड़नेवाला शीघ्रगामी होता है।*

*सिद्धि-**मनुष्याणां शूरतमः।** यहां निर्धारण अर्थ में षष्ठ्यन्त सुबन्त का समास नहीं हुआ। यहां **'यतश्च निर्धारणम्'** (२।३।४१) से निर्धारण में षष्ठी विभक्ति होती है।*

षष्ठी (पूरणादिभिः)-

(४) पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन।११।

प०वि०- पूरण-गुण-सुहितार्थ-सत्-अव्यय-तव्य-समानाधि-करणेन ३।१।

स०-पूरणं च गुणश्च सुहितार्थश्च सत् च अव्ययं च तव्यश्च समानाधिकरणं च एतेषां समाहारः पूरण०समानाधिकरणम्, तेन-पूरण०समानाधिकरणेन (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-षष्ठी न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठी सुप् पूरण०समानाधिकरणेन सुपा सह न समासः।

अर्थः-षष्ठ्यन्तं सुबन्तं पूरण०समानाधिकरणेन समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते।

उदा०-(पूरणम्) छात्राणां पञ्चमः। छात्राणां दशमः। (गुणः) बलाकायाः शौक्ल्यम्। काकस्य कार्ष्ण्यम्। (सुहितार्थः=तृप्तार्थः) फलानां

सुहितः। फलानां तृप्तः। (सत्=शतृ-शानचौ) शतृ-ब्राह्मणस्य कुर्वन्। शानच्-ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। (अव्ययम्) ब्राह्मणस्य कृत्वा। ब्राह्मणस्य हृत्वा। (तव्यः) ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्। (समानाधिकरणम्) शुकस्य माराविदस्य। राज्ञः पाटलिपुत्रस्य। पाणिनेः सूत्रकारस्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का (पूरण०समानाधिकरणेन) पूरण-प्रत्ययान्त, गुणवाची, सुहित=तृप्तार्थक, सत्=शतृ और शानच् प्रत्ययान्त, अव्यय और समानाधिकरणवाची समर्थ सुबन्त के साथ समास (न) नहीं होता है।

*उदा०-(पूरण-प्रत्ययान्त) **छात्राणां पञ्चमः।** छात्रों में पांचवां। **छात्राणां दशमः।** छात्रों में दशवां। गुणवाची-**बलाकायाः शौक्ल्यम्।** बगुली का सफेदपन। **काकस्य कार्ष्ण्यम्।** कौवे का कालापन। (सुहितार्थ-तृप्तार्थ) **फलानां सुहितः।** फलों से तृप्त है। **फलानां तृप्तः।** फलों से तृप्त है। (सत्=शतृ-शानच्) शतृ-**ब्राह्मणस्य कुर्वन्।** ब्राह्मण का कार्य करता हुआ। शानच्-**ब्राह्मणस्य कुर्वाणः।** ब्राह्मण का कार्य करता हुआ। (अव्यय) **ब्राह्मणस्य कृत्वा।** ब्राह्मण का कार्य करके। **ब्राह्मणस्य हृत्वा।** ब्राह्मण का धन हरण करके। तव्य-**ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्।** ब्राह्मण का कर्त्तव्य। (समानाधिकरण) **शुकस्य माराविदस्य।** माराविद नामक तोते का। **राज्ञः पाटलिपुत्रस्य।** पाटलिपुत्र (पटना) के राजा का। **पाणिनेः सूत्रकारस्य।** सूत्रकार पाणिनि का।*

विशेष-(१) 'तस्य पूरणे डट्' (५।२।४८) यहां पूरण अर्थ में डट् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है।

(२) सत्- 'तौ सत्' (३।२।१२७) से शतृ और शानच् प्रत्यय की सत् संज्ञा की गई है।

षष्ठी (क्तेन)-

(५) क्तेन च पूजायाम्।१२।

प०वि०-क्तेन ३।१ च अव्ययपदम्, पूजायाम् ७।१।

अनु०-षष्ठी, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठी सुप् पूजायां क्तेन सुपा सह च न समासः।

अर्थः-षष्ठ्यन्तं सुबन्तं पूजायामर्थे वर्तमानेन क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन च सह न समस्यते।

उदा०-राज्ञां मतो देवदत्तः। राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः। राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का (पूजायाम्) पूजा अर्थ में वर्तमान (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (च) भी समास नहीं होता है।

*उदा०-**राज्ञां मतो देवदत्तः।** देवदत्त राजाओं के द्वारा सम्मानित है। **राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त राजाओं के द्वारा संज्ञात है। **राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त राजाओं के द्वारा पूजित है।*

*सिद्धि-**राज्ञां मतो देवदत्तः।** यहां **'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'** (३।२।१८८) से वर्तमानकाल में पूजा अर्थ में क्त प्रत्यय है। **'क्तस्य च वर्तमाने'** (२।३।६७) से वर्तमानकाल में विहित क्त-प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। प्रकृत सूत्र से उक्त षष्ठीविभक्ति के समास का प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**राज्ञां बुद्धः, राज्ञां पूजितः।***

षष्ठी (अधिकरणवाचिना)-

(६) अधिकरणवाचिना च।१३।

प०वि०-अधिकरणवाचिना ३।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-षष्ठी, न, क्तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठी सुप् अधिकरणवाचिना क्तेन सुपा सह न समासः।

अर्थः-षष्ठ्यन्तं सुबन्तं अधिकरणवाचिना क्त-प्रत्ययान्तेन समर्थेन सुबन्तेन च सह न समस्यते।

उदा०-इदमेषां यातम्। इदमेषां भुक्तम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का (अधिकरणवाचिना) अधिकरणवाची (क्तेन) क्त-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ (च) भी समास (न) नहीं होता है।

*उदा०-**इदमेषां यातम्।** यह इनके जाने का मार्ग है। **इदमेषां भुक्तम्।** यह इनके भोजन का स्थान है।*

*सिद्धि-**इदमेषां यातम्।** यहां **'या गतौ'** (अदा०प०) धातु से **'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः'** (३।४।७६) से अधिकरण कारक में क्त-प्रत्यय है। प्रकृत सूत्र से उसके साथ षष्ठी समास का प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**इदमेषां भुक्तम्।***

कर्मणि षष्ठी-

(७) कर्मणि च।१४।

प०वि०-कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-षष्ठी, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणि च षष्ठी सुप् सुपा सह न समासः।

अर्थः-'उभयप्राप्तौ कर्मणि' इत्येवं या षष्ठी विहिता तदन्तं च समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते।

उदा०-आश्चर्यो **गवां** दोहोऽगोपालकेन। रोचते मे **ओदनस्य** भोजनं देवदत्तेन। साधु खलु **पयसः** पानं यज्ञदत्तेन। विचित्रा **सूत्रस्य** कृतिः पाणिनिना।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' (२।३।६६) इस सूत्र से जो षष्ठी विभक्ति विधान की गई है, उस सुबन्त का (च) भी समर्थ सुबन्त के साथ समास (न) नहीं होता है।

*उदा०-**आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन।** जो गोपाल नहीं है उसके द्वारा गौओं का दुहना आश्चर्य की बात है। **रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन।** देवदत्त का ओदन का खाना मुझे प्यारा लगता है। **साधु खलु पयसः पानं यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त का दूध का पीना अच्छा है। **विचित्रा सूत्रस्य कृतिः पाणिनिना।** पाणिनि की सूत्र-रचना विचित्र है।*

*सिद्धि-**आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन।** यहां 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' (२।३।६५) से 'दोहः' इस कृदन्त के प्रयोग में कर्ता अगोपालक और कर्म गौ इन दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है, किन्तु **'उभयप्राप्तौ कर्मणि'** (२।३।६६) से कर्म में षष्ठी विभक्ति हो जाती है और कर्ता में **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है। प्रकृत सूत्र से उक्त कर्म में विहित षष्ठी विभक्ति के समास का प्रतिषेध किया गया है।*

कर्मणि षष्ठी-

(८) तृजकाभ्यां कर्तरि।१५।

प०वि०-तृच्-अकाभ्याम् ३।२ कर्तरि ७।१।

स०-तृच् च अकश्च तौ-तृजकौ, ताभ्याम्-तृजकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०-षष्ठी, न, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणि षष्ठी कर्तरि तृजकाभ्यां सुब्भ्यां न समासः।

अर्थः-कर्मणि या षष्ठी तदन्तं सुबन्तं कर्तरि वर्तमानाभ्यां **तृजकाभ्यां** समर्थाभ्यां सुबन्ताभ्यां सह न समस्यते।

उदा०-(तृच्) पुरां भेत्ता। अपां स्रष्टा। वज्रस्य भर्ता। (अक:) ओदनस्य भोजक:। सक्तूनां पायक:।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) 'कर्तृकर्मणो: कृति:' (२।३।६५) से कृदन्त के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है उस सुबन्त का (कर्तरि) कर्ता अर्थ में विद्यमान (तृजकाभ्याम्) तृच् और अक प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्तों के साथ समास (न) नहीं होता है।

*उदा०-(तृच्) **पुरां भेत्ता।** नगरों को तोड़नेवाला इन्द्र। **अपां स्रष्टा।** जल की सृष्टि करनेवाला वरुण। **वज्रस्य भर्ता।** वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र। (अक) **ओदनस्य भोजक:।** भात को खानेवाला देवदत्त। **सक्तूनां पायक:।** सत्तुओं को पीनेवाला यज्ञदत्त।*

*सिद्धि-(१) **पुरां भेत्ता।** यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से कृत्संज्ञक तृच् प्रत्यय है। इसके प्रयोग में 'पुराम्' में 'कर्तृकर्मणो: कृति' (२।३।६५) से षष्ठी विभक्ति है। प्रकृत सूत्र से उस षष्ठी विभक्ति के समास का प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **ओदनस्य भोजक:।** यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयो:' (अदा०आ०) से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) ण्वुल् (अक) प्रत्यय है। उसके योग में **'ओदनस्य'** में पूर्ववत् (२।३।६५) षष्ठी विभक्ति है। प्रकृत सूत्र से उसके प्रयोग में षष्ठी समास का प्रतिषेध किया गया है।*

कर्तरि षष्ठी (अकेन)-

(६) कर्तरि च।१६।

प०वि०-कर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु-षष्ठी, न इति च, 'तृजकाभ्याम्' इत्यस्माच्च 'अकेन' इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-कर्तरि षष्ठी सुप् च अकेन सुपा सह।

अर्थ:-कर्तरि या षष्ठी तदन्तं सुबन्तं च अकान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह न समस्यते।

उदा०-भवत: शायिका। भवत आसिका। भवतोऽग्रग्रासिका।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तरि) कर्ता कारक में जो (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति है उस समर्थ सुबन्त का (च) भी (अकेन) अक-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास (न) नहीं होता है।

*उदा०-**भवत: शायिका।** आपकी सोने की बारी (पर्याय) है। **भवत आसिका।** आपकी बैठने की बारी है। **भवतोऽग्रग्रासिका।** आपकी पहले खाने की बारी है।*

सिद्धि-भवतः शायिका। यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से 'पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्' (३।३।१११) से पर्याय (बारी) अर्थ में ण्वुच् प्रत्यय है। इसके 'वु' के स्थान में 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से अक-आदेश होता है। 'शायिका' इस आकारान्त शब्द के प्रयोग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से कर्ता 'भवतः' में षष्ठी विभक्ति है। प्रकृत सूत्र से इस में षष्ठी समास का प्रतिषेध किया गया है।

विशेष-काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'तृजकाभ्यां कर्तरि' और 'कर्तरि च' इन दोनों सूत्रों का महाभाष्यकार से विरुद्ध व्याख्यान किया है। अतः वह माननीय नहीं है।

नित्यं षष्ठीतत्पुरुषः-

(१) नित्यं क्रीडाजीविकयोः।१७।

प०वि०-नित्यम् १।१ क्रीडा-जीविकयोः ७।२।

स०-क्रीडा च जीविका च ते-क्रीडाजीविके, तयोः-क्रीडाजीविकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-षष्ठी अकेन तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रीडाजीविकयोः षष्ठी सुप् सुपा सह नित्यं समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-क्रीडायां जीविकायां चार्थे षष्ठ्यन्तं सुबन्तं नित्यं समस्यते, समासश्च तत्पुरुषो भवति।

उदा०-(क्रीडायाम्) उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वारणपुष्पप्रचायिका। (जीविकायाम्) दन्तलेखकः। नखलेखकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रीडाजीविकयोः) क्रीडा और जीविका अर्थ में (षष्ठी) षष्ठी-अन्त सुबन्त का (सुपा) समर्थ सुबन्त के साथ (नित्यम्) सदा समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-(क्रीडा) **उद्दालकपुष्पभञ्जिका**। उद्दालक के फूल तोड़ने का खेल। **वारणपुष्पप्रचायिका**। वारण वृक्ष के फूल इकट्ठा करने का खेल। **(जीविका) दन्तलेखकः**। दांतों का लेखन करनेवाला। **नखलेखकः**। नाखूनों का लेखन (कटाई) करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **उद्दालकपुष्पभञ्जिका**। भञ्ज्+ण्वुल्। भञ्ज्+अक। भञ्जक+टाप्। भञ्जिक+आ। भञ्जिका+सु। भञ्जिका। उद्दालकपुष्प+आम्+भञ्जिका+सुं। उद्दालकपुष्प-भञ्जिका+सु। उद्दालकपुष्पभञ्जिका।*

यहां 'भञ्जो आमर्दने' (रु०प०) धातु से 'संज्ञायाम्' से ण्वुल् प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से वु के स्थान में अक-आदेश होता है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्'

(४।१।३) से टाप् प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात् कात्०' (७।३।४४) से इकार-आदेश होता है। इस सूत्र से अकान्त भञ्जिका शब्द का क्रीडा अर्थ में नित्य षष्ठी समास का विधान किया गया है।

(२) दन्तलेखकः। लिख्+ण्वुन्। लेख+अक। लेखक+सु। लेखकः। दन्त+आम्+लेखक+सु। दन्तलेखक+सु। दन्तलेखकः।

यहां 'लिख अक्षरविन्यासे' (तु०प०) धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन्' (३।१।१४५) से ष्वुन्-प्रत्यय है। वु के स्थान में पूर्ववत् अक-आदेश होता है। इस सूत्र से अकान्त लेखक शब्द का जीविका अर्थ में नित्य षष्ठी समास का विधान किया गया है। 'कर्तरि च' (२।२।१६) से प्रतिषेध प्राप्त था।

कु-गति-प्रादि-तत्पुरुषः–

(१) कुगतिप्रादयः।१८।

प०वि०–कु-गति-प्रादयः १।३।

स०–प्र आदिर्येषां ते प्रादयः। कुश्च गतिश्च प्रादयश्च ते-कुगतिप्रादयः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–नित्यं तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कुगतिप्रादयः सुपः सुपा सह नित्यं समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः–कु-गति-प्रादयः सुबन्ताः समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यन्ते, समासश्च तत्पुरुषो भवति।

उदा०–(कु पापार्थे) कुत्सितः पुरुष इति कुपुरुषः। (गतिः) उरीकृत्य। (प्रादयः) प्रगत आचार्य इति प्राचार्यः। (दुर् निन्दायाम्) दुष्ठु पुरुष इति दुष्पुरुषः। (सु पूजायाम्) सुष्ठु पुरुष इति सुपुरुषः। (आङ् ईषदर्थे) ईषत् पिङ्गल इति आपिङ्गलः।

आर्यभाषा-अर्थ–(कुगतिप्रादयः) कु, गतिसंज्ञक और प्र आदि सुबन्तों का समर्थ सुबन्त के साथ (नित्यम्) सदा समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०–(कु पाप) कुत्सितः पुरुष इति कुपुरुषः। पापी पुरुष। (गतिसंज्ञक) उरीकृत्य। स्वीकार करके। (प्रादि) प्रगत आचार्य इति प्राचार्यः। प्रकृष्ट आचार्य। (दुर् निन्दा) दुष्ठु पुरुष इति दुष्पुरुषः। निन्दित पुरुष। (सु पूजा) सुष्ठु पुरुष इति सुपुरुषः। पूजनीय पुरुष। (आङ् ईषत्) ईषत् पिङ्गल इति आपिङ्गलः। थोड़ा भूरा।

सिद्धि-(१) कुपुरुषः। कु+सु+पुरुष+सु। कुपुरुष+सु। कुपुरुषः।

(२) उरीकृत्य। उरी+सु+कृ+क्त्वा। उरी+कृ+ल्यप्। उरी+कृ+तुक्+य। उरी+कृ+त्+य। उरीकृत्य+सु। उरीकृत्य।

*यहां **'उर्यादिच्विडाचश्च'** (१।४।६१) 'उरी' शब्द की गति संज्ञा है। गतिसंज्ञक उरी-शब्द का क्त्वा-प्रत्ययान्त कृत्वा शब्द के साथ समास होने पर **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है और **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।२।७२) से तुक् आगम होता है।*

*(३) प्राचार्यः। प्र+सु+आचार्य+सु। प्राचार्य+सु। प्राचार्यः। यहां 'प्र' शब्द का आचार्य शब्द के साथ तत्पुरुष समास है। प्र-आदि शब्दों का पाठ **'प्रादयः'** (४।१।५८) सूत्र के प्रवचन में दर्शाया गया है।*

उपपदतत्पुरुषः

उपपदम् (अतिङ्)-

उपपदमतिङ्।१६।

प०वि०-उपपदम् १।१ अतिङ् १।१।

स०-न तिङ् इति अतिङ् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-नित्यं तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतिङ् सुप् सुपा सह नित्यं समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-अतिङन्तमुपपदसुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। नगरं करोतीति नगरकारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतिङ्) तिङन्त से भिन्न (उपपदम्) उपपद सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ (नित्यम्) सदा समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

*उदा०-**कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।** जो घड़ा बनाता है वह कुम्हार। **नगरं करोतीति नगरकारः।** जो नगर बनाता है वह नगरकार।*

*सिद्धि-(१) **कुम्भकारः।** कुम्भ+ङस्+कृ+अण्। कुम्भ+कार्+अ। कुम्भकार+सु। कुम्भकारः।*

*यहां कुम्भ कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से अण् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से कृ धातु को वृद्धि होती है। ऐसे ही-**नगरकारः।***

उपपदम् (अमा-एव)–

(२) अमैवाव्ययेन।२०।

प०वि०-अमा ३।१ एव अव्ययपदम्, अव्ययेन ३।१।

अनु०-उपपदं तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपपदं सुब् अमैवाव्ययेन सुपा सह समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-उपपदं सुबन्तम् अमन्तेन एव अव्ययेन समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते, नान्येन सह। तत्पुरुषश्च समासो भवति। पूर्वसूत्रेणैव समासे सिद्धे नियमार्थमिदुमुच्यते।

उदा०-स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते।

*आर्यभाषा-अर्थ-(उपपदम्) उपपद सुबन्त का (अमा) जिसके अन्त में अम् है **(एव)** उसी (अव्ययेन) अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, किसी अन्य के साथ **नहीं** और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते।** भोजन को स्वादिष्ट बनाकर खाता है। **लवणङ्कारं भुङ्क्ते।** भोजन को नमकीन बनाकर खाता है। **सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते।** भोजन को घृत आदि से सम्पन्न करके खाता है।*

*सिद्धि-**स्वादुङ्कारम्।** स्वादुम्+कृ+णमुल्। स्वादुम्+कार्+अम्। स्वादुङ्कारम्+सु। स्वादुङ्कारम्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (त०उ०) धातु से **'स्वादुमि णमुल्'** (३।४।२६) से णमुल् प्रत्यय है। यहां 'स्वादुम्' उपपद का अमन्त अव्यय 'कारम्' के साथ समास होता है। इसकी 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा है। 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से सु प्रत्यय का लोप हो जाता है।*

उपपदतत्पुरुषविकल्पः

तृतीयादीनि–

(३) तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्।२१।

प०वि०-तृतीया-प्रभृतीनि १।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-तृतीया प्रभृतिर्येषां तानि-तृतीयाप्रभृतीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उपपदम्, अमैवाव्ययेन, तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि सुपोऽमैवाव्ययेन सुपा सहान्यतरस्यां समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि सुबन्तानि अमन्तेन एव अव्ययेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। उच्चैः कारमाचष्टे। उच्चैःकारमाचष्टे।

*आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयाप्रभृतीनि) **'उपदंशस्तृतीयायाम्'** (३।४।४७) से लेकर जो उपपद हैं उन उपपद सुबन्तों का (अमा) अम् जिसके अन्त में है (एव) उसी (अव्ययेन) अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ (अन्यतरस्याम्) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।*

*उदा०-**मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते।** मूली को दांत से काटकर उसके साथ रोटी खाता है। उच्चैः **कारमाचष्टे। उच्चैःकारमाचष्टे।** हे ब्राह्मण! तेरी कन्या गर्भिणी है, हे वृषल! क्या तू इसे ऊंचा स्वर करके कहता है।*

*सिद्धि-(१) **मूलकोपदंशम्।** मूलक+टा+उपदंश्+णमुल्। मूलक+उपदंश्+अम्। मूलकोपदंशम्+सु। मूलकोपदंशम्।*

*यहां **'उपदंशस्तृतीयायाम्'** (३।४।४७) से तृतीयान्त मूलक शब्द उपपद होने पर **'डुकृञ् करणे'** (त०उ०) धातु से णमुल् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से कृ धातु को वृद्धि होती है। तृतीयान्त 'मूलक' शब्द का अमन्त अव्यय 'कारम्' के साथ इस सूत्र से विकल्प से समास होता है। **'कृन्मेजन्तः'** (१।१।३९) से मकारान्त 'कारम्' शब्द की अव्यय संज्ञा है।*

*(२) **उच्चैःकारम्।** उच्चैः+सु+कृ+णमुल्। उच्चैः+कार्+अम्। उच्चैःकारम्+सु। उच्चैःकारम्।*

*यहां **'अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने०'** (३।४।५९) से 'उच्चैः' अव्यय शब्द उपपद होने से कृ धातु से णमुल् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

तृतीयादीनि (क्त्वा)-

(४) क्त्वा च।२२।

प०वि०-क्त्वा ३।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उपपदम्, तृतीयाप्रभृतीनि, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि सुपः क्त्वा सुपा सह चान्यतरस्यां समासस्तत्पुरुषः।

अर्थः-तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि सुबन्तानि क्त्वा-प्रत्ययान्तेनापि समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति।

उदा०-उच्चैः कृत्वा। उच्चैःकृत्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयाप्रभृतीनि) 'उपदंशस्तृतीयायाम्' (३।४।४७) इससे लेकर (उपपदम्) जो उपपद हैं उन उपपद सुबन्तों का (क्त्वा) क्त्वा-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्तों के साथ (च) भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से समास होता है और उसकी (तत्पुरुषः) तत्पुरुष संज्ञा होती है।

उदा०-उच्चैः कृत्वा। कोई कहता है- हे ब्राह्मण! तेरी कन्या गर्भिणी है, हे वृषल! क्या तू इसे ऊंचा स्वर करके कहता है। उच्चैःकृत्य। यहां समास होगया। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-उच्चैःकृत्य। उच्चैः+सु+कृ+क्त्वा। उच्चै+कृ+ल्यप्। उच्चैःकृ+तुक्+य। उच्चैः+कृ+त्+य। उच्चैःकृत्य+सु। उच्चैःकृत्य।

यहां 'अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ' (३।४।५९) से कृ धातु से क्त्वा प्रत्यय और इस सूत्र से तत्पुरुष समास है। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से समास में क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश होता है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।२।६२) से तुक् आगम होता है। जहां समास नहीं होता वहां-उच्चैः कृत्वा।

इति तत्पुरुषप्रकरणम्।

बहुव्रीहिप्रकरणम्

शेषाधिकारः-

(१) शेषो बहुव्रीहिः।२३।

प०वि०-शेषः १।१ बहुव्रीहिः १।१।

अन्वयः-शेषः समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः-पूर्वोक्तादन्यः शेषः समासो बहुव्रीहिसंज्ञको भवति। इत्यधिकारोऽयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शेषः) पूर्वोक्त समास से भिन्न शेष समास की (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती। यह संज्ञा-अधिकार सूत्र है।

अनेकं सुबन्तम्–

(२) अनेकमन्यपदार्थे।२४।

प०वि०–अनेकम् १।१ अन्यपदार्थे ७।१।

स०–न एकमिति अनेकम् (नञ्तत्पुरुषः)। अन्यच्च तत् पदमिति अन्यपदम्, तस्य–अन्यपदस्य। अन्यपदस्यार्थ इति अन्यपदार्थः, तस्मिन्–अन्यपदार्थे (कर्मधारयगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–विभाषा, बहुव्रीहिः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अन्यपदार्थेऽनेकं सुप् परस्परं विभाषा समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः–अन्यपदार्थे वर्तमानम् अनेकं सुबन्तं परस्परं विकल्पेन समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति। प्रथमामेकां वर्जयित्वा सर्वेषु विभक्ति-अर्थेषु बहुव्रीहिः समासो भवति।

उदा०–(द्वितीया) प्राप्तमुदकं यं ग्रामं स प्राप्तोदको ग्रामः। (तृतीया) ऊढो रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान्। (चतुर्थी) उपहृतः पशुर्यस्मै स उपहृतपशू रुद्रः। (पञ्चमी) उद्धृतमोदनं यस्याः सा उद्धृतौदना स्थाली। (षष्ठी) चित्रा गावो यस्य स चित्रगुर्देवदत्तः। (सप्तमी) वीराः पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुषको ग्रामः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अन्यपदार्थे) अन्य पद के अर्थ में विद्यमान (अनेकम्) एक से अधिक सुबन्तों का परस्पर (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती है। यहां एक प्रथमा विभक्ति को छोड़कर द्वितीया आदि सब विभक्तियों के अर्थों में बहुव्रीहि समास होता है।

उदा०-__(द्वितीया) प्राप्तमुदकं यं ग्रामं स प्राप्तोदको ग्रामः।__ वह ग्राम जिसे जल प्राप्त होगया है। __(तृतीया) ऊढो रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान्।__ वह बैल जिसके द्वारा रथ वहन किया गया है। __(चतुर्थी) उपहृतः पशुर्यस्मै स उपहृतपशू रुद्रः।__ वह रुद्र देवता जिसके लिये बैल आदि पशु उपहार रूप में दिया गया है। __(पञ्चमी) उद्धृतमोदनं यस्याः सा उद्धृतौदना स्थाली।__ वह स्थाली=पतीली जिससे भात निकाल लिया गया है। __(षष्ठी) चित्रा गावो यस्य स चित्रगुर्देवदत्तः।__ वह देवदत्त जिसकी गाय चितकबरी हैं। __(सप्तमी) वीराः पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुषको ग्रामः।__ वह गांव जिसमें वीरपुरुष रहते हैं।

__सिद्धि-प्राप्तोदकः।__ प्राप्त+सु+उदक+सु। प्राप्तोदक+सु। प्राप्तोदकः।

यहां प्राप्त और उदक दो पदों का बहुव्रीहि समास किया गया है। ये दोनों पद अपने से अन्य (भिन्न) तीसरे ग्राम पद के अर्थ में विद्यमान हैं कि 'ग्राम' जिसे जल प्राप्त होगया है। ऐसे ही- 'ऊढरथः' आदि।

अव्ययादयः–

(३) संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये।२५।

प०वि०-संख्यया ३।१ अव्यय-आसन्न-अदूर-अधिक-संख्याः १।३ संख्येये ७।१।

स०-अव्ययं च आसन्नं च अदूरं च अधिकं च संख्या च ताः-अव्यय०संख्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। संख्यातुमर्हं संख्येयम्, गणनीयमित्यर्थः (कृदन्तवृत्तिः)।

अनु०-विभाषा, बहुव्रीहिः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्यय०संख्याः सुपः संख्येये संख्यया सुपा सह विभाषा समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः-अव्ययादयः सुबन्ता संख्येयेऽर्थे वर्तमानेन संख्यावाचिना समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति।

उदा०-(अव्ययम्) दशानां समीपमिति उपदशाः पुरुषाः। (आसन्नम्) दशानामसन्नमिति आसन्नदशाः पुरुषाः। (अदूरम्) अदूरं दशानामिति अदूरदशाः पुरुषाः। (अधिकम्) अधिकं दशानामिति अधिकदशाः पुरुषाः। (संख्या) द्वौ च त्रयश्च ते द्वित्राः पुरुषाः। त्रयश्च चत्वारश्च ते त्रिचतुराः पुरुषाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्यय०संख्याः) अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और संख्यावाची सुबन्तों का (संख्येये) गणनीय अर्थ में विद्यमान (संख्यया) संख्यावाची सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती है।

उदा०-(अव्यय) दशानां समीपमिति उपदशाः पुरुषाः। लगभग दश पुरुष। (आसन्न) आसन्नं दशानामिति आसन्नदशाः पुरुषाः। अर्थ पूर्ववत्। (अदूर) अदूरं दशानामिति अदूरदशाः पुरुषाः। अर्थ पूर्ववत्। (अधिक) अधिकं दशानामिति अधिकदशाः पुरुषाः। दश से अधिक पुरुष। (संख्या) द्वौ च त्रयश्चेति द्वित्राः पुरुषाः। दो-तीन पुरुष। त्रयश्च चत्वारश्च इति त्रिचतुराः पुरुषाः। तीन-चार पुरुष।

सिद्धि-उपदशाः । उप+सु+दश+जस् । उपदश+जस् । उपदशाः ।

यहां अव्यय, उप सुबन्त तथा संख्यावाची दश सुबन्त के साथ बहुव्रीहि समास किया गया है। उप और दश दोनों पद अपने अर्थ से अन्य संख्येये=गणनीय पुरुष पद के अर्थ के वाचक हैं।

दिङ्नामानि—

दिङ्नामान्यन्तराले ।२६।

प०वि०-दिक्-नामानि १।३ अन्तराले ७।१।

स०-दिशां नामानीति दिङ्नामानि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-विभाषा, बहुव्रीहिः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिङ्नामानि सुपोऽन्तराले परस्परं समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः-दिशावाचीनि सुबन्तानि तदन्तरालेऽर्थे परस्परं विकल्पेन समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति।

उदा०-उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशाया अन्तरालमिति-उत्तरपूर्वा दिक् (ऐशानी)। पूर्वस्या दक्षिणायाश्च दिशाया अन्तरालमिति पूर्वदक्षिणा (आग्नेयी) दक्षिणस्याः पश्चिमायाश्च दिशाया अन्तरालमिति दक्षिणपश्चिमा (नैर्ऋतिः)। पश्चिमाया उत्तरस्याश्च दिशाया अन्तरालमिति पश्चिमोत्तरा (वायवी)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(दिङ्नामानि) दिशावाची सुबन्तों का (अन्तराले) उनके बीच की दिशा के कहने में परस्पर (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती है।*

*उदा०-**उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशाया अन्तरालमिति उत्तरपूर्वा दिक्।** उत्तर और पूर्व दिशा के बीच की दिशा, जिसे ऐशानी कहते हैं। **पूर्वस्या दक्षिणायाश्च दिशाया अन्तरालमिति पूर्वदक्षिणा।** पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच की दिशा जिसे आग्नेयी कहते हैं। **दक्षिणस्याः पश्चिमायाश्च दिशाया अन्तरालमिति दक्षिणपश्चिमा।** दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच की दिशा जिसे नैर्ऋति कहते हैं। **पश्चिमाया उत्तरस्याश्च दिशाया अन्तरालमिति पश्चिमोत्तरा।** पश्चिम और उत्तर दिशा के बीच की दिशा जिसे वायवी कहते हैं।*

सिद्धि-उत्तरपूर्वा। उत्तरा+ङस्+पूर्वा+ङस्। उत्तरा+पूर्वा। उत्तरपूर्वा+सु। उत्तरपूर्वा।

*यहां उत्तरा और पूर्वा दो दिशावाची सुबन्तों का समास किया गया है। उत्तरा **और** पूर्वा दोनों पद अपने अर्थ से अन्य अन्तराल-दिशा ऐशानी पद के अर्थ के वाचक **है।** **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३४) से उत्तरा को पुंवद्भाव होता है।*

***विशेष**-दिशायें दश होती हैं-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और इन दिशाओं के अन्तराल की दिशा आग्नेयी, नैर्ऋति, वायवी और ऐशानी। ध्रुवा (नीचे की दिशा) और ऊर्ध्वा (ऊपर की दिशा)।*

सप्तम्यन्तं तृतीयान्तं सरूपम्–

तत्र तेनेदमिति सरूपे।२७।

प०वि०-तत्र अव्ययम्। तेन ३।१ इदम् १।१ इति अव्ययम्। सरूपे १।२।

स०-समानं रूपं यस्य तत् सरूपम्, ते-सरूपे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-विभाषा, बहुव्रीहिः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र, तेन इति सरूपे सुपाविदमिति परस्परं विभाषा समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः-तत्र इति सप्ताम्यन्ते सरूपे द्वे पदे, तेन इति च तृतीयान्ते सरूपे द्वे पदे इदमित्यस्मिन्नर्थे परस्परं समस्येते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति।

उदा०-तत्र (सप्तम्यन्ते सरूपे) केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि। कचेषु कचेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तमिति कचाकचि। तेन (तृतीयान्ते सरूपे) दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति-दण्डादण्डि। मुसलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति मुसलामुसलि।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(तत्र-सरूपे) सप्तमी-अन्त सरूप दो पदों का (तेन-सरूपे) और तृतीयान्त सरूप दो पदों का (इदमिति) यह युद्धादि प्रवृत्त हुआ इस अर्थ में (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती है।*

*उदा०-(सप्तम्यन्त सरूप दो पद) **केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि।** एक दूसरे के बालों में हाथ डालकर जो युद्ध प्रवृत्त हुआ उसे **'केशाकेशि'** कहते हैं। **कचेषु कचेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तमिति कचाकचि।** अर्थ पूर्ववत् है। (तृतीयान्त सरूप दो पद) **दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि।***

*एक-दूसरे पर दण्डों से परस्पर प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ उसे 'दण्डादण्डि' कहते हैं। **मुसलैश्च मुसलैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति मुसलामुसलि।** एक-दूसरे पर मुसलों से परस्पर प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ उसे 'मुसलामुसलि' कहते हैं।*

*सिद्धि-**केशाकेशि।** केश+सुप्+केश+सुप्। केश+केश+इच्। केशा+केश्+इ। केशाकेशि+सु। केशाकेशि।*

*यहां दो सरूप पद-'केशेषु, केशेषु' इनका 'इदम्' (युद्ध) अर्थ में इस सूत्र से बहुव्रीहि समास है। 'इच् कर्मव्यतिहारे' (५।४।१२७) से समासान्त इच् प्रत्यय तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३७) से पूर्वपद को दीर्घ होता है। यहां दो केश पद अपने अर्थ से अन्य युद्ध पद के अर्थ के वाचक हैं। ऐसे ही-**कचाकचि, दण्डादण्डि, मुसलामुसलि।***

सह (तुल्ययोगे)-

तेन सहेति तुल्ययोगे।२८।

प०वि०-तेन ३।१ सह अव्ययम्, इति अव्ययम्, तुल्ययोगे ७।१।

स०-तुल्येन योग इति तुल्ययोगः, तस्मिन्-तुल्ययोगे (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-विभाषा, बहुव्रीहिः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तुल्ययोगे सहेति सुप् तेन सुपा सह विभाषा समासो बहुव्रीहिः।

अर्थः-तुल्ययोगेऽर्थे वर्तमानं सह इति सुबन्तं तेन इति तृतीयान्तेन समर्थेन सुबन्तेन सह विकल्पेन समस्यते, समासश्च बहुव्रीहिर्भवति।

उदा०-पुत्रेण सहेति सपुत्रः। सपुत्र आगतः पिता। छात्रैः सहेति सच्छात्रः। सच्छात्र आगत उपाध्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुल्ययोगे) तुल्ययोग (साथ) अर्थ में विद्यमान (सह इति) 'सह' इस सुबन्त का (तेन) तृतीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ (विभाषा) विकल्प से समास होता है और उसकी (बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि संज्ञा होती है।*

*उदा०-**पुत्रेण सहेति सपुत्रः। सपुत्र आगतः पिता।** पिता पुत्र सहित आया है। **छात्रैः सहेति सच्छात्रः। सच्छात्र आगत उपाध्यायः।** उपाध्याय छात्रों सहित आया है।*

*सिद्धि-**सपुत्रः।** सह+सु+पुत्र+भिस्। सह+पुत्र। सपुत्र+सु। सपुत्रः।*

यहां तुल्ययोग अर्थ में विद्यमान सह शब्द का तृतीयान्त पुत्र के साथ बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहि समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं अतः 'वोपसर्जनस्य' (६।३।८०) से

*उपसर्जन 'सह' के स्थान में 'स' आदेश होता है। ऐसे ही-**सच्छात्रः**। यहां पुत्र और पिता का तथा छात्र और उपाध्याय का आगमन-क्रिया में तुल्य योगदान है।*

*विशेष-जहां 'सह' शब्द का तुल्ययोग (साथ) अर्थ नहीं होता है वहां बहुव्रीहि समास भी नहीं होता है। जैसे-**सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी**। दश पुत्रों के विद्यमान होते हुये भी गधी बोझा ढोती है। यहां 'सह' शब्द विद्यमान अर्थ में है, साथ अर्थ में नहीं।*

द्वन्द्वसमासः—

चार्थे द्वन्द्वः।२६।

प०वि०-च-अर्थे ७।१ द्वन्द्वः १।१।

स०-चस्य अर्थ इति चार्थः, तस्मिन्-चार्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-विभाषा, 'अनेकम्' इति च मण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः-चार्थेऽनेकं सुप् परस्परं विभाषा समासो द्वन्द्वः।

अर्थ-चार्थे वर्तमानं अनेकं सुबन्तं परस्परं समस्यते द्वन्द्वश्च समासो भवति।

उदा०-प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ-प्लक्षन्यग्रोधौ। धवश्च खदिरश्च पलाशश्च ते-धवखदिरपलाशाः। पाणी च पादौ च एतेषां समाहारः पाणिपादम्। शिरश्च ग्रीवा च एतयोः समाहारः शिरोग्रीवम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(चार्थे) 'च' शब्द के अर्थ में विद्यमान (अनेकम्) अनेक सुबन्तों का परस्पर (विभाषा) विकल्प से समास होता है। और उसकी (द्वन्द्वः) द्वन्द्व संज्ञा होती है।

*उदा०-**प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ प्लक्षन्यग्रोधौ**। पिलखन और बड़ का योग। **धवश्च खदिरश्च पलाशश्च ते-धवखदिरपलाशाः**। धौ, खैर और ढाक का योग। **पाणी च पादौ च एतेषां समाहारः पाणिपादम्**। हाथों और पावों का समूह। **शिरश्च ग्रीवा च एतयोः समाहारः शिरोग्रीवम्**। शिर और गर्दन का समूह।*

*सिद्धि-(१) **प्लक्षन्यग्रोधौ**। प्लक्ष+सु+न्यग्रोध+सु। प्लक्षन्यग्रोध+औ। प्लक्षन्यग्रोधौ।*

*(२) **पाणिपादम्**। पाणि+औ+पाद+औ। पाणिपाद+सु। पाणिपाद+अम्। पाणिपादम्। यहां '**द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्**' (२।४।२) से एकवद्भाव होता है।*

*विशेष-**च शब्द के अर्थ**- च शब्द के समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार ये चार अर्थ होते हैं। समुच्चय और अन्वाचय अर्थ में द्वन्द्व समास नहीं होता है।*

इतरेतरयोग और समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास होता है। समुच्चय-ईश्वरं गुरुं च भजस्व। तू ईश्वर का भजन और गुरु की सेवा कर। अन्वाचय-भिक्षामट गां चानय। तू भिक्षा ले आ और गौ को भी ले आना। इतरेतरयोग और समाहार के उदाहरण ऊपर लिख दिये हैं।

समासपदानां प्रयोगविधिः

उपसर्जनम्–

(१) उपसर्जनं पूर्वम्।३०।

प०वि०–उपसर्जनम् १।१ पूर्वम् १।१।

अर्थः–अस्मिन् समासप्रकरणे उपसर्जनसंज्ञकं पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्। पूर्वप्रयोगविधानं परप्रयोगनिवृत्त्यर्थम्।

उदा०–**द्वितीया**–कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः। **तृतीया**–शंकुलया खण्ड इति शंकुलाखण्डः। **चतुर्थी**–यूपाय दारु इति यूपदारु। **पञ्चमी**–चोराद् भयमिति चोरभयम्। **षष्ठी**–राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः। **सप्तमी**–अक्षेषु शौण्ड इति अक्षशौण्डः।

आर्यभाषा-अर्थ-इस समास प्रकरण में (उपसर्जनम्) उपसर्जन संज्ञावाले पद का (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-द्वितीया-कष्टं श्रित इति **कष्टश्रितः**। कष्ट को प्राप्त हुआ, इत्यादि।*

सिद्धि-कष्टश्रितः। कष्ट+अम्+श्रित+सु। कष्टश्रित+सु। कष्टश्रितः।

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' (१।२।४३) इस सूत्र से समास प्रकरण के सूत्रों में जो पद प्रथमा-विभक्ति से निर्दिष्ट किया गया है, उसकी उपसर्जन संज्ञा की है। जैसे 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' (२।१।२४) इस समासविधायक सूत्र में 'द्वितीया' पद को प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट किया गया है अतः उसकी उपसर्जन संज्ञा है। अतः 'कष्टं श्रितः' में द्वितीयान्त 'कष्टम्' शब्द का पहले प्रयोग किया जाता है और श्रित शब्द का पश्चात् प्रयोग होता है। ऐसा ही अन्य उदाहरणों में समझ लेवें।

उपसर्जनं परम्–

(२) राजदन्तादिषु परम्।३१।

प०वि०–राजदन्त-आदिषु ७।३ परम् १।१।

स०–राजदन्त आदिर्येषां ते राजदन्तादयः, तेषु–राजदन्तादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उपसर्जनम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-राजदन्तादिषु उपसर्जनं परम्।

अर्थः-राजदन्तादिषु शब्देषु उपसर्जनसंज्ञकं पदं परं प्रयोक्तव्यम्। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०-दन्तानां राजा इति राजदन्तः। वनस्याग्रे इति अग्रेवणम्, इत्यादि।

गणः-राजदन्तः। अग्रेवणम्। लिप्तवासितम्। नग्नमुषितम्। सिक्तसंमृष्टम्। मृष्टलुञ्चितम्। अवक्लिन्नपक्वम्। अर्पितोप्तम्। उप्तगाढम्। उलूखलमूसलम्। तण्डुलकिण्वम्। दृषदुपलम्। आरग्वायनबन्धकी। चित्ररथबाह्लीकम्। आवन्त्यश्मकम्। शूद्रार्यम्। स्नातकराजानौ। विष्वक्सेनार्जुनौ। अक्षिभ्रुवम्। दारगवम्। धर्मार्थौ। अर्थधर्मौ। कामार्थौ। अर्थकामौ। शब्दार्थौ। अर्थशब्दौ। वैकारिकतम्। गजवाजम्। गोपालधानीपूलासम्। पूलासककरण्डम्। स्थूलपूलासम्। उशीरबीजम्। सिञ्जास्थम्। चित्रास्वाती। भार्यापती। जायापती। जम्पती। दम्पती। पुत्रपती। पुत्रपशू। केशश्मश्रू। श्मश्रुकेशौ। शिरोबीजम्। सर्पिर्मधुनी। मधुसर्पिषी। आद्यन्तौ। अन्तादी। गुणवृद्धी। वृद्धिगुणौ। इति राजदन्तादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(राजदन्तादिषु) राजदन्त आदि शब्दों में (उपसर्जनम्) उपसर्जन संज्ञावाले पद का (परम्) पश्चात् प्रयोग करना चाहिये। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है।

*उदा०-**दन्तानां राजा इति राजदन्तः।** दांतों का राजा। **वनस्याग्रे इति अग्रेवणम्।** वन का अगला भाग।*

*सिद्धि-(१) **राजदन्तः।** दन्त+आम्+राजन्+सु। राजन्+दन्त। राजदन्त+सु। राजदन्तः।*

*यहां **'षष्ठी'** (२।२।८) इस सूत्र में **'षष्ठी'** की उपसर्जन संज्ञा है, अतः समास में षष्ठ्यन्त 'दन्त' शब्द का पर-प्रयोग किया गया है।*

*(२) **अग्रेवणम्।** वन+ङस्+अग्रे+ङि। अग्रेवणम्।*

यहां पूर्ववत् उपसर्जन वन का पर-प्रयोग किया गया है। निपातन से ङि-विभक्ति का अलुक् होता है।

घि–

द्वन्द्वे घि।३२।

प०वि०–द्वन्द्वे ७।१ घि १।१।

अनु०–अत्र 'पूर्वम्' इत्यनुवर्तते न परम्।

अन्वयः–द्वन्द्वे घि पूर्वम्।

अर्थः–द्वन्द्वे समासे घि-संज्ञकं पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०–पटुश्च गुप्तश्च तौ पटुगुप्तौ। मृदुश्च गुप्तश्च तौ मृदुगुप्तौ।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (घि) घि संज्ञावाले पद का (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**पटुश्च गुप्तश्च तौ पटुगुप्तौ।** पटु और गुप्त नामक पुरुष। **मृदुश्च गुप्तश्च तौ मृदुगुप्तौ।** मृदु और गुप्त नामक पुरुष।*

*सिद्धि-**पटुगुप्तौ।** पटु+सु+गुप्त+सु। पटुगुप्त+औ। पटुगुप्तौ।*

*यहां 'पटु' शब्द की '**शेषो घ्यसखि**' (१।४।७) से घि-संज्ञा है अतः उसका पहले प्रयोग किया गया है और गुप्त शब्द का पश्चात् प्रयोग हुआ है। इकारान्त, उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों की 'घि' संज्ञा है। ऐसे ही-**मृदुगुप्तौ।***

अजादि अदन्तं च–

(४) अजाद्यदन्तम्।३३।

प०वि०–अजादि-अदन्तम् १।१।

स०–अच् आदिर्यस्य तत्-अजादि, अत् अन्ते यस्य तत्-अदन्तम्, अजादि च तद् अदन्तं चेति अजाद्यदन्तम् (बहुव्रीहिगर्भितकर्मधारयः)।

अनु०–द्वन्द्वे, पूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्वन्द्वेऽजादि अदन्तं पूर्वम्।

अर्थः–द्वन्द्वे समासेऽजादि-अदन्तं पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०–उष्ट्रश्च खरश्च एतयोः समाहार उष्ट्रखरम्। उष्ट्रश्च शशकश्च एतयोः समाहार उष्ट्रशशकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (अजादि-अदन्तम्) अच् जिसके आदि में और अकार (अत्) जिसके अन्त में है, ऐसे पद का (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**उष्ट्रश्च खरश्च एतयोः समाहार उष्ट्रखरम्।** ऊंट और गधे का समूह। **उष्ट्रश्च शशकश्च एतयोः समाहार उष्ट्रशशकम्।** ऊंट और खरगोश का समूह।*

*सिद्धि-**उष्ट्रखरम्।** उष्ट्र+सु+खर+सु। उष्ट्रखर+सु। उष्ट्रखरम्।*

*यहां 'उष्ट्र' शब्द अजादि और अकारान्त है इसलिये इसका पहले प्रयोग किया गया है, खर शब्द का नहीं। यहां 'विभाषा वृक्षमृग०' (२।४।१२) से द्वन्द्व समास में एकवद्भाव होता है। ऐसे ही-**उष्ट्रशशकम्।***

अल्पाच्-

(५) अल्पाच्तरम्।३४।

प०वि०-अल्पाच्तरम् १।१।

स०-अल्पोऽच् यस्मिन् तत्-अल्पाच् (बहुव्रीहिः)। द्वे इमे अल्पाचौ, इदमनयोरतिशयेन अल्पाच् इति अल्पाच्तरम् (तद्धितवृत्तिः)। **'द्विवचनविभज्यो०'** (५।३।५७) इति तरप्-प्रत्ययः।

अनु०-द्वन्द्वे, पूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वन्द्वेऽल्पाच्तरं पूर्वम्।

अर्थः-द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरं पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०-प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ-प्लक्षन्यग्रोधौ। धवश्च खदिरश्च पलाशश्च ते-धवखदिरपलाशाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (अल्पाच्तरम्) दो पदों में जो थोड़े अच् (स्वर) वाला पद है उसका (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ-प्लक्षन्यग्रोधौ।** पिलखन और बड़ का योग। **धवश्च खदिरश्च पलाशश्च ते-धवखदिरपलाशाः।** धौ, खैर और ढाक का योग।*

*सिद्धि-**प्लक्षन्यग्रोधौ।** प्लक्ष+सु+न्यग्रोध+सु। प्लक्षन्यग्रोध+औ। प्लक्षन्यग्रोधौ।*

*यहां प्लक्ष पद में दो अच् और न्यग्रोध पद में तीन अच् हैं अतः अल्पाच्तर प्लक्ष पद का पूर्व प्रयोग किया गया है। ऐसे ही-**'धवखदिरपलाशाः'** में भी जान लेवें।*

***विशेष-**यहां **'अल्पाच्तरम्'** पद में **'तरप्'** प्रत्यय का निर्देश गौण है। केवल दो पदों में ही नहीं अपितु दो से अधिक पदों के प्रयोग में भी **'अल्पाच्'** पद का पूर्व प्रयोग*

किया जाता है। जैसे कि 'धवखदिरपलाशाः' उदाहरण में धव पद का पूर्व-प्रयोग स्पष्ट है।

धव को हिन्दी में 'धौ' कहते हैं। भावप्रकाश निघण्टु वटादिवर्ग में धव के संस्कृत नाम और गुण लिखे हैं–

धवो धटो नन्दितरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः।
धवः शीतः प्रमेहार्शःपाण्डुपित्तकफापहः।६०।

प्लक्ष को हिन्दी में पाखर वा पिलखन कहते हैं। भावप्रकाश में लिखा है–

प्लक्षो जटी पर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि।११।
प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः।
दाहपित्तकफास्रघ्नं शोथहा रक्तपित्तनुत्।१२।

सप्तमीविशेषणं च–

(६) सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ।३५।

प०वि०–सप्तमी-विशेषणे १।२ बहुव्रीहौ ७।१।

स०–सप्तमी च विशेषणं च ते–सप्तमीविशेषणे (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–'पूर्वम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ सप्तमीविशेषणे पूर्वे।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे सप्तम्यन्तं विशेषणवाचि च पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०–(सप्तमी) कण्ठे स्थितः कालो यस्य स कण्ठेकालः। उरसि स्थितानि लोमानि यस्य स उरसिलोमा। (विशेषणम्) चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः। शबला गावो यस्य शबलगुः।

आर्यभाषा-अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सप्तमी-विशेषणे) सप्तम्यन्त पद का और विशेषणवाची पद का (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०–(सप्तमी) **कण्ठे कालः स्थितो यस्य स कण्ठेकालः।** वह जिसके कण्ठ में काल स्थित है। **उरसि स्थितानि लोमानि यस्य स उरसिलोमा।** वह जिसकी छाती में बाल हैं। (विशेषण) **चित्रा गावो यस्य सः चित्रगुः।** चित्रित गौवोंवाला। **शबला गावो यस्य सः शबलगुः।** रंग-बिरंगी गौवोंवाला।*

*सिद्धि–(१) **कण्ठेकालः।** कण्ठ+ङि+काल+सु। कण्ठेकाल+सु। कण्ठेकालः।*

*यहां सप्तम्यन्त 'कण्ठे' पद का पहले प्रयोग किया गया है। यहां **'अमूर्द्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे'** (६।३।१०) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् है, लोप नहीं हुआ है। ऐसे ही–**उरसिलोमा।***

(२) चित्रगुः। चित्र+जस्+गो+जस्। चित्रगो। चित्रगु+सु। चित्रगुः।

*यहां विशेषवाची **'चित्र'** पद का पूर्व-प्रयोग किया गया है। **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से गो-शब्द को ह्रस्व होता है। ऐसे ही शबलगुः।*

निष्ठान्तम्–

(७) निष्ठा।३६।

वि०–निष्ठा १।१

अनु०–पूर्वम्, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ निष्ठा पूर्वम्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे निष्ठान्तं पदं पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०–कृतः कटो येन स कृतकटः। भिक्षिता भिक्षा येन स भिक्षितभिक्षः। अवमुक्ता उपानद् येन स अवमुक्तोपानत्कः। आहूतः सुब्रह्मण्यं येन स आहूतसुब्रह्मण्यः।

***आर्यभाषा–अर्थ**–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (निष्ठा) निष्ठान्त पद का (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।*

*उदा०–**कृतः कटो येन स कृतकटः।** वह जिसने चटाई बनाली है। **भिक्षिता भिक्षा येन स भिक्षितभिक्षः।** वह जिसने भीख मांगली है। **अवमुक्ता उपानद् येन स अवमुक्तोपानत्कः।** वह जिसने जूता उतार दिया है। **आहूतं सुब्रह्मण्यं येन स आहूतसुब्रह्मण्यः।** वह जिसने सुब्रह्मण्य (सौभाग्य) को आमन्त्रिम कर लिया है अथवा वह जिसने सुब्रह्मण्या ऋचा से होम कर लिया है।*

सिद्धि–कृत+सु+कट+सु। कृतकट+सु। कृतकटः।

*यहां कृत पद निष्ठा-प्रत्ययान्त (कृ+क्त) है, अतः उसका बहुव्रीहि समास में पहले प्रयोग किया गया है। **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२६) से 'क्त' प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा है। ऐसे ही- **'भिक्षितभिक्षः'** आदि।*

निष्ठान्तं वा–

वाऽऽहिताग्न्यादिषु।३७।

प०वि०–वा अव्ययम्, अहिताग्नि-आदिषु ७।३।

स०–आहिताग्निरादिर्येषां ते–आहिताग्न्यादयः, तेषु–आहिताग्न्यादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वम् निष्ठा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ आहिताग्न्यादिषु निष्ठा पूर्वम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे आहिताग्नि-आदिषु पदेषु निष्ठान्तं पदं विकल्पेन पूर्वं प्रयोक्तव्यम्।

उदा०-आहितोऽग्निर्येन स आहिताग्निः, अग्न्याहितो वा। जातः पुत्रो यस्य जातपुत्रः, पुत्रजातो वा।

आहिताग्निः। जातपुत्रः। जातदन्तः। जातश्मश्रुः। तैलपीतः। घृतपीतः। ऊढभार्यः। गतार्थः। इत्याहिताग्न्यादयः। आकृतिगणोऽयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (आहिताग्नि-आदिषु) आहिताग्नि आदि पदों में (निष्ठा) निष्ठान्त पद का (वा) विकल्प से (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**आहितोऽग्निर्येन स आहिताग्निः।** वह जिसने अग्न्याधान=अग्निहोत्र कर लिया है। **अग्न्याहितः।** अर्थ पूर्ववत् है। **जातः पुत्रो यस्य स जातपुत्रः।** वह जिसके पुत्र पैदा होगया है। **पुत्रजातः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**आहिताग्नि/अग्न्याहितः।** आहित+सु+अग्नि+सु। आहिताग्नि+सु। आहिताग्निः।*

*यहां निष्ठान्त **'आहित'** पद का पूर्व प्रयोग हुआ है। **अग्न्याहितः।** यहां विकल्प पक्ष में निष्ठान्त **'आहितः'** आङ्+धा++क्त। आ+हि+त। आहित+सु। आहितः। यहां **'दधातेर्हिः'** (७।४।४२) से 'धा' को 'हि' आदेश होता है। ऐसे ही-**'जातपुत्रः'** आदि।*

कडारादयः-

कडाराः कर्मधारये।३८।

प०वि०-कडाराः १।३ कर्मधारये ७।१।

अनु०-पूर्वम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मधारये कडारा वा पूर्वम्।

अर्थः-कर्मधारये समासे कडारादयः सुबन्ता विकल्पेन पूर्वं प्रयोक्तव्याः।

उदा०-कडारश्चासौ जैमिनिरिति कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारो वा।

कडार। गडुल। काण। खञ्ज। कुण्ठ। खञ्जर। खलति। गौर। वृद्ध। भिक्षुक। पिङ्गल। तनु। वटर। इति कडारादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (कडाराः) कडार आदि सुबन्तों का (वा) विकल्प से (पूर्वम्) पहले प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**कडारश्चासौ जैमिनिरिति कडारजैमिनिः।** भूरे रंग का जैमिनि ऋषि। **जैमिनिकडारः।** अर्थ पूर्ववत् है। 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ' इत्यमरः।*

*सिद्धि-**कडारजैमिनिः।** कडार+सु+जैमिनि+सु। कडारजैमिनि+सु। कडारजैमिनिः।*

*यहां कडार पद का पूर्व-प्रयोग किया गया है। **जैमिनिकडारः।** यहां विकल्प पक्ष में कडार शब्द का पश्चात्-प्रयोग किया गया है।*

कडार विशेषण पद है, उसका 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (२।१।५६) से कर्मधारय समास होने पर पूर्व-प्रयोग प्राप्त था, अतः यहां उसका विकल्प-विधान किया गया है।

इति एकसंज्ञाधिकारः समाससंज्ञाधिकारश्च समाप्तः।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

अनभिहिताधिकारः–

(१) अनभिहिते।१।

वि०-अनभिहिते ७।१।

स०-न अभिहितम् इति अनभिहितम्, तस्मिन्-अनभिहिते (नञ्तत्पुरुषः)। अभिहितं कथितमित्यर्थः। अनभिहितम्, अकथितम, अनुक्तम्, अनिर्दिष्टमिति पर्यायाः।

अर्थः-'अनभिहिते' इत्यधिकारोऽयम्। यद् इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः, तद् अनभिहिते=अकथिते इत्येवं वेदितव्यम्। यथास्थानमुदाहरिष्यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनभिहिते) 'अनभिहिते' यह अधिकार सूत्र है। इससे आगे जो कहेंगे उसे अनभिहित=अकथित विषय में समझना चाहिये। इसके यथास्थान उदाहरण देंगे।

द्वितीयाविभक्तिप्रकरणम्

द्वितीया–

(१) कर्मणि द्वितीया।२।

प०वि०-कर्मणि ७।१ द्वितीया १।१।

अनु०-'अनभिहिते' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनभिहिते कर्मणि द्वितीया।

अर्थः-अनभिहिते कर्मणि कारके द्वितीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-देवदत्तः कटं करोति। यज्ञदत्तो ग्रामं गच्छति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनभिहिते) अकथित (कर्मणि) कर्म कारक में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है।

*उदा०-**देवदत्तः कटं करोति।** देवदत्त चटाई बनाता है। **यज्ञदत्तो ग्रामं गच्छति।** यज्ञदत्त गांव जाता है।*

सिद्धि-देवदत्तः कटं करोति। कृ+लट्। कृ+उ+तिप्। कर्+ओ+ति। करोति।

*यहां कृ धातु से लट्लकार '**लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः**' (३।४।६९) से कर्ता अर्थ में किया गया है। लकार के कर्ता, कर्म और भाव ये तीन अर्थ होते हैं। जब*

*लकार कर्ता अर्थ में होता है, तब कर्ता कथित होता है और कर्म तथा भाव अकथित होते हैं। प्रकृत सूत्र से अकथित कर्म **'कटम्'** में द्वितीया विभक्ति होती है। कथित कर्ता में **'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा'** (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति होती है। ऐसे ही-**यज्ञदत्तो ग्रामं गच्छति।***

द्वितीया तृतीया च–

(२) तृतीया च होश्छन्दसि।३।

प०वि०–तृतीया १।१ च अव्ययपदम्, होः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अनभिहिते, कर्मणि, द्वितीया चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि होरनभिहिते कर्मणि द्वितीया तृतीया च।

अर्थः–छन्दसि विषये हु-धातोरनभिहिते कर्मणि द्वितीया तृतीया च विभक्तिर्भवति।

उदा०–(द्वितीया) यवागूमग्निहोत्रं जुहोति। (तृतीया) यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेद विषय में (होः) हु-धातु के (अनभिहिते) अकथित (कर्मणि) कर्म कारण में (द्वितीया तृतीया च) द्वितीया और तृतीया विभक्ति होती है।

*उदा०-**(द्वितीया) यवागूमग्निहोत्रं जुहोति।** देवदत्त लापसी की अग्निहोत्र में आहुति देता है। **(तृतीया) यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति।** देवदत्त लापसी से अग्निहोत्र में आहुति देता है।*

*सिद्धि-**यवागूमग्निहोत्रं जुहोति।** हु+लट्। हु+शप्+तिप्। हु+(श्लु)+ति। हु+हु+ति। झु+हु+ति। जु+हो+ति। जुहोति।*

*यहां 'हु-दानादनयोः, आदाने च इत्येके' (जु०प०) धातु से लट्लकार कर्ता अथ में किया गया है। अतः कर्ता कथित और कर्म अकथित है। प्रकृत सूत्र से अकथित कम **'यवागूम्'** में द्वितीया विभक्ति होती है। तृतीया विभक्ति भी होती है-**यवाग्वाऽग्निहोत्र जुहोति।***

द्वितीया–

(३) अन्तरान्तरेणयुक्ते।४।

प०वि०–अन्तरा-अन्तरेण-युक्ते ७।१।

स०–अन्तरा च अन्तरेण च तौ-अन्तरान्तरेणौ, ताभ्याम्-अन्तरान्तरेणाभ्याम्, अन्तरान्तरेणाभ्यां युक्त इति अन्तरान्तरेणयुक्तः, तस्मिन्-अन्तरान्तरेणयुक्ते (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-द्वितीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अन्तरान्तरेणयुक्ते शब्दे द्वितीया।

अर्थः-अन्तरा अन्तरेण च युक्ते शब्दे द्वितीया विभक्तिर्भवति। अन्तरा अन्तरेण इति च निपातौ मध्यमविनार्थकौ गृह्येते। षष्ठी विभक्त्यपवादः।

उदा०-(अन्तरा) अन्तरा त्वां[१] च मां[२] च कमण्डलुः। (अन्तरेण) अन्तरेण त्वां[१] च मां[२] च कमण्डलुः (अन्तरेण) पुरुष[३]कारं न किञ्चिल्-लभ्यते। अग्निमन्तरेण कथं पचेत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण निपात से संयुक्त शब्द में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है। यहां 'अन्तरा' निपात मध्यमवाची और 'अन्तरेण' निपात मध्यमवाची तथा विनावाची है।

*उदा०-**(अन्तरा) अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः।** मेरे और तेरे बीच में कमण्डल (जलपात्र) है। **(अन्तरेण) अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलुः।** मेरे और तेरे बीच में कमण्डल है। **अन्तरेण पुरुषकारं न किञ्चिल्लभ्यते।** पुरुषार्थ के बिना कुछ नहीं मिलता है। **अग्निमन्तरेण कथं पचेत्?** देवदत्त अग्नि के बिना कैसे पकावे।*

*सिद्धि-अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः। यहां अन्तरा निपात के योग में त्वाम् और माम् में द्वितीया विभक्ति है। ऐसे ही-'**अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलुः**' आदि।*

द्वितीया-

(४) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।५।

प०वि०-काल-अध्वनोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे), अत्यन्तसंयोगे।७।१।

स०-कालश्च अध्वा च तौ-कालाध्वानौ, तयोः-कालाध्वनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अत्यन्तश्चासौ संयोग इति अत्यन्तसंयोगः, तस्मिन्-अत्यन्तसंयोगे (कर्मधारयः)। कालः=समयः। अध्वा=मार्गः।

अनु०-'द्वितीया' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कालाध्वनोर्द्वितीयाऽत्यन्तसंयोगे।

अर्थः-कालवाचिभ्योऽध्ववाचिभ्यश्च शब्देभ्यो द्वितीया विभक्तिर्भवति, अत्यन्तसंयोगे गम्यमाने। क्रियागुणद्रव्यैः सह कालाध्वनोः साकल्येन सम्बन्धोऽत्यन्तसंयोग उच्यते।

उदा०-(१) काल-(क्रिया) मास[१]मधीते देवदत्तः। संवत्सर[१]मधीते यज्ञदत्तः। (गुणः) मासं[२] कल्याणी। संवत्सरं[२] कल्याणी। (द्रव्यम्) मासं[२] गुडधानाः। संवत्सरं[२] गुडधानाः।

(२) अध्वा-(क्रिया) क्रोशमधीते देवदत्तः। योजनमधीते यज्ञदत्तः। (गुणः) क्रोशं कुटिला नदी। योजनं कुटिला नदी। (द्रव्यम्) क्रोशं पर्वतः। योजनं पर्वतः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(कालाध्वनोः) कालवाची और अध्वा=मार्गवाची शब्दों से (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है (अत्यन्तसंयोगे) यदि वहां अत्यन्त संयोग हो। क्रिया, गुण और द्रव्य के साथ कालवाची और अध्ववाची शब्दों का सम्पूर्णता से सम्बन्ध होना अत्यन्त संयोग कहाता है।*

*उदा०-(१) काल (क्रिया)-**मासमधीते देवदत्तः।** देवदत्त एक मास निरन्तर पढ़ता है। **संवत्सरमधीते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त एक वर्ष निरन्तर पढ़ता है। (गुण) **मासं कल्याणी।** एक मास कल्याणमय रहा। **संवत्सरं कल्याणी।** एक वर्ष कल्याणमय रहा। (द्रव्य) **मासं गुडधानाः।** एक मास गुडमिश्रित धाणी खाई। **संवत्सरं गुडधानाः।** एक वर्ष गुडमिश्रित धाणी खाई।*

*(२) अध्वा (क्रिया)-**क्रोशमधीते देवदत्तः।** देवदत्त एक कोस तक पुस्तक पढ़ता है। **योजनमधीते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त एक योजन तक पुस्तक पढ़ता है। (गुण) **क्रोशं कुटिला नदी।** नदी एक कोस तक टेढ़ी है। **योजनं कुटिला नदी।** नदी एक योजन तक टेढ़ी है। (द्रव्य) **क्रोशं पर्वतः।** एक कोस तक पहाड़ है। **योजनं पर्वतः।** एक योजन तक पहाड़ है।*

सिद्धि-मासमधीते देवदत्तः। *यह अध्ययन क्रिया के अत्यन्त संयोग में कालवाची 'मासम्' शब्द में द्वितीया विभक्ति है। ऐसे ही- '**संवत्सरमधीते यज्ञदत्तः**' आदि।*

द्वितीयापवादः (तृतीया)-

(५) अपवर्गे तृतीया।६।

प०वि०-अपवर्गे ७।१ तृतीया १।१।

अनु०-कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अपवर्गे कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया।

अर्थः-अपवर्गेऽर्थे कालवाचिभ्योऽध्ववाभ्यश्च शब्देभ्योऽत्यन्तसंयोगे सति तृतीया विभक्तिर्भवति। फलप्राप्तौ सत्यां क्रियापरिसमाप्तिरपवर्ग उच्यते।

उदा०-(कालः) मासेनानुवाकोऽधीतः। संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः। (अध्वा) क्रोशेनानुवाकोऽधीतः। योजनेनानुवाकोऽधीतः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अपवर्गे) फल प्राप्त होने पर क्रियासमाप्ति अर्थ में (कालाध्वनोः) कालवाची और अध्वा=मार्गवाची शब्दों से (अत्यन्तसंयोगे) निरन्तरता होने पर (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है।*

उदा०-(१) (काल) ***मासेनानुवाकोऽधीतः।*** *एक मास निरन्तर वेद का अनुवाक (अध्याय) पढ़ा और उसे ग्रहण भी कर लिया।* ***संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः।*** *एक वर्ष निरन्तर वेद का अनुवाक पढ़ा और उसे ग्रहण भी कर लिया।*

(२) (अध्वा) ***क्रोशेनानुवाकोऽधीतः।*** *एक कोस भर वेद का अनुवाक पढ़ा और उसे ग्रहण भी कर लिया।* ***योजनेनानुवाकोऽधीतः।*** *एक योजन भर वेद का अनुवाक पढ़ा और उसे ग्रहण भी कर लिया।*

सिद्धि-मासेनानुवाकोऽधीतः। *यहां एक मास निरन्तर अनुवाक पढ़ने और उसे ग्रहण करने पर कालवाची 'मासेन' शब्द में तृतीया विभक्ति है। यदि केवल अत्यन्तसंयोग हो और अपवर्ग न हो वहां पूर्वसूत्र से द्वितीया विभक्ति ही होती है-* ***मासमनुवाकोऽधीतः।*** *ऐसे ही- 'संवत्सरेणानुवाकोऽधीतः' आदि।*

द्वितीयापवादः (सप्तमी पञ्चमी च)-

(६) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये।७।

प०वि०-सप्तमी-पञ्चम्यौ १।२ कारक-मध्ये ७।१।

स०-सप्तमी च पञ्चमी च ते-सप्तमीपञ्चम्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कारकयोर्मध्य इति कारकमध्यः, तस्मिन्-कारकमध्ये (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'कालाध्वनोः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कारकमध्ये कालाध्वनोः सप्तमीपञ्चम्यौ।

अर्थः-कारकयोर्मध्ये वर्तमानेभ्यः कालवाचिभ्योऽध्ववाचिभ्यश्च शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चम्यौ विभक्ती भवति।

उदा०-(१) **कालः**-अद्य भुक्त्वा देवदत्तो द्व्यहे, द्व्यहाद् वा भोक्ता।

(२) **अध्वा**-इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-*(कारकमध्ये) दो कारक शक्तियों के बीच में विद्यमान (कालाध्वनोः) कालवाची और अध्ववाची शब्दों से (सप्तमीपञ्चम्यौ) सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति होती है। यह द्वितीया विभक्ति का अपवाद है।*

उदा०-(१) काल-अद्य भुक्त्वा देवदत्तो द्व्यहे, द्व्यहाद् वा भोक्ता। आज खाकर देवदत्त दो दिन में खायेगा।

(२) अध्वा-इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्यति। यहां अवस्थित यह धनुर्धारी एक कोस पर लक्ष्य को बींध देता है।

सिद्धि-अद्य भुक्त्वा देवदत्तो द्व्यहे, द्व्यहाद् वा भोक्ता। यहां कालवाची 'द्व्यह' शब्द देवदत्त की दो कर्ता-शक्तियों के मध्य में विद्यमान है, अतः उसमें सप्तमी अथवा पञ्चमी विभक्ति है। ऐसे ही-अध्वा-इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्यति।

द्वितीया–

(७) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया।८।

प०वि०-कर्मप्रवचनीय-युक्ते ७।१ द्वितीया १।१।

स०-कर्मप्रवचनीयैर्युक्त इति कर्मप्रवचनीययुक्तः, तस्मिन्-कर्मप्रवचनीययुक्ते। (तृतीयातत्पुरुषः)।

अर्थः-कर्मप्रवचनीयसंज्ञकैर्निपातैर्युक्ते शब्दे द्वितीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-शाकल्यस्य संहिताम् अनु प्रावर्षत्। अगस्त्यमनु असिञ्चन् प्रजाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मप्रवचनीययुक्ते) कर्मप्रवचनीयसंज्ञक निपातों से युक्त शब्द में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है।

उदा०-शाकलयस्य संहिताम् अनु प्रावर्षत्। शाकल्यसंहिता पाठ की समाप्ति पर जोर की वर्षा हुई। अगस्त्यम् अनु-असिञ्चन् प्रजाः। अगस्त्य नक्षत्र के उदय के पश्चात् प्रजाओं ने सिंचाई का कार्य आरम्भ कर दिया।

सिद्धि-शाकल्यस्य संहिताम् अनु प्रावर्षत्। यहां 'अनुर्लक्षणे' (१।४।८३) से 'अनु' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है और उसके योग में 'संहिताम्' में द्वितीया विभक्ति है। ऐसे ही-अगस्त्यम् अनु असिञ्चन् प्रजाः।

द्वितीयापवादः (सप्तमी)–

(८) यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी।९।

प०वि०-यस्मात् ५।१ अधिकम् १।१ यस्य ६।१ च अव्ययपदम्, ईश्वरवचनम् १।१ तत्र अव्ययपदम्, सप्तमी १।१।

स०-ईश्वरस्य वचनमिति ईश्वरवचनम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'कर्मप्रवचनीययुक्ते' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यत्र यद् यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी।

अर्थः-यत्र यद् यस्मादधिकम्, यस्य चेश्वरवचनं तत्र कर्मप्रवचनीयेन युक्ते शब्दे सप्तमी विभक्तिर्भवति। द्वितीयापवादः।

उदा०-(१) **यद् यस्मादधिकम्**-उप खार्यां द्रोणः। (२) **यस्य चेश्वरवचनम्**-अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः। अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः। अत्र स्व-स्वामिनोर्द्वयोरपि पर्यायेण सप्तमी विभक्तिर्भवति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(यस्माद् अधिकम्) जहां जो जिससे अधिक है (यस्य चेश्वरवचनम्) और जिसके ईश्वर होने का कथन किया गया है (तत्र) वहां (कर्मप्रवचनीययुक्ते) कर्मप्रवचनीयसंज्ञक निपात से युक्त शब्द में (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

उदा०-(१) __जो जिससे अधिक-उप खार्यां द्रोणः।__ द्रोण से खारी अधिक है। द्रोण=२० सेर, खारी=एक मण। (२) __ईश्वरवचन-अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः।__ पञ्चाल ब्रह्मदत्त के अधीन हैं, वह उनका ईश्वर है। __अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः।__ पञ्चालों में ब्रह्मदत्त ईश्वर है। यहां स्व और स्वामी दोनों में क्रमशः सप्तमी विभक्ति होती है।

__सिद्धि-(१) उप खार्यां द्रोणः।__ यहां __'उपोऽधिके च'__ (१।४।८७) से 'उप' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। यहां द्रोण से खारी के अधिक वचन में __'खार्याम्'__ में सप्तमी विभक्ति है।

__(२) अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः।__ यहां __'अधिरीश्वरे'__ (१।४।९७) से 'अधि' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है और ब्रह्मदत्त के ईश्वरवचन में __'ब्रह्मदत्ते'__ में सप्तमी विभक्ति है।

द्वितीयापवादः (पञ्चमी)-

(६) पञ्चम्यपाङ्परिभिः।१०।

प०वि०-पञ्चमी १।१ अप-आङ्-परिभिः ३।३।

स०-अपश्च आङ् च परिश्च ते-अपाङ्परयः, तैः-अपाङ्परिभिः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मप्रवचनीययुक्ते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अपाङ्परिभिः कर्मप्रवचनीयैर्युक्ते शब्दे पञ्चमी।

अर्थ:-अपाङ्परिभि: कर्मप्रवचनीयैर्युक्ते शब्दे पञ्चमी विभक्तिर्भवति। द्वितीयापवाद:।

उदा०-(१) **अप**-अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:। (२) **आङ्**-आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देव:। (३) **परि**-परि त्रिगतेभ्यो वृष्टो देव:।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अपाङ्परिभि:) अप, आङ् और परि इन (कर्मप्रवचनीययुक्ते) कर्मप्रवचनीयसंज्ञक निपातों से युक्त शब्द में (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है। यह द्वितीया विभक्ति का अपवाद है।*

*उदा०-(१) **अप-अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:।** त्रिगर्त देश (जालन्धर) को छोड़कर बादल बरसा। (२) आङ् -**आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देव:।** पाटलिपुत्र (पटना) तक बादल बरसा। (३) परि-**परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देव:।** त्रिगर्त देश को छोड़कर बादल बरसा।*

*सिद्धि-(१) **अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:।** यहां **'अपपरी वर्जने'** (१।४।८८) से 'अप' तथा 'परि' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है और उसके योग में **'त्रिगर्तेभ्य:'** शब्द में पञ्चमी विभक्ति है।*

*(२) **आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देव:।** यहां **'आङ् मर्यादावचने'** (१।४।२९) से 'आङ्' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है और उसके योग **'पाटलिपुत्रेभ्य:'** शब्द में पञ्चमी विभक्ति है।*

द्वितीयापवाद: (पञ्चमी)-

(१०) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्।११।

प०वि०-प्रतिनिधि-प्रतिदाने १।२ च अव्ययपदम्, यस्मात् ५।१।

स०-प्रतिनिधिश्च प्रतिदानं च ते-प्रतिनिधिप्रतिदाने (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-कर्मप्रवचनीययुक्ते, पञ्चमी इति चानुवर्तति।

अन्वय:-प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् तत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते शब्दे पञ्चमी।

अर्थ:-यस्मात् प्रतिनिधिर्यस्माच्च प्रतिदानं तत्र कर्मप्रवचनीयेन युक्ते शब्दे पञ्चमी विभक्तिर्भवति। मुख्यसदृश: प्रतिनिधि:। दत्तस्य प्रतिनिर्यातनं प्रतिदानम्।

उदा०-(१) **प्रतिनिधि:**- अभिमन्युरर्जुनत: प्रति। प्रद्युम्नो वासुदेवत: प्रति। (२) **प्रतिदानम्**-देवदत्तो माषान् अस्मै तिलेभ्य: प्रति यच्छति।

आर्यभाषा-अर्थ-(यस्मात्) जो जिसका (प्रतिनिधिः) प्रतिनिधि हो (यस्माच्च प्रतिदानम्) और जिसका जिससे प्रदान हो वहां (कर्मप्रवचनीययुक्ते) कर्मप्रवचनीय से युक्त शब्द में (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है। यह द्वितीया-विभक्ति का अपवाद है।

*उदा०-(१) प्रतिनिधि-**अभिमन्युरर्जुनतः प्रति।** अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है। **प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति।** प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है। (२) प्रतिदान-**देवदत्तो माषान् अस्मै तिलेभ्यः प्रति यच्छति।** देवदत्त इस व्यक्ति के उड़दों को तिलों से बदलता है।*

*सिद्धि-**अभिमन्युरर्जुनतः प्रति।** अर्जुन+ङसि+तसिल्। अर्जुन+तस्। अर्जुनतः। यहां अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है। अतः अर्जुन में पञ्चमी विभक्ति है। यहां 'प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः' (१।४।९२) से 'प्रति' निपात की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। ऐसे ही प्रतिदान में भी समझलें।*

द्वितीया चतुर्थी च-

(११) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि।१२।

प०वि०-गत्यर्थ-कर्मणि ७।१ द्वितीया-चतुर्थ्यौ १।२ चेष्टायाम् ७।१ अनध्वनि ७।१।

स०-गतिरर्थो येषां ते-गत्यर्थाः, तेषाम्-गत्यर्थानाम्, गत्यर्थानां कर्मेति गत्यर्थकर्म, तस्मिन्-गत्यर्थकर्मणि (बहुव्रीहिगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। द्वितीया च चतुर्थी च ते-द्वितीयाचतुर्थ्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अध्वा इति अनध्वा, तस्मिन्-अनध्वनि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'अनभिहिते' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-चेष्टायामनध्वनि अनभिहिते गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ।

अर्थः-चेष्टाक्रियाणां गत्यर्थानां धातूनाम् अध्ववर्जितेऽनभिहिते कर्मणि कारके द्वितीया-चतुर्थ्यौ विभक्ती भवतः।

उदा०-द्वितीया-ग्रामं गच्छति देवदत्तः। ग्रामं व्रजति यज्ञदत्तः। **(चतुर्थी)** ग्रामाय गच्छति देवदत्तः। ग्रामाय व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(चेष्टायाम्) चेष्टा क्रियावाली (गत्यर्थकर्मणि, अनध्वनि) गति-अर्थवाली धातुओं के अध्व-वर्जित अनभिहित=अकथित कर्म कारक में (द्वितीयाचतुर्थ्यौ) द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती हैं।

*उदा०-द्वितीया-**ग्रामं गच्छति देवदत्तः।** देवदत्त ग्राम को जाता है। **नगरं व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त नगर को जाता है। (२) चतुर्थी-**ग्रामाय गच्छति देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है। **नगराय व्रजति यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**गामं/ग्रामाय गच्छति देवदत्तः।** यहां गत्यर्थक 'गम्' धातु के 'ग्राम' कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति है।*

*(१) यहां गत्यर्थक धातु का ग्रहण इसलिये किया है कि यहां चतुर्थी विभक्ति न हो-**ओदनं पचति देवदत्तः।***

*(२) यहां 'चेष्टायाम्' का ग्रहण इसलिये किया है कि यहां चतुर्थी विभक्ति न हो-**मनसा पाटलिपुत्रं गच्छति देवदत्तः।***

*(३) यहां 'अनध्वनि' से अध्वा (मार्ग) कर्म का निषेध इसलिये किया है कि यहां चतुर्थी विभक्ति न हो-**अध्वानम् (मार्गम्, पन्थानम्) गच्छति देवदत्तः।***

चतुर्थीविभक्तिप्रकरणम्

चतुर्थी-

(१) चतुर्थी सम्प्रदाने।१३।

प०वि०-चतुर्थी १।१ सम्प्रदाने ७।१।

अनु०-'अनभिहिते' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनभिहिते सम्प्रदाने चतुर्थी।

अर्थः-अनभिहिते सम्प्रदाने कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति। अत्र तृतीयाविभक्तिमतिक्रम्य प्रसङ्गप्राप्ता चतुर्थी विभक्तिर्विधीयते।

उदा०-देवदत्त **उपाध्यायाय** गां ददाति। **देवदत्ताय** रोचते मोदकः। बालकः **पुष्पेभ्यः** स्पृहयति इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनभिहिते) अकथित (सम्प्रदाने) सम्प्रदान कारक में (चतुर्थी) चतुर्थी विभक्ति होती है। यहां द्वितीया विभक्ति के पश्चात् तृतीया विभक्ति को छोड़कर प्रसङ्गवश चतुर्थी विभक्ति का विधान किया गया है।

*उदा०-**देवदत्त उपाध्यायाय गां ददाति।** देवदत्त उपाध्याय जी के लिये गाय देता है। **देवदत्ताय रोचते मोदकः।** देवदत्त को लड्डू प्यारा लगता है। **बालकः पुष्पेभ्यः स्पृहयति।** बालक फूल को प्राप्त करना चाहता है।*

*सिद्धि-**देवदत्त उपाध्यायाय गां ददाति।** यहां **'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'** (१।४।३२) से 'उपाध्याय' की सम्प्रदान संज्ञा है और उसमें प्रकृत सूत्र से चतुर्थी विभक्ति*

है। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (१।४।३२) इत्यादि सम्प्रदान कारक का सब प्रकरण देख लेवें।

द्वितीयापवादः (चतुर्थी)–

(२) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः।१४।

प०वि०–क्रियार्था–उपपदस्य ६।१ च अव्ययपदम्, कर्मणि ७।१ स्थानिनः ६।१।

स०–क्रियायै इयमिति क्रियार्था, क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य स क्रियार्थोपपदः, तस्य क्रियार्थोपपदस्य (चतुर्थीतत्पुरुषगर्भित–उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिः)।

अनु०–अनभिहिते, चतुर्थी इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रियार्थोपपदस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य धातोरनभिहिते कर्मणि चतुर्थी।

अर्थः–क्रियार्थोपपदस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य धातोरनभिहिते कर्मणि कारके चतुर्थी विभक्तिर्भवति। द्वितीयापवादः।

उदा०–एधान् आहर्तुं व्रजतीति एधेभ्यो[४] व्रजति देवदत्तः। पुष्पाण्याहर्तुं व्रजतीति पुष्पेभ्यो[४] व्रजति देवदत्तः।

आर्यभाषा–अर्थ–(क्रियार्थोपपदस्य) क्रिया के लिये क्रिया उपपदवाली (स्थानिनः) स्थानी के अप्रयोगवाली धातु के (अनभिहिते) अकथित (कर्मणि) कर्म में (चतुर्थी) चतुर्थी विभक्ति होती है। यह द्वितीया विभक्ति का अपवाद है।

*उदा०–**एधान् आहर्तुं व्रजति इति एधेभ्यो व्रजति देवदत्तः।** देवदत्त समिधायें लाने के लिये जाता है। **पुष्पाण्याहर्तुं व्रजतीति पुष्पेभ्यो व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त फूल लाने के लिये जाता है।*

*सिद्धि–**एधान् आहर्तुं व्रजतीति एधेभ्यो व्रजति देवदत्तः।** यहां 'व्रजति' क्रिया क्रियार्थ–क्रिया है। समिधायें लाने के लिये 'व्रजति' क्रिया की जारही है। उसके उपपद होने पर '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से आहर्तुम् (आ+हृ+तुमुन्) में तुमुन् प्रत्यय हुआ है। इसके प्रयोग न होने पर जो 'एध' शब्द में '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति प्राप्त थी वहां प्रकृत सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का विधान किया गया है।*

चतुर्थी–

(३) तुमर्थाच्च भाववचनात्।१५।

प०वि०–तुम्-अर्थात् ५ ।१ च अव्ययपदम्, भाव-वचनात् ५ ।१ ।

स०–तुमुनोऽर्थ इवार्थो यस्य स तुमर्थः, तस्मात्-तुमर्थात् (बहुव्रीहिः)। भावं वक्ति इति भाववचनः, तस्मात्-भाववचनात् (उपपद-तत्पुरुषः)।

अनु०–चतुर्थी इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तुमर्थाद् भाववचनाच्च चतुर्थी।

अर्थः–तुमुनः समानार्थाद् भाववचनाच्च प्रातिपदिकाच्चतुर्थी विभक्तिर्भवति। **'भाववचनाश्च'** (३ ।३ ।११) इति यद् वक्ष्यति तस्येदं ग्रहणम्।

उदा०–पाकाय व्रजति देवदत्तः, पक्तुं व्रजतीत्यर्थः। त्यागाय व्रजति ब्रह्मदत्तः। त्यागाय=त्यक्तुं व्रजतीत्यर्थः। भूतये व्रजति यज्ञदत्तः। भवितुं व्रजतीत्यर्थः। इष्टये व्रजति सोमदत्तः। यष्टुं व्रजतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुमर्थात्) तुमुन् प्रत्यय के समान अर्थवाले (भाववचनात्) भाव को कहनेवाले प्रातिपदिक से (च) भी (चतुर्थी) चतुर्थी विभक्ति होती है।

*उदा०–**पाकाय व्रजति देवदत्तः।** देवदत्त पकाने के लिये जाता है। **त्यागाय व्रजति ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त त्याग (दान) करने के लिये जाता है। **भूतये व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त कल्याण के लिये जाता है। **इष्टये व्रजति सोमदत्तः।** सोमदत्त यज्ञ करने के लिये जाता है।*

*सिद्धि–**पाकाय व्रजति देवदत्तः।** पच्+घञ्। पच्+अ। पाक+सु। पाकः।*

*यहां क्रियार्थ-क्रिया उपपदवाली 'पच्' धातु से **'भाववचनाश्च'** (३।३।११) से घञ्-प्रत्यय का तुमुन् अर्थ में विधान किया गया है। प्रकृत सूत्र से तुमर्थक भाववचन **'पाक'** प्रातिपदिक से चतुर्थी विभक्ति का विधान किया गया है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

चतुर्थी–

(४) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।१६।

प०वि०–नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा-अलम्-वषड्-योगात् ५ ।१ च अव्ययपदम्।

स०-नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहा च स्वधा च अलं च वषट् च ते-नम०वषटः, तैः-नमः०वषड्भिः । नम०वषड्भिर्योग इति नम०वषड्योगः, तस्मात्-नम०वषड्योगात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-'चतुर्थी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नमः०वषड्योगाच्च चतुर्थी।

अर्थः-नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्युक्तात् प्रातिपदिकाच्च चतुर्थी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **नमः**-नमो देवेभ्यः। (२) **स्वस्ति**-स्वस्ति प्रजाभ्यः। (३) **स्वाहा**-अग्नये स्वाहा। (४) **स्वधा**-स्वधा पितृभ्यः। (५) **अलम्**-अलं मल्लो मल्लाय। (६) **वषट्**-वषट् अग्नये। वषट् इन्द्राय।

आर्यभाषा-अर्थ-(नम०योगात्) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन शब्दों से युक्त प्रातिपदिक से (च) भी (चतुर्थी) विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) **नमः-नमो देवेभ्यः।** विद्वानों के लिये नमस्कार। (२) **स्वस्ति-स्वस्ति प्रजाभ्यः।** प्रजा का कल्याण हो। (३) **स्वधा-स्वधा पितृभ्यः।** पितृजनों के लिये भोजन। (४) **अलम्-अलं मल्लो मल्लाय।** इस पहलवान के लिये यह पहलवान काफी है। (५) **वषट्-वषट् इन्द्राय।** इन्द्र देवता के लिये विशिष्ट आहुति। **वषट् अग्नये।** अग्नि देवता के लिये विशिष्ट आहुति।*

*सिद्धि-**नमो देवेभ्यः।** यहां 'नमः' शब्द के योग में 'देव' प्रातिपदिक से चतुर्थी विभक्ति होती है। ऐसे ही-**'स्वस्ति प्रजाभ्यः'** आदि।*

चतुर्थी द्वितीया च-

(५) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु।१७।

प०वि०-मन्य-कर्मणि ७।१ अनादरे ७।१ विभाषा १।१ अप्राणिषु ७।३।

स०-मन्यस्य कर्मेति मन्यकर्म, तस्मिन्-मन्यकर्मणि (षष्ठीतत्पुरुषः)। न आदर इति अनादरः, तस्मिन्-अनादरे (नञ्तत्पुरुषः)। न प्राणिन इति अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-'चतुर्थी' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अप्राणिषु मन्यकर्मणि विभाषा चतुर्थी अनादरे।

अर्थः-प्राणिवर्जिते मन्यधातोः कर्मणि विकल्पेन चतुर्थी विभक्तिर्भवति, अनादरे गम्यमाने। पक्षे द्वितीया विभक्तिर्भवति।

उदा-(१) **चतुर्थी**-नाहं त्वां तृणाय[४] मन्ये। नाहं त्वां बुसाय मन्ये। (२) **द्वितीया**-नाहं त्वां तृणं[२] मन्ये। नाहं त्वां बुसं[२] मन्ये।

आर्यभाषा-अर्थ-(अप्राणिषु) प्राणिवाची कर्म को छोड़कर (मन्यकर्मणि) मन्य धातु के कर्म में (विभाषा) विकल्प से (चतुर्थी) चतुर्थी विभक्ति होती है (अनादरे) यदि वहां अनादर प्रकट हो। पक्ष में द्वितीया विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) चतुर्थी-**नाहं त्वां तृणाय मन्ये।** मैं तुझे तिनका भी नहीं समझता हूं। **नाहं त्वां बुसाय मन्ये।** मैं तुझे भूसा भी नहीं समझता हूं। (२) द्वितीया-**नाहं त्वां तृणं मन्ये।** अर्थ पूर्ववत् है। **नाहं त्वां बुसं मन्ये।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**नाहं त्वां तृणाय मन्ये।** यहां मन्य धातु के प्राणिवर्जित कर्म 'तृण' में अनादर अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। पक्ष में द्वितीया विभक्ति भी दर्शायी गई है।*

तृतीयाविभक्तिप्रकरणम्

तृतीया–

(१) कर्तृकरणयोस्तृतीया।१८।

प०वि०-कर्तृ-करणयोः ७।२ तृतीया १।१।

स०-कर्ता च करणं च ते-कर्तृकरणे, तयोः-कर्तृकरणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनभिहिते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनभिहितयोः कर्तृकरणयोस्तृतीया।

अर्थः-अनभिहिते कर्तरि करणे च कारके तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **कर्तरि**-देवदत्तेन कृतम्। यज्ञदत्तेन भुक्तम्। (२) **करणे**-दात्रेण लुनाति देवदत्तः। परशुना छिनत्ति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनभिहिते) अकथित (कर्तृकरणयोः) कर्ता और करण कारक में (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) कर्ता-**देवदत्तेन कृतम्।** देवदत्त ने किया। **यज्ञदत्तेन भुक्तम्।** यज्ञदत्त ने भोजन किया। (२) करणे-**दात्रेण लुनाति देवदत्तः।** देवदत्त दाती से काटता है। **परशुना छिनत्ति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त फरसे से काटता है।*

सिद्धि-(१) देवदत्तेन कृतम्। कृ+क्त। कृ+त। कृत+सु। कृतम्।

यहां 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से कृ धातु से क्त प्रत्यय कर्म अर्थ में है, अतः कर्म कथित और कर्ता अकथित है। अकथित कर्ता 'देवदत्त' में तृतीया विभक्ति है।

*(२) **दात्रेण लुनाति देवदत्तः।** यहां लवनक्रिया में दात्र अत्यन्त साधक है। उसकी 'साधकतमं करणम्' (१।४।४२) से करण संज्ञा है। 'लुनाति' में कर्ता अर्थ में लट्लकार है। अतः 'कर्ता' कथित और 'करण' अकथित है। अकथित 'दात्र' में तृतीया विभक्ति है।*

तृतीया–

(२) सहयुक्तेऽप्रधाने।१६।

प०वि०-सह-युक्ते ७।१ अप्रधाने ७।१।

स०-सहेन युक्त इति सहयुक्तः, तस्मिन्-सहयुक्ते (तृतीयातत्पुरुषः)। न प्रधानमिति अप्रधानम्, तस्मिन्-अप्रधाने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तृतीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सहयुक्तेऽप्रधाने तृतीया।

अर्थः-सह इत्यनेन युक्तेऽप्रधानेऽर्थे तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-पुत्रेण सहागतः पिता। छात्रैः सहागत उपाध्यायः। **अत्र** सह-पर्यायवाचिनामपि ग्रहणं क्रियते। पुत्रेण सार्धमागतः पिता। छात्रैः साकमागत उपाध्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सहयुक्ते) सह शब्द से संयुक्त (अप्रधाने) गौण अर्थ में (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है।

*उदा०-**पुत्रेण सहागतः पिता।** पिता पुत्र के सहित आया। **छात्रैः सहागत उपाध्यायः।** उपाध्याय जी छात्रों सहित आये। यहां 'सह' के पर्यायवाची शब्दों का भी ग्रहण किया जाता है। **पुत्रेण सार्धमागतः पिता।** अर्थ पूर्ववत् है। **छात्रैः साकमागत उपाध्यायः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**पुत्रेण सह आगतः पिता।** यहां पिता कर्ता का क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से पिता प्रधान और पुत्र गौण है। अतः अप्रधान पुत्र में तृतीया विभक्ति है। ऐसे ही-**छात्रैः सहागत उपाध्यायः।***

तृतीया–

(३) येनाङ्गविकारः ।२०।

प०वि०–येन ३ ।१ अङ्ग-विकारः १ ।१ ।

स०–अङ्गस्य विकार इति अङ्गविकारः (षष्ठीतत्पुरुषः)। अत्र अङ्ग' शब्दोऽङ्गसमुदाये शरीरेऽर्थे वर्तते।

अनु०–तृतीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–येनाङ्गविकारस्ततस्तृतीया।

अर्थः–येन विकृतेन अङ्गेन अङ्गिनः=शरीरस्य विकारो लक्ष्यते तस्मात् तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०–अक्ष्णा काणो देवदत्तः। पादेन खञ्जो यज्ञदत्तः। पाणिना कुण्ठो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(येन) जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी=शरीर का विकार लक्षित होता है उस विकृत अङ्ग से (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है।

*उदा०–**अक्ष्णा काणो देवदत्तः।** देवदत्त आंख से काणा है। **पादेन खञ्जो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पांव से लंगड़ा है। **हस्तेन कुण्ठो ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त हाथ से टुण्डा है।*

*सिद्धि–**अक्ष्णा काणो देवदत्तः।** देवदत्त के शरीर का 'अक्षि' अङ्ग से काणत्व विकार लक्षित होता है, अतः 'अक्षि' शब्द में तृतीया विभक्ति है। ऐसे ही–**पादेन खञ्जो यज्ञदत्तः, पाणिना कुण्ठो ब्रह्मदत्तः।***

तृतीया–

(४) इत्थंभूतलक्षणे ।२१।

वि०–इत्थंभूतलक्षणे ७ ।१ ।

स०–कञ्चित् प्रकारं प्राप्त इत्थंभूतः, इत्थंभूतस्य लक्षणमिति इत्थंभूतलक्षणम्, तस्मिन्-इत्थम्भूतलक्षणे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–तृतीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इत्थंभूतलक्षणे तृतीया।

अर्थः–इत्थंभूतस्य=कञ्चित् प्रकारं प्राप्तस्य पुरुषस्य लक्षणे तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-अपि भवान् कमण्डलुना[३] छात्रम् अद्राक्षीत्। अपि भवान् छात्रेण[३] उपाध्यायम् अद्राक्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(इत्थंभूतलक्षणे) इत्थंभूत=किसी प्रकार विशेष को प्राप्त हुये पुरुष के लक्षण में (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है।*

उदा०-अपि भवान् कमण्डलुना छात्रमद्राक्षीत्। कोई किसी से पूछता है-क्या आपने कमण्डलु लिये हुये छात्र को देखा? ***अपि भवान् छात्रेण उपाध्यायम् अद्राक्षीत्।*** *क्या आपने छात्रवाले उपाध्याय को देखा?*

सिद्धि-अपि भवान् कमण्डलुना छात्रम् अद्राक्षीत्। *यहां इत्थंभूत छात्र का लक्षण 'कमण्डलु' है, अतः उसमें तृतीया विभक्ति है। ऐसे ही-* ***अपि भवान् छात्रेण उपाध्यायम् अद्राक्षीत्।***

तृतीया द्वितीया च-

(५) संज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि।२२।

प०वि०-संज्ञः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, कर्मणि ७।१।

अनु०-अनभिहिते तृतीया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञोऽनभिहिते कर्मण्यन्यतरस्यां तृतीया।

अर्थः-सम्-पूर्वस्य ज्ञा-धातोरनभिहिते कर्मणि कारके विकल्पेन तृतीया विभक्तिर्भवति। पक्षे च द्वितीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **तृतीया**-मात्रा[३] संजानीते बालकः। (२) **द्वितीया**-मातरं[२] संजानीते बालकः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(संज्ञः) सम् उपसर्गपूर्वक ज्ञा-धातु के (अनभिहिते) अकथित (कर्मणि) कर्म कारक में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है और पक्ष में द्वितीया विभक्ति होती है।*

उदा०- ***तृतीया-मात्रा संजानीते बालकः।*** *बालक माता को पहचानता है।* ***मातरं संजानीते बालकः।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-मात्रा संजानीते बालकः। *सम्+ज्ञा+लट्। सम्+ज्ञा+श्ना+त। सम्+जा+नी+ते। संजानीते।*

यहां ***'सम्प्रतिभ्यामनाध्याने'*** *(१।३।४६) से सम् उपसर्गपूर्वक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है। यहां 'संजानीते' का कर्म माता है, उसमें तृतीया विभक्ति है। विकल्प पक्ष में* ***'कर्मणि द्वितीया'*** *(२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।-* ***मातरं संजानीते बालकः।***

तृतीया–

(६) हेतौ।२३।

वि०–हेतौ ७।१।

अनु०–तृतीया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–हेतौ तृतीया।

अर्थः–हेतुवाचके शब्दे तृतीया विभक्तिर्भवति। लोके फलसाधनसमर्थः पदार्थो हेतुरित्युच्यते।

उदा०–धनेन[३] कुलम्। विद्यया[३] यशः। कन्यया[३] शोकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हेतौ) हेतुवाचक शब्द में (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है। लोक में फल को सिद्ध करने में समर्थ पदार्थ को 'हेतु' कहते हैं।

*उदा०-**धनेन कुलम्।** कुल का हेतु धन है। **विद्यया यशः।** यश की हेतु विद्या है। **कन्यया शोकः।** शोक का हेतु कन्या है।*

*सिद्धि-**धनेन कुलम्।** यहां कुल के हेतु 'धन' शब्द में तृतीया विभक्ति है। ऐसे ही-**विद्यया यशः, कन्यया शोकः।***

पञ्चमी–

(६) अकर्तर्यृणे पञ्चमी।२४।

प०वि०–अकर्तरि ७।१ ऋणे ७।१ पञ्चमी १।१।

स०–न कर्ता इति अकर्ता, तस्मिन्-अकर्तरि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–हेतौ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि ऋणे हेतौ पञ्चमी।

अर्थः–कर्तृवर्जिते ऋणवाचके हेतुशब्दे पञ्चमी विभक्तिर्भवति। तृतीयापवादः।

उदा०–शताद्[५] बद्धो देवदत्तः। सहस्राद्[५] बद्धो यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (ऋणे) ऋणवाचक (हेतौ) हेतु शब्द में (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-**शताद् बद्धो देवदत्तः।** देवदत्त सौ रुपये के ऋण से बंधा हुआ है। **सहस्राद् बद्धो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त हजार रुपये के ऋण से बंधा हुआ है।*

सिद्धि-शताद् बद्धो देवदत्तः । यहां देवदत्त के बन्धन का 'शतम्' ऋणात्मक हेतु है, अतः उसमें पञ्चमी विभक्ति है। ऐसे ही-सहस्राद् बद्धो यज्ञदत्तः ।

विशेष-इससे प्रतीत होता है कि पाणिनिकाल में भी ऋण देकर बन्धुआ मजदूर बनाने की प्रथा थी।

तृतीया पञ्चमी च–

(७) विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्।२५।

प०वि०-विभाषा १।१ गुणे ७।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०-न स्त्री इति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-हेतौ पञ्चमी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रियां गुणे हेतौ विभाषा पञ्चमी।

अर्थः-स्त्रीलिङ्गवर्जिते गुणवाचके हेतौ शब्दे विकल्पेन पञ्चमी विभक्तिर्भवति। पक्षे तृतीयापि भवति।

उदा०-(१) **पञ्चमी-**जाड्याद्[१] बद्धो देवदत्तः। पाण्डित्याद्[१] मुक्तो यज्ञदत्तः। (२) **तृतीया-**जाड्येन[३] बद्धो देवदत्तः। पाण्डित्येन[३] मुक्तो यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से भिन्न (गुणे) गुणवाचक (हेतौ) हेतु शब्द में (विभाषा) विकल्प से (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है। पक्ष में तृतीया भी होती है।

*उदा०-(१) **पञ्चमी-जाड्याद् बद्धो देवदत्तः।** देवदत्त जड़ता हेतु से संसार में बंधा हुआ है। **पाण्डित्याद् मुक्तो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पाण्डित्य हेतु से संसार से मुक्त होगया है। (२) **तृतीया-जाड्येन बद्धो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है। **पाण्डित्येन मुक्तो यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-जाड्याद् बद्धो देवदत्तः । यहां देवदत्त के बन्धन का हेतु जाड्य (मूर्खता) है, जो स्त्रीलिङ्ग में भी नहीं है। अतः उसमें पञ्चमी विभक्ति है। पक्ष में तृतीया विभक्ति भी होती है-जाड्येन बद्धो देवदत्तः। इत्यादि।

षष्ठी–

षष्ठी हेतुप्रयोगे।२६।

प०वि०-षष्ठी १।१ हेतु-प्रयोगे ७।१।

स०-हेतोः प्रयोग अति हेतुप्रयोगः, तस्मिन्-हेतुप्रयोगे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-हेतौ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हेतुप्रयोगे हेतौ षष्ठी।

अर्थः-हेतुशब्दस्य प्रयोगे हेतुवाचके शब्दे षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-अन्नस्य हेतोर्वसति देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हेतुप्रयोगे) वाक्य में हेतु शब्द का प्रयोग होने पर (हेतौ) हेतु के वाचक शब्द में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**अन्नस्य हेतोर्वसति देवदत्तः।** देवदत्त अन्न (भोजन) के हेतु से रहता है।*

तृतीया षष्ठी च-

(६) सर्वनाम्नस्तृतीया च।२७।

प०वि०-सर्वनाम्नः ६।१ तृतीया १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-हेतौ, हेतुप्रयोगे षष्ठी चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वनाम्नो हेतुप्रयोगे हेतौ च तृतीया षष्ठी च।

अर्थः-सर्वनामसंज्ञकस्य शब्दस्य हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ च वाच्ये तृतीया षष्ठी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **तृतीया**-केन हेतुना वसति देवदत्तः। येन हेतुना वसति देवदत्तः। (२) **षष्ठी**-कस्य हेतोर्वसतिर्यज्ञदत्तः। यस्य हेतोर्वसति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक और (हेतुप्रयोगे) हेतु शब्द का प्रयोग होने पर (हेतौ) हेतुवाच्य हो तो (तृतीया) तृतीया (च) और (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) तृतीया-**केन हेतुना वसति देवदत्तः।** देवदत्त यहां किस हेतु से रहता है? **येन हेतुना वसति देवदत्तः।** देवदत्त यहां जिस हेतु से रहता है। (२) षष्ठी-**कस्य हेतोर्वसति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त यहां किस हेतु से रहता है। **यस्य हेतोर्वसति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त जिस हेतु से रहता है।*

*सिद्धि-**केन हेतुना वसति देवदत्तः।** यहां सर्वनाम 'किम्' शब्द तथा हेतु शब्द में तृतीया विभक्ति है। पक्ष में षष्ठी विभक्ति भी होती है-**कस्य हेतोर्वसति देवदत्तः।** इत्यादि।*

पञ्चमीविभक्तिप्रकरणम्

पञ्चमी–

(१) अपादाने पञ्चमी।२८।

प०वि०–अपादाने ७।१ पञ्चमी १।१।

अनु०–अनभिहिते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अनभिहितेऽपादाने पञ्चमी।

अर्थः–अनभिहितेऽपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति।

उदा०–ग्रामादागच्छति देवदत्तः। पर्वतादवरोहति यज्ञदत्तः। वृकेभ्यो बिभेति ब्रह्मदत्तः।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(अनभिहिते) अकथित (अपादाने) अपादान कारक में (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदा०–__ग्रामादागच्छति देवदत्तः।__ देवदत्त गांव से आता है। __पर्वतादवरोहति यज्ञदत्तः।__ यज्ञदत्त पहाड़ से उतरता है। __वृकेभ्यो बिभेति ब्रह्मदत्तः।__ ब्रह्मदत्त भेड़ियों से डरता है।

__सिद्धि-ग्रामादागच्छति देवदत्तः।__ यहां '__ध्रुवमपायेऽपादानम्__' (१।४।२४) से ग्राम की अपादान संज्ञा होती है। प्रकृत सूत्र से अपादान 'ग्राम' में पंचमी विभक्ति होती है। '__ध्रुवमपायेऽपादानम्__' (१।४।२४) इत्यादि अपादान कारक का सब प्रकरण देख लेवें।

पञ्चमी–

(२) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।२६।

प०वि०–अन्य-आरात्-इतर-ऋते-दिक्शब्द-अञ्चूत्तरपद-आच्-आहि-युक्ते। ७।१।

स०–अन्यश्च आराच्च इतरश्च ऋते च दिक्शब्दश्च अञ्चूत्तरपदश्च आच् च आहिश्च ते-अन्य०आहयः, तैः-अन्य०आहिभिः। अन्य०आहिभिर्युक्त इति अन्य०आहियुक्तः, तस्मिन्-अन्यारादिरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–पञ्चमी इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अन्य०आहियुक्ते शब्दे पञ्चमी।

अर्थ:-अन्य-आरात्-इतर-ऋते-दिक्शब्द-अञ्चूत्तरपद-आच्-आहिभि: संयुक्ते शब्दे पञ्चमी विभक्तिर्भवति।

उदा०-अन्य:-(१) अन्यो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:। अन्य इत्यर्थग्रहणं तेन पर्यायवाचिप्रयोगेऽपि पञ्चमी विभक्तिर्भवति। भिन्नो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:। अर्थान्तरं देवदत्ताद् यज्ञदत्त:। विलक्षणो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:।

(२) **आरात्**-आरात्-शब्दो दूरान्तिकार्थे वर्तते। तत्र दूरान्तिकार्थै: षष्ठ्यन्यतरस्याम् (२।३।२४) इति विकल्पेन षष्ठ्यां पञ्चम्यां च प्राप्तायां पञ्चमी विभक्तिर्विधीयते। आराद् ग्रामाद् गुरुकुलम्। आराद् ग्रामाद् विद्यालय:।

(३) **इतर**-इतर इति निर्दिश्यमानप्रतियोगी पदार्थ उच्यते। इतरो ब्राह्मणाद् राजन्य:।

(४) **ऋते**-इत्यव्ययं वर्जनार्थे वर्तते-ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:।

(५) **दिक्शब्द:**-पूर्वो ग्रामात् पर्वत:। उत्तरो ग्रामात् पर्वत:।

(६) **अञ्चूत्तरपद:**-प्राक् ग्रामाद् नदी प्रवहति। प्रत्यग् ग्रामात् नदी प्रवहति। ननु चायमपि दिक्शब्द एव ? '**षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन**' (२।३।३०) इति षष्ठीं वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपकर्ष:।

(७) **आच्**-दक्षिणा ग्रामाद् गुरुकुलम्। उत्तरा ग्रामाद् आश्रम:।

(८) **आहि**-दक्षिणाहि ग्रामाद् गुरुकुलम्। उत्तराहि ग्रामाद् आश्रम:।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अन्य०आहियुक्ते) अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द:, अञ्चूत्तरपद, आच् और आहि इनसे संयुक्त शब्द में (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है।*

*उदा०-(१) **अन्य:-अन्यो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:।** यज्ञदत्त देवदत्त से भिन्न है। यहां अन्य के पर्यायवाची शब्दों का भी ग्रहण किया जाता है। **भिन्नो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:। अर्थान्तरं देवदत्ताद् यज्ञदत्त:। विलक्षणो देवदत्ताद् यज्ञदत्त:।** इनका अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) आरात्-आरात् शब्द दूर और अन्तिक (पास) अर्थ में है। उसमें '**दूरान्तिकार्थै: षष्ठ्यन्यतरस्याम्**' (२।३।२४) से विकल्प से षष्ठी और पंचमी विभक्ति प्राप्त थी, यहां पञ्चमी विभक्ति का विधान किया गया है। **आरात् ग्रामाद् गुरुकुलम्।** गुरुकुल गांव से दूर है। **आरात् ग्रामाद् विद्यालय:।** विद्यालय गांव से निकट है।*

(३) इतर-इतर शब्द निर्दिश्यमान का प्रतियोगी है। ***इतरो ब्राह्मणाद् राजन्यः।*** *ब्राह्मण से क्षत्रिय भिन्न है।*

(४) ***ऋते****-यह अव्यय निषेध अर्थ में है।* ***ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।*** *ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है।*

(५) ***दिक्शब्द-पूर्वो ग्रामात् पर्वतः।*** *गांव से पूर्व दिशा में पहाड़ है।* ***उत्तरो ग्रामात् पर्वतः।*** *गांव से उत्तर दिशा में पहाड़ है।*

(६) ***अञ्चूत्तरपद-प्राग् ग्रामाद् नदी प्रवहति।*** *गांव से पूर्व दिशा में नदी बहती है।* ***प्रत्यग् ग्रामाद् नदी प्रवहति।*** *गांव से पश्चिम दिशा में नदी बहती है। अञ्चूत्तरपदवाले शब्द भी दिक्शब्द हैं, इनका पृथक् कथन क्यों किया है ?* ***'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन'*** *(२।३।३०) से यहां षष्ठी विभक्ति का विधान किया जायेगा, अतः यहां उससे पहले ही पञ्चमी का विधान कर दिया है।*

(७) ***आच्-दक्षिणा ग्रामाद् गुरुकुलम्।*** *गांव से दक्षिण दिशा में गुरुकुल है।* ***उत्तरा ग्रामाद् आश्रमः।*** *गांव से उत्तर दिशा में आश्रम है।*

(८) ***आहि-दक्षिणाहि ग्रामाद् गुरुकुलम्।*** *अर्थ पूर्ववत् है।* ***उत्तराहि ग्रामाद् आश्रमः।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) अञ्चूत्तरपद-प्राग् ग्रामात् नदी प्रवहति। *प्र+अञ्चू+क्विन्। प्र+अञ्च्+०। प्र+अच्। प्राक्+अस्ताति। प्राक्+०। प्राक्।*

यहां प्र उपपद ***'अञ्चु गतिपूजनयोः'*** *(भ्वा०प०) धातु से* ***'ऋत्विग्दधृक्०'*** *(३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। उससे 'दिक्शब्देभ्यः' (५।३।२७) से 'अस्ताति' प्रत्यय करने पर उसका* ***'अञ्चेर्लुक्'*** *(५।३।३०) से लुक् हो जाता है। प्राग् इस अञ्चूत्तरपद शब्द से युक्त 'ग्राम' शब्द में पञ्चमी विभक्ति है।*

(२) ***आच्-दक्षिणा ग्रामाद् गुरुकुलम्।*** *दक्षिण+आच्। दक्षिण+सु। दक्षिणा।*

यहां ***'दक्षिणादाच्'*** *(५।३।३६) से दक्षिण शब्द से 'आच्' प्रत्यय होता है।*

(३) ***आहि-दक्षिणाहि ग्रामाद् गुरुकुलम्।*** *दक्षिण+आहि। दक्षिणाहि+सु। दक्षिणाहि।*

यहां ***'आहि च दूरे'*** *(५।३।३७) से दक्षिण शब्द से 'आहि' प्रत्यय होता है। आहिप्रत्ययान्त से युक्त शब्द 'ग्राम' में पञ्चमी विभक्ति है।*

षष्ठी-

(३) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन।३०।

प०वि०-षष्ठी १।१ अतसर्थ-प्रत्ययेन ३।१।

स०-अतसोऽर्थ इति अतसर्थः, तस्मिन्-अतसर्थे। अतसर्थे प्रत्यय

इति अतसर्थप्रत्ययः, तेनः-अतसर्थप्रत्ययेन (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितसप्तमी-तत्पुरुषः)।

अन्वयः-अतसर्थप्रत्ययेन युक्ते शब्दे षष्ठी।

अर्थः-अतसर्थ-प्रत्ययान्तेन पदेन युक्ते शब्दे षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-दक्षिणतो ग्रामस्य आगतो देवदत्तः। उत्तरतो ग्रामस्य आगतो यज्ञदत्तः। पुरस्ताद् ग्रामस्य नदी वहति। उपरि ग्रामस्य कादम्बिनी प्रयाति। उपरिष्टाद् ग्रामस्य सौदामिनी विराजते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतसर्थप्रत्ययेन) अतसुच् प्रत्यय और कोई उसके अर्थवाला प्रत्यय जिसके अन्त में है उससे संयुक्त शब्द में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**दक्षिणतो ग्रामस्य आगतो देवदत्तः।** देवदत्त गांव की दक्षिण दिशा से आया। **उत्तरतो ग्रामस्य आगतो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त गांव की उत्तर दिशा से आया। **पुरस्ताद् ग्रामस्य नदी वहति।** गांव के सामने से नदी बहती है। **उपरि ग्रामस्य कादम्बिनी प्रयाति।** गांव के ऊपर से मेघमाला जारही है। **उपरिष्टाद् ग्रामस्य सौदामिनी विराजते।** गांव के ऊपर से बिजली चमक रही है।*

*सिद्धि-(१) **दक्षिणतो ग्रामस्य आगतो देवदत्तः।** दक्षिण+ङसि+अतसुच्। दक्षिण+अतस्। दक्षिणतः।*

*यहां **'दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्'** (५।३।२८) से सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्तिवाले, दिक्, देश और काल अर्थ में वर्तमान दक्षिण शब्द से अतसुच् प्रत्यय का विधान किया गया है। अतुसच् प्रत्ययान्त 'दक्षिणतः' से संयुक्त 'ग्राम' शब्द में षष्ठी विभक्ति है।*

*(२) **उपरि।** ऊर्ध्व+रिल्। उप+रि। उपरि।*

*यहां अतुसच् प्रत्यय के अर्थ में **'उपर्युपरिष्टात्'** (५।३।३१) से 'रिल्' प्रत्यय का निपातन किया गया है।*

*(३) **उपरिष्टात्।** ऊर्ध्व+रिष्टातिल्। उप+रिष्टात्। उपरिष्टात्।*

*यहां भी अतसुच् प्रत्यय के अर्थ में **'उपर्युपरिष्टात्'** (५।३।३१) से **'रिष्टातिल्'** प्रत्यय का निपातन किया गया है। इनसे संयुक्त ग्राम शब्द में षष्ठी विभक्ति है।*

विशेष-'अतसुच्' प्रत्यय सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्तिवाले दिशावाची शब्दों से स्वार्थ में विधान किया गया है। अतः उससे संयुक्त शब्द में भी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति होनी चाहिये। प्रकृत सूत्र से वहां षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है।

द्वितीया–

(४) एनपा द्वितीया।३१।

प०वि०–एनपा ३।१ द्वितीया १।१।

अन्वयः–एनपा युक्ते शब्दे द्वितीया।

अर्थः–एनप्-प्रत्ययान्तेन पदेन संयुक्ते शब्दे द्वितीया विभक्तिर्भवति। पूर्वेण षष्ठी प्राप्ताऽनेन द्वितीया विधीयते।

उदा०–दक्षिणेन ग्रामं गुरुकुलम्। उत्तरेण ग्रामं आश्रमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(एनपा) एनप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस पद से संयुक्त शब्द में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है। पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी।

*उदा०–**दक्षिणेन ग्रामं गुरुकुलम्।** गांव की दक्षिण दिशा में अदूर (निकट) ही गुरुकुल है। **उत्तरेण ग्रामं आश्रमः।** गांव की उत्तर दिशा में अदूर ही एक आश्रम है।*

*सिद्धि–**दक्षिणेन ग्रामं गुरुकुलम्।** दक्षिण+ङि+एनप्। दक्षिण+एन। दक्षिणेन।*

*यहां **'एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः'** (५।३।३५) से प्रथमा और सप्तमी विभक्तिमान् दिशावाची दक्षिण शब्द से दिक्, देश और काल अर्थ में एनप् प्रत्यय होता है। प्रकृत सूत्र से उससे संयुक्त 'ग्राम' शब्द में द्वितीया विभक्ति का विधान किया है। ऐसे ही–**उत्तरेण ग्राममाश्रमः।***

तृतीया पञ्चमी च–

(५) पृथग्विनानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्।३२।

प०वि०–पृथग्-विना-नानाभिः ३।३ तृतीया १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–पृथक् च विना च नाना च ते-पृथग्विनानानाः, तैः-पृथग्विनानानाभिः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–पृथग्विनानानाभिर्युक्ते शब्देऽन्यतरस्यां तृतीया।

अर्थः–पृथग्विनानानाभिः संयुक्ते शब्दे विकल्पेन तृतीया विभक्तिर्भवति, पक्षे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति।

उदा०–(१) **पृथक्**–पृथग् देवदत्तेन[३] यज्ञदत्तः। पृथक् देवदत्ताद्[५] यज्ञदत्तः।

(२) **विना**–विना देवदत्तेन यज्ञदत्तः। विना देवदत्ताद् यज्ञदत्तः।

(३) **नाना**–नाना देवदत्तेन यज्ञदत्तः। नाना-देवदत्ताद् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पृथग् विनानानाभिः) पृथक्, विना और नाना पदों से संयुक्त शब्द में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है। पक्ष में पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) पृथक्-**पृथग् देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त देवदत्त से अलग है। **पृथक् देवदत्ताद् यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) विना-**विना देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त देवदत्त के बगैर है। **विना देवदत्ताद् यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(३) नाना-**नाना देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त देवदत्त से भिन्न है। **नाना देवदत्ताद् यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**पृथक् देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यहां 'पृथक्' पद से संयुक्त 'देवदत्त' में तृतीया विभक्ति है। विकल्प पक्ष में पञ्चमी विभक्ति भी होती है-**पृथग् देवदत्ताद् यज्ञदत्तः,** इत्यादि।*

तृतीया पञ्चमी च–

(६) करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्या-सत्त्ववचनस्य।३३।

प०वि०–करणे ७।१ च अव्ययपदम्, स्तोक-अल्प-कृच्छ्र-कतिपयस्य ६।१। असत्त्ववचनस्य ६।१।

स०–स्तोकं च अल्पं च कृच्छ्रं च कतिपयं च एतेषां समाहारः, स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयम्, तस्य-स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य (इतरेतरयोग-द्वन्द्वः)। सत्त्वं वक्तीति सत्त्ववचनः, न सत्त्ववचन इति असत्त्ववचनः, तस्य-असत्त्ववचनस्य (उपपदतत्पुरुषगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–तृतीया पञ्चमी इति चानुवर्तते।

अन्वयः–असत्त्ववचनस्य स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्य करणे तृतीया पञ्चमी च।

अर्थः–असत्त्ववचनेभ्यः स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयेभ्यः शब्देभ्यः करणे कारके तृतीया पञ्चमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **स्तोकम्**-स्तोकेन[३] मुक्तो देवदत्तः। स्तोकाद्[१] मुक्तो देवदत्तः।

(२) **अल्पम्**-अल्पेन मुक्तो देवदत्तः। अल्पाद् मुक्तो देवदत्तः।

(३) **कृच्छ्रम्**-कृच्छ्रेण मुक्तो देवदत्तः। कृच्छ्राद् मुक्तो देवदत्तः।

(४) **कतिपयम्**-कतिपयेन मुक्तो देवदत्तः। कतिपयाद् मुक्तो देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(असत्त्ववचनस्य) अद्रव्यवाची (स्तोक०कतिपयस्य) स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्दों से (करणे) करण कारक में (तृतीया) तृतीया (च) और पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) स्तोक-**स्तोकेन मुक्तो देवदत्तः।** देवदत्त थोड़े से प्रयास से बन्धन से मुक्त होगया। **स्तोकाद् मुक्तो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) अल्प-**अल्पेन मुक्तो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है। **अल्पाद् मुक्तो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(३) कृच्छ्र-**कृच्छ्रेण मुक्तो देवदत्तः।** देवदत्त कठिनाई के बन्धन से मुक्त हुआ। **कृच्छ्राद् मुक्तो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(४) कतिपय-**कतिपयेन मुक्तो देवदत्तः।** देवदत्त कुछ ही प्रयास से बन्धन से मुक्त होगया। **कतिपयाद् मुक्तो देवदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**स्तोकेन मुक्तो देवदत्तः।** यहां स्तोक शब्द से करण कारक में तृतीया विभक्ति है। असत्त्ववचन=अद्रव्यवचन का कथन इसलिये किया गया है कि यहां द्रव्यवाची स्तोक शब्द में तृतीया और पञ्चमी विभक्ति न हों-**स्तोकेन विषेण हतो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त थोड़े से जहर से मर गया।*

*करण में **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति सिद्ध ही है, यहां करण में पञ्चमी विभक्ति का विशेष विधान किया गया है-**स्तोकाद् मुक्तो देवदत्तः**, इत्यादि।*

षष्ठी पञ्चमी च-

(७) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्।३४।

प०वि०-दूर-अन्तिकार्थैः ३।३ षष्ठी १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-दूरं च अन्तिकं च ते-दूरान्तिके, दूरान्तिके अर्थौ येषां ते दूरान्तिकार्थाः, तैः-दूरान्तिकार्थैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-पञ्चमी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दूरान्तिकार्थैः पदैर्युक्ते शब्देऽन्यतरस्यां षष्ठी।

अर्थः-दूरार्थैरन्तिकार्थैश्च पदैः संयुक्ते शब्दे विकल्पेन षष्ठी विभक्तिर्भवति। पक्षे पञ्चमी विभक्तिर्भवति।

उदा०-दूरार्थाः-दूरं ग्रामस्य[१] गुरुकुलम्। दूरं ग्रामाद्[१] गुरुकुलम्। विप्रकृष्टं ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टं ग्रामाद् गुरुकुलम्।

(२) **अन्तिकार्थाः**-अन्तिकं ग्रामस्य मन्दिरम्। अन्तिकं ग्रामाद् मन्दिरम्। अभ्याशं ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशं ग्रामाद् मन्दिरम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(दूरान्तिकार्थैः) दूर और अन्तिक (पास) अर्थवाले पदों से संयुक्त शब्द में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) दूरार्थ-**दूरं ग्रामस्य गुरुकुलम्।** गुरुकुल गांव से दूर है। **दूरं ग्रामाद् गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **विप्रकृष्टं ग्रामस्य गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **विप्रकृष्टं ग्रामाद् गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) आन्तिकार्थ-**अन्तिकं ग्रामस्य मन्दिरम्।** मन्दिर गांव के पास है। **अन्तिकं ग्रामाद् मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **अभ्याशं ग्रामस्य मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **अभ्याशं ग्रामाद् मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**दूरं ग्रामस्य गुरुकुलम्।** यहां 'दूर' पद से संयुक्त 'ग्राम' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। पक्ष में पञ्चमी विभक्ति होती है-**दूरं ग्रामाद् गुरुकुलम्।***

द्वितीया तृतीया पञ्चमी च-

(८) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च।३५।

प०वि०-दूर-अन्तिकार्थेभ्यः ५।३ द्वितीया १।१ च अव्ययपदम्।

स०-दूरं च अन्तिकं चे ते-दूरान्तिके। दूरान्तिके अर्थौ येषां ते-दूरान्तिकार्थाः, तेभ्यः-दूरान्तिकार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तृतीया पञ्चमी चानुवर्तते।

अन्वयः-दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया तृतीया पञ्चमी च।

अर्थः-दूरार्थेभ्योऽन्तिकार्थेभ्यश्च शब्देभ्यो द्वितीया तृतीया पञ्चमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) दूरार्थाः-दूरं[२] ग्रामस्य गुरुकुलम्। दूरेण[३] ग्रामस्य गुरुकुलम्। दूराद्[५] ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टं ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टेन ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टाद् ग्रामस्य गुरुकुलम्।

(२) अन्तिकार्थाः-अन्तिकं ग्रामस्य मन्दिरम्। अन्तिकेन ग्रामस्य मन्दिरम्। अन्तिकाद् ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशं ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशेन ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशाद् ग्रामस्य मन्दिरम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(दूरान्तिकार्थेभ्यः) दूर और अन्तिक=पास अर्थवाले शब्दों से (द्वितीया) द्वितीया (तृतीया) तृतीया (च) और (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) दूरार्थ-**दूरं ग्रामस्य गुरुकुलम्।** गुरुकुल गांव से दूर है। **दूरेण ग्रामस्य गुरुकुलम्। दूराद् ग्रामस्य गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **विप्रकृष्टं ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टेन ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टाद् ग्रामस्य गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) अन्तिकार्थ-**अन्तिकं ग्रामस्य मन्दिरम्।** मन्दिर गांव के पास है। **अन्तिकेन ग्रामस्य मन्दिरम्। अन्तिकाद् ग्रामस्य मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **अभ्याशं ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशेन ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशाद् ग्रामास्य मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**दूरं ग्रामस्य मन्दिरम्।** यहां दूर तथा उसके पर्यायवाची अन्तिक तथा उसके पर्यायवाची शब्दों से द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति है, जैसे कि उदाहरणों में दिखाई गई है।*

सप्तमीविभक्तिप्रकारणम्

सप्तमी–

(१) सप्तम्यधिकरणे च।३६।

प०वि०-सप्तमी १।१ अधिकरणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-दूरान्तिकार्थेभ्यः इत्यनुवर्तते, अनभिहिते इत्यपि अनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-दूरान्तिकार्थेभ्यः शब्देभ्योऽनभिहितेऽधिकरणे च सप्तमी।

अर्थः-दूरार्थेभ्योऽन्तिकार्थेभ्यश्च शब्देभ्योऽनभिहितेऽधिकरणे च कारके सप्तमी विभक्तिर्भवति।

उदा०-दूरार्थाः-दूरे ग्रामस्य गुरुकुलम्। विप्रकृष्टे ग्रामस्य गुरुकुलम्। (२) **अन्तिकार्थाः**-अन्तिके ग्रामस्य मन्दिरम्। अभ्याशे ग्रामस्य मन्दिरम्।

(३) **अधिकरणम्**–कटे आस्ते देवदत्तः। शकटे आस्ते यज्ञदत्तः। स्थाल्यां पचति ब्रह्मदत्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(दूरान्तिकार्थेभ्यः) दूर और अन्तिक=पास अर्थवाले शब्दों से (च) और (अनभिहिते) अकथित (अधिकरणे) अधिकरण कारक में (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) दूरार्थ-**दूरे ग्रामस्य गुरुकुलम्।** गुरुकुल गांव से दूरी पर है। **विप्रकृष्टे ग्रामस्य गुरुकुलम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(२) अन्तिकार्थ-**अन्तिके ग्रामस्य मन्दिरम्।** मन्दिर गांव के पास में है। **अभ्याशे ग्रामस्य मन्दिरम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*(३) अधिकरण-**कटे आस्ते देवदत्तः।** देवदत्त चटाई पर बैठता है। **शकटे आस्ते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त गाड़ी में बैठता है। **स्थाल्यां पचति ब्रह्मदत्ता।** ब्रह्मदत्ता नामक कन्या पतीली में पकाती है।*

*सिद्धि-(१) **दूरे ग्रामस्य गुरुकुलम्।** यहां दूर तथा उसके पर्यायवाची, अन्तिक तथा उसके पर्यायवाची शब्दों में सप्तमी विभक्ति है। जैसे कि उदाहरणों में दिखाई गई है।*

*(२) **कटे आस्ते देवदत्तः।** यहां 'आधारोऽधिकरणम्' (१।५।४५) से आधार 'कट' की अधिकरण संज्ञा है और उसमें प्रकृत सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

सप्तमी–

(२) यस्य च भावेन भावलक्षणम्।३७।

प०वि०- यस्य ६।१ च अव्ययपदम्, भावेन ३।१ भावलक्षणम् १।१।

स०-भावस्य लक्षणमिति भावलक्षणम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। धात्वर्थो भावः, क्रिया इत्यर्थः।

अनु०-सप्तमी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यस्य गवादिकस्य भावेन भावलक्षणं ततः सप्तमी।

अर्थः-यस्य गवादिकस्य भावेन=क्रियया भावलक्षणम्=क्रियान्तरं लक्ष्यते, ततः सप्तमी विभक्तिर्भवति।

उदा०-गोषु दुह्यमानासु गतो देवदत्तः। गोषु दुग्धासु समागतो यज्ञदत्तः। अग्निषु हूयमानेषु गतो देवदत्तः। अग्निषु हुतेषु समागतो यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यस्य) जिस गौ आदि की (भावेन) क्रिया से (भावलक्षणम्) कोई दूसरी क्रिया लक्षित की जाती है, उस पूर्व क्रिया से (च) भी (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-**गोषु दुह्यमानासु गतो देवदत्तः।** जब गाय दुही जारही थी तब देवदत्त चला गया। **गोषु दुग्धासु समागतो यज्ञदत्तः।** जब गाय दुही जा चुकी थी तब यज्ञदत्त आया। **अग्निषु हूयमानेषु गतो देवदत्तः।** जब अग्नि में होम किया जारहा था तब देवदत्त चला गया। **अग्निषु हुतासु समागतो यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त अग्नि में होम हो चुकने पर आया।*

*सिद्धि-**गोषु दुह्यमानासु गतो देवदत्तः।** यहां गौ की दोहन क्रिया से देवदत्त की गमन क्रिया लक्षित की जारही है अतः दोहन क्रिया में सप्तमी विभक्ति है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

षष्ठी सप्तमी च-

(३) षष्ठी चानादरे।३८।

प०वि०-षष्ठी १।१ च अव्ययपदम्, अनादरे ७।१।

स०-न आदर इति अनादरः, तस्मिन्-अनादरे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सप्तमी, यस्य च भावेन भावलक्षणमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यस्य च भावेन भावलक्षणं ततोऽनादरे षष्ठी सप्तामी च।

अर्थः-यस्य च क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततोऽनादरे गम्यमाने षष्ठी सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-रुदतः[६] परिजनस्य प्राव्राजीद् दयानन्दः। रुदति[७] परिजने प्रावाजीत् दयानन्दः। क्रोशतः परिजनस्य प्राव्राजीत् शंकरः। क्रोशति परिजने प्राव्राजीत् शंकरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यस्य) जिसकी (भावेन) क्रिया से (भावलक्षणम्) कोई दूसरी क्रिया लक्षित की जाती है वहां (अनादरे) अनादर प्रकट होने पर (षष्ठी) षष्ठी (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-**रुदतः परिजनस्य प्राव्राजीद् दयानन्दः।** दयानन्द परिजन के रोते हुये परिव्राजक बन गया। **रुदति परिजने प्राव्राजीद् दयानन्दः।** अर्थ पूर्ववत् है। **क्रोशतः परिजनस्य प्राव्राजीत् शंकरः।** शंकर परिवार के चिल्लाते हुये परिव्राजक बन गया। **क्रोशति परिजने प्राव्राजीत् शंकरः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-रुदतः परिजनस्य प्राव्राजीत् दयानन्दः। रुदति परिजनस्य प्राव्राजीद् दयानन्दः। यहां परिजन की रोदन क्रिया से दयानन्द की प्रव्रजन क्रिया लक्षित की गई है अतः पूर्व रोदन क्रिया में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति है। रोते हुये परिवार को छोड़कर जाना परिवार का अनादर है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।

षष्ठी सप्तमी च–

(४) स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च।३६।

प०वि०–स्वामी-ईश्वर-अधिपति-दायाद-साक्षि-प्रतिभू-प्रसूतैः ३।३ च अव्ययपदम्।

स०–स्वामी च ईश्वरश्च अधिपतिश्च दायादश्च साक्षी च प्रतिभूश्च प्रसूतश्च ते-स्वामी०प्रसूताः, तैः-स्वामी०प्रसूतैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–षष्ठी सप्तमी चानुवर्तते।

अन्वयः–स्वामी०प्रसूतैश्च युक्ते शब्दे षष्ठी सप्तमी च।

अर्थः–स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च पदैः संयुक्ते शब्दे षष्ठी सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०–(१) **स्वामी**–गवां[६] स्वामी नन्दः। गोषु[७] स्वामी नन्दः। (२) **ईश्वरः**–गवामीश्वरो विराटः। गोषु ईश्वरो विराटः। (३) **अधिपतिः**–गवामधिपतिः कृष्णः। गोषु अधिपतिः कृष्णः। (४) **दायादः**–गवां दायादो देवदत्तः। गोषु दायादो देवदत्तः। (५) **साक्षी**–गवां साक्षी गोपालः। गोषु साक्षी गोपालः। (६) **प्रतिभूः**–गवां प्रतिभूः सोमदत्तः। गोषु प्रतिभूः सोमदत्तः। (७) **प्रसूतः**–गवां प्रसूतो ब्रह्मदत्तः। गोषु प्रसूतो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वामी०प्रसूतैः) स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू और प्रसूत पदों से संयुक्त शब्द में (षष्ठी) षष्ठी (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) स्वामी-**गवां स्वामी नन्दः। गोषु स्वामी नन्दः।** नन्द गौओं का स्वामी है। (२) ईश्वर-**गवामीश्वरो विराटः। गोषु ईश्वरो विराटः।** विराट् गौओं का राजा है। (३) अधिपति-**गवामधिपतिः कृष्णः। गोषु अधिपतिः कृष्णः।** कृष्ण गौओं का रक्षक है। (४) दायाद-**गवां दायादो देवदत्तः। गोषु दायादो देवदत्तः।** देवदत्त गौओं*

का दायभागी है, पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी है। (५) साक्षी-गवां साक्षी गोपालः। गोषु साक्षी गोपालः। गोपाल गौओं का साक्षी है। (६) प्रतिभूः-गवां प्रतिभूः सोमदत्तः। गोषु प्रतिभूः सोमदत्तः। सोमदत्त गौओं का जामिन है। (७) प्रसूत-गवां प्रसूतो ब्रह्मदत्तः। गोषु प्रसूतो ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त गौओं में उत्पन्न हुआ है।

सिद्धि-गवां स्वामी नन्दः। यहां स्वामी आदि पदों से संयुक्त गौ शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति है। दोनों का अर्थ समान है।

षष्ठी सप्तमी च-

(५) आयुक्तकुशलाभ्यां चाऽऽसेवायाम्।४०

प०वि०-आयुक्त-कुशलाभ्याम् ३।२ च अव्ययपदम्, आसेवायाम् ७।१।

स०-आुक्तश्च कुशलश्च तौ-आयुक्तकुशलौ, ताभ्याम्-आयुक्त-कुशलाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आसेवा=तत्परता।

अनु०-षष्ठी सप्तमी चानुवर्तते।

अन्वयः-आयुक्तकुशलाभ्यां युक्ते शब्दे आसेवायां षष्ठी सप्तमी च।

अर्थः-आयुक्तकुशलाभ्यां पदाभ्यां संयुक्ते शब्दे आसेवायां गम्यमानायां षष्ठी सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०:-(१) आयुक्तः-आयुक्तः कटकरणस्य[६] देवदत्तः। आयुक्तः कटकरणे[७] देवदत्तः। **(२) कुशलः-**कुशलः कटकरणस्य ब्रह्मदत्तः। कुशलः कटकरणे ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आयुक्तकुशलाभ्याम्) आयुक्त और कुशल पदों से संयुक्त शब्द में (आसेवायाम्) आसेवा=तत्परता अर्थ में (षष्ठी) षष्ठी (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

उदा०-(१) आयुक्त-आयुक्तः कटकरणस्य देवदत्तः। आयुक्तः कटकरणे देवदत्तः। देवदत्त चटाई बनाने में लगाया हुआ है। (२) कुशल-कुशलः कटकरणस्य ब्रह्मदत्तः। कुशलः कटकरणे ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त चटाई बनाने में चतुर है।

सिद्धि-आयुक्तः कटकरणस्य देवदत्तः। यहां आयुक्त पद से संयुक्त 'कटकरण' शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति है। ऐसे ही-कुशलः कटकरणस्य/कटकरणे ब्रह्मदत्तः।

षष्ठी सप्तमी च–

(६) यतश्च निर्धारणम्।४१।

प०वि०–यत: पञ्चम्यर्थेऽव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, निर्धारणे ७।१।

स०–जातिगुणक्रियाभि: समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्।

अन्वय:–आयुक्तकुशलाभ्यां युक्ते शब्दे आसेवायां षष्ठी सप्तमी च।

अर्थ:–यस्मात् समुदायाद् निर्धारणं क्रियते तस्मात् षष्ठी सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०–जाति:–मनुष्याणां[६] क्षत्रिय: शूरतम:। मनुष्येषु[७] क्षत्रिय: शूरतम:। (२) **गुण:**–गवां[६] कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। गोषु[७] कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। (३) **क्रिया**–अध्वगानां[६] धावन्त: शीघ्रतमा:। अध्वगेषु[७] धावन्त: शीघ्रतमा:।

आर्यभाषा–अर्थ–(यत:) जिस समुदाय से (निर्धारणम्) एकदेश को पृथक् किया जाता है, उससे (षष्ठी) षष्ठी (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है। जाति, गुण और किया की विशेषता से किसी समुदाय से किसी को पृथक् करना 'निधारण' कहाता है।

*उदा०–जाति–**मनुष्याणां क्षत्रिय: शूरतम:। मनुष्येषु क्षत्रिय: शूरतम:।** मनुष्यों में क्षत्रिय सबसे अधिक शूर होता है। (२) **गुण**–गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। गोषु कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। गौओं में काली गौ सबसे अधिक दूधवाली होती है। (३) **क्रिया–अध्वगानां धावन्त: शीघ्रतमा:। अध्वगेषु धावन्त: शीघ्रतमा:।** मार्ग चलनेवालों में दौड़नेवाले सबसे अधिक शीघ्रगामी होते हैं।*

*सिद्धि–**मनुष्याणां/मनुष्येषु क्षत्रिय: शूरतम:।** यहां मनुष्य जाति से क्षत्रिय का निर्धारण किया गया है। अत: मनुष्य शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति है। ऐसे ही गुण और क्रिया के निर्धारण में भी समझ लेवें।*

पञ्चमी–

(७) पञ्चमी विभक्ते।४२।

स०–पञ्चमी १।१ विभक्ते ७।१।

अनु०–यतश्च निर्धारणमित्यनुवर्तते।

अन्वय:–यस्मिन् निर्धारणे विभक्तं तत्र पञ्चमी।

अर्थः-यस्मिन् निर्धारणे विभक्तं=विभागो भवति, तस्मिन् पञ्चमी विभक्तिर्भवति।

उदा०-माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः सुकुमारतराः। माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः।

आर्यभाषा-अर्थः-(यतः) जिस (निर्धारणम्) निर्धारण में (विभक्ते) विभाग होता है, उसमें (पञ्चमी) पञ्चमी विभक्ति होती है।

*उदा०-**माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः सुकुमारतराः।** मथुरा के लोग पटना के लोगों से अधिक सुकुमार हैं, अधिक कोमल स्वभाव के हैं। **माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः।** मथुरा के लोग पटना के लोगों से अधिक धनवान् हैं।*

*सिद्धि-**माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः सुकुमारतराः।** सुकुमार+तरप्। सुकुमार+तर। सुकुमारतर+जस्। सुकुमारतराः। यहां मथुरा और पटना के लोगों का सुकुमार गुण में विभाग किया गया है और बताया है कि मथुरा के लोग पटना के लोगों से अधिक सुकुमार हैं, अतः 'पाटलिपुत्र' (पटना) शब्द में पञ्चमी विभक्ति है। यहां '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'सुकुमारतर' में तरप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः।***

सप्तमी-

(८) साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः।४३।

प०वि०-साधु-निपुणाभ्याम् ३।२ अर्चायाम् ७।१ सप्तमी १।१ अप्रतेः ६।१।

स०-साधुश्च निपुणश्च तौ-साधुनिपुणौ, ताभ्याम्-साधुनिपुणाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्रतिरिति अप्रतिः, तस्य-अप्रतेः (नञ्तत्पुरुषः)। अर्चा=पूजा इत्यर्थः।

अन्वयः-साधुनिपुणाभ्यां युक्ते शब्देऽचार्यां सप्तमी।

अर्थः-साधुनिपुणाभ्यां पदाभ्यां संयुक्ते शब्देऽर्चायां=पूजायां च गम्यमानायां सप्तमी विभक्तिर्भवति, यदि तत्र प्रतिशब्दो न प्रयुज्यते।

उदा०-(१) **साधुः**-साधुर्देवदत्तो मातरि। साधुर्यज्ञदत्तः पितरि। (२) **निपुणः**-निपुणो देवदत्तो मातरि। निपुणो यज्ञदत्तः पितरि।

आर्यभाषा-अर्थ-(साधुनिपुणाभ्याम्) साधु और निपुण पद से संयुक्त शब्द में (अर्चायाम्) पूजा अर्थ में (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है (अप्रते:) यदि वहां 'प्रति' शब्द का प्रयोग न हो।

*उदा०-(१) साधु-**साधुर्देवदत्तो मातरि।** देवदत्त माता की पूजा करने में अच्छा है। **साधुर्यज्ञदत्त: पितरि।** यज्ञदत्त पिता की पूजा करने में अच्छा है। (२) निपुण-**निपुणो देवदत्तो मातरि।** देवदत्त माता की पूजा करने में कुशल है। **निपुणो यज्ञदत्तो पितरि।** यज्ञदत्त पिता की पूजा (सेवा) करने में कुशल है।*

*सिद्धि-**साधुर्देवदत्तो मातरि।** यहां साधु पद से संयुक्त माता शब्द में पूजा अर्थ में सप्तमी विभक्ति है। यहां 'प्रति' शब्द के प्रयोग का प्रतिषेध इसलिये किया गया है कि यहां सप्तमी विभक्ति न हो-**साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति।** यहां 'लक्षणेत्थंभूताख्यान०' (१।४।८९) से प्रतिशब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा और कर्मप्रचनीययुक्ते द्वितीया (२।३।८) से द्वितीया विभक्ति होती है।*

तृतीया सप्तमी च-

(६) प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च।४४।

प०वि०-प्रसित-उत्सुकाभ्याम् ३।२ तृतीया १।१ च अव्ययपदम्।

स०-प्रसितश्च उत्सुकश्च तौ-प्रसितोत्सुकौ, ताभ्याम्-प्रसितोत्सुकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-सप्तमी इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-प्रसितोत्सुकाभ्यां युक्ते शब्दे तृतीया सप्तमी च।

अर्थ:-प्रसितोत्सुकाभ्यां पदाभ्यां संयुक्ते शब्दे तृतीया सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **प्रसित:**-केशै: प्रसितो देवदत्त:। केशेषु प्रसितो देवदत्त:। (२) **उत्सुक:**-केशैरुत्सुको यज्ञदत्त:। केशेषु उत्सुको यज्ञदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रसितोत्सुकाभ्याम्) प्रसित और उत्सुक पदों से संयुक्त शब्द में (तृतीया) तृतीया (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) प्रसित-**केशै: प्रसितो देवदत्त:। केशेषु प्रसितो देवदत्त:।** देवदत्त केशों के शृंगार में फंसा हुआ। (२) उत्सुक-**केशैरुत्सुको यज्ञदत्त:। केशेषु उत्सुको यज्ञदत्त:।** यज्ञदत्त केशों की सुन्दरता में उत्सुक है।*

सिद्धि-केशैः प्रसितो देवदत्तः। यहां प्रसित पद से संयुक्त केश शब्द में तृतीया विभक्ति है। ऐसे ही-केशेषु प्रसितो देवदत्तः, इत्यादि।

तृतीया सप्तमी च-

(१०) नक्षत्रे च लुपि।४५।

प०वि०-नक्षत्रे ७।१ च अव्ययपदम्, लुपि ७।१।

अनु०-तृतीया सप्तमी चानुवर्तते।

अन्वयः-लुपि नक्षत्रे च तृतीया सप्तमी च।

अर्थः-लुबन्ते नक्षत्रवाचिनि शब्दे तृतीया सप्तमी च विभक्तिर्भवति।

उदा०-**पुष्यः**-पुष्येण[3] पायसमश्नीयात्। पुष्ये[7] पायसमश्नीयात्। (२) **मघा**-मघाभिर्घृतौदनम् अश्नीयात्। मघासु घृतौदनम् अश्नीयात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुपि) जहां विहित प्रत्यय का लुप् (लोप) होगया है उस (नक्षत्रे) नक्षत्रवाची शब्द में (तृतीया) तृतीया (च) और (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) पुष्य-**पुष्येण पायसमश्नीयात्। पुष्ये पायसमश्नीयात्।** पुष्य नक्षत्र में खीर खावे। (२) मघा-**मघाभिर्घृतौदनमश्नीयात्। मघासु घृतौदनमश्नीयात्।** मघा नक्षत्र में घी-चावल खावे।*

*सिद्धि-**पुष्येण/पुष्ये पायसमश्नीयात्।** पुष्य+अण्। पुष्य+०। पुष्य+टा। पुष्य+इन। पुष्येण। यहां नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४।२।३) से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया गया है। यदि वहां दिन और रात्रिकाल का विशेष कथन न हो तो उस 'अण्' प्रत्यय का **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से लुप् (लोप) हो जाता है। उस लुबन्त नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द में प्रकृत सूत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्ति का विधान किया गया है। ऐसे ही-**मघाभिः/मघासु घृतौदनमश्नीयात्।***

प्रथमाविभक्तिप्रकरणम्

प्रथमा-

(१) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा।४६।

प०वि०-प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन-मात्रे ७।१। प्रथमा १।१।

स०-प्रातिपदिकस्य अर्थ इति प्रातिपदिकार्थः, प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गं च परिमाणं च वचनं च एतेषां समाहारः-प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनम्,

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनं तद् मात्रमिति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रम्, तस्मिन्-प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे। एवं मात्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।

अर्थः-प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे, परिमाणमात्रे, वचनमात्रे च प्रथमा विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **प्रातिपदिकार्थमात्रे**-उच्चैः। नीचैः। (२) **लिङ्गमात्रे**-कुमारी, वृक्षः, कुण्डम्। (३) **परिमाणमात्रे**-द्रोणः, खारी, आढकम्। (४) **वचनमात्रे**-एकः, द्वौ, बहवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रातिपदिकार्थ०मात्रे) प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचनमात्र के कथन में (प्रथमा) प्रथमा विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) **प्रातिपदिकार्थमात्र-उच्चैः**। ऊंचा। **नीचैः**। नीचा। (२) **लिङ्गमात्र-कुमारी**। अविवाहिता। **वृक्षः**। रूख। **कुण्डम्**। कुण्डा। (३) **परिमाणमात्र-द्रोणः**। धौण। **खारी**। एक मण। **आढकम्**। पांच सेर। (४) **वचनमात्र-एकः**। एक। **द्वौ**। दो। **बहवः**। बहुत।*

*सिद्धि-**उच्चैः**। यहां प्रातिपदिक का अर्थमात्र 'ऊंचा' इतना ही कथन किया गया है अतः यहां प्रथमा विभक्ति है। अव्यय होने से उसका **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से लोप होगया है। ऐसे ही सर्वत्र समझ लेवें।*

सम्बोधने प्रथमा-

(२) सम्बोधने च।४७।

प०वि०-सम्बोधने ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'प्रथमा' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्बोधने च प्रथमा।

अर्थः-सम्बोधनेऽपि प्रथमा विभक्तिर्भवति। सम्बोधनाधिके प्रातिपदिकार्थे प्रथमा न प्राप्नोति, इति प्रथमा विधीयते।

उदा०-हे देवदत्त ! हे देवदत्तौ ! हे देवदत्ताः !

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्बोधने) सम्बोधन में (च) भी (प्रथमा) प्रथमा विभक्ति होती है।

*उदा०-**हे देवदत्त ! हे देवदत्तौ ! हे देवदत्ताः !** अर्थ स्पष्ट है।*

*सिद्धि-**हे देवदत्त !** देवदत्त+सु। देवदत्त+०। देवदत्त। यहां **'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'** (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक सु-प्रत्यय का लोप होगया है। पूर्व सूत्र में प्रातिपदिकार्थमात्र*

में प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है। यहां हे देवदत्त ! में देवदत्त प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त सम्बोधन अर्थ भी इसमें मिश्रित है, अतः पूर्व सूत्र से प्रथमा विभक्ति प्राप्त नहीं थी। इसलिये प्रकृत सूत्र से सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है। ऐसे ही-हे देवदत्तौ ! हे देवदत्ताः।

आमन्त्रित-संज्ञा–

(३) साऽऽमन्त्रितम्।४८।

प०वि०-सा १।१ आमन्त्रितम् १।१।

अनु०-'सम्बोधने' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्बोधने या प्रथमा साऽऽमन्त्रितम्।

अर्थः-सम्बोधने या प्रथमा सा=तदन्तं शब्दरूपमामन्त्रितसंज्ञकं भवति।

उदा०-हे देवदत्त ! हे देवदत्तौ ! हे देवदत्ताः !

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्बोधने) सम्बोधन में जो प्रथमा विभक्ति है (सा) तदन्त शब्द की (आमन्त्रितम्) आमन्त्रित संज्ञा होती है।

उदा०-हे देवदत्त ! हे देवदत्तौ ! हे देवदत्ताः ! अर्थ स्पष्ट है।

सिद्धि-हे देवदत्त ! यहां देवदत्त की आमन्त्रित संज्ञा होने से 'आमन्त्रितस्य च' (६।१।१९२) से इसका आद्युदात्त स्वर होता है।

सम्बुद्धि-संज्ञा–

(४) एकवचनं सम्बुद्धिः।४९।

प०वि०-एकवचनम् १।१ सम्बुद्धिः १।१।

अनु०-प्रथमा, आमन्त्रितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-आमन्त्रितस्य प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिः।

अर्थः-आमन्त्रितस्य प्रथमाया यद् एकवचनं तत् सम्बुद्धिसंज्ञकं भवति।

उदा०-हे देवदत्त ! हे अग्ने ! हे वायो !

आर्यभाषा-अर्थ-(आमन्त्रितम्) आमन्त्रित संज्ञावाली (प्रथमा) जो प्रथमा विभक्ति है, उसके (एकवचनम्) एकवचन की (सम्बुद्धिः) सम्बुद्धि संज्ञा होती है।

उदा०-हे देवदत्त ! हे अग्ने ! हे वायो ! अर्थ स्पष्ट है।

सिद्धि-(१) हे देवदत्त ! देवदत्त+सु। देवदत्त+०। देवदत्त। यहां 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' (६।१।६९) से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है।

(२) हे अग्ने ! अग्नि+सु। अग्ने+०। अग्ने। यहां आमन्त्रित की प्रथमा विभक्ति के 'सु' प्रत्यय की सम्बुद्धि संज्ञा होने पर 'ह्रस्वस्य गुणः' (७।३।१०८) से अंग को गुण होता है और 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक सु-प्रत्यय का लोप हो जाता है। ऐसे ही-हे वायो !

षष्ठीविभक्तिप्रकरणम्

षष्ठी–

(१) षष्ठी शेषे।५०।

प०वि०-षष्ठी १।१ शेषे १।१। पूर्वोक्तादन्यः शेषः, तस्मिन्-शेषे।

अन्वयः-शेषे षष्ठी।

अर्थः-शेषे=यः कर्मादिभ्योऽन्यः, प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिसम्बन्धादिस्तत्र षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-राज्ञः पुरुषः। पशोः पादः। पितुः पुत्रः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शेषे) जो कर्म आदि से भिन्न तथा प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त स्व-स्वामी सम्बन्ध आदि अर्थ है, उसमें (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**राज्ञः पुरुषः।** राजा का पुरुष। **पशोः पादः।** पशु का पांव। **पितुः पुत्रः।** पिता का पुत्र, इत्यादि।*

सिद्धि-राज्ञः पुरुषः। *यहां पुरुष, राजा का स्व है और राजा, पुरुष का स्वामी है। अतः प्रकृत सूत्र से इस स्व-स्वामी सम्बन्ध अर्थ में 'राजन्' शब्द में षष्ठी विभक्ति होती है। ऐसे ही-**पशोः पादः, पितुः पुत्रः,** आदि।*

करणे षष्ठी–

(२) ज्ञोऽविदर्थस्य करणे।५१।

प०वि०-ज्ञः ६।१ अविदर्थस्य ६।१। करणे ७।१।

स०-विद् अर्थो यस्य स विदर्थः, न विदर्थ इति अविदर्थः, तस्मिन्=अविदर्थे (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-षष्ठी शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अविदर्थस्य ज्ञः शेषे करणे षष्ठी।

अर्थः-अविदर्थस्य=ज्ञानार्थवर्जितस्य ज्ञाधातोः शेषे करणे कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-घृतस्य जानीते देवदत्तः। मधुनो जानीते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अविदर्थस्य) ज्ञान अर्थ से रहित (ज्ञः) ज्ञा-धातु के (शेषे) शेष (करणे) करण कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**घृतस्य जानीते देवदत्तः।** देवदत्त घी के उपाय से भोजन में प्रवृत्त होता है। **मधुनो जानीते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त मीठे के उपाय से भोजन में प्रवृत्त होता है।*

*सिद्धि-**घृतस्य जानीते देवदत्तः।** ज्ञा+लट्। ज्ञा+श्ना+त। ज्ञा+ना+ते। ज्ञा+नी+ते। जानीते। यहां ज्ञा-धातु का विद्=जानना अर्थ नहीं है, अपितु प्रवृत्त होना अर्थ है। अतः अविदर्थ ज्ञा-धातु के करण 'घृत' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। जहां 'ज्ञा' धातु का जानना अर्थ होगा वहां 'ज्ञा' धातु के करण में **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।२८) से तृतीया विभक्ति होगी। जैसे-**स्वरेण पुत्रं जानाति देवदत्तः।** देवदत्त आवाज से अपने पुत्र को जान लेता है।*

कर्मणि षष्ठी-

(३) अधीगर्थदयेशां कर्मणि।५२।

प०वि०-अधीगर्थ-दय-ईशाम् ६।३ कर्मणि ७।१।

स०-अधीक् (अधि+इक्) अर्थो येषां ते-अधीगर्थाः, अधीगर्थाश्च दयश्च ईश् च ते-अधीगर्थदयेशः, तेषाम्-अधीगर्थदयेशाम् (बहुव्रीहि-गर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-षष्ठी शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधीगर्थदयेशां शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः-अधीगर्थ-दय-ईशां धातूनां शेषे कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **अधीगर्थाः (स्मरणार्थाः)**-मातुरध्येति देवदत्तः। मातुः स्मरति देवदत्तः। (२) **दय**-घृतस्य दयते यज्ञदत्तः। (३) **ईश्**-मधुन ईष्टे ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधीगर्थदयेशाम्) अधीगर्थ=स्मरणार्थक, दय और ईश् धातु के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) अधीगर्थ (स्मरणार्थक)-**मातुरध्येति देवदत्तः। मातुः स्मरति देवदत्तः।** देवदत्त माता सम्बन्धी लाड-प्यार को स्मरण करता है। **घृतस्य दयते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त घृत-सम्बन्धी पदार्थों का दान करता है। ईश-**मधुन ईष्टे ब्रह्मदत्तः।** मीठे सम्बन्धी पदार्थों का स्वामी है ब्रह्मदत्त।*

*सिद्धि-**मातुरध्येति देवदत्तः।** यहां 'अध्येति' क्रिया का कर्म 'माता' है। यहां शेष कर्म होने से देवदत्त माता को याद नहीं करता है, अपितु माता-सम्बन्धी लाड-प्यार को*

*याद करता है। जहां केवल माता को स्मरण करता है वहां-'**मातरं स्मरति देवदत्तः**' साधारण कर्म में '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेवें।*

कर्मणि षष्ठी–

(५) कृञः प्रतियत्ने।५३।

प०वि०–कृञः ६।१ प्रतियत्ने ७।१।

सतो गुणान्तराधानं प्रतियत्नः, तस्मिन्-प्रतियत्ने।

अनु०–षष्ठी शेषे, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रतियत्ने कृञः शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः–प्रतियत्ने=गुणान्तराधानेऽर्थे वर्तमानस्य कृञ्-धातोः शेषे कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०–इन्धनम् उदकस्य उपस्कुरुते।

आर्यभाषा-अर्थ-*(प्रतियत्ने) गुणान्तर-आधान करने अर्थ में विद्यमान (कृञः) कृञ् धातु के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।*

*उदा०–**इन्धनम् उदकस्य उपस्कुरुते।** इन्धन जल के शीतलता गुण को बदलता है।*

सिद्धि-इन्धनम् उदकस्य उपस्कुरुते। *उप+कृ+लट्। उप+सुट्+कृ+उ+ते। उप+स्+कुर्+उ+ते। उपस्कुरुते। '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु सामान्यत करने अर्थ में है। '**अनेकार्था हि धातवो भवन्ति**' के प्रमाण से यह प्रतियत्न अर्थ में भी है। जब इसका प्रतियत्न अर्थ में प्रयोग होता है तब इसके शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यह धातु उभयपद है किन्तु जब यह प्रतियत्न अर्थ में होती है तब '**गन्धना०उपयोगेषु कृञः**' (१।३।३२) से आत्मनेपद ही होता है, परस्मैपद नहीं। जब शेष कर्म की विवक्षा नहीं होती तब कर्म में '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है-**इन्धनम् उदकम् उपस्कुरुते।** इन्धन जल को उपस्कृत (संस्कृत) करता है।*

कर्मणि षष्ठी–

(६) रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः।५४।

प०वि०–रुजा-अर्थानाम् ६।३ भाव-वचनानाम् ६।३ अज्वरेः ६।१।

स०–रुजा अर्थो येषां ते रुजार्थाः, तेषाम्-रुजार्थानाम् (बहुव्रीहिः)। धात्वर्थो भावः, वक्तीति वचनः, कर्तरि ल्युट्प्रत्ययः, वचनः=कर्ता इत्यर्थः। भावो वचनो येषां ते भाववचनाः, तेषां-भाववचनानाम् (बहुव्रीहिः)।

ज्वररोगे (भ्वा०प०) न ज्वरिरिति अज्वरिः, तस्य अज्वरेः (नञ्तत्पुरुषः)। 'इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे' इति ज्वरधातोरिक्प्रत्ययेन निर्देशः।

अनु०-षष्ठी शेषे कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाववचनानां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः-भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां धातूनां शेषे कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-चौरस्य रुजति रोगः। चौरस्य आमयति आमयः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(भाववचनानाम्) 'भाव' कर्तावाली (अज्वरेः) ज्वर धातु से भिन्न (रुजार्थानाम्) रुजा=रोग अर्थवाली धातुओं के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।*

*उदा०-**चौरस्य रुजति रोगः।** रोग चोर के चित्त को सन्ताप आदि से पीड़ित करता है। **चौरस्य आमयति आमयः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**चौरस्य रुजति रोगः।** रुज्+घञ्। रुज्+अ। रोग्+अ। रोग+सु। रोगः। यहां 'रुजो भङ्गे' (तु०प०) से 'पदरुजविशस्पृशो घञ्' (३।३।१६) से भाव अर्थ में घञ्-प्रत्यय है। यह रुजति क्रिया का कर्ता है। रुजति क्रिया के शेष कर्म चोर में षष्ठी विभक्ति है। जहां साधारण कर्म होता है वहां **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है। चौरं रुजति रोगः। रोग चोर को पीड़ा देता है।*

कर्मणि द्वितीया--

(७) आशिषि नाथः।५५।

प०वि०-आशिषि ७।१ नाथः १।१।

स०-'नाथृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु' (भ्वा०आ०) इति याच्ञादिष्वर्थेषु पठ्यते। तेषामाशीरर्थस्यात्र ग्रहणम्।

अनु०-षष्ठी शेषे कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि नाथः शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः-आशिषि=इच्छायामर्थे वर्तमानस्य नाथ-धातोः शेषे कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-घृतस्य नाथते देवदत्तः। मधुनो नाथते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिषि) इच्छा अर्थ में विद्यमान (नाथः) नाथ धातु के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**घृतस्य नाथते देवदत्तः।** देवदत्त घी को अपनाना चाहता है। **मधुनो नाथते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त मधु को अपनाना चाहता है।*

*सिद्धि-**घृतस्य नाथते देवदत्तः।** यहां नाथ धातु आशीः=इच्छा अर्थ में है। नाथते का शेष कर्म घृत है, उसमें षष्ठी विभक्ति है। ऐसे ही-**मधुनो नाथते यज्ञदत्तः।***

कर्मणि षष्ठी–

(८) जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्।५६।

प०वि०-जासि-निप्रहण-नाट-क्राथ-पिषाम् ६।३। हिंसायाम् ७।१।

स०-जासिश्च निप्रहणश्च नाटश्च क्राथश्च पिष् च ते-जासि०पिषः, तेषाम्-जासि०पिषाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-षष्ठी शेषे कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हिंसायां जासि०पिषां शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः-हिंसायामर्थे वर्तमानानां जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां धातूनां शेषे कर्मणि करके षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **जासि**-'जसु हिंसायाम्' (चु०प०) 'जसु ताडने' (चु०उ०)। चौरस्य जासयति देवदत्तः। (२) **निप्रहण**-(नि+प्र+हन) 'हन हिंसागत्योः (अदा०प०)। चौरस्य निहन्ति देवदत्तः। चौरस्य प्रहन्ति देवदत्तः। चौरस्य निप्रहन्ति देवदत्तः। (३) **नाट**-नट नृतौ (दि०प०) चौरस्य नाटयति देवदत्तः। (४) **क्राथ**-क्राथ हिंसायाम् (चु०उ०) चौरस्य क्राथयति देवदत्तः। (५) **पिष्**-पिष्लृ संचूर्णने (रुधा०प०) चौरस्य पिनष्टि देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हिंसायाम्) हिंसा अर्थ में विद्यमान (जासि०पिषाम्) जासि, निप्रहण, नाट, क्राथ और पिष् इन धातुओं के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) जासि-**चौरस्य जासयति देवदत्तः।** देवदत्त चोर की हिंसा अथवा ताडना करता है। (२) निप्रहण-**चौरस्य निहन्ति देवदत्तः।** देवदत्त चोर को नीचे डालकर मारता है। **चौरस्य प्रहन्ति देवदत्तः।** देवदत्त चोर को खूब मारता है। **चौरस्य***

निप्रवहन्ति देवदत्तः। देवदत्त चोर को नीचे डालकर खूब मारता है। (३) नाट-चौरस्य नाटयति देवदत्तः। देवदत्त चोर का नाच नचाता है। (४) क्राथ-चौरस्य क्राथयति देवदत्तः। देवदत्त चोर का हनन करता है। (५) पिष्-चौरस्य पिनष्टि देवदत्तः। देवदत्त चोर की पिसाई करता है, उसे पीसता है।

सिद्धि-चौरस्य जासयति देवदत्तः। यहां हिंसार्थक जासि धातु के शेष कर्म चौर में षष्ठी विभक्ति है। यहां हिंसा का अर्थ प्राणान्त करना ही नहीं अपितु किसी भी प्रकार से उसे पीड़ित करना है। ऐसे ही-चौरस्य निहन्ति देवदत्तः, आदि।

कर्मणि षष्ठी–

(६) व्यवहृपणोः समर्थयोः।५७।

प०वि०–व्यवहृ-पणोः ६।२। समर्थयोः ६।२।

स०–व्यवहृश्च पण् च तौ व्यवहृपणौ, तयोः-व्यवहृपणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समोऽर्थो ययोस्तौ-समर्थौ, तयोः-समर्थयोः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–षष्ठी शेषे कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–समर्थयोर्व्यवहृपणोः शेषे कर्मणि षष्ठी।

अर्थः–समानार्थयोर्व्यवहृ-पणोर्धात्वोः शेषे कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति। द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे च व्यवहृपणोः समानार्थत्वम्।

उदा०–(१) **व्यवहृ**-(वि+अव+हृञ् हरणे भ्वा०उ०) शतस्य व्यवहरति देवदत्तः। सहस्रस्य व्यवहरति यज्ञदत्तः। (२) **पण्**–'पण व्यवहारे स्तुतौ च' (भ्वा०आ०) शतस्य पणते देवदत्तः। सहस्रस्य पणते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समर्थयोः) समान अर्थवाली (व्यवहृपणोः) व्यवहृ और पण धातु के (शेषे) शेष (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। द्यूत (जूआ खेलना) और क्रय-विक्रय व्यवहार में व्यवहृ और पण धातु समानार्थक हैं।

उदा०-(१) व्यवहृ-शतस्य व्यवहरति देवदत्तः। देवदत्त सौ रुपये का जूआ खेलता है अथवा सौ रुपये का क्रय-विक्रय करता है। सहस्रस्य व्यवहरति यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त हजार रुपये का जूआ खेलता है अथवा हजार रुपये का क्रय-विक्रय करता है। (२) पण्-शतस्य पणते देवदत्तः। देवदत्त सौ रुपये का जूआ खेलता है अथवा क्रय-विक्रय करता है। सहस्रस्य पणते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त हजार रुपये का जूआ खेलता है अथवा क्रय-विक्रय करता है।

सिद्धि-शतस्य व्यवहरति देवदत्तः। यहां द्यूतक्रीडा और क्रय-विक्रय अर्थ में विद्यमान व्यवहृ धातु के शेष कर्म 'शत' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। ऐसे ही-शतस्य पणते देवदत्तः, इत्यादि।

कर्मणि षष्ठी–

(१०) दिवस्तदर्थस्य ।५८।

प०वि०–दिव: ६ ।१ तदर्थस्य ६ ।१ ।

स०–सोऽर्थो यस्य स तदर्थ:, तस्य तदर्थस्य (बहुव्रीहि:) । स क: ? व्यवहृपणोरर्थ: ।

अनु०–षष्ठी कर्मणि इति चानुवर्तते । शेषे इत्यतो नानुवर्तते कर्मणि शेषत्वविवक्षाऽभावात् ।

अन्वय:–तदर्थस्य=व्यवहृपणोरर्थस्य दिव: कर्मणि षष्ठी ।

अर्थ:–तदर्थस्य=पूर्वोक्तस्य द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयव्यवहारार्थस्य च दिवो धातो: कर्मणि कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति ।

उदा०–शतस्य दीव्यति देवदत्त: । सहस्रस्य दीव्यति यज्ञदत्त: ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तदर्थस्य) पूर्वोक्त द्यूतक्रीडा और क्रय-विक्रय व्यवहार अर्थवाली (दिव:) दिव धातु के (कर्मणि) कर्म में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। इससे आगे 'शेष' की अनुवृत्ति नहीं है, शेष विवक्षा न होने से।

*उदा०–**शतस्य दीव्यति देवदत्त: ।** देवदत्त जूवे में सौ रुपये दाव पर लगाता है अथवा क्रय-विक्रय व्यवहार में सौ रुपये पाता है। **सहस्रस्य दीव्यति यज्ञदत्त: ।** यज्ञदत्त जूवे में हजार रुपये दाव पर लगाता है अथवा क्रय-विक्रय व्यवहार में हजार रुपये पाता है।*

कर्मणि षष्ठी–

(११) विभाषोपसर्गे ।५९।

प०वि०–विभाषा १ ।१ उपसर्गे ७ ।१ ।

अनु०–षष्ठी कर्मणि दिवस्तदर्थस्य इति चानुवर्तते ।

अन्वय:–तदर्थस्य=व्यवहृपणोरर्थस्योपसर्गे दिव: कर्मणि विभाषा षष्ठी ।

अर्थ:–तदर्थस्य=द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयव्यवहारार्थस्य च सोपसर्गस्य दिवो धातो: कर्मणि कारके विकल्पेन षष्ठी विभक्तिर्भवति । पक्षे द्वितीया विभक्तिर्भवति ।

उदा०-शतस्य प्रतिदीव्यति देवदत्तः । सहस्रस्य प्रतिदीव्यति यज्ञदत्तः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तदर्थस्य) द्यूतक्रीडा और क्रय-विक्रय व्यवहार अर्थवाली (उपसर्गे) उपसर्ग सहित (दिवः) दिव धातु के (कर्मणि) कर्म में (विभाषा) विकल्प से (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में द्वितीया विभक्ति होती है।

*उदा०-**शतस्य प्रतिदीव्यति देवदत्तः । शतं प्रतिदीव्यति देवदत्तः ।** देवदत्त जूवे में प्रति बार सौ रुपये जीतता है अथवा क्रय-विक्रय व्यवहार में प्रति बार सौ रुपये प्राप्त करता है। **सहस्रस्य प्रतिदीव्यति यज्ञदत्तः । सहस्रं प्रतिदिव्यति यज्ञदत्तः ।** यज्ञदत्त जूवे में प्रति बार हजार रुपये जीतता है अथवा क्रय-विक्रय व्यवहार में प्रतिवार सौ रुपये प्राप्त करता है।*

*सिद्धि-**शतस्य/शतं प्रतिदीव्यति देवदत्तः ।** यहां प्रति उपसर्गपूर्वक दिव् धातु के कर्म 'शत' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। पक्ष में **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।*

द्वितीया—

(१२) द्वितीया ब्राह्मणे।६०।

प०वि०-द्वितीया १।१ ब्राह्मणे ७।१।

अनु०-कर्मणि दिवस्तदर्थस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ब्राह्मणे तदर्थस्य=व्यवहृपणोरर्थस्य दिवः कर्मणि द्वितीया।

अर्थः-ब्राह्मणविषयके प्रयोगे वर्तमानस्य तदर्थस्य द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयव्यवहारार्थस्य च दिवो धातोः कर्मणि कारके द्वितीया विभक्तिर्भवति। अनुपसर्गस्य दिवो धातोः कर्मणि षष्ठ्यां प्राप्तायां वचनमिदमारभ्यते।

उदा०-गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ।

*आर्यभाषा-अर्थ-(ब्राह्मणे) ब्राह्मण ग्रन्थ के प्रयोग में (तदर्थस्य) द्यूतक्रीडा और क्रय-विक्रय व्यवहार अर्थवाली (दिवः) दिव् धातु के (कर्मणि) कर्म में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है। उपसर्ग रहित दिव् धातु के कर्म में **'दिवस्तदर्थस्य'** (२।३।५८) से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, इससे द्वितीया विभक्ति का विधान किया गया है।*

*उदा०-**गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ।** वे इसकी गौ को उस दिन सभा में खरीदें।*

*सिद्धि-**गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ।** यहां दिव् धातु के कर्म 'गौ' में द्वितीया विभक्ति है। यह शतपथब्राह्मण का प्रयोग है। **'ब्राह्मणशब्दः शतपथस्याख्या'** इति न्यासकारः ।*

कर्मणि षष्ठी–

(१३) प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने।६१।

प०वि०-प्रेष्य-ब्रुवो: ६।२ हविष: ६।१ देवतासम्प्रदाने ७।१।

स०-प्रेष्यश्च ब्रूश्च तौ-प्रेष्यब्रुवौ, तयो:-प्रेष्यब्रुवो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। देवता सम्प्रदानं यस्य स देवतासम्प्रदान:, तस्मिन्-देवतासम्प्रदाने (बहुव्रीहि:)।

अनु०-षष्ठी कर्मणि ब्राह्मण इति चानुवर्तते।

अन्वय:-ब्राह्मणे देवतासम्प्रदाने प्रेष्यब्रुवोर्हविष: कर्मणि षष्ठी।

अर्थ:-ब्राह्मणविषये देवतासम्प्रदानेऽर्थे वर्तमानयो: प्रेष्य-ब्रुवोर्धात्वोर्हविषो वाचके कर्मणि षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-प्रेष्य-अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदस: प्रे३ष्य। **ब्रूहि**-अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्राह्मणे) ब्राह्मण ग्रन्थविषय में (देवतासम्प्रदाने) देवता-सम्प्रदानवाली (प्रेष्य-ब्रुवो:) प्रेष्य और ब्रू धातु के (हविष:) 'हवि' रूप (कर्मणि) कर्म कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-**प्रेष्य-अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदस: प्रे३ष्य। ब्रू-अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रू३हि।***

*सिद्धि-**अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदस: प्रे३ष्य।** यहां 'प्रेष्य' धातु का कर्म 'हवि:' है। उसमें इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति है। हवि के विशेषण छाग, वपा और मेद में भी समानाधिकरण से षष्ठी विभक्ति है। ऐसे ही-**अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि।***

***विशेष**-स्वामी दयानन्दकृत अष्टाध्यायी-भाष्य तथा कारकीय नामक वेदांग प्रकाश में '**इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदस: प्रेष्य। इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि**' ऐसा पाठ है। कारकीय की पादटिप्पणी में इसका अर्थ यह लिखा है-अजा के अर्थ खाने-पीने की वस्तु के योग से बिजली और अग्नि को उपयुक्त कर और सुनकर उपदेश भी कर (कारकीय पृ० ५९)।*

चतुर्थ्यर्थे षष्ठी चतुर्थी च–

(१४) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि।६२।

प०वि०-चतुर्थी-अर्थे ७।१ बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

स०-चतुर्थ्या अर्थ इति चतुर्थ्यर्थः, तस्मिन्-चतुर्थ्यर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-षष्ठी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि चतुर्थ्यर्थे बहुलं षष्ठी।

अर्थः-छन्दसि विषये चतुर्थी-अर्थे बहुलं षष्ठी विभक्तिर्भवति। पक्षे चतुर्थी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **षष्ठी**-गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम् (यजु० २४।३५) (२) **चतुर्थी**-गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतिभ्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेद विषय में (चतुर्थ्यर्थे) चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में चतुर्थी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) षष्ठी-**गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्।** (२) चतुर्थी-**गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतिभ्यः।** (यजु० २४।३५) वनस्पतियों के गुण-ज्ञान के लिये गोधा=गोह, कालक=पनियां सांप और दार्वाघाट=कठफोड़ा प्राणियों का उपयोग करें।*

सिद्धि-उपरिलिखित उदाहरण में 'वनस्पति' शब्द में चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति है।

करणे षष्ठी-

(१५) यजेश्च करणे।६३।

प०वि०-यजेः ६।१ च अव्ययपदम्, करणे ७।१।

अनु०-बहुलं छन्दसि षष्ठी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि यजेश्च करणे बहुलं षष्ठी।

अर्थः-छन्दसि विषये यज-धातोः करणे कारके षष्ठी विभक्तिर्भवति। पक्षे तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **षष्ठी**-घृतस्य यजते। सोमस्य यजते। (२) **तृतीया**-घृतेन यजते। सोमेन यजते।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेद विषय में (यजेः) यज-धातु के (करणे) करण कारक में (बहुलम्) प्रायशः (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) षष्ठी-**घृतस्य यजते।** घी से यज्ञ करता है। **सोमस्य यजते।** सोम से यज्ञ करता है। (२) तृतीया-**घृतेन यजते। सोमेन यजते।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-उपरिलिखित उदाहरणों में करणभूत 'घृत' और 'सोम' शब्द में षष्ठी और तृतीया विभक्ति है। **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है।*

अधिकरणे षष्ठी–

(१६) कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे।६४।

प०वि०–कृत्वोऽर्थ-प्रयोगे ७।१ काले ७।१ अधिकरणे ७।१।

स०–कृत्वसुच् अर्थो येषां ते कृत्वोऽर्थाः, तेषाम्-कृत्वोऽर्थानाम्, कृत्वोऽर्थानां प्रयोग इति कृत्वोऽर्थप्रयोगः, तस्मिन्-कृत्वोऽर्थप्रयोगे (बहुव्रीहिगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–षष्ठी शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–कृत्वोऽर्थप्रयोगे काले शेषेऽधिकरणे षष्ठी।

अर्थः–कृत्वसुजर्थानां प्रत्ययानां प्रयोगे काले शेषेऽधिकरणे षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०–पञ्चकृत्वो दिनस्य भुङ्क्ते देवदत्तः। द्विर्दिनस्याधीते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ–*(कृत्वोऽर्थप्रयोगे) कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थवाले प्रत्ययों के प्रयोग में (काले) कालवाची (शेषे) शेष (अधिकरणे) अधिकरण कारक में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।*

*उदा०–**पञ्चकृत्वो दिनस्य भुङ्क्ते देवदत्तः।** देवदत्त दिन के समय में पांच बार खाता है। **द्विर्दिनस्याधीते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त दिन के समय में दो बार पढ़ता है।*

*सिद्धि–(१) **पञ्चकृत्वो दिनस्य भुङ्क्ते।** पञ्च+कृत्वसुच्। पञ्च+कृत्वस्। पञ्चकृत्वस्+सु। पञ्चकृत्वः।*

*यहां '**संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्**' (५।४।१७) से संख्यावाची पञ्च शब्द से क्रिया की आवृत्ति गिनने अर्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय है। इसके प्रयोग में कालवाची दिन शब्द जो कि शेष अधिकरण है, उसमें षष्ठी विभक्ति है।*

*(२) **द्विर्दिनस्याधीते।** द्वि+सुच्। द्विस्+सु। द्विः। यहां '**द्वित्रिभ्यां सुच्**' (५।४।१८) से 'द्वि' शब्द से कृत्वोऽर्थ में 'सुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

कर्तरि कर्मणि च षष्ठी–

(१७) कर्तृकर्मणोः कृति।६५।

प०वि०–कर्तृ-कर्मणोः ७।२ कृति ७।१।

स०–कर्ता च कर्म च ते-कर्तृकर्मणी, तयोः-कर्तृकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-कृति कर्तृकर्मणोः षष्ठी।

अर्थः-कृत्-प्रत्ययानां प्रयोगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **कर्तरि**-भवतः[६] शायिका वर्तते। भवत[६] आसिका वर्तते। (२) **कर्मणि**-यज्ञोऽपां[६] स्रष्टा। इन्द्रः पुरां[६] भेत्ता। इन्द्रो वज्रस्य[६] भर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्ययों के प्रयोग में (कर्तृकर्मणोः) कर्ता और कर्म में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०-(१) कर्ता-भवतः **शायिका वर्तते।** आपकी सोने की बारी (पर्याय) है। **भवत आसिका वर्तते।** आपकी बैठने की बारी (पर्याय) है। (२) **कर्म-यज्ञोऽपां स्रष्टा।** यज्ञ जल को बनानेवाला है। **इन्द्रः पुरां भेत्ता।** इन्द्र नगरों को तोड़नेवाला है। **इन्द्रो वज्रस्य भर्ता।** इन्द्र वज्र (शस्त्र) को धारण करनेवाला है।*

*सिद्धि-(१) **भवतः शायिका वर्तते।** शीङ् स्वप्ने (अदा०आ०) शीङ्+ण्वुच्। शी+वु। शी+अक। शै++अक। शायक+टाप्। शायिक+आ। शायिका+सु। शायिका।*

*यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अ०आ०) धातु से **'पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्'** (३।३।१११) से कृत्संज्ञक ण्वुच् प्रत्यय है। इसके कर्ता 'भवत्' शब्द में षष्ठी विभक्ति है।*

*(२) **इन्द्रः पुरां भेत्ता।** 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) भिद्+तृच्। भिद्+तृ। भेद्+तृ। भेत्तृ+सु। भेत्ता।*

*यहां भिद् धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से कृत्-संज्ञक 'तृच्' प्रत्यय है। इसके कर्म 'पुर' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। ऐसे ही-**इन्द्रो वज्रस्य भर्ता।***

कर्मणि षष्ठी–

(१८) उभयप्राप्तौ कर्मणि।६६।

प०वि०-उभय-प्राप्तौ ७।१ कर्मणि ७।१।

स०-उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् सोऽयम्-उभयप्राप्तिः, तस्मिन्-उभयप्राप्तौ (बहुव्रीहिः)।

अनु०-षष्ठी कृति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृति उभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठी।

अर्थः-यस्मिन् कृत-प्रयोगे उभयस्मिन्=कर्तरि कर्मणि च षष्ठी विभक्तिः प्राप्नोति तत्र कर्मण्येव षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालेन। रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन। साधु खलु पयसः पानं यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृति) जिस कृत्-प्रत्यय के प्रयोग में (उभयप्राप्तौ) कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है वहां (कर्मणि) कर्म में ही (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है, कर्ता में नहीं।

*उदा०-**आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालेन।** जो गोपाल नहीं है उसके द्वारा गौओं को दुहना आश्चर्य की बात है। **रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा ओदन का खाना मुझे प्यारा लगता है। **साधु खलु पयस: पानं यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त का दुग्ध का पान अच्छा है।*

*सिद्धि-**आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालेन।** 'दुह् प्रपूरणे' (अदा०प०)। दुह्+घञ्। दोह्+अ। दोह+सु। दोह:।*

*यहां 'दुह्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में कृत्-संज्ञक 'घञ्' प्रत्यय है। यहां कर्ता अगोपाल तथा कर्म 'गौ' दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। प्रकृत सूत्र से 'गौ' कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। यहां **'कर्मणि च'** (२।२।१४) से षष्ठी समास का प्रतिषेध है। ऐसे ही-**ओदनस्य भोजनम्, पयस: पानम्।***

क्तस्य प्रयोगे षष्ठी-

(१६) क्तस्य च वर्तमाने।६७।

प०वि०-क्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्, वर्तमाने ७।१।

अनु०-षष्ठी इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-वर्तमाने क्तस्य प्रयोगे च षष्ठी।

अर्थ:-वर्तमाने काले विहितस्य क्त-प्रत्ययान्तस्य शब्दस्य प्रयोगे च षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-राज्ञां मतो देवदत्त:। राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्त:। राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमाने) वर्तमानकाल में विहित (क्तस्य) क्त-प्रत्ययान्त शब्द के प्रयोग में (च) भी (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होता है।

*उदा०-**राज्ञां मतो देवदत्त:।** देवदत्त राजाओं के द्वारा सम्मानित है, अर्थात् वे उसका सम्मान करते हैं। **राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्त:।** यज्ञदत्त राजाओं के द्वारा संज्ञात है, अर्थात् वे उसे भलीभांति जानते हैं। **राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्त:।** ब्रह्मदत्त राजाओं के द्वारा सत्कृत है, अर्थात् वे उसका सम्मान करते हैं।*

*सिद्धि-**राज्ञां मतो देवदत्त:।** **'मनु अवबोधने'** (त०आ०)। मन्+क्त। म+त। मत+सु। मत:।*

यहां 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' (३।२।१८८) से 'मन्' धातु से क्त-प्रत्यय वर्तमानकाल में है। उसके प्रयोग में राजन् शब्द में षष्ठी विभक्ति है। यह कर्ता में षष्ठी है। यहां 'क्तेन पूजायाम्' (२।२।१२) से षष्ठी-समास का प्रतिषेध है।

'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (२।३।६९) में निष्ठा (क्त) प्रत्यय का ग्रहण होने से क्त-प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का प्रतिषेध प्राप्त है अतः इस सूत्र से वर्तमानकाल में विहित क्त-प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है। यह उक्त प्रतिषेध का पूर्व अपवाद है।

क्तस्य प्रयोगे षष्ठी–

(२०) अधिकरणवाचिनश्च।६८।

प०वि०–अधिकरणवाचिनः ६।१ च अव्ययपदम्।

अधिकरणं वक्तीति अधिकरणवाची, तस्य–अधिकरणवाचिनः (कृदन्तवृत्तिः)।

अनु०–षष्ठी क्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अधिकरणवाचिनश्च क्तस्य प्रयोगे षष्ठी।

अर्थः–अधिकरणवाचिनश्च क्तप्रत्ययान्तस्य शब्दस्य प्रयोगेऽपि षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०–इदं छात्राणामासितम्। इदं छात्राणां शयितम्। इदं छात्राणां भुक्तम्।

आर्यभाषा-अर्थ–*(अधिकरणवाचिनः) अधिकरणवाची (क्तस्य) क्त-प्रत्ययान्त शब्द के प्रयोग में (च) भी (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है।*

उदा०–***इदं छात्राणामासितम्।*** *यह छात्रों के बैठने का स्थान है।* ***इदं छात्राणां शयितम्।*** *यह छात्रों के सोने का स्थान है।* ***इदं छात्राणां भुक्तम्।*** *यह छात्रों के भोजन का स्थान है।*

सिद्धि–***इदं छात्राणमासितम्।*** ***'आस् उपवेशने'*** *(अदा०प०)। आस्+क्त। आस्+इट्+त। आस्+इ+त। आसित+सु। आसितम्।*

यहां ***'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः'*** *(३।४।७६) से आस् धातु से अधिकरण कारक में क्त-प्रत्यय है और उसके प्रयोग में 'छात्र' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। यहां* ***'अधिकरणवाचिना च'*** *(२।२।१३) से षष्ठी समास का प्रतिषेध होता है।*

'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (२।३।६९) से निष्ठा (क्त) प्रत्यय का ग्रहण होने से क्त-प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का प्रतिषेध प्राप्त है, अतः इस सूत्र से

अधिकरण कारक में विहित क्त-प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है। यह उक्त प्रतिषेध का पूर्व अपवाद है।

षष्ठीप्रतिषेधः–

(२१) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्।६६।

प०वि०– न अव्ययपदम्। ल-उ-उक-अव्यय-निष्ठा-खलर्थ-तृनाम् ६।३।

स०–खलोऽर्थ इति खलर्थः, खलर्थ इव अर्थो येषां ते खलर्थाः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितबहुव्रीहिः)। लश्च उश्च उकश्च अव्ययं च निष्ठा च खलर्थाश्च तृन् च ते-लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनः, तेषाम्-लोकाव्ययनिष्ठा-खलर्थतृनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–षष्ठी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनां प्रयोगे षष्ठी न।

अर्थः–ल-उ-उक-अव्यय-निष्ठा-खलर्थ-तृनां प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति।

'ल' इत्यनेन ये लकारस्य स्थाने आदेशा भवन्ति ते गृह्यन्ते-शतृशानचौ, कानच्-क्वसू किकिनौ च।

उदा०–(१) **(ल) शतृ**–ओदनं पचन्। (२) **शानच्**–ओदनं पचमानः। (३) **कानच्**–ओदनं पेचानः। (४) **क्वसु**–ओदनं पेचिवान्। (५) **कि**–पपिः सोमम्। (६) **किन्**–ददिर्गाः।

(७) उ–कटं चिकीर्षुः। ओदनं बुभुक्षुः। (८) **उक**–वाराणसीम् आगामुकः। (९) **अव्ययम्**–कटं कृत्वा। ओदनं भुक्त्वा। (१०) **निष्ठा**–देवदत्तेन कृतम्। ओदनं भुक्तवान् यज्ञदत्तः। (११) **खलर्थ**–ईषत्करः कटं भवता। ईषत्पानः सोमो भवता।

'तृन्' इति प्रत्याहारग्रहणम्, **'लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे'** (३।२।१२४) इत्यारभ्य **'तृन्'** (३।२।१५) इत्यस्य नकारपर्यन्तम्। तेन शानन्-चानश्-शतृ-तृनामपि प्रतिषेधे ग्रहणं क्रियते।

(१२) **शानन्**–सोमं पवमानः। (१३) **चानश्**–शिखण्डं वहमानः। (१४) **शतृ**–अधीयन् पारायणम्। (१५) **तृन्**–कर्ता कटान्। वदिता जनापवादान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ल०तृनाम्) ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन् इनके प्रयोग में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति (न) नहीं होती है।

उदा०-(१) ल-ल से लकार के स्थान में जो आदेश विधान किये गये हैं, उनका ग्रहण किया जाता है, जैसे-शतृ, शानच्, कानच्, क्वसु, कि और किन् प्रत्यय। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं-

*(१) शतृ-**ओदनं पचन्।** भात को पकाता हुआ। (२) शानच्-**ओदनं पचमानः।** भात को पकाता हुआ। (३) कानच्-**स ओदनं पेचानः।** उसने भात पकाया। (४) **क्वसु-स ओदनं पेचिवान्।** उसने भात पकाया। (५) **कि-पपिः सोमम्।** सोम का पान करनेवाला। (६) **किन्-ददिर्गाः।** गौओं का दान करनेवाला। (७) उ-**कटं चिकीर्षुः।** चटाई बनाने का इच्छुक। **ओदनं बुभुक्षुः।** भात को खाने का इच्छुक (८) उक-**वाराणसीमागामुकः।** बनारस में आनेवाला। (९) अव्यय-**कटं कृत्वा।** चटाई बनाकर। **ओदनं भुक्त्वा।** भात को खाकर। (१०) निष्ठा-(क्त) **देवदत्तेन कृतम्।** देवदत्त ने किया। (क्तवतु)-**ओदनं भुक्तवान् यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त ने भात खाया। (११) खलर्थ-**ईषत्करः कटो भवता।** आपके लिये चटाई बनाना कठिन कार्य नहीं है। **ईषत्पानः सोमो भवता।** आपके लिये सोम का पान करना कठिन कार्य नहीं है।*

*यहां 'तृन्' एक प्रत्याहार का ग्रहण किया है। यह प्रत्याहार '**लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे**' (३।२।१२४) के 'शतृ' के 'तृ' से लेकर '**तृन्**' (३।२।१२५) 'तृन्' प्रत्यय के 'न्' तक ग्रहण किया जाता है। इससे इस प्रतिषेध में शानन्, चानश्, शतृ और तृन् प्रत्यय का ग्रहण होता है।*

*(१२) शानन्-**सोमं पवमानः।** सोम का पान करनेवाला। (१३) चानश्-**शिखण्डं वहमानः।** शिखा को धारण करनेवाला। (१४) शतृ-**अधीयन् पारायणम्।** पारायण का सहजतापूर्वक अध्ययन करनेवाला। (१५) तृन्-**कर्ता कटान्।** चटाइयों को बनानेवाला।*

*सिद्धि-(१) **ओदनं पचन्।** '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०प०) पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पचत्+सु। पचन्।*

*यहां 'पच्' धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में '**लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे**' (३।२।१२४) से 'शतृ' आदेश है। इस कृत् प्रत्यय के प्रयोग में 'ओदन' शब्द में '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति है। यहां '**कर्तृकर्मणोः**' (२।३।६५) से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही सब उदाहरणों में समझ लेवें।*

*(२) **पचमानः।** पच्+शानच्। पच्+मुक्+आन। पच्+म्+आन। पचमान+सु। पचमानः। यहां पूर्ववत् शानच् प्रत्यय है।*

(३) **पेचानः।** पच्+लिट्। पच्+कानच्। पच्+आन। पच्+पच्+आन। पेच्+आन। पेचान+सु। पेचानः। यहां 'पच्' धातु से **'लिटः कानज्वा'** (३।२।१०७) से कानच् प्रत्यय है।

(४) **पेचिवान्।** पच्+लिट्। पच्+क्वसु। पच्+वस्। पच्+पच्+वस्। पच्+वस्। पेचिवस्+सु। पेचिवान्। यहां 'पच्' धातु से **'क्वसुश्च'** (२।३।१०८) से क्वसु प्रत्यय है।

(५) **पपिः।** **'पा पाने'** (भ्वा०प०) पा+कि। पा+पा+इ। प+पा+इ। पपि+सु। पपिः। यहां 'पा' धातु से **'आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च'** (३।२।१७१) से 'कि' प्रत्यय है।

(६) **ददिः।** **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०)। इस धातु से पूर्ववत् किन् प्रत्यय है।

(७) **चिकीर्षुः।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)। कृ+सन्। कृ+कृ+सन्। क+कृ+स। च+कीर्+स। चिकीर्ष+उ। चिकीर्षु+सु। चिकीर्षुः। यहां सन्-प्रत्ययान्त 'कृ' धातु से **'सनाशंसभिक्ष उः'** (३।२।१६८) से 'उ' प्रत्यय है। ऐसे ही भुज धातु से-**बुभुक्षुः।**

(८) **आगामुकः।** **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०)। आ+गम्+उकञ्। आ+गाम+उक। आगामुक+सु। आगामुकः। यहां 'गम्' धातु से **'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्य उकञ्'** (३।२।१५४) से उकञ् प्रत्यय है।

(९) **कृत्वा।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)। कृ+क्त्वा। कृ+त्वा। कृत्वा+सु। कृत्वा। यहां कृ-धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय है और क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द की **'क्त्वातोसुन्कसुनः'** (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा है। भुज धातु से-**भुक्त्वा।**

(१०) **कृतम्।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)। कृ+क्त। कृ+त। कृत+सु। कृतम्। यहां 'कृ' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय भूतकाल में है। **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२६) से क्त और क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा की गई है। ऐसे ही 'कृ' धातु से क्तवतु प्रत्यय करने से-**कृतवान्।**

(११) **ईषत्करः।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)। ईषत्+कृ+खल्। ईषत्+कर्+अ। ईषत्कर+सु। ईषत्करः। यहां **'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्'** (३।३।१२६) से कृच्छ्र और अकृच्छ्र अर्थ में खल् प्रत्यय है। **'ईषत्पानः'** यहां **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से खल् प्रत्यय के अर्थ में **'आतो युच्'** (३।३।१२८) से युच् प्रत्यय है।

(१२) **पवमानः।** **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०)। पू+शानन्। पू+शप्+मुक्+आन। पो+अ+म+आन। पवमान+सु। पवमानः। यहां पू धातु से **'पूङ्यजोः शानन्'** (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय है।

(१३) **वहमानः।** **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०)। वह+चानश्। वह्+शप्+मुक्+आन। वह्+अ+म्+आन। वहमान+सु। वहमानः। यहां वह धातु से **'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्'** (३।२।१२९) से चानश् प्रत्यय है।

(१४) अधीयन्। 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) अधि+इङ् +शतृ। अधि+इ+शप्+अत्। अधीय्+अ+अत्। अधीयत्+सु। अधीयन्। यहां 'इङ्' धातु से 'इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि' (३।२।१३०) से शतृ प्रत्यय है।

(१५) कर्ता। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०)। कृ+तृन्। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता। यहां 'इङ्' धातु से 'तृन्' (३।२।१३५) से तृन् प्रत्यय है।

षष्ठीप्रतिषेधः-

(२२) अकेनोर्भविष्यदाधर्मण्ययोः।७०।

प०वि०-अक-इनोः ६।२ भविष्यत्-आधर्मण्ययोः ६।२।

स०-अकश्च इन् च तौ-अकेनौ, तयोः-अकेनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अधमम् ऋणं यस्य सोऽधमर्णः। अधमर्णस्य भाव आधमर्ण्यम्। भविष्यच्च आधमर्ण्यञ्च ते-भविष्यदाधमर्ण्ये, तयोः-भविष्यदाधमर्ण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-षष्ठी, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यदाधर्मण्ययोरकेनोः प्रयोगे षष्ठी न।

अर्थः-भविष्यति काले विहितस्य अकप्रत्ययान्तस्य, भविष्यति काले आधमर्ण्ये चार्थे विहितस्य इन्प्रत्ययान्तस्य शब्दस्य प्रयोगे षष्ठी विभक्तिर्न भवति।

उदा०-(१) **अकः**-(भविष्यति)-कटं कारको व्रजति। ओदनं भोजको व्रजति। (२) **इनः**-(भविष्यति)-ग्रामं गमी देवदत्तः। नगरं गामी यज्ञदत्तः। (३) **इनः**-(आधमर्ण्ये)-शतं दायी देवदत्तः। सहस्रं दायी यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यदाधमर्ण्ययोः, अकेनोः) भविष्यत् काल में विहित अक-प्रत्ययान्त और भविष्यत् काल तथा आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन्-प्रत्ययान्त शब्द के प्रयोग में (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति (न) नहीं होती है,

*उदा०-(१) अक-(भविष्यत्)-**कटं कारको व्रजति।** चटाई को बनानेवाला जारहा है। **ओदनं भोजको व्रजति।** भात को खानेवाला जारहा है। (२) इन्-(भविष्यत्)-**ग्रामं गमी देवदत्तः।** देवदत्त गांव को जानेवाला है। **नगरं गामी यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त नगर को जानेवाला है। (३) इन्-(आधमर्ण्य)-**शतं दायी देवदत्तः।** देवदत्त सौ रुपये ऋण देनेवाला है। **सहस्रं दायी यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त हजार रुपये ऋण देनेवाला है।*

*सिद्धि-(१) **कटं कारको व्रजति।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०)। कृ+ण्वुल्। कृ+अक। कार्+अक। कारक+सु। कारकः। यहां कृ धातु से भविष्यत् काल अर्थ में **'तुमुन्ण्वुलौ***

*क्रियायां क्रियार्थायाम्' (३।३।१०) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इसके प्रयोग में 'कट' शब्द में '**कर्तृकर्मणो: कृति:**' (२।३।६५) से प्राप्त षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।*

*(२) **ग्रामं गमी देवदत्त:।** 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०)। गमी शब्द '**भविष्यति गम्यादय:**' (३।३।३) में भविष्यत् काल में निपातित है। इसके प्रयोग में '**कर्तृकर्मणो: कृति**' (२।३।६५) से प्राप्त षष्ठी विभक्ति नहीं होती है अपितु पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-**नगरं गामी यज्ञदत्त:।***

*(३) **शतं दायी देवदत्त:।** 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) दा+णिनि। दा+इन्। दा+युक्+इन्। दायिन्+सु। दायी। यहां 'दा' धातु से '**आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनि:**' (३।३।१७०) से आधमर्ण्य (ऋणी होना) अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय है। इसके प्रयोग में पूर्ववत् षष्ठी विभक्ति का प्रतिषेध होता है तथा पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति होती है।*

कर्तरि वा षष्ठी–

(२३) कृत्यानां कर्तरि वा।७१।

प०वि०-कृत्यानाम् ६।३ कर्तरि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-षष्ठी इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-कृत्यानां प्रयोगे कर्तरि वा षष्ठी।

अर्थ:-कृत्यप्रत्ययान्तानां शब्दानां प्रयोगे कर्तरि विकल्पेन षष्ठी विभक्तिर्भवति। पक्षे तृतीया विभक्तिर्भवति।

उदा०-भवत: कट: कर्त्तव्य:। भवता कट: कर्त्तव्य:।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(कृत्यानाम्) कृत्य-प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में (कर्तरि) कर्ता कारक में (वा) विकल्प से (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है।*

*उदा०-**भवत:**[१] **कट: कर्त्तव्य:।** आपको चटाई बनानी चाहिये। **भवता**[२] **कट: कर्त्तव्य:।** अर्थ पूर्ववत् है।*

***सिद्धि**-भवत: कट: कर्त्तव्य:। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०)। कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्त्तव्य+सु। कर्त्तव्य:। यहां 'कृ' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयर:**' (३।१।९६) से कृत्य-संज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके कर्ता 'भवत्' शब्द में षष्ठी विभक्ति है। पक्ष में '**कर्तृकरणयोस्तृतीया**' (२।३।२८) से तृतीया विभक्ति होती है।*

*'**तयोरेव कृत्यक्तखलर्था:**' (३।४।७०) से कृत्य संज्ञक प्रत्यय भाव और कर्मवाच्य में होते हैं। इसलिये कर्ता अकथित रहता है। अकथित कर्ता में पूर्वोक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है।*

षष्ठी तृतीया च–

(२४) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्।७२।

प०वि०–तुल्यार्थैः ३।३ अतुला-उपमाभ्याम् ३।२ तृतीया १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–तुल्योऽर्थो येषां ते तुल्यार्थाः, तैः–तुल्यार्थैः (बहुव्रीहिः)। तुला च उपमा च ते–तुलोपमे, न तुलोपमे इति अतुलोपमे, ताभ्याम्–अतुलोपमाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः–अतुलोपमाभ्यां तुल्यार्थैर्युक्तेऽन्यतरस्यां तृतीया।

अर्थः–तुलोपमावर्जितैस्तुल्यार्थैः संयुक्ते शब्दे विकल्पेन तृतीया विभक्तिर्भवति। पक्षे च षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०–तुल्यो देवदत्तेन यज्ञदत्तः। तुल्यो देवदत्तस्य यज्ञदत्तः। सदृशो देवदत्तेन यज्ञदत्तः। सदृशो देवदत्तस्य यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा–अर्थ–(अतुलोपमाभ्याम्) तुला और उपमा शब्द को छोड़कर (तुल्यार्थैः) तुल्य अर्थवाले पदों से संयुक्त शब्द में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तृतीया) तृतीया विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी विभक्ति होती है।

*उदा०–(१) तुल्य–**तुल्यो देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त देवदत्त के समान है। **तुल्यो देवदत्तस्य यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है। (२) सदृश–**सदृशो देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** **सदृशो देवदत्तस्य यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि–**तुल्यो देवदत्तेन यज्ञदत्तः।** यहां तुल्य पद से संयुक्त 'देवदत्त' शब्द में तृतीया विभक्ति है। पक्ष में षष्ठी विभक्ति भी होती है जैसा कि उदाहरण में दर्शाया गया है।*

*तुला और उपमा शब्द का वर्जन इसलिये किया गया है कि यहां तृतीया विभक्ति न हो–**तुला रामस्य नास्ति। उपमा कृष्णस्य न विद्यते।***

षष्ठी चतुर्थी च–

(२५) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः।७३।

प०वि०–चतुर्थी १।१ च अव्ययपदम्, आशिषि ७।१। आयुष्य-मद्र-भद्र-कुशल-सुख-अर्थ-हितैः ३।३।

स०–आयुष्यं च मद्रं च भद्रं च कुशलं च सुखं च अर्थश्च हितश्च तानि, आयुष्य०हितानि, तैः–आयुष्य०हितैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते।

अन्वय:-आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैर्युक्तेऽन्यतरस्यां चतुर्थी चाशिषि।

अर्थ:-आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः पदैः संयुक्ते शब्दे विकल्पेन चतुर्थी विभक्तिर्भवति। आशिषि गम्यमानायाम्। पक्षे च षष्ठी विभक्तिर्भवति।

उदा०-(१) **आयुष्यम्**-आयुष्यं देवदत्ताय[४] भूयात्। आयुष्यं देवदत्तस्य[६] भूयात्। (२) **मद्रम्**-मद्रं देवदत्ताय भूयात्। मद्रं देवदत्तस्य भूयात्। (३) **भद्रम्**-भद्रं देवदत्ताय भूयात्। भद्रं देवदत्तस्य भूयात्। (४) **कुशलम्**-कुशलं देवदत्ताय भूयात्। कुशलं देवदत्तस्य भूयात्। (५) **सुखम्**-सुखं देवदत्ताय भूयात्। सुखं देवदत्तस्य भूयात्। (६) **अर्थः**-अर्थो देवदत्ताय भूयात्। अर्थो देवदत्तस्य भूयात्। (७) **हितम्**-हितं देवदत्ताय भूयात्। हितं देवदत्तस्य भूयात्।

*__आर्यभाषा-अर्थ__-(आयुष्य०हितैः) आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ **और** हित पदों से संयुक्त शब्द में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चतुर्थी) चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी विभक्ति होती है।*

*उदा०-(१) आयुष्य-आयुष्यं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त की दीर्घ आयु हो। (२) मद्र-मद्रं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त को हर्ष हो। (३) भद्र-भद्रं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त का कल्याण हो। (४) कुशल-कुशलं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त का कुशल हो। (५) सुख-सुखं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त को सुख हो। (६) अर्थ-अर्थो **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त के धन हो। (७) हित-हितं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। देवदत्त का हित हो।*

*__सिद्धि__-आयुष्यं **देवदत्ताय/देवदत्तस्य भूयात्**। 'भूयात्' यह पद आशीर्लिङ् प्रथम पुरुष एकवचन का है। यहां आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य पद से संयुक्त 'देवदत्त' शब्द में चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति है। ऐसे सब उदाहरणों में समझ लेवें।*

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचने द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

द्विगु-एकवद्भावः–

(१) द्विगुरेकवचनम्।१।

प०वि०–द्विगुः १।१ एकवचनम् १।१।

स०–एकस्य वचनमिति एकवचनम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अर्थः–द्विगुः समास एकवचनं भवति, एकस्यार्थस्य वाचको भवतीत्यर्थः। समाहारद्विगोश्चेदं ग्रहणं नान्यस्य।

उदा०–पञ्चानां पूलानां समाहार इति पञ्चपूली। पञ्चानां वटानां समाहार इति पञ्चवटी।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्विगुः) द्विगु समास (एकवचनम्) एकवचन अर्थात् एक अर्थ का वाचक होता है, अर्थात् वहां एकवचन होता है। यहां समाहार द्विगु का ग्रहण है, अन्य का नहीं।

*उदा०–**पञ्चानां पूलानां समाहार इति पञ्चपूली।** पांच पूलों का समुदाय। **पञ्चानां वटानां समाहार इति पञ्चवटी।** पांच बड़ों का समुदाय।*

सिद्धि-पञ्चपूली। *पञ्चन्+आम्+पूल+आम्। पञ्चपूल+ङीप्। पञ्चपूल+ई। पञ्चपूली+सु। पञ्चपूली।*

*यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से द्विगु समास है। '**द्विगोः**' (४।१।२१) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय है। यहां पांच पूलों के कथन में '**बहुषु बहुवचनम्**' (१।४।२१) से बहुवचन प्राप्त था। इस सूत्र से एकवचन का विधान किया गया है। ऐसे ही–**पञ्चवटी।***

द्वन्द्व-एकवद्भावप्रकरणम्

प्राण्याद्यङ्गानाम्–

(१) द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।२।

प०वि०–द्वन्द्वः १।१ च अव्ययपदम्, प्राणि-तूर्य-सेनाङ्गानाम् ६।३।

स०-प्राणी च तूर्यश्च सेना च ता:-प्राणितूर्यसेना:, तासाम्-प्राणितूर्यसेनानाम्, प्राणितूर्यसेनानामङ्गानीति प्राणितूर्यसेनाङ्गानि, तेषाम्-प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-एकवचनमित्यनुवर्तते।

अन्वय:-प्राणितूर्यसेनाङ्गानां द्वन्द्वश्चैकवचनम्।

अर्थ:-प्राण्यङ्गानां तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानाम् च द्वन्द्वसमासोऽपि एकवचनम्=एकवचनस्यार्थस्य वाचको भवति, तत्रैकवचनं भवतीत्यर्थ:।

उदा०-(१) **प्राण्यङ्गानाम्**- पाणी च पादौ च एतेषां समाहार: पाणिपादम्। शिरश्च ग्रीवा च एतयो: समाहार: शिरोग्रीवम्।

(२) **तूर्याङ्गानाम्**-मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च एतेषां समाहारो मार्दङ्गिपाणविकम्। वीणावादकाश्च परिवादकाश्च एतेषां समाहारो वीणावादकपरिवादकम्।

(३) **सेनाङ्गानाम्**-रथिकाश्च अश्वरोहाश्च एतेषां समाहारो रथिकाश्वरोहम्। रथिकाश्च पादाताश्च एतेषां समाहारो रथिकपादातम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्) प्राणी के अङ्ग, तूर्य=वाद्यवृन्द (आरकेष्ट्रा) के अङ्ग और सेना के अङ्गवाची शब्दों का (द्वन्द्व:) द्वन्द्व समास (च) भी (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है, अर्थात् वहां एकवचन होता है।

*उदा०-(१) प्राणी अङ्ग-**पाणी च पादौ च एतेषां समाहार: पाणिपादम्।** हाथ और पांव का समूह। **शिरश्च ग्रीवा च एतयो: समाहार: शिरोग्रीवम्।** शिर और गर्दन का समूह।*

*(२) तूर्य-अङ्ग-**मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च एतेषां समाहारो मार्दङ्गिक-पाणविकम्।** मृदङ्ग (ढोल) और पणव (वाद्यविशेष) बजानेवालों का समूह। **वीणावादकाश्च परिवादकाश्च एतेषां समाहार इति वीणावादकपरिवादकम्।** वीणा बजानेवाले और सारङ्गी बजानेवालों का समूह।*

*(३) सेना-अङ्ग-**रथिकाश्च अश्वरोहाश्च एतेषां समाहार इति रथिकाश्वरोहम्।** रथ में बैठनेवाले और घुड़सवारों का समूह। **रथिकाश्च पादाताश्च एतेषां समाहारो रथिकपादातम्।** रथ में चलनेवाले और पैदल चलनेवालों का समूह।*

*सिद्धि-(१) **पाणिपादम्।** यहां पाणि और पाद शब्दों के समाहार द्वन्द्व में एकवचन है। ऐसे ही सब उदाहरणों में एकवद्भाव समझ लेवें।*

चरणवाचिनाम्–

(३) अनुवादे चरणानाम्।३।

प०वि०–अनुवादे ७।१ चरणानाम् ६।३।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चरणानां द्वन्द्व एकवचनमनुवादे।

अर्थः–चरणवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वः समास एकस्यार्थस्य वाचको भवति, अनुवादे गम्यमाने।

उदा०–कठाश्च कालापाश्च एतेषां समाहारः कठकालापम्। उदगात् कठकालापम्। कठाश्च कौथुमाश्च एतेषां समाहारः कठकौथुमम्। प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(चरणानाम्) शाखाध्यायी वाचक शब्दों का (द्वन्द्वः) **समास** (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है (अनुवाद) यदि वहां अनुवाद=**अनुकथन** (प्रशंसा) प्रकट हो।*

*उदा०-**कठाश्च कालापाश्च एतेषां समाहारः कठकालापम्। उदगात् कठकालापम्।** कठ और कालाप चरण=शाखा के अध्ययन करनेवाले संघ ने उन्नति की। **कठाश्च कौथुमाश्च एतेषां समाहारः कठकौथुमम्। प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्।** कठ और कौथुम चरण=शाखा के अध्ययन करनेवाले संघ ने प्रतिष्ठा प्राप्त की।*

*सिद्धि-**कठकालपम्।** कठ+जस्+कालाप+जस्। कठकालाप+सु। कठकालापम्।*

*यहां **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्व समास है और इस सूत्र से कठ और कालाप चरण=शाखा के अध्ययन करनेवालों के द्वन्द्व समास में एकवचन है। ऐसे ही-**कठकौथुमम्।***

*विशेष-(१) **अनुवाद**-शब्द प्रमाण से भिन्न प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से विज्ञात अर्थ का शब्दों से कीर्तन (प्रशंसा) करना अनुवाद कहाता है।*

*(२) **चरण**-चरण शब्द वैदिकशाखा के विद्यालय का वाचक है। यह शब्द शाखा अर्थ में मुख्य और शाखा का अध्ययन करनेवाले पुरुष अर्थ में गौण है। यहां गौण अर्थ का ग्रहण किया गया है।*

(३) ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० तथा अथर्ववेद की ९ इस प्रकार वेदों की ११३१ शाखायें हैं। ये सब आज उपलब्ध नहीं हैं, कुछ शाखायें मिलती हैं।

यजुर्वेदीययज्ञानाम्–

(३) अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम्।४।

प०वि०–अध्वर्यु-क्रतु: १।१ अनपुंसकम् १।१।

स०–अध्वर्यो: क्रतुरिति अध्वर्युक्रतु: (षष्ठीतत्पुरुष:)। न नपुंसकमिति अनपुंसकम् (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वय:–अनपुंसकानामध्वर्युक्रतूनां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थ:–नपुंसकलिङ्गभिन्नानाम् अध्वर्युक्रतुवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति। अध्वर्युवेदे (यजुर्वेदे) विहितो य: क्रतु: (यज्ञ:) सोऽध्वर्युक्रतुरित्युच्यते।

उदा०–अर्कश्च अश्वमेधश्च एतयो: समाहार:, अर्काश्वमेधम्। सायाह्नश्च अतिरात्रश्च एतयो: समाहार: सायाह्नातिरात्रम्। सोमयागश्च राजसूयश्च एतयो: समाहार: सोमयागराजसूयम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(अनपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग से भिन्न (अध्वर्युक्रतु:) यजुर्वेद में विहित यज्ञवाची शब्दों का (द्वन्द्व:) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।

उदा०–__अर्कश्च अश्वमेधश्च एतयो: समाहारोऽर्काश्वमेधम्।__ अर्क और अश्वमेध यज्ञ का संघात। __सायाह्नश्च अतिरात्रश्च एतयो: समाहार: सायाह्नातिरात्रम्।__ सायाह्न और अतिरात्र यज्ञ का संघात। __सोमयागश्च राजसूयश्च एतयो: समाहार: सोमयागराजसूयम्।__ सोमयाग और राजसूय यज्ञ का संघात।

__सिद्धि-अर्काश्वमेधम्।__ अर्क+सु+अश्वमेध+सु। अर्काश्वमेध+सु। अर्काश्वमेधम्।

यहां 'चार्थे द्वन्द्व:' (२।२।२९) से समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास है। अर्क और अश्वमेध शब्द पुंलिङ्ग हैं, नपुंसकलिङ्ग नहीं हैं और ये अध्वर्युक्रतु=यजुर्वेद में विहित यज्ञवाची शब्द हैं। अत: इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है।

__विशेष__–अर्क और अश्वमेध आदि यज्ञों का व्याख्यान यजुर्वेद के शतपथब्राह्मण में देख लेवें।

समीपवाचिनाम् (अध्ययनतः)–

(४) अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम्।५।

प०वि०–अध्ययनतः तृतीया-अर्थेऽव्ययपदम्। अविप्रकृष्टाख्यानाम् ६।३।

स०–न विप्रकृष्टा इति अविप्रकृष्टा, अविप्रकृष्टा आख्या येषां तेऽविप्रकृष्टाख्याः, तेषाम्-अविप्रकृष्टाख्यानाम् (नञ्तत्पुरुषगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थः–अध्ययननिमित्तेन अविप्रकृष्टाख्यानां=समीपाख्यानां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०–पदकाश्च क्रमकाश्च एतेषां समाहारः पदकक्रमकम्। क्रमकाश्च वार्तिकाश्च एतेषां समाहारः क्रमकवार्तिकम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(अध्ययनतः) अध्ययन के निमित्त से (अविप्रकृष्टाख्यानाम्) समीपता के वाचक शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।

*उदा०–**पदकाश्च क्रमकाश्च एतेषां समाहारः पदकक्रमकम्।** पदपाठ और क्रमपाठ करनेवालों का समूह। **क्रमकाश्च वार्तिकाश्च एतेषां समाहारः क्रमकवार्तिकम्।** क्रमपाठ और संहितापाठ करनेवालों का समूह। वृत्ति=संहिता।*

__सिद्धि-पदकक्रमकम्।__ पद+वुन्। पद+अक। पदक+जस्। पदकाः।

यहां अध्ययन अर्थ में 'क्रमादिभ्यो वुन्' (४।२।६१) से वुन् प्रत्यय है। ऐसे ही क्रम शब्द से भी अध्ययन अर्थ में पूर्ववत् वुन्-प्रत्यय है। जो वेद के पदों का अध्ययन करनेवाले हैं वे 'पदक' कहाते हैं और जो वेद के क्रम का अध्ययन करनेवाले हैं वे 'क्रमक' कहाते हैं। पद के पश्चात् क्रम का अध्ययन करना चाहिये अतः इनकी अध्ययन निमित्त से अविप्रकृष्टता=समीपता है। इनके द्वन्द्व समास में इस सूत्र से एकवचन का विधान किया गया है।

*जहां अध्ययन के निमित्त से समीपता नहीं होती है वहां द्वन्द्व समास में एकवचन नहीं होता है-**पितापुत्रौ।***

जातिवाचिनाम्–

(५) जातिरप्राणिनाम्।६।

प०वि०–जातिः १।१ अप्राणिनाम् ६।३।

स०–प्राणो येषु वर्तते ते प्राणिनः, न प्राणिन इति अप्राणिनः, तेषाम्–अप्राणिनाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अप्राणिनां जातीनां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थः–अप्राणिनाम्=प्राणिवर्जितानां जातिवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०–आरा च शस्त्री च एतयोः समाहार आराशस्त्रि। धानाश्च शष्कुल्यश्च एतेषां समाहारो धानाशष्कुलि। गोधूमाश्च चणकाश्च एतेषां समाहारो गोधूमचणकम्।

आर्यभाषा-अर्थ–(अप्राणिनाम्) प्राणिवाची शब्दों को छोड़कर (जातिः) जातिवाची शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।

*उदा०–**आरा च शस्त्री च एतयोः समाहार आराशस्त्रि।** आर और छुरी का संघात। 'आरा चर्मप्रभेदिका' इत्यमरः। 'स्याच्छस्त्री चासिपुत्री च छुरिका चासि धेनुका' इत्यमरः। **धानाश्च शष्कुल्यश्च एतेषां समाहारो धानाशष्कुलि।** धाणी और पूरी का संघात। 'धाना भृष्टयवे स्त्रियः' इत्यमरः। **गोधूमाश्च चणकाश्च एतेषां समाहारो गोधूमचणकम्।** गेहूं और चणों का संघात (गोचणी)।*

*सिद्धि–**आराशस्त्रि।** आरा+सु+शस्त्री+सु। आराशस्त्रि+सु। आराशस्त्रि।*

*यहां जातिवाची आरा और शस्त्री शब्द का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्व समास है। ये दोनों अप्राणिवाची हैं अतः इनके द्वन्द्व समास में इस सूत्र से एकवचन होता है। **'स नपुंसकम्'** (२।४।१७) से यह नपुंसकलिङ्ग है। **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से शस्त्री शब्द को ह्रस्व हो जाता है। ऐसे ही–**धानाशष्कुलि, गोधूमचणकम्।***

*विशेष–जहां प्राणिवाचक जातिवाची शब्दों का द्वन्द्व समास है वहां एकवचन नहीं होता है–**ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः।***

नदीदेशवाचिनाम्–

(६) विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामाः ।७।

प०वि०–विशिष्टलिङ्गः १ ।१ नदी १ ।१ देशः १ ।१ । अग्रामाः १ ।३ ।

स०–विशिष्टं लिङ्गं यस्य स विशिष्टलिङ्गः (बहुव्रीहिः) । शालासमुदायो ग्रामः । न ग्रामा इति अग्रामाः (नञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–विशिष्टलिङ्गानां नदीनामग्रामाणां देशानां च द्वन्द्व एकवचनम् ।

अर्थः–विशिष्टलिङ्गानाम्=भिन्नलिङ्गानां नदीवाचिनां ग्रामवर्जितानां देशवाचिनां च शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति ।

उदा०–(१) **नदीवाचिनाम्**–उद्ध्यश्च इरावती च एतयोः समाहार उद्ध्येरावति । गङ्गा च शोणश्च एतयोः समाहारो गङ्गाशोणम् ।

(२) **देशवाचिनाम्**–कुरुश्च कुरुक्षेत्रं च एतयोः समाहारः कुरु-कुरुक्षेत्रम् । कुरुश्च कुरुजाङ्गलं च एतेषां समाहारः कुरुकुरुजाङ्गलम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(विशिष्टलिङ्गः) भिन्न लिङ्गवाले (नदी) नदीवाची तथा (अग्रामाः) ग्रामवाची शब्दों को छोड़कर (देशः) देशवाची शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है ।

*उदा०-(१) नदीवाची-**उद्ध्यश्च इरावती च एतयोः समाहारः उद्ध्येरावति ।** उद्ध्य और इरावती नदी का संगम । **गङ्गा च शोणश्च एतयोः समाहारो गङ्गाशोणम् ।** गङ्गा और शोण नदी का संगम ।*

*(२) देशवाची-**कुरुश्च कुरुक्षेत्रं च एतयोः समाहारः कुरुकुरुक्षेत्रम् ।** कुरु और कुरुक्षेत्र का संधिस्थान । **कुरवश्च कुरुजाङ्गलं च एतेषां समाहारः कुरुकुरुजाङ्गलम् ।** कुरु और कुरुजाङ्गल देश का सन्धिस्थान ।*

*सिद्धि-(१) **उद्ध्येरावती ।** उद्ध्य+सु+इरावती+सु । उद्ध्येरावति+सु । उद्ध्येरावति ।*

यहां उद्ध्य और इरावती इन नदीवाची शब्दों का द्वन्द्व समास है । ये दोनों भिन्न लिङ्गवाले हैं । उद्ध्य शब्द पुंलिङ्ग और इरावती शब्द स्त्रीलिङ्ग है । इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है ।

समस्त पद ***'स नपुंसकम्'*** *(२।४।१७) से नपुंसकलिङ्ग होता है।* ***'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'*** *(१।२।४७) से इरावती शब्द को ह्रस्व हो जाता है। उद्ध्य शब्द* ***'भिद्योद्ध्यौ नदी'*** *(३।१।११५) से नदी अर्थ में क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

उद्ध्य नदी का वर्तमान नाम उझ है। यह जम्मू प्रान्त के जसरोटा जिले में होती हुई कुछ दूर पंजाब में बहकर गुरुदासपुर जिले में रावी नदी के दाहिने किनारे पर मिल गई है। इरावती वर्तमान रावी नदी का नाम है (पा०का० भारतवर्ष पृ० ५२)।

(२) ***गङ्गाशोणम्।*** *गङ्गा+शोण+सु। गङ्गशोण+सु। गङ्गाशोणम्।*

यहां गङ्गा और शोण इन नदीवाची शब्दों का द्वन्द्व समास है। ये दोनों शब्द भिन्न लिङ्गवाले हैं। इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है। शोणनदी गोंडवाना से निकलकर पटना के निकट गङ्गा में गिरती है।

(३) ***कुरुकुरुक्षेत्रम्।*** *कुरु+सु+कुरुक्षेत्र+सु। कुरुकुरुक्षेत्र+सु। कुरुकुरुक्षेत्रम्। ऐसे ही-***कुरुकुरुजाङ्गलम्।***

यहां कुरु और कुरुक्षेत्र इन देशवाची शब्दों का द्वन्द्व समास है। दोनों भिन्न लिङ्गवाले हैं। कुरु शब्द पुंलिङ्ग और कुरुक्षेत्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है। इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है। दिल्ली और मेरठ का प्रदेश कुरु कहाता था जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। कुरुक्षेत्र लोकप्रसिद्ध है। रोहतक-हिसार क्षेत्र का नाम-कुरुजाङ्गल है।

क्षुद्रजन्तूनाम्--

(७) क्षुद्रजन्तवः।८।

प०वि०-क्षुद्रजन्तवः १।३।

स०-क्षुद्राश्च ते जन्तव इति क्षुद्रजन्तवः (कर्मधारयः)।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षुद्रजन्तूनां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थः-क्षुद्रजन्तुवाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०-यूकाश्च लिक्षाश्च एतासां समाहारो यूकालिक्षम्। दंशाश्च मशकाश्च एतेषां समाहारो दंशमशकम्।

आर्यभाषा-अर्थ- *(क्षुद्रजन्तवः) छोटे-छोटे जन्तुवाची शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।*

*उदा०-***यूकाश्च लिक्षाश्च एतासां समहारो यूकालिक्षम्।** *जूं और लीख जन्तुओं का संघात।* ***दंशाश्च मशकाश्च एतेषां समाहारो दंशमशकम्।*** *डांस और मच्छरों का संघात।*

सिद्धि-यूकालिक्षम्। यूका+सु+लिक्षा+सु। यूकालिक्ष+सु। यूकालिक्षम्।

*यहां क्षुद्रजन्तुवाची यूका और लिक्षा शब्दों का द्वन्द्व समास है। इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है। **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से लिक्षा शब्द को ह्रस्व होता है। ऐसे ही-**दंशमशकम्।***

नित्यविरोधिनाम्-

(८) येषां च विरोधः शाश्वतिकः।९।

प०वि०-येषाम् ६।३ च अव्ययपदम्, विरोधः १।१ शाश्वतिकः १।१।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-येषां च शाश्वतिको विरोधस्तेषां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थः-येषां प्राणिनां शाश्वतिकः=नित्यं विरोधोऽस्ति, तद्वाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०-मार्जारश्च मूषकश्च एतयोः समाहारो मार्जारमूषकम्। अहिश्च नकुलश्च एतयोः समाहारोऽहिनकुलम्। काकश्च उलूकश्च एतयोः समाहारः काकोलूकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(येषाम्) जिन प्राणियों का (शाश्वतिकः) नित्य (विरोधः) वैर है, उनके वाचक शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।*

*उदा०-**मार्जारश्च मूषकश्च एतयोः समाहारो मार्जारमूषकम्।** बिल्ले और चूहे का संयोग। **अहिश्च नकुलश्च एतयोः समाहारोऽहिनकुलम्।** सांप और नेवले का संयोग। **काकश्च उलूकश्च एतयोः समाहारः काकोलूकम्।** कौआ और उल्लू का संघात।*

सिद्धि-मार्जारमूषक। मार्जार+सु+मूषक+सु। मार्जारमूषक+सु। मार्जारमूषकम्।

*बिल्ली और चूहे का शाश्वतिक विरोध है, अतः उनके वाचक मार्जार और मूषक शब्दों का जो द्वन्द्व समास है, उसमें इस सूत्र से एकवचन का विधान किया गया है। ऐसे ही-**अहिनकुलम्, काकोलूकम्।***

शूद्राणाम्-

(९) शूद्राणामनिरवसितानाम्।१०।

प०वि०-शूद्राणाम् ६।३ अनिरवसितानाम् ६।३।

स०-निरवसिताः=बहिष्कृताः। न निरवसिता अनिरवसिताः, तेषाम्-अनिरवसितानाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनिरवसितानां शूद्राणां द्वन्द्व एकवचनम्।

अर्थः-अनिरवसितानाम्=पात्राद् अबहिष्कृतानां शूद्रवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०-तक्षाणश्च अयस्काराश्च एतेषां समाहारः तक्षायस्कारम्। रजकाश्च तन्तुवायाश्च एतेषां समाहारो रजकतन्तुवायम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अनिरवसितानाम्) पात्र से अबहिष्कृत (शूद्राणाम्) शूद्रवाची शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।*

*उदा०-**तक्षाणश्च अयस्काराश्च एतेषां समाहारः तक्षायस्कारम्।** खाती और लुहारों का समुदाय। **रजकाश्च तन्तुवायाश्च एतेषां समाहारो रजकतन्तुवायम्।** धोबी और जुलाहों का समुदाय।*

सिद्धि-तक्षायस्कारम्। *तक्षन्+जस्+अयस्कार+जस्। तक्षायस्कार+सु। तक्षायस्कारम्।*

*यहां पात्र से अबहिष्कृत शूद्रवाची तक्षा और अयस्कार शब्दों का द्वन्द्व समास है। इस सूत्र से इनके द्वन्द्व समास में एकवचन का विधान किया गया है। ऐसे ही-**रजकतन्तुवायम्।***

विशेष-*धर्मशास्त्रकारों ने मनुष्य जाति के आर्य और दस्यु दो भेद किये हैं। आर्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद हैं। यहां शूद्र के दो भेद बतलाये गये हैं। जो मैले-कुचैले रहते हैं तथा मांस आदि भक्षण करनेवाले हैं। उन्हें ब्राह्मण आदि वर्ण के लोग भोजन के लिये पात्र देना भी उचित नहीं समझते, ऐसे शूद्रों को निरवसित (बहिष्कृत) कहा गया है और जो अपनी कला से ब्राह्मण आदि वर्णों की सेवा करते हैं और शरीर तथा वस्त्र आदि से भी शुद्ध रहते हैं, उन्हें अनिरवसित (अबहिष्कृत) कहा गया है। शूद्र मनुष्य जाति का ब्राह्मण आदि वर्णों के समान एक अनिवार्य अंग है। वह समाज में शरीर के पांव अंग के समान है। हेय अथवा घृणापात्र नहीं है। वह उक्त तीन वर्णों का सहायक है।*

गवाश्वादयः-

(१०) गवाश्वप्रभृतीनि च।११।

प०वि०-गवाश्व-प्रभृतीनि १।३ च अव्ययपदम्।

स०-गवाश्वः प्रभृतिर्येषां तानीमानि-गवाश्वप्रभृतीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति च सम्बध्यते।

अर्थः-गवाश्वप्रभृतीनि च कृतैकवद्भावानि द्वन्द्वरूपाणि साधूनि भवन्ति।

उदा०-गावश्च अश्वाश्च एतेषां समाहारो गवाश्वम्। गावश्च अविकाश्च एतेषां समाहारो गवाविकम्, इत्यादिकम्।

गवाश्वम्। गवाविकम्। गवैडकम्। अजाविकम्। अजैडकम्। कुब्जवामनम्। कुब्जकैरातकम्। पुत्रपौत्रम्। श्वचाण्डालम्। स्त्रीकुमारम्। दासीमाणवकम्। शाटीपिच्छकम्। उष्ट्रखरम्। उष्ट्रशशम्। मूत्रशकृत्। मूत्रपुरीषम्। सकृन्मेदः। मांसशोणितम्। दर्भशरम्। दर्भपूतीकम्। अर्जुनशिरीषम्। तृणोपलम्। दासीदासम्। कुटीकुटम्। भागवतीभागवतम्। इति गवाश्वप्रभृतयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गवाश्वप्रभृतीनि) गवाश्व आदि गण में पठित शब्द जिनमें एकवद्भाव किया हुआ है और जो द्वन्द्व समास रूप हैं, उन्हें साधु (ठीक) समझना चाहिये।

*उदा०-**गावश्च अश्वाश्च एतेषां समाहारो गवाश्वम्।** गाय और घोड़ों का समुदाय। **गावश्च अविकाश्च एतेषां समाहारो गवाविकम्।** गाय और भेड़ों का संघ।*

*सिद्धि-**गवाश्वम्।** गो+जस्+अश्व+जस्। गो+अश्व। गवाश्व+सु। गवाश्वम्।*

*यहां गौ और अश्व शब्द का द्वन्द्व समास किया हुआ है, यहां दीर्घत्व निपातन से समझना चाहिये। इस सूत्र से द्वन्द्व समास में एकवद्भाव होता है। ऐसे ही-**गवाविकम्** आदि।*

एकवद्भावविकल्पः–

(११) विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्।१२।

प०वि०-विभाषा १।१ वृक्ष-मृग-तृण-धान्य-व्यञ्जन-पशु-शकुनि-अश्ववडव-पूर्वापर- अधरोत्तराणाम् ६।३।

स०-वृक्षश्च मृगश्च तृणं च धान्यं च व्यञ्जनं च पशुश्च शकुनिश्च अश्ववडवं च पूर्वापरं च अधरोत्तरं च तानि-वृक्ष०अधरोत्तराणि, तेषाम्-वृक्ष०अधरोत्तराणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृक्ष०उत्तराणां द्वन्द्वो विभाषैकवचनम्।

अर्थः- वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणां शब्दानां द्वन्द्वसमासो विकल्पेन एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०-(१) **वृक्ष:**-प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च एतेषां समाहार: प्लक्षन्यग्रोधम् (समाहार:)। प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च ते प्लक्षन्यग्रोधा: (इ०यो०)।

(२) **मृग:**-रुरवश्च पृषताश्च एतेषां समाहारो रुरुपृषतम् (स०)। रुरवश्च पृषताश्च ते रुरुपृषता: (इ०यो०)।

(३) **तृणम्**-कुशाश्च काशाश्च एतेषां समाहार: कुशकाशम् (स०)। कुशाश्च काशाश्च ते कुशकाशा: (इ०यो०)।

(४) **धान्यम्**-व्रीहयश्च यवाश्च एतेषां समाहारो व्रीहियवम् (स०)। व्रीहयश्च यवाश्च ते व्रीहियवा: (इ०यो०)।

(५) **व्यञ्जनम्**-दधि च घृतं च एतयो: समाहारो दधिघृतम् (स०)। दधि च घृतं च ते-दधिघृते (इ०यो०)।

(६) **पशु:**-गावश्च महिषाश्च एतेषां समाहारो गोमहिषम् (स०)। गावश्च महिषाश्च ते गोमहिषा: (इ०यो०)।

(७) **शकुनि**-तित्तिरयश्च कपिञ्जलाश्च एतेषां समाहार:, तित्तिरिकपिञ्जलम् (स०)। तित्तिरयश्च कपिञ्जलाश्च ते तित्तिरिकपिञ्जला:।

(८) **अश्ववडवम्**-अश्वश्च वडवा च एतयो: समाहारोऽश्ववडवम् (स०)। अश्वश्च वडवा च तौ अश्ववडवौ (इ०यो०)।

(९) **पूर्वापरम्**-पूर्वञ्च अपरञ्च एतयो: समाहार: पूर्वापरम् (स०)। पूर्वञ्च अपरञ्च ते-पूर्वापरे (इ०यो०).

(१०) **अधरोत्तरम्**-अधरं चोत्तरं च एतयो: समाहारोऽधरोत्तरम् (स०)। अधरं च उत्तरं च ते-अधरोत्तरे (इ०यो०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(वृक्ष०अधरोत्तराणाम्) वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर और अधरोत्तर शब्दों का (द्वन्द्व:) द्वन्द्व समास (विभाषा) विकल्प से (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है। पक्ष में द्विवचन तथा बहुवचन भी होता है।

*उदा०-(१) वृक्ष-**प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च एतेषां समाहार: प्लक्षन्यग्रोधम्।** पिलखन और बड़ के वृक्षों का समूह। **प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च ते प्लक्षन्यग्रोधा:।** पिलखन और बड़ के वृक्ष।*

यहां विभाषा वचन से समाहार और इतरेतरयोग दोनों प्रकार का द्वन्द्व समास होता है। जहां समाहार है वहां समुदाय और जहां इतरेतरयोग है वहां उन पदार्थों के परस्पर संयोग का कथन किया जाता है। संस्कृतभाषा में दोनों प्रकार का विग्रह करके उदाहरण दिखाये गये हैं। विस्तार भय से यहां पुनः नहीं लिखे जाते हैं। यहां केवल उनका अर्थ दर्शाया जाता है–

(२) मृग-रुरुपृषतम्। रुरु=हरिण और पृषत=चित्तीदार हरिणों का संघ। रुरुपृषताः। हरिण और चित्तीदार हरिणों का संयोग।

(३) तृण-कुशकाशम्। डाभ और कांस नामक घास का ढेर। कुशकाशाः। डाभ और कांस नामक घास का संयोग।

(४) धान्य-व्रीहियवम्। चावल और जौ का मिश्रित ढेर। व्रीहियवाः। चावल और जौ का संयोग।

(५) व्यञ्जन-दधिघृतम्। दही और घी मिश्रित। दधिघृते। दही और घी का संयोग।

(६) शकुनि (पक्षी)-तित्तिरिकपिञ्जलम्। तीतर और पपीहा पक्षियों का संघ। तित्तिरिकपिञ्जलाः। तीतर और पपीहा पक्षियों का संयोग।

(७) अश्ववडवम्-अश्ववडवम्। घोड़ा और घोड़ी का संघात। अश्ववडवौ। घोड़ा और घोड़ी का संयोग।

(८) पूर्वापर-पूर्वापरम्। पूर्व और अपर दिशा की सन्धि। पूर्वापरे। पूर्व और अपर दिशा का संयोग।

(९) अधरोत्तर-अधरोत्तरम्। ऊपर और नीचे की सन्धि। अधरोत्तरे। नीचे और ऊपर का संयोग।

सिद्धि-(१) प्लक्षन्यग्रोधम्। प्लक्ष+जस्। न्यग्रोध+जस्। प्लक्षन्यग्रोध-सु। प्लक्षन्यग्रोधम्।

यहां वृक्षवाची प्लक्ष और न्यग्रोध शब्दों के समाहार द्वन्द्व समास में इस सूत्र से एकवद्भाव होगया है।

(२) प्लक्षन्यग्रोधाः। प्लक्ष+जस्। न्यग्रोध+जस्। प्लक्षन्यग्रोध+जस्। प्लक्षन्यग्रोधाः।

यहां वृक्षवाची प्लक्ष और न्यग्रोध शब्दों के इतरेतरयोग समास में विकल्प पक्ष में एकवचन नहीं अपितु 'बहुषु बहुवचनम्' (१।४।२१) से बहुवचन होगया है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेवें।

विशेष-समाहार अर्थ में दो पदार्थों का संघात होता है और इतरेतरयोग में दो **पदार्थों का संयोग मात्र होता है।**

एकवद्भावविकल्प–

(१२) विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि।१३।

प०वि०–विप्रतिषिद्धम् १।१ च अव्ययपदम्, अनधिकरणवाचि १।१।

स०–अधिकरणं वक्तीति तद् अधिकरणवाचि, न अधिकरणवाचि इति अनधिकरणवाचि (उपपदगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–एकवचनं द्वन्द्वो विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–विप्रतिषिद्धानामनधिकरणवाचिनां च द्वन्द्वो विभाषैकवचनम्।

अर्थः–विप्रतिषिद्धानाम्=परस्परविरुद्धानाम् अनधिकरणवाचिनाम्= अद्रव्यवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वसमासो विकल्पेन एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०–शीतञ्च उष्णञ्च एतयोः समाहारः शीतोष्णम्। शीतञ्च उष्णञ्च ते शीतोष्णे। सुखं च दुःखं च एतयोः समाहारः सुखदुःखम्। सुखं च दुःखं च ते–सुखदुःखे।

आर्यभाषा–अर्थ–(विप्रतिषिद्धम्) परस्पर विरोधी (अनधिकरणवाचि) अद्रव्य के वाची=गुणवाची शब्दों का (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (विभाषा) विकल्प से (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।

*उदा०–**शीतं च उष्णं च एतयोः समाहारः शीतोष्णम्।** ठण्ड और गर्म का मिश्रण। **शीतं च उष्णं च ते शीतोष्णे।** ठण्डा और गर्म का संयोग। **सुखं च दुःखं च एतयोः समाहारः सुखदुःखम्।** सुख और दुःख का मिश्रमण। **सुखं च दुःखं ते–सुखदुःखे।** सुख और दुःख का संयोग।*

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। *(गीता २।३८)*

__सिद्धि–शीतोष्णम्।__ शीत+सु+उष्ण+सु। शीतोष्ण+सु। शीतोष्णम्।

*यहां शीत और उष्ण परस्पर विरुद्ध धर्म हैं। ये किसी द्रव्य के वाचक नहीं हैं, अपितु किसी द्रव्य के धर्म (गुण) हैं। इन शब्दों के द्वन्द्व समास में इस सूत्र से एकवचन का विधान किया गया है। पक्ष में इतरेतरयोग द्वन्द्व में द्विवचन भी होता है–**शीतोष्णे।** ऐसे ही–**सुखदुःखम्, सुखदुःखे।***

एकवद्भावप्रतिषेधः--

(१३) न दधिपय आदीनि।१४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दधिपयआदीनि १।३।

स०-दधि च पयश्च ते दधिपयसी, दधिपयसी आदिर्येषां तानीतानि दधिपयआदीनि (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दधिपयआदीनां द्वन्द्व एकवचनं न।

अर्थः-दधिपयआदीनि द्वन्द्वरूपाणि एकस्यार्थस्य वाचकानि न भवन्ति।

उदा०-दधि च पयश्च ते दधिपयसी। सर्पिश्च मधुश्च ते सर्पिर्मधुनी।

दधिपयसी। सर्पिर्मधुनी। मधुसर्पिषी। ब्रह्मप्रजापती। शिववैश्रवणौ। स्कन्दविशाखौ। परिव्राट्कौशिकौ। प्रवर्ग्योपसदौ। शुक्लकृष्णौ। इध्माबर्हिषी। निपातनाद्दीर्घः। दीक्षातपसी। श्रद्धातपसी। मेधातपसी। अध्ययनतपसी। उलूखलमुसले। आद्यावसाने। श्रद्धामेधे। ऋक्सामे। वाङ्मनसे। इति दधिपयआदीनि।

आर्यभाषा-अर्थ-(दधिपय आदीनि) दधिपयसी आदि (द्वन्द्वः) द्वन्द्व रूप शब्द (एकवचनम्) एक अर्थ के वाचक (न) नहीं होते हैं।

*उदा०-दधि च **पयश्च ते-दधिपयसी।** दही और दूध का संयोग। **सर्पिश्च मधु च ते सर्पिर्मधुनी।** घी और शहद का संयोग।*

*सिद्धि-**दधिपयसी।** दधि+सु+पयस्+सु। दधिपयस्+औ। दधिपयस्+शी। दधिपयस्+ई। दधिपयसी।*

यहां दधि और पयस् शब्द के द्वन्द्व समास में एकवद्भाव का प्रतिषेध होने से 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' (१।४।२२) से द्वित्वविवक्षा में द्विवचन हो गया है।

विशेष-दधि और पय (दूध) का मिश्रण करना उपयुक्त नहीं अपितु यहां समाहार द्वन्द्व समास न करके इतरेतरयोग द्वन्द्व का विधान किया गया है। यही भाव दधिपय आदि सभी शब्दों के द्वन्द्व समास में मतिगोचर होरहा है।

एकवद्भाव प्रतिषेधः--

(१४) अधिकरणैतावत्त्वे च।१५।

प०वि०-अधिकरण-एतावत्त्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-एतावतो भाव एतावत्त्वम् (तद्धितवृत्तिः)। **अधिकरणस्य**

एतावत्त्वमिति अधिकरणैतावत्त्वम्, तस्मिन्-अधिकरणैतावत्त्वे (षष्ठीतत्पुरुषः)। अधिकरणम्=द्रव्यम्। एतावत्त्वम्=इयत्ता मात्रेत्यर्थः।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्वो न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणैतावत्त्वे द्वन्द्व एकवचनं न।

अर्थः-अधिकरणैतावत्त्वे=द्रव्यस्य इयत्तायां गम्यमानायां द्वन्द्वसमास एकस्यार्थस्य वाचको न भवति।

उदा०-दश दन्तोष्ठाः। दश मार्दङ्गिकपाणविकाः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अधिकरणैतावत्त्वे) द्रव्य के परिमाण प्रकट होने पर (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक (न) नहीं होता है।

*उदा०-**दश दन्तोष्ठाः।** दस दांत और ओष्ठों का संयोग। **दश मार्दङ्गिपाणविकाः।** दश मृदङ्ग (ढोल) तथा पणव नामक वाद्ययन्त्र बजानेवालों का योग।*

__सिद्धि__-__दश दन्तोष्ठाः।__ दन्त+जस्+ओष्ठ+औ। दन्तोष्ठ+जस्। दन्तोष्ठाः।

*यहां दन्त और ओष्ठ का दश संख्या में परिमाण कथन किया गया है अतः इस सूत्र से यहां द्वन्द्व समास में एकवचन का प्रतिषेध है। पुनः **'बहुषु बहुवचनम्'** (१।४।२१) से बहुवचन हो जाता है।*

एकवद्भावविकल्पः-

(१६) विभाषा समीपे।१६।

प०वि०-विभाषा १।१ समीपे ७।१।

अनु०-एकवचनं द्वन्द्वोऽधिकरणैतावत्त्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपे द्वन्द्वो विभाषैकवचनम्।

अर्थः-अधिकरणैतावत्त्वस्य=द्रव्यपरिमाणस्य समीपे वाच्ये द्वन्द्वसमासो विकल्पेन एकस्यार्थस्य वाचको भवति।

उदा०-उपदशं दन्तोष्ठम्। उपदशा दन्तोष्ठाः। उपदशं मार्दङ्गिकपाणविकम्। उपदशा मार्दङ्गिकपाणविकाः।

__आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणैतावत्त्वे) द्रव्य के परिमाण की (समीपे) समीपता के कथन में (द्वन्द्वः) द्वन्द्व समास (विभाषा) विकल्प से (एकवचनम्) एक अर्थ का वाचक होता है।__

*उदा०-उपदशं दन्तोष्ठम्। लगभग दस दांत और ओष्ठ का समूह। **उपदशा दन्तोष्ठाः।** लगभग दस दांत और ओष्ठ का योग। उपदशं **मार्दङ्गिकपाणविकम्।** लगभग दस मृदङ्ग (ढोल) और पणव वाद्ययन्त्र बजानेववालों का समूह। **उपदशा मार्दङ्गिकपाणविकाः।** लगभग दस मृदङ्ग और पणव नामक वाद्ययन्त्र बजानेवालों का योग।*

सिद्धि-दन्तोष्ठम्। दन्त+जस+ओष्ठ+औ। दन्तोष्ठ+सु। दन्तोष्ठम्।

*दांत और ओष्ठ की लगभग दश संख्या के कथन में इनके द्वन्द्व समास में इस सूत्र से एकवद्भाव हुआ है। जहां एकवद्भाव नहीं होता है, वहां-दन्तोष्ठाः। यहां '**बहुषु बहुवचनम्**' (१।४।२१) से बहुवचन होता है।*

लिङ्गप्रकरणम्

द्विगुर्द्वन्द्वश्च–

(१) स नपुंसकम्।१७।

प०वि०-सः १।१ नपुंसकम् १।१।

अनु०-द्विगुः, एकवचनं द्विगुश्च सम्बध्यते।

अन्वयः-स द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकम्।

अर्थः-य एकस्यार्थस्य वाचको द्विगुः, द्वन्द्वश्च स नपुंसकलिङ्गो भवति।

उदा०-(१) **द्विगुः**-पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्। **दशानां** गवां समाहारो दशगवम्। (२) **द्वन्द्वः**-**पाणी** च पादौ च एतेषां समाहारः पाणिपादम्। शिरश्च ग्रीवा च एतयोः समाहारः शिरोग्रीवम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सः) जो एक अर्थ का वाचक द्विगु और द्वन्द्व समास है वह (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है।

*उदा०-(१) द्विगु-पञ्चानां गवां समाहारः **पञ्चगवम्।** पांच गायों का समूह। **दशानां गवां समाहारो दशगवम्।** दश गायों का समूह। (२) द्वन्द्व-**पाणी च पादौ च एतेषां समाहारः पाणिपादम्।** हाथ और पांव का संघात। **शिरश्च ग्रीवा च एतयोः समाहारः शिरोग्रीवम्।** शिर और गर्दन का संघात।*

*सिद्धि-(१) **पञ्चगवम्।** पञ्चन्+आम्+गो+आम्। पञ्चगो+टच्। **पञ्चगो+अ।** पञ्चगव+सु। पञ्चगवम्।*

*यहां **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगु समास है। **'गोरतद्धितलुकि'** (५।४।९२) से समासान्त टच् प्रत्यय है। **'द्विगुरेकवचनम्'** (२।४।१) से एकवद्भाव होता है। इस सूत्र से समस्त पद नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग में **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है।*

*(२) **पाणिपादम्।** पाणि+औ+पाद+औ। पाणिपाद+सु। पाणिपाद+अम्। पाणिपादम्।*

*यहां समाहार द्वन्द्व समास में **'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्'** (२।४।२) से एकवद् भाव होकर इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग होता है। नपुंसकलिङ्ग में **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है।*

अव्ययीभावः-

(२) अव्ययीभावश्च।१८।

प०वि०-अव्ययीभावः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-'नपुंसकम्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावश्च नपुंसकम्।

अर्थः-अव्ययीभावश्च समासो नपुंसकलिङ्गो भवति।

उदा०-स्त्रीष्वधि इति अधिस्त्रि। गुरुकुलस्य समीपमिति उपगुरुकुलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययीभावः) अव्ययीभाव समास (च) भी (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है।

*उदा०-**स्त्रीष्वधि इति अधिस्त्रि।** स्त्रियों के विषय में। **गुरुकुलस्य समीपमिति उपगुरुकुलम्।** गुरुकुल के समीप।*

सिद्धि-(१) अधिस्त्रि। *अधि+सु+स्त्री+सुप्। अधिस्त्रि+सु। अधिस्त्रि।*

*यहां अधि और स्त्री शब्द का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है। इस सूत्र से समस्त पद नपुंसकलिङ्ग होता है। **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से नपुंसकलिङ्ग में स्त्री शब्द का ह्रस्व होता है। **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४०) से अव्ययीभाव समास अव्यय होता है अतः **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' प्रत्यय का 'लुक्' हो जाता है।*

*(२) **उपगुरुकुलम्।** उप+सु+गुरुकुल+ङस्। उपगुरुकुल+सु। उपगुरुकुल+अम्। उपगुरुकुलम्।*

*यहां उप और गुरुकुल शब्द का **'अव्ययं विभक्तिसमीप०'** (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है। इस सूत्र से समस्तपद नपुंसकलिङ्ग होता है। **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४०) से अव्ययीभाव समास अव्यय होता है अतः **'अव्ययादाप्सुपः'***

(२।४।८२) से 'सु' का 'लुक्' प्राप्त है किन्तु 'नाव्ययीभावदतोऽम्त्वपञ्चम्याः' (२।४।८३) से 'उपगुरुकुल' शब्द के अकारान्त होने से 'सु' का 'लुक्' नहीं होता है, अपितु उसके स्थान में अम्-आदेश हो जाता है।

*विशेष- **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४०) से अव्ययीभाव समास का समस्तपद अव्यय होता है। अव्ययीभाव समास का प्रकरण **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से लेकर **'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्'** (२।१।२०) तक द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में देख लेवें।*

तत्पुरुषाधिकारः–

(३) तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः।१६।

प०वि०-तत्पुरुषः १।१ अनञ्-कर्मधारयः १।१।

स०-नञ् च कर्मधारयश्च तौ-नञ्कर्मधारयौ, नञ्कर्मधारयौ न विद्येते यस्मिन्त्सोऽनञ्कर्मधारयः (इतरेतरद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-नपुंसकमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषो नपुंसकम्।

अर्थः-नञ्कर्मधारयभिन्नस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, इत्यधिकारोऽयम्। यथा वक्ष्यति- **'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्'** (२।४।२५) इति, देवानां सेना इति देवसेनम्, देवसेना वा। असुराणां सेना इति असुरसेनम्, असुरसेना वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनञ्कर्मधारयः) नञ् और कर्मधारय से भिन्न (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है, यह अधिकार है। जैसे कि आगे कहेगा- 'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्' (२।४।२५)।

*उदा०-**देवानां सेना इति देवसेनम्, देवसेना वा।** देवताओं की सेना। **असुराणां सेना इति असुरसेनम्, असुरसेना वा।** असुरों की सेना।*

विशेष-इनकी सिद्धि यथास्थान दिखाई जायेगी।

कन्थान्तस्तत्पुरुषः–

(४) संज्ञायां कन्थोशीनरेषु।२०।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ कन्था १।१ उशीनरेषु ७।३।

अनु०-तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः, नपुंसकम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायामनञ्कर्मधारयः कन्थान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकमुशीनरेषु।

अर्थः-संज्ञायां विषये नञ्कर्मधारयभिन्नः कन्थान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, यदि सा कन्था उशीनरेषु भवति।

उदा०-सौशमिनां कन्था इति सौशमिकन्थम्। आह्वराणां कन्था इति आह्वरकन्थम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अनञ्कर्मधारयः) नञ् और कर्मधारय से भिन्न (कन्था) कन्था शब्द जिसके अन्त में है ऐसा (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है, यदि वह कन्था (उशीनरेषु) उशीनर नामक जनपद की हो।

*उदा०-**सौशमिनां कन्था इति सौशमिकन्थम्।** सौशमि लोगों की कन्था। **आह्वराणां कन्था इति आह्वरकन्थम्।** आह्वर लोगों की कन्था।*

*सिद्धि-**सौशमिकन्थम्। सौशमिः।** सुशम+इञ्। सौशम्+इ। सौशमि+सु। सौशमिः। सौशमि+आम्+कन्था+सु। सौशमिकन्थ+सु। सौशमिकन्थम्। सौशमि लोगों की कन्था।*

*यहां सौशमि और कन्था शब्द का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष समास है जो कि नञ् और कर्मधारय से भिन्न है। इस सूत्र से यह समस्तपद नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग होने से '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से कन्था शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में '**अतोऽम्**' (७।१।२४) से 'सु' को 'अम्' आदेश हो जाता है। ऐसे ही-**आह्वरकन्थम्।***

विशेष-(१) अमरकोष की हिन्दी टीका में 'कन्था' शब्द का अर्थ 'बिछौना' किया है।

(२) कन्था पण्य वस्तुओं में थी और व्यापारिक स्तर पर बनाई जाती थी। उशीनर की कन्थायें अन्य प्रदेशों में श्रेष्ठ गिनी जाती थी। (पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष पृ० ५७४)।

*(३) रावी और चनाब नदी के बीच के भूभाग में उशीनर नामक एक जनपद था। उस जनपद में बनी कन्थाओं की '**सौशमिकन्थम्**' और '**आह्वरकन्थम्**' संज्ञा-विशेष थी।*

उपज्ञोपक्रमान्तस्तत्पुरुषः-

(५) उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्।२१।

प०वि०-उपज्ञा-उपक्रमम् १।१ तद्-आदि-आचिख्यासायाम् ७।१।

स०-उपज्ञा च उपक्रमश्च एतयोः समाहार उपज्ञोपक्रमम् **(समाहारद्वन्द्वः)। तयोरादिरिति तदादिः, तस्य तदादेः, आख्यातुमिच्छा**

आचिख्यासा, तदादेराचिख्यासा इति तदाद्याचिख्यासा, तस्याम्-तदाद्याचिख्यासायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नपुंसकम्, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनञ्कर्मधारय उपज्ञोपक्रमान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं तदाद्याचिख्यासायाम्।

अर्थः-नञ्कर्मधारयभिन्न उपज्ञान्त उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, तदाद्याचिख्यासायाम्=तयोः प्रारम्भस्य प्रवक्तुमिच्छायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(१) **उपज्ञा**-पाणिनेरुपज्ञा इति पाणिन्युपज्ञम्। पाणिन्युपज्ञमकालकं व्याकरणम्। व्याडेरुपज्ञा इति व्याड्युपज्ञम्। व्याड्युपज्ञं दशहुष्करणम्।

(२) **उपक्रमः**-आद्यस्योपक्रम इति आद्युपक्रमम्। आद्योपक्रमं प्रासादः। नन्दस्योपक्रम इति नन्दोपक्रमम्। नन्दोपक्रमाणि मानानि।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(अनञ्कर्मधारयः) नञ् और कर्मधारय से भिन्न (उपज्ञा-उपक्रमम्) उपज्ञा और उपक्रम शब्द जिसके अन्त में हैं, ऐसा (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है, यदि वहां (तदाद्याचिख्यासायाम्) उन उपज्ञा और उपक्रम के प्रारम्भ के कथन की इच्छा हो।*

*उदा०-**उपज्ञा-पाणिन्युपज्ञमकालकं व्याकरणम्।** पाणिनिमुनि ने अपने उपज्ञान से सर्वप्रथम काल-लक्षणरहित व्याकरणशास्त्र की रचना की। **व्याड्युपज्ञं दशहुष्करणम्।** व्याडि मुनि ने अपने उपज्ञान से सर्वप्रथम दश हुष् शब्दों सहित काल-लक्षणयुक्त व्याकरणशास्त्र की रचना की। पाणिनि के 'वृत्' शब्द के समान व्याडि का 'हुष्' शब्द समाप्ति का सूचक है।*

*(२) उपक्रम-**आद्योपक्रमं प्रासादः।** आद्य (विश्वकर्मा) शिल्पी ने सर्वप्रथम प्रासाद=महल बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। **नन्दोपक्रमाणि मानानि।** नन्द नामक राजा ने सर्वप्रथम मान=बाटों से तोलने की पद्धति प्रारम्भ की।*

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि मगध देश के सम्राट् नन्द पाणिनि के मित्र थे। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में पाणिनिमुनि की शास्त्रकार परीक्षा हुई थी। राजा नन्द ने ही उक्त मान-पद्धति का उपक्रम किया था। (पा० का० भारतवर्ष पृ० ४७२-७३)

*सिद्धि-**पाणिन्युपज्ञम्।** पाणिनि+ङस्+उपज्ञा+सु। पाणिन्युपज्ञ+सु। पाणिन्युपज्ञ+अम्। पाणिन्युपज्ञम्।*

*यहां पाणिनि और उपज्ञा शब्द का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से समस्तपद नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग होने से '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से उपज्ञा शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में '**अतोऽम्**' (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। ऐसे ही-**व्याड्युपज्ञं दशहुष्करणम्**, आदि।*

छायान्तस्तत्पुरुषः-

(६) छाया बाहुल्ये।२२।

प०वि०-छाया १।१ बाहुल्ये ७।१।

बहुलस्य भावो बाहुल्यम्, तस्मिन्-बाहुल्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-नपुंसकम्, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनञ्कर्मधारयश्छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं बाहुल्ये।

अर्थः-नञ्कर्मधारयभिन्नश्छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति, बाहुल्ये गम्यमाने। समासे पूर्वपदस्यार्थस्य बाहुल्यमिष्यते, न छायायाः।

उदा०-शलभानां छाया इति शलभच्छायम्। इक्षूणां छाया इति इक्षुच्छायम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनञ्कर्मधारयः) नञ् और कर्मधारय से भिन्न (छाया) छाया शब्द जिसके अन्त में है ऐसा (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है यदि वहां (बाहुल्ये) पूर्वपद के अर्थ का बाहुल्य=आधिक्य हो।*

*उदा०-**शलभानां छाया इति शलभच्छायम्।** टिड्डी-दल की छाया। **इक्षूणां छाया इति इक्षुच्छायम्।** बहुत गन्नों की छाया।*

*सिद्धि-**शलभच्छायम्।** शलभ+आम्+छाया+सु। शलभच्छाय+सु। शलभच्छायम्।*

*यहां शलभ और छाया शब्द का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से समस्तपद नपुंसकलिङ्ग होता है। नपुंसकलिङ्ग होने से '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से छाया शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में '**अतोऽम्**' (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है।*

*यहां बाहुल्य का कथन इसलिये है कि यहां नपुंसकलिङ्ग न हो-**कुड्यच्छाया।** एक दीवार की छाया।*

सभान्तस्तत्पुरुषः–

(७) सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा।२३।

प०वि०–सभा १।१ राज-अमनुष्यपूर्वा १।१।

स०–न मनुष्य इति अमनुष्यः, राजा च अमनुष्यश्च तौ राजामनुष्यौ, राजामनुष्यौ पूर्वौ यस्याः सा राजामनुष्यपूर्वा (सभा) (नञ्तत्पुरुषद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–नपुंसकम्, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनञ्कर्मधारयो राजामनुष्यपूर्वः सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकम्।

अर्थः–नञ्कर्मधारयभिन्नो राजपूर्वोऽमनुष्यपूर्वश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति। अत्र राजशब्देन तत्पर्यायवाचिनां ग्रहणमिष्यते, न राजशब्दस्य।

उदा०–(१) **राजपूर्वः**–इनस्य सभा इति इनसभम्। ईश्वरस्य सभा इति ईश्वरसभम्। (२) **अमनुष्यपूर्वः**–राक्षसस्य सभा इति राक्षससभम्। पिशाचस्य सभा इति पिशाचसभम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(*अनञ्कर्मधारयः*) ***नञ् और*** *कर्मधारय से भिन्न (राजामनुष्यपूर्वः) राजपूर्वपदवाला तथा अमनुष्य=राक्षस पूर्वपदवाला तथा (सभा) सभा उत्तरपदवाला (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है। यहां राजा शब्द से उसके पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है, राजा शब्द का नहीं।*

*उदा०–(१) राजपूर्व–**इनस्य सभा इति इनसभम्।** राजा का भवन। **ईश्वरस्य सभा इति ईश्वरसभम्।** अर्थ पूर्ववत् है। (२) अमनुष्यपूर्व–**राक्षसस्य सभा इति राक्षससभम्।** राक्षस का घर। **पिशाचस्य सभा इति पिशाचसभम्।** पिशाच का घर।*

सभा–*सभा शब्द का समुदाय और शाला दो अर्थ हैं। यहां शाला अर्थ का ग्रहण किया गया है क्योंकि आगामी सूत्र '**अशाला च**' (२।४।२४) में शाला अर्थ का निषेध किया गया है। 'वासः **कुटी शाला सभा'इत्यमरः।***

सिद्धि–इनसभम्। *इन+ङस्+सभा+सु। इनसभ+सु। इनसभम्।*

*यहां इन और सभा शब्द का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष समास है। **इस** सूत्र से समस्तपद नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग होने से '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से सभा शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में '**अतोऽम्**' (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है।*

*विशेष-(१) राजपूर्वा-जब सभा शब्द का, राजा शब्द पूर्वपद होता तब समस्तपद नपुंसकलिङ्ग नहीं होता है, जैसे-**राज्ञ: सभा इति राजसभा।** राजा का भवन।*

*(२) **अमनुष्यपूर्वा**-पाणिनिमुनि के मत में समाज के मनुष्य और अमनुष्य दो भेद हैं। **'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च'** (४।१।६१) के प्रमाण से मनु के सन्तान मनुष्य अथवा मानव कहाते हैं और शेष अमनुष्य अर्थात् राक्षस आदि हैं। जब सभा शब्द का कोई मनुष्यवाची शब्द पूर्वपद होता है तब नपुंसकलिङ्ग नहीं होता है जैसे-**देवदत्तस्य सभा इति देवदत्तसभा।** देवदत्त का घर।*

सभान्तस्तत्पुरुषः-

(८) अशाला च।२४।

प०वि०-अशाला १।१। च अव्ययपदम्।

स०-शाला गृहमित्यर्थ:। न शाला इति अशाला (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-नपुंसकम्, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय: सभा इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अनञ्कर्मधारयोऽशालार्थश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकम्।

अर्थ:-नञ्कर्मधारयभिन्न: शालार्थवर्जित: सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकलिङ्गो भवति। सभाशब्दोऽत्र समुदायवचनो गृह्यते।

उदा०-स्त्रीणां सभा इति स्त्रीसभम्। दासीनां सभा इति दासीसभम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(अनञ्कर्मधारय:) नञ् और कर्मधारय से भिन्न (अशाला च) और शाला अर्थ से रहित (सभा) सभा शब्द जिसके अन्त में है वह (तत्पुरुष:) तत्पुरुष समास (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है। यहां 'सभा' शब्द समुदायवाची ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**स्त्रीणां सभा इति स्त्रीसभम्।** स्त्रियों का समुदाय। **दासीनां सभा इति दासीसभम्।** दासियों का समूह।*

***सिद्धि-स्त्रीसभम्।** स्त्री+आम्+सभा+सु। स्त्रीसभ+सु। स्त्रीसभम्।*

*यहां स्त्री और सभा शब्द का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष है। इस सूत्र से समस्तपद नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग होने से **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से सभा शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है।*

***विशेष**-यहां शाला अर्थ का निषेध इसलिये किया गया है कि यहां नपुंसकलिङ्ग न हो जैसे-**अनाथसभा।** अनाथ की कुटी।*

सेनान्तादितत्पुरुषः–

(६) विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्।२५।

प०वि०–विभाषा १।१ सेना–सुरा–छाया–शाला–निशानाम् ६।३।

स०–सेना च सुरा च छाया च शाला च निशा च ताः–सेनासुराच्छाया-शालानिशाः, तासाम्–सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–नपुंसकम्, तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनञ्कर्मधारयः सेना०निशान्तास्तत्पुरुषो विभाषा नपुंसकम्।

अर्थः–नञ्कर्मधारयभिन्नः सेनासुराच्छायाशालानिशान्तानां शब्दानां तत्पुरुषो विकल्पेन नपुंसकलिङ्गो भवति।

उदा०–(१) **सेना**–देवानां सेना इति देवसेनं देवसेना वा। (२) **सुरा**–यवानां सुरा इति यवसुरं यवसुरा वा। (३) **छाया**–कुड्यस्य छाया इति कुड्यच्छायं कुड्यछाया वा। (४) **शाला**–गवां शाला इति गोशालं गोशाला वा। (५) **निशा**–शुनां निशा इति श्वनिशं श्वनिशा वा।

यस्यां निशायां श्वान उपवसन्ति सा श्वनिशमित्युच्यते। सा पुनः कृष्णचतुर्दशी, तस्यां हि श्वान उपवसन्तीति प्रसिद्धिः। इति पदमञ्जर्यां हरदत्तः। यस्यां निशायां श्वानो मत्ता विहरन्ति सा श्वनिशं श्वनिशेति चोच्यते। इति न्यासकारः।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(अनञ्कर्मधारयः) नञ्कर्मधारय से भिन्न (सेना०निशानाम्) सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा शब्द जिसके अन्त में है वह (तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास (विभाषा) विकल्प से (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है।

*उदा०–(१) **सेना–देवानां सेना इति देवसेनं देवसेना वा।** देवताओं की सेना। (२) **सुरा–यवानां सुरा इति यवसुरं यवसुरा वा।** जौ की शराब। (३) **छाया–कुड्यस्य छाया इति कुड्यच्छायं कुड्यच्छाया वा।** दीवार की छाया। (४) **शाला–गवां शाला इति गोशालं गोशाला वा।** गायों का घर। (५) **निशा–शुनां निशा इति श्वनिशं श्वनिशा वा।** कुत्तों की रात।*

*जिस रात में कुत्ते उपवास रखते हैं उसे **'श्वनिशम्'** अथवा **'श्वनिशा'** कहते हैं और वह कृष्ण चतुर्दशी है ऐसी लोक-प्रसिद्धि है (पदमञ्जरी हरदत्त)। जिसमें कुत्ते मस्त होकर घूमते हैं उसे 'श्वनिशम्' अथवा 'श्वनिशा' कहते हैं (न्यासकार जिनेन्द्र बुद्धिपाद, द्र० २।४।२५)।*

*सिद्धि-**देवसेनम्।** देव+आम्+सेना+सु। देवसेन+सु। देवसेनम्।*

*यहां देव और सेना शब्द का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से समस्तपद विकल्प से नपुंसकलिङ्ग है। नपुंसकलिङ्ग के पक्ष में **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से सेना शब्द को ह्रस्व होता है। नपुंसकलिङ्ग में **'अतोऽम्'** (७।२।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। जहां नपुंसकलिङ्ग नहीं होता वहां-**देवसेना।** ऐसे ही **यवसुरम्, यवसुरा** आदि।*

द्वन्द्वस्तत्पुरुषश्च-

(१०) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः।२६।

प०वि०-परवत् अव्ययपदम्, लिङ्गम् १।१ द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः ७।२।

स०-परस्य इव इति परवत् (तद्धितवृत्तिः)। द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ, तयोः द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-द्वन्द्वे तत्पुरुषे च समासे परवत्=उत्तरपदस्येव लिङ्गं भवति।

उदा०-(१) **द्वन्द्वः-**कुक्कुटश्च मयूरी च ते कुक्कुटमयूर्यौ। मयूरी च कुक्कुटश्च तौ मयूरीकुक्कुटौ। (२) **तत्पुरुषः-**अर्द्धं पिपल्या इति अर्द्धपिप्पली। अर्द्धं कौशातक्या इति अर्द्धकौशातकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वन्द्वतत्पुरुषयोः) द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में (परवत्) उत्तरपद के समान (लिङ्ग) लिङ्ग होता है।

*उदा०-(१) द्वन्द्व-**कुक्कुटश्च मयूरी च ते कुक्कुटमयूर्यौ।** एक मुर्गा और एक मोरणी दोनों। **मयूरी च कुक्कुटश्च तौ मयूरीकुक्कुटौ।** एक मोरणी और एक मुर्गा दोनों। (२) तत्पुरुष-**अर्ध पिप्पल्या इति अर्ध पिप्पली।** छोटी पीपल का आधा भाग। **अर्ध कौशातक्या इति अर्ध कौशातकी।** तोरी का आधा भाग।*

*सिद्धि-(१) **कुक्कुटमयूर्यौ।** कुक्कुट+सु+मयूरी+सु। कुक्कुटमयूरी+औ। कुक्कुटमयूर्यौ।*

यहां द्वन्द्व समास में पूर्वपद कुक्कुट शब्द पुंलिङ्ग और उत्तरपद मयूरी शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इस सूत्र से समस्तपद उत्तरपद मयूरी के समान स्त्रीलिङ्ग होता है।

*(२) **अर्द्धपिप्पली।** अर्ध+सु+पिप्पली+ङस्। अर्धपिप्पली+सु। अर्धपिप्पली।*

*यहां अर्ध और पिप्पली शब्द का **'अर्धं नपुंसकम्'** (२।२।२) से एकदेशितत्पुरुष समास है। यहां पूर्वपद अर्ध शब्द नपुंसक और उत्तरपद पिप्पली शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इस सूत्र से समस्तपद उत्तरपद पिप्पली के समान स्त्रीलिङ्ग होता है। इस पाद के प्रारम्भ में द्वन्द्व समास में एकवद्भाव का विधान किया है। एकवद्भाववाले द्वन्द्व समास का*

'स नपुंसकम्' (२।४।१७) से नपुंसकलिङ्ग होता है, अतः यहां द्वन्द्व समास के लिङ्ग विधान में इतरेतरयोगद्वन्द्व का ग्रहण समझना चाहिये।

द्वन्द्वसमासः–

(११) पूर्ववदश्ववडवौ।२७।

प०वि०–पूर्ववत् अव्ययपदम्, अश्ववडवौ १।२। षष्ठ्यर्थे (प्रथमा)।

स०–पूर्वस्येव पूर्ववत् (तद्धितवृत्तिः)। अश्वश्च वडवा च तौ–अश्ववडवौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लिङ्गं द्वन्द्वे इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः–अश्ववडयोर्द्वन्द्वे पूर्ववत् लिङ्गम्।

अर्थः–अश्ववडयोः शब्दयोर्द्वन्द्वे समासे पूर्ववत्-पूर्वपदस्य इव लिङ्गं भवति। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०–अश्वश्च वडवा च तौ–अश्ववडवौ।

आर्यभाषा–अर्थ–(अश्ववडवौ) अश्व और वडवा शब्द के (द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (पूर्ववत्) पूर्वपद के समान (लिङ्गम्) लिङ्ग होता है। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है।

*उदा०–**अश्वश्च वडवा च तौ अश्ववडवौ।** एक घोड़ा और एक घोड़ी दोनों।*

***सिद्धि–अश्ववडवौ।** अश्व+सु+वडवा+सु। अश्ववडव+औ। अश्ववडवौ।*

यहां द्वन्द्व समास में पूर्वपद अश्व पुंलिङ्ग और उत्तरपद वडवा शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इस सूत्र से समस्तपद, पूर्वपद अश्व के समान पुंलिङ्ग होता है।

'विभाषा वृक्षमृग०' (२।४।१२) से पशुओं के द्वन्द्व समास में विकल्प से एकवद्भाव का विधान किया गया है। अश्व और वडवा के द्वन्द्व समास में जब एकवद्भाव नहीं होता तब इतरेतरयोग समास में यह पूर्वपद के समान पुंलिङ्ग होता है।

द्वन्द्वसमासः–

(१२) हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि।२८।

प०वि०–हेमन्त-शिशिरौ १।२ अहो-रात्रे १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०–हेमन्तश्च शिशिरं च तौ हेमन्तशिशिरौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अहश्च रात्रिश्च ते–अहोरात्रे (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अत्र उभयत्र षष्ठ्यर्थे प्रथमा।

अनु०-लिङ्गं द्वन्द्वे पूर्ववदिति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि विषये हेमन्तशिशिरयोरहोरात्रयोश्च द्वन्द्वे पूर्ववल्लिङ्गम्।

अर्थ:-छन्दसि विषये हेमन्तशिशिरयोरहोरात्रयोश्च द्वन्द्वे समासे पूर्ववत्=पूर्वपदस्येव लिङ्गं भवति। **'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:'** (२।४।२६) इत्यस्यायमपवाद:।

उदा०-हेमन्तश्च शिशिरं च तौ हेमन्तशिशिरौ। हेमन्ताशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं (यजु० १०।१४)। अहश्च रात्रिश्च ते अहोरात्रे। अहोरात्रे द्रवत: संविदाने (अथर्व० १०।७।६)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हेमन्तशिशिरौ) हेमन्त और शिशिर और (अहोरात्रे) अहन् और रात्रि शब्द के (द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (च) भी (पूर्ववत्) पूर्वपद के समान (लिङ्गम्) लिङ्ग होता है।

*उदा०-**हेमन्तश्च शिशिरं च तौ हेमन्तशिशिरौ।** हेमन्त और शिशिर ऋतु दोनों। वैदिक प्रयोग-**हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं** (यजु० १०।१४)। **अहश्च रात्रिश्च ते अहोरात्रे।** दिन और रात दोनों। वैदिक प्रयोग-**अहोरात्रे द्रवत: संविदाने** (अथर्व० १०।७।६)।*

*सिद्धि-(१) **हेमन्तशिशिरौ।** हेमन्त+सु+शिशिर+सु। हेमन्तशिशिर+औ। हेमन्तशिशिरौ।*

यहां द्वन्द्व समास में पूर्वपद हेमन्त शब्द पुंलिङ्ग और उत्तरपद शिशिर शब्द नपुंसकलिङ्ग है। इस सूत्र से समस्तपद, पूर्वपद हेमन्त के समान पुंलिङ्ग होता है।

*(२) **अहोरात्रे।** अहन्+सु+रात्रि+सु। अहरु+रात्रि। अहउ+रात्रि। अहोरात्र+औ। अहोरात्र्+शी। अहोरात्र+ई। अहोरात्रे।*

यहां द्वन्द्व समास में पूर्वपद अहन् शब्द नपुंसकलिङ्ग और उत्तरपद रात्रि शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इस सूत्र से समस्त पद, पूर्वपद अहन् के समान नपुंसकलिङ्ग होता है।

यहां अहन् शब्द को 'अहन्' (८।२।६८) से रुत्व, 'हशि च' (६।१।११४) से उत्व और 'आद्गुण:' (६।१।८६) से गुण रूप एकादेश होता है। छ: ऋतुओं का परिचय यह है-

(१)	*वसन्त (चैत्र-वैशाख)*	*(२)*	*ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़)*
(३)	*वर्षा (श्रावण-भाद्रपद)*	*(४)*	*शरद् (आश्विन-कार्तिक)*
(५)	*हेमन्त (मार्गशीर्ष-पौष)*	*(६)*	*शिशिर (माघ-फाल्गुन)*

तत्पुरुषः--

(१३) रात्राह्नाहाः पुंसि।२६।

प०वि०-रात्र-अह्न-अहा: १।३ पुंसि ७।१।

स०-रात्रश्च अह्नश्च अहश्च ते-रात्राह्नाहा: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कृतसमासान्तानां शब्दानां निर्देशोऽयम्।

अनु०-तत्पुरुष: इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वय:-रात्राह्नाहान्तस्तत्पुरुष: पुंसि।

अर्थ:-रात्र-अह्न-अहशब्दान्तस्तत्पुरुष: समास: पुंसि=पुंलिङ्गे भवति। **'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:'** (२।४।२६) इति परल्लिङ्गतया स्त्री-नपुंसकलिङ्गयो: प्राप्तयोर्वचनमिदमाराब्धम्।

उदा०-(१) रात्र:-द्वयो रात्र्यो: समाहार:, द्विरात्र:। तिसृणां रात्रीणां समाहार:, त्रिरात्र:। **(२) अह्न:**-अह्न: पूर्व इति पूर्वाह्ण:। अह्नोऽपर इति अपराह्ण:। अह्नो मध्य इति मध्याह्न:। **(३) अह:**-द्वयोरह्नो: समाहार:, द्व्यह:। त्रयाणामह्नां समाहार:, त्र्यह:।

*आर्यभाषा-अर्थ-(रात्राह्नाहा:) रात्र, अह्न और अह: शब्द जिसके अन्त में है वह (तत्पुरुष:) तत्पुरुष समास (पुंसि) पुंलिङ्ग में होता है। यह **'परवलिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:'** (२।४।२६) का अपवाद है।*

*उदा०-(१) रात्र-**द्वयो रात्र्यो: समाहार:, द्विरात्र:।** दो रात्रियों का समाहार (एकीभाव)। **तिसृणां रात्रीणां समाहार इति त्रिरात्र:।** तीन रात्रियों का समाहार। (२) **अह्न-अह्न: पूर्व इति पूर्वाह्ण:।** दिन का पूर्व भाग। **अह्नोऽपर इति अपराह्ण:।** दिन का दूसरा भाग। **अह्नो मध्य इति मध्याह्न:।** दिन का मध्य भाग। (३) अह:-**द्वयोरह्नो: समाहार इति द्व्यह:।** दो दिनों का समाहार (एकीभाव)। **त्रयाणामह्नां समाहार इति त्र्यह:।** तीन दिनों का समाहार।*

*सिद्धि-(१) **द्विरात्र:।** द्वि+सु+रात्रि+सु। द्विरात्रि+अच्। द्विरात्र+अ। द्विरात्र+सु। द्विरात्र:।*

यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से द्वि और रात्रि शब्द का समाहार अर्थ में द्विगु तत्पुरुष समास है। 'अह: सर्वैकदेशसंख्यापुण्याच्च रात्रे:' (५।४।८७) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४२) से रात्रि के इकार का लोप होता है। यहां 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:' (२।४।२६) से उत्तरपद रात्रि शब्द के समान स्त्रीलिङ्ग प्राप्त था। इस सूत्र से समस्तपद पुंलिङ्ग होता है।

(२) पूर्वाह्णः । पूर्व+सु+अह्न+ङस् । पूर्वाहिन्+अच् । पूर्वाह्न+अ । पूर्वाहिन्+अ । पूर्वाह्णः ।

*यहां **'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे'** (२ ।२ ।१) से पूर्व और अहन् शब्द का एकदेशी तत्पुरुष समास है। **'रात्राहःसखिभ्यष्टच्'** (५ ।४ ।९१) से समासान्त टच् प्रत्यय है। **'अह्नोऽह्न एतेभ्यः'** (५ ।४ ।८८) से अहन् के स्थान में अह्न आदेश होता है। **'अह्नोऽदन्तात्'** (८ ।४ ।७) से अह्न के न को णत्व होता है। यहां पूर्ववत् उत्तरपद अहन् शब्द के समान नपुंसकलिङ्ग प्राप्त था इस सूत्र से समस्तपद पुंलिङ्ग होता है।*

(३) द्व्यहः । द्वि+सु+अहन्+सु । द्व्यहन्+टच् । द्व्यह्+अ । द्व्यह+सु । द्व्यहः ।

*यहां **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२ ।१ ।५१) से द्वि और अहन् शब्द का समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। **'न संख्यादेः समाहारे'** (५ ।४ ।८९) से अहन् के स्थान में अह्न आदेश नहीं होता है। **'अह्नष्टखोरेव'** (६ ।४ ।१४५) से अहन् के टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है।*

तत्पुरुषः–

(१३) अपथं नपुंसकम् ।३० ।

प०वि०–अपथम् १ ।१ नपुंसकम् १ ।१ ।

स०–न पन्था इति अपथम् (नञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०–'तत्पुरुषः' इत्यनुवर्तनीयम् ।

अन्वयः–अपथमित्यत्र तत्पुरुषे नपुंसकम् ।

अर्थः–अपथम् इत्यत्र तत्पुरुषे समासे नपुंसकलिङ्गं भवति ।

उदा०–न पन्था इति अपथम् । अपथमिदम् । अपथानि गाहते मूढः ।

आर्यभाषा–अर्थ–(अपथम्) अपथ इस तत्पुरुष समास में (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होता है।

*उदा०–**न पन्था इति अपथम् ।** जो ठीक मार्ग नहीं है=कुपथ। **अपथमिदम् ।** यह कुमार्ग है। **अपथानि गाहते मूढः ।** मूर्ख कुमार्ग में धक्के खाता है।*

सिद्धि–अपथम् । *नञ्+सु+पथिन्+सु । अ+पथिन्+अ । अपथ्+अ । अपथ+सु । अपथ+अम् । अपथम् ।*

*यहां **'नञ्'** (२ ।२ ।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। **'ऋक्पूरब्धूःपथामनक्षे'** (५ ।४ ।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६ ।४ ।१४४) से पथिन् के टि-भाग (इन्) का लोप हो जाता है। यहां **'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः'** (२ ।२ ।२६) से उत्तरपद पथिन् शब्द के समान समस्तपद पुंलिङ्ग प्राप्त था, इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग होता है।*

तत्पुरुषः–

(१४) अर्धर्चाः पुंसि च।३१।

प०वि०–अर्धर्चाः १।३ पुंसि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–अर्धम् ऋचः इति अर्धर्चः, ते–अर्धर्चाः (एकदेशितत्पुरुषः)। अत्र बहुवचनमाद्यर्थद्योतकम्।

अनु०–नपुंसकमित्यनुवर्तते।

अन्वयः–अर्धर्चाः पुंसि नपुंसके च।

अर्थः–अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि नपुंसके च भवन्ति।

उदा०–अर्धम् ऋचः इति अर्धर्चः, अर्धर्चं वा। गोमयो गोमयं वा, इत्यादिकम्।

अर्द्धर्च। गोमय। कषाय। कार्षापण। कुतप। कपाट। शङ्ख। चक्र। गूथ। यूथ। ध्वज। कबन्ध। पद्म। गृह। सरक। कंस। दिवस। यूप। अन्धकार। दण्ड। कमण्डलु। मण्ड। भूत। द्वीप। द्यूत। चक्र। धर्म। कर्मन्। मोदक। शतमान। यान। नख। नखर। चरण। पुच्छ। दाडिम। हिम। रजत। सक्तु। पिधान। सार। पात्र। घृत। सैन्धव। औषध। आढक। चषक। द्रोण। खलीन। पात्रीव। षष्टिक। वार। बाण। प्रोथ। कपित्थ। शुष्क। शील। शुल्व। सीधु। कवच। रेणु। कपट। सीकर। मुसल। सुवर्ण। यूप। चमस। वर्ण। क्षीर। कर्ष। आकाश। अष्टापद। मङ्गल। निधन। निर्यास। जम्भ। वृत्त। पुस्त। क्ष्वेडित। शृङ्ग। शृङ्खल। मधु। मूल। मूलक। शराव। शाल। वप्र। विमान। मुख। प्रग्रीव। शूल। वज्र। कर्पट। शिखर। कल्क। नाट। मस्तक। वलय। कुसुम। तृण। पङ्क। कुण्डल। किरीट। अर्बुद। अंकुश। तिमिर। आश्रम। भूषण। इल्कस। मुकुल। वसन्त। तडाग। पिटक। विटङ्क। माष। कोश। फलक। दिन। दैवत। पिनाक। समर स्थाणु। अनीक। उपवास। शाक। कर्पास। चषाल। खण्ड। दर। विटप। रण। बल। मल। मृणाल। हस्त। सूत्र। ताण्डव। गाण्डीव। मण्डप। पटह। सौध। पार्श्व। शरीर। फल। छल। पुर। राष्ट्र। विश्व। अम्बर।

कुट्टिम। मण्डल। ककुद। तोमर। तोरण। मञ्चक। पुङ्ख। मध्य। बाल। वल्मीक। वर्ष। वस्त्र। देह। उद्यान। उद्योग। स्नेह। स्वर। सङ्गम। निष्क। क्षेम। शूक। छत्र। पवित्र। यौवन। पानक। मूषिक। वल्कल। कुञ्ज। विहार। लोहित। विषाण। भवन। अरण्य। पुलिन। दृढ। आसन। ऐरावत। शूर्प। तीर्थ। लोमश। तमाल। लोह। दण्डक। शपथ। प्रतिसर। दारु। धनुस्। मान। तङ्क। वितङ्क। मठ। सहस्र। ओदन। प्रवाल। शकट। अपराह्ण। नीड। शकल। कुणप। मुण्ड। पूत। मरु। लोमन। लिङ्ग। सीर। क्षत्त। ऋण। कडार। पूर्ण। पणव। विशाल। बुस्त। पुस्तक। पल्लव। निगड। खल। स्थूल। शार। नाल। प्रवर। कटक। कण्टक। छाल। कुमुद। पुराण। जाल। स्कन्ध। ललाट। कुङ्कुम। कुशल। विडङ्ग। पिण्याक। आर्द्र। हल। योध। बिम्ब। कुक्कुट। कुडप। खण्डल। पञ्चक। वसु। उद्यम। स्तन। स्तेन। क्षत्र। कलह। पालक*। वर्चस्क। कूर्च। तण्डक। तण्डुल। इत्यर्धर्चादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अर्धर्चाः) अर्धर्चा आदि शब्द (पुंसि) पुंलिङ्ग (च) और (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग होते हैं।

*उदा०-**अर्धम् ऋच इति अर्धर्चः।** ऋचा का आधा भाग। **गोमयः, गोमयम्।** गौ का पुरीष (मल) गोबर, इत्यादि।*

*सिद्धि-**अर्धर्चः।** अर्ध+सु+ऋच्+ङस्। अर्ध+ऋच्+अ। अर्धर्च+सु। अर्धर्चः।*

यहां अर्ध और ऋच् शब्द का 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' (२।२।२६) से उत्तरपद शब्द ऋक् शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से समस्तपद, स्त्रीलिङ्ग प्राप्त था, इस सूत्र से पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग होता है।

आदेशप्रकरणम् (अन्वादेशे)

इदम् (अश्)–

(१) इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ।३२।

प०वि०-इदमः ६।१ अन्वादेशे ७।१ अश् १।१ अनुदात्तः १।१ तृतीया-आदौ ७।१।

*हल इत्यधिकं पुस्तकान्तरे।

स०-आदेशः=कथनम्। अन्वादेशोऽनुकथनम्, तस्मिन्-अन्वादेशे। तृतीया आदिर्यस्याः सा तृतीयादिः, तस्याम्-तृतीयादौ (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-अन्वादेशे इदमोऽश् अनुदात्तस्तृतीयादौ।

अर्थः-अन्वादेशविषयस्य इदंशब्दस्य स्थानेऽश्-आदेशो भवति, स चानुदात्तो भवति, तृतीयादौ विभक्तौ परतः।

उदा०-आदेशवाक्यम्-आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो आभ्यामहरप्यधीतम्। **आदेशवाक्यम्**-अस्मै छात्राय कम्बलं देहि। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो अस्मै शाटकमपि देहि। **आदेशवाक्यम्**-अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो अस्य प्रभूतं स्वम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्वादेशे) अनुकथन विषयक (इदमः) इदम् शब्द के स्थान में (अश्) अश्-आदेश होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है (तृतीयादौ) तृतीया आदि विभक्ति परे होने पर।

*उदा०-आदेशवाक्य-**आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता**। इन दो छात्रों ने सारी रात पढ़ा। अन्वादेशवाक्य-**अथो आभ्यामहरप्यधीतम्**। और इन दोनों छात्रों ने सारा दिन भी पढ़ा। आदेशवाक्य-**अस्मै छात्राय कम्बलं देहि**। इस छात्र को कम्बल दे। अन्वादेशवाक्य-**अथो अस्मै शाटकमपि देहि**। और इस छात्र को एक धोती भी दे। आदेशवाक्य-**अस्य छात्रस्य शोभनं शीलम्**। इस छात्र का स्वभाव अच्छा है। अन्वादेशवाक्य-**अथो अस्य प्रभूतं स्वम्**। और इसके पास पर्याप्त धन भी है।*

*सिद्धि-**आभ्याम्**। इदम्+भ्याम्। अश्+भ्याम्। अ+भ्याम्। आभ्याम्।*

यहां अन्वादेश विषय में इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में अश्-आदेश है। यह शित् होने से 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। इसका स्वर अनुदात्त है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से सु आदि प्रत्ययों का स्वर भी अनुदात्त होता है।

एतद् (अश्)-

(२) एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ।३३।

प०वि०-एतदः ६।१ त्र-तसोः ७।२ त्र-तसौ १।२ च अव्ययपदम्, अनुदात्तौ १।२।

स०-त्रश्च तस् च तौ-त्रतसौ, तयोः-त्रतसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। त्रश्च तस् च तौ-त्रतसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्वादेशे, अश्, अनुदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्वादेशे एतदोऽश् अनुदात्तस्त्रतसोः, त्रतसौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अन्वादेशविषयस्य एतद्-शब्दस्य स्थानेऽश्-आदेशो भवति, स चानुदात्तो भवति, त्रतसोः प्रत्यययोः परतः, तौ त्रतसौ चानुदात्तौ भवतः।

उदा०-**आदेशवाक्यम्**-एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो अत्र युक्ता अधीमहे। **आदेशवाक्यम्**-एतस्मात् अध्यापकात् छन्दोऽधीष्व। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो अतो व्याकरणमप्यधीष्व।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्वादेशे) अनुकथन विषयक (एतदः) एतद् शब्द के स्थान में (अश्) अश् आदेश होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है (त्रतसोः) त्र और तस् प्रत्यय परे होने पर और वे (त्रतसौ) त्र और तस् प्रत्यय (च) भी (अनुदात्तौ) अनुदात्त होते हैं।

*उदा०-(१) त्र-आदेशवाक्य-**एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः।** हम इस गांव में सुखपूर्वक रहते हैं। अन्वादेशवाक्य-**अथो अत्र युक्ता अधीमहे।** और हम यहां लगनपूर्वक पढ़ते हैं। (२) तस्-आदेशवाक्य-**अस्माद् अध्यापकात् छन्दोऽधीष्व।** तू इस अध्यापक से छन्द पढ़। अन्वादेशवाक्य-**अथो अस्माद् व्याकरणमप्यधीष्व।** और तू इस अध्यापक से व्याकरण भी पढ़।*

*सिद्धि-(१) **अत्र।** एतद्+ङि+त्रल्। अश्+त्र। अ+त्र। अत्र।*

*यहां एतद् शब्द से **'सप्तम्यास्त्रल्'** (५।३।१०) से त्रल् प्रत्यय है। इस त्रल् प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से अन्वादेश विषय में 'एतद्' के स्थान में 'अश्' सर्वादेश होता है। यह अश् आदेश तथा त्रल् प्रत्यय अनुदात्त होते हैं।*

*(२) **अतः।** एतद्+ङसि+तसिल्। अश्+तस्। अ+तस्। अ+तः। अतः।*

*यहां 'एतद्' शब्द से **'पञ्चम्यास्तसिल्'** (५।३।७) से तसिल् प्रत्यय है। शेष कार्य 'अत्र' के समान हैं।*

*विशेष-एतद् के स्थान में **'एतदोऽश्'** (५।३।५) से अश् आदेश सिद्ध था, अनुदात्त स्वर के लिये यहां अश् आदेश का विधान किया गया है।*

इदम्, एतद् (एन)-

(३) द्वितीयाटौस्स्वेनः।३४।

प०वि०-द्वितीया-टौ-ओस्सु ७।३ एनः १।१।

स०-द्वितीया च टा च ओस् च ते-द्वितीयाटौसः, तेषु-द्वितीयाटौस्सु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'इदमः' इति मण्डुकप्लुत्याऽनुवर्तते। अन्वादेशे, अनुदात्त एतद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदम् एतदश्चैनोऽनुदात्तो द्वितीयाटौस्सु।

अर्थः-(१) इदम् (द्वितीया) आदेशवाक्यम्-इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो एनं व्याकरणमप्यध्यापय। **टा-आदेशवाक्यम्**-अनेन छात्रेण रात्रिरधीता। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो एतेनाहरप्यधीतम्। **ओस्-आदेशवाक्यम्**-अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।

(२) एतद् (द्वितीया) आदेशवाक्यम्-एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो एनं व्याकरणमप्यध्यापय। **टा-आदेशवाक्यम्**-एतेन छात्रेण रात्रिरधीता। **अन्वारदेशवाक्यम्**-अथो एनेनाहरप्यधीतम्। **ओस्-आदेशवाक्यम्**-एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्। **अन्वादेशवाक्यम्**-अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्वादेशे) अनुकथन विषयक (इदमः) इदम् शब्द के स्थान में (एतदः) एतद् शब्द के स्थान में (एनः) एन-आदेश होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है (द्वितीयाटौस्सु) द्वितीया विभक्ति, टा और ओस् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(१) इदम् (द्वितीया) आदेशवाक्य-**इमं छात्रं छन्दोऽध्यापय।** तू इस छात्र को छन्दशास्त्र पढ़ा। अन्वादेशवाक्य-**अथो एनं व्याकरणमप्यध्यापय।** और तू इसे व्याकरणशास्त्र भी पढ़ा। टा-आदेशवाक्य-**अनेन छात्रेण रात्रिरधीता।** इस छात्र ने सारी रात पढ़ा। अन्वादेशवाक्य-**अथो एनेनाहरप्यधीतम्।** और इसने सारा दिन भी पढ़ा। ओस्-आदेशवाक्य-**अनयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्।** इन दो छात्रों का स्वभाव अच्छा है। अन्वादेशवाक्य-**अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।** और इन दोनों के पास पर्याप्त धन भी है।*

*(२) एतद् (द्वितीया) आदेशवाक्य-एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय। अन्वादेशवाक्य-**अथो एनं व्याकरणमप्यध्यापय।** टा-आदेशवाक्य-अनेन छात्रेण रात्रिरधीता। अन्वारदेशवाक्य-**अथो अनेनाहरप्यधीतम्।** ओस्-आदेशवाक्य-**एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्।** अन्वादेशवाक्य-**अथो एनयोः प्रभूतं स्वम्।** इन वाक्यों का अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **एनम्।** इदम्+अम्। एन+अम्। एनम्।*

यहां द्वितीया विभक्ति के अम् प्रत्यय परे होने पर 'इदम्' शब्द के स्थान में अन्वादेश विषय में एन-आदेश है।

(२) एनेन। इदम्+टा। एन+इन। एनेन।

यहां टा-प्रत्यय परे होने पर पूर्ववत् एन-आदेश है।

(३) एनयो:। इदम्+ओस्। एन+ओस्। एने+ओस्। एनयो।

यहां ओस् प्रत्यय के परे होने पर पूर्ववत् एन-आदेश होता है।

(४) एतद् शब्द के स्थान पर जो एन-आदेश होता है उसकी सिद्धि भी ऐसे ही समझें।

आर्धधातुकप्रकरणम्

आर्धधातुकाधिकारः–

(१) आर्धधातुके।३५।

वि०–आर्धधातुके ७।१, विषयसप्तम्येषा।

अर्थः–'आर्धधातुके' इत्यधिकारोऽयम्, **'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनिलुगणिञोः'** (२।४।५८) यावत्। यदित ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामस्तदार्धधातुके विषये तद् वेदितव्यम्। यथास्थानमुदाहरिष्यामः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(आर्धधातुके) आर्धधातुके इसका **'ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनिलुगणिञोः'** (२।४।५८) सूत्र तक अधिकार है। पाणिनिमुनि इससे आगे जो कहेंगे उसे आर्धधातुक विषय में जानें। इसके उदाहरण यथास्थान दिये जायेंगे।*

*विशेष-(१) आर्धधातुक-धातु से सार्वधातुक और आर्धधातुक नामक दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं। **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) जो तिङ् और शित् प्रत्यय हैं, उन्हें सार्वधातुक कहते हैं। तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् इन १८ प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं। जिन प्रत्ययों का श् इत् (लोप) हो जाता है उन 'शप्' आदि प्रत्ययों को शित् कहते हैं। **'आर्धधातुकं शेषः'** (३।४।११४) तिङ् और शित् से भिन्न तव्यत् आदि प्रत्ययों का नाम आर्धधातुक है।*

(२) विषय सप्तमी-व्याकरणशास्त्र में निमित्त सप्तमी, परसप्तमी और विषय सप्तमी ये तीन प्रकार की सप्तमी विभक्तियां हैं। यहां 'आर्धधातुके' विषय सप्तमी है। आर्धधातुक विषय की विवक्षा होने पर वक्ष्यमाण कार्य हो जाते हैं, तत्पश्चात् उससे यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं।

अद् (जग्धि)–

(२) अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति।३६।

प०वि०–अदः ६।१ जग्धिः १।१ ल्यप् ७।१ लुप्त-सप्तम्येषा, ति ७।१ किति ७।१।

स०-क् इत् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अदो जग्धिर्ल्यपि ति किति चार्धधातुके।

अर्थः-अदः स्थाने जग्धिरादेशो भवति, ल्यपि प्रत्यये, तकारादौ च किति आर्धधातुके विषये।

उदा०-(१) **ल्यपि**-प्रजग्ध्य। विजग्ध्य। (२) **ति किति**-जग्धः। जग्धवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अदः) अद् धातु के स्थान में (जग्धिः) जग्धि आदेश होता है, (ल्यप्) ल्यप् प्रत्यय और (ति किति) तकारादि कित् प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।*

*उदा०-(१) **ल्यप् प्रत्यय-प्रजग्ध्य।** खूब खाकर। **विजग्ध्य।** विशेष खाकर। (२) तकारादि कित् **प्रत्यय-जग्धः।** खाया। **जग्धवान्।** खाया।*

सिद्धि-(१) प्रजग्ध्य। *प्र+अद्+क्त्वा। प्र+जग्ध्+ल्यप्। प्र+जग्ध्+य। प्रजग्ध्य।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय है। '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से क्त्वा प्रत्यय के स्थान में ल्यप् आदेश होता है। आर्धधातुक ल्यप् प्रत्यय के विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में जग्धि आदेश होता है। ऐसे ही-**विजग्ध्य।***

*(२) **जग्धः।** अद्+क्त। जग्ध्+त। जग्ध्+ध। जग्द्+ध। जग्०+ध। जग्ध+सु। जग्धः।*

*यहां '**अद् भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में क्त-प्रत्यय है। यह प्रत्यय तकारादि कित् है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में जग्धि आदेश होता है।*

*यहां '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से क्त के त को ध, '**झलां जश् झशि**' (८।४।५३) से पूर्व ध् को द् और '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६५) से द् का लोप हो जाता है। ऐसे ही आर्धधातुक क्तवतु प्रत्यय विषय में 'जग्धवान्' सिद्ध करें।*

अद् (घस्लृ)-

(३) लुङ्सनोर्घस्लृ।३७।

प०वि०-लुङ्-सनोः ७।२ घस्लृ १।१।

स०-लुङ् च सन् च तौ लुङ्सनौ, तयोः-लुङ्सनोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-आर्धधातुके, अद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदो घस्लृ लुङ्सनोरार्धधातुकयोः।

अर्थः-अदः स्थाने घस्लृ-आदेशो भवति, लुङि सनि चार्धधातुके विषये।

उदा०-(१) **लुङ्** -अघसत्। अघसताम्। अघसन्। (२) **सन्**-जिघत्सति। जिघत्सतः। जिघत्सन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अदः) अद् धातु के स्थान में (घस्लृ) घस्लृ आदेश होता है (लुङ्सनोः) लुङ् और सन् प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-(१) लुङ् -**अघसत्।** उसने खाया। **अघसताम्।** उन दोनों ने खाया। **अघसन्।** उन सबने खाया। (२) सन्-**जिघत्सति।** वह खाना चाहता है। **जिघत्सतः।** वे दोनों खाना चाहते हैं। **जिघत्सन्ति।** वे सब खाना चाहते हैं।*

*सिद्धि-(१) **अघसत्।** अद्+लुङ्। अद्+घस्लृ+च्लि+लुङ्। अ+घस्+अङ्+तिप्। अ+घस्+अ+त्। अघसत्।*

*यहां '**अद् भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय है। लुङ् आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश होता है। '**पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु**' (३।१।५५) से च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है।*

*(२) **जिघत्सति।** अद्+सन्। घस्लृ+सन्। घस्+स। घस्+घस्+स। घ+घस्+स। घि+घत्+स। झि+घत्+स। जि+घत्+स। जिघत्स+लट्। जिघत्स+शप्+तिप्। जिघत्स+अ+ति। जिघत्सति।*

*यहां '**अद् भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय है। सन् सम्बन्धी आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से घस् को द्वित्व, '**सः स्यार्धधातुके**' (७।४।४९) से घस् के सकार को तकार, '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इकार '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के घकार को झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५८) से अभ्यास के झकार को 'जश्' जकार आदेश होता है। 'जिघत्स' की '**सनाद्यन्ता धातवः**' (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर उससे '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२२) से लट् प्रत्यय होता है।*

अद् (घस्लृ)-

(४) घञपोश्च।३८।

प०वि०-घञ्-अपोः ७।२। च अव्ययपदम्।

स०-घञ् च अप् च तौ घञपौ, तयोः-घञपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-आर्धधातुके, अदः, घस्लृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदो घस्लृ घञपोरार्धधातुकयोः।

अर्थः-अदः स्थाने घस्लृ-आदेशो भवति, घञि अपि चार्धधातुके विषये।

उदा०-(१) **घञ्**-घासः। (२) **अप्**-प्रघसः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अदः) अद् धातु के स्थान में (घस्लृ) घस्लृ आदेश होता है (घञपोः) घञ् और अप् प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-(१) घञ्-घासः। खाना। (२) अप्-प्रघसः। प्रकृष्ट खाना।

सिद्धि-(१) घासः। अद्+घञ्। घस्लृ+घ। घस्+अ। घास्+अ। घास+सु। घासः।

यहां 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय है। घञ् आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधा वृद्धि होती है।

(२) प्रघसः। प्र+अद्+अप्। प्र+घस्लृ+अ। प्र+घस्+अ। प्रघस्+सु। प्रघसः।

यहां 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'उपसर्गेऽदः' (३।३।५९) से भाव अर्थ में अप् प्रत्यय है। अप् आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश होता है।

अद् वा (घस्लृ)-

(५) बहुलं छन्दसि।३६।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-आर्धधातुके अदः, घस्लृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अदो बहुलं घस्लृ आर्धधातुके।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽदः स्थाने बहुलं घस्लृ-आदेशो भवति, आर्धधातुके विषये।

उदा०-**घस्लृ-आदेशः**-घस्तां नूनम्। सग्धिश्च मे। **न च घस्लृ-आदेशः**-आत्तामद्य मध्यत मेद उद्भृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अदः) अद् धातु के स्थान में (बहुलम्) विकल्प से (घस्लृ) घस्लृ आदेश होता है (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-घस्लृ आदेश-घस्तां नूनम् (यजु० २१।४३)। सग्धिश्च मे (यजु० १८।९)। घस्लृ आदेश नहीं-अत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतम्।

सिद्धि-(१) घस्ताम्। इद्+लुङ्। घस्लृ+च्लि+लुङ्। घस्+०+तस्। घस्+ताम्। घस्ताम्।

*यहां 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से च्लि प्रत्यय, इस आर्धधातुक प्रत्यय के विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश होता है। **'मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः'** (२।४।८०) से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् है। **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'तस्' के स्थान में 'ताम्' आदेश है। **बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'** (६।४।७५) से 'लुङ्' में 'अट्' आगम नहीं होता है। **घस्ताम्**-उन दोनों ने भोजन किया।*

*(२) **सग्धिः।** अद्+क्तिन्। घस्लृ+ति। घस्+ति। घ्स्+ति। घ्स्+धि। घ्०+धि। ग्+धि। ग्धि+सु। ग्धिः। समानाग्धिरिति सग्धिः।*

*यहां **'अद् भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय है। इस आर्धधातुक प्रत्यय के विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश है। **'घसिभसोर्हलि च'** (६।४।१००) से घसृ धातु का उपधा-लोप, **झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से प्रत्यय के तकार को धकार, **'झलो झलि'** (८।२।२६) से घस् धातु के सकार का लोप, **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से धातु के घकार को जश् गकार होता है। तत्पश्चात् **'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च'** (२।१।५८) से कर्मधारयतत्पुरुष समास होता है। **'समानस्य च्छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु'** ६।३।८४) से छन्द में समान के स्थान में स-आदेश होता है। सग्धिः=समान भोजन।*

*(३) **आत्ताम्।** अद्+लुङ्। आट्+अद्+च्लि+लुङ्। आ+अद्+सिच्+तस्। आ+अद्+०+ताम्। आ+अत्+ताम्। आत्ताम्।*

*यहां **'अद् भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।१२०) से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय, **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से धातु को आट् आगम, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से तस् के स्थान में ताम् आदेश **'झलो झलि'** (८।२।२६) से 'च्लि' के स् का लोप और **'खरि च'** (८।४।५५) से धातुस्थ दकार को तकार आदेश होता है। यहां बहुल करके अद् के स्थान में घस्लृ आदेश नहीं होता है। आत्ताम्=उन दोनों ने भोजन किया।*

अद् (वा घस्लृ)-

(६) लिट्यन्यतरस्याम्।४०।

प०वि०-लिटि ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-आर्धधातुके, अदः, घस्लृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदोऽन्यतरस्यां घस्लृ लिटि आर्धधातुके।

अर्थः-अदः स्थाने विकल्पेन घस्लृ-आदेशो भवति, लिटि आर्धधातुके विषये।

उदा०-(१) घस्लृ-आदेशः-जघास। जक्षतुः। जक्षुः। **(२) न च घस्लृ-आदेशः**-आद। आदतुः। आदुः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अदः) अद् धातु के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (घस्लृ) घस्लृ आदेश होता है (लिटि) लिट्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-__(१) घस्लृ आदेश-जघास।__ उसने भोजन किया। __जक्षतुः।__ उन दोनों ने भोजन किया। __जक्षुः।__ उन सबने भोजन किया। __(२) घस्लृ आदेश नहीं-आद। आदतुः। आदुः।__ अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-__(१) जघास।__ अद्+लिट्। घस्लृ+तिप्। घस्+णल्। घस्+घस्+अ। घ+घस्+अ। ज+घास्+अ। जघास।

यहां __'अद भक्षणे'__ (अदा०प०) धातु से __'परोक्षे लिट्'__ (३।२।११५) से लिट् प्रत्यय, __'परस्मैपदानां णलतुसुस०'__ (३।४।८२) से तिप् के स्थान में णल् आदेश, __'लिटि धातोरनभ्यासस्य'__ (६।१।८) से धातु का द्वित्व, __'अत उपधायाः'__ (७।२।११६) धातु को उपधावृद्धि और __'कुहोश्चुः'__ (७।४।६२) से धातु के अभ्यास घकार को जकार आदेश होता है। यहां लिट् आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश है।

(२) __आद।__ अद्+लिट्। अद्+तिप्। अद्+णल्। अद्+अद्+अ। अ+आद्+अ। आद।

यहां विकल्प पक्ष में लिट्सम्बन्धी आर्धधातुक विषय में अद् धातु के स्थान में घस्लृ आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

वेञ् (वा वयिः)-

(७) वेञो वयिः।४१।

प०वि०-वेञः ६।१ वयिः १।१।

अनु०-आर्धधातुके लिटि, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वेञोऽन्यतरस्यां वयिर्लिटि आर्धधातुके।

अर्थः-वेञः स्थाने विकल्पेन वयिरादेशो भवति, लिटि आर्धधातुके विषये।

उदा०-(१) वयि-आदेशः-उवाय। ऊयतुः। ऊयुः।। ऊवतुः। ऊवुः। **न च वयि-आदेशः**-ववौ। ववतुः। ववुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विजः) वेञ् धातु के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वयिः) वयि आदेश होता है (लिटि) लिट्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-(१) **वयि आदेशः**-उवाय। उसने कपड़ा बुना। **ऊयतुः**। उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ऊयुः**। उन सबने कपड़ा बुना। **अथवा-ऊवतुः**। उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ऊवुः**। उन सबने कपड़ा बुना। (२) वयि आदेश नहीं-**ववौ**। **ववतुः**। **ववुः**। अर्थ पूर्ववत् है।*

***सिद्धि**-(१) **उवाय**। वेञ्+लिट्। वा+तिप्। वय्+णल्। वय्+अ। वय्+वय्+अ। व+वाय्+अ। उ+वाय्+अ। उवाय।*

*यहां 'वेञ् **तन्तुसन्ताने**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् लिट्लकार। इस सूत्र से लिट्सम्बन्धी आर्धधातुक विषय में वेञ् धातु के स्थान में वयि आदेश है। '**लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्**' (६।१।१७) से धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण और '**सम्प्रसारणाच्च**' (४।१।१०६) से पूर्वरूप होता है। 'अतः उपधायाः' (७।२।११६) से धातु को उपधावृद्धि होती है। '**लिटि वयो यः**' (६।१।३८) से वय् के य् का सम्प्रसारण नहीं होता है।*

*(२) **ऊवतुः**। वेञ्+लिट्। वा+तस्। वय्+अतुस्। उव्+अतुस्। उव्+उव्+अतुस्। उ+उव्+अतुस्। ऊवतुः।*

*यहां '**वश्चान्यतरस्यां किति**' (६।१।३९) से वय् धातु के य् को लिट् कित् विषय में विकल्प से व् आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही उस् में-**ऊवुः**।*

*(३) **ववौ**। वेञ्+लिट्। वा+तिप्। वा+णल्। वा+अ। वा+वा+औ। व+वा+औ। ववौ।*

*यहां विकल्प पक्ष में वेञ् धातु के स्थान में वयि आदेश नहीं हुआ। '**आत औ णलः**' (७।१।३४) से 'णल्' के स्थान में औ-आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

हन् (वध)-

(८) हनो वध लिङि।४२।

प०वि०-हनः ६।१ वध १।१ लिङि ७।१।

अनु०-आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हनो वध लिङि आर्धधातुके।

अर्थः-हनः स्थाने वध-आदेशो भवति, लिङि आर्धधातुके विषये। वध इत्यकारान्तोऽयमादेशः।

उदा०-वध्यात्। वध्यास्ताम्। वध्यासुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हनः) हन् धातु के स्थान में (वध) वध आदेश होता है (लिङि) लिङ्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में। 'वध' यह अकारान्त आदेश है।

*उदा०-**वध्यात्।** वह वध करे। **वध्यास्ताम्।** वे दोनों वध करें। **वध्यासुः।** वे सब वध करें। वध=मारना।*

***सिद्धि-वध्यात्।** हन्+लिङ्। वध+यासुट्+तिप्। वध्+या+त्। वध्यात्।*

*यहां **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् प्रत्यय और इस सूत्र से हन् के स्थान में वध आदेश है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से यासुट् आगम, **'किदाशिषि'** (३।४।१०४) से कित्त्व, **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से आर्धधातुक विषय में वध के अकार का लोप, **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से यासुट् के सकार का लोप होता है। **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से 'आशीर्लिङ्' आर्धधातुक होता है।*

हन् (वध)–

(६) लुङि च।४३।

प०वि०-लुङि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आर्धधातुके हनः, वध इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हनो वधो लुङि आर्धधातुके।

अर्थः-हनः स्थाने वध-आदेशो भवति, चा लुङि चार्धधातुके विषये।

उदा०-अवधीत्। अवधिष्टाम्। अवधिषुः।

आर्यभाषा-अर्थः-(हनः) हन् धातु के स्थान में (वध) वध आदेश होता है, (लुङि) लुङ् सम्बन्धी (च) भी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**अवधीत्।** उसने वध किया। **अवधिष्टाम्।** उन दोनों ने वध किया। **अवधिषुः।** उन सबने वध किया।*

***सिद्धि-अवधीत्।** हन्+लुङ्। अट्+वध्+च्लि+लुङ्। अ+वध+सिच्+तिप्। अ+वध्+इट्+स्+ईट्+त्। अ+वध्+इ+व+ई+त्। अवधीत्।*

*यहां **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय और इस सूत्र से आर्धधातुक विषय में वध आदेश होता है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से वध के अकार का लोप और उसके स्थानिवद्भाव से **'वदव्रजहलन्तस्याचः'** (७।२।३) से वध को वृद्धि नहीं होती है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से सिच् को इट् आगम, **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से तिप् को ईट् आगम और **'इट ईटि'** (७।२।२८) से सिच् के सकार का लोप होता है।*

हन् (वा वध)–

(१०) आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्।४४।

प०वि०-आत्मनेपदेषु ७।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-आर्धधातुके, हनः, वध, लुङि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हनोऽन्यतरस्यां वध आत्मनेपदेषु लुङि आर्धधातुके।

अर्थः-हनः स्थाने विकल्पेन वध-आदेशो भवति, आत्मनेपदेषु प्रत्ययेषु परतः, लुङि आर्धधातुके विषये।

उदा०-वध-आदेशः-आवधिष्ट। आवधिषाताम्। आवधिषत। **न च वध-आदेशः**-आहत। आहसाताम्। आहसत।

आर्यभाषा-अर्थ-*(हनः) हन् धातु के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वध) वध आदेश होता है (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद प्रत्यय परे होने पर (लुङि) लुङ्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।*

*उदा०-वध-आदेश-**आवधिष्ट।** उसने आघात=धक्का दिया। **आवधिष्टाम्।** उन दोनों ने धक्का दिया। **आवधिषत।** उन सब ने धक्का दिया। (२) वध आदेश नहीं-**आहत। आहसाताम्। आहसत।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-अवधिष्ट। *आङ्+हन्+लुङ्। आ+अट्+वध्+च्लि+लुङ्। आ+अ+वध्+सिच्+त। आ+वध्+इट्+स्+त। आ+वध्+इ+ष्+ट। आवधिष्ट।*

*यहां 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से '**आङो यमहनः**' (१।३।२८) से आङ्पूर्वक होने से आत्मनेपद और इस सूत्र से आत्मनेपद लुङ्लकारसम्बन्धी आर्धधातुक विषय में हन् के स्थान में वध आदेश होता है। '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से सिच् को इट् आगम, '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से सिच् को षत्व और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से टुत्व=त को ट होता है।*

*(२) **आहत।** आङ्+हन्+लुङ्। आ+अट्+हन्+च्लि+लुङ्। आ+अ+हन्+सिच्+त। आ+ह+०+स्+त। आ+ह+०+त। आहत।*

*यहां हन् धातु के स्थान में विकल्प पक्ष में इस सूत्र से वध आदेश नहीं है। '**हनः सिच्**' (१।२।१४) से सिच् प्रत्यय कित् होकर '**अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति**' (६।४।३४) से अनुनासिक का लोप और '**ह्रस्वादङ्गात्**' (८।२।२७) से सिच् के सकार का लोप होता है।*

इण् (गा)–

(११) इणो गा लुङि।४५।

प०वि०–इणः ६।१ गा १।१ लुङि ७।१।

अनु०–आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इणो गा लुङि आर्धधातुके।

अर्थः–इणः स्थाने गा-आदेशो भवति, लुङि आर्धधातुके विषये।

उदा०–अगात्। अगाताम्। अगुः।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(इणः) इण् धातु के स्थान में (गा) आदेश होता है (लुङि) लुङ्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०–__अगात्।__ वह गया। __अगाताम्।__ वे दोनों गये। __अगुः।__ वे सब गये।

__सिद्धि-अगात्।__ इण्+लुङ्। अट्+गा+च्लि+लुङ्। अ+गा+सिच्+तिप्। अ+गा+स्+त्। अ+गा+०+त्। अगात्।

यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय और इसके आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से इण् धातु के स्थान में गा आदेश होता है। __'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु'__ (२।४।७७) से 'सिच्' का लुक् हो जाता है।

इण् (गम्)–

(१२) णौ गमिरबोधने।४६।

प०वि०–णौ ७।१ गमिः १।१ अबोधने ७।१।

स०–न बोधनमिति अबोधनम्, तस्मिन्-अबोधने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–आर्धधातुके, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अबोधने इणो गमिर्णावार्धधातुके।

अर्थः–अबोधनेऽर्थे वर्तमानस्य इणः स्थाने गमिरादेशो भवति, णिचि आर्धधातुके विषये।

उदा०–गमयति। गमयतः। गमयन्ति।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(अबोधने) ज्ञान अर्थ से रहित (इणः) इण् धातु के स्थान में (गमि) गमि आदेश होता है (णौ) णिच् प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**गमयति।** वह भेजता है। **गमयत:।** वे दोनों भेजते हैं। **गमयन्ति।** वे सब भेजते हैं।*

सिद्धि-गमयति। *इण्+णिच्। गम्+इ। गाम्+इ। गम्+इ। गमि+लट्। गमि+शप्+तिप्। गमि+अ+ति। गमे+अ+ति। गमयति।*

*'इण् गतौ' (अदा०प०) यह धातु गत्यर्थक है। गति के ज्ञान, गमन और प्राप्ति ये तीन अर्थ होते हैं। यहां ज्ञान=बोधन अर्थ से रहित इस धातु से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) णिच् प्रत्यय और इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'इण्' के स्थान में 'गमि' आदेश होता है। गम् से णिच् प्रत्यय परे होने पर '**अत उपधाया:**' (७।२।११६) से 'गम्' की उपधावृद्धि होती है। णिच् प्रत्यय परे रहने पर '**मितां ह्रस्व:**' से 'गाम्' की उपधा को ह्रस्व हो जाता है। '**घटादयो मित:**' इस धातुपाठस्थ गणसूत्र से घटादि धातु मित् हैं, किन्तु गम् धातु '**जनीजॄष्क्नुसुरञ्जोऽमन्ताश्च**' (धा०पा० गणसूत्र) से अमन्त होने से मित् है। णिजन्त गमि धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है।*

इण् (गम्)–

(१३) सनि च।४७।

प०वि०-सनि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आर्धधातुके, इण:, गमि:, अबोधने इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अबोधने इणो गमि: सनि चार्धधातुके।

अर्थ:-अबोधनेऽर्थे वर्तमानस्य इण: स्थाने गमिरादेशो भवति, सनि चार्धधातुके विषये।

उदा०-जिगमिषति। जिगमिषत:। जिगमिषन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ- *(अबोधने) ज्ञान अर्थ से रहित (इण:) इण् धातु के स्थान में (गमि:) गमि आदेश होता है (सनि) सन् प्रत्यय सम्बन्धी (च) भी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।*

*उदा०-**जिगमिषति।** वह जाना चाहता है। **जिगमिषत:।** वे दोनों जाना चाहते हैं। **जिगमिषन्ति।** वे सब जाना चाहते हैं।*

सिद्धि-जिगमिषति। *इण्+सन्। गम्+स। गम्+गम्+स। ग+गम्+इट्+स। गि+गम्+इ+स। जि+गम्+इ+ष। जिगमिष+लट्। जिमिष+शप्+तिप्। जिगमिष+अ+ति। जिगमिषति।*

*यहां ज्ञान अर्थ से रहित '**इण् गतौ**' (अदा०प०) धातु से '**धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से सन् प्रत्यय और इस आर्धधातुक विषय में*

*इस सूत्र से 'इण्' धातु के स्थान में 'गम्' आदेश होता है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से सन् प्रत्यय को इट् आगम, 'सन्यतः' (७।४।८९) से अभ्यास के अ को इ, 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को ज् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सन् प्रत्यय के स को ष होता है। **'जिगमिष'** इस सनाद्यन्त धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से वर्तमान काल में लट् प्रत्यय है।*

इङ् (गम्)–

(१४) इङश्च।४८।

प०वि०–इङः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–आर्धधातुके गमिः, सनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इङश्च गमिः सनि आर्धधातुके।

अर्थः–इङः स्थाने च गमिरादेशो भवति, सनि आर्धधातुके विषये। इङ् धातुरयं नित्यमधिपूर्वः।

उदा०–अधिजिगांसते। अधिजिगांसेते। अधिजिगांसन्ते।

आर्यभाषा–अर्थ–(इङः) इङ् धातु के स्थान में (च) भी (गमिः) गमि आदेश होता है (सनि) सन् प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०–**अधिजिगांसते।** वह पढ़ना चाहते हैं। **अधिजिगांसेते।** वे दोनों पढ़ना चाहते हैं। **अधिजिगांसन्ते।** वे सब पढ़ना चाहते हैं।*

सिद्धि–अधिजिगांसते। *अधि+इङ्+सन्। अधि+गम्+स। अधि+गम्+गम्+स। अधि+ग+गम्+स। अधि+गि+गम्+स। अधि+जि+गाम्+स। अधिजिगांस+लट्। अधिजिगांस+शप्+त। अधिजिगांस+अ+ते। अधिजिगांसते।*

*'**इङ् अध्ययने**' (अदा०प०) यह धातु नित्य अधि उपसर्गपूर्व है। आर्धधातुक सन् प्रत्यय के विषय में इस सूत्र से 'इङ्' के स्थान में 'गम्' आदेश हाता है। **'सन्यतः'** (७।४।८९) से अभ्यास के 'अ' को 'इ' और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के 'ग्' को 'ज्' होता है। सन् प्रत्यय परे होने पर **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।२६) से 'गम्' धातु को दीर्घ होता है। 'अधिजिगांस' इस सनाद्यन्त धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है। यहां 'पूर्ववत् सनः' (१।४।६२) से आत्मनेपद होता है।*

इङ् (गाङ्)–

गाङ् लिटि।४९।

प०वि०–गाङ् १।१ लिटि ७।१।

अनु०–आर्धधातुके, इङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इङो गाङ् लिटि आर्धधातुके।

अर्थः-इङः स्थाने गाङ् आदेशो भवति, लिटि आर्धधातुके विषये।

उदा०-अधिजगे। अधिजगाते। अधिजगिरे।

आर्यभाषा-अर्थ-(इङः) इङ् धातु के स्थान में (गाङ्) गाङ् आदेश होता है (लिटि) लिट्लकारसम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**अधिजगे**। उसने पढ़ा। **अधिजगाते**। उन दोनों ने पढ़ा। **अधिजगिरे**। उन सबने पढ़ा।*

***सिद्धि-अधिजगे**। अधि+इङ्+लिट्। अधि+गाङ्+त। अधि+गा+गा+एश्। अधि+ज+ग्०+ए। अधिजगे।*

*यहां नित्य अधिपूर्व '**इङ् अध्ययने**' (अदा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में लिट् प्रत्यय है। '**लिट् च**' (३।४।११५) से लिट् प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होती है। लिट् आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'इङ्' धातु के स्थान में 'गाङ्' आदेश होता है। '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास के गा को ह्रस्व, '**कुहोश्चुः**' (७।४६२) से अभ्यास के 'ग्' को 'ज्' होता है। '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से गा के आ का लोप हो जाता है। **लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३।४।८१) से त प्रत्यय के स्थान में एश् आदेश होता है।*

इङ् (वा गाङ्)-

(१५) विभाषा लुङ्लृङोः।५०।

प०वि०-विभाषा १।१ लुङ-लृङोः ७।२।

स०-लुङ् च लृङ् च तौ लुङ्लृङौ, तयोः-लुङ्लृङोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-आर्धधातुके, इङः गाङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इङो विभाषा गाङ् लुङ्लृङोरार्धधातुकयोः।

अर्थः-इङः स्थाने विकल्पेन गाङ् आदेशो भवति लुङि लृङि चार्धधातुके विषये।

उदा०-(१) (लुङ्) **गाङ्-आदेशः**-अध्यगीष्ट। अध्यगीषाताम्। अध्यगीषत। **न च गाङ्-आदेशः**-अध्यैष्ट। अध्यैषाताम्। अध्यैषत।

(२) (लृङ्) **गाङ्-आदेशः**-अध्यगीष्यत। अध्येगीष्येताम्। अध्यगीष्यन्त। **न च गाङ्-आदेशः**-अध्यैष्यत। **अध्यैष्येताम्**। **अध्यैष्यन्त**।

आर्यभाषा-अर्थ-(इङः) इङ् धातु के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (गाङ्) गाङ् आदेश होता है (लुङ्लृङोः) लुङ् और लृङ्लकार सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-(१) लुङ्-गाङ् आदेश-**अध्यगीष्ट।** उसने पढ़ा। **अध्यगीषाताम्।** उन दोनों ने पढ़ा। **अध्यगीषत।** उन सबने पढ़ा। गाङ् आदेश नहीं-**अध्यैष्ट। अध्यैषाताम्। अध्यैषत।** अर्थ पूर्ववत् है।

(२) लृङ्-गाङ् आदेश-**अध्यगीष्यत।** यदि वह पढ़ता। **अध्यगीष्येताम्।** यदि वे दोनों पढ़ते। **अध्यगीष्यन्त।** यदि वे सब पढ़ते। गाङ्-आदेश नहीं-**अध्यैष्यत। अध्यैष्येताम्। अध्यैष्यन्त।** अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) **अध्यगीष्ट।** अधि+इङ्+लुङ्। अधि+अट्+गाङ्+च्लि+लुङ्। अधि+अ+गा+सिच्+त। अधि+अ+गा+स्+त। अधि+अ+गी+ष्+ट। अध्यगीष्ट।

यहां नित्य अधि पूर्व 'इङ् **अध्ययने'** (अ०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से सामान्य भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्' प्रत्ययसम्बन्धी आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'इङ्' धातु के स्थान में 'गाङ्' आदेश होता है। **'घुमास्थागापाजहातिसां हलि'** (६।४।६६) से गा को ई-आदेश होता है। **'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्'** (१।२।१) से 'सिच्' प्रत्यय के ङित् होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।२।८४) से गुण नहीं होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से 'सिच्' के 'स्' को 'ष्' और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से टुत्व='त' प्रत्यय को 'ट' होता है।

(२) **अध्यैष्ट।** अधि+इङ्+लुङ्। अधि+आट्+इ+च्लि+ल्। अधि+औ+सिच्+त। अध्यै+ष्+ट। अध्यैष्ट।

यहां पूर्ववत् लुङ् प्रत्यय, **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से आट् आगम है। विकल्प पक्ष में इस सूत्र से इङ् के स्थान में गाङ् आदेश नहीं है। **'आटश्च'** (६।१।९०) से वृद्धि होती है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से 'सिच्' के 'स्' को 'ष्' और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से टुत्व='त' प्रत्यय को 'ट' होता है।

(३) **अध्यगीष्यत।** अधि+इङ्+लृङ्। अधि+अट्+गाङ्+स्य+ल्। अधि+अ+गा+स्य+त। अधि+अ+गी+ष्य+त। अध्यगीष्यत।

यहां **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और **'स्यतासीलृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय है। इस 'लृङ्'सम्बन्धी आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश होता है। पूर्ववत् 'गा' को ई-आदेश तथा गुण नहीं होता है। पूर्ववत् 'स्य' को मूर्धन्य होता है।

(४) **अध्यैष्यत।** अधि+इङ्+लृङ्। अधि+आट्+इ+स्य+ल्। अधि+आ+इ+स्य+त। अध्यै+ष्य+त। अध्यैष्यत।

यहां पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय इसके आर्धधातुक विषय के पक्ष में इस सूत्र से 'गाङ्' आदेश नहीं होता है। 'आटश्च' (६।१।९०) से वृद्धि होती है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'स्य' को मूर्धन्य हो जाता है।

इङ् (वा गाङ्)–

(१६) णौ च संश्चङोः।५१।

प०वि०–णौ ७।१ च अव्ययपदम् १।१ संश्चङोः ७।२।

स०–सन् च चङ् च तौ संश्चङौ, तयोः–संश्चङोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–आर्धधातुके, इङः, गाङ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इङो विभाषा गाङ् सँश्च ङोर्णौ चार्धधातुके।

अर्थः–इङः स्थाने विकल्पेन गाङ् आदेशो भवति। सन्परके चङ्परके णिचि चार्धधातुके विषये।

उदा०–(१) सन्परकणिच्–(गाङ्–आदेशः)–अधिजिगापयिषति। **(न च गाङ्–आदेशः)**–अध्यापिपयिषति। **(२) चङ्परकणिच्–(गाङ् आदेशः)**–अध्यजीगपत्। **(न च गाङ्–आदेशः)**–अध्यापिपत्।

आर्यभाषा–अर्थ–(इङः) 'इङ्' धातु के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (गाङ्) 'गाङ्' आदेश होता है (संश्चङोः) सन्परक और चङ्परक (णिच्) 'णिच्' प्रत्यय सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०–**(१) सन्परक णिच्–(गाङ् आदेश)–अधिजिगापयिषति।** वह पढ़ना चाहता है। **(गाङ् आदेश नहीं)–अध्यापिपयिषति।** वह पढ़ना चाहता है। **(२) चङ्परक णिच्–(गाङ् आदेश)–अध्यजीगपत्।** उसने पढ़ाया। (गाङ् आदेश नहीं)–**अध्यापिपत्।** उसने पढ़ाया।*

सिद्धि–(१) अधिजिगापयिषति। *अधि+इङ्+णिच्। अधि+गाङ्+इ। अधि+गा+पुक्+इ। अधि+गा+प्+इ। अधिगापि। अधिगापि+सन्। अधि+गा गा पि+स। अधि+ग गा पि+इट्+स। अधि+गि गा पि+इ+ष। अधिजिगापयिष+लट्। अधिजिगापयिष++शप्+तिप्। अधिजिगापयिषति।*

*यहां अधिपूर्व **'इङ् अध्ययने'** (अ०आ०) से **हेतुमति च'** (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से इङ् के स्थान में गाङ् आदेश होता है। **'अर्तिह्री०'** (७।३।२६) से 'गा' को 'पुक्' का आगम होता है। णिजन्त अधिगापि धातु*

से *'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'* (३।१।७) से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है। *'सन्यङोः'* (६।१।९) से धातु को द्वित्व, *'सन्यतः'* (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व और *'कुहोश्चुः'* (७।४।६२) अभ्यास को चुत्व=ग् को ज् होता है। *अधिजिगापयिष* इस सन्नाद्यन्त धातु से *'वर्तमाने लट्'* (३।२।१२३) से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है।

(२) **अध्यापिपयिषति।** अधि+इङ्+णिच्। अधि+इ+इ। अधि+आ+पुक्+इ। अधि+आपि। अधि+आपि+सन्। अधि+आ+पि पि+स। अधि+आ+पि पि+इट्+स। अधि+आ+ति पे+इ+स। अध्यापिपयिष। अध्यापिपयिष+लट्। अध्यापिपयिष+शप्+तिप्। अध्यापिपयिषति।

यहां अधिपूर्व इङ् धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय। विकल्प पक्ष में 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश नहीं होता है। *'क्रीङ्जीनां णौ'* (६।१।४८) से इङ् के स्थान में आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

(३) **अध्यजीगपत्।** अधि+इङ्+णिच्। अधि+गाङ्+इ। अधि+गा+पुक्+इ। अध+गापि। अधिःगापि+लुङ्। अधि+अट्+गापि+च्लि+ल्। अधि+अ+गापि+चङ्+तिप्। अधि+अ+ग गा प्+अ+त्। अधि+अ+ग गा प्+अ+त्। अधि+अ+गि+ग प्+अ+त्। अधि+अ+जि+गप्+अ+त्। अध्यजीगपत्।

यहां अधिपूर्व 'इङ्' धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश होता है। 'अधिगापि' णिजन्त धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, *'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'* (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, *'चङि'* (६।१।११) से धातु के गा भाग को द्वित्व, *'ह्रस्वः'* (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, *'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'* (७।४।१) से उपधा ह्रस्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

(४) **अध्यापिपत्।** अधि+इङ्+णिच्। अधि+आ+इ। अधि+आ+पुक्+इ। अधि+आपि। अधि+आपि+लुङ्। अधि+आट्+आपि+च्लि+ल्। अध्यापि+चङ्+तिप्। अधि+आ पि पि+अ+त्। अध्यापिप्+अ+त्। अध्यापिपत्।

यहां अधिपूर्व 'इङ्' धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय। इस आर्धधातुक विषय में विकल्प पक्ष में 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश नहीं होता है। *'क्रीङ्जीनां णौ'* (६।१।४८) से 'इङ्' के स्थान में आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अस् (भू)–

(१७) अस्तेर्भूः।५२।

प०वि०–अस्तेः ६।१ भूः १।१।

अनु०–आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अस्तेर्भूरार्धधातुके।

अर्थ:-अस्तेः स्थाने भूरादेशो भवति, आर्धधातुके विषये।

उदा०-भविता। भवितुम्। भवतिव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्तेः) 'अस्' धातु के स्थान में (भूः) 'भू' आदेश होता है (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**भविता।** होनेवाला। **भवितुम्।** होने के लिये। **भवितव्यम्।** होना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **भविता।** भू+तृच्। भू+इट्+तृ। भो+इ+तृ। भवितृ+सु। भविता।*

*यहां 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'अस्' के स्थान में 'भू' आदेश होता है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'तृच्' को इट्-आगम और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है।*

*(२) **भवितुम्।** अस्+तुमुन्। भू+तुम्। भो+इट्+तुम्। भो+इ+तुम्। भवितुम्।*

*यहां 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में 'अस्' धातु के स्थान में 'भू' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **भवितव्यम्।** अस्+तव्यत्। भू+तव्य। भू+इट्+तव्य। भो+इ+तव्य। भवितव्य+सु। भवितव्यम्।*

यहां 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'अस्' के स्थान में 'भू' आदेश होता है।

ब्रू (वच्)-

(१८) ब्रुवो वचिः।५३।

प०वि०-ब्रुवः ६।१ वचिः १।१।

अनु०-आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ब्रुवो वचिरार्धधातुके।

अर्थ:-ब्रुवः स्थाने वचिरादेशो भवति, आर्धधातुके विषये।

उदा०-वक्ता। वक्तुम्। वक्तव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्रुवः) 'ब्रू' धातु के स्थान में (वचिः) 'वच्' आदेश होता है (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**वक्ता।** बोलनेवाला। **वक्तुम्।** बोलने के लिये। **वक्तव्यम्।** बोलना चाहिये।*

सिद्धि-वक्ता। ब्रू+तृच्। वच्+तृ। वक्तृ+सु। वक्ता।

यहां 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय होता है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'ब्रू' धातु के स्थान में 'वच्' आदेश होता है। 'खरि च' (८।४।५५) से 'वच्' के च् को चर्=क् होता है। ऐसे ही 'वक्तुम्' और 'वक्तव्यम्' रूप सिद्ध करें।

चक्षिङ् (ख्याञ्)-

(१६) चक्षिङः ख्याञ्।५४।

प०वि०-चक्षिङः ६।१ ख्याञ् १।१।

अनु०-आर्धधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-चक्षिङः ख्याञ् आर्धधातुके।

अर्थः-चक्षिङः स्थाने ख्याञ् आदेशो भवति, आर्धधातुके विषये।

उदा०-आख्याता। आख्यातुम्। आख्यातव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(चक्षिङः) चक्षिङ् धातु के स्थान में (ख्याञ्) ख्याञ् आदेश होता है (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-**आख्याता**। कहनेवाला। **आख्यातुम्**। कहने के लिये। **आख्यातव्यम्**। कहना चाहिये।*

*सिद्धि-**आख्याता**। आङ्+चक्षिङ्+तृच्। आ+ख्याञ्+तृ। आ+ख्या+तृ। आख्यातृ+सु। आख्याता।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में 'चक्षिङ्' धातु के स्थान में इस सूत्र से 'ख्याञ्' आदेश होता है। ऐसे ही-'**आख्यातुम्**' और '**आख्यातव्यम्**' रूप सिद्ध करें।*

चक्षिङ् (वा ख्याञ्)-

(२०) वा लिटि।५५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, लिटि ७।१।

अनु०-आर्धधातुके, चक्षिङः, ख्याञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चक्षिङो वा ख्याञ् लिटि आर्धधातुके।

अर्थः-चक्षिङः स्थाने विकल्पेन ख्याञ्-आदेशो भवति, लिटि आर्धधातुके विषये।

उदा०-**ख्याञ्-आदेशः**-आचख्यौ। आचख्यतुः। आचख्युः। **न च ख्याञ्-आदेशः**-आचचक्षे। आचचक्षाते। आचचक्षिरे।

आर्यभाषा-अर्थ-(चक्षिङः) चक्षिङ् धातु के स्थान में (वा) विकल्प से (ख्याञ्) ख्याञ् आदेश होता है (लिटि) लिट्लकार-सम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

*उदा०-ख्याञ्-आदेश-**आचख्यौ**। उसने कहा। **आचख्यतुः**। उन दोनों ने कहा। **आचख्युः**। उन सबने कहा। ख्याञ् आदेश नहीं-**आचचक्षे। आचचक्षाते। आचचक्षिरे।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **आचख्यौ**। आङ्+चक्षिङ्+लिट्। आ+ख्याञ्+ल्। आ+ख्या+तिप्। आ+ख्या+णल्। आ+ख्या+औ। आ+ख्या+ख्या+औ। आ+खा+ख्या+औ। आ+ख+ख्या+औ। आ+च+ख्या+औ। आचख्यौ।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि'** (अदा०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिट् च'** (३।४।११५) से 'लिट्' प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'चक्षिङ्' धातु के स्थान में 'ख्याञ्' आदेश होता है। **'परस्मैपदानां णलतुस०'** (३।४।८२) से 'तिप्' प्रत्यय के स्थान में 'णल्' आदेश और **'आत औ णलः'** (७।१।३४) से 'णल्' के स्थान में औ-आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।२।८) से 'ख्या' को द्वित्व, **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से 'खा' शेष, **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से खा को ह्रस्व ख, और **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से 'ख' को च वर्ग 'च' होता है। ऐसे ही-**आचख्यतुः, आचख्युः** रूप सिद्ध करें।*

*(२) **आचचक्षे**। आङ्+चक्षिङ्+लिट्। आ+चक्ष्+ल्। आ+चक्ष्+त। आ+चक्ष्+एश्। आ+चक्ष्+चक्ष्+ए। आ+च+चक्ष्+ए। आचचक्षे।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि'** (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में 'चक्षिङ्' धातु के स्थान में 'ख्याञ्' आदेश नहीं होता है। **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आचचक्षाते, आचचक्षिरे** रूप सिद्ध करें।*

अज् (वी)-

(२१) अजेर्व्यघञपोः।५६।

प०वि०-अजेः ६।१ वी १।१ अघञपोः ७।२।

स०-घञ् च अप् च तौ घञपौ, न घञपाविति अघञपौ, तयोः-अघञपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-आर्धधातुके, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अजेर्वी, अघञपोरार्धधातुकयोः।

अर्थः-अजेः स्थाने विकल्पेन वी-आदेशो भवति, घञपोर्वर्जिते आर्धधातुके विषये।

उदा-**वी-आदेशः**-प्रवेता। प्रवेतुम्। प्रवेतव्यम्। **न च वी-आदेशः**-प्राजिता। प्राजितुम्। प्राजितव्यम्।

__आर्यभाषा-अर्थः__-(अजेः) 'अज्' धातु के स्थान में (वा) विकल्प से (वी) वी-आदेश होता है (घञपोः) 'घञ्' और 'अप्' प्रत्यय से रहित (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-वी-आदेश-__प्रवेता__। प्रगति करनेवाला/फैंकनेवाला। __प्रवेतुम्__। प्रगति करने/फैंकने के लिये। __प्रवेतव्यम्__। प्रगति करना/फैंकना चाहिये। वी-आदेश नहीं-__प्राजिता__। __प्राजितुम्__। __प्राजितव्यम्__। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) __प्रवेता__। प्र+अज्+तृच्। प्र+वी+तृ। प्र+वे+तृ। प्रवेतृ+सु। प्रवेता।

यहां प्र उपसर्गपूर्वक __'अज गतिक्षेपणयोः'__ (भ्वा०प०) धातु से __'ण्वुल्तृचौ'__ (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'अज्' धातु के स्थान में वी-आदेश होता है। __'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'__ (७।३।८४) से धातु को गुण होता है। ऐसे ही-__प्रवेतुम्, प्रवेतव्यम्__ रूप सिद्ध करें।

(२) __प्राजिता__। प्र+अज्+तृच्। प्र+अज्+इट्+तृ। प्र+अज्+इ+तृ। प्रजितृ+सु। प्राजिता।

यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'अज्' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'अज्' धातु के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता है। __'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'__ (७।२।३५) से 'तृच्' को 'इट्' आगम होता है। ऐसे ही-__प्राजितुम्, प्राजितव्यम्__ रूप सिद्धि करें।

अज् (वा)-

(२२) वा यौ।५७।

प०वि०-वा १।१ यौ ७।१।

अनु०-आर्धधातुके, अजेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अजेर्वा यावार्धधातुके।

अर्थः-अजेः स्थाने वा-आदेशो भवति, यावार्धधातुके विषये।

उदा०-वायुः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अजेः) अज् धातु के स्थान में (वा) वा-आदेश होता है, (यौ) यु प्रत्ययसम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।

उदा०-वायुः । गति करनेवाला/फैंकनेवाला ।

सिद्धि-वायुः । अज्+युच् । वा+यु । वायु+सु । वायुः ।

*यहां 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से **'यजिमनिशुन्धिवसिजनिभ्यो युच्'** (उणा० ३ ।२०) से बहुल वचन से औणादिक 'युच्' प्रत्यय है। इस आर्धधातुक विषय में इस सूत्र से 'अज्' धातु के स्थाने में 'वा' आदेश होता है।*

यह सूत्रव्याख्या व्याकरणमहाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि के अनुसार है। काशिकाकार पं० जयादित्य ने इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की है-

अर्थ-(अजेः) अज् धातु के स्थान में (वा) विकल्प से (वी) वी आदेश होता है (यु) 'ल्युट्' प्रत्ययसम्बन्धी (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में।*

*उदा०-वी-आदेश-**प्रवयणो दण्डः । प्रवणयमानय।** वी-आदेश नहीं-**प्राजनो दण्डः । प्राजनमानय।** दण्डा ले आ।*

प्रत्ययलुक्प्रकरणम्

अण्+इञ्-

(१) ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनिलुगणिञोः ।५८।

प०वि०-ण्य-क्षत्रिय-आर्ष-ञितः ५ ।१ यूनि ७ ।१ लुक् १ ।१ अणिञोः ६ ।२ ।

स०-ञ् इत् यस्य स ञित् (बहुव्रीहिः)। ण्यश्च क्षत्रियश्च आर्षश्च ञिच्च एतेषां समाहार-ण्यक्षत्रियार्षञित्, तस्मात्-ण्यक्षत्रियार्षञितः (समाहारद्वन्द्वः)। अण् च इञ् च तौ अणिञौ, तयोः-अणिञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-ण्यन्तात् क्षत्रियवाचिन ऋषिवाचिनो ञितश्च गोत्रप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितस्य अण्-प्रत्ययस्य इञ्प्रत्ययस्य च लुग् भवति।

** "नेयं विभाषा। किं तर्हि ? आदेशो विधीयते। 'वा' इत्ययमादेशो भवत्यजेर्यौ परतः। वायुरिति" (भाष्यकारः पतञ्जलिः)।*

अत्र महर्षिदयानन्दस्य टिप्पणी-

*जयादित्येनास्य सूत्रस्यायमर्थः कृतः-यौ ल्युटि प्रत्ययेऽजधातोर्विकल्पेन 'वी' इत्ययमादेशो **भवति**। तत्र रूपद्वयं साधितम्। तदिदं पूर्वसूत्रे विकल्पानुवर्तनेनैव सिद्धं, पुनर्महाभाष्य-विरुद्धत्वाज्जयादित्यस्य व्याख्यानमत्यन्तमसङ्गतम् (अष्टाध्यायीभाष्यम्)।*

उदा०-(१) **ण्यन्तात्**-कुरोर्गोत्रापत्यं कौरव्यः (पिता)। कौरव्यस्य युवापत्यं कौरव्यः (पुत्रः)।

(२) **क्षत्रियात्**-श्वफलस्य गोत्रापत्यं श्वाफलकः। श्वाफलकस्य युवापत्यं श्वाफलकः (पुत्रः)।

(३) **आर्षात्**-वसिष्ठस्य गोत्रापत्यं वासिष्ठः (पिता)। वासिष्ठस्य युवापत्यं वासिष्ठः (पुत्रः)।

(४) **ञितः**-बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः (पिता)। बैदस्य युवापत्यं बैदः। (पुत्रः)।

(५) **इञ्**-तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः (पिता)। तैकायनेर्युवापत्यं तैकायनिः (पुत्रः)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(ण्यक्षत्रियार्षञितः) ण्य-प्रत्ययान्त, क्षत्रियवाची, ऋषिवाची और ञित्-प्रत्ययान्त इन गोत्र प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित (अणिञोः) अण् और इञ् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।

उदा०-(१) __ण्यन्त-कुरोर्गोत्रापत्यं कौरव्यः (पिता)__। कुरु का गोत्रापत्य कौरव्य (पिता) है। __कौरव्यस्य युवापत्यं कौरव्यः (पुत्रः)__। कौरव्य का युवापत्य कौरव्य (पुत्र) है।

(२) __क्षत्रिय-श्वाफलकस्य गोत्रापत्यं श्वाफलकः (पिता)__। श्वाफलक क्षत्रिय का गोत्रापत्य श्वाफलक (पिता) है। __श्वाफलकस्य युवापत्यं श्वाफलकः (पुत्रः)__। श्वाफलक क्षत्रिय का युवापत्य श्वाफलक (पुत्र) है।

(३) __आर्ष-वसिष्ठस्य गोत्रापत्यं वसिष्ठः (पिता)__। वसिष्ठ ऋषि का गोत्रापत्य वासिष्ठ (पिता) है। __वासिष्ठस्य युवापत्यं वासिष्ठः (पुत्रः)__। वासिष्ठ ऋषि का युवापत्य वासिष्ठ (पुत्र) है।

(४) __ञित-बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः (पिता)__। बिद का गोत्रापत्य बैद (पिता) है। __बैदस्य युवापत्यं बैदः (पुत्रः)__। बैद का युवापत्य बैद (पुत्र) है।

(५) __इञ्-तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः (पिता)__। तिक का गोत्रापत्य तैकायनि (पिता) है। __तैकायनेर्युवापत्यं तैकायनिः (पुत्रः)__। तैकायनि का युवापत्य तैकायनि (पुत्र) है।

__सिद्धि-(१) कौरव्यः__। कुरु+ण्य। कुरु+य। कौरु+य। कौरो+य। कौरव्+य। कौरव्य+सु। कौरव्यः। कौरव्य+इञ्। कौरव्य+०। कौरव्य+सु। कौरव्यः।

यहां कुरु प्रातिपदिक से __'कुर्वादिभ्यो ण्यः'__ (४।१।१५१) से गोत्रापत्य अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय और इससे __'अत इञ्'__ (४।१।९५) से युवापत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस 'इञ्' प्रत्यय का लुक् (लोप) हो जाता है।

(२) श्वाफलकः । श्वफलक+अण् । श्वाफलक+अ । श्वाफलक+सु । श्वाफलकः । स्वाफलक+इञ् । श्वाफलक+० । श्वाफलक+सु । श्वाफलकः ।

*यहां क्षत्रियवाची श्वाफक प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इससे युवापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस 'इञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

(३) वासिष्ठः । वसिष्ठ+अण् । वासिष्ठ+अ । वासिष्ठ+सु । वासिष्ठः । वासिष्ठ+इञ् । वासिष्ठ+० । वासिष्ठ+सु । वासिष्ठः ।

*यहां ऋषिवाची वसिष्ठ प्रातिपदिक से **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इससे युवापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९२) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस इञ् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

(४) बैदः । बिद+अञ् । बैद+अ । बैद+सु । बैदः । बैद+इञ् । बैद+० । बैद+सु । बैदः ।

*यहां 'बिद' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्'** (४।१।१०४) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। यह 'ञित्' प्रत्यय है। इससे युवापत्य अर्थ में 'इत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस 'इञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

(५) तैकायनिः । तिक+फिञ् । तैक+आयनि । तैकायनि+सु । तैकायनिः । तैकायनि+अण् । तैकायनि+० । तैकायनि+सु । तैकायनिः ।

*यहां 'तिक' प्रातिपदिक से **'तिकादिभ्यः फिञ्'** (४।१।१५४) से गोत्रापत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है। इससे युवापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से युवापत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस 'अण्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

***विशेष-(१) गोत्र**-व्याकरणशास्त्र में **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) से पौत्र (पोता) की गोत्र संज्ञा है। जैसे गर्ग का पुत्र गार्गि और गार्गि का पुत्र अर्थात् गर्ग का पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। गार्ग्य के युवापत्य को गार्ग्यायण कहते हैं।*

*(२) **युवा**-जब तक गर्ग वंश का कोई वृद्ध पुरुष जीवित रहता है, तभी तक वह चौथा पुरुष युवा (अपत्य) कहाता है- **'जीविति तु वंश्ये युवा'** (४।१।१६३)।*

युवप्रत्ययस्य-

(२) पैलादिभ्यश्च।५६।

प०वि०-पैलादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-पैल आदिर्येषां ते पैलादयः, तेभ्यः-पैलादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-यूनि लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पैलादिभ्यश्च यूनि लुक्।

अर्थः-पैलादिभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो युवापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-पीलाया गोत्रापत्यं पैलः (पिता)। पैलस्य युवापत्यं पैलः (पुत्र)।

पैल। शालङ्कि। सात्यकि। सात्यकामि। दैवि। औदमज्जि। औदव्रजि। औदमेघि। औदबुद्धि। दैवस्थानि। पैङ्गलायनि। राणायनि। रौहक्षिति। गौलिङ्गि। औद्गाहमानि। ओज्जिहानि। रागक्षति। राणि। सौमनि। आहमानि। तद्राजाच्चाणः। आकृतिगणोऽयम्। इति पैलादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पैलादिभ्यः) पैल आदि गोत्र-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है।

*उदा०-**पीलाया गोत्रापत्यं पैलः (पिता)।** पीला ऋषिका का गोत्रापत्य पैल (पिता) है। **पैलस्य युवापत्यं पैलः (पुत्रः)।** पैल ऋषिका का युवापत्य पैल (पुत्र) है।*

*सिद्धि-**पैलः।** पीला+अण्। पैल+अ। पैल+सु। पैलः। पैल+फिञ्। पैल+०। पैल+सु। पैलः।*

*यहां 'पीला' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'पीलाया वा'** (४।१।११८) से 'अण्' प्रत्यय है। इससे युवापत्य अर्थ में **'अणो द्व्यचः'** (४।१।१५६) 'फिञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस 'फिञ्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

युवप्रत्ययस्य-

(३) इञः प्राचाम्।६०।

प०वि०-इञः ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०-यूनि, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्राचामिञो यूनि लुक्।

अर्थः-प्राचां गोत्रे वर्तमानाद् इञ्-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-पन्नागारस्य गोत्रापत्यं पान्नागारिः (पिता)। पान्नागारेर्युवापत्यं पान्नागारिः (पुत्रः)। मन्थरैषणस्य गोत्रापत्यं मान्थरैषणिः (पिता)। मान्थरैषणेर्युवापत्यं मान्थरैषणिः (पुत्रः)।

पन्नम्=प्राप्तम् अगारं यस्य स पन्नागारः। मन्थरा=मन्दीभूता एषणा यस्य स मान्थरैषणः। (इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्राचाम्) प्राची दिशा के देश में विद्यमान (इञः) इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।

*उदा०-**पन्नागारस्य गोत्रापत्यं पान्नागारिः (पिता)**। पन्नागार ऋषि का गोत्रापत्य पान्नागारि (पिता) है। **पान्नागारेर्युवापत्यं पान्नागारिः (पुत्रः)**। पान्नागारि ऋषि का युवापत्य पान्नागारि (पुत्र) है। **मन्थरैषणस्य गोत्रापत्यं मान्थरैषणिः (पिता)**। मन्थरैषण ऋषि का गोत्रापत्य मान्थरैषणि (पिता) है। **मान्थरैषणेर्युवापत्यं मान्थरैषणिः (पुत्रः)**। मान्थरैषणि ऋषि का युवापत्य मान्थरैषणि (पुत्र) है।*

*सिद्धि-**पान्नागारिः**। पन्नागार+इञ्। पान्नागार+इ। पान्नागारि+सु। पान्नागारिः। पान्नागिरि+फक्। पान्नागारि+०। पान्नागारि+सु। पान्नागारिः।*

*यहां '**पन्नागार**' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में '**अत इञ्**' (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होता है। इससे युवापत्य अर्थ में '**यञिञोश्च**' (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस फक् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

विशेष-पन्नागार और मन्थरैषण प्राग्देशीय गोत्र हैं।

लुक्प्रतिषेधः-

(४) न तौल्वलिभ्यः।६१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, तौल्वलिभ्यः ५।३।

अनु०-यूनि लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तौल्वलिभ्यो यूनि लुङ् न।

अर्थः-तौल्वल्यादिभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति।

उदा०-तुल्वस्य गोत्रापत्यं तौल्वलिः। तौल्वलेर्युवापत्यं तौल्वलायनः।

तौल्वलि। धारणि। रावणि। पारणि। दैलीपि। दैवलि। दैवमति। दैवयज्ञि। प्रावाहणि। मान्धातकि। आनुहारति। श्वाफलकि। आनुमति। आहिंसि। आसुरि। आयुधि। नैमिषि। आसिबन्धकि। बैकि। पौष्करसादि। वैरकि। वैलकि। वैहति। वैकर्णि। कारेणुपालि। कामलि। रान्धकि। आसुराहति। प्राणहति। पौष्कि। कान्दकि। दौषकगति। आन्तराहति। इति तौल्वल्यादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तौल्वलिभ्यः) तौल्वलि आदि गोत्र प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप (न) नहीं होता है।

*उदा०-**तुल्वलस्य गोत्रापत्यं तौलवलिः।** तुल्वल ऋषि का गोत्रापत्य तौल्वलि (पिता) है। **तौल्वलेर्युवापत्यं तौल्वलायनः (पुत्रः)।** तौल्वलि ऋषि का युवापत्य तौल्वलायन (पुत्र) है।*

***सिद्धि-तौल्वलायनः।** तुल्वल+इञ्। तौल्वल्+इ। तौल्वलि+सु। तौल्वलिः। तौल्वलि+फक्। तौल्वल्+आयन। तौल्वलायन+सु। तौल्वलायनः।*

*यहां 'तुल्वल' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है। इससे युवापत्य अर्थ में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ' के स्थान में आयन आदेश होता है।*

तद्राजसंज्ञकस्य–

(५) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्।६२।

प०वि०-तद्राजस्य ६।१ बहुषु ७।३ तेन ३।१ एव अव्ययपदम्, अस्त्रियाम् ७।१।

स०-न स्त्री इति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लुक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रियां बहुषु तद्राजस्य लुक् तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः-स्त्रीलिङ्गवर्जितस्य बहुषु वर्तमानस्य तद्राजसंज्ञकस्य लुग् भवति, यदि तेनैव तद्राजसंज्ञकेन प्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-अङ्गस्यापत्यम्-आङ्गः। अङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-अङ्गाः। बङ्गस्यापत्यम्-बाङ्गः। बङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-बङ्गाः। मगधस्यापत्यम्-मागधः। मगधस्य बहूनि अपत्यानि-मगधाः। कलिङ्गस्यापत्यम्-कालिङ्गः। कलिङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-कलिङ्गाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से रहित (बहुषु) बहुत अर्थ में विद्यमान (तद्राजस्य) तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है, यदि वहां (तेन-एव) उसी तद्राजसंज्ञक प्रत्यय से बहुत्व का कथन किया गया हो।

*उदा०-**अङ्गस्यापत्यम्-आङ्गः।** अङ्ग देश के राजा का पुत्र **'आङ्ग'** कहाता है। **अङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-अङ्गाः।** अङ्ग के बहुत पुत्र **'अङ्ग'** कहाते हैं। **बङ्गस्यापत्यम्-***

*बाङ्गः । बङ्ग देश के राजा का पुत्र 'बाङ्ग' कहाता है। **बङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-बङ्गाः ।** बङ्ग के बहुत पुत्र बङ्ग कहाते हैं। **कलिङ्गस्यापत्यम्-कालिङ्गः ।** कलिङ्ग देश के राजा का पुत्र 'कालिङ्ग' कहाता है। **कलिङ्गस्य बहूनि अपत्यानि-कलिङ्गाः ।** कलिङ्ग के बहुत पुत्र 'कलिङ्ग' कहाते हैं।*

सिद्धि-अङ्गाः । *अङ्ग+अण्+जस् । अङ्ग+०+जस् । अङ्गाः ।*

*यहां '**द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्**' (४ ।१ ।१७०) से तद्राजसंज्ञक 'अण्' प्रत्यय है। इसका बहुत पुत्रों के अर्थ की विवक्षा में इस सूत्र से 'लुक्' हो जाता है। ऐसे ही-**बङ्गाः, मगधाः, कलिङ्गाः ।***

विशेष-(१) तद्राज-'ते तद्राजाः' *(४ ।१ ।१७२) तथा '**ञ्यादयस्तद्राजाः**' (५ ।३ ।११९) से जिन-प्रत्ययों की तद्राज-संज्ञा की गई है, उन्हें उस प्रकरण में देखकर समझ लेवें।*

(२) अङ्ग-गङ्गा के दाहिने तट पर अवस्थित राज्य। इसकी राजधानी चम्पा नगरी (अनङ्गपुरी) थी। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार प्रान्त में थी।*

(३) मगध-बिहार प्रान्त में अवस्थित प्राचीन मगध राज्य। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसका प्राचीन नाम कीकट देश भी है।*

(४) कलिङ्ग-उड़ीसा के दक्षिण ओर का प्रदेश। इसकी राजधानी कलिङ्ग नगर थी। आधुनिक राजमहेन्द्री नगर। (२, ३, ४ के लिये द्र० संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ का परिशिष्ट)।*

गोत्रप्रत्ययस्य-

(६) यस्कादिभ्यो गोत्रे ।६३।

प०वि०-यस्क-आदिभ्यः ५ ।३ गोत्रे ७ ।१ ।

स०-यस्क आदिर्येषां ते यस्कादयः, तेभ्यः-यस्कादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लुक्, बहुषु, तेन, एव, अस्त्रियाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रियां बहुषु यस्कादिभ्यो गोत्रे लुक् तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः-स्त्रीलिङ्गवर्जितेभ्यो बहुष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यो यस्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, यदि तेनैव **गोत्रापत्यप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।**

उदा०-यस्कस्य गोत्रापत्यम्-यास्कः। यस्कस्य बहूनि अपत्यानि-यस्काः। लह्यस्य गोत्रापत्यम्-लाह्यः। लह्यस्य बहूनि अपत्यानि-लह्याः।

यस्क। लह्य। द्रुघ। अयःस्थूण। भलन्दन। विरूपाक्ष। भूमि। इला। सपत्नी। **द्व्यचो नद्याः। त्रिवेणी त्रिवणं च।** कद्रुय। कबोध। परल। ग्रीवाक्ष। गोभिलिक। राजल। तडाक। वडाक। इति शिवाद्यन्तर्गतो यस्कादिगणः (४।१।११२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से रहित, (बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (यस्कादिभ्यः) यस्क आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (तेन-एव) यदि उसी गोत्र-प्रत्यय से बहुत्व का कथन किया गया हो।

*उदा०-**यस्कस्य गोत्रापत्यम्-यास्कः।** यस्क ऋषि का गोत्रापत्य=पौत्र 'यास्क' कहाता है। **यस्कस्य बहूनि अपत्यानि-यस्काः।** यस्क के बहुत पौत्र 'यस्क' कहाते हैं। **लह्यस्य गोत्रापत्यम्-लाह्यः।** लह्य ऋषि का गोत्रापत्य=पौत्र 'लाह्य' कहाता है। **लह्यस्य बहूनि अपत्यानि-लह्याः।** लह्य के बहुत पौत्र 'लह्य' कहाते हैं।*

*सिद्धि-**यस्काः।** यस्क+ङस्+अण्+जस्। यस्क+०+अस्। यस्काः।*

*यहां यस्क प्रातिपदिक से गोत्रापत्य, अर्थ में **'शिवादिभ्योऽण्'** (४।१।११२) से 'अण्' प्रत्यय है। इसके बहुत पौत्रों के अर्थ की विवक्षा में इस प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् हो जाता है।*

विशेष-यस्कादिगण, शिवादिगण (४।१।११२) के अन्तर्गत है।

यञ्+अञ्-

(७) यञञोश्च।६४।

प०वि०-यञ्-अञोः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-यञ् च अञ् च तौ यञञौ, तयोः-यञञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक्, बहुषु, तेन, एव, अस्त्रियाम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रियां बहुषु गोत्रे यञञोश्च लुक्, तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः-स्त्रीलिङ्गवर्जितस्य बहुष्वर्थेषु वर्तमानस्य गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य यञ्प्रत्ययस्य अञ्प्रत्ययस्य **च लुग् भवति**, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-(१) **यञ्**-गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। गर्गस्य बहूनि अपत्यानि-गर्गाः। वत्सस्य गोत्रापत्यं वात्स्यः। वत्सस्य बहूनि अपत्यानि-वत्साः।

(२) **अञ्**-बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः। बिदस्य बहूनि अपत्यानि-बिदाः। उर्वस्य गोत्रापत्यम्-और्वः। उर्वस्य बहूनि अपत्यानि-उर्वाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से रहित (बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित (यञञोश्च) यञ् और अञ् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है यदि (तेन-एव) उसी गोत्र-प्रत्यय से बहुत्व का कथन किया हो।

*उदा०-(१) यञ्-**गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः।** गर्ग ऋषि का पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। **गर्गस्य बहूनि अपत्यानि-गर्गाः।** गर्ग ऋषि के बहुत पौत्र 'गर्गाः' कहाते हैं। **वत्सस्य गोत्रापत्य वात्स्यः।** वत्स ऋषि का पौत्र 'वात्स्य' कहाता है। **वत्सस्य बहूनि अपत्यानि-वत्साः।** वत्स ऋषि के बहुत पौत्र 'वत्सा' कहाते हैं।*

*(२) अञ्-**बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः।** बिद ऋषि का पौत्र 'बैद' कहाता है। **बिदस्य बहूनि अपत्यानि-बिदाः।** बिद ऋषि के बहुत पौत्र 'बिदाः' कहाते हैं। **उर्वस्य गोत्रापत्यं और्वः।** उर्व ऋषि का पौत्र 'और्वः' कहाता है। **उर्वस्य बहूनि अपत्यानि-उर्वाः।** उर्व ऋषि के बहुत पौत्र 'उर्वाः' कहाते हैं।*

*सिद्धि-(१) **गर्गाः।** गर्ग+ङस्+यञ्+जस्। गर्ग+अस्। गर्गाः।*

*यहां गर्ग प्रातिपदिक से '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। उसके बहुत पौत्रों के अर्थ की विवक्षा में इस यञ्प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् हो जाता है।*

*(२) **बिदाः।** बिद+ङस्+अञ्+जस्। बिद+०+जस्। बिदाः।*

*यहां बिद प्रातिपदिक से '**अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्**' (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। उसके बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस 'अञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् हो जाता है।*

गोत्रप्रत्ययस्य-

(८) अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च।६५।

प०वि०-अत्रि-भृगु-कुत्स-वसिष्ठ-गोतम-अङ्गिरोभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-अत्रिश्च भृगुश्च कुत्सश्च वसिष्ठश्च गोतमश्च अङ्गिरा च ते-अत्रि०अङ्गिरसः, तेभ्यः-अत्रि०अङ्गिरोभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक्, बहुषु, तेन, एव, अस्त्रियाम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्त्रियां बहुषु अत्रिभृगुवत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च गोत्रे लुक् तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः-स्त्रीलिङ्गवर्जितेभ्यो बहुष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः अत्रिभृगुवत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-(१) **अत्रिः**-अत्रेर्गोत्रापत्यम्-आत्रेयः। अत्रेर्बहूनि अपत्यानि-अत्रयः। (२) **भृगुः**-भृगोर्गोत्रापत्यम्-भार्गवः। भृगोर्बहूनि अपत्यानि-भृगवः। (३) **कुत्सः**-कुत्सस्य गोत्रापत्यम्-कौत्सः। कुत्सस्य बहूनि अपत्यानि-कुत्साः। (४) **वसिष्ठः**-वसिष्ठस्य गोत्रापत्यम्-वासिष्ठः। वसिष्ठस्य बहूनि अपत्यानि-वसिष्ठाः। (५) **गोतमः**-गोतमस्य गोत्रापत्यम्-गौतमः। गोतमस्य बहूनि अपत्यानि-गोतमाः। (६) **अङ्गिराः**-अङ्गिरसो गोत्रापत्यम्-आङ्गिरसः। अङ्गिरसो बहूनि अपत्यानि-अङ्गिरसः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से रहित (बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (अत्रि०अङ्गिरोभ्यः) अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरा इन प्रातिपदिकों से (च) भी (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है, यदि (तेनैव) उसी गोत्रापत्य से बहुत्व का कथन किया गया हो।*

*उदा०-(१) **अत्रि-अत्रेर्गोत्रापत्यम्-आत्रेयः।** अत्रि ऋषि का पौत्र 'आत्रेयः' कहाता है। **अत्रेर्बहूनि अपत्यानि-अत्रयः।** अत्रि ऋषि के बहुत पौत्र 'अत्रयः' कहाते हैं। (२) **भृगु-भृगोर्गोत्रापत्यम्-भार्गवः।** भृगु ऋषि का पौत्र 'भार्गवः' कहाता है। **भृगोर्बहूनि अपत्यानि-भृगवः।** भृगु ऋषि के बहुत पौत्र 'भृगवः' कहाते हैं। (३) **कुत्स-कुत्सस्य गोत्रापत्यम्-कौत्सः।** कुत्स ऋषि का पौत्र 'कौत्सः' कहाता है। **कुत्सस्य बहूनि अपत्यानि-कुत्साः।** कुत्स ऋषि के बहुत पौत्र 'कुत्साः' कहाते हैं। (४) **वसिष्ठ-वसिष्ठस्य गोत्रापत्यम्-वासिष्ठः।** वसिष्ठ ऋषि का पौत्र 'वासिष्ठः' कहाता है। **वसिष्ठस्य बहूनि अपत्यानि-वसिष्ठाः।** वसिष्ठ ऋषि के बहुत पौत्र 'वसिष्ठाः' कहाते हैं। (५) **गोतम-गोतमस्य गोत्रापत्यम्-गौतमः।** गोतम ऋषि का पौत्र 'गौतमः' कहाता है। **गोतमस्य बहूनि अपत्यानि-गोतमाः।** गोतम ऋषि के पौत्र 'गोतमाः' कहाते हैं। (६) **अङ्गिरा-अङ्गिरसो गोत्रापत्यम्-आङ्गिरसः।** अङ्गिरा ऋषि का पौत्र 'आङ्गिरस' कहाता है। **अङ्गिरसो बहूनि अपत्यानि-अङ्गिरसः।** अङ्गिरा ऋषि के बहुत पौत्र 'अङ्गिरसः' कहाते हैं।*

सिद्धि-(१) अत्रयः। अत्रि+ङस्+ढक्+जस्। अत्रि+0+अस्। अत्रयः।

यहां अत्रि प्रातिपदिक से 'इतश्चानिञः' (४।१।१२२) से गोत्रापत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है। उसके बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) भृगवः। भृगु+ङस्+अण्+जस्। भृगु+अस्। भृगवः।

यहां भृगु प्रातिपदिक से 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' (४।१।११४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। उसके बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(३) ऐसे ही-कुत्साः, वसिष्ठाः, गोतमाः, अङ्गिरसः।

प्राच्यभरतगोत्रप्रत्ययस्य–

(६) बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु।६६।

प०वि०–बहु-अचः ५।१ इञः ६।१ प्राच्य-भरतेषु ७।३।

स०–बहवोऽचो यस्मिन् सः–बह्वच्, तस्मात्–बह्वचः (बहुव्रीहिः)। प्राक्षु भवाः प्राच्याः। प्राच्याश्च भरताश्च ते प्राच्यभरताः (कर्मधारयः)।

अनु०–लुक्, बहुषु, तेन, एव, गोत्रे इति चानुवर्तते। अस्त्रियाम् इति च नानुवर्तते।

अन्वयः–बहुषु बह्वचः प्राच्यभरतेषु इञो लुक्, तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः–बहुष्वर्थेषु वर्तमानाद् बहु-अचः प्रातिपदिकात् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे चार्थे विहितस्य इञ्-प्रत्ययस्य लुग् भवति, यदि तेनैव गोत्र-प्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०–(१) **प्राच्यगोत्रम्**–पन्नागारस्य गोत्रापत्यम्–पान्नागारिः। पन्नागारस्य बहूनि अपत्यानि–पन्नागाराः। मन्थरैषणस्य गोत्रापत्यम्–मान्थरैषणिः। मन्थरैषणस्य बहूनि अपत्यानि–मन्थरैषणाः।

(२) **भरतगोत्रम्**–युधिष्ठिरस्य गोत्यापत्यम्–यौधिष्ठिरिः। युधिष्ठिरस्य बहूनि अपत्यानि–युधिष्ठिराः। अर्जुनस्य गोत्रापत्यम्–आर्जुनिः। अर्जुनस्य बहूनि अपत्यानि–अर्जुनाः।

आर्यभाषा–अर्थ–(बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (बहु-अचः) बहुत् अच्वाले प्रातिपदिक से (प्राच्य-भारतेषु) प्राच्यगोत्र और भरतगोत्र में विहित (इञः) इञ्-प्रत्यय का (लुक्) लोप हो जाता है यदि (तेनैव) उसी गोत्रप्रत्यय से उसका बहुत्व कथन किया गया हो।

उदा०-(१) प्राच्यगोत्र-पन्नागारस्य गोत्रापत्यम्-पान्नागारिः। पन्नागार का पौत्र 'पान्नागारिः' कहाता है। पन्नागारस्य बहूनि अपत्यानि-पन्नागाराः। पन्नागार के बहुत पौत्र 'पन्नागाराः' कहाते हैं। मन्थरैषणस्य गोत्रापत्यम्-मान्थरैषणिः। मन्थरैषण का पौत्र 'मान्थरैषणिः' कहाता है। मन्थरैषणस्य बहूनि अपत्यानि-मन्थरैषणाः। मन्थरैषण के बहुत पौत्र 'मन्थरैषणाः' कहाते हैं।

(२) भरतगोत्र-युधिष्ठिरस्य गोत्रापत्यम्-यौधिष्ठिरिः। युधिष्ठिर का पौत्र 'यौधिष्ठिरिः' कहाता है। युधिष्ठिरस्य बहूनि अपत्यानि-युधिष्ठिराः। युधिष्ठिर के बहुत पौत्र 'युधिष्ठिराः' कहाते हैं। अर्जुनस्य गोत्रापत्यम्-आर्जुनिः। अर्जुन का पौत्र 'आर्जुनिः' कहाता है। अर्जुनस्य बहूनि अपत्यानि-अर्जुनाः। अर्जुन के बहुत पौत्र 'अर्जुनाः' कहाते हैं।

सिद्धि-पन्नागाराः। पन्नागार+ङस्+इञ्+जस्। पान्नागार+०+अस्। पन्नागाराः।

यहां प्राच्य गोत्रवाची 'पन्नागार' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य के अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। उसका बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस सूत्र से लुक् हो जाता है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेवें।

विशेष-शरावती (साबरमती) के पूर्व का देश प्राच्य कहाता है। वर्तमान कुरुक्षेत्र का प्राचीन नाम भरत जनपद था।

लुक्प्रतिषेधः-

(१०) न गोपवनादिभ्यः।६७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, गोपवन-आदिभ्यः ५।३।

स०-गोपवन आदिर्येषां ते-गोपवनादयः, तेभ्यः-गोपवनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लुक्, बहुषु, तेन, एव, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुषु गोपवनादिभ्यो गोत्रे लुङ् न, तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः-बहुष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यो गोपवनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-गोपवनस्य गोत्रापत्यम्-गौपवनः। गोपवनस्य **बहूनि** अपत्यानि-गौपवनाः। शिग्रोर्गोत्रापत्यम्-शैग्रवः। शिग्रोर्बहूनि **अपत्यानि-शैग्रवाः।**

गोपवन। शिग्रु। बिन्दु। भाजन। अश्वावतान। श्यामाक। श्यमाक। श्यापर्ण। हरित। किन्दास। वह्यस्क। अर्कलूष। वध्योष। विष्णुवृद्ध। प्रतिबोध। रथन्तर। रथीतर। गविष्ठिर। निषाद। मठर। मृद। पुनर्भू। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। **परस्त्री परशुं च।** इति बिन्दाद्यन्तर्गतो गोपवनादिगण: (४।१।१०४)।

आर्यभाषा-अर्थ-(बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (गोपवनादिभ्य:) गोपवन आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप (न) नहीं होता है।

*उदा०-**गोपवनस्य गोत्रापत्यम्-गौपवन:।** गोपवन का पौत्र 'गौपवन:' कहाता है। **गोपवनस्य बहूनि अपत्यानि-गौपवना:।** गोपवन ऋषि के बहुत पौत्र 'गौपवना:' कहाते हैं। **शिग्रोर्गोत्रापत्यम्-शैग्रव:।** शिग्रु ऋषि का पौत्र 'शैग्रव:' कहाता है। **शिग्रोर्बहूनि अपत्यानि-शैग्रवा:।** शिग्रु ऋषि के बहुत पौत्र 'शैग्रवा:' कहाते हैं।*

*सिद्धि-**गौपवना:।** गोपवन+ङस्+अञ्+जस्। गौपवन+अ+अस्। गौपवना:।*

*यहां **'गौपवन'** प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्'** (४।१।१०४) से 'अञ्' प्रत्यय है। **'यञञोश्च'** (२।४।६४) से इस 'अञ्' प्रत्यय का लुक् प्राप्त था। इस सूत्र से प्रत्यय के लुक् का प्रतिषेध किया गया है।*

विशेष-गोपवन आदि शब्द बिदादिगण (४।१।१०४) के अन्तर्गत हैं।

गोत्रप्रत्ययस्य-

(११) तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे।६८।

प०वि०-तिक-कितवादिभ्य: ५।३ द्वन्द्वे ७।१।

स०-तिकश्च कितवश्च तौ कितकितवौ, आदिश्च आदिश्च तौ आदी, तिककितवौ आदी येषां ते तिककितवादय:, तेभ्य:-तिककितवादिभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहि:)।

अनु०-लुक्, बहुषु, तेन, एव, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-द्वन्द्वे बहुषु तिककितवादिभ्यो गोत्रे लुक्, तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थ:-द्वन्द्वे समासे बहुष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यस्तिकादिभ्य: कितवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः, कितवस्य गोत्रापत्यं कैतवायनिः । तैकायनयश्च, कैतवायनयश्च ते-तिककितवाः । वङ्खरस्य गोत्रापत्यं वाङ्खरिः । भण्डीरथस्य गोत्रापत्यं भाण्डीरथिः । वाङ्खरयश्च भाण्डीरथयश्च ते वङ्खरभण्डीरथाः ।

तिककितवाः । वङ्खरभण्डीरथाः । उपकलमकाः । पफनकनरकाः । बकनखगुश्वपदपरिणद्धाः । उब्जककुभाः । लङ्कशान्तमुखाः । उरसलङ्कटाः । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः । अग्निवेशदासेरकाः । इति तिककितवादयः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (तिककितवादिभ्यः) तिक आदि और कितव आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है, यदि (तेन-एव) उसी गोत्रापत्य प्रत्यय से बहुत अर्थ का कथन किया गया हो।

*उदा०-(१) **तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः ।** तिक ऋषि का पौत्र 'तैकायनिः' कहाता है। **कितवस्य गोत्रापत्यं कैतवायनिः ।** कितव ऋषि का पौत्र 'कैतवायनिः' कहाता है। **तैकायनयश्च कैतवायनयश्च ते तिककितवाः ।** तिक ऋषि और कितव ऋषि के बहुत पौत्र 'तिककितवाः' कहाते हैं।*

*(२) **वङ्खरस्य गोत्रापत्यं वाङ्खरिः ।** वङ्खर ऋषि का पौत्र 'वाङ्खरिः' कहाता है। **भण्डीरथस्य गोत्रापत्यं भाण्डीरथिः ।** भण्डीरथ ऋषि का पौत्र 'भाण्डीरथिः' कहाता है। **वाङ्खरयश्च भाण्डीरथयश्च ते वङ्खरभण्डीरथाः ।** वङ्खर ऋषि और भण्डीरथ के ऋषि के बहुत पौत्र 'वङ्खरभण्डीरथाः' कहाते हैं।*

*सिद्धि-(१) **तिककितवाः ।** तिक+ङस्+फिञ्+सु । तैक+आयनि+सु । तैकायनिः । कितव+ङस्+फिञ्+सु । कैतव+आयन+सु । कैतवायनिः ।*

*यहां तिक और कितव प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'तिकादिभ्यः फिञ्'** (४।१।१५४) से 'फिञ्' प्रत्यय है। इनके द्वन्द्व समास में बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् हो जाता है।*

*(२) **वङ्खरभण्डीरथाः ।** यहां वङ्खर और भण्डीरथ प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। इनके द्वन्द्व समास में बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस सूत्र से इस प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

वा गोत्रप्रत्ययस्य–

(१२) उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे।६६।

प०वि०–उपक-आदिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, अद्वन्द्वे ७।१।

स०–उपक आदिर्येषां ते उपकादयः, तेभ्यः–उपकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। न द्वन्द्व इति अद्वन्द्वः, तस्मिन्–अद्वन्द्वे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–लुक्, बहुषु, तेन, एव, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अद्वन्द्वे बहुषु उपकादिभ्यो गोत्रेऽन्यतरस्यां लुक्, तेनैव कृतं बहुत्वं चेत्।

अर्थः–अद्वन्द्वे च समासे बहुष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः उपकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०–उपकलमकाः। भ्रष्टककपिष्ठलाः। कृष्णाजिनसुन्दराः। उपकादीनामेते त्रयः शब्दाः कृतद्वन्द्वास्तिककितवादिषु पठ्यन्ते। एतेषु पूर्वसूत्रेण गोत्रप्रत्ययस्य नित्यं लुग् भवति।

अद्वन्द्वे चानेन सूत्रेण विकल्पो विधीयते–उपका औपकायना वा। लमका लामकायना वा। भ्रष्टका भ्राष्टकयो वा। कपिष्ठलाः कापिष्ठलयो वा। कृष्णाजिनाः कार्ष्णाजिनयो वा। कृष्णसुन्दराः। कार्ष्णसुन्दरयो वा। परिशिष्टानां च द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे च गोत्रप्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति–

पण्डराक। अण्डारक। गडुक। सुपर्यक। सुपिष्ठ। मयूरकर्ण। खारीजङ्घ। शलाबल। पतञ्जल। कण्ठेरणि। कुषीतक। काशकृत्स्न। निदाघ। कलशीकण्ठ। दामकण्ठ। कृष्णपिङ्गल। कर्णक। पर्णक। जटिलक। बधिरक। जन्तुक। अनुलोम। अर्द्धपिङ्गलक। प्रतिलोम। प्रतान। अनभिहित।

आर्यभाषा–अर्थ–(अद्वन्द्वे) अद्वन्द्व समास में (बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (उपकादिभ्यः) उपक आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का

(अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुक्) लोप होता है, यदि (तेन-एव) उसी गोत्र प्रत्यय से बहुत अर्थ का कथन किया गया हो।

*उदा०-**उपकलमकाः, भ्रष्टककपिष्ठलाः, कृष्णाजिनसुन्दराः।** उपकादिगण के ये तीन शब्द द्वन्द्व समास सहित 'तिककितव' आदि गण में पठित हैं। इनमें पूर्वसूत्र (२।४।६८) से गोत्रप्रत्यय का नित्य लुक् होता है।*

*अद्वन्द्व में इस सूत्र से गोत्र-प्रत्यय के लुक् का विकल्प-विधान किया है-**उपकाः। औपकायनाः।** उपक ऋषि के पौत्र। **लमकाः। लामकायनाः।** लमक ऋषि के पौत्र। इत्यादि।*

सिद्धि-(१) उपकाः। उपक+ङस्+फक्+जस्। उपक+०+अस्। उपकाः।

*यहां उपक शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से फक् प्रत्यय है। उपक के बहुत पौत्रों की विवक्षा में इस सूत्र से उस 'फक्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **औपकायनाः।** उपक+ङस्+फिञ्+जस्। औपक+आयन+अस्। औपकायनाः।*

यहां विकल्प पक्ष में 'फक्' प्रत्यय का 'लुक्' नहीं हुआ है।

गोत्रप्रत्ययस्य-

(१३) आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्।७०।

प०वि०-आगस्त्य-कौण्डिन्ययोः ६।२ अगस्ति-कुण्डिनच् १।१।

स०-आगस्त्यश्च कौण्डिन्यश्च तौ आगस्त्यकौण्डिन्यौ, तयोः-आगस्त्यकौण्डिन्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अगस्तिश्च कुण्डिनच् च एतयोः समाहारोऽस्तिकुण्डिनच् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक् तेन एव बहुषु गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुषु आगस्त्यकौण्डिन्ययोर्गोत्रे लुक्, तयोश्चागस्तिकुण्डिनच तेनैव कृतं बहुत्वं स्यात्।

अर्थः-बहुष्वर्थेषु वर्तमानयोरागस्त्यकौण्डिन्ययोः शब्दयोर्गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, तयोश्च स्थाने यथासंख्यम् अगस्तिकुण्डिनचावादेशौ भवतः, यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं स्यात्।

उदा०-अगस्त्यस्य गोत्रापत्यम्-आगस्त्यः। अगस्त्यस्य बहूनि अपत्यानि-अगस्तयः। कुण्डिन्या गोत्रापत्यम्-कौण्डिन्यः। कुण्डिन्या बहूनि अपत्यानि-कुण्डिनाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(बहुषु) बहुत अर्थों में वर्तमान (आगस्त्यकौण्डिन्ययोः) आगस्त्य और कौण्डन्य के (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है और उनके स्थान में यथासंख्य (अगस्तिकुण्डिनच्) अगस्ति और कुण्डिनच् आदेश होते हैं, यदि (तिन-एव) उसी गोत्रप्रत्यय से उनके बहुत्व का कथन किया गया हो।

*उदा०-**अगस्त्यस्य गोत्रापत्यम्-आगस्त्यः।** अगस्त्य ऋषि का पौत्र 'आगस्त्यः' कहाता है। **अगस्त्यस्य बहूनि अपत्यानि-अगस्तयः।** अगस्त्य ऋषि के बहुत पौत्र 'अगस्तयः' कहाते हैं। **कुण्डिन्या गोत्रापत्यं कौण्डिन्यः।** कुण्डिनी ऋषिका का पौत्र 'कौण्डिन्यः' कहाता है। **कुण्डिन्याः बहूनि अपत्यानि-कुण्डिनाः।** कुण्डिनी ऋषिका के बहुत पौत्र 'कुण्डिनाः' कहाते हैं।*

*सिद्धि-(१) **अगस्तयः।** अगस्त्य+ङस्+अण्+जस्। अगस्ति+०+अस्। अगस्तयः।*

*यहां अगस्त्य प्रातिपदिक से **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'अगस्त्य' के बहुत पौत्र अर्थ की विवक्षा में इस सूत्र से इस 'अण्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है और 'अगस्त्य' शब्द के स्थान में 'अगस्ति' आदेश हो जाता है।*

*(२) **कुण्डिनाः।** कुण्डिनी+ङस्+यञ्+जस्। कुण्डिनच्+०+अस्। कुण्डिनाः।*

*यहां कुण्डिनी प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय होता है। 'कुण्डिनी' के बहुत पौत्र अर्थ की विवक्षा में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है और उसके स्थान में 'कुण्डिनच्' आदेश होता है।*

*(३) कुण्डिनी शब्द मध्योदात्त है। कुण्डिनच् शब्द में चकार का अनुबन्ध **'चितोऽन्तोदात्तः'** (६।१।१६२) अन्तोदात्त स्वर के लिये किया गया है।*

सुप्प्रत्ययस्य-

(१४) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः।७१।

प०वि०-सुपः ६।१ धातु-प्रातिपदिकयोः ६।२।

स०-धातुश्च प्रातिपदिकं च ते-धातुप्रातिपदिके, तयोः-धातुप्रातिपदिकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातुप्रातिपदिकयोः सुपो लुक्।

अर्थः-धात्ववयवस्य प्रातिपदिकावयवस्य च सुप्-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(१) **धातोः**-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रीयति। आत्मनो घटमिच्छति-घटीयति। (२) **प्रातिपदिकस्य**-कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः। राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुप्रातिपदिकयोः) धातु के अवयव और प्रातिपदिक के अवयव (सुपः) सुप्-प्रत्यय का (लुक्) लोप हो जाता है।

*उदा०-(१) **धातु-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रीयति।** अपने पुत्र को चाहता है। **आत्मनो घटमिच्छति-घटीयति।** अपने घट (घड़ा) को चाहता है। (२) **प्रातिपदिक-कष्टं श्रित इति कष्टश्रितः।** कष्ट को प्राप्त हुआ। **राज्ञः पुरुष इति राजपुरुषः।** राजा का पुरुषः।*

*सिद्धि-(१) **पुत्रीयति।** पुत्र+अम्+क्यच्। पुत्र+य। पुत्रीय+लट्। पुत्रीय+शप्+ति। पुत्रीय+अ+ति। पुत्रीयति।*

*यहां 'पुत्र' शब्द से इच्छा अर्थ में '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इसकी '**सनाद्यन्ता धातवः**' (३।१।३२) से धातु संज्ञा है। इस सूत्र से धातु-अवयवसम्बन्धी 'अम्' प्रत्यय (सुप्) का लुक् हो जाता है।*

*(२) **कष्टश्रितः।** कष्ट+अम्+श्रित+सु। कष्टश्रित+सु। कष्टश्रितः।*

*यहां 'कष्ट' और 'श्रित' सुबन्त का '**द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः**' (२।१।२४) से द्वितीया तत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से 'कष्ट' और 'श्रित' प्रातिपदिक के अवयव 'अम्' और 'सु' (सुप्) प्रत्यय का लुक् हो जाता है। 'कष्टश्रित' इसकी '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

(३) सुप्-सु आदि २१ प्रत्ययों को 'सुप्' कहते हैं।

शप्-प्रत्ययस्य-

(१५) अदिप्रभृतिभ्यः शपः।७२।

प०वि-अदि-प्रभृतिभ्यः ५।३ शपः ६।१।

स०-अदिः प्रभृतिर्येषां तेऽदिप्रभृतयः, तेभ्यः-अदिप्रभृतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लुक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अदिप्रभृतिभ्यः शपो लुक्।

अर्थः-अदिप्रभृतिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य शप्-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-अत्ति। हन्ति। द्वेष्टि।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अदिप्रभृतिभ्यः) धातुपाठ के अदादिगण में पठित धातुओं से परे (शपः) शप्-प्रत्यय का (लुक्) लोप हो जाता है।

__उदा०-अत्ति।__ वह खाता है। __हन्ति।__ वह मारता है। __द्वेष्टि।__ वह द्वेष करता है।

__सिद्धि-अत्ति।__ अद्+लट्। अद्+शप्+तिप्। अद्+०+ति। अत्ति।

यहां '__अद् भक्षणे__' (अदा०प०) धातु से वर्तमानकाल में '__वर्तमाने लट्__' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है। '__कर्तरि शप्__' (३।१।६८) से शप्-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से अदादिगण की अद् धातु से 'शप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

__विशेष__-पाणिनीय धातुपाठ में अदादिगण की सब धातु देख लेवें।

शप्प्रत्ययस्य (बहुलम्)-

(१६) बहुलं छन्दसि।७३।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-शपः, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुलं शपो लुक्।

अर्थः-छन्दसि विषये शप्-प्रत्ययस्य बहुलं लुग् भवति।

उदा०-(१) **शपो लुङ् न-वृत्रं हनति।** (ऋ० ८।८९।३)। अहिः शयते। (२) **शपो लुक्-त्राध्वं नो देवाः।** (ऋ० २।२९।६)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(छन्दसि) वेदविषय में (शपः) शप्-प्रत्यय का (बहुलम्) बहुलता से (लुक्) लोप होता है।

__उदा०__-(१) __शप् का लुक् नहीं-वृत्रं हनति।__ वह वृत्र को मारता है। __अहिः शयते।__ अहि (सर्प) सोता है। (२) __शप् का लुक्-त्राध्वं नो देवाः।__ हे विद्वानो ! तुम हमारा पालन करो।

__सिद्धि__-(१) __हनति।__ हन्+लट्। हन्+शप्+तिप्। हन्+अ+ति। हनति।

यहां '__हन हिंसागत्योः__' (अदा०प०) धातु से वर्तमानकाल में '__वर्तमाने लट्__' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '__कर्तरि शप्__' (३।२।६८) से 'शप्' प्रत्यय है। यह धातु अदादिगण की है। '__अदिप्रभृतिभ्यः शपः__' (२।४।७२) से शप् का लुक् कहा गया है किन्तु इस सूत्र से उक्त वैदिक प्रयोग में 'शप्' का 'लुक्' नहीं होता है। ऐसे ही-__शीङ् स्वप्ने__' (अदा०आ०) से-__शयते।__

(२) त्राध्वम्। त्रै+लोट्। त्रै+शप्+ध्वम्। त्रा+०+ध्वम्। त्राध्वम्।

यहां विधि आदि अर्थों में 'त्रैङ् पालने' (भ्वा०आ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। यहां वैदिक प्रयोग में भ्वादि धातु से इस सूत्र से 'शप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(३) छन्द में बहुलवचन से जहां 'शप्' प्रत्यय का 'लुक्' विधान किया गया है वहां लुक् नहीं होता है और जहां लुक् विधान नहीं किया है, वहां लुक् हो जाता है। यह उपरिलिखित उदाहरणों में स्पष्ट है।

यङ्प्रत्ययस्य–

(१७) यङोऽचि च।७४।

प०वि०–यङः ६।१ अचि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–लुक्, बहुलम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यङश्च बहुलं लुगचि।

अर्थः–यङ्प्रत्ययस्य च बहुलं लुग् भवति, अचि प्रत्यये परतः।

उदा०–(१) **अचि–**लोलुवः। पोपुवः। सनीस्रंसः। दनीध्वंसः। (२) **बहुलग्रहणाद् अनच्यपि लुग् भवति–**शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्वा-वदीति।

*आर्यभाषा–**अर्थ**–(यङः) यङ्–प्रत्यय का (च) भी (बहुलम्) बहुलता से (लुक्) लोप हो जाता है (अचि) अच्–प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–**लोलुवः।** बहुत काटनेवाला। **पोपुवः।** बहुत पवित्र करनेवाला। **सनीस्रंसः।** बहुत नष्ट करनेवाला। **दनीध्वंसः।** बहुत ध्वंस करनेवाला।*

*यहां बहुल का ग्रहण करने से अच्–प्रत्यय से अन्यत्र भी यङ्–प्रत्यय का लुक् हो जाता है–**शाकुनिको लालपीति।** पक्षियों का शिकारी बहुत शब्द करता है। **दुन्दुभिर्वावदीति।** ढोल बहुत बजता है।*

*सिद्धि–(१) **लोलुवः।** लूञ्+यङ्। लू+लू+य। लोलूय+अच्। लोलू०+अ। लोल् उवङ्+अ। लोलुव+सु। लोलुवः।*

यहां 'लुञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से क्रियासमभिहार अर्थ में 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। यङन्त 'लोलुव' धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय होता है। अच्-प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'यङ्'

*का लुक् हो जाता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का **'न धातुलोपे आर्धधातुके'** (१।१।४) से निषेध होता है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां टवोरियङुवङौ' (६।४।७७) से धातु को 'उवङ्' आदेश हो जाता है।*

*(२) 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) से 'स्रंसुध्वंसु अधःपतने' (भ्वा०प०) से **सनीस्रंसः** और दनीध्वंसः शब्द सिद्ध होते हैं।*

*(३) **लालपीति।** लप्+यङ्। लप्+लप्+य। ल+लप्+य। लालप्य+लट्। लालप्य+शप्+तिप्। लालप्य+०+ति। लालप्+०+ईट्+ति। लालपीति।*

*यहां 'लप् व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् यङ्-प्रत्यय है। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ और **'यङो वा'** (७।३।९४) से ईट् आगम होता है। यहां बहुलवचन से 'अच्' प्रत्यय से अन्यत्र भी इस सूत्र 'यङ्' का लुक् होगया है। यङ्लुक् विषय को 'चर्करीतं च' (अदादिगणवार्तिक) से अदादिगण में मानने से **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।*

(४) 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) से वावदीति।

शपः श्लुः–

(१७) जुहोत्यादिभ्यः श्लुः।७५।

प०वि०–जुहोति-आदिभ्यः ५।३ श्लुः १।१।

स०–जुहोतिरादिर्येषां ते जुहोत्यादयः, तेभ्यः–जुहोत्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–शप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–जुहोत्यादिभ्यः शपः श्लुः।

अर्थः–जुहोत्यादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य शप्-प्रत्ययस्य श्लुर्भवति।

उदा०–जुहोति। बिभेति। नेनेक्ति।

आर्यभाषा-अर्थ- *(जुहोत्यादिभ्यः) जुहोति आदि धातुओं से परे (शपः) शप्-प्रत्यय का (श्लुः) श्लु=लोप होता है।*

*उदा०-**जुहोति।** वह देता है, खाता है, लेता है। **बिभेति।** वह डरता। **नेनेक्ति।** वह शुद्ध करता/पोषण करता है।*

*सिद्धि-(१) **जुहोति।** हु+लट्। हु+शप्+तिप्। हु+०+ति। हु+हु+ति। झु+हु+ति। जु+हो+ति। जुहोति।*

यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्यके' (जु०प०) धातु से वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से लट्-प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।२।६८) से 'शप' प्रत्यय है। इस सूत्र से शप् का 'श्लु' (लोप) होता है। 'श्लौ' (६।१।२०) से धातु को द्वित्व, 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ह को झ और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से झ को ज होता है।

(२) 'ञिभी भये' (जु०प०) से-बिभेति। 'णिजिर् शौचपोषणयोः' (जु०प०) से-नेनिक्ति।

(३) प्रत्यय के लोप की 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' (१।१।६२) से लुक्, श्लु और लुप् ये तीन संज्ञायें होती हैं।

(४) पाणिनीय धातुपाठ के जुहोपत्यादिगण में जुहोति (हु) आदि धातु देख लेवें।

शपः श्लुः (बहुलम्)–

(१८) बहुलं छन्दसि।७६।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–शपः श्लुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि बहुलं शपः श्लुः।

अर्थः–छन्दसि विषये बहुलं शप्-प्रत्ययस्य श्लुर्भवति।

उदा०–(१) **शपः श्लुः**– पूर्णा विवष्टि। जनिमाबिभक्ति। **न च शपः श्लुः**–दाति प्रियाणि। धाति देवम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बहुलम्) बहुलता से (शपः) शप्-प्रत्यय का (श्लुः) श्लु=लोप होता है।

उदा०-**शप् का श्लु-पूर्णा विवष्टि।** पूर्णा को चाहता है। **जनिमाबिभक्ति।** माता-पिता की सेवा करता है। (२) **शप् का श्लु नहीं–दाति प्रियाणि।** प्रिय वस्तुयें देता है। **धाति देवम्।** देवता (विद्वान्) का धारण-पोषण करता है।

सिद्धि-(१) विवष्टि। वश्+लट्। वश्+शप्+तिप्। वश+०+ति। वश्+वश्+ति। वि+वस्+ति। वि+वष्+टि। विवष्टि।

यहां 'वश कान्तौ' (अदा०प०) धातु से वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है। यह अदादिगण की धातु है अतः 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का 'लुक्' होना चाहिये किन्तु छन्द में बहुलवचन से 'शप्' का 'श्लु' होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व, 'बहुलं

छन्दसि' (७।४।७८) से अभ्यास को इत्व, 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'श्' को षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से टवर्ग=त को ट होता है।

*(२) 'भज सेवायाम्' (भ्वा०प०) से-**बिभक्ति**। पूर्ववत् 'शप्' का 'श्लु' है।*

*(३) **दाति**। दा+लट्। दा+शप्+तिप्। दा+०+ति। दाति।*

यहां 'डुदाञ् दाने' (अदा०उ०) धातु से बहुल-वचन से 'शप्' का 'लुक्' होगया है। यह धातु जुहोत्यादिगण की है, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' का 'श्लु' होना चाहिये था। यह सब छन्द में बहुलवचन की महिमा है।

*(४) 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) से-**धाति**।*

सिच्प्रत्ययस्य--

(१६) गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु।७७।

प०वि०-गाति-स्था-घु-पा-भूभ्यः ५।३ सिचः ६।१ परस्मै-पदेषु ७।३।

स०-गातिश्च स्थाश्च घुश्च पाश्च भूश्च ते गातिस्थाघुपाभुवः, तेभ्यः-गातिस्थाघुपाभूभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लुगित्यनुवर्तते, न श्लुः।

अन्वयः-गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचो लुक् परस्मैपदेषु।

अर्थः-गातिस्थाघुपाभूभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिच्-प्रत्ययस्य लुग् भवति, परस्मैपदेषु प्रत्ययेषु परतः।

उदा०-(१) **गातिः**-अगात्। (२) **स्था**-अस्थात्। (३) **घुः**-(दा)-अदात्। (धा)-अधात्। (४) **पा**-अपात्। (५) **भूः**-अभूत्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(गातिस्थाघुपाभूभ्यः) गाति, स्था, घु, (दा, धा) पा और भू धातु से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है यदि (परस्मैपदेषु) परस्मैपद प्रत्यय परे हों।*

*उदा०-(१) गाति-**अगात्**। वह गया। (२) स्था-**अस्थात्**। वह ठहरा। (३) घु-(दा)-**अदात्**। उसने दिया। (धा)-**अधात्**। उसने धारण-पोषण किया। (४) पा-**अपात्**। उसने पीया। (५) भू-**अभूत्**। वह था।*

***सिद्धि**-(१) **अगात्**। इण्+लुङ्। इ+च्लि+ल्। गा+सिच्+तिप्। अ+गा+०त्। अगात्।*

यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से सामान्य भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।२।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और उसके स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।२।४४) से 'सिच्' आदेश है। 'इणो गालुङि' (२।४।४५) से आर्धधातुक विषय में 'इण्' के स्थान में 'गा' आदेश होता है। इस सेत्र से 'गा' धातु से परे सिच्-प्रत्यय का लुक् होता है।

(२) अस्थात्। 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०)।

(३) अदात्। 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०)।

(४) अधात्। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।

(५) अपात्। 'पा पाने' (भ्वा०प०)।

(६) अभूत्। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।

विशेष-घु- 'दाधा घ्वदाप्' (१।१।२०) से 'दा' रूप और 'धा' रूप धातुओं की 'घु' संज्ञा की गई है। उनका यहां ग्रहण किया जाता है।

वा सिच्-प्रत्ययस्य-

(२०) विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः।७८।

प०वि०-विभाषा १।१ घ्रा-धेट्-शा-छा-सः ५।१।

स०-घ्राश्च धेट् च शाश्च छाश्च साश्च, एतेषां समाहारो घ्राधेट्शाच्छासाः, तस्मात्-घ्राधेट्शाच्छासः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक् सिचः परस्मैपदेषु इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-घ्राधेट्शाच्छासः सिचो विभाषा परस्मैपदेषु।

अर्थः-घ्राधेट्शाच्छासाभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिच्-प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति, परस्मैपदेषु प्रत्ययेषु परतः।

उदा०-(१) **घ्रा**-अघ्रात्, अघ्रासीत्। (२) **धेट्**-अधात्, अधासीत्। (३) **शा**-अशात्, अशासीत्। (४) **छा**-अच्छात्, अच्छासीत्। (५) **सा**-असात्, असासीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(घ्राधेट्शाच्छासः) घ्रा, धेट्, शा, छा और सा धातुओं से परे (सिचः) सिच्-प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है (परस्मैपदेषु) परस्मैपद प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(१) **घ्रा-अघ्रात्, अघ्रासीत्।** उसने सूंघा। (२) **धेट्-अधात्, अधासीत्।** उसने पीया। (३) **शा-अशात्, अशासीत्।** उसने छीला। (४) **छा-अच्छात्, अच्छासीत्।** उसने काटा। (५) **सा-असात्, असासीत्।** उसने समाप्त किया।*

सिद्धि-(१) अघ्रात्। घ्रा+लुङ्। अट्+घ्रा+च्लि+ल्। अ+घ्रा+सिच्+तिप्। अ+घ्रा+०+त्। अघ्रात्।

यहां 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) धातु से सामान्य भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।२।४३) से च्लि-प्रत्यय और 'च्लेः सिच्' (३।२।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से 'सिच्' प्रत्यय का 'लुक्' होता है।

(२) अघ्रासीत्। घ्रा+लुङ्। अट्+च्लि+ल्। अ+घ्रा+सिच्+तिप्। अ+घ्रा+इट्+स्+ईट्+त। अ+घ्रास्+ई+त्। अघ्रासीत्।

यहां 'यमरमनमातां सक् च' (६।३।७३) से धातु को 'सक्' आगम होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।३।३५) से सिच् को इट् आगम, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से त्-प्रत्यय को 'ईट्' आगम और 'इट ईटि' (७।२।२८) से सिच् के स् का लोप होता है। यहां विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'सिच्' का 'लुक्' नहीं हुआ।

(२) अधात्, अधासीत्। 'धेट् पाने' (भ्वा०प०)।

(३) अशात्, अशासीत्। 'शो तनूकरणे' (दिवा०प०)।

(४) अच्छात्, अच्छासीत्। 'छो छेदने' (दिवा०प०)।

(५) असात्, असासीत्। 'षो अन्तकर्मणि' (दिवा०प०)।

त+थास्–

(२१) तनादिभ्यस्तथासोः।७६।

प०वि०–तन-आदिभ्यः ५।३ त-थासोः ७।२।

स०–तन आदिर्येषां ते तनादयः, तेभ्यः-तनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। तश्च थास् च तौ तथासौ, तयोः-तथासोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लुक्, सिचः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तनादिभ्यो सिचो विभाषा लुक् तथासोः।

अर्थः–तनादिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य सिच्-प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति, त-थासोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०–(त)–अतत, अतनिष्ट। असात, असनिष्ट। **(थास्)**–अतथाः, अतनिष्ठाः। असाथाः। असनिष्ठाः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(तनादिभ्यः) तन आदि धातुओं से परे (सिचः) सिच्-प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प (लुक्) लोप होता है (त-थासोः) त और थास् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-(त)-अतत, अतनिष्ट। उसने फैलाया। असात, असनिष्ट। उसने दान किया। (थास्)-अतथाः, अतनिष्ठाः। तूने फैलाया। असाथाः, असनिष्ठाः। तूने दान किया।

सिद्धि-(१) अतत। अन्+लुङ्। अट्+तन्+च्लि+त्। अ+तन्+सिच्+त। अ+त०+०+त। अतत।

यहां 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, च्लि और सिच् आदेश है। इस सूत्र से त-प्रत्यय परे होने पर सिच् प्रत्यय का लोप होता है। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है।

(२) अतनिष्ट। तन्+लुङ्। अट्+तन्+च्लि+त। अ+तन्+सिच्+त। अ+तन्+इट्+स्+त। अतनिष्ट।

यहां विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'सिच्' प्रत्यय का 'लुक्' नहीं होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'सिच्' प्रत्यय को 'इट्' आगम, 'आदेश-प्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४२) से ष्टुत्व होता है।

(३) थास्-प्रत्यय के रूप भी ऐसे ही सिद्ध करें।

(४) असनिष्ट। 'षणु दाने' (तना०उ०)।

लिट्-प्रत्ययस्य-

(२२) मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः।८०।

प०वि०-मन्त्रे ७।१ घस-ह्वर-णश-वृ-ह-आद्-वृच-कृ-गमि-जनिभ्यः ५।३ लेः ६।१।

स०-घसश्च ह्वरश्च णशश्च वृश्च दहश्च आच्च वृज् च कृश्च गमिश्च जनिश्च ते घस०जनयः, तेभ्यः-घस०जनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लुक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रे घस०जनिभ्यो लेर्लुक्।

अर्थः-मन्त्रे विषये घसह्वरणशवृदहाद्वृचकृगमिजनिभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लि-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(१) **घस**-अक्षन्नमीमदन्त (ऋ० १।८२।२)। (२) **ह्वर**-माह्वर्मित्रस्य त्वम्। (३) **नश-**प्रणङ्मर्त्यस्य (ऋ० १।१८।३)। (४) **वृ (वृङ्, वृञ्)**-सुरुचो वेन आवः (यजु० १३।३)। (५) **दह-**मा न आधक् (ऋ० ६।६१।१४)। (६) **आत्**-(अकारान्त) आ प्रा द्यावापृथिवी

अन्तरिक्षम् (१।११५।१)। (७) वृज्- मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क् (ऋ० ८।७५।२)। (८) कृ-अक्रन् कर्म कर्मकृतः। (यजु० ३।४७)। (९) गमि-अग्मन् (ऋ० १।१२१।७)। (१०) जनि-अज्ञत वा अस्य दन्ताः (ऐ० ७।१४।१५)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) वेदविषय में (घस०जनिभ्यः) घस, हर, नश, वृ, दह, आत्=आकारान्त, वृज्, कृ, गमि और जनि धातुओं से परे (लेः) च्लि-प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।

उदा०-ऊपर संस्कृतभाषा में देख लेवें। उदाहरणों के अर्थ वेद में निर्दिष्ट पते पर देखें। मन्त्रखण्डों का अर्थ देना सम्भव नहीं है।

सिद्धि-(१) अक्षन्। अद्+लुङ्। घस्+ल्। अट्+घस्+च्लि+ल्। अ+घस्+०+झि। अ+घस्+अन्ति। अ+घस्+अन्त्। अ+घ्स्+अन्। अ+घ्ष्+अन्। अ+ग्ष्+अन्। अ+क्ष्+अन्। अक्षन्।

यहां 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से सामान्य भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्सनोर्घस्लृ' (२।४।३७) से 'अद' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'झोऽन्तः' (७।२।३) से 'झ्' को अन्त-आदेश, 'इतश्च' (३।४।१००) से इकार का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है। 'गमहनजन०' (६।४।९२) से 'घस्' का उपधा लोप, 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से 'घस्' को षत्व, (घष्) 'झलां जश् झशि' से घ्स् को जशृत्व (ग्ष्) और 'खरि च' (८।४।५५) से ग्ष् को चर्त्व (क्ष्) होता है।

(२) माहः। ह्+लुङ्। ह+च्लि+ल्। ह+०+तिप्। हर्+त्। हर्०। हः।

यहां 'ह्वृ कौटिल्ये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से अड् आगम का निषेध है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से ह्वृ को गुण (हर्) 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'त' का लोप होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।२५) से 'र्' को विसर्जनीय होता है।

(३) प्राणट्। प्र+नश्+लुङ्। प्र+अट्+नश्+च्लि+ल्। प्र+अ+नश्+०+तिप्। प्रा+नश्+त्। प्रा+नष्+०। प्रा+नड्। प्रा+नट्। प्राणट्।

यहां 'णश अदर्शने' (दिवा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से नश् को षत्व (नष्)। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से जशृत्व (नट्) और 'वाऽवसाने' (८।४।५६)

से चर्त्व (नट्) होता है। 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' (८।४।१४) से णत्व होता है।

(४) आवः। आङ्+वृ+लुङ्। आ+अट्+वृ+च्लि+ल्। आ+वृ+०+तिप्। आ+वर्+त्। आ+वर्+०। आवः।

यहां 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'वृञ्' को गुण (वर्) और 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'त्' का लोप होता है।

(५) धक्। दह्+लुङ्। दह्+च्लि+ल्। दह्+०+सिप्। दह्+०+स्। दह्+०। दघ्। धघ्। धग्। धक्।

यहां 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'स्' का लोप होता है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से 'दह्' के 'ह्' को 'घ्', 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से 'दह्' के 'द्' को 'ध्', 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'घ्' को जश्=‘ग्’ और 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से अट् आगम नहीं है।

(६) आप्राः। आङ्+प्रा+लुङ्। आ+अट्+प्रा+च्लि+ल्। आ+प्रा+०+सिप्। आ+प्रा+स्। आप्राः।

यहां आङ्पूर्वक 'प्रा पूरणे' (अ०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'स्' को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से विसर्जनीय होता है।

(७) वर्क्। वृज्+लुङ्। वृज्+च्लि+ल्। वृज्+०+तिप्। वर्ज्+त्। वर्ज्+०। वर्ग्। वर्क्।

यहां 'वृजी वर्जने' (अदा०आ०/रुधा०प०/चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'वृज्' को गुण (वर्ज), 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।२।६८) से 'त्' का लोप, 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'ज्' को कुत्व (ग्) और 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से चर्त्व (क्) होता है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से अट् आगम नहीं होता है।

(८) अक्रन्। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+०+झि। अ+कृ+अन्ति। अ+कृ+अन्। अक्रन्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का लुक् होता है। 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ्' को अन्त आदेश और

*'**इतश्च**' (३।४।१००) से इकार का लोप होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७७) से 'ऋ' को 'र्' होता है।*

*(९) **अगमन्।** गम्+लुङ्। अट्+गम्+च्लि+ल्। अ+गम्+०+झि। अ+गम्+अन्ति। अ+गम्+अन्त्। अग्म्+अन्। अग्मन्।*

*यहां '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का 'लुक्' होता है। '**गमहनजन०**' (६।४।९२) से गम् धातु का उपधा-लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(१०) **अज्ञत।** जन्+लुङ्। अट्+जन्+च्लि+ल्। अ+जन्+झ। अ+जन्+अत। अ+ज्न्+अत। अ+ज्ञ्+अत। अज्ञत।*

*यहां '**जनी प्रादुर्भावे**' (दिवा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'च्लि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय का 'लुक्' होता है। '**आत्मनेपदेष्वनतः**' (७।१।५) से 'झ्' के स्थान में 'अत्' आदेश है। '**गमहनजन०**' (६।४।९८) से जन् का उपधा-लोप होता है। '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।४०) से 'जन्' के 'न्' को चवर्ग (ञ्) होता है।*

आम्प्रत्ययस्य–

(२३) आमः।८१।

वि०–आमः ५।१।

अनु०–लुक्, लेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आमो लेर्लुक्।

अर्थः–आम उत्तरस्य लिट्-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०–ईहाञ्चक्रे। ऊहाञ्चक्रे।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(आमः) आम् प्रत्यय से परे (लेः) लिट् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।

*उदा०-**ईहाञ्चक्रे।** उसने चेष्टा की। **ऊहाञ्चक्रे।** उसने वितर्क किया।*

*सिद्धि-(१) **ईहाञ्चक्रे।** ईह्+लिट्। ईह्+आम्+लि। ईह्+आम्+०। ईहाम्+सु। ईहाम्+०। ईहाम्। ईहाम्+कृ+लिट्। ईहाम्+क+कृ+ए। ईहां+च+कृ+ए। ईहाञ्चक्रे।*

*यहां '**ईह चेष्टायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से लिट् प्रत्यय है। '**इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः**' (१।३।३६) से आम्-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से लिट् का लोप होता है। '**कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि**' (३।१।४०) से आम्-प्रत्यय के पश्चात् लिट् परे होने पर 'कृ' धातु का प्रयोग होता है।*

'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य' (१।३।६३) से अनुप्रयुक्त 'कृ' धातु से आत्मनेपद और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८२) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को 'अ' और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के 'क्' को 'च्' आदेश होता है।

(२) ऊहांचक्रे-ऊह वितर्के (भ्वा०आ०)। पूर्ववत्।

आपः सुपश्च-

(२४) अव्ययादाप्सुपः।८२।

प०वि०-अव्ययात् ५।१ आप्-सुपः ६।१।

स०-आप् च सुप् च एतयोः समाहार आप्सुप्, तस्य-आप्-सुपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०- लुग् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययाद् आप्सुपो लुक्।

अर्थः-अव्ययाद् उत्तरस्य आपः सुपश्च प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(१) आपः-तत्र शालायाम्। यत्र शालायाम्। (२) **सुपः-**कृत्वा। हृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्ययात्) अव्यय से परे (आप्-सुपः) आप् और सुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।

*उदा०-(१) आप्-**तत्र शालायाम्**। उस शाला=घर में। **यत्र शालायाम्**। जिस शाला=घर में। (२) सुप्-**कृत्वा**। करके। **हृत्वा**। हरण करके।*

*सिद्धि-**तत्र**। तत्र+टाप्। तत्र+आप्। तत्र+०। तत्र+सु। तत्र।*

*यहां 'तत्र' शब्द की 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा है। यहां तत्र शब्द का स्त्रीलिङ्ग शाला शब्द के साथ समानाधिकरण भाव होने से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'टाप्' (आप्) प्रत्यय का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**यत्र शालायाम्**।*

*(२) **कृत्वा**। कृ+क्त्वा। कृ+त्वा। कृत्वा+सु। कृत्वा+०। कृत्वा।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय है। 'क्त्वातोसुन्कसुनः' (१।२।४०) से क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द की अव्यय संज्ञा है। इस सूत्र से सुप् (सु) प्रत्यय का लुक् होता है।

सुब्लुक्प्रतिषेधः–

(२५) नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ।८३।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अव्ययीभावात् ५ ।१ अतः ५ ।१ अम् १ ।१ तु अव्ययपदम्, अपञ्चम्याः ६ ।१ ।

स०–न पञ्चमी इति अपञ्चमी, तस्या अपञ्चम्याः (नञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०–लुक् सुप् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अतोऽव्ययीभावात् सुपो लुङ् न, सुपस्त्वम्, अपञ्चम्याः ।

अर्थः–अदन्ताद् अव्ययीभावाद् उत्तरस्य सुप्-प्रत्ययस्य लुङ् न भवति, सुपः स्थाने तु अम्-आदेशो भवति, विभक्तिं वर्जयित्वा ।

उदा०–कुम्भस्य समीपमिति उपकुम्भम् । उपकुम्भं तिष्ठति । उपकुम्भं पश्य ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतः) अकारान्त (अवययीभावः) अव्ययीभाव समास से परे (सुपः) सुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप (न) नहीं होता है (तु) अपितु सुप् के स्थान में (अम्) अम्-आदेश होता है (अपञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर ।

*उदा०-**कुम्भस्य समीपमिति उपकुम्भम् ।** कुम्भ के पास । **उपकुम्भं तिष्ठति ।** वह कुम्भ के पास खड़ा है । **उपकुम्भं पश्य ।** तू कुम्भ के समीपस्थ को देख ।*

*सिद्धि-**उपकुम्भम् ।** उपकुम्भ+सु । उपकुम्भ+अम् । उपकुम्भम् ।*

*यहां उप और कुम्भ सुबन्त का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२ ।१ ।६) से अव्ययीभाव समास है । **अव्ययीभावश्च'** (१ ।१ ।४२) से अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा है । पूर्व सूत्र से अव्ययीभाव से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् प्राप्त था । इस सूत्र से सुप् प्रत्यय के लुक् का प्रतिषेध होता है और सुप् के स्थान में 'अम्' आदेश भी होता है ।*

तृतीया+सप्तमी (बहुलम्)–

(२६) तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ।८४।

प०वि०–तृतीया-सप्तम्योः ६ ।२ बहुलम् १ ।१ ।

स०–तृतीया च सप्तमी च ते तृतीयासप्तम्यौ, तयोः-तृतीयासप्तम्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–अव्ययीभावात्, अतः, अम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अतोऽव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् अम्।

अर्थः-अदन्ताद् अव्ययीभावाद् उत्तरस्यास्तृतीयायाः सप्तम्याश्च विभक्तेः स्थाने बहुलम् अम्-आदेशो भवति।

उदा०-(१) **तृतीया**-उपकुम्भेन कृतम्। उपकुम्भं कृतम्। (२) **सप्तमी**-उपकुम्भे निधेहि। उपकुम्भं निधेहि।

आर्यभाषा-अर्थ-(अतः) अकारान्त (अव्ययीभावात्) अव्ययीभाव समास से परे (तृतीया-सप्तम्योः) तृतीया और सप्तमी विभक्ति के स्थान में (बहुलम्) विकल्प से (अम्) अम्-आदेश होता है।

उदा०-(१) तृतीया-कुम्भस्य समीपमिति उपकुम्भम्। उपकुम्भेन कृतेन। कुम्भ के समीपस्थ ने किया। उपकुम्भं कृतम्। अर्थ पूर्ववत् है। (२) सप्तमी-उपकुम्भे निधेहि। कुम्भ के समीप में रख। उपकुम्भं निधेहि। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) उपकुम्भेन। उपकुम्भ+टा। उपकुम्भ+इन। उपकुम्भेन।

यहां अव्ययीभाव उपकुम्भ शब्द से परे इस सूत्र से तृतीया विभक्ति का लोप नहीं होता है।

(२) उपकुम्भे। उपकुम्भ+ङि। उपकुम्भ+इ। उपकुम्भे।

यहां इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता है।

(३) उपकुम्भम्। यहां विकल्प पक्ष में तृतीया और सप्तमी विभक्ति के 'टा' और 'ङि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से अम्-आदेश होता है।

डारौरसादेशाः-

लुटः प्रथमस्य डारौरसः।८५।

प०वि०-लुटः ६।१ प्रथमस्य ६।१ डा-रौ-रसः १।३।

स०-डाश्च रौश्च रस् च ते-डारौरसः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-लुटः प्रथमपुरुषस्यादेशानां स्थाने यथासंख्यं डा-रौ-रस आदेशा भवन्ति।

उदा०-तिप्-(डा)-कर्ता। **तस्-(रौ)**-कर्तारौ। **झि-(रस्)**-कर्तारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लुटः) लुट्लकार के (प्रथमस्य) प्रथम पुरुष के आदेशों के स्थान में यथासंख्य (डारौरसः) डा, रौ, रस् आदेश होते हैं।

*उदा०-तिप्-(डा)-**कर्ता**। वह करेगा। तस्-(रौ)-**कर्तारौ**। वे दोनों करेंगे। झि-(रस्) **कर्तारः**। वे सब करेंगे (श्वः=कल)।*

***सिद्धि-(१) कर्ता**। कृ+लुट्। कृ+तास्+ल्। कृ+तास्+तिप्। कृ+तास्+डा। कृ+त्+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से अनद्यतन भविष्यत्काल में '**अनद्यतने लुट्**' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से तास् प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रथम पुरुष के 'तिप्' प्रत्यय के स्थान में डा-आदेश होता है। 'डा' प्रत्यय के 'डित्' होने से '**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (   ) से 'तास्' के टि-भाग का लोप होता है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है।*

*(२) **कर्तारौ/कर्तारः**। यहां 'तस्' के स्थान में 'रौ' और 'झि' के स्थान में 'रस्' आदेश है। 'रि च' (७।४।५२) से 'तास्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) कृञ् धातु उभयपद है। आत्मनेपद के त, आताम्, झ के स्थान में भी यथासंख्य डा, रौ, रस् आदेश होते हैं। आत्मनेपद में भी उपरिलिखित ही रूप बनते हैं।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चायं द्वितीयोऽध्यायः। इति प्रथमो भागः।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

प्रथमभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
२	अइउण्	प्र० सू० १
२४८	अकथितं च	१।४।५१
४०६	अकर्तर्यृणे पंचमी	२।३।२४
१५८	अकर्मकाच्च	१।३।२६
१६५	अकर्मकाच्च	१।३।३५
१७१	अकर्मकाच्च	१।३।४५
४४५	अकेनोर्भविष्यदा०	२।३।७०
३०२	अक्षशलाका०	२।१।१०
५८	अचः परस्मिन्०	१।१।५६
१०२	अचश्च	१।२।२८
६८	अचोऽन्त्यादि टि	१।१।६३
२६२	अच्छ गत्यर्थवदेषु	१।४।६९
३८३	अजाद्यदन्तम्	२।२।३३
५०२	अजेर्व्यघञपोः	२।४।५६
२०२	अणावकर्मकाच्०	१।३।८८
७१	अणुदित् सवर्णस्य०	१।१।६८
२७९	अतिरतिक्रमणे च	१।४।९५
३१६	अत्यन्तसंयोगे च	२।१।२९
५१२	अत्रिभृगुकुत्स०	२।४।६५
१	अथ शब्दानुशासनम्	व्या०शा०प्रा०
६५	अदर्शनं लोपः	१।१।५९
२०	अदसो मात्	१।१।१२
५२१	अदिप्रभृतिभ्यः शपः	२।४।७२
११	अदेङ् गुणः	१।१।२
४८४	अदो जग्धि०	२।४।३६
२६३	अदोऽनुपदेशे	१।४।७०
४४१	अधिकरणवाचिनश्च	२।३।६८
३६६	अधिकरणवाचिना च	२।२।१३
४६३	अधिकरणैतावत्त्वे च	२।४।१५
२७८	अधिपरी अनर्थकौ	१।४।९३
२८१	अधिरीश्वरे	१।४।९७
२४४	अधिशीङ्स्थासां कर्म	१।४।४६
४२९	अधीगर्थदयेशां कर्मणि	२।३।५२
१६४	अधेः प्रसहने	१।३।३३
४५३	अध्ययनतोऽविप्र०	२।४।५
४५२	अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम्	२।२।४
२६६	अनत्याधान उरसिमनसी	१।४।७५
३८९	अनभिहिते	२।३।१
२५८	अनुकरणं चानितिपरम्	१।४।६२
१४७	अनुदात्तङित आत्मनेपदम्	१।३।९२
१९६	अनुपराभ्यां कृञः	१।३।७९
१९३	अनुपसर्गाज्ज्ञः	१।३।७६
१७०	अनुपसर्गाद् वा	१।३।४३
२४१	अनुप्रतिगृणश्च	१।४।४१
३०६	अनुर्यत्समया	२।१।१५
२७२	अनुर्लक्षणे	१।४।४७
४५१	अनुवादे चरणानाम्	२।४।३
३७५	अनेकमन्यपदार्थे	२।२।२४
५५	अनेकालशित्सर्वस्य	१।१।५४
१७४	अनोरकर्मकात्	१।३।४९
३७	अन्तरं बहिर्योगो०	१।३।३५
२६०	अन्तरपरिग्रहे	१।४।६५
३९०	अन्तरान्तरेणयुक्ते	२।३।४
२३१	अन्तर्धौ येनादर्शन०	१।४।२८
३२१	अन्नेन व्यञ्जनम्	२।१।३४

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३११	अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्	२।१।२१
४०९	अन्यारादितर०	२।३।२९
४७८	अपथं नपुंसकम्	२।४।३०
३०३	अपपरिबहिर०	२।१।१२
२७४	अपपरी वर्जने	१।४।८८
३९२	अपवर्गे तृतीया	२।३।५
१७१	अपह्नवे ज्ञः	१।३।४४
४०९	अपादाने पञ्चमी	२।३।२८
१९१	अपाद् वदः	१।३।७३
२८१	अपिः पदार्थसम्भावन	१।४।९६
११३	अपृक्त एकाल्प्रत्ययः	१।२।४१
३२४	अपेतापोढमुक्त०	२।१।३८
२४५	अभिनिविशश्च	१।४।४७
१९७	अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः	१।३।८०
२७७	अभिरभागे	१।४।९१
३७२	अमैवाव्ययेन	२।२।२०
२२६	अयस्मयादीनि छन्दसि	१।४।२०
११६	अर्थवदधातुरप्रत्ययः०	१।४।४५
३५८	अर्धं नपुंसकम्	२।२।२
४७९	अर्धर्चाः पुंसि च	२।४।३१
५३	अलोऽन्त्यस्य	१।१।५२
६९	अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा	१।१।६४
३८४	अल्पाच्तरम्	२।२।३४
१७६	अवाद्ग्रः	१।३।५१
२९६	अव्ययं विभक्तिसमीप०	२।१।६
५३३	अव्ययदाप्सुपः	२।४।८२
२९६	अव्ययीभावः	२।१।५
४३	अव्ययीभावश्च	१।१।४०
४६६	अव्ययीभावश्च	२।४।१८
४७२	अशाला च	२।४।२४
८०	असंयोगाल्लिट्कित्	१।२।५
२६२	अस्तं च	१।४।६८
४९९	अस्तेर्भूः	२।४।५२
१२८	अस्मदो द्वयोश्च	१।२।५९
२८६	अस्मद्युत्तमः	१।४।१०७
	(आ)	
२११	आकडारादेकासंज्ञा	१।४।१
२३२	आख्यातोपयोगे	१।४।२९
५१९	आगस्त्यकौण्डिन्य०	२।४।७०
१६८	आङ उद्गमने	१।३।४०
१५४	आङो दोऽनास्यविहरणे	१।३।२०
१५६	आङो यमहनः	१।३।२८
३०४	आङ् मर्यादाभिविध्योः	२।१।१३
३७५	आङ् मर्यादावचने	१।४।८९
४९२	आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्	२।४।४४
२५९	आदरानादरयोः सदसती	१।४।६३
७३	आदिरन्त्येन सहेता	१।१।७०
१४१	आदिर्ञिटुडवः	१।३।५
५४	आदेः परस्य	१।१।५३
२६	आद्यन्तवदेकस्मिन्	१।१।२०
४७	आद्यन्तौ टकितौ	१।४।४५
२४४	आधारोऽधिकरणम्	१।४।४५
५३२	आमः	२।४।८१
१८४	आम्प्रत्ययवत् कृञो०	१।३।६३
४२१	आयुक्तकुशलाभ्यां०	२।३।४०
४८४	आर्धधातुके	२।४।३५
४३१	आशिषि नाथः	२।३।५४
	(इ)	
१२	इको गुणवृद्धी	१।१।३
८६	इको झल्	१।२।९
४६	इग्यणः सम्प्रसारणम्	१।१।४५
४९५	इङश्च	२।४।४८
५०७	इञः प्राचाम्	२।४।६०
४९३	इणो गा लुङि	२।४।४५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१५२	इतरेतरान्योऽन्योपपदाच्च	१।३।१६
४०४	इत्थंभूतलक्षणे	२।३।२१
४८०	इदमोऽन्वादेशे०	२।४।३२
१२१	इद्गोण्याः	१।२।५०
८२	इन्धिभवतिभ्यां च	१।२।६
	(ई)	
२४	ईदूतौ च सप्तम्यर्थे	१।१।१८
१९	ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्	१।१।११
३६२	ईषदकृता	२।२।७
	(उ)	
१०३	उच्चैरुदात्तः	१।२।२९
१०९	उच्चैस्तरां वा वषट्कारः	१।२।३५
२३	उञ ऊँ	१।१।१७
१७७	उदश्चरः सकर्मकात्	१।३।५३
११२	उदात्तस्वरितपरस्य०	१।२।४०
९५	उदुपधाद्भावादिकर्म०	१।२।२१
१५७	उदोऽनूर्ध्वकर्मणि	१।३।२४
१५६	उद्विभ्यां तपः	१।३।२७
५१८	उपकादिभ्योऽन्य०	२।४।६९
४६८	उपज्ञोपक्रमं तदाद्या०	२।४।२१
१३९	उपदेशेऽजनुनासिक इत्	१।३।२
३७१	उपपदमतिङ्	२।२।१९
१६८	उपपराभ्याम्	१।३।३९
३३९	उपमानानि सामान्य०	२।१।५५
३४०	उपमितं व्याघ्रादिभिः०	२।१।५६
२५५	उपसर्गाः क्रियायोगे	१।४।५९
३८१	उपसर्जनं पूर्वम्	२।२।३०
१९९	उपाच्च	१।३।८४
२६५	उपाजेऽन्वाजे	१।४।७३
१७९	उपाद्यमः स्वकरणे	१।३।५६
१५८	उपान्मन्त्रकरणे	१।३।२५
२४६	उपान्वध्याङ्वसः	१।४।४८
२७३	उपोऽधिके च	१।४।८७
४३६	उभयप्राप्तौ कर्मणि	२।३।६६
५२	उरण् रपरः	१।१।५०
८८	उश्च	१।२।१२
	(ऊ)	
१०१	ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः	१।२।२७
२५६	ऊर्यादिच्विडाचश्च	१।४।६१
	(ऋ)	
२	ऋलृक्	प्र० सू० २
	(ए)	
२	एओङ्	प्र० सू० ३
४२७	एकवचनं सम्बुद्धिः	२।३।४९
११५	एकविभक्ति चापूर्व०	१।२।४४
१०७	एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ	१।२।३३
७६	एङ् प्राच्यां देशे	१।१।७४
४९	एच इग्घ्रस्वादेशे	१।१।४७
४८१	एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ०	२।४।३३
४१३	एनपा द्वितीया	२।३।३१
	(ऐ)	
२	ऐओच्	प्र० सू० ४
	(ओ)	
२२	ओत्	१।१।१५
	(क)	
३८७	कडाराः कर्मधारये	२।२।३८
२६१	कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते	१।४।६६
३४७	कतरकतमौ जाति०	२।१।६३
५	कपय्	प्र० सू० १२
४१४	करणे च स्तोकाल्प०	२।३।३३
१५०	कर्तरि कर्मव्यतिहारे	१।३।१४
३६८	कर्तरि च	२।२।१६
२४७	कर्तुरीप्सिततमं कर्म	१।४।४९
४०२	कर्तृकरणयोस्तृतीया	२।३।१८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३१९	कर्तृकरणे कृता बहुलम्	२।१।३२
४३८	कर्तृकर्मणोः कृति	२।३।६५
१६७	कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि	१।३।३७
२३३	कर्मणा यमभिप्रैति०	१।४।३२
३६६	कर्मणि च	२।२।१४
३८९	कर्मणि द्वितीया	२।३।२
३९४	कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया	२।३।८
२७१	कर्मप्रवचनीयाः	१।४।८३
२२८	कारके	१।४।२३
३१६	कालाः	२।१।२८
३६१	कालाः परिमाणिना	२।२।५
३९१	कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे	२।३।५
१२६	कालोपसर्जने च तुल्यम्	१।२।५७
३४८	किं क्षेपे	२।१।६४
३७०	कुगतिप्रादयः	२।२।१८
३३८	कुत्सितानि कुत्सनैः	२।१।५३
३५३	कुमारः श्रमणादिभिः	२।१।७०
४३०	कृञः प्रतियत्ने	२।३।५३
११७	कृत्तद्धितसमासाश्च	१।२।४६
३५२	कृत्यतुल्याख्या अजात्या	२।१।६७
४४६	कृत्यानां कर्तरि वा	२।३।७१
३२०	कृत्यैरधिकार्थवचने	२।१।३३
३२८	कृत्यैर्ऋणे	२।१।४३
४३८	कृत्वोऽर्थप्रयोगे०	२।३।६४
४०	कृन्मेजन्तः	१।१।३८
१४	क्ङिति च	१।१।५
२९	क्तक्तवतू निष्ठा	१।२।२५
४४०	क्तस्य च वर्तमाने	२।३।६७
३६५	क्तेन च पूजायाम्	२।२।१२
३४४	क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्	२।१।६०
३३०	क्तेनाहोरात्रावयवाः	२।१।४५
३७३	क्त्वा च	२।२।२२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४२	क्त्वातोसुन्कसुनः	१।१।३९
३९६	क्रियार्थोपपदस्य च०	२।३।१४
१५५	क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च	१।३।२१
२३७	क्रुधद्रुहेर्ष्यासूया०	१।४।३७
२३८	क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः०	१।४।३८
४५६	क्षुद्रजन्तवः	२।४।८
३३१	क्षेपे	२।१।४७
	(ख)	
३१४	खट्वा क्षेपे	२।१।२६
५	खफछठथचटतव्	प्र० सू० ११
	(ग)	
२४९	गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०	१।४।५२
२५६	गतिश्च	१।४।६०
३९७	गत्यर्थकर्मणि द्वितीया०	२।३।१२
१६२	गन्धनावक्षेपण०	१।३।३२
४५८	गवाश्वप्रभृतीनि च	२।४।११
७७	गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्	१।२।१
४९५	गाङ् लिटि	२।४।४९
५२६	गातिस्थाघुपाभूभ्यः०	२।४।७७
१८८	गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने	१।३।६९
११९	गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य	१।२।४८
१३६	ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु०	१।२।७३
	(घ)	
४८६	घञपोश्च	२।४।३८
	(ङ)	
५४	ङिच्च	१।१।५२
२९४	ङिति ह्रस्वश्च	१।४।६
	(च)	
५०१	चक्षिङः ख्याञ्	२।४।५४
४४७	चतुर्थी चाशिष्यायुष्य०	२।३।७३
३२२	चतुर्थी तदर्थार्थ०	२।१।३६
३९८	चतुर्थी सम्प्रदाने	२।३।१३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४३६	चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि	२।३।८२
३५४	चतुष्पादो गर्भिण्या	२।१।७१
२५४	चादयोऽसत्त्वे	१।४।५७
३८०	चार्थे द्वन्द्वः	२।२।२९
१४३	चुटू	१।३।७
	(छ)	
२७०	छन्दसि परेऽपि	१।४।८१
१२९	छन्दसि पुनर्वस्वो०	१।२।६१
४७०	छाया बाहुल्ये	२।४।२२
	(ज)	
२३२	जनिकर्तुः प्रकृतिः	१।४।३०
४	जबगडदश्	प्र० सू० १०
४५४	जातिरप्राणिनाम्	२।४।६
१२७	जात्याख्यामेकस्मिन्०	१।२।५८
४३२	जासिनिप्रहणनाटक्राथ०	२।३।५३
२६९	जीविकोपनिषदा०	१।४।७९
५२४	जुहोत्यादिभ्यः श्लुः	२।४।७५
१७९	ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः	१।३।५७
४२८	ज्ञोऽविदर्थस्य करणे	३।३।५१
	(झ)	
४	झभञ्	प्र० सू० ८
	(ञ)	
३	ञमङणनम्	प्र० सू० ७
	(ड)	
२९	डति च	१।१।२५
	(ण)	
१९२	णिचश्च	१।३।७४
१८६	णेरणौ यत्कर्म०	१।३।६७
४९३	णौ गमिबोधने	२।४।४६
४९८	णौ च संश्चङोः	२।४।५१
५०४	ण्यक्षत्रियार्षञितो०	२।४।५८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(त)	
२८३	तङानावात्मनेपदम्	१।४।१००
३१२	तत्पुरुषः	२।१।२२
११४	तत्पुरुषः समानाधिकरणः०	१।२।४२
४६७	तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः	२।४।१९
२५२	तत्प्रयोजको हेतुश्च	१।४।५५
३३१	तत्र	२।१।४६
३७८	तत्र तेनेदमिति सरूपे	२।२।२७
२४७	तथायुक्तं चानीप्सितम्	१।४।५०
१२३	तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्	१।२।५३
३९	तद्धितश्चासर्वविभक्तिः	१।१।३७
३३५	तद्धितार्थोत्तरपद०	२।१।५१
५०९	तद्राजस्य बहुषु०	२।४।६२
५२८	तनादिभ्यस्तथासोः	२।४।७९
७२	तपरस्तत्कालस्य	१।१।६९
२६	तरप्तमपौ घः	१।१।२१
२२५	तसौ मत्वर्थे	१।४।१९
७०	तस्मादित्युत्तरस्य	१।१।६६
७०	तस्मिन्निति निर्दिष्टे०	१।१।६५
१४६	तस्य लोपः	१।३।९
१०५	तस्यादित उदात्त०	१।२।३२
२८५	तान्येकवचन०	१।४।१०२
५१६	तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे	२।४।६८
२८४	तिङस्त्रीणित्रीणि०	१।४।१०१
२६४	तिरोऽन्तर्धौ	१।४।७१
३०८	तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च	२।१।१७
१३०	तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्र०	१।२।६३
४००	तुमर्थाच्च भाववचनात्	२।३।१५
४४७	तुल्यार्थैरतुलोपमा०	२।३।७२
१८	तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्	१।१।९
३६७	तृजकाभ्यां कर्तरि	२।२।१५
३९०	तृतीया च होश्छन्दसि	२।३।३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३१७	तृतीया तत्कृतार्थेन०	२।१।३०
३७२	तृतीयाप्रभृतीन्यतरस्याम्	२।२।२१
२७२	तृतीयार्थे	१।४।८५
५३४	तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्	२।४।८४
३२	तृतीया समासे	१।१।२९
९९	तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य	१।२।२५
३७९	तेन सहेति तुल्ययोगे	२।२।२८
२७०	ते प्राग् धातोः	१।४।८०
७५	त्यदादीनि च	१।१।७३
१३६	त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्	१।२।७२
	(द)	
१७८	दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे	१।३।५५
२५	दाधा घ्वदाप्	१।१।१९
३३४	दिक्संख्ये संज्ञायाम्	२।१।५०
३७७	दिङ्नामान्यन्तराले	२।२।२६
२४२	दिवः कर्म च	१।४।४३
४३४	दिवस्तदर्थस्य	२।३।५८
१६	दीधीवेवीटाम्	१।१।६
२९८	दीर्घं च	१।४।१२
४१६	दूरान्तिकार्थेभ्यो०	२।३।३५
४१५	दूरान्तिकार्थैः०	२।३।३४
१११	देवब्रह्मणोरनुदात्तः	१।२।३८
२०६	द्युद्भ्यो लुङि	१।३।९१
४४९	द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य०	२।४।२
३८३	द्वन्द्वे घि	२।२।३२
३३	द्वन्द्वे च	१।१।३०
४४९	द्विगुरेकवचनम्	२।४।१
३१२	द्विगुश्च	२।१।२३
४८२	द्वितीया टौस्स्वेनः	२।४।३४
३५९	द्वितीयतृतीयचतुर्थ०	२।२।३
४३५	द्वितीया ब्राह्मणे	२।३।६०
३१३	द्वितीया श्रितातीत०	२।१।२४
६३	द्विर्वचनेऽचि	२।१।५९
२२७	द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने	१।४।२२
	(ध)	
२३६	धारेरुत्तमर्णः	१।४।३५
२२८	ध्रुवमपायेऽपादानम्	१।४।२४
३२८	ध्वाङ्क्षेण क्षेपे	२।१।४२
	(न)	
२२१	नः क्ये	१।४।१५
९३	न क्त्वा सेट्	१।२।१८
४२५	नक्षत्रे च लुपि	२।३।४५
१५१	न गतिहिंसार्थेभ्यः	१।३।१५
५१५	न गोपवनादिभ्यः	२।४।६७
३६१	नञ्	२।२।६
५०८	न तौल्वलिभ्यः	२।४।६१
४६३	न दधिपयआदीनि	२।४।१४
३१०	नदीभिश्च	२।१।२०
१३	न धातुलोप आर्धधातुके	१।१।४
३६३	न निर्धारणे	२।२।१०
५८	न पदान्तद्विर्वचन०	१।१।५७
२०३	न पादम्याङ्यमा०	१।३।८९
१३४	नपुंसकमपुंसकेनै०	१।२।६९
३२	न बहुव्रीहौ	१।१।२९
४००	नमः स्वस्तिस्वाहा०	२।३।१६
६८	न लुमताङ्गस्य	१।१।६२
४४२	न लोकाव्ययनिष्ठा०	२।३।६९
१४०	न विभक्तौ तुस्माः	१।३।४
४४	न वेति विभाषा	१।१।४३
११०	न सुब्रह्मण्यायां०	१।२।३७
१९	नाज्झलौ	१।१।१०
१८०	नानोर्ज्ञः	१।३।५८
५३३	नाव्ययीभावाद०	२।४।८३
२०१	निगरणचलनार्थेभ्यश्च	१।३।८७

पृष्ठाङ्का:	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२६८	नित्यं हस्तेपाणावुपयमने	१।४।७७
३६९	नित्यं क्रीडाजीविकयो:	२।२।१७
२१	निपात एकाजनाङ्	१।१।१४
३८६	निष्ठा	२।२।३६
९३	निष्ठा शीङ्स्विदि०	१।२।१९
१६१	निसमुपविभ्यो ह्व:	१।३।३०
१०४	नीचैरनुदात्त:	१।२।३०
२१३	नेयङुवङ्स्थानावस्त्री	१।४।४
१५३	नेर्विश:	१।३।१७
९७	नोपधात्थफान्ताद्वा	१।२।२३
	(प)	
४२२	पञ्चमी विभक्ते	२।३।४२
३२३	पञ्चमी भयेन	२।१।३७
३९५	पञ्चम्यपाङ्परिभि:	२।३।१०
२९६	पति: समास एव	१।४।८
२९१	पर: सन्निकर्ष: संहिता	१।४।१०९
४७४	परवल्लिङ्गं द्वन्द्व०	२।१।२६
२३०	पराजेरसोढ:	१।४।२६
२४३	परिक्रयणे सम्प्रदान०	१।४।४४
१५३	परिव्यवेभ्य: क्रिय:	१।३।१८
१९७	परेर्मृष:	१।३।८२
३३२	पात्रेसम्मितादयश्च	२।१।४८
३३९	पापाणके कुत्सितै:	२।१।५४
३०८	पारे मध्ये षष्ठ्या वा	२।१।१८
१३५	पिता मात्रा	१।२।७०
१३३	पुमान् स्त्रिया	१।२।६७
२६१	पुरोऽव्ययम्	१।४।६७
९६	पूङ: क्त्वा च	१।२।२२
३६४	पूरणगुणसुहितार्थ०	२।२।११
२३३	पूर्वकालैकसर्व०	२।१।४९
३५	पूर्वपरावरदक्षिणो०	१।१।३३
१८३	पूर्ववत्सन:	१।३।६२
४७५	पूर्ववदश्ववडवौ	२।४।२७
३१८	पूर्वसदृशसमोनार्थ०	२।१।३१
३४२	पूर्वापरप्रथमचरम०	२।१।५८
३५७	पूर्वापराधरोत्तरमेक०	२।२।१
४१३	पृथग्विनानानाभि०	२।३।३२
५०६	पैलादिभ्यश्च	२।४।५९
३४८	पोटायुवतिस्तोक०	२।१।६५
१५६	प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च	१।३।२३
२७७	प्रति: प्रतिनिधिप्रतिदानयो:	१।४।९२
३९६	प्रतिनिधिप्रतिदाने च०	२।३।११
६७	प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्	१।१।६२
६६	प्रत्ययस्य लुश्लुलुप:	१।१।६०
१८०	प्रत्याङ्भ्यां श्रुव:	१।३।५९
२४०	प्रत्याङ्भ्यां श्रुव: पूर्व०	१।४।४०
३४	प्रथमचरमतयाल्पा०	१।१।३२
११४	प्रथमानिर्दिष्टं समास०	१।२।४३
१२५	प्रधानप्रत्ययार्थवचन०	१।२।५६
३५०	प्रशंसावचनैश्च	२।१।६६
४२४	प्रसितोत्सुकाभ्यां०	२।३।४४
२८८	प्रहासे च मन्योपपदे०	१।४।१०६
२९५	प्राक् कडारात् समास:	२।१।३
२५३	प्राग्रीश्वरान्निपाता:	१।४।५६
४२५	प्रातिपदिकार्थलिङ्ग०	२।३।४६
२५५	प्रादय:	१।४।५८
१९७	प्राद्वह:	१।३।८१
२६८	प्राध्वं बन्धने	१।४।७८
३६०	प्राप्तापन्ने च द्वितीयया	२।२।४
४३६	प्रैष्यब्रुवोर्हविषो०	२।३।६१
१८४	प्रोपाभ्यां युजिरयज्ञ०	१।३।६४
१६९	प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्	१।३।४२
	(फ)	
१२८	फल्गुनीप्रोष्ठपदानां०	१।२।६०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(ब)	
२७	बहुगणवतुडति संख्या	१।१।२२
४८७	बहुलं छन्दसि	२।४।३[illegible]
५२२	बहुलं छन्दसि	२।४।७३
५२५	बहुलं छन्दसि	२।४।७६
२२७	बहुषु बहुवचनम्	१।४।२१
५१४	बह्वच इञः प्राच्य०	२।४।६६
२००	बुधयुधनश०	१।३।८६
५००	ब्रुवो वचिः	२।४।५३
	(भ)	
३२२	भक्ष्येण मिश्रीकरणम्	२।१।३५
१४८	भावकर्मणोः	१।३।१३
१७३	भासनोपसंभाषा०	१।३।४७
२२९	भीत्रार्थानां भयहेतुः	१।४।२५
१८७	भीस्म्योर्हेतुभये:	१।३।६८
१८६	भुजोऽनवने	१।३।६६
२३३	भुवः प्रभवः	१।४।३१
१३८	भूवादयो धातवः	१।३।१
२६०	भषणोऽलम्	१।४।६४
१३४	भ्रातृपुत्रौ स्वसृ०	१।२।६८
	(म)	
२६७	मध्ये पदे निवचने च	१।४।७६
५२९	मन्त्रे घसह्वरणश०	२।४।८०
४०१	मन्यकर्मण्यनादरे०	२।३।१७
३५५	मयूरसंव्यकादयश्च	२।१।७२
१९०	मिथ्योपपदात् कृञो०	१।३।७१
४८	मिदचोऽन्त्यात् परः	१।१।४६
१७	मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः	१।१।८
८३	मृडमृदगुध०	१।२।७
९४	मृषस्तितिक्षायाम्	१।२।२०
१८२	म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च	१।३।६१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(य)	
५२३	यङोऽचि च	२।४।७४
२२४	यचि भम्	१।४।१८
४३७	यजेश्च करणे	२।३।६३
१०७	यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्ख०	१।२।३४
५११	यञञोश्च	२।४।६४
४२२	यतश्च निर्धारणम्	२।३।४१
१४६	यथासंख्यमनुदेशः समानाम्	१।३।१०
३००	यथाऽसादृश्ये	२।१।७
९१	यमो गन्धने	१।२।१५
५१०	यस्कादिभ्यो गोत्रे	२।४।६३
२१९	यस्मात् प्रत्ययविधि०	१।३।१३
३९४	यस्मादधिकं यस्य०	२।३।९
४१८	यस्य च भावेन०	२।३।३७
३०७	यस्य चायामः	२।१।१६
३६३	याजकादिभिश्च	२।२।९
३०१	यावदवधारणे	२।१।८
३५१	युवाखलतिपलित०	२।१।६७
२८७	युष्मद्युपपदे समाना०	१।४।१०५
२१२	यूस्त्र्याख्यौ नदी	१।४।३
७४	येन विधिस्तदन्तस्य	१।१।७१
४०४	येनाङ्गविकारः	२।३।२०
४५७	येषां च विरोधः०	२।४।९
१२४	योगप्रमाणे चतदभावे०	१।२।५७
	(र)	
१००	रलो व्युपधाद्०	१।२।२६
३८१	राजन्तादिषु परम्	२।२।३१
४७७	रात्राह्नाहाः पुंसि	२।४।२९
२३९	राधीक्ष्योर्यस्य०	१।४।३९
२३४	रुच्यर्थानां प्रीयमाणः	१।४।३३
४३०	रुजार्थानां भाववचना०	२।३।५४
८४	रुदविदमुषग्रहि०	१।२।२८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(ल)	
३	लण्	प्र० सू० ६
२८३	लः परस्मैपदम्	१।४।९९
२७६	लक्षणेत्थंभूताख्यान०	१।४।९०
३०५	लक्षणेनाभिप्रती०	२।१।१४
१४४	लश्क्वतद्धिते	१।३।८
८७	लिङ्सिचावात्मनेपदेषु	१।२।११
४८८	लिट्यन्यतरस्याम्	२।४।४०
१८९	लियः सम्मानन०	१।३।७०
१२०	लुक् तद्धितलुकि	१।२।४९
४९१	लुङि च	२।४।४३
४८५	लुङ्सनोर्घस्लृ	२।४।३७
५३५	लुटः प्रथमस्य डारौरसः	२।४।८५
२०८	लुटि च क्लृपः	१।३।९३
१२१	लुपि युक्तवद्०	१।२।५१
१२३	लुब् योगाप्रख्यानात्	१।२।५४
	(व)	
९८	वञ्चिलुञ्च्यृतश्च	१।२।२४
३५३	वर्णो वर्णेन	२।१।६९
२०५	वा क्यषः	१।३।९०
८९	वा गमः	१।२।१३
२१३	वाऽऽमि	१।४।५
५०३	वा यौ	२।४।५७
२३०	वारणार्थानामीप्सितः	१।४।२७
५०१	वा लिटि	२।४।५५
३८६	वाऽऽहिताग्न्यादिषु	२।२।३७
७८	विज इट्	१।२।२
१५४	विपराभ्यां जेः	१।३।१९
४६२	विप्रतिषिद्धं चा०	२।४।१३
२११	विप्रतिषेधे परं कार्यम्	१।४।२
२८६	विभक्तिश्च	१।४।१०४
३०३	विभाषा	२।१।११
१९९	विभाषाऽकर्मकात्	१।३।८५
२६४	विभाषा कृञि	१।४।७२
२८२	विभाषा कृञि	१।४।९८
४०७	विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्	२।३।२५
५२७	विभाषा घ्राधेट्०	२।४।७८
१०९	विभाषा छन्दसि	१।२।३६
३४	विभाषा जसि	१।१।३१
३१	विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ	१।१।२७
४९६	विभाषा लुङ्लुङोः	२।४।५०
१७५	विभाषा विप्रलापे	१।३।५०
४५९	विभाषा वृक्षमृग०	२।४।१२
४६४	विभाषा समीपे	२।४।१६
४७३	विभाषा सेनासुरा०	२।४।२५
१९४	विभाषोपपदेन प्रतीयमाने	१।३।७७
९१	विभाषोपयमने	१।२।१६
४३४	विभाषोपसर्गे	२।३।५९
७९	विभाषोर्णोः	१।२।३
२९१	विरामोऽवसानम्	१।४।११०
१३०	विशाखयोश्च	१।२।६२
४५५	विशिष्टलिङ्गो नदीदेशो०	२।४।७
३४१	विशेषणं विशेष्येण बहुलम्	२।१।५७
१२२	विशेषणानां चाजातेः	१।२।५२
१६७	वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः	१।३।३८
९	वृद्धिरादैच्	१।१।१
७५	वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्	१।१।७२
१३२	वृद्धो यूना तल्लक्षण०	१।२।६५
२०७	वृद्भ्यः स्यसनोः	१।३।९२
३४६	वृन्दारकनागकुञ्जरैः०	२।१।६२
१६९	वेः पादविहरणे	१।३।४१
१६४	वेः शब्दकर्मणः	१।६।३४
४८९	वेञो वयिः	२।४।४१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१७४	व्यक्तवाचां समुच्चारणे	१।३।४८
२७१	व्यवहिताश्च	१।४।८२
४३३	व्यवहृपणोः समर्थयोः	२।३।५७
१९८	व्याङ्परिभ्यो रमः	१।३।८३
	(श)	
१८१	शदेः शितः	१।३।६०
५	शषसर्	प्र० सू० १३
४३	शि सर्वनामस्थानम्	१।१।४१
४५७	शूद्राणामनिरवसितानाम्	२।४।१०
२१	शे	१।१।१३
१९५	शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्	१।३।७८
२९०	शेषे प्रथमः	१।४।१०८
२९५	शेषो घ्यसखि	१।४।७
३७४	शेषो बहुव्रीहिः	२।२।२३
३४३	श्रेण्यादयः कृतादिभिः	२।१।५९
२३५	श्लाघह्नुङ्स्था०	१।४।३४
१३५	श्वसुरः श्वश्र्वा	१।२।७१
	(ष)	
१४२	षः प्रत्ययस्य	१।३।६
३६२	षष्ठी	२।२।८
४१९	षष्ठी चानादरे	२।३।३८
२९६	षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा	१।४।९
४२८	षष्ठी शेषे	२।३।५०
५०	षष्ठी स्थानेयोगा	१।१।४८
४०७	षष्ठी हेतुप्रयोगे	२।३।२६
४११	षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन	२।३।३०
२८	ष्णान्ता षट्	१।१।२३
	(स)	
२९७	संयोगे गुरु	१।४।११
३७६	संख्याव्ययासन्ना०	२।२।२५
३३७	संख्यापूर्वो द्विगुः	२।१।५२
३०९	संख्या वंश्येन	२।१।५२
४६७	संज्ञायां कन्योशीनरेषु	२।४।२०
३२६	संज्ञायाम्	२।१।४४
४०५	संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि	२।३।२२
४६५	स नपुंसकम्	२।४।१७
४९४	सनि च	२।४।४७
३४५	सन्महत्परमो०	२।१।६०
३९३	सप्तमीपञ्चम्यौ कारक०	२।३।७
३८५	सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ	२।२।३५
३२६	सप्तमी शौण्डैः	२।१।४०
४१७	सप्तम्यधिकरणे च	२।३।३६
४७१	सभा राजामनुष्यपूर्वा	२।४।२३
१८५	समः क्ष्णुवः	१।३।६५
१७६	समः प्रतिज्ञाने	१।३।५२
२९३	समर्थः पदविधिः	२।१।१
१५६	समवप्रविभ्यः स्थः	१।३।२२
१७७	समस्तृतीयायुक्तात्	१।३।५४
१०५	समाहारः स्वरितः	१।२।३१
१९२	समुदाङ्भ्यो०	१।३।७५
१६०	समो गम्यृच्छिभ्याम्	१।३।२९
१७२	सम्प्रतिभ्यामनाध्याने	१।३।४६
२२	सम्बुद्धौ शाकल्यस्ये०	१।१।१६
४२६	सम्बोधने च	२।३।४७
१६५	सम्माननोत्सञ्जन०	१।३।३६
१३१	सरूपाणामेकशेष०	१।२।६४
४०८	सर्वनाम्नस्तृतीया च	२।३।२७
३०	सर्वादीनि सर्वनामानि	१।१।२६
४०३	सहयुक्तेऽप्रधाने	२।३।१९
२९४	सह सुपा	२।१।४
२६६	साक्षात्प्रभृतीनि च	१।४।७४
२४१	साधकतमं करणम्	१।४।४२
४२३	साधुनिपुणाभ्या०	२।३।४३
४२७	सामन्त्रितम्	२।३।४८

पृष्ठाङ्का:	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३१५	सामि	२।१।२७
८०	सार्वधातुकमपित्	१।२।४
२२२	सिति च	१।४।१६
३२७	सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च	२।१।४१
२७९	सु: पूजायाम्	१।४।९४
४४	सुडनपुंसकस्य	१।१।४४
२८६	सुप:	१।४।१०३
५२०	सुपो धातुप्रातिपदिकयो:	२।४।७१
२२०	सुप्तिङन्तं पदम्	१।४।१४
३०१	सुप् प्रतिना मात्रार्थे	२।१।९
२९४	सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्०	२।३।२
३२५	स्तोकान्तिकादूरार्थ०	२।१।३९
१३२	स्त्री पुंवच्च	१।२।६६
९२	स्थाघ्वोरिच्च	१।२।१७
५६	स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ	१।१।५५
५१	स्थानेऽन्तरतम:	१।१।४९
१६२	स्पर्धायामाङ:	१।३।३१
२३७	स्पृहेरीप्सित:	१।४।३६
७१	स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा	१।१।६७
२५२	स्वतन्त्र: कर्ता	१।४।५४
३६	स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्	१।१।३४
३१४	स्वयं क्तेन	२।१।२४
१९०	स्वरितञित: कर्त्र०	१।३।७२
३८	स्वरादिनिपातमव्ययम्	१।१।२६
१११	स्वरितात्संहितायाम०	१।१।३९
१४७	स्वरितेनाधिकार:	१।३।११
२२३	स्वादिष्वसर्वनामस्थाने	१।४।१७
४२०	स्वामीश्वराधिपति०	२।३।३९
	(ह)	
९०	हन: सिच्	१।२।१४
४९०	हनो वध लिङि	२।४।४२
३	हयवरट्	प्र० सू० ५
६	हल्	प्र० सू० १४
८७	हलन्ताच्च	१।२।१०
१३९	हलन्त्यम्	१।३।३
१७	हलोऽनन्तरा: संयोग:	१।१।७
२७३	हीने	१।४।८६
२५१	हृक्रोरन्यतरस्याम्	१।४।५३
४०६	हेतौ	२।३।२३
४७५	हेमन्तशिशिराव०	२।४।२८
२९७	ह्रस्वं लघु	१।४।१०
११८	ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य	१।३।४७

इति प्रथमभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका समाप्ता।

संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्

१.	अ०	अदादिगणः।
२.	अथर्व०	अथर्ववेदः।
३.	अनु०	अनुवृत्तिः।
४.	आ०	आत्मनेपदम्।
५.	उ०	अभयपदम्।
६.	उदा०	उदाहरणम्।
७.	ऋ०	ऋग्वेदः।
८.	क०	कण्ड्वादिगणः।
९.	क्र्या०	क्र्यादिगणः।
१०.	चु०	चुरादिगणः।
११.	जु०	जुहोत्यादिगणः।
१२.	त०	तनादिगणः।
१३.	तु०	तुदादिगणः।
१४.	दि०	दिवादिगणः।
१५.	प०	परस्मैपदम्।
१६.	प०वि०	पदच्छेदो विभक्तिश्च।
१७.	प्र०सू०	प्रत्याहारसूत्रम्।
१८.	पा०का०भा०	पाणिनि कालीन भारतवर्ष
१९.	फिट्०	फिट्सूत्रम्।
२०.	भ्वा०	भ्वादिगणः।
२१.	व्या०शा०प्रा०	व्याकरणशास्त्रप्रारम्भः।
२२.	य०	यजुर्वेदः।
२३.	लि० अ०	लिङ्गानुशासनम्।
२४.	स०	समासः।
२५.	स्वा०	स्वादिगणः।
२६.	सा०	सामवेदः।
२७.	१। १	प्रथमा-एकवचनम्।
२८.	१। २	प्रथमा-द्विवचनम्।
२९.	१। ३	प्रथमा-बहुवचनम्।

(एवं सर्वं विभक्तिवचनं स्वयमूह्यम्)।

३०.	१।१।१	प्रथमाध्यायस्य प्रथमपादस्य प्रथमसूत्रम्। (एवं सर्वमूह्यम्)।

।। इति संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्।।

ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

द्वितीयो भागः

(तृतीयाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

द्वितीयो भागः
(तृतीयाध्यायात्मकः)

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी,

रोहतक--१२४००१ (हरयाणा)

सम्मति और धन्यवाद

गुरुकुल झज्जर के सुयोग्य स्नातक पं० सुदर्शनदेव आचार्य ने **"पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्"** नाम से पाणिनीय व्याकरण **"अष्टाध्यायी"** की संस्कृत और राष्ट्रभाषा हिन्दी में व्याख्या की है। संस्कृत भाषा में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ और उदाहरण लिखकर सूत्रों की सुबोध व्याख्या की है। **"आर्यभाषा"** नामक हिन्दी टीका में पदोल्लेखपूर्वक अर्थ, उदाहरण तथा उदाहरणों का हिन्दी भाषा में अर्थ और सूत्रनिर्देशपूर्वक कच्ची एवं पक्की सिद्धि भी साथ-साथ दी गई है। अनेक स्थलों को स्पष्ट करने के लिए **"विशेष"** नामक टिप्पणी भी दी गई है।

अष्टाध्यायी (प्रथमावृत्ति) पर संस्कृत और हिन्दी भाषा में अभी तक इससे उत्तम और सुबोध वृत्ति प्रकाशित नहीं हुई है। यह ग्रन्थ व्याकरणशास्त्र अध्येता छात्र-छात्राओं तथा व्याकरण जिज्ञासु स्वयंपाठी स्वाध्यायशील सज्जनों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

इस ग्रन्थ को पांच भागों में प्रकाशित किया जारहा है। **प्रथम भाग** (१-२ अध्याय) और **द्वितीय भाग** (तीसरा अध्याय) छपकर तैयार होगये हैं। **तृतीय भाग** (४-५ अध्याय) प्रेस में छप रहा है। **चतुर्थ भाग** (६ अध्याय) और **पञ्चम भाग** (७-८ अध्याय) भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की योजना है।

अष्टाध्यायी के ३९८९ सूत्रों की व्याख्या ५ भागों में पूरी होगी। प्रत्येक भाग में २३×३६/१६ आकार के लगभग ६०० पृष्ठ हैं। ६००×५=३००० पृष्ठों के सजिल्द ५ भागों का मूल्य ५०० रुपये है। अग्रिम ग्राहकों को ४०० रुपये में सुलभ होंगे।

इसका प्रकाशन **श्रद्धेय स्वामी ओमानन्द सरस्वती** आचार्य गुरुकुल झज्जर के आदेशानुसार **"ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास गुरुकुल झज्जर"** की ओर से लगभग ५ लाख रुपये की लागत से किया जारहा है।

इस विशाल और श्रेष्ठ प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
दयानन्दमठ, रोहतक
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४

वेदव्रत शास्त्री
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

द्वितीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	प्रत्ययसंज्ञाप्रकरणम्	
१.	प्रत्ययाधिकारः	१
२	पराधिकारः	१
	प्रत्ययस्वरपरिभाषा	
१.	आद्युदात्तः	२
२.	अनुदात्तः	३
	सनादिप्रत्ययप्रकरणम्	
१	सन् (अर्थविशेषे)	३
२	सन् (अविशेषे)	४
३	सन् (इच्छार्थे)	५
४	क्यच् (इच्छार्थे)	६
५	काम्यच् (इच्छार्थे)	७
६	क्यच् (आचारे)	७
७	क्यङ् (आचारे)	८
८.	क्यङ् (भवत्यर्थे)	८
९.	क्यष् (भवत्यर्थे)	१०
१०.	क्यङ् (क्रमणे)	१२
११.	क्यङ् (आवर्तने चरणे च)	१२
१२.	क्यङ् (उद्वमने)	१३
१३.	क्यङ् (करणे)	१४
१४.	क्यङ् (विदनायम्)	१४
१५.	क्यच् (करणविशेषे)	१५
१६.	णिङ् (करणविशेषे)	१६
१७.	णिच् (करणविशेषे)	१७
१८.	यङ् (पौनःपुन्ये भृशार्थे च)	१९
१९.	यङ् (कौटिल्यार्थे)	२०
२०.	यङ् (धात्वर्थनिन्दायाम्)	२०
२१.	णिच् (अर्थविशेषे स्वार्थे च)	२२
२२.	णिच् (प्रयोजकव्यापारे)	२४
२३.	यक् (स्वार्थे)	२५
२४.	आयः (स्वार्थे)	२६
२५.	ईयङ् (स्वार्थे)	२६
२६.	णिङ् (स्वार्थे)	२७
२७.	सनाद्यन्तानां धातुसंज्ञा	२८
	विकरणप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	लृट्लृङ्लुट्लकाराः (स्यतासी)	२९
२	लोट्लकारः (सिप्)	३०
३.	लिट्लकारः	३१
	१. आम्-प्रत्ययः	३२
	२. कृञ्-अनुप्रयोगः	३६
	३. आम् (निपातनम्)	३७
४.	लुङ्लकारः	४०
	१. च्लिः	४०
	२. सिच्	४१
	३ क्सः	४१
	४. क्स-प्रतिषेधः	४३
	५. चङ्	४४
	६. चङ्-विकल्पः	४५
	७. चङ्-प्रतिषेधः	४७
	८. अङ्	४९
	९. अङ्-विकल्पः	५०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१०.	अङ्	५१
११.	अङ्-विकल्पः	५३
१२.	अङ् (छन्दसि)	५५
१३.	चिण्	५६
१४.	चिण्-विकल्पः	५७
१५.	चिण्-प्रतिषेधः	६०
१६.	चिण् (भावे कर्मणि च)	६१
	सार्वधातुकम् (भावे कर्मणि च)	
१.	यक्	६२
	सार्वधातुकम् (कर्तरि)	
१.	शप्	६३
२.	श्यन्	६४
३.	श्यन्-विकल्पः	६४
४.	श्नुः	६७
५.	श्नु-विकल्पः	६८
६.	शः	६९
७.	श्नम्	७०
८.	उः	७१
९.	श्ना	७२
१०.	श्ना+श्नुः	७३
११.	शानच्	७४
१२.	शानच्-शायचौ	७५
१३.	शबादीनां व्यत्ययः	७६
१४.	अङ् (आशीर्लिङि)	७७
	कर्मवद्भावप्रकरणम्	
१.	कर्मवद्भावः	७९
२.	यक्चिण्-प्रतिषेधः	८१
३.	श्यन्	८३
	धातु-अधिकारः	
१.	उपपदसंज्ञा	८४
२.	कृत्-संज्ञा	८५
३.	असरूपप्रत्ययविधिः	८५
	कृत्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	तव्यदादयः	८७
२.	यत्	८७
३.	निपातनम् (यत्)	९०
४.	यत्+क्यप्	९३
५.	क्यप्	९४
६.	निपातनम् (क्यप्)	९८
७.	निपातनम् (ण्यत्)	१०५
८.	ण्यत्	१०८
९.	निपातनम् (ण्यत्)	११०
१०.	निपातनम् (य.)	११४
	कृत्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ण्वुल्+तृच् (कर्तरि)	११६
२.	ल्युः+णिनिः+अच् (क०)	११७
३.	कः (क०)	११८
४.	शः (क०)	१२०
५.	णः (क०)	१२३
६.	कः (क०)	१२७
७.	ष्वुन् (क०)	१२७
८.	थकन् (क०)	१२८
९.	ण्युट् (क०)	१२९
१०.	वुन् (क०)	१३०

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	कृत्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	अण् (कर्तरि)	१३२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२.	कः (क०)	१३३
३.	टक् (क०)	१३८
४.	अच् (क०)	१३९
५.	टः (क०)	१४३
६.	ट-प्रतिषेधः (क०)	१५०
७.	इन् (क०)	१५१
८.	इन् (निपातनम्)	१५२
९.	इन् (छन्दसि)	१५३
१०.	खश् (क०)	१५४
११.	खश् (निपातनम्)	१६२
१२.	खच् (क०)	१६३
१३.	खच्+अण् (क०)	१६७
१४.	खच् (क०)	१६८
१५.	डः (क०)	१७०
१६.	णिनिः (क०)	१७२
१७.	टक् (क०)	१७३
१८.	टक् (निपातनम्)	१७५
१९.	ख्युन् (क०)	१७६
२०.	खिष्णुच्+खुकञ् (क०)	१७७
२१.	क्विन् (क०)	१७९
२२.	क्विन् निपातनं च	१७९
२३.	क्विन्+कञ् (क०)	१८१
२४.	क्विप् (क०)	१८३
२५.	ण्विः (क०)	१८५
२६.	ञ्युट् (क०)	१८७
२७.	विट् (क०)	१८९
२८.	कप् (क०)	१९१
२९.	ण्विन् (क०)	१९२
३०.	विच् (क० छन्दसि)	१९३
३१.	मनिन्+क्वनिप्+वनिप्+ विच् (क०)	१९४
३२.	क्विप् (क०)	१९६
३३.	कः+क्विप् (क०)	१९७
३४.	णिनिः (क०)	१९८
३५.	खश्+णिनिः (क०)	२०१
	भूतकालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	णिनिः (क०)	२०२
२.	क्विप् (क०)	२०४
३.	इनिः (क०)	२०८
४.	क्वनिप् (क०)	२०८
५.	उः (क०)	२१०
६.	निष्ठा (क्तः+क्तवतुः) (क्तः=भावे, कर्मणि, कर्तरि, क्तवतुः=कर्तरि)	२१४
७.	ङ्वनिप् (क०)	२१४
८.	अतृन् (क०)	२१५
९.	लिट् (छन्दसि)	२१६
१०.	वा कानच् (लिडादेशः)	२१६
११.	वा क्वसुः (लिडादेशः)	२१७
१२.	क्वसुः+कानच् (निपातनम्)	२२०
१३.	लुङ् (सामान्यभूते)	२२१
१४.	लङ् (अनद्यतने भूते)	२२२
१५.	लृट् (अभिज्ञावचनेऽनद्यतने भूते)	२२३
१६.	लृट्-प्रतिषेधः (यदि)	२२३
१७.	लृट्-विकल्पः (साकाङ्क्षे)	२२४
१८.	लिट् (परोक्षेऽनद्यतने भूते)	२२६
१९.	लङ्+लिट् (परोक्षेऽनद्यतने भूते)	२२७
२०.	लट् (स्मे)	२२८

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२१.	लट् (अपरोक्षे स्मे)	२२९
२२.	लट्-विकल्पः	२३०
२३.	लुङ्+लट् (अनद्यतने भूतेऽस्मे पुरि)	२३१
	वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	लट् (कर्तरि, कर्मणि, भावे च)	२३३
२.	शतृ+शानच् (लडादेशः)	२३३
३.	सत्-संज्ञा	२३७
४.	शानन् (कर्तरि, कर्मणि च)	२३८
५.	चानश् (कर्तरि, कर्मणि च)	२३९
६.	शतृ (कर्तरि)	२४०
	तच्छीलादि कर्तृप्रकरणम् (वर्तमानकाले)	
१.	तृन् (तच्छीलादिषु कर्तृषु)	२४४
२.	इष्णुच् (त०क०)	२४५
३.	क्स्नुः (ग्स्नुः) (त०क०)	२४८
४.	क्नुः (त०क०)	२४९
५.	घिनुण् (त०क०)	२५०
६.	वुञ् (त०क०)	२५६
७.	युच् (त०क०)	२५८
८.	युच्-प्रतिषेधः	२६२
९.	उकञ् (त०क०)	२६३
१०.	षाकन् (त०क०)	२६५
११.	इनिः (त०क०)	२६५
१२.	आलुच् (त०क०)	२६७
१३.	रुः (त०क०)	२६८
१४.	क्मरच् (त०क०)	२६९
१५.	घुरच् (त०क०)	२७०
१६.	कुरच् (त०क०)	२७०
१७.	क्वरप् (त०क०)	२७१
१८.	क्वरप् (निपातनम्) (त०क०)	२७२
१९.	ऊकः (त०क०)	२७३
२०.	रः (त०क०)	२७४
२१.	उः (त०क०)	२७५
२२.	उः (निपातनम्, त०क०)	२७६
२३.	उः (त०क०, छन्दसि)	२७७
२४.	किः+किन् (त०क०, छन्दसि)	२७७
२५.	नजिङ् (त०क०)	२७९
२६.	आरुः (त०क०)	२७९
२७.	क्रुकन्+क्लुकन् (त०क०)	२८०
२८.	वरच् (त०क०)	२८१
२९.	क्विप् (त०क०)	२८२
३०.	डुः (क० वर्तमानकाले)	२८४
३१.	ष्ट्रन् (कर्तरि, करणे, वर्तमानकाले)	२८५
३२.	इत्रः (करणे, वर्तमानकाले)	२८८
३३.	क्तः (कर्तरि, वर्तमानकाले)	२९१

तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	उणादयः प्रत्ययाः	२९३
२.	भूतेऽपि दर्शनम्	२९४
	भविष्यत्कालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	गमी-आदयः	२९५
२.	लट् (यावत्पुरानिपातयोः)	२९६
३.	लट्+लृट्+लुट् (कदाकर्ह्योः)	२९७
४.	लट्+लृट्+लुट् (किंवृत्ते लिप्सायाम्)	२९८
५.	लट्+लृट्+लुट् (लिप्स्यमानसिद्धौ)	२९९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
६.	लट्+लृट्+लुट् (लोडर्थलक्षणे)	३००
७.	लिङ्+लट्	३०१
८.	तुमुन्+ण्वुल्	३०२
९.	घञादयः (भाववचनाः)	३०३
१०.	अण्	३०४
११.	लृट् (शेषे भविष्यति)	३०५
१२.	सत्-आदेशः (शतृ-शानच्)	३०५
१३.	लृट् (शेषे भविष्यति)	३०५
१४.	लुट् (अनद्यतने भविष्यति)	३०६
	त्रिकालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	घञ् (पदादिभ्यः)	३०७
२.	घञ् (भावे)	३०९
	अकर्तृकारकभावप्रकरणम्	
	(अकर्तरि कारके भावे च)	
१.	घञ्	३१०
२.	घञ् (परिमाणाख्यायाम्)	३११
३.	घञ्	३१२
४.	णच्	३२७
५.	इनुण्	३२८
६.	घञ्	३२९
७.	अच्	३३८
८.	अप्	३३९
९.	णः+अप्	३४०
१०.	अप्	३४१
११.	अप्+घञ्	३४२
१२.	अप्	३४५
१३.	अप् (निपातनम्)	३४७
१४.	अप्	३४७
१५.	अप् (निपातनम्)	३४८
१६.	अप्	३४९
१७.	अप् (निपातनम्)	३५१
१८.	अप्	३५२
१९.	अप् (निपातनम्)	३५४
२०.	अप्	३५६
२१.	कः+अप्	३५७
२२.	अप्	३५८
२३.	अप् (निपातनम्)	३५९
२४.	क्त्रिः	३६१
२५.	अथुच्	३६२
२६.	नङ्	३६२
२७.	नन्	३६४
२८.	किः	३६४
	स्त्रीलिङ्गप्रत्ययप्रकरणम्	
	(अकर्तरि, कारके, भावे च)	
१.	क्तिन्	३६५
२.	क्तिन् (भावे)	३६६
३.	क्तिन् (मन्त्रे)	३६७
४.	क्तिन् (निपातनम्)	३६८
५.	क्यप् (भावे)	३७०
६.	श+क्यप्	३७२
७.	शः (निपातनम्)	३७३
८.	अः	३७४
९.	अङ्	३७६
१०.	युच्	३७८
११.	ण्वुल्	३७९
१२.	इञ्+ण्वुल्	३८१
१३.	ण्वुच्	३८३
१४.	अनिः	३८४

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	विविधार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	कृत्या ल्युट् च (बहुलार्थकाः)	३८५
२.	क्तः (भावे, नपुंसके)	३८६
३.	ल्युट् (भावे, नपुंसके)	३८७
४.	ल्युट् (करणेऽधिकरणे च)	३८९
५.	घः (करणेऽधिकरणे, पुंसि)	३९०
६.	घः (निपातनम्, पुंसि)	३९१
७.	घञ् (पुंसि)	३९२
८.	घञ् (निपातनम्, पुंसि)	३९४
९.	घः+घञ् (पुंसि)	३९६
१०.	खल् (भावे कर्मणि च)	३९७
११.	युच् (भावे कर्मणि च)	३९८
१२.	वर्तमानवत्प्रत्ययविधिः (भूते भविष्यति च)	४०१
१३.	भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्ययविधिः (भविष्यति)	४०३
	१. लृट् (भविष्यति)	४०४
	२. लिङ् (भविष्यति)	४०५
	३. अनद्यतनवत् प्रत्ययविधिः	४०५
	४. अनद्यतनवत् प्रत्ययप्रतिषेधः	४०६
	५. अनद्यतनवत् प्रत्ययविकल्पः	४०९
१४.	लृङ् (भविष्यति)	४१०
१५.	लृङ् (भूते)	४११
१६.	लृङ्प्रत्ययविकल्पाधिकारः (भूते)	४१२
१७.	लट् (कालत्रये)	४१३
१८.	लिङ्+लट् (कालत्रये)	४१४
१९.	लिङ्+लृट् (कालत्रये)	४१६
२०.	लृट् (कालत्रये)	४१९
२१.	लिङ् (कालत्रये)	४२०
२२.	लृट् (कालत्रये)	४२५
२३.	लिङ् (भविष्यति)	४२५
२४.	लिङ्-विकल्पः (भविष्यति)	४२८
२५.	लिङ्+लृट् (भविष्यति)	४२९
२६.	लिङ्+लोट् (भविष्यति)	४३०
२७.	तुमुन् (भविष्यति)	४३१
२८.	लिङ् (भविष्यति)	४३१
	वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	लिङ्+लट्	४३२
२.	लिङ् (विध्यादिषु)	४३३
३.	लोट् (विध्यादिषु)	४३५
४.	कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)	४३६
५.	लिङ्+कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)	४३७
६.	लोट् (प्रैषादिषु)	४३८
७.	लोट् (अधीष्टे)	४३९
८.	तुमुन् (कालसमयवेलासु)	४४०
९.	लिङ् (कालसमयवेलासु)	४४०
१०.	कृत्याः+तृच्+लिङ् (अर्हार्थे)	४४१
११.	णिनिः (आवश्यके, आधमर्ण्ये च)	४४२
१२.	कृत्याः (आवश्यके, आधमर्ण्ये च)	४४२
१३.	लिङ्+कृत्याः (शक्नोत्यर्थे)	४४४
१४.	लिङ्+लोट् (आशिषि)	४४४
१५.	क्तिच्+क्तः (आशिषि)	४४५
१६.	लुङ् (माङि)	४४६
१७.	लङ्+लुङ् (माङि स्मोत्तरे)	४४७
	तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः	
	धात्वर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	धात्वर्थसम्बन्धः	४४८
२.	लोट् (क्रियासमभिहारे)	४४९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
३.	लोट् (समुच्चये)	४५२
४.	अनुप्रयोगविधिः	४५४
	वैदिकप्रत्ययार्थप्रकरणम्	
१.	लुङ्+लङ्+लिट् (छन्दसि, कालसामान्ये)	४५५
२.	लेट् (लिङर्थे)	४५६
३.	लेट् (उपसंवादे आशङ्कायां च)	४५७
४.	से-आदयः (तुमर्थे)	४५८
५.	तुमर्थे (निपातनम्)	४६१
६.	णमुल्+कमुल् (तुमर्थे)	४६३
७.	तोसुन्+कसुन् (तुमर्थे)	४६३
८.	तवै-आदयः (कृत्यार्थे)	४६४
९.	कृत्यार्थे (निपातनम्)	४६६
१०.	तोसुन् (भावलक्षणे)	४६६
११.	कसुन् (भावलक्षणे)	४६८
	क्त्वाप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	क्त्वा (प्राचां मते)	४६९
२.	क्त्वा (व्यतीहारे)	४७०
३.	क्त्वा (परावरयोगे)	४७१
४.	क्त्वा (पूर्वकाले)	४७१
	क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	क्त्वा+णमुल् (आभीक्ष्ण्ये)	४७२
२.	क्त्वा (णमुल्प्रतिषेधः)	४७३
३.	क्त्वाणमुल्विकल्पः	४७४
४.	खमुञ्-प्रत्ययविधिः (आक्रोशे)	४७५
	णमुल्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	णमुल् (पूर्वकाले)	४७६
२.	णमुल् (सिद्धाप्रयोगे)	४७७
३.	णमुल् (असूयाप्रतिवचने)	४७८
४.	णमुल् (साकल्ये)	४७९
५.	णमुल् (यावति)	४८०
६.	णमुल्	४८१
७.	णमुल् (वर्षप्रमाणे)	४८१
८.	णमुल्	४८३
९.	अनुप्रयोगविधिः (कषादिषु)	४९१
१०.	णमुल्	४९२
११.	णमुल् (समासत्तौ)	४९५
१२.	णमुल् (परीप्सायाम्)	४९६
१३.	णमुल्	४९८
	क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	क्त्वा+णमुल् (अयथाभिप्रेताख्याने)	५०३
२.	क्त्वा+णमुल् (अपवर्गे)	५०४
३.	क्त्वा+णमुल् (तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गे)	५०५
४.	क्त्वा+णमुल् (च्वि-अर्थे)	५०६
५.	क्त्वा+णमुल् (तूष्णीमि)	५०८
६.	क्त्वा+णमुल् (अन्वचि)	५०९
	तुमुन्प्रत्ययविधिः	५०९
	प्रत्ययार्थप्रकरणम्	
१.	कृत् (कर्तरि)	५११
२.	भव्यादयः (वा कर्तरि)	५१२
३.	लकाराः (कर्तरि, कर्मणि, भावे च)	५१३
४.	कृत्य+क्त+खलर्थाः (भावे, कर्मणि च)	५१५
५.	आदिकर्मणि क्तः (कर्तरि, कर्मणि, भावे च)	५१७
६.	क्तः (कर्तरि, कर्मणि, भावे च)	५१८

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
७.	निपातनम् (सम्प्रदाने)	५२१
८.	निपातनम् (अपादाने)	५२२
९.	उणादीनामर्थः	५२३
१०.	क्तः (अधिकरणे, कर्तरि, कर्मणि, भावे च)	५२४
	लकारादेशप्रकरणम्	
१.	तिङ्-आदेशः	५२४
२.	एकारादेशः (टेः)	५२८
३.	से-आदेशः	५२९
	लिट्-आदेशप्रकरणम्	
१.	एश्-ईरिच्-आदेशौ	५२९
२.	णलादि-आदेशः	५२९
	लट्-आदेशप्रकरणम्	
१.	वा णलादय आदेशाः	५३१
२.	पञ्च णलादय आहादेशश्च	५३३
	लोट्-आदेशप्रकरणम्	
१.	लङ्वद्-आदेशाः	५३४
२.	उ-आदेशः	५३६
३.	हि-आदेशः	५३७
४.	हि-अपित्वविकल्पः (छन्दसि)	५३७
५.	नि-आदेशः	५३८
६.	आम्-आदेशः	५३९
७.	व-अमावादेशौ	५४०
८.	आट्-आगमः	५४१
९.	ऐ-आदेशः	५४२
	लेट्-आदेशागमप्रकरणम्	
१.	अट्-आटावागमौ	५४२
२.	ऐ-आदेशः	५४४
३.	ऐ-आदेशविकल्पः	५४५
४.	इकार-लोपः	५४६
५.	सकार-लोपः	५४६
	ङित्-लकारादेशागमप्रकरणम्	
१.	सकार-लोपः (ङिति)	५४७
२.	इकार-लोपः (ङिति)	५४८
३.	ताम्-आद्यादेशाः	५४९
४.	सीयुट्-आगमः (लिङि)	५५०
५.	यासुट्-आगमः (लिङि)	५५१
६.	यासुट्-आगमः (आशीर्लिङि)	५५२
७.	रन्-आदेशः (लिङि)	५५३
८.	अत्-आदेशः (लिङि)	५५३
९.	सुट्-आदेशः (लिङि)	५५४
१०.	जुस्-आदेशः (लिङि)	५५५
११.	जुस्-आदेशः (ङिति)	५५५
१२.	जुस्-आदेशः (लुङि)	५५७
१३.	जुस्-आदेशः (शाकटायनमतम्)	५५८
१४.	सार्वधातुकसंज्ञा	५५९
१५.	आर्धधातुकसंज्ञा	५६१
१६.	उभयसंज्ञा (छन्दसि)	५६३

इति द्वितीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।

तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्रत्ययसंज्ञाप्रकरणम्

प्रत्ययाधिकारः–

प्रत्ययः ।१।

वि०–प्रत्ययः १।१।

अर्थः–प्रत्यय इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः। प्रत्ययशब्दः संज्ञात्वेनाधिक्रियते। यद् इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः प्रत्ययसंज्ञास्ते वेदितव्याः, प्रकृति-उपपद-उपाधि-विकारागमान् वर्जयित्वा।

उदा०–कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रत्ययः) पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त 'प्रत्यय' का अधिकार है। प्रत्यय शब्द का संज्ञारूप में अधिकार किया गया है। जो इससे आगे कहेंगे उनकी प्रत्यय संज्ञा जाननी चाहिये; प्रकृति, उपपद, उपाधि, विकार और आगम को छोड़कर।

*उदा०-**कर्तव्यम्। करणीयम्।** करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **कर्तव्यम्।** कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से विहित 'तव्यत्' की इस सूत्र से प्रत्यय संज्ञा होती है।*

*(२) **करणीयम्।** 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'अनीयर्' प्रत्यय है।*

पराधिकारः–

परश्च ।२।

प०वि०–परः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रत्ययश्च परः।

अर्थः–यश्च प्रत्ययसंज्ञकः स धातोः प्रातिपदिकाद् वा परो भवति, इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

उदा०–कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(च) और (प्रत्ययः) जिसकी प्रत्यय संज्ञा है, वह (परः) धातु अथवा प्रातिपदिक से परे होता है, इसका भी पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक अधिकार है।

*उदा०-**कर्तव्यम्। करणीयम्।** करना चाहिये।*

*सिद्धि-**कर्तव्यम्। करणीयम्।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्य' और 'अनीयर्' प्रत्यय इस सूत्र से परे किये गये हैं; पूर्व नहीं।*

प्रत्ययस्वरपरिभाषा

आद्युदात्तः–

(१) आद्युदात्तश्च।३।

प०वि०-आद्युदात्तः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आदिरुदात्तो यस्य स आद्युदात्तः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रत्ययश्चाद्युदात्तः।

अर्थः-यश्च प्रत्ययसंज्ञकः स आद्युदात्तो भवति, इत्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः। यस्य प्रत्ययस्यान्यस्वरो न विहितः स आद्युदात्तो वेदितव्यः।

उदा०-कर्तव्यम्। तैत्तिरीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(च) और (प्रत्ययः) जिसकी प्रत्यय संज्ञा है, वह (आद्युदात्तः) आद्युदात्त होता है। इसका पंचम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। जिस प्रत्यय का कोई अन्य स्वर विधान नहीं किया गया है, उसका आद्युदात्त स्वर होता है।

*उदा०-**कर्तव्यम्।** करना चाहिये। **तैत्तिरीयम्।** तित्तिरि ऋषि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ।*

*सिद्धि-(१) **कर्तव्यम्।** कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।*

*यहां इस सूत्र से 'तव्य' प्रत्यय आद्युदात्त है। जब एक स्वर निश्चित हो जाता है तब **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५२) से अन्य अच् अनुदात्त हो जाते हैं। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (४।८।६५) से उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित हो जाता है।*

*(२) **तैत्तिरीयम्।** तित्तिरि+छण्। तित्तिरि+ईय। तैत्तिर्+ईय। तैत्तिरीय+सु। तैत्तिरीयम्।*

*यहां 'तित्तिरि' प्रातिपदिक से **'तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्'** (४।३।१०२) से 'छण्' प्रत्यय है। यह 'छण्' प्रत्यय इस सूत्र से आद्युदात्त है। शेष स्वरविधि पूर्ववत् है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ' को ईय-आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से **आदिवृद्धि होती है।***

अनुदात्तः–

(२) अनुदात्तौ सुप्पितौ।४।

प०वि०–अनुदात्तौ १।२ सुप्-पितौ १।२।

स०–प इत् यस्य स पित्। सुप् च पिच्च तौ–सुप्पितौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रत्यय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सुप्पितौ प्रत्ययावनुदात्तौ।

अर्थः–सुपः पितश्च प्रत्यया अनुदात्ता भवन्ति। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०–**सुप्**–दृषदौ। दृषदः। **पित्**–पचति। पठति।

*आर्यभाषा–अर्थ–(सुप्-पितौ) सुप् और पित् प्रत्यय (अनुदात्तौ) अनुदात्त होते **हैं**। यह पूर्व सूत्र का अपवाद है।*

*उदा०–**सुप्–दृषदौ**। दो पत्थर। **दृषदः**। बहुत पत्थर। **पित्–पचति**। **वह** पकाता है। **पठति**। वह पढ़ता है।*

*सिद्धि–(१) **दृषदौ**। दृषद्+औ। दृषदौ।*

*यहां इस सूत्र से औ (सुप्) प्रत्यय अनुदात्त है। इसे '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६६) से स्वरित हो जाता है। ऐसे ही **दृषदः**।*

*(२) **पचति**। पच्+लट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पचति।*

*यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' **प्रत्यय है**। यह पित् होने से इस सूत्र से अनुदात्त है। इससे पूर्ववत् स्वरित हो जाता है। ऐसे ही–**पठति**।*

सनादिप्रत्ययप्रकरणम्

सन् (अर्थविशेषे) :–

(१) गुप्तिज्किद्भ्यः सन्।५।

प०वि०–गुप्-तिज्-किदभ्यः ५।३ सन् १।१।

स०–गुप् च तिज् च किच्च ते गुप्तिज्कितः, तेभ्यो गुप्तिज्किद्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रत्ययः पर इति चानुवर्तते।

अर्थः–गुप्तिज्किद्भ्यो धातुभ्यः परः सन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**गुप्**–जुगुप्सति। **तिज्**–तितिक्षते। **कित्**–चिकित्सति।

आर्यभाषा-अर्थ-(गुप्तिज्किद्भ्यः) गुप्, तिज्, कित् इन धातुओं से (परः) परे (सन्) सन् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है।

*उदा०-गुप्-**जुगुप्सते।** निन्दा करता है। तिज्-**तितिक्षते।** क्षमा करता है। कित्-**चिकित्सति।** चिकित्सा (इलाज) करता है।*

*सिद्धि-(१) **जुगुप्सते।** गुप्+सन्। गुप्+गुप्+स। जु+गुप्+स। जुगुप्स+लट्। जुगुप्स+शप्+त। जुगुप्स+अ+ते। जुगुप्सते।*

यहां 'गुप गोपने' (भ्वा०आ०) धातु से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को ज् होता है। 'जुगुप्स' की 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से धातु संज्ञा है। इससे वर्तमानकाल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय होता है।

*(२) **तितिक्षते।** 'तिज् निशाने' (भ्वा० आ०)।*

*(३) **चिकित्सति।** 'कित निवासे रोगापनयने च (भ्वा०प०)।*

*अर्थविशेषः-**गुप्तिज्किद्भ्यो निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते।** गुप्, तिज्, कित् इन धातुओं से यथासंख्य निन्दा, क्षमा और व्याधिप्रतीकार अर्थ में 'सन्' प्रत्यय होता है।*

सन् (अर्थविशेषे)-

(२) मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य।६।

वि०-मान्-बध-दान्-शान्भ्यः ५।३ दीर्घः १।१ च अव्ययपदम्, आभ्यासस्य ६।१।

स०-मान् च बधश्च दान् च शान् च ते-मान्बधदान्शानः, तेभ्यः-मान्बधदान्शान्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अभ्यासस्य विकारः आभ्यासः, तस्य-आभ्यासस्य (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-प्रत्ययः, परः, सन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मान्बधदान्शान्भ्यः सन् प्रत्यय आभ्यासस्य च दीर्घः।

अर्थः-मान्बधदान्शान्भ्यो धातुभ्यः परः सन् प्रत्ययो भवति, आभ्यासस्य=अभ्यासविकारस्य च दीर्घो भवति।

उदा०-मान्-मीमांसते। **बध्**-बीभत्सते। **दान्**-दीदांसते। **शान्**-शीशांसते।

आर्यभाषा-अर्थ-(मान्बधदान्शान्भ्यः) मान्, बध, दान् और शान् धातुओं से (परः) परे (सन्) सन् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है (च) और (आभ्यासस्य) अभ्यास के विकार को (दीर्घः) दीर्घ होता है।

*उदा०-**मान्-मीमांसते।** वह जानना चाहता है। **बध्-बीभत्सते।** वह विरूप होता है। **दान्-दीदांसते।** वह सरल होता है। **शान्-शीशांसते।** तेज (तीक्ष्ण) करता है।*

*सिद्धि-(१) **मीमांसते।** मान्+सन्। मान्+मान्+स। म+मान्+स। मि+मान्+स। मी+मां+स। मीमांस। मीमांस+लट्। मीमांस+शप्+त। मीमांस+अ+ते। मीमांसते।*

*यहां **'मान पूजायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इत्व और इस सूत्र से इ को दीर्घ (ई) होता है। 'मीमांस' की **'सनाद्यन्ता धातवः'** (३।१।३२) से धातु संज्ञा है। इससे वर्तमानकाल में **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय होता है।*

*(२) **बीभत्सते।** बध्+सन्। बध्+बध्+स। ब+बध्+स। बि+बध्+स। बी+भत्+स। बीभत्स। बीभत्स+लट्। बीभत्स+शप्+त। बीभत्स+अ+ते। बीभत्सते।*

*यहां **'बध बन्धने'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। पूर्ववत् अभ्यास को इत्व और इस सूत्र से इ को दीर्घ (ई) होता है। **'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः'** (८।२।३७) से बध् के ब् को भ और **'खरि च'** (८।४।५४) से ध को त् होता है। 'बीभत्स' धातु से पूर्ववत् लट् प्रत्यय है।*

*(३) **दीदांसते।** 'दान अवखण्डने' (भ्वा०उ०)।*

*(४) **शीशांसते।** 'शान अवतेजने' (भ्वा०उ०)।*

*अर्थविशेष-**मान्बधदान्शान्भ्यो जिज्ञासावैरूप्यार्जवनिशानेषु सन्निष्यते।** मान्, बध्, दान् और शान् धातुओं से यथासंख्य जिज्ञासा, वैरूप्य, आर्जव और निशान अर्थों में सन् प्रत्यय होता है।*

सन् (इच्छार्थे)-

(३) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा।७।

प०वि०-धातोः ५।१ कर्मणः ५।१ समानकर्तृकात् ५।१ इच्छायाम् ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-समानः कर्ता यस्य स समानकर्तृकः, तस्मात्-समानकर्तृकात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रत्ययः, परः, सन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छतिकर्मणः समानकर्तृकाद् धातोरिच्छायां वा सन् प्रत्ययः।

अर्थः-इच्छति-कर्मभूतात् समानकर्तृकाद् धातोरिच्छायामर्थे विकल्पेन सन् प्रत्ययो भवति। वा-वचनात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-कर्तुमिच्छति-चिकीर्षति। हर्तुमिच्छति-जिहीर्षति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु का कर्म बनी हुई (समानकर्तृकात्) एक कर्तावाली (धातोः) धातु से (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (वा) विकल्प से (सन्) सन् प्रत्यय होता है। विकल्प-विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

*उदा०-**कर्तुमिच्छति-चिकीर्षति।** वह करना चाहता है। **हर्तुमिच्छति-जिहीर्षति।** वह हरना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **चिकीर्षति।** कृ+सन्। कृ+कृ+स। कृ+कॄ+स। कृ+किर्+स। कृ+कीर्+स। क+कीर्+स। चि+कीर्+ष। चिकीर्ष। चिकीर्ष+लट्। चिकीर्ष+शप्+तिप्। चिकीर्ष+अ+ति। चिकीर्षति।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से सन् प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'कृ' धातु को द्वित्व होता है। 'इको झल्' (१।२।९) से 'सन्' प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का निषेध होता है। 'अज्झनगमां सनि' (६।४।१६) से कृ को दीर्घ (कॄ), 'ॠत इद् धातोः' (७।१।१००) से ॠ को इत्व 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (किर्) और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ (कीर्) होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सन्' के स को षत्व होता है। 'उरत्' (७।४।६६) अभ्यास के ऋ को अकार, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अ को इ और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को च् होता है।

(२) जिहीर्षति। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

क्यच् (इच्छार्थे)-

(४) सुप आत्मनः क्यच्।८।

प०वि०-सुपः ५।१ आत्मनः ६।१ क्यच् १।१।

अनु०-प्रत्ययः, परः, कर्मणः, इच्छायां वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छति-कर्मण आत्मनः सुप इच्छायां वा क्यच्।

अर्थः-इच्छतिकर्मभूताद् आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात् पर इच्छायामर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु का कर्म बने हुये (आत्मनः) आत्मसम्बन्धी (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (क्यच्) क्यच् प्रत्यय होता है। विकल्प विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

*उदा०-**आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रीयति।** अपने पुत्र की इच्छा करता है।*

*सिद्धि-**पुत्रीयति।** पुत्र+अम्+क्यच्। पुत्र+य। पुत्री+य। पुत्रीय। पुत्रीय+लट्। पुत्रीय+शप्+तिप्। पुत्रीय+अ+ति। पुत्रीयति।*

*यहां इच्छति धातु के कर्मभूत 'पुत्र' सुबन्त से इस सूत्र से क्यच् प्रत्यय है। **'क्यचि च'** (७।४।३३) से ईत्व होता है।*

काम्यच् (इच्छार्थे)-

(५) काम्यच् च।६।

प०वि०-काम्यच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रत्ययः परः, कर्मणः, आत्मनः सुप इच्छायां वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इच्छति-कर्मण आत्मनः सुप् इच्छायां वा काम्यच् च।

अर्थः-इच्छति-कर्मभूताद् आत्मसम्बन्धिनः सुबन्तात् पर इच्छायामर्थे विकल्पेन काम्यच् प्रत्ययोऽपि भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रकाम्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) इच्छति धातु के कर्म बने हुये (आत्मनः) आत्मसम्बन्धी (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (इच्छायाम्) इच्छा अर्थ में (वा) विकल्प से (काम्यच्) काम्यच् (प्रत्ययः) प्रत्यय (च) भी होता है। विकल्प विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

उदा०-आत्मनः पुत्रमिच्छति-पुत्रकाम्यति।

*सिद्धि-**पुत्रकाम्यति।** पुत्र+अम्+काम्यच्। पुत्र+काम्य। पुत्रकाम्य। पुत्रकाम्य+लट्। पुत्रकाम्य+शप्+तिप्। पुत्रकाम्य+अ+ति। पुत्रकाम्यति।*

यहां इच्छति धातु के कर्मभूत 'पुत्र' सुबन्त से इस सूत्र से काम्यच् प्रत्यय है।

क्यच् (आचारे)-

(६) उपमानादाचारे।१०।

प०वि०-उपमानात् ५।१ आचारे ७।१।

अनु०-प्रत्ययः, परः, कर्मणः, सुपः वा क्यच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपमानात् कर्मणः सुप आचारे वा क्यच्।

अर्थः-उपमानवाचिनः कर्मणः सुबन्तात् पर आचारेऽर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति। वा-ग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि भवति।

उदा०-पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति छात्रम्। प्रावारमिवाचरति-प्रावारीयति कम्बलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमानात्) उपमानवाची (कर्मणः) कर्मभूत (सुपः) सुबन्त से (परः) परे (आचारे) आचरण करने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यच्) क्यच् (प्रत्ययः) प्रत्यय होता है। विकल्प-विधान से पक्ष में वाक्य भी होता है।

*उदा०-**पुत्रमिवाचरति-पुत्रीयति छात्रम्।** छात्र से पुत्र के समान आचरण करता है। **प्रावारमिवाचरति-प्रावारीयति कम्बलम्।** कम्बल को चद्दर के समान बरतता है।*

***सिद्धि-पुत्रीयति।** इसकी सिद्धि (३।१।८) में देख लेवें।*

***विशेष-**इससे आगे 'प्रत्ययः' और 'परः' की अनुवृत्ति नहीं दिखाई जायेगी, इन दोनों का पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है।*

क्यङ् (आचारे)-

(७) कर्तुः क्यङ् सलोपश्च।११।

प०वि०-कर्तुः ६।१ क्यङ् १।१ सलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सस्य लोप इति सलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-वा, सुपः, उपमानाद्, आचारे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपमानात् कर्तुः सुप आचारे वा क्यङ् सलोपश्च।

अर्थः-उपमानवाचिनः कर्तुः सुबन्तात् पर आचारेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति, सकारस्य च वा लोपो भवति। अन्वाचयशिष्टः सलोपः, तदभावेऽपि क्यङ् प्रत्ययो भवत्येव। यदि क्वचित् सकारो भवति स लुप्यते।

उदा०-श्येन इवाचरति काकः-श्येनायते। पुष्करमिवाचरति कुमुदम्-पुष्करायते। पय इवाचरति तक्रम्-पयायते, पयस्यते वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमानात्) उपमानवाची (कर्तुः) कर्तृभूत (सुपः) सुबन्त से परे (आचारे) आचरण अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है (च) और विकल्प से (सलोपः) सकार का लोप होता है। यहां सकार का लोप अन्वाचयशिष्ट है, यदि

शब्द में सकार हो तो लोप हो जाता है, यदि न हो तब भी शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता ही है। सकार का लोप भी विकल्प से होता है।

*उदा०-**श्येन इवाचरति काकः-श्येनायते।** कौवा बाज के समान आचरण करता है। **पुष्करमिवाचरति कुमुदम्-पुष्करायते।** नीला कमल सफेद कमल के समान आचरण कर रहा है। **पय इवाचरति तक्रम्-पयायते, पयस्यते वा।** मट्ठा दूध के समान लग रहा है।*

*__सिद्धि-पयायते।__ पयस्+सु+क्यङ्। पयस्+य। पय+य। पयाय। पयाय+लट्। पयाय+शप्+त। पयाय+अ+ते। पयायते। स लोप के विकल्प में-**पयस्यते।***

*यहां उपमानवाची 'पयस्' शब्द से इस सूत्र से 'क्यङ्' प्रत्यय और अन्त्य सकार का लोप होता है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से दीर्घ हो जाता है। 'क्यङ्' प्रत्यय के ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। ऐसे ही-**श्येनायते, पुष्करायते।***

क्यङ् (भवत्यर्थे)-

(८) भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः।१२।

प०वि०-भृश-आदिभ्यः ५।३ भुवि ७।१ अच्वेः ५।१ लोपः १।१ च अव्ययपदम्, हलः ६।१।

स०-भृश आदिर्येषां ते भृशादयः, तेभ्यः-भृशादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। न च्विरिति अच्विः, तस्मात्-अच्वेः (नञ्तत्पुरुषः)

अनु०-वा, क्यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विभ्यो भृशादिभ्यो भुवि वा क्यङ् हलश्च लोपः।

अर्थः-अच्वि-अन्तेभ्यो भृशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परो भुवि=भवत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य हलश्च लोपो भवति। अच्वेरिति वचनाद् अभूततद्भावे विषये क्यङ् प्रत्ययो विधीयते। नञिवयुक्तमन्य-तत्सदृशाधिकरणे।

उदा०-अभृशो भृशो भवति-भृशायते। अशीघ्रः शीघ्रो भवति-शीघ्रायते। असुमनाः सुमना भवति-सुमनायते।

भृश। शीघ्र। मन्द। चपल। पण्डित। उत्सुक। उन्मनस्। अभिमनस्। सुमनस्। दुर्मनस्। रहस्। रेहस्। शश्वत्। बृहत्। वेहत्।

नृषत्। शुधि। अधर। ओजस्। वर्चस्। विमनस्। रभन्। हन्। रोहत्। शुचिस्। अजरस्। इति भृशादयः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वेः) च्वि प्रत्यय से रहित (भृशादिभ्यः) भृश आदि प्रातिपदिकों से परे (भुवि) भवति=होने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है (च) और (हलः) अन्त्य हल् का (लोपः) लोप हो जाता है। हल् का लोप अन्वाचयशिष्ट है। यदि प्रातिपदिक के अन्त में हल् हो तो लोप हो जाता है। 'अच्वि' के वचन से अभूततद्भाव विषय में क्यङ् प्रत्यय होता है क्योंकि **'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय अभूततद्भाव विषय में होता है। नञ्युक्त का तत्सदृश द्रव्य अर्थ में कथन होता है।*

*उदा०-अभृशो भृशो भवति-**भृशायते।** जो सबल नहीं है वह सबल होता है। अशीघ्रः शीघ्रो भवति-**शीघ्रायते।** जो शीघ्रकारी नहीं है वह शीघ्रकारी होता है। असुमनाः सुमना भवति-**सुमनायते।** जो उत्तम मनवाला नहीं है, वह उत्तम मनवाला होता है।*

*सिद्धि-**सुमनायते।** सुमनस्+सु+क्यङ्। सुमनस्+य। सुमन+य। सुमनाय। सुमनाय+लट्। सुमनाय+शप्+त। सुमनाय+अ+ते। सुमनायते। यहां सब कार्य पयायते के समान हैं। ऐसे ही-**भृशायते, शीघ्रायते।***

क्यष् (भवत्यर्थे)-

(६) लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्।१३।

प०वि०-लोहितादि-डाज्भ्यः ५।३ क्यष् १।१।

स०-लोहित आदिर्येषां ते लोहितादयः, लोहितादयश्च डाच् च ते-लोहितादिडाचः, तेभ्यः-लोहितादिडाज्भ्यः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, भुवि, अच्वेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विभ्यो लोहितादिडाज्भ्यो भुवि वा क्यष्।

अर्थः-अच्वि-अन्तेभ्यो लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः परो भुवि=भवत्यर्थे विकल्पेन क्यष् प्रत्ययो भवति।

पूर्वस्मिन् सूत्रेऽभूततद्भावेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो विहितः, लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च क्यषेव स्यादिति नियमार्थं वचनम्। **'वा क्यषः'** (१।३।९०) इति परस्मैपदमात्मनेपदं च भवति।

उदा०-**लोहितादि:**-अलोहितो लोहितो भवति-लोहितायति, लोहितायते वा। डाजन्त:-अपटपटा पटपटा भवति-पटपटायति, पटपटायते वा।

लोहित। नील। हरित। पीत। मद्र। फेन। मन्द। इति लोहितादि:। आकृतिगणत्वात्-वर्मन्, निद्रा, करुणा, कृपा इत्यादयो लोहितादिषु गण्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अच्वे:) च्वि-प्रत्यय से रहित (लोहितादिडाज्भ्य:) लोहित आदि और डाच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (भुवि) होने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यष्) क्यष् प्रत्यय होता है।*

पूर्व सूत्र में अभूततद्भाव अर्थ में क्यङ् प्रत्यय का विधान किया गया है, लोहित आदि तथा डाच्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से उक्त अर्थ में क्यष् प्रत्यय ही हो, इस नियम के लिए यह कथन किया गया है। इससे ***'वा क्यष:'*** *(१।३।९०) से परस्मैपद और आत्मनेपद होता है।*

*उदा०-**लोहितादि-अलोहितो लोहितो भवति-लोहितायते।** जो लाल नहीं है वह लाल हो रहा है। **डाजन्त-अपटपटा पटपटा भवति-पटपटायते।** जो पटपट शब्द वाला नहीं है वह पटपट शब्दवाला हो रहा है।*

लोहित आदि शब्द धर्मवाची हैं, इनसे शब्दशक्ति के स्वभाव से तद्धर्मी द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-(१) लोहितायति। *लोहित+सु+क्यष्। लोहित+य। लोहिताय। लोहिताय+लट्। लोहिताय+शप्+तिप्। लोहिताय+अ+ति। लोहितायति।*

यहां ***'वा क्यष:'*** *(१।३।९०) से विकल्प से परस्मैपद होता है, पक्ष में आत्मनेपद भी होता है-**लोहितायते।***

(२) पटपटायते। *पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पटत्+पट्0+आ। पट+पट्+आ। पटपटा। पटपटा+क्यष्। पटपटा+य। पटपटाय। पटपटाय+लट्। पटपटाय+शप्+तिप्। पटपटाय+अ+ति। पटपटायति।*

यहां 'पटत्' शब्द से ***'अव्यक्तानुकरणात्०'*** *(५।४।५७) से 'डाच्' प्रत्यय है।* ***'डाचि बहुलं द्वे भवत:'*** *से 'पटत्' शब्द को द्विर्वचन होता है।* ***'डित्यभस्यापि टेर्लोप:'*** *(वा० ६।४।१४३) से पटत् के टिभाग (अत्) का लोप होता है।* ***'नित्यमाम्रेडिते डाचि'*** *(वा० ६।१।९६) से पूर्व पटत् के तकार को पररूप पकार होता है। शेष कार्य 'लोहितायति' के समान है।*

क्यङ् (क्रमणे)–

(१०) कष्टाय क्रमणे।१४।

प०वि०–कष्टाय ४।१ क्रमणे ७।१।

अनु०–वा, क्यङ् इत्यनुवर्तते, न क्यष्।

अन्वयः–चतुर्थी समर्थात् कष्टात् क्रमणे वा क्यङ्।

अर्थः–चतुर्थी समर्थात् कष्टशब्दात् परः क्रमणे=अनार्जवेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कष्टाय कर्मणे क्रामति–कष्टायते।

आर्यभाषा-अर्थ–(कष्टाय) चतुर्थी-समर्थ कष्ट शब्द से परे (क्रमणे) कुटिलता अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**कष्टाय कर्मणे क्रामति–कष्टायते।** कष्ट के हेतु पाप कर्म करने लिये उत्साह करता है।*

*सिद्धि–**कष्टायते।** कष्ट+ङे+क्यङ्। कष्ट+य। कष्टाय। कष्टाय+लट्। कष्टाय+शप्+त। कष्टाय+अ+ते। कष्टायते। यहां सब कार्य पूर्ववत् हैं।*

विशेष–सूत्र में कष्ट शब्द चतुर्थ्यन्त पढ़ा है अतः चतुर्थी समर्थ 'कष्ट' शब्द का ग्रहण किया जाता है।

क्यङ् (आवर्तने चरणे च)–

(११) कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः।१५।

प०वि०–कर्मणः ५।१ रोमन्थ-तपोभ्याम् ५।२ वर्तिचरोः ७।२।

स०–रोमन्थश्च तपश्च ते–रोमन्थतपसी, ताभ्याम्–रोमन्थतपोभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वर्तिश्च चर् च तौ वर्तिचरौ, तयोः–वर्तिचरोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वा, क्यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मभ्यां रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोर्वा क्यङ्।

अर्थः–कर्मभूताभ्यां रोमन्थ-तपोभ्यां शब्दाभ्यां परो यथासंख्यं वर्तिचरोरर्थयोर्विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–रोमन्थः–रोमन्थं वर्तयति–रोमन्थायते। गौः। **तपः**–तपश्चरति–तपस्यति ब्रह्मचारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (रोमन्थ-तपोभ्याम्) रोमन्थ और तप शब्दों से परे यथासंख्य (वर्ति-चरोः) आवृत्ति और आचरण अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**रोमन्थ-रोमन्थं वर्तयति-रोमन्थायते गौः।** गाय खाये हुये घास के चर्वण की आवृत्ति कर रही है। रोमन्थ=खाये हुये घास को फिर चबाना (जुगाली करना)। वर्तिः=आवृत्तिः। **तपः**-तपश्चरति-तपस्यति ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी तप कर रहा है।*

*सिद्धि-(१) **तपस्यति।** तपस्+अम्+क्यङ्। तपस्+य। तपस्य। तपस्य+लट्। तपस्य+शप्+तिप्। तपस्य+अ+ति। तपस्यति।*

*यहां क्यङ् प्रत्यय के ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद प्राप्त था किन्तु **'तपसः परस्मैपदं च'** (वा० ३।१।१५) से यहां परस्मैपद होता है।*

*(२) **रोमन्थायते।** कष्टायते के समान सिद्ध करें।*

क्यङ् (उद्वमने)-

(१२) वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।१६।

प०वि०-वाष्प-उष्मभ्याम् ५।२ उद्वमने ७।१।

स०-वाष्पश्च ऊष्मा च तौ वाष्पोष्माणौ, ताभ्याम्-वाष्पोष्मभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, क्यङ्, कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मभ्यां वोष्पोष्मभ्यामुद्वमने वा क्यङ्।

अर्थः-कर्मभूताभ्यां वाष्पोष्मभ्यां शब्दाभ्यां पर उद्वमनेऽर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वाष्पः-वाष्पमुद्वमति-वाष्पायते। **ऊष्मा**-ऊष्माणमुद्वमति-ऊष्मायते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (वाष्पोष्मभ्याम्) वाष्प और ऊष्मा शब्द से परे (उद्वमने) उगलने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**वाष्पः**-वाष्पमुद्वमति-**वाष्पायते स्थाली।** पतीली भांप को उगलती है। **ऊष्मा**-उष्माणमुद्वमति-**ऊष्मायते सूर्यः।** ऊष्मा=सूर्य गर्मी को उगलता है।*

*सिद्धि-**वाष्पायते।** वाष्प+अम्+क्यङ्। वाष्प+य। वाष्पाय। वाष्पाय+लट्। वाष्पाय+शप्+त। वाष्पाय+अ+ते। वाष्पायते। सब कार्य पूर्ववत् है।*

क्यङ् (करणे)–

(१३) शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे।१७।

प०वि०–शब्द-वैर-कलह-अभ्र-कण्व-मेघेभ्यः ५।१ करणे ७।१।

स०–शब्दश्च वैरञ्च कलहश्च अभ्रश्च कण्वं च मेघश्च ते शब्द०मेघाः, तेभ्यः-शब्द०मेघेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वा, क्यङ् कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मभ्यः शब्द०मेघेभ्यः करणे वा क्यङ्।

अर्थः–कर्मभूतेभ्यः शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**शब्दः**–शब्दं करोति-शब्दायते। **वैरम्**–वैरं करोति-वैरायते। **कलहः**–कलहं करोति-कलहायते। **अभ्रः**–अभ्रं करोति-अभ्रायते। **कण्वम्**–कण्वं करोति-कण्वायते। **मेघः**–मेघं करोति-मेघायते।

आर्यभाषा-अर्थः-(शब्द०मेघेभ्यः) शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ शब्दों से परे (करणे) करने अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-शब्द-**शब्दं करोति-शब्दायते।** शब्द करता है। वैर-**वैरं करोति-वैरायते।** वैर करता है। **कलह-कलहं करोति-कलहायते।** झगड़ा करता है। **अभ्र-अभ्रं करोति-अभ्रायते।** बादल बनाता है। **कण्व-कण्वं करोति-कण्वायते।** पाप करता है। **मेघ-मेघं करोति-मेघायते।** बरसाती बादल बनाता है।*

*सिद्धि-**शब्दायते।** पूर्ववत्।*

क्यङ् (वेदनायाम्)–

(१४) सुखादिभ्यः कर्तृ वेदनायाम्।१८।

प०वि०–सुख-आदिभ्यः ५।३ कर्तृ ६।१ (लुप्तषष्ठी) वेदनायाम् ७।१।

स०–सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयः, तेभ्यः-सुखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–वा, क्यङ्, कर्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–**कर्तुः कर्मभ्यः सुखादिभ्यो वा क्यङ्** वेदनायाम्।

अर्थः-कर्तुः सम्बन्धिभ्यः कर्मभूतेभ्यः सुखादिभ्यः शब्देभ्यः परो वेदनायाम्=अनुभवत्यर्थे विकल्पेन क्यङ् प्रत्ययो भवति।

"न कर्तृग्रहणेन वेदनाऽभिसम्बध्यते। किं तर्हि ? सुखादीन्यभिसम्बध्यन्ते। कर्तुयानि सुखादीनि" (महाभाष्यम्)।

उदा०-सुखं वेदयते-सुखायते देवदत्तः। दुःखं वेदयते-दुःखायते यज्ञदत्तः।

सुख। दुःख। तृप्त। गहन। कृच्छ्र। अस्र। अलीक। प्रतीप। करुण। कृपण। सोढ। इति सुखादयः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(कर्तुः) कर्ता के सम्बन्धी (कर्मणः) कर्मभूत (सुखादिभ्यः) सुख आदि शब्दों से परे (वेदनायाम्) अनुभव करना अर्थ में (वा) विकल्पेन (क्यङ्) क्यङ् प्रत्यय होता है।

__उदा०-सुखं वेदयते-सुखायते देवदत्तः।__ देवदत्त सुख अनुभव करता है। __दुःखं वेदयते-दुःखायते यज्ञदत्तः।__ यज्ञदत्त दुःख अनुभव करता है।

__सिद्धि-सुखायते।__ पूर्ववत्।

क्यच् (करणविशेषे)-

(१५) नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्।१६।

प०वि०-नमस्-वरिवस्-चित्रङः ५।१ क्यच् १।१।

स०-नमश्च वरिवश्च चित्रङ् च एतेषां समाहारो नमोवरिवश्चित्रङ्, तस्मात्-नमोवरिवश्चित्रङः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणो नमोवरिवश्चित्रङः करणे वा क्यच्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यो नमोवरिश्चित्रङ्भ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नमसः पूजायाम्। नमः करोति-नमस्यति। नमस्यति देवान्। **वरिवसः परिचर्यायाम्।** वरिवः करोति-वरिवस्यति। वरिवस्यति गुरून्। **चित्रङ आश्चर्ये।** चित्रं करोति-चित्रीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (नमोवरिवश्चित्रङः) नमस्, वरिवस् और चित्रङ् शब्दों से परे (करणे) करोति विशेष अर्थ में (वा) विकल्प से (क्यच्) क्यच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-नमस् (पूजा करना)। **नमः करोति-नमस्यति। नमस्यति देवान्।** देवताओं की पूजा करता है। वरिवस् (सेवा करना)। **वरिवः करोति-वरिवस्यति। वरिवस्यति गुरून्।** गुरुजनों की सेवा करता है। **चित्रङ्** (आश्चर्य करना) **चित्रं करोति-चित्रीयते देवदत्तः।** देवदत्त आश्चर्य करता है।*

***सिद्धि-चित्रीयते।** चित्र+अम्+क्यच्। चित्र+य। चित्री+य। चित्रीय। चित्रीय+लट्। चित्रीय+शप्+त। चित्रीय+अ+ते। चित्रीयते।*

*यहां चित्र शब्द से आश्चर्य अर्थ में इस सूत्र से क्यच् प्रत्यय है। **'क्यचि च'** (७।४।३३) से अङ्ग को ई-आदेश होता है। **'चित्रङ्'** शब्द से ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। अन्यत्र परस्मैपद ही होता है। ऐसे ही-**नमस्यति, वरिवस्यति।***

***विशेष**-क्यच्, क्यङ् और क्यष् ये तीन प्रत्यय हैं। इनमें ककार अनुबन्ध **'नः क्ये'** (१।४।१५) में समानरूप से तीनों के ग्रहण करने के लिए है। क्यच् में चकार अनुबन्ध **'क्यचि च'** (७।४।३३) से ईत्व विधान के लिए है, **'चितः'** (६।१।१६३) के लिये नहीं, क्योंकि **'धातोः'** (६।१।१५६) से धातु अन्तोदात्त होता ही है। क्यङ् में ङकार अनुबन्ध **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपदविधि के लिये है। क्यष् में षकार अनुबन्ध **'वा क्यषः'** (१।३।९०) से विकल्प से परस्मैपदविधि के लिये है।*

णिङ् (करणविशेषे)-

(१६) पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्।२०।

प०वि०-पुच्छ-भाण्ड-चीवरात् ५।१ णिङ् १।१।

स०-पुच्छं च भाण्डं च चीवरं च एतेषां समाहारः पुच्छ-भाण्डचीवरम्, तस्मात्-पुच्छभाण्डचीवरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणः पुच्छभाण्डचीवरात् करणे वा णिङ्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यः पुच्छभाण्डचीवरेभ्यः शब्देभ्यः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन णिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पुच्छादुदसने पर्यसने वा। पुच्छमुदस्यति पर्यस्यति

वा-उत्पुच्छयते, परिपुच्छयते वा। **भाण्डात् समाचयने।** भाण्डानि समाचिनोति-संभाण्डयते। **चीवरार्दजने परिधाने वा।** चीवराणि समर्जयति, परिदधाति वा-संचीवरयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (पुच्छभाण्डचीवरात्) पुच्छ, भाण्ड और चीवर शब्दों से (करणे) करोति विशेष अर्थ में (वा) विकल्प से (णिङ्) णिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-पुच्छ (उत्क्षेपण वा परिक्षेपण करना)। **पुच्छमुदस्यति पर्यस्यति वा-उत्पुच्छयते परिपुच्छयते वा गौः।** गाय पूछ को ऊपर अथवा सब ओर फैंकती है। भाण्ड (ठीक रखना)। **भाण्डानि समाचिनोति-संभाण्डयते कुम्भकारः।** कुम्हार घट आदि भाण्डों को ठीक-ठीक रखता है। चीवर (संग्रह करना वा धारण करना)। **चीवराणि समर्जयति परिदधाति वा-संचीवरयते भिक्षुः।** भिक्षु कपड़ों को इकट्ठा करता है अथवा धारण करता है।*

*सिद्धि-**उत्पुच्छयते।** उत्+पुच्छ+अम्+णिङ्। उत्+पुच्छ्+इ। उत्पुच्छि। उत्पुच्छि+लट्। उत्पुच्छि+शप्+त। उत्पुच्छे+अ+ते। उत्पुच्छयते।*

यहां कर्मभूत पुच्छ शब्द से करोति विशेष अर्थ में णिङ् प्रत्यय है। णिङ् के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। णिङ् में णकार अनुबन्ध 'णेरनिटि' (६।४।५१) में 'णिङ्' और 'णिच्' प्रत्यय का समानरूप से ग्रहण करने के लिये है।

णिच् (करणविशेषे)-

(१७) मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्।२१।

प०वि०-मुण्ड-मिश्र-श्लक्ष्ण-लवण-व्रत-वस्त्र-हल-कल-कृत-तूस्तेभ्यः ५।३ णिच् १।१।

स०-मुण्डश्च मिश्रश्च श्लक्ष्णश्च लवणं च व्रतं च वस्त्रं च हलश्च कलश्च कृतं च तूस्तं च तानि-मुण्ड०तूस्तानि, तेभ्यः-मुण्ड०तूस्तेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वा, कर्मणः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मभ्यो मुण्ड०तूस्तेभ्यः करणे वा णिच्।

अर्थः-कर्मभूतेभ्यो मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यः शब्देभ्यः परः करणे=करोति विशेषेऽर्थे विकल्पेन णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मुण्डः-मुण्डं करोति-मुण्डयति। मिश्रः-मिश्रं करोति-मिश्रयति। श्लक्ष्णः-श्लक्ष्णं करोति-श्लक्ष्णयति। लवणम्-लवणं करोति-लवणयति। व्रतम् (व्रताद्भोजने तन्निवृत्तौ च) व्रतं करोति-व्रतयति। पयो व्रतयति ब्राह्मणः। वृषलान्नं व्रतयति ब्राह्मणः। वस्त्रम् (वस्त्रात् समाच्छादने)। वस्त्रं करोति-संवस्त्रयति। हलिः-हलिं गृह्णाति-हलयति। कलिः- कलिं गृह्णाति-कलयति। कृतम्-कृतं गृह्णाति-कृतयति। तूस्तम्-तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति केशान् भिक्षुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणः) कर्मभूत (मुण्ड०तूस्तेभ्यः) मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त शब्दों से परे (करणे) करोतिविशेष {करना विशेष} अर्थ में (वा) विकल्प से (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-मुण्ड-**मुण्डं करोति-मुण्डयति।** मुण्डन करता है। मिश्र-**मिश्रं करोति-मिश्रयति।** मिश्रण करता है। श्लक्ष्ण-**श्लक्ष्णं करोति-श्लक्ष्णयति।** निर्मल करता है। लवण-**लवणं करोति-लवणयति।** नमकीन बनाता है। व्रत (भोजन करना अथवा उससे निवृत्त होना) **व्रतं करोति-व्रतयति। पयो व्रतयति ब्राह्मणः।** ब्राह्मण दुग्धपान का व्रत करता है। **वृषलान्नं व्रतयति ब्राह्मणः।** ब्राह्मण नीच के अन्न का वर्जन (त्याग) करता है। वस्त्र (समाच्छादन) **वस्त्रं करोति-संवस्त्रयति।** वस्त्र धारण करता है अथवा वस्त्र से ढकता है। हलि-**हलिं गृह्णाति-हलयति।** बड़े हल को पकड़ता है। महद्हलम्=हलिः। कलि-**कलिं गृह्णाति-कलयति।** कलि नामक पासे को ग्रहण करता है। कृत-**कृतं गृह्णाति-कृतयति।** कृत नामक पासे को ग्रहण करता है। तूस्त-**तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति केशान् भिक्षुः।** भिक्षु जटीभूत केशों को अलग-अलग करता है।*

*सिद्धि-(१) **मुण्डयति।** मुण्ड+अम्+णिच्। मुण्ड+इ। मुण्डि। मुण्डि+लट्। मुण्डि+शप्+तिप्। मुण्डे+अ+ति। मुण्डयति।*

*यहां कर्मभूत 'मुण्ड' शब्द से करोति-विशेष अर्थ में इस सूत्र से णिच् प्रत्यय है। णिजन्त मुण्डि धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है। ऐसे ही मिश्रयति आदि पद सिद्ध करें।*

*विशेष-**हलयति। कलयति।** इसी सूत्र में निपातन से हलि और कलि शब्द अकारान्त हैं। गन्ना बोते समय हल के मुख के दोनों ओर गण्डीरी बांधने पर जो हल बड़ा हो जाता है उसे 'हलि' कहते हैं। हल दो प्रकार के हैं। बड़ा हल जुताई में और छोटा हल बुवाई के काम आता है। द्यूतक्रीडा में पांच पासों का प्रयोग किया जाता है उनके नाम ये हैं-अक्षराज, कृत, त्रेता, द्वापर, कलि। यहां कलि और कृत पासे का उल्लेख किया गया है। ये अक्ष और शलाका के आकार के होते हैं।*

यङ् (पौनःपुन्ये भृशार्थे वा)–

(१८) धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।२२।

प०वि०–धातोः ५।१ एकाचः ५।१ हलादेः ५।१ क्रियासमभिहारे ७।१ यङ् १।१।

स०–एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्–एकाचः (बहुव्रीहिः)। हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्मात्–हलादेः (बहुव्रीहिः)। क्रियायाः समभिहार इति क्रियासमभिहारः, तस्मिन्–क्रियासमभिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। पौनःपुन्यं भृशार्थो वा क्रियासमभिहारः।

अन्वयः–हलादेरेकाचो धातोः क्रियासमभिहारे यङ्।

अर्थः–हलादेरेकाचो धातोः परः क्रियासमभिहारेऽर्थे यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पौनःपुन्ये–पुनः पुनः पचति–पापच्यते देवदत्तः। पुनः पुनर्यजति–यायज्यते यज्ञदत्तः। **भृशार्थे**–भृशं ज्वलति–जाज्वल्यते वह्निः। भृशं दीप्यते–देदीप्यते सूर्यः।

आर्यभाषा–अर्थ–(हलादेः) जिसके आदि में हल् है और (एकाचः) जिसमें एक ही अच् है उस (धातोः) धातु से परे (क्रियासमभिहारे) बार-बार होना अथवा अधिक होना अर्थ में (यङ्) यङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०–(पुनः पुनः होना) **पुनः पुनः पचति–पापच्यते देवदत्तः।** देवदत्त बार-बार पकाता है। **पुनः पुनर्यजति–यायज्यते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त बार-बार यज्ञ करता है (भृश=अधिक होना)। **भृशं ज्वलति–जाज्वल्यते वह्निः।** अग्नि खूब जलती है। **भृशं दीप्यते–देदीप्यते सूर्यः।** सूर्य खूब चमकता है।*

*सिद्धि–(१) **पापच्यते।** पच्+यङ्। पच्+पच्+य। पा+पच्+य। पापच्य। पापच्य+लट्। पापच्य+शप्+त। पापच्य+अ+ते। पापच्यते।*

*यहां **डुपचष् पाके** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्रियासमभिहार अर्थ में यङ् प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। यङन्त 'पापच्य' धातु से वर्तमानकाल में **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय है।*

*(२) **यायज्यते।** 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०)।*

*(३) **जाज्वल्यते।** 'ज्वल दीप्तौ' (भ्वा०उ०)।*

*(४) **देदीप्यते।** 'दीपी दीप्तौ' (दिवा०आ०)।*

यङ् (कौटिल्यार्थे)–

(१६) नित्यं कौटिल्ये गतौ।२३।

प०वि०–नित्यम् १।१ कौटिल्ये ७।१ गतौ ७।१ कुटिलस्य भावः कौटिल्यम्, तस्मिन्-कौटिल्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–धातोः, यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गतौ=गत्यर्थेभ्यः कौटिल्ये नित्यं यङ्।

अर्थः–गत्यर्थे वर्तमानेभ्यो धातुभ्यः परः कौटिल्येऽर्थे नित्यं यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुटिलं क्रामति–चङ्क्रम्यते। कुटिलं द्रमति–दन्द्रम्यते। "योऽल्पीयस्यध्वनि गतागतानि करोति स कुटिलां गतिं सम्पादयन्नेवमुच्यते" इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः।

आर्यभाषा-अर्थ–(गतौ) गति अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातुओं से परे (कौटिल्ये) कुटिलता अर्थ में (नित्यम्) सदा (यङ्) प्रत्यय होता है।

*उदा०–कुटिलं **क्रामति–चङ्क्रम्यते**। कुटिलं **द्रमति–दन्द्रम्यते**। तंग रास्ते में टेढ़ा-मेढ़ा चलता है।*

*सिद्धि-(१) **चङ्क्रम्यते**। क्रम्+यङ्। क्रम्+क्रम्+य। क+नुक्+क्रम्+य। क+न्+क्रम्+य। कं+ ँ +क्रम्+य। च+ङ्+क्रम्+य। चङ्क्रम्य। चङ्क्रम्य+लट्। चङ्क्रम्य+शप्+त। चङ्क्रम्य+अ+ते। चङ्क्रम्यते।*

*यहां **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से कुटिलगति अर्थ में इस सूत्र से यङ् प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य'** (७।४।८५) से अभ्यास को नुक् आगम, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार, **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङकार होता है। यङन्त **'चङ्क्रम्य'** धातु से पूर्ववत् लट् प्रत्यय है।*

*(२) **दन्द्रम्यते**। **'द्रम गतौ'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

यङ् (धात्वर्थनिन्दायाम्)–

(२०) लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्।२४।

प०वि०–लुप-सद-चर-जप-जभ-दह-दश-गृभ्यः ५।३ भाव-गर्हायाम् ७।१।

स०-लुपश्च सदश्च चरश्च जपश्च जभश्च दहश्च दशश्च गृश्च ते लुपसदचरजपजभदहदशग्रः, तेभ्यः-लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। धात्वर्थो भावः। भावस्य गर्हा इति भावगर्हा, तस्याम्-भावगर्हायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, नित्यम्, यङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लुप०गृभ्यो भावगर्हायां नित्यं यङ्।

अर्थः-लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो धातुभ्यो भावगर्हायाम्= धात्वर्थनिन्दायामर्थे नित्यं यङ् प्रत्ययो भवति। नित्यम्=एव।

उदा०-(लुप) गर्हितं लुम्पति-लोलुप्यते। (सद) गर्हितं सीदति-सासद्यते। (चर) गर्हितं चरति चञ्चूर्यते। (जप) गर्हितं जपति-जञ्जप्यते। (जभ) गर्हितं जभते। जञ्जभ्यते। (दह) गर्हितं दहति-दन्दह्यते। (दश) गर्हित दंशयति-दन्दश्यते। (गृ) गर्हितं गिरति-निजेगिल्यते।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(लुप०गृभ्यः) लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ (धातोः) धातुओं से परे (भावगर्हायाम्) धात्वर्थ की निन्दा अर्थ में (नित्यम्) ही (यङ्) यङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(लुप) गर्हितं लुम्पति-लोलुप्यते।** खराब ढंग से काटता है। **(सद) गर्हितं सीदति-सासद्यते।** खराब ढंग से बैठता है। **(चर) गर्हितं चरति-चञ्चूर्यते।** खराब ढंग से चलता है अथवा खाता है। **(जप) गर्हितं जपति-जञ्जप्यते।** अशुद्ध जप करता है। **(जभ) गर्हितं जभते-जञ्जभ्यते।** बुरी तरह जंभाई लेता है। **(दह) गर्हितं दंशयते-दन्दश्यते।** बुरी तरह डसता है। **(गृ) गर्हितं गिरति-निजेगिल्यते।** बुरी तरह निगलता है।*

*सिद्धि-**(१) लोलुप्यते।** लुप+यङ्। लुप्+लुप्+य। लो+लुप्+य। लोलुप्य। लोलुप्य+लट्। लोलुप्य+शप्+त। लोलुप्य+अ+ते। लोलुप्यते।*

*यहां **'लुप्लृ छेदने'** (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से भावगर्हा अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। यङन्त **'लोलुप्य'** धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **सासद्यते।** **'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०)। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है।*

(३) चञ्चूर्यते। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०)। 'चरफलोश्च' (७।४।८७) से अभ्यास को 'नुक्' आगम, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से न् को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (ञ्) होता है। 'उत्परस्यातः' (७।४।८८) से अभ्यास से परवर्ती चर् के अ को उकार आदेश होता है और 'हलि च' (८।२।७७) से उसे दीर्घ होता है।

(४) जञ्जप्यते। 'जप व्यक्तायां वाचि, मानसे च' (भ्वा०प०)। 'जपजभदहदशभञ्जपशां च' (७।४।८६) से अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है। 'न्' को पूर्ववत् अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(५) जञ्जभ्यते। 'जभी गात्रविनामे' (भ्वा०आ०)। यहां पूर्ववत् 'नुक्' आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(६) दन्दह्यते। 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०)। यहां पूर्ववत् नुक् आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(७) दन्दश्यते। 'दंशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०)। यहां पूर्ववत् 'नुक्' आगम, अनुस्वार और उसे परसवर्ण होता है।

(८) निजेगिल्यते। गॄ+यङ्। नि+गिर्+गिर्+य। नि+जि+गिर्+य। नि+जे+गिल्+य। निजेगिल्य। निजेगिल्य+लट्। निजेगिल्य+शप्+त। निजेगिल्य+अ+ते। निजेगिल्यते।

यहां 'गॄ निगरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'यङ्' प्रत्यय है। 'ॠत इद्धातोः' (७।१।१००) से धातु को इकार-आदेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५०) रपरत्व होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से गिर् को द्वित्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को ज् होता है। 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। 'ग्रो यङि' (८।२।२०) से गिर् के रेफ को लत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

णिच् (अर्थविशेषे स्वार्थे च)–

(२१) सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्।२५।

प०वि०–सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-चूर्ण-चुरादिभ्यः ५।३ णिच् १।१।

स०–चुर आदिर्येषां ते चुरादयः। सत्यापश्च पाशश्च रूपं च वीणा च तूलश्च श्लोकश्च सेना च लोम च त्वचं च वर्म च वर्णं च चूर्णं च चुरादयश्च ते-सत्याप०चुरादयः, तेभ्य-सत्याप०चुरादिभ्यः (बहुव्रीहि-गर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-सत्याप०चूर्णेभ्यः शब्देभ्यश्चुरादिभ्यश्च धातुभ्यो णिच्।

अर्थः-सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णेभ्यः शब्देभ्योऽर्थविशेषे चुरादिभ्यश्च धातुभ्यः परः स्वार्थे णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सत्याप) सत्यात् तदाचष्टे तत्करोति वा। सत्यमाचष्टे सत्यं करोति वा-सत्यापयति। (पाश) पाशाद् विमोचने। पाशं विमुञ्चति-विपाशयति। (रूप) रूपाद् दर्शने। रूपं पश्यति-निरूपयति। (वीणा) वीणया उपगायति-उपवीणयति। (तूल) तूलेन अनुकुष्णाति-अनुतूलयति। (श्लोक) श्लोकैरुपस्तौति-उपश्लोकयति। (सेना) सेनया अभियाति-अभिषेणयति। (लोम) लोमानि अनुमार्ष्टि-अनुलोमयति। (त्वच) त्वचं गृह्णाति-त्वचयति। (वर्म) वर्मणा संनह्यति-संवर्मयति। (वर्ण) वर्णं गृह्णाति-वर्णयति। (चूर्ण) चूर्णैरवध्वंसयति-अवचूर्णयति। चुरादिभ्यः स्वार्थे। चोरयति। चिन्तयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सत्याप०चूर्णेभ्यः) सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण शब्दों से अर्थविशेष में और (चुरादिभ्यः) चुर आदि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(सत्याप) सत्यमाचष्टे सत्यं करोति वा-सत्यापयति।** सत्य कहता है अथवा सत्य बनाता है (प्रमाणित करता है)। **(पाश) पाशं विमुञ्चति-विपाशयति।** बन्धन को छोड़ता है। **(रूप) रूपं पश्यति-निरूपयति।** रूप को देखता है। **(वीणा) वीणया उपगायति-उपवीणयति।** वीणा से पार्श्वगायन करता है। **(तूल) तूलेन अनुकुष्णाति-अनुतूलयति।** तृण के अग्रभाग को तूल (रूई) के सहाय से ठीक चलाता है। **(श्लोक) श्लोकैरुपस्तौति-उपश्लोकयति।** स्तोत्रों से उपस्थानपूर्वक देवता की स्तुति करता है। **(सेना) सेनया अभियाति-अभिषेणयति।** सेना से चढ़ाई करता है। **(लोम) लोमानि अनुमार्ष्टि-अनुलोमति।** रोमों का अनुशोधन करता है। **(त्वच) त्वचं गृह्णाति-त्वचयति।** त्वच=मृगचर्म को ग्रहण करता है। **(वर्म) वर्मणा संनह्यति-सवर्मयति।** कवच पहनकर तैयार होता है। **(वर्ण) वर्णं गृह्णाति-वर्णयति।** ब्राह्मण आदि वर्ण को ग्रहण करता है। **(चूर्ण) चूर्णैरवध्वंसयति-अवचूर्णयति।** चून-चून करके बखेरता है। **चोरयति।** चोरी करता है। **चिन्तयति।** सोचता है।*

*सिद्धि-**(१) सत्यापयति।** सत्य+णिच्। सत्य+आपुक्+इ। सत्य+आप्+इ। सत्यापि। सत्यापि+लट्। सत्यापि+शप्+तिप्। सत्यापे+अ+ति। सत्यापयति। इस सूत्र से सत्य शब्द*

*से कहना वा करना अर्थ में णिच् प्रत्यय है। वा०-**अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्यः** (३।१।२५) से आपुक् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'विपाशयति' आदि पद सिद्ध करें।*

(२) चुरादिगण की धातु पाणिनीय धातुपाठ में देख लेवें।

णिच् (प्रयोजकव्यापारे)--

(२२) हेतुमति च।२६।

प०वि०-हेतुमति ७।१ च अव्ययपदम्। अत्र पारिभाषिकस्य हेतुशब्दस्य ग्रहणं कर्त्तव्यम्, तत्प्रयोजको हेतुश्च (१।४।५५) इति। क्रियायाः स्वतन्त्रस्य कर्तुर्यः प्रयोजकः=प्रेरकः स हेतुरित्युच्यते। हेतुर्यस्यास्तीति हेतुमान्। नित्ययोगे मतुप् प्रत्ययः। हेतोर्यः प्रेषणादि व्यापारः=क्रियाविशेषः स हेतुमान्, तस्मिन्-हेतुमति (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-हेतुमति च धातोर्णिच्।

अर्थः-हेतुमति=प्रयोजकव्यापारे वाच्येऽपि धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कटं कारयति देवदत्तः। ओदनं पाचयति यज्ञदत्तः।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(हेतुमति) हेतुमान् अर्थ में (च) भी (धातोः) धातु से (णिच्) णिच् प्रत्यय होता है। यहां पारिभाषिक हेतु शब्द का ग्रहण है, लौकिक हेतु शब्द का नहीं। क्रिया के स्वतन्त्र कर्ता के प्रयोजक=प्रेरक की हेतु संज्ञा है। उस देवदत्त आदि प्रयोजक का जो प्रेषण आदि व्यापार=क्रियाविशेष है, उसे हेतुमान् कहते हैं।*

*उदा०-**कटं कारयति देवदत्तः।** देवदत्त चटाई बनवाता है। **ओदनं पाचयति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त भात पकवाता है।*

*सिद्धि-(१) **कारयति।** कृ+णिच्। कार्+इ। कारि। कारि+लट्। कारि+शप्+तिप्। कारे+अ+ति। कारयति।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से हेतुमान्=प्रेषण (आज्ञा देना) अर्थ में णिच् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से कृ को वृद्धि (कार्) होती है। णिजन्त 'कारि' धातु से वर्तमानकाल में लट् प्रत्यय है।*

*(२) **पाचयति।** **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०प०) **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।*

यक् (स्वार्थे)–

(२३) कण्ड्वादिभ्यो यक्।२७।

प०वि०–कण्डू-आदिभ्यः ५।३ यक् १।१।

स०–कण्डू आदिर्येषां ते कण्ड्वादयः, तेभ्यः–कण्ड्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यो यक्।

अर्थः–कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यः स्वार्थे यक् प्रत्ययो भवति। कण्ड्वादयः शब्दा, धातवः प्रातिपदिकानि च सन्ति। तेभ्यो धातुविवक्षायामेव यक् प्रत्ययो विधीयते, न प्रातिपदिकविवक्षायाम्।

उदा०–कण्डूञ्–गात्रविघर्षणे। कण्डूयति, कण्डूयते वा। मन्तु अपराधे–मन्तूयति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(कण्ड्वादिभ्यः) कण्डू आदि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (यक्) यक् प्रत्यय होता है। कण्ड्वादि विभाषित धातु हैं अर्थात् वे धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं। यहां धातु का अधिकार होने से उनसे धातु-विवक्षा में ही 'यक्' प्रत्यय होता है; प्रातिपदिक विवक्षा में नहीं।

*उदा०–**कण्डूञ् गात्रविघर्षणे** (खाज करना)। **कण्डूयति, कण्डूयते, वा।** खाज करता है। **मन्तु अपराधे** (अपराध करना)। **मन्तूयति।** अपराध करता है।*

__सिद्धि–(१) कण्डूयति।__ कण्डूञ्+यक्। कण्डू+य। कण्डूय। कण्डूय+लट्। कण्डूय+शप्+तिप्। कण्डूय+अ+ति। कण्डूयति।

*यहां '**कण्डूञ् गात्रविघर्षणे**' (क०उ०) धातु से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यक्' प्रत्यय है। 'यक्' प्रत्यय के कित् होने से '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का '**क्ङिति च**' (१।१।५) से निषेध हो जाता है।*

*'यक्' प्रत्यय के कित् होने से प्रतीत होता है कि कण्डूञ् आदि शब्द धातु हैं। कण्डूञ् में दीर्घ ऊकार पढ़ा है। '**अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः**' (७।४।२५) से दीर्घ हो ही जाता, इससे विदित होता है कि 'कण्डूञ्' आदि शब्द प्रातिपदिक भी हैं।*

धातुप्रकरणाद् धातुः कस्य चासञ्जनादपि।
आह चेमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः।।

*__(२) कण्डूयते।__ कण्डूञ् के ञित् होने से '**स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले**' (१।३।७१) से आत्मनेपद भी होता है।*

__(३) कण्डूञ्__ आदि शब्द पाणिनीय धातुपाठ के कण्ड्वादिगण में देख लेवें।

आयः (स्वार्थे)–

(२४) गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः।२८।

प०वि०–गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्यः ५।३ आयः १।१।

स०–गुपूश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च ते-गूपू०पनयः, तेभ्यः-गुपू०पनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–गुपू०पनिभ्यो धातुभ्य आयः।

अर्थः–गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यो धातुभ्यः स्वार्थे आयः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**गुपू रक्षणे**–गोपायति। **धूप सन्तापे**-धूपायति। **विच्छ गतौ**-विच्छायति। **पण व्यवहारे स्तुतौ च**–पणायति। **पन स्तुतौ**–पनायति।

आर्यभाषा-अर्थ-(गुपू०पनिभ्यः) गुपू, धूप, विच्छ, पणि, पनि (धातोः) धातुओं से स्वार्थ में (आयः) आय प्रत्यय होता है।

*उदा०-'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) **गोपायति**। रक्षा करता है। 'धूप सन्तापे' (भ्वा०प०) **धूपायति**। पीड़ा देता है। 'विच्छ गतौ' (तु०प०) **विच्छायति**। गति करता है। 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' (भ्वा०आ०) **पणायति**। स्तुति करता है। स्तुति-अर्थक पन-धातु के साहचर्य से पण-धातु से स्तुति अर्थ में आय प्रत्यय होता है, व्यवहार अर्थ में नहीं। शुद्ध 'पण और पन' धातु से आत्मनेपद होता है; आय-प्रत्ययान्त से नहीं। 'पन-स्तुतौ' (भ्वा०आ०) **पनायति**। स्तुति करता है।*

*सिद्धि-**गोपायति**। गुप्+आय। गोपाय। गोपाय+लट्। गोपाय+शप्+तिप्। गोपाय+अ+ति। गोपायति।*

यहां 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुप् धातु की उपधा को गुण होता है। ऐसे ही-'धूपायति' आदि पद सिद्ध करें।

ईयङ् (स्वार्थे)–

(२५) ऋतेरीयङ्।२९।

प०वि०–ऋतेः ५।१ ईयङ् १।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–ऋतेर्धातोरीयङ्।

अर्थः–ऋतेर्धातोः स्वार्थे ईयङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ऋति) ऋतीयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋतेः) ऋत (धातोः) धातु से परे स्वार्थ में (ईयङ्) ईयङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ऋति) **ऋतीयते।** घृणा करता है।*

*सिद्धि-(१) **ऋतीयते।** ऋत्+ईयङ्। ऋत्+ईय। ऋतीय। ऋतीय+लट्। ऋतीय+शप्+त। ऋतीय+अ+ते। ऋतीयते।*

(२) 'ऋत' यह घृणार्थक सौत्र धातु है। जो धातु पाणिनीय धातुपाठ में पठित न हो और अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ में उपलब्ध हो, उसे सौत्र धातु कहते हैं।

*(३) ईयङ् प्रत्यय में ङकार अनुबन्ध '**अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**' (१।३।१२) से आत्मनेपद के लिए है।*

णिङ् (स्वार्थे)-

(२६) कमेर्णिङ्।३०।

प०वि०-कमेः ५।१ णिङ् १।१।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-कमेर्धातोर्णिङ्।

अर्थः-कमेर्धातोः स्वार्थे णिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कमु कान्तौ-कामयते।

आर्यभाषा-अर्थ-(कमेः) कम् (धातोः) धातु से परे स्वार्थ में (णिङ्) णिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**कमु कान्तौ** (भ्वा०आ०) **कामयते।** कामना (इच्छा) करता है।*

*सिद्धि-(१) **कामयते।** कम्+णिङ्। काम्+इ। कामि। कामि+लट्। कामि+शप्+त। कामे+अ+ते। कामयते।*

*यहां '**कमु कान्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय है। '**अत उपधायाः**' (७।३।११६) से कम् धातु की उपधा को वृद्धि होती है।*

*(२) णिङ् प्रत्यय में णकार अनुबन्ध '**अत उपधायाः**' (७।३।११६) से वृद्धि के लिये है और ङकार अनुबन्ध '**अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**' (१।२।१२) से आत्मनेपद के लिये है।*

(२७) आयादय आर्धधातुके वा।३१।

प०वि०-आय-आदयः १।३ आर्धधातुके ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-आय आदिर्येषां ते आयादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वय:-आयादयो धातुभ्य आर्धधातुके वा।

अर्थ:-एते आयादय: प्रत्यया यथोक्तधातुभ्य: परे आर्धधातुके विषये विकल्पेन भवन्ति।

उदा०-गुपू रक्षणे-गोप्ता, गोपायिता। **ऋतिर्घृणायाम्**-अर्तिता, ऋतीयिता। **कमु कान्तौ**-कमिता, कामयिता।

आर्यभाषा-अर्थ-(आयादय:) ये 'आय' आदि प्रत्यय (धातो:) यथोक्त धातुओं से (आर्धधातुके) आर्धधातुक विषय में (वा) विकल्प से होते हैं।

*उदा०-'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) **गोप्ता, गोपायिता**। रक्षा करनेवाला। **ऋतिर्घृणायाम्** (सौत्र धातु) **अर्तिता, ऋतीयिता**। घृणा करनेवाला। **कमु कान्तौ** (भ्वा०आ०) **कमिता, कामयिता**। कामना करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **गोप्ता**। गुप्+तृच्। गोप्+तृ। गोप्तृ+सु। गोप्ता।*

यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। यहां विकल्प पक्ष में 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय नहीं होता है।

*(२) **गोपायिता**। गुप्+तृच्। गुप्+आय+इट्+तृ। गोपायितृ+सु। गोपायिता।*

यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय है। यहां 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय होता है।

(३) ऐसे ही शेष अर्तिता' आदि पद सिद्ध करें।

सनाद्यन्तानां धातुसंज्ञा-

(२८) सनाद्यन्ता धातव:।३२।

प०वि०-सनादि-अन्ता: १।३ धातव: १।३।

स०-सन् आदिर्येषां ते सनादय:, सनादयोऽन्ते येषां ते-सनाद्यन्ता: (बहुव्रीहि:)।

अर्थ:-एते सनाद्यन्ता: समुदाया धातुसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-चिकीर्षति। पुत्रीयति। पुत्रकाम्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(सनाद्यन्ता:) ये पूर्वोक्त सन् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में हैं, उन समुदायों की (धातव:) धातु संज्ञा होती है।

*उदा०-**चिकीर्षति**। करना चाहता है। **पुत्रीयति**। **पुत्रकाम्यति**। अपने पुत्र की कामना करता है।*

*सिद्धि-(१) **चिकीर्षति।** इसकी सिद्धि (१।३।७) में दी गई है। इस सूत्र से 'चिकीर्ष' समुदाय की धातु संज्ञा होती है। धातु संज्ञा होने से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) आदि से लट् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

*(२) **पुत्रीयति** आदि पदों की सिद्धि पहले की जा चुकी है, उसे यथास्थान देख लेवें।*

इति सनादिप्रत्ययप्रकरणम्।

विकरणप्रत्ययप्रकरणम्

लृट्लृङ्लुट्लकाराः

स्यतासी--

(१) स्यतासीलृलुटोः।३३।

प०वि०-स्य-तासी १।२ लृ-लुटोः ७।२।

स०-स्यश्च तासिश्च तौ स्यतासी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। लृश्च लुट् च तौ लृलुटौ, तयोः-लृलुटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोः परौ स्यतासी प्रत्ययौ लृलुटोः।

अर्थः-धातो परौ यथासंख्यं स्यतासी प्रत्ययौ भवतः, लृ-लुटोः प्रत्यययोः परतः। लृ इत्यनेन लृट्-लृङोः सामान्येन ग्रहणं क्रियते। तेन लृटि लृङि च स्यः प्रत्ययो लुटि च तासिः प्रत्यय इति यथासंख्यं संगच्छते।

उदा०-लृट् **(स्यः)** करिष्यति। **लृङ् (स्यः)** अकरिष्यत्। **लुट् (तासिः)** श्वः कर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे यथासंख्य (स्यातासी) स्य और तासि प्रत्यय होते हैं (लृलुटोः) लृ और लुट् प्रत्यय परे होने पर। 'लृ' इससे सामान्य रूप से लृट् और लृङ् प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है। अतः लृट् और लृङ् में स्य प्रत्यय और लुट् में तासि प्रत्यय की यथासंख्य संगति होती है।

*उदा०-लृट् (स्य) **करिष्यति।** वह करेगा। लृङ् (स्य) **अकरिष्यत्।** यदि वह करता। लुट् (तासि) **श्वः कर्ता।** वह कल करेगा।*

*सिद्धि-(१) **करिष्यति।** कृ+लृट्। कृ+स्य+ल्। कृ+स्य+तिप्। कृ+इट्+स्य+ति। कर्+इ+ष्य+ति। करिष्यति।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (१।३।१३) से लृट् प्रत्यय है। इस सूत्र से विकरण स्य प्रत्यय होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'षत्व' होता है।

(२) अकरिष्यत्। कृ+लृङ्। अट्+कृ+स्य+ल्। अ+कृ+स्य+तिप्। अ+कृ+इट्+स्य+त्। अ+कर्+इ+ष्य+त्। अकरिष्यत्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से क्रियातिपत्ति में 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' ६।४।७१) से 'अट्' आगम होता है। इस सूत्र से विकरण 'स्य' प्रत्यय होता है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।

(३) कर्ता। कृ+लुट्। कृ+तासि+ल्। कृ+तास्+तिप्। कृ+तास्+डा। कृ+त्०+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से अनद्यतन भविष्यत्काल में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकरण 'तासि' प्रत्यय होता है। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में डा-आदेश है। वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (वा ६।४।१४३) से 'तास्' के टिभाग (आस्) का लोप हो जाता है।

लेट्लकारः

सिप्–

(१) सिब् बहुलं लेटि।३४।

प०वि०–सिप् १।१ बहुलम् १।१ लेटि ७।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्बहुलं सिप् लेटि।

अर्थः–धातोः परो बहुलं सिप् प्रत्ययो भवति लेटि प्रत्यये परतः।

उदा०–**(सिप्)** जोषिषत्। तारिषत्। मन्दिषत्। **न च सिब् भवति–पताति विद्युत्।** (ऋ० ७।२५।५१) **उदधिं च्यावयाति** (अथर्व० १०।१।१३) तुलना।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (बहुलम्) बहुलता से (सिप्) सिप् प्रत्यय होता है (लेटि) लेट् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(सिप्) **जोषिषत्।** वह प्रीति/सेवन करे। **तारिषत्।** वह पार करे। **मन्दिषत्।** वह स्तुति आदि करे। **सिप् प्रत्यय नहीं–पताति विद्युत्।** बिजली पड़े। **उदधिं च्यावयाति।** समुद्र को विचलित करे।*

*सिद्धि-(१) **जोषिषत्।** जुष्+लेट्। जुष्+सिप्+ल्। जुष्+इट्+स्+अट्+तिप्। जुष्+इ+स्+अ+त्। जोष्+इ+ष+अ+त्। जोषिषत्।*

*यहां **'जुषी प्रीतिसेवनयोः'** (तु०आ०) धातु से **'लिङर्थे लेट्'** (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सिप्' प्रत्यय होता है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से 'लेट्' को 'अट्' आगम होता है। **'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु'** (३।४।७९) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (८।३।५९) से 'इट्' आगम है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से जुष् की उपधा को गुण होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) **तारिषत्।** 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) **'सिब् बहुलं णिद् वक्तव्यः'** (वा० ३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय को णित् मानकर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से तॄ धातु को वृद्धि होती है।*

*(३) **मन्दिषत्।** 'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (भ्वा०आ०) **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से नुम् आगम होता है।*

*(४) **पताति।** पत्+लेट्। पत्+आट्+ल्। पत्+आ+तिप्। पत्+आ+ति। पताति।*

*यहां **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। यहां बहुल-वचन से इस सूत्र से 'सिप्' प्रत्यय नहीं होता है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से 'लेट्' को 'आट्' आगम होता है।*

***विशेष**-लेट्लकार का प्रयोग सब कालों में वैदिकभाषा में होता है, लौकिक संस्कृतभाषा में नहीं।*

लिट्लकारः

आम्—

(१) कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि।३५।

प०वि०-कास्-प्रत्ययात् ५।१ आम् १।१ अमन्त्रे ७।१ लिटि ७।१।

स०-कास् च प्रत्ययश्च एतयोः समाहारः कास्प्रत्ययम्, तस्मात्-कास्प्रत्ययात् (समाहारद्वन्द्वः)। न मन्त्र इति अमन्त्रः, तस्मिन्-अमन्त्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अमन्त्रे कास्प्रत्ययाद् धातोराम् लिटि।

अर्थः-अमन्त्रे विषये कासः प्रत्ययान्ताच्च धातोः पर आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०-(**कास्**) कासाञ्चक्रे। (**प्रत्ययान्तः**) लोलूयाञ्चक्रे।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (कासः) कास् धातु और (प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(कास्) **कासाञ्चक्रे**। उसने निन्दित शब्द किया=खांसा। (प्रत्ययान्त) **लोलूयाञ्चक्रे**। उसने बार-बार-लवन क्रिया=लावणी की।*

*सिद्धि-(१) **कासाञ्चक्रे**। कास्+लिट्। कास्+आम्+लि। कास्+आम्+०। कासाम्+सु। कासाम्+०। कासाम्। कासाम्+कृ+लिट्। कासाम्+कृ+कृ+त। कासाम्+क+कृ+एश्। कासाम्+च+कृ+ए। कासाञ्चक्रे।*

*यहां '**कासृ शब्दकुत्सायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' परे होने पर इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय होता है। 'आम्' प्रत्यय के कृत् होने से '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सु' उत्पत्ति होती है। '**कृन्मेजन्तश्च**' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होने से '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का 'लुक्' और '**आमः**' (२।४।८१) से लि (लिट्) का लुक् होता है। '**कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि**' (३।१।४०) से 'कृञ्' का अनुप्रयोग होता है। **लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'कृ' धातु को द्वित्व, '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋ को अकार और '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को चकार आदेश होता है।*

*(२) **लोलूयाञ्चक्रे**। '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय और यङन्त 'लोलूय' धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में 'आम्' प्रत्यय होता है।*

विशेष-अमन्त्र कहने से यहां ब्राह्मणग्रन्थ और लौकिक संस्कृतभाषा में आम्-प्रत्यय का विधान है, वेद में 'आम्' प्रत्यय नहीं होता है।

आम्-

(२) इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः।३६।

प०वि०-इजादेः ५।१ च अव्ययपदम्, गुरुमतः ५।१ अनृच्छः ५।१।

स०-इच् आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्-इजादेः (बहुव्रीहिः)। गुरु अस्मिन्नस्तीति गुरुमान्, तस्मात्-गुरुमतः (तद्धितो मतुप्प्रत्ययः)। न ऋच्छ् इति अनृच्छ तस्मात्-अनृच्छः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अमन्त्रे इजादेर्गुरुमतश्च धातोराम्, लिटि अनृच्छः।

अर्थः-अमन्त्रे विषये इजादेर्गुरुमतश्च धातोः पर आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः, ऋच्छतिं वर्जयित्वा।

उदा०-ईहाञ्चक्रे। ऊहाञ्चक्रे। अनृच्छ इति किम् ? आनर्छ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (इजादेः) इच् प्रत्याहार का अक्षर जिसके आदि में है और (गुरुमतः) गुरु अक्षरवाले (धातोः) धातु से परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है, (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर परन्तु (अनृच्छः) ऋच्छ् धातु को छोड़कर।

*उदा०-**ईहाञ्चक्रे**। उसने चेष्टा (प्रयत्न) की। **ऊहाञ्चक्रे**। उसने वितर्क किया। ऋच्छ् धातु के इजादि और गुरुमान् होने पर भी आम् प्रत्यय नहीं होता है-**आनर्छ**। उसने गति की।*

*सिद्धि-(१) **ईहाञ्चक्रे**। 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०)। (२) **ऊहाञ्चक्रे**। 'ऊह वितर्के' (भ्वा०आ०)। ईह और ऊह धातु के इजादि और गुरुमान् होने से लिट्लकार में इस सूत्र से आम् प्रत्यय होता है। सिद्धि 'कासाञ्चक्रे' (३।१।३५) के समान है।*

आम्-

(३) दयायासश्च।३७।

प०वि०-दय-अय-आसः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-दयश्च अयश्च आस् च एतेषां समाहारो दयायास्, तस्मात्-दयायासः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अमन्त्रे दयायासश्च धातोराम् लिटि।

अर्थः-अमन्त्रे विषये दय-अय-आस्भ्यश्च धातुभ्यः पर आम् प्रत्ययो भवति लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०-(दय) दयाञ्चक्रे। **(अय)** पलायाञ्चक्रे। **(आस्)** आसाञ्चक्रे।

आर्यभाषा-अर्थ-(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (दयायासः) दय, अय, आस, (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(दय) **दयाञ्चक्रे**। उसने दान आदि किया। (अय) **पलायाञ्चक्रे**। उसने पलायन किया। (आस्) **आसाञ्चक्रे**। वह बैठ गया।*

*सिद्धि-(१) **दयाञ्चक्रे**। 'दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' लकार में आम् प्रत्यय है।*

*(२) **पलायाञ्चक्रे।** परा+अय+आम्। पलायाम्। **'अय गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में आम् प्रत्यय है। **'उपसर्गस्यायतौ'** (८।२।१९) से परा उपसर्ग के रेफ को लत्व होता है।*

*(३) **आसाञ्चक्रे।** **'आस् उपवेशने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से लिट्लकार में आम् प्रत्यय है।*

*(४) इन पदों की सिद्धि **'कासाञ्चक्रे'** (१।३।३५) के समान है।*

आम्–

(४) उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्।३८।

प०वि०–उष-विद-जागृभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम्, अव्ययपदम्।

स०–उषश्च विदश्च जागृश्च ते उषविदजाग्रः, तेभ्यः–उषविदगृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अमन्त्रे उषविदजागृभ्यो धातुभ्योऽन्यतरस्याम् आम् लिटि।

अर्थः–अमन्त्रे विषये उषविदजागृभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०–**(उष)** ओषाञ्चकार, उवोष वा। **(विद)** विदाञ्चकार, विवेद वा। **(जागृ)** जागराञ्चकार, जजागार वा।

आर्यभाषा–अर्थ–(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (उषविदजागृभ्यः) उष, विद, जागृ (धातोः) धातुओं से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आम्) आम् प्रत्यय होता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०–**(उष) ओषाञ्चकार, उवोष वा।** उसने जलाया। **(विद) विदाञ्चकार, विवेद वा।** उसने जाना।*

*सिद्धि–**(१) ओषाञ्चकार।** उष्+लिट्। उष्+आम्+लि। ओष्+आम्+०। ओषाम्+सु। ओषाम्+०। ओषाम्+कृ+लिट्। ओषाम्+कृ+तिप्। ओषाम्+कृ+कृ+णल्। ओषाम्+क+कार्+अ। ओषाम्+च+कार्+अ। ओषाञ्चकार।*

*यहां **'उष दाहे'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' लकार में इस सूत्र से आम् प्रत्यय होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से उष् की उपधा को गुण होता है। उष् धातु के परस्मैपद होने से **'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य'** (१।३।६३) से अनुप्रयुक्त 'कृ' धातु से भी परस्मैपद होता है। णल् प्रत्यय के णित् होने से 'कृ' धातु को **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है। शेष कार्य **'कासाञ्चक्रे'** (१।३।३५) के समान है।*

(२) विदाञ्चकार। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०)। 'आम्' प्रत्यय के परे 'विद' धातु अदन्त प्रतिज्ञात है। अतः 'विद' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त उपधा को गुण नहीं होता है।

(३) जागराञ्चकार। 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(४) 'उवोष' आदि पदों की सिद्धि 'चकार' के समान करें।

आम्–

(५) भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च।३६।

प०वि०–भी–ह्री–भृ–हुवाम् ६।३ श्लुवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०–भीश्च ह्रीश्च भृश्च हुश्च ते–भीह्रीभृहुवः, तेषाम्–भीह्रीभृहुवाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श्लोरिव श्लुवत् (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०–धातोः, अमन्त्रे, आम्, लिटि अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अमन्त्रे भीह्रीभृहुभ्यो धातुभ्योऽन्यतरस्याम् आम्, तेषां च श्लुवल्लिटि।

अर्थः–अमन्त्रे विषये भीह्रीभृहुभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, तेषां च श्लुवत् कार्यं भवति, लिटि प्रत्यये परतः।

उदा०–**(भी)** बिभाञ्चकार, बिभाय वा। **(ह्री)** जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय वा। **(भृ)** बिभराञ्चकार, बभार वा। **(हु)** जुहवाञ्चकार, जुहाव वा।

आर्यभाषा–अर्थ–(अमन्त्रे) मन्त्र विषय को छोड़कर (भीह्रीभृहुवाम्) भी, ह्री, भृ, हु (धातोः) धातुओं से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आम्) 'आम्' प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (श्लुवत्) 'श्लु' प्रत्यय के समान द्वित्व कार्य होता है (लिटि) 'लिट्' प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०–(भी) **बिभयाञ्चकार, बिभाय वा।** वह डर गया। (ह्री) **जिहयाञ्चकार, जिह्राय वा।** वह लज्जित होगया। (भृ) **बिभराञ्चकार, बभार वा।** उसने धारण–पोषण किया। (हु) **जुह्वाञ्चकार, जुहाव वा।** उसने आहुति दी (यज्ञ किया)।*

*सिद्धि–(१) **बिभयाञ्चकार।** भी+आम्। भी+भी+आम्। भि+भी+आम्। बि+भे+आम्। बिभयाम्+चकार। बिभयाञ्चकार।*

*यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से लिट्लकार में आम् प्रत्यय होता है। श्लुवत् कार्य–अतिदेश होने से 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से*

अभ्यास को ह्रस्व, 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५६) से अभ्यास के भ् को जश् बकार होता है। 'चकार' की सिद्धि पूर्ववत् (३।१।३८) है।

(२) जिह्रयाञ्चकार। 'ह्री लज्जयाम्' (जु०प०)। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को झकार और उसे 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से जश् जकार होता है।

(३) बिभराञ्चकार। 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)। 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इकार आदेश होता है।

(४) जुहवाञ्चकार। 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०)। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को झकार और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से जश् जकार होता है।

(५) विकल्प पक्ष में बिभाय आदि पदों में आम् प्रत्यय नहीं है। 'चकार' पद के समान इनकी सिद्धि करें।

कृञ्-अनुप्रयोगः--

(६) कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि।४०।

प०वि०-कृञ् १।१ च अव्ययपदम्, अनु १।१ (लुप्तप्रथमा) प्रयुज्यते क्रियापदम् लिटि ७।१।

अन्वयः-आम् प्रत्ययस्यानु कृञ् च प्रयुज्यते लिटि।

अर्थः-आम्-प्रत्ययस्य अनु=पश्चात् कृञ् च प्रयुज्यते, लिटि प्रत्यये परतः।

कृञ् इति प्रत्याहारग्रहणम्। **'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) इति कृ-प्रभृति **'कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ'** (५।४।५८) इत्यस्य ञकारपर्यन्तम्। एतेन कृ-भू-अस्तयो गृह्यन्ते, ते चानुप्रयुज्यन्ते।

उदा०-(**कृ**) पाचयाञ्चकार। (**भू**) पाचयाम्बभूव। (**अस**) पाचयामास।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(अनु) पूर्वोक्त आम्-प्रत्यय के पश्चात् (कृञ्) कृञ् का (च) भी (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर।*

*यहां 'कृञ्' एक प्रत्याहार है। यह **'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) के 'कृ' से लेकर **'कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ'** (५।४।५८) के ञकार तक ग्रहण किया जाता है। **इस प्रत्याहार से कृ, भू, अस्ति धातुओं का ग्रहण** होता है।*

*उदा०-(कृ) **पाचयाञ्चकार।** उसने पकवाया। (भू) **पाचयाम्बभूव।** (अस्) **पाचयामास।** अर्थ पूर्ववत् है।*

***सिद्धि-**पाचयाञ्चकार आदि पदों की सिद्धि **'बिभयाञ्चकार'** (३।१।३८) के समान है।*

आम् (निपातनम्)–

(७) विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्।४१।

वि०-विदाङ्कुर्वन्तु क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अर्थः-'विदाङ्कुर्वन्तु' इति पदं विकल्पेन निपात्यते।

उदा०-अत्र भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु वा।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(विदाङ्कुर्वन्तु) विदाङ्कुर्वन्तु (इति) यह पद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातित किया जाता है।*

*उदा०-**अत्रभवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु वा।** आप लोग जानें।*

***सिद्धि-विदाङ्कुर्वन्तु।** विद्+लोट्। विद्+आम्+लो। विद्+आम्+०। विदाम्। विदाम्+कृ+लोट्। विदाम्+कृ++उ+झि। विदाम्+कर्+उ+अन्ति। विदाम्+कुर्+व्+अन्तु। विदाङ्कुर्वन्तु।*

*यहां **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से निपातन से लोट्लकार में आम् प्रत्यय है। आम् प्रत्यय से परे निपातन से लोट् का लुक् होता है। आम् प्रत्यय के पश्चात् लोट् में कृ का अनुप्रयोग निपातन से होता है। कुर्वन्तु में बहुवचन में ल् के स्थान में झि आदेश है, **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से झ् को अन्त आदेश और **'एरुः'** (३।४।८६) से इ को उकार आदेश होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (८।३।८४) से कृ को गुण (कर्), **'अत उत् सार्वधातुके'** से अ को उकार (कुर्) होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७४) से 'उ' को यण् (व्) आदेश होता है।*

*(२) **विदन्तु।** 'विद् ज्ञाने' (अदा०प०)। **कुर्वन्तु** के सहाय से इस पद को सिद्ध करें।*

***विशेष**-पण्डित जयादित्य ने काशिकावृत्ति में इस सूत्र से इति पद के आश्रय से लोट्लकार सम्बन्धी 'विदाङ्करोतु' आदि सभी रूप निपातित स्वीकार किये हैं। यह महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि के मत से प्रतिकूल है।*

आम् (निपातनम्)–

(८) अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयामकः पावयां क्रियाद् विदामक्रन्निति च्छन्दसि।४२।

वि०–अभ्युत्सायाम् १।१ प्रजनयाम् १।१ चिकयाम् १।१ रमयाम् १।१ अकः क्रियापदम्, पावयांक्रियात् क्रियापदम्, विदामक्रन् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अभ्युत्सादयां प्रजनयां रमयामिति निपात्यन्ते, अक इति चानुप्रयुज्यते, पावयांक्रियाद् विदामक्रन्निति चान्यतरस्याम् निपात्येते।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽभ्युत्सादयाम्, प्रजनयाम्, चिकयाम्, रमयाम् इति चत्वारि पदानि विकल्पेन निपात्यन्ते, एतेषाम् आम्-प्रत्ययस्य च पश्चात् 'अकः' इति प्रयुज्यते। पावयांक्रियाद् विदामक्रन्निति पदद्वयमपि विकल्पेन निपात्यते।

उदा०–अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषदत् इति भाषायाम्। प्रजनयामकः। प्राजीजनत् इति भाषायाम्। चिकयामकः। अचैषीत् इति भाषायाम्। रमयामकः। अरीरमत् इति भाषायाम्। पावयांक्रियात्। पाव्यात् इति भाषायाम्। विदामक्रन्। अविदन् इति भाषायाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अभ्युत्सायाम्०) अभ्युत्सादयाम्, प्रजनयाम्, चिकयाम्, रमयाम् ये चार पद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातन किये जाते हैं। इनके 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् (अकः) 'अकः' पद का प्रयोग किया जाता है। (पावयांक्रियात्०) पावयांक्रियात् और विदामक्रन् ये दो भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से निपातित हैं।

*उदा०–**अभ्युत्सादयामकः। अभ्युदसीषदत्।** उसने उखड़वा दिया। **प्रजनयामकः। प्राजीजनत्।** उसने उत्पन्न कराया। **चिकयामकः। अचैषीत्।** उसने चयन कराया। **रमयामकः। अरीरमत्।** उसने रमण कराया। **पावयांक्रियात्। पाव्यात्।** वह पवित्र करावे। **विदामक्रन्। अविदन्।** उन्होंने जान लिया।*

सिद्धि-(१) अभ्युत्सादाय [illegible] अभि+उत्+सद्+णिच्। अभ्युत्+साद्+इ। अभ्युत्सादि। अभ्युत्सादि+लुङ्। अ[illegible] आम्+लु। अभ्युत्सादयाम्+अ+कर्+०+त्। अभ्युत्सादयाम्+अ्+कर्+०। अभ्युत्सादयामकः।

यहां अभि, उत् उपसर्गपूर्वक **'षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०) धातु से **हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से धातु को उपधावृद्धि है। णिजन्त **'अभ्युत्सादि'** धातु से निपातन से 'लुङ्' परे होने पर 'आम्' प्रत्यय, 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् 'लुङ्' परे होने पर निपातन से 'कृ' धातु का अनुप्रयोग, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' का लुक्, **'इतश्च'** (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' को गुण (कर्) और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय होता है। यहां लिट् लकार विषयक कार्य लुङ् लकार में निपातन से होता है।

(२) **प्रजनयामकः।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक जनी प्रादुर्भावे (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और उपधावृद्धि होती है किन्तु उसे **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **चिकयामकः।** यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। यहां च को ककार आदेश निपातन से होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) **रमयामकः।** यहां **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और रम् धातु को उपधावृद्धि होती है। किन्तु उसे **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **पावयांक्रियात्।** पू+णिच्। पौ+इ। पावि। पावि+लिङ्। पावि+आम्+लि। पावे+आम्+०। पावयाम्। पावयाम्+कृ+लिङ्। पावयाम्+कृ+यासुट्+तिप्। पावयाम्+कृ+यास्+त्। पावयाम्+क्रिङ् या०+त्। पावयांक्रियात्।

यहां **'पूङ् पवने'** (भ्वा०आ०) **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से धातु को वृद्धि होती है। णिजन्त 'पावि' धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय। लिङ् परे होने पर निपातन से 'आम्' प्रत्यय, **'आमः'** (२।४।८१) से 'लिङ्' का लुक्। **'इतश्च'** (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, **'रिङ् शयग्लिङ्क्षु'** (७।४।२८) से धातु को 'रिङ्' आदेश, **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।३।२९) से 'यास्' के सकार का लोप होता है।

(६) **विदामक्रन्।** विद्+लुङ्। विद्+आम्+लु। विद्+आम्+०। विदाम्। विदाम्+कृ+लुङ्। विदाम्+अट्+कृ+च्लि+झि। विदाम्+अ+कृ+०+अन्ति। विदाम्+अ+कृ+अन्त्। विदामक्रन्त्। विदामक्रन्।

यहां **'विद् ज्ञाने'** (अ०प०) धातु से 'लुङ्' परे होने पर निपातन से 'आम्' प्रत्यय, **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का अभाव है। 'आम्' प्रत्यय के पश्चात् निपातन से 'लुङ्' में कृञ् का प्रयोग, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय,

'मन्त्रे घसह्वरणश०' (२।४।८०) से 'च्लि' का लुक्, 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ' को अन्त-आदेश, 'इतश्च' (३।४।१००) 'अन्ति' के इकार का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप और 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'कृ' को यण् (र्) आदेश होता है।

(७) अभ्युदसीषदत्। अभि+उत्+सादि+लुङ्। अभ्युत्+अट्+सादि+च्लि+त्। अभ्युत्+अ+सादि+चङ्+तिप्। अभ्युत्+अ+सादि+अ+त्। अभ्युत्+अ+सद्+सद्+अ+त्। अभ्युत्+अ+सि+सद्+अ+त्। अभ्युत्+अ+सी+षद्+अ+त्। अभ्युदसीषदत्।

यहां 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय, णिजन्त 'सादि' धातु से भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय, 'च्लि लुङि' (३।१।४०) से 'च्लि' प्रत्यय, णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से 'सादि' धातु का उपधा-ह्रस्व (सदि), 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप, 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप, 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व, 'सन्वल्लघुनि०' (७।४।९३) से सन्वद्भाव, 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इत्व, 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से इ को दीर्घ और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(८) प्राजीजनत्। प्र उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

(९) अरीरमत्। 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

(१०) अचैषीत्। 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से लुङ्, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से ईट् आगम, 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से वृद्धि और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

लुङ्-लकारः

च्लिः—

(१) च्लि लुङि।४३।

प०वि०–च्लि १।१ (लुप्तप्रथमा) लुङि ७।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोश्च्लिः प्रत्ययो लुङि।

अर्थः–धातोः परः च्लिः प्रत्ययो भवति, लुङि प्रत्यये परतः।

उदा०–च्लि-स्थाने सिजादीनादेशान् वक्ष्यति, अतोऽग्रे उदाहरिष्यते।

आर्यभाषा-अर्थ–(धातोः) धातु से परे (च्लि) च्लि प्रत्यय होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदि आदेश हो जाते हैं, अतः इसके उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

सिच्–

(२) च्लेः सिच्।४४।

वि०–च्लेः ६।१ सिच् १।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोः परस्य च्लेः सिच् लुङि।

अर्थः–धातोः परस्य च्लेः स्थाने सिच्-आदेशो भवति लुङि परतः।

उदा०–अकार्षीत्। अहार्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (सिच्) सिच् आदेश होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-अकार्षीत्। *उसने किया।* ***अहार्षीत्।*** *उसने हरण किया।*

सिद्धि-(१) अकार्षीत्। *कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+तिप्। अ+कृ+स्+ईट्+त्। अ+कार्+ष्+ई+त्। अकार्षीत्।*

यहां ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०) धातु से सामान्य भूतकाल में* ***'लुङ्'*** *(३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय,* ***'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'*** *(६।४।७१) से 'अट्' आगम,* ***'च्लि लुङि'*** *(३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और इस सूत्र से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है।* ***'इतश्च'*** *(३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप,* ***'अस्तिसिचोऽपृक्ते'*** *(७।३।९६) से 'ईट्' आगम,* ***'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु'*** *(७।२।१) से 'कृ' धातु को वृद्धि (कार्) और* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से सिच् को षत्व होता है।*

(२) अहार्षीत्। ***'हृञ् हरणे'*** *(भ्वा०उ०) से पूर्ववत् सिद्ध करें।*

विशेष-अनुवृत्ति-'*धातोः' पद की अनुवृत्ति* ***'कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च'*** *(३।१।९०) तक है। 'च्लेः' और 'लुङि' इन दोनों की अनुवृत्ति* ***'चिण् भावकर्मणोः'*** *(३।१।६५) तक है, अतः इन तीन पदों की अनुवृत्ति पुनः पुनः नहीं दिखाई जायेगी।*

क्सः–

(३) शल इगुपधादनिटः क्सः।४५।

प०वि०–शलः ५।१ इगुपधात् ५।१ अनिटः ६।१ क्सः १।१।

स०–इक् उपधा यस्य स इगुपधः, तस्मात्-इगुपधात् (बहुव्रीहिः)। न विद्यते इट् यस्य सोऽनिट्, तस्मात्-अनिटः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–शल इगुपधाद् धातोरनिटश्च्लेः क्सो लुङि।

अर्थः-शलन्ताद् इगुपधाद् धातोः परस्यानिटश्च्लिप्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो भवति, लुङि परतः।

उदा०-(दुह्) अधुक्षत्। **(लिह्)** अलिक्षत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शलः) शल् प्रत्याहारी वर्ण जिसके अन्त में है, (उगुपधात्) इक् प्रत्याहारी वर्ण जिसकी उपधा में है, ऐसी (धातोः) धातु से परे (अनिटः) इट् आगम से रहित (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स-आदेश होता है, (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(दुह्) **अधुक्षत्।** उसने दूध निकाला। (लिह्) **अलिक्षत्।** उसने आस्वादन किया, चखा।*

***सिद्धि-(१) अधुक्षत्।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+तिप्। अ+दुघ्+स+त्। अ+धुघ्+स+त्। अ+धुक्+ष+त्। अधुक्षत्।*

*यहां **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०) इस शलन्त, इगुपध, धातु से परे इस सूत्र से अनिट् च्लि प्रत्यय के स्थान में क्स आदेश होता है। **'दादेर्धातोर्घः'** (८।२।३२) से दुह् के ह् को घ्, **'एकाचो बशो भष्०'** (८।२।३७) से दुह् के द् को ध्, **'खरि च'** (८।४।५४) से घ् को क् और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।*

*(२) **अलिक्षत्।** **'लिह आस्वादने'** (अ०प०)। **'हो ढः'** (८।२।३१) से लिह् के ह् को ढ्, **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से ढ् को क् और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।*

क्सः-

(४) श्लिष आलिङ्गने।४६।

प०वि०-श्लिषः ५।१ आलिङ्गने ७।१।

अनु०-क्स इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आलिङ्गने श्लिषो धातोश्च्लेः क्सो लुङि।

अर्थः-आलिङ्गनेऽर्थे वर्तमानात् श्लिषो धातोः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो भवति, लुङि परतः।

उदा०-(श्लिष्) अश्लिक्षत् पत्नीं देवदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(आलिङ्गने) आलिङ्गन अर्थ में विद्यमान (श्लिषः) श्लिष् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स आदेश होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(श्लिष्) **अश्लिक्षत् पत्नीं देवदत्तः।** देवदत्त ने पत्नी का आलिङ्गन किया।*

सिद्धि-अश्लिक्षत्। यहां 'श्लिष् आलिङ्गने' (दि०प०) धातु से परे इस सूत्र से च्लि प्रत्यय के स्थान में क्स आदेश होता है। 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से श्लिष् के ष् को क् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से क्स के स् को षत्व होता है।

क्सप्रतिषेधः—

(५) न दृशः।४७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दृशः ५।१।

अनु०-क्स इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दृशो धातोश्च्लेः क्सो न लुङि।

अर्थः-दृशो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने क्स आदेशो न भवति, लुङि परतः।

उदा०-(दृश्) अदर्शत्। अद्राक्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(दृशः) दृश् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (क्सः) क्स आदेश (न) नहीं होता है (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दृश्) अदर्शत्। अद्राक्षीत्। उसने देखा।

सिद्धि-(१) अदर्शत्। दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+च्लि+ल्। अ+दृश्+अङ्+तिप्। अ+दर्श्+अ+त्। अदर्शत्।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश का निषेध हो जाने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से 'अङ्' ओदश होता है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'दृश्' को गुण हो जाता है।

(२) अद्राक्षीत्। दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+च्लि+ल्। अ+दृश्+सिच्+तिप्। अ+दृ अम् श्+स्+इट्+त्। अ+द् र् अ श्+स्+ई+त्। अ+दर् आ ष्+स्+ई+त्। अद्राक्+ष्+ई+त्। अद्राक्षीत्।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश का निषेध हो जाने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से विकल्प पक्ष में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' (६।१।५७) से 'दृश्' को 'अम्' आगम होता है। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से 'ईट्' आगम होता है। 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से वृद्धि होती है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से दृश् के श् को ष्, 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से ष् को क् और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सिच् के स् को षत्व होता है।

दृश् धातु के शलन्त और इगुपध होने से 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (१।३।४५) से अनिट् 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'क्स' आदेश प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध

किया गया है। दृशिर् धातु के इरित् होने से 'इरितो वा' (३।१।५७) से 'अङ्' और पक्ष में 'सिच्' आदेश होता है।

चङ्–

(६) णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्।४८।

प०वि०–णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः ५।३ कर्तरि ७।१ चङ् १।१।

स०–णिश्च श्रिश्च द्रुश्च स्रुश्च ते णिश्रिद्रुस्रुवः, तेभ्यः–णिश्रिद्रुस्रुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–णिश्रिद्रुस्रुभ्यो धातुभ्यः श्च्लेश्चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः–ण्यन्तेभ्यः श्रिद्रुस्रुभ्यश्च धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०–ण्यन्त (कृ) अचीकरत्। (हृ) अजीहरत्। (श्रि) अशिश्रियत् (द्रु) अदुद्रुवत्। (स्रु) असुस्रुवत्।

***आर्यभाषा-अर्थ**–(णिश्रिद्रुस्रुभ्यः) णि-अन्त धातु और श्रि, द्रु, स्रु (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–ण्यन्त (कृ) **अचीकरत्।** उसने करवाया (बनवाया)। (हृ) **अजीहरत्।** उसने हरण करवाया। (श्रि) **अशिश्रियत्।** उसने सेवा की। (द्रु) **अदुद्रवत्।** उसने दौड़ लगाई। (स्रु) **असुस्रुवत्।** वह बह गया।*

***सिद्धि–अचीकरत्।** कृ+णिच्। कार्+इ। कारि। कारि+लुङ्। अट्+कारि+च्लि+ल्। अ+कारि+चङ्+तिप्। अ+करि+अ+त्। अ+कर्+कर्+अ+त्। अ+च+कर्+अ+त्। अ+चि+कर्+अ+त्। अ+ची+कर्+अ+त्। अचीकरत्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से हेतुमान् अर्थ में 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। णिजन्त 'कारि' धातु से इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। '**णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः**' (७।४।१) से धातु की उपधा को ह्रस्व (करि) होता है। '**णेरनिटि**' (६।४।५१) से 'णि' का लोप और '**इतश्च**' (३।४।१००) से 'तिप्' के इ का लोप होता है। '**चङि**' (६।१।११) से धातु को द्वित्व, '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के क् को च् होता है। '**सन्वल्लघुनि०**' (७।४।९३) से सन्वद्भाव, '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास के अ को इ (चि) और '**दीर्घो लघोः**' (७।४।९४) से उसे दीर्घ (ची) होता है। अचीकरत्।*

(२) अजीहरत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ह् को झ् (हकारेण चतुर्थः) और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से झ् को जश् ज् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अशिश्रियत्। 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०)। यहां 'चङ्' प्रत्यय के ङित् होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। अतः 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।

(४) अदुद्रुवत्। 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् 'उवङ्' आदेश होता है।

(५) असुस्रुवत्। 'स्रु सवणे' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् 'उवङ्' आदेश होता है।

विशेष-कर्तृवाच्य- 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' (३।४।६९) से लकार कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य अर्थ में होते हैं। यहां 'चङ्' प्रत्यय कर्तृवाची लुङ्लकार में किया गया है। कर्मवाची और भाववाची लुङ् में 'सिच्' प्रत्यय होता है।

चङ्-विकल्पः–

(७) विभाषा धेट्श्व्योः।४६।

प०वि०-विभाषा १।१ धेट्-श्व्योः ६।२।

स०-धेट् च श्विश्च तौ धेट्श्वी, तयोः-धेट्श्व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, चङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धेट्श्विभ्यां धातुभ्यां च्लेर्विभाषा चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-धेट्श्विभ्यां धातुभ्यां परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः। पक्षे यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(धेट्) अदधत् (चङ्)। अधात् (सिच्-लुक्)। अधासीत् (सिच्)। (श्वि) अशिश्वयत् (चङ्)। अश्वत् (अङ्)। अश्वयीत् (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धेट्श्व्योः) धेट् और श्वि (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(धेट्)-अदधत्। (चङ्)। अधात् (सिच् लुक्)। अधासीत् (सिच्)। उसने दुग्ध आदि पीया। (श्वि) अशिश्वियत् (चङ्)। अश्वत् (अङ्)। अश्वयीत् (सिच्)। उसने गति अथवा वृद्धि की।

सिद्धि-(१) अदधत्। 'धेट् पाने' (भ्वा०प०)। यहां आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातु को आ-आदेश (धा) होता है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से अभ्यास के ध को जश् (द्) होता है।

(२) अधात्। यहां विभाषा 'घ्राधेट्शाच्छासः' (२।४।७८) से 'सिच्' प्रत्यय का लुक् होगया है।

(३) अधासीत्। यहां विकल्प पक्ष में 'सिच्' प्रत्यय का लुक् नहीं है। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से ईट् आगम है।

(४) अशिश्वियत्। 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०)। यहां 'चङ्' में 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का निषेध हो जाने पर 'अचिश्नु०' (६।४।७७) से 'श्वि' को 'इयङ्' आदेश होता है।

(५) अश्वत्। यहां 'जॄस्तम्भु०' (३।१।५८) से विकल्प पक्ष में 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। अङ् परे होने पर 'श्वयतेरः' (७।४।१८) से श्वि को अकार अन्तादेश होता है। उसे 'अतो गुणे' (६।१।९५) से पररूप हो जाता है।

(६) अश्वयीत्। यहां विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'सिच्' आदेश है। 'ह्म्यन्तक्षणश्वस०' (७।२।५) से 'सिच्' में वृद्धि का प्रतिषेध होने पर 'श्वि' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।

चङ्-विकल्पः-

(८) गुपेश्छन्दसि।५०।

प०वि०-गुपेः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-कर्तरि, चङ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि गुपेर्धातोश्च्लेर्विभाषा चङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये गुपेर्धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(**गुप्**) इमान् नो मित्रावरुणौ गृहान् अजूगुपतम्। भाषायाम्-अगौप्तम्, अगोपिष्टम्, अगोपायिष्टम् इति रूपत्रयं भवति।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (गुपेः) गुप् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (चङ्) चङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(गुप्) इमान् नो मित्रावरुणौ गृहान् अजूगुपतम्। हे मित्र और वरुण तुम दोनों ने हमारे इन गृहजनों की रक्षा की। भाषा में ये तीन रूप होते हैं-**अगौप्तम्। अगोपिष्टम्। अगोपायिष्टम्।** तुम दोनों ने रक्षा की।*

*सिद्धि-(१) **अजूगुपतम्।** गुप्+लुङ्। अट्+गुप्+च्लि+ल्। अ+गुप्+चङ्+थस्। अ+गुप्+गुप्+अ+तम्। अ+जु+गुप्+अ+तम्। अजुगुपतम्।*

यहां छन्द में 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ग् को जकार आदेश होता है।

*(२) **अगौप्तम्।** यहां भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप, उसे असिद्ध मानकर 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से गुप् को वृद्धि होती है।*

*(३) **अगोपिष्टम्।** यहां भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, गुपू धातु के ऊदित् होने से इडागम के विकल्प पक्ष में 'स्वरतिसूति०' (७।२।४४) से 'सिच्' को 'इट्' आगम, 'नेटि' (७।२।४) से प्राप्त वृद्धि का निषेध, 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुप् को लघूपध गुण होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से सिच् के स् को षत्वम् और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से तम् प्रत्यय के त् को ट् होता है।*

*(४) **अगोपायिष्टम्।** यहां गुप् धातु से 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से आय् प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम, पूर्ववत् षत्व और ष्टुत्व होता है।*

चङ्-प्रतिषेधः–

(६) नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः।५१।

प०वि०- न अव्ययपदम्, ऊनयति-ध्वनयति-एलयति-अर्दयतिभ्यः ५।३।

स०-ऊनयतिश्च ध्वनयतिश्च एलयतिश्च अर्दयतिश्च ते-ऊनयति०अर्दयतयः, तेभ्यः-ऊनयति०अर्दयतिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-चङ्, कर्तरि, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ऊनयति०अर्दयतिभ्यो धातुभ्यश्च्लेश्चङ् न कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने चङ् आदेशो न भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(ऊनयति) काममूनयीः (ऋ० १।५३।३)। औनिनत् इति भाषायाम्। (ध्वनयति) मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् (ऋ०१।१६२।१५)। अदिध्वनत्

इति भाषायाम्। (एलयति) काममैलयीत्। ऐलिलत् इति भाषायाम्। (अर्दयति) मैनमर्दयीत्। आर्दिदत् इति भाषायाम्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(ऊनयति०अर्दयतिभ्यः) ऊनयति, ध्वनयति, एलयति, अर्दयति (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चङ्) चङ् आदेश (न) नहीं होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(ऊनयति) __काममूनयीः।__ तूने काम (एषणा) का परित्याग किया। __औनिनत्।__ उसने परित्याग किया। (ध्वनयति) __मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्।__ अग्नि ने तुझे शब्दायित नहीं किया। __अदिध्वनत्।__ उसने शब्द कराया। (एलयति) __काममैलयीत्।__ उसने काम को प्रेरित किया। __ऐलीलत्।__ उसने प्रेरित किया। (अर्दयति) __मैनमर्दयीत्।__ उसने इससे याचना नहीं कराई। __आर्दिदत्।__ उसने याचना कराई।

__सिद्धि-(१) ऊनयीत्।__ ऊन्+णिच्। ऊन्+इ+। ऊनि। ऊनि+लुङ्। ऊनि+च्लि+ल्। ऊन्+सिच्+तिप्। ऊनि+इट्+स्+ईट्+त्। ऊने+इ+०+ई+त्। ऊनयीत्।

यहां __'ऊन परिहाणे'__ (चु०उ०) धातु से __'सत्यापपाश०'__ (१।३।२५) से स्वार्थ में 'णिच्' प्रत्यय, णिजन्त 'ऊनि' धातु से लुङ् प्रत्यय, __'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'__ (६।४।७५) से 'आट्' आगम का अभाव है। इस सूत्र से __'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'__ (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में प्राप्त 'चङ्' आदेश का निषेध होने से उसके स्थान में उत्सर्ग 'सिच्' आदेश होता है। __'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'__ (७।२।३५) से 'सिच्' को 'इट्' आगम, __'अस्तिसिचोऽपृक्ते'__ (७।३।९६) से 'त्' को 'ईट्' आगम और __'इट ईटि'__ (७।२।२८) से 'सिच्' का लोप होता है।

__(२) औनिनत्। 'ऊन परिहाणे'__ (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय, णिजन्त ऊनि धातु से लुङ्, __'आडजादीनाम्'__ (६।४।६२) से 'आट्' आगम, __णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'__ (३।१।४८) से भाषा में 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, __'अजादेर्द्वितीयस्य'__ (६।१।२) से अजादि धातु को द्वितीय अच् के द्वित्व के नियम से __'चङि'__ (६।१।११) से 'ऊनि' के द्वितीय अच् 'नि' को द्वित्व और __'आटश्च'__ (६।१।८७) से वृद्धि होती है।

__(३) ध्वनयीत्। अदिध्वनत्। ध्वन__ शब्दे (भ्वा०प०) से __'हेतुमति च'__ (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

__(४) ऐलयीत्। ऐलिलत्। 'इल प्रेरणे'__ (चु०प०) धातु से __'सत्यापपाश०'__ (१।३।२५) से चुरादि 'णिच्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

__(५) आर्दयीत्। आर्दिदत्। 'अर्द गतौ याचने च'__ (भ्वा०प०) धातु से __'हेतुमति च'__ (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अङ्—

(१०) अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्।५२।

प०वि०-अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्यः ५।३ अङ् १।१।

स०-अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च ते-अस्यतिवक्तिख्यातयः, तेभ्यः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(**अस्यति**) पर्यास्थत (**वक्ति**) अवोचत्। (**ख्याति**) आख्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः) अस्यति, वक्ति, ख्याति (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(अस्यति) **पर्यास्थत्**। उसने फैंका। (वक्ति) **अवोचत्**। उसने कहा। (ख्याति) **आख्यत्**। उसने कहा।*

*सिद्धि-(१) **पर्यास्थत**। परि+अस्+लुङ्। परि+आट्+अस्+च्लि+ल्। परि+आ+अस्+अङ्+त्। परि+आस्+थुक्+अ+त। परि+आस्+थ्+अ+त। पर्यास्थत।*

*यहां '**असु क्षेपणे**' (दि०प०) धातु से लुङ्, '**आडजादीनाम्**' (६।४।७२) से 'आट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। 'वा०-उपसर्गादस्त्यूह्योर्वावचनम्' (१।३।३०) से आत्मनेपद होता है। '**अस्यतेस्थुक्**' (७।४।१७) से धातु को 'थुक्' आगम होता है।*

*(२) **अवोचत्**। '**वच परिभाषणे**' (अदा०प०)। '**वच उम्**' (७।४।२०) से धातु को 'उम्' आगम होता है।*

*(३) आख्यत्। '**ख्या प्रकथने**' (अदा०प०) '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से 'ख्या' के आ का लोप होता है। यहां आङ् उपसर्ग है।*

अङ्—

(११) लिपिसिचिह्वश्च।५३।

प०वि०-लिपि-सिचि-ह्वः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-लिपिश्च सिचिश्च ह्वाश्च ते लिपिसिचिह्वाः, तस्मात्-लिपिसिचिह्वः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिपिसिचिह्वश्च धातोश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-लिपिसिचिह्वभ्यो धातुभ्योऽपि परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-**(लिपि)** अलिपत्। **(सिचि)** असिचत्। **(ह्वा)** आह्वत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिपिसिचिह्वः) लिपि, सिचि, ह्वा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(लिपि) **अलिपत्।** उसने लिपाई की। (सिचि) **असिचत्।** उसने सिंचाई की। (ह्वा) **आह्वत्।** उसने आह्वान किया (बुलाया)।*

*सिद्धि-(१) **अलिपत्।** यहां 'लिप् उपदेहे' (तु०उ०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में अङ् आदेश होता है।*

*(२) **असिचत्।** 'षिच् क्षरणे' (तु०अ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है।*

*(३) **आह्वत्।** 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०)। यहां 'आङ्' उपसर्ग है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ह्वा' के 'आ' का लोप होता है।*

अङ्-विकल्पः-

(१२) आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-आत्मनेपदेषु ७।३। अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-कर्तरि, अङ्, लिपिसिचिह्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिपिसिचिह्वश्च धातोश्च्लेरन्यतरस्यामङ् कर्तरि लुङि आत्मनेपदेषु।

अर्थः-लिपिसिचिह्वाभ्योऽपि धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन अङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि आत्मनेपदेषु परतः।

उदा०-**(लिपि)** अलिपत (अङ्)। अलिप्त (सिच्)। **(सिचि)** असिचत (अङ्)। असिक्त (सिच्)। **(ह्वा)** अह्वत। (अङ्)। अह्वास्त (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(लिपिसिचिह्वः) लिपि, सिचि, ह्वा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता

है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् लकार में (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद प्रत्ययों के परे होने पर।

उदा०-(लिपि) अलिपत (अङ्)। अलिप्त (सिच्)। उसने लिपाई की। (सिचि) असिचत (अङ्)। असिक्त (सिच्)। उसने सिंचाई की। (ह्वा) अह्वत (अङ्)। अह्वास्त (सिच्)। उसने आह्वान किया (बुलाया)।

सिद्धि-(१) अलिपत। 'लिप उपदेहे' (तु०उ०) यहां आत्मनेपद में च्लि-प्रत्यय के स्थान में अङ्-आदेश है।

(२) असिक्त। यहां उक्त लिप् धातु से आत्मनेपद में विकल्प पक्ष में च्लि-प्रत्यय के स्थान में सिच्-आदेश है। 'झलो झलि' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।

(३) असिचत। 'सिच् क्षरणे' (तु०उ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है।

(४) असिक्त। उक्त सिच् धातु से पूर्ववत् सिच् आदेश है।

(५) अह्वत। 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०)। पूर्ववत् अङ् आदेश है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से ह्वा के आ का लोप होता है।

(६) अह्वास्त। उक्त ह्वेञ् धातु से पूर्ववत् सिच् आदेश है।

अङ्–

(१३) पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु।५५।

प०वि०-पुषादि-द्युतादि-लृदितः ५।१ परस्मैपदेषु ७।३।

स०-पुष आदिर्येषां ते पुषादयः, द्युत आदिर्येषां ते द्युतादयः, लृद् इत् यस्य स लृदित्। पुषादयश्च द्युतादयश्च लृदिच्च एतेषां समाहारः पुषादिद्युताद्य्लृदित्, तस्मात्-पुषादिद्युताद्य्लृदितः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुषादिद्युताद्य्लृदितो धातोश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि परस्मैपदेषु।

अर्थः-पुषादिभ्यो द्युतादिभ्य लृदिद्भ्यश्च धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः।

उदा०-(पुषादिः) पुष्-अपुषत्। शुष्-अशुषत्। (द्युतादिः) द्युत्-अद्युतत्। श्विता-अश्वितत्। (लृदित्) गम्लृ-अगमत्। शक्लृ-अशकत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुषादिद्युताद्य्लृदितः) पुषादि, द्युतादि और लृदित् (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लिप्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है, (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ्लकार में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद प्रत्ययों के परे होने पर।

उदा०-(पुषादि) पुष्-अपुषत्। वह पुष्ट होगया। शुष्-अशुषत्। वह सूख गया। (द्युतादि) द्युत्-अद्युतत्। वह चमका। श्विता-अश्वितत्। वह सफेद होगया। (लृदित्) गम्लृ-अगमत्। वह गया। शक्लृ-अशकत्। वह कर सका।

सिद्धि-(१) अपुषत्। 'पुष पुष्टौ' (दि०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है।

(२) अशुषत्। 'शुष शोषणे' (दि०प०) पूर्ववत्।

(३) अद्युतत्। 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) द्युत आदि गण की धातु आत्मनेपद है 'द्युद्भ्यो लुङि' (१।३।९१) से लुङ् में परस्मैपद होता है।

(४) अश्वितत्। 'श्विता वर्णे' (भ्वा०आ०)। पूर्ववत् परस्मैपद है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से श्विता के आ का लोप होता है।

(५) अगमत्। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' (१।३।२) से 'लृ' की इत् संज्ञा होती है। लृदित् होने से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है।

(६) अशकत्। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) पूर्ववत्।

विशेष-पुषादिगण पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण के और द्युतादिगण भ्वादिगण के अन्तर्गत हैं। वहां देख लेवें।

अङ्-

(१४) सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च।५६।

प०वि०-सर्ति-शास्ति-अर्तिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सर्तिश्च शास्तिश्च अर्तिश्च ते-सर्तिशास्त्यर्तयः, तेभ्यः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-सर्तिशास्त्यर्तिभ्यो धातुभ्यश्च परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-**(सर्तिः)** सृ-असरत्। **(शास्तिः)** शास्-अशिषत्। **(अर्तिः)** ऋ-आरत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्तिशास्त्यर्तिभ्यः) सर्ति, शास्ति, अर्ति (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(सर्ति) सृ-**असरत्।** वह फैल गया। (शास्ति) शास्-**अशिषत्।** उसने शिक्षा की। (अर्तिः) ऋ-**आरत्।** उसने गति की अथवा पहुंचाया।*

*सिद्धि-(१) **असरत्।** 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है किन्तु 'अङ्' परे होने पर **'ऋदृशोऽङि गुणः'** (७।४।१६) से सृ को गुण (सर्) होता है।*

*(२) **अशिषत्।** 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। अङ् परे होने पर **'शास इदङ्हलोः'** (६।४।३४) से 'शास्' को इ आदेश (शिस्) और **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व (शिष्) होता है।*

*(३) **आरत्।** 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है किन्तु अङ् परे होने पर **'ऋदृशोऽङि गुणः'** (७।४।१६) से ऋ धातु को गुण (अर्) होता है। **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से ऋ धातु को आट् आगम होता है।*

अङ्-विकल्पः—

(१५) इरितो वा।५७।

प०वि०-इरितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-इर् इत् यस्य स इरित्, तस्मात्-इरितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इरितो धातोश्च्लेर्वाऽङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-इरितो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेनाऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः।

उदा०-(भिदिर्) भिद् अभिदत, अभैत्सीत् वा। **(छिदिर्)** छिद्-अच्छिदत्, अच्छैत्सीत् वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(इरितः) जिसका 'इर्' इत् है उस (धातोः) धातु से परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय होने पर।*

*उदा०-(भिदिर्) भिद्-**अभिदत्, अभैत्सीत् वा।** उसने विदारण किया (फाड़ा)। (छिदिर्) छिद्-**अच्छिदत्, अच्छैत्सीत् वा।** उसने छेदन किया (काटा)।*

*सिद्धि-(१) **अभिदत्।** 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। अङ् प्रत्यय के ङित् होने से 'भिद्' धातु को **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है।*

*(२) **अभैत्सीत्।** यहां पूर्वोक्त 'भिद्' धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश है। **'वदव्रजहलन्तस्याचः'** (७।२।३) से 'भिद्' के अच् को वृद्धि (भैत्) और **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से त् प्रत्यय को ईट् आगम होता है।*

*(३) **अच्छिदत्। अच्छैत्सीत्।** 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) पूर्ववत्।*

अङ्-विकल्पः—

(१६) जृस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च।५८।

प०वि०-जॄ-स्तम्भु-म्रुचु-म्लुचु-ग्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-श्विभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-जॄश्च स्ताम्भुश्च म्रुचुश्च म्लुचुश्च ग्रुचुश्च ग्लुचुश्च ग्लुञ्चुश्च श्विश्च ते-जॄ०श्वयः, तेभ्यः-जॄ०श्विभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जॄ०श्विभ्यश्च धातुभ्यश्च्लेर्वाऽङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यो धातुभ्योऽपि परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेनाऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परतः। पक्षे सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-(जॄ) अजरत्, अजारीत् वा। (स्तम्भु) अस्तभत्, अस्तम्भीत् वा। (म्रुचु) अम्रुचत्, अम्रोचीत् वा। (म्लुचु) अम्लुचत्, अम्लोचीत् वा। (ग्रुचु) अग्रुचत्, अग्रोचीत् वा। (ग्लुचु) अग्लुचत्, अग्लोचीत् वा। (ग्लुञ्चु) अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् वा। (श्वि) अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत् वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(जॄ०श्विभ्यः) जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु, श्वि (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-**(जॄ) अजरत्, अजारीत् वा।** वह बूढ़ा होगया। **(स्तम्भु) अस्तभत्, अस्तम्भीत् वा।** वह रुक गया। **(म्रुचु) अम्रुचत्, अम्रोचीत् वा।** उसने गति की। **(म्लुचु) अम्लुचत्, अम्लोचीत् वा।** उसने गति की। **(ग्रुचु) अग्रुचत्, अग्रोचीत् वा।***

उसने चोरी की। (ग्लुचु) अग्लुचत्, अग्लोचीत् वा। उसने चोरी की। (ग्लुञ्चु) अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् वा। उसने गति की। (श्वि) अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत्। उसने गति अथवा वृद्धि की।

सिद्धि-(१) अजरत्। 'जॄ वयोहानौ' (भ्वा०प०) यहां 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'जॄ' को गुण (जर्) होता है।

(२) अजारीत्। यहां पूर्वोक्त धातु से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।२८) से 'जॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(३) अस्तभत्। 'स्तम्भु स्तम्भे' {रुकना} (सौत्रधातु)। यहां 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से स्तम्भ के अनुनासिक का लोप होता है।

(४) अस्तम्भीत्। यहां पूर्वोक्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् 'सिच्' आदेश है।

(५) अम्रुचत्। 'म्रुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् 'अङ्' प्रत्यय है।

(६) अम्रोचीत्। 'म्रुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से म्रुचु को लघूपध गुण होता है।

(७) अम्लुचत्। 'म्लुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(८) अम्लोचीत्। 'म्लुचु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(९) अग्रुचत्। 'ग्रुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(१०) अग्रोचीत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(११) अग्लुचत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्।

(१२) अग्लोचीत्। 'ग्लुचु स्तेयकरणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(१३) अग्लुचत्। 'ग्लुञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् अङ्। जो 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक लोप नहीं मानते हैं-अग्लुञ्चत्।

(१४) अग्लुञ्चीत्। 'ग्लुञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत् सिच्।

(१५) अश्वत्। (१६) अश्वयीत्। (१७) अशिश्वियत्। तीन पदों की सिद्धि 'विभाषा धेट्श्व्योः' (१।३।४९) के प्रवचन में देख लेवें।

अङ्-

(१७) कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि।५६।

प०वि०-कृ-मृ-दृ-रुहिभ्यः ५।३ छन्दसि ७।१।

स०-कृश्च मृश्च दृश्च रुहिश्च ते कृमृदृरुहयः, तेभ्यः-कृमृदृरुहिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृमृदृरुहिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरङ् कर्तरि लुङि।

अर्थः-छन्दसि विषये कृमृदृरुहिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थानेऽङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि प्रत्यये परतः।

उदा०-**(कृ)** अकरत्। **(मृ)** अमरत्। **(दृ)** अदरत्। **(रुहि)** अरुहत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृमृदृरुहिभ्यः) कृ, मृ, दृ, रुह् (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (अङ्) अङ् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(कृ) **अकरत्।** उसने किया। (मृ) **अमरत्।** वह मर गया। (दृ) **अदरत्।** उसने आदर किया। (रुह्) **अरुहत्।** वह अंकुरित हुआ अथवा प्रकट हुआ।*

वैदिक प्रयोग-(कृ) शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत्। (मृ) अथोऽमरत्। (दृ) अदरदर्थान्। (रुह) सानुमारुहत्। अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।

*सिद्धि-(१) **अकरत्।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से कृ को गुण कर् होता है। यहां 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से सिच् आदेश प्राप्त था।*

*(२) **अमरत्।** 'मृङ् प्राणत्यागे' (तु०आ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है। यहां छन्द में व्यत्यय से परस्मैपद होता है।*

*(३) **अदरत्।** 'दृङ् आदरे' (तु०आ०) पूर्ववत् अङ् आदेश है। यहां छन्द में व्यत्यय से परस्मैपद होता है।*

*(४) **अरुहत्।** 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) यहां पूर्ववत् अङ् आदेश है। 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से 'क्स' आदेश प्राप्त था।*

चिण्-

(१८) चिण् ते पदः।६०

प०वि०-चिण् १।१ ते ७।१ पदः ५।१।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पदो धातोश्च्लेश्चिण् कर्तरि लुङि ते।

अर्थः-पदो धातोः परस्य च्लि-प्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०-**(पद)** उदपादि सस्यम्। समपादि भैक्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदः) पद (धातोः) धातु से परे (च्लेः) 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङ्) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(पद) **उदपादि सस्यम्।** उसने खेती को उत्पन्न किया। **समपादि भैक्षम्।** उसने भिक्षा-अन्न को सिद्ध किया।*

*सिद्धि-(१) **उदपादि।** उत्+पद्+लुङ्। उत्+अट्+पद्+च्लि+ल्। उत्+अ+पद्+चिण्+त। उत्+अ+पाद्+इ+०। उदपादि।*

*यहां **'पद गतौ'** (दिवा०आ०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'पद्' धातु को उपधावृद्धि (पाद्) होती है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् (लोप) हो जाता है।*

चिण्-विकल्पः—

(१६) दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्।६१।

प०वि०-दीप-जन-बुध-पूरि-तायि-प्यायिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-दीपश्च जनश्च बुधश्च पूरिश्च तायिश्च प्यायिश्च ते-दीप०प्यायय:, तेभ्य:-दीप०प्यायिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, चिण्, ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीप०प्यायिभ्यो धातुभ्यश्च्लेरन्यतरस्यां चिण् कर्तरि लुङि ते।

अर्थः-दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-**(दीप)** अदीपि, अदीपिष्ट वा। **(जन)** अजनि, अजनिष्ट वा। **(बुध)** अबोधि, अबुद्ध वा। **(पूरि)** अपूरि, अपूरिष्ट वा। **(तायि)** अतायि, अतायिष्ट वा। **(प्यायि)** अप्यायि, अप्यायिष्ट वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(दीप०प्यायिभ्यः) दीप, जन, बुध, पूरि, तायि, प्यायि (धातोः) धातुओं से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (लुङि) लुङ् में (ते) त प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(दीप) **अदीपि, अदीपिष्ट वा।** वह दीप्त (प्रकाशित) हुआ। (जन) **अजनि, अजनिष्ट वा।** वह उत्पन्न हुआ। (बुध) **अबोधि, अबुद्ध वा।** उसने जाना*

(समझा)। (पूरि) पूर्-अपूरि, अपूरिष्ट वा। उसने पूर्ण किया (भरा)। (तायि) ताय्-अतायि, अतायिष्ट वा। उसने फैलाया अथवा पालन किया। (प्यायि) प्याय्-अप्यायि, अप्यायिष्ट वा। वह बढ़ा।

सिद्धि-(१) अदीपि। 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०) धातु से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् (लोप) हो जाता है।

(२) अदीपिष्ट। यहां पूर्वोक्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सिच्' के स् को षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'त' प्रत्यय को ष्टुत्व (ट) होता है।

(३) 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०)। 'बुध अवगमने' (दि०आ०)। 'पूरी आप्यायने' (दि०आ०)। 'तायृ सन्तानपालनयोः' (भ्वा०आ०)। 'ओप्यायी वृद्धौ' (भ्वा०आ०) इन धातुओं से पूर्वोक्त 'दीप' धातु के समान रूप सिद्ध करें।

चिण्-विकल्पः–

(२०) अचः कर्मकर्तरि।६२।

प०वि०-अचः ५।१ कर्मकर्तरि ७।१।

स०-कर्म चासौ कर्ता इति कर्मकर्ता, तस्मिन्-कर्मकर्तरि (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०-चिण् ते, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचो धातोश्च्लेरन्यतरस्यां चिण् कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः-अजन्ताद् धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे सिच् आदेशो भवति।

उदा०-(कृ) अकारि कटः स्वयमेव (चिण्)। अकृत कटः स्वयमेव (सिच्)। **(लू)** अलावि केदारः स्वयमेव (चिण्)। अलविष्ट केदारः स्वयमेव (सिच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अचः) अच् जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(कृ) अकारि कटः स्वयमेव (चिण्)। अकृत कटः स्वयमेव (सिच्)। चटाई स्वयं ही बन गई। (लू) अलावि केदारः स्वयमेव (चिण्)। अलविष्ट केदारः स्वयमेव। खेत स्वयं ही कट गया।

सिद्धि-(१) अकारि। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) इस अजन्त धातु से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि (कार्) होती है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) अकृत। यहां अजन्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।

(३) अलावि। अलविष्ट। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् सिद्ध करें।

चिण्-विकल्पः–

(२१) दुहश्च।६३।

प०वि०-दुहः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-चिण्, ते, कर्मकर्तरि, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दुहश्च धातोश्च्लेरन्यतरस्याम् चिण् कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः-दुहो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन चिण् आदेशो भवति, कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः। पक्षे क्स-आदेशो भवति।

उदा०-(दुह्) अदोहि गौः स्वयमेव (चिण्)। अदुग्ध गौः स्वयमेव (क्स)।

आर्यभाषा-अर्थ-(दुहः) दुह् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (चिण्) चिण् आदेश होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(दुह्) अदोहि गौः स्वयमेव (चिण्)। गौ स्वयं ही दुही गई। अदुग्ध गौः स्वयमेव (क्स)। अर्थ पूर्ववत्।

सिद्धि-(१) अदोहि। 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दुह्' की उपधा को गुण होता है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(२) अदुग्ध। यहां पूर्वोक्त 'दुह्' धातु से विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से 'क्स' आदेश होता है। 'क्सस्याचि' (७।३।७२) की अनुवृत्ति में 'लुग् वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये' (७।३।७३) से

'क्स' आदेश का लुक् होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त' को 'ध' और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घ् को जश् (ग्) होता है।

चिण्-प्रतिषेधः--

(२२) न रुधः।६४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, रुधः ५।१।

स०-चिण्, ते, कर्मकर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुधो धातोश्च्लेश्चिण् न कर्मकर्तरि लुङि ते।

अर्थः-रुधो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो न भवति, कर्मकर्तृवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०-अवारुद्ध गौः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-*(रुधः) रुध् (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश (न) नहीं होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्तावाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(रुध्) **अवारुद्ध गौः स्वयमेव।** गौ गोष्ठ में स्वयं ही बन्द होगई।*

सिद्धि-अवारुद्ध। *'**रुधिर् आवरणे**' (रुधा०उ०) इस धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश नहीं होता है, अपितु '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'सिच्' आदेश होता है। 'झलो झलि' (८।२।२६) से सिच् का लोप हो जाता है। '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से 'त' को 'ध' और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से 'रुध्' के ध् को जश् (द्) होता है।*

*विशेष- '**कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः**' (३।१।८) से कर्ता को कर्मवद्भाव का विधान किया गया है। उससे कर्मवद्भाव होकर '**चिण् भावकर्मणोः**' (३।१।६६) से कर्मकर्ता में 'रुध्' धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका पूर्वविप्रतिषेध किया गया है।*

चिण्-प्रतिषेधः–

(२३) तपोऽनुतापे च।६५।

प०वि०-तपः ५।१ अनुतापे ७।१ च अव्ययपदम्। अनुतापः= पश्चात्तापः, तस्मिन्-अनुतापे।

अनु०-चिण्, ते, कर्मकर्तरि न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तपो धातोश्च्लेश्चिण् न, कर्मकर्तरि अनुतापे च लुङि ते।

अर्थः-तपो धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो न भवति, कर्मकर्तरि अनुतापे चार्थे लुङि ते प्रत्यये परतः। अनेन चिणादेशे प्रतिषिद्धे उत्सर्गः सिच्-आदेशो भवति।

उदा०-(कर्मकर्तरि) तप-अतप्त तपस्तापसः। **(पश्चात्तापे)** रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा।

आर्यभाषा-अर्थ-*(तपः) तप (धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि-प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश (न) नहीं होता है (कर्मकर्तरि) कर्मकर्ता (च) और (अनुतापे) पश्चात्ताप अर्थ में (लुङि) लुङ्लकार में (ते) त-प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(कर्मकर्ता) तप्-अतप्त तपस्तापसः।** तपस्वी ने स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये तप=ज्ञानविशेष का अर्जन किया। **(पश्चात्ताप) तप्-रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा।** रावण के द्वारा पाप कर्म के कारण पश्चात्ताप किया गया।*

***सिद्धि-(१) अतप्त।** 'तप सन्तापे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्मकर्तृवाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश का प्रतिषेध है, अतः **'च्लेः सिच्'** (३।१।४०) से 'सिच्' आदेश होता है। **'झलो झलि'** (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप हो जाता है।*

***विशेष-(१)** यहां **'तपस्तपकर्मकस्यैव'** (३।१।८८) से तप धातु के कर्ता का कर्मवद्भाव होता है। कर्मवद्भाव होने से **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त था, इस सूत्र से उसका पूर्व प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **तपांसि तापसमतपन्त।** यहां तापस कर्म है वह **'अतप्त तपस्तापसः'** में कर्ता बन गया है। अतः यह कर्मकर्ता है।*

*(३) **रावणेनाऽन्वातप्त पापेन कर्मणा।** यहां 'तप' धातु से भाववाच्य में लुङ् लकार है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से भाववाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश प्राप्त था, उसका इस सूत्र से पूर्वप्रतिषेध किया गया है।*

चिण्-

(२४) चिण् भावकर्मणोः।६६।

प०वि०-चिण् १।१ भाव-कर्मणोः ७।२।

स०-भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, तयोः भावकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-रो इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोश्च्लेश्चिण् भावकर्मणोर्लुङि ते।

अर्थः-धातोः परस्य च्लिप्रत्ययस्य स्थाने चिण् आदेशो भवति, भावकर्मवाचिनि लुङि ते प्रत्यये परतः।

उदा०-**(भावे)** अशायि भवता। **(कर्मणि)** अकारि कटो देवदत्तेन। अहारि भारो यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (च्लेः) च्लि प्रत्यय के स्थान में (चिण्) चिण् आदेश होता है (भावकर्मणोः) भाववाची और कर्मवाची (लुङि) लुङ्लकार में (ते) 'त' प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(भाव) **अशायि भवता।** आपके द्वारा शयन किया गया। (कर्म) **अकारि कटो देवदत्तेन।** देवदत्तेन के द्वारा चटाई बनाई गई। **अहारि भारो यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त के द्वारा भार हरण किया गया।*

*सिद्धि-(१) **अशायि।** 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'शी' धातु को वृद्धि होती है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **अकारि।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से कर्मवाच्य में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अहारि।** 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*विशेष-**'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः'** (३।४।६९) से सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में लकार होते हैं और अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव अर्थ में लकार होते हैं। यहां अकर्मक 'शीङ्' धातु से भाव अर्थ में और सकर्मक 'कृ' तथा 'हृ' धातु से कर्म अर्थ में लुङ् लकार है।*

सार्वधातुकम् (भावे कर्मणि च)

यक्-

(१) सार्वधातुके यक्।६७।

प०वि०-सार्वधातुके ७।१ यक् १।१।

अनु०-भावकर्मणोः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्यक् भावकर्मणोः सार्वधातुके।

अर्थः-धातोः परो यक् प्रत्ययो भवति, भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-**(भावे)** आस्यते भवता। शय्यते भवता। **(कर्मणि)** क्रियते कटो देवदत्तेन। गम्यते ग्रामो यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (यक्) यक् प्रत्यय होता है (भावकर्मणोः) भाववाची और कर्मवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(भाव) **आस्यते भवता।** आपके द्वारा बैठा जाता है। **शय्यते भवता।** आपके द्वारा सोया जाता है। (कर्म) **क्रियते कटो देवदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है। **गम्यते ग्रामो यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त के द्वारा गांव जाया जाता है।*

*सिद्धि-(१) **आस्यते।** 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'यक्' प्रत्यय है।*

*(२) **शय्यते।** 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से भाववाच्य में 'यक्' प्रत्यय है। 'अयङ् यि क्ङिति' (७।४।२२) से 'शी' धातु को 'अयङ्' आदेश होता है।*

*(३) **क्रियते।** 'डुकृञ् करणे' (तना०आ०) धातु से कर्मवाच्य में 'यक्' प्रत्यय है। 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' (७।४।२८) से 'कृ' को 'रिङ्' आदेश होता है।*

*(४) **ह्रियते।** 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

विशेष- 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से 'तिङ्' और 'शित्' प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा है।

सार्वधातुकम् (कर्तरि)

शप्-

(१) कर्तरि शप्।६८।

प०वि०-कर्तरि ७।१ शप् १।१।

अनु०-सार्वधातुके इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोः शप् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-धातोः परः शप् प्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(भू) भवति। (पच्) पचति।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (शप्) 'शप्' प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(भू) **भवति।** वह है। (पच्) **पचति।** वह पकाता है।*

*सिद्धि-(१) **भवति।** भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भो+अ+ति। भवति।*

*यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से वर्तमानकाल में '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से विकरण 'शप्'*

प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से भू को गुण (भो) हो जाता है। 'एचोऽयवायावः' (८।१।७८) से अव्-आदेश होता है।

(२) पचति। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

श्यन्–

(२) दिवादिभ्यः श्यन्।६६।

प०वि०–दिवादिभ्यः ५।३ श्यन् १।१।

स०–दिव् आदिर्येषां ते दिवादयः, तेभ्यः-दिवादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिवादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः–दिवादिभ्यो धातुभ्यः परः श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०–**(दिव्)** दीव्यति। **(सिव्)** सीव्यति।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(दिवादिभ्यः) दिव् आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(दिव्) दीव्यति।** वह खेलता है। **(सिव्) सीव्यति।** वह सीमता है।*

*सिद्धि-(१) **दीव्यति।** 'दिवु क्रीडाविजीगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोद्मस्वप्न-कान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) 'श्यन्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का निषेध हो जाता है। 'हलि च' (८।२।७७) से 'दिव्' की उपधा को दीर्घ होता है।*

*(२) **सीव्यति।** 'सिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) पूर्ववत्।*

विशेष-दिवादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में देख लेवें।

श्यन्-विकल्पः–

(३) वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः।७०।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, भ्राश-भ्लाश-भ्रमु-क्रमु-क्लमु-त्रसि-त्रुटि-लषः ५।१।

स०–भ्राशश्च भ्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च क्लमुश्च त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च एतेषां समाहारो भ्राश०लष्, तस्मात्-भ्राश०लषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि श्यन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्राश०लषो धातोर्वा श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(**भ्राश**) भ्राश्यते, भ्राशते वा। (**भ्लाश**) भ्लाश्यते, भ्लाशते वा। (**भ्रमु**) भ्राम्यति, भ्रमति वा। (**क्रमु**) क्राम्यति, क्रामति वा। (**क्लमु**) क्लाम्यति, क्लामति वा। (**त्रसि**) त्रस्यति, त्रसति वा। (**त्रुटि**) त्रुट्यति, त्रुटति वा। (**लष्**) लष्यति, लषति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(भ्राश०लषः) भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि, लष (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(भ्राश) **भ्राश्यते, भ्राशते वा।** वह चमकता है। (भ्लाश) **भ्लाश्यते, भ्लाशते वा।** वह चमकता है। (भ्रमु) **भ्राम्यति, भ्रमति वा।** वह घूमता है। (क्रमु) **क्राम्यति, क्रामति वा।** वह चलता है। (क्लमु) **क्लाम्यति, क्लामति वा।** वह ग्लानि करता है। (त्रसि) **त्रस्यति, त्रसति वा।** वह उद्विग्न (व्याकुल) होता है। (त्रुटि) **त्रुट्यति, त्रुटति वा।** वह टूटता है। (लष्) **लष्यति, लषति वा।** वह कामना करता है।*

*सिद्धि-(१) **भ्राश्यते।** 'टुभ्राशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से सार्वधातुक 'त' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्यन्' प्रत्यय है।*

*(२) **भ्राशते।** पूर्वोक्त 'भ्राश्' धातु से विकल्प पक्ष में सार्वधातुक 'त' प्रत्यय परे होने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है।*

*(३) **भ्लाश्यते, भ्लाशते।** 'भ्लाशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।*

*(४) **भ्राम्यति, भ्रमति।** 'भ्रमु अनवस्थाने' (भ्वा०प०)। 'भ्रमु चलने' (दि०प०)। 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) से दीर्घ होता है।*

*(५) **क्राम्यति, क्रामति।** 'क्रमु विक्षेपे' (भ्वा०प०) 'क्रमः परस्मैपदेषु' (७।३।७६) से दीर्घ होता है।*

*(६) **क्लाम्यति, क्लामति।** 'क्लमु ग्लानौ' (दि०प०) 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) तथा 'ष्ठिवुक्लमुचमां शिति' (७।३।७५) से दीर्घ होता है।*

*(७) **त्रस्यति, त्रसति।** 'त्रसी उद्वेगे' (दि०प०)।*

*(८) **त्रुट्यति, त्रुटति।** 'त्रुटी छेदने' (तु०प०)। विकल्प पक्ष में 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' प्रत्यय होता है।*

*(९) **लष्यति, लषति।** 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।*

श्यन्-विकल्पः—

(४) यसोऽनुपसर्गात्।७१।

प०वि०-यसः ५।१ अनुपर्गात् ५।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मात्-अनुपसर्गात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्यन्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गाद् यसो धातोर्वा श्यन् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-अनुपसर्गात्=उपसर्गरहिताद् यसो धातोः परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-**(यस्)** यस्यति, यसति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (यसः) यस् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(यस्) **यस्यति, यसति वा।** वह प्रयत्न करता है।*

*सिद्धि-**यस्यति, यसति वा। 'यसु प्रयत्ने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'श्यन्' और 'शप्' प्रत्यय है।*

श्यन्-विकल्पः—

(५) संयसश्च।७२।

प०वि०-संयसः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्यन् वा इति चानुवर्तते।

अर्थः-सम्-उपसर्गपूर्वाद् यसो धातोश्च परो विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-**(संयस्)** संयस्यति, संयसति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(संयसः) सम् उपसर्गपूर्वक यस् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (श्यन्) श्यन् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(संयस्) **संयस्यति, संयसति वा।** वह मिलकर प्रयत्न करता है। **सम् इत्येकीभावे** (निरुक्त)।*

सिद्धि-संयस्यति, संयसति। 'यसु प्रयत्ने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् श्यन् और शप् प्रत्यय है।

श्नुः-

(६) स्वादिभ्यः श्नुः।७३।

प०वि०-सु-आदिभ्यः ५।३ श्नुः १।१।

स०-सु आदिर्येषां ते स्वादयः, तेभ्यः-स्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्वादिभ्यो धातुभ्यः श्नुः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-सु-आदिभ्यो धातुभ्यः परः श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(सु) सुनोति। (सि) सिनोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वादिभ्यः) सु आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(सु) **सुनोति।** वह रस निचोड़ता है। (सि) **सिनोति।** वह बांधता है।*

*सिद्धि-(१) **सुनोति।** 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से सार्वधातुक तिप् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्नु' प्रत्यय के ङित् होने से, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'श्नु' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होता है।*

*(२) **सिनोति।** 'षिञ् बन्धने' (दिवा०उ०) पूर्ववत्।*

विशेष-सु-आदि धातु पाणिनीय धातुपाठ के स्वादिगण में देख लेवें।

श्नुः-

(७) श्रुवः शृ च।७४।

प०वि०-श्रुवः ५।१ (६।१) शृ १।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्रुवो धातोः श्नुस्तस्य च शृः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-श्रुवो धातोः परः **श्नुः प्रत्ययो भवति, श्रुवः स्थाने च शृ-आदेशो** भवति, कर्तृवाचिनि **सार्वधातुके प्रत्यये परतः।**

उदा०-(श्रु) शृणोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्रुवः) श्रु धातु से परे (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (च) और (श्रुवः) श्रु के स्थान में (शृ) शृ आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(श्रु) **शृणोति।** वह सुनता है।*

***सिद्धि-शृणोति।** श्रु+लट्। श्रु+श्नु+तिप्। शृ+नो+ति। शृणोति।*

*यहां 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०) धातु के भ्वादिगण में पठित होने से '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय प्राप्त था। इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय और 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'श्नु' प्रत्यय के ङित् होने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से 'शृ' धातु को '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का निषेध हो जाता है। 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'श्नु' प्रत्यय को '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से गुण होता है। '**वा०-ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्**' (८।४।१) से णत्व होता है।*

श्नु-विकल्पः—

(८) अक्षोऽन्यतरस्याम्।७५।

प०वि०-अक्षः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक्षो धातोरन्यतरस्यां श्नुः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-अक्षो धातोः परो विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः। पक्षे शप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अक्ष्) अक्ष्णोति, अक्षति वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अक्षः) अक्ष् (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर। विकल्प पक्ष में 'शप्' प्रत्यय होता है।

*उदा०-(अक्ष्) **अक्ष्णोति, अक्षति** वा। वह व्याप्त होता है।*

***सिद्धि-अक्ष्णोति, अक्षति।** 'अक्षू व्याप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय होता है। '**रषाभ्यां नो णः समानपदे**' (८।४।१) से णत्व होता है। 'अक्षति' यहां विकल्प पक्ष में '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय है।*

श्नु-विकल्पः—

(६) तनूकरणे तक्षः ।७६।

प०वि०-तनूकरणे ७ ।१ तक्षः ५ ।१।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्नुः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तनूकरणे तक्षो धातोरन्यतरस्यां श्नुः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-तनूकरणेऽर्थे वर्तमानात् तक्षो धातोः परो विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः। पक्षे शप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(तक्ष्) तक्ष्णोति, तक्षति वा काष्ठम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(तनूकरणे) छीलने अर्थ में विद्यमान (तक्षः) तक्ष् (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (श्नुः) प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर। विकल्प पक्ष में शप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(तक्ष्) **तक्ष्णोति, तक्षति वा काष्ठम्।** वह लकड़ी को छीलता है।*

*सिद्धि-(१) **तक्ष्णोति, तक्षति।** 'तक्षू तनूकरणे' (भ्वा०प०) से **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्राप्त था, इस सूत्र से 'श्नु' प्रत्यय का भी विधान किया गया है। सब कार्य **अक्ष्णोति/अक्षति** के समान हैं।*

*विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'तक्षू' धातु **'तनूकरणे'** अर्थ में पठित है, फिर यहां तनूकरण अर्थ के कथन से विदित होता है कि **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'** अर्थात् धातु अनेकार्थक होती हैं। धातुपाठ में प्रदर्शित धातु अर्थ केवल उदाहरण मात्र हैं। बहुलमेतन्निदर्शनम्-धातुपाठे)।*

शः—

(१०) तुदादिभ्यः शः ।७७।

प०वि०-तुदादिभ्यः ५ ।३ शः १ ।१।

स०-तुद् आदिर्येषां ते तुदादयः, तेभ्यः-तुदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तुदादिभ्यो धातुभ्यः शः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-तुदादिभ्यो धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(तुद्) तुदति। **(नुद्)** नुदति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुदादिभ्यः) तुद् आदि (धातोः) धातुओं से परे (शः) श-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(तुद्) **तुदति।** वह पीड़ा देता है। (नुद्) **नुदति।** वह प्रेरणा करता है।*

*सिद्धि-(१) **तुदति।** 'तुद् व्यथने' (तु०प०) धातु से इस सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय के परे होने पर 'श' प्रत्यय होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'श' प्रत्यय के ङित् होने से **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से निषेध हो जाता है।*

*(२) **नुदति।** 'णुद् प्रेरणे' (तु०प०) पूर्ववत्।*

***विशेष**-तुदादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तुदादिगण में देख लेवें।*

श्नम्-

(११) रुधादिभ्यः श्नम्।७८।

प०वि०-रुधादिभ्यः ५।३ श्नम् १।१।

स०-रुध् आदिर्येषां ते रुधादयः, तेभ्यः-रुधादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुधादिभ्यो धातुभ्यः श्नम् कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-रुधादिभ्यो धातुभ्यः परः श्नम् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(रुध्) रुणद्धि। **(भिद्)** भिनत्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(रुधादिभ्यः) रुध् आदि (धातोः) धातुओं से परे (श्नम्) श्नम् प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(रुध्) **रुणद्धि।** वह रोकता है। (भिद्) **भिनत्ति।** वह फाड़ता है।*

*सिद्धि-(१) **रुणद्धि।** रुध्+लट्। रु श्नम् ध्+ति। रुनध्+धि। रुणद्+धि। रुणद्धि।*

*यहां **'रुधिर् आवरणे'** (रुधा०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से श्नम् प्रत्यय होता है। 'श्नम्' के मित् होने से वह **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४६) से 'रुध्' धातु के अन्त्य अच् से परे रखा जाता है। उसे **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से 'रुध्' के 'ध्' को जश् (द्) होता है।*

*(२) **भिनत्ति।** **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०)। इस धातु से पूर्ववत् 'श्नम्' प्रत्यय और **'खरि च'** (८।४।५४) से भिद् धातु के द् को चर् (त्) होता है।*

***विशेष**-रुधादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के रुधादिगण में देख लेवें।*

उः–

(१२) तनादिकृञ्भ्य उः।७६।

प०वि०–तनादि-कृञ्भ्यः ५।३ उः १।१।

स०–तन् आदिर्येषां ते तनादयः, तनादयश्च कृञ् च ते-तनादिकृञः, तेभ्यः-तनादिकृञ्भ्यः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तनादिकृञ्भ्यो धातुभ्य उः कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः–तनादिभ्यो धातुभ्यः कृञ्-धातोश्च पर उः प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०–**(तनादिः)** तन्-तनोति। सन्-सनोति। (कृञ्) करोति।

*आर्यभाषा-अर्थ-(तनादिकृञ्भ्यः) तनादि **और कृञ्** (धातोः) धातु से परे (उः) उ-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक **प्रत्यय** परे होने पर।*

*उदा०-(तनादि) **तन्-तनोति।** वह फैलाता है। **सन्-सनोति।** वह देता है। (कृञ्) करोति। वह करता है।*

*सिद्धि-(१) **तनोति।** 'तनु विस्तारे' (तना०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय होता है और उसे **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण हो जाता है।*

*(२) **सनोति।** 'षणु दाने' (तना०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **करोति।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) पूर्ववत्। कृञ् धातु का तनादिगण में पाठ है, फिर सूत्र में 'कृञ्' का पृथक् ग्रहण इसलिये किया गया है कि 'कृञ्' धातु से 'उ' प्रत्यय ही हो, अन्य तनादि का कार्य न हो। जैसे **'तनादिभ्यस्तथासोः'** (२।४।७९) से 'कृ' धातु से विकल्प से सिच् का लुक् नहीं होता है-अकृत, अकृथाः।*

विशेष-तनादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तनादिगण में देख लेवें।

उः–

(१३) धिन्विकृण्व्योर च।८०।

प०वि०–धिन्वि-कृण्व्योः ६।२ अ १।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम्।

स०–धिन्विश्च कृण्विश्च तौ धिन्विकृण्वी, तयोः-धिन्विकृण्व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सार्वधातुके, कर्तरि, उः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धिन्विकृण्विभ्यां धातुभ्याम् उः, तयोरकारश्च कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-धिन्विकृण्विभ्यां धातुभ्यां पर उः प्रत्ययो भवति, तयोरन्त्यस्य वकारस्य स्थानेऽकारादेशोऽपि भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(धिन्वि) धिनोति। **(कृण्वि)** कृणोति।

आर्यभाषा-अर्थ-(धिन्विकृण्व्योः) धिन्वि और कृण्वि (धातोः) धातु से परे (उः) उ-प्रत्यय होता है और उनके अन्त्य वकार के स्थान में (अ) अकार आदेश (च) भी होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-**(धिन्वि) धिनोति।** वह तृप्त करता है। **(कृण्वि) कृणोति।** वह हिंसा करता है/वह करता है/वह गति करता है।*

*सिद्धि-(१) **धिनोति।** धिन्व+लट्। धिन् अ+उ+तिप्। धिन्०+ओ+ति। धिनोति।*

*यहां **'धिवि प्रीणनार्थः'** (भ्वा०प०) धातु के इदित् होने से **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। सूत्र में दोनों धातु 'नुम्' आगम सहित पढ़ी गई है। इस सूत्र से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'उ' प्रत्यय होता है और धातु के अन्त्य वकार के स्थान में अकार आदेश भी होता है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से अकार का लोप हो जाता है। 'धिन्' को **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से गुण करने में वह अकार-लोप **'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ'** (१।१।५६) से स्थानिवत् हो जाता है, अतः उक्त लघूपध गुण नहीं होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'उ' को गुण (ओ) हो जाता है।*

*(२) **कृणोति।** **कृवि हिंसा-करणयोश्च, चकाराद् गत्यर्थोऽपि** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

श्ना-

(१४) क्र्यादिभ्यः श्ना।८१।

प०वि०-क्री-आदिभ्यः ५।३ श्ना १।१ (लुप्तप्रथमा)।

स०-क्री आदिर्येषां ते क्र्यादयः, तेभ्यः-क्र्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सार्वधातुके कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्र्यादिभ्यो धातुभ्यः श्ना कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-क्र्यादिभ्यो धातुभ्यः परः श्ना प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(क्री) क्रीणाति। **(प्री)** प्रीणाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्र्यादिभ्यः) क्री-आदि धातुओं से परे (श्ना) श्ना-प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(क्री) **क्रीणाति।** वह खरीदता है। (प्री) **प्रीणाति।** वह तृप्त करता है।*

*सिद्धि-(१) **क्रीणाति।** '**डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये**' (क्र्या०उ०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'श्ना' प्रत्यय के 'ङित्' होने से '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का '**क्ङिति च**' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से 'श्ना' के न् को णत्व होता है।*

*(२) **प्रीणाति।** '**प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च**' (क्र्यादि०उ०) पूर्ववत्।*

विशेष-क्र्यादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में देख लेवें।

श्नाः+श्नुः-

(१५) स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च।८२।

प०वि०-स्तम्भु-स्तुम्भु-स्कम्भु-स्कुम्भु-स्कुञ्भ्यः ५।३ श्नुः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्तम्भुश्च स्तुम्भुश्च स्कम्भुश्च स्कुम्भुश्च स्कुञ् च ते-स्तम्भु०स्कुञः, तेभ्यः-स्तम्भु०स्कुञ्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि, श्ना इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्तम्भु०स्कुञ्भ्यो धातुभ्यः श्नाः श्नुश्च कर्तरि सार्वधातुके।

अर्थः-स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यो धातुभ्यः परः श्नाः श्नुश्च प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः।

उदा०-(स्तम्भु) स्तभ्नाति, स्तभ्नोति च। **(स्तुम्भु)** स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति च। **(स्कम्भु)** स्कभ्नाति, स्कभ्नोति च। **(स्कुम्भु)** स्कुभ्नाति, स्कुभ्नोति च। **(स्कुञ्)** स्कुनाति, स्कुनोति च।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्भु०स्कुञ्भ्यः) स्तम्भु, स्तुम्भु, स्कम्भु, स्कुम्भु, स्कुञ् (धातोः) धातु से परे (श्ना) श्ना (च) और (श्नुः) श्नु प्रत्यय होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(स्तम्भु) **स्तभ्नाति, स्तभ्नोति च।** वह रोकता है। (स्तुम्भु) **स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति च।** वह खाज करता है। (स्कम्भु) **स्कभ्नाति, स्कभ्नोति च।** वह रोकता है।*

(स्कुम्भु) स्कुभ्नाति, स्कुभ्नोति च। वह धारण करता है। (स्कुञ्) स्कुनाति, स्कुनोति च। वह कूदता है।

सिद्धि-(१) स्तभ्नाति। 'स्तम्भु स्तम्भे' (सौत्रधातु) से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'श्ना' प्रत्यय के 'ङित्' होने से 'अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप हो जाता है।

(२) स्तभ्नोति। यहां पूर्वोक्त धातु से पूर्ववत् 'श्नु' प्रत्यय है।

(३) 'स्तुम्भु निष्कोषणे' (सौत्रधातु)। 'स्कम्भु स्तम्भे' (सौत्रधातु)। 'स्कुम्भु धारणे' (सौत्रधातु)। 'स्कुञ् आप्रवणे' (कूदना) (क्र्या०उ०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।

विशेष-यहां सौत्र धातुओं के लिखे अर्थ 'माधवीयधातुवृत्ति' पर आश्रित हैं।

शानच्-

(१६) हलः श्नः शानज्झौ।८३।

प०वि०-हल: ५।१ श्न: ६।१ शानच् १।१ हौ ७।१।

अनु०-सार्वधातुके, कर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-हलो धातो: श्न: शानच् कर्तरि सार्वधातुके हौ।

अर्थ:-हलन्ताद् धातो: परस्य श्ना-प्रत्ययस्य स्थाने शानच्-आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके हि-प्रत्यये परत:।

उदा०-**(मुष्)** त्वं मुषाण। **(पुष्)** त्वं पुषाण।

आर्यभाषा-अर्थ-(हल:) हल् जिसके अन्त में है उस (धातो:) धातु से परे (श्न:) श्ना प्रत्यय के स्थान में (शानच्) शानच्-आदेश होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(मुष्) त्वं मुषाण। तू चोरी कर। (पुष्) त्वं पुषाण। तू पुष्ट हो।

सिद्धि-(१) मुषाण। मुष्+लोट्। मुष्+श्ना+तिप्। मुष्+शानच्+हि। मुष्+आन+०। मुषाण।

यहां 'मुष् स्तेये' (क्र्यादि०प०) धातु से सार्वधातुक 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। 'अतो हे:' (६।४।१२) से 'हि' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।२।४) से 'शानच्' के न् को ण् होता है।

(२) पुषाण। 'पुष पुष्टौ' (क्र्यादि०प०) पूर्ववत्।

शानच्-शायचौ–

(१७) छन्दसि शायजपि।८४।

प०वि०–छन्दसि ७।१ शायच् १।१ अपि अव्ययपदम्।

अनु०–सार्वधातुके, कर्तरि, हलः, श्नः, शानच्, हौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि हलो धातोः श्नः शानच् शायजपि कर्तरि सार्वधातुके हौ।

अर्थः–छन्दसि विषये हलन्ताद् धातोः परस्य श्ना-प्रत्ययस्य स्थाने शानच् शायजपि चाऽऽदेशो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके हि-प्रत्यये परतः।

उदा०–**(बध्)** शानच्-बधान देव सवितः। **(ग्रह्)** गृभाय जिह्वया मधु।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हलः) हलन्त (धातोः) धातु से परे (श्नः) श्ना-प्रत्यय के स्थान में (शानच्) शानच् आदेश और (शायच्) शायच् आदेश (अपि) भी होता है। (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-(बध्) शानच्-**बधान देव सवितः**। हे सविता देव! तू बांध। **(ग्रह्) गृभाय जिह्वया मधु**। तू जिह्वा से मधु ग्रहण कर।*

*सिद्धि-(१) **बधान**। बध्+लोट्। बध्+श्ना+सिप्। बध्+शानच्+हि। बध्+आन+०। बधान।*

*यहां **'बध बन्धने'** (क्र्या०प०) से सार्वधातुक 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में 'शानच्' आदेश है। **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है और **'अतो हेः'** (६।४।१०५) से 'हि' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **गृभाय**। ग्रह्+लोट्। ग्रह+श्ना+सिप्। ग्रह्+शायच्+हि। ग्रह्+आय+०। गृ भ्+आय। गृभाय।*

*यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के स्थान में 'शायच्' आदेश होता है। **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश और **'अतो हेः'** (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है। **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) से 'ग्रह्' को सम्प्रसारण (गृह्) और **'वा०-हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम्'** (८।२।३५) से 'गृह्' के ह् को भ् आदेश होता है।*

शबादीनां व्यत्ययः–

(१८) व्यत्ययो बहुलम्।८५।

प०वि०–व्यत्ययः १।१ बहुलम् १।१।

अनु०–सार्वधातुके कर्तरि छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोः शबादीनां बहुलं व्यत्ययः।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परेषां शबादीनां विकरण-प्रत्ययानां बहुलं व्यत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः। व्यतिगमनं व्यत्ययः, व्यतिहारः, विषयान्तरे विधानमित्यर्थः। क्वचिद् द्विविकरणता, क्वचित् त्रिविकरणताऽपि भवति।

उदा०–**(भिद्) विकरणव्यत्ययः**–अण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। **(मृङ)** ताश्चिन्नु न मरन्ति। म्रियन्ते इति प्राप्ते। **द्विविकरणता**–इन्द्रो वस्तेन नेषतु। नयतु इति प्राप्ते। **त्रिविकरणता**–इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्। तरेम इति प्राप्ते।

आर्यभाषा–अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे पूर्वोक्त शप् आदि प्रत्ययों का (बहुलम्) बहुलता से (व्यत्ययः) व्यत्यय=विषयान्तर विधान होता है (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०–(भिद्) विकरणव्यत्यय–**अण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते।** वह शुष्म के अण्डों का भेदन करता है। यहां 'भेदति' के स्थान में 'भिनत्ति' प्रयोग प्राप्त था। **(मृङ्) ताश्चिन्नु न मरन्ति। म्रियते इति प्राप्ते।** क्या वे मरती नहीं है ? यहां 'मरन्ति' के स्थान में 'म्रियन्ते' प्रयोग प्राप्त था। **दो विकरण प्रत्यय–इन्द्रो वस्तेन नेषतु।** इन्द्र तुम्हें न ले जावे। यहां 'नेषतु' के स्थान पर 'नयतु' प्रयोग प्राप्त था। **तीन विकरण प्रत्यय–इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्।** इन्द्र के सहयोग से हम वृत्र को पार करें, जीतें। यहां 'तरुषेम' के स्थान में 'तरेम' प्रयोग प्राप्त था।*

*सिद्धि–(१) **भेदति।** भिद्+लट्। भिद्+शप्+तिप्। भेद्+अ+ति। भेदति।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से विकरण व्यत्यय मानकर **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय होना चाहिये था–**भिनत्ति।***

*(२) **मरन्ति।** मृङ्+लट्। मृ+शप्+झि। मृ+अ+अन्ति। मरन्ति।*

*यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (तुदा०आ०) धातु से इस सूत्र से विकरण व्यत्यय मानकर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय होना चाहिये था। यहां आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद भी व्यत्यय से होता है-**म्रियन्ते**।*

*(३) **नेषतु**। नी+लोट्। नी+तिप्। नी+सिप्+शप्+तु। ने+स्+अ+तु। नेषतु।*

यहां 'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट्' लकार में 'सिब् बहुलं लेटि' (३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से दूसरा 'शप्' विकरण प्रत्यय भी होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व हो जाता है।

*(४) **तरुषेम**। तॄ+लिङ्। तॄ+मस्। तॄ+यासुट्+मस्। तॄ+उ+यास्+म। तॄ+उ+सिप्+यास्+म। तॄ+उ+स्+अङ्+यास्+म। तर्+उ+ष्+अ+इय्+म। तरुषेम।*

यहां 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीः (इच्छा) अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय, 'नित्यं ङितः' (३।४।९९) से 'मस्' के स् का लोप, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'छन्दस्युभयथा' (३।४।११७) से आशीर्लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा, 'तनादिकृञ्भ्यः उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय, 'सिब्बहुलं लेटि' (३।१।३४) से दूसरा 'सिप्' विकरण प्रत्यय, 'लिङ्याशिष्यङ्' (३।१।८६) से तीसरा 'अङ्' विकरण प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से तॄ को गुण (तर्) 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से 'सिप्' के स् को षत्व, 'अतो येयः' (७।२।८०) से 'यासुट्' के या को इय् आदेश, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' के स् का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'इय्' के य् का लोप होता है। यहां व्यत्यय से तीन विकरण प्रत्यय है।

अङ्–

(१६) लिङ्याशिष्यङ्।८६।

प०वि०–लिङि ७।१ आशिषि ७।१ अङ् १।१।

अनु०–सार्वधातुके, कर्तरि छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोरङ् कर्तरि सार्वधातुके आशिषि लिङि।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परोऽङ् प्रत्ययो भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके आशिषि लिङि प्रत्यये परतः। शपोऽपवादः। **'छन्दस्युभयथा'**

(३।४।११७) इति आशीर्लिङः सार्वधातुकसंज्ञा वर्तते। स्थागागमि-वचिविदिशकिरुहिधातवः प्रयोजयन्ति।

उदा०-(**स्था**) उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम्। (**गा**) सत्यमुपगेयम्। (**गमि**) गृहं गमेम। (**वचि**) मन्त्रं वोचेमाग्नये। (**विदि**) विदेमेमां मनसि प्रविष्टाम्। (**शकि**) व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्। (**रुहि**) स्वर्गं लोकमारुहेयम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है, (कर्तरि) कर्तृवाची (सार्वधातुके) सार्वधातुक विषय में (आशिषि) इच्छार्थक (लिङि) लिङ्-प्रत्यय परे होने पर। यह शप् विकरण प्रत्यय का अपवाद है। '**छन्दस्युभयथा**' (३।४।११७) से 'आशीर्लिङ्' की सार्वधातुक संज्ञा होती है। यहां स्था, गा, गम्, वच्, विद्, शक्, रुह धातुओं से ही अङ् विकरण प्रत्यय का विधान करना प्रयोजन है।*

*उदा०-(स्था) **उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम्।** मैं तुग्रियजनों के वृषभ को प्राप्त करूं, ऐसी इच्छा है। (गा) **सत्यमुपगेयम्।** मैं सत्य का गान करूं, ऐसी इच्छा है। (गमि) **गृहं गमेम।** हम घर चलें, ऐसी इच्छा है। (वचि) **मन्त्रं वोचेमाग्नये।** हम अग्नि देवता के लिये मन्त्र उच्चारण करें, ऐसी इच्छा है। (विदि) **विदेमेमां मनसि प्रविष्टाम्।** हम इस मन में प्रविष्ट हुई वासना को जानें, ऐसी इच्छा है। (शकि) **व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयम्।** मैं व्रत का आचरण करूंगा, मैं उसे कर सकूं ऐसी इच्छा है। (रुहि) **स्वर्गं लोकमारुहेयम्।** मैं स्वर्गलोक में आरोहण करूं ऐसी इच्छा है।*

*सिद्धि-(१) **उपस्थेयम्।** उप+स्था+लिङ्। उप+स्था+मिप्। उप+स्था+अङ्+यासुट्+अम्। उप+स्था+अ+यास्+अम्। उप+स्थ्+अ+इय्+अम्। उपस्थेयम्।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् आशीर्लिङ्, '**तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः**' (३।४।१०१) से 'मिप्' को अम्-आदेश और इस सूत्र से 'अङ्' विकरण प्रत्यय होता है। '**यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च**' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, '**लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य**' (७।२।७९) से 'यासुट्' के 'स्' का लोप, '**अतो येयः**' (७।२।८०) से 'यासुट्' के या को इय्-आदेश और '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप होता है।*

*(२) '**गै शब्दे**' (भ्वा०प०) '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) '**वच परिभाषणे**' (अदा०प०) '**विद ज्ञाने**' (अदा०प०) '**शक्लृ शक्तौ**' (रुधा०प०) '**रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च**' (भ्वा०प०) धातु से शेष पदों की सिद्धि करें।*

इति विकरणप्रत्ययप्रकरणम्।

कर्मवद्भावप्रकरणम्

(१) कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः।८७।

प०वि०-कर्मवत् अव्ययपदम्, कर्मणा ३।१ तुल्यक्रियः १।१। कर्मणा तुल्यमिति कर्मवत् (तद्धितवृत्तिः)। कर्मस्था क्रिया इति कर्म, तस्मिन् कर्मणि। यथा मञ्चाः क्रोशन्तीत्यत्र मञ्चस्थाः पुरुषा मञ्चा इत्युच्यन्ते तथाऽत्र कर्मस्था क्रिया 'कर्म' इत्युच्यते।

स०-तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः {कर्ता} (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'कर्तरि शप्' इत्यतः 'कर्तरि' इति पदं मण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तते, तच्च सप्तम्यन्तम्, अर्थवशाद् प्रथमायां विपरिणम्यते। **'लिङ्याशिष्यङ्'** (३।१।८६) इत्यत्र द्विलकारको निर्देश इति मत्वा ल इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु।

अर्थः-कर्मणा=कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु। यस्मिन् कर्मणि कर्तृभूतेऽपि तत्तुल्या क्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्ता कर्मवद् भवति, कर्माश्रयाणि कार्याणि प्रतिपद्यते। यगात्मनेपद-चिण्चिण्वद्भावाः प्रयोजयन्ति।

उदा०-**(यक्)** भिद्यते काष्ठं स्वयमेव। **(चिण्)** अभेदि काष्ठं स्वयमेव। **(चिण्वद्भावः)** कारिष्यते कटः स्वयमेव।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणा) जो कर्मस्थ क्रिया के (तुल्यक्रियः) तुल्यक्रियावाला (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवत्) कर्म के तुल्य=सदृश हो जाता है (लः) लकारसम्बन्धी कार्य करने में, अर्थात्-जिस कर्म के कर्ता हो जाने पर जैसी कर्म में क्रिया थी वह वैसी ही रहती है, तब वह कर्ता कर्मवत् हो जाता है, कर्माश्रित कार्यों को प्राप्त कर लेता है। इसके ***यक्,*** *आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद्भाव प्रयोजन हैं।*

उदा०-(यक्) ***भिद्यते काष्ठं स्वयमेव।*** *लकड़ी स्वयं ही फट रही है। (चिण्)* ***अभेदि काष्ठं स्वयमेव।*** *लकड़ी स्वयं ही फट गई। (चिण्वद्भाव)* ***कारिष्यते कटः स्वयमेव।*** *चटाई स्वयं ही बन जायेगी।*

सिद्धि-(१) भिद्यते। *यहां* ***'भिदिर् विदारणे'*** *(रुधा०प०) कर्मस्थ क्रिय धातु से* ***इस*** *सूत्र से कर्म (काष्ठम्) के कर्ता हो जाने से* ***'सार्वधातुके यक्'*** *(३।१।६७) से*

कर्मकर्तृवाच्य में 'यक्' प्रत्यय है और ***'भावकर्मणोः'*** *(१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।*

(२) ***अभेदि।*** *यहां पूर्वोक्त कर्मस्थक्रिय धातु से इस सूत्र से कर्म (काष्ठम्) के कर्ता हो जाने से* ***'चिण् भावकर्मणोः'*** *(३।१।६६) से 'चिण्' प्रत्यय होता है।* ***'चिणो लुक्'*** *(६।४।१०४) से आत्मनेपद त-प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

(३) ***कारिष्यते।*** *कृ+लृट्। कृ+स्य+त। कार्+इट्+स्य+त। कार्+इ+ष्य+ते। कारिष्यते।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) लृट् प्रत्यय, ***'स्यतासी लृलुटोः'*** *(३।१।३३) से 'स्य' विकरण प्रत्यय,* ***'स्यसिच्सीयुट्तासिषु०'*** *(६।४।६२) से चिण्वद्भाव होने से* ***'अचो ञ्णिति'*** *(७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि और 'स्य' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।*

विशेष-धातु के भेद-(१) *जिन धातुओं का भाव (अर्थ) कर्ता में स्थित रहता है उन्हें कर्तृस्थभावक धातु कहते हैं। जैसे-* ***देवदत्तो ग्रामं गच्छति।*** *यहां गमनक्रिया कर्ता देवदत्त में होती है, ग्राम में नहीं, अतः 'गम्' धातु कर्तृस्थभावक है। जिन धातुओं का भाव (अर्थ) कर्म में स्थित रहता है उन्हें कर्मस्थभावक धातु कहते हैं। जैसे-* ***देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति।*** *यहां भेदन क्रिया कर्म काष्ठ में होती है, कर्ता देवदत्त में नहीं, अतः 'भिद्' धातु कर्मस्थभावक है। इस सूत्र से कर्मस्थभावक (कर्मस्थक्रिय) धातुओं का ही कर्ता कर्मवत् होता है, कर्तृस्थभावक (कर्तृस्थक्रिय) धातुओं का नहीं।*

(२) कई वैयाकरण भाव और क्रिया में भेद मानकर धातुओं के कर्तृस्थवाचक, कर्तृस्थक्रिय और कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय ये चार भेद मानते हैं। उनका कहना है कि जो चेष्टारहित है वह भाव है, जैसे- ***आस्ते*** *और जो चेष्टासहित है वह 'क्रिया' कहाती है। यह मन्तव्य पाणिनिमुनि के मन्तव्य के विरुद्ध है क्योंकि उन्होंने* ***'यस्य च भावेन भावलक्षणम्'*** *(२।३।३७) आदि में चेष्टासहित धात्वर्थ को भाव कहा है।*

(२) तपस्तपःकर्मकस्यैव।८८।

प०वि०-तपः ६।१ तपःकर्मकस्य ६।१ एव अव्ययपदम्।

स०-तपः कर्म यस्य स तपःकर्मकः, तस्य तपःकर्मकस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्तरि, लः, कर्मवद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तपःकर्मकस्यैव तपो धातोः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु।

अर्थः-तपःकर्मकस्यैव तपो धातोः कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु।

उदा०-ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति। दुःखयन्तीत्यर्थः। **स** तापसो व्रतैकमनाः स्वर्गाय तपस्तप्यते। तपोऽर्जयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तपःकर्मकस्य) 'तपः' कर्मवाली (एव) ही (तपः) तप (धातोः) धातु का (कर्तरि) कर्ता (कर्मवद्) कर्मवत् होता है (लः) लकारसम्बन्धी कार्यों के करने में।

*उदा०-(तप्) **ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति।** ब्रह्मचर्य आदि तप तपस्वी ब्रह्मचारी को कष्ट देते हैं। **स तापसो व्रतैकमनास्तपस्तप्यते।** वह तपस्वी ब्रह्मचारी अपने व्रत में दत्तचित्त होकर स्वर्ग=सुखविशेष की प्राप्ति के लिये तप को अर्जित करता है।*

*सिद्धि-(१) **ब्रह्मचर्यादीनि तपांसि तापसं तपन्ति।** यहां 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु का कर्म तापस (ब्रह्मचारी) है। **स तापसो व्रतैकमनाः स्वर्गाय तपस्तप्यते।** वह यहां कर्ता बन गया है। इस प्रकार कर्म के कर्ता बन जाने पर कर्मकर्तृवाच्य में 'तप्यते' पद में **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से यक् प्रत्यय और **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।*

*विशेष- **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः'** (१।३।८७) से कर्मस्थ क्रिया के समान क्रियावाले कर्ता को कर्मवद्भाव कहा गया है। तप धातु कर्मस्थक्रिय नहीं अपितु कर्तृस्थक्रिय है। अतः पूर्वोक्त सूत्र से कर्मवद्भाव प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र से विधान किया गया है।*

यक्-चिण्प्रतिषेधः-

(३) न दुहस्नुनमां यक्चिणौ।८६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दुह-स्नु-नमाम् ६।३ यक्-चिणौ १।२।

स०-दुहश्च स्नुश्च नम् च ते-दुहस्नुनमः, तेषाम्-दुहस्नुनमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यक् च चिण् च तौ-यक्चिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्तरि, कर्मवद्, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दुहस्नुनमां धातूनां कर्ता कर्मवल्लकार्येषु परं यक्चिणौ न।

अर्थः-दुहस्नुनमां धातूनां कर्ता कर्मवद् भवति, ल-कार्येषु, किन्तु तत्र कर्मवद्भावव्यपदिष्टौ यक्-चिणौ प्रत्ययौ न भवतः।

उदा०-(दुह्) दुग्धे गौः स्वयमेव। अदुग्ध गौः स्वयमेव। अदोहि गौः स्वयमेव। **(स्नु)** प्रस्नुते गौः स्वयमेव। प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव। **(नम्)** नमते दण्डः स्वयमेव। अनंस्त दण्डः स्वयमेव।

*आर्यभाषा-अर्थ-(दुहस्नुनमाम्) जो दुह, **स्नु और** नम् (धातोः) धातुओं का (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवत्) कर्म के तुल्य हो जाता **है** किन्तु वहां कर्मवद्भाव में कहे (यक्-चिणौ) यक् और चिण् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-(दुह) **दुग्धे गौः स्वयमेव।** गाय स्वयं ही दुही जारही है। **अदुग्ध गौः स्वयमेव।** गाय स्वयं ही दुह गई। **अदोहि गौः स्वयमेव।** पूर्ववत्। (स्नु) **प्रस्नुते गौः स्वयमेव।** गाय स्वयं ही पावस रही है। **प्रास्नोष्ट गौः स्वयमेव।** गाय स्वयं ही पावस गई। (नम्) **नमते दण्डः स्वयमेव।** दण्ड स्वयं ही झुकता है। **अनंस्त दण्डः स्वयमेव।** दण्ड स्वयं ही झुक गया।

सिद्धि-(१) **दुग्धे।** दुह+लट्। दुह+शप्+त। दुह्+०+त। दुघ्+ध। दुग्+धे। दुग्धे।

यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से लट्-प्रत्यय, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'दादेर्धातोर्घः'** (८।२।३२) से दुह् के ह् को घ्, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४७) से 'त' प्रत्यय को ध, 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घ् को जश् (ग्) होता है।

यहां कर्मकर्तरिवाच्य में **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' प्रत्यय नहीं हुआ। 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होगया है।

(२) **अदुग्ध।** दुह+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+त्। अ+दुह्+क्स+त। अ+दुह्+०+त। अ+दुघ्+ध। अ+दुग्+ध। अदुग्ध।

यहां पूर्वोक्त 'दुह' धातु से लुङ्, इस सूत्र से 'चिण्' का प्रतिषेध होने से 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से कर्मकर्तृवाच्य में 'क्स' प्रत्यय होता है। 'लुग् वा दुहदिहलिहामात्मनेपदे दन्त्ये' (७।३।७३) से 'क्स' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

(३) **अदोहि।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+चिण्+त। अ+दोह्+इ+०। अदोहि।

यहां पूर्वोक्त 'दुह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और **'दुहश्च'** (३।१।६३) से विकल्प पक्ष में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में 'चिण्' आदेश हो जाता है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है।

(४) **प्रस्नुते।** प्र-उपसर्ग 'स्नु प्रस्रवणे' (अदा०प०) धातु से पद सिद्ध करें।

(५) **प्रास्नोष्ट।** यहां पूर्वोक्त धातु से इस सूत्र से कर्मकर्तृवाच्य में 'चिण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से लुङ्लकार में 'च्लि' प्रत्यय के स्थान में **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से सिच् आदेश होता है।

(६) **नमते।** 'णम प्रह्वत्वे शब्दे' (भ्वा०प०) कर्मवद्भाव से 'भावकर्मणोः' (१।३।१३) से आत्मनेपद होता है।

(७) **अनंस्त।** पूर्वोक्त 'नम' धातु से इस सूत्र से 'चिण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से पूर्ववत् 'सिच्' प्रत्यय होता है।

श्यन्–

(४) कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च।६०।

प०वि०–कुषि–रजोः ६।२ प्राचाम् ६।३ श्यन् १।१ परस्मैपदम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–कर्तरि, कर्मवत्, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कुषिरजोर्धात्वोः कर्ता कर्मवल्लकार्येषु, श्यन् परस्मैपदं च प्राचाम्।

अर्थः–कुषिरजोर्धात्वोः कर्ता कर्मवद् भवति, ल–कार्येषु, ताभ्यां च परः श्यन् प्रत्ययः परस्मैपदं च भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन। प्राचाम्–ग्रहणं विकल्पार्थम्, न पूजार्थम्, पूजार्थे विकल्पाभावः स्यात्।

उदा०–(**कुष्**) कुष्यति पादः स्वयमेव। कुष्यते पादः स्वयमेव। (**रज्**) रज्यति वस्त्रं स्वयमेव। रज्यते वस्त्रं स्वयमेव।

आर्यभाषा–अर्थ–(कुषिरजोः) जो कुष् और रज् धातु का (कर्तरि) कर्ता है वह (कर्मवद्) कर्मवत् होता है और उनसे परे (श्यन्) श्यन् प्रत्यय (च) और (परस्मैपदम्) परस्मैपद होता है (प्राचाम्) प्राची देश के आचार्यों के मत में। यहां 'प्राचाम्' का ग्रहण विकल्प के लिये है, पूजा के लिये नहीं। जहां पूजा के लिये ग्रहण किया जाता है, वहां विकल्प नहीं होता है।

*उदा०–(कुष्) **कुष्यति पादः स्वयमेव। कुष्यते पादः स्वयमेव।** पांव स्वयं ही खुजला रहा है। (रज्) **रज्यति वस्त्रं स्वयमेव। रज्यते वस्त्रं स्वयमेव।** वस्त्र स्वयं ही रंगा जारहा है।*

*सिद्धि–(१) कुष्यति/कुष्यते। यहां **'कुष निष्कर्षे'** (क्र्या०प०) धातु से कर्मकर्तृवाच्य में इस सूत्र से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में श्यन् प्रत्यय और परस्मैपद होता है। पाणिनिमुनि के मत में पूर्ववत् यक् और आत्मनेपद होता है।*

(२) रज्यति/रज्यते। 'रञ्ज रागे' (दि०उ०) पूर्ववत्।

(३) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में 'श्यन्' प्रत्यय 'यक्' प्रत्यय का अपवाद है और परस्मैपद होना आत्मनेपद का अपवाद है।

इति कर्मवद्भावप्रकरणम्।

अथ धातु-अधिकारः

(१) धातोः।६१।

प०वि०-धातोः ५।१।

अर्थः-धातोरित्यधिकारोऽयम्, आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामस्तद् धातोरिति वेदितव्यम्। वक्ष्यति-**तव्यत्तव्यानीयरः** (३।१।९६) इति। धातोस्ते भवन्ति-कर्त्तव्यम्, करणीयम् इति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) तृतीय अध्याय की समाप्ति तक 'धातोः' का अधिकार है। इससे आगे जो कहेंगे उसे 'धातु से' जानना चाहिये। कहेगा-__तव्यत्तव्यानीयरः__ (३।१।९६)। ये तव्यत्, तव्य, अनीयर् प्रत्यय धातु से होते हैं। जैसे-__कर्त्तव्यम्, करणीयम्।__

__सिद्धि__-__कर्त्तव्यम्, करणीयम्।__ इनकी सिद्धि यथास्थान (३।१।९६) की जायेगी।

उपपदसंज्ञा--

(२) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्।६२।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, उपपदम् १।१ सप्तमीस्थम् १।१।

स०-सप्तम्यां तिष्ठतीति सप्तमीस्थम् (उपपदसमासः)।

अन्वयः-तत्र सप्तमीस्थमुपपदम्।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे सप्तमीस्थं पदम् उपपदसंज्ञकं भवति।

उदा०-**'कर्मण्यण्'** (३।२।१) इति वक्ष्यति। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। नगरं करोतीति नगरकारः। इत्यादि।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(तत्र) उस धातु-अधिकार में जो (सप्तमीस्थम्) सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट पद है उसकी (उपपदम्) उपपद संज्ञा होती है।

उदा०-__कर्मण्यण्__ (३।२।१)। कर्म उपपद हो तो धातु से 'अण्' प्रत्यय होता है। __कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।__ जो कुम्भ (घड़ा) बनाता है वह कुम्भकार होता है। __नगरं करोतीति नगरकारः।__ जो नगर बनाता है वह नगरकार होता है।

__सिद्धि__-__कुम्भकारः।__ कुम्भ+अम्+कृ+अण्। कुम्भ+कृ+अ। कुम्भ+कार्+अ। कुम्भकार+सु। कुम्भकारः।

यहां 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'कुम्भ' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से अण्-प्रत्यय होता है। 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से नित्य उपपद-समास होता है। 'कर्मण्यण्' (३।२।१) में 'कर्मणि' पद सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट है, अतः उसकी उपपद संज्ञा है।

कृत्-संज्ञा–

(३) कृदतिङ्।६३।

प०वि०–कृत् १।१ अतिङ् १।१।

स०–न तिङ् इति अतिङ् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्रातिङ् कृत्।

अर्थः–तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्-संज्ञको भवति।

उदा०–कर्तव्यम्। करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(तत्र) उस धातु-अधिकार में (अतिङ्) तिङ् से भिन्न प्रत्यय की (कृत्) कृत् संज्ञा होती है।

*उदा०-**कर्तव्यम्। करणीयम्।** करना चाहिये।*

*सिद्धि-**कर्तव्यम्।** कृ+तव्यत्। कृ+तव्य। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से कृत्-संज्ञक तव्यत् प्रत्यय होता है। कृत्प्रत्ययान्त 'कर्तव्य' शब्द की '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'स्वौजस्०' (४।१।२) से 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

असरूपप्रत्ययविधिः–

(४) वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्।६४।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, असरूपः १।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०–समानं रूपं यस्य स सरूपः, न सरूप इति असरूपः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। न स्त्री इति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्रासरूपः प्रत्ययो वाऽस्त्रियाम्।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्ययो विकल्पेन बाधको भवति, स्त्री-अधिकारविहितं प्रत्ययं वर्जयित्वा।

'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) इति ण्वुल्-तृचौ प्रत्ययावुत्सर्गौ वर्तेते। **'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'** (३।१।१३५) इति कः प्रत्ययस्तयोरपवादः। सोऽसरूपत्वाद् विकल्पेन बाधको भवति। विकल्पेन सोऽपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-(ण्वुल्) विक्षेपकः। (तृच्) विक्षेप्ता। (क) विक्षिपः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(तत्र) उस धातु-अधिकार में (असरूपः) असमानरूपवाला अपवादरूप प्रत्यय (वा) विकल्प से बाधक होता है (अस्त्रियाम्) स्त्री-अधिकार में विहित प्रत्यय को छोड़कर।

__'ण्वुल्तृचौ'__ (३।१।१३३) से धातुमात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय का उत्सर्ग रूप में विधान किया गया है। __'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'__ (३।१।१३५) से इगुपध धातु से उन दोनों का अपवाद 'क' प्रत्यय है। वह असरूप होने से उन दोनों का विकल्प से बाधक होता है अर्थात् विकल्प से वह भी हो जाता है।

उदा०-__विक्षेपकः__। यहां ण्वुल् प्रत्यय है। __विक्षेप्ता__। यहां तृच् प्रत्यय है। __विक्षिपः__। यहां 'क' प्रत्यय है।

__सिद्धि__-इनकी सिद्धि यथास्थान दर्शायी जायेगी।

अथ कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्

(१) कृत्याः।६५।

प०वि०-कृत्याः १।३।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अर्थः-तत्र=तस्मिन् धात्वधिकारे **'प्राङ् ण्वुलः'** (३।१।१३३) ये प्रत्ययास्ते कृत्यसंज्ञका भवन्ति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-यथास्थानमुदाहरिष्यते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(तत्र) उस धातु-अधिकार में __'ण्वुल्तृचौ'__ (३।१।१३३) से पहले जो प्रत्यय कहे गये हैं उनकी (कृत्याः) कृत्य संज्ञा होती है, यह कृत्य संज्ञा का अधिकार है।

*उदा०-उदाहरण यथास्थान देख लेना। कृत्यसंज्ञक प्रत्यय 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से भाववाच्य और कर्मवाच्य अर्थ में होते हैं, कर्तृवाच्य अर्थ में नहीं। **देवदत्तेन कर्तव्यम्। यज्ञदत्तेन करणीयम्।***

तव्यदादयः-

(१) तव्यत्तव्यानीयरः।९६।

प०वि०-तव्यत्-तव्य-अनीयरः १।३।

स०-तव्यच्च तव्यश्च अनीयर् च ते-तव्यत्तव्यानीयरः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-धातोः परे तव्यत्तव्यानीयरः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(**तव्यत्**) कर्तव्यम्। (**तव्य**) कर्तव्यम्। (**अनीयर्**) करणीयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (तव्यत्तव्यानीयरः) तव्यत्, तव्य, अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(तव्यत्) **कर्तव्यम्।** (तव्य) **कर्तव्यम्।** (अनीयर्) **करणीयम्।** करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **कर्तव्यम्।** कृ+तव्यत्। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से तव्यत् प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से कृ को गुण (कर्) हो जाता है। तव्यत् प्रत्यय के तित् होने से 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से स्वरित स्वर होता है।

*(२) **कर्तव्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से तव्य प्रत्यय है। तव्य प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

*(३) **करणीयम्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'अनीयर्' प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से णत्व होता है। अनीयर् प्रत्यय के 'रित्' होने से 'उपोत्तमं रिति' (६।१।२११) से अन्तिम स्वर से पूर्व स्वर उदात्त होता है।*

यत्-

(१) अचो यत्।९७।

प०वि०-अचः ५।१ **यत्** १।१

अर्थः-अजन्ताद् धातोः **परो यत् प्रत्ययो** भवति। अच इत्युच्यमाने **'येन विधिस्तदन्तस्य'** (१।१।७१) इत्यनेनाजन्तस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(**गा**) गेयम्। (**पा**) पेयम्। (**चि**) चेयम्। (**जि**) जेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच:) अच् जिसके अन्त में है उस (धातो:) धातु से (यत्) यत् प्रत्यय होता है। अच् कहने पर ***'येन विधिस्तदन्तस्य'*** *(१।१।७१) से अजन्त का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(गा) ***गेयम्।*** *गाने योग्य। (पा)* ***पेयम्।*** *पीने योग्य। (चि)* ***चेयम्।*** *चयन करने योग्य। (जि)* ***जेयम्।*** *जीतने योग्य।*

सिद्धि-(१) गेयम्। *गा+यत्। गी+य। गे+य। गेय+सु। गेयम्।*

यहां 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। ***'आदेच उपदेशेऽशिति'*** *(६।१।४४) से गै को आत्त्व,* ***'ईद् यति'*** *(६।४।६५) से ईत्त्व और* ***'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'*** *(७।३।८४) से गुण होता है।*

(२) ***'पा पाने'*** *(भ्वा०प०)।* ***'चिञ् चयने'*** *(स्वा०उ०)।* ***'जि जये'*** *(भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।*

विशेष- *यत् प्रत्यय में तकार-अनुबन्ध* ***'यतोऽनाव:'*** *(६।१।२००) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।*

(२) पोरदुपधात्।६८।

प०वि०-पो: ५।१ अद्-उपधात् ५।१।

स०-अद् उपधा यस्य सोऽदुपध:, तस्मात्-अदुपधात् (बहुव्रीहि:)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-पोरदुपधाद् धातोर्यत्।

अर्थ:-पवर्गान्ताद् अदुपधाद् धातो: परो यत् प्रत्ययो भवति। 'पु:' इत्युच्यमाने **'येन विधिस्तदन्तस्य'** (१।१।७१) इत्यनेन पवर्गान्तस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-(**शप्**) शप्यम्। (**लभ्**) लभ्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पो:) पवर्ग जिसके अन्त में है और (अदुपधात्) अकार जिसकी उपधा में है उस (धातो:) धातु से (यत्) यत् प्रत्यय होता है। 'पु' कहने पर ***'येन विधिस्तदन्तस्य'*** *(१।१।७१) से पवर्गान्त का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(शप्) ***शप्यम्।*** *शाप के योग्य। (लभ्)* ***लभ्यम्।*** *प्राप्त करने योग्य।*

सिद्धि-(१) शप्यम्। *शप्+यत्। शप्+य। शप्य+सु। शप्यम्।*

यहां ***'शप आक्रोशे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। यहां* ***'ऋहलोर्ण्यत्'*** *(३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।*

(२) ***लभ्यम्। 'डुलभष् प्राप्तौ'*** *(भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

(३) शकिसहोश्च।९९।

प०वि०-शकि-सहो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-शकिश्च सह् च तौ शकिसहौ, तयो:-शकिसहो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शकिसहिभ्यां च धातुभ्यां यत्।

अर्थः-शकिसहिभ्यां धातुभ्यां परो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**शक्**) शक्यम्। (**सह्**) सह्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(शकिसहो:) शक् और सह् (धातो:) धातु से परे (यत्) प्रत्यय होता है।

*उदा०-(शक्) **शक्यम्।** हो सकने योग्य। (सह्) **सह्यम्।** सहन करने योग्य।*

*सिद्धि-(१) **शक्यम्।** 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यहां 'शक विभाषितो मर्षणे' (दि०प०) धातु का भी ग्रहण किया जाता है।*

*(२) **सह्यम्।** 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)। 'षह शक्यार्थे' (दि०प०)।*

(४) गदमदचरयमश्चानुपसर्गे।१००।

प०वि०-गद-मद-चर-यमः ५।१ च अव्ययपदम्, अनुपसर्गे ७।१।

स०-गदश्च मदश्च चरश्च यम् च एतेषां समाहारो गदमदचरयम्, तस्माद्-गदमदचरयमः (समाहारद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे गदमदचरयमश्च धातोर्यत्।

अर्थः-अनुपसर्गेभ्यः=उपसर्गरहितेभ्यो गदमदचरयमिभ्यो धातुभ्यः परो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**गद्**) गद्यम्। (**मद्**) मद्यम्। (**चर्**) चर्यम्। (**यम्**) यम्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गेभ्यः) उपसर्ग से रहित (गदमदचरयमः) गद्, मद्, चर्, यम् (धातो:) धातुओं से परे (यत्) यत् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(गद्) **गद्यम्।** बोलने योग्य। (मद्) **मद्यम्।** हर्ष के योग्य। (चर्) **चर्यम्।** गति और भक्षण के योग्य। (यम्) **यम्यम्।** उपराम के योग्य।*

*सिद्धि-(१) **गद्यम्।** 'गद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।*

(२) 'मदी हर्षे' (दि०प०)। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) 'यमु उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।

निपातनम् (यत्)–

(५) अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु।१०१।

प०वि०-अवद्य-पण्य-वर्याः १।३ गर्ह्य-पणितव्य-अनिरोधेषु ७।३।

स०-अवद्यं च पण्यं च वर्या च ताः-अवद्यपण्यवर्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। गर्ह्यं च पणितव्यं च अनिरोधश्च ते-गर्ह्यपणितव्यानिरोधाः, तेषु-गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अवद्यपण्यवर्याः शब्दा यथासंख्यं गर्ह्यपणितव्यानिरोधेष्वर्थेषु यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-अवद्यम्=गर्ह्यम्। पापमित्यर्थः। पण्यम्=पणितव्यम्। पण्यः कम्बलः क्रेतव्य इत्यर्थः। पण्या गौः, क्रेतव्या इत्यर्थः। वर्या इति स्त्रियां निपात्यते, अनिरोधश्चेद् भवति। शतेन वर्या। सहस्रेण वर्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(अवद्यपण्यवर्याः) अवद्य, पण्य, वर्या शब्द यथासंख्य (गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु) गर्ह्य, पणितव्य अनिरोध अर्थ में (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित किये जाते हैं।

*उदा०-**अवद्यम्=गर्ह्यम्।** निन्दा के योग्य पापाचरण। **पण्यम्=पणितव्यम्। पण्यः कम्बलः।** खरीदने योग्य कम्बल। **पण्या गौः।** खरीदने योग्य गाय। वर्या, यह शब्द स्त्रीलिङ्ग में निपातित है, यदि अनिरोध अर्थ हो। अनिरोध=प्रतिबन्धरहित। (बिना रोक-टोक) **शतेन वर्या। सहस्रेण वर्या।** बहुत जनों से सेवन करने योग्य नारी (वेश्या)।*

*सिद्धि-(१) **अवद्यम्।** न+वद्+यत्। अ+वद्+य। अवद्य+सु। अवद्यम्।*

यहां नञ्पूर्वक 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से गर्ह्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'वदः सुपि क्यप् च' (३।१।१०६) से क्यप् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) पण्यम्। 'पण व्यवहारे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र पणितव्य (क्रेतव्य) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था।

(३) वर्या। 'वृङ् सम्भक्तौ' (स्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनिरोध (अप्रतिबन्ध) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' (३।१।१०९) से क्यप् प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (यत्)–

(६) वह्यं करणम्।१०२।

प०वि०–वह्यम् १।१ करणम् १।१।

अनु०–'यत्' इत्यनुवर्तते।

अर्थः–करणे कारके वह्यमिति यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०–वहत्यनेन इति वह्यम्, शकटमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणम्) करण कारक अर्थ में (वह्यम्) वह्य शब्द यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।

*उदा०-**वहत्यनेन इति वह्यम्, शकटमित्यर्थः।** देशान्तर में पहुंचने का साधन शकट (गाड़ी) आदि।*

*सिद्धि-**वह्यम्।** 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में यत् प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

निपातनम् (यत्)–

(७) अर्यः स्वामिवैश्ययोः।१०३।

प०वि०–अर्यः १।१ स्वामि-वैश्ययोः ७।२।

स०–स्वामी च वैश्यश्च तौ स्वामिवैश्यौ, तयोः-स्वामिवैश्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–स्वामिवैश्ययोरर्थयोरर्य इति यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०–अर्यः स्वामी। अर्यो वैश्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वामिवैश्ययोः) स्वामी और वैश्य अर्थ में (अर्यः) अर्य शब्द (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।

*उदा०-**अर्यः स्वामी।** मालिक। **अर्यो वैश्यः।** व्यापारी।*

सिद्धि-अर्यः । ऋ+यत् । अर्+य । अर्य+सु । अर्यः ।

*'ऋ गतौ' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में यत्-प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था। स्वामी और वैश्य अर्थ से अन्यत्र 'ण्यत्' प्रत्यय होता है-**आर्यो ब्राह्मणः**।*

निपातनम् (यत्)–

(८) उपसर्या काल्या प्रजने।१०४।

प०वि०-उपसर्या १।१ काल्या १।१ प्रजने ७।१। प्राप्तकाला=काल्या। **'तदस्य प्राप्तम्'** (५।१।१०३) इत्यनुवर्तमाने **'कालाद् यत्'** (५।१।१०६) इति कालशब्दाद् यत् प्रत्ययः। प्रथमगर्भग्रहणम्=प्रजनम्, तस्मिन्-प्रजने।

अर्थः-प्रजने=प्रथमगर्भग्रहणेऽर्थे उपसर्या इति यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, प्रथमगर्भग्रहणे काल्या=प्राप्तकाला चेत् सा भवति।

उदा०-उपसर्या गौः। उपसर्या वडवा। गर्भाधानार्थं वृषभेण, अश्वेन वा उपगन्तुं योग्या, इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(प्रजने) प्रथम गर्भग्रहण अर्थ में (उपसर्या) उपसर्या पद (यत्) यत् प्रत्ययान्त निपातित है, (काल्या) यदि उसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया हो।*

*उदा०-**उपसर्या गौः**। वह गाय जिसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया है। **उपसर्या वडवा**। वह घोड़ी जिसका प्रथम गर्भग्रहण करने का समय आगया है।*

*सिद्धि-**उपसर्या**। उप+सृ+यत्। उप+सर्+य। उपसर्य+टाप्। उपसर्या+सु। उपसर्या।*

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम गर्भग्रहण काल में इस सूत्र से यत्-प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (यत्)–

(९) अजर्यं सङ्गतम्।१०५।

प०वि०-अजर्यम् १।१ सङ्गतम् १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-संगते=संगमने कर्तरि कारकेऽर्थे 'अजर्यम्' इति यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०-न जीर्यतीति-अर्जयम्। अजर्यमार्यसङ्गतम्। अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सङ्गतम्) संगमन=संगति अर्थ में (अजर्यम्) अजर्य शब्द (यत्) यत्-प्रतययान्त निपातित है।

*उदा०-**न जीर्यतीति-अजर्यम्।** जो जीर्ण नहीं होता है, वह 'अजर्य' कहाता है। **अजर्यमार्यसङ्तम्।** पुरानी न होनेवाली आर्यों की संगति। **अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम्।** हमारी संगति पुरानी न होनेवाली हो, सदा नयी रहे।*

सिद्धि-(१) अजर्यम्। न+जॄ+यत्। अ+जर्+य। अजर्य+सु। अजर्यम्।

यहां नञ्पूर्वक 'जॄष् वयोहानौ' (दिवा०प०) धातु से संगत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय निपातित है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय प्राप्त था।

(२) सङ्गतम्। यहां 'नपुंसके भावे क्तः' (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। सङ्गतम्=सङ्गमनम्।

यत्+क्यप्-

(१०) वदः सुपि क्यप् च।१०६।

प०वि०-वदः ५।१ सुपि ७।१ क्यप् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-यत्, निपातनपञ्चकमुल्लङ्घ्य **'अनुपसर्गे'** (३।१।१००) इति चानुवर्तते। अग्रिमसूत्राच्च 'भावे' इत्यनुकर्षणीयम्।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि वदो धातोर्भावे यत् क्यप् च।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे वदो धातोः परो भावेऽर्थे यत् क्यप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**यत्**) ब्रह्मवद्यम्। सत्यवद्यम्। (**क्यप्**) ब्रह्मोद्यम्। सत्योद्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वदः) वद् धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (यत्) यत् (च) और (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(यत्) **ब्रह्मवद्यम्।** ब्रह्म (वेद) का कथन। **सत्यवद्यम्।** सत्य का कथन। (क्यप्) **ब्रह्मोद्यम्। सत्योद्यम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **ब्रह्मवद्यम्।** ब्रह्मन्+ङस्+वद्+यत्। ब्रह्म+वद्+य। ब्रह्मवद्य+सु। ब्रह्मवद्यम्।*

*यहां 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर '**वद व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सत्यवद्यम्।***

*(२) **ब्रह्मोद्यम्।** ब्रह्मन्+ङस्+वद्+क्यप्। ब्रह्म+वद्+य। ब्रह्म+उ अ द्+य। ब्रह्म+उद्+य। ब्रह्मोद्य+सु। ब्रह्मोद्यम्।*

*यहां ब्रह्म सुबन्त उपपद होने पर पूर्वोक्त 'वद्' धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् के कित् होने से '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से 'वद्' धातु को सम्प्रसारण, '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप और '**आद्गुणः**' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश होता है।*

***विशेष**-क्यप् प्रत्यय में 'प्' अनुबन्ध '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर के लिये है।*

क्यप्-

(१) भुवो भावे।१०७।

प०वि०-भुवः ५।१ भावे ७।१।

अनु०-अनुपसर्गे, सुपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि भुवो धातोर्भावे क्यप्।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे भुवो धातोः परो भावेऽर्थे क्यप्-प्रत्ययो भवति।

उदा० (भू) ब्रह्मभूयं गतः। देवभूयं गतः। ब्रह्मभावं देवभावं वा प्राप्त इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(भू) ब्रह्मभूयं गतः।** ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ। **देवभूयं गतः।** देवत्व को प्राप्त हुआ।*

*सिद्धि-(१) **ब्रह्मभूयम्।** ब्रह्मन्+ङस्+भू+क्यप्। ब्रह्म+भू+य। ब्रह्मभूय+सु। ब्रह्मभूयम्।*

*यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर इस सूत्र से भाव अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् के कित् होने से '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का '**क्ङिति च**' (१।१।५) से निषेध हो जाता है। ऐसे ही-**देवभूयम्।***

(२) हनस्त च।१०८।

प०वि०-हनः ५।१ त १।१ (लुप्तप्रथमा) च अव्ययपदम्।

अनु०-अनुपसर्गे सुपि क्यप् भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे सुपि हनो धातोर्भावे क्यप्, तश्च।

अर्थः-अनुपसर्गे=उपसर्गवर्जिते सुबन्ते उपपदे हनो धातोः परो भावेऽर्थे क्यप् प्रत्ययो भवति, तकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-ब्रह्मणो हननमिति ब्रह्महत्या। वृत्रस्य हननमिति वृत्रहत्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (भावे) भाव अर्थ में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (च) और हन् को (त) तकार अन्तादेश होता है।

*उदा०-**ब्रह्मणो हननमिति ब्रह्महत्या।** ब्रह्म का हनन। वेदाज्ञा का उल्लंघन। **वृत्रस्य हननमिति वृत्रहत्या।** वृत्र राक्षस का हनन (वध)। अविद्या-अन्धकार नाश।*

*सिद्धि-**ब्रह्महत्या।** ब्रह्मन्+ङस्+हन्+क्यप्। ब्रह्म+हन्+य। ब्रह्म+हत्+य। ब्रह्महत्य+टाप्। ब्रह्महत्या+सु। ब्रह्महत्या।*

यहां ब्रह्म सुबन्त उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय और 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५१) से 'हन्' के अन्त्य 'न्' को 'त्' आदेश होता है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

क्यप्-

(३) एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्।१०९।

प०वि०-एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः ५।१ क्यप् १।१।

स०-एतिश्च स्तुश्च शास् च वृश्च दृश्च जुष् च एतेषां समाहार एतिस्तुशास्वृदृजुष्, तस्मात्-एतिस्तुशास्वृदृजुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-एतिस्तुशास्वृदृजुषो धातोः क्यप्।

अर्थः-एतिस्तुशास्वृदृजुषिभ्यो धातुभ्यः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(एति=इण्)** इत्यः। **(स्तु)** स्तुत्यः। **(शास्)** शिष्यः। **(वृ)** वृत्यः। **(दृ)** आदृत्यः। **(जुष्)** जुष्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(एतिस्तुशास्वृदृजुषः) एति=इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् (धातोः) धातुओं से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(एति=इण्) इत्यः। प्राप्ति के योग्य। (स्तु) स्तुत्यः। स्तुति के योग्य। (शास्) शिष्यः। शिक्षा करने योग्य। (वृ) वृत्यः। स्वीकार करने योग्य। (दृ) आदृत्यः। आदर करने योग्य। (जुष्) जुष्यः। प्रीति और सेवा करने योग्य।

*सिद्धि-(१) इत्यः। यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् प्रत्यय के पित् कृत् होने से **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से 'इण्' धातु को 'तुक्' आगम होता है।*

(२) 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०प०)। 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०आ०)। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०)। 'दृङ् आदरे' (तु०आ०)। 'जुषी प्रतिसेवनयोः' (तु०आ०) धातुओं से शेष पद सिद्ध करें।

*(३) क्यप् प्रत्यय की अनुवृत्ति होने पर भी फिर 'क्यप्' प्रत्यय का ग्रहण बाधक प्रत्यय के बाधन के लिये है। अतः **'ओरावश्यके'** (३।१।१२५) से प्राप्त 'ण्यत्' प्रत्यय को बाधकर 'स्तु' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय ही होता है-**अवश्यस्तुत्यः।***

(४) ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः।११०।

प०वि०-ऋदुपधात् ५।१ च अव्ययपदम् अक्लृपि-चृतेः ५।१।

स०-ऋत् उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्मात्-ऋदुपधात् (बहुव्रीहिः)। क्लृपिश्च चृतिश्च एतयोः समाहारः क्लृपिचृतिः, न क्लपिचृतिरिति अक्लृपिचृतिः, तस्मात्-अक्लृपिचृतेः (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधाच्च धातोः क्यप्, अक्लृपिचृतेः।

अर्थः-ऋकारोपधाद् धातोरपि परः क्यप् प्रत्ययो भवति, क्लृपिचृती धातू वर्जयित्वा।

उदा०-**(वृत्)** वृत्यम्। **(वृध्)** वृध्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋदुपधात्) ऋकार उपधावाली (धातोः) धातु से (च) भी परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (अक्लृपिचृतेः) क्लृप् और चृत् धातु को छोड़कर।

उदा०-(वृत्) वृत्यम्। बरतने योग्य। (वृध्) वृध्यम्। बढ़ने योग्य।

*सिद्धि-(१) वृत्यम्। 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) इस ऋकार उपधावाली धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

(२) वृध्यम्। 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

विशेष- 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०उ०) धातु के 'ऋ' के रेफांश को 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से 'र' आदेश होने पर 'कृप्' धातु 'क्लृप्' बन जाती है। 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से उसे असिद्ध मानने पर यह 'क्लृप्' धातु ऋकारोपध समझी जाती है-कृप्।

(५) ई च खनः। १११।

प०वि०-ई १।१ च अव्ययपदम्, खनः ५।१।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-खनो धातोः क्यप् ई च।

अर्थः-खनो धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति, ईकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-(**खन्**) खेयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(खनः) खन् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (च) और खन् को (ई) ईकार अन्तादेश होता है।

उदा०-(खन्) खेयम्। खोदने योग्य।

सिद्धि-खेयम्। खन्+क्यप्। ख ई+य। खे+य। खेय+सु। खेयम्।

यहां 'खनु अवदारणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय और 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५१) से 'खन्' के अन्त्य न् को 'ईकार' आदेश होता है। 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुणरूप एकादेश (ए) हो जाता है।

(६) भृञोऽसंज्ञायाम्।११२।

प०वि०-भृञः ५।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०-न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भृञो धातोः क्यप् असंज्ञायाम्।

अर्थः-भृञो धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां विषये।

उदा०-(**भृञ्**) भृत्यः कर्मकरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भृञः) भृञ् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) संज्ञा विषय को छोड़कर।

उदा०-(भृञ्) भृत्यः कर्मकरः। नौकर।

सिद्धि-भृत्यः । भृ+क्यप् । भृ+तुक्+य । भृ+त्+य । भृत्य+सु । भृत्यः ।

*यहां 'भृञ् भरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से असंज्ञा विषय में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६ ।१ ।६९) से 'भृ' को 'तुक्' आगम होता है।*

(७) मृजेर्विभाषा ।११३।

प०वि०-मृजे: ५ ।१ विभाषा १ ।१ ।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-मृजेर्धातोर्विभाषा क्यप् ।

अर्थः-मृजेर्धातोः परो विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-**(मृज्)** परिमृज्यः (क्यप्) । परिमार्ग्यः (ण्यत्) ।

आर्यभाषा-अर्थ-(मृजेः) मृज् (धातोः) धातु से (विभाषा) विकल्प से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है। पक्ष में ण्यत् हो जाता है।

*उदा०-**(मृज्) परिमृज्यः (क्यप्) । परिमार्ग्यः (ण्यत्)** । परिशोधन करने योग्य ।*

*सिद्धि-(१) **परिमृज्यः** । यहां परि उपसर्गपूर्वक **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। क्यप् प्रत्यय के कित् होने से **'मृजेर्वृद्धिः'** (७ ।२ ।११४) से प्राप्त वृद्धि का **'क्ङिति च'** (१ ।१ ।५) से प्रतिषेध हो जाता है।*

*(२) **परिमार्ग्यः** । परि+मृज्+ण्यत् । परि+मृग्+य । परि+मार्ग्+य । परिमार्ग्य+सु । परिमार्ग्यः ।*

*यहां परि उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से इस सूत्र विकल्प पक्ष में **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३ ।१ ।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७ ।३ ।५२) से कुत्व और **'मृजेर्वृद्धिः'** (७ ।२ ।११४) से 'मृज्' धातु को वृद्धि होती है।*

*(३) मृज् धातु के ऋदुपध होने से **'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः'** (३ ।१ ।११०) से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था, इस सूत्र से विकल्प विधान किया गया है।*

निपातनम् (क्यप्)-

(८) राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ।११४।

प०वि०-राजसूय-सूर्य-मृषोद्य-रुच्य-कुप्य-कृष्टपच्य-अव्यथ्याः १ ।३ ।

स०-राजसूयश्च सूर्यश्च मृषोद्यं च रुच्यश्च कुप्यं च कृष्टपच्याश्च अव्यथ्यश्च ते-राजसूय०अव्यथ्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-राजसूय-सूर्य-मृषोद्य-रुच्य-कुप्य-कृष्टपच्य-अव्यथ्याः शब्दाः क्यप्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-राजा सूयते यत्र स क्रतुः राजसूयः। सरति, सुवति वा सूर्यः। मृषोद्यम्। रोचतेऽसौ रुच्यः। कुप्यम्। कृष्टे पच्यते इति कृष्टपच्याः। न व्यथते इति अव्यथ्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(राजसूय०अव्यथ्याः) राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य शब्द (क्यप्) क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**राजसूयः।** वह यज्ञ जिसमें किसी को राजा बनाया जाता है। **सूर्यः।** सूरज। **मृषोद्यम्।** मिथ्या वचन। **रुच्यः।** सुन्दर। **कुप्यम्।** सोना और चांदी से भिन्न धन का नाम। **कृष्टपच्याः।** हल चलाई हुई भूमि में स्वयं पकनेवाली ओषधियां। **अव्यथ्यः।** व्यथित न होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **राजसूय।** राजन्+सु+सुञ्+क्यप्। राजन्+सु+य। राज+सू+य। राजसूय+सु। राजसूयः।*

*यहां राजन् सुबन्त उपपद होने पर **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्यप्-प्रत्यय, **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से प्राप्त 'तुक्' आगम का अभाव और सु को दीर्घत्व निपातन से होता है।*

*(१) (क) **सूर्यः।** सृ+क्यप्। सृ+य। सुर्+य। सूर्+य। सूर्य+सु। सूर्यः।*

*यहां **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय निपातित है। **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। 'सृ' के 'ऋ' को निपातन से 'उत्व' होता है।*

*(ख) **सूर्यः।** सू+क्यप्। सू+रुट्+य। सू+र्+य। सूर्य+सु। सूर्यः।*

*यहां **'षू प्रेरणे'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय निपातित है। **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था। 'सू' धातु को 'रुट्' आगम निपातन से होता है।*

*(३) **मृषोद्यम्।** मृषा+सु+वद्+क्यप्। मृषा+वद्+य। मृषा+उ अ द्+य। मृषा+उ द्+य। मृषोद्य+सु। मृषोद्यम्।*

*यहां मृषा सुबन्त उपपद होने पर **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय होता है। **'वदः सुपि क्यप् च'** (३।१।१०६) से विकल्प से 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'वद्' को सम्प्रसारण और **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप होता है।*

(४) रुच्यः। रुच्+क्यप्। रुच्+य। रुच्य+सु। रुच्यः।

यहां 'रुच् दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

(५) कुप्यम्। गुप्+क्यप्। गुप्+य। कुप्+य। कुप्य+सु। कुप्यम्।

यहां 'गुप् गोपने' (भ्वा०प०) 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है और निपातन से धातु के 'ग्' को 'क्' होता है।

(६) कृष्टपच्याः। कृष्ट+ङि+पच्+क्यप्। कृष्ट+पच्+य। कृष्टपच्य+जस्। कृष्टपच्याः।

यहां कृष्ट सुबन्त उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्मकर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है।

(७) अव्यथ्यः। न+व्यथ्+क्यप्। अ+व्यथ्+य। अव्यथ्य+सु। अव्यथ्यः।

यहां 'व्यथ भयसंचलनयोः' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

निपातनम् (क्यप्)–

(६) भिद्योद्ध्यौ नदे।११५।

प०वि०–भिद्य-उद्ध्यौ १।२ नदे ७।१।

स०–भिद्यश्च उद्ध्यश्च तौ–भिद्योध्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–भिद्य-उद्ध्यौ शब्दौ क्यप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, नदेऽभिधेये।

उदा०–भिनत्ति कूलमिति भिद्यः (नदी)। उज्झत्युदकमिति उद्ध्यः (नदी)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भिद्योद्ध्यौ) भिद्य और उद्ध्य शब्द (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (नदे) नदी अर्थ में।

*उदा०-**भिनत्ति कूलमिति भिद्यः।** वह नदी जो किनारे को तोड़ती है। उज्झत्युदकमिति उद्ध्यः। वह नदी जो जल को छोड़ती है।*

सिद्धि-(१) भिद्यः। भिद्+क्यप्। भिद्+य। भिद्य+सु। भिद्यः।

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था।

(२) उद्ध्यः। उज्झ्+क्यप्। उज्ध्+य। उद्ध्+य। उद्ध्य+सु। उद्ध्यः।

यहां 'उज्झ उत्सर्गे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'क्यप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्वुल्' अथवा 'तृच्' प्रत्यय प्राप्त था। निपातन से उज्झ् के झ् को ध् आदेश होता है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से ज् को जश् (द्) हो जाता है।

नदी-उद्ध्य का वर्तमान नाम 'उझ' है। यह जम्मू इलाके के जसरोटा जिले में होती हुई, कुछ दूर पंजाब में बहकर गुरदासपुर जिले में रावी के दाहिनी किनारे पर मिल गई है। उझ के लगभग १५ मील पच्छिम जम्मू प्रदेश से ही बई नाम की दूसरी नदी गुरदासपुर जिले में ही रावी में मिली है। यही प्राचीन भिद्य ज्ञात होती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५२-५३)।

कवि कालिदास ने राम और लक्ष्मण की जोड़ी की उपमा भिद्य और उद्ध्य नदी से रघुवंश में दी है–

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं,
शैशवाच्चापलमप्यशोभत।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययो-
र्नामसदृशं विचेष्टितम्।। (११।८)

निपातनम् (क्यप्)–

(१०) पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे।११६।

प०वि०-पुष्य-सिध्यौ १।२ नक्षत्रे ७।१।

स०-पुष्यश्च सिध्यश्च तौ पुष्यसिध्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-पुष्यसिध्यौ शब्दौ क्यप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, नक्षत्रेऽभिधेये।

उदा०-पुष्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-पुष्यः। सिध्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-सिध्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुष्यसिध्यौ) पुष्य और सिध्य शब्द (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (नक्षत्रे) नक्षत्र अर्थ में।

*उदा०-**पुष्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-पुष्यः।** वह नक्षत्र जिसमें पदार्थ पुष्ट होते हैं। **सिध्यन्त्यर्था अस्मिन्निति-सिध्यः।** वह नक्षत्र जिसमें अर्थ सिद्ध होते हैं।*

*सिद्धि-पुष्यः, सिध्यः। यहां 'पुष पुष्टौ' (दि०प०) तथा 'सिधु संराद्धौ' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में क्यप् प्रत्यय है। **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) से ल्युट् प्रत्यय प्राप्त था।*

विशेष-नक्षत्र-अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में एक नक्षत्र का नाम पुष्य है। सिध्य शब्द पुष्य नक्षत्र का पर्यायवाची है। पुष्य और सिध्य नक्षत्र को तिष्य भी कहते हैं। पुष्य नाम अधिक प्रसिद्ध है।

निपातनम् (क्यप्)–

(११) विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु।११७।

प०वि०–विपूय-विनीय-जित्याः १।३ मुञ्ज-कल्क-हलिषु ७।३।

स०–विपूयश्च विनीयश्च जित्यश्च ते-विपूयविनीयजित्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मुञ्जश्च कल्कश्च हलिश्च ते-मुञ्जकल्कहलयः तेषु-मुञ्जकल्कहलिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-विपूय-विनीय-जित्याः शब्दा यथासंख्यं मुञ्ज-कल्क-हलिष्वर्थेषु क्यप्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०–विपूयः=मुञ्जः। विनीयः=कल्कः। जित्यः=हलिः। बृहद् हलं हलिः, इति न्यासकारः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलं काष्ठं हलिरित्युच्यते। इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विपूयविनीयजित्याः) विपूय, विनीय, जित्य शब्द यथासंख्य (मुञ्जकल्कहलिषु) मुञ्ज, कल्क, हलि अर्थों में (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**विपूयः=मुञ्जः।** कुशा (मूंज)। **विनीयः=कल्कः।** औषध आदि की गाध। **जित्यः=हलिः।** बड़ा हल। यह बल से वश में करने योग्य होने से जित्य कहाता है। ईख बोने के लिये हल के मुख के दोनों ओर गंडीरी बांधकर जो बड़ा हल बनाया जाता है, उसे 'हलि' कहते हैं।*

*सिद्धि-(१) **विपूयः**- यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'पूङ् पवने'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **विनीयः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(३) **जित्यः।** यहां **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से 'जि' धातु को 'तुक्' आगम होता है। **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

(१२) प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि।११८।

प०वि०-प्रति-अपिभ्याम् ५।२ ग्रहेः ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-प्रतिश्च अपिश्च तौ प्रत्यपी, ताभ्याम्-प्रत्यपिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रत्यपिभ्यां ग्रहेर्धातोः क्यप्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रति-अपिपूर्वाद् ग्रहिधातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(प्रति) **मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्** (तै०ब्रा० १।३।२।७)। (अपि) **तस्मान्नापिगृह्यम्** (का०सं० ३।१।११८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (प्रत्यपिभ्याम्) प्रति और अपि उपसर्गपूर्वक (ग्रहेः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(प्रति) **मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्**। पागल की बात नहीं माननी चाहिये। **तस्मान्नापिगृह्यम्**। उस कारण से स्वीकार नहीं करना चाहिये।*

*सिद्धि-**प्रतिगृह्यम्**। यहां प्रति उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के 'कित्' होने से '**ग्रहिज्यावयि०**' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है। 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि समास होता है। ऐसे ही-**अपिगृह्यम्**।*

(१३) पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च।११९।

प०वि०-पद-अस्वैरि-बाह्या-पक्ष्येषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-पदं च अस्वैरी च बाह्या च पक्ष्यश्च ते-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्याः, तेषु-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप्, ग्रहेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ग्रहेर्धातोः क्यप्।

अर्थः-पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु चार्थेषु ग्रहि-धातोः परः क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**पदम्**) प्रगृह्यं पदम्। यस्य प्रगृह्यसंज्ञा विहिता तत्। अवगृह्यं पदम्। यस्यावग्रहः क्रियते तत्। (**अस्वैरी**) अस्वैरी=परतन्त्रः।

गृह्यका इमे। गृहीतका इत्यर्थः। **(बाह्या)** ग्रामगृह्या सेना। ग्रामाद् बहिर्भूता इत्यर्थः। नगरगृह्या सेना। नगराद् बहिर्भूता इत्यर्थः। **(पक्ष्यः)** वासुदेवगृह्याः। कृष्णपक्षाश्रिता इत्यर्थः। अर्जुनगृह्याः। अर्जुनपक्षाश्रिता इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु) पद, अस्वैरी=परतन्त्र, बाह्या, पक्ष्य अर्थों में (ग्रहेः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(पदम्) **प्रगृह्यं पदम्।** वह पद जिसकी प्रगृह्य संज्ञा अष्टा० (१।१।११-१८) की गई है। **अवगृह्यं पदम्।** वह पद जिसका अवग्रह (विच्छेद) किया गया है। जैसे समास वाक्य में 'राज्ञः पुरुषः' में पदों का अवग्रह है। (अस्वैरी) **गृह्यका इमे शुकाः।** ये पञ्जर आदि के बन्धन से पराधीन बनाये हुये शुक आदि हैं। यहां 'अनुकम्पायाम्' (५।३।७६) से कन्-प्रत्यय है। (बाह्या) **ग्रामगृह्या सेना।** वह सेना जो गांव से बाहर होगई है। **नगरगृह्या सेना।** वह सेना जो शहर से बाहर होगई है। (पक्ष्य) **वासुदेवगृह्याः।** वासुदेव (कृष्ण) के पक्ष के लोग। **अर्जुनगृह्याः।** अर्जुन के पक्ष के लोग।*

*सिद्धि-**प्रगृह्यम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् सम्प्रसारण और समास होता है। यहां ग्रह धातु का अर्थ असन्निकर्ष है। प्रगृह्य संज्ञा में स्वरों का सन्निकर्ष नहीं होता है। इसके सहाय से शेष पदों की सिद्धि समझ लेवें।*

(१४) विभाषा कृवृषोः।१२०।

प०वि०-विभाषा १।१ कृ-वृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-कृश्च वृष् च तौ कृवृषौ, तयोः-कृवृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कृवृषिभ्यां धातुभ्यां विभाषा क्यप्।

अर्थः-कृवृषिभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कृ) कृत्यम् (क्यप्)। कार्यम् (ण्यत्)। **(वृष्)** वृष्यम् (क्यप्)। वर्ष्यम् (ण्यत्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृवृषोः) कृ और वृष् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कृ) **कृत्यम्। कार्यम्।** करने योग्य। (वृष्) **वृष्यम्। वर्ष्यम्।** वीर्य सेचन करने के योग्य। बल-वीर्य वर्धक। बरसने योग्य।*

*सिद्धि-(१) **कृत्यम्।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' को 'तुक्' आगम होता है। यहां 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से नित्य 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था, इससे विकल्प विधान किया गया है।*

*(२) **कार्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।*

*(३) **वृष्यम्।** यहां 'वृषु सेचने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'क्यप्' प्रत्यय के कित् होने से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च'(१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः' (३।१।११०) से नित्य 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। इससे विकल्प विधान किया गया है।*

*(४) **वर्ष्यम्।** यहां पूर्वोक्त वृष् धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से विकल्प पक्ष में 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।*

निपातनम् (क्यप्)–

(१५) युग्यं च पत्रे।१२१।

प०वि०-युग्यम् १।१ च अव्ययपदम्, पत्रे ७।१। पतति=गच्छत्यनेन इति पत्रम्, तस्मिन् पत्रे। पत्रम्=वाहनमित्यर्थः।

अनु०-क्यप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-पत्रेऽर्थे युग्यमिति पदं क्यप्-प्रत्ययान्तं निपात्यते।

उदा०-युग्यो गौः। युग्योऽश्वः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(पत्रे) वाहन अर्थ में (युग्यम्) युग्य पद (क्यप्) क्यप्-प्रत्ययान्त निपातित है।

*उदा०-**युग्यो गौः।** गाड़ी में जोड़ने योग्य बैल। **युग्योऽश्वः।** तांगे आदि में जोड़ने योग्य घोड़ा।*

*सिद्धि-**युग्यः।** यहां 'युजिर् योगे' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है और निपातन से कुत्व होता है। 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

निपातनम् (ण्यत्)–

(१५) अमावस्यदन्यतरस्याम्।१२२।

प०वि०-अमावस्यत् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अत्र तकारानुबन्धाद् ण्यत्-प्रत्ययोऽभिसम्बध्यते, न क्यप्।

अर्थः-अमावस्यदिति ण्यत्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, तस्मिन् सति विकल्पेन वृद्धिर्भवति।

उदा०-अमा=सह वसतो यस्मिन् काले सूर्याचन्द्रमसाविति सा-अमावस्या, अमावास्या वा (तिथिः)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अमावस्यत्) अमावस्यत् यह ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित है, 'ण्यत्' प्रत्यय होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से वृद्धि होती है। अमावस्यत् यहां तकार अनुबन्ध के संकेत से 'ण्यत्' प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है, 'क्यप्' प्रत्यय का नहीं।*

*उदा०-**अमावस्या, अमावास्या।** जिस काल में सूर्य और चन्द्रमा अमा=साथ वस्=रहते हैं उस तिथि को अमावस्या तथा अमावास्या कहते हैं।*

सिद्धि-(१) अमावस्या। *यहां अमा उपपद होने पर **'वस् निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है और **'अत उपधायाः'** ((७।२।११६) से प्राप्त वृद्धि नहीं होती है।*

*(२)**अमावास्या।** यहां अमा उपपद होने पर पूर्वोक्त 'वस्' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है और विकल्प से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि हो जाती है।*

विशेष-*सूत्र में 'त्' अनुबन्ध के संकेत से यहां 'ण्यत्' प्रत्यय होता है और **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से यहां स्वरित स्वर है।*

(१६) छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि।१२३।

प०वि०-छन्दसि ७।१ निष्टर्क्य-देवहूय-प्रणीय-उन्नीय-उच्छिष्य-मर्य-स्तर्या-ध्वर्य-खन्य-खान्य-देवयज्या-आपृच्छ्य-प्रतिषीव्य-ब्रह्मवाद्य-भाव्य-स्ताव्य-उपचाय्यपृडानि १।३।

स०-निष्टर्क्यश्च देवहूयश्च प्रणीयश्च उन्नीयश्च उच्छिष्यश्च मर्यश्च स्तर्या च ध्वर्यश्च खन्यश्च खान्यश्च देवयज्या च आपृच्छ्यश्च प्रतिषीव्यश्च ब्रह्मवाद्यं च भाव्यं च स्ताव्यश्च उपचाय्यपृडं च तानि-निष्टर्क्य०उपचाय्यपृडानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-छन्दसि विषये निष्टर्क्यादयः शब्दा निपात्यन्ते।

उदा०-**(निष्टर्क्यः)** निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवहूयः। प्रणीयः। उन्नीयः। उच्छिष्यम्। मर्यः। स्तर्या। ध्वर्यः। खन्यः। खान्यः। देवयज्या।

आपृच्छ्यः । प्रतीषव्यः । ब्रह्मवाद्यम् । भाव्यम् । स्ताव्यः । उपचाय्यपृडम् । (सुवर्णम्) ।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (निष्टर्क्य०उपचाय्यपृडानि) निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्यपृड शब्द निपातित हैं। जो यहां सूत्र से सिद्ध न हो उसे निपातन से सिद्ध समझें।

उदा०-ऊपर संस्कृत-भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **निष्टर्क्यः।** यहां निस् उपसर्गपूर्वक **'कृती छेदने'** (तु०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः'** (३।१।११०) से 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'कर्त्' का आद्यन्तविपर्यय (तर्क्) होता है। 'निस्' के 'स्' को षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से टुत्व होता है।*

*(२) **देवहूयः।** यहां देव सुबन्त उपपद होने पर **'हु दानादनयोः'** (जु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है, **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से प्राप्त 'तुक्' आगम का अभाव है और 'हु' को दीर्घ हो जाता है।*

*(३) **प्रणीयः।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(४) **उन्नीयः।** उत्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'नी' धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **उच्छिष्यम्।** उत्-उपसर्गपूर्वक **'शिष्लृ विशेषणे'** (रु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। **'शश्छोऽटि'** (८।४।६६) से 'श्' को 'छ्' और **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' होता है।*

*(६) **मर्यः।** **'मृङ् प्राणत्यागे'** (तु०आ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(७) **स्तर्या।** **'स्तृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यह निपातन स्त्रीलिङ्ग में ही है। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(८) **ध्वर्यः।** **'ध्वृ हूर्च्छने'** (भ्वा०प०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(९) **खन्यः।** **'खनु अवदारणे'** (भ्वा०उ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(१०) **खान्यः।** पूर्वोक्त 'खन्' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है।*

*(११) **देवयज्या।** देव सुबन्त उपपद होने पर **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से 'यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। यह स्त्रीलिङ्ग में ही निपातन है। पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(१२) **आपृच्छ्य:।** यहां आङ्पूर्वक 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' (तु०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। 'ग्रहिज्या०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है।*

*(१३) **प्रतिषीव्य:।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक '**षीवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है। '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय प्राप्त था। निपातन से धातु को षत्व होता है।*

*(१४) **ब्रह्मवाद्यम्।** 'ब्रह्मन्' उपपद होने पर 'वद **व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय है।*

*(१५) **भाव्यम्।** यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आव्' आदेश है। '**अचो यत्**' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(१६) **स्ताव्य:।** यहां '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आव्' आदेश है। पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(१७) **उपचाय्यपृडम्।** यहां उप-उपसर्गपूर्वक '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय और 'आय्' आदेश है। यह 'पृड' उत्तरपद होने पर ही निपातन है।*

ण्यत्—

(१) ऋहलोर्ण्यत्।१२४।

प०वि०–ऋ-हलो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ण्यत् १।१।

स०–ऋश्च हल् च तौ ऋहलौ, तयो:–ऋहलो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। व्यत्ययेन पञ्चम्यर्थे षष्ठी विभक्तिरेषा, "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति।"

अन्वय:–ऋहल्भ्यां धातुभ्यां ण्यत्।

अर्थ:–ऋकारान्ताद् हलन्ताच्च धातो: परो ण्यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(ऋ)** कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। **(हल्)** वाक्यम्। पाक्यम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**–(ऋहलो:) ऋकारान्त और हलन्त (धातो:) धातु से परे (ण्यत्) 'ण्यत्' प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(ऋ) कार्यम्।** करने योग्य। **हार्यम्।** हरण करने योग्य। **धार्यम्।** धारण करने योग्य। **(हल्) वाक्यम्।** कहने योग्य। **पाक्यम्।** पकाने योग्य।*

*सिद्धि–(१) **कार्यम्।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि (कार्) होती है। '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) से–**हार्यम्।** '**धृञ् धारणे**' (भ्वा०उ०) से–**धार्यम्।***

*(२) **वाक्यम्।** वच्+ण्यत्। वच्+य। वाक्+य। वाक्य+सु। वाक्यम्।*

*यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि और 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।२।५२) से 'च्' को 'क्' होता है। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से-**पाक्यम्।***

विशेष-अनुबन्ध-ण्यत्-प्रत्यय में णकार अनुबन्ध 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से आदि वृद्धि के लिये तथा तकार अनुबन्ध 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से स्वरित स्वर के लिये है।

(२) ओरावश्यके।१२५।

प०वि०-ओः ५।१ आवश्यके ७।१।

स०-अवश्यं भाव आवश्यकम्। **'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च'** (५।१।१३२) इति वुञ् प्रत्ययः।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ओर्धातोर्ण्यदाऽऽवश्यके।

अर्थः-उकारान्ताद् धातोः परो ण्यत्-प्रत्ययो भवति, आवश्यकेऽर्थे गम्यमाने। यतोऽपवादः।

उदा०-(लू) लाव्यम्। (पू) पाव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(ओः) उकारान्त (धातोः) धातु से परे (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्यय होता है (आवश्यके) आवश्यक अर्थ में।

*उदा०-(लू) **लाव्यम्।** अवश्य काटने योग्य। (पू) **पाव्यम्।** अवश्य शुद्ध-पवित्र करने योग्य।*

*सिद्धि-**लाव्यम्।** यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि और 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७६) से आव्-आदेश होता है। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**पाव्यम्।** यहां 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।*

(३) आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च।१२६।

प०वि०-आसु-यु-वपि-रपि-लपि-त्रपि चमः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-आसुश्च युश्च वपिश्च रपिश्च लपिश्च त्रपिश्च चम् च एतेषां समाहार आसु०चम्, तस्माद्-आसु०चमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आसु०चमश्च धातोर्ण्यत्।

अर्थः-आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमिभ्यो धातुभ्योऽपि परो ण्यत्प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः।

उदा०-(**आसु**) आसाव्यम्। (**यु**) याव्यम्। (**वपि**) वाप्यम्। (**रपि**) राप्यम्। (**लपि**) लाप्यम्। (**त्रपि**) त्राप्यम्। (**चमि**) आचाम्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(आसु०चमः) आसु, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, चम् (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(आसु) **आसाव्यम्।** निचोड़ने योग्य। (यु) **याव्यम्।** मिश्रण-अमिश्रण करने योग्य। (वपि) **वाप्यम्।** बोने वा काटने योग्य। (रपि) **राप्यम्।** कहने योग्य। (लपि) **लाप्यम्।** कहने योग्य। (त्रपि) **त्राप्यम्।** लज्जा के योग्य। (चमि) **आचाम्यम्।** आचमन करने योग्य।*

*सिद्धि-(१) **आसाव्यम्।** यहां आङ्पूर्वक '**षुञ् अभिषवे**' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से वृद्धि और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७६) से आव्-आदेश है। यहां '**अचो यत्**' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था। '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अ०प०) धातु से-**याव्यम्।***

*(२) **वाप्यम्।** यहां '**डुवप् बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११७) से वृद्धि होती है। यहां '**पोरदुपधात्**' (३।१।९८) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(३) '**रप-लप व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०), '**त्रपूष् लज्जायाम्**' (भ्वा०आ०), '**चमु अदने**' (भ्वा०प०) धातु से शेष पद सिद्ध करें।*

निपातनम् (व्यत्)-

(४) आनाय्योऽनित्ये।१२७।

प०वि०-आनाय्यः १।१ अनित्ये ७।१।

स०-न नित्यमिति अनित्यम्, तस्मिन्-अनित्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-आनाय्यः शब्दो ण्यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यतेऽनित्येऽर्थे गम्यमाने।

उदा०-आनाय्यो दक्षिणाग्निः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(आनाय्य) शब्द (ण्यत्) 'ण्यत्' प्रत्ययान्त निपातित है (अनित्ये) अनित्य अर्थ प्रकट होने पर।*

उदा०-आनाय्यो दक्षिणाग्निः। सदा सुरक्षित न रहनेवाली दक्षिणाग्नि।

***सिद्धि-आनाय्यः।** आङ्+नी+ण्यत्। आ+नै+य। आ+नाय्+य। आनाय्य+सु। आनाय्यः।*

*यहां आङ्पूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है। निपातन से आय्-आदेश होता है। यहां **'अचो यत्'** (३।१।९७) से से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

***विशेष-दक्षिणाग्नि।** (१) आनाय्य शब्द दक्षिणाग्नि के लिये रूढ़ है। श्रौत-यज्ञ की अग्नि अरणी मन्थन से उत्पन्न की जाती है। उसे यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में गार्हपत्याग्नि के रूप में सुरक्षित रखता है। वहां आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामक दो वेदियां और होती हैं। यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में से अग्नि लेकर उन दोनों वेदियों में अग्नि का आधान करता है। जैसे ही आहुतियां समाप्त होती हैं, वे दोनों अग्नियां भी समाप्त हो जाती हैं, ये अनित्य हैं। किन्तु गार्हपत्यग्नि सदा सुरक्षित रखी जाती है।*

(२) एक ऐसी भी प्रथा है कि गार्हपत्याग्नि में से दक्षिणाग्नि न लेकर वैश्यकुल से अथवा चूल्हे से यह अग्नि लाई जाती है। अतः इसे आनाय्य कहते हैं।

निपातनम् (ण्यत्)–

(५) प्रणाय्योऽसम्मतौ।१२८।

प०वि०-प्रणाय्यः १।१ असम्मतौ ७।१।

स०-न विद्यते सम्मतिर्यस्मिन् सोऽसम्मतिः, तस्मिन्-असम्मतौ (बहुव्रीहिः)। सम्मतिः=पूजा। असम्मतिः=पूजाऽभावः।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-असम्मतावर्थे प्रणाय्यः शब्दो ण्यत्-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-प्रणाय्यश्चोरः। असम्मानित इत्यर्थः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(असम्मतौ) असम्मान अर्थ में (प्रणाय्यः) प्रणाय्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

*उदा०-**प्रणाय्यश्चोरः।** असम्मानित चोर पुरुष।*

***सिद्धि-प्रणाय्यः।** प्र+णी+ण्यत्। प्र+नै+य। प्र+नाय्+य। प्रणाय्य+सु। प्रणाय्यः।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

निपातनम् (ण्यत्)–

(६) पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवास-सामिधेनीषु।१२६।

प०वि०-पाय्य-सान्नाय्य-निकाय्य-धाय्याः १।३। मानहविः-निवास-सामिधेनीषु ७।३।

स०-पाय्यं च सान्नाय्यं च निकाय्यश्च धाय्या च ताः-पाय्यसान्नाय-निकाय्यधाय्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मानं च हविश्च निवासश्च सामिधेनी च ताः-मानहविर्निवाससामिधेन्यः, तासु-मानहविर्निवाससामिधेनीषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-पाय्यसान्नायनिकाय्यधाय्याः शब्दा यथासंख्यं मानहविर्निवास-सामिधेनीषु ण्यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-पाय्यम्=मानम्। सान्नाय्यम्=हविर्विशेषः। निकाय्यः=निवासः। धाय्या=सामिधेनी, ऋग्विशेषः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(पाय्य०धाय्याः) पाय्य, सान्नाय, निकाय्य, धाय्या शब्द यथासंख्य (मान०सामिधेनीषु) मान, हविः, निवास, सामिधेनी **अर्थों में (ण्यत्)** ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

*उदा०-**पाय्यम्=मानम्।** अन्न मांपने का पात्र मांप आदि। **सान्नाय्यम्=हविः।** एक हवि विशेष। **निकाय्यः=निवासः।** आवास। धाय्या=सामिधेनी, ऋचा विशेष।*

सिद्धि-(१) पाय्यम्। मा+ण्यत्। पा+य। पा+युक्+य। पाय्य+सु। पाय्यम्।

*यहां **'माङ्माने'** (जु०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। धातु के 'म्' को 'प्' और 'युक्' आगम निपातित है। यहां **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **सान्नाय्यम्।** यहां सम्-पूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'नी' को वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। निपातन से 'सम्' उपसर्ग को दीर्घ होता है।*

*(३) **निकाय्यः।** यहां नी-पूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय, पूर्ववत् वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। 'चि' धातु के 'च्' को 'क्' निपातन से होता है।*

(४) धाय्या। यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय और युक् आगम निपातित है। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

विशेष-(१) सान्नाय-दर्शेष्टि नामक यज्ञ में तीन आहुतियां होती हैं, पहली अग्निदेवता के लिये पुरोडाश की, दूसरी इन्द्र के लिये दधि की, तीसरी इन्द्र के लिये दूध की। दूसरी और तीसरी आहुति को साथ मिलाने से सान्नाय आहुति बनती है। पहले चमस में दही भरकर, उसके ऊपर दूध छोड़ने से 'सान्नाय' हवि बनती है। सम्+नी=सानना (मिलाना)।

(२) धाय्या-ऋग्वेद की निम्नलिखित ११ ऋचायें सामिधेनी कहाती हैं-

(१) प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।
देवाञ्जिगाति सुम्नयुः।।

(२) ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्।
श्रुष्टीवानं धितावानम्।।

(३) अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषांसि तरेम।।

(४) समिध्यमानोऽध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस्तमीमहे।।

* (५) पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्।।

* (६) तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः।
आ चक्रुरग्निमूतये।।

* (७) होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
विदथानि प्रचोदयन्।।

* (८) वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते।
विप्रो यज्ञस्य साधनः।।

* (९) धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे।
दक्षस्य पितरं तना।।

* (१०) नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत।
अग्ने सुदीतिमुशिजम्।।

(११) अग्ने यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः।
विप्रा वाजैः समिन्धते।। (ऋ० ३।२७।१-११)।

इन ११ ऋचाओं में से पहली और ग्यारहवीं ऋचा को तीन-तीन बार पढ़ने से कुल १५ सामिधेनी ऋचायें हो जाती हैं। इनमें से चौथी ऋचा और ग्यारहवीं ऋचा के बीच की

*६ ऋचायें 'धाय्या' नामक सामिधेनी कहाती हैं जिन्हें पुष्पचिह्न के द्वारा दर्शाया गया है। इन ऋचाओं से यज्ञ में समिधाओं का आधान किया जाता है इसलिये इन्हें धाय्या कहा जाता है। **धीयते यया समिदिति-धाय्या।***

निपातनम् (ण्यत्)–

(७) क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ।१३०।

प०वि०–क्रतौ ७।१ कुण्डपाय्य-संचाय्यौ १।२।

स०–कुण्डपाय्यश्च संचाय्यश्च तौ–कुण्डपाय्यसंचाय्यौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–क्रतावर्थे कुण्डपाय्य-संचाय्यौ शब्दौ ण्यत्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०–कुण्डेन पीयते यस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः (यज्ञः)। संचीयते यस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रतौ) यज्ञ अर्थ में (कुण्डपाय्यसंचाय्यौ) कुण्डपाय्य और संचाय्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**कुण्डेन पीयते यस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः (यज्ञः)।** जिस सोमयाग में कुण्ड से सोमपान किया जाता है, उसे 'कुण्डपाय्य' कहते हैं। **संचीयते यस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः।** जिस सोमयाग में सोम का संचय किया जाता है उसे 'संचाय्य' कहते हैं।*

*सिद्धि-(१) **कुण्डपाय्यः।** कुण्ड+टा+पा+ण्यत्। कुण्ड+पा+युक्+य। कुण्डपाय्य+सु। कुण्डपाय्यः।*

*यहां तृतीयान्त कुण्ड उपपद होने पर '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है और निपातन से 'युक्' आगम होता है।*

*(२) **संचाय्यः।** यहां सम्-पूर्वक '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से वृद्धि और आय्-आदेश निपातित है। यहां दोनों स्थानों पर '**अचो यत्**' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय था।*

निपातनम् (ण्यत्)–

(८) अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः।१३१।

प०वि०–अग्नौ ७।१ परिचाय्य-उपचाय्य-समूह्याः १।३।

स०–परिचाय्यश्च उपचाय्यश्च समूह्यश्च ते–परिचाय्य-उपचाय्य-समूह्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ण्यत् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अग्नावर्थे परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः शब्दा ण्यत्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-परिचाय्योऽग्निः। उपचाय्योऽग्निः। समूह्योऽग्निः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अग्नौ) अग्नि अर्थ में (परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः) परिचाय्य, उपचाय्य, समूह्य शब्द (ण्यत्) ण्यत्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**परिचाय्योऽग्निः।** परिचाय्य नामक यज्ञाग्नि। **उपाचाय्योऽग्निः।** उपचाय्य नामक यज्ञाग्नि। **समूह्योऽग्निः।** समूह्य नामक यज्ञाग्नि।*

*सिद्धि-(१) **परिचाय्यः।** यहां परि-पूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि और निपातन से आय्-आदेश होता है। यहां **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **उपचाय्यः।** यहां उप-पूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **समूह्यः।** यज्ञ के अन्त में इधर-उधर बिखरी हुई अग्नि को बटोरकर राख आदि का ढेर लगा देना समूह्य अग्नि है। समूह=ढेर।*

निपातनम् (यः)-

(६) चित्याग्निचित्ये च।१३२।

प०वि०-चित्य-अग्निचित्ये १।२ च अव्ययपदम्।

स०-चित्यश्च अग्निचित्या च ते-चित्याग्निचित्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-चित्य-अग्निचित्ये शब्दौ य-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेव-अग्निचित्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(चित्याग्निचित्ये) चित्य और अग्निचित्या शब्द य-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः।** जिसका चयन किया जाता है उसे 'चित्य' अग्नि कहते हैं। **अग्निचयनमेव-अग्निचित्या।** अग्नि के चयन को 'अग्निचित्या' कहते हैं।*

*सिद्धि-**चित्यः।** यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से निपातन से 'य' प्रत्यय और तुक् आगम होता है। ऐसे ही अग्नि शब्द उपपद होने पर-**अग्निचित्या।***

*विशेष-(१) **चित्याग्नि**-श्रौत यज्ञों के लिये उपयुक्त अग्नि को चित्याग्नि कहते हैं। यह गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्निभेद से तीन प्रकार की होती है।*

(२) अग्निचित्या-यज्ञवेदी की भूमि पर श्येनचित् और कंकचित् आदि भेद से अनेक प्रकार के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनमें जो विशिष्ट प्रकार का अग्निचयन होता है उसे अग्निचित्या (अग्निचयन) कहते हैं।

इति कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्।

अथ कृत्प्रत्ययप्रकरणम्

ण्वुल्+तृच्–

(१) ण्वुल्तृचौ।१३३।

प०वि०–ण्वुल्-तृचौ १।२।

स०–ण्वुल् च तृच् च तौ–ण्वुल्-तृचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः–सर्वेभ्यो धातुभ्यः परौ कर्तरि कारके ण्वुल्तृचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(ण्वुल्) कारकः। हारकः। (तृच्) कर्ता। हर्ता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातुमात्र से परे कर्ता कारक में (ण्वुल्तृचौ) ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(ण्वुल्) कारकः। करनेवाला। हारकः। हरनेवाला। (तृच्) कर्ता। करनेवाला। हर्ता। हरनेवाला।

सिद्धि-(१) कारकः। कृ+ण्वुल्। कृ+वु। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'ण्वुल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से 'कृ' को 'अचो ञ्णिति' (७।२।११६) वृद्धि होती है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक-आदेश होता है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-हारकः।

(२) कर्ता। कृ+तृच्। कृ+तृ। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्ता।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से कर्ता अर्थ में 'तृच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है। पूर्वोक्त 'हृ' धातु से-हर्ता।

विशेष-(१) अनुबन्ध। 'ण्वुल्' प्रत्यय में 'ण्' अनुबन्ध 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) आदि से अङ्ग की वृद्धि के लिये है। 'ल्' अनुबन्ध 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्व अच् के उदात्त-स्वर के लिये है। 'तृच्' में 'च्' अनुबन्ध 'चितः' (६।१।१५७) से अन्तोदात्त स्वर के लिये है।

(२) कृत्-ण्वुल् और तृच् प्रत्यय की 'कृदतिङ्' (३।१।९३) से 'कृत्' संज्ञा है। 'कर्तरि कृत्' (३।४।६७) से कृत्-संज्ञक प्रत्यय कर्ता कारक में होते हैं। ऐसे ही सर्वत्र समझें।

ल्युः+णिनिः+अच्–

(१) नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः।१३४।

प०वि०–नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यः ५।३ ल्यु-णिनि-अचः १।३।

स०–नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च ते–नन्दिग्रहिपचः। आदिश्च आदिश्च आदिश्च ते–आदयः। नन्दिग्रहिपचादयो येषां ते–नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यः नन्दिग्रहिपचादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। ल्युश्च णिनिश्च अच् च ते–ल्युणिन्यचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः–नन्द्यादिभ्यो ग्रह्यादिभ्यः पचादिभ्यश्च धातुभ्यः परे यथासंख्यं ल्यु-णिनि-अचः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–**नन्द्यादिभ्यो ल्युः**–नन्दयतीति नन्दनः। वाशयतीति वाशनः। **ग्रह्यादिभ्यो णिनिः**–गृह्णातीति ग्राही। उत्सहते इति उत्साही। **पचादिभ्योऽच्**–पचतीति पचः। वदतीति वदः।

(१) **नन्द्यादयः**–वा० नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्द्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्। नन्दनः। वाशनः। मदनः। दूषणः। साधनः। वर्धनः। शोभनः। रोचनः। वा०–सहितपिदमेः संज्ञायाम्। सहनः। तपनः। दमनः। जल्पनः। रमणः। दर्पणः। संक्रन्दनः। संकर्षणः। संहर्षणः। जनार्दनः। यवनः। मधुसूदनः। विभीषणः। लवणः। निपातनाण्णत्वम्। वित्तविनाशनः। कुलदमनः। शत्रुदमनः। इति नन्द्यादिः।

(२) **ग्रह्यादयः।** ग्रह। उत्सह। उद्वस। उद्भास। स्था। मन्त्र। सम्मर्द।। ग्राही। उत्साही। उद्वासी। उद्भासी। स्थायी। मन्त्री। सम्मर्दी। वा०–रक्षश्रुवसवपशां नौ। निरक्षी। निश्रावी। निवासी। निवायी। निशायी। याचिव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम्। अयाची। अव्याहारी। असंव्याहारी। अव्राजी। अवादी। अवासी। वा०– अचामचित्तकर्तृकाणाम्। प्रतिषिद्धानामित्येव। अकारी। अहारी। अविनायी। वा०–विशयी विषयी देशे। विशयी। विषयी देशः। वा०–अभिभावी भूते। अभिभावी। अपराधी। उपरोधी। परिभावी। परिभवी। इति गृह्यादिः।

३. **पचादयः।** पच। वच। वप। वद। चल। शल। तप। पत। नदट्। भषट्। वस। गरट्। प्लवट्। चरट्। तरट्। चोरट्। ग्राहट्। जर। मर। क्षर। क्षम। सूदट्। देवट्। मोदट्। सेव। मेष। कोप। मेधा। नर्त। व्रण। दर्श। दंश। दम्भ। जारभरा। श्वपच। पचादिराकृतिगणः।

आर्यभाषा-अर्थ-(नन्दिग्रहिपचादिभ्यः) नन्द्यादि, ग्रह्यादि, पचादि धातुओं से परे यथासंख्य (ल्युणिन्यचः) ल्यु, णिनि, अच् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-नन्द्यादि से ल्यु-नन्दयतीति **नन्दनः।** आनन्दित करनेवाला। वाशयतीति **वाशनः।** चाहनेवाला। गृह्यादि से णिनि-गृह्णातीति **ग्राही।** ग्रहण करनेवाला। उत्सहते इति **उत्साही।** उत्साह करनेवाला। पचादि से अच्-पचतीति **पचः।** पकानेवाला। वदतीति **वदः।** बोलनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **नन्दनः।** नन्द+णिच्+ल्यु। नन्द+अन। नन्दन+सु। नन्दनः।*

*यहां णिजन्त **'टुनदि समृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ल्यु' प्रत्यय है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१९ से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश है। णिजन्त **'वश कान्तौ'** (अदा०प०) धातु से-**वाशनः।***

*(२) **ग्राही।** ग्रह्+णिनि। ग्राह्+इन्। गाहिन्+सु। ग्राही।*

*यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। उत्पूर्वक **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से-**उत्साही।***

*(३) **पचः।** पच्+अच्। पच्+अ। पच+सु। पचः।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से-**वदः।***

विशेष-गण-नन्द्यादि, ग्रह्यादि और पचादि धातु पाणिनीय धातुपाठ में गणरूप में पठित नहीं हैं। इन्हें प्रत्ययविधि के लिये संकलित किया गया है।

कः-

(१) इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः।१३५।

प०वि०-इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः ५।१ कः १।१।

स०-इक् उपधा स इगुपधः। इगुपधश्च ज्ञाश्च प्रीश्च कृश्च एतेषां समाहार इगुपधज्ञाप्रीकृ, तस्मात्-इगुपधज्ञाप्रीकिरः (बहुव्रीहिगर्भितेतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-इगुपधेभ्यो ज्ञाप्रीकॄभ्यश्च धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-इगुपधः (क्षिप्)-विक्षिपतीति विक्षिपः। **(लिख्)** विलिखतीति विलिखः। **(बुध्)** बोधतीति बुधः। **(ज्ञा)** जानातीति ज्ञः। **(प्री)** प्रीणातीति प्रियः। **(कॄ)** किरतीति किरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(इगुपधज्ञाप्रीकिरः) इक् उपधावाली और ज्ञा, प्री, कॄ (धातोः) धातुओं से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

उदा०-इगुपधः (क्षिप्)-विक्षिपतीति विक्षिपः। फैंकनेवाला। (लिख्) विलिखतीति विलिखः। लिखनेवाला। (बुध्) बोधतीति बुधः। समझनेवाला। (ज्ञा) जानातीति ज्ञः। जाननेवाला। (प्री) प्रीणातीति प्रियः। तृप्त करनेवाला अथवा चाहनेवाला। (कॄ) किरतीति किरः। फैंकनेवाला।

सिद्धि-(१) विक्षिपः। यहां वि-पूर्वक 'क्षिप् प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

(२) विलिखः। 'लिख् अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) बुधः। 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(४) ज्ञः। 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ज्ञा' के 'आ' का लोप हो जाता है।

(५) प्रियः। यहां 'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।

(६) किरः। 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'ॠत इद् धातोः' (७।१।१००) से इकार आदेश होता है।

(२) आतश्चोपसर्गे।१३६।

प०वि०-आतः ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

अनु०-क इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गे आतश्च धातोः कः।

अर्थः-उपसर्गे उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(स्था)** प्रतिष्ठते इति प्रस्थः। **(ग्ला)** सुष्ठु ग्लायतीति सुग्लः। **(म्ला)** सुष्ठु म्लायतीति सुम्लः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) क प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्था) प्रतिष्ठते इति प्रस्थः। प्रस्थान करनेवाला। (ग्ला) सुष्ठु ग्लायतीति सुग्लः। अधिक ग्लानिवाला। (म्ला) सुष्ठु म्लायतीति सुम्लः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) प्रस्थः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के कित् होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६८) से 'स्था' के 'आ' का लोप हो जाता है।

(२) सुग्लः। सुम्लः। यहां सु-उपसर्गपूर्वक 'ग्लै म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से ग्लै, म्लै को आत्त्व होता है। शेष पूर्ववत्।

शः—

(१) पाघ्राध्माधेट् दृशः शः।१३७।

प०वि०-पा-घ्रा-ध्मा-धेट्-दृशः ५।१ शः १।१।

स०-पाश्च घ्राश्च ध्माश्च धेट् च दृश् च एतेषां समाहारः पाघ्राध्माधेट्दृश्, तस्मात्-पाघ्राध्माधेट्दृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उपसर्गे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गे पा०दृशो धातोः शः।

अर्थः-उपसर्गे उपपदे पाघ्राध्माधेट्दृशिभ्यो धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पा) उत्पिबः। विपिबः। **(घ्रा)** उज्जिघ्रः। विजिघ्रः। **(ध्मा)** उद्धमः। विधमः। **(धेट्)** उद्धयः। विधयः। **(दृश्)** उत्पश्यः विपश्यः।

केचित् उपसर्गे इति नानुवर्तयन्ति, तेषां मते-**पिबः। जिघ्रः। धयः। पश्यः।**

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (पाघ्राध्माधेट्दृशः) पा, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृश् (धातोः) धातुओं से परे (कः) क प्रत्यय होता है।

उदा०-(पा) उत्पिबः । उत्कृष्ट पान करनेवाला। विपिबः । विशिष्ट पान करनेवाला। (घ्रा) उज्जिघ्रः । उत्कृष्ट गन्ध ग्रहण करनेवाला। विजिघ्रः । विशिष्ट गन्ध ग्रहण करनेवाला। (ध्मा) उद्धमः । उत्कृष्ट शब्द/अग्निसंयोग करनेवाला। (धेट्) उद्धयः । उत्कृष्ट पान करनेवाला। विधयः । विशिष्ट पान करनेवाला। (दृश्) उत्पश्यः । उत्कृष्ट देखनेवाला। विपश्यः । विशिष्ट देखनेवाला।

कई आचार्य यहां 'उपसर्गे' की अनुवृत्ति नहीं करते हैं। उनके मत में-पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । पश्यः । पद बनते हैं।

सिद्धि-(१) उत्पिबः । उत्+पा+श। उत्+पा+शप्+अ। उत्+पिब+अ+अ। उत्+पिब+अ। उत्पिब+सु। उत्पिबः ।

यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय। 'श' प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से इसकी सार्वधातुक संज्ञा है। सार्वधातुक परे होने पर 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय होता है। 'शप्' परे होने पर 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'पा' के स्थान में 'पिब' आदेश होता है। वि-उपसर्गपूर्वक 'पा' धातु से-विपिबः ।

(२) उज्जिघ्रः । उद्धमः । उत्-उपसर्गपूर्वक 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) और 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् पद सिद्ध करें।

(३) उद्धयः । उत्-उपसर्गपूर्वक 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) उत्पश्यः । उत्-उपसर्गपूर्वक 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् कार्य है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है।

(२) अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति-साहिभ्यश्च।१३८।

प०वि०-अनुपसर्गात् ५।१ लिम्प-विन्द-धारि-पारि-वेदि-उदेजि-चेति-साति-साहिभ्यः ५।३। च अव्ययपदम्।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मात्-अनुसर्गात् (बहुव्रीहिः)। लिम्पश्च विन्दश्च धारिश्च पारिश्च वेदिश्च उदेजिश्च चेतिश्च सातिश्च साहिश्च ते-लिम्प०साहयः, तेभ्यः-लिम्प०साहिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-श इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गेभ्यो लिम्प०साहिभ्यश्च धातुभ्यः शः।

अर्थ:-अनुपसर्गात्=उपसर्गरहितेभ्यो लिम्पादिभ्यश्च धातुभ्यः परः शः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(लिम्प)** लिम्पतीति लिम्पः। **(विन्द)** विन्दतीति विन्दः। **(धारि)** धारयतीति धारयः। **(पारि)** पारयतीति पारयः। **(विदि)** वेदयतीति वेदयः। **(उदेजि)** उदेजयतीति उदेजयः। **(चेति)** चेतयतीति चेतयः। **(साति)** सातयतीति सातयः। **(साहि)** साहयतीति साहयः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अनुपसर्गात्) उपसर्ग से रहित (लिम्प०साहयः) लिम्प, विन्द, धारि, पारि, वेदि, उदेजि, चेति, साति, सहि (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (शः) श-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(लम्प) **लिम्पतीति लिम्पः।** लिपाई करनेवाला। (विन्द) **विन्दतीति विन्दः।** लाभ=प्राप्त करनेवाला। (धारि) **धारयतीति धारयः।** धारण करनेवाला। (पारि) **पारयतीति पारयः।** पार करनेवाला। (विदि) **वेदयतीति वेदयः।** जनानेवाला। (उदेजि) **उदेजयतीति उदेजयः।** उत्कम्पित करनेवाला। (चेति) **चेतयतीति चेतयः।** सचेत करनेवाला। (साति) **सातयतीति सातयः।** सुख देनेवाला। (साहि) **साहयतीति साहयः।** सहन करनेवाला।*

सिद्धि-(१) लिम्पः। *लिप्+श। लिनुम्प्+शप्+अ। लि न् प्+अ+अ। लि ं प्+अ। लिम्प्+अ। लिम्प+सु। लिम्पः।*

*यहां **'लिप् उपदेहे'** धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) 'शप्' प्रत्यय, **'शे मुचादीनाम्'** (७।१।५९) से नुम् आगम, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) न् को अनुस्वार, **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से परसवर्ण और **'अतो गुणे'** (६।१।९७) से पररूप अकारादेश होता है।*

*(२) **विन्दः।** 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) से पूर्ववत्।*

*(३) **'धृञ् धारणे'** (भ्वा०उ०)। **'पॄ पालनपूरणयोः'** (जु०प०)। **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०), उत्पूर्वक। **'एजृ कम्पने'** (भ्वा०आ०)। **'चिती संज्ञाने'** (भ्वा०प०)। **'साति सुखे'** (सौत्रधातु)। **'षह मर्षणे'** (भ्वा०प०)। इन णिजन्त धातुओं से सम्बन्धित पद सिद्ध करें।*

(३) ददातिदधात्योर्विभाषा।१३६।

प०वि०-ददाति-दधात्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)। विभाषा १।१।

स०-ददातिश्च दधातिश्च तौ ददातिदधाती। तयोः-ददातिदधात्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-श इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ददातिदधातिभ्यां धातुभ्यां विभाषा शः।

अर्थः-ददातिदधातिभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन शः-प्रत्ययो भवति। णस्यापवादः।

उदा०-(दा) ददातीति ददः, दायो वा। **(धा)** दधातीति दधः, धायो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(ददातिदधात्योः) दा और धा (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (शः) श-प्रत्यय होता है। यह ण-प्रत्यय का अपवाद है।

*उदा०-(दा) ददातीति ददः, **दायो वा**। देनेवाला। (धा) **दधातीति दधः, धायो वा**। धारण-पोषण करनेवाला।*

सिद्धि-(१) ददः। दा+श। दा+शप्+अ। दा+०+अ। दा दा+अ। द द्+अ। दद+सु। ददः।

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'श' प्रत्यय, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७२) से 'शप्' को 'श्लु', **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'दा' धातु को द्वित्व, **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से 'दा' के 'आ' का लोप होता है।*

(२) दायः। दा+ण। दा+युक्+अ। दा+य्+अ। दाय+सु। दायः।

*यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से विकल्प पक्ष में **'श्याद्व्यधा०'** (३।१।१४१) से 'ण' प्रत्यय है। **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।*

*(३) दधः, धायः। **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

णः-

(१) ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः।१४०।

प०वि०-ज्वलिति-कसन्तेभ्यः ५।३ णः १।१।

स०-ज्वल् इतिः (आदिः) येषां ते ज्वलितयः। कस् अन्ते येषां ते कसन्ताः। ज्वलितयश्च ते कसन्ता इति ज्वलितिकसन्ताः, तेभ्यः-ज्वलितिकसन्तेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितकर्मधारयः) इतिशब्दोऽत्रादिपर्यायः।

अनु०-विभाषा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ज्वलितिकसन्तेभ्यो धातुभ्यो विभाषा णः।

अर्थ:-ज्वलादिभ्य: कसन्तेभ्यो धातुभ्य: परो विकल्पेन ण: प्रत्ययो भवति। अचोऽपवाद:।

उदा०-(ज्वल्) ज्वाल:, ज्वल:। **(चल्)** चाल:, चल:।

आर्यभाषा-अर्थ-(ज्वलितिकसन्तेभ्य:) ज्वल् जिनके आदि में है और कस् जिनके अन्त में है उन (धातो:) धातुओं से (विभाषा) विकल्प से (ण:) ण-प्रत्यय होता है। यह अच् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-(ज्वल्) ज्वाल:, ज्वल:। जलनेवाला। (चल्) चाल:, चल:। चलनेवाला।

सिद्धि-(१) ज्वाल:। ज्वल्+ण। ज्वाल्+अ। ज्वाल्+अ। ज्वाल+सु। ज्वाल:।

यहां 'ज्वल् दीप्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से उपधा-वृद्धि होती है।

(२) ज्वल:। यहां पूर्वोक्त ज्वल धातु से विकल्प पक्ष में 'नन्दिग्रहि०' (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय है।

(३) चाल:। चल:। 'चल गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-ज्वलादि। 'ज्वल दीप्तौ' से लेकर 'कस गतौ' पर्यन्त धातु पाणिनीय धातुपाठ के भ्वादिगण में देख लेवें।

(२) श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिष-श्वसश्च।१४१।

प०वि०- श्या-आद्-व्यध-आस्रु-संस्रु-अतीण्-अवसा-अवसा-अवहृ-लिह-श्लिष-श्वस: ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-श्याश्च आच्च व्यधश्च आस्रुश्च संस्रुश्च अतीण् च अवसाश्च अवहृश्च लिहश्च श्लिषश्च श्वस् च एतेषां समाहार: श्या०श्वस्, तस्मात्-श्या०श्वस: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-ण इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-श्याऽऽद०श्वसश्च धातोर्ण:।

अर्थ:-श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसिभ्यो धातुभ्य: परोऽपि ण: प्रत्ययो भवति।

उदा०-(श्या) अवश्याय:। प्रतिश्याय:। **(आत्)** दाय:। धाय:। **(व्यध्)** व्याध:। **(आस्रु)** आस्राव:। **(संस्रु)** संस्राव:। **(अतीण्)** अत्याय:।

(अवसाः) अवसायः। **(अवह्)** अवहारः। **(लिह्)** लेहः। **(श्लिष)** श्लेषः। **(श्वस्)** श्वासः।

आर्यभाषा-अर्थ-(श्याऽऽद्०श्वसः) श्या, आकारान्त धातु, व्यध, आस्रु, संस्रु, अतीण्, अवसा, अवह्, लिह, श्लिष, श्वस् (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (णः) ण-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(श्या) **अवश्यायः।** नीचे की ओर गतिवाला (ओस)। **प्रतिश्यायः।** प्रतिकूल गतिवाला (जुकाम)। (आत्) दा-दायः। देनेवाला। (धा) धायः। धारण-पोषण करनेवाला। (व्यध) व्याधः। ताडना करनेवाला (शिकारी)। (आस्रु) आस्रावः। सब ओर बहनेवाला। मूत्रातिसार, प्रमेह, संग्रहणी रोग। (संस्रु) संस्रावः। मिलकर बहनेवाला। **अत्यायः।** अतिक्रमण करनेवाला। (अवसा) **अवसायः।** अवसान करनेवाला। (अवह्) **अवहारः।** अवहरण करनेवाला चोर। (लिह) **लेहः।** चाटनेवाला। (श्लिष्) **श्लेषः।** आलिङ्गन करनेवाला। (श्वस्) **श्वासः।** प्राण लेनेवाला, प्राणी।*

*सिद्धि-(१) **अवश्यायः।** यहां अवपूर्वक 'श्यङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से ण-प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण् कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। यहां 'आतश्चोपसर्गे' (३।१।१३६) से 'क' प्रत्यय प्राप्त था। उसे हटाने के लिये 'ण' प्रत्यय का विधान किया गया है। प्रति-पूर्वक श्या धातु से-**प्रतिश्यायः।***

*(२) **दायः। धायः।** इनकी सिद्धि ३।१।१३९ में देख लेवें।*

*(३) **व्याधः।** 'व्यध ताडने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधा वृद्धि होती है।*

*(४) **आस्रावः।** यहां आङ्पूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। सम्पूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**संस्रावः।***

*(५) **अत्यायः।** अतिपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और पूर्ववत् वृद्धि होती है।*

*(६) **अवसायः।** अवपूर्वक 'षोऽन्तकर्मणि' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय, 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से 'आत्' आदेश और 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।*

*(७) **अवहारः।** अवपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और पूर्ववत् वृद्धि होती है।*

*(८) **लेहः।** 'लिह आस्वादने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से गुण होता है।*

(९) श्लेषः। 'श्लिष आलिङ्गने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

(१०) श्वासः। 'श्वस प्राणने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(३) दुन्योरनुपसर्गे।१४२।

प०वि०-दुन्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनुपसर्गे ७।१।

स०-दुश्च नीश्च तौ दुन्यौ, तयोः-दुन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपसर्गे दुनीभ्यां धातुभ्यां णः।

अर्थः-अनुपसर्गे उपपदे दुनीभ्यां धातुभ्यां परो णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दु)** दुनोतीति दावः। **(नी)** नयतीति नायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुपसर्गे) उपसर्ग उपपद न होने पर (दुन्योः) 'दु' और 'नी' (धातोः) धातु से परे (णः) ण-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(दु) दुनोतीति दावः। जङ्गल। दावानल नामक अग्नि। **(नी) नयतीति नायः।** देशान्तर में ले जानेवाला नायक।*

सिद्धि-दावः। नावः। 'टुदु उपतापे' (स्वा०प०) और 'णीञ् प्रापणे' ((भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है।

(४) विभाषा ग्रहः।१४३।

प०वि०-विभाषा १।१ ग्रहः ५।१।

अनु०-ण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोर्विभाषा णः।

अर्थः-ग्रहो धातोः परो विकल्पेन णः-प्रत्ययो भवति। पक्षेऽच् प्रत्यये भवति।

उदा०-**(ग्रह्)** ग्राहः। ग्रहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह् धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (णः) प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में अच्-प्रत्यय होता है।

उदा०-(ग्रह्) ग्राहः । पकड़नेवाला जलचर (मगरमच्छ)। ग्रहः । नक्षत्र । नौ ग्रह ।

सिद्धि-ग्राहः, ग्रहः । 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से जलचर (मगरमच्छ) अर्थ में ण-प्रत्यय होता है-ग्राहः । पूर्वोक्त ग्रह धातु से नक्षत्र अर्थ में 'नन्दिग्रहिपचादिभ्य०' (३।१।१३४) से नक्षत्र अर्थ में अच्-प्रत्यय होता है-ग्रहः ।

विशेष-(१) नवग्रह-सोम, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि, रवि, राहु, केतु ये नौ ग्रह हैं।

(२) व्यवस्थित विभाषा-यह व्यवस्थित विभाषा है। इससे जलचर अर्थ में 'ण' प्रत्यय और नक्षत्र अर्थ में 'अच्' प्रत्यय होता है।

कः-

(१) गेहे कः।१४४।

प०वि०-गेहे ७।१ कः १।१।

अनु०-ग्रह इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोः को गेहे।

अर्थः-ग्रहो धातोः परः कः प्रत्ययो भवति, गेहे कर्तरि।

उदा०-(गह्) गृह्णातीति गृहं वेश्म। तत्रावस्थानात्-ग्रह्णन्तीति गृहा दारा इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (कः) क-प्रत्यय होता है (गेहे) यदि उस ग्रह् धातु का कर्ता गेह=घर हो।

उदा०-(ग्रह्) ग्रहणातीति गृहम् । जो व्यक्ति को ग्रहण करता है=पकड़ लेता है उसे 'गृहम्' कहते हैं। गेह=घर में रहने से दारा भी 'गृहम्' कहाती हैं। ये भी व्यक्ति को पकड़ लेती हैं, जाने नहीं देती।

सिद्धि-गृहम् । ग्रह्+क। गृ अ ह्+अ। गृह्+अ। गृह+सु। गृहम्। 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से 'ग्रह्' को सम्प्रसारण (ऋ), 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०४) से 'अ' को पूर्वरूप होता है।

ष्वुन्-

(१) शिल्पिनि ष्वुन्।१४५।

प०वि०-शिल्पिनि ७।१ ष्वुन् १।१।

स०-शिल्पमस्यास्तीति शिल्पी, तस्मिन्-शिल्पिनि (तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-ग्रह इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहो धातोः ष्वुन् शिल्पिनि।

अर्थः-ग्रहो धातोः परः ष्वुन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा-(**नृत्**) नृत्यतीति नर्तकः। (**खन्**) खनतीति खनकः। (**रञ्ज**) रज्यतीति रजकः। स्त्रियाम्-नर्तकी। खनकी। रजकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (ष्वुन्) ष्वुन प्रत्यय होता है (शिल्पिनि) यदि सम्बन्धित धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०-(नृत्) नृत्यतीति नर्तकः। नाचनेवाला-नट। (खन्) खनतीति खनकः। शरीर के अंग पर नाम आदि खिननेवाला। (रञ्ज्) रज्यतीति रजकः। कपड़े रंगनेवाला रंगरेज। स्त्रीलिङ्ग में-नर्तकी। खनकी। रजकी।

सिद्धि-(१) नर्तकः। 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।

(२) खनकः। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) रजकः। 'रञ्ज रागे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। 'वा०-रञ्जेरनुनासिकलोपश्च' (३।१।१४५) से 'रञ्ज' के अनुनासिक का लोप होता है।

(४) नर्तकी। ष्वुन् प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-खनकी, रजकी।

थकन्-

(१) गस्थकन्।१४६।

प०वि०-गः ५।१ थकन् १।१।

अनु०-शिल्पिनि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गो धातोस्थकन् शिल्पिनि।

अर्थः-गा-धातोः परस्थकन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०-(**गा**) गायतीति गाथकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गः) गा (धातोः) धातु से परे (थकन्) थकन् प्रत्यय होता है (शिल्पिनि) यदि 'गा' धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०-(गा) गायतीति गाथकः। गानेवाला, गवैय्या।

सिद्धि-गाथकः। 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'थकन्' प्रत्यय है। 'थकन्' प्रत्यय में 'न्' अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।

ण्युट्–

(१) ण्युट् च।१४७।

प०वि०–ण्युट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–शिल्पिनि, ग इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गो धातोर्ण्युट् च शिल्पिनि।

अर्थः–गा–धातोः परो ण्युट्-प्रत्ययोऽपि भवति, शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०–(गा) गायतीति गायनः। स्त्रियाम्–गायनी।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(गः) गा (धातोः) धातु से परे (ण्युट्) ण्युट् प्रत्यय (च) भी होता है (शिल्पिनि) यदि 'गा' धातु का कर्ता शिल्पी हो।

उदा०–__(गा) गायतीति गायनः।__ गानेवाला। स्त्री हो तो–गायनी। गानेवाली।

__सिद्धि–(१) गायनः। 'गै शब्दे'__ (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्युट्' प्रत्यय है। __'आदेच उपदेशेऽशिति'__ (६।१।४५) से 'गै' धातु को आत्त्व, __'आतो युक् चिण्कृतोः'__ (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। __'युवोरनाकौ'__ (७।१।१) से 'ण्युट्' के 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश है।

__(२) गायनी।__ 'ण्युट्' प्रत्यय के टित् होने से __'टिड्ढाणञ्०'__ (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(२) हश्च व्रीहिकालयोः।१४८।

प०वि०–हः ५।१ च अव्ययपदम्, व्रीहि–कालयोः ७।२।

स०–व्रीहिश्च कालश्च तौ व्रीहिकालौ, तयोः–व्रीहिकालयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ण्युट् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–हश्च धातोर्ण्युट् व्रीहिकालयोः।

अर्थः–हा–धातोः परोऽपि ण्युट्प्रत्ययो भवति, व्रीहौ काले च कर्तरि सति।

उदा०–(हा) जहत्युदकम् इति हायनाः। हायना नाम व्रीहयः। जाङ्गलदेशोद्भवाः। जिहीते=गच्छति पदार्थानिति–हायनः संवत्सरः।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(हः) हा (धातोः) धातु से परे (च) भी (ण्युट्) ण्युट् प्रत्यय होता है। (व्रीहिकालयोः) यदि 'हा' धातु का कर्ता व्रीहि=चावल और काल हो।

उदा०-(हा) जहत्युदकमिति हायना:। जो जल को छोड़ देते हैं वे जंगली चावल। जिहीते=गच्छति पदार्थानिति हायनः संवत्सरः। जो सब पदार्थों को परिमापक भाव से व्याप्त करता है वह संवत्सर (वर्ष)। यह पदार्थ इतने वर्ष का होगया है।

सिद्धि-हायन:। 'ओहाक् त्यागे' (जु०प०) 'ओहाङ् गतौ' (जु०आ०) आत्मनेपद धातु से इस सूत्र से 'ण्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'ण्युट्' के 'यु' को 'अन' आदेश होता है। 'आतो युक् चिण्कृतो:' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

वुन्—

(१) प्रुसृल्वः समभिहारे वुन्।१४६।

प०वि०-प्रु-सृ-ल्वः ५।१ समभिहारे ७।१ वुन् १।१।

अन्वय:-प्रुसृल्वो धातोर्वुन् समभिहारे।

अर्थ:-प्रुसृलूभ्यो धातुभ्यः परो वुन् प्रत्ययो भवति, समभिहारे कर्तरि सति।

उदा०-(प्रु) प्रवते इति प्रवकः। (सृ) सरतीति सरकः। (लू) लुनातीति लवकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रुसृल्वः) प्रु, सृ, लू (धातो:) धातुओं से परे (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (समभिहारे) यदि 'प्रु' आदि धातुओं का कर्ता समभिहार=साधुकारी हो। उन क्रियाओं को ठीक-ठीक करनेवाला हो।

उदा०-(प्रु) प्रवते इति प्रवक:। अच्छे प्रकार कूदनेवाला। (सृ) सरतीति सरक:। अच्छे प्रकार सरकनेवाला सर्प आदि। (लू) लुनातीति लवक:। अच्छे प्रकार काटनेवाला।

सिद्धि-(१) प्रवक:। 'प्रुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।३।८४) से 'प्रु' धातो को गुण हो जाता है। 'वुन्' में 'न्' अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर के लिये है।

(२) सरक:। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) लवक:। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-समभिहार-समभिहार शब्द का अर्थ किसी क्रिया को बार-बार करना होता है किन्तु यहां समभिहार का अर्थ क्रिया को ठीक-ठीक करना है। यदि कर्ता सम्बन्धित क्रिया को एक बार भी अच्छे प्रकार करता है तो 'वुन्' प्रत्यय होता है, यदि कर्ता बार-बार भी क्रिया को अच्छे प्रकार नहीं करता है तो 'वुन्' प्रत्यय नहीं होता है।

(२) आशिषि च।१५०।

प०वि०-आशिषि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-अप्राप्तस्याभिलषितस्य वस्तुनः प्रार्थना=आशीः। तस्याम्-आशिषि।

अनु०-वुन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि च धातोर्वुन्।

अर्थः-आशिषि गम्यामानायामपि धातुमात्राद् वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-जीवतादयमिति जीवकः। नन्दतादयमिति-नन्दकः।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(आशिषि) अप्राप्त अभीष्ट वस्तु की इच्छा अर्थ प्रकट करने पर (च) भी (धातोः) धातुमात्र से (वुन्) वुन्-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**जीवातादयमिति जीवकः।** यह जीवित रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है। **नन्दतादयमिति नन्दकः।** आनन्दित रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।*

सिद्धि-(१) जीवकः। 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वुन्' के 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

(२) नन्दकः। 'टुनदि समृद्धौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने

तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः

कृत्प्रत्ययप्रकरणम्

अण्--

(१) कर्मण्यण्।१।

प०वि०-कर्मणि ७।१ अण् १।१।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे धातोरण्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे धातोः परोऽण् प्रत्ययो भवति। निर्वर्त्य-विकार्य-प्राप्य-भेदात् त्रिविधं कर्म भवति।

उदा०- **(निर्वर्त्यम्)** कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। नगरं करोतीति नगरकारः। **(विकार्यम्)** काण्डं लुनातीति काण्डलावः। शरं लुनातीति शरलावः। **(प्राप्यम्)** वेदमधीते इति वेदाध्यायः। चर्चां पारयतीति चर्चापारः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (अण्) अण् प्रत्यय होता है। निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य भेद से कर्म तीन प्रकार का है।

उदा०-__(निर्वर्त्य) कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।__ कुम्भ (घड़ा) को बनानेवाला कुम्हार। __नगरं करोतीति नगरकारः।__ नगर को बनानेवाला। __(विकार्य) काण्डं लुनातीति काण्डलावः।__ शाखा को काटनेवाला। __शरं लुनातीति शरलावः।__ सरकंडा को काटनेवाला। __(प्राप्य) वेदमधीते इति वेदाध्यायः।__ वेद को पढ़नेवाला। __चर्चां पारयतीति चर्चापारः।__ चर्चा=अध्ययन को पूरा करनेवाला।

__सिद्धि-(१) कुम्भकारः।__ कुम्भ+ङस्+कृ+अण्। कुम्भ+कार्+अ। कुम्भकारः।

यहां कुम्भ कर्म उपपद होने पर __'डुकृञ् करणे'__ (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। __'अचो ञ्णिति'__ (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

__(२) काण्डलावः।__ काण्ड कर्म उपपद __'लूञ् छेदने'__ (क्रया०उ०) धातु से पूर्ववत्।

__(३) वेदाध्यायः।__ वेद कर्म उपपद अधिपूर्वक __'इङ् अध्ययने'__ (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत्।

__(४) चर्चापारः।__ चर्चा कर्म उपपद णिजन्त __'पृ पालनपूरणयोः'__ (क्रया०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) यहां सर्वत्र __'उपपदमतिङ्'__ (२।२।१९) से उपपद समास होता है। __'कर्तृकर्मणोः कृति'__ (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

(२) ह्वावामश्च।२।

प०वि०-ह्वा-वा-मः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-ह्वाश्च वाश्च माश्च एतेषां समाहारो ह्वावाम्, तस्मात्-ह्वावामः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे ह्वावामश्च धातोरण्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे ह्वावामाभ्यो धातुभ्यः परोऽपि अण् प्रत्ययो भवति। क-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(ह्वा) स्वर्गं ह्वयते इति स्वर्गह्वायः। (वा) तन्तुं वयते इति तन्तुवायः। (मा) धान्यं मिमीते इति धान्यमायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (ह्वावामः) ह्वा, वा, मा (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ह्वा) स्वर्गं ह्वयते इति स्वर्गह्वायः। स्वर्ग की स्पर्धा करनेवाला। (वा) तन्तुं वयते इति तन्तुवायः। तन्तु को फैलनेवाला-जुलाहा। (मा) धान्यं मिमीते इति धान्यमायः। धान्य (अन्न) को मापनेवाला।

सिद्धि-(१) स्वर्गह्वायः। यहां स्वर्ग कर्म उपपद 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से आत्त्व, 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(२) तन्तुवायः। यहां तन्तु कर्म उपपद 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(३) धान्यमायः। यहां धान्य कर्म उपपद 'माङ् माने' (जु०आ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-यहां 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) से क-प्रत्यय प्राप्त था। उसका यह पुरस्ताद् अपवाद है।

कः-

(१) आतोऽनुपसर्गे कः।३।

प०वि०-आतः ५।१ अनुपसर्गे ७।१ कः १।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽनुपसर्गे आतो धातोः कः।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे अनुपसर्गे=उपसर्गरहितेभ्य आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कः प्रत्ययो भवति। अण्-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(दा) गां ददातीति गोदः। कम्बलं ददातीति कम्बलदः। **(त्रा)** पार्ष्णिं त्रायते इति पार्ष्णित्रम्। अङ्गुलीस्त्रायते इति अङ्गुलित्रम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनुपसर्गे) उपसर्गरहित (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) क-प्रत्यय होता है।

उदा०-(दा) __गां ददातीति गोदः।__ गौ का दान करनेवाला-यजमान। __कम्बलं ददातीति कम्बलदः।__ कम्बल का दान करनेवाला-धनवान्। __(त्रा) पार्ष्णिं त्रायते इति पार्ष्णित्रम्।__ पादतल की रक्षा करनेवाला-जूता। __अङ्गुलीस्त्रायते इति अङ्गुलित्रम्।__ अङ्गुलियों की रक्षा करनेवाला-दस्ताना।

सिद्धि-(१) __गोदः।__ यहां गौ कर्म उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से __'आतो लोप इटि च'__ (६।४।६४) से 'दा' के आ का लोप होता है। ऐसे ही कम्बल कर्म उपपद होने पर-__कम्बलदः।__

(२) __पार्ष्णित्रम्।__ यहां पार्ष्णि कर्म उपपद होने पर __'त्रैङ् पालने'__ (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् कार्य है। ऐसे ही-__अङ्गुलित्रम्।__

कः-

(२) सुपि स्थः।४।

सूचना-अत्र योगविभागः कर्तव्यः-

(क) सुपि।

प०वि०-सुपि ७।१।

अनु०-आतः, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे आतो धातोः कः।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पा) द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः। पादैः पिबतीति पादपः। कच्छेन पिबतीति कच्छपः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आतः) आकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

*उदा०-(पा) **द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः।** सूंड और मुख दोनों से पानी पीनेवाला-हाथी। **पादैः पिबतीति पादपः।** पांवों से पानी पीनेवाला-वृक्ष। **कच्छेन पिबतीति कच्छपः।** कच्छ नामक अङ्गविशेष से पानी पीनेवाला-कछुआ।*

*सिद्धि-**द्विपः।** यहां द्वि सुबन्त उपपद होने पर **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'पा' के आ का लोप हो जाता है। ऐसे ही पाद और कच्छ सुबन्त उपपद होने पर 'पा' धातु से-**पादपः** और **कच्छपः।***

(ख) स्थः।

प०वि०-स्थः ५।१।

अनु०-सुपि, क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे स्थो धातोः कः।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे स्था-धातोः परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्था) समे तिष्ठतीति-समस्थः। विषमे तिष्ठतीति विषमस्थः।

योगविभागः किमर्थः ? कर्तरि कारके पूर्वयोगः। अनेन भावेऽर्थेऽपि कः प्रत्ययो यथा स्यात्-आखूनाम् उत्थानमिति-आखूत्थः। शलभाना-मुत्थानमिति-शलभोत्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (स्थः) स्था (धातोः) धातु से (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

*उदा०-(स्था) **समे तिष्ठतीति समस्थः।** सम अवस्था में रहनेवाला-योगी। **विषमे तिष्ठतीति विषमस्थः।** विषम अवस्था में रहनेवाला-साधारण जन।*

*योग विभाग किसलिये किया है ? पहला सूत्र **'कर्तरि कृत्'** (३।४।६७) से 'कर्ता' अर्थ में होता है। इस सूत्र से 'स्था' धातु से 'भाव' अर्थ में भी 'क' प्रत्यय हो जाये इसलिए यह योगविभाग किया गया है। जैसे-**आखूनाम् उत्थानम् आखूत्थः।** चूहों का उठाव। **शलभानामुत्थानम्-शलभोत्थः।** शलभ (टिड्डी) नामक पतंगों का उठाव।*

*सिद्धि-(१) **समस्थः।** अधिकरण सम उपपद होने पर **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप हो जाता है। विषम उपपद होने पर-**विषमस्थः।***

*(२) **आखूत्थः।** यहां **'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य'** से 'स्था' के स् को पूर्वसवर्ण त् होता है। शेष पूर्ववत् है। शलभ उपपद होने पर-**शलभोत्थः।***

विशेष-अनुवृत्ति-इससे आगे कर्मणि और सुपि इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है किन्तु सकर्मक धातुवाले सूत्रों में कर्मणि की और शेष सूत्रों में सुपि की अनुवृत्ति की जाती है।

कः–

(३) तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः।५।

प०वि०–तुन्द-शोकयोः ७।२ परिमृज-अपनुदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–तुन्दश्च शोकश्च तौ तुन्दशोकौ, तयोः-तुन्दशोकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। परिमृजश्च अपनुद् च तौ परिमृजापनुदौ, तयोः-परिमृजापनुदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि क इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदिभ्यां धातुभ्यां कः।

अर्थः–तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोर्यथासंख्यं परिमृजापनुदिभ्यां धातुभ्यां परः कः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(तुन्दः)** तुन्दं परिमार्ष्टि इति तुन्दपरिमृज आस्ते। (शोकः) शोकमपनुदतीति-शोकापनुदः पुत्रः।

आर्यभाषा-अर्थ-(तुन्दशोकयोः) तुन्द और शोक (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (परिमृजापनुदोः) परिमृज और अपनुद् (धातोः) धातुओं से परे (कः) क-प्रत्यय होता है।

उदा०-(तुन्द) तुन्दं परिमार्ष्टीति-तुन्दपरिमृजः। तुन्द-महोदर का परिमार्जन करनेवाला-आलसी। (शोक) शोकमपनुदतीति-शोकापनुदः। शोक को दूर भगानेवाला पुत्र।

सिद्धि-(१) तुन्दपरिमृजः। यहां तुन्द कर्म उपपद होने पर 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

(२) शोकापनुदः। यहां शोक कर्म उपपद होने पर 'णुद प्रेरणे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है।

कः–

(४) प्रे दाज्ञः ।६ ।

प०वि०–प्रे ७ ।१ दा-ज्ञ: ५ ।१ ।

स०–दाश्च ज्ञाश्च एतयो: समाहारो दाज्ञम्, तस्मात्–दाज्ञ: (समाहारद्वन्द्व:) ।

अनु०–कर्मणि, क इति चानुवर्तते ।

अन्वय:–कर्मणि प्रे-चोपपदे दाज्ञाभ्यां धातुभ्यां पर: क: प्रत्ययो भवति ।

उदा०–(दा) सर्वं प्रददातीति सर्वप्रद: । **(ज्ञा)** पन्थानं प्रजानातीति पथिप्रज्ञ: ।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (प्रे) प्र-उपसर्ग उपपद होने पर (दा-ज्ञ:) दा और ज्ञा धातु से परे (क:) 'क' प्रत्यय होता है।

*उदा०–(दा) सर्वं प्रददातीति **सर्वप्रद:** । सर्वस्व प्रदान करनेवाला । (ज्ञा) पन्थानं प्रजानातीति **पथिप्रज्ञ:** । मार्ग को यथावत् जाननेवाला ।*

सिद्धि-सर्वप्रद: *। यहां 'सर्व' कर्म और 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६ ।४ ।६४) से 'दा' के आ का लोप होता है।*

*(२) **पथिप्रज्ञ:** । यहां 'पथिन्' कर्म और 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क' प्रत्यय है।*

कः–

(५) समि ख्यः ।७ ।

प०वि०–समि ७ ।१ ख्य: ५ ।१ ।

अनु०–कर्मणि, क इति चानुवर्तते ।

अन्वय:–कर्मणि समि चोपपदे ख्यो धातो: क: ।

अर्थ:–कर्मणि कारके सम्-उपसर्गे चोपपदे ख्या-धातो: पर: क: प्रत्ययो भवति ।

उदा०–(ख्या) गा: संचष्टे इति गोसंख्य: ।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (समि) सम्-उपसर्ग उपपद होने पर (ख्यः) ख्या (धातोः) धातु से परे (कः) 'क' प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ख्या) गाः संचष्टे इति **गोसंख्यः।** गौओं की संख्या करनेवाला।*

***सिद्धि-गोसंख्यः।** यहां गौ कर्म और सम् उपसर्ग उपपद होने पर **'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि'** (अदा०आ०) धातु से 'क' प्रत्यय है। **'चक्षिङः ख्याञ्'** (२।४।५४) से 'चक्षिङ्' के स्थान में ख्याञ्-आदेश होता है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'ख्या' के आ का लोप होता है।*

***विशेष-ख्या-**यहां **'चक्षिङः ख्याञ्'** (२।४।५४) से जो 'चक्षिङ्' के स्थान में 'ख्या' आदेश होता है उसी का यहां ग्रहण किया जाता है, **'ख्या प्रकथने'** (अदा०प०) धातु का नहीं है, क्योंकि उसका सम्-उपसर्गपूर्वक प्रयोग नहीं होता है।*

टक्-

(१) गापोष्टक्।८।

प०वि०-गापोः ६।२ पञ्चम्यर्थे। टक् १।१।

स०-गाश्च पाश्च तौ गापौ, तयोः-गापोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, अनुपसर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्यनुपसर्गे चोपपदे गापाभ्यां धातुभ्यां टक्।

अर्थः-कर्मणि कारकेऽनुपसर्गे चोपपदे गापाभ्यां धातुभ्यां परष्टक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गा) शक्रं गायतीति शक्रगः। साम गायतीति सामगः। स्त्रियाम्-शक्रगी। सामगी। **(पा)** सुरां पिबतीति सुरापः। शीधुं पिबतीति शीधुपः। स्त्रियाम्-सुरापी। शीधुपी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (अनुपसर्गे) उपसर्गरहित उपपद होने पर (गापोः) 'गा' और 'पा' (धातोः) धातु से परे (टक्) 'टक्' प्रत्यय होता है।

*उदा०-(गा) शक्रं गायतीति **शक्रगः।** इन्द्र देवता की स्तुति करनेवाला। साम गायतीति गायतीति **सामगः।** साम-वेद का गान करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-**शक्रगी।** इन्द्र देवता की स्तुति करनेवाली नारी। **सामगी।** सामवेद का गान करनेवाली नारी। (पा) सुरां पिबतीति **सुरापः।** सुरा का पान करनेवाला। शीधुं पिबतीति **शीधुपः।** अंगूरी शराब का पान करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-**सुरापी।** सुरा का पान करनेवाली नारी। **शीधुपी।** अंगूरी शराब का पान करनेवाली नारी।*

सिद्धि-(१) शक्रगः। यहां शक्र कर्म उपपद तथा अनुपसर्ग 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के कित् होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'गा' के आ का लोप होता है। 'टक्' प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-शक्रगी। ऐसे ही-सामगः और सामगी।

(२) सुरापः। यहां सुरा कर्म उपपद तथा अनुपसर्ग 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अच्-

(१) हरतेरनुद्यमनेऽच्।६।

प०वि०-हरतेः ५।१ अनुद्यमने ७।१ अच् १।१।

स०-उद्यमनम्=उत्क्षेपणम्, न उद्यमनमिति अनुद्यमनम्, तस्मिन्-अनुद्यमने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्यनुद्यमने हरतेर्धातोरच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदेऽनुद्यमनेऽर्थे वर्तमानाद् हृञ्-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति। अण्-प्रत्ययस्यापवादः।

उदा०-(हृ) अंशं हरतीति-अंशहरः। रिक्थं हरतीति-रिक्थहरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनुद्यमने) ऊपर उठाना अर्थ को छोड़कर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है। यह अण् प्रत्यय का अपवाद है।

उदा०-(हृ) अंशं हरतीति अंशहरः। अंश=भाग को ग्रहण करनेवाला-राजा। रिक्थं हरतीति-रिक्थहरः। दायभाग के धन को ग्रहण करनेवाला-दायभागी।

सिद्धि-अंशहरः। यहां अंश कर्म उपपद होने पर 'अनुद्यमन' अर्थ में 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'हृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-रिक्थहरः।

अच्-

(२) वयसि च।१०।

प०वि०-वयसि ७।१ च अव्ययपदम्। वयः=आयुः, तस्मिन् वयसि।

अनु०-कर्मणि, हरतेः, अच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हरतेर्धातोर्वयसि चाऽच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हृञ्-धातोः परो वयसि गम्यमानेऽपि अच् प्रत्ययो भवति।

कालकृता शरीरावस्था यौवनादिकं वयः। यद् उद्यमनम् (उत्क्षेपणम्) क्रियमाणं सम्भाव्यमानं वा वयो गमयति तत्रायं प्रत्ययविधिर्भवति।

उदा०-(हृ) अस्थि हरतीति-अस्थिहरः श्वा। कवचं हरतीति-कवचहरः क्षत्रियकुमारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (वयसि) आयु प्रकट होने पर (च) भी (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(हृ) **अस्थि हरतीति-अस्थिहरः श्वा।** हड्डी को उठानेवाला कुत्ता। **कवचं हरतीति कवचहरः क्षत्रियकुमारः।** कवच को धारण कर सकनेवाला राजकुमार।*

*सिद्धि-**अस्थिहरः।** यहां अस्थि कर्म उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है-**कवचहरः।** यहां दोनों स्थानों पर श्वा और राजकुमार की वय=युवावस्था प्रकट हो रही है।*

अच्-

(३) आङि ताच्छील्ये।११।

प०वि०-आङि ७।१ ताच्छील्ये ७।१।

स०-तस्य शीलमिति-तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावस्ताच्छील्यम्, तस्मिन् ताच्छील्ये (षष्ठीतत्पुरुषस्ततो तद्धितवृत्तिः)।

अनु०-कर्मणि, हरतेः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्याङि चोपपदे हरतेर्धातोरच् ताच्छील्ये।

अर्थः-कर्मणि कारके आङ्-उपसर्गे चोपपदे हृञ् धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति, ताच्छील्ये गम्यमाने।

उदा०-पुष्पाण्याहरतीति-पुष्पाहरः। फलान्याहरतीति-फलाहरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक और (आङि) आङ् उपसर्ग उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है (ताच्छील्ये) यदि आहरण क्रिया में उसका स्वभाव प्रकट हो।

*उदा०-(हृ) **पुष्पाण्याहरतीति-पुष्पाहरः।** फूलों को निष्कामभाव से लानेवाला। **फलान्याहरतीति-फलाहरः।** फलों को निष्कामभाव से लानेवाला।*

सिद्धि-पुष्पाहरः। यहां पुष्प कर्म और आङ् उपसर्ग उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-फलाहरः।

अच्-

(४) अर्हः।१२।

प०वि०-अर्हः ५।१।

अनु०-कर्मणि, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽर्हो धातोरच्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे अर्ह-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अर्ह्) पूजामर्हतीति-पूजार्हा ब्राह्मणी। गन्धमर्हतीति-गन्धार्हा नारी। मालामर्हतीति-मालार्हा नारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अर्हः) अर्ह् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(अर्ह्) **पूजामर्हतीति-पूजार्हा ब्राह्मणी।** पूजा के योग्य विदुषी नारी। **गन्धमर्हति-गन्धार्हा।** सुगन्ध लगानेवाली नारी। **मालामर्हति-मालार्हा।** माला धारण करनेवाली नारी।*

*सिद्धि-**पूजार्हा।** यहां पूजा कर्म उपपद होने पर 'अर्ह पूजायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही गन्धार्हा आदि।*

अच्-

(५) स्तम्बकर्णयो रमि जपोः।१३।

प०वि०-स्तम्ब-कर्णयोः ७।२ रमि-जपोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-स्तम्बश्च कर्णश्च तौ स्तम्बकर्णौ, तयोः स्तम्बकर्णयोः। रमिश्च जप् च तौ रमिजपौ, तयोः रमिजपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तते न कर्मणि।

अन्वयः-स्तम्बकरणयोः सुपोरुपपदयोः रमिजपिभ्यां धातुभ्यामच्।

अर्थः-स्तम्बकर्णयोः सुबन्तयोरुपपदयोर्यथासंख्यं रमिजपिभ्यां धातुभ्यां परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्तम्बः) स्तम्बे रमते इति स्तम्बेरमः हस्ती। **(कर्णः)** कर्णे जपतीति कर्णेजपः सूचकः (पिशुनः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्बकर्णयोः) स्तम्ब और कर्ण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर यथासंख्य (रमिजपोः) रम, जप् धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(स्तम्ब) **स्तम्बे रमते इति स्तम्बेरमः-हस्ती।** स्तम्ब=वृक्षों की शाखा अथवा घास के समूह में रमण करनेवाला-हाथी। (कर्ण) **कर्णे जपतीति कर्णेजपः-सूचकः।** कान में कुछ कहनेवाला-चुगलखोर।*

सिद्धि-(१) स्तम्बेरमः। *यहां सप्तम्यन्त सुबन्त स्तम्ब उपपद होने पर **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। **हलन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्'** (६।३।७) से समास में सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।*

*(२) **कर्णेजपः।** यहां सप्तम्यन्त सुबन्त कर्ण उपपद होने पर **'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। शेष पूर्ववत्।*

अच्-

(६) शमि धातोः संज्ञायाम्।१४।

प०वि०-शमि ७।१ धातोः ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-अच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शम्युपपदे धातोरच् संज्ञायाम्।

अर्थः-शमि उपपदे धातुमात्रात् परोऽच् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये।

उदा०-(शम्) शं करोतीति-शङ्करः। शं भवतीति शंभवः। शं वदतीति शंवदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शमि) शम् उपपद होने पर (धातोः) धातुमात्र से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

*उदा०-(शम्) **शं करोतीति-शङ्करः।** शम्=सुख देनेवाला-भगवान्। **शं भवतीति-शंभवः।** सुखस्वरूप ईश्वर। **शं वदतीति शंवदः।** सुख का उपदेश करनेवाला-ऋषि।*

***सिद्धि-(१)** शङ्करः। यहां शम् उपपद होने पर **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'**(७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है।*

(२) शम्भवः। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) से पूर्ववत्।

(३) शंवदः। 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) से पूर्ववत्।

विशेष-धातु-धातु की अनुवृत्ति होने पर भी फिर 'धातोः' पद का ग्रहण इसलिये किया है शम् उपपद होने पर धातु से संज्ञा विषय में 'अच्' प्रत्यय ही हो, 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' (३।२।२०९ से 'ट' प्रत्यय न हो। जैसे-शङ्करा नाम परिव्राजिका। शङ्करा नाम शकुनिका, तच्छीला च।

अच्–

(७) अधिकरणे शेतेः।१५।

प०वि०-अधिकरणे ७।१ शेतेः ५।१।

अनु०-सुपि, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे सुप्युपपदे शेतेर्धातोरच्।

अर्थः-अधिकरणे सुबन्ते उपपदे शीङ्-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शीङ्) खे शेते इति-खशयः। गर्ते शेते इति-गर्तशयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (शेतेः) शीङ् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच्-प्रत्यय होता है।

उदा०-(शीङ्) खे शेते इति खशयः। आकाश में रहनेवाला। वृक्ष की शाखा। गर्ते शेते इति-गर्तशयः। गड्ढे में रहनेवाला, खम्भा।

सिद्धि-(१) खशयः। यहां अधिकरण सुबन्त 'ख' उपपद होने पर 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शी' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-गर्तशयः।

विशेष-शीङ् धातु का अर्थ सोना है, किन्तु यहां प्रकरणवश रहना अर्थ लिया जाता है 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्यम्)।

टः–

(१) चरेष्टः।१६।

प०वि०-चरेः ५।१ टः १।१।

अनु०-सुपि, अच्, अधिकरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे सुप्युपपदे चरेर्धातोरच्।

अर्थः-अधिकरणे सुबन्ते उपपदे चर-धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(चर्) कुरुषु चरतीति-कुरुचरः। स्त्रियाम्-कुरुचरी। मद्रेषु चरतीति-मद्रचरः। स्त्रियाम्-मद्रचरी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (चरेः) चर् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच्-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(चर्) कुरुषु चरतीति-**कुरुचरः**। कुरु देश में विचरण करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-**कुरुचरी**। मद्रेषु चरतीति-**मद्रचरः**। मद्र देश में विचरण करनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-**मद्रचरी**।*

***सिद्धि-कुरुचरः**। यहां कुरु अधिकरण सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'ट' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**कुरुचरी**। ऐसे ही-**मद्रचरः**। **मद्रचरी**।*

***विशेष**-दिल्ली और मेरठ प्रदेश का प्राचीन नाम 'कुरु' है। रावी और चनाब नदी के बीच का प्रदेश 'मद्र' कहाता है।*

टः-

(२) भिक्षासेनाऽऽदायेषु च।१७।

प०वि०-भिक्षा-सेना-आदायेषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-भिक्षा च सेना च आदायश्च ते भिक्षासेनाऽऽदायाः, तेषु-भिक्षासेनाऽऽदायेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, चरेः, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भिक्षासेनाऽऽदायेषु च सुप्सूपपदेषु चरेर्धातोष्टः।

अर्थः-भिक्षासेनाऽऽदायेषु सुबन्तेषु उपपदेषु चर-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(भिक्षा) भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। **(सेना)** सेनां चरतीति सेनाचरः। **(आदाय)** आदाय चरतीति आदायचरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भिक्षासेनाऽऽदायेषु) भिक्षा, सेना, आदाय (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (चरेः) चर् (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(भिक्षा) भिक्षां चरतीति **भिक्षाचरः**। भिक्षा को घूम-घूमकर अर्जित करनेवाला। यहां 'चर्' धातु घूमकर अर्जन करने अर्थ में है। (सेना) सेनां चरतीति **सेनाचरः**। सेना में भर्ती (प्रविष्ट) होनेवाला। यहां 'चर्' धातु प्रवेश अर्थ में हैं। (आदाय) आदाय चरतीति **आदायचरः**। लेकर खानेवाला, वापिस न देनेवाला।*

सिद्धि-भिक्षाचरः। यहां भिक्षा सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। ऐसे ही-सेनाचरः और आदायचरः।

विशेष-धातु अर्थ-पाणिनीय धातुपाठ में जो धातुओं के अर्थ बतलाये गये हैं वे केवल उदाहरणमात्र हैं "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

टः-

(३) पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः।१८।

प०वि०-पुरः-अग्रतः-अग्रेषु ७।३ सर्तेः ५।१।

स०-पुरश्च अग्रतश्च अग्रे च ते-पुरोऽग्रतोऽग्रयः, तेषु पुरोऽग्रतोऽग्रेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सुप्सूपपदेषु सर्तेर्धातोष्टः।

अर्थः-पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सुबन्तेषु उपपदेषु सृ-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**पुरः**) पुरः सरतीति पुरस्सरः। (**अग्रतः**) अग्रतः सरतीति अग्रतस्सरः। (**अग्रे**) अग्रे सरतीति अग्रेसरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(पुरोऽग्रतोऽग्रेषु) पुरः, अग्रतः, अग्रे (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सर्तेः) सृ (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है।

उदा०-(पुरः) पुरः सरतीति पुरस्सरः। पहले चलनेवाला। (अग्रतः) अग्रतः सरतीति अग्रतस्सरः। आगे से चलनेवाला। (अग्रे) अग्रे सरतीति अग्रेसरः। आगे चलनेवाला। यहां 'अग्रे' शब्द एकारान्त निपातित है।

सिद्धि-पुरस्सरः। यहां 'पुरः' उपपद होने पर 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-अग्रतस्सरः और अग्रेसरः।

टः-

(४) पूर्वे कर्तरि।१९।

प०वि०-पूर्वे ७।१ कर्तरि ७।१।

अनु०-सुपि, टः, सर्तेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्तरि पूर्वे सुप्युपपदे सर्तेर्धातोष्टः।

अर्थ:-कर्तृवाचिनि पूर्वे सुबन्ते उपपदे सृ-धातो: परष्ट: प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पूर्व:) पूर्व: सरतीति पूर्वसर:।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तरि) कर्तावाची (पूर्वे) पूर्व (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सर्ते:) सृ (धातो:) धातु से परे (ट:) 'ट' प्रत्यय होता है।

उदा०-(पूर्व:) पूर्व: सरतीति पूर्वसर:। प्रथम चलनेवाला।

सिद्धि-पूर्वसर:। यहां कर्तावाची पूर्व सुबन्त उपपद होने पर 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'सृ' धातु को गुण होता है।

ट:-

(५) कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु।२०।

प०वि०-कृञ: ५।१ हेतु-ताच्छील्य-आनुलोम्येषु ७।३।

स०-तस्य शीलमिति तच्छीलम्, तच्छीलस्य भाव:-ताच्छील्यम्। अनुलोमस्य भाव आनुलोम्यम्। हेतुश्च ताच्छील्यं च आनुलोम्यं च तानि-हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु-हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। हेतु:=ऐकान्तिकं कारणम्। ताच्छील्यम्=तत्स्वभावता। आनुलोम्यम्=अनुकूलता।

अनु०-कर्मणि, ट इति चानुवर्तते।

अन्वय:-कर्मण्युपपदे कृञो धातोष्टो हेतुताच्छील्यानुलाम्येषु।

अर्थ:-कर्मणि कारके उपपदे कृञ्-धातो: परष्ट: प्रत्ययो भवति, हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु गम्यमानेषु।

उदा०-(हेतु:) शोकं करोतीति शोककरी कन्या। यश: करोति यशस्करी विद्या। कुलं करोतीति कुलकरं धनम्। **(ताच्छील्यम्)** श्राद्धं करोतीति श्राद्धकर: पुत्र:। **(आनुलोम्यम्)** प्रैषं करोतीति प्रैषकर: शिष्य:। वचनं करोतीति वचनकर: शिष्य:।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (कृञ:) कृञ् (धातो:) धातु से परे (ट:) 'ट' प्रत्यय होता है (हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु) हेतु=कारण, ताच्छील्य, उसका स्वभाव होना और आनुलोम्य=अनुकूलता अर्थ प्रकट होने पर।*

*उदा०-(हेतु) शोकं करोतीति **शोककरी कन्या।** शोक उत्पत्ति का कारण कन्या। यशः करोतीति **यशस्करी विद्या।** यश की उत्पत्ति का कारण विद्या। कुलं करोतीति **कुलकरं धनम्।** कुल के निर्माण का कारण धन। (ताच्छील्य) श्राद्धं करोतीति **श्राद्धकरः पुत्रः।** श्रद्धा से सेवा-शुश्रूषा करनेवाला पुत्र। (आनुलोम्य) प्रैषं करोतीति **प्रैषकरः शिष्यः।** आज्ञा के अनुकूल आचरण करनेवाला शिष्य। वचनं करोतीति **वचनकरः शिष्यः।** गुरुवचन के अनुकूल कार्य करनेवाला शिष्य।*

सिद्धि-शोककरी। *यहां शोक कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'ट' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**यशस्करी** आदि पद सिद्ध करें।*

टः-

(६) दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दी-किंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घा-बाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु।२१।

प०वि०-दिवा-विभा-निशा-प्रभा-भास्-कार-अन्त-अनन्त-आदि-बहु-नान्दी-किम्-लिपि-लिबि-बलि-भक्ति-कर्तृ-चित्र-क्षेत्र-संख्या-जङ्घा-बाहु-अहर्-यत्-तत्-धनुर्-अरुष्षु ७।३।

स०-दिवा च विभा च निशा च प्रभा च भास् च कारश्च अन्तश्च अनन्तश्च आदिश्च बहुश्च नान्दी च किं च लिपिश्च बलिश्च भक्तिश्च कर्ता च चित्रं च क्षेत्रं च संख्या च जङ्घा च बाहुश्च अहश्च यच्च तच्च धनुश्च अरुश्च तानि-दिवा०अरूंषि, तेषु-दिवा०अरुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, सुपि, कृञः, ट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिवा०अरुषु कर्मसु सुपि चोपपदे कृञो धातोष्टः।

अर्थः-दिवादिषु कर्मसु सुबन्ते चोपपदे कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति। अत्र दिवाशब्दोऽधिकरणवाची, तेन 'सुपि' इति सम्बध्यते, शेषैश्च 'कर्मणि' इति।

उदा०-(दिवा) दिवा (प्राणिनश्चेष्टायुक्तान्) करोतीति-दिवाकरः। **(विभा)** विभां करोतीति विभाकरः। **(निशा)** निशां करोतीति निशाकरः।

(प्रभा) प्रभां करोतीति प्रभाकरः। **(भास्)** भासं करोतीति भास्करः। **(कारः)** कारं करोतीति कारकरः। **(अन्तः)** अन्तं करोतीति अन्तकरः। **(अनन्तः)** अनन्तं करोतीति अनन्तकरः। **(आदिः)** आदिं करोतीति आदिकरः। **(बहु)** बहुं करोतीति बहुकरः। **(नान्दी)** नान्दीं करोतीति नान्दीकरः। **(किम्)** किं करोतीति किङ्करः। **(लिपिः)** लिपिं करोतीति लिपिकरः। **(लिबिः)** लिबिं करोतीति लिबिकरः। **(बलिः)** बलिं करोतीति बलिकरः। **(भक्तिः)** भक्तिं करोतीति भक्तिकरः। **(कर्तृ)** कर्तारं करोतीति कर्तृकरः। **(चित्रम्)** चित्रं करोतीति चित्रकरः। **(क्षेत्रम्)** क्षेत्रं करोतीति क्षेत्रकरः। **संख्या-(एकः)** एकं करोतीति एककरः। **(द्वि)** द्वे करोतीति द्विकरः। **(त्रि)** त्रीणि करोतीति त्रिकरः। **(जङ्घा)** जङ्घां करोतीति जङ्घाकरः। **(बाहुः)** बाहुं करोतीति बाहुकरः। **(अहः)** अहः करोतीति अहस्करः। **(यत्)** यत् करोतीति यत्करः। **(तत्)** तत् करोतीति तत्करः। **(धनुः)** धनुः करोतीति धनुष्करः। **(अरुः)** अरुः करोतीति अरुष्करः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(दिवा०अरुष्षु) दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्यावाची शब्द, जंघा, बाहु, अहः, यत्, तत्, धनुः अरुः (कर्मणि) कर्म कारक और (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता है। यहां दिवा शब्द अधिकरण कारकवाची है अतः उसका सुपि=सुबन्त उपपद के साथ सम्बन्ध है और शेष का कर्मणि=कर्म उपपद से सम्बन्ध है।

उदा०-(दिवा) दिवा (प्राणिनचेष्टायुक्तान्) __करोतीति दिवाकरः।__ दिवा=दिन में प्राणियों को चेष्टायुक्त करनेवाला (सूर्य)। (विभा) __विभां करोतीति विभाकरः।__ विशिष्ट दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (निशा) __निशां करोतीति निशाकरः।__ निशा को बनानेवाला (चन्द्रमा)। (प्रभा) __प्रभां करोतीति प्रभाकरः।__ प्रकृष्ट दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (भास्) __भासं करोतीति भास्करः।__ भाः=दीप्ति करनेवाला (सूर्य)। (अन्त) __अन्तं करोतीति अन्तकरः।__ अन्त करनेवाला (मृत्यु)। (अनन्त) __अनन्तं करोतीति अनन्तकरः।__ अनन्त जगत् को बनानेवाला (ईश्वर)। (आदि) __आदिं करोतीति आदिकरः।__ आरम्भ करनेवाला। (बहु) __बहुं करोतीति बहुकरः।__ बड़ा कार्य करनेवाला। (नान्दी) __नान्दीं करोतीति नान्दीकरः।__ नाटक के प्रारम्भ में नान्दीपाठ करनेवाला। (किम्) __किं करोतीति किङ्करः।__ कुछ करनेवाला (नौकर)। (लिपि) __लिपिं करोतीति लिपिकरः।__ लिपि=पुस्तक आदि की नकल करनेवाला। (लिबि) __लिबिं करोतीति लिबिकरः।__ लिब शब्द लिपि का

पर्यायवाची है। (बलि) बलिं करोतीति बलिकरः। बलिदान करनेवाला। (भक्ति) भक्तिं करोतीति भक्तिकरः। ईश्वर की भक्ति करनेवाला भक्त। (कर्तृ) कर्तारं करोतीति कर्तृकरः। कर्ता को उत्साहित करनेवाला। (चित्र) चित्रं करोतीति चित्रकरः। चित्र बनानेवाला। (क्षेत्र) क्षेत्रं करोतीति क्षेत्रकरः। खेत को उत्तम बनानेवाला किसान। संख्या-(एक) एकं करोतीति एककरः। एक बनानेवाला। (द्वि) द्वे करोतीति द्विकरः। दो बनानेवाला। (त्रि) त्रीणि करोतीति त्रिकरः। तीन बनानेवाला। (जङ्घा) जङ्घां करोतीति जङ्घाकरः। दौड़नेवाला। (बाहु) बाहुं करोतीति बाहुकरः। बाहु से कार्य करनेवाला पुरुषार्थी। (यत्) करोतीति यत्करः। जिस किसी कार्य को करनेवाला। (तत्) तत् करोतीति तत्करः। उसी (निर्धारित) कार्य को करनेवाला। (धनुः) धनुः करोतीति धनुष्करः। धनुष बनानेवाला। (अरुः) अरुः करोतीति अरुष्करः। घाव करनेवाला।

सिद्धि-(१) दिवाकरः। अधिकरणवाची 'दिवा' उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण होता है।

(२) भास्करः। यहां भास् के सकार को 'कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च' (८।३।४८) से जिह्वामूलीय अथवा विसर्जनीय नहीं होता क्योंकि सूत्र में सकार का उच्चारण किया गया है अथवा 'कस्कादिषु च' (८।३।४८) से सत्व होता है।

(३) कारकरः। कर एव कारः। यहां 'प्रज्ञादिभ्यश्च' (५।४।३८) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है-कारः।

(४) बहुकरः। यहां संख्या का पृथक् ग्रहण करने से संख्यावाची बहु शब्द का ग्रहण नहीं किया जाता अपितु विपुल अर्थ का ग्रहण किया जाता है।

(५) अहस्करः। यहां 'अहन्' शब्द के न् को 'रोऽसुपि' (८।२।६९) से रेफ और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय तथा 'अतः कृकमि०' (८।३।४६) से विसर्जनीय को सत्व होता है।

(६) अरुष्करः। यहां 'अरुस्' शब्द के स् को 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' (८।३।४५) से षत्व होता है।

टः-

(७) कर्मणि भृतौ।२२।

प०वि०-कर्मणि ७।१ भृतौ ७।१। भृतिः=वेतनम्, कर्ममूल्यमित्यर्थः।

अनु०-कर्मणि, कृञः, ट इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणि कर्मण्युपपदे कृञो धातोष्टो भृतौ।

अर्थः-कर्मकारके कर्मशब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो भवति, भृतौ गम्यमानायम्।

उदा०-(कृ) कर्म करोतीति कर्मकरः=भृतकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक में (कर्मणि) कर्म शब्द के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट' प्रत्यय होता हो (भृतौ) यदि वहां वेतन अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-(कृ) **कर्म करोतीति कर्मकरः।** कर्म का मूल्य प्राप्त करनेवाला=नौकर। जो भृति नहीं लेता वह-**कर्मकारः।***

***सिद्धि-कर्मकरः।** यहां कर्म कारक में 'कर्म' शब्द उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'कृ' को गुण होता है।*

ट-प्रतिषेधः-

(८) न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु।२३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, शब्द-श्लोक-कलह-गाथा-वैर-चाटु-सूत्र-मन्त्र-पदेषु ७।३।

स०-शब्दश्च श्लोकश्च कलहश्च गाथा च वैरं च चाटुश्च सूत्रं च मन्त्रश्च पदं च तानि शब्द०पदानि, तेषु-शब्द०पदेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, टः, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शब्द०पदेषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोष्टो न।

अर्थः-शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु कर्मसु उपपदेषु कृञ्-धातोः परष्टः प्रत्ययो न भवति। अनेन प्रतिषद्धे **'कर्मण्यण्'** (३।२।१) इत्युत्सर्गोऽण् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-**(शब्दः)** शब्दं करोतीति शब्दकारः। **(श्लोकः)** श्लोकं करोतीति श्लोककारः। **(कलहः)** कलहं करोतीति कलहकारः। **(गाथा)** गाथां करोतीति गाथाकारः। **(वैरम्)** वैरं करोतीति वैरकारः। **(चाटुः)** चाटुं करोतीति चाटुकारः। **(सूत्रम्)** सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। **(मन्त्रः)** मन्त्रं करोतीति मन्त्रकारः। **(पदम्)** पदं करोतीति पदकारः।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(शब्द०पदेषु) शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद (कर्मणि) इन कर्मों के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (टः) 'ट'*

प्रत्यय (न) नहीं होता है। इस सूत्र से प्रतिषेध होने पर 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से उत्सर्ग अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(शब्द) शब्दं करोतीति शब्दकारः। शब्द को बनानेवाला-वैयाकरण। (श्लोक) श्लोकं करोतीति श्लोककारः। श्लोक को बनानेवाला-कवि। (कलह) कलहं करोतीति कलहकारः। कलह करनेवाला-मूर्ख। (गाथा) गाथां करोतीति गाथाकारः। गाथा बनानेवाला-प्रचारक। (वैर) वैरं करोतीति वैरकारः। वैर करनेवाला शत्रु। (चाटु) चाटुं करोतीति चाटुकारः। चाटु=मीठी-मीठी बात करनेवाला-चापलूस। (सूत्र) सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। सूत्र बनानेवाला-पाणिनिमुनि। (मन्त्र) मन्त्रं करोतीति मन्त्रकारः। वेदमन्त्र बनानेवाला ईश्वर अथवा मन्त्रार्थ का दर्शन करनेवाला-ऋषि। (पद) पदं करोतीति पदकारः। वेदमन्त्रों का पद विभाग करनेवाला-ऋषि।

सिद्धि-(१) शब्दकारः। यहां 'शब्द' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ट' प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाने पर 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से उत्सर्ग 'अण्' प्रत्यय होता है। अण् प्रत्यय के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि होती है।

(२) ऐसे ही 'श्लोककारः' आदि पदों की सिद्धि करें।

इन्–

(१) स्तम्बशकृतोरिन्।२४।

प०वि०-स्तम्ब-शकृतोः ७।२ इन् १।१।

स०-स्तम्बश्च शकृच्च तौ स्तम्बशकृतौ, तयोः स्तम्बशकृतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्तम्बशकृतोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ इन्।

अर्थः-स्तम्बशकृतोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ्-धातोः पर इन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्तम्बः) स्तम्बं करोतीति स्तम्बकरिः (व्रीहिः)। **(शकृत्)** शकृत् करोतीति शकृत्करिः (वत्सः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्तम्बशकृतोः) स्तम्ब और शकृत् (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्तम्ब) स्तम्बं करोतीति स्तम्बकरिः। अतिसार को थामनेवाला-चावल। (शकृत्करिः) शकृत करोतीति शकृतकरिः। शकृत्=गोबर करनेवाला बछड़ा (छोटा दूध पीता बच्चा, घास न खानेवाला)।

सिद्धि-स्तम्बकरिः। यहां 'स्तम्ब' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'इन्' प्रत्यय में न् अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से कृदन्त पद के आद्युदात्त स्वर के लिये है। ऐसे ही-शकृत्करिः।

इन्-

(२) हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ।२५।

प०वि०-हरतेः ५।१ दृति-नाथयोः ७।२ पशौ ७।१।

स०-दृतिश्च नाथश्च तौ दृतिनाथौ, तयोः-दृतिनाथयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, इन्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दृतिनाथयोः कर्मणोरुपपदयोर्हरतेरिन् पशौ।

अर्थः-दृतिनाथयोः कर्मणोरुपपदयोर्हृञ्-धातोः पर इन्-प्रत्ययो भवति, पशौ कर्तरि सति।

उदा०-(दृतिः) दृतिं हरतीति दृतिहरिः पशुः। **(नाथः)** नाथं हरतीति नाथहरिः पशुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दृतिनाथयोः) दृति और नाथ (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हरतेः) हृञ् (धातोः) धातु से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है (पशौ) यदि हृञ् धातु का कर्ता पशु हो।

उदा०-(दृति) दृतिं हरतीति दृतिहरः पशुः। दृति=मशक को ढोनेवाला पशु (भैंसा आदि)। (नाथ) नाथं हरतीति नाथहरिः। नाक में नाथ को धारण करनेवाला पशु (बैल आदि)।

सिद्धि-दृतिहरिः। यहां दृति कर्म उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'हृञ्' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-नाथहरिः।

इन् (निपातनम्)-

(३) फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च।२६।

प०वि०-फलेग्रहिः १।१ आत्मम्भरिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-इन् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च शब्दौ इन्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-फलानि गृह्णातीति फलेग्रहिर्वृक्षः। आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(फलेग्रहिः) फलेग्रहि (च) और (आत्मम्भरिः) आत्मम्भरि शब्द (इन्) इन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**फलानि गृह्णातीति फलेग्रहिर्वृक्षः।** फलों को ग्रहण करनेवाला अर्थात् फलदार वृक्ष। **आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः।** केवल अपना ही धारण-पोषण करनेवाला अपरोपकारी मनुष्य।*

*सिद्धि-(१) **फलेग्रहिः।** यहां 'फल' कर्म उपपद होने पर **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'फल' शब्द में एकार निपातित है।*

*(२) **आत्मम्भरिः।** यहां आत्मा कर्म उपपद होने पर **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय है। 'आत्मा' शब्द को 'मुम्' आगम निपातित है।*

इन्-

(४) छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्।२७।

प०वि०-छन्दसि ७।१ वन-सन-रक्षि-मथाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-वनश्च सनश्च रक्षिश्च मथ् च ते वनसनरक्षिमथः, तेषाम्-वनसनरक्षिमथाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, इन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कर्मण्युपपदे वनसनरक्षिमथिभ्यो धातुभ्य इन्।

अर्थः-छन्दसि विषये कर्मणि कारके उपपदे वनसनरक्षिमथिभ्यो धातुभ्यः पर इन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(वन)** ब्रह्म वनतीति ब्रह्मवनिः। क्षत्रं वनतीति क्षत्रवनिः। **'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनिं'** (यजु० १।१७)। **(सन)** गां सनतीति गोसनिः। **'गोसनिः'** (यजु० ८।१२)। **(रक्षि)** पन्थानं रक्षतीति पथिरक्षिः। **'यौ पथिरक्षी श्वानौ'** (अथर्व० ८।१।९)। **(मथ्)** हविर्मथतीति हविर्मथिः। **'हविर्मथीनाम्'** (ऋ० ७।१०४।२१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (वनसनरक्षिमथाम्) वन्, सन्, रक्ष, मथ (धातोः) धातुओं से परे (इन्) इन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(वन) ब्रह्म वनतीति ब्रह्मवनिः।** ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् की सेवा करनेवाला। **क्षत्रं वनतीति क्षत्रवनिः।** राजा की सेवा करनेवाला। 'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि' (यजु० १।१७)। **(सन) गां सनतीति गोसनिः।** गाय की सेवा करनेवाला। 'गोसनिः' (यजु० ८।१२)। **(रक्षि) पन्थानं रक्षतीति पथिरक्षिः।** मार्ग का पालन करनेवाला। '**यो पथिरक्षी श्वानौ**' (अथर्व० ८।१।९)। **(मथ्) हविर्मथतीति हविर्मथिः।** हवि का विलोडन करनेवाला। 'हविर्मथीनाम्' (ऋ० ७।१०४।२१)।*

***सिद्धि-(१) ब्रह्मवनिः।** यहां 'ब्रह्म' कर्म उपपद होने पर '**वन सम्भक्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'इन्' प्रत्यय है।*

***(२) गोसनिः।** यहां 'गौ' कर्म उपपद होने पर '**षण सम्भक्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

***(३) पथिरक्षिः।** यहां 'पथिन्' कर्म उपपद होने पर '**रक्ष पालने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

***(४) हविर्मथिः।** 'हविः' कर्म उपपद होने पर '**मथे विलोडने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

खश्-

(१) एजेः खश्।२८।

प०वि०-एजेः ५।१ खश् १।१।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे एजेर्धातोः खश्।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे णिजन्ताद् एजि-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति। 'एजेः' इति '**एजृ कम्पने**' इत्यस्य णिजन्तनिर्देशः।

उदा०-(एजि) अङ्गम् एजयतीति अङ्गमेजयः। जनान् एजयतीति जनमेजयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (एजेः) णिजन्त एजृ (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(एजि) अङ्गम् एजयतीति अङ्गमेजयः।** अङ्ग को कंपानेवाला (वातरोग)। **जनान् एजयतीति जनमेजयः।** दुष्टजनों को कंपानेवाला (धार्मिक राजा)। हस्तिनापुर का एक प्रसिद्ध राजा।*

सिद्धि-अङ्गमेजयः। यहां 'अङ्ग' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'एजृ कम्पने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय। खश् प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से शप्-प्रत्यय होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से 'अङ्ग' शब्द को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-जनमेजयः।

खश्-

(२) नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः।२६।

प०वि०-नासिका-स्तनयोः ७।२ ध्मा-धेटोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-नासिका च स्तनं च ते नासिकास्तने, तयोः-नासिकास्तनयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिनिमुनिवचनात् स्तनशब्दस्य **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) इति न पूर्वनिपातः। ध्माश्च धेट् च तौ ध्माधेटौ, तयोः-ध्माधेटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकास्तनयोः कर्मणोरुपपदयो ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः-नासिकास्तनयोः कर्मणोरुपपदयोर्ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति। यथासंख्यमत्र नेष्यते नासिकास्तनसमासे लक्षणव्यभिचारात्। नासिकायां ध्माधेटिभ्यां, स्तने च धेटः खश् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-(नासिका) नासिकां धमतीति नासिकन्धमः। नासिकां धयतीति नासिकन्धयः। स्त्रियाम्-नासिकन्धयी। **(स्तनम्)** स्तनं धयतीति स्तनन्धयः। स्त्रियाम्-स्तनन्धयी।

आर्यभाषा-अर्थ-(नासिकास्तनयोः) नासिका और स्तन (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (ध्माधेटोः) ध्मा और धेट् (धातोः) धातुओं से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है। यहां 'नासिकास्तनयोः' पद के समास में लक्षण व्यभिचार होने से यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है। नासिका उपपद होने पर ध्मा और धेट् धातु से और स्तन उपपद होने पर धेट् धातु से खश् प्रत्यय किया जाता है।

उदा०-(नासिका) नासिकां धमतीति नासिकन्धमः। नासिका को धमनेवाला (बजानेवाला)। नासिकां धयतीति नासिकन्धयः। नासिका से दुग्ध आदि पीनेवाला। स्त्रीलिङ्ग में-नासिकन्धयी। (स्तन) स्तनं धयतीति स्तनन्धयः। स्तन पीनेवाला (बालक)। स्त्रीलिङ्ग में-स्तनन्धयी। स्तन पीनेवाली (बालिका)।

सिद्धि-(१) नासिकन्धमः। यहां नासिका कर्म उपपद होने पर 'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' प्रत्यय होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'खित्यनव्ययस्य' (६।३।६६) से 'नासिका' को ह्रस्व तथा 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से नासिका को 'मुम्' आगम होता है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'ध्मा' के स्थान में 'धम' आदेश होता है।

*(२) नासिकन्धयः। यहां 'नासिका' कर्म उपपद होने पर 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'धेट्' धातु के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**नासिकन्धयी**। शेष पूर्ववत्।*

(३) स्तनन्धयः। स्तनन्धयी। यहां 'स्तन' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'धेट्' धातु से पूर्ववत्।

खश्-

(३) नाडीमुष्ट्योश्च।३०।

प०वि०-नाडी-मुष्ट्योः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-नाडी च मुष्टिश्च ते नाडीमुष्टी, तयोः नाडीमुष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिनिमुनिवचनाद् मुष्टिशब्दस्य **'द्वन्द्वे घि'** (२।२।३२) इति न पूर्वनिपातः।

अनु०-कर्मणि खश्, ध्माधेटोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नाडीमुष्ट्योश्च कर्मणोरुपपदयोर्ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः-नाडीमुष्टयोरपि कर्मणो रुपपदयोर्ध्माधेटिभ्यां धातुभ्यां परः खश्प्रत्ययो भवति। यथासंख्यमत्र नेष्यते नाडीमुष्टिसमासे लक्षणव्यभिचारात्। उभयोरुपपदयोरुभाभ्यां धातुभ्यां खश्प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-(नाडी) नाडीं धमतीति नाडिन्धमः। नाडीं धमतीति नाडिन्धयः **(मुष्टिः)** मुष्टिं धमतीति मुष्टिन्धमः। मुष्टिं धयतीति मुष्टिन्धयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(नाडीमुष्ट्योः) नाडी और मुष्टि (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (च) भी (ध्माधेटोः) ध्मा और धेट् (धातोः) धातुओं से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है। यहां 'नाडीमुष्ट्योः' पद के समास में लक्षणव्यभिचार होने से यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है, दोनों उपपद होने पर दोनों धातुओं से खश् प्रत्यय किया जाता है।

उदा०-(नाडी) नाडीं धमतीति नाडिन्धमः। नाडी (नाली) बांसुरी बजानेवाला। नाडीं धयतीति नाडिन्धयः। नाली पीनेवाला (सुवर्णकार)। (मुष्टि) मुष्टिं धमतीति मुष्टिन्धमः। अपनी मुट्ठी को बजानेवाला (कलाकार)। मुष्टिं धयतीति मुष्टिन्धयः। अपनी मुट्ठी को चूमनेवाला (बालक)।

सिद्धि-नाडिन्धमः, नाडिन्धयः पदों को 'नासिकन्धमः' आदि के समान सिद्ध करें।

खश्-

(४) उदि कूले रुजिवहोः।३१।

प०वि०-उदि ७।१ कूले ७।१ रुजि-वहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-रुजिश्च वह् च तौ रुजिवहौ, तयोः-रुजिवहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कूले कर्मणि उदि चोपपदे रुजिवहिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थः-कूले कर्मणि कारके उत्-उपसर्गे चोपपदे रुजिवहिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(रुजि) कूलम् उद्रुजतीति कूलमुद्रुजः (रथः)। कूलम् उद्वहतीति कूलमुद्वहः (जलप्रवाहः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कूले) कूल कर्म कारक और (उदि) उत् उपसर्ग उपपद होने पर (रुजिवहोः) रुज् और वह् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(रुज्) कूलम् उद्रुजतीति कूलमुद्रुजः (रथः)। किनारे को तोड़नेवाला (रथ)। कूलम् उद्वहतीति कूलमुद्वहः (जलप्रवाहः)। किनारे को बहा ले जानेवाला (जलप्रवाह)।

सिद्धि-कूलमुद्रुजः। यहां 'कूल' कर्म और उत् उपसर्ग उपपद होने पर 'रुजो भङ्गे' (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय होता है। 'श' प्रत्यय के 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रुज्' को प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से कूल उपपद को 'मुम्' आगम होता है।

(२) कूलमुद्वहः। यहां कूल कर्म और उत् उपसर्ग उपपद होने पर 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'खश्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत्।

खश्–

(५) वहाभ्रे लिहः।३२।

प०वि०–वहाभ्रे ७।१ लिहः ५।१।

स०–वहश्च अभ्रश्च एतयोः समाहारो वहाभ्रम्, तस्मिन्–वहाभ्रे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वहाभ्रे कर्मण्युपपदे लिहो धातोः खश्।

अर्थः–वहेऽभ्रे च कर्मणि कारके उपपदे लिह्–धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(वहः) वहं लेढीति वहंलिहः (गौः)। (**अभ्रः**) अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहः (वायुः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(वहाभ्रे) वह और अभ्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (लिहः) लिह धातु से (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वह) वहं लेढीति वहंलिहः (गौः)। वह=कंधे को चाटनेवाला (बैल)। (अभ्र) अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहः (वायुः)। बादल को छूनेवाला (वायु)।

सिद्धि-वहंलिहः। यहां 'वह' कर्म उपपद होने पर 'लिह आस्वादने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से 'कर्तरि शप्' (३।१।६२) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।६२) से 'शप्' का 'लुक्' हो जाता है। 'खश्' प्रत्यय के 'खित्' होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६७) से 'वह' उपपद को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-अभ्रंलिहः।

खश्–

(६) परिमाणे पचः।३३।

प०वि०–परिमाणे ७।१ पचः ५।१।

अनु०–कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–परिमाणे कर्मण्युपपदे पचो धातोः खश्।

अर्थः-परिमाणवाचिनि कर्मणि कारके उपपदे पच-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रस्थं पचतीति प्रस्थम्पचा स्थाली। द्रोणं पचतीति द्रोणम्पचः कटाहः। खारीं पचतीति खारिम्पचः कटाहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(परिमाणे) परिमाणवाची (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पचः) पच् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**प्रस्थं पचतीति प्रस्थम्पचा स्थाली।** प्रस्थ=एक सेर पकानेवाली पतीली। **द्रोणं पचतीति द्रोणम्पचः कटाहः।** एक द्रोण (धौण २० सेर) पकानेवाला कढाहा। **खारीं पचतीति खारिम्पचः कटाहः।** एक खारी (मण) पकानेवाला कढाहा।*

*सिद्धि-**प्रस्थम्पचः।** पूर्ववत्।*

खश्-

(७) मितनखे च।३४।

प०वि०-मितनखे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-मितं च नखं च एतयोः समाचारो मितनखम्, तस्मिन्-मितनखे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश्, पच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मितनखे च कर्मण्युपपदे पचो धातोः खश्।

अर्थः-मिते नखे च कर्मणि कारके उपपदे पच-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(मितम्)** मितं पचतीति मितम्पचा ब्राह्मणी। **(नखम्)** नखं पचतीति नखम्पचा यवागूः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मितनखे) मित और नख (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पचः) पच् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(मित) मितं पचतीति मितम्पचा ब्राह्मणी।** मात्रा में पकानेवाली ब्राह्मणी। **(नख) नखं पचतीति नखम्पचा यवागूः।** नाखून को जलानेवाली गर्म लापसी।*

*सिद्धि-**मितम्पचा।** यहां 'मित' कर्म उपपद होने पर 'डुपचष् पाके' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'मित' को 'मुम्'*

आगम होता है। स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-नखम्पचा।

खश्-

(७) विध्वरुषोस्तुदः।३५।

प०वि०-विधु-अरुषोः ७।२ तुदः ५।१।

स०-विधुश्च अरुश्च ते विध्वरुषी, तयोः-विध्वरुषोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विध्वरुषोः कर्मणोरुपपदयोस्तुदो धातोः खश्।

अर्थः-विधावरुषि च कर्मणि कारके उपपदे तुद-धातोः परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(विधुः)** विधुं तुदतीति विधुन्तुदः। **(अरुः)** अरुषं तुदतीति अरुन्तुदः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(विध्वरुषोः) विधु और अरुः (कर्मणि) कर्म कारक उपपद **होने** पर (तुदः) तुद् (धातोः) धातु से (खश्) खश् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(विधु) विधुं तुदतीति विधुन्तुदः।** विधु=चन्द्रमा को आच्छादित करनेवाला (राहुः)। यहां तुद् धातु आच्छादन अर्थ में है व्यथा अर्थ सम्भव न होने से **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)। (अरुः) **अरुषं तुदतीति** अरुन्तुदः। मर्मस्थल को पीड़ित करनेवाला-रोग।*

*सिद्धि-(१) **विधुन्तुदः।** यहां विधु कर्म उपपद होने पर 'तुद **व्यथने**' (तुदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से '**तुदादिभ्यः शः**' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। 'श' प्रत्यय के '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'ङित्' होने से '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का '**क्ङिति च**' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।*

*(२) **अरुन्तुदः।** यहां 'अरुष्' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'तुद' धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय है। '**अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**' (६।३।६५) से 'मुम्' आगम, '**मिदचोऽन्त्यात् परः**' (१।१।४६) से अरुष् के उ से परे होता है। '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से 'स्' का लोप, '**मोऽनुस्वारः**' (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (न्) होता है।*

खश्–

(८) असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ।३६ ।

प०वि०-असूर्य-ललाटयो: ७ ।२ दृशि-तपो: ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-असूर्यश्च ललाटं च ते असूर्यललाटे, तयो:-असूर्यललाटयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दृशिश्च तप् च तौ दृशितपौ, तयो:-दृशितपो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि खश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असूर्यललाटयो: कर्मणोरुपपदयोर्दृशितपिभ्यां धातुभ्यां खश्।

अर्थ:-असूर्ये ललाटे च कर्मणि कारके उपपदे यथासंख्यं दृशितपिभ्यां धातुभ्यां परः खश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(असूर्यः)** सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्या राजदाराः। **(ललाटम्)** ललाटं तपतीति ललाटन्तप आदित्यः।

आर्यभाषा-अर्थ-(असूर्यललाटयो:) असूर्य और ललाट (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (दृशितपो:) दृशि और तप् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(असूर्यः) **सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्या राजदाराः।** सूर्य को न देखनेवाली राजा की पत्नियां। यह वचन गुप्तिपरक है कि वे ऐसे गुप्तरूप से रहती हैं कि अनिवार्य दर्शनवाले सूर्य को भी नहीं देखती हैं। (ललाटं) ललाटं तपतीति ललाटन्तप **आदित्यः** ललाट (मस्तक) को तपानेवाला तेज सूर्य।*

*सिद्धि-(१) **असूर्यम्पश्याः।** यहां असूर्य कर्म उपपद होने पर **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। 'खश्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से **'कर्तरि शप्'** (३ ।१ ।६२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। 'पाघ्राध्मा०' (७ ।३ ।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम है। **सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्याः।** यहां 'नञ्' का सम्बन्ध पश्यति क्रिया के साथ होने से असमर्थसमास है।*

*(२) **ललाटन्तपः।** यहां ललाट कर्म उपपद होने पर 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

खश् (निपातनम्)–

(६) उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च।३७।

प०वि०–उग्रम्पश्य-इरम्मद-पाणिन्धमाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–उग्रम्पश्यश्च इरम्मदश्च पाणिन्धमश्च ते-उग्रम्पश्येरम्मद-पाणिन्धमाः। (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०–खश् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–उग्रम्पश्य-इरम्मद-पाणिन्धमाः शब्दा अपि खश्-प्रत्ययन्ता निपात्यन्ते।

उदा०–उग्रं पश्यतीति उग्रम्पश्यः। इरया माद्यतीति इरम्मदः। पाणयो ध्मायन्ते येषु ते पाणिन्धमाः पन्थानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उग्रम्पश्य०) उग्रम्पश्य, इरम्मद, पाणिन्धम शब्द (च) भी (खश्) खश्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०–**उग्रं पश्यतीति उग्रम्पश्यः।** क्रूर दृष्टिवाला। **इरया माद्यतीति इरम्मदः।** इरा=जल से समृद्ध होनेवाला वडवानल। यहां 'मद' धातु का अर्थ बढ़ना है, हर्ष सम्भव न होने से **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)। **पाणयो ध्मायन्ते येषु ते पाणिन्धमाः पन्थानः।** वे अन्धकारपूर्ण मार्ग जिनमें जानेवाले लोग कुछ भी दिखाई न देने के कारण हथेली बजाकर चलते हैं, ध्वनि को सुनते हुये।*

***सिद्धि-(१) उग्रम्पश्यः।** यहां 'उग्र' कर्म उपपद होने पर **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। **'पाघ्राध्मा०'** (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है। **'कर्मण्यण्'** (३।२।१) से अण् प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से 'खश्' प्रत्यय होता है।*

***(२) इरम्मदः।** यहां इरा कर्म उपपद होने पर **'मदी हर्षे'** (दि०प०) से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय था, निपातन से **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है।*

***(३) पाणिन्धमः।** यहां पाणि कर्म उपपद होने पर **'ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'पाघ्राध्मा०'** (३।३।७८) से 'ध्मा' के स्थान में 'धम' आदेश होता है। यहां अधिकरण कारक में **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) से 'ल्युट्' प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से **'खश्'** प्रत्यय होता है।*

खच्–

(१) प्रियवशे वदः खच् ।३८।

प०वि०–प्रिय-वशे ७।१ वदः ५।१ खच् १।१।

स०–प्रियश्च वशश्च एतयोः समाहारः प्रियवशम्, तस्मिन्–प्रियवशे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रियवशे कर्मण्युपपदे वदो धातोः खच्।

अर्थः–प्रिये वशे च कर्मणि कारके उपपदे वद्–धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(प्रियः)** प्रियं वदतीति प्रियंवदः। **(वशः)** वशं वदतीति वशंवदः।

आर्यभाषा-अर्थ–(प्रियवशे) प्रिय और वश (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (वदः) वद् (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**(प्रिय) प्रियं वदतीति प्रियंवदः।** प्रिय वचन बोलनेवाला (मधुरभाषी)। वशं वदतीति वशंवदः। अनुकूल वचन बोलनेवाला (आज्ञाकारी)।*

*सिद्धि–**प्रियंवदः।** यहां प्रिय कर्म उपपद होने पर **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से **'अरुर्द्विषजन्तस्य मुम्'** (६।३।६५) से 'प्रिय' को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही–**वशंवदः।***

खच्–

(२) द्विषत्परयोस्तापेः ।३९।

प०वि०–द्विषत्-परयोः ७।२ तापेः ५।१।

स०–द्विषन् च परश्च तौ द्विषत्परौ, तयोः–द्विषत्परयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्विषत्परयोः कर्मणोरुपपदयोस्तापेर्धातोः खच्।

अर्थः–द्विषति परे च **कर्मणि कारके उपपदे तापि-धातोः परः खच् प्रत्ययो** भवति।

उदा०-(**द्विषत्**) द्विषन्तं तापयतीति द्विषन्तप:। (**पर:**) परं तापयतीति परन्तप:।

आर्यभाषा-अर्थ-*(द्विषत्परयो:) द्विषत् और पर (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (तापे:) तापि (धातो:) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(द्विषत्) **द्विषन्तं तापयतीति द्विषन्तप:।** द्वेष करनेवाले (शत्रु) को सन्ताप देनेवाला। (पर) **परं सन्तापयतीति परन्तप:।** पर=शत्रु को सन्ताप देनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **द्विषन्तप:।** यहां द्विषत् कर्म उपपद होने पर णिजन्त **'तप सन्तापे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और **'खचि ह्रस्व:'** (६।४।९४) से 'ताप्' को ह्रस्व (तप्) होता है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६५) से 'द्विषत्' उपपद को 'मुम्' आगम होता है और वह 'मित्' होने से **'मिदचोऽन्त्यात् पर:'** (१।१।४६) से अन्त्य 'अच्' से परे (द्विष मुम् त्) होता है। **'संयोगान्तस्य लोप:'** (८।२।२३) से 'त्' का लोप, **'मोऽनुस्वार:'** (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण:'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण (न्) होता है।*

*(२) **परन्तप:।** पर कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त तप धातु से पूर्ववत्।*

खच्—

(३) वाचि यमो व्रते।४०।

प०वि०-वाचि ७।१ यम: ५।१ व्रते ७।१।

अनु०-कर्मणि खच् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-वाचि कर्मण्युपपदे यमो धातो: खच् व्रते।

अर्थ:-वाचि कर्मणि कारके उपपदे यम्-धातो: पर: खच् प्रत्ययो भवति व्रते गम्यमाने।

उदा०-वाचं यच्छतीति वाचंयम: (व्रती)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(वाचि) वाक् शब्द (कर्मणि) कर्म कारक में उपपद होने पर (यम:) यम् (धातो:) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है (व्रते) यदि वहां शास्त्रानुसार व्रत रखना अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-(वाक्) वाचं यच्छतीति **वाचंयम:।** वाणी को शास्त्रविधि से नियम में रखनेवाला (व्रती)।*

*सिद्धि-**वाचंयम:।** यहां वाक् कर्म उपपद होने पर **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०) **धातु** से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। **'वाचंयमपुरन्दरौ च'** (६।३।६७) से 'मुम्' आगम का **अभाव और** 'वाक्' शब्द अम्-प्रत्ययान्त (वाचम्) निपातित है।*

खच्–

(४) पूःसर्वयोर्दारिसहोः।४१।

प०वि०–पूः सर्वयोः ७।२ दारि-सहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–पूश्च सर्वश्च तौ पूःसर्वौ, तयोः–पूःसर्वयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दारिश्च सह् च तौ दारिसहौ, तयोः–दारिसहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पूःसर्वयोः कर्मणोरुपपदयोर्दारिसहिभ्यां धातुभ्यां खच्।

अर्थः–पूःसर्वयोः कर्मकारकयोरुपपदयोर्यथासंख्यं दारिसहिभ्यां धातुभ्यां परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पूः)** पुरं दारयतीति पुरन्दरः (इन्द्रः)। **(सर्वः)** सर्वं सहते इति सर्वंसहः (राजा)।

आर्यभाषा-अर्थ–*(पूःसर्वयोः) पुर् और सर्व (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर यथासंख्य (दारिसहोः) णिजन्त दारि और सह् (धातोः) धातुओं से परे (खच्) खच्-प्रत्यय होता है।*

उदा०(पुर्) पुरं दारयतीति पुरन्दरः। किले को तोड़नेवाला (इन्द्र)। (सह) सर्वं सहते इति सर्वंसहः। सब कार्य सिद्ध करनेवाला (राजा)।

सिद्धि–*(१) पुरन्दरः। यहां 'पुर्' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'दॄ विदारणे' (क्रया०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और 'खचि ह्रस्वः' (६।४।९४) से 'दार्' को ह्रस्व (दर्) होता है। 'वाचंयमपुरन्दरौ' (६।३।६७) से 'मुम्' आगम का अभाव और 'पुर्' शब्द अम्-प्रत्ययान्त (पुरम्) निपातित है।*

(२) सर्वंसहः। यहां सर्व कर्म उपपद होने पर 'षह मर्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के खित् होने से 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।६५) से 'सर्व' उपपद को 'मुम्' आगम होता है। यहां 'सह' धातु का अर्थ सिद्ध करना है, सहन करना नहीं–"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

खच्–

(५) सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः।४२।

प०वि०–सर्व-कूल-अभ्र-करीषेषु ७।३ कषः ५।१।

स०–सर्वश्च कूलं च अभ्रश्च करीषश्च ते–सर्वकूलाभ्रकरीषाः, तेषु सर्वकूलाभ्रकरीषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खश् इति चानुवर्तते।

अर्थः-सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कष्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**सर्वः**) सर्वं कषतीति सर्वङ्कषः (खलः)। (**कूलम्**) कूलं कषतीति कूलङ्कषा (नदी)। (**अभ्रः**) अभ्रं कषतीति अभ्रङ्कषो गिरिः। (**करीषः**) करीषं कषतीति करीषङ्कषा (वात्या)।

आर्यभाषा-अर्थ-(सर्वकूलाभ्रकरीषेषु) सर्व, कूल, अभ्र, करीष (कर्मणि) कर्मकारक उपपद होने पर (कषः) कष् (धातोः) धातु से परे खच्-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सर्व) **सर्वं कषतीति सर्वङ्कषः।** सबको पीड़ा देनेवाला (दुष्ट)। (कूल) **कूलं कषतीति कूलङ्कषा।** कूल=तट को तोड़नेवाली (नदी)। 'कष्' धातु हिंसार्थक है। यहां वह तोड़ने अर्थ में है, हिंसा अर्थ सम्भव न होने से **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)। (अभ्र) **अभ्रं कषतीति अभ्रंकषः।** बादल को छूनेवाला (पर्वत)। यहां पूर्ववत् 'कष्' धातु का अर्थ छूना है। (करीष) **करीषं कषतीति करीषङ्कषा।** करीष=सूखे गोबर (करस) को उड़ा ले जानेवाली (वात्या=आंधी)। यहां पूर्ववत् 'कष्' धातु का अर्थ उड़ा ले जाना है।*

*सिद्धि-(१) **सर्वङ्कषः।** यहां 'सर्व' कर्म उपपद होने पर 'कष' **हिंसार्थः'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-**कूलङ्कषा** आदि।*

*विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'कष' धातु हिंसार्थक पढ़ी है। **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्) के प्रमाण से यहां 'कष' धातु के हिंसा अर्थ से भिन्न अर्थ भी प्रसङ्गवश होते हैं। पाणिनीय धातुपाठ में दर्शाये गये अर्थ केवल उदाहरणमात्र हैं। **(बहुलमेतन्निदर्शनम्, चुरादिः)।***

खच्-

(६) मेघर्तिभयेषु कृञः।४३।

प०वि०-मेघ-ऋति-भयेषु ७।३ कृञः ५।१।

स०-मेघश्च ऋतिश्च भयं च तानि-मेघर्तिभयानि, तेषु-मेघर्तिभयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मेघर्तिभयेषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोः खच्।

अर्थः-मेघर्तिभयेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(मेघः) मेघं करोतीति मेघङ्करः। **(ऋतिः)** ऋतिं करोतीति ऋतिङ्करः। **(भयम्)** भयं करोतीति भयङ्करः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मेघर्तिभयेषु) मेघ, ऋति, भय (कर्मणि) कर्म कारक में उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(मेघ) मेघं करोतीति मेघङ्करः।** मेघ को उत्पन्न करनेवाला (यज्ञ)। **(ऋति) ऋतिं करोतीति ऋतिङ्करः।** घृणा करनेवाला। **(भय) भयं करोतीति भयङ्करः।** भय उत्पन्न करनेवाला।*

*सिद्धि-**मेघङ्करः।** यहां मेघ कर्म उपपद होने पर **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'खच्' प्रत्यय के 'खित्' होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६७) से मेघ उपपद को 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-**ऋतिङ्करः** और **भयङ्करः।***

खच्+अण्-

(७) क्षेमप्रियमद्रेऽण् च।४४।

प०वि०-क्षेम-प्रिय-मद्रे ७।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-क्षेमं च प्रियं च मद्रं च एतेषां समाहारः क्षेमप्रियमद्रम्, तस्मिन्-क्षेमप्रियमद्रे (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, खच्, कृञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षेमप्रियमद्रे कर्मण्युपपदे कृञो धातोः खच् अण् च।

अर्थः-क्षेमप्रियमद्रेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः खच् अण् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(क्षेमम्)** क्षेमं करोतीति क्षेमङ्करः, क्षेमकारश्च। **(प्रियम्)** प्रियं करोतीति प्रियङ्करः, प्रियकारश्च। **(मद्रम्)** मद्रं करोतीति मद्रङ्करः, मद्रकारश्च।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्षेमप्रियमद्रेषु) क्षेम, प्रिय, मद्र (कर्मणि) इन कर्म कारकों के उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (खच्) खच् (च) और (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क्षेम) क्षेमं करोतीति क्षेमङ्करः, क्षेमकारश्च। नीरोग/सुख करनेवाला। (प्रिय) प्रियं करोतीति प्रियङ्करः, प्रियकारश्च। प्रिय कार्य करनेवाला। (मद्र) मद्रं करोतीति मद्रङ्करः, मद्रकारश्च। मद्र राज्य की स्थापना करनेवाले सैनिक। (पा०का० भारतवर्ष ७२)

सिद्धि-(१) क्षेमङ्करः। यहां क्षेम कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। क्षेम उपपद को पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।

(२) क्षेमङ्कारः। यहां क्षेम उपपद होने पर पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'अण्' प्रत्यय है। 'अण्' प्रत्यय के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' को वृद्धि (कार्) होती है।

खच्-

(८) आशिते भुवः करणभावयोः।४५।

प०वि०-आशिते ७।१ भुवः ५।१ करण-भावयोः ७।२।

स०-करणं च भावश्च तौ करणभावौ, तयो:-करणभावयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अर्थवशात् सुपि इत्यनुवर्तते, न कर्मणि। खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिते सुप्युपपदे भुवो धातोः खच् करणभावयोः।

अर्थः-आशिते सुबन्ते उपपदे भू-धातोः परः खच् प्रत्ययो भवति, करणे कारके भावे चार्थे।

उदा०-(करणम्) आशितः=तृप्तो भवति येन सः-आशितम्भव ओदनः। **(भावः)** आशितस्य भवनमिति आशितम्भवं वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशिते) आशित (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से (खच्) खच् प्रत्यय होता है (करणभावयोः) करण कारक और भाव अर्थ में।

उदा०-(करण) आशितः=तृप्तो भवति येन सः-आशितम्भव ओदनः। वह ओदन (भात) जिससे भोक्ता तृप्त हो जाता है। (भाव) आशितस्य भवनमिति आशितम्भवं वर्तते। अब तृप्त होने की क्रिया चल रही है (भोजन चल रहा है)।

सिद्धि-आशितम्भवः। यहां 'आशित' कर्म उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। 'आशित' उपपद को पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है।

खच्–

(६) संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ।४६।

प०वि०–संज्ञायाम् ७ ।१ भृ-तृ-वृ-जि-धारि-सहि-तपि-दमः ५ ।१ ।

स०–भृश्च तृश्च वृश्च जिश्च धारिश्च सहिश्च तपिश्च दम् च एतेषां समाहारो भृ०दम्, तस्मात्-भृ०दमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, सुपि चेत्युभयमनुवर्तते। संज्ञावशाच्च यथासम्भवं सम्बध्यते। खच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि, सुपि चोपपदे भृ०दमिभ्यो धातुभ्यः खच् संज्ञायाम्।

अर्थः–कर्मणि सुबन्ते चोपपदे भृतृवृजिधारिसहितपिदमिभ्यो धातुभ्यः परः खच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–**(भृ)** विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (वसुन्धरा)। **(तृ)** रथेन तरतीति रथन्तरम् (सामगानम्)। **(वृ)** पतिं वृणुते इति पतिम्वरा (कन्या)। **(जि)** शत्रुं जयतीति शत्रुञ्जयः (हस्ती)। **(धारि)** युगं धारयतीति युगन्धरः (पर्वतः)। **(सहि)** शत्रुं सहते इति शत्रुंसहः (वीरः)। **(तपि)** शत्रुं तपतीति शत्रुन्तपः (वीरः)। **(दम्)** अरिं दाम्यतीति अरिन्दमः (योद्धा)।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म और (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (भृ०दमः) भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम् इन (धातोः) धातुओं से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(भृ) विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (वसुन्धरा)। सबका धारण-पोषण करनेवाली वसुन्धरा=पृथिवी। (तृ) रथेन तरतीति रथन्तरम् (साम)। रथ से सन्तरण करनेवाला सामगान विशेष। (वृ) पतिं वृणुते इति पतिम्वरा कन्या। पति का वरण (चुनाव) करनेवाली कन्या। (जि) शत्रुं जयतीति शत्रुञ्जयः (हस्ती)। शत्रु को जीतनेवाला हाथी। (धारि) युगं धारयतीति युगन्धरः (पर्वत)। युग=कालविशेष को धारण करनेवाला पर्वत। (सहि) शत्रुं सहते इति शत्रुंसहः। शत्रु का मर्षण (विनाश) करनेवाला वीर। (तपि) शत्रुं तपतीति शत्रुन्तपः (वीरः)। शत्रु को सन्तप्त करनेवाला वीर। (दम्) अरिं दाम्यतीति अरिन्दमः (योद्धा)। अरि=शत्रु का दमन करनेवाला योद्धा।

सिद्धि-विश्वम्भरा। यहां 'विश्व' कर्म उपपद होने पर 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय होता है। 'खच्' प्रत्यय के खित् होने से पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। ऐसे ही-रथन्तरम् आदि।

खच्–

(१०) गमश्च ।४७।

प०वि०–गम: ५ ।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–कर्मणि, खच्, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अर्थ:–कर्मणि कारके उपपदे गम्-धातो: पर: खच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये।

उदा०–सुतं गच्छतीति सुतङ्गम: पुरुषविशेष:। सुतङ्मस्यापत्यम्-सौतङ्गमि:।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (गम:) गम् (धातो:) धातु से परे (खच्) खच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

उदा०-सुतं गच्छतीति सुतङ्गम: पुरुषविशेष:। सुतङ्गमस्यापत्यं सौतङ्गमि:। सुत को प्राप्त करनेवाला-सुतङ्गम नामक पुरुष। सुतङ्गम का पुत्र-सौतङ्गमि।

सिद्धि-सुतङ्गम:। यहां 'सुत' कर्म उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'खच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सुत उपपद को 'मुम्' आगम होता है। सौतङ्गमि:-यहां 'अत इञ्' (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है।

ड:–

(१) अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ड: ।४८।

प०वि०–अन्त-अत्यन्त-अध्व-दूर-पार-सर्व-अनन्तेषु ७।३ ड: १।१।

स०–अन्तं च अत्यन्तं च अध्वा च दूरं च पारं च सर्वं च अनन्तं च तानि अन्त०अनन्तानि, तेषु-अन्त०अनन्तेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–कर्मणि, गम इति चानुवर्तते।

अन्वय:–अन्त०अनन्तेषु कर्मसूपपदेषु गमो धातोर्ड:।

अर्थ:–अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु गम्-धातो: परो ड: प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(अन्तम्)** अन्तं गच्छतीति अन्तग:। **(अत्यन्तम्)** अत्यन्तं गच्छतीति अत्यन्तग:। **(अध्वा)** अध्वानं गच्छतीति अध्वग:। **(दूरम्)**

दूरं गच्छतीति दूरगः। **(पारम्)** पारं गच्छतीति पारगः। **(सर्वम्)** सर्वं गच्छतीति सर्वगः। **(अनन्तम्)** अनन्तं गच्छतीति अनन्तगः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्त०अनन्तेषु) अन्त, अत्यन्त, अध्वा, दूर, पार, सर्व, अनन्त (कर्मणि) इन कर्म कारकों के उपपद होने पर (गमः) गम् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है।

उदा०-(अन्त) अन्तं गच्छतीति अन्तगः। अन्त (सीमा) तक जानेवाला। (अत्यन्त) अत्यन्तं गच्छतीति अत्यन्तगः। अन्त (सीमा) का अतिक्रमण करके जानेवाला। (अध्वा) अध्वानं गच्छतीति अध्वगः। मार्ग चलनेवाला (पथिक)। (दूर) दूरं गच्छतीति दूरगः। दूर तक जानेवाला। (पार) पारं गच्छतीति पारगः। पार जानेवाला। (सर्व) सर्वं गच्छतीति सर्वगः। सर्वत्र जानेवाला। (अनन्त) अनन्तं गच्छतीति अनन्तगः। अन्त तक न जानेवाला।

सिद्धि-अन्तगः। यहां 'अन्त' कर्म उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से गम् के टिभाग (अम्) का लोप हो जाता है। ऐसे ही 'अत्यन्तगः' आदि।

डः-

(२) आशिषि हनः।४६।

प०वि०-आशिषि ७।१ हनः ५।१।

अनु०-कर्मणि, ड इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोर्ड आशिषि।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे धातोः परो डः प्रत्ययो भवति, आशिषि गम्यमानायाम्।

उदा०-(हन्) तिमिं वध्यात् इति तिमिहः। शत्रुं वध्यादिति-शत्रुहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (आशिषि) यदि वहां आशीः=इच्छाविशेष (आशीर्वाद) अर्थ प्रकट हो।

उदा०-(हन्) तिमिं वध्यादिति-तिमिहः। वह तिमि=ह्वेल मछली को मारनेवाला हो, ऐसी इच्छा है। शत्रुं वध्यादिति शत्रुहः। वह शत्रु को मारनेवाला हो, ऐसी इच्छा है।

सिद्धि-तिमिहः। यहां 'तिमि' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से पूर्ववत् 'हन्' धातु के टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है। ऐसे ही-शत्रुहः।

डः--

(३) अपे क्लेशतमसोः।५०।

प०वि०-अपे ७।१ क्लेश-तमसोः ७।२।

स०-क्लेशश्च तमश्च ते क्लेशतमसी, तयोः-क्लेशतमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, डः, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्लेशतमसोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोर्डः।

अर्थः-क्लेशे तमसि च कर्मणि कारके अप-उपसर्गे चोपपदे हन्-धातोः परो डः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(क्लेशः)** क्लेशम् अपहन्तीति-क्लेशापहः (पुत्रः)। **(तमः)** तमोऽपहन्तीति तमोऽपहः (सूर्यः)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्लेशतमसोः) क्लेश और तमस् (कर्मणि) कर्म कारक और (अपे) अप उपसर्ग उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(क्लेशः) क्लेशमपहन्तीति-क्लेशापहः (पुत्रः)।** क्लेश=दुःख को नष्ट करनेवाला पुत्र। **(तमस्) तमोऽपहन्तीति तमोऽपहः (सूर्यः)।** अन्धकार को नष्ट करनेवाला सूर्य।*

सिद्धि-क्लेशापहः। *यहां क्लेश कर्म और अप उपसर्ग उपपद होने पर **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से परे इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। 'ड' प्रत्यय के 'डित्' होने से पूर्ववत् 'हन्' धातु के 'टि-भाग' (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**तमोऽपहः।***

णिनिः--

(१) कुमारशीर्षयोर्णिनिः।५१।

प०वि०-कुमार-शीर्षयोः ७।२ णिनिः १।१।

स०-कुमारश्च शिरश्च ते कुमारशीर्षे, तयोः-कुमारशीर्षयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कुमारशीर्षयोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोर्णिनिः।

अर्थः-कुमारे शिरसि च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०(कुमारः) कुमारं हन्तीति कुमारघाती। **(शिरः)** शिरो हन्तीति शीर्षघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(कुमारशीर्षयोः) कुमार और शिरस् (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कुमार) **कुमारं हन्तीति कुमारघाती।** कुमार को मारनेवाला। (शिरस्) **शिरो हन्तीति शीर्षघाती।** शिर को काटनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **कुमारघाती।** कुमार कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'णिनि' प्रत्यय के परे होने पर **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व (घ्) होता है। **'अत उपधायाः'** (७।३।११६) से उपधा-अकार को वृद्धि होती है। कुमारघातिन्+सु। 'सु' प्रत्यय परे होने पर **'सौ च'** (७।४।१३) से नकारान्त-उपधा 'इ' को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है-**कुमारघाती।***

*(२) **शीर्षघाती।** यहां 'शिरस्' कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। सूत्रोक्त निपातन से 'शिरस्' के स्थान में 'शीर्ष' आदेश होता है। शेष पूर्ववत्।*

टक्-

(१) लक्षणे जायापत्योष्टक्।५२।

प०वि०-लक्षणे ७।१ जाया-पत्योः ७।२ टक् १।१।

स०-जाया च पतिश्च तौ जायापती, तयोः-जायापत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जायापत्योः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोष्टक् लक्षणे।

अर्थः-जायायां पत्यौ च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, लक्षणवति कर्तरि सति।

उदा०-(जाया) जायां हन्तीति जायाघ्नो ब्राह्मणः। **(पतिः)** पतिं हन्तीति पतिघ्नी वृषली।

आर्यभाषा-अर्थ-(जायापत्योः) जाया और पति (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (लक्षणे) यदि हन् धातु का कर्ता हत्या के लक्षणवाला है।

उदा०-(जाया) जायां हन्तीति जायाघ्नो ब्राह्मणः। अपनी जाया=पत्नी को मारनेवाला दुराचारी ब्राह्मण। (पति) पतिं हन्तीति पतिघ्नी वृषली। पति को मारनेवाली व्यभिचारिणी नीच नारी।

सिद्धि-(१) जायाघ्नः। यहां जाया कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के कित् होने से 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' धातु की उपधा का लोप और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व (घ्) होता है।

(२) पतिघ्नी। यहां पति कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से इस सूत्र से 'टक्' प्रत्यय है। 'टक्' प्रत्यय के टित् होने से 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टक्-

(२) अमनुष्यकर्तृके च।५३।

प०वि०-अमनुष्यकर्तृके ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-न मनुष्योऽमनुष्यः। अमनुष्यः कर्ता यस्य सोऽमनुष्यकर्तृकः, तस्मिन्-अमनुष्यकर्तृके (नञ्तत्पुरुषगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-कर्मणि, हनः, टक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोष्टक्, अमनुष्यकर्तृके च।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, अमनुष्यकर्तृके च सति।

उदा०-(हन्) जायां हन्तीति जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिं हन्तीति पतिघ्नी पाणिरेखा। श्लेष्माणं हन्तीति श्लेष्मघ्नं मधु। पित्तं हन्तीति पित्तघ्नं घृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (अमनुष्यकर्तृके च) यदि उस हन् धातु का कर्ता मनुष्य न (च) भी हो।

उदा०-(हन्) जायां हन्तीति जायाघ्नस्तिलकालकः। जाया को मारनेवाला काला तिल। पतिं हन्तीति पतिघ्नी पाणिरेखा। पति को मारनेवाली हस्तरेखा। श्लेष्माणं

हन्तीति श्लेष्मघ्नं मधु। कफ को नष्ट करनेवाला शहद। पित्तं हन्तीति पित्तघ्नं घृतम्। पित्त विकार को नष्ट करनेवाला घी। यहां 'हन्' धातु का हिंसा अर्थ नहीं अपितु नष्ट करना अर्थ है "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)। 'जायाघ्नः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेष- 'जायाघ्नस्तिलकालकः' और 'पतिघ्नी पाणिरेखा' उदाहरण फलित ज्योतिष पर आधारित हैं।

टक्–

(३) शक्तौ हस्तिकपाटयोः।५४।

प०वि०–शक्तौ ७।१ हस्ति-कपाटयोः ७।२।

स०–हस्ती च कपाटं च ते हस्तिकपाटे, तयोः–हस्तिकपाटयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, हनः, टक् चानुवर्तते।

अन्वयः–हस्तिकपाटयोः कर्मणोरुपपदयोर्हनो धातोष्टक् शक्तौ।

अर्थः–हस्तिनि कपाटे च कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परष्टक् प्रत्ययो भवति, शक्तौ गम्यमानायाम्।

उदा०–**(हस्ती)** हस्तिनं हन्तुं शक्त इति हस्तिघ्नः शूरः। **(कपाटम्)** कपाटं हन्तुं शक्त इति कपाटघ्नश्चौरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(हस्तिकपाटयोः) हस्ती और कपाट (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (टक्) टक् प्रत्यय होता है (शक्तौ) यदि हन् धातु के कर्ता में वह शक्ति लक्षित हो।

उदा०-(हस्ती) हस्तिनं हन्तुं शक्त इति हस्तिघ्नः शूरः। हाथी को मारने की शक्ति रखनेवाला शूर वीर। (कपाट) कपाटं हन्तुं शक्त इति कपाटघ्नश्चौरः। किवाड़ को तोड़ने की शक्ति रखनेवाला चौर। यहां 'हन्' धातु का अर्थ हिंसा नहीं अपितु तोड़ना अर्थ है "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

सिद्धि-पूर्ववत् (३।२।५२)।

टक् (निपातनम्)–

(४) पाणिघताडघौ शिल्पिनि।५५।

प०वि०–पाणिघ-ताडघौ १।२ शिल्पिनि ७।१।

स०–पाणिघश्च ताडघश्च तौ पाणिघताडघौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-पाणिघताडघौ शब्दौ निपात्येते शिल्पिनि कर्तरि सति।

उदा०-पाणिं हन्तीति पाणिघः शिल्पी। ताडं हन्तीति ताडघः शिल्पी।

आर्यभाषा-अर्थ-(पाणिघताडघौ) पाणिघ और ताडघ शब्द निपातित हैं (शिल्पिनि) यदि वहां 'हन्' धातु का कर्ता शिल्पी हो। शिल्पी=कलाकार।

उदा०-पाणिं हन्तीति पाणिघः शिल्पी। हाथ से मृदङ्ग=ढोलक बजानेवाला कलाकार। ताडं हन्तीति ताडघः शिल्पी। ताली बजानेवाला कलाकार।

सिद्धि-पाणिघः। यहां पाणि कर्म उपपद होने पर 'हन्' धातु से 'टक्' प्रत्यय और 'टक्' प्रत्यय के परे होने पर 'हन्' के टि-भाग (अन्) का लोप और 'हन्' के 'ह्' को 'घ्' आदेश निपातित हैं। ऐसे ही-ताडघः। यहां हन् धातु का हिंसा अर्थ नहीं अपितु बजाना अर्थ है "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)।

ख्युन्-

(१) आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्।५६।

प०वि०-आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्न-अन्ध-प्रियेषु ७।३ च्वि-अर्थेषु ७।३ अच्वौ ७।१ कृञः ५।१ करणे ७।१ ख्युन् १।१।

स०-आढ्यश्च सुभगश्च स्थूलश्च पलितश्च नग्नश्च अन्धश्च प्रियश्च ते आढ्य०प्रियाः, तेषु-आढ्य०प्रियेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अच्विषु च्व्यर्थेषु आढ्य०प्रियेषूपपदेषु कृञो धातोः करणे ख्युन्।

अर्थः-च्वि-प्रत्ययान्तवर्जितेषु च्वि-अर्थेषु आढ्यसुभगस्थूलपलित-नग्नान्धप्रियेषु कर्मकारकेषु उपपदेषु करणे कारके कृञ्-धातोः परः ख्युन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(आढ्यः)** अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्ति येन तत्-आढ्यङ्करणम्। **(सुभगः)** असुभगं सुभगं कुर्वन्ति येन तत्-सुभगङ्करणम्। **(स्थूलः)** अस्थूलं स्थूलं कुर्वन्ति येन तत्-स्थूलङ्करणम्। **(पलितः)** अपलितं पलितं कुर्वन्ति येन तत्-पलितङ्करणम्। **(नग्नः)** अनग्नं नग्नं कुर्वन्ति येन

तत्-नग्नङ्करणम्। **(अन्धः)** अनन्धमन्धं कुर्वन्ति येन तत्-अन्धङ्करणम्। **(प्रियः)** अप्रियं प्रियं कुर्वन्ति येन तत्-प्रियङ्करणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वौ) 'च्वि' प्रत्यय से रहित किन्तु (च्वि-अर्थेषु) 'च्वि' प्रत्यय के अभूततद्भाव अर्थ में वर्तमान (आढ्य०प्रियेषु) आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय (कर्मणि) इन कर्म-कारकों के उपपद होने पर (करणे) करण कारक में (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से (ख्युन्) ख्युन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(आढ्य) **अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्ति येन तत्-आढ्यङ्करणम्।** वह करण=साधन जिससे निर्धन को धनवान् बनाते हैं। (सुभग) **असुभगं सुभगं कुर्वन्ति येन तत्-सुभगङ्करणम्।** वह साधन जिससे असुन्दर को सुन्दर बनाते हैं। (स्थूल) **अस्थूलं स्थूलं कुर्वन्ति येन तत्-स्थूलङ्करणम्।** वह साधन जिससे कृश को स्थूल बनाते हैं। (पलित) **अपलितं पलितं कुर्वन्ति येन तत्-पलितङ्करणम्।** वह साधन जिससे अपलित को पलित बनाते हैं। पलित=श्वेतकेशी। (नग्न) **अनग्नं नग्नं कुर्वन्ति येन तत्-नग्नङ्करणम्।** वह साधन जिससे अनग्न को नग्न बनाते हैं। नग्न=नंगा। (अन्ध) **अनन्धमन्धं कुर्वन्ति येन तत्-अन्धङ्करणम्।** वह साधन जिससे सुलक्ष को अन्धा बनाते हैं (अश्रु गैस)। (प्रिय) **अप्रियं प्रियं कुर्वन्ति येन तत्-प्रियङ्करणम्।** वह साधन जिससे अप्रिय को प्रिय बनाते हैं, मधुर भाषण।*

*सिद्धि-**आढ्यङ्करणम्।** यहां 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ख्युन्' प्रत्यय है। '**अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**' (६।३।६५) से 'मुम्' आगम, '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश, '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' को गुण और '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**सुभगङ्करणम्,** इत्यादि।*

*विशेष-च्वि-अर्थ- '**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से अभूत तद्भाव अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय होता है। यहां 'च्वि-अर्थ' मात्र का ग्रहण किया गया और 'अच्वौ' कहकर च्वि-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है।*

खिष्णुच्+खुकञ्-

(१) कर्तरि भुवः खिष्णुच्-खुकञौ।५७।

प०वि०-कर्तरि ७।१ भुवः ५।१ खिष्णुच्-खुकञौ १।२।

स०-खिष्णुच् च खुकञ् च तौ खिष्णुच्खुकञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, आढ्य०प्रियेषु, अच्वि-अर्थेषु, अच्वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्विषु च्व्यर्थेषु आढ्य०प्रियेषु सुप्सूपपदेषु भुवः कर्तरि खिष्णुच्खुकञौ।

अर्थः-च्वि-प्रत्ययवर्जितेषु च्वि-अर्थेषु आढ्यसुभगस्थूलपलित-नग्नान्धप्रियेषु सुबन्तेषु उपपदेषु भू-धातोः परः कर्तरि कारके खिष्णुच्-खुकञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(आढ्यः)** अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः। **(सुभगः)** असुभगः सुभगो भवतीति सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः। **(स्थूलः)** अस्थूलः स्थूलो भवतीति स्थूलम्भविष्णुः, स्थूलम्भावुकः। **(पलितः)** अपलितो पलितो भवतीति पलितम्भविष्णुः, पलितम्भावुकः। **(नग्नः)** अनग्नो नग्नो भवतीति नग्नम्भविष्णुः, नग्नम्भावुकः। **(अन्धः)** अनन्धोऽन्धो भवतीति अन्धम्भविष्णुः, अन्धम्भावुकः। **(प्रियः)** अप्रियो प्रियो भवतीति प्रियम्भविष्णुः, प्रियम्भावुकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अच्वौ) च्वि-प्रत्यय से रहित किन्तु (च्वि-अर्थेषु) च्वि-प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान (आढ्य०प्रियेषु) आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय (सुपि) इन सुबन्तों के उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (कर्तरि) कर्ता कारक में (खिष्णुच्खुकञौ) खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-**(आढ्य) अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः।** जो धनवान् नहीं है वह धनवान् होता है। **(सुभग) असुभगः सुभगो भवतीति सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः।** जो सुन्दर नहीं है वह सुन्दर होता है। **(स्थूल) अस्थूलः स्थूलो भवतीति स्थूलम्भविष्णुः, स्थूलम्भावुकः।** जो स्थूल नहीं है वह स्थूल होता है। **(पलित) अपलितः पलितो भवतीति पलितम्भविष्णुः, पलितम्भावुकः।** जो पलित नहीं है वह पलित होता है। पलित=श्वेतकेशी। **(नग्न) अनग्नो नग्नो भवतीति नग्नम्भविष्णुः, नग्नम्भावुकः।** जो नंगा नहीं है वह नंगा होता है। **(प्रिय) अप्रियः प्रियो भवतीति प्रियम्भविष्णुः, प्रियम्भावुकः।** जो प्रिय नहीं है वह प्रिय होता है।*

*सिद्धि-(१) **आढ्यम्भविष्णुः।** यहां 'आढ्य' सुबन्त उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'खिष्णुच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के खित् होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६५) से आढ्य उपपद को 'मुम्' आगम होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।९४) से 'भू' धातु को गुण हो जाता है।*

*(२) **आढ्यम्भावुकः।** यहां 'आढ्य' सुबन्त उपपद होने पर पूर्वोक्त 'भू' धातु से इस सूत्र से 'खुकञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'खित्' होने से पूर्ववत् 'मुम्' आगम होता है। प्रत्यय के 'ञित्' होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है। ऐसे ही-**सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः** आदि।*

विशेष-कर्ता- 'कर्तरि कृत्' (३।४।६७) से समस्त 'कृत्' प्रत्यय 'कर्ता' अर्थ में होते हैं, फिर यहां 'कर्तरि' पद का ग्रहण इसलिये किया गया है कि पूर्व सूत्र से 'करणे' पद की अनुवृत्ति न हो सके।

क्विन्–

(१) स्पृशोऽनुदके क्विन्।५८।

प०वि०-स्पृशः ५।१ अनुदके ७।१ क्विन् १।१।

स०-न उदकमिति अनुदकम्, तस्मिन्-अनुदके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुदके सुप्युपपदे स्पृशो धातोः क्विन्।

अर्थः-उदकवर्जिते सुबन्ते उपपदे स्पृश्-धातोः परः क्विन्प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(स्पृश्)** घृतं स्पृशतीति घृतस्पृक्। मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्। जलेन स्पृशतीति जलस्पृक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनुदके) उदक शब्द को छोड़कर (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (स्पृशः) स्पृश् (धातोः) धातु से परे (क्विन्) क्विन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(स्पृश्) **घृतं स्पृशतीति घृतस्पृक्।** घृत का स्पर्शमात्र करनेवाला (अल्पमात्रा में सेवन करनेवाला)। **मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्।** मन्त्रपूर्वक अङ्गस्पर्श करनेवाला-उपासक। **जलेन स्पृशतीति जलस्पृक्।** जल से अङ्गस्पर्श करनेवाला-उपासक।*

*सिद्धि-**घृतस्पृक्।** यहां 'घृत' कर्म उपपद होने पर 'स्पृश संस्पर्शने' (तुदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध हो जाता है। 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से 'स्पृश्' के 'श्' को कुत्व 'ख्', 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ख्' को 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को 'क्' होता है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही-मन्त्रस्पृक् और जलस्पृक्।*

निपातनं क्विन् च–

(२) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च।५९।

प०वि०-ऋत्विक्-दधृक्-स्रक्-दिक्-उष्णिक्-अञ्चु-युजि-क्रुञ्चाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-ऋत्विक् च दधृक् च स्रक् च दिक् च उष्णिक् च अञ्चुश्च युजिश्च क्रुञ्च् च ते ऋत्विक्०क्रुञ्चः, तेषाम्-ऋत्विग्०क्रुञ्चाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुपि, क्विन् इति चानुवर्तते।

अर्थः-ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिजः शब्दाः क्विन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, अञ्चुयुजिक्रुञ्चिभ्यश्च धातुभ्यः परः क्विन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ऋत्विक्)** ऋतौ ऋतौ यजतीति ऋत्विक्। **(दधृक्)** धृष्णोतीति दधृक्। **(स्रक्)** सृजन्ति यामिति स्रक्। **(दिक्)** दिशन्ति यामिति दिक्। **(उष्णिक्)** उत्स्निह्यतीति उष्णिक्। **(अञ्चुः)** प्राञ्चतीति प्राङ्। प्रत्यञ्चतीति प्रत्यङ्। उदञ्चतीति उदङ्। **(युजिः)** युनक्तीति युङ्। युङ्, युञ्जौ, युञ्जः। **(क्रुञ्च्)** क्रुञ्चतीति क्रुङ्। क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ऋत्विक्०क्रुञ्चाम्) ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् ये शब्द (क्विन्) क्विन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (च) और अञ्चु, युजि, क्रुञ्च धातुओं से (क्विन्) क्विन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ऋत्विक्) **ऋतौ ऋतौ यजतीति ऋत्विक्।** ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाला (विद्वान्/ईश्वर)। (दधृक्) **धृष्णोतीति दधृक्।** विद्यादि गुणों में प्रगल्भता (चातुर्य) प्राप्त करनेवाला (अध्यापक)। शत्रु का धर्षण करनेवाला (वीर योद्धा)। (स्रक्) **सृजन्ति यामिति स्रक्।** जिसे मालाकार विशिष्ट प्रकार से बनाते हैं (माला)। (दिश्) **दिशन्ति यामिति दिक्।** जिसका अतिसर्जन (दान) किया जाता है वह दिशा। (उष्णिक्) **उत्स्निह्यतीति उष्णिक्।** उत्कृष्ट कामना करनेवाला। (२८ अक्षरवाला एक वैदिक छन्द)। (अञ्चु) **प्राञ्चतीति प्राङ्।** पूर्व दिशा। **प्रत्यञ्चतीति प्रत्यङ्।** पश्चिम दिशा। **उदञ्चतीति उदङ्।** उत्तर दिशा। (युजि) **युनक्तीति युङ्।** जोड़नेवाला। (क्रुञ्च्) **क्रुञ्चतीति क्रुङ्।** पक्षिविशेष (क्रौंच)।*

*सिद्धि-(१) **ऋत्विक्।** यहां 'ऋतु' सुबन्त उपपद होने पर **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है। **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (६।२।६२) से 'ज्' को कुत्व 'ग्' और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।*

(२) दधृक्।** यहां **'ञिधृषा प्रागल्भ्ये'** (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'धृष्' धातु को द्विर्वचन, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास को अत्त्व, **'अभ्यासे चर्च'

*(८।४।५३) से अभ्यास को जश्त्व (द्) होता है **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (६।२।६२) से 'ष्' को कुत्व 'ख्', **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से 'ख्' को 'ग्' और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से 'ग्' को 'क्' होता है। निपातन से अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*(३) **स्रक्।** यहां **'सृज् विसर्गे'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म में 'क्विन्' प्रत्यय है। निपातन से अम् आगम होता है। पूर्ववत् कुत्व 'ज्' को 'ग्' और चर्त्व 'ग्' को 'क्' होता है।*

*(४) **दिक्।** यहां **'दिश अतिसर्जने'** (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'श्' को कुत्व 'ख्', 'ख्' को जश्त्व 'ग्', 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।*

*(५) **उष्णिक्।** यहां उत् उपसर्गपूर्वक **'ष्णिह प्रीतौ'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। उत् उपसर्ग के 'त्' का लोप और स्निह के 'स्' को षत्व निपातित है। पूर्ववत् 'ह्' को कुत्व घ्, घ् को जश्त्व ग्, ग् को चर्त्व क् होता है।*

*(६) **प्राङ्।** यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से 'अञ्चु' धातु के 'न्' का लोप (प्र अच्)। **'उगिदचां सर्वनामस्थाने चाधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम (प्र अ नुम् च्+सु) **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप, (प्र अ न् च्+०) **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'च्' का लोप (प्र अन्) **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होकर प्राङ् रूप सिद्ध होता है। ऐसे ही-प्रति और उत् उपसर्गपूर्वक अञ्चु धातु से-**प्रत्यङ्** और **उदङ्।***

*(७) **युङ्।** यहां **'युजिर् योगे'** (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' और पूर्ववत् उसका सर्वहारी लोप होता है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम (यु नु म् ज्+सु)। पूर्ववत् 'सु' और 'ज्' का लोप होता है। (युन्) **'क्विन्प्रतययस्य कुः'** (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होता है-**युङ्।***

*(८) **क्रुङ्।** यहां **'क्रुञ्च गतिकौटिल्याल्पीभवयोः'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से प्राप्त उपधा-नकार का लोप इस निपातन को साहचर्य से नहीं होता है (क्रुन् च्+सु)। पूर्ववत् 'सु' और 'च्' का लोप होकर **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से 'न्' को कुत्व (ङ्) होता है-**क्रुङ्।***

क्विन्+कञ्–

(३) त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च।६०।

प०वि०-त्यदादिषु ७।३ दृशः ५।१ अनालोचने ७।१ कञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादय:, तेषु-त्यदादिषु (बहुव्रीहि:)। न आलोचनमिति अनालोचनम्, तस्मिन्-अनालोचने (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-सुपि, क्विन् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-त्यदादिषु सुप्सूपपदेषु, अनालोचने दृशो धातो: क्विन् कञ् च।

अर्थ:-त्यदादिषु सुबन्तेषु उपपदेषु अनालोचनेऽर्थे वर्तमानाद् दृश्-धातो: पर: क्विन् कञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(त्यद्)** त्यत् पश्यतीति त्यादृक्, त्यादृशश्च। **(तद्)** तत् पश्यतीति तादृक्, तादृशश्च। **(यद्)** यत् पश्यतीति यादृक् यादृशश्च। अत्र दृशधातुस्तुल्यभावेऽर्थे वर्तते नालोचने **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्)।

त्यद्। तद्। यद्। एतद्। इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम् इति सर्वादिषु त्यदादय:।

आर्यभाषा-अर्थ-(त्यदादिषु) त्यद् आदि (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (अनालोचने) दर्शन अर्थ से रहित (दृश:) दृश् (धातो:) धातु से परे (क्विन्) क्विन् (च) और (कञ्) कञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(त्यद्) **त्यत् पश्यतीति त्यादृक्, त्यादृशश्च।** उसके तुल्य। (तद्) **तत् पश्यतीति तादृक्, तादृशश्च।** उसके तुल्य। (यद्) **यत् पश्यतीति यादृक् यादृशश्च।** जिसके तुल्य।*

*सिद्धि-(१) **त्यादृक्।** यहां 'त्यद्' उपपद होने पर '**दृशिर् प्रेक्षणे**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय है। '**आ सर्वनाम्न:**' (६।३।८९) से 'त्यद्' को आत्व, '**क्विन्प्रत्ययस्य कु:**' (८।२।६२) से 'दृश्' के 'श्' को कुत्व 'ख्', '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से 'ख्' को जश्त्व 'ग्' और '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से 'ग्' को चर्त्व 'क्' होता है।*

*(२) **त्यादृश:।** यहां 'त्यद्' उपपद होने पर 'दृश्' धातु से इस सूत्र से 'कञ्' प्रत्यय है। '**आ सर्वनाम्न:**' (६।३।८९) से त्यद् को आत्व होता है। ऐसे ही-**तादृक् तादृश:** आदि।*

विशेष-ये त्यादृक् आदि रूढि शब्द हैं, प्रकृति प्रत्यय से व्युत्पन्न होने पर अपने अवयवार्थ को ग्रहण नहीं करते हैं, जैसे-व्याजिघ्रतीति व्याघ्र:।

क्विप्–

(१) सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजा-मुपसर्गेऽपि क्विप्।६१।

प०वि०– सत्-सू-द्विष-द्रुह-दुह-युज-विद-भिद-छिद-जि-नी-राजाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे), उपसर्गे ७।१, अपि अव्ययपदम्, क्विप् १।१।

स०–सच्च सूश्च द्विषश्च द्रुहश्च दुहश्च युजश्च विदश्च भिदश्च छिदश्च जिश्च नीश्च राज् च ते-सत्०राजः, तेषाम्-सत्०राजाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सुप्युपपदे उपसर्गेऽपि सत्०राजिभ्यो धातुभ्यः क्विप्।

अर्थः–सुबन्त उपपदे सोपसर्गेभ्यो निरुपसर्गेभ्यश्चाऽपि सत्सूद्विषद्रुह-दुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजिभ्यो धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(सत्)** शुचौ सीदतीति शुचिषत्। अन्तरिक्षे सीदतीति अन्तरिक्ष सत्। उपसीदतीति उपसत्। **(सू)** अण्डानि सूते इति अण्डसूः। शतं सूते इति शतसूः। प्रसूते इति प्रसूः। **(द्विष्)** मित्रं द्वेष्टीति मित्रद्विट्। प्रद्वेष्टीति प्रद्विट्। **(द्रुह्)** मित्रं द्रुह्यतीति मित्रध्रुक्। प्रद्रुह्यतीति प्रध्रुक्। **(दुह्)** गां दोग्धीति गोधुक्। प्रदोग्धीति प्रधुक्। **(युज्)** अश्वं युनक्तीति अश्वयुक्। प्रयुनक्तीति प्रयुक्। **(विद्)** वेदं वेत्तीति वेदवित्। प्रवेत्तीति प्रवित्। ब्रह्म वेत्तीति ब्रह्मवित्। **(भिद्)** काष्ठं भिनत्तीति काष्ठभित्। प्रभिनत्तीति प्रभित्। **(छिद्)** रज्जुं छिनत्तीति रज्जुछित्। प्रच्छिनत्तीति प्रच्छित्। **(जि)** शत्रुं जयतीति शत्रुजित्। प्रजयतीति प्रजित्। **(नी)** सेनां नयतीति सेनानीः। प्रणयतीति प्रणीः। ग्रामं नयतीति ग्रामणीः। अग्रं नयतीति अग्रणीः। **(राज्)** राजते इति राट्। विराजते इति विराट्। सम्राजते इति सम्राट्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (उपसर्गेऽपि) सोपसर्ग और निरुपसर्ग (सत्०राजाम्) सत्, सू, द्विष्, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, नी, राज् (धातोः) धातुओं से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सत्) शुचौ सीदतीति **शुचिषत्**। शुद्ध देश में रहनेवाला। अन्तरिक्षे सीदतीति **अन्तरिक्षसत्**। अन्तरिक्ष में रहनेवाला। उपसीदतीति **उपसत्**। पास बैठनेवाला। (सू) अण्डानि सूते इति **अण्डसूः**। अण्डे पैदा करनेवाला प्राणी। शतं सूते इति **शतसूः**। सौ सन्तान उत्पन्न करनेवाला। प्रसूते इति **प्रसूः**। प्रसव करनेवाला। (द्विष्) मित्रं द्वेष्टीति **मित्रद्विट्**। मित्र से द्वेष करनेवाला। प्रद्वेष्टीति **प्रद्विट्**। अधिक द्वेष करनेवाला। (द्रुह्) मित्रं द्रुह्यतीति **मित्रध्रुक्**। मित्र से द्रोह करनेवाला। प्रद्रुह्यतीति **प्रध्रुक्**। अति द्रोह करनेवाला। (दुह्) गां दोग्धीति **गोधुक्**। गौ को दुहनेवाला। प्रदोग्धीति **प्रधुक्**। उत्तम दोग्धा। (युज्) अश्वं युनक्तीति **अश्वयुक्**। घोड़े को जोड़नेवाला। प्रयुनक्तीति **प्रयुक्**। प्रयोग करनेवाला। (विद्) वेदं वेत्तीति **वेदवित्**। वेद को जाननेवाला। प्रवेत्तीति **प्रवित्**। प्राज्ञ। ब्रह्म वेत्तीति **ब्रह्मवित्**। ब्रह्म को जाननेवाला। (भिद्) काष्ठं भिनत्तीति **काष्ठभिद्**। लकड़ी फाड़नेवाला। प्रभिनत्तीति **प्रभित्**। प्रभेद करनेवाला। (छिद्) रज्जुं छिनत्तीति **रज्जुच्छित्**। रस्सी को काटनेवाला। प्रछिनत्तीति **प्रच्छित्**। प्रच्छेद करनेवाला। (जि) शत्रुं जयतीति **शत्रुजित्**। शत्रु को जीतनेवाला। प्रजयतीति **प्रजित्**। प्रकर्ष से जीतनेवाला। (नी) सेनां नयतीति **सेनानीः**। सेना का नेता। प्रणयतीति **प्रणीः**। उत्तम नेता। ग्रामं नयतीति **ग्रामणीः**। ग्राम का नेता। अग्रं नयतीति **अग्रणीः**। आगे ले जानेवाला। (राज्) राजते इति **राट्**। राजा। विराजते इति **विराट्**। बड़ा। सम्राजते इति **सम्राट्**। बड़ा राजा।

सिद्धि-(१) **शुचिषत्**। यहां 'शुचि' सुबन्त उपपद होने पर **'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप हो जाता है। **'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'** (८।४।३) से सद् को षत्व होता है। ऐसे ही-**अन्तरिक्षसत्** और **उपसत्**।

(२) **अण्डसूः**। यहां 'अण्ड' सुबन्त उपपद होने पर **'षुञ् प्राणिगर्भविमोचने'** (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। ऐसे ही-**शतसूः** और **प्रसूः**।

(३) **मित्रद्विट्**। यहां 'मित्र' सुबन्त उपपद होने पर **'द्विष अप्रीतौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय का लोप होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से द्विष् के 'ष्' को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ड्' को चर् ट् होता है। ऐसे ही-**प्रद्विट्**।

(४) **मित्रध्रुक्**। यहां 'मित्र' सुबन्त उपपद होने पर **'द्रुह अभिजिघांसायाम्'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वा द्रुहदुह०' (८।२।३३) से 'द्रुह्' के ह् को घ्, **झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से घ् को जश् ग्, 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है। **'एकाचो बशो भष्०** (८।२।३७) से 'द्रुह्' के द् को भष् ध् होता है। ऐसे ही-**प्रध्रुक्**।

*(५) **गोधुक्।** यहां 'गो' सुबन्त उपपद होने पर '**दुह प्रपूरणे**' (अदा०प०) धातु से **इस** सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मित्रधुक्' के समान है।*

*(६) **अश्वयुक्।** यहां 'अश्व' सुबन्त उपपद होने पर '**युजिर् योगे**' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**चो: कु:**' (८।२।३०) से 'युज्' के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है। ऐसे ही-**प्रयुक्।***

*(७) **वेदवित्।** यहां 'वेद' सुबन्त उपपद होने पर '**विद ज्ञाने**' (अदा०प०) धातु से **इस** सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से 'विद्' के द् को चर् त् होता है। ऐसे ही-**प्रवित्।***

*(८) **काष्ठभित्।** यहां 'काष्ठ' सुबन्त उपपद होने पर '**भिदिर् विदारणे**' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वेदवित्' के समान है।*

*(९) **रज्जुच्छित्।** यहां 'रज्जु' सुबन्त उपपद होने पर '**छिदिर् द्वैधीकरणे**' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वेदवित्' के समान है।*

*(१०) **शत्रुजित्।** यहां शत्रु सुबन्त उपपद होने पर '**जि जये**' (भ्वा०प०) धातु **से** 'क्विप्' प्रत्यय है। '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।६९) से 'जि' धातु को 'तुक्' आगम होता है। ऐसे ही-**प्रजित्।***

*(११) **सेनानी:।** यहां 'सेना' सुबन्त उपपद होने पर '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**प्रणी:**, इत्यादि।*

*(१२) **राट्।** यहां '**राजृ दीप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८।२।३६) से 'राज्' के ज् को षत्व, '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है। वि उपसर्ग होने पर-**विराट्।** सम् उपसर्ग होने पर-**सम्राट्।** यहां '**मो राजि सम: क्वौ**' (८।३।२५) से सम् के 'म्' को म् ही आदेश होता है। '**मोऽनुस्वार:**' (८।४।२३) से अनुस्वार आदेश नहीं होता है।*

ण्वि:--

(१) भजो ण्वि:।६२।

प०वि०-भज: ५।१ ण्वि: १।१।

अनु०-सुपि, उपसर्गेऽपि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-सुप्युपसर्गेऽपि भजो धातोर्ण्वि:।

अर्थ:-सुबन्ते उपपदे सोपसर्गान्निरुपसर्गादपि भज्-धातो: परो ण्वि: प्रत्ययो भवति।

उदा०-अर्धं भजते इति अर्धभाक्। प्रभजते इति प्रभाक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (उपसर्गेऽपि) सोपसर्ग और निरुपसर्ग (भजः) भज् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्वि-प्रत्यय होता है।

*उदा०-**अर्धं भजते इति अर्धभाक्।** आधा भाग प्राप्त करनेवाला। **प्रभजते इति प्रभाक्।** अधिक भाग प्राप्त करनेवाला।*

*सिद्धि-**अर्धभाक्।** यहां अर्ध सुबन्त उपपद होने पर **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से 'ण्वि' प्रत्यय होता है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'भज्' को उपधावृद्धि होती है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'भाज्' के ज् को कुत्व ग् और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से ग् को चर्त्व क् होता है। ऐसे ही-प्र उपसर्ग होने पर-**प्रभाक्।***

ण्विः-

(२) छन्दसि सहः।६३।

प०वि०-छन्दसि ७।१ सहः ५।१।

अनु०-सुपि, ण्विरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदे सहो धातोर्ण्विः।

अर्थः-छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे सह्-धातोः परो ण्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०-जलं सहते इति जलाषाट्। तुरान् सहते इति तुराषाट् (ऋक्० ३।४८।४)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (सहः) सह् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्वि-प्रत्यय होता है।

*उदा०-**जलं सहते इति जलाषाट्।** जल=सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। **तुरान् सहते इति तुराषाट्।** तुर=शीघ्रकारी शत्रुओं का विनाश करनेवाला-इन्द्र।*

*सिद्धि-**जलाषाट्।** यहां 'जल' सुबन्त उपपद होने पर **'सह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्वि' प्रत्यय है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से सह् के ह् को ढत्व, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से जश् ड्, और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से ड् को चर्त्व ट् होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'सह्' को उपधावृद्धि होती है। **'सहेः साडः सः'** (८।३।५६) से 'साट्' स् को षत्व होता है। **'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३५) से दीर्घ होता है।*

णिवः–

(३) वहश्च।६४।

प०वि०–वहः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सुपि, ण्विः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि सुप्युपपदे वहो धातोश्च ण्विः।

अर्थः–छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे वह्-धातोः परो ण्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०–प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठवाट्। दित्यं वहतीति दित्यवाट्। (यजु० १४।१०)। दितिभिः-खण्डनैनिर्वृत्तान् यवादीन् वहति स दित्यवाट् (दयानन्दयजुर्वेदभाष्यम्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वहः) वह् (धातोः) धातु से परे (ण्विः) ण्विप्रत्यय होता है।

*उदा०-प्रष्ठं वहतीति **प्रष्ठवाट्**। प्रष्ठ=अग्रगामी पुरुष को वहन करनेवाला गज आदि। दित्यं वहतीति **दित्यवाट्**। (यजु० १४।१०) टूटे हुये यव आदि अन्न को प्राप्त करनेवाला।*

*सिद्धि-**प्रष्ठवाट्**। यहां 'प्रष्ठ' सुबन्त उपपद होने पर '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'ण्वि' प्रत्यय है। **जलाषाट्** के समान 'वह' के 'ह्' को ढत्व, जश्त्व और चर्त्व और उपधावृद्धि होती है।*

ञ्युट्–

(१) कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्।६५।

प०वि०–कव्य-पुरीष-पुरीष्येषु ७।३ ञ्युट् १।१।

स०–कव्यं च पुरीषं च पुरीष्यं च तानि कव्यपुरीषपुरीष्याणि, तेषु कव्यपुरीषपुरीष्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि, छन्दसि, वह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कव्यपुरीषपुरीष्येषूपपदेषु वहो धातोर्ञ्युट्।

अर्थः–छन्दसि विषये कव्यपुरीषपुरीष्येषूपपदेषु वह्-धातोः परो ञ्युट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कव्यम्**) कव्यं वहतीति कव्यवाहनः (यजु० १९ ।६४)। (**पुरीषम्**) पुरीषं वहतीति पुरीषवाहनः। (**पुरीष्यम्**) पुरीष्यं वहतीति पुरीष्यवाहनः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (कव्यपुरीषपुरुष्येषु) कव्य, पुरीष और पुरीष्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (वहः) वह (धातोः) धातु से परे (ञ्युट्) ञ्युट् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(कव्य) कव्यं वहतीति कव्यवाहनः।** कविजनों के प्रशस्त कर्मों को प्राप्त करानेवाला, विद्वान् (यजु० १९ ।६४) **(पुरीष) पुरीषं वहतीति पुरीषवाहनः।** पुरीष=पालन आदि कर्मों को प्राप्त करनेवाला पुत्र (यजु० ११ ।४४)। पुरीष=उदक (निघण्टु १ ।१२) उदक को प्राप्त करानेवाला। **(पुरीष्य) पुरीष्यं वहतीति पुरीष्यवाहनः।** पुरीष्य=पालन कार्यों में साधु विद्युत्-विद्या को प्राप्त करानेवाला विद्वान् (यजु० ११ ।४६) **पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं** गच्छति (शत० २ ।१ ।१ ।७)।*

*सिद्धि-**कव्यवाहनः।** यहां 'कव्य' सुबन्त उपपद होने पर **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ञ्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७ ।१ ।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। **'अत उपधायाः'** (७ ।२ ।११६) से 'वह्' को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-पुरीष और पुरीष्य उपपद होने पर-**पुरीषवाहनः, पुरीष्यवाहनः।***

ञ्युट्-

(२) हव्येऽनन्तःपादम् ।६६।

प०वि०-हव्ये ७ ।१ अनन्तःपादम् १ ।१।

स०-अन्तः (मध्ये) पादस्येति अन्तःपादम्, न अन्तःपादमिति अनन्तःपादम् (अव्ययीभावगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सुपि, छन्दसि, वहः, ञ्युट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदेऽनन्तःपादं वहो धातोर्ञ्युट्।

अर्थः-छन्दसि विषये हव्ये सुबन्तं उपपदेऽनन्तःपादं वर्तमानाद् वह्-धातोः परो ञ्युट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-हव्यं वहतीति हव्यवाहनः। अग्निश्च हव्यवाहनः। दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ० ६ ।१६ ।२३)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (हव्ये) हव्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (अनन्तःपादम्) पाद के मध्य में अविद्यमान (वहः) वह (धातोः) धातु से परे (ञ्युट्) प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(हव्य) हव्यं वहतीति हव्यवादनः । हव्य=हुत द्रव्यों को वहन करनेवाला अग्नि । **अग्निश्च** हव्यवाहनः । दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ० ६ ।१६ ।२३) ।*

विट्–

(१) जनसनखनक्रमगमो विट् ।६७।

प०वि०-जन-सन-खन-क्रम-गमः ५ ।१ विट् १ ।१ ।

स०-जनश्च सनश्च खनश्च क्रमश्च गम् च एतेषां समाहारो जनसनखनक्रमगम्, तस्मात्-जनसनखनक्रमगमः (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-सुपि, छन्दसि इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-छन्दसि सुप्युपपदे जन०गमो धातोर्विट् ।

अर्थः-छन्दसि विषये सुबन्ते उपपदे जन-सन-खन-क्रम-गमिभ्यो धातुभ्यः परो विट् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(जनः) अप्सु जायते इति अब्जाः । गोषु जायते इति गोजाः । **(सनः)** गां सनोतीति गोषाः । नॄन् सनोतीति नृषाः । इन्द्रो नृषा असि । **(खनः)** विसं खनतीति विसखाः । कूपं खनतीति कूपखाः । **(क्रमः)** दधि क्रामतीति दधिक्राः (ऋ० ४ ।३८ ।९) । **(गम्)** अग्रे गच्छतीति अग्रेगाः (यजु० २७ ।३१) ।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (जन०गमः) जन, सन, खन, क्रम, गम् (धातोः) धातुओं से परे (विट्) विट् प्रत्यय है ।

*उदा०-(जन) **अप्सु जायते इति अब्जाः** । जल में उत्पन्न होनेवाला कमल । गोषु जायते इति गोजाः । गौओं में पैदा होनेवाला । (सन) गां सनोतीति गोषाः । गोदान करनेवाला । **नॄन् सनोतीति नृषाः** । नरों को दान करनेवाला । **इन्द्रो नृषा असि** । (खन) विसं खनतीति विसखाः । विस=कमलनाल को खोदनेवाला । कूपं खनतीति कूपखाः । कूआ खोदनेवाला । (क्रम) **दधि क्रामतीति दधिक्राः** (ऋ० ४ ।३८ ।९) । दधि=धारण करनेवाले को वहन करनेवाला अश्व । दधिक्राः=अश्वः (निघण्टु १ ।१४) । (गम्) अग्रे गच्छतीति अग्रेगाः (यजु० २७ ।३१) आगे चलनेवाला ।*

*सिद्धि-(१) **अब्जाः** । यहां 'अप्' सुबन्त उपपद होने पर 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है । 'वेरपृक्तस्य' (६ ।१ ।६५) से 'विट्' के 'वि' का लोप और 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' (६ ।१ ।४१) से 'जन्' के न् को आत्त्व होता है । ऐसे ही-गोजाः ।*

(२) गोषाः। यहां 'गो' सुबन्त उपपद होने पर 'षणु दाने' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय होता है। 'सनोतेरनः' (८।३।१०८) से 'सन्' को षत्व होता है। शेष पूर्ववत् है। ऐसे ही-नृषा।

(३) बिसखाः। यहां 'बिस' सुबन्त उपपद होने पर 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'विट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-कूपखाः।

(४) दधिक्राः। यहां 'दधि' सुबन्त होने पर 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है।

(५) अग्रेगाः। यहां 'अग्रे' सुबन्त उपपद होने पर 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६।३।१२) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है।

विट्–

(२) अदोऽनन्ने।६८।

प०वि०-अदः ५।१ अनन्ने ७।१।

स०-न अन्नमिति अनन्नम्, तस्मिन्-अनन्ने (नञ्तत्पूरुषः)।

अनु०-छन्दसि इति निवृत्तम्, सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनन्ने सुप्युपपदेऽदो धातोर्विट्।

अर्थः-अन्नवर्जिते सुबन्ते उपपदेऽद्-धातोः परो विट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आममत्तीति आमात्। सस्यमत्तीति सस्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनन्ने) अन्न शब्द को छोड़कर (सुपि) कोई सुबन्त उपपद होने पर (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (विट्) विट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**आममत्तीति आमात्।** कच्चे पदार्थ खानेवाला। **सस्यमत्तीति सस्यात्।** खेती को खानेवाला हरिण आदि।*

*सिद्धि-**आमात्।** यहां 'आम' सुबन्त उपपद होने पर 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'विट्' के वि का लोप हो जाता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'अद्' के द् को चर् त् होता है। ऐसे ही-'सस्य' उपपद होने पर-**सस्यात्।***

विट्–

(३) क्रव्ये च।६९।

प०वि०-क्रव्ये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-सुपि, विट्, अद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रव्ये सुप्युपपदेऽदो धातोर्विट्।

अर्थः-क्रव्ये सुबन्ते उपपदेऽपि अद्-धातोः परो विट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रव्यमत्तीति क्रव्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रव्ये) क्रव्य (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (च) भी (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (विट्) विट्प्रत्यय होता है।

*उदा०-**क्रव्यमत्तीति क्रव्यात्।** कच्चा मांस खानेवाला पिशाच।*

*सिद्धि-**क्रव्यात्।** यहां 'क्रव्य' सुबन्त उपपद होने पर **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वि' का लोप और अद् के द् को चर्त्व होता है।*

कप्-

(१) दुहः कप् घश्च।७०।

प०वि०-दुहः ५।१ कप् १।१ घः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-सुपि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे दुहो धातोः कप् घश्च।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे दुह्-धातोः परः कप् प्रत्ययो भवति, घकारश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-कामं दोग्धीति कामदुघा धेनुः। अर्घं दोग्धीति अर्घदुघा। अर्घः=मधुपर्कः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (दुहः) दुह (धातोः) धातु से परे (कप्) कप् प्रत्यय होता है (च) और (घः) धातु के अन्त्य हकार को घकार आदेश होता है।

*उदा०-**कामं दोग्धीति कामदुघा धेनुः।** दूध, घी आदि की कामना को पूरा करनेवाली दुधारु गौ। **अर्घं दोग्धीति अर्घदुघा।** अर्घ प्रदान करनेवाली नारी। अर्घ=मधुपर्क। मधु+दधि=मधुपर्क।*

*सिद्धि-**कामदुघा।** यहां काम सुबन्त उपपद होने पर **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से दुह् धातु के ह् को घ् आदेश होता है। **कामदुघ+टाप्।** कामदुघा। स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

ण्विन्–

(१) मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्।७१।

प०वि०–मन्त्रे ७।१ श्वेतवह-उक्थशस्-पुरोडाशः ५।१ ण्विन् १।१।

स०–श्वेतवहश्च उक्थशश्च पुरोडाशश्च एतेषां समाहारः-श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाश्, तस्मात्-श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–सुपि इत्यनुवर्तते।

अर्थः–मन्त्रे विषये श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाश्भ्यो धातुभ्यो ण्विन् प्रत्ययो भवति। अत्र उपपदैः सह धातुसमुदाया निपात्यन्ते।

उदा०–श्वेता एनं वहन्तीति श्वेतवाः (इन्द्रः)। उक्थानि शंसति, उक्थैर्वा शंसतीति उक्थशाः (यजमानः) (ऋ० ७।१९।६)। पुरा दाशन्त एनमिति पुरोडाः (ऋ० ३।२।७१)।

आर्यभाषा–अर्थ–(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशः) श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश् (धातोः) धातुओं से (ण्विन्) ण्विन् प्रत्यय होता है। यहां उपपद सहित धातु समुदाय निपातित हैं।

*उदा०–**श्वेता एनं वहन्तीति श्वेतवाः (इन्द्रः)।** श्वेत घोड़े जिसके वाहन हैं, वह इन्द्र=राजा। **उक्थानि शंसति, उक्थैर्वा शंसतीति उक्थशा यजमानः।** उक्थ=प्रशंसनीय मन्त्रों के अर्थों का उपदेश करनेवाला विद्वान् अथवा प्रशंसनीय मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति करनेवाला यजमान। **पुर एनं दाशन्त इति पुरोडाः।** विधिपूर्वक संस्कृत अन्नविशेष जिसकी पहले अग्नि में आहुति दी जाती है पश्चात् उसका भक्षण (सेवन) किया जाता है।*

*सिद्धि–(१) **श्वेतवाः।** यहां 'श्वेत' कर्ता सुबन्त उपपद होने पर **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। **'श्वेतवहादीनां डस् पदस्य च'** (भा०वा० ३।२।७१) से 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में डस् आदेश होता है। 'डस्' आदेश के डित् होने से **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से वह् के टि-भाग का लोप होता है। श्वेत+व्+अस्=श्वेतवस्+सु। **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से दीर्घ और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है।*

*(२) **उक्थशाः।** यहां 'उक्थ' कर्म वा करण सुबन्त उपपद होने पर **'शंसु स्तुतौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। निपातन से 'शंस्' के न् का लोप हो जाता है। 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् डस् आदेश आदि कार्य होते हैं।*

*(३) **पुरोडाः।** यहां 'पुरस्' अव्यय उपपद होने पर **'दाशृ दाने'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ण्विन्' प्रत्यय है। धातु के दकार को निपातन से डकरादेश होता है। 'ण्विन्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् डस् आदेश आदि कार्य होते हैं।*

ण्विन्–

(२) अवे यजः ।७२।

प०वि०–अवे ७ ।१ यजः ५ ।१ ।

अनु०–मन्त्रे, ण्विन् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–मन्त्रेऽवे उपपदे यजो धातोर्ण्विन् ।

अर्थः–मन्त्रे विषयेऽवे उपपदे यज-धातोः परो ण्विन् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–अवयजतीति अवयाः (परमेश्वरः)। योऽवयजति विरुद्धं कर्म न संगच्छते स परमेश्वरः (दयानन्दवेदभाष्यम् १ ।१७३ ।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (अवे) अव उपसर्ग उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से परे (ण्विन्) ण्विन् प्रत्यय होता है।

उदा०–अवयजतीति अवयाः । विरुद्ध कर्म न करनेवाला परमेश्वर।

*सिद्धि–अवयाः । यहां अव उपसर्ग पूर्वक **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से ण्विन् प्रत्यय है। शेष सिद्धि **'श्वेतवाः'** (३ ।२ ।७१) के समान है।*

विच्–

(१) विजुपे च्छन्दसि ।७३।

प०वि०–विच् १ ।१ उपे ७ ।१ छन्दसि ७ ।१ ।

अनु०–यज इत्यनुवर्तते ।

अर्थः–छन्दसि विषये उप-उपपदे यज्-धातोः परो विच्प्रत्ययो भवति ।

उदा०–उपयजतीति उपयट्। उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति। अत्र मन्त्र इत्यनुवर्तमाने छन्दो ग्रहणं ब्राह्मणार्थम्। **उपयड्भ्यः** (शत० ३ ।८ ।३ ।१८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) ब्राह्मणग्रन्थ विषय में (उपे) उप उपसर्ग उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से (विच्) विच् प्रत्यय होता है।

*उदा०–उपयजतीति उपयट्। उपासना करनेवाला। **उपयड्भिरूर्ध्वं वहन्ति।** यहां 'मन्त्रे' की अनुवृत्ति होने पर 'छन्दसि' पद का ग्रहण ब्राह्मणग्रन्थ के लिये किया गया है।*

*सिद्धि–उपयट्। यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६ ।१ ।५५) से 'विच्' प्रत्यय के 'वि'*

का सर्वहारी लोप हो जाता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'यज्' के ज् को ष् और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।

मनिन्+क्वनिप्+वनिप्+विच्–

(२) आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च।७४।

प०वि०–आत: ५।१ मनिन्-क्वनिप्-वनिप: १।३ च अव्ययपदम्।

स०–मनिन् च क्वनिप् च वनिप् च ते–मनिन्क्वनिब्वनिप: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–सुपि, छन्दसि, विच् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–छन्दसि सुप्युपपदे आतो धातोर्मनिन्क्वनिब्वनिपो विच्च।

अर्थ:–छन्दसि विषये सुबन्ते उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो मनिन्-क्वनिप्-वनिपो विच्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–**(मनिन्)** शोभनं ददातीति सुदामा। अश्व इव तिष्ठतीति अश्वत्थामा। **(क्वनिप्)** शोभनं दधातीति सुधीवा। शोभनं पिबतीति सुपीवा। **(वनिप्)** भूरि ददातीति भूरिदावा। घृतं पिबतीति घृतपावा। **(विच्)** कीलालं पिबतीति कीलालपा:। शुभं यातीति शुभंया:।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(छन्दसि) वेदविषय में (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आत:) आकारान्त (धातो:) धातुओं से परे (मनिन्-क्वनिप्-वनिप:) मनिन्, क्वनिप्, वनिप् (च) और (विच्) विच्प्रत्यय होते हैं।

उदा०–(मनिन्) __शोभनं ददातीति सुदामा।__ सुन्दर दान करनेवाला। __अश्व इव तिष्ठतीति अश्वत्थामा।__ अश्व के समान खड़ा रहनेवाला। (क्वनिप्) __शोभनं दधातीति सुधीवा।__ सुन्दर धारण-पोषण करनेवाला। __शोभनं पिबतीति सुपीवा।__ सुन्दर पान करनेवाला। (वनिप्) __भूरि ददातीति भूरिदावा।__ बहुत दान करनेवाला। __घृतं पिबतीति घृतपावा।__ घृत का पान करनेवाला। (विच्) __कीलालं पिबन्तीति कीललपा:।__ कीलाल=उत्तम रस का पान करनेवाला (यजु० २।४९)। __शुभं यातीति शुभंया:।__ शुभ=कल्याण को प्राप्त करनेवाला।

__सिद्धि__-(१) __सुदामा।__ यहां 'सु' उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। सु+दा+मनिन्। सुदामन्+सु। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।४।८) से अङ्ग को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

*(२) अश्वत्थामा। यहां 'अश्व' उपपद होने पर **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०७) से 'स्था' के 'स्' को 'त्' आदेश होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।*

*(३) सुधीवा। यहां 'सु' उपपद होने पर **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। सु+धा+क्वनिप्। **'घुमास्था०'** (६।४।६६) से 'धा' को ईत्व होता है। शेष कार्य सुदामा के समान है। ऐसे ही- **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से-सुपीवा।*

*(४) भूरिदावा। यहां 'भूरि' उपपद होने पर **'डुदाञ् दाने'** (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है। ऐसे ही 'पा' धातु से-घृतपावा।*

*(५) कीलालपाः। यहां 'कीलाल' उपपद होने पर **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।५५) से 'विच्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप हो जाता है।*

*(६) शुभंयाः। यहां 'शुभ' कर्म उपपद होने पर **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। **'वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति'** से द्वितीया-विभक्ति का अलुक् है।*

मनिन्+क्वनिप्+वनिप्+विच्--

(३) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते।७५।

प०वि०-अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-विच्, मनिन्क्वनिब्वनिप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन्क्वनिब्वनिपो विच्च दृश्यन्ते।

अर्थः-अन्येभ्यः=आकारान्तभिन्नेभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन्-क्वनिप्-वनिपो विच्च प्रत्यया दृश्यन्ते।

उदा०-(मनिन्) शोभनं शृणातीति सुशर्मा। **(वनिप्)** प्रातरेतीति प्रातरित्वा। **(वनिप्)** विजायते इति विजावा। अग्रे गच्छतीति अग्रेगावा। **(विच्)** रेषतीति रेट्। रेडसि पर्णं नयेः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(अन्येभ्यः) आकारान्त से भिन्न (धातोः) धातुओं से (अपि) भी (मनिन्क्वनिब्वनिपः) मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और (विच्) विच्-प्रत्यय (दृश्यन्ते) दिखाई देते हैं।

*उदा०-(मनिन्) शोभनं शृणातीति **सुशर्मा**। भलीभांति अविद्या का नाश करनेवाला। (वनिप्) प्रातरेतीति **प्रातरित्वा**। प्रातःकाल प्राप्त होनेवाला सूर्य। (वनिप्) **विजायते इति विजावा**। विविध प्रकार की सृष्टि-रचना करनेवाला ईश्वर। **अग्रे गच्छतीति अग्रेगावा**। आगे चलनेवाला। (विच्) **रेषतीति रेट्**। हिंसा करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **सुशर्मा**। यहां 'सु' उपपद होने पर **'शृ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।३।८४) से 'शृ' धातु को गुण होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।*

*(२) **प्रातरित्वा**। यहां प्रातः उपपद होने पर **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है। प्रातर्+इ+तुक्+क्वनिप्। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।*

*(३) **विजावा**। यहां 'वि' उपपद होने पर **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'वनिप्' प्रत्यय है। 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' (६।४।४१) से 'जन्' के 'न्' को आकार आदेश होता है। शेष कार्य 'सुदामा' के समान है।*

*(४) **रेट्**। यहां **'रिष हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'विच्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'विच्' के 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रिष्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ष्' को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।*

क्विप्–

(१) क्विप् च।७६।

प०वि०-क्विप् १।१ च अव्ययपदम् १।१।

अन्वयः-धातोः क्विप् च।

अर्थः-सोपपदेभ्यो निरुपपदेभ्यश्च सर्वेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि भाषायां च क्विप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उखाया स्रंसते इति उखास्रत्। पर्णानि ध्वंसते इति पर्णध्वत्। वाहाद् भ्रश्यतीति वाहाभ्रट्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) सोमपद और निरुपपद सब धातुओं से छन्द और भाषा में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय (च) भी होता है।

*उदा०-**उखायाः स्रंसते इति उखास्रत्**। उखा (हण्डिया) से गिरनेवाला पदार्थ। **पर्णानि ध्वंसते इति पर्णध्वत्**। पत्तों को नष्ट करनेवाला। **वाहाद् भ्रश्यतीति वाहाभ्रट्**। वाह=अश्व आदि से गिरनेवाला।*

सिद्धि-(१) उखास्रत्। यहां 'उखा' उपपद होने पर 'स्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप और 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' (८।२।७२) से 'स्रस्' के 'स्' को 'द्' आदेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'द्' को चर् त् होता है।

(२) पर्णध्वत्। यहां पर्ण उपपद होने पर 'ध्वंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) वाहाभ्रट्। यहां 'वाह' उपपद होने पर 'भ्रंशु अधःपतने' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'भ्रंश्' के श् को ष्, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ष् को जश् ड् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से वाह को दीर्घ होता है।

कः+क्विप्–

(२) स्थः क च।७७।

प०वि०–स्थः ५।१ क १।१ (लुप्तविभक्तिको निर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०–सुपि, क्विप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्थो धातोः कः क्विप् च।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे सोपसर्गाद् निरुपसर्गाच्च स्था-धातोः परः कः क्विप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कः)** शं तिष्ठतीति शंस्थः। **(क्विप्)** शं तिष्ठतीति शंस्थाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर सोपसर्ग और निरुपसर्ग (स्थः) स्था (धातोः) धातु से परे (क) क-प्रत्यय (च) और (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(क) शं तिष्ठतीति शंस्थः। (क्विप्) शं तिष्ठतीति शंस्थाः। शान्त रहनेवाला।

सिद्धि-(१) शंस्थः। यहां 'शम्' अव्यय उपपद होने पर 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' के आ का लोप हो जाता है।

(२) शंस्थाः। यहां 'शम्' अव्यय उपपद होने पर पूर्वोक्त 'स्था' धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) 'क्विप्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप हो जाता है।

णिनिः–

(१) सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।७८।

प०वि०–सुपि ७।१ अजातौ ७।१ णिनिः १।१ ताच्छील्ये ७।१।

स०–न जातिरिति अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)। तस्य शीलमिति तच्छीलम्, (षष्ठीतत्पुरुषः)। तच्छीलस्य भावस्ताच्छील्यम्, तस्मिन्-ताच्छील्ये (तद्धितवृत्तिः)।

अर्थः–अजातिवाचिनि सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति, ताच्छील्ये गम्यमाने।

उदा०–उष्णं भोक्तुं शीलं यस्य सः-उष्णभोजी। शीतं भोक्तुं शीलं यस्य सः-शीतभोजी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अजातौ) जातिवाची से भिन्न (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है, (ताच्छील्ये) यदि वहां वह उसका शील=स्वभाव हो।

*उदा०-**उष्णं भोक्तुं शीलं यस्य सः-उष्णभोजी।** उष्ण=गर्म खाने के स्वभाववाला। **शीतं भोक्तुं शीलं यस्य सः-शीतभोजी।** शीत=ठण्डा खाने के स्वभाववाला।*

*__सिद्धि-उष्णभोजी।__ यहां गुणवाची 'उष्ण' सुबन्त उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। उष्णभोजिन्+सु। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**शीतभोजी।***

णिनिः–

(२) कर्तर्युपमाने ।७६।

प०वि०–कर्तरि ७।१ उपमाने ७।१।

अनु०–सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपमाने कर्तरि सुप्युपपदे धातोर्णिनिः।

अर्थः–उपमानवाचिनि कर्तरि सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्ष इव रौतीति ध्वाङ्क्षरावी।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमाने) उपमानवाची (कर्तरि) कर्ता (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है।

*उदा०-उष्ट्र इव क्रोशतीति **उष्ट्रक्रोशी**। उष्ट्र के समान रोनेवाला। **ध्वाङ्क्ष इव रौतीति ध्वाङ्क्षरावी**। ध्वाङ्क्ष=कौवे के समान शब्द करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **उष्ट्रक्रोशी**। यहां उपमानवाची कर्ता 'उष्ट्र' शब्द उपपद होने पर '**क्रुश आह्वाने रोदने च**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'क्रुश्' धातु को लघूपध गुण होता है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

*(२) **ध्वाङ्क्षरावी**। यहां उपमानवाची कर्ता 'ध्वाङ्क्ष' शब्द उपपद होने पर '**रु शब्दे**' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'रु' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

णिनिः-

(३) व्रते।८०।

प०वि०-व्रते ७।१।

अनु०-सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुप्युपपदे धातोर्णिनिर्व्रते।

अर्थः-सुबन्ते उपपदे धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति, व्रते गम्यमाने।

उदा०-स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थण्डिलशायी। अश्राद्धं भोक्तुं व्रतं यस्य सः-अश्राद्धभोजी। ब्रह्मणि चरितुं व्रतं यस्य सः-ब्रह्मचारी।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णिनिः) णिनि-प्रत्यय होता है, यदि वहां (व्रते) व्रत अर्थ प्रकट होता हो।

*उदा०-**स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थण्डिलशायी**। स्थण्डिल=चबूतरे पर शयन का व्रत करनेवाला (तपस्वी)। **अश्राद्धं भोक्तुं व्रतं यस्य सः-अश्राद्धभोजी**। श्राद्ध का भोजन न करनेवाला। **ब्रह्मणि चरितुं व्रतं यस्य सः-ब्रह्मचारी**। ब्रह्म=वेद में विचरण का व्रत करनेवाला, ब्रह्मचारी।*

*सिद्धि-(१) **स्थण्डिलशायी**। यहां 'स्थण्डिल' सुबन्त उपपद होने पर '**शीङ् स्वप्ने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'शीङ्' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

(२) अश्राद्धभोजी। यहां 'अश्राद्ध' सुबन्त उपपद होने पर 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

(३) ब्रह्मचारी। यहां 'ब्रह्म' सुबन्त उपपद होने पर 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'चर्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

णिनिः–

(४) बहुलमाभीक्ष्ण्ये।८१।

प०वि०–बहुलम् १।१ आभीक्ष्ण्ये ७।१।

अनु०–सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सुप्युपपदे धातोर्बहुलं णिनिराभीक्ष्ण्ये।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे धातोर्बहुलं णिनिः प्रत्ययो भवति, आभीक्ष्ण्ये गम्यमाने। आभीक्ष्ण्यम्, पौनःपुन्यम्, तत्परता, आसेवा इति पर्यायाः।

उदा०–कषायं पिबतीति कषायपायी। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरं पिबतीति क्षीरपायी। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरं पिबतीति सौवीरपायी। सौवीरपायिणो बाह्लीकाः।

आर्यभाषा–अर्थ–(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (धातोः) धातु से (बहुलम्) प्रायः (णिनिः) णिनिप्रत्यय होता है, यदि वहां (आभीक्ष्ण्ये) क्रिया का बार-बार होना प्रकट हो।

*उदा०–**कषायं पिबतीति कषायपायी।** कषाय रस का पान करनेवाला। **कषायपायिणो गान्धाराः।** गान्धार देश के लोग कषाय रस के शौकीन हैं। **क्षीरं पिबतीति क्षीरपायी।** दूध पीनेवाला। **क्षीरपायिण उशीनराः।** उशीनर प्रदेश के लोग दुग्धपान के शौकीन हैं। **सौवीरं पिबतीति सौवीरपायी।** सौवीर=कांजी पीनेवाला। **सौवीरपायिणो बाह्लीकाः।** बाह्लीक प्रदेश के लोग सौवीर (कांजी विशेष) पीनेवाले हैं।*

*सिद्धि–**कषायपायी।** यहां 'कषाय' सुबन्त उपपद होने पर 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है। ऐसे ही–**क्षीरपायी** और **सौवीरपायी।***

विशेष–(१) गन्धार। गन्धार महाजनपद कुनड़ (काश्कर) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी पुष्कलावती थी।

(२) उशीनर। रावी और चनाब के बीच का निचला भूभाग उशीनर प्रदेश कहलाता था जिसकी राजधानी शिविपुर=शोरकोट (झंग जिले की एक तहसील) थी।

(३) बाह्लीक। कंबोज के पश्चिम, वंक्षु के दक्षिण और हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का प्रदेश बाह्लीक महाजनपद था। (पा०का० भारतवर्ष पृ० ६२, ६७)

णिनिः–

(५) मनः ।८२।

प०वि०–मनः ५ ।१ ।

अनु०–सुपि णिनिरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–सुप्युपपदे मनो धातोर्णिनिः ।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे मन्–धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–दर्शनीयं मन्यते इति दर्शनीयमानी । शोभनं मन्यते इति शोभनमानी ।

आर्यभाषा–अर्थ–(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (मनः) मन् (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनिप्रत्यय होता है ।

*उदा०–**दर्शनीयं मन्यते इति दर्शनीयमानी ।** किसी पदार्थ को दर्शनीय माननेवाला । **शोभनं मन्यते इति शोभनमानी ।** किसी पदार्थ को शोभन (सुन्दर) माननेवाला ।*

*सिद्धि–**दर्शनीयमानी ।** यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर **'मन ज्ञाने'** (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है । **'अत उपधायाः'** (७ ।२ ।११६) से 'मन्' धातु को उपधावृद्धि होती है । शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है ।*

खश्+णिनिः–

(६) आत्ममाने खश् च ।८३।

प०वि०–आत्ममाने ७ ।१ खश् १ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०–आत्मनो मानः (मननम्) इति आत्ममानः, तस्मिन्–आत्ममाने (षष्ठीतत्पुरुषः) ।

अनु०–सुपि, णिनिरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–सुप्युपपदे आत्ममाने मनो धातोः खश्, णिनिश्च ।

अर्थः–सुबन्ते उपपदे आत्ममानेऽर्थे वर्तमानाद् मन्–धातोः परः खश् णिनिश्च प्रत्ययो भवति ।

उदा०–दर्शनीयमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः (खश्) दर्शनीयमानी वा (णिनिः) । पण्डितमात्मानं मन्यते इति पण्डितम्मन्यः (खश्) पण्डितमानी वा (णिनिः) ।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (आत्ममाने) स्वयं को मानने अर्थ में विद्यमान (मनः) मन् (धातोः) धातु से परे (खश्) खश् (च) और (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।

उदा०-(खश्) दर्शनीयमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः (णिनि) दर्शनीयमानी वा। स्वयं को दर्शनीय माननेवाला। (खश्) पण्डितमात्मानं मन्यते इति दर्शनीयम्मन्यः (णिनि) पण्डितमानी वा। स्वयं को पण्डित माननेवाला।

सिद्धि-(१) दर्शनीयम्मन्यः। यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर 'मन ज्ञाने' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से खश् प्रत्यय है। खश् प्रत्यय के खित् होने से 'दर्शनीय' शब्द को 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' (६।३।३५) से 'मुम्' आगम होता है। 'खश्' प्रत्यय के 'शित्' होने से 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' (३।४।११३) से सार्वधातुक संज्ञा होती है और सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' प्रत्यय होता है। दर्शनीय+मुम्+मन्+श्यन्+खश्। दर्शनीयम्मन्यः।

(२) दर्शनीयमानी। यहां 'दर्शनीय' सुबन्त उपपद होने पर 'मन ज्ञाने' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'मन्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।

(३) ऐसे ही पण्डितम्मन्यः और पण्डितमानी पद सिद्ध करें।

भूतकालप्रत्ययप्रकरणम्

भूते।८४।

प०वि०-भूते ७।१।

अर्थः-'भूते' इत्यधिकारोऽयम्, 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) इति यावत्। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो भूते काले तद् वेदितव्यम्।

उदा०-अग्रे द्रष्टव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) 'वर्तमाने लट्' (२।३।१२३) तक 'भूते' का अधिकार है। जो इससे आगे कहेंगे उसे भूतकाल में समझना चाहिये।

उदा०-आगे देखें।

णिनिः-

(१) करणे यजः।८५।

प०वि०-करणे ७।१ यजः ५।१।

अनु०-सुपि, णिनिः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे सुप्युपपदे यजो धातोर्णिनिर्भूते।

अर्थः-करणे सुबन्ते उपपदे यज्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति भूतकाले।

उदा०-अग्निष्टोमेन इष्टवानिति अग्निष्टोमयाजी।

आर्यभाषा-अर्थः-(करणे) करण (सुपि) सुबन्त उपपद होने पर (यजः) यज् (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**अग्निष्टोमेन इष्टवानिति अग्निष्टोमयाजी।** अग्निष्टोम से यज्ञ करनेवाला।*

*सिद्धि-**अग्निष्टोमयाजी।** यहां 'अग्निष्टोम' करण सुबन्त उपपद होने पर 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से यज् धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है।*

णिनिः-

(२) कर्मणि हनः।८६।

प०वि०-कर्मणि ७।१ हनः ५।१।

अनु०-णिनिः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे हनो धातोर्णिनिर्भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०-पितृव्यं हतवानिति पितृव्यघाती। मातुलं हतवानिति मातुलघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु) ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**पितृव्यं हतवानिति पितृव्यघाती।** पितृव्य=चाचा का हत्यारा। **मातुलं हतवानिति मातुलघाती।** मातुल=मामा का हत्यारा।*

*सिद्धि-**पितृव्यघाती।** यहां 'पितृव्य' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' और हो '**हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु**' (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'हन्' को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'उष्णभोजी' के समान है। 'मातुल' उपपद होने पर-**मातुलघाती।***

क्विप्–

(१) ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्।८७।

प०वि०–ब्रह्म-भ्रूण-वृत्रेषु ७।३ क्विप् १।१।

स०–ब्रह्म च भ्रूणश्च वृत्रश्च ते ब्रह्मभ्रूणवृत्राः, तेषु ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–कर्मणि, हनः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु कर्मसूपपदेषु हनो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः–ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु कर्मसु उपपदेषु हन्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०–**(ब्रह्म)** ब्रह्म हतवानिति ब्रह्महा। **(भ्रूणः)** भ्रूणं हतवानिति भ्रूणहा। **(वृत्रः)** वृत्रं हतवानिति वृत्रहा।

*आर्यभाषा-**अर्थः**–(ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु) ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से (क्विप्) क्विप्प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।*

*उदा०–**(ब्रह्म) ब्रह्म हतवानिति ब्रह्महा।** ब्राह्मण का हत्यारा। **(भ्रूण) भ्रूणं हतवानिति भ्रूणहा।** भ्रूण=गर्भ का हत्यारा। **(वृत्र) वृत्रं हतवानिति वृत्रहा।** वृत्र (राक्षस) का हत्यारा=इन्द्र।*

*सिद्धि-**ब्रह्महा।** यहां 'ब्रह्म' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'क्विप्' प्रत्यय के 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। वृत्रहन्+सु। **'सौ च'** (६।४।१३) से हन् की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से न् का लोप होता है। ऐसे ही-**भ्रूणहा** और **वृत्रहा।***

क्विप्–

(२) बहुलं छन्दसि।८८।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–कर्मणि, हनः, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कर्मण्युपपदे हनो धातोर्बहुलं क्विप् भूते।

अर्थः–छन्दसि विषये कर्मणि कारके उपपदे हन्-धातोः परो बहुलं क्विप्-प्रत्ययो भवति भूते काले।

उदा०-मातरं हतवानिति मातृहा। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। पितरं हतवानिति पितृहा। न च भवति-मातरं हतवानिति मातृघातः। पितरं हतवानिति पितृघातः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (बहुलम्) प्रायः (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-मातरं हतवानिति मातृहा। माता का हत्यारा। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। माता का हत्यारा सप्तम नरक में जाता है। पितरं हतवानिति पितृहा। पिता का हत्यारा। जहां 'क्विप्' प्रत्यय नहीं होता वहां-मातरं हतवानिति मातृघातः। माता का हत्यारा। पितरं हतवानिति पितृघातः। पिता का हत्यारा।

सिद्धि-(१) मातृहा। यहां 'माता' कर्म उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'ब्रह्महा' के समान है। ऐसे ही-पितृहा।

(२) मातृघातः। यहां 'माता' कर्म उपपद होने पर विकल्प पक्ष में 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' और 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' (७।२।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'हन्' को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-पितृघातः।

क्विप्-

(३) सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः।८६।

प०वि०-सु-कर्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु ७।३ कृञः ५।१।

स०-सुश्च कर्म च पापं च मन्त्रश्च पुण्यं च तानि-सुकर्मपापमन्त्रपुण्यानि, तेषु-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कर्मसूपपदेषु कृञो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कर्मसु उपपदेषु कृञ्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-**(सु)** सुष्ठु कृतवानिति सुकृत्। **(कर्म)** कर्म कृतवानिति कर्मकृत्। **(पापम्)** पापं कृतवानिति पापकृत्। **(मन्त्रः)** मन्त्रं कृतवानिति मन्त्रकृत्। **(पुण्यम्)** पुण्यं कृतवानिति पुण्यकृत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु) सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-(सु) **सुष्ठु कृतवानिति सुकृत्।** अच्छा बनानेवाला। (कर्म) **कर्म कृतवानिति कर्मकृत्।** कर्म करनेवाला। (पाप) **पापं कृतवानिति पापकृत्।** पाप करनेवाला। (मन्त्र) **मन्त्रं कृतवानिति मन्त्रकृत्।** मन्त्र बनानेवाला ईश्वर। (पुण्य) **पुण्यं कृतवानिति पुण्यकृत्।** शुभकर्म करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **सुकृत्।** यहां 'सु' अव्यय उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय के 'वि' का 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से सर्वहारी लोप हो जाता है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' धातु को 'तुक्' आगम होता है। सु+कृ+तुक्+०। सुकृत्+सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्** शब्द सिद्ध करें।*

क्विप्-

(४) सोमे सुञः।९०।

प०वि०-सोमे ७।१ सुञः ५।१।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोमे कर्मण्युपपदे सुञो धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-सोमे कर्मण्युपपदे सुञ्-धातोः परः क्विप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-सोमं सुतवानिति सोमसुत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(सोमे) सोम (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (सुञः) सुञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**सोमं सुतवानिति सोमसुत्।** सोम ओषधि का रस निचोड़नेवाला।*

*सिद्धि-**सोमसुत्।** यहां 'सोम' कर्म उपपद होने पर 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुकृत्' (३।२।८९) के समान है।*

क्विप्-

(५) अग्नौ चेः।९१।

प०वि०-अग्नौ ७।१ चेः ५।१।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अग्नौ कर्मण्युपपदे चेर्धातोः क्विप् भूते।

अर्थः-अग्नौ कर्मण्युपपदे चिञ्-धातोः परः क्विप्प्रत्ययो भवति, भूतकाले।

उदा०-अग्निं चितवानिति अग्निचित्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(अग्नौ) अग्नि (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (चेः) चिञ् (धातोः) धातु से परे (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।*

*उदा०-**अग्निं चितवानिति अग्निचित्।** अग्नि का आधान करनेवाला, अग्निहोत्री।*

***सिद्धि-अग्निचित्।** यहां 'अग्नि' कर्म उपपद होने पर **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'सुकृत्'** (३।२।८९) के समान है।*

क्विप्-

(६) कर्मण्यग्न्याख्यायाम्।६२।

प०वि०-कर्मणि ७।१ अग्नि-आख्यायाम् ७।१।

स०-अग्नेराख्या इति अग्न्याख्या, तस्याम्-अग्न्याख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-कर्मणि, क्विप्, चेः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे चेर्धातोः क्विप् अग्न्याख्यायां भूते।

अर्थः-कर्मण्युपपदे चिञ्-धातोः परः कर्मण्येव कारके क्विप् प्रत्ययो भवति, अग्नि-आख्यायां गम्यमानायां भूते काले।

उदा०-श्येन इवाचीयत इति श्येनचित्। कङ्क इवाचीयत इति कङ्कचित्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (चेः) चिञ् (धातोः) धातु से परे (कर्मणि) कर्मवाच्य में ही (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है यदि वहां (अग्न्याख्यायाम्) अग्नि का प्रकथन हो (भूते) भूतकाल में।*

*उदा०-**श्येन इवाचीयत इति श्येनचित् (अग्निः)।** वह अग्नि जिसका श्येन=बाज पक्षी की आकृति में यज्ञकुण्ड में आधान किया गया है। **कङ्क इवाचीयत इति कङ्कचित् (अग्निः)।** वह अग्नि जिसका कङ्क=चिमटे की आकृति में यज्ञकुण्ड में आधान किया गया है। यज्ञविशेष में श्येनाकृति आदि के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनमें अग्निचयन भी तदाकार का होता है।*

***सिद्धि-श्येनचित्।** यहां 'श्येन' कर्म उपपद होने पर **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'सुकृत्'** (३।२।८९) के समान है।*

इनिः-

(१) कर्मणीनि विक्रियः।६३।

प०वि०-कर्मणि ७।१। इनि १।१ (लुप्तविभक्तिको निर्देशः) विक्रियः ५।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे विक्रियो धातोरिनिर्भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे वि-पूर्वात् क्रीञ्-धातोः पर इनिः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-सोमं विक्रीतवानिति सोमविक्रयी। रसं विक्रीतवानिति रसविक्रयी।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (विक्रियः) वि-उपसर्गपूर्वक क्रीञ् (धातोः) धातु से परे (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-__सोमं विक्रीतवानिति सोमविक्रयी।__ सोम बेचनेवाला। __रसं विक्रीतवानिति रसविक्रयी।__ रस=दूध बेचनेवाला।

__सिद्धि-सोमविक्रयी।__ यहां 'सोम' कर्म उपपद होने पर वि-उपसर्गपूर्वक '__डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये__' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। '__सार्वधातुकार्धधातुकयोः__' (७।३।८४) से 'क्री' धातु को गुण होता है। सोम+विक्रे+इन्। सोमविक्रयिन्+सु। '__सौ च__' (६।४।१३) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। '__हल्ङ्याब्भ्यो०__' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '__नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य__' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-__रसविक्रयी।__

__विशेष-अनुवृत्ति-__कर्म की अनुवृत्ति होने पर फिर 'कर्मणि' पद का ग्रहण निन्दा अर्थ के लिये किया गया है। सोम और रस बेचना शास्त्र में निषिद्ध है। जो शास्त्रविरुद्ध आचरण करता है उसे निन्दा में सोमविक्रयी आदि कहा जाता है।

क्वनिप्-

(१) दृशेः क्वनिप्।६४।

प०वि०-दृशेः ५।१ क्वनिप् १।१।

अनु०-कर्मणि, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदे दृशेर्धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदे दृशिधातोः परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-मेरुं दृष्टवानिति मेरुदृश्वा। परलोकं दृष्टवानिति परलोकदृश्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (दृशेः) दृश् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**मेरुं दृष्टवानिति मेरुदृश्वा।** मेरु पर्वत को देखनेवाला। **परलोकं दृष्टवानिति परलोकदृश्वा।** परलोक को जाननेवाला।*

*सिद्धि-**मेरुदृश्वा।** यहां 'मेरु' कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। मेरु+दृश्+क्वनिप्। मेरुदृश्वन्+सु। '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**परलोकदृश्वा।***

क्वनिप्-

(२) राजनि युधिकृञः।६५।

प०वि०-राजनि ७।१ युधि-कृञः ५।१।

स०-युधिश्च कृञ् च एतयोः समाहारो युधिकृञ्, तस्मात्-युधिकृञः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, क्वनिप्, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-राजनि कर्मण्युपपदे युधिकृञो धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-राजनि कर्मण्युपपदे युधिकृञ्भ्यां धातुभ्यां परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-(**युधि**) राजानं योधितवानिति राजयुध्वा। (**कृञ्**) राजानं कृतवानिति राजकृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(राजनि) राजन् (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (युधिकृञः) युध् और कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**राजानं योधितवानिति राजयुध्वा।** राजा को लड़ानेवाला। **राजानं कृतवानिति राजकृत्वा।** राजा को बनानेवाला।*

सिद्धि-(१) राजयुध्वा। यहां 'राजन्' कर्म उपपद होने पर 'युध सम्प्रहारे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है। यहां णिच् प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है।

(२) राजकृत्वा। यहां 'राजन्' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'कृ' को तुक् आगम होता है। राजन्+कृ+तुक्+क्वनिप्। राजकृत्वन्+सु। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है।

क्वनिप्–

(३) सहे च।९६।

प०वि०-सहे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-क्वनिप्, युधिकृञः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सहे उपपदे युधिकृञो धातोः क्वनिप् भूते।

अर्थः-सह-शब्दे उपपदे युधिकृञ्भ्यां धातुभ्यां परः क्वनिप् प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-(**युधि**) सह युद्धवानिति सहयुध्वा। (**कृञ्**) सह कृतवानिति सहकृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(सहे) सह शब्द उपपद होने पर (युधिकृञः) युध् और कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्वनिप्) क्वनिप् प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-(युधि) सह युद्धवानिति सहकृत्वा। साथ लड़नेवाला। (कृञ्) सह कृतवानिति सहकृत्वा। साथ कार्य करनेवाला।

सिद्धि-सहयुध्वा। यहां 'सह' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'युध्' धातु से इस सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'मेरुदृश्वा' (३।२।९४) के समान है। ऐसे ही-सहकृत्वा।

डः–

(१) सप्तम्यां जनेर्डः।९७।

प०वि०-सप्तम्याम् ७।१ जनेः ५।१ डः १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यामुपपदे जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थ:-सप्तम्यन्ते उपपदे जनि-धातोर्डः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-उपसरे जात इति उपसरजः। मन्दुरायां जात इति मन्दुरजः।

आर्यभाषा-अर्थ:-(सप्तम्याम्) सप्तमी-अन्त उपपद होने पर (जनेः) जन् (धातोः) धातु से (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-उपसरे जात इति उपसरजः। प्रथम बार गर्भ ग्रहण होने पर उत्पन्न होनेवाला। मन्दुरायां जात इति मन्दुरजः। मन्दुरा=घुड़शाला में उत्पन्न होनेवाला।

*सिद्धि-(१) उपसरजः। यहां सप्तम्यन्त 'उपसर' उपपद होने पर **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। उपसर+जन्+ड। 'ड' प्रत्यय के डित् होने से **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'जन्' के टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है।*

*(२) मन्दुरजः। यहां सप्तम्यन्त 'मन्दुरा' उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। **'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्'** (६।३।६१) से 'मन्दुरा' को ह्रस्व हो जाता है। शेष कार्य 'उपसरजः' के समान है।*

डः—

(२) पञ्चम्यामजातौ।६८।

प०वि०-पञ्चम्याम् ७।१ अजातौ ७।१।

स०-न जातिरिति अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आजातौ पञ्चाम्यामुपपदे जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थ:-जातिवर्जिते पञ्चम्यन्ते सुबन्ते उपपदे जनि-धातोर्डः प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-बुद्धेर्जात इति बुद्धिजः। संस्काराज्जात इति संस्कारजः। दुःखाज्जात इति दुःखजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अजातौ) जातिवाची से रहित (पञ्चम्याम्) पञ्चम्यन्त सुबन्त उपपद होने पर (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-बुद्धेर्जात इति बुद्धिजः। बुद्धि से उत्पन्न होनेवाला। संस्काराज्जात इति संस्कारजः। संस्कार से उत्पन्न होनेवाला। दुःखाज्जात इति दुःखजः। दुःख से उत्पन्न होनेवाला।

सिद्धि-बुद्धिजः । यहां गुणवाची पञ्चम्यन्त 'बुद्धि' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है। ऐसे ही-संस्कारजः, दुःखजः ।

डः-

(३) उपसर्गे च संज्ञायाम्।९९।

प०वि०-उपसर्गे ७।१ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गे उपपदे जनेर्धातोर्डः संज्ञायां भूते।

अर्थः-उपसर्गे चोपपदे जनि-धातोः परो डः-प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, भूते काले।

उदा०-प्रकर्षेण जाता इति प्रजा। अथेमा मानवीः प्रजाः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (च) भी (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**प्रकर्षेण जाता इति प्रजा।** प्रधानता से उत्पन्न होनेवाली। **अथेमा मानवीः प्रजाः ।** यह मानवी प्रजा है।*

*सिद्धि-**प्रजा ।** यहां 'प्र' उपसर्ग उपपद होने पर पूर्वोक्त 'जन्' धातु से इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। प्रज+टाप्+सु=प्रजा। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है।*

डः-

(४) अनौ कर्मणि।१००।

प०वि०-अनौ ७।१ कर्मणि ७।१।

अनु०-जनेः, डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मण्युपपदेऽनौ जनेर्धातोर्डो भूते।

अर्थः-कर्मणि कारके उपपदेऽनुपूर्वाज्जनिधातोः परो ड-प्रत्ययो भवति, भूते काले।

उदा०-पुमांसमनुजात इति पुमनुजः। स्त्रियमनुजात इति स्त्र्यनुजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (अनौ) अनु उपसर्गपूर्वक (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय होता है (भूते) भूतकाल में।

उदा०-पुमांसमनुजात इति पुमनुजः। पुमान् (पुत्र) के पश्चात् उत्पन्न होनेवाला। स्त्रियमनुजात इति स्त्र्यनुजः। स्त्री (कन्या) के पश्चात् उत्पन्न होनेवाला।

सिद्धि-पुमनुजः। यहां पुमान् कर्म उपपद होने पर अनुपूर्वक पूर्वोक्त जन् धातु से इस सूत्र से ड-प्रत्यय है। पुम्+अनु+जन्+ड। पुमनुजः। शेष कार्य 'उपसरजः' (३।२।९७) के समान है। ऐसे ही-स्त्र्यनुजः।

डः-

(५) अन्येष्वपि दृश्यते।१०१।

प०वि०-अन्येषु ७।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-जनेः डः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्धातोर्डो दृश्यते।

अर्थः-अन्येष्वपि कारकेषु उपपदेषु जनि-धातोर्डः प्रत्ययो दृश्यते।

उदा०-'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) इत्युक्तम्, असप्तम्यामपि दृश्यते-न जायत इति अजः। द्विर्जात इति द्विजः। **'पञ्चम्यामजातौ'** (३।२।९८) इत्युक्तम्, जातावपि दृश्यते-ब्राह्मणाज्जात इति ब्राह्मणजः। इति ब्राह्मणजो धर्मः। क्षत्रियाज्जातमिति क्षत्रियजं युद्धम्। **'उपसर्गे च संज्ञायाम्'** (३।२।९९) इत्युक्तम्, असंज्ञायामपि दृश्यते-अभितो जाता इति अभिजाः, परितो जाता इति परिजाः केशाः। **'अनौ कर्मणि'** (३।२।१००) इत्युक्तम्, अकर्मण्यपि दृश्यते-अनुजात इति अनुजः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अन्येषु) पूर्वोक्त से भिन्न कारक उपपद होने पर (अपि) भी (जनेः) जन् (धातोः) धातु से परे (डः) ड-प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

उदा०-'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) कहा है। असप्तमी में भी देखा जाता है-न जायत इति अजः। न उत्पन्न होनेवाला (ईश्वर)। द्विर्जात इति द्विजः। दो बार जन्म लेनेवाला (ब्राह्मण आदि)। 'पञ्चम्यामजातौ' (३।२।९८) कहा है। जाति में भी देखा जाता है-ब्राह्मणाज्जात इति ब्राह्मणजो धर्मः। ब्राह्मण से उत्पन्न धर्म। क्षत्रियाज्जातमिति क्षत्रियजं युद्धम्। क्षत्रिय से उत्पन्न युद्ध। 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' (३।२।९९) कहा है। असंज्ञा में भी देखा जाता है-अभितो जाता इति अभिजाः। सामने उत्पन्न होनेवाले (केश)। परितो जाता इति परिजाः। सब ओर उत्पन्न होनेवाले (केश)। 'अनौ कर्मणि' (३।२।१००) कहा है। अकर्म में भी देखा जाता है-अनुजात इत्यनुजः। पश्चात् उत्पन्न होनेवाला (छोटा भाई)।

विशेष-यदि 'जन्' धातु से 'ड' प्रत्यय का कोई शिष्ट प्रयोग दिखाई देता है उसे 'अन्येष्वपि दृश्यते' (३।२।१०१) से सिद्ध करें।

निष्ठा (क्तः+क्तवतुः)-

(१) निष्ठा।१०२।

प०वि०-निष्ठा १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्निष्ठा भूते।

अर्थः-धातोः परौ निष्ठासंज्ञकौ क्त-क्तवतू प्रत्ययौ भूते काले भवतः।

उदा०-(क्तः) कृतम्, भुक्तम्। **(क्तवतुः)** कृतवान्, भुक्तवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (निष्ठा) निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय (भूते) भूतकाल में होते हैं।

उदा०-(क्त) कृतम्, भुक्तम्। (क्तवतु) कृतवान्, भुक्तवान्। उसने किया, उसने खाया।

*सिद्धि-(१) **कृतम्।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'निष्ठा' (क्त) प्रत्यय है। कृ+क्त। कृ+त+सु। कृतम्। ऐसे ही 'भुज्' धातु से **भुक्तम्।** यहां 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व ग् और 'खरि च' (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है।*

*(२) **कृतवान्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'क्तवतु' प्रत्यय है। प्रत्यय के उगित् होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। कृ+क्तवतु। कृ+क्तवनुम्त्+सु। कृ+क्तवान् त्+सु। कृतवान्। **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।*

ङ्वनिप्-

(१) सुयजोर्ङ्वनिप्।१०३।

प०वि०-सु-यजोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ङ्वनिप् १।१।

स०-सुश्च यज् च तौ सुयुजौ, तयोः सुयजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुयजिभ्यां धातुभ्यां ङ्वनिप् भूते।

अर्थः-सुयजिभ्यां धातुभ्यां परो भूते काले ङ्वनिप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सु) सुतवानिति सुत्वा। सुत्वानौ। सुत्वानः। इष्टवानिति यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सुयजोः) सु और यज् (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (ङ्वनिप्) ङ्वनिप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सु) **सुतवानिति सुत्वा।** ओषधि का रस निचोड़नेवाला। (यज्) **इष्टवानिति यज्वा।** यज्ञ करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **सुत्वा।** यहां '**षुञ् अभिषवे**' (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'ङ्वनिप्' प्रत्यय है। सु+ङ्वनिप्। सु+तुक्+वन्। सुत्वन्+सु। सुत्वान्+स्। सुत्वा। '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।६९) से 'सु' धातु को 'तुक्' आगम, '**सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त की उपधा को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

*(२) **यज्वा।** यहां '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'ङ्वनिप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'सुत्वा' के समान है।*

अतृन्-

(१) जीर्यतेरतृन्।१०४।

प०वि०-जीर्यतेः ६।१ अतृन् १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जीर्यतेर्धातोरतृन् भूते।

अर्थः-जीर्यतेर्धातोः परो भूते कालेऽतृन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-जीर्ण इति जरन्। जरन्तौ। जरन्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जीर्यतेः) जॄ (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (अतृन्) अतृन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**जीर्ण इति जरन्।** वह जो वृद्ध हो चुका है।*

*सिद्धि-**जरन्।** यहां '**जॄष् वयोहानौ**' (दि०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अतृन्' प्रत्यय है। जॄ+अतृन्। जॄ+अ नुम् त्+सु। जर्+अन् त्+स्। जरन्। प्रत्यय के उगित् होने से '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।*

लिट्–

(१) छन्दसि लिट्।१०५।

प०वि०–छन्दसि ७।१ लिट् १।१।

अनु०–भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोर्लिट् भूते।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परो भूते काले लिट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अहं सूर्यमुभयतो **ददर्श।** (यजु० ८।९) अहं द्यावापृथिवी **आततान।** (ऋ० १०।८८।३)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (भूते) भूतकाल में (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

*उदा०–अहं **सूर्यमुभयतो** ददर्श। मैंने सूर्य को दोनों ओर से देखा है। अहं द्यावापृथिवी आततान। मैंने द्युलोक और पृथिवीप लोक को सब ओर विस्तृत किया है।*

*सिद्धि-(१) ददर्श। यहां **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। दृश्+लिट्। दृश्+मिप्। दृश्+णल्। दश्+दृश्+अ। दृ+दर्श्+अ। द+दर्श्+अ। ददर्श। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'लिट्' के स्थान में 'मिप्' आदेश, **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'मिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) 'दृश्' धातु को द्वित्व, 'उरत्' (६।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को 'अ' आदेश और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'दृश्' को लघूपध होता है।*

*(२) आततान। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'तनु विस्तारे'** (तना०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'तन्' धातु को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'ददर्श' के समान है।*

वा कानच् (लिडादेशः)–

(२) लिटः कानज् वा।१०६।

प०वि०–लिटः ६।१ कानच् १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–छन्दसि भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि लिटो वा कानच् भूते।

अर्थः–छन्दसि विषये लिटः स्थाने विकल्पेन कानच्-आदेशो भवति भूते काले।

उदा०-**'अग्निं चिक्यानः'** (तै०सं० ५।२।३।६)। **'सोमं सुषुवाणः'** (मै०सं० ३।४।३) न च भवति-**अहं सूर्यमुभयतो ददर्श** (यजु० ८।९)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लिटः) लिट् के स्थान में (वा) विकल्प से (कानच्) कानच् आदेश होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**अग्निं चिक्यानः।** अग्नि का चयन=आधान करनेवाला। **सोमं सुषुवाणः।** सोम का सवन (निचोड़ना) करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **चिक्यानः।** यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश है। चि+लिट्। चि+कानच्। चि+चि+आन। चिक्यान+सु। चिक्यानः। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास से उत्तर 'चि' धातु के चकार को **'विभाषा चेः'** (७।२।५८) से कुत्व और **'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य'** (६।४।८२) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(२) **सुषुवाणः।** यहां **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश होता है। सु+लिट्। सु+कानच्। सु+सु+आन। सु+स् उवङ्+आन। स+षुव्+आण। सुषुवाण+सु। सुषुवाणः। पूर्ववत् 'सु' धातु को द्वित्व, **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से 'सु' को 'उवङ्' आदेश और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(३) **ददर्श।** सिद्धि पूर्ववत् (३।२।१०५) है। यहां 'लिट्' के स्थान में 'कानच्' आदेश नहीं है।*

वा क्वसुः (लिडादेशः)-

(३) क्वसुश्च।१०७।

प०वि०-क्वसुः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, लिटः, वा, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लिटो वा क्वसुश्च भूते।

अर्थः-छन्दसि विषये लिटः स्थाने विकल्पेन क्वसु-आदेशोऽपि भवति, भूते काले।

उदा०-**जक्षिवान्। पपिवान्** (ऋ० १।६१।७)। न च भवति-**'अहं सूर्यमुभयतो ददर्श'** (यजु० ८।९)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लिटः) लिट् के स्थान में (वा) विकल्प से (क्वसुः) क्वसु आदेश (च) भी होता है (भूते) भूतकाल में।

*उदा०-**जक्षिवान्।** खानेवाला। **पपिवान्** (१।६१।७) पीनेवाला।*

सिद्धि-(१) जक्षिवान्। अद्+लिट्। अद्+क्वसु। घस्लृ+वस्। घस्+घस्+वस्। घ+घस्+इट्+वस्। घ+कस्+इ+वस्। घ+क्ष्+इ+वस्। झ+क्ष्+इ+वस्। ज+क्ष्+इ+वस्। जक्षिवस्+सु। जक्षिवान्।

*यहां 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। **'लिट्यन्यतरस्याम्'** (२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश, **'वस्वेकाजाद्घसाम्'** (७।२।६७) से 'इट्' आगम, **'घसिभसोर्हलि च'** (६।४।१००) से 'घस्' का उपधा-लोप, **'खरि च'** (८।४।५४) से घ् को क्, **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास को घ् को चुत्व झ्, और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से झ् को ज् होता है। शेष नुम् आदि कार्य **'कृतवान्'** (३।२।१०२) के समान है।*

*(२) **पपिवान्।** यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। शेष कार्य **'जक्षिवान्'** के समान है।*

*(३) **ददर्श।** सिद्धि पूर्ववत् (३।२।१०५) है। यहां 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश नहीं है।*

वा क्वसुः (लिडादेशः)—

भाषायां सदवसश्रुवः।१०८।

प०वि०-भाषायाम् ७।१ सद-वस-श्रुवः ५।१।

स०-सदश्च वसश्च श्रुश्च एतेषां समाहारः सदवसश्रु, तस्मात्-सदवसश्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लिटः, वा, क्वसुः, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां सदवसश्रुवो धातोर्वा क्वसुर्भूते।

अर्थः-भाषायां विषये सदवसश्रुभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन क्वसुरादेशो भवति भूते काले।

उदा०-(सद) उपसेदिवान् (क्वसुः)। उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपससाद (लिट्)। **(वस)** अनूषिवान् (क्वसुः)। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्। अनूवास (लिट्)। **(श्रु)** उपशुश्रुवान् (क्वसुः)। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपशुश्राव (लिट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भाषायाम्) लौकिक भाषा में (सदवसश्रुवः) सद, वस, श्रु (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (क्वसुः) क्वसु आदेश होता है।

उदा०-(सद) उपसेदिवान् (क्वसु)। उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स पाणिनिमुनि के पास गया। उपससाद (लिट्)। (वस्) अनूषिवान्। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स पाणिनिमुनि के अनुशासन में रहा। अनूवास (लिट्)। (श्रु) उपशुश्रुवान्। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। कौत्स ने पाणिनिमुनि के सामीप्य में व्याकरणशास्त्र का श्रवण किया। उपशुश्राव (लिट्)।

सिद्धि-(१) उपसेदिवान्। उप+सद्+लिट्। उप+सद्+क्वसु। सद्+सद्+इट्+वस्। उप+०+सेद्+इ+वस्। उपसेदिवस्+सु। उपसेदिव नुम्स्+स्। उपसेदिवान् स्+स्। उपसेदिवान्।

यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'अत एकहल्मध्ये०' (६।४।१२०) से 'सद्' के 'अ' को 'ए' आदेश और अभ्यास का लोप, 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से 'इट्' आगम, 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम् आगम, 'सान्तमहतः संयोगस्य' (६।४।१०) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से सु-लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त 'स्' का लोप होता है।

(२) उपससाद। यहां उप-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'सद्' धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्' के स्थान में 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'णल्' आदेश, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'सद्' धातु को द्वित्व और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(३) अनूषिवान्। यहां अनु उपसर्गपूर्वक 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'क्वसु' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'वचिस्वपि-यजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वस्' धातु को सम्प्रसारण, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' (६।१।१७) से 'वस्' धातु के अभ्यास को भी सम्प्रसारण होता है। 'शासिवसिघसीनां च' (८।३।६०) से षत्व होता है।

(४) अनूवास। यहां अनु उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वस्' धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'वस्' को द्वित्व, पूर्ववत् सम्प्रसारण और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वस्' को उपधावृद्धि होती है।

(५) उपशुश्रुवान्। यहां उपसर्गपूर्वक 'श्रु श्रवणे' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय के स्थान में 'क्वसु' आदेश होता है। शेष कार्य 'उपसेदिवान्' के समान है।

(६) उपशुश्राव। यहां उप-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'श्रु' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'श्रु' धातु को द्वित्व और 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'श्रु' धातु को वृद्धि होती है। शेष कार्य 'उपससाद' के समान है।

क्वसु+कानच् (निपातनम्)–

(५) उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च।१०६।

प०वि०–उपेयिवान् १।१ अनाश्वान् १।१ अनूचानः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–वा, भूते इति चानुवर्तते।

अर्थः–उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान इत्येते शब्दा अपि विकल्पेन भूते काले निपात्यन्ते।

उदा०–उपेयिवान्, उपेयाय वा। अनाश्वान्, नाश वा। अनूचानः, अनूवाच वा।

आर्यभाषा-अर्थ–*(उपेयिवान्०) उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान शब्द (च) भी (वा) विकल्प से (भूते) भूतकाल में निपातित है।*

*उदा०–**उपेयिवान्, उपेयाय वा।** वह समीप गया। **अनाश्वान्, नाश वा।** उसने भोजन नहीं किया। **अनूचानः, अनूवाच वा।** उसने अनुकूल कहा।*

सिद्धि–*(१) **उपेयिवान्।** उप+इण्+लिट्। उप+इ+क्वसु। उप+इ+इ+वस्। अप+ई+इ+इट्+वस्। उप+ई+य्+इ+वस्। उपेयिवस्+सु। उपेयिवनुम्+स्+स्। उपेयिवन् स्+स्। उपेयिवान्स्+०। उपेयिवान्।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'इण्' धातु को द्वित्व, **'दीर्घ इणः किति'** (७।४।६९) से अभ्यास को दीर्घ, अभ्यासदीर्घ विधान के सामर्थ्य से **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९७) से 'सवर्णदीर्घ' का प्रतिषेध होता है। सवर्णदीर्घ का प्रतिषेध होने पर धातु के अनेकाच् होने से **'वस्वेकाजाद्घसाम्'** (७।२।६७) से 'इट्' आगम प्राप्त नहीं होता है, वह निपातन से किया जाता है। अभ्यास का श्रवण और धातु रूप 'इ' को निपातन से **'इणो यण्'** (४।१।८१) से 'यण्' आदेश होता है। शेष कार्य **'उपसेदिवान्'** (३।२।१०८) के समान है।*

*(२) **उपेयाय।** उप+इण्+लिट्। उप+इ+तिप्। उप+इ+णल्। उप+ऐ+अ। उप+आय्+अ। उप+इ+इ+अ। उप+इयङ्+आय्+अ। उप+इय्+आय्+अ। उपेयाय।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'लिट्' के स्थान में 'तिप्' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुस०'** (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। 'णल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'इण्' धातु को वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से*

'आय्' आदेश होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से 'आय्' आदेश को स्थानिवत् मानकर 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'इण्' को ही द्विर्वचन होता है। 'अभ्यासस्यासवर्णे' (६।४।७६) से अभ्यास के 'इ' को 'इयङ्' आदेश होता है।

(३) **अनाश्वान्।** अश्+लिट्। अश्+क्वसु। अश्+अश्+वस्। आ+अश्+वस्। आश्वस्+सु। आश्वनुम् स्+स्। आश्वन्स्+स्। आश्वान्स्+०। आश्वान्।

यहां 'अश् भोजने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'अश्' धातु को द्वित्व, अत आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। 'वस्वेकाजाद्घसाम्' (७।२।६७) से प्राप्त 'इट्' आगम निपातन से नहीं होता है।

न आश्वानिति अनाश्वान्। यहां 'नञ्' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। 'नलोपो नञः' (६।३।७१) से 'नञ्' के 'न्' का लोप और 'तस्मान्नुडचि' (६।३।७२) से 'नुट्' आगम होता है। न+आश्वान्। अ+नुट्+आश्वान्। अ+न्+आश्वान्। अनाश्वान्।

(४) **नाश।** यहां पूर्वोक्त 'अश्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'तिप्' और उसके स्थान में 'णल्' आदेश तथा 'अश्' धातु को द्विर्वचन होता है। 'अत आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। न+आश=नाश।

(५) **अनूचानः।** अनु+वच्+लिट्। अनु+वच्+कानच्। अनु+वच्+वच्+आन। अनु+व+उच्+आन। अनु+उ+उच्+आन। अनु+ऊच्+आन। अनूचान+सु। अनूचानः।

यहां अनु उपसर्गपूर्वक 'वच् परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से अथवा 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु के स्थान में 'ब्रुवो वचिः' (२।४।५३) से प्राप्त 'वच्' धातु से कर्तृवाच्य में 'लिट्' के स्थान में आत्मनेपद कानच् आदेश प्राप्त नहीं होता है, वह इस निपातन से किया जाता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'वच्' धातु को द्वित्व, 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'वच्' धातु को सम्प्रसारण, 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' (६।१।१७) से अभ्यास को भी सम्प्रसारण और 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९७) से सवर्ण दीर्घ होता है।

(६) **अनूवाच।** यहां अनु उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वच्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में पूर्ववत् 'तिप्' और उसके स्थान में 'णल्' आदेश तथा धातु को द्विर्वचन होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वच्' को उपधावृद्धि होती है। पूर्ववत् अभ्यास को सम्प्रसारण तथा सवर्णदीर्घ होता है।

लुङ्–

(१) लुङ्।११०।

प०वि०-लुङ् १।१।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भूते धातोर्लुङ्।

अर्थः-भूतेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लुङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोऽकार्षीत्। सोऽहार्षीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लुङ्) लुङ्प्रत्यय होता है।

*उदा०-**सोऽकार्षीत्।** उसने किया। **सोऽहार्षीत्।** उसने हरण (चोरी) किया।*

सिद्धि-अकार्षीत्, अहार्षीत्** की सिद्धि **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) की व्याख्या में देख लेवें। ऐसे ही-**अहार्षीत्।

लङ्—

(१) अनद्यतने लङ्।१११।

प०वि०-अनद्यतने ७।१ लङ् १।१।

स०- न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सः-अनद्यतनः, तस्मिन्-अनद्यतने (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भूते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनद्यतने भूते धातोर्लङ्।

अर्थः-अनद्यतने=अविद्यमानाऽद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोऽकरोत्। सोऽहरत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अनद्यतने) अनद्यतन=आज के भूतकाल अर्थ से रहित शेष (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**सोऽकरोत्।** उसने किया (आज को छोड़कर)। **सोऽहरत्।** उसने हरण (चोरी) किया (आज को छोड़कर)।*

***सिद्धि-अकरोत्।** कृ+लङ्। अट्+कृ+तिप्। अ+कृ+उ+त्। अ+कर्+ओ+त्। अकरोत्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। 'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, 'लङ्' के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश, **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के 'इ' का लोप होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु और 'उ' विकरण प्रत्यय को गुण होता है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**अहरत्।***

लृट्–

(१) अभिज्ञावचने लृट्।११२।

प०वि०–अभिज्ञावचने ७।१ लृट् १।१।

स०–अभिज्ञा=स्मृतिः। अभिज्ञाया वचनमिति अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्–अभिज्ञावचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–भूतेऽनद्यतने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्लृट्।

अर्थः–अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–यज्ञदत्तः प्राह–अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त! वयं कश्मीरेषु **वत्स्यामः।**

आर्यभाषा-अर्थ-(अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति-कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त! वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः।** यज्ञदत्त कहता है-हे देवदत्त! याद है, हम कश्मीर में रहे थे।*

*सिद्धि-**वत्स्यामः।** वस्+लृट्। वस्+स्य+मस्। वत्+स्या+मस्। वत्स्यामः।*

*यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल में 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय होता है। **'सः स्यार्धधातुके'** (७।४।४९) से 'वस्' धातु के 'स्' को 'त्' आदेश और **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से 'स्य' को दीर्घ होता है।*

लृट्-प्रतिषेधः–

(२) न यदि।११३।

प०वि०–न अव्ययपदम्, यदि ७।१।

अनु०–भूते, अनद्यतने, अभिज्ञावचने, लृट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यदि शब्देऽभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्लृट् न।

अर्थः–यत्–शब्दसहितेऽभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो लृट् प्रत्ययो न भवति **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) इति लङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त ! यत् कश्मीरेषु अवसाम।

आर्यभाषा-अर्थ-(यदि) 'यत्' शब्द सहित (अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय (न) नहीं होता है (अनद्यतने लङ् ३।२।१११) से लङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**अभिजानासि (स्मरसि) देवदत्त ! यद् वयं कश्मीरेषु अवसाम।** यज्ञदत्त कहता है-हे देवदत्त ! याद है कि हम कश्मीर में रहते थे। यहां केवल निवासमात्र की स्मृति है, अन्य कुछ याद नहीं है।*

*सिद्धि-**अवसाम।** वस्+लङ्। अट्+वस्+शप्+मस्। अ+वस्+अ+मस्। अ+वस्+आ+मस्। अवसाम।*

यहां यत् शब्द सहित अभिज्ञान वचन उपपद होने पर पूर्वोक्त वस् धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से लङ् प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से अट् आगम, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लङ्' के स्थान में 'मस्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अतो दीर्घो यञि' (७।३।१०१) से 'अ' को दीर्घ होता है।

लृट्-विकल्पः-

(३) विभाषा साकाङ्क्षे।११४।

प०वि०-विभाषा १।१ साकाङ्क्षे ७।१।

स०-आकाङ्क्षा=सम्बन्धज्ञानम्। आकाङ्क्षया सह वर्तते इति साकाङ्क्षः, तस्मिन्-साकाङ्क्षे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने, अभिज्ञावचने, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभिज्ञावचने उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्विभाषा लृट् साकाङ्क्षे।

अर्थः-यत्-शब्दरहिते, यत्शब्दसहिते वाऽभिज्ञानवचने उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे धातोः परो विकल्पेन लृट् प्रत्ययो भवति, साकाङ्क्षश्चेत् तत्र प्रयोक्ता भवति।

उदा०-**(यत्-शब्दरहिते)**-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)। **(यत्-शब्दसहिते)-यज्ञदत्तः**

प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यत् कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)। यत्-शब्दरहिते यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनमभुञ्जमहि (पक्षे लङ्)। यत्-शब्दसहिते-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यत् कश्मीरेषु अवसामः, तत्रौदनमभुञ्ज्महि (पक्षे लङ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-यत्-शब्द से रहित अथवा यत्-शब्द सहित (अभिज्ञावचने) पूर्व स्मृति-कथन उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लृट्) लृट्-प्रत्यय होता है। पक्ष में लङ् होता है (साकाङ्क्षे) यदि प्रयोक्ता साकाङ्क्ष हो।

*उदा०-(यत्-शब्दरहित)-**यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्तः ! वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृट्)।** यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन (भात) खाते थे। यत्-शब्द सहित। **यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यद् वयं कश्मीरेषु वत्स्यामः, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे (लृङ्)।** यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! कि हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन (भात) खाते थे। यत्-शब्दरहित। **यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! वयं कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनमभुञ्ज्महि (लङ्)।** यज्ञदत्त कहता है कि याद है देवदत्त ! हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन खाते थे। **यत्-शब्दसहित-यज्ञदत्तः प्राह-अभिजानासि देवदत्त ! यद् वयं कश्मीरेषु अवसाम, तत्रौदनम् अभुञ्ज्महि (लङ्)।** यज्ञदत्त कहता है-याद है देवदत्त ! कि हम कश्मीर में रहते थे और वहां ओदन खाते थे।*

*सिद्धि-(१) **भोक्ष्यामहे।** भुज्+लृट्। भुज्+स्य+महिङ्। भोज्+स्य+महे। भोग्+स्य+महे। भोक्+ष्या+महे। भोक्ष्यामहे।*

*यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतन भूतकाल में लृट् प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'लृट्' के स्थान में 'महिङ्' आदेश, **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय, **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'महिङ्' के टि-भाग को एत्व, **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को कुत्व ग्, **'खरि च'** (८।४।५४) से ग् को क्, **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व और **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से 'स्य' को दीर्घ होता है।*

*(२) **अभुञ्ज्महि।** भुज्+लङ्। अट्+भुज्+महिङ्। अ+भु श्नम् ज्+महि। अ+भु न ज्+महि। अ+भुञ्ज्+महि। अ+भु ं ज्+महि। अ+भुञ्ज्+महि। अभुञ्ज्महि।*

*यहां अभिज्ञावचन उपपद होने पर पूर्वोक्त भुज् धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में अनद्यतन भूतकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। **'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'** (६।४।७१) से 'अट्' आगम, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'लङ्' के स्थान में 'महिङ्' आदेश, **'श्नसोरल्लोपः***

श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय, 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'श्नम्' के 'अ' का लोप, 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ञ्' होता है।

विशेष-साकाङ्क्ष। लक्ष्य और लक्षण का सम्बन्ध होने पर प्रयोक्ता की आकाङ्क्षा होती है। यहां भोजन लक्ष्य और वास लक्षण है। दो क्रियाओं का लक्ष्य-लक्षणभाव सम्बन्ध होने पर प्रयोक्ता साकाङ्क्ष होता है। उसे केवल कश्मीर में वासमात्र स्मरण कराना ही अभिप्रेत नहीं है किन्तु वहां के ओदन-भोजन के स्मरण कराने की भी आकाङ्क्षा (इच्छा) है।

लिट्-

(१) परोक्षे लिट्।११५।

प०वि०-परोक्षे ७।१ लिट् १।१।

अनु०-भूतेऽनद्यतने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लिट्।

अर्थः-परोक्षेऽनद्यतने भूतेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लिट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स चकार। स जहार। रावणः सीतां जहार।

आर्यभाषा-अर्थः-(परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लिट्) लिट्-प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स चकार।** उसने किया। **स जहार।** उसने हरण किया। **रावणः सीतां जहार।** रावण ने सीता का अपहरण किया।*

*सिद्धि-**चकार।** कृ+लिट्। कृ+तिप्। कृ+णल्। कार्+अ। कृ+कार्+अ। क+कार्+अ। च+कार्+अ। चकार।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से परोक्ष, अनद्यतन, भूतकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में 'तिप्तस्झि०' (३।४।७०) से 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से, स्थानिवद्भाव से 'कृ' को लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से द्विर्वचन होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋ' को 'अ' आदेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के 'क्' को चवर्ग 'च्' होता है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**जहार।***

लङ्+लिट्–

(२) हशश्वतोर्लङ् ।११६।

प०वि०–ह–शश्वतोः ७।२ लङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–हश्च शश्वच्च तौ–हशश्वतौ, तयोः–हशश्वतोः (इतरेतर–योगद्वन्द्वः)।

अनु०–भूतेऽनद्यतने, परोक्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–हशश्चतोरुपपदयोः परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ् लिट् च।

अर्थः–ह–शश्वतोरुपपदयोः परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् लिट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ह) स इति ह अकरोत् (लङ्)। स इति ह चकार (लिट्)। **(शश्वत्)** स शश्वद् अकरोत् (लङ्)। स शश्वच्चकार (लिट्)।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(ह–शश्वतोः) ह और शश्वत् शब्द उपपद होने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् (च) और (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

उदा०–__(ह) स इति ह अकरोत् (लङ्)। स इति ह चकार (लिट्)।__ उसने ऐसा निश्चय से किया। __(शश्वत्) स शश्वद् अकरोत् (लङ्)। स शश्वच्चकार।__ उसने सदा किया।

__सिद्धि__–अकरोत् की सिद्धि ३।२।१११ में और चकार की सिद्धि ३।२।११५ में देख लेवें।

लङ्+लिट्–

(३) प्रश्ने चासन्नकाले ।११७।

प०वि०–प्रश्ने ७।१ च अव्ययपदम्, आसन्नकाले ७।१।

स०–आसन्नः=समीपम्। आसन्नः कालो यस्य स आसन्नकालः, तस्मिन्–आसन्नकाले (बहुव्रीहिः)।

अनु०:–भूतेऽनद्यतने, परोक्षे लिट् लङ् चेत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आसन्नकाले प्रश्ने परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ् लिट् च।

अर्थः–आसन्नकाले प्रश्ने=पृच्छ्यमाने परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लङ् लिट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-कश्चित् कञ्चित् पृच्छति-किम् अगच्छद् देवदत्तः (लङ्) ? किं जगाम देवदत्तः (लिट्) ? किम् अयजद् देवदत्तः (लङ्) ? किम् इयाज देवदत्तः (लिट्) ?

आर्यभाषा-अर्थ-(आसन्नकाले) समीप-काल विषयक (प्रश्ने) पूछने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लङ्) लङ् (च) और (लिट्) लिट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-कोई किसी से पूछता है-**किम् अगच्छद् देवदत्तः (लङ्) ? किं जगाम देवदत्तः (लिट्)** ? क्या देवदत्त चला गया ? **किम् अयजद् देवदत्तः (लङ्) ? किम् इयाज देवदत्तः (लिट्)** ? क्या देवदत्त ने यज्ञ किया ?*

*सिद्धि-(१) **अगच्छत्।** गम्+लङ्। अट्+गम्+तिप्। अट्+गम्+शप्+ति। अ+गच्छ्+अ+त्। अगच्छत्।*

यहां आसन्नकाल विषयक प्रश्न करने पर परोक्ष अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय और 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'गम्' के म् को छ् आदेश होता है। शेष कार्य 'अकरोत्' (३।२।१११) के समान है।

*(२) **जगाम।** यहां पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'गम्' धातु से इस सूत्र से 'लिट्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'गम्' को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य 'चकार' (३।२।११५) के समान है।*

लट्-

(१) लट् स्मे।११८।

प०वि०-लट् १।१ स्मे ७।१।

अनु०-भूते, अनद्यतने, परोक्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मे उपपदे परोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लट्।

अर्थः-स्म-शब्दे उपपदे परोक्षेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति। लिटोऽपवादः।

उदा०-नडेन स्म पुरा अधीयते। ऊर्णया स्म पुरा अधीयते।

*आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (परोक्षे) इन्द्रियों के विषय से दूर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट्प्रत्यय होता है। यह **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) का अपवाद है।*

उदा०-नडेन स्म पुरा अधीयते। प्राचीनकाल में नड ऋषि ने अध्ययन किया। ऊर्णया स्म पुरा अधीयते। प्राचीनकाल में ऊर्णा ऋषिका ने अध्ययन किया।

सिद्धि-अधीयते। अधि+इङ्+लट्। अधि+इ+त। अधि+इ+यक्+त। अधीयते।

यहां 'स्म' शब्द उपपद होने पर परोक्ष अनद्यतन भूतकाल अर्थ में अधि-उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से कर्मवाच्य में इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से कर्मवाच्य में 'यक्' विकरण-प्रत्यय और 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'त' के टि-भाग को 'ए' आदेश होता है।

लट्-

(२) अपरोक्षे च।११६।

प०वि०-अपरोक्षे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-न परोक्षमिति अपरोक्षम्, तस्मिन्-अपरोक्षे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने, लट् स्मे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मे उपपदेऽपरोक्षेऽनद्यतने भूते धातोर्लङ्।

अर्थः-स्म-शब्दे उपपदेऽपरोक्षे चानद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एवं स्म पिता ब्रवीति। इति स्मोपाध्यायः कथयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (अपरोक्षे) प्रत्यक्ष विषय होने पर (च) भी (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०-एवं स्म पिता ब्रवीति। पिताजी ऐसा कहते थे। इति स्मोपाध्यायः कथयति। उपाध्याय जी ऐसा कहते थे।

सिद्धि-(१) ब्रवीति। ब्रू+लट्। ब्रू+तिप्। ब्रू+शप्+इट्+ति। ब्रू+0+ई+ति। ब्रो+ई+ति। ब्रव्+ई+ति। ब्रवीति।

यहां 'स्म' शब्द उपपद होने पर प्रत्यक्ष विषय में, अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, 'ब्रुव ईट्' (७।२।९३) से 'ईट्' आगम, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ब्रू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से अव् आदेश होता है।

(२) कथयति। 'कथ वाक्यप्रबन्धे' (चु०प०)।

(३) ननौ पृष्टप्रतिवचने।१२०।

प०वि०-ननौ ७।१ पृष्ट-प्रतिवचने ७।१।

स०-पृष्टस्य प्रतिवचनमिति पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्-पृष्टप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ननावुपपदे पृष्टप्रतिवचने भूते धातोर्लट्।

अर्थः-ननु-शब्दे उपपदे पृष्टप्रतिवचने सति भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति। लुङोऽपवादः।

उदा०-यज्ञदत्तो देवदत्तमप्राक्षीत्-अकार्षीः कटं देवदत्त ? ननु करोमि भोः। अवोचस्तत्र किञ्चिद् देवदत्त ? ननु ब्रवीमि भोः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ननौ) ननु शब्द उपपद होने पर तथा (पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने में (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट्-प्रत्यय होता है। यह लुङ् लकार का अपवाद है।

***उदा०**-यज्ञदत्त ने देवदत्त से पूछा-**अकार्षीः कटं देवदत्त** ? हे देवदत्त ! क्या तूने चटाई बना ली है ? देवदत्त ने उत्तर दिया-**ननु करोमि भोः** ! हां भाई ! मैंने चटाई बना ली है। **अवोचस्तत्र किञ्चिद् देवदत्त** ! हे देवदत्त ! क्या तूने वहां कुछ कहा था ? देवदत्त ने उत्तर दिया-**ननु ब्रवीमि भोः** । हां भाई ! कहा था।*

***सिद्धि-(१) करोमि।** यहां 'ननु' शब्द उपपद होने पर प्रश्न का उत्तर देने में भूतकाल अर्थ में विद्यमान 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'मिप्' आदेश है। '**तनादिकृञ्भ्य उः**' (३।१।७९) से विकरण 'उ' प्रत्यय और '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है।*

*(२) **ब्रवीमि।** यहां 'ननु' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में '**ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि**' (अदा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' के स्थान में 'मिप्' आदेश है। शेष कार्य '**ब्रवीति**' (३।२।११९) के समान है।*

लट्-विकल्पः-

(४) नन्वोर्विभाषा।१२१।

प०वि०-न-न्वोः ७।२ विभाषा १।१।

स०-नश्च नुश्च तौ-ननू, तयोः-नन्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-भूते, लट्, पृष्टप्रतिवचने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नन्वोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचने भूते धातोर्विभाषा लट्।

अर्थः-न-नुशब्दयोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचने सति भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति। पक्षे लुङ् भवति।

उदा०-यज्ञदत्तो **देवदत्तम**प्राक्षीत्-अकार्षीः कटं देवदत्त ? (न) न करोमि भोः। न अकार्षं भोः। (नु) नु करोमि भोः। नु अकार्षं भोः।

आर्यभाषा-अर्थ-(न-न्वोः) न और नु शब्द उपपद होने पर (पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने में (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से लट् प्रत्यय होता है। पक्ष में लुङ् होता है।

*उदा०-यज्ञदत्त ने देवदत्त से पूछा-**अकार्षीः कटं देवदत्त** ? हे देवदत्त ! क्या तूने चटाई बना ली है। देवदत्त ने उत्तर दिया-**(न) न करोमि भोः। न अकार्षं भोः।** भाई नहीं बनाई है। (नु) **नु करोमि भोः, नु अकार्षं भोः।** हां भाई ! बना ली है।*

*सिद्धि-(१) **करोमि।** यहां न/नु शब्द उपपद होने पर पृष्टप्रतिवचन में भूतकाल अर्थ में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से लट् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (३।२।१२०) है।*

*(२) **अकार्षम्।** कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+लुङ्। अ+कृ+सिच्+मिप्। अ+कार्+स्+अम्। अ+कार्+ष्+अम्। अकार्षम्।*

*यहां न/नु शब्द उपपद होने पर पृष्टप्रतिवचन में भूतकाल अर्थ में पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में लुङ् प्रत्यय है। '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, '**तस्थस्थमिपां०**' (३।४।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश, '**सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु**' (७।२।१) से 'कृ' को वृद्धि और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

लुङ्-लट्-

(३) पुरि लुङ् चास्मे।१२२।

प०वि०-पुरि ७।१ लुङ् १।१ च अव्ययपदम्, अस्मे ७।१।

स०-न स्म इति अस्मः, तस्मिन्-अस्मे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भूते, अनद्यतने (मण्डूकप्लुत्या) इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्मे पुरि-उपपदेऽनद्यतने भूते धातोर्विभाषा लुङ् लट् च।

अर्थ:-स्म-शब्दरहिते पुरा-शब्दे उपपदेऽनद्यतने भूते कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातो: परो विकल्पेन लुङ् लट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-वसन्तीह पुरा छात्रा: (लट्)। अवात्सुरिह पुरा छात्रा: (लुङ्)। एताभ्यां मुक्ते यथाविषयमन्येऽपि प्रत्यया भवन्ति-अवसन्निह पुरा छात्रा: (लङ्)। ऊषुरिहपुरा छात्रा: (लिट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अस्मे) स्म-शब्द से रहित (पुरि) पुरा शब्द उपपद होने पर (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भूते) भूतकाल अर्थ में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (लुङ्) लुङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

उदा०-वसन्तीह पुरा छात्रा: (लट्) अवात्सुरिह पुरा छात्रा: (लुङ्)। पहले यहां छात्र रहते थे। लुङ् और लट् से मुक्त होने पर धातु से यथाविषय प्रत्यय होते हैं-अवसन्निह पुरा छात्रा: (लङ्)। ऊषुरिह पुरा छात्रा: (लिट्)। पहले यहां छात्र रहते थे।

*सिद्धि-(१) वसन्ति। यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'वस निवासे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। 'लट्' के स्थान में 'झि' आदेश 'झोऽन्त:' (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है।*

(२) अवात्सु:। वस्+लुङ्। अट्+वस्+च्लि+लुङ्। अ+वस्+सिच्+झि। अ+वस्+स्+जुस्। अ+वास्+स+उस्। अ+वात्+स्+उस्। अवात्सु:।

*यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्ले: सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, **'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च'** (३।४।१०९) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश, **'वदव्रजहलन्तस्याच:'** (७।२।३) से 'वस्' धातु के 'अच्' को वृद्धि और **'सस्यार्धधातुके'** (७।४।४९) से 'वस्' के 'स्' को 'द्' और **'खरि च'** (८।४।५४) से 'द्' को 'त्' आदेश होता है।*

(३) अवसन्। वस्+लङ्। अट्+वस्+झि। अ+वस्+शप्+अन्ति। अ+वस्+अ+अन्त्। अवसन्।

*यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से यथाविषय 'लङ्' प्रत्यय है। 'लङ्' के स्थान में 'झि' आदेश **'झोऽन्त:'** (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, **'इतश्च'** (३।४।१००) के 'अन्ति' के 'इ' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोप:'** (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।*

(४) ऊषुः । वस्+लिट् । वस्+झि । वस्+उस् । वस्+वस्+उस् । व+वस्+उस् । उ+उस्+उस् । ऊस्+उस् । ऊषुः ।

*यहां 'पुरा' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त अर्थ में पूर्वोक्त 'वस्' धातु से यथाविषय 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिट्' के स्थान में 'झि' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस०'** (३।४।८२) से 'झि' के स्थान में 'उस्' आदेश, **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'वस्' को द्वित्व, **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'वस्' को सम्प्रसारण, **'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्'** (६।१।१७) से अभ्यास को भी सम्प्रसारण और **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व होता है।*

इति भूतकालप्रत्ययप्रकरणम् ।

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

लट्–

(१) वर्तमाने लट्।१२३।

प०वि०–वर्तमाने ७।१ लट् १।१ प्रारब्धोऽपरिसमाप्तश्च वर्तमानः कालः, तस्मिन्–वर्तमाने।

अन्वयः–वर्तमाने धातोर्लट्।

अर्थः–वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स पचति। स पठति।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**स पचति।** वह पकाता है। **स पठति।** वह पढ़ता है।*

*सिद्धि–**पचति।** यहां वर्तमानकाल अर्थ में **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७) से 'लट्' के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। ऐसे ही–**'पठ व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से पठति।*

शतृ+शानच् (लडादेशः)–

(२) लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।१२४।

प०वि०–लटः ६।१ शतृ–शानचौ १।२ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१।

स०-शतृश्च शानच् च तौ-शतृशानचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्रथमा इति अप्रथमा, समानमधिकरणं यस्य तत् समानाधिकरणम्। अप्रथमया समानाधिकरणमिति अप्रथमासमानाधिकरणम्, तस्मिन्-अप्रथमासमानाधिकरणे (नञ्बहुव्रीहिगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानाचावप्रथमासमानाधिकरणे।

अर्थः-वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानस्य धातोः परस्य लटः स्थाने शतृ-शानचावादेशौ भवतः, अप्रथमान्तेन चेत् तस्य समानाधिकरणं भवति।

उदा०-(शतृ) पचन्तं देवदत्तं पश्य। पचता कृतम्। (शानच्) पचमानं देवदत्तं पश्य। पचमानेन कृतम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् प्रत्यय के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं, यदि उस लट् प्रत्यय का (अप्रथमासमानाधिकरणे) प्रथमा विभक्ति के साथ समानाधिकरण न हो।

*उदा०-(शतृ) **पचन्तं देवदत्तं पश्य।** तू पकाते हुये देवदत्त को देख। **पचता कृतम्।** पकाते हुये के द्वारा किया गया। (शानच्) **पचमानं देवदत्तं पश्य।** तू पकाते हुये देवदत्त को देख। **पचमानेन कृतम्।** पकाते हुये के द्वारा किया गया।*

*सिद्धि-(१) **पचन्तम्।** पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+अम्। पच नुम् त्+अम्। पचन्त्+अम्। पचन्तम्।*

*यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में द्वितीया विभक्ति के समानाधिकरण में 'शतृ' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। 'शतृ' प्रत्यय के 'उगित्' होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। टा-विभक्ति में-**पचता।***

*(२) **पचमानम्।** पच्+लट्। पच्+शानच्। पच्+शप्+आन। पच्+अ+मुक्+आन। पच्+अ+म्+आन। पचमान+अम्। पचमानम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में द्वितीया विभक्ति के समानाधिकरण 'शानच्' आदेश है। पूर्ववत् 'शप्' प्रत्यय और **'आने मुक्'** (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। टा-विभक्ति में-**पचमानेन।***

शतृ+शानच् (लडादेशः)–

(३) सम्बोधने च।१२५।

प०वि०–सम्बोधने ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–वर्तमाने लटः शतृशानचाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–सम्बोधने च वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानचौ।

अर्थः–सम्बोधने च विषये वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परस्य लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः।

उदा०–**(शतृ)** हे पचन्! **(शानच्)** हे पचमान!

आर्यभाषा-अर्थ–*(सम्बोधने) सम्बोधन विषय में (च) भी (वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं।*

उदा०–(शतृ) हे पचन्! हे पकाते हुये (देवदत्त)! (शानच्) हे पचमान! हे पकाते हुये (देवदत्त)।

*सिद्धि–(१) **पचन्।** पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+सु। पचनुम्त्+सु। पचन्त्+सु। पचन्।*

*यहां सम्बोधन विषय में पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है। यहां पूर्ववत् (३।२।१२४) 'शप्' विकरण-प्रत्यय और नुम् आगम है। '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त 'त्' का लोप होता है।*

*(२) **पचमान।** यहां सम्बोधन विषय में पूर्वोक्त 'पच्' धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश है। '**एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः**' (६।१।६७) से सम्बुद्धि 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् (३।२।१२४) है।*

शतृ+शानच् (लडादेशः)–

(४) लक्षणहेत्वोः क्रियायाः।१२६।

प०वि०–लक्षण-हेत्वोः ७।२ क्रियायाः ६।१।

स०–लक्षणं च हेतुश्च तौ–लक्षणहेतू, तयोः–लक्षणहेत्वोः इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वर्तमाने, लटः शतृशानचाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रियायालक्षणहेत्वोर्वर्तमाने धातोः परस्य लटः शतृशानचौ।

अर्थः-क्रियाया लक्षणे हेतौ च विषये वर्तमाने कालेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः परस्य लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः।

उदा०-(लक्षणे) तिष्ठन्तोऽनुशासति गणकाः (शतृ)। शयाना भुञ्जते यवनाः (शानच्)। **(हेतौ)** अर्जयन् वसति (शतृ)। अधीयानो वसति (शानच्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियायाः) क्रिया के (लक्षणहेत्वोः) लक्षण और हेतु विषय में (वर्तमाने) वर्तमानकाल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् के स्थान में (शतृशानचौ) शतृ और शानच् आदेश होते हैं।

*उदा०-**(लक्षण) तिष्ठन्तोऽनुशासति गणकाः (शतृ)।** गणक लोग खड़े-खड़े शिक्षा करते हैं। खड़े-खड़े शिक्षा करना गणक लोगों का लक्षण (चिह्न) है। **शयाना भुञ्जते यवनाः (शानच्)।** यवन लोग लेटे-लेटे खाते हैं। लेटे-लेटे खाना यवन लोगों का लक्षण है। **(हेतु) अर्जयन् वसति (शतृ)।** वह यहां अर्जन (कमाई) के हेतु से रहता है। **अधीयानो वसति।** वह यहां अध्ययन के हेतु से रहता है।*

सिद्धि-(१) तिष्ठन्तः। स्था+शतृ। स्था+शप्+अत्। तिष्ठ+अ+अत्। तिष्ठत्+जस्। तिष्ठ नुम् त्+अस्। तिष्ठ+न् त्+अस्। तिष्ठन्तः।

*यहां लक्षणविषय में **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, **'पाघ्राध्मा०'** (७।३।७८) से 'स्था' के स्थान में 'तिष्ठ' आदेश है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से **'सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है।*

*(२) **शयानाः।** शीङ्+शानच्। शी+शप्+आन। शी+आन। शे+आन। शयान+जस्। शयानाः।*

*यहां लक्षणविषय में **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से शानच् प्रत्यय है। यहां **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से लुक् होता है। **'शीङः सार्वधातुके गुणः'** (७।४।२१) से 'शीङ्' धातु को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।*

*(३) **अर्जयन्।** अर्ज्+णिच्। अर्ज्+इ। अर्जि+शतृ। अर्जि+शप्+अत्। अर्जि+अ+अत्। अर्जे+अ+अत्। अर्जयत्+सु। अर्जयनुम्त्+सु। अर्जयन्त्+सु। अर्जयन्त्+०। अर्जयन्।*

*यहां हेतु विषय में **'अर्ज प्रतियत्ने'** (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां चौरादिक 'अर्ज्' धातु से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। णिजन्त 'अर्जि' धातु से 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है। शेष कार्य **'पचन्'** (३।२।१२५) के समान है।*

*(४) **अधीयानः।** अधि+इङ्+शानच्। अधि+इ+शप्+आन। अधि+इ+०+आन। अधि+इयङ्+आन। अधि+इय्+आन। अधीयान+सु। अधीयानः।*

*यहां हेतु विषय में नित्य अधि उपसर्गपूर्वक 'इङ् **अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से शानच् प्रत्यय है। यहां '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और '**अदिप्रभृतिभ्यः शपः**' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। '**अचि श्नुधातुभ्रुवां०**' (६।४।७७) से 'इङ्' धातु को 'इयङ्' आदेश होता है।*

सत्-संज्ञा–

(५) तौ सत्।१२७।

प०वि०–तौ १।२ सत् १।१।

अन्वयः–तौ शतृशानचौ सत्।

अर्थः–तौ=वर्तमाने भविष्यति च काले विहितौ शतृ-शानचौ प्रत्ययौ सत्-संज्ञकौ भवतः।

उदा०–**(वर्तमाने)** ब्राह्मणस्य कुर्वन् (शतृ)। ब्राह्मणस्य कुर्वाणः (शानच्)। **(भविष्यति)** ब्राह्मणस्य करिष्यन् (शतृ)। ब्राह्मणस्य करिष्यामाणः (शानच्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(तौ) उन वर्तमान और भविष्यत्काल में विहित (शतृशानचौ) शतृ और शानच् प्रत्ययों की (सत्) सत्-संज्ञा होती है।

*__उदा०__–**(वर्तमान) ब्राह्मणस्य कुर्वन् (शतृ) ब्राह्मणस्य कुर्वाणः (शानच्)।** ब्राह्मण का कर्म करता हुआ। **(भविष्यत्) ब्राह्मणस्य करिष्यत् (शतृ)। ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः।** भविष्य में ब्राह्मण का कर्म करता हुआ।*

*__सिद्धि__–(१) **कुर्वन्।** कृ+लट्। कृ+शतृ। कृ+उ+अत्। कर्+उ+अत्। कुर्+उ+अत्। कुर्वत्+सु। कुर्वनुम्त्+सु। कुर्वन्त्+सु। कुर्वन्।*

*यहां वर्तमान काल में 'लट्' के स्थान में विहित 'शतृ' प्रत्यय की इस सूत्र से सत् संज्ञा होने से '**पूरणगुणसुहितार्थ०**' (२।२।११) से षष्ठी-समास का प्रतिषेध होता है। यहां '**डुकृञ् करणे**' (तु०उ०) धातु से '**लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे**' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश, '**तनादिकृञ्भ्य उः**' (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। '**अत उत् सार्वधातुके**' (६।४।११०) से कर् के अ को उ-आदेश होता है। शेष कार्य '**पचन्**' (३।२।१२५) के समान है।*

*(२) **ब्राह्मणस्य कुर्वाणः।** कृ+लट्। कृ+शानच्। कृ+उ+आन। कर्+उ+आन। कुर्+व्+आन। कुर्वाण+सु। कुर्वाणः।*

*यहां वर्तमानकाल में विहित 'लट्' प्रत्यय के स्थान में विहित शानच् प्रत्यय की इस सूत्र से सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध है। **'इको यणचि'** (६।१।७४) से 'उ' के स्थान में 'व्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **ब्राह्मणस्य करिष्यन्।** कृ+लृट्। कृ+शतृ। कृ+स्य+अत्। कृ+इट्+स्य+अत्। कर्+इ+ष्य+अत्। करिष्यत्+सु। करिष्यनुम्त्+सु। करिष्यन्त्+सु। करिष्यन्।*

*यहां भविष्यत्काल में **'लृट: सद् वा'** (३।३।१४) से लृट् के स्थान में विहित 'शतृ' प्रत्यय की सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध होता है। **'स्यतासी लृलुटो:'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय, **'आर्धधातुकस्येड्वलादे:'** (७।२।३५) से 'स्य' को 'इट्' आगम, **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।८४) से 'कृ' को गुण और **'आदेशप्रत्यययो:'** (८।३।५९) से षत्व होता है। शेष कार्य **'पचन्'** (३।२।१२५) के समान है।*

*(४) **ब्राह्मणस्य करिष्यमाण:।** कृ+लृट्। कृ+शानच्। कृ+स्य+आन। कृ+इट्+स्य+आन। कर्+इ+ष्य+मुक्+आन। करिष्यमाण+सु। करिष्यमाण:।*

*यहां भविष्यत्काल में 'लृट: सद् वा' (३।३।१४) से 'लृट्' के स्थान में विहित शानच् प्रत्यय की सत्-संज्ञा होने से पूर्ववत् षष्ठीसमास का प्रतिषेध होता है। यहां **'आने मुक्'** (७।२।८२) से 'मुक्' आगम और **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य **'करिष्यन्'** के समान है।*

शानन्–

(१) पूङ्यजोः शानन्।१२८।

प०वि०–पूङ्-यजो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) शानन् १।१।

स०–पूङ् च यज् च तौ पूङ्यजौ, तयो:-पूङ्यजो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–पूङ्यजिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने शानन्।

अर्थ:–पूङ्-यजिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले शानन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(पूङ्) पवमान:। (यज्) यजमान:।

***आर्यभाषा–अर्थ**–(पूङ्यजो:) पूङ् और यज् (धातो:) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शानन्) शानन् प्रत्यय होता है।*

***उदा०–(पूङ्) पवमान:।** पवित्र करनेवाला। **(यज्) यजमान:।** यज्ञ करनेवाला।*

सिद्धि-(१) पवमानः। पूङ्+शानन्। पू+शप्+आन। पू+अ+मुक् आन। पो+अ+म् आन। पव्+अ+मान। पवमान+सु। पवमानः।

*यहां 'पूञ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में शानन् प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'आने मुक्'** (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'पूङ्' धातु को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।*

(२) यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'शानन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

चानश्—

(१) ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्।१२६।

प०वि०-ताच्छील्य-वयोवचन-शक्तिषु ७।३ चानश् १।१।

स०-तस्य शीलमिति तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावः-ताच्छील्यम्। ताच्छील्यं च वयोवचनं च शक्तिश्च ताः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तयः, तासु-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु धातोर्वर्तमाने चानश्।

अर्थः-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले चानश् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ताच्छील्यम्) कति इह मुण्डयमानाः। कति इह भूषयमाणाः। (वयोवयनम्) कति इह कवचं पर्यस्यमानाः। कति इह शिखण्डं वहमानाः। (शक्तिः) कति इह निघ्नानाः। कति इह पचमानाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु) ताच्छील्य=तत्स्वभावता, वयोवचन=आयु का कथन और शक्ति=सामर्थ्य अर्थ में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (चानश्) चानश् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(ताच्छील्य) कति इह मुण्डयमानाः।** यहां कितने मुण्डन करने के स्वभाववाले हैं। **कति इह भूषयमाणाः।** यहां कितने श्रृंगार करने के स्वभाववाले हैं। **(वयोवचन) कति इह कवचं पर्यस्यमानाः।** यहां कितने कवच को धारण करनेवाले युवा हैं। **कति इह शिखण्डं वहमानाः।** यहां कितने शिखण्ड=शिखा को धारण करने की आयुवाले हैं। **(शक्ति) कति इह निघ्नानाः।** यहां कितने हनन शक्तिवाले हैं। **कति इह पचमानाः।** यहां कितने पकाने की योग्यतावाले हैं।*

सिद्धि-मुण्डयमाना:। मु नुम् ड्। मुण्ड्+णिच्। मुण्ड्+इ। मुण्डि+चानश्। मुण्डि+शप्+आन। मुण्डि+अ+मुक्+आन। मुण्डे+अ+म्+आन। मुण्डयमान+जस्। मण्डयमाना:।

यहां ताच्छील्य अर्थ में वर्तमानकाल में **'मुडि मार्जने'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। यहां प्रथम **'इदितो नुम् धातो:'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। णिजन्त 'मुण्डि' धातु से 'चानश्' प्रत्यय करने पर **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'आने मुक्'** (७।२।८२) से 'मुक्' आगम होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।८४) से 'मुण्डि' धातु को गुण और **'एचोऽयवायाव:'** (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।

(२) **भूषयमाणा:।** **'भूष अलङ्कारे'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) **पर्यस्यमाना:।** यहां परि उपसर्गपूर्वक **'असु क्षेपणे'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से चानश् प्रत्यय है। **'दिवादिभ्य: श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) **वहमाना:।** यहां **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **निघ्नाना:।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'हन् हिंसागत्यो:'** (अ०प०) से इस सूत्र से चानश् प्रत्यय है। 'गमहनजन०' (६।४।९८) से हन् धातु की उपधा का लोप और **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५७) से ह् को कुत्व घ् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) **पचमाना:।** यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'चानश्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

शतृ-

(१) इङ्धार्यो: शत्रकृच्छ्रिणि।१३०।

प०वि०-इङ्-धार्यो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) शतृ १।१ (लुप्तविभक्तिकं पदम्) अकृच्छ्रिणि ७।१।

स०-इङ् च धारिश्च तौ-इङ्धारी, तयो:-इङ्धार्यो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। कृच्छ्रम्=दु:खम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्, अकृच्छ्रं विद्यते यस्य स:-अकृच्छ्री। **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) इति तद्धित इनि: प्रत्यय:।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-इङ्धारिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने शतृ, अकृच्छ्रिणि **कर्तरि।**

अर्थः-इङ्धारिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, यदि तयोः कर्ताऽकृच्छ्री (सुखी) भवति।

उदा०-**(इङ्)** अधीयन् पारायणम्। **(धारि)** धारयन् उपनिषदम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(इङ्धार्योः) इङ् और धारि (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि उन धातुओं का कर्ता (अकृच्छ्री) सुखी हो, सुखपूर्वक उक्त क्रियाओं का करनेवाला हो।

*उदा०-**(इङ्) अधीयन् पारायणम्।** पारायण नामक ग्रन्थ का सुखपूर्वक अध्ययन करनेवाला। **(धारि) धारयन् उपनिषदम्।** उपनिषद् (रहस्य) का सुखपूर्वक धारण=अवस्थित रखनेवाला।*

*__सिद्धि__-(१) **अधीयन्।** अधि+इङ्+शतृ। अधि+इ+अत्। अधि+इ+०+अत्। अधि+इयङ्+अत्। अधीयत्+सु। अधीय नुम् त्+सु। अधीयन्त्+सु। अधीयन्।*

*यहां नित्य 'अधि' उपसर्ग पूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। यहां 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर **'कर्तरि शप्'** (३।१।६२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से 'इङ्' को 'इयङ्' आदेश होता है। 'शतृ' प्रत्यय के 'उगित्' होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'संयोगान्त' त् का लोप होता है।*

*(२) **धारयन्।** यहां **'धृङ् अवस्थाने'** (तु०आ०) धातु से प्रथम स्वार्थ में 'णिच्' प्रत्यय और पश्चात् णिजन्त 'धारि' धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य **'अधीयन्'** के समान है।*

शतृ-

(२) द्विषोऽमित्रे।१३१।

प०वि०-द्विषः ५।१ अमित्रे ७।१।

स०-न मित्रमिति अमित्रम्, तस्मिन्-अमित्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विषो धातोर्वर्तमाने शतृ, अमित्रे कर्तरि।

अर्थः-द्विषो धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, यदि तस्यामित्रं कर्ता भवति।

उदा०-द्विषन्। द्विषन्तौ। द्विषन्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्विषः) द्विष् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि द्विष धातु का कर्ता (अमित्रे) अमित्र=शत्रु हो।

*उदा०-द्वेष्टीति **द्विषन्**। द्वेष करनेवाला शत्रु।*

*सिद्धि-**द्विषन्**। यहां **'द्विष अप्रीतौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य **'अधीयन्'** (३।२।१३०) के समान है।*

शतृ-

(३) सुञो यज्ञसंयोगे।१३२।

प०वि०-सुञः ५।१ यज्ञ-संयोगे ७।१।

स०-यज्ञेन संयोग इति यज्ञसंयोगः, तस्मिन्-यज्ञसंयोगे (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञसंयोगे सुञो धातोर्वर्तमाने शतृ।

अर्थः-यज्ञसंयोगे=यज्ञसंयुक्तेऽभिषवेऽर्थे विद्यमानात् सुञ्-धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुन्वन्तो यजमानाः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यज्ञसंयोगे) यज्ञ से संयुक्त अभिषव (रस निचोड़ना) अर्थ में विद्यमान (सुञः) सुञ् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है।

*उदा०-**सुन्वन्तो यजमानाः**। सोम का सवन करनेवाले मुख्य यजमान लोग।*

*सिद्धि-**सुन्वन्तः**। यहां **'सुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'शतृ' प्रत्यय है। 'शतृ' प्रत्यय परे होने पर **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। शेष कार्य **'अधीयन्'** (३।२।१३०) के समान है।*

शतृ-

(४) अर्हः प्रशंसायाम्।१३३।

प०वि०-अर्हः ५।१ प्रशंसायाम् ७।१।

अनु०-वर्तमाने, शतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्हो धातोर्वर्तमाने शतृ प्रशंसायाम्।

अर्थः-अर्ह-धातोः परो वर्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति, प्रशंसायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अर्हन् भवान् विद्याम्। अर्हन् भवान् पूजाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अर्हः) अर्ह् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (शतृ) शतृ प्रत्यय होता है, यदि वहां (प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-**अर्हन् भवान् विद्याम्।** आप विद्या प्राप्त करने योग्य हो। **अर्हन् भवान् पूजाम्।** आप पूजा के योग्य हो।*

*सिद्धि-**अर्हन्।** यहां 'अर्ह पूजायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से प्रशंसा की अभिव्यक्ति में 'शतृ' प्रत्यय है। शेष कार्य **'अधीयन्'** (३।२।१३०) के समान है।*

तच्छीलादिकर्तृप्रकरणम्

आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु।१३४।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, क्वेः ५।१ तच्छील-तद्धर्म-तत्साधु-कारिषु ७।३।

स०-सः (धात्वर्थः) शीलं यस्य स तच्छीलः। सः (धात्वर्थः) धर्मो यस्य स तद्धर्मा, साधु करोतीति साधुकारी। तस्य (धात्वर्थस्य) साधुकारीति तत्साधुकारी। तच्छीलश्च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च ते-तच्छीलतद्धर्म-तत्साधुकारिणः, तेषु-तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (बहुव्रीह्यादिगर्भितेतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आ क्वेर्धातोस्तच्छीलादिषु वर्तमाने प्रत्ययाः।

अर्थः-**'भ्राजभास०'** (३।२।१७७) इति क्विप्-पर्यन्तं ये प्रत्ययास्ते धातोस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिष्वर्थेषु वर्तमाने काले भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-अग्रे यथास्थानमुदाहरिष्यामः।

*आर्यभाषा-अर्थ-(क्वेः) **'भ्राजभास०'** (३।२।१७७) से इस सूत्र के 'क्विप्' प्रत्यय (आ) तक (धातोः) धातु से (तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी अर्थों में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में होते हैं। यह अधिकार सूत्र है।*

उदा०-आगे यथास्थान उदाहरण दिये जायेंगे।

विशेष-(१) तच्छील। फल की अनपेक्षा से स्वभाव से उस क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला। (२) तद्धर्मा। जो स्वभाव के विना भी मेरा यह धर्म है इस भावना से क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला। (३) तत्साधुकारी। उस-उस क्रिया को कुशलता से करनेवाला।

तृन्–

(१) तृन्।१३५।

प०वि०-तृन् १।१।

अनु०-वर्तमाने, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्वर्तमाने तृन् तच्छीलादिषु।

अर्थः-सर्वेभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने काले तृन् प्रत्ययो भवति, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु।

उदा०-(तच्छीलः) कर्ता कटान् देवदत्तः। वदिता जनापवादान् यज्ञदत्तः। **(तद्धर्मा)** मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम्। अन्नमपहर्तार आह्वरका भवन्ति श्राद्धे सिद्धे। **(तत्साधुकारी)** कर्ता कटं देवदत्तः। गन्ता खेटम् यज्ञदत्तः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातुमात्र से (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (तृन्) तृन् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु) तच्छील=उस स्वभाववाला, तद्धर्मा=उसे धर्म माननेवाला और तत्साधुकारी=उसे कुशलतापूर्वक करनेवाला हो।

उदा०-(तच्छील) __कर्ता कटान् देवदत्तः।__ देवदत्त स्वभाव से चटाई बनानेवाला है। __वदिता जनापवादान् यज्ञदत्तः।__ यज्ञदत्त स्वभाव से लोगों की निन्दा करनेवाला है। __(तद्धर्मा) मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति वधूमूढाम्।__ श्राविष्ठायन गोत्र के लोग विवाहित वधू का मुण्डन करना अपना कुलधर्म मानते हैं। __अन्नमपहर्तार आह्वरका भवन्ति श्राद्धे सिद्धे।__ आह्वरक देश के लोग श्राद्ध तैयार होने पर अन्न-अपहरण करना अपना धर्म समझते हैं। (तत्साधुकारी) __कर्ता कटं देवदत्तः।__ देवदत्त चटाई को कुशलतापूर्वक बनानेवाला है। __गन्ता खेटं यज्ञदत्तः।__ यज्ञदत्त शिकार को कुशलतापूर्वक प्राप्त करनेवाला है।

__सिद्धि-(१) कर्ता।__ कृ+तृन्। कर्+तृ। कर्तृ+सु। कर्त् अनङ्+सु। कर्तन्+सु। कर्तान्+सु। कर्तान्+०। कर्ता+०। कर्ता।

यहां तच्छील के कर्तृत्व में, वर्तमानकाल में, 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से __इस सूत्र__ से तृन् प्रत्यय है। यहां __'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'__ (७।३।८४) से 'कृ' को गुण,

'ऋदुशनस्०' (७।१।९४) से कर्तृ के 'ऋ' को 'अनङ्' आदेश, 'अप्तृन्तृच्०' (६।४।११) से तृन्नन्त नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

(२) वदिता। यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येवलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) मुण्डयितारः। मुण्डि+तृन्। मुण्डि+इट्+तृ। मुण्डे+इ+तृ। मुण्डयितृ+जस्। मुण्डयितार्+अस्। मुण्डयितारः।

यहां प्रथम 'मुण्ड' शब्द से 'मुण्डमिश्रश्लक्ष्ण०' (३।१।२१) से णिच् प्रत्यय होता है। णिजन्त 'मुण्डि' धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। यहां 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' (७।३।११०) से गुण और 'अप्तृन्तृच्०' (६।४।११) से उपधा को दीर्घ होता है।

(४) अपहर्तारः। यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) गन्ता। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'कर्ता कटान् देवदत्तः' इत्यादि प्रयोगों में 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से कर्म में षष्ठीविभक्ति प्राप्त होती है उसका 'न लोकाव्यय०' (२।३।६९) से प्रतिषेध होकर 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।

विशेष-अनुवृत्ति- 'वर्तमाने' पद की अनुवृत्ति 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) तक है। और 'तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु' पद की अनुवृत्ति 'भ्राजभास०' (३।२।१७७) तक है। अतः अनुवृत्ति सन्दर्भ में इनकी अनुवृत्ति पुनः-पुनः नहीं दिखाई जायेगी।

इष्णुच्–

(१) अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप-वृतुवृधुसहचर इष्णुच्।१३६।

प०वि०-अलङ्कृञ्-निराकृञ्-प्रजन-उत्पच-उत्पत-उन्मद-रुचि-अपत्रप-वृतु-वृधु-सह-चरः ५।१ इष्णुच् १।१।

स०-अलङ्कृञ् च निराकृञ् च प्रजनश्च उत्पचश्च उत्पतश्च उन्मदश्च रुचिश्च अपत्रपश्च वृतुश्च वृधुश्च सहश्च चर् च एतेषां समाहारः-अलङ्कृञ्०चर, तस्मात्-अलङ्कृञ्०चरः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने इष्णुच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**अलङ्कृञ्**) अलङ्करिष्णुः। (**निराकृञ्**) निराकरिष्णुः। (**प्रजनः**) प्रजनिष्णुः। (**उत्पचः**) उत्पचिष्णुः। (**उत्पतः**) उत्पतिष्णुः। (**उन्मदः**) उन्मदिष्णुः। (**रुचिः**) रोचिष्णुः। (**अपत्रपः**) अपत्रपिष्णुः। (**वृतुः**) वर्तिष्णुः। (**वृधुः**) वर्धिष्णु। (**सहः**) सहिष्णुः। (**चर्**) चरिष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अलङ्कृञ्०चरः) अलङ्कृञ्, निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद, रुचि, अपत्रप, वृतु, वृधु, सह, चर् (धातोः) धातुओं से परे (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

*उदा०-(अलङ्कृञ्) **अलङ्करिष्णुः।** मण्डन करनेवाला। (निराकृञ्) **निराकरिष्णुः।** निराकरण करनेवाला। (प्रजन) **प्रजनिष्णुः।** प्रादुर्भाव=प्रकट होनेवाला। (उत्पच) **उत्पचिष्णुः।** उत्कृष्ट पकानेवाला। (उत्पत) **उत्पतिष्णुः।** उड़नेवाला। (उन्मद) **उन्मदिष्णुः।** हर्षित होनेवाला। (रुचि) **रोचिष्णुः।** प्रदीप्त होनेवाला। (अपत्रप) **अपत्रपिष्णुः।** लज्जा करनेवाला। (वृतु) **वर्तिष्णुः।** वर्ताव करनेवाला। (वृधु) **वर्धिष्णुः।** बढ़नेवाला। (सह) **सहिष्णुः।** सहन करनेवाला। (चर्) **चरिष्णुः।** विचरण करनेवाला।*

सिद्धि-*(१) **अलङ्करिष्णुः।** यहां 'अलम्' शब्द पूर्वक **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।*

*(२) **निराकरिष्णुः।** यहां 'निर्' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है।*

*(३) **प्रजनिष्णुः।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०)।*

*(४) **उत्पचिष्णुः।** 'उत्' उपसर्गपूर्वक **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०)।*

*(५) **उत्पतिष्णुः।** 'उत्' उपसर्गपूर्वक **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **उन्मदिष्णुः।** 'उत्' उपसर्गपूर्वक **'मदी हर्षे'** (भ्वा०प०)।*

*(७) **रोचिष्णुः।** **'रुच् दीप्तौ'** (भ्वा०आ०)।*

*(८) **अपत्रपिष्णुः।** 'अप' उपसर्गपूर्वक **'त्रपूष् लज्जायाम्'** (भ्वा०आ०)।*

*(९) **वर्तिष्णुः।** **'वृतु वर्तने'** (भ्वा०आ०)।*

*(१०) **वर्धिष्णुः।** **'वृधु वृद्धौ'** (भ्वा०आ०)।*

*(११) **सहिष्णुः।** **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०)।*

*(१२) **चरिष्णुः।** **'चर गतौ'** (भ्वा०प०)।*

इष्णुच्–

(२) णेश्छन्दसि।१३७।

प०वि०–णेः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–इष्णुच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि णेर्धातोर्वर्तमाने इष्णुच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–छन्दसि विषये णि-अन्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (णेः) णिजन्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०–**दृषदं धारयिष्णवः।** पाषाण को धारण=अवस्थित करानेवाले। **वीरुधः पारयिष्णवः।** झाड़ियों को पार करानेवाले।*

*सिद्धि-(१) **धारयिष्णवः।** धृङ्+णिच्। धार्+इ। धारि+इष्णुच्। धार्+अय्+इष्णु। धारयिष्णु+जस्। धारयिष्णवः।*

यहां 'धृङ् अवस्थाने' (तु०आ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में णिच् प्रत्यय और णिजन्त 'धारि' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। 'अयामन्त०' (६।४।५५) से 'णिच्' को 'अय्' आदेश होता है।

*(२) **पारयिष्णवः।** यहां 'पॄ पालनपूरणयोः' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और णिजन्त 'पारि' धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इष्णुच्–

(३) भुवश्च।१३८।

प०वि०–भुवः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–इष्णुच्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि भुवो धातोश्च वर्तमाने इष्णुच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–छन्दसि विषये भुवो धातोरपि परो वर्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–भविष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (च) भी (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय होता है, यदि भू धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-भविष्णुः। सत्तावाला।

सिद्धि-भविष्णुः। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'भू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।

क्स्नुः (ग्स्नुः)—

(१) ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः।१३६।

प०वि०-ग्ला-जि-स्थः ५।१ च अव्ययपदम्, क्स्नुः १।१।

स०-ग्लाश्च जिश्च स्थाश्च एतेषां समाहारो ग्लाजिस्थम्, तस्मात्-ग्लाजिस्थः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इति निवृत्तम्। भुव इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ग्लाजिस्थो भुवश्च धातोर्वर्तमाने क्स्नुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-ग्लाजिस्थाभ्यो भुवश्च धातोः परो वर्तमाने काले क्स्नुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(ग्लाः) ग्लास्नुः। (जिः) जिष्णुः। (स्था) स्थास्नुः। (भूः) भूष्णुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ग्लाजिस्थः) ग्ला, जि, स्था (च) और (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्स्नुः) क्स्नु-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(ग्ला) ग्लास्नुः। ग्लानि करनेवाला। (जि) जिष्णुः। जीतनेवाला। (स्था) स्थास्नुः। ठहरनेवाला। (भू) भूष्णुः। सत्तावाला।

सिद्धि-(१) ग्लास्नुः। यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से 'ग्लै' धातु को 'आत्त्व' होता है।

(२) स्थास्नुः। यहां 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्स्नु' प्रत्यय है। यह प्रत्यय वस्तुतः 'ग्स्नु' है। 'खरि च' (८।३।५४) से ग् को चर् क् होगया है, अतः ग् का श्रवण नहीं होता है। 'ग्स्नु' प्रत्यय के 'गित्' होने से यहां 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (६।४।६६) से स्था धातु को ईत्त्व नहीं होता है।

(३) जिष्णुः। यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। 'क्ङिति च' (१।१।५) में ग् का चर्त्वभूत निर्देश मानकर गित् प्रत्यय परे होने पर गुण-वृद्धि का प्रतिषेध मानने से यहां 'जि' धातु को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है।

(४) भूष्णुः। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है।

क्नुः-

(२) त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः।१४०।

प०वि०-त्रसि-गृधि-धृषि-क्षिपेः ५।१ क्नुः १।१।

स०-त्रसिश्च गृधिश्च धृषिश्च क्षिपिश्च एतेषां समाहारः-त्रसिगृधिधृषिक्षिपि, तस्मात्-त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-त्रसिगृधिधृषिक्षिपेर्धातोर्वर्तमाने क्नुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-त्रसिगृधिधृषिक्षिपिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्नुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(त्रसिः) त्रस्नुः। **(गृधिः)** गृध्नुः। **(धृषि)** धृष्णुः। **(क्षिपिः)** क्षिप्नुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(त्रसि०क्षिपेः) त्रसि, गृधि, धृषि, क्षिपि (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्नुः) क्नु प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(त्रसि) त्रस्नुः। उद्विग्न (व्याकुल) रहनेवाला। (गृधि) गृध्नुः। लालच करनेवाला (लालची)। (धृषि) धृष्णुः। धृष्टता करनेवाला (ढीठ)। (क्षिपि) क्षिप्नुः। प्रेरणा करनेवाला।

सिद्धि-(१) त्रस्नुः। यहां 'त्रसी उद्वेगे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। 'नेड्वशि कृति' (७।२।८) से इट् आगम का प्रतिषेध होता है।

(२) गृध्नुः। यहां 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। 'क्नु' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(३) धृष्णुः। यहां 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (७।४।१) णत्व होता है।

(४) क्षिप्नुः। यहां 'क्षिप प्रेरणे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्नु' प्रत्यय है। पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

घिनुण्–

(१) शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्।१४१।

प०वि०–शमिति अव्ययपदम्, अष्टाभ्यः ५।३ घिनुण् १।१। अत्र निपातानादतनेकार्थत्वाद् इतिशब्द आद्यर्थे वर्तते। शम् इति येषामिति शमिति। इति शब्दस्याव्ययत्वाद् **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) इति सुपो लुग् भवति।

अन्वयः–शमिति–अष्टाभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने घिनुण्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–शमिति=शमादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(शम्)** शमी। **(तम्)** तमी। **(दम्)** दमी। **(श्रम्)** श्रमी। **(भ्रम)** भ्रमी। **(क्षम्)** क्षमी। **(क्लम्)** क्लमी। **(मद्)** प्रमादी, उन्मादी।

आर्यभाषा–अर्थ–(शमिति) शम् आदि (अष्टाभ्यः) आठ (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०–(शम्) **शमी**। शान्त रहनेवाला। (तम्) **तमी**। चाहनेवाला। (दम्) **दमी**। उपरत रहनेवाला। (श्रम्) **श्रमी**। तप करनेवाला। (भ्रम्) **भ्रमी**। घूमनेवाला। (क्षप्) **क्षमी**। सहन करनेवाला। (क्लम्) **क्लमी**। ग्लानि करनेवाला। (मद्) **प्रमादी**। प्रमाद करनेवाला। **उन्मादी**। उन्मादवाला (पागल)।*

*सिद्धि–(१) **शमी**। शम्+घिनुण्। शम्+इन्। शमिन्+सु। शमीन्+सु। शमी।*

*यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का **'नोदात्तोपदेश०'** (७।३।३४) से प्रतिषेध होता है। 'सौ च' (६।४।१३) से 'शमिन्' की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः **प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

*(२) **तमी**। 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०)।*

*(३) **दमी**। 'दमु उपशमे' (दि०प०)।*

*(४) **श्रमी**। 'श्रमु तपसि खेदे च' (दि०प०)।*

*(५) **भ्रमी**। 'भ्रमु अनवस्थाने' (दि०प०)।*

(६) क्षमी। 'क्षमु सहने' (दि०प०)।

(७) क्लमी। 'क्लमु ग्लानौ' (दि०प०)।

(८) प्रमादी। प्र-उपसर्गपूर्वक 'मदी हर्षे' धातु से इस सूत्र से घिनुण् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-उन्मादी।

विशेष-ये शम् आदि आठ धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में पठित हैं।

घिनुण्–

(२) सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वर-परिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीड-विविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च।१४२।

प०वि०– सम्पृच-अनुरुध-आङ्यम-आङ्यस-परिसृ-संसृज-परिदेवि-संज्वर-परिक्षिप-परिरट-परिवद-परिदह-परिमुह-दुष-द्विष-द्रुह-दुह-युज-आक्रीड-विविच-त्यज-रज-भज-अतिचर-अपचर-आमुष-अभ्याहनः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–सम्पृचश्च अनुरुधश्च आङ्यमश्च आङ्यसश्च परिसृश्च संसृजश्च परिदेविश्च संज्वरश्च परिक्षिपश्च परिरटश्च परिवदश्च परिदहश्च परिमुहश्च दुषश्च द्विषश्च द्रुहश्च दुहश्च युजश्च आक्रीडश्च विविचश्च त्यजश्च रजश्च भजश्च अतिचरश्च अपचरश्च आमुषश्च अभ्याहन् च एतेषां समाहारः-सम्पृच०अभ्याहन्, तस्मात्-सम्पृच०अभ्याहनः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सम्पृच०अभ्याहनश्च धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीलादिषु।

अर्थः–सम्पृचादिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(सम्पृचः)** सम्पर्की। **(अनुरुधः)** अनुरोधी। **(आङ्यमः)** आयामी। **(आङ्यसः)** आयासी। **(परिसृः)** परिसारी। **(संसृजः)** संसर्गी। **(परिदेविः)** परिदेवी। **(संज्वरः)** संज्वारी। **(परिक्षिपः)** परिक्षेपी। **(परिरटः)** परिराटी। **(परिदहः)** परिदाही। **(परिमुहः)** परिमोही। **(दुषः)**

दोषी। **(द्विष:)** द्वेषी। **(द्रुह:)** द्रोही। **(दुह:)** दोही। **(युज:)** योगी। **(आक्रीड:)** आक्रीडी। **(विविच:)** विवेकी। **(त्यज:)** त्यागी। **(रज:)** रागी। **(भज:)** भागी। **(अतिचर:)** अतिचारी। **(अपचर:)** अपचारी। **(आमुष:)** आमोषी। **(अभ्याहन्)** अभ्याघाती।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्पृच०अभ्याहन:) सम्पृच आदि (धातो:) धातुओं से परे (च) भी (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-**(सम्पृच) सम्पर्की।** सम्पर्कशील। **(अनुरुध) अनुरोधी।** अनुरोध करने में कुशल। **(आङ्यम) आयामी।** विस्तारशील। **(आङ्यस) आयासी।** प्रयत्नशील। **(संसृ) संसारी।** संसरणशील। **(संसृज) संसर्गी।** संसर्ग करने में कुशल। **(परिदेवि) परिदेवी।** व्याकुलधर्मा। **(संज्वर) संज्वारी।** रुग्णधर्मा। **(परिक्षिप) परिक्षेपी।** प्रेरणा में कुशल। **(परिरट) परिराटी।** रटने में कुशल। **(परिवद) परिवादी।** बोलने में कुशल। **(परिदह) परिदाही।** ज्वलनशील। **(परिमुह) परिमोही।** मोहनधर्मा। **(दुष) दोषी।** विकृतधर्मा। **(द्विष) द्वेषी।** अप्रीतिधर्मा। **(द्रुह) द्रोही।** द्रोहधर्मा। **(दुह) दोही।** दोहन में कुशल। **(युज) योगी।** समाधिधर्मा। **(आक्रीड) आक्रीडी।** खेल में कुशल। **(विविच) विवेकी।** विवेकशील। **(त्यज) त्यागी।** त्यागशील। **(रज) रागी।** रागशील। **(भज) भागी।** सेवा में कुशल। **(अतिचर) अतिचारी।** अतिगतिशील। **(अपचर) अपचारी।** दुर्गतिधर्मा। **(आमुष) आमोषी।** चोरी में कुशल। **(अभ्याहन्) अभ्याघाती।** आघात=चोट करने में कुशल।*

*सिद्धि-(१) **सम्पर्की।** यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'पृची सम्पर्चने'** (अदा०आ०) धातु से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'घिनुण्' प्रत्यय के घित् होने से **'चजो: कु घिण्ण्यतो:'** (७।३।५२) से कुत्व और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'पृच्' को लघूपध गुण होता है।*

*(२) **अनुरोधी।** अनु उपसर्गपूर्वक **'रुधिर् आवरणे'** (रुधा०प०)।*

*(३) **आयामी।** आङ् उपसर्गपूर्वक **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०)।*

*(४) **आयासी।** आङ् उपसर्गपूर्वक **'यसु प्रयत्ने'** (दि०प०)।*

*(५) **परिसारी।** परि उपसर्गपूर्वक **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **संसर्गी।** सम् उपसर्गपूर्वक **'सृज विसर्गे'** (तु०प०)।*

*(७) **परिदेवी।** परि उपसर्गपूर्वक **'देवृ देवने'** (भ्वा०आ०)।*

*(८) **संज्वारी।** सम् उपसर्गपूर्वक **'ज्वर रोगे'** (भ्वा०प०)।*

*(९) **परिक्षेपी।** परि उपसर्गपूर्वक **'क्षिप प्रेरणे'** (दि०प०)।*

*(१०) **परिराटी।** परि उपसर्गपूर्वक **'रट परिभाषणे'** (भ्वा०प०)।*

*(११) **परिदाही।** परि उपसर्गपूर्वक **'दह भस्मीकरणे'** (भ्वा०प०)।*

*(१२) **परिवादी।** परि उपसर्गपूर्वक **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०)।*

*(१३) **परिमोही।** परि उपसर्गपूर्वक **'मुह वैचित्ये'** (दि०प०)।*

*(१४) **दोषी।** **'दुष वैकृत्ये'** (दि०प०)।*

*(१५) **द्वेषी।** **'द्विष अप्रीतौ'** (अदा०प०)।*

*(१६) **द्रोही।** **'द्रुह अभिजिघांसायाम्'** (दि०प०)।*

*(१७) **दोही।** **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०)।*

*(१८) **योगी।** **'युज् समाधौ'** (दि०आ०)।*

*(१९) **आक्रीडी।** आङ् उपसर्गपूर्वक **'क्रीडृ विहारे'** (भ्वा०प०)।*

*(२०) **विवेकी।** वि उपसर्गपूर्वक **'विच्लृ पृथग्भावे'** (रुधा०प०)।*

*(२१) **त्यागी।** **'त्यज हानौ'** (भ्वा०प०)।*

*(२२) **रागी।** **'रञ्ज रागे'** (भ्वा०उ०)।*

*(२३) **भागी।** **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०उ०)।*

*(२४) **अतिचारी।** अति उपसर्गपूर्वक **'चर गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(२५) **अपचारी।** अप उपसर्गपूर्वक **'चर गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(२६) **आमोषी।** आङ् उपसर्गपूर्वक **'मुष स्तेये'** (क्र्या०प०)।*

*(२७) **अभ्याघाती।** अभि और आङ् उपसर्गपूर्वक **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) से घिनुण् प्रत्यय करने पर **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व घ् और 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से 'हन्' के 'न्' को 'त्' आदेश होता है।*

घिनुण्–

(३) वौ कषलसकत्थस्रम्भः।१४३।

प०वि०–वौ ७।१ कष-लस-कत्थ-स्रम्भः ५।१।

स०–कषश्च लषश्च कत्थश्च स्रम्भ् च एतेषां समाहारः-कषलषकत्थस्रम्भ्, तस्मात्-कषलसकत्थस्रम्भः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–वौ कषलसकत्थस्रम्भो धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीलादिषु।

अर्थः–वि-उपसर्गे उपपदे कषलसकत्थस्रम्भिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(कष)** विकाषी। **(लस)** विलासी। **(कत्थ)** विकत्थी। **(स्रम्भ)** विस्रम्भी।

आर्यभाषा-अर्थ-(वौ) वि-उपसर्ग उपपद होने पर (कष०स्रम्भ:) कष, लस, कत्थ, स्रम्भ (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(कष) **विकाषी।** हिंसा को धर्म माननेवाला (कसाई)। (लस) **विलासी।** कामक्रीडा में कुशल। (कत्थ) **विकत्थी।** श्लाघा=प्रशंसा करने में कुशल। (स्रम्भ) **विस्रम्भी।** विश्वासशील।*

*सिद्धि-(१) **विकाषी।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'कष हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से घिनुण् प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से कष् धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **विलासी।** 'लस श्लेषणक्रीडनयो:' (भ्वा०प०)।*

*(३) **विकत्थी।** 'कत्थ श्लाघायाम्' (भ्वा०आ०)।*

*(४) **विस्रम्भी।** 'स्रम्भु विश्वासे' (भ्वा०आ०)।*

घिनुण्-

(४) अपे च लष:।१४४।

प०वि०-अपे ७।१ च अव्ययपदम्, लष: ५।१।

अनु०-घिनुण्, वौ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अपे वौ च लषो धातोर्वर्तमाने घिनुण् तच्छीलादिषु।

अर्थ:-अप-उपसर्गे वि-उपसर्गे चोपपदे लष्-धातो: परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(अप) अपलाषी। **(वि)** विलाषी।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपे) अप-उपसर्ग पूर्वक (च) और (वौ) वि-उपसर्ग उपपद होने पर (लष:) लष् (धातो:) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(अप) **अपलाषी।** दुरिच्छाशील। (वि) **विलाषी।** सद्इच्छाशील।*

*सिद्धि-(१) **अपलाषी।** यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से 'लष्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **विलाषी।** वि-उपसर्गपूर्वक 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।*

घिनुण्–

(५) प्रे लपसृद्रुमथवदवसः।१४५।

प०वि०–प्रे ७।१ लप–सृ–द्रु–मथ–वद–वसः ५।१।

स०–लपश्च सृश्च द्रुश्च मथश्च वदश्च वस् च एतेषां समाहारः-लपसृद्रुमथवदवस्, तस्मात्–लपसृद्रुमथवदवसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घिनुण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रे लपसृद्रुमथवदवसो धातोर्वर्तमाने घिनुण्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–प्र–उपसर्गे उपपदे लपसृद्रुमथवदवसिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(लपः) प्रलापी। **(सृः)** प्रसारी। **(द्रुः)** प्रदावी। **(मथः)** प्रमाथी। **(वदः)** प्रवादी। **(वसः)** प्रवासी।

__आर्यभाषा-अर्थ–__(प्रे) प्र-उपसर्ग उपपद होने पर (लप०वसः) लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घिनुण्) घिनुण् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०–(लप) **प्रलापी।** प्रलापशील (बैंडनेवाला)। (सृ) **प्रसारी।** प्रसरणशील (फैलनेवाला)। (द्रु) **प्रदावी।** द्रवणशील (पिंघलनेवाला)। (मथ) **प्रमाथी।** मन्थन में कुशल। (वद) **प्रवादी।** निन्दाशील। (वस) **प्रवासी।** प्रवासधर्मा।*

*__सिद्धि–__(१) **प्रलापी।** यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'लप व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घिनुण्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'लप्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **प्रसारी।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०)। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है।*

*(३) **प्रद्रावी।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'द्रु गतौ'** (भ्वा०प०)। पूर्ववत् वृद्धि होती है।*

*(४) **प्रमाथी।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'मथ विलोडने'** (भ्वा०प०)।*

*(५) **प्रवादी।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **प्रवासी।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'वस निवासे'** (भ्वा०प०)।*

वुञ्–

(१) निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरट-परिवादिव्याभाषासूयो वुञ्।१४६।

प०वि०– निन्द-हिंस-क्लिश-खाद-विनाश-परिक्षिप-परिरट-परिवादि-व्याभाष-असूय: १।१ (पञ्चम्यर्थे) वुञ् १।१।

स०–निन्दश्च हिंसश्च क्लिशश्च खादश्च विनाशश्च परिक्षिपश्च परिरटश्च परिवादिश्च व्याभाषश्च असूय च एतेषां समाहार:-निन्द०असूय: (समाहारद्वन्द्व:)।

अन्वय:–निन्दादिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने वुञ् तच्छीलादिषु।

अर्थ:–निन्दादिभ्यो धातुभ्य: परो वर्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(निन्द:)** निन्दक:। **(हिंस:)** हिंसक:। **(क्लिश:)** क्लेशक:। **(खाद:)** खादक:। **(विनाश:)** विनाशक:। **(परिक्षिप:)** परिक्षेपक:। **(परिरट:)** परिराटक:। **(परिवादि)** परिवादक:। **(व्याभाष:)** व्याभाषक:। **(असुय:)** असूयक:।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(निन्द०असूय:) निन्द, हिंस, क्लिश, खाद, विनाश, परिक्षिप, परिरट, परिवादि, व्याभाष, असूय (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०–**(निन्द) निन्दक:।** निन्दाशील। **(हिंस) हिंसक:।** हिंसाशील। **(क्लिश) क्लेशक:।** बाधा डालने में कुशल। **(खाद) खादक:।** भक्षणशील। **(विनाश) विनाशक:।** विनाशधर्मा। **(परिक्षिप) परिक्षेपक:।** प्रेरणा में कुशल। **(परिरट) परिराटक:।** रटने में कुशल। **(परिवादि) परिवादक:।** निन्दा में कुशल। **(व्याभाष) व्याभाषक:।** विविध भाषण में कुशल। **(असु) असूयक:।** निन्दा में कुशल।*

*__सिद्धि__–(१) **निन्दक:।** यहां **'णिदि कुत्सायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'णो न:'** (६।१।६३) से धातु के 'ण्' को 'न्' और **'इदितो नुम् धातो:'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।*

(२) हिंसकः। 'हिसि हिंसायाम्' (रुधा०प०)।

(३) क्लेशकः। 'क्लिश उपतापे' (दि०आ०)। 'क्लिशू विबाधने' (क्र्या०प०)।

(४) खादकः। 'खादृ भक्षणे' (भ्वा०प०)।

(५) विनाशकः। वि उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'णश अदर्शने' (दि०प०)।

(६) परिक्षेपकः। परि उपसर्गपूर्वक 'क्षिप प्रेरणे' (तु०प०)।

(७) परिराटकः। परि उपसर्गपूर्वक 'रट परिभाषणे' (भ्वा०प०)।

(८) परिवादकः। परि उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(९) व्याभाषकः। वि और आङ् उपसर्गपूर्वक 'भाष व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।

(१०) असूयकः। 'असु उपतापे' (कण्ड्वादि)। 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' (३।१।२७) से यक् प्रत्यय और 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से असु धातु को दीर्घ होता है।

वुञ्–

(२) देविक्रुशोश्चोपसर्गे।१४७।

प०वि०–देवि-क्रुशोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

स०–देविश्च क्रुश् च तौ देविक्रुशौ, तयोः–देविक्रुशोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–वुञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्गे देविक्रुशिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने वुञ् तच्छीलादिषु।

अर्थः–उपसर्ग उपपदे देवि-क्रुशिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(देविः) आदेवकः। परिदेवकः। **(क्रुशिः)** आक्रोशकः। परिक्रोशकः।

***आर्यभाषा–अर्थ**–(उपसर्गे) उपसर्ग उपपद होने पर (देविक्रुशोः) देवि और क्रुश् (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान् तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

*उदा०–**(देवि) आदेवकः। परिदेवकः।** क्रीडा आदि कराने में कुशल। **(क्रुश्) आक्रोशकः। परिक्रोशकः।** आह्वान में कुशल।*

सिद्धि–(१) आदेवकः।** यहां आङ् उपसर्ग उपपद होने पर **णिजन्त 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'** (दि०प०) **धातु से इस सूत्र से

*'वुञ्' प्रत्यय होता है। 'णेरनिटि' (६।१।५१) से णिच् का लोप हो जाता है। ऐसे ही–**परिदेवक:।***

*(२) **आक्रोशक:।** आङ् उपसर्गपूर्वक **'क्रुश आह्वाने, रोदने च'** (भ्वा०प०)। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्रुश्' धातु को लघूपध गुण होता है। ऐसे ही–**परिक्रोशक:।***

युच्–

(१) चलनशब्दार्थादकर्मकाद् युच्।१४८।

प०वि०–चलन-शब्दार्थात् ५।१ अकर्मकात् ५।१ युच् १।१।

स०–चलनं च शब्दश्च तौ चलनशब्दौ, अर्थश्च अर्थश्च तौ **अर्थौ**, चलनशब्दावर्थौ यस्य स:-चलनशब्दार्थ:, तस्मात्–चलनशब्दार्थात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहि:)। न विद्यते कर्म यस्य स:–अकर्मक:, तस्मात्–अकर्मकात् (बहुव्रीहि:)।

अन्वय:–अकर्मकाच्चलनशब्दार्थाद् धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थ:–अकर्मकेभ्यश्चलनार्थेभ्य: शब्दार्थेभ्यश्च धातुभ्य: परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(चलनार्थ:)** चलन:। चोपन:। **(शब्दार्थ:)** शब्दन:। रवण:।

***आर्यभाषा-अर्थ**–(अकर्मकात्) अकर्मक (चलनशब्दार्थात्) चलनार्थक और शब्दार्थक (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान् तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

*उदा०–**(चलनार्थ) चलन:।** गतिशील। **चोपन:।** मन्द-गतिशील। **(शब्दार्थ:) शब्दन:।** शब्दशील। **रवण:।** शब्दशील।*

*सिद्धि–(१) **चलन:।** यहां अकर्मक **'चल गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।*

*(२) **चोपन:।** **'चुप मन्दायां गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(३) **शब्दन:।** **'शब्द शब्दने'** (चु०प०)। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से चुरादि णिच् प्रत्यय का लोप होता है।*

*(४) **रवण:।** **'रु शब्दे'** (अदा०आ०)। **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।८४) से 'रु' धातु को गुण और **'एचोऽयवायाव:'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।*

युच्–

(२) अनुदात्तेतश्च हलादेः।१४६।

प०वि०–अनुदात्तेत: ५।१ च अव्ययपदम्, हलादे: ५।१।

स०–अनुदात्त इत् यस्य स:–अनुदात्तेत्, तस्मात्–अनुदात्तेत: (बहुव्रीहि:)। हल् आदिर्यस्य स:–हलादि:, तस्मात्–हलादे: (बहुव्रीहि:)।

अनु०–अकर्मकात् युच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्मकाद् हलादेरनुदात्तेतश्च धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थः–अकर्मकाद् हलादेरनुदात्तेतश्च धातो: परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–वर्तन:। वर्धन:।

आर्यभाषा–अर्थ–(अकर्मकात्) अकर्मक (हलादे:) हलादि (अनुदात्तेत्) आत्मनेपद (धातो:) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि उस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०–**वर्तन:।** व्यवहारकुशल। **वर्धन:।** वृद्धिशील।*

*सिद्धि–(१) **वर्तन:।** यहां अकर्मक, हलादि, अनुदात्तेत् 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'वृतु' धातु को लघूपध गुण होता है।*

*(२) **वर्धन:।** 'वृधु वर्धने' (भ्वा०आ०)।*

युच्–

(३) जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः।१५०।

प०वि०– जु–चङ्क्रम्य–दन्द्रम्य–सृ–गृधि–ज्वल–शुच–लष–पत–पद: ५।१।

स०–जुश्च चङ्क्रम्यश्च दन्द्रम्यश्च सृश्च गृधिश्च ज्वलश्च शुचश्च लषश्च पतश्च पद् च एतेषां समाहार:–जु०पद्, तस्मात्–जु०पद: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०–युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-जु०पदो धातोर्वर्तमाने युच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-जु-प्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**जुः**) जवनः। (**चङ्क्रम्यः**) चङ्क्रमणः। (**दन्द्रम्यः**) दन्द्रमणः। (**सृः**) सरणः। (**गृधि**) गर्धनः। (**ज्वलः**) ज्वलनः। (**शुचः**) शोचनः। (**लषः**) लषणः। (**पतः**) पतनः। (**पदः**) पदनः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(जु०पदः) जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, सृ, गृधि, ज्वल, शुच, लष, पत, पद (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

*उदा०-**(जु) जवनः।** वेगशील। **(चङ्क्रम्य) चङ्क्रमणः।** कुटिल चलनशील। **(दन्द्रम्य) दन्द्रमणः।** कुटिल गतिशील। **(सृ) सरणः।** संसरणशील। **(ज्वल) ज्वलनः।** दीप्तिधर्मा। **(शुच) शोचनः।** शोकधर्मा। **(लष) लषणः।** कान्तिधर्मा। **(पत) पतनः।** पतनशील। **(पद) पदनः।** गतिशील।*

सिद्धि-*(१) **जवनः।** यहां **'जु वेगे'** इस सौत्र धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।२।८४) से 'जु' धातु को गुण होता है।*

*(२) **चङ्क्रमणः।** क्रम्+यङ्। क्रम्+क्रम्+य। क+क्रम्+य। क नुक्+क्रम्+य। च न्+क्रम्+य। च ं क्रम्+य। चङ्+क्रम्+य। चङ्क्रम्य+युच्। चङ्क्रम्य्+अन। चङ्क्रम्+अण। चङ्क्रमण+सु। चङ्क्रमणः।*

*यहां प्रथम **'क्रमु पादविक्षेपे'** (दि०प०) धातु से **'नित्यं कौटिल्ये गतौ'** (३।१।२३) से यङ् प्रत्यय होता है। यङन्त **'चङ्क्रम्य'** धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'क्रम्' धातु को द्वित्व, **'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य'** (७।४।७५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङ् होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास के 'क्' को 'च्' आदेश होता है। 'चङ्क्रम्य' से 'युच्' प्रत्यय करने पर **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से 'अ' का लोप और **'यस्य हलः'** (६।४।४९) से 'य्' का लोप होता है। **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से 'णत्व' हो जाता है।*

*(३) **दन्द्रमणः।** **'द्रम गतौ'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(४) **सरणः।** **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(५) **गर्धनः।** **'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्'** (दि०प०)।*

(६) ज्वलनः। 'ज्वल दीप्तौ' (भ्वा०प०)।

(७) शोचनः। 'शुच शोके' (भ्वा०प०)।

(८) लषणः। 'लष कान्तौ' (भ्वा०प०)।

(९) पतनः। 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(१०) पदनः। 'पद गतौ' (दि०आ०)।

युच्–

(४) क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च।१५१।

प०वि०–क्रुध-मण्डार्थेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्रुधश्च मण्डश्च तौ क्रुधमण्डौ, अर्थश्च अर्थश्च तौ अर्थौ, क्रुधमण्डावर्थौ, येषां ते क्रुधमण्डार्थाः, तेभ्यः-क्रुधमण्डार्थेभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्रुधमण्डार्थेभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने युच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्यः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(क्रुधार्थः) क्रोधनः। रोषणः। **(मण्डार्थः)** मण्डनः। भूषणः।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(क्रुधमण्डार्थेभ्यः) क्रुधार्थक और मण्डार्थक (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमान काल में (युच्) युच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०–__(क्रुधार्थक) क्रोधनः। रोषणः।__ क्रोधशील (क्रोधी)। __(मण्डार्थक) मण्डनः।__ __भूषणः।__ मण्डनशील (शृङ्गारी)।

__सिद्धि–(१) क्रोधनः।__ यहां __'क्रुध क्रोधे'__ (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'क्रुध्' धातु को लघूपध गुण होता है।

__(२) रोषणः। 'रुष रोषे'__ (चु०प०)। __'णेरनिटि'__ (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है।

__(३) मण्डनः। 'मडि भूषायाम्'__ (भ्वा०प०) __'इदितो नुम् धातोः'__ (७।१।५८) धातु से 'नुम्' आगम और उसे पूर्ववत् अनुस्वार तथा परसवर्ण होता है।

__(४) भूषणः। 'भूष अलङ्कारे'__ (भ्वा०प०) __'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'__ (८।४।२) से णत्व होता है।

युच्-प्रतिषेधः–

(५) न यः।१५२।

प०वि०–न अव्ययपदम्, यः ५।१।

अनु०–युच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यो धातोर्वर्तमाने युच् न तच्छीलादिषु।

अर्थः–यकारान्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–क्नूयिता। क्ष्मायिता।

आर्यभाषा-अर्थ–*(यः) यकारान्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच्-प्रत्यय (न) नहीं होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।*

उदा०–***क्नूयिता।*** *शब्दशील/क्लेदनशील।* ***क्ष्मायिता।*** *कम्पनशील।*

सिद्धि–*(१)* ***क्नूयिता।*** *यहां यकारान्त* ***'क्नूयी शब्द उन्दे च'*** *(भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय का प्रतिषेध है।* ***'अनुदात्तेतश्च हलादेः'*** *(३।२।१४९) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था, अतः 'तृन्' (३।२।१३५) से उत्सर्ग 'तृन्' प्रत्यय होता है।* ***'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'*** *(७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य* ***'कर्ता'*** *(३।२।१३५) के समान है।*

(२) ***क्ष्मायिता।*** ***'क्ष्मायी विधूनने'*** *(भ्वा०आ०)।*

युच्-प्रतिषेधः–

(६) सूददीपदीक्षश्च।१५३।

प०वि०–सूद-दीप-दीक्षः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–सूदश्च दीपश्च दीक्ष् च एतेषां समाहारः–सूददीपदीक्ष्, तस्मात्–सददीपदीक्षः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–युच्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सूददीपदीक्षो धातोश्च वर्तमाने युच् न तच्छीलादिषु।

अर्थः–सूददीपदीक्षिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(सूदः)** सूदिता। **(दीपः)** दीपिता। **(दीक्ष्)** दीक्षिता।

आर्यभाषा-अर्थ-(सूददीपदीक्षः) सूद, दीप, दीक्ष् (धातोः) धातुओं से (च) भी परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (युच्) युच् प्रत्यय (न) नहीं होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सूद) सूदिता। क्षरणशील (विनाशी)। (दीप) दीपिता। दीप्तिशील (चमकीला)। (दीक्ष) दीक्षिता। मुण्डनधर्मा, यज्ञधर्मा, उपनयनधर्मा, नियमधर्मा, व्रतधर्मा, आदेशधर्मा।

सिद्धि-(१) सूदिता। यहां 'षूद क्षरणे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' (३।२।१४९) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था। अतः 'तृन्' (३।२।१३५) से उत्सर्ग 'तृन्' प्रत्यय होता है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'तृन्' को 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य 'कर्ता' (३।२।१३५) के समान है।

(२) दीपिता। 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०)।

(३) दीक्षिता। 'दीक्ष मौण्ड्य-इज्या-उपनयन-नियम-व्रताऽऽदेशेषु' (भ्वा०आ०)।

उकञ्-

(१) लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्।१५४।

प०वि०- लष-पत-पद-स्था-भू-वृष-हन-कम-गम-शॄभ्यः ५।३ उकञ् १।१।

स०-लषश्च पतश्च पदश्च स्थाश्च भूश्च वृषश्च हनश्च कमश्च गमश्च शॄश्च ते-लष०शरः, तेभ्यः-लष०शॄभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-लष०शॄभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने उकञ् तच्छीलादिषु।

अर्थः-लषादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले उकञ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-**(लषः)** अपलाषुकं वृषलसङ्गतम्। **(पतः)** प्रपातुका गर्भा भवन्ति। **(पदः)** उपपादुकं सत्त्वम्। **(स्था)** उपस्थायुका पशवो भवन्ति। **(भूः)** प्रभावुकमन्नं भवति। **(वृषः)** प्रवर्षुकाः पर्जन्याः। **(हनः)** आघातुकं पाकलिकस्य मूत्रम्। **(कमः)** कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति। **(गमः)** आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः। **(शॄ)** किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(लष०शॄभ्यः) लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उकञ्)

उकञ् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(लष) **अपलाषुकं वृषलसङ्गतम्।** वृषल=नीच की संगति कामना के योग्य नहीं होती है। (पत) **प्रपातुका गर्भा भवन्ति।** गर्भ पतनशील होते हैं। (पद) **उपपादुकं सत्त्वम्।** द्रव्य उपपत्तिशील होता है। (स्था) **उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति।** पशु इसके प्रति उपस्थितिशील हैं। (भू) **प्रभावुकमन्नं भवति।** अन्न सामर्थ्यशील होता है। (वृष) **प्रवर्षुकाः पर्जन्याः।** बादल वर्षणशील हैं। (हनः) **आघातुकं पाकलिकस्य मूत्रम्।** ज्वर रोग से पीडित हाथी का मूत्र घातक होता है। पाकलः=हाथी का ज्वर (आप्टेकोश)। (कम) **कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति।** स्त्रियां इसके प्रति कामनाशील हैं। (गम) **आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः।** वाराणसी के प्रति आगमनशील को राक्षस कहते हैं। (पापी लोग पाप से मुक्ति के लिये वाराणसी जाते हैं, वे पापी होने से राक्षस के तुल्य हैं)। (शॄ) **किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः।** किंशारु=यव धान आदि की बाल का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है। **'किंशारुः सस्यशूकं स्या'दित्यमरः।**

सिद्धि-(१) अपलाषुकः। यहां अप उपसर्गपूर्वक **'लष कान्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उकञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'लष्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) **प्रपातुकः।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(३) **उपपादुकः।** 'उप' उपसर्गपूर्वक 'पद गतौ' (दि०आ०)।

(४) **उपस्थायुकः।** 'उप' उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०)। **'आतो युक् चिण् कृतोः'** (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

(५) **प्रभावुकः।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०)। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११६) से 'भू' को वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'आव्' आदेश होता है।

(६) **प्रवर्षुकः।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'वृष सेचने'** (भ्वा०प०)। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'वृष्' को लघूपध गुण होता है।

(७) **आघातुकः।** आङ् उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्' और **'हनस्तोऽचिण्णलोः'** (७।३।३२) से 'हन्' धातु के 'न्' को 'त्' आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(८) **आगामुकः।** आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(९) **किंशारुकः।** किम् उपपद होने पर **'शॄ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०)। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'शॄ' धातु को वृद्धि होती है।

षाकन्–

(१) जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्।१५५।

प०वि०–जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः ५।१ षाकन् १।१।

स०–जल्पश्च भिक्षश्च कुट्टश्च लुण्टश्च वृङ् च एतेषां समाहारः-जल्प०वृङ्, तस्मात्-जल्प०वृङः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–जल्प०वृङो धातोर्वर्तमाने षाकन् तच्छीलादिषु।

अर्थः–जल्पादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले षाकन् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(जल्पः)** जल्पाकः। जल्पाकी। **(भिक्षः)** भिक्षाकः। भिक्षाकी। **(कुट्टः)** कुट्टाकः। कुट्टाकी। **(लुण्टः)** लुण्टाकः। लुण्टाकी। **(वृङ्)** वराकः। वराकी।

आर्यभाषा-अर्थ-(जल्प०वृङः) जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (षाकन्) षाकन् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(जल्प) **जल्पाकः।** जल्पनशील बकवादी। जल्पाकी (स्त्री)। (भिक्ष) **भिक्षाकः।** भिक्षाधर्मा। भिक्षाकी (स्त्री)। (कुट्ट) **कुट्टाकः।** छेदन में कुशल। कुट्टाकी (स्त्री। (लुण्ट) **लुण्टाकः।** चोरी करने में कुशल (लुटेरा)। लुण्टाकी (स्त्री)। (वृङ्) **वराकः।** सम्भक्तिशील (बेचारा)। वराकी (स्त्री)।*

*सिद्धि-(१) **जल्पाकः।** यहां 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'षाकन्' प्रत्यय है। 'षाकन्' प्रत्यय के 'षित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**जल्पाकी।***

*(२) **भिक्षाकः।** 'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च' (भ्वा०आ०)।*

*(३) **कुट्टाकः।** 'कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः' (चु०प०)।*

*(४) **लुण्टाकः।** 'लुटि स्तेये' (भ्वा०प०)। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है।*

*(५) **वराकः।** 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०प०)।*

इनिः–

(१) प्रजोरिनिः।१५६।

प०वि०–प्रजोः ५।१ इनिः १।१।

अन्वयः–प्रजोर्धातोर्वर्तमाने इनिः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-प्र-उपसर्गपूर्वाद् जु-धातोः परो वर्तमाने काले इनिः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-प्रजवी। प्रजविनौ। प्रजविनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रजोः) प्र-उपसर्गपूर्वक जु (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इनिः) इनि-प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(प्र+जु) **प्रजवी।** प्रकृष्ट वेगशील (तकाजा करनेवाला)।*

*सिद्धि-**प्रजवी।** प्र+जु+इनि। प्र+जो इन्। प्रजविन्+सु। प्रजवीन्+सु। प्रजवी।*

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'जु वेगे' इस सौत्र धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जु' धातु को गुण, 'सौ च' (६।४।१३) से दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।

इनिः-

(२) जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च।१५७।

प०वि०- जि-दृ-क्षि-विश्रि-इण्-वम-अव्यथ-अभ्यम-परिभू-प्रसूभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-जिश्च दृश्च विश्रिश्च इण् च वमश्च अव्यथश्च अभ्यमश्च परिभूश्च प्रसूश्च ते जि०प्रसुवः, तेभ्यः-जि०प्रसूभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-जि०प्रसूभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने इनिः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-जि-प्रभृतिभ्यो धातुभ्योऽपि परो वर्तमाने काले इनिः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-**(जिः)** जयी। **(दृः)** दरी। **(क्षिः)** क्षयी। **(वि+श्रिः)** विश्रयी। **(इण्)** अव्ययी। **(वमः)** वमी। **(अव्यथः)** अव्यथी। **(अभ्यमः)** अभ्यमी। **(परिभूः)** परिभवी। **(प्रसूः)** प्रसवी।

आर्यभाषा-अर्थ-(जि०प्रसूभ्यः) जि, दृ, क्षि, वि+श्रि, इण्, वम, अव्यथ, अभ्यम, परिभू, प्रसू (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (इनिः) इनि-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(जि) जयी। जयशील। (दृ) दरी। आदर करने में कुशल। (क्षि) क्षयी। क्षयशील (विनाशी)। (वि-श्रि) विश्रयी। विशेष सेवा में कुशल। (इण्) अत्ययी। अतिक्रमणधर्मा। (वम) वमी। वमनशील। (अव्यथ) अव्यथी। भयशील से रहित (निर्भय)। (अभ्यम्) अभ्यमी। प्रत्यक्ष रोगधर्मा। (परिभू) परिभवी। सब ओर सत्ताशील (ईश्वर)। (प्रसू) प्रसवी। प्रकृष्ट प्रेरणा में कुशल।

सिद्धि-(१) जयी। यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जि' धातु को गुण होता है।

(२) दरी। 'दृङ् आदरे' (दि०आ०)।

(३) विश्रयी। वि-उपसर्गपूर्वक 'श्रिञ् सेवायाम्' (भ्वा०उ०)।

(४) अत्ययी। अति उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०)।

(५) वमी। 'टुवम् उद्गिरणे' (भ्वा०प०)।

(६) अव्यथी। नञ्पूर्वक 'व्यथ भयसंचलनयोः' (भ्वा०आ०)।

(७) अभ्यमी। अभि उपसर्गपूर्वक 'अम रोगे' (भ्वा०प०)।

(८) अभ्यमी। परि उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।

(९) प्रसवी। प्र उपसर्गपूर्वक 'षू प्रेरणे' (तु०प०)।

आलुच्–

(१) स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्।१५८।

प०वि०-स्पृहि-गृहि-पति-दयि-निद्रा-तन्द्रा-श्रद्धाभ्यः ५।३ आलुच् १।१।

स०-स्पृहिश्च गृहिश्च पतिश्च दयिश्च निद्राश्च तन्द्राश्च श्रद्धाश्च ते स्पृहि०श्रद्धाः, तेभ्यः-स्पृहि०श्रद्धाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-स्पृहि०श्रद्धाभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने आलुच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-स्पृहिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले आलुच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-**(स्पृहिः)** स्पृहयालुः। **(गृहिः)** गृहयालुः। **(पतिः)** पतयालुः। **(दयिः)** दयालुः। **(नि-द्रा)** निद्रालुः। **(तन्-द्रा)** तन्द्रालुः। **(श्रद्-धा)** श्रद्धालुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्पृहि०श्रद्धाभ्यः) स्पृहि, गृहि, पति, दयि, नि-द्रा, तन्-द्रा, श्रद्-धा (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (आलुच्) आलुच् प्रत्यय होता है, यदि इनका कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

उदा०-(स्पृहि) स्पृहयालुः । ईप्साशील । (गृहि) गृहयालुः । ग्रहणशील । (पति) पतयालुः । गतिशील । (दयि) दयालुः । दानशील । (नि-द्रा) निद्रालुः । शयनशील । (तन्-द्रा) तन्द्रालुः । तन्द्राशील (आलसी) । (श्रद्‌धा) श्रद्‌धालुः । श्रद्धाशील ।

सिद्धि-(१) स्पृहयालुः । स्पृहि+आलुच् । स्पृह् अय्+आलु । स्पृहयालु+सु । स्पृहयालुः ।

यहां 'स्पृह ईप्सायाम्' (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'आलुच्' प्रत्यय है। 'स्पृह' धातु चुरादिगण में अदन्त पठित है। प्रथम 'स्पृह' धातु से चुरादि 'णिच्' प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'स्पृह' के 'अ' का लोप होता है, 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' (१।१।५६) से अ-लोप को स्थानिवत् मानकर 'स्पृह्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त गुण नहीं होता है। 'स्पृह' धातु से आलुच् प्रत्यय परे होने पर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप न होकर उसे 'अयामन्ता०' (६।४।५५) से 'अय्' आदेश होता है।

(२) गृहयालुः । 'गृह ग्रहणे' (चु०आ०)।

(३) पतयालुः । 'पत गतौ' (चु०उ०)।

(४) दयालुः । 'दय दानगतिरक्षणहिंसाऽऽदानेषु' (भ्वा०आ०)। यहां 'दयि' में इकार धातुनिर्देशार्थ है, णिच् नहीं है।

(५) निद्रालुः । नि-उपसर्गपूर्वक 'द्रा कुत्सायाम्' (अदा०प०)।

(६) तन्द्रालुः । तत् उपपद होने पर पूर्वोक्त 'द्रा' धातु, 'तत्' के 'त्' को निपातन से 'न्' आदेश होता है।

(७) श्रद्धालुः । श्रत् उपपद होने पर 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।

रुः-

(१) दाधेट्सिशदसदो रुः ।१५६।

प०वि०-दा-धेट्-सि-शद-सदः ५।१ रुः १।१।

स०-दाश्च धेट् च सिश्च शदश्च सद् च एतेषां समाहारः-दाधेट्सिशदसद्, तस्मात्-दाधेट्सिशदसदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-दाधेट्सिशदसदो वर्तमाने रुः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-दाधेट्सिशदसद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले रुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(दाः) दारुः । **(धेट्)** धारुः । **(सिः)** सेरुः । **(शदः)** शद्रुः । **(सद्)** सद्रुः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(दा०सदः) दा, धेट्, सि, शद, सद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (रुः) रु-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(दा) दारुः। दानधर्मा। (धेट्) धारुः। पानशील। (सि) सेरुः बन्धनशील/बन्धन-में कुशल। (शद) शद्रुः। तीक्ष्ण करने में कुशल। (सद्) सद्रुः। अवसादशील, अवसाद=शोक।

सिद्धि-(१) दारुः। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'रु' प्रत्यय है।

(२) धारुः। 'धेट् पाने' (भ्वा०प०)। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातु को आत्त्व होता है।

(३) सेरुः। 'षिञ् बन्धने' (स्वा०उ०)। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सि' धातु को गुण होता है।

(४) शद्रुः। 'शद्लृ शातने' (भ्वा०प०) {तीक्ष्ण करना}।

(५) सद्रुः। 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०)।

क्मरच्–

(१) सृघस्यदः क्मरच्।१६०।

प०वि०-सृ-घसि-अदः ५।१ क्मरच् १।१।

स०-सृश्च घसिश्च अद् च एतेषां समाहारः-सृघस्यद्, तस्मात्-सृघस्यदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सृघस्यदो धातोर्वर्तमाने क्मरच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-सृघस्यद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्मरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**सृः**) सृमरः। (**घसिः**) घस्मरः। (**अद्**) अद्मरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सृघस्यदः) सृ, घसि, अद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्मरच्) क्मरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सृ) सृमरः। गतिशील (मृगविशेष)। (घसि) घस्मरः। भक्षणशील (खाऊ)। (अद्) अद्मरः। भक्षणशील (खाऊ)।

सिद्धि-(१) सृमरः। यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्मरच्' प्रत्यय है। 'क्मरच्' प्रत्यय के 'कित्' होने से 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८५) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।

(२) घस्मरः । 'घस्लृ अदने' (भ्वा०प०)।

(३) अद्मरः । 'अद् भक्षणे' (अदा०प०)।

घुरच्–

(१) भञ्जभासमिदो घुरच्।१६१।

प०वि०–भञ्ज-भास-मिदः ५।१ घुरच् १।१।

स०–भञ्जश्च भासश्च मिद् च एतेषां समाहारः-भञ्जभासमिद्, तस्मात्-भञ्जभासमिदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–भञ्जभासमिदो धातोर्वर्तमाने घुरच्, तच्छीलादिषु।

अर्थः–भञ्जभासमिद्भ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले घुरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(भञ्जः)** भङ्गुरं काष्ठम्। **(भासः)** भासुरं ज्योतिः। **मिद्)** मेदुरः पशुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भञ्जभासमिदः) भञ्ज, भास, मिद् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (घुरच्) घुरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

*उदा०-**(भञ्ज) भङ्गुरं काष्ठम्।** भग्नशील लकड़ी। **(भास) भासुरं ज्योतिः।** दीप्तिशील ज्योति। **(मिद्) मेदुरः पशुः।** मेदशील पशु। मेद=चर्बी।*

*सिद्धि-**(१) भङ्गुरम्।** यहां **'भञ्जो आमर्दने'** (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घुरच्' प्रत्यय है। 'घुरच्' प्रत्यय के घित् होने से **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) से 'भञ्ज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' होता है। **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' हो जाता है।*

*(२) **भास्वरम्। 'भासृ दीप्तौ'** (भ्वा०आ०)।*

*(३) **मेदुरः। 'ञिमिदा स्नेहने'** (भ्वा०आ०)। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'मिद्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

कुरच्–

(१) विदिभिदिच्छिदेः कुरच्।१६२।

प०वि०–विदि-भिदि-च्छिदेः ५।१ कुरच् १।१।

स०–विदिश्च भिदिश्च छिदिश्च एतेषां समाहारः-विदिभिदिच्छिदि, तस्मात्-विदिभिदिच्छिदेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-विदिभिदिच्छिदेर्धातोर्वर्तमाने कुरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-विदिभिदिच्छिदिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले कुरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(विदिः) विदुरः पण्डितः। **(भिदिः)** भिदुरं काष्ठम्। **(छिदिः)** छिदुरा रज्जुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(विदिभिदिच्छिदेः) विदि, भिदि, छिदि (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (कुरच्) कुरच् प्रत्यय होता है, यदि धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(विदि) **विदुरः पण्डितः।** ज्ञानशील पण्डित। (भिदि) **भिदुरं काष्ठम्।** भेदनशील (फटनेवाला) काठ। (छिदि) **छिदुरा रज्जुः।** छेदनशील (टूटनेवाली) रस्सी।*

*सिद्धि-(१) **विदुरः।** यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कुरच्' प्रत्यय है। 'कुरच्' प्रत्यय के कित् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।*

*(२) **भिदुरम्।** 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०)।*

*(३) **छिदुरा।** 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०)। स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

क्वरप्-

(१) इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप्।१६३।

प०वि०-इण्-नश्-जि-सर्तिभ्यः ५।३ क्वरप् १।१।

स०-इण् च नश् च जिश्च सर्तिश्च ते-इण्नश्जिसर्तयः, तेभ्यः-इण्नश्जिसर्तिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-इण्नश्जिसर्तिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने क्वरप्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-इण्नश्जिसर्तिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्वरप् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(इण्) इत्वरः। इत्वरी (स्त्री)। **(नश्) नश्वरः।** नश्वरी (स्त्री)। **(जि) जित्वरः।** जित्वरी (स्त्री)। **(सर्तिः) सृत्वरः।** सृत्वरी (स्त्री)।

आर्यभाषा-अर्थ-(इण्नशूजिसर्तिभ्यः) इण्, नश्, जि, सर्ति (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्वरप्) क्वरप् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(इण्) इत्वरः। गमनशील। इत्वरी (स्त्री)। (नश्) नश्वरः। विनाशशील। नश्वरी (स्त्री)। (जि:) जित्वरः। जीतने में कुशल। जित्वरी (स्त्री)। (सर्ति) सृत्वरः। गतिशील। सृत्वरी (स्त्री)।

सिद्धि-(१) इत्वरः। यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वरप्' प्रत्यय है। 'क्वरप् प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त गुण का प्रतिषेध होता है और प्रत्यय के पित् होने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'इण्' धातु को 'तुक्' आगम होता है। यहां सर्वत्र स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-इत्वरी।

(२) नश्वरः। 'णश अदर्शने' (दि०प०)।

(३) जित्वरः। 'जि जये' (भ्वा०प०) पूर्ववत् तुक् आगम होता है।

(४) सृत्वरः। 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) पर्वूवत् तुक् आगम होता है।

क्वरप् (निपातनम्)–

(२) गत्वरश्च।१६४।

प०वि०-गत्वरः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-क्वरप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-गत्वर इति च क्वरप्-प्रत्ययान्तो वर्तमाने काले निपात्यते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-गत्वरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(गत्वरः) गत्वर शब्द (च) भी (क्वरप्) क्वरप् प्रत्ययान्त (वर्तमाने) वर्तमानकाल में निपातित किया है, यदि इस की धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-गत्वरः। गमनशील।

सिद्धि-गत्वरः। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्वरप्' प्रत्यय है। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (६।४।१५) से अप्राप्त अनुनासिक-लोप, इस निपातन से किया जाता है। अनुनासिक-लोप के पश्चात् 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से धातु को 'तुक्' आगम होता है।

ऊकः–

(१) जागुरूकः ।१६५।

प०वि०–जागुः ५ ।१ ऊकः १ ।१।

अन्वयः–जागुर्धातोर्वर्तमाने ऊकः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–जागृ-धतोः परो वर्तमाने काले ऊकः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–जागरूकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(जागुः) जागृ (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ऊकः) ऊक प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०–जागरूकः। जागरणशील (जागू)।

सिद्धि-जागरूकः। यहां 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ऊक' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'जागृ' धातु को गुण होता है।

ऊकः–

(२) यजजपदशां यङः ।१६६।

प०वि०–यज-जप-दशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) यङः ५।१।

स०–यजश्च जपश्च दश् च ते-यजजपदशः, तेषाम्-यजजपदशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ऊक इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यङ्भ्यो यजजपदशिभ्यो धातुभ्यो वर्तमाने ऊकः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–यङ्प्रत्ययान्तेभ्यो यजजपदशिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले ऊकः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(यजः)** यायजूकः। **(जपः)** जञ्जपूकः। **(दश्)** दन्दशूकः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यङः) यङ् प्रत्ययान्त (यजजपदशाम्) यज, जप, दश् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ऊकः) ऊक-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(यज) यायजूकः। अति यज्ञधर्मा। (अप) जञ्जपूकः। गर्हित जपधर्मा। (दश्) दन्दशूकः। गर्हित दशनशील (डसनेवाला)।

सिद्धि-(१) यायजूकः। यज्+यङ्। यज्+यज्+य। य+यज्+य। यायज्य+ऊक। यायज्य्+ऊक। यायाज्+ऊक। यायजूक+सु। यायजूकः।

यहां प्रथम 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'यङ्' प्रत्यय होने पर 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'यज्' धातु को द्वित्व और 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। यङन्त 'यायज्य' धातु से इस सूत्र से 'ऊक' प्रत्यय करने पर 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' का लोप और 'यस्य हलः' (६।४।४९) से 'य्' का लोप होता है।

(२) जञ्जपूकः। 'जप व्यक्तायां वाचि, मानसे च' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम 'लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्' (३।१।२४) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'जपजभदहदशभञ्जपशां च' (७।४।८६) से 'जप' के अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) दन्दशूकः। यहां 'दशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०) धातु से प्रथम 'लुपसदचर०' (३।१।२४) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। 'जपजभ०' (७।४।८६) से 'दश' के अभ्यास को नुक् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

रः–

(१) नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः।१६७।

प०वि०–नमि-कम्पि-स्मि-अजस-कम-हिंस-दीपः ५।१ रः १।१।

स०–नमिश्च कम्पिश्च स्मिश्च अजसश्च कमश्च हिंसश्च दीप् च एतेषां समाहारः-नमि०दीप्, तस्मात्-नमि०दीपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–नमि०दीपो धातोर्वर्तमाने रः, तच्छीलादिषु।

अर्थः–नमिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले रः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–**(नमिः)** नम्रं काष्ठम्। **(कम्पिः)** कम्प्रा शाखा। **(स्मिः)** स्मेरं मुखम्। **(अजसः)** अजस्रं जुहोति यज्ञदत्तः। **(कमः)** कम्रा युवतिः। **(हिंसः)** हिंस्रं रक्षः। **(दीप्)** दीप्रं काष्ठम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नमि०दीपः) नमि, कम्पि, स्मि, अजस, कम, हिंस, दीप् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (रः) र-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(नमि) **नम्रं काष्ठम्।** नमनशील काठ। (कम्पि) **कम्प्रा शाखा।** कम्पनशील शाखा। (स्मि) **स्मेरं मुखम्।** ईषद्-हसनशील मुख। (अजस) **अजस्रं जुहोति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त निरन्तर यज्ञ करता है। (कम) **कम्रा युवतिः।** कामनाशील युवति। (हिंस) **हिंस्रं रक्षः।** हिंसाशील राक्षस। (दीप्) **दीप्रं काष्ठम्।** ज्वलनशील काठ।*

*सिद्धि-(१) **नम्रः।** यहां **'णम प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है।*

*(२) **कम्प्रः।** 'कपि चलने' (भ्वा०आ०) **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।*

*(३) **स्मेरः।** **'ष्मिङ् ईषद्हसने'** (भ्वा०आ०) **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से धातु को गुण होता है।*

*(४) **अजस्रः।** नञ्पूर्वक 'जसु मोक्षणे' (दि०प०)।*

*(५) **कम्रः।** 'कमु कान्तौ' (भ्वा०आ०)। **'कमेर्णिङ्'** (३।१।३०) से 'णिङ्' और उसका **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से लोप होता है।*

*(६) **हिंस्रः।** **'हिसि हिंसायाम्'** (रुधा०प०) **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।*

*(७) **दीप्रः।** 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०)।*

उः-

(१) सनाशंसभिक्ष उः।१६८।

प०वि०-सन्-आशंस-भिक्षः ५।१ उः १।१।

स०-सन् च आशंसश्च भिक्ष् च एतेषां समाहारः-सनाशंसभिक्ष् तस्मात्-सनाशंसभिक्षः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सनाशंसभिक्षो धातोर्वर्तमाने उः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-सन्नन्तेभ्यो आशंस-भिक्षिभ्यां च धातुभ्यां परो वर्तमाने काले उः-प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(सन्नन्तः) चिकीर्षुः। जिहीर्षुः। **(आशंसः)** आशंसुः। **(भिक्ष्)** **भिक्षुः।**

आर्यभाषा-अर्थ-(सनाशंसभिक्ष:) सन्नत धातु और आशंस तथा भिक्ष् (धातो:) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उ:) उ-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(सन्नन्त:) चिकीर्षु:। करने का इच्छुक। जिहीर्षु:। हरने का इच्छुक। (आशंस) आशंसु:। इच्छुक। (भिक्ष्) भिक्षु:। भिक्षाधर्मा।

सिद्धि-(१) चिकीर्षु:। यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय होता है। सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय होता है। 'चिकीर्ष' की सिद्धि 'धातो: कर्मण:०' (३।१।७) में देख लेवें।

(२) जिहीर्षु:। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) आशंसु:। 'आङ: शसि इच्छायाम्' (भ्वा०आ०)। 'इदितो नुम् धातो:' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।

(४) भिक्षु:। 'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च' (भ्वा०आ०)।

उ: (निपातनम्)–

(२) विन्दुरिच्छु:।१६६।

प०वि०-विन्दु: १।१ इच्छु: १।१।

अनु०-उरित्यनुवर्तते।

अर्थ:-विन्दु:, इच्छु:-इत्येतौ शब्दौ उ-प्रत्ययान्तौ वर्तमाने काले निपात्येते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-विन्दु:, वेदनशील:। इच्छु:, एषणशील:।

आर्यभाषा-अर्थ-(विन्दुरिच्छु:) विन्दु और इच्छु शब्द (उ:) उ-प्रत्ययान्त (वर्तमाने) वर्तमानकाल में निपातित किये हैं, यदि इनकी धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-विन्दु:। ज्ञानशील। इच्छु:। इच्छाशील।

सिद्धि-(१) विन्दु:। यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है और 'इदितो नुम् धातो:' (७।१।५८) से अप्राप्त 'नुम्' आगम इस निपातन से किया जाता है।

(२) इच्छु:। यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है। 'इषुगमियमां छ:' (७।३।७७) से अप्राप्त 'छ्' आदेश इस निपातन से किया जाता है।

उः--

(३) क्याच्छन्दसि।१७०।

प०वि०-क्यात् ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-उरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि क्याद् धातोर्वर्तमाने उः, तच्छीलादिषु।

अर्थः-छन्दसि विषये क्य-प्रत्ययान्ताद् धातोः परो वर्तमाने काले उः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु। **'क्यात्'** इत्यत्र-क्यच्-क्यष्-क्यङ्प्रत्ययानां सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-**(क्यच्)** मित्रयुः। **देवयुः** (ऋ० ४।१।७)। **(क्यष्)** संस्वेदयुः। **(क्यङ्)** सुम्नयुः (ऋ० ७।१।१०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (क्यात्) क्य-प्रत्ययान्त (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उः) उ-प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो। यहां 'क्यात्' से क्यच्, क्यष्, क्यङ् प्रत्ययों का समानता से ग्रहण किया जाता है।

*उदा०-**(क्यच्) मित्रयुः।** अपने मित्र का इच्छुक। 'देवयुः' (ऋ० ४।१।७) अपने देवता का इच्छुक। **(क्यष्) संस्वेदयुः।** संस्वेदनशील (पसीजनेवाला)। **(क्यङ्)** सुम्नयुः (ऋ० ७।१।१०)। सुम्न=उत्तम अभ्यासी के समान आचरणधर्मा।*

*सिद्धि-(१) **मित्रयुः।** यहां प्रथम 'मित्र' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय होता है। 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर **'क्यचि च'** (७।४।३३) से प्राप्त ईत्व का **'न च्छन्दस्यपुत्रस्य'** (७।४।३५) से प्रतिषेध होता है। क्यजन्त 'मित्रय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है। मित्रय+उ। मित्रयु+सु। मित्रयुः। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से 'अ' लोप होता है। देव शब्द से-**देवयुः।***

*(२) **संस्वेदयुः।** यहां प्रथम 'संस्वेद' शब्द से **'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्'** (३।१।१३) से 'क्यष् प्रत्यय होता है। क्यषन्त 'संस्वेदय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है।*

*(३) **सुम्नयुः।** यहां प्रथम 'सुम्न' शब्द से **'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च'** (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। क्यङन्त 'सुम्नय' धातु से इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय है।*

किः+किन्--

(१) आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च।१७१।

प०वि०-आत्-ऋ-गम-हन-जनः ५।१ कि-किनौ १।२ लिट् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आच्च ऋृश्च गमश्च हनश्च जन् च एतेषां समाहार:-आदृगमहनजन् तस्मात्-आदृगमहनजन: (समाहारद्वन्द्व:)।

अन्वय:-छन्दसि आदृगमहनजनो धातोर्वर्तमाने किकिनौ लिट् च तच्छीलादिषु।

अर्थ:-छन्दसि विषये आकारान्तेभ्य ऋकारान्तेभ्यो गमहनजनिभ्यश्च धातुभ्य: परो वर्तमाने काले कि-किनौ प्रत्ययौ भवत:, लिड्वच्च कार्यं भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**आत्**) पपि: सोमम्, ददिर्गा: (ऋ० ६।२३।२४)। (**ऋकारान्त:**) मित्रावरुणौ ततुरि:। दूरे ह्यध्वा जगुरि: (ऋ० १०।१०८।१)। (**गम:**) जग्मिर्युवा (ऋ० ७।२०।१)। (**हन:**) जघ्निर्वृत्रम्। (**जन:**) जज्ञिर्बीजम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(छन्दसि) वेदविषय में (आद्०जन:) आकारान्त, ऋकारान्त और गम, हन, जन् (धातो:) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (किकिनौ) कि और किन् प्रत्यय होते हैं (च) और इनको (लिट्) लिट् लकार के समान द्विर्वचन रूप कार्य होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा और तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(**आकारान्त**) **पपि: सोमम्, ददिर्गा:** (ऋ० ६।२३।२४)। सोमपानशील। गोदानधर्मा। (**ऋकारान्त**) **मित्रावरुणौ ततुरि:**। ततुरि=तरणशील। (**गम**) **दूरे ह्यध्वा जगुरि:**। जगुरि=निगरणशील। (**गम**) **जग्मिर्युवा** (ऋ० ७।२०।१)। गमनशील युवक। (**हन**) **जघ्निर्वृत्रम्**। वृत्र के हनन में कुशल। (**जन्**) **जज्ञिर्बीजम्**। बीज के उत्पादन में साधु।*

*__सिद्धि__-(१) **पपि:**। यहां **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'पा' धातु के आ का लोप होता है। **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से आ-लोप को स्थानिवत् मानकर 'पा' धातु को द्वित्व होता है।*

*(२) **ददि:**। **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **ततुरि:**। **'तॄ प्लवनसन्तरणयो:'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र कि प्रत्यय है। **'बहुलं छन्दसि'** (७।१।१०३) से उत्व और **'उरण् रपर:'** (१।१।५०) से रपरत्व होता है। **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से पूर्ववत् स्थानिवद्भाव मानकर 'तॄ' शब्द को द्वित्व होता है। **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास के ऋ को 'अ' आदेश होता है।*

*(४) **जगुरि:**। **'गॄ निगरणे'** (तु०प०)।*

*(५) **जग्मि:**। **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) **'गमहनजन०'** (६।४।९८) से 'गम्' धातु का उपधा-लोप होता है।*

(६) जज्ञिः। 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'जन' धातु का उपधा-लोप तथा 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से 'जन्' के 'न्' को चवर्ग ञ् होता है।

विशेष-'कि' और 'किन्' प्रत्यय के शब्दरूप समान होते हैं। 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'कि' प्रत्यय आद्युदात्त है और 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से किन्-प्रत्ययान्त शब्द आद्युदात्त होता है। यह स्वरविधान में भिन्नता है।

नजिङ्–

स्वपितृषोर्नजिङ्।१७२।

प०वि०-स्वपितृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) नजिङ् १।१।

स०-स्वपिश्च तष् च तौ स्वपितृषौ, तयोः-स्वपितृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसीति निवृत्तम्।

अन्वयः-स्वपितृषिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने नजिङ्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-स्वपितृषिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले नजिङ् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(**स्वपिः**) स्वप्नक्। (**तृष्**) तृष्णक्।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वपितृषोः) स्वपि और तृष् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (नजिङ्) नजिङ् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(स्वपि) स्वप्नक्। शयनशील। (तृष्) तृष्णक्। पिपासु।

सिद्धि-(१) स्वप्नक्। स्वप्+नज्। स्वप्नज्+सु। स्वप्नग्, स्वप्नक्।

यहां 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'नजिङ्' प्रत्यय है। स्वप्+नजिङ् 'सु' का लोप, 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'ज्' को कवर्ग 'ग्' और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'ग्' को चर् क् होता है।

(२) तृष्णक्। 'ञितृष पिपासायाम्' (दि०प०) 'वा०-ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' (७।४।१) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

आरुः–

(१) शृवन्द्योरारुः।१७३।

प०वि०-शृ-वन्द्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) आरुः १।१।

स०-शृश्च वन्दिश्च तौ शृवन्दी तयो:-शृवन्द्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-शृवन्दिभ्यां धातुभ्यां वर्तमाने आरुः, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

अर्थः-शृवन्दिभ्यां धातुभ्यां परो वर्तमाने काले आरुः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(शृः) शरारुः। **(वन्दिः)** वन्दारुः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(शृवन्द्योः) शृ और वन्दि (धातोः) धातुओं से पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (आरुः) आरु प्रत्यय होता है, यदि न धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।*

*उदा०-**(शृ) शरारुः।** हिंसाशील। **(वन्दि) वन्दारुः।** अभिवादन/स्तुति धर्मा।*

***सिद्धि-(१) शरारुः।** यहां **'शृ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'आरु' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'शृ' धातु को गुण होता है।*

***(२) वन्दारुः।** यहां **'वदि अभिवादनस्तुत्योः'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'आरु' प्रत्यय है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है।*

क्रुक्+क्लुकन्-

(१) भियः क्रुक्क्लुकनौ।१७४।

प०वि०-भियः ५।१ क्रुक्-क्लुकनौ १।२।

स०-क्रुश्च क्लुकन् च तौ-क्रुक्क्लकनौ, (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-भियोर्धातोर्वर्तमाने क्रुक्-क्लुकनौ, तच्छीलादिषु।

अर्थः-भी-धातोः परो वर्तमाने काले क्रुक्लुकनौ प्रत्ययौ भवतः, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(क्रुक्) भीरुः **(क्लुकन्)** भीलुकः।

***आर्यभाषा-अर्थः**-(भियः) भी (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्रुक्लुकनौ) क्रु और क्लुकन् प्रत्यय होते है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।*

*उदा०-**(क्रुक्) भीरुः। (क्लुकन्) भीलुकः।** भयशील (डरपोक)।*

सिद्धि-भीरुः।** यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**भीलुकः।

वरच्–

(१) स्थेशभासपिसकसो वरच्।१७५।

प०वि०–स्था-ईश-भास-पिस-कसः ५।१ वरच् १।१।

स०–स्थाश्च ईशश्च भासश्च पिसश्च कस् च एतेषां समाहारः-स्थेशभासपिसकस्, तस्मात्-स्थेशभासपिसकसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-स्थेशभासपिसकसो धातोर्वर्तमाने वरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-स्थेशभासपिसकसिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-**(स्थाः)** स्थावरः। **(ईशः)** ईश्वरः। **(भास्)** भास्वरः। **(पिसः)** पेश्वरः। **(कस्)** विकस्वरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्थेशभासपिसकसः) स्था, ईश, भास, पिस, कस् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वरच्) वरच् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

*उदा०-(स्था) **स्थावरः**। स्थितिशील। (ईश) **ईश्वरः**। ऐश्वर्यशील। (भास) **भास्वरः**। दीप्तिशील। (पिस) **पेस्वरः**। गतिशील। (कस्) **विकस्वरः**। विकासशील।*

*सिद्धि-(१) **स्थावरः**। यहां 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'वरच्' प्रत्यय है।*

*(२) **ईश्वरः**। 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०)।*

*(३) **भास्वरः**। 'भासृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।*

*(४) **पेस्वरः**। 'पिसृ गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(५) **विकस्वरः**। वि उपसर्गपूर्वक 'कस गतौ' (भ्वा०प०)।*

वरच्–

(२) यश्च यङः।१७६।

प०वि०–यः ५।१ च अव्ययपदम्, यङः ५।१।

अनु०–वरच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यङो यश्च धातोर्वर्तमाने वरच् तच्छीलादिषु।

अर्थः-यङन्ताद् या-धातोरपि परो वर्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-यायावरः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यङः)-यङ् प्रत्ययान्त (यः) या धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (वरच्) वरच् प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-यायावरः। अति प्राप्तिशील (घुमक्कड़)।

सिद्धि-यायावरः। यहां प्रथम 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय होता है। यङन्त 'यायाय' धातु से इस सूत्र से 'वरच्' प्रत्यय है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से 'अ' का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है।

क्विप्-

(१) भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्।१७७।

प०वि०- भ्राज-भास-धुर्वि-द्युत-ऊर्जि-पृ-जु-ग्रावस्तुवः ५।१ क्विप् १।१।

स०-भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पृश्च जुश्च ग्रावस्तुश्च एतेषां समाहारः-भ्राज०ग्रावस्तु, तस्मात्-भ्राज०ग्रावस्तुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-भ्राज०स्तुवो धातोर्वर्तमाने क्विप्, तच्छीलादिषु।

अर्थः-भ्राजादिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०-(भ्राजः) विभ्राट्। **(भासः)** भाः। **(धुर्वि)** धूः। **(द्युतः)** विद्युत्। **(ऊर्जिः)** ऊर्क्। **(पॄः)** पूः। **(जुः)** जूः। **(ग्रावस्तुः)** ग्रावस्तुत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भ्राज०ग्रावस्तुत्) भ्राज, भास, धुर्वि, द्युत, ऊर्जि, पॄ, जु, ग्रावस्तु (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है, यदि इन धातुओं का कर्ता (तच्छील०) तच्छीलवान्, तद्धर्मा वा तत्साधुकारी हो।

उदा०-(भ्राज) विभ्राट्। दीप्तिशील। (भास) भाः। दीप्तिशील। (धुर्वि) धूः। हिंसाशील। (ऊर्जि) ऊर्क्। बल एवं प्राणशील। (पॄ) पूः। पालन-पूरणशील। (जु) जूः। वेगशील। (ग्रावस्तु) ग्रावस्तुत्। पाषाण स्तुतिधर्मा (मूर्तिपूजक)।

सिद्धि-(१) विभ्राट्। यहां 'भ्राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से 'भ्राज्' के 'ज्' को 'ष्' और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'ष्' को जश् ड् तथा 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ड् को चर् ट् होता है।

(२) भाः। 'भासृ दीप्तौ' 'क्विप्' प्रत्यय का पूर्ववत् सर्वहारी लोप होकर 'भास्' के 'स्' को 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से रुत्व और रु को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है।

(३) धूः। 'धुर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०) यहां 'राल्लोपः' (६।४।२१) से धातु के व् का लोप और 'र्वोरुपधाया: दीर्घ इकः' (८।२।७६) से इक् (उ) को दीर्घ होता है।

(४) विद्युत्। वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०)।

(५) ऊर्क्। 'ऊर्ज बलप्राणनयोः' (चु०प०) 'चोः कुः' (८।२।३०) से ज् को कुत्व ग् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है।

(६) पूः। 'पॄ पालनपूरणयोः' (क्र्या०प०) 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से ॠ के स्थान में उ-आदेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व और 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' (८।२।७६) से दीर्घ होता है।

(७) जूः। 'जु वेगे' सौत्र धातु को निपातन से दीर्घ होता है।

(८) ग्रावस्तुत्। यहां 'ग्राव' शब्द उपपद होने पर 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है।

क्विप्–

(२) अन्येभ्योऽपि दृश्यते।१७८।

प०वि०–अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०–क्विप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो वर्तमाने क्विप् दृश्यते तच्छीलादिषु।

अर्थः–अन्येभ्योऽपि धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो दृश्यते, तच्छीलादिषु कर्तृषु।

उदा०–(भिद्) भित्। **(छिद्)** छित्। **(युज्)** युक् इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ–(अन्येभ्यः) अन्य=पूर्वोक्त से भिन्न (धातोः) धातुओं से (अपि) भी परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

*उदा०–**(भिद्) भित्।** भेदन में कुशल। **(छिद्) छित्।** छेदन में कुशल। **(युज्) युक्।** योगधर्मा।*

सिद्धि–(१) भित्। *यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से सर्वहारी लोप होता है। भिद्+सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से 'भिद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।*

(२) छित्। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) पूर्ववत्।

(३) युक्। 'युज समाधौ' (दि०आ०)। 'चोः कुः' (८।२।३०) से युज् के ज् को कुत्व ग् और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से ग् को चर् क् होता है।

इति तच्छीलादिकर्तृप्रकरणम्।

क्विप्–

(१) भुवः संज्ञान्तरयोः।१७६।

प०वि०–भुवः ५।१ संज्ञा–अन्तरयोः ७।२।

स०–संज्ञा च अन्तरश्च तौ संज्ञान्तरौ, तयोः–संज्ञाऽन्तरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–क्विप् इत्यनुवर्तते। तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु इति निवृत्तम्।

अन्वयः–भुवो धातोर्वर्तमाने क्विप् संज्ञान्तरयोः।

अर्थः–भू–धातोः परो वर्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो भवति, संज्ञायाम् अन्तरे च गम्यमाने।

उदा०–**(संज्ञा)** विभूर्नाम कश्चित्। **(अन्तरः)** प्रतिभूः। धनिक–अधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति स प्रतिभूरित्युच्यते।

आर्यभाषा–अर्थ–(भुवः) भू (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्विप्) क्विप् प्रत्यय होता है, यदि वहां (संज्ञान्तरयोः) संज्ञा और अन्तर=मध्यस्थ अर्थ प्रकट हो।

*उदा०–(संज्ञा) **विभूर्नाम कश्चित्।** विभू नामक कोई पुरुष। (अन्तर) **प्रतिभूः।** धनिक और कर्जदार का मध्यस्थ पुरुष (ज़ामिन/गारंटर)।*

*सिद्धि–(१) **विभूः।** यहां वि–उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र क्विप्–प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है।*

*(२) **प्रतिभूः।** प्रति उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०)।*

डुः–

(१) विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम्।१८०।

प०वि०–वि–प्र–संभ्यः ५।३ डु १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) असंज्ञायाम् ७।१।

स०–विश्च प्रश्च सम् च ते–विप्रसमः, तेभ्यः–विप्रसंभ्यः (इतरेतर–योगद्वन्द्वः)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्–असंज्ञायाम्, (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भुव इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विप्रसम्भ्यो भुवो धातोर्वर्तमाने डुः, असंज्ञायाम्।

अर्थ-वि-प्र-सम्-उपसर्गपूर्वाद् भू-धातोः परो वर्तमाने काले डुः प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(वि)** विभुः। **(प्र)** प्रभुः। **(सम्)** सम्भुः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(विप्रसंभ्यः) वि, प्र, सम् उपसर्गपूर्वक (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (डु) डु प्रत्यय होता है, (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट न हो।*

*उदा०-(वि) **विभुः।** सर्वव्यापक। (प्र) **प्रभुः।** स्वामी। (सम्) **सम्भुः।** जनक।*

सिद्धि-(१) विभुः। *वि+भू+डु। वि+भ्+उ। विभु+सु। विभुः।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'डु' प्रत्यय है। **'डित्यभ्यासस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'भू' धातु के टि-भाग (ऊ) का लोप होता है।*

*(२) **प्रभुः।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **सम्भुः।** 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से पूर्ववत्।*

ष्ट्रन्-

(१) धः कर्मणि ष्ट्रन्।१८१।

प०वि०-धः ५।१ कर्मणि ७।१ ष्ट्रन् १।१।

अन्वयः-कर्मणि धो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन्।

अर्थः-कर्मणि कारके विद्यमानाद् धा-धातोः परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति। अत्र 'धा' इत्यनेन **'धेट् पाने'** (भ्वा०प०) **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) इति द्वयोरपि ग्रहणं क्रियते।

उदा०-**(धेट्)** धयन्ति तामिति धात्री स्तनदायिनी। **(डुधाञ्)** दधति तां भैषज्यार्थमिति धात्री, आमलकी।

आर्यभाषा-अर्थ-*(कर्मणि) कर्म कारक में विद्यमान (धः) धा (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है। यहां 'धा' कहने से **'धेट् पाने'** (भ्वा०प०) और **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) दोनों धातुओं का समानता से ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-(धेट्) **धयन्ति तामिति धात्री।** स्तनदायिनी (धाई)। (डुधाञ्) **दधति तामिति धात्री।** आमलकी (आंवला)।*

सिद्धि-(१) धात्री। धा+ष्ट्रन्। धा+त्र। धात्र+ङीष्। धात्र+ई। धात्री+सु। धात्री।

*यहां 'धेट् पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ष् का लोप होने पर प्रत्यय का टुत्व भी नहीं रहता है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है।*

(२) धात्री। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) पूर्ववत्।

ष्ट्रन्-

(२) दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे।१८२।

प०वि०- दाप्-नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः ५।१ करणे ७।१।

स०-दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च एतेषां समाहारः-दाम्०नह्, तस्मात्-दाम्०नहः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्ट्रन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दाम्०नहो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन्।

अर्थः-करणे कारके विद्यमानेभ्यो दाबादिभ्यो धातुभ्यो परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दाप्) दाति येनेति दात्रम्। **(नी)** नयति येनेति नेत्रम्। **(शस)** शसति येनेति शस्त्रम्। **(यु)** यौति येनेति योत्रम्। **(युज)** युनक्ति येनेति योक्त्रम्। **(स्तु)** स्तौति येनेति स्तोत्रम्। **(तुद)** तुदति येनेति तोत्रम्। **(सि)** सिनाति येनेति सेत्रम्। **(सिच)** सिञ्चति येनेति सेक्त्रम्। **(मिह)** मेहति येनेति मेढ्रम्। **(पत)** पतति येनेति पत्रम्। **(दश)** दंशति ययेति दंष्ट्रा। **(नह)** नह्यति ययेति नद्ध्री।

आर्यभाषा-अर्थ- *(करणे) करण कारक में विद्यमान (दाम्०नहः) दाप्, नी, शस, यु, युज, स्तु, तुद, सि, सिच, मिह, पत, दश, नह (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(दाप्) दाति येनेति दात्रम्।** काटने का साधन (दाती)। **(नी) नयति येनेति नेत्रम्।** देशान्तर में ले जाने का साधन (चक्षु)। **(शस) शसति येनेति शस्त्रम्।***

शत्रु की हिंसा का साधन (शस्त्र)। (यु) **यौति येनेति योत्रम्।** द्रव्य को मिश्रित करने का साधन (पलटा आदि)। (युज) **युनक्ति येनेति योक्त्रम्।** बैल आदि को जोड़ने का साधन (जोत)। **'आबन्धो योत्रं योक्त्र'मित्यमरः।** (स्तु) **स्तौति येनेति स्तोत्रम्।** देवता आदि की स्तुति का साधन (शिवस्तोत्र आदि)। (तुद) **तुदति येनेति तोत्रम्।** व्यथा का साधन (बैल आदि के ताडनादि का साधन सांटा पैनी आदि)। **'प्राजनं तोदनं तोत्र'मित्यमरः।** (सि) **सिनाति येनेति सेत्रम्।** बन्धन का साधन (रस्सी आदि)। (सिच) **सिञ्चति येनेति सेक्त्रम्।** भूमि आदि को सींचने का साधन (मशक आदि)। (मिह) **मेहति येनेति मेढ्रम्।** गर्भ में वीर्य-सेचन का साधन (पुरुष का लिङ्ग)। (पत) **पतति येनेति पत्रम्।** देशान्तर में गमन का साधन (वाहनमात्र)। (दश) **दंशति ययेति दंष्ट्रा।** खाद्यपदार्थ को काटने का साधन (दाढ)। (नह) **नह्यति ययेति नद्ध्री।** बन्धन का साधन (चमड़े की रस्सी)। जनभाषा में 'बादी' अथवा 'जोत' कहते हैं। **त्रीणि चर्मरज्जोः- 'नध्री वध्री वरत्रा स्या'दित्यमरः।**

सिद्धि-(१) **दात्रम्।** यहां **'दाप् लवने'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है।

(२) **नेत्रम्।** **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०)। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'नी' धातु को गुण होता है।

(३) **'शस हिंसायाम्'** (भ्वा०प०)।

(४) **योत्रम्।** **'यु मिश्रणे'** (अदा०प०) पूर्ववत् गुण होता है।

(५) **योक्त्रम्।** **'युजिर् योगे'** (रुधा०प०) **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८५) से 'युज्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से युज् के 'ज्' को कुत्व ग् और **'खरि च'** (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है।

(६) **स्तोत्रम्।** **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) पूर्ववत् गुण होता है।

(७) **तोत्रम्।** **'तुद व्यथने'** (तु०प०) पूर्ववत् गुण होता है।

(८) **सेत्रम्।** **'षिञ् बन्धने'** (क्र्या०उ०)।

(९) **सेक्त्रम्।** **'षिचिर् क्षरणे'** (रुधा०उ०)।

(१०) **मेढ्रम्।** **'मिह सेचने'** (भ्वा०प०)। मिह्+ष्ट्रन्। मिह्+त्र। मेढ्+ढ्र। मे०+ढ्र। मेढ्र+सु। मेढ्रम्। **'हो ढः'** (८।२।३१) से धातु के ह् को ढ् आदेश, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से 'त्र' के त् को ध् आदेश, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) प्रत्यय के ध् को ष्टुत्व ढ् होता है। **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्व ढ् का लोप होता है।

(११) **पत्रम्।** **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०)।

(१२) **दंष्ट्रा।** **'दंश दशने'** (भ्वा०प०)। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से दंश् के श् को ष् और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) से 'त्र' प्रत्यय के त् को ट् होता है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होता है।

(१३) नद्ध्री। 'णह बन्धने' (दि०उ०) 'नहो धः' (८।२।३४) 'नह्' धातु के ह् को ध् आदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'त्र' प्रत्यय के त् को 'ध्' आदेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से पूर्व ध् को जश् द् आदेश होता है। स्त्रीलिङ्ग में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय है।

ष्ट्रन्–

(३) हलसूकरयोः पुवः ।१८३।

प०वि०–हल-सूकरयोः ७।२ पुवः ५।१।

स०–हलश्च सूकरश्च तौ–हलसूकरौ, तयोः–हलसूकरयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–ष्ट्रन्, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करणे पुवो धातोर्वर्तमाने ष्ट्रन् हलसूकरयोः।

अर्थः–करणे कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति, तच्च करणं हलसूकरयोरवयवो भवति।

उदा०–पवते/पुनाति वा येन तत्–पोत्रम्। हलस्य पोत्रम्। सूकरस्य पोत्रम्। मुखमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ–*(करणे) करण कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (ष्ट्रन्) ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, यदि वह करण (हलसूकरयोः) हल और सूअर का अङ्ग हो।*

उदा०–***पवते/पुनाति वा येन तत् पोत्रम्। हलस्य पोत्रम्।*** *भूमि को शुद्ध करने का साधन, हल का मुख=फाल।* ***सूकरस्य पोत्रम्।*** *मल को शुद्ध करने का साधन सूअर के मुख का अग्रभाग।* ***'मुखाग्रे क्रोडहलयोः पोत्र'मित्यमरः।***

सिद्धि-पोत्रम्। *यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) और 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है। यहां 'पू' कहने से उपर्युक्त दोनों धातुओं का समानता से ग्रहण किया जाता है।*

इत्रः–

(१) अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ।१८४।

प०वि०–अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चरः ५।१ इत्रः १।१।

स०–अर्तिश्च लूश्च धूश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर् च एतेषां समाहारः–अर्ति०चर्, तस्मात्–अर्ति०चरः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-करण इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणेऽर्ति०चरो धातोर्वर्तमाने इत्रः।

अर्थः-करणे कारके विद्यमानेभ्योऽर्तिप्रभृतिभ्यो धातुभ्यः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अर्तिः**) अरित्रम्। (**लूः**) लवित्रम्। (**धूः**) धवित्रम्। (**सूः**) सवित्रम्। (**खनः**) खनित्रम्। (**सहः**) सहित्रम्। (**चर्**) चरित्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (अर्ति०चरः) अर्ति=ऋ, लू, धू, सू, खन, सह, चर् (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है।

*उदा०-(अर्ति=ऋ) **इयर्ति येनेति अरित्रम्।** देशान्तर प्राप्ति का साधन, नौका का चप्पू। (लू) **लुनाति येनेति लवित्रम्।** काटने का साधन, चाकू। (धू) **धुवति येनेति धवित्रम्।** विकम्पन का साधन, पंखा। (सू) **सुवति येनेति सवित्रम्।** प्रगति का साधन, वाहन आदि। (खन) **खनति येनेति खनित्रम्।** खोदने का साधन, कुदाल आदि। **'खनित्रमवदारणे' इत्यमरः।** (सह) **सहते येन तत् सहित्रम्।** लोष्ठ आदि के मर्षण का साधन, सुहागा आदि। (चर्) **चरति येनेति चरित्रम्।** चलने का साधन, चरण।*

*सिद्धि-(१) **अरित्रम्।** यहां 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ऋ' धातु को गुण होता है।*

*(२) **लवित्रम्।** 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०)।*

*(३) **धवित्रम्।** 'धू विधूनने' (तु०प०)।*

*(४) **सवित्रम्।** 'षू प्रेरणे' (तु०प०)।*

*(५) **खनित्रम्।** 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०)।*

*(६) **सहित्रम्।** 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)।*

*(७) **चरित्रम्।** 'चर गतौ' (भ्वा०प०)।*

इत्रः-

(२) पुवः संज्ञायाम।१८५।

प०वि०-पुवः ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-करणे, इत्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुवो धातोर्वर्तमाने इत्रः संज्ञायाम्।

अर्थः-करणे कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पवित्रं दर्भः। पवित्रं बर्हिः।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(करणे) करण कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**पवित्रं दर्भः।** यज्ञीय विशेष दर्भ (कुशा) जो अंगूठे में पहना जाता है। **पवित्रं बर्हिः।** यज्ञीय कुशासन।*

*सिद्धि-**पवित्रम्।** यहां '**पूङ् पवने**' (भ्वा०आ०) और '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से संज्ञाविशेष में 'इत्र' प्रत्यय है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है।*

इत्रः—

(३) कर्तरि चर्षिदेवतयोः।१८६।

प०वि०-कर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्, ऋषि-देवतयोः ७।२।

स०-ऋषिश्च देवता च ते-ऋषिदेवते, तयोः-ऋषिदेवतयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-करणे, इत्रः, पुव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे कर्तरि च पुवो धातोर्वर्तमाने इत्रः, ऋषिदेवतयोः।

अर्थः-करणे कर्तरि च कारके विद्यमानात् पू-धातोः परो वर्तमाने काले इत्रः प्रत्ययो भवति, यथासंख्यमृषौ देवतायां चाभिधेयायाम्। ऋषौ करणे देवतायां च कर्तरि प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-(**ऋषिः**) पूयते येनेति पवित्रः। **पवित्रोऽयमृषिः।** (**देवता**) पुनातीति पवित्रः। **अग्निः पवित्रं स मा पुनातु।**

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(करणे) करण (च) और (कर्तरि) कर्ता कारक में विद्यमान (पुवः) पू (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इत्रः) इत्र प्रत्यय होता है, (ऋषिदेवतयोः) यदि यथासंख्य ऋषि और देवता अर्थ वाच्य हो। ऋषि अर्थ में करण में और देवता अर्थ में कर्ता में प्रत्यय किया जाता है।*

*उदा०-(ऋषि) **पूयते येनेति पवित्रः। पवित्रोऽयमृषिः।** यह ऋषि=मन्त्र चित्त को पवित्र करने का साधन है। (देवता) **पुनातीति पवित्रः। अग्निः पवित्रं स मा पुनातु।** अग्नि देवता पवित्र है, वह मुझे पवित्र करे। अग्नि=सर्वपूज्य परमेश्वर।*

*सिद्धि-**पवित्रः।** पूर्ववत्।*

क्तः-

(१) ञीतः क्तः ।१८७।

प०वि०-ञीतः ५ ।१ क्तः १ ।१।

स०-ञि इद् यस्य सः-ञीत्, तस्मात्-ञीतः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-ञीतो धातोर्वर्तमाने क्तः।

अर्थः-ञि-इतो धातोः परो वर्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ञिमिदा) मिन्नः। **(ञिक्ष्विदा)** क्ष्विण्णः। **(ञिधृषा)** धृष्टः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ञीतः) ञि इत् वाले (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

उदा०-(ञिमिदा) मिन्नः। स्नेह करनेवाला। (ञिक्ष्विदा) क्ष्विण्णः। स्नेह अथवा मुक्त करनेवाला। (ञिधृष्टः) धृष्टः। प्रगल्भ=चतुर।

सिद्धि-(१) मिन्नः। मिद्+क्त। मिद्+त। मिन्+न। मिन्न+सु। मिन्नः।

यहां 'ञिमिदा स्नेहने' (भ्वा०आ०) इस 'ञीत्' धातु से 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' (८।२।४२) से 'क्त' के 'त्' को 'न्' आदेश और पूर्ववर्ती 'मिद्' धातु के 'द्' को भी 'न्' आदेश होता है।

(२) क्ष्विण्णः। 'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः' (भ्वा०आ०)। पूर्ववत् 'त्' और 'द्' को 'द्' आदेश तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' (८।४।२) से 'णत्व' होता है।

(३) धृष्टः। 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा०प०)। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय को टुत्व होता है।

क्तः-

(२) मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ।१८८।

प०वि०-मति-बुद्धि-पूजार्थेभ्यः ५ ।३ च अव्ययपदम्।

स०-मतिश्च बुद्धिश्च पूजा च ताः-मतिबुद्धिपूजाः, अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च ते-अर्थाः, मतिबुद्धिपूजा अर्था येषां ते-मतिबुद्धिपूजार्थाः, तेभ्यः-मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः।

अनु०-क्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यो धातुभ्यश्च वर्तमाने क्तः।

अर्थः-मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्यः पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यः परो वर्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(मतिः=इच्छा)** राज्ञां मतो देवदत्तः। राज्ञामिष्टो देवदत्तः। **(बुद्धिः=ज्ञानम्)** राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः। राज्ञां ज्ञातो यज्ञदत्तः। **(पूजा=सत्कारः)** राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः। राज्ञामर्चितो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः) मति=इच्छा, बुद्धि=ज्ञान और पूजा=सत्कार अर्थवाली (धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

*उदा०-(मति) **राज्ञां मतो देवदत्तः। राज्ञामिष्टो देवदत्तः।** देवदत्त राजाओं के द्वारा अभिमत/अभीष्ट है। (बुद्धि) **राज्ञां बुद्धो यज्ञदत्तः। राज्ञां ज्ञातो यज्ञदत्तः।** राजा यज्ञदत्त को जानते हैं। (पूजा) **राज्ञां पूजितो ब्रह्मदत्तः। राज्ञामर्चितो ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त राजाओं के द्वारा पूजित है।*

*सिद्धि-(१) **मतः।** यहां 'मनु अवबोधने' (तु०आ०) धातु से इस सूत्र से क्त प्रत्यय है। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'अनुनासिक' का लोप होता है।*

*(२) **इष्टः।** 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०)। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय को टुत्व होता है।*

*(३) **बुद्धः।** 'बुध अवगमने' (भ्वा०प०)। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से 'क्त' प्रत्यय को 'ध' आदेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से बुध् के ध् जश् द् होता है।*

*(४) **ज्ञातः।** 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०)।*

*(५) **पूजितः।** 'पूज पूजायाम्' (चु०प०)।*

*(६) **अर्चितः।** 'अर्च पूजायाम्' (भ्वा०प०)।*

विशेष-(१) 'राज्ञां मतः' इत्यादि प्रयोगों में 'क्तस्य च वर्तमाने' (२।३।६७) से कर्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। 'क्तेन च पूजायाम्' (२।२।१२) से षष्ठी समास का प्रतिषेध होता है।

(२) 'वर्तमाने' पद की अनुवृत्ति 'उणादयो बहुलम्' (३।३।१) तक है।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

उणादयः प्रत्ययाः–

(१) उणादयो बहुलम्।१।

प०वि०–उणादयः १।३ बहुलम् १।१।

स०–उण् आदिर्येषां ते–उणादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पुवः संज्ञायाम् (३।२।१८५) इत्यतः संज्ञायामिति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते। 'वर्तमाने' इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्वर्तमाने बहुलम् उणादयः संज्ञायाम्।

अर्थः–धातुभ्यो वर्तमाने काले उणादयः प्रत्यया बहुलं भवन्ति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–कारुः। वायुः। पायुः। जायुः। मायुः स्वादुः। साधुः। आशुः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातुओं से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (उणादयः) उण् आदि प्रत्यय (बहुलम्) अधिकांश होते हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

__उदा०__-__कारुः__। कर्ता वा शिल्पी। __वायुः__। पवन। __पायुः__। गुदा। __जायुः__। शूर। __मायुः__। पित्त। __स्वादुः__। भोज्य अन्न। __साधुः__। सज्जन। __आशुः__। अश्व।

__सिद्धि-(१) कारुः__। कृ+उण्। कार्+उ। कारु+सु। कारुः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' (उणादि० १।१) से 'उण्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।

__(२) वायुः__। वा+उण्। वा+युक्+उ। वायु+सु। वायुः।

यहां 'वा गतिगन्धनयोः' (अदा०प०)। 'आतो युक् चिण् कृतोः' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।

__(३) पायुः__। 'पा रक्षणे' (अदा०प०) पूर्ववत्।

__(४) जायुः__। जि+उण्। जै+उ। जायु+सु। जायुः।

यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) पूर्ववत् वृद्धि होती है।

*(५) मायुः। '**डुमिञ् प्रक्षेपणे**' (स्वा०उ०) पूर्ववत् वृद्धि होती है।*

*(६) स्वादुः। '**स्वद आस्वादने**' (भ्वा०आ०) '**अत उपधायाः**' से स्वद् धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(७) साधुः। '**साध संसिद्धौ**' (स्वा०प०)।*

*(८) आशुः। '**अशूङ् व्याप्तौ**' (स्वा०आ०)।*

*विशेष-उणादि-उणादि प्रत्ययों की विस्तृत व्याख्या के लिये पाणिनीय '**उणादिकोष**' का अध्ययन करें।*

भूतेऽपि दर्शनम्-

(२) भूतेऽपि दृश्यन्ते।२।

प०वि०-भूते ७।१ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-उणादय इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उणादयो भूतेऽपि दृश्यन्ते।

अर्थः-उणादयः प्रत्यया भूते कालेऽपि दृश्यन्ते।

उदा०-वृत्तमिति वर्त्म। चरितं तदिति चर्म। भसितं तदिति भस्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(उणादयः) उण् आदि प्रत्यय (भूते) भूतकाल में (अपि) भी (दृश्यन्ते) देखे जाते हैं।

*उदा०-**वृत्तमिति वर्त्म**। जिसे बनाया गया है, मार्ग। **चरितं तदिति चर्म**। जिसे पशु आदि के शरीर से उतारा गया है, चमड़ा। **भसितं तदिति भस्म**। जिसे जलाया गया है, राख।*

*सिद्धि-(१) **वर्त्म**। वृत्+मनिन्। वर्त्+मन्। वर्त्मन्+सु। वर्त्म।*

*यहां '**वृतु वर्तने**' (भ्वा०आ०) धातु से भूतकाल में '**अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते**' (३।२।७५) से उणादि 'मनिन्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'वृत्' धातु को लघूपध गुण होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

*(२) **चर्म**। 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **भस्म**। 'भस भर्त्सनदीप्त्योः' (जु०प०) पूर्ववत्।*

इति वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्।

भविष्यत्कालप्रत्ययप्रकरणम्

गमी-आदयः–

(१) भविष्यति गम्यादयः।३।

प०वि०–भविष्यति ७।१ गमी-आदयः १।३।

स०–गमी आदिर्येषां ते गम्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले।

अर्थः–गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति।

उदा०–ग्रामं गमी। आगामी। प्रस्थायी। प्रतिरोधी। प्रतिबोधी। प्रतियोधी। प्रतियोगी। प्रतियायी। आयायी। भावी।

आर्यभाषा-अर्थ-(गम्यादयः) गमी आदि शब्दों को (भविष्यति) भविष्यत्काल अर्थ में साधु=ठीक समझना चाहिये।

*उदा०–**ग्रामं गमी।** गांव जानेवाला। **आयामी।** आनेवाला। **प्रस्थायी।** प्रस्थान करनेवाला। **प्रतिरोधी।** रोकनेवाला। **प्रतिबोधी।** समझनेवाला। **प्रतियोधी।** मुकाबले में लड़नेवाला। **प्रतियोगी।** मुकाबला करनेवाला। **प्रतियायी।** वापिस जानेवाला। **आयायी।** आनेवाला। **भावी।** भविष्यत् में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **गमी।** गम्+इनि। गम्+इन्। गमिन्+सु। गमीन्+सु। गमीन्+०। गमी।*

*यहां **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से भविष्यत्काल में **'गमेरिनिः'** (उ० ४।६) से इनि प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

*(२) **आगामी।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'इनि' प्रत्यय है। **'आङि णित्'** (उ० ४।७) से 'इनि' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से गम् धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(३) **प्रस्थायी।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से णिनि प्रत्यय है। **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है।*

*(४) **प्रतिरोधी।** प्रति उपसर्गपूर्वक **'रुधिर् आवरणे'** (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **प्रतिबोधी।** प्रति उपसर्गपूर्वक **'बुध अवगमने'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **प्रतियोधी।** प्रति उपसर्गपूर्वक **'युध सम्प्रहारे'** (दि०आ०)।*

*(७) **प्रतियोगी।** प्रति उपसर्गपूर्वक **'युजिर् योगे'** (रुधा०प०)।*

*(८) **प्रतियामी।** प्रति उपसर्गपूर्वक **'या प्रापणे'** (अदा०प०)।*

*(९) **आयामी।** आङ् उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'या' धातु।*

*(१०) **भावी।** **'भू सत्तायाम्'** धातु से **'भुवश्च'** (उ० ४।८) 'इनि' प्रत्यय और 'इनि' प्रत्यय के णिद्वत् होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है।*

लट्–

(२) यावत्पुरानिपातयोर्लट्।४।

प०वि०-यावत्-पुरानिपातयोः ७।२ लट् १।१।

स०-यावच्च पुरा च तौ यावत्पुरौ, यावत्पुरौ च तौ निपाताविति-यावत्पुरानिपातौ, तयोः-यावत्पुरानिपातयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-कर्मधारयः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यावत्पुरानिपातयोर्धातोर्भविष्यति लट्।

अर्थः-यावत्पुरानिपातयोरुपपदयोर्धातोः परो भविष्यति काले लट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यावत्)** यावद् भुङ्क्ते देवदत्तः। **(पुरा)** पुरा भुङ्क्ते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(यावत्पुरानिपातयोः) यावत् और पुरा निपात शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (लट्) लट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(यावत्) यावद् भुङ्क्ते देवदत्तः।** देवदत्त जब तक खायेगा। **(पुरा) पुरा भुङ्क्ते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पहले खायेगा।*

*सिद्धि-(१) **भुङ्क्ते।** भुज्+लट्। भुज्+त्। भु श्नम् ज्+ते। भुनज्+ते। भु ं ज्+ते। भ – ग्+ते। भु ं क्+ते। भुङ्क्+ते। भुङ्क्ते।*

*यहां **भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में लट् प्रत्यय है। **'भुजोऽनवने'** (१।१।६६) से 'भुज्' धातु से खाने अर्थ में आत्मनेपद होता है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय, **'नश्चापदान्तस्य झलि'***

(८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य यपि परसवर्णः' (८।६।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।

लट्+लृट्+लुट्–

(३) विभाषा कदाकर्ह्योः।५।

प०वि०–विभाषा १।१ कदा–कर्ह्योः ७।२।

स०–कदाश्च कर्हिश्च तौ कदाकर्ही, तयोः–कदाकर्ह्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–भविष्यति, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कदाकर्ह्योर्धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः–कदा–कर्हिशब्दयोरुपपदयोर्धातोर्भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे च लृट्–लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–**(कदा)** कदा **भुङ्क्ते** देवदत्तः (लट्)। कदा **भोक्ष्यते** देवदत्तः (लृट्)। कदा **भोक्ता** देवदत्तः (लुट्)। **(कर्हि)** कर्हि **भुङ्क्ते** यज्ञदत्तः (लट्)। कर्हि **भोक्ष्यते** यज्ञदत्तः (लृट्)। कर्हि **भोक्ता** यज्ञदत्तः (लुट्)।

आर्यभाषा–अर्थ–(कदाकर्ह्योः) कदा और कर्हि शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०–**(कदा) कदा भुङ्क्ते देवदत्तः (लट्)।** देवदत्त कब भोजन करेगा। **कदा भोक्ष्यते देवदत्तः (लृट्)। कदा भोक्ता देवदत्तः (लुट्)।** अर्थ पूर्ववत् है। **(कर्हि) कर्हि भुङ्क्ते यज्ञदत्तः (लट्)।** यज्ञदत्त कब भोजन करेगा। **कर्हि भुङ्क्ते यज्ञदत्तः (लृट्)। कर्हि भोक्ता यज्ञदत्तः (लुट्)।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि–(१) **भुङ्क्ते।** सिद्धि पूर्ववत् (३।३।४) है।*

*(२) **भोक्ष्यते।** भुज्+लृट्। भुज्+स्य+त। भोज्+स्य+ते। भोग्+स्य+ते। भोक्+ष्य+ते। भोक्ष्यते।*

यहां पूर्वोक्त 'भुज' धातु से भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। 'चोः कुः'

(८।२।३०) से 'भुज्' धातु को कुत्व 'ग्' और 'खरि च' (८।४।५४) से 'ग्' को 'क्' होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

*(३) **भोक्ता।** भुज्+लुट्। भुज्+तास्+त। भुज्+तास्+डा। भुज्+त्+आ। भोज्+त्+आ। भोग्+त्+आ। भोक्+त्+आ। भोक्ता।*

*यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से भविष्यत्काल में **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय है। **'लुटः प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से त-प्रत्यय के स्थान में डा-आदेश होता है। **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३)) से 'तास्' के टि-भाग (आस्) का लोप होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

लट्+लृट्+लुट्–

(४) किंवृत्ते लिप्सायाम्।६।

प०वि०-किंवृत्ते ७।१ लिप्सायाम् ७।१।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, तस्मिन्-किंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। लब्धुमिच्छा लिप्सा, तस्याम्-लिप्सायाम्।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किंवृत्ते धातोर्भविष्यति विभाषा लट् लिप्सायाम्।

अर्थः-किंवृत्ते=किंवृत्ते शब्दे उपपदे धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, लिप्सायां गम्यमानायाम्, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-कं भवन्तो **भोजयन्ति** (लट्)। कं भवन्तो **भोजयिष्यन्ति** (लृट्)। कं भवन्तो **भोजयितारः** (लुट्)। लब्धुकामः कश्चित् पृच्छाति-कतरो भिक्षां **ददाति** (लट्)। कतरो भिक्षां **दास्यति** (लृट्)। कतरो भिक्षां **दाता** (लुट्)। कतमो भिक्षां **ददाति** (लट्)। कतमो भिक्षां **दास्यति** (लृट्)। कतमो भिक्षां **दाता** (लुट्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(किंवृत्ते) किम् से बना हुआ कोई शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट्) प्रत्यय होता है, यदि वहां (लिप्सायाम्) लिप्सा अर्थ प्रकट हो। लिप्सा=प्राप्ति की इच्छा।

*उदा०-**कं भवन्तो भोजयन्ति (लट्)। कं भवन्तो भोजयिष्यन्ति (लृट्)। कं भवन्तो भोजयितारः (लुट्)।** आप किसे भोजन करायेंगे। कोई भोजनप्राप्ति का इच्छुक*

पूछता है-कतरो भिक्षां ददाति (लट्)। कतरो भिक्षां दास्यति (लृट्)। कतरो भिक्षां दाता (लुट्)। तुम दोनों में से कौन भिक्षा देगा ? कतमो भिक्षां ददाति (लट्)। कतमो भिक्षां दास्यति (लृट्)। कतमो भिक्षां दाता। तुम सब में से कौन भिक्षा देगा।

सिद्धि-(१) भोजयन्ति। यहां णिजन्त 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रु०धा०) धातु से इस सूत्र से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) भोजयिष्यन्ति। पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) विकल्प पक्ष में 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) भोजयितारः। पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से विकल्प पक्ष में 'लुट्' प्रत्यय है।

(४) 'डुदाञ् दाने' (जु०प०) धातु से ददाति, दास्यति, दाता रूप सिद्ध करें।

विशेष-किंवृत्त-किं से बने हुये अथवा किं शब्द जिसमें वर्तमान रहता है उसे किंवृत्त कहते हैं। 'कतरः' यहां किं शब्द से 'किं यत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्' (५।३।९२) से 'डतरच्' प्रत्यय है। 'कतमः' यहां किं शब्द से 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' (२।३।९३) से 'डतमच्' प्रत्यय है।

लट्+लृट्+लुट्-

(५) लिप्स्यमानसिद्धौ च।७।

प०वि०-लिप्स्यमान-सिद्धौ ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-लिप्स्यते=प्राप्तुमिष्यते तत्-लिप्स्यमानम्=भक्तादिकम् (कर्मणि शानच् प्रत्ययः)। लिप्स्यमानात् सिद्धिरिति लिप्यमानसिद्धिः, तस्याम्-लिप्स्यमानसिद्धौ (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिप्स्यमानसिद्धौ धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः-लिप्स्यमानात्=अभीप्सिताद् भक्तादिपदार्थात् सिद्धौ= स्वर्गादिसिद्धौ गम्यमानायां धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लट्) यो भक्तं **ददाति** स स्वर्गं **गच्छति। (लृट्)** यो भक्तं **दास्यति** स स्वर्गं **गमिष्यति। (लुट्)** यो भक्तं **दाता** स स्वर्गं **गन्ता।**

आर्यभाषा-अर्थ-(लिप्स्यमानसिद्धौ) अभीष्ट भक्त (भात) आदि पदार्थ की प्राप्ति से स्वर्ग आदि सिद्धि अर्थ प्रकट करने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लट्) यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छति। (लृट्) यो भक्तं दास्यति स स्वर्गं गमिष्यति। (लुट्) यो भक्तं दाता स स्वर्गं गन्ता। जो भक्त=भात (चावल) देगा वह स्वर्ग में जायेगा। यहां याचक अपने लिप्स्यमान भात से स्वर्ग-सिद्धि का कथन करता हुआ है दाता जन को प्रोत्साहित करता है।

सिद्धि-(१) ददाति/गच्छति। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) तथा 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लट्' प्रत्यय है।

(२) दास्यति/गमिष्यति। यहां पूर्वोक्त धातुओं से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से विकल्प पक्ष में 'लट्' प्रत्यय है।

(३) दाता/गन्ता। यहां पूर्वोक्त धातुओं से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से विकल्प पक्ष में 'लुट्' प्रत्यय है।

लट्+लृट्+लुट्-

(६) लोडर्थलक्षणे च।८।

प०वि०-लोट्-अर्थलक्षणे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-लोटोऽर्थ इति लोडर्थः। लोडर्थस्य लक्षणमिति लोडर्थलक्षणम्, तस्मिन्-लोडर्थलक्षणे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोडर्थलक्षणे च धातोर्भविष्यति विभाषा लट्।

अर्थः-लोडर्थस्य=प्रैषादिकस्य लक्षणेऽर्थेऽपि धातोः परो भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति, पक्षे-लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लट्) उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। **(लृट्)** उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। **(लुट्)** उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व।

आर्यभाषा-अर्थ-(लोडर्थलक्षणे) लोट् लकार के प्रैष=आज्ञा आदि अर्थ को लक्षित करने अर्थ में (च) भी (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (विभाषा) विकल्प से (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लट्) उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लृट्) उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। (लुट्) उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। यदि उपाध्याय जी आ जायें तो तू उनसे व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना।

सिद्धि-(१) आगच्छति। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लट्' प्रत्यय है।

(२) आगमिष्यति। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(३) आगन्ता। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् लुट् प्रत्यय है।

लिङ्+लट्-

(७) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके।६।

प०वि०-लिङ् १।१ च अव्ययपदम्, ऊर्ध्वमौहूर्तिके ७।१।

स०-ऊर्ध्वं मुहूर्तादिति-ऊर्ध्वमुहूर्तम् (अस्मादेव निपातनात्पञ्चमी-तत्पुरुषः)। ऊर्ध्वमुहूर्ते भवम् ऊर्ध्वमौहूर्तिकम् **'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्'** (४।३।६७) इति ठञ् प्रत्ययः। अस्मादेव निपातनाद् उत्तरपदवृद्धिः।

अनु०-भविष्यति, लट्, विभाषा, लोडर्थलक्षणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोडर्थलक्षणे धातोरूर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति विभाषा लिङ् लट् च।

अर्थः-लोडर्थस्य=प्रैषादिकस्य लक्षणेऽर्थे विद्यमानाद् धातोः पर ऊर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति काले विकल्पेन लिङ् लट् च प्रत्ययो भवति, पक्षे लृट्लुटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लिङ्) ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्=उपरि मुहूर्तस्य उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत्-अथ त्वं व्याकरणधीष्व। **(लट्)** ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागच्छति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। **(लृट्)** ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागमिष्यति-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। **(लुट्)** ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेदागन्ता-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व।

आर्यभाषा-अर्थ-(लोडर्थलक्षणे) लोट् लकार के प्रैष=आज्ञादि अर्थ को लक्षित करने अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त से ऊपर के

(भविष्यति) भविष्यत्काल में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में लृट् और लुट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् (लिङ्) आगच्छति (लट्) आगमिष्यति (लृट्) आगन्ता (लुट्)-अथ त्वं व्याकरणमधीष्व। एक मुहूर्त के पश्चात् यदि उपाध्याय जी आ जायें तो तू उनसे व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना।

सिद्धि-(१) आगच्छेत्। यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) आगच्छति। पूर्वोक्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

(३) आगमिष्यति। पूर्वोक्त धातु से 'लृट्' प्रत्यय है।

(४) आगन्ता। पूर्वोक्त धातु से 'लुट्' प्रत्यय है।

विशेष-'मुहूर्त' काल का एक परिमाण है जो कि ४८ मिनट का होता है। यह दिन-रात का ३० तीसवां भाग होता है।

तुमुन्+ण्वुल्-

(८) तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्।१०।

प०वि०-तुमुन्-ण्वुलौ १।२ क्रियायाम् ७।१ क्रियार्थायाम् ७।१।

स०-तुमुन् च ण्वुल् च तौ तुमुन्ण्वुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क्रियायै इयमिति क्रियार्था, तस्याम्-क्रियार्थायाम् (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-क्रियार्थायां क्रियायां धातोर्भवति तुमुन्ण्वुलौ।

अर्थः-क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोः परो भविष्यति काले तुमुन्-ण्वुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(तुमुन्) भोक्तुं व्रजति देवदत्तः। **(ण्वुल्) भोजको** व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (तुमुन्-ण्वुलौ) तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(तुमुन्) भोक्तुं व्रजति देवदत्तः। देवदत्त भोजन के लिये जाता है। (ण्वुल्) भोजको व्रजति यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त भोजन के लिये जाता है।

*सिद्धि-(१) **भोक्तुम्।** यहां भुजि क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और **'खरि च'** (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपध गुण है।*

*(२) **भोजकः।** यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'वु' के स्थान में **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् लघूपध गुण है।*

घञादयः-

(६) भाववचनाश्च।११।

प०वि०-भाववचनाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-ब्रुवन्तीति वचनाः **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति बहुलवचनात् कर्तरि **'ल्युट्'** प्रत्ययः। भावस्य वचना इति भाववचनाः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-भविष्यति क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियार्थायां क्रियायां धातोर्भविष्यति भाववचनाश्च प्रत्ययाः।

अर्थः-क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोः परे भविष्यति कालेऽग्रे वक्ष्यमाणा भाववचना घञादयो प्रत्यया अपि भवन्ति।

उदा०-(घञ्) पाकाय व्रजति देवदत्तः। **(क्तिन्) भूतये** व्रजति ब्रह्मदत्तः। **पुष्टये** व्रजति यज्ञदत्तः।

*आर्यभाषा-**अर्थ-**(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में आगे कहे जानेवाले (भाववचनाः) भाववाची घञ् आदि प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

*उदा०-(घञ्) **पाकाय व्रजति देवदत्तः।** देवदत्त पकाने के लिये जाता है। (क्तिन्) **भूतये व्रजति ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त भूति=ऐश्वर्य के लिये जाता है। **पुष्टये व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पुष्टि के लिये जाता है।*

*सिद्धि-(१) **पाकः।** पच्+घञ्। पच्+अ। पक्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः।*

*यहां 'पचि' क्रिया के लिये 'व्रजि' क्रिया उपपद होने पर **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। **'चजोः कु घिण्यतोः'** (७।३।५२) से पच् के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से*

'पच्' को उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से भाववचन घञ् प्रत्यय भविष्यत्काल में विधान किया गया है।

*(२) **भूतिः।** भू+क्तिन्। भू+ति। भूति+सु। भूतिः।*

***'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०)। **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय है।*

*(३) **पुष्टिः।** पुष्+क्तिन्। पुष्+टि। पुष्टि+सु। पुष्टिः।*

***'पुष पुष्टौ'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् क्तिन् प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४२) से ष्टुत्व होता है।*

अण्–

(१०) अण् कर्मणि च।१२।

प०वि०–अण् १।१ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि च धातोर्भविष्यति अण्।

अर्थः–क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि चोपपदे धातोः परो भविष्यति कालेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**काण्डलावो** व्रजति। **गोदायो** व्रजति। **अश्वदायो** व्रजति। **कम्बलदायो** व्रजति।

आर्यभाषा-अर्थ–(क्रियार्थायाम्) किसी क्रिया के लिये (क्रियायाम्) कोई क्रिया (च) और (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (भविष्यति) भविष्यत्काल में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**काण्डलावो व्रजति।** काण्ड (पेड़) को काटनेवाला जाता है। **गोदायो व्रजति।** गौ देनेवाला जाता है। **अश्वदायो व्रजति।** घोड़ा देनेवाला जाता है। **कम्बलदायो व्रजति।** कम्बल देनेवाला जाता है।*

*सिद्धि–(१) **काण्डलावः।** यहां 'लवि' क्रिया के लिये 'व्रजि' क्रिया उपपद होने पर काण्ड कर्म उपपदवाले 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'अचोऽञ्णिति' (७।२।११५) से 'लू' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **गोदायः।** यहां ददाति क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर 'गौ' कर्म उपपदवाले 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से दा धातु को 'युक्' आगम होता है। ऐसे ही–**'अश्वदायः'।***

लृट् (शेषे भविष्यति)–

(११) लृट् शेषे च।१३।

प०वि०–लृट् १।१ शेषे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रियार्थायां क्रियायां शेषे च भविष्यति धातोर्लृट्।

अर्थः–क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे शेषे=शुद्धे च भविष्यति काले धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**क्रियार्थायां क्रियायाम्**) करिष्यामीति व्रजति देवदत्तः। हरिष्यामीति व्रजति ब्रह्मदत्तः। (**शेषे**) करिष्यति देवदत्तः। हरिष्यति ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा–अर्थ–(क्रियार्थायां क्रियायाम्) क्रिया के लिये क्रिया उपपद होने पर (च) और (शेषे) शुद्ध भविष्यत्काल में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

*उदा०–(क्रियार्थ क्रिया) **करिष्यामीति व्रजति देवदत्तः।** मैं अमुक कार्य करूंगा इसलिये देवदत्त जाता है। **हरिष्यामीति व्रजति ब्रह्मदत्तः।** मैं कष्ट हरण करूंगा इसलिये ब्रह्मदत्त जाता है। (शेष) **करिष्यति देवदत्तः।** देवदत्त करेगा। **हरिष्यति ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त हरण करेगा।*

*सिद्धि–(१) **करिष्यामि।** कृ+लृट्। कृ+स्य+मिप्। कृ+इट्+स्य+मि। कर्+इष्य+मि। करिष्यामि।*

यहां करोति क्रिया के लिये व्रजि क्रिया उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय और उसे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

*(२) **करिष्यति।** यहां शुद्ध भविष्यत्काल में पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सत्-आदेशः (शतृ+शानच्)–

(१२) लृटः सद् वा।१४।

प०वि०–लृटः ६।१ सत् १।१ वा अव्ययपदम्।

अन्वयः–लृटः स्थाने भविष्यति वा सत्।

अर्थः-लृटः स्थाने भविष्यतिकाले विकल्पेन सत्-संज्ञकौ=शतृशानचौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे लृडपि भवति।

उदा०-(शतृ) करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। **(शानच्)** करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य। **(लृट्)** करिष्यति देवदत्तः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(लृटः) लृट् प्रत्यय के स्थान में (भविष्यति) भविष्यत्काल में (वा) विकल्प से (सत्) सत्-संज्ञक=शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(शतृ) __करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य।__ तू कार्य करनेवाले देवदत्त को देख। (शानच्) __करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य।__ अर्थ पूर्ववत् है। (लृट्) __करिष्यति देवदत्तः।__ देवदत्त कार्य करेगा।

__सिद्धि-(१) करिष्यन्।__ कृ+लृट्। कृ+शतृ। कृ+स्य+अत्। कृ+इट्+स्य+अत्। कर्+इष्य+अनुम्त्। करिष्य+अन्त्। करिष्यन्+सु। करिष्यन्+०। करिष्यन्।

यहां __'डुकृञ् करणे'__ (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है। __'स्यतासी लृलुटोः'__ (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय, __'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'__ (७।२।३५) से 'इट्' आगम और __'आदेशप्रत्यययोः'__ (८।३।५९) से षत्व होता है। __'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'__ (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से __'उगिदचां सर्वनास्थानेऽधातोः'__ (७।१।७०) से नुम् आगम होता है।

(२) __करिष्यमाणः।__ कृ+लट्। कृ+शानच्। कृ+स्य+आन। कृ+इट्+स्य+मुक्+आन। कर्+इष्य+म्+आण। करिष्यमाण+सु। करिष्यमाणः।

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय के स्थान में 'शानच्' आदेश है। __'आने मुक्'__ (७।३।८२) से मुक् आगम और __'आदेशप्रत्यययोः'__ (८।३।५९) से षत्व तथा __'अट्कुप्वाङ्०'__ (८।४।२) से णत्व होता है।

(३) __करिष्यति।__ यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से विकल्प पक्ष में लृट् के स्थान में सत्=शतृ, शानच् आदेश नहीं है, अपितु 'लृट्' प्रत्यय ही है। सिद्धि पूर्ववत् है।

लुट् (अनद्यतने)-

(१३) अनद्यतने लुट्। १५।

प०वि०-अद्यतने ७।१ लुट् १।१।

स०-न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सः-अनद्यतनः, तस्मिन्-अनद्यतने (बहुव्रीहिः)।

अनु०-भविष्यति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोरनद्यतने भविष्यति लुट्।

अर्थः-धातोः परोऽनद्यतने भविष्यति काले लुट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-श्वः कर्ता देवदत्तः। श्वो भोक्ता ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से (अनद्यतने) आज को छोड़कर (भविष्यति) शेष भविष्यत्काल में (लुट्) लुट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**श्वः कर्ता देवदत्तः।** देवदत्त कल कार्य करेगा। **श्वो भोक्ता ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त कल भोजन करेगा।*

*सिद्धि-(१) **कर्ता।** कृ+लुट्। कृ+तास्+तिप्। कृ+तास्+डा। कृ+त्+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'लुट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय, **'लुटः प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में डा-आदेश **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'तास्' के टि-भाग (आस्) का लोप होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।*

*(२) **भोक्ता।** भुज्+लुट्। भुज्+तास्+त। भुज्+तास्+डा। भुज्+त्+आ। भुग्+ता। भुक्+ता। भोक्+ता। भोक्ता।*

*यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लुट्' प्रत्यय है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से भुज् के ज् को कुत्व ग् और **'खरि च'** (८।४।५४) से ग् को चर् क् होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

इति भविष्यत्कालप्रत्ययप्रकरणम्।

त्रिकालप्रत्ययप्रकरणम्

घञ्-

(१) पदरुजविशस्पृशो घञ्।१६।

प०वि०-पद-रुज-विश-स्पृशः ५।१ घञ् १।१।

स०-पदश्च रुजश्च विशश्च स्पृश् च एतेषां समाहारः-पदरुजविशस्पृश्, तस्मात्-पदरुजविशस्पृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-भविष्यति इति निवृत्तम्। इत उत्तरं त्रिषु कालेषु प्रत्यया भवन्ति।

अन्वयः-पद०स्पृशो धातोर्घञ्।

अर्थः-पदादिभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पदः)** पद्यतेऽसौ पादः। **(रुजः)** रुजत्यसौ रोगः। **(विशः)** विशत्यसौ वेशः। **(स्पृश्)** स्पृशत्यसौ स्पर्शः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(पद०स्पृशः) पद, रुज, विश, स्पृश् (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(पद) __पद्यतेऽसौ पादः।__ चलनेवाला चरण (पांव)। (रुज) __रुजत्यसौ रोगः।__ शरीर को भग्न करनेवाला रोग। (विश) __विशत्यसौ वेशः।__ शरीर में प्रविष्ट होनेवाला वेश। (स्पृश्) __स्पृशत्यसौ स्पर्शः।__ शरीर को स्पर्श करनेवाला उपताप (पीड़ा)।

__सिद्धि__-(१) पादः। पद्+घञ्। पाद्+अ। पाद+सु। पादः।

यहां __'पद गतौ'__ (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। __'अत उपधायाः'__ (७।२।११६) से पद् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) रोगः। रुज्+घञ्। रुग्+अ। रोग्+अ। रोग्+सु। रोगः।

__'रुजो भङ्गे'__ (तु०प०)। 'रुज्' धातु के 'ज्' को __'चजोः कु घिण्ण्यतोः'__ (७।३।५२) से कुत्व 'ग्' और __'पुगन्तलघूपधस्य च'__ (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।

(३) वेशः। __'विश प्रवेशने'__ (तु०प०)। पूर्ववत् लघूपध गुण है।

(४) स्पर्शः। __'स्पृश संस्पर्शने'__ (तु०प०)। पूर्ववत् लघूपध गुण होता है। यहां __'वा०-स्पृश उपताप इति वक्तव्यम्'__ (३।३।१६) से 'स्पृश' धातु उपताप अर्थ में है, संस्पर्शन अर्थ में नहीं।

घञ्-

(२) सृ स्थिरे।१७।

प०वि०-सृ ५।१ (लुप्तपञ्चमीकं पदम्) स्थिरे ७।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सृ धातोर्घञ् स्थिरे।

अर्थः-सृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति स्थिरे=कालान्तरस्थायिनि कर्तरि सति।

उदा०-सरतीति सारः। कालान्तरस्थायीत्यर्थः। चन्दनस्य सार इति चन्दनसारः। खदिरस्य सार इति खदिरसारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सृ) सृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि इस धातु का कर्ता (स्थिरे) कालान्तर स्थायी हो।

उदा०-सरतीति सारः। कालान्तर में अवस्थित रहनेवाला-सार। चन्दनस्य सार इति चन्दनसारः। चन्दन का सार। खदिरस्य सार इति खदिरसारः। खैर का सार।

सिद्धि-सारः। सृ+घञ्। सार्+अ। सार+सु। सारः।

यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'सृ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ् (भावे)--

(३) भावे।१८।

प०वि०-भावे ७।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भावे धातोर्घञ्।

अर्थः-भावे=धात्वर्थमात्रे वाच्ये धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पचनं पाकः। त्यजनं त्यागः। रञ्जनं रागः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) धात्वर्थमात्र के कथन में (धातोः) धातुमात्र से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-पचनं पाकः। पकाना। त्यजनं त्यागः। छोड़ना। रञ्जनं रागः। रञ्जन करना (रंगना)।

सिद्धि-(१) पाकः। पच्+घञ्। पक्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से पच् के 'च्' के कुत्व 'क्' होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'पच्' को उपधावृद्धि होती है।

(२) त्यागः। 'त्यज हानौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) रागः। रञ्ज्+घञ्। रज्+अ। रग्+अ। राग्+अ। राग+सु। रागः।

यहां 'रञ्ज रागे' (भ्वा०उ०)। 'घञि च भावकरणयोः' (६।४।२७) से 'रञ्ज्' के अनुनासिक लोप और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

अकर्तृकारकभावप्रकरणम्

घञ्–

(१) अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्।१६।

प०वि०-अकर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्, कारके ७।१ संज्ञायाम्।

स०-न कर्ता इति अकर्ता, तस्मिन्-अकर्तरि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-भावे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि च कारके धातोर्घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-अकर्तरि=कर्तृभिन्ने कारकेऽपि वर्तमानाद् धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये।

उदा०-प्रास्यन्ति यमिति प्रासः। प्रसीव्यन्ति यमिति प्रसेवः। आहरन्ति यस्माद् रसमिति आहारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता के भिन्न (कारके) कारक में (च) भी (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा विषय हो।

*उदा०-**प्रास्यन्ति यमिति प्रासः।** जिसको फैंकते हैं (भाला)। **प्रसिव्यन्ति यमिति प्रसेवः।** जिसको सीमते हैं (थैला)। **आहरन्ति यस्माद् रसमिति आहारः।** जिससे रस ग्रहण करते हैं (भोजन)।*

सिद्धि-(१) प्रासः। प्र+अस्+घञ्। प्र+आस्+अ। प्रास+सु। प्रासः।

*यहां **'असु क्षेपणे'** (दि०प०) धातु से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'अस्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

(२) प्रसेवः। प्र+सिव्+घञ्। प्र+सेव्+अ। प्रसेव+सु। प्रसेवः।

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'सिव्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

(३) आहारः। आङ्+हृ+घञ्। आ+हार्+अ। आहार+सु। आहारः।

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'हृ' धातु को वृद्धि होती है।*

*विशेष-अनुवृत्तिः-यहां से आगे **'भावे'** और **'अकर्तरि च कारके'** की अनुवृत्ति **'आक्रोशे नञ्यनिः'** (३।३।११२) तक है। प्रत्येक अनुवृत्ति सन्दर्भ में इनकी अनुवृत्ति नहीं लिखी जायेगी।*

घञ् (परिमाणाख्यायाम्)–

(२) परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः।२०।

प०वि०–परिमाण–आख्यायाम् ७।१ सर्वेभ्यः ५।३।

स०–परिमाणस्य आख्या इति परिमाणाख्या, तस्याम्–परिमाणाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सर्वेभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति, परिमाणाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०–एकस्तण्डुलनिश्चायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। द्वौ कारौ। त्रयः काराः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (सर्वेभ्यः) सब धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (परिमाणाख्यायाम्) परिमाण=संख्या का कथन हो।

*उदा०-**एकस्तण्डुलनिश्चायः।** एक तण्डुल-राशि। **द्वौ शूर्पनिष्पावौ।** दो छाज शुद्ध किये हुये तण्डुल। **द्वौ कारौ।** धान्य आदि के दो विक्षेप (बरसाना)। **त्रयः काराः।** धान्य आदि के तीन विक्षेप (बरसाना)।*

सिद्धि-(१) निश्चायः। निस्+चि+घञ्। निस्+चै+अ। निश्चाय+सु। निश्चायः।

*यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च'** (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है। निश्चीयते=राशीक्रियते इति निश्चायः=राशिः। यहां कर्मकारक में 'घञ्' प्रत्यय है।*

*(२) **निष्पावः।** निस्+पू+घञ्। निस्+पौ+अ। निः+पाव्+अ। निष्+पाव। निष्पाव+सु। निष्पावः।*

*यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय। **'ऋदोरप्'** (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'पू' धातु को वृद्धि होती है। **'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य'** (८।३।४१) से विसर्जनीय को षत्व होता है। **निष्पूयते यः सः-निष्पावः=तण्डुलादिः।** यहां कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है।*

*(३) **कारः।** यहां **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'ऋदोरप्'** (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'कॄ'*

*धातु को वृद्धि होती है। **कीर्यते=विविधं क्षिप्यते यः सः-कारः=तण्डुलादिः।** यहां कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है।*

विशेष-परिमाण-यहां परिमाण से संख्या का ग्रहण किया जाता है, प्रस्थ (सेर) आदि का नहीं। संख्या भी एक परिमाण है।

घञ्-

(३) इङश्च।२१।

प०वि०-इङः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् इङ्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अधीयते यः सः-अध्यायः। उपेत्याधीते यस्मात् सः-उपाध्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (इङः) इङ् धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**अधीयते यः सः-अध्यायः।** जो पढ़ा जाता है वह-अध्याय। **उपेत्याधीते यस्मात् सः-उपाध्यायः।** शिष्य जिसके समीप जाकर पढ़ता है वह-उपाध्याय।*

*सिद्धि-(१) **अध्यायः।** अधि+इङ्+घञ्। अधि+ऐ+अ। अधि+आय्+अ। अध्+आय। अध्याय+सु। अध्यायः।*

*यहां नित्य अधि उपसर्गपूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अ०दा०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'एरच्'** (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय प्राप्त था। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'आय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(२) **उपाध्यायः।** उप और अधि उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से पूर्ववत्। उप+अध्यायः=उपाध्यायः।*

घञ्-

(४) उपसर्गे रुवः।२२।

प०वि०-उपसर्गे ७।१ रुवः ५।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सोपसर्गाद् रु-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-संरावः। उपरावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) सोपसर्ग (रुवः) रु-धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-संरूयते यः सः-संरावः। मिलकर किया जानेवाला शब्द (शोर)। उपरूयते यः सः-उपरावः। पास में आकर किया जानेवाला शब्द (कलह)।

सिद्धि-(१) संरावः। सम्+रु+घञ्। सम्+रौ+अ। सम्+राव्+अ। संराव+सु। संरावः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'ऋदोरप्' (३।३।२७) से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'रु' धातु को पूर्ववत् वृद्धि और 'आव्' आदेश होता है।

(२) उपरावः। उप उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'रु' धातु से पूर्ववत्।

घञ्-

(५) समि युद्रुदुवः।२३।

प०वि०-समि ७।१ यु-दु-द्रुवः ५।१।

स०-युश्च दुश्च द्रुश्च एतेषां समाहारः-युदुद्रु, तस्मात्-युदुद्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च समि युदुद्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सम्-पूर्वेभ्यो युदुद्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(युः) संयूयते=मिश्रीक्रियते यः सः-संयावः। (दुः) संदावः। (द्रुः) संद्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और भाव अर्थ में विद्यमान (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (युदुद्रुवः) यु, दु, द्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(यु) संयूयते=मिश्रीक्रियते यः स संयावः। हलवा। (दु) संदावः। मिलकर दौड़ना। (द्रु) संद्रावः। मिलकर दौड़ना।

सिद्धि-(१) संयावः । सम्+यु+घञ् । सम्+यौ+अ । सम्+याव्+अ । संयाव+सु । संयावः ।

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'यु' धातु को वृद्धि होती है।*

(२) संदावः । 'दु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) संद्रावः । 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्--

(६) श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे।२४।

प०वि०-श्रि-णी-भुवः ५।१ अनुपसर्गे ७।१।

स०-श्रिश्च णीश्च भूश्च एतेषां समाहारः-श्रिणीभु, तस्मात्-श्रिणीभुवः (समाहारद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मिन् अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे श्रिणीभुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्योऽनुपसर्गेभ्यः श्रिणीभूभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**श्रिः**) श्रायः। (**नीः**) नायः। (**भूः**) भावः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (श्रिणीभुवः) श्रि, णी, भू (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**श्रि**) **श्रायः**। सेवा करना। (**नी**) **नायः**। देशान्तर में पहुंचना। (**भू**) **भावः**। सत्ता होना।*

*सिद्धि-(१) **श्रायः**। श्रि+घञ्। श्रै+अ। श्राय्+अ। श्राय+सु। श्रायः।*

*यहां उपसर्गरहित '**श्रिञ् सेवायाम्**' (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'श्रि' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **नायः**। '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **भावः**। '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

घञ्–

(७) वौ क्षुश्रुवः ।२५।

प०वि०–वौ ७।१ क्षुश्रुवः ५।१।

स०–क्षुश्च श्रुश्च एतयोः समाहारः–क्षुश्रु, तस्मात्–क्षुश्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च वि–पूर्वाभ्यां क्षुश्रुभ्यां धातुभ्यां घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्यां वि–पूर्वाभ्यां क्षुश्रुभ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(क्षुः) विक्षावः। (श्रुः) विश्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (वौ) वि उपसर्गपूर्वक (क्षुश्रुवः) क्षु, श्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(क्षु) **विक्षावः।** खांसना। (श्रु) **विश्रावः।** प्रसिद्ध होना।*

सिद्धि-*(१) **विक्षावः।** वि+क्षु+घञ्। वि+क्षौ+अ। वि+क्षाव्+अ। विक्षाव+सु। विक्षावः।*

*यहां वि उपसर्गपूर्वक 'टुक्षु शब्दे' (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'क्षु' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **विश्रावः।** 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

घञ्–

(८) अवोदोर्नियः ।२६।

प०वि०–अव–उदोः ७।२ नियः ५।१।

स०–अवश्च उच्च तौ–अवोदौ, तयोः–अवोदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च अवोदोर्नियो धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अव–उत्पूर्वाद् नी–धातोः परो घञ् भवति।

उदा०–(अवः) अवनायः। (उत्) उन्नायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और भाव अर्थ में विद्यमान (अवोदोः) अव और उत् उपसर्गपूर्वक (नियः) नी (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(अव) **अवनायः।** अवनति करना। (उत्) **उन्नायः।** उन्नति करना।*

*सिद्धि-(१) **अवनायः।** अव+नी+घञ्। अव+नै+अ। अव+नाय्+अ। अवनाय+सु। अवनायः।*

*यहां अव उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **उन्नायः।** उत् उपसर्गपूर्वक 'नी' धातु से पूर्ववत्।*

घञ्–

(६) प्रे द्रुस्तुस्रुवः।२७।

प०वि०-प्रे ७।१ द्रु-स्तु-स्रुवः ५।१।

स०-द्रुश्च स्तुश्च स्रुश्च एतेषां समाहारः-द्रस्तुस्रु, तस्मात्-द्रस्तुस्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे द्रुस्तुस्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः प्र-पूर्वेभ्यो द्रुस्तुस्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्रुः) प्रद्रावः। **(स्तुः)** प्रस्तावः। **(स्रुः)** प्रस्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (द्रुस्तुस्रुवः) द्रु, स्तु, स्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(द्रु) **प्रद्रावः।** पिघलना। (स्तु) **प्रस्तावः।** पेश करना। (स्रु) **प्रस्रावः।** झरना।*

*सिद्धि-(१) **प्रद्रावः।** प्र+द्रु+घञ्। प्र+द्रौ+अ। प्र+द्राव्+अ। प्रद्राव+सु। प्रद्रावः।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'द्रु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'द्रु' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **प्रस्तावः।** **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **प्रस्रावः।** **'स्रु गतौ'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

घञ्–

(१०) निरभ्योः पूल्वोः।२८।

प०वि०–निर्–अभ्योः ७।२। पू-ल्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–निस् च अभिश्च तौ–निरभी, तयोः–निरभ्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। पूश्च लूश्च तौ–पूल्वौ, तयोः–पूल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च निरभ्योः पूलूभ्यां धातुभ्यां घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्यां यथासंख्यं निर्–अभि पूर्वाभ्यां पू-लूभ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(निस्+पूः) निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावः=कोशी धान्यविशेषः। (अभि+लूः) अभिलावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान यथासंख्य (निरभ्योः) निस् और अभि उपसर्गपूर्वक (पूल्वोः) पू, लू (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(निस्+पू) निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावः=कोशी धान्यविशेषः।** जो शूर्प=छाज आदि से निश्चिततः शुद्ध किया जाता है वह निष्पाव=कोशी नामक धान्यविशेष। **(अभि+लू) अभिलावः।** अभिमुख काटा जानेवाला सस्य आदि।*

*सिद्धि-(१) **निष्पावः।** निस्+पू+घञ्। निस्+पौ+अ। निः+पाव। निष्पाव+सु। निष्पावः।*

*यहां 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'पूङ् **पवने**' (भ्वा०आ०) तथा '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'पू' धातु को वृद्धि होती है। '**इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य**' (८।३।४१) से षत्व होता है।*

*(२) **अभिलावः।** अभि उपसर्गपूर्वक '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।*

घञ्–

(११) उन्न्योर्ग्रः।२६।

प०वि०–उत्–न्योः ७।२ ग्रः ५।१।

स०–उच्च निश्च तौ–उन्नी, तयोः–उन्नयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उन्न्योर्ग्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् उत्-नी पूर्वाद् गृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**उत्**) उद्गारः समुद्रस्य। (**नि**) निगारो देवदत्तस्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उन्न्योः) 'उत्' और 'नि' उपसर्गपूर्वक (ग्रः) गृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(उत्) उद्गारः **समुद्रस्य।** समुद्र का अति प्रवृद्ध शब्द। (नि) **निगारो देवदत्तस्य।** देवदत्त का भक्षण करना (निगलना)।*

सिद्धि-(१) उद्गारः। उत्+गृ+घञ्। उत्+गार्+अ। उद्गार+सु। उद्गारः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'गॄ शब्दे' (क्र्या०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'गॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) निगारः। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गॄ निगरणे' (तु०प०) पूर्ववत्।

घञ्-

(१२) कॄ धान्ये।३०।

प०वि०-कॄ ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) धान्ये ७।१।

अनु०-घञ्, उन्न्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धान्ये उन्न्योः कॄ-धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे धान्ये च विषये वर्तमानाद् उत्-नीपूर्वात् कॄ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**उत्**) उत्कारो धान्यस्य। (**नि**) निकारो धान्यस्य।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (धान्ये) धान्य विषय में विद्यमान (उन्न्योः) उत् और नि उपसर्गपूर्वक (कॄ) कॄ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(उत्) **उत्कारो धान्यस्य।** धान्य का ऊपर को फैंकना। (नि) **निकारो धान्यस्य।** धान्य का नीचे फैंकना (बरसाना)।*

सिद्धि-(१) उत्कारः। उत्+कॄ+घञ्। उत्+कार्+अ। उत्कार+सु। उत्कारः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कॄ' धातु को वृद्धि होती है।

(२) निकारः। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'कॄ' धातु से पूर्ववत्।

घञ्–

(१३) यज्ञे समि स्तुवः।३१।

प०वि०–यज्ञे ७।१ समि ७।१ स्तुवः ५।१।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च यज्ञे समि स्तुवो धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञे च विषये सम्-पूर्वात् स्तु-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–संस्तावश्छन्दोगानाम्। समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः स देशः संस्ताव इत्युच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (यज्ञे) यज्ञविषय में विद्यमान (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (स्तुवः) स्तु (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्तावश्छन्दोगानाम्। जहां सामगान करनेवाले ऋत्विग् लोग मिलकर स्तुतिगान करते हैं वह स्थान 'संस्ताव' कहाता है।

सिद्धि-(१) संस्तावः। सम्+स्तु+घञ्। सम्+स्तौ+अ। संस्ताव+सु। संस्तावः।

यहां सम् उपसर्गपूर्वक 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तु' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१४) प्रे स्त्रोऽयज्ञे।३२।

प०वि०–प्रे ७।१ स्त्रः ५।१ अयज्ञे ७।१।

स०–न यज्ञ इति अयज्ञः, तस्मिन्-अयज्ञे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चायज्ञे प्रे स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञवर्जिते विषये वर्तमानात् प्र-पूर्वात् स्तृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–शङ्खप्रस्तारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अयज्ञे) यज्ञ विषय से रहित (प्रे) 'प्र' उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-शङ्खप्रस्तारः । शङ्खध्वनि का विस्तार।

सिद्धि-(१) प्रस्तारः । प्र+स्तॄ+घञ् । प्र+स्तार्+अ । प्रस्तार+सु । प्रस्तारः ।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तॄ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१५) प्रथने वावशब्दे।३३।

प०वि०-प्रथने ७।१ वौ ७।१ अशब्दे ७।१।

स०-न शब्द इति अशब्दः, तस्मिन् अशब्दे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, स्त्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चाशब्दे प्रथने वौ स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे शब्दवर्जिते प्रथने च विषये वि-पूर्वात् स्तॄ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पटस्य विस्तारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अशब्दे) शब्द को छोड़कर (प्रथने) विस्तार विषय में (वौ) वि-उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तॄ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**पटस्य विस्तारः**। कपड़े का फैलाव।*

सिद्धि-(१) विस्तारः । वि+स्तॄ+घञ् । वि+स्तार्+अ । विस्तार+सु । विस्तारः ।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'स्तॄ' धातु को वृद्धि होती है।

घञ्–

(१६) छन्दोनाम्नि च।३४।

प०वि०-छन्दोनाम्नि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-छन्दसो नाम इति छन्दोनाम, तस्मिन्-छन्दोनाम्नि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, स्त्रः, वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च छन्दोनाम्नि वौ स्त्रो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि च कारके भावे चार्थे छन्दोनाम्नि च विषये वर्तमानाद् वि-पूर्वात् स्तृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहती छन्दः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में (च) तथा (छन्दोनाम्नि) छन्दोनाम विषय में विद्यमान (वौ) वि-उपसर्गपूर्वक (स्त्रः) स्तृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः।** विष्टारपङ्क्ति नामक एक वैदिक छन्द है। **विष्टारबृहती छन्दः।** विष्टारबृहती नामक एक वैदिक छन्द है।*

सिद्धि-विष्टारः। *वि+स्तृ+घञ्। वि+स्तार्+अ। वि+ष्टार्+अ। विष्टार+सु। विष्टारः।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से छन्दोनाम विषय में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है। '**छन्दोनाम्नि च**' (८।३।९४) से षत्व और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से टुत्व होता है।*

विशेष-छन्द-'विष्टारपङ्क्तिरन्तः' *(छन्दशास्त्र ३।४२) के प्रमाण से जिस छन्द के मध्य में दो पाद जगती छन्द के और आदि तथा अन्त के दो पाद गायत्री छन्द के होते हैं, उसे विष्टारपङ्क्ति छन्द कहते हैं। जैसे :-*

अग्ने तव श्रवो यवो, महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।

बृहद् भानो शवसा वाजमुक्थ्यं, दधासि दाशुषे कवे।। *(ऋ० १०।१४०।१)*

विष्टारबृहती छन्द का पिंगलच्छन्दशास्त्र में उल्लेख नहीं है।

घञ्—

(१७) उदि ग्रहः।३५।

प०वि०-उदि ७।१ ग्रहः ५।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उदि ग्रहो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् उत्पूर्वाद् ग्रह-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उद्ग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उदि) उत् उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उद्ग्राहः । उत्कृष्ट विद्यादि गुण ग्रहण करना ।

सिद्धि-उद्ग्राहः । उत्+ग्रह्+घञ् । उत्+ग्राह्+अ । उद्ग्राह+सु । उद्ग्राहः ।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह् धातु को उपधावृद्धि होती है।

घञ्–

(१८) समि मुष्टौ।३६।

प०वि०-समि ७।१ मुष्टौ ७।१।

अनु०-घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे मुष्टौ च विषये सम्-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अहो मल्लस्य संग्राहः। अहो मुष्टिकस्य संग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे भाव अर्थ में विद्यमान तथा (मुष्टौ) मुट्ठी विषय में (समि) सम् उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**अहो मल्लस्य संग्राहः।** पहलवान की मुट्ठी की पकड़ कमाल की है। **अहो मुष्टिकस्य संग्राहः।** मुक्केबाज की पकड़ आश्चर्यजनक है।*

सिद्धि-संग्राहः । सम्+ग्रह्+घञ् । सम्+ग्राह्+अ । संग्राह+सु । संग्राहः ।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।

घञ्–

(१९) परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः।३७।

प०वि०-परि-न्योः ७।२ नी-इणोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) द्यूत-अभ्रेषयोः ७।२।

स०-परिश्च निश्च तौ परिनी, तयोः-परिन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्व)। नीश्च इण् च तौ नीणौ, तयोः-नीणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्यूतं चाभ्रेषश्च तौ द्यूताभेषौ, तयोः-द्यूताभ्रेषयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च द्यूताभ्रेषयोः परिन्योर्नीण्भ्यां धातुभ्यां घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे यथासंख्यं द्यूताभ्रेषयोर्विषययोर्यथासंख्यं च परि-निपूर्वाभ्यां नी-इण्भ्यां धातुभ्यां परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(द्यूतम्)** परिणायेन शारान् हन्ति शकुनिः। **(अभ्रेषः)** एषोऽत्र न्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान, यथासंख्य (द्यूताभ्रेषयोः) द्यूत और अभ्रेष=यथाप्राप्त करने विषय में यथासंख्य (परिन्योः) 'परि' और 'नी' उपसर्गपूर्वक (नीणोः) 'नी' और 'इण्' धातु से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(द्यूत) परिणायेन शारान् हन्ति शकुनिः।** शकुनि सब ओर प्राप्ति से द्यूत-क्रीडा के पासों को रोकता है। **(अभ्रेष) एषोऽत्र न्यायः।** यहां यह यथाप्राप्त (ठीक) है। अभ्रेष=प्रशस्त आचरण, यथाप्राप्तकरण।*

*सिद्धि-(१) **परिणायः।** परि+नी+घञ्। परि+नै+अ। परि+नाय्+अ। परिणाय+सु। परिणायः।*

*यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** धातु से द्यूतक्रीडा विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णत्व होता है।*

*(२) **न्यायः।** नि+इण्+घञ्। नि+ऐ+अ। नि+आय्+अ। न्याय+सु। न्यायः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से अभ्रेष=उचित आचरण विषय में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है।*

घञ्--

(२०) परावनुपात्यय इणः।३८।

प०वि०- परौ ७।१ अनुपात्यये ७।१ इणः ५।१।

क्रमप्राप्तस्यानतिपातोऽनुपात्ययः, तस्मिन् अनुपात्यये। परिपाटीत्यर्थः।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपात्यये पराविणो धातोर्घञ्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे अनुपात्यये च विषये वर्तमानात् परि-पूर्वादिण्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तव पर्यायः। मम पर्यायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान तथा (अनुपात्यये) परिपाटी विषय में (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (इणः) इण् धातु से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-तव **पर्यायः।** तेरी परिपाटी=बारी है। **मम पर्यायः।** मेरी परिपाटी=बारी है।*

सिद्धि-पर्यायः। *परि+इण्+घञ्। परि+ऐ+अ। परि+आय्+अ। पर्याय+सु। पर्यायः।*

*यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से अनुपात्यय=परिपाटी विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'इ' धातु को वृद्धि होती है।*

घञ्-

(२१) व्युपयोः शेतेः पर्याये।३६।

प०वि०-वि-उपयोः ७।२ शेतेः ५।१ पर्याये ७।१।

स०-विश्च उपश्च तौ-व्युपौ, तयोः-व्युपयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च पर्याये व्युपयोः शेतेर्धातोर्घञ्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे पर्याये च विषये वर्तमानाद् वि-उपपूर्वात् शीङ्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विः) तव विशायः। मम विशायः। **(उपः)** तव राजोपशायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (पर्याये) पर्याय=परिपाटी विषय में विद्यमान (व्युपयोः) 'वि' और 'उप' उपसर्गपूर्वक (शेतेः) शीङ् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(वि) तव **विशायः।** तेरा शयन का पर्याय है। **मम विशायः।** मेरा शयन का पर्याय है। (उप) **तव राजोपशायः।** तेरा राजा के समीप शयन का पर्याय है। पर्याय=बारी।*

घञ्–

(२२) हस्तादाने चेरस्तेये।४०।

प०वि०–हस्त-आदाने ७।१ चेः ५।१ अस्तेये ७।१।

स०–हस्तेनाऽऽदानमिति हस्तादानम्, तस्मिन्-हस्तादाने (तृतीयातत्पुरुषः)। न स्तेयमिति अस्तेयम्, तस्मिन्-अस्तेये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चास्तेये हस्तादाने चेर्धातोर्घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे स्तेयवर्जिते हस्तादाने च विषये वर्तमानात् चि-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पुष्पप्रचायः। फलप्रचायः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (अस्तेये) चोरी को छोड़कर (हस्तादाने) हाथ से ग्रहण करना विषय में (चेः) चि (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**पुष्पप्रचायः**। हाथ से फूल ग्रहण करना। **फलप्रचायः**। हाथ से फल ग्रहण करना।*

*सिद्धि-**प्रचायः**। प्र+चि+घञ्। प्र+चै+अ। प्र+चाय्+अ। प्रचाय+सु। प्रचायः।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से परे हस्तादान विषय में 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है।*

घञ्–

(२३) निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः।४१।

प०वि०–निवास-चिति-शरीर-उपसमाधानेषु ७।३ आदेः ६।१ च अव्ययपदम्, कः १।१।

स०–निवासश्च चितिश्च शरीरं च उपसमाधानं च तानि-निवास०उपसमाधानानि, तेषु-निवास०उपसमाधानेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ्, चेः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु चेर्धातोर्घञ्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु चार्थेषु वर्तमानात् चि-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, चिधातोरादेश्चकारस्य स्थाने च ककारादेशो भवति।

उदा०-(**निवासः**) चिखल्लिनिकायः। (**चितिः**)आकायमग्निं चिन्वीत। (**शरीरम्**) अनित्यकायः। (**उपसमाधानम्**) महागोमयनिकायः। चितिः=चयनम्। उपसमाधानम्=राशीकरणम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (निवास०उपसमाधानेषु) निवास, चिति, शरीर, उपसमाधान अर्थों में विद्यमान (चेः) चि (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है (च)और (आदेः) 'चि' धातु के आदि चकार के स्थान में (कः) ककार आदेश होता है।

*उदा०-(निवास) **चिखल्लिनिकायः**। यह चिखल्लि जनपद का निवास=ग्राम है। (चिति) **आकायमग्निं चिन्वीत**। जिसमें अग्नि का चयन किया जाता है, उस यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधान करे। (शरीर) **अनित्यकायः**। कायः=शरीर अनित्य है। (उपसमाधान) **महागोमयनिकायः**। बिखरे हुये गोमयों (गोबर) का एकत्र राशीकरण।*

*सिद्धि-(१) **निकायः**। नि+चि+घञ्। नि+चै+अ। नि+काय्+अ। निकाय+सु। निकायः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से अधिकरण कारक में तथा अर्थ मे इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'चि' धातु को वृद्धि होती है। इसी सूत्र से 'चि' धातु के 'च' के स्थान में 'क' आदेश होता है।*

*(२) **आकायः**। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से अधिकरण कारक में तथा चिति=इष्टका-चयन अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **आचीयन्ते इष्टका यस्मिन् सः-आकायः (यज्ञकुण्डम्)। इष्टका=ईंट।***

*(३) **कायः**। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से अधिकरण कारक में तथा शरीर अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। **चीयन्तेऽस्थ्यादीनि यस्मिन् सः-कायः (शरीरम्)।***

*(४) **निकायः**। यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से भाव में उपसमाधान=राशीकरण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। **निकायः=राशीकरणम्।***

घञ्-

(२४) संघे चानौत्तराधर्ये।४२।

प०वि०-संघे ७।१ च अव्ययपदम्, अनौत्तराधर्ये ७।१।

स०-उत्तरे च अधरे च ते उत्तराधराः, उत्तराधराणां भाव औत्तराधर्यम्, न औत्तराधर्यमिति अनौत्तराधर्यम्, तस्मिन्-अनौत्तराधर्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-घञ्, चेः, आदेश्च क इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानौत्तराधर्ये संघे चेर्धातोर्घञ्, आदेश्च कः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे, औत्तराधर्यवर्जिते संघे च वाच्ये वर्तमानात् चि-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, चिधातोरादेश्चकारस्य स्थाने च ककारादेशो भवति।

उदा०-भिक्षुकनिकायः। ब्राह्मणनिकायः। वैयाकरणनिकायः।

प्राणिनां समुदायः सङ्घ इत्युच्यते। स च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां भवति। समानधर्मनिवेशेन, औत्तराधर्येण च। अत्रौत्तरार्धयनिषेधात् समानधर्मनिवेशेन निष्पन्नः सङ्घो गृह्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा औत्तराधर्य से रहित संघ वाच्यार्थ में विद्यमान (चेः) चि (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता (च) और (आदेः) 'चि' धातु के आदि चकार के स्थान में (कः) ककार आदेश होता है।

*उदा०-**भिक्षुकनिकायः।** भिक्षुकों का संघ। **ब्राह्मणनिकायः।** ब्राह्मणों का संघ। **वैयाकरणनिकायः।** वैयाकरणों के संघ।*

सिद्धि-निकायः। *यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चि' धातु से औत्तराधर्य से रहित संघ अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष-संघ-प्राणियों का समुदाय संघ कहाता है। वह दो प्रकार से बनता है। पहला समानधर्म में प्रवेश करने से तथा दूसरा सूअर आदि के समान ऊपर नीचे पड़ने से। इसे औत्तराधर्य कहते हैं। यहां औत्तराधर्य से संघ का निषेध किया गया है तथा समानधर्म में प्रवेश से निष्पन्न संघ का ग्रहण किया गया है।

णच्–

(२५) कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्।४३।

प०वि०-कर्म-व्यतिहारे ७।१ णच् १।१ स्त्रियाम् ७।१।

स०-कर्म=क्रिया। व्यतिहार:=परस्परं करणम्। कर्मणो व्यतिहार इति कर्मव्यतिहार:, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अन्वय:-अकर्तरि च कारके भावे च कर्मव्यतिहारे धातोर्णच् स्त्रियाम्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे कर्मव्यतिहारे वर्तमानाद् धातो: परो णच् प्रत्ययो भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावलेखी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (कर्मव्यतिहारे) क्रिया के परस्पर करने में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (णच्) णच् प्रत्यय होता है (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में।

*उदा०-**व्यावक्रोशी वर्तते।** परस्पर आह्वान हो रहा है। **व्यावलेखी वर्तते।** परस्पर लेखन-कार्य चल रहा है। **व्यावहासी वर्तते।** परस्पर हास्य चल रहा है।*

*सिद्धि-(१) **व्यावक्रोशी।** वि+अव+क्रुश्+णच्। वि+अव+क्रोश्+अ। व्यवक्रोश+अञ्। व्यावक्रोश+ङीप्। व्यावक्रोशी+सु। व्यावक्रोशी।*

*यहां वि-अव उपसर्गपूर्वक **'क्रुश् आह्वाने'** (भ्वा०प०) धातु से भाव में तथा कर्मव्यतिहार में इस सूत्र से 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'णच: स्त्रियामञ्'** (५।४।१४) से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **व्यावलेखी।** **'लिख अक्षरविन्यासे'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **व्यावहासी।** **'हसे हसने'** (भ्वा०प०)। पूर्ववत्। **'न कर्मव्यतिहारे'** (८।३।६) से 'ऐच्' आदेश का निषेध होने से **'तद्धितष्वचमादे:'** (८।२।११७) से आदिवृद्धि होती है।*

इनुण्-

(२६) अभिविधौ भाव इनुण्।४४।

प०वि०-अभिविधौ ७।१ भावे ७।१ इनुण् १।१।

स०-अभिविधि:=अभिव्याप्ति:, तस्मिन्-अभिविधौ।

अन्वय:-भावे धातोरिनुण् अभिविधौ।

अर्थ:-भावेऽर्थे वर्तमानाद् धातो: परो इनुण् प्रत्ययो भवति, अभिविधौ गम्यमाने।

उदा०-सांकूटिनं वर्तते। सांराविणं वर्तते। सांद्राविणं वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (इनुण्) इनुण् प्रत्यय होता है, यदि वहां (अभिविधौ) अभिव्याप्ति अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-**सांकूटिनं वर्तते।** सब ओर दहन हो रहा है (आग लगी हुई है)। **सांराविणं वर्तते।** सब ओर शोर हो रहा है। **सांद्राविणं वर्तते।** सब ओर भगदड़ मच रही है।*

*सिद्धि-(१) **सांकूटिनम्।** सम्+कूट्+इनुण्। सम्+कूट+इन्। सांकूटिन्+अण्। सांकूटिन्+अ। सांकूटिन्+सु। सांकूटिनम्।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'कूट परितापे, परिदाह इत्येके'** (चु०आ०) धातु से भाव में तथा अभिविधि=अभिव्याप्ति की प्रतीति में इस सूत्र से 'इनुण्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'अणिनुणः'** (५।४।१५) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से टि-लोप का अभाव है। यहां 'सम्' उपसर्ग अभिविधि=अभिव्याप्ति का द्योतक है।*

*(२) **सांराविणम्।** 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'रु शब्दे'** (अदा०प०)।*

*(३) **सांद्राविणम्।** 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'द्रु गतौ'** (भ्वा०प०)।*

घञ्-

(२७) आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः।४५।

प०वि०-आक्रोशे ७।१ अव-न्योः ७।२ ग्रहः ५।१।

स०-अवश्च निश्च तौ-अवनी, तयोः-अवन्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अत्र दृष्टानुवृत्तिसामर्थ्याद् घञ् इत्यनुवर्तति, नाऽनन्तर इनुण् प्रत्ययः।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अवन्योर्ग्रहो धातोर्घञ् आक्रोशे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे, अव-निपूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने। आक्रोशः=शपनम्, अनिष्टाशंसनमित्यर्थः।

उदा०-(अवः) अवग्राहो हन्त ते वृषल! भूयात्। **(निः)** निग्राहो हन्त ते वृषल! भूयात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अव-न्योः) अव और नि उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (आक्रोशे) अनिष्ट की इच्छा प्रकट हो।

*उदा०-(अव) **अवग्राहो** हन्त ते वृषल ! **भूयात्**। कोई वृषल (नीच) को कोप में कहता है-हे नीच ! तेरा अवग्राह=अभिभव (अवमान) हो। **(नि) निग्राहो हन्त ते वृषल ! भूयात्**। हे नीच ! तुझे निग्राह=बाध (दु:ख) हो। यहां हन्त शब्द कोप का द्योतक है।*

***सिद्धि-(१) अवग्राह:।** अव+ग्रह्+घञ्। अव+ग्राह्+अ। अवग्राह+सु। अवग्राह:।*

*यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा आक्रोश की प्रतीति में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। **'अत उपधाया:'** (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **निग्राह:।** 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से पूर्ववत्।*

घञ्-

(२८) प्रे लिप्सायाम्।४६।

प०वि०-प्रे ७।१ लिप्सायाम् ७।१। लब्धुमिच्छा=लिप्सा, तस्याम्-लिप्सायाम्।

अनु०-घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अर्थ:-कर्तरि कारके भावे चार्थे प्र-पूर्वाद् ग्रह-धातो: परो घञ् प्रत्ययो भवति, लिप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षु: पिण्डार्थी। स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रह:) ग्रह् (धातो:) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।, यदि वहां (लिप्सायाम्) किसी पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट हो।

*उदा०-**पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षु: पिण्डार्थी।** पिण्ड=चूर्मा आदि अन्न का इच्छुक भिक्षु भिक्षापात्र लेकर घूम रहा है। **स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी।** दक्षिणा का इच्छुक ब्राह्मण स्रुव (चमस) लेकर घूम रहा है कि कोई यज्ञ करा ले और उसे दक्षिणा मिल जाये।*

***सिद्धि-पात्रप्रग्राहम्।** प्र+ग्रह्+घञ्। प्र+ग्राह्+अ। प्रग्राह+सु। प्रग्राहम्। पात्र+प्रग्राहम्=पात्रप्रग्राहम्।*

*यहां पात्र उपपद तथा 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा लिप्सा की प्रतीति में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधाया:'** (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-**स्रुवप्रग्राहम्।***

घञ्–

(२९) परौ यज्ञे।४७।

प०वि०-परौ ७।१ यज्ञे ७।१।

अनु०-घञ्, ग्रह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च यज्ञे परौ ग्रहो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे यज्ञविषये च वर्तमानात् परि-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यज्ञवेद्या उत्तरः परिग्राहः। यज्ञवेद्या अधरः परिग्राहः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (यज्ञे) यज्ञविषय में विद्यमान (परौ) परि उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**यज्ञवेद्या उत्तरः परिग्राहः।** स्फ्य (तलवार के आकार का यज्ञीयपात्र) से यज्ञवेदी के उत्तर भाग को ग्रहण करना। **यज्ञवेद्या अधरः परिग्राहः।** स्फ्य से यज्ञवेदी के अधोभाग को ग्रहण करना।*

*सिद्धि-**परिग्राहः।** यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा यज्ञ विषय में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से ग्रह धातु की उपधावृद्धि होती है।*

घञ्–

(३०) नौ वृ धान्ये।४८।

प०वि०-नौ ७।१ वृ ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) धान्ये ७।१।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च नौ वृ-धातोर्घञ्, धान्ये।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-पूर्वाद् वृ-धातोः परो घञ् प्रत्ययो भवति, धान्यविशेषेऽभिधेये।

उदा०-नीवारा नाम व्रीहयो भवन्ति। निव्रियन्त इति नीवाराः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक (वृ) वृ (धातोः) धातु से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (धान्ये) धान्यविशेष का कथन हो।

*उदा०-**नीवारा नाम व्रीहयो भवन्ति।** नीवार तण्डुल को कहते हैं।*

*सिद्धि-**नीवारः।** नि+वृ+घञ्। नि+वार्+अ। नीवार+सु। नीवारः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक '**वृञ् वरणे**' (स्वा०उ०) '**वृङ् सम्भक्तौ**' (क्रया०आ०) धातु से कर्म कारक में धान्यविशेष अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'वृ' धातु को वृद्धि होती है। '**उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्**' (६।३।१२२) से 'नि' उपसर्ग को दीर्घ होता है।*

घञ्-

(३१) उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः।४६।

प०वि०-उदि ७।१ श्रयति-यौति-पू-द्रुवः ५।१।

स०-श्रयतिश्च यौतिश्च पूश्च द्रुश्च एतेषां समाहारः-श्रयतियौतिपूद्रु, तस्मात्-श्रयतियौतिपूद्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उदि श्रयतियौतिपूद्रुवो धातोर्घञ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः उत्-पूर्वेभ्यः श्रयतियौतिपूद्रुभ्यो धातुभ्यः परो घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**श्रयतिः**) उच्छ्रायः। (**यौतिः**) उद्यावः। (**पूः**) उत्पावः। (**द्रुः**) उद्द्रावः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उदि) उत् उपसर्गपूर्वक (श्रयति०द्रुवः) श्रि, यु, पू, द्रु (धातोः) धातुओं से परे (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(श्रयति) **उच्छ्रायः।** ऊंचाई (यौति)। **उद्यावः।** मिश्रण करना। (पू) **उत्पावः।** यज्ञीय पात्रों को पवित्र करना। (द्रु) **उद्द्रावः।** उच्छलना।*

*सिद्धि-(१) **उच्छ्रायः।** उत्+श्रि+घञ्। उत्+श्रै+अ। उत्+श्राय। उत्+छ्राय। उच्छ्राय+सु। उच्छ्रायः।*

*यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**श्रिञ् सेवायाम्**' (भ्वा०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'श्रि' धातु को वृद्धि होती है। '**शश्छोऽटि**' (८।४।६३) से 'श्' को 'छ्' और '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' आदेश होता है।*

*(२) **उद्यावः।** 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) पूर्ववत्।*

(३) उत्पावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) तथा 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।

(४) उद्द्रावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

घञ्–

(३२) विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः।५०।

प०वि०–विभाषा १।१ आङि ७।१ रु-प्लुवोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–रुश्च प्लुश्च तौ-रुप्लुवौ, तयोः-रुप्लुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–घञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चाऽऽङि रुप्लुभ्यां धातुभ्यां विभाषा घञ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् आङ्-पूर्वाभ्यां रु-प्लुभ्यां धातुभ्यां परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(रुः)** आरावः (घञ्)। आरवः (अप्)। **(प्लुः)** आप्लावः (घञ्)। आप्लवः (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ–(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आङि) आङ् उपसर्गपूर्वक (रुप्लुवोः) रु, प्लु (धातोः) धातुओं से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में 'अप्' प्रत्यय होता है।

उदा०–(रु) आरावः (घञ्)। आरवः (अप्)। आवाज। (प्लु) आप्लावः (घञ्)। आप्लवः। उच्छलना-कूदना। डुबकी लगाना।

सिद्धि–(१) आरावः। आङ्+रु+घञ्। आ+रौ+अ। आ+आव्+अ। आराव+सु। आरावः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'रु' धातु को वृद्धि होती है।

(२) आरवः। आङ्+रु+अप्। आ+रो+अ। आ+रव्+अ। आरव+सु। आरवः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'रु' धातु से विकल्प पक्ष में 'ॠदोरप्' (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (८।३।८४) से 'रु' धातु को गुण होता है।

(३) आप्लावः। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'प्लुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है।

(४) आप्लवः । 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'प्लु' धातु से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'अप्' प्रत्यय है।

घञ्–

(३३) अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ।५१।

प०वि०–अवे ७ ।१ ग्रहः ५ ।१ वर्ष-प्रतिबन्धे ७ ।१ ।

स०–वर्षस्य प्रतिबन्ध इति वर्षप्रतिबन्धः, तस्मिन्-वर्षप्रतिबन्धे (षष्ठीतत्पुरुषः) ।

अनु०–घञ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ्, वर्षप्रतिबन्धे।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अव-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, वर्षप्रतिबन्धेऽभिधेये। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। प्राप्तकालस्य वर्षस्य कुतश्चिन्निमित्तादभावो वर्षप्रतिबन्ध इत्युच्यते।

उदा०–अवग्राहो देवस्य (घञ्)। अवग्रहो देवस्य (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अवे) अव-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। (वर्षप्रतिबन्धे) यदि वहां वर्षा के अभाव का कथन हो। विकल्प पक्ष में 'अप्' प्रत्यय होता है। वर्षाकाल में किसी कारण से वर्षा का अभाव होना वर्षप्रतिबन्ध कहाता है।

उदा०-अवग्राहो देवस्य (घञ्)। अवग्रहो देवस्य (अप्)। पर्जन्य देवता का न बरसना।

सिद्धि-(१) अवग्राहः। अव+ग्रह्+घञ्। अव+ग्राह्+अ। अवग्राह+सु। अवग्राहः।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा वर्षप्रतिबन्ध अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से ग्रह धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) अवग्रहः। अव+ग्रह्+अप्। अव+ग्रह्+अ। अवग्रह+सु। अवग्रहः।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह' धातु से 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय है।

घञ्–

(३४) प्रे वणिजाम्।५२।

प०वि०–प्रे ७।१ वणिजाम् ६।३।

अनु०–घञ्, विभाषा, ग्रह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च प्रे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ्, वणिजाम्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदं वणिजां सम्बन्धि भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र वणिजां सम्बन्धेन तुलासूत्रं लक्ष्यते।

उदा०–तुलाप्रग्राहेण चरति वणिक् (घञ्)। तुलाप्रग्रहेण चरति वणिक् (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान, (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है। यदि प्रत्ययान्त पद (वणिजाम्) बणियों से सम्बन्धित हो। यहां वणिक्-सम्बन्ध से तुला सूत्र का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**तुलाप्रग्राहेण चरति वणिक् (घञ्)**। बणिया तुला सूत्र को ग्रहण करके घूमता है। **तुलाप्रग्रहेण चरति वणिक् (अप्)**। अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) प्रग्राहः। *प्र+ग्रह्+घञ्। प्र+ग्राह्+अ। प्रग्राह+सु। प्रग्राहः।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से वणिक्-सम्बन्धी तुला-सूत्र वाच्य में इस सूत्र से घञ् प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से ग्रह् धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **प्रग्रहः।** प्र+ग्रह्+अप्। प्र+ग्रह्+अ। प्रग्रह+सु। प्रग्रहः।*

*प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से **'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च'** (३।३।५२) से 'अप्' प्रत्यय है।*

घञ्–

(३५) रश्मौ च।५३।

प०वि०–रश्मौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–घञ्, विभाषा, ग्रहः, प्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च प्रे ग्रहो धातोर्विभाषा घञ् रश्मौ च।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् ग्रह्-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदं रश्मिवाचकं भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र रथादियुक्तानामश्वादीनां संयमनार्था या रज्जुः सा रश्मिरिति गृह्यते।

उदा०-प्रग्राहोऽश्वस्य (घञ्)। प्रग्रहोऽश्वस्य (अप्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (ग्रहः) ग्रह् (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (च) यदि प्रत्ययान्त पद (रश्मौ) रश्मि-वाचक हो।

यहां रथ आदि में जुड़े हुये घोड़े आदिक को नियन्त्रित करने के लिये जो रस्सी होती है उसका रश्मि पद से ग्रहण किया जाता है, किरणवाची रश्मि पद का नहीं।

उदा०-__प्रग्राहोऽश्वस्य। (घञ्)। प्रग्रहोऽश्वस्य (अप्)।__ घोड़े की लगाम।

__सिद्धि-प्रग्राहः/प्रग्रहः।__ पूर्ववत्।

घञ्-

(३६) वृणोतेराच्छादने।५४।

प०वि०-वृणोतेः ५।१ आच्छादने ७।१।

अनु०-घञ्, विभाषा, प्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रे वृणोतेर्विभाषा घञ्, आच्छादने।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् प्र-पूर्वाद् वृ-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, यदि प्रत्ययान्तं पदमाच्छादनविशेषवाचकं भवेत्। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रवारो देवदत्तस्य (घञ्)। प्रवरो देवदत्तस्य (अप्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रे) प्र-उपसर्गपूर्वक (वृणोतेः) वृ (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि प्रत्ययान्त पद (आच्छादने) आच्छादनविशेष=चादर का वाचक हो। विकल्प पक्ष में अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-__प्रवारो देवदत्तस्य (घञ्)। प्रवरो देवदत्तस्य (अप्)।__ देवदत्त की चादर।

__सिद्धि-(१) प्रवारः।__ प्र+वृ+घञ्। प्र+वार्+अ। प्रावार+सु। प्रावारः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से आच्छादन विशेष अर्थ में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है।

(२) प्रवरः। प्र+वृ+अप्। प्र+वर्+अ। प्रवर+सु। प्रवरः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'वृ' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में 'प्रहवृद्निश्चिगमश्च' (३।३।५८) से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'वृ' धातु को गुण होता है।

घञ्–

(३७) परौ भुवोऽवज्ञाने।५५।

प०वि०–परौ ७।१ भुवः ५।१ अवज्ञाने ७।१।

अनु०–विभाषा इत्येवानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च परौ भुवो धातोर्विभाषा घञ् अवज्ञाने।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् परि-पूर्वाद् भू-धातोः परो विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति, अवज्ञाने गम्यमाने। पक्षेऽप् प्रत्ययो भवति। अवज्ञानम्=असत्कारः।

उदा०–परिभावो देवदत्तस्य (घञ्)। परिभवो देवदत्तस्य (अप्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, यदि वहां (अवज्ञाने) असत्कार अर्थ प्रकट हो। विकल्प पक्ष में अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-__परिभावो देवदत्तस्य__ (घञ्)। देवदत्त का असत्कार (अपमान)। __परिभवो देवदत्तस्य__ (अप्)। अर्थ पूर्ववत् है।

__सिद्धि-(१) परिभावः__। परि+भू+घञ्। परि+भौ+अ। परि+भाव्+अ। परिभाव+सु। परिभावः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक '__भू सत्तायाम्__' (भ्वा०प०) धातु से अवज्ञान अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। '__अचो ञ्णिति__' (७।२।११५) से भू-धातु को वृद्धि होती है।

__(२) परिभवः__। परि+भू+अप्। परि+भो+अ। परि+भव्+अ। परिभव+सु। परिभवः।

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'भू' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में '__ऋदोरप्__' (३।३।५६) से 'अप्' प्रत्यय है। '__सार्वधातुकार्धधातुकयोः__' (७।३।८४) से 'भू' धातु को गुण होता है।

अच्–

(३८) एरच्।५६।

प०वि०–एः ५।१ अच् १।१।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च एर्धातोरच्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् इकारान्ताद् धातोः परोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–चयः। जयः। अयः। क्षयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (एः) इकारान्त (धातोः) धातु से परे (अच्) अच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**चयः**। चुनना। **जयः**। जीतना। **अयः**। चलना। **क्षयः**। नष्ट होना।*

*सिद्धि-(१) **चयः**। चि+अच्। चे+अ। चय्+अ। चय+सु। चयः।*

यहां इकारान्त 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से परे इस सूत्र से भाव में 'अच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'चि' धातु को गुण होता है।

*(२) **जयः**। 'जि जये' (भ्वा०प०)।*

*(३) **अयः**। 'इण् गतौ' (अदा०प०)।*

*(४) **क्षयः**। 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

अप्–

(३९) ऋदोरप्।५७।

प०वि०–ऋद्-ओः ५।१ अप् १।१। अत्र दकारो मुखसुखार्थः।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च ऋदोर्धातोरप्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्य ऋकारान्तेभ्य उकारान्तेभ्यश्च धातुभ्यः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ऋः) करः। गरः। शरः। (उः) यवः। स्तवः। लवः। पवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ऋदोः) ऋकारान्त और उकारान्त (धातोः) धातुओं से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ऋ) **करः**। करना। जिससे कार्य किया जाता है वह-कर (हाथ)। **गरः**। निगलना। जो निगला जाता है वह-गर (विष)। **शरः**। हिंसा करना। जिससे हिंसा की*

जाती है वह-शर (बाण)। (उ) यवः। मिश्रण वा अमिश्रण करना। जिससे टूटा हुआ अंग जोड़ा जाता है वह-यव (जौ)। स्तवः। स्तुति करना। लवः। काटना। पवः। पवित्र करना।

सिद्धि-(१) करः। कृ+अप्। कर्+अ। कर+सु। करः।

यहां ऋकारान्त 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से जाने में तथा करण कारक में इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।

(२) गरः। 'गॄ निगरणे' (तु०प०)।

(३) शरः। 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०)।

(४) यवः। 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०)।

(५) स्तवः। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०)।

(६) लवः। 'लूञ् छेदने' (स्वा०उ०)।

(७) पवः। 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०)।

अप्—

(४०) ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च।५८।

प०वि०-ग्रह-वृ-दृ-निश्चि-गमः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-ग्रहश्च वृश्च दृश्च निश्चिश्च गम् च एतेषां समाहारः-ग्रह०गम्, तस्मात्-ग्रह०गमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो ग्रहादिभ्यो धातुभ्यश्च परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ग्रहः)** ग्रहः। **(वृः)** वरः। **(दृः)** दरः। **(निश्चिः)** निश्चयः। **(गम्)** गमः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ग्रह०गमः) ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम् (धातोः) धातुओं से परे (च) भी (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ग्रह) ग्रहः। ग्रहण करना। (वृ) वरः। वरण करना/जो वरण किया जाता है वह-वर (श्रेष्ठ)। (दृ) दरः। विदारण करना/जो विदीर्ण किया जाता है वह-दर (गड्ढा)। (निश्चि) निश्चयः। निश्चय करना। (गम्) गमः। गति करना/जिस पर चलते हैं वह-गम (मार्ग)।

सिद्धि-(१) ग्रहः। यहां 'ग्रह उपदाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) वरः। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०)।

(३) दरः। 'दॄ विदारणे' (क्र्या०प०)।

(४) निश्चयः। 'निस्' उपसर्गपूर्वक 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०)।

अप्–

(४१) उपसर्गेऽदः।५६।

प०वि०-उपसर्गे ७।१ अदः ५।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गेऽदो धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सोपसर्गाद् अदो धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विघसः। प्रघसः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गसहित (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**विघसः।** विशेष भोजन। **प्रघसः।** उत्तम भोजन।*

सिद्धि-(१) विघसः। *वि+अद्+अप्। वि+घस्लृ+अ। वि+घस्+अ। विघस+सु। विघसः।*

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'घञपोश्च' (२।४।३८) से 'अद्' धातु के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है।

(२) 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अद्' धातु से पूर्ववत्।

णः+अप्–

(४२) नौ ण च।६०।

प०वि०-नौ ७।१ ण १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-अप्, अद इति चानुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् नि-पूर्वाद् अद्-धातोः परोऽणोऽप् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(णः) न्यादः। **(अप्)** निघसः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) 'नि' उपसर्गपूर्वक (अदः) अद् (धातोः) धातु से परे (णः) ण (च) और (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(ण) न्यादः। निकृष्ट भोजन। (अप्) निघसः। घटिया भोजन।

सिद्धि-(१) न्यादः। नि+अद्+ण। नि+आद्+अ। न्याद+सु। न्यादः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक 'अद् भक्षणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'अद्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) निघसः। नि+अद्+अप्। नि+घस्लृ+अ। नि+घस्+अ। निघस+सु। निघसः।

यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अद्' धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'घञपोश्च' (२।४।३८) से 'अद्' धातु के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है।

अप्-

(४३) व्यधजपोरनुपसर्गे।६१।

प०वि०-व्यध-जपोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनुपसर्गे ७।१।

स०-व्यधश्च जप् च तौ व्यधजपौ, तयोः-व्यधजपोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे व्यधजपिभ्यां धातुभ्याम् अप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् अनुपसर्गाभ्यां व्यधजपिभ्यां धातुभ्यां परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(व्यधः) व्यधः। **(जप्)** जपः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित, (व्यधजपोः) व्यध, जप (धातोः) धातुओं से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

उदा०-(व्यध) व्यधः। शिकार करना। (जप्) जपः। प्रणव=ओ३म् का जप करना।

सिद्धि-(१) व्यधः। व्यध्+अप्। व्यध+सु। व्यधः।

यहां उपसर्गरहित 'व्यध ताडने' (दि०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) जपः। 'जप मानसे च' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

अप्+घञ्–

(४४) स्वनहसोर्वा।६२।

प०वि०-स्वन-हसोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) वा अव्ययपदम्।

स०-स्वनश्च हस् च तौ स्वनहसौ, तयोः-स्वनहसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे चानुपसर्गे स्वनहसिभ्यां धातुभ्याम् अप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाभ्याम् अनुपसर्गाभ्यां स्वनहसिभ्यां धातुभ्यां परोऽप् प्रत्ययो भवति। पक्षे घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्वनः) स्वनः (अप्)। स्वानः (घञ्)। **(हस्)** हसः (अप्)। हासः (घञ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (स्वनहसोः) स्वन, हस् (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (अप्) प्रत्यय होता है। विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(स्वनः) स्वनः (अप्)। स्वानः (घञ्)। अलङ्कृत करना। (हस्) हसः (अप्)। हासः (घञ्)। हंसना।

सिद्धि-(१) स्वनः। यहां उपसर्गरहित 'स्वन अवतंसने' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।

(२) स्वानः। पूर्वोक्त 'स्वन' धातु से विकल्प पक्ष में 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रतयय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'स्वन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) हसः। 'हसे हसने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्वोक्त 'अप्' प्रत्यय है।

(४) हासः। पूर्वोक्त 'हस्' धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है।

अप्+घञ्–

(४५) यमः समुपनिविषु च।६३।

प०वि०-यमः ५।१ सम्-उप-नि-विषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-सम् च उपश्च निश्च विश्च ते समुपनिवयः, तेषु-समुपनिविषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च समुपनिविषु अनुपसर्गे च यमो धातोर्वाऽप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् सम्-उप-नि-पूर्वाद् अनुपसर्गाच्चि यम्-धातोः परो विकल्पेन अप्-प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सम्) संयमः (अप्)। संयामः (घञ्)। **(उपः)** उपयमः (अप्)। उपयामः (घञ्)। **(निः)** नियमः (अप्)। नियामः (घञ्)। **(विः)** वियमः (अप्)। वियामः (घञ्)। **(अनुपसर्गः)** यमः। यामः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (समुपनिविषु) सम्, उप, नि, वि उपसर्गपूर्वक और (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (यमः) यम् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(सम्) __संयमः (अप्)। संयामः (घञ्)।__ संयम करना/धारणा-ध्यान-समाधि का एकत्र भाव। (उप) __उपयमः (अप्)। उपयामः (घञ्)।__ विवाह करना। (नि) __नियमः (अप्)। नियामः (घञ्)।__ नियन्त्रण करना। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। (वि) __वियमः (अप्)। वियामः (घञ्)।__ विस्तार करना। (अनुपसर्ग) __यमः। यामः।__ उपराम होना। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

सिद्धि-(१) __संयमः।__ सम्+यम्+अप्। सम्+यम्+अ। संयम+सु। संयमः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक __'यम उपरमे'__ (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रतयय है।

(२) __संयामः।__ सम्+यम्+घञ्। सम्+याम्+अ। संयाम+सु। संयामः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'यम्' धातु से विकल्प पक्ष में __'भावे'__ (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। __'अत उपधायाः'__ (७।२।११६) यम् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(३) ऐसे ही शेष प्रयोग सिद्ध करें।

अप्+घञ्-

(४६) नौ गदनदपठस्वनः।६४।

प०वि०-नौ ७।१ गद-नद-पठ-स्वनः ५।१।

स०-गदश्च नदश्च पठश्च स्वन् च एतेषां समाहारः-गदनदपठस्वन्, तस्मात्-गदनदपठस्वनः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च नौ गदनदपठस्वनो धातोर्वाऽप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो नि-पूर्वेभ्यो गदनदपठस्वनिभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन अप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**गदः**) निगदः (अप्)। निगादः (घञ्)। (**नदः**) निनदः। निनादः। (**पठः**) निपठः। निपाठः। (**स्वन्**) निस्वनः। निस्वानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक (गदनदपठस्वनः) गद, नद, पठ, स्वन (धातोः) धातुओं से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(गद) **निगदः** (अप्)। **निगादः** (घञ्)। नीचे स्वर में बोलना। (नद) **निनदः**। **निनादः**। नीचे स्वर में अव्यक्त ध्वनि। (पठ) **निपठः** **निपाठः**। नीचे स्वर में पढ़ना। (स्वन) **निस्वनः**। **निस्वानः**। मन्द शब्द।*

*सिद्धि-(१) **निगदः**। नि+गद्+अप्। नि+गद्+अ। निगद+सु। निगदः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'गद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।*

*(२) **निगादः**। नि+गद्+घञ्। नि+गाद्+अ। निगाद+सु। निगादः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गद्' धातु से विकल्प पक्ष में **'भावे'** (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'गद्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(३) **निनदः/निनादः**। **'णद अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०)।*

*(४) **निपठः/निपाठः**। **'पठ व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०)।*

*(५) **निस्वनः/निस्वानः**। **'स्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

अप्+घञ्-

(४७) क्वणो वीणायां च।६५।

प०वि०-क्वणः ५।१ वीणायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अप्, अनुपसर्गे, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च नौ अनुपसर्गे च वीणायां क्वणो धातोर्वाऽप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-पूर्वाद् अनुपसर्गाद् वीणायां च विषये क्वण्-धातोः परो विकल्पेन अप्-प्रत्ययो भवति, पक्षे च घञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(निः)** निक्वणः (अप्)। निक्वाणः (घञ्)। **(अनुपसर्गः)** क्वणः। क्वाणः। **(वीणायाम्)** कल्याणप्रक्वणा वीणा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नौ) नि-उपसर्गपूर्वक और (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित और (वीणायाम्) वीणविषय में (च) भी (क्वणः) क्वण् (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (अप्) अप् प्रत्यय होता है, विकल्प पक्ष में घञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(नि) **निक्वणः (अप्)। निक्वाणः** (घञ्)। नुपूर-ध्वनि। **(अनुपसर्गः) क्वणः। क्वाणः।** शब्द करना। **(वीणा) कल्याणप्रक्वणा वीणा।** उत्तम स्वरवाली वीणा।*

*सिद्धि-(१) **निक्वणः।** नि+क्वण्+अप्। नि+क्वण्+अ। निक्वण+सु। निक्वणः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'क्वण् शब्दार्थः'** (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।*

*(२) **निक्वाणः।** नि+क्वण+घञ्। नि+क्वाण्+अ। निक्वाण+सु। निक्वाणः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'क्वण्' धातु से विकल्प पक्ष में **'भावे'** (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'क्वण्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(३) **कल्याणप्रक्वणा। 'कल्याणः प्रक्वणो यस्याः सा कल्याणप्रक्वणा** (बहुव्रीहिः)। यहां 'अप्' प्रत्यय है।*

अप्-

(४८) नित्यं पणः परिमाणे।६६।

प०वि०-नित्यम् १।१ पणः ५।१ परिमाणे ७।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च पणो धातोर्नित्यम् अप् परिमाणे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् पण्-धातोः परो नित्यम् अप् प्रत्ययो भवति, परिमाणे गम्यमाने। नित्यग्रहणं विकल्प-निवृत्त्यर्थम्।

उदा०-मूलकपणः। शाकपणः। संव्यवहाराय मूलकादीनां यः परिमितो मुष्टिर्बध्यते तस्येदमभिधानम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (पणः) पण् (धातोः) धातु से परे (नित्यम्) सदा (अप्) अप् प्रत्यय होता है, (परिमाणे) यदि वहां परिमाण अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-**मूलकपणः**। बेचने के लिये बांधकर रखा गया मूलियों का गट्ठा। **शाकपणः**। बेचने के लिये बांधकर रखा गया पालक आदि शाक की मुष्टि (जुट्टी)।*

*सिद्धि-**मूलकपणः**। पण्+अप्। पण्+अ। पण+सु। पणः। मूलक+पणः=मूलकपणः।*

*यहां मूलक उपपद **'पण व्यवहारे स्तुतौ च'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शाकपणः।*

अप्-

(४६) मदोऽनुपसर्गे।६७।

प०वि०-मदः ५।१ अनुपसर्गे ७।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अनुपसर्गे मदो धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् मद्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विद्यामदः। कुलमदः। धनमदः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गे) उपसर्ग से रहित (मदः) मद् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**विद्यामदः**। विद्या के कारण अभिमान। **कुलमदः**। उच्च कुल के कारण अभिमान। **धनमदः**। धन के कारण अभिमान।*

सिद्धि-(१) विद्यामदः । मद्+अप् । मद्+अ । मद+सु । मदः । विद्या+मदः= विद्यामदः ।

*यहां उपसर्ग रहित 'मदी हर्षग्लेपनयोः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। **विद्यया मद इति विद्यामदः ।** 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३१) से तृतीया तत्पुरुष समास होता है। ऐसे ही-**कुलमदः । धनमदः ।***

अप् (निपातनम्)–

(५०) प्रमदसम्मदौ हर्षे ।७१।

प०वि०-प्रमद-सम्मदौ १।२ हर्षे ७।१।

स०-प्रमदश्च सम्मदश्च तौ प्रमदसम्मदौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रमदसम्मदावप् हर्षे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भवे चार्थे हर्षेऽभिधेये प्रमदसम्मदौ शब्दौ अप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते।

उदा०-कन्यानां प्रमदः । कोकिलानां सम्मदः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान और (हर्षे) हर्ष वाच्य होने पर (प्रमद-सम्मदौ) प्रमद और सम्मद शब्द (अप्) अप्=प्रत्ययान्त निपातित हैं।

*उदा०-**कन्यानां प्रमदः ।** कन्याओं की खुशी। **कोकिलानां सम्मदः ।** कोयलों की खुशी। प्रमद शब्द कन्याओं के हर्ष में और सम्मद शब्द कोयलों के हर्ष अर्थ में रूढ़ हैं।*

*सिद्धि-(१) प्रमदः । यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'मदी हर्षग्लेपनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से हर्षविशेष अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय निपातित है। **'मदोऽनुपसर्गे'** (३।३।६७) से उपसर्गरहित 'मद्' धातु से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु यहां हर्ष अर्थ में सोपसर्ग 'मद्' धातु से 'अप्' प्रत्यय का निपातन किया गया है। ऐसे ही-**सम्मदः ।***

अप्–

(५१) समुदोरजः पशुषु ।६९।

प०वि०-सम्-उदोः ७।२ अजः ५।१ पशुषु ७।३।

स०-सम् च उच्च तौ-समुदौ, तयोः-समुदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च पशुषु समुदोरजो धातोरप्।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे पशुविषये च वर्तमानात् सम्-उत्पूर्वाद् अज:-धातो: परोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सम्) समज: पशूनाम्। **(उत्)** उदज: पशूनाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (पशुषु) पशु-विषय में विद्यमान (समुदो:) सम् और उत् उपसर्गपूर्वक (अज:) अज् (धातो:) धातु से परे (अप्) प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सम्) **समज: पशूनाम्।** पशुओं का समूह। (उत्) **उदज: पशूनाम्।** पशुओं को प्रेरित करने का साधन कोड़ा (सांटा) आदि।*

*सिद्धि-(१) **समज:।** सम्+अज्+अप्। सम्+अज्+अ। समज+सु। समज:।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'अज गतिक्षेपणयो:'** (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है।*

*(२) **उदज:।** 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अज्' धातु से क्षेपण अर्थ में करण कारक में 'अप्' प्रत्यय है।*

अप् (निपातनम्)-

(५२) अक्षेषु ग्लह:।७०।

प०वि०-अक्षेषु ७।३ ग्लह: १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे अक्षे च विषये वर्तमानो ग्लह: शब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-अक्षस्य ग्लह:।

"अक्षशब्देनात्र तत्साधनं देवनं (क्रीडा) लक्ष्यते। अक्षकर्मणि देवनविषये यत् पणरूपेण ग्राह्यं तद् ग्लहशब्देनोच्यते" इति पदमञ्जर्यां हरदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (अक्षेषु) अक्ष-विषय में विद्यमान (ग्लह:) ग्लह शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है।

*उदा०-**अक्षस्य ग्लह:।** द्यूतक्रीडा में लगाई गई शर्त को जीतकर धन आदि ग्रहण करना।*

सिद्धि-ग्लहः । ग्रह+अप् । ग्लह्+अ । ग्लह+सु । ग्लहः ।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से भाव में तथा अक्षक्रीडा विषय में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से ग्रह् धातु के 'र्' को 'ल्' आदेश हो जाता है। 'अप्' प्रत्यय तो 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' (३।३।५८) से सिद्ध था। यह लत्व के लिये निपातन किया गया है।

अप्–

(५३) प्रजने सर्तेः।७१।

प०वि०-प्रजने ७।१ सर्तेः ५।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रजने सर्तेर्धातोरप्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे प्रजने च विषये वर्तमानात् सर्ति-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति। प्रजनम्=प्रथमं गर्भग्रहणम्।

उदा०-गवामुपसरः। स्त्रीगवीषु पुंगवानां गर्भाधानाय प्रथममुपसरणम्, उपसर इत्युच्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में तथा (प्रजने) प्रथम गर्भ-ग्रहण विषय में विद्यमान (सर्तेः) सृ (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गवामुपसरः। साण्डों का गर्भाधान के लिये गौओं में प्रथम बार उपसरण होना 'उपसर' कहाता है।

सिद्धि-उपसरः। उप+सृ+अप्। उप+सर्+अ। उपसर+सु। उपसरः।

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से प्रजन विषय में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'सृ' धातु को गुण होता है।

अप्–

(५४) ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु।७२।

प०वि०-ह्वः ५।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अव्ययपदम् नि-अभि-उप-विषु ७।३।

स०-निश्च अभिश्च उपश्च विश्च ते-न्यभ्युपवयः, तेषु-न्यभ्युपविषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च न्यभ्युपविषु ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नि-अभि-उप-विपूर्वाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(निः) निहवः। **(अभिः)** अभिहवः। **(उपः)** उपहवः। **(विः)** विहवः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (न्यभ्युपविषु) नि, अभि, उप, वि उपसर्गपूर्वक (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**(नि)** **निहवः।** निमन्त्रण देना। **(अभि)** **अभिहवः।** अभिमुख बुलाना। **(उप)** **उपहवः।** पास बुलाना। **(वि)** **विहवः।** विशेष रूप से बुलाना।*

सिद्धि-(१) निहवः। *नि+ह्वा+अप्। नि+हु आ+अ। नि+हु+अ। नि+हो+अ। निहव+सु। निहवः।*

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक **'ह्वेञ् स्पर्धायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'ह्वा' धातु के 'व्' को 'उ' सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०४) से आ को पूर्व रूप होकर **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'हु' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-**अभिहवः,** उपहवः, विहवः।*

अप्-

(५५) आङि युद्धे।७३।

प०वि०-आङि ७।१ युद्धे ७।१।

अनु०-अप्, ह्वः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च आङि ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् आङ्-पूर्वाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति, युद्धेऽभिधेये।

उदा०-आहूयन्ते यस्मिन् योद्धार इति आहवः=युद्धम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आङि) आङ् उपसर्गपूर्वक (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है, (युद्धे) यदि वहां युद्ध वाच्यार्थ हो।*

उदा०-आहूयन्ते यस्मिन् योद्धार इति आहवः=युद्धम्। *जिसमें योद्धा जनों का आह्वान किया जाता है वह 'आहव' युद्ध कहाता है।*

सिद्धि-आहवः। *आङ्+ह्वा+अप्। आ+हु आ+अ। आ+हु+अ। आ+हो+अ। आहव+सु। आहवः।*

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अप् (निपातनम्)-

(५६) निपानमाहावः।७४।

प०वि०-निपानम् १।१ आहावः १।१।

अनु०-अप्, ह्वः, सम्प्रसारणम्, आङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च आहावोऽप्, निपानम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान आह्वाव-शब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि निपानमभिधेयं भवति। निपिबन्ति यस्मिंस्तत् निपानमुदकाधार उच्यते।

उदा०-आहावः पशूनाम्। कूपोपसरेषु य उदकाधारस्तत्र जलपानाय पशव आहूयन्ते, स आहाव इति कथ्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (आहावः) आहाव शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वहां (निपानम्) निपान वाच्यार्थ हो। जिसमें पशु झुककर जल पीते हैं उस जलाधार (खेळ) को निपान कहते हैं।*

उदा०-आहावः पशूनाम्। *कूप के समीप जो पशुओं के जलपान के लिये जलाधार (खेळ) आदि होते हैं, वहां छेक-छेक शब्द से पशु जलपान के लिये बुलाये जाते हैं, अतः वे 'आहाव' कहाते हैं।*

सिद्धि-आहावः। *आङ्+ह्वा+अप्। आ+हु आ+अ। आ+हु+अ। आ+हौ+अ। आहाव+सु। आहावः।*

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से अधिकरण कारक में तथा निपान वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है, 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'अप्' प्रत्यय परे होने पर सम्प्रसारित 'ह्वा' (हु) धातु को निपातन से वृद्धि होती है।

अप्–

(५७) भावेऽनुपसर्गस्य।७५।

प०वि०-भावे ७।१ अनुपसर्गस्य ६।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्य सः-अनुपसर्गः, तस्मिन्-अनुपसर्गे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अप्, ह्वः, सम्प्रसारणमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावेऽनुपसर्गाद् ह्वो धातोरप् सम्प्रसारणं च।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् ह्वा-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, धातोश्च सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-हवः। हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गस्य) उपसर्ग से रहित (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और ह्वा धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-हवः। स्पर्धा करना (बुलाना)।

***सिद्धि-हवः।** ह्वा+अप्। हु आ+अ। हु+अ। हो+अ। हव+सु। हवः।*

*यहां उपसर्ग से रहित पूर्वोक्त 'ह्वा' धातु से केवल भाव अर्थ में ही इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारित 'ह्वा' धातु (हु) को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है।*

अप्–

(५८) हनश्च वधः।७६।

प०वि०-हनः ५।१ (६।१) च अव्ययपदम्, वधः १।१।

अनु०-अप्, भावे, अनुपसर्गस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावेऽनुपसर्गाद् हनो धातोरप् हनश्च वधः।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानाद् अनुपसर्गाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च वध-आदेशो भवति।

उदा०-वधश्चोराणाम्। वधो दस्यूनाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अनुपसर्गस्य) उपसर्ग से रहित (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और (हनः) हन् धातु के स्थान में (वधः) वध-आदेश होता है।

*उदा०-**वधश्चोराणाम्।** चोरों का हनन (वध)। **वधो दस्यूनाम्।** दस्यु=आर्येतर जनों का हनन (वध)।*

*सिद्धि-**वधः।** हन्+अप्। वध्+अ। वध+सु। वधः।*

*यहां उपसर्ग से रहित **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से केवल भाव अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में वध् आदेश है।*

अप्—

(५६) मूर्तौ घनः।७७।

प०वि०-मूर्तौ ७।१ घनः १।१।

अनु०-अप्, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च हनो धातोरप्, हनश्च घनो मूर्तौ।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हन स्थाने च घन-आदेशो भवति, मूर्तावभिधेयायाम्। मूर्तिः=काठिन्यमित्यर्थः।

उदा०-अभ्रघनः। दधिघनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) प्रत्यय होता है और (हनः) हन् के स्थान में (घनः) घन-आदेश होता है, (मूर्तौ) यदि वहां मूर्ति वाच्यार्थ हो। मूर्तिः=कठोरता।

*उदा०-**अभ्रघनः।** बादल की कठोरता=सघनता। **दधिघनः।** दही की कठोरता=कड़ापन।*

*सिद्धि-**अभ्रघनः।** हन्+अप्। घन्+अ। घन्+सु। घनः।*

*यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा मूर्ति-भाव वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश है। **अभ्रस्य घन इति अभ्रघनः** (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऐसे ही-**दधिघनः।***

अप्–

(६०) अन्तर्घनो देशे।७८।

प०वि०-अन्तः अव्ययपदम्, घनः १।१ देशे ७।१।

अनु०-अप्, हन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च अन्तःपूर्वाद् हनो धातोरप्, हनश्च घनो देशे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घन-आदेशो भवति, देशेऽभिधेये।

उदा०-अन्तर्घनो नाम देशः। संज्ञीभूतो वाहीकेषु देशविशेष उच्यते।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अन्तः) अन्तः शब्दपूर्वक (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और हन् के स्थान में (घनः) घन-आदेश होता है, (देशे) यदि वहां देश-विशेष का कथन हो।

__उदा०-अन्तर्घनो नाम देशः।__ वाहीक जनपद में एक देश विशेष का नाम 'अन्तर्घनः' है।

__सिद्धि-अन्तर्घनः।__ अन्तर्+हन्+अप्। अन्तर्+घन्+अ। अन्तर्घन+सु। अन्तर्घनः।

यहां अन्तः शब्दपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से अधिकरण कारक में तथा देश विशेष के वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश है। __अन्तर्हण्यन्ते प्राणिनो यत्र सः-अन्तर्घनो देशः।__ जिसके अन्दर प्राणी मारे जाते हैं, उस देश विशेष का नाम 'अन्तर्घनः' है।

__विशेष__-कहीं-कहीं __'अन्तर्घणः'__ पाठ मिलता है। उसे भी पाणिनि के शिष्य साधु मानते हैं। पाणिनि मुनि ने अपने शिष्यों को दोनों प्रकार का पाठ पढ़ाया है।

अप् (निपातनम्)–

(६१) अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च।७९।

प०वि०-अगार-एकदेशे ७।१ प्रघणः १।१ प्रघाणः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-अगारस्य एकदेश इति अगारैकदेशः, तस्मिन्-अगारैकदेशे (षष्ठीतत्पुरुषः)। अगारः=गृहम्।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रघणः प्रघाणश्च अप्, अगारैकदेशे।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानः प्रघणः प्रघाणश्च शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, अगारैकदेशेऽभिधेये।

उदा०-प्रघणः। प्रघाणः। प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः, प्रघाणो वा। "द्वारप्रदेशे द्वौ प्रकोष्ठावलिन्दौ आभ्यन्तरः, बाह्यश्च। तत्र बाह्यप्रकोष्ठे निपातनम्, नागारैकदेशमात्रे", इति पदमञ्जर्यां हरदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रघणः) प्रघण (च) और (प्रघाणः) प्रघाण शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं, (अगारैकदेशे) यदि वहां घर का एक देश वाच्यार्थ हो।*

*उदा०-**प्रघणः प्रघाणः।***

"घर के द्वार-प्रवेश पर दो प्रकोष्ठ (कमरे) होते हैं। उनमें एक अन्दर और एक बाहर होता है। बाह्य प्रकोष्ठ को प्रघण अथवा प्रघाण कहते हैं, अगार के एक देशमात्र को नहीं" (पं० हरदत्तमिश्रकृत पदमञ्जरी)।

सिद्धि-(१) प्रघणः। *प्र+हन्+अप्। प्र+घन्+अ। प्र+घण्+अ। प्रघण+सु। प्रघणः।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म करण कारक में तथा अगार एक देश के वाच्यार्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन' आदेश होता है। **'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'** (८।४।३) से 'णत्व' होता है।*

(२) प्रघाणः। *यहां निपातन से 'हन्' धातु के 'घन्' आदेश को उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अप् (निपातनम्)-

(६२) उद्घनोऽत्याधानम्।८०।

प०वि०-उद्घनः १।१ अत्याधानम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उद्घनोऽप्, अत्याधानम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान उद्घनः शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि तद् अत्याधानं भवति। यस्मिन् काष्ठे स्थापयित्वाऽन्यानि काष्ठानि तक्ष्यन्ते तदत्याधानमित्युच्यते।

उदा०-उद्घनः। उद् हन्यन्ते यस्मिन् काष्ठानि स उद्घनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उद्घनः) उद्घन शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका अर्थ (अत्याधानम्) अत्याधान हो। जिस काष्ठ पर रखकर दूसरे काष्ठ छीले जाते हैं, उसे अत्याधान कहते हैं।

उदा०-उद्घनः। अत्यधान (नेह इति भाषा)।

सिद्धि-उद्घनः। उत्+हन्+अप्। उद्+घन्+अ। उद्घन+सु। उद्घनः।

यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से अधिकरण कारक में तथा अत्याधान अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश होता है।

अप् (निपातनम्)-

(६३) अपघनोऽङ्गम्।८१।

प०वि०-अपघनः १।१ अङ्गम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानोऽपघनशब्दोऽप् प्रत्ययान्तो निपात्यते, यदि तच्छरीराङ्गं भवति।

उदा०-अपघनः पाणिः। अपघनः पादः। अपहन्यते येन सः-अपघनः। अत्राङ्गशब्देन शरीरस्य पाणिपादमेव गृह्यते नाङ्गमात्रम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (अपघनः) अपघन शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका अर्थ (अङ्गम्) शरीर का अङ्ग हो।

उदा०-अपघनः पाणिः। हाथ। अपघनः पादः। चरण। यहां अङ्ग से शरीर के पाणि और पाद का ग्रहण किया जाता है, अङ्गमात्र का नहीं।

सिद्धि-अपघनः। अप+हन्+अप्। अप+घन्+अ। अपघन+सु। अपघनः।

यहां 'अप्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में तथा शरीराङ्ग-विशेष अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश होता है।

अप्-

(६४) करणेऽयोविद्रुषु।८२।

प०वि०-करणे ७।१ अयः-वि-द्रुषु ७।३।

स०-अयश्च विश्च द्रुश्च ते-अयोविद्रवः, तेषु-अयोविद्रुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप्, हनः, घन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणेऽयोविद्रुषु हनो धातोरप्, हनश्च घनः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानाद् अयोविद्रुपूर्वाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घन-आदेशो भवति।

उदा०-(**अयः**) अयो हन्यते येन सः-अयोघनः। (**विः**) विहन्यते येन सः-विघनः। (**द्रुः**) द्रुवो हन्यन्ते येन सः-द्रुघनः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (अयोविद्रुषु) अयः, वि, द्रु पूर्वक (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और 'हन्' के स्थान में (घनः) घन-आदेश होता है।

*उदा०-(अयः) **अयो हन्यते येन सः-अयोघनः।** जिससे अयः=लोहा पीटा जाता है, वह अयोघन=हथौड़ा। (वि) **विहन्यते येन सः-विघनः।** जिससे विविध प्रकार से लोहा आदि पीटा जाता है, वह विघन=हथौड़ी। (द्रु) **द्रुवो हन्यन्ते येन सः-द्रुघनः।** जिसे द्रु=वृक्ष की शाखायें काटी जाती हैं, वह द्रुघन=कुल्हाड़ी।*

*सिद्धि-(१) **अयोघनः।** अयस्+हन्+अप्। अयस्+घन्+अ। अयरु+घन्+अ। अयर्+घन्+अ। अयउ+घन्+अ। अयोघन+सु। अयोघनः।*

यहां अयः उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'अयस्' के 'स्' को रुत्व और 'हशि च' (६।१।११०) से 'र्' को उत्व होता है।

*(२) **विघनः।** 'वि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **द्रुघनः।** 'द्रु' उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत्।*

कः+अप्-

(६५) स्तम्बे क च।८३।

प०वि०-स्तम्बे ७।१ क १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-अप्, हनः, घनः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे स्तम्बे हनो धातोः कोऽप् च हनश्च घनः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानात् स्तम्बोपपदाद् हन्-धातोः परः कोऽप् च प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घन-आदेशो भवति।

उदा०-स्तम्बो हन्यते येन सः-स्तम्बघ्नः (कः)। स्तम्बघनः (अप्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक में विद्यमान (स्तम्बे) स्तम्ब-उपपदवाले (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (कः) क प्रत्यय (च) और (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स्तम्बो हन्यते येन सः-स्तम्बघ्नः (कः)। स्तम्बघनः (अप्)।** जिससे स्तम्ब=घास आदि काटा जाता है वह स्तम्बघ्न/स्तम्बघन=खुरपा आदि।*

*सिद्धि-(१) **स्तम्बघ्नः।** स्तम्ब+हन्+क। स्तम्ब+हन्+अ। स्तम्ब+घ्न्+अ। स्तम्बघ्न+सु। स्तम्बघ्नः।*

*यहां स्तम्ब उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'क' प्रत्यय है। 'गमहनजन०' (६।४।९८) से 'हन्' धातु को उपधा लोप और **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है।*

*(२) **स्तम्बघनः।** यहां स्तम्ब उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से पूर्ववत् 'अप्' प्रत्यय और 'हन्' के स्थान में 'घन्' आदेश है।*

अप्–

(६६) परौ घः।८४।

प०वि०-परौ ७।१ घः १।१।

अनु०-अप्, हनः, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे परौ हनो धातोरप्, हनश्च घः।

अर्थः-करणे कारके वर्तमानात् परि-पूर्वाद् हन्-धातोः परोऽप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने च घ-आदेशो भवति।

उदा०-परितो हन्यते येन सः-परिघः। पलिघः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण (कारके) कारक में विद्यमान (परौ) परि-उपसर्गपूर्वक (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (अप्) अप् प्रत्यय होता है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सर्वादेश होता है।

*उदा०-**परितो हन्यते येन सः-परिघः। पलिघः।** सब ओर मार करनेवाला शस्त्र (लोह का मुद्गर)।*

*सिद्धि-(१) **परिघः।** परि+हन्+अप्। परि+घ+अ। परिघ+सु। परिघः।*

यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से करण कारक में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सर्वादेश होता है।

*(२) **पलिघः।** यहां **'परेश्च घाङ्कयोः'** (८।२।२२) से 'परि' उपसर्ग के 'र्' को विकल्प से 'ल्' आदेश होता है।*

अप्-(निपातनम्)–

(६७) उपघ्न आश्रये।८५।

प०वि०-उपघ्नः १।१ आश्रये ७।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च उपघ्नोऽप्, आश्रये।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान उपघ्नः शब्दोऽप्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, आश्रयेऽभिधेये। आश्रयः=सामीप्यम्।

उदा०-पर्वतोपघ्नः। ग्रामोपघ्नः। पर्वतेन उपहन्यते=सामीप्येन गम्यते इति पर्वतोपघ्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपघ्नः) उपघ्न शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वहां (उपाश्रये) आश्रय=समीपता वाच्यार्थ हो।

*उदा०-**पर्वतोपघ्नः।** पर्वत के समीपस्थ=पहाड़ के सहारे। **ग्रामोपघ्नः।** ग्राम की समीपस्थ=गांव के सहारे।*

*सिद्धि-**पर्वतोपघ्नः।** उप+हन्+अप्। उप+हन्+अ। उप+घ्न्+अ। उपघ्न+सु। उपघ्नः। पर्वत+उपघ्नः। पर्वतोपघ्नः।*

*यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक में तथा आश्रय अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है। निपातन से **'गमहनजन०'** (६।४।९८) से 'हन्' का उपधा-लोप होता है। **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' के 'ह्' को कुत्व 'घ्' होता है। **पर्वतस्य उपघ्न इति पर्वतोपघ्नः** (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऐसे ही-**ग्रामोपघ्नः।***

अप् (निपातनम्)–

(६८) संघोद्घौ गणप्रशंसयोः।८६।

प०वि०-संघ-उद्घौ १।२ गण-प्रशंसयोः ७।२।

स०-संघश्च उद्घश्च तौ-संघोद्घौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। गणश्च प्रशंसा च ते-गणप्रशंसे, तयोः-गणप्रशंसयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च संघोद्घावप् गणप्रशंसयोः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानौ संघोद्घौ शब्दौ अप्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, यथासंख्यं गणेऽभिधेये प्रशंसायां च गम्यमानायाम्।

उदा०-(**गणः**) संघः पशूनाम्। (**प्रशंसा**) उद्घो मनुष्याणाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (संघोद्घौ) संघ और उद्घ शब्द (अप्) अप्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (गणप्रशंसयोः) यदि वहां यथासंख्य गण वाच्यार्थ और प्रशंसा अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-(गण) **संघः पशूनाम्।** पशुओं का गण (समुदाय)। (प्रशंसा) **उद्घो मनुष्याणाम्।** मनुष्यों में प्रशंसनीय।*

*सिद्धि-(१) **संघः।** सम्+हन्+अप्। सम्+ह्+अ। सम्+घ्+अ। संघ+सु। संघः।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से भाव में तथा गण अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है। निपातन से 'हन्' धातु का टि-लोप (अन्) और 'ह्' को 'घ्' आदेश होता है। **संहननम्=संघः।***

(२) उद्घः। उत्+हन्+अप्। उद्+ह्+अ। उद्+घ्+अ। उद्घ+सु। उद्घः।

*यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक में तथा प्रशंसा अर्थ में इस सूत्र से अप् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। **उद्हन्यते=उत्कृष्टो ज्ञायत इति उद्घः।** यहां 'हन्' धातु ज्ञानार्थक है।*

अप् (निपातनम्)—

(६६) निघो निमितम्।८७।

प०वि०-निघः १।१ निमितम् १।१।

अनु०-अप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च निघोऽप् निमित्तम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानो निघः शब्दोऽप्प्रत्ययान्तो निपात्यते, निमितं चेद् अभिधेयं भवति। समन्ताद् मितमिति निमितम्, समानारोहपरिणाहम्।

उदा०-निघा वृक्षाः। निघाः शालयः। तुल्यारोहपरिणाहवन्त इत्यर्थः।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (निघः) निघ शब्द (अप्) अप् प्रत्ययान्त निपातित है, यदि उसका वाच्यार्थ (निमितम्) समान आरोह परिणाह हो। आरोह=ऊंचाई। परिणाह=फैलाव।*

उदा०-निघा वृक्षा: । समान आरोह-परिणाहवाले वृक्ष । निघा: शालय: । समान आरोह-परिणाहवाले धान ।

सिद्धि-(१) निघ: । नि+हन्+अप् । नि+ह्+अ । नि+घ्+अ । निघ+सु । निघ: ।

*यहां 'नि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से कर्म कारक तथा 'निमित' अर्थ में इस सूत्र से 'अप्' प्रत्यय है । निपातन से 'हन्' धातु का टि-लोप (अन्) और 'ह्' को 'घ्' आदेश होता है । **निर्विशेषं हन्यते=ज्ञायत इति निघ:, कर्मण्यप् प्रत्यय: ।***

क्त्रि:–

(७०) ड्वित: क्त्रि: ।८८।

प०वि०-डु-इत: ५ ।१ क्त्रि: १ ।१ ।

स०-डु इद् यस्य स:-ड्वित् तस्मात्-ड्वित: (बहुव्रीहि:) ।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च ड्वितो धातो: क्त्रि: ।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् डु-इतो धातो: पर: क्त्रि: प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(डुपचष्) पक्त्रिमम् । **(डुवप्)** उप्त्रिमम् । **(डुकृञ्)** कृत्रिमम् ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ड्वित:) डु इत् वाले (धातो:) धातु से परे (क्त्रि:) क्त्रि प्रत्यय होता है ।

*उदा०-(डुपचष्) **पक्त्रिमम् ।** पाक से बना हुआ । (डुवप्) **उप्त्रिमम् ।** बोने से बना हुआ । (डुकृञ्) **कृत्रिमम् ।** बनाने से बना हुआ (बनावटी) ।*

*सिद्धि-(१) **पक्त्रिमम् ।** पच्+क्त्रि । पच्+त्रि । पक्त्रि+मप् । पक्त्रि+म । पक्त्रिम+सु । पक्त्रिमम् ।*

*यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु के डु की **'आदिर्ञिटुडव:'** (१ ।३ ।५) से इत्संज्ञा होती है । 'पच्' धातु के डु-इत्वाला होने से भाव में इस सूत्र से 'क्त्रि' प्रत्यय है । क्त्रि प्रत्ययान्त 'पक्त्रि' शब्द से **'क्त्रेर्मम्नित्यम्'** (४ ।४ ।२०) से नित्य 'मप्' प्रत्यय होता है । केवल क्त्रि-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं होता है ।*

*(२) **उप्त्रिमम् ।** वप्+क्त्रि । वप्+त्रि । उ अप्+त्रि । उप्+त्रि । उप्त्रि+मप् । उप्त्रि+म । उप्त्रिम+सु । उप्त्रिमम् ।*

*यहां **'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से क्त्रि प्रत्यय है । **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६ ।१ ।१५) से 'वप्' को सम्प्रसारण होता है । शेष कार्य पूर्ववत् है ।*

*(३) **कृत्रिमम् । 'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) पूर्ववत् ।*

अथुच्–

(७१) ट्वितोऽथुच्।८९।

प०वि०–टु-इतः ५।१ अथुच् १।१।

स०–टु इद् यस्य सः–ट्वित्, तस्मात्–ट्वितः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च ट्वितो धातोरथुच्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाट् टु-इतो धातोः परोऽथुच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(टुवेपृ)** वेपथुः। **(टुओश्वि)** श्वयथुः। **(टुक्षु)** क्षवथुः।

आर्यभाषा-अर्थ–(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ट्वितः) टु इत् वाले (धातोः) धातु से परे (अथुच्) अथुच् प्रत्यय होता है।

उदा०–(टुवेपृ) वेपथुः। कम्पन। (टुओश्वि) श्वयथुः। सूजन। (टुक्षु) क्षवथुः। खांसी।

सिद्धि–(१) वेपथुः। वप्+अथुच्। वप्+अथु। वेपथु+सु। वेपथुः।

*यहां 'टुवेपृ कम्पने' (भ्वा०आ०) धातु के 'टु' की **'आदिर्ञिटुडवः'** (१।३।५) से इत्-संज्ञा होती है। 'वेप्' धातु के टु-इत् वाला होने से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'अथुच्' प्रत्यय है।*

(२) श्वयथुः। श्वि+अथुच्। श्वे+अथु। श्वयथु+सु। श्वयथुः।

यहां 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'अथुच्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'श्वि' धातु को गुण होता है।

(३) क्षवथुः। 'टुक्षु शब्दे' (अदा०प०) पूर्ववत्।

नङ्–

(७२) यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्।९०।

प०वि०–यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षः ५।१ नङ् १।१।

स०–यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च एतेषां समाहारः–यज०रक्ष्, तस्मात्–यज०रक्षः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च यज०रक्षो धातोर्नङ्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो यजादिभ्यो धातुभ्यः परो नङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यजः) यज्ञः। **(याचः)** याच्ञा। **(यतः)** यत्नः। **(विच्छः)** विश्नः। **(प्रच्छः)** प्रश्नः। **(रक्ष्)** रक्ष्णः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (यज०रक्षः) यज, याच, यत, विच्छ, प्रच्छ, रक्ष् (धातोः) धातुओं से परे (नङ्) नङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यज) यज्ञः।** देवपूजा, संगतिकरण और दान करना। **(याच) याच्ञा।** मांगना। **(यत) यत्नः।** प्रयत्न करना। **(विच्छ) विश्नः।** गति करना। **(प्रच्छ) प्रश्नः।** पूछना। **(रक्ष्) रक्ष्णः।** रक्षा करना। रखना।*

सिद्धि-(१) यज्ञः। *यज्+नङ्। यज्+न। यज्+ञ। यज्ञ+सु। यज्ञः।*

*यहां **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से 'नङ्' प्रत्यय के 'न्' को 'ञ्' आदेश होता है।*

(२) याच्ञा। *याच्+नङ्। याच्+न। याच्+ञ। याच्ञ+टाप्। याच्ञा+सु। याच्ञा।*

*यहां **'टुयाचृ याच्ञायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'नङ्' प्रत्यय के 'न्' को 'ञ्' आदेश होता है। याच्ञ+टाप्। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। याच्ञा शब्द **'याच्ञा स्त्रियाम्'** (लिङ्गानुशासन २।६।) से स्त्रीलिङ्ग में होता है, शेष 'नङ्' प्रत्ययान्त शब्द **'नङन्तः'** (लि० २।५) से पुंलिङ्ग होते हैं।*

(३) यत्नः। ***'यती प्रयत्ने'*** *(भ्वा०आ०)।*

(४) विश्नः। *विच्छ्+नङ्। विश्+न। विश्न+सु। विश्नः।*

*यहां **'विच्छ गतौ'** (तु०प०)। **'छ्वोः शूडनुनासिके च'** (६।४।१९) से 'छ्' के स्थान में 'श्' आदेश होता है। प्राप्त लघूपध गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।*

(५) प्रश्नः। ***'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्'*** *(तु०प०)। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'श्' आदेश होता है। **'प्रश्ने चासन्नकाले'** (३।२।११७) ज्ञापक से **'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से प्राप्त सम्प्रसारण नहीं होता है।*

(६) रक्ष्णः। *रक्ष्+नङ्। रक्ष्+न। रक्ष्+ण। रक्ष्ण+सु। रक्ष्णः।*

*यहां **'रक्ष रक्षणे'** (भ्वा०प०) **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

नन्–

(७३) स्वपो नन्।६१।

प०वि०–स्वपः ५।१ नन् १।१।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च स्वपो धातोर्नन्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात्-स्वप्-धातोः परो नन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्वप्नः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (स्वपः) स्वप् (धातोः) धातु से परे (नन्) नन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स्वप्नः।** शयन करना।*

__सिद्धि-स्वप्नः।__ स्वप्+नन्। स्वप्+न। स्वप्न+सु। स्वप्नः।

*यहां **'ञिष्वप् शये'** (अदा०प०) धातु से भाव में इस सूत्र से 'नन्' प्रत्यय है। 'नन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

किः–

(७४) उपसर्गे घोः किः।६२।

प०वि०–उपसर्गे ७।१ घोः ५।१ किः १।१।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे घोः किः।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सोपसर्गेभ्यो घु-संज्ञकेभ्यो धातुभ्यः परः किः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(दा) प्रदिः। (धा) प्रधिः। अन्तर्धिः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गपूर्वक (घोः) घु-संज्ञक (धातोः) धातुओं से परे (किः) कि प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(दा) प्रदिः।** प्रदान करना। **(धा) प्रधिः।** धारण-पोषण करना। **अन्तर्धिः।** अन्तर्धान होना (छुपना)।*

*__सिद्धि-(१) प्रदिः।__ यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। 'कि' प्रत्यय के 'कित्' होने से **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'दा' के आ का लोप हो जाता है।*

(२) प्रधिः। 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) पूर्ववत्।

(३) अन्तर्धिः। अन्तःपूर्वक पूर्वोक्त 'धा' धातु से पूर्ववत्।

विशेष-घु- 'दाधा घ्वदाप्' (१।१।१९) से डुदाञ् दाने, दाण् दाने, दो अवखण्डने, देङ् रक्षणे, डुधाञ् धारणपोषणयोः, धेट् पाने इन छः धातुओं की घु-संज्ञा है। 'क्यन्तो घुः' (लि० २।७) से कि-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं।

(७५) कर्मण्यधिकरणे च।६३।

प०वि०-कर्मणि ७।१ अधिकरणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-घोः, किरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे कर्मणि च घोर्धातोः किः।

अर्थः-अधिकरणे कारके वर्तमानेभ्यः कर्मोपपदेभ्यो घु-संज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**धा**) जलं धीयते यस्मिन् सः-जलधिः। शरा धीयन्ते यस्मिन् सः-शरधिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण (कारके) कारक में विद्यमान (कर्मणि) कर्म-उपपदवाले (घोः) घु-संज्ञक (धातोः) धातुओं से परे (किः) कि प्रत्यय होता है।

उदा०-(धा) जलं धीयते यस्मिन् सः-जलधिः। जिसमें जल रखा जाता है वह जलधि=समुद्र आदि। शरा धीयन्ते यस्मिन् सः-शरधिः। जिसमें शर=बाणों को रखा जाता है वह शरधि=तूणीर।

सिद्धि-जलधिः। जल+अम्+धा+कि। जल+ध्+इ। जलधि+सु। जलधिः।

यहां जल कर्म उपपद होने पर घुसंज्ञक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से अधिकरण कारक में इस सूत्र से 'कि' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'धा' के आ का लोप होता है। ऐसे ही-शरधिः।

स्त्रीलिङ्गप्रत्ययप्रकरणम्

क्तिन्-

(१) स्त्रियां क्तिन्।६४।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१ क्तिन् १।१।

अन्वयः०-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां क्तिन्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः सर्वेभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कृ) कृतिः। **(चि)** चितिः। **(मन)** मतिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) सब धातुओं से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कृ) **कृतिः।** करना/रचना। (चि) **चितिः।** चयन करना/चिनना। (मन) **मतिः।** जानना।*

***सिद्धि-कृतिः।** कृ+क्तिन्। कृ+ति। कृति+सु। कृतिः।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'कित्' होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।*

*(२) **चितिः।** **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **मतिः।** मन्+क्तिन्। मन्+ति। म+ति। मति+सु। मतिः।*

*यहां **'मन ज्ञाने'** (दि०आ०)। **'अनुदात्तोपदेश०'** (६।४।३७) से 'मन्' धातु के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।*

क्तिन् (भावे)-

(२) स्थागापापचो भावे।६५।

प०वि०-स्था-गा-पा-पचः ५।१ भावे ७।१।

स०-स्थाश्च गाश्च पाश्च पच् च एतेषां समाहारः-स्थागापापच्, तस्मात्-स्थागापापचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां, क्तिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावे स्थागापापचो धातोः स्त्रियां क्तिन्।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यः स्थागापापचिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्था) प्रस्थितिः। **(गा)** उद्गीतिः। संगीतिः। **(पा)** प्रपीतिः। संपीतिः। **(पच्)** पंक्तिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (स्था०पचः) स्था, गा, पा, पच् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(स्था) **प्रस्थितिः।** प्रस्थान करना। (गा) **उद्गीतिः।** उच्च स्वर से गान करना। **संगीतिः।** मिलकर गाना। (पा) **प्रपीतिः।** खूब पीना। **सम्पीतिः।** मिलकर पीना। (पच्) **पंक्तिः।** पकाना।*

*सिद्धि-(१) **प्रस्थितिः** । प्र+स्था+क्तिन् । प्र+स्था+ति । प्र+स्थि+ति । प्रस्थिति+सु । प्रस्थितिः ।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय है। '**द्यतिस्यतिमा०**' (७।४।४०) से 'स्था' के 'आ' को 'इत्त्व' होता है।*

*(२) **उद्गीतिः** । उत्+गा+क्तिन् । उद्+गा+ति । उद्+गी+ति । उद्गीति+सु । उद्गीतिः ।*

*यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**गै शब्दे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय है। '**घुमास्था०**' (६।४।६६) से 'गा' के 'आ' को 'ईत्त्व' होता है। ऐसे ही-**संगीतिः** ।*

*(३) **प्रपीतिः** । यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय तथा पूर्ववत् 'ईत्त्व' होता है। ऐसे ही-**सम्पीतिः** ।*

*(४) **पक्तिः** । यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्तिन्' प्रत्यय है। '**चोः कुः**' (८।२।३०) से 'पच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है।*

क्तिन्-

(३) मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः।६६।

प०वि०-मन्त्रे ७।१ वृष-इष-पच-मन-विद-भू-वी-राः १।३ (पञ्चम्यर्थे) उदात्तः १।१।

स०-वृषश्च इषश्च पचश्च मनश्च विदश्च भूश्च वीश्च राश्च ते-वृष०राः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रे भावे वृषादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां क्तिन् उदात्तः।

अर्थः-मन्त्रे विषये भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यो वृषादिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्तिन् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(वृष) वृष्टिः (ऋ० १।३८।२)। **(इष) इष्टिः** (ऋ० ४।४।७)। **(पच) पक्तिः** (ऋ० ४।२४।५)। **(मन) मतिः** (ऋ० ४।१४।१)। **(विद)** वित्तिः। **(भू)** भूतिः। **(वी)** वीतिः। **यन्ति वीतये** (अथर्व० २०।६९।३)। **(रा) रातिः** (ऋ० १।३४।१)।

आर्यभाषा-अर्थ-(मन्त्रे) वेदविषय में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (वृष०रा:) वृष, इष, पच, मन, विद, भू, वी, रा (धातो:) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्तिन्) क्तिन् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वृष) वृष्टि: (ऋ० १।३८।२) सींचना। (इष) इष्टि: (ऋ० ४।४।७) इच्छा करना। (पच) पक्ति: (ऋ० ४।२४।५) पकाना। (मन) मति: (४।१४।१) समझना/जानना। (विद) वित्ति:। जानना। (भू) भूति:। सत्ता होना। (वी) वीति:। गति आदि करना। यन्ति वीतये (अथर्व० २०।६९।३)। (रा) राति: (ऋ० १।३४।१) दान करना।

सिद्धि-(१) वृष्टि:। यहां मन्त्रविषय में 'वृष सेचने' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में तथा स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' प्रत्यय है। 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४) से 'क्तिन्' प्रत्यय के 'त्' को 'ट्' आदेश होता है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'कित्' होने से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द को नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र से केवल 'क्तिन्' प्रत्यय को उदात्त स्वर विधान किया गया है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५८) से शेष स्वर अनुदात्त होता है।

(२) इष्टि:। 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) पक्ति:। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) 'चो: कु:' (८।४।३०) से 'पच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' होता है।

(४) मति:। 'मन ज्ञाने' (दि०आ०) 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'मन्' के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।

(५) वित्ति:। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) 'खरि च' (८।४।५४) से 'विद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।

(६) भूति:। 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(७) वीति:। 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(८) राति:। 'रा दाने' (अदा०प०)।

क्तिन् (निपातनम्)-

(४) ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च।६७।

प०वि०-ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्त्तय: १।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऊतिश्च यूतिश्च जूतिश्च सातिश्च हेतिश्च कीर्तिश्च ता:-ऊति०कीर्तय: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-स्त्रियां, क्तिन्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ऊति०कीर्त्तयश्च स्त्रियां क्तिन् उदात्तः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमाना ऊति-आदयः शब्दा अपि स्त्रियां क्तिन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, अत्र च क्तिन् प्रत्यय उदात्तो भवति।

उदा०-ऊति:। यूति:। जूति:। साति:। हेति:। कीर्ति:।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ऊति०कीर्त्तयः) ऊति, यूति, जूति, साति, हेति, कीर्ति शब्द (क्तिन्) क्तिन् प्रत्ययान्त निपातित हैं और यहां 'क्तिन्' प्रत्यय (उदात्तः) उदात्त होता है। इससे ये शब्द अन्तोदात्त स्वरवाले होते हैं।

उदा०-ऊति:। रक्षा आदि करना। यूति:। मिश्रण-अमिश्रण करना। जूति:। भागना। साति:। अन्त होना। हेति:। मारना/गति करना। कीर्ति:। स्तुति करना।

सिद्धि-(१) ऊति:। अव्+क्तिन्। अव्+ति। ऊठ्+ति। ऊ+ति। ऊति+सु। ऊति:।

*यहां **'अव रक्षणादिषु'** (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय है और अन्तोदात्त निपातित किया गया है। 'क्तिन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त था। **'ज्वरत्वर०'** (६।४।२०) से अव् धातु की उपधा (अ) तथा 'व्' के स्थान में 'ऊठ्' आदेश होता है।*

(२) यूति:। यु+क्तिन्। यू+ति। यूति+सु। यूति:।

*यहां **'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, 'यु' धातु को दीर्घत्व और अन्तोदात्त स्वर निपातित है।*

*(३) जूति:। **'जु वेगे'** (सौत्रधातु) धातु को दीर्घत्व और अन्तोदात्त स्वर निपातित है।*

*(४) साति:। **'षोऽन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर **'द्यतिस्यति०'** (७।४।४०) से प्राप्त इत्त्व निपातन से नहीं होता है। अथवा **'षणु दाने'** (त०उ०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर **'जनसन०'** (६।४।४२) से 'आत्व' होता है। निपातन से अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*(५) हेति:। **'हन् हिंसागत्योः'** (अदा०प०) से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर **'अनुदात्तोपदेश०'** (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है। निपातन से 'हन्' के 'अ' को 'ए' आदेश होता है अथवा **'हि गतौ'** (स्वा०प०) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्राप्त गुण-प्रतिषेध निपातन से नहीं होता है।*

(६) कीर्तिः । कृत्+णिच् । कृत्+इ+क्तिन् । कृत्+०+ति । कि र् त्+ति । की र् त्+ति । कीर्ति+सु । कीर्तिः ।

*यहां 'कृत संशब्दने' (चु०प०) धातु से चुरादि णिच् प्रत्यय करने पर **'ण्यासश्रन्थो युच्'** (३।३।१०७) से 'युच्' प्रत्यय प्राप्त था, निपातन से 'क्तिन्' प्रत्यय होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप, **'उपधायाश्च'** (७।१।१०१) से कृत् की उपधा (ऋ) को इत्त्व, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से 'इ' को रपरत्व (इर्) और **'हलि च'** (८।२।७८) से दीर्घ होता है।*

क्यप् (भावे)–

(५) व्रजयजोर्भावे क्यप्।९८।

प०वि०–व्रज-यजोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) भावे ७।१ क्यप् १।१।

स०–व्रजश्च यज् च तौ–व्रजयजौ, तयोः–व्रजयजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियाम्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भावे व्रजयजिभ्यां धातुभ्यां स्त्रियां क्यप्, उदात्तः।

अर्थः–भावेऽर्थे वर्तमानाभ्यां व्रजयजिभ्यां धातुभ्यां परः स्त्रियां क्यप् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–**(व्रज)** व्रज्या। **(यज्)** इज्या।

आर्यभाषा-अर्थ–*(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (व्रजयजोः) व्रज, यज् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–(व्रज) **व्रज्या**। गति करना। (यज्) **इज्या**। देवपूजा, संगतिकरण और दान करना।*

सिद्धि–*(१) **व्रज्या**। व्रज्+क्यप्। व्रज्+य। व्रज्य+टाप्। व्रज्य+आ। व्रज्या+सु। व्रज्या।*

*यहां **'व्रज गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। क्यप् प्रत्यय के पित् होने से **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त स्वर प्राप्त था, इस सूत्र से उदात्त स्वर होता है।*

*(२) **इज्या**। यज्+क्यप्। यज्+य। इ अ ज्+य। इज्+य। इज्य+टाप्। इज्य+आ। इज्या+सु। इज्या।*

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'यज्' धातु को 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।४४) से 'अ' को पूर्वरूप एकादेश होता है, पूर्ववत् टाप् प्रत्यय है।

क्यप् (भावे)–

(६) संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः।९९।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ समज-निषद-निपत-मन-विद-षुञ्-शीङ्-भृञ्-इणः ५।१।

स०-समजश्च निषदश्च निपतश्च मनश्च विदश्च षुञ् च शीङ् च भृञ् च इण् एतेषां समाहारः-समज०इण्, तस्मात्-समज०इणः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियाम्, उदात्तः, भावे, क्यप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावे समज०इणो धातोः स्त्रियां क्यप् उदात्तः संज्ञायाम्।

अर्थः-भावेऽर्थे वर्तमानेभ्यः समजादिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियां क्यप् प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(समज)** समज्या। **(निषद)** निषद्या। **(निपत)** निपत्या। **(मन)** मन्या। **(विद)** विद्या। **(षुञ्)** सुत्या। **(शीङ्)** शय्या। **(भृञ्)** भृत्या। **(इण्)** इत्या।

आर्यभाषा-अर्थ-(भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (समज०इणः) समज, निषद, निपत, मन, विद, षुञ्, शीङ्, भृञ्, इण् (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है, यदि वहां (संज्ञायाम्) संज्ञा अर्थ प्रकट हो।

*उदा०-(समज) **समजन्ति=संगच्छन्ते यस्यां सा समज्या=सभा।** जिसमें लोग कार्य के लिए संगत होते हैं। (निषद्) **निषीदन्ति यस्यां सा निषद्या=आपणः।** दुकान। जिसमें लोग व्यवहार के लिये बैठते हैं। (निपत) **निपतन्ति यस्यां सा निपत्या=पिच्छिला भूमिः।** चिकणी जमीन जिस पर लोग फिसलन से गिरते हैं। (मन) **मन्यन्ते यया सा मन्या=गलपार्श्वशिरा, तया हि क्रुद्धो ज्ञायते।** गल के पार्श्व की एक नाड़ी जिससे क्रुद्ध व्यक्ति जाना जाता है। (विद) **विद्यते=गृह्यते ययाऽर्थः सा विद्या।** जिससे यथार्थ में पदार्थ ग्रहण किया जाता है। (षुञ्) **सूयते=अभिषूयते सोमो यस्यां सा***

सुत्या=अभिषवदिवसः। वह दिन जिसमें सोम का सवन किया जाता है। (शीङ्) शय्यते यस्यां सा शय्या। जिस पर शयन किया जाता है वह खट्वा आदि। (भृञ्) भरणं भृत्या, जीविका। आजीविका (नौकरी आदि)। (इण्) ईयते=गम्यते यया सा इत्या=दीपिका। जिससे रात्रि में अयन=गमन किया जाता है, वह दीपिका (लालटेन आदि)।

सिद्धि-(१) समज्या। सम्+अज्+क्यप्। सम्+अज्+य। समज्य+टाप्। समज्य+आ। समज्या+सु। समज्या।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में संज्ञा विषय में तथा स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय है। संज्ञा की प्रतीति न होने से 'अजेर्व्यघञपोः' (२।४।५६) से 'अज' धातु के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) निषद्या। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्यप्' प्रत्यय है।

(३) निपत्या। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(४) मन्या। 'मन ज्ञाने' (दि०आ०)।

(५) सुत्या। 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) से 'क्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७१) से 'सु' धातु को 'तुक्' आगम होता है।

(६) शय्या। शीङ्+क्यप्। श् अयङ्+य। श् अय्+य। शय्य+टाप्। शय्य+आ। शय्या+सु। शय्या।

यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'अयङ् यि क्ङिति' (७।४।२२) से 'शी' धातु को 'अयङ्' आदेश होता है।

(७) भृत्या। 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'भृ' धातु को 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है।

(८) इत्या। 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर पूर्ववत् 'तुक्' आगम होता है।

शः+क्यप्–

(७) कृञः श च।१००।

प०वि०-कृञः ५।१ श १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-स्त्रियां, क्यप्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च कृञो धातोः स्त्रियां शः क्यप् च उदात्तः।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानात् कृञ्-धातोः परः स्त्रियां शः क्यप् च प्रत्ययो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(कृञ्) क्रिया (शः)। कृत्या (क्यप्)। योगविभागात् क्तिन् प्रत्ययोऽपि विधीयते-कृतिः (क्तिन्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्)। स्त्रीलिङ्ग में (शः) श प्रत्यय (च) और (क्यप्) क्यप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कृञ्) **क्रिया** (श) कृत्या **(क्यप्)।** योग विभाग से क्तिन् प्रत्यय भी होता है-**कृतिः।** करना। 'वा वचनं कर्तव्यं क्तिन्नर्थम्' (महाभाष्य)।*

सिद्धि-(१) क्रिया। *कृ+श। क् रिङ्+अ। क् रि+अ। क् र् इयङ्+अ। क् र् इय्+अ। क्रिय+टाप्। क्रिय+आ। क्रिया+सु। क्रिया।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। **'रिङ् शयग्लिङ्क्षु'** (७।४।२८) से 'कृ' धातु को 'रिङ्' आदेश और उसे **'अचि श्नुधातु०'** (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **कृत्या।** कृ+क्यप्। कृ+य। कृ+तुक्+य। कृत्य+टाप्। कृत्य+आ। कृत्या+सु। कृत्या।*

*यहां पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'कृ' धातु को **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से 'तुक्' आगम होता है और पूर्ववत् टाप् प्रत्यय होता है।*

*(३) **कृतिः।** पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय है।*

शः (निपातनम्)-

(८) इच्छा।१०१।

प०वि०-इच्छा १।१।

अनु०-स्त्रियां, श इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च इच्छा स्त्रियां शः।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमान इच्छाशब्दः स्त्रियां श-प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-इच्छा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (इच्छा) इच्छा शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (शः) श-प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-इच्छा। चाहना।

सिद्धि-इच्छा। इष्+श। इष्+अ। इछ्+अ। इ तुक् छ्+अ। इच्छ्+अ। इच्छ्+टाप्। इच्छ+आ। इच्छा+सु। इच्छा।

*यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'श' प्रत्यय है। 'श' प्रत्यय के 'शित्' होने से '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से 'इष्' के 'ष्' को 'छ्' आदेश होता है। 'छे च' (६।१।७१) से 'इ' को 'तुक्' आगम तथा '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।३९) से 'त्' को 'च्' आदेश होता है। 'श' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से भाववाच्य में '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से प्राप्त 'यक्' विकरण-प्रत्यय निपातन से नहीं होता है। '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

अः--

(६) अ प्रत्ययात्।१०२।

प०वि०-अ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) प्रत्ययात् ५।१।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च प्रत्ययान्ताद्धातोः स्त्रियाम् अः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अ-प्रत्ययो भवति। क्तिनोऽपवादः।

उदा०-चिकीर्षा। जिहीर्षा। पुत्रीया। पुत्रकाम्या। लोलूया। कण्डूया।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अः) 'अ' प्रत्यय होता है। यह क्तिन् प्रत्यय का अपवाद है।

*उदा०-**चिकीर्षा**। करने की इच्छा। **जिहीर्षा**। हरने की इच्छा। **पुत्रीया**। अपने पुत्र की इच्छा। **पुत्रकाम्या**। अपने पुत्र की इच्छा। **लोलूया**। पुनः-पुनः काटना। **कण्डूया**। खाज करना।*

*सिद्धि-(१) **चिकीर्षा**। चिकीर्ष+अ। चिकीर्ष्+अ। चिकीर्ष+टाप्। चिकीर्ष+आ। चिकीर्षा+सु। चिकीर्षा।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से प्रथम सन् प्रत्यय और तत्पश्चात् सन्नन्त चिकीर्ष धातु से इस सूत्र से*

*स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से अङ्ग के 'अ' का लोप और **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **जिहीर्षा।** **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **पुत्रीया।** यहां प्रथम 'पुत्र' सुबन्त से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से क्यच् प्रत्यय और तत्पश्चात् क्यच्-प्रत्ययान्त 'पुत्रीय' धातु से इस धातु से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।*

*(४) **पुत्रकाम्या।** यहां प्रथम 'पुत्र' शब्द से **'काम्यच्च'** (३।१।९) से 'काम्यच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् काम्यच् प्रत्ययान्त 'पुत्रकाम्य' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।*

*(५) **लोलूया।** यहां **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०) धातु से प्रथम **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् 'यङ्' प्रत्ययान्त 'लोलूय' धातु से इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है।*

*(६) **कण्डूया।** यहां **'कण्डूञ् गात्रविघर्षणे'** (कण्डू०उ०) धातु से प्रथम **'कण्ड्वादिभ्यो यक्'** (३।१।२७) से 'यक्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'यक्' प्रत्ययान्त 'कण्डूय' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है।*

अः–

(१०) गुरोश्च हलः।१०३।

प०वि०–गुरोः ५।१ च अव्ययपदम्, हलः ५।१।

अनु०–स्त्रियाम्, अ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च हलो गुरोश्च धातोः स्त्रियाम् अः।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् हलन्ताद् गुरुमतश्च धातोः परः स्त्रियाम् अ-प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुण्डा। हुण्डा। ईहा। ऊहा। शिक्षा।

आर्यभाषा-अर्थ–(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (हलः) हलन्त (गुरोः) गुरुमान् (धातोः) धातु से परे (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अः) अ-प्रत्यय होता है।

*उदा०–**कुण्डा।** दाह (जलना)। **हुण्डा।** संघात (समूह होना)। **ईहा।** चेष्टा। **ऊहा।** वितर्क। **शिक्षा।** विद्या ग्रहण करना।*

*सिद्धि–(१) **कुण्डा।** कुडि+अ। कु नुम् ड्+अ। कुण्ड्+अ। कुण्ड+टाप्। कुण्ड+आ। कुण्डा+सु। कुण्डा।*

यह 'कुडि दाहे' (भ्वा०आ०) इस हलन्त, गुरुमान् धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) हुण्डा। 'हुडि संघाते' (भ्वा०आ०)।

(३) ईहा। 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०)।

(४) ऊहा। 'ऊह वितर्के' (भ्वा०आ०)।

(५) शिक्षा। 'शिक्ष विद्योपादाने' (भ्वा०आ०)।

अङ्–

(११) षिद्भिदादिभ्योऽङ्।१०४।

प०वि०–षिद्-भिदादिभ्यः ५।३ अङ् १।१।

स०–ष इद् येषां ते षितः, भिद् आदिर्येषां ते भिदादयः। षितश्च भिदादयश्च ते षिद्भिदादयः, तेभ्यः षिद्भिदादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित-इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यः षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(षितः)** जॄष्–जरा। त्रपूष्–त्रपा। **(भिदादयः)** भिदा। छिदा।

भिदादयः–भिदा। छिदा। विदा। क्षिपा। गुहा गिरि–ओषध्योः। श्रद्धा। मेधा। गोधा। आरा। हारा। कारा। क्षिया। तारा। धारा। लेखा। रेखा। चूडा। पीडा। वपा। वसा। सृजा। क्रपेः सम्प्रसारणं च–कृपा इति भिदादयः।

आर्यभाषा–अर्थ–*(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (षिद्भिदादिभ्यः) षित् और भिद् आदि (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(षित्) जॄष्–जरा।** बुढ़ापा। **त्रपूष्–त्रपा।** लज्जा। **(भिदादि) भिदा।** फाड़ना। **छिदा।** काटना। इत्यादि।*

सिद्धि–(१) जरा। *यहां **'जॄष् वयोहानौ'** (दि०उ०) इस 'षित्' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। 'अङ्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५)*

से गुण-प्रतिषेध प्राप्त था किन्तु 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से अङ्ग (जॄ) को गुण होता है।

(२) त्रपा। त्रपूष् लज्जायाम् (भ्वा०आ०)।

(३) भिदा। भिदिर् विदारणे। (रुधा०प०)।

(४) छिदा। 'छिदिर् द्वैधीकरणे। (रुधा०प०)।

अङ्–

(१२) चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च।१०५।

प०वि०–चिन्ति-पूजि-कथि-कुम्बि-चर्चः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–चिन्तिश्च पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्च् च एतेषां समाहारः–चिन्ति०चर्च्, तस्मात् चिन्ति०चर्चः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–स्त्रियाम्, अङ् चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्तरि कारके भावे च चिन्ति०चर्चो धातोः स्त्रियाम् अङ्।

अर्थः–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यश्चिन्तिपूजिकथिकुम्बि-चर्चिभ्यो धातुभ्यः परः स्त्रियाम् अङ्-प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(चिन्तिः)** चिन्ता। **(पूजिः)** पूजा। **(कथिः)** कथा। **(कुम्बिः)** कुम्बा। **(चर्चः)** चर्चा।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (चिन्ति०चर्चः) चिन्ति, पूजि, कथि, कुम्बि, चर्च (धातोः) धातुओं से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(चिन्ति) **चिन्ता**। स्मरण करना। (पूजि) **पूजा**। पूजा करना। (कथि) **कथा**। कहना। (कुम्बि) **कुम्बा**। सघन बाड़। 'कुम्बा सुगहना वृत्तिः' इत्यमरः। (चर्च) **चर्चा**। अध्ययन करना।*

*सिद्धि-(१) **चिन्ता**। चिति+णिच्+अङ्। चिति+अ। चि नुम् त्+अ। चिन्त्+अ। चिन्त+टाप्। चिन्त+आ। चिन्ता+सु। चिन्ता।*

*यहां 'चिति स्मृत्याम्' (चुरादि०) धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम होता है। यह **'ण्यासश्रन्थो युच्'** (३।३।१०७) से 'युच्' प्रत्यय का पूर्वापवाद है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है।*

(२) पूजा। 'पूज पूजायाम्' (चुरादि०)।
(३) कथा। 'कथ वाक्यप्रबन्धे' (चुरादि०)।
(४) कुम्बा। 'कुबि आच्छादने' (चुरादि०)।
(५) चर्चा। 'चर्च अध्ययने' (चुरादि०)।

अङ्–

(१३) आतश्चोपसर्गे।१०६।

प०वि०–आत: ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्गे ७।१।

अनु०–स्त्रियाम्, अङ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–अकर्तरि कारके भावे च उपसर्गे आतो धातो: स्त्रियाम् अङ्।

अर्थ:–अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्य: सोपसर्गेभ्य आकारान्तेभ्योऽपि धातुभ्य: पर: स्त्रियाम् अङ् प्रत्ययो भवति। क्तिनोऽपवाद:।

उदा०–प्रदा। उपदा। प्रधा। उपधा।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (उपसर्गे) उपसर्गपूर्वक (आत:) आकारान्त (धातो:) धातुओं से (च) भी परे (अङ्) अङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**प्रदा**। प्रदान करना (भेंट)। **उपदा**। उपदान करना (रिश्वत)। **प्रधा**। प्रधारण करना (पहनना)। **उपधा**। उपधारण करना (ओढ़ना)।*

*सिद्धि-(१) **प्रदा**। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) इस आकारान्त धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। यह 'क्तिन्' प्रत्यय का अपवाद है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'अङ्ग' के आकार का लोप और तत्पश्चात् 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **उपदा**। 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्ववत् 'दा' धातु।*
*(३) **प्रधा**। 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'डुधाञ् धारणपोषणयो:'** (जु०उ०)।*
*(४) **उपधा**। 'उप' उपसर्गपूर्वक पूर्ववत् 'धा' धातु।*

युच्–

(१४) ण्यासश्रन्थो युच्।१०७।

प०वि०–णि-आस-श्रन्थ: ५।१ युच् १।१।

स०–णिश्च आसश्च श्रन्थ् च एतेषां समाहार:-ण्यासश्रन्थ्, तस्मात्-ण्यासश्रन्थ: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च ण्यासश्रन्थो धातोः स्त्रियां युच्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानेभ्यो णिजन्तेभ्यो धातुभ्यः आस-श्रन्थिभ्यां च धातुभ्यां परः स्त्रियां युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**णिः**) कारणा। हारणा। (**आसः**) आसना। (**श्रन्थः**) श्रन्थना।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (ण्यासश्रन्थः) णिजन्त धातु, आस तथा श्रन्थ (धातोः) धातु से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(णि) **कारणा**। कार्य कराना। **हारणा**। चोरी कराना। (आस) **आसना**। बैठना। (श्रन्थ) **श्रन्थना**। शिथिल होना (ढीलापन)।*

*सिद्धि-(१) **कारणा**। कृ+णिच्+युच्। कारि+यु। कार्+अन। कारण+टाप्। कारण+आ। कारणा+सु। कारणा।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से प्रथम **हेतुमति च** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'युच्' प्रत्यय होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णि' का लोप, **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होता है। यह 'अ' प्रत्यय का अपवाद है।*

*(२) **हारणा**। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०)।*

*(३) **आसना**। 'आस उपवेशने' (अदा०आ०)।*

*(४) **श्रन्थना**। 'श्रथि शैथिल्ये' (भ्वा०आ०)।*

ण्वुल्–

(१५) रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम्।१०८।

प०वि०-रोग-आख्यायाम् ७।१ ण्वुल् १।१ बहुलम् १।१।

स०-रोगस्य आख्या इति रोगाख्या, तस्याम्-रोगाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां बहुलं ण्वुल्, रोगाख्यायाम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां बहुलं ण्वुल् प्रत्ययो भवति, रोगाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०-प्रच्छर्दिका। प्रवाहिका। विचर्चिका। बहुलग्रहणं व्यभिचारार्थं तेनेह न भवति-शिरोऽर्तिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (बहुलम्) प्रायशः (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है (रोगाख्यायाम्) यदि वहां किसी रोगविशेष का कथन हो।

*उदा०-**प्रच्छर्दिका**। वमन (उलटी)। **प्रवाहिका**। पेचिश। **विचर्चिका**। दाद। यहां बहुल-ग्रहण विधि के व्यभिचार के लिये है अतः यहां ण्वुल् प्रत्यय नहीं होता है-**शिरोऽर्तिः**। सिरदर्द।*

*सिद्धि-(१) **प्रच्छर्दिका**। प्र+छर्द्+ण्वुल्। प्र+छर्द्+अक। प्रच्छर्दक। प्रच्छर्दक+टाप्। प्रच्छर्दिक+आ। प्रच्छर्दिका+सु। प्रच्छर्दिका।*

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'छर्द उद्वमने' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से रोगविशेष अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में ण्वुल् प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' (७।३।४४) से इत्त्व होता है।

*(२) **प्रवाहिका**। 'प्र' उपसर्गपूर्वक '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०)।*

*(३) **विचर्चिका**। 'वि' उपसर्गपूर्वक 'चर्च **अध्ययने**' (चुरादि०)।*

*(४) **शिरोऽर्तिः**। अर्द्+क्तिन्। अर्द्+ति। अर्त्+ति। अर्ति+सु। अर्तिः। शिरस्+अर्तिः। शिररु+अर्तिः। शिर् र्+अर्तिः। शिर उ+अर्तिः। शिरोर्तिः।*

*यहां '**अर्द हिंसायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**स्त्रियां क्तिन्**' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय, '**खरि च**' (८।४।५४) से 'द्' को चर्त्व 'त्' होता है। शिरस् शब्द के साथ षष्ठीसमास-'**शिरसोऽर्तिरिति शिरोऽर्तिः**'। '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से रुत्व, '**अतो रोरप्लुतादप्लुते**' (६।१।१०९) से उत्व, '**आद्गुणः**' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश और '**एङः पदान्तादति**' (६।१।१०५) से 'अ' को पूर्वरूप होता है। यहां बहुलवचन से 'ण्वुल्' प्रत्यय नहीं होता है।*

ण्वुल्-

(१६) संज्ञायाम्।१०६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-स्त्रियां, ण्वुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां ण्वुल् संज्ञायाम्।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां ण्वुल् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-उद्दालकपुष्पभञ्जिका। वरणपुष्पप्रचायिका। अभ्यूषखादिका। आचोषखादिका। शालभञ्जिका। तालभञ्जिका।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञाविषय की प्रतीति हो।

उदा०-__उद्दालकपुष्पभञ्जिका।__ उद्दालक वृक्ष के फूल तोड़ने की क्रीडा। __वरणपुष्पप्रचायिका।__ वरण वृक्ष के फूल चुनने की क्रीडा। __अभ्यूषखादिका।__ अभ्यूष=अपूपविशेष खाने की क्रीडा। __आचोषखादिका।__ आचोष=खाद्यविशेष खाने की क्रीडा। __शालभञ्जिका।__ शाल तोड़ने की क्रीडा। __तालभञ्जिका।__ ताल तोड़ने की क्रीडा।

__सिद्धि-(१) उद्दालकपुष्पभञ्जिका।__ भञ्ज्+ण्वुल्। भञ्ज्+अक। भञ्जक+टाप्। भञ्जक+आ। भञ्जिका+सु। भञ्जिका। उद्दालकपुष्प+भञ्जिका=उद्दालकपुष्पभञ्जिका।

यहां उद्दालकपुष्प उपपद '__भञ्जो आमर्दने__' (रु०प०) धातु से अधिकरण कारक में, संज्ञा विषय में और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। '__नित्यं क्रीडाजीविकयोः__' (२।२।१६) से क्रीडा अर्थ में नित्य षष्ठीसमास होता है। शेष कार्य '__प्रच्छर्दिका__' के समान है।

__(२) वरणपुष्पप्रचायिका।__ वरणपुष्प उपपद, प्र उपसर्ग पूर्वक '__चिञ् चयने__' (स्वा०उ०)।

__(३) अभ्यूषखादिका।__ अभ्यूष उपपद '__खादृ भक्षणे__' (भ्वा०प०)।

__(४) आचोषखादिका।__ आचोष उपपद '__खादृ भक्षणे__' (भ्वा०प०)।

__(५) शालभञ्जिका।__ शाल उपपद '__भञ्जो आमर्दने__' (रु०प०)।

__(६) तालभञ्जिका।__ ताल उपपद '__भञ्जो आमर्दने__' (रु०प०)।

इञ्+ण्वुल्-

(१७) विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च।११०।

प०वि०-विभाषा १।१ आख्यान-परिप्रश्नयोः ७।२। इञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-आख्यानं च परिप्रश्नश्च तौ-आख्यानपरिप्रश्नौ, तयोः-आख्यानपरिप्रश्नयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पूर्वं परिप्रश्नः पश्चाच्चाख्यानं

भवति। **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) इति नियमादाऽऽख्यानशब्दस्य पूर्वनिपातः कृतः।

अनु०-स्त्रियां ण्वुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि कारके भावे च धातोः स्त्रियां विभाषा इञ् ण्वुल् चाऽऽख्यान-परिप्रश्नयोः।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां विकल्पेन इञ् ण्वुल् च प्रत्ययो भवति, परिप्रश्ने आख्याने च कर्त्तव्ये। अत्र विभाषा-वचनाद् यथाप्राप्तं सर्वे प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-परिप्रश्ने (इञ्) कां कारिमकार्षीः ? (ण्वुल्) कां कारिकामकार्षीः ? (शः) कां क्रियामकार्षीः ? (क्यप्) कां कृत्यामकार्षीः ? (क्तिन्) कां कृतिमकार्षीः ? **आख्याने**-(इञ्) सर्वां कारिमकार्षम्। (ण्वुल्) सर्वां कारिकामकार्षम्। (शः) सर्वां क्रियामकार्षम्। (क्यप्) सर्वां कृत्यामकार्षम्। (क्तिन्) सर्वां कृतिमकार्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (इञ्) इञ् (च) और (ण्वुल्) ण्वुल् प्रत्यय होता है। (आख्यानपरिप्रश्नयोः) यदि वहां प्रश्न और उत्तर हो। यहां विभाषा=वचन से यथाप्राप्त सब प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-प्रश्न-(इञ्) **कां कारिमकार्षीः ?** (ण्वुल्) **कां कारिकामकार्षीः ?** (श) **कां क्रियामकार्षी ?** (क्यप्) **कां कृत्यामकार्षीः ?** (क्तिन्) **कां कृतिमकार्षीः ?** तूने क्या कार्य किया ? उत्तर-(इञ्) **सर्वां कारिमकार्षम्।** (ण्वुल्) **सर्वां कारिकामकार्षम्।** (श) **सर्वां क्रियामकार्षम्।** (क्यप्) **सर्वां कृत्यामकार्षम्।** (क्तिन्) **सर्वां कृतिमकार्षम्।** मैंने सब कार्य कर लिया।*

*सिद्धि-(१) **कारिः।** कृ+इञ्। कार्+इ। कारि+सु। कारिः।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से परिप्रश्न और आख्यान अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **कारिका।** कृ+ण्वुल्। कृ+अक। कार्+अक। कारक+टाप्। कारक+आ। कारिका+सु। कारिका।*

*यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'ण्वुल्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से 'इत्त्व' होता है।*

(३) क्रिया। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से कृञः श च' (३।३।१००) से 'श' प्रत्यय है। शेष कार्य वहीं देखें।

(४) कृत्या। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'कृञः श च' (३।३।१००) से 'क्यप्' प्रत्यय है। शेष कार्य वहीं देखें।

(५) कृतिः। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है।

ण्वुच्–

(१८) पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्।१११।

प०वि०-पर्याय-अर्ह-ऋण-उत्पत्तिषु ७।३ ण्वुच् १।१।

स०-पर्यायश्च अर्हश्च ऋणं च उत्पत्तिश्च ताः-पर्यायार्हर्णोत्पत्तयः, तासु-पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियां विभाषा इति चानुवर्तते।

अर्थः-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः स्त्रियां विकल्पेन ण्वुच् प्रत्ययो भवति, पर्याय-अर्ह-ऋण-उत्पत्तिष्वर्थेषु द्योत्येषु। पर्यायः=परिपाटीक्रमः। अर्हः=तद्योग्यता। ऋणम्=यत् परस्य धारयते तत्। उत्पत्तिः=जन्म।

उदा०-(पर्यायः) भवतः शायिका। भवतोऽग्रग्रासिका। **(अर्हः)** अर्हति भवान् इक्षुभक्षिकाम्। **(ऋणम्)** इक्षुभक्षिकां मे धारयसि। ओदनभोजिकां मे धारयसि। पयःपायिकां में धारयसि। **(उत्पत्तिः)** इक्षुभक्षिका मे उदपादि भवता। ओदनभोजिका मे उदपादि भवता। पयःपायिका मे उदपादि भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (ण्वुच्) ण्वुच् प्रत्यय होता है (पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु) यदि वहां पर्याय, अर्ह, ऋण और उत्पत्ति अर्थ प्रकाशित हो।

*उदा०-(पर्याय) **भवतः शायिका।** आपकी सोने की पर्याय (बारी) है। **भवतोऽग्रग्रासिका।** आपकी पहले भोजन करने की बारी है। (अर्ह) **अर्हति भवान् इक्षुभक्षिकाम्।** आप गन्ना चूस सकते हो। (ऋण) **इक्षुभक्षिकां मे धारयसि।** तू मेरी इक्षुभक्षिका (गन्ना चुसाई) का ऋणी है। **ओदनभोजिकां मे धारयसि।** तू मेरी एक ओदनभोजिका (भात खिलाई) का ऋणी है। **पयःपायिकां मे धारयसि।** तू मेरी एक*

*पय:पायिका (दूध पिलाई) का ऋणी है। **(उत्पत्ति) इक्षुभक्षिका मे उदपादि भवता।** आपने मेरे लिए इक्षुभक्षिका उत्पन्न की। **ओदनभोजिका मे उदपादि भवता।** आपने मेरे लिये ओदनभोजिका उत्पन्न की (भात खाने का अवसर दिया)। **पय:पाचिका मे उदपादि भवता।** आपने मेरे लिये पय:पायिका उत्पन्न की। दुग्धपान का अवसर दिया।*

***सिद्धि-(१) शायिका।** शीङ्+ण्वुच्। शी+वु। शी+अक। शै+अक। शायक+टाप्। शायक+आ। शायिका+सु। शायिका।*

*यहां **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पर्याय अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'ण्वुच्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'अक' आदेश और **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होता है। पूर्ववत् टाप् और इत्त्व होता है।*

*(२) **अग्रग्रासिका।** 'अग्र' उपपद **'ग्रसु अदने'** (भ्वा०आ०)।*

*(३) **इक्षुभक्षिका।** 'इक्षु' उपपद **'भक्ष अदने'** (भ्वा०प०)।*

*(४) **पय:पायिका।** 'पय:' उपपद **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुच्' इस सूत्र से ऋण अर्थ में 'ण्वुच्' प्रत्यय है। **'आतो युक् चिण्कृतो:'** (७।३।३३) से 'पा' को 'युक्' आगम होता है।*

अनि:--

(१६) आक्रोशे नञ्यनि:।११२।

प०वि०-आक्रोशे ७।१ नञि ७।१ अनि: १।१।

अनु०-स्त्रियाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-अकर्तरि कारके भावे च नञि धातो: स्त्रियाम् अनि:।

अर्थ:-अकर्तरि कारके भावे चार्थे वर्तमानाद् नञ्-उपपदात् धातो: पर: स्त्रियाम् अनि: प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने। आक्रोश:=शपनम्।

उदा०-अकरणिस्ते वृषल ! भूयात्।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न (कारके) कारक में (च) और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (नञि) नञ् उपपदवाले (धातो:) धातु से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अनि:) अनि प्रत्यय होता है, (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश (शाप देना) अर्थ प्रकट हो।*

***उदा०-अकरणिस्ते वृषल ! भूयात्। हे नीच !** तेरी करणी का नाश हो।*

***सिद्धि-अकरणि:।** नञ्+कृ+अनि। अ+कर्+अनि। अकरणि+सु। अकरणि:।*

*यहां 'नञ्' उपपद **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से आक्रोश अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'अनि' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।।८४) से 'कृ' को गुण और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

इति अकर्तृकारकभावप्रकरणं स्त्रीलिङ्गप्रत्ययप्रकरणं च।

विविधार्थप्रत्ययप्रकरणम्

कृत्या ल्युट् च (बहुलार्थकाः)–

(१) कृत्यल्युटो बहुलम्।११३।

प०वि०-कृत्य-ल्युट: १।३ बहुलम् १।१।

स०-कृत्याश्च ल्युट् च ते-कृत्यल्युटः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अकर्तरि कारके भावे च' इति निवृत्तम्।

अर्थ:-कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया ल्युट् च प्रत्ययो धातोः परो बहुलमर्थेषु भवन्ति। यस्मिन्नर्थे विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति। कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया भावे कर्मणि चार्थे विहितास्ते कारकान्तरेऽपि भवन्ति।

उदा०-(**कृत्याः**) स्नाति येनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयते यस्मै स दानीयो ब्राह्मणः। (**ल्युट्**) करणाधिकरणयोर्भावे चार्थे ल्युड् विहितः सोऽन्यत्रापि भवति। अपसिच्यते यदिति अपसेचनम्। अवस्राव्यते यदिति अवस्रावणम्। भुज्यन्त इति भोजनाः, राज्ञो भोजना इति राजभोजनाः शालयः। आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि, राज्ञ आच्छादनानीति राजाच्छादनानि वासांसि। प्रस्कन्दति यस्मादिति प्रस्कन्दनम्। प्रपतीति यस्मादिति प्रपतनम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृत्यल्युटः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय (धातोः) धातु से परे (बहुलम्) बहुल अर्थों में होते हैं। जिस अर्थ में विहित हैं उससे अन्यत्र भी होते हैं। कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में विहित हैं वे अन्य कारक में भी होते हैं।

*उदा०-(कृत्य) **स्नाति येनेति स्नानीयं चूर्णम्।** स्नान करने योग्य आटा (उबटन)। **दीयते यस्मै स दानीयो ब्राह्मणः।** दान देने योग्य ब्राह्मण। (ल्युट्) करण और अधिकरण तथा भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय विहित है, वह अन्य अर्थ में भी होता है। **अपसिच्यते यदिति अपसेचनम्।** जो भलीभांति नहीं सींचा जाता है। **अवस्राव्यत यदिति अवस्रावणम्।** जो बुरी तरह बहाया जाता है। **भुज्यन्त इति भोजनाः, राज्ञो भोजना इति राजभोजनाः शालयः।** राजा के भोजन करने योग्य चावल। **आच्छाद्यन्त इति आच्छादनानि, राज्ञ आच्छादनानीति राजाच्छादनानि वासांसि।** राजा के ओढने योग्य वस्त्र। **प्रस्कन्दति यस्मादिति प्रस्कन्दनम्।** जिससे फिसलता है, वह स्थान। **प्रपतति यस्मादिति प्रपतनम्।** जिससे जलादि गिरता है, वह झरना आदि।*

सिद्धि-(१) स्नानीयम्। स्ना+अनीयर्। स्ना+अनीय। स्नानीय+सु। स्नानीयम्।

यहां 'ष्णा शौचे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है।

(२) दानीयः। दा+अनीयर्। दा+अनीय। दानीय+सु। दानीयः।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से सम्प्रदान कारक में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९४) से अनीयर् प्रत्यय है।

(३) अपसेचनम्। अप्+सिच्+ल्युट्। अप+सेच्+अन। अपसेचन+सु। अपसेचनम्।

यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक 'षिच्लृ सेचने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८५) से 'सिच्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(४) अवस्रावणम्। अव+स्रु+णिच्। अवस्रावि+ल्युट्। अवस्राव्+अन। अवस्रावण+सु। अवस्रावणम्।

यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है।

(५) राजभोजनाः। भुज्+ल्युट्। भोज्+अन। भोजन+जस्। भोजनाः।

यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस धातु से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। तत्पश्चात् राजन् और भोजन पदों का षष्ठीसमास होता है।

(६) राजाच्छादनानि। यहां आङ्पूर्वक 'छद' (चु०उ०) धातु से इस सूत्र से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् राजन् और आच्छादन पदों का षष्ठीसमास होता है।

(७) प्रस्कन्दनम्। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है।

(८) प्रपतनम्। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अपादान कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है।

क्तः (भावे, नपुंसके)-

(२) नपुंसके भावे क्तः।११४।

प०वि०-नपुंसके ७।१ भावे ७।१ क्तः १।१।

अन्वयः-नपुंसके भावे च धातोः क्तः।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परः क्तः प्रत्ययो भवति।

उदा०-हसितम्। सहितम्। जल्पितम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (क्तः) क्त प्रत्यय होता है।

*उदा०-**हसितम्।** हंसना। **सहितम्।** सहन करना। **जल्पितम्।** बकना।*

*सिद्धि-(१) **हसितम्।** हस्+क्त। हस्+इट्+त। हस्+इ+त। हसित+सु। हसितम्।*

यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग में और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

*(२) **सहितम्।** 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०)।*

*(३) **जल्पितम्।** 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।*

ल्युट् (भावे, नपुंसके)-

(३) ल्युट् च।११५।

प०वि०-ल्युट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-नपुंसके भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसके भावे च धातोर्ल्युट् च।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो ल्युट् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-हसनं छात्रस्य शोभनम्। जल्पनम्। शयनम्। आसनम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय (च) भी होता है।

*उदा०-**हसनं छात्रस्य शोभनम्।** छात्र का हंसना सोहणा है। **जल्पनम्।** बकना। **शयनम्।** सोना। **आसनम्।** बैठना।*

*सिद्धि-(१) **हसनम्।** हस्+ल्युट्। हस्+अन। हसन+सु। हसनम्।*

यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।

*(२) **जल्पनम्।** 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०)।*

*(३) **शयनम्।** 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'शीङ्' धातु को गुण होता है।*

*(४) **आसनम्।** 'आस उपवेशने' (अदा०आ०)।*

ल्युट् (भावे, नपुंसके)–

(४) कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम्।११६।

प०वि०–कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्, येन ३।१ संस्पर्शात् ५।१ कर्तुः ६।१ शरीरसुखम् १।१।

स०–शरीरस्य सुखमिति शरीरसुखम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–नपुंसके भावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–येन कर्मणा संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखं तस्मिन् कर्मणि च नपुंसके भावे धातोर्ल्युट्।

अर्थः–येन कर्मणा संस्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदेऽपि नपुंसकलिङ्गे भावे चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो ल्युट् प्रत्ययो भवति। पूर्वेणैव ल्युट्-प्रत्यये सिद्धे नित्यसमासार्थमिदं वचनम्, उपपदसमासो हि नित्यसमासः।

उदा०–पयःपानं सुखं देवदत्तस्य। ओदनभोजनं सुखं यज्ञदत्तस्य।

आर्यभाषा–अर्थ–*(येन) जिस कर्म से (संस्पर्शात्) संस्पर्श करनेवाले (कर्तुः) कर्ता को (शरीरसुखम्) शारीरिक सुख होता है, उस (कर्मणि) कर्म के उपपद होने पर (च) भी (नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में और (भावे) भाव अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से भी ल्युट् प्रत्यय सिद्ध था यह नित्य समास के लिये कथन किया गया है क्योंकि उपपद समास नित्य समास है।*

*उदा०–**पयःपानं सुखं देवदत्तस्य।** दुग्ध का पान देवदत्त को सुखकारी है। **ओदनभोजनं सुखं यज्ञदत्तस्य।** चावल का भोजन यज्ञदत्त को सुखकारी है।*

सिद्धि–(१) पयःपानम्। *पा+ल्युट्। पा+अन। पान+सु। पानम्। पयः+पानम्= पयःपानम्।*

*यहां पयस् कर्म उपपद होने पर नपुंसकलिङ्ग में और भाव अर्थ में 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'ल्युट्' प्रत्यय है। पयस् और पान पदों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से नित्यसमास होता है। पयः के सेवन से पा धातु के कर्ता देवदत्त आदि को शरीरसुख होता है।*

*(२) **ओदनभोजनम्।** यहां ओदन कर्म उपपद होने पर **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

ल्युट् (करणेऽधिकरणे च)–

(५) करणाधिकरणयोश्च।११७।

प०वि०–करण-अधिकरणयो: ७।२ च अव्ययपदम्।

स०–करणं च अधिकरणं च ते करणाधिकरणे, तयो:–करणाधिकरणयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–ल्युड् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–करणाधिकरणयोश्च धातोर्ल्युट्।

अर्थ:–करणेऽधिकरणे च कारकेऽपि धातो: परो ल्युट् प्रतययो भवति।

उदा०–**(करणे)** प्रवृश्चन्ति येन स प्रव्रश्चन:, इध्मानां प्रव्रश्चन इति इध्मप्रव्रश्चन:, कुठारादिकम्। शातयन्ति येन स शातन:, पलाशानां शातन इति पलाशशातन:। येन दण्डेन वृक्षस्य पर्णानि पात्यन्ते स:। (अधिकरणे) गां दुहन्ति यस्यां सा गोदोहनी। सक्तून् दधति यस्यां सा सक्तुधानी।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयो:) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (च) भी (धातो:) धातु से परे (ल्युट्) ल्युट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(करण) **इध्मप्रव्रचन:।** इन्धन काटने का करण, कुल्हाड़ी आदि। **पलाशपातन:।** पत्ते तोड़ने का करण दण्डा। **(अधिकरण) गोदोहनी।** गौ दुहने का अधिकरण (आधार) बटलोई आदि। **सक्तुधानी।** सत्तु रखने का अधिकरण=पात्रविशेष।*

*सिद्धि-(१) **इध्मप्रव्रचन:।** 'प्र+व्रश्च्+ल्युट्। प्र+व्रश्च्+अन। प्रव्रश्चन+सु। प्रव्रश्चन:। इध्म+प्रव्रश्चन:=इध्मप्रव्रश्चन:।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् इध्म और प्रव्रश्चन पदों में षष्ठीसमास है।*

*(२) **पलाशशातन:।** शद्+णिच्। शाद्+इ। शाति+ल्युट्। शात्+अन। शातन+सु। शातन। पलाश:+शातन:। पलाशशातन:।*

*यहां **'शद्लृ शातने'** (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय होने पर **'शदेरगतौ त:'** (७।३।४२) से 'शद्' के 'द्' को 'त्' आदेश है। तत्पश्चात् 'शाति' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। पलाश और शातन पदों का षष्ठीसमास है।*

*(३) **गोदोहनी।** दुह्+ल्युट्। दोह्+अन। दोहन+ङीप्। दोहन+ई। दोहनी+सु। दोहनी। गो+दोहनी=गोदोहनी।*

*यहां **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'ल्युट्' प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीलिङ्ग में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् 'गौ' और 'दोहनी' पदों में षष्ठीसमास होता है।*

*(४) **सक्तुधानी।** यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है।*

घः (करणेऽधिकरणे पुंसि)–

(६) पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण।११८।

प०वि०–पुंसि ७।१ संज्ञायाम् ७।१ घः १।१ प्रायेण ३।१।

अनु०–करणाधिकरणयोः इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–करणाधिकरणयोर्धातोः पुंसि प्रायेण घः संज्ञायाम्।

अर्थः–करणेऽधिकरणे च कारके धातोः परः पुंलिङ्गे प्रायेण घः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–**(करणे)** दन्तान् छादयन्ति येन सः–दन्तच्छदः। उरश्छादयन्ति येन सः–उरश्छदः। **(अधिकरणे)** एत्य कुर्वन्ति यस्मिन् सः–आकरः। उत्पत्तिस्थानम्। आलीयन्ते यस्मिन् सः–आलयो गृहम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__–(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (धातोः) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में (प्रायेण) अधिकशः (घः) घ प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ का प्रतीति हो।

*उदा०–(करण) **दन्तान् छादयन्ति येन सः–दन्तच्छदः।** दांतों को ढकने का करण (ओष्ठ)। **उरश्छादयन्ति येन सः–उरश्छदः।** उरः=छाती को ढकने का करण, बण्डी (Sweater) आदि। **(अधिकरण) एत्य कुर्वन्ति यस्मिन् सः–आकरः, उत्पत्तिस्थानम्।** लोग जहां आकर कोई कार्य विशेष करते हैं वह आकर, उत्पत्तिस्थान (खान आदि)। **आलीयन्ते यस्मिन् स आलयः, गृहम्।** जिसमें लोग छुपे रहते हैं, वह घर।*

*__सिद्धि__–(१) **दन्तच्छदः।** छद्+णिच्। छादि+घ। छादि+अ। छद्+अ। छदः। दन्त+छदः=दन्तच्छदः।*

*यहां **'छद आवरणे'** (चुरादि०) धातु से प्रथम **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से 'णिच्' प्रत्यय और **'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य'** (६।४।९६) से छादि धातु को को ह्रस्व होता*

*है। तत्पश्चात् 'छदि' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। दन्त और छद पदों में षष्ठीसमास है।*

(२) उरश्छदः। पूर्ववत्।

*(३) **आकरः।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(४) **आलयः।** 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'लीङ् श्लेषणे'** (दि०आ०)।*

घः (निपातनम्)—

(७) गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च।११६।

प०वि०-गोचर-संचर-वह-व्रज-व्यज-आपण-निगमाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-गोचरश्च संचरश्च वहश्च व्रजश्च व्यजश्च आपणश्च निगमश्च ते गोचर०निगमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, घः, प्रायेण इति चानुवर्तते। **'प्रायेण'** इति निपातनसामर्थ्यादिर्थे न सम्बध्यते।

अर्थः-करणेऽधिकरणे च कारके गोचरादयः शब्दा अपि पुंलिङ्गे घ-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(गोचरः)** गावश्चरन्ति यस्मिन् सः-गोचरः, चक्षुरादीनां विषयः। **(सञ्चरः)** संचरन्ते येन स संचरः, मार्गः। **(वहः)** वहन्ति येन स वहः, स्कन्धः। **(व्रजः)** व्रजन्ति यस्मिन् स व्रजः, गोष्ठम्। **(व्यजः)** व्यजन्ति येन स व्यजः, तालवृन्तम् (व्यजनम्)। **(आपणः)** एत्याऽऽपणन्ते यस्मिन् स आपणः, पण्यस्थानम्। **(निगमः)** निगच्छन्ति यस्मिन् स निगमः, छन्दः (वेदः)।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण (कारके) कारक में (गोचर०निगमाः) गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम शब्द (च) भी (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घः) घ प्रत्ययान्त निपातित हैं, (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में।*

*उदा०-**गोचरः** जहां इन्द्रियां विचरण करती हैं, वह चक्षु आदि का विषय। **वहः।** जिससे भार आदि वहन करते हैं, वह कन्धा। **व्रजः।** जहां गौ आदि पशु विश्राम के लिये जाते हैं, वह गोष्ठ (गोशाला)। **व्यजः।** जिससे हवा करते हैं, वह तालवृक्ष का पत्ता*

*(पंखा)। **आपण:।** लोग जहां आकर लेन-देन का व्यवहार करते हैं, वह दुकान। **निगम:।** जिसमें विद्वान् लोग निश्चित ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह वेद।*

***सिद्धि-(१) गोचर:।** चर्+घ। चर्+अ। चर+सु। चर:। गो+चर:=गोचर:।*

यहां 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है। तत्पश्चात् गौ और चर पदों में षष्ठीसमास होता है।

*(२) **संचर:।** यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'चर' धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। '**समस्तृतीयायुक्तात्**' (१।३।५४) से धातु में आत्मनेपद होता है।*

*(३) **वह:।** '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से करण करक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(४) **व्रज:।** '**व्रज गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(५) **व्यज:।** 'वि' उपसर्गपूर्वक '**अज गतिक्षेपणयो:**' (भ्वा०प०) धातु से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है। निपातन से '**अजेर्व्यघञपो:**' (२।४।५६) से 'अज' के स्थान में 'वी' आदेश नहीं होता है।*

*(६) **आपण:।** 'आङ्' उपसर्गपूर्वक '**पण व्यवहारे स्तुतौ च**' (भ्वा०आ०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(७) **निगम:।** 'नि' उपसर्गपूर्वक '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

घञ् (पुंसि)–

(८) अवे तृस्त्रोर्घञ्।१२०।

प०वि०-अवे ७।१ तृ-स्त्रो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) घञ् १।१।

स०-तृश्च स्तृश्च तौ-तृस्त्रौ, तयो:-तृस्त्रो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-करणाधिकरणयो:, पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण इति चानुवर्तते।

अन्वय:-करणाधिकरणयोरवे तृस्तृभ्यां धातुभ्यां पुंसि प्रायेण घञ् संज्ञायाम्।

अर्थ:-करणेऽधिकरणे च कारके अवे उपपदे तृ-स्तृभ्यां धातुभ्यां पर: पुंलिङ्गे प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(तृ:) अवतरन्ति यस्मिन् स्नानार्थं स:-अवतार:। **(स्तृ:)** अवस्तृणन्ति येन स:-अवस्तार: (जवनिका)।

***आर्यभाषा-अर्थ-**(करणाधिकरणयो:) करण और अधिकरण कारक में (अवे) अव उपसर्ग उपपद होने पर (तृ-स्त्रो:) तृ और स्तृ (धातो:) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में*

(प्रायेण) अधिकशः (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(तॄ) **अवतरन्ति यस्मिन् स्नानार्थं सः-अवतारः।** जिसमें स्नान के लिये उतरते हैं, वह अवतार (घाट)। (स्तॄ) **अवस्तृणन्ति येन सः-अवस्तारः।** जिससे मंचस्थ पात्रों को तिरोहित करते हैं, वह अवस्तार=जवनिका (पर्दा)।*

*सिद्धि-(१) **अवतारः।** अव+तॄ+घञ्। अव+तार्+अ। अवतार+सु। अवतारः।*

*यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक '**तॄ प्लवनसन्तरणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'तॄ' धातु को वृद्धि होती है।*

*(२) **अवस्तारः।** 'अव' उपसर्गपूर्वक '**स्तृञ् आच्छादने**' (रुधा०उ०)।*

घञ्–

(६) हलश्च।१२१।

प०वि०–हलः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करणाधिकरणयोर्हलश्च धातोः पुंसि प्रायेण घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः–करणेऽधिकरणे च कारके हलन्ताद् धातोः परोऽपि पुंलिङ्गे प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–लिखन्ति येन सः–लेखः। विदन्ति येन धर्माधर्मौ सः–वेदः। अपमृज्यते येन व्याधि सः–अपामार्गः। विमृज्यते येन गृहादिकं सः–वीमार्गः।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण कारक में (हलः) हलन्त (धातोः) धातु से परे (च) भी (पुंसि) पुंलिङ्ग में (प्रायेण) अधिकशः (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**लिखन्ति येन सः-लेखः।** जिससे लिखते हैं वह लेख (लेखनी)। **विदन्ति येन धर्माधर्मौ सः-वेदः।** जिससे धर्म-अधर्म को जानते हैं, वह वेद (चार वेद)। **अपमृज्यते येन व्याधिः सः-अपामार्गः।** जिससे व्याधि को हटाया जाता है वह अपामार्ग (चिरचटा)। **विमृज्यते येन गृहकादिकं सः-वीमार्गः।** जिससे घर आदि को शुद्ध किया जाता है, वह वीमार्ग (झाडू)।*

*सिद्धि-(१) **लेखः।** लिख+घञ्। लेख्+अ। लेख+सु। लेखः।*

*यहां '**लिख अक्षरविन्यासे**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'लिख्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

(२) वेदः। 'विद ज्ञाने' (अदा०प०)।

(३) वेष्टः। 'वेष्ट वेष्टने' (भ्वा०आ०)।

(४) अपामार्गः। अप+मृज्+घञ्। अप+मृग्+अ। अप+मार्ग्+अ। अपामार्ग+सु। अपामार्गः।

*यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) से कुत्व, **'मृजेर्वृद्धिः'** (७।२।११४) से वृद्धि और **'उपसर्गस्य घञि०'** (६।३।१२०) से उपसर्ग को दीर्घ होता है।*

(५) वीमार्गः। 'वि' उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) से पूर्ववत्।

घञ् (निपातनम्)–

(१०) अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च।१२२।

प०वि०–अध्याय-न्याय-उद्याव-संहाराः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–अध्यायश्च न्यायश्च उद्यावश्च संहारश्च ते-अध्याय-न्यायोद्यावसंहाराः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करणाधिकरणयोरध्याय०संहाराश्च पुंसि, घञ् संज्ञायाम्।

अर्थः–करणेऽधिकरणे च कारकेऽध्यायन्यायोद्यावसंहाराः शब्दा अपि पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–अधीयते यस्मिन् सः-अध्यायः। नियन्ति येन सत्यं सः-न्यायः। उद्युवन्ति यस्मिन् सः-उद्यावः। संह्रियन्ते येन सः-संहारः।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण कारक में (अध्याय०संहाराः) अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार शब्द (च) भी (पुंसि) पुलिङ्ग में (घञ्) घञ् प्रत्ययान्त निपातित हैं, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-**अधीयते यस्मिन् सः-अध्यायः।** जिसमें विषय-विशेष को पढ़ते हैं, वह अध्याय। **नियन्ति येन सत्यं सः-न्यायः।** जिससे सत्य को प्राप्त करते हैं, न्याय। **उद्युवन्ति यस्मिन् सः-उद्यावः।** जहां लोग एकत्र होते हैं, वह स्थानविशेष। **संह्रियन्ते येन सः-संहारः।** जिससे पदार्थों का नाश किया जाता है वह संहार (प्रलय)।*

सिद्धि-(१) अध्यायः। अधि+इङ्+घञ्। अधि+ऐ+अ। अधि+आय्+अ। अध्याय+सु। अध्यायः।

*यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् **अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११४) से धातु को वृद्धि और '**इको यणचि**' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(२) न्यायः। 'नि' उपसर्गपूर्वक '**इण् गतौ**' (अदा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) उद्यावः। 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) पूर्ववत्।*

*(४) संहारः। 'सम्' उपसर्गपूर्वक '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

***विशेष**-इन धातुओं के अजन्त होने से '**हलश्च**' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय प्राप्त नहीं था, अतः यहां घञ् प्रत्यय का निपातन किया गया है।*

घञ् (निपातनम्)–

(११) उदङ्कोऽनुदके।१२३।

प०वि०-उदङ्कः १।१ अनुदके ७।१।

स०-न उदकमिति अनुदकम्, तस्मिन्-अनुदके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अधिकरणे, पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणेऽनुदके उदङ्कः पुंसि घञ्, संज्ञायाम्।

अर्थः-अधिकरणे कारकेऽनुदके विषये उदङ्क इति शब्दः पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-तैलमुदच्यते=उद्ध्रियते यस्मिन् सः-तैलोदङ्कः। चर्ममयं पात्रम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(अधिकरणे) अधिकरण कारक में (अनुदके) उदक=जलविषय को छोड़कर (उदङ्कः) उदङ्क शब्द (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घञ्) घञ् प्रत्ययान्त निपातित है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**तैलमुदच्यते=उद्ध्रियते यस्मिन् सः-तैलोदङ्कः।** तैल का कुप्पा।*

***सिद्धि**-(१) **तैलोदङ्कः।** उत्+अन्च्+घञ्। उत्+अ॑ क्+अ। उत्+अङ्क्+अ। उदङ्कः+सु। उदङ्कः। तैल+उदङ्कः=तैलोदङ्कः।*

*यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**अञ्चु गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। '**चजोः कु घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व, '**नश्चापदान्तस्य झलि**' (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५७) से परसवर्ण ङकार होता है। **तैलस्य उदङ्क इति तैलोदङ्कः।** तैल और उदङ्क पदों में षष्ठीसमास है।*

*यहां '**हलश्च**' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय सिद्ध था, अनुदक अर्थ के लिये निपातन किया गया है।*

घञ् (निपातनम्)–

(१२) जालमानायः।१२४।

प०वि०-जालम् १।१ आनायः १।१।

अनु०-करणे पुंसि, संज्ञायाम्, घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणे आनायः पुंसि घञ्, जालम्, संज्ञायाम्।

अर्थः-करणे कारके आनायः शब्दः पुंलिङ्गे घञ्-प्रत्ययान्तो निपात्यते, जालं चेत्तद् भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-आनयन्ति येन सः-आनायः। आनायो मत्स्यानाम्। आनायो मृगाणाम्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(करणे) करण कारक में (आनायः) आनाय शब्द (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घञ्) प्रत्ययान्त निपातित है, यदि वह (जालम्) जाल हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-__आनयन्ति येन सः-आनायः। आनायो मत्स्यानाम्।__ मछली पकड़ने का जाल। __आनायो मृगाणाम्।__ मृग पकड़ने का जाल।

__सिद्धि-__(१) __आनायः।__ आङ्+नी+घञ्। आ+नै+अ। आनाय+सु। आनायः।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक __'णीञ् प्रापणे'__ (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। __'अचो ञ्णिति'__ (७।२।११५) से 'नी' धातु को वृद्धि होती है।

घः+घञ् (पुंसि)–

(१३) खनो घ च।१२५।

प०वि०-खनः ५।१ घ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०-करणाधिकरणयोः, पुंसि, संज्ञायाम् घञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणाधिकरणयोः, खनो धातोः पुंसि घो घञ् च संज्ञायाम्।

अर्थः-करणेऽधिकरणे च कारके खन्-धातोः परः पुंलिङ्गे घो घञ् च प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(घः) आखनति येन सः-आखनः। **(घञ्)** आखानः। खनित्रम्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(करणाधिकरणयोः) करण और अधिकरण कारक में (खनः) खन् (धातोः) धातु से परे (पुंसि) पुंलिङ्ग में (घ) घ प्रत्यय (च) और (घञ्) घञ् प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(घ) **आखनन्ति येन सः-आखनः।** (घञ्) **आखानः।** भूमि खोदने का साधन कुदाल आदि।*

*सिद्धि-(१) **आखनः।** आङ्+खन्+घ। आ+खन्+अ। आखन+सु। आखनः।*

*यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'खनु अवदारणे'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से करण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(२) **आखानः।** पूर्वोक्त 'खन्' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'खन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

खल् (भावे कर्मणि च)–

(१४) ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।१२६।

प०वि०-ईषत्-दुः-सुषु ७।३ कृच्छ्र-अकृच्छार्थेषु ७।३ खल् १।१।

स०-ईषच्च दुश्च सुश्च ते-ईषद्दुःसवः, तेषु ईषद्दुःसुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कृच्छ्रम्=दुःखम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्=सुखम्। कृच्छ्रं च अकृच्छ्रं च ते-कृच्छ्राकृच्छ्रे। कृच्छ्राकृच्छ्रे अर्थौ येषां ते-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थाः, तेषु-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु धातोः खल्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु धातोः परः खल् प्रत्ययो भवति। कृच्छ्रं दुसो विशेषणम्। अकृच्छ्रं च ईषत्स्वोर्विशेषणम् अर्थसम्भवात्।

उदा०-(ईषत्) ईषत्करः कटो भवता। **(दुस्)** दुष्करः कटो भवता। **(सुः)** सुकरः कटो भवता।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (खल्) खल् प्रत्यय होता है। कृच्छ्र दुस् का विशेषण है और अकृच्छ्र ईषत् और सु का विशेषण है, अर्थ की सम्भवता से।*

*उदा०-(ईषत्) **ईषत्करः कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है। (दुस्) **दुष्करः कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना कठिन है। (सु) **सुकरः कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है।*

*सिद्धि-(१) **ईषत्करः।** ईषत्+कृ+खल्। ईषत्+कर्+अ। ईषत्कर+सु। ईषत्करः।*

*यहां अकृच्छ्र अर्थ में 'ईषत्' शब्द उपपद होने पर **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खल्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है। **'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'** (३।४।७०) से 'खल्' प्रत्यय कर्मवाच्य अर्थ में है।*

(२) दुष्करः । 'दुस्' उपपद 'कृ' धातु से पूर्ववत् खल् प्रत्यय है।
(३) सुकरः । 'सु' उपपद 'कृ' धातु से पूर्ववत् खल् प्रत्यय है।

(१५) कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ।१२७।

प०वि०-कर्तृ-कर्मणोः ७।२ च अव्ययपदम्, भू-कृञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-कर्ता च कर्म च ते-कर्तृकर्मणी, तयोः-कर्तृकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। भूश्च कृञ् च तौ-भूकृञौ तयोः-भूकृञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, खल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु कर्तृकर्मणोश्च भूकृञ्भ्यां धातुभ्यां खल्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु कर्तरि कर्मणि चोपपदे यथासंख्यं भूकृञ्भ्यां धातुभ्यां खल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ईषत्+कर्ता+भूः) ईषदाढ्यम्भवं भवता। अनाढ्येन भवता सुखेनाऽऽढ्येन भूयते इत्यर्थः। (दुस्+कर्ता+भूः) दुराढ्यम्भवं भवता। अनाढ्येन भवता दुःखेनाऽऽढ्येन भूयते। (ईषत्+कर्म+कृः) ईषदाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। भवताऽनाढ्यो देवदत्तः सुखेनाढ्यः क्रियते इत्यर्थः। (सु+कर्म+कृः) स्वाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता। भवताऽनाढ्यो देवदत्तः सुखेनाढ्यः क्रियते इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) सुख और दुःख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषद्, दुस्, सु तथा (कर्तृकर्मणोः) कर्ता और कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (भूकृञोः) भू और कृञ् (धातोः) धातु से परे (खल्) खल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(ईषत्+कर्ता+भू) ईषदाढ्यम्भवं भवता।** अनाढ्य आप, सुखपूर्वक आढ्य हो रहे हो। आढ्य=धनवान्। **(दुस्+कर्ता+भू) दुराढ्यम्भवं भवता।** अनाढ्य आप दुःखपूर्वक आढ्य हो रहे हो। **(ईषत्+कर्म+कृ) ईषदाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता।** आपके द्वारा अनाढ्य देवदत्त, सुखपूर्वक आढ्य बनाया जारहा है। **(सु+कर्म+कृ) स्वाढ्यङ्करो देवदत्तो भवता।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**(१) ईषदाढ्यम्भवम्।** ईषत्+आढ्य+भू+खल्। ईषत्+आढ्य+मुम्+भू+अ। ईषत्+आढ्य+म्+भो+अ। ईषदाढ्यम्भव+सु। ईषदाढ्यम्भवम्।*

*यहां 'ईषत्' तथा 'आढ्य' कर्ता उपपद होने पर 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र 'खल्' प्रत्यय है। 'खल्' प्रत्यय के 'खित्' होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६६) से 'आढ्य' शब्द को 'मुम्' आगम होता है।*

*(२) **दुराढ्यम्भवम्।** यहां 'दुस्' उपपद तथा 'आढ्य' कर्ता उपपद होने पर 'भू' धातु से पूर्ववत् 'खल्' प्रत्यय है।*

*(३) **ईषदाढ्यङ्करः।** 'ईषद्' उपपद तथा 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'खल्' प्रत्यय है।*

*(४) **स्वाढ्यङ्करः।** 'सु' उपपद तथा 'आढ्य' कर्म उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'खल्' प्रत्यय है।*

विशेष-यहां च्वि-अर्थ=अभूततद्भाव अर्थ में 'खल्' प्रत्यय अभीष्ट है।

युच् (भावे कर्मणि च)–

(१६) आतो युक्।१२८।

प०वि०-आतः ५।१ युच् १।१।

अनु०-ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु आतो धातोर्युच्।

अर्थः-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्-दुः-सुषु उपपदेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ईषत्) ईषत्पानः सोमो भवता। (दुस्) दुष्पानः सोमो भवता। (सुः) सुपानः सोमो भवता। (ईषत्) ईषद्दाना गौर्भवता। (दुस्) दुर्दाना गौर्भवता। (सु) सुदाना गौर्भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) सुख और दुःख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषद्, दुस्, सु उपपद होने पर (आतः) आकारान्त धातुओं से परे (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(ईषत्) **ईषत्पानः सोमो भवता।** आपके द्वारा सोम का पान करना सुगम है। (दुस्) **दुष्पानः सोमो भवता।** आपके द्वारा सोम का पान करना कठिन है। (सु) **सुपानः सोमो भवता।** आपके द्वारा सोम का पान करना सुगम है। (ईषत्) **ईषद् दाना गौर्भवता।** आपके द्वारा गौ का दान करना सुगम है। (दुस्) **दुर्दाना गौर्भवता।** आपके द्वारा गौ का दान करना कठिन है। (सु) **सुदाना गौर्भवता।** आपके द्वारा गौ का दान करना सुगम है।*

*सिद्धि-(१) **ईषत्पानः।** ईषत्+पा+युच्। ईषत्+पा+अन। ईषत्पान+सु। ईषत्पानः।*

*यहां 'ईषत्' उपपद 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है।*

(२) 'दुस्' उपपद 'पा' धातु से 'युच्' प्रत्यय है।

(३) सुपानः। 'सु' उपपद 'पा' धातु से 'युच्' प्रत्यय है।

*(४) **ईषद्दाना।** 'ईषद्' उपपद होने पर 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'युच्' प्रत्यय है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-दुर्दाना और सुदाना।*

युच् (भावे कर्मणि च)--

(१७) छन्दसि गत्यर्थेभ्यः।१२६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ गति-अर्थेभ्यः ५।३।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, तेभ्यः-गत्यर्थेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ईषद्दुःसुषु, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु युच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो युच्।

अर्थः-छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सु+उपसद्) सूपसदनोऽग्निः। सूपसदनमन्तरिक्षम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (गत्यर्थेभ्यः) गति-अर्थक (धातोः) धातुओं से परे (युच्) युच् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(सु+उपसद्) **सूपसदनोऽग्निः।** अग्नि का उपगम सुगम है। **सूपसदनमन्तरिक्षम्।** अन्तरिक्ष का उपगम सुगम होता है।*

__सिद्धि-सूपसदनः।__ सु+उप+सद्+युच्। सु+उप+सद्+अन। सूपसदन+सु। सूपसदनः।

यहां 'सु' उपपद, उप-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) इस गत्यर्थक धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है।

युच् (भावे कर्मणि च)--

(१८) अन्येभ्योऽपि दृश्यते।१३०।

प०वि०-अन्येभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-ईषद्दुःसुषु, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, युच्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो युच् दृश्यते।

अर्थः-छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद्दुःसुषु उपपदेषु अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो युच् प्रत्ययो दृश्यते।

उदा०-(सु+दुह्) सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्। सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु) दुःख और सुख अर्थ में (ईषद्दुःसुषु) ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर (अन्येभ्यः) अन्य (धातोः) धातुओं से भी (युच्) युच् प्रत्यय (दृश्यते) देखा जाता है।

*उदा०-(सु+दुह्) **सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।** ब्राह्मण के लिये गौ को सुखपूर्वक दोहन के योग्य बना दिया। (सु+विद्) **सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्।** ब्राह्मण के लिये गौ को सुलभ बना दिया।*

*सिद्धि-(१) **सुदोहना।** सु+दुह्+युच्। सु+दोह्+अन। सुदोहन+टाप्। सुदोहना+सु। सुदोहना।*

*यहां 'सु' उपपद 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'युच्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'दुह्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **सुवेदनाम्।** 'सु' उपपद 'विद्लृ लाभे' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

वर्तमानवत्प्रत्ययविधिः (भूते भविष्यति च)-

(१६) वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा।१३१।

प०वि०-वर्तमान-सामीप्ये ७।१ वर्तमानवत् अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

स०-समीपमेव सामीप्यम्, **'चातुर्वर्ण्यादीनामुपसंख्यानम्'** (वा० ५।१।१२४) इति स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः। वर्तमानस्य सामीप्यमिति वर्तमानसामीप्यम्, तस्मिन् वर्तमानसामीप्ये (षष्ठीतत्पुरुषः)। वर्तमाने इव इति वर्तमानवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः।

अन्वयः-वर्तमानसामीप्ये धातोर्वा वर्तमानवत् प्रत्ययः।

अर्थः-वर्तमानसामीप्ये=भूते भविष्यति च कालेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन वर्तमानवत् प्रत्यया भवन्ति।

'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) इत्यारभ्य **'उणादयो बहुलम्'** (३।३।१) इति यावद् वर्तमाने काले ये प्रत्यया विहितास्ते भूते भविष्यति काले च विधीयन्ते।

उदा०-(भूते) कदा देवदत्त ! आगतोऽसि ? अयमागच्छामि, आगच्छन्तमेव मां विद्धि, अयमागमम्, एषोऽस्म्यागतः। **(भविष्यति)** कदा देवदत्त ! गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गच्छन्तमेव मां विद्धि, एष गमिष्यामि, गन्ताऽस्मि।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(वर्तमानसामीप्ये) वर्तमानकाल के समीप अर्थात् भूत और भविष्यत्काल अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (वर्तमानवत्) वर्तमानकाल के समान प्रत्यय होते हैं।

__'वर्तमाने लट्'__ (३।२।१२३) से लेकर __'उणादयो बहुलम्'__ (३।३।१) तक वर्तमानकाल में जो प्रत्यय विधान किये हैं वे भूत और भविष्यत्काल में भी होते हैं।

उदा०-__(भूत)__ __कदा देवदत्त ! आगतोऽसि ?__ हे देवदत्त ! तू कब आया है ? __अयमागच्छामि,__ यह मैं अभी आया था। __आगच्छन्तमेव मां विद्धि।__ मुझे आया हुआ ही समझ। विकल्प पक्ष में-__अयमागमम्।__ यह मैं अभी आया था। __एषोऽस्म्यागतः।__ यह मैं आगया। __(भविष्यत्)__ __कदा देवदत्त ! गमिष्यसि ?__ हे देवदत्त ! तू कब जायेगा ? __एष गच्छामि।__ यह मैं अभी जाऊंगा। __गच्छन्तमेव मां विद्धि।__ तू मुझे जानेवाला ही समझ। विकल्प पक्ष में-__एष गमिष्यामि।__ यह में अभी जाऊंगा। __एष गन्तास्मि।__ यह मैं अभी जाऊंगा।

__सिद्धि-(१) अयमागच्छामि।__ यहां 'आगच्छामि' पद में इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है।

__(२) आगच्छन्तमेव मां विद्धि।__ यहां 'आगच्छन्तम्' पद में इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में __'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'__ (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में इस सूत्र से भूतकाल में 'शतृ' आदेश है।

__(३) अयमागम्।__ यहां 'आगमम्' पद में विकल्प पक्ष में भूतकाल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।

__(४) एषोऽस्म्यागतः।__ यहां 'आगतः' पद में विकल्प पक्ष में भूतकाल में __'निष्ठा'__ (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।

__(५) एष गच्छामि।__ यहां 'गच्छामि' पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में __'वर्तमाने लट्'__ (३।२।१२४) से लट् प्रत्यय है।

*(६) **गच्छन्तमेव मां विद्धि।** यहां 'गच्छन्तम्' पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' प्रत्यय के स्थान में 'शतृ' आदेश है।*

*(७) **एष गमिष्यामि।** यहां 'गमिष्यामि' पद में विकल्प पक्ष में '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(८) **गन्ताऽस्मि।** यहां 'गन्ता' पद में विकल्प पक्ष में '**अनद्यतने लुट्**' (३।३।१५) से भविष्यत्काल में 'लुट्' प्रत्यय है।*

भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्ययविधिः (भविष्यति)–

(२०) आशंसायां भूतवच्च।१३२।

प०वि०-आशंसायाम् ७।१ भूतवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्। भूते इव भूतवत् '**तत्र तस्येव**' (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः। अप्राप्तस्य प्रियपदार्थस्य प्राप्तुमिच्छा=आशंसा, तस्याश्च भविष्यत्कालो विषयः।

अनु०-वर्तमानवद् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-(भविष्यति) आशंसायां धातोर्वा भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्ययाः।

अर्थः-भविष्यति काले आशंसायामर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-उपाध्यायश्चेद् आगमत्, आगतः, आगच्छति, आगमिष्यति वा, एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि, अधीतवन्तः, अधीमहे, अध्येष्यामहे।

__आर्यभाषा-अर्थ-__ भविष्यत्काल में (आशंसायाम्) अप्राप्त प्रिय पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (वा) विकल्प से (भूतवत्) भूतकाल के समान (च) और (वर्तमानवत्) वर्तमानकाल के समान प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-**उपाध्यायश्चेद् आगमत्, आगतः, आगच्छति, आगमिष्यति वा, एते वयं व्याकरणमध्यगीष्महि, अधीवन्तः, अधीमहे, अध्येष्यामहे।** यदि उपाध्याय जी आ गये तो ये हम लोग व्याकरण पढ़ेंगे।*

__सिद्धि-(१) आगमत्।__ इस पद से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।

__(२) आगतः।__ इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।

*__(३) आगच्छति।__ इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(४) **आगमिष्यति।** इस पद में विकल्प पक्ष में भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(५) **अध्यगीष्महि।** इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।*

*(६) **अधीतवन्तः।** इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।*

*(७) **अधीमहे।** इस पद में इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(८) **अध्येष्यामहे।** इस पद में विकल्प पक्ष में भविष्यत्काल में 'लृट् शेषे च' (३।३।११३) से 'लृट्' प्रत्यय है।*

विशेष-यहां आशंसा अर्थ में भूतकाल और वर्तमानकाल में विहित प्रत्यय भी भविष्यत्काल अर्थ में होते हैं।

लृट् (भविष्यति)–

(२१) क्षिप्रवचने लृट्।१३३।

प०वि०–क्षिप्रवचने ७।१ लृट् १।१।

स०–क्षिप्रस्य वचनमिति क्षिप्रवचनम्, तस्मिन्-क्षिप्रवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–आशंसायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्षिप्रवचने आशंसायां धातोर्लृट्।

अर्थः–क्षिप्रवचने उपपदे आशंसायां गम्यमानायां धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति, वयं क्षिप्रं व्याकरण-मध्येष्यामहे।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्षिप्रवचने) 'क्षिप्र' शब्द उपपद होने पर (आशंसायाम्) अप्राप्त प्रिय पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा में (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति वयं क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे।** यदि उपाध्याय जी शीघ्र आ जायेंगे तो हम शीघ्र व्याकरण पढ़ेंगे।*

*सिद्धि-(१) **आगमिष्यति।** यहां 'क्षिप्र' शब्द उपपद होने पर आशंसा अर्थ में इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(२) **अध्येष्यामहे।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय है।*

लिङ् (भविष्यति)–

(२२) आशंसावचने लिङ्।१३४।

प०वि०–आशंसावचने ७।१ लिङ् १।१।

स०–आशंसा उच्यते येन सः–आशंसावचनः, तस्मिन्–आशंसावचने।

अन्वयः–आशंसावचने धातोर्लिङ्।

अर्थः–आशंसावचने उपपदे धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् आशंसे युक्तोऽधीयीय, आशंसे क्षिप्रमधीयीय।

आर्यभाषा-अर्थ-(आशंसावचने) आशंसावाची शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् आशंसे युक्तोऽधीयीय, आशंसे क्षिप्रमधीयीय।** यदि उपाध्याय जी आ जायेंगे तो मैं इच्छा रखता हूं कि लगकर पढूंगा, इच्छा रखता हूं कि शीघ्र पढूंगा।*

*सिद्धि-(१) **आगच्छेत्।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(२) **अधीयीय।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल में 'लिङ्' प्रत्यय है। यहां उत्तम पुरुष का 'इट्' प्रत्यय, 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से सीयुट् आगम, 'इटोऽत्' (३।४।१०२) से 'इट्' के स्थान में अत् आदेश, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (३।४।१०६) से 'स्' का लोप, 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश तथा 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।७) से दीर्घ होता है।*

अनद्यतनवत् प्रत्ययप्रतिषेधः–

(२३) नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः।१३५।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अनद्यतनवत् अव्ययपदम्, क्रियाप्रबन्ध-सामीप्ययोः ७।२। अनद्यतने इव अनद्यतनवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः।

स०–क्रियायाः प्रबन्ध इति क्रियाप्रबन्धः, क्रियाप्रबन्धश्च सामीप्यं च ते-क्रियाप्रबन्धसामीप्ये तयोः-क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः (षष्ठीतत्पुरुष-गर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोर्धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययो न।

अर्थः-क्रियाप्रबन्धे सामीप्ये च गम्यमाने धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति।

'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) इति भूतानद्यतने भविष्यदनद्यतने च लङ्लुटौ प्रत्ययौ विहितौ, तयोरयं प्रतिषेधः। क्रियाप्रबन्धः=क्रियायाः सातत्येनानुष्ठानम्।

उदा०-(क्रियाप्रबन्धः) देवदत्तो यावज्जीवं भृशमन्नमदात् (लुङ्) भृशमन्नं दास्यति (लृट्)। यज्ञदत्तो यावज्जीवं पुत्रमध्यापिपत् (लुङ्) यावज्जीवं पुत्रमध्यापयिष्यति (लृट्)। **(सामीप्यम्)** येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित, सोमेनाऽयष्ट, गामदित (लुङ्)। येयममावस्या-ऽऽगामिनी, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते, सोमेन यक्ष्यते, गां दास्यते (लृट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः) क्रिया की निरन्तरता और काल की समीपता की प्रतीति में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतन भूतकाल और अनद्यतन भविष्यत्काल में विहित लङ् और लुट् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।

*उदा०-(क्रियाप्रबन्ध) **देवदत्तो यावज्जीवमन्नमदात् (लुङ्)।** देवदत्त ने आजीवन बहुत अन्न का दान किया। (भूतकाल) **भृशमन्नं दास्यति (लृट्)।** बहुत अन्न का दान करेगा (भविष्यत्काल)। (सामीप्य) **येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधित, सोमेनायष्ट, गामदित (लुङ्)।** जो यह पौर्णमासी गयी है इसमें उपाध्याय जी ने अनेक अग्नियों का आधान किया (अनेक यज्ञ किये), सोम से यज्ञ किया, गोदान किया (भूतकाल)। **येयममावस्याऽऽगामिनी,** एतस्यामुपाध्यायोऽग्नीनाधास्यते, **सोमेन यक्ष्यते, गां दास्यते (लृट्)।** जो यह आनेवाली अमावस्या है, इसमें उपाध्याय जी अनेक अग्नियों का आधान करेंगे, सोम से यज्ञ करेंगे, गोदान करेंगे (भविष्यत्काल)।*

*सिद्धि-(१) **अदात्।** दा+लुङ्। अट्+दा+च्लि+लुङ्। अ+दा+सिच्+तिप्। अ+दा+त्। अदात्।*

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'गातिस्थाघु०' (२।४।७०) से 'सिच्' का लुक् होता है।

*(२) **दास्यति।** यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है, **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है।*

(३) **अध्यापिपत् ।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक णिजन्त **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। इसकी पूर्ण सिद्धि **'णौ च संश्चङोः'** (२।४।५१) की व्याख्या में देख लेवें।

(४) **अध्यापयिष्यति ।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त णिजन्त 'इङ्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में लृट् प्रत्यय है।

(५) **आधित ।** आङ्+धा+लुङ्। अट्+आ+धा+च्लि+लुङ्। आ+धा+सिच्+त। आ+धि+०+त। आधित।

यहां आङ्पूर्वक **'डुदाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'स्थाघ्वोरिच्च'** (१।२।१७) से इत्त्व और **'ह्रस्वादङ्गात्'** (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप होता है।

(६) **अयष्ट ।** यज्+लुङ्। अट्+यज्+च्लि+लुङ्। अ+यज्+सिच्+त। अ+यष्+स्+त। अ+यष्+०+ट। अयष्ट।

यहां **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय, **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से षत्व और **'झलो झलि'** (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप होता है।

(७) **अदित ।** यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'आधित' के समान कार्य है।

(८) **आधास्यते ।** यहां आङ् पूर्वक **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(९) **यक्ष्यते ।** यज्+लृट्। यज्+स्य+त। यष्+स्य+त। यक्+ष्य+ते। यक्ष्यते।

यहां पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से षत्व और **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से कत्व होता है।

(१०) **दास्यते ।** यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

विशेष-यहां क्रियाप्रबन्ध और सामीप्य अर्थ में अनद्यतनवत् अर्थात् अनद्यतन अर्थ में विहित लङ् (भूत) और लुट् (भविष्यत्) प्रत्यय का प्रतिषेध होने से भूतकाल में लुङ् और भविष्यत्काल में लृट् प्रत्यय होता है।

(२४) भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्।१३६।

प०वि०-भविष्यति ७।१ मर्यादावचने ७।१ अवरस्मिन् ७।१।

स०-मर्यादा उच्यते येन सः-मर्यादावचनः, तस्मिन् मर्यादावचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-न, अनद्यतनवत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (विभागे) धातोरनद्यतवत् प्रत्ययो न।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचनेऽवरस्मिन् प्रविभागे धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति।

उदा०-योऽयमध्वागन्तव्य आ पाटलिपुत्रात्, तस्य यदवरं कौशाम्ब्याः, तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे, तत्र सक्तून् पास्यामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (अवस्मिन्) अवर=इधर के प्रविभाग में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतन अर्थ में विहित लुट् प्रत्यय (न) नहीं होता है, अपितु 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय होता है।

*उदा०-**योऽयमध्वा गन्तव्य आ पाटलिपुत्रात्, तस्य यद् अवरं कौशाम्ब्याः तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे, तत्र सक्तून् पास्यामः।** हमने जो यह पटना तक मार्ग तय करना है, उस मार्ग में कौशाम्बी नगरी का जो अवर भाग है वहां हम दो बार ओदन (भात) खायेंगे, वहां सत्तु पीयेंगे।*

*सिद्धि-(१) **भोक्ष्यामहे।** भुज्+लृट्। भुज्+स्य+महिङ्। भोक्+स्य+महि। भोक्+ष्या+महे। भोक्ष्यामहे।*

*यहां '**भुज पालनाभ्यवहारयोः**' (रु०प०) धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। '**चोः कुः**' (८।२।३०) से कुत्व और '**अतो दीर्घो यञि**' (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।*

*(२) **पास्यामः।** यहां '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।*

(२५) कालविभागे चानहोरात्राणाम्।१३७।

प०वि०-कालविभागे ७।१ च अव्ययपदम्, अनहोरात्राणाम् ६।३।

स०-कालस्य विभाग इति कालविभागः, तस्मिन्-कालविभागे (षष्ठीतत्पुरुषः)। अहानि च रात्रयश्च तानि-अहोरात्राणि, न अहोरात्राणीति अनहोरात्राणि, तेषाम्-अनहोरात्राणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-न, अनद्यतनवत्, भविष्यति, मर्यादावचने, अवरस्मिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (कालविभागे) धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययो न, अनहोरात्राणाम्।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचनेऽवरस्मिन् कालविभागे सति धातोः परोऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेदहोरात्रसम्बन्धी कालविभागो भवति।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे।

*आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (अवरस्मिन्) इधर के (कालविभागे) कालविभाग में (धातोः) धातु से परे (अनद्यतनवत्) अनद्यतनकाल में विहित प्रत्यय विधि (न) नहीं होती है, अपितु **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय होता है। यदि वह कालविभाग (अनहोरात्राणाम्) अहोरात्रसम्बन्धी न हो।*

*उदा०-**योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, तत्रौदनं भोक्ष्यामहे।** जो यह संवत्सर (वर्ष) आनेवाला है, उसमें जो आग्रहायणी (मार्गशीर्षी पौर्णमासी) का इधर का भाग है, उसमें हम लगकर पढ़ेंगे, उसमें चावल खायेंगे।*

*सिद्धि-(१) **अध्येष्यामहे।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि अर्थात् 'लृट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से भविष्यत्काल में 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(२) **भोक्ष्यामहे।** **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।*

अनद्यतनवत् प्रत्ययविकल्पः-

(२६) परस्मिन् विभाषा।१३८।

प०वि०-परस्मिन् ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-अनद्यतनवत्, भविष्यति, मर्यादावचने, कालविभागे, अनहोरात्राणाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति मर्यादावचने परस्मिन् कालविभागे धातोर्विभाषाऽनद्यतनवत् प्रत्यय, अनहोरात्राणाम्।

अर्थः-भविष्यति काले मर्यादावचने परस्मिन् कालविभागे सति धातोः परो विकल्पेनानद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्भवति, न चेदहोरात्रसम्बन्धी कालविभागो भवति।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यत् परमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे वा, तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (मर्यादावचने) मर्यादा के कथन में (परस्मिन्) उधर के (कालविभागे) कालविभाग में (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (अनद्यतनवत्) अनद्यतनकाल में विहित प्रत्ययविधि होती है, यदि वह कालविभाग (अनहोरात्राणाम्) अहोरात्रसम्बन्धी न हो।

उदा०-योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यत् परमाग्रहायण्याः, तत्र युक्ता अध्येष्यामहे, अध्येतास्महे वा, तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा। जो यह संवत्सर आनेवाला है, उसमें जो आग्रहायणी (मार्गशीर्षी पौर्णमासी) का उधर का भाग है, उसमें हम लगकर पढ़ेंगे, उसमें सत्तू पीयेंगे।

सिद्धि-(१) अध्येष्यामहे। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।

(२) अध्येतास्महे। यहां पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

(३) पास्यामः। यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(४) पातास्मः। यहां पूर्वोक्त 'पा' धातु से विकल्प पक्ष में 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

लृङ् (भविष्यति)-

(२७) लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ।१३६।

प०वि०-लिङ्निमित्ते ७।१ लृङ् १।१ क्रियातिपत्तौ ७।१।

स०-लिङो निमित्तमिति लिङ्निमित्तम्, तस्मिन्-लिङ्निमित्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। क्रियाया अतिपत्तिरिति क्रियातिपत्तिः, तस्याम्-क्रियातिपत्तौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-'भविष्यति' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भविष्यति लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ धातोर्लृङ्।

अर्थः-भविष्यति काले लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ च सत्यां धातोः परो लृङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भवान् दक्षिणेन चेदाऽऽयास्यत्, न शकटं पर्याभविष्यत्। अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(भविष्यति) भविष्यत्काल में (लिङ्निमित्ते) लिङ्लकार के निमित्त (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की अतिपत्ति=असिद्धि होने पर (धातोः) धातु से परे (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**भवान् दक्षिणेन चेदायास्यत् न शकटं पर्याभविष्यत्।** आप यदि दक्षिण मार्ग से आओगे तो आपकी गाड़ी नहीं टूटेगी। **अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्।** आप यदि मेरे पास आओगे तो घृत से भोजन करोगे।*

*सिद्धि-**(१) आयास्यत्।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से भविष्यत्काल लिङ्निमित्त हेतु और हेतुमान् अर्थ में तथा क्रिया की असिद्धि के कथन में 'लृङ्' प्रत्यय है। यहां दक्षिण मार्ग से आना हेतु और गाड़ी का न टूटना हेतुमान् है। क्रिया की अतिपत्ति इस अर्थापत्ति से प्रकट होती है कि यदि आप दक्षिण मार्ग से आओगे तो गाड़ी टूट जायेगी।*

***(२) पर्याभविष्यत्।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।*

***(३) अभोक्ष्यत।** यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।*

***(४) आगमिष्यत्।** यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय है।*

लृङ् (भूते)-

(२८) भूते च।१४०।

प०वि०-भूते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लिङ्निमित्ते, लृङ्, क्रियातिपत्तौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूते च लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ धातोर्लृङ्।

अर्थः-भूते कालेऽपि लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ च सत्यां धातोः परो लृङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तर्हि अभोक्ष्यत, न तु स भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में (च) भी (लिङ्निमित्ते) लिङ्लकार के निमित्त में (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की असिद्धि होने पर (धातोः) धातु से परे (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाण:, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तर्हि अभोक्ष्यत, न तु स भुक्तवान्, अन्येन पथा स गत:। मैंने आपका अन्नार्थी पुत्र घूमता हुआ देखा था और एक द्विज ब्राह्मणार्थी भी देखा था, यदि आपका पुत्र उसने देखा होता तो वह भोजन कर लेता, किन्तु उसने भोजन नहीं किया क्योंकि वह द्विज किसी अन्य मार्ग से चला गया।

सिद्धि-(१) अभविष्यत्। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल अर्थ में 'लृङ्' प्रत्यय है।

(२) अभोक्ष्यत। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयो:' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से भूतकाल में 'लृङ्' प्रत्यय है।

लृङ्प्रत्ययविकल्पाधिकार: (भूते)-

(२६) वोताप्यो:।१४१।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, आ अव्ययपदम्, उताप्यो: ७।२।

स०-उतश्च अपिश्च तौ-उतापी, तयो:-उताप्यो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-लिङ्निमित्ते, लृङ्, क्रियातिपत्तौ, भूते इति चानुवर्तते।

अन्वय:-भूते आ उताप्योर्लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ वा लृङ्।

अर्थ:-भूते काले **'उताप्यो: समर्थयोर्लिङ्'** (३।३।१५१) इति सूत्रपर्यन्तं लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां विकल्पेन लृङ् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'विभाषा कथमि लिङ् च'** (३।३।१४३) कथं नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यत् (लृङ्) यथाप्राप्तं च न याजयेत् (लिङ्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भूते) भूतकाल में (आ+उताप्यो:) 'उताप्यो: समर्थयोर्लिङ्' (३।३।१५१) इस सूत्र तक (लिङ्निमित्ते) लिङ् का निमित्त होने पर तथा (क्रियातिपत्तौ) क्रिया की असिद्धि होने पर (वा) विकल्प से (लृङ्) लृङ् प्रत्यय होता है, यह अधिकार सूत्र है। जैसे कहेगा- 'विभाषा कथमि लिङ् च' (३।३।१४३)। यहां लिङ् का निमित्त होने से क्रिया की असिद्धि में भूतकाल में लृङ् प्रत्यय भी होता है-कथं नाम तत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्। कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया और यथाप्राप्त लिङ् भी होता है-न याजयेत्। यज्ञ नहीं कराया।

सिद्धि-(१) अयाजयिष्यत्। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'विभाषा कथमि लिङ् च' (३।३।१५१) से भूतकाल में लिङ् का निमित्त और क्रिया की असिद्धि होने पर 'लङ्' प्रत्यय है।

(२) याजयेत्। यहां पूर्वोक्त 'यज' धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय है।

विशेष-वैदिककाल में सबको यज्ञ कराया जाता था। मध्यकाल में वैदिकरीति का ह्रास होने से शूद्र को यज्ञ कराना बन्द कर दिया गया। अब पुनः महर्षि दयानन्द की दया से वैदिकधर्म के प्रचार से शूद्र को यज्ञ न कराना अच्छा नहीं माना जाता है। अतः ये उदाहरण वर्तमानकाल की दृष्टि से दिये हैं, मध्यकाल की दृष्टि से नहीं। काशिकावृत्ति आदि में मध्यकालीन उदाहरण दिये गये हैं।

लट् (कालत्रये)–

(३०) गर्हायां लडपि जात्वोः।१४२।

प०वि०-गर्हायाम् ७।१ लट् १।१ अपि-जात्वोः ७।२।

स०-अपिश्च जातुश्च तौ-अपिजातू, तयोः-अपिजात्वोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अर्थः-अपिजात्वोरुपपदयोर्धातोः परो लट् प्रत्ययो भवति, गर्हायां गम्यमानायाम्।

'वर्तमाने लट्' (३।२।११३) इति वर्तमाने काले लड् विहितः स कालसामान्ये न प्राप्नोति, इति कालत्रये लड् विधीयते।

उदा०-(अपिः) अपि तत्र भवान् शूद्रं न याजयति, **(जातुः)** जातु तत्र भवान् वृषलं न याजयति, गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपिजात्वोः) अपि और जातु शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लट्) लट् प्रत्यय है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

'वर्तमाने लट्' (३।२।११३) से वर्तमानकाल में 'लट्' प्रत्यय का विधान किया गया है, वह काल सामान्य में प्राप्त नहीं होता है, अतः इस सूत्र से तीनों कालों में 'लट्' प्रत्यय का विधान किया गया है।

*उदा०-(अपि) **अपि नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयति,** आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हो, कराओगे। (जातु) **जातु नाम तत्रभवान् वृषलं न याजयति, गर्हामहे, अन्याय्येमतत्।** कभी आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हो, कराओगे, हम इसकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है। क्योंकि यज्ञ का मानवमात्र को अधिकार है।*

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।। (यजु० २६।२)

अर्थ–ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! जिस प्रकार मैं तुमको चारों वेदों का उपदेश करता हूं, उसी प्रकार से तुम भी उनको पढ़के मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो। क्योंकि यह चारों वेदरूप वाणी सबका कल्याण करनेवाली है। वेदाधिकार जैसे ब्राह्मण के लिये है, वैसा ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य और अतिशूद्र के लिये भी बराबर है। (महर्षि दयानन्द–ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सिद्धि–(१) याजयति। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से गर्हा अर्थ में लट् प्रत्यय है।

लिङ्+लट् (कालत्रये)–

(३१) विभाषा कथमि लिङ् च।१४३।

प०वि०–विभाषा १।१ कथमि ७।१ लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–गर्हायां, लट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कथमि धातोर्लिङ् लट् च गर्हायाम्।

अर्थः–कथं–शब्दे उपपदे धातोः परो विकल्पेन लिङ् लट् च प्रत्ययो भवति, गर्हायां गम्यमानायाम्।

अत्र यथास्वं कालविषये विहितानां प्रत्ययानामबाधनार्थं विभाषा ग्रहणं क्रियते, तेन यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–**(लिङ्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। **(लट्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयति। **यथाप्राप्तम्–(लृट्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। **(लुट्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिता। **(लुङ्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायीयजत्। **(लङ्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयत्। **(लिट्)** कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयाञ्चकार।

अत्र लिङ्निमित्तमस्तीति भूते काले क्रियातिपत्तौ वा लृङ् प्रत्ययो भवति–कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा। भविष्यति काले तु नित्यं लृङ् एव भवति–कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कथमि) कथम् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् (च) और (लट्) लट् प्रत्यय होता है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

यहां अपने-अपने विषय में विहित प्रत्ययों के अबाधन के लिये 'विभाषा' ग्रहण किया गया है। इससे यथाप्राप्त प्रत्यय भी होते हैं।

उदा०-(लिङ्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** (लट्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयति।** कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, कराते हैं, करायेंगे। यथाप्राप्त-(लृट्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति।** कैसे आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे। (लुट्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिता।** अर्थ पूर्ववत् है। (लुङ्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायीयजत्।** कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया। (लङ्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयत्।** अर्थ पूर्ववत् है। (लिट्) **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयाञ्चकार।** अर्थ पूर्ववत् है।

यहां लिङ्निमित्त भी है अतः भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। **कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।** कैसे आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया ? भविष्यत्काल में तो नित्य लङ् ही होता है-**कथं नाम तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।** कैसे आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे ?

सिद्धि-(१) **याजयेत्।** यहां णिजन्त '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से कथम् शब्द उपपद होने पर गर्हा अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) **याजयति।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है।

(३) **याजयिष्यति।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है।

(४) **याजयिता।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में '**अनद्यतने लुट्**' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है।

(५) **अयीयजत्।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।

(६) **अयाजयत्।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है।

(७) **याजयाञ्चकार।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है।

(८) **अयाजयिष्यत्।** पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में क्रियातिपत्ति होने पर '**लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ**' (३।३।१३९) से '**वोताप्योः**' (३।३।१४१) के अधिकार में भूतकाल में 'लङ्' प्रत्यय है।

(९) अयाजयिष्यत्। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से भविष्यत्काल में नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है।

लिङ्+लृट् (कालत्रये)-

(३२) किंवृत्ते लिङ्लृटौ।१४४।

प०वि०-किंवृत्ते ७।१ लिङ्-लृटौ १।२।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, तस्मिन्-किंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)। लिङ् च लृट् च तौ-लिङ्लृटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-गर्हायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-किंवृत्ते धातोर्लिङ्लुटौ गर्हायाम्।

अर्थः-किंवृत्ते शब्दे उपपदे धातोः परौ लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः, गर्हायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(लिङ्) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्। कतरो नाम/कतमो नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्। **(लृट्)** को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति। कतरो नाम/कतमो नाम वृषलो यं तत्र भवान् न याजयिष्यति।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा। भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति-को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(किंवृत्ते) विभक्त्यन्त तथा डतर-डतम प्रत्ययान्त किं शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लृटौ) लिङ् और लृट् प्रत्यय होते हैं (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(लिङ्) **को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत्।** वह कौन शूद्र हो, जिसको आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। **कतरो नाम/कतमो नाम वृषलो यं तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** वह कौनसा शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। (लृट्) **को नाम शूद्रं यं तत्रभवान् न याजयिष्यति।** अर्थ पूर्ववत् है। **कतरो नाम/कतमो नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय होता है। (लृङ्) ***को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा।*** *वह कौन शूद्र कौन शूद्र है जिसे आपने यज्ञ नहीं कराया। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि में नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है।* ***को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् नायाजयिष्यत्।*** *वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं करायेंगे।*

किंवृत्ते शब्द की व्याख्या ***'किंवृत्ते लिप्सायाम्'*** *(३।३।६) में देख लेवें।*

सिद्धि-(१) याजयेत्। *यहां णिजन्त* ***'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'*** *(भ्वा०उ०) धातु से काल सामान्य में और गर्हा अर्थ में किंवृत्त शब्द उपपद होने पर इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है।*

(२) याजयिष्यति। *पूर्वोक्त 'यज' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।*

(३) अयाजयिष्यत्। *पूर्वोक्त 'यज' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में भूतकाल में क्रियातिपत्ति होने पर* ***'वोताप्योः'*** *(३।३।१४१) के अधिकार से विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय है।*

(४) याजयेद्। *यहां पूर्ववत् विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

(५) अयाजयिष्यत्। *पूर्वोक्त 'यज्' धातु से 'लिङ्' के निमित्त में भविष्यत्काल में क्रियातिपत्ति होने पर* ***'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'*** *(३।३।१३९) से नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है।*

(३३) अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि।१४५।

प०वि०-अनवक्लृप्ति-अमर्षयोः ७।२ अकिंवृत्ते ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अवक्लृप्तिः=सम्भावना। न अवक्लृप्तिरिति अनवक्लृप्तिः=असम्भवनेत्यर्थः (नञ्तत्पुरुषः)। न मर्ष इत्यमर्षः=अक्षमेत्यर्थः (नञ्तत्पुरुषः)। अनवक्लृप्तिश्चामर्षश्च तौ अनवक्लृप्त्यमर्षौ, तयोः-अनवक्लृप्त्यमर्षयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। किमो वृत्तमिति किंवृत्तम्, न किंवृत्तमिति अकिंवृत्तम्, तस्मिन्-अकिंवृत्ते (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ्लृटावित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकिंवृत्तेऽपि धातोर्लिङ्लृटौ, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः।

अर्थः-किंवृत्तेऽकिंवृत्ते च शब्दे उपपदे धातोः परौ लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः, अनवक्लृप्ति-अमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-{१} (**अनवक्लृप्तिः**) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि, न श्रद्दधे तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)। तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयिष्यति (लृट्)।

{२} (**किंवृत्तम्**) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।

{३} (**अमर्षः**) न मर्षयामि तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)। तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। (**किंवृत्तम्**) को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)। को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।

{४} भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा। भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकिंवृत्तेऽपि) किंवृत्त और अकिंवृत्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लृटौ) लिङ् और लृट् प्रत्यय होते हैं (अनवक्लृप्त्यमर्षयोः) यदि वहां अनवक्लृप्ति=असम्भावना और अमर्ष=अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-{१} (अनवक्लृप्ति) **नावकल्पयामि=न सम्भावयामि, न श्रद्दधे तत्र भवान् नाम शूद्रं न याजयेत् (लिङ्)।** मैं सम्भावना नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हैं/कराया/करायेंगे। **तत्रभवान् नाम शूद्रं न याजयिष्यति (लृट्)।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*{२} (किंवृत्त) **को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)।** वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हैं/कराया/करायेंगे। **को नाम वृषलो यं तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*{३} (अमर्ष) **न मर्षयामि तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** मैं यह सहन नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। **को नाम शूद्रो यं तत्रभवान् न याजयेत् (लिङ्)।** वह कौन शूद्र है जिसे आप यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। **को नाम शूद्रो तत्रभवान् न याजयिष्यति (लृट्)।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*{४} भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्, याजयेद् वा।** मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर*

*नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि तत्रभवान् नाम शूद्रं नायाजयिष्यत्।** मैं सम्भावना नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं करायेंगे।*

*सिद्धि-(१) **याजयेत्।** यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ में किंवृत्त और अकिंवृत्त शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(२) **याजयिष्यति।** यहां पूर्वोक्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(३) **अयाजयिष्यत्।** यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर **'वोताप्यो:'** (३।३।१४१) के अधिकार से 'लृङ्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में 'लिङ्' प्रत्यय भी होता है। भविष्यत्काल में **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय ही होता है।*

लृट् (कालत्रये)–

(३४) किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्।१४६।

प०वि०-किंकिल-अस्ति-अर्थेषु ७।३ लृट् १।१।

स०-अस्तिरर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः, किंकिलश्च अस्त्यर्थाश्च ते-किंकिलास्त्यर्थाः, तेषु-किंकिलास्त्यर्थेषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्यनुवर्तते।

अर्थः-किंकिल-अस्त्यर्थेषु चोपपदेषु धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृत्यमर्षयोर्गम्यमानयोः।

उदा०-{१} **(अनवक्लृप्तिः)** नावकल्पयामि=न सम्भावयामि किंकिल नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति।

{२} **(अमर्षः)** न मर्षयामि किंकिल नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्रभवान् शूद्रं न याजयिष्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(किंकिलास्त्यर्थेषु) किंकिल और अस्ति अर्थक शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है (अनवक्लृप्ति-अमर्षयोः) यदि वहां असम्भवना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-{१} (अनवक्लृप्ति) **नावकल्पयामि=न सम्भावयामि किंकिल नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति।** मैं यह सम्भावना नहीं करता कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं*

कराते हो/कराया/कराओगे। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र शूद्रं न याजयिष्यति। क्या ऐसा है कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

(२) (अमर्ष) न मर्षयामि किंकिल नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। अस्ति/भवति/विद्यते नाम तत्र भवान् शूद्रं न याजयिष्यति। क्या ऐसा है कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

सिद्धि-याजयिष्यति। यहां णिजन्त 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ की प्रतीति में किंकिल और अस्त्यर्थक शब्द उपपद होने पर कालसामान्य में 'लृट्' प्रत्यय है।

विशेष-'किंकिल' शब्द अप्रसन्नता का द्योतक अव्यय है और 'अस्ति' सत्ता (स्थिति) का द्योतक अव्यय है, तिङन्त पद नहीं है।

लिङ् (कालत्रये)-

(३५) जातुयदोर्लिङ्।१४७।

प०वि०-जातु-यदो: ७।२ लिङ् १।१।

स०-जातुश्च यच्च तौ-जातुयदौ, तयो:-जातुयदो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-अनक्लृप्त्यमर्षयोरित्यनुवर्तते।

अन्वय:-जातुयदोर्धातोर्लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयो:।

अर्थ:-जातुयदो: शब्दयोरुपपदयो: धातो: परो लिंङ् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयो:।

उदा०-**(अनवक्लृप्ति:)** नावकल्पयामि=न सम्भवयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। **(अमर्ष:)** न मर्षयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि जातु यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि जातु यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(जातुयदोः) जातु और यद् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (अनवक्लृत्यमर्षयोः) यदि वहां असम्भवना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-(अनवक्लृप्ति) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि जातु तत्र भवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि कब आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि जो आप शूद्र को यज्ञ करते हो/कराया/कराओगे।

(अमर्ष) न मर्षयामि जातु तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि कब आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। न मर्षयामि यत् तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। मैं यह सहन नहीं करता हूं कि जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।

भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि जातु/यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत, याजयेद् वा। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि आपने कब/जो शूद्र को यज्ञ नहीं कराया।

भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य 'लृङ्' प्रत्यय होता है। नावकल्पयामि/न मर्षयामि, जातु/यत् तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्। मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि कब/जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे।

सिद्धि-(१) याजयेत्। यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में जातु और यद् शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।

(२) अयाजयिष्यत्। यहां पूर्वोक्त 'णिजन्त यज्' धातु से भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर 'वोताप्योः' (३।३।१४१) के अधिकार में विकल्प से 'लृङ्' प्रत्यय है, पक्ष में लिङ् प्रत्यय होता है-याजयेत्। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से नित्य 'लृङ्' प्रत्यय है।

लिङ् (कालत्रये)-

(३६) यच्चयत्रयोः।१४८।

प०वि०-यच्च-यत्रयोः ७।२।

स०-यच्चश्च यत्रश्च तौ-यच्चयत्रौ, तयोः-यच्चयत्रयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्लिङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः।

अर्थः-यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः ।

उदा०-(**अनवक्लृप्तिः**) नावकल्पयामि=न सम्भावयामि **यच्च** तत्र भवान् शूद्रं न याजयेत्। **यत्र** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। (**अमर्षः**) न मर्षयामि **यच्च** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्। **यत्र** तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि **यच्च/यत्र** तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। नावकल्पयामि **यच्च/यत्र** तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (अनवक्लृप्त्यमर्षयोः) यदि वहां असम्भावना और अक्षमा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(अनवक्लृप्ति) **नावकल्पयामि=न सम्भावयामि यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं कि और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं करते हो/कराया/कराओगे। **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। (अमर्षः) **न मर्षयामि यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** मैं यह सहन नहीं करता हूं कि और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे। **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लङ् प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि/न मर्षयामि/यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, न याजयेद् वा।** मैं सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लिङ् प्रत्यय होता है। **नावकल्पयामि/न मर्षयामि/यच्च/यत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।** मैं यह सम्भावना नहीं करता हूं/न सहन करता हूं कि और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे।*

*सिद्धि-(१) **याजयेत्।** यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'यज्' धातु से इस सूत्र से अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(२) **अयाजयिष्यत्।** यहां पूर्वोक्त 'लृङ्' प्रत्यय है।*

लिङ् (कालत्रये)–

(३७) गर्हायां च।१४६।

प०वि०–गर्हायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम्। लिङ् यच्चयत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ् गर्हायां च।

अर्थः–यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, गर्हायां च गम्यमानायाम्। गर्हा=निन्दा।

उदा०–**(यच्च)** यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्। **(यत्र)** यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्र भवान् शूद्रं नायजयिष्यद्, याजयेद् वा।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्र भवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।

*उदा०-(यच्च) **यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्मेतत्।** और जो कि आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है। (यत्र) **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/तत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद्, न याजयेद् वा/गर्हामहे अन्याय्यमेतत्।** और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, गर्हामहे, अन्याय्यमेतत्।** और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे, हम आपकी निन्दा करते हैं, यह अन्याय है।*

सिद्धि-(१) याजयेत्। पूर्ववत् (३।३।१४८)।

(२) अयाजयिष्यत्। पूर्ववत्।

लिङ् (कालत्रये)-

(३७) चित्रीकरणे च।१५०।

प०वि०-चित्रीकरणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लिङ् यच्चयत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यच्चयत्रयोर्धातोर्लिङ् चित्रीकरणे च।

अर्थः-यच्चयत्रयोः शब्दयोरुपपदयोर्धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, चित्रीकरणे च गम्यमाने।

उदा०-(यच्च) यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्। **(यत्र)** यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतद्।

भूते काले क्रियातिपत्तौ सत्यां वा लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद्, याजयेद् वा आश्चर्यमेतत्।

भविष्यति काले क्रियातिपत्तौ सत्यां तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति। यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत्, आश्चर्यमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(यच्चयत्रयोः) यच्च और यत्र शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) प्रत्यय होता है (चित्रीकरणे) यदि वहां आश्चर्य अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।

*उदा०-(यच्च) **यच्च तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्।** और जो आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, यह आश्चर्य की बात है। (यत्र) **यत्र तत्रभवान् शूद्रं न याजयेद् आश्चर्यमेतत्।** जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराते हो/कराया/कराओगे, यह आश्चर्य की बात है।*

*भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यद् न याजयेद् वा, आश्चर्यमेतत्।** जो कि/और जो/जहां आपने शूद्र को यज्ञ नहीं कराया, यह आश्चर्य की बात है।*

*भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लृङ् प्रत्यय होता है। **यच्च/यत्र तत्रभवान् शूद्रं नायाजयिष्यत् आश्चर्यमेतत्।** और जो/जहां आप शूद्र को यज्ञ नहीं कराओगे यह आश्चर्य की बात है।*

सिद्धि-याजयेत्/अयाजयिष्यत्। *पूर्ववत्।*

लृट् (कालत्रये)–

(३९) शेषे लृडयदौ।१५१।

प०वि०–शेषे ७।१ लृट् १।१ अयदौ ७।१।

स०–न यदिरिति अयदिः, तस्मिन्–अयदौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–चित्रीकरणे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अयदौ शेषे धातोर्लृट् चित्रीकरणे।

अर्थः–यदिशब्दवर्जिते शेषे उपपदे धातोः परो लृट् प्रत्ययो भवति चित्रीकरणे गम्यमाने। यच्चयत्राभ्यामन्यः शब्दः शेषः।

उदा०–अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति, आश्चर्यमेतत्। बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते, चित्रमेतत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अयदौ) यदि शब्द से भिन्न (शेषे) शेष उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लृट्) लृट् प्रत्यय होता है (चित्रीकरणे) यदि वहां आश्चर्य अर्थ की प्रतीति हो। यच्च और यत्र से भिन्न शब्द शेष है।

*उदा०-**अन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति, आश्चर्यमेतत्।** एक अन्धा पहाड़ पर चढ़ता है/चढ़ा/चढ़ेगा यह आश्चर्य की बात है। **बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते, चित्रमेतत्।** एक बहरा व्याकरणशास्त्र पढ़ता है/पढ़ा/पढ़ेगा, यह विचित्र बात है।*

*सिद्धि-(१) **आरोक्ष्यति।** आङ्+रुह्+लृट्। आ+रुह्+स्य+तिप्। आ+रुढ्+स्य+ति। आ+रुक्+ष्य+ति। आ+रोक्+ष्य+ति। आरोक्ष्यति।*

*यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक '**रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अन्ध शब्द उपपद होने पर आश्चर्य अर्थ की प्रतीति में कालसामान्य में लृट् प्रत्यय है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से 'रुह्' धातु के 'ह्' को 'ढ्' '**षढोः कः सि**' (८।२।४१) से 'ढ्' को 'क्' और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) **अध्येष्यते।** अधि+इङ्+लृट्। अधि+इ+स्य+त। अधि+ए+ष्य+ते। **अध्येष्यते।***

*यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'इङ्' धातु को गुण और पूर्ववत् षत्व होता है।*

लिङ् (भविष्यति)–

(४०) उताप्योः समर्थयोर्लिङ्।१५२।

प०वि०–उत-अप्योः ७।२ समर्थयोः ७।२ लिङ् १।१।

स०-उतश्च अपिश्च तौ-उतापी, तयो:-उताप्यो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)। समानोऽर्थो ययोस्तौ समर्थौ, तयो:-समर्थयो: (बहुव्रीहि:)।

अन्वय:-समर्थयोरुताप्योर्धातोर्लिङ्।

अर्थ:-समर्थयो:=समानार्थयो रुताप्यो: शब्दयोरुपपदयोर्धातो: परो लिङ् प्रत्ययो भवति। बाढमित्यस्मिन्नर्थेऽनयो: समानार्थत्वं वर्तते।

उदा०-**(उत:)** उत कुर्यात्। उत अधीयीत। **(अपि)** अपि कुर्यात्। अपि अधीयीत।

'वोताप्यो:' (३।३।१४१) इति विकल्पाधिकारो निवृत्त:। इत: प्रभृति भूते कालेऽपि लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवति, भविष्यति काले तु नित्यं लृङ् प्रत्ययो भवत्येव।

आर्यभाषा-अर्थ-*(समर्थयो:) समान अर्थवाले (उताप्यो:) उत और अपि शब्द उपपद होने पर (धातो:) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है। उत और अपि शब्द बाढम्=हां अर्थ में समानार्थक हैं।*

*उदा०-(उत) **उत कुर्यात्।** हां ! वह करे। **उत अधीयीत।** हां ! वह पढ़े। (अपि) **अपि कुर्यात्।** हां ! वह करे। **अपि अधीयीत।** हां ! वह पढ़े।*

सिद्धि-(१) कुर्यात्। *कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+तिप्। कृ+उ+यास्+त्। कुर्+०+या+त्। कुर्यात्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से उत/अपि उपपद होने पर 'लिङ्' प्रत्यय है। **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।१००) से उत्व, रपरत्व और **'ये च'** (६।४।१०९) से उकार का लोप होता है।*

*(२) **अधीयीत।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय है।*

विशेष-*यहां से **'वोताप्यो:'** (३।३।१४१) से विहित विकल्प का अधिकार निवृत्त होगया। यहां से आगे भूतकाल में क्रिया की असिद्धि होने पर लिङ्निमित्त में नित्य लृङ् प्रत्यय होता है। भविष्यत्काल में क्रिया की असिद्धि होने पर तो नित्य लृङ् प्रत्यय होता ही है।*

लिङ् (भविष्यति)—

(४१) कामप्रवेदनेऽकच्चिति।१५३।

प०वि०-काम-प्रवेदने ७।१ अकच्चिति ७।१।

स०-कामस्य प्रवेदनमिति कामप्रवेदनम्, तस्मिन्-कामप्रवेदने (षष्ठीतत्पुरुषः)। कामः=इच्छा, प्रवेदनम्=प्रकाशनम्। स्वेच्छायाः प्रकाशनमित्यर्थः। न कच्चिदिति अकच्चित्, तस्मिन्-अकच्चिति (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अकच्चिति धातोर्लिङ् कामप्रवेदने।

अर्थः-कच्चिद्वर्जिते शब्दे उपपदे धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, कामप्रवेदने=स्वेच्छाप्रकाशने गम्यमाने।

उदा०-कामो मे भुञ्जीत भवान्। अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अकच्चिति) कच्चित् को छोड़कर कोई शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (कामप्रवेदने) यदि वहां अपनी इच्छा प्रकट करने अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-**कामो मे भुञ्जीत भवान्।** मेरी कामना है कि आप भोजन करें। **अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान्।** मेरी इच्छा है कि आप भोजन करें।*

*सिद्धि-**भुञ्जीत।** भुज्+लिङ्। भुज+सीयुट्+लिङ्। भु श्नम् ज्+ईय्+सुट्+त। भु न् ज्+ई+त। भु ं ज्+ई+त। भुञ्जीत।*

*यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से कामप्रवेदन अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम, **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय, **'लिङः स लोपोऽनन्तस्य'** (७।२।७९) से 'सीयुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप, **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'श्नम्' के 'अ' का लोप, **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार ं और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ञ्' होता है।*

लिङ् (भविष्यति)-

(४२) सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे।१५४।

प०वि०-सम्भावने ७।१ अलम् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्, सिद्धाप्रयोगे ७।१।

स०-न प्रयोग इति अप्रयोगः, सिद्धोऽप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः, तस्मिन्-सिद्धाप्रयोगे (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्भावने धातोर्लिङ्, अलमिति चेत्, सिद्धाप्रयोगे।

अर्थः-सम्भावनेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति, तच्चेत् सम्भावनमलमात्मकं भवति, सिद्धश्चेदलमोऽप्रयोगो भवति। क्व चासौ सिद्धः ? यत्र गम्यतेऽर्थो न तु शब्दः प्रयुज्यते।

उदा०-अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्। अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत।

आर्यभाषा-अर्थ-(सम्भावने) सम्भावना अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है, (चेत्) यदि वह सम्भावना (अलम्) अलमात्मक=पर्याप्ति अर्थक हो (सिद्धाप्रयोगे) और वहां 'अलम्' शब्द का अप्रयोग सिद्ध हो। जहां अर्थ की प्रतीति होती है किन्तु शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है, उसे 'सिद्धाप्रयोग' कहते हैं।

*उदा०-**अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात्।** यह तो शिर से पहाड़ को तोड़ सकता है, यह ऐसा बलवान् है। **अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत।** यह तो द्रोण=२० सेर पकवान खा सकता है, यह ऐसा खाऊ है।*

*सिद्धि-**भिन्द्यात्।** भिद्+लिङ्। भिद्+यासुट्+तिप्। भिद्+यास्+सुट्+त्। भि श्नम् द्+या+त्। भिन्द्+या+त्। भिन्द्यात्।*

यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से सम्भावना अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण प्रत्यय है। शेष कार्य 'भुञ्जीत' के समान हैं (३।३।१५३)।

लिङ्विकल्पः (भविष्यति)-

(४३) विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि।१५५।

प०वि०-विभाषा १।१ धातौ ७।१ सम्भावनवचने ७।१ अयदि ७।१।

स०-सम्भावनमुच्यते येन सः-सम्भावनवचनः, तस्मिन्-सम्भावनवचने (उपपदसमासः)। न यदिति अयद्, तस्मिन् अयदि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-लिङ्, सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अयदि सम्भावनवचने धातौ सम्भावने च धातोर्विभाषा लिङ्, अलमिति चेत्, सिद्धाप्रयोगे।

अर्थः-यद्-वर्जिते सम्भावनवचने धातावुपपदे सम्भावनेऽर्थे च वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति, तच्चेत् सम्भावनमलमात्मकं भवति, सिद्धश्चेदलमोऽप्रयोगो भवति।

उदा०-सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्। अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् (लिङ्)। सम्भावयामि भोक्ष्यते भवान् अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् (लृट्)।

आर्यभाषा-अर्थ-(अयदि) यद् शब्द को छोड़कर (सम्भावनवचने) सम्भावनवाची (धातौ) क्रिया उपपद होने पर (सम्भावने) सम्भावना अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है (चेत्) चेत् यदि वह सम्भावना (अलम्) अलमात्मक=पर्याप्ति अर्थक हो, (सिद्धाप्रयोगे) और वहां 'अलम्' शब्द का अप्रयोग सिद्ध हो।

*उदा०-**सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्। अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् (लिङ्)।** मैं सम्भावना करता हूं कि आप भोजन कर सकेंगे। **सम्भावयामि भोक्ष्यते भवान्। अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् (लृट्)।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) भुञ्जीत। पूर्ववत्।

*(२) **भोक्ष्यते।** यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में विकल्प पक्ष में 'लृट्' प्रत्यय है।*

लिङ्+लृट् (भविष्यति)-

(४४) हेतुहेतुमतोर्लिङ्।१५६।

प०वि०-हेतु-हेतुमतोः ७।२ लिङ् १।१।

स०-हेतुश्च हेतुमाँश्च तौ-हेतुहेतुमन्तौ, तयोः-हेतुहेतुमतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हेतुः=कारणम्। हेतुमत्=फलम्।

अनु०-विभाषा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-हेतुहेतुमतोर्धातोर्विभाषार्लिङ्।

अर्थः-हेतौ हेतुमति चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षिणेन चेद् यायान्न शकटं पर्याभवेत् (लिङ्)। दक्षिणेन चेद् यास्यति न शाकटं पर्याभविष्यति (लृट्)। अत्र दक्षिणेन यानं हेतुः, अपर्याभवनं च हेतुमत् (फलम्) वर्तते।

आर्यभाषा-अर्थ-(हेतुहेतुमतोः) हेतु और हेतुमान् अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

*उदा०-दक्षिणेन चेद् **यायान्न** शकटं **पर्यभिवेत्** (लिङ्)। यदि वह दक्षिण के मार्ग से जायेगा तो गाड़ी नहीं टूटेगी। **दक्षिणेन चेद् यास्यति न शकटं पर्यभिविष्यति** (लृट्)। अर्थ पूर्ववत् है। यहां दक्षिण-मार्ग से जाना हेतु और गाड़ी न टूटना हेतुमान् (फल) है।*

*सिद्धि-(१) **यायात्।** यहां **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से हेतु अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(२) **पर्यभिवेत्।** यहां परि-आङ् उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से हेतुमत्' (फल) अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(३) **यास्यति।** यहां पूर्वोक्त 'या' धातु से विकल्प पक्ष में 'लृट् **शेषे** च' (३।३।१३) से भविष्यत्काल में हेतु अर्थ में 'लृट्' प्रत्यय है।*

*(४) **पर्यभिविष्यति।** यहां परि-आङ् उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् हेतुमान् अर्थ में 'लृट्' प्रत्यय है।*

लिङ्+लोट् (भविष्यति)–

(४५) इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ।१५७।

प०वि०-इच्छार्थेषु ७।३ लिङ्-लोटौ १।२।

स०-इच्छा अर्थो येषां ते-इच्छार्थाः, तेषु-इच्छार्थेषु (बहुव्रीहिः)। लिङ् च लोट् च तौ-लिङ्लोटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परौ लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(लिङ्) इच्छामि भुञ्जीत **भवान्**। कामये भुञ्जीत भवान्। **(लोट्)** इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(इच्छार्थेषु) इच्छा अर्थक धातु उपपद होते पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्लोटौ) लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(लिङ्) **इच्छामि भुञ्जीत भवान्। कामये भुञ्जीत भवान्।** मैं चाहता हूं कि आप भोजन करें। (लोट्) **इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **भुञ्जीत।** पूर्ववत्।*

*(२) **भुङ्क्ताम्।** भुज्+लोट्। भु श्नम् ज्+त। भुनज्+ते। भु ं क्+ताम्। भुङ्क्ताम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'लोट्' प्रत्यय है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व और उसे **'आमेतः'** (३।४।९०) से 'आम्' आदेश होता है। शेष कार्य **'भुञ्जीत'** (३।३।१५३) के समान है।*

तुमुन् (भविष्यति)–

(४६) समानकर्तृकेषु तुमुन्।१५८।

प०वि०–समान–कर्तृकेषु ७।३ तुमुन् १।१।

स०–समानः कर्ता येषां ते–समानकर्तृकाः, तेषु–समानकर्तृकेषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–इच्छार्थेषु इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातोस्तुमुन्।

अर्थः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–इच्छति भोक्तुं देवदत्तः। कामयते भोक्तुं यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(समानकर्तृकेषु) समान कर्तावाले (इच्छार्थेषु) इच्छार्थक धातुओं के उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**इच्छति भोक्तुं देवदत्तः।** देवदत्त भोजन करना चाहता है। **कामयते भोक्तुं यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त भोजन की कामना करता है।*

सिद्धि-भोक्तुम्। *भुज्+तुमुन्। भुज्+तुम्। भोज्+तुम्। भोग्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तुम्+सु। भोक्तुम्।*

*यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् प्रत्यय है। इच्छति धातु और 'भुज्' धातु का देवदत्त कर्ता समान है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को 'ग्' और **'खरि च'** (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।*

लिङ् (भविष्यति)–

(४७) लिङ् च।१५९।

प०वि०–लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–इच्छार्थेषु, समानकर्तृकेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः–समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातोर्लिङ् च।

अर्थः-समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुषु उपपदेषु धातोः परो लिङ् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-भुञ्जीय इतीच्छति देवदत्तः। अधीयीय इति कामयते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकेषु) समान कर्तावाले (इच्छार्थेषु) इच्छार्थक धातुओं के उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लिङ्) लिङ् प्रत्यय (च) भी होता है।

*उदा०-**भुञ्जीय इतीच्छति देवदत्तः।** देवदत्त यह चाहता है कि मैं भोजन करूं। **अधीयीय इति कामयते यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त यह कामना करता है कि मैं भोजन करूं।*

*सिद्धि-(१) **भुञ्जीय।** यहां 'इच्छति' धातु उपपद होने पर **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है। 'इच्छति' धातु और 'भुज्' धातु का देवदत्त कर्ता समान है। यहां 'इट्' प्रत्यय के स्थान में 'इटोऽत्' (३।४।१०६) से 'अत्' आदेश होता है। शेष कार्य **'भुञ्जीत'** (३।३।१५३) के समान है।*

*(२) **अधीयीय।** यहां 'इच्छति' धातु उपपद होने पर अधि उपसर्गपूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' प्रत्यय है। 'इच्छति' और 'अधीङ्' धातु का यज्ञदत्त कर्ता समान है। शेष कार्य 'भुञ्जीय' के समान है।*

वर्तमानकालप्रत्ययप्रकरणम्

लिङ्+लट्-

(१) इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने।१६०।

प०वि०-इच्छार्थेयः ५।३ विभाषा १।१ वर्तमाने ७।१।

स०-इच्छा अर्थो येषां ते-इच्छार्थाः, तेभ्यः-इच्छार्थेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लिङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-वर्तमाने इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो विभाषा लिङ्।

अर्थः-वर्तमाने काले इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(लिङ्)** इच्छेत् देवदत्तः। **(लट्)** इच्छति देवदत्तः। **(लिङ्)** कामयेत यज्ञदत्तः। **(लट्)** कामयते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(वर्तमाने) वर्तमानकाल में (इच्छार्थेभ्यः) इच्छार्थक (धातोः) धातुओं से परे (विभाषा) विकल्प से (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(लिङ्) इच्छेत् देवदत्तः। देवदत्त चाहता है। (लट्) इच्छति देवदत्तः। देवदत्त चाहता है। (लिङ्) कामयेत् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त कामना करता है। कामयते यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त कामना करता है।

सिद्धि-(१) इच्छेत्। इष्+लिङ्। इष्+यासुट्+तिप्। इष्+यास्+सुट्+त्। इष्+शप्+यास्+स्+त्। इष्+अ+या+०+त्। इष्+अ+इय्+त्। इच्छ्+अ+इ+त्। इच्छेत्।

यहां 'इषु इच्छायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। यहां 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम, 'सुट्तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय, 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप, 'अतो येयः' (७।२।३) से 'या' को 'इय्' आदेश, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'इषुगमियमां छः' (७।३।७७) से 'इष्' के 'ष्' को 'छ्' आदेश होता है।

(२) इच्छति। यहां पूर्वोक्त 'इष्' धातु से विकल्प पक्ष में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(३) कामयेत। यहां 'कमु कान्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से प्रथम 'कमेर्णिङ्' (३।१।३०) से 'णिङ्' प्रत्यय और णिजन्त 'कामि' धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'इच्छेत्' के समान है।

(४) कामयते। पूर्वोक्त कामि, धातु से विकल्प पक्ष में 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

लिङ् (विध्यादिषु)–

(२) विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।१६१।

प०वि०-विधि-निमन्त्रण-आमन्त्रण-अधीष्ट-सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु ७।३ लिङ् १।१।

स०-विधिश्च निमन्त्रणं च आमन्त्रणं च अधीष्टं च सम्प्रश्नश्च प्रार्थनं च तानि-विधि०प्रार्थनानि, तेषु-विधि०प्रार्थनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विधि०प्रार्थनेषु वर्तमाने धातोर्लिङ्।

अर्थः-विध्यादिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(१) विधिः=प्रेरणम् (आज्ञापनम्) कटं कुर्याद् देवदत्तः। ग्रामं भवान् आगच्छेत्। (२) निमन्त्रणम्=नियोगकरणम्। इह भवान्

भुञ्जीत। इह भवान् आसीत। (३) आमन्त्रणम्=कामचारकरणम्। इह भवान् भुञ्जीत। इह भवान् आसीत। (४) अधीष्टम्=सत्कारपूर्वको व्यवहारः। अधीच्छामो भवन्तम्-माणवकं भवान् उपनयेत्। (५) सम्प्रश्नः=सम्प्रधारणम् (कर्तव्यविचारणा) किं नु खलु भो अहं व्याकरणमधीयीय। (६) प्रार्थनम्=याच्ञा। भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमधीयीय।

आर्यभाषा-अर्थ-(विधि०प्रार्थनेषु) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(१) विधि=आज्ञा देना। **कटं कुर्याद् देवदत्तः।** *देवदत्त चटाई बनाये।* ***ग्रामं भवानागच्छेत्।*** *आप गांव आओ। (२) निमन्त्रण=अवश्य निमन्त्रित करना।* **इह *भवान् भुञ्जीत।*** *आप यहां अवश्य भोजन करें।* **इह *भवान् आसीत।*** *आप यहां अवश्य ठहरें। (३) आमन्त्रणम्=इच्छापूर्वक आमन्त्रित करना।* **इह *भवान् भुञ्जीत।*** *यदि आप चाहें तो यहां भोजन करें।* **इह *भवान् आसीत।*** *यदि आप चाहें तो यहां ठहरें। (४) अधीष्ट=गुरुजन आदि के प्रति सत्कारपूर्वक व्यवहार।* ***अधीच्छामो भवन्तम्-माणवकं भवान् उपनयेत्।*** *हम चाहते हैं कि आप हमारे बालक का उपनयन-संस्कार करायें। (५) सम्प्रश्न=कर्तव्य का विचार करना।* ***किं नु खलु भो अहं व्याकरणमधीयीय।*** *भाई! क्या मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं? (६) प्रार्थन=मांग।* ***भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमधीयीय।*** *मेरी यह मांग है कि मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं।*

सिद्धि-(१) ***कुर्यात्।*** *यहां* ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) ***आगच्छेत्।*** *यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक* ***'गम्लृ गतौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।* ***'इषुगमियमां छः'*** *(७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।*

(३) ***भुञ्जीत।*** *पूर्ववत्।*

(४) ***आसीत।*** *'आस उपवेशने' (अदा०आ०) शेष कार्य 'भुञ्जीत' के समान है।*

(५) ***उपनयेत्।*** *यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक* ***'णीञ् प्रापणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से अधीष्ट अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

(६) ***अधीयीय।*** *यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ्* ***अध्ययने'*** *(अदा०आ०) धातु से* **इस** *सूत्र से सम्प्रश्न/प्रार्थन अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लोट् (विध्यादिषु)–

(३) लोट् च।१६२।

प०वि०-लोट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने विधि०प्रार्थनेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विधि०प्रार्थनेषु धातोर्वर्तमाने लोट् च।

अर्थः-विध्यादिष्वर्थेषु धातोः परो वर्तमाने काले लोट् प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-(**विधि**) कटं तावद् भवान् करोतु। ग्रामं भवानागच्छतु। (**निमन्त्रणम्**) अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम्। अमुत्र भवान् आस्ताम्। (**आमन्त्रणम्**) इहं भवान् भुङ्क्ताम्। (**अधीष्टम्**) अधीच्छामो भवन्तं माणवकं भवानुपनयतु। (**सम्प्रश्नः**) किं नु खलु भो अहं व्याकरणमध्ययै। (**प्रार्थनम्**) भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमध्ययै।

आर्यभाषा-अर्थ-(विधि०प्रार्थनेषु) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लोट्) लोट् प्रत्यय (च) भी होता है।

*उदा०-(विधि) **कटं तावद् भवान् करोतु।** आप चटाई बनावें। **ग्रामं भवान् आगच्छतु।** आप गांव आवें। (निमन्त्रणम्) **अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम्।** आप वहां अवश्य भोजन करें। **अमुत्र भवान् आस्ताम्।** आप वहां अवश्य ठहरें। (आमन्त्रण) **इह भवान् भुङ्क्ताम्।** यदि आप चाहें तो यहां भोजन करें। (अधीष्ट) **अधीच्छमो भवन्तं माणवकं भवान् उपनयतु।** हम चाहते हैं कि आप हमारे बालक का उपनयन-संस्कार करें। (सम्प्रश्न) **किं न खलु भो अहं व्याकरणमध्ययै।** भाई! क्या मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं। (प्रार्थन) **भवति मे प्रार्थनाऽहं व्याकरणमध्ययै।** मेरी यह प्रार्थना है कि मैं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करूं।*

*सिद्धि-(१) **करोतु।** कृ+लोट्। कृ+उ+तिप्। कर्+उ+ति। कर्+ओ+तु। करोतु।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में वर्तमानकाल में लोट् प्रत्यय है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय और 'एरुः' (३।४।८६) से 'ति' के 'इ' को 'उ' आदेश होता है।

*(२) **आगच्छतु।** आङ्+गम्+लोट्। आ+गम्+शप्+तिप्। आ+गच्छ्+अ+तु। आगच्छतु।*

*यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से विधि अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।*

*(३) **भुङ्क्ताम्।** यहां '**भुज पालनाभ्यवहारयोः**' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से निमन्त्रण/आमन्त्रण अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। '**टित आत्मनेपदानां टेरे**' (३।४।७९) से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग (अ) को 'ए' आदेश और '**आमेतः**' (३।४।९०) से 'ए' को 'आम्' आदेश होता है। शेष पूर्ववत्।*

*(४) **उपनयतु।** यहां उप' उपसर्गपूर्वक '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से अधीष्ट अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'करोतु' के समान है।*

*(५) **अध्ययै।** अधि+इङ्+लोट्। अधि+इ+इट्। अधि+इ+आट्+इ। अधि+इ+आ+ए। अधि+ए+ऐ। अधि+अय्+ऐ। अध्य्+अय्+ऐ। अध्ययै।*

*यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से सम्प्रश्न/प्रार्थन अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। '**आडुत्तमस्य पिच्च**' (३।४।९२) से 'आट्' आगम, '**टित आत्मनेपदानां टेरे**' (३।४।७९) से एत्व, '**आटश्च**' (६।१।८७) से वृद्धि, धातु को गुण और 'अय्' आदेश होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।*

कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)–

(४) प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च।१६३।

प०वि०– प्रैष-अतिसर्ग-प्राप्तकालेषु ७।३ कृत्याः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–प्रैषश्च अतिसर्गश्च प्राप्तकालश्च ते–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालाः, तेषु–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वर्तमाने, लोट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु धातोर्वर्तमाने कृत्या लोट् च।

अर्थः–प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु धातोः परे वर्तमाने काले कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया लोट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–प्रैषः=प्रेरणा। अतिसर्गः=कामचारपूर्वकमाज्ञाप्रदानम्। प्राप्तकालः=समयः समागतः। (कृत्याः) भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः,

कृत्यः, कार्यो वा। (लोट्) प्रेषितो भवान् गच्छतु ग्रामम्। अतिसृष्टो भवान् गच्छतु ग्रामम्। प्राप्तकालो भवान् गच्छतु ग्रामम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रैष=प्रेरणा करना, अतिसर्ग=कामचारपूर्वक आज्ञा देना, प्राप्तकाल=समय आना अर्थ में (धातोः) धातु से परे (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय (च) और (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कृत्य) **भवता कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा।** प्रैष=आप चटाई बनावें। अतिसर्ग=आपकी इच्छा है, आप चटाई बनावें। प्राप्तकाल=आपका समय आगया है, आप चटाई बनावें। **(लोट्) प्रेषितो भवान् गच्छतु ग्रामम्।** भेजे हुये आप गांव जावें। **अतिसृष्टो भवान् गच्छतु ग्रामम्।** आपकी इच्छा है, आप गांव जावें। **प्राप्तकालो भवान् गच्छतु ग्रामम्।** आपका समय आगया है, आप गांव जावें।*

*सिद्धि-(१) **करणीयः।** यह 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से प्रैष आदि अर्थों में वर्तमानकाल में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से कृत्यसंज्ञक 'अनीयर्' प्रत्यय है।*

*(२) **कर्तव्यः।** पूर्ववत् कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है।*

*(३) कृत्यः। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से **'विभाषा कृवृषोः'** (३।१।१२०) से कृत्यसंज्ञक 'क्यप्' प्रत्यय है।*

*(४) **कार्यः।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से कृत्यसंज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है।*

*(५) **गच्छतु।** यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से प्रैष आदि अर्थों में वर्तमानकाल में 'लोट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लिङ्+कृत्याः+लोट् (प्रैषादिषु)–

(५) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके।१६४।

प०वि०-लिङ् १।१ च अव्ययपदम्, ऊर्ध्वमौहूर्तिके ७।१।

स०-ऊर्ध्वं मुहूर्तादिति-ऊर्ध्वमुहूर्त्तम् (अस्मादेव निपातनात्पञ्चमी-तत्पुरुषः)। ऊर्ध्वमुहूर्ते भवमिति ऊर्ध्वमौहूर्तिकम् **'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्'** (४।३।८७) इति ठञ् प्रत्ययः (अस्मादेव निपातनादुत्तरपदवृद्धिः)।

अनु०-वर्तमाने, लोट्, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, कृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु धातोरूर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने लोट्, कृत्या लिट् च।

अर्थ:-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु धातो: परे ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने काले लोट् कृत्यसंज्ञका लिङ् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(**लोट्**) प्रेषित:, अतिसृष्ट:, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु। (**कृत्या:**) प्रेषितेन, अतिसृष्टेन, प्राप्तकालेन वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवता कट: करणीय:, कर्तव्य:, कृत्य:, कार्यो वा। (**लिङ्**) प्रेषित:, अतिसृष्ट: प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं कुर्यात्।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रेरणा करना, कामचारपूर्वक आज्ञा देना और समय आना अर्थ में (धातो:) धातु से परे (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त के पश्चात् (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (लोट्) लोट् (कृत्या:) कृत्यसंज्ञक (च) और (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(लोट्) **प्रेषित:, अतिसृष्ट:, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु।** प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनाओ। **(कृत्य) प्रेषितेन, अतिसृष्टेन, प्राप्तकालेन वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवता कट: करणीय:, कर्तव्य:, कृत्य:, कार्यो वा।** प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर एक मुहूर्त के पश्चात् आपको चटाई बनानी चाहिये। (लिङ्) **प्रेषित:, अतिसृष्ट:, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं कुर्यात्।** प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनावें। मुहूर्त=४८ मिनट।*

सिद्धि-(१) करोतु, (२) करणीय:, (३) कुर्यात् आदि सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

लोट् (प्रैषादिषु)-

(६) स्मे लोट्।१६५।

प०वि०-स्मे ७।१ लोट् १।१।

अनु०-वर्तमाने, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, ऊर्ध्वमौहूर्तिके इति चानुवर्तते।

अन्वय:-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु स्मे, ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने धातोर्लोट्।

अर्थ:-प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेष्वर्थेषु स्म-शब्दे उपपदे ऊर्ध्वमौहूर्तिके वर्तमाने काले धातो: परो लोट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रेषित:, अतिसृष्ट:, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वमुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म, माणवकमध्यापयतु स्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु) प्रेरणा करना, कामचारपूर्वक आज्ञा देना और समय आना अर्थ में (स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (ऊर्ध्वमौहूर्तिके) एक मुहूर्त पश्चात् के (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (लोट्) प्रत्यय होता है।

उदा०-प्रेषितः, अतिसृष्टः, प्राप्तकालो वा ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म, माणवकमध्यापयतु स्म। प्रेरित, स्वेच्छापूर्वक वा समय आने पर आप एक मुहूर्त के पश्चात् चटाई बनावें, गांव जावें, बालक को पढ़ावें।

सिद्धि-(१) करोतु, (२) गच्छतु, (३) अध्यापयतु की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

लोट् (अधीष्टे)-

(७) अधीष्टे च।१६६।

प०वि०-अधीष्टे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-स्मे लोट् इति चानुवर्तते।

अर्थः-स्म-शब्दे उपपदे धातोः परो लोट् प्रत्ययो भवति, अधीष्टे गम्यमाने।

उदा०-अङ्ग स्म आचार्य ! माणवकमध्यापय। अङ्ग स्म राजन् ! अग्निहोत्रं जुहुधि।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मे) स्म शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है (अधीष्टे) यदि वहां सत्कारपूर्वक व्यवहार करना अर्थ प्रकट हो।

उदा०-अङ्ग स्म आचार्य ! माणवकमध्यापय। हे आचार्यप्रवर ! आपसे अनुनय है कि आप मेरे बालक को पढ़ावें। अङ्ग स्म राजन् ! अग्निहोत्रं जुहुधि। हे राजन् ! आपसे विनय है कि आप अग्निहोत्र का अनुष्ठान करें।

सिद्धि-(१) अध्यापय। अध्यापि+लोट्। अध्यापि+सिप्। अध्यापि+शप्+सि। अध्यापि+अ+ति। अध्यापे+अ+०। अध्यापय।

यहां णिजन्त 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से स्म शब्द उपपद होने पर सत्कारपूर्ण व्यवहार की अभिव्यक्ति में 'लोट्' प्रत्यय है। यहां 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में 'सेर्ह्यपिच्च' ३।४।८७) से 'हि' आदेश और 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है।

(२) जुहुधि। हु+लोट्। हु+सिप्। हु+हु+शप्+सि। झु+हु+अ+सि। जु+हु+०+हि। जु+हु+धि। जुहुधि।

यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में पूर्ववत् 'हि' आदेश और 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' (६।४।१०१) से 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है।

विशेष-यहां 'अङ्ग' शब्द अनुनय-विनय का द्योतक है और 'स्म' शब्द अधिकार का वाचक है।

तुमुन् (कालसमयवेलासु)-

(८) कालसमयवेलासु तुमुन्।१६७।

प०वि०-काल-समय-वेलासु ७।३ तुमुन् १।१।

स०-कालश्च समयश्च वेला च ताः-कालसमयवेलाः, तासु-कालसमयवेलासु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कालसमयवेलासु वर्तमाने धातोस्तुमुन्।

अर्थः-कालसमयवेलासु उपपदेषु वर्तमाने काले धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कालः)** कालो भोक्तुम्। **(समयः)** समयो भोक्तुम्। **(वेला)** वेला भोक्तुम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालसमयवेलासु) काल, समय, वेला शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(काल) **कालो भोक्तुम्।** यह भोजन का काल है। (समयः) **समयो भोक्तुम्।** यह भोजन का समय है। (वेला) **वेला भोक्तुम्।** यह भोजन की वेला है। वेला=समय।*

*सिद्धि-(१) **भोक्तुम्।** भुज्+तुमुन्। भुज्+तुम्। भुक्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तुम्।*

यहां पूर्वोक्त 'भुज' धातु से इस सूत्र से काल आदि शब्द उपपद होने पर वर्तमानकाल में 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

लिङ् (कालसमयवेलासु)-

(९) लिङ् यदि।१६८।

प०वि०-लिङ् १।१ यदि ७।१।

अनु०-वर्तमाने, कालसमयवेलासु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालसमयवेलासु यदि वर्तमाने धातोर्लिङ्।

अर्थः-कालसमयवेलासु यत्-सहितेषु उपपदेषु वर्तमाने काले धातोः परो लिङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कालः) कालो यद् भुञ्जीत भवान्। **(समयः)** समयो यद् भुञ्जीत भवान्। **(वेला)** वेला यद् भुञ्जीत भवान्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(यदि) यद् शब्द सहित (कालसमयवेलासु) काल, समय, वेला शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) **धातु से परे** (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(काल) कालो यद् भुञ्जीत भवान्।** काल है कि आप भोजन करें। **(समय) समयो यद् भुञ्जीत भवान्।** समय है कि आप भोजन करें। **(वेला) वेला यद् भुञ्जीत भवान्।** वेला है कि आप भोजन करें। वेला=समय।*

सिद्धि-(१) भुञ्जीत। पूर्ववत्।

कृत्याः+तृच्+लिङ् (अर्हार्थे)–

(१०) अर्हे कृत्यतृचश्च।१६६।

प०वि०-अर्हे ७।१ कृत्य-तृचः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-कृत्याश्च तृच् च ते-कृत्यतृचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने लिङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्हे वर्तमाने धातोः कृत्यतृचो लिङ् च।

अर्थः-अर्हे कर्तरि वाच्ये वर्तमाने काले धातोः परे कृत्यसंज्ञकाः, तृच्, लिङ् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(कृत्याः) भवता खलु कन्या वोढव्या, वहनीया, वाह्या वा। **(तृच्)** भवान् खलु कन्याया वोढा। **(लिङ्)** भवान् खलु कन्यां वहेत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अर्हे) योग्य कर्ता वाच्य होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (कृत्यतृचः) कृत्यसंज्ञक, तृच् (च) और (लिङ्) लिङ् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(कृत्य) **भवता खलु कन्या वोढव्या, वहनीया, वाह्या वा।** आप कन्या से विवाह करने के योग्य हैं। (तृच्) **भवान् खलु कन्याया वोढा।** आप कन्या से विवाह करने की योग्यतावाले हैं। (लिङ्) **भवान् खलु कन्यां वहेत्।** आप कन्या से विवाह कर सकते हैं।*

*सिद्धि-(१) **वहनीया।** यहां 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'अर्ह' (योग्य) अर्थ में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से कृत्यसंज्ञक अनीयर् प्रत्यय है।*

*(२) **वोढव्या।** वह्+तव्य। वढ्+तव्य। वढ्+धव्य। वढ्+ढव्य+। व०+ढव्य। वो+ढव्य। वोढव्य+टाप्। वोढव्य+आ। वोढव्या+सु। वोढव्या।*

*यहां पूर्ववत् कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है। यहां 'हो ढः' (८।२।३१) से 'वह्' के 'ह्' को 'ढ्' आदेश, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से 'तव्य' के 'त्' को 'ध्' आदेश, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से 'ध्' को 'ढ्' आदेश, 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्व ढकार का लोप, '**सहिवहोरोदवर्णस्य**' (६।३।१११) से 'वह्' के अकार को ओकार आदेश होता है।*

*(३) **वाह्या**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'वह' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(४) **वोढा**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य '**वोढव्या**' के समान हैं।*

*(५) **वहेत्**। यहां पूर्वोक्त 'वह' धातु से इस सूत्र से उक्त अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

णिनिः (आवश्यके, आधमर्ण्ये च)–

(११) आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः।१७०।

प०वि०–आवश्यक–आधमर्ण्ययोः ७।२ णिनिः १।१।

स०–अवश्यं भाव आवश्यकम् '**द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च**' (५।१।२३२) इति वुञ् प्रत्ययः। अधममृणं यस्य सः–अधमर्णः, अधमर्णस्य भाव आधमर्ण्यम्। आवश्यकं च आधमर्ण्यं च ते–आवश्यकाधमर्ण्ये, तयोः–आवश्यकाधमर्ण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आवश्यकाधमर्ण्ययोर्वर्तमाने धातोर्णिनिः।

अर्थः–आवश्यके आधमर्ण्ये च कर्तरि वाच्ये वर्तमाने काले धातोः परो णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**आवश्यकम्**) अवश्यङ्कारी देवदत्तः। (**आधमर्ण्यम्**) शतंदायी देवदत्तः। सहस्रंदायी ब्रह्मदत्तः। निष्कंदायी यज्ञदत्तः।

__आर्यभाषा–अर्थ__–(आवश्यकाधमर्ण्ययोः) आवश्यंभाव से युक्त और अधमर्णता से युक्त कर्ता वाच्य होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।

*उदा०–(आवश्यक) **अवश्यङ्कारी देवदत्तः**। देवदत्त कार्य को अवश्य करनेवाला है। (आधमर्ण्य) **शतंदायी देवदत्तः**। देवदत्त सौ रुपये का देनदार (ऋणी) है। **सहस्रंदायी***

*ब्रह्मदत्तः। ब्रह्मदत्त हजार रुपये का देनदार (ऋणी) है। **निष्कंदायी यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त एक निष्क का देनदार (ऋणी) है। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का।*

*सिद्धि-(१) **अवश्यङ्कारी।** अवश्यम्+कृ+णिनि। अवश्यम्+कार्+इन्। अवश्यंकारिन्+सु। अवश्यंकारीन्+०। अवश्यङ्कारी।*

*अवश्यम् उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से अवश्यंभाव कर्ता वाच्य होने पर 'णिनि' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। '**सौ च**' (६।४।१३) से नकारान्त की उपधा 'इ' को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। यहां '**मयूरव्यंसकादयश्च**' (२।१।७) से कर्मधारय समास है।*

*(२) **शतं दायी।** दा+णिनि। दा+युक्+इन्। दा+य्+इन्। दायिन्+सु। दायीन्+०। दायी।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आधमर्ण्ययुक्त कर्ता वाच्य होने पर 'णिनि' प्रत्यय है। '**आतो युक् चिण्कृतोः**' से 'दा' धातु को 'युक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां '**अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः**' (२।३।७०) से षष्ठीविभक्ति का प्रतिषेध होने पर '**कर्मणि द्वितीया**' (२।३।२) से 'शत' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-सहस्रं दायी आदि।*

कृत्याः (आवश्यके आधमर्ण्ये च)–

(१२) कृत्याश्च।१७१।

प०वि०-कृत्याः १।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने, आवश्यकाधमर्ण्ययोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-आवश्यकाधमर्ण्ययोर्वर्तमाने धातोः कृत्याश्च।

अर्थः-आवश्यके आधमर्ण्ये चार्थे वर्तमाने काले धातोः परे कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया अपि भवन्ति।

उदा०-(आवश्यकम्) भवता खलु अवश्यं कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा। **(आधमर्ण्यम्)** भवता शतं दातव्यम्। भवता सहस्रं देयम्।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(आवश्यकाधमर्ण्ययोः) आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

*उदा०-**(आवश्यक) भवता खलु अवश्यं कटः करणीयः, कर्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा।** आपको चटाई अवश्य बनानी है। **(अधमर्ण्यम्) भवता शतं दातव्यम्।** आपको सौ रुपये देने हैं। **भवता सहस्रं देयम्।** आपको हजार रुपये देने हैं।*

सिद्धि-(१) करणीय आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

*(२) **देयम्।** दा+यत्। दी+य। दे+य। देय+सु। देयम्।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आधमर्ण्य अर्थ में **'अचो यत्'** (३।१।९६) से 'यत्' प्रत्यय है। **'ईद् यति'** (६।४।६५) से 'दा' के 'आ' को ईत्त्व और उसे **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है।*

लिङ्+कृत्याः (शक्नोत्यर्थे)-

(१३) शकि लिङ् च।१७२।

प०वि०-शकि ७।१ लिङ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वर्तमाने, कृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शकि वर्तमाने धातोर्लिङ् कृत्याश्च।

अर्थः-शक्नोति-विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परे लिङ्, कृत्य-संज्ञकाश्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(लिङ्) भवान् खलु भारं वहेत्। **(कृत्यः)** भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यो वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(शकि) शक्नोति अर्थ से विशिष्ट (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लिङ्) लिङ् (च) और (कृत्याः) कृत्यसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(लिङ्) **भवान् खलु भारं वहेत्।** आप भार वहन कर सकते हो। (कृत्य) **भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यो वा।** आपके द्वारा भार वहन किया जा सकता है।*

*सिद्धि-(१) **वहेत्।** यहां **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) इस शक्नोति अर्थ से विशिष्ट धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है।*

*(२) **'वोढव्य'** आदि पदों की सिद्धि' पूर्ववत् है।*

लिङ्+लोट् (आशिषि)-

(१४) आशिषि लिङ्लोटौ।१७३।

प०वि०-आशिषि ७।१ लिङ्-लोटौ १।२।

स०-लिङ् च लोट् च तौ-लिङ्लोटौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अर्थः-आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परौ लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः। आशंसनमाशीः=अप्राप्तस्याभीष्टस्य पदार्थस्य प्राप्तुमिच्छा।

उदा०-**(लिङ्)** चिरं जीव्याद् भवान्। **(लोट्)** चिरं जीवतु भवान्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(आशिषि) अप्राप्त अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (लिङ्लोटौ) लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लिङ्) चिरं जीव्याद् भवान्। आप चिरकाल तक जीवित रहें, ऐसी मेरी इच्छा है। (लोट्) चिरं जीवतु भवान्। अर्थ पूर्ववत् है।

__सिद्धि-__(१) जीव्यात्। जीव्+लिङ्। जीव्+यासुट्+तिप्। जीव+यास्+सुट्+त्। जीव्+यास्+स्+त्। जीव्+या+त्। जीव्यात्।

यहां 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में, वर्तमानकाल में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम और 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'यास्' के 'स्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप हो जाता है।

(२) जीवतु। यहां पूर्वोक्त 'जीव' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'एरुः' (२।४।८६) से 'तिप्' के 'इ' को 'उ' आदेश होता है।

क्तिच्+क्तः (आशिषि)-

(१५) क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्।१७४।

प०वि०-क्तिच्-क्तौ १।२ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-वर्तमाने, आशिषि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि वर्तमाने धातोः क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्।

अर्थः-आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्तमाने काले धातोः परौ क्तिच्-क्तौ च प्रत्ययौ भवतः, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(क्तिच्)** तनुतादिति तन्तिः। सनुतादिति सातिः। भवतादिति भूतिः। **(क्तः)** देवा एनं देयासुरिति देवदत्तः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से परे (क्तिच्-क्तौ) क्तिच् और क्त प्रत्यय (च) भी होते हैं (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-(क्तिच्) **तनुतादिति तन्तिः।** जिसे कोई विस्तृत करना चाहता है-रेखा, गौ, डोरी, पंक्ति। **सनुतादिति सातिः।** जिसे कोई देना चाहता है-भेंट, दान, सहायता आदि। **भवतादिति भूतिः।** जिसे कोई रखना चाहता है-अस्तित्व, जन्म, वैभव आदि। (क्त) **देवा एनं देयासुरिति देवदत्तः।** देवताओं ने जिसे आशीर्वादपूर्वक प्रदान किया है, वह देवदत्त पुरुषविशेष।*

सिद्धि-(१) तन्तिः। तन्+क्तिच्। तन्+ति। तन्ति+सु। तन्तिः।

*यहां **'तनु विस्तारे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'क्तिच्' प्रत्यय है। यहां **'अनुदात्तोपदेश०'** (६।४।३७) से अनुनासिक का लोप और **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घत्व प्राप्त है किन्तु **'न क्तिचि दीर्घश्च'** (६।४।३९) से दोनों का प्रतिषेध होता है।*

*(२) सातिः। यहां **'षणु दाने'** (तना०उ०) धातु से **'जनसनखनां सञ्झलोः'** (६।४।४२) से 'सन्' को आत्त्व होता है।*

*(३) भूतिः। **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०)।*

(४) देवदत्तः। देव+दा+क्त। देव+दद्+त। देव+दत्+त। देवदत्त+सु। देवदत्तः।

*यहां देव' उपपद **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'दो दद् घोः'** (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में 'दद्' आदेश और **'खरि च'** (७।४।५४) से चर्त्व 'द्' को 'त्' आदेश होता है।*

लुङ् (माङि)-

(१६) माङि लुङ्।१७५।

प०वि०-माङि ७।१ लुङ् १।१।

अनु०-वर्तमाने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-माङि वर्तमाने धातोर्लुङ्।

अर्थः-माङ्शब्दे उपपदे वर्तमाने काले धातोः परो लुङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मा कार्षीद् देवदत्तः। मा हार्षीद् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(माङि) माङ् शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लुङ्) लुङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-मा कार्षीद् देवदत्तः। *देवदत्त न करे।* ***मा हार्षीद् यज्ञदत्तः।*** *यज्ञदत्त हरण न करे।*

सिद्धि-(१) मा कार्षीत्। यहां 'माङ्' उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से यहां 'अट्' आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है (द्रष्टव्य ३।१।४४)।

(२) मा हार्षीत्। पूर्ववत् (३।१।४४)।

लङ्+लुङ् (माङि स्मोत्तरे)-

(१७) स्मोत्तरे लङ् च।१८६।

प०वि०-स्मोत्तरे ७।१ लङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्म उत्तरं यस्य सः-स्मोत्तरः, तस्मिन्-स्मोत्तरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-वर्तमाने, लुङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मोत्तरे माङि वर्तमाने धातोर्लङ् लुङ् च।

अर्थः-स्मोत्तरे माङ्शब्दे उपपदे वर्तमाने काले धातोर्लङ् लुङ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(लङ्) मा स्म करोद् देवदत्तः। मा स्म हरद् यज्ञदत्तः। **(लुङ्)** मा स्म कार्षीद् देवदत्तः। मा स्म हार्षीद् यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्मोत्तरे) स्म शब्द जिसके उत्तर में है ऐसा (माङि) माङ् शब्द उपपद होने पर (वर्तमाने) वर्तमानकाल में (धातोः) धातु से (लङ्) लङ् (च) और (लुङ्) लुङ् प्रत्यय होता है।

उदा०-(लङ्) मा स्म करोद् देवदत्तः। देवदत्त न करे। मा स्म हरद् यज्ञदत्तः। यज्ञदत्त हरण न करे। (लुङ्) मा स्म कार्षीद् देवदत्तः। मा स्म हार्षीद् यज्ञदत्तः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) मा स्म करोत्। यहां स्मोत्तर माङ् शब्द उपपद होने पर 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से 'माङ्' के योग में 'अट्' आगम नहीं होता है।

(२) मा स्म हरत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

(३) मा स्म कार्षीत्। यहां स्मोत्तर माङ् शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'न माङ्योगे (६।४।७४) से 'माङ्' के योग में 'अट्' आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है (द्रष्टव्य ३।१।४४)।

(४) मा स्म हार्षीत्। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः

धात्वर्थसम्बन्धप्रत्ययप्रकरणम्

धात्वर्थसम्बन्धः–

(१) धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ।१।

प०वि०–धातु-सम्बन्धे ७।१ प्रत्ययाः १।३।

स०–अत्र धात्वर्थे धातुशब्दो वर्तते। धात्वर्थानां सम्बन्ध इति धातुसम्बन्धः, तस्मिन्-धातुसम्बन्धे (षष्ठीतत्पुरुषः)। धात्वर्थसम्बन्धः= परस्परं विशेष्यविशेषणभावः।

अर्थः–धात्वर्थानां सम्बन्धे सति, अयथाकालोक्ता अपि प्रत्ययाः साधवो भवन्ति।

उदा०–अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता। कृतः कटः श्वो भविता। भावि कृत्यमासीत्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुसम्बन्धे) धातु के अर्थों का परस्पर सम्बन्ध=विशेष्य-विशेषण भाव होने पर (प्रत्ययाः) अयथाकाल में विहित भी प्रत्यय साधु होते हैं।

*उदा०–**अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता।** इसके यहां अग्निष्टोम यज्ञ करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। **कृतः कटः श्वो भविता।** बनाई जानेवाली चटाई कल बनेगी। **भावि कृत्यमासीत्।** होनेवाला कार्य था। **गोमानासीत्।** गोमान् था।*

*सिद्धि-(१) **अग्निष्टोमयाजी पुत्रोऽस्य जनिता।** यहां **'अग्निष्टोमयाजी'** पद में **'करणे यजः'** (३।२।८५) से 'यज्' धातु से भूतकाल में 'णिनि' प्रत्यय है और **'जनिता'** पद में 'जनी' धातु से **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से भविष्यत्काल में 'लुट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'यज्' धातु के अर्थ का 'जनी' धातु के अर्थ के साथ विशेषण-विशेष्यभाव रूप सम्बन्ध होने पर इस सूत्र से भूतकाल में विहित 'णिनि' प्रत्यय का भविष्यत्काल में विहित 'लुट्' प्रत्यय के साथ साधुत्व विधान किया है। यहां सुबन्त पद विशेषण और तिङन्त पद **विशेष्य है।** सुबन्त पद गौण और तिङन्त पद प्रधान होता है। गौण पद अपने अर्थ को **छोड़कर प्रधान** पद के मुख्यार्थ के साथ सम्बन्धित हो जाता है।*

*(२) कृतः कटः श्वो भविता। यहां 'कृतः' पद में 'कृ' धातु से क्त प्रत्यय '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में है और '**भविता**' पद में 'भू' धातु से 'लुट्' प्रत्यय, '**अनद्यतने लुट्**' (३।३।१५) से भविष्यत्काल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्नकाल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।*

*(३) भावि कृत्यमासीत्। यहां '**भावि**' पद में '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**भुवश्च**' (३।२।१३८) से 'इनि' प्रत्यय है जो '**भविष्यति गम्यादयः**' (३।३।३) से भविष्यत्काल में होता है और '**आसीत्**' पद में '**अस् भुवि**' (अदा०प०) धातु से '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय भूतकाल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्नकाल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।*

*(४) गोमानासीत्। यहां '**गोमान्**' पद में '**तदस्यास्मिन्नस्ति मतुप्**' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय वर्तमानकाल में है और '**आसीत्**' पद में पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय भूतकाल में है। इस सूत्र से धात्वर्थों का सम्बन्ध होने पर इन भिन्न काल में विहित प्रत्ययों का साधुत्व है।*

लोट् (क्रियासमभिहारे)–

(२) क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः।२।

प०वि०–क्रिया-समभिहारे ७।१ लोट् १।१ लोटः ६।१ हिस्वौ १।२ वा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, त-ध्वमोः ६।२।

स०–क्रियायाः समभिहार इति क्रियासमभिहारः, तस्मिन्-क्रियासमभिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। समभिहारः=पौनःपुन्यं भृशार्थो वा। हिश्च स्वश्च तौ-हिस्वौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तश्च ध्वम् च तौ-तध्वमौ, तयोः-तध्वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातुसम्बन्धे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातुसम्बन्धे क्रियासमभिहारे धातोर्लोट्, लोटो हिस्वौ, तध्वमोश्च वा।

अर्थः–धात्वर्थानां सम्बन्धे सति क्रियासमभिहारेऽर्थे धातोः परो लोट् प्रत्ययो भवति, तस्य च लोटः स्थाने हिस्वावादेशौ भवतः, त-ध्वमोश्च स्थाने विकल्पेन भवतः। उदाहरणानि यथा–

वर्तमानकाल: (हि-आदेश:)

१. स भवान् लुनीहि लुनीति इति　　स लुनाति।　　वह काटो काटो ऐसे काटता है।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　तौ लुनीत:।　　वे दोनों काटते हैं।
३. ते भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　ते लुनन्ति।　　वे सब काटते हैं।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति　　त्वं लुनासि।　　तू काटता है।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　युवां लुनीथ:।　　तुम दोनों काटते हो।
६. यूयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति　　यूयं लुनीथ।　　तुम सब काटते हो।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)　　यूयं लुनीथ।　　तुम सब काटते हो।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति　　अहं लुनामि।　　मैं काटता हूं।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति　　आवां लुनीव:।　　हम दोनों काटते हैं।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति　　वयं लुनीम:।　　हम सब काटते हैं।

भूतकाल: (हि-आदेश:)

१. स भवान् लुनीहि लुनीहि इति　　सोऽलावीत्।　　उसने काटो काटो ऐसे काटा।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　तावलाविष्टाम्।　　उन दोनों ने काटा।
३. ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति　　तेऽलाविषु:।　　उन सबने काटा।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति　　त्वमलावी:।　　तूने काटा।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　युवामलाविष्टम्।　　तुम दोनों ने काटा।
६. युयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति　　यूयमलाविष्ट।　　तुम सबने काटा।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)　　यूयमलाविष्ट।　　तुम सबने काटा।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति　　अहमलाविषम्।　　मैंने काटा।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति　　आवामलाविष्व।　　हम दोनों ने काटा।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति　　वयमलाविष्म।　　हम सबने काटा।

भविष्यत्काल: (हि-आदेश:)

१. स भवान् लुनीहि लुनीहि इति　　स लविष्यति।　　वह काटो-काटो ऐसे काटेगा।
२. तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　तौ लविष्यत:।　　वे दोनों काटेंगे।
३. ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति　　ते लविष्यन्ति।　　वे सब काटेंगे।
४. त्वं भवान् लुनीहि लुनीहि इति　　त्वं लविष्यसि।　　तू काटेगा।
५. युवां भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति　　युवां लविष्यथ:।　　तुम दोनों काटोगे।
६. यूयं भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति　　यूयं लविष्यथ।　　तुम सब काटोगे।
(यूयं भवन्तो लुनीत लुनीत इति)　　यूयं लविष्यथ।　　तुम सब काटोगे।
७. अहं लुनीहि लुनीहि इति　　अहं लविष्यामि।　　मैं काटूंगा।
८. आवां लुनीहि लुनीहि इति　　आवां लविष्याव:　　हम दोनों काटेंगे।
९. वयं लुनीहि लुनीहि इति　　वयं लविष्याम:।　　हम सब काटेंगे।

वर्तमानकालः (स्वादेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽधीते।	वह पढ़ो-पढ़ो ऐसे पढ़ता है।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावधीयाते।	वे दोनों पढ़ते हैं।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽधीयते।	वे सब पढ़ते हैं।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमधीषे।	तू पढ़ता है।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामधीयाथे।	तुम दोनों पढ़ते हो।
६. यूयं भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	यूयमधीध्वे।	तुम सब पढ़ते हो।
यूयं भवन्तोऽधीष्वम् अधीष्वम् इति)	यूयमधीध्वे।	तुम सब पढ़ते हो।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमधीये।	मैं पढ़ता हूं।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	आवामधीवहे।	हम दोनों पढ़ते हैं।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमधीमहे।	हम सब पढ़ते हैं।

भूतकालः (स्व-आदेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽध्यगीष्ट।	उसने पढ़ो-पढ़ो ऐसा पढ़ा।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावध्यगीषाताम्।	उन दोनों ने पढ़ा।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽध्यगीषत।	उन सबने पढ़ा।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमध्यगीष्ठाः।	तूने पढ़ा।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामध्यगीषाथाम्।	तुम दोनों ने पढ़ा।
६. यूयं भवन्तो अधीष्व अधीष्व इति	यूयमध्यगीढ्वम्।	तुम सबने पढ़ा।
(यूयं भवन्तोऽधीध्वम् अधीध्वम् इति)	यूयमध्यगीढ्वम्।	तुम सबने पढ़ा।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमध्यगीषि।	मैंने पढ़ा।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	आवामध्यगीष्वहि।	हम दोनों ने पढ़ा।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमध्यगीष्महि।	हम सबने काटा।

भविष्यत्कालः (स्वादेशः)

१. स भवान् अधीष्व अधीष्व इति	सोऽध्येष्यते।	वह पढ़ो-पढ़ो ऐसे पढ़ेगा।
२. तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	तावध्येष्येते।	वे दोनों पढ़ेंगे।
३. ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	तेऽध्येष्यन्ते।	वे सब पढ़ेंगे।
४. त्वं भवान् अधीष्व अधीष्व इति	त्वमध्येष्यसे।	तू पढ़ेगा।
५. युवां भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इति	युवामध्येष्येथे।	तुम दोनों पढ़ोगे।
६. यूयं भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इति	यूयमध्येष्यध्वे।	तुम सब पढ़ोगे।
यूयं भवन्तोऽधीध्वम् अधीध्वम् इति)	यूयमध्येष्यध्वे।	तुम सब पढ़ोगे।
७. अहम् अधीष्व अधीष्व इति	अहमध्येष्ये।	मैं पढ़ूंगा।
८. आवाम् अधीष्व अधीष्व इति	अवामध्येष्यावहे।	हम दोनों पढ़ेंगे।
९. वयम् अधीष्व अधीष्व इति	वयमध्येष्यामहे।	हम सब पढ़ेंगे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातुसम्बन्धे) धात्वर्थों का परस्पर सम्बन्ध होने पर (क्रियासमभिहारे) क्रिया के बार-बार होने अथवा अधिक होने में (धातोः) धातु से परे (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है और (लोटः) उस लोट् प्रत्यय के स्थान में (हि-स्वौ) हि और स्व आदेश होते हैं (च) और (तध्वमोः) त और ध्वम् प्रत्यय के स्थान में हि और स्व आदेश (वा) विकल्प से होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में सब उदाहरण और उनके अर्थ लिख दिये हैं, वहां देख लेवें।

*सिद्धि-(१) लुनीहि-लुनीहि। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से धातु अर्थ सम्बन्ध में तथा क्रियासमभिहार अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में 'हि' आदेश होता है। 'त' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से 'हि' आदेश होता है-**लुनीत**। यह 'हि' आदेश तीनों कालों में होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है।*

*(२) **अधीष्व**। यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में 'स्व' आदेश है। 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में विकल्प से 'स्व' आदेश होता है-**लुनीध्वम्**। यह 'स्व' आदेश तीनों कालों में होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है।*

लोट् (समुच्चये)-

(३) समुच्चयेऽन्यतरस्याम्।३।

प०वि०-समुच्चये ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-धातुसम्बन्धे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातुसम्बन्धे समुच्चये धातोरन्यतरस्यां लोट्, लोटो हिस्वौ, तध्वमोश्च वा।

अर्थः-धात्वर्थानां सम्बन्धे सति समुच्चयेऽर्थे वर्तमानाद् धातोः परो विकल्पेन लोट् प्रत्ययो भवति, लोटः स्थाने च हिस्वावादेशौ भवतः, तध्वमोश्च स्थाने विकल्पेन भवतः।

उदा०-(हिः) भ्राष्ट्रमट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवायम्-अटति, इतीमावटतः, इतीमेऽटन्ति, इति त्वमटसि, इति युवामटथः, इति यूयमटथ (अथवा भ्राष्ट्रमटत, मठमटत, खदूरमटत, स्थाल्यपिधानमटत इत्येवं यूयमटथ) इत्यमहटामि, इत्यावामटावः, इति वयमटामः।

अथवा-भ्राष्ट्रमटति, मठमटति, खदूरमटति, स्थाल्यपिधानमटति, इत्ययमटति इत्यादिकम्।

(स्वः) छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरुक्तमधीष्व इत्ययमधीते, इतीमावधीयाते, इतीमेऽधीयते, इति त्वमधीषे, इति युवामधीयाथे, इति यूयमधीध्वे अथवा-छन्दोऽधीध्वम्, व्याकरणमधीध्वम्, निरुक्तमधीध्वमिति यूयमधीध्वे) इत्यहमधीये, आवामधीवहे, वयमधीमहे।

अथवा-छन्दोऽधीते, व्याकरणमधीते, निरुक्तमधीते इत्ययमधीते इत्यादिकम्।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(धातुसम्बन्धे) धात्वर्थों का परस्पर सम्बन्ध होने पर (समुच्चये) क्रिया-समुच्चय अर्थ में विद्यमान (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोट्) लोट् प्रत्यय होता है और (लोटः) लोट् के स्थान में (हिस्वौ) हि और स्व आदेश होते हैं और (तध्वमोः) 'त' और 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में (वा) विकल्प से 'हि' और 'स्व' आदेश होते हैं।

उदा०-समस्त उदाहरण संस्कृतभाषा में देख लेवें। उनका यहां भाषार्थमात्र लिखा जाता है :-

__(हि)__-भाड़ पर जा, मठ में जा, कमरे में जा, स्थाली के ढक्कन तक जा इस प्रकार यह अटन करता है। ये दोनों अटन करते हैं। ये सब अटन करते हैं। तू अटन करता है, तुम सब अटन करते हो। मैं अटन करता हूं। हम दोनों अटन करते हैं, हम सब अटन करते हैं।

अथवा-भाड़ पर जाता है, मठ में जाता है, कमरे में जाता है, स्थाली के ढक्कन तक जाता है, ऐसे यह अटन करता है, इत्यादि।

__(स्व)__-छन्द पढ़, व्याकरण पढ़, निरुक्त पढ़, ऐसे यह पढ़ता है, ये दोनों पढ़ते हैं, ये सब पढ़ते हैं, तू पढ़ता है, तुम दोनों पढ़ते हो, तुम सब पढ़ते हो, मैं पढ़ता हूं, हम दोनों पढ़ते हैं, हम सब पढ़ते हैं।

अथवा-छन्द पढ़ता है, व्याकरण पढ़ता है, निरुक्त पढ़ता है, ऐसे यह पढ़ता है, इत्यादि।

__सिद्धि-(१) अट।__ यहां __'अट गतौ'__ (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से क्रिया-समुच्चय अर्थ में 'लोट्' प्रत्यय है। 'लोट्' के स्थान में 'हि' आदेश और __'अतो हेः'__ (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् होता है।

__(२) अटत।__ यहां पूर्वोक्त 'अट्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'त' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'हि' आदेश नहीं होता है।

__(३) अटति।__ यहां पूर्वोक्त 'अट्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लोट्' प्रत्यय नहीं है, अपितु __'वर्तमाने लट्'__ (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

*(४) **अधीष्व।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद में 'स्व' आदेश है।*

*(५) **अधीध्वम्।** यहां 'अधि' उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके 'ध्वम्' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'स्व' आदेश नहीं होता है।*

*(६) **अधीते।** यहां पूर्वोक्त 'इङ्' धातु से विकल्प पक्ष में 'लोट्' प्रत्यय नहीं है, अपितु 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

अनुप्रयोगविधिः–

(४) यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्।४।

प०वि०–यथाविधि अव्ययपदम्, अनुप्रयोगः १।१ पूर्वस्मिन् ७।१।

स०–विधिमनतिक्रम्य इति यथाविधि (अव्ययीभावः)।

अर्थः–पूर्वस्मिन् लोड्विधाने (३।४।२) यथाविधि=यस्माद् धातोर्लोट् प्रत्ययो विधीयते तस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्तव्यः।

उदा०–स भवान् लुनीहि लुनीहि इति स लुनाति। अत्र लुनातीत्येव प्रयुज्यते न पर्यायवाची छिनत्तीति। एवं सर्वत्र वेदितव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(पूर्वस्मिन्) प्रथम लोट् विधान (३।४।२) में (यथाविधि) जिस धातु से लोट् प्रत्यय का विधान किया जाता है, उसी धातु का (अनुप्रयोगः) पश्चात् प्रयोग करना चाहिये।

*उदा०-**स भवान् लुनीहि-लुनीहि इति स लुनाति।** काटो काटो ऐसे वह काटता है। यहां 'लुनाति' का पर्यायवाची 'छिनत्ति' धातु का अनुप्रयोग नहीं किया जाता है। ऐसा ही सर्वत्र समझें।*

(५) समुच्चये सामान्यवचनस्य।५।

प०वि०–समुच्चये ७।१ सामान्यवचनस्य ६।१।

अनेकक्रियाध्याहारः=समुच्चयः, तस्मिन् समुच्चये।

स०–उच्यते येन स वचनः, सामान्यस्य वचन इति सामान्यवचनः, तस्मिन्-सामान्यवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अनुप्रयोग इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–द्वितीये लोड्विधाने समुच्चये सामान्यवचनस्य धातोरनुप्रयोगः।

अर्थः-द्वितीये लोड्विधाने समुच्चये=अनेकक्रियाध्याहारे (३।४।३) सामान्यवचनस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्तव्यः, न सर्वेषां धातूनाम्।

उदा०-ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्ययम्-अभ्यवहरति।

आर्यभाषा-अर्थ-(समुच्चये) अनेक क्रिया-अध्याहारविषयक द्वितीय लोट् प्रत्यय के विधान में (३।४।३) (सामान्यवचनस्य) सामान्यवाची धातु का ही (अनुप्रयोगः) पश्चात् प्रयोग करना चाहिये, सब धातुओं का नहीं।

*उदा०-**ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्ययम्-अभ्यवहरति।** चावल खाओ, सत्तू पीओ, धान खाओ ऐसे यह खाता-पीता है। यहां सामान्यवाची '**अभ्यवहरति**' धातु का प्रयोग है, भुङ्क्ते आदि सब धातुओं का नहीं।*

वैदिकप्रत्ययार्थप्रकरणम्

लुङ्+लङ्+लिट्-

(१) छन्दसि लुङ्लङ्लिटः।६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ लुङ्-लङ्-लिटः १।३।

स०-लुङ् च लङ् च लिट् च ते-लुङ्लङ्लिटः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अत्र धातुसम्बन्धे 'अन्यतरस्याम्' (३।४।३) इति च मण्डूकोत्पलुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातुसम्बन्धे धातोरन्यतरस्यां लुङ्लङ्लिटः।

अर्थः-छन्दसि विषये धात्वर्थानां सम्बन्धे सति कालसामान्ये धातोः परे विकल्पेन लुङ्लङ्लिटः प्रत्यया भवन्ति। अत्र 'अन्यतरस्याम्' इति वचनादन्येऽपि लकारा यथायथं भवन्ति।

उदा०-(लुङ्) शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८) (लङ्) अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। **(लिट्)** अद्या ममार स ह्यः समानः (ऋ० १०।५५।५)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातुसम्बन्धे) धात्वर्थ का सम्बन्ध होने पर कालसामान्य में (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुङ्लङ्लिटः) लुङ्, लङ्, लिट् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(लुङ्) शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८) मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। (लङ्) अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः। इस यजमान ने आज 'होता' अग्नि (ऋत्विक्) का वरण किया है। (लिट्) अद्या ममार स ह्यः समानः (ऋ० १०।५५।५) जो आज मरता है......।

सिद्धि-(१) अकरत्। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+अङ्+तिप्। अ+कर्+अ+त्। अकरत्।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से वेद में वर्तमानकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' (३।१।५९) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश और 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से 'कृ' धातु को गुण होता है। ऐसे ही-अकरम्।

(२) अवृणीत। वृ+लङ्। अट्+वृ+श्ना+त। अ+वृ+ना+त। अ+वृ+णी+त। अवृणीत।

यहां 'वृञ् वरणे' (क्र्या०उ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय और 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से ईत्व होता है।

(३) ममार। मृ+लिट्। मृ+तिप्। मृ+णल्। मृ+अ। मृ+मृ+अ। म+मार+अ। ममार।

यहां 'मृङ् प्राणत्यागे' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से वर्तमानकाल में 'लिट्' प्रत्यय है। 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' (१।३।६१) के नियम से परस्मैपद होता है। 'परस्मैपदानां णलतुसुस०' (३।४।८३) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश, 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'मृ' धातु को वृद्धि, 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से स्थानिवद्भाव होने से 'मृ' को द्वित्व, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के 'ऋकार' को 'अकार' आदेश होता है।

लेट् (लिङर्थे)–

(२) लिङर्थे लेट्।७।

प०वि०-लिङर्थे ७।१ लेट् १।१।

स०-लिङोऽर्थ इति लिङर्थः, तस्मिन्-लिङर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अन्यतरस्याम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लिङर्थे धातोरन्यतरस्यां लेट्।

अर्थः-छन्दसि विषये लिङर्थे धातोः परो विकल्पेन लेट् प्रत्ययो भवति। हेतुहेतुमद्भावो विध्यादयश्च लिङर्थाः सन्ति (३।३।१५६, १६१)।

उदा०-जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। धियो यो नः प्रचोदयात् (ऋ० ३।६२।१०)।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(छन्दसि) वेदविषय में (लिङर्थे) लिङ् लकार के अर्थ में (धातोः) धातु से परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लेट्) लेट् प्रत्यय होता है। हेतु-हेतुमद्भाव और विधि आदि (३।३।१५६, १६१) लिङ् लकार के अर्थ हैं।*

*उदा०-**जोषिषत्।** वह प्रीति/सेवा करे। **तारिषत्।** वह सन्तरण करे। **मन्दिषत्।** वह स्तुति करे। **पताति दिद्युत्।** बिजली गिरे। **धियो यो नः प्रचोदयात्।** सविता देव हमारी बुद्धियों को शुभ गुण, कर्म, स्वभाव में प्रेरित करे।*

***सिद्धि**-(१) **जोषिषत्।** आदि की सिद्धि **'सिब् बहुलं लेटि'** (३।१।३४) के प्रवचन में देख लेवें।*

*(२) **प्रचोदयात्।** यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक णिजन्त **'चुद प्रेरणे'** (जु०प०) धातु से इस सूत्र से 'लिङ्' के स्थान में 'लेट्' प्रत्यय है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से 'आट्' आगम होता है।*

लेट् (उपसंवादे आशंकायां च)-

(३) उपसंवादाशङ्कयोश्च।८।

प०वि०-उपसंवाद-आशंकयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-उपसंवादश्च आशङ्का च ते-उपवादाशङ्के, तयोः-उपवादाशङ्कयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, लेट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धातोर्लेट् उपसंवादाशङ्कयोश्च।

अर्थः-छन्दसि विषये धातोः परो लेट् प्रत्ययो भवति, उपसंवादे आशङ्कायां च गम्यमानायाम्। उपसंवादः=परिभाषणम्, कर्त्तव्ये पणबन्धः-'यदि मे भवानिदं कुर्याद् अहमपि भवते इदं दास्यामि' इति। आशङ्का=कार्यतः कार्यानुसरणं, तर्क उत्प्रेक्षा इत्यर्थः।

उदा०-(उपसंवादः) अहमेव पशूनामीशै (का०सं० २५।१)। मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै (मै०सं० ४।५८) इति। मद्देवत्यान्येव पात्राण्युच्यान्तै

(तै०सं० ६।४।७।२)। **(आशङ्का)** नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम (ऋ० १०।१०६।१)। जिह्माचरणेन नरके पात आशङ्क्यते।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से (लिट्) लेट् प्रत्यय होता है (उपवादाशङ्कयोः) यदि वहां उपसंवाद=शर्त और आशङ्का=उत्प्रेक्षा अर्थ (एक कार्य से दूसरे कार्य का अनुमान) की प्रतीति हो।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) ईशै। ईश्+लेट्। ईश्+अट्+ल्। ईश्+अ+इट्। ईश्+अ+ए। ईश्+अ+ऐ। ईशै।

यहां 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से उपसंवाद अर्थ में लेट् प्रत्यय है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।४) से 'लेट्' को 'अट्' आगम, उत्तम पुरुष एक वचन में 'इट्' प्रत्यय, 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से एत्व और 'एत ऐ' (३।४।९३) से 'ऐ' आदेश होता है।

(२) गृह्यान्तै। ग्रह्+लेट्। ग्रह्+आट्+ल्। ग्रह+यक्+आ+झ। गृह+य+आ+अन्ते। गृह्+य+आ+अन्तै। गृह्यान्तै।

यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से उपसंवाद अर्थ में 'लेट्' प्रत्यय 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'लेट्' को 'आट्' आगम, प्रथम बहुवचन में 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'झ' के स्थान में अन्त-आदेश, कर्मवाच्य में 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय, 'ग्रहिज्या०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है। एत्व और 'ऐ' आदेश पूर्ववत् हैं।

(३) उच्यान्तै। यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'वचिस्वपि०' (६।१।१५) से 'वच्' धातु को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य 'गृह्यान्तै' के समान है।

(४) पताम। यहां 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से आशंका अर्थ में 'लेट्' प्रत्यय, उत्तम पुरुष बहुवचन में 'मस्' प्रत्यय और 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'आट्' आगम होता है।

से-आदयः (तुमर्थे)-

(४) तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेक्सेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्-शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः।६।

प०वि०-तुमर्थे ७।१ से-सेन्-असे-असेन्-क्से-क्सेन्-अध्यै-अध्यैन्-कध्यै-कध्यैन्-शध्यै-शध्यैन्-तवै-तवेङ्-तवेनः १।३।

स०-तुमुनोऽर्थ इति तुमर्थः, तस्मिन्-तुमर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। सेश्च सेन् च असेश्च असेन् च क्सेश्च क्सेन् च अध्यैश्च अध्यैन् च कध्यैश्च कध्यैन् च शध्यैश्च शध्यैन् च तवैश्च तवेङ् च तवेन् च ते-से०तवेनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे धातोः से०तवेनः प्रत्ययाः।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे धातोः परे से-आदयः पञ्चदश प्रत्यय भवन्ति। तुमुर्थः=भावः।

उदा०-(से) वक्षे रायः। **(सेन्)** ता वामेषे रथानाम् (ऋ० ५।६६।३)। **(असे)** क्रत्वे दक्षाय जीवसे (अथर्व० ६।१९।२)। **(असेन्)** जीवसे स्वरे विशेषः। **(क्से)** प्रेषे भगाय (यजु० ५।७)। **(कसेन्)** गवामिव श्रियसे (ऋ० ५।५९।३)। **(अध्यै)** कर्मण्युपाचरध्यै। **(अध्यैन्)** उपाचरध्यै-स्वरे विशेषः। **(कध्यै)** इन्द्राग्नी आहुवध्यै (यजु० ३।१३)। **(कध्यैन्)** श्रियध्यै। **(शध्यै)** पिबध्यै (ऋ० ७।९२।२)। **(शध्यैन्)** सह मादयध्यै (यजु० ३।१३)। **(तवै)** सोममिन्द्राय पातवै। **(तवेङ्)** दशमे मासि सूतवे (ऋ० १०।१८४।३)। **(तवेन्)** स्वर्देवेषु गन्तवे (यजु० १५।५५)। कर्तवे (ऋ० १।८६।२०)। हर्तवे।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के (भाव) अर्थ में (धातोः) धातु से परे (से०तवेनः) से-आदि १५ प्रत्यय होते हैं।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) वक्षे। वच्+से। वक्+षे। वक्षे+सु। वक्षे।

*यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् अर्थ (भाव) में 'से' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से 'वच्' के 'च्' को कुत्व 'क्' और **'आदेशप्रत्यययोः'** (५।३।५९) से षत्व होता है। वक्षे=कहने के लिये।*

(२) एषे। इ+से। ए+षे। एषे+सु। एषे।

*यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) से 'सेन' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण और पूर्ववत् षत्व होता है। एषे=जाने के लिये।*

(३) **जीवसे।** यहां **'जीव प्राणधारणे'** (भ्वा०प०) धातु से 'असे' प्रत्यय है। 'असेन्' प्रत्यय करने पर **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर विशेष होता है-**जीवसे।** जीवसे=जीने के लिये।

(४) **प्रेषे।** 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से 'क्से' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से 'इण्' धातु को गुण का प्रतिषेध और 'आद् गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश होता है। प्रेषे=प्रगति के लिये।

(५) **श्रियसे।** श्रि+कसेन्। श्रि+असे। श्र् इयङ्+असे। श्रिय्+असे। श्रियसे+सु। श्रियसे।

यहां **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से 'कसेन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। **'अचि श्नुधातु०'** (६।४।७७) से 'श्रि' धातु को 'इयङ्' आदेश होता है। श्रियसे=सेवा के लिये।

(६) **उपाचरध्यै।** उप, आङ् उपसर्गपूर्वक **'चर गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'अध्यै' प्रत्यय है। 'अध्यैन्' करने पर **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर विशेष होता है-**उपाचरध्यै।** उपाचरध्यै=उपचार के लिये।

(७) **आहुवध्यै।** आङ्+हु+कध्यै। आ+ह उवङ्+अध्यै। आ+हुव्+अध्यै। आहुवध्यै+सु। आहुवध्यै।

यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके'** (जुहो०प०) धातु से 'कध्यै' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। **'अचि श्नुधातु०'** (६।४।७७) से 'हु' धातु को 'उवङ्' आदेश होता है। आहुवध्यै=आहुति के लिये।

(८) **श्रियध्यै।** यहां **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से 'कध्यैन्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'श्रियसे' (५) के समान है। श्रियध्यै=सेवा के लिये।

(९) **पिबध्यै।** पा+शध्यै। पिब्+अध्यै। पिबध्यै+सु। पिबध्यै।

यहां **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'शध्यै' प्रत्यय है। **'पाघ्राध्मा०'** (७।३।७८) से 'पा' के स्थान में 'पिब' आदेश होता है। पिबध्यै=पीने के लिये।

(१०) **मादयध्यै।** मद+णिच्। मादि+शध्यैन्। मादे+अध्यै। मादयध्यै+सु। मादयध्यै।

यहां **'मदी हर्षे'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और णिजन्त मादि धातु से 'शध्यैन्' प्रत्यय है, तत्पश्चात् पूर्ववत् गुण और 'अय्' आदेश होता है। मादयध्यै=हर्षित करने के लिये।

(११) **पातवै।** 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। पातवै=पीने के लिये।

(१२) **सूतवे।** **'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'** (अदा०आ०) धातु से 'तवेङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'ङित्' होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है। सूतवे=जन्म के लिये।

(१३) गन्तवे। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। गन्तवे=जाने के लिये।

*(१४) **कर्तवे।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'कृ' धातु को गुण होता है। कर्तवे=करने के लिये।*

*(१५) **हर्तवे।** 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'तवेन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'हृ' धातु को गुण होता है। हर्तवे=हरने के लिये।*

***विशेष-'वक्षे'** आदि की **'कृन्मेजन्तः'** (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा है। अतः **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सुप्' का लुक् होता है।*

तुमर्थे (निपातनम्)–

(५) प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै।१०।

प०वि०–प्रयै अव्ययपदम्, रोहिष्यै अव्ययपदम्, अव्यथिष्यै अव्ययपदम्। **'कृन्मेजन्तः'** (१।१।३८) इत्यनेनाव्ययत्वम्।

अनु०–छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुमर्थे प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै।

अर्थः–छन्दसि विषये तुमर्थे प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै इत्येते शब्दा निपात्यन्ते।

उदा०-(प्रयै) प्रयै देवेभ्यः (ऋ० १।१४२।६)। **(रोहिष्यै)** अपामोषधीनां रोहिष्यै (तै०सं० १।३।१०।२)। **(अव्यथिष्यै)** अव्यथिष्यै (का०सं० ३।७)।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के (भावे) भाव अर्थ में (प्रयै०) प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द निपातित हैं।

*उदा०-(प्रयै) **प्रयै देवेभ्यः।** देवों को प्राप्त करने के लिये। (रोहिष्यै) **अपामोषधीनां रोहिष्यै।** जल एवं ओषधियों की उत्पत्ति के लिये। **(अव्यथिष्यै) अव्यथिष्यै।** कष्ट न पाने के लिये।*

***सिद्धि-(१) प्रयै।** प्र+या+कै। प्र+य्+ऐ। प्रयै+सु। प्रयै।*

*यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'पा प्रापणे'** (अदा०आ०) धातु से 'कै' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से 'या' धातु के 'आ' का लोप होता है।*

***(२) रोहिष्यै।** रुह+इष्यै। रोह्+इष्यै। रोहिष्यै+सु। रोहिष्यै।*

यहां 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से 'इष्यै' प्रत्यय निपातित है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'रुह्' धातु को लघूपध गुण होता है।

(३) अव्यथिष्यै। यहां नञ्पूर्वक 'व्यथ भयसंचलनयोः' (भ्वा०आ०) धातु से 'इष्यै' प्रत्यय निपातित है।

विशेष-यहां सर्वत्र 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और 'अव्ययदाप्सुपः' (२।४।८२) से सुप् का लुक् होता है।

तुमर्थे (निपातनम्)–

(६) दृशे विख्ये च।११।

प०वि०-दृशे अव्ययपदम्, विख्ये अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे दृशे विख्ये च।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे दृशे विख्ये च शब्दौ निपात्येते।

उदा०-(**दृशे**) 'दृशे विश्वाय सूर्यम्' (यजु० ७।४१)। (विख्ये) विख्ये त्वा हरामि।

आर्यभाषा-अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (दृशे विख्ये) दृशे और विख्ये शब्द (च) भी निपातित हैं।*

उदा०-(दृशे) 'दृशे विश्वाय सूर्यम्' (यजु० ७।४१) किरणें सब पदार्थों को देखने के लिये सूर्य को प्राप्त कराती हैं। (विख्ये) विख्ये त्वा हरामि। विख्याति के लिये तुझे हरण करता हूं।

सिद्धि-*(१) दृशे। दृश्+के। दृश्+ए। दृशे+सु। दृशे।*

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'के' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(२) विख्ये। वि+ख्या+के। वि+ख्य्+ए। विख्ये+सु। विख्ये।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ख्या प्रकथने' (अदा०प०) धातु से 'के' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'ख्या' के 'आ' का लोप होता है।

विशेष-यहां उभयत्र 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

णमुल्+कमुल् (तुमर्थे)–

(७) शकि णमुल्कमुलौ।१२।

प०वि०–शकि ७।१ णमुल्-कमुलौ १।२।

स०–णमुल् च कमुल् च तौ–णमुल्कमुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुमर्थे शकि धातोर्णमुल्कमुलौ।

अर्थः–छन्दसि विषये तुमर्थे शकि-धातावुपपदे धातोः परौ णमुल्कमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(**णमुल्**) अग्निं वै देवा **विभाजं** नाशक्नुवन् (मै०सं० १।६।४)। विभक्तुमित्यर्थः। (**कमुल्**) **अपलुपम्** नाशक्नोत् (मै०सं० १।६।५)। अपलोप्तुमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमुर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (शकि) शक् धातु के उपपद होने पर (धातोः) धातु से (णमुल्कमुलौ) णमुल् और कमुल् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(णमुल्) अग्निं वै देवा **विभाजं नाशक्नुवन्**। देव लोग अग्नि को विभक्त नहीं कर सके। (कमुल्) **अपलुपं नाशक्नोत्**। वह विनष्ट नहीं कर सका।*

*सिद्धि-(१) **विभाजम्**। वि+भज्+णमुल्। वि+भाज्+अम्। विभाजम्+सु। विभाजम्।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से 'भज्' धातु को **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **अपलुपम्**। अप+लुप्+कमुल्। अप+लुप्+अम्। अपलुपम्+सु। अपलुपम्।*

*यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक **'लुप्लृ छेदने'** (तु०उ०) धातु से इस सूत्र से **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।*

*विशेष-यहां **'कृन्मेजन्तः'** (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

तोसुन्+कसुन् (तुमर्थे)–

(८) ईश्वरे तोसुन्कसुनौ।१३।

प०वि०–ईश्वरे ७।१ तोसुन्-कसुनौ १।२।

स०-तोसुन् च कसुन् च तौ-तोसुन्कसुनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे ईश्वरे धातोस्तोसुन्कसुनौ।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे ईश्वर-शब्दे उपपदे धातोः परौ तोसुन्कसुनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(तोसुन्)** ईश्वरोऽभिचरितोः। अभिचरितुमित्यर्थः। **(कसुन्)** ईश्वरो विलिखः। विलिखितुमित्यर्थः। ईश्वरो वितृदः। वितर्दितुमित्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में (ईश्वरे) ईश्वर शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तोसुन्कसुनौ) तोसुन् और कसुन् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(तोसुन्) ***ईश्वरोऽभिचरितोः।*** *अभिचरण के लिये ईश्वर (समर्थ)। (कसुन्)* ***ईश्वरो विलिखः।*** *विलेखन के लिये ईश्वर (समर्थ)।* ***ईश्वरो वितृदः।*** *हिंसा, अनादर के लिये ईश्वर (समर्थ)।*

सिद्धि-(१) ***अभिचरितोः।*** *अभि+चर्+तोसुन्। अभि+चर्+इट्+तोस्। अभिचरितोस्+सु। अभिचरितोः।*

यहां 'अभि' उपसर्गपूर्वक ***'चर गतौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'तोसुन्' प्रत्यय है।* ***'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'*** *(७।२।३५) से प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।*

(२) ***विलिखः।*** *वि+लिख्+कसुन्। वि+लिख्+अस्। विलिखस्+सु। विलिखः।*

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक ***'लिख अक्षरविन्यासे'*** *(तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'कसुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से पूर्ववत् गुण का प्रतिषेध होता है।*

(३) ***वितृदः।*** *वि+तृद्+कसुन्। वि+तृद्+अस्। वितृदस्+सु। वितृदः।*

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक ***'उतृदिर् हिंसानादरयोः'*** *(रुधा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'कसुन्' प्रत्यय है।*

विशेष- *यहां सर्वत्र* ***'क्त्वातोसुन्कसुनः'*** *(१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

तवै-आदयः (कृत्यार्थे)-

(६) कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः।१४।

प०वि०-कृत्यार्थे ७।१ तवै-केन्-केन्य-त्वनः १।३।

स०-कृत्यानाम् अर्थ इति कृत्यार्थः, तस्मिन्-कृत्यार्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। तवैश्च केन् च केन्यश्च त्वन् च ते-तवैकेन्केन्यत्वनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृत्यार्थे धातोस्तवैकेन्केन्यत्वनः।

अर्थः-छन्दसि विषये कृत्यप्रत्ययानामर्थे धातोः परे तवै-केन्-केन्य-त्वनः प्रत्यया भवति।

उदा०-(**तवैः**) अन्वेतवै (ऋ० ७।४४।५) अन्वेतव्यम्। परिधातवै (अथर्व० २।१३।३)। परिधातव्यम्। परिस्तरितवै (का०सं० ३२।७)। परिस्तरितव्यम्। (**केन्**) नावगाहे=नावगाहितव्यम्। दिदृक्षेण्यः (ऋ० १।१४६।५)। दिदृक्षितव्यम्। शुश्रूषेण्यः (तै०आ० ४।१।१)। शुश्रूषितव्यम्। (**त्वन्**) कर्त्वं हविः (अथर्व० १।४।३)। कर्तव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृत्यार्थे) कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के भाव, कर्म तथा अर्ह अर्थ में (तवै०त्वनः) तवै, केन्, केन्य, त्वन्, प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-(तवै) **अन्वेतवै**। अन्वय करना चाहिये। **परिधातवै**। परिधान के योग्य। **परिस्तरितवै**। आच्छादन के योग्य। (केन्) **नावगाहे**। स्नान करने के योग्य नहीं। (केन्य) **दिदृक्षेण्यः**। दिदृक्षा के योग्य। दिदृक्षा=देखने की इच्छा। **शुश्रूषेण्यः**। शुश्रूषा के योग्य। शुश्रूषा=गुरु सेवा। (त्वन्) **कर्त्वं हविः**। करने योग्य हवि।*

*सिद्धि-(१) **अन्वेतवै**। अनु+इ+तवै। अनु+ए+तवै। अन्वेतवै+सु। अन्वेतवै।*

यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'इण्' धातु को गुण होता है।

*(२) **परिधातवै**। यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है।*

*(३) **परिस्तरितवै**। 'परि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से 'तवै' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'इट्' आगम और गुण होता है।*

*(४) **अवगाहे**। 'अव' उपसर्गपूर्वक 'गाहू विलोडने' (भ्वा०आ०) धातु से 'केन्' प्रत्यय है।*

*(५) **दिदृक्षेण्यः**। 'दिदृक्ष' (सन्नन्त) धातु से 'केन्य' प्रत्यय है।*

*(६) **शुश्रूषेण्यः**। 'शुश्रूष' (सन्नन्त) धातु से 'केन्य' प्रत्यय है।*

*(७) **कर्त्वम्**। 'कृ' धातु से 'त्वन्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुयोः' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण होता है।*

***कृत्यार्थ**-'**तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**' (३।४।७०) से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में तथा '**अर्हे कृत्यतृचश्च**' (३।३।१६९) से अर्ह अर्थ में होते हैं।*

कृत्यार्थे (निपातनम्)–

(१०) अवचक्षे च।१५।

प०वि०–अवचक्षे अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०–छन्दसि कृत्यार्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कृत्यार्थेऽवचक्षे च।

अर्थः–छन्दसि विषये कृत्यप्रत्ययानामर्थेऽवचक्षे इति च निपात्यते।

उदा०–रिपुणा नावचक्षे (यजु० १७।९३)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृत्यार्थे) कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के अर्थ में (अवचक्षे) अवचक्षे शब्द (च) भी निपातित हैं।

*उदा०-**रिपुणा नावचक्षे।** शत्रु के द्वारा न देखने योग्य।*

*सिद्धि-**अवचक्षे।** यहां 'अव' उपसर्गपूर्वक **'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि'** (अ०आ०) धातु से 'शेन्' प्रत्यय निपातित है। 'शेन्' प्रत्यय के 'शित्' होने से **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) से सार्वधातु संज्ञा होने से **'चक्षिङः ख्याञ्'** (२।४।५४) से 'चक्षिङ्' के स्थान में 'ख्याञ्' आदेश नहीं होता है, क्योंकि 'ख्याञ् आदेश आर्धधातुक विषय में होता है।*

विशेष-'अवचक्षे' यहां 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

तोसुन् (भावलक्षणे)–

(११) भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्।१६।

प०वि०–भावलक्षणे ७।१ स्था-इण्-कृञ्-वदि-चरि-हु-तमि-जनिभ्यः ५।३ तोसुन् १।१।

स०–भावः=क्रिया। भावस्य लक्षणमिति भावलक्षणम्, तस्मिन्-भावलक्षणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। स्थाश्च इण् च कृञ् च वदिश्च चरिश्च हुश्च तमिश्च जनिश्च ते स्था०जनयः, तेभ्यः-स्था०जनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–छन्दसि, तुमर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुमर्थे भावलक्षणे स्थेण्०जनिभ्यो धातुभ्यस्तोसुन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे भावलक्षणे चार्थे वर्तमानेभ्यः स्थाऽऽदिभ्यो धातुभ्यः परस्तोसुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(स्थाः) आ संस्थातोर्वेद्यां शेरते (का०सं० ११।१६)। आ समाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः। **(इण्)** पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः (का०सं० ८।३)। **(कृञ्)** पुरा वत्सानामपाकर्तोः (का०सं० ३१।१५)। **(वदिः)** पुरा वदितोरग्नौ प्रहोतव्यम्। **(चरिः)** पुरा प्रचरितोराग्नीध्रीये होतव्यम् (गो०ब्रा० २।२।१०)। **(हुः)** आ होतोरप्रमत्तस्तिष्ठति। **(तमिः)** आ तमितोरासीत (तै०ब्रा० १।४।४।५)। **(जनिः)** आ विजनितोः सम्भवामेति (तै०सं० २।५।१।५)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में (भावलक्षणे) क्रिया के लक्षण में वर्तमान (स्था०जनिभ्यः) स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि (धातोः) धातुओं से परे (तोसुन्) तोसुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) संस्थातोः। सम्+स्था+तोसुन्। सम्+स्था+तोस्। संस्थातोस्+सु। संस्थातोः।

यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में तथा क्रिया के लक्षण में 'तोसुन्' प्रत्यय है। आ संस्थातोः=समाप्ति तक। समाप्त होना क्रियालक्षण है।

*(२) **उदेतोः।** यहां 'उत्' उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'इण्' धातु को गुण होता है। उदेतोः=उदय होना।*

*(३) **अपाकर्तोः।** यहां 'अप' और 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। अपाकर्तोः=दूर करना।*

*(४) **वदितोः।** यहां **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन' प्रत्यय है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'तोसुन्' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। वदितोः=बोलना।*

*(५) **प्रचरितोः।** यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'चर गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। प्रचरितोः=प्रचरण करना।*

*(६) **होतोः।** यहां **'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके'** (जु०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और 'हु' धातु को पूर्ववत् गुण होता है। होतोः=हवन करना।*

*(७) **तमितोः ।** यहां 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। तमितोः=आकाङ्क्षा करना।*

*(८) **विजनितोः ।** यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से इस सूत्र से 'तोसुन्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। विजनितोः=उत्पन्न होना।*

***विशेष-(१) भावलक्षणम्-आ संस्थातो वेद्यां शेरते ।** यज्ञ की समाप्ति तक वेदी पर बैठते हैं। यहां वेदी पर बैठना, यज्ञ की समाप्ति क्रिया से लक्षित किया जारहा है, अतः भावलक्षण (क्रियालक्षण) अर्थ में सम्+स्था धातु से 'तोसुन्' प्रत्यय है। ऐसे ही सर्वत्र क्रियालक्षण को समझ लेवें।*

*(२) यहां **'संस्थातोः'** आदि शब्दों की **'क्त्वा तोसुन्कसुनः'** (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

कसुन् (भावलक्षणे)-

(१२) सृपितृदोः कसुन्।१७।

प०वि०-सृपि-तृदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) कसुन् १।१।

स०-सृपिश्च तद् च तौ-सृपितृदौ, तयोः-सृपितृदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, तुमर्थे भावलक्षणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तुमर्थे भावलक्षणे सृपितृदिभ्यां धातुभ्यां कसुन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तुमर्थे भावलक्षणे चार्थे वर्तमानाभ्यां सृपितृदिभ्यां धातुभ्यां परः कसुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सृपिः) पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (यजु० १।२८)। **(तृद्) पुरा जर्तृभ्य आतृदः** (ऋ० ८।१।१२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुमर्थे) तुमुन् प्रत्यय के भाव अर्थ में और (भावलक्षणे) क्रिया के लक्षण में विद्यमान (सृपितृदोः) सृपि और तृद् (धातोः) धातुओं से परे (कसुन्) कसुन् प्रत्यय होता है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें।

***सिद्धि-(१) विसृपः ।** वि+सृप्+कसुन्। वि+सृप्+अस्। विसृपस्+सु। विसृपः।*

*यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक (भ्वा०प०) धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में तथा क्रिया के लक्षण में 'कसुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से*

'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है। विसृपः=विसर्पण करना।

(२) वितृदः। यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक 'उतृदिर् हिंसानादरयोः' (रुधा०उ०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'कसुन्' प्रत्यय है। वितृदः=हिंसा/अनादर करना।

विशेष-यहां 'विसृपः' और 'वितृदः' पदों की 'क्त्वातोसुन्कसुनः' (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।

क्त्वाप्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा (प्राचां मते)–

(१) अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा।१८।

प०वि०–अलंखल्वोः ७।२ प्रतिषेधयोः ७।२ प्राचाम् ६।३ क्त्वा १।१ (लुप्तप्रथमा)।

स०–अलं च खलुश्च तौ-अलंखलू, तयोः-अलंखल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–छन्दसि, तुमर्थे, भावलक्षणे इति च सर्वं निवृत्तम्।

अन्वयः–प्रतिषेधयोरलंखल्वोर्धातोः क्त्वा प्राचाम्।

अर्थः–प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोः शब्दायोरुपपदयोर्धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–**(अलम्)** अलं कृत्वा। अलं बाले रुदित्वा। **(खलुः)** खलु कृत्वा।

आर्यभाषा-अर्थ-(प्रतिषेधार्थयोः) निषेध अर्थक (अलंखल्वोः) अलम् और खलु शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।

उदा०-(अलम्) अलं कृत्वा। मत करना। अलं बाले रुदित्वा। हे बाले! मत रोना। (खलु) खलु कृत्वा। मत करना।

सिद्धि-(१) कृत्वा। कृ+क्त्वा। कृ+त्वा। कृत्वा+सु। कृत्वा।

यहां 'कृ' धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से 'कृ' धातु को पूर्ववत् गुण नहीं होता है।

*(२) **रुदित्वा।** यहां **'रुदिर् अश्रुविमोचने'** (अ०प०) धातु से इस सूत्र से **'क्त्वा'** प्रत्यय और **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'क्त्वा' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है।*

*विशेष-'कृत्वा' आदि शब्दों की **'क्त्वातोसुन्कसुनः'** (१।१।३९) से अव्ययसंज्ञा और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

क्त्वा (व्यतीहारे)-

(२) उदीचां माङो व्यतीहारे।१६।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ माङः ५।१ व्यतीहारे ७।१।

अनु०-क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्यतीहारे माङो धातोः क्त्वा उदीचाम्।

अर्थः-व्यतीहारेऽर्थे वर्तमानाद् माङ्धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन। व्यतीहारः=विनिमयः। 'माङः' इति मेङ् धातोः कृतात्त्वस्य निर्देशः।

उदा०-अपमित्य याचते। अपमित्य हरति। पाणिनिमते-याचित्वाऽपमयते। हृत्वाऽपमयते।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(व्यतीहारे) विनिमय अर्थ में विद्यमान (माङः) माङ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

*उदा०-**अपमित्य याचते।** विनिमय करके मांगता है। **अपमित्य हरति।** विनिमय करके हरण करता है। पाणिनिमत में-**याचित्वाऽपमयते।** मांग कर विनिमय करता है। **हृत्वाऽपमयते।** अपहरण करके विनिमय करता है।*

*सिद्धि-(१) **अपमित्य।** यहां 'अप' उपसर्गपूर्वक **'मेङ् प्रतिदाने'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से व्यतीहार अर्थ में 'क्त्वा' प्रत्यय हो। **'आदेच उपदेशेऽशिति'** (६।१।४४) से 'मेङ्' धातु को आत्त्व, **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादिसमास, **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश और **'मयतेरिदन्यतरस्याम्'** (६।४।७०) से 'माङ्' के 'आ' को इत्त्व और **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७१) से तुक् आगम होता है।*

*(२) **याचित्वा।** यहां **'टुयाचृ याच्ञायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय और **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।*

*(३) **हृत्वा।** **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

क्त्वा (परावरयोगे)–

(३) परावरयोगे च।२०।

प०वि०–परावरयोगे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–परश्च अवरश्च तौ–परावरौ, ताभ्याम्–परावराभ्याम्, परावराभ्यां योग इति परावरयोगः, तस्मिन्–परावरयोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–परावरयोगे च धातोः क्त्वा।

अर्थः–परेणाऽवरस्य, अवरेण च परस्य योगेऽपि धातोः परः क्त्वा प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(परस्यावरेण योगः)** अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः। परया नद्या सहावरस्य पर्वतस्य योगोऽस्ति। **(अवरस्य परेण योगः)** अनतिक्रम्य तु पर्वतं नदी स्थिता। अवरया नद्या सह परस्य पर्वतस्य योगोऽस्ति।

आर्यभाषा–अर्थ–(परावरयोगे) पर के साथ अवर का और अवर के साथ पर का योग होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है।

उदा०–(पर का अवर के साथ योग) ***अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः।*** *परवर्तिनी नदी के साथ अवरवर्ती पर्वत का योग है। (अवर का पर के साथ योग)* ***अनतिक्रम्य पर्वतं नदी स्थिता।*** *अवरवर्तिनी नदी के साथ परवर्ती पर्वत का योग है।*

सिद्धि–(१) ***अप्राप्य।*** *प्र+आप्+क्त्वा। प्र+आप्+ल्यप्।* ***प्राप्+य।*** *प्राप्य+सु। प्राप्य। नञ्+प्राप्य=अप्राप्य।*

यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक ***'आप्लृ व्याप्तौ' (भ्वा०प०)*** ***धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है।*** *'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादिसमास, 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है और तत्पश्चात् प्राप्य शब्द के साथ 'नञ्' समास है।*

(२) ***अनतिक्रम्य।*** *यहां 'अति' उपसर्गपूर्वक 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

क्त्वा (पूर्वकाले)–

(४) समानकर्तृकयोः पूर्वकाले।२१।

प०वि०–समानकर्तृकयोः ७।२ पूर्वकाले ७।१।

स०-समान: कर्ता ययोर्धात्वर्थयोस्तौ-समानकर्तृकौ, तयो:-समानकर्तृकयो: (बहुव्रीहि:)। पूर्वश्चासौ काल इति पूर्वकाल:, तस्मिन्-पूर्वकाले (कर्मधारय:)।

अनु०-क्त्वा इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-समानकर्तृकयोर्धात्वो: पूर्वकाले धातो: क्त्वा।

अर्थ:-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् धातो: पर: क्त्वा प्रत्ययो भवति।

उदा०-भुक्त्वा व्रजति देवदत्त:। पीत्वा व्रजति यज्ञदत्त:।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयो:) समान कर्तावाले दो धातु-अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में विद्यमान (धातो:) धातु से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है।

*उदा०-**भुक्त्वा व्रजति देवदत्त:।** देवदत्त खाकर जाता है। **पीत्वा व्रजति यज्ञदत्त:।** यज्ञदत्त पीकर जाता है।*

*सिद्धि-(१) **भुक्त्वा।** भुज्+क्त्वा। भुक्+त्वा। भुक्त्वा+सु। भुक्त्वा।*

*यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'कित्' होने से पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है। **'चो: कु:'** (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को कुत्व 'ग्' और **'खरि च'** (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।*

*(२) **पीत्वा।** पा+क्त्वा। पी+त्वा। पीत्वा+सु। पीत्वा।*

*यहां **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय और **'घुमास्था०'** (६।४।६६) से 'पा' के 'आ' को ईत्त्व होता है।*

__विशेष-__यहां 'भुज्' और 'व्रज्' धात्वर्थों का कर्ता एक (समान) देवदत्त है। इन दोनों धात्वर्थों में से 'भुज्' का धात्वर्थ पूर्वकाल में है और 'व्रज' का धात्वर्थ उत्तरकाल में है, अत: 'भुज्' धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा+णमुल् (आभीक्ष्ण्ये)-

(५) आभीक्ष्ण्ये णमुल् च।२२।

प०वि०-आभीक्ष्ण्ये ७।१ णमुल् १।१ च अव्ययपदम्। क्रियाया: पौन:पुन्यम्=आभीक्ष्ण्यम्, तस्मिन्-आभीक्ष्ण्ये।

अनु०-समानकर्तृकयो: पूर्वकाले क्त्वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले अभीक्ष्ण्ये च धातोः णमुल् क्त्वा च।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे आभीक्ष्ण्ये चार्थे वर्तमानाद् धातोः परो णमुल् क्त्वा च प्रत्ययो भवति। द्विर्वचनसहितौ क्त्वाणमुलावाभीक्ष्ण्यं द्योतयतः, न केवलौ।

उदा०-(**णमुल्**) भोजं भोजं व्रजति देवदत्तः। पायं पायं व्रजति यज्ञदत्तः। (**क्त्वा**) भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति देवदत्तः। पीत्वा पीत्वा व्रजति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में तथा (आभीक्ष्ण्ये) क्रिया के पुनः पुनः होने अर्थ में (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् (च) और (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय होता है। द्विर्वचन सहित क्त्वा और णमुल् प्रत्यय आभीक्ष्ण्य अर्थ को प्रकाशित करते हैं, केवल नहीं।

*उदा०-(णमुल्) **भोजं भोजं व्रजति देवदत्तः।** देवदत्त पुनः पुनः खाकर जाता है। **पायं पायं व्रजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पुनः पुनः पीकर जाता है। (क्त्वा) **भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति देवदत्तः। पीत्वा पीत्वा व्रजति यज्ञदत्तः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **भोजम्।** भुज्+णमुल्। भोज्+अम्। भोजम्+सु। भोजम्।*

*यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से आभीक्ष्ण्य विशिष्ट अर्थ में णमुल् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। '**आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः**' इस वार्तिक वचन से द्वित्व होता है-**भोजं भोजम्।***

*(२) **पायम्।** पा+णमुल्। पा+युक्।+अम्। पा+य्+अम्। पायम्+सु। पायम्।*

यहां 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् णमुल् प्रत्यय है। 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से 'पा' धातु को 'युक्' आगम होता है। शेष पूर्ववत् है।

*(३) **भुक्त्वा।** 'भुज्' धातु से पूर्ववत् (३।४।२१)।*

*(४) **पीत्वा।** 'पा' धातु से पूर्ववत् (३।४।२१)।*

*विशेष-'**भोजम्**' आदि शब्दों की '**कृन्मेजन्तः**' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा है और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

क्त्वा-णमुल्-प्रतिषेधः-

(६) न यद्यनाकाङ्क्षे।२३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, यदि ७।१ अनाकाङ्क्षे ७।१।

स०-न विद्यते आकाङ्क्षा (अपेक्षा) यस्य सः अनाकाङ्क्षः तस्मिन्-अनाकाङ्क्षे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, णमुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले यदि धातोः क्त्वाणमुलौ न अनाकाङ्क्षे।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् यद्-शब्दे उपपदे धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ न भवतः, अनाकाङ्क्षे वाच्ये। यस्मिन् वाक्ये पूर्वोत्तरे क्रिये स्तः, तच्चेद् वाक्यं न परं किञ्चिदाकाङ्क्षते=अपेक्षते।

उदा०-यदयं भुङ्क्ते ततः पचति। यदयमधीते ततः शेते। अनाकाङ्क्षे इति किम्? यदयं भुक्त्वा व्रजति, अधीते एव ततः परम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु-अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकालविषयक धात्वर्थ में विद्यमान (यदि) यद् शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (क्त्वा-णमुल्) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय (न) नहीं होते हैं (अनाकाङ्क्षे) यदि वहां अनाकाङ्क्षा=उपेक्षा अर्थ वाच्य हो। जिस वाच्य में पूर्व-उत्तर क्रियायें हों और वह वाक्य किसी अन्य वाक्य की आकाङ्क्षा=अपेक्षा न रखता हो।

*उदा०-**यदयं भुङ्क्ते ततः पचति।** जो यह पहले खाता है तत्पश्चात् पकाता है। **यदयमधीते ततः शेते।** जो यह पहले पढ़ता है तत्पश्चात् सोता है। अनाकाङ्क्ष का कथन इसलिये किया है कि यहां प्रतिषेध न हो-**यदयं भुक्त्वा व्रजति अधीते** एव ततः **परम्।***

सिद्धि-यहां भुङ्क्ते, अधीते पदों में पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में इस सूत्र से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय का प्रतिषेध है।

क्त्वा-णमुल्विकल्पः-

(७) विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु।२४।

प०वि०-विभाषा १।१ अग्रे-प्रथम-पूर्वेषु ७।३।

स०-अग्रेश्च प्रथमं च पूर्वं च तानि-अग्रेप्रथमपूर्वाणि, तेषु-अग्रेप्रथमपूर्वेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वा णमुल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकालेऽग्रेप्रथमपूर्वेषु धातोः क्त्वा णमुल् च।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद् अग्रेप्रथमपूर्वेषु उपपदेषु धातोः परौ विकल्पेन क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः। अत्र विभाषाग्रहणात् क्त्वाणमुल्भ्यां मुक्ते लडादयोऽपि भवन्ति।

उदा०-(अग्रे) अग्रे भोजं व्रजति (णमुल्)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)। **(प्रथमम्)** प्रथमं भोजं व्रजति (णमुल्)। प्रथमं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। प्रथमं भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)। **(पूर्वम्)** पूर्वं भोजं व्रजति (णमुल्)। पूर्वं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)। पूर्वं भुङ्क्ते ततो व्रजति (लट्)।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धात्वर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान तथा (अग्रेप्रथमपूर्वेषु) अग्रे, प्रथम, पूर्व शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (विभाषा) विकल्प से (क्त्वा-णमुल्) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं। यहां विभाषाग्रहण से क्त्वा और णमुल् से मुक्त होने पर धातु से 'लट्' आदि प्रत्यय भी होते हैं।

उदा०-(अग्रे) __अग्रे भोजं व्रजति (णमुल्)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)।__ पहले खाकर जाता है। __अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति।__ पहले खाता है तत्पश्चात् जाता है। __(प्रथम) प्रथमं भोजं व्रजति (णमुल्)। प्रथमं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)।__ प्रथम खाकर जाता है। __प्रथमं भुङ्क्ते ततो व्रजति।__ प्रथम खाता है, तत्पश्चात् जाता है। __(पूर्व) पूर्वं भोजं व्रजति (णमुल्)। पूर्वं भुक्त्वा व्रजति (क्त्वा)।__ पूर्व खाकर जाता है। __पूर्वं भुङ्क्ते ततो व्रजति।__ पूर्व खाता है, तत्पश्चात् जाता है।

__सिद्धि-भोजम्, भुक्त्वा, भुङ्क्ते__ पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

खमुञ्-प्रत्ययविधिः

खमुञ् (आक्रोशे)-

(८) कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्।२५।

प०वि०-कर्मणि ७।१ आक्रोशे ७।१ कृञः ५।१ खमुञ् १।१।

अनु०-समानकर्तृकयोः, पूर्वकाले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले कर्मणि कृञो धातोः खमुञ् आक्रोशे।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानात् कर्मण्युपपदे कृञ्धातोः परः खमुञ् प्रत्ययो भवति, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०-चोरङ्कारमाक्रोशति। चोरोऽसि दस्युरसि, इत्याक्रोशति।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान तथा (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (खमुञ्) खमुञ् प्रत्यय होता है (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश (निन्दा) अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-**चोरङ्कारमाक्रोशति।** तू चोर है ऐसा कहकर निन्दा करता है।*

*सिद्धि-**चोरङ्कारम्।** चोर+अम्+कृ+खमुञ्। चोर+कार्+अ। चोर+मुम्+कार+अ। चोर+ ं +कार्+अ। चोरङ्कार+सु। चोरङ्कारम्।*

*यहां चोर कर्म उपपद होने पर **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'खमुञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। प्रत्यय के 'खित्' होने से **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६६) से 'चोर' शब्द को 'मुम्' आगम होता है। **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से 'म्' को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार ं को परसवर्ण ङकार होता है।*

*विशेष-कृञ्-यहां **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'** (महाभाष्य) के प्रमाण से कृञ् धातु उच्चारणार्थक है, करणार्थक नहीं।*

णमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

णमुल् (पूर्वकाले)-

(१) स्वादुमि णमुल्।२६।

प०वि०-स्वादुमि ७।१ णमुल् १।१।

अनु०-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, कृञ् इति चानुवर्तते। अत्र 'स्वादुमि' इत्यर्थग्रहणं क्रियते।

अन्वयः-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले स्वादुमि कृञो धातोर्णमुल्।

अर्थः-समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोस्तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानात्, स्वादु-अर्थेषु उपपदेषु कृञ्धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते। लवणङ्कारं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(समानकर्तृकयोः) समान कर्तावाले दो धातु अर्थों में से (पूर्वकाले) पूर्वकाल विषयक धात्वर्थ में विद्यमान (स्वादुमि) स्वादु-अर्थक शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते।** स्वाद बनाकर खाता है। **सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते।** दूध, दही, घृत आदि से सम्पन्न बनाकर खाता है। **लवणङ्कारं भुङ्क्ते।** नमक डालकर खाता है।*

सिद्धि-(१) स्वादुङ्कारम्। स्वादुम्+कृ+णमुल्। स्वादुम्+कार्+अम्। स्वादु+ ं +कार्+अम्। स्वादुङ्कारम्+सु। स्वादुङ्कारम्।

*यहां 'स्वादुम्' शब्द उपपद होने पर पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'णमुल्' प्रत्यय के 'णित्' होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। यहां 'स्वादुम्' शब्द मकारान्त निपातित है। इससे च्वि-अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में **'वोतो गुणवचनात्'** (४।१।४४) से 'ङीप्' प्रत्यय नहीं होता है-**अस्वाद्वीं स्वाद्वीं कृत्वा भुङ्क्ते इति स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते।** 'म्' को पूर्ववत् अनुस्वार और परसवर्ण होता है। 'कृन्मेजन्तः' (१।१।३८) से स्वादुङ्कारं की अव्यय संज्ञा है और पूर्ववत् 'सुप्' का लुक् होता है।*

*(२) **सम्पन्नङ्कारम्।** यहां सम्पन्नम् शब्द उपपद होने पर पूर्ववत् 'णमुल्' प्रत्यय है।*

*(३) **लवणङ्कारम्।** यहां 'लवणम्' शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'णमुल्' प्रत्यय है।*

विशेष-स्वादुम्-यहां स्वादु शब्द तथा इसके पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है। स्वादु शब्द यहां मकारान्त निपातित है, उसका फल ऊपर बतलाया गया है। स्वादुम् शब्द के मकारान्त निपातन से सम्पन्नम् आदि शब्द भी मकारान्त ग्रहण किये जाते हैं।

णमुल् (सिद्धाप्रयोगे)-

(२) अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्।२७।

प०वि०-अन्यथा-एवम्-कथम्-इत्थंसु ७।३ सिद्धाप्रयोगः १।१ चेत् अव्ययपदम्।

स०-अन्यथा च एवं च कथं च इत्थं च ते-अन्यथा०इत्थमः, तेषु-अन्यथा०इत्थंसु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्रयोग इति अप्रयोगः, **सिद्धोऽप्रयोगो यस्य सः**-सिद्धाप्रयोगः (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-अन्यथैवंकथमित्थंसु कृञो धातोर्णमुल्, सिद्धाप्रयोगश्चेत्।

अनु०-कृञः, णमुल् इति चानुवर्तते।

अर्थः-अन्यथा=एवं-कथम्-इत्थंसु उपपदेषु कृञ्धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतेर्भवति। कथं पुनरसौ सिद्धाप्रयोगः ? निरर्थकत्वान्न प्रयोगमर्हतीति एवमेव प्रयुज्यते। **'अन्यथा भुङ्क्ते'** इति यावानर्थस्तावानेवान्यथाकारं भुङ्क्ते इत्यस्य विज्ञायते।

उदा०-(अन्यथा) अन्यथाकारं भुङ्क्ते। **(एवम्)** एवङ्कारं भुङ्क्ते। **(कथम्)** कथङ्कारे भुङ्क्ते। **(इत्थम्)** इत्थङ्कारं भुङ्क्ते।

__आर्यभाषा-अर्थः__-(अन्यथा०इत्थंसु) अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (सिद्धाप्रयोगः, चेत्) यदि वहां कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो। जहां निरर्थक होने से प्रयोग की आवश्यकता न हो और वहां उसका प्रयोग किया जाये उसे सिद्धाप्रयोग कहते हैं। जो अर्थ __'अन्यथा भुङ्क्ते'__ का है वही अर्थ __'अन्यथाकारं भुङ्क्ते'__ का है। अतः यहां 'कृञ्' धातु सिद्धाप्रयोग है।

उदा०-__(अन्यथा) अन्यथाकारं भुङ्क्ते।__ अन्य प्रकार से खाता है। __(एवम्) एवङ्कारं भुङ्क्ते।__ इस प्रकार से खाता है। __(कथम्) कथङ्कारं भुङ्क्ते।__ किस प्रकार से खाता है। __(इत्थम्) इत्थङ्कारं भुङ्क्ते।__ इस प्रकार से खाता है।

__सिद्धि-(१) अन्यथाकारम्।__ अन्यथा+कृ+णमुल्। अन्यथा+कार्+अम्। अन्यथा+करम्+सु। अन्यथाकारम्।

यहां अन्यथा उपपद होने पर 'कृ' धातु से णमुल् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। __'एवङ्कारम्'__ आदि में कोई विशेष नहीं है।

णमुल् (असूयाप्रतिवचने)-

(३) यथातथयोरसूयाप्रतिवचने।२८।

प०वि०-यथा-तथयोः ७।२ असूया-प्रतिवचने ७।१।

स०-यथाश्च तथाश्च तौ यथातथौ, तयोः-यथातथयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। असूया=निन्दा, प्रतिवचनम्=उत्तरम्। असूयायाः प्रतिवचनमिति असूयाप्रतिवचनम्, तस्मिन्-असूयाप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०- णमुल्, कृञः सिद्धाप्रयोगश्चेद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथातथयोः कृञो धातोर्णमुल्, सिद्धाप्रयोगश्चेत्, असूर्याप्रतिवचने।

अर्थः-यथातथयोरुपपदयोः कृञ्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतेर्भवति, असूयाप्रतिवचने गम्यमाने।

उदा०-कस्मिँश्चित् पृच्छति सति कश्चिदसूयन् प्रतिवक्ति-यथाकारं करोमि, तथाकारं करोमि किं तवानेन।

आर्यभाषा-अर्थ-(यथातथयोः) यथा और तथा शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (सिद्धाप्रयोगश्चेत्) यदि वहां कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो और (असूयाप्रतिवचने) निन्दात्मक प्रत्युत्तर की प्रतीति हो।

*उदा०-किसी के पूछने पर कोई असूया करता हुआ प्रत्युत्तर देता है-**यथाकारं करोमि, तथाकारं करोमि किं तवानेन।** मैं जैसे करता हूं वैसे करता हूं, तुझे इससे क्या ?*

***सिद्धि-(१) यथाकारम्।** यहां 'यथा' उपपद होने पर 'कृ' धातु से णमुल् प्रत्यय है। 'कृ' धातु को पूर्ववत् वृद्धि होती है।*

(२) तथाकारम्। पूर्ववत्।

णमुल् (साकल्ये)-

(४) कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये।२६।

प०वि०-कर्मणि ७।१ दृशि-विदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) साकल्ये ७।१।

स०-दृशिश्च विद् च तौ-दृशिविदौ, तयोः-दृशिविदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-साकल्ये कर्मणि दृशिविदिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-साकल्ये विशिष्टे कर्मण्युपपदे दृशिविदिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दृशिः) ब्राह्मणदर्शं भोजयति। यं यं ब्राह्मणं पश्यति तं तं भोजयतीत्यर्थः। **(विद्)** ब्राह्मणवेदं भोजयति। यं यं ब्राह्मणं जानाति/लभते/विचारयति वा तं तं भोजयतीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(साकल्ये) सम्पूर्णता अर्थ से युक्त (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (दृशिविदोः) दृश् और विद् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(दृशि) **ब्राह्मणदर्शं भोजयति।** जिस जिस ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् को देखता है उस उस को भोजन कराता है। (विद्) **ब्राह्मणवेदं भोजयति।** जिस जिस ब्राह्मण=वेदज्ञ विद्वान् को जानता है/प्राप्त करता है/सोचता है उस उस को भोजन कराता है।*

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणदर्शम्।** यहां साकल्य अर्थ से विशिष्ट 'ब्राह्मण' कर्म उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'दृश्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

*(२) **ब्राह्मणवेदम्।** यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) 'विद विचारणे' (तु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

णमुल्-

(५) यावति विन्दजीवोः।३०।

प०वि०-यावति ७।१ विन्द-जीवोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-विन्दश्च जीव् च तौ-विन्दजीवौ, तयोः-विन्दजीवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यावति विन्दजीविभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-यावत्-शब्दे उपपदे विन्दजीविभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**विन्दः**) यावद्वेदं भुङ्क्ते। (**जीव्**) यावज्जीवम् अधीते।

आर्यभाषा-अर्थ-(यावति) यावत् शब्द उपपद होने पर (विन्दजीवोः) विन्द और जीव् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(विन्द) **यावद्वेदं भुङ्क्ते।** जितना मिलता है उतना खाता है। (जीव्) **यावज्जीवम् अधीते।** जब तक जीता है, तब तक पढ़ता है।*

*सिद्धि-(१) **यावद्वेदम्।** यहां यावत् शब्द उपपद होने पर 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'विद्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

*(२) **यावज्जीवम्।** 'जीव प्राणरक्षणे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

णमुल्–

(६) चर्मोदरयोः पूरेः।३१।

प०वि०–चर्म-उदरयोः ७।२ पूरेः ५।१।

स०–चर्म च उदरं च ते–चर्मोदरे, तयोः–चर्मोदरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–णमुल्, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चर्मोदरयोः कर्मणोः पूरेर्धातोर्णमुल्।

अर्थः–चर्मोदरयोः कर्मणोरुपपदयोः पूरि-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। पूरिरिति णिजन्तस्येदं ग्रहणम्।

उदा०–(**चर्म**) चर्मपूरं स्तृणाति। (**उदरम्**) उदरपूरं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(चर्मोदरयोः) चर्म और उदर शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (पूरेः) णिजन्त पूरि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(चर्म) **चर्मपूरं स्तृणाति।** चर्म को फैला करके ढकता है। (उदरम्) **उदरपूरं भुङ्क्ते।** उदर को पूर्ण करके खाता है (पेटभर खाता है)।*

*सिद्धि-(१) **चर्मपूरम्।** यहां चर्म कर्म उपपद होने पर **'पूरी आप्यायने'** (दि०आ०) इस णिजन्त धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'णमुल्' प्रत्यय के परे होने पर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(१) **उदरपूरम्।** पूर्ववत्।*

णमुल् (वर्षप्रमाणे)–

(६) वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्।३२।

प०वि०–वर्षप्रमाणे ७।१ ऊलोपः १।१ अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–वर्षस्य प्रमाणमिति वर्षप्रमाणम्, तस्मिन्–वर्षप्रमाणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। ऊकारस्य लोप इति ऊलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–णमुल्, कर्मणि पूरेः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि पूरेर्धातोर्णमुल्, ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्।

अर्थः–कर्मणि कारके उपपदे पूरिधातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, धातोरूकारस्य च विकल्पेन लोपो भवति, वर्षस्य प्रमाणे गम्यमाने।

उदा०-गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रं वृष्टो देवः। सीतापूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्मणि) कर्म कारक उपपद होने पर (पूरेः) पूरि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (च) और (अस्य) इस धातु के (ऊलोपः) ऊकार का लोप (अन्यतरस्याम्) विकल्प से होता है (वर्षप्रमाणे) यदि वहां वर्षा का प्रमाण प्रतीत हो।

*उदा०-**गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। गोष्पदप्रं वृष्टो देवः।** पर्जन्य देव ने गौ के पद=चरणचिह्न को भरकर वर्षा की। **सीतापूरं वृष्टो देवः, सीताप्रं विष्टो देवः।** पर्जन्य देव ने सीता=खूड को भरकर वर्षा की। गौ के चरणचिह्न का भरना तथा खूड का भरना वर्षा का प्रमाण (माप) है।*

*सिद्धि-(१) **गोष्पदपूरम्।** यहां गोष्पद कर्म उपपद होने पर पूर्वोक्त 'पूरि' धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।*

*(२) **गोष्पदप्रम्।** यहां विकल्प पक्ष में 'पूरि' धातु के ऊकार का लोप होगया है। शेष पूर्ववत्।*

(३) सीतापूरम्/सीताप्रम्। पूर्ववत्।

णमुल् (वर्षप्रमाणे)-

(७) चेले क्नोपेः।३३।

प०वि०-चेले ७।१ क्नोपेः ५।१।

अनु०-णमुल्, कर्मणि, वर्षप्रमाणे इति चानुवर्तते। 'चेले' इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते। चेलम्=वस्त्रम्।

अन्वयः-चेले कर्मणि क्नोपेर्धातोर्णमुल् वर्षप्रमाणे।

अर्थः-चेलार्थेषु कर्मसु उपपदेषु क्नोपि-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, वर्षप्रमाणे गम्यमाने।

उदा०-चेलक्नोपं वृष्टो देवः। वस्त्रक्नोपं वृष्टो देवः। वसनक्नोपं वृष्टो देवः।

आर्यभाषा-अर्थ-(चेले) चेल=वस्त्रार्थक शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (क्नोपेः) क्नोपि (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (वर्षप्रमाणे) यदि वहां वर्षा के प्रमाण (माप) की प्रतीति हो।

*उदा०-**चेलक्नोपं वृष्टो देवः। वस्त्रक्नोपं वृष्टो देवः। वसनक्नोपं वृष्टो देवः।** पर्जन्य देव ने वस्त्र गीला करनेवाली वर्षा की।*

सिद्धि-(१) चेलक्नोपम्। चेल+अम्+क्नूय्+णिच्+णमुल्। चेल+क्नूय्+पुक्+इ+आम्। चेल+क्नूप्+अम्। चेल+क्नोप्+अम्। चेलक्नोपम्+सु। चेलक्नोपम्।

यहां 'चेल' कर्म उपपद होने पर णिजन्त 'क्नूयी शब्द उन्दे च' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'क्नूयी' धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से धातु को 'पुक्' आगम, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६५) से धातु के 'य्' का लोप और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से पुगन्त 'क्नूप्' धातु को गुण होता है।

(२) वस्त्रक्नोपम्/वसनक्नोपम्। पूर्ववत्।

णमुल्–

(८) निमूलसमूलयोः कषः।३४।

प०वि०-निमूल-समूलयोः ७।२ कषः ५।१।

स०-निमूलं च समूलं च ते-निमूलसमूले, तयोः-निमूलसमूलयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निमूलसमूलयोः कर्मणो कषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-निमूलसमूलयोः कर्मणोरुपपदयोः कष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(निमूलम्)** निमूलकाषं कषति। **(समूलम्)** समूलकाषं कषति। निगतं मूलं यस्य तत्-निमूलम्। मूलेन सहेति समूलम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(निमूलसमूलयोः) निमूल और समूल शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (कषः) कष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(निमूल) निमूलकाषं कषति। वृक्ष आदि को नीचे जड़ छोड़कर काटता है। (समूल) समूलकाषं कषति। वृक्ष आदि को जड़ सहित काटता है।

सिद्धि-(१) निमूलकाषम्। यहां निमूल कर्म उपपद होने पर 'कष हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से कष् धातु को उपधावृद्धि होती है।

(२) समूलकाषम्। पूर्ववत्।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'कष' धातु हिंसार्थक पठित है किन्तु 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्य) के प्रमाण से यहां 'कष' धातु छेदनार्थक है।

णमुल्–

(९) शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः।३५।

प०वि०-शुष्क-चूर्ण-रूक्षेषु ७।३ पिषः ५।१।

स०-शुष्कं च चूर्णं च रूक्षं च तानि-शुष्कचूर्णरूक्षाणि, तेषु-शुष्कचूर्णरूक्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शुष्कचूर्णरूक्षेषु कर्मसु पिषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-शुष्कचूर्णरूक्षेषु **कर्मसु** उपपदेषु **पिष्-धातोः परो णमुल्** प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शुष्कम्)** शुष्कपेषं पिनष्टि। शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः। **(चूर्णम्)** चूर्णपेषं पिनष्टि। चूर्णं पिनष्टीत्यर्थः। **(रूक्षम्)** रूक्षपेषं पिनष्टि। रूक्षं पिनष्टीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(शुष्कचूर्णरूक्षेषु) शुष्क, चूर्ण, रूक्ष शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर (पिषः) पिष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(शुष्क) **शुष्कपेषं पिनष्टि।** शुष्क द्रव्य को पीसता है। (चूर्ण) **चूर्णपेषं पिनष्टि।** चून पीसता है। (रूक्ष) **रूक्षपेषं पिनष्टि।** रूक्ष द्रव्य को पीसता है।*

*सिद्धि-(१) **शुष्कपेषम्।** यहां शुष्क कर्म उपपद होने पर 'पिष्लृ संचूर्णने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'पिष्' धातु को लघूपध गुण होता है। '**कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः**' (३।४।४६) से 'पिष्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय किया गया है, अतः 'पिष्' धातु का ही अनुप्रयोग किया जाता है-**पिनष्टि**, अन्य धातु का नहीं।*

*(२) **चूर्णपेषम्/रूक्षपेषम्।** पूर्ववत्।*

णमुल्–

(१०) समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः।३६।

प०वि०-समूल-अकृत-जीवेषु ७।३ हन्-कृञ्-ग्रहः ५।१।

स०-समूलं च अकृतं च जीवश्च ते-समूलाकृतजीवाः, तेषु-समूलाकृतजीवेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हन् च कृञ् च ग्रह् च एतेषां समाहारः-हन्कृञ्ग्रह, तस्मात्-हन्कृञ्ग्रहः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समूलाकृतजीवेषु कर्मसु हन्कृञ्ग्रहो धातोर्णमुल्।

अर्थः-समूलाकृतजीवेषु कर्मसु उपपदेषु यथासंख्यं हन्कृञ्ग्रहिभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**समूलम्**) समूलघातं हन्ति। समूलं हन्तीत्यर्थः। (**अकृतम्**) अकृतकारं करोति। अकृतं करोतीत्यर्थः। (**जीवः**) जीवग्राहं गृह्णाति। जीवं गृह्णातीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(समूलाकृतजीवेषु) समूल, अकृत, जीव शब्द (कर्मणि) कर्म उपपद होने पर यथासंख्य (हन्कृञ्ग्रहः) हन्, कृञ्, ग्रह् (धातोः) धातुओं से (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(समूल) **समूलघातं हन्ति**। समूल नष्ट करता है। (अकृत) **अकृतकारं करोति**। अकृत कार्य को करता है। (जीव) **जीवग्राहं गृह्णाति**। जीव को पकड़ता है।*

*सिद्धि-(१) **समूलघातम्**। समूल+अम्+हन्+णमुल्। समूल+हन्+अम्। समूल+घन्+अम्। समूल+घत्+अम्। समूल+घात्+अम्। समूलघातम्+सु। समूलघातम्।*

*यहां समूल कर्म उपपद होने पर '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। '**हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु**' (७।३।५४) से 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्', '**हनस्तोऽचिण्णलोः**' (७।३।३२) से 'हन्' धातु के 'न्' को 'त्' होता है। प्रत्यय के णित् होने से '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से 'हन्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **अकृतकारम्**। अकृत कर्म उपपद होने पर '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।*

*(३) **जीवग्राहम्**। जीव कर्म उपपद होने पर '**ग्रह उपादाने**' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।*

णमुल्–

(११) करणे हनः।३७।

प०वि०-करणे ७।१ हनः ५।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणे हनो धातोर्णमुल्।

अर्थः-करणे कारके उपपदे हन्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाणिधातं वेदिं हन्ति। पादघातं भूमिं हन्ति।

आर्यभाषा-अर्थ-(करणे) करण कारक उपपद होने पर (हनः) हन् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**पाणिघातं वेदिं हन्ति।** हाथ से वेदि को कूटता है। **पादघातं भूमिं हन्ति।** पैर से भूमि को कूटता है।*

*सिद्धि-(१) **पाणिघातम्।** यहां पाणिकरण उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'समूलघातम्' (३।४।३६) के समान है।*

*(२) **पादघातम्।** यहां पादकरण उपपद होने पर पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष पूर्ववत् है।*

णमुल्-

(१२) स्नेहने पिषः।३८।

प०वि०-स्नेहने ७।१ पिषः ५।१।

अनु०-णमुल्, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्नेहने पिषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-स्नेहनवाचिनि करणे कारके उपपदे पिष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। **'स्नेहने'** इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते।

उदा०-उदपेषं पिनष्टि। उदकेन पिनष्टीत्यर्थः। तैलपेषं पिनष्टि। तैलेन पिनष्टीत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्नेहने) स्नेहन=द्रववाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (पिषः) पिष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**उदपेषं पिनष्टि।** किसी द्रव्य को जल से पीसता है। **तैलपेषं पिनष्टि।** किसी द्रव्य को तैल से पीसता है।*

*सिद्धि-(१) **उदपेषम्।** यहां उदक करण उपपद होने पर 'पिष्लृ संचूर्णने' (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है। 'पेषंवासवाहनधिषु च' (६।३।५८) से उदक के स्थान में उद-आदेश होता है।*

*(२) **तैलपेषम्।** पूर्ववत्।*

णमुल्–

(१३) हस्ते वर्तिग्रहोः ।३६।

प०वि०-हस्ते ७ ।१ वर्तिग्रहोः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-वर्ति च ग्रह् च तौ-वर्तिग्रहौ, तयोः-वर्तिग्रहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, करणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हस्ते करणे वर्तिग्रहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-हस्तवाचिनि करणे कारके उपपदे वर्तिग्रहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वर्तिः) हस्तवर्तं वर्तयति। करवर्तं वर्तयति। पाणिवर्तं वर्तयति। हस्तेन वर्तयतीत्यर्थः। **(ग्रह्)** हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहं गृह्णाति। पाणिग्राहं गृह्णाति। हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-(हस्ते) हस्तवाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (वर्तिग्रहोः) वर्ति और ग्रह (धातुभ्याम्) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(वर्ति) हस्तवर्तं वर्तयति। करवर्तं वर्तयति। पाणिवर्तं वर्तयति। हाथ से बर्ताव करता है। (ग्रह) हस्तग्राहं गृह्णाति। करग्राहं गृह्णाति। पाणिग्राहं गृह्णाति। हाथ से पकड़ता है।

सिद्धि-(१) हस्तवर्तम्। हस्त+टा+वर्ति+णमुल्। हस्त+वर्त्+अम्। हस्तवर्तम्+सु। हस्तवर्तम्।

यहां हस्त करण उपपद होने पर णिजन्त 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लुक् होता है। ऐसे ही-करवर्तम्, पाणिवर्तम्।

(२) हस्तग्राहम्। यहां हस्त करण उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-करग्राहम्, पाणिग्राहम्।

णमुल्–

(१४) स्वे पुषः ।४०।

प०वि०-स्वे ७ ।१ पुषः ५ ।१।

अनु०-णमुल्, करणे इति चानुवर्तते। 'स्वे' इत्यत्रार्थग्रहणं क्रियते।

अन्वयः-स्वे करणे पुषो धातोर्णमुल्।

अर्थः-स्ववाचिनि करणे उपपदे पुष्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्वपोषं पुष्यति। आत्मपोषं पुष्यति। गोपोषं पुष्यति। पितृपोषं पुष्यति। धनपोषं पुष्यति। रैपोषं पुष्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(स्वे) स्ववाची (करणे) करण कारक उपपद होने पर (पुषः) पुष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**स्वपोषं पुष्यति। आत्मपोषं पुष्यति।** आत्मा से पुष्ट होता है। **गोपोषं पुष्यति।** गौ से पुष्ट होता है। **पितृपोषं पुष्यति।** पितृजनों से पुष्ट होता है। **धनपोषं पुष्यति। रैपोषं पुष्यति।** धन से पुष्ट होता है।*

*सिद्धि-(१) **स्वपोषम्।** स्व+टा+पुष्+णमुल्। स्व+पोष्+अम्। स्वपोषम्+सु। स्वपोषम्।*

यहां 'स्व' करण उपपद होने पर 'पुष पुष्टौ' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'पुष्' धातु को लघूपध गुण होता है। ऐसे ही-आत्मपोषम् आदि।

णमुल्--

(१५) अधिकरणे बन्धः।४१।

प०वि०-अधिकरणे ७।१ बन्धः ५।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणे बन्धो धातोर्णमुल्।

अर्थः-अधिकरणे कारके उपपदे बन्ध्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चक्रबन्धं बध्नाति। कूटबन्धं बध्नाति। मुष्टिबन्धं बध्नाति। चोरकबन्धं बध्नाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अधिकरणे) अधिकरण कारक उपपद होने पर (बन्धः) बन्ध (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**चक्रबन्धं बध्नाति।** चक्र में बांधता है। **कूटबन्धं बध्नाति।** कपट-छल में बांधता है। **मुष्टिबन्धं बध्नाति।** मुट्ठी में बांधता है। **चोरकबन्धं बध्नाति।** चोर कर्म में बांधता है।*

सिद्धि-(१) चक्रबन्धम्। चक्र+ङि+बन्ध्+णमुल्। चक्र+बन्ध्+अम्। चक्रबन्धम्+सु। चक्रबन्धम्।

*यहां 'चक्र' अधिकरण कारक उपपद होने पर **'बन्ध बन्धने'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-कूटबन्धम् आदि।*

णमुल् (संज्ञायाम्)–

(१६) संज्ञायाम्।४२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-णमुल् बन्ध इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां बन्धो धातोर्णमुल्।

अर्थः-संज्ञायां विषये बन्ध्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रौञ्चबन्धं बध्नाति। मयूरिकाबन्धं बध्नाति। अट्टालिकाबन्धं बध्नाति।

आर्यभाषा-अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (बन्धः) बन्ध (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**क्रौञ्चबन्धं बध्नाति। मयूरिकाबन्धं बध्नाति। क्रौञ्चबन्ध** आदि बन्धविशेषों के नाम हैं।*

*सिद्धि-(१) **क्रौञ्चबन्धम्।** पूर्ववत्।*

णमुल्–

(१७) कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः।४३।

प०वि०-कर्त्रोः ७।२ जीव-पुरुषयोः ७।२ नशि-वहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-जीवश्च पुरुषश्च तौ-जीवपुरुषौ, तयोः-जीवपुरुषयोः। नशिश्च वह् च तौ-नशिवहौ, तयोः-नशिवहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-कर्तृवाचिनोर्जीवपुरुषयोरुपपदयोर्यथासंख्यं नशिवहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(जीवः) जीवनाशं नश्यति। **(पुरुषः)** पुरुषवाहं वहति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्त्रोः) कर्तावाची (जीव-पुरुषयोः) जीव और पुरुष शब्द उपपद होने पर यथासंख्य (नशिवहोः) नश् और वह् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(जीव) **जीवनाशं नश्यति।** जीव (प्राणी) नष्ट होता है। (पुरुष) **पुरुषवाहं वहति।** पुरुष **सेवक बनकर** भार वहन करता है।*

*सिद्धि-(१) **जीवनाशम्।** जीव+सु। नश्+णमुल्। जीव+नाश्+अम्। जीवनाशम्+सु। जीवनाशम्।*

*यहां 'जीव' **कर्ता** उपपद होने पर '**णश अदर्शने**' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से 'नश्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **पुरुषवाहम्।** यहां 'पुरुष' कर्ता उपपद होने पर 'वह **प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।*

णमुल्–

(१८) ऊर्ध्वे शुषिपूरोः।४४।

प०वि०-ऊर्ध्वे ७।१ शुषि-पूरोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-शुषिश्च पूर् च तौ-शुषिपूरौ, तयोः-शुषिपूरोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, कर्त्रोः इति चानुवर्तते।

अर्थः-कर्तृवाचिनि ऊर्ध्व-शब्दे उपपदे शुषिपूरिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शुषिः) ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। **(पूर्)** ऊर्ध्वपूरं पूर्यति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कर्त्रोः) कर्तावाची (ऊर्ध्वे) ऊर्ध्व शब्द उपपद होने पर (शुषिपूरोः) शुष् और पूर् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(शुषि) **ऊर्ध्वशोषं शुष्यति।** ऊपरवाला भाग सूखता है। (पूर्) **ऊर्ध्वपूरं पूर्यते।** ऊपरवाला भाग भरता है।*

*सिद्धि-(१) **ऊर्ध्वशोषम्।** ऊर्ध्व+सु+शुष्+णमुल्। ऊर्ध्व+शोष्+अम्। ऊर्ध्वशोषम्+सु। ऊर्ध्वशोषम्।*

*यहां 'ऊर्ध्व' कर्ता उपपद होने पर '**शुषि शोषणे**' (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'शुष्' धातु को लघूपध गुण होता है।*

*(२) **ऊर्ध्वपूरम्।** '**पूरी आप्यायने**' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

णमुल्–

(१६) उपमाने कर्मणि च।४५।

प०वि०-उपमाने ७।१ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-णमुल्, कर्त्रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपमाने कर्मणि कर्तरि च धातोर्णमुल्।

अर्थः-उपमानवाचिनि कर्मणि कर्तरि चोपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कर्मणि)** घृतनिधायं निहितः। घृतमिव निहित इत्यर्थः। सुवर्णनिधायं निहितः। सुवर्णमिव निहित इत्यर्थः। **(कर्तरि)** अजकनाशं नष्टः। अजक इव नष्ट इत्यर्थः। चूडकनाशं नष्टः। चूडक इव नष्ट इत्यर्थः।

आर्यभाषा-अर्थ-(उपमाने) उपमानवाची (कर्मणि) कर्म (च) और (कर्तरि) कर्ता उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(कर्म) **घृतनिधायं निहितः।** घृत के समान रखा हुआ। **सुवर्णनिधायं निहितः।** सोने के समान रखा हुआ। (कर्ता) **अजकनाशं नष्टः।** बकरे के समान नष्ट होगया। चूडकनाशं नष्टः। मुर्गे के समान नष्ट होगया।*

*सिद्धि-(१) **घृतनिधायम्।** घृत+अम्+नि+धा+णमुल्। घृत+निधा+युक्+अम्। घृतनिधायम्+सु। घृतनिधायम्।*

*यहां घृत कर्म उपपद होने 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से 'धा' धातु को 'युक्' आगम होता है। ऐसे ही-**सुवर्णनिधायम्।***

*(२) **अजकनाशम्।** अजक+सु+नश्+णमुल्। अजक+नाश्+अम्। अजकनाशम्+सु। अजकनाशम्।*

*यहां अजक कर्ता उपपद होने पर **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'नश्' धातु को उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही-**चूडकनाशम्।***

अनुप्रयोगविधिः–

(२०) कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः।४६।

प०वि०-कषादिषु ७।३ यथाविधि १।१ अनुप्रयोगः १।१।

स०-कष आदिर्येषां ते कषादयः, तेषु-कषादिषु (बहुव्रीहिः)। विधिमनतिक्रम्य इति यथाविधि (अव्ययीभावः)।

अर्थः-कषादिषु=**'निमूलसमूलयोः कषः'** (३।३।३४) इत्यादिषु सूत्रेषु यथाविधि अनुप्रयोगो भवति, यस्माद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो विहितः स एवानुप्रयोक्तव्यः।

उदा०-निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति इत्यादिकमुदाहृतम्।

*आर्यभाषा-अर्थ-(कषादिषु) **'निमूलसमूलयोः कषः'** (३।३।३४) इत्यादि सूत्रों में (यथाविधि) जिस धातु से णमुल् का विधान किया गया है उस धातु का ही (अनुप्रयोगः) अनुप्रयोग करना चाहिये, अन्य का नहीं।*

*उदा०-**निमूलकाषं कषति। समूलकाषं कषति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **निमूलकाषं कषति।** यहां निमूल उपपद 'कष्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः 'कषति' का ही अनुप्रयोग होता है, 'छिनत्ति' आदि का नहीं।*

णमुल्-

(२१) उपदंशस्तृतीयायाम्।४७।

प०वि०-उपदंशः ५।१ तृतीयायाम् ७।१।

अनु०-णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायाम् उपदंशो धातोर्णमुल्।

अर्थः-तृतीयान्ते उपपदे उपपूर्वाद् दंश्-धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर (उपदंशः) उप-उपसर्गपूर्वक दंश् धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते।** मूली से काट-काटकर रोटी खाता है। **आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते। आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते।** अदरक से काट-काटकर रोटी खाता है।*

*सिद्धि-(१) **मूलकोपदंशम्।** मूलक+टा+उपदंश्+णमुल्। मूलक+उपदंश्+अम्। मूलकोपदंशम्+सु। मूलकोपदंशम्।*

*यहां तृतीयान्त मूलक शब्द उपपद होने पर **'दशि दर्शनदंशनयोः'** (चु०आ०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से मूलक और उपदंश सुबन्तों का विकल्प से समास होता है-**मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते।** ऐसे ही-**आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते,** इत्यादि।*

णमुल्-

(२२) हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्।४८।

प०वि०-हिंसार्थानाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, समानकर्मकाणाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-हिंसाऽर्थो येषां ते हिंसार्थाः, तेषाम्- हिंसार्थानाम्। समानं कर्म येषां ते-समानकर्मकाः, तेषाम्-समानकर्मकाणाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-णमुल्, तृतीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायां समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यो णमुल्।

अर्थः-तृतीयान्ते शब्दे उपपदेऽनुप्रयोगधातुना सह समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थेभ्यो धातुभ्यः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातं गाः कालयति। दण्डोपताडं गाः कालयति। दण्डेनोपताडं गाः कालयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर अनुप्रयोगवाले धातु के साथ (समानकर्मकाणाम्) तुल्य कर्मवाले (हिंसार्थेभ्यः) हिंसार्थक (धातोः) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**दण्डोपघातं गाः कालयति। दण्डेनोपघातं गाः कालयति। दण्डोपताडं गाः कालयति।** दण्डेनोपताडं गाः **कालयति।** दण्ड से मारकर गौओं को निकालता है।*

***सिद्धि-(१) दण्डोपघातम्। दण्ड+टा+उपहन्+णमुल्।** दण्ड+उपघन्+अम्। दण्ड+उपघत्+अम्। दण्ड+उपघात्+अम्। दण्डोपघातम्+सु। दण्डोपघातम्।*

*यहां तृतीयान्त दण्ड शब्द उपपद होने पर 'उप' उपसर्गपूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' (अ०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'समूलघातम्' (३।४।३६) के समान है। यहां **'दण्डोपघातम्'** और **'कालयति'** धातु का 'गाः' समान कर्म है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**दण्डेनोपघातम्।***

***(२) कालयति। 'कल विक्षेपे'** (चुरादि०)।*

***(३) दण्डोपताडम्। 'तड आघाते'** (चुरादि०)।*

णमुल्–

(२३) सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ।४६।

प०वि०–सप्तम्याम् ७।१ च अव्ययपदम्, उपपीड-रुध-कर्षः ५।१।

स०–पीडश्च रुधश्च कर्ष च एतेषां समाहारः-पीडरुधकर्ष्, उपपूर्वं च तत् पीडरुधकर्ष् इति उपपीडरुधकर्ष्, तस्मात्-उपपीडरुधकर्षः (समाहारद्वन्द्वगर्भितोत्तरपदलोपी तत्पुरुषः)।

अनु०–णमुल्, तृतीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यां तृतीयायां च उपपीडरुधकर्षो धातोर्णमुल्।

अर्थः–सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते च शब्दे उपपदे उप-उपसर्गपूर्वेभ्यः पीडरुधकर्षिभ्यो धातुभ्यः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्–**

धातुः	सप्तमी	तृतीया
(उप+पीडः)	(क) पार्श्वोपपीडं शेते	पार्श्वोपपीडं शेते
	(ख) पार्श्वयोरुपपीडं शेते	पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते
(उप+रुधः)	(क) व्रजोपरोधं गाः स्थापयति	व्रजोपरोधं गाः स्थापयति
	(ख) व्रजे उपरोधं गाः स्थापयति	व्रजेनोपरोधं गाः स्थापयति
(उप+कर्ष्)	(क) पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति	पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति
	(ख) पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति	पाणिनोपकर्षं धानाः संगृह्णाति

आर्यभाषा-अर्थ-*(सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त (च) और (तृतीयाम्) तृतीयान्त शब्द उपपद होने पर (उपपीडरुधकर्षः) उप-उपसर्गपूर्वक पीड, रुध, कर्ष (धातोः) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-संस्कृतभाषा में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(पीड) पार्श्वों से पीडित होकर सोता है। (रुध) व्रज में रोककर गौओं को रखता है। (कर्ष) हाथों से खैंचकर धानों को इकट्ठा करता है।

सिद्धि-(१) पार्श्वोपपीडम्। *पार्श्व+ओस्/भ्याम्+उपपीड्+णमुल्। पार्श्व+उपपीड्+अम्। पार्श्वोपपीडम्+सु। पार्श्वोपपीडम्।*

यहां सप्तम्यन्त/तृतीयान्त पार्श्व शब्द उपपद होने पर उप-उपसर्गपूर्वक ***'पीड अवगाहने'*** *(चु०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।* ***'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'*** *(२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-***पार्श्वयोरुपपीडम्*** *(सप्तमी)* ***पार्श्वाभ्यामुपपीडम्*** *(तृतीया)।*

(२) व्रजोपरोधम्। 'रुध आवरणे' (दि०आ०) पूर्ववत्।

(३) पाण्युपकर्षम्। 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

णमुल् (समासत्तौ)-

(२४) समासत्तौ।५०।

प०वि०-समासत्तौ ७।१।

अनु०-णमुल्, तृतीयायां, सप्तम्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयायां सप्तम्यां च धातोर्णमुल् समासत्तौ।

अर्थः-तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते च शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, समासत्तौ गम्यमानायाम्। समासत्तिः=समीपता।

उदाहरणम्-

धातुः		तृतीया	सप्तमी
(ग्रहः)	(क)	केशग्राहं युध्यन्ते।	केशग्राहं युध्यन्ते।
	(ख)	केशैर्ग्राहं युध्यन्ते।	केशेषु ग्राहं युध्यन्ते।
	(क)	हस्तग्राहं युध्यन्ते।	हस्तग्राहं युध्यन्ते।
	(ख)	हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते।	हस्तेषु ग्राहं युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त और (सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (समासत्तौ) यदि वहां समीपता अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-केश पकड़कर लड़ते हैं। हस्त पकड़कर लड़ते हैं।

*सिद्धि-(१) **केशग्राहम्।** केश+भिस्/सुप्+ग्रह्+णमुल्। केश+ग्राह्+अम्। केशग्राहम्+सु। केशग्राहम्।*

*यहां तृतीयान्त/सप्तम्यन्त केश शब्द उपपद होने पर 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के णित् होने से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**केशैर्ग्राहम्** (तृतीया) **केशेषु ग्राहम्** (सप्तमी) **ऐसे** ही-**हस्तग्राहम्,** इत्यादि।*

णमुल् (प्रमाणे)–

(२५) प्रमाणे च।५१।

प०वि०–प्रमाणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–णमुल् तृतीयायाम्, सप्तम्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तृतीयायां सप्तम्यां च धातोर्णमुल्, प्रमाणे च।

अर्थः–तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते च शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, प्रमाणेऽपि गम्यमाने।

उदा०–**(तृतीया)** द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। **(सप्तमी)** द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति। द्व्यङ्गुले उत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(तृतीयायाम्) तृतीयान्त और (सप्तम्याम्) सप्तम्यन्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (प्रमाणे) यदि वहां प्रमाण अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-दो अङ्गुल छोड़कर लकड़ी को काटता है।

__सिद्धि-(१) द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्।__ द्व्यङ्गुल+टा/ङि+उत्+कृष्+णमुल्। द्व्यङ्गुल+उत्+कर्ष्+अम्। द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्+सु। द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्।

यहां प्रमाणवाची तृतीयान्त/सप्तम्यन्त द्व्यङ्गुल शब्द उपपद होने पर उत्-उपसर्गपूर्वक 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम्, द्व्यङ्गुले उत्कर्षम्।

णमुल् (परीप्सायाम्)–

(२६) अपादाने परीप्सायाम्।५२।

प०वि०–अपादाने ७।१ परीप्सायाम् ७।१।

अनु०–णमुल् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अपादाने, धातोर्णमुल्, परीप्सायाम्।

अर्थः–अपादाने कारके उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, परीप्सायां गम्यमानायाम्। परीप्सा=त्वरा।

उदा०-शय्योत्थायं धावति। शय्याया उत्थायं धावति। एवं नाम त्वरते यदवश्यकर्तव्यमपि नापेक्षते, केवलं शय्योत्थानमात्रमाद्रियते।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपादाने) अपादान कारक उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (परीप्सायाम्) यदि वहां शीघ्रता अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-**शय्योत्थायं धावति। शय्याया उत्थायं धावति।** शय्या से उठकर भागता है। इतनी शीघ्रता करता है कि मुंह धोना आदि आवश्यक कर्तव्य की भी अपेक्षा नहीं करता है, शय्या से उठते ही भाग लेता है।*

*सिद्धि-(१) **शय्योत्थायम्।** शय्या+ङसि+उत्+स्था+णमुल्। शय्या+उत्+स्था+युक्+अम्। शय्या+उत्थाय्+अम्। शय्योत्थायम्+सु। शय्योत्थायम्।*

*यहां अपादान कारक में शय्या शब्द उपपद होने पर 'उत्' उपसर्गपूर्वक '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय होता है। '**उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य**' (८।४।६०) से 'स्था' धातु को पूर्व सवर्ण आदेश और '**आतो युक् चिण्कृतोः**' (७।३।३३) से 'युक्' आगम होता है। '**तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्**' (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**शय्याया उत्थायम्।***

णमुल् (परीप्सायाम्)-

(२७) द्वितीयायां च।५३।

प०वि०-द्वितीयायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-णमुल् परीप्सायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयायां च धातोर्णमुल् परीप्सायाम्।

अर्थः-द्वितीयान्ते शब्दे चोपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति, परीप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-यष्टिग्राहं युध्यन्ते। यष्टिं ग्राहं युध्यन्ते। लोष्टग्राहं युध्यन्ते। लोष्टं ग्राहं युध्यन्ते। एवं नाम त्वरन्ते यदायुधग्रहणमपि नापेक्षन्ते, लोष्टादिकं यत् किञ्चदासन्नं भवति तद् गृह्णन्ति, ततो युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है (परीप्सायाम्) यदि वहां शीघ्रता अर्थ की प्रतीति हो।

*उदा०-**यष्टिग्राहं युध्यन्ते। यष्टिं ग्राहं युध्यन्ते।** लाठी को लेकर लड़ते हैं। **लोष्टग्राहं युध्यन्ते। लोष्टं ग्राहं युध्यन्ते।** ढेले को लेकर लड़ते हैं। ऐसी शीघ्रता करते*

हैं कि शस्त्र आदि की अपेक्षा नहीं करते, अपितु ढेला आदि जो कुछ समीप हो उसे लेकर युद्ध करते हैं।

सिद्धि-(१) यष्टिग्राहम्। *यष्टि+अम्+ग्रह्+णमुल्। यष्टि+ग्राह्+अम्। यष्टिग्राहम्+सु। यष्टिग्राहम्।*

यहां द्वितीयान्त 'यष्टि' शब्द उपपद होने पर ***'ग्रह उपादाने'*** *(क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।* ***'अत उपधायाः'*** *((७।२।११६) से 'ग्रह्' धातु को उपधावृद्धि होती है।* ***'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'*** *(२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**यष्टिं ग्राहम्।** ऐसे ही-**लोष्टग्राहम्,** इत्यादि।*

णमुल्-

(२८) स्वाङ्गेऽध्रुवे।५४।

प०वि०-स्वाङ्गे ७।१ अध्रुवे ७।१।

स०-न ध्रुवमिति अध्रुवम्, तस्मिन्-अध्रुवे (नञ्तत्पुरुषः)। यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न म्रियते तदध्रुवमङ्गमुच्यते, पाणिपादादिकम्।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अध्रुवे स्वाङ्गे धातोर्णमुल्।

अर्थः-अध्रुवे स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्ते शब्दे उपपदे धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अक्षिनिकाणं जल्पति। अक्षि निकाणं जल्पति। भ्रूविक्षेपं कथयति। भ्रुवं विक्षेपं कथयति।

आर्यभाषा-अर्थ-(अध्रुवे) *जिसके कटने पर प्राणी नहीं करता है उस (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अक्षिनिकाणं जल्पति। अक्षि निकाणं जल्पति।** आंख बन्द करके बकता है। **भ्रूविक्षेपं कथयति। भ्रुवं विक्षेपं कथयति।** भौंह को टेढ़ी करके कहता है।*

सिद्धि-(१) अक्षिनिकाणम्। *अक्षि+अम्+नि+कण्+णमुल्। अक्षि+नि+काण्+अम्। अक्षिनिकाणम्+सु। अक्षिनिकाणम्।*

यहां स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'अक्षि' शब्द उपपद होने पर 'नि' उपसर्गपूर्वक ***'कण निमीलने'*** *(चुरादि०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।* ***'अत उपधायाः'*** *(७।२।११६) से 'कण्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **भ्रूविक्षेपम्।** भ्रू+अम्+वि+क्षिप्+णमुल्। भ्रू+वि+क्षेप्+अम्। भ्रूविक्षेप्+अम्। भ्रूविक्षेपम्+सु। भ्रूविक्षेपम्।*

*यहां स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'भ्रू' शब्द उपपद होने पर 'वि' उपसर्गपूर्वक **'क्षिप प्रेरणे'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'क्षिप्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**भ्रुवं विक्षेपम्।***

णमुल्–

(२६) परिक्लिश्यमाने च।५५।

प०वि०–परिक्लिश्यमाने ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–णमुल्, द्वितीयायां स्वाङ्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गे द्वितीयायां धातोर्णमुल्।

अर्थः–परिक्लिश्यमाने=सर्वतः क्लिश्यमाने स्वाङ्वाचिनि द्वितीयान्ते शब्दे उपपदेऽपि धातोः परो णमुल् प्रत्ययो भवति। परिक्लेशः=सर्वतो विबाधनम्, दुःखनम्।

उदा०–उरःपेषं युध्यन्ते। उरः पेषं युध्यन्ते। शिरःपेषं युध्यन्ते। शिरः पेशं युध्यन्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(परिक्लिश्यमाने) सब ओर से क्लेश को प्राप्त होनेवाले (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (च) भी (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**उरःपेषं युध्यन्ते। उरः पेषं युध्यन्ते।** सब ओर से छाती को कष्ट देते हुये युद्ध करते हैं। **शिरःपेषं युध्यन्ते। शिरः पेशं युध्यन्ते।** सब ओर से शिर को कष्ट देते हुये युद्ध करते हैं।*

*सिद्धि-(१) **उरःपेषम्।** यहां परिक्लिश्यमान स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त 'उरस्' शब्द उपपद होने पर **'पिष्लृ पेषणे'** (रुधा०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**उरःपेषम्।***

(२) शिरःपेषम्। पूर्ववत्।

णमुल्–

(३०) विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः।५६।

प०वि०–विशि-पति-पदि-स्कन्दाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) व्याप्यमाना-सेव्यमानयोः ७।२।

स०-विशिश्च पतिश्च पदिश्च स्कन्द् च ते-विशिपतिपदिस्कन्द:, तेषाम्-विशिपतिपदिस्कन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वय:-द्वितीयायां व्याप्यमानासेव्यमानयोर्विशि०स्कन्दिभ्यो धातुभ्यो णमुल्।

अर्थ:-द्वितीयान्ते शब्दे उपपदे व्याप्यमान-आसेव्यमानयोरर्थयो-र्वर्तमानेभ्यो विशिपतिपदिस्कन्दिभ्यो धातुभ्य: परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

विशि-आदिभि: क्रियाभि: सह साकल्येन पदार्थानां सम्बन्धो व्याप्तिरित्युच्यते। तात्पर्यं चाऽऽसेवा भवति। द्रव्ये व्याप्तिर्भवति क्रियायां चाऽऽसेवा भवति। समासेन व्याप्ति-आसेवयोरुक्तत्वात् **'नित्यवीप्सयो:'** (८।१।४) इति द्विर्वचनं न भवति, **'उक्तार्थानामप्रयोग:'** इति वचनात्। असमासपक्षे तु व्याप्यमानतायां द्रव्यस्य द्विर्वचनं भवति। आसेव्यमानतायां च क्रियावचनस्य द्विर्वचनं भवति। तथा चोक्तम्-सुप्सु वीप्सा तिङ्क्षु च नित्यता भवति। **उदाहरणम्**-

धातु:		**व्याप्यमानता**	**आसेव्यमानता**
विशि:	(क)	गेहानुप्रवेशमास्ते।	गेहानुप्रवेशमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते	गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते।
पति:	(क)	गेहानुप्रपातमास्ते।	गेहानुप्रपातमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते।	गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते।
पदि:	(क)	गेहानुप्रपादमास्ते।	गेहानुप्रपादमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते।	गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते।
स्कन्दि:	(क)	गेहावस्कन्दमास्ते।	गेहावस्कन्दमास्ते।
	(ख)	गेहं गेहमवस्कन्दमास्ते।	गेहमवस्कन्दमवस्कन्दमास्ते।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (व्याप्यमानासेव्यमानयो:) व्याप्यमान और आसेव्यमान अर्थ में विद्यमान (विशि०स्कन्दाम्) विशि, पति, पदि, स्कन्द् (धातो:) धातुओं से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।*

विश-आदि क्रियाओं के साथ सम्पूर्णता से पदार्थों का सम्बन्ध होना व्याप्ति कहाती है। तत्परता एवं क्रिया का बार-बार होना आसेवा कहाती है। द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहा करती है। समास के द्वारा व्याप्ति और आसेवा का कथन होने से **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से द्वित्व नहीं होता है, इसमें **'उक्तार्थानामप्रयोगः'** यह महाभाष्य वचन प्रमाण है।

असमास पक्ष में व्याप्यमानता अर्थ में द्रव्यवाची शब्द को द्वित्व होता है और आसेव्यमानता अर्थ में क्रियावाची शब्द को द्वित्व होता है। जैसा कि कहा गया है-सुबन्तों में वीप्सा (व्यापकता) और तिङन्तों में नित्यता (आसेव्यता) रहती है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-

	धातु	व्याप्यमानता	आसेव्यमानता
(१)	विशि	घर-घर में प्रवेश करता है।	घर में बार-बार प्रवेश करता है।
(२)	पति	घर-घर में जाता है।	घर में बार-बार जाता है।
(३)	पदि	घर-घर में जाता है।	घर में बार-बार जाता है।
(४)	स्कन्द	घर-घर में कूदता है।	घर में बार-बार कूदता है।

सिद्धि-(१) गेहानुप्रवेशम्। यहां द्वितीयान्त गेह शब्द उपपद होने पर अनु-प्र उपसर्गपूर्वक **'विश प्रवेशने'** (तु०प०) धातु से इस सूत्र से णमुल् प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'विश्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से उपपद समास होता है।

समास पक्ष में व्याप्यमानता और आसेव्यमानता का समास के द्वारा ही कथन होने से द्वित्व नहीं होता है।

असमास पक्ष में व्याप्ति अर्थ में द्रव्यवाची गेह शब्द को और आसेवा (नित्यता) अर्थ में क्रियावाची शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से द्वित्व होता है। जैसा कि उदाहरणों में दर्शाया गया है।

(२) **गेहानुप्रपातम्।** अनु-प्र उपसर्गपूर्वक **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०)।

(३) **गेहानुप्रपादम्।** अनु-प्र उपसर्गपूर्वक **'पद गतौ'** (दि०आ०)।

(४) **गेहावस्कन्दम्।** अव-उपसर्गपूर्वक **'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः'** (भ्वा०प०)।

णमुल्–

(३१) अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु।५७।

प०वि०-अस्यति-तृषोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) क्रियान्तरे ७।१ कालेषु ७।३।

स०-अस्यतिश्च तृष् च तौ-अस्यतितृषौ, तयोः-अस्यतितृषोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क्रियामन्तरयतीति क्रियान्तरः, तस्मिन्-क्रियान्तरे (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालेषु द्वितीयायां क्रियान्तरेऽस्यतितृषिभ्यां णमल्।

अर्थः-कालवाचिषु द्वितीयान्तेषु शब्देषु उपपदेषु क्रियान्तरेऽर्थे वर्तमानाभ्यामस्यतितृषिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अस्यतिः) द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति। **(तृष्)** द्व्यहतर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाः पाययति।

आर्यभाषा-अर्थ-(कालेषु) कालवाची (द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त शब्द उपपद होने पर (क्रियान्तरे) क्रिया के व्यवधान अर्थ में विद्यमान (अस्यतितृषोः) अस्यति, तृष् (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(अस्यतिः)** **द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासं गाः पाययति।** दो दिन को लांघकर गौओं को जल पिलाता है। **(तृष्)** **द्व्यहतर्षं गाः पाययति। द्व्यहं तर्षं गाः पाययति।** दो दिन प्यासी रखकर गौओं को जल पिलाता है।*

*सिद्धि-(१) **द्व्यहात्यासम्।** द्व्यह+अम्+अति+अस्+णमुल्। द्व्यह+अति+आस्+अम्। द्व्यहात्यासम्+सु। द्व्यहात्यसम्।*

*यहां कालवाची द्वितीयान्त द्व्यह शब्द उपपद होने पर अति-उपसर्गपूर्वक **'असु क्षेपणे'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'अस्' धातु को उपधावृद्धि होती है। **'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'** (२।२।२१) से विकल्प से समास होता है-**द्व्यहम् अत्यासम्।***

*(२) **द्व्यहतर्षम्।** **'तृष् पिपासायाम्'** (दि०प०) पूर्ववत्।*

णमुल्-

(३२) नाम्न्यादिशिग्रहोः।५८।

प०वि०-नाम्नि ७।१ आदिशि-ग्रहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-आदिशिश्च ग्रह् च तौ-आदिशिग्रहौ, तयोः-आदिशिग्रहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-णमुल्, द्वितीयायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयायाम् आदिदिशिग्रहिभ्यां धातुभ्यां णमुल्।

अर्थः-द्वितीयान्ते नाम-शब्दे उपपदे आदिशिग्रहिभ्यां धातुभ्यां परो णमुल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(आदिशि) नामादेशमाचष्टे। नाम आदेशमाचष्टे। **(ग्रह्)** नामग्राहमाचष्टे। नाम ग्राहमाचष्टे।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्वितीयायाम्) द्वितीयान्त (नाम्नि) नाम शब्द उपपद होने पर (आदिशिग्रहोः) आदिशि, ग्रह (धातोः) धातु से परे (णमुल्) णमुल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(आदिशि) ***नामादेशमाचष्टे। नाम आदेशमाचष्टे।*** *नाम उच्चारण करके कहता है। (ग्रह्)* ***नामग्राहमाचष्टे। नाम ग्राहमाचष्टे।*** *नाम लेकर कहता है।*

सिद्धि-(१) ***नामादेशम्।*** *नाम+अम्+आङ्+दिश्+णमुल्। नाम+आ+देश्+अम्। नामदेशम्+सु। नामादेशम्।*

यहां द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद होने पर 'आङ्' उपसर्गपूर्वक ***'दिश अतिसर्जने'*** *(तु०उ०) धातु से इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय है।* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से 'दिश्' धातु को लघूपध गुण होता है।* ***'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्'*** *(२।२।२१) से विकल्प से उपपद समास होता है-* ***नाम आदेशम्।***

(२) ***नामग्राहम्।*** *'ग्रह उपदाने' (क्र्या०प०) पूर्ववत्।*

क्त्वाणमुल्प्रत्ययप्रकरणम्

क्त्वा+णमुल् (अन्यथाभिप्रेताख्याने)-

(१) अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ।५६।

प०वि०-अव्यये ७।१ अयथाभिप्रेताख्याने ७।१ कृञः ५।१ क्त्वा-णमुलौ १।२।

स०-अभिप्रेतमनतिक्रम्य इति यथाभिप्रेतम्, न यथाभिप्रेतमिति अयथाभिप्रेतम्, अयथाभिप्रेतस्याख्यानमिति अयथाभिप्रेतख्यानम्, तस्मिन्-अयथाभिप्रेताख्याने (अव्ययीभावनञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। क्त्वाश्च णमुल् च तौ-क्त्वाणमुलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अव्यये कृञः क्त्वाणमुलावयथाभिप्रेताख्याने।

अर्थः-अव्यय-शब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः, अभिताभिप्रेताख्याने गम्यमाने।

उदा०-(क्त्वा) ब्राह्मण ! पुत्रस्ते जातः, किं तर्हि वृषल ! नीचैः कृत्याचष्टे, नीचैः कृत्वाऽऽचष्टे (णमुल्) नीचैकारमाचष्टे, नीचैः कारमाचष्टे। उच्चैर्नाम प्रियमाख्येयम्। (क्त्वा) ब्राह्मण ! कन्या ते गर्भिणी, किं तर्हि वृषल ! उच्चैःकृत्याचष्टे, उच्चैः कृत्वाचष्टे, (णमुल्) उच्चैःकारमाचष्टे। उच्चैः कारमाचष्टे। नीचैर्नामाप्रियमाख्येयम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(अव्यये) अव्यय शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं (अयथाभिप्रेताख्याने) यदि वहां अयथाभिप्रेत बात का कथन हो।

*उदा०-(क्त्वा) **ब्राह्मण ! पुत्रस्ते जातः, किं तर्हि वृषल ! नीचैःकृत्याचष्टे। नीचैः कृत्वाऽऽचष्टे। (णमुल्) नीचैः कारमाचष्टे। नीचैः कारमाचष्टे।** हे ब्राह्मण ! तेरे घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, तो हे नीच ! तू इस बात को नीचे स्वर में क्यों कहता है। प्रिय बात तो ऊंचे स्वर में कहनी चाहिये। (क्त्वा) **ब्राह्मण ! कन्या ते गर्भिणी, किं तर्हि वृषल ! उच्चैःकृत्याचष्टे, उच्चैः कृत्वाचष्टे, उच्चैःकारमाचष्टे, उच्चैः कारमाचष्टे।** हे ब्राह्मण ! तेरी कन्या गर्भिणी है, हे नीच ! तू इस बात को ऊंचे स्वर में क्यों कहता है ? अप्रिय बात तो नीचे स्वर में कहनी चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **नीचैःकृत्य।** नीचैः+कृ+त्वा। नीचैः+कृ+ल्यप्। नीचैः+कृ+तुक्+य। नीचैःकृत्य+सु। नीचैःकृत्य।*

*यहां अव्यय नीचैः शब्द उपपद होने पर अयथाभिप्रेत के कथन में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' (२।२।२१) से विकल्प उपपद समास होता है। समास पक्ष में 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से क्त्वा प्रत्यय को 'ल्यप्' आदेश और 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है। असमास पक्ष में-**नीचैः कृत्वा।***

*(२) **नीचैःकारम्।** पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'णित्' होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है। समासपक्ष में एक पद और एक स्वर होता है। असमास पक्ष में पृथक् पद और पृथक् स्वर होता है-**नीचैः कारम्।** ऐसे ही-**उच्चैःकृत्य** इत्यादि।*

क्त्वा+णमुल् (अपवर्गे)-

(२) तिर्यच्यपवर्गे।६०।

प०वि०-तिर्यचि ७।१ अपवर्गे ७।१।

अनु०-कृञः क्त्वाणमुलौ इति चानुवर्तते।

अर्थः-अपवर्गेऽर्थे तिर्यक्-शब्दे उपपदे कृञ्-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः । अपवर्गः=समाप्तिः ।

उदा०-**(क्त्वा)** तिर्यक्कृत्य गतः, तिर्यक् कृत्वा गतः । **(णमुल्)** तिर्यक्कारंगतः, तिर्यक्कारं गतः । समाप्य गत इत्यर्थः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(अपवर्गे) समाप्ति-अर्थक (तिर्यचि) तिर्यक् शब्द उपपद होने पर (कृञः) कृञ् (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(क्त्वा) तिर्यक्कृत्य गतः, तिर्यक् कृत्वा गतः। (णमुल्) तिर्यक्कारं गतः, तिर्यक्कारं गतः। समाप्त करके चला गया।

सिद्धि-'तिर्यक्कृत्य' आदि शब्दों की सिद्धि 'नीचैःकृत्य' आदि शब्दों के समान है।

क्त्वा+णमुल्-

(३) स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः।६१।

प०वि०-स्वाङ्गे ७ ।१ तस्-प्रत्यये ७ ।१ कृभ्वोः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे) ।

स०-स्वस्याङ्गमिति स्वाङ्गम्, तस्मिन्-स्वाङ्गे (षष्ठीतत्पुरुषः) । तस् चासौ प्रत्यय इति तस्-प्रत्ययः, तस्मिन्-तस्प्रत्यये (कर्मधारयः) । कृश्च भूश्च तौ कृभ्वौ, तयोः-कृभ्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-क्त्वाणमुलावित्यनुवर्तते ।

अन्वयः-तस्प्रत्यये स्वाङ्गे कृभूभ्यां क्त्वाणमुलौ ।

अर्थः-तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गवाचिनि शब्दे उपपदे कृभूभ्यां धातुभ्यां परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः । यथासंख्यमत्र नेष्यते । **उदाहरणम्-**

	धातुः	**क्त्वा**	**णमुल्**
(१)	कृः	मुखतःकृत्य गतः ।	मुखतःकारं गतः ।
		मुखतः कृत्वा गतः ।	मुखतः कारं गतः ।
		पृष्ठतःकृत्य गतः ।	पृष्ठतःकारं गतः ।
		पृष्ठतः कृत्वा गतः ।	पृष्ठतः कारं गतः ।
(२)	भूः	मुखतोभूय गतः ।	मुखतोभावं गतः ।
		मुखतो भूत्वा गतः ।	मुखतो भावं गतः ।
		पृष्ठतोभूय गतः ।	पृष्ठतोभावं गतः ।
		पृष्ठतो भूत्वा गतः ।	पृष्ठतो भावं गतः ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्प्रत्यये) तस्-प्रत्ययान्त (स्वाङ्गे) स्वाङ्गवाची शब्द उपपद होने पर (कृभ्वोः) कृ, भू (धातोः) धातुओं से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं। यहां यथासंख्य प्रत्ययविधि अभीष्ट नहीं है।

उदा०-संस्कृतभाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(कृ) आगे से करके चला गया। पीछे से करके चला गया। (भू) आगे से होकर चला गया। पीछे से होकर चला गया।

*सिद्धि-(१) **मुखतःकृत्य।** मुख+तस्। मुखतः। मुखतः+कृ+क्त्वा। मुखतः+कृ+ल्यप्। मुखतः+कृ+तुक्+य। मुखतः+कृत्य। मुखतःकृत्य+सु। मुखतःकृत्य।*

*यहां प्रथम स्वाङ्गवाची मुख शब्द से **'अपादाने चाहीयरुहोः'** (५।४।४५) से तस् प्रत्यय है। तस्-प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची 'मुखतः' शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से इस सूत्र से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकृत्य' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में-**मुखतः कृत्वा।***

*(२) **मुखतःकारम्।** पूर्वोक्त मुखतः शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि होती है।*

*(३) **मुखतोभूय।** 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(४) **मुखतोभावम्।** 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) पूर्ववत् असमास पक्ष में- **'मुखतो भावम्'** पृथक्-पृथक् पद और पृथक्-पृथक् स्वर होता है।*

क्त्वा-णमुल् (च्वि-अर्थे)-

(४) नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे।६२।

प०वि०-नाधार्थ-प्रत्यये ७।१ च्वि-अर्थे ७।१।

स०-नाश्च धाश्च तौ नाधौ, तयोरर्थ इवार्थो येषां ते नाधार्थाः। नाधार्थाः प्रत्यया यस्मात् सः-नाधार्थप्रत्ययः, तस्मिन्-नाधार्थप्रत्यये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। च्वेरर्थ इति च्व्यर्थः, तस्मिन्-च्व्यर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-क्त्वाणमुलौ, कृभ्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-च्वि-अर्थे नाधार्थप्रत्यये कृभूभ्यां धातुभ्यां क्त्वाणमुलौ।

अर्थः-च्वि-अर्थे=अभूततद्भावेऽर्थे नाधार्थप्रत्ययान्ते शब्दे उपपदे कृभूभ्यां धातुभ्यां परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(१) **(नार्थे-कृ+क्त्वा)** अनाना नाना कृत्वा गत इति नानाकृत्य गतः। नाना कृत्वा गतः। अविना विना कृत्वा गत इति

विनाकृत्य गतः। विना कृत्वा गतः। **(णमुल्)** अनाना नानाकारं गत इति नानाकारं गतः। नाना कारं गतः। अविना विना कारं गत इति विनाकारं गतः। विना कारं गतः।

(२) **(नार्थे-भू+क्त्वा)** अनाना नाना भूत्वा गत इति नानाभूय गतः। नाना भूत्वा गतः। अविना विना भूत्वा गत इति विनाभूय गतः। विना भूत्वा गतः। **(णमुल्)** अनाना नाना भावं गत इति नानाभावं गतः। नाना भावं गतः। अविना विना भावं गत इति विनाभावं गतः। विना भावं गतः।

(३) **(धार्थे-कृ+क्त्वा)** अद्विधा द्विधा कृत्वा गत इति द्विधाकृत्य गतः। द्विधा कृत्वा गतः। अद्वैधं द्वैधं कृत्वा गत इति द्वैधंकृत्य गतः। द्वैधं कृत्वा गतः। **(णमुल्)** अद्विधा द्विधाकारं गत इति द्विधाकारं गतः। द्विधा कारं गतः। अद्वैधं द्वैधं कारं गत इति द्वैधंकारं गतः। द्वैधं कारं गतः।

(४) **(धार्थे-भू+क्त्वा)** अद्विधा द्विधा भूत्वा गत इति द्विधाभूय गतः। द्विधा भूत्वा गतः। अद्वैधं द्वैधं भूत्वा गत इति द्वैधंभूय गतः। द्वैधं भूत्वा गतः। **(णमुल्)** अद्विधा द्विधा भावं गत इति द्विधाभावं गतः। द्विधा भावं गतः। अद्वैधं द्वैधं भावं गत इति द्वैधंभावं गतः। द्वैधं भावं गतः।

__आर्यभाषा-अर्थ-__(च्वि-अर्थे) अभूततद्भाव अर्थ में (नाधार्थप्रत्यये) नार्थ-प्रत्ययान्त और धार्थ-प्रत्ययान्त शब्द उपपद होने पर (कृभ्वोः) कृ, भू (धातोः) धातुओं से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-

(१) __(नार्थ-कृ+क्त्वा/णमुल्)__ जो नाना=अनेक नहीं था, उसे अनेक बनाकर चला गया। जो बिना (रहित) नहीं था उसे बिना बनाकर चला गया।

(२) __(नार्थ-भू+क्त्वा/णमुल्)__ जो नाना=अनेक नहीं था, वह अनेक होकर चला गया। जो बिना (रहित) नहीं था, वह बिना होकर चला गया।

(३) __(धार्थ-कृ+क्त्वा/णमुल्)__ जो दो प्रकार का नहीं था, उसे दो प्रकार का बनाकर चला गया।

(४) __(धार्थ-भू+क्त्वा+णमुल्)__ जो दो प्रकार का नहीं था, वह दो प्रकार का होकर चला गया।

*सिद्धि-(१) **नानाकृत्य।** यहां नाना शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य **'नीचैःकृत्य'** (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में **नाना कृत्वा।***

*(२) **नानाकारम्।** यहां नाना शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'नीचैःकारम्'** (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में- **'नाना कारम्'** पृथक्-पृथक् पद और पृथक्-पृथक् स्वर होता है। ऐसे ही अन्य प्रयोगों की भी सिद्धि समझ लेवें।*

*(३) **नाना।** यहां **'विनञ्भ्यां नानाञौ न सह'** (५।२।२७) से नञ् शब्द से नाञ् प्रत्यय है।*

*(४) **विना।** यहां पूर्वोक्त सूत्र से 'वि' शब्द से 'ना' प्रत्यय है।*

*(५) **द्विधा।** यहां 'द्वि' शब्द से **'संख्याया विधार्थे धा'** (५।३।४२) से 'धा' प्रत्यय है।*

*(६) **द्वैधम्।** यहां 'द्वि' शब्द से **'द्वित्र्योश्च धमुञ्'** (५।३।४५) से 'धमुञ्' प्रत्यय है।*

च्वि-अर्थ- *'**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से च्वि-प्रत्यय अभूततद्भाव अर्थ में होता है।*

क्त्वा+णमुल्--

(५) तूष्णीमि भुवः।६३।

प०वि०-तूष्णीमि ७।१ भुवः ५।१।

अनु०-क्त्वाणमुलावित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तूष्णीमि भुवो धातोर्णमुल्।

अर्थः-तूष्णीम्-शब्दे उपपदे भू-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(क्त्वा) तूष्णींभूय गतः। तूष्णीं भूत्वा गतः। **(णमुल्)** तूष्णींभावं गतः। तूष्णीं भावं गतः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(तूष्णीमि) तूष्णीम् शब्द उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(क्त्वा) **तूष्णींभूय गतः। तूष्णीं भूत्वा गतः।** (णमुल्) **तूष्णींभावं गतः। तूष्णीं भावं गतः।** चुप होकर चला गया।*

सिद्धि-(१) तूष्णींभूय। यहां 'तूष्णीम्' शब्द उपपद होने पर 'भू' धातु से क्त्वा प्रत्यय है। शेष कार्य 'नीचैःकृत्य' (३।३।५९) के समान है। असमास पक्ष में-तूष्णीं भूत्वा।

(२) तूष्णींभावम्। यहां तूष्णीम् शब्द उपपद होने पर 'भू' धातु से णमुल् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'भू' धातु को वृद्धि होती है। असमास पक्ष में पृथक् पद और पृथक् स्वर होता है-तूष्णीं भावम्।

क्त्वा-णमुल्-

(६) अन्वच्यानुलोम्ये।६४।

प०वि०-अन्वचि ७।१ आनुलोम्ये ७।१।

अनुलोमं भाव आनुलोम्यम्, तस्मिन्-आनुलोम्ये **'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) इति भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः। आनुलोम्यम्=अनुकूलता।

अनु०-क्त्वाणमुलौ, भुव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आनुलोम्येऽन्वचि भुवो धातोः क्त्वाणमुलौ।

अर्थः-आनुलोम्येऽर्थेऽन्वक्शब्दे उपपदे भू-धातोः परौ क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(क्त्वा)** अन्वग्भूयास्ते। अन्वग् भूत्वास्ते। **(णमुल्)** अन्वग्भावमास्ते। अन्वग् भावमास्ते।

आर्यभाषा-अर्थ-(आनुलोम्ये) अनुकूलता अर्थ में (अन्वचि) अन्वक् शब्द उपपद होने पर (भुवः) भू (धातोः) धातु से परे (क्त्वाणमुलौ) क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(क्त्वा) अन्वग्भूयास्ते। अन्वग् भूत्वास्ते। (णमुल्) अन्वग्भावमास्ते। अन्वग् भावमास्ते। अनुकूल होकर रहता है।

सिद्धि-'अन्वग्भूय' आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

तुमुन्प्रत्ययविधिः

तुमुन्-

(१) शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्।६५।

प०वि०- शक-धृष-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सह-अर्ह-अस्त्यर्थेषु ७।३ तुमुन् १।१।

स०-अस्तिरर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः। शकश्च धृषश्च ज्ञाश्च ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च सहश्च अर्हश्च अस्त्यर्थाश्च ते-शक०अस्त्यर्थाः, तेषु-शक०अस्त्यर्थेषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-शकादिषु धातुषु उपपदेषु धातुमात्रात् तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**शकः**) शक्नोति भोक्तुम्। (**धृषः**) धृष्णोति भोक्तुम्। (**ज्ञाः**) जानाति भोक्तुम्। (**ग्लाः**) ग्लायति भोक्तुम्। (**घटः**) घटते भोक्तुम्। (**रभः**) आरभते भोक्तुम्। (**लभः**) लभते भोक्तुम्। (**क्रमः**) प्रक्रमते भोक्तुम्। (**सहः**) सहते भोक्तुम्। (**अर्हः**) अर्हति भोक्तुम्। (**अस्त्यर्थाः**) अस्ति भोक्तुम्। भवति भोक्तुम्। विद्यते भोक्तुम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(शक०अस्त्यर्थेषु) शक, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह और अस्त्यर्थक धातु उपपद होने पर (धातोः) धातुमात्र से (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(शक) **शक्नोति भोक्तुम्।** वह खा सकता है। (धृष) **धृष्णोति भोक्तुम्।** वह खाने में कुशल है। (ज्ञा) **जानाति भोक्तुम्।** वह खाना जानता है। (ग्ला) **ग्लायति भोक्तुम्।** वह खाने से ग्लानि करता है। (घट) **घटते भोक्तुम्।** वह खाने की चेष्टा करता है। (रभ) **आरभते भोक्तुम्।** वह खाना आरम्भ करता है। (लभ) **लभते भोक्तुम्।** वह खाना प्राप्त करता है। (क्रम) **प्रक्रमते भोक्तुम्।** वह खाना प्रारम्भ करता है। (सह) **सहते भोक्तुम्।** वह खाने को सहन करता है। (अर्ह) **अर्हति भोक्तुम्।** वह खाना खाने के योग्य है। (अस्त्यर्थक) **अस्ति भोक्तुम्। भवति भोक्तुम्। विद्यते भोक्तुम्।** खाना है।*

सिद्धि-*(१) **भोक्तुम्।** भुज्+तुमुन्। भोग्+तुम्। भोक्+तुम्। भोक्तम्+सु। भोक्तुम्।*

*यहां शक आदि धातु उपपद होने पर 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। '**चोः कुः**' (८।२।३०) से 'भुज्' धातु के 'ज्' को 'ग्' और '**खरि च**' (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।*

(२) शक आदि धातुओं के मूल अर्थ पाणिनीय धातुपाठ में देख लेवें।

तुमुन्-

(२) पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु।६६।

प०वि०-पर्याप्तिवचनेषु ७।३ अलमर्थेषु ७।३।

स०-पर्याप्तिरुच्यते यैस्ते-पर्याप्तिवचनाः, तेषु-पर्याप्तिवचनेषु (उपपदसमासः)। पर्याप्तिः=अन्यूनता, परिपूर्णतेत्यर्थः। अलम् अर्थो येषां तेऽलमर्थाः, तेषु-अलमर्थेषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तुमुन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अलमर्थेषु पर्याप्तिवचनेषु धातोस्तुमुन्।

अर्थः-अलमर्थेषु पर्याप्तिवचनेषु शब्देषु उपपदेषु धातोः परस्तुमुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्याप्तो भोक्तुं देवदत्तः। अलं भोक्तुं यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा-अर्थ-*(अलमर्थेषु) अलम् अर्थवाले (पर्याप्तिवचनेषु) परिपूर्णतावाची शब्द उपपद होने पर (धातोः) धातु से परे (तुमुन्) तुमुन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पर्याप्तो भोक्तुं** देवदत्तः। देवदत्त खाने में समर्थ है। **अलं भोक्तुं यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त खाने में समर्थ है।*

'अलम्' शब्द का अर्थ परिपूर्णता है। परिपूर्णता दो प्रकार से हो सकती है, भोजन की अन्यूनता तथा भोक्ता के सामर्थ्य से। यहां भोक्ता के सामर्थ्य का ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-(१) भोक्तुम्। *यहां 'भुज्' धातु से इस सूत्र से 'तुमुन्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भुज्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'भुज्' के 'ज्' को 'ग्' और **'खरि च'** (८।४।५४) से 'ग्' को चर् 'क्' होता है।*

प्रत्ययार्थप्रकरणम्

कृत् (कर्तरि)-

(१) कर्तरि कृत्।६७।

प०वि०-कर्तरि ७।१ कृत् १।१।

अर्थः-अत्र धातोर्विहिताः कृत्-संज्ञकाः प्रत्ययाः कर्तरि कारके भवन्ति। यत्रार्थनिर्देशो नास्ति तत्रायं विधिरुपतिष्ठते, अर्थाकाङ्क्षत्वात्।

उदा०-कारकः। कर्ता। नन्दनः। ग्राही। पचः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-*(धातोः) यहां धातु से विधान किये गये (कृत्) कृत्-संज्ञक प्रत्यय (कर्तरि) कर्ता कारक में होते हैं। जहां किसी अर्थविशेष का निर्देश नहीं किया गया है, वहां यह विधान उपस्थित होता है, क्योंकि वहां अर्थ की आकाङ्क्षा होती है।*

*उदा०-**कारकः।** करनेवाला। **कर्ता।** करनेवाला। **नन्दनः।** आनन्दित करनेवाला। **ग्राही।** ग्रहण करनेवाला। **पचः।** पकानेवाला।*

सिद्धि-'कारक' आदि शब्दों की सिद्धि 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) तथा 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०' (३।१।१३४) में की जा चुकी है, वहां देख लेवें।

विशेष-'कृदतिङ्' (३।१।९३) से धातु से विहित तिङ्-भिन्न प्रत्ययों की कृत्-संज्ञा है।

भव्यादयः (वा कर्तरि)-

(२) भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।६८।

प०वि०- भव्य-गेय-प्रवचनीय-उपस्थानीय-जन्य-आप्लाव्य-आपात्याः १।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०-कर्तरि इत्यनुवर्तते।

अर्थः-कृत्यप्रत्ययान्ता भव्यादयः शब्दाः कर्तरि कारके विकल्पेन निपात्यन्ते। **'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'** (३।४।७०) इति भावे कर्मणि च प्राप्ते विकल्पेन कर्तरि विधीयन्ते। **उदाहरणम्-**

	शब्दः	**कर्तरि**	**भावे/कर्मणि**
(१)	भव्यः	भवत्यसौ भव्यः	भव्यमनेन (भा०)
(२)	गेयः	गेयो माणवकः साम्नाम्	गेयानि माणवकेन सामानि
(३)	प्रवचनीयः	प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य।	प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः (क०)।
(४)	उपस्थानीयः	उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः।	उपस्थानीयोऽन्तेवासिना गुरुः (क०)।
(५)	जन्यः	जायतेऽसौ जन्यः	जंन्यमनेन (भा०)।
(६)	आप्लाव्यः	आप्लावतेऽसावाप्लाव्यः।	आप्लाव्यमनेन (भा०)।
(७)	आपात्यः	आपतत्यसावापात्यः।	आपात्यमनेन (भा०)।

आर्यभाषा-अर्थ-(भव्य०आपात्याः) कृत्य-प्रत्ययान्त भव्य, गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय, जन्य, आप्लाव्य, आपात्य शब्द (कर्तरि) कर्ता कारक अर्थ में (वा) विकल्प से निपातित हैं।

*उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-**(भव्य)** वर्तमान। इसके द्वारा होना चाहिये। **(गेय)** यह बालक साम-मन्त्रों का गान करनेवाला है। इस बालक के द्वारा साम-मन्त्रों का गान करना चाहिये। **(प्रवचनीय)** गुरु स्वाध्याय का प्रवचन करनेवाला*

है। गुरु के द्वारा स्वाध्याय का प्रवचन करना चाहिये। **(उपस्थानीय)** यह अन्तेवासी गुरु का उपस्थान करनेवाला है। शिष्य के द्वारा गुरु का उपस्थान करना चाहिये। **(जन्य)** उत्पन्न होनेवाला। उसके द्वारा उत्पन्न होना चाहिये। **(आप्लाव्य)** स्नान करनेवाला। इसके द्वारा स्नान करना चाहिये। **(आपात्य)** आक्रमण करनेवाला। इसके द्वारा आक्रमण करना चाहिए।

सिद्धि-(१) भव्यः। भू+यत्। भो+य। भव्य+सु। भव्यः।

यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय कर्ता अर्थ में निपातित है। **'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'** (३।४।७०) से केवल भाव अर्थ में 'यत्' प्रत्यय था। वा-वचन से भाव अर्थ में भी होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८६) से 'भू' धातु को गुण और **'धातोस्तन्निमित्तस्यैव'** (६।४।७७) से 'अव्' आदेश होता है।

(२) गेयः। यहां **'गै शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। **'ईद्यति'** (६।४।६५) से 'गा' धातु को ईत्त्व और पूर्ववत् गुण होता है। इस धातु से 'यत्' प्रत्यय कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(३) प्रवचनीयः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'वच परिभाषणे'** (अदा०प०) धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'अनीयर्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अनीयर्' प्रत्यय कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(४) उपस्थानीयः। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'अनीयर्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वह कर्ता और कर्म अर्थ में होता है।

(५) जन्यः। यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दिवा०आ०) धातु से **'वा०-तकिशसियतिचतिजनीनामुपसंख्यानम्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वह कर्ता और भाव अर्थ में होता है।

(६) आप्लाव्यः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'प्लुङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ओरावश्यके'** (३।१।१२५) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'प्लु' धातु को वृद्धि और **'धातोस्तन्निमित्तस्यैव'** (६।१।७७) से 'आव्' आदेश होता है।

(७) आपात्यः। यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'पत्' धातु को उपधावृद्धि होती है।

लकाराः (कर्तरि कर्मणि भावे च)–

(३) लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः।६६।

प०वि०-लः १।३ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्, भावे ७।१ च अव्ययपदम्, अकर्मकेभ्यः ५।३।

स०-न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकाः, तेभ्यः-अकर्मकेभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-लकाराः सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मवाच्ये कर्तृवाच्ये च भवन्ति, अकर्मकेभ्यश्च धातुभ्यो लकारा भाववाच्ये कर्तृवाच्ये च भवन्ति।

उदा०-(१) **सकर्मकेभ्यः कर्मणि**-देवदत्तेन ग्रामो गम्यते। **कर्तरि**-देवदत्तो ग्रामं गच्छति। (२) **अकर्मकेभ्यो भावे**-देवदत्तेनाऽऽस्यते। **कर्तरि**-देवदत्त आस्ते। सकर्मकेभ्यो भावे, अकर्मकेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मणि लकारा न भवन्ति।

सकर्मक-अकर्मकपरीक्षाविधिः

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं,
व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति
शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥

अर्थः-यत्र कर्तृवाचकपदेन सह प्रयुक्तं क्रियापदं 'किम्' इत्यपेक्षते तत्र स धातुः सकर्मकः। यथा रामो भक्षयति, गच्छति, अधीते, इत्यादिषु सर्वत्र 'किम्' इत्यपेक्षा जायतेऽतः सकर्मका एते धातवः। यत्र तु क्रियापदं 'किम्' इत्यस्यापेक्षां न कुरुते तेऽकर्मका धातवः, यथा-भवति, आस्ते, एधते, लज्जते, शेते, इत्यादयः। तथा च परिगण्यते-

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं
वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं
धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥

__आर्यभाषा-अर्थ__-(लः) लट् आदि दश लकार सकर्मक (धातोः) धातुओं से (कर्मणि) कर्मवाच्य में (च) और कर्तृवाच्य अर्थ में होते हैं और (अकर्मकेभ्यः) अकर्मक (धातोः) धातुओं से परे (भावे) भाववाच्य अर्थ में (च) और कर्तृवाच्य अर्थ में होते हैं। सकर्मक धातुओं से भाववाच्य में और सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य अर्थ में लकार नहीं होते हैं।

उदा०-__(१) सकर्मक से कर्म में-देवदत्तेन ग्रामो गम्यते।__ देवदत्त के द्वारा गांव जाया जाता है। __कर्ता में-देवदत्तो ग्रामं गच्छति।__ देवदत्त गांव जाता है। __(२) अकर्मक__

से भाव में-**देवदत्तेनाऽऽस्यते।** देवदत्त के द्वारा बैठा जाता है। **कर्ता में-देवदत्त आस्ते।** देवदत्त बैठता है।

सिद्धि-(१) **देवदत्तेन ग्रामो गम्यते।** यहां **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) इस सकर्मक धातु से इस सूत्र से कर्मवाच्य में लट् लकार है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद और **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण प्रत्यय होता है।

कर्मवाच्य में कर्म अभिहित (कथित) और कर्ता अनभिहित (अकथित) होता है। अतः अनभिहित कर्ता 'देवदत्त' में **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है और कथित कर्म में **'प्रातिपदिकार्थ०'** (२।३।४६) से 'ग्राम' में प्रथमा विभक्ति होती है।

(२) **देवदत्तो ग्रामं गच्छति।** यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से कर्तृवाच्य में 'लट्' लकार है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। **'इषुगमियमां छः'** (७।३।७७) से 'गम्' के 'म्' को 'छ्' आदेश होता है।

कथित कर्ता देवदत्त में पूर्ववत् प्रथमा और अकथित कर्म 'ग्राम' में **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है।

(३) **देवदत्तेनाऽऽस्यते।** **'आस् उपवेशने'** (अदा०आ०) अकर्मक धातु से इस सूत्र से भाववाच्य अर्थ में लट् लकार है। शेष कार्य 'गम्यते' के समान है।

(४) **देवदत्त आस्ते।** यहां पूर्वोक्त 'आस्' धातु से इस सूत्र से कर्तृवाच्य में लट् लकार है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।६२) से 'शप्' प्रत्यय का लुक् होता है।

विशेष-लकार- लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ् ये दश लकार हैं। इनमें लेट् लकार वैदिकभाषा में ही प्रयुक्त होता है।

कृत्य+क्त+खलर्थाः (भावे कर्मणि च)-

(४) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः।७०।

प०वि०- तयोः ७।२ एव अव्ययपदम्, कृत्य-क्त-खलर्थाः १।३।

स०- खल् इव अर्थो येषां ते खलर्थाः। कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च ते-कृत्यक्तखलर्थाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०- कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्य इति चानुवर्तते।

अर्थः- धातोर्विहिताः कृत्यसंज्ञकाः क्तः खलर्थाश्च प्रत्यया तयोर्भावकर्मणोरर्थयोरेव भवन्ति। सकर्मकेभ्यो धातुभ्यस्ते कर्मणि, अकर्मकेभ्यो धातुभ्यश्च ते भावेऽर्थे भवन्ति।

उदा०-(१) **कृत्यसंज्ञका: कर्मणि**-कर्तव्य: कटो भवता। भोक्तव्य ओदनो भवता। **भावे**-आसितव्यं भवता। शयितव्यं भवता। (२) **क्त: कर्मणि**-कृत: कटो भवता। भुक्त ओदनो भवता। **भावे**-आसितं भवता। शयितं भवता। (३) **खलर्था: कर्मणि**-ईषत्कर: कटो भवता। सुकर: कटो भवता। दुष्कर: कटो भवता। **भावे**-ईषदाढ्यंभवं भवता। स्वाढ्यंभवं भवता।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातो:) धातु से विहित (कृत्यक्तखलर्था:) कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थक प्रत्यय (तयो:) उन भाववाच्य और कर्मवाच्य अर्थ में (एव) ही होते हैं। वे सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य अर्थ में होते हैं।

*उदा०-(१) कृत्यसंज्ञक कर्म में-**कर्तव्य: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनानी चाहिये। **भोक्तव्य ओदनो भवता।** आपके द्वारा चावल खाना चाहिये। **भाव में-आसितव्यं भवता।** आपके द्वारा बैठना चाहिये। **शयितव्यं भवता।** आपके द्वारा सोना चाहिये। (२) क्त प्रत्यय कर्म में-**कृत: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाई गई। **भुक्त ओदनो भवता।** आपके द्वारा चावल खाया गया। **भाव में-आसितं भवता।** आपके द्वारा बैठा गया। **शयितं भवता।** आपके द्वारा सोया गया। (३) खलर्थक कर्म में-**ईषत्कर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सुगम है। **सुकर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना सरल है। **दुष्कर: कटो भवता।** आपके द्वारा चटाई बनाना कठिन है। **भाव में-ईषदाढ्यंभवं भवता।** आपके द्वारा आढ्य (धनवान्) होना सुगम है। **स्वाढ्यंभवं भवता।** आपके द्वारा आढ्य होना सरल है।*

*सिद्धि-(१) **कर्तव्य: कटो भवता।** यहां सकर्मक 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयर:' (३।१।९६) से विहित कृत्यसंज्ञक 'तव्य' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में है।*

तव्य प्रत्यय के कर्मवाच्य में होने से कर्म अभिहित (कथित) और कर्ता अनभिहित (अकथित) है। अत: कथित कर्म में 'प्रातिपदिकार्थ०' (२।३।४६) से प्रथमा विभक्ति और अकथित कर्ता में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है।

*(२) **भोक्तव्य ओदनो भवता।** 'भुज पालनाभ्यवहारयो:' (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **आसितव्यं भवता।** यहां अकर्मक 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से पूर्वोक्त सूत्र से विहित 'तव्य' प्रत्यय इस सूत्र से भाव अर्थ में है।*

*(४) **शयितव्यं भवता।** 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) पूर्ववत्।*

(५) कृतः कटो भवता। यहां पूर्वोक्त सकर्मक 'कृ' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में होता है।

(६) भुक्त ओदनो भवता। 'भुज्' धातु से पूर्ववत्।

(७) ईषत्करः कटो भवता। यहां 'ईषद्' उपपद, पूर्वोक्त सकर्मक 'कृ' धातु से 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' (३।३।१२६) से विहित 'खल्' प्रत्यय इस सूत्र से कर्मवाच्य अर्थ में है।

(८) दुष्करः कटो भवता। पूर्ववत्।

(९) ईषदाढ्यं भवं भवता। यहां 'ईषद्' उपपद, अकर्मक 'भू' धातु से 'ईषद्दुःसुषु०' (३।३।१२६) से विहित 'खल्' प्रत्यय इस सूत्र से भाववाच्य अर्थ में है।

(१०) स्वाढ्यं भवं भवता। पूर्ववत्।

आदिकर्मणि क्तः (कर्तरि कर्मणि भावे च)–

(५) आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च।७१।

प०वि०–आदिकर्मणि ७।१ क्तः १।१ कर्तरि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–आदि च तत् कर्मेति आदिकर्म, तस्मिन्–आदिकर्मणि (कर्मधारयः)।

अनु०–कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आदिकर्मणि क्तः कर्तरि कर्मणि भावे च।

अर्थः–आदिकर्मणि यः क्तः प्रत्ययो विहितः स कर्तरि कर्मणि भावे चार्थे भवति। आदिभूतः क्रियाक्षण आदिकर्मेत्युच्यते।

उदा०–**(कर्तरि)** प्रकृतः कटं देवदत्तः। **(कर्मणि)** प्रकृतो कटो देवदत्तेन। **(भावे)** प्रकृतं देवदत्तेन। **(कर्तरि)** प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः। **(कर्मणि)** प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन। **(भावे)** प्रभुक्तं देवदत्तेन।

आर्यभाषा-अर्थ–(आदिकर्मणि) क्रिया के प्रारम्भिक क्षण अर्थ में विहित (क्तः) क्त-प्रत्यय (कर्तरि) कर्तृवाच्य (कर्मणि) कर्मवाच्य (च) और (भावे) भाववाच्य अर्थ में होता है।

उदा०–*(कर्ता) प्रकृतः कटं देवदत्तः।* देवदत्त ने चटाई बनाना प्रारम्भ किया। *(कर्म) प्रकृतः कटो देवदत्तेन।* देवदत्त के द्वारा चटाई बनाना प्रारम्भ किया गया। *(भाव) प्रकृतं देवदत्तेन।* देवदत्त के द्वारा प्रारम्भ किया गया। *(कर्तरि) प्रभुक्त ओदनं*

*देवदत्तः। देवदत्त ने चावल खाना प्रारम्भ किया। **प्रभुक्तो ओदनो देवदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा चावल खाना प्रारम्भ किया गया। **प्रभुक्तं देवदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा खाना प्रारम्भ किया गया।*

*सिद्धि-(१) प्रकृतः कटं देवदत्तः। यहां 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से आदि कर्म और भूतकाल में विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्ता अर्थ में होता है। अतः कर्म के अकथित होने से **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से 'कट' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।*

*(२) **प्रकृतो कटो देवदत्तेन।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म अर्थ में। अतः कर्ता के अकथित होने से **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से देवदत्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।*

*(३) **प्रकृतं देवदत्तेन।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म की अविवक्षा होने से भाव अर्थ में है। अतः कर्ता के अकथित होने से उसमें पूर्ववत् तृतीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-**प्रभुक्त ओदनं देवदत्त इत्यादि।***

क्तः (कर्तरि कर्मणि भावे च)-

(३) गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुह-जीर्यतिभ्यश्च।७२।

प०वि०-गत्यर्थ-अकर्मक-श्लिष-शीङ्-स्था-आस-वस-जन-रुह-जीर्यतिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः। न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकाः। गत्यर्थाश्च अकर्मकाश्च श्लिषश्च शीङ् च स्थाश्च आसश्च वसश्च जनश्च रुहश्च जीर्यतिश्च ते-गत्यर्थ०जीर्यतयः, तेभ्यः-गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कर्मणि, भावे, कर्तरि, क्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यश्च धातुभ्यः क्तः कर्तरि कर्मणि भावे च।

अर्थः-गत्यर्थेभ्योऽकर्मकेभ्यः श्लिषादिभ्यश्च धातुभ्यः परः क्तः प्रत्ययः कर्तरि कर्मणि भावे चार्थे भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः		कर्तरि	कर्मणि	भावे
गत्यर्थकः		गतो देवदत्तो ग्रामम्	गतो देवदत्तेन ग्रामः	गतं देवदत्तेन
अकर्मकः	(क)	ग्लानो भवान्	- - - - - - - -	ग्लानं भवता
	(ख)	आसितो भवान्	- - - - - - - -	आसितं भवता
श्लिषः		उपश्लिष्टो गुरुं भवान्	उपश्लिष्टो गुरुर्भवता	उपश्लिष्टं भवता
शीङ्		उपशयितो गुरुं भवान्	उपशयितो गुरुर्भवता	उपशयितं भवता
स्थाः		उपस्थितो गुरुं भवान्	उपस्थितो गुरुर्भवता	उपस्थितं भवता
आसः		उपासितो गुरुं भवान्	उपासितो गुरुर्भवता	उपासितं भवता
वसः		अनूषितो गुरुं भवान्	अनूषितो गुरुर्भवता	अनूषितं भवता
जनः		अनुजातो माणवको माणविकाम्	अनुजाता माणवकेन माणविका	अनुजातं माणवकेन
रुहः		आरूढो वृक्षं भवान्	आरूढो वृक्षो भवता	आरूढं भवता
जीर्यतिः		अनुजीर्णो वृषलीं देवदत्तः	अनुजीर्णा वृषली देवदत्तेन	अनुजीर्णं देवदत्तेन

श्लिषादयो धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्तीत्यतस्तेषामत्र ग्रहणं क्रियते।

आर्यभाषा-अर्थ-(गत्यर्थ०जीर्यतिभ्यः) गत्यर्थक, अकर्मक और श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह, जीर्यति (धातोः) धातुओं से परे (क्तः) क्त प्रत्यय (कर्तरि) कर्तृवाच्य (कर्मणि) कर्मवाच्य (भावे) भाववाच्य अर्थ में होता है।

*उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-**(गत्यर्थक)** देवदत्त गांव गया। देवदत्त के द्वारा गांव जाया गया। देवदत्त के द्वारा जाया गया। **(अकर्मक)** आपने ग्लानि की। आपके द्वारा ग्लानि की गई। आप बैठे। आपके द्वारा बैठा गया। **(श्लिष) उपश्लिष्टो गुरुं भवान्।** आपने गुरु का सङ्ग किया। आपके द्वारा गुरु का संग किया गया। आपके द्वारा संग किया गया। **(शीङ्)** आपने गुरु के पास शयन किया। आपके द्वारा गुरु के पास शयन किया गया। आपके द्वारा शयन किया गया। **(स्था)** आपने गुरु का उपस्थान किया। आपके द्वारा गुरु का उपस्थान किया गया। आपके द्वारा उपस्थान किया गया। **(आस)** आपने गुरु की उपासना की। आपके द्वारा गुरु की उपासना की गई। आपके द्वारा उपासना की गई। **(वस)** आपने गुरु का अनुवास किया। आपके द्वारा गुरु का अनुवास किया गया। आपके द्वारा अनुवास किया गया। **(जन)** बालिका के पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। बालक के द्वारा बालिका के पश्चात् उत्पन्न हुआ गया। बालक के द्वारा*

पश्चात् उत्पन्न हुआ गया। (रुह) आपने वृक्ष पर आरोहण किया। आपके द्वारा वृक्ष पर आरोहण किया गया। आपके द्वारा आरोहण किया गया। (जीर्यति) देवदत्त वृषली के पश्चात् जीर्ण (वृद्ध) हुआ। देवदत्त के द्वारा वृषली के पश्चात् जीर्ण हुआ गया। देवदत्त से जीर्ण हुआ गया।

ये श्लिष आदि धातु अकर्मक हैं किन्तु स-उपसर्ग होने पर ये सकर्मक हो जाती हैं। अत: इनका यहां ग्रहण किया गया है।

सिद्धि-(१) गतो देवदत्तो ग्रामम्। यहां गत्यर्थक 'गम्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्ता अर्थ में है। अत: कर्म के अकथित होने से **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से 'ग्राम' कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। **'अनुदात्तोपदेश०'** (६।४।३७) से 'गम्' के अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।

(२) गतो देवदत्तेन ग्राम:। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् क्त प्रत्यय इस सूत्र से कर्म अर्थ में है। अत: कर्ता के अकथित होने से **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से अकथित कर्ता देवदत्त में तृतीया विभक्ति है।

(३) गतं देवदत्तेन। यहां पूर्वोक्त 'गम्' धातु से पूर्ववत् विहित 'क्त' प्रत्यय इस सूत्र से कर्म की अविवक्षा होने से भाव अर्थ में है। शेष कार्य पूर्ववत् है। इसी विधि से शेष उदाहरणों में भी कर्ता, कर्म और भाव अर्थ की योजना समझ लेवें।

(४) ग्लान:। **'ग्लै हर्षक्षये'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय तथा **'संयोगादेरातो धातोर्यण्वत:'** (८।२।४३) से 'क्त' के 'त' को 'न' आदेश होता है।

(५) उपश्लिष्ट:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'श्लिष आलिङ्गने'** (३।१।४६) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय तथा **'ष्टुना ष्टु:'** (८।४।४०) से 'क्त' प्रत्यय के 'त' को 'ट' आदेश होता है।

(६) उपशयित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय और **'आर्धधातुकस्येड्वलादे:'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(७) उपस्थित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति'** (७।४।४०) से इत्त्व होता है।

(८) उपासित:। यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'आस उपवेशने'** (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और **'आर्धधातुकस्येड्वलादे:'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है।

(९) अनूषित:। यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से सम्प्रसारण **'वसतिक्षुधोरिट्'** (७।२।५२) से 'इट्' आगम और **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व होता है।

*(१०) अनुजातः । यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और **'जनसनखनां सञ्झलोः'** (६।४।४२) से आत्व होता है।*

*(११) आरूढः । यहां 'आङ्' उपसर्गपूर्वक **रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च'** (भ्वा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, 'हो ढः' (८।२।३१) से 'ह्' को 'ढ्' आदेश, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से 'त्' को 'ध्' आदेश, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) से 'ध्' को ष्टुत्व ढ्, 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती 'ढ्' का लोप **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१०९) से दीर्घत्व होता है।*

*(१२) अनुजीर्णः । यहां 'अनु' उपसर्गपूर्वक **'जॄ वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय, **'ॠत इद् धातोः'** (७।१।१००) से इत्त्व, 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घत्व, **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से 'क्त' के 'त्' को 'न्' आदेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

निपातनम् (सम्प्रदाने)–

(६) दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने।७३।

प०वि०-दाश-गोघ्नौ १।२ सम्प्रदाने ७।१।

स०-दाशश्च गोघ्नश्च तौ दाशगोघ्नौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-दाशगोघ्नौ शब्दौ सम्प्रदानेऽर्थे निपात्येते।

उदा०-**(दाशः)** दाशन्ति यस्मै स दाशः। **(गोघ्नः)** गौर्हन्यते=प्राप्यते यस्मै स गोघ्नः।

आर्यभाषा-अर्थ-(दाशगोघ्नौ) दाश, गोघ्न शब्द (सम्प्रदाने) सम्प्रदान कारक अर्थ में निपातित हैं।

*उदा०-**(दाश) दाशन्ति यस्मै स दाशः।** जिसके लिये दाने देते हैं वह 'दाश' अर्थात् विद्वान् और ब्रह्मचारी आदि। **(गोघ्न) गौर्हन्यते=प्राप्यते यस्मै स गोघ्नः।** जिसके लिये गौ प्राप्त की जाती है वह विद्वान् अतिथि आदि।*

*सिद्धि-(१) दाशः। यहां 'दाशृ दाने' (भ्वा०प०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय कर्ता कारक अर्थ में प्राप्त है किन्तु इस सूत्र से निपातन से सम्प्रदान कारक अर्थ में 'अच्' प्रत्यय होता है।*

*(२) गोघ्नः। यहां 'गौ' शब्द उपपद होने पर 'हन् हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से इस सूत्र से पूर्ववत् 'अच्' प्रत्यय अथवा 'टक्' प्रत्यय निपातित है। **'गमहनजन०'** (६।४।९८) से 'हन्' धातु का उपधालोप और **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से कुत्व 'घ्' होता है।*

विशेष-वेद में 'गां मा हिंसीः' तथा गौ को 'अघ्न्या' (यजु० १।१) कहा गया है। अतः गौ की हत्या करना वेदविरुद्ध है और उपकारी पशु को मारना पाप भी है। अतः यहां 'हन्' धातु का अर्थ हिंसा नहीं अपितु प्राप्त करना है। जिसको दान करने के लिये गौ प्राप्त की जाती है वह ऋत्विक्=विद्वान् गोघ्न कहाता है। लक्षणा शक्ति से 'गौ' शब्द का अर्थ दूध, घृत, दही आदि भी होता है। जिसकी सेवा के लिए गौ का दुग्ध आदि प्राप्त किया जाता है वह ऋत्विक्=विद्वान् 'गोघ्न कहाता है।

काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'हन्' धातु का हिंसा अर्थ ग्रहण किया है जो वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण है।

निपातनम् (अपादाने)–

(७) भीमादयोऽपादाने।७४।

प०वि०–भीम-आदयः ५।३ अपादाने ७।१।

स०–भीम आदिर्येषां ते भीमादयः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः–भीमादयः शब्दा अपादानेऽर्थे निपात्यन्ते।

उदा०–बिभेति यस्मात् स भीमः, भीष्मः, भयानको वा।

भीमः। भीष्मः। भयानकः। वरुः। चरुः। भूमिः। रजः। संस्कारः। संक्रन्दनः। प्रपतनः। समुद्रः। स्रुचः। स्रुक्। खलतिः। इति भीमादयः।

आर्यभाषा-अर्थ-(भीमादयः) भीम आदि शब्द (अपादाने) अपादान कारक अर्थ में निपातत हैं।

*उदा०-**बिभेति यस्मात् स भीमः, भीष्मः, भयानकः।** जिससे डर लगता है उसे भीम, भीष्म, भयानक कहते हैं।*

***सिद्धि-(१) भीमः।** भी+मक्। भी+म। भीम+सु। भीमः।*

*यहां **त्रिभी भये'** (जु०प०) धातु से **'भियः षुग् वा'** (उणा० १।१४८) से 'मक्' प्रत्यय है। **'कर्तरि कृत्'** (३।४।६०) से उणादि का 'मक्' प्रत्यय कर्ता अर्थ में प्राप्त था। इस सूत्र से अपादान अर्थ में निपातित किया गया है। विकल्प पक्ष में 'षुक्' आगम होने पर-**भीष्मः।***

***(२) भयानकः।** भी+आनक। भे+आनक। भयानक+सु। भयानकः।*

*यहां पूर्वोक्त 'भी' धातु से **'आनकः शीङ्भियः'** (उणा० ३।८२) से उणादि का 'आनक' प्रत्यय पूर्ववत् अपादान अर्थ में निपातित है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'भी' धातु को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।*

विशेष-भीम आदि शब्द उणादि प्रत्ययान्त हैं। 'ताभ्यामन्यत्रोणादयः' (३।४।७५) से अपादान कारक में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों का प्रतिषेध होने से इस सूत्र से उनका अपादान अर्थ में विधान किया गया है।

उणादीनामर्थः–

(८) ताभ्यामन्यत्रोणादयः ।७५।

प०वि०-ताभ्याम् ५।२ अन्यत्र अव्ययपदम्, उणादयः १।३।

स०-उण् आदिर्येषां ते-उणादयः (बहुव्रीहिः)।

अर्थः-उणादयः प्रत्ययास्ताभ्याम्-सम्प्रदानापादानाभ्यामन्यत्र कारके भवन्ति। **'कर्तरि कृत्'** (३।४।६०) इति कर्तरि कारके एव प्राप्तेऽन्येषु कर्मादिषु कारकेष्वपि विधीयन्ते।

उदा०-कृषितोऽसौ कृषिः। तनित इति तन्तुः। वृत्तमिति वर्त्म। चरितमिति चर्म।

आर्यभाषा-अर्थ-(उणादयः) उण्-आदि प्रत्यय (ताभ्याम्) उन सम्प्रदान और अपादान कारक से (अन्यत्र) अन्य कारक में होते हैं। उण्-आदि प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' (३।४।६०) से कर्ता कारक में ही प्राप्त थे इस सूत्र से अन्य कर्म आदि कारकों में भी विहित किये गये हैं।

*उदा०-**कृषितोऽसौ कृषिः**। जिसे कृषित=विलिखित किया गया है वह कृषि=खेती। **तनित इति तन्तुः**। जिसे विस्तृत किया गया है वह तन्तु=सूत्र। **वृत्तमिति वर्त्म**। जिसे चलने के लिए बर्ता गया है वह वर्त्म=मार्ग। **चरितमिति चर्म**। जिसे किसी प्राणी के शरीर से उच्चरित (उखाड़ना) किया गया है वह चर्म=चाम।*

*सिद्धि-(१) **कृषिः**। कृष्+इन्। कृष्+इ। कृषि+सु। कृषिः।*

यहां 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से 'इगुपधात् कित्' (उणा० ४।१२०) से कर्म कारक में 'इन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के किद्वद्भाव से 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

*(२) **तन्तुः**। तन्+तुन्। तन्+तु। तन्तु+सु। तन्तुः।*

यहां 'तनु विस्तारे' धातु से 'सितनिगमि०' (उणा० १।६९) से कर्म कारक में 'तुन्' प्रत्यय है।

*(३) **वर्त्म**। वृत्+मनिन्। वर्त्+मन्। वर्त्मन्+सु। वर्त्म।*

यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' (उणा० ४।१४५) से कर्म कारक में 'मनिन्' प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से वृत् धातु को लघूपध गुण होता है।

(४) चर्म। चर्+मनिन्। चर्+मन्। चर्मन्+सु। चर्म।
यहां 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'मनिन्' प्रत्यय है।

क्तः (अधिकरणे कर्त्तरि कर्मणि भावे च)–

(६) क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः।७६।

प०वि०-क्तः १।२ अधिकरणे ७।१ च अव्ययपदम्, ध्रौव्य-गति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः ५।३।

स०-ध्रौव्यं च गतिश्च प्रत्यवसानं च तानि-ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानानि, एतानि अर्था येषां ते ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थाः, तेभ्यः-ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अर्थः-ध्रौव्यार्थेभ्यः=अकर्मकेभ्यो गत्यर्थेभ्यः प्रत्यवसानार्थेभ्यः=अभ्यवहारार्थेभ्यो धातुभ्यः परः क्तः प्रत्ययोऽधिकरणेऽर्थे चकाराद्भावे कर्मणि कर्तरि चार्थे भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः	अधिकरणे	कर्तरि	कर्मणि	भावे
ध्रौव्यार्थः	इदमेषामासितम्	आसितो देवदत्तः	– –	आसितं देवदत्तेन
गत्यर्थः	इदमेषां यातम्	यातो देवदत्तो ग्रामम्	यातो देवदत्तेन ग्रामः	– –
प्रत्यवसानार्थः	इदमेषां भुक्तम्	– –	भुक्त ओदनो देवदत्तेन	भुक्तं देवदत्तेन

ध्रौव्यार्थाः=अकर्मकाः, प्रत्यवसानार्था अभ्यवहारार्था धातवो भवन्तीति वैयाकरणसम्प्रदायप्रसिद्धिः।

आर्यभाषा-अर्थ-(ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः) अकर्मक, गत्यर्थक और अभ्यवहारार्थक (खाना-पीना) (धातोः) धातुओं से परे (क्तः) क्त प्रत्यय (अधिकरणे) अधिकरण कारक में (च) और यथाप्राप्त कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में होता है।

*उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-**(ध्रौव्यार्थक)** यह इनके बैठने का स्थान है। देवदत्त बैठ गया। देवदत्त के द्वारा बैठा गया। **(गत्यर्थक)** यह इनके जाने का स्थान है। देवदत्त गांव चला गया। देवदत्त के द्वारा गांव जाया गया। **(प्रत्यवसानार्थक)** यह इनके भोजन का स्थान है। देवदत्त के द्वारा चावल खाया गया। देवदत्त के द्वारा खाया गया।*

सिद्धि-(१) आसितम्। यहां 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) ध्रौव्यार्थक धातु से इस सूत्र से अधिकरण कारक में 'क्त' प्रत्यय है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) *से 'क्त' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। ऐसे ही कर्ता और भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय को समझ लेवें।*

(२) यातम्। गत्यर्थक 'या प्रापणे' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) भुक्तम्। प्रत्यवसानार्थक 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से पूर्ववत्।

विशेष-वैयाकरण सम्प्रदाय में अकर्मक धातुओं को ध्रौव्यार्थक और अभ्यवहारार्थक (खाना-पीना) धातुओं को प्रत्यवसानार्थक भी कहा जाता है।

लकारादेशप्रकरणम्

(१) लस्य।७७।

प०वि०-लस्य ६।१।

अर्थः-'लस्य' इत्यधिकारोऽयम्। यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो 'लस्य' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। किं चेदं 'लस्य' इति ? दश लकारा अनुबन्धविशिष्टा विहिताः। तेषां षट् टितश्चत्वारश्च ङितः सन्ति। तेऽक्षरसमाम्नायक्रमेण कथ्यन्ते-लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्।

उदा०-अग्रे द्रष्टव्यम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(लस्य) 'लस्य' यह अधिकार है। इससे आगे जो कहेंगे वह 'ल' के स्थान में होता है, ऐसा जानें। 'लस्य' यह क्या है ? अनुबन्ध से युक्त दश लकार हैं। उनमें से छः टित् और चार ङित् हैं। वे यहां वर्णानुक्रम से लिखे जाते हैं-लट्। लिट्। लुट्। लृट्। लेट्। लोट्। लङ्। लिङ्। लुङ्। लृङ्।

उदा०-आगे देख लेवें।

तिङ्-आदेशः-

(२) तिप्तस्झिसिप्थस्थमिप्वस्मस्तातांझथासाथां-ध्वमिड्वहिमहिङ्।७८।

प०वि०-तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-झ-थास्- आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिङ् १।१।

स०-तिप् च तस् च झिश्च सिप् च थस् च थश्च मिप् च वस् च मस् च तश्च आताम् च झश्च थास् च आथाम् च ध्वम् च इट् च वहिश्च महिङ् च एतेषां समाहारः-तिप्०महिङ् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लस्य तिप्०महिङ्।

अर्थः-धातोः परस्य लस्य स्थाने तिबादयोऽष्टादशादेशा भवन्ति।

उदाहरणम्-

	लादेशाः	**परस्मैपदसंज्ञकाः**	**दूसरे के लिए पकाता है।**
(१)	तिप्	स पचति।	वह पकाता है।
(२)	तस्	तौ पचतः।	वे दोनों पकाते हैं।
(३)	झिः	ते पचन्ति।	वे सब पकाते हैं।
(४)	सिप्	त्वं पचसि।	तू पकाता है।
(५)	थस्	युवां पचथः।	तुम दोनों पकाते हो।
(६)	थः	यूयं पचथः।	तुम सब पकाते हो।
(७)	मिप्	अहं पचामि।	मैं पकाता हूं।
(८)	वस्	आवां पचावः।	हम दोनों पकाते हैं।
(९)	मस्	वयं पचामः।	हम सब पकाते हैं।

	लादेशाः	**आत्मनेपदसंज्ञकाः**	**अपने लिये पकाता है।**
(१)	त	स पचते।	वह पकाता है।
(२)	आताम्	तौ पचेते।	वे दोनों पकाते हैं।
(३)	झः	ते पचन्ते।	वे सब पकाते हैं।
(४)	थास्	त्वं पचसे।	तू पकाता है।
(५)	आथाम्	युवां पचेथे।	तुम दोनों पकाते हो।
(६)	ध्वम्	यूयं पचध्वे।	तुम सब पकाते हो।
(७)	इट्	अहं पचे।	मैं पकाता हूं।
(८)	वहि	आवां पचावहे।	हम दोनों पकाते हैं।
(९)	महिङ्	वयं पचामहे।	हम सब पकाते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लस्य) लकार के स्थान में (तिप्०महिङ्) तिप् आदि १८ आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) **पचति।** पच्+लट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पचति।

यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय होता है।

(२) **पचतः।** यहां इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'तस्' के 'स्' को 'रु' और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।

(३) **पचन्ति।** यहां इस धातु से 'ल' के स्थान में 'झ' आदेश है। **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त्' आदेश होता है।

(४) **पचसि।** यहां इस सूत्र से 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश है।

(५) **पचथः।** 'ल' के स्थान में 'थस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(६) **पचथ।** 'ल' के स्थान में 'थ' आदेश है।

(७) **पचामि।** 'ल' के स्थान में 'मिप्' आदेश है। **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

(८) **पचावः।** 'ल' के स्थान में 'वस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(९) **पचामः।** 'ल' के स्थान में 'मस्' आदेश है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(१०) **पचते।** यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से आत्मनेपद की विवक्षा में 'ल' के स्थान में 'त' आदेश है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।

(११) **पचेते।** 'ल्' के स्थान में 'आताम्' आदेश है। **'आतो ङितः'** (७।२।८१) से 'आताम्' के 'आ' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है। **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६४) से 'इय्' के 'य्' का लोप और **'आद्गुणः'** (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ+ए) होता है।

(१२) **पचन्ते।** 'ल्' के स्थान में 'झ' आदेश, पूर्ववत् 'झ' के स्थान में 'अन्त' आदेश और 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।

*(१३) **पचसे।** 'ल्' के स्थान में 'थास्' आदेश और **'थासः से'** (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश है।*

*(१४) **पचेथे।** 'ल्' के स्थान में 'आथाम्' आदेश और शेष कार्य 'पचेते' के समान है।*

*(१५) **पचध्वे।** 'ल्' के स्थान में 'ध्वम्' आदेश और पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है।*

*(१६) **पचे।** 'ल' के स्थान में 'इट्' आदेश है।*

*(१७) **पचावहे।** 'ल' के स्थान में 'वहि' आदेश है। पूर्ववत् 'टि' भाग को 'ए' आदेश होता है। **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।*

*(१८) **पचामहे।** 'ल' के स्थान में 'महिङ्' आदेश है। पूर्ववत् दीर्घत्व होता है। 'महिङ्' में 'ङ्' अनुबन्ध 'तिङ्' प्रत्याहार की रचना के लिये है।*

एकारादेशः–

(३) टित आत्मनेपदानां टेरे।७६।

प०वि०–टितः ६।१ आत्मनेपदानाम् ६।३ टेः ६।१ ए १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०–लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोष्टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेः।

अर्थः–धातोः परस्य टितो लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकानां लादेशानां टि-भागस्य स्थाने एकारादेशो भवति।

उदा०–स पचते। तौ पचेते। ते पचन्ते। इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ–*(धातोः) धातु से परे (टितः) टित् लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (लस्य) लकारादेशों के (टेः) टि-भाग के स्थान में (ए) एकार आदेश होता है।*

*उदा०–स **पचते।** वह पकाता है। **तौ पचेते।** वे दोनों पकाते हैं। **ते पचन्ते।** वे सब पकाते हैं, इत्यादि।*

सिद्धि-पचते। *पच्+लट्। पच्+शप्+त। पच+अ+त् ए। पचते।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'त' आदेश और इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग 'अ' के स्थान में 'एकारादेश' होता है। शेष रूप तथा उनकी सिद्धि **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) की व्याख्या में लिख दी है।*

से-आदेशः–

(४) थासः से।८०।

प०वि०–थासः ६।१ से १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०–लस्य टित आत्मनेपदानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोष्टितो आत्मनेपदस्य लस्य थासः सेः।

अर्थः–धातोः परस्य टितो लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकस्य लादेशस्य थासः स्थाने से-आदेशो भवति।

उदा०–त्वं पचसे।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (टितः) टित् लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (लस्य) लादेश (थासः) थास् प्रत्यय के स्थान में (से) से आदेश होता है।

*उदा०–त्वं **पचसे**। तू पकाता है।*

*सिद्धि-**पचसे**। पच्+लट्। पच्+शप्+थास्। पच्+अ+से। पचसे।*

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'थास्' आदेश और इस सूत्र से 'थास्' प्रत्यय के स्थान में 'से' आदेश होता है।

लिट्-आदेशप्रकरणम्

एश्+इरेच्-आदेशौ–

(१) लिटस्तझयोरेशिरेच्।८१।

प०वि०–लिटः ६।१ त-झयोः ६।२ एश्-इरेच् १।१।

स०–तश्च झश्च तौ तझौ, तयोः–तझयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। एश् च इरेच् च एतयोः समाहार एशिरेच् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य आत्मनेपदानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लिटो लस्यात्मनेपदयोस्तझयोरेशिरेच्।

अर्थः–धातोः परस्य लिट्लकारस्यात्मनेपदसंज्ञकयोस्तझयोः स्थाने यथासंख्यमेशिरेचावादेशौ भवतः।

उदा०–**(तः)** स पेचे। **(झः)** ते पेचिरे।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(धातोः) धातु से परे (लिटः) लिट्सम्बन्धी (लस्य) लकार के (आत्मनेपदानाम्) आत्मनेपदसंज्ञक (तझयोः) त और झ के स्थान में यथासंख्य (एशिरेच्) एश् और इरेच् आदेश होता है।*

उदा०-(त) स पेचे। उसने पकाया। (झ) ते पेचिरे। उन सबने पकाया।

सिद्धि-(१) पेचे। पच्+लिट्। पच्+त। पच्+एश्। पच्+पच्+ए। ०+पेच्+ए। पेचे।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'त' आदेश और इस सूत्र से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'पच्' धातु को द्वित्व और 'अत एकहल्मध्ये०' (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप और धातु के 'अ' को 'ए' आदेश होता है।

(२) पेचिरे। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और 'ल' के स्थान में 'झ' आदेश होता है। इस सूत्र से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

णलादि-आदेशाः–

(२) परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः।८२।

प०वि०–परस्मैपदानाम् ६।३ णल्-अतुस्-उस्-थल्-अथुस्-अ-णल्-व-मा: १।३।

स०–णल् च अतुस् च उस् च थल् च अथुस् च अश्च णल् च वश्च मश्च ते-णल्०मा: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य लिट इति चानुवर्तते।

अर्थ:–धातो: परस्य लिटो लकारस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने यथासंख्यं णलादय आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**–

	लादेशा:	णलादय:	शब्दरूपम्	भाषार्थ:
(१)	तिप्	णल्	स पचाच।	उसने पकाया।
(२)	तस्	अतुस्	तौ पेचतु:।	उन दोनों ने पकाया।
(३)	झि:	उस्	ते पेचु:।	उन सबने पकाया।
(४)	सिप्	थल्	त्वं पेचिथ।	तूने पकाया।
(५)	थस्	अथुस्	युवां पेचथु:।	तुम दोनों ने पकाया।
(६)	थ:	अ:	यूयं पेच।	तुम सबने पकाया।
(७)	मिप्	णल्	अहं पपाच/पपच।	मैंने पकाया।
(८)	वस्	व:	आवां पेचिव।	हम दोनों ने पकाया।
(९)	मस्	म:	वयं पेचिम।	हम सबने पकाया।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिटः) लिट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक तिप्-आदि आदेशों के स्थान में यथासंख्य (णल्०माः) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **पपाच।** पच्+लिट्। पच्+तिप्। पच्+णल्। पच्+पच्+अ। प+पाच्+अ। पपाच।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश और इस सूत्र से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। पूर्ववत् 'पच्' धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'पच्' धातु को उपधावृद्धि होती है।*

*(२) **पेचतुः।** यहां 'तस्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'अतुस्' आदेश है। **'अत एकहल्मध्ये०'** (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप और 'पच्' के 'अ' के स्थान में 'ए' आदेश होता है। 'अतुस्' के 'स्' को पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(३) **पेचुः।** यहां 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'उस्' आदेश है।*

*(४) **पेचिथ।** यहां 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'थल्' आदेश है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम होता है।*

*(५) **पेचथुः।** यहां 'थस्' प्रत्यय के स्थान में 'अथुस्' आदेश है।*

*(६) **पेच।** यहां 'थ' प्रत्यय के स्थान में 'अ' आदेश है। **'अतो गुणे'** (६।१।९७) से 'अ' को पररूप एकादेश होता है।*

*(७) **पपाच।** पूर्ववत्। **पपच।** यहां **'णलुत्तमो वा'** (७।१।९१) से 'णल्' प्रत्यय के विकल्प से णिद्वद् होने से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं होती है।*

*(८) **पेचिव।** यहां 'वस्' प्रत्यय के स्थान में 'व' आदेश है। 'कृ' आदि नियम से 'इट्' आगम होता है।*

*(९) **पेचिम।** यहां 'मस्' प्रत्यय के स्थान में 'म' आदेश है। पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है।*

लट्-आदेशप्रकरणम्

वा णलादय आदेशाः—

(१) विदो लटो वा।८३।

प०वि०-विदः ५।१ लटः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य परस्मैपदानाम्, णल०माः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विदो धातोर्लटो लस्य परस्मैपदानां वा णल०माः।

अर्थः-विद-धातोः परस्य लटो लस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने विकल्पेन णलादय आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**-

	लादेशाः	तिबादयः	णलादयः	भाषार्थः
(१)	तिप्	स वेत्ति।	स वेद।	वह जानता है।
(२)	तस्	तौ वित्तः।	तौ विदतुः।	वे दोनों जानते हैं।
(३)	झि	वे विदन्ति।	ते विदुः।	वे सब जानते हैं।
(४)	सिप्	त्वं वेत्सि।	त्वं वेत्थ	तू जानता है।
(५)	थस्	युवां वित्थः।	युवां विदथुः।	तुम दोनों जानते हो।
(६)	थ	यूयं वित्थ।	यूयं विद।	तुम सब जानते हो।
(७)	मिप्	अहं वेद्मि।	अहं वेद।	मैं जानता हूं।
(८)	वस्	आवां विद्वः।	आवां विद्व।	हम दोनों जानते हैं।
(९)	मस्	वयं विद्मः।	वयं विद्म।	हम सब जानते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(विदः) विद् (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक 'तिप्' आदि आदेशों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (णल०माः) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) वेत्ति। *यहां **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और 'ल्' के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' प्रत्यय का लुक् होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।२।८६) से 'विद्' धातु को लघूपध गुण होता है। **'खरि च'** (८।४।५४) से 'विद्' के 'द्' को चर् 'त्' होता है।*

(२) वित्तः। *यहां 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश है। 'तस्' प्रत्यय के **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'ङित्' होने से पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्रतिषेध होता है।*

(३) विदन्ति। *यहां 'ल्' के स्थान में 'झि' आदेश और **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश होता है।*

(४) वेत्सि। *यहां 'ल्' के स्थान में 'सिप्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण होता है।*

(५) वित्थः । यहां 'ल्' के स्थान में 'थस्' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(६) वित्थ । यहां 'ल्' के स्थान में 'थ' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(७) वेद्मि । यहां 'ल्' के स्थान में 'मिप्' आदेश और पूर्ववत् प्राप्त लघूपध गुण होता है।

(८) विद्वः । यहां 'ल्' के स्थान में 'वस्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(९) विद्मः । यहां 'ल्' के स्थान में 'मस्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण का प्रतिषेध होता है।

(१०) वेद । यहां 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और पूर्ववत् लघूपध गुण होता है।

(११) विदतुः । यहां 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश है।

(१२) विदुः । यहां 'झि' के स्थान में 'उस्' आदेश है।

(१३) वेत्थ । यहां 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है।

(१४) विदथुः । यहां 'थस्' के स्थान में 'अथुस्' आदेश है।

(१५) विद । यहां 'थ' के स्थान में 'अ' आदेश है।

(१६) वेद । यहां 'मिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है।

(१७) विद्व । यहां 'वस्' के स्थान में 'व' आदेश है।

(१८) विद्म । यहां 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश है।

लघूपध गुण तथा उसके प्रतिषेध का कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-पाणिनीय धातुपाठ में 'विद ज्ञाने' (अदा०प०), 'विद सत्तायाम्' (दि०आ०), 'विद विचारणे' (रुधा०आ०), विद चेतनाख्याननिवासेषु' (चु०आ०) 'विद्लृ लाभे' (रुधा०आ०) पठित हैं। 'विद् ज्ञाने' (अ०प०) धातु परस्मैपद है। शेष धातु आत्मनेपद हैं। अतः परस्मैपद विषय होने से परस्मैपद 'विद् ज्ञाने' धातु का ही यहां ग्रहण किया जाता है; आत्मनेपद का नहीं।

पञ्च णलादय आहादेशश्च–

(२) ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ।८४।

प०वि०-ब्रुवः ५ ।१ पञ्चानाम् ६ ।३ आदितः अव्ययपदम्, आहः १ ।१ ब्रुवः ६ ।१ ।

अनु०-लस्य, परस्मैपदानाम्, णल्०माः, लटः, वा इति चानुवर्तते।

अर्थः-ब्रुञ्धातोः परस्य लटो लस्य पञ्चानामादिभूतानां परस्मैपद-संज्ञकानां तिबादीनां स्थाने विकल्पेन यथासंख्यं पञ्चैव णलादय आदेशा भवन्ति, तत्र ब्रुवः स्थाने चाऽऽह-आदेशो भवति। **उदाहरणम्**-

	लादेशाः	तिबादयः	णलादयः पञ्च	भाषार्थः
(१)	तिप्	स ब्रवीति।	स आह।	वह बोलता है।
(२)	तस्	तौ ब्रूतः।	तौ आहतुः।	वे दोनों बोलते हैं।
(३)	झि	ते ब्रुवन्ति।	ते आहुः।	वे सब बोलते हैं।
(४)	सिप्	त्वं ब्रवीषि।	त्वं आत्थ	तू बोलता है।
(५)	थस्	युवां ब्रूथः।	युवां आहथुः।	तुम दोनों बोलते हो।
(६)	थः	यूयं ब्रूथ।	यूयं ब्रूथ।	तुम सब बोलते हो।
(७)	मिप्	अहं ब्रवीमि।	अहं ब्रवीमि।	मैं बोलता हूं।
(८)	वस्	आवां ब्रूवः।	आवां ब्रूवः।	हम दोनों बोलते हैं।
(९)	मस्	वयं ब्रूमः।	वयं ब्रूमः।	हम सब बोलते हैं।

आर्यभाषा-अर्थ-(ब्रुवः) ब्रूञ् (धातोः) धातु से परे (लटः) लट् सम्बन्धी (लस्य) लकार के (पञ्चानाम्) पांच (आदितः) आरम्भिक (परस्मैपदानाम्) परस्मैपद संज्ञक तिप्-आदि आदेशों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (णल०अथुस्) णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस् ये पांच ही आदेश होते हैं और वहां (ब्रुवः) ब्रूञ् धातु के स्थान में (आहः) आह आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाषा में देख लेवें।

सिद्धि-(१) ब्रवीति। *ब्रू+लट्। ब्रू+शप्+तिप्। ब्रू+०+ति। ब्रू+ईट्+ति। ब्रो+ई+ति। ब्रवीति।*

*यहां **'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि'** (अदा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, 'ल्' के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तिप्' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' का लुक् होता है। **'ब्रुव ईट्'** (७।३।९३) से 'तिप्' प्रत्यय को 'ईट्' आगम, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'ब्रू' धातु को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।६५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-**ब्रवीषि, ब्रवीमि।***

(२) ब्रूतः। *यहां 'ल्' के स्थान में 'तस्' आदेश, **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'तस्' प्रत्यय के 'ङित्' होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त गुण का **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**ब्रुवन्ति, ब्रूथः, ब्रूथ, ब्रूवः, ब्रूमः।***

(३) आह। यहां 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और 'ब्रूञ्' के स्थान में 'आह' आदेश होता है। ऐसे ही-आहतुः, आहुः, आहथुः।

(४) आत्थ। यहां 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश और ब्रूञ् के स्थान में 'आह्' आदेश है। 'आहस्थः' (८।२।३५) से 'आह्' के 'ह्' को 'थ्' आदेश और 'खरि च' (८।४।५४) से 'थ्' को चर् 'त्' होता है।

लोट्-आदेशप्रकरणम्

लङ्वद्-आदेशाः–

(१) लोटो लङ्वत्।८५।

प०वि०-लोटः ६।१ लङ्वत् अव्ययपदम्। लङ इव लङ्वत्। **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लस्य स्थाने लङ्वदादेशा भवन्ति।

उदाहरणम्-

	लादेशाः	लङादेशाः	पच्+लोट्	भाषार्थः
(१)	तिप्	– – –	– – –	– – –
(२)	तस्	ताम्	तौ पचताम्।	वे दोनों पकावें।
(३)	झि	– – –	– – –	– – –
(४)	सिप्	– – –	– – –	– – –
(५)	थस्	तम्	युवां पचतम्।	तुम दोनों पकाओ।
(६)	थः	तः	यूयं पचत।	तुम सब पकाओ।
(७)	मिप्	अम्	– – –	– – –
(८)	वस्	वः	आवां पचाव।	हम दोनों पकावें।
(९)	मस्	मः	वयं पचाम।	हम सब पकावें।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) 'ल' के स्थान में (लङ्वत्) 'लङ्' के समान आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि**-(१) **पचताम्।** पच्+लोट्। पच्+तस्। पच्+शप्+ताम्। पच्+अ+ताम्। **पचताम्।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'लोट्' के 'ल' के स्थान में 'तस्' आदेश और इस सूत्र से 'तस्' के स्थान में 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' (३।४।१०१) से लङ्वत् 'ताम्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है।

*(२) **पचतम्।** यहां 'थस्' प्रत्यय के स्थान में 'तम्' आदेश है।*

*(३) **पचत।** यहां 'थ' प्रत्यय के स्थान में 'त' आदेश है।*

*(४) **पचाव।** यहां 'नित्यं ङितः' (३।४।९९) से 'वस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है।*

*(५) **पचाम।** यहां पूर्ववत् 'मस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है।*

विशेष-लङ्वत्- *यहां 'तत्र तस्येव' (५।१।११५) से षष्ठी विभक्ति के अर्थ में 'वति' प्रत्यय है लङः इव लङ्वत्, सप्तमी विभक्ति के अर्थ में नहीं-लङि इव लङ्वत्। इससे लङ्वद् भाव से 'लङ्' के स्थान में होनेवाले 'ताम्' आदि आदेश ही होते हैं। 'लङ्' परे होने पर जो धातु को अट्-आट् आगम होते हैं, वे लोट् लकार में नहीं होते हैं।*

उ-आदेशः-

(२) एरुः।८६।

प०वि०-एः ६।१ उः १।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य एरुः।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्-सम्बन्धिनो लादेशस्य इकारस्य स्थाने उ-आदेशो भवति।

उदा०-स पचतु। ते पचन्तु।

आर्यभाषा-अर्थ- *(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्-सम्बन्धी (लस्य) ल आदेश के (एः) इकार के स्थान में (उः) उ-आदेश होता है।*

*उदा०-स **पचतु।** वह पकावे। ते **पचन्तु।** वे सब पकावें।*

सिद्धि-(१) पचतु। *पच्+लोट्। पच्+शप्+तिप्। पच्+अ+ति। पच्+अ+तु। पचतु।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'तिप्' के इकार के स्थान में 'उ' आदेश होता है। ऐसे ही-**पचन्तु।***

हि-आदेशः–

(३) सेर्ह्यपिच्च।८७।

प०वि०–सेः ६।१ हि १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः) अपित् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–लस्य, लोट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लोटो लस्य सेर्हिः, स चापित्।

अर्थः–धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सि-प्रत्ययस्य स्थाने हि-आदेशो भवति, स चापिद् भवति। स्थानिवद्भावात् प्राप्तं पित्त्वं प्रतिषिध्यते।

उदा०–त्वं लुनीहि। त्वं पुनीहि।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) ल-आदेश (सेः) सि-प्रत्यय के स्थान में (हि) हि-आदेश होता है (च) और वह (अपित्) अपित् होता है। यहां स्थानिवद्भाव से प्राप्त पित्त्व का प्रतिषेध किया गया है।

*उदा०-त्वं **लुनीहि**। तू काट। त्वं **पुनीहि**। तू पवित्र कर।*

*सिद्धि-(१) **लुनीहि**। लू+लोट्। लू+श्ना+सिप्। लू+ना+हि। लु+नी+हि। लुनीहि।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश है। 'हि' आदेश के 'अपित्' विधान से **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से वह 'ङित्' हो जाता है। 'ङित्' होने से **'ई हल्यघोः'** (६।४।११३) से 'श्ना' विकरण प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश होता है। **'प्वादीनां ह्रस्वः'** (७।३।८०) से 'लू' धातु को ह्रस्व होता है।*

*(२) **पुनीहि**। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।*

हि-अपित्त्वविकल्पः–

(४) वा च्छन्दसि।८८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–लस्य, लोटः, सेः, हि, अपिच्च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि धातोर्लोटो लस्य सेर्हि, स च वाऽपित्।

अर्थः–छन्दसि विषये धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सि-प्रत्ययस्य स्थाने हि-आदेशो भवति, स च विकल्पेनापिद् भवति।

उदा०-युयोध्यस्मज्जुहाराणमेनः (यजु० ४।१६)। प्रीणाहि। प्रीणीहि (का०सं० ४०।१२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (सेः) सि-प्रत्यय के स्थान में (हि) हि-आदेश होता है और वह (वा) विकल्प से (अपित्) अपित् होता है।

*उदा०-**युयोध्यस्मज्जुहाराणमेनः** (यजु० ४।१६)। हमसे कुटिलता रूप पाप को दूर कीजिये। **प्रीणाहि। प्रीणीहि।** तू तृप्त कर।*

*सिद्धि-(१) **युयोधि।** यहां '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) धातु से '**लोट् च**' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय और '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से 'लोट्' के 'ल' के स्थान में 'सिप्' आदेश और इस सूत्र से 'सि' के स्थान में 'पित्' हि-आदेश होता है। '**अङितश्च**' (६।४।१०३) से 'हि' को 'धि' आदेश होता है। 'हि' आदेश के 'पित्' होने से वह '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'ङित्' नहीं होता है। अतः 'यु' धातु को '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से गुण हो जाता है। यहां '**बहुलं छन्दसि**' (२।४।७६) से 'शप्' के स्थान में 'श्लु' आदेश और '**श्लौ**' (६।१।१०) से 'यु' धातु को द्विर्वचन होता है।*

*(२) **प्रीणाहि।** यहां '**प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में पित् 'हि' आदेश है। 'हि' आदेश के पित् होने से वह पूर्ववत् 'ङित्' नहीं होता है, अतः '**ई हल्यघोः**' (६।४।११३) से 'श्ना' प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश नहीं होता है।*

*(३) **प्रीणीहि।** यहां पूर्वोक्त 'प्रीञ्' धातु से पूर्ववत् 'सिप्' प्रत्यय के स्थान में अपित् 'हि' आदेश है। 'हि' आदेश के अपित् होने से वह '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'ङित्' होता है। 'ङित्' होने से '**ई हल्यघोः**' (६।४।११३) से 'श्ना' प्रत्यय के 'आ' को 'ई' आदेश होता है।*

***विशेष**-जो सार्वधातुक प्रत्यय पित् होता है वह ङित् नहीं होता और जो पित् नहीं होता है वह ङित् होता है-**पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न।** इस विषय में यह वैयाकरणों का सार वचन है।*

नि-आदेशः-

(५) मेर्निः।८६।

प०वि०-मेः ६।१ निः १।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य मेर्निः।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य मि-प्रत्ययस्य स्थाने नि-आदेशो भवति।

उदा०-अहं पचानि। अहं पठानि।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) ल-आदेश (मेः) मिप् प्रत्यय के स्थान में (निः) नि-आदेश होता है।

उदा०-अहं __पचानि__। मैं पकाऊं। अहं __पठानि__। मैं पढ़ूं।

__सिद्धि-(१) पचानि।__ पच्+लोट्। पच्+शप्+मिप्। पच्+अ+नि। पच्+आ+नि। पचानि।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और उसके ल-आदेश 'मिप्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'नि' आदेश होता है। __'कर्तरि शप्'__ (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और __'अतो दीर्घो यञि'__ (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है।

__(२) पठानि।__ 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

आम्-आदेशः--

(६) आमेतः।६०।

प०वि०-आम् १।१ एतः ६।१।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य एत आम्।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने आम्-आदेशो भवति।

उदा०-स पचताम्। तौ पचेताम्। ते पचन्ताम्, इत्यादिकम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।

उदा०-स __पचताम्__। वह पकावे। तौ __पचेताम्__। वे दोनों पकावें। ते __पचन्ताम्__। वे सब पकावें।

__सिद्धि-(१) पचताम्।__ पच्+लोट्। पच्+शप्+त। पच्+अ+ते। पच्+अ+ताम्। पचताम्।

यहां 'पच्' धातु से परे पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है और उसके लादेश 'त' प्रत्यय के 'टि' भाग को __'टित आत्मनेपदानां टेरे'__ (३।४।७९) से 'ए' आदेश होता है। उस 'ए' आदेश को इस सूत्र से 'आम्' आदेश होता है।

*(२) **पचेताम्।** पच्+लोट्। पच्+शप्+आताम्। पच्+अ+आ ते। पच्+अ+आताम्। पच्+अ+इय् ताम्। पच्+अ+इ ताम्। पचेताम्।*

*यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'आताम्' प्रत्यय के 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश और उसे इस सूत्र से 'आम्' आदेश होता है। **'आतो ङितः'** (७।२।८) 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'इय्' आदेश, **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६४) से 'य्' का लोप और **'आद्गुणः'** (६।१।८४) से गुण रूप (अ+इ=ए) एकादेश होता है।*

*(३) **पचन्ताम्।** यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'झ' प्रत्यय के स्थान में प्रथम **'झोऽन्तः'** (७।१।२) से 'अन्त' आदेश और उसके 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश होता है। इस सूत्र से उस 'ए' को 'आम्' आदेश होता है।*

व-अमावादेशौ–

(७) सवाभ्यां वामौ।६१।

प०वि०–सवाभ्याम् ५।२ व–अमौ १।२।

स०–सश्च वश्च तौ–सवौ, ताभ्याम्–सवाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वश्च मश्च तौ–वामौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–लस्य, लोट, एत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लोटो लस्य सवाभ्याम् एतो वामौ।

अर्थः–धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य सकारवकाराभ्या-मुत्तरस्य एकारस्य स्थाने यथासंख्यं व–अमावादेशौ भवतः।

उदा०–**(वः)** त्वं पचस्व। **(अम्)** यूयं पचध्वम्।

***आर्यभाषा–अर्थ**–(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (सवाभ्याम्) सकार और वकार से परे (एतः) एकार के स्थान में यथासंख्य (व–अमौ) व और अम् आदेश होता है।*

*उदा०–(व) **त्वं पचस्व।** तू पका। (अम्) **यूयं पचध्वम्।** तुम सब पकाओ।*

***सिद्धि–(१) पचस्व।** पच्+लोट्। पच्+शप्+थास्। पच्+अ+से। पच्+अ+स्व। पचस्व।*

*यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'थास्' प्रत्यय के स्थान में प्रथम **'थासः से'** (३।४।८०) से 'से' आदेश होता है। उस 'से' आदेश के सकार से परवर्ती एकार के स्थान में इस सूत्र से 'व' आदेश होता है।*

(२) पचध्वम्। पच्+लोट्। पच्+शप्+ध्वम्। पच्+अ+ध्वे। पच्+अ+ध्व् अम्। पचध्वम्।

यहां 'लोट्' प्रत्यय के लादेश 'ध्वम्' प्रत्यय के 'टि' भाग को पूर्ववत् 'ए' आदेश होता है। उस 'ध्वे' आदेश के वकार से परवर्ती एकार के स्थान में इस सूत्र से 'अम्' आदेश होता है।

आट्-आगमः–

(७) आडुत्तमस्य पिच्च।९२।

प०वि०-आट् १।१ उत्तमस्य ६।१ पित् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्योत्तमस्याऽऽट् पिच्च।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्योत्तमपुरुषस्याऽऽडागमो भवति, स चोत्तमपुरुषः पिद् भवति।

उदा०-(परस्मैपदम्) अहं करवाणि। आवां करवाव। वयं करवाम। **(आत्मनेपदम्)** अहं करवै। आवां करवावहै। वयं करवामहै।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तम पुरुष को (आट्) आट् आगम होता है (पिच्च) और वह उत्तम पुरुष पित् होता है।

*उदा०-(परस्मैपद) **अहं करवाणि।** मैं करूं। **आवां करवाव।** हम दोनों करें। **वयं करवाम।** हम सब करें। (आत्मनेपद) **अहं करवै।** मैं करूं। **आवां करवावहै।** हम दोनों करें। **वयं करवामहै।** हम सब करें।*

*सिद्धि-(१) **करवाणि।** कृ+लोट्। कृ+उ+मिप्। कृ+उ+नि। कृ+उ+आट्+नि। कर्+ओ+आ+नि। करवाणि।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय के उत्तम पुरुष एकवचन के लादेश 'मिप्' प्रत्यय है, उसे '**मेर्निः**' (३।४।८९) से 'नि' आदेश होता है। इस सूत्र से उसे 'आट्' आगम होता है। '**तनादिकृञ्भ्य उः**' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है। उत्तम पुरुष के 'पित्' होने से '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'ङित्' नहीं होता है, अतः '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'उ' प्रत्यय को गुण होता। 'कृ' धातु को भी पूर्ववत् गुण होता है। '**अट्कुप्वाङ्०**' (८।४।२) से 'णत्व' होता है।*

*(२) **करवाव।** यहां 'लोटो लङ्वत्' (३।४।८५) से लङ्वद्भाव होने से **'स उत्तमस्य'** (३।४।९८) से 'वस्' प्रत्यय के 'स्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**करवाम।***

*(३) **करवै।** कृ+लोट्। कृ+उ+इट्। कृ+उ+आट्+इ। कृ+उ+आ+ए। कर्+ओ+आ+ऐ। कर्+ओ+ऐ। करवै।*

*यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय का लादेश उत्तम पुरुष एक वचन का 'इट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसे 'आट्' आगम होता है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'इट्' के 'टि' भाग को 'ए' आदेश और उसे **'एत ऐ'** (३।४।९३) से 'ऐ' आदेश और **'आटश्च'** (६।१।८७) से वृद्धि रूप एकादेश (आ+ऐ=ऐ। होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**करवावहै, करवामहै।***

ऐ-आदेशः-

(६) एत ऐ।९३।

प०वि०-एतः ६।१ ऐ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०-लस्य लोट इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लोटो लस्य एत ऐः।

अर्थः-धातोः परस्य लोट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने ऐकार आदेशो भवति।

उदा०-अहं करवै। आवां करवावहै। वयं करवामहै।

*आर्यभाषा-**अर्थ-**(धातोः) धातु से परे (लोटः) लोट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (ऐ) ऐ-आदेश होता है।*

*उदा०-**अहं करवै।** मैं करूं। **आवां करवावहै।** हम दोनों करें। **वयं करवामहै।** हम सब करें।*

***सिद्धि-करवै।** पूर्ववत् (३।४।९२)।*

लेट्-आदेशागमप्रकरणम्

अट्-आटावागमौ-

(१) लेटोऽडाटौ।९४।

प०वि०-लेटः ६।१ अट्-आटौ १।२।

स०-अट् च आट् च **तौ-अडाटौ** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्याडाटौ।

अर्थः-धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य पर्यायेण अट्-आटावागमौ भवतः।

उदा०-(**अट्**) जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। (**आट्**) पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। उदधिं च्यावयाति (तै०सं० ३।५।५।२)।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश को पर्याय से (अडाटौ) अट्-आट् आगम होते हैं।

*उदा०-(अट्) **जोषिषत्।** वह प्रीति/सेवन करे। **तारिषत्।** वह तरे। **मन्दिषत्।** वह स्तुति आदि करे। (आट्) **पताति दिद्युत्।** विद्युत् गिरे। **उदधिं च्यावयाति।** वह समुद्र में गिरावे।*

*सिद्धि-(१) **जोषिषत्।** जुष्+लेट्। जुष्+श+तिप्। जुष्+अ+अट्+ति। जुष्+सिप्+अ+अ+त्। जोष्+इट्+स्+अ+त्। जोष्+इ+ष्+अ+त्। जोषिषत्।*

*यहां **'जुषी प्रीतिसेवनयोः'** (तु०आ०) धातु से **'लिङर्थे लेट्'** (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है और उसके स्थान में लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'अट्' आगम होता है। **'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु'** (३।४।९७) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। **'सिब् बहुलं लेटि'** (३।१।३४) से 'सिप्' प्रत्यय होता है और उसे **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से 'षत्व' होता है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय भी होता है।*

*(२) **तारिषत्।** **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०)। यहां **'वा०-सिब्बहुलं छन्दसि णिद्वक्तव्यः'** (३।१।३४) से 'सिप्' के णिद्वद् होने से 'तॄ' धातु को **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **मन्दिषत्।** **'मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'** (भ्वा०आ०) से यहां **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से धातु को नुम् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **पताति।** यहां **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लेट्' के लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'आट्' आगम होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय भी होता है।*

*(५) **च्यावयाति।** यहां-णिजन्त **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लेट्' के लादेश 'तिप्' प्रत्यय को 'आट्' आगम है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय भी होता है।*

विशेष- *जो यहां उक्त धातु पाणिनीय धातुपाठ में आत्मनेपदी पढ़ी गई हैं किन्तु उन्हें यहां परस्मैपदी दिखाया गया है। लेट् लकार का वैदिकभाषा में ही प्रयोग होता है। इसका समाधान **'वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति'** है।*

ऐ-आदेशः-

(२) आत ऐ।६५।

प०वि०- आतः ६।१ ऐ १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देशः)।

अनु०- लस्य, लेट इति चानुवर्तते।

अन्वयः- धातोर्लेटो लस्याऽऽत ऐ।

अर्थः- धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्याऽऽकारस्य स्थाने ऐकार आदेशो भवति।

उदा०- तौ मन्त्रयैते। युवां मन्त्रयैथे। तौ करवैते। युवां करवैथे।

आर्यभाषा-अर्थ- *(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (आतः) आकार के स्थान में (ऐ) ऐकार आदेश होता है।*

*उदा०-**तौ मन्त्रयैते।** वे दोनों मन्त्रणा करें। **युवां मन्त्रयैथे।** तुम दोनों मन्त्रणा करो। **तौ करवैते।** वे दोनों करें। **युवां करवैथे।** तुम दोनों करो।*

*सिद्धि-(१) **मन्त्रयैते।** मन्त्रि+लेट्। मन्त्रि+आताम्। मन्त्रि+शप्+अट्+आताम्। मन्त्रि+अ+अ+आते। मन्त्रि+अ+ऐते। मन्त्रे+अ+ऐते। मन्त्रयैते।*

*यहां **'मन्त्रि गुप्तभाषणे'** (चु०आ०) इस णिजन्त धातु से 'लेट्' प्रत्यय के लादेश 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' के स्थान में इस सूत्र से 'ऐ' आदेश होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'मन्त्रि' धातु को गुण और 'अय्' आदेश होता है।*

*(२) **मन्त्रयैथे।** यहां 'आथाम्' प्रत्यय के 'आ' के स्थान में 'ऐ' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **करवैते।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'ऐ' आदेश है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को तथा 'उ' प्रत्यय को भी गुण हो*

*जाता है। तत्पश्चात् 'अव्' आदेश होता है। यहां 'छन्दस्युभयथा' (३।४।११७) से 'आताम्' प्रत्यय को सार्वधातुक मानकर 'तनादिकृञ्भ्यः उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय होता है और 'आताम्' प्रत्यय को आर्धधातुक मानकर ङित्त्वाभाव से विकरण प्रत्यय को गुण हो जाता है और 'कृ' धातु को उत्व नहीं होता है। ऐसे ही-**करवैथे**।*

ऐ-आदेशविकल्पः–

(३) वैतोऽन्यत्र।९६।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, एतः ६।१ अन्यत्र अव्ययपदम्।

अनु०–लस्य, लेटः, ऐ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्लेटो लस्य एतो वा ऐ, अन्यत्र।

अर्थः–धातोः परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य एकारस्य स्थाने विकल्पेन ऐकार आदेशो भवति, परं स **'आत ऐ'** (३।४।९५) इत्युक्तविषयादन्यत्र वेदितव्यः।

उदा०–(ऐ–आदेशः) सप्ताहानि शासै। अहमेव पशूनामीशै (का०सं० २५।१)। मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै (तै०सं० ६।४।७।१)। मद्देवतान्येव वः पात्राण्युच्यान्तै (तै०सं० ६।४।७।२)। न च भवति–यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् (ऋ० ६।१६।१७)।

*आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (एतः) एकार के स्थान में (ऐ) ऐकार आदेश होता है, परन्तु वह **'आत ऐ'** (३।४।९५) के उक्त विषय से (अन्यत्र) अन्य स्थान पर होता है।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **शासै**। शास्+लेट्। शास्+शप्+अट्+इट्। शास्+०+अ+ए। शास्+अ+ऐ। शासै।*

*यहां **'शासु अनुशिष्टौ'** (अदा०प०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके 'ल्' के स्थान में उत्तम पुरुष एकवचन 'इट्' आदेश है। उसे **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'एत्व' होता है। इस सूत्र से उस एकार के स्थान में 'ऐकार' आदेश होता है।*

*(२) **ईशै**। **'ईश ऐश्वर्ये'** (अदा०आ०) पूर्ववत्। **गृह्यान्तै, उच्यान्तै** पदों की सिद्धि **'उपसंवादाशङ्कयोश्च'** (३।४।८) के प्रवचन में देख लेवें।*

*(३) **दधसे।** धा+लेट्। धा+शप्+अट्+थास्। धा+धा+०+अ+से। ध+धा+अ+से। द+ध्+अ+से। दधसे।*

*यहां '**डुधाञ् धारणपोषणयो:**' (जु०उ०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके 'ल्' के स्थान में 'थास्' आदेश है। '**थास: से**' (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश होता है। इस सूत्र से विकल्प 'से' के एकार को ऐकार आदेश नहीं होता है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, '**जुहोत्यादिभ्य: श्लु:**' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, '**श्लौ**' (६।१।१०) से 'धा' धातु को द्विर्वचन '**लेटोऽडाटौ**' ३।४।९४) से 'अट्' आगम और '**घोर्लोपो लेटि वा**' (७।३।७०) से आकार का लोप होता है।*

इकार-लोप:–

(४) इतश्च लोप: परस्मैपदेषु।६७।

प०वि०–इत: ६।१ च अव्ययपदम्, लोप: १।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०–लस्य, लेट:, वा इति चानुवर्तते।

अन्वय:–धातोर्लेटो लस्य परस्मैपदेषु इतश्च वा लोप:।

अर्थ:–धातो: परस्य लेट्सम्बन्धिनो लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु वर्तमानस्य च इकारस्य विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०–**इकारलोप:**–जोषिषत् (ऋ० २।३५।१)। तारिषत् (ऋ० १।२५।१२)। मन्दिषत्। न च भवति–पताति दिद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। उदधिं च्यावयाति (तै०सं० ३।५।५।२)।

*आर्यभाषा-**अर्थ**-(धातो:) धातु से परे (लेट:) लेट्सम्बन्धी (परस्मैपदेषु) परस्मैपद संज्ञक (लस्य) लादेशों में विद्यमान (इत:) इकार का (च) भी (वा) विकल्प से (लोप:) होता है।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-**जोषिषत्** आदि पदों की सिद्धि '**लेटोऽडाटौ**' (३।४।९४) के प्रवचन में देख लेवें।*

सकार-लोप:–

(५) स उत्तमस्य।६८।

प०वि०–स: ६।१ उत्तमस्य ६।१।

अनु०–लस्य, लेट:, वा, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लेटो लस्य उत्तमस्य सो वा लोपः।

अर्थः-धातो परस्य लेट्सम्बन्धिनो लादेशस्य उत्तमपुरुषस्य सकारस्य विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-सकारस्य लोपः-आवां करवाव। वयं करवाम। न च भवति-आवां करवावः। वयं करवामः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लेटः) लेट् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तम पुरुष के (सः) सकार का (वा) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-सकार का लोप-**आवां करवाव। वयं करवाम।** सकार का लोप नहीं-**आवां करवावः। वयं करवामः।** हम दोनों करें। हम सब करें।*

*सिद्धि-(१) **करवाव।** कृ+लेट्। कृ+उ+आट्+वस्। कर्+ओ+आ+व। करवाव।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय और उसके स्थान में लादेश उत्तम पुरुष का द्विवचन 'वस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वस्' के सकार का लोप होता है। यहां '**लेटोऽडाटौ**' (३।४।९४) से 'आट्' आगम, '**तनादिकृञ्भ्यः उः**' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय और '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' धातु और 'उ' प्रत्यय को गुण होता है। '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-**करवाम।***

*(२) **करवावः।** कृ+लेट्। कृ+उ+आट्+वस्। कर्+ओ+आ+वस्। करवावरु। करवावर्। करवावः।*

*यहां इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'वस्' प्रत्यय के सकार का लोप नहीं होता है। उसे '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) रुत्व और '**खरवासनयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को 'विसर्जनीय' आदेश होता है। ऐसे ही-**करवामः।***

ङित्-लकारादेशागमप्रकरणम्

सकार-लोपः (ङिति)-

(१) नित्यं ङितः।९६।

प०वि०-नित्यम् १।१ ङितः ६।१।

अनु०-लस्य, लोपः, सः, उत्तमस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्ङितो लस्य उत्तमस्य सो नित्यं लोपः।

अर्थ:-धातो: परस्य ङितो लकारस्य लादेशस्य उत्तमपुरुषस्य सकारस्य नित्यं लोपो भवति।

उदा०-आवाम् अपचाव। वयम् अपचाम।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातो:) धातु से परे (ङित:) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (उत्तमस्य) उत्तमपुरुष के (स:) सकार का (नित्यम्) सदा (लोप:) लोप होता है।

*उदा०-**आवाम् अपचाव।** हम दोनों ने पकाया। **वयम् अपचाम।** हम सबने पकाया।*

*सिद्धि-(१) **अपचाव।** पच्+लङ्। अट्+पच्+शप्+वस्। अ+पच्+अ+व०। अ+पच्+आ+व। अपचाव।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश उत्तम पुरुष द्विवचन 'वस्' प्रत्यय के सकार का इस सूत्र से नित्य लोप होता है। यहां **'लङ्लुङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त:'** (६।४।७१) से 'अट्' आगम, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से दीर्घत्व होता है। ऐसे ही-**अपचाम।***

इकार-लोप: (ङिति)-

(२) इतश्च।१००।

प०वि०-इत: ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, ङित:, लोप:, नित्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-धातोर्ङितो लस्य इतश्च नित्यं लोप:।

अर्थ:-धातो: परस्य ङितो लकारस्य लादेशस्य इकारस्य च नित्यं लोपो भवति।

उदा०-अपचत्। अपाक्षीत् इत्यादिकम्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातो:) धातु से परे (ङित:) ङित् लकार के (लस्य) लादेश के (इत:) इकार का (च) भी (नित्यम्) सदा (लोप:) लोप होता है।

*उदा०-**अपचत्।** उसने पकाया। **अपाक्षीत्।** उसने पकाया।*

*सिद्धि-(१) **अपचत्।** पच्+लङ्। लट्+पच्+शप्+तिप्। अ+पच्+अ+ति। अ+पच्+अ+त्। अपचत्।*

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय के इकार का इस सूत्र से लोप होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम और 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है।

*(२) **अपाक्षीत्।** पच्+लुङ्। अट्+पच्+च्लि+ल्। अ+पच्+सिच्+तिप्। अ+पच्+स्+त्। अ+पच्+स्+इट्+त्। अ+पाच्+स्+ई+त्। अ+पाक्+ष्+ई+त्। अपाक्षीत्।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय के इकार का इस सूत्र से लोप होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम, '**च्लि लुङि**' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, '**अस्तिसिचोऽपृक्ते**' (७।३।९६) से 'त्' प्रत्यय को 'ईट्' आगम होता है। 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से 'पच्' धातु को वृद्धि, 'चोः कुः' (८।२।३०) से कुत्व और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

ताम्-आद्यादेशाः (ङिति)--

(३) तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः।१०१।

प०वि०-तस्-थस्-थ-मिपाम् ६।३ ताम्-तम्-त-आमः १।३।

स०-तस् च थस् च थश्च मिप् च ते-तस्थस्थमिपः, तेषाम्-तस्थस्थमिपाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ताम् च तम् च तश्च अम् च ते-तान्तन्तामः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य, ङित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्ङितो लस्य तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः।

अर्थः-धातोः परस्य ङितो लकारस्य लादेशानां तस्-थस्-थ-मिपां स्थाने यथासंख्यं ताम्-तम्-त-अम आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्-**

	लादेशाः	तामादयः	पच्+लङ्	भाषार्थः
(१)	तस्	ताम्	तौ अपचताम्।	उन दोनों ने पकाया।
(२)	थस्	तम्	युवाम् अपचतम्।	तुम दोनों ने पकाया।
(३)	थः	तः	यूयम् अपचत।	तुम सब ने पकाया।
(४)	मिप्	अम्	अहम् अपचम्।	मैंने पकाया।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (तस्थस्थमिपाम्) तस्, थस्, थ, मिप् के स्थान में यथासंख्य (तान्तन्तामः) ताम्, तम्, त, अम् आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **अपचताम्।** पच्+लङ्। अट्+पच्+शप्+तस्। अ+पच्+अ+ताम्। अपचताम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से परे '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तस्' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'ताम्' आदेश है। 'पच्' धातु को पूर्ववत् 'अट्' आगम और 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**अपचतम्, अपचत, अपचम्।***

सीयुट्+आगमः (लिङि)-

(४) लिङः सीयुट्।१०२।

प०वि०-लिङः ६।१ सीयुट् १।१।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य सीयुट्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्-सम्बन्धिनो लादेशस्य सीयुड् आगमो भवति।

उदा०-स पचेत। तौ पचेयाताम्। ते पचेरन्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश को (सीयुट्) आगम होता है।

*उदा०-**स पचेत।** वह पकावे। **तौ पचेयाताम्।** वे दोनों पकावें। **ते पचेरन्।** वे सब पकावें।*

*सिद्धि-(१) **पचेत।** पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+त। पच्+अ+ईय्+सुट्+त। पच्+अ+ई ०+स्+त। पच्+अ+ई+०+त। पचेत।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**विधिनिमन्त्रण०**' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'त' प्रत्यय को इस सूत्र से 'सीयुट्' आगम है। '**सुट् तिथोः**' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम भी होता है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। '**लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य**' (७।२।७९) से 'सीयुट्' के 'स्' का लोप और '**लोपो व्योर्वलि**' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। '**आद्गुणः**' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।*

*(२) **पचेयाताम्।** यहां 'आताम्' प्रत्यय है।*

*(३) **पचेरन्।** यहां 'झ' प्रत्यय और उसके स्थान में '**झस्य रन्**' (३।४।१०५) से 'रन्' आदेश है।*

यासुट्-आगमः (लिङि)–

(५) यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च।१०३।

प०वि०-यासुट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३ उदात्तः १।१ ङित् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित् (बहुव्रीहिः)

अनु०-लस्य इति चानुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु यासुट् आगमो भवति, स उदात्तो ङिच्च भवति।

उदा०-स कुर्यात्। तौ कुर्याताम्। ते कुर्युः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (परस्मैपदेषु) परस्मैपद संज्ञक आदेशों में (यासुट्) यासुट् आगम होता है और वह (उदात्तः) उदात्त और (ङित्) ङित् होता है।

*उदा०-स **कुर्यात्**। वह करे। तौ **कुर्याताम्**। वे दोनों करें। ते **कुर्युः**। वे सब करें।*

*सिद्धि-(१) **कुर्यात्**। कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+तिप्। कृ+उ+यास्+सुट्+त्। कर्+उ+या+०+त्। कुर्+०+या+त्। कुर्यात्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'विधिनिमन्त्रण०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से यासुट् आगम है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से यासुट् के 'स्' का लोप और **'इतश्च'** (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण (कर्) **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से 'कर्' के 'अ' को 'उकार' आदेश और **'ये च'** (६।४।१०९) से 'उ' प्रत्यय का लोप होता है।*

*(२) **कुर्याताम्**। यहां 'तस्' प्रत्यय के स्थान में **'तस्थस्०'** (३।४।१०१) से 'आताम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **कुर्युः**। यहां 'झि' प्रत्यय के स्थान में **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'जुस्' आदेश है। **'उस्यपदान्तात्'** (६।१।९३) से 'आ' को पररूप एकादेश (या+उस्=युः) होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-यहां 'यासुट्' आगम के उदात्त कथन से ज्ञापित होता है कि **'आगमा अनुदात्ता भवन्ति'** अर्थात् आगम अनुदात्त होते हैं। यहां 'यासुट्' आगम का ङित् कहना*

तिप्, सिप्, मिप् इन पित् प्रत्ययों के लिये हैं। शेष अपित् प्रत्यय 'सार्वधातुकमपित्' (१।२।४) से 'ङित्' होते हैं।

यासुट्-आगमः (आशीर्लिङि)–

(६) किदाशिषि।१०४।

प०वि०-कित् १।१ आशिषि ७।१।

स०-क् इद् यस्य स कित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-लस्य, लिङः, यासुट् परस्मैपदेषु, उदात्त, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोराशिषि लिङो लस्य परस्मैपदेषु यासुट्, उदात्तः किच्च।

अर्थः-धातोः परस्याऽऽशिषि अर्थे विहितस्य लिङ्लकारस्य लस्य परस्मैपदसंज्ञकेषु आदेशेषु यासुट्-आगमो भवति, स उदात्तः किच्च भवति।

उदा०-स इज्यात्। तौ इज्यास्ताम्। ते इज्यासुः। स जागर्यात्। तौ जागर्यास्ताम्। ते जागर्यासुः।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातु से परे (आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में विहित (लिङः) लिङ् लकार के (परस्मैपदेषु) परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों में (यासुट्) यासुट् आगम होता है (सः) वह (उदात्तः) उदात्त और (कित्) कित् (च) भी होता है।

उदा०-__स इज्यात्।__ वह यज्ञ करे। __तौ इज्यास्ताम्।__ वे दोनों यज्ञ करें। __ते इज्यासुः।__ वे सब यज्ञ करें। __स जागर्यात्।__ वह जागरण करे। __तौ जागर्यास्ताम्।__ वे दोनों जागरण करें। __ते जागर्यासुः।__ वे सब जागरण करें।

सिद्धि-(१) __इज्यात्।__ यज्+लिङ्। यज्+यासुट्+तिप्। यज्+यास्+सुट्+त्। इ अ ज्+या ०+स्+ते। इज्या+० त्। इज्यात्।

यहां __'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'__ (भ्वा०उ०) धातु से __'आशिषि लिङ्लोटौ'__ (३।३।१७३) से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'तिप्' प्रत्यय को इस सूत्र से 'यासुट्' आगम है और __'सुट् तिथोः'__ (४।३।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। __'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'__ (८।२।२९) से 'यासुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप होता है। 'यासुट्' आगम के 'कित्' होने से __'वचिस्वपियजादीनां किति'__ (६।१।१५) से 'यज्' धातु को सम्प्रसारण होता है। __'लिङाशिषि'__ (३।४।११६) से आशीर्लिङ् के आर्धधातुक होने से __'कर्तरि शप्'__ (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय नहीं होता है।

(२) __इज्यास्ताम्।__ यहां 'तस्' के स्थान में __'तस्थस०'__ (३।४।१०१) से 'ताम्' आदेश और __'सुट् तिथोः'__ (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'यासुट्' के सकार का __'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'__ (८।२।२९) से लोप हो जाता है।

(३) इज्यासुः। यहां 'झि' के स्थान में 'झेर्जुस्' (३।४।१०८) से 'जुस्' आदेश है।

(४) जागर्यात्। यहां 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' और उसके लादेश 'तिप्' को 'यासुट्' आगम है। उसके 'कित्' होने से 'जाग्रोऽविचिणणल्ङित्सु' (७।२।८५) से 'जागृ' धातु को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं। ऐसे ही-जागर्यास्ताम्, जागर्यासुः।

रन्-आदेशः (लिङि)—

(७) झस्य रन्।१०५।

प०वि०-झस्य ६।१ रन् १।१।

अनु०-लस्य इत्यनुवर्तते।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झ-प्रत्ययस्य स्थाने रन्-आदेशो भवति।

उदा०-ते पचेरन्। ते यजेरन्।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झस्य) झ-प्रत्यय के स्थान में (रन्) रन् आदेश होता है।

उदा०-ते पचेरन्। वे सब पकावें। ते यजेरन्। वे सब यज्ञ करें।

सिद्धि-(१) पचेरन्। पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+त। पच्+अ+सीय्+सुट्+त। पच्+अ+सीय्+स्+त। पच्+अ+ईय्+०+त। पच्+अ+ई+०+त। पचेत।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'विधिनिमन्त्रण०' (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झ' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'रन्' आदेश है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम, 'सुट् तिथोः' (६।४।१०७) से 'सुट्' आगम और 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'सीयुट्' और 'सुट्' के 'स्' का लोप और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+ई=ए) होता है।

(२) यजेरन्। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

अत्-आदेशः (लिङि)—

(८) इटोऽत्।१०६।

प०वि०-इटः ६।१ अत् १।१।

अनु०-लस्य, लिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य इटोऽत्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य इटः स्थानेऽत्-आदेशो भवति।

उदा०-अहं पचेय। अहं यजेय।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (इटः) 'इट्' प्रत्यय के स्थान में (अत्) अत् आदेश होता है।

*उदा०-अहं **पचेय**। मैं पकाऊं। अहं **यजेय**। मैं यज्ञ करूं।*

__सिद्धि__-(१) __पचेय__। पच्+लिङ्। पच्+शप्+सीयुट्+इट्। पच्+अ+सीय्+अत्। पच्+अ+०+ई य्+अ। पचेय।

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से परे **'विधिनिमन्त्रण०'** (३।१।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'इट्' प्रत्यय के स्थान में 'अत्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है (३।४।१०५)।*

*(२) **यजेय**। पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत्।*

सुट्-आगमः (लिङि)-

(६) सुट् तिथोः।१०७।

प०वि०-सुट् १।१ तिथोः ७।२।

स०-तिश्च थश्च तौ-तिथौ, तयोः-तिथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तकारे इकार उच्चारणार्थः।

अनु०-लस्य, लिङः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिङो लस्य तिथोः सुट्।

अर्थः-धातोः परस्य लिङ्सम्बन्धिनो लादेशयोस् तकार-थकारयोः सुट्-आगमो भवति।

उदा०-(तः) स कृषीष्ट। तौ कृषीयास्ताम्। **(थः)** त्वं कृषीष्ठाः। युवां कृषीयास्थाम्।

__आर्यभाषा-अर्थ__-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (तथोः) त और थ को (सुट्) सुट् आगम होता है।

*उदा०-(त) **स कृषीष्ट।** वह शुभ कर्म करे। **तौ कृषीयास्ताम्।** वे दोनों शुभ कर्म करें। (थ) **त्वं कृषीष्ठाः।** तू शुभ कर्म कर। **युवां कृषीयास्थाम्।** तुम दोनों शुभ कर्म करो।*

सिद्धि- (१) **कृषीष्ट।** कृ+लिङ्। कृ+सीयुट्+त। कृ+सीय्+सुट्+त। कृसी०+स्+त। *कृ+षी+स्+ट। कृषीष्ट।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्लिङ् अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है और उसके लादेश 'त' प्रत्यय को इस सूत्र से 'सुट्' आगम होता है। **'लिङः सीयुट्'** (३।३।१०२) से 'सीयुट्' आगम है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।२।५९) से षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) से टुत्व होता है।*

*(२) **कृषीयास्ताम्।** यहां 'आताम्' प्रत्यय के 'त' को 'सुट्' आगम है।*

*(३) **कृषीष्ठाः।** यहां 'थास्' प्रत्यय के 'थ' को सुट् आगम और पूर्ववत् षत्व और ष्टुत्व होता है।*

*(४) **कृषीयास्थाम्।** यहां 'आथाम्' प्रत्यय के 'थ' को 'सुट्' आगम है।*

जुस्-आदेशः (लिङि)–

(१०) झेर्जुस्।१०८।

प०वि०-झेः ६।१ जुस् १।१।

अनु०-लस्य, लिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोर्लिङो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः-धातोः [illegible] लिङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-स्थाने जुस्-आदेशो भवति।

उदा०-ते पचेयुः। ते यजेयुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से परे (लिङः) लिङ सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।

*उदा०-**ते पचेयुः।** वे सब पकावें। **ते यजेयुः।** वे सब यज्ञ करें।*

सिद्धि- *(१) **पचेयुः।** पच्+लिङ्। पच्+शप्+यासुट्+झि। पच्+अ+यास्+जुस्। पच्+अ+या०+उस्। पच्+अ+इय्+उस्। पच्+अ+इ०+उस्। पचेयुः।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से **'विधिनिमन्त्रण०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश है। **'यासुट् परस्मैपदेषु०'** (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से*

'शप्' विकरण प्रत्यय है। 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' (७।२।७९) से 'यासुट्' के 'स्' का लोप होता है। 'अतो येयः' (७।२।८०) से 'या' को 'इय्' आदेश, 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६४) से 'य्' का लोप और 'आद्गुणः' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।

(२) यजेयुः। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

जुस्-आदेशः--

(११) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च।१०६।

प०वि०-सिच्-अभ्यस्त-विदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सिच् च अभ्यस्तश्च विदिश्च ते-सिजभ्यस्तविदयः, तेभ्यः-सिजभ्यस्तविदिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-लस्य, ङित्, झेः, जुस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च धातुभ्यो ङितो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः-सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च धातोः परस्य अपि ङित्-सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस्-आदेशो भवति।

उदा०-(सिचः) ते अकार्षुः। ते अहार्षुः। **(अभ्यस्तात्)** ते अबिभयुः। ते अजिह्रयुः। **(विदेः)** ते अविदुः।

आर्यभाषा-अर्थ-(सिजभ्यस्तविदिभ्यः) सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त और विद् (धातोः) धातु से परे (च) भी (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश के (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।

उदा०-(सिच्) ते अकार्षुः। उन्होंने किया। ते अहार्षुः। उन्होंने हरण किया। (अभ्यस्त) ते अबिभयुः। वे भयभीत हुये। ते अजिह्रयुः। वे लज्जित हुये। (विद्) ते अविदुः। उन्होंने जाना।

सिद्धि-(१) अकार्षुः। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+झि। अ+कार्+ष्+उस्। अ+कृ+स्+जुस्। अकार्षुः।

यहां 'कृ' धातु से परे 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। 'सिच्' से परे 'लुङ्' प्रत्यय के लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश होता है। 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से 'कृ' धातु को वृद्धि और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'हृ' धातु से-अहार्षुः।

(२) अबिभयुः । भी+लुङ् । अट्+भी+शप्+झि । अ+भी+०+झि । अ+भी+भी+जुस् । अ+बि+भे+उस् । अबिभयुः ।

यहां ***'ञिभी भये'*** *(जु०प०) धातु से* ***'अनद्यतने लङ्'*** *(३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, 'लङ्' के स्थान में लादेश 'झि' प्रत्यय होता है।* ***'कर्तरि शप्'*** *(३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय,* ***'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'*** *(२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' और* ***'श्लौ'*** *(६।१।१०) से 'भी' धातु को द्विर्वचन होता है।* ***'उभे अभ्यस्तम्'*** *(६।१।५) से द्विरुक्त धातु की अभ्यस्त संज्ञा और इस सूत्र से अभ्यस्त धातु से 'झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' होता है।* ***'ह्रस्वः'*** *(७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व और* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५३) से अभ्यास के 'भ्' को जश् 'ब्' होता है।* ***'जुसि च'*** *(७।३।८३) से धातु को गुण,* ***'एचोऽयवायावः'*** *(६।१।७५) से 'अय्' आदेश होता है।*

(३) अजिह्युः । ***'ह्री लज्जायाम्'*** *(जु०प०)। अभ्यास के 'ह्' को* ***'कुहोश्चुः'*** *(७।४।६२) से चवर्ग 'झ' और* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५३) से 'झ्' को जश् 'ज्' होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) अविदुः । विद्+लङ् । अट्+विद्+शप्+झि । अ+विद्+०+जुस् । अ+विद्+उस । अविदुः ।

यहां ***'विद ज्ञाने'*** *(अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'जुस्' आदेश होता है।*

जुस्-आदेशः—

(१२) आतः।११०।

प०वि०-आतः ५।१।

अनु०-लस्य, ङितः, झेः, जुस्, सिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सिचो लुकि सति आतो धातोर्ङितो लस्य झेर्जुस्।

अर्थः-सिचो लुकि सति श्रुत्याऽऽकारान्ताद् धातोः परस्य ङित्-सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति।

उदा०-ते अदुः। ते अधुः। ते अस्थुः।

आर्यभाषा-अर्थ- *(सिच्) सिच् प्रत्यय का लुक् हो जाने पर श्रुति से (आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परे (ङितः) ङित् लकार सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है।*

उदा०-ते अदुः । *उन्होंने दान किया।* ***ते अधुः ।*** *उन्होंने धारण-पोषण किया।* ***ते अस्थुः ।*** *उन्होंने अवस्थान किया।*

सिद्धि-(१) दा+लुङ्। अट्+दा+च्लि+ल्। अ+दा+सिच्+झि। अ+दा+०+जुस्। अ+दा+उस्। अ+द+उस्। अदुः।

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। **'गातिस्थाघु०'** (२।४।७७) से सिच् का लुक् होने पर इस सूत्र से आकारान्त 'दा' धातु से लादेश झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। **'उस्यपदान्तात्'** (६।१।९६) से 'दा' धातु के 'आ' को पररूप एकादेश (उ) होता है।*

*(२) **अधुः।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **अस्थुः।** **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

शाकटायनमतम्–

(१३) लङः शाकटायनस्यैव।१११।

प०वि०-लङः ६।१ शाकटायनस्य ६।१ एव अव्ययपदम्।

अनु०-लस्य, झेः, जुस्, आत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतो धातोर्लङो लस्य झेर्जुस्, शाकटायनस्यैव।

अर्थः-आकारान्ताद् धातोः परस्य लङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन।

उदा०-ते अयुः। ते अवुः। पाणिनिमते-अयान्। अवान्।

आर्यभाषा-अर्थ-(आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परे (लङः) लङ्सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के (एव) ही मत में।*

*उदा०-ते **अयुः।** वे गये/पहुंचे। ते **अवुः।** वे पवन से बुझ गये। **पाणिनि के मत में-अयान्। अवान्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **अयुः।** या+लङ्। अट्+या+शप्+झि। अ+या+०+जुस्। अ+या+उस्। अयुः।*

*यहां **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, पूर्ववत् 'अट्' आगम, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। 'लङ्' प्रत्यय के लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से शाकटायन आचार्य के मत में 'जुस्' आदेश होता है।*

(२) अवुः । 'वा गतिगन्धनयोः' (अदा०प०) पूर्ववत्।

(३) अयान् । या+लङ्। अट्+या+शप्+झि। अ+या+०+अन्ति। अ+या+अन्त्। अ+यान्०। अयान्।

यहां 'लङ्' प्रत्यय के आदेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में पाणिनिमुनि के मत में 'झोऽन्तः' (७।१।३) से 'अन्त' आदेश होता है। 'इतश्च' (३।४।१००) से 'इकार' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'तकार' का लोप होता है।

शाकटायनमतम्–

(१४) द्विषश्च।११२।

प०वि०–द्विषः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–लस्य, झेः, जुस्, लङः, शाकटायनस्य, एव इति चानुवर्तते।

अर्थः–द्विषश्च धातोः परस्य लङ्सम्बन्धिनो लादेशस्य झि-प्रत्ययस्य स्थाने जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन।

उदा०–ते अद्विषुः। पाणिनिमते-अद्विषन्।

आर्यभाषा-अर्थ-(द्विषः) द्विष् (धातोः) धातु से परे (च) भी (लङः) लङ् सम्बन्धी (लस्य) लादेश (झेः) झि-प्रत्यय के स्थान में (जुस्) जुस् आदेश होता है, (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के (एव) ही मत में।

उदा०-ते अद्विषुः। उन्होंने द्वेष किया। पाणिनिमते-अद्विषन्। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) अद्विषुः। यहां 'द्विष अप्रीतौ' (अदा०प०) धातु से परे पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय और उसके लादेश 'झि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से शाकटायन आचार्य के मत में 'जुस्' आदेश होता है।

(२) अद्विषन्। यहां पाणिनिमुनि के मत में 'झि' प्रत्यय के स्थान में 'जुस्' आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इति लकारादेशप्रकरणम्।

सार्वधातुकसंज्ञा

(१) तिङ्शित् सार्वधातुकम्।११३।

प०वि०–तिङ्शित् १।१ सार्वधातुकम् १।१।

स०–श इत् यस्य स शित्, तिङ् च शिच्च एतयोः समाहारः-तिङ्शित् (बहुव्रीहिगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-धातोस्तिङ्शित् सार्वधातुकम्।

अर्थः-धातोर्विहिता स्तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुकसंज्ञका भवति।

उदा०-स भवति। स नयति। स स्वपिति। स रोदिति। पवमानः। यजमानः।

आर्यभाषा-अर्थ-(धातोः) धातु से विहित (तिङ्शित्) तिङ् और शित् प्रत्यय (सार्वधातुकम्) सार्वधातुक संज्ञक होते हैं।

*उदा०-**स भवति।** वह होता है। **स नयति।** वह ले जाता है। **स स्वपिति।** वह सोता है। **स रोदिति।** वह रोता है। **पवमानः।** पवित्र करता हुआ। **यजमानः।** यज्ञ करता हुआ।*

*सिद्धि-(१) **भवति।** भू+लट्। भू+शप्+तिप्। भू+अ+ति। भो+अ+ति। भवति।*

*यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में 'तिप्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'तिप्' की सार्वधातुक संज्ञा होने से **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। 'शप्' प्रत्यय के 'शित्' होने से इसी सूत्र से उसकी भी सार्वधातुक संज्ञा होती है। अतः **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'भू' धातु को गुण होता है।*

*(२) **नयति।** **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **स्वपिति।** स्वप्+लट्। स्वप्+शप्+तिप्। स्वप्+०+ति। स्वप्+इट्+ति। स्वप्+इ+ति। स्वपिति।*

*यहां **'ञिष्वप् शये'** (अदा०प०)। यहां 'तिप्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'रुदादिभ्यः सार्वधातुके'** (७।२।७६) से सार्वधातुक को 'इट्' आगम होता है।*

*(४) **रोदिति।** 'रुदिर् **अश्रुविमोचने'** (अदा०प०) पूर्ववत्।*

*(५) **पवमानः।** पू+शानन्। पू+शप्+आन। पो+अ+मुक्+आन। पो+अ+म्+आन। पवमान+सु। पवमानः।*

*यहां **'पूङ् पवने'** (भ्वा०आ०) धातु से **'पूङ्यजोः शानन्'** (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय है। प्रत्यय के 'शित्' होने से इस सूत्र से उसकी सार्वधातुक संज्ञा है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'पू' धातु को गुण होता है।*

*(६) **यजमानः। 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

आर्धधातुकसंज्ञा–

(१) आर्धधातुकं शेषः।११४।

प०वि०–आर्धधातुकम् १।१ शेषः १।१। उक्तादन्यः शेषः।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अर्थः–धातोर्विहिताः शेषाः=तिङ्शिद्भिन्नाः प्रत्यया आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति।

उदा०–लविता। लवितुम्। लवितव्यम्।

आर्यभाषा–अर्थ–(धातोः) धातु से विहित (शेषः) तिङ् और शित् से भिन्न प्रत्ययों की (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञा होती है।

*उदा०–**लविता**। काटनेवाला। **लवितुम्**। काटने के लिये। **लवितव्यम्**। काटना चाहिये।*

*सिद्धि–(१) **लविता**। लू+तृच्। लू+इट्+तृच्। लो+इ+तृ। लवितृ+सु। लविता।*

*यहां **'लूञ् छेदने'** (क्रया०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय 'तिङ्' और 'शित्' से भिन्न है। अतः इस सूत्र से इसकी सार्वधातुक संज्ञा है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से इसे 'इट्' आगम होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (३७।३।८४) से 'लू' धातु को गुण होता है। शेष सिद्धि-कार्य **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) के प्रवचन में देख लेवें।*

*(२) **लवितुम्**। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से आर्धधातुक 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **लवितव्यम्**। यहां **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से आर्धधातुक तव्यत्/तव्य प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आर्धधातुकसंज्ञा–

(२) लिट् च।११५।

प०वि०–लिट् (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) च अव्ययपदम्।

अनु०–आर्धधातुकम् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–लिटः स्थाने यस्तिङ् आदेशः सोऽपि आर्धधातुकसंज्ञको भवति।

उदा०–त्वं पेचिथ। त्वं शेकिथ। स जग्ले। स मम्ले।

आर्यभाषा–अर्थ–(लिट्) लिट् के स्थान में जो तिङ् आदेश है उसकी (च) भी (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञा होती है।

*उदा०-त्वं **पेचिथ**। तूने पकाया। त्वं **शेकिथ**। तू समर्थ हुआ। स **जग्ले**। स **मम्ले**। उसने ग्लानि की।*

*सिद्धि-(१) **पेचिथ**। पच्+लिट्। पच्+सिप्। पच्+थल्। पच्+पच्+थ। प+पच्+थ। ०+पच्+इट्+थ। पेच्+इ+थ। पेचिथ।*

*यहां 'पच्' धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय और '**तिप्तसझि०**' (३।४।७८) से उसके स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से उसकी आर्धधातुक संज्ञा है। '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'पच्' धातु को द्विर्वचन होता है। '**ऋतो भारद्वाजस्य**' (७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम और '**थलि च सेटि**' (६।४।१२१) से 'पच्' धातु को एत्व और अभ्यास का लोप होता है।*

*(२) **शेकिथ**। '**शक्लृ शक्तौ**' (स्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **जग्ले**। ग्ला+लिट्। ग्ला+त। ग्ला+ऐश्। ग्ला+ग्ला+ए। गा+ग्ला+ए। ग+ग्ल्+ए। ज+ग्ल्+ए। जग्ले।*

*यहां '**ग्लै हर्षक्षये**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से उसकी आर्धधातुक संज्ञा है। '**लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' होता है। पूर्ववत् 'ग्ला' धातु को द्वित्व और '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से 'ग्' को चवर्ग 'ज्' होता है। त (एश्) प्रत्यय के आर्धधातुक होने से '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से धातु के 'आ' का लोप हो जाता है।*

*(४) **मम्ले**। '**म्लै हर्षक्षये**' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

आर्धधातुकसंज्ञा—

(३) लिङाशिषि।११६।

प०वि०-लिङ् ६।१ (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) आशिषि ७।१।

अनु०-आर्धधातुकम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि लिङो लस्यादेश आर्धधातुकम्।

अर्थः-आशिषि वर्तमानस्य लिङो लकारस्यादेशा आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-स लविषीष्ट। स पविषीष्ट।

***आर्यभाषा-अर्थ**-(आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में विद्यमान (लिङ्) लिङ् सम्बन्धी लकार के तिप् आदि आदेश (आर्धधातुकम्) आर्धधातुक संज्ञक होते हैं।*

*उदा०-स **लविषीष्ट।** वह कटाई करे। स **पविषीष्ट।** वह पवित्र करे।*

*सिद्धि-(१) **लविषीष्ट।** लू+लिङ्। लू+सीयुट्+त। लू+सीय्+सुट्+त। लू+इट्+सी०+स्+त। लो+इ+षी+ष+ट। लविषीष्ट।*

*यहां 'लूञ छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। उसके स्थान में 'त' आदेश की इस सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम होता है। 'त' प्रत्यय के आर्धधातुक होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'लू' धातु को गुण होता है। यदि यहां 'त' प्रत्यय सार्वधातुक हो तो वह **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'ङित्' होकर **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का बाधक हो जाये। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम, **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से टुत्व होता है।*

*(२) **पविषीष्ट।** 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

उभयसंज्ञा–

(४) छन्दस्युभयथा।११७।

प०वि०-छन्दसि ७।१ उभयथा अव्ययपदम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तिङ्शित्-आदयः प्रत्यया उभयथा= सार्वधातुकसंज्ञका आर्धधातुकसंज्ञकाश्च भवन्ति।

उदा०-वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः (ऋ० ७।९९।७)। स्वस्तये नावमिवा रुहेम (ऋ० १०।१७८।२)। ससृवांस विशृण्विरे (ऋ० ४।८।६)। सोममिन्द्राय सुन्विरे (ऋ० ७।३२।४)। उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता (ऋ० ६।४७।८)।

आर्यभाषा-अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में तिङ्-शित् आदि प्रत्यय (उभयथा) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक होते हैं।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **वर्धन्तु।** वर्धि+लोट्। वर्धि+शप्+झि। वर्धि+अ+अन्ति। वर्ध्+अ+अन्तु। वर्धन्तु।*

*यहां णिजन्त 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) **धातु से 'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झि' आदेश है। **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ्' को 'अन्त' आदेश और 'एरुः' (३।४।८६) से 'उत्व' होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्'*

विकरण प्रत्यय है। उसे 'आर्धधातुक' मानकर 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है।

(२) **स्वस्तये।** सु+अस्+क्तिन्। सु+अस्+ति। स्वस्ति+सु। स्वस्तिः।

यहां 'सु' उपसर्गपूर्वक **'अस् भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय के सार्वधातुक होने से **'अस्तेर्भूः'** (२।४।५२) से 'अस्' के स्थान में 'भू' आदेश नहीं होता है।

(३) **विशृण्विरे।** वि+श्रु+लिट्। वि+श्रु+झ। वि+श्रु+श्नु+इरेच्। वि+शृ+नु+इरे। विशृण्विरे।

यहां 'वि' उपसर्गपूर्वक **'श्रु श्रवणे'** (स्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'झ' प्रत्यय और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'**(३।४।८१) से उसके स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। इस सूत्र से उसकी सार्वधातुक संज्ञा है। अतः **'श्रुवः शृ च'** (३।१।७४) से 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश और 'श्नु' विकरण प्रत्यय होता है।

(४) **सुन्विरे।** सु+लिट्। सु+झ। सु+श्नु+इरेच्। सु+नु+इरे। सुन्विरे।

यहां **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके सार्वधातुक होने से **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण प्रत्यय होता है।

(५) **उपस्थेयाम।** उप+स्था+लिङ्। उप+स्था+यासुट्+मस्। उप+स्था+यास्+म। उप+स्थे+या+म। उपस्थेयाम।

यहां 'उप' उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'विधिनिमन्त्रण०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'मस्' आदेश है। **'यासुट् परस्मैपदेषु०'** (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम है। यहां 'लिङ्' को सार्वधातुक मानकर **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'यासुट् के 'स्' का लोप हो जाता है और उसे आर्धधातुक मानकर **'एर्लिङि'** (६।४।६७) से 'स्था' धातु को 'ए' आदेश होता है।

विशेष–'छन्दस्युभयथा' यह सूत्र वस्तुतः **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) का ही प्रपञ्च है।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वती-स्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः।

इति द्वितीयो भागः।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

द्वितीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
३१०	अकर्तरि च कारके०	३।३।१९
३४८	अक्षेषु ग्लहः	३।३।७०
६८	अक्षोऽन्यतरस्याम्	३।१।७५
३५४	अगारैकदेशे प्रघण०	३।३।७९
२०६	अग्नौ चेः	३।२।९१
११४	अग्नौ परिचाय्योपचाय्य०	३।१।१३१
५८	अचः कर्मकर्तरि	३।१।६२
८७	अचो यत्	३।१।९७
९२	अजर्यं संगतम्	३।१।१०५
३०४	अण् कर्मणि च	३।३।१२
१९०	अदोऽनन्ने	३।२।६८
४८८	अधिकरणे बन्धः	३।४।४१
१४३	अधिकरणे शेतेः	३।२।१५
४३९	अधीष्टे च	३।३।१६६
३९४	अध्यायन्याय०	३।३।१२२
२२२	अनद्यतने लङ्	३।२।१११
३०६	अनद्यतने लुट्	३।३।१५
३१७	अनवक्लृप्त्यमर्षयो०	३।३।१४५
२५९	अनुदात्तेतश्च हलादेः	३।२।१४९
३	अनुदात्तौ सुप्पितौ	३।१।४
१२१	अनुपसर्गाल्लिम्प०	३।१।१३८
२१२	अनौ कर्मणि	३।२।१००
३५४	अन्तर्घनो देशे	३।३।७८
१७०	अन्तात्यन्ताध्व०	३।२।४८
४७७	अन्यथैवंकथमित्थंसु०	३।४।४७
२८३	अन्येभ्योऽपि दृश्यते	३।२।१७८
४००	अन्येभ्योऽपि दृश्यते	३।३।१३०
१९५	अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते	३।२।७५
२१३	अन्येष्वपि दृश्यते	३।२।१०१
५०९	अन्वच्यानुलोम्ये	३।४।६४
३५६	अपघनोऽङ्गम्	३।३।८१
२२९	अपरोक्षे च	३।२।११९
४९६	अपादाने परीप्सायाम्	३।४।५२
१७२	अपे क्लेशतमसोः	३।२।५०
२५४	अपे च लषः	३।२।१४४
३७४	अ प्रत्ययात्	३।३।१०२
२२३	अभिज्ञावचने लृट्	३।२।११२
३२८	अभिविधौ भाव इनुण्	३।३।४४
३८	अभ्युत्सादयांप्रजनयां०	३।१।४२
१७४	अमनुष्यकर्तृके च	३।२।५३
१०५	अमावस्यदन्यतरस्याम्	३।१।१२२
२८८	अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः	३।२।१८४
९१	अर्यः स्वामिवैश्ययोः	३।१।१०३
१४१	अर्हः	३।२।१२
२४२	अर्हः प्रशंसायाम्	३।२।१३३
४४१	अर्हे कृत्यतृचश्च	३।३।१६९
२४५	अलंकृञ्निराकृञ्०	३।२।१३६
४६९	अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः०	३।४।१८
४६६	अवचक्षे च	३।४।१५
९०	अवद्यपण्यवर्या०	३।१।१०१
३३४	अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे	३।३।५१
३९२	अवेस्तॄस्त्रोर्घञ्	३।३।१२०
१९३	अवे यजः	३।२।७२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३१५	अवोदोर्नियः	३।३।२६
५०३	अव्ययेऽयथाभिप्रेता०	३।४।५९
१६१	असूर्यललाटयो०	३।२।३६
५०१	अस्यतितृषोः०	३।४।५७
४९	अस्यतिवक्तिख्याति०	३।१।५२
	(आ)	
३८४	आक्रोशे नञ्यनिः	३।३।११२
३२९	आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः	३।३।४५
२४३	आक्वेस्तच्छील०	३।२।१३४
१४०	आङि ताच्छील्ये	३।२।११
३५०	आङि युद्धे	३।३।७३
५४१	आङुत्तमस्य पिच्च	३।४।९२
१७६	आढ्यसुभगस्थूल०	३।२।५६
५४४	आत ऐ	३।४।९५
५५७	आतः	३।४।११०
३७८	आतश्चोपसर्गे	३।१।१३६
११९	आतश्चोपसर्गे	३।३।१०६
१३३	आतोऽनुपसर्गे कः	३।२।३
१९४	आतो मनिन्क्वनिब्०	३।२।७४
३९९	आतो युच्	३।३।१२८
५०	आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्	३।१।५४
२०१	आत्ममाने खश्च	३।२।८३
५१८	आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च	३।४।७१
२७७	आदृगमहनजन०	३।२।१७१
२	आद्युदात्तश्च	३।१।३
११०	आनाय्योऽनित्ये	३।१।१२७
४७२	आभीक्ष्ण्ये णमुल् च	३।४।२२
५३९	आमेतः	३।४।९०
२७	आयादय आर्धधातुके वा	३।१।३१
५६१	आर्धधातुकं शेषः	३।४।११४
४४२	आवश्यकाधमर्ण्य०	३।३।१७०
४०३	आशंसायां भूतवच्च	३।३।१३२
४०५	आशंसावचने लिङ्	३।३।१३४
१६८	आशिते भुवः करणभावयोः	३।२।४५
१३१	आशिषि च	३।१।१५०
४४४	आशिषि लिङ्लोटौ	३।३।१७३
१७१	आशिषि हनः	३।२।४९
१०९	आसुयुवपिरपिलपि०	३।१।१२६
	(इ)	
११८	इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः	३।१।१३५
३१२	इङश्च	३।३।२१
२४०	इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि	३।२।१३०
३७३	इच्छा	३।३।१०१
४३२	इच्छार्थेभ्यो विभाषा०	३।३।१६०
४३०	इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ	३।३।१५७
३२	इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः	३।१।३६
५५३	इटोऽत्	३।४।१०६
२७१	इण्नशजिसर्तिभ्यः०	३।२।१६३
५४८	इतश्च	३।४।१००
५४६	इतश्च लोपः परस्मैपदेषु	३।४।९७
५३	इरितो वा	३।१।५७
	(ई)	
९७	ई च खनः	३।१।१११
४६३	ईश्वरे तोसुन्कसुनौ	३।४।१३
३९७	ईषद्दुःसुषु कृच्छ्रा०	३।३।१२६
	(उ)	
१६२	उग्रम्पश्येरंमद०	३।२।३७
२९३	उणादयो बहुलम्	३।३।१
४२५	उताप्योः समर्थयोर्लिङ्	३।३।१५२
३९५	उदङ्कोऽनुदके	३।३।१२३
१५७	उदिकूले रुजिवहोः	३।२।३१
३२१	उदि ग्रहः	३।३।३५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३३२	उदि श्रयतियौति०	३।३।४९
४७०	उदीचां माङो व्यतीहारे	३।४।१९
३५५	उद्घनोऽत्याधानम्	३।३।८०
३१७	उन्न्योर्ग्रः	३।३।२९
३५९	उपघ्न आश्रये	३।३।८५
४९२	उपदंशस्तृतीयायाम्	३।४।४७
७	उपमानादाचारे	३।१।१०
४९१	उपमाने कर्मणि च	३।४।४५
४५७	उपसंवादाशंकयोश्च	३।४।८
३६४	उपसर्गे घोः किः	३।३।९२
२१२	उपसर्गे च संज्ञायाम्	३।३।९९
३४०	उपसर्गेऽदः	३।३।५९
३१२	उपसर्गे रुवः	३।३।२२
९२	उपसर्या काल्या प्रजने	३।१।१०४
२२०	उपेयिवाननाश्वान०	३।२।१०९
३४	उषविदजागृभ्यो०	३।१।३८
	(ऊ)	
३६८	ऊतियूतिजूतिसाति०	३।३।९७
४९०	ऊर्ध्वे शुषिपूरोः	३।४।४४
	(ऋ)	
२६	ऋतेरीयङ्	३।१।२९
१७९	ऋत्विग्दधृक्०	३।२।५९
९६	ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः	३।१।११०
१०८	ऋहलोर्ण्यत्	३।१।१२४
३३८	ऋदोरप्	३।३।५७
	(लृ)	
३०५	लृट् शेषे च	३।३।१३
३०५	लृटः सद् वा	३।३।१४
	(ए)	
१५४	एजेः खश्	३।२।२८
५४२	एत ऐ	३।४।९३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
९५	एतिस्तुशास्वृदृ०	३।१।१०९
३३८	एरच्	३।३।५६
५३६	एरुः	३।४।८६
	(ओ)	
१०९	ओरावश्यके	३।१।१२५
	(क)	
२५	कण्ड्वादिभ्यो यक्	३।१।२७
२७	कमेर्णिङ्	३।१।३०
३८९	करणाधिकरणयोश्च	३।३।११७
२०२	करणे यजः	३।२।८५
३५६	करणेऽयोविद्रुषु	३।३।८२
४८५	करणे हनः	३।४।३७
५११	कर्तरि कृत्	३।४।६७
२९०	कर्तरि चर्षिदेवतयोः	३।२।१८६
१७७	कर्तरि भुवः खिष्णुच्०	३।२।५७
६३	कर्तरि शप्	३।१।६८
१९८	कर्तर्युपमाने	३।२।७९
८	कर्तुः क्यङ् सलोपश्च	३।१।११
३९८	कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः	३।३।१२७
४८९	कर्त्रोर्जीवपुरुषयोः०	३।४।४३
३८८	कर्मणि च येन०	३।३।११६
४७९	कर्मणि दृशिविदोः०	३।४।२९
१४९	कर्मणि भृतौ	३।२।२२
२०३	कर्मणि हनः	३।२।८६
२०८	कर्मणीनिविक्रियः	३।२।९३
१२	कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां०	३।१।१५
२०७	कर्मण्यग्न्याख्यायाम्	३।२।९२
१३२	कर्मण्यण्	३।२।१
३६५	कर्मण्यधिकरणे च	३।३।९३
४७५	कर्मण्याक्रोशे०	३।४।२५
७९	कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः	३।१।८७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३२७	कर्मव्यतीहारे णच्०	३।३।४३	२६१	क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च	३।२।१५१
१८७	कव्यपुरीषपुरीष्येषु०	३।२।६५	७२	क्र्यादिभ्यः श्ना	३।१।८१
४९१	कषादिषु यथाविध्य०	३।४।४६	३४४	क्वणो वीणायां च	३।३।६५
१२	कष्टाय क्रमणे	३।१।१४	२१७	क्वसुश्च	३।२।१०७
४२६	कामप्रवेदनेऽकच्चिति	३।३।१५३	१९६	क्विप् च	३।२।७६
७	काम्यच्च	३।१।९	४०४	क्षिप्रवचने लृट्	३।३।१३३
४०८	कालविभागे चानहो०	३।३।१३७	१६७	क्षेमप्रियमद्रेऽण् च	३।२।४४
४४०	कालसमयवेलासु०	३।३।१६७		(ख)	
३१	कास्प्रत्ययादाम०	३।१।३५	३९६	खनो घ च	३।३।१२५
४१६	किंवृत्ते लिङ्लृटौ	३।३।१४४		(ग)	
२९८	किंवृत्ते लिप्सायाम्	३।३।६	५१८	गत्यर्थाकर्मकश्लिष०	३।४।७२
३१९	किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्	३।३।१४६	२७२	गत्वरश्च	३।२।१६४
५५२	किदाशिषि	३।४।१०४	८९	गदमदचरयम०	३।१।१००
१७२	कुमारशीर्षयोर्णिनिः	३।२।५१	१७०	गमश्च	३।२।४७
८३	कुषिरजोः प्राचां०	३।१।९०	४१३	गर्हायां लडपिजात्वोः	३।३।१४२
३७२	कृञः श च	३।३।१००	४२३	गर्हायां च	३।३।१४९
१४६	कृञो हेतुताच्छील्या०	३।२।२०	१२८	गस्थकन्	३।१।१४६
३६	कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि	३।१।४०	१३८	गापोष्टक्	३।२।८
३८५	कृत्यल्युटो बहुलम्	३।३।११३	२६	गुपूधूपविच्छिपणि०	३।१।२८
८६	कृत्याः	३।१।९५	४६	गुपेश्छन्दसि	३।१।५०
४६४	कृत्यार्थे तवैकेन्केन्य०	३।४।१४	३	गुप्तिज्किद्भ्यः सन्	३।१।५
४४३	कृत्याश्च	३।३।१७१	३७५	गुरोश्च हलः	३।३।१०३
८५	कृदतिङ्	३।१।९३	१२७	गेहे कः	३।१।१४४
५५	कृमृदृरुहिभ्य०	३।१।५९	३९१	गोचरसंचरवह०	३।३।११९
३१८	कॄ धान्ये	३।३।३०	३३९	ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च	३।३।५८
४४५	क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्	३।३।१७४	२४८	ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः	३।२।१३९
५२४	क्तोऽधिकरणे च०	३।४।७६		(च)	
२७७	क्याच्छन्दसि	३।२।१७०	१४३	चरेष्टः	३।२।१६
११४	क्रतौ कुण्डपाय्य०	३।१।१३०	४८१	चर्मोदरयोः पूरेः	३।४।३१
१९०	क्रव्ये च	३।२।६९	२५८	चलनशब्दार्थाद०	३।२।१४८
४४९	क्रियासमभिहारे लोट्०	३।४।२	५६	चिण् ते पदः	३।१।६०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६१	चिण् भावकर्मणोः	३।१।६६
११५	चित्याग्निचित्ये च	३।१।१३२
४२४	चित्रीकरणे च	३।३।१५०
३७७	चिन्तिपूजिकथि०	३।३।१०५
४८२	चेले क्नोपेः	३।४।३३
४०	च्लि लुङि	३।१।४३
४१	च्लेः सिच्	३।१।४४
	(छ)	
४००	छन्दसि गत्यर्थेभ्यः	३।३।१२९
१०६	छन्दसि निष्टर्क्य०	३।१।१२३
२१६	छन्दसि लिट्	३।२।१०५
४५५	छन्दसि लुङ्लङ्लिटः	३।४।६
१५३	छन्दसि वनसनरक्षि०	३।२।२७
७५	छन्दसि शायजपि	३।१।८४
१८६	छन्दसि सहः	३।२।६३
५६३	छन्दस्युभयथा	३।४।११७
३२०	छन्दोनाम्नि च	३।३।३४
	(ज)	
१८९	जनसनखनक्रम०	३।२।६७
२६५	जल्पभिक्षकुट्टलुण्ट०	३।२।१५५
२७३	जागुरूकः	३।२।१६५
४२०	जातुयदोर्लिङ्	३।३।१४७
३९६	जालमानायः	३।३।१२४
२६८	जिदृक्षिविश्री०	३।२।१५७
२१५	जीर्यतिरतृन्	३।२।१०४
२५९	जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्य०	३।२।१५०
५४	जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचु०	३।१।५८
१२३	ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः	३।१।१४०
	(झ)	
५५३	झस्य रन्	३।४।१०५
५५५	झेर्जुस्	३।४।१०८
	(ञ)	
२९१	ञीतः क्तः	३।२।१८७
	(ट)	
५२८	टित आत्मनेपदानां०	३।४।७९
३६२	ट्वितोऽथुच्	३।३।८९
	(ड)	
२६१	ड्वितः क्त्रिः	३।३।८८
	(ण)	
४४	णिश्रिद्रुस्रुभ्यः०	३।१।४८
२४७	णेश्छन्दसि	३।२।१३७
३७८	ण्यासश्रन्थो युच्	३।३।१०७
१२९	ण्युट् च	३।१।१४७
११६	ण्वुल्तृचौ	३।१।१३३
	(त)	
८४	तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्	३।१।९२
७१	तनादिकृञ्भ्य उः	३।१।७९
६९	तनूकरणे तक्षः	३।१।७६
८०	तपस्तपःकर्मकस्यैव	३।१।८८
६०	तपोऽनुतापे च	३।१।६५
५१५	तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः	३।४।७०
८७	तव्यत्तव्यानीयरः	३।१।९६
५४९	तस्थस्थमिपां०	३।४।१०१
२३९	ताच्छील्यवयोवचन०	३।२।१२९
५२३	ताभ्यामन्यत्रोणादयः	३।४।७५
५५९	तिङ्शित् सार्वधातुकम्	३।४।११३
५२५	तिप्तस्झिसिप्थस्थ०	३।४।७८
५०४	तिर्यच्यपवर्गे	३।४।६०
६९	तुदादिभ्यः शः	३।१।७७
१३६	तुन्दशोकयोः परिमृजा०	३।२।५
४५८	तुमर्थे सेसेनसे०	३।४।९
३०२	तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां०	३।३।१०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५०८	तूष्णीमि भुवः	३।४।६३
२४४	तृन्	३।२।१३५
२३७	तौ सत्	३।२।१२७
१८१	त्यदादिषु दृशो०	३।२।६०
२४९	त्रसिगृधिधृषि०	३।२।१४०
	(थ)	
५२९	थासः से	३।४।८०
	(द)	
१२२	ददातिदधात्यो०	३।१।१३९
३३	दयायासश्च	३।१।३७
२६८	दाधेट्सिशद०	३।२।१५९
२८६	दाम्नीशसयुयुज०	३।२।१८२
५२१	दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने	३।४।७३
६४	दिवादिभ्यः श्यन्	३।१।६९
१४७	दिवाविभानिशा०	३।२।२१
५७	दीपजनबुध०	३।१।६१
१२६	दुन्योरनुपसर्गे	३।१।१४२
१९१	दुहः कब्घश्च	३।२।७०
५९	दुहश्च	३।१।६३
२०८	दृशे क्वनिप्	३।२।९४
४६२	दृशे विख्ये च	३।४।११
२५७	देविकुशोश्चोपसर्गे	३।२।१४७
४९७	द्वितीयायां च	३।४।५३
१६३	द्विषत्परयोस्तापेः	३।२।३९
५५९	द्विषश्च	३।४।११२
२४१	द्विषोऽमित्रे	३।२।१३२
	(ध)	
२८५	धः कर्मणि ष्ट्रन्	३।२।१८१
४४८	धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः	३।४।१
८४	धातोः	३।१।९१
५	धातोः कर्मणः समान०	३।१।७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१९	धातोरेकाचो हलादेः०	३।१।२२
७१	धिन्विकृण्व्योर च	३।१।८०
	(न)	
८१	न दुहस्नुनमां यक्चिणौ	३।१।८९
४३	न दृशः	३।१।४७
२३०	ननौ पृष्टप्रतिवचने	३।२।१२०
११७	नन्दिग्रहिपचादि०	३।१।१३४
२३०	नन्वोर्विभाषा	३।२।१२१
३८६	नपुंसके भावे क्तः	३।३।११४
२७४	नमिकम्पिस्म्यजस०	३।२।१६७
१५	नमोवरिवश्चित्रङः०	३।१।१९
२६२	न यः	३।२।१५२
२२३	न यदि	३।२।११३
४७३	न यद्यनाकाङ्क्षे	३।४।२३
६०	न रुधः	३।१।६४
१५०	न शब्दश्लोककलह०	३।२।२३
१५६	नाडीमुष्ट्योश्च	३।२।३०
५०६	नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे	३।४।६२
४०५	नानद्यतनवत्०	३।३।१३५
४०२	नाम्न्यादिशिग्रहोः	३।४।५८
१५५	नासिकास्तनयो०	३।२।२९
३६०	निघो निमितम्	३।३।८७
२०	नित्यं कौटिल्ये गतौ	३।१।२३
५४७	नित्यं ङितः	३।४।९९
३४५	नित्यं पणः परिमाणे	३।३।६६
२५६	निन्दहिंसक्लिश०	३।२।१४६
३५१	निपानमाहावः	३।३।७४
४८३	निमूलसमूलयोः कषः	३।४।३४
३१७	निरभ्योः पूल्वोः	३।३।२८
३२५	निवासचितिशरीर०	३।३।४१
२१४	निष्ठा	३।२।१०२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४७	नोनयतिध्वनयत्येल०	३।१।५१
३४३	नौ गदमदपठस्वनः	३।३।६४
३४०	नौ ण च	३।३।६०
३३१	नौ वृ धान्ये	३।३।४८
	(प)	
२११	पञ्चम्यामजातौ	३।२।९८
३०७	पदरुजविशस्पृशो घञ्	३।३।१६
१०३	पदास्वैरिबाह्या०	३।१।११९
२	परश्च	३।१।२
४०९	परस्मिन् विभाषा	३।३।१३८
५३०	परस्मैपदानां णलतुसुस्०	३।४।८२
३२३	परावनुपात्यय इणः	३।३।३८
४७१	परावरयोगे च	३।४।२०
४९९	परिक्लिश्यमाने च	३।४।५५
३२२	परिन्योर्नीणो०	३।३।३७
३११	परिमाणाख्यां सर्वेभ्यः	३।३।२०
१५८	परिमाणे पचः	३।२।३२
२२६	परोक्षे लिट्	३।२।११५
३५८	परौ घः	३।३।८४
३३७	परौ भुवोऽवज्ञाने	३।३।५५
३३१	परौ यज्ञे	३।३।४७
५१०	पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु	३।४।६६
३८३	पर्यायार्हणोत्पत्तिषु	३।३।१११
१२०	पाघ्राध्माधेट्दृशः शः	३।१।१३७
१७५	पाणिघताडघौ शिल्पिनि	३।२।५५
११२	पाय्यसान्नाय्यनिकाय्य०	३।१।१२९
३९०	पुंसि संज्ञायां घः०	३।३।११८
१६	पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्	३।१।२०
२३१	पुरि लुङ् चास्मे	३।२।१२२
१४५	पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः	३।२।१८
२८९	पुवः संज्ञायाम्	३।२।१८५
५१	पुषादिद्युताद्यॢदितः०	३।१।५५
१०१	पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे	३।१।११६
१६५	पूःसर्वयोर्दारिसहोः	३।२।४१
२३८	पूङ्यजोः शानन्	३।२।१२८
१४५	पूर्वे कर्तरि	३।२।१९
८८	पोरदुपधात्	३।१।९८
३४९	प्रजने सर्तेः	३।३।७१
२६५	प्रजोरिनिः	३।२।१५६
१११	प्रणाय्योऽसम्मतौ	३।१।१२८
१०३	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः०	३।१।११८
१	प्रत्ययः	३।१।१
३२०	प्रथने वावशब्दे	३।३।३३
३४७	प्रमदसम्मदौ हर्षे	३।३।६८
४९६	प्रमाणे च	३।४।५१
४६१	प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै	३।४।१०
२२७	प्रश्ने चासन्नकाले	३।२।११७
१६३	प्रियवशे वदः खच्	३।२।३८
१३०	प्रुसृल्वः समभिहारे वुन्	३।१।१४९
१३७	प्रे दाज्ञः	३।२।६
३१६	प्रे द्रुस्तुस्रुवः	३।३।२७
३३५	प्रे वणिजाम्	३।३।५२
२५५	प्रे लपसृद्रुमथवदवसः	३।२।१४५
३३०	प्रे लिप्सायाम्	३।३।४६
३१९	प्रे स्त्रोऽयज्ञे	३।३।३२
४३६	प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु०	३।३।१६३
	(फ)	
१५२	फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च	३।२।२६
	(ब)	
२०४	बहुलं छन्दसि	३।२।८८
२००	बहुलमाभीक्ष्ण्ये	३।२।८१
२०४	ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्	३।२।८७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५३३	ब्रुवः पञ्चानामादित०	३।४।८४
	(भ)	
१८५	भजो ण्विः	३।२।६२
२७०	भञ्जभासमिदो घुरच्	३।२।१६१
२९५	भविष्यति गम्यादयः	३।३।३
४०७	भविष्यति मर्यादावचने०	३।३।१३७
५१२	भव्यगेयप्रवचनीयो०	३।४।६८
४६६	भावलक्षणे स्थेण्कृञ्०	३।४।१६
३०३	भाववचनाश्च	३।३।११
३०९	भावे	३।३।१८
३५२	भावेऽनुपसर्गस्य	३।३।७५
२१८	भाषायां सदवसश्रुवः	३।२।१०८
१४४	भिक्षासेनादायेषु च	३।२।१७
१००	भिद्योद्ध्यौ नदे	३।१।११५
२८०	भियः क्रुक्लुकनौ	३।२।१७४
५२२	भीमादयोऽपादाने	३।४।७४
३५	भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च	३।१।३९
२८४	भुवः संज्ञान्तरयोः	३।२।१७९
२४७	भुवश्च	३।२।१३८
९४	भुवो भावे	३।१।१०७
२०२	भूते	३।२।८४
४११	भूते च	३।३।१४०
२९४	भूतेऽपि दृश्यन्ते	३।३।२
९७	भृञोऽसंज्ञायाम्	३।१।११२
९	भृशादिभ्यो भुव्यच्वे०	३।१।१२
२८२	भ्राजभासधुर्विद्युतो०	३।२।१७७
	(म)	
२९१	मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च	३।२।१८८
३४६	मदोऽनुपसर्गे	३।३।६७
२०१	मनः	३।२।८२
३६७	मन्त्रे वृषेषपचमन०	३।३।९६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१९२	मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस०	३।२।७१
४४६	माङि लुङ्	३।३।१७५
४	मान्बधदान्शान्भ्यो०	३।१।६
१५९	मितनखे च	३।२।३४
१७	मुण्डमिश्रश्लक्षण०	३।१।२१
३५३	मूर्तौ घनः	३।३।७७
९८	मृजेर्विभाषा	३।१।११३
१६६	मेघर्तिभयेषु कृञः	३।२।४३
५३८	मेर्निः	३।४।८९
	(य)	
४२१	यच्चयत्रयोः	३।३।१४८
२७३	यजजपदशां यङः	३।२।१६६
३६२	यजयाजयतविच्छ०	३।३।९०
३१९	यज्ञे समि स्तुवः	३।३।३१
४७८	यथातथयोरसूया०	३।४।२८
४५४	यथाविध्यनुप्रयोगः०	३।४।४
३४२	यमः समुपनिविषु च	३।३।६३
२८१	यश्च यङः	३।२।१७६
६६	यसोऽनुपसर्गात्	३।१।७१
४८०	यावति विन्दजीवोः	३।४।३०
२९६	यावत्पुरानिपातयोर्लट्	३।३।४
५५१	यासुट् परस्मैपदेषू०	३।४।१०३
१०५	युग्यं च पत्रे	३।१।१२१
	(र)	
३३५	रश्मौ च	३।३।५३
२०९	राजनि युधिकृञः	३।२।९५
९८	राजसूयसूर्यमृषोद्य०	३।१।११४
७०	रुधादिभ्यः श्नम्	३।१।७८
३७९	रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम्	३।३।१०८
	(ल)	
५१३	लः कर्मणि च भावे०	३।४।६९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२३५	लक्षणहेत्वोः क्रियायाः	३।२।१२६
१७३	लक्षणे जायापत्योष्टक्	३।२।५२
५५८	लङः शाकटायनस्यैव	३।४।१११
२३३	लटः शतृशानचाव०	३।२।१२४
२२८	लट् स्मे	३।२।११८
२६३	लषपतपदस्थाभूवृष०	३।२।१५४
५२५	लस्य	३।४।७७
५५०	लिङः सीयुट्	३।४।१०२
४५६	लिङर्थे लेट्	३।४।७
५६२	लिङाशिषि	३।४।११६
४३१	लिङ् च	३।३।१५९
३०१	लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके	३।३।९
४३७	लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके	३।३।१६४
४१०	लिङ्निमित्ते लृङ्०	३।३।१३९
४४०	लिङ् यदि	३।३।१६८
७७	लिङ्याशिष्यङ्	३।१।८६
२१६	लिटः कानज्वा	३।२।१०६
५२९	लिटस्तझयोरेशिरेच्	३।४।८१
५६१	लिट् च	३।४।११५
४९	लिपिसिचिह्वश्च	३।१।५३
२९९	लिप्स्यमानसिद्धौ च	३।३।७
२२१	लुङ्	३।२।११०
२०	लुपसदचरजपजभ०	३।१।२४
३०५	लृटः सद् वा	३।३।१४
३०५	लृट् शेषे च	३।३।१३
५४२	लेटोऽडाटौ	३।४।९४
५३५	लोटो लङ्वत्	३।४।८५
४३५	लोट् च	३।३।१६३
३००	लोडर्थलक्षणे च	३।३।८
१०	लोहितादिडाज्भ्यः०	३।१।१३
३८७	ल्युट् च	३।३।११५
	(व)	
९३	वदः सुपि क्यप् च	३।१।१०६
१३९	वयसि च	३।२।१०
४०१	वर्तमानसामीप्ये०	३।३।१३१
२३३	वर्तमाने लट्	३।२।१२३
४८१	वर्षप्रमाण ऊलोप०	३।४।३२
१८७	वहश्च	३।२।६४
१५८	वदाभ्रे लिहः	३।२।३२
९१	वह्यं करणम्	३।१।१०२
१६४	वाचि यमो व्रते	३।२।४०
५३७	वा च्छन्दसि	३।४।८८
६४	वा भ्राश्भ्लाश्भ्रमु०	३।१।७०
८५	वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्	३।१।९४
१३	वाष्पोष्मभ्यामुद्वने	३।१।१६
१९३	विजुपे छन्दसि	३।२।७३
३७	विदांकुर्वन्त्वित्य०	३।१।४१
२७०	विदिभिदिच्छिदेः कुरच्	३।२।१६२
५३१	विदो लटो वा	३।४।८३
४३३	विधिनिमन्त्रणामन्त्रणा०	३।३।१६१
१६०	विध्वरुषोस्तुदः	३।२।३५
२७६	विन्दुरिच्छुः	३।२।१६९
१०२	विपूयविनीयजित्या०	३।१।११७
२८४	विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम्	३।२।१८०
४१४	विभाषा कथमि लिङ् च	३।३।१४३
२९७	विभाषा कदाकर्ह्योः	३।३।५
१०४	विभाषा कृवृषोः	३।१।१२०
३८१	विभाषाख्यानपरिप्रश्न०	३।३।११०
१२६	विभाषा ग्रहः	३।१।१४३
४७४	विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु	३।४।२४
३३३	विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः	३।३।५०
४२८	विभाषा धातौ सम्भावन०	३।३।१५५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४५	विभाषा घेट्श्व्योः	३।१।४९
२२४	विभाषा साकाङ्क्षे	३।२।११४
४९९	विशिपतिपदिस्कन्दां०	३।४।५६
३३६	वृणोतेराच्छादने	३।३।५४
४१२	वोताप्योः	३।३।१४१
५४५	वैतोऽन्यत्र	३।४।९६
२५३	वौ कषलसकत्थ०	३।२।१४३
३१५	वौ क्षुश्रुवः	३।३।२५
७६	व्यत्ययो बहुलम्	३।१।८५
३४१	व्यधजपोरनुपसर्गे	३।३।६१
३२४	व्युपयोः शेतेः पर्याये	३।३।३९
३७०	व्रजयजोर्भावे क्यप्	३।३।९८
१९९	व्रते	३।२।८०
	(श)	
५०९	शकधृषज्ञाग्लाघट०	३।४।६५
४६३	शकि णमुल्कमुलौ	३।४।१२
४४४	शकि लिङ् च	३।३।१७२
८९	शकिसहोश्च	३।१।९९
१७५	शक्तौ हस्तिकपाटयोः	३।२।५४
१४	शब्दवैरकलहाभ्र०	३।१।१७
२५०	शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्	३।२।१४१
१४२	शमि धातोः संज्ञायाम्	३।२।१४
४१	शल इगुपधादनिटः क्सः	३।१।४५
१२७	शिल्पिनि ष्वुन्	३।१।१४५
४८४	शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः	३।४।३५
२७९	शॄवन्द्योरारुः	३।२।१७३
४२५	शेषे लृडयदौ	३।३।१५१
१२४	श्याद्व्यधास्रु०	३।१।१४१
३१४	श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे	३।३।२४
६७	श्रुवः शृ च	३।१।७४
४२	श्लिष आलिङ्गने	३।१।४६
	(ष)	
३७६	षिद्भिदादिभ्योऽङ्	३।३।१०४
	(स)	
५४६	स उत्तमस्य	३।४।९८
६६	संयसश्च	३।१।७२
३२६	संघे चानौत्तराधर्ये	३।३।४२
३५९	संघोद्घौ गणप्रशंसयोः	३।३।८६
३८०	संज्ञायाम्	३।३।१०९
४८९	संज्ञायाम्	३।४।४२
३७१	संज्ञायां समजनिषद०	३।३।९९
१६९	संज्ञायां भृतॄवृजि०	३।२।४६
२२	सत्यापपाशरूप०	३।१।२५
१८३	सत्सूद्विषद्रुहदुह०	३।२।६१
२८	सनाद्यन्ता धातवः	३।१।३२
२७५	सनाशंसभिक्ष उः	३।२।१६८
४९४	सप्तम्यां चोपपीड०	३।४।४९
२१०	सप्तम्यां जनेर्डः	३।२।९७
४७१	समानकर्तृकयोः पूर्वकाले	३।४।२१
४३१	समानकर्तृकेषु तुमुन्	३।३।१५८
४९५	समासत्तौ	३।४।५०
१३७	समि ख्यः	३।२।७
३२२	समि मुष्टौ	३।३।३६
३१३	समि युद्रुदुवः	३।३।२३
४५२	समुच्चयेऽन्यतरस्याम्	३।४।३
४५४	समुच्चये सामान्य०	३।४।५
३४७	समुदोरजः पशुषु	३।३।६९
४८४	समूलाकृतजीवेषु०	३।४।३६
२५१	सम्पृचानुरुधा०	३।२।१४२
२३५	सम्बोधने च	३।२।१२५
४२७	सम्भावनेऽलमिति०	३।३।१५४
५२	सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च	३।१।५६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१६५	सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः	३।२।४२
५४०	सवाभ्यां वामौ	३।४।९१
२१०	सहे च	३।२।९६
६२	सार्वधातुके यक्	३।१।६७
५५६	सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च	३।४।१०९
३०	सिब्बहुलं लेटि	३।१।३४
२०५	सुकर्मपापमन्त्र०	३।२।८९
१४	सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्	३।१।१८
२४२	सुञो यज्ञसंयोगे	३।२।१३२
५४५	सुट् तिथोः	३।४।१०७
६	सुप आत्मनः क्यच्	३।१।८
१३४	सुपि स्थः	३।२।४
१९८	सुप्यजातौ णिनि०	३।२।७८
२१४	सुयजोर्ङ्वनिप्	३।२।१०३
२६२	सूददीपदीक्षश्च	३।२।१५३
२६९	सृघस्यदः क्मरच्	३।२।१६०
४६८	सृपितृदोः कसुन्	३।४।१७
३०८	सृ स्थिरे	३।३।१७
५३७	सेर्ह्यपिच्च	३।४।८७
२०६	सोमे सुञः	३।२।९०
७३	स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भु०	३।१।८२
१४१	स्तम्बकर्णयोरमिजपोः	३।२।१३
१५१	स्तम्बशकृतोरिन्	३।२।२४
३५७	स्तम्बे क च	३।३।८३
३६५	स्त्रियां क्तिन्	३।३।९४
१९७	स्थः क च	३।२।७७
३६६	स्थागापापचो भावे	३।२।९५
२८१	स्थेशभासपिस०	३।२।१७५
४८६	स्नेहने पिषः	३।४।३८
१७९	स्पृशोऽनुदके क्विन्	३।२।५८
२६७	स्पृहिगृहिपतिदयि०	३।२।१५८
४३८	स्मे लोट्	३।३।१६५
४४७	स्मोत्तरे लङ् च	३।३।१७६
२९	स्यतासी लृलुटोः	३।१।३३
३४२	स्वनहसोर्वा	३।३।६२
२७९	स्वपितृषोर्नजिङ्	३।२।१७५
३६४	स्वपो नन्	३।३।९१
५०५	स्वाङ्गे तस्प्रत्यये०	३।४।६१
४९८	स्वाङ्गेऽध्रुवे	३।४।५४
६७	स्वादिभ्यः श्नुः	३।१।७३
४७६	स्वादुमि णमुल्	३।४।२६
४८७	स्वे पुषः	३।४।४०
	(ह)	
३५२	हनश्च वधः	३।३।७६
९५	हनस्त च	३।१।१०८
१३९	हरतेरनुद्यमनेऽच्	३।२।९
१५२	हरतेर्दृतिनाथयोः०	३।२।२५
७४	हलः श्नः शानज्झौ	३।१।८३
३९३	हलश्च	३।३।१२१
२८८	हलसूकरयोः पुवः	३।२।१८३
१८८	हव्येऽनन्तःपादम्	३।२।६६
२२७	हशश्वतोर्लङ् च	३।२।११६
१२९	हश्च व्रीहिकालयोः	३।१।१४८
३२५	हस्तादाने चेरस्तेये	३।३।४०
४८७	हस्ते वर्तिग्रहोः	३।४।३९
४९३	हिंसार्थानां च समान०	३।४।४८
२४	हेतुमति च	३।१।२६
४२९	हेतुहेतुमतोर्लिङ्	३।३।१५६
३४९	ह्वः सम्प्रसारणं०	३।३।७२
१३३	ह्वावामश्च	३।२।२

इति द्वितीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्
संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्

(१)	अथर्व०	-	अथर्ववेदः।
(२)	उ०	-	उणादिकोषः।
(३)	ऋ०	-	ऋग्वेदः।
(४)	कां०सं०	-	काठक-संहिता।
(५)	गो०ब्रा०	-	गोपथब्राह्मणम्।
(६)	तै०ब्रा०	-	तैत्तिरीयब्राह्मणम्।
(७)	पा०का०भा०	-	पाणिनि कालीन भारतवर्ष।
(८)	यजु०	-	यजुर्वेदः।
(९)	वा०	-	वार्तिकसूत्रम्।
(१०)	शत०	-	शतपथब्राह्मणम्।

शेषसंक्षिप्तपदानां विवरणं प्रथमद्वितीयाध्यायात्मकस्य प्रथमभागस्यान्तिमे पृष्ठे द्रष्टव्यम्।

इति संक्षिप्तपदानां विवरणपत्रम्।

ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

तृतीयो भागः
(चतुर्थाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृतभाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

तृतीयो भागः
(चतुर्थाध्यायात्मकः)
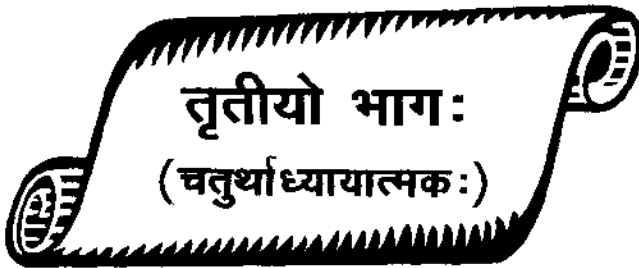
प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी,

रोहतक-१२४००१ (हरयाणा)

प्रकाशक :-
ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास
गुरुकुल झज्जर,
जिला झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१-५२०४४
५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

प्रथम वार : २०००

श्रावणी उपाकर्म २०५५
(८ अगस्त १९९८)

मुद्रक :
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिग प्रेस,
गोहानामार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५६८३३

।। ओ३म् ।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम् का यह तृतीय भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय की व्याख्या है। चतुर्थ और पंचम अध्याय में गोत्र, जनपद, पर्वत, वन, नदी, मान (मांप-तोल) और मुद्राओं का विशेष वर्णन मिलता है। अतः पाठकों के हितार्थ उनका यहां संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) गोत्र

परिभाषा :- गोत्र अष्टाध्यायी का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। पाणिनि मुनि के अनुसार गोत्र की यह परिभाषा है- **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) अर्थात्- **पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद्गोत्रसंज्ञकं भवति।** अभिप्राय यह है कि एक पुरखा के पोते-पड़ौते आदि जितनी सन्तानें होंगी वे 'गोत्र' कही जायेंगी। गोत्र-प्रवर्तक मूल-पुरुष को वृद्ध, स्थविर और वंश्य भी कहा गया है। जैसे यदि मूल-पुरुष का नाम गर्ग है तो उसका पुत्र-गार्गि, पौत्र-गार्ग्य और प्रपौत्र-गार्ग्यायिण कहलाता था।

(१) मूलपुरुष (गोत्रकार)-गर्ग।

(२) गर्ग का अनन्तरापत्य (पुत्र)-गार्गि। गर्ग+इञ् (अत इञ् ४।१।९५)।

(३) गर्ग का गोत्रापत्य (पौत्र)-गार्ग्यायिण। गर्ग+यञ् (गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५)।

(४) गर्ग का युवापत्य (प्रपौत्र)-गार्ग्यायिण। गार्ग्य+फक् (यञिञोश्च ४।१।१०१)।

यह गोत्रों की परम्परा प्राचीन ऋषियों से चली आ रही है। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मूलपुरुष ब्रह्मा के चार पुत्र हुये- (१) भृगु (२) अङ्गिरा (३) मरीचि (४) अत्रि। ये चारों गोत्रकार थे। तत्पश्चात् भृगु के कुल में जमदग्नि, अंगिरा के कुल में गौतम और भरद्वाज, मरीचि के कुल में कश्यप, वसिष्ठ और अगस्त्य तथा अत्रि के कुल में विश्वामित्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार-जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज, कश्यप, वसिष्ठ, अगस्त्य और विश्वामित्र ये सात ऋषि गोत्रकार (वंश-प्रवर्तक) हुये हैं। इन आठ ऋषियों को मूल गोत्रकार माना जाता है। इन ऋषियों के प्रत्येक कुल में भी ऐसे महान् पुरुष हुये जिनके विशेष यश के कारण उनके नाम से वंश का नाम प्रसिद्ध हो गया। उन ऋषियों के नाम से जो प्राचीन गोत्र चले आते थे पाणिनि मुनि ने शब्द रूप एवं प्रत्यय-विधान की दृष्टि से उनका वर्गीकरण करके उन्हें लगभग २० गणों में सूचीबद्ध कर दिया।

ऋषि-गोत्रों के अतिरिक्त जिन परिवारों के नाम (बौंक) समाज में प्रसिद्ध होगये थे उन्हें पाणिनि मुनि ने गोत्रावयव कहा है (४।१।७९)। काशिका में गोत्रावयव का अर्थ कुलाख्या किया है जैसे-पुणिक, भुणिक, मुखर आदि।

गर्ग-कुल में कौनसा व्यक्ति गार्ग्य और कौनसा गार्ग्यायण है, इसका समाज में विशेष महत्त्व था। प्रत्येक गृहपति अपने घर का समाज में प्रतिनिधि माना जाता था। वह अपने परिवार की ओर से जाति-बिरादरी की पंचायत में प्रतिनिधि बनकर बैठता था। परिवार के सबसे वृद्ध एवं ज्येष्ठ व्यक्ति के सिर पर पगड़ी बांधी जाती थी। उसे परिवार का मूर्धाभिषिक्त पुरुष कहते थे। यदि गर्ग के चार पुत्र हैं तो उसका ज्येष्ठ पुत्र ही 'गोत्र' पदवी प्राप्त करता था। ज्येष्ठ भ्राता यदि गार्ग्य पदवी धारण कर लेता तो उसके जीवनकाल में उसके सब छोटे भाई 'गार्ग्यायण' कहलाते थे **भ्रातरि च ज्यायसि** (४।१।६४)। इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता 'गोत्र' कहलाता था और उसकी अपेक्षा उसके छोटे भाई अथवा उसके खुद के पुत्र-पौत्र आदि 'युवा' कहलाते थे। गार्ग्य के रहते हुये वे सब 'गार्ग्यायण' ही कहे जाते थे।

गार्ग्य नामक ज्येष्ठ भाई का यदि कोई बड़ा-बूढ़ा चाचा आदि परिवार में जीवित हो तो उसके जीवनकाल में वह 'गार्ग्य' भी विकल्प से 'गार्ग्यायण' कहलाता था। यह अपने संयुक्त परिवार के सपिण्ड बड़े-बूढ़े पुरुष के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार था **वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति** (४।१।१६५)।

यदि कोई 'गार्ग्य' इतना वृद्ध हो जाये कि वह परिवार के काम-काज से छुट्टी ले लेवे अथवा अपनी समझ से ही अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने स्थान में प्रतिष्ठित कर देवे तो उस वृद्ध 'गार्ग्य' की युवा 'गार्ग्यायण' जैसी स्थिति मानी जाती थी **वृद्धस्य च पूजायाम्** (४।१।१६६)। '**तत्र भवान् गार्ग्यायणः**' आप महानुभाव तो अब गार्ग्यायण हैं। इसका अभिप्राय यह है कि उनके शिर पर परिवार के कार्य का कोई भार नहीं है अपितु परिवार के कार्यभार इसके ज्येष्ठ पुत्र पर है अतः इसकी अवस्था युवा गार्ग्यायण के समान है।

यदि कोई युवा गार्ग्यायण अपने गार्ग्य पिता के जीवन-काल में ही परिवार पर अधिकार कर बैठता था और गार्ग्य जैसा दावा करने लगता था उसे समाज में अच्छा नहीं समझा जाता था। उसे '**गार्ग्यो जाल्मः**' कहा जाता था अर्थात् निगोड़ा कैसा उतावला है कि यह 'गार्ग्य' बन बैठा **यूनश्च कुत्सायाम्** (४।१।१६७)।

(२) जनपद

सूत्र काल में 'जनपद' यह भारतीय भूगोल का महत्त्वपूर्ण शब्द था। उस समय सारा देश जनपदों में बंटा हुआ था। काशिकाकार ने गांवों के समुदाय को जनपद कहा है- **ग्रामसमुदायो जनपदः** (४।२।१)। यहां ग्राम शब्द से नगर का भी ग्रहण किया जाता है।

पाणिनीय- अष्टाध्यायी में जिन जनपदों के नाम आये हैं उनका संक्षिप्त विवरण अधो-लिखित है :-

(१) **कम्बोज** :- पाणिनि मुनि के समय यह एकराज जनपद था। यहां का राजा और क्षत्रिय-कुमार दोनों ही कम्बोज कहाते थे। गन्धार, कपिश, बाल्हीक और कम्बोज इन चार महाजनपदों का एक चौगड्डा था। हिन्दुकुश पर्वत के उत्तर-पूर्व में कम्बोज, उत्तर-पश्चिम में बाल्हीक, दक्षिण-पूर्व में गन्धार और दक्षिण-पश्चिम में कपिश जनपद था। वर्तमान पामीर और बदख्शां का सम्मिलित प्राचीन नाम कम्बोज था।

(२) **प्रस्कण्व** :- अष्टाध्यायी (६।१।१५३) में प्रस्कण्व एक ऋषि का नाम है। इसी सूत्र का प्रत्युदाहरण प्रकण्व है जो कि एक देश का नाम था (काशिका-**प्रकण्वो** देश:)। ऐसा ज्ञात होता है कि फरगना का ही प्राचीन नाम प्रकण्व था। प्रकण्व देश मध्य-एशिया के भूगोल का एक अंग था।

(३) **गन्धार** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।१।६९) में इस जनपद का पुराना नाम 'गन्धारि' दिया है। वहां के राजा और उनके पुत्र दोनों ही गान्धार कहाते थे। गन्धार महाजनपद काश्कर (कुनड़) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। पश्चिम गन्धार की राजधानी पुष्कलावती थी जहां कि स्वात और कुभा (काबुल) नदी के संगम पर वर्तमान चार सद्दा विद्यमान है।

(४) **सिन्धु** :- सिन्धु नद के पूर्व में सिन्ध सागर दुआब का पुराना नाम सिन्धु था। सिन्धु जनपद में उत्पन्न मनुष्य सिन्धुक कहाते थे (४।३।३२)।

(५) **सौवीर** :- वर्तमानकाल में सिन्धु प्रान्त या सिन्ध नद के निचले काठे का नाम सौवीर जनपद था (४।१।१४८)। इसकी राजधानी रोरुव (संस्कृत नाम-रौरुक) थी। इसका वर्तमान नाम रोड़ी है। यहां पुराने नगर के भग्नावशेष विद्यमान हैं। रोड़ी के उस पार सिन्धु के दाहिने तट का प्रसिद्ध स्थान सक्खर है, जिसका पुराना नाम शार्कर था। सक्खर शब्द शार्कर का ही अपभ्रंश है। अष्टाध्यायी में **'शर्कराया वा'** (४।३।८३) में इसका उल्लेख मिलता है। शर्करा शब्द का अर्थ रोड़ी (कांकर) है।

(६) **ब्राह्मणक** :- पाणिनीय-अष्टाध्यायी (५।२।७१) में यह एक देश का नाम है। पतंजलि मुनि के अनुसार यह एक जनपद था **ब्राह्मणको नाम जनपद:** (महाभाष्य ४।२।१०४)। इसकी पहचान वर्तमान ब्राह्मणावाद (सिन्ध प्रान्त के मीरपुर खास से लगभग २५ मील उत्तर में) से की जा सकती है। यहां प्राचीन काल के विस्तृत ध्वंसावशेष हैं।

(७) **पारस्कर** :- पतंजलि मुनि ने पारस्कर को एक देश का नाम कहा है **'पारस्करो देश:'** (महा० ६।१।१५७)। यह सिन्ध का पूर्वी जिला थर-पारकर जान पड़ता

है। 'थर' रेगिस्तानवाची 'थल' का सिन्धी रूप है। कच्छ के इरिण (रन्न) प्रदेश के उत्तर का समस्त भू-भाग पारकर देश था।

(८) **कच्छ** :- सिन्ध के ठीक दक्षिण में कच्छ जनपद था। पाणिनि मुनि ने कच्छ के मनुष्यों को काच्छक कहा है और वहां के लोगों के हास्य आदि विशेषताओं का भी संकेत किया है (४।२।१३४)।

(९) **केकय** :- यह जनपद वर्तमान में झेलम, शाहपुर और गुजरात प्रदेश का पुराना नाम था (७।३।२)। वहां इस समय खिउड़ा की नमक की पहाड़ी है। केकय एक राजाधीन जनपद था। वहां के निवासी क्षत्रिय कैकेय कहाते थे।

(१०) **मद्र** :- यह जनपद प्राचीन वाहीक (पंजाब) देश का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान-स्यालकोट) थी जो कि आपगा (वर्तमान-अयक) नदी पर अवस्थित है। यह छोटी नदी जम्बू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट के पास से होती हुई वर्षा ऋतु में चन्द्रभागा (चनाब) नदी में मिल जाती है।

(११) **उशीनर** :- पाणिनि मुनि के अनुसार उशीनर वाहीक (पंजाब) देश का ही एक जनपद था। महाभारत में शिबि को उशीनर जनपद का राजा कहा है (वनपर्व १।९४।२)। शिबि की राजधानी शिबिपुर थी जिसकी पहचान वर्तमान शोरकोट (झंग जिले की एक तहसील) से की गई है। ऐसा ज्ञात होता है कि रावी और चनाब नदी के बीच का भू-भाग जो कि मद्र जनपद के दक्षिण में था, उशीनर प्रदेश कहलाता था। वह दो भागों में बंटा हुआ था। आजकल के झंग मघियानावाला उत्तरी भाग उशीनर जनपद था और दक्षिण में शोरकोट के चारों ओर के क्षेत्र का नाम शिबि जनपद था।

(१२) **अम्बष्ठ** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (८।२।७) में अम्बष्ठ और आम्बष्ठ इन दो नामों की सिद्धि की है। यह जनपद राजाधीन था और इसके निवासी आम्बष्ठ्य कहाते थे। महाभारत के अनुसार अम्बष्ठ लोग युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे जो कि अत्यन्त वीरपुरुष थे। ये चन्द्रभागा (चनाब) नदी के निचले भाग में बसे हुये थे।

(१३) **त्रिगर्त** :- रावी, व्यास और सतलुज इन तीन नदी-घाटियों के बीच का प्रदेश त्रिगर्त कहलाता था। इसी का एक पुराना नाम जालन्धरायण भी था। अब भी त्रिगर्त (कांगड़ा) का प्रदेश जालन्धर कहलाता है। रावी और व्यास के संकरे नाके में होकर त्रिगर्त का रास्ता था जो कि आज भी है।

(१४) **कलकूट** :- महाभारत सभापर्व के अनुसार कालकूट और पाणिनि मुनि का कलकूट (४।१।१७३) कुलिन्द प्रदेश में था (महा० २६।३)। कालकूट जनपद ठीक टोंस (तमसा) नदी और यमुना के प्रदेश (देहरादून-कालसी) में पड़ता है। यह यमुना की ऊपर की धारा का यामुन प्रदेश था। यहां अंजन की उत्पत्ति के कारण इस यामुन पर्वत का नाम कालकूट या कालापहाड़ होना स्वाभाविक है।

(१५) **भारद्वाज** :- अष्टाध्यायी-सूत्र (४।२।१४५) की व्याख्या में काशिका ने 'भारद्वाज' शब्द को देशवाची माना है, गोत्रवाची नहीं। पारजीटर ने भारद्वाज देश की पहचान गढ़वाल प्रदेश से की है (मार्कण्डेयपुराण का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३२०)।

(१६) **रङ्कु** :- पाणिनि मुनि के अनुसार रङ्कु देश का मनुष्य राङ्कवक और वहां की अन्य वस्तुयें राङ्कव या राङ्कवायण कहाती थी (४।२।१००)। सम्भवत: यह अलकनन्दा और पिंडर के पूर्व का प्रदेश था जहां मल्ला-जुहार और मल्ला-दानापुर की भाषा रङ्का कहाती है।

(१७) **कुरु** :- कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुये थे (४।१।१७२)। थानेश्वर, हस्तिनापुर, हिसार अथवा सरस्वती, यमुना, गंगा के बीच का प्रदेश तीन भागों में बंटा हुआ था। गंगा-यमुना के बीच में मेरठ कमिश्नरी का इलाका कुरुराष्ट्र था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। पाणिनि मुनि ने इसे हास्तिनपुर लिखा है (२।२।१०२)। कुरुक्षेत्र लोक-प्रसिद्ध है। रोहतक-हिसार-सिरसा का इलाका कुरुजांगल कहलाता था।

(१८) **साल्व** :- अलवर से उत्तरी-बीकानेर तक फैला हुआ प्रदेश साल्व कहलाता था। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में साल्व (४।२।१३५) साल्वेय (४।१।१६९) और साल्वावयव (४।१।१७३) इन तीन जनपदों का उल्लेख किया है। सल्वेय और साल्वावयव ये दोनों साल्व जनपद के ही भाग थे। साल्व एक प्राचीन जाति का नाम है।

(क) **साल्वायव** :- इस विषय में काशिका में यह प्राचीन श्लोक उद्धृत है :-

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः।
भूलिङ्गाः शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिताः॥

इस श्लोक के अनुसार साल्वावयव राजतन्त्र के अन्तर्गत ये छः रजवाड़े थे :- (१) उदुम्बर (२) तिलखल (३) मद्रकार (४) युगन्धर (५) भूलिंग (६) शरदण्ड। इनका संक्षिप्त परिचय अधोलिखित है :-

(१) **उदुम्बर** :- उदुम्बरों के पुराने सिक्के कांगड़ा (त्रिगर्त) देश में व्यास और रावी नदियों के बीच में पाये गये हैं। पठानकोट में भी उदुम्बर मुद्रायें पर्याप्त संख्या में मिली हैं। इस पुरातत्त्व प्रमाण से ज्ञात होता है कि व्यास के उत्तर और रावी के दक्षिण की संकरी घाटी में होकर त्रिगर्त के प्रवेश द्वार (गुरुदासपुर) में उदुम्बरों का राज्य था। पतंजलि मुनि ने उदुम्बरावती नदी का उल्लेख किया है (महाभाष्य ४।२।७१)। वह इसी प्रदेश की कोई छोटी नदी थी जिसके तट पर उदुम्बरों की राजधानी रही होगी।

(२) **तिलखल** :- व्यास नदी के दक्षिण के प्रदेश (जिला होशियारपुर) में, जो आज भी तिलों की खेती का प्रधान क्षेत्र है, तिलखल राज्य का स्थान प्रतीत होता है। तिलखल शब्द का अर्थ तिलों से भरे हुये खलिहानों का देश है।

(३) **मद्रकार** :- पाणिनीय-अष्टाध्यायी में मद्र और भद्र दोनों पर्यायवाची शब्द हैं (२।३।७३, ५।४।६७)। अत: मद्रकार का ही दूसरा नाम भद्रकार ज्ञात होता है। सम्भव है घग्घर नदी के तट पर बीकानेर के उत्तर-पूर्वी कोने में स्थित भद्र नामक स्थान मद्रकारों की प्राचीन राजधानी रही है।

(४) **युगन्धर** :- यमुना के तट पर चर्खा कातती हुई साल्वी स्त्रियों के कथनानुसार उनका राजा यौगन्धरि था :-

यौगन्धरिरेव नो राजा
इति साल्वीरवादिषु:।
विवृत्तचक्रा आसीना
तीरेण युमने तव।।

इस पद्य-प्रमाण से ज्ञात होता है कि युगन्धर कहीं यमुना का तटवर्ती प्रदेश था। यह सम्भवत: अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना-तट तक फैला हुआ था। युगन्धर का अपभ्रंश वर्तमान जगाधरी है।

(५) **भूलिंग** :- तोलेमी ने लिखा है कि अरावली के पश्चिम-उत्तर में बो-लिंगाई जाती रहती थी। इनकी पहचान भू-लिंगों से हो सकती है।

(६) **शरदण्ड** :- रामायण के अनुसार केकय जाते समय शरदण्डा नदी पार करनी पड़ती थी (अयोध्या० ६८।१६)। उसी शरदण्डा नदी के तट पर विराजमान होने से साल्वों के एक अवयव का नाम शरदण्ड पड़ा होगा। सम्भव है कि शरावती का ही दूसरा पर्याय नाम शरदण्डा हो। शरदण्डा और शरावती का अर्थ शरकण्डों वाली नदी है। शरावती कुरुक्षेत्र की वह नदी थी जिसे दृषद्वती भी कहा है। आजकल इसका नाम चितांग है।

(१९) **प्रत्यग्रथ** :- मध्यकाल के कोशों के अनुसार पंचाल (बरेली) का ही दूसरा नाम प्रत्यग्रथ था। जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी (वैजयन्ती पृ० २१४)। प्रत्यग्रथ में बहनेवाली नदी रथस्था (रामगंगा) थी। प्रत्यग्रथ और रथस्था का अभिप्राय समान है।

(२०) **अजाद** :- इस जनपद का अष्टाध्यायी (४।१।१७१) में उल्लेख है। इस जनपद के नामकरण से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश बकरियों के लिये प्रसिद्ध रहा होगा (अजा+द:=अजाद:)। इटावा का प्रदेश आज तक बकरियों की नसल के लिये प्रसिद्ध है। अत: सम्भव है कि यही प्राचीन अजाद जनपद हो।

(२१) **काशि** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।१।११६) में स्थान-नामों में काशि का उल्लेख किया है। जनपद का नाम काशि था और उसकी राजधानी वाराणसी थी।

(२२) **वृजि** :- बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश वृजि कहाता था (४।२।१३१)। यहां विदेह लिच्छवियों का राज्य था।

(२३) **मगध** :- काशि जनपद के पूर्व में गंगा के दक्षिण का प्रदेश मगध जनपद था और यहां राजतन्त्र शासन था।

(२४) **कलिंग** :- पूर्वी समुद्र-तट पर कलिंग देश था जहां इस समय महानदी बहती है। पाणिनि मुनि के समय यह जनपद राज्य था (४।१।१७०)। सोलह महाजनपदों की सूची में इसका नाम नहीं है।

(२५) **सूरमस** :- यह नाम केवल अष्टाध्यायी (४।१।१७०) में मिलता है। ज्ञात होता है कि असम प्रान्त में प्रसिद्ध सूरमा नदी की घाटी और पर्वत-उपत्यका का नाम सूरमस था।

(२६) **अवन्ति** :- यह महाभारत कालीन एक प्रसिद्ध जनपद था (४।१।१७६)। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

(२७) **कुन्ति** :- यमुना और चन्द्रभागा (चम्बल) के तट पर कुन्ति राष्ट्र (वर्तमान ग्वालियर) राज्य था (४।१।१७६)। यह अब भी कोंतवार कहलाता है।

(२८) **अश्मक** :- अश्मक जनपद की राजधानी अन्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिष्ठान थी (४।१।१७३)। जो कि आज गोदावरी नदी के किनारे पैष्ठा नाम से प्रसिद्ध है। पैष्ठा शब्द प्रतिष्ठान का ही अपभ्रंश है।

(२९) **भौरिकि** :- पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी (४।२।५४) में भौरिकि लोगों के देश का भौरिकिभक्त नाम से उल्लेख किया है। वैजयन्ती कोश (पृ० ३७) के अनुसार बंगाल का समतल (दक्षिणी बंगाल) प्रदेश भौरिक कहलाता था।

(३०) **बर्बर** :- इस जनपद का अष्टाध्यायी (४।३।९३) में उल्लेख है। यह सिन्धु-सागर के संगम के समीप बर्बरिक समुद्र-पत्तन था।

(३१) **कश्मीर** :- यह एक लोकप्रसिद्ध जनपद है। अष्टाध्यायी (४।३।९३) सिन्धु-आदिगण में इसका उल्लेख मिलता है।

(३२) **उरस** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु-आदिगण में उल्लेख है। इसका वर्तमान नाम हजारा है। यह सिन्धु कृष्णगंगा और झेलम के बीच का प्रदेश था। यह पश्चिमी गन्धार और अभिसार (वर्तमान पुंछ राजौरी) के मध्य में है।

(३३) **दरद्** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह उत्तर-पश्चिम कश्मीर का गिलगित-हुंजा प्रदेश था।

(३४) **गब्दिका** :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह धौलाधार से ऊपर चम्बा राज्य में गद्दियों के गद्देरन प्रदेश का प्राचीन नाम ज्ञात होता है।

(३५) किष्किन्धा :- इसका अष्टाध्यायी (४।३।९३) के सिन्धु आदिगण में उल्लेख है। यह गोरखपुर के पास विद्यमान खुंखुदों का प्राचीन नाम है। खुंखुदों शब्द किष्किन्धा का अपभ्रंश है।

(३६) पटच्चर :- इसका अष्टाध्यायी (४।२।११०) के सिन्धु आदिगण में पाठ है। यह सम्भवतः सरस्वती नदी के दक्षिण प्रदेश (वर्तमान-पाटौदी) था। यहां लुटेरे आभीरगणों की बस्ती थी। संस्कृतभाषा में पाटच्चर शब्द लुटेरा अर्थ का वाचक है। पाटौदी शब्द पटच्चर का अपभ्रंश है।

(३) पर्वत

पाणिनीय-अष्टाध्यायी में पर्वतीय प्रदेशों से सम्बन्धित कुछ विशेष शब्द मिलते हैं जैसे-हिमानी=बर्फ का भारी ढेर (४।१।४९)। हिमश्रथ=बर्फ का पिघलना (६।४।२९)। उपत्यका=पर्वत के नीचे की भूमि, नदी की द्रोणी,दून, घाटी (५।२।३४)। अधित्यका=पर्वत के ऊपर की ऊंची भूमि, पठार (५।२।३४)। इनके अतिरिक्त अष्टाध्यायी में चर्चित प्रमुख पर्वतों का परिचय निम्नलिखित है :-

(१) हिमालय :- इस पर्वत से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण नाम अन्तर्गिरि और उपगिरि थे। आचार्य सेनक के मत में इनका नाम अन्तर्गिर और उपगिर भी चालू था (५।४।११२)। हिमालय की पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुई तीन पर्वत-शृंखलायें हैं। हरद्वार से देहरादून की चढ़ाई और छोटे टीले इन्हीं के अंग हैं। देहरादून से केवल सात मील पर स्थित राजपुर से एकदम चढाई आरम्भ हो जाती है। हिमालय की इस बीच की शृंखला में मंसूरी, नैनीताल, शिमला, धर्मशाला और श्रीनगर आदि की चोटियां हैं। इनका प्राचीन नाम बहिर्गिरि था। इससे ऊपर उठकर हिमालय की तीसरी शृंखला है जिसमें १८-२० हजार से लेकर ३० हजार फुट तक की गगनचुम्बी चोटियां हैं। कांचनजंघा, गौरीशंकर, धवलगिरि, नंदादेवी और नंगा पर्वत आदि के उत्तुंग गिरिशृंग इस शृंखला में हैं। इसी का प्राचीन नाम अन्तर्गिरि था।

(२) त्रिककुत् :- यह भी हिमालय की किसी चोटी का ही नाम था। डा० कीथ ने इसकी पहचान 'त्रिकोट' से की है (वैदिक इन्डैक्स पृ० ३२९)। जो पंजाब और काश्मीर के बीच की चोटी थी।

सुलेमान के समानान्तर शीनगर की पर्वत-शृंखला है जो कि झोबर (वैदिक नाम-यह्वती) नदी के पूर्व में है और दोनों के पीछे टोका और काकड़ की शृंखलायें हैं। पर्वतों की यही तिहरी दीवार ठीक ही त्रिककुत् कहाती थी (जयचन्द्र विद्यालंकार भारतभूमि पृ० १२९)। यहीं से त्रैककुद अंजन प्राप्त होता था। इसका नाम अंजन-गिरि भी था (६।३।११७)।

(३) विदूर :- यह पर्वत वैदूर्य-मणि का उत्पत्ति स्थान था (४।३।८४)। पतंजलि के मत में वैदूर्य मणि की खाने वालवाय पर्वत में थी। वहां से लाकर विदूर के बेगड़ी (रत्नतराश, संस्कृत नाम-वैकटिक) उसे घाट-पहलों पर काटते और बींधते थे। इससे उसका नाम वैदूर्य मणि पड़ गया। संभव है कि दक्षिण का बीदर, विदूर हो।

(४) वन

पाणिनीय अष्टाध्यायी (८।४।४) में निम्नलिखित प्रमुख वनों का उल्लेख मिलता है :-

(१) **पुरगावण** :- गणरत्नमहोदधि (पृ० ७६) के अनुसार 'पुरगा' पाटलिपुत्र की एक यक्षिणी (जातिविशेष) थी। इससे अनुमान किया जाता है कि 'पुरगावण' पाटलिपुत्र के समीप था जो कि उक्त यक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा।

(२) **मिश्रकावण** :- यह नैमिषारण्य के पास मिसरिख वन ज्ञात होता है जो कि अब नीमखार मिसरिख (सीतापुर से १३ मील दक्षिण) कहलाता है।

(३) **सिध्रकावण** :- यह सिधका नामक लकड़ियों का वन था। सामविधान ब्राह्मण (३।६।९) में सैन्ध्रकमयी समिधाओं को घी में डुबाकर सहस्र आहुतियों से हवन करने का विधान है।

(४) **अग्रेवण** :- यह सम्भवत: प्राचीन अग्र जनपद जिसकी राजधानी अग्रोदक (वर्तमान नाम-अगरोहा) थी, उसमें अवस्थित वन का नाम था।

(५) **कोटरावण** :- यह लखीमपुर का कोई जंगल ज्ञात होता है, जहां अब कोटरा नामक रियासत है। यहां अधिकतर साखू और शीशम के वृक्ष हैं।

(६) **शारिकावण** :- यह वर्तमान (बिहार) का नाम ज्ञात पड़ता है।

पाणिनीय अष्टाध्यायी (८।४।५) के अनुसार शरवण, इक्षुवण, प्लक्षवण, आम्रवण, कार्ष्यवण, खदिरवण और पीयूक्षावण प्रसिद्ध थे।

(५) नदी

पाणिनीय अष्टाध्यायी में निम्नलिखित भारतीय नदियों का भी उल्लेख मिलता है :-

(१) **सुवास्तु** :- यह वैदिक काल की नदी है जिसे आजकल स्वात कहा जाता है (४।२।७७)। इसकी पश्चिमी शाखा गौरी नदी (पंचकोरा) है। इन दोनों के बीच में उर्दि (उड्डियान) था जो कि गन्धार देश का एक भाग माना जाता था। यहीं स्वात की घाटी में प्राचीन काल से आज तक एक विशेष प्रकार के कम्बल बुने जाते आये हैं। पाणिनि ने जिनका पाण्डुकम्बल नाम से उल्लेख किया है (४।२।११)।

(क) मशकावती :- स्वात नदी का ही निचला भाग मशकावती नदी कहलाता था जिसके तट पर मशकावती नगरी विराजमान थी। महाभाष्य में मशकावती नदी का उल्लेख है (४।२।७१)।

(ख) पुष्कलावती :- यह भी व्याकरण-शास्त्र में एक नदी का नाम प्रसिद्ध है। काशिका में भी पुष्कलावती का नाम प्राचीन नदी-सूची में में आया है (४।२।८५, ६।१।२१९, ३।३।११९)। स्वात नदी के निचले भाग का नाम पुष्कलावती था।

वस्तुतः- सुवास्तु, गौरीनदी, कुभा और सिन्धु नदी के बीच का प्रदेश ही अष्टाध्यायी के प्रवक्ता पाणिनि मुनि की जन्मभूमि का पश्चिम भाग था।

(२) सिन्धु :- प्राचीन सिन्धु नद आज की सिन्ध नदी है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी तट की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद (सिन्धु सागर दुआब) था। इस समय जो सिन्ध प्रान्त है उसका पुराना नाम 'सौवीर' था। सिन्ध नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर कश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिट-चिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिण वाहिनी होती हुई दरद् के चरणों से पहली बार मैदान में उतरती है। अतः प्राचीन भारतवासी सिन्धु नदी को दारदी सिन्धु नदी कहते थे। अपने अन्तिम भाग में सिन्धु नदी सौवीर देश (४।१।१४८) में प्रवेश करती है और फिर समुद्र में मिल जाती है। यह प्रदेश सिन्धुकूल और सिन्धुवक्त्र कहलाता था।

(३) विपाश :- वर्तमान व्यास नदी।

(४) चन्द्रभाग :- वर्तमान चनाब नदी।

(५) इरावती :- वर्तमान रावी नदी।

(६) देविका :- महाभाष्य में देविका के किनारे उगनेवाले चावल '**देविकाकूलाः शालयः**' कहे गये हैं (७।३।१)। यह मद्र देश में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी थी। यह रावी नदी की सहायक नदी थी। इसकी पहचान देग नदी के साथ की जाती है जो कि जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट, शेखुपुरा जिलों में होती हुई रावी नदी में मिल जाती है।

(७) अजिरवती :- गंगा की कांठे की नदियों में अजिरवती नदी का नाम आया है (६।३।११९)। यही अजिरवती वर्तमान राप्ती नदी है। जिसके तट पर प्राचीन श्रावस्ती नगरी थी।

(८) सरयू :- सरयू नामक प्रसिद्ध नदी तो कोसल जनपद में है (६।४।१७४)। पश्चिमी अफगानिस्तान की हरिरूद नदी जिसके तट पर हेरात बसा है, प्राचीन ईरानी भाषा में हरयू कहलाती थी, जो संस्कृत सरयू का ही रूप है।

(९) चर्मण्वती :- विन्ध्याचल की नदियों में चर्मण्वती नदी का नाम आया है (८।२।१२)। इसका वर्तमान नाम चम्बल है।

(१०) **शरावती** :- कुरुक्षेत्र की घग्घर नदी के साथ इसकी पहचान की गई है। यह भारत के प्राच्य और उदीच्य देशों के बीच की सीमा-नदी थी।

(११) **रुमण्वत्** :- काशिका के अनुसार लवण के स्थान में रुमण् आदेश होने से यह शब्द बना है का०-**'लवणशब्दस्य रुमण्भावो निपात्यते'** (८।२।१२)। अतः इस नदी का रूमा (लूणी नदी) नाम जान पड़ता है जो कि सांभर झील से निकलती है।

(१२) **रथस्या** :- यह रथस्या वा रथस्था नदी पंचाल (बरेली) प्रदेश की रामगंगा (रथवाहिनी) नदी थी जो कि ऊपरले भाग में अब भी राहुत कहाती है। 'राहुत' रथस्था का ही अपभ्रंश है।

(१३) **उदुम्बरावती** :- व्यास और रावी नदी के बीच में त्रिगर्त (कांगड़ा) को जहां से रास्ता गया है वहां गुरुदासपुर, पठानकोट और नूरपुर इलाके में औदुम्बरों के देश की ही किसी नदी का नाम उदुम्बरावती था।

(१४) **इक्षुमती** :- इसकी पहचान गंगा की सहायक नदी फर्रुखाबाद जिले की ईखन नदी से की जाती है।

(१५) **द्रुमती** :- यह सम्भवतः काश्मीर की द्रास नदी है।

(६) मान (मांप-तोल)

पाणिनीय अष्टाध्यायी में जिन मानों का उल्लेख किया गया है वे उन्मान, परिमाण और प्रमाण भेद से तीन प्रकार के हैं। जैसा कि लिखा है :-

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामास्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।

अर्थ :- ऊर्ध्वमान अर्थात् बाट को उन्मान, सर्वतोमान (सिक्का) को परिमाण और आयाम लम्बाई का मान=फुटा प्रमाण कहाता है। यहां पाठकों के हितार्थ इन मानों का संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

(१) उन्मान (बांट)

(१)	तुला (तराजू)	यह उन्मान का करण है। तुला सम्मित (तोला हुआ) तुल्य कहाता है।
(२)	गुंजा	१ रत्ती (रक्तिका)।
(३)	काकणी	१ $\frac{१}{४}$ रत्ती।
(४)	निष्पाव	३ रत्ती।
(५)	माषक	५ रत्ती।

(६)	बिस्त	८० रत्ती (सोना तोलने का बाट)।
(७)	अञ्जलि (कुडव)	१६ तोला।
(८)	प्रसृति	०२ पल।
(९)	कुलिज	०१ प्रस्थ (पाणिनिकालीन भारतवर्ष) कुलि=हाथ से उत्पन्न अञ्जलि मान।
(१०)	आढक	४ प्रस्थक।
(११)	पाय्य	५ से लेकर १० सेर तक का अन्न आदि का माप (पात्र)।

(२) उन्मान-तालिका (चरक)

४ कर्ष	१ पल।
२ पल	१ प्रसृति (८ तोला)।
२ प्रसृति	१ अञ्जलि (कुडव) {१६ तोला}।
४ कुडव	१ प्रस्थ (६४ तोला)।
४ प्रस्थक	१ आढक।
४ आढक	१ द्रोण (१०२४ तोला) {१२ $\frac{४}{५}$ सेर}।

(३) उन्मान-तालिका (अर्थशास्त्र)

१ कुडव	१२ $\frac{१}{२}$ तोला (ढाई छटांक)।
४ कुडव	१ प्रस्थ ५० तोला (ढाई पाव)।
४ प्रस्थ	१ अढक ५० पल (२०० तोला) {ढाई सेर}।
४ आढक	१ द्रोण=२०० पल (८०० तोला) {१० सेर}।
१६ द्रोण	१ खारी=१६० सेर (४ मण)।
२० द्रोण	१ कुम्भ
१० कुम्भ	१ वह/वाह (५० मण)।

☆ ☆ ☆

कंस	८ प्रस्थ=२ आढक ६ $\frac{२}{५}$ सेर (चरक)।
मन्थ	द्रोण का पर्याय (सम्भवत:)।
शूर्प	२ द्रोण (चरक)।

खारी	१६ द्रोण (१६० सेर)।
गोणी	०१ खारी।
भार	ढाई मण।
महाभार	२५ मण (एक गाड़ी का बोझा)।
आचित	२५ मण (शाकट-भार)।

(४) प्रमाण (आयाम)

०८ यव	१ अंगुल ($\frac{3}{4}$ इंच)।
१२ अंगुल	१ वितस्ति या दिष्टि (९ इंच)।
०२ वितस्ति	१ अरत्नि (डेढ़ फुट)।
४२ अंगुल	१ किष्कु (२ फुट साढ़े सात इंच)।
८४ अंगुल	१ खात पौरुष (पांच फुट चार इंच) खाई का प्रमाण।
१९२ अंगुल	१ दण्ड या काण्ड (१२ फुट)।
१० दण्ड	१ रज्जु (४० गज)।
२१६ अंगुल	१ हस्ती (१३ फुट ६ इंच)।

(५) परिमाण (सुवर्ण मुद्रा)

निष्क	१६ माशे का सिक्का।
सुवर्ण	एक कर्ष १० गुंजा (रत्ती)।
कार्षापण	८० रत्ती।

(६) परिमाण (रजत मुद्रा)

(१)	शतमान	१०० रत्ती का सिक्का। शतपथ (५।५।५।१६) के अनुसार एक सुवर्ण मुद्रा।
(२)	शाण	साढ़े बारह रत्ती का सिक्का 'अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति' (महाभारत आरण्यक पर्व १३४।१४) ८ शाण=१ शतमान
(३)	कार्षापण	३२ रत्ती चांदी का सिक्का मनुस्मृति ८।१।३५-३६ के अनुसार धरण एवं राजत पुराण।
(४)	कार्षापण	१ कर्ष (८० रत्ती) का ताम्बे का सिक्का।

(७) कार्षापण की खरीज

१.	कार्षापण एवं पण	३२ रत्ती चांदी का सिक्का।
२.	अर्धपण	१६ रत्ती चांदी का सिक्का।

३.	पाद	०८ रत्ती चांदी का सिक्का।
४.	त्रिमाष	०६ रत्ती चांदी का सिक्का।
५.	द्विमाष	०४ रत्ती चांदी का सिक्का।
६.	माष	०२ रत्ती चांदी का सिक्का।
७.	अर्धमाष	०१ रत्ती चांदी का सिक्का।
८.	काकणी (कात्यायन वार्तिक सूत्र ५।१।३३)।	१/२ रत्ती चांदी का सिक्का।
९.	अर्धकाकणी	१/४ रत्ती चांदी का सिक्का।

विशेष :- माष चांदी और ताम्बे का सिक्का था। चांदी का रौप्य माष २ रत्ती का और ताम्बे का माष ५ रत्ती का होता था।

१०.	विंशतिक	२० माष का कार्षापण (विशेष)। १६ माष का कार्षापण (सामान्य)।
११.	रूप्य	नान्दी बैल आदि के रूपों से आहत (युक्त) कार्षापण।

(८) रजत की आहत मुद्रायें

१.	शतमान	१०० रत्ती का चांदी का सिक्का।
२.	अर्धशतमान	५० रत्ती का चांदी का सिक्का।
३.	पाद शतमान	२५.०० रत्ती का चांदी का सिक्का।
४.	पादार्धशतमान	१२.०६ रत्ती का चांदी का सिक्का।

(६) मुद्रा की क्रयशक्ति

पाणिनि-काल में एक कार्षापण (३२ रत्ती चांदी का सिक्का) से पांच गोणी अर्थात् १२ मण ३२ सेर अन्न खरीदा जा सकता था। इस गणना से उस काल में प्रचलित छोटे सिक्कों की क्रय-शक्ति का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है-

	सिक्का	तोल	अन्न-क्रय
१.	कार्षापण	३२ रत्ती चांदी (सिक्का)	१२ मण ३२ सेर।
२.	माष	०२ रत्ती चांदी (सिक्का)	३२ सेर २० तोला।
३.	अर्धमाष	०१ रत्ती चांदी (सिक्का)	१६ सेर १० तोला।
४.	काकणी	१/२ रत्ती चांदी (सिक्का)	८ सेर ५ तोला।
५.	अर्धकाकणी	१/४ रत्ती चांदी (सिक्का)	४ सेर ढाई तोला।

विशेष :- यह उपरिलिखित विवरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' के आधार पर लिखा है और पाणिनि कालीन भूगोल के चित्र उसी ग्रन्थ से संकलित किये हैं तदर्थ हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

कार्षापण-मुद्राकरण-चित्रम्
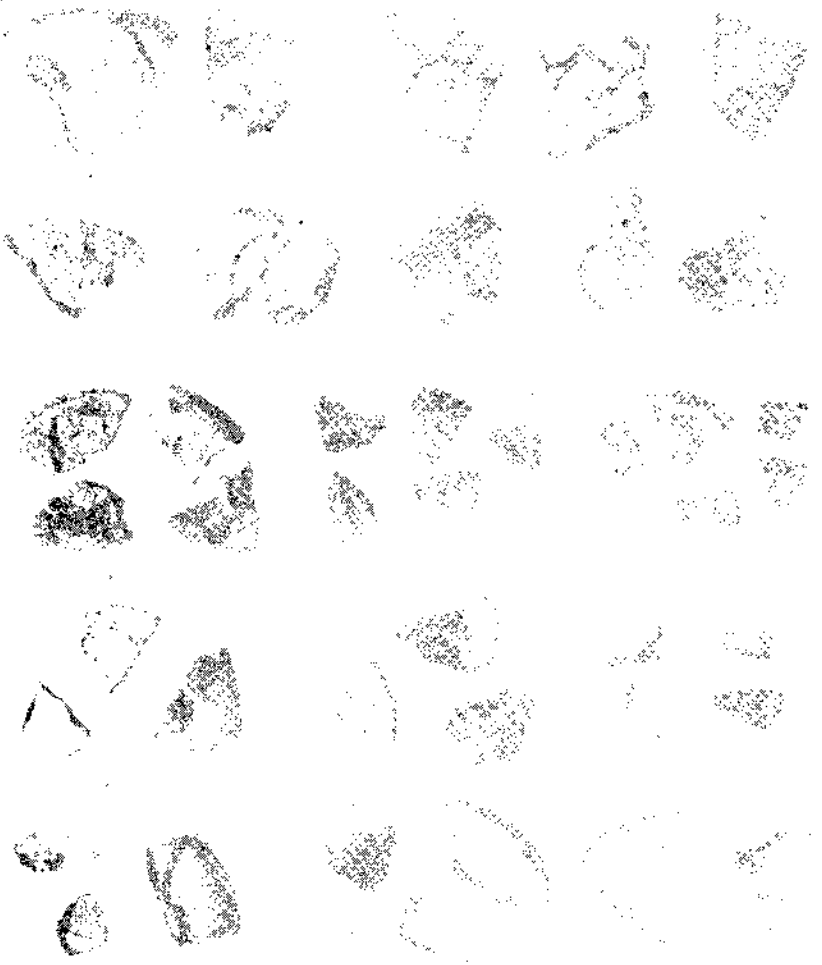
१-१५ कार्षापण मुद्राओं के सांचे नौरंगाबाद (बामला) से प्राप्त। १६ मुद्रास्थान तक धातु पहुंचने का मार्ग। १७, १८ कार्षापण सांचे का पृष्ठ भाग।

कार्षापण-मुद्राकरण-चित्रम्
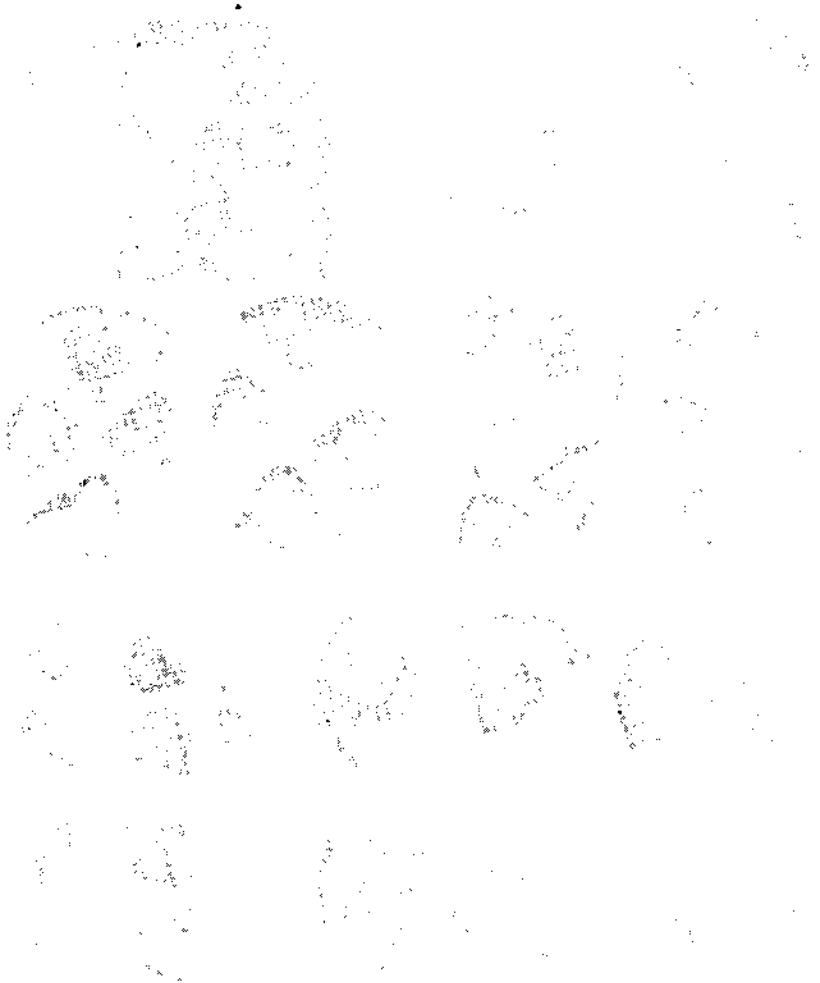
१९-२२, २६ नौरंगाबाद से प्राप्त एक ओर से प्रयुज्यमान कार्षापण सांचे। २७-२८ कार्षापण सांचे का छाप। २३-२५ नौरंगाबाद से प्राप्त दोनों ओर से प्रयुज्यमान कार्षापण सांचे। ३० सिंहोल से प्राप्त कार्षापण ? सांचा।

कार्षापण-मुद्रा-चित्रम्
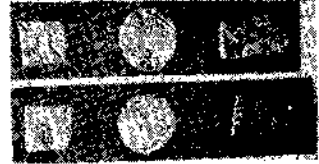
१-३ कार्षापण-मुद्रा (सिक्के)।

कार्षापण नामक सिक्का पाणिनिकाल का एक प्रधान सिक्का है। गुरुवर स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने हरयाणा प्रान्त के पुराने ऊजड़-खेड़ों नौरङ्गाबाद (बामला) (भिवानी) आदि स्थानों की खुदाई से ये कार्षापण के सांचे तथा कार्षापण सिक्के बहुत संख्या में अत्यन्त पुरुषार्थ से प्राप्त किये हैं जो कि स्वामी ओमानन्द पुरातत्त्व-संग्रहालय गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) में सुरक्षित हैं। श्रद्धेय स्वामी जी ने हरयाणा के लक्षण-स्थान (टकसाल) नामक एक पुस्तक भी लिखा है। ये कार्षापण सम्बन्धी चित्र छात्रों के ज्ञानार्थ उसी पुस्तक से संकलित किये गये हैं जो छात्र इस विषय में अधिक जानना चाहते हैं वे गुरुवर के उक्त पुस्तक को पढ़कर जान सकते हैं।

—सुदर्शनदेव आचार्य

पाणिनिकालीन भूगोल

पाणिनिकालीन भूगोल

पाणिनिकालीन भूगोल

पाणिनिकालीन भूगोल

मानचित्र ४
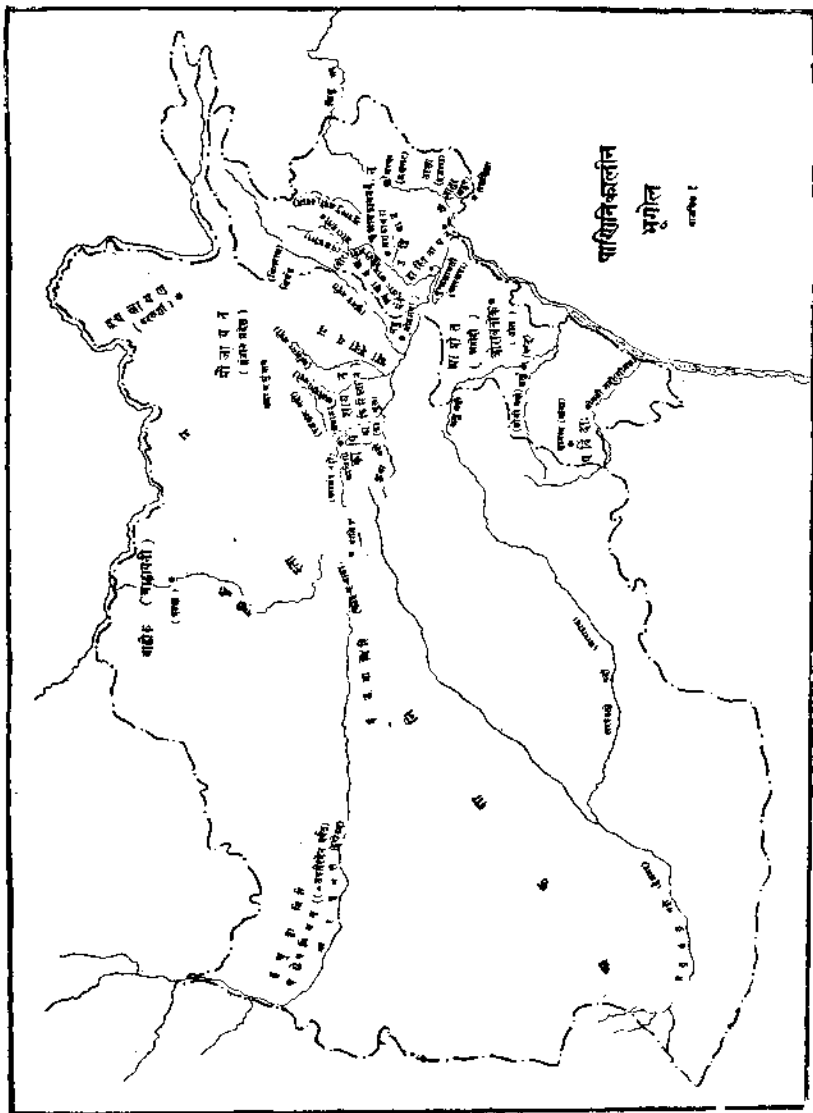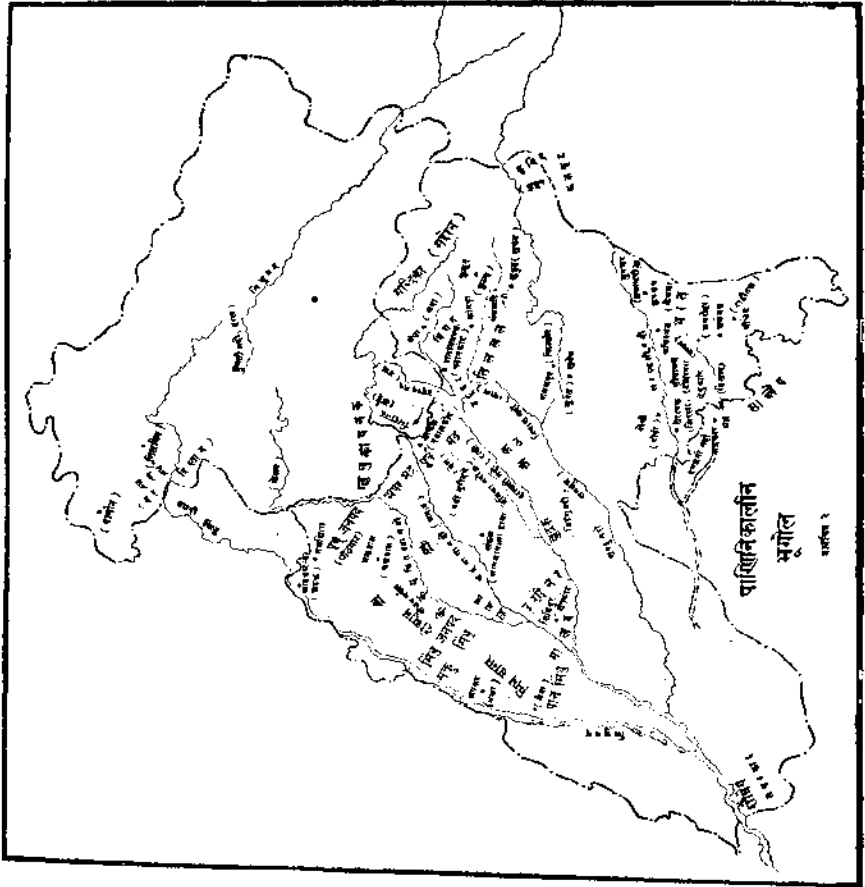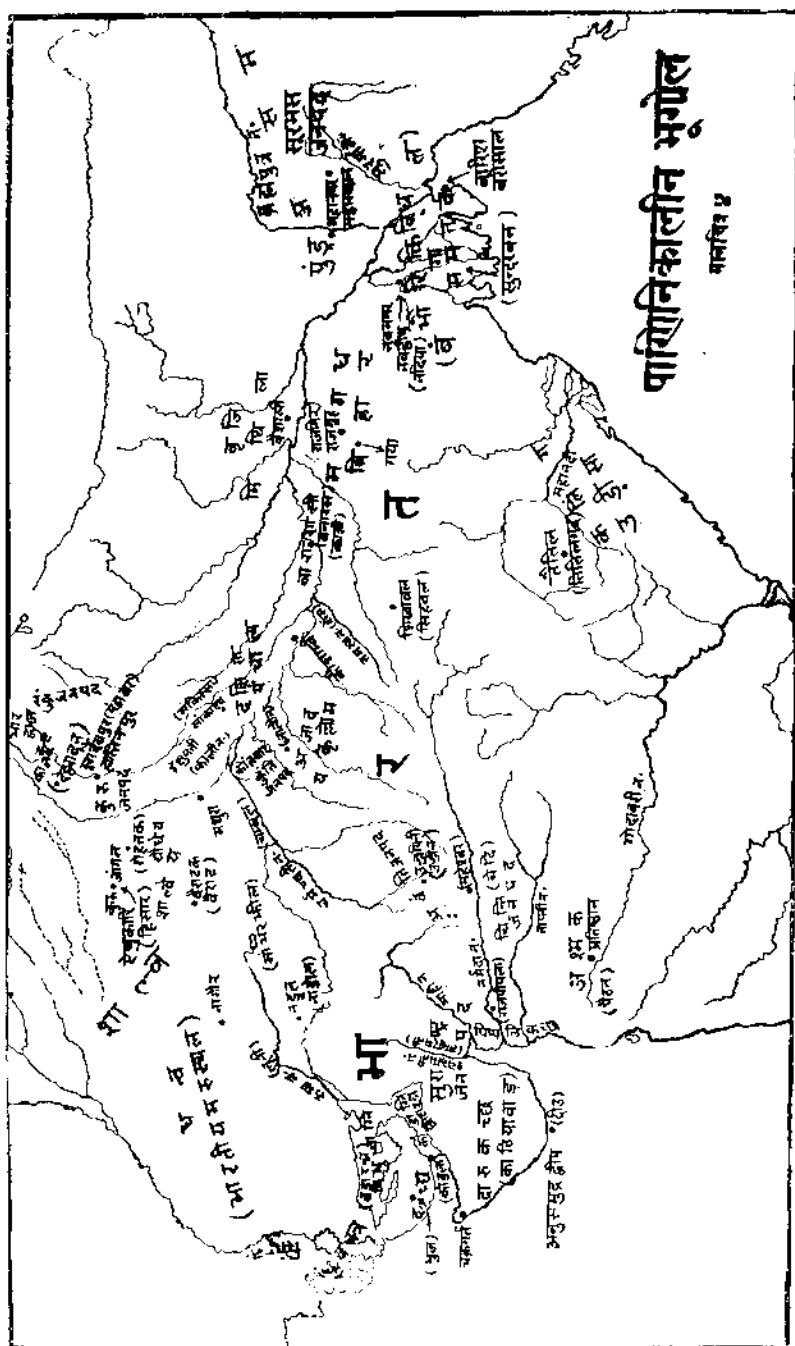
तृतीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	ङ्याप्प्रातिपदिकाधिकारः	
१.	सु-आदिप्रत्ययाः	१
	स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	स्त्री-अधिकारः	७
२.	टाप्-प्रत्ययविधिः	७
	(क) ङीप्-प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ङीप्	८
२.	ङीप्-विकल्पः	११
३.	टाप् (ऋचि)	११
४.	स्त्रीप्रत्ययप्रतिषेधः	१२
५.	ङीप्-प्रतिषेधः	१३
६.	डाप्-विकल्पः	१४
७.	अनुपसर्जनाधिकारः	१५
८.	ङीप्	१६
९.	ष्फः (ङीप्-अपवादः)	१९
१०.	ङीप्	२२
११.	ङीप्-प्रतिषेधः	२५
१२.	ङीप्-विकल्पः	२६
१३.	ङीप्	२७
१४.	ङीप्	२८
१५.	ङीप्-विकल्पः	३०
१६.	नित्यं ङीप्	३१
१७.	ङीप्	३४
१८.	ङीप् (नुक्)	३५
१९.	ङीप् (नः)	३५
२०.	ङीप्-विकल्पः	३६
२१.	नित्यं ङीप्	३७
२२.	ङीप् (ऐः)	३८
२३.	ङीप् (ऐरुदात्तः)	३८
२४.	ङीप्-विकल्पः (औः, ऐरुदात्तः)	३९
२५.	ङीप्-विकल्पः	४०
	(ख) ङीष्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ङीष्	४१
२.	ङीष् (प्राचां मते)	४४
३.	ङीष्-विकल्पः	४५
४.	नित्यं ङीष्	४६
५.	ङीष्	४७
६.	ङीष् (आनुक्)	४८
७.	ङीष्	५०
८.	ङीष्-विकल्पः	५२
९.	ङीष्-प्रतिषेधः	५५
१०.	ङीष् (निपातनम्)	५८
११.	ङीष्	५९
१२.	ङीष् (निपातनम्)	६०
१३.	ङीष्	६१
	(ग) ऊङ्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ऊङ्	६४
	(घ) ङीन्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ङीन्	६८

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	चाप्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	चाप्	७०
	तद्धितप्रत्ययाधिकारः	
१.	तिः	७२
२.	ष्यङ्-आदेशः	७२
३.	ष्यङ्-प्रत्ययः	७५
४.	ष्यङ्-विकल्पः	७५
५.	तद्धितप्रत्ययविकल्पाधिकारः	७७
	प्राग्वहतीयाण्प्रत्ययाधिकारः	
१.	अण्	७७
२.	ण्यः	७९
३.	अञ्	८०
४.	नञ्+स्नञ्	८१
५.	प्रत्ययस्य लुक्	८२
६.	प्रत्ययस्य अलुक्	८३
७.	प्रत्ययस्य लुक्	८४
८.	प्रत्ययस्य लुग्-विकल्पः	८५
	अपत्यार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	८६
२.	एकप्रत्ययनियमः	८८
३.	युवापत्ये प्रत्ययनियमः	८८
४.	इञ्	८९
५.	इञ् (अकङ्)	९१
	गोत्रापत्यप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	च्फञ्	९२
२.	फक्	९३
३.	फक्-विकल्पः	९७
४.	अञ्	९८
५.	यञ्	९९
६.	यञ्-लुक्	१०३
७.	फञ्	१०३
	अपत्यसामान्यप्रकरणम्	
१.	अण्	१०५
२.	अण्-विकल्पः	१११
३.	ढक्+अण्	१११
४.	ढक्	११२
५.	ढक् (वुक्)	११६
६.	ढक् (इनङ्)	११७
७.	ढक्-विकल्पः	११७
८.	ऐरक्	११८
९.	ढ्रक्	११९
१०.	आरक्	११९
११.	ढ्रक्	१२०
१२.	छण्	१२१
१३.	ढक् (अन्त्यलोपः)	१२१
१४.	ढक्+छण्	१२२
१५.	ढञ्	१२३
१६.	यत्	१२४
१७.	घः	१२५
१८.	खः	१२५
१९.	यत्+ढकञ्	१२६
२०.	अञ्+खञ्	१२७
२१.	ढक्	१२८
२२.	छः	१२९
२३.	व्यत्+छः	१२९
२४.	व्यन् (सपत्ने)	१३०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२५.	ढक्	१३०
२६.	णः+ढक्	१३१
२७.	ठक्	१३३
२८.	छः+ठक्	१३४
२९.	णः+फिञ्	१३५
३०.	ण्यः	१३६
३१.	इञ् (उदीचां मते)	१३८
३२.	फिञ्	१३९
३३.	फिञ् (उदीचां मते)	१४१
३४.	फिञ् (कुक्)	१४२
३५.	फिञ्-विकल्पः	१४३
३६.	फिन् (बहुलं प्राचां मते)	१४४
३७.	अञ्+यत् (षुक्)	१४५
३८.	गोत्र-संज्ञा	१४६
३९.	युवसंज्ञा	१४६

तद्राजसंज्ञा

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अञ्	१४९
२.	अण्	१५१
३.	ञ्यङ्	१५२
४.	ण्यः	१५४
५.	इञ्	१५५
६.	तद्राजस्य लुक्	१५८
७.	तद्राजस्य लुक्-प्रतिषेधः	१६१

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

रक्तार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१६४
२.	ठक्	१६५

युक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१६५
२.	प्रत्ययस्य लुप्	१६७
३.	छः	१६८

दृष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१७०
२.	डयत्+डयः	१७०

परिवृतार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१७२
२.	इनिः	१७३
३.	अञ्	१७४
४.	अण् (निपातनम्)	१७५

उद्धृतार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१७५

शयितृ-अर्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१७६

संस्कृतार्थप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१७७
२.	यत्	१७८
३.	ठक्	१७८
४.	ठक्-विकल्पः	१७९
५.	ढञ्	१८०

अस्मिन् (पौर्णमासी) अर्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१८१
२.	ढक्	१८२
३.	ठक्+अण्	१८३

अस्य (देवता) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अण्	१८५

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२.	अण् (इत्-आदेशः)	१८६
३.	घन्	१८७
४.	घः	१८८
५.	छः	१८९
६.	घः+अण्	१८९
७.	ट्यण्	१९०
८.	यत्	१९१
९.	छः+यत्	१९२
१०.	ढक्	१९३
११.	भववत् प्रत्ययाः	१९४
१२.	ठञ्	१९५
१३.	निपातनम्	१९६
	समूहार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितम् (अण्)	१९७
२.	अण्	१९८
३.	वुञ्	१९९
४.	यञ्+वुञ्	२००
५.	ठञ्	२०१
६.	यन्	२०२
७.	तल्	२०२
८.	अञ्	२०३
९.	धर्मवत् प्रत्ययाः	२०५
१०.	ठक्	२०६
११.	यञ्+छः	२०७
१२.	यः	२०८
१३.	यः	२०९
१४.	इनिः+त्र+कट्यच्	२१०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	विषयार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम्	२११
२.	वुञ्	२१२
३.	विधल्+भक्तल्	२१२
	अस्य (प्रगाथस्य) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	२१४
	अस्य (संग्रामस्य) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	२१५
	अस्याम् (क्रीडायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	णः	२१६
	अस्याम् (क्रीयायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	ञः	२१७
	अधीते-वेद-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितम्	२१८
२.	ठक्	२१९
३.	वुन्	२२०
४.	इनिः	२२१
५.	ठक्	२२२
६.	प्रत्ययस्य लुक्	२२४
७.	तद्विषयत्वम्	२२५
	चातुरर्थिकप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	अस्मिन्-अर्थः	२२८
२.	निर्वृत्त-अर्थः	२२९
३.	निवासः-अर्थः	२२९
४.	अदूरभवः-अर्थः	२३०
५.	अञ्	२३१
६.	अञ्	२३६
७.	वुञादयः	२३९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
८.	प्रत्ययस्य लुप्	२४४
९.	प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः	२४७
१०.	ठक्+छः	२४८
११.	मतुप्	२४९
१२.	ड्मतुप्	२५०
१३.	ड्वलच्	२५१
१४.	वलच्	२५२
१५.	छः	२५३
१६.	छः (कुक्)	२५३
	पूर्वशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	शेषार्थ-अधिकारः	२५४
२.	घः+खः	२५५
३.	यः+खः	२५६
४.	ढकञ्	२५७
५.	ढक्	२५८
६.	त्यक्	२६०
७.	ष्फक्	२६०
८.	अण्+ष्फक्	२६१
९.	यत्	२६२
१०.	ठक्	२६३
११.	वुक्	२६४
१२.	त्यप्	२६५
१३.	त्यप्-विकल्पः	२६६
१४.	अञ्+ञः	२६७
१५.	ञः	२६८
१६.	अण्	२७०
१७.	अण्-प्रतिषेधः	२७३
१८.	छः	२७४
१९.	ठक्+छस्	२७५
२०.	ठञ्+ञिठ	२७६
२१.	ठञ्-ञिठविकल्पः	२७८
२२.	ठञ्	२७९
२३.	वुञ्	२८०
२४.	वुञ्-विकल्पः	२९०
२५.	कन्	२९१
२६.	अण्	२९२
२७.	वुञ्	२९४
२८.	छः	२९७
२९.	छः (कः)	२९९
३०.	छः	३००
३१.	छ-विकल्पः	३०३
३२.	छः	३०४
	चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः	
	उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	खञ्-छ प्रत्ययविकल्पः	३०५
२.	युष्माकास्माकादेशौ	३०६
३.	तवकममकादेशौ	३०७
४.	यत्	३०८
५.	ठञ्+यत्	३०९
६.	अञ्+ठञ्	३१०
७.	मः	३११
८.	अः	३१२
९.	यञ्	३१२
१०.	ठञ्	३१३
११.	ठञ्-विकल्पः	३१४
१२.	ठञ्-विकल्पः	३१५

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१३.	अण्	३१८
१४.	एण्यः	३१९
१५.	ठक्	३२०
१६.	ठञ्	३२२
१७.	अण्+ठञ्	३२२
१८.	ट्युः+ट्युल् (तुट्)	३२३
१९.	ट्यु-ट्युल्विकल्पः	३२४
	जातार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३२६
२.	ठप्	३२७
३.	वुञ्	३२७
४.	वुन्	३२८
५.	वुन्-विकल्पः	३३०
६.	अः	३३०
७.	कन्	३३१
८.	अण्+अञ्	३३२
९.	प्रत्ययस्य लुक्	३३३
१०.	प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः	३३५
११.	प्रत्ययस्य बहुलं लुक्	३३७
	कृतादिप्रत्ययार्थविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३३८
	प्रायभवार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३३८
२.	ठक्	३३९
	सम्भूतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४०
२.	ढञ्	२४१
	साध्वाद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४१
	उप्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४२
२.	वुञ्	३४३
३.	वुञ्-विकल्पः	३४४
	देयार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४५
२.	वुन्	३४५
३.	वुञ्	३४७
४.	ठञ्+वुञ्	३४७
	व्याहरति मृग इत्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४८
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३४९
	भवार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३५०
२.	यत्	३५०
३.	ढञ्	३५१
४.	अण्+ढञ्	३५२
५.	ञ्यः	३५३
६.	ठञ्	३५४
७.	छः	३५६
८.	यत्+कः+छः	३५७
९.	कन्	३५८
	भवव्याख्यानार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३५९
२.	ठञ्	३६०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
३.	ष्ठन्	३६४
४.	यत्+अण्	३६५
५.	ठक्	३६६
६.	अण्	३६९
	आगतार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३५०
२.	ठक्	३७०
३.	अण्	३७०
४.	वुञ्	२७१
५.	ठञ्	३७२
६.	यत्+ठञ्	३७३
७.	अङ्कवत्-प्रत्ययविधिः	३७४
८.	रूप्यः	३७५
९.	मयट्	३७७
	प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३७७
२.	ञ्यः	३७८
	गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३७९
	अभिनिष्क्रामति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३८०
	अधिकृत्य-कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३८१
२.	छः	३८२
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः {निवासः}	३८३
२.	यथाविहितं प्रत्ययः {अभिजनः}	३८४
३.	छः ,, ,,	३८५
४.	ञ्यः {अभिजनः}	३८५
५.	अण्-अञ् ,, ,,	३८६
६.	ढक्+छण्+ढञ्+यक् ,, ,,	३८८
७.	यथाविहितं प्रत्ययः {भक्तिः}	३८९
८.	ठञ् ,, ,,	३९०
९.	वुन् ,, ,,	३९१
१०.	बहुलं वुञ् ,, ,,	३९२
११.	जनपदवत् प्रत्ययविधिः ,, ,,	३९३
	प्रोक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३९५
२.	छण्	३९६
३.	णिनिः	३९८
४.	प्रोक्तार्थप्रत्ययस्य लुक्	४०२
५.	अण्	४०३
६.	ढिनुक्	४०४
७.	णिनिः	४०५
८.	इनिः	४०६
	एकदिगर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४०७
२.	तसिः	४०८
३.	यत्+तसिः	४०९
	उपज्ञातार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४१०
	कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४११
२.	वुञ्	४१२
३.	अञ्	४१३

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	इदमर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४१४
२.	यत्	४१४
३.	अञ्	४१५
४.	ठक्	४१६
५.	वुन्	४१७
६.	वुञ्	४१९
७.	अण्	४२०
८.	अण्-विकल्पः	४२१
९.	ञ्यः	४२२
१०.	वुञ्-प्रतिषेधः	४२४
११.	छः	४२५
	विकारावयवार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४२७
२.	अण्	४२८
३.	अण् (षुक्)	४३१
४.	अञ्	४३१
५.	अञ्-विकल्पः	४३३
६.	ट्लञ्	४३४
७.	मयट्	४३५
८.	नित्यं मयट्	४३६
९.	मयट्	४३७
१०.	कन्	४३८
११.	मयट्	४३८
१२.	मयट्-प्रतिषेधः	४४१
१३.	अण्	४४२
१४.	अञ्	४४३
१५.	क्रीतवत् प्रत्ययविधिः	४४६
१६.	वुञ्	४४८
१७.	वुञ्-विकल्पः	४४८
१८.	ढञ्	४४९
१९.	यत्	४५०
२०.	वयः	४५१
२१.	प्रत्ययस्य लुक्	४५२
२२.	अण्	३५४
२३.	अण्-विकल्पः	३५४
२४.	प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः	३५५
२५.	प्रत्यय-लुप्	४५५
२६.	यञ्+अञ् (लुक् च)	४५६
	चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः	
	प्राग्वहतीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्	
१.	ठक्-अधिकारः	४५८
	दीव्यति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४५८
	संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४५९
२.	अण्	४६०
	तरति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४६१
२.	ठञ्	४६१
३.	ठन्	४६२
	चरति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४६३
२.	ष्ठल्	४६४
३.	ष्ठन्	४६४
४.	ठञ्-ष्ठन्	४६५

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४६६
२.	ठन्	४६७
३.	छः+ठन्	४६८
	हरति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४६८
२.	ष्ठन्	४६९
३.	ष्ठन्-विकल्पः	४७०
४.	अण्	४७१
	निर्वृत्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४७२
२.	मप्	४७२
३.	कक्+कन्	४७३
	संसृष्टार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४७४
२.	इनिः	४७५
३.	प्रत्ययस्य लुक्	४७६
४.	अण्	४७६
	उपसिक्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४७७
	वर्ततेऽर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४७७
	प्रयच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८०
२.	ष्ठन्+ष्ठच्	४८१
	उञ्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८२
	रक्षति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८३
	करोति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८४
	हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८४
	तिष्ठति-हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८६
	धावति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८७
२.	ठञ्+ठक्	४८८
	गृह्णाति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४८९
	चरति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९०
	एति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९१
	समवैति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९२
२.	ण्यः	४९३
	पश्यति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९४
	धर्म्य-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९५
२.	अण्	४९६
३.	अञ्	४९७
	अवक्रय-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	४९७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितम् (ठक्) (पण्यम्)	४९८
२.	ठञ् ,, ,,	४९९
३.	ष्ठन् ,, ,,	४९९
४.	ष्ठन्-विकल्पः ,, ,,	५००
५.	यथाविहितम् (ठक्) {शिल्पम्=कौशलम्}	५०१
६.	अण्-विकल्पः {शिल्पम्=कौशलम्}	५०२
७.	यथाविहितम् (ठक्) {प्रहरणम्=शस्त्रम्}	५०३
८.	ठञ्+ठक् {प्रहरणम्=शस्त्रम्}	५०४
९.	ईकक् {प्रहरणम्=शस्त्रम्}	५०४
१०.	यथाविहितम् (ठक्) {मतिः=बुद्धिः}	५०५
११.	यथाविहितम् (ठक्) {शीलम्=स्वभावः}	५०६
१२.	णः {शीलम्=स्वभावः}	
१३.	यथाविहितम् (ठक्) {अध्ययनेऽन्यत्कर्मवृत्तम्}	५०८
१४.	ठच्	५०९
	अस्मै (चतुर्थी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितम् (ठक्) {हितं भक्षणम्}	५०९
२.	यथाविहितम् (ठक्) {नियुक्तं दीयते}	५१०
३.	टिठन् {नियुक्तं दीयते}	५११
४.	अण्-विकल्पः {नियुक्तं दीयते}	५१२
	नियुक्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	५१३
	अध्यायि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	५१५
	व्यवहरति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	५१६
	वसति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (ठक्)	५१७
२.	ष्ठल्	५१८
	प्राग्-हितीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्	
१.	यत्-अधिकारः	५१८
	वहति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५१९
२.	यत्+ठक्	५२०
३.	खः	५२०
४.	प्रत्ययस्य लुक्+खः	५२१
५.	अण्	५२२
६.	ठक्	५२३
७.	यथाविहितम् (यत्)	५२३
	विध्यति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५२४
	लब्धृ-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५२५
२.	णः	५२५

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	गतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५२६
	अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५२७
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्) {आवर्हि=उत्पाटि}	५२७
२.	य-प्रत्ययान्तं निपातनम्	५२८
	संयुक्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	ञ्यः	५२९
	तार्याद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३०
	अनपेतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३१
	निर्मितार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३२
२.	यत्+अण्	५३३
	प्रियार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३३
	बन्धनार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३४
	करणाद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३५
	साधु-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५३६
२.	खञ्	५३६
३.	णः	५३७
४.	ण्यः	५३८
५.	ठक्	४३८
६.	ठञ्	५३९
७.	ढञ्	५४०
८.	यः	५४१
९.	ढः (छान्दसः)	५४१
	वासि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५४२
	शयितार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५४३
	आपदान्तं छन्दोऽधिकारः	
	भवार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५४४
२.	ड्यण्	५४५
३.	अण्	५४६
४.	ड्यत्-ड्यविकल्पः	५४६
५.	यन्	५४७
६.	घन्	५४८
७.	यथाविहितम् (यत्)	५४९
८.	घः+छः	५५०
९.	घः	५५०
	दत्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५५१
	भागकर्मार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५५२
	हननी-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५५३
	प्रशस्यार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५५४

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	स्व-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५५५
२.	अण्	५५६
	आसाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्) मतोश्च लुक् {इष्टकानाम्, उपधानमन्त्रः}	५५७
२.	अण्	५५८
३.	मतुप्	५५८
	मतुबर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितम् (यत्) {मासः, तनूः}	५६१
२.	ञः+यत्	५६१
३.	यत्+खः	५६२
४.	यल्	५६३
५.	खः	५६४
	कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	इनः+यः+खः	५६५
	संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितम् (यत्)	५६६
	सम्मित्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	घः	५६६
	मत्वर्थप्रत्ययविधिः	
१.	घः	५६७
	अर्हति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यः	५६८
	मयट्-समूहार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यः {मयडर्थे}	५६९
२.	यथाविहितम् (यत्) {मयडर्थे}	५७०
३.	यथाविहितम् (यत्) {मयडर्थे समूहे च}	५७०
	स्वार्थप्रत्ययविधिः	
१.	घः	५७१
२.	तातिल्	५७२
	करार्थप्रत्ययविधिः	
१.	तातिल्	५७३
	भावार्थप्रत्ययविधिः	
१.	तातिल्	५७४

इति तृतीयभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।।

चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः

ङ्याप्प्रातिपदिकाधिकारः

ङ्याप्प्रातिपदिकात्।१।

प०वि०-ङी-आप्-प्रातिपदिकात् ५।१।

स०-ङीश्च आप् च प्रातिपदिकं च एतेषां समाहारः-ङ्याप्-प्रातिपदिकम्, तस्मात्-ङ्याप्प्रातिपदिकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामो ङ्यन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च तद् वेदितव्यमित्यधिकारोऽयम्, आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

आर्यभाषाः *अर्थ-इससे आगे जो कहेंगे वह प्रत्यय-विधि (ङ्याप्प्रातिपदिकात्) ङी-अन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से जाननी चाहिए। इस सूत्र का पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक अधिकार है।*

विशेष-*ङी से ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययों का ग्रहण है। आप् से टाप्, डाप्, चाप् प्रत्ययों का ग्रहण है। प्रातिपदिक से जो '**अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्**' (१।२।४५) तथा '**कृत्तद्धितसमासश्च**' (१।२।४६) से संज्ञा की गई है, उसका ग्रहण किया जाता है।*

सु-आदिप्रत्ययाः–

(१) स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यां-भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्।२।

प०वि०-सु-औ-जस्-अम्-औट्-शस्-टा-भ्याम्-भिस्-ङे-भ्याम्-भ्यस्-ङसि- भ्याम्-भ्यस्-ङस्-ओस्-आम्-ङि-ओस्-सुप् १।१।

स०-सुश्च औश्च जस् च अम् च औट् च शस् च टाश्च भ्याम् च भिस् च ङेश्च भ्याम् च भ्यस् च ङसिश्च भ्याम् च भ्यस् च ङस् च ओस् च आम् च ङिश्च ओस् च सुप् च एतेषां समाहारः-सु०सुप् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यनुवर्तते।

अन्वयः-ङ्याप्प्रातिपदिकात् स्वौजस०सुप्।

अर्थ:-ङी-अन्ताद् आबन्तात् प्रातिपदिकाच्च सु-आदय एकविंशतिः प्रत्यया भवन्ति। ङी इति ङीप्-ङीष्-ङीनां सामान्येन ग्रहणं क्रियते। (ङीप्) कुमारी। (ङीष्) गौरी। (ङीन्) शाङ्र्गरवी। आप् इति टाप्-डाप्-चापां सामान्येन ग्रहणं क्रियते। (टाप्) अजा (डाप्) बहुराजा। (चाप्) कारीषगन्ध्या। (प्रातिपदिकम्) देवः। देवौ। देवाः।

(१) ङी-अन्तात्–

विभक्तिः	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	कुमारी	कुमार्यौ	कुमार्यः	कुमारी ने।
द्वितीया	कुमारीम्	,,	,,	कुमारी को।
तृतीया	कुमार्या	कुमारीभ्याम्	कुमारीभिः	कुमारी के द्वारा।
चतुर्थी	कुमार्यै	,,	कुमारीभ्यः	कुमारी के लिये।
पञ्चमी	कुमार्याः	,,	,,	कुमारी से।
षष्ठी	,,	कुमार्योः	कुमारीणाम्	कुमारी का/के/की।
सप्तमी	कुमार्याम्	,,	कुमारीषु	कुमारी में/पर।
सम्बोधन	हे कुमारि !	हे कुमार्यौ !	हे कुमार्यः !	हे कुमारी !

(२) आबन्तात्–

विभक्तिः	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	अजा	अजे	अजाः	अजाने (बकरी ने)।
द्वितीया	अजाम्	,,	,,	अजा को
तृतीया	अजया	अजाभ्याम्	अजाभिः	अजा के द्वारा।
चतुर्थी	अजायै	,,	अजाभ्यः	अजा के लिये।
पञ्चमी	अजायाः	,,	,,	अजा से।
षष्ठी	,,	अजयोः	अजानाम्	अजा का/के/की।
सप्तमी	अजायाम्	,,	अजासु	अजा में/पर।
सम्बोधन	हे अजा !	हे अजे !	हे अजाः !	हे अजा !

(3) प्रातिपदिकात्–

विभक्ति:	एक०	द्वि०	बहु०	भाषार्थ
प्रथमा	देव:	देवौ	देवा:	देव ने।
द्वितीया	देवम्	,,	देवान्	देव को।
तृतीया	देवेन	देवाभ्याम्	देवै:	देव के द्वारा।
चतुर्थी	देवाय	,,	देवेभ्य:	देव के लिये।
पञ्चमी	देवात्	,,	,,	देव से।
षष्ठी	देवस्य	देवयो:	देवानाम्	देव का/के/की।
सप्तमी	देवे	,,	देवेषु	देव में/पर।
सम्बोधन	हे देव !	हे देवौ !	हे देवा: !	हे देव !

आर्यभाषाः *अर्थ-(ङ्याप्प्रातिपदिकात्) ङी-अन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से (सु०सुप्) सु-आदि २१ प्रत्यय होते हैं। ङी से ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। (ङीप्) कुमारी। (ङीष्) गौरी (पार्वती)। (ङीन्) शार्ङ्गरवी (शार्ङ्गरव जाति की नारी)। आप् से टाप्, डाप्, चाप् प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। (टाप्) अजा (बकरी)। (डाप्) बहुराजा। बहुत राजाओंवाली। (चाप्) कारीषगन्ध्या। करीष के समान गन्धवाले की पुत्री। करीष=शुष्क गोमय (प्रतिपदिक)। देव:। देवौ। देवा:। देव=विद्वान्।*

उदा०-शेष उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें।

(१) ङी-अन्त–

*सिद्धि-(१) **कुमारी।** कुमार+ङीप्। कुमार+ई। कुमारी। कुमारी+सु। कुमारी।*

*यहां प्रथम 'कुमार' शब्द से **'वयसि प्रथमे'** (४।१।२०) से ङीप् प्रत्यय है। ङी-अन्त कुमारी शब्द से इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६६) से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

*(२) **कुमार्यौ।** कुमारी+औ। कुमार्यौ।*

*यहां 'कुमारी' शब्द से 'औ' प्रत्यय और **'इको यणचि'** (६।१।७७) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(३) **कुमार्य:।** कुमारी+जस्। कुमारी+अरु। कुमारी+अर्। कुमारी+अ:। कुमार्य:।*

*यहां 'कुमारी' शब्द से 'जस्' प्रत्यय **'ससजुषो रु:'** (८।२।६६) से रुत्व, **'खरवसानयोर्विसर्जनीय:'** (८।३।१५) से विसर्जनीय और पूर्ववत् 'यण्' आदेश है।*

*(४) **कुमारीम्।** कुमारी+अम्। कुमारीम्।*

यहां 'कुमारी' शब्द से 'अम्' प्रत्यय, 'अमि पूर्वः' (६।१।१०३) से पूर्वसवर्ण होता है।

(५) **कुमार्यै।** कुमारी+ङे। कुमारी+आट्+ए। कुमारी+ऐ। कुमार्यै।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङे' प्रत्यय, **'आण्नद्याः'** (७।३।११२) से आट् आगम और **'आटश्च'** (६।१।८७) से वृद्धि रूप एकादेश है।

(६) **कुमार्याः।** कुमारी+ङसि। कुमारी+आट्+अस्। कुमार्याः।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय और पूर्ववत् 'आट्' आगम है।

(७) **कुमारीणाम्।** कुमारी+आम्। कुमारी+नुट्+आम्। कुमारी+नाम्। कुमारीणाम्।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'आम्' प्रत्यय, **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

(८) **कुमार्याम्।** कुमारी+ङि। कुमारी+आम्। कुमार्याम्।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'ङि' प्रत्यय, **'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः'** (७।३।११६) से 'ङि' के स्थान में 'आम्' आदेश है।

(९) **कुमारीषु।** कुमारी+सुप्। कुमारी+सु। कुमारीषु।

यहां 'कुमारी' शब्द से 'सुप्' प्रत्यय और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(१०) **गौरी।** गौर्+ङीष्। गौर्+ई। गौरी। गौरी+सु। गौरी।

यहां 'गौर' शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(११) **शाङ्गरवी।** शाङ्गरव+ङीन्। शाङ्गरव+ई। शाङ्गरवी। शाङ्गरवी+सु। शाङ्गरवी।

यहां 'शाङ्गरव' शब्द से **'शाङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) आबन्त–

(१) **अजा।** अज+टाप्। अज+आ। अजा+सु। अजा।

यहां प्रथम 'अज' प्रातिपदिक से **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। आबन्त 'अजा' शब्द से इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(२) **अजे।** अजा+औ। अजा+शी। अजा+ई। अजे।

यहां 'अजा' शब्द से 'औ' प्रत्यय और **'औङ आपः'** (७।१।१८) से 'औ' प्रत्यय के स्थान में 'शी' आदेश होता है।

(३) **अजया।** अजा+टा। अजे+आ। अजया।

यहां 'अजा' शब्द से 'टा' प्रत्यय 'आङि चापः' (७।३।१०५) से 'टाप्' को 'ए' आदेश होता है।

(४) **अजायै।** अजा+ङे। अजा+याट्+ए। अजायै।

यहां 'अजा' शब्द से 'ङे' प्रत्यय और 'याडापः' (७।३।११३) से याट् आगम होता है।

(५) **अजयोः।** अजा+ओस्। अजे+ओ। अजयोः।

यहां 'अजा' शब्द से 'ओस्' प्रत्यय और 'आङि चापः' (७।३।१०५) से 'टाप्' को 'ए' आदेश होता है।

(६) **अजानाम्।** अजा+आम्। अजा+नुट्+आम्। अजानाम्।

यहां 'अजा' शब्द से 'आम्' प्रत्यय और उसे 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (७।१।५४) से 'नुट्' आगम होता है।

(७) **अजायाम्।** अजा+ङि। अजा+याट्+आम्। अजायाम्।

यहां 'अजा' शब्द से 'ङि' प्रत्यय, उसे 'याडापः' (७।३।११३) से 'याट्' आगम, 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' (७।३।११६) से 'ङि' प्रत्यय को 'आम्' आदेश होता है।

(८) **अजे।** अजा+सु। अजे+सु। अजे+०। अजे।

यहां 'अजा' शब्द से 'सु' प्रत्यय, 'सम्बुद्धौ च' (७।३।१०६) से 'टाप्' को 'ए' आदेश और 'एङ्-ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(९) **बहुराजा।** बहुराजन्+डाप्। बहुराज्+आ। बहुराजा+सु। बहुराजा।

यहां 'बहुराजन्' शब्द से 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से टि-भाग (अन्) का लोप होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से 'बहुराजा' शब्द से 'सु' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(१०) **कारीषगन्ध्या।** करीषगन्ध्+इ। करीषगन्धि+अण्। कारीषगन्ध्+अ। कारीषगन्ध। कारीषगन्ध्+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य+चाप्। कारीषगन्ध्य+आ। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।

यहां प्रथम 'करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य स करीषगन्धिः। 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः'-उपमानाच्च (५।४।१३७) से समासान्त इत्-आदेश होता है। करीषगन्धेरपत्यम्-कारीषगन्धः। 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। 'अणिञोरनार्षयो०' (४।१।७८) से स्त्रीलिङ्ग में 'ष्यङ्' आदेश और 'यङश्चाप्' (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

(३) प्रातिपदिक–

(१) देवः। देव+सु। देवः।

यहां प्रथम कृदन्त 'देव' शब्द की **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा और उससे इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् रुत्व और विसर्जनीय आदेश होता है।

(२) **देवान्।** देव+शस्। देव+अस्। देवा+स्। देवान्।

यहां 'देव' शब्द से 'शस्' प्रत्यय, **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।१०१) से पूर्व सवर्ण दीर्घ और **'तस्माच्छसो नः पुंसि'** (६।१।१०२) से 'शस्' के 'स्' को 'न्' आदेश होता है।

(३) **देवेन।** देव+टा। देव+इन। देवेन।

यहां 'देव' शब्द से 'टा' प्रत्यय, **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश होता है।

(४) **देवैः।** देव+भिस्। देव+ऐस्। देवैः।

यहां 'देव' शब्द से 'भिस्' प्रत्यय और **'अतो भिस ऐस्'** (७।१।९) से 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश होता है।

(५) **देवाय।** देव+ङे। देव+य। देवाय।

यहां 'देव' शब्द से 'ङे' प्रत्यय, **'ङेर्यः'** (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश और **'सुपि च'** (७।३।१०२) से अंग को दीर्घ होता है।

(६) **देवेभ्यः।** देव+भ्यस्। देवे+भ्यः। देवेभ्यः।

यहां 'देव' शब्द से 'भ्यस्' प्रत्यय और **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अंग को 'ए' आदेश होता है।

(७) **देवात्।** देव+ङसि। देव+आत्। देवात्।

यहां 'देव' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय और पूर्ववत् (७।१।१२) से 'ङसि' के स्थान में 'आत्' आदेश होता है।

(८) **देवस्य।** देव+ङस्। देव+स्य। देवस्य।

यहां 'देव' शब्द से 'ङस्' प्रत्यय और पूर्ववत् (७।१।१२) से 'ङस्' के स्थान में 'स्य' आदेश होता है।

(९) **देवयोः।** देव+ओस्। देवे+ओः। देवयोः।

यहां 'देव' शब्द से 'ओस्' प्रत्यय और **'ओसि च'** (७।३।१०४) से अंग को 'ए' आदेश होता है।

(१०) **देवानाम्।** देव+आम्। देव+नुट्+आम्। देव+नाम्। देवानाम्।

*यहां 'देव' शब्द से 'आम्' प्रत्यय और **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से प्रत्यय को 'नुट्' आगम और **'नामि'** (६।४।३) से अंग को दीर्घत्व होता है।*

*(११) **देवेषु।** देव+सुप्। देवे+सु। देवेषु।*

*यहां 'देव' शब्द से 'सुप्' प्रत्यय और **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अंग को 'ए' आदेश और **'आदेशप्रत्ययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(१२) **देव।** देव+सु। देव+०। देव।*

*यहां 'देव' शब्द से 'सु' प्रत्यय और **'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'** (६।१।६९) से सम्बुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

(१) स्त्रियाम्।३।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१।

अर्थः-इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामाणाः प्रत्ययाः स्त्रियां भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, यह **'दैवयज्ञि०'** (४।१।८१) सूत्र तक स्त्रीलिङ्ग का अधिकार है।*

टाप्-प्रत्ययविधिः

(१) अजाद्यष्टाप्।४।

प०वि०-अजादि-अतः ५।१ टाप् १।१।

स०-अज आदिर्येषां ते-अजादयः, अजादयश्च अत् च एतेषां समाहारः-अजाद्यत्, तस्मात्-अजाद्यतः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-स्त्रियामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अजाद्यतः स्त्रियां टाप्।

अर्थः-अजादिभ्योऽकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां टाप्-प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अजादिभ्यः)** अजा। एडका। कोकिला। चटका। अश्वा। **(अतः)** खट्वा। देवदत्ता।

अजा। एडका। चटका। अश्वा। मूषिका इति जातिः। बाला। होढा। पाका। वत्सा। मन्दा। विलाता इति वयः। पूर्वापहाणा। अपरापहाणा,

टित्, निपातनाण्णत्वम्। वा०-सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्। सफला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला। त्रिफला-द्विगौ। बहुव्रीहौ-त्रिफली संहतिः। वा०-सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्। सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। **'पाककर्ण०'** (४।१।६४) इति ङीषोऽपवादः। वा०-शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः। क्रुञ्चा। उष्णिहा। देविशा-हलन्ताः। ज्येष्ठा। कनिष्ठा मध्यमा-पुंयोगः। कोकिला-जातिः। वा०-मूलान्नञः। अमूला। इति अजादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजाद्यतः) अजादिगण में पठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (टाप्) टाप्-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अजादि) अजा।** बकरी। **एडका।** भेड़। **कोकिला।** कोयल। **चटका।** चिड़िया। **अश्वा।** घोड़ी। **(अत्) खट्वा।** खाट। **देवदत्ता।** नामविशेष।*

सिद्धि-(१) अजा। *अज+टाप्। अज+आ। अजा। अजा+सु। अजा।*

यहां 'अज' प्रातिपदिक सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (४।१।२) है। ऐसे ही-एडका आदि।

*(२) **खट्वा।** यहां **'खट काङ्क्षायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'अशुप्रुषि०'** (उणा० १।१५१) से क्वन् प्रत्यय है। खट्+क्वन्। खट्व। खट्व+टाप्। खट्वा+सु। खट्वा। अकारान्त 'खट्व' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है।*

(३) देवदत्ता। पूर्ववत्।

ङीप्-प्रत्ययप्रकरणम्

ङीप्–

(१) ऋन्नेभ्यो ङीप्।५।

प०वि०-ऋत्-नेभ्यः ५।३ ङीप् १।१।

स०-ऋतश्च नाश्च ते-ऋन्नाः, तेभ्यः-ऋन्नेभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-ऋन्नेभ्यः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-ऋकारान्तेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप्-प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ऋत्) कर्त्री। हर्त्री। (नः) दण्डिनी। छत्रिणी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋन्नेभ्यः) ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप्-प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ऋकारान्त) कर्त्री।** करनेवाली। **हर्त्री।** हरनेवाली। **(नकारान्त) दण्डिनी।** दण्डवाली। **छत्रिणी।** छत्रवाली।*

*सिद्धि-(१) **कर्त्री।** यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है। ऐसे ही-'हर्तृ' शब्द से-**हर्त्री।***

*(२) **दण्डिनी।** दण्ड+इनि। दण्डिन्+ङीप्। दण्डिनी+सु। दण्डिनी।*

*यहां नकारान्त 'दण्डिन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही छत्रिन् प्रातिपदिक से-**छत्रिणी।***

ङीप्-

(२) उगितश्च।६।

प०वि०-उगितः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-उक् इद् यस्य तद् उगित्, तस्मात्-उगितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उगितश्च स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-उगितः प्रातिपदिकाद् अपि स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भवती। पचन्ती। यजन्ती।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उगितः) 'उक्' इत्वाले प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**भवती।** आप (स्त्री)। **पचन्ती।** पकाती हुई। **यजन्ती।** यज्ञ करती हुई।*

*सिद्धि-(१) **भवती।** भवतु+ङीप्। भवत्+ई। भवती+सु। भवती।*

यहां सर्वादिगण (१।१।२७) में पठित 'भवतु' प्रातिपदिक के उगित् होने से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

*(२) **पचन्ती।** पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पचत्+सु। पचनुम्त्+स्। पचन्त्+०। पचन्त्+ङीप्। पचन्त्+ई। पचन्ती+सु। पचन्ती।*

*यहां 'पच्' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र*

से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' प्रत्यय, **'उगिदचां०'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। ऐसे ही 'यज' धातु से 'शतृ' प्रत्यय करने पर-यजन्ती।

ङीप्-

(३) वनो र च।७।

प०वि०-वन: ५।१ र १।१ (लुप्तप्रथमानिर्देश:) च अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-वन: स्त्रियां ङीप् रश्च।

अर्थ:-वन्-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, रेफश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-धीवरी। पीवरी। शर्वरी। परलोकदृश्वरी।

आर्यभाषाः अर्थ-(वन:) वन्-अन्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (च) और (र:) अन्त में र-आदेश होता है।

*उदा०-**धीवरी।** धीवर (मल्लाह) की स्त्री अथवा मछली रखने की टोकरी, मछली मारने का बर्छा। **पीवरी।** तरुणी। **शर्वरी।** रात्रि। **परलोकदृश्वरी।** परलोक को जाननेवाली।*

*सिद्धि-(१) **धीवरी।** ध्या+क्वनिप्। धी+वन्। धीवन्। धीवर+ई। धीवरी+सु। धीवरी।*

*यहां **'ध्यै चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'ध्याप्यो: सम्प्रसारणं च'** (उणा० ४।११५) से क्वनिप् प्रत्यय और 'ध्या' धातु को सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् 'धीवन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

*(२) **पीवरी।** प्याय्+क्वनिप्। प्या०+वन्। पी+वन्। पीवन्+ङीप्। पीवर्+ई। पीवरी+सु। पीवरी।*

*यहां **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्वनिप्' प्रत्यय और सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् 'पीवन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है और 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

*(३) **शर्वरी।** शॄ+वनिप्। शर्+वन्। शर्वन्+ङीप्। शर्वर्+ई। शर्वरी+सु। शर्वरी।*

*यहां **'शॄ हिंसायाम्'** (क्रया०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'** (३।२।७५) से 'वनिप्' प्रत्यय और **'सार्वधातुकार्धधातुकयो:'** (७।३।८४) से गुण होता है। इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'वन्' के 'न्' को 'र्' आदेश होता है।*

(४) परलोकदृश्वरी। परलोक+अम्+दृश्+क्वनिप्। परलोक+दृश्+वन्। परलोकदृश्वन्+ङीप्। परलोकदृश्वर्+ई। परलोकदृश्वरी+सु। परलोकदृश्वरी।

यहां प्रथम परलोक उपपद होने पर 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'दृशेः क्वनिप्' (३।२।९४) से 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् 'परलोकदृश्वन्' शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'वन्' के 'न्' को 'र्' आदेश होता है।

ङीप्-विकल्पः–

(४) पादोऽन्यतरस्याम्।८।

प०वि०–पादः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पादः स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः–पादन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–द्विपात्। द्विपदी। त्रिपात्। त्रिपदी। चतुष्पात्। चतुष्पदी।

आर्यभाषाः *अर्थ–(पादः) पाद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**द्विपात्। द्विपदी।** दो चरणोंवाली। **त्रिपात्। त्रिपदी।** तीन चरणोंवाली। **चतुष्पात्। चतुष्पदी।** चार चरणोंवाली।*

*सिद्धि–(१) **द्विपात्। द्वौ पादौ यस्याः सा द्विपात्** (बहुव्रीहिः)। यहां **'पादस्य लोपः०'** की अनुवृत्ति में 'संख्यासुपूर्वस्य' (५।४।१४०) से 'पाद' शब्द के अकार का समासान्त लोप होता है। यहां विकल्प पक्ष में 'ङीप्' प्रत्यय नहीं है।*

*(२) **द्विपदी।** द्विपात्+ङीप्। द्विपत्+ई। द्विपदी+सु। द्विपदी।*

*यहां पूर्ववत् पाद शब्द के अकार का लोप होकर 'द्विपात्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'पादः पत्'** (६।४।१३०) से 'पात्' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। ऐसे ही–**त्रिपात्, त्रिपदी** आदि।*

टाप् (ऋचि)–

(५) टाबृचि।९।

प०वि०–टाप् १।१ ऋचि ७।१।

अनु०–ङीप्, पाद इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पादः स्त्रियां टाप् ऋचि।

अर्थः-पादन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति, ऋचि अभिधेयायाम्।

उदा०-द्विपदा ऋक्। त्रिपदा ऋक्। चतुष्पदा ऋक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पादः) पाद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (टाप्) टाप् प्रत्यय होता है (ऋचि) यदि वहां ऋचा अर्थ वाच्य हो।*

*उदा०-**द्विपदा ऋक्।** दो चरणोंवाली ऋचा। **त्रिपदा ऋक्।** तीन चरणोंवाली ऋचा। **चतुष्पदा ऋक्।** चार चरणोंवाली ऋचा।*

*सिद्धि-**द्विपदा।** द्विपात्+टाप्। द्विपत्+आ। द्विपदा+सु। द्विपदा।*

*यहां पादन्त 'द्विपात्' प्रातिपदिक से, ऋचा अभिधेय में इस सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'पाद' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। ऐसे ही-**त्रिपदा, चतुष्पदा।***

स्त्रीप्रत्यय-प्रतिषेधः-

(६) न षट्स्वस्रादिभ्यः।१०।

प०वि०-न अव्ययपदम्। षट्-स्वस्रादिभ्यः ५।३।

स०-स्वसा आदिर्येषां ते स्वस्रादयः। षट् च स्वस्रादयश्च ते-षट्स्वस्रादयः, तेभ्यः-षट्स्वस्रादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-षट्-संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां प्रत्ययो न भवति।

उदा०-(षट्) पञ्च ब्राह्मण्यः। षट् कुमार्यः। **(स्वस्रादिः)** स्वसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्रः। चतस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(षट्स्वस्रादिभ्यः) षट्संज्ञक और स्वसा आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (न) कोई प्रत्यय नहीं होता है।*

*उदा०-**पञ्च ब्राह्मण्यः।** पांच ब्राह्मणियां। **षट् कुमार्यः।** छः कुमारियां। (स्वस्रादि) **स्वसा।** बहन। **दुहिता।** पुत्री। **ननान्दा।** नणन्द। **याता।** देवराणी-जेठानी। **माता।** जननी। **तिस्रः।** तीन स्त्रियां। **चतस्रः।** चार स्त्रियां।*

*सिद्धि-(१) **पञ्च ब्राह्मण्यः।** पञ्चन्+सु। पञ्च।*

*यहां 'पञ्चन्' शब्द की **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२३) से षट् संज्ञा है। इस सूत्र से यहां स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है। **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) से सु-प्रत्यय का लुक् और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**षट् कुमार्यः।***

(२) स्वसा। स्वसृ+सु। स्वस् अनङ्+सु। स्वसान्+सु। स्वसा।

*यहां इस सूत्र से स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध है। **'अनङ् सौ'** (७।१।९३) से अनङ् आदेश **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है।*

ङीप्-प्रतिषेधः--

(७) मनः।११।

प०वि०-मनः ५।१।

अनु०-ङीप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मनः स्त्रियां ङीप् न।

अर्थः-मन्-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-सा दामा। ते दामानौ। ता दामानः। सा पामा। ते पामानौ। ताः पामानः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मनः) मन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**सा दामा।** वह दानशील स्त्री है। **ते दामानौ।** वे दोनों दानशील स्त्रियां हैं। **ता दामानः।** वे सब दानशील स्त्रियां हैं। **सा पामा।** वह सोमपान करनेवाली स्त्री है। **ते पामानौ।** वे दोनों सोमपान करनेवाली स्त्रियां हैं। **ताः पामानः।** वे सब सोमपान करनेवाली स्त्रियां हैं।*

*सिद्धि-(१) **दामा।** दा+मनिन्। दा+मन्। दामन्+सु। दामान्+सु। दामान्+०। दामा।*

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'आतो मनिन्क्वनिप्वनिपश्च'** (३।२।७४) से मनिन् प्रत्यय है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है। **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से प्राप्त 'ङीप्' (स्त्री-प्रत्यय) इस सूत्र से नहीं होता है।*

*(२) **पामा।** **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् मनिन् प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध होता है।*

ङीप्-प्रतिषेधः--

(८) अनो बहुव्रीहेः।१२।

प०वि०-अनः ५।१ बहुव्रीहेः ५।१।

अनु०-ङीप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् न।

अर्थः-अन्-अन्ताद् बहुव्रीहि-संज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-शोभनं पर्व यस्याः सा सुपर्वा। सा सुपर्वा। ते सुपर्वाणौ। ताः सुपर्वाणः। शोभनं चर्म यस्याः सा सुचर्मा। ते सुचर्माणौ। ताः सुचर्माणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**शोभनं पर्व यस्याः सा सुपर्वा।** सुन्दर पर्व=पोरीवाली। **सा सुपर्वा।** वह सुन्दर पोरीवाली है। **ते सुपर्वाणौ।** वे दोनों सुन्दर पोरीवाली हैं। **ताः सुपर्वाणः।** वे सब सुन्दर पोरीवाली हैं। **शोभनं चर्म यस्याः सा सुचर्मा।** वह सुन्दर त्वचावाली है। **ते सुचर्माणौ।** वे दोनों सुन्दर त्वचावाली हैं। **ताः सुचर्माणः।** वे सब सुन्दर त्वचावाली हैं।*

*सिद्धि-(१) **सुपर्वा।** सु+पर्वन्+सु। सु+पर्वन्+सु। सुपर्वन्+०। सुपर्वा।*

*यहां बहुव्रीहि-संज्ञक नकारान्त 'पर्वन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **सुचर्मा।** सु+चर्मन्+सु। सुचर्मा। पूर्ववत्।*

डाप्-विकल्पः—

(६) डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्।१३।

प०वि०-डाप् १।१ उभाभ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अर्थः-उभाभ्याम्=मन्-अन्ताद् अन्-अन्ताच्च बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन डाप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(मनः) दामा। दामे। दामाः। न च भवति-दामा। दामानौ। दामानः। पामा। पामे। पामाः। न च भवति-पामा। पामानौ। पामानः। (अनः) सुपर्वा। सुपर्वे। सुपर्वाः। न च भवति-सुपर्वा। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः। सुचर्मा। सुचर्मे। सुचर्माः। न च भवति-सुचर्मा। सुचर्माणौ। सुचर्माणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उभाभ्याम्) अन्-अन्त और मन्-अन्त बहुव्रीहिसंज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (डाप्) डाप्-प्रत्यय होता है।*

***उदा०**-संस्कृत भाग में देख लेवें।*

*सिद्धि-(१) **दामा**। दामन्+डाप्। दाम्+आ। दामा+सु। दामा।*

*यहां मन्-अन्त 'दामन्' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'डाप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से '**वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से 'दामन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। विकल्प पक्ष में डाप्-प्रत्यय नहीं होता है-**दामा। दामानौ। दामानः।***

*(२) **सुपर्वा**। सु+पर्वन्+डाप्। सु+पर्वन्+आ। सुपर्वा+सु। सुपर्वा। पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में 'डाप्' प्रत्यय नहीं होता है-**सुपर्वा। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः।***

अनुपसर्जन-अधिकारः

(१०) अनुपसर्जनात्।१४।

प०वि०-अनुपसर्जनात्। ५।१।

स०-न उपसर्जनमिति अनुपसर्जनम्, तस्मात्-अनुपसर्जनात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः-यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामः '**अनुपसर्जनात्**' तद् वेदितव्यमित्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-'**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) इति ङीप् प्रत्ययः-कुरुचरी। मद्रचरी। स उपसर्जनान्न भवति-बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा मथुरा। वक्ष्यति-'**जातेस्त्रीविषयादयोपधात्**' (४।१।८३) इति ङीष्-प्रत्ययः-कुक्कुटी। शूकरी। स उपसर्जनान्न भवति-बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा।

आर्यभाषाः अर्थ**-जो इससे आगे कहेंगे वह प्रत्यय (अनुपसर्गात्) अनुपसर्जन से होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय कहा है, वह अनुपसर्जन प्रातिपदिक से होता है-**कुरुचरी। मद्रचरी।** वह उपसर्जन प्रातिपदिक से नहीं होता है-**बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा मथुरा।** '**जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्**' (४।१।६३) से ङीष् प्रत्यय कहा है, वह अनुपसर्जन प्रातिपदिक से होता है-**कुक्कुटी। शूकरी।** वह उपसर्जन प्रातिपदिक से नहीं होता है-**बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा।

*समास-विधायक सूत्रों में जो प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट सुबन्त है उसकी '**प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्**' (१।२।४३) से उपसर्जन संज्ञा होती है। '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से विहित बहुव्रीहि समास में दोनों पदों की उपसर्जन संज्ञा होती है क्योंकि '**अनेकम्**' पद प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट है। **बहुकुरुचरा, बहुमद्रचरा।** यहां **बहवो कुरुचरा यस्यां सा बहुकुरुचरा मथुरा।** यहां 'कुरुचर' शब्द बहुव्रीहिसमास में आ जाने से उपसर्जन-संज्ञक है। अतः उससे 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से **विहित** ङीप् स्त्रीप्रत्यय नहीं होता है, अपितु वह अनुपसर्जन से होता है-**कुरुचरी। मद्रचरी।** ऐसे ही-**बहुकुक्कुटा, बहुशूकरा मथुरा** आदि।*

ङीप्–

(११) टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्-ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ।१५।

प०वि०–टित्-ढ-अण्-अञ्-द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरपः ५।१।

स०–टिच्च ढश्च अण् च अञ् च द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च तयप् च ठक् च ठञ् च कञ् च क्वरप् च एतेषां समाहारः–टित्०क्वरप्, तस्मात्–टित्०क्वरपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–'**अतः**' (४।१।४) इति सर्वत्रानुवर्तते, तद् यथासम्भवं सम्बध्यते। ङीप्, अनुपसर्जनादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–टित्०क्वरपोऽतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः–टित्-आदिभ्योऽदन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति। टापोऽपवादः। **उदाहरणम्**–

	प्रत्ययाः	प्रत्ययान्तपदम्	ङीप्	भाषार्थः
(१)	टित् (टः)	कुरुचरः	कुरुचरी	कुरु देश में विचरण करनेवाली।
		मद्रचरः	मद्रचरी	मद्र देश में विचरण करनेवाली।
(२)	ढः	सौपर्णेयः	सौपर्णेयी	सुपर्णी की पुत्री।
		वैतनेयः	वैनतेयी	विनता की पुत्री।
(३)	अण्	कुम्भकारः	कुम्भकारी	कुम्भ बनानेवाली।
		नगरकारः	नगरकारी	नगर बनानेवाली।
		औपगवः	औपगवी	उपागु की पुत्री।
(४)	अञ्	औत्सः	औत्सी	झरना सम्बन्धिनी धारा।
		औदपानः	औदपानी	जल-पान सम्बन्धिनी धारा।
(५)	द्वयसच्	ऊरुद्वयसम्	ऊरुद्वयसी	कटि-प्रमाणवाली (खाई)।
		जानुद्वयसम्	जानुद्वयसी	घुटना-प्रमाणवाली (खाई)।
(६)	दघ्नच्	ऊरुदघ्नम्	ऊरुदघ्नी	कटि-प्रमाणवाली।
		जानुदघ्नम्	जानुदघ्नी	घुटना-प्रमाणवाली।

	प्रत्ययाः	प्रत्ययान्तपदम्	ङीप्	भाषार्थः
(७)	मात्रच्	ऊरुमात्रम्	ऊरुमात्री	कटि-प्रमाणवाली।
		जानुमात्रम्	जानुमात्री	घुटना-प्रमाणवाली।
(८)	तयप्	पञ्चतयम्	पञ्चतयी	पांच अवयवोंवाली (चित्तवृत्ति)।
		दशतयम्	दशतयी	दश अवयवोंवाली (दिशा)।
(९)	ठक्	आक्षिकः	आक्षिकी	पाशों से खेलनेवाली (जुआरिन)।
		शालाकिकः	शालाकिकी	शलाकाओं से खेलनेवाली (जुआरिन)।
(१०)	ठञ्	लावणिकः	लावणिकी	लवण का व्यापार करनेवाली।
(११)	कञ्	यादृशः	यादृशी	जैसी।
		तादृशः	तादृशी	वैसी।
(१२)	क्वरप्	इत्वरः	इत्वरी	घूमनेवाली (घुमक्कड़ नारी)।
		नश्वरः	नश्वरी	नष्ट होनेवाली (सृष्टि)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(टित्०क्वरपः) टित्-प्रत्ययान्त आदि (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) कुरुचरी। *कुरु+सुप्+चर्+ट। कुरुचर+ङीप्। कुरुचर्+ई। कुरुचरी+सु। कुरुचरी।*

*यहां 'कुरु' उपपद होने पर 'चर गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'चरेष्टः' (३।२।१६) से 'ट' प्रत्यय है। प्रत्यय के टित् होने से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मद्रचरी।***

*(२) **सौपर्णेयी।** सुपर्णी+ढक्। सुपर्ण्+एय। सौपर्णेय+ङीप्। सौपर्णेयी+सु। सौपर्णेयी।*

*यहां 'सुपर्णी' शब्द से 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) से 'ढक्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैनतेयी।***

*(३) **कुम्भकारी।** कुम्भ+अम्+कृ+अण्। कुम्भ+कृ+अ। कुम्भकार+ङीप्। कुम्भकारी+सु। कुम्भकारी।*

*यहां कुम्भ कर्म उपपद होने पर 'कृ' धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**नगरकारी।***

(४) औपगवी। उपगु+अण्। औपगो+अ। औपगव+ङीप्। औपगवी+सु। औपगवी।

यहां 'उपगु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(५) **औत्सी।** उत्स+अञ्। औत्स+ङीप्। औत्सी+सु। औत्सी।

यहां **'उत्सादिभ्योऽञ्'** (४।१।८६) से 'अञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**औदपानी** (उदपान+अञ्)।

(६) **ऊरुद्वयसी।** ऊरु+द्वयसच्। अरुद्वयस+ङीप्। ऊरुद्वयसी+सु। ऊरुद्वयसी।

यहां 'ऊरु' शब्द से **'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्'** (५।२।३७) से द्वयसच् प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**जानुद्वयसी।**

(७) **ऊरुदघ्नी।** ऊरु+दघ्नच्। पूर्ववत्।

(८) **उरुमात्री।** ऊरु+मात्रच्। पूर्ववत्।

(९) **पञ्चतयी।** पञ्च+तयप्। पञ्चतय+ङीप्। पञ्चतयी+सु। पञ्चतयी।

यहां 'पञ्च' शब्द से **'संख्याया अवयवे तयप्'** (५।२।४२) से 'तयप्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दशतयी।**

(१०) **आक्षिकी।** अक्ष+ठक्। अक्ष्+इक। आक्षिक+ङीप्। आक्षिकी+सु। आक्षिकी।

यहां **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से अक्ष शब्द से 'ठक्' प्रत्यय, **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शालाकिकी** (शलाका+ठक्+ङीप्)।

(११) **लावणिकी।** लवण+ठञ्। लावण्+इक। लावणिक+ङीप्। लावणिकी+सु। लावणिकी।

यहां 'लवण' शब्द से **'लवणाट्ठञ्'** (४।४।५२) से 'ठञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय है।

(१२) **यादृशी।** यद्+दृश्+कञ्। या+दृश्+अ। यादृश+ङीप्। यादृशी+सु। यादृशी।

यहां 'यद्' शब्द उपपद होने पर 'दृश्' धातु से **'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्‌ च'** (३।२।६०) से 'कञ्' प्रत्यय है। **'आ सर्वनाम्नः'** (६।३।९१) से अंग को 'आ' **आदेश** होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**तादृशी** (**तद्+दृश्+**कञ्+ङीप्)।

(**१३**) **इत्वरी।** इण्+क्वरप्। इ+तुक्+वर। इत्वर+ङीप्। इत्वरी+सु। इत्वरी।

यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु **'इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्'** (३।२।१६३) से **क्वरप् प्रत्यय है, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है। इस **सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में** 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नश्वरी** (नश्+क्वरप्+ङीप्)।

ङीप्–

(१२) यञश्च।१६।

प०वि०–यञः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यञोऽतोऽनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाच्च स्त्रियां ङीप्।

अर्थः–यञन्ताद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाच्च स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–गर्गस्यापत्यं स्त्री–गार्गी। वत्सस्यापत्यं स्त्री–वात्सी।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(यञः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**गर्गस्यापत्यं स्त्री–गार्गी।** गर्ग की पौत्री, उपनिषत्कालीन एक ब्रह्मवादिनी। **वत्सस्यापत्यं स्त्री–वात्सी।** वत्स की पौत्री।*

***सिद्धि–गार्गी।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य+ङीप्। गार्ग्य्+ई। गार्गी+सु। गार्गी।*

*यहां 'गर्ग' शब्द से '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय और इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अ-लोप और '**हलस्तद्धितस्य**' (६।४।१५०) से 'य' का लोप होता है। ऐसे ही–**वात्सी** (वत्स+यञ्+ङीप्)।*

ष्फः (ङीप्-अपवादः)–

(१३) प्राचां ष्फ तद्धितः।१७।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ ष्फ १।१ (सु-लुक्) तद्धितः १।१।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यञोऽतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ष्फस्तद्धितः प्राचाम्।

अर्थः–यञन्ताद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री–गार्ग्यायणी (प्राचां मते)। अन्येषां मते–गार्गी। वत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री–वात्स्यायनी (प्राचां मते)। अन्येषां मते–वात्सी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यञः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्फः) ष्फ प्रत्यय होता है। (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री-गार्ग्यायणी।** (प्राग्देशीय आचार्यों के मत में)। अन्यों के मत में-**गार्गी।** गर्ग की पौत्री। **वत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वात्स्यायनी** (प्राग्देशीय आचार्यों के मत में)। अन्यों के मत में-**वात्सी।** वत्स की पौत्री।*

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यायणी।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य+ष्फ। गार्ग्य्+आयन। गार्ग्यायण+ङीप्। गार्ग्यायणी+सु। गार्ग्यायणी।*

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् यञन्त गार्ग्य शब्द से 'ष्फ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होकर गार्ग्यायण शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से 'णत्व' होता है। ऐसे ही-**वात्स्यायनी।** यह **'यञश्च'** (४।१।१६) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

*(२) **गार्गी/वात्सी।** पूर्ववत् (४।१।१६)।*

*यहां 'ष्फ' प्रत्यय का षकार **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय के लिए और 'ष्फ' प्रत्यय की तद्धित संज्ञा **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से **'गार्ग्यायण'** शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा के लिए है।*

ष्फः (ङीप्-अपवादः)–

(१४) सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः।१८।

प०वि०-सर्वत्र अव्ययपदम्, लोहितादि-कतन्तेभ्यः ५।३।

स०-लोहत आदिर्येषां ते लोहितादयः, कत अन्ते येषां ते कतन्ताः। लोहितादयश्च कतन्ताश्च ते-लोहितादिकतन्ताः, तेभ्यः-लोहितादिकतन्तेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्फस्तद्धित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लोहितादिकतन्तेभ्यो यञन्तेभ्यः स्त्रियां ष्फस्तद्धितः सर्वत्र।

अर्थः-लोहितादिभ्यः कतपर्यन्तेभ्यो यञन्तेभ्योऽदन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-लोहितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-लौहित्यायनी। शंसितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-शांसित्यायनी। बभ्रोर्गोत्रापत्यं स्त्री-बाभ्रव्यायणी।

लोहित। संशित। बभ्रु। मण्डु। मक्षु। अलिगु। शङ्कु। लिगु। गुलु। मन्तु। जिगीषु। मनु। तन्तु। मनायी। भूत। कथक। कष। तण्ड। वतण्ड। कपि। कत। इति गर्गाद्यन्तर्गतो लोहितादिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लोहितादिकन्तेभ्यः) गर्गादिगण के अन्तर्गत लोहित शब्द से लेकर कत शब्द पर्यन्त के (यजः) यञ्-प्रत्ययान्त (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्फः) ष्फ प्रत्यय होता है और उसकी (तद्धितः) तद्धित संज्ञा होती है (सर्वत्र) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**लोहितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-लौहित्यायनी।** लोहित की पौत्री। **शंसितस्य गोत्रापत्यं स्त्री-शांसित्यायनी।** शंसित की पौत्री। **बभ्रोर्गोत्रापत्यं स्त्री-बाभ्रव्यायणी।** बभ्रु की पौत्री।*

सिद्धि-(१) लौहित्यायनी। *लोहित+यञ्। लौहित्य+ष्फ। लौहित्य्+आयन। लौहित्यायन+ङीष्। लौहित्यायनी+सु। लौहित्यायनी।*

*यहां प्रथम 'लोहित' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय, यञन्त लौहित्य शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह **'यञश्च'** (४।१।१६) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

*(२) **शांसित्यायनी।** शंसित+यञ्+ष्फ+ङीष्।*

*(३) **बाभ्रव्यायणी।** बभ्रु+यञ्+ष्फ+ङीष्।*

ष्फः (टाप्-ङीप्-अपवादः)-

(१५) कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च।१६।

प०वि०-कौरव्य-माण्डूकाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-कौरव्यश्च माण्डूकश्च तौ-कौरव्यमाण्डूकौ, ताभ्याम्-कौरव्यमाण्डूकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्फः, तद्धित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कौरव्यमाण्डूकाभ्यामतोऽनुपसर्जनात् स्त्रियां ष्फस्तद्धितः।

अर्थः-कौरव्य-माण्डूकाभ्यामदन्ताभ्यामनुपसर्जनाभ्यां स्त्रियां ष्फः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति।

उदा०-(**कौरव्यः**) कुरोरपत्यं स्त्री-कौरव्यायणी। (**माण्डूकः**) मण्डूकस्यापत्यं स्त्री-माण्डूकायनी।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(*कौरव्यमाण्डूकाभ्याम्*) *कौरव्य और माण्डूक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्फः) 'ष्फ' प्रत्यय होता है और उसकी (तद्धितः) तद्धित संज्ञा होती है।*

*उदा०-(कौरव्य) **कुरोरपत्यं स्त्री-कौरव्यायणी।** कुरु की पुत्री। (माण्डूक) **मण्डूकस्यापत्यं स्त्री-माण्डूकायनी।** माण्डूक ऋषि की पुत्री।*

सिद्धि-(१) कौरव्यायणी। *कुरु+ण्य। कौरो+य। कौरव्य+ष्फ। कौरव्य्+आयन। कौरव्यायण+ङीष्। कौरव्यायणी+सु। कौरव्यायणी।*

*यहां प्रथम 'कुरु' शब्द से अपत्य अर्थ में **'कुर्वादिभ्यो ण्यः'** (४।१।१५१) से 'ण्य' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से 'कुरु' शब्द को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से गुण तथा **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७६) से 'अव्' आदेश होता है। ण्य-प्रत्ययान्त 'कौरव्य' शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से प्राप्त 'टाप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

*(२) **माण्डूकायनी।** मण्डूक+अण्। माण्डूक+ष्फ। माण्डूक्+आयन। माण्डूकायन+ङीप्। माण्डूकायनी+सु। माण्डूकायनी।*

*यहां प्रथम 'मण्डूक' शब्द से **'ढक् च मण्डूकात्'** (४।१।११९) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। अण्-प्रत्ययान्त माण्डूक शब्द से इस सूत्र से 'ष्फ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से प्राप्त 'ङीप्' प्रत्यय का अपवाद है।*

ङीप्-

(१६) वयसि प्रथमे।२०।

प०वि०-वयसि ७।१ प्रथमे ७।१।

अनु०-ष्फ इति निवृत्तम्, ङीप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रथमे वयसि प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-प्रथमे वयसि श्रुत्या वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुमारी। किशोरी। वर्करी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रथमे) प्राथमिक (वयसि) आयु अर्थ में लोकश्रुति से विद्यमान प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कुमारी।** १० और १२ वर्ष के बीच की आयु की लड़की। अविवाहिता कन्या। **किशोरी।** १२ से १५ वर्ष तक की आयु की लड़की। **वर्करी।** आमोद-प्रमोद करनेवाली लड़की।*

कुमारी-कुमार+ङीप्। कुमार्+ई। कुमारी+सु। कुमारी।

*यहां प्राथमिक आयुवाची 'कुमार' शब्द से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**किशोरी, वर्करी।***

ङीप्-

(१७) द्विगोः।२१।

वि०-द्विगोः ५।१।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्विगोः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चानां पूलानां समाहारः-पञ्चपूली। दशानां पूलानां समाहारः-दशपूली।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विगोः) द्विगु संज्ञावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पञ्चानां पूलानां समाहारः-पञ्चपूली।** पांच पूलों का समूह। **दशानां पूलानां समाहारः-दशपूली।** दश पूलों का समूह।*

*सिद्धि-**पञ्चपूली।** पञ्चपूल+ङीप्। पञ्चपूल्+ई। पञ्चपूली+सु। पञ्चपूली।*

*यहां **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५०) से द्विगु समास है। **'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यते'** से वह स्त्रीलिङ्ग में होता है। इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दशपूली।***

ङीप्-प्रतिषेधः-

(१८) परिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि।२२।

प०वि०-अपरिमाण-बिस्त-आचित-कम्बल्येभ्यः ५।३ न अव्ययपदम्, तद्धितलुकि ७।१।

स०-न परिमाणमिति अपरिमाणम्। अपरिमाणं च बिस्तश्च आचितश्च कम्बल्यं च तानि-अपरिमाण०कम्बल्यानि, तेभ्यः-अपरि-माण०कम्बल्येभ्यः (नञ्गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तद्धितस्य लुक् इति तद्धितलुक्, तस्मिन्-तद्धितलुकि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-द्विगोः, ङीप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्यान्ताद् द्विगोरतोऽनुपसर्जनात् तद्धितलुकि ङीप् न।

अर्थः-अपरिमाणान्ताद् बिस्ताचितकम्बल्यान्ताच्च द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(अपरिमाणम्)** पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा। **दशाश्वा**। द्वे वर्षे भूता इति द्विवर्षा। त्रिवर्षा। द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता **इति** द्विशता। त्रिशता। **(बिस्तः)** द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता। त्रिबिस्ता। **(आचितः)** द्वावाचितौ पचतीति द्व्याचिता। **त्र्याचिता**। **(कम्बल्यम्)** द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता इति द्विकम्बल्या। त्रिकम्बल्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपरिमाण०कम्बल्येभ्यः) अपरिमाणवाची, बिस्त, आचित, कम्बल्य शब्द जिसके अन्त में हैं ऐसे (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(अपरिमाणम्) पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा।** पांच घोड़ों से खरीदी हुई गौ आदि। **दशाश्वा।** दश घोड़ों से खरीदी हुई गौ आदि। **द्वे वर्षे भूता इति द्विवर्षा।** जो दो वर्ष की हो चुकी हो। **त्रिवर्षा।** जो तीन वर्ष की हो चुकी हो। गौ की बछड़ी आदि। **द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीता इति द्विशता।** दो सौ कार्षापण (रुपये) से खरीदी हुई गौ आदि। **त्रिशता।** तीन सौ कार्षापण (रुपये) से खरीदी हुई गौ आदि। (बिस्तः) **द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता।** दो बिस्त पकानेवाली। **त्रिबिस्ता।** तीन बिस्त पकानेवाली। बिस्त=८० तोला। (आचितः) **द्वावाचितौ पचतीति द्व्याचिता।** दो आचित पकानेवाली। **त्र्याचिता।** तीन आचित पकानेवाली कढ़ाई आदि। आचित=८० हजार तोला (१००० सेर)। **(कम्बल्य) द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता इति द्विकम्बल्या।** दो कम्बल्यों से खरीदी हुई। **त्रिकम्बल्या।** तीन कम्बल्यों से खरीदी हुई। कम्बल्य=१०० पल ऊन। पल=एक छटांक।*

सिद्धि-(१) पञ्चाश्वा। पञ्चाश्व+ठक्। पञ्चाश्व+०। पञ्चाश्व+टाप्। पञ्चाश्वा+सु। पञ्चाश्वा।

यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से तद्धितार्थ में द्विगु समास, 'तेन कृतम्' (५।१।३६) से तद्धित 'ठक्' प्रत्यय और **'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्'** (५।१।२८) से 'ठक्' प्रत्यय का लुक् होता है। इस तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**दशाश्वा।**

(२) **द्विवर्षा।** द्विवर्ष+ठक्। द्विवर्ष+०। द्विवर्ष+टाप्। द्विवर्षा+सु। द्विवर्षा।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, **'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी'** (५।१।७९) से 'ठक्' प्रत्यय और **'वर्षाल्लुक्'** (५।१।८७) से 'ठक्' प्रत्यय का लुक् है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे-**त्रिवर्षा।**

(३) **द्विशता।** द्विशत+यत्। द्विशत+०। द्विशत्+टाप्। द्विशता+सु। द्विशता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, **'शाणाद् वा'**-वा०-**'शताच्चेति वक्तव्यम्'** (५।१।३५) से 'यत्' प्रत्यय और **'अध्यर्धपूर्वाद्०'** (५।१।२८) से 'यत्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिशता।**

(४) **द्विबिस्ता।** द्विबिस्त+ठक्। द्विबिस्त+०। द्विबिस्त+टाप्। द्विबिस्ता+सु। द्विबिस्ता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, **'सम्भवत्यवहरति पचति'** (५।१।५१) से 'ठक्' प्रत्यय और पूर्ववत् उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिबिस्ता।**

(५) **द्व्याचिता।** द्व्याचित+ष्ठन्। द्व्याचित+०। द्व्याचित+टाप्। द्व्याचिता+सु। द्व्याचिता।

यहां पूर्ववत् द्विगु समास, **'आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्'** (५।१।५२) की अनुवृत्ति में **'द्विगोः ष्ठंश्च'** (५।१।५३) से 'ष्ठन्' प्रत्यय और पूर्ववत् उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्र्याचिता।**

(६) **द्विकम्बल्या।** द्विकम्बल्य+ठक्। द्विकम्बल्य+०। द्विकम्बल्य+टाप्। द्विकम्बल्या+सु। द्विकम्बल्या।

यहां सब कार्य **'पञ्चाश्वा'** (१) के समान है। ऐसे ही-**त्रिकम्बल्या।**

कम्बल्य शब्द में **'कम्बलाच्च संज्ञायाम्'** (५।१।३) से 'यत्' प्रत्यय है। कम्बल+यत्। कम्बल्यम्। यह १०० पल (छटांक) ऊन की संज्ञा है।

ङीप्-प्रतिषेधः—

(१६) काण्डान्तात् क्षेत्रे।२३।

प०वि०-काण्डान्तात् ५।१ क्षेत्रे ७।१।

स०-काण्डम् अन्ते यस्य तत्-काण्डान्तम्, तस्मात्-काण्डान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, द्विगोः, न, तद्धितलुकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-काण्डान्ताद् द्विगोरतोऽनुपसर्जनात् तद्धितलुकि स्त्रियां ङीप् न क्षेत्रे।

अर्थः-काण्डान्ताद् द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धित- प्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति क्षेत्रेऽभिधेये।

उदा०-द्वे काण्डे प्रमाणं यस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः। त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(काण्डान्तात्) काण्ड शब्द जिसके अन्त में है ऐसे (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय (न) नहीं होता है (क्षेत्रे) यदि वहां क्षेत्र=खेत वाच्यार्थ हो।*

*उदा०-**द्वे काण्डे प्रमाणं यस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।** दो काण्ड प्रमाणवाली क्यारी। **त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।** तीन काण्ड प्रमाणवाली क्यारी। 'काण्ड' खेत को मापने का डंडा होता है। काण्डम्=मानदण्डः। काण्ड=८ हाथ।*

सिद्धि-(१) द्विकाण्डा। *द्विकाण्ड+द्वयसच्। द्विकाण्ड+०। द्विकाण्ड+टाप्। द्विकाण्डा+सु। द्विकाण्डा।*

*यहां पूर्ववत् द्विगुसमास, **'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः'** (५।२।३७) से 'द्वयसच्' प्रत्यय, वा-**'प्रमाणे लो वक्तव्यः'** (५।२।३७) से प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिकाण्डा।***

ङीप्-विकल्पः-

(२०) पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्।२४।

प०वि०-पुरुषात् ५।१ प्रमाणे ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप्, द्विगोः, तद्धितलुकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रमाणे पुरुषात् द्विगोस्तद्धितलुकि स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः-प्रमाणेऽर्थे वर्तमानात् पुरुषान्ताद् द्विगुसंज्ञकाद् अदन्ताद् अनुपसर्जनात् प्रातिपदिकात् तद्धितप्रत्ययस्य लुकि सति स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वौ पुरुषौ प्रमाणं यस्याः सा-द्विपुरुषा परिखा, द्विपुरुषी परिखा। त्रिपुरुषा परिखा, त्रिपुरुषी परिखा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रमाणे) प्रमाण अर्थ में विद्यमान (पुरुषात्) पुरुष शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (अतः) अकारान्त (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन प्रातिपदिक से (तद्धितलुकि) तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**द्वौ पुरुषौ प्रमाणं यस्याः सा-द्विपुरुषा परिखा, द्विपुरुषी परिखा।** दो पुरुष माप वाली खाई। **त्रिपुरुषा परिखा, त्रिपुरुषी परिखा।** तीन पुरुष मापवाली खाई। पुरुष=१२० अंगुल।*

सिद्धि-द्विपुरुषा-द्विपुरुष+द्वयसच्। द्विपुरुष+०। द्विपुरुष+टाप्। द्विपुरुषा+सु। द्विपुरुषा।*

*यहां सब कार्य 'त्रिकाण्डा' (४।१।२३) के समान है। विकल्प पक्ष में 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**द्विपुरुषी।** ऐसे ही-**त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी।***

ङीष्-

(२१) बहुव्रीहेरूधसो ङीष्।२५।

प०वि०-बहुव्रीहेः ५।१ ऊधसः ५।१ ङीष् १।१।

अनु०-द्विगोरिति निवृत्तम्।

अन्वयः-ऊधसो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-ऊधःशब्दान्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-घट इव ऊधो यस्याः सा-घटोध्नी गौः। कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऊधसः) ऊध शब्द जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**घट इव ऊधो यस्याः सा-घटोध्नी गौः।** घड़े के समान ऊधवाली गौ। **कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः।** कुण्डा के समान ऊधवाली गौ। ऊधः=बांक (दुग्धाधार)।*

*सिद्धि-**घटोध्नी**। घट+ऊधस्। घटोधस्+ङीप्। घटोध अनङ्+ई। घटोधन्+ई। घटोध्नी+सु। घटोध्नी।*

*यहां बहुव्रीहि समास में प्रथम 'ऊधसोऽनङ्' (५।४।१३१) से समासान्त 'अनङ्' आदेश होता है। '**अतो गुणे**' (६।४।९४) से पररूप एकादेश और '**अल्लोपोऽनः**' (६।४।१३४) से 'अ' लोप होता है। यहां '**अनो बहुव्रीहेः**' (४।१।१२) से ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध और 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय प्राप्त था। यह सूत्र उन दोनों का अपवाद है। ऐसे ही-**कुण्डोध्नी**।*

ङीप्-

(२२) संख्याव्ययादेर्ङीप्।२६।

प०वि०-संख्या-अव्ययादेः ५।१। ङीप् १।१।

स०-संख्या च अव्ययं च ते-संख्याव्यये, संख्याव्यये आदिनी यस्य सः-संख्याव्ययादिः, तस्मात्-संख्याव्ययादेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-बहुव्रीहेः, ऊधस इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्याव्ययादेरुधसो बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-संख्यादेरव्ययादेश्च ऊधः-शब्दान्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति। पूर्वसूत्रस्यायमपवादः।

उदा०-(**संख्यादिः**) द्वे ऊधसी यस्याः सा-द्व्यूध्नी गौः। त्रीणि ऊधांसि यस्याः सा-त्र्यूध्नी गौः। (**अव्ययादिः**) अभिगतमूधो यस्याः सा-अभ्यूध्नी गौः। निर्गतमूधो यस्याः सा-निरूध्नी गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्याव्ययादेः) संख्यावाची तथा अव्ययसंज्ञक शब्द जिसके आदि में हैं उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि समास वाले (ऊधसः) ऊधः शब्दान्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है। यह पूर्वसूत्र का अपवाद है।*

*उदा०-(संख्यादिः) **द्वे ऊधसी यस्याः सा-द्व्यूध्नी गौः**। द्विगुणित ऊधवाली गौ। **त्रीणि ऊधांसि यस्याः सा-त्र्यूध्नी गौः**। त्रिगुणित ऊधवाली गौ। (अव्ययादिः) **अभिगतमूधो यस्याः सा-अभ्यूध्नी गौ**। अभिमुख=प्रकट ऊधवाली गौ। **निर्गतमूधो यस्याः सा-निरूध्नी गौः**। ऊधरहित गौ।*

*सिद्धि-**द्व्यूध्नी**। द्वि+ऊधस्। द्व्यूध अनङ्+ङीप्। द्व्यूधन्+ई। द्व्यूध्नी+सु। द्व्यूध्नी।*

*यहां सब कार्य '**घटोध्नी**' (४।१।२४) के समान है। ऐसे ही-**त्र्यूध्नी** आदि।*

विशेषः स्वर-ङीप् और ङीष् प्रत्यय का पृथक् विधान इसलिये किया गया है कि ङीप् प्रत्यय के पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर होता है और ङीष् प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।

ङीप्–

(२३) दामहायनान्ताच्च।२७।

प०वि०-दाम-हायनान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-दाम च हायनश्च तौ दामहायनौ, दामहायनावन्ते यस्य तत्-दामहायनान्तम्, तस्मात्-दामहायनान्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यादेः, बहुव्रीहेः, ङीप् इति चानुवर्तते, अव्ययादेरिति च नानुवर्तते, स्वरितत्वाभावात्।

अन्वयः-संख्यादेर्दामहायनान्ताच्च बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-संख्यादेर्दामन्ताद् हायनान्ताच्च बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दाम) द्वे दामनी यस्याः सा-द्विदाम्नी गर्दभी। त्रीणि दामानि यस्याः सा-त्रिदाम्नी गर्दभी। **(हायनः)** द्वौ हायनौ यस्याः सा द्विहायनी। त्रीणि हायनानि यस्याः सा त्रिहायनी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संख्यादेः) संख्यावाची शब्द जिसके आदि में है तथा (दामहायनान्तात्) दाम और हायन शब्द जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि-संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दाम) **द्वे दामनी यस्याः सा-द्विदाम्नी गर्दभी।** दो बन्धनोंवाली रासभी। **त्रीणि दामानि यस्याः सा-त्रिदाम्नी गर्दभी।** तीन बन्धनोंवाली वैशाखनन्दिनी। **(हायनः) द्वौ हायनौ यस्याः सा द्विहायनी।** दो वर्ष की आयुवाली गौ आदि। **त्रीणि हायनानि यस्याः सा त्रिहायनी।** तीन वर्ष की आयुवाली गौ आदि।*

*सिद्धि-(१) **द्विदाम्नी।** द्वि+दामन्+ङीप्। द्विदाम्न्+ई। द्विदाम्नी+सु। द्विदाम्नी।*

*यहां 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अ' लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिदाम्नी।***

*(२) **द्विहायनी।** द्वि+हायन। **द्विहायन+ङीप्। द्विहायनी+सु। द्विहायनी।** पूर्ववत्।*

ङीप्-विकल्पः--

(२४) अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्।२८।

प०वि०-अनः ५।१ उपधालोपिनः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-उपधाया लोप इति उपधालोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। उपधालोपोऽस्यास्तीति उपधालोपी, तस्मात्-उपधालोपिनः। **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) इति इनिः प्रत्ययः।

अनु०-ङीप्, बहुव्रीहेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपधालोपिनोऽनो बहुव्रीहेः स्त्रियामन्यतरस्यां ङीप्।

अर्थः-उपधालोपिनोऽन्-अन्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ङीप्) बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराज्ञी सभा। (डाप्) बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा सभा। (डाप्-ङीप्-प्रतिषेधः)। बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपधालोपिनः) उपधा लोपवाले (अनः) जिसके अन्त में अन् है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहिसंज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ङीप्) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराज्ञी सभा।** बहुत राजाओंवाली सभा। (डाप्) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा सभा।** अर्थ पूर्ववत्। (डाप् और ङीप् का प्रतिषेध) **बहवो राजानो यस्यां सा-बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः।** अर्थ पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **बहुराज्ञी।** बहु+राजन्। बहुराजन्+ङीप्। बहुराजन्+ई। बहुराज्ञ्+ई। बहुराज्ञी+सु। बहुराज्ञी।*

*यहां इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। **'अल्लोपोऽनः'** (६।४।१३४) से अ-लोप होता है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से 'न्' को चवर्ग 'ञ्' होता है।*

*(२) **बहुराजा।** बहु+राजन्। बहुराजन्+डाप्। बहुराज्+आ। बहुराजा+सु। बहुराजा।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'** (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'राजन्' के टिभाग (अन्) का लोप होता है।*

(३) बहुराजा। बहु+राजन्। बहुराजन्+सु। बहुराजान्+सु। बहुराजान्+०। बहुराजा०+०। बहुराजा।

यहां 'अनो बहुव्रीहेः' (४।१।१२) से स्त्री प्रत्यय के प्रतिषेध पक्ष में कोई प्रत्यय नहीं है। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' (६।१।८) से उपधा-दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६६) से सु-लोप और 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से न-लोप होता है।

विशेष-यहां उपधालोपी, अन्-अन्त, बहुव्रीहि समासवाले प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीप्' प्रत्यय का विधान किया है। अतः 'ङीप्' के पश्चात् 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' (४।१।१३) से विकल्प पक्ष मे 'डाप्' प्रत्यय होता है। 'डाप्' प्रत्यय का विकल्प से विधान होने से पक्ष में 'अनो बहुव्रीहेः' (४।१।१२) से कोई स्त्री प्रत्यय नहीं होता है। अतः यहां उपरिलिखित तीन रूप बनते हैं।

नित्यं ङीप्--

(२५) नित्यं संज्ञाछन्दसोः।२६।

प०वि०-नित्यम् १।१ संज्ञा-छन्दसोः ७।२।

स०-संज्ञा च छन्दश्च ते-संज्ञाछन्दसी, तयोः-संज्ञाछन्दसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीप्, अनः, उपधालोपिनः, बहुव्रीहेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाछन्दसोरुपधालोपिनोऽनो बहुव्रीहेः स्त्रियां नित्यं ङीप्।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये उपधालोपिनोऽन्-अन्ताद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति। पूर्वविकल्पस्यापवादः।

उदा०-(**संज्ञा**) सुराज्ञी/अतिराज्ञी नाम ग्रामः। (**छन्दः**) गौः पञ्चदाम्नी। एकदाम्नी। द्विदाम्नी। एकमूर्ध्नी (शौ०सं० ८।९।१५)। समानमूर्ध्नी (तै०सं० ४।३।११।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (उपधालोपिनः) उपधालोपवाले (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है। यह पूर्वविहित विकल्प का अपवाद है।*

*उदा०-(संज्ञा) सुराज्ञी/अतिराज्ञी नाम ग्रामः। (छन्दः) गौः **पञ्चदाम्नी**। पांच दाम=बन्धनोंवाली गौ। **एकदाम्नी**। एक बन्धनवाली गौ। **द्विदाम्नी**। दो बन्धनोंवाली गौ। **एकमूर्ध्नी**। एक मूर्धावाली गौ। **समानमूर्ध्नी**। तुल्य मूर्धावाली गौ।*

*सिद्धि-(१) **सुराज्ञी**। सु+राजन्। सुराजन्+ङीप्। सुराज्न्+ई। सुराज्ञ्+ई। सुराज्ञी+सु। सुराज्ञी।*

*यहां सब कार्य बहुराज्ञी (४।१।२८) के समान है। ऐसे ही-**अतिराज्ञी**।*

*(२) **पञ्चदाम्नी**। इसकी सिद्धि द्विदाम्नी (४।१।२८) के समान है।*

*(३) **एकमूर्ध्नी**। एक+मूर्धन्। एकमूर्धन्+ङीप्। एकमूर्ध्न्+ई। एकमूर्ध्नी+सु। एकमूर्ध्नी। पूर्ववत्।*

नित्यं ङीप्–

(२६) केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृत-सुमङ्गलभेषजाच्च।३०।

प०वि०-केवल-मामक-भागधेय-पाप-अपर-समान-आर्यकृत-सुमङ्गल-भेषजात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-केवलश्च मामकश्च भागधेयश्च पापश्च अपरश्च समानश्च आर्यकृतश्च सुमङ्गलश्च भेषजं च एतेषां समाहारः-केवल०भेषजम्, तस्मात्-केवल०भेषजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीप्, नित्यम्, संज्ञाछन्दसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाछन्दसोः केवल०भेषजाच्च स्त्रियां नित्यं ङीप्।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपि स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	संज्ञायाम्	छन्दसि	भाषायाम्	भाषार्थः
(१)	केवलः	केवली	केवली (पै०सं० १६।२०।१)	केवला	अकेली।
(२)	मामकः	मामकी	मामकी (पै०सं० ६।६।८)	मामिका	मेरी।
(३)	भागधेयः	भागधेयी	भागधेयी (तै०सं० १।३।१२।१)	भागधेया	भागवाली।

	प्रातिपदिकम्	संज्ञायाम्	छन्दसि	भाषायाम्	भाषार्थः
(४)	पापः	पापी	पापी (मै०सं० ४।२।१४)	पापा	पापिन।
(५)	अपरः	अपरी	अपरी (ऋ० १।३२।१३)	अपरा	दूसरी।
(६)	समानः	समानी	समानी (ऋ० १०।१९१।३)	समाना	समान (एक)।
(७)	आर्यकृतः	आर्यकृती	आर्यकृती (मै०सं० १।८।३)	आर्यकृता	आर्य के द्वारा बनाई हुई।
(८)	सुमङ्गलम्	सुमङ्गली	सुमङ्गली (ऋ० १०।८५।३३)	सुमङ्गला	श्रेष्ठ मङ्गलवाली।
(९)	भेषजम्	भेषजी	भेषजी (तै०सं० ४।५।१०।१)	भेषजा	भिषक् (वैद्य) सम्बन्धिनी।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (केवल०भेषजात्) केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल भेषज प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) केवली। *केवल+ङीप्। केवल्+ई। केवली+सु। केवली।*

यहां 'केवल' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अ-लोप होता है।*

(२) केवला। *केवल+टाप्। केवल्+आ। केवला+सु। केवला।*

संज्ञा और छन्द से अन्यत्र भाषा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है।*

(३) मामकी। *अस्मद्+अण्। ममक+अ। मामक+ङीप्। मामकी+सु। मामकी।*

यहां प्रथम ***'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च'*** *(४।३।१) से अस्मद् शब्द से 'अण्' प्रत्यय और* ***'तवकममकावेकवचने'*** *(४।३।३) से उसके स्थान में ममक आदेश होता है। तत्पश्चात् अण्-प्रत्ययान्त 'मामक' शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

(४) मामिका। *यहां* ***'वा०-मामकनरकयोरुपसंख्यानम्'*** *(७।३।४४) से क से पूर्व वर्ण को इ-आदेश होता है।*

(५) भागधेयी। *भाग+धेय। भागधेय+ङीप्। भागधेयी+सु।* ***भागधेयी।***

यहां पुलिङ्ग भाग शब्द से स्वार्थ में धेय प्रत्यय है। उससे स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(६) **पापी।** पाप+ङीप्। पापी+सु। पापी।

यहां 'पाप' शब्द अभेद-उपचार से 'पापी' अर्थ में है। उससे स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।

(७) ***अपरी।*** *अपर+ङीप्। अपरी+सु। अपरी। पूर्ववत्।*

(८) ***समानी।*** *समान+ङीप्। समानी+सु। समानी। पूर्ववत्।*

(९) ***आर्यकृती।*** *आर्य+टा+कृत+सु। आर्यकृत+ङीप्। आर्यकृती+सु। आर्यकृती।*

(१०) ***सुमङ्गल।*** *सुमङ्गल+ङीप्। सुमङ्गली+सु। सुमङ्गली।*

(११) **भेषजी।** भिषज्+अण्। भेषज+ङीप्। भेषजी+सु। भेषजी।

यहां प्रथम 'भिषज्' शब्द से ***'तस्येदम्'*** *(४।३।१२०) से 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(६।२।११७) से प्राप्त आदिवृद्धि इसी निपातन से नहीं होती है, अपितु एकार-आदेश होता है। तत्पश्चात् 'भेषज' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

ङीप्–

(२७) रात्रेश्चाजसौ।३१।

प०वि०-रात्रेः ५।१ च अव्ययपदम्, अजसौ ७।१।

स०-न जसिरिति अजसिः, तस्मिन्-अजसौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ङीप्, संज्ञाछन्दसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाछन्दसो रात्रेश्च स्त्रियां ङीप् अजसौ।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये रात्रिशब्दात् प्रातिपदिकादपि स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, जसि परतस्तु न भवति।

उदा०-(संज्ञा) या च रात्री सृष्टा। (छन्दः) रात्रीभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञाछन्दसोः) संज्ञा और छन्द विषय में (रात्रेः) रात्रि प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (अजसौ) जस् प्रत्यय परे होने पर तो नहीं होता।*

उदा०-(संज्ञा) ***या च रात्री सृष्टा।*** *और जो यह रात्री बनाई है। (छन्दः)* ***रात्रीभिः।*** *रात्रियों के द्वारा।*

सिद्धि-(१) रात्री। रात्रि+ङीप्। रात्र्+ई। रात्री+सु। रात्री।

यहां प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'रात्रि' शब्द से इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से रात्रि शब्द के इकार का लोप होता है।

ङीप् (नुक)-

(२८) अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्।३२।

प०वि०-अन्तर्वत्-पतिवतोः ६।२ नुक् १।१।

स०-अन्तर्वच्च पतिवच्च तौ-अन्तर्वत्पतिवतौ, तयोः- अन्तर्वत्-पतिवतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अन्तर्वत्पतिवतोः स्त्रियां ङीप् नुक् च।

अर्थः-अन्तर्वत्पतिवद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तयोश्च नुक्-आगमो भवति।

उदा०-(**अन्तर्वत्**) अन्तर्वत्नी। (**पतिवत्**) पतिवत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अन्तर्वत्पतिवतोः) अन्तर्वत् और पतिवत् प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उन दोनों को (नुक्) नुक् आगम होता है।*

*उदा०-(अन्तर्वत्) **अन्तर्वत्नी**। गर्भिणी। (पतिवत्) **पतिवत्नी**। जीवितभर्तृका नारी।*

*सिद्धि-(१) **अन्तर्वत्नी**। अन्तर्वत्+ङीप्। अन्तर्वत्+नुक्+ई। अन्तर्वत्नी+सु। अन्तर्वत्नी।*

यहां 'अन्तर्वत्' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और प्रातिपदिक को नुक् आगम होता है।

*(२) **पतिवत्नी**। पूर्ववत्।*

ङीप् (नः)-

(२९) पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।३३।

प०वि०-पत्युः ६।१ नः १।१ यज्ञसंयोगे ७।१।

स०-यज्ञेन संयोग इति यज्ञसंयोगः, तस्मिन्-यज्ञसंयोगे (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञसंयोगे पत्युः स्त्रियां ङीप् नश्च।

अर्थः-यज्ञसंयोगे सति पतिशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति।

उदा०-यजमानस्य पत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञसंयोगे) यज्ञ के साथ संयोग होने पर (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**यजमानस्य पत्नी।** यजमान की धर्मपत्नी।*

सिद्धि-पत्नी। *पति+ङीप्। पत् नुक्+ई। पत्नी+सु। पत्नी।*

यहां 'पति' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय और उसे इस सूत्र से नकार आदेश है।

ङीप्-विकल्पः-

(३०) विभाषा सपूर्वस्य।३४।

प०वि०-विभाषा १।१ सपूर्वस्य ६।१।

स०-पूर्वेण सह इति सपूर्वः, तस्य-सपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, पत्युः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सपूर्वस्य पत्युः स्त्रियां विभाषा ङीप् नश्च।

अर्थः-सपूर्वात् पति-प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति।

उदा०-वृद्धः पतिर्यस्याः सा-वृद्धपत्नी, वृद्धपतिः। स्थूलः पतिर्यस्याः सा-स्थूलपत्नी, स्थूलपतिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सपूर्वस्य) जिसके पूर्व कोई शब्द विद्यमान है उस (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (विभाषा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**वृद्धः पतिर्यस्याः सा-वृद्धपत्नी, वृद्धपतिः।** वृद्ध है पति जिसका वह-वृद्धपत्नी, वृद्धपति। **स्थूलः पतिर्यस्याः सा-स्थूलपत्नी, स्थूलपतिः।** स्थूल है पति जिसका वह-स्थूलपत्नी, स्थूलपति।*

*सिद्धि-(१) **वृद्धपत्नी**। वृद्ध+पति। वृद्धपति+ङीप्। वृद्धपतन्+ई। **वृद्धपत्नी**+सु। वृद्धपत्नी।*

*यहां 'वृद्ध' शब्द पूर्वक 'पति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से **'ङीप्'** प्रत्यय है 'पति' शब्द के इकार को 'नकार' आदेश है। ऐसे ही-**स्थूलपत्नी**।*

*(२) **वृद्धपतिः**। यहां विकल्प पक्ष में 'पति' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-स्थूलपतिः।*

नित्यं ङीप्-

(३१) नित्यं सपत्न्यादिषु।३५।

प०वि०-नित्यम् १।१ सपत्नी-आदिषु ७।३।

स०-सपत्नी आदिर्येषां ते-सपत्न्यादयः, तेषु-सपत्न्यादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, पत्युः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सपत्न्यादिषु पत्युः स्त्रियां नित्यं ङीप् नश्च।

अर्थः-सपत्न्यादिषु शब्देषु वर्तमानात् पतिशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते नकारादेशो भवति।

उदा०-समानः पतिर्यस्याः सा-सपत्नी। एकः पतिर्यस्याः सा-एकपत्नी।

समान। एक। वीर। पिण्ड। भ्रातृ। पुत्र इति सपत्न्यादयः। अत्र समानादय एव गणे पठ्यन्ते न सपत्न्यादयः, समानस्य सभावार्थं **'सपत्न्यादिषु'** इति पठितम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सपत्न्यादिषु) सपत्नी आदि शब्दों में विद्यमान (पत्युः) पति प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (नः) और पति शब्द के अन्त में नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**समानः पतिर्यस्याः सा-सपत्नी**। तुल्य है पति जिसका वह-सपत्नी। **एकः पतिर्यस्याः सा-एकपत्नी**। एक है पति जिसका वह-एकपत्नी।*

*सिद्धि-**सपत्नी**। समान+पति। सपति+ङीप्। सपतन्+ई। सपत्नी+सु। सपत्नी।*

*यहां समानपूर्वक 'पति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय और पति शब्द के इकार को नकार आदेश है। इसी वचन से समान को स-भाव होता है। ऐसे ही-**एकपत्नी** आदि।*

ङीप् (ऐः)–

(३२) पूतक्रतोरै च।३६।

प०वि०–पूतक्रतोः ६।१ ऐ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–ङीप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पूतक्रतोः स्त्रियां ङीप् ऐश्च।

अर्थः–पूतक्रतोः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते ऐकारादेशो भवति।

उदा०–पूतक्रतोः स्त्री-पूतक्रतायी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पूतक्रतोः) पूतक्रतु प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (च) और (ऐः) पूतक्रतु शब्द के अन्त में ऐकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पूतक्रतोः स्त्री-पूतक्रतायी।** पूतक्रतु की स्त्री-पूतक्रतायी (इन्द्राणी) पूतक्रतुः=इन्द्र।*

__सिद्धि-पूतक्रतायी।__ पूतक्रतु+ङीप्। पूतक्रतै+ई। पूतक्रताय्+ई। पूतक्रतायी+सु। पूतक्रतायी।

यहां 'पूतक्रतु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'पूतक्रतु' के उकार के स्थान में 'ऐकार' आदेश है।

ङीप् (ऐरुदात्तः)–

(३३) वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः।३७।

प०वि०–वृषाकपि-अग्नि-कुसित-कुसीदानाम् ६।३ उदात्तः १।१।

स०–वृषाकपिश्च अग्निश्च कुसितश्च कुसीदश्च ते-वृषाकपि०कुसीदाः, तेषाम्-वृषाकपि०कुसीदानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीप्, ऐ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वृषाकप्यग्निकुत्सितकुसीदानां स्त्रियां ङीप् ऐश्चोदात्तः।

अर्थः–वृषिकप्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति, तेषां चान्ते उदात्त ऐकारदेशो भवति।

उदा०-(**वृषाकपिः**) वृषाकपेः स्त्री-वृषाकपायी। (**अग्निः**) अग्नेः स्त्री-अग्नायी। (**कुत्सितः**) कुसितस्य स्त्री-कुसितायी। (**कुसीदः**) कुसीदस्य स्त्री-कुसीदायी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृषाकपि०कुसीदानाम्) वृषाकपि, अग्नि, कुत्सित, कुसीद प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उनके अन्त में (उदात्तः) उदात्त (ऐः) ऐकारादेश होता है।*

*उदा०- (वृषाकपि) **वृषाकपेः स्त्री-वृषाकपायी।** विष्णु की पत्नी लक्ष्मी। (अग्नि) **अग्नेः स्त्री-अग्नायी।** अग्निदेव की स्त्री स्वाहा। (कुसित) **कुसितस्य स्त्री-कुसितायी।** ब्याज से निर्वाह करनेवाले पुरुष की पत्नी। (कुसीद) **कुसीदस्य स्त्री-कुसीदायी।** ब्याजखोर की पत्नी।*

*सिद्धि-**वृषाकपायी।** वृषाकपि+ङीप्। वृषाकपै+ई। वृषाकपायी+सु। वृषाकपायी।*

*यहां 'वृषाकपि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है और **'वृषाकपि'** शब्द के 'इकार' को 'ऐकार' आदेश होता है। ऐसे ही-**अग्नायी** आदि।*

ङीप्-विकल्प (औः, ऐरुदात्तः)--

(३४) मनो रौ वा।३८।

प०वि०-मनोः ६।१ औ १।१ (सु-लुक्) वा अव्ययपदम्।

अनु०-ङीप्, ऐ, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मनोः स्त्रियां वा ङीप्, औः, ऐश्चोदात्तः।

अर्थः-मनुशब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य चान्ते औकार, उदात्त ऐकारादेशश्च भवति।

उदा०-मनोः स्त्री-मनावी, मनायी, मनुर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मनोः) मनु प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है (औः) और उसके अन्त में औकार तथा (उदात्तः) उदात्त (ऐः) ऐकार आदेश होता है।*

*उदा०-**मनोः स्त्री-मनावी, मनायी, मनुर्वा।** मनु की पत्नी-मनावी, मनायी अथवा मनु।*

*सिद्धि-(१) **मनावी।** मनु+ङीप्। मनौ+ई। मनावी+सु। मनावी।*

यहां 'मनु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'मनु' शब्द के उकार को औकार आदेश है।

*(२) **मनायी।** मनु+ङीप्। मनै+ई। मनायी+सु। मनायी।*

*यहां 'मनु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय और 'मनु' शब्द के उकार को उदात्त ऐकार आदेश है। उणादि (१।१०) से व्युत्पन्न 'मनु' शब्द आद्युदात्त है किन्तु यहां ऐकार आदेश के उदात्त करने से वह अन्तोदात्त हो जाता है-**मनायी।***

*(३) **मनुः।** यहां विकल्प पक्ष में मनु शब्द से कोई स्त्री प्रत्यय नहीं है।*

ङीप्-विकल्पः--

(३५) वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः।३६।

प०वि०-वर्णात् ५।१ अनुदात्तात् ५।१ तोपधात् ५।१ तः ६।१ नः १।१।

स०-त उपधायां यस्य तत् तोपधम्, तस्मात्-तोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीप्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् स्त्रियां वा ङीप् तो नः।

अर्थः-वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् तकारोपधात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति, तस्य च तकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-एनी, एता। श्येनी, श्येता। हरिणी, हरिता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वर्णात्) वर्णवाची (अनुदात्तात्) अनुदात्तान्त (तोपधात्) तकार उपधावाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीप्) ङीप् प्रत्यय होता है और उसके (तः) तकार के स्थान में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**एनी, एता चटका।** रंगबिरंगी चिड़िया। **श्येनी, श्येता गौः।** सफेद गाय। **हरिणी, हरिता सारिका।** हरे रंग की सारिका (मैना)।*

***सिद्धि-(१) एनी।** एत+ङीप्। एन्+ई। एनी+सु। एनी।*

*यहां वर्णवाची 'एत' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप् प्रत्यय और तकार के स्थान में नकार आदेश है। ऐसे ही-**श्येनी, हरिणी।***

*(२) **एता।** यहां विकल्प पक्ष में 'एत' शब्द से **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही **श्येता, हरिता।***

*इति **ङीप्प्रत्ययप्रकरणम्।***

ङीष्प्रत्ययप्रकरणम्

ङीष्–

(१) अन्यतो ङीष्।४०।

प०वि०–अन्यतः अव्ययपदम्, ङीष् १।१।

अनु०–वर्णात्, अनुदात्तात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तोपधाद् अन्यतो वर्णाद् अनुदात्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–तकारोपधाद् अन्यतो वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्ताद् अकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सारङ्गी। कल्माषी। शबली।

आर्यभाषाः* *अर्थ*–*(अन्यतः) तकार उपधावाले शब्द से अन्य (वर्णात्) वर्णवाची (अनुदात्तात्) अनुदात्तान्त (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**सारङ्गी हरिणी।** चितकबरी हरिणी। **कल्माषी नारी।** सांवली स्त्री। **शबली गौः।** चितकबरी गाय।*

***सिद्धि–सारङ्गी।** सारङ्ग+ङीष्। सारङ्ग्+ई। सारङ्गी+सु। सारङ्गी।*

*यहां वर्णवाची 'सारङ्ग' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही–**कल्माषी** आदि।*

***अनुवृत्ति**–'अतः' और अनुपसर्जनात् की सर्वत्र अनुवृत्ति है। उसका यथाविधि अनुवृत्ति में प्रयोग किया जाता है।*

ङीष्–

(२) षिद्गौरादिभ्यश्च।४१।

प०वि०–षिद्-गौरादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–ष इद् यस्य तत् षित्, गौर आदिर्येषां ते गौरादयः, षिच्च गौरादयश्च ते षिद्गौरादयः, तेभ्यः–षिद्गौरादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित-इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-षिद्गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**षित्**) नर्तकी। खनकी। रजकी। (**गौरादिः**) गौरी। मत्सी।

गौर। मत्स्य। मनुष्य। शृङ्ग। हय। गवय। मुकय। ऋष्य। पुट। द्रुण। द्रोण। हरिण। कण। पटर। उकण। आमलक। कुवल। बदर। बिम्ब। तर्कार। शर्कार। पुष्कर। शिखण्ड। सुषम। सलन्द। गडुज। आनन्द। सुपाट। सुगेठ। आढक। शष्कुल। सूर्म। सुव्व। सूर्य। पूष। मूष। घातक। सकलूक। सल्लक। मालक। मालत। साल्वक। वेतस। अतस। पृस। मह। मठ। छेद। श्वन्। तक्षन्। अनडुही। अनड्वाही। एषणः करणे। देह। काकादन। गवादन। तेजन। रजन। लवण। पान। मेघ। गौतम। आयस्थूण। भोरि। भौतिकी। भौलिङ्गि। औद्गाहमानि। आलिपि। आपिच्छक। आरट। टोट। नट। नाट। मूलाट। शातन। पातन। पावन। आस्तरण। अधिकरण। एत। अधिकार। आग्रहायणी। प्रत्यवरोहिणी। सेवन। सुमङ्गलात् संज्ञायाम्। सुन्दर। मण्डल। पट। पिण्ड। पिटक। कुर्द। गुर्द। पाण्ट। लोफाण्ट। कुन्दर। कन्दल। तरुण। तलुन। बृहत्। महत्। सौधर्म। रोहिणी नक्षत्रे। विकल। निष्फल। पुष्कल। कटाच्छ्रेणिवचने। पिप्पल्यादयश्च-पिप्पली। हरीतकी। कोशातकी। शमी। करीरी। पृथिवी। क्रोष्ट्री। मातामह। पितामह। इति गौरादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(षिद्गौरादिभ्यः) ष् इत्वाले तथा गौर आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ् में ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(षित्) ***नर्तकी।*** *नाचनेवाली।* ***खनकी।*** *खिननेवाली।* ***रजकी।*** *रंगनेवाली। (गौरादिः)* ***गौरी।*** *गौरवर्णवाली पार्वती।* ***मत्सी।*** *मछली।*

सिद्धि-(१) नर्तकी। *नृत्+ष्वुन्। नर्त्+अक। नर्तक+ङीष्। नर्तकी+सु। नर्तकी।*

यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से प्रथम 'शिल्पिनि ष्वुन्' (३।१।१४५) से 'ष्वुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

*(२) **खनकी।** 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०)। पूर्ववत्।*

*(३) **रजकी।** 'रञ्ज रागे' (दि०प०)। 'रञ्जेश्च' (६।४।२६) में चकार को अनुक्त समुच्चार्थ मानकर यहां अनुनासिक 'न्' का लोप होता है।*

*(४) **गौरी।** गौर+ङीष्। गौरी+सु। गौरी।*

*(५) **मत्सी।** मत्स्य+ङीष्। मत्स्य+ई। मत्सी+सु। मत्सी।*

यहां 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अ-लोप और 'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां०' (६।४।१४९) से य-लोप होता है।

ङीष्–

(३) जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुक-कबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णाना-च्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु।४२।

प०वि०–जानपद-कुण्ड-गोण-स्थल-भाज-नाग-काल-नील-कुश-कामुक-कबरात् ५।१ वृत्ति-अमत्र-आवपन-अकृत्रिमा-श्राणा-स्थौल्य-वर्ण-अनाच्छादन-अयोविकार-मैथुनेच्छा-केशवेशेषु ७।३।

स०–जानपदश्च कुण्डं च गोणं च स्थलं च भाजश्च नागश्च कालश्च नीलं च कुशश्च कामुकश्च कबरश्च एतेषां समाहारः–जानपद०कबरम्, तस्मात्-जानपद०कबरात् (समाहारद्वन्द्वः)। वृत्तिश्च अमत्रं च आवपनं च अकृत्रिमा च श्राणा च स्थौल्यं च वर्णश्च अनाच्छादनं च अयोविकारश्च मैथुनेच्छा च केशवेशश्च ते- जानपद०केशवेशाः, तेषु-जानपद०केशवेशेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–जानपद०कबराद् यथासंख्यं वृत्ति०केशवेशेषु स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–जानपदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं वृत्त्यादिष्वर्थेषु स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

	प्रातिपदिकम्	ङीष्	अर्थः	भाषार्थः
१.	जानपदः	जानपदी	वृत्तिः	वृत्ति (नौकरी)।
२.	कुण्डम्	कुण्डी	अमत्रम्	पात्र।
३.	गोणम्	गोणी	आवपनम्	बोरी।
४.	स्थलम्	स्थली	अकृत्रिमा	सूखी भूमि (थळी)।
५.	भाजः	भाजी	श्राणा	माण्ड।
६.	नागः	नागी	स्थौल्यम्	मोटी।
७.	कालः	काली	वर्णः	काले रंगवाली।
८.	नीलम्	नीली	अनाच्छादनम्	नंगी ओषधि, गौ, घोड़ी आदि।
९.	कुशः	कुशी	अयोविकारः	फाळी।
१०.	कामुकः	कामुकी	मैथुनेच्छा	मैथुन की इच्छावाली।
११.	कबरः	कबरी	केशवेशः	केश-शृंगार करनेवाली।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जानपद०कबरात्) जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक, कबर प्रातिपदिकों से यथासंख्य (वृत्ति०केशवेशेषु) वृत्ति, अमत्र, आवपन, अकृत्रिमा, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा, केशवेश अर्थों में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

***सिद्धि-जानपदी।** जानपद+ङीष्। जानपदी+सु। जानपदी।*

*यहां 'जानपद' शब्द से वृत्ति अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अ-लोप होता है। ऐसे ही-**कुण्डी** आदि।*

ङीष् (प्राचां मते)-

(४) शोणात् प्राचाम्।४३।

प०वि०-शोणात् ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शोणात् स्त्रियां ङीष् प्राचाम्।

अर्थः-शोणात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-शोणी (प्राचां मते)। शोणा (पाणिनिमते)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शोणात्) शोण प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**शोणी, शोणा।** (वडवा) लाल घोड़ी।*

*सिद्धि-(१) **शोणी।** शोण+ङीष्। शोणी+सु। शोणी।*

यहां रक्तवर्णवाची 'शोण' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में 'ङीष्' प्रत्यय है।

*(२) **शोणा।** शोण+टाप्। शोणा+सु। शोणा।*

*पाणिनि मुनि के मत में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

ङीष्-विकल्पः—

(५) वोतो गुणवचनात्।४४।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, उतः ५।१ गुणवचनात् ५।१।

स०-गुण उच्यते येन तत् गुणवचनम्, तस्मात्-गुणवचनात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-गुणवचनाद् उतः प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-गुणवचनाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पट्वी, पटुर्वा ब्राह्मणी। मृद्वी, मृदुर्वा ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गुणवचनात्) गुणवाची (उतः) उकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पट्वी, पटुर्वा ब्राह्मणी।** चतुर ब्राह्मणी। **मृद्वी, मृदुर्वा ब्राह्मणी।** कोमल स्वभाववाली ब्राह्मणी।*

*सिद्धि-(१) **पट्वी।** पटु+ङीष्। पटु+ई। पट्वी+सु। पट्वी।*

*यहां उकारान्त, गुणवाची 'पटु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। '**इको यणचि**' (६।१।७४) **से यण्-आदेश होता है। ऐसे ही-मृद्वी।***

*(२) **पटुः।** यहां विकल्प पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं **है। ऐसे ही-मृदुः** आदि।*

ङीष्-विकल्पः–

(६) बह्वादिभ्यश्च ।४५।

प०वि०–बहु-आदिभ्यः ५ ।३ च अव्ययपदम् ।

स०–बहु आदिर्येषां ते बह्वादयः, तेभ्यः-बह्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–ङीष्, वा इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–बह्वादिभ्यः स्त्रियां वा ङीष् ।

अर्थः–बह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–बह्वी, बहुः । पद्धती, पद्धतिः ।

बहु । पद्धति । अङ्कति । अञ्चति । अंहति । वंहति । शकटिः । शक्तिः शस्त्रे । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि । वा०-इतः प्राण्यङ्गात् । वा०-कृदिकारादक्तिनः । वा०-सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशङ्कट । भरुजध्वज । वा०-चन्द्रभागान्नद्याम् । कल्याण । उदार । अहन् । इति बह्वादयः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बह्वादिभ्यः) बहु आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बह्वी, बहुर्वा प्रजा। बहुत प्रजा।

सिद्धि-(१) बह्वी। बहु+ङीष्। बह्वी+सु। बह्वी। पूर्ववत्।

(२) बहुः। यहां विकल्प पक्ष में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं है।

नित्यं-ङीष्–

(७) नित्यं छन्दसि ।४६।

प०वि०–नित्यम् १ ।१ छन्दसि ७ ।१ ।

अनु०–ङीष्, बह्वादिभ्य इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–छन्दसि बह्वादिभ्यः स्त्रियां नित्यं ङीष् ।

अर्थः–छन्दसि विषये बह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् (यजु० ७।३) बह्वी नाम ओषधी भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बह्वादिभ्यः) बहु आदि प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**बह्वीषु हित्वा प्रपिबन्** (यजु० ७।३) बह्वी नाम ओषधी भवति।*

*सिद्धि-**बह्वी।** बहु+ङीष्। बह्वी+सु। बह्वी। पूर्ववत्।*

नित्यं ङीष्-

(८) भुवश्च।४७।

प०वि०-भुवः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ङीष्, नित्यम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि भुवश्च स्त्रियां नित्यं ङीष्।

अर्थः-छन्दसि विषये भुवः प्रातिपदिकात् स्त्रियां नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-विभ्वी च। प्रभ्वी च।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (भुवः) भू प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (नित्यम्) सदा (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**विभ्वी च। प्रभ्वी च।** विभ्वी=व्यापिका। प्रभ्वी=समर्था।*

*सिद्धि-(१) **विभ्वी।** वि+भू+डु। वि+भ्+उ। विभु+ङीष्। विभु+ई। विभ्वी।*

*यहां प्रथम वि-उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'विप्रसम्भ्यो ड्वसंज्ञायाम्'** (३।२।१८०) से 'डु' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'भू' के टि-भाग (ऊ) का लोप. तत्पश्चात् विभु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। **'इको यणचि'** (६।१।७४) से 'यण्' आदेश होता है।*

*(२) **प्रभ्वी।** प्रभु+ङीष्। प्रभ्वी+सु। प्रभ्वी। पूर्ववत्।*

ङीष्-

(९) पुंयोगादाख्यायाम्।४८।

प०वि०-पुंयोगात् ५।१ आख्यायाम् ७।१।

स०-पुंसा योगः (सम्बन्धः) इति पुंयोगः, तस्मात्-पुंयोगात् (तृतीयातत्पुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आख्यायां पुंयोगात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-पूर्वं पुंस आख्यायां वर्तमानम्, पुंयोगाच्च हेतोर्यत् प्रातिपदिकं स्त्रियां वर्तते, तस्मात् ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गणकस्य स्त्री-गणकी। प्रष्ठस्य स्त्री-प्रष्ठी। महामात्रस्य स्त्री-महामात्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आख्यायाम्) जो प्रातिपदिक प्रथम पुरुष का वाचक हो (पुंयोगात्) उस पुरुष के योग=सम्बन्ध से जो प्रादिपदिक स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हो, उससे (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**गणकस्य स्त्री-गणकी।** ज्योतिषी की पत्नी। **प्रष्ठस्य स्त्री-प्रष्ठी।** अग्रगामी (नेता) की पत्नी। **महामात्रस्य स्त्री-महामात्री।** प्रधान सचिव की स्त्री।*

सिद्धि-गणकी। *गणक+ङीष्। गणक्+ई। गणकी+सु। गणकी।*

*यहां 'गणक' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**प्रष्ठी** आदि।*

ङीष् (आनुक)-

(१०) इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन-मातुलाचार्याणामानुक्।४६।

प०वि०-इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिम-अरण्य-यव-यवन-मातुल-आचार्याणाम् ६।३ आनुक् १।१।

स०-इन्द्रश्च वरुणश्च भवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिमं च अरण्यं च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च ते-इन्द्र०आचार्याः, तेषाम्-इन्द्र०आचार्यायाम्।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इन्द्र०आचार्याणां स्त्रियां ङीष् आनुक् च।

अर्थः-इन्द्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, तेषां चानुक्-आगमो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	ङीष्	अर्थः	भाषार्थः
१.	इन्द्रः	इन्द्राणी	इन्द्र	इन्द्र की स्त्री शची।
२.	वरुणः	वरुणानी	वरुण	वरुण की स्त्री।
३.	भवः	भवानी	भव (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
४.	शर्वः	शर्वाणी	शर्व (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
५.	रुद्रः	रुद्राणी	रुद्र (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
६.	मृडः	मृडानी	शर्व (शिव)	शिव की पत्नी पार्वती।
७.	हिमम्	हिमानी	हिमाद् महत्त्वे	बर्फ का ढेर।
८.	अरण्यम्	अरण्यानी	अरण्यान्महत्त्वे	बड़ा लम्बा-चौड़ा वन।
९.	यवः	यवानी	यवाद् दोषे	दूषित जौ।
१०.	यवनः	यवनानी	यवनाल्लिप्याम्	यवनों की लिपि (फारसी)।
११.	मातुलः	मातुलानी	मातुल	मामी।
१२.	आचार्यः	आचार्यानी	आचार्यादणत्वं च	आचार्य की पत्नी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इन्द्र०आचार्याणाम्) इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, आचार्य प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है और उन्हें (आनुक्) आनुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) इन्द्राणी। इन्द्र+ङीष्। इन्द्र+आनुक्+ई। इन्द्र+आन्+ई। इन्द्राणी+सु। इन्द्राणी।

*यहां 'इन्द्र' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और प्रातिपदिक को 'आनुक्' आगम होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**वरुणानी** आदि।*

(२) हिमानी। *यहां 'हिम' शब्द से **'वा०-हिमारण्ययोर्महत्त्वे'** (४।१।४८) से महत्त्व अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम होता है।*

(३) अरण्यानी। *पूर्ववत्।*

(४) यवानी। *यहां 'यव' शब्द से वा०- **'यवाद् दोषे'** (४।१।४८) से दोष अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होता है।*

(५) यवनानी। *यहां 'यवन' शब्द से वा०- **'यवनाल्लिप्याम्'** (४।१।४८) से लिपि अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होता है।*

*(६) **आचार्यानी।** यहां आचार्य शब्द से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम करने पर 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से प्राप्त णत्व का वा०-'आचार्यादणत्वं च' (४।१।४८) से प्रतिषेध होता है।*

ङीष्–

(११) क्रीतात् करणपूर्वात्।५०।

प०वि०-क्रीतात् ५।१ करणपूर्वात् ५।१।

स०-करणं पूर्वं यस्मिन्निति-करणपूर्वम्, तस्मात्-करणपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-करणपूर्वात् क्रीतान्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-करणपूर्वात् क्रीतान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वस्त्रेण क्रीयते या सा-वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(करणपूर्वात्) करण कारक जिसके पूर्व में है उस (क्रीतात्) क्रीत अन्तवाले प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वस्त्रेण क्रीयते या सा-वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती।** वस्त्र से खरीदी हुई।*

***सिद्धि-वस्त्रक्रीती।** वस्त्र+टा+क्रीत। वस्त्रक्रीत+ङीष्। वस्त्रक्रीती+सु। वस्त्रक्रीती।*

यहां वस्त्र करणपूर्वक 'क्रीत' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।

ङीष्–

(१२) क्तादल्पाख्यायाम्।५१।

प०वि०-क्तात् ५।१ अल्पाख्यायाम् ७।१।

स०-अल्पस्याऽऽख्या इति अल्पाख्या, तस्याम्-अल्पाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-करणपूर्वात् ङीष् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणपूर्वात् क्तात् स्त्रियां ङीष् अल्पाख्यायाम्।

अर्थः-करणपूर्वात् क्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति, अल्पाख्यायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अभ्रेण विलिप्ता इति अभ्रविलिप्ती द्यौः। सूपेन विलिप्ता इति सूपविलिप्ता पात्री। अल्पसूपा इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(करणपूर्वात्) करण कारक जिसके पूर्व में है उस (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है (अल्पाख्यायाम्) यदि वहां अल्पता अर्थ का कथन हो।*

*उदा०-**अभ्रेण विलिप्ता इति अभ्रविलिप्ती द्यौः।** थोड़े बादलोंवाला आकाश। **सूपेन विलिप्ता इति सूपविलिप्ता पात्री।** थोड़ी दालवाली थाळी।*

*सिद्धि-(१) **अभ्रविलिप्ती।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'लिप उपदेहे' (रुधा०प०) धातु से प्रथम 'क्त' प्रत्यय और तत्पश्चात् अभ्र करण कारक पूर्वक 'क्त' प्रत्ययान्त 'विलिप्त' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सूपविलिप्ती।***

ङीष्-

(१३) बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्।५२।

प०वि०-बहुव्रीहेः ५।१ च अव्ययपदम्, अन्तोदात्तात् ५।१।

अनु०-ङीष्, क्तात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहेः क्ताद् अन्तोदात्तात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-बहुव्रीहिसंज्ञकात् क्त-प्रत्ययान्ताद् अन्तोदात्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शङ्खं भिन्नं यस्याः सा शङ्खभिन्नी। ऊरु भिन्नं यस्याः सा-ऊरुभिन्नी। गलम् उत्कृत्तं यस्याः सा-गलोत्कृत्ती। केशा लूना यस्याः सा-केशलूनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहेः) बहुव्रीहि संज्ञक (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शङ्खं भिन्नं यस्याः सा शङ्खभिन्नी।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में माथे की हड्डी टूट गई है। **ऊरु भिन्नं यस्याः सा-ऊरुभिन्नी।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में जङ्घा टूट गई है। **गलम् उत्कृत्तं यस्याः सा-गलोत्कृत्ती।** वह स्त्री जिसकी युद्ध में गला कट गया है। **केशा लूना यस्याः सा-केशलूनी।** वह स्त्री जिसके युद्ध में बाल कट गये हैं।*

*सिद्धि-(१) **शङ्खभिन्नी।** यहां प्रथम **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय तत्पश्चात् उसका 'शङ्ख' शब्द के साथ समास होने पर स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।*

(२) ऊरुभिन्नी। ऊरु+भिन्न+ङीष्। पूर्ववत्।

(३) गलोत्कृत्ती। गल+उत्कृत्त+ङीष्। पूर्ववत्।

(४) केशलूनी। केश+लून+ङीष्। पूर्ववत्।

विशेष- 'जातिकालसुखादिभ्य०' (६।२।१६८) से 'शङ्खभिन्न' आदि पद अन्तोदात्त हैं और वा०-'निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम्' (२।२।३६) से क्त-प्रत्ययान्त शब्द का परनिपात होता है।

ङीष्-विकल्पः-

(१४) अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा।५३।

प०वि०-अस्वाङ्ग-पूर्वपदात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-न स्वाङ्गमिति अस्वाङ्गम्, अस्वाङ्गं पूर्वपदं यस्य तत् अस्वाङ्गपूर्वपदम्, तस्मात्-अस्वाङ्गपूर्वपदात् (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष्, बहुव्रीहेः, अन्तोदात्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्वाङ्गपूर्वपदाद् बहुव्रीहेः क्ताद् अन्तोदात्तात् स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-अस्वाङ्गपूर्वपदाद् बहुव्रीहिसंज्ञकात् क्त-प्रत्ययान्ताद् अन्तोदात्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सारङ्गो जग्धो यया सा-सारङ्गजग्धी, सारङ्गजग्धा। पलाण्डुर्भक्षितो यया सा-पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता। सुरा पीता यया सा-सुरापीती, सुरापीता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अस्वाङ्गपूर्वपदात्) अस्वाङ्ग पूर्वपदवाले (बहुव्रीहेः) बहुव्रीहिसंज्ञक (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सारङ्गो जग्धो यया सा-सारङ्गजग्धी, सारङ्गजग्धा। *वह स्त्री जिसने सारङ्ग (हरिण) का मांस खा लिया है।* ***पलाण्डुर्भक्षितो यया सा-पलाण्डुभक्षिती, पलाण्डुभक्षिता।*** *वह स्त्री जिसने प्याज खा लिया है।* ***सुरा पीता यया सा-सुरापीती, सुरापीता।*** *वह स्त्री जिसने शराब पी ली है।*

सिद्धि-(१) सारङ्गजग्धी। *सारङ्ग+जग्ध+ङीष्। सारङ्गजग्धी+सु।* ***सारङ्गजग्धी।***

यहां प्रथम अस्वाङ्ग पूर्वपद सारङ्ग और क्त-प्रत्ययान्त अन्तोदात्त जग्ध शब्द का बहुव्रीहि समास होने पर 'सारङ्गजग्ध' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है।

*(२) **सारङ्गजग्धा।** यहां विकल्प पक्ष में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। 'जग्ध:' शब्द की सिद्धि **'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति'** (२।४।३६) के प्रवचन में देख लेवें। ऐसे ही-**प्लाण्डुभक्षिती, प्लाण्डुभक्षिता** आदि।*

ङीष्-विकल्पः-

(१५) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्।५४।

प०वि०-स्वाङ्गात् ५।१ च अव्ययपदम्, उपसर्जनात् ५।१ असंयोगोपधात् ५।१।

स०-संयोग उपधायां यस्य तत् संयोगोपधम्, न संयोगोपधम् इति असंयोगोपधम्, तस्मात्-असंयोगोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-बहुव्रीहेः, क्ताद् अन्तोदात्ताद् इति च निवृत्तम्; वा, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असंयोगोपधाद् उपसर्जनाद् अतः स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः-असंयोगोपधाद् उपसर्जनात् स्वाङ्गवाचिनोऽकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चन्द्र इव मुखं यस्याः सा-चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। अतिक्रान्ता केशान् इति-अतिकेशी, अतिकेशा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(असंयोगोपधात्) जिसकी उपधा में संयोग नहीं है और (उपसर्जनात्) जिसकी उपसर्जन संज्ञा है उस (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**चन्द्र इव मुखं यस्याः सा-चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा।** चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री। **अतिक्रान्ता केशान् इति-अतिकेशी, अतिकेशा।** बहुत बड़े बालोंवाली स्त्री।*

***सिद्धि-(१) चन्द्रमुखी।** चन्द्र+मुख+ङीष्। चन्द्रमुखी+सु। चन्द्रमुखी।*

यहां असंयोग उपधावाले, उपसर्जन, स्वाङ्गवाची, अकारान्त मुख शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। यहां 'मुख' शब्द के बहुव्रीहि समास में होने से उसकी

उपसर्जन संज्ञा है क्योंकि 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं।

*(२) **चन्द्रमुखा।** यहां विकल्प पक्ष में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

*(३) **अतिकेशी।** यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि समास है और 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' (१।२।४४) से केश शब्द की उपसर्जन संज्ञा होती है।*

*(४) **अतिकेशा।** यहां पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय है।*

ङीष्-विकल्पः—

(१६) नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च।५५।

प०वि०–नासिका-उदर-ओष्ठ-जङ्घा-दन्त-कर्ण-शृङ्गात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–नासिका च उदरं च ओष्ठौ च जङ्घा च दन्तश्च कर्णश्च शृङ्गं च एतेषां समाहारः-नासिका०शृङ्गम्, तस्मात्-नासिका०शृङ्गात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–ङीष्, वा, स्वाङ्गात्, उपसर्जनादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्जनात् स्वाङ्गात् नासिका०शृङ्गाच्च स्त्रियां वा ङीष्।

अर्थः–उपसर्जनेभ्यः स्वाङ्गवाचिभ्यो नासिकाद्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	वा ङीष्	भाषार्थः
१.	नासिका	तुङ्गा नासिका यस्याः सा- तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका	ऊंचे नाकवाली स्त्री।
२.	उदरम्	वृक इव उदरं यस्याः सा- वृकोदरी, वृकोदरा।	भेड़िया के समान पेटवाली।
३.	ओष्ठौ	बिम्बमिवौष्ठौ यस्याः सा- बिम्बौष्ठी, बिम्बौष्ठा।	बिम्ब=कुन्दरू फल के समान लाल ओठोंवाली नारी।
४.	जङ्घा	दीर्घा जङ्घा यस्याः सा- दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा।	विस्तृत जांघवाली नारी।

प्रातिपदिकम्		वा ङीष्	भाषार्थः
५.	दन्ताः	समा दन्ता यस्याः सा- समदन्ती, समदन्ता।	समान दांतोंवाली स्त्री।
६.	कर्णौ	चारू कर्णौ यस्याः सा- चारुकर्णी, चारुकर्णा।	सुन्दर कानोंवाली नारी।
७.	शृङ्गे	तीक्ष्णे शृङ्गे यस्याः सा- तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा।	तेज सींगोंवाली गौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (नासिका०शृङ्गात्) नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण, शृङ्ग प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (वा) विकल्प से (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) तुङ्गनासिकी। *तुङ्गा+नासिका। तुङ्गनासिक+ङीष्। तुङ्गनासिकी+सु। तुङ्गनासिकी।*

यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची नासिका शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। यहां प्रथम ***'स्त्रियाः पुंवद्०'*** *(६।४।३४) से तुङ्गा और नासिका को पुंवद्भाव होता है तुङ्गनासिक। 'ङीप्' प्रत्यय होने पर* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४२) से अंग का अ-लोप होता है।*

(२) तुङ्गनासिका। *तुङ्गा+नासिका। तुङ्गनासिक+टाप्। तुङ्नासिका+सु। तुङ्गनासिका।*

यहां विकल्प पक्ष में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वृकोदरी, वृकोदरा आदि।*

ङीष्-प्रतिषेधः—

(१७) न क्रोडादिबह्वचः।५६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, क्रोडादि-बह्वचः ५।१।

स०-क्रोड आदिर्येषां ते क्रोडादयः, बहवोऽचो यस्मिँस्तत्-बह्वच्, क्रोडादयश्च बह्वच् च एतेषां समाहारः-क्रोडादिबह्वच्, तस्मात्-क्रोडादिबह्वचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् स्वाङ्गात् क्रोडादिबह्वचः स्त्रियां न ङीष्।

अर्थः-उपसर्जनात् स्वाङ्गवाचिनः क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(क्रोडाद्यन्तात्)** कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। **(बह्वजन्तात्)** पृथुजघना। महाललाटा।

क्रोड। खुर। बाल। शफ। गुद। घोण। नख। मुख। भग। गल। आकृतिगणोऽयम्। इति क्रोडादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (क्रोडादिबह्वचः) क्रोड-आदि और बहु-अच् पद जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(क्रोडादि) ***कल्याणक्रोडा।*** *वह स्त्री जिसकी गोदी मङ्गलमयी है।* ***कल्याणखुरा।*** *वह गौ जिसके खुर सुन्दर हैं। (बहु-अच्)* ***पृथुजघना।*** *वह स्त्री जिसका कटि देश स्थूल है।* ***महाललाटा।*** *वह स्त्री जिसका माथा विशाल है।*

सिद्धि-(१) ***कल्याणक्रोडा।*** *कल्याण+क्रोड। कल्याणक्रोड+टाप्। कल्याणक्रोडा+सु। कल्याणक्रोडा।*

यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची क्रोड-अन्तवाले प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्०' (४।१।५४) से 'ङीष्' प्रत्यय प्राप्त था। अतः ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-* ***कल्याणखुरा*** *आदि।*

(२) ***पृथुजघना।*** *पृथु+जघन। पृथुजघन+टाप्। पृथुजघना+सु। पृथुजघना।*

यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची बहु-अच् पद अन्तवाले प्रातिपदिक से पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध होकर 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही- ***महाललाटा*** *आदि।*

ङीष्-प्रतिषेधः-

(१८) सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च।५७।

प०वि०-सह-नञ्-विद्यमानपूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-सहश्च नञ् च विद्यमानं च एतेषां समाहारः-सहनञ्विद्यमानम्, सहनञ्विद्यमानं पूर्वं यस्य तत्-सहनञ्विद्यमानपूर्वम्, तस्मात्- सहनञ्-विद्यमानपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च स्वाङ्गात् स्त्रियां ङीष् न।

अर्थः-उपसर्जनात् सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(सह)** सह केशा यस्याः सा-सकेशा। **(नञ्)** न विद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा। **(विद्यमानम्)** विद्यमानाः केशा यस्याः सा-विद्यमानकेशा। एवम्-सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका, इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (सहनञ्विद्यमानपूर्वात्) सह, नञ्, विद्यमान शब्द पूर्ववाले (च) भी (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सह) सह केशा **यस्याः सा-सकेशा।** वह स्त्री जो केशों सहित है। **(नञ्) न विद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा।** वह स्त्री जिसके केश नहीं हैं (गंजी)। **(विद्यमानम्) विद्यमानाः केशा यस्याः सा-विद्यमानकेशा।** वह स्त्री जिसके केश विद्यमान हैं।*

***सिद्धि-(१) सकेशा।** सह+केश। स+केश। सकेश+टाप्। सकेशा+सु। सकेशा।*

*यहां सह पूर्वक, उपसर्जन, स्वाङ्गवाची 'केश' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। यहां **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (२।२।२८) से बहुव्रीहिसमास और **'वोपसर्जनस्य'** (६।३।८०) से 'सह' के स्थान में 'स' आदेश होता है।*

*(२) **अकेशा।** नञ्+केश। अकेश+टाप्। अकेशा+सु। अकेशा।*

*यहां पूर्ववत् 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर 'टाप्' प्रत्यय है। **अविद्यमानाः केशा यस्याः सा अकेशा।** यहां वा०- **'नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि और विद्यमान शब्द का लोप होता है।*

*(३) **विद्यमानकेशा।** विद्यमान+केश। विद्यमानकेश+टाप्। विद्यमानकेशा+सु। विद्यमानकेशा। पूर्ववत्।*

ङीष्-प्रतिषेधः-

(१६) नखमुखात् संज्ञायाम्।५८।

प०वि०-नखमुखात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०-नखं च मुखं च एतयोः समाहारः-नखमुखम्, तस्मात्-नखमुखात्।

अनु०-ङीष्, स्वाङ्गात्, उपसर्जनात् न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनात् स्वाङ्गात् नखमुखात् स्त्रियां ङीष् न संज्ञायाम्।

अर्थः-उपसर्जनसंज्ञकात् स्वाङ्गवाचिनो नखान्ताद् मुखान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(नखम्) शूर्पमिव नखानि यस्याः सा-शूर्पणखा। वज्रमिव नखानि यस्याः सा-वज्रणखा। **(मुखम्)** गौरं मुखं यस्याः सा-गौरमुखा। कालं मुखं यस्याः सा-कालमुखा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्जनात्) उपसर्जन संज्ञावाले (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (नखमुखात्) नख और मुख शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नखम्) ***शूर्पमिव नखानि यस्याः सा-शूर्पणखा।*** *वह स्त्री जिसके छाज के समान बड़े-बड़े नाखून हों, रावण की बहिन।* ***वज्रमिव नखानि यस्याः सा-वज्रणखा।*** *वह स्त्री जिसके नाखून वज्र (हीरा) के समान कठोर हों।* ***(मुखम्) गौरं मुखं यस्याः सा-गौरमुखा।*** *गौर मुखवाली स्त्री।* ***कालं मुखं यस्याः सा-कालमुखा।*** *काले मुखवाली स्त्री।*

सिद्धि-शूर्पणखा। *शूर्प+नखा। शूर्पणख+टाप्। शूर्पणखा+सु। शूर्पणखा।*

*यहां उपसर्जन, स्वाङ्गवाची मुखान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है और 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' (८।४।३) से णत्व होता है। ऐसे ही-**वज्रणखा, गौरमुखा, कालमुखा।***

ङीष् (निपातनम्)-

(२०) दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि।५६।

प०वि०-दीर्घजिह्वी १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दीर्घजिह्वी च ङीष्।

अर्थः-छन्दसि विषये दीर्घजिह्वी इति च ङीष् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०-दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट् (तु०-मै०सं० ३।१०।६)

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दीर्घजिह्वी) 'दीर्घजिह्वी' यह शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०-दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्। दीर्घजिह्वी ने देवताओं के हव्य को चाट लिया।

सिद्धि-दीर्घजिह्वी। दीर्घ+जिह्वा। दीर्घजिह्व+ङीष् दीर्घजिह्वी+सु। दीर्घजिह्वी।

यहां 'जिह्वा' शब्द के संयोगोपध होने से *'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्'* (४।१।५४) से 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से वेद में 'ङीष्' प्रत्यय निपातित किया गया है।

ङीप्-

(२१) दिक्पूर्वपदान्ङीप्।६०।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ ङीप् १।१।

स०-दिक् पूर्वपदं यस्य तत्-दिक्पूर्वपदम्, तस्मात् दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-दिक्पूर्वात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्।

अर्थः-दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्राङ् मुखं यस्याः सा-प्राङ्मुखी, प्राङ्मुखा। प्राङ् नासिका यस्याः सा-प्राङ्नासिकी, प्राङ्नासिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग (ङीप्) प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्राङ् मुखं यस्याः सा-प्राङ्मुखी, प्राङ्मुखा। पूर्व दिशा की ओर मुखवाली। *प्राङ् नासिका यस्याः सा-प्राङ्नासिकी, प्राङ्नासिका।* पूर्व दिशा की ओर नासिकावाली।

सिद्धि-(१) प्राङ्मुखी। प्राक्+मुख। प्राङ्मुख+ङीप्। प्राक्मुखी+सु। प्राङ्मुखी।

यहां दिशावाची प्राक् शब्द उपपद होने पर स्वाङ्गवाची मुख शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय है।

यहां *'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्'* (४।१।५४) से लेकर जहां-जहां 'ङीप्' प्रत्यय का विधान अथवा प्रतिषेध किया गया है, वहां-वहां इस सूत्र से दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर 'ङीप्' प्रत्यय का विधान किया गया है। *'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद०'* (४।१।५४) से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय का विधान है अतः दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर उस विषय में 'ङीप्' प्रत्यय भी विकल्प से होता है। ऐसे ही सर्वत्र समझ लेवें।

(२) प्राङ्मुखा। प्राक्+मुख। प्राङ्मुख+टाप्। प्राङ्मुखा+सु। प्राङ्मुखा।

यहां *'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद०'* (४।१।५४) की विधि से विकल्प पक्ष में *'अजाद्यतष्टाप्'* (४।१।४) से 'टाप्' प्रयय होता है। ऐसे ही-*प्राङ्नासिकी। प्राङ्नासिका।*

ङीष्–

(२२) वाहः ।६१।

प०वि०–वाहः ५ ।१ ।

अनु०–अत्र ङीष् इत्यनुवर्तते, न ङीप्, ङीषः प्रकरणत्वात् ।

अन्वयः–वाहः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् ।

अर्थः–वाहन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–दित्यं वहतीति दित्यौही । प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठौही ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वाहः) वाह् जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**दित्यं वहतीति दित्यौही।** दित्य (राक्षस) को वहन करनेवाली गाड़ी। **प्रष्ठं वहतीति प्रष्ठौही।** नेता को वहन करनेवाली गाड़ी।*

सिद्धि-दित्यौही। *वह्+ण्वि। वह्+०। वाह्। दित्य+वाह्+ङीष्। दित्य+ऊठ्+आह्+ई। दित्य+ऊह्+ई। दित्यौही+सु। दित्यौही।*

*यहां प्रथम 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से **'वहश्च'** (३।२।६४) से 'ण्वि' प्रत्यय, **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप, **'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्'** (१।१।६१) से प्रत्ययलक्षण कार्य **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'वह्' धातु को उपधावृद्धि होती है। 'दित्य+वाह्' इस वाहन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से सम्प्रसारण रूप ऊठ् आदेश, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०४) से पूर्वरूप-एकादेश और **'एत्येधत्यूठ्सु'** (६।१।८६) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही-**प्रष्ठौही।***

ङीष् (निपातनम्)–

(२३) सख्यशिश्वीति भाषायाम् ।६२।

प०वि०–सखी १।१ अशिश्वी १।१ इति अव्ययपदम्, भाषायाम् ७।१ ।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–भाषायां सखी, अशिश्वी इति स्त्रियां ङीष् ।

अर्थः–भाषायां विषये सखी, अशिश्वी इति शब्दौ स्त्रियां ङीष्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते ।

उदा०–सखीयं मे ब्राह्मणी । न यस्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषायाम्) लोक भाषा में (सख्यशिश्वी) सखी और अशिश्वी (इति) ये दोनों शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

*उदा०-**सखीयं मे ब्राह्मणी।** यह ब्राह्मणी मेरी सखी है। **न यस्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी।** वह ब्राह्मणी जिसका कोई शिशु=बालक नहीं है-वन्ध्या।*

*सिद्धि-(१) **सखी।** सखि+ङीष्। सखि+ई। सखी+सु। सखी।*

यहां 'सखि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय निपातित है।

*(२) **अशिश्वी।** न+शिशु। अ+शिशु। अशिशु+ङीष्। अशिश्व्+ई। अशिश्वी+सु। अशिश्वी।*

यहां 'अशिशु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय निपातित है। 'इको यणचि' (६।१।७४) से 'यण्' आदेश है।

ङीष्–

(२४) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्।६३।

प०वि०–जातेः ५।१ अस्त्रीविषयात् ५।१ अयोपधात् ५।१।

स०–स्त्री विषयो यस्य तत्-स्त्रीविषयम्, न स्त्रीविषयम् इति अस्त्रीविषयम्, तस्मात्-अस्त्रीविषयात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। य उपधा यस्य तद् योपधम्, न योपधम् इति अयोपधः, तस्मात्-अयोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अस्त्रीविषयाद् अयोपधाद् जातेः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–अनियतस्त्रीविषयाद् अयकारोपधाद् जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुक्कुटी। सूकरी। ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्त्रीविषयात्) जो शब्द केवल स्त्रीविषय में ही नियत नहीं है उस (अयोपधात्) यकार उपधा से रहित (जातेः) जातिवाची (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कुक्कुटी**=मुर्गी। **सूकरी**=सूअरी। **ब्राह्मणी**=ब्राह्मण जाति की स्त्री।*

*सिद्धि-**कुक्कुटी।** कुक्कुट+ङीष्। कुक्कुटी+सु। कुक्कुटी।*

यहां स्त्री विषय में अनियत, यकार उपधा से रहित, जातिवाची 'कुक्कुट' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही–सूकरी आदि।

ङीष्–

(२५) पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च।६४।

प०वि०–पाक-कर्ण-पर्ण-पुष्प-फल-मूल-बाल-उत्तरपदात् ५।१। च अव्ययपदम्।

स०–पाकश्च कर्णौ च पर्णं च पुष्पं च फलं च मूलं च बालं च-एतेषां समाहारः–पाक०बालम्। पाक०बालम् उत्तरपदं यस्य तत्-पाक०बालोत्तरपदम्, तस्मात्–पाक०बालोत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०–ङीष्, जातेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–पाक०बालोत्तरपदाच्च जातेः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः–पाकाद्युत्तरपदाद् जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

उत्तरपदम्		ङीष्	भाषार्थः
१.	पाकः	ओदनस्य पाक इव पाको यस्याः सा-ओदनपाकी	ओदन के समान शीघ्र पकनेवाली ओषधि।
२.	कर्णौ	शङ्कुरिव कर्णौ यस्याः सा-शङ्कुकर्णी	शंकु (खूटी) के समान तीक्ष्ण कानों वाली गर्दभी।
३.	पर्णम्	शालस्य पर्णानीव पर्णानि यस्याः सा-शालपर्णी	साल वृक्ष के पत्तों के समान पत्तोंवाली ओषधि।
४.	पुष्पम्	शङ्खमिव पुष्पाणि यस्याः सा-शङ्खपुष्पी।	शंख के समान फूलोंवाली ओषधि।
५.	फलम्	दासी इव फलं यस्याः सा-दासीफली।	दासी=वेश्या के समान फलवाली नारी।
६.	मूलम्	दर्भस्य मूलमिव मूलं यस्याः सा-दर्भमूली।	डाभ के मूल के समान मूलवाली ओषधि।
७.	बालम्	गोर्बालानीव बालानि यस्याः सा गोबाली।	गौ के बालों के समान बालोंवाली नील गाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पाक०बालोत्तरपदात्) पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल, बाल-उत्तरपदवाले (जातेः) जातिवाचक प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-**ओदनपाकी।** ओदन+पाक। ओदनपाक+ङीष्। ओदनपाकी+सु। ओदनपाकी।*

*यहां पाक उत्तरपदवाले, जातिवाची 'ओदनपाक' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीष्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शङ्कुकर्णी** आदि।*

ङीष्-

(२६) इतो मनुष्यजातेः।६५।

प०वि०-इतः ५।१ मनुष्यजातेः ५।१।

स०-मनुष्यस्य जातिरिति मनुष्यजातिः, तस्मात्-मनुष्यजातेः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-ङीष् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मनुष्यजातेरिति प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष्।

अर्थः-मनुष्यजातिवाचिन इकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मनुष्यजातेः) मनुष्यजातिवाची (इतः) इकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीष्) ङीष् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अवन्ती।** मालवा प्रदेश की नारी। **कुन्ती।** शूरसेन राजा की औरसी पुत्री जिसका नाम पृथा था और यदुवंशी राजा कुन्तिभोज ने इसे गोद लिया था। यह राजा पाण्डु की पटरानी थी, इसी के गर्भ से कर्ण, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म हुआ था। **दाक्षी।** दक्ष की कन्या। पाणिनि की माता का नाम। **प्लाक्षी।** प्लक्ष जाति की नारी।*

*सिद्धि-(१) **अवन्ती।** अवन्ति+ञ्यङ्। अवन्ति+०। अवन्ति+ङीष्। अवन्ती+सु। अवन्ती।*

*यहां 'अवन्ति' शब्द से '**वृद्धेत्कोशलाजादाञ्ञ्यङ्**' (४।१।१६९) से 'ञ्यङ्' प्रत्यय, '**स्त्रियामवन्ति०**' (४।१।१७४) से उसका लुक्, तत्पश्चात् मनुष्यजातिवाची इकारान्त 'अवन्ति' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय है।*

*(२) **कुन्ती।** कुन्ति+ञ्यङ्। कुन्ति+०। कुन्ति+ङीष्। कुन्ती+सु। कुन्ती। पूर्ववत्।*
*(३) **दाक्षी।** दाक्षि+ङीष्। दाक्षी+सु। दाक्षी। पूर्ववत्।*
*(४) **प्लाक्षी।** प्लाक्षि+ङीष्। प्लाक्षी+सु। प्लाक्षी। पूर्ववत्।*

इति ङीष्प्रत्ययप्रकरणम्।

ऊङ्प्रत्ययप्रकरणम्

ऊङ्–

(१) ऊङुतः।६६।

प०वि०–ऊङ् १।१ उतः ५।१।

अनु०–मनुष्यजातेरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–मनुष्यजातेरुतः प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः–मनुष्यजातिवाचिन उकारान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कुरोरपत्यं स्त्री–कुरूः। ब्रह्म बन्धुर्यस्याः सा–ब्रह्मबन्धूः। वीरो बन्धुर्यस्याः सा–वीरबन्धूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(मनुष्यजातेः) मनुष्यजातिवाची (उतः) उकारान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**कुरोपत्यं स्त्री–कुरूः।** कुरु प्रदेश की पुत्री। कुरु=आधुनिक दिल्ली के आस-पास का प्रदेश। **ब्रह्मबन्धूः।** पतित ब्राह्मणी। **वीरबन्धूः।** पतित क्षत्रिया।*

***सिद्धि–कुरूः।** कुरु+ण्य। कुरु+०। कुरु+ऊङ्। कुरू+सु। कुरूः।*

*यहां 'कुरु' शब्द से आपत्य अर्थ में '**कुरुनादिभ्यो ण्यः**' (४।१।१७०) से 'ण्य' प्रत्यय, **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च**' (४।१।१७४) से प्रत्यय का लुक् और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **ब्रह्मबन्धूः।** ब्रह्मबन्धु+ऊङ्। ब्रह्मबन्धू+सु। ब्रह्मबन्धूः। ऐसे ही–**वीरबन्धूः।***

ऊङ्–

(२) बाह्वन्तात् संज्ञायाम्।६७।

प०वि०–बाहु–अन्तात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०–बाहुरन्ते यस्य तद्–बाह्वन्तम्, तस्मात्–बाह्वन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–बाह्वन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ऊङ् संज्ञायाम्।

अर्थः-बाहुशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्-प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-भद्रो बाहुर्यस्याः सा-भद्रबाहूः। जालं बाहुर्यस्याः सा-जालबाहूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बाहु-अन्तात्) बाहु शब्द जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**भद्रो बाहुर्यस्याः सा-भद्रबाहूः।** कल्याणकारक बाहुवाली स्त्री। **जालं बाहुर्यस्याः सा-जालबाहूः।** फन्दा रूप बाहुवाली स्त्री।*

*सिद्धि-**भद्रबाहूः।** भद्र+बाहु। भद्रबाहु+ऊङ्। भद्रबाहू+सु। भद्रबाहूः।*

*यहां 'भद्रबाहु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। यह नारी विशेष की संज्ञा है। ऐसे ही-**जालबाहूः।***

ऊङ्-

(३) पङ्गोश्च।६८।

प०वि०-पङ्गोः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पङ्गोः प्रातिपदिकाच्च स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-पङ्गु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपि स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पङ्गूरियं ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पङ्गोः) पङ्गु प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पङ्गूरियं ब्राह्मणी।** यह ब्राह्मणी। यह ब्राह्मणी लंगड़ी है।*

*सिद्धि-**पङ्गूः।** पङ्गु+ऊङ्। पङ्गू+सु। पङ्गूः।*

*यहां पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९७) से दीर्घत्व होता है।*

ऊङ्-

(४) ऊरूत्तरपदादौपम्ये।६९।

प०वि०-ऊरु-उत्तरपदात् ५।१ औपम्ये ७।१।

स०-ऊरुरुत्तरपदं यस्य तत्-ऊरूत्तरपदम्, तस्मात्-ऊरूत्तरपदात् (बहुव्रीहिः)। सादृश्यम्=उपमा। उपमाया भाव औपम्यम्, तस्मिन्-औपम्ये।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् औपम्ये।

अर्थः-ऊरु-उत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति, औपम्ये गम्यमाने।

उदा०-कदलीस्तम्भ इव ऊरू यस्याः सा-कदलीस्तम्भोरूः। नागनासा इव ऊरू यस्याः सा-नागनासोरूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऊरूत्तरपदात्) 'ऊरु' शब्द उत्तरपद में है जिसके उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (औपम्ये) यदि वहां उपमा=सदृशता अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**कदलीस्तम्भ इव ऊरू यस्याः सा-कदलीस्तम्भोरूः।** केले के खम्भ के समान चिकणी हैं जंघायें (रान) जिसकी वह स्त्री। **नागनासा इव ऊरू यस्याः सा-नागनासोरूः।** हाथी के सूण्ड के समान गोल हैं जंघायें जिसकी वह स्त्री।*

*सिद्धि-**कदलीस्तम्भोरूः।** कदलीस्तम्भ+ऊरु। कदलीस्तम्भोरु+ऊङ्। कदलीस्तम्भोरू+सु। कदलीस्तम्भोरूः।*

*यहां ऊरु-उत्तरपदवाले 'कदलीस्तम्भरु' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नागनासोरूः।***

ऊङ्-

(५) संहितशफलक्षणवामादेश्च।७०।

प०वि०-संहित-शफ-लक्षण-वामादेः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-संहितश्च शफश्च लक्षणं च वामश्च ते-संहित०वामाः, संहित०वामा आदौ यस्य तत्-संहित०वामादि, तस्मात्-संहित०वामादेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ऊङ्, ऊरूत्तरपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितशफलक्षणवामादेरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-संहितशफलक्षणवामादिभूताद् ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकात् स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

	पूर्वपदम्	ऊरूत्तरपदम् (ऊङ्)	भाषार्थः
१.	संहितः	संहितावूरू यस्याः सा-संहितोरूः ।	परस्पर मिली हुई जंघाओंवाली स्त्री।
२.	शफाः	शफ इवोरू यस्याः सा-शफोरूः ।	गौ के खुर के समान पृथक्-पृथक् जंघाओंवाली।
३.	लक्षणम्	लक्षणमूरू यस्याः सा-लक्षणोरूः ।	शुभ लक्षण से युक्त जंघावाली स्त्री।
४.	वामः	वामावूरू यस्याः सा-वामोरूः	सुन्दर जंघाओंवाली स्त्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहित०वामादेः) संहित, शफ, लक्षण, वाम जिसके आदि में हैं और (ऊरूत्तरपदात्) ऊरु शब्द जिसके उत्तरपद में है उस प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनके अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-संहितोरूः। *यहां संहित पूर्वपद और ऊरु उत्तरपदवाले 'संहितोरु' प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शफोरूः आदि।*

ऊङ्-

(६) कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि।७१।

प०वि०-कद्रु-कमण्डल्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) छन्दसि ७।१।

स०-कद्रुश्च कमण्डलुश्च तौ-कद्रुकमण्डलू, तयोः-कद्रुकमण्डल्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ऊङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियाम् ऊङ्।

अर्थः-छन्दसि विषये कद्रुकमण्डलुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कद्रुः) कद्रूश्च वै सुपर्णी च (तै०सं० ६।१।६।१)। **(कमण्डलुः)** मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कद्रुकमण्डल्वोः) कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कद्रुः) **कद्रूश्च वै सुपर्णी च।** कद्रू का अर्थ सुपर्णी है। (कमण्डलुः) **मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात्।** अपना जलपात्र किसी अपवित्र जन को न देवें।*

*सिद्धि-**कद्रूः।** कद्रू+ऊङ्। कद्रू+सु। कद्रूः।*

*यहां 'कद्रु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कमण्डलूः।***

ऊङ्-

(७) संज्ञायाम्।७२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-ऊङ्, कद्रुकमण्डल्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् संज्ञायाम्।

अर्थः-कद्रुकमण्डलुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्त्रियाम् ऊङ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(कद्रुः) कद्रूः। (कमण्डलुः) कमण्डलूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कद्रुकमण्डल्वोः) कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ऊङ्) ऊङ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-(कद्रु) **कद्रूः।** कश्यप ऋषि की स्त्री का नाम। (कमण्डलुः) **कमण्डलूः।** कमण्डलु के समान कृष्ण वर्ण की स्त्री।*

*सिद्धि-(१) **कद्रूः।** कद्रु+ऊङ्। कद्रू+सु। कद्रूः।*

यहां 'कद्रु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है।

*(२) **कमण्डलूः।** कमण्डलु+कन्। कमण्डलु+०। कमण्डलु+ऊङ्। कमण्डलु+सु। कमण्डलूः।*

*यहां प्रथम **'संज्ञायां च'** (५।३।९७) से इव-अर्थ में 'कन्' प्रत्यय और **'लुम्मनुष्ये'** (५।३।९८) से 'कन्' प्रत्यय का लुप् होता है। स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ऊङ्' प्रत्यय है।*

इति ऊङ्प्रत्ययप्रकरणम्।

ङीन्प्रत्ययप्रकरणम्

ङीन्-

(१) शाङ्गर्वाद्यञो ङीन्।७३।

प०वि०-शाङ्गर्रवादि-अञः ५।१ ङीन् १।१।

स०-शाङ्र्गरव आदिर्येषां ते-शाङ्र्गरवादयः, शारङ्गरवादयश्च अञ् च एतेषां समाहारः-शाङ्र्गरवाद्यञ्, तस्मात्-शारङ्र्गवाद्यञः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-शाङ्र्गरवाद्यञः प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीन्।

अर्थः-शाङ्र्गरवादिभ्योऽञ्प्रत्ययान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शाङ्र्गरवादिः)** शृङ्गरोरपत्यं स्त्री-शाङ्र्गरवी। कपटोरपत्यं स्त्री-कापटवी। **(अञ्)** बिदस्य गोत्रापत्यं बैदी। उर्वस्य गोत्रापत्यं स्त्री औैर्वी।

शाङ्र्गरव। कापटव। गौगुलव। ब्राह्मण। गौतम। कामण्डलेय। ब्राह्मणकृतेय। आनिचेय। आनिधेय। आशोकेय। वात्स्यायन। माञ्जायन। केकसेय। काव्य। शैव्य। एहि। पर्य्येहि। आश्मरथ्य। औदपान। अराल। चण्डाल। वतण्ड। भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम्। भोगवती। गौरिमती। नृनरयोर्वृद्धिश्च। नारी इति शाङ्र्गरवादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शाङ्र्गरवाद्यञः) शाङ्र्गरव आदि तथा अञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ङीन्) ङीन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(शाङ्र्गरवादिः) **शृङ्गरोरपत्यं स्त्री-शाङ्र्गरवी।** शृङ्गरु की पुत्री। **कपटोरपत्यं स्त्री-कापटवी। (अञ्) बिदस्य गोत्रापत्यं बैदी।** बिद की पौत्री। **उर्वस्य गोत्रापत्यं स्त्री औैर्वी।** उर्व की पौत्री।*

***सिद्धि-(१) शाङ्र्गरवी।** शृङ्गरु+अण्। शाङ्र्गरो+अ। शाङ्र्गरव्+ङीन्। शाङ्र्गरवी+सु। शाङ्र्गरवी।*

*यहां प्रथम 'शृङ्गरु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीन्' प्रत्यय है।*

***(२) कापटवी।** कपटु+अण्+ङीन्। कापटवी। पूर्ववत्।*

***(३) बैदी।** बिद+अञ्। बैद+ङीन्। बैदी+सु। बैदी।*

*यहां प्रथम **'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्'** (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ङीन्' प्रत्यय है।*

***(४) औैर्वी।** उर्व+अञ्+ङीन्। औैर्वी।*

स्वरः-ङीन् प्रत्यय के नित् होने से *'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'* (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-शार्ङ्गरवी।

इति ङीन्प्रत्ययप्रकरणम्।

चाप्प्रत्ययप्रकरणम्

चाप्–

(१) यङश्चाप्।७४।

प०वि०-यङः ५।१ चाप् १।१।

अन्वयः-यङः प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप्।

अर्थः-यङ्प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति। यङ् इत्यनेन ञ्यङः ष्यङश्च सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-**(ञ्यङ्)** आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या। सौवीरस्यापत्यं स्त्री सौवीर्या। कौसलस्यापत्यं स्त्री कौसल्या। **(ष्यङ्)** करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्येति करीषगन्धिः, करीषगन्धेरपत्यं स्त्री कारीषगन्ध्या। वराहस्यापत्यं स्त्री वाराह्या। बलाकस्यापत्यं स्त्री बालाक्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यङः) यङ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (चाप्) चाप् प्रत्यय होता है। यहां यङ् कहने से ञ्यङ् और ष्यङ् प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(ञ्यङ्) ***आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री आम्बष्ठ्या।*** *आम्बष्ठ की पुत्री।* ***सौवीरस्यापत्यं स्त्री सौवीर्या।*** *सौवीर की पुत्री।* ***कौसलस्यापत्यं स्त्री कौसल्या।*** *कोसल की पुत्री।* ***(ष्यङ्) करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः सा करीषगन्धिः, करीषगन्धेरपत्यं स्त्री कारीषगन्ध्या।*** *करीषगन्धि की पौत्री।* ***वराहस्यापत्यं स्त्री वाराह्या।*** *वराह की पौत्री।* ***बलाकस्यापत्यं स्त्री बालाक्या।*** *बलाक की पौत्री।*

सिद्धि-(१) आम्बष्ठ्या। *आम्बष्ठ+ञ्यङ्। आम्बष्ठ्य+चाप्। आम्बष्ठ्या+सु। आम्बष्ठ्या।*

यहां आम्बष्ठ शब्द से 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' (४।१।१७१) से अपत्य अर्थ में 'ञ्यङ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

(२) सौवीर्या। *सौवीर+ञ्यङ्+चाप्। पूर्ववत्।*

(३) कौसल्या। *कोसल+ञ्यङ्+चाप्। पूर्ववत्।*

(४) कारीषगन्ध्या। *करीष+गन्ध। करीषगन्धि। कारीषगन्धि+अण्। कारीषगन्ध+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य+चाप्। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।*

यहां प्रथम 'गन्धस्येद०' (५।४।१३५) से समासान्त इत्-आदेश, करीषगन्धि शब्द से 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय, 'अणिञोरनार्षयो०' (४।१।७८) से 'ष्यङ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।

*(५) **वाराह्या।** वराह+इञ्। वाराहि। वाराह+ष्यङ्। वाराह्य+चाप्। वाराह्या+सु। वाराह्या।*

*यहां प्रथम 'वराह' शब्द से **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय, **'अणिञोरनार्षयो०'** (४।१।७८) से 'ष्यङ्' प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।*

*(६) **बालाक्या।** बलाक+इञ्। बालाकि। बालाक्+ष्यङ्। बालाक्य+चाप्। बालाक्या+सु। बालाक्या। पूर्ववत्।*

चाप्–

(२) आवट्याच्च।७५।

प०वि०–आवट्यात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–चाप् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आवट्याच्च स्त्रियां चाप्।

अर्थः–आवट्यात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अवटस्य गोत्रापत्यं स्त्री-आवट्या।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आवट्यात्) आवट्य प्रातिपदिक से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (चाप्) चाप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अवटस्य गोत्रापत्यं स्त्री-आवट्या।** अवट नामक पुरुष की पौत्री।*

***सिद्धि-आवट्या।** अवट+यञ्। आवट्य+चाप्। आवट्या+सु। आवट्या।*

*यहां प्रथम 'अवट' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय और यञन्त 'आवट्य' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'चाप्' प्रत्यय होता है।*

इति चाप्प्रत्ययप्रकरणम्।

तद्धितप्रत्ययाधिकारः

(१) तद्धिताः।७६।

प०वि०–तद्धिताः १।३।

अर्थः–इत ऊर्ध्वं यद् वक्ष्यामस्तद्धितसंज्ञकाः प्रत्ययास्ते वेदितव्याः, इत्यधिकारोऽयम् आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः।

आर्यभाषाः अर्थ-*जो इससे आगे कहेंगे उन प्रत्ययों की (तद्धिताः) तद्धित संज्ञा होती है। यह पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त तद्धित संज्ञा का अधिकार है।*

*तद्धित संज्ञा का यह फल है कि '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और उनसे '**स्वौजस०**' (४।१।२) से सु-आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

तिः–

(१) यूनस्तिः ।७७।

प०वि०-यूनः ५।१ तिः १।१।

अन्वयः-यूनः प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिः।

अर्थः-युवन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिः प्रत्ययो भवति, स च तद्धितसंज्ञको भवति।

उदा०-युवतिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यूनः) युवन् शब्द प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (तिः) ति प्रत्यय होता है और उसकी (तद्धिताः) तद्धित संज्ञा होती है।*

उदा०-युवतिः। *युवावस्थावाली स्त्री।*

सिद्धि-युवतिः। *युवन्+ति। यहां 'युवन्' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय है। 'ति' प्रत्यय के परे होने पर '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'युवन्' शब्द की पदसंज्ञा होती है और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'युवन्' के 'न्' का लोप होता है। युवति शब्द में 'ति' प्रत्यय की तद्धित संज्ञा होने से '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' से युवति शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है और तत्पश्चात् उससे '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।*

ष्यङ्-आदेशः–

(१) अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ।७८।

प०वि०-अण्-इञोः ६।२ अनार्षयोः ६।२ गुरु-उपोत्तमयोः ६।२ ष्यङ् १।१। गोत्रे ७।१।

स०-अण् च इञ् च तौ-अणिञौ, तयोः-अणिञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ऋषिणा प्रोक्त आर्षः, नार्षः-अनार्षः। अनार्षश्च अनार्षश्च तौ-अनार्षौ, तयोः-अनार्षयोः (नञ्गर्भित एकशेषद्वन्द्वः)। त्रिप्रभृतीनामन्त्यमक्षरमुत्तमम्,

उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम्, गुरु उपोत्तमं ययोस्ते गुरूपोत्तमे, तयोः-गुरूपोत्तमयोः (अव्ययीभावगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-गोत्रेऽनार्षयोरणिञोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङ्।

अर्थः-गोत्रे यावनार्षौ अणिञौ प्रत्ययौ, तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्थाने स्त्रियां ष्यङ् आदेशो भवति।

उदा०-करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः-करीषगन्धिः। करीषगन्धेरपत्यं स्त्री-कारीषगन्ध्या। कुमुदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः-कुमुदगन्धिः। कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री-कौमुदगन्ध्या। वराहस्यापत्यं स्त्री-वाराह्या। बलाकस्यापत्यं स्त्री-बालाक्या।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में जो (अनार्षौ) ऋषिवाची प्रातिपदिक से भिन्न विहित (अणिञौ) अण् और इञ् प्रत्यय हैं, (गुरूपोत्तमयोः) तदन्त प्रातिपदिकों का अन्तिम अक्षर से पूर्ववर्ती अक्षर गुरु हो तो उन प्रातिपदिकों से विहित उन अण् और इञ् प्रत्ययों के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें। इनका अर्थ और सिद्धि (४।१।७४) के प्रवचन में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **करीषगन्ध्या।** करीष+गन्ध। करीषगन्धि+अण्। करीषगन्ध्+अ। कारीषगन्ध+ष्यङ्। कारीषगन्ध्य्+चाप्। कारीषगन्ध्या+सु। कारीषगन्ध्या।*

*यहां 'करीषगन्धि' शब्द ऋषिवाची नहीं, अतः अनार्ष है, इससे गोत्रापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और उसके स्थान में इस सूत्र से 'ष्यङ्' आदेश होता है और तत्पश्चात् **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है।*

*विशेष-तीन वा अधिक अक्षरवाले शब्द के अन्तिम स्वर को उत्तम कहते हैं, उत्तम के समीपवर्ती स्वर को उपोत्तम कहा जाता है। यहां 'कारीषगन्ध' शब्द में अन्तिम स्वर 'अ' है और गकारवर्ती उपोत्तम 'अ' **'संयोगे गुरु'** (१।४।११) से गुरु है। अतः 'कारीषगन्ध' शब्द गुरूपोत्तम है।*

*(२) **वाराह्या।** वराह+इञ्। वाराह्+इ। वाराह्+ष्यङ्। वाराह्य+चाप्। वाराह्या+सु। वाराह्या।*

*यहां अनार्ष, गुरूपोत्तम 'वाराहि' शब्द में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**बालाक्या** आदि।*

ष्यङ् आदेशः–

(२) गोत्रावयवात् ।७६।

प०वि०-गोत्रावयवात् ५ ।१ ।

स०-गोत्रं च तदवयवं चेति गोत्रावयवम्, तस्मात्-गोत्रावयवात् (कर्मधारयः) । अत्र राजदन्तादेराकृतिगणत्वाद् विशेषणस्य परनिपातः ।

गोत्रं चेह लौकिकं गृह्यते, न पारिभाषिकम् । लोके च प्रधानभूत आदिपुरुषः स्वप्रभवस्यापत्यसन्तानस्य संज्ञाकारी गोत्रमित्युच्यते । तथा हि भरतो नाम कश्चिद् आद्यः प्रधानः पुरुषोऽभूत्, तेन सर्वे एव तत्पूर्वकाः पुत्रपौत्रादयो भरता इति व्यपदिश्यन्ते ।

अनु०-अणिञोः, ष्यङ् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-गोत्रावयवाद् अणिञोः स्त्रियां ष्यङ् ।

अर्थः-गोत्रावयववाचिभ्यः=लोके गोत्राख्येभ्यः प्रातिपदिभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विहितयोरणिञोः प्रत्यययोः स्थाने स्त्रियां ष्यङ् आदेशो भवति ।

उदा०-पुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-पौणिक्या । भुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-भौणिक्या । मुखरस्य गोत्रापत्यं स्त्री मौखर्या ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोत्रावयवात्) लोक में गोत्र नाम से प्रसिद्ध प्रातिपदिकों से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित (अणिञोः) अण् और इञ् प्रत्यय के स्थान में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्यङ्) ष्यङ् आदेश होता है ।*

*उदा०-**पुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-पौणिक्या ।** पुणिक की पौत्री । **भुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री-भौणिक्या ।** भुणिक की पौत्री । **मुखरस्य गोत्रापत्यं स्त्री मौखर्या ।** मुखर की पौत्री ।*

सिद्धि-पौणिक्या । *पुणिक+इञ् । पौणिक्+इ । पौणिक्+ष्यङ्+चाप् । पौणिक्य+आ । पौणिक्या+सु । पौणिक्या ।*

*यहां लोक में प्रसिद्ध गोत्रवाची 'पुणिक' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**अत इञ्**' (४ ।१ ।९५) से 'इञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से 'इञ्' के स्थान में 'ष्यङ्' आदेश है । '**यङश्चाप्**' (४ ।१ ।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है । ऐसे ही-**भौणिक्या, मौखर्या ।***

ष्यङ्-प्रत्ययः—

(३) क्रौड्यादिभ्यश्च।८०।

प०वि०–क्रौडि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्रौडिरादिर्येषां ते-क्रौड्यादयः, तेभ्यः-क्रौड्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–ष्यङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–क्रौड्यादिभ्यश्च स्त्रियां ष्यङ्।

अर्थः–क्रौडि-आदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–क्रौड्या। लाड्या इत्यादिकम्।

क्रौडि। लाडि। व्याडि। आपिशलि। अप्पक्षिति। चौपयत। चैटयत। शैकयत। वैल्वयत। वैकल्पयत। सौधातकि। सूतात् युवत्याम्। सूत्या युवतिः। भोज, क्षत्रिये। भोज्या क्षत्रिये। भौरिकि। भौलिकि। शाल्मलि। शालास्थलि। कापिष्ठलि। गौकक्ष्य इति क्रौड्यादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रौड्यादिभ्यः) क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (ष्यङ्) ष्यङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(क्रौडि)** क्रौड्या। **(लाडि)** लाड्या।*

***सिद्धि-क्रौड्या।** कौडि+ष्यङ्। क्रौड्+य। क्रौड्य। चाप्। क्रौड्या+सु। क्रौड्या।*

*यहां क्रौडि शब्द से इस सूत्र से 'ष्यङ्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से इकार का लोप होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-लाड्या आदि।*

ष्यङ् विकल्पः—

(४) दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्यो-ऽन्यतरस्याम्।८१।

प०वि०–दैवयज्ञि-शौचिवृक्षि-सात्यमुग्रि-काण्ठेविद्धिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–दैवयज्ञिश्च शौचिवृक्षिश्च सात्यमुग्रिश्च काण्ठेविद्धिश्च ते-दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धयः, तेभ्यः-दैवयज्ञिकाण्ठेविद्धिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ष्यङ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धिभ्यः स्त्रियाम् अन्यतरस्यां ष्यङ्।

अर्थः-दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां विकल्पेन ष्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**दैवयज्ञिः**) देवयज्ञस्य गोत्रापत्यं स्त्री-दैवयज्ञ्या, दैवयज्ञी। (**शौचिवृक्षिः**) शौचिवृक्षेर्गोत्रापत्यं स्त्री-शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी। (**सात्यमुग्रिः**) सात्यमुग्रेर्गोत्रापत्यं स्त्री-सात्यमुग्र्या, सात्यमुग्री। (**काण्ठेविद्धिः**) काण्ठेविद्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री-काण्ठेविद्ध्या, काण्ठेविद्धी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दैवयज्ञि०काण्ठेविद्धिभ्यः) दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि, काण्ठेविद्धि, प्रातिपदिकों से (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ष्यङ्) ष्यङ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दैवयज्ञिः) देवयज्ञस्य गोत्रापत्यं स्त्री-दैवयज्ञ्या, **दैवयज्ञी**। देवयज्ञ की पौत्री। (शौचिवृक्षिः) शौचिवृक्षेर्गोत्रापत्यं स्त्री-शौचिवृक्ष्या, **शौचिवृक्षी**। शुचिवृक्ष की पौत्री। (सात्यमुग्रिः) सात्यमुग्रेर्गोत्रापत्यं स्त्री-सात्यमुग्र्या, **सात्यमुग्री**। सत्यमुग्र की पौत्री। (काण्ठेविद्धिः) काण्ठेविद्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री-काण्ठेविद्ध्या, **काण्ठेविद्धी**। कण्ठेविद्ध की पौत्री।*

*सिद्धि-(१) **दैवयज्ञ्या**। देवयज्ञ+इञ्। दैवयज्ञि। दैवयज्ञि+ष्यङ्। दैवयज्ञ्य+चाप्। दैवयज्ञ्या+सु। दैवयज्ञ्या।*

*यहां प्रथम 'देवयज्ञ' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय है, तत्पश्चात् 'दैवयज्ञि' शब्द से इस सूत्र से 'ष्यङ्' प्रत्यय होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से इकार का लोप होता है। **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है।*

*(२) **दैवयज्ञी**। दैवयज्ञि+ङीष्। दैवयज्ञ+ई। दैवयज्ञी+सु। दैवयज्ञी।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'इतो मनुष्यजातेः'** (४।१।६५) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी** आदि।*

विशेष-*अत्र पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः प्राह-देवा यज्ञा यष्टव्या अस्य देवयज्ञः, शुचिर्वृक्षोऽस्य शुचिवृक्षः, सत्यमुग्रमस्य सत्यमुग्रः, निपतनाद् विशेष्यस्य पूर्वनिपातो मुमागमश्च, कण्ठे विद्धमस्य, कण्ठे वा विद्धः **'अमूर्द्धमस्तकात्०'** (६।३।१२) इत्यलुक्।*

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्।

तद्धितप्रत्ययविकल्पाधिकारः

(१) समर्थानां प्रथमाद् वा।८२।

प०वि०-समर्थानाम् ६ ।३ प्रथमात् ५ ।१ वा अव्ययपदम्।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्यमाणास्तद्धितप्रत्ययाः समर्थानां मध्ये यः प्रथमः (सूत्रपाठे यः प्रथमोच्चारितः) तस्माद् विकल्पेन भवन्तीत्यधिकारोऽयम् **'प्राग्दिशो विभक्तिः'** (५ ।३ ।१) इति यावत्। यथा **'तस्यापत्यम्'** (४ ।१ ।९२) इत्यत्र 'तस्य' अपत्यम् इति द्वयमपि समर्थम्, परं 'तस्य' इति सूत्रपाठे प्रथममुच्चारितमतः षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकादेव प्रत्ययो विधीयते, नापत्यशब्दात्। उपगोरपत्यमौपगव इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले तद्धित प्रत्यय (समर्थानां प्रथमाद् वा) जो पद समर्थ-पदों में प्रथम अर्थात् सूत्रपाठ में प्रथमोच्चारित है, उससे विकल्प से होते हैं, यह 'प्राग्दिशो विभक्तिः' (५ ।३ ।१) तक अधिकार है। जैसे- 'तस्यापत्यम्' (४ ।१ ।९२) यहां 'तस्य' और 'अपत्यम्' ये दो समर्थ पद हैं, परन्तु इन दोनों में 'तस्य' यह पद सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित है, अतः तस्य=षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से ही प्रत्ययविधि होती है, अपत्य शब्द से नहीं। 'वा' कथन से विकल्प पक्ष में वाक्य भी बना रहता है। जैसे-उपगोरपत्यम्-औपगवः, इत्यादि।*

प्राग्दीव्यतीयाण्प्रत्ययाधिकारः

अण्-

(१) प्राग्दीव्यतोऽण्।८३।

प०वि०-प्राक् १ ।१ दीव्यतः ५ ।१ अण् १ ।१।

अर्थः-दीव्यतः=**'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४ ।४ ।२) इत्यस्मात् प्राक्=पूर्वम् अण् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-**'तस्यापत्यम्'** (४ ।१ ।९२) इति। तत्राण् प्रत्ययो भवति-उपगोरपत्यम्-औपगवः। कपटोरपत्यम्-कापटव इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(दीव्यतः) तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४ ।४ ।२) इस सूत्र से (प्राक्) पहले-पहले (अण्) अण् प्रत्यय होता है, अपवाद विषय को छोड़कर,*

यह अधिकार सूत्र है। जैसे- ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) यहां इस अधिकार सूत्र से अपत्य अर्थ में प्रथम समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।* ***उपगोरपत्यम्-औपगवः।*** *उपगु का पुत्र।* ***कपटोरपत्यम्-कापटवः।*** *कपटु का पुत्र इत्यादि।*

अण्–

(२) अश्वपत्यादिभ्यश्च।८४।

प०वि०–अश्वपति-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–अश्वपतिरादिर्येषां ते–अश्वपत्यादयः, तेभ्यः अश्वपतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–प्राग्दीव्यतः, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अश्वपत्यादिभ्यश्च प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः–अश्वपत्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतम्। शतपतेरपत्यम्-शातपतम्, इत्यादिकम्।

अश्वपति। शतपति। धनपति। गणपति। राष्ट्रपति। कुलपति। गृहपति। धान्यपति। पशुपति। धर्मपति। सभापति। प्राणपति। क्षेत्रपति। स्थानपति। यज्ञपति। धन्वपति। अधिपति। बन्धुपति। इत्यश्वपत्यादयः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अश्वपत्यादिभ्यः) अश्वपति आदि प्रातिपदिकों से (प्राग्-दीव्यतः) पूर्वदीव्यतीय अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०– ***अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतम्।*** *अश्वपति का पुत्र-आश्वपतः।* ***शतपतेरपत्यम्- शातपतम्।*** *शतपति का पुत्र-शातपत, इत्यादि।*

सिद्धि–आश्वपतम्। *अश्वपति+अण्। आश्वपत्+अ। आश्वपत+सु। आश्वपतम्।*

यहां 'अश्वपति' शब्द से ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से प्राग्दीव्यतीय अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-* ***शातपतम्*** *आदि। यहां* ***'दित्यदितिपत्युत्तरपदाण्ण्यः'*** *(४।१।८५) से 'ण्य' प्रत्यय प्राप्त था, यह सूत्र उसका पूर्व अपवाद है।*

ण्यः–

(३) दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ।८५।

प०वि०–दिति-अदिति-आदित्य-पत्युत्तरपदात् ५ ।१ ण्यः १ ।१ ।

स०–पतिरुत्तरपदं यस्य तत्-पत्युत्तरपदम्। दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च प्रत्युत्तरपदं च एतेषां समाहारः-दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदम्, तस्मात्-दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् प्राग्दीव्यतो ण्यः।

अर्थः-दित्यदित्यादित्येभ्यः प्रत्युत्तरपदेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**दितिः**) दितेरपत्यम्-दैत्यः। (**अदितिः**) अदितेरपत्यम्-आदित्यः। (**आदित्यः**) आदित्यस्यापत्यम्-आदित्यः। (**पत्युत्तरपदम्**) प्रजापतेरपत्यम्-प्राजापत्यम्। सेनापतेरपत्यम्-सैनापत्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ- (दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात्) दिति, अदिति, आदित्य और पति-उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से (प्राग्दीव्यतः) पूर्व-दीव्यतीय अर्थों में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दितिः) **दितेरपत्यम्-दैत्यः।** दिति का पुत्र राक्षस। दिति दक्ष की पुत्री थी, जो कश्यप को ब्याही थी, यह दैत्यों की माता थी। (अदितिः) **अदितेरपत्यम्-आदित्यः।** अदिति का पुत्र देवता। देवताओं की माता का नाम अदिति है। (आदित्यः) **आदित्यस्यापत्यम्-आदित्यः।** आदित्य=देवता का पुत्र। धाता, मित्र अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु ये १२ आदित्य कहाते हैं। (पत्युत्तरपदम्) **प्रजापतेरपत्यम्-प्राजापत्यम्।** प्रजापति=ब्रह्मा का पुत्र, विराट्। विराट् का मनु और मनु के मरीचि आदि दश पुत्र थे। **सेनापतेरपत्यम्-सैनापत्यम्।** सेनापति का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **दैत्यः।** दिति+ण्य। दैत्+य। दैत्य+सु। दैत्यः।*

*यहां 'दिति' शब्द से प्राग्दीव्यतीय अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११६) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **आदित्यः।** अदिति+ण्य। आदित्यः। पूर्ववत्।*

(३) आदित्यः । आदित्य+ण्य । आदित्यः । पूर्ववत् ।

*यहां 'हलो यमां यमि लोपः' (८।४।६३) से पूर्व-यकार का विकल्प से लोप होता है. विकल्प पक्ष में दो यकार भी रहते हैं-**आदित्यः ।***

*(४) **प्राजापत्यम् ।** प्रजापति+ण्य । प्राजापत्य+सु । प्राजापत्यम् । पूर्ववत् । ऐसे ही-**सैनापत्यम् ।***

अञ्-

(४) उत्सादिभ्योऽञ् ।८६।

प०वि०-उत्सादिभ्यः ५ ।३ अञ् १ ।१ ।

स०-उत्स आदिर्येषां ते-उत्सादयः, तेभ्यः-उत्सादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-उत्सादिभ्यः प्राग् दीव्यतोऽञ् ।

अर्थः-उत्सादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-उत्सस्यापत्यम्-औत्सः । उदपानस्यापत्यम्-औदपानः, इत्यादिकम् ।

उत्स । उपदान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तलुन । वष्कयासे । धेनु । पृथिवि । पंक्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् । जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे । पृष, दंशे भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु । कुरु । पञ्चाल । इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव ग्रीष्मादच्छन्दसि । इत्युत्सादयः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उत्सादिभ्यः) उत्स आदि प्रातिपदिकों से (प्राग्दीव्यतः) पूर्व-दीव्यतीय अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है ।*

*उदा०-**उत्से जातः-औत्सः ।** उत्स=स्रोत में पैदा हुआ । **उदपाने जातः-औदपानः ।** उदपान=कूप समीपवर्ती होद में उत्पन्न हुआ ।*

यहां प्राग्दीव्यतीय अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है अतः अपत्य आदि यथासम्भव अर्थ ग्रहण किये जाते हैं, ऐसा सर्वत्र समझें ।

***सिद्धि-औत्सः ।** उत्स+अञ् । औत्स्+अ । औत्स+सु । औत्सः ।*

*यहां 'उत्स' शब्द से प्राग्दीव्यतीय 'तत्र जातः' (४।३।२५) से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।११७) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औदपानः** आदि।*

नञ्+स्नञ्–

(५) स्त्रीपुसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्।८७।

प०वि०-स्त्री-पुंसाभ्याम् ५।२ नञ्-स्नञौ १।२ भवनात् ५।१।

स०-स्त्री च पुमाँश्च तौ-स्त्रीपुंसौ, ताभ्याम्-स्त्रीपुंसाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। नञ् च स्नञ् च तौ-नञस्नञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राग् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्त्रीपुंसाभ्यां प्राग् भवनाद् नञ्स्नञौ।

अर्थः-स्त्रीपुंसाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्राग्भवनीयेष्वर्थेषु यथासंख्यं नञ्स्नञौ प्रत्ययौ भवतः। **'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्'** (५।२।१) इत्यस्मात् प्राक् येऽर्थास्तत्रायं विधिर्वेदितव्यः। **उदाहरणम्-**

	प्रातिपदिकम्	नञ्+स्नञ्	भाषार्थः
१.	स्त्री	१ स्त्रीषु भवम्=स्त्रैणम्	स्त्रियों में होनेवाला कार्य।
२.	पुमान्	पुंसु भवम्=पौंस्नम्।	पुरुषों में होनेवाले कार्य।
१.	स्त्री	स्त्रीणां समूहः=स्त्रैणम्	स्त्रियों का समूह।
२.	पुमान्	पुंसां समूहः=पौंस्नम्	पुरुषों का समूह।
१.	स्त्री	स्त्रीभ्यो हितम्=स्त्रैणम्	स्त्रियों के लिये हितकारी।
२.	पुमान्	पुंभ्यो हितम्=पौंस्नम्	पुरुषों के लिये हितकारी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(स्त्रीपुंसाभ्याम्) स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से (प्राग् भवनात्) प्राग्भवनीय अर्थों में यथासंख्य (नञ्स्नञौ) नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृत भाग में देख लेवें।

***सिद्धि-(१) स्त्रैणम्।** स्त्री+नञ्। स्त्रै+न। स्त्रैण+सु। स्त्रैणम्।*

*यहां 'स्त्री' प्रादिपदिक से प्राग्-भवनीय- **'तत्र भवः'** (४।३।५३) से भव-अर्थ में, **'तस्य समूहः'** (४।२।३६) से समूह अर्थ में और **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) से हित अर्थ*

में इस सूत्र से 'नञ्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

*(२) **पौंस्नम्।** पुंस्+स्नञ्। पौं+स्न। पौंस्न+सु। पौंस्नम्।*

यहां 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से पुंस् के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

प्रत्ययस्य लुक्–

(६) द्विगोर्लुगनपत्ये।८८।

प०वि०–द्विगोः ५।१ लुक् १।१ अनपत्ये ७।१।

स०–न अपत्यमिति अनपत्यम्, तस्मिन्–अनपत्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्विगोः प्राग् दीव्यतो लुग् अनपत्ये।

अर्थः–द्विगुसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, अपत्येऽर्थे तु न भवति।

उदा०–पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः–पञ्चकपालः, दशकपालः। द्वौ वेदावधीते इति द्विवेदः, त्रिवेदः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(द्विगोः) द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित (प्राग् दीव्यतः) पूर्व-दीव्यतीय प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (अनपत्ये) अपत्य अर्थ में तो नहीं होता है।*

*उदा०–**पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः–पञ्चकपालः।** पांच शरावों में शुद्ध किया हुआ पुरोडाश। **दशकपालः।** दश शरावों में शुद्ध किया हुआ पुरोडाश। **द्वौ वेदावधीते–द्विवेदः।** दो वेदों का अध्ययन करनेवाला। **त्रिवेदः।** तीन वेदों का अध्ययन करनेवाला।*

*सिद्धि–(१) **पञ्चकपालः।** पञ्चकपाल+अण्। पञ्चकपाल+०। पञ्चकपाल+सु। पञ्चकपालः।*

*यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से तद्धितार्थ में तत्पुरुष समास, 'संख्यापूर्वो द्विगुः' (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा, 'संस्कृतं भक्षाः' (४।२।१५) से 'अण्' प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही–**दशकपालः।***

*(२) **द्विवेदः।** द्विवेदः+अण्। द्विवेद+०। द्विवेदः+सु। द्विवेदः।*

यहां 'तदधीते तद् वेद' (४।२।५८) से अण् प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही–त्रिवेदः।

प्रत्ययस्य-अलुक्–

(७) गोत्रेऽलुगचि।८६।

प०वि०–गोत्रे ७।१ अलुक् १।१ अचि ७।१।

स०–न लुक् इति अलुक् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्राग्, दीव्यत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रातिपदिकाद् गोत्रेऽलुक् प्राग्दीव्यतोऽचि।

अर्थः–प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्यालुग् भवति, प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०–गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, गार्ग्यस्येमे छात्रा इति–गार्गीयाः, वात्सीयाः। अत्रेर्गोत्रापत्यम्–आत्रेयः, आत्रेयस्येमे छात्रा इति आत्रेयीयाः। खरपस्य गोत्रापत्यं खारपायणः, खारपायणस्येमे छात्रा इति खारपायणीयाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (अलुक्) लुक् नहीं होता है, (प्राग्दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०–गर्गस्य **गोत्रापत्यं गार्ग्यः, गार्ग्यस्येमे** छात्रा इति–**गार्गीयाः।** गर्ग का पौत्र गार्ग्य और गार्ग्य के छात्र 'गार्गीयाः' कहाते हैं। ऐसे ही–**वात्सीयाः। अत्रेर्गोत्रापत्यम्–आत्रेयः, आत्रेयस्येमे** छात्रा इति **आत्रेयीयाः।** अत्रि का पौत्र आत्रेय और आत्रेय के छात्र **'आत्रेयीयाः'** कहाते हैं। **खरपस्य गोत्रापत्यम्–खारपायणः, खारपायणस्येमे छात्रा इति खारपायणीयाः।** खरप का पौत्र खारपायण और खारपायण के छात्र **'खारपायणीयाः'** कहाते हैं।*

*सिद्धि–(१) **गार्गीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+छः। गार्ग्य्+ईय। गार्गीय+जस्। गार्गीयाः।*

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।११५) से 'यञ्' प्रत्यय है, तत्पश्चात् 'गार्ग्य' प्रातिपदिक से **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११३) से प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' (ईय) प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अजादि प्रत्यय के परे होने पर गोत्रापत्य अर्थ में विहित 'यञ्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। **'यञिञोश्च'** से 'यञ्' का लुक् प्राप्त था, इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। यहां **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वात्सीयाः।***

*(२) **आत्रेयीयाः।** अत्रि+ढक्। आत्र्+एय। आत्रेय। आत्रेय+छ। आत्रेय्+ईय। आत्रेयीय+जस्। आत्रेयीयाः।*

यहां 'अत्रि' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'इतश्चानिञः' (४।१।१२२) से 'ढक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् नहीं होता है। 'अत्रिभृगु०' (२।४।६५) से लुक् प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **खारपायणीयाः।** खरप+फक्। खारप्+आयन। खारपायण। खारपायण+छ। खारपायण्+ईय। खारपायणीय+जस्। खारपायणीयाः।*

*यहां 'खरप्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**नडादिभ्यः फक्**' (४।१।९९) से 'फक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् नहीं होता है। '**यस्कादिभ्यो गोत्रे**' (२।४।६३) से लुक् प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(८) यूनि लुक्।६०।

प०वि०-यूनि ७।१ लुक् १।१।

अनु०-प्राग्, दीव्यतः, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकाद् यूनि लुक् प्राग् दीव्यतोऽचि।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-फाण्टाहृतस्यापत्यम्-फाण्टाहृतिः, फाण्टाहृतेर्युवापत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतस्येमे छात्रा इति-फाण्टाहृताः। भागवित्तस्यापत्यम्-भागवित्तिः, भागवित्तेर्युवापत्यम्-भागवित्तिकः, भागवित्तिकस्येमे छात्रा इति-भागवित्ताः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है। (प्राग्दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०-**फाण्टाहृतस्यापत्यम्-फाण्टाहृतिः, फाण्टाहृतेर्युवापत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतस्येमे** छात्रा इति-**फाण्टाहृताः।** फाण्टाहृत का पुत्र 'फाण्टाहृति' कहाता है। फाण्टाहृति का युवापत्य 'फाण्टाहृतः' कहाता है और 'फाण्टाहृत' के छात्र 'फाण्टाहृताः' कहाते हैं। **भागवित्तस्यापत्यम्-भागवित्तिः, भागवित्तेर्युवापत्यम्-भागवित्तिकः, भागवित्तिकस्येमे** छात्रा इति-**भागवित्ताः।** भागवित्त का पुत्र 'भागवित्तिः' कहाता है। भागवित्ति का युवापत्य 'भागवित्तिक' कहाता है। 'भागवित्तिक' के छात्र 'भागवित्ताः' कहाते हैं।*

सिद्धि-(१) फाण्टाहृताः । फाण्टाहृत+इञ् । फाण्टाहृति । फाण्टाहृति+ण । फाण्टाहृति+० । फाण्टाहृति+अण् । फाण्टाहृत्+अ । फाण्टाहृत+जस् । फाण्टाहृताः ।

*यहां प्रथम 'फाण्टाहृत' शब्द से अपत्य अर्थ **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है। 'फाण्टाहृति' से युवापत्य अर्थ में **'फाटाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ'** (४।१।१५०) से 'ण' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य अर्थ में विहित 'ण' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् शेष 'फाण्टाहृति' प्रातिपदिक से **'इञश्च'** (४।२।१११) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है।*

(२) भागवित्ताः । भागवित्त+इञ् । भागवित्ति । भागवित्ति+ठक् । भागवित्ति+० । भागवित्ति+अण् । भागवित्त्+अ । भागवित्त+जस् । भागवित्ताः ।

*यहां युवापत्य अर्थ में **'वृद्धाद् ठक् सौवीरेषु बहुलम्'** (४।१।१४८) से ठक् प्रत्यय और युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से उसका लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रत्ययस्य लुग्विकल्पः-

(६) फक्फिञोरन्यतरस्याम् ।६१।

प०वि०-फक्फिञोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

स०-प्राग्, दीव्यतः, अचि, यूनि, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकात् यूनि फक्फिञोरन्यतरस्यां लुक्, प्राग्-दीव्यतोऽचि ।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् युवापत्येऽर्थे विहितयोः फक्फिञोर्विकल्पेन लुग् भवति, प्राग्दीव्यतीयेऽजादौ प्रत्यये परतः ।

उदा०-(फक्) गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः । गार्ग्यायणस्येमे छात्रा इति गार्गीयाः, गार्ग्यायणीया वा । वात्स्याः, वात्स्यायनीया वा । **(फिञ्)** यस्कस्यापत्यम्-यास्कः । यास्कस्य युवापत्यम्-यास्कायनिः । यास्कायनेरिमे छात्रा इति-यास्कीयाः, यास्कायनीया वा ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (यूनि) युवापत्य अर्थ में विहित (फक्फिञोः) फक् और फिञ् प्रत्ययों का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुक्) लुक् होता है (प्राग् दीव्यतः) यदि प्राग्दीव्यतीय (अचि) अजादि प्रत्यय परे हो।*

*उदा०-(फक्) **गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः । गार्ग्यायणस्येमे छात्रा इति गार्गीयाः, गार्ग्यायणीया वा ।** गर्ग का पौत्र गार्ग्य कहाता है। गार्ग्य का युवापत्य गार्ग्यायण कहाता है। गार्ग्यायण के छात्र 'गार्गीयाः' अथवा 'गार्ग्यायणीयाः'*

*कहाते हैं। (फिञ्) **यस्कस्यापत्यम्-यास्कः। यास्कस्य युवापत्यम्-यास्कायनिः। यास्कायनेरिमे छात्रा इति-यास्कीयाः, यास्कायनीया वा।** यस्क का पुत्र 'यास्कः' कहाता है। यास्क का युवापत्य 'यास्कायनि' कहाता है। यास्कायनि के छात्र 'यास्कीयाः' अथवा 'यास्कायनीयाः' कहाते हैं।*

*सिद्धि-**गार्गीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्य+०। गार्ग्य+छ। गार्ग्+ईय। गार्गीय+जस्। गार्गीयाः।*

*यहां गर्ग शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ् प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' (ईय) प्रत्यय करने पर युवापत्य अर्थ में विहित 'फक्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।*

*(२) **गार्ग्यायणीयाः।** गर्ग+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्+आयन। गार्ग्यायण। गार्ग्यायण+छ। गार्ग्यायण्+ईय। गार्ग्यायणीय+जस्। गार्ग्यायणीयाः।*

यहां विकल्प पक्ष में युवापत्य अर्थ में विहित 'फक्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **यास्कीयाः।** यस्क+अण्। यास्क। यास्क+फिञ्। यास्क+०। यास्कीय+जस्। यास्कीयाः।*

*यहां 'यस्क' शब्द से अपत्य अर्थ में **'शिवादिभ्योऽण्'** (४।१।११२) से 'अण्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'यास्क' शब्द से युवापत्य अर्थ में **'अणो द्व्यचः'** (४।१।१५६) से 'फिञ्' प्रत्यय है। उससे प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य अर्थ में विहित 'फिञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।*

*(४) **यास्कायनीयाः।** यस्क+अण्। यास्क। यास्क+फिञ्। यास्क्+आयनि। यास्कायनि। यास्कायनि+छ। यास्कयिन्+ईय। यास्कायनीय+जस्। यास्कायनीयाः।*

यहां विकल्प पक्ष में युवापत्य अर्थ में विहित 'फिञ्' प्रत्यय का प्राग्दीव्यतीय अजादि 'छ' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से लुक् नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अपत्यार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्यापत्यम्।६२।

प०वि०-तस्य ६।१ अपत्यम् १।१।

अनु०-समर्थानां, प्रथमाद् वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समर्थानां प्रथमात् तस्य अपत्यं वा यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितात् तस्य इति षष्ठी-समर्थात् प्रातिपदिकात् **'अपत्यम्'** इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

उदा०-उपगोरपत्यम्-औपगवः । अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतः । दितेरपत्यम्-दैत्यः । उत्सस्यापत्यम्-औत्सः । स्त्रिया अपत्यम्-स्त्रैणः । पुंसोऽपत्यम्-पौस्नः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**उपगोरपत्यम्-औपगवः।** उपगु का पुत्र-औपगव। **अश्वपतेरपत्यम्-आश्वपतः।** अश्वपति का पुत्र-आश्वपत। **दितेरपत्यम्-दैत्यः।** दिति का पुत्र-दैत्य। **उत्सस्यापत्यम्-औत्सः।** उत्स का पुत्र-औत्स। **स्त्रिया अपत्यम्-स्त्रैणः।** स्त्री का पुत्र-स्त्रैण। स्त्री के नाम से प्रसिद्ध। **पुंसोऽपत्यम्-पौस्नः।** पुमान् का पुत्र-पौंस्न। पुरुष के नाम से प्रसिद्ध।*

*सिद्धि-(१) **औपगवः।** उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव+सु। औपगवः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'प्राग् दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

*(२) **आश्वपतम्।** अश्वपति+ङस्+अण्। आश्वपतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्वपति' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'अश्वपत्यादिभ्यश्च'** (४।१।८४) से यथाविहित अण् प्रत्यय है।*

*(३) **दैत्यः।** दिति+ङस्+ण्य। दैत्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'दिति' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'दित्यदित्या०'** (४।१।८५) से यथाविहित 'ण्य' प्रत्यय है।*

*(४) **औत्सः।** उत्स+ङस्+अञ्। औत्सः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उत्स' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में **'उत्सादिभ्योऽञ्'** (४।१।८६) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय है।*

*(५) **स्त्रैणः।** स्त्री+ङस्+नञ्। स्त्रैणः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ स्त्री शब्द से अपत्य अर्थ में **'स्त्रीपुंसाभ्यां०'** (४।१।८७) से यथाविहित 'नञ्' प्रत्यय है।*

*(६) **पौस्नः।** पुंस्+स्नञ्। पौंस्नः। पूर्ववत् 'स्नञ्' प्रत्यय है।*

एकप्रत्ययनियमः–

(२) एको गोत्रे।६३।

प०वि०-एकः १।१ गोत्रे ७।१।

अनु०-प्रातिपदिकाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकाद् गोत्रे एकः प्रत्ययः।

अर्थः-प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे एक एव प्रत्ययो भवति।

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्गिः। गार्गेरपत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यः। सर्वस्मिन् व्यवहितजनितेऽपि गोत्रापत्ये गर्गशब्दाद् यञेव प्रत्ययो भवतीति प्रत्ययो नियम्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में (एकः) एक ही प्रत्यय होता है।*

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्गिः। गार्गेरपत्यम्-गार्ग्यः। गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यः। गर्ग का पुत्र 'गार्गिः' कहाता है। गार्गि का पुत्र 'गार्ग्य' कहाता है। गोत्रापत्य की विवक्षा में 'गर्ग' शब्द से एक 'यञ्' ही प्रत्यय होता है और वह 'गार्ग्य' कहाता है। इस प्रकार प्रत्यय का नियमन किया गया है। ***गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः।*** *गर्ग का पौत्र-गार्ग्य। वत्स का पौत्र-वात्स्य।*

सिद्धि-गार्ग्यः। गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द गोत्रापत्य अर्थ में ***'गर्गादिभ्यो यञ्'*** *(४।१।१०५) से विहित 'यञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से यह नियम किया गया है कि एक ही प्रत्यय होता है। ऐसे ही-वत्स शब्द से-वात्स्यः।*

युवापत्ये प्रत्ययनियमः–

(३) गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्।६४।

प०वि०-गोत्रात् ५।१ यूनि ७।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०-न स्त्रीति अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-यूनि गोत्राद् यथाविहितं प्रत्ययोऽस्त्रियाम्।

अर्थः-युवापत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति, स्त्रियां तु न भवति।

उदा०–गर्गस्य गोत्रापत्यम्–गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्–गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः। उपगोर्गोत्रापत्यम्–औपगवः। औपगवस्य युवापत्यम्–औपगविः। नडस्य गोत्रापत्यम्–नाडायनः। नाडायनस्य युवापत्यम्–नाडायनिः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(यूनि) युवापत्य की विवक्षा में (गोत्रात्) गोत्र-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ही यथाविहित प्रत्यय होता है (अस्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में तो नहीं होता।*

*उदा०–**गर्गस्य गोत्रापत्यम्–गार्ग्यः। गार्ग्यस्य युवापत्यम्**–गार्ग्यायणः। गर्ग का पौत्र गार्ग्य कहाता है और गार्ग्य का युवापत्य गार्ग्यायण कहाता है। **उपगोर्गोत्रापत्यम्–औपगवः। औपगवस्य युवापत्यम्–औपगविः।** उपगु का पौत्र 'औपगवः' कहाता है और औपगव का युवापत्य 'औपगविः' कहाता है। **नडस्य गोत्रापत्यम्–नाडायनः। नाडायनस्य युवापत्यम्–नाडायनिः।** नड का पौत्र 'नाडायन' कहाता है और नाडायन का युवापत्य 'नाडायनिः' कहाता है।*

सिद्धि–(१) गार्ग्यायणः। *गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्य+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य की विवक्षा में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है।*

(२) औपगविः। *उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव। औपगव+इञ्। औपगवि+सु। औपगविः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'औपगव' शब्द से युवापत्य की विवक्षा में **'अत इञ्'** (४।१।९२) से 'इञ्' प्रत्यय होता है।*

(३) नाडायनिः। *नड+ङस्+फक्। नाडायन। नाडायन+इञ्। नाडायनि+सु। नाडायनिः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'नड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से 'फक्' प्रत्यय और गोत्रप्रत्ययान्त 'नाडायन' शब्द से युवापत्य अर्थ में पूर्ववत् 'इञ्' प्रत्यय होता है।*

इञ्–

(४) अत इञ्।६५।

प०वि०–अतः ५।१ इञ् १।१।

अनु०–समर्थानाम्, प्रथमात्, वा, तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समर्थानां प्रथमात् तस्य अतोऽपत्यं वा इञ्।

अर्थः-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितात् तस्य इति षष्ठी-समर्थाद् अकारान्तात् प्रातिपदिकाद् 'अपत्यम्' इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन 'इञ्' प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षस्यापत्यम्-दाक्षिः, प्लाक्षिः। दशरथस्यापत्यम्-दाशरथिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्रपाठ में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**दक्षस्यापत्यम्-दाक्षिः।** दक्ष का पुत्र-दाक्षि। **प्लाक्षिः।** प्लक्ष का पुत्र-प्लाक्षि। **दशरथस्यापत्यम्-दाशरथिः।** दशरथ का पुत्र (राम)।*

सिद्धि-दाक्षिः। *दक्ष+ङस्+इञ्। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ अकारान्त 'दक्ष' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्लाक्षिः** आदि।*

इञ्—

(२) बाह्वादिभ्यश्च।९६।

प०वि०-बाह्वादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-बाहुरादिर्येषां ते-बाह्वादयः, तेभ्यः-बाह्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समर्थानाम्, प्रथमात् वा, तस्य, अपत्यम्, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समर्थानां प्रथमात् तस्य बाह्वादिभ्यश्चाऽपत्यं वा इञ्।

अर्थः-समर्थानां सूत्रे प्रथमोच्चारितेभ्यः 'तस्य' इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बाह्वादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन इञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बाहोरपत्यम्-बाहविः। उपबाहोरपत्यम्-औपबाहविः, इत्यादिकम्।

बाहु। उपबाहु। विवाकु। शिवाकु। बटाकु। उपबिन्दु। बृक। चूडाला। मूषिका। बलाका। भगला। छगला। ध्रुवका। ध्रुवका। सुमित्रा। दुर्मित्रा। पुष्करसत्। अनुहरत्। देवशर्मन्। अग्निशर्मन्। कुनामन्। सुनामन्। पञ्चन्। सप्तन्। अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च। उदञ्चु। शिरस्।

शराविन्। क्षेमवृद्धिन्। शङ्खलातोदिन्। खरनादिन्। नगरमर्दिन्। प्राकारमर्दिन्। लोमन्। अजीगर्त्त। कृष्ण। सलक। युधिष्ठिर। अर्जुन। साम्ब। गद। प्रद्युम्न। राम। उदङ्कः संज्ञायाम्। सम्भूयोऽम्भसोः सलोपश्च। इति बाह्वादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समर्थानाम्) समर्थ पदों में (प्रथमात्) सूत्र में प्रथम उच्चारित (तस्य) षष्ठी-समर्थ (बाह्वादिभ्यः) बाहु-आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बाहोरपत्यम्-बाहविः। बाहु का पुत्र-बाहवि। उपबाहोरपत्यम्-औपबाहविः। उपबाहु का पुत्र-औपबाहवि, इत्यादि।

सिद्धि-(१) *बाहविः। बाहु+ङस्+इञ्। बाहो+इ। बाहवि+सु। बाहविः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'बाहु' शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण, 'एचोऽयवायावः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-औपबाहविः।

विशेषः *अनुवृत्तिः- 'समर्थानां प्रथमाद् वा' (४।१।८२) की अनुवृत्ति 'प्राग् दिशो विभक्तिः' (५।३।१) तक है। यहां उसकी सूत्रार्थ के साथ संगति लगाकर दिखाई गई है। 'वा' वचन से विकल्प पक्ष में वाक्य भी होता है। लाघव के स्नेह से और विस्तार के भय से इसकी प्रत्येक सूत्रार्थ में अनुवृत्ति नहीं दिखाई जायेगी।*

इञ् (अकङ्)–

सुधातुरकङ् च।६७।

प०वि०-सुधातुः ५।१ अकङ् १।१। च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सुधातुः अपत्यम् इञ् अकङ् च।

अर्थः-'तस्य' इति षष्ठीसमर्थात् सुधातृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन चाकङ् आदेशो भवति।

उदा०-सुधातुरपत्यम्-सौधातकिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सुधातुः) सधातृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है और उसके सन्नियोग से 'सुधातृ' शब्द को अकङ् आदेश होता है।*

उदा०-सुधातुरपत्यम्-सौधातकिः । सुधाता का पुत्र-सौधातकि।

सिद्धि-सौधातकिः । सुधातृ+ङस्+इञ् । सुधात्अकङ्+इ। सौधात्अक्+इ। सौधातकि+सु। सौधातकिः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'सुधातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय और 'अकङ्' आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

गोत्रापत्यप्रकरणम्

च्फञ्–

(१) गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्।६८।

प०वि०-गोत्रे ७।१ कुञ्जादिभ्यः ५।३ च्फञ् १।१।

स०-कुञ्ज आदिर्येषां ते-कुञ्जादयः, तेभ्यः-कुञ्जादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुञ्जादिभ्यो गोत्रे च्फञ्।

अर्थः-'तस्य' इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे च्फञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्-कौञ्जायन्यः।। कौञ्जायन्यः। कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनाः। ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्-ब्राध्नायन्यः।। ब्राध्नायन्यः। ब्राध्नायन्यौ। ब्राध्नायनाः, इत्यादिकम्।

कुञ्ज। ब्रध्न। शङ्ख। भस्मन्। गण। लोमन्। शठ। शाक। शाकट। शुण्डा। शुभ। विपाश। स्कन्द। स्कम्भ। शुम्भा। शिव। शुभया। इति कुञ्जादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुञ्जादिभ्यः) कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (च्फञ्) च्फञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्-कौञ्जायन्यः। कुञ्ज का पौत्र-कौञ्जायन्य। ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्-ब्राध्नायन्यः। ब्रध्न का पौत्र-ब्राध्नायन्य।

सिद्धि-कौञ्जायन्यः। कुञ्ज+ङस्+च्फञ्। कौञ्ज्+आयन। कौञ्जायन। कौञ्जायन+यञ्। कौञ्जायन्य+सु। कौञ्जायन्यः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'कुञ्ज' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। च्फञ् प्रत्ययान्त 'कौञ्जायन' शब्द से ***'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्'*** *(५।३।११३) से*

*स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है और उसकी 'ञ्यादयस्तद्राजाः' (२।३।११९) से तद्राजसंज्ञा होकर 'तद्राजस्य बहुषु०' (२।४।६२) से बहुवचन में लुक् हो जाता है-**कौजायनाः।** ऐसे ही-**ब्राध्नायन्यः**' आदि।*

फक्—

(१) नडादिभ्यः फक्।९९।

प०वि०-नडादिभ्यः ५।३ फक् १।१।

स०-नड आदिर्येषां ते-नडादयः, तेभ्यः-नडादिभ्यः।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य नडादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं फक्।

अर्थः-'तस्य' इति षष्ठी-समर्थेभ्यो नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः, चारायणः, इत्यादिकम्।

नड। चर। बक। मुञ्ज। इतिक। इतिश। उपक। लमक। 'शलंकु शलङ्कञ्च'। सप्तल। वाजप्य। तिक। 'अग्निशर्मन् वृषगणे'। प्राण। नर। सायक। दास। मित्र। द्वीप। पिङ्गर। पिङ्गल। किङ्कर। किङ्कल। कातर। कातल। काश्य। काश्यप। काव्य। अज। अमुष्य। 'कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः'। अमित्र। लिगु। चित्र। कुमार। क्रोष्टु क्रोष्टञ्च। लोह। दुर्ग। स्तम्भ। शिंशपा। अग्र। तृण। शकट। सुमनस्। सुमत। मिमत्। ऋक्। जत्। युगन्धर। हंसक। दण्डिन्। हस्तिन्। पञ्चाल। चमसिन्। सुकृत्य। स्थिरक। ब्राह्मण। चटक। बदर। अश्वक। खरप। कामुक। ब्रह्मदत्त। उदुम्बर। शोण। अलोह। दण्ड। एक। वानव्य। शावक। नाव्य। अन्वजत्। अन्तजन। इत्वरा। अंशक। अश्वला। अध्वर। दण्डप। इति नडादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (नडादिभ्यः) नड-आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः।** नड का पौत्र-नाडायन। **चारायणः।** चर का पौत्र-चारायण।*

सिद्धि-नाडायनः। नड+ङस्+फक्। नाड्+आयन। नाडायन+सु। नाडायनः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'नड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**चारायणः** आदि।*

फक्–

(२) हरितादिभ्योऽञः।१००।

प०वि०-हरितादिभ्यः ५।३ अञः ५।१।

स०-हरित आदिर्येषां ते-हरितादयः, तेभ्यः-हरितादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अञो हरितादिभ्योऽपत्यं, फक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽजन्तेभ्यो हरितादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-हरितस्य गोत्रापत्यम्-हारितः, हारितस्य युवापत्यम्-हारितायनः। किन्दासस्य गोत्रापत्यम्-कैन्दासः, कैन्दासस्य युवापत्यम्-कैन्दासायनः, इत्यादिकम्।

हरित। किन्दास। वह्यस्क। अर्कलूष। वध्योष। विष्णुवृद्ध। प्रतिबोध। रथन्तर। रथीतर। गविष्ठिर। निषाद। मठर। मृद। पुनर्भू। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। 'परस्त्री परशुं च'। इति बिदाद्यन्तर्गताः (४।१।१०४) हरितादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अञः) अञ्-प्रत्ययान्त (हरितादिभ्यः) हरित आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**हरितस्य गोत्रापत्यम्-हारितः, हारितस्य युवापत्यम्-हारितायनः।** हरित का पौत्र 'हारित' कहाता है और हारित का युवापत्य 'हारितायन' कहाता है। **किन्दासस्य गोत्रापत्यम्-कैन्दासः, कैन्दासस्य युवापत्यम्-कैन्दासायनः।** किन्दास का पौत्र 'कैन्दास' कहाता है और कैन्दास का युवापत्य 'कैन्दासायन' कहाता है, इत्यादि।*

*सिद्धि-**हारितायनः।** हरित+ङस्+अञ्। हारित। हारित+फक्। हारित्+आयन। हारितायन+सु। हारितायनः।*

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'हरित' शब्द से 'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्' (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। अञ्-प्रत्ययान्त 'हारित' शब्द से 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्'

*(४।१।९४) के नियम से इस सूत्र से युवापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**कैन्दासायनः** आदि।*

*विशेष-यहां प्रथम 'हरित' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय किया जाता है तत्पश्चात् अजन्त हारित शब्द से फक् प्रत्यय होता है। **'एको गोत्रे'** (४।१।९३) के नियम से गोत्रापत्य अर्थ में दो प्रत्यय नहीं हो सकते। अतः यहां 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति नहीं की जाती है। अतः 'फक्' प्रत्यय युवापत्य अर्थ में समझना चाहिये।*

फक्–

(३) यञिञोश्च।१०१।

प०वि०-यञिञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-यञ् च इञ् च तौ-यञिञौ, तयोः-यञिञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, गोत्रे यञिञोश्चापत्यं फक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रापत्येऽर्थे वर्तमानाद् यञन्ताद् इञन्ताच्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यञ्) गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः, गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। वत्स्यायनः। **(इञ्)** दक्षस्य गोत्रापत्यम्-दाक्षिः। दाक्षेर्युवापत्यम्-दाक्षायणः। प्लाक्षायणः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विद्यमान (यञिञोः) यञ्-प्रत्ययान्त और इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(यञ्) **गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः, गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः।** गर्ग का पौत्र 'गार्ग्यः' कहाता है और गार्ग्य का युवापत्य 'गार्ग्यायणः' कहाता है, ऐसे ही-वत्स्यायनः (इञ्) **दक्षस्य गोत्रापत्यम्-दाक्षिः। दाक्षेर्युवापत्यम्-दाक्षायणः।** दक्ष का पौत्र 'दाक्षि' कहाता है और दाक्षि का युवापत्य 'दाक्षायण' कहाता है। ऐसे ही-**प्लाक्षायणः।***

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यायणः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्य। गार्ग्य+फक्। गार्ग्+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् यञन्त 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वात्स्यायनः।***

(२) दाक्षायणः । दक्ष+ङस्+इञ् । दाक्षि । दाक्षि+फक् । दाक्ष्+आयन । दाक्षायण+सु । दाक्षायणः ।

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४ ।१ ।९५) से 'इञ्' प्रत्यय और तत्पश्चात् इञन्त 'दाक्षि' शब्द से युवापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय होता है। 'यस्येति च' (६ ।४ ।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।

*विशेष-यहां अनुवर्तमान 'गोत्रे' पद, 'यञिञोः' पद का विशेषण है। गोत्र प्रत्ययान्त यञन्त और इञन्त प्रातिपदिक से विहित 'फक्' प्रत्यय **'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्'** (४ ।१ ।९४) के नियम से युवापत्य अर्थ में होता है।*

फक्–

(४) शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ।१०२।

प०वि०–शरद्वत्-शुनक्-दर्भात् ५ ।१ भृगु-वत्स-आग्रायणेषु ७ ।३ ।

स०–शरद्वच्च शुनकश्च दर्भश्च एतेषां समाहारः–शरद्वच्छुन-कदर्भम्, तस्मात्–शरद्वच्छुनकदर्भात् (समाहारद्वन्द्वः) । भृगुश्च वत्सश्च आग्रायण च २गश्च ते–भृगुवत्साग्रायणाः, तेषु–भृगुवत्साग्रायणेषु (इतरेतरयोगद्वन्

अनु०–तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य शरदवच्छुनकदर्भाद् गोत्रे भृगुवत्साग्रायणेषु फक् ।

अर्थः–तस्य-इति षष्ठी-समर्थेभ्यः शरदवच्छुनकदर्भेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे यथासंख्यं भृगुवत्साग्रायणेष्वभिधेयेषु फक् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(शरद्वत्)** शरद्वतो गोत्रापत्यम्-शारद्वतायनो भार्गवः । **(शुनकः)** शुनकस्य गोत्रापत्यम्-शौनकायनो वात्स्यः । **(दर्भः)** दर्भस्य गोत्रापत्यम्-दार्भायण आग्रायणः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शरद्वत्०दर्भात्) शरद्वत्, शुनक, दर्भ प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में यथासंख्य (भृगु०आग्रायणेषु) भृगु, वत्स, आग्रायण अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(शरद्वत्) **शरद्वतो गोत्रापत्यम्-शारद्वतायनो भार्गवः ।** शरद्वान् का पौत्र शारद्वतायन भार्गव। (शुनक) **शुनकस्य गोत्रापत्यम्-शौनकायनो वात्स्यः ।** शुनक का पौत्र शौनकायन वात्स्य। (दर्भ) **दर्भस्य गोत्रापत्यम्-दार्भायण आग्रायणः ।** दर्भ का पौत्र दार्भायण आग्रायण।*

*सिद्धि-**शारद्वतायनः** । शरद्वत्+ङस्+फक् । शारद्वत्+आयन । शाद्वतायन+सु । शारद्वतायनः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शरद्वत्' प्रातिपदिक से गोत्रापत्य (भार्गव) अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शौनकायनः, दार्भायणः** ।*

फक्-विकल्पः--

(५) द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्।१०३।

प०वि०-द्रोण-पर्वत-जीवन्तात् ५ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

स०-द्रोणश्च पर्वतश्च जीवन्तश्च एतेषां समाहारः-द्रोणपर्वतजीवन्तम्, तस्मात्-द्रोणपर्वतजीवन्तात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फक् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य द्रोणपर्वतजीवन्ताद् गोत्रेऽपत्यम् अन्यतरस्यां फक् ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठी-समर्थेभ्यो द्रोणपर्वतजीवन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे विकल्पेन फक् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(द्रोणः) द्रोणस्य गोत्रापत्यम्-द्रौणायनः, द्रोणिर्वा । **(पर्वतः)** पर्वतस्य गोत्रापत्यम्-पार्वतायनः, पार्वतिर्वा । **(जीवन्तः)** जीवन्तस्य गोत्रापत्यम्-जीवन्तायनः, जैवन्तिर्वा ।

आर्यभाषा-अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोणपर्वतजीवन्तात्) द्रोण, पर्वत, जीवन्त प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (फक्) फक् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(द्रोण) **द्रोणस्य गोत्रापत्यम्-द्रौणायनः, द्रोणिर्वा** । द्रोण का पौत्र द्रोणायन अथवा द्रोणि कहाता है। (पर्वत) **पर्वतस्य गोत्रापत्यम्-पार्वतायनः, पार्वतिर्वा** । पर्वत का पौत्र पर्वतायन अथवा पार्वति कहाता है। (जीवन्त) **जीवन्तस्य गोत्रापत्यम्-जीवन्तायनः, जैवन्तिर्वा** । जैवन्तायन अथवा जैवन्ति कहाता है।*

*सिद्धि-(१) **द्रौणायनः** । द्रोण+ङस्+फक् । द्रौण्+आयन । द्रौणायन+सु । द्रौणायनः ।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रोण' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है।

*(२) **द्रौणिः** । द्रोण+ङस्+इञ् । द्रौणि+सु । द्रौणिः ।*

यहां विकल्प पक्ष में 'द्रोण' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है। यहां महाभारतकालीन द्रोण का कथन नहीं है, अपितु किसी प्राचीन द्रोण का निर्देश है।

*(३) **पार्वतायनः** । पर्वत+ङस्+फक् । पार्वतायन+सु । पार्वतायनः । पूर्ववत् ।*

*(४) **पार्वतिः** । पर्वत+ङस्+इञ् । पार्वतिः । पूर्ववत् ।*

*(५) **जैवन्तायनः** । जीवन्त+ङस्+फक् । जैवन्तायनः । पूर्ववत् ।*

*(६) **जैवन्तिः** । जीवन्त+इञ् । जैवन्तिः । पूर्ववत् ।*

अञ्–

(१) अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ।१०४।

प०वि०–अनृषि ५ ।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) आनन्तर्ये ७ ।१ बिदादिभ्यः ५ ।१ अञ् १ ।१ ।

स०–न ऋषिरिति अनृषिः (नञ्तत्पुरुषः) । अनन्तरस्य भाव आनन्तर्यम्, तस्मिन्–आनन्तर्ये (तद्धितः ष्यञ्) । बिद आदिर्येषां ते–बिदादयः, तेभ्यः–बिदादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य बिदादिभ्यो गोत्रेऽपत्यम् अञ्, अनृषिभ्य आनन्तर्येऽपत्यम्, अञ् ।

अर्थः–तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बिदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, अत्र ये चानृषिवाचिनः शब्दास्तेभ्योऽनन्तरापत्येऽर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(बिदादिः)** बिदस्य गोत्रापत्यम्–बैदः । उर्वस्य गोत्रापत्यम्–और्वः । **(अनृषिः)** पुत्रस्यानन्तरापत्यम्–पौत्रः । दुहितुरनन्तरापत्यम्–दौहित्रः ।

विद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋष्टिषेण । ऋषभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरद्वत् । शुनक । धेनु । गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यमाक । श्यापर्ण । हरित । किन्दास । वह्यस्क । अर्कलूष । बध्योष । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । मृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्दृ । 'परस्त्री, परशुं च' । किता । सम्बक । शावली । श्यायक । अलस । इति बिदादयः ।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (बिदादिभ्यः) बिद-आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और यहां बिदादिगण में जो (अनृषिः) अनृषिवाची शब्द पठित हैं उनसे (आनन्तर्ये, अपत्यम्) अनन्तरापत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(बिदादिः) बिदस्य गोत्रापत्यम्-बैदः।** बिद का पौत्र 'बैद' कहाता है। **उर्वस्य गोत्रापत्यम्-और्वः।** उर्व का पौत्र और्व कहाता है। **(अनृषिः) पुत्रस्यानन्तरापत्यम्-पौत्रः।** पुत्र का अनन्तरापत्य 'पौत्र' कहाता है। **दुहितुरनन्तरापत्यम्-दौहित्रः।** दुहिता (पुत्री) का पुत्र 'दौहित्र' कहाता है।*

*सिद्धि-(१) **बैदः।** बिद+ङस्+अञ्। बैद्+अ। बैद+सु। बैदः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ऋषिवाची 'बिद' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**और्वः।***

*(२) **पौत्रः।** पुत्र+ङस्+अञ्। पौत्र्+अ। पौत्र+सु। पौत्रः।*

यहां षष्ठी-समर्थ अनृषिवाची 'पुत्र' शब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

*(३) **दौहित्रः।** दुहितृ+ङस्+अञ्। दौहित्र+सु। दौहित्रः। पूर्ववत्।*

विशेषः *अपत्य-अनन्तरापत्य का अर्थ पुत्र, गोत्रापत्य का अर्थ पौत्र और युवापत्य का अर्थ प्रपौत्र है।*

यञ्-

(१) गर्गादिभ्यो यञ्।१०५।

प०वि०-गर्गादिभ्यः ५।३ यञ् १।१।

स०-गर्ग आदिर्येषां ते-गर्गादयः, तेभ्यः-गर्गादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, गर्गादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं यञ्।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गर्गादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः। वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः, इत्यादिकम्।

गर्ग। वत्स। वाजाऽसे। संकृति। अज। व्याघ्रपात्। विदभृत्। प्राचीनयोग। अगस्ति। पुलस्ति। रेभ। अग्निवेश। शङ्ख। शठ। धूम।

अवट । चमस । धनञ्जय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मक्षु । अलिंगु । शङ्क । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत । कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल । गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शाण्डिल । वण । कचुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित । संहित । अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चेकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पिप्पलु । वृहदग्नि । जमदग्नि । सुलोमिन् । उक्थ । कुटीगु । इति गर्गादयः ।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गर्गादिभ्यः) गर्ग आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**गर्गस्य गोत्रापत्यम्-गार्ग्यः।** गर्ग का पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। **वत्सस्य गोत्रापत्यम्-वात्स्यः।** वत्स का पौत्र 'वात्स्य' कहाता है, इत्यादि।*

*सिद्धि-**गार्ग्यः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वात्स्यः** आदि।*

यञ्-

(२) मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः।१०६।

प०वि०-मधु-बभ्र्वोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ब्राह्मणकौशिकयोः ७।२।

स०-मधुश्च बभ्रुश्च तौ मधबभ्रू, तयोः-मधुबभ्र्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ब्राह्मणश्च कौशिकश्च तौ ब्राह्मणकौशिकौ, तयोः-ब्राह्मणकौशिकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, मधुबभ्रुभ्यां गोत्रेऽपत्यं यञ्, ब्राह्मणकौशिकयोः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां मधुबभ्रुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं ब्राह्मणकौशिकयोरभिधेययोः।

उदा०-(मधुः) मधोर्गोत्रापत्यम्-माधव्यो ब्राह्मणः। बभ्रोर्गोत्रापत्यम्-बाभ्रव्यः कौशिकः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मधुबभ्रवोः) मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से (गोत्रे-अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है (ब्राह्मणकौशिकयोः) यदि वहां यथासंख्य ब्राह्मण और कौशिक अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(मधु) **मधोर्गोत्रापत्यम्-माधव्यो ब्राह्मणः।** मधु का पौत्र-माधव्य ब्राह्मण। **बभ्रोर्गोत्रापत्यम्-बाभ्रव्यः कौशिकः।** बभ्रु का पौत्र-बाभ्रव्य कौशिक।*

*सिद्धि-(१) **माधव्यः।** मधु+ङस्+यञ्। माधो+य। माधव्य+सु। माधव्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'मधु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र 'यञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि अंग को '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७६) से वान्त आदेश (अव्) होता है। ऐसे ही 'बभ्रु' शब्द से-**बाभ्रव्यः।***

विशेष- 'बभ्रु' शब्द गर्गादिगण में पठित हैं। उससे 'यञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है, किन्तु बभ्रु शब्द से कौशिक अर्थ में ही 'यञ्' प्रत्यय हो इस नियम के लिये यह कथन किया गया है। मधु और बभ्रु क्रमशः ब्राह्मण और कौशिक वंश के ऋषि हैं।

यञ्-

(३) कपिबोधादाङ्गिरसे।१०७।

प०वि०-कपि-बोधात् ५।१ आङ्गिरसे ७।१।

स०-कपिश्च बोधश्च एतयोः समाहारः-कपिबोधम्, तस्मात्-कपिबोधात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्।

अन्वयः-तस्य कपिबोधाद् गोत्रेऽपत्यं यञ् आङ्गिरसे।

अर्थः-तस्य-इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिबोधाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, आङ्गिरसेऽभिधेये।

उदा०-(कपिः) कपेर्गोत्रापत्यम्-काप्य आङ्गिरसः। **(बोधः)** बोधस्य गोत्रापत्यम्-बौध्य आङ्गिरसः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कपिबोधात्) *कपि और बोध प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है (आङ्गिरसे) यदि वहां आङ्गिरस अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(कपि:) कपेर्गोत्रापत्यम्-काप्य आङ्गिरस:। कपि ऋषि का पौत्र-काप्य आङ्गिरस। (बोध:) बोधस्य गोत्रापत्यम्-बौध्य आङ्गिरस:। बोध ऋषि का पौत्र-बौध्य आङ्गिरस:।

सिद्धि-(१) काप्य:। कपि+ङस्+यञ्। काप्+य। काप्य+सु। काप्य:।

यहां षष्ठी-समर्थ 'कपि' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-बौध्य:।

विशेष-कपि शब्द गर्गादिगण में पठित है, उससे 'यञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है किन्तु कपि शब्द से आङ्गिरस अर्थ में ही 'यञ्' प्रत्यय हो इस नियम के लिए यहां कथन किया गया है।

यञ्-

(४) वतण्डाच्च।१०८।

प०वि०-वतण्डात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्, आङ्गिरसे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य वतण्डाच्च गोत्रेऽपत्यं यञ्, आङ्गिरसे।

अर्थ:-तस्य-इति षष्ठीसमर्थाद् वतण्डात् प्रातिपदिकादपि गोत्रापत्येऽर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, आङ्गिरसेऽभिधेये।

उदा०-वतण्डस्य गोत्रापत्यम्-वातण्ड्य आङ्गिरस:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वतण्डात्) वतण्ड प्रातिपदिक से (च) भी (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वतण्डस्य गोत्रापत्यम्-वातण्ड्य आङ्गिरस:। वतण्ड ऋषि का पौत्र-वातण्ड्य आङ्गिरस।

सिद्धि-वातण्ड्य:। वतण्ड+ङस्+यञ्। वातण्ड्+य। वातण्ड्य+सु। वातण्ड्य:।

यहां षष्ठी-समर्थ 'वतण्ड' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेष-वतण्ड शब्द गर्गादिगण में पठित हैं और यह शब्द शिवादिगण में भी पठित है। अत: 'शिवादिभ्योऽण्' (४।१।११२) से आङ्गिरस अर्थ में अण् प्रत्यय भी प्राप्त होता है। उसके प्रतिषेध के लिए यह कथन किया गया है कि आङ्गिरस अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय ही हो; अण् न हो।

यञ्-लुक्–

(५) लुक् स्त्रियाम्।१०९।

प०वि०–लुक् १।१ स्त्रियाम् ७।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, यञ्, वतण्डात्, आङ्गिरसे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य वतण्डाद् गोत्रेऽपत्यं यञो लुक्, आङ्गिरस्यां स्त्रियाम्।

अर्थः–तस्य-इति षष्ठीसमर्थाद् वतण्डात् प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्य यञ्-प्रत्ययस्य लुग् भवति, आङ्गिरस्यां स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०–वतण्डस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वतण्डी आङ्गिरसी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वतण्डात्) वतण्ड प्रातिपदिक से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में विहित (यञ्) यञ् प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (आङ्गिरसे-स्त्रियाम्) यदि वहां आङ्गिरसी स्त्री अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**वतण्डस्य गोत्रापत्यं स्त्री-वतण्डी आङ्गीरसी।** वतण्ड ऋषि की पौत्री-वतण्डी आङ्गिरसी।*

*सिद्धि-**वतण्डी।** वतण्ड+ङस्+यञ्। वतण्ड+०। वतण्ड+ङीन्। वतण्ड्+ई। वतण्डी+सु। वतण्डी।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'वतण्ड' शब्द से गोत्रापत्य (स्त्री) अर्थ में विहित 'यञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है। प्रत्यय के लुक् हो जाने पर 'वतण्ड' शब्द का शार्ङ्गरव आदि गण में पाठ होने से **'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय होता है।*

फञ्–

(१) अश्वादिभ्यः फञ्।११०।

प०वि०–अश्वादिभ्यः ५।३ फञ् १।१।

स०–अश्व आदिर्येषां ते-अश्वादयः, तेभ्यः-अश्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य अश्वादिभ्यो गोत्रेऽपत्यं फञ्।

अर्थः–तस्य-इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽश्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे फञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वस्य गोत्रापत्यम्-आश्वायनः। अश्मनो गोत्रापत्यम्-आश्मायनः, इत्यादिकम्।

अश्व। अश्मन्। शङ्ख। विद। पुट। रोहिण। खर्ज्जूर। खर्ज्जूल। पिञ्जूर। भडिल। भण्डिल। भडित। भण्डित। भण्डिक। प्रहृत। रामोद। क्षत्र। ग्रीवा। काश। गोलाङ्क्य। अर्क। स्वन। ध्वन। पाद। चक्र। कुल। पवित्र। गोमिन्। श्याम। धूम। धूम्र। वाग्मिन्। विश्वानर। कुट। वेश। आत्रेय। नत्त। तड। नड। ग्रीष्म। अर्ह। विशम्य। विशाला। गिरि। चपल। चुनम। दासक। वैल्य। धर्म। आनडुह्य। पुंसिजात। अर्जुन। शूद्रक। सुमनस्। दुर्मनस्। क्षान्त। प्राच्य। कित। काण। चुम्प। श्रविष्ठा। वीक्ष्य। पविन्दा। कुत्स। आतव। कितब। शिव। खदिर। आत्रेय, भारद्वाजे। भारद्वाज, आत्रये। पथ। कन्थु। श्रुव। सूनु। कर्कटक। रुक्ष। तरुक्ष। तलुक्ष। प्रचुल। विलम्ब। मिष्णुज। इत्यश्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अश्वादिभ्यः) अश्व आदि प्रातिपदिकों से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फक्) फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अश्वस्य गोत्रापत्यम्-आश्वायनः।** अश्व ऋषि का पौत्र-आश्वायन। **अश्मनो गोत्रापत्यम्-आश्मायनः।** अश्मा ऋषि का पौत्र-आश्मायन।*

*सिद्धि-(१) **आश्वायनः।** अश्व+ङस्+फक्। आश्व्+आयन। आश्वायन+सु। आश्वायनः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **आश्मायनः।** अश्मन्+ङस्+फक्। आश्मन्+आयन। आश्म०+आयन। आश्मायन+सु। आश्मायनः।*

*यहां षष्ठी समर्थ 'अश्मन्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ मे इस सूत्र से 'फक्' प्रत्यय है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'अश्मन्' शब्द की पद संज्ञा होकर **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

फञ्-

(२) भर्गात् त्रैगर्ते।१११।

प०वि०-भर्गात् ५।१ त्रैगर्ते ७।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रे, फञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भर्गाद् गोत्रेऽपत्यं फञ् त्रैगर्ते।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भर्गात् प्रातिपदिकाद् गोत्रापत्येऽर्थे फञ् प्रत्ययो भवति, त्रैगर्तेऽभिधेये।

उदा०-भर्गस्य गोत्रापत्यम्-भार्गायणस्त्रैगर्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भर्गात्) भर्ग प्रातिपदिक से (गोत्रे, अपत्यम्) गोत्रापत्य अर्थ में (फञ्) फञ् प्रत्यय होता है (त्रैगर्ते) यदि वहां त्रैगर्त अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**भर्गस्य गोत्रापत्यम्-भार्गायणस्त्रैगर्तः।** भर्ग ऋषि का पौत्र 'भार्गायण' त्रैगर्त।*

सिद्धि-भार्गायणः। *भर्ग+ङस्+फञ्। भार्ग्+आयन। भार्गायण+सु। भार्गायणः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'भर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ तथा त्रैगर्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'फञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-*वर्तमान पंजाब का उत्तर-पूर्वी भाग जो चम्बा से कांगड़ा तक फैला हुआ है, प्राचीन 'त्रिगर्त' देश था। सतलुज, व्यास और रावी इन तीन नदियों की घाटियों के कारण इसका नाम 'त्रिगर्त' पड़ा। 'त्रिगर्त' के निवासी 'त्रैगर्त' कहाते हैं। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४१)।*

इति गोत्रापत्यप्रकरणम्।

अपत्यसामान्यप्रकरणम्

अण्–

(१) शिवादिभ्योऽण्।११२।

प०वि०-शिवादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शिव आदिर्येषां ते-शिवादयः, तेभ्यः-शिवादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते, 'गोत्रे' इति च निवृत्तम्, इतः प्रभृति सामान्येन प्रत्यया विधीयन्ते।

अन्वयः-तस्य शिवादिभ्योऽपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शिवस्यापत्यम्-शैवः। प्रौष्ठस्यापत्यम्-प्रौष्ठः, इत्यादिकम्।

शिव। प्रौष्ठ। प्रौष्ठिक। चण्ड। मण्ड। जम्भ। मुनि। सन्धि। भूरि। कुठार। अनभिम्लान। अनभिग्लान। ककुत्स्थ। कहोड। लेख। रोध। खञ्जन। कोहड़। पिष्ट। हेहय। खञ्जार। खञ्जाल। सुरोहिका। पर्ण। कहूष। परिल। वतण्ड। तृण। कर्ण। क्षीरह्रद। जलह्रद। परिषिक। जटिलिक। गोफिलिक। बधिरिका। मञ्जीरक। वृष्णिक। रेख। आलेखन। विश्रवण। खण। वर्त्तनाक्ष। पिटक। पिटाक। तुक्षाक। नभाक। ऊर्णनाभ। जरत्कारु। उत्क्षिपा। रोहितिक। आर्यश्वेत। सुपिष्ट। खर्जूरकर्ण। मसूरकर्ण। तूनकर्ण। मयूरकर्ण। खडरक। तक्षन्। ऋष्टिषेण। गङ्गा। विपाशा। यस्क। लह्य। द्रुघ। अयःस्थूण। भलन्दन। विरूपाक्ष। भूमि। इला। सपत्नी। द्व्यचो नद्याः। त्रिवेणी त्रिवणं च। कह्रय। कबोध। परल। ग्रीवाक्ष। गोभिलिक। राजल। तडाक। वडाक। इति शिवादयः॥

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शिवादिभ्यः) शिव आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शिवस्यापत्यम्-शैवः।** शिव ऋषि का पुत्र-शैव। **प्रौष्ठस्यापत्यम्-प्रौष्ठः।** प्रौष्ठ ऋषि का पुत्र-प्रौष्ठ, इत्यादि।*

सिद्धि-शैवः। *शिव+ङस्+अण्। शैव्+अ। शैव+सु। शैवः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शिव' शब्द से अपत्य सामान्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**प्रौष्ठः** आदि।*

अण्-

(२) अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः।११३।

प०वि०-अवृद्धाभ्यः ५।३ नदी-मानुषीभ्यः ५।३ तन्नामिकाभ्यः ५।३।

स०-न वृद्धा इति अवृद्धाः, ताभ्यः-अवृद्धाभ्यः (नञ्तत्पुरुषः)। नद्यश्च मानुष्यश्च ताः-नदीमानुष्यः, ताभ्यः-नदीमानुषीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तानि नामानि यासां ताः-तन्नामिकाः, ताभ्यः-तन्नामिकाभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्योऽपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्योऽवृद्धसंज्ञकेभ्यो नदीनां मानुषीणां च नामधेयेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(नदी)** यमुनाया अपत्यम्-यामुनः। इरावत्या अपत्यम्-ऐरावतः। वितस्ताया अपत्यम्-वैतस्तः। नर्मदाया अपत्यम्-नार्मदः। **(मानुषी)** शिक्षिताया अपत्यम्-शैक्षितः। चिन्तिताया अपत्यम्-चैन्तितः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अवृद्धाभ्यः) अवृद्धसंज्ञक (नदीमानुषीभ्यः) नदियों और मानुषियों (तन्नामिकाभ्यः) के नामवाले प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(नदी) यमुनाया अपत्यम्-यामुनः।** यमुना नामक स्त्री का पुत्र-यामुन। **इरावत्या अपत्यम्-ऐरावतः।** इरावती नामक स्त्री का पुत्र-ऐरावत। **वितस्ताया अपत्यम्-वैतस्तः।** वितस्ता नामक स्त्री का पुत्र-वैतस्त। **नर्मदाया अपत्यम्-नार्मदः।** नर्मदा नामक स्त्री का पुत्र-नार्मद। **(मानुषी) शिक्षिताया अपत्यम्-शैक्षितः।** शिक्षित नामक मानुषी का पुत्र-शैक्षित। **चिन्तिताया अपत्यम्-चैन्तितः।** चिन्तिता नामक मानुषी का पुत्र-चैन्तित।*

__सिद्धि-यामुनः।__ यमुना+ङस्+अण्। यामुन्+अ। यामुन+सु। यामुनः।

यहां षष्ठी-समर्थ अवृद्ध संज्ञक, नदीवाची स्त्रीनाम 'यमुना' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-ऐरावतः आदि।

अण्-

(३) ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च।११४।

प०वि०-ऋषि-अन्धक-वृष्णि-कुरुभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऋषिश्च अन्धकश्च वृष्णिश्च कुरुश्च ते-ऋष्यन्धकवृष्णिकुरवः, तेभ्यः-ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चापत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ऋषिः**) वसिष्ठस्यापत्यम्-वासिष्ठः । विश्वामित्रस्यापत्यम्-वैश्वामित्रः । (**अन्धकः**) श्वफल्कस्यापत्यम्-श्वाफल्कः । रन्धसस्यापत्यम्-रान्धसः । (**वृष्णिः**) वसुदेवस्यापत्यम्-वासुदेवः । अनिरुद्धस्यापत्यम्-आनिरुद्धः । (**कुरुः**) नकुलस्यापत्यम्-नाकुलः । सहदेवस्यापत्यम्-साहदेवः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ऋषि०कुरुभ्यः) ऋषि, अन्धक, वृष्णि, कुरु वाचक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ऋषिः) **वसिष्ठस्यापत्यम्-वासिष्ठः ।** वसिष्ठ ऋषि का पुत्र-वासिष्ठ। **विश्वामित्रस्यापत्यम्-वैश्वामित्रः ।** विश्वामित्र ऋषि का पुत्र-वैश्वामित्र। (अन्धकः) **श्वफल्कस्यापत्यम्-श्वाफल्कः ।** श्वफल्क (अन्धक) का पुत्र-श्वाफलक। **रन्धसस्यापत्यम्-रान्धसः ।** रन्धस (अन्धक) का पुत्र-रान्धस। (वृष्णिः) **वसुदेवस्यापत्यम्-वासुदेवः ।** वसुदेव (वृष्णि) का पुत्र-वासुदेव (कृष्ण)। **अनिरुद्धस्यापत्यम्-आनिरुद्धः ।** अनिरुद्ध (वृष्णि) का पुत्र-आनिरुद्ध। (कुरुः) **नकुलस्यापत्यम्-नाकुलः ।** नकुल (कुरु) का पुत्र-नाकुल। **सहदेवस्यापत्यम्-साहदेवः ।** सहदेव (कुरु) का पुत्र-साहदेव।*

*सिद्धि-**वासिष्ठः ।** वसिष्ठ+ङस्+अण्। वासिष्ठ्+अ। वासिष्ठ+सु। वासिष्ठः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ ऋषिवाची 'वसिष्ठ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वैश्वामित्रः** आदि।*

***विशेष**-अन्धक और वृष्णि, संघ के नाम हैं। श्वाफल्क अन्धक संघ का नेता और वसुदेव वृष्णि संघ का नेता था। कुरु जनपद का नाम है। आधुनिक दिल्ली के आसपास का प्रदेश कुरु कहलाता है।*

अण्–

(४) मातुरुत् संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ।११५।

प०वि०-मातुः ५ ।१ उत् १ ।१ संख्या-सम्-भद्रपूर्वायाः ५ ।१ ।

स०-संख्या च सम् च भद्रश्च ते-संख्यासम्भद्राः, संख्यासम्भद्राः पूर्वाः यस्याः सा-संख्यासम्भद्रपूर्वा, तस्याः-संख्यासम्भद्रपूर्वायाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वबहुव्रीहिः) ।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संज्ञासम्भद्रपूर्वाया मातुरपत्यम् अण्, उच्च ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यासम्भद्रपूर्वाद् मातृ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, उकारश्चान्तादेशो भवति ।

उदा०-(**संख्या**) द्वयोर्मात्रोरपत्यम्-द्वैमातुरः। षण्णां मातॄणामपत्यम्-षाण्मातुरः। (**सम्**) सम्मातुरपत्यम्-साम्मातुरः (**भद्रः**) भद्रमातुरपत्यम्-भाद्रमातुरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यासम्भद्रपूर्वायाः) संख्यावाची शब्द, सम् और भद्र पूर्वक (मातुः) मातृ प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है और (उत्) मातृ शब्द के अन्त्य 'ॠ' के स्थान में 'उकार' आदेश होता है।*

उदा०-(संख्या) ***द्वयोर्मात्रोरपत्यम्-द्वैमातुरः।*** *दो माताओं का पुत्र-द्वैमातुर। माता के अतिरिक्त चाची आदि भी जिसे अपना पुत्र मानती हों।* ***षण्णां मातॄणामपत्यम्-षाण्मातुरः।*** *छः माताओं का पुत्र-षाण्मातुर। माता के अतिरिक्त अन्य पांच चाची, ताई आदि भी जिसे अपना पुत्र मानती हों।* ***(सम्) सम्मातुरपत्यम्-साम्मातुरः।*** *श्रेष्ठ माता का पुत्र-साम्मातुर।* ***(भद्रः) भद्रमातुरपत्यम्-भाद्रमातुरः।*** *कल्याणकारिणी माता का पुत्र-भाद्रमातुर।*

सिद्धि-द्वैमातुरः। *द्विमातृ+ङस्+अण्। द्वैमातुर्+अ। द्वैमातुर+सु। द्वैमातुरः।*

यहां षष्ठी-समर्थ संख्यावाची 'द्वि' शब्दपूर्वक 'मातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। मातृ शब्द के 'ॠ' के स्थान में 'उकार' आदेश भी होता है। वह ***'उरण् रपरः'*** *(१।१।५०) से रपर होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-****षाण्मातुरः*** *आदि।*

अण्--

(५) कन्यायाः कनीन च।११६।

प०वि०-कन्यायाः ५।१ कनीन १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कन्याया अपत्यम् अण् कनीनश्च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कन्याशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, कनीनश्चादेशो भवति।

उदा०-कन्याया अपत्यम्-कानीनः कर्णः। कानीनो व्यासः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (कन्यायाः) कन्या प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (च) और (कनीनः) कन्या के स्थान में कनीन आदेश होता है।*

उदा०-कन्याया अपत्यम्-कानीनः कर्णः। कन्या (कुन्ती) का पुत्र-कानीन (कर्ण)। कानीनो व्यासः। कन्या (सत्यवती) का पुत्र-कानीन (व्यास)।

सिद्धि-कानीनः। कन्या+ङस्+अण्। कानीन्+अ। कानीन+सु। कानीनः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'कन्या' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है और 'कन्या' शब्द के स्थान में 'कनीन' आदेश भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अण्—

(६) विकर्णशुङ्गच्छगलाद् वत्सभरद्वाजात्रिषु।११७।

प०वि०-विकर्ण-शुङ्ग-छगलात् ५।१ वत्स-भरद्वाज-अत्रिषु ७।३।

स०-विकर्णश्च शुङ्गश्च छगलश्च एतेषां समाहारः-विकर्ण-शुङ्गच्छगलम्, तस्मात्-विकर्णशुङ्गच्छगलात् (समाहारद्वन्द्वः)। वत्सश्च भरद्वाजश्च अत्रिश्च ते-वत्सभरद्वाजात्रयः, तेषु-वत्सभरद्वाजात्रिषु (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य विकर्णशुङ्गच्छगलाद् अपत्यम् अण्, वत्सभरद्वाजात्रिषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो विकर्णशुङ्गच्छगलेभ्यः प्राति-पदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं वत्सभरद्वाजा-त्रिष्वभिधेयेषु।

उदा०-विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णो वात्स्यः। शुङ्गस्यापत्यम्-शौङ्गो भारद्वाजः। छगलस्यापत्यम्-छागल आत्रेयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (विकर्णशुङ्गच्छगलात्) विकर्ण, शुङ्ग, छगल प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (वत्सभरद्वाजात्रिषु) यदि वहां वत्स, भरद्वाज और अत्रि अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(विकर्ण) **विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णो वात्स्यः**। विकर्ण ऋषि का पुत्र-वैकर्ण वात्स्य। (शुङ्ग) **शुङ्गस्यापत्यम्-शौङ्गो भारद्वाजः**। शुङ्ग ऋषि का पुत्र-शौङ्ग भारद्वाज। (छगल) **छगलस्यापत्यम्-छागल आत्रेयः**। छगल ऋषि का पुत्र-छागल आत्रेय। विकर्ण, शुङ्ग और छगल क्रमशः वत्स, भरद्वाज और अत्रि वंश के ऋषि हैं।*

*सिद्धि-**वैकर्णः**। विकर्ण+ङस्+अञ्। वैकर्ण्+अ। वैकर्ण+सु। वैकर्णः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'विकर्ण' शब्द से अपत्य अर्थ में तथा वत्स ऋषि अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-शौङ्गः आदि।

अण्-विकल्पः–

(७) पीलाया वा।११८।

प०वि०–पीलायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पीलाया अपत्यं वाऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पीला-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पीलाया अपत्यम्-पैलः, पैलेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पीलायाः) पीला प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पीलाया अपत्यम्-पैलः, पैलेयो वा।** पीला ऋषि का पुत्र-पैल, अथवा पैलेय। पीला=प्रतिष्ठिता।*

सिद्धि-(१) पैलः। *पीला+ङस्+अण्। पैल्+अ। पैल+सु। पैलः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पीला' शब्द प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

*(२) **पैलेयः।** पीला+ङस्+ढक्। पैल्+एय। पैलेय+सु। पैलेयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पीला' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प पक्ष में **'द्व्यचः'** (४।१।१२१) से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है।*

ढक्+अण्–

(८) ढक् च मण्डूकात्।११९।

प०वि०–ढक् १।१ च अव्ययपदम्, मण्डूकात् ५।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, अण्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य मण्डूकाद् अपत्यं वा ढक् अण् च।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मण्डूकशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढक् अण् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-मण्डूकस्यापत्यम्-माण्डूकेयः (ढक्)। माण्डूकः (अण्)। माण्डूकिः (इञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मण्डूकात्) मण्डूक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (ढक्) ढक् (च) और (अण्) अण् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**मण्डूकस्यापत्यम्-माण्डूकेयः (ढक्)। माण्डूकः (अण्)। माण्डूकिः (इञ्)।** मण्डूक ऋषि का पुत्र-माण्डूकेय, माण्डूक अथवा माण्डूकि।*

*सिद्धि-(१) **माण्डूकेयः।** मण्डूक+ढक्। माण्डूक्+एय। माण्डूकेय+सु। माण्डूकेयः।*

*यहां 'मण्डूक' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **माण्डूकः।** मण्डूक+ङस्+अण्। माण्डूक्+अ। माण्डूक+सु। माण्डूकः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'मण्डूक' शब्द से इस सूत्र से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है।

*(३) **माण्डूकिः।** माण्डूक+इञ्। माण्डूक+इ। माण्डूकि+सु। माण्डूकिः।*

यहां विकल्प पक्ष में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय है।

विशेष-ब्रह्मविद्या से मण्डित (विभूषित) ऋषि को 'मण्डूक' कहते हैं। यहां 'मण्डूक' शब्द का मेंढक अर्थ नहीं है।

ढक्-

(१) स्त्रीभ्यो ढक्।१२०।

प०वि०-स्त्रीभ्यः ५।३ ढक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्त्रीभ्योऽपत्यं ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः। विनताया अपत्यम्-वैनतेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्त्रीभ्यः) स्त्री-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः।** कश्यप ऋषि की पत्नी सुपर्णी का पुत्र-सौपर्णेय। **विनताया अपत्यम्-वैनतेयः।** कश्यप ऋषि की पत्नी विनता का पुत्र-वैनतेय (गरुड़)।*

सिद्धि-(१) सौपर्णेयः । सुपर्णी+ङस्+ढक् । सौपर्ण्+एय । सौपर्णेय+सु । सौपर्णेयः ।

यहां षष्ठी-समर्थ स्त्री-प्रत्ययान्त 'सुपर्णी' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग 'इकार' का लोप होता है।

(२) वैनतेयः । विनता+ङस्+ढक् । वैनत्+एय । वैनतेय+सु । वैनतेयः । पूर्ववत् ।

विशेष-कश्यप ऋषि की सुपर्णी और विनता दो पत्नियां थीं। सुपर्णी के पुत्र सौपर्णेय और विनता के पुत्र वैनतेय कहाते हैं। वैनतेय=गरुड़। गरुड़ आकाशीय उड्डयन विद्या में कुशल था। इसका पक्षीविशेष अर्थ भ्रान्तिपूर्ण है। गरुड़ के छोटे भाई का नाम अरुण था।

ढक्-

(२) द्व्यचः ।१२१।

प०वि०-द्वि-अचः ५।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, स्त्रीभ्यः, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्त्रिया द्व्यचोऽपत्यं ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्त्रीप्रत्ययान्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गङ्गाया अपत्यम्-गाङ्गेयः । दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः । गोप्या अपत्यम्-गौपेयः ।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्त्रीभ्यः) स्त्री-प्रत्ययान्त (द्व्यचः) दो अच् वाले प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**गङ्गाया अपत्यम्-गाङ्गेयः ।** गङ्गा का पुत्र-गाङ्गेय (भीष्म)। **दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः ।** दत्ता नामक स्त्री का पुत्र-दात्तेय। **गोप्या अपत्यम्-गौपेयः ।** गोपी नामक स्त्री का पुत्र-गौपेय।*

सिद्धि-गाङ्गेयः । गङ्गा+ङस्+ढक् । गाङ्ग्+एय । गाङ्गेय+सु । गाङ्गेयः ।

*यहां षष्ठी-समर्थ नदीवाची, स्त्रीप्रत्ययान्त, दो अच्वाले 'गङ्गा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में **'एय्'** आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के आकार का लोप होता है। यह **'अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः'** (४।१।११३) से प्राप्त 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। ऐसे ही-**दात्तेयः** आदि।*

ढक्–

(३) इतश्चानिञः ।१२२।

प०वि०–इत: ५ ।१ च अव्ययपदम्, अनिञ: ५ ।१।

स०–न इञ् इति अनिञ्, तस्मात्–अनिञ: (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०–तस्य, अपत्यम, ढक्, द्व्यच इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य अनिञ इतो द्व्यचोऽपत्यं ढक्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनिञन्ताद् इकारान्ताद् द्व्यच: प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अत्रेरपत्यम्–आत्रेय:। निधेरपत्यम्–नैधेय:।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनिञ:) इञ्-प्रत्ययान्त से रहित (इत:) इकारान्त (द्व्यच:) दो अच्वाले प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**अत्रेरपत्यम्–आत्रेय:।** अत्रि ऋषि का पुत्र–आत्रेय। **निधेरपत्यम्–नैधेय:।** निधि ऋषि का पुत्र–नैधेय।*

सिद्धि–आत्रेय:। *अत्रि+ङस्+ढक्। आत्र्+एय। आत्रेय+सु। आत्रेय:।*

*यहां षष्ठी-समर्थ इञ् प्रत्ययान्त से वर्जित, इकारान्त, द्वि-अज्वान् 'अत्रि' शब्द से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**नैधेय:।***

ढक्–

(४) शुभ्रादिभ्यश्च।१२३।

प०वि०–शुभ्रादिभ्य: ५ ।३ च अव्ययपदम्।

स०–शुभ्र आदिर्येषां ते शुभ्रादय:, तेभ्य:–शुभ्रादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य शुभ्रादिभ्यश्च अपत्यं ढक्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य: शुभ्रादिभ्योऽपि प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–शुभ्रस्यापत्यम्–शौभ्रेय:। विष्टपुरस्यापत्यम्–वैष्टपुरेय:, इत्यादिकम्।

शुभ्र। विष्टपुर। ब्रह्मकृत। शतद्वार। शतावर। शलाका। शालाचल। शलकाभ्रू। लेखाभ्रू। विमातृ। विधवा। किंकसा। रोहिणी। रुक्मिणी। दिशा। शालूक। अजवस्ति। शकन्धि। लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे। गोधा। कृकलास। अणीव प्रवाहण। भरत। भारत। भारम। भृकण्डु। मघष्टु। मकष्टु। कर्पूर। इतर। अन्यतर। आलीढ। सुदत्त। सुचक्षस। सुनामन्। कद्रु। तुद। अकशाप। कुमारिका। किशोरिका। कुवेणिका। जिह्माशिन। परिधि। वायुदत्त। शकल। खट्वर। अम्बिका। अशोका। शुद्धपिङ्गला। खडोन्मत्ता। अनुदृष्टि। जरतिन्। बलिवर्दिन्। विग्रज। बीज। श्वन्। अश्मन्। अश्व। अजिर। स्थूल। सृकण्डू। यकधु। यमष्टु। कष्टु। सृकण्ड। मृकण्ड। गुद। रुद। कुशेरिका। शकल। शबल। उग्र। अजिन। इति शुभ्रादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शुभ्रादिभ्यः) शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शुभ्रस्यापत्यम्-शौभ्रेयः।** शुभ्र ऋषि का पुत्र-शौभ्रेय। **विष्टपुरस्यापत्यम्-वैष्टपुरेयः।** विष्टपुर ऋषि का पुत्र-वैष्टपुरेय।*

*सिद्धि-**शौभ्रेयः।** शुभ+ङस्+ढक्। शौभ्र्+एय। शौभ्रेय+सु। शौभ्रेयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शुभ्र' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वैष्टपुरेयः।***

ढक्-

(५) विकर्णकुषीतकात् काश्यपे।१२४।

प०वि०-विकर्ण-कुषीतकात् ५।१ काश्यपे ७।१।

स०-विकर्णश्च कुषीतकश्च एतयोः समाहारः-विकर्णकुषीतकम्, तस्मात्-विकर्णकुषीतकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य विकर्णकुषीतकाद् अपत्यं ढक् काश्यपे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां विकर्ण-कुषीतकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, **काश्यपेऽभिधेये।**

उदा०-विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णेयः काश्यपः। कुषीतकस्यापत्यम्-कौषीतकेयः काश्यपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (विकर्णकुषीतकात्) विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (काश्यपे) यदि वहां काश्यप अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(विकर्ण) विकर्णस्यापत्यम्-वैकर्णेयः काश्यपः। विकर्ण ऋषि का पुत्र-वैकर्णेय काश्यप। (कुषीतक) कुषीतकस्यापत्यम्-कौषीतकेयः काश्यपः। कुषीतक ऋषि का पुत्र-कौषीतकेय काश्यप। विकर्ण और कुषीतक काश्यप वंश के ऋषि हैं।

सिद्धि-वैकर्णेयः। विकर्ण+ङस्+ढक्। विकर्ण्+एय।वैकर्णेय+सु। वैकर्णेयः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'विकर्ण' शब्द से अपत्य अर्थ में तथा 'काश्यप' अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कौषीतकेयः**।*

ढक्-

(६) भ्रुवो वुक् च।१२५।

प०वि०-भ्रुवः ५।१ वुक् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भ्रुवोऽपत्यं ढक् वुक् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भ्रूशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, वुक् चागमो भवति।

उदा०-भ्रुवोऽपत्यम्-भ्रौवेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भ्रुवः) भ्रू शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (च) और (वुक्) भ्रू शब्द को वुक् आगम होता है।*

*उदा०-**भ्रुवोऽपत्यम्-भ्रौवेयः**। भ्रू ऋषि का पुत्र-भ्रौवेय।*

सिद्धि-भ्रौवेयः। भ्रू+ङस्+ढक्। भ्रूवुक्+एय। भ्रौव्+एय। भ्रौवेय+सु। भ्रौवेयः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'भ्रू' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय और भ्रू शब्द को 'वुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ढक् (इनङ्)–

(७) कल्याण्यादीनामिनङ् च।१२६।

प०वि०–कल्याणी–आदीनाम् ६।३ इनङ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–कल्याणी आदिर्येषां ते–कल्याण्यादयः, तेषाम्–कल्याण्यादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, ढक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कल्याणादीनाम् अपत्यं ढक् इनङ् च।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कल्याण्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, इनङ् चादेशो भवति।

उदा०–कल्याण्या अपत्यम्–काल्याणिनेयः। सुभगाया अपत्यम्–सौभागिनेयः।

कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। बन्धकी। अनुदृष्टि। अनुसृष्टि। जरती। बलीवर्दी। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा। परस्त्री। इति कल्याण्यादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कल्याण्यादीनाम्) कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (इनङ्) इनङ् आदेश होता है।*

*उदा०–**कल्याण्या अपत्यम्–काल्याणिनेयः।** कल्याणी का पुत्र–काल्याणिनेय। **सुभगाया अपत्यम्–सौभागिनेयः।** सुभगा का पुत्र–सौभागिनेय।*

*सिद्धि–(१) **काल्याणिनेयः।** कल्याणी+ङस्+ढक्। काल्याण्+इनङ्+एय। काल्याणिन्+एय। काल्याणिनेय+सु। काल्याणिनेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कल्याणी' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से ढक् प्रत्यय और 'कल्याणी' शब्द को 'इनङ्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **सौभागिनेयः।** यहां **'हृद्भगसिन्ध्वन्ते०'** (७।३।१९) से अंग को उभयपद-वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ढक्-विकल्पः–

(८) कुलटाया वा।१२७।

प०वि०–कुलटायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, ढक्, इनङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुलटाया अपत्यं ढक् वा इनङ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कुलटाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, विकल्पेन च इनङ् आदेशो भवति।

उदा०-कुलटाया अपत्यम्-कौलटिनेयः, कौलटेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुलटायाः) कुलटा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है और (वा) विकल्प से (इनङ्) इनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**कुलटाया अपत्यम्-कौलटिनेयः, कौलटेयो वा।** कुलटा=व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र-कौलटिनेय अथवा कौलटेय।*

सिद्धि-(१) कौलटिनेयः। *कुलटा+ङस्+ढक्। कुलट् इनङ्+एय। कौलटिन्+एय। कौलटिनेय+सु। कौलटिनेयः।*

यहां 'कुलटा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय और इनङ् आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११२) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) कौलटेयः। *कुलटा+ङस्+ढक्। कौलट्+एय। कौलटेय+सु। कौलटेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कुलटा' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय और विकल्प-पक्ष में 'इनङ्' आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-कुलान्यटतीति-कुलटा। कुल+अटा=कुलटा। यहां इसी सूत्रोक्त निपातन से पररूप एकादेश होता है।

ऐरक्-

(१) चटकाया ऐरक्।१२८।

प०वि०-चटकायाः ५।१ ऐरक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य चटकाया अपत्यम् ऐरक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्चटकाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ऐरक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चटकाया अपत्यम्-चाटकैरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चटकायाः) चटका प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ऐरक्) ऐरक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-चटकाया अपत्यम्-चाटकैरः। चिड़िया का बच्चा-चाटकैर (चीकला)।

सिद्धि-चाटकैरः। चटका+ङस्+ऐरक्। चाटक्+ऐर। चाकटैर+सु। चाटकैरः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'चटका' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ऐरक्' प्रत्यय है। 'किति च' (६।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।

ढ्रक्–

(१) गोधाया ढ्रक्।१२६।

प०वि०-गोधायाः ५।१ ढ्रक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोधाया अपत्यं ढ्रक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोधाशब्दात् प्रातिपदिकात् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढ्रक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोधाया अपत्यम्-गौधेरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोधायाः) गोधा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढ्रक्) ढ्रक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गोधाया अपत्यम्-गौधेरः। गोह का बच्चा-गौधेर (गोहेरा)।

सिद्धि-गौधेरः। गोधा+ङस्+ढ्रक्। गौध्+एय्र। गौध्ए०र। गौधेर+सु। गौधेरः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'गोधा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढ्रक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से एय् के 'य्' का लोप होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।

आरक्–

(२) आरगुदीचाम्।१३०।

प०वि०-आरक् १।१ उदीचाम् ६।३।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोधाया अपत्यम् आरक्, उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोधाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे आरक् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-गोधाया अपत्यम्-गौधारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोधायाः) गोधा-शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (आरक्) आरक् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर-भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**गोधाया अपत्यम्-गौधारः।** गोह का बच्चा-गौधार (गोहेरा)।*

सिद्धि-गौधारः। *गोधा+ङस्+आरक्। गौध्+आर। गौधार्+सु। गौधारः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गोधा' शब्द अपत्य अर्थ में तथा उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'आरक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

ढ्रक्-

(३) क्षुद्राभ्यो वा।१३१।

प०वि०-क्षुद्राभ्यः ५।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढ्रक् इति चानुवर्तते, आरक् इति च नानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षुद्राभ्योऽपत्यं ढ्रक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षुद्रावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढ्रक् प्रत्ययो भवति। अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च स्त्रियः क्षुद्रा इत्युच्यन्ते।

उदा०-काणाया अपत्यम्-काणेरः, काणेयो वा। दास्या अपत्यम्-दासेरः, दासेयो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षुद्राभ्यः) क्षुद्रावाची प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (वा) विकल्प से (ढ्रक्) ढ्रक् प्रत्यय होता है। अङ्गहीन अथवा चरित्रहीन स्त्रियों को क्षुद्रा कहते हैं।*

*उदा०-(अङ्गहीन) **काणाया अपत्यम्-काणेरः, काणेयो वा।** काणी स्त्री का पुत्र काणेर अथवा काणेय। **(शीलहीन) दास्या अपत्यम्-दासेरः, दासेयो वा।** दासी का पुत्र दासेर अथवा दासेय।*

सिद्धि-(१) काणेरः। *काणा+ङस्+ढ्रक्। काण्+एय्+र। काण्+ए०र। काणेर+सु। काणेरः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ क्षुद्रावाची 'काणा' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढ्रक्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'गौधेरः'** (४।१।१२९) के समान है।*

(२) काणेयः । काणा+ङस्+ढक् । काण्+एय । काणेय+सु । काणेयः ।

यहां षष्ठी-समर्थ क्षुद्रावाची 'काणा' शब्द से अपत्य अर्थ में विकल्प पक्ष में 'द्व्यचः' (४।१।१२१) से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दासी शब्द से-दासेरः, दासेयः ।

छण्–

(१) पितृष्वसुश्छण् ।१३२।

प०वि०–पितृष्वसुः ५।१ छण् १।१।

स०–पितुः स्वसा इति पितृष्वसा, तस्याः-पितृष्वसुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पितृष्वसुरपत्यं छण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पितृस्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–पितृस्वसुरपत्यम्-पैतृष्वस्रीयः ।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पितृष्वसुः) पितृष्वसा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (छण्) छण् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**पितृस्वसुरपत्यम्-पैतृष्वस्रीयः ।** पिता की बहिन (बूआ) का बेटा-पैतृस्वस्रीय।*

सिद्धि-पैतृष्वस्रीयः । *पितृष्वसृ+ङस्+छण्। पैतृष्वसृ+ईय। पैतृष्वस्रीय+सु। पैतृष्वस्रीयः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पितृष्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'छण्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से सामान्य 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति थी, यह उसका अपवाद है।*

ढक् (अन्त्यलोपः)–

(२) ढकि लोपः ।१३३।

प०वि०–ढकि ७।१ लोपः १।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पितृष्वसुरपत्यम् ढकि लोपः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पितृष्वसृशब्दाद् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढकि प्रत्यये परतोऽन्त्यस्य ऋवर्णस्य लोपो भवति।

उदा०-पितृष्वसुरपत्यम्-पैतृष्वसेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पितृष्वसुः) पितृस्वसा प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढकि) ढक् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) पितृस्वसृ के अन्त्य ऋवर्ण का लोप होता है।*

*उदा०-**पितृष्वसुरपत्यम्-पैतृष्वसेयः।** पिता की बहिन (बूआ) का बेटा-पैतृष्वसेय।*

सिद्धि-पैतृष्वसेयः। *पितृष्वसृ+ङस्+ढक्। पैतृष्वसृ+एय। पैतृष्वसेय+सु। पैतृष्वसेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पितृष्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय करने पर 'पितृष्वसृ' शब्द के अन्त्य वर्ण 'ऋ' का इस सूत्र से लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष- *पितृष्वसृ शब्द से किसी सूत्र से ढक् प्रत्यय का विधान नहीं किया गया है। यहां आचार्य पाणिनिमुनि द्वारा ढक् प्रत्यय परे होने पर जो लोप विधान किया गया है इससे ज्ञात होता है कि 'पितृष्वसृ' शब्द से ढक् प्रत्यय होता है।*

ढक्+छण्-

(२) मातृष्वसुश्च।१३४।

प०वि०-मातृष्वसुः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-मातुः स्वसा इति मातृष्वसा, तस्याः-मातृष्वसुः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढकि लोपश्छण् च।

अन्वयः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मातृष्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढकि परतोऽन्त्यस्य ऋवर्णस्य लोपो भवति, छण् च प्रत्ययोऽपि भवति।

उदा०-**(ढक्)** मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वसेयः। **(छण्)** मातृष्व-सुरपत्यम्-मातृष्वस्रीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मातृष्वसुः) मातृष्वसृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढकि) ढक् प्रत्यय परे होने (लोपः) मातृष्वसृ शब्द के अन्त्य ऋवर्ण का लोप होता है (च) और (छण्) छण् प्रत्यय भी होता है।*

*उदा०-(ढक्) **मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वसेयः।** माता की बहिन (मा-सी) का बेटा। (छण्) **मातृष्वसुरपत्यम्-मातृष्वस्रीयः।** माता की बहिन का बेटा-मातृष्वस्रीय।*

सिद्धि-मातृष्वसेयः *और **मातृष्वस्रीयः** शब्दों की सिद्धि पूर्ववत् (४।१।१३२-३३) है।*

ढञ्–

(१) चतुष्पाद्भ्यो ढञ्।१३५।

प०वि०–चतुष्पाद्भ्यः ५।३ ढञ् १।१।

स०–चत्वारः पादा यासां ताः–चतुष्पादः, ताभ्यः–चतुष्पाद्भ्यः (बहुव्रीहिः) '**पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः**' (५।४।१३८) इति समासान्तोऽकारलोपः।

अनु०–तस्य, अपत्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य चतुष्पाद्भ्योऽपत्यं ढञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्चतुष्पाद्वाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कमण्डलूः)** कमण्डल्वा अपत्यम्–कामण्डलेयः। **(शुन्तिबाहूः)** शुन्तिबाह्वा अपत्यम्–शौन्तिबाहेयः। **(जम्बूः)** जम्ब्वा अपत्यम्–जाम्ब्वेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चतुष्पाद्भ्यः) चौपायों के वाचक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–(कमण्डलूः) **कमण्डल्वा अपत्यम्–कामण्डलेयः।** कमण्डलू नामक पशुविशेष का पुत्र-कामण्डलेय। (शुन्तिबाहूः) **शुन्तिबाह्वा अपत्यम्–शौन्तिबाहेयः।** शुन्तिबाहू नामक पशुविशेष का पुत्र-शौन्तिबाहेय। (जम्बूः) **जम्बा अपत्यम्-जाम्बेयः।** गीदड़ी का बच्चा-जाम्ब्वेय।*

*सिद्धि-**कामण्डलेयः।** कमण्डलू+ङस्+ढञ्। कामण्डल्+एय। कामण्डलेय+सु। कामण्डलेयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ चतुष्पाद्वाची 'कमण्डलू' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। '**ढे लोपोऽकद्र्वाः**' (६।४।१४७) से कमण्डलू के ऊकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**शौन्तिबाहेयः, जाम्ब्वेयः।***

ढञ्–

(२) गृष्ट्यादिभ्यश्च।१३६।

प०वि०–गृष्टि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–गृष्टिरादिर्येषां ते-गृष्ट्यादयः, तेभ्यः-गृष्ट्यादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ढञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गृष्ट्यादिभ्यश्चापत्यं ढञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गृष्ट्यादिभ्योऽपि प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गृष्टिः) गृष्टेरपत्यम्-गार्ष्टेयः। (हृष्टिः) हृष्टेरपत्यम्-हार्ष्टेयः, इत्यादिकम्।

गृष्टि। हृष्टि। हलि। बलि। विश्रि। कुद्रि। अजवस्ति। मित्रयु। फलि। अलि। दृष्टि। इति गृष्ट्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गृष्ट्यादिभ्यः) गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(गृष्टिः) गृष्टेरपत्यम्-**गार्ष्टेयः**। गृष्टि=पहली बार प्रसूता स्त्री का पुत्र-गार्ष्टेय। (हृष्टिः) हृष्टेरपत्यम्-**हार्ष्टेयः**। हृष्टि=रोमांचिता स्त्री का पुत्र-हार्ष्टेय।*

सिद्धि-गार्ष्टेयः। गृष्टि+ङस्+ढञ्। गार्ष्ट्+एय। गार्ष्टेय+सु। गार्ष्टेयः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गृष्टि' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**हार्ष्टेयः**।*

*विशेष-'गृष्टि' शब्द प्रथम बार प्रसूता गौ आदि अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। चतुष्पाद्वाची से तो **'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्'** (४।१।१३५) से ही ढञ् प्रत्यय सिद्ध है। यहां चतुष्पाद् को छोड़कर प्रथम बार प्रसूता स्त्री अर्थ का ग्रहण करना चाहिए।*

यत्--

(१) राजश्वशुराद् यत्।१३७।

प०वि०-राज-श्वशुरात् ५।१ यत् १।१।

स०-राजा च श्वशुरश्च एतयोः समाहारः-राजश्वशुरम्, तस्मात्-राजश्वशुरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य राजश्वशुराद् अपत्यं यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां राजश्वशुराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(राजा) राज्ञोऽपत्यम्-राजन्यः। (श्वशुरः) श्वशुरस्यापत्यम्-श्वशुर्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (राजश्वशुरात्) राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(राजा) राज्ञोऽपत्यम्-राजन्यः। राजा का पुत्र-राजन्य। (श्वशुर) श्वशुरस्यापत्यम्-श्वशुर्यः। श्वशुर का पुत्र-श्वशुर्य (साला)।

सिद्धि-(१) राजन्यः। राजन्+ङस्+यत्। राजन्+य। राजन्य+सु। राजन्यः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है, नकार का लोप नहीं होता है।

(२) श्वशुर्यः। श्वशुर+ङस्+यत्। श्वशुर्+य। श्वशुर्य+सु। श्वशुर्यः। पूर्ववत्।

घः-

(१) क्षत्राद् घः।१३८।

प०वि०-क्षत्रात् ५।१ घः १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्राद् अपत्यं घः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्षत्रस्यापत्यम्-क्षत्रियः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रात्) क्षत्र प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।*

उदा०-क्षत्रस्यापत्यम्-क्षत्रियः। राजा का पुत्र-क्षत्रिय।

सिद्धि-क्षत्रियः। क्षत्र+घ। क्षत्र्+इय। क्षत्रिय+सु। क्षत्रियः।

यहां 'क्षत्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।

खः-

(१) कुलात् खः।१३९।

प०वि०-कुलात् ५।१ खः १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुलाद् अपत्यं खः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कुलान्तात् केवलाच्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(तदन्तात्)** आढ्यकुलस्यापत्यम्-आढ्यकुलीनः। श्रोत्रियकुलस्यापत्यम्-श्रोत्रियकुलीनः। **(केवलात्)** कुलस्यापत्यम्-कुलीनः।

उत्तरसूत्रे पूर्वपदप्रतिषेधादत्र तदन्तः केवलश्च कुलशब्दो गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुलान्तात्) कुलान्त तथा केवल कुल शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(तदन्त) **आढ्यकुलस्यापत्यम्-आढ्यकुलीनः**। धनी कुल का पुत्र-आढ्यकुलीन। **श्रोत्रियकुलस्यापत्यम्-श्रोत्रियकुलीनः**। वेदपाठी कुल का पुत्र-श्रोत्रियकुलीन। **(केवल) कुलस्यापत्यम्-कुलीनः**। उच्च वंश का पुत्र-कुलीन।*

आगामी सूत्र (४।१।१४०) में पूर्वपदवाले 'कुल' शब्द से 'ख' प्रत्यय के प्रतिषेध से यहां तदन्त और केवल 'कुल' शब्द का ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-**आढ्यकुलीनः**। आढ्यकुल+ङस्+ख। आढ्यकुल्+ईन। आढ्यकुलीन+सु। आढ्यकुलीनः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'आढ्यकुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**श्रोत्रियकुलीनः, कुलीनः**।*

यत्+ढकञ्-

(१) अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ।१४०।

प०वि०-अपूर्वपदात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, यड्ढकञौ १।२।

स०-अविद्यमानं पूर्वपदं यस्य तद्-अपूर्वपदम्, तस्मात्-अपूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। यच्च ढकञ् च तौ-यड्ढकञौ, (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, कुलादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अपूर्वपदात् कुलाद् अपत्यम् अन्यतरस्यां यड्ढकञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अपूर्वपदात् कुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यत्-ढकञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**यत्**) कुलस्यापत्यम्-कुल्यः। (**ढकञ्**) कुलस्यापत्यम्-कौलेयकः। (**खः**) कुलस्यापत्यम्-कुलीनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अपूर्वपदात्) पूर्वपद से रहित (कुलात्) कुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यड्ढकञौ) यत् और ढकञ् प्रत्यय होते हैं। विकल्प-विधान से 'ख' प्रत्यय भी होता है।*

*उदा०-(यत्) **कुलस्यापत्यम्-कुल्यः।** (ढकञ्) **कलस्यापत्यम्-कौलेयकः।** (खः) **कुलस्यापत्यम्-कुलीनः।** उच्च वंश का पुत्र-कुल्य, कौलेयक, कुलीन।*

*सिद्धि-(१) **कुल्यः।** कुल+ङस्+यत्। कुल्+य। कुल्य+सु। कुल्यः।*

यहां षष्ठी-समर्थ पूर्वपद से रहित 'कुल' शब्द से अपत्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है।

*(२) **कौलेयकः।** कुल+ढकञ्। कुल्+एयक। कौल्+एयक। कौलेयक+सु। कौलेयकः।*

*यहां पूर्ववत् 'कुल' शब्द से 'ढकञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है।*

*(३) **कुलीनः।** यहां 'कुलात् खः' (४।१।१३९) से विकल्प पक्ष में 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है।*

अञ्+खञ्--

(१) महाकुलादञ्खञौ।१४१।

प०वि०-महाकुलात् ५।१ अञ्-खञौ १।२।

स०-अञ् च खञ् च तौ-अञ्खञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य महाकुलाद् अपत्यम् अन्यतरस्याम् अञ्खञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् महाकुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन अञ्-खञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**अञ्**) महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलः। (**खञ्**) महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलीनः। (**खः**) महाकुलस्यापत्यम्-महाकुलीनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (महाकुलात्) महाकुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अञ्खञौ) अञ् और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(अञ्) **महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलः।** (खञ्) **महाकुलस्यापत्यम्-माहाकुलीनः।** (खः) **महाकुलस्यापत्यम्-महाकुलीनः।** महान् वंश का पुत्र-माहाकुल, माहाकुलीन, महाकुलीन।*

सिद्धि-(१) माहाकुलः । महाकुल+ङस्+अञ् । माहाकुल्+अ । माहाकुल+सु । माहाकुलः ।

यहां षष्ठीसमर्थ 'महाकुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) माहाकुलीनः । महाकुल+खञ् । माहाकुल्+ईन । महाकुलीन+सु । महाकुलीनः । पूर्ववत् ।

(३) महाकुलीनः । महाकुल+ख । महाकुल्+ईन । महाकुलीन+सु । महाकुलीनः ।

यहां विकल्प पक्ष में 'कुलात् खः' (४।१।१३९) से 'ख' प्रत्यय भी होता है।

ढक्–

(१) दुष्कुलाड्ढक्।१४२।

प०वि०-दुष्कुलात् ५।१ ढक् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य दुष्कुलाद् अपत्यमन्यतरस्यां ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् दुष्कुलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ढक्) दुष्कुलस्यापत्यम्-दौष्कुलेयः। (खः) दुष्कुलस्यापत्यम्-दुष्कुलीनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (दुष्कुलात्) दुष्कुल प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ढक्) **दुष्कुलस्यापत्यम्-दौष्कुलेयः।** (ख) **दुष्कुलस्यापत्यम्-दुष्कुलीनः।** दुष्ट वंश का पुत्र-दौष्कुलेय, दुष्कुलीन।*

*सिद्धि-(१) **दौष्कुलेयः।** दुष्कुल+ङस्+ढक्। दौष्कुल्+एय। दौष्कुलेय+सु। दौष्कुलेयः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'दुष्कुल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

*(२) **दुष्कुलीनः।** यहां विकल्प पक्ष में 'कुलात् खः' (४।१।१३९) से 'ख' प्रत्यय है।*

छः–

(१) स्वसुश्छः ।१४३।

प०वि०–स्वसुः ५ ।१ छः १ ।१ ।

अनु०–तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य स्वसुरपत्यं छः ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्वसृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–स्वसुरपत्यम्-स्वस्रीयः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (स्वसुः) स्वसृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**स्वसुरपत्यम्-स्वस्रीयः ।** बहिन का पुत्र-स्वस्रीय (भानजा)।*

*सिद्धि-**स्वस्रीयः ।** स्वसृ+ङस्+छ । स्वसृ+ईय् । स्वस्रीय+सु । स्वस्रीयः ।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'स्वसृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'स्वसृ' के 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश होता है।*

व्यत्+छः–

(१) भ्रातुर्व्यच्च ।१४४।

प०वि०–भ्रातुः ५ ।१ व्यत् १ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०–तस्य, अपत्यम् छ इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य भ्रातुरपत्यं व्यत् छश्च ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् भ्रातृशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे व्यत् छश्च प्रत्ययो भवति ।

उदा०–(**व्यत्**) भ्रातुरपत्यम्-भ्रातृव्यः । (**छः**) भ्रातुरपत्यम्-भ्रात्रीयः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (भ्रातुः) भ्रातृ प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (व्यत्) व्यत् (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(व्यत्) **भ्रातुरपत्यम्-भ्रातृव्यः ।** भाई का पुत्र-भ्रातृव्य। (छः) **भ्रातुरपत्यम्-भ्रात्रीयः ।** भाई का पुत्र-भ्रात्रीय (भतीजा)।*

*सिद्धि-(१) **भ्रातृव्यः ।** भ्रातृ+ङस्+व्यत् । भ्रातृ+व्य । भ्रातृव्य+सु । भ्रातृव्यः ।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'भ्रातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'व्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय का 'त्' इत् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरित स्वर होता है-**भ्रातृव्यः।***

*(२) **भ्रात्रीयः।** भ्रातृ+ङस्+छ। भ्रातृ+ईय। भ्रात्रीय+सु। भ्रात्रीयः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'भ्रातृ' शब्द से अपत्य अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से भ्रातृ के 'ऋ' वर्ण को यण् (र्) आदेश होता है।*

व्यन्–

(१) व्यन् सपत्ने।१४५।

प०वि०-व्यन् १।१ सपत्ने ७।१।

अनु०-भ्रातुरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-भ्रातुर्व्यन् सपत्ने।

अर्थः-भ्रातृशब्दात् प्रातिपदिकात् सपत्नेऽभिधेये व्यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भ्रातृव्यः कण्टकः।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(भ्रातुः) भ्रातृ प्रातिपदिक से (सपत्ने) शत्रु अर्थ अभिधेय होने पर (व्यन्) व्यन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**भ्रातृव्यः कण्टकः।** कांटे के समान दुःखदायक शत्रु-भ्रातृव्य।*

*सिद्धि-**भ्रातृव्यः।** भ्रातृ+ङस्+व्यन्। भ्रातृ+व्य। भ्रातृव्य+सु। **भ्रातृव्यः।***

*यहां षष्ठीसमर्थ 'भ्रातृ' शब्द से सपत्न (शत्रु) अर्थ में इस सूत्र से **'व्यन्'** प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-**भ्रातृव्यः।***

***विशेष-**यहां 'भ्रातृव्य' शब्द के भतीजा और शत्रु दो अर्थ बताये गये हैं। भतीजा अर्थ में 'भ्रातृव्य' शब्द अन्तस्वरित होता है और शत्रु अर्थ में आद्युदात्त होता है जैसा कि ऊपर सिद्धि-सन्दर्भ में दिखाया गया है।*

ठक्–

(१) रेवत्यादिभ्यष्ठक्।१४६।

प०वि०-रेवती-आदिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-रेवती आदिर्येषां ते-रेवत्यादयः, तेभ्यः-रेवत्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रेवत्यादिभ्योऽपत्यं ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो रेवत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः। अश्वपाल्या अपत्यम्-आश्वपालिकः, इत्यादिकम्।

रेवती। अश्वपाली। मणिपाली। द्वारपाली। वृकवञ्चिन्। वृकग्राह। कर्णग्राह। दण्डग्राह। कुक्कुटाक्ष। वृकबन्धु। चामरग्राह। ककुदाक्ष। इति रेवत्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रेवत्यादिभ्यः) रेवती आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः।** रेवती नामक स्त्री का पुत्र-रैवतिक। **अश्वपाल्या अपत्यम्-आश्वपालिकः।** अश्वपाली नामक स्त्री का पुत्र-आश्वपालिक।*

*सिद्धि-(१) **रैवतिकः।** रेवती+ङस्+ठक्। रैवत्+इक। रैवतिक+सु। रैवतिकः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रेवती' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **आश्वपालिकः।** अश्वपाली+ङस्+ठक्। आश्वपाल्+इक्। आश्वपालिक+सु। अश्वपालिकः। पूर्ववत्।*

ण+ठक्-

(१) गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च।१४७।

प०वि०-गोत्रस्त्रियाः ५।१ कुत्सने ७।१ ण १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-गोत्रं चासौ स्त्रीति गोत्रस्त्री, तस्याः-गोत्रस्त्रियाः (कर्मधारयः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रस्त्रिया अपत्यं णः, ठक् च कुत्सने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनः स्त्रीप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे णः, ठक् च प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०-(**णः**) गार्ग्या अपत्यम्-गार्गो जाल्मः। (**ठक्**) गार्ग्या अपत्यम्-गार्गिको जाल्मः। (**णः**) ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनः। (**ठक्**) ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (गोत्रस्त्रियाः) गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (णः) ण प्रत्यय (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ण) **गार्ग्या अपत्यम्-गार्गो जाल्मः।** (ठक्) **गार्ग्या अपत्यम्-गार्गिको जाल्मः।** गार्गी का नीच पुत्र-गार्ग, गार्गिक। (ण) **ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनः।** (ठक्) **ग्लुचुकायन्या अपत्यम्-ग्लौचुकायनिकः।** ग्लुचुकायनी का नीच पुत्र-ग्लौचुकायन, ग्लौचुकायनिक।*

सिद्धि-(१) गार्गः। *गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्य+ङीष्। गार्ग्य्+ई। गार्गी। गार्गी+ङस्+ण। गार्ग्+अ। गार्ग+सु। गार्गः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय और **'यञश्च'** (४।१।१६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त 'गार्गी' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **गार्गिकः।** गार्गी+ङस्+ठक्। गार्ग्+इक। गार्गिकः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त गार्गी शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।*

*(३) **ग्लौचुकायनः।** ग्लुचुक+ङस्+फिन्। ग्लुचुक+आयनि। ग्लुचुकायनि। ग्लुचुकायनि+ङीष्। ग्लुचुकायनी। ग्लुचुकायनी+ङस्+ण। ग्लौचुकायन्+अ। ग्लौचुकायन+सु। ग्लौचुकायनः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'ग्लुचुकायन' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्'** (४।१।१६०) से 'फिन्' प्रत्यय तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में **'इतो मनुष्यजातेः'** (४।१।६५) से 'ङीष्' प्रत्यय है। षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची स्त्रीप्रत्ययान्त 'ग्लुचुकायनी' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **ग्लौचुकायनिकः।** ग्लुचुकायनी+ठक्। ग्लौचुकायन्+इक। ग्लौचुकायनिक+सु। ग्लौचुकायनिकः। पूर्ववत्।*

विशेष- *यहां स्त्री-पुत्र होने से निन्दित नहीं अपितु निन्दित आचरण से पुत्र निन्दित समझना चाहिये।*

ठक्--

(१) वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्।१४८।

प०वि०-वृद्धात् ५।१। ठक् १।१ सौवीरेषु ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, कुत्सने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सौवीरेषु गोत्राद् वृद्धाद् अपत्यं बहुलं ठक् कुत्सने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सौवीरगोत्रवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं ठक् प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०-भागवित्तेरपत्यम्-भागवित्तिको जाल्मः, भागवित्तायनो वा। तार्णबिन्दवस्यापत्यम्-तार्णबिन्दविको जाल्मः, तार्णबिन्दविर्वा। आकशापेयस्यापत्यम्-आकशापेयिको जाल्मः, आकशापेयिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीरगोत्रवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**भागवित्तेरपत्यम्-भागवित्तिको जाल्मः, भागवित्तायनो वा।** भागवित्ति का नीच पुत्र-भागवित्तिक अथवा भागवित्तायन। **तार्णबिन्दवस्यापत्यम्-तार्णबिन्दविको जाल्मः, तार्णबिन्दविर्वा।** तार्णबिन्दव का नीच पुत्र-तार्णबिन्दविक अथवा तार्णबिन्दवि। **आकशापेयस्यापत्यम्-आकशापेयिको जाल्मः, आकशापेयिर्वा।** आकशापेय का नीच पुत्र-आकशापेयिक अथवा आकशापेयि।*

*सिद्धि-(१) **भागवित्तिकः।** भागवित्त+ङस्+इञ्। भागवित्ति। भागवित्ति+ङस्+ठक्। भागवित्त्+इक। भागवित्तिक+सु। भागवित्तिकः।*

*यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'भागवित्त' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय, तत्पश्चात् गोत्रप्रत्ययान्त वृद्धसंज्ञक 'भागवित्ति' शब्द से अपत्य (निन्दित) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **भागवित्तायनः।** भागवित्ति+फक्। भागवित्त्+आयन। भागवित्तायन+सु। भागवित्तायनः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची वृद्धसंज्ञक 'भागवित्ति' शब्द से अपत्य अर्थ में बहुल पक्ष में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **तार्णबिन्दविकः।** तृणबिन्दु+अण्। तार्णबिन्दो+अ। तार्णबिन्दव+सु। तार्णबिन्दवः। तार्णबिन्दव+ङस्+ठक्। तार्णबिन्दव्+इक। तार्णबिन्दविक+सु। तार्णबिन्दविकः।*

यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'तृणबिन्दु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचमादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। तत्पश्चात् षष्ठीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त, वृद्धसंज्ञक 'तार्णबिन्दव' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से ठक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(४) **तार्णबिन्दविः।** तार्णबिन्दव+इञ्। तार्णबिन्दव्+इ। तार्णबिन्दवि+सु। तार्णबिन्दविः।*

*यहां सौवीर गोत्रवाची, वृद्धसंज्ञक 'तार्णबिन्दव' शब्द से बहुल पक्ष में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**आकशापेयिकः, आकशापेयिः।***

छः+ठक्—

(१) फेश्छ च।१४६।

प०वि०-फेः ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, कुत्सने, वृद्धात्, ठक्, सौवीरेषु, बहुलम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सौवीरेषु गोत्राद् फेर्वृद्धाद् अपत्यं बहुलं छः, ठक् च कुत्सने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सौवीरगोत्रवाचिनः फिञ्प्रत्ययान्ताद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे छः, ठक् च प्रत्ययो भवति, कुत्सने गम्यमाने।

उदा०-यमुन्दस्य गोत्रापत्यम्-यामुन्दायनिः। यामुन्दायनेरपत्यम्-यामुन्दायनीयो जाल्मः, यामुन्दायनिको वा।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीर गोत्रवाची (फेः) फिञ्-प्रत्ययान्त (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (छः) छ प्रत्यय (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं।

*उदा०-**यमुन्दस्य गोत्रापत्यम्-यामुन्दायनिः। यामुन्दायनेरपत्यम्-यामुन्दायनीयो जाल्मः, यामुन्दायनिको वा।** यमुन्द का पौत्र यामुन्दायनि कहाता है और यामन्दायनि का पुत्र यामुन्दायनीय अथवा यामुन्दायनिक कहाता है।*

***सिद्धि-(१) यामुन्दायनीयः।** यमुन्द+ङस्+फिञ्। यामुन्द्+आयनि। यामुन्दायनिः। यामुन्दायनि+ङस्+छ। यामुन्दायन्+ईय। यामुन्दायनीय+सु। यामुन्दायनीयः।*

*यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'यमुन्द' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'तिकादिभ्यः फिञ्'** (४।१।१५४) से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् फिञ्प्रत्ययान्त, वृद्धसंज्ञक 'यामुन्दायनि' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से ठक् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष-यहां 'फि' कहने से फिञ्-प्रत्ययान्त शब्द का ग्रहण किया जाता है, फिन् प्रत्ययान्त शब्द का नहीं क्योंकि वहां वृद्धसंज्ञा का सम्भव नहीं है।

णः+फिञ्–

(१) फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ।१५०।

प०वि०-फाण्टाहृति-मिमताभ्याम् ५।२ ण-फिञौ १।२।

स०-फाण्टाहृतिश्च मिमतश्च तौ फाण्टाहृतिमिमतौ, ताभ्याम्-फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। णश्च फिञ् च तौ-णफिञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, गोत्रात्, सौवीरेषु, बहुलमिति चानुवर्तते, 'कुत्सने' इति निवृत्तम्।

अन्वयः-तस्य सौवीरेषु गोत्रात् फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् अपत्यं बहुलं णफिञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सौवीरगोत्रवाचिभ्यां फाण्टाहृति-मिमताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं णफिञौ प्रत्ययौ भवतः।

'फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्' इत्यत्र द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरस्यापूर्वनिपातो लक्षणव्यभिचारचिह्नम्, तेनात्र यथासंख्यं प्रत्ययविधिर्न भवति।

उदा०-**(फाण्टाहृतिः)** फाण्टाहृतेरपत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिर्वा। **(मिमतः)** मिमतस्यापत्यम्-मैमतः, मैमतायनिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सौवीरेषु-गोत्रात्) सौवीर गोत्रवाची (फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्) फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (णफिञौ) ण और फिञ् प्रत्यय होते हैं।*

'फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्' यहां द्वन्द्वसमास में 'अल्पाच्तरम्' (२।२।३४) से 'मिमत' शब्द का पूर्वनिपात न करना लक्षण-व्यभिचार का चिह्न है, इसलिये यहां यथासंख्य प्रत्ययविधि नहीं होती है।

उदा०-(फाण्टाहृतिः) फाण्टाहृतेरपत्यम्-फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिर्वा। फाण्टाहृति का पुत्र-फाण्टहृत अथवा फाण्टाहृतायनि। (मिमतः) मिमतस्यापत्यम्-मैमतः, मैमतायनिर्वा। मिमत का पुत्र-मैमत अथवा मैमतायनि।

सिद्धि-(१) फाण्टाहृतः। फाण्टाहृति+ङस्+ण। फाण्टाहृत्+अ। फाण्टाहृत+सु। फाण्टाहृतः।

यहां षष्ठीसमर्थ सौवीर गोत्रवाची 'फाण्टाहृति' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) फाण्टाहृतायनिः। फाण्टाहृति+ङस्+फिञ्। फाण्टाहृत्+आयनि। फाण्टाहृतायनि+सु। फाण्टाहृतायनिः।

यहां सौवीर गोत्रवाची 'फाण्टाहृति' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-मैमतः, मैमतायनिः।

ण्यः--

(१) कुर्वादिभ्यो ण्यः।१५१।

प०वि०-कुरु-आदिभ्यः ५।३ ण्यः १।१।

स०-कुरुरादिर्येषां ते-कुर्वादयः, तेभ्यः-कुर्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सौवीरेषु, बहुलमिति च निवृत्तम्। तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कुर्वादिभ्योऽपत्यं ण्यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः कुर्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्य-मित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुरोरपत्यम्-कौरव्यः। गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यः, इत्यादिकम्।

कुरु। गर्ग। मङ्गुष। अजमारक। रथकार। वावदूक। सम्राजः क्षत्रिये। कवि। मति। वाक्। पितृमत्। इन्द्रजालि। दामोष्णीषि। गणकारि। कैशोरि कापिञ्जलादि।। कुट। शलाका। मुर। एरक। अभ्र। दर्भ। केशिनी। वेनाच्छन्दसि। शूर्पणाय। श्यावनाय। श्यावरथ। श्यावपुत्र। सत्यंकार। वडभीकार। शङ्कु। शाक। पथिकारिन्। मूढ। शकन्धु। कर्तृ। हर्तृ। शाकिन्। इनपिण्डी। विस्फोटक। काक। फाण्टक। शाकिन्। घातकि। धेनुजि। बुद्धिकार। वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम्। इति कुर्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कुर्वादिभ्यः) कुरु आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुरोरपत्यम्-कौरव्यः। गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यः, इत्यादि।

सिद्धि-कौरव्यः। कुरु+ङस्+ण्य। कौरो+य। कौरव्य+सु। कौरव्यः।

*यहां षष्ठीसमर्थ 'कुरु' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७६) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-गार्ग्यः।*

विशेष-*यहां 'कुरु' शब्द से 'ण्य' प्रत्यय का विधान किया गया है। आगे **'कुरुनादिभ्यो ण्यः'** (४।१।१७२) से भी 'कुरु' शब्द से 'ण्य' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। दोनों स्थानों पर प्रत्यय की समानता से 'कौरव्यः' पद ही बनता है। अन्तर यह है कि यहां 'कुरु' शब्द व्यक्तिवाची है और वहां जनपदवाची है। जनपदवाची शब्द से विहित ण्य प्रत्यय की 'तद्राज' संज्ञा होने से बहुवचन में **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से लुक् हो जाता है-**कौरव्यः, कौरव्यौ, कुरवः।** इस ण्य प्रत्यय का बहुवचन में लुक् नहीं होता है-**कौरव्यः, कौरव्यौ, कौरव्याः।***

ण्यः-

(२) सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च।१५२।

प०वि०-सेनान्त-लक्षण-कारिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सेनाऽन्ते यस्य सः-सेनान्तः। सेनान्तश्च लक्षणश्च कारिश्च ते-सेनान्तलक्षणकारयः, तेभ्यः-सेनान्तलक्षणकारिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, ण्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्चापत्यं ण्यः।

अर्थः-तस्य इति षश्ठीसमर्थात् सेनान्ताल्लक्षणशब्दात् कारिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सेनान्तः) कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेण्यः। हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेण्यः। **(लक्षणः)** लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षण्यः। **(कारिः)** कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकार्यः। तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवाय्यः। नापितस्यापत्यम्-नापित्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सेनान्तलक्षणकारिभ्यः) सेनान्त, लक्षण शब्द और कारि (शिल्पी) वाची प्रातिपदिकों से (च) भी (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सेनान्तः) ***कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेण्यः।*** *कारिषेण का पुत्र-कारिषेण्य।* ***हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेण्यः।*** *हारिषेण का पुत्र-हारिषेण्य। (लक्षणः)* ***लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षण्यः।*** *लक्षण=सारस का बच्चा-लाक्षण्य। (कारिः)* ***कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकार्यः।*** *कुम्भकार का पुत्र-कौम्भकार्य।* ***तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवाय्यः।*** *जुलाहे का पुत्र-तन्तुवाय्य।* ***नापितस्यापत्यम्-नापित्यः।*** *नायी का पुत्र-नापित्य।*

सिद्धि- ***कारिषेण्यः।*** *कारिषेण+ङस्+ण्य। कारिषेण्+य। कारिषेण्य+सु। कारिषेण्यः।*

यहां षष्ठीसमर्थ सेनान्त 'कारिषेण' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- ***हारिषेण्यः, लाक्षण्य*** *और* ***कौम्भकार्यः*** *आदि।*

इञ्-(उदीचां मते)-

(१) उदीचामिञ्।१५३।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ इञ् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, सेनान्तलक्षणकारिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सेनान्तलक्षणकारिभ्योऽपत्यमिञ् उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सेनान्ताल्लक्षणशब्दात् कारिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-(सेनान्तः) कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेणिः। हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेणिः। **(लक्षणः)** लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षणिः। **(कारिः)** कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकारिः। तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवायिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (सेनान्तलक्षणकारिभ्यः) सेनान्त शब्द, लक्षणशब्द और कारि (शिल्पी) वाची प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

उदा०-(सेनान्त) ***कारिषेणस्यापत्यम्-कारिषेणिः।*** *कारिषेण का पुत्र-कारिषेणि।* ***हारिषेणस्यापत्यम्-हारिषेणिः।*** *हारिषेण का पुत्र-हारिषेणि।* ***(लक्षण) लक्षणस्यापत्यम्-लाक्षणिः।*** *लक्षण=सारस का बच्चा-लाक्षणि। (कारि)* ***कुम्भकारस्यापत्यम्-कौम्भकारिः।*** *कुम्भकार का पुत्र-कौम्भकारि।* ***तन्तुवायस्यापत्यम्-तान्तुवायिः।*** *जुलाहे का पुत्र-तान्तुवायि।*

सिद्धि-कारिषेणि: । कारिषेण+ङस्+इञ् । कारिषेण्+इ । कारिषेणि+सु । कारिषेणि: ।

यहां षष्ठीसमर्थ सेनान्त, 'कारिषेण' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-'हारिषेणि:' आदि।

फिञ्-

(१) तिकादिभ्य फिञ्।१५४।

प०वि०-तिकादिभ्य: ५।३ फिञ् १।१।

स०-तिक आदिर्येषां ते-तिकादय:, तेभ्य:-तिकादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य तिकादिभ्योऽपत्यं फिञ्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यस्तिकादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तिकस्यापत्यम्-तैकायनि:। कितवस्यापत्यम्-कैतवायनि:, इत्यादिकम्।

तिक। कितव। संज्ञा। बाल। शिखा। उरस। शाढ्य। सैन्धव। यमुन्द। रूप्य। ग्राम्य। नील। अमित्र। गौकक्ष्य। कुरु। देवरथ। तैतिल। औरस। कौरव्य। भौरिकि। भौलिकि। चौपयति। चैटयत। शैकयत। क्षैतयत। ध्वाजवत। चन्द्रमस। शुभ। गङ्गा। वरेण्य। सुयामन्। आरद्ध। वह्यका। खल्य। वृष। लोमक। उदन्य। यज्ञ। ऋष्य। भीत। जाजल। रस। लावक। ध्वजवद। वसु। बन्धु। आबन्धका। सुपाभन इति तिकादय:।।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तिकादिभ्य:) तिक आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**तिकस्यापत्यम्-तैकायनि:।** तिक का पुत्र-तैकायनि। **कितवस्यापत्यम्-कैतवायनि:।** कितव=जुआरी का पुत्र-कैतवायनि।*

*सिद्धि-**तैकायनि:।** तिक+ङस्+फिञ्। तैक्+आयनि। तैकायनि+सु। तैकायनि:।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'तिक' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कैतवायनि:।***

फिञ्–

(२) कौसल्यकार्मार्याभ्यां च।१५५।

प०वि०–कौसल्य-कार्मार्याभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०–कौसल्यश्च कार्मार्यश्च तौ–कौसलकार्मार्यौ, ताभ्याम्–कौसल्यकार्मार्याभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कौसल्यकार्मार्याभ्यां चापत्यं फिञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कौसल्यकार्मार्याभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यामपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कोसलस्यापत्यम्–कौसल्यायनिः। कार्मार्यस्यापत्यम्–कार्मार्यायणिः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कौसल्यकार्मार्याभ्याम्) कौसल्य और कार्मार्य प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।

*उदा०–**कोसलस्यापत्यम्–कौसल्यायनिः।** कोसल देश का पुत्र–कौसल्यायनि। कोसल=प्राचीन जनपद (अवध)। **कार्मार्यस्यापत्यम्–कार्मार्यायणिः।** कारीगर का पुत्र–कार्मार्यायणि।*

*सिद्धि–(१) **कौसल्यायनिः।** कोसल+ङस्+फिञ्। कौसल्य्+आयनि। कौसल्यायनि+सु। कौसल्यायनिः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कोसल' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्रोक्त निपातन से 'कोसल' शब्द के स्थान में 'कौसल्य' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **कार्मार्यायणिः।** कर्मार+ङस्+फिञ्। कार्मार्य्+आयनि। कार्मार्यायणि+सु। कार्मार्यायणिः।*

यहां 'कर्मार' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्रोक्त निपातन से 'कर्मार' शब्द के स्थान में 'कार्मार्य' आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

फिञ्–

(३) अणो द्व्यचः।१५६।

प०वि०–अणः ५।१ द्वि-अचः ५।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् सः-द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अणो द्व्यचोऽपत्यं फिञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अण्प्रत्ययान्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्तुरपत्यम्-कार्त्रः। कार्त्रस्यापत्यम्-कार्त्रायणिः। हर्तुरपत्यम्-हार्त्रः। हार्त्रस्यापत्यम्-हार्त्रायणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अणः) अण्-प्रत्ययान्त (द्व्यचः) दो अचोंवाले प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कर्तुरपत्यम्-कार्त्रः। कार्त्रस्यापत्यम्-कार्त्रायणिः।** कर्ता का पुत्र-कार्त्र। कार्त्र का पुत्र-कार्त्रायणि। **हर्तुरपत्यम्-हार्त्रः। हार्त्रस्यापत्यम्-हार्त्रायणिः।** हर्ता का पुत्र-हार्त्र। हार्त्र का पुत्र-हार्त्रायणि।*

*सिद्धि-**कार्त्रायणिः।** कर्तृ+ङस्+अण्। कार्तृर+अ। कार्त्र। कार्त्र+ङस्+फिञ्। कार्त्र्+आयनि। कार्त्रायणि+सु। कार्त्रायणिः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'कर्तृ' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय और तत्पश्चात् अण् प्रत्ययान्त द्व्यच् 'कार्त्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से फिञ् प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**हार्त्रायणिः।***

फिञ् (उदीचां मते)-

(४) उदीचां वृद्धादगोत्रात्।१५७।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ वृद्धात् ५।१ अगोत्रात् ५।१।

स०-न गोत्रमिति अगो[illegible], तस्मात्-अगोत्रात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धाद् अपत्यं फिञ् उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रभिन्नाद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-आम्रगुप्तस्यापत्यम्-आम्रगुप्तायनिः। ग्रामरक्षस्यापत्यम्-ग्रामरक्षायणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**आम्रगुप्तस्यापत्यम्-आम्रगुप्तायनिः।** आम्रगुप्त का पुत्र-आम्रगुप्तायनिः। आम्रगुप्त=आमों का रक्षक। **ग्रामरक्षस्यापत्यम्-ग्रामरक्षायणिः।** ग्रामरक्ष का पुत्र-ग्रामरक्षायणि। ग्रामरक्ष-ग्राम का रक्षक।*

सिद्धि-आम्रगुप्तायनिः। *आम्रगुप्त+ङस्+फिञ्। आम्रगुप्त्+आयनि। आम्र-गुप्तायनि+सु। आम्रगुप्तायनिः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ गोत्र से भिन्न वृद्धसंज्ञक 'आम्रगुप्त' शब्द से उत्तर भारत के आचार्यों के मत में 'फिञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**ग्रामरक्षायणिः।***

फिञ् (कुक)-

(५) वाकिनादीनां कुक् च।१५८।

प०वि०-वाकिन-आदीनाम् ६।३ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-वाकिन आदिर्येषां ते-वाकिनादयः, तेषाम्-वाकिनादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ्, उदीचाम् वृद्धात्, अगोत्रात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धात् वाकिनादिभ्योऽपत्यं फिञ्, कुक् च उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रभिन्नेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाकिनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, तेषां च कुक् आगमो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-वाकिनस्यापत्यम्-वाकिनकायनिः। गारेधस्यापत्यम्-गारेधकायनिः।

वाकिन। गारेध। कार्कठ्य। काक। लङ्का। वा०-चर्मिवर्मिणोर्न-लोपश्च। इति वाकिनादयः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्)* ***वृद्धसंज्ञक (वाकिनादीनाम्) वाकिन आदि प्रातिपदिकों से*** *(अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्)*

फिञ् प्रत्यय होता है (च) और उन्हें (कुक्) कुक् आगम होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।

*उदा०-**वाकिनस्यापत्यम्-वाकिनकायनिः।** वाकिन का पुत्र-वाकिनकायनि। **गारेधरस्यापत्यम्-गारेधकायनिः।** गारेध का पुत्र-गारेधकायनि।*

***सिद्धि-वाकिनकायनिः।** वाकिन+ङस्+फिञ्। वाकिन कुक्+आयनि। वाकिनक्+आयनि। वाकिनकायनि+सु। वाकिनकायनिः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'वाकिन' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है और 'वाकिन' शब्द को 'कुक्' आगम भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**गारेधकायनिः** आदि।*

फिञ्-विकल्पः--

(६) पुत्रान्तादन्यतरस्याम्।१५६।

प०वि०-पुत्रान्तात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-पुत्रोऽन्ते यस्य सः-पुत्रान्तः, तस्मात्-पुत्रान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, फिञ्, उदीचाम्, वृद्धात्, अगोत्रात् कुक् च इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अगोत्राद् वृद्धात् पुत्रान्ताद् अपत्यम् अन्यतरस्यां फिञ् कुक् च उदीचाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रभिन्नाद् वृद्धसंज्ञकात् पुत्रान्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे फिञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च विकल्पेन कुक् आगमो भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-गार्गीपुत्रस्यापत्यम्-गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिर्वा। वात्सीपुत्रस्यापत्यम्-वात्सीपुत्रकायणिः, वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिर्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अगोत्रात्) गोत्र से भिन्न (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (पुत्रान्तात्) पुत्रान्त प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है, (च) और (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कुक्) कुक् आगम होता है (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**गार्गीपुत्रस्यापत्यम्-गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिर्वा।** गार्गीपुत्र का पुत्र-गार्गीपुत्रकायणि, गार्गीपुत्रायणि अथवा गार्गीपुत्रि। **वात्सीपुत्रस्यापत्यम्-वात्सीपुत्रकायणिः,***

वात्सीपुत्रायणिः, वात्सीपुत्रिर्वा। वात्सीपुत्र का पुत्र-वात्सीपुत्रकायणि, वात्सीपुत्रायणि अथवा वात्सीपुत्रि।

सिद्धि-(१) गार्गीपुत्रकायणिः। गार्गीपुत्र+ङस्+फिञ्। गार्गीपुत्र कुक्+आयनि। गार्गीपुत्रकायणि+सु। गार्गीपुत्रकायणिः।

यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्र से भिन्न, वृद्धसंज्ञक, पुत्रान्त 'गार्गीपुत्र' शब्द से अपत्य अर्थ में उत्तर भारत के आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय है और उसे 'कुक्' आगम भी होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) गार्गीपुत्रायणिः। यहां विकल्प पक्ष में 'कुक्' आगम नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) गार्गीपुत्रिः। गार्गीपुत्र+इञ्। गार्गीपुत्र्+इ। गार्गीपुत्रि+सु। गार्गीपुत्रिः।

यहां अन्य आचार्यों के मत में 'अत इञ्' (४।१।९) से 'इञ्' प्रत्यय है। 'कुक्' आगम 'फिञ्' प्रत्यय परे होने पर होता है, 'इञ्' प्रत्यय परे होने पर नहीं।

फिन् (बहुलं प्राचां मते)–

(१) प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्।१६०।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ अवृद्धात् ५।१ फिन् १।१ बहुलम् १।१।

स०–न वृद्धमिति अवृद्धम्, तस्मात्-अवृद्धात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य अवृद्धाद् अपत्यं बहुलं फिन् प्राचाम्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अवृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे बहुलं फिञ् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–ग्लुचुकस्यापत्यम्–ग्लुचुकायनिः, ग्लौचुकिर्वा। अहिचुम्बकस्यापत्यम्–अहिचुम्बकायनिः आहिचुम्बकिर्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (अवृद्धात्) अवृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (फिञ्) फिञ् प्रत्यय होता है (प्राचाम्) पूर्व भारत के आचार्यों के मत में।*

*उदा०–**ग्लुचुकस्यापत्यम्–ग्लुचुकायनिः, ग्लौचुकिर्वा।** ग्लुचुक=चोर का पुत्र-ग्लुचुकायनि अथवा ग्लौचुकि। **अहिचुम्बकस्यापत्यम्–अहिचुम्बकायनिः, आहिचुम्बकिर्वा।** अहिचुम्बक=सर्पविष का चुम्बन करनेवाले (गारडु) का पुत्र-अहिचुम्बकायनि अथवा आहिचुम्बकि।*

सिद्धि-(१) ग्लुचुकायनिः । ग्लुचुक+ङस्+फिन् । ग्लुचुक्+आयनि । ग्लुचुकायनि+सु । ग्लुचुकायनिः ।

यहां षष्ठीसमर्थ अवृद्धसंज्ञक 'ग्लुचुक' शब्द से अपत्य अर्थ में पूर्व भारत के आचार्यों के मत में 'फिन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ग्लौचुकिः । ग्लुचुक+ङस्+इञ् । ग्लौचुक्+इ । ग्लौचुकि+सु । ग्लौचुकिः ।

*यहां पूर्वोक्त 'ग्लुचुक' शब्द से अपत्य अर्थ में अन्य आचार्यों के मत में **'अत इञ्'** (४।१।९२) से बहुल पक्ष में 'इञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अहिचुम्बकायनिः, आहिचुम्बकिः ।***

अञ्+यत् (षुक)–

(१) मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च।१६१।

प०वि०-मनोः ५।१ जातौ ७।१ अञ्-यतौ १।२ षुक् १।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य मनोरपत्यम् अञ्यतौ षुक् च जातौ ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् मनुशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ्-यतौ प्रत्ययौ भवतः, तस्य च षुक् आगमो भवति, जातौ गम्यमानायाम् ।

उदा०-मनोरपत्यम्-मानुषः, मनुष्यश्च ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (मनोः) मनु शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्यतौ) अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं (च) और उसे (षुक्) षुक् आगम होता है (जातौ) यदि वहां जाति अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**मनोरपत्यम्-मानुषः, मनुष्यश्च ।** मनु का पुत्र-मानुष और मनुष्य ।*

*सिद्धि-**(१) मानुषः ।** मनु+अञ् । मनु षुक्+अ । मानुष्+अ । मानुष+सु । मानुषः ।*

यहां मनु शब्द से अपत्य अर्थ में तथा जाति अर्थ अभिधेय होने पर इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय और मनु शब्द को 'षुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **मनुष्यः ।** मनु+यत् । मनु षुक्+य । मनुष्+य । मनुष्य+सु । मनुष्यः ।*

यहां मनु शब्द से पूर्ववत् यत् प्रत्यय और उसे षुक् आगम है।

विशेष-यहां पं० जयादित्य आदि भाष्यकार अपत्य अर्थ की अनुवृत्ति नहीं मानते हैं। गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री का मत है कि यहां अपत्य अर्थ की अनुवृत्ति है, अतः तदनुसार ही सूत्र की व्याख्या की गई है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यहां मनु शब्द से

*अपत्य अर्थ में 'माणवः' शब्द की सिद्धि की है। आचार्य यास्क लिखते हैं-**मनुष्यः कस्मात् ? मनोरपत्यं मनुषो वा** (निरुक्त ३।२)।*

गोत्रसंज्ञा–

(१) अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्।१६२।

प०वि०–अपत्यमम् १।१ पौत्रप्रभृति १।१ गोत्रम् १।१।

स०–पौत्रं प्रभृतिर्यस्य तत्–पौत्रप्रभृति (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–पौत्रप्रभृति अपत्यं गोत्रम्।

अर्थः–पौत्रप्रभृति यदपत्यं तद् गोत्रसंज्ञकं भवति।

उदा०–गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–गार्ग्यः। वत्सस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–वात्स्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पौत्रप्रभृति) पौत्र से लेकर जो (अपत्यम्) सन्तान है उसकी (गोत्रम्) गोत्र संज्ञा होती है।*

*उदा०–**गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–गार्ग्यः।** गर्ग के पौत्र से लेकर जो अपत्य=सन्तान है उसको गार्ग्य कहते हैं। **वत्सस्यापत्यं पौत्रप्रभृति–वात्स्यः।** वत्स के पौत्र से लेकर जो अपत्य=सन्तान है, उसको वात्स्य कहते हैं।*

*सिद्धि-**गार्ग्यः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्ग' शब्द से पौत्रप्रभृति अपत्य अर्थात् गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वात्स्यः।***

युव-संज्ञा–

(१) जीवति तु वंश्ये युवा।१६३।

प०वि०–जीवति ७।१ तु अव्ययपदम्, वंश्ये ७।१ युवा १।१।

वंशे भवो भवः, **'दिगादिभ्यो यत्'** (४।३।५।४) इति भवार्थे यत् प्रत्ययः।

अनु०–अपत्यम्, पौत्रप्रभृति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वंश्ये जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं युवा तु।

अर्थः–वंश्ये=पित्रादौ जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् युवसंज्ञकमेव भवन्ति।

पूर्वसूत्राद् यद् 'पौत्रप्रभृति' इत्यनुवर्तते तदत्र षष्ठ्यां विपरिणम्यते। तेन चतुर्थादपत्यादारभ्य युवसंज्ञा विधीयते।

उदा०-गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः। वत्सस्य युवापत्यम्-वात्स्यायनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वंश्ये) वंश के पिता आदि के (जीवति) जीवित रहने पर (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि के (अपत्यम्) सन्तान की (युवा) युवासंज्ञा (तु) ही होती है, गोत्रसंज्ञा नहीं।*

*उदा०-**गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः।** गार्ग्य का युवापत्य-गार्ग्यायण। **वात्स्यस्य युवापत्यम्-वात्स्यायनः।** वात्स्य का युवापत्य-वात्स्यायन।*

*सिद्धि-**गार्ग्यायणः।** गर्ग+ङस्+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य। **गार्ग्य+ङस्+फक्।** गार्ग्य्+आयन। गार्ग्यायण+सु। गार्ग्यायणः।*

*यहां प्रथम षष्ठीसमर्थ 'गर्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्'** (४।१।९४) के नियम से गोत्र प्रत्ययान्त षष्ठी-समर्थ 'गार्ग्य' शब्द से युवापत्य अर्थ में **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से 'फक्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वात्स्यायनः।***

*विशेष-प्रथम पुरुष 'गर्ग' है। गर्ग का पुत्र 'गार्गि' कहाता है। यहां **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है। 'गर्ग' का गोत्रापत्य=पौत्र 'गार्ग्य' कहाता है। यहां **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। गार्ग्य का युवापत्य 'गार्ग्यायण' कहाता है। यहां **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से युवापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय होता है। जब तक वंश्य गार्गि आदि जीवित रहते हैं तब तक चतुर्थ पुत्र की 'गार्ग्यायण' युव-संज्ञा (छोरा) होती है। 'गार्गि' आदि के जीवित न रहने पर चतुर्थ पुत्र की गोत्र संज्ञा होती है-**गार्ग्य।***

युव-संज्ञा-

(२) भ्रातरि च ज्यायसि।१६४।

प०वि०-भ्रातरि ७।१ च अव्ययपदम्, ज्यायसि ७।१।

अनु०-अपत्यं पौत्रप्रभृति जीवति युवा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ज्यायसि भ्रातरि जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं युवा।

अर्थः-ज्यायसि भ्रातरि जीवति सति च पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् युवसंज्ञकं भवति।

उदा०-गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः कनीयान् भ्राता, गार्ग्यश्च ज्यायान् भ्राता भवति।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-(ज्यायसि) बड़ा (भ्रातरि) भाई (जीवति) जीवित रहने पर (च) भी (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि का जो (अपत्यम्) पुत्र है उसकी (युवा) युवासंज्ञा होती है।**

*उदा०-**गार्ग्यस्य युवापत्यम्-गार्ग्यायणः कनीयान् भ्राता, गार्ग्यश्च ज्यायान् भ्राता भवति।** गार्ग्य का पुत्र-छोटा भाई 'गार्ग्यायण' और बड़ा भाई 'गार्ग्य' कहाता है।*

विशेष-गार्ग्य के दो पुत्र हैं। एक का नाम देवदत्त और दूसरे का नाम यज्ञदत्त है। पिता की मृत्यु हो जाने पर और बड़े भाई देवदत्त के जीवित रहने पर छोटे भाई यज्ञदत्त की युवा संज्ञा होती है, अतः वह 'गार्ग्यायण' कहाता है और बड़े भाई की गोत्रसंज्ञा होने से वह 'गार्ग्य' कहाता है। भारतीय संस्कृति में बड़ा भाई पिता के तुल्य माना जाता है। अतः बड़े भाई के जीवित रहते छोटा भाई 'गोत्र' पद प्राप्त नहीं करता है, उसकी युवासंज्ञा ही होती है। वह अभी युवा (लड़का) ही है।

युव-संज्ञा—

(३) वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति।१६५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, अन्यस्मिन् ७।१ सपिण्डे ७।१ स्थविरतरे ७।१ जीवति ७।१। सप्तमपुरुषावधयः सपिण्डाः स्मर्यन्ते।

अनु०-अपत्यम्, पौत्रप्रभृति, जीवति, भ्रातरि, युवा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्रातरि अन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति, पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवति वा युवा।

अर्थः-भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् जीवदेव विकल्पेन युवसंज्ञकं भवति।

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वा। वत्सस्यापत्यम्-वात्स्यायनो वात्स्यो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भ्रातरि) भाई से (अन्यस्मिन्) अन्य (सपिण्डे) सात पीढी के (स्थविरतरे) पद वा आयु से वृद्ध पुरुष के (जीवति) जीवित रहने पर (पौत्रप्रभृतेः) पौत्र आदि के (अपत्यम्) सन्तान की (जीवति) जीवित अवस्था में (वा) विकल्प से (युवा) युवा संज्ञा होती है।*

उदा०-गर्गस्यापत्यम्-गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वा। गर्ग के पौत्र आदि का पुत्र भ्राता से भिन्न सात पीढी में किसी वृद्ध के जीवित रहने पर वह स्वयं जीवित अवस्था में 'गार्ग्यायण' अथवा 'गार्ग्य' कहाता है। ऐसे ही-वात्स्यायन अथवा वात्स्य।

***विशेष**-पं० जयादित्य ने काशिकावृत्ति में 'वृद्धस्य च पूजायाम्' तथा 'यूनश्च कुत्सायाम्' इन दोनों वार्तिकों को पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। वार्तिक होने से इनका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।*

तद्राजसंज्ञा

अञ्-

(१) जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्।१६६।

प०वि०- जनपदशब्दात् ५।१ क्षत्रियात् ५।१ अञ् १।१।

अनु०-तस्य, अपत्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् अपत्यम् अञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। पञ्चालानामपत्यम्-पाञ्चालः। इक्ष्वाकूणां निवासो जनपदः-इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकूणामपत्यम्-ऐक्ष्वाकः। विदेहानां निवासो जनपदः-विदेहाः। विदेहानामपत्यम्-वैदेहः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। पञ्चालानामपत्यम्-पाञ्चालः।** पञ्चाल नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'पञ्चालाः' कहाता है। पञ्चाल नामक क्षत्रियों का पुत्र-'पाञ्चालः' कहाता है। **इक्ष्वाकूणां निवासो जनपदः-इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकूणामपत्यम्-ऐक्ष्वाकः।** इक्ष्वाकु नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'इक्ष्वाकवः' कहाता है। इक्ष्वाकु क्षत्रियों का पुत्र-'ऐक्ष्वाक' कहाता है। **विदेहानां निवासो जनपदः-विदेहाः। विदेहानामपत्यम्-वैदेहः।** विदेह नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'विदेहाः' कहाता है। विदेह क्षत्रियों का पुत्र-'वैदेहः' कहाता है।*

***सिद्धि**-(१) पाञ्चालः। पञ्चाल+ङस्+अण्। पञ्चाल+०। पञ्चाल+अञ्। पाञ्चाल्+अ। पाञ्चाल+सु। पाञ्चालः।*

यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' शब्द से 'तस्य निवासः' (४।२।६८) से निवास अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और 'जनपदे लुप्' (४।२।८०) से उसका लोप होता है।

'पञ्चाल' नामक क्षत्रियों के निवास से उनका जनपद (प्रदेश) भी 'पञ्चाल' कहाता है। क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' जनपद शब्द से इस सूत्र से अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) ऐक्ष्वाकः। यहां 'दाण्डिनायनहास्तिनायन०' (६।४।१७४) से 'इक्ष्वाकु' शब्द के 'उकार' का लोप निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वैदेहः** आदि।*

अञ्–

(२) साल्वेयगान्धारिभ्यां च।१६७।

प०वि०-साल्वेय-गान्धारिभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-साल्वेयश्च गान्धारिश्च तौ-साल्वेयगान्धारी, ताभ्याम्-साल्वेयगान्धारिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, अञ्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाभ्यां जनपदशब्दाभ्यां साल्वेयगान्धारिभ्यां च अपत्यम् अञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां क्षत्रियवाचिभ्यां जनपदशब्दाभ्यां साल्वेयगान्धारिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपि अपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(साल्वेयः)** साल्वेयानामपत्यम्-साल्वेयः। **(गान्धारिः)** गान्धारीणामपत्यम्-गान्धारः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (साल्वेयगान्धारिभ्याम्) साल्वेय और गान्धारि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साल्वेय) साल्वेयानामपत्यम्-साल्वेयः।** साल्वेय नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'साल्वेय' कहाता है। साल्वेयों के पुत्र को 'साल्वेय' कहते हैं। **(गान्धारिः) गान्धारीणामपत्यम्-गान्धारः।** गान्धारि नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'गान्धारि' कहाता है। गान्धारि के पुत्र को 'गान्धार' कहते हैं।*

सिद्धि-(१) साल्वेयः। *साल्वेय+ङस्+अञ्। साल्वेय्+अ। साल्वेय+सु। साल्वेयः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'साल्वेय' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। यहां **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय*

सिद्ध ही था किन्तु ये वृद्धसंज्ञक शब्द होने से 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' (४।१।१६९) से 'ञ्यङ्' प्रत्यय प्राप्त था। उसका यह पूर्व प्रतिषेध है।

(२) गान्धारः। गान्धारि+ङस्+अञ्। गान्धार्+अ। गान्धार+सु। गान्धारः। पूर्ववत्।

***विशेष**-(१) साल्वेय जनपद, साल्व जनपद की एक शाखा थी। साल्व जनपद वर्तमान अलवर से उत्तरी बीकानेर तक का फैला हुआ प्रदेश था।*

(२) गान्धारि यह गन्धार जनपद का पुराना नाम है। गन्धार जनपद कुनड़ (काश्कर) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६२)।

अण्-

(१) द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्।१६८।

प०वि०-द्व्यच्-मगध-कलिङ्ग-सूरमसात् ५।१ अण् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् सः-द्व्यच्। द्व्यच् च मगधश्च कलिङ्गश्च सूरमसश्च एतेषां समाहारः-द्व्यच्मगधकलिङ्गसूरमसम्, तस्मात्-द्व्यच्मगधकलिङ्गसूरमसात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसाद् अपत्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यो द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(द्व्यच्)** अङ्गानामपत्यम्-आङ्गः। बङ्गानामपत्यम्-बाङ्गः। पुण्ड्राणामपत्यम्-पौण्ड्रः। सुह्मानामपत्याम्-सौह्मः। **(मगधः)** मगधानामपत्यम्-मागधः। **(कलिङ्गः)** कलिङ्गानामपत्यम्-कालिङ्गः। **(सूरमसः)** सूरमसानामपत्यम्-सौरमसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसात्) दो अचोंवाले शब्द, मगध, कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(द्व्यच्) **अङ्गानामपत्यम्-आङ्गः।** अङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-**आङ्ग।** **बङ्गानामपत्यम्-बाङ्गः।** बङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-बाङ्ग। **पुण्ड्राणामपत्यम्-पौण्ड्रः।***

*पुण्ड्र नामक क्षत्रियों का पुत्र-पौण्ड्र। **सुह्मानामपत्याम्-सौह्म:।** सुह्म नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौह्म। **(मगध) मगधानामपत्यम्-मागध:।** मगध नामक क्षत्रियों का पुत्र-मागध। **(कलिङ्ग) कलिङ्गानामपत्यम्-कालिङ्ग:।** कलिङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-कालिङ्ग। **(सूरमस) सूरमसानामपत्यम्-सौरमस:।** सूरमस नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौरमस।*

सिद्धि-आङ्ग:। अङ्ग+ङस्+अण्। आङ्ग्+अ। आङ्ग:।

*यहां क्षत्रियवाची **जनपद** शब्द अङ्ग प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचमादे:'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-'बाङ्ग:' आदि।*

***विशेष-(१) अङ्ग:। यह** एक जनपद तथा उनके निवासियों का नाम है। यह देश बिहार के भागलपुर नगर के आसपास है। **वैद्यनाथ** देवघर से लेकर इसकी सीमा मानी गई है। (शब्दार्थ-कौस्तुभ)*

(२) बङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म ये भारतीय प्राचीन जनपदों के नाम हैं, इनके निवासी क्षत्रिय भी इन्हीं नामों से कहे जाते हैं। सुह्म-एक प्राचीन जनपद, रोढ़ देश। वहां का निवासी। एक यवन जाति। (शब्दार्थ-कौस्तुभ)

***(३) मगध।** गंगा के दक्षिण का प्रदेश मगध जनपद था, जहां राजतन्त्र शासन था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)*

***(४) कलिङ्ग।** कलिङ्ग पाणिनि के समय में जनपद राज्य था, किन्तु सोलह महाजनपदों की सूची में उसकी गिनती नहीं है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। 'प्राचीन भारत का एक जनपद। वहां का निवासी। वाममार्ग में इसकी सीमा का उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है-*

जगन्नाथात्समारभ्य कृष्णतीरान्तग: प्रिये।
कलिङ्गदेश: सम्प्रोक्तो वाममार्गपरायण:।।' (शब्दार्थ-कौस्तुभ)

***(५) सूरमस।** यह नाम केवल अष्टाध्यायी में आया है। ज्ञात होता है कि असम प्रान्त में प्रसिद्ध सूरमा नदी की दून और पर्वत-उपत्यका का प्राचीन नाम सूरमस था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

ञ्यङ्-

(१) वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्।१६६।

प०वि०-वृद्ध-इत्-कोसल-अजादात् ५।१ ञ्यङ् १।१।

स०-वृद्धं च इच्च कोसलश्च अजादश्च एतेषां समाहार:-वृद्धेत्कोसलाजादम्, तस्मात्-वृद्धेत्कोसलाजादात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् वृद्धेत्कोसलाजादाद् अपत्यं ञ्यङ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दाद् वृद्धसंज्ञकाद् इकारान्तात्, कोसलाद् अजादाच्च प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे ञ्यङ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(वृद्धम्)** आम्बष्ठानामपत्यम्-आम्बष्ठ्यः। सौवीराणामपत्यम्-सौवीर्यः। **(इत्)** अवन्तीनामपत्यम्-आवन्त्यः। कुन्तीनामपत्यम्-कौन्त्यः। **(कोसलः)** कोसलानामपत्यम्-कौसल्यः। **(अजादः)** अजादानामपत्यम्-आजाद्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (वृद्धेत्कोसलाजादात्) वृद्धसंज्ञक, इकारान्त, कोसल और अजाद प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ञ्यङ्) ञ्यङ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वृद्ध) ***आम्बष्ठानामपत्यम्-आम्बष्ठ्यः।*** *आम्बष्ठ नामक क्षत्रियों का पुत्र-आम्बष्ठ्य।* ***सौवीरानामपत्यम्-सौवीर्यः।*** *सौवीर नामक क्षत्रियों का पुत्र-सौवीर्य। (इत्)* ***अवन्तीनामपत्यम्-आवन्त्यः।*** *अवन्ति नामक क्षत्रियों का पुत्र-आवन्त्य।* ***कुन्तीनामपत्यम्-कौन्त्यः।*** *कुन्ति नामक क्षत्रियों का पुत्र-कौन्त्यः। (कोसल)* ***कोसलानामपत्यम्-कौसल्यः।*** *कोसल नामक क्षत्रियों का पुत्र-कौसल्य। (अजाद)* ***अजादानामपत्यम्-आजाद्यः।*** *अजाद नामक क्षत्रियों का पुत्र-आजाद्य।*

सिद्धि- ***आम्बष्ठ्यः।*** *अम्बष्ठ+आम्+ञ्यङ्। आम्बष्ठ्+य। आम्बष्ठ्य+सु। आम्बष्ठ्यः।*

यहां क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'आम्बष्ठ' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्यङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही- ***सौवीर्य*** *आदि।*

विशेष-(१) ***अम्बष्ठ।*** *यह जनपद राजाधीन था और इसके निवासी आम्बष्ठ्य कहलाते थे। महाभारत के अनुसार आम्बष्ठ कौरवों की ओर से लड़े थे। उनकी गिनती औदीच्यों में की गई है। ये अत्यन्त वीर थे और चनाब नदी के निचले भाग में बसे हुये थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

(२) ***सौवीर।*** *वर्तमानकाल में सिन्धु प्रान्त या सिंध नद के निचले कांठे का नाम सौवीर जनपद था। इसकी राजधानी रोरुन (संस्कृत-रौरुक) वर्तमान रोड़ी है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(३) **कुन्ति।** महाभारत के अनुसार कुन्ति, अवन्ति जनपद का पड़ोसी था। उस राज्य में से अश्व नदी बहती थी जो सम्भवतः चम्बल की शाखा कुनारी नदी थी (**वनपर्व** ३०८/७ बृहत् संहिता १०।१५)। सहदेव ने अपनी दक्षिण की दिग्विजय में कुन्ति देश **को** जीता था। यमुना और चंबल के कांठे में प्राचीन कुन्ति राष्ट्र (वर्तमान ग्वालियर) राज्य था जो अब भी कोतवार कहलाता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(४) **अवन्ति।** यह मध्य भारत का प्रसिद्ध जनपद था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(५) **कोसल।** यह राजाधीन जनपद बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में गिना जाता था। पाणिनि ने उससे सम्बन्धित सरयू और इक्ष्वाकु का भी उल्लेख किया है (६।४।१७४) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(६) **अजाद।** इस जनपद का नाम केवल अष्टाध्यायी में मिलता है। नाम से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश बकरियों के लिये प्रसिद्ध रहा होगा (अजा+दः)। इटावा का प्रदेश आज तक जमनापारी बकरियों के लिये प्रसिद्ध है। सम्भव है यही 'अजाद' हो (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

ण्यः—

(१) कुरुनादिभ्यो ण्यः।१७०।

प०वि०–कुरु–नादिभ्यः ५।३ ण्यः १।१।

स०–न आदिर्येषां ते–नादयः। कुरुश्च नादयश्च ते–कुरुनादयः, तेभ्यः–कुरुनादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य, क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्यः कुरु–नादिभ्योऽपत्यं ण्यः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यः जनपदशब्देभ्यः कुरु–शब्दात् नकारादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽत्यमित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**कुरुः**) कुरूणामपत्यम्–कौरव्यः। (**नकारादिः**) निषधानाम–पत्यम्–नैषध्यः। निपथानामपत्यम्–नैपथ्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद शब्द (कुरुनादिभ्यः) कुरु शब्द और नकारादि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कुरु) **कुरूणामपत्यम्-कौरव्यः।** कुरु नामक क्षत्रियों का पुत्र-**कौरव्य**। (नकारादिः) **निषधानामपत्यम्-नैषध्यः।** निषध नामक क्षत्रियों का पुत्र-**नैषध्य**। **निपथानामपत्यम्-नैपथ्यः।** निपथ नामक क्षत्रियों का पुत्र-नैपथ्य।*

*सिद्धि-**कौरव्यः।** कुरु+आम्+ण्य। कौरो+य। कौरव्+य। कौरव्य+सु। कौरव्यः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'कुरु' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और 'वान्तोयि प्रत्यये' (६।१।७६) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-**नैषध्यः** आदि।*

*विशेष-(१) **कुरु।** कुरु राष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुये थे। थानेश्वर-हस्तिनापुर-हिसार अथवा सरस्वती-यमुना-गंगा के बीच का प्रदेश, इन तीन भौगोलिक भागों में बंटा हुआ था। गंगा, यमुना के बीच में लगभग मेरठ कमिश्नरी का इलाका असली कुरु-राष्ट्र था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(२) **निषध।** एक प्राचीन देश जहां के राजा नल थे (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

*(३) **निपथ।** एक प्राचीन जनपद का नाम है।*

इञ्-

(१) साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्।१७१।

प०वि०-साल्वावयव-प्रत्यग्रथ-कलकूट-अश्मकात् ५।१ इञ् १।१।

स०-साल्वानामवयवा इति साल्वावयवाः। साल्वावयवाश्च प्रत्यग्रथश्च कलकूटश्च अश्मकश्च एतेषां समाहारः-साल्वावयव०अश्मकम्, तस्मात्-साल्वावयव०अश्मकात् (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दात् साल्वायवप्रत्यग्रथकालकूटाश्मकाद् अपत्यम् इञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यः साल्वावयववाचिभ्यः प्रत्यग्रथकलकूटाश्मकेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे इञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(साल्वावयवाः) उदुम्बराणामपत्यम्-औदुम्बरिः। तिलखलानामपत्यम्-तैलखलिः। मद्रकाराणामपत्यम्-माद्रकारिः। युगन्धराणामपत्यम्-

यौगन्धरिः । भुलिङ्गानामपत्यम्-भौलिङ्गिः । **(प्रत्यग्रथः)** प्रत्यग्रथानामपत्यम्-प्रात्यग्रथिः । **(कलकूटः)** कलकूटानामपत्यम्-कालकूटिः । **(अश्मकः)** अश्मकानामपत्यम्-आश्मकिः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपदशब्द (साल्वावयव०अश्मकात्) साल्व के अवयववाची, प्रत्यग्रथ, कलकूट और अश्मक प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में (इञ्) इञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साल्व-अवयव) उदुम्बराणामपत्यम्-औदुम्बरिः ।** उदुम्बर नामक क्षत्रियों का पुत्र-औदुम्बरि। **तिलखलानामपत्यम्-तैलखलिः ।** तिलखल नामक क्षत्रियों का पुत्र-तैलखलि। **मद्रकाराणामपत्यम्-माद्रकारिः ।** मद्रकार नामक क्षत्रियों का पुत्र-माद्रकारि। **युगन्धराणामपत्यम्-यौगन्धरिः ।** युगन्धर नामक क्षत्रियों का पुत्र-यौगन्धरि। **भुलिङ्गानामपत्यम्-भौलिङ्गिः ।** भूलिङ्ग नामक क्षत्रियों का पुत्र-भौलिङ्गि। **(प्रत्यग्रथ) प्रत्यग्रथानामपत्यम्-प्रात्यग्रथिः ।** प्रत्यग्रथ नामक क्षत्रियों का पुत्र-प्रात्यग्रथि। **(कलकूट) कलकूटानामपत्यम्-कालकूटिः ।** कलकूट नामक क्षत्रियों का पुत्र-कालकूटि। **(अश्मक) अश्मकानामपत्यम्-आश्मकिः ।** अश्मक नामक क्षत्रियों का पुत्र-आश्मकिः।*

*सिद्धि-**औदुम्बरिः ।** उदुम्बर+आम्+इञ्। औदुम्बर्+इ। औदुम्बरि+सु। औदुम्बरिः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'उदुम्बर' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- **'तैलखलिः'** आदि।*

*विशेष-(१) **साल्वावय**-साल्व जनपद के अवयवों के सम्बन्ध में काशिकाकार पं० जयादित्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है-*

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः ।
भूलिङ्गा शरदण्डाश्च साल्वायवसंज्ञिताः ।।

अर्थः-उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिङ्ग और शरदण्ड ये साल्वावयव के राजतन्त्र के अन्तर्गत छः रजवाड़े थे।

*(१) **उदुम्बर**-व्यास के उत्तर रावी के दक्षिण की संकरी घाटी में होकर त्रिगर्त के प्रवेश-द्वार (वर्तमान गुरदासपुर) में उदुम्बरों का राज्य था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(२) **तिलखल**-व्यास नदी के दक्षिण प्रदेश (जिला होशियारपुर) में जहां आज भी तिलों की खेती का प्रधान क्षेत्र है, तिलखल राज्य का स्थान ज्ञात होता है। तिलखल का अर्थ हुआ तिलों से भरे हुये खलिहानों का देश (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(३) **मद्रकार**-मद्रकार का अर्थ है मद्रों के सैनिकों द्वारा प्रतिष्ठापित राज्य। मद्र राजकुमारी सावित्री और साल्व राजकुमार सत्यवान के विवाह द्वारा मद्रों और साल्वों का घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ।*

अष्टाध्यायी में मद्र और भद्र दोनों पर्यायवाची शब्द हैं (२,३,७३/५।४।६७) मद्रकार का ही दूसरा नाम भद्रकार ज्ञात होता है। सम्भव है घग्घर के तट पर बीकानेर के उत्तर-पूर्वी कोने में स्थित भद्र नामक स्थान मद्रकारों की प्राचीन राजधानी रही हो (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

*(४) **युगन्धर**-युगन्धर कहीं यमुना का तटवर्ती (राज्य) था। यह राज्य सम्भवतः अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना तक फैला हुआ था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। जगाधरी युगन्धर का अपभ्रंश ज्ञात होता है।*

*(५) **भूलिङ्ग**-तोलेमी ने लिखा है कि अरावली के उत्तर-पश्चिम में बोलिंगाई जाति रहती थी। इनकी पहचान भूलिङ्गों से हो सकती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(६) **प्रत्यग्रथ**-मध्यकालीन कोशों के अनुसार पंचाल का ही दूसरा नाम प्रत्यग्रथ था, जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी। प्रत्यग्रथ जनपद में बहनेवाली नदी रथस्था (वर्तमान रामगंगा) थी। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(७) **कलकूट**-कालकूट ठीक टोंस (तमसा) और यमुना के प्रदेश (देहरादून, कालसी) में पड़ता है। यह यमुना की उपरली धारा का यामुन प्रदेश था। अथर्ववेद में हिमालय पर उत्पन्न होनेवाले यामुन अंजन का उल्लेख है (अथर्व० ४।९।१०)। अंजन के कारण यामुन पर्वत का नाम कालकूट या काला पहाड़ होना स्वाभाविक था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

*(८) **अश्मक**-अश्मक जनपद की राजधानी अन्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिष्ठान (गोदावरी के किनारे आधुनिक पैठण) थी। इससे गोदावरी के सह्याद्रि पर्वत-शृंखला तक अश्मक जनपद का विस्तार ज्ञात होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

तद्राजसंज्ञा—

(१) ते तद्राजाः।१७२।

प०वि०-ते १।३ तद्राजाः १।३।

अनु०-जनपदशब्दात्, क्षत्रियाद् अञ् इति चानुवर्तते।

अर्थः-'**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्**' (४।१।१६६) इत्यतः प्रभृति ये प्रत्यया विहितास्ते तद्राजसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः। यहां '**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्**' (४।१।१६६) से अपत्य अर्थ में तद्राज संज्ञक अञ् प्रत्यय है। **बहुवचन की विवक्षा में 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२)

से तद्राजसंज्ञक 'अञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। ऐसे ही **'अङ्गा:'** आदि।

तद्राजस्य लुक्–

(२) कम्बोजाल्लुक्।१७३।

प०वि०–कम्बोजात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, अञ्, तद्राजस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दात् कम्बोजाद् अपत्यं तद्राजस्य अञ् लुक्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् कम्बोजात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य अञ् प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०–कम्बोजानामपत्यम्–कम्बोज:।

आर्यभाषा: *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (कम्बोजात्) कम्बोज प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राजसंज्ञक (अञ्) अञ् प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है।*

*उदा०–**कम्बोजानामपत्यम्-कम्बोज:।** कम्बोज नामक क्षत्रियों का पुत्र-कम्बोज।*

*सिद्धि–**कम्बोज:।** कम्बोज+आम्+अञ्। कम्बोज+०। कम्बोज+सु। कम्बोज:।*

यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'कम्बोज' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विहित तद्राजसंज्ञक 'अञ्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।

*विशेष–**कम्बोज**–हिन्दुकुश के उत्तर-पूर्व में कम्बोज, उत्तर-पश्चिम में बाल्हीक, दक्षिण-पूर्व में गन्धार और दक्षिण-पश्चिम में कपिश था। आधुनिक 'पामीर' और 'बदख्शाँ' का सम्मिलित प्राचीन नाम 'कम्बोज' जनपद था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।*

तद्राजस्य लुक्–

(३) स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च।१७४।

प०वि०–स्त्रियाम् ७।१ अवन्ति-कुन्ति-कुरुभ्य: ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–अवन्तिश्च कुन्तिश्च कुरुश्च ते–अवन्तिकुन्तिकुरव:, **तेभ्य:**–अवन्तिकुन्तिकुरुभ्य: **(इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।**

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्योऽवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च अपत्यं तद्राजस्य लुक् स्त्रियाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपद-शब्देभ्योऽवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपि अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-(**अवन्तिः**) अवन्तीनामपत्यं स्त्री-अवन्ती। (**कुन्तिः**) कुन्तीनामपत्यं स्त्री-कुन्ती। (**कुरुः**) कुरूणामपत्यं स्त्री-कुरूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः) अवन्ति, कुन्ति, कुरु प्रातिपदिकों से (च) भी विहित (तद्राजस्य) तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का (लुक्) लुक् होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(अवन्ति) **अवन्तीनामपत्यं स्त्री-अवन्ती।** अवन्ति नामक क्षत्रियों की पुत्र-अवन्ती। (कुन्ति) **कुन्तीनामपत्यं स्त्री-कुन्ती।** कुन्ति नामक क्षत्रियों की पुत्री-कुन्ती। (कुरु) **कुरूणामपत्यं स्त्री-कुरूः।** कुरु नामक क्षत्रियों की पुत्री-कुरू।*

*सिद्धि-(१) **अवन्ती।** अवन्ति+आम्+ञ्यङ्। अवन्ति+०। अवन्ति+ङीष्। अवन्त्+ई। अवन्ती+सु। अवन्ती।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची, जनपद शब्द 'अवन्ति' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में '**वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्**' (४।१।१६१) से विहित तद्राजसंज्ञक 'ञ्यङ्' प्रत्यय का स्त्री-अपत्य की विवक्षा में इस सूत्र से 'लुक्' होता है। तत्पश्चात् '**इतो मनुष्यजातेः**' (४।१।६५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **कुन्ती।** कुन्ति+आम्+ञ्यङ्। कुन्ति+०। कुन्ति+ङीष्। कुन्ती+सु। कुन्ती। पूर्ववत्।*

*(३) **कुरूः।** कुरु+आम्+ण्य। कुरु+०। कुरु+ऊङ्। कुरु+ऊ। कुरू+सु। कुरूः।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'कुरु' प्रातिपदिक से अपत्यर्थ में '**कुरुनादिभ्यो ण्यः**' (४।१।१७०) से विहित तद्राजसंज्ञक 'ण्य' प्रत्यय का स्त्री-अपत्य की विवक्षा में इस सूत्र से 'लुक्' होता है। तत्पश्चात् '**ऊङुतः**' (४।१।६६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।*

***विशेष**-अवन्ति, कुन्ति और कुरु नामक जनपदों का परिचय सूत्रांक (४।१।१६१) तथा (४।१।१७०) के प्रवचन में देख लेवें।*

तद्राजस्य लुक्–

(४) अतश्च।१७५।

प०वि०–अत: ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य, लुक्, स्त्रियाम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्य क्षत्रियाद् जनपदशब्दाद् अपत्यं तद्राजस्य अतश्च लुक् स्त्रियाम्।

अर्थ:–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् क्षत्रियवाचिनो जनपदशब्दात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्याऽकारप्रत्ययस्यापि लुग् भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०–सूरसेनानामपत्यं स्त्री–सूरसेनी। मद्राणामपत्यं स्त्री–मद्री। दरदामपत्यं स्त्री–दरत्।

आर्यभाषा: *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द प्रातिपदिक से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राजसंज्ञक (अत:) अकार प्रत्यय का (च) भी (लुक्) होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अभिधेय हो।*

*उदा०–**सूरसेनानामपत्यं स्त्री–सूरसेनी।** सूरसेन नामक क्षत्रियों की पुत्री-सूरसेनी। **मद्राणामपत्यं स्त्री–मद्री।** मद्र नामक क्षत्रियों की पुत्री-मद्री। **दरदामपत्यं स्त्री–दरत्।** दरत् नामक क्षत्रियों की पुत्री-दरत्।*

*सिद्धि–(१) **सूरसेनी।** सूरसेन+आम्+अञ्। सूरसेन+ङीष्। सूरसेन्+ई। सूरसेनी+सु। सूरसेनी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ क्षत्रियवाची जनपद शब्द सूरसेन प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्त्री-अपत्य की विवक्षा में उस अ-प्रत्यय (अञ्) का लुक् होता है। तत्पश्चात् **'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्'** (४।१।६३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **मद्री।** मद्र+अण्। मद्र+०। मद्र+ङीष्। मद्र्+ई। मद्री+सु। मद्री।*

यहां 'द्व्यञ्मगध०' (४।१।१६६) से द्व्यच्-लक्षण 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **दरत्।** दरत्+अण्। दरत्+०। दरत्।*

यहां 'द्व्यञ्मगध०' (४।१।१६६) से द्व्यच्-लक्षण 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष-(१) सूरसेन-भारतीय प्राचीन जनपद का नाम है।

(२) मद्र-मद्र जनपद प्राचीन बाहीक का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान अयक) नदी पर स्थित है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

(३) दरद्-कम्बोज (पामीर) के ठीक दक्षिण हुंजा और गिलगित का प्रदेश प्राचीन 'दरद्' जनपद था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

तद्राजस्य लुक्प्रतिषेधः--

(५) न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः।१७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, प्राच्य-भर्गादि-यौधेयादिभ्यः ५।३।

स०-भर्ग आदिर्येषां ते भर्गादयः, यौधेय आदिर्येषां ते-यौधेयादयः, प्राच्याश्च भर्गादयश्च यौधेयादयश्च ते-प्राच्यभर्गादियौधेयादयः, तेभ्यः प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, अपत्यम्, जनपदशब्दात्, क्षत्रियात्, तद्राजस्य, लुक्, स्त्रियाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य क्षत्रियेभ्यो जनपदशब्देभ्यो प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्योऽपत्यं तद्राजस्य लुङ् न स्त्रियाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षत्रियवाचिभ्यो जनपदशब्देभ्यः प्राच्यभर्गादि-यौधेयादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य लुङ् न भवति, स्त्रियामभिधेयायाम्।

उदा०-**(प्राच्यः)** पञ्चालानामपत्यं स्त्री-पाञ्चाली। विदेहानामपत्यं स्त्री-वैदेही। अङ्गानामपत्यं स्त्री-आङ्गी। बङ्गानामपत्यं स्त्री-बाङ्गी। मगधानामपत्यं स्त्री-मागधी। **(भर्गादिः)** भर्गाणामपत्यं स्त्री-भार्गी। करूषाणामपत्यं स्त्री-कारूषी। केकयानामपत्यं स्त्री-कैकेयी। **(यौधेयादिः)** यौधेयानामपत्यं स्त्री-यौधेयी। शौभ्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौभ्रेयी। शौक्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौक्रेयी।

भर्ग। करूष। केकय। कश्मीर। साल्व। सुस्थाल। उरस। कौरव्य। इति भर्गादयः।। यौधेय। शौभ्रेय। शौक्रेय। ग्रावाणेय। वार्तेय। धार्तेय। त्रिगर्त। भरत। उशीनर। इति यौधेयादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठीसमर्थ (क्षत्रियात्) क्षत्रियवाची (जनपदशब्दात्) जनपद-शब्द (प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः) प्राच्य, भर्गादि और यौधेय आदि प्रातिपदिकों से (अपत्यम्) अपत्य अर्थ में विहित (तद्राजस्य) तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का (लुक्) लुक् (न) नहीं होता है (स्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री-अपत्य अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(प्राच्यः) ***पञ्चालानामपत्यं स्त्री-पाञ्चाली।*** *पञ्चाल नामक क्षत्रियों की पुत्री-पाञ्चाली।* ***विदेहानामपत्यं स्त्री-वैदेही।*** *विदेह नामक क्षत्रियों की पुत्री-वैदेही।* ***अङ्गानामपत्यं स्त्री-आङ्गी।*** *अङ्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-आङ्गी।* ***वङ्गानामपत्यं स्त्री-वाङ्गी।*** *वङ्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-वाङ्गी।* ***मगधानामपत्यं स्त्री-मागधी।*** *मगध नामक क्षत्रियों की पुत्री-मागधी।* ***(भर्गादिः) भर्गाणामपत्यं स्त्री-भार्गी।*** *भर्ग नामक क्षत्रियों की पुत्री-भार्गी।* ***करूषाणामपत्यं स्त्री-कारूषी।*** *करूष नामक क्षत्रियों की पुत्री-कारूषी।* ***केकयानामपत्यं स्त्री-कैकेयी।*** *केकय नामक क्षत्रियों की पुत्री-कैकेयी।* ***(यौधेयादिः) यौधेयानामपत्यं स्त्री-यौधेयी।*** *यौधेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-यौधेयी।* ***शौभ्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौभ्रेयी।*** *शौभ्रेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-शौभ्रेयी।* ***शौक्रेयाणामपत्यं स्त्री-शौक्रेयी।*** *शौक्रेय नामक क्षत्रियों की पुत्री-शौक्रेयी।*

सिद्धि-पाञ्चाली। *पञ्चाल+आम्+अञ्। पाञ्चाल्+अ। पाञ्चाल। पाञ्चाल+ङीप्। पाञ्चाल्+ई। पाञ्चाली+सु। पाञ्चाली।*

यहां षष्ठीसमर्थ क्षत्रियवाची जनपद शब्द 'पञ्चाल' प्रातिपदिक से ***'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'*** *(४।१।१६६) से 'अञ्' प्रत्यय है।* ***'अतश्च'*** *(४।१।१७५) से इस अ-प्रत्यय का लुक् प्राप्त था। इस सूत्र से स्त्री-अपत्य की विवक्षा में लुक् का प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-वैदेही आदि।*

विशेष-*पञ्चाल, विदेह, अङ्ग, वङ्ग और मगध ये भारतवर्ष के प्राचीन प्राच्य क्षत्रिय जनपद हैं। इनका परिचय निम्नलिखित है--*

(१) ***पञ्चाल***-*यमुना और गंगा के मध्य का भू-भाग। राजा द्रुपद के समय में यह दक्षिण में चर्मण्वती (चम्बल) के तट से उत्तर में हरद्वार तक फैला हुआ था (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

(२) ***विदेह***-*मगध के उत्तर-पूर्व स्थित देश का नाम। इसकी राजधानी मिथिलापुरी थी जिसे जनकपुर भी कहते हैं (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

(३) ***अङ्ग***-*श्री गंगा के दाहिने तट पर स्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी थी। चम्पा का दूसरा नाम अनंगपुरी भी था।*

यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार प्रान्त में थी (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(४) बङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्वी बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(५) मगध-बिहार प्रान्त में प्राचीनकाल में मगध राज्य की पश्चिमी सीमा सोन-नद था। इसकी प्राचीन राजधानी का नाम गिरिव्रज या राजगृह था। इसकी दूसरी राजधानी पाटलिपुत्र में थी। पिछले प्राचीन साहित्य में इसी का दूसरा नाम कीकट देश लिखा मिलता है (शब्दार्थ कौस्तुभ)।

(६) भर्ग-भर्गात् त्रैगर्ते (४।१।१११) के अनुसार त्रिगर्त देश में 'भर्ग' एक गोत्र का नाम था। सूत्रांक ४।१।१७८ में भर्ग जनपद है। वह एक राज्य था अथवा गण-शासन यह अष्टाध्यायी से स्पष्ट नहीं होता, किन्तु बौद्ध साहित्य में 'भग्ग' एक संघ था, जिसकी राजधानी शिशुमारगिरि थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)।

(७) यौधेय-महाभारत के अनुसार बहुधान्यक प्रदेश में रोहीतक (रोहतक) इनकी राजधानी थी। सुनेत (सुनेत्र) यौधेयों का पूरा केन्द्र था जहां उनकी मुद्रायें मिली हैं। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष)। यौधेय जनपद एक गणराज्य था, एक राज्य नहीं। गुरुप्रवर भगवान्देव आचार्य ने 'यौधेयगण के मुद्राङ्क' आदि उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं जो गुरुकुल झज्जर (झज्जर) से प्रकाशित हुये हैं।

इति अपत्यार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।।

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

रक्तार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) तेन रक्तं रागात्।१।

प०वि०-तेन ३।१ रक्तम् १।१ रागात् ५।१।

कृद्वृत्तिः०रज्यतेऽनेनेति रागः, तस्मात्-रागात् (करणे कारके घञ्प्रत्ययः)।

अनु०-'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यनुवर्तते।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाद् रागविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् रक्तमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कषायेण रक्तं वस्त्रम्-काषायम्। मञ्जिष्ठया रक्तं वस्त्रम्-माञ्जिष्ठम्। कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रम्-कौसुम्भम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (रागात्) रंग-विशेषवाची प्रातिपदिक से (रक्तम्) रंगा हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कषायेण रक्तं वस्त्रम्-काषायम्।** कषाय रंग से रंगा हुआ कपड़ा-काषाय। कषाय=गेरुवा (लाल रंग)। **माञ्जिष्ठया रक्तं वस्त्रम्-माञ्जिष्ठम्।** मजीठ से रंगा हुआ कपड़ा-माञ्जिष्ठ। **कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रम्-कौसुम्भम्।** कुसुम्भ रंग से रंगा हुआ कपड़ा-कौसुम्भ। कुसुम्भ=केसर।*

सिद्धि-काषायम्। *कषाय+टा+अण्। काषाय्+अ। काषाय+सु। काषायम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ रागविशेषवाची 'कषाय' शब्द से रक्त अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** ७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माञ्जिष्ठम्, कौसुम्भम्।***

ठक्–

(२) लाक्षारोचनाट्ठक्।२।

प०वि०–लाक्षा-रोचनात् ५।१ ठक् १।१।

स०–लाक्षा च रोचना च एतयोः समाहारः-लाक्षारोचनम्, तस्मात्-लाक्षारोचनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, रक्तम्, रागाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन रागात् लाक्षारोचनाभ्यां रक्तं ठक्।

अर्थः–तेन-इति तृतीयासमर्थाभ्यां रागविशेषवाचिभ्यां लाक्षारोचनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां रक्तमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(लाक्षा)** लाक्षया रक्तं वस्त्रम्-लाक्षिकम्। **(रोचना)** रोचनया रक्तं वस्त्रम्-रौचनिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (रागात्) रंगविशेषवाची (लाक्षारोचनाभ्याम्) लाक्षा और रोचना प्रातिपदिकों से (रक्तम्) रंगा हुआ अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(लाक्षा) लाक्षया रक्तं वस्त्रम्-लाक्षिकम्। लाख रंग से रंगा हुआ कपड़ा-लाक्षिक। (रोचना) रोचनया रक्तं वस्त्रम्-रौचनिकम्। रोचना रंग से रंगा हुआ कपड़ा-रौचनिकम्। रोचना=अनारी रंग।

*सिद्धि-**लाक्षिकम्।** लाक्षा+टा+ठक्। लाक्ष्+इक। लाक्षिक+सु। लाक्षिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ रागविशेषवाची 'लाक्षा' शब्द से रक्त अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से सूत्रों की पर्जन्यवत् प्रवृत्ति से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**रौचनिकम्।***

युक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्

अण्–

(१) नक्षत्रेण युक्तः कालः।३।

प०वि०–नक्षत्रेण ३।१ युक्तः १।१ कालः १।१।

अनु०–**'प्राग्दीव्यतोऽण्'** इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः-तेन इति-तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति।

उदा०-पुष्येण युक्तः काल इति-पौषी रात्रिः, पौषमहः। मघया नक्षत्रेण युक्तः काल इति-माघी रात्रिः, माघमहः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (प्रागदीव्यतः) प्रागदीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो।*

उदा०-***पुष्येण युक्तः काल इति-पौषी रात्रिः।*** *पुष्य नक्षत्र से युक्त काल-पौषी रात्रि।* ***पौषमहः।*** *पुष्य नक्षत्र से युक्त-पौष दिन।* ***मघया नक्षत्रेण युक्तः काल इति-माघी रात्रिः, माघमहः।*** *मघा नक्षत्र से युक्त काल-माघी रात्रि।* ***माघमहः***-*मघा नक्षत्र से युक्त-माघ दिन।*

सिद्धि-पौषी। *पुष्य+टा+अण्। पुष्य्+अ। पौष्०+अ। पौष+ङीप्। पौषी+सु। पौषी।*

यहां नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द से युक्त (काल) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय अण् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ***'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः'*** *(६।४।१४९) पर विद्यमान* **वा०**- ***'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः'*** *से 'पुष्य' के 'य्' का लोप होता है। तत्पश्चात् अण् प्रत्ययान्त 'पौष' शब्द से* ***'टिड्ढाणञ्'*** *(४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही*-***पौषमहः, माघी रात्रिः, माघमहः।***

विशेष-*(१) क्या काल पुष्य आदि नक्षत्रों से कैसे युक्त होता है ? जब चन्द्रमा पुष्य आदि नक्षत्रों के समीपस्थ होता है तब ये पुष्य आदि नक्षत्र काल से युक्त कहे जाते हैं। उस अवस्था में ही 'पुष्य' आदि नक्षत्रवाची शब्दों से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

(२) नक्षत्र-*अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषज्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती ये २७ नक्षत्र हैं।*

प्रत्ययस्य लुप्–

(२) लुबविशेषे।४।

प०वि०–लुप् १।१ अविशेषे ७।१।

स०–न विशेष इति अविशेषः, तस्मिन्–अविशेषे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन, नक्षत्रेण, युक्तः, काल इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन नक्षत्रेण युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण् लुप्, अविशेषे।

अर्थः–तेन-इति तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे पूर्वसूत्रेण विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्याण्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, कालाविशेषेऽभिधेये।

उदा०–पुष्येण युक्तः कालः–अद्य पुष्यः। कृत्तिकया युक्तः कालः–अद्य कृत्तिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में पूर्व सूत्र से विहित (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो (अविशेषे) किन्तु वहां कालविशेष अर्थ अभिधेय न हो।*

*उदा०-**पुष्येण युक्तः कालः-अद्य पुष्यः।** पुष्य नक्षत्र से युक्त काल-आज 'पुष्य' नक्षत्र है। **कृत्तिकया युक्तः कालः-अद्य कृत्तिका।** कृत्तिका नक्षत्र से युक्त काल-आज 'कृत्तिका' नक्षत्र है।*

सिद्धि-अद्य पुष्यः। *पुष्य+टा+अण्। पुष्य+०। पुष्य+सु। पुष्यः।*

यहां नक्षत्रवाची 'पुष्य' शब्द से युक्त अर्थ में विहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का, रात्रि आदि कालविशेष की अविवक्षा में इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही- ***अद्य कृत्तिका।***

प्रत्ययस्य लुप्–

(३) संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्।५।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ श्रवण-अश्वत्थाभ्याम् ५।२।

स०–श्रवणश्च अश्वत्थश्च तौ–श्रवणाश्वत्थौ, ताभ्याम्–श्रवणाश्वत्थाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन नक्षत्रेण, युक्तः, कालः, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण श्रवणाश्वत्थाभ्यां युक्तः कालः प्राग्दीव्यतोऽण् लुप् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाभ्यां नक्षत्रवाचिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां युक्त इत्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्राग्दीव्यतीयस्याण्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-श्रवणेन युक्तः कालः-श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थेन युक्तः कालः-अश्वत्थो मुहूर्त्तः। अश्वत्थः=अश्विनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची (श्रवणाश्वत्थाभ्याम्) श्रवण और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (कालः) जो युक्त है यदि वह काल हो और (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**श्रवणेन युक्तः कालः-श्रवणा रात्रिः।** श्रवण नक्षत्र से युक्त-श्रवणा रात्रि विशेष। **अश्वत्थेन युक्तः कालः-अश्वत्थो मुहूर्त्तः।** अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र से युक्त-अश्वत्थ चराचर मुहूर्त्त (छः नक्षत्रों की संज्ञाविशेष)।*

*सिद्धि-**श्रवणा।** श्रवण+टा+अण्। श्रवण+०। श्रवण+टाप्। श्रवणा+सु। श्रवणा।*

*यहां नक्षत्रवाची 'श्रवण' शब्द से युक्त (काल) अर्थ में विहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का संज्ञा अर्थ में इस सूत्र से लुप् होता है। **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से अविशेष अर्थ में प्रत्यय का लुप् कहा गया था, यहां विशेष अर्थ में लुप् नहीं होता है, अतः यह कथन किया गया है। 'अण्' प्रत्यय के लुप् होने पर स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**अश्वत्थो मुहूर्त्तः।***

छः-

(४) द्वन्द्वाच्छः।६।

प०वि०-द्वन्द्वात् ५।१ छः १।१।

अनु०-तेन, नक्षत्रेण, युक्तः, काल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नक्षत्रेण द्वन्द्वाद् युक्तश्छः कालः।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाद् नक्षत्रद्वन्द्वात् प्रातिपदिकाद् युक्त इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, योऽसौ युक्तः कालश्चेत् स भवति, विशेषे चाऽविशेषे च।

उदा०-राधानुराधाभ्यां युक्तः कालः-राधानुराधीया रात्रिः। अविशेषे-अद्य राधानुराधीयम्। तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्तः कालः-तिष्यपुनर्वसवीयमहः। अविशेषे-अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नक्षत्रेण) नक्षत्रवाची (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसमास रूप प्रातिपदिक से (युक्तः) जुड़ा हुआ अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (कालः) जो युक्त है, यदि वह काल हो।*

*उदा०-**राधानुराधाभ्यां युक्तः कालः-राधानुराधीया रात्रिः।** राधा और अनुराधा नक्षत्रों से युक्त काल-राधानुराधीया रात्रि। अविशेष में-**अद्य राधानुराधीयम्।** आज राधानुराधीय नक्षत्र है। **तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्तः कालः-तिष्यपुनर्वसवीयमहः।** तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त काल-तिष्यपुनर्वसवीय दिवस। अविशेष में-**अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्।** आज तिष्यपुनर्वसु नक्षत्र है।*

*सिद्धि-(१) **राधानुराधीया।** राधानुराध+टा+छ। राधानुराध्+ईय। राधानुराधीयम्+सु। राधानुराधीयम्।*

*यहां नक्षत्रवाची द्वन्द्वसमास में 'राधानुराधा' शब्द से इस सूत्र से छ प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **तिष्यपुनर्वसवीयम्।** तिष्यपुनर्वसु+टा+छ। तिष्यपुनर्वसो+ईय। तिष्यपुनर्वसवीय+सु। तिष्यपुनर्वसवीयम्।*

*यहां **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'एचोऽयवायवः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-(१) **'राधानुराधीयम्'** में 'राधा' नक्षत्र विशाखा नक्षत्र का वाचक है। विशाखा नामक दो नक्षत्र हैं। एक का नाम राधा और दूसरे का नाम अनुराधा है।*

*(२) **'तिष्यपुनर्वसु'**-तिष्य एक नक्षत्र है और पुनर्वसु दो नक्षत्र हैं। इनके द्वन्द्वसमास में बहुवचन की प्राप्ति में **'तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्'** (१।२।६३) से नित्य द्विवचन होता है।*

दृष्टार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) दृष्टं साम।७।

प०वि०–दृष्टम् १।१ साम १।१।

अनु०–तेन, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकाद् दृष्टं प्राग्दीव्यतोऽण् साम।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् दृष्टमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यद् दृष्टं साम चेत् तद् भवति।

उदा०–क्रुञ्चेन दृष्टम्-क्रौञ्चं साम। वसिष्ठेन दृष्टम्-वासिष्ठं साम। विश्वामित्रेण दृष्टम्-वैश्वामित्रं साम।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (दृष्टम्) प्रत्यक्ष किया अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**क्रुञ्चेन दृष्टम्-क्रौञ्चं साम।** क्रुञ्च ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-क्रौञ्च सामगान। **वसिष्ठेन दृष्टम्-वासिष्ठं साम।** वसिष्ठ ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वासिष्ठ सामगान। **विश्वामित्रेण दृष्टम्-वैश्वामित्रं साम।** विश्वामित्र ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वैश्वामित्र सामगान।*

*सिद्धि-**क्रौञ्चम्।** क्रुञ्च+टा+अण्। क्रौञ्च्+अ। क्रौञ्च+सु। क्रौञ्चम्।*

*यहां 'क्रुञ्च' प्रातिपदिक से दृष्ट (साम) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वासिष्ठम्, वैश्वामित्रम्।***

***विशेष**-यहां काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'कलेर्ढक्' वार्तिक को पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। यह पाणिनीय सूत्र न होने से उसका यहां 'प्रवचन' नहीं किया गया है।*

ड्यत्+ड्यः–

(२) वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ।८।

प०वि०–वामदेवात् ५।१ ड्यत्-ड्यौ १।२।

स०–ड्यच्च ड्यश्च तौ-ड्यड्ड्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, दृष्टम्, साम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वामदेवाद्दृष्टं ड्यड्ड्यौ साम।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थाद् वामदेवात् प्रातिपदिकाद् दृष्टमित्यस्मिन्नर्थे ड्यड्ड्यौ प्रत्ययौ भवतः, यद् दृष्टं साम चेत् तद् भवति।

उदा०-वामदेवेन दृष्टम्-वामदेव्यं साम (ड्यत्)। वामदेव्यं साम वा (ड्यः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वामदेवात्) वामदेव प्रातिपदिक से (दृष्टम्) प्रत्यक्ष अर्थ में (ड्यड्ड्यौ) ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं (साम) जो प्रत्यक्ष किया है यदि वह साम हो।*

*उदा०-**वामदेवेन दृष्टम्-वामदेव्यं साम (ड्यत्)। वामदेव्यं साम (ड्यः)।** वामदेव ऋषि के द्वारा प्रत्यक्ष किया गया-वामदेव्य सामगान।*

***सिद्धि-वामदेव्य।** वामदेव+टा+ड्यत्। वामदेव+य। वामदेव्+य। वामदेव्य+सु। वामदेव्यम्।*

*यहां 'वामदेव' शब्द से दृष्ट (साम) अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से वामदेव शब्द के टि-भाग (अ) का लोप होता है। 'ड्यत्' प्रत्यय के तित् होने से तित स्वरित होता है और ड्य-प्रत्यय के पक्ष में 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'वामदेव्यम्' पद अन्तोदात्त होता है।*

विशेष--वामदेव्यम्--

१ २ ३ १२ २ २ ३ २ ३ १ ३ २ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता।।१।।

१ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
१ २ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु।। २।।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
३ १ ३ ३ १ २
शतं भवास्यूतये।। ३।।

१ २ ४ २ ४२ ५ १
महावामदेव्यम्—काऽ५या। नश्चा३ इत्रा३ आभुवात्। ऊ।
२ २१२ २ १ २ २२ १ २
ती सदावृधः सखा। औ३होहाइ। कया २३ शचाइ।
३ २ २ १ ५- १ २
ष्ठ्यौहो३। हुम्मा२। वा२र्तो३ऽ५हाइ।। (१)।।

३ २ ४ २ ४ ५ १ २२ १ २
काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्धः।
२ २२ १ २ ३२२ १ ५-
सा। औ३होहाइ। दृढा २३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२।
१ २
वाऽ३सो३ऽ५ हायि।। (२)।।

३ २ ४ २ ४ ५ १ २२ १ २२
आऽ५भी। षु णा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायितॄ।
१ २ २ १ २ ३२२
णाम्। औ२३ हो हायि। शता २३ म्भवा। सियौहो३।
१ ५- १ २
हुम्मा२। ताऽ२ यो३ऽ५हायि।।३।।

साम० उत्तरार्चिके अध्याये १। खं० ४। मं० १।२।३।।
(महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत संस्कारविधि के सामान्यप्रकरण से उद्धृत)।

परिवृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्—

(१) परिवृतो रथः।६।

प०वि०-परिवृतः १।१ रथः १।१।

अनु०-प्राग्दीव्यतोऽण्, तेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् परिवृतः प्राग्दीव्यतोऽण् रथः।

अर्थः-तेन-इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् परिवृत इत्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति।

उदा०-वस्त्रेण परिवृतः-वास्त्रो रथः। कम्बलेन परिवृतः-काम्बलो रथः। चर्मणा परिवृतः-चार्मणो रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०-**वस्त्रेण परिवृतः-वास्त्रो रथः।** वस्त्र से ढका हुआ (मंढा हुआ)-वास्त्ररथ। **कम्बलेन परिवृतः-काम्बलो रथः।** कम्बल से ढका हुआ-काम्बलरथ। **चर्मणा परिवृतः-चार्मणो रथः।** चाम से ढका हुआ-चार्मण रथ।*

*सिद्धि-**वास्त्रः।** वस्त्र+टा+अण्। वास्त्र्+अ। वास्त्र+सु। वास्त्रः।*

*यहां 'वस्त्र' शब्द से परिवृत (रथ) अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**काम्बलः, चार्मणः।***

इनिः-

(२) पाण्डुकम्बलादिनिः।१०।

प०वि०-पाण्डुकम्बलात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तेन परिवृतः, रथ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन पाण्डुकम्बलात् परिवृत इनी रथः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् पाण्डुकम्बलात् प्रातिपदिकात् परिवृत इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति।

उदा०-पाण्डुकम्बलेन परिवृतः-पाण्डुकम्बली रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पाण्डुकम्बलात्) पाण्डुकम्बल प्रातिपदिक से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया गया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०-**पाण्डुकम्बलेन परिवृतः-पाण्डुकम्बली रथः।** पीले कम्बल से आच्छादित (मंढा हुआ)-पाण्डुकम्बली रथ।*

*सिद्धि-**पाण्डुकम्बली।** पाण्डुकम्बल+टा+इनि। पाण्डुकम्बल्+इन्। पाण्डुकम्बलिन्+सु। पाण्डुकम्बली।*

*यहां 'पाण्डुकम्बल' शब्द से परिवृत अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

विशेष-वेस्सन्तर जातक में लिखा है कि पाण्डुकम्बल गन्धार देश में बनाये जाते थे और बीरबहूटी के जैसे चटकीले व लाल रंग के होते थे। जातक की टीका के अनुसार वे कम्बल सेना के काम के लिये गन्धार देश से अन्यत्र ले जाये जाते थे। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५४)।

अञ्–

(३) द्वैपवैयाघ्रादञ्।११।

प०वि०–द्वैप-वैयाघ्रात् ५ ।१ अञ् १ ।१ ।

तद्धितवृत्तिः– द्वीपिव्याघ्रशब्दाभ्याम् **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४ ।३ ।१५२) इति विकारार्थेऽञ् प्रत्ययः । **'भस्य टेर्लोपः'** (७ ।१ ।८८) इति द्वीपिनष्टेर्लोपो भवति ।

स०–द्वैपश्च वैयाघ्रश्च एतयोः समाहारः–द्वैपवैयाघ्रम्, तस्मात्–द्वैपवैयाघ्रात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–तेन, परिवृतः, रथ इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तेन द्वैपवैयाघ्राभ्यां परिवृतोऽञ् रथः ।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां द्वैपवैयाघ्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां परिवृत इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, योऽसौ परिवृतो रथश्चेत् स भवति ।

उदा०–**(द्वैपः)** द्वैपेन परिवृतः–द्वैपो रथः । **(वैयाघ्रः)** वैयाघ्रेण परिवृतः–वैयाघ्रो रथः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ (द्वैपवैयाघ्राभ्याम्) द्वैप और वैयाघ्र प्रातिपदिकों से (परिवृतः) आच्छादित अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (रथः) जो आच्छादित किया है यदि वह रथ हो।*

*उदा०–(द्वैप) **द्वैपेन परिवृतः–द्वैपो रथः ।** गज चर्म से परिवृत (मंढा हुआ)–द्वैप रथ। (वैयाघ्र) **वैयाघ्रेण परिवृतः–वैयाघ्रो रथः ।** व्याघ्र चर्म से परिवृत (मंढा हुआ)–वैयाघ्र रथ।*

सिद्धि–द्वैपः । द्वैप+टा+अञ् । द्वैप्+अ । द्वैप+सु । द्वैपः ।

*यहां द्वैप' शब्द से परिवृत अर्थ में इस सूत्र में 'अञ्' प्रत्यय है। पर्जन्यवत् सूत्र प्रवृत्ति होने से **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–**वैयाघ्रः ।***

***विशेष**–यहां प्रथम द्वीपिन् तथा व्याघ्र शब्द से **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४ ।३ ।१५२) से विकार अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। द्वीपी का विकार द्वैप और व्याघ्र का विकार वैयाघ्र कहाता है। यहां रथ-परिवृत के प्रकरणवश द्वैप का अर्थ गजचर्म और वैयाघ्र का अर्थ व्याघ्र चर्म अर्थ ग्रहण किया जाता है।*

अण् (निपातनम्)–

(१) कौमारापूर्ववचने।१२।

प०वि०–कौमार १।१ (सु-लुक्) अपूर्ववचने ७।१।

स०–न पूर्व इति अपूर्वः, अपूर्वस्य वचनमिति अपूर्ववचनम्, तस्मिन्–अपूर्ववचने (नञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। अत्र पाणिग्रहणस्यापूर्ववचनं वेदितव्यम्। उभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे निपातनमेतत्।

अन्वयः–अपूर्ववचने कौमारोऽण्।

अर्थः–अपूर्ववचने द्योत्ये कौमारशब्दोऽण् प्रत्ययान्तो निपात्यते।

उदा०–अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्न इति कौमारः पतिः। अथवा-अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्नेति कौमारी भार्या।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(अपूर्ववचने) अपूर्वता के कथन में (कौमारः) कौमार शब्द (अण्) अण् प्रत्ययान्त निपातित है।

उदा०-__अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्न इति कौमारः पतिः।__ अपूर्वपतिवाली कुमारी को पति प्राप्त होगया वह 'कौमारः' पति कहाता है। __अथवा-अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्नेति कौमारी भार्या।__ अपूर्वपति कुमारी पति को प्राप्त होगई वह 'कौमारी' भार्या कहाती है।

सिद्धि-(१) कौमारः। कुमारी+अम्+अण्। कौमार्+अ। कौमार+सु। कौमारः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कुमारी' शब्द से पाणिग्रहण के अपूर्ववचन में अर्थात् अपूर्वपति कुमारी जिस पति को प्राप्त हुई है वह 'कौमार' पति कहाता है।

(२) कौमारी। कुमारी+सु+अण्। कौमार्+अ। कौमार+ङीप्। कौमारी+सु। कौमारी।

यहां प्रथमा-समर्थ 'कुमारी' शब्द से पाणिग्रहण के अपूर्ववचन में अर्थात् जो अपूर्वपति कुमारी पति को प्राप्त होगई वह 'कौमारी' भार्या कहाती है।

यहां कुमारी को पति प्राप्त करे अथवा कुमारी पति को प्राप्त करे दोनों अवस्थाओं में 'कुमारी' शब्द से 'अण्' प्रत्यय निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

उद्धृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः।१३।

प०वि०–तत्र अव्ययपदम्, उद्धृतम् १।१ अमत्रेभ्यः ५।३। अमत्रम्=पात्रम्।

अनु०-'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र अमत्रेभ्य उद्धृतं प्राग्दीव्यतोऽण्।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थेभ्योऽमत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उद्धृतमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शरावेषूद्धृतः-शाराव ओदनः। मल्लिकेषूद्धृतः- माल्लिक ओदनः। कर्परेषूद्धृतः-कार्पर ओदनः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अमत्रेभ्यः) पात्रविशेषवाची प्रातिपदिकों से (उद्धृतः) निकाला हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

*उदा०-शरावेषूद्धृतः-**शाराव ओदनः।** शराव नामक पात्रों में निकाला हुआ-शाराव चावल। शराव=सकोरा। **मल्लिकेषूद्धृतः- माल्लिक ओदनः।** मल्लिक नामक पात्रों में निकाला हुआ-माल्लिक चावल। मल्लिक=हंसाकार पात्र। **कर्परेषूद्धृतः-कार्पर ओदनः।** कर्पर नामक पात्रों में निकाला हुआ-कार्पर चावल। कर्पर=कड़ाही, कड़ाह।*

***सिद्धि-शारावः।** शराव+सुप्+अण्। शाराव्+अ। शाराव+सु। शारावः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शराव' शब्द से उद्धृत अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माल्लिकः, कार्परः।***

***विशेष-**यहां 'उद्धृत' शब्द का अर्थ पकाने के बाद निकालकर रखा हुआ पदार्थ है। काशिकाकार पं० जयादित्य ने उच्छिष्ट अर्थ किया है। जिसका अर्थ भोजन के बाद शुद्ध बचा हुआ पदार्थ है, झूठा अर्थ नहीं।*

शयितृ-अर्थप्रत्ययविधिः

अण्-

(१) स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते।१४।

प०वि०-स्थण्डिलात् ५।१ शयितरि ७।१ व्रते ७।१।

अनु०-प्राग्दीव्यतोऽण्, तत्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र स्थण्डिलात् शयितरि अण् व्रते।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थात् स्थण्डिलात् प्रातिपदिकात् शयितरि (कर्तरि) अर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, व्रते गम्यमाने।

उदा०-स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्थण्डिलात्) स्थण्डिल प्रातिपदिक से (शयितरि) शयन करनेवाला अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (व्रते) यदि वहां व्रत=शास्त्रनियम अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी।** स्थण्डिल पर शयन करना जिसका व्रत है वह-स्थाण्डिल ब्रह्मचारी। स्थण्डिल=यज्ञमण्डप, ज़मीन।*

सिद्धि-स्थाण्डिलः। *स्थण्डिल+ङि+अण्। स्थाण्डिल्+अ। स्थाण्डिल+सु। स्थाण्डिलः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'स्थण्डिल' शब्द से शयिता अर्थ में तथा व्रत अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) संस्कृतं भक्षाः।१५।

प०वि०-संस्कृतम् १।१ भक्षाः १।३।

अनु०-प्रातिपदिकात्, तत्र, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् संस्कृतं प्राग्दीव्यतोऽण् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षाः-भ्राष्ट्रा अपूपाः। कलशे संस्कृता भक्षाः-कालशा ओदनाः। कुम्भे संस्कृता भक्षाः-कौम्भा ओदनाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) पका हुआ अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो पकाया हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-**भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षाः-भ्राष्ट्रा अपूपाः।** भ्राष्ट्र=दाने भूनने का पात्र-कड़ाही में पकाये हुये भक्षा=भोजन-भ्राष्ट्र मालपूवे। **कलशे संस्कृता भक्षाः-कालशा ओदनाः।** कलश=घड़े में पकाये हुये भक्ष=भोजन-कालश-चावल। कलश=३४ सेर का एक पात्र। **कुम्भे संस्कृता भक्षाः-कौम्भा ओदनाः।** कुम्भ=घड़े में पकाये हुये भक्षा=भोजन-कौम्भ चावल। कुम्भ=५ मण का एक पात्र।*

सिद्धि-भ्राष्ट्राः। *भ्राष्ट्र+ङि+अण्। भ्राष्ट्र+अ। भ्राष्ट्र+जस्। भ्राष्ट्राः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'भ्राष्ट्र' शब्द से संस्कृत (भक्ष) पकाने अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कालशा:, कौम्भा:।***

***विशेष**-'भक्षा:' यहां 'भक्ष अदने' (भ्वा०प०) धातु से **'गुरोश्च हल:'** (३।३।१०३) से भाव अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'अ' प्रत्यय है। भक्षा=खाना।*

यत्-

(२) शूलोखाद् यत्।१६।

प०वि०-शूलोखात् ५।१ यत् १।१।

स०-शूलं च उखा च एतयो: समाहार:-शूलोखम्, तस्मात्-शूलोखात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र शूलोखात् संस्कृतं यद् भक्षा:।

अर्थ:-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाभ्यां शूलोखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-(शूलम्) शूले संस्कृतम्-शूल्यं मांसम्। **(उखा)** उखायां संस्कृतम्-उख्यं क्षीरम्।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(तत्र) सप्तमी समर्थ (शूलोखात्) शूल और उखा प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) पकाये हुये अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (भक्षा:) जो पकाया हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-**(शूलम्) शूले संस्कृतम्-शूल्यं मांसम्।** शूल में पकाया हुआ-शूल्य मांस। शूल=कबाब भूनने की लोहे की सींक, जिस पर लपेटकर कबाब (मांस) भूना जाता है। **(उखा) उखायां संस्कृतम्-उख्यं क्षीरम्।** उखा=बटलोई (डिगची) में उबाला हुआ दूध।*

*सिद्धि-**शूल्यम्।** शूल+ङि+यत्। शूल्+य। शूल्य+सु। शूल्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शूल' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उख्यम्।***

ठक्-

(३) दध्नष्ठक्।१७।

प०वि०-दध्न: ५।१ ठक् १।१।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र दध्नः संस्कृतं ठक् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाद् दध्नः प्रातिपदिकात् संस्कृत-मित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-दधनि संस्कृतम्-दाधिकं लवणादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (दध्नः) दधि शब्द से (संस्कृतम्) गुणाधान करने अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो गुणाधायक हो वह यदि भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-**दधनि संस्कृतम्-दाधिकं लवणादिकम्।** दधि=दही में गुणाधान करनेवाला-दाधिक लवण आदि।*

*सिद्धि-**दाधिकम्।** दधि+ङि+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'दधि' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

***विशेष**-यहां 'संस्कृतम्' शब्द का अर्थ प्रकरणवश गुणाधान करना है, पकाना नहीं। दधि=दही में गुणाधान करनेवाले लवण आदि 'दाधिक' कहाते हैं। जहां दधि के द्वारा ओदन आदि में गुणाधान होता है वहां 'संस्कृतम्' (४।४।३) से प्राग्वहतीय ठक् प्रत्यय होता है।*

ठक्-विकल्पः—

(४) उदश्वितोऽन्यतरस्याम्।१८।

प०वि०-उदश्वितः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उदश्वितः संस्कृतम् अन्यतरस्यां ठक् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमी-समर्थाद् उदश्वितः प्रातिपदिकात् संस्कृत-मित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-उदश्विति संस्कृतम्-औदश्वित्कम्, औदश्वित्तं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (उदश्वितः) उदश्वित् प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) गुणाधान अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो गुणाधायक हो यदि वह भक्षा=भोजन हो।*

*उदा०-उदश्विति संस्कृतम्-**औदश्वित्कम्, औदश्वितं वा।** उदश्वित्=लस्सी में गुणाधान करनेवाला-औदश्वित्क अथवा औदश्वित लवणभास्कर चूर्ण आदि।*

*सिद्धि-(१) **औदश्वित्कम्।** उदश्वित्+ङि+ठक्। औदश्वित्+क। औदश्वितक+सु। औदोश्वित्कम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उदश्वित्' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**इसुसुक्तान्तात् कः**' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है; इक् नहीं। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **औदश्वितम्।** उदश्वित्+ङि+अण्। औदश्वित्+अ। औदश्वित+सु। औदश्वितम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उदश्वित्' शब्द से संस्कृत अर्थ में विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८१) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेष**-दधि का अर्थ दही, तक्र का अर्थ मथी हुई दही (अध-बिलोई दही) और उदश्वित् का अर्थ उद=जल से श्वित्=बढाई हुई दही=लस्सी अर्थ होता है।*

ढञ्-

(५) क्षीराड्ढञ्।१६।

प०वि०-क्षीरात् ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तत्र, संस्कृतम्, भक्षा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र क्षीरात् संस्कृतं ढञ् भक्षाः।

अर्थः-तत्र-इति सप्तमीसमर्थात् क्षीरात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ता भवन्ति।

उदा०-क्षीरे संस्कृतम्-क्षैरेयी यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (क्षीरात्) क्षीर प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) **पकाया** हुआ अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (भक्षाः) जो पकाया गया हो यदि वह **भक्षा**=भोजन हो।*

*उदा०-क्षीरे **संस्कृतम्-क्षैरेयी यवागूः।** क्षीर=दूध में पकाई हुई-क्षैरेयी यवागू। **यवागू**=जौ अथवा चावल का मांड।*

*सिद्धि-**क्षैरेयी।** क्षीर+ङि+ढञ्। क्षैर्+एय। क्षैरेय। क्षैरेय+ङीप्। क्षैरेयी+सु। **क्षैरेयी।***

यहां सप्तमी-समर्थ 'क्षीर' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।

अस्मिन् (पौर्णमासी) अर्थप्रत्ययविधिः

अण्–

(१) साऽस्मिन् पौर्णमासीति।२०।

प०वि०–सा १।१ अस्मिन् ७।१ पौर्णमासी १।१ इति अव्ययपदम्।

अनु०–प्रातिपदिकात्, प्राग्दीव्यतोऽण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा प्रातिपदिकाद् अस्मिन् प्राग्दीव्यतोऽण् पौर्णमासी इति।

अर्थः–सा इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति। इतिकरणं संज्ञार्थम्।

उदा०–पौषी पौर्णमासी अस्मिन्-पौषो मासः, पौषोऽर्धमासः, पौषः संवत्सरः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञाविशेष हो।*

*उदा०–**पौषी पौर्णमासी अस्मिन्-पौषो मासः।** पौषी पौर्णमासी है इसमें इसलिये यह-पौष मास है। **पौषोऽर्धमासः।** पौष अर्धमास (पक्ष) है। **पौषः संवत्सरः।** पौष वर्ष है।*

*सिद्धि-**पौषः।** पौषी+सु+अण्। पौष्+अ। पौष+सु। पौषः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'पौषी' शब्द से 'अस्मिन्' इस सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। यहां 'इतिकरण' संज्ञाविशेष के लिये है। अतः यह मास, अर्धमास और संवत्सर की संज्ञा है।*

***विशेष**–पौर्णमासी-यहां '**पूर्णो मासो यस्यां तिथाविति-पूर्णमासः। पूर्णमासस्येयमिति-पौर्णमासी।**' जिस तिथि को मास पूर्ण होता है उस तिथि का नाम पौर्णमासी है। यहां इसी निपातन से अथवा '**तस्येदम्**' (४।३।१२०) से 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

अथवा-पूर्णो मा इति पूर्णमाः, पूर्णमास इयमिति पौर्णमासी। मा इति चन्द्रः। 'पूर्णमाः' शब्द का अर्थ पूर्ण चन्द्र है। पूर्ण चन्द्र की जो तिथि है उसे पौर्णमासी कहते हैं।

ठक्–

(२) आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्।२१।

प०वि०–आग्रहायणी-अश्वत्थात् ५।१ ठक् १।१।

स०–आग्रहायणी च अश्वत्था च एतयोः समाहारः–आग्रहायण्यश्वत्थम्, तस्मात्–आग्रहायण्यश्वत्थात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–सा, अस्मिन्, पौर्णमासी, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा आग्रहायण्यश्वत्थाभ्याम् अस्मिन् ठक् पौर्णमासी इति।

अर्थः–सा-इति प्रथमासमर्थाभ्याम् आग्रहायण्यश्वत्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति।

उदा०–**(आग्रहायणी)** आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्–आग्रहायणिको मासः, आग्रहायणिकोऽर्धमासः, आग्रहायणिकः संवत्सरः। **(अश्वत्था)** अश्वत्था पौर्णमासी अस्मिन्–आश्वत्थिको मासः, आश्वत्थिकोऽर्धमासः, आश्वत्थिकः संवत्सरः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सा) प्रथमा-समर्थ (आग्रहायण्यश्वत्थाभ्याम्) आग्रहायणी और अश्वत्था प्रातिपदिकों से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञाविशेष हो।*

*उदा०–**(आग्रहायणी) आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्–आग्रहायणिको मासः।** आग्रहायणी पौर्णमासी इसमें है यह-आग्रहायण मास। अग्रहायण=मृगशीर्ष नक्षत्र। आग्रहायणी=मार्गशीर्ष मास की पौर्णमासी। आग्रहायण मास=मार्गशीर्ष मास (अगहन मास)। **आग्रहायणिकोऽर्धमासः।** आग्रहायणी पौर्णमासीवाला अर्धमास (पक्ष)। **आग्रहायणिकः संवत्सरः।** आग्रहायणी पौर्णमासीवाला वर्ष। **(अश्वत्था) अश्वत्था पौर्णमासी अस्मिन्–आश्वत्थिको मासः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला आश्वत्थिक मास। **आश्वत्थिकोऽर्धमासः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला-अर्धमास (पक्ष)। **आश्वत्थिकः संवत्सरः।** अश्वत्था पौर्णमासीवाला-आश्वत्थिक वर्ष। अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र। अश्वत्था पौर्णमासी=आश्विन मास की पौर्णमासी।*

सिद्धि-आग्रहायणिक। आग्रहायणी+सु+ठक्। आग्रहायण्+इक् आग्रहायणिक+सु। आग्रहायणिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'आग्रहायणी' शब्द से 'अस्मिन्' इस सप्तमी अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आश्वत्थिकः।***

***विशेष**-अश्वत्था-**'लुबविशेषे'** (४।२।४) से अविशेष काल की विवक्षा में प्रत्यय का लुप् होता है किन्तु यहां सूत्रोक्त निपातन से पौर्णमासी काल की विशेष विवक्षा में 'अण्' प्रत्यय का लुप् होता है-**अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी-अश्वत्था।** अश्वत्थ=अश्विनी नक्षत्र।*

ठक्-अण्-

(३) विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः।२२।

प०वि०-विभाषा १।१ फाल्गुनी-श्रवणा-कार्तिकी-चैत्रीभ्यः ५।३।

स०-फाल्गुनी च श्रवणा च कार्तिकी च चैत्री च ताः-फाल्गुनी०चैत्र्यः, ताभ्यः-फाल्गुनी०चैत्रीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्मिन्, पौर्णमासी, इति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्योऽस्मिन् विभाषा ठक् पौर्णमासी इति।

अर्थः-सा-इति प्रथमासमर्थेभ्यः फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्निति सप्तम्यर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पौर्णमासी इति चेत् सा भवति।

उदा०-**(फाल्गुनी)** फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन् सः-फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः। **(श्रवणा)** श्रवणा पौर्णमासी अस्मिन् सः-श्रावणिकः, श्रावणो वा मासः। **(कार्तिकी)** कार्तिकी पौर्णमासी अस्मिन् सः-कार्तिकिकः, कार्तिको वा मासः। **(चैत्री)** चैत्री पौर्णमासी अस्मिन् सः-चैत्रिकः, चैत्रो वा मासः।

आर्यभाषाः अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (फाल्गुनी०चैत्रीभ्यः) फाल्गुनी, श्रवणा, कार्तिकी, चैत्री प्रातिपदिकों से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (पौर्णमासी) जो प्रथमा समर्थ है यदि वह पौर्णमासी (इति) संज्ञा- विशेष हो।

उदा०-(फाल्गुनी) **फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन् सः-फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः।** फाल्गुन पौर्णमासीवाला-फाल्गुनिक, वा फाल्गुन मास। (श्रवणा) **श्रवणा पौर्णमासी अस्मिन् सः-श्रावणिकः, श्रावणो वा मासः।** श्रवणा पौर्णमासीवाला-श्रावणिक वा श्रावण मास। (कार्तिकी) **कार्तिकी पौर्णमासी अस्मिन् सः-कार्तिकिकः, कार्तिको वा मासः।** कार्तिकी पौर्णमासीवाला-कार्तिकिक वा कार्तिक मास। (चैत्री) **चैत्री पौर्णमासी अस्मिन् सः-चैत्रिकः, चैत्रो वा मासः।** चैत्री पौर्णमासीवाला-चैत्रिक वा चैत्र मास।

सिद्धि-(१) फाल्गुनिकः। फाल्गुनी+सु+ठक्। फाल्गुन्+इक। फाल्गुनिक+सु। फाल्गुनिकः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'फाल्गुनी' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप और '**किति च**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) फाल्गुनः। फाल्गुनी+सु। अण्। फाल्गुन्+अ। फाल्गुन+सु। फाल्गुनः।

यहां पूर्ववत् फाल्गुनी शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से अण् प्रत्यय होता है। पूर्ववत् ईकार का लोप और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति होने से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**श्रावणिकः, श्रावणः। कार्तिकिकः, कार्तिकः। चैत्रिकः, चैत्रः।**

नक्षत्रपौर्णमासविवरणम्

	नक्षत्रम्	पौर्णमासी	मासः
१.	चित्रा	चैत्री	चैत्रिकः चैत्रः।
२.	विशाखा	वैशाखी	वैशाखः।
३.	ज्येष्ठा	ज्यैष्ठी	ज्यैष्ठः।
४.	आषाढा	आषाढी	आषाढः।
५.	श्रवण	श्रवणा	श्रावणिकः, श्रावणः।
६.	भाद्रपदा	भाद्रपदी	भाद्रपदः।
७.	अश्विनी	आश्विनी	आश्विनः।
	(अश्वत्थ)	(अश्वत्था)	(आश्वत्थिकः)

	नक्षत्रम्	पौर्णमासी	मासः
८.	कृत्तिका	कार्तिकी	कार्तिकिकः, कार्तिकः ।
९.	मार्गशीर्ष	मार्गशीर्षी	मार्गशीर्षः ।
	(आग्रहायण)	(आग्रहायणी)	(आग्रहायणिकः)
१०.	पूषन्	पौषी	पौषः ।
११.	मघा	माघी	माघः ।
१२.	फल्गुनी	फाल्गुनी	फाल्गुनिकः, फाल्गुनः ।

अस्य(देवता)अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

अण्–

(१) साऽस्य देवता।२३।

प०वि०–सा १।१ अस्य ६।१ देवता १।१।

अनु०–प्रातिपदिकात्, प्राग्दीव्यतः प्रत्यय इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा प्रातिपदिकात् अस्य प्राग्दीव्यतः प्रत्ययो देवता।

अर्थः–सा–इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे प्राग्दीव्यतीयो यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०–इन्द्रो देवताऽस्य–ऐन्द्रं हविः। अदितिर्देवताऽस्य–आदित्यं हविः। बृहस्पतिर्देवताऽस्य–बार्हस्पत्यं हविः। प्रजापतिर्देवताऽस्य–प्राजपत्यं हविः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(सा) प्रथमा-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (प्रत्ययः) यथाविहित प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०–**इन्द्रो देवताऽस्य**–ऐन्द्रं हविः। इन्द्र देवता है इसका यह–ऐन्द्र हवि (आहुति)। **अदितिर्देवताऽस्य–आदित्यं हविः**। अदिति देवता है इसका यह–आदित्य हवि। **बृहस्पतिर्देवताऽस्य–बार्हस्पत्यं हविः**। बृहस्पति देवता है इसका यह–बार्हस्पत्य हवि। **प्रजापतिर्देवताऽस्य–प्राजपत्यं हविः**। प्रजापति देवता है इसका यह–प्राजापत्य हवि।*

*सिद्धि–(१) **ऐन्द्रम्**। इन्द्र+सु+अण्। ऐन्द्+अ। ऐन्द्र+सु। ऐन्द्रम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'इन्द्र' शब्द से अपत्य अर्थ में इस सूत्र से '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(२) **आदित्यम्।** अदिति+सु+ण्य। आदित्+य। आदित्य+सु। आदित्यम्।

यहां 'अदिति' शब्द से **'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः'** (४।१।८५) से प्राग्दीव्यतीय 'ण्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'बृहस्पति' शब्द से-**बार्हस्पत्यम्।** 'प्रजापति' शब्द से-**प्राजापत्यम्।**

विशेष-(१) **देवता।** देव+सु+तल्। देवत+टाप्। देवता+सु। देवता।

यहां देव शब्द से 'देवात् तल्' (५।४।२७) से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होता है। 'तलन्तः' (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। संस्कृत भाषा में 'देवता' शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

(२) यहां देवता शब्द से मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय लिया गया है। इस विषय में निरुक्तकार ने दैवत-काण्ड (७।१) में कहा है- **'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति'** अर्थात् जिस कामना को लेकर ऋषि जिस देवता की स्तुति करते हैं वह उस देवतावाला मन्त्र कहाता है। ऋक्सर्वानुक्रमणी में कहा है- **'या तेनोच्यते सा देवता'** अर्थात् मन्त्र के द्वारा जो कहा गया, वह उस मन्त्र का देवता होता है। इन दोनों वचनों के आधार पर मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को 'देवता' कहते हैं।

"ये देवता चेतन-अचेतन भेद से दो प्रकार के होते हैं। चेतन में आत्मा, परमात्मा लिये जायेंगे तथा अचेतन में भौतिक पदार्थ लिये जाते हैं, अर्थात् जब अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवतावाची शब्द अध्यात्म-प्रक्रिया में अन्वित होते हैं तब ये देवता आत्मा, परमात्मा के वाचक होते हैं। जब ये आधिदैविक प्रक्रिया में होते हैं, तब ये अचेतन देवों के वाचक होते हैं।" (पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु-अष्टाध्यायीभाष्य प्रथमावृत्ति ४।२।२४०)।

आहुति-मन्त्र

(१) **ओम् इन्द्राय स्वाहा।** इदमिन्द्राय-इदन्न **मम।**

(२) **ओम् अदित्यै स्वाहा।** इदमदित्यै-इदन्न **मम।**

(३) **ओं बृहस्पतये स्वाहा।** इदं बृहस्पतये-**इदन्न मम।**

(४) **ओं प्रजापतये स्वाहा।** इदं प्रजापतये-**इदन्न मम।**

परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हुये उपरिलिखित प्रकार के मन्त्रों से यज्ञ में हवि (आहुति) प्रदान की जाती है।

अण् (इत्-आदेशः)-

(२) कस्येत्।२४।

प०वि०-कस्य ६।१ इत् १।१।

अनु०-प्राग्दीव्यतीयोऽण् सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा कस्य अस्य प्राग्दीव्यतीयोऽण् देवता।

अर्थः-सा-इति प्रथमा-समर्थात् क-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्रत्ययो भवति, इकारश्चान्तादेशो भवति, यत् प्रथमा-समर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-को देवताऽस्य-कायं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (कस्य) 'क' प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (प्राग्दीव्यतः) प्राग्दीव्यतीय (अण्) अण् प्रत्यय होता है (इत्) और इकार अन्तादेश होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-**को देवताऽस्य-कायं हविः।** 'क' देवता है इसका यह-काय हवि। क=प्रजापति।*

*सिद्धि-**कायम्।** क+सु+अण्। क्इ+अ। कै+अ। काय्+अ। काय+सु। कायम्।*

यहां प्रथमा समर्थ देवतावाची 'क' शब्द से षष्ठीविभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय और 'क' शब्द के अन्त्य अ-वर्ण को इकार-आदेश होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अंग को वृद्धि और 'एचोऽयवायवः' (६।१।७५) से 'आय्' आदेश होता है।

विशेष-*(१) देवतावाची 'क' शब्द प्रजापति अर्थ का वाचक है। प्रजापति=प्रजा का पालक परमेश्वर।*

(२) आहुति मन्त्र-ओं काय स्वाहा। इदं काय-इदन्न मम।

घन्-

(३) शुक्राद् घन्।२५।

प०वि०-शुक्रात् ५।१ घन् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा शुक्राद् अस्य घन् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थात् शुक्रात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे घन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-शुक्रो देवताऽस्य-शुक्रियं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (शुक्रात्) शुक्र प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी विभक्ति के अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

उदा०-शुक्रो देवताऽस्य-शुक्रियं हविः। शुक्र है देवता इसका यह-शुक्रिय हवि। शुक्र=सर्वशक्तिमान् परमेश्वर।

*सिद्धि-**शुक्रियम्**। शुक्र+सु+घन्। शुक्+इय। शुक्रिय+सु। शुक्रियम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'शुक्र' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।

आहुति मन्त्र-ओं शुक्राय स्वाहा। इदं शुक्राय-इदन्न मम।

घः-

(३) अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः।२६।

प०वि०-अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम् ५।२ घः १।१।

स०-अपोनप्तृ च अपांनप्तृ च तौ-अपोनप्त्रपांनप्त्रौ, ताभ्याम्-अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम् अस्य घो देवता।

अर्थः-सा-इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे घः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-अपोनप्तृ देवताऽस्य-अपोनप्त्रियं हविः। अपांनपात् देवताऽस्य-अपांनप्त्रियं हविः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (अपोनप्तृ-अपांनप्तृभ्याम्) अपोनप्तृ, अपांनप्तृ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो तो।*

*उदा०-**अपोनप्तृ** देवताऽस्य-**अपोनप्त्रियं** हविः। अपोनप्तृ देवता है इसका यह-अपोनप्त्रिय हवि। **अपांनपात्** देवताऽस्य-**अपांनप्त्रियं** हविः। अपांनपात् देवता है इसका यह-अपांनप्त्रिय हवि।*

*सिद्धि-**अपोनप्त्रियम्**। अपोनप्तृ+सु+घ। अपोनप्तृ+इय। अपोनप्त्रिय+सु। अपोनप्त्रियम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'अपोनप्तृ' शब्द से इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और '**इको यणचि**' (६।१।७४) से ऋ-वर्ण को यण् (र्) आदेश होता है। 'अपोनप्त्' शब्द तकारान्त है, इसी सूत्र से प्रत्यय-सन्नियोग में उसे ऋकारान्त निपातित किया गया है। ऐसे ही-**अपांनप्त्रियम्**।*

विशेष–*(१) अपोनप्तृ, अपांनपातृ शब्द अग्निदेवता के वाचक हैं। जल से संघर्षण पैदा होता है और उससे विद्युत् उत्पन्न होती है। अतः जल का पोता होने से विद्युत् 'अपांनपात्' कहाता है।*

*(२) अत्र पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः प्राह–एवं च–**अपोनपातेऽनुब्रूहि, अपांनपातेऽनुब्रूहि, अपोनपातं यज, अपांनपातं यजेति सम्प्रैषः। वेदे तु–'अपोनप्त्रे स्वाहा' इति छान्दसः प्रयोगः।***

छः–

(४) छ च।२७।

प०वि०–छ १।१ (सु–लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–सा, अस्य, देवता, अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सा अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्याम् अस्य छश्च देवता।

अर्थः–सा इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०–अपोनप्तृ देवताऽस्य–अपोनप्त्रीयं हविः। अपांनपातृ देवतास्य–अपानपात्रीयं हविः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(सा) प्रथमा-समर्थ (अपोनप्तृ–अपांनपातृभ्याम्) अपोनप्तृ, अपांनपातृ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय (च) भी होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०–**अपोनप्तृ** देवताऽस्य–**अपोनप्त्रीयं** हविः। अपोनप्तृ देवता है इसका यह–अपोनप्त्रीय हवि। **अपांनपातृ** देवतास्य–**अपानपात्रीयं** हविः। अपांनपातृ देवता है इसका यह–अपांनपात्रीय हवि।*

*सिद्धि–अपोनप्त्रीयम् और अपांनपात्रीयम् पदों की सिद्धि पूर्ववत् है **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' प्रत्यय के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। पदों का अर्थ पूर्ववत् है।*

घः+अण्–

(५) महेन्द्राद् घाणौ च।२८।

प०वि०–महेन्द्रात् ५।१ घाणौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–घश्च अण् च तौ घाणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सा, अस्य, देवता, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा महेन्द्राद् अस्य घाणौ छश्च देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् महेन्द्रात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे घाणौ छश्च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(**घः**) महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रियं हविः। (**अण्**) महेन्द्रो देवताऽस्य-माहेन्द्रं हविः। (**छः**) महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रीयं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमासमर्थ (महेन्द्रात्) महेन्द्र प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (घाणौ) घ, अण् (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-(घ) **महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रियं हविः।** महेन्द्र देवता है इसका यह-महेन्द्रिय हवि। (अण्) **महेन्द्रो देवताऽस्य-माहेन्द्रं हविः।** महेन्द्र देवता है इसका यह-माहेन्द्र हवि। (छ) **महेन्द्रो देवताऽस्य-महेन्द्रीयं हविः।** महेन्द्र है देवता इसका यह-महेन्द्रीय हवि।*

*सिद्धि-(१) **महेन्द्रियम्।** यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

*(२) **माहेन्द्रम्।** यहां पूर्वोक्त 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(३) **महेन्द्रीयम्।** यहां पूर्वोक्त 'महेन्द्र' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

ट्यण्–

(६) सोमाद् ट्यण्।२६।

प०वि०-सोमात् ५।१ ट्यण् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा सोमाद् अस्य ट्यण् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थात् सोमात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ट्यण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-सोमो देवताऽस्य-सौम्यं हविः।

आर्यभाषाः अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (सोमात्) सोम प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ट्यण्) ट्यण् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।

उदा०-सोमो देवताऽस्य-सौम्यं हविः। सोम देवता है इसका यह-सौम्य हवि।

सिद्धि-सौम्यम्। यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'सोम' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ट्यण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'ट्यण्' प्रत्यय में टकार 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय के लिये और णकार अनुबन्ध आदिवृद्धि के लिये है।

यत्–

(७) वाय्वृतुपित्रुषसो यत्।३०।

प०वि०-वायु-ऋतु-पितृ-उषसः ५।१ यत् १।१।

स०-वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषाश्च एतेषां समाहारः-वाय्वृतुपित्रुषः, तस्मात्-वाय्वृतुपित्रुषसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सा वाय्वृतुपित्रुषसोऽस्य यद् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यो वायु-ऋतु-पितृ-उषोभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(**वायुः**) वायुर्देवताऽस्य-वायव्यं हविः। (**ऋतुः**) ऋतुर्देवताऽस्य-ऋतव्यं हविः। (**पिता**) पिता देवताऽस्य-पित्र्यं हविः। (**उषा**) उषा देवताऽस्य-उषस्यं हविः।

आर्यभाषाः अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (वाय्वृतुपित्रुषसः) वायु, ऋतु, पितृ, उषस् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।

उदा०-(वायु) वायुर्देवताऽस्य-वायव्यं हविः। वायु है देवता इसका यह-वायव्य हवि। (ऋतु) ऋतुर्देवताऽस्य-ऋतव्यं हविः। ऋतु है देवता इसका यह-ऋतव्य हवि। (पिता) पिता देवताऽस्य-पित्र्यं हविः। पिता है देवता इसका यह-पित्र्य हवि। (उषा) उषा देवताऽस्य-उषस्यं हविः। उषा है देवता इसका यह-उषस्य हवि।

सिद्धि-(१) वायव्यम्। वायु+सु+यत्। वायो+य। वायव्य+सु। वायव्यम्।

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'वायु' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। '**ओर्गुण:**' (६।४।१४६) से अंग को गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७६) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'ऋतु' शब्द से-**ऋतव्यम्**।*

*(२) **पित्र्यम्**। पितृ+सु+यत्। पित्रीङ्+य। पित्री+य। पित्र्+य। पित्र्य+सु। पित्र्यम्।*

*यहां पूर्ववत् 'पितृ' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'रीङ् ऋत:' (७।४।२७) से अंग को रीङ् आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१०८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही 'उषस्' शब्द से-**उषस्यम्**।*

छ:+यत्–

(८) द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तो-ष्पतिगृहमेधाच्छ च।३१।

प०वि०-द्यावापृथिवी-शुनासीर-मरुत्वद्-अग्नीषोम-वास्तोष्पति-गृहमेधात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-द्यौश्च पृथिवी च ते द्यावापृथिव्यौ। शुनश्च सीरश्च तौ शुनासीरौ। अग्निश्च सोमश्च तौ अग्नीषोमौ। वास्तुन: पतिरिति वास्तोष्पति:। द्यावापृथिव्यौ च शुनासीरौ च मरुत्वाँश्च अग्नीषोमौ च वास्तोष्पतिश्च गृहमेधश्च एतेषां समाहार:-द्यावापृथिवी०गृहमेधम्, तस्मात्-द्यावा-पृथिवी०गृहमेधात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वषष्ठीतत्पुरुषगर्भित: समाहारद्वन्द्व:)।

अन्वय:-सा द्यावापृथिवी०गृहमेधाद् अस्य छो यच्च देवता।

अर्थ:-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यो द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोम-वास्तोष्पतिगृहमेधेभ्य: प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-**(द्यावापृथिव्यौ)** द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य-द्यावापृथिवीयं हवि: (छ:)। द्यावापृथिव्यं हवि: (यत्)। **(शुनासीरौ)** शुनासीरौ देवते अस्य-शुनासीरीयं हवि: (छ:)। शुनासीर्यं हवि: (यत्)। **(मरुत्वान्)** मरुत्वान् देवताऽस्य-मरुत्वतीयं हवि: (छ:)। मरुत्वत्यं हवि: (यत्)। **(अग्नीषोमौ) अग्निषोमौ देवताऽस्य-अग्नीषोमीयं हवि:** (छ:)। अग्निषोम्यं

हविः (यत्)। (**वास्तोष्पतिः**) वास्तोष्पतिर्देवताऽस्य-वास्तोष्पतीयं हविः (छः)। वास्तोष्पत्यं हविः (यत्)। (**गृहमेधः**) गृहमेधो देवताऽस्य-गृहमेधीयं हविः (छः) गृहमेध्यं हविः (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (द्यावापृथिवी०गृहमेधात्) द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वान्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति, गृहमेध प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह देवता हो।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी इसके देवता हैं यह-द्यावापृथिवीय अथवा द्यावापृथिव्य हवि। (शुनासीर) शुन और सीर इसके देवता हैं यह-शुनासीरीय अथवा शुनासीर्य हवि। शुन=वायु। सीर=आदित्य। (मरुत्वान्) मरुत्वान् इसका देवता है यह-मरुत्वतीय अथवा मरुत्वत्य हवि। मरुत्वान्=इन्द्र। (अग्नीषोम) अग्नि और सोम इसके देवता हैं यह-अग्नीषोमीय अथवा अग्निषोम्य हवि। (वास्तोष्पति) वास्तोष्पति इसके देवता हैं यह-वास्तोष्पतीय अथवा वास्तोष्पत्य हवि। वास्तोष्पति=घर की रक्षा करनेवाला शुद्ध वायु। (गृहमेध) गृहमेध इसका देवता है यह-गृहमेधीय अथवा गृहमेध्य हवि। गृहमेध=ब्रह्मयज्ञ आदि पांच महायज्ञ करनेवाला गृहस्थ।

*सिद्धि-(१) **द्यावापृथिवीयम्।** यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'द्यावापृथिवी' **प्रातिपदिक** से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में **'ईय्'** आदेश होता है।*

*(२) **द्यावापृथिव्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्यावापृथिवी' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

*(३) **'शुनासीरीय'** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

ढक्–

(६) अग्नेर्ढक्।३२।

प०वि०-अग्नेः ५।१ ढक् १।१।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा अग्नेरस्य ढक् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् **अग्नि-शब्दात्** प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, **यत् प्रथमासमर्थं** देवता चेत् सा भवति।

उदा०-अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयो मन्त्रः। तद्यथा-अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सा) प्रथमा-समर्थ (अग्नेः) अग्नि प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

*उदा०-**अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयो मन्त्रः।** अग्नि देवता है इसका यह-आग्नेय मन्त्र।*

सिद्धि-आग्नेयम्। *अग्नि+सु+ढक्। आग्न्+एय। आग्नेय+सु। आग्नेयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'अग्नि' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग का इकार-लोप होता है।*

(१०) कालेभ्यो भववत्।३३।

प०वि०-कालेभ्यः ५।३ भववत् अव्ययपदम्। भवे इव भववत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-सा, अस्य, देवता इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सा कालेभ्योऽस्य भववद् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे भववत् प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

'कालेभ्यः' इति बहुवचननिर्देशात् कालविशेषवाचिनो मासादयो गृह्यन्ते। 'भववत्' इत्यस्यायमर्थः-**'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) इत्यस्मिन् प्रकरणे कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ये प्रत्यया विहितास्ते **'साऽस्य देवता'** इत्यस्मिन्नर्थेऽपि भवन्ति।

उदा०-मासो देवताऽस्य-मासिकम्। अर्धमासो देवताऽस्य-आर्धमासिकम्। संवत्सरो देवताऽस्य-सांवत्सरिकम्। वसन्तो देवताऽस्य-वासन्तम्। प्रावृड् देवताऽस्य-प्रावृषेण्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (कालेभ्यः) कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (भववत्) 'भव' अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

'कालेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से कालविशेषवाची 'मास' आदि प्रातिपदिकों का ग्रहण किया जाता है। 'भववत्' का यह अर्थ है कि 'कालाट्ठञ्' (४।३।११) इस प्रकरण में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय विधान किये गये हैं, वे 'साऽस्य देवता' इस अर्थ में भी होते हैं।

*उदा०-**मासो देवताऽस्य-मासिकम्।** मास इसका देवता है यह-मासिक। **अर्धमासो देवताऽस्य-आर्धमासिकम्।** अर्धमास (पक्ष) इसका देवता है यह-आर्धमासिक। **संवत्सरो देवताऽस्य-सांवत्सरिकम्।** संवत्सर=वर्ष इसका देवता है यह-सांवत्सरिक। **वसन्तो देवताऽस्य-वासन्तम्।** वसन्त इसका देवता है यह-वासन्त। **प्रावृड् देवताऽस्य-प्रावृषेण्यम्।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु इसका देवता है यह-प्रावृषेण्य।*

*सिद्धि-(१) **मासिकम्।** मास+सु+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से 'कालाट्ठञ्' (४।३।११) से विहित ठञ् प्रत्यय इस सूत्र से देवता अर्थ में है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।

*(२) **आर्धमासिकम्।** 'अर्धमास' शब्द से पूर्ववत्।*

*(३) **सांवत्सरिकम्।** 'संवत्सर' शब्द से पूर्ववत्।*

*(४) **वासन्तम्।** 'वसन्त' शब्द से '**सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्**' (४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(५) **प्रावृषेण्यम्।** 'प्रावृट्' शब्द से '**प्रावृष एण्यः**' (४।३।१७) से 'एण्य' प्रत्यय है।*

ठञ्-

(११) महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्।३४।

प०वि०-महाराज-प्रोष्ठपदात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-महाराजश्च प्रोष्ठपदे च एतयोः समाहारः-महाराजप्रोष्ठपदम्, तस्मात्-महाराजप्रोष्ठपदात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-सा महाराजप्रोष्ठपदादस्य, ठञ् देवता।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाभ्यां महाराज-प्रोष्ठपदाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य इति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं देवता चेत् सा भवति।

उदा०-(**महाराज:**) महाराजो देवताऽस्य-माहाराजिकम्। (**प्रोष्ठपदे**) प्रोष्ठपदे देवते अस्य-प्रौष्ठपदिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ- *(सा) प्रथमा-समर्थ (महाराज-प्रोष्ठपदात्) महाराज और प्रोष्ठपदा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (देवता) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह देवता हो।*

उदा०-(महाराज:) ***महाराजो देवताऽस्य-माहाराजिकम्।*** *महाराज=वैश्रवण (कुबेर) है देवता इसका यह-माहाराजिक। (प्रोष्ठपदे)* ***देवते अस्य-प्रौष्ठपदिकम्।*** *प्रौष्ठपदा=भाद्रपदा, पूर्व भाद्रपदा और उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र हैं देवता इसके यह-प्रौष्ठपदिक।*

सिद्धि-माहाराजिकम्। *महाराज+सु+ठञ्। माहाराज्+इक। माहाराजिक+सु। माहाराजिकम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, देवतावाची 'महाराज' प्रातिपदिक से इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। ***'ठस्येक:'*** *(७।३।५२) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादे:'*** *(७।१।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही 'प्रौष्ठपदा' शब्द से-* ***प्रौष्ठपदिकम्।***

विशेष- *प्रोष्ठपदा नक्षत्र पूर्व-प्रोष्ठपदा और उत्तर-प्रोष्ठपदा भेद से दो प्रकार का है। इसे पूर्व-भाद्रपदा और उत्तर भाद्रपदा भी कहते हैं।* ***'फाल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'*** *(१।२।६०) से 'प्रोष्ठपदा' के द्विवचन में विकल्प से बहुवचन होता है।*

निपातनम्–

(१२) पितृव्यमातुलमातामहपितामहा:।३५।

प०वि०-पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहा: १।३।

स०-पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च ते-पितृव्य-मातुलमातामहपितामहा: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अर्थ:-पितृव्यमातुलमातामहपितामहा: शब्दा निपात्यन्ते। समर्थ-विभक्ति:, प्रत्यय:, प्रत्ययार्थ:, अनुबन्धश्चेति सर्वं निपातनाद् वेदितव्यम्।

उदा०-(**पितृव्य:**) पितुर्भ्राता-पितृव्य:। (**मातुल:**) मातुर्भ्राता-मातुल:। (**मातामह:**) मातु: पिता-मातामह:। (**पितामह:**) पितु: पिता-पितामह:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पितृव्य०) पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह शब्द निपातित किये जाते हैं। इनमें समर्थ-विभक्ति, प्रत्यय, प्रत्यय का अर्थ और अनुबन्ध सब निपातन से ही जानना चाहिये।*

उदा०-(पितृव्यः) पितुर्भ्राता-पितृव्यः । पिता का भाई-चाचा। (मातुलः) मातुर्भ्राता-मातुलः । माता का भाई-मामा। (मातामहः) मातुः पिता-मातामहः । माता का पिता-नाना। (पितामहः) पितुः पिता-पितामहः । पिता का पिता-दादा।

सिद्धि-(१) पितृव्यः । पितृ+ङस्+व्यत्। पितृ+व्यत्। पितृव्य+सु। पितृव्यः।

यहां 'पितृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'व्यत्' प्रत्यय है।

(२) मातुलः । मातृ+ङस्+डुलच्। मात्+उल। मातुल+सु। मातुलः।

यहां 'मातृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'डुलच्' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के डित् होने से 'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'मातृ' के टि-भाग (ऋ) का लोप होता है।

(३) मातामहः । मातृ+ङस्+डामहच्। मात्+आमह। मातामह+सु। मातामहः।

यहां 'मातृ' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में 'डामहच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से 'मातृ' शब्द का पूर्ववत् टि-लोप होता है।

(४) पितामहः । पितृ+ङस्+डामहच्। पित्+आमह। पितामह+सु। पितामहः। सब कार्य पूर्ववत् है।

***विशेष**-'डामहच्' प्रत्यय को षित् मानकर स्त्रीत्व-विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-मातामही-नानी। पितामही-दादी।*

।। इति देवतार्थप्रत्ययप्रकरणम् ।।

समूहार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्य समूहः।३६।

प०वि०-तस्य ६।१ समूहः १।१।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थात् समूहो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-काकानां समूहः-काकम्। शुकानां समूहः-शौकम्। बकानां समूहः-बाकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**काकानां समूहः-काकम्।** कौवों का समूह-काक। **शुकानां समूहः-शौकम्।** तोतों का समूह-**शौक**। **बकानां समूहः-बाकम्।** बगुलों का समूह-बाक।*

***सिद्धि-काकम्।** काक+आम्+अण्। काक्+अ। काक+सु। काकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'काक' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यहां यथाविहित प्रत्यय 'अण्' है। 'अण्' प्रत्यय के णित् होने से **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शौकम्, बाकम्।***

अण्–

(२) भिक्षादिभ्योऽण्।३७।

प०वि०–भिक्षा-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०–भिक्षा आदिर्येषां ते-भिक्षादयः, तेभ्यः-भिक्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य भिक्षादिभ्यः समूहोऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। युवतीनां समूहो यौवतम्।

भिक्षा। गर्भिणी। क्षेत्र। करीष। अङ्गार। चर्मिन्। धर्मिन्। चर्मन्। धर्मन्। सहस्र। युवति। पदाति। पद्धति। अथर्वन्। अर्वन्। दक्षिण। भूत। विषय। श्रोत्र। वृक्षादिभ्यः खण्डः।। वृक्षखण्डः। वृक्ष। तरु। पादप। इति भिक्षादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भिक्षादिभ्यः) भिक्षा-आदि प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**भिक्षाणां समूहो भैक्षम्।** शिष्यों के द्वारा आचार्य के लिये लाई हुई भिक्षाओं का समूह-भैक्ष। **गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्।** गर्भिणी नारियों का समूह-गार्भिण। **युवतीनां समूहो यौवतम्।** युवति जनों का समूह-यौवत।*

*सिद्धि-(१) **भैक्षम्**। भिक्षा+आम्+अण्। भैक्ष्+अ। भैक्ष+सु। भैक्षम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'भिक्षा' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **गार्भिणम्**। गर्भिणी+आम्+अण्। गर्भिन्+अ। गार्भिन्+अ। गार्भिण+सु। गार्भिणम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गर्भिणी' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से अण् प्रत्यय है। वा०-'**भस्याढे तद्धिते०**' (६।३।३५) से पुंवद्भाव होने से ङीप् प्रत्यय की निवृत्ति होती है तत्पश्चात् अण् प्रत्यय परे होने पर '**इनण्यनपत्ये**' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।*

*(३) **यौवतम्**। युवति+आम्+अण्। युवति+अ। यौवत्+अ। यौवत+सु। यौवतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'युवति' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। 'युवति' शब्द भिक्षादिगण में पढ़ा है अतः उसे वा०-'**भस्याढे तद्धिते०**' (६।३।३५) से पुंवद्भाव (युवन्) नहीं होता है।*

वुञ्-

(३) गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्।३८।

प०वि०- गोत्र-उक्ष-उष्ट्र-उरभ्र-राज-राजन्य-राजपुत्र-वत्स-मनुष्य-अजात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च उक्षा च उष्ट्रश्च उरभ्रश्च राजा च राजन्यश्च राजपुत्रश्च वत्सश्च मनुष्यश्च अजश्च एतेषां समाहारः-गोत्र०अजम्, तस्मात्-गोत्र०अजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्र०अजात् समूहो वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रं गृह्यतेऽपत्यमात्रम्, न तु '**अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्**' (४।१।१६२) इति पारिभाषिकं गोत्रम्।

उदा०-(**गोत्रम्**) औपगवानां समूह औपगवकम्। कापटवानां समूहः कापटवकम्। (**उक्षा**) उक्ष्णां समूह औक्षकम्। (**उष्ट्रः**) उष्ट्राणां समूह औष्ट्रकम्। (**उरभ्रः**) उरभ्राणां समूह औरभ्रकम्। (**राजा**) राज्ञां समूहो राजकम्। (**राजन्यः**) राजन्यानां समूहो राजन्यकम्। (**राजपुत्रः**) राजपुत्राणां समूहो राजपुत्रकम्। (**वत्सः**) वत्सानां समूहो वात्सकम्। (**मनुष्यः**) मनुष्याणां समूहो मानुष्यकम्। (**अजः**) अजानां समूह आजकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्र०अजात्) गोत्र, उक्षा, उष्ट्र, उरभ्र, राजा, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य, अज प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*अपत्य-अधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र (अपत्यमात्र) का ग्रहण किया जाता है **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(गोत्र) उपगु के पुत्रों का समूह-औपगवक। कपटु के पुत्रों का समूह-कापटवक। (उक्षा) बैलों का समूह-औक्षक। (उरभ्र) मेष=भेड़ों का समूह-औरभ्रक। (राजा) राजाओं का समूह-राजक। (राजन्य) क्षत्रियों का समूह-राजन्यक। (राजपुत्र) राजपुत्रों का समूह-राजपुत्रक। (वत्स) बछड़ों का समूह-वात्सक। (मनुष्य) मनुष्यों का समूह-मानुष्यक। (अज) बकरों का समूह-आजक।

*सिद्धि-(१) **औपगवकम्।** औपगव+आम्+वुञ्। औपगव+अक। औपगवक+सु। औपगवकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, लौकिक गोत्रवाची 'औपगव' शब्द से इस सूत्र से समूह अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **औक्षकम्।** उक्षन्+आम्+वुञ्। उक्षन्+अक। औक्ष्+अक। औक्षक+सु। औक्षकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'उक्षन्' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'औष्ट्रकम्'** आदि पद सिद्ध करें।*

यञ्+वुञ्-

(४) केदाराद् यञ् च।३६।

प०वि०-केदारात् ५।१ यञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, समूह, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य केदारात् समूहो यञ् वुञ् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् केदारात् प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यञ् वुञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**यञ्**) केदाराणां समूहः-कैदार्यम्। (**वुञ्**) केदाराणां समूहः-कैदारकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (केदारात्) केदार प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (यञ्) यञ् (च) और (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यञ्) केदाराणां समूहः-कैदार्यम्।** पानी भरे खेतों अथवा चारागाहों का समूह-कैदार्य। **(वुञ्) केदाराणां समूहः-कैदारकम्।** केदारों का समूह-कैदारक।*

सिद्धि-(१) कैदार्यम्। *केदार+ङस्+यञ्। कैदार्+य। कैदार्य+सु। कैदार्यम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'केदार' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) कैदारकम्। *यहां षष्ठी-समर्थ 'केदार' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ठञ्-

(५) ठञ् कवचिनश्च।४०।

प०वि०-ठक् १।१ कवचिनः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, समूहः, केदाराद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कवचिनः केदाराच्च समूहष्ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् कवचिनः केदाराच्च प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कवचिनां समूहः कावचिकम्। केदाराणां समूहः कैदारिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कवचिनः) कवचिन् (च) और (केदारात्) केदार प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कवचिनां समूहः कावचिकम्।** कवचधारी (जिरहबख्तरवाले) जनों का समूह-कावचिक। **केदाराणां समूहः कैदारिकम्।** केदार=पानी के भरे खेतों अथवा चरागाहों का समूह-कैदारिक।*

सिद्धि-कावचिकम्। *कवचिन्+आम्+ठञ्। कावच्+इक। कावचिक+सु। कावचिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कवचिन्' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।११४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'केदार' शब्द से-**कैदारिकम्।***

यन्–

(६) ब्राह्मणमाणववाडवाद् यन्।४१।

प०वि०–ब्राह्मण-माणव-वाडवात् ५।१ यन् १।१।

स०–ब्राह्मणश्च माणवश्च वाडवश्च एतेषां समाहारो ब्राह्मणमाणववाडवम्, तस्मात्-ब्राह्मणमाणववाडवात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः–तस्य ब्राह्मणमाणववाडवात् समूहो यन्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो ब्राह्मणमाणववाडवेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(ब्राह्मणः) ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्। **(माणवः)** माणवानां समूहो माणव्यम्। **(वाडवः)** वाडवानां समूहो वाडव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (ब्राह्मणमाणववाडवात्) ब्राह्मण, माणव, वाडव प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यन्) **यन्** प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(ब्राह्मण) **ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्।** ब्राह्मणों का समूह-ब्राह्मण्य। (माणव) **माणवानां समूहो माणव्यम्।** माणव-छोकरों अथवा बौनों का समूह-माणवक। (वाडव) वाडवानां **समूहो वाडव्यम्।** वाडव=घोड़ों का समूह=वाडव्य।*

*सिद्धि-**ब्राह्मण्यम्।** ब्राह्मण+आम्+यन्। ब्राह्मण्+य। ब्राह्मण्य+सु। ब्राह्मण्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ब्राह्मण' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यन्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'यन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञ्नित्यादिनित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है-**ब्राह्मण्यम्।** ऐसे ही-**माणव्यम्, वाडव्यम्।***

तल्–

(७) ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्।४२।

प०वि०–ग्राम-जन-बन्धुभ्यः ५।३ तल् १।१।

स०–ग्रामश्च जनश्च बन्धुश्च ते-ग्रामजनबन्धवः, तेभ्यः-ग्रामजनबन्धुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ग्रामजनबन्धुभ्यः समूहस्तल्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो ग्रामजनबन्धुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे तल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ग्रामः**) ग्रामाणां समूहो ग्रामता। (**जनः**) जनानां समूहो जनता। (**बन्धुः**) बन्धूनां समूहो बन्धुता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ग्रामजनबन्धुभ्यः) ग्राम, जन, बन्धु प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (तल्) तल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ग्राम) ***ग्रामाणां समूहो ग्रामता।*** *ग्रामों का समूह-ग्रामता। (जन)* ***जनानां समूहो जनता।*** *जनों का समूह-जनता। (बन्धु)* ***बन्धूनां समूहो बन्धुता।*** *बन्धुओं का समूह-बन्धुता।*

सिद्धि-ग्रामता। *ग्राम+आम्+तल्। ग्रामत+टाप्। ग्रामता+सु। ग्रामता।*

यहां 'ग्राम' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'तल्' प्रत्यय है। ***'तलन्तः'*** *(लि०स्त्री० २६) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-* ***जनता, बन्धुता।***

अञ्-

(८) अनुदात्तादेरञ्।४३।

प०वि०-अनुदात्तेः ५।१ अञ् १।१।

स०-अनुदात्त आदिर्यस्य सः-अनुदात्तादिः, तस्मात्-अनुदात्तादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अनुदात्तादेः समूहोऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कपोतानां समूहः कापोतम्। मयूराणां समूहो मायूरम्। तित्तिरीणां समूहस्तैत्तिरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनुदात्तादेः) अनुदात्त आदि प्रातिपदिक से (समूहः) समूह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-कपोतानां समूहः **कापोतम्।** कबूतरों का समूह-कापोत। मयूराणां समूहो **मायूरम्।** मोरों का समूह-मायूर। तित्तिरीणां समूहस्तैत्तिरम्। तीतरों का समूह-तैत्तिर।*

*सिद्धि-**कापोतम्।** कपोत+आम्+अञ्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, अनुदात्तादि 'कपोत' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायूरम्, तैत्तिरम्।***

***विशेष-**कपोत और मयूर शब्द 'लघावन्ते द्वयोर्बह्वषो गुरुः' (फिट्० २।१९) से मध्योदात्त हैं-कपोतः। मयूरः। ये मध्योदात्त होने से अनुदात्तादि हैं। 'कृगॄशॄ०' (उणा० ४।१४३) यहां बहुवचन पाठ से 'तॄ' धातु से 'इ' प्रत्यय और वह कित् है। सन्वत् कार्य और अभ्यास को 'तुक्' आगम होता है। प्रत्यय-स्वर से 'तित्तिरिः' शब्द अन्तोदात्त है, अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है।*

अञ्-

(६) खण्डिकादिभ्यश्च।४४।

प०वि०-खण्डिका-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-खण्डिका आदिर्येषां ते-खण्डिकादयः, तेभ्यः-खण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य खण्डिकादिभ्यः समूहोऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। वडवानां समूहो वाडवम्।

खण्डिका। वडवा।। क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम्। भिक्षुक। शुक। उलूक। श्वन्। युग। अहन्। वरत्रा। हलबन्ध। इति खण्डिकादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खण्डिकादिभ्यः) खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (समूहः) समूह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-खण्डिकानां समूहः **खाण्डिकम्।** खण्डिकाओं का समूह-खाण्डिक। खण्डिका=खांडा। वडवानां समूहो **वाडवम्।** वडवा=घोड़ियों का समूह-वाडव।*

*सिद्धि-**खाण्डिकम्।** खण्डिका+आम्+अञ्। खाण्डिक्+अ। खाण्डिक+सु। खाण्डिकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'खण्डिका' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वाडवम्।***

धर्मवत्–

(१०) चरणेभ्यो धर्मवत्।४५।

प०वि०-चरणेभ्यः ५।३ धर्मवत् १।१। धर्मे इव इति धर्मवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य चरणेभ्यः समूहो धर्मवत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्चरणविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे धर्मवत् प्रत्यया भवन्ति।

'चरणेभ्यः' इति बहुवचननिर्देशाच्चरणविशेषवाचिनः कठादयः शब्दा गृह्यन्ते। **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इत्यारभ्य प्रत्यया वक्ष्यन्ते। तत्रेदमुच्यते-'चरणाद् धर्माम्नाययोः' इति। तेनात्र 'धर्मवत्' इत्यतिदेशः (तुल्यताविधानम्) क्रियते।

उदा०-कठानां समूहः काठकम्। कालापानां समूहः कालापकम्। छन्दोगानां समूहश्छान्दोग्यम्। औक्थिकानां समूह औक्थिक्यम्। आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (चरणेभ्यः) चरण-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (धर्मवत्) धर्म-अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं। धर्म-अर्थ में जो प्रत्यय कहे गये हैं वे चरण-विशेषवाची शब्दों से समूह अर्थ में होते हैं।*

*यहां 'चरणेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से चरण-विशेषवाची 'कठ' आदि शब्दों का ग्रहण किया जाता है। 'गोत्रचरणाद् वुञ्' (४।३।१२६) यहां से लेकर प्रत्ययों का कथन किया जायेगा। वहां यह कहा गया है कि **वा०- 'चरणाद् धर्माम्नययोरिष्यते'** (४।१।१२६) अर्थात् चरणविशेषवाची शब्दों से धर्म और आम्नाय अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय अभीष्ट है। वहां चरणविशेषवाची शब्दों से जो धर्म अर्थ में प्रत्यय कहे गये हैं वे इस सूत्र से समूह अर्थ में विधान किये गये हैं।*

***उदा०-कठानां समूहः काठकम्।** कठों का समूह-काठक। **कालापानां समूहः कालापकम्।** कलापों का समूह-कालापक। **छन्दोगानां समूहश्छान्दोग्यम्।** छन्दोगों का*

*समूह-छान्दोग्य। **औक्थिकानां समूह औक्थिक्यम्।** औक्थिकों का समूह-औक्थिक। **आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्।** आथर्वणिकों का समूह-आथर्वण।*

सिद्धि-(१) काठकम्। *कठ+आम्+वुञ्। काठ्+अक। काठक+सु। काठकम्।*

*यहां षष्ठीसमर्थ, चरणविशेषवाची 'कठ' शब्द से प्रथम **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से धर्म अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है। इस सूत्र से चरणविशेषवाची शब्दों से समूह अर्थ में 'धर्मवत्' प्रत्ययों का विधान किया गया है, अतः यहां धर्मवत् 'वुञ्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **छान्दोग्यम्।** छन्दोग+आम्+ञ्य। छान्दोग्+य। छान्दोग्य+सु। छान्दोग्यम्।*

*यहां 'छन्दोग' शब्द से **'छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः'** (४।३।१२९) से 'ञ्य' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**औक्थिक्यम्।***

*(३) **आथर्वणम्।** आथर्वणिक+आम्+अण्। आथर्वण्+अ। आथर्वण+सु। आथर्वणम्।*

*यहां 'आथर्वणिक' शब्द से **'आथर्वणिकस्येकलोपश्च'** (काशिका-४।३।१३३) से अण् प्रत्यय और 'इक' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-चरण शब्द वैदिक शाखा के आदि-प्रवर्तक का वाचक है। उस शाखा के अध्येताओं को भी उसी नाम से कहा जाता है।*

ठक्-

(११) अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्।४६।

प०वि०-अचित-हस्ति-धेनोः ५।१ ठक् १।१।

स०-न विद्यते चित्तं यस्मिँस्तत्-अचित्तम्। अचित्तं च हस्ती च धेनुश्च एतेषां समाहारः-अचित्तहस्तिधेनुः, तस्मात्-अचित्तहस्तिधेनोः (बहुव्रीहिगर्भितः समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अचित्तहस्तिधेनोः समूहष्ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाद् हस्तिधेनुभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां समूह इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अचितम्)** अपूपानां समूह आपूपिकम्। शष्कुलीनां समूहः **शाष्कुलिकम्। (हस्ती)** हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। **(धेनुः)** धेनूनां समूहो **धैनुकम्।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अचित्तहस्तिधेनोः) अचित्त (जड़) वाची प्रातिपदिक तथा हस्ती और धेनु प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अचित्तम्) ***अपूपानां समूह आपूपिकम्।*** *अपूप=पूड़ों का समूह-आपूपिक* ***शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्।*** *शष्कुली=पूरियों का समूह-शाष्कुलिक।* ***(हस्ती) हस्तिनां समूहो हास्तिकम्।*** *हाथियों का समूह-हास्तिक।* ***(धेनुः) धेनूनां समूहो धैनुकम्।*** *दुधारू गायों का समूह-धैनुक।*

सिद्धि-(१) आपूपिकम्। *अपूप+आम्+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ, अचित्त (जड़) वाची 'अपूप' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' स्थान में 'इक्' आदेश और ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-***शाष्कुलिकम्।***

(२) हास्तिकम्। *हस्तिन्+आम्+ठक्। हास्त्+इक। हास्तिक+सु। हास्तिकम्।*

यहां 'हस्तिन्' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय और ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से हस्तिन् के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) धैनुकम्। *धेनु+आम्+ठक्। धैनु+क। धैनुक+सु। धैनुकम्।*

यहां 'धेनु' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय और ***'इसुसुक्तान्तात् कः'*** *(७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

यञ्+छः-

(१२) केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्।४७।

प०वि०-केश-अश्वाभ्याम् ५।२ यञ्छौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-केशश्च अश्वश्च तौ केशाश्वौ, ताभ्याम्-**केशाश्वाभ्याम्** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यञ् च छश्च तौ-यञ्छौ **(इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।**

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य केशाश्वाभ्यां समूहोऽन्यतरस्यां यञ्छौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं विकल्पेन यञ्छौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(केश:) केशानां समूह: कैश्यम्, कैशिकं वा। **(अश्व:)** अश्वानां समूहोऽश्वीयम्, आश्वं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (केशाश्वाभ्याम्) केश और अश्व प्रातिपदिकों से (समूह:) समूह अर्थ में यथासंख्य (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यञ्छौ) यञ् और छ प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(केश) ***केशानां समूह: कैश्यम्, कैशिकं वा।*** *केश=बालों का समूह-कैश्य वा कैशिक। (अश्व)* ***अश्वानां समूहोऽश्वीयम्, आश्वं वा।*** *अश्व=घोड़ों का समूह-अश्वीय वा आश्व।*

सिद्धि-(१) ***कैश्यम्।*** *केश+आम्+यञ्। कैश्+य। कैश्य+सु। कैश्यम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'केश' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादे:'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***कैशिकम्।*** *यहां 'केश' शब्द से* ***'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'*** *(४।२।४७) से अचित्त लक्षण 'ठक्' प्रत्यय है।* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(३) ***अश्वीयम्।*** *अश्व+आम्+छ। अश्व्+ईय। अश्वीय+सु। अश्वीयम्।*

यहां षष्ठीसमर्थ 'अश्व' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

(४) ***आश्वम्।*** *यहां षष्ठीसमर्थ 'अश्व' शब्द से* ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से उत्सर्ग 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अकार का लोप होता है।*

य:–

(१३) पाशादिभ्यो य:।४८।

प०वि०-पाश-आदिभ्य: ५।३ य: १।१।

स०-पाश आदिर्येषां ते पाशादय:, तेभ्य: पाशादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य पाशादिभ्य: समूहो य:।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्य: पाशादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: समूह इत्यस्मिन्नर्थे य: प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाशानां समूह: पाश्या। तृणानां समूहस्तृण्या। वातानां समूहो वात्या।

पाश। तृण। धूम। वात। अङ्गार। पोत। बालक। पिटक। पाटक। शकट। हल। नड। वन। पाटलका। गल। इति पाशादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पाशादिभ्यः) पाश आदि प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पाशानां समूहः पाश्या।** पाश-बेड़ियों का समूह-पाश्या। **तृणानां समूहस्तृण्या।** तिनकों का समूह-तृण्या। **वातानां समूहो वात्या।** वात=हवाओं का समूह-वात्या। आंधी।*

सिद्धि-पाश्या। *पाश+आम्+य। पाश्+य। पाश्य+टाप्। पाश्य+आ। पाश्या+सु। पाश्या।*

*यहां षष्ठीसमर्थ 'पाश' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'यः' प्रत्यय है। **'यप्रत्ययान्तं स्वभावतः स्त्रीलिङ्गम्'** (पदमञ्जरी)। य-प्रत्ययान्त शब्द स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग होता है। यहां स्त्रीत्व की विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-तृण्या, वात्या आदि।*

यः—

(१४) खलगोरथात्।४६।

प०वि०-खल-गो-रथात् ५।१।

स०-खलश्च गौश्च रथश्च एतेषां समाहारः खलगोरथम्, तस्मात्-खलगोरथात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूह इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य खलगोरथात् समूहो यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(खलः)** खलानां समूहः खल्या। **(गौः)** गवां समूहो गव्या। **(रथः)** रथानां समूहो रथ्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खलगोरथात्) खल, गौ, रथ प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(खल) खलानां समूहः खल्या।** खल=दुष्टों अथवा खलिहानों का समूह-खल्या। **(गौ) गवां समूहो गव्या।** गौओं का समूह-गव्या। **(रथ) रथानां समूहो रथ्या।** रथों का समूह-रथ्या।*

इनिः+त्रः+कट्यच्–

(१५) इनित्रकट्यचश्च।५०।

प०वि०-इनि-त्र-कट्यचः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-इनिश्च त्रश्च कट्यच् च ते-इनित्रकट्यचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, समूहः, खलगोरथाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य खलगोरथात् समूह इनित्रकट्यचश्च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः खलगोरथेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यम् इनित्रकट्यचश्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-**(खलः)** खलानां समूहः खलिनी। **(गौः)** गवां समूहो गोत्रा। **(रथः)** रथानां समूहो रथकट्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (खलगोरथात्) खल, गो, रथ प्रातिपदिकों से (समूहः) समूह अर्थ में यथासंख्य (इनित्रकट्यचः) इनि, त्र, कट्यच् प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

*उदा०-(खल) **खलानां समूहः खलिनी।** खल=दुष्टों अथवा खलिहानों का समूह-खलिनी। (गौ) **गवां समूहो गोत्रा।** गायों का समूह-गोत्रा। (रथ) **रथानां समूहो रथकट्या।** रथों का समूह-रथकट्या।*

*सिद्धि-(१) **खलिनी।** खल+आम्+इनि। खल्+इन्। खलिन्+ङीप्। खलिनी+सु। खलिनी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'खल' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय हैं। **'एतेऽपि प्रत्ययाः स्वभावतः स्त्रियामेव'** (पदमञ्जरी)। ये 'इनि' आदि प्रत्यय भी स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। अतः यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

*(२) **गोत्रा।** गो+आम्+त्र। गोत्र+टाप्। गोत्रा+सु। गोत्रा।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से समूह अर्थ में 'त्र' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(३) **रथकट्या।** रथ+आम्+कट्यच्। रथकट्य+टाप्। रथकट्या+सु। रथकट्या।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'रथ' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से 'कट्यच्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय होता है।

विषयार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) विषयो देशे।५१।

प०वि०-विषयः १।१ देशे ७।१।

अनु०-तस्य इत्यनुवर्तति, समूह इति निवृत्तम्।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थाद् विषयो यथाविहितं प्रत्ययो देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विषय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

विषयशब्दोऽयं बह्वर्थः। क्वचिद् ग्रामसमुदाये वर्तते-विषयो लब्ध इति। क्वचिन्दिन्द्रियग्राह्ये वर्तते-चक्षुर्विषयो रूपमिति। क्वचिदत्यन्तशीलिते ज्ञेये वर्तते-देवदत्तस्य विषयो व्याकरणमिति। तत्र ग्रामसमुदायप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रे देशग्रहणं क्रियते।

उदा०-शिबीनां विषयो देशः शैबः। उष्ट्राणां विषयो देश औष्ट्रः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (विषयः) विषय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

*विषय शब्द बहु-अर्थक है। कहीं ग्राम-समुदाय अर्थ में है- **'विषयो लब्धः'** अपना देश प्राप्त होगया। कहीं इन्द्रिय-ग्राह्य अर्थ में है- **'चक्षुर्विषयो रूपम्'** चक्षु का विषय रूप है। कहीं अत्यन्त अभ्यस्त ज्ञेय अर्थ में है- **'देवदत्तस्य विषयो व्याकरणम्'** देवदत्त का अत्यन्त अभ्यस्त व्याकरणशास्त्र है। उनमें से देश=ग्राम-समुदाय अर्थ का ग्रहण करने के लिये सूत्र में 'देशे' पद का पाठ किया गया है।*

*उदा०-**शिबीनां विषयो देशः शैबः।** शिबि=राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र का देश-शैब। **उष्ट्राणां विषयो देशः औष्ट्रः।** ऊंटों का देश-औष्ट्र, रेगिस्तान।*

***सिद्धि-शैबः।** शिबि+आम्+अण्। शैब्+अ। शैब+सु। शैबः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शिबि' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'उष्ट्र' शब्द से-**औष्ट्रः।***

वुञ्–

(२) राजन्यादिभ्यो वुञ्।५२।

प०वि०–राजन्य-आदिभ्यः ५।३ वुञ् १।१।

स०–राजन्य आदिर्येषां ते–राजन्यादयः, तेभ्यः–राजन्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, विषयः, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य राजन्यादिभ्यो विषयो वुञ् देशे।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो राजन्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विषय इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

उदा०–राजन्यानां विषयो देशो राजन्यकः। देवयानानां विषयो देशो दैवयानकः।

राजन्य। देवयान। शालङ्कायन। जालन्धरायण। आत्मकामेय। अम्बरीषपुत्र। वसाति। वैल्वान। शैलूष। उदुम्बुर। बैल्वबल। आर्जुनायन। संप्रिय। दाक्षि। ऊर्णनाभ। आप्रीत। अव्रीड। वैतिल। वात्रक। इति राजन्यादयः। आकृतिगणोऽयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (राजन्यादिभ्यः) राजन्य आदि प्रातिपदिकों से (विषयः) विषय अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

*उदा०-**राजन्यानां विषयो देशो राजन्यकः।** राजन्य=क्षत्रियों का देश-राजन्यक। **देवयानानां विषयो देशो दैवयानकः।** देवयानजनों का देश-दैवयानक।*

सिद्धि-राजन्यकः। राजन्य+आम्+वुञ्। राजन्य्+अक। राजन्यक+सु। राजन्यकः।

*यहां षष्ठीसमर्थ 'राजन्य' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'देवयान' शब्द से-**दैवयानकः।***

विधल्+भक्तल्–

(३) भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ।५३।

प०वि०–भौरिक्यादि-ऐषुकार्यादिभ्यः ५।३ विधल्-भक्तलौ १।२।

स०-भौरिकिरादिर्येषां ते-भौरिक्यादयः। ऐषुकारिरादिर्येषां ते-ऐषुकार्यादयः। भौरिक्यादयश्च ऐषुकार्यादयश्च ते-भौरिक्याद्यैषुकार्यादयः, तेभ्यः-भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विधल् च भक्तल् च तौ-विधल्भक्तलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विषयः, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विषयो विधल्भक्तलौ देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विषय इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं विधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः, योऽसौ विषयो देशश्चेत् स भवति।

उदा०-**(भौरिक्यादिः)** भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधः। वैपेयानां विषयो देशो वैपेयविधः। **(ऐषुकार्यादिः)** ऐषुकारीणां विषयो देश ऐषुकारिभक्तः। सारस्यायनानां विषयो देशः सारस्यायनभक्तः।

भौरिकि। भौलिकि। वैपेय। चैटयत। काणेय। वाणिजक। कालिज। वालिज्यक। शैकयत। वैकयत। इति भौरिक्यादयः।।

ऐषुकारि। सारस्यायन। चान्द्रायण। द्व्याक्षायण। त्र्यायण। औडायन। जौडायन। खाडायन। सौवीर। दासमित्रि। दासमित्रायण। शौद्रायण। दाक्षायण। शयण्ड। ताक्ष्यायिण। शौभ्रायण। सायण्डि। शौण्डि। वैश्वमाणव। वैश्वधेनव। नद। तुण्डदेव। अलायत। औलालायत। शौण्ड। शयाण्ड। वैश्वदेव। इत्यैषुकार्य्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (भौरिक्यादि-ऐषुकार्यादिभ्यः) भौरिकि आदि और ऐषुकारि आदि प्रातिपदिकों से (विषयः) विषय अर्थ में यथासंख्य (विधल्भक्तलौ) विधल् और भक्तल् प्रत्यय होते हैं (देशे) जो विषय है यदि वह देश हो।*

*उदा०-(भौरिक्यादिः) **भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधः।** भौरिकि जनों का देश-भौरिकिविध। **वैपेयानां विषयो देशो वैपेयविधः।** वैपायन जनों का देश-वैपायनविध। **(ऐषुकार्यादिः) ऐषुकारीणां विषयो देश ऐषुकारिभक्तः।** ऐषुकारि जनों का देश-ऐषुकारिभक्त। **सारस्यायनानां विषयो देशः सारस्यायनभक्तः।** सारस्यायन जनों का देश-सारस्यायभक्त।*

सिद्धि-भौरिकिविधः। *भौरिकि+आम्+विधल्। भौरिकिविध+सु। भौरिकिविधः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'भौरिकि' शब्द से विषय (देश) अर्थ में इस सूत्र से 'विधल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वैपायनविधः, ऐषुकारिभक्तः, सारस्यायनभक्तः।

विशेष–*(१) वैजयन्ती कोश (पृष्ठ ३७) के अनुसार बंगाल का समतट (दक्षिणी बंगाल) प्रदेश 'भौरिक' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ७६)।*

(२) कुरु जनपद में इसुकार या इषुकार नामक समृद्ध, सुन्दर और स्फीत नगर था (भण्डारकर लेखसूची, संख्या ३२९) उसी प्रकार हिसार का प्राचीन नाम 'ऐषुकारि' ज्ञात होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ८६)।

अस्य (प्रगाथस्य) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु।५४।

प०वि०–सः १।१ अस्य ६।१ आदिः ५।१ इति अव्ययपदम्, छन्दसः ६।१ प्रगाथेषु ७।३।

अन्वयः–स प्रथमासमर्थाद् अस्य यथाविहितम्, यत् प्रथमासमर्थं छन्दस आदिरिति, यदस्येति प्रगाथश्चेत्।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्य इति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं छन्दस आदिरिति भवति, यच्च अस्य इति निर्दिष्टं प्रगाथश्चेत् स भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

प्रगाथशब्दः क्रियानिमित्तकः, क्वचिदेव मन्त्रविशेषे वर्तते। यत्र द्वे ऋचौ प्रग्रथनेन तिस्रः क्रियन्ते स प्रग्रथनात् प्रकर्षगानाद् वा प्रगाथ इति कथ्यते।

उदा०–पङ्क्तिश्छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति–पाङ्क्तः प्रगाथः। अनुष्टुप् छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति–आनुष्टुभः प्रगाथः। जगती छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति–जागतः प्रगाथः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (छन्दस आदिः) जो प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट पद है यदि वह छन्द का आदि हो (प्रगाथेषु) जो 'अस्य' षष्ठी-विभक्ति का अर्थ कहा है यदि वह प्रगाथ हो (इति)* ***इतिकरण*** *विवक्षा के लिये हैं, जहां ऐसी विवक्षा होती है, वहीं यह प्रत्यय विधि की जाती है, सर्वत्र नहीं।*

जहां दो ऋचाओं के प्रग्रथन (गूंथन) से तीन ऋचाएं बनाई जाती हैं, उसे 'प्रगाथ' कहते हैं। प्रकृष्ट गान के कारण भी इसे 'प्रगाथ' कहा जाता है।

*उदा०-**पङ्क्तिश्छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-पाङ्क्तः प्रगाथः।** पंक्ति छन्द है आदि में इस प्रगाथ के यह-पाङ्क्त प्रगाथ। **अनुष्टुप् छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-आनुष्टुभः प्रगाथः।** अनुष्टुप् छन्द आदि में है इस प्रगाथ के यह-आनुष्टुभ प्रगाथ। **जगती छन्द आदिरस्य प्रगाथस्य इति-जागतः प्रगाथः।** जगती छन्द आदि में है इसके यह-जागत प्रगाथ।*

***सिद्धि-पाङ्क्तः।** पङ्क्ति+सु+अण्। पङ्क्त्+अ। पाङ्क्त+सु। पाङ्क्तः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, छन्दोवाची 'पङ्क्ति' शब्द से षष्ठी-विभक्ति (प्रगाथ) के अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आनुष्टुभः, जागतः।***

अस्य (संग्रामस्य) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः।५५।

प०वि०-संग्रामे ७।१ प्रयोजन-योद्धृभ्यः ५।३।

स०-प्रयोजनं च योद्धारश्च ते-प्रयोजनयोद्धारः, तेभ्यः-प्रयोजन-योद्धृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-स, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स प्रयोजनयोद्धृभ्योऽस्य यथाविहितं प्रत्ययः संग्रामे।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्रयोजनवाचिभ्यो योद्धृवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्य इति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, संग्रामेऽभिधेये।

उदा०-(प्रयोजनम्) भद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति भाद्रः संग्रामः। सुभद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति सौभद्रः संग्रामः। गौरिमित्री प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति गौरिमित्रः संग्रामः। **(योद्धारः)** अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति आहिमालः संग्रामः। स्यन्दनाश्वा योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति स्यान्दनाश्वः संग्रामः। भरता योद्धारोऽस्य इति भारतः संग्रामः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (प्रयोजनयोद्धृभ्यः) प्रयोजनवाची और योद्धृवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (संग्रामे) यदि वहां संग्राम अर्थ वाच्य हो।*

*उदा०-(प्रयोजन) **भद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति भाद्रः संग्रामः।** भद्रा कन्या को प्राप्त करना इसका प्रयोजन है यह-भाद्र संग्राम। **सुभद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति सौभद्रः संग्रामः।** सुभद्रा कन्या को प्राप्त इसका प्रयोजन है यह-सौभद्र संग्राम। **गौरिमित्री प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य इति गौरिमित्रः संग्रामः।** गौरिमित्री कन्या को प्राप्त करना इसका प्रयोजन है वह-गौरिमित्र संग्राम। (योद्धा) **अहिमाला योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति आहिमालः संग्रामः।** अहिमाल नामक योद्धा है इसके यह-अहिमाल संग्राम। **स्यन्दनाश्वा योद्धारोऽस्य संग्रामस्य इति स्यान्दनाश्वः संग्रामः।** रथ-घोड़े योद्धा हैं इसके यह-स्यान्दनाश्व संग्राम। **भरता योद्धारोऽस्य इति भारतः संग्रामः।** भरत लोग योद्धा हैं इसके वह-भारत संग्रामः (महाभारत युद्ध)।*

***सिद्धि-भाद्रः।** भद्रा+सु+अण्। भाद्र्+अ। भाद्र+सु। भाद्रः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'भद्रा' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा संग्राम अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-सौभद्रः आदि।*

अस्याम् (क्रीडायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः

णः—

(१) तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः।५६।

प०वि०-तद् १।१ अस्याम् ७।१ प्रहरणम् १।१ इति अव्ययपदम्, क्रीडायाम् ७।१ णः १।१।

अन्वयः-तदिति प्रथमा-समर्थाद् अस्यां णः, यत् तदिति प्रहरणमिति चेत्, यदस्यामिति क्रीडा चेत्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्यामिति सप्तम्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत् तदिति निर्दिष्टं प्रहरणमिति चेत्, यच्चास्यामिति निर्दिष्टं क्रीडा चेत् सा भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०-दण्डः प्रहरणम् अस्यां सा-दाण्डा क्रीडा। मुष्टिः प्रहरणम् अस्यां सा-मौष्टा क्रीडा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्याम्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण हो (क्रीडायाम्) और जो सप्तमी-अर्थ है यदि वह क्रीडा हो (इति) इति-करण विवक्षा के लिये है, जहां ऐसी विवक्षा होती है वहीं यह प्रत्ययविधि की जाती है; सर्वत्र नहीं।*

*उदा०-दण्डः प्रहरणम् अस्यां सा-दाण्डा क्रीडा। इसमें दण्ड प्रहार होता है यह दाण्डा क्रीडा (पट्टे का खेल)। **मुष्टिः प्रहरणम् अस्यां सा-मौष्टा क्रीडा।** इसमें मुष्टि प्रहार होता है यह-मौष्टा क्रीडा (जुडो-कराटे)।*

सिद्धि-दाण्डा। *दण्ड+सु+ण। दाण्ड्+अ। दाण्ड+टाप्। दाण्डा+सु। दाण्डा।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणवाची 'दण्ड' शब्द से सप्तमी-विभक्ति (क्रीडा) के अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसी-मौष्टा क्रीडा।*

अस्याम् (क्रियायाम्) अर्थप्रत्ययविधिः

ञः-

(१) घञः साऽस्यां क्रियेति ञः।५७।

प०वि०-घञः ६।१ सा १।१ अस्याम् ७।१ क्रिया १।१ इति अव्ययपदम्, ञः १।१।

अन्वयः-सा इति प्रथमासमर्थाद् घञोऽस्यां ञः, यत् प्रथमासमर्थं क्रिया इति।

अर्थः-सा इति प्रथमासमर्थाद् घञन्तात् प्रातिपदिकाद् अस्यामिति सप्तम्यर्थे ञः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं क्रियेति चेद् भवति। इति करणो विवक्षार्थः।

उदा०-श्येनपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-श्येनम्पाता क्रिया। तैलपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-तैलम्पाता क्रिया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सा) प्रथमा-समर्थ (घञः) घञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अस्याम्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ञः) ञ प्रत्यय होता है (क्रिया) जो सप्तमी-अर्थ है यदि वह क्रिया हो (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है। जहां ऐसी विवक्षा होती वहीं यह प्रत्यय विधि होती है, सर्वत्र नहीं।*

*उदा०-**श्येनपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-श्येनम्पाता क्रिया।** इस क्रिया में श्येन (बाज) पक्षी का पतन होता है यह-श्येनम्पाता क्रिया। श्येन पक्षी के पतन के समान क्रिया*

*का शीघ्र करना। **तैलपातोऽस्यां क्रियायां वर्तते सा-तैलम्पाता क्रिया।** इस क्रिया में तैल का पतन होता है वह-तैलम्पाता क्रिया। तैल डालने के समान क्रिया का धीरे-धीरे करना।*

सिद्धि-श्येनम्पाता। *श्येन्+पत्+घञ्। श्येन+पात्+अ। श्येनम्पात+सु+ञ। श्येन+मुम्+पात्+अ। श्येन+म्+पात्+अ। श्येनम्पात+टाप्। श्येनम्पाता+सु। श्येनम्पाता।*

*यहां प्रथम 'श्येन' उपपद **'पतॢ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् प्रथमा-समर्थ घञन्त 'श्येनपात' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। **'श्येनतिलस्य पाते ञः'** (६।३।८) से 'मुम्' आगम होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**तैलम्पाता क्रिया।***

अधीते-वेद-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तदधीते तद् वेद।५८।

प०वि०-तद् २।१ अधीते क्रियापदम्, तद् २।१ वेद क्रियापदम्।

अन्वयः-तद् द्वितीयासमर्थाद् अधीते, वेद यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। छन्दोऽधीते वेद वा छान्दसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः।** जो व्याकरण पढ़ता है वा जानता है वह-वैयाकरण। **छन्दोऽधीते वेद वा छान्दसः।** जो छन्दःशास्त्र पढ़ता है वा जानता है वह-छान्दस।*

सिद्धि-(१) वैयाकरणः। *व्याकरण+अम्+अण्। व्ऐयाकरण+अ। वैयाकरण+सु। वैयाकरणः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'व्याकरण' शब्द से अधीते, वेद इन दो अर्थों में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से प्राप्त आदिवृद्धि का प्रतिषेध और 'य्' से पूर्व 'ऐ' का आगम होता है।*

(२) छान्दसः। यहां द्वितीया-समर्थ 'छान्दस्' शब्द से पूर्ववत् यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेष-अधीते और वेद इन दोनों अर्थों का निर्देश क्यों किया गया है ? इस विषय में महाभाष्य में लिखा है- ***'किमर्थमिमावुभावर्थौ निर्दिश्येते, न योऽधीते वेत्त्यसौ, यस्तु वेत्त्यधीतेऽप्यसौ। नैतयोरावश्यकः समावेशः। भवति हि कश्चित् सम्पाठं पठति, न च वेत्ति, कश्चिच्च वेत्ति न च सम्पाठं पठति'*** *(महा० ४।२।५९)। अर्थ-अधीते, वेद इन दोनों का निर्देश क्यों किया है ? क्या ऐसा नहीं है कि जो पढ़ता है वह जानता है और जो जानता है वह पढ़ता भी है ? इन दोनों का समावेश नहीं है क्योंकि ऐसा होता है कि कोई ठीक-ठीक पढ़ता है किन्तु उसे समझता नहीं है और कोई समझता तो है किन्तु उसे ठीक-ठीक पढ़ता नहीं है। अतः यहां जो ठीक-ठीक पढ़ता है उसके लिये 'अधीते' और जो उसे समझता है उसके लिये 'वेद' पद का निर्देश किया गया है।*

ठक्-

(२) क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्।५६।

प०वि०-क्रतु-उक्थादि-सूत्रान्तात् ५।१ ठक् १।१।

स०-उक्थ आदिर्येषां ते उक्थादयः, सूत्रमन्ते येषां ते-सूत्रान्ताः। क्रतवश्च उक्थादयश्च सूत्रान्ताश्च एतेषां समाहारः-क्रतूक्थादिसूत्रान्तम्, तस्मात्-क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्-क्रतूक्थादिसूत्रान्ताद् अधीते, वेद ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(क्रतुः) अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयमधीते वेद वा वाजपेयिकः। **(उक्थादिः)** उक्थमधीते वेद वा औक्थिकः। लोकायतमधीते वेद वा लौकायतिकः। **(सूत्रान्तः)** वार्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्तिकसूत्रिकः। संग्रहसूत्रमधीते वेद वा सांग्रहसूत्रिकः।

उक्थ। लोकायत। न्याय। निमित्त। पुनरुक्त। निरुक्त। यज्ञ। चर्चा। धर्म। क्रमेतर। श्लक्षण। संहिता। पद। क्रम। संघात। वृत्ति।

संग्रह। गुणागुण। आयुर्वेद। द्विपदी-ज्योतिषि। अनुपद। अनुकल्प। अनुगुण। इत्युक्थादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (क्रतूक्थादिसूत्रान्तात्) क्रतु= यज्ञविशेषवाची, उक्थ आदि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(क्रतुः) **अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः।** अग्निष्टोम नामक यज्ञविशेष को जो पढ़ता है वा जानता है वह-आग्निष्टोमिक। **वाजपेयमधीते वेद वा वाजपेयिकः।** वाजपेय नामक यज्ञविशेष को जो पढ़ता है वा जानता है वह-वाजपेयिक। (उक्थादिः) **उक्थमधीते वेद वा औक्थिकः।** उक्थ=सामलक्षणसम्बन्धी प्रातिशाख्य को जो पढ़ता है वा जानता है वह-औक्थिक। **लोकायतमधीते वेद वा लौकायतिकः।** लोकायत दर्शन को जो पढ़ता है वा जानता है वह-लौकायतिक। लोकायत=जो इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक को नहीं मानता है अर्थात् चार्वाक-दर्शन को माननेवाला, नास्तिक। (सूत्रान्तः) **वार्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्तिकसूत्रिकः।** वार्तिकसूत्र को जो पढ़ता है वा जानता है वह-वार्तिकसूत्रिक। **संग्रहसूत्रमधीते वेद वा सांग्रहसूत्रिकः।** संग्रहसूत्र को जो पढ़ता है वा जानता है वह-सांग्रहसूत्रिक।*

सिद्धि-आग्निष्टोमिकः। *अग्निष्टोम+अम्+ठक्। अग्निष्टोम्+इक। आग्निष्टोमिक+सु। आग्निष्टोमिकः।*

*यहां द्वितीयासमर्थ, यज्ञविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से ठक् प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है और '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**वाजपेयिकः** आदि।*

***विशेष**-उक्थ-भाष्य के आधार पर कैयट का कथन है कि सामवेद के एक लक्षण ग्रन्थ का नाम 'उक्थ' था। ऋग्वेद की उन ऋचाओं का चुनाव 'होता' (ऋत्विक्) द्वारा किसी एक विशेष अवसर पर होता था, शस्त्र कहलाता है। ऐसे ही उद्गाता द्वारा गेय सामों के संग्रह को 'उक्थ' कहते थे। उक्थों का निश्चय सामवेदीय चरणों की परिषदों का कर्त्तव्य था। उसके लिये जिस ग्रन्थ का निर्माण हुआ वह 'उक्थ' हुआ और उसे पढ़नेवाले लोग 'औक्थिक' कहे गये (पा०का० भारतवर्ष पृ० ३२८)।*

वुन्-

(३) क्रमादिभ्यो वुन्।६०।

प०वि०-क्रमादिभ्यः ५।३ वुन् १।१।

स०-क्रम आदिर्येषां ते-क्रमादयः, तेभ्यः-क्रमादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् क्रमादिभ्योऽधीते वेद वुन्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्रममधीते वेद वा क्रमकः। पदपाठमधीते वेद वा पदकः।

क्रम। पद। शिक्षा। मीमांसा। सामन्। इति क्रमादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीयासमर्थ (क्रमादिभ्यः) क्रम आदि प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**क्रममधीते वेद वा क्रमकः।** वेद के क्रमपाठ को जो पढ़ता है वा जानता है वह-क्रमक। **पदपाठमधीते वेद वा पदकः।** वेद के पदपाठ को जो पढ़ता है वह जानता है वह-पदक।*

*सिद्धि-**क्रमकः।** क्रम+अम्+वुन्। क्रम्+अक। क्रमक+सु। क्रमकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'क्रम' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

विशेष—*मन्त्रसंहिता के पदच्छेद को 'पदपाठ' कहते हैं और दो-दो पदों को क्रमशः मिलाकर जो पाठ किया जाता है वह 'क्रमपाठ' कहाता है। इसका एक उदाहरण यह है-*

संहितापाठ- *अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।*
होतारं रत्नधातमम्। (ऋ० १।१।१)।

पदपाठ- *अग्निम्। ईळे। पुरोऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नधातमम्।*

क्रमपाठ- *अग्निमीळे। ईळेपुरःऽहितम्। पुरःऽहितं यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम्। देवम् ऋत्विजम्। ऋत्विजं होतारम्। होतारं रत्नधातमम्।*

इनिः—

(४) अनुब्राह्मणादिनिः।६१।

प०वि०-अनुब्राह्मणात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुब्राह्मणाद् अधीते वेद इनिः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अनुब्राह्मणात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोरिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (अनुब्राह्मणात्) अनुब्राह्मण प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी।** जो अनुब्राह्मण नामक ग्रन्थविशेष को पढ़ता है वा जानता है वह अनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मण=ब्राह्मण के सदृश ग्रन्थ।*

*सिद्धि-**अनुब्राह्मणी।** अनुब्राह्मण+अम्+इनि। अनुब्राह्मण्+इन्। अब्राह्मणिन्+सु। अनुब्राह्मणीन्+०। अनुब्राह्मणी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुब्राह्मण' शब्द से अधीते, वेद अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से सु-लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

ठक्-

(५) वसन्तादिभ्यष्ठक्।६२।

प०वि०-वसन्तादिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-वसन्त आदिर्येषां ते-वसन्तादयः, तेभ्यः-वसन्तादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तदधीते, तद् वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वसन्तादिभ्योऽधीते, वेद ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो वसन्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वसन्तसहचरितोऽयं ग्रन्थो वसन्तः, तमधीते वेद वा वासन्तिकः। वर्षामधीते वेद वा वार्षिकः।

वसन्तः। वर्षा। शरद्। हेमन्त। शिशिर। प्रथम। गुण। चरम। अनुगुण। अपर्वन्। अथर्वन् इति वसन्तादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (वसन्तादिभ्यः) वसन्त आदि प्रातिपदिकों से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वसन्तमधीते वेद वा वासन्तिकः।** जिसमें वसन्त ऋतु का वर्णन है अथवा जो वसन्त ऋतु में पठनीय ग्रन्थ है जो उसको पढ़ता है वा जानता है वह-वासन्तिक। **वर्षामधीते वेद वा वार्षिकः।** जिसमें वर्षाऋतु का वर्णन है अथवा जो वर्षाऋतु में पठनीय है जो उस ग्रन्थ को पढ़ता है वा जानता है वह-वार्षिक।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(६) प्रोक्ताल्लुक्।६३।

प०वि०-प्रोक्तात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०-तदधीते, तद्वेद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रोक्तादधीते, वेद प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तमधीते वेद वा पाणिनीयः। अपिशलिना प्रोक्तमापिशलम्, तमधीते वेद वाऽऽपिशलः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (प्रोक्तात्) प्रोक्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अधीते, वेद) पढ़ता है वा जानता है अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तमधीते वेद वा पाणिनीयः।** पाणिनि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ पाणिनीय कहाता है, जो उसे पढ़ता है वा जानता है वह-पाणिनीय। **अपिशलिना प्रोक्तमापिशलम्, तमधीते वेद वाऽऽपिशलः।** अपिशलि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ आपिशल कहाता है, जो उसे पढ़ता है वा जानता है वह आपिशल।*

***सिद्धि-(१) पाणिनीयः।** पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+अम्+अण्। पाणिनीय+०। पाणिनीय+सु। पाणिनीयः।*

*यहां प्रथम तृतीयासमर्थ 'पाणिनि' शब्द से '**तेन प्रोक्तम्**' (४।३।१०१) से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित 'वृद्धाच्छः' (४।२।११३) से 'छ' प्रत्यय होता है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। प्रोक्तप्रत्ययान्त 'पाणिनीय' शब्द से '**तदधीते तद्वेद**' (४।२।५८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उस यथाविहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **आपिशलः।** अपिशल+टा+अण्। आपिशल्+अ। आपिशल+अम्+अण्। आपिशल+०। आपिशल+सु। आपिशलम्।*

*यहां प्रथम तृतीयासमर्थ 'अपिशलि' शब्द से **'इञश्च'** (४।२।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'आपिशल' शब्द से **'तदधीते तद्वेद'** (४।२।५८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उस प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(७) सूत्राच्च कोपधात्।६४।

प०वि०–सूत्रात् ५।१ च अव्ययपदम्, कोपधात् ५।१।

स०–क उपधायां यस्य सः–कोपधः, तस्मात्–कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तदधीते, तद्वेद, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् सूत्राच्च कोपधाद् अधीते, वेद प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् सूत्रवाचिनः ककारोपधात् प्रातिपदिकादधीते, वेद इत्येतयोरर्थयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०–अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य–अष्टकम् (पाणिनीयं सूत्रम्)। अष्टकमधीयते विदुर्वा–अष्टकाः। दशाध्यायाः परिमाणमस्य–दशकम् (वैयाघ्रपदीयं सूत्रम्)। दशकमधीयते विदुर्वा–दशकाः। त्रयोऽध्यायाः परिमाणमस्य त्रिकम् (काशकृत्स्नं सूत्रम्) त्रिकमधीयते विदुर्वा–त्रिकाः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(तद्) द्वितीया-समर्थ (सूत्रात्) सूत्रवाची (कोपधात्) ककार-उपधावाले प्रातिप्रदिक से (च) भी (अधीते, वेद) पढ़ता है, जानता है अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०–**अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य–अष्टकम् (पाणिनीयं सूत्रम्)। अष्टकमधीयते विदुर्वा–अष्टकाः।** आठ अध्याय हैं परिमाण इसका यह अष्टक (पाणिनीय सूत्र)। अष्टक को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं वे-'अष्टकाः'। **दशाध्यायाः परिमाणमस्य–दशकम् (वैयाघ्रपदीयं सूत्रम्)। दशकमधीयते विदुर्वा–दशकाः।** दश अध्याय इसका परिमाण है यह दशक (वैयाघ्रपदीय सूत्र) दशक को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं वे-'दशकाः'। **त्रयोऽध्यायाः परिमाणमस्य त्रिकम् (काशकृत्स्नं सूत्रम्) त्रिकमधीयते विदुर्वा–त्रिकाः।** तीन अध्याय हैं परिमाण इसके यह-त्रिक (काशकृत्स्न सूत्र) जो त्रिक को पढ़ते हैं वा जानते हैं वे-'त्रिकाः'।*

***सिद्धि–अष्टकाः।** अष्ट+जस्+कन्। अष्ट+क। अष्टक+अण्। अष्टक+०। अष्टक+जस्। अष्टकाः।*

यहां प्रथम प्रथमा-समर्थ 'अष्ट' शब्द से 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' (५ ।१ ।२२) से परिमाण अर्थ में कन् प्रत्यय है। तत्पश्चात् द्वितीया-समर्थ, सूत्रवाची, ककारोपध 'अष्टक' शब्द से 'तदधीते तद् वेद' (४ ।२ ।५९) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है, उसका इस सूत्र से लुक् हो जाता है। ऐसे ही-दशकाः, त्रिकाः।

तद्विषयत्वम्–

(८) छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।६५।

प०वि०–छन्दोब्राह्मणानि १ ।३ च अव्ययपदम्, तद्विषयाणि १ ।३ ।

स०–छन्दांसि च ब्राह्मणानि च तानि छन्दोब्राह्मणानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स (अधीते, वेद) विषयो येषां तानि तद्विषयाणि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–प्रोक्ताद् इत्यनुवर्तते।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थानि प्रोक्तप्रत्ययान्तानि छन्दोवाचीनि ब्राह्मणवाचीनि च शब्दरूपाणि, तद्विषयाणि=अधीते, वेद इत्यर्थविषयाणि भवन्ति। अन्यत्राभावकानि भवन्तीत्यर्थः।

विषयशब्दोऽयं बह्वर्थः। तद्विषयाणीत्यत्रान्यत्राभावेऽर्थे वर्तते। तद्यथा–मत्स्यानां विषयो जलमिति जलादन्यत्र तेषामभाव इत्यर्थः, तथा–प्रोक्त प्रत्ययान्तानि छन्दोब्राह्मणानि अधीते-वेदार्थविषयाणि, ततोऽन्यत्रा भावकानीत्यर्थः।

उदा०–**(छन्दांसि)** कठेन प्रोक्तं कठः। कठमधीते वेद वा कठः। मोदेन प्रोक्तं मौदः। मौदमधीते वेद वा मौदः। पिप्पलादेन प्रोक्तं पैप्लादः। पैप्लादमधीते वेद वा पैप्लादः। ऋचाभेन प्रोक्तम्-आर्चाभी। आर्चाभिनमधीते वेद वाऽऽर्चाभी। वाजसनेयेन प्रोक्तं वाजसनेयी। वाजसनेयिनमधीते वेद वा वाजसनेयी। **(ब्राह्मणानि)** ताण्ड्येन प्रोक्तं ताण्डी। ताण्डिनमधीते वेद वा ताण्डी। भाल्लविना प्रोक्तं भाल्लवी। भाल्लविनमधीते वेद वा भाल्लवी। शाट्यायनेन प्रोक्तं शाट्यायनी। शाट्यायनिमधीते वेद वा शाट्यायनी। ऐतरेयेण प्रोक्तम्-ऐतरेयी। ऐतरेयिणमधीते वेद वा ऐतरेयी।

आर्यभाषाः अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (प्रोक्तात्) प्रोक्त-प्रत्ययान्त (**छन्दो**ब्राह्मणानि) छन्दोवाची और ब्राह्मणवाची शब्द (च) भी (तद्विषयाणि) अधीते, वेद अर्थ-विषयक होते हैं। अन्य अर्थ में इनका अभाव होता है।

विषय शब्द बहु-अर्थक है। '**तद्विषयाणि**' यहां विषय शब्द अन्यत्र-अभाव अर्थ में है। जैसे-मछलियों का विषय जल है अर्थात् जल से अन्यत्र उनका अभाव है। वैसे प्रोक्तप्रत्ययान्त, छन्दोवाची और ब्राह्मणवाची शब्दों का अधीते, वेद विषय है। इससे अन्य अर्थ में इनका अभाव होता है।

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(**छन्द**) कठ के द्वारा प्रोक्त-कठ। जो कठसंहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-कठ। मोद के द्वारा प्रोक्त-मौद। जो मौदसंहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-मौद। पिप्लाद के द्वारा प्रोक्त-पैप्लाद। जो पैप्लाद संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह पैप्लाद। ऋचाभ के द्वारा प्रोक्त-आर्चाभी। जो आर्चाभी संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-आर्चाभी। वाजसनेय के द्वारा प्रोक्त-वाजसनेयी। जो वाजसनेयी संहिता को पढ़ता है वा जानता है वह-वाजसनेयी। (**ब्राह्मण**) ताण्ड्य के द्वारा प्रोक्त-ताण्डी। जो ताण्डी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-ताण्डी। भाल्लवि के द्वारा प्रोक्त-भाल्लवी। जो भाल्लवी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-भाल्लवी। शाट्यायन के द्वारा प्रोक्त-शाट्यायनी। जो शाट्यायनी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह शाट्यायनी। ऐतरेय के द्वारा प्रोक्त-ऐतरेयी। जो ऐतरेयी ब्राह्मण को पढ़ता है वा जानता है वह-ऐतरेयी।

सिद्धि-(१) कठः। कठ+टा+णिनि। कठ+०। कठ+अण्। कठ+०। कठ+सु। कठः।

यहां तृतीया-समर्थ 'कठ' शब्द से '**कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च**' (४।३।१०४) से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है किन्तु '**कठचरकाल्लुक्**' (४।३।१०७) से उसका लोप हो जाता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त द्वितीया-समर्थ 'कठ' शब्द से इस सूत्र से तदविषयता होकर '**तदधीते तद्वेद**' (७।२।११७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है और '**प्रोक्ताल्लुक्**' (४।२।६३) से उस 'अण्' प्रत्यय का भी लोप हो जाता है।

(२) मौदः। मोद+टा+अण्। मौद्+अ। मौद+अण्। मौद+०। मौद+सु। मौदः।

यहां 'मोद' शब्द से प्रोक्त अर्थ में '**कलापिनोऽण्**' (४।३।१०८) से अण् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'मौद' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय और उसका लोप होता है।

(३) आर्चाभी। ऋचाभ+टा+णिनि। आर्चाभ्+इन्। आचाभिन्+अम्+अण्। आर्चाभिन्+०। आर्चाभिन्+सु। आर्चाभी।

यहां 'ऋचाभ' शब्द से **'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च'** (४।३।१०४) से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय और तत्पश्चात् प्रोक्त-प्रत्ययान्त 'आर्चाभी' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय और उसका लोप होता है।

(४) **वाजसनेयी।** वाजसनेय+टा+णिनि। वाजसनेय+इन्। वाजसनेयिन्+अम्+अण्। वाजसनेयिन्+०। वाजसनेयिन्+सु। वाजसनेयी।

यहां 'वाजसनेय' शब्द से प्रोक्त अर्थ में **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** (४।३।१०६) से णिनि प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **ताण्डी।** ताण्ड्य+टा+णिनि। ताण्ड्य+इन्। ताण्ड्+इन्। ताण्डिन्+अम्+अण्। ताण्डिन्+०। ताण्डिन्+सु। ताण्डी।

यहां गर्गादि यजन्त तृतीयासमर्थ, 'ताण्ड्य' शब्द से **'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु'** (४।३।१०५) से णिनि प्रत्यय है। **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५५) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) **भाल्लवी।** भाल्लवि+टा+णिनि। भाल्लव्+इन्। भाल्लविन्+अम्+अण्। भाल्लविन्+०। भाल्लविन्+सु। भाल्लवी।

यहां इञ्-प्रत्ययान्त 'भाल्लवि' शब्द से पूर्ववत् **णिनि** प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **शाट्यायनी।** शट+ङस्+यञ्। शाट्+य। शाट्य+**अम्**+फक्। शाट्य्+आयन। शाट्यायन+टा+णिनि। शाट्यायन्+इन्। शाट्यायिन्+अम्+**अण्**। शाट्यायिन्+०। शाट्यायिन्+सु। शाट्यायनी।

यहां प्रथम 'शाट्य' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय, यजन्त 'शाट्य' शब्द से **'यञिञोश्च'** (४।१।१०१) से फक् प्रत्यय और उससे प्रोक्त अर्थ में पूर्ववत् णिनि प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(८) **ऐतरेयी।** इतर+ङस्+ढक्। ऐतर्+एय। ऐतरेय+टा+णिनि। ऐतरेय+इन्। ऐतरेयिन्+अम्+अण्। ऐतरेयिन्+०। ऐतरेयिन्+सु। ऐतरेयी।

यहां प्रथम 'इतर' शब्द से **'शुभ्रादिभ्यश्च'** (४।१।१२३) से 'ढक्' प्रत्यय, तत्पश्चात् ढगन्त 'ऐतरेय' शब्द से प्रोक्त अर्थ में पूर्ववत् 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष- **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६६) यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विहित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग है (सत्यार्थप्रकाश समु० ७)।

चातुरर्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

(१) अस्मिन्नर्थः–

(१) तदस्मिन्नतीति देशे तन्नाम्नि।६६।

प०वि०–तद् १।१ अस्मिन् ७।१ अस्ति क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, देशे ७।१ तन्नाम्नि ७।१।

स०–तद् नाम यस्य सः–तन्नामा, तस्मिन्–तन्नाम्नि (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–तदिति प्रथमासमर्थाद् अस्मिन्नस्ति यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत्, यच्चास्मिन्निति निर्दिष्टं देशश्चेत् तन्नामा भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०–उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्तीति औदुम्बरो देशः। बल्वजा अस्मिन् देशे सन्तीति बाल्वजो देशः। पर्वता अस्मिन् देशे सन्तीति पार्वतो देशः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–(तद्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो (देशे तन्नाम्नि) और जो 'अस्मिन्' अर्थ है यदि वह तन्नामक देश हो। (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है अर्थात् जहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से किसी देश का कथन किया जाता हो तो वहां यह प्रत्ययविधि होती है; अन्यथा नहीं।

उदा०–__उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्तीति औदुम्बरो देशः।__ जिस देश में उदुम्बर=गूलर है, वह औदुम्बर देश। __बल्वजा अस्मिन् देशे सन्तीति बाल्वजो देशः।__ बल्वज नामक घास जिस देश में है वह–बाल्वज देश। __पर्वता अस्मिन् देशे सन्तीति पार्वतो देशः।__ पहाड़ जिस देश में हैं वह–पार्वत देश।

__सिद्धि–औदुम्बरः।__ उदुम्बर+जस्+अण्। औदुम्बर्+अ। औदुम्बर+सु। औदुम्बरः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'उदुम्बर' शब्द से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में तथा तन्नामक देश अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः __'प्राग्दीव्यतोऽण्'__ (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। __'तद्धितेष्वचामादेः'__ (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–__बाल्वजः, पार्वतः।__

(२) निर्वृत्तार्थः–

(२) तेन निर्वृत्तम्।६७।

प०वि०–तेन ३।१ निर्वृत्तम् १।१।

अनु०–देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन तृतीयासमर्थाद् निर्वृत्तं यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–**(हेतौ)** सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा। **(कर्तरि)** कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्) बनवाना अर्थ में यथाविहितं प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(हेतु) सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा।** हजार कार्षापणों से बनवाई गई खाई-साहस्री। **(कर्ता) कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी।** कुशाम्ब नामक पुरुष के द्वारा बनवाई गई नगरी-कौशाम्बी।*

*सिद्धि-**साहस्री।** सहस्र+अण्। साहस्र्+अ। साहस्र+ङीप्। साहस्री+सु। साहस्री।*

*यहां हेतुवाची तृतीयासमर्थ सहस्र शब्द से निर्वृत्त अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-कर्तृवाची 'कुशाम्ब' शब्द से-**कौशाम्बी।***

***विशेष-कौशाम्बी**-वत्स देश की राजधानी का प्राचीन नाम। प्रयाग नगर से तीन मील दक्षिण-पश्चिम की ओर यह 'कौसम' नामक स्थान पर थी (शब्दार्थ कौस्तुभ पृ० १३८४)।*

(३) निवासार्थः–

(३) तस्य निवासः।६८।

प०वि०–तस्य ६।१ निवासः १।१।

अनु०–देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य षष्ठीसमर्थाद् निवासो यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् निवास इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-ऋजुनावां निवासो देशः-आर्जुनावो देशः। शिबीनां निवासो देशः-शैबो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (निवासः) निवास अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**ऋजुनावां निवासो देशः-आर्जुनावो देशः।** ऋजुनौ नामक लोगों का निवास देश-आर्जुनाव देश। ऋजुनौ=सुखद नौकावाला। **शिबीनां निवासो देशः-शैबो देशः।** शिबि जनों का निवास देश-शैब देश। शिबि=राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के **दौहित्र** एक प्रसिद्ध धार्मिक राजा का नाम।*

*सिद्धि-**आर्जुनावः।** ऋजुनौ+आम्+अण्। आर्जनाव्+अ। आर्जनाव+सु। आर्जनावः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ऋजुनौ' शब्द से निवास अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**एचोऽयवायावः**' (७।१।७५) से 'आव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'शिबि' शब्द से-**शैबः।***

(४) अदूरभवार्थः-

(४) अदूरभवश्च।६६।

प०वि०-अदूरभवः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-देशे, तन्नाम्नि, तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य षष्ठीसमर्थाद् अदूरभवश्च यथाविहितं प्रत्ययस्तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अदूरभव इत्यस्मिन्नर्थेऽपि यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-विदिशाया अदूरभवं नगरम्-वैदिशं नगरम्। हिमवतोऽदूरभवं नगरम्-हैमवतं नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अदूरभवः) समीप अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**विदिशाया अदूरभवं नगरम्-वैदिशं नगरम्।** विदिशा नामक नगर के समीप जो नगर है वह-वैदिश नगर। मध्यदेशवर्ती दशार्ण नामक देश के अन्तर्गत एक*

*नगर का नाम विदिशा था। उसका वर्तमान नाम 'भेलसा' है। जो विदिशा का ही अपभ्रंश है। हिमवतोऽदूरभवं **नगरम्-हैमवतं नगरम्।** हिमालय के समीप नगर-हैमवत नगर।*

***सिद्धि-वैदिशम्।** विदिशा+ङस्+अण्। वैदिश्+अ। वैदिश+सु। वैदिशम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'विदिशा' शब्द से अदूरभव (समीप) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'हिमवत्' शब्द से-**हैमवतम्।***

अञ्–

(५) ओरञ्।७०।

प०वि०–ओः ५।१ अञ् १।१।

अनु०–अस्मिन्नादयश्चत्वारोऽर्थाः, देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् ओरस्मिन्नादिषु अञ् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–अरडवोऽस्मिन् सन्तीति-आर्डवो देशः। कक्षतवोऽस्मिन् सन्तीति-काक्षतवो देशः। कर्कटेलवोऽस्मिन् सन्तीति-कार्कटेलवो देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**अरडवोऽस्मिन् सन्तीति-आर्डवो देशः।** अरडु नामक क्षत्रियविशेष इसमें रहते हैं यह-आर्डव देश। **कक्षतवोऽस्मिन् सन्तीति-काक्षतवो देशः।** कक्षतु नामक लोग इसमें हैं यह-काक्षतव देव। **कर्कटेलवोऽस्मिन् सन्तीति-कार्कटेलवो देशः।** कर्कटेलु नामक लोग इसमें हैं यह-कार्कटेलव देश।*

***सिद्धि-आरडवः।** अरडु+जस्+अञ्। आरडो+अ। आरडव+सु। आरडवः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, उकारान्त 'अरडु' शब्द से 'अस्मिन्' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे कक्षतु और कर्कटेलु शब्दों से-**काक्षतवः, कार्कटेलवः।***

अञ्–

(६) मतोश्च बह्वजङ्गात्।७१।

प०वि०–मतो: ५।१ च अव्ययपदम्, बहु-अच्-अङ्गात् ५।१।

स०–बहवोऽचो यस्मिन् स:-बह्वच्, बह्वच् अङ्गं यस्य स:-बह्वजङ्ग:, तस्मात्-बह्वजङ्गात् (बहुव्रीहि:)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचो मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–इषुका अस्यां सन्तीति इषुकावती नदी। इषुकावत्या अदूरभवं नगरम्-ऐषुकावतं नगरम्। सिध्रका अस्मिन् सन्तीति सिध्रकावद् वनम्। सिध्रकावतोऽदूरभवं नगरम्-सैध्रकावतं नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (बह्वच:) बहुत अच्वाले (मतो:) मतुप्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (च) भी (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**इषुका अस्यां सन्तीति इषुकावती नदी। इषुकावत्या अदूरभवं नगरम्-ऐषुकावतं नगरम्।** इषुका=सरकण्डे इसमें हैं यह-इषुकावती नदी। इषुकावती के समीप जो नगर है वह ऐषुकावत नगर। **सिध्रका अस्मिन् सन्तीति सिध्रकावद् वनम्। सिध्रकावतोऽदूरभवं नगरम्-सैध्रकावतं नगरम्।** सिध्रक नामक **वृक्षविशेष** हैं इसमें यह-सिध्रकावत् वन। सिध्रकावत् वन के समीप जो नगर है वह-**सैध्रकावत** नगर।*

*सिद्धि-**ऐषुकावतम्।** इषुका+जस्+मतुप्। इषुका+**वत्**। इषुकावत्+ङीप्। इषुकावती+ङस्+अण्। ऐषुकावत्+अ। ऐषुकावत+सु। ऐषुकावतम्।*

*यहां प्रथम 'इषुका' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से मतुप् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१६) से ङीप् प्रत्यय होता है। षष्ठी-समर्थ, बहुत अचोंवाले, मतुबन्त 'इषुकावती' शब्द से चातुरर्थिक 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।१।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैध्रकावतम्।***

अञ्–

(७) बह्वच: कूपेषु।७२।

प०वि०–बह्वच: ५।१ कूपेषु ७।३।

स०-बहवोऽचो यस्मिन् सः बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचोऽस्मिन्नादिषु अञ् कूपेषु।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बह्वचः प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, कूपेष्वभिधेयेषु।

उदा०-दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-दैर्घवरत्रः कूपः। कपिलवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-कापिलवरत्रः कूपः।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ__-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (बह्वचः) बहुत अचोंवाले प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (कूपेषु) यदि वहां कूप=कूआ अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-__दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-दैर्घवरत्रः कूपः।__ दीर्घवरत्र नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-दैर्घवरत्र कूआ। दीर्घवरत्र=लम्बा तसमा धारण करनेवाला पुरुष। वरत्र=तसमा। __कपिलवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः-कापिलवरत्रः कूपः।__ कपिलवरत्र नामक पुरुष के द्वारा बनवाया हुआ कूआ-कापिलवरत्र कूआ। कपिलवरत्र=भूरे रंग का वस्त्र धारण करनेवाला पुरुष।

__सिद्धि-दैर्घवरत्रः।__ दीर्घवरत्र+अञ्। दैर्घवरत्र्+अ। दैर्घवरत्र+सु। दैर्घवरत्रः।

यहां तृतीया-समर्थ 'दीर्घवरत्र' शब्द से 'निर्वृत्त' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् आदिवृद्धि और 'अकार' का लोप होता है। ऐसे ही-__कापिलवरत्रः।__

अञ्-

(८) उदक् च विपाशः।७३।

प०वि०-उदक् १।१ च अव्ययपदम्, विपाशः ५।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, अञ्, कूपेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु अञ् विपाश उदक् च कूपेषु।

अर्थः-यथासंभवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, विपाट उत्तरे कूले च ये कूपास्तेष्वभिधेयेषु

उदा०-दत्तेन निर्वृत्तः कूपः-दात्तो कूपः। गुप्तेन निर्वृत्तः कूपः-गौप्तः कूपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (च) और यदि वहां (विपाशः) विपाट् नदी के (उदक्) उत्तरदेशीय (कूपेषु) कूएं अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-दत्तेन **निर्वृत्तः** कूपः-दात्तः कूपः। दत्त नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-दात्त कूआ। गुप्तेन **निर्वृत्तः** कूपः-गौप्तः कूपः। गुप्त नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया कूआ-गौप्त कूआ।*

सिद्धि-दात्तः। *दत्त+टा+अञ्। दात्+अ। दात्त+सु। दात्तः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'दत्त' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही गुप्त शब्द से-**गौप्तः।***

विशेष- *पंजाब की 'व्यास' नदी का प्राचीन नाम विपाट् अथवा विपाशा है। विपाशा शब्द का अपभ्रंश व्यास है।*

अञ्-

(६) सङ्कलादिभ्यश्च ।७४।

प०वि०- सङ्कलादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०- सङ्कल आदिर्येषां ते सङ्कलादयः, तेभ्यः-सङ्कलादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०- कूपेषु इति निवृत्तम्, अस्मिन्नादिषु इत्यनुवर्तते।

अन्वयः- यथासम्भव० सङ्कलादिभ्यश्चास्मिन् अञ्।

अर्थः- यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः सङ्कलादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०- सङ्कलेन निर्वृत्तः साङ्कलः। पुष्कलेन निर्वृत्तः पौष्कलः। यथासम्भवमर्थसम्बन्धः कर्त्तव्यः।

संकल। पुष्कल। उद्वय। उडुप। उत्पुट। कुम्भ। विधान। सुदक्ष। सुदत्त। सुभूत। सुनेत्र। सुपिङ्गल। सिकता। पूतीकी। पूलास। कूलास। पलाश। निवेश। गवेश। गम्भीर। इतर। शर्मन्। अहन्। लोमन्। वेमन्। वरुण। बहुल। सद्योज। अभिषिक्त। गोभृत्। राजभृत्। गृह। भृत। भल्ल। भाल। (वृत्) इति संकलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (सङ्कलादिभ्यः) संकल आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सङ्कलेन निर्वृत्तः साङ्कलः।** सङ्कल नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया सांकल-(आश्रम आदि)। **पुष्कलेन निर्वृत्तः पौष्कलः।** पुष्कल नामक पुरुष के द्वारा बनवाया गया पौष्कल (विद्यालय आदि)। यथासम्भव अर्थ-सम्बन्ध करें।*

*सिद्धि-**साङ्कलः।** सङ्कल+टा+अञ्। साङ्कल्+अ। साङ्कल+सु। साङ्कलः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'संकल' शब्द से 'निर्वृत्त' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के 'अकार' का लोप होता है।

अञ्-

(१०) स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु।७५।

प०वि०-स्त्रीषु ७।३ सौवीर-साल्व-प्राक्षु ७।३।

स०-सौवीरश्च साल्वश्च प्राक् च ते-सौवीरसाल्वप्राञ्चः, तेषु-सौवीरसाल्वप्राक्षु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु अञ् स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु तन्नामसु देशेषु।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति, स्त्रीलिङ्गेषु सौवीरसाल्वप्राक्षु तन्नामकेषु देशेष्वभिधेयेषु।

उदा०-(सौवीरः) दत्तामित्रेण निर्वृता नगरी-दात्तामित्री नगरी। **(साल्वः)** विधूमाग्निना निर्वृत्ता नगरी-वैधूमाग्नी नगरी। **(प्राक्)** ककन्देन निर्वृत्ता नगरी-काकन्दी नगरी। मकन्देन निर्वृत्ता नगरी-माकन्दी नगरी। मणिचरेण निर्वृत्ता नगरी-माणिचरी नगरी। जरुषेण निर्वृत्ता नगरी-जारुषी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु) यदि वहां स्त्रीलिङ्ग सौवीर, साल्व और प्राक्सम्बन्धी (तन्नाम्नि) तन्नामक (देशे) देश अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(सौवीर) दत्तामित्र के द्वारा बनवाई गई नगरी-दात्तामित्री नगरी। (साल्व) विधूमाग्नि के द्वारा बनवाई गई नगरी-वैधूमाग्नी नगरी। (प्राक्) ककन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी-काकन्दी नगरी। मकन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी-माकन्दी नगरी। मणिचर के द्वारा बनवाई गई नगरी-माणिचरी नगरी। जरुष के द्वारा बनवाई गई नगरी-जारुषी नगरी।

*सिद्धि-**दात्तामित्री।** दत्तामित्र+टा+अञ्। दात्तामित्र्+अ। दात्तामित्र+ङीप्। दात्तामित्री+सु। दात्तामित्री।*

*यहां तृतीया-समर्थ, सौवीर देशवाची 'दत्तामित्र' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से अञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वैधूमाग्नी** आदि शब्द सिद्ध करें।*

***विशेष**-(१) अलवर से उत्तरी बीकानेर तक फैला हुआ प्रदेश प्राचीन 'साल्व' प्रतीत होता है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ७१)।*

(२) इस समय जो सिन्ध प्रान्त है उसका पुराना नाम 'सौवीर' था (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।

अण्-

(११) सुवास्त्वादिभ्योऽण्।७६।

प०वि०-सुवास्त्वादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-सुवास्तुरादिर्येषां ते-सुवास्त्वादयः, तेभ्यः-सुस्वास्त्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० सुवास्त्वादिभ्योऽस्मिन्नादिषु अण् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः सुवास्त्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवं नगरम्। वर्णोरदूरभवं वार्णवं नगरम्।

सुवास्तु। वर्णु। भण्डु। खण्डु। कण्डु। सेचालिन्। कर्पूरन्। शिखण्डिन्। गर्त्त। कर्कश। शटीकर्ण। कृष्ण। कर्क। कर्कन्धूमती। गोह्य। गाहि। अहिसक्थ। (वृत्) इति सुवास्त्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (सुवास्त्वादिभ्यः) सुवास्तु आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-सुवास्तोरदूरभवं नगरम्-**सौवास्तवम्।** सुवास्तु के समीप जो नगर है वह-सौवास्तव नगर। वर्णोरदूरभवं नगरम्-**वार्णवं नगरम्।** वर्णु के समीप जो नगर है वह-वार्णव नगर।*

*सिद्धि-**सौवास्तवम्।** सुवास्तु+ङस्+अण्। सौवास्तव्+अ। सौवास्तव+सु। सौवास्तवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'सुवास्तु' शब्द से 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि, **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही 'वर्णु' शब्द से-**वार्णवम्।***

विशेष-*(१) सुवास्तु वैदिक काल की नदी थी, यह आजकल की स्वात है। इसकी पच्छिमी शाखा गौरी नदी (पंजकोरा) है। इन दोनों के बीच में उड्डियान था जो गंधार देश का एक भाग माना जाता था। यहीं स्वात की घाटी में प्राचीनकाल से आज तक एक विशेष प्रकार के कम्बल बुने जाते थे। पाणिनि ने पाण्डुकम्बल नाम से उनका उल्लेख (४।२।११) किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

(२) वर्णु-सिन्धु की पच्छिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे, निचले हिस्से में बन्नू की दून (घाटी) थी। इसका वैदिक नाम 'क्रुमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध 'वर्णु' देश कहा है (४।२।१०३)। सुवास्त्वादिगण के अनुसार वर्णु के पास का प्रदेश 'वार्णव' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५१)।

अण्–

(१२) रोणी।७७।

प०वि०-रोणी (लुप्तपञ्चमी)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० रोण्याः अस्मिन्नादिषु अण् देशे तन्नाम्नि।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् रोणीशब्दात् रोण्यन्ताच्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–रोण्या अदूरभवो देशः–रौणो देशः। अजकरोण्या अदूरभवो देशः–आजकरोणो देशः। सिंहिकरोण्या अदूरभवो देशः–सैंहिकरोणो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (रोणी) रोणी शब्द से और रोण्यन्त प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**रोण्या अदूरभवो देशः–रौणो** देशः। रोणी के समीप का देश-रौण देश। **अजकरोण्या अदूरभवो** देशः–**आजकरोणः**। अजकरोणी के समीप का देश–आजकरोण देश। **सिंहिकरोण्या अदूरभवो** देशः–**सैंहिकरोणो** देशः। सिंहिकरोणी के समीप का देश–सैंहिकरोण।*

*सिद्धि–**रौणः**। रोणी+ङस्+अण्। रौण्+अ। रौण+सु। रौणः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रोणी' शब्द से 'अदूरभव' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही अजकरोणी और सिंहिकरोणी शब्दों से–**आजकरोणः, सैंहिकरोणः**।*

***विशेष**–(१) यहां 'रोणी' शब्द का सूत्र में अविभक्तिक पाठ किया गया है। इससे केवल रोणी शब्द से तथा रोण्यन्त प्रातिपदिक से भी प्रत्यय की उत्पत्ति होती है।*

(२) रोणी–सम्भवतः रोड़ी (हिसार) जो शैरीषक (आधुनिक सिरसा) के पास है (पाणिनिकालीन भावतवर्ष पृ० ८६)।

अण्–

(१३) कोपधाच्च।७८।

प०वि०–कोपधात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–क उपधायां यस्य सः–कोपधः, तस्मात्–कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे, तन्नाम्नि, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव० कोपधाच्च अस्मिन्नादिषु अण् तनाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् ककारोपधाच्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–कर्णच्छिद्रिकया निर्वृत्तः कूपः–कार्णच्छिद्रिकः कूपः। कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः–कार्णवेष्टकः। कृकवाकुना निर्वृत्तम्–कार्कवाकवम्। त्रिशङ्कुना निर्वृत्तम्–त्रैशङ्कवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कोपधात्) ककार उपधावाले प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**कर्णच्छिद्रिकया निर्वृत्तः कूपः-कार्णच्छिद्रिकः।** कर्णच्छिद्रिका नामक नारी के द्वारा बनवाया हुआ कूआ-कार्णच्छिद्रिक कूआ। **कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः-कार्णवेष्टकः।** कर्णवेष्टक द्वारा बनवाया हुआ-कार्णवेष्टक। **कृकवाकुना निर्वृत्तम्-कार्कवाकवम्।** कृकवाकु के द्वारा बनवाया गया नगर-कार्कवाकव। **त्रिशङ्कुना निर्वृत्तम्-त्रैशङ्कवम्।** त्रिशंकु के द्वारा बनवाया गया-त्रैशङ्कव नगर।*

*सिद्धि-**कार्णच्छिद्रिकः।** कर्णच्छिद्रिक+टा+अण्। कार्णच्छिद्रिक्+अ। कार्णच्छिद्रिक+सु। कार्णच्छिद्रिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्णच्छिद्रिका' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही- **'कार्णवेष्टकः'** आदि।*

वुञादयः-

(१४) वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः।७६।

प०वि०- वुञ्-छण्-क-ठच्-इल-स-इनि-र-ढञ्-ण्य-य-फक्-फिञ्-इञ्-ञ्य-कक्-ठकः १।३ अरीहण-कृशाश्व-ऋश्य-कुमुद-काश-तृण-प्रेक्ष-अश्म-सखि-संकाश-बल-पक्ष-कर्ण-सुतङ्गम-प्रगदिन्-वराह-कुमुदादिभ्यः ५।३।

स०-वुञ् च छण् च कश्च ठच् च इलश्च सश्च इनिश्च रश्च ढञ् च ण्यश्च यश्च फक् च फिञ् च इञ् च ञ्यश्च कक् च ठक् च ते-वुञ्०ठकः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अरीहणश्च कृशाश्वश्च ऋश्यश्च कुमुदश्च काशश्च तृणं च प्रेक्षा च अश्मा च सखा च संकाशश्च बलं च पक्षश्च कर्णश्च सुतङ्गमश्च प्रगदी च वराहश्च कुमुदं च तानि-अरीहण०कुमुदानि, अहरीहण०कुमुदानि आदौ येषां ते-अरीहण०कुमुदादयः, तेभ्यः अरीहण०कुमुदादिभ्यः (इतरेतरयोगगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०अरीहण०कुमुदादिभ्योऽस्मिन्नादिषु, वुञ्०ठको देशे तन्नाम्नि।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्योऽरीहण-कृशाश्च-ऋश्य-कुमुद-काश-तृण-प्रेक्षा-अश्म-सखि-संकाश-बल-पक्ष-कर्ण-सुतङ्गम-प्रगदिन्-वराह-कुमुदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु यथासंख्यं वुञ्-छण्-क-ठच्-इल-स-इनि-र-ढञ्-ण्य-य-फक्-फिञ्-ञ्य-कक्-ठकः प्रत्यया भवन्ति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये। उदाहरणम्-

	गणः	प्रत्ययः	उदा०	अर्थः
१.	अरीहरणादिः	वुञ्	आरीहणकम्। द्रौघणकम्।	अरीहरण के द्वारा बनवाया हुआ।
२.	कृशाश्वादिः	छण्	कार्शाश्वीयः। आरिष्टीयः।	कृशाश्व का निवास।
३.	ऋश्यादिः	कः	ऋश्यकः। न्यग्रोधकः।	ऋश्य का निवास।
४.	कुमुदादिः	ठच्	कुमुदिकम्। शर्करिकम्।	कुमुद के द्वारा बनवाया हुआ।
५.	काशादिः	इलः	काशिलम्। वाशिलम्।	काश के द्वारा बनवाया हुआ।
६.	तृणादिः	शः	तृणशम्। नडशम्।	तृणों का देश।
७.	प्रेक्षादिः	इनिः	प्रेक्षी। हलकी।	प्रेक्षा का देश।
८.	अश्मादिः	रः	अश्मरः। यूषरः।	पत्थर से बनवाया हुआ।
९.	सख्यादिः	ढञ्	साखेयम्। साखिदत्तेयम्।	सखाजनों का देश।
१०.	संकाशादिः	ण्यः	सांकाश्यम्। काम्पिल्यम्।	सांकाश्य के द्वारा बनवाया हुआ।
११.	बलादिः	यः	बल्यम्। कुल्यम्।	बल के द्वारा बनवाया हुआ।
१२.	पक्षादिः	फक्	पाक्षायणः। तौषायणः।	पक्षों का निवास।
१३.	कर्णादिः	फिञ्	कार्णायनिः। तैसिष्ठायनिः।	कर्ण का निवास।
१४.	सुतङ्गमादिः	इञ्	सौतङ्गमिः। मौनचित्तिः।	सुतंगम का निवास।
१५.	प्रगदिन्नादिः	ञ्यः	प्रागद्यम्। मागद्यम्।	प्रगदी के द्वारा बनवाया हुआ।
१६.	वराहादिः	कक्	बाराहकम्। पालाशकम्।	बराह के द्वारा बनवाया हुआ।
१७.	कुमुदादिः	ठक्	कौमुदिकम्। गैमथिकम्।	कुमुद के द्वारा बनवाया हुआ।

(१) अरीहण। द्रुघण। खदिर। सार। भगल। उलन्द। सांपरायण। क्रौष्ट्रायण। भास्त्रायण। मैत्रायण। त्रैगर्त्तायन। रायस्पोष। विपथ। उद्दण्ड। उदञ्चन। खाडायन। खण्ड। वीरण। काशकृत्स्न। जाम्बवन्त। शिंशपा। किरण। रैवत। वैल्व। वैमतायन। मैमतायण। सौसायन। शाण्डिल्यायन। शिरीष। बधिर। वैगर्त्तायिण। गोमतायण। सौमतायण। खाण्डायण। विपाश। सुयज्ञ। जम्बु। सुशर्म्म। इत्यरीहणादयः।।

(२) कृशाश्व। अरिष्ट। अरीश्व। वेश्मन्। विशाल। रोमक। शबल। कूट। रोमन्। वर्वर। सुकर। सूकर। प्रतर। सदृश। पुरग। सुख। धूम। अजिन। विनता। वनिता। कुविद्यास। अरुस्। अवयास। अयावस्। मौद्गल्य। इति कृशाश्वादयः।।

(३) ऋश्य। न्यग्रोध। शिरा। निलीन। निवास। निधान। निवात। निबद्ध। विबद्ध। परिगूढ। उत्तराश्मन्। स्थूलबाहु। खदिर। शर्क्करा। अनडुह्। परिवंश। वेणु। वीरण। खण्ड। परिवृत्त। कर्दम। अंशु। इति ऋश्यादयः।।

(४) कुमुद। शर्करा। न्यग्रोध। उत्कट। इत्कट। गर्त्त। बीज। अश्वत्थ। वल्वज। परिवाप। शिरीष। यवाष। कूप। विकङ्कत। कङ्टक। संकट। पलाश। त्रिक। कत। दशग्राम। इति कुमुदादयः।।

(५) काश। वाश। अश्वत्थ। पलाश। पीयूष। विश। विस। तृण। नर। चरण। कर्दम। कर्पूर। कण्टक। गूह। आवास। नड। वन। बधूल। बर्बर। इति काशादयः।।

(६) तृण। नड। वुस। पर्ण। वर्ण। चरण। अर्ण। जन। बल। लव। वन। इति तृणादयः।।

(७) प्रेक्षा। हलका। फलका। बन्धुका। ध्रुवका। क्षिपका। न्यग्रोध। इर्कुट। बुधका। संकट। कूपका। कर्कटा। सुकटा। मङ्कट। सुक। महा। इति प्रेक्षादयः।।

(८) अश्मन्। यूप। रुष। मीन। दर्भ। वृन्द। गुड। खण्ड। नग। शिखा। यूथ। रुष। नद। नख। काट। पाम। इत्यश्मादयः।।

(९) सखि। सखिदत्त। वायुदत्त। गोहित। गोहिल। भल्ल। पाल। चक्रपाल। चक्रवाल। छगल। अशोक। करवीर। सीकर। सकर। सरस। समल। चर्क। वक्रपाल। उसीर। सुरस। रोह। तमाल। कदल। सप्तल। इति सख्यादयः।।

(१०) संकाश। काम्पिल्य। समीर। कश्मर। सेन। सुपथिन्। सक्थच। यूप। अंश। राग। अश्मन्। कूट। मलिन। तीर्थ। अगस्ति। विरत। चिकार। विरह। नासिका। इति संकाशादयः।।

(११) बल। बुल। तुल। डल। डुल। कपल। वन। कुल। इति बलादयः।।

(१२) पक्ष। तुष। अण्ड। कम्बलिक। चित्र। अश्मन्। अतिस्वन्।। पथिन्, पन्थच।। कुम्भ। सरिज। सरिक। सरक। सलक। सरस। समल। रोमन्। लोमन्। हंसका। लोमक। सकण्डक। अस्तिबल। यमल। हस्त। सिंहक। इति पक्षादयः।।

(१३) कर्ण। वसिष्ठ। अलुश। शल। डुपद। अनडुह्य। पाञ्चजन्य। स्थिरा। कुलिस। कुम्भी। जीवन्ती। जित्व। आण्डीवत्। अर्क। लूष। स्फिक्। ज्ञावत्। इति कर्णादयः।।

(१४) सुतङ्गम। मुनिचित्त। विपचित्त। महापुत्र। श्वेत। गडिक। शुक्र। विग्र। वीजवापिन्। श्वन। अर्जुन। अजिर। जीव। इति सुतङ्गमादयः।।

(१५) प्रगदिन्। मगदिन्। शरदिन्। कलिव। खडिव। चूडार। मार्जार। कोविदार। इति प्रगदिन्नादयः।।

(१६) वराह। पलाश। शिरीष। पिनद्ध। स्थूण। विदग्ध। विभग्न। बाहु। खदिर। शर्करा। विनद्ध। निबद्ध। विरुद्ध। मूल। इति वराहादयः।।

(१७) कुमुद। गोमथ। रथकार। दशग्राम। अश्वत्थ। शाल्मली। कुण्डल। मुनिस्थूल। कूट। मुचुकर्ण। कुन्द। मधुकर्ण। शुचिकर्ण। शिरीष। इति कुमुदादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्तिसमर्थ (अरीहण०कुमुदादिभ्यः) अरीहरण, कृशाश्व, ऋश्य, कुमुद, काश, तृण, प्रेक्षा, अश्म, सखि, संकाश, बल, पक्ष, कर्ण, सुतंगम, प्रगदिन्, वराह, कुमुद आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में यथासंख्य (वुञ्०ठकः) वुञ्, छण्, क, ठच्, इल, श, इनि, र, ढञ्, ण्य, य, फक्, फिञ्, इञ्, ञ्य, कक्, ठक् प्रत्यय होते हैं (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। सिद्धि इस प्रकार है-

सिद्धि-(१) **आरीहणकम्।** *यहां 'अरीहण' शब्द से चातुरर्थिक वुञ् प्रत्यय है।* **'युवोरनाकौ'** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही-***द्रौघणकम्।**

(२) **कृशाश्वीयः।** *यहां 'कृशाश्व' शब्द से चातुरर्थिक 'छण्' प्रत्यय है।* **'आयनेय०'** *(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और* **'तद्धितेष्वचामादेः'** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-***आरिष्टीयः।**

(३) **ऋश्यकः।** *यहां 'ऋश्य' शब्द से चातुरर्थिक 'क' प्रत्यय है। 'क' प्रत्यय के तद्धित होने से* **'लशक्वतद्धिते'** *(१।३।८) से ककार की इत्-संज्ञा न होकर* **'तस्य लोपः'** *(१।३।९) से लोप नहीं होता है। ऐसे ही-***न्यग्रोधकः।**

(४) **कुमुदिकम्।** *यहां 'कुमुद' शब्द से चातुरर्थिक 'ठच्' प्रत्यय है।* **'ठस्येकः'** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। ऐसे ही-***शर्करिकम्।**

(५) **काशिलम्।** *यहां 'काश' शब्द से 'चातुरर्थिक' इल प्रत्यय है। ऐसे ही-***वाशिलम्।**

(६) **तृणशम्।** *यहां 'तृण' शब्द से चातुरर्थिक 'श' प्रत्यय है। 'श' के तद्धित होने से* **'लशक्वतद्धिते'** *(१।३।८) से शकार की इत्संज्ञा न होकर* **'तस्य लोपः'** *(१।३।९) से लोप नहीं होता है। ऐसे ही-***नडशम्।**

(७) **प्रेक्षी।** *यहां 'प्रेक्षा' शब्द से चातुरर्थिक 'इनि' प्रत्यय है। प्रेक्षिन्+सु। प्रेक्षीन्+०। प्रेक्षी।* **'सौ च'** *(६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ,* **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** *(६।१।६६) से सु का लोप और* **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-***हलकी।**

(८) **अश्मरः।** *यहां 'अश्मन्' शब्द से चातुरर्थिक 'र' प्रत्यय है।* **'नस्तद्धिते'** *(६।४।१४४) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-***यूषरः।**

(९) **साखेयम्।** *यहां 'सखि' शब्द से चातुरर्थिक 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश,* **'तद्धितेष्वचामादेः'** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* **'यस्येति च'** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-***साखिदत्तेयम्।**

*(१०) **सांकाश्यम्।** यहां 'संकाश' शब्द से चातुरर्थिक 'ण्य' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादे:' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**काम्पिल्यम्।***

*(११) **बल्यम्।** यहां 'बल' शब्द से चातुरर्थिक 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के 'अकार' का लोप होता है। ऐसे ही-**कुल्यम्।***

*(१२) **पाक्षायण:।** यहां 'पक्ष' शब्द से चातुरर्थिक 'फक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**तौषायण:।***

*(१३) **कार्णायनि:।** यहां 'कर्ण' शब्द से चातुरर्थिक 'फिञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**वासिष्ठायनि:।***

*(१४) **सौतङ्गमि:।** यहां 'सुतङ्गम' शब्द से चातुरर्थिक इञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**मौनचित्ति:।***

*(१५) **प्रगद्यम्।** यहां 'प्रगदिन्' शब्द से चातुरर्थिक 'ञ्य' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**मागद्यम्।***

*(१६) **वाराहकम्।** यहां 'वराह' शब्द से चातुरर्थिक 'कक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**पालाशकम्।***

*(१७) **कौमुदिकम्।** यहां 'कुमुद' शब्द से चातुरर्थिक 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येक:'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेष**-इन अरीहण आदि १७ गणों के शब्दों से अस्मिन्, निर्वृत्त, निवास, अदूरभव इन चार अर्थों में 'वुञ्' आदि १७ प्रत्ययों का यथासंख्य विधान किया गया है। यहां कुछ शब्द चेतनवाची और कुछ शब्द अचेतनवाची हैं। अत: उनका यथासम्बन्ध तथा प्रयोग के अनुसार उक्त अर्थों की ऊहा कर लेनी चाहिये।*

प्रत्ययस्य लुप्-

(१५) जनपदे लुप्।८०।

प०वि०-जनपदे ७।१ लुप् १।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुप् जनपदे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति, तन्नाम्नि देशे जनपदेऽभिधेये। ग्रामसमुदायो जनपदः।

उदा०-पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः। एवम्-कुरवः, मत्स्याः, अङ्गाः। बङ्गाः, मगधा, सुह्माः, पुण्ड्राः इति।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ* ***प्रातिपदिक से*** *(अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में विहित प्रत्यय का (लुप्) लोप होता* ***है*** *(तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामिक देश जनपद अर्थ अभिधेय हो। ग्रामों का* ***समुदाय जनपद*** *कहाता है और उस में एक जनविशेष का राज्य होता है।*

*उदा०-**पञ्चालानां निवासो** जनपदः **पञ्चालाः। पंचाल** नामक क्षत्रियों का निवास जनपद 'पञ्चालाः' कहाता है। ऐसे ही-**कुरवः, मत्स्याः, अङ्गाः। बङ्गाः, मगधाः, सुह्माः, पुण्ड्राः।***

सिद्धि-पञ्चालाः। *पञ्चाल+आम्+अण्। पञ्चाल+०। पञ्चाल+जस्। पञ्चालाः।*

यहां क्षत्रियवाची 'पञ्चाल' शब्द से ***'तस्य निवासः'*** *(४।२।६९) से निवास अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुप् (लोप) हो जाता है।*

विशेष*-(१) पाणिनि मुनि ने* ***'लुब् योगाप्रख्यानात्'*** *(१।२।५४) में लुप्-विधायक सूत्रों का प्रत्याख्यान किया है। इसका विशेष प्रवचन वहां देख लेवें।*

(२) पंचाल-एक प्रसिद्ध भूखण्ड का नाम जो राजेश्वर के मतानुसार यमुना और गंगा के मध्य में है। राजा द्रुपद के समय वह दक्षिण में चर्मण्वती (चम्बल) के तट से उत्तर में हरिद्वार तक फैला हुआ था।

(३) कुरु-दिल्ली और मेरठ का प्रदेश।

(४) मत्स्य-विराट् देश। जयपुर के आस-पास का भूभाग, इसमें अलवर भी शामिल था। इसकी राजधानी का नाम 'बेरात' था जो अब बारट के नाम से प्रसिद्ध है। यह जयपुर से ४० मील उत्तर की ओर है।

(५) अङ्ग-गंगा के दाहिने तट पर अवस्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी था। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार में थी।

(६) बङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्वी बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे।

(७) मगध-बिहार प्रान्त में प्राचीनकाल में मगध राज्य की पश्चिमी सीमा सोन नद था। इसकी प्राचीन राजधानी का नाम गिरिव्रज या राजगृह था। पिछले प्राचीन साहित्य में इसी का दूसरा नाम कीकट देश लिखा मिलता है।

(८) सुह्म-बंग देश के पश्चिम का देश। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी। इसका आधुनिक नाम तामलूक है जो कोसी नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है (शब्दार्थ कौस्तुभ २।८)।

(९) पुण्ड्र-भारत का एक प्राचीन जनपद।

प्रत्ययस्य लुप्–

(१६) वरणादिभ्यश्च।८१।

प०वि०–वरणादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–वरणा आदिर्येषां ते-वरणादयः, तेभ्यः-वरणादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०वरणादिभ्यश्च अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु प्रत्ययस्य लुप्, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वरणादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–वरणानामदूरभवं नगरम्-वरणाः। शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः-शिरीषाः।

वरणाः। पूर्वौ। गोदौ। पूर्वेण गोदौ। अपरेण गोदौ। आलिङ्ग्यायन। पर्णी। शृङ्गी। शल्मलयः। सदाप्वी। वणिकि। वणिक्। जालपद। मथुरा। उज्जयिनी। गया। तक्षशिला। उरशा। आकृत्या। इति वरणादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (वरणादिभ्यः) 'वरणा' आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्०) आदि चार अर्थों में विहित प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है, (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**वरणानामदूरभवं नगरम्-वरणाः।** वरण (वरना) नामक वृक्षविशेष के समीप का नगर-वरणा। **शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः-शिरीषाः।** सिरिस नामक वृक्षों के समीपवर्ती ग्राम-शिरीषा। वर्तमान सिरसा। **रोहितकानामदूरभवं नगरम्-रोहितकम्।** रोहितक (रोहिड़ा) नामक वृक्षों के समीपवर्ती नगर-रोहितक। वर्तमान रोहतक।*

सिद्धि-वरणाः।** यहां बहुवचनान्त 'वरण' शब्द से अदूरभवं अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही-**शिरीषाः, रोहितकम्।

प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः–

(१७) शर्कराया वा।८२।

प०वि०–शर्करायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०शर्कराया अस्मिन्नादिषु प्रत्ययस्य वा लुप् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् शर्करा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य विकल्पेन लुब् भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

वा ग्रहणं किमर्थं यावता शर्कराशब्दः कुमुदादिषु वराहादिषु च (३।२।८०) पठ्यते, तत्र पाठसामर्थ्यात् प्रत्ययस्य पक्षे श्रवणं भविष्यति ? एवं तर्हि–एतज्ज्ञापयत्याचार्यः शर्कराशब्दादौत्सर्गिकोऽण् भवति, तस्यायं लुब् विकल्प्यते। गणपाठाच्च तयोः श्रवणं भवति, उत्तरसूत्रे च विहितौ ठक्छौ प्रत्ययौ भवतः। तदेवं षड्रूपाणि भवन्ति–

उदा०–शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति–शर्करा (अण्-लुप्)। शार्करः (अण्)। शर्करिकः (ठच्)। शार्करकः (कक्)। शार्करिकः (ठक्)। शर्करीयः (छः)।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शर्करायाः) शर्करा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से (लुप्) लोप होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

यहां 'वा' का ग्रहण किसलिये किया है जबकि 'शर्करा' शब्द कुमुदादि और वाराहादि गण (३।२।८०) में पढ़ा है, वहां पाठ होने से विहित प्रत्यय का पक्ष में श्रवण होगा ही। वा-ग्रहण से आचार्य पाणिनि यह ज्ञापित करते हैं कि 'शर्करा' शब्द से जो औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय होता है उसका यह लुप्-विकल्प है। उक्त गणों में पाठ होने से उन प्रत्ययों का भी श्रवण होता है। उत्तर-सूत्र (३।२।८४) से विहित ठक् और छ दो प्रत्यय भी होते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित छः रूप बनते हैं–

*उदा०–**शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति–शर्करा (लुप्)।** शर्करा=रोड़ी (कांकर)। इस देश में है यह–शर्करा (लुप्), शार्कर (अण्), शर्करिक (ठच्), शार्करक (कक्), शार्करिक (ठक्), शर्करीय (छ)। कंकरीला देश।*

सिद्धि-(१) शर्करा। यहां 'शर्करा' शब्द से चातुरर्थिक यथाविहित 'अण्' प्रत्यय का लुप् है।

(२) शार्करः। यहां 'शर्करा' शब्द से विकल्प पक्ष में चातुरर्थिक यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(३) शर्करिकः। यहां 'शर्करा' शब्द से 'वुञ्छण्०' (४।२।८०) से कुमुदादीय 'ठच्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।

(४) शार्करकः। यहां 'शर्करा' शब्द से 'वुञ्छण्०' (४।२।८०) से वराहादीय कक् प्रत्यय होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(५) शार्करिकः। यहां 'शर्करा' शब्द से 'ठक्छौ च' (४।२।८४) से ठक् प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

(६) शर्करीयः। यहां 'शर्करा' शब्द से 'ठक्छौ च' (४।२।८४) से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।

ठक्+छः-

(१८) ठक्छौ च।८३।

प०वि०-ठक्-छौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-ठक् च छश्च तौ-ठक्छौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि, शर्करायाः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०शर्करायाः अस्मिन्नादिषु ठक्छौ च तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् शर्कराशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ठक्छौ प्रत्ययौ च भवतः, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(ठक्) शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शार्करिको देशः। (छः) शर्करीयो देशः।

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शर्करायाः) शर्करा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ठक्छौ) ठक् और छ प्रत्यय (च) भी होते हैं (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-(ठक्) शर्करा अस्मिन् देशे सन्तीति-शार्करिको देशः। (छः) शर्करीयो देशः। शर्करा=रोड़ी (कांकर) इसमें है यह-शार्करिक, शर्करीय देश। कंकरीला देश।

सिद्धि-इससे प्रथम सूत्र (४।२।८३) में देख लेवें।

मतुप्–

(१६) नद्यां मतुप्।८४।

प०वि०–नद्याम् ७।१ मतुप् १।१।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु मतुप् तन्नाम्नि देशे नद्याम्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशे नद्यामभिधेयायाम्।

उदा०–उदुम्बरा अस्यां सन्तीति–उदुम्बरावती नदी। एवम्-मशकावती, वीरणावती, पुष्करावती, इक्षुमती, द्रुमती।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे, नद्याम्) यदि वहां तन्नामक देशविशेष नदी अर्थ अभिधेय हो।

*उदा०–**उदुम्बरा अस्यां सन्तीति–उदुम्बरावती नदी।** उदुम्बर=गूलर इसमें हैं यह-उदुम्बरावती नदी। ऐसे ही–**मशकावती।** मच्छरोंवाली नदी। **वीरणावती।** वीरण=उशीर, खसवाली नदी। **पुष्करावती।** पुष्कर=नीलकमलवाली नदी। **इक्षुमती।** इक्षु=ईखवाली नदी। **द्रुमती।** द्रु=वृक्षोंवाली नदी।*

*सिद्धि–**उदुम्बरावती।** उदुम्बर+जस्+मतुप्। उदुम्बर+वत्। उदुम्बरावत्+ङीप्। उदुम्बरावती+सु। उदुम्बरावती।*

*यहां 'उदुम्बर' शब्द से अस्मिन् आदि चार अर्थों में मतुप् प्रत्यय है। **'मादुपधायाश्च०'** (८।२।९) से मतुप् के 'म्' को 'व्' आदेश और **'द्रृग्दृशवतुषु'** (६।३।८९) से दीर्घ होता है। नदी रूप स्त्रीत्व-विवक्षा में **'उगितश्च'** (४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

मतुप्–

(२०) मध्वादिभ्यश्च।८५।

प०वि०–मध्वादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–मधु आदिर्येषां ते–मध्वादयः, तेभ्यः–मध्वादिभ्यः।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०मध्वादिभ्योऽस्मिन्नादिषु मतुप् तन्नाम्नि देशे।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो मध्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-मधु अस्मिन्नस्तीति मधुमान् देशः। विसान्यस्मिन् सन्तीति-विसवान् देशः, इत्यादिकम्।

मधु। विस। स्थाणु। मुष्टि। हृष्टिं। इक्षु। वेणु। रम्य। ऋक्ष। कर्कन्धु। शमी। किरीर। हिम। किशरा। शर्प्पणा। मरुत्। मरुव। दार्वाघाट। शर। इष्टका। तक्षशिला। शक्ति। आसन्दी। आसुति। शलाका। आमिधी। खडा। वेटा। इति मध्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (मध्वादिभ्यः) मधु आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**मधु अस्मिन्नस्तीति मधुमान् देशः।** मधु (शहद) इसमें है यह-मधुमान् देश। **विसान्यस्मिन् सन्तीति-विसवान् देशः।** विसः-कमलनाल-तन्तुओंवाला देश, इत्यादि।*

*सिद्धि-**मधुमान्।** मधु+मतुप्। मधुमत्+सु। मधुमात्+सु। मधुमा+नुम्+त्+सु। मधुमान्। मधुमान्त्+सु। मधुमान्त्+०। मधुमान्त्।*

*यहां मधु शब्द से अस्मिन् आदि चार अर्थों में मतुप् प्रत्यय है। पर और नित्य नुम्-आगम को बाधकर प्रथम **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से अतु-अन्त की उपधा को दीर्घ होता है। तत्पश्चात् **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से नुम् आगम, **'हल्ङ्याब्भ्यो०'** (६।१।६६) से सु का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**विसवान्।***

ड्मतुप्-

(२१) कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्।८६।

प०वि०-कुमुद-नड-वेतसेभ्यः ५।३ ड्मतुप् १।१।

स०-कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च ते-कुमुदनडवेतसाः, तेभ्यः-कुमुदनडवेतसेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कुमुदनडवेतसेभ्योऽस्मिन्नादिषु ड्मतुप्, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कुमुदनडवेतसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो-ऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ड्मतुप् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(कुमुदः) कुमुदा अस्मिन् सन्तीति-कुमुद्वान् देशः। **(नडः)** नड्वान् देशः। **(वेतसः)** वेतसवान् देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कुमुदनडवेतसेभ्यः) कुमुद, नड, वेतस प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ड्मतुप्) ड्मतुप् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(कुमुद) कुमुदा अस्मिन् सन्तीति-कुमुद्वान्** देशः। कुमुद=सफेद कमल इसमें हैं यह-कुमुद्वान् देश। (नड) **नड्वान्** देशः। नड=सरपतोंवाला देश। **(वेतस) वेतसवान्** देशः। बेतोंवाला देश।*

सिद्धि-कुमुद्वान्। *कुमुद्+जस्+ड्मतुप्। कुमुद्+मत्। कुमुद्+वत्। कुमुद्वत्+सु। कुमुद्वात्+सु। कुमुद्वा+नुम्+त्+सु। कुमुद्वान्त्+०। कुमुद्वान्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'कुमुद' शब्द से 'अस्मिन्' आदि चार अर्थों में इस सूत्र से 'ड्मतुप्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय के डित्त्व-सामर्थ्य से **वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से कुमुद के टि-भाग (अ) का लोप होता है। **'झयः'** (५।४।१११) से 'मतुप्' के 'म्' को वकार आदेश होता है। शेष कार्य मधुमान् (४।२।८५) के समान है। ऐसे ही-नड्वान्, वेतस्वान्।*

ड्वलच्-

(२२) नडशादाड् ड्वलच्।८७।

प०वि०-नड्-शादात् ५।१ ड्वलच् १।१।

स०-नडश्च शादश्च एतयोः समाहारः-नडशादम्, तस्मात्-नडशादात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नडशादाभ्याम् अस्मिन्नादिषु ड्वलच् तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां नडशादाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु ड्लवच् प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-(नडः) नडा अस्मिन् सन्तीति नड्वलो देशः। **(शादः)** शादा अस्मिन् सन्तीति शाद्वलो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नडशादात्) नड, शाद प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (ड्वलच्) ड्वलच् प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(नड) **नडा अस्मिन् सन्तीति नड्वलो देशः।** नड=सरपत इसमें हैं यह-नड्वल देश। (शाद) **शादा अस्मिन् सन्तीति शाद्वलो देशः।** शाद=छोटी घास इसमें हैं यह-शाद्वल देश।*

सिद्धि-नड्वलः। *नड+जस्+ड्वलच्। नड्+वल। नड्वल+सु। नड्वलः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नड' शब्द से अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'ड्वलच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से **'वा०-डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से नड के टि-भाग (अ) का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**शाद्वलः।***

वलच्-

(२३) शिखाया वलच्।८८।

प०वि०-शिखायाः ५।१ वलच् १।१।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०शिखाया अस्मिन्नादिषु वलच्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् शिखाशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु वलच् प्रत्ययो भवति।

मतुप्प्रकरणेऽपि **'दन्तशिखात् संज्ञायाम्'** (५।२।११३) इति शिखाशब्दाद् वलच्प्रत्ययं वक्ष्यति, अतोऽदेशार्थमिदं वचनम्।

उदा०-शिखया निर्वृत्तम्-शिखावलं नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (शिखायाः) शिखा प्रातिपदिक से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है।*

*मतुप्-प्रत्यय के प्रकरण में **'दन्तशिखात् संज्ञायाम्'** (५।१।११३) से 'शिखा' शब्द से 'वलच्' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। अतः यह विधान देश अर्थ में नहीं अपितु निर्वृत्त आदि अर्थों में है।*

*उदा०-**शिखया निर्वृत्तम्-शिखावलं नगरम्।** शिखा नामक नारी के द्वारा बनवाया गया-शिखावल नगर।*

सिद्धि-शिखावलम्। *शिखा+टा+वलच्। शिखावल+सु। शिखावलम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'शिखा' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से **वलच् प्रत्यय है।***

छः–

(२४) उत्करादिभ्यश्छः।८६।

प०वि०–उत्करादिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०–उत्कर आदिर्येषां ते–उत्करादयः, तेभ्यः–उत्करादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अस्मिन्नादिषु, देश तन्नाम्नि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०उत्करादिभ्योऽस्मिन्नादिषु छः, तन्नाम्नि देशे।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य उत्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०–उत्करोऽस्मिन्नस्तीति–उत्करीयो देशः। सम्फला अस्मिन् सन्तीति–सम्फलीयो देशः, इत्यादिकम्।

उत्कर। संफल। संकर। शफर। पिप्पल। पिप्पलीमूल। अश्मन्। अर्क। पर्ण। सुपर्ण। खलाजिन। इडा। अग्नि। तिक। कितव। आतप। अनेक। पलाश। तृणव। पिचुक। अश्वत्थ। शकाक्षुद्र। भस्त्रा। विशाला। अवरोहित। गर्त्त। शाल। अन्य। जन्या। अजिन। मञ्च। चर्म्मन्। क्रोश। शान्त। खदिर। शर्पणाय। श्यावनाय। नैव। बक। पन्त। वृक्ष। इन्द्रवृक्ष। आर्द्रवृक्ष। अर्जुनवृक्ष। इत्युत्करादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (उत्करादिभ्यः) उत्कर आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों (छः) छ प्रत्यय होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**उत्करोऽस्मिन्नस्तीति–उत्करीयो देशः।** उत्कर=कूड़ा-कर्कट इसमें है वह–उत्करीय देश। **सम्फला अस्मिन् सन्तीति–सम्फलीयो देशः।** सम्फल=मेढे (मेष) इसमें है वह–सम्फलीय देश, इत्यादि।*

*सिद्धि–**उत्करीयः।** उत्कर+जस्+छ। उत्कर्+ईय। उत्करीय+सु। उत्करीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'उत्कर' शब्द से 'अस्मिन्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही–**सम्फलीयः।***

छः (कुक)–

(२५) नडादीनां कुक् च।६०।

प०वि०–नडादीनाम् ६।३ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-नड आदिर्येषां ते-नडादयः, तेषाम्-नडादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अस्मिन्नादिषु, देशे तन्नाम्नि, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नडादिभ्योऽस्मिन्नादिषु छः कुक् च तन्नाम्नि देशे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्मिन्नादिषु चतुर्ष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति, कुक् चागमो भवति, तन्नाम्नि देशेऽभिधेये।

उदा०-नडा अस्मिन् सन्तीति-नडकीयो देशः। प्लक्षकीयो देशः, इत्यादिकम्।

नड। प्लक्ष। विल्व। वेणु। वतस। तृण। इक्षु। काष्ठ। कपोत। कुञ्चाया ह्रस्वत्वं च। तक्षन्नलोपश्च। इति नडादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नडादीनाम्) नड आदि प्रातिपदिकों से (अस्मिन्०) अस्मिन् आदि चार अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है (कुक् च) और उन्हें कुक् आगम होता है (तन्नाम्नि देशे) यदि वहां तन्नामक देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**नडा अस्मिन् सन्तीति-नडकीयो देशः।** नड=सरपत (सरकण्डा) यहां हैं यह-नडकीय देश। **प्लक्षकीयो देशः।** प्लक्ष=पिलखण यहां हैं यह-प्लक्षकीय देश।*

*सिद्धि-**नडकीयः।** नड+जस्+छ। नड+कुक्+ईय। नड+क्+ईय। नडकीय+सु। नडकीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नड' शब्द से अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय और 'नड' शब्द को 'कुक्' आगम है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षकीयो देशः।***

इति चातुरर्थिकप्रत्ययप्रकरणम्।

पूर्वशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्

शेषार्थ-अधिकारः—

(१) शेषे।६१।

प०वि०-शेषे ७।१ अपत्यादिभ्यश्चतुरर्थपर्यन्तेभ्यो योऽन्योऽर्थः स शेषः।

अर्थः-इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः शेषेष्वर्थेषु भवन्तीत्यधिकारोऽयम्। इतः प्रभृति **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इति यावद् येऽर्थास्तेषु वक्ष्यमाणाः प्रत्यया भवन्तीत्यर्थः।

वक्ष्यति-**'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।३।९३) इति। तत्र राष्ट्रशब्दात् शेषेष्वर्थेषु घः प्रत्ययो भवति। तद्यथा-राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः, राष्ट्रादागतो राष्ट्रियः, राष्ट्रस्यायं राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय (शेषे) शेष अर्थों में होते हैं, यह अधिकार सूत्र है। अर्थात् यहां से लेकर **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) तक जो अर्थ हैं उनमें वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं।*

*जैसे **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।३।९३) से 'राष्ट्र' शब्द से कहा 'घ' प्रत्यय शेष अर्थों में होता है-**राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः।** राष्ट्र में होनेवाला-राष्ट्रिय। **राष्ट्रादागतो राष्ट्रियः।** राष्ट्र से आया हुआ राष्ट्रिय। **राष्ट्रस्यायं राष्ट्रियः।** राष्ट्र का यह-राष्ट्रिय।*

*सिद्धि-**राष्ट्रियः।** राष्ट्र+ङि+घ। राष्ट्र+इय। राष्ट्रिय+सु। राष्ट्रियः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से वक्ष्यमाण **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।२।९३) से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

घः+खः-

(२) राष्ट्रावारपाराद् घखौ।६२।

प०वि०-राष्ट्र-अवारपारात् ५।१ घ-खौ १।१।

स०-अवारं च पारं च एतयोः समाहारः- अवारपारम्, राष्ट्रं च अवारपारं च एतयोः समाहारः-राष्ट्रावारपारम्, तस्मात्-राष्ट्रावारपारात् (समाहारद्वन्द्वः)। घश्च खश्च तौ-घखौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०राष्ट्रावारपारात् शेषे घखौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां राष्ट्रवारपाराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु यथासंख्यं घखौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(घः)** राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः। **(खः)** अवारपारे भवोऽवार-पारीणः। **विगृहीतादपीष्यते**-अवारेभवोऽवारीणः। पारे भवः पारीणः। **विपरीताच्चेष्यते**-पारावारे भवः पारावारीणः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति समर्थ (राष्ट्रावारपारात्) राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य (घखौ) घ और ख प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(घ) **राष्ट्रे भवो राष्ट्रियः ।** राष्ट्र में होनेवाला राष्ट्रिय। (ख) **अवारपारे भवोऽवारपारीणः ।** अवार=निकटवर्ती तट और पार=दूरवर्ती तट पर होनेवाला-अवारपारीण। विगृहीत (असमस्त) अवार और पार शब्दों से भी 'ख' प्रत्यय अभीष्ट है-**अवारे भवोऽवारीणः ।** निकटवर्ती तट पर होनेवाला। **पारे भवः पारीणः ।** परवर्ती तट पर होनेवाला। विपरीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है-**पारावारे भवः पारावारीणः ।** पार=परवर्ती तट पर और अवार=निकटवर्ती तट पर होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **राष्ट्रियः ।** इसकी सिद्धि पूर्ववत् (४।२।९२) है।*

*(२) **अवारपारीणः ।** अवारपार+ङि+ख। अवारपार+ईन। अवारपारीण+सु। अवारपारीणः ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अवारपार' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

(३) विगृहीत 'अवारपार' शब्द से तथा विपरीत 'पारावार' शब्द से अवारीणः, पारीणः, पारावारीणः पद सिद्ध करें।

***विशेष**-'अवारपारम्' शब्द में **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) से अल्पाच्तर 'पार' शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये किन्तु यहां बह्वच् 'अवार' शब्द का पूर्वनिपात किया गया है। इस लक्षण व्यभिचार से विगृहीत 'अवारपार' शब्द से तथा विपरीत 'पारावार' शब्द से भी 'ख'- प्रत्यय का विधान किया जाता है।*

यः+खञ्-

(३) ग्रामाद् यखञौ।६३।

प०वि०-ग्रामात् ५।१ य-खञौ १।२।

स०-यश्च खञ् च तौ-यखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव० ग्रामात् शेषे यखञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् ग्रामात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यखञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(यः) ग्रामे जातो ग्राम्यः। **(खञ्)** ग्रामे जातो **ग्रामीणः ।**

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ग्रामात्) ग्राम प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यखञौ) य और खञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(य) **ग्रामे जातो ग्राम्यः।** ग्राम में पैदा हुआ-ग्राम्य। (खञ्) **ग्रामे जातो ग्रामीणः।** ग्राम में पैदा हुआ-ग्रामीण।

सिद्धि-(१) **ग्राम्यः।** ग्राम+ङि+य। ग्राम्+य। ग्राम्य+सु। ग्राम्यः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्राम' शब्द से जात आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) **ग्रामीणः।** ग्राम+ङि+खञ्। ग्राम्+ईन। ग्रामीण+सु। ग्रामीणः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्राम' शब्द से जात आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

ढकञ्–

(४) कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्।।६४।।

प०वि०–कत्त्र्यादिभ्यः ५।३ ढकञ् १।१।

स०–कत्त्रिरादिर्येषां ते–कत्त्र्यादयः, तेभ्यः–कत्त्र्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भ०कत्त्र्यादिभ्यः शेषे ढकञ्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कत्त्र्यादिभ्यः, प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कत्त्रौ भवः कात्त्रेयकः। उम्भौ भव औम्भेयकः, इत्यादिकम्।

कत्त्रि। उम्भि। पुष्कर। पुष्कल। मोदन। कुम्भी। कुण्डिन। नगर। वञ्जी। भक्ति। माहिष्मती। चर्मण्वती। वर्मती। ग्राम। उख्या। कुल्याया यलोपश्च। इति कत्त्र्यादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कत्त्रादिभ्यः) कत्त्रि आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढकञ्) ढकञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-कत्त्रौ भवः कात्त्रेयकः। तीन कुत्सित पुरुषों में रहनेवाला-कात्त्रेयक। **उम्भौ भव औम्भेयकः।** उम्भि=कैद में रहनेवाला-औम्भेयक, इत्यादि।

सिद्धि-कात्त्रेयकः। कत्त्रि+ङि+ढकञ्। कात्त्र्+एय् अक। कात्त्रेयक+सु। कात्त्रेयकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कत्त्रि' शब्द से भव-आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ढकञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-औम्भेयकः।

***विशेष**-कुत्सितास्त्रय इति 'कत्त्रयः' यहां 'कोः कत् तत्पुरुषेऽचि' (६।३।१००) से इस सूत्रोक्त निपातन से 'कु' के स्थान में 'कत्' आदेश होता है। कत्त्रि=तीन कुत्सित।*

स्वामी विरजानन्द सरस्वती कहा करते थे-"सूत्रक्रम तोड़कर अध्ययन मार्ग बिगाड़नेवाले भट्टोजि आदि प्रथम कुत्सित हैं। उनके ग्रन्थ दूसरे कुत्सित ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों को पढ़ने-पढ़ानेहारे तीसरे कुत्सित हैं। ये तीनों मिलकर कुत्सितत्रय अथवा 'कत्त्रि' कहाते हैं।"

ढकञ्-

(५) कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु।।६५।।

प०वि०-कुल-कुक्षि-ग्रीवाभ्यः ५।३ श्व-असि-अलङ्कारेषु ७।३।

स०-कुलं च कुक्षिश्च ग्रीवा च ताः-कुलकुक्षिग्रीवाः, ताभ्यः-कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श्वा च असिश्च अलङ्कारश्च ते-श्वास्यलङ्काराः तेषु श्वास्यलङ्कारेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, ढकञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं श्वास्यलङ्कारेष्वभिधेयेषु।

उदा०-**(कुलम्)** कुले भवः कौलेयकः श्वा। **(कुक्षिः)** कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः। **(ग्रीवा)** ग्रीवायां भवो ग्रैवेयकोऽलङ्कारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ:-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः) कुल, कुक्षि, ग्रीवा प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढकञ्) ढकञ् प्रत्यय होता है, (श्वास्यलङ्कारेषु) यदि वहां यथासंख्य श्वा=कुत्ता, असि=तलवार, अलङ्कार=जेवर अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(कुल) **कुले भवः कौलेयकः श्वा।** कुल=घर में रहनेवाला शिकारी कुत्ता-कौलेयक। (कुक्षि) **कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः।** कुक्षि=म्यान में रहनेवाली तलवार-कौक्षेयक। (ग्रीवा) **ग्रीवायां भवो ग्रैवेयकः।** ग्रीवा=गर्दन में रहनेवाला अलङ्कार (जेवर) ग्रैवेयक=हार, कंठी आदि।*

सिद्धि-कौलेयक:। कुल+ङि+ढकञ्। कौल+एय् अक। कौलेयक+सु। कौलेयक:।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कुल' शब्द से 'भव' आदि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ढकञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य '**कात्त्रेयक:**' (४।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**कौक्षेयक:, ग्रैवेयक:।***

ढक्-

(६) नद्यादिभ्यो ढक्।६६।

प०वि०-नदी-आदिभ्य: ५।३ ढक् १।१।

स०-नदी आदिर्येषां ते-नद्यादय:, तेभ्य:-नद्यादिभ्य: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव० नद्यादिभ्य: शेषे ढक्।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो नद्यादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: शेषेष्वर्थेषु ढक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-नद्यां भवं नादेयम्। मह्यां भवं माहेयम्। वाराणस्यां भवं वाराणसेयम्, इत्यादिकम्।

नदी। मही। वाराणसी। श्रावस्ती। कौशाम्बी। नवकौशाम्बी। काशफरी। खादिरी। पूर्वनगरी। पावा। मावा। साल्वा। दार्वा। वासेनकी। वडवाया वृषे। इति नद्यादय:।।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (नद्यादिभ्य:) नदी-आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**नद्यां भवं नादेयम्।** नदी में रहनेवाला-नादेय। **मह्यां भवं माहेयम्।** मही=पृथ्वी पर रहनेवाला-माहेय। **वाराणस्यां भवं वाराणसेयम्।** वाराणसी=बनारस में रहनेवाला-वाराणसेय।*

*सिद्धि-**नादेयम्।** नदी+ङि+ढक्। नाद्+एय्। नादेय+सु। नादेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'नदी' शब्द से शेष 'भव' अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माहेयम्, वाराणसेयम्।***

त्यक्–

(७) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्।।६७।।

प०वि०–दक्षिणा-पश्चात्-पुरस: ५।१ त्यक् १।१।

स०–दक्षिणा च पश्चाच्च पुरश्च एतेषां समाहार:–दक्षिणापश्चात्पुर:, तस्मात्–दक्षिणापश्चात्पुरस: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–यथासम्भव०दक्षिणापश्चात्पुरस: शेषे त्यक्।

अर्थ:–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो दक्षिणापश्चात्पुरोभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: शेषेष्वर्थेषु त्यक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(दक्षिणा)** दक्षिणा भवो दाक्षिणात्य:। **(पश्चात्)** पश्चाद् भव: पाश्चात्य:। **(पुर:)** पुरो भव: पौरस्त्य:।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (दक्षिणापश्चात्पुरस:) दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (त्यक्) त्यक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(दक्षिणा) **दक्षिणा भवो दाक्षिणात्य:।** दक्षिण दिशा में होनेवाला-दाक्षिणात्य। (पश्चात्) **पश्चाद् भव: पाश्चात्य:।** पश्चिम दिशा में होनेवाला-पाश्चात्य। (पुर:) **पुरो भव: पौरस्त्य:।** पूर्व दिशा में होनेवाला-पौरस्त्य।*

सिद्धि-दाक्षिणात्य:। *दक्षिण+आच्। दक्षिणा+ङि+त्यक्। दाक्षिण+त्य। दाक्षिणात्य+सु। दाक्षिणात्य:।*

*यहां प्रथम 'दक्षिण' शब्द से '**दक्षिणादाच्**' (५।३।३६) से आच् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् अव्यय 'दक्षिणा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से त्यक् प्रत्यय है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि है।*

*यहां पश्चात् और पुरस् इन अव्यय शब्दों के साहचर्य से आच्-प्रत्ययान्त अव्यय 'दक्षिणा' शब्द का ग्रहण किया जाता है, प्रवीणवाची 'दक्षिणा' शब्द का नहीं। ऐसे ही-**पाश्चात्य:, पौरस्त्य:।***

ष्फक्–

(८) कापिश्या: ष्फक्।६८।

प०वि०–कापिश्या: ५।१ ष्फक् १।१।

अनु०–**शेषे** इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कापिश्याः शेषे ष्फक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कापिशीशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ष्फक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु। कापिश्यां भवा कापिशायनी द्राक्षा।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कापिश्याः) कापिशी प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ष्फक्) ष्फक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु।** कापिशी नगरी में होनेवाला-**कापिशायन** मधु (शहद)। **कापिश्यां भवा कापिशायनी द्राक्षा।** कापिशी नगरी में होनेवाली-**कापिशायनी** दाख (अंगूर)।*

सिद्धि-कापिशायनम्। *कापिशी+ङि+ष्फक्। कापिश्+आयन। कापिशायन+सु। कापिशायनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कापिशी' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से ष्फक् प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-**कापिश्यायनी।***

***विशेष**-**कापिशी**-यह नगरी प्राचीनकाल में अति प्रसिद्ध राजधानी थी। काबुल से लगभग ५० मील उत्तर में इसके प्राचीन अवशेष मिले हैं। यहां से प्राप्त एक शिलालेख में इसे 'कापिशा' कहा गया है। आजकल इसका नाम 'बेग्राम' है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०-४१)।*

अण्+ष्फक्-

(६) रङ्कोरमनुष्येऽण् च।९९।

प०वि०-रङ्कोः ५।१ अमनुष्ये ७।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-न मनुष्य इति अमनुष्यः, तस्मिन्-अमनुष्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, ष्फक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०रङ्कोः शेषेऽण् ष्फक् चाऽमनुष्ये।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् रङ्कुशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् ष्फक् च प्रत्ययो भवति, अमनुष्येऽभिधेये।

उदा०-रङ्कोरागतो राङ्कवो गौः (अण्)। राङ्कवायणो गौः (ष्फक्)।

***आर्यभाषाः अर्थ**-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (रङ्कोः) रङ्कु प्रातिपदिक से (शेषे) **शेष** अर्थों में (अण्) **अण्** (च) और (ष्फक्) ष्फक् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-रङ्कोरा**गतो राङ्कवो** गौः (अण्)। राङ्कवा**यणो** गौः (ष्फक्)। रङ्कु नामक जनपद से आया हुआ **प्रसिद्ध** बैल-राङ्कव वा राङ्कवायण।*

*सिद्धि-(१) राङ्कवः। **रङ्कु**+ङसि+अण्। राङ्कवो+अ। राङ्कव+सु। राङ्कवः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'रङ्कु' शब्द से 'आगतः' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से गुण और 'एचोऽयवायवः' (६।१।७५) से 'अव्' आदेश होता है।*

(२) राङ्कवायणः। रङ्कु+ङसि+ष्फक्। राङ्को+आयन। राङ्कवायन+सु। राङ्कवायणः।

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'रङ्कु' शब्द से पूर्ववत् 'ष्फक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेष**-(१) रंकु जनपद की पहचान निश्चित नहीं। सम्भवतः यह अलकनन्दा और पिंडर के पूर्व का प्रदेश था, जहां मल्ला-जुहार और मल्लादानपुर की भाषा 'रंका' कहाती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७०)।*

(२) संस्कृत भाषा में 'गौः' शब्द पुंलिङ्ग में बैल का वाचक और स्त्रीलिङ्ग में गाय का वाचक होता है। यहां 'गौः' शब्द बैल का वाचक है।

(३) यहां 'अमनुष्य' कहने से मनुष्य वर्जित बैल आदि प्राणी का ग्रहण किया जाता है।

यत्-

(१०) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।१००।

प०वि०-द्यु-प्राक्-अपाक्-उदक्-प्रतीचः ५।१ यत् १।१।

स०-द्यौश्च प्राक् च अपाक् च उदक् च प्रत्यक् च एतेषां समाहारः-द्युप्रागपागुदक्प्रत्यक्, तस्मात्-द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-यथासम्भव०द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः शेषे यत्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो द्युप्रागपागुदक्प्रत्यग्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दिव्) दिवि भवं दिव्यम्। **(प्राक्)** प्राचि भवं प्राच्यम्। **(अपाक्)** अपाचि भवम् अपाच्यम्। **(उदक्)** उदीचि भवम् उदीच्यम्। **(प्रत्यक्)** प्रतीचि भवं प्रतीच्यम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः) दिव्, प्राक्, अपाक्, उदक्, प्रत्यक् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(दिव्) दिवि भवं दिव्यम्।** द्युलोक में होनेवाला-दिव्य। **(प्राक्) प्राचि भवं प्राच्यम्।** पूर्व दिशा में होनेवाला-प्राच्य। **(अपाक्) अपाचि भवम् अपाच्यम्।** दक्षिण दिशा में होनेवाला-अपाच्य। **(उदक्) उदीचि भवम् उदीच्यम्।** उत्तर दिशा में होनेवाला-उदीच्य। **(प्रत्यक्) प्रतीचि भवं प्रतीच्यम्।** पश्चिम दिशा में होनेवाला-प्रतीच्यम्।*

***सिद्धि-(१) दिव्यम्।** दिव्+ङि+यत्। दिव्य+सु। दिव्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दिव्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। सूत्र में 'दिव्' शब्द का 'दिव उत्' (६।१।१२७) से विहित उत्त्व-आदेशपूर्वक निर्देश किया गया है-**द्यु।***

***(२) प्राच्यम्।** प्र+अच्+यत्। प्र+०च्+य। प्रा+च्+य। प्राच्य+सु। प्राच्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्राच्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'अचः' (६।४।१३८) से 'अच्' के अकार का लोप और 'चौ' (६।३।१३७) से उपसर्ग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**अपाच्यम्, प्रतीच्यम्।***

***(३) उदीच्यम्।** उद्+अच्+यत्। उद्+ईच्+य। उदीच्य+सु। उदीच्यम्।*

यहां 'उद ईत्' (६।४।१४०) से 'अच्' के 'अ' को 'ईकार' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

'प्राक्' यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतौ' (रुधा०प०) धातु से 'ऋत्विग्दधृक्०' (३।२।५९) से क्विन् प्रत्यय है। 'प्राक्' आदि शब्दों की विशेष सिद्धि वहां देख लेवें।

ठक्-

(११) कन्थायाष्ठक्।१०१।

प०वि०-कन्थायाः ५।१ ठक् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कन्थायाः शेषे ठक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कन्थाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कन्थायां भवः कान्थिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (कन्थायाः) कन्था **प्रातिपदिक** से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कन्थायां भवः कान्थिकः।** कन्था=गुदड़ी में रहनेवाला-कान्थिक (तपस्वी)।*

*सिद्धि-**कान्थिकः।** कन्था+ङि+ठक्। कान्थ्+इक। कान्थिक+सु। कान्थिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कन्था' शब्द से भव शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

वुक्—

(१२) वर्णौ वुक्।१०२।

प०वि०-वर्णौ ७।१ वुक् १।१।

अनु०-शेषे, कन्थाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वर्णौ कन्थायाः शेषे वुक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् वर्णौ=वर्णुदेशवाचिनः कन्थाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुक् प्रत्ययो भवति। वर्णुर्नाम नदः, तत्समीपो देशो वर्णुः।

उदा०-कन्थायां भवः कान्थकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (वर्णौ) वर्णु देशवाची (कन्थायाः) कन्था प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुक्) वुक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कन्थायां भवः कान्थकः।** वर्णु देश की कन्था=गुदड़ी मे रहनेवाला अर्थात् उसे धारण करनेवाला-कान्थक।*

*सिद्धि-**कान्थकः।** कन्था+ङि+वुक्। कान्थ्+अक। कान्थक+सु। कान्थकः।*

*यहां वर्णुदेशवाची 'कन्था' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'वुक्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

विशेष–*सिन्धु की पच्छिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में 'बन्नू' की दून है। इसका वैदिक नाम 'क्रमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णुनद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५१)।*

त्यप्–

(१३) अव्ययात् त्यप्।१०३।

प०वि०–अव्ययात् ५।१ त्यप् १।१।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०अव्ययात् शेषे त्यप्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अव्ययात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु त्यप् प्रत्ययो भवति।

"अमेहक्वतसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्योऽव्ययात् स्मृतः"।

उदा०–**(अमः)** अमा भवोऽमात्यः। **(इह)** इह भव इहत्यः। **(क्व)** क्व भवः क्वत्यः। **(तसिः)** इतो भव इतस्त्यः। **(त्रः)** तत्र भवस्तत्रत्यः। यत्र भवो यत्रत्यः।

आर्यभाषाः अर्थ–*यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (अव्ययात्) अव्यय-संज्ञक प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (त्यप्) त्यप् प्रत्यय होता है।*

यहां अव्यय से विधान किया गया 'त्यप्' प्रत्यय, अमा, इह, क्व, तसि-प्रत्ययान्त और त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है।

*उदा०–**(अमा) अमा भवोऽमात्यः।** अमा=समीप में रहनेवाला-अमात्य। **(इह)** इह भव **इहत्यः।** इह=इस जगत् में रहनेवाला-इहत्य। **(क्व)** क्व भवः **क्वत्यः।** क्व=कहां रहनेवाला-क्वत्य। **(तसि) इतो भव इतस्त्यः।** इधर से होनेवाला-इतस्त्य। **(त्रल्)** तत्र **भवस्तत्रत्यः।** वहां होनेवाला-तत्रत्य। यत्र **भवो यत्रत्यः।** जहां होनेवाला-यत्रत्य।*

*सिद्धि-(१) **अमात्यः।** अमा+सु+त्यप्। अमा+त्य। अमात्य+सु। अमात्यः।*

*यहां अव्यय-संज्ञक 'अमा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'त्यप्' प्रत्यय है। 'अमा' शब्द का स्वरादिगण में पाठ होने से **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३६) से अव्यय संज्ञा है। 'अमा' शब्द समीपार्थक है।*

*(२) **'इहत्यः'** आदि पदों में पूर्ववत् त्यप् प्रत्यय है। 'इह' आदि शब्द तद्धित-प्रत्ययान्त होने से **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३७) से इनकी अव्यय-संज्ञा है।*

त्यप्-विकल्पः–

(१४) ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्।१०४।

प०वि०–ऐषमः-ह्यः-श्वसः ५ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–ऐषमश्च ह्यश्च श्वश्च एतेषां समाहारः-ऐषमोह्यःश्वः, तस्मात्-ऐषमोह्यःश्वसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, त्यप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०ऐषमोह्यःश्वसः शेषेऽन्यतरस्यां त्यप्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य ऐषमोह्यःश्वोभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन त्यप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(**ऐषमः**) ऐषमसि भवम् ऐषमस्त्यम् (त्यप्)। ऐषमस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)। (**ह्यः**) ह्यो भवं ह्यस्त्यम् (त्यप्) ह्यस्तनम्। (ट्युः+ट्युल्)। (**श्वः**) श्वो भवं श्वस्त्यम्। श्वस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (ऐषमोह्यःश्वसः) ऐषमस्, ह्यस्, श्वस् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (त्यप्) त्यप् प्रत्यय होता है और पक्ष में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०–(ऐषमः) **ऐषमसि भवम् ऐषमस्त्यम् (त्यप्)। ऐषमस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** इस वर्ष में होनेवाला-ऐषमस्त्य वा ऐषमस्तन। (ह्यः) **ह्यो भवं ह्यस्त्यम् (त्यप्)। ह्यस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** अतीत कल में हुआ-ह्यस्त्य वा ह्यस्तन। (श्वः) **श्वो भवं श्वस्त्यम्। श्वस्तनम् (ट्युः+ट्युल्)।** आगामी कल में होनेवाला-श्वस्त्य वा श्वस्तन।*

*सिद्धि-(१) **ऐषमस्त्यम्।** ऐषमस्+ङि+त्यप्। ऐषमस्+त्य। ऐषमस्त्य+सु। ऐषमस्त्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ऐषमस्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'त्यप्' प्रत्यय है। ऐसे ही–**ह्यस्त्यम्, श्वस्त्यम्।***

*(२) **ऐषमस्तनम्।** ऐषमस्+ट्यु। ऐषमस्+तुट्+अन। ऐषमस्+त्+अन। ऐषमस्तन+सु। ऐषमस्तनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'ऐषमस्' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में, विकल्प पक्ष में **'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च'** (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे 'तुट्'*

आगम होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही-ह्यस्तनम्, श्वस्तनम्।

***विशेष**-ट्यु और ट्युल् प्रत्ययान्त शब्द में स्वर में भिन्नता होती है। 'ट्यु' प्रत्यय 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त होता है-**ऐषमस्तनम्** और ट्युल्-प्रत्ययान्त पद 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्व अच् उदात्त स्वरवान् होता है-**ऐषमस्तनम्**।*

अञ्+ञः-

(१५) तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ।१०५।

प०वि०-तीर-रूप्योत्तरपदात् ५।१ अञ्ञौ १।२।

स०-तीरं च रूप्यं च एतयोः समाहारः-तीररूप्यम्,तीररूप्यमुत्तरपदं यस्य तत्-तीररूप्योत्तरपदम्, तस्मात्-तीररूप्योत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०तीररूप्योत्तरपदात् शेषेऽञ्ञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् तीरोत्तरपदाद् रूप्योत्तरपदाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यथासंख्यम् अञ्-ञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**तीरम्**) काकतीरे भवं काकतीरम् (अञ्)। पल्वलतीरे भवं पाल्वलतीरम् (अञ्)। (**रूप्यम्**) वृकरूप्ये भवं वार्करूप्यम् (ञः)। शिवरूप्ये भवं शैवरूप्यम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (तीररूप्योत्तरपदात्) तीर-उत्तरपद और रूप्य-उत्तरपदवाले प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में यथासंख्य (अञ्ञौ) अञ् और ञ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(तीर) **काकतीरे भवं काकतीरम् (अञ्)।** काकतीर पर रहनेवाला-काकतीर। **पल्वलतीरे भवं पाल्वलतीरम् (अञ्)।** पल्वल=छोटे तालाब के तट पर रहनेवाला-पाल्वलतीर। (रूप्य) **वृकरूप्ये भवं वार्करूप्यम् (ञः)।** वृक के सिक्के पर होनेवाला चिह्न-वार्करूप्य। **शिवरूप्ये भवं शैवरूप्यम्।** शिव के सिक्के पर होनेवाला चिह्न-शैवरूप्य।*

*सिद्धि-(१) **काकतीरम्।** काकतीर+ङि+अञ्। काकतीर्+अ। काकतीर+सु। काकतीरम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ तीर-उत्तरपदवाले 'काकतीर' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**पाल्वलतीरम्।***

*(२) **वार्करूप्यम्।** वृकरूप+ङि+ञ। वार्करूप्य्+अ। वार्करूप्य+सु। वार्करूप्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, रूप्य-उत्तरपदवाले 'वृकरूप्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**शैवरूप्यम्।***

***विशेष**-अञ् और ञ प्रत्यय में विशेषता यह है कि अञ्-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे-काकतीरी नारी। ञ-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् प्रत्यय नहीं अपितु 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे-वार्करूप्या, मुद्रा।*

ञः-

(१६) दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः।१०६।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ असंज्ञायाम् ७।१ ञः १।१।

स०-दिक्पूर्वपदं यस्य तत्-दिक्पूर्वपदम्, तस्मात्-दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०असंज्ञायां दिक्पूर्वपदात् शेषे ञः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् असंज्ञाविषयाद् दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ञः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः। दक्षिणस्यां शालायां भवो दाक्षिणशालः। अपरस्यां शालायां भव आपरशालः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (असंज्ञायाम्) संज्ञाविषय से रहित (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ञः) ञ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः।** पूर्व दिशा की शाला में रहनेवाला-पौर्वशाल। **दक्षिणस्यां शालायां भवो दाक्षिणशालः।** दक्षिण दिशा में रहनेवाला-दाक्षिणशाल। **अपरस्यां शालायां भव अपरशालः।** पश्चिम दिशा की शाला में रहनेवाला-आपरशाल।*

*सिद्धि-**पौर्वशालः।** पूर्व+शाला। पूर्वशाला+ङि+ञ। पौर्वशाल्+अ। पौर्वशाल+सु। पौर्वशालः।*

यहां प्रथम पूर्व और शाला सुबन्तों का ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'*** *(२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारय तत्पुरुष समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदवाले 'पूर्वशाला' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-* ***दाक्षिणशालः, आपरशालः।***

अञ्-

(१७) मद्रेभ्योऽञ्।१०७।

प०वि०-मद्रेभ्यः ५।३ अञ् १।१।

अनु०-शेषे, दिक्पूर्वपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदेभ्यो मद्रेभ्यः शेषेऽञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् मद्रशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः। अपरमद्रेषु भव आपरमद्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवाले (मद्रेभ्यः) मद्र शब्द से (शेषे) शेष अर्थों में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०- ***पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः।*** *पूर्व दिशा के मद्र जनपद में रहनेवाला-पौर्वमद्र।* ***अपरमद्रेषु भव आपरमद्रः।*** *पश्चिम दिशा के मद्र में रहनेवाला-आपरमद्र।*

सिद्धि-पौर्वमद्रः। *पूर्व+मद्र। पूर्वमद्र+सुप्+अञ्। पौर्वमद्र+अ। पौर्वमद्र+सु। पौर्वमद्रः।*

यहां प्रथम पूर्व और मद्र सुबन्तों का ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'*** *(२।२।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारय समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदवाले 'पूर्वमद्र' शब्द से 'भव' शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है।* ***'दिशोऽमद्राणाम्'*** *(७।३।१३) से जनपदवाची 'मद्र' शब्द की उत्तरपद वृद्धि का प्रतिषेध होने से पूर्ववत्* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-* ***आपरमद्रः।***

विशेष- *(१) जनपदवाची शब्दों का बहुवचन में प्रयोग किया जाता है अतः 'मद्रेभ्यः' यहां 'मद्र' शब्द का बहुवचन में निर्देश किया गया है।*

(२) रावी और चनाव नदी के बीच का देश 'मद्र' जनपद कहाता था।

अञ्-

(१८) उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्।१०८।

प०वि०-उदीच्य-ग्रामात् ५।१ च अव्ययपदम्, बह्वचः ५।१ अन्तोदात्तात् ५।१।

स०-उदीचि भव उदीच्य: । उदीच्यश्चासौ ग्राम इति उदीच्यग्राम:, तस्मात्-उदीच्यग्रामात् (कर्मधारयतत्पुरुष:) । बहवोऽचो यस्मिँस्तत्-बह्वच्, तस्मात्-बह्वच: (बहुव्रीहि:) । अन्ते उदात्तो यस्य तत्-अन्तोदात्तम्, तस्मात्-अन्तोदात्तात् (बहुव्रीहि:) ।

अनु०-शेषे, अञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-यथासम्भव०अन्तोदात्ताद् बह्वच उदीच्यग्रामाच्च शेषेऽञ् ।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अन्तोदात्ताद् बह्वच उदीच्यग्राम-वाचिन: प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-शिवपुरे भवं शैवपुरम् । माण्डवपुरे भवं माण्डवपुरम् ।

***आर्यभाषा:** **अर्थ**-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (बह्वच:) बहुत अचोंवाले (उदीच्यग्रामात्) उदीच्य-ग्रामवाची प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**शिवपुरे भवं शैवपुरम् ।** शिवपुर (काशी) ग्राम में रहनेवाला-शैवपुर। **माण्डवपुरे भवं माण्डवपुरम् ।** माण्डवपुर नामक ग्राम में रहनेवाला-माण्डवपुर।*

***सिद्धि-शैवपुरम् ।** शिवपुर+ङि+अञ् । शैवपुर्+अ । शैवपुर+सु । शैवपुरम् ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अन्तोदात्त, बह्वच् उदीच्य-ग्रामवाची 'शिवपुर' शब्द से 'भव' शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादे:'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**माण्डवपुरम् ।***

*शिवपुरम् और माण्डवपुरम् शब्द **'समासस्य'** (६।१।२२०) से अन्तोदात्त हैं। इनमें बहुत अच् स्पष्ट है।*

अण्-

(१६) प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ।१०६ ।

प०वि०-प्रस्थोत्तरपद-पलद्यादि-कोपधात् ५ ।१ अण् १ ।१ ।

स०-प्रस्थ उत्तरपदं यस्य तत् प्रथस्थोत्तरपदम् । पलदी आदिर्येषां ते-पलद्यादय: । क उपधायां यस्य तत्-कोपधम् । प्रस्थोत्तरपदं च पलद्यादयश्च कोपधं च एतेषां समाहार:-प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधम्, तस्मात् प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्व:) ।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-यथासम्भव०प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात् शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः प्रस्थोत्तरपदेभ्यः पलद्यादिभ्यः ककारोपधेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(प्रस्थोत्तरपदम्) माद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः। माहकीप्रस्थे भवो माहकीप्रस्थः। **(पलद्यादिः)** पलद्यां भवः पालदः। परिषदि भवः पारिषदः। **(कोपधः)** नीलीनके भवो नैलीनकः। चियातके भवश्चैयातकः।

पलदी। परिषत्। यकृल्लोमन्। रोमक। कालकूट। पटच्चर। वाहीक। कलकीट। मलकीट। कमलकीट। कमलभिदा। कमलकीर। बाहुकीट। नैतकी। परिखा। शूरसेन। गोमती। उदपान। पक्ष। कललकीट। ककलकीकटा। गोष्ठी। नैधिकी। नैकेती। सकृल्लोमन्। इति पलद्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात्) प्रस्थ-उत्तरपदवाले, पलदी आदि तथा ककार-उपधावाले प्रातिपदिकों से (शेष) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(प्रस्थोत्तरपदम्) ***माद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः।*** *माद्रीप्रस्थ नामक ग्राम में रहनेवाला-माद्रीप्रस्थ।* ***माहकीप्रस्थे भवो माहकीप्रस्थः।*** *माहकीप्रस्थ नामक ग्राम में रहनेवाला-माहकीप्रस्थ। (पलद्यादि)* ***पलद्यां भवः पालदः।*** *पलदी=झोपड़ियों के ग्राम में रहनेवाला-पालद।* ***परिषदि भवः पारिषदः।*** *परिषद्=विद्वत्सभा में रहनेवाला-पारिषद।* ***(कोपध) नीलीनके भवो नैलीनकः।*** *निलीनक=छिपे हुए स्थान में रहनेवाला-नैलीनक।* ***चियातके भवश्चैयातकः।*** *निश्चित स्थान पर रहनेवाला-चैयातक।*

*सिद्धि-***माद्रीप्रस्थः।** *यहां सप्तमी-समर्थ, प्रस्थ उत्तरपदवाले 'माद्रीप्रस्थ' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-***माहकीप्रस्थः** *आदि।*

अण्—

(२०) कण्वादिभ्यो गोत्रे।११०।

प०वि०-कण्व-आदिभ्यः ५।३ गोत्रे ७।१।

स०-कण्व आदिर्येषां ते-कण्वादयः, तेभ्यः-कण्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०गोत्रे कण्वादिभ्यः शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्यः कण्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यः। काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः। गोकक्षस्य गोत्रापत्यं गौकक्ष्यः। गौकक्ष्यस्य छात्रा गौकक्षाः।

कण्वादयः शब्दाः **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) इत्यत्र गर्गादिषु पठ्यन्ते ते तत एव द्रष्टव्याः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव विभक्ति-समर्थ (गोत्रे) गोत्रप्रत्ययान्त (कण्वादिभ्यः) कण्व आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कण्वस्य गोत्रापत्यं काण्व्यः। काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः।** कण्व ऋषि का पौत्र-काण्व्य। काण्व्य के शिष्य-काण्व। **गोकक्षस्य गोत्रापत्यं गौकक्ष्यः। गौकक्ष्यस्य छात्रा गौकक्षाः।** गोकक्ष ऋषि का पौत्र-गौकक्ष्य। गौकक्ष्य के शिष्य-गौकक्ष।*

कण्व आदि शब्द गर्गादिगण (४।१।१०५) में पठित हैं, उन्हें वहां से देख लेवें।

*सिद्धि-**काण्वाः।** कण्व+ङस्+यञ्। काण्व्+य। काण्व्य।। काण्व्य+ङस्+अञ्। काण्व्य्+अ। काण्व्+अ। काण्व+जस्। काण्वाः।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'कण्व' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त 'काण्व्य' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गौकक्षाः।***

अण्-

(२१) इञश्च।१११।

प०वि०-इञः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, अण्, गोत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०गोत्रे इञश्च शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् गोत्रापत्येऽर्थे वर्तमानाद् इञ्-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दक्षस्य गोत्रापत्यं **दाक्षिः। दाक्षेश्छात्रा** दाक्षाः। **प्लक्षस्य गोत्रापत्यं** प्लाक्षिः। **प्लाक्षेश्छात्राः प्लाक्षाः।**

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (गोत्रे) गोत्रापत्य अर्थ में विद्यमान (इञः) इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः। दाक्षेश्छात्रा दाक्षाः। दक्ष ऋषि का पौत्र-दाक्षि। दाक्षि के शिष्य-दाक्ष। प्लक्षस्य गोत्रापत्यं प्लाक्षिः। प्लाक्षेश्छात्राः प्लाक्षाः। प्लक्ष ऋषि के पौत्र-प्लाक्षि। प्लाक्षि के शिष्य-प्लाक्ष।

सिद्धि-दाक्षाः। दक्ष+ङस्+इञ्। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः। दाक्षि+अण्। दाक्ष्+अ। दाक्ष+जस्। दाक्षाः।

यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त 'दाक्षि' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-प्लाक्षाः।

अण्-प्रतिषेधः-

(२२) न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु।११२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, द्व्यचः ५।१ प्राच्यभरतेषु ७।३।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तत्-द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यच् (बहुव्रीहिः)। प्राच्याश्च भरताश्च ते-प्राच्यभरताः, तेषु प्राच्यभरतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, अण्, गोत्रे, इञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राच्यभरतेषु गोत्रेषु द्व्यच् इञः शेषेऽण् न।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तमानाद् द्व्यच इञन्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-(प्राच्यगोत्रम्) पिङ्गस्य गोत्रापत्यं पैङ्गिः। पैङ्गेश्छात्राः पैङ्गीयाः। एवम्-प्रौष्ठीयाः, चैदीयाः, पौष्कीयाः। **(भरतगोत्रम्)** काशस्य गोत्रापत्यं काशिः। काशेश्छात्राः काशीयाः। एवम्-पाशीयाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राच्यभरतेषु, गोत्रे) प्राच्यगोत्र और भरतगोत्र में विद्यमान (द्व्यचः) दो अचोंवाले (इञः) इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में **(अण्) अण् प्रत्यय (न) नहीं होता है।***

*उदा०-(प्राच्यगोत्र) पिङ्गस्य **गोत्रापत्यं पैङ्गि:।** पैङ्गेश्छात्रा: **पैङ्गीया:।** पिङ्ग ऋषि का पौत्र-पैङ्गि। पैङ्गि के शिष्य-पैङ्गीय। ऐसे ही-**प्रौष्ठीय, चैदीय, पौष्कीय।** (भरतगोत्र) काशस्य गोत्रापत्यं काशि:। काशेश्छात्रा: काशीया:। काश ऋषि का पौत्र-काशि। काशि के शिष्य-काशीय। ऐसे ही-**पाशीय।***

*सिद्धि-**पैङ्गीया:।** पिङ्ग+ङस्+इञ्। पैङ्ग्+इ। पैङ्गि।। पैङ्गि+ङस्+छ। पैङ्ग्+ईय। पैङ्गीय+जस्। पैङ्गीया:।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ प्राच्य गोत्रवाची, दो अचोंवाले 'पिङ्ग' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से इञ् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् गोत्र-प्रत्ययान्त 'पैङ्गि' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से 'वृद्धाच्छ:' (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-'**प्रौष्ठीया:**' आदि।*

***विशेष**-(१) भरतगोत्र प्राच्यगोत्र के ही अन्तर्गत है फिर यहां 'भरतगोत्र' के ग्रहण से यह ज्ञापित होता है कि अन्यत्र प्राच्य गोत्र के ग्रहण से भरतगोत्र का ग्रहण नहीं किया जाता है।*

*(२) **प्राच्यभरत**-दक्षिण-पूर्वी पंजाब में-थानेश्वर, कैथल, करनाल, पानीपत का भू-भाग भरत जनपद था। इसी का दूसरा नाम प्राच्यभरत भी था क्योंकि यहीं से देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो खण्डों की सीमायें बंट जाती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४१)।*

छ:-

(२३) वृद्धाच्छ:।।११३।

प०वि०-वृद्धात् ५।१ छ: १।१।

अनु०-'गोत्रे' इति नानुवर्तते, शेषे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०वृद्धात् शेषे छ:।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-गार्ग्यस्य छात्रो गार्गीय:। वात्स्यस्य छात्रो वात्सीय:। शालायां भव: शालीय:। मालायां भवो मालीय:।

आर्यभाषा: अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्)** वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में **(छ:) छ प्रत्यय होता है।

*उदा०-**गार्ग्यस्य छात्रो गार्गीयः।** गार्ग्य ऋषि का शिष्य-गार्गीय। **वात्स्यस्य छात्रो वात्सीयः।** वात्स्य ऋषि का शिष्य-वात्सीय। **शालायां भवः शालीयः।** शाला=घर में रहनेवाला-शालीय (गृहस्थ)। **मालायां भवो मालीयः।** माला में रहनेवाला-मालीय (पुष्प)।*

सिद्धि-गार्गीयः। गार्ग्य+ङस्+छ। गार्ग्य्+ईय। गार्ग्+ईय। गार्गीय+सु। गार्गीयः।

*यहां 'गार्ग्य' शब्द की **'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्'** (१।१।७२) से 'वृद्ध' संज्ञा है। वृद्धसंज्ञक 'गार्ग्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-'वात्सीयः' आदि।*

ठक्+छस्–

(२४) भवतष्ठक्छसौ।११४।

प०वि०-भवतः ५।१ छक्-छसौ १।२।

स०-ठक् च छस् च तौ-ठक्छसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, वृद्धात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धाद् भवतः शेषे ठक्छसौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकाद् भवत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**ठक्**) भवतोऽयं भावत्कः। (**छस्**) भवत इदं भवदीयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (भवतः) भवत् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्छसौ) ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ठक्) **भवतोऽयं भावत्कः।** आपका यह-भावत्क। (छस्) **भवत इदं भवदीयम्।** आपका यह-भवदीय।*

सिद्धि-(१) भावत्कः। भवत्+ङस्+ठक्। भावत्+क। भावत्क+सु। भावत्कः।

*यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'भवत्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात्कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'भवत्' शब्द का त्यदादिगण में पाठ होने से **'त्यदादीनि च'** (१।१।७३) से इसकी वृद्ध संज्ञा है।*

*(२) **भवदीयः।** भवत्+ङस्+छस्। भवत्+ईय। भवद्+ईय। भवदीय+सु। भवदीयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'भवत्' शब्द **से शेष** अर्थों में इस सूत्र से 'छस्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से छ् के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। 'छस्' प्रत्यय के सित् होने से 'सिति च' (१।४।१६) से 'भवत्' शब्द की पदसंज्ञा होती है और 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से पदान्त में विद्यमान 'त्' को जश् 'द्' होता है।*

ठञ्+ञिठः--

(२५) काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ।११५।

प०वि०-काशि-आदिभ्यः ५।३ ठञ्-ञिठौ १।२।

स०-काशिरादिर्येषां ते-काश्यादयः, तेभ्यः-काश्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। ठञ् च ञिठश्च तौ-ठञ्ञिठौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, वृद्धात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धेभ्यः काश्यादिभ्यः शेषे ठञ्ञिठौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः काश्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(ठञ्) काश्यां भवा काशिकी। (ञिठः) काश्यां भवा काशिका। (ठञ्) बेद्यां भवा बैदिकी। (ञिठः) बेद्यां भवा बेदिका।

काशि। चेदि। बेदि। संज्ञा। संवाह। अच्युत। मोहमान। शकुलाद। हस्तिकर्षू। कुदामन्। कुनाम।। हिरण्य। करण। गोधाशन। भौरिकि। भौलिङ्गि। अरिन्दम। सर्वमित्र। देवदत्त। साधुमित्र। दासमित्र। दासग्राम। सौधावतान। युवराज। उपराज। सिन्धुमित्र। देवराज।। आपदादि-पूर्वपदान्तात् कालान्तात्।। आपत्कालिकी। आपतकालिका। और्ध्वकालिकी। और्ध्वकालिका। तात्कालिकी। तात्कालिका। इति काशादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (काश्यादिभ्यः) काशि आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(ठञ्) काश्यां भवा काशिकी। (ञिठ) काश्यां भवा काशिका।** काशि में होनेवाली-काशिकी, काशिका। **(ठञ्) बेद्यां भवा बैदिकी। (ञिठ) बेद्यां भवा बैदिका।** बेदि में होनेवाली-बैदिकी, बैदिका।*

***सिद्धि-(१) काशिकी।** काशि+ङि+ठञ्। काश्+इक। काशिक+ङीप्। काशिक्+ई। काशिकी+सु। काशिकी।*

यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'काशि' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११५) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में की* ***'टिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-***बैदिकी।**

(२) ***काशिका।*** *काशि+ङि+ञिठ। काश्+इक। काशिक+टाप्। काशिक+आ। काशिका+सु। काशिका।*

यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'काशि' शब्द से पूर्ववत् 'ञिठ' प्रत्यय है। 'ञिठ' प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् इक् आदेश तथा पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-***बैदिका।**

(२) यहां 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति होने से वृद्धसंज्ञक 'काशि' आदि शब्दों से प्रत्यय का विधान किया गया है किन्तु काश्यादि गण में जो अवृद्धसंज्ञक शब्द पढ़े हैं उनसे वचनप्रामाण्य से प्रत्यय होता है।

ठञ्+ञिठः-

(२६) वाहीकग्रामेभ्यश्च।११६।

प०वि०-वाहीक-ग्रामेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-वाहीकानां ग्रामा इति वाहीकग्रामाः, तेभ्यः-वाहीकग्रामेभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०वृद्धेभ्यो वाहीकग्रामेभ्यश्च शेषे ठञ्ञिठौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाहीकग्रामवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(ठञ्) शाकले भवा शाकलिकी। **(ञिठः)** शाकले भवा शाकलिका। **(ठञ्)** मान्थवे भवा मान्थविकी। **(ञिठः)** मान्थवे भवा मान्थविका।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (वाहीकग्रामेभ्यः) वाहीक-ग्रामवाची प्रातिपदिकों से (च) भी (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(ठञ्) **शाकले भवा शाकलिकी।** शाकल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-शाकलिकी। (ञिठ) **शाकले भवा शाकलिका।** शाकल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-शाकलिका। (ठञ्) **मान्थवे भवा मान्थविकी।** मान्थव नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-मान्थविकी। (ञिठ) **मान्थवे भवा मान्थविका।** मान्थव नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-मान्थविका।*

*सिद्धि-**शाकलिकी।** शाकल+ङि+ठञ्। शाकल्+इक। शाकलिक+ङीप्। शाकलिकी+सु। शाकलिकी।*

यहां सप्तमी-समर्थ, वाहीक-ग्रामवाची 'शाकल' शब्द से इस सूत्र से शेष अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञिठ' प्रत्यय करने पर-शाकलिका। ऐसे ही-मान्थविकी, मान्थविका। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेष**-गंधार और वाहीक दोनों मिलकर उदीच्य कहलाते थे। सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था जिसके अन्तर्गत मद्र, उशीनर और त्रिगर्त ये तीन मुख्य भाग थे (पाणिनिकालीन **भारतवर्ष** पृ० ४२)।*

ठञ्ञिठ-विकल्पः-

(२७) विभाषोशीनरेषु।११७।

प०वि०-विभाषा १।१ उशीनरेषु ७।३।

अनु०-शेषे, वृद्धात्, ठञ्ञिठौ, वाहीकग्रामेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०उशीनरेषु वृद्धेभ्यो वाहीकग्रामेभ्यः शेषे विभाषा ठञ्ञिठौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्य उशीनरेषु वर्तमानेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यो वाहीकग्रामवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ठञ्) आह्वजाले भवा आह्वजालिकी। (ञिठः) आह्वजाले भवा आह्वजालिका। (छः) आह्वजाले भवा आह्वजालीया। (ठञ्) सौदर्शनि भवा सौदर्शनिकी। (ञिठः) सौदर्शनिका। (छः) सौदर्शयनीया।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (उशीनरेषु) उशीनर-भाग में विद्यमान (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (वाहीकग्रामेभ्यः) वाहीक ग्रामवाची प्रातिपदिकों से (विभाषा) विकल्प से (ठञ्ञिठौ) ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं। विकल्प पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ठञ्) आह्नजाले भवा आह्नजालिकी। (ञिठ) आह्नजालिका। (छ) आह्नजालीया। उशीनर भाग में विद्यमान आह्नजाल नामक वाहीक-ग्राम में रहनेवाली नारी-आह्नजालिकी, आह्नजालिका, आह्नजालीया। (ठञ्) सौदर्शने भवा सौदर्शनिकी। (ञिठ) सौदर्शनिका। (छ) सौदर्शयनीया। उशीनर भाग में विद्यमान सौदर्शन नामक वाहीकग्राम में रहनेवाली नारी-सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया।

सिद्धि-आह्नजालिकी आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेष-पाणिनि के अनुसार उशीनर, वाहीक का जनपद था 'विभाषोशीनरेषु' (४।२।११८)। ऐसा ज्ञात होता है कि रावी और चनाब के बीच का भू-भाग जो मद्र के दक्षिण में था, उशीनर प्रदेश कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७-६८)।

ठञ्-

(२८) ओर्देशे ठञ्।११८।

प०वि०-ओः ५।१ देशे ७।१ ठञ् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते, उत्तरसूत्रे पुनर्वृद्धग्रहणादस्मिन् सूत्रे 'वृद्धात्' इति नानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे ओः शेषे ठञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिन उकारान्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निषादकर्ष्वां भवो नैषादकर्षुकः। शबरजम्ब्वां भवः शाबरजम्बुकः।

आर्यभाषाः अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-निषादकर्ष्वां भवो नैषादकर्षुकः। निषादकर्षू नामक देश में रहनेवाला-नैषादकर्षुक। शबरजम्ब्वां भवः शाबरजम्बुकः। शम्बरजम्बू नामक देश में रहनेवाला-शाबरजम्बुक।

सिद्धि-नैषादकर्षुकः। निषादकर्षू+ङि+ठञ्। नैषादकर्षू+क। नैषादकर्षु+क। नैषादकर्षुकः।

यहां सप्तमी-समर्थ देशवाची, ऊकारान्त 'निषादकर्षू' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है और 'केऽणः'(७।४।१३) से अंग को ह्रस्व होता है। ऐसे ही-शाबरजम्बुकः।

विशेष–*यहां ठञ् और ञिठ प्रत्यय के प्रकरण में 'ठञ्ञिठौ' पद में से केवल 'ठञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति सम्भव नहीं है, अतः यहां पुनः 'ठञ्' प्रत्यय का ग्रहण किया गया है।*

ठञ्–

(२९) वृद्धात् प्राचाम्।११९।

प०वि०–वृद्धात् ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०–शेषे, ओः, देशे, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०प्राचां देशे वृद्धाद् ओः शेषे ठञ्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राग्देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् उकारान्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आढकजम्ब्वां जातः आढकजम्बुकः। शाकजम्ब्वां जातः शाकजम्बुकः। नापितवास्त्वां जातो नापितवास्तुकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्-देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**आढकजम्ब्वां जातः आढकजम्बुकः।** आढकजम्बू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न हुआ-आढकजम्बुक। **शाकजम्ब्वां जातः शाकजम्बुकः।** शाकजम्बू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न-शाकजम्बुक। **नापितवास्त्वां जातो नापितवास्तुकः।** नापितवास्तू नामक प्राग्-देश में उत्पन्न-नापितवास्तुक।*

*सिद्धि–**आढकजम्बुकः।** आढकजम्बू+ङि+ठञ्। आढकजम्बू+क। आढकजम्बु+क। आढकजम्बुक+सु। आढकजम्बुकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, प्रागदेशवाची, वृद्धसंज्ञक 'आढकजम्बू' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'क्' आदेश और पूर्ववत् अंग को ह्रस्व होता है। ऐसे ही–शाकजम्बुकः, नापितवास्तुकः।

वुञ्–

(३०) धन्वयोपधाद् वुञ्।१२०।

प०वि०–धन्व-योपधात् ५।१ वुञ् १।१।

स०–य उपधायां यस्य तत्-योपधम्। धन्व च योपधं च एतयोः समाहारो धन्वयोपधम्, तस्मात्-धन्वयोपधात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धाद् धन्वयोपधात् शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति। धन्वशब्दो मरुदेशवाचकः।

उदा०-(धन्वः) पारेधन्वनि जातः पारेधन्वकः। ऐरावते जातः ऐरावतकः। **(योपधः)** साङ्काश्ये जातः साङ्काश्यकः। काम्पिल्ये जातः काम्पिल्यकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (धन्व-योपधात्) धन्वविशेषवाची और यकार-उपधावाले प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है। धन्व=मरुदेश।*

उदा०-(धन्व) ***पारेधन्वनि जातः पारेधन्वकः।*** *मरु देश के पार उत्पन्न हुआ-पारधन्वक।* ***ऐरावते जातः ऐरावतकः।*** *ऐरावत नामक मरुदेश में उत्पन्न हुआ-ऐरावतक। (योपध)* ***साङ्काश्ये जातः साङ्काश्यकः।*** *सांकाश्य नामक नगर में उत्पन्न-सांकाश्यक।* ***काम्पिल्ये जातः काम्पिल्यकः।*** *कापिल्य नामक नगर में उत्पन्न-काम्पिल्यक।*

सिद्धि-पारेधन्वकः। पारेधन्वन्+ङि+वुञ्। पारेधन्व+अक। पारेधन्वक+सु। पारेधन्वकः।

यहां सप्तमी-समर्थ, धन्व-विशेषवाची 'पारेधन्व' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-ऐरावतकः, साङ्काश्यकः, काम्पिल्यकः।

विशेष-(१) पारेधन्व- *अर्थात् मरुभूमि के उस पार का देश। राजस्थान की मरुभूमि या मारवाड़ का प्राचीन नाम धन्व ज्ञात होता है। इस धन्व प्रदेश के पार पश्चिम में आज तक सिंध प्रान्त का पूर्वी भाग 'पारकर' कहाता है जो पारेधन्वक का अपभ्रंश है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५६)।*

(२) ऐरावतधन्व- *यह भारतवर्ष की सीमा के उस पार मध्य एशिया का गोबी रेगिस्तान जान पड़ता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५६)।*

(३) सांकाश्य- *जनक के भाई कुशध्वज की नगरी का नाम। इसका वर्तमान नाम 'संकिश' है (शब्दार्थकौस्तुभ)।*

(४) काम्पिल्य-यह दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी का नगर है। अब भी कम्पिला के नाम से प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है। द्रौपदी का जन्म यहीं हुआ था (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८३)।

वुञ्-

(३१) प्रस्थपुरवहान्ताच्च।१२१।

प०वि०-प्रस्थ-पुर-वहान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-प्रस्थं च पुरं च वहं च एतेषां समाहारः-प्रस्थपुरवहम्, प्रस्थपुरवहमन्ते यस्य तत्-प्रस्थपुरवहान्तम्, तस्मात्-प्रस्थपुरवहान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धात् प्रस्थपुरवहान्ताच्च शेषु वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् प्रस्थान्तात् पुरान्ताद् वहान्ताच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्रस्थम्**) मालाप्रस्थे जातो मालाप्रस्थकः। (**पुरम्**) नान्दीपुरे जातो नान्दीपुरकः। कान्तीपुरे जातः कान्तीपुरकः। (**वहम्**) पीलुवहे जातः पैलुवहकः। फल्गुनीवहे जातः फाल्गुनीवहकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (प्रस्थपुरवहान्तात्) प्रस्थान्त, पुरान्त और वहान्त प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(प्रस्थ) **मालाप्रस्थे जातो मालाप्रस्थकः**। मालाप्रस्थ नामक देश में उत्पन्न-मालाप्रस्थक। (पुर) **नान्दीपुरे जातो नान्दीपुरकः**। नान्दीपुर नामक देश में उत्पन्न-नान्दीपुरक। **कान्तीपुरे जातः कान्तीपुरकः**। कान्तीपुर नामक देश में उत्पन्न-कान्तीपुरक। (वह) **पीलुवहे जातः पैलुवहकः**। पीलुवह नामक देश मे उत्पन्न-पैलुवहक। **फल्गुनीवहे जातः फाल्गुनीवहकः**। फल्गुनीवह नामक देश में उत्पन्न-फाल्गुनीवहक।*

*सिद्धि-**मालाप्रस्थकः**। मालाप्रस्थ+ङि+वुञ्। मालाप्रस्थ्+अक। मालाप्रस्थक+सु। मालाप्रस्थकः।*

यहां देशवाची, वृद्धसंज्ञक 'मालाप्रस्थ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।

'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-नान्दीपुरकः आदि।

विशेष*-*फल्गुनीवह-यह आधुनिक फगवाड़े (पंजाब) का नाम प्रतीत होता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

वुञ्-

(३२) रोपधेतोः प्राचाम्।१२२।

प०वि०-रोपध-ईतोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) प्राचाम् ६।३।

स०-र उपधायां यस्य तत्-रोपधम्। रोपधं च ईच्च तौ-रोपधेतौ, तयोः-रोपधेतोः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राचां देशे वृद्धाद् रोपधाद् ईतश्च वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् प्राग्देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् रेफोपधाद् ईकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रोपधम्)** पाटलिपुत्रे जातः पाटलिपुत्रकः। एकचक्रे जातः ऐकचक्रकः। **(ईत्)** काकन्द्यां जातः काकन्दकः। माकन्द्यां जातो माकन्दकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्-देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (रोपधेतोः) रेफ उपधावान् तथा ईकारान्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(रेफोपध) **पाटलिपुत्रे जातः पाटलिपुत्रकः।** पाटलिपुत्र=पटना नगर में उत्पन्न हुआ-पाटलिपुत्रक। **एकचक्रायां जातः ऐकचक्रकः।** एकचक्रा नामक नगरी में उत्पन्न हुआ-ऐकचक्रक। (ईत्) **काकन्द्यां जातः काकन्दकः।** काकन्दी नगरी में उत्पन्न हुआ-काकन्दक। **माकन्द्यां जातो माकन्दकः।** माकन्दी नगरी में उत्पन्न हुआ-माकन्दक।*

*सिद्धि-(१) **पाटलिपुत्रकः।** पाटलिपुत्र+ङि+वुञ्। पाटलिपुत्र्+अक। पाटलिपुत्रक+सु। पाटलिपुत्रकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, प्राक्-देशवाची, वृद्धसंज्ञक तथा रेफ-उपधावान् 'पाटलिपुत्र' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से वुञ् प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ऐकचक्रक:। यहां 'एकचक्रा' शब्द से पूर्ववत् 'वुञ्' प्रत्यय है। 'एङ् प्राचां देशे' (१।१।७४) से 'एकचक्रा' शब्द की वृद्धसंज्ञा होती है। ऐसे ही-काकन्दक:, माकन्दक:।

विशेष- *(१) पाटलिपुत्र-मगध या दक्षिण बिहार के एक प्रसिद्ध नगर का नाम। यह गंगा और सोन नदी के संगम पर बसाया गया था। इसका दूसरा नाम कुसुमपुर है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८६)।*

(२) एकचक्रा-महाभारत में वर्णित एक प्राचीन नगरी (शब्दार्थकौस्तुभ)।

(३) ककन्द के द्वारा बनवाई गई काकन्दी और मकन्द के द्वारा बनवाई गई नगरी माकन्दी कहाती है।

वुञ्-

(३३) जनपदतदवध्योश्च।१२३।

प०वि०-जनपद-तदवध्यो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-स एव जनपदोऽवधिरिति तदवधि:। जनपदश्च तदवधिश्च तौ-जनपदतदवधी, तयो:-जनपदतदवध्यो: (कर्मधारयगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धाद्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०वृद्धाज्जनपदात् तदवधेश्च शेषे वुञ्।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् वृद्धसंज्ञकाद् जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(जनपद:) आभिसारे जात: आभिसारक:। आदर्शे जात: आदर्शक:। **(तदवधि:)** औपुष्टे जात: औपुष्टक:। श्यामायने जात: श्यामायनक:।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (जनपदतदवध्यो:) जनपद तथा उसके अवधि=सीमावाची प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(जनपद) आभिसारे जात आभिसारक:। आभिसार नामक जनपद में उत्पन्न हुआ-आभिसारक। आदर्शे जात आदर्शक:। आदर्श नामक जनपद में उत्पन्न हुआ-आदर्शक। (तदवधि) औपुष्टे जात औपुष्टक:। औपुष्ट नामक जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-औपुष्टक। श्यामायने जात: श्यामायनक:। श्यामायन नामक जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-श्यामायनक।

सिद्धि-आभिसारकः। आभिसार+ङि+वुञ्। आभिसार्+अक। आभिसारक+सु। आभिसारकः।

यहां सप्तमी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक, जनपदवाची 'आभिसार' शब्द से शेष अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-आदर्शकः आदि।

वुञ्-

(३४) अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्।१२४।

प०वि०-अवृद्धात् ५।१ अपि अव्ययपदम्, बहुवचनविषयात् ५।१।

स०-न वृद्धमिति अवृद्धम्, तस्मात्-अवृद्धात् (नञ्तत्पुरुषः)। बहुवचनं विषयो यस्य तद् बहुवचनविषयम्, तस्मात्-बहुवचनविषयात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, वृद्धात्, वुञ् जनपदतदवध्योः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०बहुवचनविषयाद् अवृद्धाद् वृद्धादपि जनपदात् तदवधेश्च शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् बहुवचनविषयाद् अवृद्धसंज्ञकाद् वृद्धसंज्ञकादपि जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अवृद्धाज्जनपदात्) अङ्गेषु जातः आङ्गकः। वङ्गेषु जातो वाङ्गकः। कलिङ्गेषु जातः कालिङ्गकः। हरयाणेषु जातो हारयाणकः। **(वृद्धाज्जनपदात्)** दार्वेषु जातो दार्वकः। जाम्बवेषु जातो जाम्बवकः। अजक्रन्देषु जात आजक्रन्दकः। **(वृद्धाज्जनपदावधेः)** कालञ्जरेषु जातः कालञ्जरकः। **वैकुलिशेषु** जातो वैकुलिशकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (बहुवचनविषयात्) बहुवचन विषयक (अवृद्धात्) अवृद्ध संज्ञक तथा (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (अपि) भी (जनपदतदवध्योः) जनपदवाची तथा तदवधिवाची प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अवृद्ध जनपद) अङ्गेषु** जातः **आङ्गकः।** अङ्ग जनपद में उत्पन्न हुआ-आङ्गक। **वङ्गेषु जातो** वाङ्गकः। **वङ्ग** जनपद में उत्पन्न हुआ-वाङ्गक।*

कलिङ्गेषु जातः कालिङ्गकः । कलिङ्ग जनपद में उत्पन्न हुआ-कालिङ्गक। हरयाणेषु जातो हारयाणकः । हरयाण जनपद में उत्पन्न हुआ-हारयाणक। लोक में बहुवचन में प्रयुक्त है-'हरयाणाः'। (वृद्ध जनपद) दार्वेषु जातो दार्वकः । दार्व जनपद में उत्पन्न हुआ-दार्वक। जाम्बवेषु जातो जाम्बवकः । जाम्बव में उत्पन्न हुआ-जाम्बवक। (अवृद्धजनपदावधिवाची) अजमीढेषु जात आजमीढकः । अजमीढ जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-आजमीढक। अजक्रन्देषु जात आजक्रन्दकः । अजक्रन्द जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-आजक्रन्दक। (वृद्धजनपदावधिवाची) कालञ्जरेषु जातः कालञ्जरकः । कालञ्जर जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-कालञ्जरक। वैकुलिशेषु जातो वैकुलिशकः । वैकुलिश जनपद-सीमा में उत्पन्न हुआ-वैकुलिशक।

सिद्धि-आङ्गकः । अङ्ग+सुप्+वुञ्। आङ्ग्+अक। आङ्गक+सु। आङ्गकः ।

यहां सप्तमी-समर्थ, बहुवचन-विषयक, अवृद्धसंज्ञक, जनपदवाची 'अङ्ग' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से वुञ् प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-वाङ्गकः आदि।

***विशेष**—(१) अङ्ग-गंगा के दाहिने तट पर अवस्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी था। चम्पा का दूसरा नाम अनंगपुरी भी था। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर नगर के समीप बिहार प्रान्त में थी (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८१)।*

(२) वङ्ग-इसे समतट भी कहते हैं। पूर्व बंगाल का नाम। किसी समय इसमें टिपरा और गारो भी शामिल थे।

(३) कलिङ्ग-उड़ीसा के दक्षिण की ओर का प्रदेश। यह प्रदेश गोदावरी नदी के उद्गम स्थान तक फैला हुआ था। इस राज्य की प्राचीन राजधानी कलिङ्ग नगर समुद्रतट से कुछ फासले पर थी और सम्भवतः उस स्थान पर थी जहां आधुनिक राजमहेन्द्री नामक नगर है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८२)।

(४) अजमीढ। अजक्रन्द-साल्व जनपद (जयपुर-बीकानेर) के अवयव राज्य (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७४)।

वुञ्—

(३५) कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात्।१२५।

प०वि०-कच्छ-अग्नि-वक्त्र-गर्त्तोत्तरपदात् ५।१।

स०-कच्छश्च अग्निश्च वक्त्रं च गर्तश्च ते-कच्छाग्निवक्त्रगर्ताः। कच्छाग्निवक्त्रगर्ता उत्तरपदानि यस्य तत्-कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदम्, तस्मात्-कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धात्, अवृद्धात्, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धाद्, अवृद्धात्, कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् अवृद्धसंज्ञकाच्च कच्छाद्युत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कच्छोत्तरपदम्**) दारुकच्छे भवो दारुकच्छकः। पिप्पलीकच्छे भवः पैपलीकच्छकः। (**अग्न्युत्तरपदम्**) काण्डाग्नौ भवः काण्डाग्नकः। विभुजाग्नौ भवो वैभुजाग्नकः। (**वक्त्रोत्तरपदम्**) इन्द्रवक्त्रे भव ऐन्द्रवक्त्रकः। सिन्धुवक्त्रे भवः सैन्धुवक्त्रकः। (**गर्त्तोत्तरपदम्**) बहुगर्ते भवो बाहुगर्तकः। चक्रगर्ते भवश्चाक्रगर्तकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक तथा (अवृद्धात्) अवृद्धसंज्ञक (कच्छाग्निवक्त्रगर्तोत्तरपदात्) कच्छ, अग्नि, वक्त्र, गर्त उत्तरपदवान् प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कच्छ-उत्तरपद) **दारुकच्छे भवो दारुकच्छकः।** दारुकच्छ देश में रहनेवाला-दारुकच्छक। **पिप्पलीकच्छे भवः पैपलीकच्छकः।** पिप्लीकच्छ देश में रहनेवाला-पैप्पलीकच्छक। (अग्नि उत्तरपद) **काण्डाग्नौ भवः काण्डाग्नकः।** काण्डाग्नि देश में रहनेवाला-काण्डाग्नक। **विभुजाग्नौ भवो वैभुजाग्नकः।** विभुजाग्नि देश में रहनेवाला-वैभुजाग्नक। (वक्त्र उत्तरपद) **इन्द्रवक्त्रे भव ऐन्द्रवक्त्रकः।** इन्द्रवक्त्र देश में रहनेवाला-ऐन्द्रवक्त्रक। **सिन्धुवक्त्रे भवः सैन्धुवक्त्रकः।** सिन्धुवक्त्र देश में रहनेवाला-सैन्धुवक्त्रकः। (गर्त्त-उत्तरपद) **बहुगर्ते भवो बाहुगर्तकः।** बहुगर्त देश में रहनेवाला-बाहुगर्तक। **चक्रगर्ते भवश्चाक्रगर्तकः।** चक्रगर्त देश में रहनेवाला-चाक्रगर्तक।*

सिद्धि-दारुकच्छकः। *दारुकच्छ+ङि+वुञ्। दारुकच्छ+अक। दारुकच्छक+सु। दारुकच्छकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, वृद्धसंज्ञक, कच्छ-उत्तरपदवान् 'दारुकच्छ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-'पैपलीकच्छः' आदि।

विशेष-*(१) दारुकच्छ, पिप्पलीकच्छ। दारुकच्छ काठियावाड़ (दारु=काष्ठ) के समुद्र-तट का प्रदेश और पिप्पलीकच्छ रेवा काँठे का सूरत से बड़ोदा तक का किनारा था, जिसमें पीपला रियासत है और ठीक समुद्र-तट पर भृगुकच्छ (वर्तमान भड़ोंच) है।*

खंभात की खाड़ी के मस्तक पर साबरमती (श्वभ्रमती) की धारा समुद्र में मिली है उसकी दाहिनी ओर का समुद्र-तट दारुकच्छ और बाईं ओर का पिपलीकच्छ कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६६-६७)।

(२) विभुजाग्नि, काण्डाग्नि-विभुजाग्नि कच्छ प्रदेश का भुज ज्ञात होता है और काण्डाग्नि कंडला बन्दरगाह के उत्तर-पूर्व में तपता हुआ रेगिस्तान। ये दोनों नाम कच्छ के छोटे रन्न और बड़े रन्न (इरिन) ही हो सकते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७)।

(३) इन्द्रवक्त्र, सिन्धुवक्त्र-सिन्ध प्रान्त का प्रदेश सिन्धुवक्त्र और बलोचिस्तान का प्रदेश इन्द्रवक्त्र कहलाता था। सिन्धुवक्त्र प्रदेश में खेती सिन्ध नदी पर निर्भर थी और इन्द्रवक्त्र में वर्षा पर। पहला प्रदेश नदीमातृक था और दूसरा देवमातृक। सभा-पर्व में इन दोनों प्रदेशों का स्पष्ट वर्णन एक साथ आया है :-

इन्द्रकृष्यैर्वर्तयन्ति धान्यैर्ये च नदीमुखैः।
समुद्रनिष्कुटे जाताः पारेसिन्धु च मानवाः।५१।११।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७९)

(४) बहुगर्त, चक्रगर्त-ये दोनों पुराने नाम जान पड़ते हैं। बहुगर्त सम्भवतः साबरमती (प्राचीन-श्वभ्रमती) के काठे का नाम था, जिसके नाम का 'श्वभ्र' शब्द गड्ढे का पर्यायवाची है। चक्रगर्त संभवतः प्रभासक्षेत्र में स्थित चक्रतीर्थ की संज्ञा थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

वुञ्-

(३६) धूमादिभ्यश्च।१२६।

प०वि०-धूम-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-धूम आदिर्येषां ते धूमादयः, तेभ्यः-धूमादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे धूमादिभ्यः शेषे वुञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-धूमे जातो धौमकः। खण्डे जातः खाण्डकः।

धूम। खण्ड। खडण्ड। शशादन। आर्जुनाद। दाण्डायनस्थली। माहकस्थली। घोषस्थली। माषस्थली। राजस्थली। राजगृह। **सत्रासाह। भक्षास्थली। भद्रकूल। गर्त्तकूल। आञ्जीकूल। द्व्याहाव। त्र्याहाव। संहीय।**

वर्वर। वर्चगर्त्त। विदेह। आनर्त्त। माठर। पाथेय। घोष। शिष्य। मित्र। बल। आराज्ञी। धार्त्तराज्ञी। अवसात। तीर्थ।। कूलात्सौवीरेषु।। समुद्रान्नावि मनुष्ये च।। कुक्षि। अन्तरीप। द्वीप। अरुण। उज्जयिनी। दक्षिणापथ। साकेत। मानवल्ली। बल्लीसुराज्ञी। इति धूमादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (धूमादिभ्यः) धूम आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**धूमे जातो धौमकः।** धूम देश में उत्पन्न हुआ-धौमक। **खण्डे जातः खाण्डकः।** खण्ड देश में उत्पन्न हुआ-खाण्डक।*

*सिद्धि-**धौमकः।** धूम+ङि+वुञ्। धौम्+अक। धौमक+सु। धौमकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'धूम' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**खाण्डकः।***

वुञ्—

(३७) नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः।१२७।

प०वि०-नगरात् ५।१ कुत्सन-प्रावीण्ययोः ७।२।

स०-प्रवीणस्य भावः प्रावीण्यम्। कुत्सनं च प्रावीण्यं ते कुत्सनप्रावीण्ये, तयोः-कुत्सनप्रावीण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०नगरात् शेषे वुञ् कुत्सनप्रावीण्ययोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् नगरात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, कुत्सने प्रावीण्ये च गम्यमाने।

उदा०-नगरे भवो नागरकः कुत्सितः, प्रवीणो वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (नगरात्) नगर प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (कुत्सनप्रावीण्ययोः) यदि वहां कुत्सन=निन्दा और प्रावीण्य=चतुरता अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**नगरे भवो नागरकः कुत्सितः, प्रवीणो वा। नगर में रहनेवाला-नागरक,** निन्दित अथवा चतुर। प्रयोग-चौरा हि नागरका भवन्ति, **प्रवीणा हि नागरका भवन्ति।***

वुञ्–

(३८) अरण्यान्मनुष्ये ।१२८।

प०वि०–अरण्यात् ५ ।१ मनुष्ये ७ ।१ ।

अनु०–शेषे, वुञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–यथासम्भव०अरण्यात् शेषे वुञ् मनुष्ये ।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अरण्यात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, मनुष्येऽभिधेये ।

उदा०–अरण्ये भव आरण्यको मनुष्यः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अरण्यात्) अरण्य प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (मनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय हो ।*

उदा०–अरण्ये भव आरण्यको मनुष्यः । अरण्य=जंगल में रहनेवाला-आरण्यक मनुष्य ।

सिद्धि-आरण्यकः । अरण्य+ङि+वुञ् । आरण्य्+अक । आरण्यक+सु । आरण्यकः ।

यहां सप्तमी-समर्थ 'अरण्य' शब्द से शेष अर्थ में तथा मनुष्य अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'वु' के स्थान में पूर्ववत् 'अक' आदेश तथा अंग को आदिवृद्धि होती है।

वुञ्-विकल्पः–

(३९) विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ।१२९।

प०वि०–विभाषा १ ।१ कुरु-युगन्धराभ्याम् ५ ।२ ।

स०–कुरुश्च युगन्धरश्च तौ कुरुयुगन्धरौ, ताभ्याम्-कुरुयुगन्धराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–शेषे, देशे, वुञ् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–यथासम्भव०देशे कुरुयुगन्धराभ्यां शेषे विभाषा वुञ् ।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां देशवाचिभ्यां कुरुयुगन्धराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे च अण् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(कुरुः) कुरुषु भवः कौरवकः (वुञ्)। कौरवः (अण्)। (युगन्धरः) युगन्धरेषु भवो यौगन्धरकः (वुञ्)। यौगन्धरः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कुरुयुन्धराभ्याम्) कुरु, युगन्धर प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(कुरु) **कुरुषु भवः कौरवकः (वुञ्)। कौरवः (अण्)।** कुरु देश में रहनेवाला-कौरवक वा कौरव। (युगन्धर) **युगन्धरेषु भवो यौगन्धरकः (वुञ्)। यौगन्धरः (अण्)।** युगन्धर (जगाधरी) देश में रहनेवाला-यौगन्धरक वा यौगन्धर।*

*सिद्धि-(१) **कौरवकः।** कुरु+ङि+वुञ्। कौरो+अक। कौरवक+सु। कौरवकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'कुरु' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **कौरवः।** कुरु+ङि+अण्। कौरो+अ। कौरव+सु। कौरवः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में **'कच्छादिभ्यश्च'** (४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय है।*

*(३) **यौगन्धरकः।** यहां 'युगन्धर' शब्द से पूर्ववत् वुञ् प्रत्यय है।*

*(४) **यौगन्धरः।** यहां 'युगन्धर' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्रागदीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है।*

***विशेष**—(१) कुरु-दिल्ली और मेरठ का प्रदेश।*

*(२) **युगन्धर**-यह राज्य सम्भवतः अम्बाला जिले में सरस्वती से यमुना तक फैला हुआ था। देहरादून जिले में कालसी के पास जगत ग्राम में प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि वह इलाका युग शैल देश था (युग नाम पहाड़ी प्रदेश) कहलाता था।*

युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेश्शीलवर्मणः।।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७३)।

(३) 'युगन्धर' शब्द का अपभ्रंश 'जगाधरी' है।

कन्—

(४०) मद्रवृज्योः कन्।१३०।

प०वि०-मद्र-वृज्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) कन् १।१।

स०-मद्रश्च वृजिश्च तौ मद्रवृजी, तयोः-मद्रवृज्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०मद्रवृजिभ्यां शेषे कन्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां देशवाचिभ्यां मद्रवृजिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मद्रः**) मद्रेषु भवो मद्रकः। (**वृजिः**) वृजिषु भवो वृजिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (मद्रवृज्योः) मद्र, वृजि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(मद्र) **मद्रेषु भवो** मद्रकः। मद्र देश में रहनेवाला-मद्रक। (वृजि) वृजिषु **भवो** वृजिकः। वृजि देश में रहनेवाला-वृजिक।*

सिद्धि-मद्रकः। मद्र+ङि+कन्। मद्र+क। मद्रक+सु। मद्रकः।

यहां 'मद्र' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वृजिकः।

विशेष—*(१) मद्र-मद्र जनपद प्राचीन वाहीक का उत्तरी भाग था। इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान-स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान-अयक) नदी पर स्थित है। यह छोटी नदी जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट के पास से होती हुई वर्षा ऋतु में चनाब से मिलती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६७)।*

(२) वृजि-बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश वृजि कहलाता था, जहां विदेह लिच्छवियों का राज्य था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७४)।

अण्—

(४१) कोपधादण्।१३१।

प०वि०-क उपधात् ५।१ अण् १।१।

स०-क उपधायां यस्य तत् कोपधम्, तस्मात्-कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कोपधात् शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः ककारोपधात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ऋषिकेषु जात आर्षिकः। महिषिकेषु जातो माहिषिकः। **इक्ष्वाकुषु** जात **ऐक्ष्वाकः**।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कोपधात्) ककार-उपधावान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**ऋषिकेषु जात आर्षिकः।** ऋषिक देश में उत्पन्न हुआ-आर्षिक। **महिषिकेषु जातो माहिषिकः।** महिषिक देश में उत्पन्न हुआ-माहिषिक। **इक्ष्वाकुषु जात ऐक्ष्वाकः।** इक्ष्वाकु क्षत्रियों के देश में उत्पन्न हुआ-ऐक्ष्वाक।*

*सिद्धि-(१) **आर्षिकः।** ऋषिक+सुप्+अण्। आर्षिक्+अ। आर्षिक+सु। आर्षिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'ऋषिक' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माहिषिकः।***

*(२) **ऐक्ष्वाकः।** यहां 'इक्ष्वाकु' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। 'दाण्डिनायनहास्तिनायन०' (६।४।१७४) से 'इक्ष्वाकु' शब्द के उकार का लोप निपातित है।*

अण्-

(४२) कच्छादिभ्यश्च।१३२।

प०वि०-कच्छ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-कच्छ आदिर्येषां ते कच्छादयः, तेभ्यः-कच्छादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कच्छादिभ्यश्च शेषेऽण्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कच्छे जातः काच्छः। सिन्धौ जातः सैन्धवः। वर्णौ जातो वार्णवः।

कच्छ। सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। कुरु। रङ्कु। अणु। अण्ड। खण्ड। द्वीप। अनूप। अजवाह। विज्ञापक। कुलून। इति कच्छादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कच्छादिभ्यः) कच्छ आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**कच्छे जातः काच्छः।** कच्छ देश में उत्पन्न हुआ-काच्छ। **सिन्धौ जातः सैन्धवः।** सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ-सैन्धव। **वर्णौ जातो वार्णवः।** वर्णु देश में उत्पन्न हुआ-वार्णव।*

सिद्धि-(१) काच्छः । कच्छ+ङि+अण् । काच्छ्+अ । काच्छ+सु । काच्छः ।

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'कच्छ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) सैन्धवः । यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-वार्णवः ।

***विशेष**-(१) कच्छ-सिन्ध के ठीक दक्षिण में कच्छ जनपद है।*

(२) सिन्धु-सिन्धु नद के पूर्व में सिन्ध सागर दुआब का पुराना नाम सिन्धु था।

(३) वर्णु-सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में बन्नू की दून है। इसका वैदिक नाम 'क्रमु' था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी 'कुर्रम' कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ६६, ५०, ५१)।

वुञ्-

(४३) मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ।१३३।

प०वि०-मुनष्य-तत्स्थयोः ७।२ वुञ् १।१।

स०-तस्मिन् तिष्ठतीति तत्स्थम्। मनुष्यश्च तत्स्थं च ते मनुष्यतत्स्थे, तयोः-मनुष्यतत्स्थयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, कच्छादिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे कच्छादिभ्यः शेषे वुञ् मनुष्यतत्स्थयोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यः कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, मनुष्ये तत्स्थे चाभिधेये।

उदा०-**(मनुष्ये)** कच्छे जातः काच्छको मनुष्यः। **(तत्स्थे)** कच्छे जातं काच्छकम्। काच्छकमस्य हसितम्, काच्छकमस्य जल्पितम्। काच्छिका चूडा। **(मनुष्ये)** सिन्धौ जातः सैन्धवको मनुष्यः। **(तत्स्थे)** सिन्धौ जातं सैन्धवकम्। सैन्धवकमस्य हसितम्, सैन्धवकमस्य जल्पितम्। सैन्धविका चूडा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (कच्छादिभ्यः) कच्छ आदि प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (मनुष्यतत्स्थयोः) यदि वहां मनुष्य और मनुष्यस्थ क्रिया आदि अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(मनुष्य) कच्छे जातः काच्छको मनुष्यः। कच्छ देश में उत्पन्न हुआ-काच्छक मनुष्य। (तत्स्थ) कच्छे जातं काच्छकम्। काच्छकमस्य हसितम्। इस मनुष्य का हंसना काच्छक है अर्थात् कच्छदेशीय मनुष्य जैसा है। काच्छकमस्य जल्पितम्। इस मनुष्य का बोलना काच्छक है अर्थात् कच्छदेशीय मनुष्य जैसा है। काच्छिका चूडा। इस नारी की चूडा (चुण्डा) काच्छिका है अर्थात् कच्छदेशीय नारी की जैसी है। (मनुष्य) सिन्धौ जातः सैन्धवको मनुष्यः। सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ-सैन्धवक मनुष्य। (तत्स्थ) सिन्धौ जातं सैन्धवकम्। सैन्धवकमस्य हसितम्। उस मनुष्य का हंसना सैन्धवक है अर्थात् सिन्धुदेशीय मनुष्य जैसा है। सैन्धकमस्य जल्पितम्। इस मनुष्य का बोलना सैन्धवक है अर्थात् सिन्धुदेशीय मनुष्य जैसा है। सैन्धविका चूडा। इस नारी की चूडा सैन्धविका है अर्थात् सिन्धुदेशीय नारी की जैसी है।

सिद्धि-(१) काच्छकः। कच्छ+ङि+वुञ्। काच्छ्+अक। काच्छक+सु। काच्छकः।

यहां सप्तमी-समर्थ देशवाची कच्छ शब्द से शेष अर्थों में मनुष्य तथा तत्स्थ क्रिया-आदि अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(२) सैन्धवकः। यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'वुञ्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

वुञ्-

(४४) अपदातौ साल्वात्।१३४।

प०वि-अपदातौ ७।१ साल्वात् ५।१।

स०-न पदातिरिति अपदातिः, तस्मिन्-अपदातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, देशे, मनुष्यतत्स्थयोः, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे साल्वात् शेषे वुञ् अपदातौ मनुष्यतत्स्थयोः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः साल्वात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययौ भवति, मनुष्ये पदातिवर्जिते तत्स्थे चाभिधेये।

उदा०-(मनुष्ये) साल्वे जातः साल्वको मनुष्यः। साल्व देश में उत्पन्न हुआ-साल्वक मनुष्य। **(तत्स्थे)** साल्वे जातं साल्वकम्। साल्वकमस्य हसितम्। साल्वकमस्य जल्पितम्। अपदाताविति किम् ? साल्वः पदातिर्गच्छति।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (साल्वात्) साल्व प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (अपदातौ, मनुष्यतत्स्थयोः) यदि वहाँ मनुष्य और पैदल चलना को छोड़कर मनुष्यस्थ क्रिया आदि अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(मनुष्य) साल्वे जातः **साल्वको मनुष्यः।** साल्व देश में उत्पन्न हुआ-साल्वक मनुष्य। (तत्स्थ) साल्वे जातं साल्वकम्। **साल्वकमस्य हसितम्।** इस मनुष्य का हंसना साल्वक है अर्थात् साल्वदेशीय मनुष्य जैसा है। **साल्वकमस्य जल्पितम्।** इस मनुष्य का बोलना साल्वक है अर्थात् साल्वदेशीय मनुष्य जैसा है।*

*'अपदाति' का कथन इसलिये है कि यहां 'वुञ्' प्रत्यय न हो-**साल्वः पदातिर्गच्छति।** यह साल्व देश में उत्पन्न हुआ मनुष्य पैदल जा रहा है। यहां साल्व शब्द का कच्छादि गण में पाठ होने से **'कच्छादिभ्यश्च'** (४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय होता है।*

*सिद्धि-**साल्वकः।** साल्व+ङि+वुञ्। साल्व्+अक। साल्वक+सु। साल्वकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'साल्व' शब्द से शेष अर्थों में मनुष्य तथा पदाति-वर्जित मनुष्यस्थ क्रिया आदि अभिधेय में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

***विशेष**—साल्व-जयपुर-बीकानेर प्रदेश का प्राचीन नाम 'साल्व' जनपद है।*

वुञ्–

(४५) गोयवाग्वोश्च।१३५।

प०वि०-गो-यवाग्वोः ७।२ **च** अव्ययपदम्।

स०-गौश्च यवागूश्च ते **गोयवाग्वौ**, तयोः-गोयवाग्वोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, वुञ्, साल्वात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे साल्वात् शेषे वुञ् गोयवाग्वोश्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनः साल्वात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु वुञ् प्रत्ययो भवति, गवि यवागवि चार्थेऽभिधेये।

उदा०-(**गौः**) साल्वे जातः साल्वको गौः। (**यवागूः**) साल्वे जाता साल्विका यवागूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (साल्वात्) साल्व प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (गोयवाग्वोः) यदि वहां गौः=बैल और यवागू=लापसी (राबड़ी) अर्थ (च) भी अभिधेय हो।*

उदा०-(गौ) साल्वे जातः साल्वको गौः। साल्व देश में उत्पन्न गौ=बैल साल्वक। साल्व देश के बैल प्रसिद्ध हैं। (यवागू) साल्वे जाता साल्विका यवागूः। साल्व देश में बनी साल्विका यवागू=लापसी (राबड़ी)। साल्व देश (जयपुर-बीकानेर) की राबड़ी प्रसिद्ध है।

सिद्धि-(१) साल्वकः। इस शब्द की सिद्धि पूर्ववत् है।

(२) साल्विकाः। यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात्कात्०' (७।३।४४) से इत्त्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

छः-

(४६) गर्त्तोत्तरपदाच्छः।१३६।

प०वि०-गर्त-उत्तरपदात् ५।१ छः १।१।

स०-गर्त उत्तरपदं यस्य तद् गर्त्तोत्तरपदम्, तस्मात्-गर्त्तोत्तरपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे गर्त्तोत्तरपदात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो गर्त्तोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-वृकगर्त्ते जातो वृकगर्त्तीयः। शृगालगर्त्ते जातः शृगालगर्त्तीयः। श्वाविद्गर्त्ते जातः श्वाविद्गर्त्तीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (गर्त्तोत्तरपदात्) गर्त्त-उत्तरपदवान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-वृकगर्त्ते जातो वृकगर्त्तीयः। वाहीक देश (पंजाब) के 'वृकगर्त्त' नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-वृकगर्त्तीय। शृगालगर्त्ते जातः शृगालगर्त्तीयः। वाहीक देश के शृगालगर्त्त नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-शृगालगर्त्तीय। श्वाविद्गर्त्ते जातः श्वाविद्गर्त्तीयः। वाहीक देश के श्वाविद्गर्त्त नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-श्वाविद्गर्त्तीय।

सिद्धि-वृकगर्त्तीयः। वृकगर्त्त+ङि+छ। वृकगर्त्त्+ईय। वृकगर्त्तीय+सु। वृकगर्त्तीयः।

यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, गर्त्त-उत्तरपदवान् 'वृकगर्त्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और 'यस्येति च' (२।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-शृगालगर्त्तीयः, श्वाविद्गर्त्तीयः। श्वाविद्=कुत्ते मारनेवाला।

छः–

(४७) गहादिभ्यश्च।१३७।

प०वि०–गह-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–गह आदिर्येषां ते गहादयः, तेभ्यः-गहादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०देशे गहादिभ्यश्च शेषे छः।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यो देशवाचिभ्यो गहादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यश्च शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति। अत्र देशाधिकारेषु सम्भवापेक्ष देशविशेषणं भवति, न सर्वेषाम्।

उदा०–गहे भवो गहीयः। अन्तःस्थे भवोऽन्तःस्थीयः।

गह। अन्तःस्थ। सम। विषम।। मध्यमध्यमं चाण् चरणे। उत्तम अङ्ग। बङ्ग। मगध। पूर्वपक्ष। अपरपक्ष। अधमशाख। उत्तमशाख। समानशाख। एकग्राम। एकवृक्ष। एकपलाश। इष्वग्र। इष्वनीक। अवस्यन्दी। अवस्कन्द। कामप्रस्थ। खाडायनि। खाण्डायनी। कावेरणि। कामवेरणि। शैशिरि। शौङ्गि। आसुरि। आहिंसि। आमित्रि। व्याडि। बैदजि। भौजि। आढ्यश्वि। आनृशंसि। सौवि। पारकि। अग्निशर्मन्। देवशर्मन्। श्रौति। आरटकि। वाल्मीकि। क्षेमवृद्धिन्। उत्तर। अन्तर।। सुपार्श्वतसोर्लोपः।। जनपरस्य कुक् च।। देवस्य च।। वेणुकादिभ्यश्छण्।। इति गहादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (गहादिभ्यः) गह आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-गहे **भवो** गहीयः। गहन वन-देश में रहनेवाला-गहीय। **अन्तःस्थे भवोऽन्तःस्थीयः।** अन्तःस्थ वर्णों में होनेवाला-अन्तःस्थीय (य र ल व)।*

*सिद्धि-**गहीयः।** गह+ङि+छ। गह्+ईय। गहीय+सु। गहीयः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची 'गह' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-**'अन्तःस्थीयः'** आदि।*

विशेष—*यहां गहादिगण के शब्दों के प्रत्यय-विधि में यथासम्भव देश-अर्थ का सम्बन्ध होता है, सबके साथ नहीं।*

छः—

(४८) प्राचां कटादेः।१३८।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ कट-आदेः ५।१।

स०-कट आदिर्यस्य स कटादिः, तस्मात्-कटादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०प्राचां देशे कटादेः शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् प्राग्देशवाचिनः कटादेः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कटनगरे जातः कटनगरीयः। कटघोषे जातः कटघोषीयः। कटपल्वले जातः कटपल्वलीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (प्राचां देशे) प्राक्देशवाची (कटादेः) कट-आदिमान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-कटनगरे जातः **कटनगरीयः**। प्राक्-देशीय कटनगर में उत्पन्न हुआ-कटनगरीय। **कटघोषे जातः कटघोषीयः**। प्राक्-देशीय 'कटघोष' नामक अहीर-गामड़ी में उत्पन्न हुआ-कटघोषीय। **कटपल्वले जातः कटपल्वलीयः**। प्राक्-देशीय कटपल्वल नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ-कटपल्वलीय।*

*सिद्धि-**कटनगरीयः**। कटनगर+ङि+छ। कटनगर्+ईय। कटनगरीय+सु। कटनगरीयः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, प्राक्-देशवाची, कट-आदिमान् 'कटनगर' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कटघोषीयः**, **कटपल्वलीयः**।*

छः (कः)—

(४६) राज्ञः क च।१३६।

प०वि०-राज्ञः ५।१ (आदेशविषये ६।१) क १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, छ इति चानुवर्तते । 'देशे' इति चार्थासम्भवान्नानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव० राज्ञ: शेषे छ: कश्च।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् राज्ञ: प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छ:-प्रत्ययो भवति, कश्चान्तादेशो भवति।

उदा०-राज्ञ इदं राजकीयम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (राज्ञ:) राजन् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छ:) प्रत्यय होता है (च) और राजन् शब्द से अन्त्य न् के स्थान में (क:) क्-आदेश होता है।*

*उदा०-**राज्ञ इदं राजकीयम्।** जो राजा का है यह-राजकीय (सरकारी)।*

*सिद्धि-**राजकीयम्।** राजन्+ङस्+छ। राजन्+ईय। राजक्+ईय। राजकीय+सु। राजकीयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय और राजन् के अन्त्य 'न्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

छ:-

(५०) वृद्धादकेकान्तखोपधात्।१४०।

प०वि०-वृद्धात् ५।१ अक-इकान्त-खोपधात् ५।१।

स०-अकश्च इकश्च तौ अकेकौ, अकेकावन्ते यस्य तत्-अकेकान्तम्। ख उपधायां यस्य तत् खोपधम्। अकेकान्तं च खोपधं च एतयो: समाहार:-अकेकान्तखोपधम्, तस्मात्-अकेकान्तखोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-यथासम्भव०देशे वृद्धाद् अकेकान्तखोपधात् शेषे छ:।

अर्थ:-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकाद् अकान्ताद् इकान्तात् खकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अकान्तात्) आरीहणके जातं आरीहणकीयम्। द्रौघणके जातं द्रौघणकीयम्। **(इकान्तात्)** आश्वपथिके जातं आश्वपथिकीयम्।

शाल्मलिके जातं शाल्मलिकीयम्। **(खोपधात्)** कौटिशिखे जातं कौटिशिखीयम्। आयोमुखे जातं आयोमुखीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (अकेकान्तखोपधात्) अकान्त, इकान्त और खकार उपधावान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(अकान्त) आरीहणके जातं **आरीहणकीयम्।** आरीहणक देश में उत्पन्न-आरीहणकीय। द्रौघणके जातं **द्रौघणकीयम्।** द्रौघणक देश में उत्पन्न-द्रौघणकीय। **(इकान्त)** आश्वपथिके जातं **आश्वपथिकीयम्।** आश्वपथिक देश में उत्पन्न-आश्वपथिकीय। शाल्मलिके जातं **शाल्मलिकीयम्।** शाल्मलिक देश में उत्पन्न-शाल्मलिकीय। **(खोपध)** कौटिशिखे जातं **कौटिशिखीयम्।** कौटिशिख देश में उत्पन्न-कौटिशिखीय। आयोमुखे जातं **आयोमुखीयम्।** आयोमुख देश में उत्पन्न-आयोमुखीय।*

*सिद्धि-**आरीहणकीयम्।** यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची, वृद्धसंज्ञक अकान्त 'आरीहणक' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-**द्रौघणकीयम्** आदि।*

छः--

(५१) कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्।१४१।

प०वि०-कन्था-पलद-नगर-ग्राम-ह्रदोत्तरपदात् ५।१।

स०-कन्था च पलदं च नगरं च ग्रामश्च ह्रदश्च एतेषां समाहारः कन्था०ह्रदम्, कन्था०ह्रदमुत्तरपदं यस्य तत् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदम्, तस्मात्-कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, देशे, वृद्धात्, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०देशे वृद्धात् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् देशवाचिनो वृद्धसंज्ञकात् कन्था-पलद-नगर-ग्राम-ह्रदोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कन्था) दाक्षिकन्थे जातं दाक्षिकन्थीयम्। माहकिकन्थे जातं माहकिकन्थीयम्। **(पलदम्)** दाक्षिपलदे जातं **दाक्षिपलदीयम्।**

माहकिपलदे जातं माहकिपलदीयम्। **(नगरम्)** दाक्षिनगरे जातं दाक्षिनगरीयम्। माहकिनगरे जातं माहकिनगरीयम्। **(ग्रामः)** दाक्षिग्रामे जातं दाक्षिग्रामीयम्। माहकिग्रामे जातं माहकिग्रामीयम्। **(ह्रदः)** दाक्षिह्रदे जातं दाक्षिह्रदीयम्। माहकिह्रदे जातं माहकिह्रदीयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (देशे) देशवाची (वृद्धात्) वृद्धसंज्ञक (कन्था०उत्तरपदात्) कन्था, पलद, नगर, ग्राम, ह्रद उत्तरपदवान् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-संस्कृत-भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-(कन्था) दाक्षिकन्थ देश में उत्पन्न-दाक्षिकन्थीय। माहकिकन्थ देश में उत्पन्न-माहकिकन्थीय। (पलद) दाक्षिपलद देश में उत्पन्न-दाक्षिपलदीय। माहकिपलद में उत्पन्न-माहकिपलदीय। (ग्राम) दाक्षिग्राम में उत्पन्न-दाक्षिग्रामीय। माहकि ग्राम में उत्पन्न-माहकिग्रामीय। (ह्रद) दाक्षिह्रद में उत्पन्न-दाक्षिह्रदीय। गाहकिह्रद गें उत्पन्न-माहकिह्रदीय।

***सिद्धि-दाक्षिकन्थीय।** यहां सप्तमी-समर्थ, देशवाची वृद्धसंज्ञक कन्था-उत्तरपदवान् 'दाक्षिकन्थ' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'माहकिकन्थीयः'** आदि।*

***विशेष**--(१) कन्था-मूल में यह शक भाषा का शब्द था, जिसमें 'कन्थ' का अर्थ नगर होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।*

(२) पलद-अथर्ववेद (९।३।५,७१) के अनुसार पलद का अर्थ फूंस या पयार होता था। इससे ज्ञात होता है कि सरपत के झुंडों के लिए पलद शब्द लोक में प्रचलित था और जो गांव उनके पास बसाये जाते थे उनके नाम में पलद-उत्तरपद का प्रयोग होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

(३) ह्रद-पानी की नीची दह के पास बसे हुये गांवों के नामों में ह्रद जुड़ता था, जैसे-दाक्षिह्रद (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८०)।

छः--

(५२) पर्वताच्च।१४२।

प०वि०-पर्वतात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते। देशे इति चासम्भवान्न सम्बध्यते।

अन्वयः-यथासम्भव०पर्वताच्च शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर्वतात् प्रातिपदिकाच्च **शेषेष्वर्थेषु** छः **प्रत्ययो भवति।**

उदा०-पर्वते भवः पर्वतीयो राजा। पर्वतीयः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (पर्वतात्) पर्वत प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पर्वते भवः पर्वतीयो राजा।** पर्वत पर रहनेवाला पर्वतीय राजा। **पर्वतीयः पुरुषः।** पर्वत पर रहनेवाला पुरुष।*

*सिद्धि-**पर्वतीय।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छ-विकल्पः-

(५३) विभाषाऽमनुष्ये।१४३।

प०वि०-विभाषा १।१ अमनुष्ये ७।१।

स०-न मनुष्य इति अमनुष्यः, तस्मिन्-अमनुष्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, छः, पर्वताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०पर्वतात् शेषे विभाषा छोऽमनुष्ये।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर्वतात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन छः प्रत्ययो भवति, अमनुष्येऽभिधेये। पक्षे च अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्वते जातानि पर्वतीयानि फलानि। पर्वते जातं पर्वतीयमुदकम् (छः)। पार्वतानि फलानि। पार्वतमुदकम् (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (पर्वतात्) पर्वत प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (छः) छ प्रत्यय होता है (अमनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय न हो। पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**पर्वते जातानि पर्वतीयानि फलानि।** पर्वत पर उत्पन्न हुये-पर्वतीय फल। **पर्वते जातं पर्वतीयमुदकम्।** पर्वत पर उत्पन्न हुआ-पर्वतीय जल (छः)। **पार्वतानि फलानि।** पर्वत पर उत्पन्न हुये-पार्वत फल। **पार्वतमुदकम्।** पर्वत पर उत्पन्न हुआ-पार्वत जल (अण्)।*

*सिद्धि (१) **पर्वतीयम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **पार्वतम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पर्वत' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*जहां मनुष्य अर्थ अभिधेय होता है वहां पूर्वोक्त 'पर्वताच्च' (४।२।१४३) से छ प्रत्यय ही होता है-**पर्वतीयो मनुष्यः।***

छः-

(५४) कृकणपर्णाद् भारद्वाजे।१४४।

प०वि०-कृकण-पर्णात् ५।१ भारद्वाजे ७।१।

स०-कृकणं च पर्णं च एतयोः समाहारः कृकणपर्णम्, तस्मात्-कृकणपर्णात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, देशे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०भारद्वाजे देशे कृकणपर्णात् शेषे छः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां भारद्वाज-देशवाचिभ्यां कृकण-पर्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति। अत्र देशप्रकरणे भारद्वाजशब्दो देशवाचको गृह्यते न तु गोत्रवाचकः।

उदा०-(कृकणम्) कृकणे जातं कृकणीयम्। **(पर्णः)** पर्णे जातं पर्णीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भवविभक्तिसमर्थ (भारद्वाजे देशे) भारद्वाज देशवाची (कृकणपर्णात्) कृकण, पर्ण प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है। यहां देश-प्रकरण में देशवाची 'भारद्वाज' शब्द का ग्रहण किया जाता है; गोत्रवाची का नहीं।*

*उदा०-**(कृकण) कृकणे जातं कृकणीयम्।** भारद्वाज देशीय 'कृकण' नगर में उत्पन्न-कृकणीय। **(पर्ण) पर्णे जातं पर्णीयम्।** भारद्वाज देशीय पर्ण नगर में उत्पन्न-पर्णीय।*

*सिद्धि-**कृकणीयम्।** यहां सप्तमी-समर्थ, भारद्वाज-देशवाची 'कृकण' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पर्णीयम्।***

विशेष—*पारजीटर ने भारद्वाज देश की पहचान गढ़वाल प्रदेश से की है (मार्कण्डेय पुराण का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३२०) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ७०)।*

इति पूर्वशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः

उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्

खञ्+छ-प्रत्ययविकल्पः--

(५५) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च।१।

प०वि०-युष्मद्-अस्मदोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, खञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०युष्मदस्मद्भ्यां शेषेऽन्यतरस्यां खञ् छश्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां युष्मदस्मद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन खञ् छश्च प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(युस्मद्) युष्मासु जातो यौष्माकीणः (खञ्)। युष्मदीयः (छः)। यौष्माकः (अण्)। **(अस्मद्)** अस्मासु जात आस्माकीनः (खञ्)। अस्मदीयः (छः)। आस्माकः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (युस्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् प्रतिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खञ्) खञ् (च) और छ प्रत्यय होते हैं और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(युस्मद्) युष्मासु जातो **यौष्माकीणः (खञ्)**। तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माकीण। **युष्मदीयः (छः)**। तुम में उत्पन्न हुआ-युष्मदीय। **यौष्माकः (अण्)**। तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माक। **(अस्मद्) अस्मासु जात आस्माकीनः (खञ्)**। हम में उत्पन्न हुआ-आस्माकीन। **अस्मदीयः (छः)**। हम में उत्पन्न हुआ-अस्मदीय। **आस्माकः (अण्)**। हम में उत्पन्न हुआ-आस्माक।*

*सिद्धि-**यौष्माकीण:**। युष्मद्+सुप्+खञ्। यौष्माक्+ईन। यौष्माकीण+सु। यौष्माकीण:।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से युष्मद् के स्थान में 'युष्माक' आदेश होता है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में ईन् आदेश, '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि, '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(२) **युष्मदीय:**। यहां 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **यौष्माक:**। युष्मद्+सुप्+अण्। यौष्माक्+अ। यौष्माक+सु। यौष्माक:।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है। '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से युष्मद् के स्थान में 'युष्माक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से खञ्, छ और अण्-प्रत्यय करने पर-आस्माकीन:, अस्मदीय:, आस्माक:। खञ् और अण् प्रत्यय में '**तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**' (४।३।२) से अस्मद् के स्थान में 'अस्माक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

युष्माक-अस्माकादेशौ-

(५६) तस्मिन्नणि च युष्माकाष्माकौ।२।

प०वि०-तस्मिन् ७।१ अणि ७।१ च अव्ययपदम्, युष्माक-अस्माकौ १।२।

स०-युष्माकश्च अस्माकश्च तौ-युष्माकास्माकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-युष्मदस्मदो:, खञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्मिन्नणि खञि च युष्मदस्मदोर्युष्माकास्माकौ।

अर्थ:-तस्मिन्नणि खञि च प्रत्यये परतो युष्मदस्मदो: स्थाने यथासंख्यं युष्माकास्माकावादेशौ भवत:।

उदा०-**(युस्मद्)** युस्मासु जातो यौष्माक: (अण्)। यौष्माकीण: (खञ्)। **(अस्मद्)** अस्मासु जात आस्माक: (अण्)। आस्माकीन: (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मिन्) उस (अणि) अण् प्रत्यय (च) और खञ् प्रत्यय के परे होने पर (युस्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् के स्थान में यथासंख्य (युष्माकास्माकौ) युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं।*

उदा०-(युस्मद्) ***युस्मासु जातो यौष्माकः (अण्)। यौष्माकीणः (खञ्)।*** *तुम में उत्पन्न हुआ-यौष्माक, यौष्माकीण।* ***(अस्मद्) अस्मासु जात आस्माकः (अण्)। आस्माकीनः*** *(खञ्)। हम में उत्पन्न हुआ-आस्माक, आस्माकीन।*

सिद्धि- ***यौष्माकः, यौष्माकीणः, आस्माकः, आस्माकीनः*** *इन पदों की सिद्धि पूर्व सूत्र के प्रवचन में देख लेवें।*

तवक-ममकादेशौ—

(५७) तवकममकावेकवचने।३।

प०वि०-तवक-ममकौ १।२ एकवचने ७।१।

स०-तवकश्च ममकश्च तौ तवकममकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-युष्मदस्मदोः, खञ्, तस्मिन्, अणि च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मिन्नणि च एकवचने युष्मदस्मदोस्तवकममकौ।

अर्थः-तस्मिन्नणि खञि च प्रत्यये परत एकवचनपरयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने यथासंख्यं तवकममकावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) तव इदं तावकम् (अण्)। तावकीनम् (खञ्)। **(अस्मद्)** मम इदं मामकम् (अण्)। मामकीनम् (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मिन्) उस (अणि) अण् (च) और (खञ्) खञ् प्रत्यय के परे होने पर (एकवचने) एकवचन-परक (युष्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् के स्थान में यथासंख्य (तवकममकौ) तवक और ममक आदेश होते हैं।*

उदा०-(युष्मद्) ***तव इदं तावकम् (अण्)। तावकीनम् (खञ्)।*** *तेरा यह-तावक। तेरा यह-तावकीन।* ***(अस्मद्) मम इदं मामकम् (अण्)। मामकीनम् (खञ्)।*** *मेरा यह-मामक। मेरा यह-मामकीन।*

सिद्धि-(१) तावकम्। युष्मद्+ङस्+अण्। तावक्+अ। तावक+सु। तावकम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'युष्मद्' शब्द से शेष अर्थों में 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' (४।३।१) से 'अण्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से एकवचन में 'युष्मद्' के स्थान में 'तवक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) तावकीनम्। *यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'खञ्' प्रत्यय और 'युष्मद्' के स्थान में इस सूत्र से 'तवक' आदेश है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के 'अकार' का लोप होता है।*

ऐसे ही-'अस्मद्' के स्थान में 'ममक' आदेश होकर-मामकम्, मामकीनम्।

यत्–

(५८) अर्धाद् यत्।४।

प०वि०–अर्धात् ५।१ यत् १।१।

अनु०–शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०अर्धात् शेषे यत्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अर्धे भवम् अर्ध्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**अर्धे भवम् अर्ध्यम्।** आधे में रहनेवाला-अर्ध्य।*

सिद्धि-अर्ध्यम्। *अर्ध+ङि+यत्। अर्ध्+य। अर्ध्य+सु। अर्ध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

यत्–

(५९) परावराधमोत्तमपूर्वाच्च।५।

प०वि०–पर-अवर-अधम-उत्तमपूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–परश्च अवरश्च अधमश्च उत्तमश्च ते परावराधमोत्तमाः, परावराधरोत्तमाः पूर्वे यस्य तत् परावराधमोत्तमपूर्वम्, तस्मात्-परावराध-मोत्तमपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहिः)।

अनु०–शेषे, अर्धात्, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०परावराधमोत्तमपूर्वाच्च अर्धात् शेषे यत्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् पर-अवर-अधम-उत्तमपूर्वाच्च अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**परः**) परार्धे भवं परार्ध्यम्। (**अवरः**) अवरार्धे भवम् अवरार्ध्यम्। (**अधमः**) अधमार्धे भवम् अधमार्ध्यम्। (**उत्तमः**) उत्तमार्धे भवम् उत्तमार्ध्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (परावराधमोत्तमपूर्वात्) पर, अवर, अधम, उत्तम पूर्वक (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(पर) **परार्धे भवं परार्ध्यम्।** परवर्ती अर्ध भाग में रहनेवाला-परार्ध्य। (अवर) **अवरार्धे भवम् अवरार्ध्यम्।** अवरवर्ती अर्धभाग में रहनेवाला-अवरार्ध्य। (**अधम**) **अधमार्धे भवम् अधमार्ध्यम्।** अधोवर्ती अर्धभाग में रहनेवाला-अधमार्ध्य। (**उत्तम**) **उत्तमार्धे भवम् उत्तमार्ध्यम्।** ऊर्ध्ववर्ती अर्धभाग में रहनेवाला उत्तमार्ध्य।*

*सिद्धि-**परार्ध्यम्।** पर+अर्ध+ङि+यत्। परार्ध्+य। परार्ध्य+सु। परार्ध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ पर-पूर्वक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अवरार्ध्यम्** आदि।*

ठञ्+यत्-

(६०) दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च।६।

प०वि०-दिक्-पूर्वपदात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-दिक्पूर्वपदं यस्य तद् दिक्पूर्वपदम्, तस्मात्-दिक्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-शेषे, अर्धात्, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदाद् अर्धात् शेषे ठञ् यच्च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् अर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वार्धे भवं पौर्वार्धिकम् (ठञ्)। पूर्वार्ध्यम् (यत्)। दक्षिणार्धे भवं दाक्षिणार्धिकम् (ठञ्)। दक्षिणार्ध्यम् (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवान् (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-पूर्वार्धे भवं ***पौवार्धिकम्*** *(ठञ्)।* ***पूर्वार्ध्यम्*** *(यत्)। पूर्व दिशा के अर्धभाग में रहनेवाला-पौवार्धिक वा पूर्वार्ध्य। दक्षिणार्धे भवं* ***दाक्षिणार्धिकम्*** *(ठञ्)।* ***दक्षिणार्ध्यम्*** *(यत्)। दक्षिण दिशा के अर्धभाग में रहनेवाला-दाक्षिणार्धिक वा दक्षिणार्ध्य।*

सिद्धि-(१) ***पौवार्धिकम्।*** *पूर्व+अर्ध+ङि+ठञ्। पौवार्ध्+इक। पौवार्धिक+सु। पौवार्धिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्वपदपूर्वक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से ठ् के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही- ***दाक्षिणार्धिकम्।***

(२) ***पूर्वार्ध्यम्।*** *यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची 'पूर्व' शब्द पूर्वक 'अर्ध' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-* ***दक्षिणार्ध्यम्।***

अञ्+ठञ्-

(६१) ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ।७।

प०वि०-ग्राम-जनपदैकदेशात् ५।१ अञ्-ठञौ १।२।

स०-ग्रामश्च जनपदश्च तौ ग्रामजनपदौ, तयोः-ग्रामजनपदयोः, ग्रामजनपदयोरेकदेश इति ग्रामजनपदैकदेशः, तस्मात्-ग्रामजनपदैकदेशात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित षष्ठीतत्पुरुषः)। अञ् च ठञ् च तौ-अञ्ठञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, अर्धात्, दिक्पूर्वपदाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०दिक्पूर्वपदाद् ग्रामजनपदैकदेशाद् अर्धात् शेषेऽञ्ठञौ।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् दिक्पूर्वपदाद् ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्चाऽर्धात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अञ्-ठञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-इमे खल्वस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौवार्धाः (अञ्)। पौवार्धिकाः (ठञ्)। दाक्षिणार्धाः (अञ्)। दाक्षिणार्धिकाः (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथसम्भव-विभक्ति-समर्थ (दिक्पूर्वपदात्) दिशावाची पूर्वपदवान् (ग्रामजनपदैकदेशात्) ग्राम-एकदेशवाची और जनपद-एकदेशवाची (अर्धात्) अर्ध प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अञ्ठञौ) अञ् और ठञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-इमे खल्वस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा **पौर्वार्धाः** (अञ्)। **पौर्वार्धिकाः** (ठञ्)। ये लोग हमारे गांव के वा जनपद=राज्य के पूर्व दिशा के अर्धभाग में रहनेवाले-पौर्वार्ध, पौर्वार्धिक। **दाक्षिणार्धाः** (अञ्)। **दाक्षिणार्धिकाः** (ठञ्)। ये लोग हमारे गांव के वा जनपद=राज्य की दक्षिण दिशा के अर्धभाग में रहनेवाले-दाक्षिणार्ध, दाक्षिणार्धिक।*

*सिद्धि-(१) **पौर्वार्धाः**। पूर्व+अर्ध+ङि+अञ्। पौर्वार्ध+अ। पौवार्ध+जस्। पौर्वार्धाः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, दिशावाची पूर्व शब्द पूर्वक, ग्राम वा जनपद के वाचक 'अर्ध' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**दाक्षिणार्धाः**।*

*(२) **पौर्वार्धिकाः**। यहां पूर्वोक्त 'पूर्वार्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश तथा पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**दाक्षिणार्धिकाः**।*

मः-

(६२) मध्यान्मः।८।

प०वि०-मध्यात् ५।१ मः १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०मध्यात् शेषे मः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् मध्यात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु मः प्रत्ययो भवति।

उदा०-मध्ये भवो मध्यमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथसम्भव-विभक्ति-समर्थ (मध्यात्) मध्य प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (मः) म प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**मध्ये भवो मध्यमः**। मध्य में होनेवाला-मध्यम।*

*सिद्धि-**मध्यमः**। मध्य+ङि+म। मध्यम+सु। मध्यमः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'मध्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'म' प्रत्यय है।

अः–

(६३) असाम्प्रतिके।६।

प०वि०-अ १।१ (सु-लुक्) साम्प्रतिके ७।१।

अनु०-शेषे, मध्याद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०मध्यात् साम्प्रतिके शेषे अः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् मध्यात् प्रातिपदिकात् साम्प्रतिके जातादौ शेषेऽर्थे अः प्रत्ययो भवति। साम्प्रतिकम्=न्याय्यम्, युक्तम्, उचितम्, सममित्युच्यते।

उदा०-मध्ये जातं मध्यम्। नातिदीर्घं नातिह्रस्वं मध्यं काष्ठम्। नात्युत्कृष्टो नात्यवकृष्टो मध्यो वैयाकरणः। मध्या नारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (मध्यात्) मध्य प्रातिपदिक से (साम्प्रतिके) उचित (शेषे) जातादि शेष अर्थों में (अः) अ प्रत्यय होता है। साम्प्रतिक शब्द का अर्थ न्याय्य, युक्त, उचित एवं सम है।*

*उदा०-**मध्ये जातं मध्यम्। नातिदीर्घं नातिह्रस्वं मध्यं काष्ठम्।** न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा यह मध्य काष्ठ (लकड़ी) है। **नात्युत्कृष्टो नात्यवकृष्टो मध्यो वैयाकरणः।** न बहुत बढ़िया और न बहुत घटिया यह मध्य वैयाकरण है। **मध्या नारी।** न बहुत सुरूप और न बहुत कुरूप यह मध्या नारी है।*

*सिद्धि-**मध्यम्।** मध्य+ङि+अ। मध्य्+अ। मध्य+सु। मध्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'मध्य' शब्द से साम्प्रतिक जातादि शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

यञ्–

(६४) द्वीपादनुसमुद्रं यञ्।१०।

प०वि०-द्वीपात् ५।१ अनुसमुद्रम् अव्ययपदम्, यञ् १।१।

स०-समुद्रं समया इति अनुसमुद्रम्, अनुर्यत्समया (२।१।१५) इत्यव्ययीभावसमासः।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०अनुसमुद्रं द्वीपात् शेषे यञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाद् अनुसमुद्रम्=समुद्रसमीपे वर्तमानाद् द्वीपात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु यञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वीपे जातं द्वैप्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (अनुसमुद्रम्) समुद्र के समीपवर्ती (द्वीपात्) द्वीप प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**द्वीपे जातं द्वैप्यम्।** समुद्र के समीपवर्ती द्वीप में उत्पन्न हुआ-द्वैप्य।*

*सिद्धि-**द्वैप्यम्।** द्वीप+ङि+यञ्। द्वैप्+य। द्वैप्य+सु। द्वैप्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ समुद्र के समीपवर्ती 'द्वीप' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'यञ्) प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *'**द्विर्गता आपो यस्मिँस्तद् द्वीपम्**' अर्थात् जिसके दोनों ओर जल हो उसे 'द्वीप' कहते हैं। यहां अनुसमुद्र=समुद्र के समीपवर्ती 'द्वीप' शब्द से 'यञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है। समुद्र-समीपता से अन्यत्र 'द्वीप' शब्द से इसका कच्छादिगण में पाठ होने से '**कच्छादिभ्यश्च**' (४।२।१३३) से 'अण्' प्रत्यय होता है। मनुष्य और तत्स्थ की विवक्षा में '**मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्**' (४।२।१३४) से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। **द्वीपे भवम् द्वैपम् (अण्)। द्वैपको मनुष्यः। द्वैपकमस्य हसितम् (वुञ्)।***

ठञ्-

(६५) कालाट्ठञ्।११।

प०वि०-कालात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-शेषे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् शेषे ठञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मासे जातं मासिकम्। अर्धमासे जातं आर्धमासिकम्। संवत्सरे जातं सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**मासे जातं मासिकम्।** एक मास में उत्पन्न हुआ-मासिक। **अर्धमासे जातं आर्धमासिकम्।** अर्धमास में उत्पन्न हुआ-आर्धमासिक। **संवत्सरे जातं सांवत्सरिकम्।** संवत्सर=एक वर्ष में उत्पन्न हुआ-सांवत्सरिक।*

*सिद्धि-**मासिकम्।** मास+ङि+ठञ्। मास+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'मास' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।***

ठञ्–

(६६) श्राद्धे शरदः।१२।

प०वि०-श्राद्धे ७।१ शरदः ५।१।

अनु०-शेषे, कालात्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् शरदः शेषे ठञ् श्राद्धे।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः शरदः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति, श्राद्धेऽभिधेये।

उदा०-शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (शरदः) शरद् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (श्राद्धे) यदि यहां श्राद्ध-कर्म अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्।** शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक श्राद्ध।*

*सिद्धि-**शारदिकम्।** शरद्+ङि+ठञ्। शरद्+इक। शारदिक+सु। शारदिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में तथा श्राद्ध अभिधेय में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेषः** (१) '**पितृयज्ञ**' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध, ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं:- एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। 'श्राद्ध' अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है। '**श्रत्=सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्**' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको 'श्रद्धा' और जो 'श्रद्धा' से कर्म किया जाये उसका नाम श्राद्ध है। और- '**तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत् तर्पणम्**' जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम 'तर्पण' है। परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिये नहीं (सत्यार्थप्रकाश समु० ४)।*

(२) आश्विन और कार्तिक मास को 'शरद्' ऋतु कहते हैं।

ठञ्-विकल्पः–

(६७) विभाषा रोगातपयोः ।१३।

प०वि०–विभाषा १।१ रोग-आतपयोः ७।२।

स०–रोगश्च आतपश्च तौ रोगातपौ, तयोः–रोगातपयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, कालात्, ठञ्, शरदः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०कालात् शरदः शेषे विभाषा ठञ् रोगातपयोः।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः शरदः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, रोगे आतपे चार्थेऽभिधेये, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–शरदि भवः शारदिको रोगः (ठञ्)। शारदो रोगः (अण्)। शरदि भवः शारदिक आतपः (ठञ्)। शारद आतपः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (शरदः) शरद् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (रोगातपयोः) यदि वहां रोग और आतप अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शरदि भवः शारदिको रोगः (ठञ्)। शारदो रोगः (अण्)। शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक रोग अथवा शारद रोग। शरदि भवः शारदिक आतपः (ठञ्)। शारद आतपः (अण्)। शरद् ऋतु में होनेवाला-शारदिक आतप (धूप) अथवा शारद आतप।

सिद्धि-(१) शारदिकः। शरद्+ङि+ठञ्। शारद्+इक। शारदिक+सु। शारदिकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से रोग और आतप अर्थ अभिधेय में 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) शारदः। शरद्+ङि+अण्। शारद्+अ। शारद्+सु। शारदः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

ठञ्-विकल्पः–

(६८) निशाप्रदोषाभ्यां च ।१४।

प०वि०–निशा-प्रदोषाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-निशा च प्रदोषश्च तौ निशाप्रदोषौ, ताभ्याम्-निशाप्रदोषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, कालात्, ठञ्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालाभ्यां निशाप्रदोषाभ्यां च शेषे विभाषा ठञ्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां निशाप्रदोषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चौत्सर्गिकोऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निशा**) निशायां भवं नैशिकम् (ठञ्)। नैशम् (अण्)। (**प्रदोषः**) प्रदोषे भवं प्रादोषिकम् (ठञ्)। प्रादोषम् (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (निशाप्रदोषाभ्याम्) निशा, प्रदोष प्रातिपदिकों से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(निशा) **निशायां भवं नैशिकम् (ठञ्)। नैशम् (अण्)।** निशा=रात्रि में होनेवाला-नैशिक अथवा नैश। (प्रदोषः) **प्रदोषे भवं प्रादोषिकम् (ठञ्)। प्रादोषम् (अण्)।** प्रदोष=रात्रि के प्रथम पहर में होनेवाला-प्रादोषिक अथवा प्रादोष।*

*सिद्धि-(१) **नैशिकम्।** निशा+ङि+ठञ्। नैश्+इक। नैशिक+सु। नैशिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'निशा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **नैशम्।** निशा+ङि+अण्। नैश्+अ। नैश+सु। नैशम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'निशा' शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्रागदीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रादोषिकम्, प्रादोषम्।***

***विशेषः** दोषा रात्रिः, प्रारम्भो दोषाया इति प्रदोषः (प्रादिसमासः)। **प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते** (श०कौ०)। सूर्यास्त के दो घड़ी पश्चात् 'प्रदोष' काल कहाता है।*

ठञ्-विकल्पः (तुट्)-

(६६) श्वसस्तुट् च।१५।

प०वि०-श्वसः ५।१ तुट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, कालात्, विभाषा ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासंभव०कालात् श्वसो विभाषा ठञ्, तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः श्वसः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च तुडागमो भवति।

'ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) इति श्वसः प्रातिपदिकाद् विकल्पेन त्यप् प्रत्ययो विहितः। अतः पक्षे त्यप् प्रत्ययो भवति। सोऽपि विकल्पेन विहितोऽतः **'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च'** (४।३।२३) इति श्वसः प्रातिपदिकस्याव्ययत्वाट् ट्युट्युलौ प्रत्ययावपि भवतः।

उदा०-**(ठञ्)** श्वो भवं शौवस्तिकम्। **(त्यप्)** श्वस्त्यम्। **(ट्युः)** श्वस्तनम्। **(ट्युल्)** श्वस्तनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (श्वसः) श्वस् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) से 'श्वस्' प्रातिपदिक से विकल्प से 'त्यप्' प्रत्यय का विधान किया गया है अतः विकल्प पक्ष में 'त्यप्' प्रत्यय होता है। वह भी विकल्प से विहित है अतः 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' (४।३।२३) से 'श्वस्' प्रातिपदिक के अव्यय होने से उससे 'ट्यु' और 'ट्युल्' प्रत्यय भी होते हैं।

उदा०-(ठञ्) ***श्वो भवं श्वौवस्तिकम्। (त्यप्) श्वस्त्यम्। (ट्युः) श्वस्तनम्। (ट्युल्) श्वस्तनम्।*** *आगामी कल होनेवाला-श्वौवस्तिक, श्वस्त्य, श्वस्तन, श्वस्तन।*

सिद्धि-(१) ***श्वौवस्तिकम्।*** *श्वस्+ङि+ठञ्। श्वस्+इक। श्वौवस्+तुट्+इक। श्वौवस्तिक+सु। श्वौवस्तिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय और 'तुट्' आगम है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से प्राप्त वृद्धि का 'द्वारादीनां च' (७।३।४) से प्रतिषेध होकर 'व्' से उत्तर ऐच् (औ) आगम होता है।

(२) ***श्वस्त्यम्।*** *श्वस्+ङि+त्यप्। श्वस्+त्य। श्वस्त्य+सु। श्वस्त्यम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१०४) से 'त्यप्' प्रत्यय है।

(३) ***श्वस्तनम्। श्वस्+ङि+ट्यु। श्वस्+तुट्+अन।*** *श्वस्+त्+अन। श्वसन+सु। श्वस्तनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में **'सायंचिरं०'** (४।३।२३) से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' होता है। **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।१) से 'ट्यु' (अन) प्रत्यय आद्युदात्त है।*

*(४) **श्वस्तनम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'श्वस्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'ट्युल्' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम होता है। 'ट्युल्' प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (४।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। इस प्रकार से ये चार रूप बनते हैं।*

अण्–

(७०) सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्।।१६।।

प०वि०–सन्धिवेलादि–ऋतु–नक्षत्रेभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०–सन्धिवेला आदिर्येषां ते सन्धिवेलादयः। सन्धिवेलादयश्च ऋतवश्च नक्षत्राणि च तानि सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्राणि, तेभ्यः–सन्धिवेला-द्यृतुनक्षत्रेभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–शेषे, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथासम्भव०कालेभ्यः सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः शेषेऽण्।

अर्थः–यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः सन्धिवेलादिभ्य ऋतुवाचिभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(सन्धिवेलादिः)** सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्। सन्ध्यायां भवं सान्ध्यम्। **(ऋतवः)** ग्रीष्मे भवं ग्रैष्मम्। शिशिरे भवं शैशिरम्। **(नक्षत्राणि)** तिष्ये भवं तैषम्। पुष्ये भवं पौषम्।

सन्धिवेला। सन्ध्या। अमावस्या। त्रयोदशी। चतुर्दशी। पञ्चदशी। पौर्णमासी। प्रतिपत्।। संवत्सरात् फलपर्वणोः।। सांवत्सरं फलम्। सांवत्सरं पर्व। इति सन्धिवेलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः) सन्धिवेलादि, ऋतुवाची और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से (शेषे) **शेष अर्थों में** (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(सन्धिवेलादि) **सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्।** सन्धि-वेला में होनेवाला-सान्धिवेल। **सन्ध्यायां भवं सान्ध्यम्।** सन्ध्याकाल में होनेवाले-सान्ध्य। **(ऋतु) ग्रीष्मे भवं ग्रैष्मम्।** ग्रीष्म ऋतु में होनेवाला-गैष्म। **शिशिरे भवं शैशिरम्।** शिशिर ऋतु में होनेवाला-शैशिर। (नक्षत्र) **तिष्ये भवं तैषम्।** तिष्य नक्षत्र में होनेवाला-तैष। **पुष्ये भवं पौषम्।** पुष्य नक्षत्र में होनेवाला-पौष।*

*सिद्धि-(१) **सान्धिवेलम्।** सन्धिवेला+ङि+अण्। सान्धिवेल+अ। सान्धिवेल+सु। सान्धिवेलम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सन्धिवेला' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग के आकार को का लोप होता है। ऐसे ही-**सान्ध्यम्, ग्रैष्मम्, शैशिरम्।***

*(२) **तैषम्।** तिष्य+टा+अण्। तिष्य+०। तिष्य+ङि+अण्। तिष्य्+अ। तैष्+अ। तैष+सु। तैषम्।*

*यहां प्रथम नक्षत्रवाची 'तिष्य' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४।२।३) से 'अण्' प्रत्यय होता है और उसका **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से लुप् हो जाता है। तत्पश्चात् उस 'तिष्य' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अकार का लोप होता है। वा० **'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः'** (६।४।१४९) से 'य्' का लोप होता है। ऐसे ही-**पौषम्।***

विशेषः *(१) भारतवर्ष में ये छः ऋतु होती हैं-चैत्र-वैशाख=वसन्त। ज्येष्ठ-आषाढ=ग्रीष्म। श्रावण-भाद्रपद=वर्षा। आश्विन-कार्तिक=शरद्। मार्गशीर्ष-पौष=हेमन्त। माघ-फाल्गुन=शिशिर।*

*(२) २८ नक्षत्रों का विवरण **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'** (१।२।६०) के प्रवचन में देख लेवें।*

एण्यः-

(७१) प्रावृष एण्यः।१७।

प०वि०-प्रावृषः ५।१ एण्यः १।१।

अनु०-शेषे, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालात् प्रावृषः शेषे एण्यः।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रावृषः प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु एण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यो बलाहकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (प्रावृषः) प्रावृट् प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (एण्यः) एण्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यो बलाहकः।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु में होनेवाला-प्रावृषेण्य बादल।*

*सिद्धि-**प्रावृषेण्यः।** प्रावृष्+ङि+एण्यः। प्रावृषेण्य+सु। प्रावृषेण्यः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रावृट्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'एण्य' प्रत्यय है।

ठक्–

(७२) वर्षाभ्यष्ठक्।१८।

प०वि०-वर्षाभ्यः ५।३ ठक् १।१।

अनु०-शेषे, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासम्भव०कालाद् वर्षाभ्यः शेषे ठक्।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वर्षाशब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वर्षासु भवं वार्षिकं वासः। वार्षिकम् अनुलेपनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षाभ्यः) वर्षा प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**वर्षासु भवं वार्षिकं वासः।** वर्षा ऋतु में ठीक रहनेवाला-वार्षिक वस्त्र। **वार्षिकम् अनुलेपनम्।** वार्षिक अनुलेपन (तैल आदि शरीर में लगाना)।*

*सिद्धि-**वार्षिकम्।** वर्षा+सुप्+ठक्। वार्ष्+इक। वार्षिक+सु। वार्षिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वर्षा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। यहां **'कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु'** (४।३।४३) से कालविशेषवाची 'वर्षा' शब्द से शैषिक साधु-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय किया गया है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) के अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *(१) वर्षा शब्द से **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से 'ठञ्' प्रत्यय करने पर भी 'वार्षिक' पद बनता है किन्तु वह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त होगा। यह ठक्-प्रत्ययान्त 'वार्षिक' पद **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय को आद्युदात्त होकर मध्योदात्त है-**वार्षिकम्।***

*(२) वर्षा शब्द **'अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च'** (लिङ्गा० १।२९) से बहुवचनान्त और स्त्रीलिङ्ग है। अतः इस सूत्र में 'वर्षाभ्यः' पद बहुवचन में प्रयुक्त किया है।*

ठञ्–

(७३) छन्दसि ठञ्।१६।

प०वि०–छन्दसि ७।१ ठञ् १।१।

अनु०–शेषे, कालात्, वर्षाभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि यथासम्भव०कालाद् वर्षाभ्यः शेषे ठञ्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वर्षा-शब्दात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू** (यजु० १४।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षाभ्यः) वर्षा शब्द से (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू (यजु० १४।१५)। श्रावण और भाद्रपद वार्षिक ऋतु हैं।

सिद्धि–वार्षिकः। वर्षा+सुप्+ठञ्। वार्ष्+इक। वार्षिक+सु। वार्षिकः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'वर्षा' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से 'वार्षिक' पद का आद्युदात्त स्वर होता है–वार्षिकः।

ठञ्–

(७३) वसन्ताच्च।२०।

प०वि०–वसन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–शेषे, कालात्, छन्दसि, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि यथासम्भव०कालाद् वसन्ताच्च शेषे ठञ्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो वसन्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू** (यजु० १३।२५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वसन्तात्) वसन्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू (यजु० १३।२५)। चैत्र और वैशाख वासन्तिक ऋतु हैं।

सिद्धि-वासन्तिकः। वसन्त+ङि+ठञ्। वासन्त्+इक। वासन्तिक+सु। वासन्तिकः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'वसन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ठञ्–

(७४) हेमन्ताच्च।२१।

प०वि०-हेमन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-शेषे, कालात्, छन्दसि, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि यथासम्भव०कालाद् हेमन्ताच्च शेषे ठञ्।

अर्थः-छन्दसि विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो हेमन्तात् प्रातिपदिकाच्च शेषेष्वर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू (यजु० १४।२७)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (हेमन्तात्) हेमन्त प्रातिपदिक से (च) भी (शेषे) शेष अर्थों में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू (यजु० १४।२७)। मार्गशीर्ष और पौष हैमन्तिक ऋतु हैं।

सिद्धि-हैमन्तिकः। हेमन्त+ङि+ठञ्। हैमन्त+इक। हैमन्तिक+सु। हैमन्तिकः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'हेमन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अण्+ठञ्–

(७५) सर्वत्राण् च तलोपश्च।२२।

प०वि०-सर्वत्र अव्ययपदम्, अण् १।१ च अव्ययपदम्, त-लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-तस्य लोप इति तलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-शेषे, कालात्, हेमन्तादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वत्र यथासम्भव० कालाद् हेमन्तात् शेषेऽण् च तलोपश्च।

अर्थः-सर्वत्र=छन्दसि भाषायां च विषये यथासम्भवविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनो हेमन्तात् प्रातिपदिकात् शेषेष्वर्थेषु अण् च प्रत्ययो भवति, तकारस्य च लोपो भवति।

उदा०-(**अण्**) हेमन्ते साधु हैमनम्। हैमनं वासः। हैमनमनुलेपनम्।

सूत्रपाठे-'अण् च' इति चकारात् **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) इति ऋतुवाचकाद् हेमन्तादण् प्रत्ययमिच्छन्ति। तत्र तकारलोपो न भवति। हेमन्ते साधु-हैमन्तम्। अपरे 'सर्वत्र' इति पाठात् भाषायामपि ठञं स्मरन्ति-हैमन्तिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सर्वत्र) वेद और भाषा में यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालवाची (हिमन्तात्) हेमन्त प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय (च) भी होता है (च) और (तलोपः) हेमन्त के तकार का लोप होता है।*

*उदा०-(अण्) हेमन्ते साधु **हैमनम्**। हैमनं वासः। **हैमनमनुलेपनम्**। हेमन्त काल में उपयुक्त-हैमन वस्त्र। हेमन-अनुलोपन (तैल आदि लगाना)।*

*सिद्धि-(१) **हैमनम्**। हेमन्त+ङि+अण्। हैमन्त्+अ। हैमन्+अ। हैमन+सु। हैमनम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ हेमन्त' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय और हेमन्त के तकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **हैमन्तम्**। यहां 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से ऋतुवाची हेमन्त' शब्द से 'अण्' प्रत्यय है। यहां तकार का लोप नहीं होता है।*

*(३) **हैमन्तिकम्**। यहां हेमन्त' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है।*

ट्युः+ट्युल् (तुट्)-

(७६) सायंचिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च।२३।।

प०वि०-सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगे-अव्ययेभ्यः ५।३ ट्यु-ट्युलौ १।२ तुट् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सायं च चिरं च प्राह्णेश्च प्रगेश्च अव्ययं च तानि-सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययानि:, तेभ्यः-सायं चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे कालादिति चानुवर्तते।

अव्ययः-यथासम्भव०कालेभ्यः सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः शेषे ट्युट्युलौ तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः सायंचिरं-प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषेष्वर्थेषु ट्यु-ट्युलौ प्रत्ययौ भवतस्तयोश्च तुडागमो भवति।

उदा०-**(सायम्)** सायं भवं सायन्तनम्। **(चिरम्)** चिरं भवं चिरन्तनम्। **(प्राह्णे)** प्राह्णे भवं प्राह्णेतनम्। **(प्रगे)** प्रगे भवं प्रगेतनम्। **(अव्ययम्)** दिवा भवं दिवातनम्। दोषा भवं दोषातनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (सायं०अव्ययेभ्यः) सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे, अव्यय प्रातिपदिकों से (शेषे) शेष अर्थों में (ट्युट्युलौ) ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं (च) और उन्हें (तुट्) तुट् आगम होता है।*

उदा०-(सायम्) ***सायं भवं सायन्तनम्।*** *सायंकाल होनेवाला-सायंतन। (चिरम्)* ***चिरं भवं चिरन्तनम्।*** *चिर=देर में होनेवाला-चिरन्तन। (प्राह्णे)* ***प्राह्णे भवं प्राह्णेतनम्।*** *दिन के प्रथम पहर में होनेवाला-प्राह्णेतन। (प्रगे)* ***प्रगे भवं प्रगेतनम्।*** *प्रगे=बड़े तड़के (भोर) में होनेवाला-प्रगेतन। (अव्यय)* ***दिवा भवं दिवातनम्।*** *दिन में होनेवाला-दिवातन।* ***दोषा भवं दोषातनम्।*** *दोषा=रात्रि में होनेवाला-दोषातन।*

सिद्धि-सायंतनम्। *सायम्+ङि+ट्यु। सायम्+तुट्+अन। सायं+त्+अन। सायंतन+सु। सायन्तनम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'सायम्' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ट्यु' प्रत्यय और उसको 'तुट्' आगम होता है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही 'चिरंतनम्' आदि।

विशेषः *यहां 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर होता है-सायन्तनम्। जहां ट्युल् प्रत्यय होता है वहां 'लिति' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्व अच् उदात्त होता है--सायन्तनम्। यही ट्यु और ट्युल् प्रत्यय में अन्तर है।*

(२) सायम् और चिरम् शब्द मकरान्त निपातित हैं। प्राह्णे और प्रगे शब्द एकारान्त निपातित हैं।

ट्यु-ट्युल्विकल्पः-

(७७) विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्।२४।

प०वि०-विभाषा १।१ पूर्वाह्ण-अपराह्णाभ्याम् ५।२।

स०-पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च तौ पूर्वाह्णापराह्णौ, ताभ्याम्-पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-शेषे, ट्युट्युलौ, तुट्, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथासभव०कालाभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां शेषे विभाषा ट्युट्युलौ तुट् च।

अर्थः-यथासम्भवविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शेषेष्वर्थेषु विकल्पेन ट्युट्युलौ प्रत्ययौ भवतः, तयोश्च तुडागमो पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पूर्वाह्णः)** पूर्वाह्णे भवं पूर्वाह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)। पौर्वाह्णिकम् (ठञ्)। **(अपराह्णः)** अपराह्णे भवं अपराह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)। आपराह्णिकम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथासम्भव-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (पूर्वाह्णापराभ्याम्) पूर्वाह्ण, अपराह्ण प्रातिपदिक से (शेषे) शेष अर्थों में (ट्युट्युलौ) ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं (च) और उन्हें (तुट्) तुट् आगम होता है।*

*उदा०-**(पूर्वाह्ण) पूर्वाह्णे भवं पूर्वाह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)।** दिन के पूर्व भाग में होनेवाला-पूर्वाह्णेतन। **पौर्वाह्णिकम् (ठञ्)।** दिन के पूर्वभाग में होनेवाला-पौर्वाह्णिक। **(अपराह्ण) अपराह्णे भवं अपराह्णेतनम् (ट्युः, ट्युल्)।** दिन के पश्चात् भाग में होनेवाला-अपराह्णेतन। **आपराह्णिकम् (ठञ्)।** दिन के पश्चात् भाग में होनेवाला-आपराह्णिक।*

सिद्धि-(१) पूर्वाह्णेतनम्। *पूर्वाह्ण+ङि+ट्यु। पूर्वाह्णे+अन। पूर्वाह्णे+तुट्+अन। पूर्वाह्णे+त्+अन। पूर्वाह्णेतन+सु। पूर्वाह्णेतनम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'पूर्वाह्ण' शब्द से शेष अर्थों में इस सूत्र से 'ट्यु' प्रत्यय और उसे तुट् आगम होता है। **'घकालतनेषु कालनाम्नः'** (६।३।१७) से सप्तमी-विभक्ति का अलुक् होता है। ऐसे ही-**अपराह्णेतनम्।***

*(२) **पौर्वाह्णिकम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'पूर्वाह्ण' शब्द से शेष अर्थों में विकल्प पक्ष में **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आपराह्णिकम्।***

।। इति उत्तरशेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

जातार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तत्र जातः।२५।

प०वि०–तत्र सप्तम्यर्थेऽव्ययपदम्, जातः १।१।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकाज्जातो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

'प्राग्दीव्यतीयोऽण्' (४।१।८३) इत्याणादयः, **'राष्ट्रेऽवारापाराद् घखौ'** (४।२।९३) इति च घादयः प्रत्यया विहिताः। इतः प्रभृति तेषामर्थाः समर्थविभक्तयश्च विधीयन्ते।

उदा०–स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। मथुरायां जातो माथुरः। उत्से जातः औत्सः। उदपाने जात औदपानः। राष्ट्रे जातो राष्ट्रिय इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

'प्राग्दीव्यतीयोऽण्' (४।१।८३) इत्यादि से जो 'अण्' प्रत्यय और 'राष्ट्रेऽवारापाराद् घखौ' (४।२।९३) इत्यादि से जो 'घ' आदि प्रत्यय विधान किये गये हैं, इससे आगे उनके अर्थ और उनकी समर्थ-विभक्तियों का विधान किया जाता है।

*उदा०–**स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः।** स्रुघ्न नामक नगर में उत्पन्न हुआ-स्रौघ्न। **मथुरायां जातो माथुरः।** मथुरा नगरी में उत्पन्न हुआ-माथुर। उत्से जातः **औत्सः।** उत्स=स्रोत में उत्पन्न हुआ-औत्स। **उदपाने जात औदपानः।** उदपान=कूप समीपवर्ती होद में उत्पन्न हुआ-औदपान। **राष्ट्रे जातो राष्ट्रिय।** राष्ट्र में उत्पन्न हुआ-राष्ट्रिय।*

*सिद्धि-(१) **स्रौघ्नः।** स्रुघ्न+ङि+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से इस सूत्र से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**माथुरः।***

*(२) **औत्सः।** उत्स+ङि+अण्। औत्स्+अ। औत्स+सु। औत्सः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उत्स' शब्द से जात अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**औदपानः।***

(३) राष्ट्रियः। राष्ट्र+ङि+घ। राष्ट्र+इय। राष्ट्रिय+सु। राष्ट्रियः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से जात अर्थ में '**राष्ट्रावारपाराद् घखौ**' (४।२।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

***विशेषः** स्रुघ्न-एक जनपद का नाम जो किसी समय पाटलिपुत्र से एक मंजिल पर था (वर्तमान नाम-सुघ है {श०कौ०})।*

ठप्–

(२) प्रावृषष्ठप्।२६।

प०वि०-प्रावृषः ५।१ ठप् १।१।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रावृषो जातष्ठप्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रावृषः प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे ठप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (प्रावृषः) प्रावृट् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।** प्रावृट्=वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुआ-प्रावृषिक।*

*सिद्धि-**प्रावृषिकः।** प्रावृष्+ङि+ठप्। प्रावृष्+इक। प्रावृषिक+सु। प्रावृषिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रावृष्' शब्द से इस सूत्र से जात अर्थ में ठप् प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।*

*यह '**प्रावृष एण्यः**' (४।३।१७) का अपवाद है। प्रावृट् शब्द से भव-आदि शेष अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है और जात अर्थ में इस सूत्र से ठप् प्रत्यय ही होता है। 'ठप्' प्रत्यय में पकार '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर के लिये है-**प्रावृषिक।***

वुञ्–

(३) संज्ञायां शरदो वुञ्।२७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ शरदः ५।१ वुञ् १।१।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र शरदो जातो वुञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाच्छरदः प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-शरदि जाताः शारदका दर्भाः। शारदका मुद्गाः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (शरदः) शरद् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**शरदि जाताः शारदका दर्भाः।** शरद् ऋतु में उत्पन्न हुये-शारदक दर्भ (डाभ)। **शारदका मुद्गाः।** शरद् ऋतु में उत्पन्न हुये-शारदक मूंग। 'शारदकाः' यह दर्भविशेष और मुद्गविशेष की संज्ञा है।*

*सिद्धि-**शारदकाः।** शरद्+ङि+वुञ्। शारद्+अक। शारदक+जस्। शारदकाः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शरद्' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

वुन्-

(४) पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् वुन्।२८।

प०वि०-पूर्वाह्ण-अपराह्ण-आर्द्रा-मूल-प्रदोष-अवस्करात् ५।१ वुन् १।१।

स०-पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च आर्द्रा च मूलं च प्रदोषश्च अवस्करश्च एतेषां समाहारः पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करम्, तस्मात्-पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पूर्वाह्ण०अवस्कराज्जातो वुन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पूर्वाह्णः)** पूर्वाह्णे जातः पूर्वाह्णकः। **(अपराह्णः)** अपराह्णे जातोऽपराह्णकः। **(आर्द्रा)** आर्द्रायां जात आर्द्रकः। **(मूलम्)** मूले जातो मूलकः। **(प्रदोषः)** प्रदोषे जातः प्रदोषकः। **(अवस्करः)** अवस्करे जातोऽवस्करकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (पूर्वाह्णo अवस्करात्) पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष, अवस्कर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

उदा०- ***(पूर्वाह्ण) पूर्वाह्णे जातः पूर्वाह्णकः।*** *दिन के पूर्वभाग में उत्पन्न हुआ-पूर्वाह्णक।* ***(अपराह्ण) अपराह्णे जातोऽपराह्णकः।*** *दिन के पश्चिम भाग में उत्पन्न हुआ-अपराह्णक।* ***(आर्द्रा) आर्द्रायां जात आर्द्रकः।*** *आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आर्द्रक।* ***(मूल) मूले जातो मूलकः।*** *मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मूलक।* ***(प्रदोष) प्रदोषे जातः प्रदोषकः।*** *रात्रि के प्रथम पहर में उत्पन्न हुआ-प्रदोषक।* ***(अवस्कर) अवस्करे जातोऽवस्करकः।*** *अवस्कर=विष्ठा (गोबर) में उत्पन्न हुआ-अवस्करक।*

सिद्धि-पूर्वाह्णकः। *पूर्वाह्ण+ङि+वुन्। पूर्वाह्ण्+अक। पूर्वाह्णक+सु। पूर्वाह्णकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'पूर्वाह्ण' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही-* ***अपराह्णकः*** *आदि।*

वुन्-

(५) पथः पन्थ च।२६।

प०वि०-पथः ५।१ (६।१) पन्थ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, जातः, वुन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पथो जातो वुन् पन्थश्च।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, पथः स्थाने च पन्थ आदेशो भवति।

उदा०-पथि जातः पन्थकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और 'पथिन्' शब्द के स्थान में (पन्थः) 'पन्थ' आदेश होता है।*

उदा०- ***पथि जातः पन्थकः।*** *पन्था=मार्ग में उत्पन्न हुआ-पन्थक।*

सिद्धि-पन्थकः। *पथिन्+ङि+वुन्। पन्थ्+अक। पन्थक+सु। पन्थकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है और 'पथिन्' के स्थान में 'पन्थ' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

वुन्-विकल्पः–

(६) अमावास्याया वा ।३०।

प०वि०–अमावास्यायाः ५ ।१ वा अव्ययपदम् ।

अनु०–तत्र, जातः, वुन् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तत्र अमावास्याया जातो वा वुन् ।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अमावास्या-शब्दात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन वुन् प्रत्ययो भवति ।

अमावास्या-शब्दस्य सन्धिवेलादिषु पाठात् **'सन्धिवेलाद्यृतु-नक्षत्रेभ्योऽण्'** (४ ।३ ।१६) इत्यस्यायमपवादः । वा-वचनात् पक्षे सोऽपि भवति ।

उदा०–अमावास्यायां जातोऽमावास्यकः (वुन्) । आमावास्यः (अण्) ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अमावास्यायाः) अमावास्या प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (वा) विकल्प से (वुन्) प्रत्यय होता है।*

*अमावास्या शब्द का सन्धिवेलादिगण में पाठ होने से यह **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४ ।३ ।१६) का अपवाद है। विकल्प पक्ष में वह 'अण्' प्रत्यय भी होता है।*

*सिद्धि-(१) **अमावास्यकः** । अमावास्या+ङि+वुन् । अमावास्य्+अक । अमावास्यक+सु । अमावास्यकः ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७ ।४ ।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **आमावास्यः** । अमावास्या+ङि+अण् । आमावास्य्+अ । आमावास्य+सु । आमावास्यः ।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में विकल्प पक्ष में **'सन्धिवेला०'** (४ ।३ ।१६) से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है।*

अः–

(७) अ च ।३१।

प०वि०–अ १ ।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम् ।

अनु०–तत्र, जातः, अमावास्याया इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तत्र अमावास्याया जातोऽश्च ।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अमावास्या-शब्दात् प्रातिपदिकाज्जात इत्यस्मिन्नर्थे अश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-अमावास्यायां जातः-अमावास्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अमावास्यायाः) अमावास्या प्रातिपदिक से (जातः) जात अर्थ में (अः) अ प्रत्यय (च) भी होता है।*

*उदा०-**अमावास्यायां जातः-अमावास्यः।** अमावास्या में उत्पन्न हुआ-अमावास्य।*

*सिद्धि-**अमावास्यः।** अमावास्या+ङि+अ। अमावास्य्+अ। अमावास्य+सु। अमावास्यः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'अमावास्या' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अ' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *'**एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति**' अर्थात् किसी का एक अंग विकृत हो जाये तो वह कोई अन्य नहीं बन जाता। यदि कुत्ते की पूछ कट जाये तो वह गधा वा घोड़ा नहीं बन जाता अपितु कुत्ता ही रहता है। इस व्याकरण-परिभाषा के आश्रय से 'अमावास्या' शब्द के समान 'अमावस्या' शब्द से भी वुन्, अण् और अ प्रत्यय होते हैं। अमावस्यकः (वुन्)। आमावस्यः (अण्)। अमावस्यः (अः)।*

कन्-

(८) सिन्ध्वपकराभ्यां कन्।३२।

प०वि०-सिन्धु-अपकराभ्याम् ५।२ कन् १।१।

स०-सिन्धुश्च अपकरश्च तौ सिन्ध्वपकरौ, ताभ्याम्-सिन्ध्वपकराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जात इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सिन्ध्वपकराभ्यां जातः कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां सिन्ध्वपकराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जात इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सिन्धुः)** सिन्धौ जातः सिन्धुकः। **(अपकरः)** अपकरे जातोऽपकरकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (सिन्ध्वपकराभ्याम्) सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सिन्धु) सिन्धौ जातः सिन्धुकः। सिन्धु जनपद में उत्पन्न हुआ-सिन्धुक। (अपकर) अपकरे जातोऽपकरकः। अपकर में उत्पन्न हुआ-अपकरक।

सिद्धि-सिन्धुकः। सिन्धु+ङि+कन्। सिन्धु+क। सिन्धुक+सु। सिन्धुकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'सिन्धु' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-अपकरकः।

विशेषः *(१) सिन्धु-प्राचीन सिन्धु नद आजकल की सिन्ध है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी किनारे की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद (सिन्धु सागर दुआब) था। सिन्धु नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर काश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिट-चिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिणवाहिनी होती हुई दरद् के चरणों में पहली बार मैदान में उतरती है (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

(२) अपकर-बहुत सम्भव है, मियांवाली जिले का भखर हो। सिन्धु जनपद में यह दक्खिनी रास्ते का नाका था, जहां सिन्धु नदी पार करके प्राचीन गोमती (आधुनिक-गोमल) के किनारे गोमल दर्रे से गजनी को रास्ता जाता था। व्यापारिक और सामरिक दृष्टि से भखर या भक्खर महत्त्वपूर्ण घाटा था (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।

अण्+अञ्-

(६) अणञौ च।३३।

प०वि०-अण्-अञौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-अण् च अञ् च तौ-अणञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, सिन्ध्वपकराभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सिन्ध्वपकराभ्यां जातोऽणञौ च।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां सिन्ध्वपकराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जात इत्यस्मिन्नर्थेऽणञौ च प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(सिन्धुः)** सिन्धौ जातः सैन्धवः (अण्)। सैन्धवः (अञ्)। **(अपकरः)** अपकरे जात आपकर (अण्)। आपकरः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (सिन्ध्वपकराभ्याम्) सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय (च) भी होते हैं।*

उदा०-(सिन्धु) सिन्धौ जातः सैन्धवः (अण्)। सैन्धवः (अञ्)। सिन्धु जनपद में उत्पन्न हुआ-सैन्धव। (अपकर) अपकरे जात आपकर (अण्)। आपकरः (अञ्)। अपकर में उत्पन्न हुआ-आपकर।

सिद्धि-(१) सैन्धवः। सिन्धु+ङि+अण्। सैन्धो+अ। सैन्धव+सु। सैन्धवः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'सिन्धु' शब्द से जात अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। यहां 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से 'अण्' प्रत्यय आद्युदात्त होने से सैन्धव पद का अन्तोदात्त स्वर होता है।

(२) सैन्धवः-यहां 'सिन्धु' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से अञ्-प्रत्ययान्त सैन्धव पद का आद्युदात्त स्वर होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-आपकरः (अण्)। आर्पकरः (अञ्)।

प्रत्ययस्य लुक्-

(१०) श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसु-हस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्।३४।

प०वि०-श्रविष्ठा-फल्गुनी-अनुराधा-स्वाति-तिष्य-पुनर्वसु-हस्त-विशाखा-अषाढा- बहुलात् ५।१ लुक् १।१।

स०-श्रविष्ठा च फल्गुनी च अनुराधा च स्वातिश्च तिष्यश्च पुनर्वसुश्च हस्तश्च विशाखा च बहुला च एतेषां समाहारः श्रविष्ठा०बहुलम्, तस्मात्-श्रविष्ठा०बहुलात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र श्रविष्ठा०बहुलाज्जातो यथाविहितं प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः श्रविष्ठादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(**श्रविष्ठा**) श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। (**फल्गुनी**) फल्गुन्योर्जातः फल्गुनः। (**अनुराधा**) अनुराधायां जातोऽनुराधः। (**स्वातिः**) स्वात्यां जातः स्वातिः। (**तिष्यः**) तिष्ये जातस्तिष्यः। (**पुनर्वसुः**) पुनर्वस्वोर्जातः पुनर्वसुः। (**हस्तः**) हस्ते जातो हस्तः। (**विशाखा**) विशाखयोर्जातो विशाखः। (**अषाढा**) अषाढायां जातोऽषाढः। (**बहुला**) बहुलायां जातो बहुलः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (श्रविष्ठा०बहुलात्) श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, आषाढा, बहुला प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-श्रविष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-श्रविष्ठ। फल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-फल्गुन। अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अनुराध। स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-स्वाति। तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-तिष्य। पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-पुनर्वसु। हस्त नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-हस्त। विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-विशाख। अषाढा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अषाढ। बहुला नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-बहुल।

***सिद्धि-श्रविष्ठः।** श्रविष्ठा+ङि+अण्। श्रविष्ठा+अ। श्रविष्ठ+०। श्रविष्ठ+सु। श्रविष्ठः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'श्रविष्ठा' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। इससे उस 'अण्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। **'लुक् तद्धितलुकि'** (१।२।४९) से तद्धित 'अण्' प्रत्यय का लुक् होने पर श्रविष्ठा में विद्यमान स्त्रीप्रत्यय 'टाप्' का भी लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**'फल्गुनः'** आदि।*

***विशेषः** (१) २८ नक्षत्रों का विवरण **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे'** (१।२।६०) के प्रवचन में देख लेवें।*

(२) 'तिष्य' शब्द 'पुष्य' नक्षत्र का पर्यायवाची है।

*(३) 'बहुला' शब्द 'कृत्तिका' नक्षत्र का पर्यायवाची है। **'कृत्तिकापर्यायस्य बहुलाशब्दस्यात्र द्वन्द्वैकवद्भावेन नपुंसकह्रस्वत्वेन निर्देशः'** (पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)।*

*(४) फल्गुनी, पुनर्वसु और विशाखा नामक दो-दो नक्षत्र हैं। अतः इनका द्विवचन में प्रयोग किया जाता है। **'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां नक्षत्रे'** (१।२।६०) से 'फल्गुनी' में बहुवचन भी होता है।*

प्रत्ययस्य-लुक्-

(११) स्थानान्तगोशालखरशालाच्च।३५।

प०वि०-स्थानान्त-गोशाल-खरशालात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्थानमन्तो यस्य तत् स्थानान्तम्। गवां शालेति गोशालम्। खराणां शालेति खरशालम्। **'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्'** (२।४।२५) इति शालान्तस्य विभषा नपुंसकत्वम्। स्थानान्तं च गोशालं च खरशालं च एतेषां समहारः स्थानान्तगोशालखरशालम्, तस्मात्-स्थानान्तगोशालखरशालात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र स्थनान्तगोशालखरशालाच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः स्थानान्तगोशालखरशालेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-(स्थानान्तम्) गोस्थाने जातो गोस्थानः। अश्वस्थाने जातोऽश्वस्थानः। **(गोशालम्)** गोशाले जातो गोशालः। **(खरशालम्)** खरशाले जातः खरशालः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (स्थानान्तगोशालखरशालात्) स्थानान्त, गोशाल, खरशाल प्रातिपदिकों से (च) भी यथाविहित प्रत्यय का (लुक्) लोप हो जाता है।*

*उदा०-(स्थानान्त) **गोस्थाने जातो गोस्थानः।** गोस्थान में उत्पन्न हुआ-गोस्थान। **अश्वस्थाने जातोऽश्वस्थानः।** अश्वस्थान में उत्पन्न हुआ-अश्वस्थान। (गोशाल) **गोशाले जातो गोशालः।** गोशाला में उत्पन्न हुआ-गोशाल। (खरशाल) **खरशाले जातः खरशालः।** खरशाला=गर्दभशाला में उत्पन्न हुआ-खरशाल।*

__सिद्धि-गोस्थानः।__ गोस्थान+ङि+अण्। गोस्थान+० गोस्थान+सु। गोस्थानः।

*यहां सप्तमी-समर्थ स्थानान्त 'गोस्थान' शब्द से जात अर्थ में इस से **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है। ऐसे ही-**अश्वस्थानः, गोशालः, खरशालः।***

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः-

(१२) वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो वा।३६।

प०वि०-वत्सशाल-अभिजित्-अश्वयुक्-शतभिषजः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-वत्सानां शालेति वत्सशालम् विभाषा **'सेनासुराच्छाया०'** (२।४।२५) इति शालान्तस्य विभाषा नपुंसकत्वम्। वत्सशालं च, अभिजिच्च, अश्वयुक् च शतभिषक् च एतेषां समाहारो वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषक्, तस्मात्-वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो जातो वा लुक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो वत्सशालाभिजिदश्वयुक्भिषग्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-(वत्सशालम्) वत्सशाले जातो वत्सशालः (लुक्)। वात्सशालः (अञ्)। **(अभिजित्)** अभिजिति जातोऽभिजित् (लुक्)। आभिजितः (अण्)। **(अश्वयुक्)** अश्वयुजि जातोऽश्वयुक् (लुक्)। आश्वयुजः (अण्)। **(शतभिषक्)** शतभिषजि जातः शतभिषक् (लुक्)। शातभिषजः (अण्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वत्सशाल०शतभिषजः) वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुक्, शतभिषक् प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-(वत्सशाल) वत्सशाले जातो वत्सशालः (लुक्)। बछड़ों की शाला में उत्पन्न हुआ-वत्सशाल। वात्सशालः (अञ्)। बछड़ों की शाला में उत्पन्न हुआ-वात्सशाल। **(अभिजित्) अभिजिति जातोऽभिजित् (लुक्)।** अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अभिजित्। **आभिजितः (अण्)।** अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आभिजित। **(अश्वयुक्) अश्वयुजि जातोऽश्वयुक् (लुक्)।** अश्वयुक्=अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-अश्वयुक्। **आश्वयुजः (अण्)।** अश्वयुक् अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-आश्वयुज। **(शतभिषक्) शतभिषजि जातः शतभिषक् (लुक्)।** शतभिषक् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-शतभिषक्। **शातभिषजः (अण्)।** शतभिषक् नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-शातभिषज।*

***सिद्धि-(१) वत्सशालः।** वत्सशाल+ङि+अण्। वत्सशाल+०। वत्सशाल+सु। वत्सशालः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वत्सशाल' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है और इस सूत्र से उसका लुक् होता है।*

***(२) वात्सशालः।** वत्सशाल+ङि+अण्। वात्सशाल्+अ। वात्सशाल+सु। वात्सशालः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'वत्सशाल' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं है। अतः **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४) से अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अभिजित्, अभिजितः** आदि।*

प्रत्ययस्य बहुलं लुक्–

(१३) नक्षत्रेभ्यो बहुलम्।३७।

प०वि०–नक्षत्रेभ्यः ५।३ बहुलम् १।१।

अनु०–तत्र, जातः, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र नक्षत्रेभ्यो जातो बहुलं लुक्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययस्य बहुलं लुग् भवति।

उदा०–रोहिण्यां जातो रोहिणः (लुक्)। रौहिणः (अण्)। मृगशिरसि जातो मृगशिराः (लुक्)। मार्गशीर्षः (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से (जातः) जात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (बहुलम्) प्रायः (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**रोहिण्यां जातो रोहिणः (लुक्)।** रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-रोहिण। **रौहिणः (अण्)।** रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-रौहिण। **मृगशिरसि जातो मृगशिराः (लुक्)।** मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मृगशिरा। **मार्गशीर्षः (अण्)।** मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ-मार्गशीर्ष।*

सिद्धि-(१) रोहिणः। *रोहिणी+ङि+अण्। रौहिण+०। रौहिण+सु। रोहिणः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से जात अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् **होता है।** तद्धित प्रत्यय का लुक् हो जाने पर **'लुक्तद्धितलुकि'** (१।२।४९) से **रोहिणी में** विद्यमान स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।*

*(२) **रौहिणः।** यहां सप्तमी-समर्थ नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से जात अर्थ में पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। यहां विकल्प पक्ष में 'अण्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

(३) मृगशिराः। मृगशिरस्+सु। मृगशिराः।

*यहां **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) मार्गशीर्षः। *यहां **'अचि शीर्षः'** (६।१।६२) से 'शिरस्' के स्थान में शीर्ष **आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।***

कृतादिप्रत्ययार्थविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कृतलब्धक्रीतकुशलाः ।३८।

प०वि०–कृत-लब्ध-क्रीत-कुशलाः १ ।३ ।

स०–कृतश्च लब्धश्च क्रीतश्च कुशलश्च ते–कृतलब्धक्रीतकुशलाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकात् कृतलब्धक्रीतकुशलेषु यथाविहितं प्रत्ययः ।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् कृतलब्धक्रीत-कुशलेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

उदा०–स्रुघ्ने कृतो वा लब्धो वा क्रीतो वा कुशलो वा–स्रौघ्नः । माथुरः । रौहितकः । राष्ट्रियः ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (कृतलब्ध-क्रीतकुशलाः) कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–स्रुघ्न नगर में कृत, लब्ध, क्रीत, वा कुशल–स्रौघ्न। मथुरा नगरी में कृत आदि–माथुर। रोहितक नगर में कृत आदि–रौहितक। राष्ट्र में कृत आदि–राष्ट्रिय।

सिद्धि–(१) स्रौघ्नः। स्रुघ्न+ङि+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल अर्थों में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–माथुरः, रौहितकः।*

*राष्ट्रियः। यहां 'राष्ट्र' शब्द से **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।२।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है।*

कृत=बना हुआ। लब्ध=प्राप्त हुआ। क्रीत=खरीदा हुआ। कुशल=चतुर।

प्रायभवार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) प्रायभवः ।३९।

प०वि०–प्रायभवः १ ।१ ।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् प्रायभवो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-स्रुघ्ने प्रायभवः=प्रायेण-बाहुल्येन भवतीति-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रायभवः) अधिकतर विद्यमान अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-स्रुघ्न नगर में प्रायभव=अधिकतर रहनेवाला-स्रौघ्न। मथुरानगरी में प्रायभव-माथुर। रोहतक नगर में प्रायभव-रौहितक। राष्ट्र में प्रायभव-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *किसी नगर आदि में नित्य रहनेवाला 'भवः' और अधिकतर रहनेवाला 'प्रायभवः' कहाता है।*

ठक्-

(२) उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्।४०।

प०वि०-उपजानु-उपकर्ण-उपनीवेः ५।१ ठक् १।१।

स०-जानुनः समीपमिति उपजानु। कर्णस्य समीपमिति उपकर्णम्। नीव्याः समीपमिति उपनीवि। **'अव्ययं विभक्तिसमीप०'** (२।१।६) इत्यव्ययीभावः। उपजानु च उपकर्णं च उपनीवि च एतेषां समाहार उपजानूपकर्णोपनीवि, तस्मात्-उपजानूपकर्णोपनीवेः (अव्ययभावगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, प्रायभव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उपजानूपकर्णोपनीवेः प्रायभवष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः उपजानूपकर्णोपनीविभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(उपजानु)** उपजानु प्रायभव औपजानुकः। **(उपकर्णम्)** उपकर्णं प्रायभव औपकर्णिकः। **(उपनीवि)** उपनीवि प्रायभव औपनीविकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (उपजानूपकर्णोपनीवेः) उपजानु, उपकर्ण, उपनीवि प्रातिपदिकों से (प्रायभवः) प्रायभव अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(उपजानु) उपजानु=घुटने के अधोभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण आदि-औपजानुक। (**उपकर्ण**) उपकर्ण=कान के अधोभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण आदि-औपकर्णिक। (**उपनीवि**) उपनीवि=कटिभाग में प्रायः धारण किया जानेवाला आभूषण एवं पटबन्ध आदि-औपनीविक।*

*सिद्धि-(१) **औपजानुकः**। उपजानु+ङि+ठक्। औपजानु+क। औपजानुकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'उपजानु' शब्द से प्रायभव अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**औपकर्णिकः, औपनीविकः।***

विशेषः *'उपजानु' आदि पदों में पूर्वोक्त अव्ययीभाव समास है। '**अव्ययीभावश्च**' (१।१।४१) से अव्ययीभाव समास के अव्यय होने से '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है अतः यहां सप्तमी-विभक्ति का दर्शन नहीं होता है।*

सम्भूतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सम्भूते।४१।

प०वि०–सम्भूते ७।१।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकात् सम्भूते यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्भूतेऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्ने सम्भवतीति स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

अवक्लृप्तिः प्रमाणानतिरेकश्च सम्भवत्यर्थोऽत्र गृह्यते, नोत्पत्तिः, सत्ता वा जातभवाभ्यामर्थाभ्यां गतार्थत्वात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्भूते) सम्भव अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो स्रुघ्न में सम्भव है वह-स्रौघ्न। मथुरा में जो सम्भव है वह-माथुर। रोहितक में जो सम्भव है वह-रौहितक। राष्ट्र में जो सम्भव है वह-राष्ट्रिय।

सिद्धि- 'स्रौघ्नः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *यहां सम्भूत शब्द का अर्थ सम्भव=हो सकना अर्थ है, उत्पत्ति वा सत्ता अर्थ नहीं क्योंकि जात और भव अर्थ से उत्पत्ति वा सत्ता अर्थ का कथन किया गया है।*

ढञ्–

(२) कोशाड्ढञ्।४२।

प०वि०–कोशात् ५।१ ढञ् १।१।

अनु०–तत्र, सम्भूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कोशात् सम्भूते ढञ्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कोशात् प्रातिपदिकात् सम्भूतेऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कोशे सम्भूतं कौशेयं वस्त्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कोशात्) कोश प्रातिपदिक से (सम्भूते) सम्भूत अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–कोश (खोलविशेष) में सम्भूत कौशेय=रेशम। कौशेय वस्त्र=रेशमी कपड़ा।

सिद्धि–कौशेयम्। कोश+ङि+ढञ्। कौश्+एय। कौशेय+सु। कौशेयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कोश' शब्द से सम्भूत अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेषः *कोश (खोलविशेष) में कृमिविशेष सम्भूत होता है, वस्त्र नहीं किन्तु रूढिवश 'कौशेय' पद रेशमीवस्त्र अर्थ का वाचक है, कृमि अर्थ का नहीं।*

साध्वाद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु।४३।

प०वि०–कालात् ५।१ साधु-पुष्प्यत्-पच्यमानेषु ७।३।

स०–साधुश्च पुष्प्यँश्च पच्यमानश्च ते साधुपुष्प्यत्पच्यमानाः, तेषु-साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुपुष्प्यत्पच्यमानेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(साधुः) हेमन्ते साधुः-हैमनः प्राकारः। शिशिरे साधुः शैशिरमनुलेपनम्। **(पुष्प्यन्)** वसन्ते पुष्प्यन्तीति वासन्त्यः कुन्दलताः। ग्रीष्मे पुष्प्यन्तीति ग्रैष्म्यः पाटलाः। **(पच्यमानः)** शरदि पच्यन्ते इति शारदाः शालयः। ग्रीष्मे पच्यन्ते इति ग्रैष्मा यवाः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से (साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु) साधु, पुष्प्यन्, पच्यमान अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साधु)** हेमन्त ऋतु में साधु=ठीक-हैमन प्राकार=परकोटा (चार दीवारी)। शिशिर ऋतु में साधु=ठीक-शैशिर अनुलेपन (तैल-मर्दन आदि)। **(पुष्प्यन्)** वसन्त ऋतु में पुष्पित होनेवाली-वासन्ती कुन्दलतायें (चमेली)। ग्रीष्म ऋतु में पुष्पित होनेवाली-ग्रैष्मी पाटला (पाढर का वृक्ष)। **(पच्यमान)** शरद् ऋतु में पकनेवाले-शारद शालि (चावल)। ग्रीष्म ऋतु में पकनेवाले-ग्रैष्म यव (जौ)।*

*सिद्धि-(१) **हैमनः।** यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'हेमन्त' शब्द से साधु अर्थ में **'सर्वत्राण् च तलोपश्च'** (४।३।२२) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय और तकार का लोप होता है। सिद्धि पूर्ववत् है।*

*(२) **शैशिरम्।** यहां सप्तमी-समर्थ कालविशेषवाची 'शिशिर' शब्द से सन्धि अर्थ में **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। सिद्धि पूर्ववत् है।*

*(३) **वासन्ती।** यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'वसन्त' शब्द से पुष्प्यन् अर्थ में पूर्ववत् यथाविहित 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से-**ग्रैष्मी।***

*(४) **शारदः।** यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'शरद्' शब्द से पच्यमान अर्थ में पूर्ववत् यथाविहित 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से ग्रैष्मः।*

उप्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) उप्ते च।४४।

प०वि०-उप्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् उप्ते च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् उप्ते चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः। ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्मा व्रीहयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-हेमन्त ऋतु में उप्त=बोया गया-हैमन्त यव (जौ)। ग्रीष्म ऋतु में उप्त=बोया गया-ग्रैष्म व्रीहि (धान्य=चावल)।

सिद्धि-(१) हैमन्तः। यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची हेमन्त' शब्द से उप्त अर्थ में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'ग्रीष्म' शब्द से-ग्रैष्मः।

वुञ्-

(२) आश्वयुज्या वुञ्।४५।

प०वि०-आश्वयुज्याः ५।१ वुञ् १।१।

अनु०-तत्र, कालात्, उप्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालादाश्वयुज्या उप्ते वुञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः आश्वयुजी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् उप्तेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः।

अश्विनीभ्यां युक्ता पौर्णमासी आश्वयुजीति कथ्यते। अश्वयुक् शब्दो हि आश्विनीपर्यायो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (आश्वयुज्याः) आश्वयुजी प्रातिपदिक से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होती है।*

उदा०-आश्वयुजी=आसौज की पौर्णमासी के दिन बोये गये-आश्वयुजक माष (उड़द)।

अश्विनी नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी आश्वयुजी कहाती है। अश्वयुक् शब्द अश्विनी का पर्यायवाची है।

सिद्धि-आश्वयुजका: । आश्वयुजी+ङि+वुञ् । आश्वयुज्+अक । आश्वयुजक+जस् । आश्वयुजका: ।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अश्वयुजी' शब्द से उप्त अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादे:'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

वुञ्-विकल्प:–

(३) ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्।४६।

प०वि०-ग्रीष्म-वसन्तात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-ग्रीष्मश्च वसन्तश्च एतयो: समाहारो ग्रीष्मवसन्तम्, तस्मात्-ग्रीष्मवसन्तात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, कालात्, उप्ते, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र कालाभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यामुप्तेऽन्यतरस्यां वुञ्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् उप्तेऽर्थे विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ग्रीष्म:**) ग्रीष्मे उप्तं ग्रैष्मकं सस्यम् (वुञ्)। ग्रैष्मं सस्यम् (अण्)। (**वसन्त:**) वसन्ते उप्तम्-वासन्तकं सस्यम् (वुञ्)। वासन्तं सस्यम् (अण्)।

आर्यभाषा: ***अर्थ***-*(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (ग्रीष्मवसन्ताभ्याम्) ग्रीष्म, वसन्त प्रातिपदिकों से (उप्ते) उप्त=बोया गया अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है और पक्ष में अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ग्रीष्म)** ग्रीष्म ऋतु में बोई गई खेती-ग्रैष्मक (वुञ्)। ग्रैष्म (अण्)। **(वसन्त)** वसन्त ऋतु में बोई गई खेती-वासन्तक (वुञ्)। वासन्त (अण्)।*

*सिद्धि-(१) **ग्रैष्मकम्।** ग्रीष्म+ङि+अण्। ग्रैष्म्+अक। ग्रैष्मक+सु। ग्रैष्मकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से उप्त अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ग्रैष्मम्। ग्रीष्म+ङि+अण्। ग्रैष्म+अ। ग्रैष्म+सु। ग्रैष्मम्।

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से विकल्प पक्ष में 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (४।३।१६) से 'ऋतु-अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वासन्तकम्, वासन्तम्।***

देयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः—

(१) देयमृणे।४७।

प०वि०-देयम् १।१ ऋणे ७।१।

अनु०-तत्र, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् देयं यथाविहितं प्रत्यय ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् देयमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासे देयमृणं मासिकम्। अर्धमासे देयमृणम् आर्धमासिकम्। संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (देयम्) देय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है, वह ऋण हो।*

उदा०-एक मास में देय ऋण-मासिक। अर्धमास में देय ऋण-आर्धमासिक। संवत्सर में देय ऋण-सांवत्सरिक (वार्षिक)।

*सिद्धि-**मासिकम्।** मास+ङि+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। यहां **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय होता है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।***

वुन्—

(२) कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्।४८।

प०वि०-कलापि-अश्वत्थ-यवबुसात् ५।१ वुन् १।१।

स०-कलापिश्च अश्वत्थश्च यवबुसं च एतेषां समाहारः कलाप्यश्वत्थयवबुसम्, तस्मात्-कलाप्यश्वत्थयवबुसात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालेभ्यः कलाप्यश्वत्थयवबुसेभ्यो देयं वुन् ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः कलाप्यश्वत्थयवबुसेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो देयमित्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**कलापिनः**) कलापिषु देयमृणम्-कलापकम्। (**अश्वत्थः**) अश्वत्थेषु देयमृणम्-अश्वत्थकम्। (**यवबुसम्**) यवबुसे देयमृणम्-यवबुसकम्।

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स कालः कलापीति कथ्यते। यस्मिन् कालेऽश्वत्थाः फलन्ति स कालोऽश्वत्थ इत्यभिधीयते। यस्मिन् काले यवबुसं सम्पद्यते स कालो यवबुसमित्युच्यते। अत इमे कालविशेषवाचिनः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (कलाप्यश्वत्थयवबुसात्) कलापी, अश्वत्थ, यवबुस प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है, वह ऋण हो।

उदा०-(__कलापी__) कलापी-काल में देय ऋण-कलापक। (__अश्वत्थ__) अश्वत्थ=फलवान् पीपल-काल में देय ऋण-अश्वत्थक। (__यवबुस__) यवबुस-काल में देय ऋण-यवबुसक।

जिस काल में मयूर कलापी (पुच्छवान्) होते हैं वह काल तत्साहचर्य से कलापी कहाता है। जिस काल में अश्वत्थ (पीपल) फलवान् होते हैं वह काल तत्साहचर्य से अश्वत्थ कहाता है। जिस काल में यवबुस (जौ का भूसा) तैयार हो जाता है तत्साहचर्य से उस काल को यवबुस कहते हैं। इसलिये ये शब्द कालविशेषवाची हैं।

__सिद्धि-कलापकम्।__ कलापिन्+सुप्+वुन्। कलाप्+अक। कलापक+सु। कलापकम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कलापिन्' शब्द से देय-ऋण अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और '__नस्तद्धिते__' (६।४।१४४) से नकारान्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-__अश्वत्थकम्, यवबुसकम्।__

वुञ्–

(३) ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्।४६।

प०वि०–ग्रीष्म-अवरसमात् ५।१ वुञ् १।१।

स०–ग्रीष्मश्च अवरसमा च एतयोः समाहारो ग्रीष्मावरसमम्, तस्मात्–ग्रीष्मावरसमात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कालाभ्यां ग्रीष्मावरसमाभ्यां देयं वुञ् ऋणे।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां ग्रीष्मावरसमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां देयमित्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०–(**ग्रीष्मः**) ग्रीष्मे देयमृणम्–ग्रैष्मकम्। (**अवरसमा**) अवरसमायां देयमृणम् आवरसमम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (ग्रीष्मावरसमात्) ग्रीष्म, अवरसमा प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (ऋणे) यदि जो देय है वह ऋण हो।

उदा०–(ग्रीष्म) ग्रीष्म ऋतु में देय ऋण–ग्रैष्मक। (अवरसमा) अवरसमा=अवरवर्ती वर्ष में देय ऋण–आवरसमक।

"आवरसमकम्–आगामिनां संवत्सराणामाद्यसंवत्सरे देयमित्यर्थः। अपर आह–अतीते वत्सरे देयं यदद्यापि न दत्तं तदावरसकमिति" (इति पदमञ्जर्यां हरदत्तमिश्रः)। आगामी वर्षों के आदिम वर्ष में देय ऋण 'आवरसमक' कहाता है। दूसरा मत यह है कि गतवर्ष में देय ऋण जो आज तक भी नहीं दिया उसे 'आवरसमक' कहते हैं (पदमञ्जरी–हरदत्तमिश्र)।

*सिद्धि–**ग्रैष्मकम्।** ग्रीष्म+ङि+वुञ्। ग्रैष्म्+अक। ग्रैष्मक+सु। ग्रैष्मकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'ग्रीष्म' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**आवरसमकम्।***

ठञ्+वुञ्–

(४) संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च।५०।

प०वि०–संवत्सर-आग्रहायणीभ्याम् ५।२ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–संवत्सरश्च आग्रहायणी च ते संवत्सराग्रहायण्यौ, ताभ्याम्–संवत्सराग्रहायणीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कालात्, देयम्, ऋणे, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाभ्यां संवत्सराग्रहायणीभ्यां देयं ठञ् वुञ् च ऋणे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कालविशेषवाचिभ्यां संवत्सराग्रहायणीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां देयमित्यस्मिन्नर्थे ठञ् वुञ् च प्रत्ययो भवति, यद् देयमृणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**संवत्सरः**) संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम् (ठञ्)। सांवत्सरकम् (वुञ्)। (**आग्रहायणी**) आग्रहायण्यां देयमृणम्-आग्रहायणिकम् (ठञ्)। आग्रहायणकम् (वुञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (संवत्सराग्रहायणीभ्याम्) संवत्सर, आग्रहायणी प्रातिपदिकों से (देयम्) देय अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और वुञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(संवत्सर) संवत्सर=वर्ष में देय ऋणि-सांवत्सरिक (ठञ्)। सांवत्सरक (वुञ्)। (आग्रहायणी) आग्रहायणी=मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन देय ऋण-आग्रहायणिक (ठञ्)। आग्रहायणक (वुञ्)।

*सिद्धि-(१) **सांवत्सरिकम्**। संवत्सर+ङि+ठञ्। सांवत्सर्+इक। सांवत्सरिक+सु। सांवत्सरिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ कालवाची 'संवत्सर' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **सांवत्सरकम्**। यहां पूर्वोक्त 'संवत्सर' शब्द से देय (ऋण) अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्**।*

'व्याहरति मृगः' इत्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) व्याहरति मृगः।५१।

प०वि०-व्याहरति क्रियापदम्, मृगः १।१।

अनु०-तत्र, कालादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालाद् व्याहरति मृगो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् व्याहरति मृग इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-निशायां व्याहरति मृगो नैशः (अण्) नैशिकः (ठञ्)। प्रदोषे व्याहरति मृगः प्रादोषः (अण्) प्रादोषिकः (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (व्याहरति-मृगः) मृग बोलता है अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो मृग निशा=रात्रि में बोलता है वह-नैश (अण्)। नैशिक (ठञ्)। जो मृग प्रदोष=रात्रि के प्रथम प्रहर में बोलता है वह-प्रादोष (अण्)। प्रादोषिक (ठञ्।

सिद्धि-नैश आदि पदों की सिद्ध 'निशाप्रदोषाभ्यां च' (४।३।१४) के प्रवचन में देख लेवें।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तदस्य सोढम्।५२।

प०वि०-तद् १।१ अस्य ६।१ सोढम् १।१।

अनु०-कालादित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् कालाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः सोढम्।

अर्थः-तदिति प्रथमासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्प्रथमासमर्थं सोढं चेत् तद् भवति।

उदा०-निशासहचरितसोढमध्ययनं निशा। निशा सोढाऽस्य छात्रस्य-नैशश्छात्रः (अण्)। नैशिकश्छात्रः (ठञ्)। प्रदोषसहचरितसोढमध्ययनं प्रदोषः। प्रदोषः सोढोऽस्य छात्रस्य प्रादोषश्छात्रः (अण्)। प्रादोषिकश्छात्रः (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-विभक्ति-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (सोढम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह सोढ=सहन किया हुआ हो।*

उदा०-निशा सहित सहन किया हुआ अध्ययन 'निशा' कहाता है। वह 'निशा' जिस छात्र ने सहन की है वह-नैश छात्र (अण्) नैशिक छात्र (ठञ्)। प्रदोष सहित सहन किया हुआ अध्ययन 'प्रदोष' कहाता है। वह 'प्रदोष' (रात्रि का प्रथम पहर) जिस छात्र ने सहन किया है वह-प्रादोष छात्र (अण्)। प्रादोषिक छात्र (ठञ्)।

सिद्धि- *'नैश' आदि पदों की सिद्धि 'निशाप्रदोषाभ्यां च' (४।३।१४) के प्रवचन में देख लेवें।*

भवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तत्र भवः।५३।

प०वि०–तत्र सप्तम्यर्थे अव्ययपदम्, भवः १।१।

अन्वयः–तत्र प्रातिपदिकाद् भवो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ प्रातिपदिक से (भव) भव अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-स्रुघ्न नगर में होनेवाला-स्रौघ्न। मथुरा में होनेवाला-माथुर। रोहितक में होनेवाला-रौहितक। राष्ट्र में होनेवाला-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः। *यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से भव (होनेवाला) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः* ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।***

यत्–

(२) दिगादिभ्यो यत्।५४।

प०वि०–दिक्-आदिभ्यः ५।३ यत् १।१।

स०–दिक् आदिर्येषां ते दिगादयः, तेभ्यः–दिगादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र दिगादिभ्यो भवो यत्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो दिगादिभ्यः प्रातिपदिभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–दिशि भवं दिश्यम्। वर्गे भवं वर्ग्यम्, इत्यादिकम्।

दिश्। वर्ग। पूग। गण। पक्ष। धाय्या। मित्र। अन्तर। पथिन्। रहस्। अलीक। उखा। साक्षिन्। आदि। अन्त। मुख। जघन। मेष।

यूथ। उदकात्संज्ञायाम्।। न्याय। वंश। अनुवंश। विश। काल। अप्। आकाश। इति दिगादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (दिगादिभ्यः) दिक्-आदि प्रातिपदिकों से (भवः) भव अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दिक्=दिशा में होनेवाला-दिश्य। वर्ग में होनेवाला-वर्ग्य। वर्ग=पार्टी, इत्यादि।

सिद्धि-दिश्यम्। *दिशा+ङि+यत्। दिश्+य। दिश्य+सु। दिश्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दिश्' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**वर्ग्यम्।***

यत्-

(३) शरीरावयवाच्च।५५।।

प०वि०-शरीर-अवयवात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शरीरस्य अवयवमिति शरीरावयवम्, तस्मात्-शरीरावयवात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्र, भवः, यदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र शरीरावयवाच्च भवो यत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाच्छरीरावयववाचिनः प्राति-पदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दन्तेषु भवं दन्त्यम्। कर्णयोर्भवं कर्ण्यम्। ओष्ठयोर्भवम् ओष्ठ्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (शरीरावयवात्) शरीर-अवयववाची प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दांतों में होनेवाला-दन्त्य। कानों में होनेवाला-कर्ण्य। ओष्ठों पर होनेवाला-ओष्ठ्य।

सिद्धि-दन्त्यम्। *दन्त+सुप्+यत्। दन्त्+य। दन्त्य+सु। दन्त्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, शरीर अवयववाची 'दन्त' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कर्ण्यम्, ओष्ठ्यम्।***

ढञ्-

(४) दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्।५६।

प०वि०-दृति-कुक्षि-कलशि-वस्ति-अस्ति-अहेः ५।१ ढञ् १।१।

स०-दृतिश्च कुक्षिश्च कलशिश्च वस्तिश्च अस्तिश्च अहिश्च एतेषां समाहारो दृति०अहि, तस्मात्-दृति०अहे: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र दृति०अहेर्भवो ढञ्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थेभ्यो दृतिकुक्षिकलशिवस्त्य-स्त्यहिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**दृति:**) दृतौ भवं दार्तेयम्। (**कुक्षि:**) कुक्षौ भवं कौक्षेयम्। (**कलशि:**) कलशौ भवं कालशेयम्। (**वस्ति:**) वस्तौ भवं वास्तेयम्। (**अस्ति:**) अस्तौ भवम् आस्तेयम्। (**अहि:**) अहौ भवम् आहेयम्। आहेयमजरं विषम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (दृति०अहे:) दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति, अहि प्रातिपदिकों से (भव:) भव अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**दृति**) दृति=मशक में होनेवाला-दार्तेय (जल)। (**कुक्षि**) कुक्षि=म्यान में होनेवाला-कौक्षेय (तलवार)। (**कलशि**) कलशि=गगरी में होनेवाला-कालशेय (तक्र आदि)। (**वस्ति**) वस्ति=नाभि के नीचे के भाग (पेडू) में होनेवाला-वास्तेय। (**अस्ति**) अस्ति=सत्ता में होनेवाला-आस्तेय। (**अहि**) अहि=सर्प में होनेवाला-आहेय (विष)।*

*सिद्धि-**दार्तेयम्**। दृति+ङि+ढञ्। दार्त्+एय। दार्तेय+सु। दार्तेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'दृति' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादे:**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौक्षेयम्** आदि।*

विशेष: *यहां 'अस्ति' शब्द प्रातिपदिक है किन्तु तिङन्त के समानार्थक है। जैसे-अस्तिक्षीरा गौ:।*

अण्+ढञ्-

(५) ग्रीवाभ्योऽण् च।५७।

प०वि०-ग्रीवाभ्य: ५।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, भव:, ढञ् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र ग्रीवाभ्यो भवोऽण् ढञ् च।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् ग्रीवा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थेऽण् ढञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-ग्रीवासु भवं ग्रैवम् (अण्)। ग्रैवेयम् (ढञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (ग्रीवाभ्यः) ग्रीवा प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (अण्) अण् (च) और ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ग्रीवा=धमनियों में होनेवाला-ग्रैव (अण्)। ग्रैवेय (ढञ्)।

सिद्धि-(१) ***ग्रैवम्।*** *ग्रीवा+सुप्+अण्। ग्रैव्+अ। ग्रैव्+अ। ग्रैव+सु। ग्रैवम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'ग्रीवा' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ***ग्रैवेयम्।*** *ग्रीवा+सुप्+ढञ्। ग्रैव्+एय। ग्रैवेय+सु। ग्रैवेयम्।*

यहां पूर्वोक्त 'ग्रीवा' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'ढ्' के स्थान में पूर्ववत् 'एय्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *यहां 'ग्रीवाभ्यः' शब्द में बहुवचन के पाठ से ग्रीवा में विद्यमान धमनियों का ग्रहण किया जाता है।*

ञ्यः–

(६) गम्भीराञ्ञ्यः।५८।

प०वि०-गम्भीरात् ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र गम्भीराद् भवो ञ्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् गम्भीरात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (गम्भीरात्) गम्भीर प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-गम्भीर में होनेवाला-गाम्भीर्य। गम्भीर=शान्त एवं महाशय पुरुष।

*सिद्धि-****गाम्भीर्यम्।*** *गम्भीर+ङि+ञ्य। गाम्भीर्+य। गाम्भीर्य+सु। गाम्भीर्यम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'गम्भीर' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ञ्यः–

(७) अव्ययीभावाच्च।५९।

प०वि०-अव्ययीभावात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्र, भवः, ञ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राव्ययीभावाच्च भवो ञ्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकात् प्रातिपदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिमुखं भवं पारिमुख्यम्। परिहनु भवं पारिहनव्यम्।

वा०-'ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्' (४।३।५०) इति वार्तिकेनाव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिभ्य एव ञ्यः प्रत्ययो भवति न सर्वेभ्योऽव्ययसंज्ञकेभ्यः।

परिमुख। परिहनु। पर्योष्ठ। पर्युलू। औपमूल। खल। परिसीर। अनुसीर। उपसीर। उपस्थल। उपकलाप। अनुपथ। अनुखड्ग। अनुतिल। अनुशीत। अनुमाप। अनुयव। अनुयूप। अनुवंश। अनुस्वङ्ग। इति परिमुखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अत्ययीभाव-संज्ञक प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-परिमुख=मुख वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिमुख्य। परिहनु=हनु=ठोडी वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिहनव्य।

*वा०-**'ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्'** (४।३।५०) इस वार्तिक से अव्ययीभावसंज्ञक 'परिमुख' आदि शब्दों से ही 'ञ्य' प्रत्यय होता है, सब से नहीं। परिमुखादिगण संस्कृत-भाग में देख लेवें।*

*सिद्धि-**पारिमुख्यम्।** परिमुख+ङि+ञ्य। पारिमुख्+य। पारिमुख्य+सु। पारिमुखम्।*

*यहां प्रथम **'अपापरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास होता है। मुखात् परि इति परिमुखम्। मुख को छोड़कर। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, अव्ययीभावसंज्ञक 'परिमुख' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पारिहनव्यम्।***

ठञ्-

(८) अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्।६०।

प०वि०-अन्तः-पूर्वपदात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-अन्तः पूर्वपदं यस्य तद् अन्तःपूर्वपदम्, तस्मात्-अन्तःपूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। अत्रान्तःशब्दः सप्तमीविभक्त्यर्थे वर्तते।

अनु०-तत्र, भव, अव्ययीभावाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राव्ययीभावाद् अन्तःपूर्वपदाद् भवष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमी-विभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकाद् अन्तःपूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अन्तर्वेश्मं भवम् आन्तर्वैश्मिकम्। अन्तर्गेहि भवम् आन्तर्गैहिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अव्ययीभाव-संज्ञक (अन्तःपूर्वपदात्) अन्तःपूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (भवः) भव अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अन्तर्वेश्म=घर में होनेवाला-आन्तर्वैश्मिक। अन्तर्गेह=घर में होनेवाला-आन्तर्गैहिक।

सिद्धि-आन्तर्वैश्मिकम्। *अन्तर्+वेश्मन्। अन्तर्वेश्मन्+टच्। अन्तर्वेश्म्+अ। अन्तर्वेश्म+ङि+ठञ्। आन्तर्वेश्म्+इक। आन्तर्वैश्मिक+सु। आन्तर्वैश्मिकम्।*

*यहां प्रथम **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अन्तर् और वेश्मन् शब्द का अव्ययीभाव समास, **'अनश्च'** (४।५।१०८) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से टि-भाग (अन्) का लोप होता है। तत्पश्चात् अव्ययीभावसंज्ञक, अन्तःपूर्वपदवान्, 'अन्तर्वेष्म' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठ्' के स्थान में पूर्ववत् 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आन्तर्गैहिकम्।***

ठञ्-

(६) ग्रामात् पर्यनुपूर्वात्।६१।

प०वि०-ग्रामात् ५।१ परि-अनुपूर्वात् ५।१।

स०-परिश्च अनुश्च एतयोः समाहारः पर्यनु। पर्यनु पूर्वं यस्य तत् पर्यनुपूर्वम्, तस्मात्-पर्यनुपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, अव्ययीभाव, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र पर्यनुपूर्वाद् ग्रामाद् भवष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकात् परि-अनुपूर्वाद् ग्रामात् प्रातिपदिकाद् भव इतयस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(परि:)** परिग्रामं भव: पारिग्रामिक:। **(अनु:)** अनुग्रामं भव आनुग्रामिक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (अव्ययीभावात्) अव्ययीभाव-संज्ञक (पर्यनुपूर्वात्) परि और अनु पूर्ववान् (ग्रामात्) ग्राम प्रातिपदिक से (भव:) भव अर्थ में (ठञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(परि)** परिग्राम=ग्राम वर्जित प्रदेश में होनेवाला-पारिग्रामिक। **(अनु)** अनुग्राम=ग्राम के समीपवर्ती प्रदेश में होनेवाला-आनुग्रामिक।*

*सिद्धि-**(१) पारिग्रामिक:।** परि+ग्राम+ङसि। परिग्राम+ङि+ठञ्। परिग्राम्+इक। पारिग्रामिक+सु। पारिग्रामिक:।*

*यहां प्रथम परि और ग्राम शब्दों का **'अपपरिबहिरञ्चव: पञ्चम्या'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास होता है। तत्पश्चात् सप्तमी-समर्थ, अव्ययीभावसंज्ञक 'पारिग्राम' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*__(२) आनुग्रामिक:।__ यहां प्रथम अनु और ग्राम शब्दों में **'अनुर्यत्समया'** (२।१।१५) से अव्ययीभाव समास होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छ:—

(१०) जिह्वामूलाङ्गुलेश्छ:।६२।

प०वि०-जिह्वामूल-अङ्गुले: ५।१ छ: १।१।

स०-जिह्वामूलं च अङ्गुलिश्च एतयो: समाहारो जिह्वामूलाङ्गुलि:, तस्मात्-जिह्वामूलाङ्गुले: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां जिह्वामूलाङ्गुलिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे छ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(जिह्वामूलम्)** जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयम्। **(अङ्गुलि:)** अङ्गुलौ भवं अङ्गुलीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (जिह्वामूलाङ्गुले:) जिह्वामूल, अङ्गुलि प्रातिपदिकों से (भव:) भव अर्थ में (छ:) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(जिह्वामूल)** जिह्वामूल में होनेवाला-जिह्वामूलीय अक्षर। **(अङ्गुलि)** अङ्गुलि में होनेवाला-अङ्गुलीय आभूषण।*

सिद्धि-जिह्वामूलीयम्। जिह्वामूल+ङि+छ। जिह्वामूल्+ईय। जिह्वामूलीय+सु। जिह्वामूलीयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'जिह्वामूल' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। 'कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च' (८।३।३७) से क, ख वर्ण परे होने पर विसर्जनीय के स्थान में ᳲ जिह्वामूलीय आदेश होता है। जैसे-देव ᳲ करोति। देव ᳲ खादति।

छः-

(११) वर्गान्ताच्च।६३।

प०वि०-वर्ग-अन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-वर्गोऽन्ते यस्य तद् वर्गान्तम्, तस्मात्-वर्गान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र वर्गान्ताच्च भवश्छः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् वर्गान्तात् प्रातिपदिकाच्च भव इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कवर्गे भवं कवर्गीयम्। चवर्गे भवं चवर्गीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वर्गान्तात्) वर्ग अन्तवाले प्रातिपदिक से (च) भी (भवः) भव अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-कवर्ग में होनेवाला-कवर्गीय। चवर्ग में होनेवाला चवर्गीय।

सिद्धि-कवर्गीयम्। कवर्ग+ङि+छ। कवर्ग्+ईय। कवर्गीय+सु। कवर्गीयम्।

यहां सप्तमी-समर्थ, वर्गान्त 'कवर्ग' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही-चवर्गीयम्।

विशेषः *संस्कृत-भाषा की वर्णमाला में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग ये पांच वर्ग है। इनके उपरिलिखित विधि से पांच रूप बनते हैं।*

यत्+खः+छः-

(१२) अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्।६४।

प०वि०-अशब्दे ७।१ यत्-खौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-न शब्द इति अशब्दः, तस्मिन्-अशब्दे (नञ्तत्पुरुषः)। यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भव:, वर्गान्तादिति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र वर्गान्ताद् अशब्दे भवोऽन्यतरस्यां यत्खौ।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाद् वर्गान्तात् प्रातिपदिका-च्छब्दवर्जिते भव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन यत्खौ प्रत्ययौ भवत:, पक्षे च छ: प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** वासुदेववर्गे भवो वासुदेववर्ग्य:। **(ख:)** वासुदेव-वर्गीण:। **(छ:)** वासुदेववर्गीय:। **(यत्)** युधिष्ठिरवर्गे भवो युधिष्ठिरवर्ग्य:। **(ख:)** युधिष्ठिरवर्गीण:। **(छ:)** युधिष्ठिरवर्गीय:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (वर्गान्तात्) वर्ग-अन्तवाले प्रातिपदिक से (अशब्दे) शब्द-वर्जित (भव:) भव अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं और पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यत्)** वासुदेव=कृष्ण के वर्ग (पक्ष) में होनेवाला-वासुदेववर्ग्य। **(ख)** वासुदेववर्गीण। **(छ)** वासुदेववर्गीय। **(यत्)** युधिष्ठिर के वर्ग में होनेवाला-युधिष्ठिरवर्ग्य। **(ख)** युधिष्ठिरवर्गीण। **(छ)** युधिष्ठिरवर्गीय।*

सिद्धि-(१) वासुदेववर्ग्य:। *यहां सप्तमी-समर्थ, वर्गान्त 'वासुदेववर्ग' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।*

*(२) **वासुदेववर्गीण:।** यहां पूर्वोक्त 'वासुदेव' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(३) **वासुदेववर्गीय:**-यहां पूर्वोक्त 'वासुदेव' शब्द से भव अर्थ में विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही **'युधिष्ठिरवर्ग्य:'** आदि।*

*यहां शब्द-अर्थ का प्रतिषेध किया गया है अत: शब्द-अर्थ में पूर्व सूत्र से 'छ' प्रत्यय ही होता है-**कवर्गीयो वर्ण:** इत्यादि।*

कन्-

(१३) कर्णललाटात् कनलङ्कारे।६५।

प०वि०-कर्ण-ललाटात् ५।१ कन् १।१ अलङ्कारे ७।१।

स०-कर्णश्च ललाटं च एतयो: समाहार: कर्णललाटम्, तस्मात्-कर्णललाटात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कर्णललाटाद् भवः कन् अलङ्कारे।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीविभक्तिसमर्थाभ्यां कर्णललाटाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति, अलङ्कारेऽभिधेये।

उदा०-**(कर्णः)** कर्णे भवा कर्णिका। **(ललाटम्)** ललाटे भवा ललाटिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-विभक्ति-समर्थ (कर्णललाटात्) कर्ण, ललाट प्रातिपदिकों से (भवः) भव अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (अलङ्कारे) यदि वहां अलंकार=आभूषण अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(कर्ण)** कर्ण में होनेवाला अलंकार-कर्णिका (कानों की बाळी)। **(ललाट)** ललाट=माथे पर होनेवाला अलंकार-ललाटिका (माथे का आभूषण-बोरला आदि)।*

*सिद्धि-**कर्णिका।** कर्ण+ङि+कन्। कर्ण+क। कर्णक+टाप्। कर्णिक+आ। कर्णिका+सु। कर्णिका।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कर्ण' शब्द से भव अर्थ में तथा अलंकार अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से 'क' से पूर्ववर्ती 'अ' को इकार आदेश होता है। ऐसे ही-**ललाटिका।***

भव-व्याख्यानार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः।६६।

प०वि०-तस्य ६।१ व्याख्याने ७।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, व्याख्यातव्यनाम्नः ५।१।

स०-व्याख्यातव्यस्य नाम इति व्याख्यातव्यनाम, तस्मात्-व्याख्यातव्यनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्र, भव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र व्याख्यातव्यनाम्नो व्याख्याने भव इति च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्य-नामवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(षष्ठी) सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः। कृतां व्याख्यानो ग्रन्थः कार्तः। **(सप्तमी)** सुप्सु भवं सौपं कार्यम्। तिङ्क्षु भवं तैङं कार्यम्। कृत्सु भवं कार्तं कार्यम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यतव्य-नामवाची प्रातिपदिक से (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) **भव** (इति) इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(षष्ठी)** सुपों का व्याख्यान ग्रन्थ-सौप। तिङों का व्याख्यान ग्रन्थ-तैङ। कृतों का व्याख्यान ग्रन्थ-कार्त। **(सप्तमी)** सुपों में होनेवाला-सौप कार्य। तिङों में होनेवाला-तैङ कार्य। कृत्-प्रत्ययों में होनेवाला कार्त कार्य।*

सिद्धि-सौपः।** यहां षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्य नामवाची 'सुप्' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।३।८३) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**तैङः, कार्तः।

ठञ्-

(२) बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्।६७।

प०वि०-बहु-अचः ५।१ अन्तोदात्तात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-बहवोऽचो यस्मिँस्तद् बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)। अन्ते उदात्तो यस्य तद् अन्तोदात्तम्, तस्मात्-अन्तोदात्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति च व्याख्यतव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तत्र चान्तोदात्ताद् बह्वचो व्याख्यातव्यनाम्नो व्याख्याने भव इति च ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमी-समर्थाद् अन्तोदात्ताद् बह्वचो व्याख्यतव्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**षष्ठी**) षत्वणत्वयोर्व्याख्यानो ग्रन्थः-षात्वणत्विकः। (**सप्तमी**) नतानतयोर्भवं नातानतिकं कार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (बह्वचः) बहुत अच्वाले (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(षष्ठी)** षत्वणत्व का व्याख्यान ग्रन्थ-षात्वणत्विक। **(सप्तमी)** नत-अनत में होनेवाला-नातानतिक कार्य। नत=अनुदात्त स्वर। अनत=उदात्त स्वर।*

सिद्धि-षात्वणत्विकः। *षत्वणत्व+ओस्+ठञ्। षात्वणत्व्+इक। षात्वणत्विक+सु। षात्वणत्विकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अन्तोदात्त, बहुत अच्वाले, व्याख्यातव्यवाची 'षत्वणत्व' शब्द से व्याख्यान अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। यह शब्द 'समासस्य' (६।१।२२०) से अन्तोदात्त स्वरवान् है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**नातानतिकम्।***

ठञ्-

(३) क्रतुयज्ञेभ्यश्च।६८।

प०वि०-क्रतु-यज्ञेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-क्रतवश्च यज्ञाश्च ते क्रतुयज्ञाः, तेभ्यः-क्रतुयज्ञेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्नः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र च व्याख्यातव्यनामभ्यः क्रतुयज्ञेभ्यश्च व्याख्याने भव इति च ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामवाचिभ्यः क्रतुविशेषवाचिभ्यो यज्ञविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(क्रतुः) षष्ठी-अग्निष्टोमस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। राजसूयिकः। **सप्तमी**-अग्निष्टोमे भवम् आग्निष्टोमिकं कर्म।

वाजपेयिकं कर्म। राजसूयिकं कर्म। **(यज्ञः) षष्ठी**-पाकयज्ञस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पाकयज्ञिकः। नवयज्ञस्य व्याख्यानो ग्रन्थो नावयज्ञिकः। **सप्तमी**-पाकयज्ञे भवं पाकयज्ञिकं कर्म। नवयज्ञे भवं नावयज्ञिकं कर्म।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (क्रतुयज्ञेभ्यः) क्रतुविशेष और यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से (च) भी यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(क्रतु) षष्ठी**-अग्निष्टोम का व्याख्यान ग्रन्थ-आग्निष्टोमिक। वाजपेय का व्याख्यान ग्रन्थ-वाजपेयिक। राजसूय का व्याख्यान ग्रन्थ-राजसूयिक। **सप्तमी**-अग्निष्टोम में होनेवाला-आग्निष्टोमिक कर्म। वाजपेय में होनेवाला-वाजपेयिक कर्म। राजसूय में होनेवाला-राजसूयिक कर्म। **(यज्ञ) षष्ठी**-पाकयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ-पाकयज्ञिक। नवयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ-नावयज्ञिक। **सप्तमी**-पाकयज्ञ में होनेवाला-पाकयज्ञिक कर्म। नवयज्ञ में होनेवाला-नावयज्ञिक कर्म।*

*सिद्धि-**आग्निष्टोमिकः**। अग्निष्टोम+ङस्+ठञ्। आग्निष्टोम्+इक। आग्निष्टोमिक+सु। आग्निष्टोमिकः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नाम, क्रतुविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से व्याख्यान अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही '**वाजपेयिकः**' आदि।*

***विशेषः** (१) **क्रतु** और **यज्ञ** दोनों ही शब्द याग के वाचक हैं किन्तु जिस याग में सोमपान किया जाता है उसे 'क्रतु' कहते हैं और सोमपान रहित याग को 'यज्ञ' कहा जाता है। अतः सूत्रपाठ में 'क्रतु' और 'यज्ञ' दोनों शब्दों का पाठ किया गया है।*

*(२) **अग्निष्टोम**-जिस क्रतु=सोमयाग में अग्निदेवता की स्तुति (स्तोम) किया जाता है उसे 'अग्निष्टोम' याग कहते हैं।*

*(३) **वाजपेय**-जिस क्रतु में वाज=यवागूविशेष का पान किया जाता है उसे 'वाजपेय' याग कहते हैं।*

*(४) **राजसूय**-जिस क्रतु में राजा का चयन किया जाता है उसे 'राजसूय' याग कहते हैं। सूय=उत्पत्ति।*

*(५) **पाकयज्ञ**-यहां पाक शब्द अल्प का पर्यायवाची है। लघु यज्ञ को '**पाकयज्ञ**' कहते हैं।*

*(६) **नवयज्ञ**-नवीन व्रीहि (धान्य) से जो यज्ञ किया जाता है उसे '**नवयज्ञ**' कहते हैं।*

ठञ्–

(४) अध्यायेष्वेवर्षेः।६६।

प०वि०–अध्यायेषु ७।३ एव अव्ययपदम्, ऋषेः ५।१।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति च, व्याख्यतव्यनाम्नः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य, तत्र च व्याख्यातव्यनाम्न ऋषेर्व्याख्याने भव इति ठञ् अध्यायेषु।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनामवाचिन ऋषिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, अध्यायेष्वभिधेयेषु। अत्र साहचर्याद् ऋषिशब्देन तत्प्रोक्तो ग्रन्थ उच्यते।

उदा०–**(षष्ठी)** वसिष्ठेन प्रोक्तो ग्रन्थो वसिष्ठः। वसिष्ठस्य व्याख्यानोऽध्यायः–वासिष्ठिकः। **(सप्तमी)** वसिष्ठे भवोऽध्यायः–वासिष्ठिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तस्य) और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यतव्य-नामवाची (ऋषेः) ऋषिविशेष वाचक प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अध्यायेषु) यदि वहां अध्याय अर्थ अभिधेय हो। यहां साहचर्य से ऋषि शब्द से उसके द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ उसी ऋषि के नाम से कहा जाता है।*

*उदा०–**(षष्ठी)** वसिष्ठ ऋषि के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-वसिष्ठ। वसिष्ठ ग्रन्थ का व्याख्यान आत्मक अध्याय-वासिष्ठिक। **(सप्तमी)** वसिष्ठ ग्रन्थ में होनेवाला अध्याय-वासिष्ठिक। ऐसे ही–**वैश्वामित्रिक, दायानन्दिक** आदि पदों की प्रवृत्ति समझें।*

*सिद्धि–**वासिष्ठिकः।** वसिष्ठ+ङस्/ङि+ठञ्। वासिष्ठ्+इक। वासिष्ठिक+सु। वासिष्ठिकः।*

*यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नाम, ऋषि ग्रन्थवाची 'वसिष्ठ' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वैश्वामित्रिकः, दायानन्दिकः।***

ष्ठन्–

(५) पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन्।७०।

प०वि०–पौरोडाश-पुरोडाशात् ५।१ ष्ठन् १।१।

स०–पौरोडाशश्च पुरोडाशश्च एतयोः समाहारः पौरोडाशपुरोडाशम्, तस्मात्-पौरोडाशपुरोडाशात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य तत्र च व्याख्यतव्यनाम्नः पौरोडाशपुरोडशाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति च ष्ठन्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां तत्र इति च सप्तमीसमर्थाभ्यां व्याख्यातव्यनामभ्यां पौरोडाशपुरोडाशाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पौरोडाशः) षष्ठी**–पिष्टपिण्डाः पुरोडाशाः। पुरोडाशानां संस्कारको मन्त्रः पौरोडाशः, पौरोडशस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पौरोडाशिकः। **(सप्तमी)** पौराडशे भवः पौरोडाशिक उपदेशः। **(पुरोडाशः) षष्ठी**–पुरोडाश-सहचरितो ग्रन्थः पुरोडाशः, पुरोडाशस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पुरोडाशिकः। **(सप्तमी)** पुरोडाशे भवः पुरोडाशिक उपदेशः। अत्र षकारो ङीषर्थः- पुरोडाशिकी शिक्षा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (पौरोडाश-पुरोडाशात्) पौरोडाश, पुराडाश प्रातिपदिकों से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(पौरोडाश) **षष्ठी**-पिष्ट (चून) के पिण्डविशेष पुरोडाश कहाते हैं। पुरोडाशों के संस्कारक मन्त्र को पौरोडाश कहते हैं। पौरोडाश (मन्त्र) का व्याख्यान ग्रन्थ-पौराडिशक। **सप्तमी**-पौरोडाश (मन्त्र) में होनेवाला-पौरोडाशिक उपदेश। **(पुरोडाश) षष्ठी**-पुरोडाश का सहचरित ग्रन्थ पुरोडाश कहाता है। पुरोडाश ग्रन्थ का व्याख्यान ग्रन्थ पुरोडाशिक। **सप्तमी**-पुरोडाश (ग्रन्थ) में होनेवाला-पौरोडाशिक उपदेश। यहां 'ष्ठन्'*

प्रत्यय में षकार 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय के लिये है-पुरोडाशिकी शिक्षा।

सिद्धि-पौरोडाशिकः। *पौरोडाश+ङस्/ङि+ष्ठन्। पौरोडाश्+इक। पौरोडाशिक+सु। पौरोडाशिकः।*

*यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यतव्य-नामवाची 'पौराडाश' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पुरोडाशिकः।***

विशेषः *पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (श०कौ०)।*

यत्+अण्–

(६) छन्दसो यदणौ।७१।

प०वि०-छन्दसः ५।१ यत्-अणौ १।२।

स०-यच्च अण् च यदणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भव, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र व्याख्यातव्यनाम्नश्छन्दसो व्याख्याने भव इति च यदणौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात्, तत्र इति च सप्तमीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनामवाचिनश्छन्दसः प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थे यदणौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(यत्) षष्ठी**-छन्दसो व्याख्यानो ग्रन्थश्छन्दस्यः। **(अण्)** छान्दसः। **(यत्) सप्तमी**-छन्दसि भवश्छन्दस्य उपदेशः। **(अण्)** छान्दस उपदेशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (छन्दसः) छन्दस् प्रातिपदिक से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (यदणौ) यत् और अण् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यत्) षष्ठी**-छन्द=वेद का **व्याख्यान ग्रन्थ-छन्दस्य**। **(अण्)** छान्दस। **(यत्) सप्तमी**-छन्द=वेद में होनेवाला-**छन्दस्य उपदेश**। **(अण्)** छान्दस उपदेश।*

सिद्धि-(१) छन्दस्यः। *छन्दस्+ङस्/ङि+यत्। छन्दस्य+सु। छन्दस्यः।*

यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ, व्याख्यातव्य-नामवाची 'छन्दस्' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

*(२) छान्दसः। यहां पूर्वोक्त 'छन्दस्' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

ठक्–

(७) द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरण-नामाख्याताट्ठक्।७२।

प०वि०–द्वि+अच्-ऋत्-ब्राह्मण-ऋक्-प्रथम-अध्वर-पुरश्चरण-नाम-आख्यातात् ५।१ ठक् १।१।

स०–द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्। द्व्यच् च ऋच्च ब्राह्मणश्च ऋक् च प्रथमश्च अध्वरश्च पुरश्चरणं च नाम च आख्यातं च एतेषां समाहारो द्व्यच्०आख्यातम्, तस्मात्-द्व्यच्०आख्यातात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य तत्र इति च व्याख्यतव्यनाम्नो द्व्यच्०आख्याताद् व्याख्याने भव इति च ठक्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्यो द्व्यजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्याख्याने भव इति चार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

१.	द्व्यच्	**षष्ठी**–इष्टीनां व्याख्यानो ग्रन्थ ऐष्टिकः।	इष्टियों का व्याख्यान ग्रन्थ ऐष्टिक।
		पशूनां व्याख्यानो ग्रन्थः पाशुकः।	पशुओं का व्याख्यान ग्रन्थ पाशुक।
		सप्तमी–इष्टिषु भवम् ऐष्टिकम्।	इष्टियों में होनेवाला ऐष्टिक।
		पशुषु भवं पाशुकम्।	पशुओं में होनेवाला पाशुक।
२.	ऋत् (ऋकारान्तः)	**षष्ठी**–चतुर्होतॄणां व्याख्यानो ग्रन्थश्चातुर्होतृकः।	चतुर्होताओं का व्याख्यान ग्रन्थ चातुर्होतृक।

		सप्तमी-चतुर्होतृषु भवं चातुर्होतृकम्।	चतुर्होताओं में होनेवाला चातुर्होतृक।
		षष्ठी-पञ्चहोतृणां व्याख्यानो ग्रन्थः पाञ्चहोतृकः।	पांच होताओं का व्याख्यान ग्रन्थ-पांचहोतृक (कर्म)।
		सप्तमी-पञ्चहोतृषु भवं पाञ्चहोतृकम्।	पांच होताओं में होनेवाला पांचहोतृक (कर्म)।
३.	ब्राह्मणः	**षष्ठी**-ब्राह्मणस्य व्याख्यानो ग्रन्थो ब्राह्मणिकः।	ब्राह्मण का व्याख्यान ग्रन्थ-ब्राह्मणिक।
		सप्तमी-ब्राह्मणे भवो ब्राह्मणिकः।	ब्राह्मण में होनेवाला ब्राह्मणिक उपदेश।
४.	ऋक्	**षष्ठी**-ऋचां व्याख्यानो ग्रन्थ आर्चिकः।	ऋचाओं का व्याख्यान ग्रन्थ-आर्चिक।
		सप्तमी-ऋक्षु भव आर्चिकः।	ऋचाओं में होनेवाला आर्चिक।
५.	प्रथमः	**षष्ठी**-प्रथमस्य व्याख्यानो ग्रन्थः प्राथमिकः।	प्रथम का व्याख्यान ग्रन्थ-प्राथमिक।
		सप्तमी-प्रथमे भवः प्राथमिकः।	प्रथम में होनेवाला प्राथमिक।
६.	अध्वरः	**षष्ठी**-अध्वरस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आध्वरिकः।	अध्वर का व्याख्यान ग्रन्थ-आध्वरिक।
		सप्तमी-अध्वरे भवम् आध्वरिकम्।	अध्वर में होनेवाला-आध्वरिक (कर्म)।
७.	पुरश्चरणम्	**षष्ठी**-पुरश्चरणस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पौरश्चरणिकः।	पुरश्चरण का व्याख्यान ग्रन्थ-पौरश्चरणिक।
		सप्तमी-पुरश्चरणे भवं पौरश्चरणिकम्।	पुरश्चरण में होनेवाला-पौरश्चरणिक (कर्म)।
८.	नाम	**षष्ठी**-नाम्नां व्याख्यानो ग्रन्थो नामिकः।	नामों का व्याख्यान ग्रन्थ-नामिक।
		सप्तमी-नामसु भवं नामिकम्।	**नामों में** होनेवाला-नामिक (कार्य)।

९.	आख्यातम्	**षष्ठी**-आख्यातस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आख्यातिकः।	आख्यात का व्याख्यान ग्रन्थ-आख्यातिक।
		सप्तमी-आख्याते भवम् आख्यातिकम्।	आख्यात में होनेवाला-आख्यातिक (कार्य)।
१०.	नामाख्यातम्	**षष्ठी**-नामाख्यातयोर्व्याख्यानो ग्रन्थो नामाख्यातिकः।	नाम-आख्यातों का व्याख्यान ग्रन्थ-नामाख्यातिक।
		सप्तमी-नामाख्यातेषु भवं नामाख्यातिकम्।	नाम-आख्यातों में होनेवाला-नामाख्यातिक (कार्य)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (द्व्यच्०आख्यातात्) द्वि-अच् वाले, ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋक्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात (नामाख्यात) प्रातिपदिकों से (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-ऐष्टिकः। *इष्टि+ङस्/ङि+ठक्। ऐष्ट्+इक। ऐष्टिक+सु। ऐष्टिकः।*

यहां षष्ठी/सप्तमी समर्थ, व्याख्यतव्यनामवाची 'इष्टि' शब्द से व्याख्यान/भव अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।

विशेषः *(१) इष्टि-पक्षेष्टि आदि यज्ञ 'इष्टि' कहाते हैं।*

(२) ऋक्, यजु, साम, अथर्व इन चार वेदों के यथासंख्य ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

(३) 'प्रथम' शब्द का अर्थ ईश्वर है। "सब कार्यों से पहले वर्तमान और सबका मुख्य कारण" (ईश्वर) (महर्षिदयानन्दकृत आर्याभिविनय १।४०)।

*(४) आचार्य यास्क ने अध्वर के निर्वचन में लिखा है-**'ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः'** अध्वर शब्द यज्ञ का वाचक है और यह शब्द यज्ञों में स्वयं ही पशु-हिंसा का प्रतिषेधक है।*

(५) पुरश्चरण-किसी देवता के नाम का जप और उसके उद्देश्य से यज्ञ करना 'पुरश्चरण' कहाता है।

(६) नाम और आख्यात प्रातिपदिकों से विगृहीत तथा समस्त दोनों अवस्थाओं में यह प्रत्यय विधि की जाती है। महर्षि दयानन्द ने नामों के व्याख्यान में 'नामिक' और आख्यातों के व्याख्यान में 'आख्यातिक' नामक ग्रन्थों की रचना की है।

अण्–

(८) अणृगयनादिभ्यः ।७३।

प०वि०-अण् १।१ ऋगयनादिभ्यः ५।३।

स०-ऋगयनम् आदिर्येषां ते ऋगयनादयः, तेभ्यः-ऋगयनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, भवः, तस्य, व्याख्याने, इति, च, व्याख्यातव्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य, तत्र इति च व्याख्यातव्यनामभ्य ऋगयनादिभ्यो व्याख्याने भव इति चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः, तत्र इति च सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामवाचिभ्य ऋगयनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं व्याख्याने भव इति चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(षष्ठी)** ऋगयनस्य व्याख्यानो ग्रन्थ आर्गयनः। **(सप्तमी)** ऋगयने भवं आर्गयनम्। **(षष्ठी)** पदव्याख्यानस्य व्याख्यानो ग्रन्थः पादव्याख्यानः। **(सप्तमी)** पदव्याख्याने भवं पादव्याख्यानम्, इत्यादिकम्।

ऋगयन। पदव्याख्यान छन्दोमान। छन्दोभाषा। छन्दोविचिति। न्याय। पुनरुक्त। व्याकरण। निगम। वास्तुविद्या। क्षत्रविद्या। उत्पात। उत्पाद। संवत्सर। मुहूर्त्त। निमित्त। उपनिषद्। शिक्षा। छन्दोविजिनी। न्याय। निरुक्त। विद्या। उद्याव। भिक्षा। इति ऋगयनादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ और (तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्याख्यातव्यनाम्नः) व्याख्यातव्य-नामवाची (ऋगयनादिभ्यः) ऋगयन आदि प्रातिपदिकों से यथासंख्य (व्याख्याने) व्याख्यान (च) और (भवः) भव (इति) इस अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(षष्ठी)** ऋगयन का व्याख्यान ग्रन्थ-आर्गयन। **(सप्तमी)** ऋगयन में होनेवाला-आर्गयन (कार्य)। **(षष्ठी)** पदव्याख्यान का व्याख्यान ग्रन्थ-पादव्याख्यान। **(सप्तमी)** पदव्याख्यान में होनेवाला-पादव्याख्यान (कार्य)।*

***सिद्धि-आर्गयनः।** ऋगयन+ङसि/ङि+अण्। आर्गयन्+अ। आर्गयन+सु। आर्गयनः।*

यहां षष्ठी/सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्य-नामवाची 'ऋगयन' शब्द से व्याख्यान और भव अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-पादव्याख्यान: आदि।

आगतार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तत आगतः।७४।

प०वि०–ततः पञ्चम्यर्थेऽव्ययपदम्, आगतः १।१।

अन्वयः–ततः प्रातिपदिकाद् आगतो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः– तत इति पञ्चमी-समर्थात् प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थे यथविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(ततः) पञ्चमी-समर्थ प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–स्रुघ्न नगर से आया हुआ-स्रौघ्न। मथुरा नगरी से आया हुआ-माथुर। रोहितक नगर से आया हुआ-रौहितक। राष्ट्र से आया हुआ-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः। *यहां पञ्चमी-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से आगत अर्थ में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित अण् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'माथुरः'** आदि।*

ठक्–

(२) ठगायस्थानेभ्यः।७५।

प०वि०–ठक् १।१ आय-स्थानेभ्यः ५।३।

स०–आयस्य स्थानानीति आयस्थानानि, तेभ्यः-आयस्थानेभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत आयस्थानेभ्य आगतष्ठक्।

अर्थः–तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्य आयस्थानवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

आय इति स्वामिग्राह्यो भाग उच्यते। स यस्मिन्नुत्पद्यते तदाऽऽय-स्थानमिति कथ्यते।

उदा०-शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः। आकरादागतम्-आकरिकं द्रव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) सप्तमी-समर्थ (आयस्थानेभ्यः) आयस्थानवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

स्वामी के द्वारा ग्रहण करने योग्य भाग को 'आय' कहते हैं। उस आय का जिस स्थान पर उत्पादन होता है उसे 'आयस्थान' कहते हैं।

उदा०-शुल्कशाला (चुंगी आदि) से आया हुआ भाग-शौल्कशालिक। आकर (खान) से आया हुआ-आकरिक द्रव्य (माळ)।

सिद्धि-शौल्कशालिकः। *शुल्कशाला+ङसि+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्क-शालिक+सु। शौल्कशालिकः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आकरिकः।***

अण्-

(३)शुण्डिकाभ्योऽण्।७६।

प०वि०-शुण्डिक-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शुण्डिक आदिर्येषां ते शुण्डिकादयः, तेभ्यः-शुण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ततः आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततः शुण्डिकादिभ्य आगतोऽण्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यः शुण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शुण्डिकाद् आगतः शौण्डिकः, कृकणाद् आगतः कार्कणः। उदपानाद् आगत औदपानः, इत्यादिकम्।

शुण्डिक। कृकण। स्थण्डिल। उदपान। उपल। तीर्थ। भूमि। तृण। पर्ण। इति शुण्डिकादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (शुण्डिकादिभ्यः) शुण्डिक आदि प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शुण्डिक=कलाल (शराब बनानेवाला) से आया हुआ भाग-शौण्डिक। कृकण (भारद्वाज देश) से आया हुआ भाग-कार्कण। उदपान (कूपसमीपवर्ती होद) से आया हुआ भाग-औदपान, इत्यादि।

सिद्धि-शौण्डिकः। शुण्डिक+ङसि+अण्। शौण्डिक्+अ। शौण्डिक+सु। शौण्डिकः।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'शुण्डिक' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कार्कण आदि।

वुञ्–

(४) विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्।७७।

प०वि०-विद्या-योनिसम्बन्धेभ्यः ५।३ वुञ् १।१।

स०-विद्या च योनिश्च ते विद्यायोनी, ताभ्याम्-विद्यायोनिभ्याम्, विद्यायोनिभ्यां कृतः सम्बन्ध एषां ते विद्यायोनिसम्बन्धाः, तेभ्यः-विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य आगतो वुञ्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**विद्यासम्बन्धः**) उपाध्यायादागतम् औपाध्यायकम्। आचार्यादागतम् आचार्यकम्। शिष्यादागतं शैष्यकम्। (**योनिसम्बन्धः**) मातामहादागतं मातामहकम्। मातुलादागतं मातुलकम्। पितामहादागतं पैतामहकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्या-सम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(विद्यासम्बन्ध) उपाध्याय से आया हुआ-औपाध्यायक (द्रव्य)। आचार्य से आया हुआ-आचार्यक (द्रव्य)। शिष्य से आया हुआ-शैष्यक (द्रव्य)। (योनिसम्बन्ध) मातामह (नाना) से आया हुआ-मातामहक (द्रव्य)। मातुल (मामा) से आया हुआ-मातुलक (द्रव्य)। पितामह (दादा) से आया हुआ-पैतामहक (द्रव्य)।

सिद्धि-औपाध्यायकम्। उपाध्याय+ङसि+वुञ्। औपाध्याय्+अक। औपाध्यायक+सु। औपाध्यायकम्।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'उपाध्याय' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-'आचार्यकम्' आदि।

ठञ्-

(५) ऋतष्ठञ्।७८।

प०वि०-ऋतः ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-ततः, आगत, विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य ऋत आगतष्ठञ्।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च ऋकारान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(विद्यासम्बन्धः) होतुरागतं हौतृकम्। पोतुरागतं पौतृकम्। **(योनिसम्बन्धः)** मातुरागतं मातृकम्। भ्रातुरागतं भ्रातृकम्। स्वसुरागतं स्वासृकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(विद्यासम्बन्ध)** होता (ऋत्विक्) से आया हुआ-हौतृक (द्रव्य)। पोता (ब्रह्मा) से आया हुआ-पौतृक। **(योनिसम्बन्ध)** माता से आया हुआ-मातृक। भ्राता से आया हुआ-भ्रातृक। स्वसा=बहिन से आया हुआ स्वासृक।*

*सिद्धि-**हौतृकम्।** होतृ+ङसि+ठञ्। हौतृ+क। हौतृक+सु। हौतृकम्।*

यहां पञ्चमी-समर्थ, विद्यासम्बन्धवाची ऋकारान्त 'होतृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'पौतृकम्' आदि।

यत्+ठञ्-

(६) पितुर्यच्च।७९।

प०वि०-पितुः ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ततः, आगतः, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततः पितुरागतो यत् ठञ् च।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थात् पितृशब्दात् प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थे यत् ठञ् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**यत्**) पितुरागतं पित्र्यम्। (**ठञ्**) पैतृकम् (धनम्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ (पितुः) पितृ प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यत्)** पिता से आया हुआ-पित्र्य। **(ठञ्)** पिता से आया हुआ-पैतृक (धन)।*

*सिद्धि-(१) **पित्र्यम्।** पितृ+ङसि+य। पित्रीङ्+य। पित्री+य। पित्र्+य। पित्र्य+सु। पित्र्यम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पितृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'रीङ् ऋतः' (७।४।२७) से अंग को 'रीङ्' आदेश होता है। तत्पश्चात् **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग को अवयवभूत रीङ् के ईकार का लोप होता है।*

*(२) **पैतृकम्।** यहां पूर्वोक्त 'पितृ' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।*

अङ्कवत् प्रत्ययविधिः—

(७) गोत्रादङ्कवत्।८०।

प०वि०-गोत्रात् ५।१ अङ्कवत् अव्ययपदम्। अङ्के इव अङ्कवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११५) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो गोत्राद् आगतोऽङ्कवत्।

अर्थः-तत इति पञ्चमी-समर्थाद् गोत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थेऽङ्कवत् प्रत्ययविधिर्भवति।

व्याकरणशास्त्रेऽपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रमेव गृह्यते न तु **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इति पारिभाषिकं गोत्रम्। अङ्कग्रहणेन च **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इत्यर्थसामान्यं लक्ष्यते। तस्मात्-**'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्'** (४।३।१२७) इति अण्-प्रत्ययो नातिदिश्यतेऽपितु- **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इति वुञ्-प्रत्ययोऽतिदिश्यते।

उदा०–औपगवानामङ्कः–औपगवकः। कापटवकः। नाडायनकः। चारायणकः। एवम्–औपगवेभ्य आगतम्–औपगवकम्। कापटवकम्। नाडायनकम्। चारायणकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (गोत्रात्) गोत्रविशेषवाची प्रातिपदिक से (आगतः) आगत अर्थ में (अङ्कवत्) अङ्क अर्थ के समान प्रत्यय होता है।*

*व्याकरणशास्त्र में अपत्य-अधिकार से अन्यत्र लौकिक गोत्र अर्थात् अपत्यमात्र का ही ग्रहण किया जाता है **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं और यहां 'अङ्कवत्' कथन **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इस सामान्य अर्थ को लक्षित करता है न कि **'सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्'** (४।३।१२७) से अङ्क अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय को; क्योंकि यह 'अण्' प्रत्यय गोत्रवाची से विहित नहीं किया गया है। **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से गोत्रवाची प्रातिपदिक से 'तस्य इदम्' अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः यहां अङ्कवत् कहने से 'वुञ्' प्रत्यय का ही ग्रहण किया जाता है।*

उदा०–औपगव=उपगु के पुत्रों का अङ्क (चिह्न)–औपगवक। कापटव=कपटु के पुत्रों का अङ्क–कापटवक। नाडायन=नड के पुत्रों का अङ्क–नाडायनक। चारायण=चर के पुत्रों का अङ्क–चारायणक। इसी प्रकार–औपगव=उपगु के पुत्रों से आया हुआ–औपगवक। कापटव=कपटु के पुत्रों से आया हुआ–कापटवक। नाडायन=नड के पुत्रों से आया हुआ–नाडायनक। चारायण=चर के पुत्रों से आया हुआ–चारायणक।

सिद्धि–औपगवकः। *औपगव+ङसि+वुञ्। औपगव्+अक। औपगवक+सु। औपगवकः।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, गोत्रवाची 'औपगव' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से अङ्कवत् प्रत्ययविधि का कथन किया गया है। अतः **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से अङ्कवत् 'वुञ्' प्रत्यय होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही **'कापटवकः'** आदि।*

रूप्यः–

(८) हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः।८१।

प०वि०–हेतु-मनुष्येभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, रूप्यः १।१।

स०–हेतवश्च मनुष्याश्च ते हेतुमनुष्याः, तेभ्यः–हेतुमनुष्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ततः, आगत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो हेतुमनुष्येभ्य आगतोऽन्यतरस्यां रूप्यः।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यविशेषवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन रूप्यः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हेतुः**) समादागतं समरूप्यम् (रूप्यः)। समीयं धनम् (छः)। विषमादागतं **विषमरूप्यम्** (रूप्यः)। विषमीयं धनम् (छः)। (**मनुष्यः**) देवदत्तादागतं देवदत्तरूप्यम् (रूप्यः)। दैवदत्तं धनम् (अण्) यज्ञदत्तादागतं यज्ञदत्तरूप्यम् (रूप्यः)। याज्ञदत्तं धनम् (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (हेतुमनुष्येभ्यः) हेतुवाची और मनुष्य-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (रूप्यः) रूप्य प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हेतु) सम=उपयुक्त हेतु से आया हुआ-समरूप्य (रूप्य)। समीय धन (छ)। विषम=अनुपयुक्त हेतु से आया हुआ-विषमरूप्य (रूप्य)। विषमीय धन (छ)। (मनुष्य) देवदत्त से आया हुआ-देवदत्तरूप्य (रूप्य)। दैवदत्त धन (अण्)। यज्ञदत्त से आया हुआ-यज्ञदत्तरूप्य (रूप्य)। याज्ञदत्त धन (अण्)।

सिद्धि-(१) ***समरूप्यम्।*** *सम+ङसि+रूप्य। सम+रूप्य। समरूप्य+सु। समरूप्यम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, हेतुवाची 'सम' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'रूप्य' प्रत्यय है। ऐसे ही-**देवदत्तरूप्यम्, यज्ञदत्तरूप्यम्।***

(२) ***समीयम्।*** *सम+ङसि+छ। सम्+ईय। समीय+सु। समीयम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'सम' शब्द से आगत अर्थ में विकल्प पक्ष में **'गहादिभ्यश्च'** (४।२।१३८) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'विषम' शब्द से-**विषमीयम्।***

(३) ***दैवदत्तम्।*** *देवदत्त+ङसि+अण्। दैवदत्त्+अ। दैवदत्त+अ। दैवदत्त+सु। दैवदत्तम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, मनुष्यविशेषवाची 'देवदत्त' शब्द से आगत अर्थ में विकल्प पक्ष में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'यज्ञदत्त' शब्द से-**याज्ञदत्तम्।***

मयट्–

(६) मयट् च।८२।

प०वि०–मयट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–ततः, आगतः, हेतुमनुष्येभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ततो हेतुमनुष्येभ्य आगतो मयट् च।

अर्थः–तत इति पञ्चमीसमर्थेभ्यो हेतुवाचिभ्यो मनुष्यविशेषवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यस्मिन्नर्थे मयट् च प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**हेतुः**) समादागतं सममयम्। विषमादागतं विषममयं धनम्। (**मनुष्यः**) देवदत्तादागतं देवदत्तमयम्। यज्ञदत्तादागतं यज्ञदत्तमयं धनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ततः) पञ्चमी-समर्थ (हेतुमनुष्येभ्यः) हेतुवाची और मनुष्य-विशेषवाची प्रातिपदिकों से (आगतः) आगत अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय (च) भी होता है।*

*उदा०–(**हेतु**) सम=उपयुक्त हेतु से आया हुआ-सममय। विषम=अनुपयुक्त हेतु से आया हुआ-विषममय धन। (**मनुष्य**) देवदत्त से आया हुआ-देवदत्तमय। यज्ञदत्त से आया हुआ-यज्ञदत्तमय धन।*

सिद्धि–सममयम्। *सम+ङसि+मयट्। सम+मय। सममय+सु। सममयम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ, हेतुवाची 'सम' शब्द से आगत अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही **'विषममयम्'** आदि।*

*मयट् प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है **'सममयी भूमि'** इत्यादि।*

।। इति आगतार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) प्रभवति।८३।

प०वि०–प्रभवति क्रियापदम्।

अनु०–तत इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ततः प्रातिपदिकात् प्रभवति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्रभवति=प्रकाशते, प्रथमत उपलभ्यते इत्यर्थः।

उदा०-हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा। दरदः प्रभवति दारदी सिन्धुः।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(ततः) पञ्चमी-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रभवति) 'प्रथम से उपलब्ध होता है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-हिमवान् (हिमालय) से जो प्रथमतः उपलब्ध होती है (निकलती है) वह-हैमवती गंगा। दरद् से जो प्रथमतः उपलब्ध होती है (निकलती है) वह-दारदी सिन्धु नदी।

सिद्धि-हैमवती। *हिमवत्+ङसि+अण्। हैमवत्+अ। हैमवत+ङीप्। हेमवत्+ई। हैमवती+सु। हैगवती।*

यहां पञ्चमी-समर्थ 'हिमवत्' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः ***'प्राग्दीव्यतोऽण्'*** *(४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'टिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'दरद्' शब्द से-**दारदी।***

विशेषः *सिंधु नदी कैलास के पश्चिमी तटान्त से निकलकर काश्मीर को दो भागों में बांटती हुई गिलगिटचिलास (प्राचीन दरद् देश) में घुसकर दक्षिणवाहिनी होती हुई दरद् के चरणों से पहली बार मैदान में उतरती है। इस भौगोलिक सच्चाई को जानकर भारतवासी सिन्धु को 'दारदी सिन्धुः' कहते थे (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

ञ्यः-

(२) विदूराञ्ञ्यः।८४।

प०वि०-विदूरात् ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-ततः, प्रभवतीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ततो विदूरात् प्रभवति ञ्यः।

अर्थः-तत इति पञ्चमीसमर्थाद् विदूरात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-विदूरात् प्रभवतीति वैदूर्यो मणिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ततः) पञ्चमी-समर्थ (विदूरात्) विदूर प्रातिपदिक से (प्रभवति) निकलता है, अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-विदूर से जो निकलता है वह-वैदूर्य मणि।

सिद्धि-वैदूर्यः। विदूर+ङसि+ञ्य। वैदूर्+य। वैदूर्य+सु। वैदूर्यः।

यहां पंचमी-समर्थ 'विदूर' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *(१) विदूर-यह वैदूर्य मणि का उत्पत्ति स्थान था। मार्कण्डेय पुराण की व्याख्या में पारजिटर ने वैदूर्य की पहिचान सातपुड़ा से की है। पतंजलि के मत में वैदूर्य मणि की खाने वालवाय पर्वत में थी। वहां से लाकर विदूर के बेगड़ी (संस्कृत-वैकटिक=रत्नतराश) उसे घाट पहलों पर काटते और बींधते थे, इससे इसका नाम वैदूर्य पड़ा। सम्भव है कि दक्षिण का बीदर 'विदूर' हो (पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृ० ४५)।*

(२) जैसे वणिक् लोग मंगलार्थ वाराणसी को जित्वरी कहते हैं वैसे वैयाकरण लोग वालवाय पर्वत को विदूर कहते हैं :- ***"वणिज एव मङ्गलार्थं वाराणसीं जित्वरीति व्यवहरन्ति, एवं वैयाकरणा वालवायं विदूरमुपाचरन्ति" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)।***

(३) वैदूर्य मणि वालवाय पर्वत से पैदा होता है, विदूर से नहीं, विदूर में तो उसे संस्कृत किया जाता है। ***"वालवायादसौ प्रभवति, न तु विदूरात्, तत्र तु संस्क्रियते" इति पण्डितजयादित्यः काशिकायाम्।***

गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः—

(१) तद् गच्छति पथिदूतयोः।८५।

प०वि०-तत् २।१ गच्छति क्रियापदम्, पथि-दूतयोः ७।२।

स०-पन्थाश्च दूतश्च तौ पथिदूतौ, तयोः-पथिदूतयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् गच्छति यथाविहितं प्रत्ययः पथिदूतयोः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ गच्छति पन्था दूतो वा चेत् स भवति।

उदा०-स्रुघ्नं गच्छति-स्रौघ्नः, पन्था दूतो वा। माथुरः। रौहितकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (गच्छति) 'जाता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (पथिदूतयोः) जो यह जाता है वह यदि पन्था=मार्ग वा दूत हो।*

उदा०-स्रुघ्न नगर को जो जाता है वह-स्रौघ्न पन्था (मार्ग) वा दूत। मथुरा नगरी को जो जाता है वह-माथुर पन्था वा दूत। रोहितक नगर को जो जाता है वह-रौहितक पन्था वा दूत।

सिद्धि-स्रौघ्नः। स्रुघ्न+अम्+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'स्रुघ्न' प्रातिपदिक से गच्छति अर्थ में तथा पन्था एवं दूत अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-माथुरः, रौहितकः।*

विशेषः *स्रुघ्न नगर को देवदत्त आदि पुरुष जाता है, पन्था (मार्ग) नहीं किन्तु उपचार से यह कहा जाता है यह पन्था स्रुघ्न नगर को जाता है। अथवा-**'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से यहां प्राप्ति-अर्थक है। यह पन्था स्रुघ्न को प्राप्त कराता है।*

अभिनिष्क्रामति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) अभिनिष्क्रामति द्वारम्।८६।

प०वि०-अभिनिष्क्रामति क्रियापदम्, द्वारम् १।१।

अनु०-तदित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अभिनिष्क्रामति यथाविहितं प्रत्ययो द्वारम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अभिनिष्क्रामतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यद् अभिनिष्क्रामति द्वारं चेत् तद् भवति। अभिमुख्येन निष्क्रामति=अभिनिष्क्रामति।

उदा०-स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्-स्रौघ्नम्। मथुराम-भिनिष्क्रामति दिल्लीनगरद्वारम्-माथुरम्। रोहितकमभिनिष्क्रामति प्राणिप्रस्थ-द्वारम्-रौहितकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अभिनिष्क्रामति) 'अभिमुख निकलता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (द्वारम्) जो अभिमुख निकलता है यदि वह द्वार हो।*

उदा०-जो कान्यकुब्ज (कन्नौज) का द्वार स्रुघ्न नगर के अभिमुख निकलता है वह-स्रौघ्न (द्वार)। जो दिल्ली नगर का द्वार मथुरा नगरी के अभिमुख निकलता है वह-माथुर (द्वार)। जो प्राणिप्रस्थ (पानीपत) नगर का द्वार रोहितक नगर के अभिमुख निकलता है वह-रौहितक (द्वार)। जैसे दिल्ली नगर के आधुनिक कश्मीरी गेट, अजमेरी गेट आदि द्वार हैं।

सिद्धि-स्रौघ्नम्। *यहां द्वितीया-समर्थ 'स्रुघ्न' शब्द से अभिनिष्क्रामति अर्थ में तथा द्वार अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः यहां पूर्ववत् यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**माथुरम्, रौहितकम्।***

अधिकृत्य-कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।८७।

प०वि०-अधिकृत्य अव्ययपदम्, कृते ७।१ ग्रन्थे ७।१।

अनु०-तदित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अधिकृत्य कृत यथाविहितं प्रत्ययो ग्रन्थे।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अधिकृत्य कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति। अधिकृत्य=प्रस्तुत्य इत्यर्थः।

उदा०-सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः-सौभद्रः। गौरिमित्रः। यायातः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अधिकृत्यकृतः) 'प्रस्तुत करके बनाया' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो बनाया है यदि वह ग्रन्थ हो।*

उदा०-सुभद्रा को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-सौभद्र। गौरिमित्र को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-गौरिमित्र। ययाति (राजा) को प्रस्तुत करके बनाया ग्रन्थ-यायात।

सिद्धि-सौभद्रः। *सुभद्रा+अम्+अण्। सौभद्+अ। सौभद्र+सु। सौभद्रः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'सुभद्रा' शब्द से अधिकृत्य-कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय **'अण्'** प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। सुभद्रा=श्रीकृष्ण की बहिन जो वीर अर्जुन को ब्याही थी। ऐसे ही-**गौरिमित्रः, यायातः।***

छः—

(२) शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः।८८।

प०वि०-शिशुक्रन्द-यमसभ-द्वन्द्व-इन्द्रजननादिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०-इन्द्रजननम् आदिर्येषां ते इन्द्रजननादयः। शिशुक्रन्दश्च यमसभं च द्वन्द्वश्च इन्द्रजननादयश्च ते शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादयः, तेभ्यः-शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अधिकृत्य, कृते, ग्रन्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्योऽधिकृत्य कृतश्छो ग्रन्थे।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽधिकृत्य कृत इत्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति।

उदा०-**(शिशुक्रन्दः)** शिशूनां क्रन्द इति शिशुक्रन्दः। शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः। **(यमसभम्)** यमस्य सभेति यमसभम्। यमसभमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो यमसभीयः। **(द्वन्द्वः)** अग्निश्च काश्यपश्च एतयोः समाहारोऽग्निकाश्यपम्। अग्निकाश्यपमधिकृत्य कृतो ग्रन्थोऽग्निकाश्यपीयः। श्येनकपोतीयः। शब्दार्थसम्बन्धीयं प्रकरणम्। वाक्यपदीयम्। **(इन्द्रजननादिः)** इन्द्रजननमधिकृत्य कृतं प्रकरणम् इन्द्रजननीयम्। प्रद्युम्नागमनीयम्।

इन्द्रजननादिराकृतिगणः स प्रयोगत एवानुसर्तव्यः, यतो हि स पाणिनीयगणपाठे प्रातिपदिकेषु न पठ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शिशुक्रन्द०इन्द्रजननादिभ्यः) शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्व, इन्द्रजननादि प्रातिपदिकों से (अधिकृत्य कृतः) 'प्रस्तुत करके बनाया' अर्थ में (छः) छः प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो बनाया है यदि वह ग्रन्थ हो।*

*उदा०-**(शिशुक्रन्द)** शिशुक्रन्द (बच्चों का रोना) को प्रस्तुत करके बनाया गया ग्रन्थ-शिशुक्रन्दीय। **(यमसभा)** यमसभ (राजा यम की सभा) को प्रस्तुत करके बनाया हुआ ग्रन्थ-यमसभीय। **(द्वन्द्व)** अग्नि और कश्यप ऋषि को प्रस्तुत करके बनाया गया ग्रन्थ-अग्निकाश्यपीय। श्येनकपोत=श्येन (बाज) कपोत (कबूतर) को प्रस्तुत करके बनाया हुआ ग्रन्थ-श्येनकपोतीय। **(शब्दार्थसम्बन्ध)** शब्द-अर्थसम्बन्ध=शब्द और अर्थसम्बन्ध*

*को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-शब्दार्थसम्बन्धीय। **(वाक्यपद)** वाक्य और पद को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-वाक्यपदीय। **(इन्द्रजननादि)** इन्द्रजनन (इन्द्र की उत्पत्ति) को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-इन्द्रजननीय। प्रद्युम्नागमन=प्रद्युम्न के आगमन को प्रस्तुत करके बनाया गया प्रकरण-प्रद्युम्नागमनीय।*

इन्द्रजननादि आकृतिगण है, उसका शिष्टप्रयोग से ही अनुसरण किया जाता है क्योंकि वह पाणिनीय-गणपाठ में प्रातिपदिक रूप में नहीं पढ़ा गया है।

सिद्धि-शिशुक्रन्दीयः। *शिशुक्रन्द+अम्+छ। शिशुक्रन्द्+ईय। शिशुक्रन्दीय+सु। शिशुक्रन्दीयः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'शिशुक्रन्द' शब्द से अधिकृत्य-कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही- **'यमसभीयः'** आदि।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) सोऽस्य निवासः।८६।

प०वि०-सः १।१ अस्य ६।१ निवासः १।१।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययो निवासः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं निवासश्चेत् स भवति। निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः=देश उच्यते।

उदा०-स्रुघ्नो निवासोऽस्य-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (निवासः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह निवास (देश) हो।*

उदा०-स्रुघ्न नगर इसका निवास है यह-स्रौघ्न। मथुरा नगरी इसका निवास है यह-माथुर। रोहितक नगर इसका निवास है यह-रौहितक। राष्ट्र इसका निवास है यह-राष्ट्रिय। यहां निवास शब्द का अर्थ 'देश' है।

सिद्धि-स्रौघ्नः। *स्रुघ्न+सु+अण्। स्रौघ्न+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्नः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ निवासवाची 'स्रुघ्न' शब्द से 'इसका' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से*

*यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुर:, रौहितक:, राष्ट्रिय:।***

यथाविहितं प्रत्यय:- {अभिजन:}

(२) अभिजनश्च।९०।

प०वि०-अभिजन: १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-स:, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययोऽभिजनश्च।

अर्थ:-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्च स भवति।

अभिजन:=पूर्वबान्धवो भवति, तस्य सम्बन्धाद् देशोऽप्यभिजन इत्युच्यते। यस्मिन् देशे पूर्वबान्धवैरुषितं सोऽभिजन इति कथ्यते। तस्मादिह देशवाचिन: प्रातिपदिकात् प्रत्ययो विधीयते, न बन्धुवाचिभ्य:। यत्र साम्प्रतमुष्यते स निवास इत्युच्यते यत्र च पूर्वैरुषितं सोऽभिजनोऽभिधीयते।

उदा०-स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य-स्रौघ्न:। माथुर:। रौहितक:। राष्ट्रिय:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(स:) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (च) और (अभिजन) जो प्रथमा-समर्थ यदि वह अभिजन हो।*

'अभिजन' का अर्थ पूर्वबान्धव है। उसके सम्बन्ध से देश को भी 'अभिजन' कहते हैं। जिस देश में पूर्वबान्धव रहे हों उसे 'अभिजन' कहते हैं। इसलिये यहां देशवाची प्रातिपदिक से प्रत्यय होता है, बन्धुवाची से नहीं। निवास और अभिजन में यह भेद है कि जहां वर्तमान में रहते हैं उसे 'निवास' कहते हैं और जहां पूर्वज रहते थे उसे 'अभिजन' कहते हैं।

उदा०-स्रुघ्न नगर अभिजन है इसका यह-स्रौघ्न। मथुरा नगरी अभिजन है इसका यह-माथुर। रोहितक नगर है अभिजन इसका यह-रौहितक। राष्ट्र है अभिजन इसका यह-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्न:। *स्रुघ्न+सु+अण्। स्रौघ्न्+अ। स्रौघ्न+सु। स्रौघ्न:।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'स्रुघ्न' शब्द से अस्य-अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अत: **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुर:, रौहितक:, राष्ट्रिय:।***

छः–

{अभिजनः}

(३) आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते।९१।

प०वि०–आयुध-जीविभ्यः ४।३ छः १।१ पर्वते ७।१ (पञ्चम्यर्थे)।

अनु०–सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स पर्वताद् अस्य छोऽभिजन आयुधजीविभ्यः।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् पर्वतवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, आयुधजीविभ्यः=आयुजीविनोऽभिधातुम्।

उदा०–हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषामायुधजीविनामेते-हृद्गोलीयाः। अन्धकवर्तीयाः। रोहितगिरीयाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (पर्वते) पर्वतवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन हो (आयुजीविभ्यः) यह प्रत्ययविधि आयुजीवी लोगों के कथन के लिये है।*

उदा०–हृद्गोल नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-हृद्गोलीय। अन्धकवर्त नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-अन्धकवर्तीय। रोहितगिरि नामक पर्वत है अभिजन इन आयुधजीवी लोगों का ये-रोहितगिरीय।

सिद्धि-हृद्गोलीयः। *हृद्गोल+सु+छ। हृद्गोल+ईय। हृद्गोलीय+सु। हृद्गोलीयः।*

यहां प्रथमा-समर्थ अभिजन एवं पर्वतवाची 'हृद्गोल' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में तथा आयुधजीवी लोगों के कथन के लिये इस सूत्र से छः प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अन्धकवर्तीयाः, रोहितगिरीयाः।***

विशेषः *आयुधजीवी वे लोग होते हैं जो वेतन लेकर किसी के लिए भी लड़ने को तैयार रहते हैं, जैसे गोरखे (आ०भा० प्रथमावृत्ति टि०पृ० १६४)।*

ञ्यः–

{अभिजनः}

(४) शण्डिकादिभ्यो ञ्यः।९२।

प०वि०–शण्डिक-आदिभ्यः ५।३ ञ्यः १।१।

स०–शण्डिक आदिर्येषां ते शण्डिकादयः, तेभ्यः-शण्डिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स शण्डिकादिभ्योऽस्य ञ्योऽभिजनः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः शण्डिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०-शण्डिकोऽभिजनोऽस्य-शाण्डिक्यः। सार्वकेश्यः। सार्वसेन्यः।

शण्डिक। सर्वकेश। सर्वसेन। शक। सट। रक। शङ्ख। बोध। इति शण्डिकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (शण्डिकादिभ्यः) शण्डिक आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन अभिधेय हो।*

उदा०-शण्डिक है अभिजन इसका यह-शाण्डिक्य। सर्वकेश है अभिजन इसका यह-सार्वकेश्य। सर्वसेन है अभिजन इसका यह-सार्वसेन्य।

सिद्धि-शाण्डिक्यः। *शण्डिक+सु+ञ्य। शाण्डिक्+य। शाण्डिक्य+सु। शाण्डिक्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'शण्डिक' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सार्वकेश्य, सार्वसेन्य** आदि।*

अण्+अञ्- **{अभिजनः}**

(५) सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ।६३।

प०वि०-सिन्धु-तक्षशिलादिभ्यः ५।३ अण्-अञौ १।१।

स०-सिन्धुश्च तक्षशिला च ते सिन्धुतक्षशिले, सिन्धुतक्षशिले आदौ येषां ते सिन्धुतक्षशिलादयः, तेभ्यः-सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽस्याणञौ, अभिजनः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथासंख्यम् अणञौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थम् अभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०-(**सिन्ध्वादिः**) सिन्धुरभिजनोऽस्य-सैन्धवः। वर्णुरभिजनोऽस्य-वार्णवः (अण्)। (**तक्षशिलादिः**) तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य-ताक्षशिलः। वत्सोद्धरणोऽभिजनोऽस्य-वात्सोद्धरणः (अञ्)।

(१) सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। किष्किन्धा। गब्दिका। उरस। दरत्। कुलून। दिरसा। इति सिन्ध्वादयः।।

(२) तक्षशिला। वत्सोद्धरण। कौमेदुर। काण्डधारण। ग्रामणी। सरालक। कंस। किन्नर। संकुचित। सिंहकोष्ठ। कर्णकोष्ठ। बर्बर। अवसान। इति तक्षशिलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स) प्रथमा-समर्थ (सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः) सिन्धु-आदि और तक्षशिला-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथासंख्य (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(**सिन्ध्वादि**) सिन्धु है अभिजन इसका यह-सैन्धव। वर्णु है अभिजन इसका यह-वार्णव (अण्)। (**तक्षशिलादिः**) तक्षशिला है अभिजन इसका यह-ताक्षशिल। वत्सोद्धरण है अभिजन इसका यह-वात्सोद्धरण।*

*सिद्धि-(१) **सैन्धवः**। सिन्धु+सु+अण्। सैन्धव्+अ। सैन्धव+सु। सैन्धवः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'सिन्धु' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वार्णवः**।*

*(२) **ताक्षशिलः**। तक्षशिला+सु अञ्। ताक्षशिल्+अ। ताक्षशिल+सु। ताक्षशिलः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'तक्षशिला' शब्द से 'इसका' अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वात्सोद्धरणः**।*

विशेषः *(१) **सिन्धु**-प्राचीन सिन्धु नद आजकल की सिन्धु है। सिन्धु के नाम से उसके पूर्वी किनारे की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद (सिन्धु-सागर दुआब था) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५०)।*

*(२) **वर्णु**-सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी कुर्रम के किनारे निचले हिस्से में बन्नू की दून (घाट) है। इसका वैदिक नाम क्रमु था। इसका ऊपरी पहाड़ी प्रदेश आज भी कुर्रम कहलाता है और निचला मैदानी भाग बन्नू। पाणिनि ने इसी को वर्णु नद के नाम से प्रसिद्ध वर्णु देश कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५१)।*

(३) तक्षशिला-यह पूर्वी गंधार की प्रसिद्ध राजधानी थी और सिन्धु और विपाशा के बीच के सब नगरों में बड़ी और समृद्ध थी। पाटलिपुत्र, मथुरा और शाकल को-पुष्कलावती, कापिशी और बाल्हीक से मिलानेवाली उत्तरपथ नामक राजमार्ग पर तक्षशिला मुख्य व्यापारिक नगरी थी। पाणिनिकाल से हूणों के समय तक तक्षशिला का प्राधान्य बना रहा (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८५)।

ढक्+छण्+ढञ्+यक्–　　{अभिजनः}

(६) तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः।६४।

प०वि०–तूदी–शलातुर–वर्मती–कूचवारात् ५।१ ढक्–छण्–ढञ्–यकः १।३।

स०–तूदी च शलातुरश्च वर्मती च कूचवारश्च एतेषां समाहारः-तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारम्, तस्मात्- तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारात् (समाहारद्वन्द्वः)। ढक् च छण् च ढञ् च यक् च ते ढक्छण्ढञ्यकः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–सः, अस्य, अभिजन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराद् अस्य ढक्छण्ढञ्यकोऽभिजनः।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथासंख्यं ढक्छण्ढञ्यकः प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमभिजनश्चेत् स भवति।

उदा०–**(तूदी)** तूदी अभिजनोऽस्य–तौदेयः (ढक्)। **(शलातुरः)** शलातुरोऽभिजनोऽस्य–शालातुरीयः (छण्)। **(वर्मती)** वर्मती अभिजनोऽस्य–वार्मतेयः (ढञ्)। **(कूचवारः)** कूचवारोऽभिजनोऽस्य–कौचवार्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (तूदी०कूचवारात्) तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथासंख्य (ढक्छण्ढञ्यकः) ढक्, छण्, ढञ्, यक् प्रत्यय होते हैं (अभिजनः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अभिजन हो।*

*उदा०-**(तूदी)** तूदी अभिजन है इसका यह-तौदेय (ढक्)। **(शलातुर)** शलातुर अभिजन है इसका यह-शालातुरीय (छण्)। **(वर्मती)** वर्मती अभिजन है इसका यह-वार्मतेय (ढञ्)। **(कूचवार)** कूचवार अभिजन है इसका यह-कौचवार्य।*

*सिद्धि-(१) **तौदेयः**। तूदी+सु+ढक्। तौद्+एय। तौदेय+सु। तौदेयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अभिजनवाची 'तूदी' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में एय् आदेश होता **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है।*

(२) शालातुरीयः। यहां 'शलातुर' शब्द से पूर्ववत् 'छण्' प्रत्यय है।

*(३) **वार्मतेयः**। यहां 'वर्मती' शब्द से पूर्ववत् 'ढञ्' प्रत्यय है।*

*(४) **कौचवार्यः**। यहां 'कूचवार' शब्द से पूर्ववत् 'ञ्य' प्रत्यय है।*

विशेषः *(१) तूदी-पहचान अनिश्चित है।*

(२) शलातुर-पाणिनि का जन्मस्थान, जो सिन्धु-कुम्भा संगम के कोने में ओहिंद से चार मील पश्चिम में था। यह स्थान इस समय लहुर कहलाता है।

(३) वर्मती-इसकी ठीक पहचान ज्ञात नहीं। हो सकता है यह बीनरान का पुराना नाम हो।

*(४) **कूचवार**-यह चीनी तुर्किस्तान में उत्तरी तरिम उपत्यका का नाम था, जिसका अर्वाचीन नाम कूचा है। चीनी भाषा में आजकल इसे कूची कहते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ८५)।*

यथाविहितं प्रत्ययः- **{भक्तिः}**

(७) भक्तिः।६५।

प०वि०-भक्तिः १।१।

अनु०-सः, अस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययो भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

भज्यते=सेव्यत इति भक्तिः **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) इति कर्मणि क्तिन् प्रत्ययः।

उदा०-स्रुघ्नो भक्तिरस्य-स्रौघ्नः। माथुरः। रौहितकः। राष्ट्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह **भक्ति** (सेव्य) हो।*

भज्यते=सेव्यते इति भक्तिः। यहां 'भज सेवायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से कर्म कारक में 'क्तिन्' प्रत्यय है जिसकी सेवा की जाये उसे 'भक्ति' कहते हैं।

उदा०-स्रुघ्न है भक्ति (सेव्य) इसकी यह-स्रौघ्न। मथुरा है भक्ति इसकी यह-माथुर। रोहितक है भक्ति इसकी यह-रौहितक। राष्ट्र है भक्ति इसकी यह-राष्ट्रिय।

सिद्धि-स्रौघ्नः। *यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'स्रुघ्न' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'प्रागदीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से यथाविहित प्रागदीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माथुरः, रौहितकः, राष्ट्रियः।***

ठञ्- **{भक्तिः}**

(८) अचित्तादेशकालाट्ठक्।६६।

प०वि०-अचित्तात् ५।१ अदेशकालात् ५।१ ठक् १।१।

स०-न विद्यते चित्तं यस्मिँस्तत्-अचित्तम्, तस्मात्-अचित्तात् (बहुव्रीहिः)। देशश्च कालश्च एतयोः समाहारः-देशकालम्, न देशकालमिति अदेशकालम्, तस्मात्-अदेशकालात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोऽदेशकालाद् अचित्ताद् अस्य ठग् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाद् देशकालवर्जिताद् अचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-अपूपा भक्तिरस्य-आपूपिकः। शष्कुल्यो भक्तिरस्य-शाष्कुलिकः। पायसं भक्तिरस्य-पायसिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (अदेशकालात्) देश, काल से रहित (अचित्तात्) अचित्त (जड़) वाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा समर्थ है यदि वह भक्ति (सेवनीय पदार्थ) हो।*

उदा०-अपूप हैं भक्ति (सेवनीय) है इसके यह-आपूपिक। अपूप=मालपूआ। शष्कुलियाँ भक्ति हैं इसकी यह-शाष्कुलिक। शष्कुली=पूरी। पायस है भक्ति इसकी यह-पायसिक। पायस=खीर।

सिद्धि-आपूपिकः । अपूप+जस्+ठक् । अपूप्+इक । आपूपिक+सु । आपूपिकः ।

*यहां प्रथमा-समर्थ, देश-काल से रहित, अचित्त (जड़) वाचक एवं भक्तिवाची 'अपूप' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-शाष्कुलिकः, पायसिकः ।*

ठञ्- **{भक्तिः}**

(९) महाराजाट्ठञ्।९७।

प०वि०-महाराजात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स महाराजाद् अस्य ठञ् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाद् महाराजात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-महाराजो भक्तिरस्य-माहाराजिकः ।

आर्यभाषा: *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (महाराजात्) महाराज प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

उदा०-महाराज है भक्ति इसकी यह-माहाराजिक। महाराज=कुबेर।

सिद्धि-माहाराजिकः । महाराज+सु+ठञ् । माहाराज्+इक । माहाराजिक+सु । माहाराजिकः ।

*यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'महाराज' शब्द से अस्य=इसका अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेष: *महाराज-देवता वैश्रवण या कुबेर की संज्ञा थी। अतिप्राचीनकाल में राजा का एक अर्थ यक्ष था। यक्षों के राजा होने के कारण कुबेर महाराज कहलाये। इन्हें ही कालिदास (मेघदूत १।३) ने राजराज कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३५५)।*

वुन्- **{भक्तिः}**

(१०) वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।९८।

प०वि०-वासुदेव-अर्जुनाभ्याम् ५।२ वुन् १।१।

स०-वासुदेवश्च अर्जुनश्च तौ वासुदेवार्जुनौ, ताभ्याम्-वासुदेवार्जुनाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स वासुदेवार्जुनाभ्याम् अस्य वुन् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थाभ्यां वासुदेवार्जुनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(वासुदेवः) वासुदेवो भक्तिरस्य-वासुदेवकः। (अर्जुनः) अर्जुनो भक्तिरस्य-अर्जुनकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (वासुदेवार्जुनाभ्याम्) वासुदेव, अर्जुन प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

उदा०-(वासुदेव) वासुदेव=श्रीकृष्ण भक्ति है इसकी यह-वासुदेवक। (अर्जुन) अर्जुन है भक्ति इसकी यह-अर्जुनक।

*सिद्धि-**वासुदेवकः**। वासुदेव+सु+वुन्। वासुदेव्+अक। वासुदेवक+सु। वासुदेवकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, भक्तिवाची 'वासुदेव' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अर्जुनकः**।*

***विशेषः** वासुदेव-यहां वसुदेव शब्द से अपत्य अर्थ में **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से 'अण्' प्रत्यय है। वसुदेव का पुत्र वासुदेव कहाता है। श्रीकृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था। महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण वीर अर्जुन का सारथि था।*

बहुलं वुञ्- **{भक्तिः}**

(११) गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्।९९।

प०वि०-गोत्र-क्षत्रियाख्येभ्यः ५।३ बहुलम् १।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च क्षत्रियश्च तौ गोत्रक्षत्रियौ। गोत्रक्षत्रियावाऽऽख्या येषां ते-गोत्रक्षत्रियाख्याः, तेभ्यः-गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः (इतरेतरद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स गोत्रक्षत्रियाख्येभ्योऽस्य बहुलं वुञ्, भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यो गोत्राख्येभ्यः क्षत्रियाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे बहुलं वुञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-**(गोत्राख्यः)** ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य-ग्लौचुकायनकः। औपगवकः। कापटवकः। **(क्षत्रियाख्यः)** नकुलो भक्तिरस्य नाकुलकः। साहदेवकः। साम्बकः।

बहुलवचनादत्र वुञ् न भवति-पाणिनो भक्तिरस्य-पाणिनीयः। पौरवो भक्तिरस्य-पौरवीयः। अत्र **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) इति छः प्रत्ययो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः) गोत्रवाची और क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

*उदा०-**(गोत्र)** ग्लुचुकायनि भक्ति है इसकी यह-ग्लौचुकायनक। औपगव भक्ति है इसकी यह-औपगवक। कापटव भक्ति है इसकी यह-कापटवक। **(क्षत्रिय)** नकुल भक्ति है इसकी यह-नाकुलक। सहदेव है भक्ति इसकी यह-साहदेवक। साम्ब भक्ति है इसकी यह-साम्बक।*

*बहुल-वचन से यहां वुञ् प्रत्यय नहीं होता है- (गोत्र) पाणिन है भक्ति इसकी यह-पाणिनीय। (क्षत्रिय) पौरव राजा है भक्ति इसकी यह-पौरवीय। यहां **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से 'छ' प्रत्यय होता है।*

सिद्धि-(१) ग्लौचुकायनकः। *यहां प्रथमा-समर्थ, गोत्रवाची एवं भक्तिवाची 'ग्लुचुकायनि' शब्द से अस्य=इसकी अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में अक आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही **'औपगवकः'** आदि।*

*(२) **पाणिनीयः।** यहां बहुल-वचन से प्रथमा-समर्थ, गोत्रवाचक एवं भक्तिवाची 'पाणिन' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय नहीं होता है अपितु 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से शेष-अर्थ की विवक्षा में 'छ' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पौरवीयः।***

जनपदवत्प्रत्ययविधिः-- {भक्तिः}

(१२) जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने।१००।

प०वि०-जनपदिनाम् ६।३। जनपदवत् अव्ययपदम्, सर्वम् १।१ जनपदेन ३।१ समान-शब्दानाम् ६।३ बहुवचने ७।१।

जनपद एषामस्तीति जनपदिनः। **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) इति मतुबर्थे इनिः प्रत्ययः। जनपदिनः=जनपदस्वामिनः क्षत्रिया उच्यन्ते। जनपदे इव जनपदवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-समानाः शब्दा येषां ते समानशब्दाः, तेषाम्-समानशब्दानाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-सः, अस्य, भक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स जनपदेन समानशब्देभ्यो बहुवचने जनपदिभ्योऽस्य सर्वं जनपदवद् भक्तिः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थेभ्यो जनपदेन समानशब्देभ्यो बहुवचने वर्तमानेभ्यो जनपदिवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे सर्वं जनपदवत् प्रत्ययविधिर्भवति, यत् प्रथमासमर्थं भक्तिश्चेत् तद् भवति।

अयमभिप्रायः- **'जनपदतदवध्योश्च'** (४।१।१२४) इत्यस्मिन् प्रकरणे ये प्रत्यया विहितास्ते जनपदिभ्योऽस्मिन्नर्थेऽतिदिश्यन्ते।

उदा०-अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः। वाङ्गकः। सौह्मकः। पौण्ड्रकः। तद्वत्-अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य-आङ्गकः। वाङ्गकः। सौह्मकः। पौण्ड्रकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (जनपदेन-समानशब्दानाम्) जनपद के सदृश शब्दवाले (बहुवचने) बहुवचन में विद्यमान (जनपदिभ्यः) जनपद-स्वामी क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (सर्वम्) सब (जनपदवत्) जनपद के समान प्रत्ययविधि होती है (भक्तिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भक्ति हो।*

*अभिप्राय यह है- **'जनपदतदवध्योश्च'** (४।२।१२४) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विहित हैं वे जनपदी=जनपद के स्वामी क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से भी इस प्रकृत अर्थ में अतिदिष्ट किये गये हैं।*

उदा०-अङ्ग जनपद है भक्ति इसकी यह-आङ्गक। वङ्ग जनपद है भक्ति इसकी यह-वाङ्गक। सुह्म जनपद जनपद है भक्ति इसकी यह-सौह्मक। पुण्ड्र जनपद है भक्ति इसकी यह-पौण्ड्रक। उनके समान-अङ्ग नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-आङ्गक। वङ्ग नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-वाङ्गक। सुह्म नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-सौह्मक। पुण्ड्र नामक क्षत्रिय हैं भक्ति इसकी यह-पौण्ड्रक।

सिद्धि-आङ्गकः । अङ्ग+जस्+वुञ् । आङ्ग्+अक । आङ्गक+सु । आङ्गकः ।

*यहां 'अङ्ग' शब्द बहुवचनान्त एवं जनपदवाची है। **'जनपदतदवध्योश्च'** (४।२।१२३) के प्रकरण में **'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्'** (४।२।१२४) से शेष अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया गया है-**अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः।** यह 'वुञ्' प्रत्यय, इस सूत्र से भक्तिवाची, जनपदी (जनपद के राजा क्षत्रिय) वाचक प्रातिपदिकों से अस्य=षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में होता है। अङ्गा क्षत्रिया भक्तिरस्य-आङ्गकः । ऐसे ही 'वाङ्गकः' आदि।*

प्रोक्तार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तेन प्रोक्तम्।१०१।

प०वि०-तेन ३।१ प्रोक्तम् १।१।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् प्रोक्तं यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-पाणिनिना प्रोक्तम्-पाणिनीयम्। आपिशलिना प्रोक्तम्-आपिशलम्। काशकृत्स्निना प्रोक्तम्-काशकृत्स्नम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। प्रोक्त=अतिशय व्याख्यात वा अध्यापित।*

उदा०-पाणिनि के द्वारा प्रोक्त-पाणिनीय। आपिशलि के द्वारा प्रोक्त-आपिशल। काशकृत्स्नि के द्वारा प्रोक्त-काशकृत्स्न।

*सिद्धि-(१) **पाणिनीयम्।** पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+सु। पाणिनीयम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया है। अतः यहां 'पाणिनि' शब्द से **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है।*

*'पणिन्' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय करने पर तथा **'गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च'** (४६।४।१६५) से प्रकृतिभाव होने से 'पाणिन' शब्द सिद्ध होता है। 'पाणिन' शब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय करने पर 'पाणिनि' शब्द सिद्ध होता है। 'पाणिनि' शब्द से प्रोक्त अर्थ में 'छ' प्रत्यय करने पर 'पाणिनीय' शब्द सिद्ध होता है।*

*(२) **आपिशलम्।** आपिशलि+टा+अण्। आपिशल्+अ। आपिशल+सु। आपिशलम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया है। अतः गोत्रप्रत्ययान्त 'आपिशलि' शब्द **'इञश्च'** (४।२।१११) से 'अण्' प्रत्यय होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**काशकृत्स्नम्।***

छण्-

(२) तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्।१०२।

प०वि०-तित्तिरि-वरतन्तु-खण्डिका-उखात् ५।१ छण् १।१।

स०-तित्तिरिश्च वरतन्तुश्च खण्डिकश्च उखश्च एतेषां समाहारः-तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखम्, तस्मात्-तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन प्रोक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखात् प्रोक्तं छण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यस्तित्तिर्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे छण् प्रत्ययो भवति।

'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (४।३।१०६) इत्यत्र प्रोक्तार्थस्यानुवृत्तेः **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६२) इत्यनेन च छन्दसां ब्राह्मणानां च तद्विषयतया=अध्येतृवेदितृविषयतयाऽत्राध्येतृविषये प्रत्यय-विधिर्भवति, न प्रोक्तार्थमात्रे।

उदा०-**(तित्तिरिः)** तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते-तैत्तिरीयाः। **(वरतन्तुः)** वारतन्तवीयाः। **(खण्डिकाः)** खाण्डिकीयाः। **(उखाः)** औखीयाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (तित्तिरि०उखात्) तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक, उख प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (छण्) छण् प्रत्यय होता है।*

'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (४।३।१०६) सूत्र से प्रोक्त अर्थ की अनुवृत्ति होने से और 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' (४।२।६२) से छन्द और ब्राह्मणवाची शब्दों से प्रत्ययविधि में तद्विषयता=अध्येता, वेदिता अर्थ के विधान से यहां तित्तिरि आदि आचार्यों द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता अर्थ में प्रत्यय विधि होती है; प्रोक्त अर्थ में नहीं।

उदा०-**(तित्तिरि)** तित्तिर आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्द (शाखा ग्रन्थ) के अध्येता (छात्र)-तैत्तिरीय। **(वरतन्तु)** वरतन्तु आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-वारतन्तवीय। **(खण्डिक)** खण्डिक आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-खाण्डिकीय। **(उख)** उख आचार्य के द्वारा प्रोक्त छन्दों के अध्येता (छात्र)-औखीय।

सिद्धि-(१) तैत्तिरीयाः । तित्तिरि+टा+छण्। तैत्तिर्+ईय। तैत्तिरीय+जस्। तैत्तिरीयाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'तित्तिरि' शब्द से प्रोक्त अर्थ में एवं **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६२) से अध्येता-वेदिता अर्थ में इस सूत्र से 'छण्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और इकार का लोप होता है।

(२) **वारतन्तवीयाः ।** यहां **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**खाण्डिकीयाः, औखीयाः ।**

विशेषः (१) चरणों (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न छन्द या शाखा-ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। उनके अध्येता छात्रों का नाम उन छन्द-ग्रन्थों के नाम से रखा जाता था। जैसे तित्तिरि आचार्य से प्रोक्त तैत्तिरीय शाखा के विद्यार्थी 'तैत्तिरीय' कहलाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८०)।

(२) तैत्तिरीय, वारतन्तवीय, खाण्डिकीय, औखीय ये कृष्ण यजुर्वेद के शाखाग्रन्थ हैं (व्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० १७२)।

(३) **तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक,** उख, कठ और कलाप कृष्णयजुर्वेद के चरण-संस्थापक आचार्य थे। इन सबके गुरु वैशम्पायन थे। ये विद्वान् वैशम्पायन के प्रसिद्ध अन्तेवासी थे। प्रत्येक ने स्वयं एक-एक शाखा का प्रवचन किया और चरण की स्थापना की।

(४) **तैत्तिरीय-** तैत्तिरीय चरण के संस्थापक आचार्य तित्तिरि थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तिम भाग का नाम काठक है। इससे तैत्तिरीय और कठों का निकट सम्बन्ध ज्ञात होता है।

(५) **औखीय-**तैत्तिरीय चरण के दो उपविभाग हुये-औखीय, खाण्डिकीय।

(६) **वारतन्तवीय-**पाणिनि के समय इस चरण का पृथक् अस्तित्व था। पाणिनि के शिष्य कौत्स, वरतन्तु के भी शिष्य होने से वारतन्तवीय चरण के साथ सम्बन्धित थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१६, १७)।

णिनिः–

(३) काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः।१०३।

प०वि०–काश्यप-कौशिकाभ्याम् ५।२ ऋषिभ्याम् ५।२ णिनिः १।१।

स०–काश्यपश्च कौशिकश्च तौ काश्यपकौशिकौ, ताभ्याम्-काश्यपकौशिकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन ऋषिभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यां प्रोक्तं णिनिः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्याम् ऋषिवाचिभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**काश्यपः**) काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते–काश्यपिनः। कौशिकेन प्रोक्तं कल्पमधीयते–कौशिकिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (ऋषिभ्याम्) ऋषिवाची (काश्यप-कौशिकाभ्याम्) काश्यप, कौशिक प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(काश्यप)** काश्यप ऋषि के द्वारा प्रोक्त कल्प के अध्येता-काश्यपी। **(कौशिक)** कौशिक ऋषि के द्वारा प्रोक्त कल्प के अध्येता-कौशिकी।*

*सिद्धि–**काश्यपिनः।** काश्यप+टा+णिनि। काश्यप्+इन्। काश्यपिन्+जस्। काश्यपिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, ऋषिवाची 'काश्यप' शब्द से प्रोक्त अर्थ में तथा पूर्ववत् तद्विषयता होने से अध्येता-वेदिता अर्थ में इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**कौशिकिनः।***

णिनिः–

(४) कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च।१०४।

प०वि०–कलापि-वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–कलापी च वैशम्पायनश्च तौ कलापिवैशम्पायनौ, तयोः–कलापिवैशम्पायनयोः। कलापिवैशम्पायनयोरन्तेवासिनः कलापिवैशम्पाय-नान्तेवासिनः, तेभ्यः–कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुतर्वते।

अन्वयः-तेन कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च प्रोक्तं णिनिः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः कलाप्यन्तेवासिवाचिभ्यो वैशम्पायनान्तेवासिवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**कलाप्यन्तेवासिनः**) कलाप्यन्तेवासिनश्चत्वारः सन्ति-हरिद्रुः, छगली, तुम्बुरुः, उलप इति। हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते-हारिद्रविणः। तौम्बुरविणः। औलपिनः। छगलिनस्तु ढिनुकं वक्ष्यति (४।३।१०९)। (**वैशम्पायनान्तेवासिनः**) वैशम्पायनान्तेवासिनो नव सन्ति-आलम्बिः, पलङ्गः, कमलः, ऋचाभः, अरुणिः, ताण्ड्यः, श्यामायनः, कठः, कलापी चेति। आलम्बिना प्रोक्तमधीयते-आलम्बिनः। पालङ्गिनः। कामलिनः। आर्चाभिनः। आरुणिनः। ताण्डिनः। श्यामायनिनः। कठाल्लुकं वक्ष्यति (४।३।१०७)। कलापिनश्चाणं वक्ष्यति (४।३।३।१०८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः) कलापी आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) और वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी वाची प्रातिपदिकों से (च) भी (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**कलापी-अन्तेवासी**) कलापी आचार्य के चार अन्तेवासी हैं-हरिद्रु, छगली, तुम्बुरु, उलप। हरिद्रु के द्वारा प्रोक्त शाखा-ग्रन्थ के अध्येता-हारिद्रवी। तौम्बुरवी। औलपी। छगली से ढिनुक् प्रत्यय का विधान किया जायेगा (४।३।१०९)। (**वैशम्पायन-अन्तेवासी**) वैशम्पायन आचार्य के नौ अन्तेवासी हैं-आलम्बि, पलङ्ग, कमल, ऋचाभ, अरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ, कलापी। आलम्बि के द्वारा प्रोक्त शाखा-ग्रन्थ के अध्येता-आलम्बी। पालङ्गी। कामली। आर्चाभी। आरुणी। ताण्डी। श्यामायनी। 'कठ' से प्रत्यय का लुक् कहा जायेगा (४।३।१०७)। 'कलापी' से अण् प्रत्यय का विधान किया जायेगा (४।३।१०८)।*

*सिद्धि-**हारिद्रविणः।** हरिद्रु+टा+णिनि। हारिद्रो+इन्। हारिद्रविन्+जस्। हारिद्रविणः।*

*यहां तृतीया-समर्थ कलापी आचार्य के अन्तेवासी 'हरिद्रु' शब्द से प्रोक्त अर्थ में एवं पूर्ववत् अध्येता-वेदिता विषय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**तौम्बुरविणः, आरुणिनः** आदि।*

णिनिः–

(५) पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।१०५।

प०वि०–पुराण-प्रोक्तेषु ७।३ ब्राह्मण-कल्पेषु ७।३।

स०–पुराणैः (प्राचीनैः) प्रोक्ता इति पुराणप्रोक्ताः, तेषु-पुराणप्रोक्तेषु (तृतीयातत्पुरुषः)। ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ते ब्राह्मणकल्पाः, तेषु-ब्राह्मणकल्पेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् प्रोक्तं णिनिः पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण-कल्पेषु।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं पुराणप्रोक्ता ब्राह्मणकल्पाश्चेत् ते भवन्ति।

उदा०–**(ब्राह्मणानि)** भल्लुना प्रोक्तं ब्राह्मणमधीयते-भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। **(कल्पाः)** पिङ्गेन प्रोक्तं कल्पमधीयते-पैङ्गिनः। आरुणपराजिनः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (पुराण-प्रोक्तेषु, ब्राह्मण-कल्पेषु) वहां जो प्रोक्त शाखा ग्रन्थ हैं यदि वे ब्राह्मणग्रन्थ और कल्पग्रन्थ हों।*

*उदा०–**(ब्राह्मण)** भल्लु (भालव) प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-भाल्लवी। शाट्यायन प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-शाट्यायनी। ऐतरेय प्राचीन मुनि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता-ऐतरेयी। **(कल्प)** पिङ्ग मुनि के द्वारा प्रोक्त कल्प वेदाङ्ग के अध्येता-पैङ्गी। अरुणपराज मुनि के द्वारा प्रोक्त कल्प वेदाङ्ग के अध्येता-आरुणपराजी।*

सिद्धि–भाल्लविनः। *भल्लु+टा+णिनि। भाल्लो+इन्। भाल्लविन्+जस्। भाल्लविनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, प्राचीन मुनिवाची 'भल्लु' शब्द से प्रोक्त (ब्राह्मणग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से णिनि प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**शाट्यायनिनः, पैङ्गिनः** आदि।*

विशेषः प्राचीन ऋषियों ने वेदों की व्याख्या में ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना की थी। *ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद के ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मणग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। यहां भल्लु (भालव) तथा शाट्यायन ब्राह्मण का भी उल्लेख किया गया है। वेदों की व्याख्या में ही शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष इन छः वेदांगों की रचना की गई। यहां पैङ्ग तथा अरुणपराज नामक कल्प वेदांग का भी उल्लेख किया गया है।*

णिनिः–

(६) शौनकादिभ्यश्छन्दसि।१०६।

प०वि०–शौनक-आदिभ्यः ५।३ छन्दसि ७।१।

स०–शौनक आदिर्येषां ते शौनकादयः, तेभ्यः–शौनकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, णिनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन शौनकादिभ्यः प्रोक्तं णिनिश्छन्दसि।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः शौनकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद्भवति।

उदा०–शौनकेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–शौनकिनः। वाजसनेयिनः।

शौनक। वाजसनेय। साङ्गरव। शाङ्गरव। सांपेय। शाखेय। खाडायन। स्कन्द। स्कन्ध। देवदत्तशठ। रज्जुकण्ठ। रज्जुभार। कठशाड। कशाय। तलवकार। पुरुषासक। अश्वपेय। स्कम्भ। इति शौनकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (शौनकादिभ्यः) शौनक आदि प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०–शौनक मुनि के द्वारा प्रोक्त (छन्द) के अध्येता-शौनकी। वाजसनेय मुनि के द्वारा प्रोक्त (छन्द) के अध्येता-वाजसनेयी।

*सिद्धि-**शौनकिनः**। शौनक+टा+णिनि। शौनक्+इन्। शौनकिन्+जस्। शौनकिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'शौनक' शब्द से प्रोक्त अर्थ में, अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वाजसनेयिनः** आदि।*

विशेषः *(१) शौनक-ऋग्वेद के शाकल आदि अनेक चरण (वैदिक-विद्यापीठ) हैं। उनमें एक शौनक चरण प्रसिद्ध है। "शौनके चरण के छन्द-ग्रन्थ का अध्ययन करनेवाले 'शौनकिनः' कहलाते थे। इस चरण का शाकलों (शाकल चरणवालों) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। ऋग्वेद के सम्बन्ध में शौनकों ने बहुत-कुछ साहित्यिक कार्य किया। ऋग्वेद प्रातिशाख्य भी मुख्यतः इसी चरण का (ग्रन्थ) है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१६)।*

(२) वर्तमान में उपलब्ध शुक्ल यजुर्वेद 'वाजसनेय' चरण का ग्रन्थ है। इसके अध्येता 'वाजसनेयिनः' कहलाते थे।

प्रोक्तार्थप्रत्ययस्य लुक्–

(७) कठचरकाल्लुक्।१०७।

प०वि०–कठ–चरकात् ५।१ लुक् १।१।

स०–कठश्च चरकश्च एतयोः समाहारः कठचरकम्, तस्मात्–कठचरकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन कठचरकात् प्रोक्तं प्रत्ययस्य लुक् छन्दसि।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कठचरकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०–**(कठः)** कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–कठाः। **(चरकः)** चरकेण प्रोक्तं छन्दोऽधीयते–चरकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कठचरकात्) कठ, चरक प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-(कठ) कठ आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-कठ। (चरक) चरक आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-चरक।

सिद्धि-(१) कठाः। कठ+टा+णिनि। कठ+०। कठ+जस्। कठाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'कठ' शब्द से प्रोक्त अर्थ में अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में विहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। यहां 'कठ' के वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) होने से 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' (४।३।१०४) से 'णिनि' प्रत्यय का विधान किया गया है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है।

(२) चरकाः । चरक+टा+अण् । चरक+० । चरक+जस् । चरकाः ।

*यहां तृतीया-समर्थ 'चरक' शब्द से '**तेन प्रोक्तम्**' (४ ।३ ।१०१) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है।*

***विशेषः** (१) कठ-'कठ' वैशम्पायन आचार्य के नौ शिष्यों में से एक थे तथा वे 'कठ' नामक चरण (वैदिक-विद्यापीठ) के संस्थापक आचार्य थे। यह चरकों का अति प्रसिद्ध चरण था जिसके अनुयायी गांव-गांव में फैल गये थे (महाभाष्य ४ ।३ ।१०१)।*

*(२) चरक-पाणिनि के अनुसार चरक-चरण के विद्वान् 'चरक' नाम से प्रसिद्ध थे। काशिका के अनुसार वैशम्पायन की संज्ञा चरक थी "**चरक इति वैशम्पायनस्याख्या, तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते**" (४ ।३ ।१०४)। चरक का मूल अर्थ ज्ञानोपार्जन के लिए विचरण करनेवाला विद्वान् था। वैशम्पायन वैदिक आचार्यों में प्रमुख थे। शबर स्वामी ने लिखा है कि कृष्ण यजुर्वेद की समस्त शाखाओं के अध्यापन का श्रेय वैशम्पायन को था "**स्मर्यते च वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी**" (मी०भा० १ ।१ ।३०)। वैशम्पायन के अन्तेवासी=शिष्यों द्वारा स्थापित चरण दूर-दूर तक कई दिशाओं में फैले हुये थे। पतंजलि के अनुसार तीन मध्य देश में, तीन उत्तर में और तीन प्राच्य देश में निवास करते थे (४ ।२ ।१३८)। आलम्बि, पलङ्ग और कमल द्वारा स्थापित आलम्बी, पालङ्गी और कामली चरकों के ये तीन चरण प्राच्य देश में थे। ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य इन तीन आचार्यों के द्वारा स्थापित आर्चाभी, आरुणी और ताण्डी ये तीन चरण मध्यदेश में थे। श्यामायन, कठ और कलापी आचार्यों के चरण श्यामायनी, कठ, कालाप ये उदीच्य देश में थे।*

आलम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्गकमलावुभौ ।
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयोऽपरे ।।
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनोः ।। (काशिका ४ ।३ ।१०४)

अण्-

(८) कलापिनोऽण् ।१०८ ।

प०वि०-कलापिनः ५ ।१ अण् १ ।१ ।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तेन कलापिनः प्रोक्तम् अण् छन्दसि ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कलापिनः प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्य-स्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद भवति ।

उदा०-कलापिना प्रोक्तं छन्दोऽधीयते-कालापाः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कलापिनः) कलापिन् प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-कलापी आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-कालाप।

सिद्धि-कालापाः। कलापिन्+टा+अण्। कालाप्+अ। कालाप+जस्। कालापाः।

*यहां तृतीया-समर्थ, कलापिन् प्रातिपदिक से, अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव प्राप्त होने पर वा०- **'नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापि..........सुपर्वणामुपसंख्यानम्'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

*यहां **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) के अधिकार में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय सिद्ध ही था पुनः 'अण्' प्रत्यय का कथन अधिक-विधान के लिये किया गया है कि यदि अभीष्ट हो तो अन्य प्रातिपदिक से भी 'अण्' प्रत्यय हो जाये। जैसे-माथुरी वृत्तिः, सौलभानि ब्राह्मणानि।*

विशेषः *कलापी-'कालाप' यह चरकों का उदीच्य चरण था। वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासियों में कलापी आचार्य स्वयं बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे। उन्होंने केवल नये चरण की ही स्थापना नहीं की अपितु उनके हरिद्रु, छगली, तुम्बुरु और उलप ये चार शिष्य ऐसे उत्कृष्ट विद्वान् हुये जो एक-एक चरण के संस्थापक थे।*

ढिनुक्–

(६) छगलिनो ढिनुक्।१०६।

प०वि०-छगलिनः ५।१ ढिनुक् १।१।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन छगलिनः प्रोक्तं ढिनुक् छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाच्छगलिनः प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्य-स्मिन्नर्थे ढिनुक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०-छगलिना प्रोक्तं छन्दोऽधीयते-छागलेयिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (छगलिनः) छगलिन् प्रातिपदिक से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (ढिनुक्) ढिनुक् प्रत्यय होता है (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-छगली आचार्य के द्वारा प्रोक्त (छन्द-ग्रन्थ) के अध्येता-छागलेयी।

सिद्धि-छागलेयिनः । छगलिन्+टा+ढिनुक् । छागलिन्+एय् इन् । छागल्+एयिन् । छागलेयिन्+जस् । छागलेयिनः ।

यहां तृतीया-समर्थ 'छगलिन्' प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में एवं छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'ढिनुक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।

विशेषः *छगली-ये वैशम्पायन आचार्य के अन्तेवासी कलापी नामक आचार्य के चार शिष्यों में से एक थे। ये उच्चकोटि के विद्वान् और एक चरण (वैदिक विद्यापीठ) के संस्थापक थे।*

णिनिः--

(१०) पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।११०।

प०वि०-पाराशर्य-शिलालिभ्याम् ५।२ भिक्षु-नटसूत्रयोः ७।२।

स०-पाराशर्यश्च शिलाली च तौ पाराशर्यशिलालिनौ, ताभ्याम्-पाराशर्यशिलालिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। भिक्षुश्च नटश्च तौ भिक्षुनटौ, तयोः-भिक्षुनटयोः। भिक्षुनटयोः सूत्रे इति भिक्षुनटसूत्रे, तयोः-भिक्षुनटसूत्रयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम् छन्दसि इति चानुवर्तते, तथा प्रयोगबलाण्णिनि-रित्यनुवर्तति न ढिनुक्।

अन्वयः-तेन पाराशर्यशिलालिभ्यां प्रोक्तं णिनिर्भिक्षुनटसूत्रयोश्छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां पाराशर्यशिलालिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे णिनिः प्रत्ययो भवति यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोरभिधेययोः, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद्भवति।

उदा०-(**पाराशर्यः**) पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते-पाराशरिणो भिक्षवः। (**शिलाली**) शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते-शैलालिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पाराशर्यशिलालिभ्याम्) पाराशर्य, शिलालिन् प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (णिनिः) णिनि प्रत्यय होता है (भिक्षुनटसूत्रयोः) यथासंख्य भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थ में, (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

उदा०-(पाराशर्य) पाराशर्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षु-सूत्र के अध्येता-पाराशरी भिक्षु। (शिलाली) शिलाली आचार्य के द्वारा प्रोक्त नटसूत्र के अध्येता-शैलाली नट।

सिद्धि-(१) पाराशरिण:। पाराशर्य+टा+णिनि। पाराशर्य्+इन्। पाराशर्+इन्। पाराशरिन्+जस्। पाराशरिण:।

यहां तृतीया-समर्थ, 'पाराशर्य' प्रातिपदिक से प्रोक्त (भिक्षुसूत्र) अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में और छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादे:' (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' (६।४।१५१) से अंग के यकार का लोप होता है।

(२) शैलालिन:। शिलालिन्+टा+णिनि। शैलालिन्+इन्। शैलाल्+इन्। शैलालिन्+जस्। शैलालिन:।

यहां 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेष: *(१) भिक्षुसूत्र और नटसूत्र छन्द (वेद) नहीं हैं किन्तु "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति" (महाभाष्य) इस वचन-प्रमाण से उन्हें इस छन्दोऽधिकार में छन्दोवत् मानकर उनसे तद्विषयता=अध्येता-वेदिता विषय में यह प्रत्ययविधि की जाती है।*

(२) पाराशर्य-मूल भिक्षुसूत्रों की रचना वैदिक चरण के अन्तर्गत हुई। व्यक्तिविशेष का उनके साथ सम्बन्ध आनुषङ्गिक था। मूलत: ऋग्वेद की वाष्कल शाखा के अन्तर्गत पाराशर्य चरण की स्थिति थी। इसी चरण के कल्पसूत्र का अध्ययन करनेवाले 'पाराशर-कल्पिक' या 'पाराशरा:' और भिक्षुसूत्रों के अध्येता 'पाराशरिण:' कहलाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३३०)।

(३) शिलाली। पाणिनि मुनि ने शिलाली आचार्य को नट-सूत्रों का प्रवचनकर्ता कहा है-'शैलालिनो नटा:'। इनका एक वैदिक चरण था जिसमें मुख्यत: नाट्यशास्त्र का अध्ययन किया जाता था। मूलत: शैलालक ऋग्वेद का चरण था जिन्होंने एक ब्राह्मण ग्रन्थ का भी विकास किया था। इस चरण में नट-सूत्र जैसे लौकिक विषय का विकास करके वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नये मार्ग का प्रवर्तन किया गया (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१५)।

इनि:--

(११) कर्मन्दकृशाश्वादिनि:।१११।

प०वि०-कर्मन्द-कृशाश्वात् ५।१ इनि: १।१।

स०-कर्मन्दश्च कृशाश्वश्च तौ कर्मन्दकृशाश्वौ, ताभ्याम्-कर्मन्दकृशाश्वाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-तेन, प्रोक्तम्, छन्दसि, भिक्षुनटसूत्रयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कर्मन्दकृशाश्वात् प्रोक्तम् इनिः, भिक्षुनटसूत्रयो-श्छन्दसि।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मन्दकृशाश्वाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तमित्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं भिक्षुनटसूत्रयोरभिधेययोः, यत् प्रोक्तं छन्दश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(**कर्मन्दः**) कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते-कर्मन्दिनो भिक्षवः। (**कृशाश्वः**) कृशाश्वेन प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते कृशाश्विनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (कर्मन्दकृशाश्वात्) कर्मन्द, कृशाश्व प्रातिपदिकों से (प्रोक्तम्) प्रोक्त अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता (भिक्षुनटसूत्रयोः) यथासंख्य भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थ में (छन्दसि) जो प्रोक्त है यदि वह छन्द हो।*

*उदा०-(कर्मन्द) कर्मन्द आचार्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्र के अध्येता-**कर्मन्दी** भिक्षु। (कृशाश्व) कृशाश्व आचार्य के द्वारा प्रोक्त नट-सूत्र के अध्येता-कृशाश्वी नट।*

*सिद्धि-**कर्मन्दिनः**। कर्मन्द+टा+इनि। कर्मन्द्+इन्। कर्मन्दिन्+जस्। कर्मन्दिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्मन्द' शब्द से प्रोक्त (भिक्षुसूत्र) अर्थ में तथा अध्येता-वेदिता विषय में और छन्द अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कृशाश्विनः**।*

विशेषः *कर्मन्द आचार्य पाराशर्य आचार्य के समान भिक्षु-सूत्रों के प्रवक्ता थे। कृशाश्व आचार्य शिलाली आचार्य के समान नट-सूत्रों के प्रवक्ता थे। भिक्षु-सूत्रों में भिक्षु=साधुजनों के आचार-व्यवहार के नियमों का विधान होता था और नटसूत्र भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थ थे।*

एकदिगर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) तेनैकदिक्।११२।

प०वि०-तेन ३।१ एकदिक् १।१।

स०-एका दिग् यस्य तत्-एकदिक् (बहुव्रीहिः)। एकदिक्= समानदिगित्यर्थः।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् एकदिग् यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-सुदाम्ना एकदिक् सौदामनी विद्युत्। हैमवती। त्रैककुदी। पैलुमूली।

'तेन' इत्यनुवर्तमाने पुनः 'तेन' इति समर्थविभक्तिग्रहणं छन्दोऽधिकारनिवृत्त्यर्थं क्रियते यतो हि पूर्वत्र छन्दोऽधिकारात् **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६६) इत्यनेन तद्विषयता=अध्येतृवेदितृविषयता संसाध्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (एकदिक्) समानदिशावाला अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-सुदामा नामक पर्वत की एकदिक्=समान दिशावाली विद्युत्-सौदामनी। हिमवान् पर्वत की एकदिक्वाली विद्युत्-**हैमवती**। त्रिककुत् पर्वत की एक दिक्वाली विद्युत्-त्रैककुदी। पीलु नामक वृक्ष के मूल की एकदिक्वाली विद्युत्-पैलुमूली। पीलु=जालवृक्ष।*

"पीलौ गुडफलः स्रंसी'त्यमरः"। तस्य पाकमूले पीलवादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ (अ० ५।२।२४)।

सिद्धि-सौदामनी। *सुदामन्+टा+अण्। सुदामन्+अ। सौदामन+ङीप्। सौदामनी+सु। सौदामनी।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सुदामन्' शब्द से एकदिक् (समानदिशावाला) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) अंग को आदिवृद्धि होती है। 'अन्' (६।४।१६७) से 'सुमदान्' शब्द प्रकृतिभाव से रहता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**हैमवती** आदि।*

विशेषः *यहां 'तेन' पद की अनुवृत्ति होने पर पुनः 'तेन' पद का ग्रहण छन्दोऽधिकार की निवृत्ति के लिये है। इससे पूर्व प्रकरण में छन्दोऽधिकार होने से **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** (४।२।६६) से तद्विषयता=अध्येता-वेदिता विषयता सिद्ध की जाती है।*

तसिः-

(२) तसिश्च।११३।

प०वि०-तसिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, एकदिगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् एकदिक् तसिश्च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे तसिः प्रत्ययश्च भवति।

उदा०-सुदाम्ना एकदिक् सुदामतः। हैमवत्तः। पीलुमूलतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (एकदिक्) एकदिक्=समान दिशावाला अर्थ में (तसिः) तसि प्रत्यय (च) भी होता है।*

उदा०-सुदामा नामक पर्वत की एकदिक्=समान दिशावाला-सुदामतः। हिमवान् पर्वत की समान दिशावाला-हिमवत्तः। पीलुमूल वृक्ष की समान दिशावाला-पीलुमूलतः।

सिद्धि-सुदामतः। सुदामन्+टा+तसि। सुदाम+तस्। सुदाम+तस्। सुदामतस्+सु। सुदामतः।

*यहां तृतीया-समर्थ 'सुदामन्' प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थ में इस सूत्र से 'तसि' प्रत्यय है। 'तसि' प्रत्यय के परे होने पर **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'सुदामन्' की पदसंज्ञा होकर **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। 'तसि' प्रत्यय का स्वरादिगण में पाठ होने से **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा और **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

यत्+तसिः–

(३) उरसो यच्च।११४।

प०वि०-उरसः ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, एकदिगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन उरसो यत् तसिश्च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् उरसः प्रातिपदिकाद् एकदिगित्यस्मिन्नर्थे यत् तसिश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** उरसा एकदिक् उरस्यः। **(तसिः)** उरस्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (उरसः) उरस् प्रातिपदिक से (एकदिक्) एकदिक अर्थ में (यत्) यत् (च) और (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-(यत्) उरस्=वक्षस्थल (छाती) का एकदिक्=समान दिशावाला-उरस्यः (पुत्र)। उरस् की एकदिक्=समान दिशावाला-उरस्तः।

उपज्ञातार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) उपज्ञाते।११५।

वि०-उपज्ञाते ७।१।

अनु०-तेन इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् उपज्ञाते यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उपज्ञाते इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, विनोपदेशेन ज्ञातम्=उपज्ञातम् स्वयमभिसम्बद्धमित्यर्थः।

उदा०-पाणिनिना उपज्ञातम्-पाणिनीयमकालकं व्याकरणम्। काशकृत्स्निना उपज्ञातम्-काशकृत्स्नं गुरुलाघवम् (अर्थशास्त्रम्)। आपिशलिना उपज्ञातम्-आपिशलं दुष्करणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (उपज्ञाते) उपज्ञात अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। बिना उपदेश के ज्ञात, स्वयं सम्बद्ध विषय को 'उपज्ञात' कहते हैं।*

उदा०-पाणिनि के द्वारा उपज्ञात-पाणिनीय काल परिभाषा से रहित व्याकरणशास्त्र (अष्टाध्यायी)। काशकृत्स्नि के द्वारा उपज्ञात-काशकृत्स्न गुरुलाघव नामक अर्थशास्त्र। जिसमें उपायों के गौरव-लाघव का चिन्तन किया गया है। आपिशलि के द्वारा उपज्ञात-आपिशल दुष्करण। पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के वत्-करण के समान समाप्ति-सूचक दुष्-करणवाला व्याकरण। किन्हीं के मत में 'दुष्करण' का अर्थ कामशास्त्र है।

सिद्धि-(१) पाणिनीयम्। *पाणिनि+टा+छ। पाणिन्+ईय। पाणिनीय+सु। पाणिनीयम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'पाणिनि' शब्द से उपज्ञात अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'पाणिनि' शब्द के वृद्धसंज्ञक होने से '**वृद्धाच्छः**' (४।२।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय होता है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **काशकृत्स्नम्/आपिशलम्** पदों की सिद्धि '**तेन प्रोक्तम्**' (४।३।१०१) के प्रवचन में देख लेवें।*

कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कृते ग्रन्थे।११६।

प०वि०–कृते ७।१ ग्रन्थे ७।१।

अनु०–तेन इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् कृते यथाविहितं प्रत्ययो ग्रन्थे।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, योऽसौ कृतो ग्रन्थश्चेत् स भवति।

उदा०–वररुचिना कृताः–वाररुचाः श्लोकाः। हैकुपादो ग्रन्थः–भैकुराटो ग्रन्थः। दायानन्दो ग्रन्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (कृते) कृत=बनाया गया अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (ग्रन्थे) जो कृत है यदि वह ग्रन्थ हो।*

उदा०–वररुचि के द्वारा बनाये गये-वाररुच श्लोक। हीकुपाद के द्वारा बनाया गया-हैकुपाद ग्रन्थ। भीकुराट के द्वारा बनाया गया-भैकुराट ग्रन्थ। दयानन्द के द्वारा बनाया गया-दायानन्द ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश)।

सिद्धि-वाररुचाः। वररुचि+टा+अण्। वाररुच्+अ। वाररुच+जस्। वाररुचाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'वररुचि' शब्द से कृत (ग्रन्थ) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-हैकुपादः, भैकुराटः, दायानन्दः।

***विशेषः** वररुचिकृत श्लोक निश्चय ही पाणिनि से अर्वाचीन हैं। यह वररुचि वार्तिककार कात्यायन है। पतञ्जलि ने महाभाष्य (४।३।१०१) में वाररुच काव्य का निर्देश किया है (पं० युधिष्ठिर मीमांसककृत संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० १८८-८९)।*

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) {क} संज्ञायाम्।११७।

वि०–संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–तेन, कृते, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् कृते यथाविहितं प्रत्ययः, संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-मक्षिकाभिः कृतम्-माक्षिकम्। सारघम्। पौत्तिकम्। मधुनः संज्ञा एताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (कृते) बनाया गया अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-मक्षिकाओं के द्वारा बनाया गया-माक्षिक (मधु)। सरघाओं के द्वारा बनाया गया-सारघ (मधु)। पुत्तिकाओं के द्वारा बनाया गया-पौत्तिक (मधु)। सरघा और पुत्तिका नामक विशेष भ्रमर की मक्खियां हैं जो मधु बनाती हैं।

सिद्धि-माक्षिकम्। *मक्षिका+भिस्+अण्। माक्षिक्+अ। माक्षिक+सु। माक्षिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'मक्षिका' शब्द से कृत अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की गम्यमानता में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *महाभाष्य के पाठ से विदित होता है कि 'संज्ञायां कुलालादिभ्यो वुञ्' एक सूत्र है। वहां 'माक्षिकम्' आदि पदों की सिद्धि के लिये योग-विभाग का विधान किया है। अतः यहां योगविभाग पूर्वक सूत्र का प्रवचन किया गया है।*

वुञ्-

(३) {ख} कुलालादिभ्यो वुञ्।११८।

प०वि०-कुलाल-आदिभ्यः ५।३ वुञ् १।१।

स०-कुलाल आदिर्येषां ते कुलालादयः, तेभ्यः-कुलालादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, कृते, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुलालादिभ्यः कृते वुञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः कुलालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-कुलालेन कृतम्-कौलालकम्। वरुडेन कृतम्-वारुडकम्, इत्यादिकम्।

कुलाल। वरुड। चण्डाल। निषाद। कर्मार। सेना। सिरिध्र। सेन्द्रिय। देवराज। परिषत्। वधू। रुरु। ध्रुव। रुद्र। अनडुह। ब्रह्मन्। कुम्भकार। श्वपाक। इति कुलालादयः।।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुलालादिभ्यः) कुलाल आदि प्रातिपदिकों से (कृते) बनाया गया अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-कुलाल (कुम्हार) के द्वारा बनाया गया कौलालक (घड़ा)। वरुड (जातिविशेष) के द्वारा बनाया गया-वारुडक। वस्तुविशेष।

__सिद्धि-कौलालकम्।__ कुलाल+टा+वुञ्। कौलाल्+अक। कौलालक+सु। कौलालकम्।

यहां तृतीया-समर्थ 'कुलाल' शब्द से कृत अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। __'युवोरनाकौ'__ (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-__वारुडकम्__ आदि।

अञ्–

(४) क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्।११६।

प०वि०-क्षुद्रा-भ्रमर-वटर-पादपात् ५।१ अञ् १।१।

स०-क्षुद्रा च भ्रमरश्च वटरश्च पादपश्च एतेषां समाहारः क्षुद्राभ्रमरवटरपादपम्, तस्मात्-क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, कृते, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात् कृतेऽञ् संज्ञायाम्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः क्षुद्राभ्रमरवटरपादपेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-क्षुद्राभिः कृतम्-क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात्) क्षुद्रा, भ्रमर, वटर, पादप प्रातिपदिकों से (कृते) बनाया गया अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-__(क्षुद्रा)__ क्षुद्रा (छोटी मक्खी) के द्वारा बनाया गया-क्षौद्र (मधु)। __(भ्रमर)__ भ्रमर (बड़ी मक्खी) द्वारा बनाया गया-भ्रामर (मधु)। __(वटर)__ वटर (बटेर पक्षी) द्वारा बनाया गया-वाटर (घौंसला आदि)। __(पादप)__ पादप=प्राणिविशेष से बनाया गया-पादप (पदार्थविशेष)।

*सिद्धि-**क्षौद्रम्।** क्षुद्रा+भिस्+अञ्। क्षौद्र+अ। क्षौद्र+सु। क्षौद्रम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'क्षुद्रा' शब्द से कृत अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भ्रामरम्** आदि।*

इदमर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्येदम्।१२०।

प०वि०-तस्य ६।१ इदम् १।१।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् इदं यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-उपगोरिदम्-औपगवम्। कपटोरिदम्-कापटवम्। राष्ट्रस्येदम्-राष्ट्रियम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (इदम्) 'यह' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-उपगु का यह-औपगव। कपटु का यह-कापटव। राष्ट्र का यह-राष्ट्रिय।

*सिद्धि-(१) **औपगवम्।** उपगु+ङस्+अण्। औपगो+अ। औपगव्+अ। औपगव+सु। औपगवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उपगु' शब्द से इदम् (यह) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है, अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**कापटवम्।***

*(२) **राष्ट्रियम्।** यहां षष्ठी-समर्थ 'राष्ट्र' शब्द से इदम् अर्थ में **'राष्ट्रावारपाराद् घखौ'** (४।२।९३) से यथाविहित 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

यत्–

(२) रथाद् यत्।१२१।

प०वि०-रथात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रथाद् इदं यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् रथात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-रथस्येदम्-रथ्यम्, चक्रं वा युगं वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रथात्) रथ प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-रथ का यह (अंग)-रथ्य। रथ का अंग पहिया वा जूवा।

सिद्धि-रथ्यम्। *रथ+ङस्+यत्। रथ्+य। रथ्य+सु। रथ्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रथ' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'रथ' से 'यत्' प्रत्यय उसके अवयव अर्थ में ही अभीष्ट है, अन्यत्र नहीं।*

अञ्-

(३) पत्रपूर्वादञ्।१२२।

प०वि०-पत्र-पूर्वात् ५।१ अञ् १।१।

स०-पत्रं पूर्वं यस्य तत् पत्रपूर्वम्, तस्मात्-पत्रपूर्वात् (बहुव्रीहिः)। पतन्ति=गच्छन्ति येन इति पत्रम्, अश्वादिकं वाहनमुच्यते।

अनु०-तस्य, इदम्, रथादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पत्रपूर्वाद् रथाद् इदम् अञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पत्रपूर्वाद् रथात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वरथस्येदम्-आश्वरथं चक्रम्। औष्ट्ररथं चक्रम्। गार्दभरथं चक्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्रपूर्वात्) पत्र=वाहन पूर्वपदवाले (रथात्) रथ प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्वरथ (घोड़ागाड़ी) का यह-आश्वरथ पहिया। उष्ट्ररथ (ऊंटगाड़ी) का यह-औष्ट्ररथ पहिया। गर्दभरथ (गधागाड़ी) का यह-गार्दभरथ पहिया।

सिद्धि-आश्वरथम्। *अश्वरथ+ङस्+अञ्। आश्वरथ्+अ। आश्वरथ+सु। आश्वरथम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, पत्रपूर्वपदवाले 'अश्वरथ' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औष्ट्ररथम्, गार्दभरथम्।** यहां भी 'अश्वरथ' आदि शब्दों से 'यत्' प्रत्यय उसके अवयव अर्थ में अभीष्ट है, अन्यत्र नहीं।*

अञ्–

(४) पत्राध्वर्युपरिषदश्च।१२३।

प०वि०–पत्र-अध्वर्यु-परिषदः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–पत्रं च अध्वर्युश्च परिषच्च एतेषां समाहारः पात्राध्वर्युपरिषद्, तस्मात्–पत्राध्वर्युपरिषदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, इदम्, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पत्राध्वर्युपरिषदश्च इदम् अञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पत्रवाचिनः प्रातिपदिकात्, अध्वर्यु-परिषद्भ्यां च प्रातिपदिकाभ्याम् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पत्रम्)** अश्वस्येदम् (वहनीयम्)-आश्वम्। औष्ट्रम्। गार्दभम्। **(अध्वर्युः)** अध्वर्योरिदम्–आध्वर्यवम्। **(परिषद्)** परिषद इदम्–पारिषदम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्राध्वर्युपरिषदः) पत्रवाची {अश्व आदि} प्रातिपदिक से एवं अध्वर्यु, परिषद् प्रातिपदिकों से (च) भी (इदम्) यह अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(पत्र)** अश्व का यह-(वोढव्य)-आश्व (घुड़सवार आदि)। उष्ट्र का यह (वोढव्य)-औष्ट्र। गर्दभ का यह (वोढव्य)-गार्दभ (भार आदि)। **(अध्वर्यु)** अध्वर्यु नामक ऋत्विक् (यजुर्वेदी विद्वान्) का यह-आध्वर्यव कर्म। **(परिषद्)** परिषद् का यह-पारिषद (कार्य)।*

*सिद्धि-(१) **आश्वम्।** अश्व+ङस्+अञ्। आश्व्+अ। आश्व+सु। आश्वम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से इदम् (वोढव्य) अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। वा०-**'पत्राद् वाह्ये'** पत्रवाची (अश्व आदि) शब्द से वाह्य=वहनीय अर्थ में ही 'यत्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पारिषदम्।***

*(२) **आध्वर्यवम्।** यहां 'अध्वर्यु' शब्द से 'अञ्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *परिषद्-पाणिनि ने तीन प्रकार की परिषदों का उल्लेख किया है (१) शिक्षा-सम्बन्धी (२) समाज में गोष्ठी-सम्बन्धी (३) राज-शासन सम्बन्धी। पहले प्रकार की परिषद् चरण के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा थी जो उच्चारण और व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का निश्चय करती थी और शाखा के पाठ आदि के विषय में भी जिसमें विचार होता था। सूत्र (४।३।१२३) में चरण-परिषद् का ही उल्लेख है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २९१)।*

ठक्–

(५) हलसीराट्ठक्।१२४।

प०वि०–हल-सीरात् ५।१ ठक् १।१।

स०–हलं च सीरश्च एतयोः समाहारो हलसीरम्, तस्मात्–हलसीरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य हलसीराद् इदं ठक्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां हलसीराभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् इदमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(हलम्)** हलस्येदम्–हालिकम्। **(सीरः)** सीरस्येदम्–सैरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हलसीरात्) हल, सीर प्रातिपदिकों से (इदम्) यह अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(हल)** हल का यह-हालिक बैल आदि। **(सीर)** सीर=हलविशेष का यह-सैरिक (बैल)। हल में जुड़नेवाला बैल आदि।*

सिद्धि-हालिकम्। *हल+ठक्। हाल्+इक। हालिक+सु। हालिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हल' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैरिकम्।***

वुन्–

(५) द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः।१२५।

प०वि०–द्वन्द्वात् ५।१ वैर-मैथुनिकयोः ७।२।

स०–मिथुनम्=दम्पती। मिथुनस्य कर्म इति मैथुनिका। कर्म= क्रियानिष्पादनम्। **'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' (५।१।१३३) इति मनोज्ञादित्वाद्**

वुञ् प्रत्ययः। वैरं च मैथुनिका च ते वैरमैथुनिके, तयोः वैरमैथुनिकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, इदमित्यनुवर्तते।

अन्वयः–तस्य द्वन्द्वाद् इदं वुन् वैरमैथुनिकयोः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्वन्द्वसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति वैरं मैथुनिका चेत् तद् भवति।

उदा०–**(वैरम्)** बाभ्रव्यश्च शालङ्कायनश्च तौ बाभ्रव्यशालङ्कायनौ, तयोः–बाभ्रव्यशालङ्कायनयोः। बाभ्रव्यशालङ्कायनयोरिदं वैरम्–बाभ्रव्य-शालङ्कायनिका। काकश्च उलूकश्च तौ काकोलूकौ, तयोः–काकोलूकयोः। काकोलूकयोरिदं वैरम्–काकोलूकिका। **(मैथुनिका)** अत्रिश्च भरद्वाजश्च तौ अत्रिभरद्वाजौ, तयोः–अत्रिभरद्वाजयोः। अत्रिभरद्वाजयोरियं मैथुनिका–अत्रिभरद्वाजिका। कुत्सश्च कुशिकश्च तौ कुत्सकुशिकौ, तयोः–कुत्सकुशिकयोः। कुत्सकुशिकयोरियं मैथुनिका–कुत्सकुशिकिका। वुन्नन्तं स्वभावतः स्त्रियां वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसंज्ञक प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (वैरमुथिनकयोः) जो (इदम्) यह प्रत्ययार्थ है यदि वह वैर और मैथुनिका हो। मिथुन=दम्पती। दम्पती का कर्म (क्रियाविशेष) मैथुनिका कहाती है।*

*उदा०–**(वैर)** बाभ्रव्य और शालङ्कायन लोगों का यह वैर–बाभ्रव्यशालङ्कायनिका। काक और उलूक का यह वैर–काकोलूकिका। **(मैथुनिका)** अत्रि और भरद्वाज लोगों की यह मैथुनिका (विवाह सम्बन्ध)–अत्रिभरद्वाजिका। कुत्स और कुशिक लोगों की यह मैथुनिका (विवाह सम्बन्ध)–कुत्सकुशिकिका।*

सिद्धि–बाभ्रव्यशालङ्कायनिका। *बाभ्रव्यशालङ्कायन+ओस्+वुन्। बाभ्रव्य-शालङ्कायन्+अक। बाभ्रव्यशालङ्कायनक+टाप्। बाभ्रव्यशालङ्कायनिक+अ। बाभ्रव्यशालङ्कायनिका+सु। बाभ्रव्यशालङ्कायनिका।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'बाभव्य-शालङ्कायन' शब्द से इदम् (वैर) अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश*

*होता है। 'वुन्' प्रत्ययान्त शब्द स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात् कात्' (७।३।४४) से अंग के ककार से पूर्ववर्ती अकार को इत्त्व होता है। ऐसे ही-**काकोलूकिका** आदि।*

वुञ्-

(६) गोत्रचरणाद् वुञ्।१२६।

प०वि०-गोत्र-चरणात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-गोत्रं च चरणं च एतयोः समाहारो गोत्रचरणम्, तस्मात्-गोत्रचरणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रचरणाद् इदं वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठी-समर्थाद् गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(गोत्रम्) ग्लुचुकायनेरिदम्-ग्लौचुकायनकम्। उपगोरिदम्-औपगवकम्। कालापकम्। मौदकम्। पैपलादकम्। **(चरणम्) चरणाद्** धर्माम्नाययोरिष्यते।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रचरणाद्) गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से (इदम्) यह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(गोत्र)** ग्लुचुकायनि का यह-ग्लौचुकायन (कार्य)। उपगु का यह-औपगवक (कार्य)। **(चरण)** कठ का यह (धर्म/आम्नाय) काठक। कलाप का यह-कालापक। मुद का यह-मौदक। पिप्लाद का यह-पैप्लादक।*

*सिद्धि-**ग्लौचुकायनकम्।** ग्लुचुकायनि+ङस्+वुञ्। ग्लौचुकायन्+अक। ग्लौचुकायनक+सु। ग्लौचुकायनकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्रवाची 'ग्लुचुकायनि' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औपगवकम्** आदि।*

विशेषः *चरणवाची प्रातिपदिक से वा०-'**चरणाद् धर्माम्नाययोरिष्यते**' (४।३।१२६) से धर्म और आम्नाय (पाठ्यग्रन्थ) अर्थ में प्रत्ययविधि होती है। वैदिक विद्यापीठ का प्राचीन नाम 'चरण' है।*

अण्–

(७) सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्।१२७।

प०वि०-सङ्घ-अङ्क-लक्षणेषु ७।३ अञ्यञिञाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) अण्।१।१।

स०-सङ्घश्च अङ्कश्च लक्षणं च तानि सङ्घाङ्कलक्षणानि, तेषु-सङ्घाङ्कलक्षणेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अञ् च यञ् च इञ् च ते अञ्यञिञः, तेषाम्-अञ्यञिञाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य अञ्यञिञाम् इदम् अण् सङ्घाङ्कलक्षणेषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अञन्ताद् यञन्ताद् इञन्ताच्च प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति संघोऽङ्को लक्षणं चेत् तद् भवति, यथासंख्यमत्र प्रत्ययार्थविधिर्नेष्यते।

उदा०-**(अञ्)** बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः। बिदानामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-बैदः। **(यञ्)** गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। गार्गाणामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-गार्गः। **(इञ्)** दक्षस्यापत्यं दाक्षिः। दाक्षीणामयम्-संघः, अङ्कः, लक्षणं वा-दाक्षः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अञ्यञिञाम्) अञन्त, यञन्त, इञन्त प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (सङ्घाङ्कलक्षणेषु) जो 'इदम्' प्रत्ययार्थ है, यदि वह संघ, अंक, लक्षण हो।*

*उदा०-**(अञ्)** बिद का गोत्रापत्य-बैद। बैद लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-बैद। **(यञ्)** गर्ग का गोत्रापत्य-गार्ग्य। गर्ग लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-गार्ग। **(इञ्)** दाक्षि लोगों का संघ, अंक वा लक्षण-दाक्ष।*

सिद्धि-(१) बैदाः। *बिद+अञ्। बिद+०। बिद+आम्+अण्। बिद+अ। बैद्+अ। बैद+जस्।* ***बैदाः।***

*यहां प्रथम 'बिद' शब्द से **'अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्'** (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। अञ्-लुगन्त 'बिद' शब्द से इस सूत्र से इदम्=यह (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है **'यञिञोश्च'** (२।४।६४) से बहुत्व-विवक्षा में 'अञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् 'बिद' शब्द से यह अण्-प्रत्ययविधि होती है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) गार्गाः । गर्ग+यञ् । गर्ग+० । गर्ग+आम्+अण् । गर्ग+अ । गार्ग्+अ । गार्ग+जस् । गार्गाः ।

यहां प्रथम 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४ ।१ ।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है । यञ्-लुगन्त 'गर्ग' शब्द से इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है । बहुत्व-विवक्षा में पूर्ववत् 'यञ्' प्रत्यय का लुक् होता है । तत्पश्चात् 'गर्ग' शब्द से 'अण्' प्रत्ययविधि होती है । पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है ।

(३) दाक्षाः । दक्ष+इञ् । दाक्षि । दाक्षि+आम्+अण् । दाक्ष्+अ । दाक्ष+जस् । दाक्षाः ।

यहां प्रथम 'दक्ष' शब्द से 'अत इञ्' (४ ।१ ।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है । इञन्त 'दाक्षि' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है । पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है ।

***विशेषः** (१) अंक और लक्षण शब्द पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते हैं किन्तु यहां दोनों पदों का ग्रहण किया गया है । अतः यहां अंक और लक्षण में यह अन्तर है कि अङ्क (चिह्न) गौ आदि पशुओं में अवस्थित होता हुआ उनका स्व (आत्मीय) नहीं होता है किन्तु लक्षणभूत पदार्थ का चिह्नभूत स्व (आत्मीय) होता है । जैसे बिद लोगों का विद्यारूप चिह्न स्व=आत्मीय लक्षण है ।*

(२) यहां अञ्, यञ्, इञ् प्रत्ययान्त तीन प्रातिपदिक हैं और संघ, अंक, लक्षण ये तीन प्रत्ययार्थ हैं, अतः 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' (१ ।३ ।१०) से यथासंख्य प्रत्ययविधि होनी चाहिये किन्तु यहां यथासंख्यता अभीष्ट नहीं है । यथासंख्यता के निवारण के लिये वैयाकरण यहां 'घोष' शब्द का ग्रहण करते हैं-वा०- 'घोषग्रहणमत्र कर्तव्यम्' । घोष=ग्राम ।

अणप्रत्यय-विकल्पः-

(८) शाकलाद् वा ।१२८ ।

प०वि०-शाकलात् ५ ।१ वा अव्ययपदम् ।

अनु०-तस्य, इदम्, अण्, सङ्घाङ्कलक्षणेषु इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्य शाकलाद् इदं वाऽण् सङ्घाङ्कलक्षणेषु ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् शाकलात् प्रातिपदिकाद् इदमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन अण् प्रत्ययो भवति, यद् इदमिति सङ्घोऽङ्को लक्षणं चेत् तद् भवति, पक्षे च वुञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-शकलस्य गोत्रापत्यम्-शाकल्यः, शाकल्येन प्रोक्तम्-शाकलम् । शाकलम् अधीयते-शाकलाः । शाकलानां सङ्घः, अङ्कः, लक्षणं वा-शाकलम्, शाकलकं वा ।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शाकलात्) शाकल प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है (सङ्घाङ्कलक्षणेषु) जो इदम्='यह' है यदि वह संघ, अंक वा लक्षण हो।

उदा०-शकल का गोत्रापत्य-शाकल्य, शाकल्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-शाकल। शाकल्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ के अध्येता (छात्र)-शाकल। शाकलजनों का संघ, अंक वा लक्षण-शाकल वा शाकलक कहाता है।

सिद्धि-(१) शाकलम्। शकल+यञ्। शाकल्+य। शाकल्य।। शाकल्य+अण्। शाकल्+अ। शाकल।। शाकल+अण्। शाकल+०। शाकल।। शाकल+अण्। शाकल्+अ। शाकल+जस्। शाकलाः।

यहां प्रथम 'शकल' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय करने पर 'शाकल्य' शब्द सिद्ध होता है। 'शाकल्य' शब्द से **'कण्वादिभ्यो गोत्रे'** (४।१।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय करने पर तथा **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होने पर 'शाकल' शब्द बनता है। 'शाकल' शब्द से **'तदधीते तद्वेद'** (४।२।५९) से अध्येता-वेदिता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है और उसके प्रोक्तार्थक होने से **'प्रोक्ताल्लुक्'** (४।२।१११) से 'अण्' प्रत्यय का लोप हो जाता है। तत्पश्चात् उस षष्ठी-समर्थ, चरणवाची 'शाकल' शब्द से इदम् (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) शाकलकम्। यहां षष्ठी-समर्थ, चरणवाची 'शाकल' शब्द से इदम् (संघ, अंक, लक्षण) अर्थ में विकल्प पक्ष में **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः शाकल-शाकल्य आचार्य ने ऋग्वेद का पदपाठ बनाया था जिसका पाणिनि में उल्लेख है (सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६)। शाकल प्रोक्त शाखा का अध्ययन करनेवाले विद्वानों का भी (४।३।१२८) सूत्र में उल्लेख है। इसे शाकल चरण कहते थे, शाकलेन प्रोक्तमधीयते-शाकलाः ऋक्संहिता का वर्तमान संस्करण शाकल शाखा का है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३१४)।

ञ्यः-

(६) छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः।१२६।

प०वि०-छन्दोग-औक्थिक-याज्ञिक-बह्वृच-नटात् ५।१ ञ्यः १।१।

स०-छन्दोगश्च औक्थिकश्च याज्ञिकश्च बह्वृचश्च नटश्च एतेषां समाहारः-छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटम्, तस्मात्-छन्दोगौक्थिकयाज्ञिक-बह्वृचनटात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, इदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाद् इदं ञ्यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यश्छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(छन्दोगः)** छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा-छान्दोग्यम्। **(औक्थिकः)** औक्थिकानां धर्म आम्नायो वा-औक्थिक्यम्। **(याज्ञिकः)** याज्ञिकानां धर्म आम्नायो वा-याज्ञिक्यम्। **(बह्वृचः)** बह्वृचानां धर्म आम्नायो वा-बाह्वृच्यम्। **(नटः)** नटानां धर्म आम्नायो वा-नाट्यम्।

चरणाद्धर्माम्नाययोरर्थयोः प्रत्ययो विधीयते। तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि धर्माम्नाययोरेवार्थयोः प्रत्ययो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (छन्दोग०नटात्) छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच, नट प्रातिपदिकों से (इदम्) 'यह' अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(छन्दोग)** छन्दोगों का यह (धर्म/आम्नाय) छान्दोग्य। **(औक्थिक)** औक्थिकों का यह (धर्म/आम्नाय) औक्थिक्य। **(याज्ञिक)** याज्ञिकों का यह (धर्म/आम्नाय) याज्ञिक। **(नट)** नटों का यह (धर्म/आम्नाय) नाट्य।*

चरण (वैदिक विद्यापीठ) वाची शब्दों से धर्म और आम्नाय (पाठ्यग्रन्थ) अर्थ में प्रत्यय होता है। यहां 'नट' शब्द का चरणवाची शब्दों के साथ पाठ होने से 'नट' शब्द से भी धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय होता है।

सिद्धि-छान्दोग्यम्। *छन्दोग+आम्+ञ्य। छाग्योग्+य। छाग्योग्य+सु। छान्दोग्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'छन्दोग' शब्द से इदम् (धर्म/आम्नाय) अर्थ में इस सूत्र में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औक्थिक्यम्**, आदि।*

विशेषः *(१) छन्दोग-सामवेद का गान करनेवाले सामवेदी ब्राह्मणों को 'छन्दोग' कहते हैं। छन्दोग नामक चरण का धर्म एवं आम्नाय छान्दोग्य कहाता है।*

*(२) **औक्थिक**-उद्गाता द्वारा गेय सामों के संग्रह को उक्थ कहते थे। उक्थों का निश्चय सामवेदीय चरणों की परिषदों का कर्त्तव्य था। उसके लिए जिस ग्रन्थ का निर्माण हुआ वह 'उक्थ' और उसे पढ़ने-पढ़ानेवाले लोग 'औक्थिक' कहे गये (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३२८)।*

*(३) **याज्ञिक**-यज्ञीय कर्मकाण्ड का अध्ययन करनेवाले याज्ञिक कहलाते थे। याज्ञिक चरण का धर्म/आम्नाय याज्ञिक्य कहलाता था।*

*(४) बह्वृच-बह्वृच ऋग्वेद का अत्यन्त **प्रसिद्ध** चरण था। पतञ्जलि के 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' वचन से विदित होता है कि बह्वृचों के २१ भेद वा शाखायें थीं।*

*(५) **नटसूत्र**-यह नटों से सम्बन्धित **कोई ग्रन्थ** था। यहां उसका चरणवाची 'छन्दोग' आदि के साथ पाठ होने से विदित होता है कि उस नाट्यग्रन्थ की आम्नाय (छन्दोग्रन्थ) के समान प्रतिष्ठा थी।*

वुञ्-प्रतिषेधः–

(१०) न दण्डमाणवान्तेवासिषु।१३०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, दण्डमाणवान्तेवासिषु ७।३।

स०-दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवाः। **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७२) इति मध्यमपदलोपिसमासः। दण्डमाणवाश्च अन्तेवासिनश्च ते दण्डमाणवान्तेवासिनः, तेषु-दण्डमाणवान्तेवासिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-**'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) इत्यतो गोत्रग्रहण-मिहानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्राद् इदं वुञ् न दण्डमाणवान्तेवासिषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो न भवति। दण्डमाणवान्तेवासिष्वभिधेयेषु।

उदा०-गोकक्षस्य गोत्रापत्यम्-गौकक्ष्यः। गौकक्ष्येण प्रोक्तम्-गौकक्षम्। गौकक्षम् अधीयते-गौकक्षा दण्डमाणवाः, अन्तेवासिनो वा। दाक्षकाः। माहकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रात्) गोत्रवाची प्रातिपदिक से (इदम्) यह अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय नहीं होता है (दण्डमाणवान्तेवासिषु) यदि वहां दण्डमाणव और अन्तेवासी अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-गोकक्ष का गोत्रापत्य-गौकक्ष्य कहाता है। गौकक्ष्य आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-गौकक्ष। गौकक्ष के अध्येता (छात्र)-गौकक्ष, दण्डमाणव/अन्तेवासी (शिष्य)। दक्ष का गोत्रापत्य-दाक्षि। दाक्षि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-दाक्ष। दाक्ष ग्रन्थ के अध्येता-दाक्ष, दण्डमाणव/अन्तेवासी। महक का गोत्रापत्य-माहकि। माहकि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ-माहक। माहक ग्रन्थ के अध्येता-माहक, दण्डमाणव/अन्तेवासी।

सिद्धि-गौकक्षाः। गोकक्ष+ङस्+यञ्। गौकक्ष्+य। गौकक्ष्य।। गौकक्ष्य+अण्। गौकक्ष्+अ। गौकक्ष+सु। गौकक्षः। गौकक्ष+अण् गौकक्ष+०। गौकक्षः।

*यहां प्रथम 'गोकक्ष' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है। फिर गोत्रप्रत्ययान्त 'गौकक्ष्य' शब्द से **'कण्वादिभ्यो गोत्रे'** (४।२।१११) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय करने पर **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होता है। 'गोकक्ष' शब्द से **'तदधीते तद्वेद'** (४।२।५९) से अध्येता-वेदिता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है किन्तु 'प्रोक्ताल्लुक्' से उस 'अण्' प्रत्यय का लोप हो जाता है। 'गौकक्ष्य' शब्द से गोत्रप्रत्ययान्त होने से **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से प्राप्त 'वुञ्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर **'कण्वादिभ्यो गोत्रे'** (४।२।१११) से विहित 'अण्' प्रत्यय अवशिष्ट रह जाता है।*

*(२) **दाक्षाः।** दक्ष+इञ्। दाक्ष्+इ। दाक्षि+अण्। दाक्ष्+अ। दाक्ष+जस्। दाक्षाः।*

*यहां प्रथम 'दक्ष' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'अत इञ्' (४।१।९५) से 'इञ्' प्रत्यय होता है। **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से प्राप्त वुञ् प्रत्यय का इस सूत्र से प्रतिषेध होने पर **'इञश्च'** (४।२।११२) से 'अण्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**माहकाः।***

***विशेषः** (१) **दण्डमाणव।** छोटी श्रेणियों के छात्रों को दण्डमाणव कहते थे। तत्त्वबोधिनी के अनुसार 'दण्डमाणव' वह कहलाता था जिसका अभी उपनयन संस्कार न हुआ हो। काशिका के अनुसार पलाश आदि का दण्ड धारण करनेवाले छात्रों को 'दण्डमाणव' कहते थे (दण्डप्रधाना माणवाः दण्डमाणवाः-काशिका)। वे अपना डंडा लिये हुये आश्रम में इधर से उधर फिरते दिखाई देते थे।*

*(२) **अन्तेवासी**-जब वेद पढ़ने का समय आता तो आचार्य उस 'माणव' का उपनयन-संस्कार करते थे। इस संस्कार के बाद वह 'माणव' सच्चे अर्थों में आचार्य का सामीप्य प्राप्त करता था। मनसा, वाचा, कर्मणा आचार्य के समीप पहुंचा हुआ ब्रह्मचारी 'अन्तेवासी' इस अन्वितार्थ पदवी को धारण करता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २७६)।*

छः-

(११) रैवतिकादिभ्यश्छः।१३१।

प०वि०-रैवतिक-आदिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०-रैवतिक आदिर्येषां ते रैवतिकादयः, तेभ्यः-रैवतिकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, इदमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य रैवतिकादिभ्य इदं छः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो रैवतिकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमित्यस्मिन्नर्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-रेवत्या अपत्यम्-रैवतिकः। रैवतिकस्येदम्-रैवतकीयम्। स्वपिशस्यापत्यम्-स्वापिशिः। स्वापिशेरिदम्-स्वापिशीयम्।

रैवतिक। स्वापिशि। क्षेमवृद्धि। गौरग्रीवि। औदमेयि। औदवाहि। बैजवापि। इति रैवतिकादयः॥

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (रैवतिकादिभ्यः) रैवतिक आदि प्रातिपदिकों से (इदम्) 'यह' अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-रेवती का पुत्र-रैवतिक। रैवतिक का यह-रैवतकीय। स्वपिश का पुत्र-स्वापिशि। स्वापिशिका यह-स्वापिशीय।

सिद्धि-(१) ***रैवतकीयम्।*** *रेवती+ठञ्। रैवत्+इक। रैवतिक।। रैवतक+छ। रैवतक्+ईय। रैवतकीय+सु। रैवतकीयम्।*

यहां प्रथम रेवती शब्द से अपत्य अर्थ में ***'रेवत्यादिभ्यष्ठञ्'*** *(४।१।१४६) से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। पुनः षष्ठी-समर्थ गोत्रप्रत्ययान्त 'रैवतिक' शब्द से 'इदम्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। यहां* ***'गोत्रचरणाद् वुञ्'*** *(४।२।१११) से 'वुञ्' प्रत्यय प्राप्त था, अतः उसके बाधक 'छ' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

(२) ***स्वापिशीयम्।*** *स्वपिश+इञ्। स्वापिश्+इ। स्वापिशि।। स्वापिशि+छ। स्वपिश्+ईय। स्वापिशीय+सु। स्वापिशीयम्।*

यहां प्रथम 'स्वपिश' शब्द से अपत्य अर्थ ***'अत इञ्'*** *(४।१।९५) से इञ् प्रत्यय है। पुनः षष्ठी-समर्थ गोत्रप्रत्ययान्त 'स्वापिशि' शब्द से 'इदम्' अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। यहां* ***'इञश्च'*** *(४।२।११२) से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त था अतः यह उसके बाधक 'छ' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

विशेषः *काशिकावृत्तिकार पं० जयादित्य ने* ***'कौपिञ्जलहास्तिपदादण्, आथर्वणिकस्येकलोपश्च'*** *इन दोनों को पाणिनीय सूत्र मानकर इनकी व्याख्या की है। महाभाष्य के अनुसार ये दोनों वार्तिकसूत्र हैं। अतः इनका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।*

।। इति शेषार्थप्रत्ययप्रकरणम्।।

विकारावयवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य विकारः।१३२।

प०वि०–तस्य ६।१ विकारः १।१।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् विकारो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोयम्। प्रकृतेरवस्थान्तरं विकार इति कथ्यते।

उदा०–अश्मनो विकारः–आश्मः, आश्मनो वा। भस्मनो विकारः–भास्मनः। मृत्तिकाया विकारः–मार्तिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–अश्मा (पत्थर) का विकार–आश्म, वा आश्मन। भस्म का विकार–भास्मन। मृत्तिका (मिट्टी) का विकार–मार्तिक।

सिद्धि–आश्मः। *अश्मन्+ङस्+अण्। आश्मन्+अ। आश्म्+अ। आश्मः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्मन्' शब्द से इदम् अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और वा०-**'अश्मनो विकार उपसंख्यानम्'** (६।४।१४४) से 'अश्मन्' शब्द के टि-भाग (अन्) का विकल्प से लोप होता है। जहां टि-भाग का लोप नहीं होता वहां–आश्मनः। ऐसे ही–**भास्मनः, मार्तिकः** आदि।*

विशेषः *'तस्य' इस षष्ठी-समर्थ विभक्ति की अनुवृत्ति होने पर पुनः इस सूत्र में 'तस्य' पद का ग्रहण **'शेषे'** (४।२।९२) इस शेष-अधिकार की निवृत्ति के लिये है।*

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः।१३३।

प०वि०–अवयवे ७।१ च अव्ययपदम्, प्राणि-ओषधि-वृक्षेभ्यः ५।३।

स०–प्राणी च ओषधिश्च वृक्षश्च ते प्राण्योषधिवृक्षाः, तेषु–प्राण्योषधिवृक्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्राण्योषधिवृक्षेभ्योऽवयवे विकारे च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणि-ओषधि-वृक्षवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-**(प्राणी)** कपोतस्यावयवो विकारो वा-कापोतः। मायूरः। तैत्तिरः। **(ओषधिः)** मूर्वाया अवयवो मौर्वं काण्डम्। मूर्वाया विकारो मौर्वं भस्म। **(वृक्षः)** करीरस्यावयवः कारीरं काण्डम्। करीरस्य विकारः कारीरं भस्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः) प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव=अंग (च) और (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्राणी)** कपोत=कबूतर का अवयव वा विकार-कापोत। मयूर=मोर का अवयव वा विकार-मायूर। तित्तिरि=तीतर का अवयव वा विकार-तैत्तिर। **(ओषधि)** मूर्वा=मरोड़फली का अवयव-मौर्व काण्ड (तना)। मूर्वा का विकार-मौर्व भस्म। **(वृक्ष)** करीर=कैर का अवयव-कारीर काण्ड (तना)। करीर का विकार कारीर भस्म।*

*सिद्धि-(१) **कपोतः।** कपोत+ङस्+अञ्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीवाची 'कपोत' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः इस अधिकार में वक्ष्यमाण **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५२) से यथाविहित 'अञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायूरः, तैत्तिरः।***

*(२) **मौर्वम्।** मूर्वा+ङस्+अण्। मौर्व्+अ। मौर्व+सु। मौर्वम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ओषधिवाची 'मूर्वा' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कारीरम्।***

विशेषः *(१) **मूर्वा**-मरोड़फली नाम की बेल जिसके रेशे निकालकर धनुष के रोदे की डोरी और क्षत्रिय का कटिसूत्र बनाया जाता है (श०कौ०)।*

(२) ओषधि और वृक्ष में यह अन्तर है कि ओषधियां फल-पाक के पश्चात् नष्ट हो जाती हैं, वृक्ष नहीं। वृक्ष पुष्पवान् और फलवान् होते हैं। वनस्पतियां केवल फलवान् होती हैं। वृक्ष में वनस्पतियों का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(३) इस प्रकरण में विधीयमान प्रत्यय प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से अवयव और विकार अर्थ में होते हैं। अन्य प्रातिपदिकों से केवल विकार अर्थ में होते हैं क्योंकि यह विकार और अवयव अर्थ का एक साथ अधिकार इस अपवाद के विधान के लिये किया गया है।

अण्--

(२) बिल्वादिभ्योऽण्।१३४।

प०वि०-बिल्व-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-बिल्व आदिर्येषां ते बिल्वादयः, तेभ्यः-बिल्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य बिल्वादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो बिल्वादिभ्यः **प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे** विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बिल्वस्यावयवो विकारो वा बैल्वः। गवेधुकाया **अवयवो** विकारो वा गावेधुकः।

बिल्व। व्रीहि। काण्ड। मुद्ग। इक्षु। वेणु। गवेधुका। कर्पासी। पाटली। कर्कन्धू। कुटीर। इति बिल्वादयः।।

आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (बिल्वादिभ्यः) बिल्व आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय **होता है।

उदा०-बिल्व=बेलगिरी का अवयव वा विकार-बैल्व। गवेधुका=(गौ आदि पशुओं के खाने का घास) का अवयव वा विकार-गावेधुक।

***सिद्धि-(१) बैल्वः।** बिल्व+ङस्+अण्। बैल्व्+अ। बैल्व+सु। बैल्वः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'बिल्व' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **'बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा'** (फिट्० १।२३) से 'बिल्व' शब्द अन्तःस्वरित वा अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-बिल्वः, बिल्वः। अतः 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१४०) से 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त था। यह 'अण्' प्रत्यय उसका अपवाद है।*

(२) गावेधुकः। गवेधुका+ङस्+अण्। गावेधुक्+अ। गावेधुक+सु। गावेधुकः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गवेधुका' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। यहां **'कोपधाच्च'** (४।३।१३७) से ही 'अण्' प्रत्यय सिद्ध था किन्तु **'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः'** (४।३।१४३) से 'मयट्' प्रत्यय भी प्राप्त होता है। अतः यह 'अण्' प्रत्यय उस 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद है।*

अण्–

(३) कोपधाच्च।१३५।

प०वि०–कोपधात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–क उपधा यस्य तत् कोपधम्, तस्मात्–कोपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कोपधाच्च अवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् ककारोपधात् प्रातिपदिकाच्च यथायोगम् अवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–तर्कोर्विकारस्तार्कवम्। तित्तिडीकस्यावयवो विकारो वा तैत्तिडीकम्। मण्डूकस्यावयवो विकारो वा माण्डूकम्। दर्दुरूकस्यावयवो विकारो वा दार्दुरूकम्। मधूकस्यावयवो विकारो वा माधूकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कोपधात्) ककार उपधावान् प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०–तर्कु (ताकू जिस पर चर्खे में सूत लिपटता जाता है) का विकार-तार्कव (सूत)। तित्तिडीक=इमली के वृक्ष का अवयव वा विकार-तैत्तिडीक। मण्डूक=मेंढक का अवयव वा विकार-माण्डूक। दर्दुरूक=मेंढक का अवयव वा विकार-दार्दुरूक। मधूक=महुए के वृक्ष का अवयव वा विकार-माधूक।

*सिद्धि–**तार्कवम्।** तर्कु+ङस्+अण्। तार्को+अ। तार्कव+सु। तार्कवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ककारोपध 'तर्कु' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यह **'ओरञ्'** (४।३।३९) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही– **'तैत्तिडीकम्'** आदि।*

तित्तिडीक आदि शब्द 'लघावन्ते०' (फिट्० २।१९) से मध्योदात्त होने से अनुदात्तादि हैं, अतः यह 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१४०) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है।

विशेषः *यहां 'तर्कु' शब्द से केवल विकार अर्थ में और तित्तिडीक (वृक्ष), मण्डूक (मेंढक) दर्दुरूक (मेंढक) मधूक (वृक्ष) इन प्राणीवाची और वृक्षवाची शब्दों से 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' (४।३।१३५) इस नियम-सूत्र से विकार और अवयव अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।*

अण् (षुक्)—

(४) त्रपुजतुनोः षुक्।१३८।

प०वि०–त्रपु-जतुनोः ६।२ षुक् १।१।

स०–त्रपु च जतु च ते त्रपुजतुनी, तयोः-त्रपुजतुनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य त्रपुजतुभ्यां विकारोऽण् तयोश्च षुक्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां त्रपुजतुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकार इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, तयोश्च षुक्-आगमो भवति।

उदा०–**(त्रपु)** त्रपुणो विकारः-त्रापुषम्। **(जतु)** जतुनो विकारः-जातुषम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (त्रपुजतुनोः) त्रपु, जतु प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) प्रत्यय होता है (षुक्) और उन्हें षुक् आगम होता है।*

उदा०-(त्रपु) त्रपु=सीसा/रांग का विकार-त्रापुष। जतु=गोंद/लाख का विकार-जातुष।

सिद्धि-त्रापुषम्। *त्रपु+ङस्+अण्। त्रापुषुक्+अ। त्रापुष्+अ। त्रापुष+सु। त्रापुषम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'त्रपु' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय और 'त्रपु' शब्द को 'षुक्' आगम होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**जातुषम्।***

अञ्—

(५) ओरञ्।१३९।

प०वि०–ओः ५।१ अञ् १।१।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ओरवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् ओः=उकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-देवदारोरवयवो विकारो वा दैवदारवम्। भद्रदारोरवयवो विकारो वा भाद्रदारवम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ओः) उकारान्त प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-देवदारु का अवयव विकार-दैवदारव। देवदारु=देवदार एक पहाड़ी पेड़ है जिसकी लकड़ी कड़ी, हल्की और पीले रंग की होती है। भद्रदारु का अवयव वा विकार-भाद्रदारव। 'भद्रदारु' शब्द 'देवदारु' का पर्यायवाची है।

***सिद्धि-दैवदारवम्।** देवदारु+ङस्+अण्। दैवदारो+अ। दैवदारव+सु। दैवदारवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, उकारान्त 'देवदारु' शब्द से इसके वृक्षवाची होने से पूर्वोक्त नियम से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (४।४।१४६) से अंग को गुण होता है। देवदारु और भद्रदारु शब्द **'पीतद्र्वर्थानाम्'** (फिट्० २।१४) से आद्युदात्त हैं। अतः **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) का यहां अवकाश नहीं है अतः ये इस सूत्र के उदाहरण हैं। पीतद्रु=सरल वनस्पति।*

अञ्-

(६) अनुदात्तादेश्च।१३८।

प०वि०-अनुदात्त-आदेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्याऽनुदात्तादेरवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकाच्च अवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दधित्थस्यावयवो विकारो वा दाधित्थम्। कपित्थस्य विकारोऽवयवो वा कापित्थम्। महित्थस्यावयवो विकारो वा माहित्थम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (अनुदात्तादेः) अनुदात्तादि प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधित्थ=कैथा वृक्ष का अवयव वा विकार-दाधित्थ। कपित्थ=कैथा वृक्ष का अवयव वा विकार-कापित्थ। महित्थ वृक्ष का अवयव वा विकार-माहित्थ।

सिद्धि-दाधित्थम्। *यहां षष्ठी-समर्थ, अनुदात्तादि प्रातिपदिक से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है।*

दध्नि तिष्ठतीति दधित्थः। *यहां 'सुपि स्थः' (३।२।४) से 'क' प्रत्यय, 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'स्था' आकार का लोप **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०९) से 'स्था' के 'स्' को 'त्' आदेश होता है। यहां उपपद समास है अतः 'समासस्य' (६।१।२२०) से आन्तोदात्त स्वर होने से 'दधित्थ' शब्द अनुदात्तादि है-दधित्थः।*

*यहां पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कापित्थम्, माहित्थम्।***

'कपित्थ' शब्द 'दधित्थ' शब्द का पयार्यवाची है। इस वृक्ष के फल कपि=वानरों को प्रिय होते हैं, अतः इसे 'कपित्थ' कहते हैं।

अञ्-विकल्पः-

(७) पलाशादिभ्यो वा।१३६।

प०वि०-पलाश-आदिभ्यः ५।३ वा अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पलाशादिभ्योऽवयवे विकारे च वाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पलाशादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे विकल्पेनाऽञ् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पलाशस्यावयवो विकारो वा पालाशम्। खादिरम्।

पलाश। खदिर। शिंशपा। स्यन्दन। करीर। शिरीष। यवास। विकङ्कत। इति पलाशादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पलाशादिभ्यः) पलाश आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पलाश (ढाक) वृक्ष का अवयव वा विकार-पालाश। खदिर (कत्था) वृक्ष का अवयव वा विकार-खादिर।

सिद्धि-(१) पालशम्। *पलाश+ङस्+अञ्। पालाश्+अ। पालाश+सु। पालाशम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पलाश' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**खादिरम्।** यहां **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।४।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पालाशम्।** ऐसे ही-खादिरम्।*

*(२) पालशम्। यहां विकल्प पक्ष में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय करने पर भी 'पालाशम्' पद सिद्ध होता है किन्तु यहां **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से 'अण्' प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर होने से पद का अन्तोदात्त स्वर होता है-**पालाशम्।** ऐसे ही-**खादिरम्।***

ट्लञ्-

(८) शम्याष्ट्लञ्।१४०।

प०वि०-शम्या: ५।१ ट्लञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकार:, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य शम्या अवयवे विकारे च ट्लञ्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्छमी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे ट्लञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शम्या अवयवो विकारो वा शामीलं भस्म। शामीली स्रुक्। **'चातुर्मास्ये वरुणप्रघासेषु शमीमय्य: स्रुचो भवन्तीति श्रुतम्'** इति **पदमञ्जर्यां** पण्डितहरदत्तमिश्र:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (शम्या:) शमी प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकार:) विकार अर्थ में (ट्लञ्) प्रत्यय होता है।*

उदा०-शमी (जांटी) वृक्ष का अवयव वा विकार-शामिल भस्म। शामीली स्रुक् (आहुति की चमस)।

*सिद्धि-(१) **शामिलम्।** शमी+ङस्+ट्लञ्। शामी+ल। शामील+सु। शामीलम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'शमी' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'ट्लञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

*'शमी' शब्द **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष्-प्रत्ययान्त है। **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय के आद्युदात्त होने से 'शमी' शब्द अनुदात्तादि है। **'अनुदात्तेरश्च'** (४।३।१३८) से यहां 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त था। यह सूत्र उसका अपवाद है।*

*(२) **शामीली।** यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

मयट्–

(६) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।१४१।

प०वि०–मयट् १।१ वा अव्ययपदम्, एतयोः ७।२ भाषायाम् ७।१ अभक्ष्य-आच्छादनयोः ७।२।

स०–भक्ष्यं च आच्छादनं च ते भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने अभक्ष्याच्छादने, तयोः-अभक्ष्याच्छादनयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् एतयोरभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां वा मयट्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् एतयोरभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्भाषायां विकल्पेन मयट् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–अश्मनोऽवयवो विकारो वाऽश्ममयम्, आश्मनम्। मूर्वाया अवयवो विकारो वा मूर्वामयम्, मौर्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (एतयोः) इन (अभक्ष्य-आच्छादनयोः) भक्ष्य और आच्छादन अर्थ से रहित (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (भाषायाम्) लौकिक भाषा विषय में (वा) विकल्प से (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–अश्मा (पत्थर) का अवयव वा विकार-अश्ममय, आश्मन। मूर्वा (मरोड़फली) का अवयव वा विकार-मूर्वामय, मौर्व।

सिद्धि-(१) अश्ममयम्। *अश्मन्+ङस्+मयट्। अश्म+मय। अश्ममय+सु। अश्ममयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्मन्' शब्द से भक्ष्य और आच्छादन (वस्त्र) से रहित अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है।*

*(२) **आश्मनम्।** यहां 'अश्मन्' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् (४।३।१३२) है। ऐसे ही-**मूर्वामयम्, मौर्वम्।***

विशेषः *यहां 'एतयोः' पद के पाठ से विकार और अवयव इन दोनों अर्थों में जिनसे प्रत्यय-विधान किया गया है उनसे लौकिक भाषा में भक्ष्य और आच्छादन को छोड़कर 'मयट्' प्रत्यय भी होता है। जैसे-**कपोतमयम्, मायूरम्** इत्यादि।*

नित्यं मयट्–

(१०) नित्यं वृद्धशरादिभ्यः।१४२।

प०वि०-नित्यम् १।१ वृद्ध-शरादिभ्यः ५।३।

स०-शर आदिर्येषां ते शरादयः, वृद्धं च शरादयश्च ते वृद्धशरादयः, तेभ्यः-वृद्धशरादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, भाषायाम्, अभक्ष्याच्छादनयोः मयट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य वृद्धशरादिभ्योऽभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां नित्यं मयट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽभक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(वृद्धम्)** आम्रस्यावयवो विकारो वा-आम्रमयम्। शालमयम्। शाकमयम्। **(शरादिः)** शरस्यावयवो विकारो वा-शरमयम्। दर्भमयम् मृण्मयम्।

शर। दर्भ। मृत्। कुटी। तृण। सोम। बल्वज। इति शरादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वृद्ध-शरादिभ्यः) वृद्धसंज्ञक और शर आदि प्रातिपदिकों से (अभक्ष्याच्छादनयोः) भक्ष्य और आच्छादन अर्थ से रहित (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (भाषायाम्) लौकिक भाषा में (नित्यम्) सदा (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वृद्ध) आम्र वृक्ष का अवयव वा विकार-आम्रमय। शाल (साळ) वृक्ष का अवयव वा विकार-शालमय। शाक (साग) का अवयव वा विकार-शाकमय। (शरादि) शर (सरपत=सरकंडा) का अवयव वा विकार-शरमय। दर्भ (डाभ) का अवयव वा विकार-दर्भमय। मृत् (मिट्टी) का अवयव वा विकार-मृण्मय।

*सिद्धि-(१) **आम्रमयम्।** आम्र+ङस्+मयट्। आम्र+मय। आम्रमय+सु। आम्रमयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, वृद्धसंज्ञक 'आम्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**शालमयम्, शाकमयम्, शरमयम्** आदि।*

*(२) **मृण्मयम्।** मृत्+ङस्+मयट्। मृत्+मय। मृद्+मय। मृन्+मय। मृण+मय। मृण्मय+सु। मृण्मयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'मृत्' शब्द से पूर्ववत् 'मयट्' प्रत्यय है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से 'त्' को 'जश्' द् '**यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा**' (८।४।४५) से 'द्' को अनुनासिक 'न्' और वा०- '**ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्**' (८।४।१) से 'न्' को णत्व होता है।*

मयट्-

(११) गोश्च पुरीषे।१४३।

प०वि०-गोः ५।१ च अव्ययपदम्, पुरीषे ७।१।

अनु०-तस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोश्च पुरीषे मयट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गो-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च पुरीषेऽर्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोः पुरीषम्-गोमयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोः) 'गो' प्रातिपदिक से (पुरीषे) पुरीष=मल अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गौ (गाय) का पुरीष (मल)-गोमय (गोबर)।

*सिद्धि-**गोमयम्।** गो+ङस्+मयट्। गो+मय। गोमय+सु। गोमयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से पुरीष (मल) अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है।

***विशेषः** यहां 'गो' शब्द से विकार-अवयव के प्रकरण में पुरीष (मल) अर्थ में मयट् प्रत्यय का विधान किया गया है। पुरीष गौ का अवयव और विकार नहीं है अतः 'गौ' के सम्बन्धमात्र (तस्य-इदम्) में मयट् प्रत्यय होता है।*

मयट्-

(१२) पिष्टाच्च।१४४।

प०वि०-पिष्टात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य पिष्टाच्च विकारो मयट्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पिष्टात् प्रातिपदिकाच्च विकार इत्यस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पिष्टस्य विकार:-पिष्टमयं भस्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पिष्टात्) पिष्ट प्रातिपदिक से (च) भी (विकार:) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पिष्ट (चूर्ण) का विकार-पिष्टमय भस्म।

***सिद्धि-पिष्टमयम्।** पिष्ट+ङस्+मयट्। पिष्ट+मय। पिष्टमय+सु। पिष्टमयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पिष्ट' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। यह प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है।

कन्-

(१३) संज्ञायां कन्।१४५।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ कन् १।१।

अनु०-तस्य, विकार: इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्य पिष्टाद् विकार: कन् संज्ञायाम्।

अर्थ:-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पिष्टात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-पिष्टस्य विकार:-पिष्टमय:।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पिष्टात्) पिष्ट प्रातिपदिक से (विकार:) विकार अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-पिष्ट (चूर्ण) का विकार-पिष्टक (पूड़ी, रोटी आदि)।

***सिद्धि-पिष्टक:।** पिष्टक+ङस्+कन्। पिष्ट+क। पिष्टक+सु। पिष्टक:।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पिष्ट' शब्द से विकार अर्थ में और संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यह पूर्वोक्त 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद है।

मयट्-

(१४) व्रीहे: पुराडाशे।१४६।

प०वि०-व्रीहे: ५।१ पुरोडाशे ७।१।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य व्रीहेर्विकारो मयट् पुरोडाशे।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् व्रीहि-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति, पुरोडाशेऽभिधेये।

उदा०-व्रीहेर्विकारो व्रीहिमयः पुरोडाशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (व्रीहेः) व्रीहि शब्द से (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (पुरोडाशे) यदि वहां विकारात्मक पुराडाश अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-व्रीहि (चावल) का विकार-व्रीहिमय पुरोडाश।

सिद्धि-व्रीहिमयः। व्रीहि+ङस्+मयट्। व्रीहि+मय। व्रीहिमय+सु। व्रीहिमयः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'व्रीहि' शब्द से विकार अर्थ में और पुरोडाश अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है।

***विशेषः** पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी। यज्ञ में इसके टुकड़े काटकर और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (श०कौ०)।*

मयट्-

(१५) असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्।१४७।

प०वि०-असंज्ञायाम् ७।१ तिल-यवाभ्याम् ५।२।

स०-न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-**असंज्ञायाम्** (नञ्तत्पुरुषः)। तिलं च यवश्च तौ तिलयवौ, ताभ्याम्-**तिलयवाभ्याम्** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, **मयट्** इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तिलयवाभ्याम् **अवयवे विकारे** च मयट् असंज्ञायाम्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां **तिलयवाभ्यां** प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(तिलम्)** तिलस्यावयवो विकारो वा-तिलमयम्। **(यवः)** यवस्यावयवो विकारो वा-यवमयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तिलयवाभ्याम्) तिल, यव प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

उदा०-(तिल) तिल का अवयव वा विकार-तिलमय। (यव) यव=जौ का अवयव वा विकार-यवमय।

*सिद्धि-**तिलमयम्**। तिल+ङस्+मयट्। तिल+मय। तिलमय+सु। तिलमयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, 'तिल' शब्द से विकार अर्थ में और असंज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यवमयम्**। संज्ञाविषय में तो '**अवयवे च प्राण्यौषधिवृक्षेभ्यः**' (४।३।१३३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है-**तैलम्**।*

मयट्–

(१६) द्व्यचश्छन्दसि।१४८।

प०वि०-द्व्यचः ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्, तस्मात्-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तस्य द्व्यचोऽवयवे विकारे च मयट्।

अर्थः-छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्वि-अचः प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति (तै०सं० ३।५।७।१)। दर्भमयं वासो भवति (मै०सं० १।११।८)। शरमयं बर्हिर्भवति (आ०श्रौ० ९।७।५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वि-अचः) दो अचोंवाले प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-संस्कृत भाग में देख लेवें। अर्थ इस प्रकार है-जिसकी **पर्णमयी** (पर्ण का विकार) जुहू (आहुति चमस) होती है। **दर्भमय** (दर्भ का विकार) वास=आच्छादन होता है। **शरमय** (सरकंडे का विकार) बर्हिः=आसन होता है।*

*सिद्धि-**पर्णमयी**। पर्ण+ङस्+मयट्। पर्ण+मय। पर्णमय+ङीप्। पर्णमयी+सु। पर्णमयी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, दो अचोंवाले 'पर्ण' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। 'मयट्' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**दर्भमयम्, शरमयम्**।*

मयट्-प्रतिषेधः—

(१७) नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्।१४६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, उत्वद्-वर्ध्र-बिल्वात् ५।१।

स०-उद् अस्त्यस्मिँस्तद् उत्वत्। उत्वच्च वर्ध्रश्च बिल्वश्च एतेषां समाहार उत्वद्वर्ध्रबिल्वम्, तस्मात्-उत्वद्वर्ध्रबिल्वात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, मयट्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तस्य उत्वद्वर्ध्रबिल्वाद् अवयवे विकारे च मयट् न।

अर्थः-छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् उत्वतो वर्ध्रबिल्वाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यामवयवे विकारे चार्थे मयट् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-(**उत्वत्**) मौञ्जं शिक्यम् (तै०सं० ५।१।१०।५)। गार्मुतं चरुम् (तै०सं० २।४।४।१)। (**वर्ध्रम्**) वार्ध्री=बालग्रथिता भवति (आ०श्रौ० १८।१०।२३)। (**बिल्वः**) बैल्वो ब्रह्मवर्चकामेन कार्यः (मै०सं० ३।९।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (उत्वद्-वर्ध्रबिल्वात्) उत्वत्=उकारवान्, वर्ध्र और बिल्व प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(उत्वत्) **मौञ्जं शिक्यम्।** मुञ्ज का विकार-मौञ्ज शिक्य (छींका)। **गार्मुतं चरु।** गर्मुत् का विकार-गार्मुत चरु। गर्मुत् का बना हुआ चरु। गर्मुत्=घासविशेष। चरु=हव्य-अन्न। (वर्ध्र) वर्ध्र का विकार-वार्ध्री। चमड़े का तसमा (बाधी)। **बैल्वो ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यः।** बैल्व=विल्व (बेल-गिरि) का विकार। ब्रह्मतेज के इच्छुक ब्रह्मचारी को बैल्व दण्ड धारण करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **मौञ्जम्।** मुंञ्ज+ङस्+अण्। मौञ्ज्+अ। मौञ्ज+सु। मौञ्जम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, उत्वत्=उकारवान् 'मुञ्ज' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। **'द्व्यचश्छन्दसि'** (४।३।१५०) से 'मयट्' प्रत्यय प्राप्त होता था। उसका प्रतिषेध होने पर **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **गार्मुतम्।** यहां षष्ठी-समर्थ उकारवान् 'गर्मुत्' शब्द से इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। **'ग्रोर्मुट्'** (उणा० १।९५) से 'गॄ' धातु से 'अति' प्रत्यय और 'मुट्' आगम होने पर 'गर्मुत्' शब्द सिद्ध होता है। 'गर्मुत्' शब्द प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-गर्मुत्।*

(३) वार्ध्री। वर्ध्र+ङस्+अण्। वार्ध्र्+अ। वार्ध्र+ङीप्। वार्ध्री+सु। वार्ध्री।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'वर्ध्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर पूर्ववत् प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

***(४) बैल्वः।** यहां षष्ठी-समर्थ 'बिल्व' शब्द से इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने पर **'बिल्वादिभ्योऽण्'** (४।३।१३४) से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

अण्–

(१८) तालादिभ्योऽण्।१५०।

प०वि०-ताल-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-ताल आदिर्येषां ते तालादयः, तेभ्यः-तालादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य तालादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यस्तालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तालस्यावयवो विकारो वा-तालं धनुः। बार्हिणं चन्द्रकम्, इत्यादिकम्।

तालाद् धनुषि। बार्हिणि। इन्द्रालिश। इन्द्रादृश। इन्द्रायुध। चाप। श्यामाक। पीयुक्षा। इति तालादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (तालादिभ्यः) ताल आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ताल (ताड़) वृक्ष का अवयव वा विकार-ताल (धनुष)। बार्हिण (मयूर) का अवयव वा विकार-बार्हिण चन्दा इत्यादि।

***सिद्धि-तालम्।** ताल+ङस्+अण्। ताल्+अ। ताल+सु। तालम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ताल' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। **'तालाद् धनुषि'** इस गण-सूत्र से धनुष अर्थ में ही 'अण्' प्रत्यय होता है। यह 'मयट्' आदि प्रत्ययों का अपवाद है। ऐसे ही-**बार्हिणम्** आदि।*

अण्–

(१६) जातरूपेभ्यः परिमाणे।१५१।

प०वि०–जातरूपेभ्यः ५।३ परिमाणे ७।१।

अनु०–तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य जातरूपेभ्यो विकारोऽण्, परिमाणे।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो जातरूपवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकार इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, परिमाणेऽभिधेये। जातरूपम्=सुवर्णम्। **'जातरूपेभ्यः'** इति बहुवचननिर्देशात् सुवर्णवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

उदा०–हाटकस्य विकारो हाटकं निष्कम्। हाटकं कार्षापणम्। जातरूपम्। तापनीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जातरूपेभ्यः) जातरूप=सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (परिमाणे) यदि वहां परिमाण अर्थ अभिधेय हो। 'जातरूपेभ्यः' इस बहुवचन-निर्देश से जातरूपवाची (सुवर्णवाची) शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-हाटक का विकार-हाटक निष्क। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का हाटक का विकार-हाटक कार्षापण। कार्षापण=१० माशे का सोने का सिक्का। जातरूप का विकार-जातरूप। तपनीय का विकार-तापनीय।

*सिद्धि-**हाटकम्**। हाटक+ङस्+अण्। हाटक्+अ। हाटक+सु। हाटकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हाटक' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**जातरूपम्, तापनीयम्**। यह 'अण्' प्रत्यय परिमाण अर्थ में होता है, परिमाण अर्थ से अन्यत्र नहीं-**यष्टिरियं हाटकमयी** (यह सोने की छड़ी है)। यह 'मयट्' आदि प्रत्ययों का अपवाद हैं।*

अञ्–

(२०) प्राणिरजतादिभ्योऽञ्।१५२।

प०वि०–प्राणि-रजतादिभ्यः ५।३ अञ् १।१।

स०–रजत आदिर्येषां ते रजतादयः। प्राणिनश्च रजतादयश्च ते प्रातिरजतादयः, तेभ्यः–प्राणिरजतादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्राणिरजतादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्राणी**) कपोतस्यावयवो विकारो वा कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम्। (**रजतादिः**) रजतस्य विकारो राजतम्। सैसम्। लौहम्।

रजत। सीस। लोह। उदुम्बर। नीलदारु। रोहितक। बिभीतक। पीतदारु। तीव्रदारु। त्रिकण्टक। कण्टकार। इति रजतादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राणिरजतादिभ्यः) प्राणीवाची और रजत-आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्राणी)** कपोत=कबूतर का अवयव वा विकार-कापोत। मयूर=मोर का अवयव वा विकार-मायूर। तित्तिरि=तीतर का अवयव वा विकार-तैत्तिर। **(रजतादि)** रजत=चांदी का विकार-राजत। सीस=सीसे का विकार-सैस। लोह का विकार-लौह।*

सिद्धि-कापोतम्। *कपोत+ङस्+अण्। कापोत्+अ। कापोत+सु। कापोतम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीवाची 'कपोत' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है यह 'अण्' आदि प्रत्ययों का अपवाद है। ऐसे ही-**मायूरम्** आदि।*

अञ्-

(२१) ञितश्च तत्प्रत्ययात्।१५३।

प०वि०-ञितः ५।१ च अव्ययपदम्, तत्प्रत्ययात् ५।१।

स०-ञ इद् यस्य तद् ञित्, तस्मात्-ञितः (बहुव्रीहिः)। तयोः (विकारावयवयोः) प्रत्यय इति तत्प्रत्ययः, तस्मात्-तत्प्रत्ययात् (सप्तमी-तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, अञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य ञितश्च तत्प्रत्ययाद् अवयवे विकारे चाऽञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् तयोर्विकारावयवयोरर्थयोर्विद्यमानो यो ञित्प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकाच्चावयवे विकारे चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

अत्र-'**ओरञ्**' (४।३।१३९) '**अनुदात्तादेश्च**' (४।३।१४०) '**पलाशादिभ्यो वा**' (४।३।१४१) '**शम्याष्ट्लञ्**' (४।३।१४२) '**प्राणिरजतादिभ्योऽञ्**' (४।३।१५४) '**उष्ट्राद् वुञ्**' (४।३।१५७) '**एण्या ढञ्**' (४।३।१५९) '**कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च**' (४।३।१६८) इत्येते ञित्प्रत्यया गृह्यन्ते।

उदा०-(अञ्) दैवदारवस्यावयवो विकारो वा दैवदारवम्। दाधित्थस्यावयवो विकारो वा दाधित्थम्। पालाशस्यावयवो विकारो वा पालशम्। **(ट्लञ्)** शामीलस्यावयवो विकारो वा शामीलम्। **(अञ्)** कापोतस्यावयवो विकारो कापोतम्। **(वुञ्)** औष्ट्रकस्यावयवो विकारो वा औष्ट्रकम्। **(ढञ्)** ऐणेयस्यावयवो विकारो वा ऐणेयम्। **(यञ्)** कांस्यस्यावयवो विकारो वा कांस्यम्। **(अञ्)** पारशवस्यावयवो विकारो वा पारशवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ञितः, तत्प्रत्ययात्) उन विकार और अवयव अर्थों में विद्यमान जो ञित् प्रत्यय हैं, तदन्त प्रातिपदिकों से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

यहां संस्कृत भाग में उपरिलिखित ञित्-प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। यह 'अञ्' प्रत्यय-अवयव के अवयव और विकार के विकार अर्थ में विधान किया गया है।

*उदा०-**(अञ्)** दैवदारव का अवयव वा विकार-दैवदारव। दाधित्थ का अवयव वा विकार-दाधित्थ। पालाश का अवयव वा विकार-पालाश। **(ट्लञ्)** शामील का अवयव वा विकार-शामील। **(अञ्)** कापोत का अवयव वा विकार-कापोत। **(वुञ्)** औष्ट्रक का अवयव वा विकार-औष्ट्रक। **(ढञ्)** ऐणेय का अवयव वा विकार-ऐणेय। **(यञ्)** कांस्य का अवयव वा विकार-कांस्य। **(अञ्)** पारशव का अवयव वा विकार-पारशव।*

सिद्धि-(१) दैवदारवम्। *देवदारु+ङस्+अञ्। दैवदारो+अ। दैवदारव।। दैवदारव+ङस्+अञ्। दैवदारव्+अ। दैवदारव+सु। दैवदारवम्।*

*यहां प्रथम षष्ठी-समर्थ, उकारान्त 'देवदारु' शब्द से अवयव और अर्थ में '**ओरञ्**' (४।३।१३९) से 'अञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् उस ञित् अञ् प्रत्ययान्त 'दैवदारव' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय होता है। देवदारु वृक्ष का अवयव*

वा विकार (लकड़ी) दैवदारव कहाता है। उस दैवदारव लकड़ी का अवयव वा विकार (आसन्दिका, पीठ) आदि भी दैवदारव ही कहाता है। यह अवयव के अवयव और विकार के विकार अर्थ में प्रत्यय है।

*(२) **दाधित्थम्।** यहां प्रथम 'दधित्थ' शब्द से **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(३) **पालाशम्।** यहां प्रथम 'पलाश' शब्द से **'पलाशादिभ्यो वा'** (४।३।१४०) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(४) **शामीलम्।** यहां प्रथम 'शमी' शब्द से **'शम्याष्ट्लञ्'** (४।३।१४२) से 'ट्लञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(५) **कापोतम्।** यहां 'कपोत' शब्द से **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५४) से 'अञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(६) **औष्ट्रकम्।** यहां प्रथम 'उष्ट्र' शब्द से **'उष्ट्राद् वुञ्'** (४।३।१५७) से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(७) **ऐणेयम्।** यहां प्रथम 'एणी' शब्द से **'एण्या ढञ्'** (४।३।१५९) से 'ढञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(८) **कांस्यम्।** यहां प्रथम 'कंसीय' शब्द से **'कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च'** (४।३।१६८) से 'यञ्' प्रत्यय होता है। शेष पूर्ववत् है।*

*(९) **परशव्यम्।** यहां प्रथम 'परशव्य' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इस शब्द से इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय किया जाता है।*

क्रीतवत् प्रत्ययविधिः–

(२२) क्रीतवत् परिमाणात्।१५४।

प०वि०–क्रीतवत् अव्ययपदम्, परिमाणात् ५।१। क्रीते इव क्रीतवात् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य परिमाणाद् विकारः क्रीतवत् प्रत्ययाः।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् परिमाणवाचिनः प्रातिपदिकाद् विकार इत्यस्मिन्नर्थे क्रीतवत् प्रत्यया भवन्ति। **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) इत्यतः प्रारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्ययाः परिमाणवाचिनः शब्दाद् विहितास्ते विकारेऽर्थेऽपि भवन्ति।

उदा०-निष्केण क्रीतं नैष्किकम्, एवम्-निष्कस्य विकारो नैष्किकः। शतेन क्रीतं शत्यम्, शतिकम्। एवम्-शतस्य विकारः शत्यः, शतिकः। सहस्रेण क्रीतं साहस्रम्। एवम्-सहस्रस्य विकारः साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (परिमाणात्) परिमाणवाची प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में (क्रीतवत्) क्रीत अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं। अर्थात्-'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से लेकर 'क्रीत' अर्थ में जो प्रत्यय परिमाणवाची शब्द से विधान किये गये हैं वे उक्त शब्द से विकार अर्थ में भी होते हैं।*

*उदा०-निष्क के द्वारा क्रीत (खरीदा हुआ) **नैष्किक**। ऐसे ही-निष्क का विकार-नैष्किक। शत (मुद्रा) से क्रीत-शत्य, शतिक। शत का विकार-शत्य, शतिक। सहस्र (मुद्रा) से क्रीत-साहस्र। सहस्र का विकार-साहस्र।*

*सिद्धि-(१) **नैष्किकम्।** निष्क+टा+ठञ्। नैष्क्+इक। नैष्किक+सु। नैष्किकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'निष्क' शब्द से '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) के अधिकार में '**तेन क्रीतम्**' (५।१।३७) से 'ठञ्' प्रत्यय है। यह 'ठञ्' प्रत्यय परिमाणवाची शब्द से इस सूत्र से विकार अर्थ में भी होता है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **शत्यः।** शत+टा+यत्। यत्+य। शत्य+सु। शत्यः।*

*यहां 'शत' शब्द से क्रीत अर्थ में '**शताच्च ठन्यतावशते**' (५।१।२१) से 'यत्' प्रत्यय होता है। वह इस सूत्र से विकार अर्थ में विहित किया गया है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(३) **शतिकः।** शत+टा+ठन्। शत्+इक। शतिक+सु। शतिकः।*

यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है और वह इस सूत्र से विकार अर्थ में भी विहित है।

*(४) **साहस्रः।** सहस्र+टा+अण्। साहस्र+अ। साहस्र+सु। साहस्रः।*

*यहां 'सहस्र' शब्द से क्रीत अर्थ में '**शतमानविंशतिसहस्रवसनादण्**' (५।१।२७) से 'अण्' प्रत्यय है, वह इस सूत्र से विकार अर्थ में भी विहित किया गया है। शत और सहस्र संख्यावाची शब्द भी परिमाण अर्थ के वाचक हैं।*

विशेषः *निष्क (१६ माशे का सोने का सिक्का) से खरीदा हुआ पदार्थ-नैष्किक कहाता है। निष्क का विकार अर्थात् निष्क नामक सिक्कों को तुड़वाकर जो आभूषण आदि बनवाया गया है वह नैष्किक कहाता है। ऐसे ही-शत और सहस्र रूप्य अर्थ में समझ लेवें। पाणिनिकाल में कागजी रूप्य का व्यवहार नहीं था। धातु-रूप्य का ही प्रचलन था। यहां उसके विकार का वर्णन किया गया है।*

वुञ्–

(२३) उष्ट्राद् वुञ्।१५५।

प०वि०–उष्ट्रात् ५।१ वुञ् १।१।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य उष्ट्राद् अवयवे विकारे च वुञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् उष्ट्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उष्ट्रस्यावयवो विकारो वा औष्ट्रकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (उष्टात्) उष्ट्र प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–उष्ट्र (ऊंट) का अवयव वा विकार-औष्ट्रक। उष्ट्र का मुख आदि अवयव और केश विकार हैं।

सिद्धि-औष्ट्रकः। उष्ट्र+ङस्+वुञ्। औष्ट्र+अक। औष्ट्रक+सु। औष्ट्रकः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'उष्ट्र' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

वुञ्-विकल्पः–

(२४) उमोर्णयोर्वा।१५६।

प०वि०–उमा-ऊर्णयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) वा अव्ययपदम्।

स०–उमा च ऊर्णा च ते उमोर्णे, तयोः–उमोर्णयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य उमोर्णाभ्याम् अवयवे विकारे च वा वुञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्याम् उमोर्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(उमा)** उमाया अवयवो विकारो वा–औमकम् (वुञ्)। औमम् (अण्)। ऊर्णाया अवयवो विकारो वा–और्णकम् (वुञ्)। और्णम् (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (उमोर्णयोः) उमा और ऊर्णा प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**उमा**) उमा=हल्दी का अवयव वा विकार-औमक (वुञ्)। औम (अण्)। (**ऊर्णा**) ऊर्णा=ऊन का अवयव वा विकार-और्णक (वुञ्)। और्ण (अञ्)।*

*सिद्धि-(१) **औमकम्।** उमा+ङस्+वुञ्। औम्+अक। औमक+सु। औमकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उमा' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**और्णकम्।***

*(२) **औमम्।** उमा+ङस्+अण्। औम्+अ। औम+सु। औमम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'उमा' शब्द से विकल्प पक्ष में '**प्राग्दीव्यतोऽण्**' (४।१।८३) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। 'उमा' शब्द '**तृणधान्यानानां च द्व्यषाम्**' (फिट्० २।४) से आद्युदात्त है।*

*(३) **और्णम्।** ऊर्णा+ङस्+अञ्। और्ण्+अ। और्ण+सु। और्णम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'ऊर्णा' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में विकल्प पक्ष में '**अनुदात्तादेश्च**' (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय है। 'ऊर्णा' शब्द '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से विहित प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि है-**ऊर्णा।***

विशेषः *उमा (हल्दी) ओषधिवाची और ऊर्णा कीटविशेष (प्राणी) का विकार होने से '**अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः**' (४।३।१३३) के नियम से अवयव और विकार अर्थ में प्रत्ययविधि होती है।*

ढञ्-

(२५) एण्या ढञ्।१५७।

प०वि०-एण्याः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य एण्या अवयवे विकारे च ढञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् एणी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एण्या अवयवो विकारो वा-ऐणेयं मांसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (एण्याः) एणी प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकार) विकार अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-एणी=काली हरिणी का अवयव वा विकार-ऐणेय मांस।

*सिद्धि-**ऐणेयम्।** एणी+ङस्+ ढञ्। ऐण्+एय। ऐणेय+सु। ऐणेयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'एणी' शब्द से अवयव वा विकार अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग ईकार का लोप होता है। 'एणी' शब्द के प्राणीवाची होने से 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (३।४।१५४) से अञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

विशेषः *यही 'एण' शब्द का पुंलिङ्ग में निर्देश करने पर **'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्'** इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग 'एणी' शब्द का भी ग्रहण किया जा सकता था पुनः यहां 'एणी' शब्द को स्त्रीलिङ्ग में निर्देश करने से विदित होता है कि पुंलिङ्ग 'एण' शब्द से 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (४।३।१५२) से 'अञ्' प्रत्यय ही होता है-एण=काले हरिण का अवयव वा विकार-'ऐण' कहाता है। हरिण के मुख आदि अंग अवयव और केश तथा शृंग विकार कहाते हैं।*

यत्–

(२६) गोपयसोर्यत्।१५८।

प०वि०-गो-पयसोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) यत् १।१।

स०-गौश्च पयश्च ते गोपयसी, तयोः-गोपयसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोपयोभ्याम् अवयवे विकारे च यत्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां गो-पयोभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अवयवे विकारे चार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(गोः)** गोरवयवो विकारो वा-गव्यम्। **(पयः)** पयसो विकारः पयस्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गो-पयसोः) गो और पयस् प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(गो)** गौ का अवयव वा विकार-गव्य। **(पयस्)** पयः=दूध का विकार-पयस्य, दही आदि।*

*सिद्धि-(१) **गव्यम्।** गो+ङस्+यत्। गो+य। गव्+य। गव्य+सु। गव्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७८) से 'गो' शब्द को वान्त (अव्) आदेश होता

है। यहां 'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः' (४।३।१४१) से मयट् प्रत्यय प्राप्त था। इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय का विधान किया गया है।

*(२) **पयस्यम्।** पयस्+ङस्+यत्। पयस्+य। पयस्य+सु। पयस्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पयस्' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

***विशेषः** (१) यहां 'गौ' शब्द के प्राणीवाची होने से '**अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः**' (४।३।१३३) के नियम से उससे अवयव और विकार अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। यह 'मयट्' प्रत्यय का अपवाद होने से भक्ष्य और आच्छादन अर्थवाले अवयव और विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। गौ का भक्ष्य-विकार दुग्ध आदि 'गव्य' कहाता है, अभक्ष्य मांस आदि नहीं।*

(२) 'पयस्' शब्द के प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची न होने से पूर्वोक्त नियम से 'विकार' अर्थ में ही 'यत्' प्रत्यय होता है, अवयव अर्थ में नहीं।

यत्–

(२७) द्रोश्च।१५६।

प०वि०–द्रोः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य द्रोरवयवे विकारे च यत्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्रु-शब्दात् प्रातिपदिकाच्चाऽवयवे विकारे चार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–द्रोरवयवो विकारो वा–द्रव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोः) द्रु प्रातिपदिक से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०–द्रु (लकड़ी) का अवयव वा विकार–द्रव्य।

*सिद्धि–**द्रव्यम्।** द्रु+ङस्+यत्। द्रो+य। द्रव्+य। द्रव्य+सु। द्रव्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रु' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

वयः–

(२८) माने वयः।१६०।

प०वि०–माने ७।१ वयः १।१।

अनु०–तस्य, विकारः, द्रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य द्रोर्विकारो वयो माने।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् द्रु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकारेऽर्थे वयः प्रत्ययो भवति, मानेऽभिधेये।

उदा०-द्रोर्विकारो द्रुवयं मानम् (परिमाणम्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्रोः) द्रु प्रातिपदिक से (विकारः) विकार अर्थ में (वयः) वय प्रत्यय होता है (माने) यदि वहां परिमाण अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-द्रु=(लकड़ी) का विकार-द्रुवय (परिमाण) अन्न आदि मांपने के लिये लकड़ी का बना हुआ पात्रविशेष।

*सिद्धि-**द्रुवयम्।** द्रु+ङस्+वय। द्रुवय+सु। द्रुवयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'द्रु' शब्द से विकार अर्थ में और मान (परिमाण) अभिधेय में इस सूत्र से 'वय' प्रत्यय है।

प्रत्ययस्य लुक्-

(२६) फले लुक्।१६१।

प०वि०-फले ७।१ लुक् १।१।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे च प्रत्ययस्य लुक्, फले।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०-आमलक्या अवयवो विकारो वा आमलकं फलम्। कुवल्या अवयवो विकारो वा कुवलं फलम्। बदर्या अवयवो विकारो वा बदरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में विहित प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-आमलकी (आंवला) का अवयव वा विकार-आमलक (फल)। कुवली (कुई) का अवयव वा विकार-कुवल (फल)। बदरी (बेरी) का अवयव वा विकार-बदर (बेर)।

*सिद्धि-(१) **आमलकम्।** आमलकी+ङस्+मयट्। आमलकी+०। आमलक+०। आमलक+सु। आमलकम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'आमलकी' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। यहां 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' (४।३।१४२) से आमलकी शब्द से उक्त अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् हो जाता है और 'लुक् तद्धितलुकि' (१।२।४९) से तद्धित प्रत्यय के लुक् हो जाने पर स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।

(२) कवलम् बदरम्। यहां 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१३८) से विहित 'अञ्' प्रत्यय का लुक् होता है।

विशेषः *फलित वृक्ष का फल उसका अवयव और विकार भी माना जाता है जैसे कि पल्लवित वृक्ष का पल्लव (पत्ता) उस वृक्ष का अवयव और विकार दोनों होता है।*

अण्–

(३०) प्लक्षादिभ्योऽण्।१६२।

प०वि०–प्लक्ष–आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०–प्लक्ष आदिर्येषां ते प्लक्षादयः, तेभ्यः–प्लक्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्लक्षादिभ्योऽवयवे विकारे चाऽण्, फले।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्लक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०–प्लक्षस्यावयवो विकारो वा–प्लाक्षम्। न्योग्रोधस्यावयवो विकारो वा–नैयग्रोधम्।

प्लक्ष। न्यग्रोध। अश्वत्थ। इङ्गुदी। शिग्रु। कर्कन्धु। बृहती। इति प्लक्षादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्लाक्षादिभ्यः) प्लक्ष आदि प्रातिपदिकों से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-प्लक्ष (पिलखण) का अवयव वा विकार-प्लाक्ष (फल)। न्योग्रोध (बड़) का अवयव वा विकार-नैयग्रोध (फल)।

सिद्धि-(१) प्लाक्षम्। प्लक्ष+ङस्+अण्। प्लाक्ष्+अ। प्लाक्ष+सु। प्लाक्षम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'प्लक्ष' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार

का लोप होता है। विधान-सामर्थ्य से 'फले लुक्' (४।३।१६३) से 'अण्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है।

*(२) **नैयग्रोधम्।** न्यग्रोध+ङस्+अण्। न् ऐ यग्रोध्+अ। नैयग्रोध+सु। नैयग्रोधम्।*

*यहां 'न्यग्रोध' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है किन्तु यहां '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि न होकर '**न्यग्रोधस्य च केवलस्य**' (४।३।५) से अंग के अकार से पूर्व ऐच्-आगम होता है।*

*यह 'अण्' प्रत्यय प्लक्षादिगण में पठित उकारान्त शब्दों से '**ओरञ्**' (६।४।१४६) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का तथा शेष शब्दों से '**अनुदात्तादेश्च**' (४।३।१३८) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है।*

अण्-प्रत्ययविकल्पः–

(३१) जम्ब्वा वा।१६३।

प०वि०–जम्ब्वाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य जम्ब्वा अवयवे विकारे वाऽण्, फले।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् जम्बू-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, फलेऽभिधेये, पक्षे चाञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–जम्ब्वा अवयवो विकारो वा जाम्बवं फलम् (अण्)। जम्बु फलं वा (अञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जम्ब्वाः) जम्बू प्रातिपदिक से (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में (वा) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में 'अण्' प्रत्यय होता है।*

उदा०–जम्बू (जामुन) का अवयव वा विकार-जाम्बव फल (अण्) जम्बु फल (अञ्) जामुन।

***सिद्धि**–(१) **जाम्बवम्।** जम्बू+ङस्+अण्। जाम्बो+अ। जाम्बव+सु। जाम्बवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

*(२) **जम्बु।** जम्बू+ङस्+अञ्। जम्बू+०। जम्बु+सु। जम्बु।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प पक्ष में '**ओरञ्**' (४।३।१३७) से 'अञ्' प्रत्यय होता है और '**फले लुक्**' (४।३।१६१) से उसका लुक्*

*हो जाता है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग जम्बू शब्द का फल-अभिधेय के अनुसार नपुंसक लिङ्ग होता है। अतः **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से 'जम्बू' शब्द को ह्रस्व होता है-जम्बु। **'स्वमोर्नपुंसकात्'** (७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है।*

प्रत्ययस्य लुप्-विकल्पः-

(३२) लुप् च।१६४।

प०वि०-लुप् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले, जम्ब्वाः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य जम्ब्वा अवयवे विकारे च प्रत्ययस्य वा लुप् च, फले।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाज् जम्बू-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अवयवे विकारे चार्थे विहितप्रत्ययस्य विकल्पेन लुबपि भवति, फलेऽभिधेये।

उदा०-जम्ब्वा अवयवो विकारो वा-जाम्बवं फलम् (अण्)। जम्बू फलम् (अञ्-लुक्)। जम्बूः फलम् (अञ्-लुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (जम्ब्वाः) जम्बू प्रातिपदिक से **(अवयवे)** अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (वा) विकल्प से **(लुप्)** लुप् (च) भी होता है (फले) यदि वहां फल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-जम्बू (जामुन) का अवयव वा विकार-जाम्बव फल (अण्)। जम्बू फल (अञ् प्रत्यय का लुक्)। जम्बू फल (अञ्-प्रत्यय का लुप्)।

***सिद्धि-जम्बूः (फलम्)।** जम्बू+ङस्+अञ्। जम्बू+०। जम्बू+सु। जम्बूः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'जम्बू' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल **अर्थ** अभिधेय में इस सूत्र से विकल्प से प्रत्यय का लुप्-विधान किया गया है। यहां **'ओरञ्'** (६।४।१४६) से प्राप्त 'अञ्' प्रत्यय का लुप् होता है। प्रत्यय का लुप् हो जाने पर **'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'** (१।२।५१) से 'जम्बू' शब्द से व्यक्ति (लिङ्ग) और वचन युक्तवत् (पूर्ववत्) रहते हैं। अतः लुप्-पक्ष में 'जम्बू' शब्द स्त्रीलिङ्ग ही रहता है, फल-अभिधेय का अनुसरण नहीं करता है। **'जाम्बवं फलम्'** और **'जम्बू फलम्'** की सिद्धि पूर्ववत् (४।३।१६३) है।*

प्रत्ययस्य लुप्-

(३३) हरीतक्यादिभ्यश्च।१६५।

प०वि०-हरीतकि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-हरीतकी आदिर्येषां ते हरीतक्यादयः, तेभ्यः-हरीतक्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, विकारः, अवयवे, च, फले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य हरीतक्यादिभ्यश्चाऽवयवे विकारे च प्रत्ययस्य लुप्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो हरीतक्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽवयवे विकारे चार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०-हरीतक्या अवयवो विकारो वा-हरीतकी फलम्। कोशातक्या अवयवो विकारो वा-कोशातकी फलम्, इत्यादिकम्।

हरीतकी। कोशातकी। नखररजनी। नखरजनी। शष्कण्डी। शाकण्डी। दाडी। दोडी। दडी। श्वेतपाकी। अर्जुनपाकी। काला। द्राक्षा। ध्वाङ्क्षा। गर्गरिका। कण्टकारिका। शेफालिका। इति हरीतक्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हरीतक्यादिभ्यः) हरीतकी आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अवयवे) अवयव (च) और (विकारः) विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का (लुप्) लुप् होता है।*

***उदा०**-हरीतकी (हरड़) का अवयव वा विकार-हरीतकी फल। कोशातकी (तोरी) का अवयव वा फल-कोशातकी फल, इत्यादि।*

***सिद्धि**-हरीतकी। हरीतकी+ङस्+अञ्। हरीतकी+०। हरीतकी+सु। हरीतकी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हरीतकी' शब्द से अवयव और विकार अर्थ में तथा फल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुप्-विधान किया गया है। यहां हरीतकी शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में **'अनुदात्तादेश्च'** (४।३।१३८) से 'अञ्' प्रत्यय होता है और इस सूत्र से उसका लुप् हो जाता है। प्रत्यय के लुप् हो जाने पर **'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'** (१।२।५१) से हरीतकी शब्द की व्यक्ति (लिङ्ग) युक्तवत् (पूर्ववत्) रहती है-हरीतकी फलम्। यहां वचन, फल का अनुसरण करता है-हरीतक्यः फलानि।*

यञ्+अञ् (लुक् च)-

(३४) कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च।१६६।

प०वि०-कंसीय-परशव्ययोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) यञञौ १।२ लुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-कंसीयश्च परशव्यश्च तौ कंसीयपरशव्यौ, तयोः- कंसीयपरशव्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यञ् च अञ् च तौ यञञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, विकार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कंसीयपरशव्याभ्यां विकारो यञञौ लुक् च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कंसीयपरशव्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकार इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं यञञौ प्रत्ययौ भवतः, तत्सन्नियोगेन च तयोर्वर्तमानस्य प्रत्ययस्य लुगपि भवति।

उदा०-(**कंसीयः**) कंसीयस्य विकारः-कांस्यम्। (**परशव्यः**) परशव्यस्य विकारः-पारशवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कंसीयपरशव्ययोः) कंसीय और परशव्य प्रातिपदिकों से (विकारः) विकार अर्थ में यथासंख्य (यञञौ) यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं और उनके सन्नियोग से कंसीय और परशव्य शब्दों में विद्यमान प्रत्यय (छ, यत्) का (लुक्) लुक् (च) भी होता है।*

*उदा०-कंसीय (कंस=गिलास के लिये हितकारी धातु) का विकार-कांस्य। **(परशव्य)** परशव्य (परशु=कुठार के लिये हितकारी धातु) का विकार-पारशव।*

*सिद्धि-(१) **कांस्यम्।** कंस+ङे+छ। कंस्+ईय+कंसीय।। कंसीय+ङस्+यञ्। कंसीय+य। कंस्+य। कांस्+य। कांस्य+सु। कांस्यम्।*

*यहां प्रथम 'कंस' शब्द से 'प्राक् क्रीताच्छः' (५।१।१) के अधिकार में **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) से 'छ' प्रत्यय होता है। छ-प्रत्ययान्त 'कंसीय' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय और उस 'छ' प्रत्यय का लुक् होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **पारशवम्।** परशु+ङे+यत्। परशो+य। परशव्य।। परशव्य+ङस्+अञ्। पारशो+अ। पारशव्+अ। पारशव+सु। पारशवः।*

*यहां प्रथम 'परशु' शब्द से **'उगवादिभ्यो यत्'** (५।१।२) से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। यत्-प्रत्ययान्त 'परशव्य' शब्द से विकार अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय होता है और उस 'यत्' प्रत्यय का लुक् होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

।। इति विकारावयवप्रत्ययार्थप्रकरणम् प्राग्दीव्यतीयप्रत्ययार्थप्रकरणं च सम्पूर्णम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः

प्राग्वहतीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्

ठक्-अधिकारः–

(१) प्राग्वहतेष्ठक्।१।

प०वि०–प्राक् १।१ वहतेः ५।१ ठक् १।१।

अन्वयः–वहतेः प्राक् ठक्।

अर्थः–'**तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्**' (४।४।७६) इति वक्ष्यति, तस्माद् वहति-शब्दात् प्राक् ठक् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति '**तेन दीव्यति खनति जयति जितम्**' (४।४।२) इति। अक्षैर्दीव्यति आक्षिक इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वहतेः) 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' (४।४।७६) इस सूत्र में जो 'वहति' शब्द पढ़ा है (प्राक्) उससे पहले-पहले (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे- **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्**' (४।४।२)। अक्ष=पासों से जो खेलता है वह-आक्षिक इत्यादि।*

*सिद्धि-**आक्षिकः**। अक्ष+भिस्+ठक्। आक्ष्+इक। आक्षिक+सु। आक्षिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'अक्ष' शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४।४।२) से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

दीव्यति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) तेन दीव्यति खनति जयति जितम्।२।

प०वि०–तेन ३।१ दीव्यति क्रियापदम्, खनति क्रियापदम्, जयति क्रियापदम्, जितम् १।१।

अनु०–ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् दीव्यति, खनति, जयति, जितं ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् दीव्यति, खनति, जयति, जितमित्येतेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दीव्यति)** अक्षैर्दीव्यति-आक्षिकः। शलाकाभिर्दीव्यति-शालाकिकः। **(खनति)** अभ्र्या खनति-आभ्रिकः। कुद्दालेन खनति-कौद्दालिकः। **(जयति)** अक्षैर्जयति-आक्षिकः। शलाकाभिर्जयति-शालाकिकः। **(जितम्)** अक्षैर्जितम्-आक्षिकम्। शलाकाभिर्जितम्-शालाकिकम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (दीव्यति०) दीव्यति, खनति, जयति, जितम् इन अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।

उदा०-__(दीव्यति)__ अक्ष=पासों से जो खेलता है वह-आक्षिक। शलाकाओं से जो खेलता है वह-शालाकिक। __(खनति)__ अभ्रि (कुदाली) से जो खोदता है वह-आभ्रिक। कुद्दाल (कस्सी) से जो खोदता है वह-कौद्दालिक। __(जयति)__ अक्ष=पासों से जो जीतता है वह-आक्षिक। शलाकाओं से जो जीतता है वह-शालाकिक। __(जितम्)__ अक्ष=पासों से जीता हुआ-आक्षिक (धन)। शलाकाओं से जीता हुआ-शालाकिक (धन)।

__सिद्धि__-'आक्षिकः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् (४।१।१) है।

__विशेषः__ द्यूतक्रीडा में अक्षाकार (गोल) और शलाकाकार (लम्बे) दो प्रकार के पासों का प्रयोग किया जाता है। जो अक्षों से खेलने/जीतने में चतुर होता है उसे आक्षिक और जो शलाकाओं से खेलने/जीतने में चतुर होता है उस खिलाड़ी को शालाकिक कहते हैं। अक्षराज, कृत, त्रेता, द्वापर, कलि नामक ये पांच पांसे/शलाकायें होती हैं।

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) संस्कृतम्।३।

वि०-संस्कृतम् १।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् संस्कृतं ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। सत उत्कर्षाधानं संस्कार इत्युच्यते।

उदा०-दध्ना संस्कृतं दाधिकम् ओदनम्। शृङ्गवेरेण संस्कृतं शाङ्गविरिकम्। मरिचिकया संस्कृतं मारिचिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) संस्कृत=गुणाधान अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। विद्यमान पदार्थ में गुणों का आधान करना संस्कार कहाता है।*

उदा०-दधि (दही) से संस्कृत-दाधिक ओदन (भात)। शृङ्गवेर (अदरक) से संस्कृत-शाङ्गविरिक। मरिचिका (मिर्च) से संस्कृत-मारिचिक।

***सिद्धि-दाक्षिकम्।** दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'आक्षिकः' (४।१।१) के समान है। ऐसे ही-**शाङ्गविरिकम्, मारिचिकम्।***

अण्-

(२) कुलत्थकोपधादण्।४।

प०वि०-कुलत्थ-कोपधात् ५।१ अण् १।१।

स०-क उपधा यस्य तत् कोपधम्, कुलत्थश्च कोपधं च एतयोः समाहारः कुलत्थकोपधम्, तस्मात्-कुलत्थकोपधात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, संस्कृतमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुलत्थकोपधात् संस्कृतम् अण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कुलत्थशब्दात् ककारोपधाच्च प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(कुलत्थम्) कुलत्थैः संस्कृतम्-कौलत्थम्। **(कोपधम्)** तित्तिडिकेन संस्कृतम्-तैत्तिडिकम्। दृदभकेन संस्कृतम्-दार्दभकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुलत्थकोपधात्) कुलत्थ शब्द और ककार उपधावान् प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) संस्कृत अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुलत्थ (अन्नविशेष) से संस्कृत-कौलत्थ। तित्तिडिक (इमली) से संस्कृत-तैत्तिडिक। दृदभक (व्यञ्जन-विशेष) से संस्कृत-दार्दभक।

***सिद्धि-कौलत्थम्।** कुलत्थ+भिस्+अण्। कौलत्थ्+अ। कौलत्थ+सु। कौलत्थम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कुलत्थ' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**तैत्तिडिकम्, दार्दभकम्।***

तरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) तरति।५।

वि०-तरति क्रियापदम्।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् तरति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। तरति=प्लवते इत्यर्थः।

उदा०-काण्डप्लवेन तरति-काण्डप्लविकः। उडुपेन तरति-औडुपिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से **(तरति)** तरति **अर्थ में** (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। तरति=वह तैरता है।*

*उदा०-काण्डप्लव (वृक्ष के तनों का बेड़ा) से जो तैरता है वह-**काण्डप्लविक**। उडुप (एक प्रकार की नाव) से जो तैरता है वह-औडुपिक।*

***सिद्धि-काण्डप्लविकः।** काण्डप्लव+टा+ठक्। काण्डप्लव्+इक। **काण्डप्लविक**+सु। काण्डप्लविकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'काण्डप्लव' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औडुपिकः।***

ठञ्–

(२) गोपुच्छाट्ठञ्।६।

प०वि०-गोपुच्छात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-तेन, तरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन गोपुच्छात् तरति ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छशब्दात् प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोपुच्छेन तरति-गौपुच्छिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (गोपुच्छात्) गोपुच्छ प्रातिपदिक से (तरति) तरति अर्थ में (ठक्) ठञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-गोपुच्छ (गौ की पूंछ/वानर-विशेष) से जो तैरता है वह-गौपुच्छिक।

सिद्धि-गौपुच्छिकः। *गोपुच्छ+टा+ठञ्। गौपुच्छ्+इक। गौपुच्छिक+सु। गौपुच्छिकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'गोपुच्छ' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।४।९४) से पद का आद्युदात्त स्वर होता है-**गौपुच्छिकः।***

ठन्–

(३) नौद्व्यचष्ठन्।७।

प०वि०-नौ-द्व्यचः ५।१ ठन् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तत् द्व्यच्। नौश्च द्व्यच् च एतयोः समाहारो नौद्व्यच्, तस्मात्-नौद्व्यचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, तरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन नौद्व्यचस्तरति ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् नौशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(नौः)** नावा तरति-नाविकः। **(द्व्यच्)** घटेन तरति-घटिकः। प्लवेन तरति-प्लविकः। बाहुभ्यां तरति-बाहुकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (नौद्व्यचः) नौ शब्द और दो अचोंवाले प्रातिपदिक से (तरति) तरति अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।

*उदा०-**(नौ)** नौ (नौका) से जो तैरता है वह-नाविक। **(द्व्यच्)** घट (घड़ा) से जो तैरता है वह-घटिक। प्लव (नाव) से जो तैरता है वह-प्लविक। बाहु (भुजाओं) से जो तैरता है वह-बाहुक।*

सिद्धि-(१) नाविकः। नौ+टा+ठन्। नाव्+इक। नाविक+सु। नाविकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'नौ' शब्द से तरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। पद का पूर्ववत् आद्युदात्त स्वर होता है-नाविकः। ऐसे ही-घटिकः, प्लविकः।

(२) बाहुकः। यहां तृतीया-समर्थ 'बाहु' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।

चरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) चरति।८।

वि०-चरति क्रियापदम्।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाच्चरति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। चरतिर्भक्षणे गतौ चार्थे वर्तते।

उदा०-दध्ना चरति-दाधिकः। हस्तिना चरति-हास्तिकः। शकटेन चरति-शाकटिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (चरति) चरति=खाता है वा चलता है, अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से जो चरति=खाता है वह दाधिक। हस्ती (हाथी) से जो चरति=चलता है वह-हास्तिक। शकट (गाड़ी) से जो चरति=चलता है वह-शाकटिक।

सिद्धि-(१) दाधिक। दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से चरति (खाता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।

(२) हास्तिकः। हस्तिन्+टा+ठक्। हास्त्+इक। हास्तिक+सु। हास्तिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'हस्तिन्' शब्द से चरति (चलता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से 'हस्तिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-शाकटिकः।

ष्ठल्–

(२) आकर्षात् ष्ठल्।६।

प०वि०–आकर्षात् ५।१ ष्ठल् १।१।

अनु०–तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन आकर्षातच्चरति ष्ठल्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाद् आकर्षशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आकर्षेण चरति–आकर्षिकः। स्त्री चेत्–आकर्षिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ (आकर्षात्) आकर्ष प्रातिपदिक से (चरति) चरति=घूमता है अर्थ में (ष्ठल्) ष्ठल् प्रत्यय होता है।*

उदा०–आकर्ष (सुवर्ण-कसौटी) लेकर जो घूमता है वह-आकर्षिक। यदि स्त्री है तो-आकर्षिकी।

सिद्धि–आकर्षिकः। आकर्ष+टा+ष्ठल्। आकर्ष्+इक। आकर्षिक+सु। आकर्षिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'आकर्ष' शब्द से चरति (घूमता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठल्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

*प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है–**आकर्षिकी**। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१९०) से प्रत्यय का पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है–आकर्षिकः।*

विशेषः *सुवर्ण की परीक्षा के लिये जो निकष-उपल (कसौटी) होता है उसे 'आकर्ष' कहते हैं। आकृष्यते स्वर्णं यत्रेति आकर्षः। जो उसे लेकर सुवर्ण आदि खरीदने के लिए घर-घर घूमता है उसे आकर्षिक कहते हैं। यदि स्त्री है तो वह 'आकर्षिकी' कहाती है। यह पाणिनि-कालीन समाज का एक चित्रण है।*

ष्ठन्–

(३) पर्पादिभ्यः ष्ठन्।१०।

प०वि०–पर्प-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०–पर्प आदिर्येषां ते पर्पादयः, तेभ्यः–पर्पादिभ्यः (बहुव्रीहिः)

अनु०–तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन पर्पादिभ्यश्चरति ष्ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः पर्पादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पर्पेण चरति-पर्पिकः। स्त्री चेत्-पर्पिकी। अश्वेन चरति-अश्विकः। स्त्री चेत्-अश्विकी।

पर्प। अश्व। अश्वत्थ। रथ। जाल। न्यास। व्याल। पाद। पच्च। पथिक। इति पर्पादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (पर्पादिभ्यः) पर्प आदि प्रातिपदिकों से (चरति) चरति अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पर्प (पंगुपीठ/पंगु के चलने के लिये एक पहिये की गाड़ी) से जो चलता है वह-पर्पिक। यदि स्त्री है तो-पर्पिकी। अश्व (घोड़ा) से जो चलता है वह-अश्विक। यदि स्त्री है तो-अश्विकी।

*सिद्धि-**पर्पिकः।** पर्प+टा+ष्ठन्। पर्प्+इक। पर्पिक+सु। पर्पिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'पर्प' शब्द से चरति (चलता है) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**पर्पिकी।** प्रत्यय में नकार **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर के लिये है-**पर्पिकः।***

ठञ्+ष्ठन्-

(४) श्वगणाट्ठञ् च।११।

प०वि०-श्वगणात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, चरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन श्वगणाच्चरति ठञ् ष्ठन् च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् श्वगणशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् ष्ठन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ठञ्)** श्वगणेन चरति-श्वागणिकः। स्त्री चेत्-श्वागणिकी। **(ष्ठन्)** श्वगणेन चरति-श्वगणिकः। स्त्री चेत्-श्वगणिकी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (श्वगणात्) श्वगण प्रातिपदिक से (चरति) चरति अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(ठञ्) श्वगण (कुत्तों का झुण्ड) को साथ लेकर जो घूमता है वह-श्वागणिक (शिकारी)। यदि स्त्री हो तो-श्वागणिकी। (ष्ठन्) श्वगण को साथ लेकर जो घूमता है वह-श्वगणिक (शिकारी)। यदि स्त्री हो तो-श्वगणिकी।

सिद्धि-(१) श्वागणिकः। श्वगण+टा+ठञ्। श्वागण्+इक। श्वागणिक+सु। श्वागणिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'श्वगण' शब्द से चरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-श्वागणिकी। 'श्वादेरिञि' (७।३।८) इस सूत्र पर वा०-'इकारादिग्रहणं कर्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थम्' इस वार्तिक-सूत्र से 'द्वारादीनां च' (७।३।४) से प्राप्त आदिवृद्धि का प्रतिषेध एवं ऐच् आगम नहीं होता है।

(२) श्वगणिकः। यहां तृतीय-समर्थ 'श्वगण' शब्द से चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय है। प्रत्यय के 'षित्' होने से स्त्री-विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-श्वगणिकी। ठञ्-पक्ष में 'ङीप्' का 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।३) से अनुदात्त स्वर होता है-श्वागणिकी और ष्ठन्-पक्ष में ङीष् प्रत्यय का 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है-श्वगणिकी।

जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) वेतनादिभ्यो जीवति।१२।

प०वि०-वेतन-आदिभ्यः ५।३ जीवति क्रियापदम्।

स०-वेतन आदिर्येषां ते वेतनादयः, तेभ्यः-वेतनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वेतनादिभ्यो जीवति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो वेतनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वेतनेन जीवति-वैतनिकः। वाहेन जीवति-वाहिकः इत्यादिकम्।

वेतन। वाह। अर्द्धवाह। धनुर्दण्ड। जाल। वेस। उपवेस। प्रेषण। उपस्ति। सुख। शय्या। शक्ति। उपनिषत्। उपवेष। स्रक्। पाद। उपस्थान। इति वेतनादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वेतनादिभ्यः) वेतन आदि प्रातिपदिकों से (जीवति) 'जीता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वेतन (तनखाह) से जो जीता है वह-वैतनिक। वाह (बोझ ढोनेवाला जानवर बैल/भैंसा आदि) से जो जीता है वह-वाहिक।

सिद्धि-वैतनिकः। *वेतन+टा+ठक्। वैतन्+इक। वैतनिक+सु। वैतनिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'वेतन' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वाहिकः** आदि।*

ठन्–

(२) वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्।१३।

प०वि०-वस्न-क्रयविक्रयात् ५।१ ठन् १।१।

स०-क्रयश्च विक्रयश्च एतयोः समाहारः क्रयविक्रयम्। वस्नं च क्रयविक्रयं च एतयोः समाहारो वस्नक्रयविक्रयम्, तस्मात्-वस्नक्रयविक्रयात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, जीवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन वस्नक्रयविक्रयाज्जीवति ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां वस्न-क्रयविक्रयाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जीवतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वस्नम्) वस्नेन जीवति-वस्निकः। **(क्रयविक्रयः)** क्रयविक्रयेण जीवति-क्रयविक्रयिकः। विगृहीतादपि प्रत्यय इष्यते-क्रयेण जीवति-क्रयिकः। विक्रयेण जीवति-विक्रयिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (वस्न-क्रयविक्रयात्) वस्न और क्रयविक्रय प्रातिपदिकों से (जीवति) जीवति अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(वस्नम्)** वस्न (भाड़ा, मूल्य) से जो जीता है वह-वस्निक। **(क्रयविक्रयम्)** क्रय-विक्रय (खरीदना-बेचना) से जो जीता है वह-क्रयविक्रयिक। विगृहीत से भी प्रत्ययविधि*

अभीष्ट है-क्रय (खरीदना) से जो जीता है वह-क्रयिक। विक्रय (बेचना) से जो जीता है वह-विक्रयिक।

सिद्धि-वस्निकः। वस्न+टा+ठन्। वस्न्+इक। वस्निक+सु। वस्निकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'वस्न' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः।

छः+ठन्-

(३) आयुधाच्छ च।१४।

प०वि०-आयुधात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-तेन, जीवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन आयुधाज्जीवति छः, ठँश्च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् आयुधशब्दात् प्रातिपदिकाज्जीवतीत्यस्मिन्नर्थे छः, ठन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(छः) आयुधेन जीवति-आयुधीयः। (ठन्) आयुधिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (आयुधात्) आयुध प्रातिपदिक से (जीवति) जीवति अर्थ में (छः) छ (च) और (ठन्) ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(छः) आयुध (हथियार) से जो जीता है वह-आयुधीय (योद्धा)। (ठन्) आयुधिकः (योद्धा)।

सिद्धि-(१) आयुधीयः। आयुध+टा+छ। आयुध्+ईय। आयुधीय+सु। आयुधीयः।

यहां तृतीया-समर्थ 'आयुध' शब्द से जीवति अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

हरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) हरत्युत्सङ्गादिभ्यः।१५।

प०वि०-हरति क्रियापदम्, उत्सङ्गादिभ्यः ५।३।

स०-उत्सङ्ग आदिर्येषां ते उत्सङ्गादयः, तेभ्यः-उत्सङ्गादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन उत्सङ्गादिभ्यो हरति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्य उत्सङ्गादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र हरतिर्देशान्तरप्रापणेऽर्थे वर्तते।

उदा०-उत्सङ्गेन हरति-औत्सङ्गिकः। उडुपेन हरति-औडुपिकः इत्यादिकम्।

उत्सङ्ग। उडुप। उत्पत। पिटक। इत्युत्सङ्गादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (उत्सङ्गादिभ्यः) उत्सङ्ग प्रातिपदिकों (हरति) हरति=देशान्तर में पहुंचाता है, अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उत्सङ्ग (गोद) से जो हरण करता है वह-औत्सङ्गिक। उडुप (नाव) से जो हरण करता है वह-औडुपिक।

***सिद्धि-औत्सङ्गिकः।** उत्सङ्ग+टा+ठक्। औत्सङ्ग+इक। औत्सङ्गिक+सु। औत्सङ्गिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'उत्सङ्ग' शब्द से हरति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-औडुपिकः आदि।*

ष्ठन्-

(२) भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्।१६।

प०वि०-भस्त्रा-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०-भस्त्रा आदिर्येषां ते भस्त्रादयः, तेभ्यः-भस्त्रादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, हरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन भस्त्रादिभ्यो हरति ष्ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो भस्त्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भस्त्रया हरति-भस्त्रिकः। स्त्री चेत्-भस्त्रिकी। भरटेन हरति-भरटिकः। स्त्री चेत्-भरटिकी इत्यादिकम्।

भस्त्रा। भरट। भरण। शीर्षभार। शीर्षेभार। अंसभार। अंसेभार। इति भस्त्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (भस्त्रादिभ्यः) भस्त्रा-आदि प्रातिपदिकों से (हरति) हरति अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-भस्त्रा (मशक) से जो जल-हरण करता है वह-भस्त्रिक। यदि स्त्री हो तो-भस्त्रिकी। भरट (नौकर) से जो कोई वस्तु देशान्तर में पहुंचाता है वह-भरटिक। यदि स्त्री हो तो-भरटिकी।

*सिद्धि-**भस्त्रिकः।** भस्त्रा+टा+ष्ठन्। भस्त्र्+इक। भस्त्रिक+सु। भस्त्रिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'भस्त्रा' शब्द से हरति अर्थ में 'ष्ठन्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**यस्येति**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**भस्त्रिकी।** ऐसे ही-**भरटिकः, भरटिकी** इत्यादि।*

ष्ठन्-विकल्पः--

(३) विभाषा विवधात्।१७।

प०वि०-विभाषा १।१ विवधात् ५।१।

अनु०-तेन, हरति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन विवधाद् हरति विभाषा ठन्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् विवधात् प्रातिपदिकाद् हरतीत्य-स्मिन्नर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ष्ठन्) विवधेन हरति-विवधिकः। स्त्री चेत्-विवधिकी। **(ठक्)** वैवधिकः। स्त्री चेत्-वैवधिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (विवधात्) विवध प्रातिपदिक से (हरति) हरति अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है। पक्ष में औत्सर्गिक 'ठक्' प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ष्ठन्)** विवध (बहंगी) से जो जल आदि हरण करता है वह-विवधिक (कहार)। यदि स्त्री हो तो-विवधिकी। **(ठक्)** वैवधिक। यदि स्त्री हो तो-वैवधिकी।*

*सिद्धि-**(१) विवधिकः।** विवध+टा+ष्ठन्। विवध्+इक। विवधिक+सु। विवधिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'विवध' शब्द से हरति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है- **विवधिकी।***

*(२) **वैवधिकः।** यहां तृतीया-समर्थ 'विवध' शब्द से हरति-अर्थ में विकल्प पक्ष में '**प्राग्वहतेष्ठक्**' (४।४।१) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

अण्–

(४) अण् कुटिलिकायाः।१८।

प०वि०-अण् १।१ कुटिलिकायाः ५।१।

अनु०-तेन, हरति इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन कुटिलिकाया हरति अण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कुटिलिकाशब्दात् प्रातिपदिकाद् हरतीत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुटिलिकया हरति-मृगो व्याधम्-कौटिलिको मृगः। कुटिलिकया हरत्यङ्गारान्-कौटिलिकः कर्मारः।

कुटिलिका=वक्रगतिः, कर्माराणामायुधकर्षणी लोहमयी यष्टिश्च कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कुटिलिकायाः) कुटिलिका प्रातिपदिक से (हरति) हरति-अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुटिलिका (वक्रगति) से देशान्तर में जो मृग शिकारी को हरण करता है वह-कौटिलिक मृग। कुटिलिका (भट्ठी से आयुधों को खींचनेवाली लोह की छड़ी) से आयुधों को जो हरण करता है वह-कौटिलिक कर्मार (लोहार)। कुटिलिका शब्द के वक्रगति और टेढ़ी लोह की छड़ी ये दो अर्थ हैं।

सिद्धि-कौटिलिकः। कुटिलिका+टा+अण्। कौटिलिक्+अ। कौटिलिक+सु। कौटिलिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'कुटिलिका' शब्द से हरति-अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

निर्वृत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः।१६।

प०वि०-निर्वृत्ते ७।१ अक्षद्यूत-आदिभ्यः ५।३।

स०-अक्षद्यूत आदिर्येषां ते अक्षद्यूतादयः, तेभ्यः-अक्षद्यूतादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन अक्षद्यूतादिभ्यो निर्वृत्ते ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्योऽक्षद्यूतादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्-आक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतेन निर्वृत्तम्-जानुप्रहृतिकं वैरम् इत्यादिकम्।

अक्षद्यूत। जानुप्रहृत। जङ्घाप्रहृत। पादस्वेदन। कण्टकमर्दन। गतागत। यातोपयात। अनुगत। इति अक्षद्यूतादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (अक्षद्यूतादिभ्यः) अक्षद्यूत-आदि प्रातिपदिकों से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त=बना हुआ अर्थ में (ठक्) यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-अक्षद्यूत (अक्ष नामक पासों से खेली गई द्यूतक्रीडा) से निर्वृत्त=बना हुआ आक्षद्यूतिक वैर। जानुप्रहृत (गोड़ा प्रहार) से निर्वृत्त=बना हुआ जानुप्रहृतिक वैर।

***सिद्धि-आक्षद्यूतिकम्।** अक्षद्यूत+टा+ठक्। आक्षद्यूत्+इक। आक्षद्यूतिक+सु। आक्षद्यूतिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'अक्षद्यूत' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में इस सूत्र से 'प्राग्वहतेष्ठक्' (४।४।१) से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**जानुप्रहृतिकम्** आदि।*

मप्–

(२) त्रेर्मम् नित्यम्।२०।

प०वि०-त्रेः ५।१ मप् १।१ नित्यम् १।१।

अनु०-तेन, निर्वृत्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन त्रेर्निर्वृत्ते नित्यं मप्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् त्रि-अन्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे नित्यं मप् प्रत्ययो भवति। अत्र त्रि-शब्देन 'ड्वितः क्त्रिः' (३।३।८८) इति क्त्रि-प्रत्ययो गृह्यते।

उदा०-पक्त्रिणा निर्वृत्तम्-पक्त्रिमं फलम्। उप्त्रिणा निर्वृत्तम्-उप्त्रिमम् अन्नम्। कृत्रिणा निर्वृत्तम्-कृत्रिमं चित्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (त्रेः) क्त्रि-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त=बना हुआ अर्थ में (नित्यम्) सदा (मप्) मप् प्रत्यय होता नित्य-वचन से केवल क्त्रि-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं होता है।*

उदा०-पक्त्रि (पकाना) से निर्वृत्त=बना हुआ-पक्त्रिम फल। उप्त्रि (बोना) से निर्वृत्त-उप्त्रिम अन्न। कृत्रि (बनाना) से निर्वृत्त-कृत्रिम (बनावटी) चित्र।

सिद्धि-(१) पक्त्रिमम्। *पच्+क्त्रि। पक्+त्रि। पक्त्रि।। पक्त्रि+टा+मप्। पक्त्रि+म। पक्त्रिम+सु। पक्त्रिमम्।*

यहां प्रथम 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' (३।३।८८) से 'क्त्रि' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् क्त्रि-प्रत्ययान्त 'पक्त्रि' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'मप्' प्रत्यय होता है।

(२) उप्त्रिमम्। *'डुवप बीजसन्ताने छेदने च' (भ्वा०उ०)। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से सम्प्रसारण होता है।*

(३) कृत्रिमम्। *'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) पूर्ववत्।*

कक्+कन्–

(२) अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ।२१।

प०वि०-अपमित्य-याचिताभ्याम् ५।२ कक्-कनौ १।२।

स०-अपमित्यं च याचितं च ते अपमित्ययाचिते, ताभ्याम्-अपमित्ययाचिताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कक् च कन् च तौ कक्कनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तेन, निर्वृत्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन अपमित्ययाचिताभ्यां निर्वृत्ते कक्कनौ।

४७४ पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्याम् अपमित्य-याचिताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं कक्-कनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**अपमित्य**) अपमित्य निर्वृत्तम्-आपमित्यकम् (कक्)। (**याचितम्**) याचितेन निर्वृत्तम्-याचितकम् (कन्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ (अपमित्ययाचिताभ्याम्) अपमित्य और याचित शब्दों से (निर्वृत्ते) निर्वृत्त अर्थ में यथासंख्य (कक्कनौ) कक् और कन् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(अपमित्य)** अपमित्य=प्रतिदान (बदलना) से निर्वृत्त-आपमित्यक बदले में पाया हुआ। **(याचित)** याचित (मांगने) से निर्वृत्त-याचितक। मांग से पाया हुआ।*

*सिद्धि-(१) **आपमित्यकम्।** अपमित्य+टा+कक्। अपमित्य+०+क। आपमित्यक+सु। आपमित्यकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'अपमित्य' शब्द से निर्वृत्त अर्थ इस सूत्र से 'कक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

*'अपमित्य' शब्द में **'मेङ् प्रतिदाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'उदीचां माङो व्यतीहारे'** (३।४।१९) से क्त्वा प्रत्यय है **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है। क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द की **'क्त्वातोसुन्कसुनः'** (१।१।४०) से अव्यय संज्ञा होने से **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से तृतीया-विभक्ति 'टा' का लोप हो जाता है।*

*(२) **याचितकम्।** यहां तृतीया-समर्थ 'याचित' शब्द से निर्वृत्त अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।*

संसृष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) संसृष्टे।२२।

वि०-संसृष्टे ७।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् संसृष्टे ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। संसृष्टम्=एकीभूतम्, अभिन्नमित्यर्थः।

उदा०-दध्ना संसृष्टम्-दाधिकम्। मारिचिकम्। शाङ्गविरिकम्। पैप्पलिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (संसृष्टे) मिश्रित अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से संसृष्ट=मिश्रित-दाधिक। मरिचिका (मिर्च) से संसृष्ट-मारिचिक। शृङ्गवेर (अदरक) से संसृष्ट-शाङ्गविरिक। पिप्पल (पीपल) से संसृष्ट-पैप्पलिक।

सिद्धि-दाधिकम्। *दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *संसृष्ट अर्थ के कथन में जो पदार्थ मिलाया जाता है वह गौण होता है। जैसे दही लगाकर पूरी-पराठा खाने में दही गौण और पराठा प्रधान है। संस्कृत अर्थ में पदार्थ में उत्कर्षता का आधान होता है, संसृष्ट अर्थ में नहीं। जैसे दधि से संस्कृत-दाधिक ओदन।*

इनिः-

(२) चूर्णादिनिः।२३।

प०वि०-चूर्णात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन चूर्णात् संसृष्टे इनिः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाच्चूर्णात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-चूर्णैः संसृष्टाः-चूर्णिनोऽपूपाः। चूर्णिनो धानाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (चूर्णात्) चूर्ण प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

उदा०-चूर्ण (कसार) से संसृष्ट-चूर्णी अपूप। चून से भरे हुये गुझे। चूर्ण से संसृष्ट-चूर्णी धान।

सिद्धि-चूर्णिनः। *चूर्ण+भिस्+इन्। चूर्ण्+इन्। चूर्णिन्+जस्। चूर्णिनः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'चूर्ण' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

प्रत्ययस्य लुक्–

(३) लवणाल्लुक्।२४।

प०वि०-लवणात् ५।१ लुक् १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन लवणात् संसृष्टे प्रत्ययस्य लुक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाल्लवण-शब्दात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। अत्र द्रव्यवाची लवणशब्दो गृह्यते न तु गुणवाची।

उदा०-लवणेन संसृष्टः-लवणः सूपः। लवणं शाकम्। लवणा यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (लवण) लवण प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में यथाविहित ठक् प्रत्यय का लुक् होता है। यहां द्रव्यवाची 'लवण' शब्द का ग्रहण है, गुणवाची का नहीं।*

उदा०-लवण से संसृष्ट-लवण सूप (नमकीन दाल)। लवण से संसृष्ट-लवण शाक (नमकीन साग)। लवण से संसृष्ट-लवणा यवागू (नमकीन राबड़ी)।

***सिद्धि-लवणः।** लवण+टा+ठक्। लवण+०। लवण+सु। लवणः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'लवण' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का लुक्-विधान किया गया है। 'प्राग्वहतेष्ठक्' (४।४।१) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है। उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**लवणं शाकम्, लवणा यवागूः।***

अण्–

(४) मुद्गादण्।२५।

प०वि०-मुद्गात् ५।१ अण् १।१।

अनु०-तेन, संसृष्टे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन मुद्गात् संसृष्टेऽण्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाद् मुद्ग-शब्दात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मुद्गेन संसृष्टः-मौद्ग ओदनः। मौद्गी यवागूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (मुद्गात्) मुद्ग प्रातिपदिक से (संसृष्टे) संसृष्ट अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मुद्ग (मूंग) से संसृष्ट-मौद्ग ओदन (भात)। मुद्ग से संसृष्ट-मौद्गी यवागू (लापसी/राबड़ी)।

सिद्धि-मौद्गः। *मुद्ग+टा+अण्। मौद्ग्+अ। मौद्ग+सु। मौद्गः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'मुद्ग' शब्द से संसृष्ट अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**मौद्गी यवागूः।***

उपसिक्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) व्यञ्जनैरुपसिक्ते।२६।

प०वि०-व्यञ्जनैः ३।३ (पञ्चम्यर्थे) उपसिक्ते ७।१।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन व्यञ्जनैः=व्यञ्जनवाचिभ्य उपसिक्ते ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यो व्यञ्जनवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उपसिक्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दध्ना उपसिक्त-दाधिक ओदनः। सौपिक ओदनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (व्यञ्जनैः) व्यञ्जनवाची प्रातिपदिकों से (उपसिक्ते) उपसिक्त अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दधि (दही) से उपसिक्त=सेचन से मृदूकृत-दाधिक ओदन (भात)। सूप (दाल) से उपसिक्त-सौपिक ओदन।

सिद्धि-दाधिकः। दधि+टा+ठक्। दाध्+इक। दाधिक+सु। दाधिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'दधि' शब्द से उपसिक्त अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

वर्ततेऽर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) ओजः सहोऽम्भसा वर्तते।२७।

प०वि०-ओजः-सहः-अम्भसा ३।१ (पञ्चम्यर्थे) वर्तते क्रियापदम्।

स०-ओजश्च सहश्च अम्भश्च एतेषां समाहारः ओजःसहोऽम्भः, तेन-ओजःसहोऽम्भसा।

अनु०-तेन, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन ओजःसहोऽम्भोभ्यो वर्तति ठक्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थेभ्य ओजःसहोऽम्भोभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्तति इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ओजः**) ओजसा वर्तति-औजसिकः शूरः। (**सहः**) सहसा वर्तति-साहसिकश्चौरः। (**अम्भः**) अम्भसा वर्तति-आम्भसिको मत्स्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (ओजःसहोऽम्भसा) ओजस्, सहस्, अम्भस् प्रातिपदिकों से (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**ओजः**) जो ओज (बल) के सहित है वह-औजसिक शूर। (**सहः**) जो सहः (मर्षण-शक्ति) के सहित है वह-साहसिक चौर। (**अम्भः**) जो अम्भः (जल) के सहित है वह-आम्भसिक मत्स्य (मछली)।*

सिद्धि-औजसिकः। *ओजस्+टा+ठक्। औजस्+इक। औजसिक+सु। औजसिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'ओजस्' शब्द से वर्तति (है) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**साहसिकः, आम्भसिकः।***

यथाविहितम् (ठक्)-

(२) तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोगकूलम्।२८।

प०वि०-तत् २।१ प्रति-अनुपूर्वम् २।१ ईपलोमकूलम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-प्रतिश्च अनुश्च एतयोः समाहारः प्रत्यनु। प्रत्यनुपूर्वं यस्य तत् प्रत्यनुपूर्वम्, तत्-प्रत्यनुपूर्वम् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। ईपं च लोम च कूलं च एतेषां समाहार ईपलोमकूलम्, तत्-ईपलोमकूलम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-वर्तति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रत्यनुपूर्वाद् ईपलोमकूलाद् वर्तति ठक्।

अर्थः-तद् इति तृतीयासमर्थेभ्य प्रति-अनुपूर्वेभ्य ईपलोमकूलेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्तते इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(प्रति+ईपम्)** प्रतीपं वर्तते-प्रातीपिकः। **(अनु+ईपम्)** अन्वीपं वर्तते-आन्वीपिकः। **(प्रति+लोम)** प्रतिलोमं वर्तते-प्रातिलोमिकः। **(अनु+लोम)** अनुलोमं वर्तते-आनुलोमिकः। **(प्रति+कूलम्)** प्रतिकूलं वर्तते-प्रातिकूलिकः। **(अनु+कूलम्)** अनुकूलं वर्तते-आनुकूलिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रति-अनुपूर्वम्) प्रति और अनु पूर्वक (ईप-लोम-कूलम्) ईप, लोम और कूल प्रातिपदिकों से (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रति+ईप)** जो प्रतीप=विरुद्ध है वह-प्रातीपिक। **(अनु+ईप)** जो अन्वीप=जल के समान है वह-आन्वीपिक। **(प्रति+लोम)** जो प्रतिलोम=विरुद्ध है वह-प्रातिलोमिक। **(अनु+लोम)** जो अनुलोम=अविरुद्ध है वह-आनुलोमिक। **(प्रति+कूल)** जो प्रतिकूल=विरुद्ध है वह-प्रातिकूलम्। **(अनु+कूल)** जो अनुकूल=अविरुद्ध है वह-आनुकूलिक।*

*सिद्धि-**प्रातीपिकः।** प्रति+ईप+अम्+ठक्। प्रातीप्+इक। प्रातीपिक+सु। प्रातिपिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ प्रति-पूर्वक 'ईप' शब्द से वर्तति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अन्वीपम्** आदि।*

***प्रतीपम्।** यहां **'प्रतिगता आपोऽस्मिन्निति-प्रतीपम्'** बहुव्रीहि समास है। **'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्'** (६।३।९७) से 'अप्' के अकार को ईत्-आदेश होता है। **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। प्रति+अप्+अ। प्रति+ईप्+अ। प्रतीप+सु। प्रतीपम्।*

***प्रतिलोमम्।** यहां **'प्रतिगतानि लोमान्यस्य प्रतिलोमम्'** बहुव्रीहि समास है। **'अच् प्रत्यनुपूर्वात् सामलोम्नः'** (५।४।७५) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है-प्रति+लोमन्+अच्। प्रतिलोम्+अ। प्रतिलोम+सु। प्रतिलोमम्। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से टि-भाग (अन्) का लोप हो जाता है।*

विशेषः *'वर्तति' शब्द में 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु अकर्मक है। उसका कर्म (द्वितीया-विभक्ति) के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है? **"क्रियाविशेषणमकर्मकाणां कर्म भवति"** अर्थात् क्रियाविशेषण अकर्मक धातुओं का कर्म होता है। इस परिभाषा से अकर्मक 'वृतु' धातु का कर्म के साथ सम्बन्ध होता है। 'प्रतीपम्' आदि क्रियाविशेषण अकर्मक 'वर्तति' के कर्म हैं।*

यथाविहितम् (ठक्)–

(३) परिमुखं च।२९।

प०वि०–परिमुखम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, वर्तति, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् परिमुखाच्च वर्तति ठक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् परिमुखशब्दात् प्रातिपदिकाच्च वर्तति इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–परिमुखं वर्तति–पारिमुखिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परिमुखम्) परिमुख प्रातिपदिक से (च) भी (वर्तति) वर्तति='है' अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो सेवक परिमुख=स्वामी के मुख के सामने वर्तमान रहता है वह–पारिमुखिक।

सिद्धि–पारिमुखिकः। परिमुख+अम्+ठक्। पारिमुख्+इक। पारिमुखिक+सु। पारिमुखिकः।

यहां द्वितीया–समर्थ 'परिमुख' शब्द से वर्तति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय ठक् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

परिमुखम्। यहां 'परितो मुखमिति परिमुखम्' 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि-समास है। परि+मुख। परिमुख+सु। परिमुखम्-मुख के सामने।

प्रयच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) प्रयच्छति गर्ह्यम्।३०।

प०वि०–प्रयच्छति क्रियापदम्, गर्ह्यम् २।१।

अनु०–तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् प्रातिपदिकात् प्रयच्छति ठक् गर्ह्यम्।

अर्थः–तदिति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रयच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यद् द्वितीयासमर्थं गर्ह्यं चेत् तद् भवति।

उदा०–द्विगुणं प्रच्छति–द्वैगुणिकः। द्विगुणार्थं प्रयच्छतीत्यर्थः। त्रिगुणं प्रयच्छति–त्रैगुणिकः। द्विगुणार्थं त्रिगुणार्थं च धनप्रदानं गर्ह्यं मन्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (प्रयच्छति) प्रयच्छति=प्रदान करता है अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (गर्ह्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह गर्ह्य=निन्दनीय हो।*

उदा०-जो द्विगुण (दुगना) करने के लिये धन प्रदान करता है वह-द्वैगुणिक। जो त्रिगुण (तिगुना) करने के लिये धन प्रदान करता है वह-त्रैगुणिक। यहां द्विगुण, त्रिगुण शब्द द्विगुण तथा त्रिगुण के लिये अर्थ में हैं। द्विगुण (दुगुना) और त्रिगुण (तिगुना) करने के लिये धन प्रदान करना गर्ह्य=निन्दनीय माना जाता है।

सिद्धि-द्वैगुणिकः। द्विगुण+अम्+ठक्। द्वैगुण्+इक। द्वैगुणिक+सु। द्वैगुणिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'द्विगुण' शब्द से प्रयच्छति=प्रदान करता है अर्थ में तथा गर्हा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ष्ठन्+ष्ठच्–

(२) कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ।३१।

प०वि०–कुसीद-दशैकादशात् ५।१ ष्ठन्-ष्ठचौ १।२।

स०–एकादशार्था दश इति दशैकादशाः। कुसीदं च दशैकादशाश्च एतेषां समाहारः कुसीददशैकादशम्, तस्मात्-कुसीददशैकादशात् (कर्मधारय-गर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। ष्ठन् च ष्ठच् च तौ ष्ठन्ष्ठचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, प्रयच्छति, गर्ह्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् कुसीददशैकादशाभ्यां प्रयच्छति ष्ठन्ष्ठचौ गर्ह्यम्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां कुसीद-दशैकादशाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रयच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ष्ठन्-ष्ठचौ प्रत्ययौ भवतः, यद् द्वितीयासमर्थं गर्ह्यं चेत् तद् भवति।

कुसीदम्=वृद्धिः। कुसीदार्थं द्रव्यं कुसीदमित्युच्यते। 'एकादशार्था दश इति दशैकादशाः' इति समानाधिकरणतत्पुरुषः। 'संख्याया अल्पीयस्या०' इति दशशब्दस्य पूर्वनिपातः। 'दशैकादशात्' इति सूत्रे निर्देशादेवाकारः

समासान्तो भवति। अतो वाक्यमपि अकारान्तमेव भवति-दशैकादशान् प्रयच्छति।

उदा०-(**कुसीदम्**) कुसीदं प्रयच्छति-कुसीदिकः। स्त्री चेत्-कुसीदिकी। (**दशैकादशाः**) दशैकादशान् प्रयच्छति-दशैकादशिकः। स्त्री चेत्-दशैकादशिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (कुसीद-दशैकादशात्) कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से (प्रयच्छति) 'प्रदान करता है' अर्थ में यथासंख्य (ष्ठन्-ष्ठचौ) ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय होते हैं। (गर्ह्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह गर्ह्य=निन्दनीय हो।*

*कुसीद का अर्थ वृद्धि है। कुसीद के लिये जो द्रव्य है, उसे कुसीद कहते हैं। यह तदर्थ में तत् शब्द का प्रयोग है। एकादश (११) के लिये जो दश (१०) मुद्रायें हैं उन्हें **'दशैकादश'** कहते हैं।*

*उदा०-**(कुसीद)** कुसीद=व्याज के लिये जो धन देता है वह-कुसीदिक (सूदखोर)। यदि स्त्री हो तो-कुसीदिकी। **(दशैकादश)** जो एकादश मुद्राओं के लिये दश मुद्रायें देता है वह-दशैकादशिक। यदि स्त्री हो तो-दशैकादशिकी।*

*सिद्धि-(१) **कुसीदिकः।** कुसीद+अम्+ष्ठन्। कुसीद+इक। कुसीदिक+सु। कुसीदिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'कुसीद' शब्द से प्रयच्छति अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है-**कुसीदिकी।** प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**कुसीदकः।***

*(२) **दशैकादशिकः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'दशैकादश' शब्द से प्रयच्छति अर्थ में 'ष्ठच्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् ङीष् प्रत्यय होता है-**दशैकादशिकी।** प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**दशैकादशिकः।***

विशेषः *कुसीद (व्याज) पर धन देना तथा ११) रु० के लिये १०) रु० देना पाणिनि के काल में गर्ह्य=निन्दनीय था।*

उञ्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) उञ्छति।३२।

प०वि०-उञ्छति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् उञ्छति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उञ्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। भूमौ पतितस्यैकैकस्य कणस्योपादानमुञ्छ इत्युच्यते।

उदा०-बदराण्युञ्छति-बादरिकः। श्यामाकिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (उञ्छति) उञ्छति='भूमि पर पड़े हुये एक-एक कण को चुगता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो बदर=बेरों को चुगता है वह-बादरिक। जो श्यामाक=सामक अन्नविशेष को चुगता है वह-श्यामाकिक।

सिद्धि-बादरिकः। बदर+शस्+ठक्। बादर्+इक। बादरिक+सु। बादरिकः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'बदर' शब्द से उञ्छति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्यामाकिकः।***

रक्षति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) रक्षति।३३।

वि०-रक्षति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् रक्षति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् रक्षतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समाजं रक्षति-सामाजिकः। सान्निवेशिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (रक्षति) रक्षति=**रक्षा** करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-जो समाज=मानव समूह की रक्षा करता है वह-सामाजिक। **जो** सन्निवेश=समुदाय की रक्षा करता है वह-सान्निवेशिक।*

सिद्धि-सामाजिकः । समाज+अम्+ठक् । सामाज्+इक् । सामाजिक+सु । सामाजिकः ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'समाज' शब्द से रक्षति अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

करोति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) शब्ददर्दुरं करोति।३४।

प०वि०–शब्द-दर्दुरम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)। करोति क्रियापदम्।

अनु०–तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् शब्ददर्दुराभ्यां करोति ठक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां शब्ददर्दुराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां करोतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(शब्दः) शब्दं करोति–शाब्दिको वैयाकरणः। **(दर्दुरम्)** दर्दुरं करोति–दार्दुरिकः कुम्भकारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शब्ददर्दुरम्) शब्द और दर्दुर प्रातिपदिकों से करोति=करता है/बनाता है अर्थ में यथाविहित (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शब्द) जो शब्द बनाता है वह-शाब्दिक वैयाकरण। जो दर्दुर=घड़ा बनाता है वह-दार्दुरिक कुम्भकार।

सिद्धि-शाब्दिकः । शब्द+अम्+ठक् । शाब्द्+इक । शाब्दिक+सु । शाब्दिकः ।

यहां द्वितीया-समर्थ 'शब्द' प्रातिपदिक से करोति-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-दार्दुरिकः ।

हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति।३५।

प०वि०–पक्षि-मत्स्य-मृगान् २।३ (पञ्चम्यर्थे) हन्ति क्रियापदम्।

स०–पक्षी च मत्स्यश्च मृगश्च ते पक्षिमत्स्यमृगाः, तान्-पक्षिमत्स्यमृगान् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पक्षिमत्स्यमृगेभ्यो हन्ति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः पक्षिमत्स्यमृगेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हन्तीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र स्वरूपस्य पर्यायवाचिनां तद्विशेषवाचिनां च ग्रहणमिष्यते।

उदा०-(१) **पक्षी।** पक्षिणो हन्ति-पाक्षिकः। (पर्यायः) शकुनीन् हन्ति-शाकुनिकः (तद्विशेष) मयूरान् हन्ति-मायूरिकः। तित्तिरान् हन्ति-तैत्तिरीकः।

(२) **मत्स्यः।** मत्स्यान् हन्ति-मात्स्यिकः। (पर्यायः) मीनान् हन्ति-मैनिकः। (तद्विशेषः) शफरान् हन्ति-शाफरिकः। शकुलान् हन्ति-शाकुलिकः।

(३) **मृगः।** मृगान् हन्ति-मार्गिकः। (पर्यायः) हरिणान् हन्ति-हारिणिकः। (तद्विशेषः) सूकरान् हन्ति-सौकरिकः। सारङ्गान् हन्ति-सारङ्गिकः। आरण्याश्चतुष्पादो मृगा उच्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पक्षिमत्स्यमृगान्) पक्षी, मत्स्य, मृग प्रातिपदिकों से (हन्ति) हन्ति=मारता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है। यहां स्वरूप, पर्यायवाची और तद्विशेषवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(१) पक्षी। जो पक्षियों को मारता है वह-पाक्षिक (चिड़ीमार)। (पर्याय) जो शकुनियों को मारता है वह-शाकुनिक (चिड़ीमार)। (तद्विशेष) जो मयूर=मोर को मारता है वह-मायूरिक (मोरमार)। जो तित्तिर=तीतरों को मारता है वह-तैत्तिरिक (तीतरमार)।

(२) मत्स्य। जो मत्स्य=मछलियों को मारता है वह-मात्स्यिक (मछलीमार)। (पर्याय) जो मीन को मारता है वह-मैनिक (मछलीमार)। (तद्विशेष) जो शफर=छोटी चमकीली मछलियों को मारता है वह-शाफरिक। जो शकुल=सोरा मछलियों को मारता है वह-शाकुलिक।

(३) मृग। जो मृगों को मारता है वह-मार्गिक। (पर्याय) जो हरिणों को मारता है वह-हारिणिक (हरिणमार)। (तद्विशेष) जो सूकर=सूअरों को मारता है वह-सौकरिक (सूअरमार)। जो सारङ्ग=चितकबरे हरिणों को मारता है वह-सारङ्गिक। चौपाये जंगली जानवर 'मृग' कहाते हैं।

सिद्धि-पाक्षिकः। पक्षिन्+शस्+ठक्। पाक्ष्+इक। पाक्षिक+सु। पाक्षिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'पक्षिन्' के शब्द से हन्ति-अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग के आदिवृद्धि और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-मैनिकः आदि।

तिष्ठति-हन्ति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) परिपन्थं च तिष्ठति।३६।

प०वि०-परिपन्थम् २।१ च अव्ययपदम्, तिष्ठति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक्, हन्ति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परिपन्थं तिष्ठति हन्ति च ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् परिपन्थ-शब्दात् प्रातिपदिकात् तिष्ठति हन्तीति चार्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-परिपन्थं तिष्ठति-पारपन्थिकश्चौरः। परिपन्थं हन्ति-पारिपन्थिकश्चौरः।

आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परिपन्थम्) परिपन्थ शब्द से (तिष्ठति) ठहरता है (च) और (हन्ति) मारता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय **होता है।

*उदा०-जो परिपन्थ (मार्ग को घेरकर) बैठा रहता है वह-पारिपन्थिक चौर। जो **परिपन्थ** (मार्ग पर चलनेवाले को) मारता है वह-पारिपन्थिक चौर।*

***सिद्धि-पारिपन्थिकः।** परिपन्थ+अम्+ठक्। पारिपन्थ्+इक। पारिपन्थिक+सु। पारिपन्थिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'परिपन्थ' शब्द से तिष्ठति और हन्ति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

***विशेषः** (१) **'परिपन्थ'** शब्द में **'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या'** (२।१।१२) **से अव्ययीभाव समास है-पथः परि इति-परिपन्थम्। 'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४१) से 'परिपन्थ' शब्द अव्यय है। यहां 'परि' शब्द **'अपपरी वर्जने'** (१।४।८८) से वर्जनार्थक **है। जो पन्था (मार्ग) को छोड़कर बैठा रहता है वह-'पारिपन्थिक'** कहाता है।*

*(२) 'परिपन्थ' शब्द में 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि-समास भी हो सकता है। **पन्थानं परि इति परिपन्थम्।** जो पन्था (मार्ग) को सब ओर से घेरकर बैठा रहता है वह- **'पारिपन्थिक'** कहाता है। अथवा जो परिपन्थ=पन्था को तय करनेवाले लोगों को मारता है वह-**पारिपन्थिक** (चोर) होता है।*

धावति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति।३७।

प०वि०-माथोत्तरपद-पदवी-अनुपदम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) धावति क्रियापदम्।

स०-माथ उत्तरपदं यस्य तद् माथोत्तरपदम्, माथोत्तरपदं च पदवी च अनुपदं च एतेषां समाहारो माथोत्तरपदपदव्यनुपदम्, तत्-माथोत्तरपदपदव्यनुपदम् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तद् माथोत्तरपदात् पदव्यनुपदाभ्यां धावति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् माथोत्तरपदात् प्रातिपदिकात् पदवी-अनुपदाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां धावतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(माथोत्तरपदम्)** दण्डमाथं धावति-दाण्डमाथिकः। शुल्कमाथं धावति-शौल्कमाथिकः। **(पदवी)** पदवीं धावति-पादविकः। **(अनुपदम्)** अनुपदं धावति-आनुपदिकः। माथशब्दः पथि-पर्यायः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (माथोत्तरपदपदव्यनुपदम्) माथ शब्द उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से तथा पदवी और अनुपद प्रातिपदिकों से (धावति) 'दौड़ता है' अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(माथोत्तरपद)** जो दण्डमाथ (सरल पथ) पर दौड़ता है वह-दाण्डमाथिक। जो शुल्कमाथ (शुल्क के पथ) पर दौड़ता है वह-शौल्कमाथिक। **(पदवी)** जो पदवी=मार्ग पर दौड़ता है वह-पादविक। **(अनुपद)** जो अनुपद=पीछे-पीछे दौड़ता है वह-आनुपदिक।*

***सिद्धि**-**दाण्डमाथिकः।** दण्डमाथ+अम्+ठक्। दाण्डमाथ्+इक। दाण्डमाथिक+सु। दाण्डमाथिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'दण्डमाथ' शब्द से धावति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**शौल्कमाथिकः** आदि।*

***विशेषः** (१) दण्डमाथ-यहां माथ शब्द 'पथिन्' का पर्यायवाची है। **मथ्यते=विलोड्यते गन्तृभिरिति माथः। दण्डाकारो माथ इति दण्डमाथः।** दण्ड के समान जो सरल माथ (मार्ग) है वह 'दण्डमाथ' कहाता है। **शुल्कस्य माथ इति शुल्कमाथः।** शुल्क (भाड़े) का जो माथ (मार्ग) है वह 'शुल्कमाथ' होता है अर्थात् जिस पर गाड़ी आदि का भाड़ा देकर चलना पड़ता है।*

*(२) **अनुपदम्-पदस्य पश्चात्-अनुपदम्।** पद=पैर का निशान। पैर के निशान के पीछे-पीछे=अनुपद। यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से पश्चात् अर्थ में अव्ययीभाव समास है। **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४१) से 'अनुपदम्' शब्द अव्यय है।*

ठञ्+ठक्-

(२) आक्रन्दाट्ठञ् च।३८।

प०वि०-आक्रन्दात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, ठक्, धावति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आक्रन्दाद् धावति ठञ् ठक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् आक्रन्दशब्दात् प्रातिपदिकाद् धावतीत्यस्मिन्नर्थे ठञ् ठक् च प्रत्ययो भवति। आक्रन्द्यते=आर्त्तैराहूयते इति आक्रन्दः, आर्त्तानामयनम् (शरणम्) उच्यते।

उदा०-आक्रन्दं धावति-आक्रन्दिकः (ठञ्)। आक्रन्दिकः (ठक्)। स्त्री चेत्-आक्रन्दिकी।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(तत्) द्वितीया-समर्थ (आक्रन्दात्) आक्रन्द प्रातिपदिक से (धावति) दौड़ता है अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ठक्) ठक् प्रत्यय होते हैं। आर्त्त=दुःखीजन जिसे शरण के लिये पुकारते उस स्थान को 'आक्रन्द' कहते हैं।*

उदा०-जो आक्रन्द (आर्त्तालय) की ओर दौड़ता है वह-आक्रन्दिक (ठञ्)। आक्रन्दिक (ठक्)। यदि स्त्री हो तो-आक्रन्दिकी।

*सिद्धि-(१) **आक्रन्दिकः।** आक्रन्द+अम्+ठञ्। आक्रन्द+इक। आक्रन्दिक+सु। **आक्रन्दिकः।***

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आक्रन्द' शब्द से धावति अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **पूर्ववत्** अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**आक्रन्दिकः।***

(२) आक्रन्दिकः । यहां 'आक्रन्द' शब्द से पूर्ववत् 'ठक्' प्रत्यय है। यहां ***'कितः'*** *(६।१।१६२) से अन्तोदात्त स्वर होता है-आक्रन्दिकः । स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'टिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-आक्रन्दिकी।*

गृह्णाति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) पदोत्तरपदं गृह्णाति।३६।

प०वि०-पदोत्तरपदम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)। गृह्णाति क्रियापदम्।

स०-पदम् उत्तरपदं यस्य तत् पदोत्तरपदम्, तत्-पदोत्तरपदम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पदोत्तरपदाद् गृह्णाति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पदोत्तरपदात् प्रातिपदिकाद् गृह्णातीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वपदं गृह्णाति-पौर्वपदिकः। उत्तरपदं गृह्णाति-औत्तरपदिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (पदोत्तरपदम्) पद शब्द उत्तर में है जिसके उस प्रातिपदिक से (गृह्णाति) ग्रहण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो पूर्वपद को ग्रहण करता है वह-पौर्वपदिक। जो उत्तरपद को ग्रहण करता है वह-औत्तरपदिक।

सिद्धि-पौर्वपदिकः *। पूर्वपद+अम्+ठक्। पौर्वपद्+इक। पौर्वपदिक+सु। पौर्वपदिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'पद' शब्द उत्तरपदवाले 'पूर्वपद' शब्द से गृह्णाति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही- ***औत्तरपदिकः*** *।*

यथाविहितम् (ठक्)–

(२) प्रतिकण्ठार्थललामं च।४०।

प०वि०-प्रतिकण्ठ-अर्थ-ललामम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०–कण्ठं कण्ठं प्रति इति प्रतिकण्ठम्। प्रतिकण्ठं च अर्थश्च ललामश्च एतेषां समाहारः प्रतिकण्ठार्थललामम्, तत्-प्रतिकण्ठार्थललामम् (अव्ययीभावगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, ठक्, गृह्णाति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् प्रतिकण्ठार्थललामेभ्यश्च गृह्णाति ठक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रतिकण्ठार्थललामेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च गृह्णातीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(प्रतिकण्ठम्)** प्रतिकण्ठं गृह्णाति-प्रातिकण्ठिकः। **(अर्थः)** अर्थं गृह्णाति-आर्थिकः। **(ललामः)** ललामं गृह्णाति-लालामिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रतिकण्ठार्थललामम्) प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम प्रातिपदिकों से (च) भी (गृह्णाति) ग्रहण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रतिकण्ठ)** जो प्रतिकण्ठ=समस्त कण्ठ को ग्रहण करता है वह-प्रातिकण्ठिक। **(अर्थ)** जो अर्थ=धन को ग्रहण करता है वह-आर्थिक। **(ललाम)** जो ललाम=भूषण को ग्रहण करता है वह-लालामिक।*

*सिद्धि-**प्रातिकण्ठिकः**। प्रतिकण्ठ+अम्+ठक्। प्रातिकण्ठ्+इक। प्रातिकण्ठिक+सु। प्रातिकण्ठिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रतिकण्ठ' प्रातिपदिक से गृह्णाति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्थिकः, लालामिकः**।*

चरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) धर्मं चरति।४१।

प०वि०–धर्मम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) चरति क्रियापदम्।

अनु०–तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् धर्माच्चरति ठक्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाद् धर्मशब्दात् प्रातिपदिकाच्चरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। अत्र चरतिरासेवा (पौनःपुन्यम्) गृह्यते, नानुष्ठानमात्रम्।

उदा०-धर्मं चरति-धार्मिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (धर्मम्) धर्म प्रातिपदिक से (चरति) बार-बार आचरण करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो धर्म का पुनः-पुनः आचरण करता है वह-धार्मिक।

सिद्धि-धार्मिकः। धर्म+अम्+ठक्। धार्म्+इक। धार्मिक+सु। धार्मिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'धर्म' शब्द से चरति अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

एति-अर्थप्रत्ययविधिः

ठन्+ठक्–

(१) प्रतिपथमेति ठँश्च।४२।

प०वि०-प्रतिपथम् अव्ययपदम् (द्वितीयार्थे), एति क्रियापदम्, ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पन्थानं पन्थानं प्रति इति प्रतिपथम् (अव्ययीभावः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रतिपथम् एति ठन् ठक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रतिपथशब्दात् प्रातिपदिकाद् एतीत्यस्मिन्नर्थे ठन् ठक् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रतिपथम् एति-प्रतिपथिकः (ठन्)। प्रातिपथिकः (ठक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (प्रतिपथम्) प्रतिपथ प्रातिपदिक से (एति) प्राप्त करता है अर्थ में (ठन्) ठन् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो प्रतिपथ=प्रत्येक मार्ग (जल, स्थल, आकाश) को प्राप्त करता है वह-प्रतिपथिक (ठन्)। प्रातिपथिक (ठक्)।

सिद्धि-(१) प्रतिपथिकः। प्रतिपथ+अम्+ठन्। प्रतिपथ्+इक। प्रतिपथिक+सु। प्रतिपथिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रतिपथ' शब्द से एति अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के नित् होने से ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**प्रतिपथिकः।***

*(२) प्रातिपथिक:। यहां पूर्ववत् 'प्रतिपथ' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। प्रत्यय के 'कित्' होने से **'कित:'** (६।१।१६२) से अन्तोदात्त स्वर होता है-प्रातिपथिक:।*

समवैति-अर्थप्रत्ययविधि:

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) समवायान् समवैति।४३।

प०वि०-समवायान् २।३ (पञ्चम्यर्थे) समवैति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत् समवायेभ्य: समवैति ठक्।

अर्थ:-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्य: समवायवाचिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: समवैतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

'समवायान्' इति बहुवचननिर्देशात् तद्वाचिन: शब्दा गृह्यन्ते। समवाय:=समूह:। समवैति=आगत्य समवायस्यैकदेशी भवतीत्यर्थ:।

उदा०-समवायं समवैति-सामवायिक:। सामाजिक:। सामूहिक:। सान्निवेशिक:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (समवायान्) समवाय=समूहवाची प्रातिपदिकों से (समवैति) आकर समवाय का एक अंग बनता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो समवाय का आकर एकदेश (एक भाग) बनता है वह-सामवायिक। जो समाज=मानव संघ का आकर एक देश बनता है वह-सामाजिक। जो समूह का आकर एक देश बनता है वह-सामूहिक। जो सन्निवेश=समुदाय का आकर एकदेश बनता है वह-सान्निवेशिक।

सिद्धि-सामवायिक:। *समवाय+अम्+ठक्। सामावाय्+इक। सामवायिक+सु। सामवायिक:।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'समवाय' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रागवहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सामाजिक:** आदि।*

ण्यः–

(२) परिषदो ण्यः।४४।

प०वि०–परिषदः ५।१ ण्यः १।१।

अनु०–तत्, ठक्, समवायान्, समवैति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् समवायात् परिषदः समवैति ण्यः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् समवायवाचिनः परिषत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् समवैतीत्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०–परिषदं समवैति–पारिषद्यः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(तत्) द्वितीया-समर्थ (समवायान्) समवायवाची (परिषदः) परिषद् प्रातिपदिक से (समवैति) आकर उसका एकदेश (भाग) बनता है अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो परिषद्=विद्वत्-सभा का आकर एकदेश बनता है वह–पारिषद्यः।

***सिद्धि-पारिषद्यः।** परिषद्+अम्+ण्य। पारिषद+य। पारिषद्य+सु। पारिषद्यः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, समवायवाची 'परिषत्' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेषः परिषद्-** चरण (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा जो उच्चारण और व्याकरण सम्बन्धी नियमों का निश्चय करती थी और जिसमें शाखा के पाठ आदि के विषय में भी विचार होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २९१)।*

ण्य-विकल्पः–

(३) सेनाया वा।४५।

प०वि०–सेनायाः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, समवायान्, समवैति, ण्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् सेनाया समवैति वा ण्यः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् सेना-शब्दात् प्रातिपदिकात् समवैतीत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ण्यः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सेनां समवैति–सैन्यः (ण्यः)। सैनिकः (ठक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सेनायाः) सेना प्रातिपदिक से (समवैति) आकर उसका एकदेश बनता है अर्थ में (वा) विकल्प से (ण्यः) प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो सेना में आकर उसका एकदेश बनता है वह-सैन्य (ण्य)। सैनिक (ठक्)।

*सिद्धि-(१) **सैन्यः।** सेना+अम्+ण्य। सैन्+य। सैन्य+सु। सैन्यः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'सेना' शब्द से समवैति अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

*(२) **सैनिकः।** यहां पूर्वोक्त 'सेना' शब्द से विकल्प-पक्ष में 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

पश्यति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति।४६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ ललाट-कुक्कुट्यौ २।२ (पञ्चम्यर्थे)। पश्यति क्रियापदम्।

स०-ललाटं च कुक्कुटी च ते ललाटकुक्कुट्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् ललाटकुक्कुटीभ्यां पश्यति ठक् संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां ललाटकुक्कुटीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां पश्यतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्। अत्र संज्ञाग्रहणं सेवकविशेषे भिक्षुविशेषे चार्थे नियमार्थं क्रियते।

उदा०-**(ललाटम्)** ललाटं पश्यति-लालाटिकः सेवकः। **(कुक्कुटी)** कुक्कुटीं पश्यति-कौक्कुटिको भिक्षुः (संन्यासी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (ललाटकुक्कुट्यौ) ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से (पश्यति) देखता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो। यहां सेवक-विशेष और भिक्षु-विशेष (संन्यासी) अर्थ में संज्ञा-ग्रहण किया गया है, रूढ अर्थ में नहीं।*

उदा०-(ललाट) जो स्वामी के ललाट को देखता है वह-लालाटिक सेवक।

सब अंगों में से दूर से ललाट (माथा) दिखाई देता है। यहां ललाट-दर्शन से सेवक का स्वामी के कार्यों में उपस्थित न होना लक्षित किया गया है। जो सेवक स्वामी के कार्यों में उपस्थित नहीं होता है, दूर से स्वामी के ललाट को देखकर इधर-उधर हो जाता है वह 'लालाटिक' सेवक कहाता है।

*(**कुक्कुटी**) जो कक्कुटी (मुर्गी) को देखता है वह-कौक्कुटिक भिक्षु (संन्यासी)।*

यहां कुक्कुटी शब्द से कुक्कुटी का बैठना अभिप्रेत है, अर्थात् जितने स्थान में कुक्कुटी बैठती है उतने स्थान पर ही चलते समय जो अपनी दृष्टि को संयमित रखता है, इधर-उधर नहीं देखता है वह कौक्कुटिक संन्यासी कहाता है।

*सिद्धि-**लालाटिकः**। ललाट+अम्+ठक्। ललाट्+इक। ललाटिक+सु। लालाटिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'ललाट' शब्द से संज्ञाविशेष (सेवक) अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौक्कुटिकः**।*

धर्म्य-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) तस्य धर्म्यम्।४७।

प०वि०-तस्य ६।१ धर्म्यम् १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् धर्म्यं ठक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

धर्मः=अनुवृत्त आचारः। धर्मादनपेतम्=धर्म्यम्। न्याय्यम्, आचार-युक्तमित्यर्थः। **'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते'** (४।४।९२) इति यत् प्रत्ययः।

उदा०-शुल्कशालाया धर्म्यम्-शौल्कशालिकम्। आकरिकम्। आपणिकम्। गौल्मिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (धर्म्यम्) न्याय्य अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*धर्म=अनुवृत्त आचार। धर्म से जो पृथक् न हो वह धर्म्य=न्याय्य, आचारयुक्त। 'धर्म्य' शब्द में **'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते'** (४।४।९२) से अनपेत (अदूर) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है।*

उदा०-शुल्कशाला का जो धर्म्य है वह-शौल्कशालिक। आकर (खजाना) का जो धर्म्य है वह-आकरिक। आपण (दुकान) का जो धर्म्य है वह-आपणिक। गुल्म (जंगल) का जो धर्म्य वह-गौल्मिक।

सिद्धि-शौल्कशालिकम्। *शुल्कशाला+ङस्+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्कशालिक+सु। शौल्कशालिकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से धर्म्य=न्याय्य (उचित देय) है अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आकरिकम्** आदि।*

अण्—

(२) अण् महिष्यादिभ्यः।४८।

प०वि०-अण् १।१ महिषी-आदिभ्यः ५।३।

स०-महिषी आदिर्येषां ते महिष्यादयः, तेभ्यः-महिष्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, धर्म्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य महिष्यादिभ्यो धर्म्यम् अण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो महिष्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-महिष्या धर्म्यम्-माहिषम्। प्राजावतम् इत्यादिकम्।

महिषी। प्रजावती। प्रलेपिका। विलेपिका। अनुलेपिका। पुरोहित। मणिपाली। अनुचारक। होतृ। यजमान। इति महिष्यादयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (महिष्यादिभ्यः) महिषी आदि प्रातिपदिकों से (धर्म्यम्) धर्मयुक्त आचार अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-महिषी (रानी) का जो धर्म्य=धर्मयुक्त आचार है वह-माहिष। प्रजावती का जो धर्म्य है वह-प्राजावत इत्यादि।

सिद्धि-माहिषम्। *महिषी+ङस्+अण्। माहिष्+अ। माहिष+सु। माहिषम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'महिषी' शब्द से धर्म्य अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्राजावतम्** आदि।*

अञ्–

(३) ऋतोऽञ् ।४६।

प०वि०–ऋतः ५ ।१ अञ् ।

अनु०–तस्य, धर्म्यम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य ऋतो धर्म्यम् अञ् ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् ऋकारान्तात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–पोतुर्धर्म्यम्–पौत्रम् । उद्गातुर्धर्म्यम्–औद्गात्रम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिक से (धर्म्यम्) धर्मयुक्त आचार अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–पोता (ब्रह्मा) का जो धर्म्य=धर्मयुक्त आचार है वह–पौत्र। उद्गाता ऋत्विक् का जो धर्म्य है वह–औद्गात्र।

सिद्धि–पौत्रम्। *पोतृ+ङस्+अञ्। पौतृ+अ। पौत्र+सु। पौत्रम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, ऋकारान्त 'पोतृ' शब्द से धर्म्य अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और 'इको यणचि' (६।१।७६) से अंग के ऋकार को यण्-आदेश (र्) होता है। ऐसे ही–**औद्गात्रम्।***

अवक्रय-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) अवक्रयः ।५०।

प०वि०–अवक्रयः १ ।१ ।

अनु०–तस्य, ठक् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् अवक्रयष्ठक् ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवक्रय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति ।

"वाणिज्यार्थं तैलधान्यादिकं देशान्तरं नयताऽस्मिन् शुल्कस्थाने प्रतिभारमेतावद् देयमिति तद् देशाधिपतिना यत् कल्पितं सोऽवक्रयः पिण्डक

इत्युच्यते" (पदमञ्जरी)। ननु अवक्रयोऽपि धर्म्यमेव ? नैतदस्ति-लोकपीडया धर्मातिक्रमेणापि अवक्रयो भवति।

उदा०-शुल्कशालाया अवक्रयः-शौल्कशालिकः। आकरिकः। आपरिकः। गौल्मिकः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (अवक्रयः) कर-प्रदान अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।

वाणिज्य के लिये तैल, धान्य आदि द्रव्य देशान्तर में ले जानेवाले व्यापारी को इस शुल्क-स्थान (चुंगी) में प्रति-मण इतना कर (टैक्स) देना है, जो कि उस देश के राजा द्वारा निश्चित किया गया है वह राशि अवक्रय (पिण्डक) कहाती है। यहां अपना द्रव्य देकर ही अपना द्रव्य स्वीकार्य होता है, इसलिये यह 'अवक्रय' कहाता है। अवक्रय भी धर्म्य ही है ? नहीं लोक-पीड़ा की भावना से एवं धर्म के अतिक्रमण से भी 'अवक्रय' होता है अतः अवक्रय और धर्म्य अर्थ पृथक्-पृथक् हैं।

उदा०-शुल्कशाला का जो अवक्रय है वह-शौल्कशालिक। आकर (खज़ाना) को जो अवक्रय है वह-आकरिक। आपण (दुकान) का जो अवक्रय है वह-आपणिक। गुल्म (जंगल) का जो अवक्रय है वह-गौल्मिक।

__सिद्धि-शौल्कशालिकः।__ यहां षष्ठी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से अवक्रय अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-__आकरिकः__ आदि।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)- {पण्यम्}

(१) तदस्य पण्यम्।५१।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ पण्यम् १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकात् अस्य ठक् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति। पणितुमर्हम्-पण्यम्।

उदा०-अपूपाः पण्यमस्य-आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि पण्य=कोई व्यवहार्य द्रव्य हो।*

उदा०-अपूप (मालपूये) हैं पण्य इसके यह-आपूपिक। शष्कुलि (पूरी) हैं पण्य इसकी यह-शाष्कुलिक। मोदक (लड्डू) हैं पण्य इसके यह मौदकिक।

सिद्धि-आपूपिकः। *अपूप+जस्+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ (पण्यवाची) 'अपूप' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ठञ्– **{पण्यम्}**

(२) लवणाट्ठञ्।५२।

प०वि०-लवणात् ५।१ ठञ् १।१।

अनु०-तद्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् लवणाद् अस्य ठञ् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाल्लवण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-लवणं पण्यमस्य-लावणिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (लवणात्) लवण प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पण्य हो।*

उदा०-लवण (नमक) है पण्य इसका यह-लावणिक (नमक का व्यापारी)।

सिद्धि-लावणिकः। *लवण+सु+ठञ्। लावण्+इक। लावणिक+सु। लावणिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'लवण' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**लावणिकः।** यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है।*

ष्ठन्– **{पण्यम्}**

(३) किशरादिभ्यष्ठन्।५३।

प०वि०-किशर-आदिभ्यः ५।३ ष्ठन् १।१।

स०-किशर आदिर्येषां ते किशरादयः, तेभ्यः-किशरादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् किशरादिभ्योऽस्य ष्ठन् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः किशरादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति। किशरादयः शब्दा गन्धविशेषवाचकाः सन्ति।

उदा०-किशरं पण्यमस्य-किशरिकः। स्त्री चेत्-किशरिकी। नरदं पण्यमस्य-नरदिकः। स्त्री चेत्-नरदिकी इत्यादिकम्।

किशर। नरद। नलद। सुमङ्गल। तगर। गुग्गुलु। उशीर। हरिद्रा। हरिद्रायणी। इति किशारादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (किशरादिभ्यः) किशर-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह पण्य हो। किशर आदि शब्द गन्धविशेष के वाचक हैं।*

उदा०-किशर (गन्धविशेष) है पण्य इसका यह-किशरिक। यदि स्त्री हो तो-किशरिकी। नरद (गन्धविशेष) है पण्य इसका यह-नरदिक। यदि स्त्री हो तो-नरदिकी।

सिद्धि-किशरिकः। *किशर+सु+ष्ठन्। किशर्+इक। किशरिक+सु। किशरिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'किशर' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**किशरिकी**। प्रत्यय के नित् होने से '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**किशरिकः**। ऐसे ही-**नरदिकः, नरदिकी** आदि।*

विशेषः *किशर आदि गन्धद्रव्यों के व्यापारी महाजनों को 'गान्धी' कहते हैं।*

ष्ठन्-विकल्पः- {**पण्यम्**}

(४) शलालुनोऽन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-शलालुनः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, पण्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शलालुनोऽस्यान्यतरस्यां ष्ठन् पण्यम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् शलालु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति। यत् प्रथमासमर्थं पण्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-शलालु पण्यमस्य-शलालुकः (ष्ठन्)। स्त्री चेत्-शलालुकी। शालालुकः (ठक्)। स्त्री चेत्-शलालुकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शलालुनः) शलालु प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (पण्यम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह पण्य हो।*

उदा०-शलालु (देवदार का सुगन्धित पुष्प) है पण्य इसका यह-शलालुक (ष्ठन्)। यदि स्त्री हो तो शलालुकी। ठक्-पक्ष में-शलालुक। यदि स्त्री हो तो शलालुकी।

*सिद्धि-(१) **शलालुकः।** शलालु+सु+ष्ठन्। शलालु+क। शलालुक+सु। शलालुकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, पण्यवाची 'शलालु' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान 'क्' आदेश होता है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**शलालुकी।***

*(२) **शलालुकः।** यहां 'शलालु' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**शलालुकी।***

यथाविहितम् (ठक्)- {शिल्पम्=कौशलम्}

(५) शिल्पम्।५५।

वि०-शिल्पम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक्, शिल्पम्।

अर्थः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शिल्पं चेत् तद् भवति। शिल्पम्=कौशलमित्यर्थः।

उदा०-मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य-मार्दङ्गिकः। पाणविकः। वैणिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शिल्पम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शिल्प=कौशल हो।*

उदा०-मृदङ्ग (मुरज) बजाना शिल्प=कौशल है इसका यह-मार्दङ्गिक। पणव (छोटा ढोल) बजाना शिल्प है इसका यह-पाणविक। वीणा (बीन) बजाना शिल्प है इसका यह-वैणिक।

सिद्धि-मार्दङ्गिकः। मृदङ्ग+सु+ठक्। मार्दङ्ग्+इक। मार्दङ्गिक+सु। मार्दङ्गिकः।

यहां प्रथमा-समर्थ, शिल्पवाची 'मृदङ्ग' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-पाणविकः, वैणिकः।

अण्-विकल्पः- {शिल्पम्=कौशलम्}

(६) मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०-मड्डुक-झर्झरात् ५।१ अण् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-मड्डुकं च झर्झरं च एतयोः समाहारो मड्डुकझर्झरम्, तस्मात्-मड्डुकझर्झरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत् अस्य, शिल्पम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मड्डुकझर्झराभ्याम् अस्यान्तरस्याम् अण्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां मड्डुकझर्झराभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शिल्पं चेत् तद् भवति।

उदा०-(मड्डुकम्) मड्डुकवादनं शिल्पमस्य-माड्डुकः (अण्)। माड्डुकिकः (ठक्)। **(झर्झरम्)** झर्झरवादनं शिल्पमस्य-झार्झरः (अण्)। झार्झरिकः (ठक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मड्डुकझर्झराभ्याम्) मड्डुक, झर्झर प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शिल्पम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शिल्प हो।*

*उदा०-**(मड्डुक)** मड्डुक (डमरू) बजाना शिल्प है इसका यह-माड्डुक (अण्)। माड्डुकिक (ठक्)। **(झर्झर)** झर्झर (झांझ) बजाना शिल्प है इसका यह-झार्झर (अण्)। झार्झरिक (ठक्)।*

सिद्धि-(१) माड्डुकः । मड्डुक+सु+अण् । माड्डुक्+अ । माड्डुक+सु । माड्डुकः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, शिल्पवाची 'मड्डुक' शब्द अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) माड्डुकिकः । यहां पूर्वोक्त 'मड्डुक' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-झार्झरः, झार्झरिकः ।

यथाविहितम् (ठक्)- {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(७) प्रहरणम् ।५७।

वि०-प्रहरणम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक् प्रहरणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति, प्रह्रियतेऽनेनेति प्रहरणम्=आयुधमुच्यते।

उदा०-असिः प्रहरणमस्य-आसिकः । प्रासिकः । चाक्रिकः । धानुष्कः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण= शस्त्र हो।*

उदा०-असि (तलवार) है प्रहरण इसका यह-आसिक। प्रास (भाला) है प्रहरण इसका यह-प्रासिक। चक्र है प्रहरण इसका यह-चाक्रिक। धनुष् है प्रहरण इसका यह-धानुष्क।

सिद्धि-(१) आसिकः । असि+सु+ठक् । आस्+इक । आसिक+सु । आसिकः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणवाची 'असि' शब्द से अस्य (उसका) अर्थ में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-प्रासिकः, चाक्रिकः ।

(२) धानुष्कः । धनुर्+सु+ठक् । धानुः+क । धानुष्+क । धानुष्कः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरण विशेषवाची 'धनुः' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है। 'इणः षः' (८।३।३९) से विसर्जनीय को षत्व होता है।

ठञ्+ठक्– {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(८) परश्वधाट्ठञ् च।५८।

प०वि०–परश्वधात् ५।१ ठञ् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, अस्य, ठक्, प्रहरणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् परश्वधाद् अस्य ठञ् ठक् च प्रहरणम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् परश्वध-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् ठक् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति।

उदा०–परश्वधः प्रहरणमस्य-पारश्वधिकः (ठञ्)। पारश्वधिकः (ठक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (परश्वधात्) परश्वध प्रातिपदिक (अस्य) इसका अर्थ में (ठञ्) ठञ् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-परश्वध (कुठार) है प्रहरण=हथियार इसका यह-पारश्वधिक (ठञ्)। पारश्वधिक (ठक्)।

सिद्धि-पारश्वधिकः। *परश्वध+सु+ठञ्। पारश्वध्+इक। पारश्वधिक+सु। पारश्वधिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरण-विशेषवाची 'परश्वध' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पारश्वधिकः**। ठक्-प्रत्यय के पक्ष में 'कितः' (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है-पारश्वधिकः। ठञ् और ठक् प्रत्ययान्त पद में केवल उपर्युक्त स्वर का अन्तर होता है।*

ईकक्– {प्रहरणम्=शस्त्रम्}

(९) शक्तियष्ट्योरीकक्।५९।

प०वि०–शक्ति-यष्ट्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ईकक् १।१।

स०–शक्तिश्च यष्टिश्च ते शक्तियष्टी, तयोः-शक्तियष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, प्रहरणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शक्तियष्टिभ्याम् अस्य ईकक् प्रहरणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां शक्तियष्टिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ईकक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रहरणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**शक्तिः**) शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः। (**यष्टिः**) यष्टिः प्रहरणमस्य-याष्टीकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शक्तियष्ट्योः) शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (ईकक्) ईकक् प्रत्यय होता है (प्रहरणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रहरण=हथियार हो।*

*उदा०-(**शक्ति**) शक्ति=भाला है प्रहरण इसका यह-शाक्तीक। (**यष्टि**) यष्टि=लाठी है प्रहरण इसका यह-याष्टीक।*

*सिद्धि-**शाक्तीकः**। शक्ति+सु+ईकक्। शाक्त्+ईक। शाक्तीक+सु। शाक्तीकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रहरणविशेषवाची 'शक्ति' शब्द से अस्य (इसका) अर्थ में इस सूत्र से 'ईकक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**याष्टीकः**।*

यथाविहितम् (ठक्)- {मतिः=बुद्धिः}

(१०) अस्तिनास्तिदिष्टम् मतिः।६०।

प०वि०-अस्ति-नास्ति-दिष्टम् १।१ (पञ्चम्यर्थे) मतिः १।१।

स०-अस्तिश्च नास्तिश्च दिष्टं च एतेषां समाहारोऽस्तिनास्तिदिष्टम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अस्तिनास्तिदिष्टेभ्योऽस्य ठक् मतिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽस्तिनास्तिदिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं मतिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-(**अस्ति**) परलोकोऽस्तीति मतिरस्य-आस्तिकः। (**नास्ति**) परलोको नास्तीति मतिरस्य-नास्तिकः। (**दिष्टम्**) दिष्टम्=दैवमस्तीति मतिरस्य-दैष्टिकः। अत्र अस्तिनास्तिशब्दौ निपातौ वर्तेते, न क्रियापदे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अस्तिनास्तिदिष्टम्) अस्ति, नास्ति, दिष्ट प्रातिपदिकों से (अस्य) इसकी अर्थ में (ठक्) यथा विहित ठक् प्रत्यय होता है (मतिः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह मति-बुद्धि हो।*

*उदा०-**(अस्ति)** परलोक है, ऐसी मति है, इसकी यह-आस्तिक। **(नास्ति)** परलोक नहीं है, ऐसी मति है इसकी यह-नास्तिक। **(दिष्ट)** दैव=भाग्य है ऐसी मति है इसकी यह-दैष्टिक। यहां अस्ति, नास्ति निपात हैं, तिङन्त पद नहीं।*

सिद्धि-अस्ति+सु+ठक्। आस्त्+इक। आस्तिक+सु। आस्तिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ, 'अस्ति' शब्द से अस्य अर्थ में तथा मति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**नास्तिकः, दैष्टिकः।***

यथाविहितम् (ठक्)- {शीलम्=स्वभावः}

(११) शीलम्।६१।

वि०-शीलम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक् शीलम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शीलं चेत् तद् भवति। शीलम्=स्वभावः।

उदा०-अपूपभक्षणं शीलमस्य-आपूपिकः। शाष्कुलिकः। मौदकिकः। भक्षणक्रिया तद्विशेषणं च शीलं तद्धितवृत्तावन्तर्भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (शीलम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह शील=स्वभाव हो।*

उदा०-अपूपभक्षण (पूड़े खाना) शील है इसका यह-आपूपिक। शष्कुलि-भक्षण (पूरी खाना) शील है इसका यह-शाष्कुलिक। मोदक-भक्षण (लड्डू खाना) शील है इसका यह-मौदकिक। भक्षण-क्रिया और उसके विशेषण 'शील' का तद्धितवृत्ति में अन्तर्भाव हो जाता है।

*सिद्धि-**आपूपिकः।** अपूप+सु+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अपूप' शब्द से अस्य अर्थ में तथा शील अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकः, मौदकिकः।***

णः–

{शीलम्=स्वभावः}

(१२) छत्रादिभ्यो णः।६२।

प०वि०–छत्रादिभ्यः ५।३ णः १।१।

स०–छत्रम् आदिर्येषां ते छत्रादयः, तेभ्यः–छत्रादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, शीलम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् छत्रादिभ्योऽस्य णः शीलम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यश्छत्रादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे णः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं शीलं चेत् तद् भवति।

उदा०–छत्रमिव शीलमस्य–छात्रः। बुभुक्षा शीलमस्य–बौभुक्षः, इत्यादिकम्।

छत्र। बुभुक्षा। शिक्षा। पुरोह। स्था। चुरा। उपस्थान। ऋषि। कर्मन्। विश्वधा। तपस्। सत्य। अनृत। शिबिका। इति छत्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्) प्रथमा–समर्थ (छत्रादिभ्यः) छत्र–आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) इसका अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है (शीलम्) जो प्रथमा–समर्थ है यदि वह शील हो।*

उदा०–छत्र (गुरु) के समान शील है इसका यह–छात्र (शिष्य)। बुभुक्षा=खाने की इच्छा है स्वभाव इसका यह–बौभुक्ष।

सिद्धि–छात्रः। छत्र+सु+ण। छात्र्+अ। छात्र+सु। छात्रः।

*यहां प्रथमा–समर्थ 'छत्र' शब्द से अस्य अर्थ में तथा शील अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**बौभुक्षः** आदि।*

विशेषः *(१) काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'छात्र' शब्द की व्याख्या में लिखा है– "**छादनादावरणाच्छत्रम् गुरुकार्येष्ववहितस्तच्छिद्रावरणप्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्रः।**" अर्थात् 'छत्र' छादना (आवरण) के कारण छत्र कहाता है। गुरुजन के कार्यों में लगा हुआ है एवं उसके छिद्रों (दोष) के आवरण में प्रवृत्त हुआ छत्रशील शिष्य 'छात्र' कहाता है।*

*(२) महाभाष्यकार पतञ्जलि यहां 'छात्र' शब्द की व्याख्या में लिखते हैं– "**किं यस्यच्छत्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चातः ? राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः। छत्रमिव छत्रम्। गुरुश्छत्रम्। गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण च***

गुरुश्छत्रवत् परिपाल्यः।" अर्थात् क्या छत्र धारण करना जिसका शील (स्वभाव) है वह-छात्र कहाता है ? इससे क्या दोष आता है ? राजपुरुष अर्थ में यह प्रत्यय प्राप्त होता है। अच्छा तो यहां उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। छत्र के समान जो है वह-छत्र। गुरु छत्र=छत्र के समान होता है। गुरु अपने शिष्य को छत्र के समान आच्छादित रखे और शिष्य गुरु का छत्र के समान परिपालन करे।

यहां महाभाष्यकार पतञ्जलि का उक्त अर्थ श्रेष्ठ होने से ग्राह्य है।

यथाविहितम् (ठक्)–

(१३) कर्माध्ययने वृत्तम्।६३।

प०वि०-कर्म १।१ अध्ययने ७।१ वृत्तम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य ठक्, अध्ययने वृत्तं कर्म।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अध्ययने वृत्तम् अन्यत् कर्म चेत् तद् भवति।

उदा०-एकमन्यद् अध्ययने वृत्तं कर्मास्य-ऐकान्यिकः। द्वैयन्यिकः। त्रैयन्यिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (अध्ययने वृत्तं कर्म) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वेदादि के अध्ययन में वृत्त=उत्पन्न हुआ अन्य कर्म (क्रिया) हो।*

उदा०-जिस छात्र का परीक्षाकाल में पाठ करते समय एकान्य-अन्य=एक अपपाठ रूप स्खलन (गलती) हो गया है वह-ऐकान्यिक। यहां अन्य शब्द अनीप्सित अर्थ का द्योतक है। द्व्यन्य-दो अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हो गये हैं इसके यह-द्वैयन्यिक। त्र्यन्य-अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हो गये हैं इसके यह-त्रैयन्यिक।

*सिद्धि-(१) **ऐकान्यिकः।** एकान्य+सु+ठक्। ऐकान्य्+इक। ऐकान्यिक+सु। ऐकान्यिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'एकान्य' शब्द से अस्य अर्थ में अध्ययन में उत्पन्न अपपाठ रूप कर्म अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **द्वैयन्यिकः।** यहां **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से 'ऐच्' आगम होता है, आदिवृद्धि नहीं होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रैयन्यिकः।***

ठच्–

(२) बह्वच्पूर्वपदाट्ठच्।६४।

प०वि०–बह्वच्-पूर्वपदात् ५।१ ठच् १।१।

स०–बहवोऽचो यस्मिँस्तद् बह्वच्, बह्वच् पूर्वपदं यस्य तद् बह्वच्पूर्वपदम्, तस्मात्-बह्वच्पूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, कर्म, अध्ययने, वृत्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् बह्वच्पूर्वपदाद् अस्य ठच् अध्ययने वृत्तं कर्म।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् बह्वच्-पूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अध्ययने वृत्तम् अन्यत् कर्म चेत् तद् भवति।

उदा०–द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य-द्वादशान्यिकः। त्रयोदशान्यिकः। चतुर्दशान्यिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (बह्वच्-पूर्वपदात्) बहुत अच् हैं जिसमें उस पूर्वपदवाले प्रातिपदिक से (अस्य) इसका अर्थ में (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है (अध्ययने वृत्तं कर्म) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वेदादि के अध्ययन में वृत्त=उत्पन्न हुआ अन्य कर्म (क्रिया) हो।*

उदा०–द्वादशान्य=बारह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह–द्वादशान्यिक। त्रयोदशान्य=तेरह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह-त्रयोदशान्यिक। चतुर्दशान्य=चौदह अन्य=अपपाठ रूप स्खलन हैं इसके यह–चतुर्दशान्यिक।

सिद्धि-द्वादशान्यिकः। *द्वादशान्य+जस्+ठच्। द्वादशान्य्+इक्। द्वादशान्यिक+सु। द्वादशान्यिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, बह्वच् पूर्वपदवाले 'द्वादशान्य' शब्द से अस्य अर्थ में अध्ययन में उत्पन्न अपपाठ रूप कर्म अभिधेय में इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**त्रयोदशान्यिकः, चतुर्दशान्यिकः।***

अस्मै (चतुर्थी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक)– {हितं भक्षणम्}

(१) हितं भक्षाः।६५।

प०वि०–हितम् १।१ भक्षाः १।३।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते। तद् अस्मै इति चाग्रिमसूत्रादनुकृष्यते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् हितम् अस्मै ठक्, भक्षाः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं हितं चेत्, यच्च हितं भक्षाश्चेत् तद् भवति।

उदा०-अपूपभक्षणं हितमस्मै-आपूपिकः। शाष्कुलिकिकः। मौदकिकः। हितार्थो भक्षणक्रिया च तद्धितवृत्तावन्तर्भवति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (हितम्) जो प्रथमा-समर्थ है वह हित=हितकारी हो (भक्षाः) और जो हितकारी है भक्ष=खाना हो।*

उदा०-अपूपभक्षण (पूड़े खाना) इसके लिये हितकारी है यह-आपूपिक। शष्कुलिभक्षण (पूरी खाना) इसके लिये हितकारी है यह-शाष्कुलिक। मोदकभक्षण (लड्डू खाना) इसके लिये हितकारी है यह-मौदकिकः। हित-अर्थ और भक्षणक्रिया का तद्धितवृत्ति में अन्तर्भाव हो जाता है।

सिद्धि-आपूपिकः। *अपूप+सु+ठक्। आपूप्+इक। आपूपिक+सु। आपूपिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, 'अपूप' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा हित (भक्षण) अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकः, मौदकिकः।***

विशेषः *(१) यहां काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'तद्, अस्य' पदों की पूर्ववत् अनुवृत्ति मानकर सूत्रार्थ किया है। वा०-**'हितयोगे चतुर्थी वक्तव्या'** (२।३।१३) से 'हित' शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। अतः उन्होंने 'अस्य' इस षष्ठी-विभक्ति का 'अस्मै' इस चतुर्थी विभक्ति में विपरिणाम स्वीकार किया है।*

*(२) महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यहां इस प्रकार से सूत्रपाठ स्वीकार किया है-**'हितं भक्षास्तदस्मै'** तत्पश्चात्- **'दीयते नियुक्तम्'** (४।४।६६)। ऐसा सूत्रपाठ करने पर उक्त विभक्ति-विपरिणाम की आवश्यकता नहीं रहती है। अतः यहां महाभाष्यकार को प्रमाण मानकर इस सूत्र का अर्थ किया गया है।*

यथाविहितम् (ठक्)- {नियुक्तं दीयते}

(१) तदस्मै दीयते नियुक्तम्।६६।

प०वि०-तत् १।१ अस्मै ४।१ दीयते क्रियापदम्, नियुक्तम् २।१ (क्रियाविशेषणम्)।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तद् अस्मै ठक्, नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति। नियोगेन=अव्यभिचारेण दीयते इत्यर्थः।

उदा०-अग्रे भोजनमस्मै नियुक्तं दीयते-आग्रभोजनिकः। आपूपिकः। शाष्कुलिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।*

उदा०-अग्र भोजन (सर्वप्रथम भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-आग्रभोजनिक। अपूप भोजन (पूड़ों का भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-आपूपिक। शष्कुलि भोजन (पूरियों का भोजन) इसके लिये अवश्य दिया जाता है यह-शाष्कुलिक।

*जब-जब घर में उत्तम भोजन बनता है तब-तब जिस श्रेष्ठ विद्वान् को अग्रभोजन कराया जाता है वह आग्रभोजनिक कहाता है। ऐसे ही-**आपूपिक** आदि का भी अभिप्राय समझें।*

***सिद्धि-आग्रभोजनिकः।** आग्रभोजन+सु+ठक्। आग्भोज्+इक। आग्रभोजनिक+सु। आग्रभोजनिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'अग्रभोजन' शब्द से 'अस्मै' अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' 'अवश्य दिया जाता है' इस अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-आपूपिकः, शाष्कुलिकः।

टिठन्- **{नियुक्तं दीयते}**

(२) श्राणामांसौदनाट्टिठन्।६७।

प०वि०-श्राणा-मांसौदनात् ५।१ टिठन् १।१।

स०-मांसं च ओदनश्च एतयोः समाहारो मांसौदनम्। श्राणा च मांसौदनं च एतयोः समाहारः श्राणामांसौदनम्, तस्मात्-श्राणामांसौदनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्मै, दीयते, नियुक्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् श्राणामांसौदनाभ्याम् अस्मै टिठन्, नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां श्राणामांसौदनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे टिठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-(श्राणा) श्राणाऽस्मै नियुक्तं दीयते-श्राणिकः। स्त्री चेत्-श्राणिकी। **(मांसौदनम्)** मांसौदनमस्मै नियुक्तं दीयते-मांसौदनिकः।

केचिद् विगृहीतादपि प्रत्ययमिच्छन्ति-मांसिकः। ओदनिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (श्राणामांसौदनाभ्याम्) श्राणा, मांसौदन प्रातिपदिकों से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (टिठन्) टिठन् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।*

*उदा०-**(श्राणा)** श्राणा (भाजी) इसके लिये अवश्य दी जाती है यह-श्राणिक। यदि स्त्री हो तो-श्राणिकी। **(मांसौदन)** मांस और ओदन (भात) इसे अवश्य दिया जाता है यह-मांसौदनिक। यदि स्त्री हो तो-मांसौदनिकी।*

कई वैयाकरण यहां विगृहीत से भी प्रत्यय चाहते हैं-मांस इसे अवश्य दिया जाता है यह-मांसिक। ओदन इसे अवश्य दिया जाता है यह-ओदनिक।

सिद्धि-श्राणिकः। *श्राणा+सु+टिठन्। श्राण्+इक। श्राणिक+सु। श्राणिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'श्राणा' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' अभिधेय में इस सूत्र से टिठन् प्रत्यय है। प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**श्राणिकी।** ऐसे ही-**मांसौदनिकः, मांसौदनिकी** आदि।*

अण्-विकल्पः-

(३) भक्तादणन्यतरस्याम्।६८।

प०वि०-भक्तात् ५।१ अण् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्मै, दीयते, नियुक्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् भक्ताद् अस्मै अन्यतरस्याम् अण् नियुक्तं दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् भक्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मै इति चतुर्थ्यर्थे विकल्पेनाऽण् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठक् प्रत्ययो भवति। यत् प्रथमासमर्थं नियुक्तं दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-भक्तम् अस्मै नियुक्तं दीयते-भाक्तं गुरुकुलम् (अण्)। भाक्तिकं गुरुकुलम् (ठक्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (भक्तात्) भक्त प्रातिपदिक से (अस्मै) इसके लिये अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अण्) अण् प्रत्यय होता है और पक्ष में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (नियुक्तं दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है, हो।

उदा०-भक्त (अन्न) इसके लिये नियुक्त (अवश्य) दिया जाता है यह-भाक्त गुरुकुल (अण्)। भाक्तिक गुरुकुल (ठक्)। अभिप्राय यह है कि जब भक्त (अन्न) का दान किया जाता है तब गुरुकुल को अवश्य दिया जाता है।

सिद्धि-(१) भाक्तम्। भक्त+सु+अण्। भाक्त्+अ। भाक्त+सु। भाक्तम्।

यहां प्रथमा-समर्थ 'भक्त' शब्द से अस्मै अर्थ में तथा 'नियुक्तं दीयते' अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) भाक्तिकम्। यहां पूर्वोक्त 'भक्त' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

नियुक्त-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) तत्र नियुक्तः।६६।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, नियुक्तः १।१।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकाद् नियुक्तष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् नियुक्त इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति। नियुक्तः=अधिकृतः, व्यापारित इत्यर्थः।

उदा०-शुल्कशालायां नियुक्तः-शौल्कशालिकः। आकरिकः। आपणिकः। गौल्मिकः। दौवारिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (नियुक्तः) अधिकृत/ लगाया हुआ अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।

उदा०-शुल्कशाला (चुंगी) में लगाया हुआ-शौल्कशालिक। आकर (खजाना) में लगाया हुआ-आकरिक। आपण (दुकान) में लगाया हुआ-आपणिक। गुल्म (जंगल) में लगाया हुआ-गौल्मिक। द्वार पर लगाया हुआ-दौवारिक।

सिद्धि-(१) शौल्कशालिकः। *शुल्कशाला+ङि+ठक्। शौल्कशाल्+इक। शौल्कशालिक+सु। शौल्कशालिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'शुल्कशाला' शब्द से नियुक्त अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आकरिकः** आदि।*

(२) दौवारिकः। *यहां 'द्वार' शब्द से पूर्ववत् 'ठक्' प्रत्यय और '**द्वारादीनां च**' (७।३।४) से अंग को आदिवृद्धि का प्रतिषेध तथा ऐच् आगम होता है।*

यथाविहितम् (ठक्)–

(२) अगारान्ताट्ठन्।७०।

प०वि०-अगारान्तात् ५।१ ठन् १।१।

स०-अगारम् अन्ते यस्य तद् अगारान्ताम्, तस्मात्-अगारान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, नियुक्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र अगारान्ताद् नियुक्तष्ठन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अगारान्तात् प्रातिपदिकाद् नियुक्त इत्यस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-देवागारे नियुक्तः-देवागारिकः। कोष्ठागारिकः। भाण्डागारिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अगारान्तात्) अगार जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (नियुक्तः) लगाया हुआ अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-*देवागार=देवालय में नियुक्त किया हुआ-देवागारिक (पुरोहित)। कोष्ठागार (मालगोदाम) में नियुक्त किया हुआ-कोष्ठागारिक। भाण्डागार (मालगोदाम) में नियुक्त किया हुआ-भाण्डागारिक (भण्डारी)।*

सिद्धि-देवागारिकः। *देवागार+ङि+ठन्। देवागार्+इक। देवागारिक+सु। देवागारिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ अगारान्त 'देवागार' शब्द से नियुक्त अर्थ में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कोष्ठागारिकः, भाण्डागारिकः।***

अध्यायि-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

अध्यायिन्यदेशकालात्।७१।

प०वि०–अध्यायिनि ७।१ अदेशकालात् ५।१।

स०–देशश्च कालश्च एतयोः समाहारो देशकालम्, न देशकालमिति अदेशकालम्, तस्मात्-अदेशकालात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र अदेशकालाद् यथाविहितं ठक् अध्यायिनि।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अदेशवाचिनोऽकालवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् ठक् प्रत्ययो भवति, अध्यायिनि अभिधेये।

अध्ययनस्य यौ देशकालौ शास्त्रेण प्रतिषिद्धौ तावत्रादेशकालावित्युच्येते, ताभ्यामिदं प्रत्ययविधानं क्रियते।

उदा०–**(अदेशः)** श्मशानेऽधीते-श्माशानिकः। चतुष्पथेऽधीते-चातुष्पथिकः। **(अकालः)** चतुर्दश्यामधीते-चातुर्दशिकः। अमावास्यायामधीते-आमावास्यिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (अदेशकालात्) अदेशवाची और अकालवाची प्रातिपदिक से (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है (अध्यायिनि) यदि वहां अध्यायी (पाठक) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(अदेश)** श्मशान में अध्ययन करनेवाला-श्माशानिक। चतुष्पथ (चौराहा) में अध्ययन करनेवाला-चातुष्पथिक। **(अकाल)** चतुर्दशी में अध्ययन करनेवाला-चातुर्दशिक। अमावस्या में अध्ययन करनेवाला-आमावास्यिक।*

अध्ययन के जो देश और काल शास्त्र के द्वारा प्रतिषिद्ध हैं, उन्हें यहां अदेश और अकाल नाम से कहा गया है, उनसे यह प्रत्ययविधि होती है।

सिद्धि-श्माशानिकः। *श्मशान+ङि+ठक्। श्माशान्+इक। श्माशानिक+सु। श्माशानिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, अदेशवाची 'श्मशान' शब्द से अध्यायी (पाठक) अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**चातुष्पदिकः** आदि।*

व्यवहरति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)–

(१) कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति।७२।

प०वि०–कठिनान्त-प्रस्तार-संस्थानेषु ७।३ (पञ्चम्यर्थे) व्यवहरति क्रियापदम्।

स०–कठिनम् अन्ते यस्य तत् कठिनान्तम्, कठिनान्तञ्च, प्रस्तारश्च, संस्थानं च तानि कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानानि, तेषु-कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु (बहुव्रीहिगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेभ्यो व्यवहरति ठक्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कठिनान्त-प्रस्तार-संस्थानेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्यवहरतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

व्यवहरतिरिति सम्भवति-पणिना समानार्थः, यथाऽऽह **'व्यवहृपणोः समर्थयोः'** (२।३।५७) इति। अस्ति विवादे-व्यवहारे पराजित इति। अस्ति विक्षेपे-शलाकां व्यवहरतीति। अस्ति क्रियातत्त्वे। अत्र क्रियातत्त्वात्मकस्य व्यवहारस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०–**(कठिनान्तम्)** वंशकठिने व्यवहरति-वांशकठिनिकश्चक्रचरः। वार्धकठिनिकः। **(प्रस्तारः)** प्रस्तारे व्यवहरति-प्रास्तारिकः। **(संस्थानम्)** संस्थाने व्यवहरति-सांस्थानिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु) कठिन शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से, प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से (व्यवहरति) उचित व्यवहार करता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कठिनान्त) वंशकठिन=कठिन वंश (बांस) वाले देश में जो यथोचित व्यवहार करता है, अपनी गाड़ी को ठीक-ठीक चलाता है वह-वांशकठिनिक चक्रचर (चक्रयुक्त गाड़ी से घूमनेवाला)। वर्धकठिन=कठिन वर्धी (तसमा, बाधी) वाले स्थान में जो यथोचित व्यवहार करता है वह-वार्धकठिनिकः। (प्रस्तार) फूल-पत्तों से संवारी सेज (शय्या) पर जो यथोचित व्यवहार करता है वह-प्रास्तारिक। (संस्थान) शिक्षण संस्थान में जो यथोचित व्यवहार करता है वह-सांस्थानिक।

सिद्धि-वांशकठिनिकः । वंशकठिन+ङि+ठक् । वांशकठिन्+इक । वांशकठिनिक+सु । वांशकठिनिकः ।

यहां सप्तमी-समर्थ, कठिनन्त 'वंशकठिन' शब्द से व्यवहरति' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *'व्यवहरति' शब्द अनेकार्थ है जैसे-व्यापार करता है, विवाद करता है, जूआ खेलता है किन्तु यहां 'व्यवहरति' शब्द क्रियातत्त्व (यथोचित व्यवहार) अर्थ में ग्रहण किया गया है।*

वसति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (ठक्)-

(१) निकटे वसति।७३।

प०वि०-निकटे ७।१ (पञ्चम्यर्थे) वसति क्रियापदम्।

अनु०-तत्र, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र निकटाद् वसति ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् निकट-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वसतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठक् प्रत्ययो भवति।

यस्य शास्त्रेण निकटवासो विहितस्तत्रायं प्रत्ययविधिर्भवति यथा-**'आरण्यकेन भिक्षुणा ग्रामात् क्रोशे वस्तव्यम्'** इति शास्त्रम्।

उदा०-निकटे वसति नैकटिको भिक्षुः (संन्यासी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (निकटे) निकट प्रातिपदिक से (वसति) बसता है अर्थ में (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*जिसका शास्त्र के द्वारा निकट-वास विधान किया गया है वहां यह प्रत्ययविधि होती है जैसे कि **"अरण्यवासी भिक्षुक को ग्राम से एक कोस दूर बसना चाहिये"** ऐसा शास्त्र का विधान है।*

उदा०-जो शास्त्रोक्त विधि से ग्राम के निकट बसता है वह-नैकटिक भिक्षु (संन्यासी)।

सिद्धि-नैकटिकः । यहां सप्तमी-समर्थ 'निकट' शब्द से वसति-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ष्ठल्–

(२) आवसथात् ष्ठल्।७४।

प०वि०–आवसथात् ५।१ ष्ठल् १।१।

अनु०–तत्र वसति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र आवसथाद् वसति ष्ठल्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् आवसथ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वसतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठल् प्रत्यय भवति।

उदा०–आवसथे वसति-आवसथिकः। स्त्री चेत्-आवसथिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (आवसथात्) आवसथ प्रातिपदिक से (वसति) बसता है अर्थ में (ष्ठल्) ष्ठल् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो आवसथ (घर) में बसता है वह-आवसथिक (गृहस्थ)। यदि स्त्री हो तो-आवसथिकी।

*सिद्धि-**आवसथिकः**। आवसथ+ङि+ष्ठल्। आवसथ+इक। आवसथिक+सु। आवसथिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'आवसथ' शब्द से वसति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठल्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का पूर्ववत् लोप होता है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय होता है-**आवसथिकी**। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-**आवसथिकः**।*

।। इति प्राग्वहतीयप्रत्ययार्थप्रकरणं ठगधिकारश्च समाप्तः।।

प्राग्-हितीयप्रत्ययार्थप्रकरणम्

यत्-अधिकारः–

(१) प्राग्घिताद् यत्।७५।

प०वि०–प्राक् १।१ हितात् ५।१ यत् १।१।

अन्वयः–हितात् प्राग् यत्।

अर्थः–**'तस्मै हितम्'** (५।१।५) इति वक्ष्यति, तस्माद् हित-शब्दात् प्राग् यत् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- **'तद् वहति**

रथयुगप्रासङ्गम्' (४।४।७६) इति। रथं वहति-रथ्यः। युगं वहति-युग्यः। प्रासङ्गं वहति-प्रासङ्ग्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हितात्) **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) इस सूत्र में जो 'हित' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (यत्) यत् प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे **'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्'** (४।४।७६)। रथ को जो वहन करता है वह-रथ्य (बैल)। युग (जुआ) को जो वहन करता है वह-युग्य (बैल)। प्रासङ्ग (जुआ) को जो वहन करता है वह-प्रासङ्ग। इन पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

वहति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्।७६।

प०वि०-तद् २।१ वहति क्रियापदम्, रथ-युग-प्रासङ्गम् २।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-रथश्च युगं च प्रासङ्गं च एतेषां समाहारो रथयुगप्रासङ्गम्, तत्-रथयुगप्रासङ्गम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तद् रथयुगप्रासङ्गेभ्यो वहति यत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो रथयुगप्रासङ्गेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वहतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रथम्)** रथं वहति-रथ्यो गौः। **(युगम्)** युगं वहति-युग्यो गौः। **(प्रासङ्गम्)** प्रासङ्गं वहति-प्रासङ्ग्यो गौः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (रथयुगप्रासङ्गम्) रथ, युग, प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से (वहति) वहन करता है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(रथ)** रथ को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-रथ्य बैल। **(युग)** जुआ को जो वहन करता है वह-युग्य बैल। **(प्रासङ्ग)** जुआ को जो वहन करता है वह-प्रासङ्ग्य बैल।*

***सिद्धि**-रथ्यः। रथ+अम्+यत्। रथ्+य। रथ्य+सु। रथ्यः।*

यहां द्वितीय-समर्थ 'रथ' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-युग्यः, प्रासङ्ग्यः।

यत्+ढक्–

(२) धुरो यड्ढकौ।७७।

प०वि०–धुरः ५।१ यत्-ढकौ १।२।

स०–यच्च ढक् च तौ यड्ढकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तद्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् धुरो वहति यड्ढकौ।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाद् धुर्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे यड्ढकौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(**यत्**) धुरं वहति-धुर्यः। (**ढक्**) धुरं वहति-धौरेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (धुरः) धुर् प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (यड्ढकौ) यत् और ढक् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(यत्) धुर् (जुआ) को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-धुर्य। (ढक्) धौरेय। बोझ ढोनेवाला बैल।

सिद्धि-(१) धुर्यः। धुर्+अम्+यत्। धुर्+य। धुर्य+सु। धुर्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'धुर्' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

(२) धौरेयः। धुर्+ढक्। धुर्+एय। धौर्+एय। धौरेय+सु। धौरेयः।

*यहां पूर्वोक्त द्वितीया-समर्थ 'धुर' शब्द से इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

खः–

(३) खः सर्वधुरात्।७८।

प०वि०–खः ५।१ सर्वधुरात् ५।१।

स०–सर्वा चासौ धूरिति इति सर्वधुरम्, तस्मात्-सर्वधुरात् (कर्मधारयः)। अत्र धुर्-शब्दात् **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) इति समासान्तोऽकारप्रत्ययः।

अनु०-तद्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सर्वधुराद् वहति खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् सर्वधुरात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सर्वधुरां वहति-सर्वधुरीणो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सर्वधुरात्) सर्वधुर प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-सर्वधुर को जो वहन करता है (जुड़ता है) वह-सर्वधुरीण बैल। जो बैल जुए के दोनों ओर जुड़ सकता है वह-'सर्वधुरीण' कहाता है।

सिद्धि-सर्वधुरीणः। *सर्वधुर+अम्+ख। सर्वधुर्+ईन। सर्वधुरीण+सु। सर्वधुरीणः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'सर्वधुरा' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'इन्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

आर्यभाषाः *'धुर्' शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से 'सर्वधुरायाः' ऐसा सूत्रपाठ होना चाहिये किन्तु 'सर्वधुरात्' ऐसा पुंलिङ्ग निर्देश प्रातिपदिक मात्र की अपेक्षा से किया गया है।*

प्रत्ययस्य लुक्+खः-

(४) एकधुराल्लुक् च।७६।

प०वि०-एकधुरात् ५।१ लुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-एका चासौ धूरिति एकधुरम्, तस्मात्-एकधुरात् (कर्मधारयः)। अत्र पूर्ववत् समासान्तोऽकारप्रत्ययः नपुंसकनिर्देशश्च।

अनु०-तत्, वहति, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वहति खो लुक् च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् एकधुरात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति, तस्य च लुग् भवति।

उदा०-(खः) एकधुरां वहति-एकधुरीणो गौः। (लुक्) एधुरो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (एकधुरात्) एकधुर प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है और उसका (लुक्) लोप (च) भी होता है।*

उदा०-(ख) एकधुरा को जो वहन करता है वह-एकधुरीण (बैल)। (लुक्) एकधुर बैल। जो जूए के एक ही ओर जुड़ सकता है वह बैल एकधुरीण/एकधुर कहाता है।

सिद्धि-(१) एकधुरीणः। एकधुर+अम्+ख। एकधुर्+ईन। एकधुरीण+सु। एकधुरीणः।

यहां प्रथम 'एकधुर' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है, तत्पश्चात् द्वितीया-समर्थ 'एकधुर' शब्द से वहति-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रतयय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) एकधुरः। यहां 'ख' प्रत्यय का लुक् है।

अण्–

(५) शकटादण्।८०।

प०वि०-शकटात् ५।१ अण् १।१।

अनु०-तत्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शकटाद् वहति अण्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाच्छकटात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शकटं वहति-शाकटो गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शकटात्) शकट प्रातिपदिक से (वहति) वहन करता है अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो शकट (छकड़ा) को वहन करता है अर्थात् छकड़े में जुड़ता है वह-शाकट बैल।

सिद्धि-शाकटः। शकट+अम्+अण्। शाकट्+अ। शाकट+सु। शाकटः।

यहां द्वितीय-समर्थ 'शकट' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ठक्–

(६) हलसीराट्ठक्।८१।

प०वि०-हल-सीरात् ५।१ ठक् १।१।

स०-हलं च सीरश्च एतयोः समाहारो हलसीरम्, तस्मात्-हलसीरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, वहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् हलसीराद् वहति ठक्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां हलसीराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां वहतीत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हलम्**) हलं वहति-हालिको गौः। (**सीरः**) सीरं वहति-सैरिको गौः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (हलसीरात्) हल और सीर प्रातिपदिकों से (वहति) वहन करता है अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(हल)** जो हल को वहन करता है वह-हालिक बैल। **(सीर)** जो सीर=हलविशेष को वहन करता है वह-सैरिक बैल।*

सिद्धि-हालिकः। *हल+अम्+ठक्। हाल्+इक। हालिक+सु। हालिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'हल' शब्द से वहति अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सैरिकः।***

यथाविहितम् (यत्)-

(७) संज्ञायां जन्याः।८२।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ जन्याः। ५।१।

अनु०-तत्, वहति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् जन्या वहति यत्, संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाज्जनी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-जनीं वहति-जन्या जामातुर्वयस्या, सा हि जनीम् (वधूम्) विवाहादिषु जामातृसमीपं प्रापयति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (जन्याः) जनी प्रातिपदिक से (वहति) प्राप्त कराती है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-*जो जनी (वधू) को विवाह आदि के समय जामाता के पास प्राप्त कराती है वह-जन्या। जामाता की सखी।*

*सिद्धि-**जन्या**। जनी+अम्+यत्। जन्+य। जन्य+टाप्। जन्या+सु। जन्या।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'जनी' शब्द से वहति अर्थ में और संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (७।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

विध्यति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) विध्यत्यधनुषा।८३।

प०वि०-विध्यति क्रियापदम्, अधनुषा ३।१।

स०-न धनुरिति अधनुः, तेन-अधनुषा (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् विध्यति यत्, अधनुषा।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् विध्यतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यद् विध्यति तद् धनुष्करणं न भवति।

उदा०-पादौ विध्यन्ति-पाद्याः शर्कराः। ऊरू विध्यन्ति-ऊरव्याः कण्टकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (विध्यति) बींधता है अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (अधनुषा) जो बींधता है वह यदि धनुष करण=साधन न हो।*

***उदा०**-पादों (पांव) को जो बींधती हैं वे-पाद्य शर्करा (कांकर)। ऊरु (जंघा) को जो बींधते हैं ते ऊरव्य कण्टक (कांटे)।*

*सिद्धि-(१) **पाद्याः**। पाद+औ+यत्। पाद्+य। पाद्य+टाप्। पाद्या+जस्। पाद्याः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पाद' शब्द से विध्यति-अर्थ में तथा धनुष करण को छोड़कर इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **ऊरव्याः**। यहां 'ऊरू' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय और '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लब्धृ-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) धनगणं लब्धा।८४।

प०वि०–धन-गणम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) लब्धा १।१।

स०–धनं च गणश्च एतयोः समाहारो धनगणम्, तत्–धनगणम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् धनगणाभ्यां लब्धा यत्।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां धनगणाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां लब्धा इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**धनम्**) धनं लब्धा–धन्यः। (**गणः**) गणं लब्धा–गण्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्) द्वितीया-समर्थ (धनगणम्) धन और गण प्रातिपदिकों से (लब्धा) प्राप्त करनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(धन)** धन को लब्धा=प्राप्त करनेवाला–धन्य। **(गण)** गण=समूह को लब्धा=गण्य।*

सिद्धि–धन्यः। धन+अम्+यत्। धन्+य। धन्य+सु। धन्यः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'धन' शब्द से लब्धा अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–गण्यः।*

विशेषः *'लब्धा' यहां **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से 'तृन्' (३।२।१३५) से तच्छील आदि अर्थों में 'तृन्' प्रत्यय है; तृच् नहीं। अतः इसके प्रयोग में **'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्'** (२।३।६९) से षष्ठी-विभक्ति का प्रतिषेध होने से **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) द्वितीया विभक्ति है–धनगणं लब्धा।*

णः–

(२) अन्नाण्णः।८५।

प०वि०–अन्नात् ५।१ णः १।१।

अनु०–तत्, लब्धा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अन्नाल्लब्धा णः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अन्न-शब्दात् प्रातिपदिकाल्लब्धा इत्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अन्नं लब्धा-आन्नः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (अन्नात्) अन्न प्रातिपदिक से (लब्धा) प्राप्त करनेवाला अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है।*

उदा०-अन्न को लब्धा=प्राप्त करनेवाला-आन्न।

सिद्धि-आन्नः। *अन्न+अम्+ण। आन्न्+अ। आन्न+सु। आन्नः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अन्न' शब्द से लब्धा अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

गतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) वशं गतः।८६।

प०वि०-वशम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) गतः १।१।

अनु०-तत्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वशाद् गतो यत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् वश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् गत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वशं गतः-वश्यः कामप्राप्तो विधेय इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (वशम्) वश प्रातिपदिक से (गतः) प्राप्त हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वश (इच्छा) को प्राप्त हुआ-वश्य। दूसरे की इच्छा को प्राप्त हुआ पर-इच्छानुगामी (सेवक)।

सिद्धि-वश्यः। वश+अम्+यत्। *वश्+य। वश्य+सु। वश्यः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ **'वश'** शब्द से गत (प्राप्त) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)– {दृश्यम्}

(१) पदमस्मिन् दृश्यम्।८७।

प०वि०-पदम् १।१ अस्मिन् १।१ दृश्यम् १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते, 'पदम्' इति प्रथमानिर्देशादेव प्रथमासमर्थ विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-प्रथमासमर्थात् पदाद् यत् दृश्यम्।

अर्थः-प्रथमासमर्थात् पद-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं दृश्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-पदं दृश्यम्=द्रष्टुं शक्यमस्मिन्-पद्यः कर्दमः। पद्याः पांसवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-प्रथमा-समर्थ (पदम्) पद प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (दृष्टम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह दृश्य हो।*

उदा०-पद (पांव का चिह्न) है दृश्य (देखा जा सकने योग्य) इसमें यह-पद्य कीचड़। पद्य धूल।

सिद्धि-पद्यः। *पद+सु+यत्। पद्+य। पद्य+सु। पद्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'पद' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा दृश्य अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *यहां 'पदम्' शब्द का प्रथमा-विभक्ति में निर्देश होने से प्रथमा-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथविहितम् (यत्)– {आवर्हि=उत्पाटि}

(१) मूलमस्यावर्हि।८८।

प०वि०-मूलम् १।१ अस्य ६।१ अवर्हि १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रथमासमर्थाद् मूलाद् अस्य यत् **आवर्हि**।

अर्थः-प्रथमासमर्थाद् मूल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् आवर्हि (उत्पाटि) चेत् तद् भवति।

उदा०-मूलमेषामावर्हि (उत्पाटि) ते-मूल्या माषाः। मूल्या मुद्गाः।

आर्यभाषाः अर्थ-*प्रथमा-समर्थ (मूलम्) मूल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (आवर्हि) जो प्रथमा-समर्थ यदि वह आवर्ही (उत्पाटी) हो।*

उदा०-मूल इनका आवर्ही=फाड़ने योग्य है वे मूल्य माष (उड़द)। मूल्य मुद्ग (मूंग)।

बहुत पके हुये उड़द और मूंग आदि 'मूल्य' कहाते हैं क्योंकि इनके मूल (जड़) को उखाड़े बिना उन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। काटने से इनकी फलियों की भूमि पर गिरने की सम्भावना होती है।

*सिद्धि-**मूल्यः।** मूल+सु+यत्। मूल्+य। मूल्य+सु। मूल्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'मूल' शब्द से अस्य अर्थ में तथा आवर्ही अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः आवर्ही-*यहां आङ् उपसर्ग पूर्वक **'वृहू उद्यमने'** (तु०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय है। आ+वृह्+घञ्। आ+वर्ह्+अ। आवर्ह+सु। आवर्हः (उखाड़ना)। आवर्होऽस्यास्तीति-आवर्ही। यहां **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से **'अस्यास्ति'** अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है-**आवर्ही।** यह सूत्रपाठ में 'मूलम्' (नपुंसकलिङ्ग) का विशेष होने से **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से इसे ह्रस्व हो जाता है-**आवर्हि।***

यप्रत्ययान्तं निपातनम्-

(१) संज्ञायां धेनुष्या।८६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ धेनुष्या १।१।

अर्थः-धेनुष्या इति य-प्रत्ययान्तं निपात्यते, संज्ञायां विषये।

उदा०-धेनुष्या गौः। धेनुष्यां भवते ददामि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(धेनुष्या) धेनुष्या शब्द य-प्रत्ययान्त निपातित है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

उदा०-धेनुष्या गौ। जो गाय उत्तमर्ण (साहूकार) को ऋण चुकाने के लिये दी जाती है वह-धेनुष्या कहाती है। यह पीतदुग्धा (बाखड़ी) गाय 'धेनुष्या' संज्ञा से प्रसिद्ध है।

सिद्धि-धेनुष्या। धेनु+सु+य। धेनु+षुक्+य। धेनु+ष्+य। धेनुष्य+टाप्। धेनुष्या+सु। धेनुष्या।

यहां प्रथमा-समर्थ 'धेनु' शब्द से संज्ञा अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय निपातित है, और षुक् आगम भी होता है। 'यत्' प्रत्यय के प्रकरण में 'य' प्रत्यय का निपातन इसलिये किया गया है कि 'तित् स्वरितम्' (६।१।१८२) से यहां स्वरित स्वर न हो। यहां अन्तोदात्त स्वर अभीष्ट है अतः 'य' प्रत्यय निपातित किया गया है-धेनुष्या। यदि प्रकरणवश 'यत्' प्रत्यय ही माना जाये तो निपातन से अन्तोदात्त स्वर मानना चाहिये।

संयुक्तार्थप्रत्ययविधिः

ज्यः-

(१) गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः।६०।

प०वि०-गृहपतिना ३।१ संयुक्ते ७।१ ञ्यः १।१।

अनु०-संज्ञायाम् इत्यनुवर्तते। अत्र 'गृहपतिना' इति तृतीयाविभक्ति-निर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाद् गृहपतेः संयुक्ते ञ्यः, संज्ञायाम्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाद् गृहपतिशब्दात् प्रातिपदिकात् संयुक्त इत्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-गृहपतिना संयुक्तः-गार्हपत्योऽग्निः।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (गृहपतिना) गृहपति प्रातिपदिक से (संयुक्ते) सम्बद्ध अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-गृहपति से संयुक्त-गार्हपत्य अग्नि।

सिद्धि-गार्हपत्यः। गृहपति+टा+ञ्यः। गार्हपत्+य। गर्हपत्य+सु। गार्हपत्यः।

यहं तृतीया-समर्थ 'गृहपति' शब्द से संयुक्त अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः श्रौत-यज्ञ की अग्नि, मन्थन से उत्पन्न की जाती है। उसे गृहपति (यजमान) गार्हपत्य नामक वेदी में 'गार्हपत्याग्नि' के रूप में सदा सुरक्षित रखता है। वहां

आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामक दो वेदियां और होती हैं। यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में से अग्नि लेकर उन दोनों वेदियों में अग्नि का आधान करता है। आवहनीयाग्नि और दक्षिणाग्नि भी यजमान से संयुक्त हैं किन्तु उनकी गार्हपत्य अग्नि संज्ञा नहीं है।

तार्याद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्य-प्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु।६१।

प०वि०–नौ-वयः-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यः ५।३ तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्य-आनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु ७।३।

स०–नौश्च वयश्च धर्मश्च विषं च मूलं च मूलं च सीता च तुला च ताः-नौ०तुलाः, ताभ्यः-नौ०तुल्याभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तार्यं च तुल्यश्च प्राप्यं च वध्यश्च आनाम्यं च समश्च समितं च सम्मितं च तानि-तार्य०सम्मितानि, तेषु-तार्य०सम्मितेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थद्वारेण तृतीयासमर्थविभक्ति-र्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थेभ्यो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यो तार्यतुल्य-प्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु यत्।

अर्थः–तृतीयासमर्थेभ्यो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यः प्राति-पदिकेभ्यो यथासंख्यं तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेष्वर्थेषु यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्–**

	प्रातिपदिकम्	अर्थः	शब्दरूपम्
(१)	नौः	तार्यम्	नावा तार्यम्-नाव्यमुदकम्। नाव्या नदी।
(२)	वयः	तुल्यम्	वयसा तुल्यः-वयस्यः सखा।
(३)	धर्मः	प्राप्यम्	धर्मेण प्राप्यम्-धर्म्यं सुखम्।
(४)	विषम्	वध्यः	विषेण वध्यः-विष्यः शत्रुः।

	प्रातिपदिकम्	अर्थः	शब्दरूपम्
(५)	मूलम्	आनाम्यम्	मूलेनाऽऽनाम्यम् (अभिभवनीयम्) मूल्यम् (लभ्यम्)।
(६)	मूलम्	समम्	मूलेन समः-मूल्यः पटः।
(७)	सीता	समितम्	सीतया समितम्-सीत्यं क्षेत्रम्।
(८)	तुला	सम्मितम्	तुलया सम्मितम्-तुल्यं घृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (नौ०तुलाभ्यः) नौ, वयः, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला इन आठ प्रातिपदिकों से यथासंख्य (तार्य०सम्मितेषु) तार्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित इन आठ अर्थों में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। यहां प्रत्ययार्थ के द्वार से तृतीया-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(नौ) नौ=नौका से जो तार्य=तरने योग्य है वह-नाव्य जल। नाव्या नदी। (वयः) वय=आयु से जो तुल्य है वह-वयस्य सखा (मित्र)। (धर्म) धर्म से जो प्राप्य है वह-धर्म्य सुख। (विष) विष=जहर से जो वध्य है वह-विष्य शत्रु। (मूल) मूल (सुवर्ण आदि) से जो आम्नाय (आलभ्य) है वह-मूल्य (लाभ)। पट आदि की उत्पत्ति का कारण सुवर्ण आदि मूल है। उससे पट आदि का उत्पादन करके जो लाभ प्राप्त किया जाता है वह-मूल्य कहाता है। (मूल) मूल के जो सम (समान फलवाला) है वह-मूल्य पट (वस्त्र)। (सीता) हल चलाने से सम=बराबर किया हुआ-सीत्य क्षेत्र (खेत)। (तुला) तखड़ी से सम्मित=तोला हुआ-तुल्य घी।

सिद्धि-नाव्यम्। नौ+टा+यत्। नाव्+य। नाव्य+सु। नाव्यम्।

*यहां तृतीया-समर्थ 'नौ' शब्द से तार्य-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७८) से वान्त (आव्) आदेश होता है। ऐसे ही-वयस्यः आदि।*

अनपेतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते।९२।

प०वि०-धर्म-पथि-अर्थ-न्यायात् ५।१ अनपेते ७।१।

स०-धर्मश्च पन्थाश्च अर्थश्च न्यायश्च एतेषां समाहारो धर्मपथ्यर्थ-न्यायम्, तस्मात्-धर्मपथ्यर्थन्यायात् (समाहारद्वन्द्वः)। अपेतम्=दूरम्। न अपेतमिति अनपेतम्, तस्मिन्-अनपेते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-यत्, संज्ञायाम् चानुवर्तते। अत्र **'धर्मपथ्यर्थन्यायात्'** इति पञ्चमीनिर्देशादेव पञ्चमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-पञ्चमीसमर्थाद् धर्मपथ्यर्थन्यायाद् अनपेते यत्, संज्ञायाम्।

अर्थः-पञ्चमीसमर्थेभ्यो धर्मपथ्यर्थन्यायेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनपेत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञयायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(धर्मः)** धर्मादनपेतम्-धर्म्यम्। **(पन्थाः)** पथोऽनपेतम्-पथ्यम्। **(अर्थः)** अर्थादनपेतम्-अर्थ्यम्। **(न्यायः)** न्यायादनपेतम्-न्याय्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-पञ्चमी-समर्थ (धर्मपथ्यर्थन्यायात्) धर्म, पथिन्, अर्थ, न्याय प्रातिपदिकों से (अनपेते) अदूर=समीप अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(धर्म)** धर्म ने अनपेत=अदूर (समीप) धर्म्य। **(पथिन्)** पन्था से अनपेत-पथ्य। **(अर्थ)** अर्थ से अनपेत-अर्थ्य। **(न्याय)** न्याय से अनपेत-न्याय्य।*

*सिद्धि-(१) **धर्म्यम्।** धर्म+ङसि+यत्। धर्म्+य। धर्म्य+सु। धर्म्यम्।*

*यहां पञ्चमी-समर्थ 'धर्म' शब्द से अनपेत-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **पथ्यम्।** यहां **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से 'पथिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अर्थ्यम्, न्याय्यम्।***

निर्मितार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) छन्दसो निर्मिते।६३।

प०वि०-छन्दसः ५।१ निर्मिते ७।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाच्छन्दसो निर्मिते यत्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाच्छन्दःशब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्मित इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**छन्दसा (स्वेच्छया) निर्मितश्छन्दस्य पुत्रः।** स्वेच्छया कृत **इत्यर्थः। अत्र छन्दःशब्द इच्छापर्यायो गृह्यते।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसः) छन्दः प्रातिपदिक से (निमिति) बनाया हुआ अर्थ में (यत्) यथविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-छन्द (स्वेच्छा) से बनाया हुआ-छन्दस्य पुत्र। अपनी इच्छा से जिसे पुत्र मान लिया है वह 'छन्दस्य' पुत्र कहाता है।

*सिद्धि-**छन्दस्यः।** छन्दस्+टा+यत्। छन्दस्+य। छन्दस्य+सु। छन्दस्यः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'छन्दस्' शब्द से निर्मित-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

यत्+अण्-

(२) उरसोऽण् च।६४।

प०वि०-उरसः ५।१ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-यत्, संज्ञायाम् निर्मिते इति चानुवर्तते। पूर्ववत् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्वर्तते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाद् उरसो निर्मितेऽण् यच्च संज्ञायाम्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाद् उरःशब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्मित इत्यस्मिन्नर्थेऽण् यच्च प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-उरसा निर्मितः-औरसः पुत्रः (अण्)। उरस्यः पुत्रः (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (उरसः) उरस् प्रातिपदिक से (निर्मिते) बनाया हुआ अर्थ में (अण्) अण् (च) और (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-उरः=आत्मा से बनाया हुआ-औरस पुत्र खुद बेटा (अण्)। उरस्य पुत्र (यत्) अर्थ पूर्ववत् है।

*सिद्धि-(१) **औरसः।** उरस्+टा+अण्। औरस्+अ। औरस+सु। औरसः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'उरस्' शब्द से निर्मित अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

*(२) **उरस्यः।** यहां 'उरस्' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।*

प्रियार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) हृदयस्य प्रियः।६५।

प०वि०-हृदयस्य ६।१ प्रियः १।१।

अनु०-यत्, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते। अत्र **'हृदयस्य'** इति निर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् हृदयात् प्रियो यथाविहितं यत् संज्ञायाम्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् हृदय-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रिय इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-हृदयस्य प्रियः-हृद्यो देशः। हृद्यं वनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (हृदयस्य) हृदय प्रातिपदिक से (प्रियः) प्यारा अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-हृदय (अन्तःकरण) को प्रिय लगनेवाला-हृद्य अपना देश। हृदय को प्रिय लगनेवाला-हृद्य वन (जंगल)।

*सिद्धि-**हृद्यः**। हृदय+ङस्+यत्। हृद्+य। हृद्य+सु। हृद्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'हृदय' शब्द से प्रिय अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु'** (६।३।५०) से हृदय के स्थान में 'हृत्' आदेश होता है।*

बन्धनार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) बन्धने चर्षौ।६६।

प०वि०-बन्धने ७।१ च अव्ययपदम्, ऋषौ ७।१।

अनु०-यत्, हृदयस्य इति चानुवर्तते। अत्रापि पूर्ववत् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् हृदयाद् बन्धने च यत् ऋषौ।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् हृदय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् बन्धने चार्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यद् बन्धनम् ऋषिः=वेदमन्त्रश्चेत् तद् भवति।

उदा०-हृदयस्य बन्धनः-हृद्यः ऋषिः (वेदमन्त्रः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (हृदयस्य) हृदय प्रातिपदिक से (बन्धने) बन्धन अर्थ में (च) भी (यत्) यत् प्रत्यय होता है (ऋषौ) जो बन्धन=बांधने का साधन है वह यदि वह ऋषि=वेदमन्त्र हो।*

उदा०-हृदय (अन्तःकरण) का बन्धन=एकाग्र करने का साधन-हृद्य ऋषि=वेदमन्त्र (प्रणव=ओ३म् का जप और उसके अर्थ का भावन) तथा गायत्री महामन्त्र आदि।

सिद्धि-'हृद्यः' पद की सिद्धि पूर्ववत् (४।४।९५) है।

करणाद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु।६७।

प०वि०-मत-जन-हलात् ५।१ करण-जल्प-कर्षेषु ७।३।

स०-मतं च जनश्च हलश्च एतेषां समाहारो मतजनहलम्, तस्मात्-मतजनहलात् (समाहारद्वन्द्वः)। करणं च जल्पश्च कर्षश्च ते करणजल्पकर्षाः, तेषु-करणजल्पकर्षेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् मतजनहलाद् यथासंख्यं करणजल्पकर्षेषु यत्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थेभ्यो मतजनहलेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं करणजल्पकर्षेष्वर्थेषु यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**मतम्**) मतस्य (ज्ञानस्य) करणम्-मत्यं वेदचतुष्टयम्। (**जनः**) जनस्य जल्पः-जन्यः। (**हलः**) हलस्य कर्षः-हल्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (मतजनहलात्) मत, जन, हल प्रातिपदिकों से यथासंख्य (करणजल्पकर्षेषु) करण, जल्प, कर्ष अर्थों में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। यहां प्रत्ययार्थ के सामर्थ्य से षष्ठी-समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**(मत)** मत (ज्ञान) का करण (साधन)-मत्य (चार वेद)। **(जन)** जन (व्यक्ति) का जल्प (प्रलाप-बकवाद)-जन्य। **(हल)** हल का कर्ष (चलाना)-हल्य।*

सिद्धि-मत्यम्। *मत+ङस्+यत्। मत्+य। मत्य+सु। मत्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'मत' शब्द से करण-अर्थ में इस सूत्र यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**जन्यः, हल्यः।***

विशेषः *यहां करण, जल्प, कर्ष ये कृदन्त पद हैं। 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२।३।६५) से इनके योग में षष्ठी-विभक्ति होती है। अतः प्रत्ययार्थ के सामर्थ्य से यहां षष्ठी-विभक्ति का ग्रहण किया जाता है। 'मतस्य करणम्' और 'हलस्य कर्षः' यहां कर्म में षष्ठी-विभक्ति है। 'जनस्य जल्पः' यहां कर्ता में षष्ठी-विभक्ति है।*

साधु-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)–

(१) तत्र साधुः।९८।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, साधुः १।१।

अनु०-यत् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रातिपदिकात् साधुर्यत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। साधुः प्रवीणो योग्यो वेत्यर्थः।

उदा०-सामसु साधुः-सामन्यः। वेमनि साधुः-वेमन्यः। कर्मणि साधुः-कर्मण्यः। शरणे साधुः-शरण्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सामगान में जो साधु=योग्य है वह-सामन्य। वेम (करघा) चलाने में जो निपुण है वह-वेमन्य। कर्म (कार्य) करने में जो साधु=निपुण है वह-कर्मण्य। शरण प्रदान करने में जो साधु=योग्य वह-शरण्य (ईश्वर)।

*सिद्धि-**सामन्यः**। सामन्+ङि+यत्। सामन्+य। सामन्य+सु। सामन्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सामन्' शब्द से साधु-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है। ऐसे ही-**वेमन्यः, कर्मण्यः, शरण्यः**।*

खञ्–

(२) प्रतिजनादिभ्यः खञ्।९९।

प०वि०-प्रतिजन-आदिभ्यः ५।३ खञ् १।१।

स०-प्रतिजन आदिर्येषां ते प्रतिजनादयः, तेभ्यः-प्रतिजनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र प्रतिजनादिभ्यः साधुः खञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रतिजनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रतिजने साधुः-प्रातिजनीनः। जने जने साधुरित्यर्थः। इदंयुगे साधुः-ऐदंयुगीनः। संयुगे साधुः-सांयुगीनः, इत्यादिकम्।

प्रतिजन। इदंयुग। संयुग। समयुग। परयुग। परकूल। परस्यकुल। अमुष्यकुल। सर्वजन। विश्वजन। पञ्चजन। महाजन। इति प्रतिजनादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (प्रतिजनादिभ्यः) प्रतिजन आदि प्रातिपदिकों से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रतिजन=प्रत्येक जन में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-प्रातिजनीन। इदं युग=इस जमाने में जो साधु है वह-ऐदंयुगीन। संयुग=युद्ध में जो साधु है वह-सांयुगीन।

सिद्धि-प्रातिजनीनः। प्रतिजन+ङि+खञ्। प्रातिजन्+ईन। प्रातिजनीन+सु। प्रातिजनीनः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'प्रतिजन' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। 'प्रतिजन' शब्द से **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।५) से यथा-अर्थ (वीप्सा) अर्थ में अव्ययीभाव समास है। **'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्'** (२।२।८४) से सप्तमी-विभक्ति का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**ऐदंयुगीनः, सांयुगीनः** आदि।*

णः-

(३) भक्ताण्णः।१००।

प०वि०-भक्तात् ५।१ णः १।१।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र भक्तात् साधुर्णः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् भक्त-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययो भवति।

उदा०-भक्ते साधुः-भाक्तः शालिः । भाक्तास्तण्डुलाः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (भक्तात्) भक्त प्रातिपदिक से (साधुः) योग्य अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है।*

उदा०-भक्त=भात में जो साधु=योग्य है वह-भाक्त शालि (तुष सहित चावल)। भक्त=भात के जो योग्य हैं वे-भाक्त तण्डुल (तुष रहित चावल)।

सिद्धि-भाक्तः । *भक्त+ङि+ण । भाक्त्+अ । भाक्त+सु । भक्तः ।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'भक्त' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

ण्यः-

(४) परिषदो ण्यः ।१०१।

प०वि०-परिषदः ५ ।१ ण्यः १ ।१ ।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तत्र परिषदः साधुर्ण्यः ।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् परिषद्-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-परिषदि साधुः-पारिषद्यः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (परिषदः) परिषद् प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (ण्यः) ण्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-परिषद्=विद्वत्सभा में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-पारिषद्य।

सिद्धि-पारिषद्यः । *परिषद्+ङि+ण्य । पारिषद्+य । पारिषद्य+सु । पारिषद्यः ।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'परिषद्' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेषः *प्राचीन चरण (वैदिक विद्यापीठ) के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा का नाम 'परिषद्' है, जो उच्चारण और व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का विचार करती थी। परिषद् शब्द गोष्ठी (समाज) और राजा की मन्त्रि-परिषद् का भी वाचक है।*

ठक्-

(५) कथादिभ्यष्ठक् ।१०२।

प०वि०-कथा-आदिभ्यः ५ ।३ ठक् १ ।१ ।

स०-कथा आदिर्येषां ते कथादयः, तेभ्यः-कथादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कथादिभ्यः साधुष्ठक्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कथायां साधुः-काथिकः। विकथायां साधुः-वैकथिकः। वितण्डायां साधुः-वैतण्डिकः।

कथा। विकथा। वितण्डा। कष्टचित्। जनवाद। जनेवाद। वृत्ति। सद्गृह। गुण। गण। आयुर्वेद। इति कथादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कथादिभ्यः) कथा आदि प्रातिपदिकों से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कथा (वृत्तान्त-वर्णन) में जो साधु=निपुण है वह-काथिक। विकथा (विविध वृत्तान्त वर्णन) में जो साधु है वह-वैकथिक। वितण्डा में जो साधु है वह-वैतण्डिक।

***सिद्धि-काथिकः।** कथा+ङि+ठक्। काथ्+इक। काथिक+सु। काथिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कथा' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वैकथिकः, वैतण्डिकः** आदि।*

ठञ्-

(६) गुडादिभ्यष्ठञ्।१०३।

प०वि०-गुड-आदिभ्यः ५।३ ठञ् १।१।

स०-गुडम् आदिर्येषां ते गुडादयः, तेभ्यः-गुडादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र गुडादिभ्यः साधुष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यो गुडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गुडे साधुः-गौडिक इक्षुः। कुल्माषे साधुः-कौल्माषिको मुद्गः। सक्तौ साधुः-साक्तुको यवः, इत्यादिकम्।

गुड। कुल्माष। सक्तु। अपूप। मांसौदन। इक्षु। वेणु। संग्राम। संघात। प्रवास। निवास। इति गुडादय:।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (गुडादिभ्य:) गुड आदि प्रातिपदिकों से (साधु) योग्य अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-गुड में जो साधु=योग्य है वह-गौडिक इक्षु (ईख)। वह ईख जिसका गुड़ बढ़िया बनता है। कुल्माष (दाल) में जो साधु है वह-कौल्माषिक मुद्ग (मूंग)। जिसकी दाल अच्छी बनती है। सक्तु (सत्तू) में जो साधु है वह-साक्तुक यव (जौ)। जिसका सत्तू बढ़िया बनता है, इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **गौडिक:।** गुड+ङि+ठञ्। गौड्+इक। गौडिक+सु। गौडिक:।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'गुड' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौल्माषिक:।***

*(२) **साक्तुक:।** यहां **'इसुसुक्तान्तात् क:'** (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है, इक् नहीं।*

ढञ्-

(७) पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्।१०४।

प०वि०-पथि-अतिथि-वसति-स्वपते: ५।१। ढञ् १।१।

स०-पन्थाश्च अतिथिश्च वसतिश्च स्वपतिश्च एतेषां समाहार: पथ्यतिथिवसतिस्वपति, तस्मात्-पथ्यतिथिवसतिस्वपते: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र पथ्यतिथिवसतिस्वपते: साधुर्ढञ्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्य: पथ्यतिथिवसतिस्वपतिभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: साधुरित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पन्था:) पथि साधु:-पाथेयम्। **(अतिथि:)** अतिथौ साधु:-आतिथेयम्। **(वसति:)** वसतौ साधु:-वासतेयम्। **(स्वपति:)** स्वपतौ साधु:-स्वापतेयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पथ्यतिथिवसतिस्वपते:) पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति प्रातिपदिकों से (साधु:) साधु=योग्य अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(पन्था) पन्था=मार्ग में जो साधु=योग्य है वह-पाथेय (चूर्मा आदि)। (अतिथि) अतिथि-सत्कार में जो साधु=योग्य है वह-आतिथेय (दुग्धपान आदि)। (वसति) वसति=निवास (घर) में जो साधु=योग्य है वह-वासतेय (घर का सामान)। (स्वपति) स्वपति (सोना) में जो साधु=योग्य है वह-स्वापतेय (खाट-बिस्तरा आदि)।

*सिद्धि-**पाथेयम्**। पथिन्+ङि+ढञ्। पाथ्+एय। पाथेय+सु। पाथेयम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'य्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से 'पथिन्' के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आतिथेयम्** आदि।*

यः-

(८) सभाया यः।१०५।

प०वि०-सभायाः ५।१ यः १।१।

अनु०-तत्र, साधुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सभायाः साधुर्यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सभा-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सभायां साधुः-सभ्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सभायाः) सभा प्रातिपदिक से (साधुः) निपुण/योग्य अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-सभा (समुदाय) में जो साधु=निपुण/योग्य है वह-सभ्य।

*सिद्धि-**सभ्यः**। सभा+ङि+य। सभ्+य। सभ्य+सु। सभ्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सभा' शब्द से साधु अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। 'य' और 'यत्' प्रत्यय में यह भेद है कि 'य' प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से आद्युदात्त और 'यत्' प्रत्यय **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित होता है।*

ढः (छान्दसः)-

(९) ढश्छन्दसि।१०६।

प०वि०-ढः १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्र, साधुः, सभाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र सभायाः साधुर्ढः।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सभा-शब्दात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यस्मिन्नर्थे ढः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सभायां साधुः-सभेयः। **'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्'** (यजु० २२।२२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (सभायाः) सभा प्रातिपदिक से (साधु) निपुण/योग्य अर्थ में (ढः) ढ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सभायां साधुः-सभेयः।** सभा में जो निपुण/योग्य है वह-सभेय। **'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्'** (यजु० २२।२२)। इस यजमान का वीर युवा सभेय (सभा में निपुण/योग्य) हो।*

वासि-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) समानतीर्थे वासी।१०७।

प०वि०-समान-तीर्थे ७।१ वासी १।१।

स०-समानं च तत् तीर्थम्-समानतीर्थम्, तस्मिन्-समानतीर्थे (कर्मधारयः)।

अनु०-तत्र इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र समानतीर्थाद् वासी यत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् समानतीर्थ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वासीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समानतीर्थे वासीति-सतीर्थ्यः। समानोपाध्याय इत्यर्थः। तीर्थ-शब्दोऽत्र गुरुवचनो गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (समानतीर्थे) समानतीर्थ प्रातिपदिक से (वासी) रहनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-समान (एक) तीर्थ पर रहनेवाला-सतीर्थ्य। समान-उपाध्यायवाला (**सहपाठी**)। यहां 'तीर्थ' शब्द गुरु-वाचक है।*

सिद्धि-सतीर्थ्यः । समानतीर्थ+ङि+यत् । स-तीर्थ्+य । सतीर्थ्य+सु । सतीर्थ्यः ।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समान-तीर्थ' शब्द से वासी अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय यत् प्रत्यय है। **'तीर्थे ये'** (६।३।८७) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है।*

शयितार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) समानोदरे शयित ओ चोदात्तः।१०८।

प०वि०-समान-उदरे ७।१ शयितः १।१ ओ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, उदात्तः १।१।

स०-समानं च तद् उदरम्-समानोदरम्, तस्मिन्-समानोदरे (कर्मधारयः)।

अनु०-तत्र, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र समानोदराच्छयितो यद् ओश्चोदात्तः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् समानोदर-शब्दात् प्रातिपदिकाच्छयित इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, ओकारश्चोदात्तो भवति।

उदा०-समानोदरे शयितः-समानोदर्यो भ्राता। शयितः स्थित इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (समानोदरे) समानोदर प्रातिपदिक से (शयित) स्थित अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (च) और उसका (ओ) ओकार (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-समान (एक) उदर में जो शयित=स्थित रहा है वह-समानोदर्य भ्राता (सगा भाई)।

*सिद्धि-**समानोदर्यः**। समानोदर+ङि+यत्। समानोदर्+य। समानोदर्य+सु। समानोदर्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समानोदर' शब्द से शयित (स्थित) अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है और 'समानोदर' शब्द का ओकार उदात्त है। 'यत्' प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८५) से स्वरित स्वर प्राप्त था, अतः ओकार का उदात्त स्वर विधान किया गया है-**समानोदर्यः**।*

यः–

(२) सोदराद् यः।१०९।

प०वि०-सोदरात् ५।१ यः १।१।

अनु०-तत्र, शयित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सोदराच्छयितो यः।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् सोदर-शब्दात् प्रातिपदिकाच्छयित इत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-समानोदरे शयितः-सोदर्यो भ्राता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सोदरात्) सोदर प्रातिपदिक से (शयितः) स्थित अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-समान (एक) उदर जो शयित=स्थित रहा है वह-सोदर्य भ्राता (सगा भाई)।

सिद्धि-सोदर्यः। समान-उदर+ङि+य। स-उदर्+य। सोदर्य+सु। सोदर्यः।

*यहां 'समानोदर' शब्द से शयित अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'विभाषोदरे'** (६।३।८८) से समान के स्थान में 'स' आदेश होता है। यहां यकारादि प्रत्यय के विवक्षित होने पर प्रथम ही उक्त सूत्र से समान के स्थान में 'स' आदेश हो जाता है अतः सूत्रपाठ में 'सोदरात्' कहा गया है।*

आपादान्तं छन्दोऽधिकारः

भवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)–

(१) भवे छन्दसि।११०।

प०वि०-भवे ७।१ छन्दसि ७।१।

अन्वयः-छन्दसि तत्र प्रातिपदिकाद् भवे यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-मेधायां भवो मेध्यः। विद्युति भवो विद्युत्यः। **'नमो मेध्याय विद्युत्याय च नमः'** (तै०सं० ४।५।७।२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मेधा में होनेवाला-मेध्य। विद्युत् में होनेवाला-विद्युत्य। 'नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमः' (तै०सं० ४।५।७।२)।

सिद्धि-मेध्यः। मेधा+ङि+यत्। मेध्+य। मेध्य+सु। मेध्यः।

यहां वेदविषय में सप्तमी-समर्थ 'मेधा' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-विद्युत्यः।

विशेषः *'छन्दसि' पद का अधिकार पाद-समाप्ति पर्यन्त है और 'भवे' पद का अधिकार 'समुद्राभ्राद् घः' (४।४।११८) तक है।*

ड्यण्–

(२) पाथोनदीभ्यां ड्यण्।१११।

प०वि०-पाथः-नदीभ्याम् ५।२ ड्यण् १।१।

स०-पाथश्च नदी च ते पाथोनद्यौ, ताभ्याम्-पाथोनदीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां पाथोनदीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे ड्यण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पाथः) पाथसि भवः-पाथ्यः। **पाथ्यो वृषा** (ऋ० ६।१६।१५)। **(नदी)** नद्यां भवो नाद्यः। **'चनो दधीत नाद्यो गिरो मे'** (ऋ० २।३५।१)। पाथः=अन्तरिक्षम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पाथोनदीभ्याम्) पाथस्, नदी प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (ड्यण्) ड्यण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पाथ (अन्तरिक्ष) में होनेवाला पाथ्य। 'पाथ्यो वृषा' (ऋ० ६।१६।१५)। (नदी) नदी=दरिया में होनेवाला-नाद्य। 'च नो दधीत नाद्यो गिरो मे' (२।३५।१)।

सिद्धि-पाथ्यः। पाथस्+ङि+ड्यण्। पाथ्+य। पाथ्य+सु। पाथ्यः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'पाथस्' प्रातिपदिक से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यण्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' होने से वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से पाथस् के टि-भाग (अस्) का लोप होता है। ऐसे ही-नाद्यः।

अण्–

(३) वेशन्तहिमवद्भ्यामण्।११२।

प०वि०–वेशन्त-हिमवद्भ्याम् ५।२ अण् १।१।

स०–वेशन्तश्च हिमवाँश्च तौ वेशन्तहिमवन्तौ, ताभ्याम्-वेशन्तहिमवद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र वेशन्तहिमवद्भ्यां भवेऽण्।

अर्थः–छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां वेशन्तहिमवद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**वेशन्तः**) वेशन्ते भवा वैशन्त्य आपः। वैशन्तीभ्यः स्वाहा (**तै०सं०** ७।४।१३।९)। (**हिमवान्**) हिमवति भवा हैमवत्य आपः। **हैमवतीभ्यः** स्वाहा (तु०शौ०सं० १९।२।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (विशवन्त-**हिमवद्भ्याम्**) वेशन्त और हिमवान् प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**विशन्त**) पल्वल=तालाब में होनेवाले-वैशन्ती आप (जल)। वैशन्तीभ्यः स्वाहा। (**हिमवान्**) हिमालय में होनेवाले-हैमवती आप (जल)। हिमवतीभ्य स्वाहा।*

***सिद्धि-वैशन्ती।** विशन्त+ङि+अण्। वैशन्त्+अ। वैशन्त+ङीप्। वैशन्ती+सु। वैशन्ती।*

*यहां सप्तमी-समर्थ वैशन्त' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**हैमवती।***

ड्यत्-ड्य-विकल्पः–

(४) स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ।११३।

प०वि०–स्रोतसः ५।१ विभाषा १।१ ड्यत्-ड्यौ १।२।

स०–ड्यच्च ड्यश्च तौ ड्यड्ड्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र स्रोतसो भवे विभाषा ड्यड्ड्यौ।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् स्रोतःशब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ड्यत्-ड्यौ प्रत्ययौ भवतः, यतोऽपवादः, पक्षे च सोऽपि भवति।

उदा०-(**ड्यत्**) स्रोतसि भवः-स्रोत्यः। (**ड्यः**) स्रोत्यः (ऋ० १०।१०४।८)। (**यत्**) स्रोतस्यः (शौ०सं० १९।२।४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्रोतसः) स्रोतस् प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (ड्यत्-ड्यौ) ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं, पक्ष में 'यत्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-(ड्यत्) स्रोत (उदक) में होनेवाला-स्रोत्य। (ड्य) स्रोत में होनेवाला-स्रोत्य (ऋ० १०।१०४।८)। (यत्) स्रोत में होनेवाला-स्रोतस्य (शौ०सं० १९।२।४)।

सिद्धि-(१) स्रोत्यः। स्रोतस्+ड्यत्। स्रोत्+य। स्रोत्य+सु। स्रोत्यः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'स्रोतस्' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'ड्यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- '**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से स्रोतस् के टि-भाग (अस्) का लोप होता है। प्रत्यय के तित् होने से '**तित् स्वरितम्**' (६।१।१८२) से स्वरित स्वर होता है-**स्रोत्यः**।*

*(२) **स्रोत्यः**। यहां 'स्रोतस्' शब्द से पूर्ववत् 'ड्य' प्रत्यय है। '**आद्युदात्तश्च**' (३।१।३) से प्रत्यय का उदात्त स्वर होता है-**स्रोत्यः**।*

*(३) **स्रोतस्यः**। यहां 'स्रोतस्' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के तित् होने से पूर्ववत् स्वरित स्वर होता है-**स्रोतस्यः**।*

विशेषः *'स्रोतः' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१।१२) में पठित है।*

यन्-

(५) सगर्भसयूथसनुताद् यन्।११४।

प०वि०-सगर्भ-सयूथ-सनुतात् ५।१ यन् १।१।

स०-सगर्भं च सयूथं च सनुतं एतेषां समाहारः सगर्भसयूथसनुतम्, तस्मात्-सगर्भसयूथसनुतात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र सगर्भसयूथसनुताद् भवे यन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः सगर्भसयूथसनुतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भव इत्यस्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सगर्भम्) समानगर्भे भवः-सगर्भ्यः। **'अनु भ्राता सगर्भ्यः'** (यजु० ४।२०)। **(सयूथम्)** समानयूथे भवः-सयूथ्यः। **'अनु सखा सयूथ्यः'** (तै०सं० १।२।४।२)। **(सनुतम्)** समाननुते भवः-सनुत्यः। **'यो नः सनुत्यः'** (ऋ० २।३०।९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (सगर्भसयूथ सनुतात्) सगर्भ, सयूथ, सनुत प्रातिपदिकों से (भवे) होनेवाला अर्थ में (यन्) यन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(सगर्भ)** समान (एक) गर्भ में होनेवाला-सगर्भ्य। **'अनु भ्राता सगर्भ्यः'** (यजु० ४।२०)। **(सयूथ)** समान यूथ (संघ) में होनेवाला-सयूथ्य। **'अनु सखा सयूथ्यः'** (तै०सं० १।२।४।२)। **(सनुत)** समान नुत (निर्णीत/अन्तर्हित) में होनेवाला-सनुत्य। **'यो नः सनुत्यः'** (ऋ० २।३०।९)।*

*सिद्धि-**सगर्भ्यः।** समान-गर्भ+ङि+यन्। स-गर्भ्+य। सगर्भ्य+सु। सगर्भ्यः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समानगर्भ' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'यन्' प्रत्यय है। **'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु'** (६।३।८४) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सयूथ्यः, सनुत्यः।***

विशेषः *'सनुत' शब्द यास्कीय निघण्टु वैदिक कोष में निर्णीत-अन्तर्हित नामों (३।२५) में पठित है।*

घन्-

(६) तुग्राद् घन्।११५।

प०वि०-तुग्रात् ५।१ घन् १।१।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र तुग्राद् भवे घन्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थात् तुग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे घन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तुग्रे भवः-तुग्रियः । त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्। अन्न-आकाश-यज्ञ-वरिष्ठेषु तुग्रशब्दो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (तुग्रात्) तुग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-तुग्रे भवः-तुग्रियः। तुग्र=अन्न, आकाश, यज्ञ, वरिष्ठ में होनेवाला-तुग्रिय। त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्।

सिद्धि-तुग्रियः। तुग्र+ङि+घन्। तुग्र्+इय। तुग्रिय+सु। तुग्रियः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'तुग्र' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

यथाविहितम् (यत्)–

(७) अग्राद् यत्।११६।

प०वि०-अग्रात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र अग्राद् भवे यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्रे भवम्-अग्र्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अग्रात्) अग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला=विद्यमान अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्रे=अग्रभाग में होनेवाला (विद्यमान)-अग्र्य।

सिद्धि-अग्र्यम्। अग्र+ङि+यत्। अग्र्+य। अग्र्य+सु। अग्र्यम्।

यहां सप्तमी-समर्थ 'अग्रे' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *'अग्र' शब्द से 'प्राग्घिताद् यत्' (४।४।७५) से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय सिद्ध था पुनः यहां 'यत्' प्रत्यय का विधान इसलिये किया गया है कि 'घच्छौ च' (४।४।११७) से विधीयमान 'घ' और 'छ' प्रत्यय 'यत्' प्रत्यय में बाधक न हों।*

घः+छः–

(८) घच्छौ च।११७।

प०वि०–घ-छौ १।१ च अव्ययपदम्।

स०–घश्च छश्च तौ घच्छौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, भवे, छन्दसि, अग्राद्, घन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तत्र अग्राद् भवे घच्छौ घन् च।

अर्थः–छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् अग्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भव इत्यस्मिन्नर्थे घच्छौ घन् च प्रत्यया भवन्ति। चकारो घन्-प्रत्ययस्यानुकर्षणार्थः।

उदा०–(घः) अग्रे भवम्-अग्रियम्। (छः) अग्रे भवम्-अग्रीयम्। (घन्) अग्रे भवम्-अग्रियम्, स्वरे विशेषः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (अग्रात्) अग्र प्रातिपदिक से (भवे) होनेवाला=विद्यमान अर्थ में (घच्छौ) घ, छ (च) और (घन्) घन् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(घ)** अग्र-भाग में होनेवाला (विद्यमान)-अग्रिय। (छ) अग्रीय। (घन्) अग्रिय। स्वर में भेद है।*

*सिद्धि-(१) **अग्रियः।** अग्र+ङि+घ। अग्र्+इय। अग्रिय+सु। अग्रियः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अग्र' शब्द से भव अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से प्रत्यय के आद्युदात्त होने से पद का अन्तोदात्त स्वर होता है-**अग्रियम्।***

*(२) **अग्रीयः।** यहां 'अग्र' शब्द से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

*(३) **अग्रियः।** यहां 'अग्र' शब्द से 'घन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है और **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**अग्रियः।***

घः–

(९) समुद्राभ्राद् घः।११८।

प०वि०–समुद्र-अभ्रात् ५।१ घः १।१।

स०-समुद्रश्च अभ्रं च एतयोः समाहारः समुद्राभ्रम्, तस्मात्-समुद्राभ्रात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, भवे, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र समुद्राभ्राद् भवे घः।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमी-समर्थाभ्यां समुद्राभ्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भव इत्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(समुद्रः) समुद्रे भवः-समुद्रियः। **'समुद्रिया नदीनाम्'** (ऋ० ७।८७।१)। अभ्रे भवः-अभ्रियः। **'अभ्रियस्येव घोषाः'** (ऋ० १०।६८।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (समुद्राभ्रात्) समुद्र और अभ्र प्रातिपदिकों (भवे) होनेवाला-समुद्रिय। **'समुद्रिया नदीनाम्'** (ऋ० ७।८७।१)। **(अभ्र)** अभ्र=मेघ (बादल) में होनेवाला-अभ्रिय। **'अभ्रियस्येव घोषाः'** (१०।६८।१)।*

सिद्धि-समुद्रियः। समुद्र+ङि+घ। समुद्र्+इय। समुद्रिय+सु। समुद्रियः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'समुद्र' शब्द से भव-अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अभ्रियः**।*

विशेषः *'समुद्र' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में अन्तरिक्ष-नामों (१।३) में पठित है। 'अभ्र' शब्द निघण्टु में मेघ-नामों (१।१०) में पठित है।*

दत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) बर्हिषि दत्तम्।११६।

प०वि०-बर्हिषि ७।१ दत्तम् १।१।

अनु०-तत्र, छन्दसि, यत्, इतिं चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्र बर्हिः-शब्दाद् दत्तं यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् बर्हिः-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बर्हिषि दत्तम्-बर्हिष्यम्। **'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'** (ऋ० १०।१५।५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्र) सप्तमी-समर्थ (बर्हिषि) बर्हिष् प्रातिपदिक से (दत्तम्) दिया हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बर्हि=अन्तरिक्ष/जल में दिया हुआ-बर्हिष्य। ***'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'*** *(ऋ० १०।१५।५)।*

*सिद्धि-**बर्हिष्यम्।** बर्हिष्+ङि+यत्। बर्हिष्+य। बर्हिष्य+सु। बर्हिष्यम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'बर्हिष्' प्रातिपदिक से दत्त-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

विशेषः *'बर्हिः' शब्द यास्की निघण्टु (वैदिक कोष) में अन्तरिक्ष-नामों (१।३) में तथा उदक नामों (१।१२) में भी पठित है।*

भाग-कर्मार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)-

(१) दूतस्य भागकर्मणी।१२०।

प०वि०-दूतस्य ६।१ भाग-कर्मणी १।२।

स०-भागश्च कर्म च ते भागकर्मणी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र 'दूतस्य' इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् दूताद् भागकर्मणी यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् दूत-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भागे कर्मणि चार्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति। भागः=अंशः। कर्म=क्रिया।

उदा०-दूतस्य भागः कर्म वा-दूत्यम्। **'यदग्ने यासि दूत्यम्'** (ऋ० १।१२।४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (दूतस्य) दूत प्रातिपदिक से (भाग-कर्मणी) भाग और कर्म अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है। भाग=अंश। कर्म=क्रिया।*

उदा०-दूत का भाग वा कर्म-दूत्य। 'यदग्ने यासि दूत्यम्' (ऋ० १।१२।४)। हे अग्ने ! तू दूत-कर्म को प्राप्त होता है।

सिद्धि-दूत्यम्। दूत+ङस्+यत्। दूत्+य। दूत्य+सु। दूत्यम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'दूत' शब्द से भाग और कर्म अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *'दूत' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में पद-नामों (४।२/४।३) में पठित है। पद=गतिशील।*

हननी-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) रक्षोयातूनां हननी।१२१।

प०वि०–रक्षः-यातूनाम् ६।३ हननी १।१।

स०–रक्षसश्च यातवश्च ते–रक्षोयातवः, तेषाम्–रक्षोयातूनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हन्यतेऽनया इति हननी **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। **'रक्षोयातूनाम्'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि रक्षोयातुभ्यां हननी यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाभ्यां रक्षोयातुभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हननीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रक्षसः)** रक्षसां हननी-रक्षस्या। **'या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूः'** (मै०सं० २।३।१)। **(यातवः)** यातूनां हननी-यातव्या। **'यातव्या'** (मै०सं० २।३।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (रक्षोयातूनाम्) रक्षस् और यातु प्रातिपदिकों से (हननी) हनन करनेवाला अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(रक्षः) रक्षः=राक्षसों की हननी-रक्षस्या। **'या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूः'** (मै०सं० २।३।१) हे मित्र और वरुण ! जो तुम्हारी तनू (काया) राक्षसों का हनन करनेवाली है। **(यातु)** यातु=राक्षसों की हननी-यातव्या। **'यातव्या'** (मै०सं० २।३।१)।*

सिद्धि-(१) रक्षस्या। रक्षस्+आम्+यत्। रक्षस्+य। रक्षस्य+टाप्। रक्षस्या+सु। रक्षस्या।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रक्षस्' शब्द से हननी-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **यातव्या।** यहां 'यातु' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। **ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण तथा **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

प्रशस्यार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये।१२२।

प०वि०–रेवती-जगती-हविष्याभ्यः ५।३ प्रशस्ये ७।१।

स०–रेवती च जगती च हविष्या च ताः-रेवतीजगतीहविष्याः, ताभ्यः-रेवतीजगतीहविष्याभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्रशंसनम्=प्रशस्यम्। अत्र **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति भावेऽर्थे क्यप् प्रत्ययः।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्यात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि षष्ठीसमर्थाभ्यो रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये यत्।

अर्थः–छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्यः रेवतीजगतीहविष्याशब्देभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रशस्य इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(रेवती)** रेवत्याः प्रशस्यम्-रेवत्यम्। **'यद् वो रेवती रेवत्यम्'** (का०सं० १।८)। **(जगती)** जगत्याः प्रशस्यम्-जगत्यम्। **'यद् वो जगती जगत्यम्'** (का०सं० १।८)। **(हविष्या)** हविष्यायाः प्रशस्यम्-हविष्यम्। **'यद् वो हविष्या हविष्यम्'** (का०सं० १।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (रेवतीजगतीहविष्याभ्यः) रेवती, जगती, हविष्या प्रातिपदिकों से (प्रशस्ये) प्रशंसा करने अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(रेवती) रेवती (नदी) की प्रशंसा करना-रेवत्य। **'यद् वो रेवती रेवत्यम्'** (का०सं० १।८)। (जगती) जगती (गौ) की प्रशंसा करना-जगत्य। **'यद् वो जगती जगत्यम्'** (का०सं० १।८)। (हविष्या) हविष्या=हवि (जल) के लिये हितकारिणी की प्रशंसा करना-हविष्या। **'यद् वो हविष्या हविष्यम्'** (का०सं० १।८)।*

*सिद्धि-(१) **रेवत्यम्।** रेवती+ङस्+यत्। रेवत्+य। रेवत्यम+सु। रेवत्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'रेवती' शब्द से प्रशस्य (प्रशंसा करना) अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार कालोप होता है। ऐसे ही-**जगत्यम्।***

*(२) **हविष्यम्।** हविष्+ङे+यत्। हविष्+य। हविष्य+टाप्। हविष्या।। हविष्या+ङस्+यत्। हविष्य्+य। हविष्+य। हविष्य+सु। हविष्यम्।।*

*यहां प्रथम 'हविष्' शब्द से **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय करने पर 'हविष्या' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् षष्ठी-समर्थ 'हविष्या' शब्द से प्रशस्य अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होने पर 'हलो **यमां यमि लोपः**' (८।४।६४) से यकार का भी लोप हो जाता है।*

***विशेषः** 'रेवती' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में नदी नामों (१।१३) में 'जगती' शब्द गो-नामों (२।११) में और 'हविः' शब्द उदक-नामों (१।१२) में पठित है।*

स्वम्-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहित (यत्)-

(१) असुरस्य स्वम्।१२३।

प०वि०-असुरस्य ६।१ स्वम् १।१।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। **'असुरस्य'** इति षष्ठी-निर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् असुरात् स्वं यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् असुर-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-असुरस्य स्वम्-असुर्यम्। **'असुर्यं वा एतत् पात्रं यत् कुलालकृतं चक्रवृत्तम्'** (मै०सं० १।८।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (असुरस्य) असुर प्रातिपदिक से (स्वम्) अपना अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-असुर का स्व (अपना)-असुर्य। **'असुर्यं वा एतत् पात्रं यत् कुलालकृतं चक्रवृत्तम्'** (मै०सं० १।८।३)।*

*सिद्धि-**असुर्यम्।** असुर+ङस्+यत्। असुर्+य। असुर्य+सु। असुर्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'असुर' शब्द से स्व-अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *'असुर' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में मेघ-नामों (१।१०) में पठित है।*

अण्-

(२) मायायामण्।१२४।

प०वि०-मायायाम् ७।१ अण् १।१।

अनु०-छन्दसि, असुरस्य इति चानुवर्तते। अत्र पूर्ववत् षष्ठीसमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थाद् असुरात् स्वम् अण्, मायायाम्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थाद् असुर-शब्दात् प्रातिपदिकाद् स्वमित्यस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् स्वं माया चेत् तद् भवति।

उदा०-असुरस्य स्वम् (माया)-आसुरी। **'आसुरी माया स्वधया कृतासि'** (यजु० ११।६९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ (असुरस्य) असुर प्रातिपदिक से (स्वम्) अपना अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (मायायाम्) जो स्व है यदि वह माया (शक्तिविशेष) हो।*

*उदा०-असुर का स्व (अपनी माया)-आसुरी। **'आसुरी माया स्वधया कृतासि'** (यजु० ११।६९)।*

*सिद्धि-**आसुरी।** असुर+ङस्+अण्। आसुर्+अ। आसुर+ङीप्। आसुरी+सु। आसुरी।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'असुर' शब्द से स्व (माया) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

विशेषः *'माया' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में प्रज्ञा-नामों में (३।९) में पठित है। आसुरी माया-असुर की अपनी प्रज्ञा (बुद्धि)।*

आसाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्) मतोश्च लुक्- {इष्टकाः}

(१) तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः।१२५।

प०वि०-तद्वान् १।१ आसाम् ६।३ उपधानः १।१ मन्त्रः १।१ इति अव्ययपदम्, इष्टकासु ७।३ लुक् १।१ च अव्ययपदम्, मतोः ६।१।

तद् अस्मिन्नस्तीति तद्वान् **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप्-प्रत्ययः। उपधीयन्ते=स्थाप्यन्ते इष्टका येन सः-उपधानः, **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः। **'तद्वान्'** इति प्रथमा-निर्देशात् प्रथमासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् तद्वतः (मतुपः) आसां यत्, उपधानो मन्त्रः, इष्टकासु, मतोश्च लुक्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति षष्ठीनिर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-वर्चःशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-वर्चस्वान् मन्त्रः। वर्चस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति-वर्चस्या इष्टकाः। **'वर्चस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१)। **'तेजस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१)। **'पयस्या उपदधाति'** (तै०सं० २।३।१३।२)। **'रेतस्या उपदधाति'** (ष०वि० २।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (तद्वान्) मतुप्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (आसाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (इष्टकासु) जो 'आसाम्' यह षष्ठी-अर्थ है यदि वे इष्टका (ईंट) हों (च) और (मतोः) मतुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०- 'वर्चः' शब्द इसमें है यह-वर्चस्वान् मन्त्र। वर्चस्वान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-वर्चस्या इष्टका (ईंट)। **'वर्चस्या उपदधाति'** (तै०ब्रा० १।८।९।१) इत्यादि उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।*

*सिद्धि-**वर्चस्याः**। वर्चस्वान्+आम्+यत्। वर्चस्०+य। वर्चस्य+टाप्। वर्चस्या+जस्। वर्चस्याः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मतुबन्त उपधान-मन्त्रवाचक 'वर्चस्वान्' शब्द से 'इन ईंटों का' अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। 'यत्' प्रत्यय करने पर 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**तेजस्या** आदि।*

विशेषः *यज्ञवेदी की भूमि पर श्येनचित् (बाज-आकार) तथा कंकचित् (चिमटा- आकार) आदि भेद से अनेक प्रकार के यज्ञकुण्ड बनाये जाते हैं। उनके निर्माण में विशेष प्रकार की इष्टकाओं (ईंटों) का मन्त्रों से उपधान किया जाता है। 'वर्चः' शब्द जिस उपधान-मन्त्र में है वह 'वर्चस्वान्' उपधान-मन्त्र कहाता है। उस मन्त्र से जिन इष्टकाओं का उपधान (स्थापन) किया जाता है वे 'वर्चस्या' नामक इष्टका कहाती है। ऐसे ही-**तेजस्या** और **पयस्या** आदि समझें।*

सूत्र में 'इति' शब्द नियमार्थ है। मन्त्र में अनेक पदों के सम्भव होने पर किसी एक पद-विशेष से ही वह मन्त्र तद्वान् (वर्चस्वान् आदि) कहाता है; सब पदों से नहीं।

अण्–

(२) अश्विमानण्।१२६।

प०वि०-अश्विमान् १।१ अण् १।१।

अनु०-छन्दसि, तद्वान्, आसाम्, उपधानः, मन्त्रः, इष्टकासु, लुक्, च, मतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् अश्विमान् इति तद्वत आसामण्, **उपधानो मन्त्रः**, इष्टकासु, **मतोश्च लुक्**।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् अश्विमानिति मतुबन्तात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् उपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति षष्ठीनिर्दिष्टम् इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-अश्विशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-अश्विमान्। अश्विमान् उपधानो मन्त्र आसाम् इष्टकानामिति-आश्विन्य इष्टकाः। '**आश्विनीरुपदधाति**' (श०ब्रा० ८।२।१।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (अश्विमान्) अश्विमान् इस (तद्वान्) मतुबन्त प्रातिपदिक से (आसाम्) इनका अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (इष्टकासु) जो 'आसाम्' यह षष्ठ्यर्थ है यदि वे इष्टका (ईंट) हों (च) और (मतोः) मतुप् प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-अश्वी शब्द इसमें है यह-अश्विमान् मन्त्र। अश्विमान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-आश्विनी इष्टका (ईंट)। 'आश्विनीरुपदधाति' (श०ब्रा० ८।२।१।१)।

सिद्धि-आश्विनी। *अश्विन्+मतुप्+अण्। आश्विन्+०+अ। आश्विन+सु। आश्विन+ङीप्। आश्विनी+सु। आश्विनी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मतुबन्त 'अश्विमान्' शब्द से 'इन ईंटों का' अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'अण्' प्रत्यय करने पर 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। '**इनण्यनपत्ये**' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से टि-भाग का लोप नहीं होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

विशेषः *'अश्विमान्' शब्दवाले मन्त्र से यज्ञकुण्ड निर्माण में जिन इष्टकाओं का उपधान (स्थापन) किया जाता है उन इष्टकाओं को 'आश्विनी' इष्टका कहते हैं। यज्ञ-कुण्ड निर्माण का विशेष विधान शुल्व-सूत्रों में किया गया है, वहां देख लेवें।*

मतुप्—

(३) वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्।१२७।

प०वि०-वयस्यासु ७।३ मूर्ध्नः ५।१ मतुप् १।१।

अनु०-छन्दसि, तद्वान्, उपधानः, मन्त्रः, इष्टकासु, लुक्, च, मतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि विषये तद्वतो मूर्ध्न आसां मतुप्, उपधानो मन्त्रः, वयस्यासु इष्टकासु, मतोश्च लुक्।

अर्थः-छन्दसि विषये मतुबन्ताद् मूर्धन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् उपधानो मन्त्रश्चेत्, यद् आसामिति निर्दिष्टं वयस्या इष्टकाश्चेत् ता भवन्ति, मतोश्च लुग् भवति।

उदा०-मूर्धन्वान् उपधानो मन्त्र आसाम् इष्टकानाम् (वयस्यानाम्) इति-मूर्धन्वत्यः। **'मूर्धन्वतीर्भवन्ति'** (तै०सं० ५।३।८।२)। वयस्या एव मूर्धन्वत्य इष्टका भवन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तद्वान्) मतुब्-प्रत्ययान्त (मूर्ध्नः) मूर्धन् प्रातिपदिक से (आसाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (उपधानो मन्त्रः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह उपधान (स्थापन) मन्त्र हो (वयस्यासु इष्टकासु) जो 'आसाम्' षष्ठी-अर्थ है यदि वे 'वयस्य' शब्दवाली इष्टका (ईंट) हो अर्थात् जिन्हें 'वयस्वान्' उपधान-मन्त्र से स्थापित किया गया हो (च) और (मतोः) मतुप् का (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-मूर्धा शब्द इसमें है यह-मूर्धन्वान्। मूर्धन्वान् उपधान-मन्त्र है इनका ये-मूर्धन्वती इष्टका (ईंट)।

सिद्धि-मूर्धन्वत्यः। *मूर्धन्वान्+सु+मतुप्। मूर्धन्०+मत्। मूर्धन्वत्+ङीप्। मूर्धन्वती+जस्। मूर्धन्वत्यः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'मूर्धन्वान्' शब्द से 'आसाम्' (इन वयस्य ईंटों का) अर्थ में इस सूत्र से मतुप् प्रत्यय है। प्रातिपदिक में विद्यमान 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

विशेषः *(१) यहां 'वयस्यासु' पद का यह अभिप्राय है कि जिस उपधान-मन्त्र में 'वयस्' और 'मूर्धन्' दोनों शब्द विद्यमान हैं उसी मन्त्र से इष्टका-उपधान में 'मूर्धन्' शब्द से मतुप् प्रत्यय होता है, जिस मन्त्र में केवल 'मूर्धन्' शब्द है वहां यह 'मतुप्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे-* ***'मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः'*** *(यजु० १४।९)।*

(२) यहां 'मूर्धन्वतः' ऐसा पाठ न करके 'मूर्ध्नः' ऐसा पाठ भावी मतुप्-लुक् को ***चित्त में रखकर किया गया है।***

मतुबर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितम् (यत्)– {मासः, तनूः}

(१) मत्वर्थे मासतन्वोः।१२८।

प०वि०–मतु-अर्थे ७।१ मास-तन्वोः ७।२।

स०–मतोरर्थ इति मत्वर्थः, तस्मिन्-मत्वर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। मासश्च तनूश्च ते मासतन्वौ, तयोः-मासतन्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि प्रथमासमर्थाद् मत्वर्थे यत्, मासतन्वोः।

अर्थः–छन्दसि विषये प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यत् प्रत्ययो भवति, मासतन्वोरभिधेययोः।

उदा०–**(मासः)** नभांसि सन्त्यस्मिन्-नभस्यो मासः। सहस्यो मासः। तपस्यो मासः। **(तनूः)** ओजोऽस्यामस्ति-ओजस्या तनूः। रक्षस्या तनूः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से **(मत्वर्थे)** मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (मासतन्वोः) यदि वहां मास **और तनू** (शरीर) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(मास) नभ=अभ्र (बादल) हैं इसमें यह-नभस्य मास (वर्षा **ऋतु**)। **'नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू'** (यजु० १४।१५)। सह इसमें है यह-सहस्य **मास**। (हेमन्त ऋतु)। **'सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू'** (यजु० १४।२७)। तप इसमें है यह-तपस्य मास (शिशिर ऋतु) **'तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू'** (यजु० १५।५७)। **(तनू)** ओज इसमें है यह-ओजस्या तनू (काया)। रक्ष=राक्षसवृत्ति इसमें है यह-रक्षस्या तनू (काया)।*

*सिद्धि-(१) **नभस्यः।** नभस्+जस्+यत्। नभस्+य। नभस्य+सु। नभस्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नभस्' शब्द से मतुप्-अर्थ में तथा मास अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। ऐसे ही-**सहस्यः, तपस्यः, मधव्यः, रक्षस्या।***

ञः+यत्–

(२) मधोर्ञ च।१२६।

प०वि०–मधोः ५।१ ञ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–यत्, छन्दसि, मत्वर्थे, मासतन्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् मधोर्ञो यच्च मासतन्वो:।

अर्थ:-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् मधु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे ञो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(मास:)** मधु अस्मिन्नस्तीति-माधवो मास: (ञ:)। मधव्य: मास: (यत्)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (मधो:) मधु प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (ञ:) ञ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(मास) मधु इसमें है यह-माधव मास (वसन्त ऋतु) **'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू'** (यजु० १३।२५)। (यत्) मधु इसमें है यह-मधव्य मास (वसन्त ऋतु)। (तनू) मधु इसमें है यह-माधवा तनू (काया)। माधव्या तनू (काया) प्रिय शरीर।*

*सिद्धि-(१) **माधव:।** मधु+सु+ञ। माधो+अ। माधव+सु। माधव:।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'मधु' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुण:'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

*(२) **मधव्य:।** यहां 'मधु' शब्द से 'यत्' प्रत्यय पूर्ववत् अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*तनू (काया) अर्थ अभिधेय में स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है-**माधवा, मधव्या** (तनू:)।*

यत्+ख:-

(३) ओजसोऽहनि यत्खौ।१३०।

प०वि०-ओजस: ५।१ अहनि ७।१ यत्-खौ १।२।

स०-यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् ओजसो मत्वर्थे यत्खावहनि।

अर्थ:-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् ओज:शब्दात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतोऽहन्यभिधेये।

उदा०-**(यत्)** ओजोऽस्मिन्नस्तीति-ओजस्यमह:। **(ख:)** ओजसीनमह:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में प्रथमा-समर्थ (ओजसः) ओजस् प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं (अहनि) यदि वहां अहः (दिन) अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(यत्)** ओज इसमें है यह-ओजस्य अहः (दिन)। (ख) ओज इसमें है यह-ओजसीन अहः (दिन)।*

*सिद्धि-(१) **ओजस्यम्।** ओजस्+सु+यत्। ओजस्+य। ओजस्य+सु। ओजस्यम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'ओजस्' प्रातिपदिक से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में तथा अहः=दिन अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

*(२) **ओजसीनम्।** यहां 'ओजस्' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है।*

यल्-

(४) वेशोयशादेर्भगाद् यल्।१३१।

प०वि०-वेशः-यशः-आदेः ५।१ भगात् ५।१ यल् १।१।

स०-वेशश्च यशश्च ते वेशोयशसी, वेशोयशसी आदौ यस्य स वेशोयश आदिः, तस्मात्-वेशोयशआदेः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितो बहुव्रीहिः)।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि वेशोयशआदेर्भगाद् मत्वर्थे यल्।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् वेशोआदेर्यशआदेश्च भगात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे यल् प्रत्ययो भवति। वेश इति बलमुच्यते। भगशब्दः श्री-काम-प्रयत्न-माहात्म्य-वीर्य-यशस्वर्थेषु वर्तते।

उदा०-(विशोभगः) वेशश्चासौ भग इति वेशोभगः, वेशोभगोऽस्यास्तीति-वेशोभग्यः। **(यशोभगः)** यशश्चासौ भग इति यशोभगः, यशोभगोऽस्यास्तीति-यशोभग्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (विशोयशआदेः) वेशादि और यशादि (भगात्) भग प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (यल्) यल् प्रत्यय होता है। वेश=बल। भग=श्री, काम, प्रयत्न, माहात्म्य, वीर्य, यश।*

*उदा०-**(विशोभग)** वेश=बलरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-वेशोभग्य। **(यशोभग)** यशरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-यशोभग्य।*

*सिद्धि-**वेशोभग्यः।** वेशोभग+सु+यत्। वेशोभग्+य। वेशोभग्य+सु। वेशोभग्यः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वेशोभग' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।४।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-**वेशोभग्यः।** ऐसे ही-**यशोभग्यः।***

खः-

(५) ख च।१३२।

प०वि०-ख १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, मत्वर्थे, वेशोयशआदेः, भगाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थाद् वेशोयशआदेर्भगाद् मत्वर्थे खो यच्च।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थाद् वेशआदेर्यशआदेश्च भगात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे खो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**वेशोभगः**) वेशोभगोऽस्यास्तीति-वेशोभगीनः (खः)। वेशोभग्यः (यत्)। (**यशोभगः**) यशोभगोऽस्यास्तीति-यशोभगीनः (ख)। यशोभग्यः (यत्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (वेशोयशआदेः) वेशादि और यशादि (भगात्) भग प्रातिपदिक से (मत्वर्थे) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (खः) ख (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(वेशोभग)** वेश=बलरूप भग=श्री आदि हैं इसके यह-वेशोभगीन (ख)। वेशोभग्य (यत्)। **(यशोभग)** यशरूप है भग=श्री आदि इसके यह-यशोभगीन (ख)। यशोभग्य (यत्)।*

*सिद्धि-(१) **वेशोभगीनः।** वेशोभग+सु+ख। वेशोभग्+ईन। वेशोभगीन+सु। वेशोभगीनः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वेशोभग' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यशोभगीनः।***

*(२) **वेशोभग्यः।** यहां 'वेशोभग' शब्द से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित स्वर होता है-**वेशोभग्यः।** ऐसे ही-**यशोभग्यः।***

कृतार्थप्रत्ययविधिः

इनः+यः+खः-

(१) पूर्वैः कृतमिनयौ च।१३३।

प०वि०-पूर्वैः ३।३ कृतम् १।१ इन-यौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-इनश्च यश्च तौ-इनयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि, ख इति चानुवर्तते। अत्र 'पूर्वैः' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि तृतीयासमर्थात् पूर्व-शब्दात् कृतम् इनयौ खश्च।

अर्थः-छन्दसि विषये तृतीयासमर्थात् पूर्वशब्दात् प्रातिपदिकात् कृतमित्यस्मिन्नर्थे इनयौ खश्च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(इनः) पूर्वैः कृतः-पूर्विणः। (यः) पूर्व्यः। (खः) पूर्वीणः। **'गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः'** (का०सं० ९।६।१९)। **'पूर्व्यैः'** (तै०सं० १।८।५।२)।

अत्र 'पूर्वैः' इति बहुवचनान्तनिर्देशेन पूर्वपुरुषा उच्यन्ते। तैः कृताः पन्थानः प्रशस्ताः सन्तीति तेषां पथां प्रशंसा क्रियते।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ, (पूर्वैः) पूर्व प्रातिपदिक से (कृतम्) बनाया हुआ अर्थ में (इन-यौ) इन, य (च) और (खः) ख प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(इन) पूर्व=पूर्वजों के द्वारा कृत=बनाया हुआ पन्था (मार्ग)-पूर्विण। (य) पूर्व्य। (ख) पूर्वीण। __'गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः'__ (का०सं ९।६।१९)। __'पूर्व्यैः'__ (तै०सं० १।८।५।२)।

यहां 'पूर्वैः' इस बहुवचनान्त निर्देश से पूर्वजों का कथन किया गया है। उनके द्वारा कृत=बनाये हुये पथ (मार्ग) प्रशंसनीय हैं, इस प्रकार उनके पथों की प्रशंसा की जाती है।

सिद्धि-(१) पूर्विणः। पूर्व+भिस्+इन। पूर्व्+इण। पूर्विण+सु। पूर्विणः।

यहां तृतीया-समर्थ 'पूर्व' शब्द से कृत-अर्थ में इस सूत्र से 'इन' प्रत्यय है। __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। __'अट्कुप्वाङ्०'__ (८।४।२) से णत्व होता है।

(२) पूर्व्यः। यहां 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'य' प्रत्यय है।

(३) पूर्वीणः। यहां 'पूर्व' शब्द से 'ख' प्रत्यय है। __'आयनेय०'__ (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् णत्व होता है।

संस्कृतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितम् (यत्)–

(१) अद्भिः संस्कृतम्।१३४।

प०वि०-अद्भिः ३।३ संस्कृतम् १।१।

अनु०-यत्, छन्दसि इति चानुवर्तते। अत्र 'अद्भिः' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि तृतीयासमर्थाभ्योऽद्भ्यः संस्कृतं यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तृतीयासमर्थाभ्योऽद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अद्भिः संस्कृतम्-अप्यम्। **'यस्येदमप्यं हविः'** (ऋ० १०।८६।१२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ (अद्भिः) 'अप्' प्रातिपदिक से (संस्कृतम्) शुद्ध किया हुआ अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-अप्=जल से शुद्ध की हुई-अप्य हवि। **'यस्येदमप्यं हविः'** (ऋ० १०।८६।१२)।*

सिद्धि-अप्यम्। *अप्+भिस्+यत्। अप्+य। अप्य+सु। अप्यम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'अप्' शब्द से संस्कृत अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय है।

विशेषः *(१) 'अप्' शब्द **'अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च'** (लिङ्गा० १।२९) से नित्य-बहुवचनान्त और स्त्रीलिङ्ग है। अतः सूत्रपाठ में 'अद्भिः' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग किया गया है।*

(२) 'अपः' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक कोष) में उदक-नामों (१।१२) तथा कर्म-नामों (२।१) में पठित है।

सम्मित्यर्थप्रत्ययविधिः

घः–

(१) सहस्रेण सम्मितौ घः।१३५।

प०वि०-सहस्रेण ३।१ सम्मितौ ७।१ घः १।१।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते। अत्र 'सहस्रेण' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि तृतीयासमर्थात् सहस्रात् सम्मितौ घः।

अर्थः-छन्दसि विषये तृतीयासमर्थात् सहस्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् सम्मितावित्यस्मिन्नर्थे घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सहस्रेण सम्मितिः-सहस्रियः। सम्मितिः=सम्मितः, तुल्यः, सदृश इत्यर्थः। सहस्रियः=सहस्रतुल्य इत्यर्थः। **'अयमग्निः सहस्रियः'** (तै०सं० ४।७।१३।४)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, तृतीया-समर्थ (सहस्रेण) सहस्र प्रातिपदिक से (सम्मितौ) तुल्यता अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।

उदा०-सहस्र=बहुतों के सम्मिति=तुल्य-सहस्रियः। ***'अयमग्निः सहस्रियः'*** *(तै०सं० ४।७।१३।४)।*

***सिद्धि-**सहस्रियः। सहस्र+टा+घ। सहस्र्+इय। सहस्रिय+सु। सहस्रियः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'सहस्र' शब्द से सम्मिति=तुल्य अर्थ में इस सूत्र से ***'घ' प्रत्यय*** *है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

***विशेषः** 'सहस्र' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में बहु-नामों (३।१) में पठित है।*

मत्वर्थप्रत्ययविधिः

घः-

(१) मतौ च।१३६।

प०वि०-मतौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, सहस्रेण, घ इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थसामर्थ्येन प्रथमासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि प्रथमासमर्थात् सहस्राद् मतौ च घः।

अर्थः-छन्दसि विषये प्रथमासमर्थात् सहस्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मतु-अर्थे च घः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सहस्रमस्यास्तीति-सहस्रियः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, प्रथमा-समर्थ (सहस्रेण) सहस्र प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है।*

उदा०–*सहस्र (बहुत) इसके हैं यह-सहस्रिय।*

सिद्धि-सहस्रियः। *सहस्र+सु+घ। सहस्र्+इय। सहस्रिय+सु। सहस्रियः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'सहस्र' शब्द से मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'सहस्र' शब्द से मत्वर्थ में ***'तपःसहस्राभ्यां विनीनी'*** *(५।२।१०२) से विनि और इनि प्रत्यय तथा 'अण् च' (५।२।१०३) से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया जायेगा। यह उसका छन्दोभाषा में अपवाद है।*

अर्हति-अर्थप्रत्ययविधिः

यः–

(१) सोममर्हति यः।१३७।

प०वि०–सोमम् २।१ अर्हति क्रियापदम्, यः १।१।

अनु०–छन्दसि इत्यनुवर्तते। अत्र 'सोमम्' इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि द्वितीयासमर्थात् सोमाद् अर्हति यः।

अर्थः–छन्दसि विषये सोम-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०–सोममर्हति-सोम्यः। **'सोम्या ब्राह्मणाः'** (का०सं० ५।२)। सोम्याः=यज्ञार्हा इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में, द्वितीया-समर्थ (सोमम्) सोम प्रातिपदिक से (अर्हति) सकता है अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०–*जो सोमपान कर सकता है वह-सोम्य।* ***'सोम्या ब्राह्मणाः'*** *(का०सं० ५।२) सोम्य=यज्ञ में सोमपान करने योग्य ब्राह्मण (वेदज्ञ विद्वान्)।*

सिद्धि-सोम्यः। *सोम+अम्+य। सोम्+य। सोम्य+सु। सोम्यः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'सोम' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यहां प्राग्-हितीय 'यत्' प्रत्यय के प्रकरण में 'य' प्रत्यय का विधान स्वर-भेद के लिये किया गया है। 'य' प्रत्यय* ***'आद्युदात्तश्च'*** *(३।१।३) से आद्युदात्त है-सोम्यः।*

विशेषः *'सोम' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में पद-नामों (५।५) में पठित है। पद=ज्ञान, गमन, प्राप्ति का हेतु।*

मयट्-समूहार्थप्रत्ययविधिः

यः (मयट्र्थे)–

(१) मये च।१३८।

प०वि०-मये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, सोमम्, य इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थबलेन यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थात् सोमाद् मये च यः।

अर्थः-छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थात् सोम-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मयट्-अर्थे च यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-सोमस्य विकारः-सोम्यः। **'पिबाति सोम्यं मधु'** (ऋ० ८।२४।१३)। सोम्यम्=सोममयमित्यर्थः।

आगत-विकार-अवयव-प्रकृता मयडर्था वर्तन्ते। **'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) **'मयट् च'** (४।३।८२)। **'मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः'** (४।३।१४३) **'तत्प्रकृतवचने मयट्'** (५।४।२१) इति। तत्र यथायोगं समर्थविभक्तिर्भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथायोग विभक्ति-समर्थ (सोमम्) सोम प्रातिपदिक से (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (च) भी (यः) य प्रत्यय होता है।*

उदा०-सोम का विकार-सोम्य। 'पिबाति सोम्यं मधु' (८।२४।१३)। सोम्य (सोममय) मधु का पान करता है।

*सिद्धि-**सोम्यम्।** सोम+ङस्+य। सोम्+य। सोम्य+सु। सोम्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'सोम' शब्द से मयट्-प्रत्यय के अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *आगत, विकार, अवयव और प्रकृत अर्थ में मयट्-प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः यहां तदनुसार समर्थ-विभक्ति ग्रहण की जाती है। आगत अर्थ में पंचमी, विकार-अवयव अर्थ में षष्ठी और प्रकृत अर्थ में प्रथमाविभक्ति होती है।*

यथाविहितम् (यत्) मयडर्थे–

(२) मधोः ।१३९।

वि०–मधोः ५ ।१।

अनु०–यत्, छन्दसि, मये इति चानुवर्तते। अत्र पूर्ववद् यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् मधोर्मये यत्।

अर्थः–छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् मधु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मयडर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–मधुनो विकारोऽवयवो वा-मधव्यः। **'मधव्यान् स्तोकान्'** (पै०सं० १।८८।२) मधुमयानित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथायोग विभक्ति-समर्थ (मधोः) मधु प्रातिपदिक से (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०–मधु का विकार वा अवयव-मधव्य। 'मधव्यान् स्तोकान्' (पै०सं० १।८८।२)।

सिद्धि-मधव्यम्। मधु+सु+यत्। मधो+य। मधव्य+सु। मधव्यः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'मधु' शब्द से मयट्-प्रत्यय के अर्थ (प्रकृत) में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (७।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*'मधु' शब्द से 'द्व्यचश्छन्दसि' (४।३।१५०) से विकार-अवयव अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय प्राप्त था उसका **'नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्'** (४।३।१५१) से प्रतिषेध होने पर **'प्राग्दीव्यतोऽण्'** (४।१।८३) से 'अण्' प्रत्यय होता है किन्तु यहां छन्दोभाषा में उसका अपवाद 'यत्' प्रत्यय विधान किया गया है।*

विशेषः *'मधु' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१।१२) में पठित है। अतः छन्दोभाषा में मधु शब्द का यथायोग अर्थ होता है।*

यथाविहितम् (यत्) मयडर्थे समूहे च–

(३) वसोः समूहे च।१४०।

प०वि०–वसोः ५।१ समूहे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–यत्, छन्दसि, मये इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थबलेन यथायोगं समर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वसोः समूहे मये च यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वसु-शब्दात् प्रातिपदिकात् समूहे मयट्-अर्थे च यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(समूहः) वसूनां समूहः-वसव्यः। (मयडर्थः) वसुभ्यः आगतः-वसव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में यथायोग विभक्ति-समर्थ (वसोः) वसु प्रातिपदिक से (समूहे) समूह (च) और (मये) मयट्-प्रत्यय के अर्थ में (यत्) यथाविहित यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(समूहः)** वसु=देवता/धनों का समूह-वसव्य। **(मयट्-अर्थ)** वसु=देवता/धन से आगत (प्राप्त)-वसव्य।*

*सिद्धि-**वसव्यः।** वसु+आम्+यत्। वसो+य। वसव्य+सु। वसव्यः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'वसु' शब्द से समूह अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राग्-हितीय यत् प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है।*

*'वसु' शब्द देवतावाचक और धनवाचक है। देवतावाची 'वसु' शब्द से समूह अर्थ में **'तस्य समूहः'** (४।२।३७) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है और धनवाची 'वसु' शब्द से **'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'** (४।२।४७) से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है किन्तु यहां छन्दोभाषा में 'यत्' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

*'वसु' शब्द से **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) से रूप्य और **'मयट् च'** (४।३।८२) से मयट् प्रत्यय प्राप्त है किन्तु यहां छन्दोभाषा में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है।*

विशेषः *'वसु' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में रात्रि-नाम (१।७) तथा धन-नामों (२।१०) में पठित है।*

स्वार्थप्रत्ययविधिः

घः-

(१) नक्षत्राद् घः।१४१।

प०वि०-नक्षत्रात् ५।१ घः १।१।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते। 'समूहे' इति च नानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नक्षत्रात् स्वार्थे घः।

अर्थः-छन्दसि विषये नक्षत्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे घः प्रत्ययो भवति। अर्थविशेषस्याविधानात्स्वार्थे प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-नक्षत्रमेव-नक्षत्रियम्। **'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'** (यजु० २२।२८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नक्षत्रात्) नक्षत्र प्रातिपदिक से स्वार्थ में (घः) घ प्रत्यय होता है। अर्थ-विशेष का विधान न करने से यहां स्वार्थ में प्रत्यय होता है।*

*उदा०-नक्षत्र ही-नक्षत्रिय। **'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'** (यजु० २२।२८)। छन्दोभाषा में 'नक्षत्र' को ही 'नक्षत्रिय' कहा जाता है। नक्षत्र=तारा, ग्रह।*

***सिद्धि-नक्षत्रियम्।** नक्षत्र+सु+घ। नक्षत्र्+इय। नक्षत्रिय+सु। नक्षत्रियम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'नक्षत्र' शब्द से स्वार्थ में एवं वैदिक भाषा में 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

तातिल्-

(२) सर्वदेवात् तातिल्।१४२।

प०वि०-सर्व-देवात् ५।१ तातिल् १।१।

स०-सर्वश्च देवश्च एतयोः समाहारः सर्वदेवम्, तस्मात्-सर्वदेवात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सर्वदेवाभ्यां स्वार्थे तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये सर्वदेवाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सर्वः)** सर्व एव-सर्वतातिः। **'सर्वतातिम्'** (ऋ० १०।३६।१४)। **(देवः)** देव एव-देवतातिः। **'देवतातिम्'** (ऋ० ३।१९।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सर्वदेवात्) सर्व और देव प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सर्व) सर्व ही-सर्वताति। 'सर्वतातिम्' (ऋ० १० ।३६ ।१४)। (देव) देव ही-देवताति। 'देवतातिम्' (ऋ० ३ ।१९ ।२)।

सिद्धि-देवतातिः । देव+सु+तातिल्। देव+ताति। देवताति+सु। देवतातिः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'देव' शब्द से स्वार्थ में 'तातिल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से 'लिति' (६ ।१ ।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-देवतातिः । ऐसे ही-सर्वतातिः ।

विशेषः *'सर्व' शब्द यास्कीय निघण्टु (वैदिक-कोष) में उदक-नामों (१ ।१२) में पठित है। 'देव' शब्द यास्कीय निघण्टु में पद-नामों (५ ।६) में पठित है। पद=ज्ञान, गम, प्राप्ति करनेवाला (विद्वान्)।*

करार्थप्रत्ययविधिः

तातिल्–

(१) शिवशमरिष्टस्य करे।१४३।

प०वि०-शिव-शम्-अरिष्टस्य ६ ।१ करे ७ ।१।

स०-शिवश्च शम् च अरिष्टं च एतेषां समाहारः शिवशमरिष्टम्, तस्य-शिवशमरिष्टस्य। करोतीति करः, अत्र **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) इत्यस्माद् धातोः **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३ ।१ ।१३४) इति कर्तरि अच् प्रत्ययः।

अनु०-छन्दसि, तातिल् इति चानुवर्तते। अत्र प्रत्ययार्थबलेन षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः करे तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः करे इत्यस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शिवः) शिवस्य करः-शिवतातिः (पै०सं० ५ ।३६)। **(शम्)** शंकरः-शंन्तातिः (ऋ० ८ ।१८ ।७)। **(अरिष्टम्)** अरिष्टस्य करः-अरिष्टतातिः (ऋ० १० ।६० ।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (शिवशमरिष्टस्य) शिव, शम्, अरिष्ट प्रातिपदिकों से (करः) करनेवाला अर्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शिव) शिव (सुख) को कर=करनेवाला-शिवताति। (शम्) शम्=सुख को कर=करनेवाला-शन्ताति। (अरिष्ट) अरिष्ट=अशुभ को कर=करनेवाला-अरिष्टताति।

सिद्धि-शिवतातिः। शिव+ङस्+तातिल्। शिव+ताति। शिवतातिः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'शिव' शब्द से कर-अर्थ में इस सूत्र से 'तातिल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-शन्तातिः, अरिष्टतातिः।

विशेषः *'शिव' और 'शम्' शब्द यास्कीय-निघण्टु (वैदिक-कोष) में सुख-नामों (३।६) में पठित हैं।*

भावार्थप्रत्ययविधिः

तातिल्-

(१) भावे च।१४४।

प०वि०-भावे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-छन्दसि, तातिल्, शिवशमरिष्टस्य इति चानुवर्तते। अत्रापि पूर्ववत् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-छन्दसि षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यो भावे च तातिल्।

अर्थः-छन्दसि विषये षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवशमरिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भावे इत्यस्मिन्नर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(शिवः) शिवस्य भावः-**शिवतातिः** (मै०सं० ५।३६।१)। **(शम्)** शं भावः-**शन्तातिः** (ऋ० ८।१८।७)। **(अरिष्टम्)** अरिष्टस्य भावः-**अरिष्टतातिः** (ऋ० १०।६०।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में षष्ठी-समर्थ (शिवशमरिष्टेभ्यः) शिव, शम्, अरिष्ट प्रातिपदिकों से (भावे) भाव=होना अर्थ में (तातिल्) तातिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शिव) शिव=सुख का भाव (होना)-शिवताति। (शम्) शम्=सुख का भाव (होना)-शन्ताति। (अरिष्ट) अरिष्ट=अशुभ का (होना)-अरिष्टताति।

सिद्धि- 'शिवताति' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

।। इति प्राग्-हितीयप्रत्ययार्थप्रकरणं छन्दोऽधिकारश्च सम्पूर्णः।।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डित विश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः। समाप्तश्चायं चतुर्थोऽध्यायः। इति तृतीयो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

तृतीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
५१४	अगारान्ताट्ठन्	४।४।७०
१९३	अग्नेर्ढक्	४।२।३२
५४६	अग्राद्यत्	४।४।११६
३३०	अ च	४।३।३१
२०६	अचित्तहस्तिधेनो०	४।२।४६
३९०	अचित्तादेशकालाट्०	४।३।९६
७	अजाद्यतष्टाप्	४।१।४
३३२	अणञौ च	४।३।३३
१४०	अणो द्व्यचः	४।१।१५६
४७१	अण् कुटिलिकायाः	४।४।१८
७२	अणिञोरनार्षयो०	४।१।७८
३६९	अणृगयनादिभ्यः	४।३।७३
४९६	अण्महिष्यादिभ्यः	४।४।४८
८९	अत इञ्	४।१।९५
१६०	अतश्च	४।१।१७५
२३०	अदूरभवश्च	४।२।६९
५६६	अद्भिः संस्कृतम्	४।४।१३४
३८१	अधिकृत्यकृते ग्रन्थे	४।३।८७
५१५	अध्यायिन्यदेशकालात्	४।४।७१
३६३	अध्यायेष्वेवर्षेः	४।३।६९
३०	अन उपधालोपिनो०	४।१।२८
५२५	अन्नाण्णः	४।४।८५
२०३	अनुदात्तादेरञ्	४।२।४३
४३२	अनुददात्तादेश्च	४।३।१३८
१५	अनुपसर्जनात्	४।१।१४
२२१	अनुब्राह्मणादिनिः	४।२।६१
९८	अनृष्यानन्तर्ये०	४।१।१०४
१३	अनो बहुव्रीहेः	४।१।१२
३५४	अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्	४।३।६०
३५	अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्	४।१।३२
४१	अन्यतो ङीष्	४।१।४०
१४६	अपत्यं पौत्रप्रभृति०	४।१।१६२
२९५	अपदातौ साल्वात्	४।२।१३४
४७३	अपमित्ययाचिताभ्यां०	४।४।२१
२३	अपरिमाणविस्ताचित०	४।१।२२
१२६	अपूर्वपदादन्यतरस्यां०	४।१।१४०
१८८	अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः	४।२।२६
३८४	अभिजनश्च	४।३।९०
३८०	अभिनिष्क्रामति०	४।३।८६
३३०	अमावस्याया वा	४।३।३०
२९०	अरण्यान्मनुष्ये	४।२।१२९
३०८	अर्धाद्यत्	४।३।४
४९७	अवक्रयः	४।४।५०
४२७	अवयवे च प्राण्योषधि०	४।३।१३३
२८५	अवृद्धादपि बहु०	४।२।१२४
१०६	अवृद्धाभ्यो नदी०	४।१।११३
२६५	अव्ययात्त्यप्	४।२।१३
३५३	अव्ययीभावाच्च	४।३।५९
३५७	अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्	४।३।६४
७८	अश्वपत्यादिभ्यश्च	४।१।८४
१०३	अश्वादिभ्यः फञ्	४।१।११०
५५८	अश्विमानण्	४।४।१२६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४३९	असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्	४।३।१४९
३१२	अ साम्प्रतिके	४।३।९
५५५	असुरस्य स्वम्	४।४।१२३
५०५	अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः	४।४।६०
५२	अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा०	४।१।५३
	(आ)	
४६४	आकर्षात्ष्ठल्	४।४।९
४८८	आक्रन्दाट्ठञ् च	४।४।३८
१८२	आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्	४।२।२२
३८५	आयुधजीविभ्यश्छः०	४।३।९१
४६८	आयुधाच्छ च	४।४।१४
११९	आरगुदीचाम्	४।१।१३०
७१	आवट्याच्च	४।१।७५
५१८	आवसथात्ष्ठल्	४।४।७५
३४३	आश्वयुज्या वुञ्	४।३।४५
	(इ)	
२६२	इञश्च	४।२।११२
११४	इतश्चानिञः	०।१।१२२
६३	इतो मनुष्यजातेः	४।१।६५
२१०	इनित्रकट्यचश्च	४।२।५०
४८	इन्द्रवरुणभवसर्वरुद्र०	४।१।४०
	(उ)	
९	उगितश्च	४।१।६
४८२	उञ्छति	४।४।३२
२५३	उत्करादिभ्यश्छः	४।२।८९
८०	उत्सादिभ्योऽञ्	४।१।८६
२३३	उदक् च विपाशः	४।२।७३
१७९	उदश्वितोऽन्यतरस्याम्	४।२।१९
१४१	उदीचां वृद्धादगोत्रात्	४।१।१५७
१३८	उदीचामिञ्	४।१।१५३
२६९	उदीच्यग्रामाच्च०	४।२।१०८
३३९	उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्	४।३।४०
४१०	उपज्ञाते	४।३।११५
३४२	उप्ते च	४।३।४४
४४८	उमोर्णयोर्वा	४।३।१५६
५३३	उरसोऽण् च	४।४।९४
४०९	उरसो यच्च	४।३।११४
४४८	उष्ट्राद्वुञ्	४।३।१५५
	(ऊ)	
६४	ऊङुतः	४।१।६६
५४	ऊरूत्तरपदादौपम्ये	४।१।६९
	(ऋ)	
३७३	ऋतष्ठञ्	४।३।७८
४९७	ऋतोऽञ्	४।४।४९
८	ऋन्नेभ्यो ङीप्	४।१।५
१०७	ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च	४।१।११४
	(ए)	
५२१	एकधुराल्लुक् च	४।४।७९
८८	एको गोत्रे	४।१।९३
४४९	एण्या ढञ्	४।३।१५७
	(ऐ)	
२६६	ऐषमोह्यःश्वसो०	४।२।१०४
	(ओ)	
४७७	ओजःसहोऽम्भसा०	४।४।२७
५६२	ओजसोऽहनि यत्खौ	४।४।१३०
२३१	ओरञ्	४।२।७०
४३१	ओरञ्	४।३।१३७
२७९	ओर्देशे ठञ्	४।२।११८
	(क)	
४५६	कंसीयपरशव्ययो०	४।३।१६६
२८६	कच्छाग्निवक्त्र०	४।२।१२५
२९३	कच्छादिभ्यश्च	४।२।१३२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४०२	कठचरकाल्लुक्	४।३।१०७
५१६	कठिनान्तप्रस्तार०	४।४।७२
२७१	कण्वादिभ्यो गोत्रे	४।२।११०
२५७	कत्र्यादिभ्यो ढकञ्	४।२।९४
५३८	कथादिभ्यष्ठक्	४।४।१०२
६७	कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि	४।१।७१
३०१	कन्थापलदनगर०	४।२।१४३
२६३	कन्थायाष्ठक्	४।२।१०२
१०९	कन्यायाः कनीन च	४।१।११६
१०१	कपिबोधादाङ्गिरसे	४।१।१०७
१५८	कम्बोजाल्लुक्	४।१।१७३
३५८	कर्णललाटात्कन्०	४।३।६५
४०६	कर्मन्दकृशाश्वादिनिः	४।३।१११
५०८	कर्माध्ययने वृत्तम्	४।४।६३
४०३	कलापिनोऽण्	४।३।१०२
३९८	कलापिवैशम्पायना०	४।३।१०४
११७	कल्याण्यादीनामिनङ् च	४।१।१२६
१८६	कस्येत्	४।२।२४
२५	काण्डान्तात् क्षेत्रे	४।१।२३
२६०	कापिश्याः ष्फक्	४।२।९८
३१३	कालाट्ठञ्	४।३।११
३४१	कालात्साधुपुष्प्यत्०	४।३।४३
१९४	कालेभ्यो भववत्	४।२।३२
३९८	काश्यपकौशिकाभ्याम्०	४।३।१०३
२७६	काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ	४।२।११५
४९९	किशरादिभ्यः ष्ठन्	४।४।५३
२५०	कुमुदनडवेतसेभ्यो०	४।२।८६
१५४	कुरुनादिभ्यो ण्यः	४।१।१७०
१३६	कुर्वादिभ्यो ण्यः०	४।१।१५१
२५८	कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः	४।२।९५
११७	कुलटाया वा	४।१।१२७
४६०	कुलत्थकोपधादण्	४।४।४
१२५	कुलात्खः	४।१।१३९
४१२	कुलालादिभ्यो वुञ्	४।३।११८
४८१	कुसीददशैकादशात्०	४।४।३१
३०४	कृकणपर्णाद्भारद्वाजे	४।२।१४४
३३८	कृतलब्धक्रीतकुशलाः	४।३।३८
४११	कृते ग्रन्थे	४।३।११६
२००	केदाराद्यञ्च	४।२।३९
३२	केवलामामकभागधेय०	४।१।३०
२०७	केशाश्वाभ्यां०	४।२।४७
२३८	कोपधाच्च	४।२।७८
४३०	कोपधाच्च	४।३।१३५
२९२	कोपधादण्	४।२।१३२
३४१	कोशाड्ढञ्	४।३।४२
१७५	कौमारापूर्ववचने	४।२।१३
२१	कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च	४।१।१९
१४०	कौसल्यकार्मार्याभ्यां च	४।१।१५५
५०	क्तादल्पाख्यायाम्	४।१।५१
३६१	क्रतुयज्ञेभ्यश्च	४।३।६२
२१९	क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्	४।२।५९
२२०	क्रमादिभ्यो वुन्	४।२।६०
४४६	क्रीतवत्परिमाणात्	४।३।१५४
५०	क्रीतात्करणपूर्वात्	४।१।५०
७५	क्रौड्यादिभ्यश्च	४।१।८०
१२५	क्षात्राद् घः	४।१।१३८
१८०	क्षीराड्ढञ्	४।२।१९
१२०	क्षुद्राभ्यो वा	४।१।१३१
४१३	क्षुद्राभ्रमरवटर०	४।३।११९
	(ख)	
५६४	ख च	४।४।१३२
५२०	खः सर्वधुरात्	४।४।७८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२०४	खण्डिकादिभ्यश्च	४।२।४४		(घ)	
२०९	खलगोरथात्	४।२।४९	५५०	घच्छौ च	४।४।११७
	(ग)		२१७	घञः सास्यां क्रियेति०	४।२।५७
३५३	गम्भीराञ्ज्यः	४।३।५८		(ङ)	
९९	गर्गादिभ्यो यञ्	४।१।१०५	१	ङ्याप्प्रातिपदिकात्	४।१।१
२९७	गर्तोत्तरपदाच्छः	४।२।१३६		(च)	
२९८	गहादिभ्यश्च	४।२।१३७	११८	चटकाया ऐरक्	४।१।१२८
५३९	गुडादिभ्यष्ठञ्	४।४।१०३	१२३	चतुष्पाद्भ्यो ढञ्	४।१।१३५
१२३	गृष्ट्यादिभ्यश्च	४।१।१३६	२०५	चरणेभ्यो धर्मवत्	४।२।४५
५२९	गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः	४।४।१००	४६३	चरति	४।४।८
३९२	गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो०	४।३।९९	४७५	चूर्णादिनिः	४।४।२३
४१९	गोत्रचरणाद् वुञ्	४।३।१२६		(छ)	
१३१	गोत्रस्त्रियाः कुत्सने०	४।१।१४७	४०४	छगलिनो ढिनुक्	४।३।१०९
३७४	गोत्रादङ्कवत्	४।३।८०	१८९	छ च	४।२।२७
८८	गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्	४।१।९४	५०७	छत्रादिभ्यो णः	४।४।६२
७४	गोत्रावयवात्	४।१।७९	३२१	छन्दसि ठञ्	४।३।१९
९२	गोत्रे कुञ्जादिभ्य०	४।१।९८	५३२	छन्दसो निर्मिते	४।४।९३
८२	गोत्रेऽलुगचि	४।१।८९	३६५	छन्दसो यदणौ	४।३।७१
१९९	गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र०	४।२।३९	४२२	छन्दोगौक्थिक०	४।३।१२९
११९	गोधाया ढ्रक्	४।१।१२९	२२५	छन्दोब्राह्मणानि च	४।२।६५
४५०	गोपसोर्यत्	४।३।१५८		(ज)	
४६१	गोपुच्छाट्ठञ्	४।४।६	२८४	जनपदतदवध्योश्च	४।२।१२३
२९६	गोयवाग्वोश्च	४।२।१३५	१४९	जनपदशब्दात्०	४।१।१६६
४३७	गोश्च पुरीषे	४।३।१४२	३९३	जनपदिनां जनपदवत्०	४।३।१००
३१०	ग्रामजनपदैकदेशाद०	४।३।७	२४४	जनपदे लुप्	४।२।८०
२०२	ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्	४।२।४२	४५४	जम्ब्वा वा	४।३।१६३
३५५	ग्रामात्पर्यनुपूर्वात्	४।३।६१	४४३	जातरूपेभ्यः परिमाणे	४।३।१५१
२५६	ग्रामाद्यखञौ	४।२।९३	६१	जातेरस्त्रीविषयाद०	४।१।६३
३५२	ग्रीवाभ्योऽण् च	४।३।५७	४३	जानपदकुण्डगोण०	४।१।४२
३४४	ग्रीष्मवसन्ताद०	४।३।४६	३५६	जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः	४।३।६२
३४७	ग्रीष्मावरसमाद्वुञ्	४।३।४९	१४६	जीवति तु वंश्ये युवा	४।१।१६३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(ञ)	
४४४	ञितश्च तत्प्रत्ययात्	४।३।१५३
	(ट)	
११	टाबृचि	४।१।९
१६	टिड्ढाणञ् द्वयस०	४।१।१५
	(ठ)	
२४८	ठक्छौ च	४।२।८३
३६०	ठगायस्थानेभ्यः	४।३।७५
२०१	ठञ् कवचिनश्च	४।२।४०
	(ड)	
१४	डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्	४।१।१३
	(ढ)	
१२१	ढकि लोपः	४।१।१३३
१११	ढक् च मण्डूकात्	४।१।११९
५४१	ढश्छन्दसि	४।४।१०६
	(त)	
३७०	तत आगतः	४।३।७४
४७८	तत्प्रत्यनुपूर्वमीप०	४।४।२८
३२६	तत्र जातः	४।३।२५
५१३	तत्र नियुक्तः	४।४।६९
३५०	तत्र भवः	४।३।५३
५३६	तत्र साधुः	४।४।८९
१७५	तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः	४।२।१४
२१८	तदधीते तद्वेद	४।२।५८
२२८	तदस्मिन्नस्तीति०	४।२।६६
५१०	तदस्मै दीयते नियुक्तम्	४।४।६६
४९८	तदस्य पण्यम्	४।४।५१
३४९	तदस्य सोढम्	४।३।५२
२१६	तदस्यां प्रहरणमिति०	४।२।५७
३७९	तद्गच्छति पथिदूतयोः	४।३।८५
७१	तद्धिताः	४।१।७६
५१९	तद्वहति रथयुगप्रासंगम्	४।४।७६
५५७	तद्वानासामुपधानो०	४।४।१२५
४६१	तरति	४।४।५
३०७	तवकममकावेकवचने	४।३।३
४०८	तसिश्च	४।३।११३
३०६	तस्मिन्नणि च०	४।३।२
४९५	तस्य धर्म्यम्	४।४।४७
२२९	तस्य निवासः	४।२।६८
४२७	तस्य विकारः	४।३।१३२
३५९	तस्य व्याख्यान इति०	४।३।६६
१९७	तस्य समूहः	४।२।३७
८६	तस्यापत्यम्	४।१।९२
४१४	तस्येदम्	४।३।१२०
४४२	तालादिभ्योऽण्	४।३।१५०
१३९	तिकादिभ्यः फिञ्	४।१।१५४
३९६	तित्तिरिवरतन्तु०	४।३।१०२
२६७	तीररूप्योत्तरपदाद०	४।२।१०५
५४८	तुग्राद्घन्	४।४।११५
३८८	तूदीशलातुरवर्मती०	४।३।९४
१५७	ते तद्राजाः	४।१।१७२
४५९	तेन दीव्यति खनति०	४।४।२
२२९	तेन निर्वृत्तम्	४।२।६७
३९५	तेन प्रोक्तम्	४।३।१०१
१६४	तेन रक्तं रागात्	७।२।१
४०७	तेनैकदिक्	४।३।११२
४३१	त्रपुजतुनोः षुक्	४।३।१३६
४७२	त्रेर्मम्नित्यम्	४।४।२०
	(द)	
२६०	दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्	४।२।९७
१७८	दण्डादिभ्यो यत्	५।१।६६
२९	दामहायनान्ताच्च	४।१।२७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२६८	दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां०	४।२।१६
३०९	दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च	४।३।६
५९	दिक्पूर्वपदान् ङीप्	४।१।६०
३५०	दिगादिभ्यो यत्	४।३।५४
७९	दित्यदित्यादित्य०	४।१।८४
५८	दीर्घजीवी च च्छन्दसि	४।१।५९
१२८	दुष्कुलाड्ढक्	४।१।१४२
५५२	दूतस्य भावकर्मणी	४।४।१२०
३५१	दृतिकुक्षिकलशि०	४।३।५६
१७०	दृष्टं साम	४।२।७
३४५	देयमृणे	४।३।४७
७५	दैवयज्ञिशौचिवृक्षि०	४।१।८१
१९३	द्यावापृथिवीशुनाशीर०	४।२।३१
२६२	द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो०	४।२।१००
९७	द्रोणपर्वतजीवन्ताद०	४।१।१०३
४५१	द्रोश्च	४।३।१५९
१६८	द्वन्द्वाच्छः	४।२।६
४१७	द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयोः	४।३।१२५
२३	द्विगोः	४।१।२१
८२	द्विगोर्लुगनपत्ये	४।१।८८
३१२	द्वीपादनुसमुद्रं यञ्	४।३।१०
१७४	द्वैपवैयाघ्रादञ्	४।२।१२
११३	द्व्यचः	४।१।१२१
४४०	द्व्यचश्छन्दसि	४।३।१४८
३६६	द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्०	४।३।७१
१५१	द्व्यञ्मगधकलिङ्ग०	४।१।१६८
	(ध)	
५२५	धनगणं लब्धा	४।४।८४
२८०	धन्वयोपधाद् वुञ्	४।२।१२०
४९०	धर्मं चरति	४।४।४१
५३१	धर्मपथ्यर्थन्यायाद०	४।४।९२
५२०	धुरो यड्ढकौ	४।४।७७
२८८	धूमादिभ्यश्च	४।२।१२६
	(न)	
५५	न क्रोडादिबह्वचः	४।१।५६
५७१	नक्षत्राद्घः	४।४।१४१
१६५	नक्षत्रेण युक्तः कालः	४।२।३
३३७	नक्षत्रेभ्यो बहुलम्	४।३।३७
५७	नखमुखात्संज्ञायाम्	४।१।५८
२८६	नगरात्कुत्सन०	४।२।१२७
२५१	नडशादाड् ड्वलच्	४।२।८७
९३	नडादिभ्यः फक्	४।१।९९
२५३	नडादीनां कुक् च	४।२।९०
४२४	न दण्डमाणवान्तेवासिषु	४।३।१३०
२५९	नद्यादिभ्यो ढक्	४।२।९६
२४९	नद्यां मतुप्	४।२।८४
२७३	न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु	४।२।११२
१६१	न प्राच्यभर्गादि०	४।१।१७६
१२	न षट्स्वस्रादिभ्यः	४।१।१०
५४	नासिकोदरौष्ठ०	४।१।५५
५१७	निकटे वसति	४।४।७३
४६	नित्यं छन्दसि	४।१।४६
४३६	नित्यं वृद्धशरादिभ्यः	४।३।१४२
३१	नित्यं संज्ञाछन्दसोः	४।१।२९
३७	नित्यं सपत्न्यादिषु	४।२।३५
४७२	निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः	४।४।१०
३१५	निशाप्रदोषाभ्यां च	४।३।१४
४४१	नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्	४।३।१४९
४६२	नौ द्व्यचष्ठन्	४।४।७
५३०	नौवयोधर्मविषमूल०	४।४।९१
	(प)	
४८४	पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति	४।४।३५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६५	पङ्गोश्च	४।१।६८
३५	पत्युर्नो यज्ञसंयोगे	४।१।३३
४१५	पत्रपूर्वादञ्	४।२।१२२
४१६	पत्राध्वर्युपरिषदश्च	४।३।१२३
३२९	पथः पन्थ च	४।३।२९
५४०	पथ्यतिथिवसति०	४।४।१०४
५२७	पदगरिगन्दृश्यम्	४।४।८७
४८९	पदोत्तरपदं गृह्णाति	४।४।३९
५०४	परश्वधाट्ठञ् च	४।४।५८
३०८	परावराधमोत्तमपूर्वाच्च	४।३।५
४८६	परिपन्थं च तिष्ठति	४।४।३६
४८०	परिमुखं च	४।४।२९
१७२	परिवृतो रथः	४।२।१०
४९३	परिषदो ण्यः	४।४।४४
५३८	परिषदो ण्यः	४।४।१०१
४६४	पर्पादिभ्यः ष्ठन्	४।४।१०
३०२	पर्वताच्च	४।२।१४२
४३३	पलाशादिभ्यो वा	४।३।१३९
६२	पाककर्णपर्णपुष्पफलमूल०	४।१।६४
१७३	पाण्डुकमलादिनिः	४।२।११
५४५	पाथोनदीभ्यां ड्यण्	४।४।१११
११	पादोऽन्यतरस्याम्	४।१।८
४०५	पाराशर्यशिलालिभ्यां०	४।३।११०
२०८	पाशादिभ्यो यः	४।२।४८
३७३	पितुर्यच्च	४।३।७९
१९६	पितृव्यमातुलमातामह०	४।२।३५
१२१	पितृष्वसुश्छण्	४।१।१३२
४३७	पिष्टाच्च	४।३।१४४
१११	पीलाया वा	४।१।११८
४७	पुंयोगादाख्यायाम्	४।१।४८
१४३	पुत्रान्तादन्यतरस्याम्	४।१।१५९
४००	पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण०	४।२।१०५
२६	पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम्	४।१।२४
३८	पूतक्रतोरै च	४।१।३६
३२८	पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूल०	४।३।२८
५६५	पूर्वैः कृतमिनियौ च	४।४।१३३
३६४	पौरोडाशपुरोडाशात्०	४।३।७०
४८९	प्रतिकण्ठार्थललामं च	४।४।४०
५३६	प्रतिजनादिभ्यः खञ्	४।४।९९
४९१	प्रतिपथमेति ठंश्च	४।४।४२
३७७	प्रभवति	४।३।८३
४८०	प्रयच्छति गर्ह्यम्	४।४।३०
२८२	प्रस्थपुरवहान्ताच्च	४।२।१२१
२७०	प्रस्थोत्तरपदपलद्यादि०	४।२।१०९
५०३	प्रहरणम्	४।४।५७
५१८	प्राग्घिताद्यत्	४।४।७५
७७	प्राग्दीव्यतोऽण्	४।१।८३
४५९	प्राग्वहतेष्ठक्	४।४।१
१९	प्राचां ष्फ तद्धितः	४।१।१७
२९९	प्राचां कटादेः	४।२।१३८
१४४	प्राचामवृद्धात्फिन्०	४।१।१६०
४४३	प्राणिरजतादिभ्योऽञ्	४।३।१५२
३३८	प्रायभवः	४।३।३९
३१९	प्रावृष एण्यः	४।३।१७
३२७	प्रावृषष्ठप्	४।३।२६
२२३	प्रोक्ताल्लुक्	४।२।६३
४५३	प्लक्षादिभ्योऽण्	४।३।१६२
	(फ)	
८५	फक्फिञोरन्यतरस्याम्	४।१।९१
४५२	फले लुक्	४।३।१६१
१३५	फाण्टाहृतिमिमताभ्यां०	४।१।१५०
१३४	फेश्छ च	४।१।१५०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(ब)	
५३४	बन्धने चर्षौ	४।४।९६
५५१	बर्हिषि दत्तम्	४।४।११९
२७	बहुव्रीहेरूधसो ङीष्	४।१।२५
५१	बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्	४।१।५२
२३२	बह्वचः कूपेषु	४।२।७२
३६०	बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्	४।३।६७
५०९	बह्वच्पूर्वपदाट्ठच्	४।४।६४
४६	बह्वादिभ्यश्च	४।१।४५
६४	बाह्वन्तात्संज्ञायाम्	४।१।६७
९०	बाह्वादिभ्यश्च	४।१।९६
४२९	बिल्वादिभ्योऽण्	४।३।१३४
२०२	ब्राह्मणमाणववाडवाद्०	४।२।४२
	(भ)	
५१२	भक्तादणन्यतरस्याम्	४।४।६८
५३७	भक्ताण्णः	४।४।१००
३८९	भक्तिः	४।३।९५
१०४	भर्गात्त्रैगर्ते	४।१।१११
२७५	भवतष्ठक्छसौ	४।२।११४
५४४	भवे छन्दसि	४।४।१००
४६९	भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्	४।४।१६
५७४	भागाद्यच्च	४।४।१४४
१९८	भिक्षादिभ्योऽण्	४।२।३७
४७	भुवश्च	४।१।४७
२१२	भौरिक्याद्यैषुकार्यादि०	४।२।५३
१४७	भ्रातरि च ज्यायसि	४।१।१६४
१२९	भ्रातुर्व्यच्च	४।१।१४४
११६	भुवो वुक्च	४।१।१२५
	(म)	
५०२	मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्	४।४।५६
५३५	मतजनहलात् करण०	४।४।९७
२३२	मतोश्च बह्वजङ्गात्	४।२।७२
५६७	मतौ च	४।४।१३६
५६१	मत्वर्थे मासतन्वोः	४।४।१२८
२९१	मद्रवृज्योः कन्	४।२।१३०
२६९	मद्रेभ्योऽञ्	४।२।१०७
१००	मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मण०	४।१।१०६
५७०	मधोः	४।४।१३९
५७१	मधोर्ञ च	४।४।१२९
३११	मध्यान्मः	४।३।८
२४९	मध्वादिभ्यश्च	४।२।८५
१३	मनः	४।२।११
२९४	मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्	४।२।१३३
३९	मनोरौ वा	४।१।३८
१४५	मनोर्जातवञ्यतौ षुक् च	४।१।६१
३७७	मयट् च	४।३।८२
४३५	मयड्वैतयोर्भाषायाम०	४।३।१४१
५६९	मये च	४।४।१३८
१२७	महाकुलादञ्खञौ	४।१।१४१
१९५	महाराजप्रोष्ठपदाट्०	४।२।३४
३९१	महाराजाट्ठञ्	४।३।९७
१८९	महेन्द्राद् घाणौ च	४।२।२८
१०८	मातुरुत्संख्यासंभद्र०	४।१।११५
१२२	मातृष्वसुश्च	४।१।१३४
४८७	माथोत्तरपदपदव्यनुपदं०	४।४।३७
४५३	माने वयः	४।३।१६२
५५६	मायायामण्	४।४।१२४
४७६	मुद्रादण्	४।४।२५
५२७	मूलमस्याबर्हि	४।४।८८
	(य)	
७०	यङश्चाप्	४।१।७४
१९	यञश्च	४।१।१६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
९५	यञिञोश्च	४।१।१०१
३०५	युष्मदस्मदोरन्यतरस्याम्	४।३।१
७२	यूनस्ति	४।१।७७
८५	यूनि लुक्	४।१।९१
४८३	रक्षति	४।४।३३
५५३	रक्षोयातूनां हननी	४।४।१२१
२६१	रङ्कोरमनुष्येऽण् च	४।२।९९
४१४	रथाद्यत्	४।३।१२१
२१२	राजन्यादिभ्यो वुञ्	४।२।५३
१२४	राजश्वसुराद्यत्	४।१।१३७
२९९	राज्ञः क च	४।२।१३९
३४	रात्रेश्चाजसौ	४।१।३१
२५५	राष्ट्रावारपाराद् घखौ	४।२।९३
५५४	रेवतीजगतीहविष्याभ्यो०	४।४।१२२
१३०	रेवत्यादिभ्यष्ठक्	४।१।१४६
४२५	रैवतिकादिभ्यश्छः	४।३।१३१
२३७	रोणी	४।२।७७
२८२	रोपधेतोः प्राचाम्	४।२।१२२
	(ल)	
४९९	लवणाट्ठञ्	४।४।५२
४७६	लवणाल्लुक्	४।४।२४
१६५	लाक्षारोचनाट्ठक्	४।२।२
१०३	लुक् स्त्रियाम्	४।१।१०९
४५५	लुप् च	४।३।१६४
१६७	लुबविशेषे	४।२।४
	(व)	
१०२	वतण्डाच्च	४।१।१०८
३३५	वत्सशालाभिजिद०	४।३।३६
१०	वनो र च	४।१।७
२२	वयसि प्रथमे	४।१।२०
५५९	वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्	४।४।१२७
२४६	वरणादिभ्यश्च	४।२।८१
३५७	वर्गान्ताच्च	४।३।६३
४०	वर्णादनुदात्तात्तोपधात्०	४।१।३९
२६४	वर्णौ वुक्	४।२।१०२
३२०	वर्षाभ्यष्ठक्	४।३।१८
५२६	वशं गतः	४।४।८६
३२१	वसन्ताच्च	४।३।२०
२२२	वसन्तादिभ्यष्ठक्	४।२।६५
५७४	वसोः समूहे च	४।४।१४०
४६७	वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्	४।४।१३
१४२	वाकिनादीनां कुक् च	४।१।१५८
१४८	वान्यस्मिन् सपिण्डे०	४।१।१६५
१७०	वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ	४।२।९
१९१	वाय्वृतुपित्रुषसो यत्	४।२।३०
३९१	वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्	४।३।९८
६०	वाहः	४।१।६१
२७७	वाहीकग्रामेभ्यश्च	४।२।११६
११५	विकर्णकुषीतकात्काश्यपे	४।१।१२४
११०	विकर्णशुङ्गच्छगलाद०	४।१।११७
३७८	विदूराञ्ञ्यः	४।३।८४
३७२	विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो०	४।३।७७
५२४	विध्यत्यधनुषा	४।४।८३
२९०	विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्	४।२।१२९
३२४	विभाषा पूर्वाह्णापराह्णा०	४।३।२४
१८३	विभाषा फाल्गुनीश्रवणा०	४।२।२२
३०३	विभाषाऽमनुष्ये	४।२।१४३
३१५	विभाषा रोगातपयोः	४।३।१३
४७०	विभाषा विवधात्	४।४।१७
३६	विभाषा सपूर्वस्य	४।१।३४
२७८	विभाषोशीनरेषु	४।२।११७
२११	विषयो देशे	४।२।५१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२३९	वुञ्छण्कठजिलसेनि०	४।२।७९
२७४	वृद्धाच्छः	४।२।११३
१३३	वृद्धाट्ठक्सौवीरेषु०	४।१।१४८
३००	वृद्धादकेकान्तखोपधात्	४।२।१४०
२८०	वृद्धात् प्राचाम्	४।२।११९
१५२	वृद्धेत्कोसलाजादाञ्०	४।१।१६९
३८	वृषाकप्यग्निकुसित०	४।१।३७
४६६	वेतनादिभ्यो जीवति	४।४।१२
५४६	वेशन्तहिमवद्भ्यामण्	४।४।११२
५६३	वेशोयशआदेर्भगाद्०	४।४।१३१
४५	वोतो गुणवचनात्	४।१।४४
४७७	व्यञ्जनैरुपसिक्ते	४।४।२६
१३०	व्यन् सपत्ने	४।१।१४५
३४८	व्याहरति मृगः	४।३।५१
४३८	व्रीहेः पुरोडाशे	४।२।१४६
	(श)	
५२२	शकटादण्	४।४।८०
५०४	शक्तियष्ट्योरीकक्	४।४।५९
३८५	शण्डिकादिभ्यो ञ्यः	४।३।९२
४८४	शब्ददर्दुरं करोति	४।४।३४
४३४	शम्याष्टलञ्	४।३।१४०
९६	शरद्वच्छुनकदर्भाद्०	४।१।१०२
३५१	शरीरावयवाच्च	४।३।५५
२४७	शर्कराया वा	४।२।८२
५००	शलालुनोऽन्यतरस्याम्	४।४।५४
४२१	शाकलाद्वा	४।३।१२८
६८	शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्	४।१।७३
२५३	शिखाया वलच्	४।२।८८
५०१	शिल्पम्	४।४।५५
५७३	शिवशमरिष्टस्य करे	४।४।१४३
१०५	शिवादिभ्योऽण्	४।१।११२
३८२	शिशुक्रन्दयमसभ०	४।३।८८
५०६	शीलम्	४।४।६१
१८७	शुक्राद्घन्	४।२।२५
३७१	शुण्डिकादिभ्योऽण्	४।३।७६
११४	शुभ्रादिभ्यश्च	४।१।१२३
१७८	शूलोखाद्यत्	४।२।१७
२५४	शेषे	४।२।९१
४४	शोणात्प्राचाम्	४।१।४३
४०१	शौनकादिभ्यश्छन्दसि	४।३।१०६
३३३	श्रविष्ठाफलगुन्य०	४।३।३४
५११	श्राणामांसौदनाट्टिठन्	४।४।६७
३१४	श्राद्धे शरदः	४।३।१२
४६५	श्वगणाट्ठञ्च	४।४।११
३१६	श्वसस्तुट् च	४।३।१५
४१	षिद्गौरादिभ्यश्च	४।१।४१
	(स)	
३४७	संवत्सराग्रहायणीभ्यां च	४।३।५०
४७४	संसृष्टे	४।४।२२
४६०	संस्कृतम्	४।४।३
१७७	संस्कृतं भक्षाः	४।२।१६
६६	संहितशफलक्षण०	४।१।७०
६०	सख्यशिश्वीति भाषायाम्	४।१।६२
५४७	सगर्भसयूथसनुताद्०	४।४।११४
२३४	संकलादिभ्यश्च	४।२।७४
२८	संख्याव्ययादेर्ङीप्	४।१।२६
२१५	संग्रामे प्रयोजन०	४।२।५५
४२०	संघांकलक्षणेष्वञ्०	४।३।१२७
६८	संज्ञायाम्	४।१।७२
४११	संज्ञायाम्	४।३।११७
४९४	संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ०	४।४।४६
१६७	संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्	४।२।५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४३८	संज्ञायां कन्	४।३।१४५
५२३	संज्ञायां जन्याः	४।४।८२
५२८	संज्ञायां धेनुष्या	४।४।८९
३२७	संज्ञायां शरदो वुञ्	४।३।२७
३१८	सन्धिवेलाद्यृतु०	४।३।१६
५४१	सभाया यः	४।४।१०५
७७	समर्थानां प्रथमाद्वा	४।१।८२
४९२	समवायान्समवैति	४।४।४३
५४२	समानतीर्थे वासी	४।४।१०७
५४३	समानोदरे शयित०	४।४।१०८
५५०	समुद्राभ्राद्घः	४।४।११८
३४०	संभूते	४।३।४१
२०	सर्वत्र लोहितादि०	४।१।१८
३२२	सर्वत्राण् च तलोपश्च	४।३।२२
५७२	सर्वदेवात्तातिल्	४।४।१४२
५६	सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च	४।१।५७
५६६	सहस्रेण संमितौ घः	४।४।१३५
३२३	सायंचिरंप्राह्णेप्रगे०	४।३।१३
१५५	साल्वावयवप्रत्यग्रथ०	४।१।१७१
१५०	साल्वेयगान्धारिभ्यां च	४।१।१६७
१८१	सास्मिन् पौर्णमासीति	४।२।२०
१८५	सास्य देवता	४।२।२३
३८६	सिन्धुतक्षशिलादिभ्यो०	४।३।९३
३३१	सिन्ध्वपकराभ्यां कन्	४।३।३२
९१	सुधातुरकङ् च	४।१।९७
२३६	सुवास्त्वादिभ्योऽण्	४।२।७६
२२४	सूत्राच्च कोपधात्	४।२।६४
१३७	सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च	४।१।१५२
४९३	सेनाया वा	४।४।४५
५४४	सोदराद्यः	४।४।१०९
५६८	सोममर्हति यः	४।४।१३७
१९०	सोमाट्ट्यण्	४।२।२९
३८३	सोऽस्य निवासः	४।३।८९
२१४	सोऽस्यादिरिति०	४।२।५५
७	स्त्रियाम्	४।१।३
१५८	स्त्रियामवन्तिकुन्ति०	४।१।१७४
८१	स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्०	४।१।८७
११२	स्त्रीभ्यो ढक्	४।१।१२०
२३५	स्त्रीषु सौवीरसाल्व०	४।२।७५
१७६	स्थण्डिलाच्छयितरि०	४।२।१५
३३४	स्थानान्तगोशाल०	४।३।३५
५४६	स्रोतसो विभाषा०	४।४।११३
१२९	स्वसुश्छः	४।१।१४३
५३	स्वांगाच्चोपसर्जनाद्०	४।१।५४
१	स्वौजसमौट्छष्टाभ्यां०	४।१।२
	(ह)	
४६८	हरत्युत्संगादिभ्यः	४।४।१५
९४	हरितादिभ्योऽञः	४।१।१००
४५०	हरीतक्यादिभ्यश्च	४।३।१६५
४१७	हलसीराट्ठक्	४।३।१२४
५२२	हलसीराट्ठक्	४।४।८१
५०९	हितं भक्षाः	४।४।६५
५३३	हृदयस्य प्रियः	४।४।९५
३७५	हेतुमनुष्येभ्यो०	४।३।८१
३२२	हेमन्ताच्च	४।३।२१

इति तृतीयभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

संक्षेप-विवरणम्

१.	उणा०	–	उणादिकोषः।
२.	ऋ०	–	ऋग्वेदः।
३.	का०सं०	–	काठकसंहिता।
४.	तै०सं०	–	तैत्तिरीयसंहिता।
५.	पै०सं०	–	पैप्पलादसंहिता।
६.	फिट्०	–	फिट्सूत्रम्।
७.	मै०सं०	–	मैत्रायणीसंहिता।
८.	यजु०	–	यजुर्वेदः।
९.	लिङ्गा०	–	लिङ्गानुशासनम्।
१०.	श०कौ०	–	शब्दार्थकौस्तुभ (कोषः)
११.	श०ब्रा०	–	शतपथब्राह्मणम्।
१२.	शौ०सं०	–	शौनकसंहिता।
१३.	साम०	–	सामवेदः।

ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

चतुर्थो भागः

(पञ्चमाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

चतुर्थो भागः

(पञ्चमाध्यायात्मकः)

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान

७७६/३४, हरिसिंह कालोनी

रोहतक-१२४००१ (हरयाणा)

प्रकाशक :-

ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास

गुरुकुल झज्जर,

जिला झज्जर (हरयाणा)

दूरभाष : ०१२५१ -५२०४४

५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

प्रथम वार : २०००

पौष २०५५ वि०

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

(२३ दिसम्बर १९९८ ई०)

मुद्रक :-

वेदव्रत शास्त्री

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,

गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१

दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४, ५६८३३

ओ३म्

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

पाणिनीय अष्टाध्यायी में भारतवर्ष सम्बन्धी कुछ ग्राम एवं नगरों के नाम उपलब्ध होते हैं। जनपद की भौगोलिक ईकाई के अन्तर्गत मनुष्यों के रहने के स्थान नगर एवं ग्राम कहलाते थे। उनमें छोटे स्थानों को 'घोष' और खेड़ों को 'खेट' कहा जाता था। उनका पाठकों के लाभार्थ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **अरिष्टपुर** :- (६।२।२००) बौद्ध साहित्य के अनुसार यह शिबि जनपद का नगर था।

(२) **आसन्दीवत्** :- (८।२।१२/४।२।८६) यह जनमेजय पारीक्षित की राजधानी का नाम था। काशिका के अनुसार यह अहिस्थल था जो कि कुरुक्षेत्र के पास विद्यमान था।

(३) **ऐषुकारि** :- (४।२।५४) उत्तराध्ययन-सूत्र के अनुसार कुरु जनपद में इषुकार नामक समृद्ध, सुन्दर और स्फीत नगर था। जैसे हांसी का पुराना नाम 'आसिका' था वैसे हिसार का प्राचीन नाम 'ऐषुकारि' ज्ञात होता है।

(४) **कत्रि** :- (४।२।९५) सम्भव है यह वह स्थान है जिसे कालान्तर में अलमोड़े का कत्यूर (कत्रिपुर) कहते हैं।

(५) **कपिस्थल** :- (८।२।९१) यह हरयाणा प्रान्त का वर्तमान जिला कैथल है।

(६) **कापिशी** :- (४।२।९९) यह कापिशायन प्रान्त की राजधानी थी। काबुल के उत्तरपूर्व और हिन्दुकुश के दक्षिण में आधुनिक 'बेग्राम' प्राचीन 'कापिशी' है। जो कि घोरबन्द और पंजशीर नदियों के संगम पर स्थित थी। बाल्हीक से बामियां होकर कपिश प्रान्त (कोहिस्थान-काफिरिस्तान) में घुसनेवाले मार्ग पर कापिशी नगरी व्यापार और संस्कृति का केन्द्र थी। यह हरी दाख की उत्पत्ति का स्थान था। यहां बनी हुई 'कापिशायन' नामक विशेष प्रकार की सुरा भारतवर्ष में आती थी।

(७) **कास्तीर** :- (६।१।१५५) इस पतञ्जलि मुनि ने वाहीक (पंजाब) ग्राम कहा है।

(८) **कूचवार** :- (४।३।९४) यह चीनी तुर्किस्तान उत्तरी तरिम उपत्यका का नाम था, जिसका अर्वाचीन नाम 'कूचा' है। चीनी भाषा में इसे आजकल 'कूची' कहते हैं।

(९) **गौडपुर** :- (६।२।२००) यह पुण्ड्र बंगाल का प्राचीन नाम था।

(१०) **चिहणकन्थ** :- (६।२।१२५) यह उशीनर देश का नगर था।

(११) **तक्षशिला** :- (४।३।९३) यह पूर्वी-गन्धार की प्रसिद्ध राजधानी थी। यह सिन्धु और विपाशा (व्यास) के बीच के सब नगरों में बड़ी और समृद्ध थी। पाटलिपुत्र, मथुरा और शाकल को पुष्कलावती, कापिशी और बाल्हीक (बल्ख) से मिलानेवाली उत्तरपथ (जी०टी० रोड) नामक राजमार्ग पर तक्षशिला मुख्य व्यापार-नगरी थी।

(१२) **तूदी** :- (४।३।९४) इसकी पहचान अनिश्चित है।

(१३) **नड्वल** :- (४।२।८८) यह मारवाड़ का 'नाडौल' नगर प्रतीत होता है।

(१४) **पलदी** :- (४।२।११०) इसकी पहचान अज्ञात है।

(१५) **फलकपुर** :- (४।२।१०१) यह सम्भवतः वर्तमान फिल्लौर (जालन्धर) है।

(१६) **मार्देयपुर** :- (४।२।१०१) यह सम्भवतः मंडावर (बिजनौर) है जो कि अत्यन्त प्राचीन स्थान है।

(१७) **रोणी** :- (४।२।७८) यह सम्भवतः रोड़ी (हिसार) है जो कि शैरीषक (सिरसा) के पास है।

(१८) **वरणा** :- (४।२।८२) वरणा नामक वृक्ष के समीप बसे होने के कारण इस बस्ती का नाम 'वरणा' पड़ा था। 'बरणा' उस दुर्ग का नाम था जो कि आश्वकायनों के राज्य में सिन्धु और स्वात नदियों के मध्य में सबसे सुदृढ रक्षा-स्थान था। यूनानी लेखकों ने इसका नाम 'एओरनस' दिया है जहां अस्सकोनोई=आश्वकायनों और सिकन्दर का युद्ध हुआ था।

(१९) **वर्मती** :- (४।३।९०) हो सकता है यह 'बीमरान' का पुराना नाम हो, जहां से कि खरोष्टी लेख प्राप्त हुआ है। अथवा-यह 'बामियां' हो जो कि बाल्हीक (बल्ख) और कपिशा के बीच में बहुत बड़ा केन्द्र था। यहां से आनेवाले घोड़ों को 'वार्मतेय' कहा गया है।

(२०) **वार्णव** :- (४।२।७७) वर्णु नदी के समीप स्थित नगर की संख्या 'वार्णव' थी। इसकी पहचान आधुनिक 'बन्नू' से की गई है।

(२१) **शर्करा** :- (४।२।८३) यह सिन्धु नद के किनारे 'सक्खर' नामक प्रसिद्ध स्थान है।

(२२) **शलातुर** :- (४।३।९४) यह पाणिनिमुनि का जन्मस्थान है जो कि सिन्धु-कुम्भा नदियों के संगम के कोने में ओहिन्द से चार मील पश्चिम में था। यह स्थान इस समय 'लहुर' कहलाता है।

(२३) **शिखावल** :- (४।२।८९) काशिका के अनुसार यह एक नगर था जो कि सम्भवतः सोन नदी पर स्थित 'सिहावल' नगर (रीवा रियासत) हो।

(२४) **संकल** :- (४।२।७५) यह आधुनिक सांगलावाला टीला (जि० झंग) है। यह कठ क्षत्रियों का केन्द्र था।

(२५) **सांकाश्य** :- (४।२।८०) फर्रुखाबाद जिले में ईक्षुमती (वर्तमान-ईखन) नदी के किनारे वर्तमान 'संकिसा' है जहां कि अशोककालीन स्तम्भ के चिह्न मिले हैं। सांकाश्य आदि गण में 'काम्पिल्य' नाम भी आया है जो कि फर्रुखाबाद जिले की कासगंज तहसील में वर्तमान 'कम्पिल' है।

(२६) **सौवास्तव** :- (४।२।७७) यह सुवास्तु वा स्वात नदी की घाटी का एक प्रधान नगर था।

(२७) **हस्तिनापुर** :- (४।२।१०२) यह वर्तमान हस्तिनापुर (मेरठ) है।

यह उपरिलिखित विवरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' नामक ग्रन्थ पर आधारित है। पाठक अधिक जानकारी के लिये उस ग्रन्थ का अध्ययन करें।

११-१२-१९९८ **—सुदर्शनदेव आचार्य**

सम्मति

पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य द्वारा **'अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक अष्टाध्यायी पर प्रथमावृत्ति रूप व्याख्या अति उत्तम है। अब तक प्रकाशित सभी प्रथमावृत्तियों में यह श्रेष्ठतम है। इसकी विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

१. इसकी भाषा अतिसरल तथा सुबोध है।

२. मन्दमति छात्र भी सूत्र के भाव को सहजभाव से समझ लेता है।

३. सिद्धियों को समझने के लिये अन्य सूत्र वा परिशिष्ट देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। सिद्धि के विषय में उसी सूत्र पर स्पष्टीकरण किया गया है।

४. सिद्धियों के जाल से छुट्टी किन्तु उदाहरणों की सिद्धि में सम्बन्धित सूत्र का प्रयोजन अच्छे प्रकार से समझाया गया है।

५. सूत्र, पदच्छेद-विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ और उदाहरण को अलग-अलग पैरों में छापने से छात्रों को सूत्र समझने में देरी नहीं लगती है।

६. संस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) दोनों भाषायें होने से इस ग्रन्थ की उपयोगिता और बढ़गई है।

७. मुद्रण कम्प्यूटर-कृत होने से छपाई बहुत ही साफ है।

८. महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सत्यार्थप्रकाश में प्रतिपादित शैली के अनुसार होना इस ग्रन्थ की सबसे अलग विशेषता है।

९. जनपद, नदी, वन, पर्वत, नगर, ग्राम और माप-तोल आदि का भी यथास्थान विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इत्यादि अनेक विशेषताओं से युक्त इस ग्रन्थ के लिखने के लिए पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य का और छपवाने हेतु समस्त प्रबन्ध करने के लिए पूज्य स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती का कोटिशः धन्यवाद है। आप दोनों महानुभावों की पूर्ण स्वस्थता तथा दीर्घायु की कामना परमेश्वर से करता हूं, जिससे यह महान् कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो।

आपसे विशेष प्रार्थना यह है कि इसी प्रकार से महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शैली पर आधारित अष्टाध्यायी सूत्रों पर द्वितीयावृत्ति भी लिखी जाये तो बड़ी कृपा होगी तथा संसार का बड़ा उपकार होगा।

–आचार्य भद्रकाम वर्णी

५-१२-९८ आर्यसमाज आर्यनगर, पहाड़गंज, नई दिल्ली–५५

चतुर्थभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	प्राक्क्रीतीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	छ-अधिकारः	१
२.	यत्	१
३.	यत्-विकल्पः	३
	हितार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४
२	यत्	५
३.	ष्यन्	७
४.	खः	७
५.	णः+ढञ्	९
६.	खञ्	१०
७.	छः	१०
८.	ढञ्	११
९.	ञ्यः	१२
१०	अञ्	१३
	अस्य-अस्मिन्स्यादित्यर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१	यथाविहितं प्रत्ययः	१४
२.	ढञ्	१५
	प्राग्वतीयठञ्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ठञ्-अधिकारः	१६
	आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ठक्-अधिकारः	१७
२	ठक्	१८
३.	ठन्+यत्	१९
४.	कन्	२०
५.	कनो वा इडागमः	२१
६.	इवुन्	२२
७.	टिठन्	२३
८.	अञ्-विकल्पः	२३
९.	अण्	२४
१०.	प्रत्ययस्य लुक्	२५
११.	प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः	२६
१२.	खः	३१
१३.	ईकन्	३१
१४.	यत्	३२
१५.	यत्-विकल्पः	३४
	क्रीतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	
	निमित्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	३६
२.	यत्	३८
३.	छः+यत्	३९
४.	अण्+अञ्	३९
	ईश्वरार्थप्रत्ययविधिः	
१.	अण्+अञ्	४०
	विदितार्थप्रत्ययविधिः	
१	अण्+अञ्	४१
२.	ठञ्	४२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	वापार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४३
२.	ष्ठन्	४३
	अस्मिन् दीयते-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४४
२.	ठन्	४५
३.	यत्+ठन्	४६
	हरति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	४७
२.	ठन्+कन्	४८
	सम्भवति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	५०
२.	ख-विकल्पः	५१
३.	ष्ठन्+खः+ठञ्	५२
४.	लुक्, ठञ्, खः+ष्ठन्	५३
	अस्य-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः	५५
२	निपातनम्	५८
३.	अञ् (छान्दसः)	६२
४.	इण्	६३
	अर्हति-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठक्)	६४
२.	यत्+ठक्	६५
३.	यः	६६
४.	यत्	६७
५.	घन्+यत्	६८
६.	छः+यत्	६९
७.	घः+खञ्	७०
	वर्तयति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७१
	आपन्नार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७२
	गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७३
२.	ष्कन्	७४
३.	णः	७५
	व्याहृत-गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७५
	अथ काल-अधिकारः	**७६**
	निवृत्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७७
	अधीष्टाद्यर्थचतुष्टयप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	७७
२.	यत्+खञ्	७८
३.	यप्	७९
४.	ण्यत्+यप्+ठञ्	८०
५.	ठन्+ण्यत्	८१
	निर्वृत्ताद्यर्थपञ्चकम्	
१.	खः	८१
२	ख-विकल्पः	८२
३.	ख-विकल्पो लुक् च	८५
४	प्रत्ययस्य नित्यं लुक्	८७
५.	निपातनम्	८८
६.	छः	८९
७.	खः+छः	९०
	परिजय्याद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	९१

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	९२
	दक्षिणार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	९३
	दीयते/कार्यम्-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	भववत् प्रत्ययः	९४
२.	अण्	९५
३.	णः+यत्	९६
	सम्पादि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	९८
२.	यत्	९९
	प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	९९
२.	यत्+ठञ्	१००
३.	उकञ्	१०१
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	१०२
२.	अण्	१०२
३.	घस् (छान्दसः)	१०३
४.	यत्	१०४
५.	ठञ्	१०४
६.	यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)	१०५
७.	अण्	१०६
८.	छः	१०७
९.	निपातनम् (ठञ्)	१०८
	तुल्यार्थप्रत्ययविधिः	
१.	वतिः	१११
	इवार्थप्रत्ययविधिः	
१.	वतिः	११२
	अर्हार्थप्रत्ययविधिः	
१.	वतिः	११२
	स्वार्थिकप्रत्ययविधिः	
१.	वतिः	११३
	भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	त्वः+तल्	११४
२.	त्वतल्प्रत्ययाधिकारः	११५
३.	भावार्थप्रत्ययप्रतिषेधः	११६
४.	इमनिच्-विकल्पः	११७
५.	ष्यञ्+इमनिच्+त्वः+तल्	११८
	भाव-कर्मार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ष्यञ्	११९
२.	यत् (नलोपः)	१२०
३.	यः	१२१
४.	ठक्	१२२
५.	यक्	१२२
६.	अञ्	१२४
७.	अण्	१२६
८.	वुञ्	१२७
९.	छः	१३१
१०.	त्वः	१३२

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	भवनार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	खञ्	१३४
२.	ढक्	१३५
३.	यत्	१३५
४.	यत्-विकल्पः	१३६
	कृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः+खञ्	१३७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	दर्शनार्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१३९
	व्याप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४०
	प्राप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४१
	बद्धाद्यर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४१
	अनुभवति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४३
	गामि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४४
	विजयते-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४५
२.	खः (निपातम्)	१४६
	अलङ्गामि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खः	१४८
२.	यत्+खः	१४८
३.	छः+यत्+खः	१४९
	स्वार्थिकप्रत्ययविधिः	
१.	खञ्	१५०
	एकाहागमार्थप्रत्ययविधिः	
१.	खञ्	१५१
२.	खञ् (निपातनम्)	१५२
	जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	खञ्	१५३
२.	खञ् (निपातनम्)	१५४
	पाकमूलार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कुणप्-जाहच्	१५५
२.	तिः	१५६
	वित्तार्थप्रत्ययविधिः	
१.	चुञ्चुप्+चणप्	१५७
	स्वार्थिकप्रत्ययविधिः	
१.	ना+नाञ्	१५८
२.	शालच्+शङ्कटच्	१५८
३.	कटच्	१५९
४.	कुटारच्	१६०
५.	टीटच्+नाटच्+भ्रटच्	१६०
६.	बिडच्+बिरीसच्	१६१
७.	इनच्+पिटच्	१६२
८.	त्यकन्	१६३
	घटार्थप्रत्ययविधिः	
१.	अठच्	१६४
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	इतच्	१६५
२.	द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्	१६६
३.	अण्+द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्	१६७
४.	वतुप्	१६८
५.	वतुप् (घः)	१६९
६.	डतिः+वतुप्	१७०
७.	तयप्	१७१
८.	अयच्-आदेशविकल्पः	१७२
९.	नित्यमयजादेशः	१७३
	अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	डः	१७४
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१	मयट्	१७६

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	पूरणार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	डट्	१७७
२.	डट् (मट्)	१७८
३.	डट् (थट्)	१७९
४.	डट् (थुक्)	१८०
५.	डट् (तिथुक्)	१८०
६.	डट् (इथुक्)	१८१
७.	तीयः	१८२
८.	तीयः (सम्प्रसारणम्)	१८२
९.	डट् (वा तमट्)	१८३
१०.	डट् (नित्यं तमट्)	१८४
	मत्वर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	छः	१८६
२.	छस्य लुक्	१८७
३.	अण्	१८८
४.	वुन्	१८९
	कुशलार्थप्रत्ययविधिः	
१.	वुन्	१९०
२.	कन्	१९१
	कामार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९२
	प्रसितार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९२
२.	ठक्	१९३
	परिजातार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९४
	हारि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९५
	अचिरापहृतार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९५
२.	कन् (निपातनम्)	१९६
	कारि-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९७
२.	कन् (निपातनम्)	१९८
	अन्विच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	१९९
२.	ठक्+ठञ्	२००
	स्वार्थिकप्रत्ययविधिः	
१.	कन् (पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्)	२०१
	एषाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	२०३
	अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	२०३
२.	कन् (निपातनम्)	२०४
	भव-जनितार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	२०५
	अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	२०६
२.	अञ्	२०७
	छन्दोऽधीतेऽर्थे निपातनम्	**२०७**
	अनेन (तृतीया) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	इनिः+ठन्	२०८
२.	इनिः	२०९
३.	इनिः (निपातनम्)	२११
४.	इनिः	२१३
	निपातनम् (क्षेत्रियच्)	२१४
	निपातनम् (इन्द्रियम्)	२१४

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः	
१.	मतुप्	२१६
२.	लच्-विकल्पः	२१७
३.	लच्	२२०
४.	इलच्+लच्+मतुप्	२२१
५.	शः+नः+इलच्	२२२
६.	णः	२२३
७.	विनिः+इनिः	२२४
८.	अण्	२२५
९.	लुप्+इलच्+अण्+मतुप्	२२७
१०.	उरच्	२२८
११.	रः	२२९
१२.	मः	२३०
१३.	वः+इनिः+ठन्+मतुप्	२३१
१४.	वः	२३२
१५.	इरन्+इरच्	२३३
१६.	वलच्	२३४
१७.	निपातनम् (मतुबर्थे)	२३५
१८.	इनिः+ठन्+मतुप्	२३७
१९.	इलच्+इनिः+ठन्+मतुप्	२४०
२०.	नित्यं ठञ्	२४१
२१.	ठञ्	२४२
२२.	यप्	२४२
२३.	विनिः	२४३
२४.	बहुलं विनिः (छान्दसः)	२४४
२५.	युस्	२४५
२६.	ग्मिनिः	२४६
२७.	आलच्+आटच्	२४७
२८.	निपातनम् (स्वामिन्)	२४८
२९.	अच्	२४८
३०.	इनिः	२४९
३१.	इनिः (कुक्)	२५०
३२.	इनिः	२५१
३३.	मतुप्-विकल्पः	२५६
३४.	इनिः	२५७
३५.	बादयः सप्तप्रत्ययाः	२५८
३६.	भः	२५९
३७.	युस्	२६०
	पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः	
	विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्	
१.	विभक्ति-अधिकारः	२६१
२.	प्रत्ययविधानाधिकारः	२६१
३.	इश्-आदेशः	२६२
४.	एत-इदादेशौ	२६३
५.	अन्-आदेशः	२६४
६.	स-आदेशः	२६४
७.	तसिल्	२६५
८.	तसिल्-आदेशः	२६६
९.	तसिल्	२६७
१०.	त्रल्	२६७
११.	हः	२६८
१२.	अत्	२६९
१३.	ह-विकल्पः (छान्दसः)	२६९
१४.	तसिलादयः	२७०
१५.	दा	२७१
१६.	र्हिल्	२७२
१७.	निपातनम् (अधुना)	२७३

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१८.	दानीम्	२७४
१९.	दा+दानीम्	२७४
२०.	दा+र्हिल्	२७५
२१.	र्हिल्	२७६
२२.	निपातनम् (सद्य आदयः)	२७७
२३.	थाल्	२७९
२४.	थमुः	२८०
२५.	था	२८१

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अस्तातिः	२८२
२.	अतसुच्	२८३
३.	अस्ताति-लुक्	२८५
४.	अतसुच्-विकल्पः	२८७
५.	निपातनम्	२८८
६.	आतिः	२९२
७.	एनप्-विकल्पः	२९३
८.	आच्	२९५
९.	आहि+आच्	२९६
१०.	असिः	२९८
११.	पुरादय आदेशाः	३००
१२.	अवादेश-विकल्पः	३०१

विधार्थ-अधिकरणविचालविशिष्टार्थ-प्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	धाः	३०२
२.	ध्यमुञादेश-विकल्पः	३०३
३.	एधाच्-आदेशः	३०५

याप्यविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	पाशप्	३०६

भागविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अन्	३०७
२.	ञः+अन्	३०८
३.	कन्+लुक्+अन्+ञः	३०९

असहायविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	आकिनिच्+कन्+लुक्	३१०

भूतपूर्वार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	चरट्	३१२
२.	रूप्यः+चरट्	३१२

अतिशायनविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	तमप्+इष्ठन्	३१२
२.	तमप्	३१३
३.	तरप्+ईयसुन्	३१४
४.	इष्ठन्+ईयसुन्	३१६
५.	श्र-आदेशः	३१७
६.	ज्य-आदेशः	३१८
७.	नेद-साधावादेशौ	३२०
८.	कन्-आदेशविकल्पः	३२१
९	प्रत्यय-लुक्	३२२

प्रशंसाविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	रूपप्	३२३

ईषदसमाप्तिविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	कल्पप्+देश्यः+देशीयर्	३२४
२.	बहुच्	३२५

प्रकारविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	जातीयर्	३२६

प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	क-अधिकारः	३२७
२.	अकच्-अधिकारः	३२७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
३.	अकच्	३२९
	अज्ञातविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्)	३३२
२.	ठच्-विकल्पः	३३४
३.	घन्+इलच्	३३५
४.	अडच्+वुच्	३३५
५.	कन्	३३७
६.	लोपविधिः	३३८
	अल्पार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्)	३४०
	ह्रस्वार्थप्रत्ययविधिः	
१.	यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्)	३४१
२.	कन्	३४२
३.	रः	३४२
४.	डुपच्	३४३
५.	ष्टरच्	३४४
	तनुत्वार्थप्रत्ययविधिः	
१.	ष्टरच्	३४४
	निर्धारणार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	डतरच्	३४५
२.	डतमच्	३४६
३.	डतरच्+डतमच्	३४७
	इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	कन्	३४८
२.	प्रत्ययस्य लुप्	३५०
३.	ढञ्	३५३
४.	ढः	३५३
५.	यत्	३५४
६.	यत् (निपातनम्)	३५५
७.	छः	३५५
८.	अण्	३५७
९.	ठक्	३५८
१०.	ठच्-विकल्पः	३५९
११.	ईकक्	३५९
१२.	थाल्	३६०
	तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	ञ्यः	३६१
२.	ञ्यट्	३६३
३.	टेण्यण्	३६५
४.	छः	३६५
५.	अण्+अञ्	३६७
६.	यञ्	३६८
७.	तद्राजसंज्ञा	३६९

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	वीप्सार्थप्रत्ययविधिः	
१.	वुन्	३७१
	प्रकारार्थप्रत्ययविधिः	
१.	कन्	३७३
२.	कन्-प्रतिषेधः	३७४
३.	कन्	३७५
	स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	खः	३७५
२.	ख-विकल्पः	३७७
३.	छः	३७८
४.	छ-विकल्पः	३७८
५.	आमु	३७९
६.	अमु+आमु (छन्दसि)	३८१
७.	ठक्	३८२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
८.	अञ्	३८२
९.	अण्	३८३
१०.	कृत्वसुच्	३८४
११.	सुच्	३८५
१२.	धा	३८७
१३.	मयट्	३८८
१४.	समूहवत् प्रत्ययाः+मयट्	३८८
१५.	ञ्यः	३८९
१६.	यत्	३९०
१७.	ञ्यः	३९१
१८.	तल्	३९२
१९.	कः	३९२
२०.	कन्	३९२
२१.	ठक्	३९५
२२.	अण्	३९७
२३.	तिकन्	३९९
२४.	सः+स्नः	३९९
२५.	तिल्+तातिल्	४००
२६.	शस्	४०१
२७.	तसिः	४०२
	अभूततद्भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्	
१.	च्विः	४०८
२.	च्विः (अन्त्यलोपः)	४०९
३.	साति-विकल्पः	४११
	अधीनार्थप्रत्ययविधिः	
१.	सातिः	४१३
२.	त्राः+सातिः	४१४
	सामान्यार्थप्रत्ययविधिः	
१.	त्राः	४१५
२.	डाच्	४१६
	कर्षणार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४१७
	यापनार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४१९
	अतिव्यथनार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४१९
	निष्कोषणार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२०
	आनुलोम्यार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२१
	प्रातिलोम्यार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२२
	पाकार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२२
	अशपार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२३
	परिवापणार्थप्रत्ययविधिः	
१.	डाच्	४२४
	समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्	
१.	अधिकारः	४२४
२.	समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः	४२६
३.	समासान्तप्रत्ययविकल्पः	४२९
४.	डच्	४३०
५.	अः	४३१
६.	अच्	४३३
७.	अच् (निपातनम्)	४३४
८.	अच्	४३७
९.	अच् (निपातनम्)	४४१

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः	सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१०.	अच्	४४२	९.	अनिच्	४७९
	(क) तत्पुरुषसमासः		१०.	अनिच् (निपातनम्)	४८०
१.	अच्	४४३	११.	इच्	४८२
२.	अह्न-आदेशः	४४६	१२.	ज्ञु-आदेशः	४८४
३.	अह्न-आदेशप्रतिषेधः	४४७	१३.	ज्ञु-आदेशविकल्पः	४८४
४.	टच्	४४९	१४.	अनङ्-आदेशः	४८५
५.	टच्-विकल्पः	४६१	१५.	अनङ्-आदेशविकल्पः	४८६
	(ख) समाहारद्वन्द्वसमासः		१६.	निङ्-आदेशः	४८७
१.	टच्	४६३	१७.	इकार-आदेशः	४८८
	(ग) अव्ययीभावसमासः		१८.	लोपादेशः	४९०
१.	टच्	४६४	१९.	दतृ-आदेशः	४९२
	(घ) बहुव्रीहिसमासः		२०.	दतृ-आदेशविकल्पः	४९४
१.	षच्	४६९	२१.	लोपादेशः	४९६
२.	षः	४७१	२२.	लोपादेशः (निपातनम्)	४९७
३.	अप्	४७२	२३.	लोपादेशः	४९८
४.	अच्	४७४	२४.	लोपादेशः-विकल्पः	४९८
५.	अच् (निपातनम्)	४७५	२५.	निपातनम्	४९९
६.	अच्-विकल्पः	४७६	२६.	कप्	५००
७.	असिच्	४७७	२७.	कप्-विकल्पः	५०३
८.	असिच् (निपातनम्)	४७८	२८.	कप्-प्रतिषेधः	५०४

इति चतुर्थभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः
प्राक्क्रीतीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

छ-अधिकारः–

(१) प्राक् क्रीताच्छः ।१।

प०वि०–प्राक् १।१ क्रीतात् ५।१ छः १।१।

अन्वयः–क्रीतात् प्राक् छः।

अर्थः– **'तेन क्रीतम्'** (५।१।३७) इति वक्ष्यति। तस्मात् क्रीत-शब्दात् प्राक् छः प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) इति। वत्सेभ्यो हितः-वत्सीयो गोधुक्। करभेभ्यो हितः-करभीय उष्ट्रः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(क्रीतात्)* ***'तेन क्रीतम्'*** *(५।१।३७) इस सूत्र में जो 'क्रीत' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (छः) छ प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे-* ***'तस्मै हितम्'*** *(५।१।५)। वत्स=बछड़ों के लिये हितकारी-वत्सीय गोधुक् (गौ का दोग्धा)। करभ=ऊंट के बच्चों के लिये हितकारी-करभीय उष्ट्र (ऊंट)।*

सिद्धि-वत्सीयः। *वत्स+भ्यस्+छ। वत्स्+ईय। वत्सीय+सु। वत्सीयः।*

यहां चतुर्थी-समर्थ 'वत्स' शब्द से 'हित' अर्थ में ***'तस्मै हितम्'*** *(५।१।५) से 'छ' प्रत्यय है।* ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-***करभीयः।**

यत्–

(२) उगवादिभ्यो यत्।२।

प०वि०–उ-गवादिभ्यः ५।३ यत् १।१।

स०–गौरादिर्येषां ते गवादयः, उश्च गवादयश्च ते उगवादयः, तेभ्यः-उगवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्राक्, क्रीताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उ-गवादिभ्यः प्राक् क्रीताद् यत्।

अर्थः-उ-वर्णान्तेभ्यो गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(उ-वर्णान्तः) शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यं दारु। पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलव्या मृत्तिका। **(गवादिः)** गवे हितम्-गव्यम्। हविष्यम्।

गो। हविस्। बर्हिस्। खट। अष्टका। युग। मेधा। स्रक्।। नाभि नभं च।। शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। शुन्यम्। शून्यम्। ऊधसोऽनङ् च।। ऊधन्यः कूपः। उदर। स्वर। स्खद्। अक्षर। विष। स्कन्द। अध्वा। इति गवादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उ-गवादिभ्यः) उ-वर्णान्त और गो-आदि प्रातिपदिकों से (प्राक् क्रीतात्) पूर्व-क्रीतीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(उवर्णान्त)** शङ्कु (खूंटा) के लिये हितकारी-शङ्कव्य दारु (लकड़ी)। पिचु (रूई) के लिये हितकारी-पिचव्य कार्पास (कपास)। कमण्डलु=जलपात्र के लिये हितकारी-कमण्डलव्या मृत्तिका (मिट्टी)। **(गवादि)** गौ के लिये हितकारी-गव्य। हविः के लिये हितकारी-हविष्य।*

सिद्धि-शङ्कव्यम्। *शङ्कु+ङे+यत्। शङ्को+य। शङ्कव्य+सु। शङ्कव्यम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ, उकारान्त 'शङ्कु' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-पिचव्यः आदि।

यत्-

(३) कम्बलाच्च संज्ञायाम्।३।

प०वि०-कम्बलात् ५।१ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-प्राक्, क्रीतात्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कम्बलात् प्राक् क्रीताद् यत् संज्ञायाम्।

अर्थः-कम्बल-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-कम्बलाय हितम्-कम्बल्यमूर्णापलशतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कम्बलात्) कम्बल प्रातिपदिक से (च) भी (प्राक् क्रीतात्) पूर्व-क्रीतीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-कम्बल के लिये हितकारी-कम्बल्य ऊर्णा पलशत (सौ पल=५ सेर ऊन)।

सिद्धि-कम्बल्यम्। *कम्बल+ङे+यत्। कम्बल्+य। कम्बल्य+सु। कम्बल्यम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'कम्बल' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है।*

विशेषः *कम्बल-उस समय पण्य कम्बल नाम से एक विशेष माप का बाजार में चालू कम्बल बनता था (५।२।४२)। उसमें जितनी ऊन लगती थी उसके लिये 'कम्बल्य' शब्द चालू था। पाणिनि ने कम्बल्य को तोल-विशेष का वाचक संज्ञा-शब्द कहा है (५।१।३)। काशिका में लिखा है कि सौ पल अर्थात् ५ सेर ऊन की संज्ञा कम्बल्य थी। पल=४ तोले। १०० पल=४०० तोले (५ सेर) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १३६)।*

यत्-विकल्पः-

(४) विभाषा हविरपूपादिभ्यः।४।

प०वि०-विभाषा १।१ हविः-अपूपादिभ्यः ५।३।

स०-अपूप आदिर्येषां तेऽपूपादयः, हविश्च अपूपादयश्च ते हविरपूपादयः, तेभ्यः-हविरपूपादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राक् क्रीतात्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हविरपूपादिभ्यः प्राक् क्रीताद् विभाषा यत्।

अर्थः-हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, पक्षे च छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(हविः) आमिक्षायै हितम्-आमिक्ष्यं दधि (यत्)। आमिक्षीयं दधि (छः)। पुराडाशाय हिताः-पुरोडाश्यास्तण्डुलाः (यत्)। पुरोडाशीया-स्तण्डुलाः (छः)। **(अपूपादिः)** अपूपेभ्यो हितम्-अपूप्यम् (यत्) अपूपीयम् (छः)। तण्डुलेभ्यो हितम्-तण्डुल्यम् (यत्)। तण्डुलीयम् (छः)। इत्यादिकम्।

अपूप। तण्डुल। अभ्यूष। अभ्योष। पृथुक। अभ्येष। अर्गल। मुसल। सूप। कटक। वर्णविष्टक। किण्व।। अन्नविकारेभ्यश्च। पूप। स्थूणा। पीप। अश्व। पत्र। कट। अयःस्थूण। ओदन। अवोष। प्रदीप। इत्यपूपादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हविरपूपादिभ्यः) हवि-विशेषवाची और अपूप-आदि प्रातिपदिकों से (प्राक्-क्रीतात्) प्राक्-क्रीतीय अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (यत्) यत् प्रत्यय होता है और पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हवि) आमिक्षा (दूध का छेलड़ा) के लिये हितकारी-आमिक्ष्य दही (यत्)। आमिक्षीय दही (छ)। पुरोडाश के लिये हितकारी-पुरोडाश्य तण्डुल=चावल (यत्)। पुरोडाशीय तण्डुल=चावल (छ)। (अपूपादि) अपूप (पूड़े) के लिये हितकारी-अपूप्य (यत्)। अपूपीय (छ)। तण्डुल के लिये हितकारी-तण्डुल्य (यत्)। तण्डुलीय (छ) इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **आमिक्ष्यम्।** आमिक्षा+ङे+यत्। आमिक्ष्+य। आमिक्ष्य+सु। आमिक्ष्यम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ, हविर्विशेषवाची 'आमिक्षा' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अपूप्यम्, तण्डुल्यम्।***

*(२) **आमिक्षीयम्।** यहां 'आमिक्षा' शब्द से विकल्प पक्ष में 'छ' प्रत्यय है और **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अपूपीयम्, तण्डुलीयम्।***

विशेषः *पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी। यज्ञ में इसके टुकड़े काटकर और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

हितार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्मै हितम्।५।

प०वि०-तस्मै ४।१ हितम् १।१।

अनु०-प्राक्, क्रीतात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै प्रातिपदिकाद् हितं यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-वत्सेभ्यो हितः-वत्सीयो गोधुक्। पटव्यम्। गव्यम्। हविष्यम्। अपूप्यम्। अपूपीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ प्रातिपदिक से **(हितम्)** हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-वत्स=बछड़ों के लिये हितकारी-वत्सीय गोधुक् (गौ का दोग्धा)। पटु=चतुर के लिए हितकारी-पटव्य। गौ के लिये हितकारी-गव्य। हवि के लिये-हविष्य। अपूपों के लिये हितकारी-अपूप्य (यत्)। अपूपीय (छ)।

सिद्धि-वत्सीय *आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

यत्–

(२) शरीरावयवाद् यत्।६।

प०वि०-शरीर-अवयवात् ५।१ यत् १।१।

स०-शरीरम्=प्राणिकायः। शरीरस्यावयवम्-शरीरावयवम्, तस्मात्-शरीरावयवात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्मै, हितम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै शरीरावयवाद् हितं यत्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाच्छरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दन्तेभ्यो हितम्-दन्त्यम् औषधम्। कण्ठ्यम् औषधम्। ओष्ठ्यम् औषधम्। नाभ्यम् आसनम्। नस्यम् औषधम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (शरीरावयवात्) शरीर-अवयववाची प्रातिपदिक से (हितम्) हित=उपकारक अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दन्तों के लिये हितकारी-दन्त्य औषध। कण्ठ के लिये हितकारी-कण्ठ्य औषध। ओष्ठों के लिये हितकारी-ओष्ठ्य औषध। नाभि के लिये हितकारी-नाभ्य आसन। नसों (नासिका) के लिये हितकारी-नस्य औषध।

सिद्धि-दन्त्यम्। *दन्त+भ्यस्+यत्। दन्त्+य। दन्त्य+सु। दन्त्यम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ, शरीर-अवयववाची 'दन्त' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कण्ठ्यः** आदि। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है।*

यत्–

(३) खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च।७।

प०वि०–खल-यव-माष-तिल-वृष-ब्रह्मण: ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–खलश्च माषश्च तिलश्च वृषश्च ब्रह्मा च एतेषां समाहार: खलवयमाषतिलवृषब्रह्म, तस्मात्-खलयवमाषतिलवृषब्रह्मण:।

अनु०–तस्मै, हितम्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तस्मै खल०ब्रह्मणश्च हितं यत्।

अर्थ:–तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्य: खलादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यश्च हितमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(खल:)** खलाय हितम्-खल्यं स्थानम्। **(यव:)** यवाय हितम्-यव्यं क्षेत्रम्। **(माष:)** माषाय हितम्-माष्यं क्षेत्रम्। **(तिल:)** तिलाय हितम्-तिल्यं क्षेत्रम्। **(वृष:)** वृषाय हितम्-वृष्यं शस्यम्। **(ब्रह्मा)** ब्रह्मणे हितम्-ब्रह्मण्यम् अध्ययनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (खल०ब्रह्मण:) खल, यव, माष, तिल, वृष, ब्रह्मन् प्रातिपदिकों से (च) भी (हितम्) हित अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(खल)** खलिहान के लिये हितकारी-खल्य स्थानविशेष। **(यव)** जौ के लिये हितकारी-यव्य (क्षेत्र)। **(माष)** उड़द के लिये हितकारी-माष्य (क्षेत्र)। **(तिल)** तिल के लिये हितकारी-तिल्य (क्षेत्र)। **(वृष)** बैल के लिये हितकारी-वृष्य शस्य (खेती)। **(ब्रह्मा)** ब्राह्मण=विद्वान् के लिये हितकारी-ब्रह्मण्य वेदाध्ययन।*

*सिद्धि-(१) **खल्यम्।** खल+ङे+यत्। खल्+य। खल्य+सु। खल्यम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'खल' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यव्यम्, माष्यम्, तिल्यम्।***

*(२) **वृष्यम्।** यहां अकारान्त 'वृष' शब्द से 'यत्' प्रत्यय है। यहां अकारान्त 'वृष' शब्द का ग्रहण किया जाता है, नकारान्त 'वृषन्' शब्द का नहीं। वहां वाक्य ही होता **है-वृष्णे हितम्।***

(३) ब्रह्मण्यम्। ब्रह्मन्+ङे+यत्। ब्रह्मण्+य। ब्रह्मण्य+सु। ब्रह्मण्यम्।

यहां नकारान्त 'ब्रह्मन्' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से प्राप्त अकार का लोप 'न संयोगाद् वमन्तात्' (६।४।१३७) के प्रतिषेध से नहीं होता है और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) के प्रतिषेध से नहीं होता है।

थ्यन्–

(४) अजाविभ्यां थ्यन्।८।

प०वि०–अज-अविभ्याम् ५।२ थ्यन् १।१।

स०–अजश्च अविश्च तौ अजावी, ताभ्याम्–अजाविभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्मै अजाविभ्यां हितं थ्यन्।

अर्थः–तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्याम् अजाविभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे थ्यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(अजः) अजाय हिता–अजथ्या यूथिः। **(अविः)** अवये हिता–अविथ्या यूथिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (अजाविभ्याम्) अज और अवि प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में (थ्यन्) थ्यन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(अज)** बकरे के लिये हितकारी–अजथ्या यूथि (जुही नामक पौधा)। **(अवि)** मेष (भेड़) के लिये हितकारी–अविथ्या यूथि।*

*सिद्धि–**अजथ्या।** अज+ङे+थ्यन्। अज+थ्य। अजथ्य+टाप्। अजथ्या+सु। अजथ्या।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'अज' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'थ्यन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है–**अजथ्या।** ऐसे ही–**अविथ्या।***

खः–

(५) आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः।९।

प०वि०–आत्मन्–विश्वजन–भोगोत्तरपदात् ५।१ खः १।१।

स०-भोग उत्तरपदं यस्य तत्-भोगोत्तरपदम्, आत्मा च विश्वजनश्च भोगोत्तरपदं च एतेषां समाहार: आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदम्, तस्मात्-आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वय:-तस्मै आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदाद् हितं ख:।

अर्थ:-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्याम् आत्मन्विश्वजनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भोगोत्तरपदाच्च प्रतिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे ख: प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(आत्मा)** आत्मने हितम्-आत्मनीनं शुभकर्म। **(विश्वजन:)** विश्वजनाय हितम्-विश्वजनीनं परोपकरणम्। **(भोगोत्तरपदम्)** मातुर्भोग इति मातृभोग:। मातृभोगाय हित:-मातृभोगीण: पुत्र:। पितुर्भोग इति पितृभोग:। पितृभोगाय हित:-पितृभोगीण: पुत्र:। भोग:=शरीरम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्) आत्मन्, विश्वजन और भोग-उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में (ख:) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(आत्मा)** आत्मा के लिये **हितकारी**-आत्मनीन शुभकर्म। **(विश्वजन)** विश्वजन के लिये हितकारी-विश्वजनीन परोपकार। **(भोगोत्तरपद)** मातृभोग=माता के शरीर के लिये हितकारी-मातृभोगीण पुत्र। माता की सेवा **करनेवाला** पुत्र। पितृभोग=पिता के शरीर के लिये हितकारी-पितृभोगीण पुत्र। पिता की सेवा करनेवाला पुत्र।*

सिद्धि-(१) आत्मनीनम्। *आत्मन्+ङे+ख। आत्मन्+ईन। आत्मनीन+सु। आत्मनीनम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'आत्मन्' **शब्द** से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। यहां **'आत्माध्वानौ खे'** (६।४।१६९) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से 'आत्मन्' के टि-भाग का लोप नहीं होता है। सूत्रपाठ में नकारान्त 'आत्मन्' शब्द का निर्देश उत्तरपद-सम्बन्ध की निवृत्ति के लिये है। अर्थात् 'आत्मन्' इस प्रकृति से ही ख-प्रत्यय होता है।*

*(२) **विश्वजनीन:।** यहां 'विश्वजन' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। **विश्वे च ते जना इति विश्वजना: (कर्मधारय:)। यहां कर्मधारयवान्** 'विश्वजन' शब्द से 'ख' प्रत्यय*

*अभीष्ट है। विश्वस्य जन इति विश्वजनः सर्वसाधारणो वेश्यादिः। **विश्वो जनोऽस्येति-विश्वजनः स एव वेश्यादिः।** इस षष्ठीतत्पुरुष और बहुव्रीहि समास वाले 'विश्वजन' शब्द से 'ख' प्रत्यय अभीष्ट नहीं है। यहां उत्सर्ग 'छ' प्रत्यय होता है- **विश्वजनीय।***

*(३) **मातृभोगीणः।** यहां 'मातृभोग' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। वा०- **'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**पितृभोगीणः।***

णः+ढञ्-

(६) सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ।१०।

प०वि०-सर्व-पुरुषाभ्याम् ५।२ ण-ढञौ १।२।

स०-सर्वश्च पुरुषश्च तौ सर्वपुरुषौ, ताभ्याम्-सर्वपुरुषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। णश्च ढञ् च तौ णढञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै सर्वपुरुषाभ्यां हितं णढञौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां सर्वपुरुषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ण-ढञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(सर्वः) सर्वस्मै हितम्-सार्वं ब्रह्म। **(पुरुषः)** पुरुषाय हितम्-पौरुषेयं ब्रह्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (सर्व-पुरुषाभ्याम्) सर्व और पुरुष प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में यथसंख्य (णढञौ) ण और ढञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(सर्व)** सबके लिये हितकारी-सार्व ब्रह्म। **(पुरुष)** पुरुषमात्र के लिये हितकारी-पौरुषेय ब्रह्म (वेद)।*

***सिद्धि-(१) सार्वम्।** सर्व+ङे+ण। सार्व्+अ। सार्व+सु। सार्वम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'सर्व' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **पौरुषेयम्।** पुरुष+ङे+ढञ्। पौरुष्+एय। पौरुषेय+सु। पौरुषेयम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'पुरुष' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

खञ्–

(७) माणवचरकाभ्यां खञ्।११।

प०वि०-माणव-चरकाभ्याम् ५।२ खञ् १।१।

स०-माणवश्च चरकश्च तौ माणवचरकौ, ताभ्याम्-माणवचरकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै माणवचरकाभ्यां हितं खञ्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां माणवचरकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**माणवः**) माणवाय हितम्-माणवीनं दुग्धम्। (**चरकः**) चरकाय हितम्-चारकीणं यानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (माणवचरकाभ्याम्) माणव और चरक प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(माणव)** बालक छात्र के लिये हितकारी-माणवीन दुग्ध। **(चरक)** घूमनेवाले छात्र के लिये हितकारी-चारकीण यान।*

सिद्धि-माणवीनम्। *माणव+ङे+ख। माणव्+ईन। माणवीन+सु। माणवीनम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'माणव' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ऐसे ही-**चारकीणम्।***

विशेषः *पाणिनि-काल में तीन प्रकार के छात्र थे। छोटे बालक माणव और उपनयन-संस्कार के पश्चात् अन्तेवासी कहाते थे। विद्या-अध्ययन के लिये चरणों (वैदिक-विद्यापीठ) में घूमनेवाले चरक कहाते थे।*

छः–

(८) तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ।१२।

प०वि०-तदर्थम् १।१ विकृतेः ५।१ प्रकृतौ ७।१।

स०-तस्मै इदम्-तदर्थम् (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै विकृतेर्हितं यथाविहितं छः, तदर्थायां प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् विकृतिवाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयाम्।

उदा०-अङ्गारेभ्यो हितानि-अङ्गारीयाणि काष्ठानि। प्रकाराय हिताः-प्राकारीया इष्टकाः। शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यं दारु। पिचवे हितः-पिचव्यः कार्पासः, इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची **प्रातिपदिक** से (हितम्) हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तदर्थ प्रकृतौ) यदि वहां **तदर्थ=उस** विकृति के लिये प्रकृति=उपादान कारण अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-अङ्गारों के लिये हितकारी-अङ्गारीय काष्ठ (लकड़ियां)। प्राकार= चहारदीवारी के लिये हितकारी-प्राकारीय इष्टका (ईंटे)। शङ्कु=खूंटे के लिये हितकारी-शङ्कव्य दारु (लकड़ी)। पिचु=रूई के लिये हितकारी-पिचव्य कार्पास (कपास) इत्यादि।

***सिद्धि-अङ्गारीयम्।** अङ्गार+ङे+छ। अङ्गार्+ईय। अङ्गारीय+सु। अङ्गारीयम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'अङ्गार' शब्द से यथाविहित **'प्राक् क्रीताच्छः'** (५।१।१) से हित-अर्थ में प्राक्-क्रीतीय 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्राकारीया इष्टकाः।***

*(२) **शङ्कव्यम्।** शङ्कु+ङे+यत्। शङ्को+य। शङ्कव्य+सु। शङ्कव्यम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ उकारान्त 'शङ्कु' शब्द से **'उगवादिभ्यो यत्'** (५।१।२) से यथाविहित 'यत्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-**पिचव्यः।***

***विशेषः** किसी द्रव्य के उपादान-कारण को प्रकृति कहते हैं उस उपादान कारण का अवस्थान्तर विकृति कहाता है। जैसे अङ्गारों की प्रकृति काष्ठ हैं और काष्ठों की विकृति अङ्गार हैं। ऐसे ही सर्वत्र समझ लेवें।*

ढञ्-

(६) छदिरुपधिबलेर्ढञ्।१३।

प०वि०-छदिः-उपधि-बलेः ५।१ ढञ् १।१।

स०-छदिश्च उपधिश्च बलिश्च एतेषां समाहारः-छदिरुपधिबलि, तस्मात्-छदिरुपधिबलेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै विकृतेश्छदिरुपधिबलेर्हितं ढञ्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्यो विकृतिवाचिभ्यश्छदिरुपधिबलिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हितमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-**(छदिः)** छदिषे हितानि छादिषेयाणि तृणानि। **(उपधिः)** उपधीयते इत्युपधिः-रथाङ्गम्। उपधिरेव-औपधेयं दारु। उपधि-शब्दात् स्वार्थे ढञ् प्रत्ययो भवति। **(बलिः)** बलिभ्यो हिताः-बालेयास्तण्डुलाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची (छदिरुपधिबलेः) छदिष्, उपधि, बलि प्रातिपदिकों से (हितम्) हित-अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (तदर्थं प्रकृतौ) यदि वहां तदर्थ=उस विकृति के लिये प्रकृति=उपादान कारण अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(छदि) घर की छत के लिये हितकारी-छादिषेय तृण। (उपधिः) उपधि (रथ का पहिया) ही-औपधेय। यहां स्वार्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है, हित अर्थ में नहीं। (बलिः) बलि=(देवता का खाद्यपदार्थ) के लिये हितकारी-बालेय तण्डुल (चावल)।

***सिद्धि-छादिषेयम्।** छदिष्+ङे+ढञ्। छादिष्+एय। छादिषेय+सु। छादिषेयम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ, विकृतिवाची 'छदिष्' शब्द से तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**औपधेयम्, बालेयम्।***

ञ्यः-

(१०) ऋषभोपानहोर्ञ्यः।१४।

प०वि०-ऋषभ-उपानहोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ञ्यः १।१।

स०-ऋषभश्च उपानच्च ते ऋषभोपानहौ, तयोः-ऋषभोपानहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै विकृतिभ्याम् ऋषभोपानद्भ्यां हितहं ञ्यः, तदर्थं प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां विकृतिवाचिभ्याम् ऋषभोपानद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-**(ऋषभः)** ऋषभाय हितः-आर्षभ्यो वत्सः। **(उपानत्)** उपानहे हितः-औपानह्यो मुञ्जः। औपानह्यं चर्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची (ऋषभोपानहोः) ऋषभ और उपानत् प्रातिपदिकों से (हितम्) हित-अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (तदर्थं प्रकृतौ) यदि वहां तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(ऋषभ)** सांड के लिये हितकारी-वत्स (बछड़ा)। वह बछड़ा जो सांड अच्छा बन सकता है। **(उपानत्)** जूता के लिये हितकारी-औपनह्य मुञ्ज (मूंज)। उपानत्=जूता के लिये हितकारी-औपानह्य चर्म (चमड़ा)। वह चमड़ा जिसका जूता अच्छा बन सकता है।*

सिद्धि-आर्षभ्यः। *ऋषभ+ङे+ञ्य। आर्षभ्+य। आर्षभ्य+सु। आर्षभ्यः।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ, विकृतिवाची 'ऋषभ' शब्द से हित-अर्थ में तथा तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औपानह्यम्।***

अञ्-

(११) चर्मणोऽञ्।१५।

प०वि०-चर्मणः ६।१ अञ् १।१।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै चर्मणो हितम् अञ् तदर्थं प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् चर्मणो विकृतिवाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-वर्ध्रायै हितम्-वार्ध्रं चर्म। वरत्राय हितम्-वारत्रं चर्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (चर्मणः) चर्म-सम्बन्धी (विकृतेः) विकृतिवाची प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तदर्थं **प्रकृतौ)** **यदि** वहां तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-वर्ध=चमड़े की रस्सी के लिये हितकारी-वार्ध्र चर्म (चमड़ा)। वह चमड़ा जिसकी रस्सी अच्छी बनती है। वरत्र=गाड़ी में बांधने की मोटी रस्सी के लिये हितकारी-वारत्र चर्म।

सिद्धि-वार्ध्रम्। वर्ध्र+ङे+अञ्। वार्ध्र+अ। वार्ध्र+सु। वार्ध्रम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ, चर्म सम्बन्धी विकृतिवाची 'वर्ध्र' शब्द से हित अर्थ में तथा तत्सम्बन्धी प्रकृति अभिधेय में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-वारत्रम्।

अस्य-अस्मिन्-स्यादित्यर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तदस्य तदस्मिन् स्यादिति।१६।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ तत् १।१ अस्मिन् ७।१ स्यात् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्।

अन्वयः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अस्य, अस्मिन् यथाविहितं प्रत्ययः स्याद् इति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं स्याच्चेत् तद् भवति, इति करणो विवक्षार्थः।

उदा०-(षष्ठ्यर्थे) प्राकार आसामिष्टकानां स्यात्-प्राकारीया इष्टकाः। प्रासादोऽस्य दारुणः स्यात्-प्रासादीयं दारु। **(सप्तम्यर्थे)** प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात्-प्राकारीयो देशः। प्रासादोऽस्यां भूमौ स्यात्-प्रासादीया भूमिः।

स्यादित्यत्र **'सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे'** (३।३।१५४) इति सम्भावनायां लिङ् प्रत्ययः। इष्टकानां बहुत्वेन तत् सम्भाव्यते-प्राकार आसामिष्टकानां स्यादिति। देशस्य च गुणवत्त्वेन तत् सम्भाव्यते-प्रासादोऽस्मिन् देशे स्यादिति। इतिकरणो विवक्षार्थ इत्युक्तम्, तेनात्र न भवति-प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति। सूत्रे द्विस्तत्पाठः समर्थविभक्तेर्न्याय-व्यवस्थार्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में तथा (अस्मिन्) सप्तमीविभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (स्यात्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह स्यात्=सम्भावित हो, बन सके। यहां इतिकरण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-(षष्ठी-अर्थ) प्राकार=परकोटा (चहारदीवारी) इन इष्टकाओं की बन सकता है ये-प्राकारीय इष्टका। प्रासाद=महल इस दारु=लकड़ी का बन सकता है यह-प्रासादीय दारु। (सप्तमी) प्राकार इस देश में बन सकता है यह-प्राकारीय देश। प्रासाद इस भूमि पर बन सकता है यह-प्रासादीया भूमि।

*'स्यात्' यहां **'सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे'** (३।३।१५४) से सम्भावन-अर्थ में लिङ् प्रत्यय है। इष्टकाओं की अधिकता से यह सम्भावना की जाती है कि इन इष्टकाओं का प्राकार बन सकता है। देश की गुणवत्ता से यह सम्भावना की जाती है कि इस भूमि पर प्रासाद बन सकता है। 'इतिकरण' विवक्षा के लिये है। जहां विवक्षा होती है वहीं यह प्रत्ययविधि होती है। इससे यहां प्रत्यय नहीं होता है-**प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्।** सूत्र में दो बार 'तत्' शब्द का पाठ समर्थ-विभक्ति की न्यायव्यवस्था के लिये किया गया है।*

*सिद्धि-**प्राकारीयाः।** प्राकार+सु+छ। प्राकार्+ईय्। प्राकारीय+टाप्। प्राकारीया+जस्। प्राकारीयाः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, सम्भावनवाची प्राकार प्रातिपदिक से षष्ठीविभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राक्-क्रीतीय 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**'प्रासादीयं दारु'** आदि।*

ढञ्-

(२) परिखाया ढञ्।१७।

प०वि०-परिखायाः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, स्यात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परिखाया अस्य, अस्मिन् ढञ् स्यात्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् परिखा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं स्याच्चेत् तद् भवति।

उदा०-परिखाऽस्यां भूमौ स्यात्-पारिखेयी भूमिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (परिखायाः) परिखा प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति तथा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (स्यात्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह स्यात्=सम्भावित हो, बन सके।*

उदा०-परिखा=खाई इस भूमि पर बन सकती है यह-पारिखेयी भूमि।

***सिद्धि-पारिखेयी।** परिखा+सु+ढञ्। पारिख्+एय। पारिखेय+ङीप्। पारिखेयी+सु। पारिखेयी।*

यहां प्रथमा-समर्थ, सम्भावनवाची 'परिखा' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।

*इति **प्राक्क्रीतीयच्छयत्प्रत्ययाधिकारः।***

प्राग्वतीयठञ्प्रत्ययप्रकरणम्

ठञ्-अधिकारः—

(१) प्राग्वतेष्ठञ्।१८।

प०वि०-प्राक् १।१ वतेः ५।१ ठञ् १।१।

अन्वयः-वतेः प्राक् ठञ्।

अर्थः-**'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः'** (५।१।११५) इति वक्ष्यति। तस्माद् वति-शब्दात् प्राक् ढञ् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति'** (५।१।७२) इति। पारायणं वर्तयति-पारायणिकः। तौरायणिकः। चान्द्रायणिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वतेः) 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' (५।१।११५) इस सूत्र में जो 'वति' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (ठञ्) प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे मुनिवर पाणिनि कहेंगे-**'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति'** (५।१।७२)। जो पारायण का वर्तन=अध्ययन करता है वह-पारायणिक। जो तुरायण का वर्तन करता है वह-तौरायणिक। जो चान्द्रायण का वर्तन करता है वह-चान्द्रायणिक।*

***सिद्धि-पारायणिकः।** परायण+अम्+ठञ्। पारायण+इक। पारायणिक+सु। पारायणिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'पारायण' शब्द से इस सूत्र से प्राग्वतीय ठञ् प्रत्यय के अधिकार में ***'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति'*** *(५।१।७२) से वर्तयति-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-***तौरायणिकः, चान्द्रायणिकः।***

आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम्

ठक्-अधिकारः–

(१) आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्।१६।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, अर्हात् ५।१ अगोपुच्छसंख्या-परिमाणात् ५।१ ठक् १।१।

स०-गोपुच्छं च संख्या च परिमाणं च एतेषां समाहारो गोपुच्छसंख्यापरिमाणम्, न गोपुच्छसंख्यापरिमाणम्-अगोपुच्छसंख्यापरिमाणम्, तस्मात्-अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-आ-अर्हाट्ठक्, अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्।

अर्थः-**'तदर्हति'** (५।१।६३) इति वक्ष्यति। आ तस्माद् अर्ह-शब्दाट्ठक् प्रत्ययो भवति, गोपुच्छसंख्यापरिमाणानि वर्जयित्वा। अयं ठञधिकारमध्ये तस्यापवादष्ठगधिकारो विधीयते। वक्ष्यति-**'तेन क्रीतम्'** (५।१।३७) इति। निष्केण क्रीतम्-नैष्किकम्। पणेन क्रीतम्-पाणिकम्।

गोपुच्छसंख्यापरिमाणानां प्रतिषेधात् तेभ्यः **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) इति ठञधिकाराट्ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोपुच्छेन क्रीतम्-गौपुच्छिकम्। **(संख्या)** षष्ट्या क्रीतम्-षाष्टिकम्। **(परिमाणम्)** प्रस्थेन क्रीतम्-प्रास्थिकम्। कुडवेन क्रीतम्-कौडविकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अर्हात्)* ***'तदर्हति'*** *(५।१।६३) इस सूत्र (आ) तक (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्) गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों को छोड़कर। यहां ठञ्-अधिकार के बीच में यह उसका अपवाद ठक्-अधिकार है। मुनिवर पाणिनि कहेंगे-* ***'तेन क्रीतम्'*** *(५।१।३७)। निष्क (३२० रत्ती का सोने का*

सिक्का) से खरीदा हुआ-नैष्किक। पण (३२ रत्ती का चांदी का सिक्का) से खरीदा हुआ-पाणिक।

*गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों से 'ठक्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से उनसे '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) का अधिकार होने से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। (गोपुच्छ) गोपुच्छ=गौ से खरीदा हुआ-गौपुच्छिक। यहां गोपुच्छ शब्द गौ का ही वाचक है, गौ की पूंछ का नहीं, क्योंकि गौ को जब किसी को दिया जाता है तब उसकी पूंछ को पकड़ाकर दिया जाता है। (संख्या) षष्टि=साठ से खरीदा हुआ-षाष्टिक। (परिमाण) प्रस्थ (१ आढक=ढाई सेर) से खरीदा हुआ-प्रास्थिक। पण (३२ तोला चांदी का सिक्का) से खरीदा हुआ-पाणिक। कुडव (१ प्रस्थ=२५६ तोला) से खरीदा हुआ-कौडविक।*

***सिद्धि-नैष्किकम्।** निष्क+टा+ठक्। नैष्क्+इक। नैष्किक+सु। नैष्किकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'निष्क' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पाणिकम्।***

***विशेषः** भेद की गणना करना संख्या कहाती हैं, जैसे एक, दो, तीन आदि। गुरुत्व को मांपना उन्मान (तोलना) कहाता है जैसे पल आदि। सर्वतोमान को परिमाण कहते हैं जैसे-प्रस्थ आदि। आयाम (लम्बाई) को मांपना प्रमाण कहाता है जैसे वितस्ति (१२ अंगुल १ बिलांत) आदि।*

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।

ठक्-

(२) असमासे निष्कादिभ्यः।२०।

प०वि०-असमासे ७।१ निष्कादिभ्यः ५।३।

स०-न समासः-असमासः, तस्मिन्-असमासे (नञ्तत्पुरुषः)। निष्क आदिर्येषां ते निष्कादयः, तेभ्यः-निष्कादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-आ-अर्हात्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं समर्थविभक्तिभ्योऽसमासे निष्कादिभ्य आ-अर्हाट्ठक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः समासे वर्तमानेभ्यो निष्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयिष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निष्केण क्रीतम्-नैष्किकम्। पाणिकम्, पादिकम्, माषिकम्, इत्यादिम्।

निष्क। पण। पाद। माष। वाह। द्रोण। षष्टि। इति निष्कादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (असमासे) असमास में वर्तमान (निष्कादिभ्यः) निष्क-आदि प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय-अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-निष्क से क्रीत=खरीदा हुआ-नैष्किक। पण से क्रीत-पाणिक। पाद से क्रीत-पादिक। माष से क्रीत-मासिक इत्यादि।

सिद्धि-नैष्किक आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *निष्क आदि के तोल का विवरण निम्नलिखित है-*

(१) निष्क=३२० रत्ती का सोने का सिक्का।

(२) पण=३२ रत्ती का चांदी का सिक्का।

(३) पाद=८ रत्ती का चांदी का सिक्का।

(४) माष=२ रत्ती का चांदी का सिक्का।

(५) वाह=१० कुम्भ (५० मण)।

(६) द्रोण=१ खारी (४ मण)।

(७) षष्टि=मानविशेष।

ठन्+यत्-

(३) शताच्च ठन्यतावशते।२१।

प०वि०-शतात् ५।१ च अव्ययपदम्, ठन्-यतौ १।२ अशते ७।१।

स०-ठन् च यच्च तौ ठन्यतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न शतम्-अशतम्, तस्मिन्-अशते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छताद् आ-अर्हाट्ठन्यतावशते।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् शत-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु ठन्-यतौ प्रत्ययौ भवतोऽशतेऽभिधेये।

उदा०-(ठन्) शतेन क्रीतम्-शतिकम्। **(यत्)** शतेन क्रीतम्-**शत्यम्।**

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शतात्) शत प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ठन्यतौ) ठन् और यत् प्रत्यय होते हैं (अशते) यदि वहां शत-परिमाण अर्थ अभिधेय न हो।*

उदा०-(ठन्) शत=सौ कार्षापण से क्रीत=खरीदा हुआ-शतिक। ***(यत्)*** *शत कार्षापण से क्रीत=शत्य, वस्त्र आदि।*

सिद्धि-(१) ***शतिकम्।*** *शत+टा+ठन्। शत्+ठक। शतिक+सु। शतिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, 'शत' शब्द से तथा अशत अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) ***शत्यम्।*** *शत+टा+यत्। शत्+य। शत्य+सु। शत्यम्।*

यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।

यहां 'अशते' शब्द से शत-अर्थ का प्रतिषेध किया गया है। जहां शत अर्थ अभिधेय होता है वहां ***'तदस्य परिमाणम्'*** *(५।१।५७) से 'कन्' प्रत्यय होता है-**शतं परिमाणस्य-शतकं निदानम्।** शत=सौ अध्याय परिमाणवाला-शतक निदान (ग्रन्थविशेष)।*

कन्–

(४) संख्याया अतिशदन्तायाः कन्।२२।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ अतिशन्तायाः ५।१ कन् १।१।

स०-तिश्च शच्च तौ तिशतौ, तिशतावन्ते यस्या सा तिशदन्ता, न शदन्ता-अतिशदन्ताः, तस्याः-अतिशदन्तायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहि-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-आ-अर्हाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अतिशदन्तात् संख्यावाचिन आ-अर्हात् कन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अतिशदन्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयिष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चभिः क्रीतः-पञ्चकः पटः। बहुकः। गणकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अतिशदन्तयाः) ति-अन्त और शत्-अन्त से रहित (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पंच कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-पञ्चक पट (कपड़ा)। बहु=बहुत कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-बहुक पट। गण=ढेर कार्षापणों से क्रीत-गणक पट।

सिद्धि-पञ्चकः। पञ्च+भिस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।

यहां तृतीया-समर्थ, ति-अन्त तथा शत्-अन्त से रहित, संख्यावाची 'पञ्च' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-बहुकः, गणकः।

ति-अन्त और शत्-अन्त संख्यावाची शब्द का इसलिये प्रतिषेध किया है कि यहां 'कन्' प्रत्यय न हो-(ति-अन्तः) साप्ततिकः पटः। (शत्-अन्त) चत्वारिंशत्कः पटः। यहां औत्सर्गिक 'ठक्' प्रत्यय होता है।

कनो वा इडागमः-

(५) वतोरिड् वा।२३।

प०वि०-वतोः ५।१ इट् १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात्, संख्यायाः, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वतोः संख्यावाचिन आ-अर्हात् कन् वा इट्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वतु-अन्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति विकल्पेन च तस्येडागमो भवति।

उदा०-तावता क्रीतः-तावतिकः पटः (इट्)। तावत्कः पटः (इट् न)। यावतिकः पटः (इट्)। यावत्कः पटः (इट् न)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (वतोः) वतु-प्रत्ययान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है और उसे (वा) विकल्प से (इट्) इट् आगम होता है।*

उदा०-तावत्=उतने कार्षापण से क्रीत-तावतिक पट (इट्-आगम)। तावत्=उतने कार्षाण से क्रीत तावत्क पट (इट्-आगम नहीं)।

सिद्धि-(१) तावतिकः। तावत्+टा+कन्। तावत्+इट्+क। तावत्+इ+क। तावतिक+सु। तावतिकः।

यहां तृतीया-समर्थ, वतु-प्रत्ययान्त, संख्यावाची 'तावत्' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उसे इट् आगम है। ऐसे ही-यावतिकः।

*(२) **तावत्कः।** यहां 'तावत्' शब्द से पूर्ववत् 'कन्' प्रत्यय है और उसे विकल्प पक्ष में इट् आगम है। ऐसे ही-**यावत्कः।***

*'तावत्' शब्द में 'तत्' शब्द से '**यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्**' (५।२।३९) से वतुप् प्रत्यय है। 'दृग्दृशवतुषु' (६।३।८९) से 'तत्' को आत्व होता है। 'तावत्' शब्द की '**बहुगणवतुडति संख्या**' (१।१।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-यत् शब्द से **यावत्।***

ड्वुन्–

(६) विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम्।२४।

प०वि०-विंशति-त्रिंशद्भ्याम् ५।२ ड्वुन् १।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०-विंशतिश्च त्रिंशच्च तौ विंशतित्रिंशतौ, ताभ्याम्-विंशतित्रिंशद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न संज्ञा-असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-आ-अर्हात्, संख्याया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां संख्यावाचिभ्यां विंशतित्रिंशद्भ्याम् आ-अर्हाद् ड्वुन् असंज्ञायाम्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां संख्यावाचिभ्यां विंशतित्रिंशद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु ड्वुन् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(**विंशतिः**) विंशत्या क्रीतः-विंशकः पटः। (**त्रिंशत्**) त्रिंशता क्रीतः-त्रिंशकः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (विंशति-त्रिंशद्भ्याम्) विंशति और त्रिंशत् प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ड्वुन्) ड्वुन् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

*उदा०-**(विंशति)** विंशति=बीस कार्षापणों से क्रीत-विंशक पट। **(त्रिंशत्)** त्रिंशत्=तीस कार्षापणों से क्रीत-त्रिंशक पट।*

*सिद्धि-(१) **विंशकः।** विंशति+टा+ड्वुन्। विंश०+वु। विंश्+अक। विंशक+सु। विंशकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, संख्यावाची 'विंशति' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में, असंज्ञा अभिधेय में इस सूत्र से 'ड्वुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' होने से '**ति विंशतेर्डिति**' (६।४।१४२) से विंशति के 'ति' का लोप होता है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के*

*स्थान में 'अक' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) त्रिंशकः। यहां 'त्रिंशत्' शब्द से पूर्ववत् 'ड्वुन्' प्रत्यय और प्रत्यय के डित् होने से वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से त्रिंशत् के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टिठन्—

(७) कंसाट्टिठन्।२५।

प०वि०-कंसात् ५।१ टिठन् १।१।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् कंसाद् आ-अर्हाद् टिठन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् कंस-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु टिठन् प्रत्ययो भवति। कंसशब्दस्य परिमाणवाचित्वादयं ढञोऽपवादः।

उदा०-कंसेन क्रीतः-कंसिकः। स्त्री चेत्-कंसिकी शाटिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (कंसात्) कंस प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (टिठन्) टिठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कंस (पांच सेर) से क्रीत-कंसिकः पट। कंस से क्रीत=कंसिकी शाटिका (साड़ी)।

*सिद्धि-**कंसिकः**। कंस+टा+टिठन्। कंस्+इक। कंसिक+सु। कंसिकः।*

*यहां तृतीया-समर्थ, परिमाणवाची 'कंस' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'टिठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'टिठन्' प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**कंसिकी**।*

***विशेषः** कंस-चरक के अनुसार 'कंस' आठ प्रस्थ या दो आढक के बराबर था। वह अर्थशास्त्र की तालिका के अनुसार पांच सेर और चरक की तालिका के अनुसार ६ $\frac{2}{5}$ सेर के बराबर हुआ (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

अञ्-विकल्पः—

(८) शूर्पादञन्यतरस्याम्।२६।

प०वि०-शूर्पात् ५।१ अञ् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छूर्पाद् आ-अर्हाद् अन्यतरस्याम् अञ्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छूर्पशब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विकल्पेनाऽञ् प्रत्ययो भवति। पक्षे चौत्सर्गिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शूर्पेण क्रीतम्-शौर्पं घृतम् (अञ्)। शौर्पिकं घृतम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शूर्पात्) शूर्प प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शूर्प (दो द्रोण अन्न) से क्रीत-शौर्प घृत (अञ्)। शौर्पिक घृत (ठञ्)।

सिद्धि-(१) शौर्पम्। *शूर्प+टा+अञ्। शौर्प्+अ। शौर्प+सु। शौर्पम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, परिमाणवाची 'शूर्प' शब्द से आ-आर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) शौर्पिकम्। *यहां परिमाणवाची 'शूर्प' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित* ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय है।* ***'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाट्ठक्'*** *(५।१।१९) से आ-अर्हीय अर्थों में परिमाणवाची प्रातिपदिक से 'ठञ्' प्रत्यय का प्रतिषेध-विधान से* ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *शूर्प चरक में दो द्रोण का शूर्प माना है, जिसे कुम्भ भी कहते थे। उनकी तालिका के अनुसार शूर्प=४०९६ तोला=१ मण ११ सेर १६ तोला (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

अण्-

(६) शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्।२७।

प०वि०-शतमान-विंशतिक-सहस्र-वसनात् ५।१ अण् १।१।

स०-शतमानं च विंशतिं च सहस्रं च वसनं च एतेषां समाहारः शतमानविंशतिकसहस्रवसनम्, तस्मात्-शतमानविंशतिकसहस्रवसनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः शतमान०वसनेभ्य आ-अर्हाद् अण्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः शतमान-विंशतिक-सहस्र-वसनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयेष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शतमानम्)** शतमानेन क्रीतम्-शातमानं शतम्। **(विंशतिकम्)** विंशतिकेन क्रीतम्-वैंशतिकम्। **(सहस्रम्)** सहस्रेण क्रीतम्-साहस्रम्। **(वसनम्)** वसनेन क्रीतम्-वासनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शतमान०वसनात्) शतमान, विंशतिक, सहस्र, वसन प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(शतमान)** शतमान (सौ रत्ती का सोने का सिक्का) से क्रीत-शातमान शत (कार्षापण)। **(विंशतिक)** विंशतिक (२० माष के सिक्का) से क्रीत-वैंशतिक। **(सहस्र)** सहस्र कार्षापणों से क्रीत-साहस्र। **(वसन)** वसन=एक शाटक (धोती) से क्रीत-वासन।*

*सिद्धि-**शातमानम्।** शतमान+टा+अण्। शातमान्+अ। शातमान+सु। शातमानम्।*

*यहां 'शतमान' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वैंशतिकः** आदि।*

विशेषः *शतमान-सौ रत्तीवाले चांदी के वास्तविक सिक्के तक्षशिला की खुदाई में प्राप्त हुये हैं। उनकी पहचान शतमान सिक्के से करना युक्ति-संगत और प्रमाण-सामग्री के अनुकूल है। मुद्रायें शलका-आकृति की हैं और उनका तोल १७७.३ ग्रेन या ठीक सौ रत्ती के लगभग है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २५५)।*

***विंशतिक**-यह एक प्रकार का कार्षापण सिक्का था जिसके २० भाग होते थे। इस प्रकार के दो तरह के कार्षापण थे। एक १६ माष का और दूसरा २० माष का होता था। बीस भाग होने के कारण उसका नाम विंशतिक पड़ा था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २६३) माष=२ तोला चांदी का सिक्का और ५ तोला तांबे का सिक्का।*

प्रत्ययस्य लुक्-

(१०) अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्।२८।

प०वि०-अध्यर्ध-पूर्वात् ५।१ द्विगोः ५।१ लुक् १।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०-अध्यारूढम् अर्धमस्मिन्निति-अध्यर्धम्। अध्यर्धं पूर्वं यस्मिँस्तत्-अध्यर्धपूर्वम्, तस्मात्-अध्यर्धपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च आ-अर्हात् प्रत्ययस्य लुगसंज्ञायाम्।

अर्थ:-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विहितस्य लुग् भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(अध्यर्धपूर्वम्) अध्यर्धकंसेन क्रीतम्-अध्यर्धकंसम्। अध्यर्धशूर्पम्। **(द्विगु:)** द्विकंसेन क्रीतम्-द्विकंसम्। त्रिकंसम्। द्विशूर्पम्। त्रिशूर्पम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध शब्द पूर्ववाले और (द्विगो:) द्विगु-संज्ञक प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (लुक्) विहित प्रत्यय का लोप होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

*उदा०-**(अध्यर्धपूर्व)** अध्यर्धकंस=डेढ़ कंस परिमाण से क्रीत-अध्यर्ध कंस। अध्यर्धशूर्प=डेढ़ शूर्प परिमाण से क्रीत-अध्यर्ध शूर्प। **(द्विगु)** द्विकंस=दो कंस परिमाण से क्रीत-द्विकंस। त्रिकंस=तीन कंस परिमाण से क्रीत-त्रिकंस। द्विशूर्प=दो शूर्प परिमाण से क्रीत-द्विशूर्प। त्रिशूर्प=तीन शूर्प परिमाण से क्रीत-त्रिशूर्प।*

सिद्धि-(१) अध्यर्धकंसम्। *अध्यर्धकंस+टा+टिठन्। अध्यर्धकंस+० अध्यर्धकंस+सु। अध्यर्धकंसम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, 'अध्यर्धकंस' शब्द से **'कंसाट्टिठन्'** (५।१।२५) से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में 'टिठन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उस प्रत्यय का लुक् होता है। यहां 'कंस' शब्द से तदन्तविधि से टिठन् प्रत्यय होता है।*

(२) अध्यर्धशूर्पम्। *यहां 'अध्यर्धशूर्प' शब्द से पूर्ववत् **'शूर्पादञन्यतरस्याम्'** (५।१।२६) से अञ् तथा विकल्प पक्ष में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उनका लुक् होता है।*

(३) द्विकंसम्। *यहां द्विगुसंज्ञक 'द्विकंस' शब्द से पूर्ववत् 'टिठन्' प्रत्यय और उससे उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिकंसम्।***

(४) द्विशूर्पम्। *यहां द्विगुसंज्ञक -द्विशूर्प' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' और 'ठञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से उनका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिशूर्पम्।***

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्प:-

(११) विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्।२६।

प०वि०-विभाषा १।१ कार्षापण-सहस्राभ्याम् ५।२।

स०-कार्षापणं च सहस्रं च ते कार्षापणसहस्रे, ताभ्याम्-कार्षापणसहस्राभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोः, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां अध्यर्धपूर्वाभ्यां द्विगुभ्यां च कार्षापणसहस्राभ्याम् आ-अर्हात् यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्याम् अध्यर्धपूर्वाभ्यां द्विगुसंज्ञकाभ्यां च कार्षापणसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां आ-अर्हीयेष्वर्थेषु यथाविहितम् प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धकार्षापणेन क्रीतम्-अध्यर्धकार्षापणम् (लुक्)। अध्यर्धकार्षापणिकम् (ठञ्)। **(द्विगुः)** द्विकार्षापणेन क्रीतम्-द्विकार्षापणम् (लुक्)। द्विकार्षापणिकम् (ठञ्)।। **(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्ध-सहस्रेण क्रीतम्-अध्यर्धसहस्रम् (लुक्)। अध्यर्धसाहस्रम् (अण्)। **(द्विगुः)** द्विसहस्रेण क्रीतम्-द्विसहस्रम् (लुक्)। द्विसाहस्रम् (अण्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (कार्षापणसहस्राभ्याम्) कार्षापण और सहस्र प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में विहित प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**(अध्यर्धपूर्व)** अध्यर्धकार्षापण=डेढ कार्षापण से क्रीत-अध्यर्धकार्षापण (लुक्)। अध्यर्धकार्षापणिक (ठञ्)। **(द्विगु)** द्विकार्षापण=दो कार्षापणों से क्रीत-द्विकार्षापण (लुक्)। द्विकार्षापणिक (ठञ्)।। **(अध्यर्धपूर्व)** अध्यर्धसहस्र=डेढ हज़ार कार्षापणों से क्रीत-अध्यर्धसहस्र (लुक्)। अध्यर्धसाहस्रम् (अण्)। **(द्विगु)** द्विसहस्र=दो हजार कार्षापणों से क्रीत-द्विसहस्र (लुक्)। द्विसाहस्र (अण्)।*

*सिद्धि-(१) **अध्यर्धकार्षापणम्।** अध्यर्धकार्षापण+टा+ठञ्। अध्यर्धकार्षापण+०। अध्यर्धकार्षापण+सु। अध्यर्धकार्षापणम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक, कार्षापण शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित प्राग्वतीय 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**द्विकार्षापणम्।***

*(२) **अध्यर्धकार्षापणिकम्।** यहां 'अध्यर्धकार्षापण' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में उसका लुक् नहीं होता है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५)*

से पर्जन्यवत् उत्तरपदवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विकार्षापणिकम्।**

(३) **अध्यर्धसहस्रम्।** यहां 'अध्यर्धसहस्र' शब्द से **'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्'** (५।१।२७) से 'अण्' प्रत्यय है और उसका इस सूत्र से लुक् होता है। ऐसे ही-**द्विसहस्रम्।**

(४) **अध्यर्धसाहस्रम्।** यहां 'अध्यर्धसहस्र' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है और उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है अत: पूर्ववत् उत्तरपद की वृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विसाहस्रम्।**

विशेषः (१) **कार्षापण**-प्राचीन भारतवर्ष का सबसे मशहूर सिक्का चांदी का कार्षापण था। इसे ही मनुस्मृति में (८।१३५, १३६) में धरण और राजत पुराण (चांदी का पुराण) भी कहा गया है। पाणिनि ने इन सिक्कों को आहत (५।२।१२०) कहा है। ये सिक्के बुद्ध से भी पुराने हैं और भारतवर्ष में ओर से छोर तक पाये जाते हैं। अब तक लगभग पचास सहस्र से भी अधिक चांदी के कार्षापण मिल चुके हैं। मनुस्मृति के अनुसार चांदी के कार्षापण या पुराण का वजन ३२ रत्ती था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २५६)।

(२) **चांदी के कार्षापण का तोल**-कार्षापण के विषय में शास्त्रीय तोल तो लिखित मिलता है किन्तु कार्षापण के उपलब्ध नमूने से भी तोल का ज्ञान होता है। मनुजी महाराज ने निम्नलिखित श्लोकों में स्पष्ट लिख दिया है-

> पलं सुवर्णाश्चत्वार: पलानि धरणं दश।
> द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषक:।।
> ते षोडश स्याद् धरणं पुराणश्चैव राजत:।
> कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिक: कार्षिक: पण:।।
> धरणानि दश ज्ञेय: शतमानस्तु राजत:।
> चतु: सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणत:।।

अर्थ-चार सुवर्ण का एक पल, दश पल का एक धरण होता है। दो कृष्णल का एक राजत (चांदी का) माषा होता है। सोलह रौप्य माषों का एक धरण होता है (धरण को पुराण भी कहा जाता है। सोलह माषा ताम्बा को ताम्रिक तथा कार्षापणिक कहते हैं। दश धरण का एक राजत (चांदी का) शतमान होता है। चार सुवर्ण का एक निष्क होता है।

कौटिल्य का धरण और मनु का धरण (कार्षापण) एक ही प्रतीत होते हैं। यही सिद्ध होता है कि ३२ रत्ती का धरण वा कार्षापण होता था (स्वामी ओमानन्द सरस्वती कृत-हरयाणा के प्राचीन लक्षण-स्थान पृ० १७)।

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः–

(१२) द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्।३०।

प०वि०–द्वि-त्रिपूर्वात् ५।१ निष्कात् ५।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च एतेषां समाहारो द्वित्रि, द्वित्रि पूर्वं यस्मिँस्तद् द्वित्रिपूर्वम्, तस्मात्–द्वित्रिपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–आ-अर्हात्, द्विगोः, लुक्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्विगोर्द्वित्रिपूर्वान्निष्काद् आ–अर्हाद् यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्विगुसंज्ञकाद् द्वित्रिपूर्वाद् निष्क-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ–अर्हीयस्य यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०–**(द्विपूर्वम्)** द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतम्–द्विनिष्कम् (लुक्)। द्विनैष्किकम् (ठञ्)। **(त्रिपूर्वम्)** त्रिभिर्निष्कैः क्रीतम्–त्रिनिष्कम् (लुक्)। त्रिनैष्किकम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथायोग-विभक्ति-समर्थ (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (द्वित्रिपूर्वात्) द्वि-पूर्वक और त्रि-पूर्वक (निष्कात्) निष्क प्रातिपदिक से (आ–अर्हात्) आ–अर्हीय अर्थों में यथाविहित प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०–**(द्विपूर्व)** द्विनिष्क=दो निष्कों से क्रीत-द्विनिष्क (लुक्)। द्विनैष्किक (ठञ्)। **(त्रिपूर्व)** त्रिनिष्क=तीन निष्कों से क्रीत-त्रिनिष्क (लुक्)। त्रिनैष्किक (ठञ्)।*

*सिद्धि–(१) **द्विनिष्कम्।** द्विनिष्क+टा+ठञ्। द्विनिष्क+०। द्विनिष्क+सु। द्विनिष्कम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विनिष्क' शब्द से आ–अर्हीय क्रीत अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही–**त्रिनिष्कम्।***

*(२) **द्विनैष्किकम्।** यहां 'द्विनिष्क' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है। अतः **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५) से अंग को उत्तरपदवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**त्रिनैष्किकम्।***

विशेषः *प्राचीनकाल में निष्क ३२० रत्ती का एक सुवर्ण का सिक्का था।*

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः–

(१३) बिस्ताच्च।३१।

प०वि०-बिस्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात्, द्विगोः, लुक्, विभाषा, द्वित्रिपूर्वात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्वित्रिपूर्वाद् द्विगोर्बिस्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्वित्रिपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाद् बिस्त-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-**(द्विपूर्वम्)** द्विबिस्तेन क्रीतम्-द्विबिस्तम् (लुक्)। द्विबैस्तिकम् (ठञ्)। **(त्रिपूर्वम्)** त्रिबिस्तेन क्रीतम्-त्रिबिस्तम् (लुक्)। त्रिबैस्तिकम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (द्वित्रिपूर्वात्) द्वि-त्रि पूर्ववाले (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (बिस्तात्) बिस्त प्रातिपदिक से (च) भी यथाविहित प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**(द्विपूर्व)** द्विबिस्त=दो बिस्तों से क्रीत-द्विबिस्त (लुक्)। द्विबैस्तिक (ठञ्)। **(त्रिपूर्व)** त्रिबिस्त=तीन बिस्तों से क्रीत-त्रिबिस्त (लुक्)। त्रिबैस्तिक (ठञ्)।*

*सिद्धि-(१) **द्विबिस्तम्।** द्विबिस्त+टा+ठञ्। द्विबिस्त+०। द्विबिस्त+सु। द्विबिस्तम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, द्वि-पूर्वक, द्विगुसंज्ञक 'द्विबिस्त' शब्द से आ-आर्हीय क्रीत अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय होता है और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिबिस्तम्।***

*(२) **द्विबैस्तिकम्।** यहां 'द्विबिस्त' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५) से उत्तरपद-वृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यहां विकल्प पक्ष में 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**त्रिबैस्तिकम्।***

विशेषः *बिस्त-अमरकोष में 'बिस्त' को कर्ष या अक्ष का पर्याय कहा है, जो स्वर्ण तोलने के काम में आता था। चरक में कर्ष, सुवर्ण और अक्ष पर्याय है। अत एव 'बिस्त' सुवर्ण का ही पर्याय ज्ञात होता है, जो तोल में ८० अस्सी रत्ती होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४३)।*

खः–

(१४) विंशतिकात् खः।३२।

प०वि०–विंशतिकात् ५।१ खः १।१।

अनु०–आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च विंशतिकाद् आ-अर्हात् खः।

अर्थः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च विंशतिक-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धविंशतिकेन क्रीतम्-अध्यर्धविंशतिकीनम्। **(द्विगुः)** द्विविंशतिकेन क्रीतम्-द्विविंशतिकीनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्धपूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (विंशतिकात्) विंशतिक प्रातिपदिक से (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्वक) अध्यर्धविंशतिक=डेढ विंशतिक से क्रीत-अध्यर्धविंशतिकीन। (द्विगु) द्विविंशतिक=दो विंशतिकों से क्रीत-द्विविंशतिकीन। त्रिविंशतिक=तीन विंशतिकों से क्रीत-त्रिविंशतिकीन।

सिद्धि-अध्यर्धविंशतिकीनम्। *अध्यर्धविंशतिक+टा+ख। अध्यर्धविंशतिक्+ईन्। अध्यर्धविंशतिकीन+सु। अध्यर्धविंशतिकीनम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धविंशतिक' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विविंशतिकीनम्, त्रिविंशतिकीनम्।***

*'**विंशतिक**' शब्द का अर्थ '**शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्**' (५।१।२७) के प्रवचन में देख लेवें।*

ईकन्–

(१५) खार्या ईकन्।३३।

प०वि०–खार्याः ५।१ ईकन् १।१।

अनु०–आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च खार्या आ-अर्हाद् ईकन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च खारी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-आर्हीयेष्वर्थेषु ईकन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अध्यर्धपूर्वम्) अध्यर्धखारिणा क्रीतम्-अध्यर्धखारीकम्। (द्विगुः) द्विखारिणा क्रीतम्-द्विखारीकम्। त्रिखारीकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (खार्याः) खारी प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ईकन्) ईकन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**अध्यर्धपूर्वक**) अध्यर्धखारीक=डेढ खारी से क्रीत-अध्यर्धखारीक। (**द्विगु**) द्विखारि=दो खारियों से क्रीत-द्विखारीक। त्रिखारि=तीन खारियों से क्रीत-त्रिखारीक।*

*सिद्धि-**अध्यर्धखारीकम्।** अध्यर्धखारि+टा+ईकन्। अध्यर्धखार्+ईक। अध्यर्धखारीक+सु। अध्यर्धखारीकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक, 'अध्यर्धखारि' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख्' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विखारीकम्, त्रिखारीकम्।***

*यहां 'द्विखारि' आदि शब्दों में **'खार्याः प्राचाम्'** (५।४।१०१) से प्राच्य-आचार्यों के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है-**अध्यर्धखारम्, द्विखारम्, त्रिखारम्।** पाणिनिमुनि के मत में-**अध्यर्धखारि, द्विखारि, त्रिखारि** प्रयोग बनते हैं। द्विगुसमास में **'स नपुंसकम्'** (२।४।१७) से नपुंसकता और **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से ह्रस्व होता है।*

विशेषः *खारी-कौटिल्य के अनुसार सोलह द्रोण की एक खारी मानी जाती थी। उस हिसाब से उसकी तोल चार मन के बराबर हुई। पतञ्जलि ने भी खारी को द्रोण से बड़ी माना है-**अधिको द्रोणः खार्याम्'** महाभाष्य {५।२।७३} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

यत्–

(१६) पणपादमाषशताद् यत्।३४।

प०वि०-पण-पाद-माष-शतात् ५।१ यत्।

स०-पणश्च पादश्च माषश्च शतं च एतेषां समाहारः पणपादमाषशतम्, तस्मात्-पणपादमाषशतात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च पणपादमाषशताद् आ-अर्हाद् यत्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्योऽध्यर्धपूर्वेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्यश्च पणपादमाषशतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पणः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धपणेन क्रीतम्-अध्यर्धपण्यम्। द्विगुः-द्विपणेन क्रीतम्-द्विपण्यम्। त्रिपण्यम्। **(पादः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धपादेन क्रीतम्-अध्यर्धपाद्यम्। द्विगुः-द्विपादेन क्रीतम्-द्विपाद्यम्। त्रिपाद्यम्। **(माषः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धमाषेण क्रीतम्-अध्यर्धमाष्यम्। द्विगुः-द्विमाषेण क्रीतम्-द्विमाष्यम्। त्रिमाष्यम्। **(शतम्)** अध्यर्धपूर्वम्-अध्यर्धशतेन क्रीतम्-अध्यर्धशत्यम्। द्विगुः-द्विशतेन क्रीतम्-द्विशत्यम्। त्रिशत्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (पणपादमाषशतात्) पण, पाद, माष, शत प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(पण)** अध्यर्धपण=डेढ पण से क्रीत-खरीदा हुआ-अध्यर्धपण्य। द्विपण=दो पणों से क्रीत-द्विपण्य। त्रिपण=तीन पणों से क्रीत-त्रिपण्य। **(पाद)** अध्यर्धपाद=डेढ पाद से क्रीत-अध्यर्धपाद्य। द्विपाद=दो पादों से क्रीत-द्विपाद्य। त्रिपाद=तीन पादों से क्रीत-त्रिपाद्य। **(माष)** अध्यर्धमाष=डेढ माष से क्रीत-अध्यर्धमाष्य। द्विमाष=दो माषों से क्रीत-द्विमाष्य। त्रिमाष=तीन माषों से क्रीत-त्रिमाष्य। **(शत)** अध्यर्धशत=डेढ सौ कार्षापणों से क्रीत-अध्यर्धशत्य। द्विशत=दो सौ कार्षापणों से क्रीत-द्विशत्य। त्रिशत=तीन सौ कार्षापणों से क्रीत-त्रिशत्य।*

*सिद्धि-**अध्यर्धपण्यम्।** अध्यर्धपण+टा+यत्। अध्यर्धपण्+य। अध्यर्धपण्य+सु। अध्यर्धपण्यम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धपण' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः मुद्राओं का नामकरण**-वैदिक युग में तोल के आधार पर मुद्राओं (सिक्का) का नामकरण किया गया। निष्क तो स्वर्ण-मुद्रा का नाम था किन्तु 'शतमान' नाम तोल के आधार पर (सौ रत्ती से) ही निश्चित किया गया। उसके चौथाई भाग को पाद (चौथा भाग) कहा गया। प्राचीन नाम कार्षापण भी तोल के नियम से रखा गया। कर्ष बीज-रत्ती (चिरमठी) का नाम था अतः कर्ष द्वारा तोले जानेवाले सिक्के को (कर्ष+पण) कार्षापण कहा गया। ये ३२ रत्ती चांदी के होते थे। **अर्धपण १६ रत्ती का, पाद ८ रत्ती

का होता था। एक माष तोल २ रत्ती, द्विमाष ४ रत्ती का त्रिमाष ६ रत्ती का होता था। अर्धकाकिणी १/४ रत्ती, काकिणी १/२ रत्ती की और अधमांष १ रत्ती का होता था (स्वामी ओमानन्द सरस्वती कृत-हरयाणा के प्राचीन लक्षण-स्थान पृ० १७)।

इस उपरिलिखित प्रमाण के अनुसार सूत्रोक्त मुद्राओं का तोल-विवरण निम्न-लिखित है–

मुद्रा का नाम	एक मुद्रा (चांदी)	अध्यर्ध मुद्रा	द्वि-मुद्रा	त्रि-मुद्रा
पण (कार्षापण)	३२ रत्ती	४८ रत्ती	६४ रत्ती	९६ रत्ती
पद	८ रत्ती	१२ रत्ती	१६ रत्ती	२४ रत्ती
माष	२ रत्ती	३ रत्ती	४ रत्ती	१२ रत्ती
शत (कार्षापण)	३२०० रत्ती	४८०० रत्ती	६४०० रत्ती	९६०० रत्ती

रक्तिका (रत्ती) चिरमठी। कार्षापण सोना, चांदी, ताम्बा तीनों धातुओं का होता था। यहां रजत (चांदी) का तोल बतलाया गया है।

यत्-विकल्पः–

(१७) शाणाद् वा।३५।

प०वि०–शाणात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च शाणाद् आ-अर्हाद् वा यत्।

अर्थः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च शाण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च लुग् भवति।

उदा०–**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धशाणेन क्रीतम्–अध्यर्धशाण्यम् (यत्)। अध्यर्धशाणम् (ठञ्-लुक्)। **(द्विगुः)** द्विशाणेन क्रीतम्–द्विशाण्यम् (यत्)। दिशाणम् (ठञ्-लुक्)। त्रिशाणेन क्रीतम्-त्रिशाण्यम् (यत्)। त्रिशाणम् (ठञ्-लुक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (शाणात्) शाण प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (वा) विकल्प से (यत्) यत् प्रत्यय होता है और उसका लुक् होता है।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्व) अध्यर्धशाण=डेढ शाण से क्रीत=खरीदा हुआ-**अध्यर्धशाण्य** (यत्)। अध्यर्धशाण (ठञ्-लुक्)। (द्विगु) द्विशाण=दो शाणों से क्रीत-द्विशाण्य (यत्)। द्विशाण (ठञ्+लुक्)। त्रिशाण=तीन शाणों से क्रीत-त्रिशाण्य (यत्)। त्रिशाण (ठञ्-लुक्)।

सिद्धि-(१) **अध्यर्धशाण्यम्**। अध्यर्धशाण+टा+यत्। अध्यर्धशाण्+य। अध्यर्धशाण्य+सु। अध्यर्धशाण्यम्।

यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धशाण' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विशाण्यम्, त्रिशाण्यम्**।

(२) **अध्यर्धशाणम्**। अध्यर्धशाण+टा+ठञ्। अध्यर्धशाण+०। अध्यर्धशाण+सु। अध्यर्धशाणम्।

यहां तृतीया-समर्थ 'अध्यर्धशाण' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है किन्तु **'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्'** (५।१।२८) से उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**द्विशाणम्, त्रिशाणम्**।

विशेषः (१) शाण-चरक में सुवर्ण (सिक्का) का चौथाई भाग शाण कहा गया है। इससे शाण की तोल २० रत्ती के बराबर हुई (कल्पस्थान १२।२९)। शाणार्ध=उसका आधा=दस रत्ती के बराबर ओषधि की स्वल्पमात्रा तोलने में काम आता था। महाभारत में शाण को शतमान का आठवां भाग कहा गया है (आरण्यक पर्व १३४।१४)। जिससे उसकी पुरानी तोल १२।। रत्ती ठहरती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४३)।

इस उपरिलिखित प्रमाण के अनुसार सूत्रोक्त शाण-मुद्रा का तोल-विवरण निम्नलिखित है-

मुद्रा का नाम	एक मुद्रा (सुवर्ण)	अध्यर्ध मुद्रा	द्वि-मुद्रा	त्रि-मुद्रा
शाण	२० रत्ती	३० रत्ती	४० रत्ती	६० रत्ती (चरकानुसारी)
शाण	१२।। रत्ती	१८।। रत्ती	२५ रत्ती	३७।। रत्ती (महाभारतानुसारी)

मुद्राओं का तोल समय-समय पर घटता-बढ़ता रहता है।

(२) काशिकाकार पं० जयादित्य ने **'द्वित्रिपूर्वादण् च'** (५।१।३६) इस वार्तिक सूत्र की पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है किन्तु यह महाभाष्य के अनुसार वार्तिक-सूत्र है अतः इसका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।

।। इति प्राक्क्रीतीयच्छाधिकारः ।।

क्रीतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तेन क्रीतम्।३६।

प०वि०–तेन ३।१ क्रीतम् १।१।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् क्रीतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–सप्तत्या क्रीतम्-साप्ततिकम्। आशीतिकम्। नैष्किकम्। पाणिकम्। पादिकम्। माषिकम्। शत्यम्। शतिकम्। द्विकम्। त्रिकम्।

ये ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रोक्तास्तेषामितः प्रभृति समर्थविभक्तयः प्रत्ययार्थाश्चोपदिश्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (क्रीतम्) क्रीत=खरीदा हुआ अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–सप्तति=सत्तर कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-साप्ततिक। अशीति=अस्सी कार्षापणों से क्रीत-आशीतिक। निष्क=सुवर्ण मुद्रा-विशेष से क्रीत-नैष्किक। पण=कार्षापण से क्रीत-पाणिक। पाद=कार्षापण के चतुर्थ भाग से क्रीत-पादिक। माष=कार्षापण के सोलहवें भाग से क्रीत-माषिक। शत=सौ कार्षापणों से क्रीत-शत्य अथवा शतिक। द्वि=दो कार्षापणों से क्रीत-द्विक। त्रि=तीन कार्षापणों से क्रीत-त्रिक।

जो 'ठञ्' आदि १३ प्रत्यय पहले कहे गये हैं यहां से उनकी समर्थ-विभक्ति तथा प्रत्ययार्थों का उपदेश किया जाता है।

*सिद्धि–(१) **साप्ततिकम्।** यहां तृतीया-समर्थ 'सप्तति' शब्द से क्रीत अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः यहां **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **पाणिकम्।** यहां 'पण' शब्द से **'असमासे निष्कादिभ्यः'** (५।१।२०) से 'ठक्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**पादिकम्, माषिकम्।***

*(३) **शत्यम्।** यहां 'शत' शब्द से **'शताच्च ठन्यतावशते'** (५।१।२१) से यत् प्रत्यय है।*

*(४) **शतिकम्।** यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है।*

*(५) **द्विकम्।** यहां संख्यावाची 'द्वि' शब्द से **'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्'** (५।१।२२) से **'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-त्रिकम्।***

निमित्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ।३७।

प०वि०–तस्य ६।१ निमित्तम् १।१ संयोग-उत्पातौ १।२।

स०–संयोगश्च उत्पातश्च तौ–संयोगोत्पातौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् निमित्तं यथाविहितं प्रत्ययः संयोगोत्पातौ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा स भवति।

उदा०–(संयोगः) शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः–शत्यः। शतिकः। साहस्रः। **(उत्पातः)** शतस्य निमित्तमुत्पातः=शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (संयोगोत्पात्तौ) जो निमित्त-अर्थ है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

उदा०–(संयोग) शत=सौ कार्षापणों के निमित्त धनपति (सेठ) के साथ ***संयोग*** *होना-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापणों के निमित्त धनपति के* ***साथ संयोग*** *होना-साहस्र। (उत्पातः) शत=सौ कार्षापणों का निमित्त उत्पात=यादृच्छिक* ***(अनायास)*** *प्राप्त होना-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापणों का निमित्त* ***उत्पात=यादृच्छिक*** *(अनायास) प्राप्त होना-साहस्र।*

सिद्धि–(१) ***शत्यः।*** *शत+ङस्+यत्। शत्+य। शत्य+सु।* ***शत्यः।***

यहां षष्ठी-समर्थ 'शत' शब्द से निमित्त (संयोग-उत्पात) ***अर्थ*** *में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः यहां* ***'शताच्च ठन्यतावशते'*** *(५।१।२१) से यथाविहित 'यत्' प्रत्यय है।*

(२) शतिकः। यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है।

(३) साहस्रः। यहां 'सहस्र' शब्द से ***'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्'*** *(५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'संयोगो नाम स भवति–इदं कृत्वेदमवाप्यत* ***इति।*** *उत्पातो नाम स भवति–यादृच्छिको भेदो वा छेदो वा पद्मं वा पर्णं वा' (महाभाष्य ५।१।३७)। 'जहां यह करके यह प्राप्त किया जाता है' उसे संयोग कहते हैं। यादृच्छिक (स्वाभाविक) भेदन, छेदन, कमल वा पत्ता आदि की प्राप्ति के समान जो यादृच्छिक शत आदि प्राप्ति का निमित्त होता है, उसे उत्पात कहते हैं।*

यत्–

(२) गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्।३८।

प०वि०–गो-द्व्यचः ५।१ असंख्या-परिमाण-अश्वादेः ५।१ यत् १।१।

स०–द्वावचौ यस्मिँस्तत्-द्व्यच्। गौश्च द्व्यच् च एतयोः समाहारो गोद्व्यच्, तस्मात्-गोद्व्यचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। अश्व आदिर्येषां तेऽश्वादयः। संख्या च परिमाणं च अश्वादयश्च एतेषां समाहारः संख्यापरिमाणाश्वादि, न संख्यापरिमाणाश्वादि-असंख्यापरिमाणाश्वादिः, तस्मात्-असंख्यापरिमाणाश्वादेः (बहुव्रीहिसमाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य असंख्यापरिमाणाश्वादेर्गोद्व्यचो निमित्तं यत्, संयोगोत्पातौ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्या-परिमाण-अश्वादिवर्जिताद् गो-शब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा स भवति।

उदा०–(गौः) गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा-गव्यः। **(द्व्यच्)** धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा-धन्यम्। स्वर्ग्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्।

अश्व। अश्मन्। गण। ऊर्णा। उमा। वसु। वर्ष। भङ्ग। इत्यश्वादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोद्व्यचः) गौ शब्द और द्वि-अच् वाले प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (संयोगोत्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो। अस्वाभाविक निमित्त संयोग और स्वाभाविक निमित्त उत्पात कहाता है।*

*उदा०-**(गौ)** गौ का निमित्त (संयोग-उत्पात)-गव्य। **(द्वि-अच्)** धन का निमित्त-धन्य। स्वर्ग का निमित्त-स्वर्ग्य। यश का निमित्त-यशस्य। आयुष् का निमित्त-आयुष्य।*

***सिद्धि-गव्यम्।** गो+ङस्+यत्। गो+य। गव्+य। गव्य+सु। गव्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ **'गो' शब्द से** निमित्त (संयोग-उत्पात) अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' **प्रत्यय है। 'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे **-स्वर्ग्यम्** आदि।*

छः+यत्–

(३) पुत्राच्छ च।३९।

प०वि०–पुत्रात् ५।१ छ १।१ (सु–लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पुत्राद् निमित्तं छो यच्च, संयोगोत्पातौ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पुत्र–शब्दात् प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा भवति।

उदा०–पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा पुत्रीयम् (छः)। पुत्र्यम् (यत्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तस्य) षष्ठी–समर्थ (पुत्रात्) पुत्र प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं (संयोगोत्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

उदा०–पुत्र का निमित्त (संयोग–उत्पात)–पुत्रीय (छ)। पुत्र्य (यत्)।

***सिद्धि–(१) पुत्रीयम्।** पुत्र+ङस्+छ। पुत्र्+ईय। पुत्रीय+सु। पुत्रीयम्।*

यहां षष्ठी–समर्थ 'पुत्र' शब्द से निमित्त अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **पुत्र्यम्।** यहां 'पुत्र' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।*

अण्+अञ्–

(४) सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ।४०।

प०वि०–सर्वभूमि–पृथिवीभ्याम् ५।२ अण्–अञौ १।२।

स०–सर्वा चेयं भूमिरिति सर्वभूमिः। सर्वभूमिश्च पृथिवी च ते सर्वभूमिपृथिव्यौ, ताभ्याम्–सर्वभूमिपृथिवीभ्याम् (कर्मधारयगर्भित इतरेतर–योगद्वन्द्वः)। अण् च अञ् च तौ–अणञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सर्वभूमिपृथिवीभ्यां निमित्तम् अणञौ, संयोगोत्पातौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यम् अणञौ प्रत्ययौ भवतः, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा भवति।

उदा०-(**सर्वभूमिः**) सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा-सार्वभौमः (अण्)। (**पृथिवी**) पृथिव्या निमित्तं संयोग उत्पातो वा-पार्थिवः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (अणञौ) यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं (संयोगोत्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

*उदा०-(**सर्वभूमि**) सर्वभूमि का निमित्त (संयोग-उत्पात)-सार्वभौम (अण्)। (**पृथिवी**) पृथिवी का निमित्त (संयोग-उत्पात)-पार्थिव।*

सिद्धि-(१) सार्वभौमः। *सर्वभूमि+ङस्+अण्। सार्वभौम्+अ। सार्वभौम+सु। सार्वभौमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से निमित्त (संयोग-उत्पात) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'सर्वभूमि' शब्द का अनुशतिक-आदि गण में पाठ होने से '**अनुशतिकादीनां च**' (७।३।२०) से उभयपद-वृद्धि होती है। पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **पार्थिवः।** यहां 'पृथिवी' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है।*

ईश्वरार्थप्रत्ययविधिः

अण्+अञ्-

(१) तस्येश्वरः।४१।

प०वि०-तस्य ६।१ ईश्वरः १।१।

अनु०-सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्, अणञौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सर्वभूमिपृथिवीभ्याम् ईश्वरोऽणञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् ईश्वर इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**सर्वभूमिः**) सर्वभूमेरीश्वरः-सार्वभौमः (अण्)। (**पृथिवी**) पृथिव्या ईश्वरः-पार्थिवः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (ईश्वरः) ईश्वर=राजा अर्थ में यथासंख्य में (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(सर्वभूमि)** सर्वभूमि का ईश्वर=राजा-सार्वभौम (अण्)। **(पृथिवी)** पृथिवी का ईश्वर=राजा-पार्थिव (अञ्)।*

सिद्धि-(१) सार्वभौमः। *सर्वभूमि+ङस्+अण्। सार्वभौम्+अ। सार्वभौम+सु। सार्वभौमः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से ईश्वर अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) पार्थिवः। *यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथिवी' शब्द से ईश्वर अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'तस्य' की अनुवृत्ति विद्यमान होने पर पुनः 'तस्य' पद का पाठ 'निमित्त' अर्थ की अनुवृत्ति की निवृत्ति के लिये किया गया है अन्यथा संयोग-उत्पात के समान ईश्वर अर्थ भी निमित्त अर्थ का विशेषण बन जाता।*

विदितार्थप्रत्ययविधिः

अण्+अञ्-

(१) तत्र विदित इति च।४२।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, विदितः १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्, अणञौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सर्वभूमिपृथिवीभ्यां विदित इति चाणञौ।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विदित इति चेत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(सर्वभूमिः)** सर्वभूमौ विदितः-सार्वभौमः (अण्)। **(पृथिवी)** पृथिव्यां विदितः-पार्थिवः (अञ्)। विदितः=ज्ञातः, प्रकाशित इत्यर्थः। इतिकरणो विवक्षार्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (विदितः) प्रसिद्ध (इति) इस अर्थ में (च) भी यथासंख्य (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(**सर्वभूमि**) सर्वभूमि पर जो विदित (प्रसिद्ध) है वह-सार्वभौम (अण्)।(**पृथिवी**) पृथिवी पर जो विदित है वह-पार्थिव (अञ्)।*

*सिद्धि-(१) **सार्वभौमः।** यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **पार्थिवः।** यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथिवी' शब्द से विदित अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ठञ्–

(२) लोकसर्वलोकाट्ठञ्।४३।

प०वि०-लोक-सर्वलोकात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-लोकश्च सर्वलोकाश्च एतयोः समाहारो लोकसर्वलोकम्, तस्मात्-लोकसर्वलोकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, विदित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र लोकसर्वलोकाद् विदितष्ठञ्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां लोकसर्वलोकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विदित इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**लोकः**) लोके विदितः-लौकिकः। (**सर्वलोकः**) सर्वलोकेषु विदितः-सार्वलौकिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (लोकसर्वलोकात्) लोक और सर्वलोक प्रातिपदिकों से (विदितः) प्रसिद्ध अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**लोक**) लोक में जो विदित है वह-लौकिक। (**सर्वलोक**) सब लोकों में जो विदित है वह-सार्वलौकिक।*

*सिद्धि-(१) **लौकिकः।** लोक+ङि+ठञ्। लौक्+इक। लौकिक+सु। लौकिकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'लोक' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **सार्वलौकिकः।** सर्वलोक+सुप्+ठञ्। सार्वलौक्+इक। सार्वलौकिक+सु। सार्वलौकिकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'सर्वलोक' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'अनुशतिकादीनां च'** (७।३।२०) से अंग को उभयपदवृद्धि होती है।*

वापार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य वापः ।४४।

प०वि०–तस्य ६ ।१ वापः १ ।१ ।

अन्वयः–तस्य प्रातिपदिकाद् वापो यथाविहितं प्रत्ययः ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् वाप इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रमुच्यते। अत्र **'हलश्च'** (३ ।३ ।१२१) इत्यधिकरणे कारके घञ् प्रत्ययः ।

उदा०–प्रस्थस्य वापः–प्रास्थिकं क्षेत्रम्। द्रौणिकं क्षेत्रम्। खारीकं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (वापः) बुवाई-क्षेत्र अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रस्थ बीज इसमें बोया जाता है यह-प्रास्थिक क्षेत्र। द्रोण बीज इसमें बोया जाता है यह-द्रौणिक क्षेत्र। खारी बीज इसमें बोया जाता है यह-खारिक क्षेत्र।

विशेषः *प्रस्थ=५० तोले (१० छटांक)। द्रोण=८०० तोले (१० सेर)। खारी=१६० सेर (४ मण)। ४ प्रस्थ का एक आढक, ४ आढक का एक द्रोण और १६ द्रोण की एक खारी होती है।*

ष्ठन्–

(२) पात्रात् ष्ठन् ।४५।

प०वि०–पात्रात् ५ ।१ ष्ठन् १ ।१ ।

अनु०–तस्य, वाप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पात्राद् वापः ष्ठन्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पात्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वाप इत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति। पात्रशब्दोऽत्र परिमाणवाची वर्तते।

उदा०–पात्रस्य वापः–पात्रिकं क्षेत्रम्। पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पात्रात्) पात्र प्रातिपदिक से (वापः) बुवाई-क्षेत्र अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है। पात्र शब्द यहां परिमाण-वाचक है।*

उदा०-पात्र का वाप-पात्रिक क्षेत्र (खेत)। पात्र का वाप-पात्रिकी क्षेत्रभक्ति (क्यारी)।

सिद्धि-पात्रिकम्। *पात्र+ङस्+ष्ठन्। पात्र्+इक। पात्रिक+सु। पात्रिकम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पात्र' शब्द से वाप-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पात्रिकम्।** प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-**पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः।** पात्र=आढक (४ प्रस्थ का कटोरा=ढईया)*

अस्मिन् दीयते-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।४६।

प०वि०-तत् १।१ अस्मिन् ७।१ वृद्धि-आय-लाभ-शुल्क-उपदाः १।३ दीयते क्रियापदम्।

स०-वृद्धिश्च आयश्च लाभश्च शुल्कश्च उपदा च ता वृद्ध्यायलाभ-शुल्कोपदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्मिन् यथाविहितं प्रत्ययो वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यादिकं चेत् तद् दीयते।

(१) यदधमर्णेन उत्तमार्णाय मूलधनातिरिक्तं देयं तत्-वृद्धिः। (२) ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भागः-आयः। (३) पटादीनामुपादानमूलादतिरिक्तं द्रव्यम्-लाभः। (४) रक्षानिर्देशो राजभागः-शुल्कः। (५) उत्कोचः-उपदा।

उदा०-पञ्च अस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-पञ्चकः। सप्तकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा रूप में दिया जाता हो।*

*(१) जो कर्जदार के द्वारा साहूकार को मूलधन के अतिरिक्त राशि दी जाती है वह **'वृद्धि'** कहाती है। (२) ग्राम आदि में ग्रामाधिपति के द्वारा ग्राह्य भाग **'आय'** कहाता है।*

*(३) पट आदि के उपादानमूल (सूत आदि की लागत) से अतिरिक्त द्रव्य की प्राप्ति '**लाभ**' कहाता है। (४) रक्षा की दृष्टि से निश्चित किया गया राजभाग 'शुल्क' कहाता है। (५) उत्कोच=घूस, रिश्वत को 'उपदा' कहते हैं।*

उदा०-पञ्च=पांच कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क वा उपदा रूप में दिये जाते हैं यह-पञ्चक। सप्त=सात कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-सप्तक। शत=सौ कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-साहस्र।

*__सिद्धि-(१) पञ्चकः।__ यहां प्रथमा-समर्थ 'पञ्च' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा '**वृद्धि-आदिकं दीयते**' अभिधेय में '**संख्याया अतिशदन्तायाः कन्**' (५।१।२२) से यथाविहित 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सप्तकः।***

*__(२) शत्यः/शतिकः।__ यहां 'शत' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में '**शताच्च ठन्यतावशते**' (५।१।२१) से क्रमशः यथाविहित यत् और ठन् प्रत्यय हैं।*

*__(३) साहस्रः।__ यहां 'सहस्र' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में '**शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्**' (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।*

*__विशेषः__ सूत्रपाठ में 'वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः' पद बहुवचनान्त है **और** 'दीयते' पद एकवचनान्त है। यहां वृद्धि आदि प्रत्येक एकवचनान्त रूप पद के साथ अन्वय के लिये 'दीयते' पद एकवचनान्त रूप में पढ़ा गया है।*

ठन्–

(२) पूरणार्धाट्ठन्।४७।

प०वि०–पूरण-अर्धात् ५।१ ठन् १।१।

स०–पूर्यते येनार्थेन स पूरणः। पूरणश्च अर्धं च एतयोः समाहारः पूरणार्धम्, तस्मात्–पूरणार्धात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्मिन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः, दीयते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् पूरणार्धाद् अस्मिन् ठन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् पूरणवाचिनः शब्दाद् अर्धशब्दात् प्रातिपदिकाच्चास्मिन्नित्यर्थे ठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यादिकं चेत् तद् दीयते।

उदा०-(**पूरण:**) द्वितीयमस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-द्वितीयिक:। तृतीयिक:। पञ्चमिक:। सप्तमिक:। (**अर्धम्**) अर्धमस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-अर्धिक:। अर्धशब्दो रूपकार्धस्य रूढिर्वर्तते।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूरणार्धात्) पूरण-प्रत्ययान्त और अर्ध प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है (वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा रूप में दिया जाता हो।*

*उदा०-**(पूरण)** द्वितीय=दूसरा इस व्यवहार में वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा दिया जाता है यह-द्वितीयिक। तृतीय=तीसरा इस व्यवहार में वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-तृतीयिक। पञ्चम=पांचवां इसमें वृद्धि आदि दिया जाता है यह-पञ्चमिक। सप्तम=सातवां इसमें वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-सप्तमिक। **(अर्धम्)** अर्ध=आधा कार्षापण (आधे रुपये) इस व्यवहार में वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-अर्धिक। अर्ध-शब्द आधा रुपया अर्थ में रूढ है।*

सिद्धि-(१) द्वितीयिक:। *द्वि+ओस्+तीय। द्वि+तीय। द्वितीय+सु+ठन्। द्वितीय्+इक। द्वितीयिक+सु। द्वितीयिक:।*

*यहां प्रथम 'द्वि' शब्द से पूरण-अर्थ में 'द्वेस्तीय:' (५।२।५४) से तीय प्रत्यय है। तत्पश्चात् पूरण-प्रत्ययान्त 'द्वितीय' शब्द से अस्मिन्-अर्थ में तथा **'वृद्ध्यादिकं दीयते'** अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**तृतीयिक:।***

(२) पञ्चमिक:। *यहां प्रथम 'पञ्चन्' शब्द से पूरण अर्थ में **'नान्तादसंख्यादेर्मट्'** (५।२।४९) से 'डट्' प्रत्यय और उसे मट्-आगम होने पर 'पञ्चम' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् पूरण-प्रत्ययान्त 'पञ्चम' शब्द से अस्मिन्-अर्थ में तथा **'वृद्ध्यादिकं दीयते'** अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**साप्तमिक:।***

(३) अर्धिक:। *यहां रूपक-अर्ध अर्थ में रूढ 'अर्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है।*

यत्+ठन्-

(३) भागाद् यच्च।४८।

प०वि०-भागात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्मिन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा:, दीयते, ठन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् भागाद् अस्मिन् यत् ठँश्च, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् भाग-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यत् ठँश्च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-भागोऽस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-भाग्यं शतम् (यत्)। भागिकं शतम् (ठन्)। भाग्या विंशतिः (यत्)। भागिका विंशतिः (ठन्)। भागशब्दोऽपि रूपकार्धस्य वाचको वर्तते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (भागात्) भाग प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठन्) ठन् प्रत्यय होते हैं।*

***उदा०**-भाग (आधा कार्षापण) इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिया जाता है यह-भाग्य शत कार्षापण (यत्)। भागिक शत कार्षापण अर्थात् शत (सौ) कार्षापण के आधे पचास कार्षापण वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं वह व्यवहार-भाग्य अथवा भागिक कहाता है। ऐसे ही-भाग्या अथवा भागिका विंशति (बीस कार्षापण)। भाग शब्द रूपक-अर्ध (आधे रुपये) का वाचक है।*

***सिद्धि-(१) भाग्यम्।** भाग+सु+यत्। भाग्+य। भाग्य+सु। भाग्यम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'भाग' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा **'वृद्ध्यादिकं दीयते'** अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है-**भाग्या विंशतिः**।*

***(२) भागिकम्।** भाग+सु+ठन्। भाग्+इक। भागिक+सु। भागिकम्।*

*यहां 'भाग' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् टाप् प्रत्यय होता है-**भागिका विंशतिः**।*

हरति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तद्धरतिवहत्यावहति भाराद् वंशादिभ्यः।४६।

प०वि०-तत् २।१ हरति क्रियापदम्, वहति क्रियापदम्, आवहति क्रियापदम्, भारात् ५।१ वंशादिभ्यः ५।३।

स०-वंश आदिर्येषां ते वंशादयः, तेभ्यः-वंशादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-तद् वंशादिभ्यो भाराद् हरति, वहति, आवहति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् हरति, वहति, आवहति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-वंशभारं हरति, वहति, आवहति वा-वांशभारिकः। कौटजभारिकः। बाल्वजभारिकः, इत्यादिकम्।

हरति=देशान्तरं प्रापयति चोरयति वा। वहति=उत्क्षिप्य धारयति। आवहति=आनयति।

वंश। कुटज। बल्वज। मूल। अक्ष। स्थूणा। अश्मन्। अश्व। इक्षु। खट्वा। इति वंशादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (वंशादिभ्यः) वंश-आदि शब्दों से परे विद्यमान (भारात्) भार प्रातिपदिक से (हरति) ले जाता है/चुराता है (वहति) उठाता है (आवहति) लाता है अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-वंशभार (बांस का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-वांशभारिक। कुटजभार (कुटज=ओषधीवृक्ष का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-कौटजभारिक। बल्वजभार (घासविशेष का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-बाल्वजभारिक।

सिद्धि-वांशभारिकः। *वंशभार+अम्+ठञ्। वांशभार्+इक। वांशभारिक+सु। वांशभारिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'वंशभार' शब्द से हरति-आदि अर्थों में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौटजभारिकः, बाल्वजभारिकः** आदि।*

ठन्+कन्-

(२) वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ।५०।

प०वि०-वस्न-द्रव्याभ्याम् ५।२ ठन्-कनौ १।२।

स०-वस्नं च द्रव्यं च ते वस्नद्रव्ये, ताभ्याम्-वस्नद्रव्याभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। **ठन् च कन् च तौ-ठन्कनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।**

अनु०-तत्, हरति, वहति, आवहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वस्नद्रव्याभ्यां हरति, वहति, आवहति ठन्कनौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां वस्नद्रव्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हरति, वहति, आवहति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं ठन्कनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(वस्नम्) वस्नं हरति, वहति, आवहति वा-वस्निको वणिक् (ठन्)। **(द्रव्यम्)** द्रव्यं हरति, वहति, आवहति वा-द्रव्यको वणिक् (कन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (वस्नद्रव्याभ्याम्) वस्न और द्रव्य प्रातिपदिकों से (हरति, वहति, आवहति) हरण करता है, उठाता है और लाता है अर्थों में यथासंख्य (ठन्कनौ) ठन् और कन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-वस्न=मूल्य (पूंजी) को जो हरण करता है, उठाता है वा लाता है वह-वस्निक व्यापारी। द्रव्य=माल को जो हरण करता है, उठाता है=ढोता है वा लाता है वह-द्रव्यक व्यापारी।

सिद्धि-(१) ***वस्निकः।*** *वस्न+अम्+ठन्। वस्न्+इक। वस्निक+सु। वस्निकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'वस्न' शब्द से हरति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है।

(२) ***द्रव्यकः।*** *द्रव्य+अम्+कन्। द्रव्य+क। द्रव्यक+सु। द्रव्यकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'द्रव्य' शब्द से हरति-आदि अर्थों में 'कन्' प्रत्यय है।

विशेषः *"एक व्यापारी काशी से तक्षशिला तक जाकर अपना माल बेचने के लिये घर से निकलता है। जब वह काशी से चला तो काशी के व्यापारियों की भाषा में वह-'**हरति=देशान्तरं प्रापयति**' वह माल लादकर चलता है, इस अर्थ में 'द्रव्यक' कहलाता था। मार्ग में वह मथुरा पहुंचा तो मथुरा के व्यापारी उसे वहति-अर्थ में 'द्रव्यक' कहते थे अर्थात् जो उनके नगर से होता हुआ माल ले जा रहा है। वही वणिक् जब अपने गन्तव्य स्थान तक्षशिला में पहुंचता है तब वहां के व्यापारी उसे आवहति-अर्थ में 'द्रव्यक' कहते थे अर्थात् वह हमारे नगर में माल लेकर आ रहा है। इस प्रकार वह माल बेचकर पूंजी कमाता हुआ चलता था।*

तक्षशिला में बिक्री समाप्त करके वह अपनी पूंजी लेकर काशी की ओर लौटता था तब वह 'वस्निक' कहलाने लगता था। तक्षशिला के व्यापारी हरति-अर्थ में उसे 'वस्निक' कहते थे अर्थात् वह बिक्री से मिली हुई आय जिसमें पूंजी और लाभ दोनों शामिल थे, ले जा रहा है (यहां भी हरति=देशान्तरं प्रापयति)। मार्ग में मथुरा के व्यापारी उसे वहति-अर्थ में 'वस्निक' कहते थे अर्थात् वह बिक्री का द्रव्य लेकर उनके नगर से जा रहा

है। जब वह काशी पहुंचने को होता तब वहां के लोग उसके लिये आवहति-अर्थ में 'वस्निक' शब्द का प्रयोग करते थे अर्थात् वह बिक्री की रोकड़ ला रहा है" (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३३)।

सम्भवति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सम्भवत्यवहरति पचति।५१।

प०वि०-सम्भवति क्रियापदम्, अवहरति क्रियापदम्, पचति क्रियापदम्।

अनु०-तद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रस्थं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-प्रास्थिकः। कौडविकः। खारीकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण करता है (पचति) पकाता है अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रस्थ (१० छटांक) को जो धारण कर सकता है, उससे कम को धारण कर सकता है वा पकाता है वह-प्रास्थिक पात्र। कुडव (१६ तोला) को जो धारण कर सकता है, उससे कम को धारण कर सकता है वा उसे पकाता है वह-कौडविक। खारी (४ मण) को धारण कर सकता है, उससे कम को धारण करता है वा पकाता है वह-खारीक, कड़ाहा आदि।

*सिद्धि-(१) **प्रास्थिकः।** प्रस्थ+अम्+ठञ्। प्रास्थ्+क। प्रास्थिक+सु। प्रास्थिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रस्थ' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कौडविकः।***

*(२) **खारीकः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'खारी' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में **'खार्या ईकन्'** (५।१।३३) से 'ईकन्' प्रत्यय है।*

ख-विकल्पः–

(२) आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्।५२।

प०वि०–आढक-आचित-पात्रात् ५।१ खः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–आढकं च आचितं च पात्रं च एतेषां समाहारः आढकाचितपात्रम्, तस्मात्-आढकाचितपात्रात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् आढकाचितपात्रात् सम्भवति, अवहरति, पचत्यन्यतरस्यां खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्य आढकाचितपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(आढकम्)** आढकं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-आढकीना स्थाली (खः)। आढकिकी स्थाली (ठञ्)। **(आचितम्)** आचितं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-आचितीना स्थाली (खः)। आचितिकी स्थाली (ठञ्)। **(पात्रम्)** पात्रं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-पात्रीणा स्थाली (खः)। पात्रिकी स्थाली (ठञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (आढकाचितपात्रात्) आढक, आचित, पात्र प्रातिपदिकों से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(आढक)** आढक=ढाई सेर को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है-वह आढकीना स्थाली (पतीली) (ख)। आढकिकी स्थाली (ठञ्)। **(आचित)** आचित=२५ मण को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है वा उसे पकाती है वह-आचितीना स्थाली (ख)। आचितिकी स्थाली (ठञ्)। **(पात्र)** पात्र ढाई सेर को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है वा उसे पकाती है वह-पात्रीणा स्थाली (ख)। पात्रिकी स्थाली (ठञ्)।*

सिद्धि-(१) आढकीना।** आढक+अम्+ख। **आढक्+ईन। आढकीन+टाप्। आढकीना+सु। आढकीना।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (स्थाली) में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही–**आचितीना, पात्रीणा।***

*(२) **आढकिकी।** आढक+अम्+ठञ्। आढक्+इक। आढकिक+ङीप्। आढकिकी+सु। आढकिकी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में विकल्प पक्ष में '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (स्थाली) में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही–**आचितिकी, पात्रिकी।***

ष्ठन्+खः+ठञ्–

(३) द्विगोः ष्ठँश्च।५३।

प०वि०–द्विगोः ५।१ ष्ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति, आढकाचितपात्रात्, खः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् द्विगोराढकाचितपात्रात् सम्भवति, अवहरति, पचति ष्ठन् अन्यतरस्यां खश्च।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्य आढकाचितपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु ष्ठन् विकल्पेन च खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(आढकम्)** द्व्याढकं सम्भवति, अवहरति, पचति वा–द्व्यादकिकी (ष्ठन्)। द्व्याढकीना (खः)। द्व्याढकी कटाही (ठन्–लुक्)। **(आचितम्)** द्व्याचितं सम्भवति, अवहरति पचति वा–द्व्याचितिकी (ष्ठन्)। द्व्याचितीना (खः)। द्व्याचिता महाकटाही (ठञ्–लुक्)। **(पात्रम्)** द्विपात्रं सम्भवति, अवहरति, पचति वा–कटाही। द्विपात्रिकी (ष्ठन्)। द्विपात्रीणा (खः)। द्विपात्रा कटाही (ठञ्–लुक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (आढकाचितपात्रात्) आढक, आचित, पात्र प्रातिपदिकों से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (ष्ठन्) **ष्ठन्** (च) और (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में **औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय** होता है।*

*उदा०-(**आढक**) द्वि-आढक (पांच सेर) को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-द्व्याढकिकी (ष्ठन्)। द्व्याढकीना (ख)। द्व्याढकी कढाही (ढञ्-लुक्)। (**आचित**) द्वि-आचित (५० मण) को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण करती है, उसे पकाती है वह-द्व्याचितिकी (ष्ठन्)। द्व्याचितीना (ख)। द्व्याचिता (ठञ्-लुक्) बहुत बड़ी कढाही। (**पात्र**) द्विपात्र=(५ सेर) को धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-द्विपात्रिकी (ष्ठन्)। द्विपात्रीणा (ख)। द्विपात्रा (ठञ्-लुक्) कढाही।*

*सिद्धि-(१) **द्व्याढकिकी।** द्व्याढक+अम्+ष्ठन्। द्व्याढक्+इक। द्व्याढकिक+ङीप्। द्व्याढकिकी+सु। द्व्याढकिकी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा (कढाही) में ङीष् प्रत्यय होता है। प्रत्यय के नित् होने से '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९७) से आद्युदात्त स्वर होता है-**द्व्याढकिकी।** ऐसे ही-**द्व्याचितिकी, द्विपात्रिकी।***

*(२) **द्व्याढकीना।** द्व्याढक+अम्+ख। द्व्याढक्+ईन। द्व्याढकीन+टाप्। द्व्याढकीना+सु। द्व्याढकीना।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में (कटाही) '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**द्व्याचितीना, द्विपात्रीणा।***

*(३) **द्व्याढकी।** द्व्याढक+अम्+ठञ्। द्व्याढक+०। द्व्याढक+ङीप्। द्व्याढकी+सु। द्व्याढकी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में विकल्प पक्ष में '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। '**अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्**' (५।१।२८) से उसका लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में '**द्विगोः**' (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**द्विपात्री।***

*(४) **द्व्याचिता।** यहां 'द्व्याचित' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाने पर '**अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि**' (४।१।२२) से ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाता है। अतः '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

लुक्, ठञ्, खः, ष्ठन्-

(४) कुलिजाल्लुक्खौ च।५४।

प०वि०-कुलिजात् ५।१ लुक्-खौ १।२।

स०-लुक् च खश्च तौ लुक्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति, अन्यतरस्याम्, द्विगोः, ष्ठन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् द्विगोः कुलिजात् सम्भवति, अवहरति, पचति अन्यतरस्यां लुक्खौ ष्ठँश्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कुलिज-शब्दात् प्रतिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु विकल्पेन प्रत्ययस्य लुक्, खः, ष्ठँश्च प्रत्ययो भवति। पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति तस्यैव च वा लुग् भवति।

उदा०-कुलिजं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-द्विकुलिजी (ठञ्-लुक्)। द्वैकुलिजिकी (ठञ्)। द्विकुलिजीना (खः)। द्विकुलिजिकी कटाही (ष्ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कुलिजात्) कुलिज प्रातिपदिक से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुक्खौ) औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय का लुक्, ठञ्-प्रत्यय, ख (च) और (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-द्विकुलिज=दो कुलिजों को जो धारण कर सकती है, उससे कम धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-कुलिजा (ठञ्-लुक्)। द्वैकुलिजिकी (ठञ्)। द्विकुलिजीना (ख)। द्विकुलिजिकी कटाही (ष्ठन्)।

*सिद्धि-(१) **द्विकुलिजी।** द्विकुलिज+अम्+ठञ्। द्विकुलिज+०। द्विकुलिज+ङीप्। द्विकुलिजी+सु। द्विकुलिजी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विकुलिज' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'द्विगोः'** (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

*(२) **द्वैकुलिजिकी।** यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विकुलिज' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में पूर्ववत् औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है और उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है। **'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणकुलिजानाम्'** (७।३।१७) इस सूत्रपाठ से उत्तरपद 'कुलिज' शब्द को वृद्धि नहीं होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

*(३) **द्विकुलिजीना।** यहां 'द्विकुलिज' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

(४) द्विकुलिजिकी। यहां 'द्विकुलिज' शब्द से पूर्ववत् 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

विशेषः *(१) पाणिनि ने 'प्रस्थ' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। कौटिल्य के समय वह बहुत चालू शब्द था। साढ़े बारह पल या ५० तोले या ढाई पाव की तोल 'प्रस्थ' कहलाती थी। अनुमान है कि पाणिनि ने उसी के लिये 'कुलिज' शब्द का प्रयोग किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४४)।*

(२) संस्कृत भाषा का 'कुलि' शब्द 'हाथ' का वाचक है (शब्दार्थकौस्तुभ) उससे उत्पन्न परिमाण 'कुलिज' कहलाता है। अतः 'कुलिज' शब्द का अर्थ अञ्जलि (आंजळा) है।

अस्य-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) सोऽस्यांशवस्नभृतयः।५५।

प०वि०-सः १।१ अस्य ६।१ अंश-वस्न-भृतयः १।३।

स०-अंशश्च वस्नं च भृतिश्च ता अंशवस्नभृतयः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, अंशवस्नभृतयः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अंशवस्नभृतयश्चेत् ता भवन्ति। अंशः=भागः। वस्नम्=मूल्यम्। भृतिः=वेतनम्।

उदा०-पञ्च अंशो वस्नं भृतिर्वाऽस्य-पञ्चकः। सप्तकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (अंशवस्नभृतयः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अंश=भाग, वस्न=मूल्य (लागत) और भृति=वेतन हो।*

उदा०-पञ्च=पांच कार्षापण अंश (भाग) है इसका यह-पञ्चक व्यापार। पञ्च=पांच कार्षापण वस्न (लागत मूल्य) है इसका यह-पञ्चक पट (कपड़ा)। पञ्च=पांच कार्षापण भृति=वेतन है इसका यह-पञ्चक कर्मचारी। सप्त=सात कार्षापण अंश, वस्न वा भृति है इसकी यह-सप्तक। सहस्र=हजार कार्षापण अंश, वस्न वा भृति है इसकी यह-साहस्र।

उदा०-(१) पञ्चकः। पञ्चन्+जस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'पञ्चन्' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा अंश-आदि अभिधेय में 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' (५।१।२२) से यथाविहित कन् प्रत्यय है। 'नलोपः

प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'पञ्चन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही-सप्तक:।

(२) साहस्र:। यहां प्रथमा-समर्थ 'सहस्र' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा अंश-आदि अभिधेय में 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) तदस्य परिमाणम्।५६।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ परिमाणम् १।१।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, परिमाणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-प्रस्थः परिमाणमस्य-प्रास्थिको राशिः। खारीकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः। द्रौणिकः। **कौडविकः**। वर्षशतं परिमाणमस्य-वार्षशतिकः। वार्षसहस्रिकः। षष्टिर्जीवितं परिमाणमस्य-षाष्टिकः। साप्ततिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (परिमाणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण हो।*

उदा०-प्रस्थ (१० छटांक) परिमाण है इसका यह-प्रास्थिक राशि। खारी (४ मण) परिमाण है इसका यह-खारीक राशि। शत=सौ कार्षापण परिमाण है इसका यह-शत्य अथवा शतिक राशि। सहस्र=हजार कार्षापण परिमाण है इसका यह-साहस्र राशि। कुडव (ढाई छटांक) परिमाण है इसका यह-कौडविक। वर्ष शत=(सौ वर्ष) परिमाण है इसका यह वार्षशतिक यज्ञ। वर्ष सहस्र (हजार वर्ष) परिमाण है इसका यह-वार्षसहस्रिक। वंशपरम्परित महायज्ञ। षष्टि (साठ वर्ष) जीवन है इसका यह-षाष्टिक पुरुष। सप्तति (सत्तर वर्ष) जीवन है इसका यह-साप्ततिक पुरुष।

सिद्धि-(१) प्रास्थिकः। *प्रस्थ+सु+ठञ्। प्रास्थ्+इक। प्रास्थिक+सु। प्रास्थिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'प्रस्थ' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा परिमाण अभिधेय में ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्रौणिकः, कौडविकः, वार्षशतिकः** आदि।*

(२) खारीकः। *यहां 'खारी' शब्द से* ***'खार्या ईकन्'*** *(५।१।३३) से यथाविहित 'ईकन्' प्रत्यय है।*

(३) शत्यः/शतिकः। यहां 'शत' शब्द से 'शताच्च ठन्यतावशते' (५।१।२१) से यथाविहित क्रमशः यत् और 'ठन्' प्रत्यय हैं।

(४) साहस्रः। यहां 'सहस्र' शब्द 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।

यथाविहितं प्रत्ययः–

(३) संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु।५७।

प०वि०–संख्यायाः ५।१ संज्ञा-सङ्घ-सूत्र-अध्ययनेषु ७।३।

स०–संज्ञा च सङ्घश्च सूत्रं च अध्ययनं च तानि संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनानि, तेषु-संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् संख्याया अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, परिमाणम्, संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत्, यच्चास्येति षष्ठीनिर्दिष्टं संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनानि चेत् तद् भवति, तत्र संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो विधीयते।

उदा०–**(संज्ञा)** त्रय एव त्रिकाः शालङ्कायनाः पञ्च एव पञ्चकाः शकुनयः। **(सङ्घ)** पञ्च परिमाणमस्य-पञ्चकः सङ्घः। अष्टकः। सङ्घः=प्राणिसमूहः। **(सूत्रम्)** अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य-अष्टकं पाणिनीयम्। दशकं वैयाघ्रपदीयम्। त्रिकं काशकृत्स्नम्। **(अध्ययनम्)** पञ्चावृत्तयः परिमाणमस्याध्ययनस्य-पञ्चकमध्ययनम्। सप्तकम्। अष्टकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (परिमाणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण हो (संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु) और जो षष्ठी-अर्थ है यदि वह संज्ञा, संघ, सूत्र, अध्ययन हो। उनमें संज्ञा अर्थ में स्वार्थ में प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(संज्ञा)** तीन ही-त्रिक शालङ्कायन। पांच ही-पञ्चक शकुनि (पक्षी)। **(संघ)** पांच है परिमाण इसका यह-पञ्चक संघ (प्राणिसमूह)। सात है परिमाण इसका*

यह-सप्तक संघ। आठ है परिमाण इसका यह-अष्टक संघ। (सूत्र) आठ अध्याय है परिमाण इस सूत्र का यह-अष्टक पाणिनीय। दश अध्याय है परिमाण इस सूत्र का यह-दशक वैयाघ्रपदीय। आचार्य व्याघ्रपात् द्वारा रचित दश-अध्यायात्मक व्याकरणशास्त्र। आचार्य व्याघ्रपात् पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। तीन अध्याय है परिमाण इसका यह-त्रिक काशकृत्स्न। आचार्य काशकृत्स्न द्वारा रचित तीन अध्याय आत्मक व्याकरणशास्त्र। आचार्य काशकृत्स्न पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। (अध्ययन) पांच आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन (पाठ) की यह-पञ्चक अध्ययन। सात आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन की यह-सप्तक अध्ययन। आठ आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन की यह-अष्टक अध्ययन।

***सिद्धि-त्रिकाः।** त्रि+जस्+कन्। त्रि+क। त्रिक+जस्। त्रिकाः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'त्रि' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में '**संख्याया अतिशदन्तायाः कन्**' (५।१।२२) से यथाविहित 'कन्' प्रत्यय है। यहां संज्ञा-अभिधेय में स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है, परिमाण अर्थ में नहीं। 'त्रिक' यह शालङ्कायन लोगों की संज्ञा है। ऐसे ही पञ्चकाः आदि।*

निपातनम्–

(४) पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टि-सप्तत्यशीतिनवतिशतम्।५८।

प०वि०–पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशत्-चत्वारिंशत्-पञ्चाशत्-षष्टि-सप्तति-अशीति-नवति-शतम् १।१।

स०–पङ्क्तिश्च विंशतिश्च त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशच्च षष्टिश्च सप्ततिश्च अशीतिश्च नवतिश्च शतं च एतेषां समाहारः–पङ्क्ति०शतम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तदस्य परिमाणं पङ्क्ति०शतम्।

अर्थः–'तदस्य परिमाणम्' इत्यस्मिन् विषये पङ्क्ति-आदयः शब्दा निपात्यन्ते। यदत्र सूत्रेणानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात् सिद्धं वेदितव्यम्।

उदाहरणम्–

(१) **पङ्क्तिः**–पञ्च परिमाणमस्य-पङ्क्तिश्छन्दः। अत्र पञ्च-शब्दस्य टिलोपः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(२) **विंशति**-द्वौ दशतौ परिमाणमस्य सङ्घस्य-विंशतिः। अत्र द्वयोर्दशतोर्विन्-आदेशः शतिच् प्रत्ययश्च निपात्यते।

(३) **त्रिंशत्**-त्रयो दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-त्रिंशत्। अत्र त्रयाणां दशतां त्रिन्-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(४) **चत्वारिंशत्**-चत्वारो दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-चत्वारिंशत्। अत्र चतुर्णां दशतां चत्वारिन्-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(५) **पञ्चाशत्**-पञ्च दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-पञ्चाशत्। अत्र पञ्चानां दशतां पञ्च-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(६) **षष्टिः**- षड् दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-षष्टिः। अत्र षण्णां दशतां षड्-आदेशः, तिः प्रत्ययः, अपदत्वं च निपात्यते।

(७) **सप्ततिः**-सप्त दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-सप्ततिः। अत्र सप्तानां दशतां सप्त-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(८) **अशीतिः**-अष्टौ दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-अशीतिः। अत्र अष्टानां दशतामशी-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(९) **नवतिः**-नव दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-नवतिः। अत्र नवानां दशतां नव-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(१०) **शतम्**-दश दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-शतम्। अत्र दशानां दशतां श-आदेशः, तः प्रत्ययश्च निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्, अस्य, परिमाणम्) 'वह है परिमाण इसका' इस विषय में (पङ्क्ति०शतम्) पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत शब्द निपातित किये जाते हैं। यहां जो सूत्र से असिद्ध है वह निपातन से सिद्ध किया जाता है।*

*उदा०-**(पङ्क्ति)** पांच है परिमाण इसका यह-पङ्क्ति छन्द। **(विंशति)** दो दशक है परिमाण इसका यह-विंशति। **(त्रिंशत्)** तीन दशक है परिमाण इसका यह-त्रिंशत्। **(चत्वारिंशत्)** चार दशक है परिमाण इसका यह-चत्वारिंशत्। **(पञ्चाशत्)** पांच दशक है परिमाण इसका यह-पञ्चाशत्। **(षष्टिः)** छः दशक परिमाण है इसका यह-षष्टि। **(सप्ततिः)** सात दशक है परिमाण इसका यह-सप्तति। **(अशीतिः)** आठ दशक परिमाण*

है इसका यह-अशीति। (नवतिः) नौ दशक परिमाण है इसका यह-नवति। (शतम्) दश दशक परिमाण है इसका यह-शत।

सिद्धि-(१) **पङ्क्तिः।** पञ्चन्+जस्+ति। पञ्च्+ति। पङ्क्+ति। पङ्क्ति+सु। पङ्क्तिः।

यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय, और 'पञ्चन्' शब्द के टि-भाग (अन्) का लोप निपातित है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'पञ्चन्' शब्द की पद संज्ञा होती है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से पद के 'च्' को क्, **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' होता है। पङ्क्ति=छन्द। यह छन्द पांच चरणों का होता है। इसके एक चरण में ८ अक्षर होते हैं। इसमें कुल ५×८=४० अक्षर होते हैं।

(२) **विंशतिः।** द्विदशत्+जस्+शतिच्। विन्+शति। विं+शति। विंशति+सु। विंशतिः।

यहां द्विदशत् (दो दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शतिच्' प्रत्यय और द्विदश के स्थान में विन्-आदेश निपातित होता है। यहां निपातन से **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से प्राप्त पदसंज्ञा का अभाव होकर **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार आदेश होता है।

(३) **त्रिंशत्।** त्रिदशत्+जस्+शत्। त्रिन्+शत्। त्रिं+शत्। त्रिंशत्+सु। त्रिंशत्।

यहां त्रिदशत् (तीन दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से शत् प्रत्यय निपातित है।

(४) **चत्वारिंशत्।** चतुर्दशत्+जस्+शत्। चत्वारिन्+शत्। चत्वारिंशत्+सु। चत्वारिंशत्।

यहां चतुर्दशत् (चार दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से शत् प्रत्यय निपातित है।

(५) **पञ्चाशत्।** पञ्चदशत्+जस्+शत्। पञ्चा+शत्। पञ्चाशत्+सु। पञ्चाशत्।

यहां 'पञ्चदशत्' (पांच दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शत्' प्रत्यय और 'पञ्चन्' के स्थान में 'पञ्चा' आदेश निपातित है।

(६) **षष्टिः।** षड्दशत्+जस्+ति। षष्+ति। षष्टि+सु। षष्टिः।

यहां 'षड्दशत्' (छः दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शत्' प्रत्यय और 'षड्दशत्' के स्थान में 'षष्' आदेश निपातित है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से प्राप्त पद संज्ञा निपातन से नहीं होती है। पद संज्ञा न होने से **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से प्राप्त 'षष्' के 'ष्' को जश् 'ड्' नहीं होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) टुत्व होता है।

(७) सप्ततिः । सप्तदशत्+जस्+ति । सप्त+ति । सप्तति+सु । सप्ततिः ।

यहां सप्तदशत् (सात दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय निपातित है।

(८) अशीतिः । अष्टदशत्+जस्+ति । अशी+ति । अशीति+सु । अशीतिः ।

यहां अष्टदशत् (आठ दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय और 'अष्टदशत्' के स्थान में 'अशी' आदेश निपातित है।

(९) नवतिः । नवदशत्+जस्+ति । नव+ति । नवति+सु । नवतिः ।

यहां नवदशत् (नौ दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय और 'नवदशत्' के स्थान में 'नव' आदेश निपातित है।

(१०) शतम् । दशदशत्+जस्+त । श+त । शत+सु । शतम् ।

यहां दशदशत् (दश दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'त' प्रत्यय और 'दशदशत्' के स्थान में 'श' आदेश निपातित है।

निपातनम्–

(५) पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ।५६।

प०वि०–पञ्चत्-दशतौ १।२ वर्गे ७।१ वा अव्ययपदम् ।

स०–पञ्चच्च दशच्च तौ पञ्चद्दशतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तदस्य परिमाणं पञ्चद्दशतौ वा वर्गे ।

अर्थः–'तदस्य परिमाणम्' इत्यस्मिन् विषये पञ्चद्दशतौ शब्दौ विकल्पेन निपात्येते वर्गेऽभिधेये ।

उदा०–**(पञ्चत्)** पञ्च परिमाणमस्य–पञ्चद् वर्गः । पञ्चको वर्गः । **(दशत्)** दश परिमाणमस्य–दशद् वर्गः । दशको वर्गः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तदस्य परिमाणम्) 'वह है परिमाण इसका' इस विषय में (पञ्चद्दशतौ) पञ्चत्, दशत् शब्द (वा) विकल्प से निपातन किये जाते हैं (वर्गे) यदि वहां वर्ग=समुदाय अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–(पञ्चत्) पांच है परिमाण इस वर्ग का यह–पञ्चत् वर्ग, पञ्चक वर्ग। (दशत्) दश है परिमाण इस वर्ग का यह–दशत् वर्ग, दशक वर्ग।

सिद्धि–(१) पञ्चत् । *पञ्चत्+जस्+डति । पञ्च्+अत् । पञ्चत्+सु । पञ्चत् ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची, 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'डति' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'पञ्चन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'दश' शब्द से दशत्।*

*(२) **पञ्चकः।** पञ्चन्+जस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-समर्थ के अर्थ में विकल्प पक्ष में '**संख्याया अतिशदन्तायाः कन्**' (५।१।२२) से 'कन्' प्रत्यय है। '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है। ऐसे ही 'दश' शब्द से-दशकः।*

अञ् (छान्दसः)–

(६) सप्तनोऽञ् छन्दसि।६०।

प०वि०-सप्तनः ५।१ अञ् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणम्, वर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत् सप्तनोऽस्याऽञ् परिमाणम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थात् सप्तन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, वर्गेऽभिधेये।

उदा०-सप्त परिमाणमस्य वर्गस्य-साप्तो वर्गः। **'सप्त साप्तान्य-सृजन्'** (तु०तै०सं० ५।४।७।५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सप्तनः) सप्तन् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (वर्गे) यदि वहां वर्ग अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-सप्त परिमाण है इस वर्ग का यह-साप्त वर्ग। **'सप्त साप्तान्यसृजन्'** (तु०तै०सं० ५।४।७।५)।*

***सिद्धि-साप्तः।** सप्तन्+जस्+अञ्। साप्त्+अ। साप्त्+सु। साप्तः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'सप्तन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा वर्ग अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को **आदिवृद्धि** होती है।*

डण्–

(७) त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्।६१।

प०वि०–त्रिंशत्–चत्वारिंशतोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ब्राह्मणे ७।१ संज्ञायाम् ७।१ डण् १।१।

स०–त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च तौ त्रिंशच्चत्वारिंशतौ, ताभ्याम्-त्रिंशच्चत्वारिंशद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् त्रिंशच्चत्वारिंशद्भ्याम् अस्य डण्, संज्ञायाम्, ब्राह्मणे।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां त्रिंशच्चत्वारिंशद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे डण् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्, ब्राह्मणे चार्थेऽभिधेये। अत्र 'ब्राह्मणे' इति अभिधेयसप्तमी, न विषयसप्तमी।

उदा०–**(त्रिंशत्)** त्रिंशद् अध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानाम्-त्रैंशानि ब्राह्मणानि। **(चत्वारिंशत्)** चत्वारिंशद् अध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानाम् चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि। एतानि कानिचिदेव ब्राह्मणान्युच्यन्ते न सर्वाणि।

आर्यभाषाः ***अर्थ***–*(तत्) प्रथमा-समर्थ (त्रिंशच्चत्वारिंशतोः) त्रिंशत्, चत्वारिंशत् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (डण्) डण् प्रत्यय है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो और (ब्राह्मणे) वहां ब्राह्मण-ग्रन्थ अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–(त्रिंशत्) तीस अध्याय परिमाण है इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के ये-त्रैंश ब्राह्मण ग्रन्थ। (चत्वारिंशत्) चालीस अध्याय परिमाण है इन ब्राह्मण-ग्रन्थों का ये-चात्वारिंश ब्राह्मण ग्रन्थ।

सिद्धि–त्रैंशानि। *त्रिंशत्+जस्+डण्। त्रिंश्+अ। त्रिंश+जस्। त्रिंश+नुम्+शि। त्रिंश+न्+इ। त्रिंशानि।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'त्रिंशत्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में, संज्ञा-अर्थ की प्रतीति में तथा ब्राह्मण-ग्रन्थ अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से डण् प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- ***'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'*** *(६।४।१४३) से 'त्रिंशत्' के टि-भाग (अत्) का लोप होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-'चात्वारिंशत्' शब्द से चात्वारिंशानि।*

विशेषः *पाणिनि ने तीस अध्यायों के ब्राह्मण-ग्रन्थ को त्रैंश और चालीस अध्यायवाले ब्राह्मण-ग्रन्थ को चात्वारिंश कहा है। कौषीतकी ब्राह्मण में ३० और ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं। पाणिनि का तात्पर्य इन दोनों (ब्राह्मण-ग्रन्थों) से था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३२२)।*

अर्हति-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तदर्हति।६२।

प०वि०–तत् २।१ अर्हति क्रियापदम्।

अन्वयः–तत् प्रातिपदिकाद् अर्हति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०– श्वेतच्छत्रमर्हति–श्वैतच्छत्रिकः। वस्त्रयुग्ममर्हति–वास्त्रयुग्मिकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अर्हति) 'कर सकता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०–श्वेतच्छत्र को जो धारण कर सकता है वह–श्वैतच्छत्रिक। वस्त्रयुग्म (वस्त्र का जोड़ा-धोती, कुर्ता) को जो धारण कर सकता है वह–वास्त्रयुग्मिक। शत कार्षापण जो प्राप्त कर सकता है वह–शत्य/शतिक। सहस्र कार्षापण जो प्राप्त कर सकता है वह–साहस्र।

*सिद्धि–(१) **श्वैतच्छत्रिकः।** श्वेतच्छत्र+अम्+ठक्। श्वेतच्छत्र्+इक। श्वैतच्छत्रिक।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'श्वेतच्छत्र' शब्द से अर्हति अर्थ में '**आर्हादगोपुच्छ०**' (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही 'वस्त्रयुग्म' शब्द से–**वास्त्रयुग्मिकः।***

*(२) **शत्यः/शतिकः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'शत' शब्द से अर्हति-अर्थ में '**शताच्च ठन्यतावशते**' (५।१।२१) से यथाविहित 'यत्' और 'ठन्' प्रत्यय हैं।*

*(३) **साहस्रः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'सहस्र' शब्द से अर्हति-अर्थ में '**शतमानविंशतिसहस्रवसनादण्**' (५।१।२८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

यथाविहितं प्रत्ययः (ठक्)–

(२) छेदादिभ्यो नित्यम्।६३।

प०वि०–छेद-आदिभ्यः ५।३ नित्यम् १।१।

स०–छेद आदिर्येषां ते छेदादयः, तेभ्यः–छेदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् छेदादिभ्यो नित्यम् अर्हति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यश्छेदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो नित्यम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–छेदं नित्यमर्हति–छैदिकः। भेदं नित्यमर्हति–भैदिक इत्यादिकम्।

छेद। भेद। द्रोह। दोह। वर्त्त। कर्ष। सम्प्रयोग। विप्रयोग। प्रेषण। सम्प्रश्न। विप्रकर्ष।। विराग विरङ्गं च।। वैरङ्गिकः। इति छेदादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (छेदादिभ्यः) छेद-आदि प्रातिपदिकों से (नित्यम्) सदा (अर्हति) 'कर सकता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-छेद को जो नित्य कर सकता है **वह-छैदिक**। भेद को जो नित्य कर सकता है वह-भैदिक इत्यादि।*

***सिद्धि-छैदिकः।** छेद+अम्+ठक्। छैद्+इक। छैदिक+सु। छैदिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'छेद' शब्द से नित्यमर्हति-अर्थ में **'आर्हादगोपुच्छ०'** (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**भैदिकः।***

यत्+ठक्–

(३) शीर्षच्छेदाद् यच्च।६४।

प०वि०–शीर्षच्छेदात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, अर्हति, नित्यम्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् शीर्षच्छेदाद् नित्यम् अर्हति यत् ठक् च।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् शीर्षच्छेदात् प्रातिपदिकाद् नित्यमर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् ठक् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**यत्**) शीर्षच्छेदं नित्यमर्हति-शीर्षच्छेद्यः शूरः। (**ठक्**) शैर्षच्छेदिकः शूरः। प्रत्ययसन्नियोगेन शिरसः शीषादेशो निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शीर्षच्छेदात्) शीर्षच्छेद प्रातिपदिक से (नित्यम्) सदा (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**यत्**) शीर्षच्छेद (शिर काटना) को जो नित्य कर सकता है वह-शीर्षच्छेद्य शूर। (**ठक्**) शैर्षच्छेदिक शूर।*

*सिद्धि-(१) **शीर्षच्छेद्यः**। शीर्षच्छेद+अम्+यत्। शीर्षच्छेद्+य। शीर्षच्छेद्य+सु। शीर्षच्छेद्यः।*

*यहा द्वितीया-समर्थ 'शीर्षच्छेद' शब्द से नित्यमर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय-सम्बन्ध से 'शिरस्' के स्थान में शीर्ष-आदेश निपातित है।*

*(२) **शैर्षच्छेदिकः**। यहां द्वितीया-समर्थ 'शीर्षच्छेद' शब्द से नित्यमर्हति अर्थ में '**आर्हादगोपुच्छ०**' (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

यः-

(४) दण्डादिभ्यो यः।६५।

प०वि०-दण्ड-आदिभ्यः ५।३ यः १।१।

स०-दण्ड आदिर्येषां ते दण्डादयः, तेभ्यः-दण्डादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् दण्डादिभ्योऽर्हति यः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो दण्डादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-दण्डमर्हति-दण्ड्यः। मुसलमर्हति-मुसल्यः, इत्यादिकम्।

दण्ड। मुसल। मधुपर्क। कशा। अर्घ। मेधा। मेघ। युग। उदक। वध। गुहा। भाग। इभ। इति दण्डादयः॥

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (दण्डादिभ्यः) दण्ड आदि प्रातिपदिकों से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-दण्ड को जो धारण कर सकता है वह-दण्ड्य। मुसल (मूसळ) को जो धारण कर सकता है **वह-मुसल्य** इत्यादि।*

*सिद्धि-**दण्ड्यः**। दण्ड+अम्+य। दण्ड्+य। दण्ड्य+सु। दण्ड्यः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'दण्ड' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'मुसल' शब्द से-**मुसल्यः**।*

***विशेषः** किन्हीं वैयाकरणों के मत में यह 'दण्डादिभ्यः' इतना ही सूत्र है, वे 'यत्' प्रत्यय की अनुवृत्ति मानते हैं। "दण्डादिभ्यः' इत्येतावत् सूत्रम्, अनन्तरश्च यत् प्रत्ययो विधीयते" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।*

यत्--

(५) छन्दसि च।६६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तति, न यः।

अन्वयः-छन्दसि तत् प्रातिपदिकाच्चार्हति यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकमात्राच्च अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उदक्या वृत्तयः। यूप्यः पलाशः। गर्त्यो देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकमात्र से (च) भी (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**उदक्या वृत्तयः**। उदक (जल) को प्राप्त करने योग्य वृत्तियां। **यूप्यः पलाशः**। वह पलाश (ढाक) जिसका यूप बन सकता है। **गर्त्यो देशः**। वह देश जहां गर्त (गड्ढा) बन सकता है।*

सिद्धि-उदक्याः। उदक+अम्+यत्। उदक्+य। उदक्य+टाप्। उदक्या+जस्। उदक्याः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'उदक' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**यूप्यः**, गर्त्यः।*

घन्+यत्--

(६) पात्राद् घँश्च।६७।

प०वि०-पात्रात् ५।१ घन् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पात्राद् अर्हति घन् यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पात्रशब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे घन् यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(घन्) पात्रमर्हति-पात्रियः शुद्धपुरुषः। **(यत्)** पात्र्यः शुद्धपुरुषः। पात्रशब्द आढकपर्यायोऽपि वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पात्रात्) पात्र प्रातिपदिक से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (घन्) घन् (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(घन्) पात्र को जो भोजन के लिये प्राप्त कर सकता है वह-पात्रिय शुद्ध पुरुष। (यत्) पात्र्य शुद्ध पुरुष। पात्र शब्द आढक (चार सेर) का भी पर्यायवाची भी है।

सिद्धि-(१) पात्रियः। पात्र+अम्+घन्। पात्+इय। पात्रिय+सु। पात्रियः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पात्र' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) पात्र्यः। यहां पूर्वोक्त 'पात्र' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

छः+यत्-

(७) कडङ्करदक्षिणाच्छ च।६८।

प०वि०-कडङ्करदक्षिणात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-कडङ्करश्च दक्षिणा च एतयोः समाहारः कडङ्करदक्षिणम्, तस्मात्-कडङ्करदक्षिणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कडङ्करदक्षिणाभ्याम् अर्हति छो यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां कडङ्करदक्षिणाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(छः) कडङ्करमर्हति-कडङ्करीयो गौः। **(यत्)** कडङ्कर्यो गौः। **(छः)** दक्षिणामर्हति-दक्षिणीयो भिक्षुः। **(यत्)** दक्षिण्यो ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (कडङ्करदक्षिणात्) कडङ्कर, दक्षिणा प्रातिपदिकों से (अर्हति) प्राप्त कर सकता है, अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(छ) कडङ्कर=जवार आदि की बढ़िया कुट्टी (सानी) को जो प्राप्त करने योग्य है वह-कडङ्करीय गौ (बैल)। (यत्) कडङ्कर्य गौ (बैल)। कडङ्कर्य का अपभ्रंश लोक में 'डांगर' शब्द प्रसिद्ध है। (छः) दक्षिणा को जो प्राप्त करने योग्य है वह-दक्षिणीय भिक्षु। (यत्) दक्षिण्य ब्राह्मण (विद्वान्)।

सिद्धि-(१) कडङ्करीयः। कडङ्कर+अम्+छः। कडङ्कर्+ईय। कडङ्करीय+सु। कडङ्करीयः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कडङ्कर' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही 'दक्षिणा' शब्द से-दक्षिणीयः।

(२) कडङ्कर्यः। यहां द्वितीया-समर्थ 'कडङ्कर' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'दक्षिणा' शब्द से-दक्षिण्यः।

विशेषः *'कडङ्करदक्षिणात्' यहां 'अल्पाच्तरम्' (२।२।३४) से द्वन्द्वसमास में 'दक्षिणा' शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये किन्तु लक्षण-व्यभिचार होने से यहां छ और यत् प्रत्यय की यथासंख्यविधि नहीं होती है।*

छः+यत्-

(८) स्थालीबिलात्।६६।

वि०-स्थालीबिलात् ५।१।

स०-स्थाल्या बिलम् इति स्थालीबिलम्, तस्मात्-स्थालीबिलात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अर्हति, यत्, छः, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् स्थालीबिलाद् अर्हति छो यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीया-समर्थात् स्थालीबिलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(छः) स्थालीबिलमर्हन्ति-स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः। **(यत्)** स्थालीबिल्यास्तण्डुलाः। पाकयोग्या इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (स्थालीबिलात्) स्थालीबिल प्रातिपदिक से (अर्हति) प्राप्त कर सकता है, अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(छ)** स्थालीबिल=पतीली के मुख को जो प्राप्त कर सकते हैं वे-स्थालीबिलीय तण्डुल (चावल)। **(यत्)** स्थालीबिल्य तण्डुल (चावल)। भोजन के लिये पकाने योग्य चावल।*

*सिद्धि-(१) **स्थालीबिलीयाः।** स्थालीबिल+अम्+छ। स्थालीबिल्+ईय। स्थालीबिलीय+जस्। स्थालीबिलीयाः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'स्थालीबिल' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

*(२) **स्थालीबिल्याः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'स्थालीबिल' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

घः+खञ्-

(६) यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ।७०।

प०वि०-यज्ञ-ऋत्विग्भ्याम् ५।२ घ-खञौ १।१।

स०-यज्ञश्च ऋत्विक् च तौ यज्ञर्त्विजौ, ताभ्याम्-यज्ञर्त्विग्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। घश्च खञ् च तौ घखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् यज्ञर्त्विग्भ्याम् अर्हति घखञौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां यज्ञर्त्विग्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं घखञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(यज्ञः) यज्ञमर्हति-यज्ञियो ब्राह्मणः (घः)। यज्ञकर्मानुष्ठातुमर्हतीत्यर्थः। **(ऋत्विक्)** ऋत्विजमर्हति-आर्त्विजीनो ब्राह्मणः। ऋत्विग् भवितुमर्हतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (यज्ञर्त्विग्भ्याम्) यज्ञ, ऋत्विक् प्रातिपदिकों से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में यथासंख्य (घखञौ) घ और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यज्ञ)** यज्ञ-कर्म का जो अनुष्ठान कर सकता है वह-यज्ञिय ब्राह्मण=विद्वान् (घ)। **(ऋत्विक्)** जो ऋत्विक् बन सकता है वह-आर्त्विजीन ब्राह्मण=विद्वान् (खञ्)।*

*सिद्धि-(१) **यज्ञियः।** यज्ञ+अम्+घ। यज्ञ्+इय। यज्ञिय+सु। यज्ञियः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'यज्ञ' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

(२) आर्त्विजीनः । ऋत्विज्+अम्+खञ् । आर्त्विज्+ईन । आर्त्विजीन+सु । आर्त्विजीनः ।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'ऋत्विज्' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

***विशेषः** **ऋत्विजों का लक्षण**-अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले, वेदवित्-एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें। जो एक हो तो उसका पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा (नाम होते हैं) (महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि सामान्यप्रकरणम्)।*

।। इति आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम् ।।

वर्तयति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति।७१।

प०वि०-पारायण-तुरायण-चान्द्रायणम् २।१ वर्तयति क्रियापदम्।

स०-पारायणं च तुरायणं च चान्द्रायणं च एतेषां समाहारः पारायणतुरायणचान्द्रायणम्, तत्-पारायणतुरायणचान्द्रायणम्।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पारायणतुरायणचान्द्रायणेभ्यो वर्तयति यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः पारायणतुरायणचान्द्रायणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्तयतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पारायणम्)** पारायणं वर्तयति=अधीते-पारायणिकश्छात्रः। **(तुरायणम्)** तुरायणं वर्तयति=निष्पादयति-तौरायणिको यजमानः। **(चान्द्रायणम्)** चान्द्रायणं वर्तयति=निष्पादयति चान्द्रायणिकस्तपस्वी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पारायणतुरायणचान्द्रायणम्) पारायण, तुरायण, चान्द्रायण प्रातिपदिकों से (वर्तयति) पढ़ता है/सिद्ध करता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(पारायण)** जो आदि से लेकर अन्त तक निरन्तर वेद का अध्ययन करता है वह-पारायणिक छात्र (शिष्य)। **(तुरायण)** जो संवत्सर-साध्य हविर्यज्ञ-विशेष का अनुष्ठान करता है वह-तौरायणिक यजमान। **(चान्द्रायण)** जो चान्द्रायण नामक तपोविशेष का अनुष्ठान करता है वह-चान्द्रायणिक तपस्वी।*

सिद्धि-पारायणिकः। *पारायण+अम्+ठञ्। पारायण्+इक। पारायणिक+सु। पारायणिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पारायण' शब्द से वर्तयति-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**तौरायणिकः, चान्द्रायणिकः।***

विशेषः *(१)* ***पारायण****-वैदिक शाखा-ग्रन्थ या छन्दों को कण्ठस्थ करने की प्रथा थी। कण्ठाग्र करनेवाले विद्वान् श्रोत्रिय कहलाते थे। संहितापाठ (निर्भुज), पादपाठ (प्रतृण्ण), क्रमपाठ आदि कई प्रकार से वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ करना वैदिक 'पारायण' कहलाता था। नियमानुसार पारायण करनेवाला पारायणिक होता था। श्रावणी या भाद्रपद पूर्णिमा को उपाकर्म करने के बाद साढ़े चार महीने तक वेद का पारायण किया जाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८७)।*

(२) ***तुरायण****-तुरायण इष्टि करनेवाला यजमान तौरायणिक कहलाता था। पौर्णमास इष्टि के आधार पर ही फेर-फार करके तुरायण किया जाता था। शांखायन ब्राह्मण में इसे स्वर्गकाम व्यक्ति का यज्ञ कहा है (स एव स्वर्गकामस्य यज्ञः ४।११, आरण्यक पर्व १३।२१)। कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार (२४।७।१-८) तुरायण सत्र वैशाख शुक्ल या चैत्र शुक्ल पंचमी को आरम्भ करके एक वर्ष तक चलता था (संवत्सरं यजते)। इसे द्वादशाह की विकृति मानते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६२)।*

(३) ***चान्द्रायण****-चन्द्रमा की तिथियों पर आधारित एक मास तक चलनेवाला व्रत।*

आपन्नार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) संशयमापन्नः।७२।

प०वि०-संशयम् २।१ आपन्नः १।१।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संशयाद् आपन्नो यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् संशय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आपन्न इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-संशयमापन्नः=प्राप्तः सांशयिकः स्थाणुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (संशयम्) संशय प्रातिपदिक से (आपन्नः) प्राप्त हुआ, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-संशय को आपन्न=प्राप्त हुआ-सांशयिक स्थाणु (ठूंठ), कि यह पुरुष है अथवा स्थाणु है।

सिद्धि-सांशयिकः। *संशय+अम्+ठञ्। सांशय्+इक। सांशयिक+सु। सांशयिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'संशय' शब्द से आपन्न (प्राप्त) अर्थ में ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *(१) गोतम मुनि ने न्यायशास्त्र में संशय का यह लक्षण किया है-* ***'समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः'*** *(१।२३) अर्थात्-समान और अनेक धर्मों की उपपत्ति=उपलब्धि होने से, परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त के ज्ञान से, उपलब्धि और अनुपलब्धि की अव्यवस्था से जो विशेष की अपेक्षावाला अनिश्चयात्मक जो ज्ञान है वह 'संशय' कहाता है।*

(२) ***'यद्यपि द्वे अपि कर्तृकर्मणी संशयमापन्ने, तथापि यद्विषयकः संशयस्तत्रैव प्रत्ययो भवति, न कर्तरि पुरुषेऽनभिधानात्'*** *(इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)। अर्थात् यद्यपि कर्ता और कर्म दोनों ही संशयभाव को प्राप्त हैं एक संशय का कर्ता है और संशय कर्म है किन्तु जो संशय का विषय है उस स्थाणु में ही प्रत्ययविधि होती है, कर्ता पुरुष में नहीं क्योंकि ऐसा कोई प्रयोग दिखाई नहीं देता है।*

गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) योजनं गच्छति।७३।

प०वि०-योजनम् २।१ गच्छति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् योजनाद् गच्छति ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् योजनशब्दात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-योजनं गच्छति-यौजनिको धावनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (योजनम्) योजन प्रातिपदिक से (गच्छति) जाता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो योजन (चार कोस) जाता है वह-यौजनिक धावन (दौड़नेवाला)।

सिद्धि-यौजनिकः। *योजन+अम्+ठञ्। यौजन्+इक। यौजनिक+सु। यौजनिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'योजन' शब्द से गच्छति-अर्थ में ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *एक योजन, दो योजन, पांच योजन, दस योजन इत्यादि भिन्न-भिन्न दूरियों तक दोड़नेवाले धावन उन-उन नामों से प्रसिद्ध होते थे। पाणिनि ने एक योजन दौड़नेवाले धावन को यौजनिक कहा है। कात्यायन ने सौ योजन तक जानेवाले धावन के लिये 'यौजनशतिक' इस विशेष शब्द का उल्लेख किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०२)।*

ष्कन्-

(२) पथः ष्कन्।७४।

प०वि०-पथः ५।१ ष्कन् १।१।

अनु०-तद् गच्छति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पथो गच्छति ष्कन्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे ष्कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पन्थानं गच्छति-पथिकः। स्त्री चेत्-पथिकी।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्) द्वितीया-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (गच्छति) जाता है=तय करता है, अर्थ में (ष्कन्) ष्कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पन्था=मार्ग को जो तय करता है वह-पथिक। यदि स्त्री हो तो-पथिकी।

सिद्धि-पथिकः। *पथिन्+अम्+ष्कन्। पथि+क। पथिक+सु। पथिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' शब्द से गच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्कन्' प्रत्यय है। ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में प्रत्यय के षित् होने से* ***'षिद्गौरादिभ्यश्च'*** *(४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-**पथिकी।** प्रत्यय के नित् होने से* ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।४।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पथिकः।***

णः–

(३) पन्थो ण नित्यम्।७५।

प०वि०–पन्थः १।१ ण १।१ (सु-लुक्) नित्यम् १।१।

अनु०–तत्, गच्छति, पथ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् पथो नित्यं गच्छति णः, पन्थः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् नित्यं गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययः भवति, पथः स्थाने च पन्थ आदेशो भवति।

उदा०–पन्थानं नित्यं गच्छति-पान्थः। पान्थो भिक्षां याचते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (नित्यम्) प्रतिदिन (गच्छति) जाता है, अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है और (पन्थः) पथिन् शब्द के स्थान में 'पन्थ' आदेश होता है।*

उदा०–जो पन्था=मार्ग को नित्य=प्रतिदिन तय करता है वह-पान्थ। पान्थ=नित्य यात्री साधु भिक्षा मांगता है।

***सिद्धि-पान्थः।** पथिन्+अम्+ण। पन्थ+अ। पान्थ्+अ। पान्थ+सु। पान्थः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' शब्द से नित्यं गच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'पथिन्' के स्थान में 'पन्थ' आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। जो नित्य यात्रा नहीं करता वह 'पथिक' कहाता है।

आहृत-गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(४) उत्तरपथेनाहृतं च।७६।

प०वि०–उत्तरपथेन ३।१ आहृतम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–ठञ्, गच्छति इति चानुवर्तते। अत्र 'उत्तरपथेन' इति तृतीया-निर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थाद् उत्तरपथाद् आहृतं गच्छति च यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाद् उत्तरपथ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आहृतं गच्छति चेत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उत्तरपथेनाऽऽहृतम्-औत्तरपथिकं द्रव्यम्। उत्तरपथेन गच्छति-औत्तरपथिको वणिक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (उत्तरपथेन) उत्तरपथ प्रातिपदिक से (आहृतम्) आया हुआ (च) और (गच्छति) जाता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय **होता है।***

उदा०-उत्तरपथ से आया हुआ-औत्तरपथिक द्रव्य (माल)। जो उत्तरपथ से जाता है वह-औत्तरपथिक वणिक् (व्यापारी)।

*सिद्धि-**औत्तरपथिकम्।** उत्तरपथ+टा+ठञ्। औत्तरपथ्+इक। औत्तरपथक+सु। औत्तरपथिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'उत्तरपथ' शब्द से आहृत-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही गच्छति अर्थ में-**औत्तरपथिकः।***

विशेषः *उत्तरपथ-उत्तर भारत में यातायात और व्यापार की महाधमनी गन्धार से पाटलिपुत्र तक चली गई है, अशोक, शेरशाह, अकबर आदि के समय में भी जो बराबर चालू रही उसी महामार्ग (राहे-आजम) का प्राचीन नाम 'उत्तरपथ' था। मेगस्थने आदि यूपानी लेखकों ने इसे "NORTHENROUT" कहा है, जो उत्तर-पथ का ठीक अनुवाद है। पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३६)। वर्तमान-जी.टी. रोड।*

अथ काल-अधिकारः

(१) कालात्।७७।

वि०-कालात् ५।१।

अर्थः-'कालात्' इत्यधिकारोऽयम्, यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामः 'कालात्' इति तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-**'तेन निर्वृत्तम्'** (५।१।७८) इति। मासेन निर्वत्तम्-मासिकम्। आर्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-'कालात्' यह अधिकार सूत्र है। जो इससे आगे कहेंगे वह कालात्=कालविशेषवाची शब्द से जानना चाहिये। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे-**'तेन निर्वृत्तम्'** (५।१।७८)। एक मास में बनाया हुआ-मासिक। अर्धमास (१५ दिन) में बनाया हुआ-आर्धमासिक। संवत्सर (वर्ष) में बनाया हुआ-सांवत्सरिक।*

***सिद्धि**-मासिक आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

निर्वृत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तेन निर्वृत्तम्।७८।

प०वि०–तेन ३।१ निर्वृत्तम् १।१।

अनु०–ठञ्, कालात्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन कालाद् निर्वृत्तं यथाविहितं ठञ्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अह्ना निर्वृत्तम्-आह्निकम्। आर्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्) बनाया गया, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अहः=एक दिन में बनाया-आह्निक द्वार। अर्धमास=१५ दिन में बनाया गया-आर्धमासिक घर। संवत्सर=एक वर्ष में बनाया गया-सांवत्सरिक भवन।

सिद्धि-आह्निकम्। *अहन्+टा+ठञ्। अहन्+इक। आह्निक+सु। आह्निकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'अहन्' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'अल्लोपोऽनः'** (६।४।१३४) से अंग के अकार का लोप होता है किन्तु **'अह्नष्टखोरेव'** (६।४।१४५) के नियम से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।** यहां **'अपवर्गे तृतीया'** (२।३।६) से तृतीया-विभक्ति होती है।*

अधीष्टाद्यर्थचतुष्टयप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तमधीष्टो भृतो भूतो भावी।७९।

प०वि०–तम् २।१ अधीष्टः १।१ भृतः १।१ भूतः १।१ भावी १।१।

अनु०–ठञ्, कालात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तम् कालाद् अधीष्टो भृतो भूतो भावी यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति। अधीष्टः=सत्कृत्य व्यापारितः। भृतः=वेतनेन क्रीतः। भूतः=स्वसत्तया व्याप्तकालः। भावी=स्वसत्तया व्याप्तानागतकालः।

उदा०-(**अधीष्टः**) मासमधीष्टः-मासिकोऽध्यापकः। (**भृतः**) मासं भृतः-मासिकः कर्मकरः। (**भूतः**) मासं भूतः-मासिको व्याधिः। (**भावी**) मासं भावी मासिक उत्सवः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अधीष्टो भृतो भूतो भावी) अधीष्ट=सत्कारपूर्वक व्यवहार किया गया, भृत=वेतन से खरीदा गया, भूत=अपनी सत्ता से व्याप्त किया गया भूतकाल, भावी=अपनी सत्ता से व्याप्त आगामी काल इन चार अर्थों में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अधीष्ट)** एक मास तक सत्कारपूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-मासिक अध्यापक। **(भृत)** एक मास तक वेतन से खरीदा गया-मासिक कर्मकर (नौकर)। **(भूत)** एक मास तक व्याप्त रही-मासिक व्याधि (शारीर रोग)। **(भावी)** एक मास तक व्याप्त रहनेवाला-मासिक उत्सव (जलसा)।*

*सिद्धि-**मासिकः।** मास+अम्+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग के पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (२।३।५) से द्वितीया-विभक्ति होती है।

यत्+खञ्-

(२) मासाद् वयसि यत्खञौ।८०

प०वि०-मासात् ५।१ वयसि ७।१ यत्-खञौ १।२।

स०-यच्च खञ् च तौ यत्खञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ठञ्, कालात्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तम् कालाद् मासाद् अधीष्टो भृतो भूतो भावी यत्खञौ, वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो मासशब्दात् प्रातिपदिकाद् **अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेष्वर्थेषु यत्खञौ प्रत्ययौ**

भवतो वयस्यभिधेये। अत्र वयसोऽर्थबलेनाधीष्टादिष्वर्थेषु भूत इत्येवार्थोऽभि-सम्बध्यते।

उदा०-मासं भूतः-मास्यो बालः (यत्)। मासीनो बालः (खञ्)।

आर्यभाषा अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (मासात्) मास प्रातिपदिक से (अधीष्टो भृतो भूतो भावी) अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में (यत्खञौ) यत् और खञ् प्रत्यय होते हैं (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-जो एक मास का भूत=हो चुका है वह-मास्य बालक (यत्)। मासीन बालक (खञ्)। यहां अधीष्ट आदि चार अर्थों की अनुवृत्ति में वयः=आयु के अर्थबल से केवल भूत-अर्थ का ही सम्बन्ध है, अन्यों का नहीं।

सिद्धि-(१) मास्यः। मास+अम्+यत्। मास्+य। मास्य+सु। मास्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से भूत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) मासीनः। यहां पूर्वोक्त 'मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। आयु अर्थ से अन्यत्र-'मासिकम्' होता है।

यप्-

(३) द्विगोर्यप्।८१।

प०वि०-द्विगोः ५।१ यप् १।१।

अनु०-कालात्, तम्, भूत, मासात्, वयसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालात् तम् द्विगोर्मासाद् भूतो यप् वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो द्विगुसंज्ञकाद् मासान्तात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे यप् प्रत्ययो भवति, वयस्यभिधेये। अत्र वयसोऽर्थबलेनाधीष्टादिष्वर्थेषु भूत इत्येवार्थोऽभिसम्बध्यते।

उदा०-द्वौ मासौ भूतः-द्विमास्यः। त्रिमास्यः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (मासात्) मासान्त प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (यप्) यप् प्रत्यय होता है (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-जो दो मास का हो चुका है वह-द्विमास्य। जो तीन मास का हो चुका है वह-त्रिमास्य।

सिद्धि-द्विमास्यः । द्विमास+अम्+यप् । द्विमास्+य । द्विमास्य+सु । द्विमास्यः ।

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची, द्विगुसंज्ञक, मासान्त 'द्विमास' शब्द से भूत-अर्थ में तथा वयः=आयु अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यप् प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के पित् होने से 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' (६।२।२९) से पूर्वपद-प्रकृति स्वर होता है-द्विमास्यः । ऐसे ही-त्रिमास्यः ।

ण्यत्+यप्+ठञ्–

(४) षण्मासाण्ण्यच्च।८२।

प०वि०-षण्मासात् ५।१ ण्यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तम्, भूतः, यप्, ठञ्, वयसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तम् कालात् षण्मासाद् भूतो ण्यत्, यप्, ठञ् च, वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः षण्मास-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे ण्यत्, यप्, ठञ् च प्रत्यया भवन्ति, वयस्यभिधेये।

उदा०-(**ण्यत्**) षण् मासान् भूतः-षाण्मास्यः । (**यत्**) षण्मास्यः । (**ठक्**) षाण्मासिकः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (षण्मासात्) षण्मास प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (ण्यत्) ण्यत् (यप्) यप् (च) और (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होते हैं (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(**ण्यत्**) जो षण्मास=छः मास का हो चुका है वह-षाण्मास्य। (**यप्**) षण्मास्य। (ठञ्) षाण्मासिक।*

*सिद्धि-(१) **षाण्मास्यः** । षण्मास+शस्+ण्यत् । षाण्मास्+य । षाण्मास्य+सु । षाण्मास्यः ।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **षण्मास्यः** । यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **षाण्मासिकः** । यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय भी अभीष्ट है। पूर्ववत् 'ठ' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

ठन्+ण्यत्–

(५) अवयसि ठँश्च।८३।

प०वि०–अवयसि ७।१ ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–न वय इति अवयः, तस्मिन्–अवयसि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–कालात्, तम्, भूतः, षण्मासात्, ण्यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तम् कालात् षण्मासाद् भूतष्ठन् ण्यच्च, अवयसि।

अर्थः–तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः षण्मास–शब्दात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे ठन् ण्यच्च प्रत्ययो भवति, अवयस्यभिधेये।

उदा०–षण् मासान् भूतः–षण्मासिको रोगः (ठन्)। षाण्मास्यो रोगः (ण्यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तम्) द्वितीया–समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (षण्मासात्) षण्मास प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (ठन्) ठन् (च) और (ण्यत्) ण्यत् प्रत्यय होते हैं (अवयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय न हो।*

उदा०–षण्मास=छः मास जिसको हो चुके हैं वह–षण्मासिक रोग (ठन्)। षाण्मास्य रोग (ण्यत्)।

सिद्धि–(१) षण्मासिकः। *षण्मास+शस्+ठन्। षण्मास्+इक। षण्मासिक+सु। षण्मासिकः।*

यहां द्वितीया–समर्थ, कालविशेषवाची 'षण्मास' शब्द से भूत–अर्थ में तथा अवयः (आयु से भिन्न) अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) षाण्मास्यः। *षण्मास+शस्+ण्यत्। षाण्मास्+य। षाण्मास्य+सु। षाण्मास्यः।*

यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत–अर्थ में तथा अवयः अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से ण्यत् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

निर्वृत्ताद्यर्थपञ्चकम्

खः–

(१) समायाः खः।८४।

प०वि०–समायाः ५।१ खः १।१।

अनु०–कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् कालात् समाया निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी खः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात्, तम् इति च द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः समा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निर्वृत्तम्**) समया निर्वृत्तम्-समीनं भवनम्। (**अधीष्टः**) समामधीष्टः-समीनोऽध्यापकः। (**भृतः**) समां भृतः-समीनः कर्मकरः। (**भूत**) समां भूतः-समीनो व्याधिः। (**भावी**) समां भावी-समीनो यज्ञः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (समायाः) समा प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(निर्वृत्त)** समा=एक वर्ष में बनाया गया-समीन भवन। **(अधीष्ट)** समा=एक वर्ष तक सत्कार पूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-समीन अध्यापक। **(भृत)** समा=एक वर्ष तक वेतन से खरीदा गया-समीन कर्मकर। **(भूत)** समा=एक वर्ष तक व्याप्त रही-समीन व्याधि। **(भावी)** समा=एक वर्ष तक व्याप्त रहनेवाला-समीन यज्ञ।*

*सिद्धि-**समीनः।** समा+टा/अम्+ख। सम्+ईन। समीन+सु। समीनम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ/द्वितीया-समर्थ कालविशेषवाची 'समा' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

विशेषः *यहां निर्वृत्त-अर्थ में तृतीया-समर्थ विभक्ति और अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में द्वितीया-समर्थ विभक्ति होती है। शेष प्रकरण में भी ऐसा ही समझें।*

ख-विकल्पः-

(२) द्विगोर्वा।८५।

प०वि०-द्विगोः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भावी, समायाः, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् कालाद् द्विगोः समाया निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् तम् इति च द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो द्विगुसंज्ञकात् समा-शब्दान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निर्वृत्तम्**) द्वाभ्यां समाभ्यां निर्वृत्तम्-द्विसमीनं भवनम् (खः)। द्वैसमिकम् (ठञ्)। (**अधीष्टः**) द्वे समे अधीष्टः-द्विसमीनोऽध्यापकः (खः)। द्वैसमिकोऽध्यापकः (ठञ्)। (**भृतः**) द्वे समे भृतः-द्विसमीनः कर्मकरः (खः)। द्वैसमिकः कर्मकरः (ठञ्)। (**भूतः**) द्वे समे भूतः-द्विसमीनो व्याधिः (खः)। द्वैसमिको व्याधिः (ठञ्)। (**भावी**) द्वे समे भावी-द्विसमीनो यज्ञः (खः)। द्वैसामिको यज्ञः (ठञ्)। इत्थम्-त्रिसमीनम्। त्रैसमिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (समायाः) समान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(निर्वृत्त)** द्विसम=दो वर्ष में बनाया गया-द्विसमीन भवन (ख)। **द्वैसमिक** भवन (ठञ्)। **(अधीष्ट)** द्विसम=दो वर्ष तक सत्कार पूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-द्विसमीन अध्यापक (ख)। द्वैसमिक अध्यापक (ठञ्)। **(भृत)** द्विसम-दो वर्ष तक वेतन से खरीदा गया-द्विसमीन कर्मकर (ख)। द्वैसमिक कर्मकर (ठञ्)। **(भूत)** द्विसम=दो वर्ष तक व्याप्त रही-द्विसमीन व्याधि (ख)। द्वैसमिक व्याधि (ठञ्)। **(भावी)** द्विसम=दो वर्ष तक होनेवाला-द्विसमीन यज्ञ (ख)। द्वैसमिक यज्ञ (ठञ्)। ऐसे ही-**त्रिसमीन, त्रैसमिक।***

सिद्धि-(१) द्विसमीनम्। द्विसम+टा/अम्+ख। द्विसम्+ईन। द्विसमीन+सु। द्विसमीनम्।

यहां तृतीया/द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, समान्त 'द्विसम' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **द्वैसमिकम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्विसम' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिसमीनम्, त्रैसमिकम्।***

ख-विकल्पः–

(३) रात्र्यहःसंवत्सराच्च।८६।

प०वि०–रात्रि–अहः-संवत्सरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–रात्रिश्च अहश्च संरत्सरश्च एतेषां समाहारो रात्र्यहःसंवत्सरम्, तस्मात्–रात्र्यहःसंवत्सरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, खः, द्विगोः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन, तम्, द्विगोः कालाद् रात्र्यहःसंवत्सराच्च निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः, तम् इति च द्वितीयासमर्थेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः रात्र्यहःसंवत्सरान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(१) **रात्रिः**–द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तम्-द्विरात्रीणं द्वारम् (खः)। द्वैरात्रिकं द्वारम् (ठञ्)। द्वे रात्री अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विरात्रीणः (खः)। द्वैरात्रिकः (ठञ्)।

(२) **अहः**–द्वाभ्यामहभ्या निर्वृत्तम्-द्व्यहीनं द्वारम् (खः)। द्वैयह्निकं द्वारम् (ठञ्)। द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्व्यहीनः (खः)। द्वैयह्निकः।

(३) **संवत्सरः**–द्वाभ्यां संवत्सराभ्यां निर्वृत्तम्-द्विसंवत्सरीणं भवनम् (खः)। द्विसांवत्सरिकं भवनम् (ठञ्)। द्वौ संवत्सरौ अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विसंवत्सरीणः (खः) द्विसांवत्सरिकः (ठञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (रात्र्यहःसंवत्सरात्) रात्र्यन्त, अहरन्त, संवत्सरान्त प्रातिपदिकों से (च) भी (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(१) रात्रि-दो रात में बनाया गया-द्विरात्रीण द्वार (ख)। द्वै रात्रिक द्वार (ठञ्)। दो रात तक अधीष्ट, भृत, भूत, भावी-द्विरात्रीण अध्यापक आदि (ख)। द्वैरात्रिक अध्यापक आदि (ठञ्)।

(२) अहः-दो दिन में बनाया गया-द्व्यहीन द्वार (ख)। द्वैयह्निक द्वार (ठञ्)। दो दिन तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-द्व्यहीन अध्यापक आदि (ख)। द्वैयह्निक अध्यापक आदि (ठञ्)।

(२) संवत्सर-दो संवत्सर (वर्ष) में बनाया गया-द्विसंवत्सरीण भवन (ख)। द्विसांवत्सरिक भवन (ठञ्)। दो संवत्सर तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-द्विसंवत्सरीण अध्यापक आदि (ख)। द्विसांवत्सरिक अध्यापक आदि (ठञ्)।

***सिद्धि-(१) द्विरात्रीणम्।** द्विरात्र+टा/अम्+ख। अम्+ख। द्विरात्र्+ईन्। द्विरात्रीण+सु। द्विरात्रीणम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, रात्र्यन्त 'त्रिरात्र' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**द्व्यहीनम्, द्विसंवत्सरीणम्।***

*(२) **द्वैयह्निकम्।** द्व्ययन्+टा/अम्+ठञ्। द्वैयहन्+इक। द्वैयह्निक+सु। द्वैयह्निकम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची अहरन्त **'द्व्यहन्'** शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से अंग को ऐच्-आगम और वृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**द्विरात्रिकम्।***

*(३) **द्विसांवत्सरिकम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्विसंवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५) से उत्तरपद-वृद्धि होती है।*

*ऐसे ही-**त्रिरात्रीणम्, त्रैरात्रिकम्। त्र्यहीणम्, त्रैयह्निकम्। त्रिसंवत्सरीणम्, त्रिसांवत्सरिकम्।***

ख-विकल्पो लुक् च-

(४) वर्षाल्लुक् च।८७।

प०वि०-वर्षात् ५।१ लुक् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, खः, द्विगोः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् द्विगोः कालाद् वर्षाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खो लुक् च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात्, तम् इति च द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कालविशेषवाचिनो वर्ष-शब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति तयोश्च लुग् भवति।

उदा०-द्वाभ्यां वर्षाभ्यां निर्वृत्तम्-द्विवर्षीणं भवनम् (खः)। द्विवार्षिकं भवनम् (ठञ्)। द्विवर्षं भवनम् (लुक्)। द्विवर्षमधीष्टो द्विवर्षीणोऽध्यापकः (खः)। द्विवार्षिकोऽध्यापकः (ठञ्)। द्विवर्षोऽध्यापकः (लुक्)। द्विवर्षं भृतो द्विवर्षीणः कर्मकरः (खः)। द्विवार्षिकः कर्मकरः (ठञ्)। द्विवर्षः कर्मकरः (लुक्)। द्विवर्षं भूतो द्विवर्षीणो व्याधिः (खः)। द्विवार्षिको व्याधिः (ठञ्)। द्विवर्षो व्याधिः (लुक्)। द्विवर्षं भावी द्विवर्षीणो यज्ञः (खः)। द्वैवर्षिको यज्ञः (ठञ्)। द्विवर्षो यज्ञः (लुक्)। एवम्-त्रिवर्षीणम्, त्रिवार्षिकम्/त्रैवर्षिकम्, त्रिवर्षम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षात्) वर्षान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है और उन दोनों प्रत्ययो का (लुक्) लोप (च) भी होता है।*

*उदा०-दो वर्ष में बनाया गया-द्विवर्षीण भवन (ख)। द्विवार्षिक भवन (ठञ्)। द्विवर्ष भवन (लुक्)। दो वर्ष तक अधीष्ट-द्विवर्षीण अध्यापक (ख)। द्विवार्षिक अध्यापक (ठञ्)। द्विवर्ष अध्यापक (लुक्)। दो वर्ष तक भृत-द्विवर्षीण कर्मकर (ख)। द्विवार्षिक कर्मकर (ठञ्)। द्विवर्ष कर्मकर (लुक्)। दो वर्ष तक रही-द्विवर्षीण व्याधि (ख)। द्विवार्षिक व्याधि (ठञ्)। द्विवर्ष व्याधि (लुक्)। दो वर्ष तक होनेवाला-द्विवर्षीण यज्ञ (ख)। द्वैवर्षिक यज्ञ (ठञ्)। द्विवर्ष यज्ञ (लुक्)। ऐसे ही-**त्रिवर्षीण, त्रिवार्षिक, त्रिवर्ष।***

सिद्धि-(१) द्विवर्षीणम्। *द्विवर्ष+टा/अम्+ख। द्विवर्ष्+ईन। द्विवर्षीण+सु। द्विवर्षीणम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया-विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, वर्षान्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

*(२) **द्विवार्षिकम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। **'वर्षस्याभविष्यति'** (७।३।१६) से उत्तरपद-वृद्धि होती है और भावी (भविष्यत्) अर्थ में तो पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है-**द्विवर्ष भावी-द्वैवर्षिकः।***

*(३) **द्विवर्षम्।** यहां पूर्वोक्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से विहित 'ख' और 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् है।*

*ऐसे ही-**त्रिवर्षीणम्, त्रिवार्षिकम्/त्रैवर्षिकम्, त्रिवर्षम्।***

प्रत्ययस्य नित्यं लुक्–

(५) चित्तवति नित्यम्।८८।

प०वि०–चित्तवति ७।१ नित्यम् १।१। चित्तमस्यास्तीति चित्तवान्, तस्मिन्-चित्तवति। **'तदस्यास्मिन्नस्तीति मतुप्'** इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०–कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, द्विगोः, वर्षाद्, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन, तम् द्विगोः कालाद् वर्षाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी नित्यं लुक्, चित्तवति।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् तमिति च द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य नित्यं लुग् भवति, चित्तवत्यभिधेये।

उदा०–**(निर्वृत्तम्)** द्वाभ्यां वर्षाभ्यां निर्वृत्तम्–द्विवर्षं शिष्यमण्डलम्। **(अधीष्टः)** द्वौ वर्षावधीष्टः–द्विवर्षोऽध्यापकः। **(भृतः)** द्वौ वर्षौ भृतः-द्विवर्षः कर्मकरः। **(भूतः)** द्वौ वर्षौ भूतः-द्विवर्षो दारकः। **(भावी)** द्वौ वर्षौ भावी-द्विवर्षः समाजः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षात्) वर्षान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी इन पांच अर्थों में विहित प्रत्यय का (नित्यम्) सदा (लुक्) लोप होता है (चित्तवति) यदि वहां चेतन अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**(निर्वृत्त)** दो वर्ष में बनाया गया-द्विवर्ष शिष्यमण्डल। **(अधीष्ट)** दो वर्ष तक सत्कारपूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-द्विवर्ष अध्यापक। **(भृत)** दो वर्ष तक*

*वेतन से खरीदा गया-द्विवर्ष कर्मकर। **(भूत)** जो दो वर्ष का हो चुका है वह-द्विवर्ष दारक (बच्चा)। **(भावी)** दो वर्ष तक होनेवाला-द्विवर्ष समाज।*

सिद्धि-द्विवर्षम्। *द्विवर्ष+टा/अम्+ख/ठञ्। द्विवर्ष+०। द्विवर्ष+सु। द्विवर्षम्।*

यहां तृतीया तथा द्वितीया विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, 'द्विवर्ष' प्रातिपदिक से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों तथा चेतन अर्थ अभिधेय में विहित प्रत्यय का इस सूत्र से नित्य लुक् होता है। 'वर्षाल्लुक् च' (५।१।८७) से 'द्विवर्ष' शब्द से ख, ठञ् और उनके लुक् का भी विधान किया गया था। इस सूत्र से चेतन अर्थ अभिधेय में नित्य लुक् का विधान किया गया है।

निपातनम्--

(६) षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते।८६।

प०वि०-षष्टिकाः १।३ षष्टिरात्रेण ३।१ पच्यन्ते क्रियापदम्।

स०-षष्टीनां रात्रीणां समाहारः षष्टिरात्रः, तेन षष्टिरात्रेण (द्विगुतत्पुरुषः)। अत्र **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) इति समाहारे द्विगुतत्पुरुषः। **'अहःसर्वैकदेशसंख्यात्** (५।४।८७) इति समासान्तोऽच् प्रत्ययः। **'रात्राह्नाहाः पुंसि'** (२।४।२९) इति च पुंस्त्वम्।

अनु०-तेन इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन षष्टिरात्रात् पच्यन्ते षष्टिकाः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् षष्टिरात्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् पच्यन्ते इत्यस्मिन्नर्थे 'षष्टिकाः' इति पदं कन्प्रत्ययान्तं निपात्यते, रात्रिशब्दस्य च लोपो भवति। 'षष्टिकाः' इत्यत्र बहुवचनमप्रधानम्।

उदा०-षष्टिरात्रेण पच्यन्ते-षष्टिकाः। एषा धान्यविशेषस्य संज्ञा वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (षष्टिरात्रेण) षष्टिरात्र प्रातिपदिक से (पच्यन्ते) पकाये जाते हैं, अर्थ में (षष्टिकाः) षष्टिक शब्द कन्-प्रत्ययान्त निपातित है, निपातन से रात्रि शब्द का लोप होता है। 'षटिकाः' शब्द में बहुवचन गौण है।*

उदा०-षष्टिरात्र=साठ रात में जो पकते हैं वे-षष्टिक धान्यविशेष (सांठी चावल)। यह साठी चावल नामक धान्य की ही संज्ञा है अन्य साठ रात्रि में पकनेवाले मुद्ग (मूंग) आदि की नहीं।

सिद्धि-षष्टिकाः । षष्टिरात्र+टा+कन् । षष्टि+क । षष्टिक+जस् । षष्टिकाः ।

यहां तृतीया-समर्थ 'षष्टिरात्र' शब्द से पच्यन्ते-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय निपातित है और निपातन से उत्तरपद 'रात्रि' शब्द का लोप होता है।

छः-

(७) वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि।६०।

प०वि०-वत्सरान्तात् ५।१ छः १।१ छन्दसि ७।१।

स०-वत्सरोऽन्ते यस्य तद् वत्सरान्तम्, तस्मात्-वत्सरान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तेन, तम् कालाद् वत्सरान्ताद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा छः।

अर्थः-छन्दसि विषये तेन इति तृतीयासमर्थात् तथा तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो वत्सरान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(निर्वृत्तम्)** इद्वत्सरेण निर्वृत्तम्-इद्वत्सरीयम्। इदावत्सरेण निर्वृत्तम्-इदावत्सरीयम्। **(अधीष्टः०)** इद्वत्सरम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इद्वत्सरीयः। इदावत्सरीयः (का०सं० १३।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वत्सरान्तात्) वत्सर शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(निर्वृत्त) इद्वत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-इद्वत्सरीय भवन। इदावत्सरीय भवन। (अधीष्ट०) इद्वत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-इद्वत्सरीय अध्यापक आदि। इदावत्सरीय अध्यापक आदि।

सिद्धि-इद्वत्सरीयम्। इद्वत्सर+टा/अम्+छ। इद्वत्सर्+ईय। इद्वत्सरीय+सु। इद्वत्सरीयम्।

*यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति-समर्थ, कालविशेषवाची वत्सरान्त 'इद्वत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से छन्दोविषय में 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'***

(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-इदावत्सरीयम्।

विशेषः *वर्ष-अर्थशास्त्र में पांच वर्षों के एक युग का उल्लेख है जिसमें हर एक वर्ष का अलग-अलग नाम होता था। इनमें से इद्वत्सर, इदावत्सर, संवत्सर, परिवत्सर का पाणिनि में भी उल्लेख है (५।१।९१-९२) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १७८)।*

खः+छः-

(८) सम्परिपूर्वात् ख च।६१।

प०वि०-सम्परिपूर्वात् ५।१ ख १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-सम् च परिश्च तौ सम्परी, सम्परी पूर्वौ यस्य तत्-सम्परिपूर्वम्, तस्मात्-सम्परिपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, वत्सरान्तात्, छः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तेन, तम् सम्परिपूर्वाद् वत्सरान्ताद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी खः, छश्च।

अर्थः-छन्दसि विषये तेन इति तृतीयासमर्थात् तथा तम् इति द्वितीयासमर्थात् सम्परिपूर्वाद् वत्सरान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु खः, छश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सम्) संवत्सरेण निर्वृत्तम्-संवत्सरीणम् (खः)। संवत्सरीयम् (छः)। संवत्सरम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा संवत्सरीणः (खः)। संवत्सरीयः (छः)। संवत्सरीणाः (कौ०सं० ४।३।१३।४)। **(परि)** परिवत्सरेण निर्वृत्तम्-परिवत्सरीणम् (खः)। परिवत्सरीयः (छः)। परिवत्सरीणम् (ऋ० ७।१०।३।८)। परिवत्सरीया (का०सं० १३।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (सम्परिपूर्वात्) सम्, परि पूर्वक (वत्सरान्तात्) वत्सर जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी इन पांच अर्थों में (खः) ख (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(सम्) संवत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-संवत्सरीण (ख)। संवत्सरीय (छ)। संवत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-संवत्सरीण अध्यापक आदि (ख)। संवत्सरीय अध्यापक आदि (छ)। (परि) परिवत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-परिवत्सरीण (ख)। परिवत्सरीय (छ)। परिवत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-परिवत्सरीण (ख)। परिवत्सरीय (छ)।

*सिद्धि-(१) **संवत्सरीणम्**। संवत्सर+टा/अम्+ख। संवत्सर्+ईन। संवत्सरीण+सु। संवत्सरीणम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति समर्थ, सम्-पूर्वक, वत्सरान्त 'संवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में छन्दोविषय में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' से णत्व होता है। ऐसे ही-**परिवत्सरीणम्**।*

*(२) **संवत्सरीयम्**। यहां पूर्वोक्त 'संवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में तथा छन्दोविषय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**परिवत्सरीयम्**।*

***विशेषः** अर्थशास्त्र के अनुसार पांच वर्ष का एक युग होता है। उन पांच वर्षों के पृथक्-पृथक् नाम होते हैं जिसमें संवत्सर और परिसंवत्सर नामक दो वर्ष हैं।*

परिजय्याद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्।६२।

प०वि०-तेन ३।१ परिजय्य-लभ्य-कार्य-सुकरम् १।१।

स०-परिजय्यश्च लभ्यश्च कार्यं च सुकरश्च एतेषां समाहारः परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कालात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन कालात् प्रातिपदिकात् परिजय्यलभ्यकार्यसुकरेषु यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् परिजय्यलभ्यकार्यसुकरेष्वर्थेषु यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(परिजय्यः) मासेन परिजय्यः=शक्यते जेतुम्-मासिको व्याधिः। सांवत्सरिको व्याधिः। **(लभ्यः)** मासेन लभ्यः-मासिकः पटः।

(कार्यम्) मासेन कार्यम्-मासिकं चान्द्रायणव्रतम्। **(सुकरः)** मासेन सुकरः-मासिकः प्रासादः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्) परिजय्य, लभ्य, कार्य, सुकर अर्थों में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(परिजय्य)** एक मास में जीतने योग्य=चिकित्स्य-मासिक व्याधि (रोग)। संवत्सर=वर्ष में जीतने योग्य-सांवत्सरिक व्याधि। **(लभ्य)** एक मास में प्राप्य-मासिक पट (कपड़ा)। **(कार्य)** एक मास में करने योग्य-मासिक चान्द्रायणव्रत। चन्द्रमा की तिथियों पर आधारित एक व्रतविशेष। **(सुकर)** एक मास में सुखपूर्वक बनाया जानेवाला-मासिक प्रासाद (महल)।*

*सिद्धि-**मासिकम्।** मास+टा+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से परिजय्य-आदि चार अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तदस्य ब्रह्मचर्यम्।६३।

प०वि०-तत् २।१ (१।१) अस्य ६।१ ब्रह्मचर्यम् २।१ (१।१)।

अनु०-कालात्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कालाद् अस्य यथाविहितं ठञ् ब्रह्मचर्यम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यद् द्वितीयासमर्थं ब्रह्मचर्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासं (यावत्) ब्रह्मचर्यमस्य-मासिको ब्रह्मचारी। अर्धमासिको ब्रह्मचारी। सांवत्सरिको ब्रह्मचारी। आयुष्को ब्रह्मचारी।

द्वितीयोऽर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यदस्येति षष्ठीनिर्दिष्टं ब्रह्मचर्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासोऽस्य ब्रह्मचर्यस्य-मासिकं ब्रह्मचर्यम्। आर्धमासिकं ब्रह्मचर्यम्। सांवत्सरिकं ब्रह्मचर्यम्। आयुष्कं ब्रह्मचर्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (ब्रह्मचर्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह ब्रह्मचर्य हो।*

उदा०-एक मास तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-मासिक ब्रह्मचारी। अर्धमास तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-अर्धमासिक ब्रह्मचारी। संवत्सर तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-सांवत्सरिक ब्रह्मचारी। आयु (सम्पूर्ण जीवन काल)। ब्रह्मचर्य है इसका यह-आयुष्क ब्रह्मचारी।

द्वितीय अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (ब्रह्मचर्यम्) जो अस्य=(षष्ठी-विभक्ति) अर्थ है यदि वह ब्रह्मचर्य हो।

उदा०-एक मास है इस ब्रह्मचर्य का यह-मासिक ब्रह्मचर्य। अर्धमास है इस ब्रह्मचर्य का यह आर्धमासिक ब्रह्मचर्य। संवत्सर है इस ब्रह्मचर्य का यह-सांवत्सरिक ब्रह्मचर्य। आयु (सम्पूर्ण जीवन-काल) है इस ब्रह्मचर्य का यह-आयुष्क ब्रह्मचर्य।

*सिद्धि-(१) **मासिक।** मास+अम्/सु+ठञ्। मास+इक। मासिक+सु। मासिकः।*

*यहां द्वितीया/प्रथमा विभक्ति-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा ब्रह्मचर्य अभिधेय में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्धमासिकः, सांवत्सरिकः।***

***आयुष्कः।** यहां द्वितीया-समर्थ/प्रथमा-समर्थ, जीवन-कालवाची 'आयुष्' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।*

विशेषः *इस सूत्र के यहां दो अर्थ दर्शाये गये हैं। पाणिनीय शिष्य-परम्परा में दोनों ही अर्थ प्रामाणिक माने जाते हैं।*

दक्षिणार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः।६४।

प०वि०-तस्य ६।१ दक्षिणा १।१ यज्ञाख्येभ्यः ५।३।

स०-यज्ञमाचक्षते इति यज्ञाख्याः, तेभ्यः-यज्ञाख्येभ्यः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-ठञ् इत्यनुवर्तते, कालात् इति चार्थवशान्नानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य यज्ञाख्येभ्यश्च दक्षिणा यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो यज्ञाख्येभ्यः=यज्ञविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दक्षिणा इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्निष्टोमस्य दक्षिणा-आग्निष्टोमिकी। वाजपेयिकी। राजसूयिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (यज्ञाख्येभ्यः) यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से (च) भी (दक्षिणा) अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्निष्टोम यज्ञ की दक्षिणा-आग्निष्टोमिकी। वाजपेय यज्ञ की दक्षिणा-वाजपेयिकी। राजसूय यज्ञ की दक्षिणा-राजसूयिकी।

सिद्धि-आग्निष्टोमिकी। *अग्निष्टोम+ङस्+ठञ्। आग्निष्टोम+इक। आग्निष्टोमिक+ङीप्। आग्निष्टोमिकी+सु। आग्निष्टोमिकी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, यज्ञविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वायपेयिकी। राजसूयिकी।***

विशेषः *यहां '**यज्ञाख्येभ्यः**' पद में आख्य-शब्द के ग्रहण करने से इस काल के अधिकार में अकालवाची यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से भी प्रत्ययविधि होती है।*

दीयते/कार्यम्-अर्थप्रत्ययविधिः

भववत्-प्रत्ययाः—

(१) तत्र च दीयते कार्यं भववत्।६५।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) च अव्ययपदम्, दीयते क्रियापदम् कार्यम् १।१ भववत् अव्ययपदम्। भवे इव भववत्। '**तत्र तस्येव**' (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-कालात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्र कालात् दीयते कार्यं च भववत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते, कार्यं च इत्येतयोरर्थयोर्भववत् प्रत्यया **भवन्ति**।

उदा०-मासे दीयते मासिकम्। मासे कार्यं मासिकम्। सांवत्सरिकम्। प्रावृषेण्यम् इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (दीयते, कार्यम्) दीयते=दिया जाता है, कार्यम्=करने योग्य अर्थों में (च) भी (भववत्) भव-अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं, अर्थात् 'तत्र भवः' अर्थ में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से दीयते और कार्यम् अर्थों में भी होते हैं।*

उदा०-एक मास में जो दिया जाता है वह-मासिक। एक मास में जो करने योग्य है वह-मासिक। संवत्सर में जो दिया जाता है/करने योग्य है वह-सांवत्सरिक। प्रावृट् (वर्षा ऋतु) में जो दिया जाता है/करने योग्य है वह-प्रावृषेण्यः।

सिद्धि-(१) ***मासिकम्।*** *मास+ङि+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से भववत् प्रत्ययों का विधान किया गया है अतः यहां ***'कालाट्ठञ्'*** *(४।३।११) से भववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सांवत्सरिकम्।***

(२) ***प्रावृषेण्यम्।*** *यहां 'प्रावृट्' शब्द से* ***'प्रावृष एण्यः'*** *(४।३।१७) से भववत् 'एण्य' प्रत्यय है।*

विशेषः *भव-अर्थक प्रत्ययों का विशेष प्रवचन चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद में देख लेवें।*

।। इति कालाधिकारः ।।

अण्-

(२) व्युष्टादिभ्योऽण्।६६।

प०वि०-व्युटादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-व्युष्ट आदिर्येषां ते व्युष्टादयः, तेभ्यः-व्युष्टादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, च, दीयते, कार्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र व्युष्टादिभ्यो दीयते कार्यं चाऽण्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यो व्युष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यं चेत्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(दीयते)** व्युष्टे दीयते-वैयुष्टम्। नित्यं दीयते-नैत्यम्। **(कार्यम्)** व्युष्टे कार्यम्-**वैयुष्टम्**। नित्ये कार्यम्-नैत्यम्।

व्युष्ट। नित्य। निष्क्रमण। प्रवेशन। तीर्थ। सम्भ्रम। आस्तरण। संग्राम। संघात। अग्निपद। पीलूमूल। प्रवास। उपसंक्रमण। इति व्युष्टादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्युष्टादिभ्यः) व्युष्ट आदि प्रातिपदिकों से (दीयते/कार्यम्) दिया जाता है/करने योग्य अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय हेता है।*

*उदा०-**(दीयते)** व्युष्ट=वर्ष के प्रथम दिन जो दिया जाता है वह-वैयुष्ट। नित्य सब काल में जो दान दिया जाता है वह-नैत्य। **(कार्य)** व्युष्ट=वर्ष के प्रथम दिन जो करने योग्य है वह-वैयुष्ट। नित्य=सब काल में जो करने योग्य है वह-नैत्य (परोपकार)।*

सिद्धि-(१) वैयुष्टम्। *व्युष्ट+ङि+अण्। व्युष्ट्+अ। वैयुष्ट्+अ। वैयुष्ट+सु। वैयुष्टम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'व्युष्ट' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थों में इस सूत्र 'अण्' प्रत्यय है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से 'ऐच्' आगम और अंग को वृद्धि का प्रतिषेध होता है।*

(२) नैत्यम्। *यहां सप्तमी-समर्थ 'नित्य' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *व्युष्ट-व्युष्ट का सामान्य अर्थ रात्रि का चौथा प्रहर था (वाराह श्रौतसूत्र) किन्तु आर्थिक वर्ष के प्रथम दिन का पारिभाषिक नाम 'व्युष्ट' था जो कि आषाढी पौर्णमासी के अगले दिन होता था (अर्थशास्त्र २।६)। पाणिनि में भी व्युष्ट का यही विशेष अर्थ है। इस दिन के कार्य और देय भुगतानों पर कुछ प्रकाश अर्थशास्त्र से पड़ता है। वहां कहा है कि जितने गणनाध्यक्ष हैं वे आषाढी पूर्णिमा को अपने मोहरबन्द हिसाब-किताब के कागज और रोकड़ लेकर राजधानी में आयें। वहां उन्हें आय, व्यय, रोकड़ का जोड़ बताना पड़ता था और तब उनसे रोकड़ जमा कराई जाती थी। **'तत्र च दीयते'** में जिनकी ओर लक्ष्य है वे ही 'वैयुष्ट' भुगतान ज्ञात होते हैं। राजकीय गणना-विभाग के केन्द्रीय कार्यालय में हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल बारीकी से की जाती थी। यही वे 'वैयुष्ट' कार्य थे जिनका **'तत्र च दीयते कार्यम्'** में संकेत है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १७९)।*

णः+यत्-

(३) तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ।६७।

प०वि०-तेन ३।१ यथाकथाच-हस्ताभ्याम् ५।२ ण-यतौ १।२।

स०-यथाकथाश्च हस्तश्च तौ यथाकथाचहस्तौ, ताभ्याम्-यथाकथाच-हस्ताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-च, दीयते, कार्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां दीयते, कार्यं च णयतौ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां यथाकथाच-हस्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां दीयते कार्यं चेत्येतयोरर्थयोर्यथासंख्यं णयतौ प्रत्ययौ भवतः।

'यथाकथाच' (यथा, कथा, च) इत्यव्ययसमुदायोऽनादरेऽर्थे वर्तते, तेन तृतीयासमर्थविभक्तिरत्र न सम्भवति, तृतीयार्थमात्रं चात्र गम्यते। **'यथाकथाचहस्ताभ्याम्'** इत्यत्र **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) इत्यनेन हस्तशब्दस्य पूर्वनिपाताभावाल्लक्षणव्यभिचारेण यथासंख्यं प्रत्ययार्थसम्बन्धो न भवति।

उदा०-**(यथा, कथा, च)** यथा कथा च दीयते-याथाकथाचं दानम्। **(कार्यम्)** यथाकथा च कार्यम्-याथाकथाचं कर्म (णः)। **(हस्तः)** हस्तेन दीयते-हस्त्यं दानम्। हस्तेन कार्यम्-हस्त्यं कर्म (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (यथाकथाच-हस्ताभ्याम्) यथाकथाच और हस्त प्रतिपदिकों से (दीयते, कार्यम्) दिया जाता है/करने योग्य अर्थों में (णयतौ) यथासंख्य ण और यत् प्रत्यय होते हैं।*

*यथाकथाच (यथा, कथा, च) यह एक अव्यय-समूह अनादर अर्थ में है अतः यहां तृतीया-समर्थ विभक्ति सम्भव नहीं है किन्तु तृतीया-अर्थमात्र की यहां प्रतीति होती है। सूत्रपाठ में **'यथाकथाचहस्ताभ्याम्'** इस पद में **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) से प्राप्त 'हस्त' शब्द का पूर्वनिपात न करने से लक्षण-व्यभिचार है अतः यहां दीयते और कार्यम् प्रत्ययार्थों का प्रातिपदिकों से यथासंख्य सम्बन्ध नहीं होता है।*

*उदा०-**(यथाकथाच)** जैसे-तैसे अनादर से जो दिया जाता है वह-याथाकथाच दान। यथाकथाच=जैसे तैसे अनादर से जो किया जाये वह-याथाकथाच कर्म (ण)। **(हस्त)** अपने हाथ से जो दिया जाता है वह-हस्त्य दान। अपने हाथ से जो करने योग्य है वह-हस्त्य कर्म (यत्)।*

*सिद्धि-**याथाकथाचम्।** यथाकथाच+टा+अण्। याथाकथाच्+अ। याथाकथाच+सु। याथाकथाचम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ अर्थ के प्रत्यायक **'यथाकथाच'** इस अवयवसमूह (वाक्य) से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **हस्त्यम्।** हस्त+टा+यत्। हस्त्+य। हस्त्य+सु। हस्त्यम्।*

यहां तृतीया-समर्थ 'हस्त' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

***विशेषः** यहां प्रातिपदिक से प्रत्ययविधि के प्रकरण में 'यथाकथाच' (यथा, कथा, च) इस अनादरवाची अव्यय-समुदाय रूप वाक्य से भी विधान-सामर्थ्य से प्रत्ययविधि होती है।*

सम्पादि-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) सम्पादिनि।६८।

वि०–सम्पादिनि ७।१। कृद्वृत्तिः–अवश्यं सम्पद्यते इति सम्पादी, तस्मिन्–सम्पादिनि। अत्र '**आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः**' (३।३।१७०) इति णिनिः प्रत्ययः।

अनु०–तेन, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन प्रातिपदिकात् सम्पादिनि ठञ्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्पादिनि इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कर्णविष्टकाभ्यां सम्पादि मुखम्–कार्णविष्टकिकं मुखम्। वस्त्रयुगेण सम्पादि–वास्त्रयुगिकं शरीरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्पादिनि) सम्पन्न (गुणोत्कर्ष) करनेवाला अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–कर्णविष्टक=कान की दो बाळियों से सम्पन्न होनेवाला–कार्णविष्टिक मुख। वस्त्रयुग=धोती-कुर्ता से सम्पन्न होनेवाला–वास्त्रयुगिक शरीर। कर्णविष्टक से मुख और वस्त्रयुग से शरीर विशेषरूप से सुशोभित होता है।

***सिद्धि–कार्णविष्टिकम्।** कर्णविष्ट+भ्याम्+ठञ्। कार्णविष्टक्+इक। कार्णविष्टकिक+सु। कार्णविष्टिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्णविष्टक' शब्द से सम्पादी-अर्थ में इस सूत्र से '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वास्त्रयुगिकम्।***

यत्–

(२) कर्मवेषाद् यत्।६६।

प०वि०–कर्म–वेषात् ५।१ यत् १।१।

स०–कर्म च वेषश्च एतयोः समाहारः कर्मवेषम्, कर्मवेषात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, सम्पादिनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन कर्मवेषात् सम्पादिनि यत्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मवेषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां सम्पादिनि इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**कर्म**) कर्मणा सम्पद्यते–कर्मण्यः पुरुषः। (**वेषः**) वेषेण सम्पद्यते–वेष्यो नटः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तेन) तृतीया–समर्थ (कर्मवेषात्) कर्म, वेष प्रातिपदिकों से (सम्पादिनि) सम्पन्न=उत्कृष्ट बननेवाला अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(कर्म)** शुभ कर्म से सम्पादी=उत्कृष्ट बननेवाला–कर्मण्य पुरुष। **(वेष)** सुन्दर वेष से सम्पादी=बढ़िया बननेवाला–वेष्य नट।*

सिद्धि–कर्मण्यः। *कर्मन्+टा+य। कर्मन्+य। कर्मण्य+सु। कर्मण्यः।*

*यहां तृतीया–समर्थ 'कर्मन्' शब्द से सम्पादी–अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि–भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'वेष' शब्द से–**वेष्यः।***

प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययस्य (ठञ्)–

(१) तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः।१००।

प०वि०–तस्मै ४।१ प्रभवति क्रियापदम्, सन्तापादिभ्यः ५।३।

स०–सन्ताप आदिर्येषां ते सन्तापादयः, तेभ्यः–सन्तापादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

प्रभवति=समर्थो भवति। 'तस्मै' इत्यत्र **'नमःस्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च'** (२।३।१६) इति अलमर्थे चतुर्थीविभक्तिर्वर्तते।

अनु०-ठञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै सन्तापादिभ्यः प्रभवति ठञ्

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्यः सन्तापादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सन्तापाय प्रभवति-सान्तापिकः। सान्नाहिकः इत्यादिकम्।

सन्ताप। सन्नाह। संग्राम। संयोग। संपराय। संपेष। निष्पेष। निसर्ग। असर्ग। उपपर्ग। उपवास। प्रवास। संघात। संमोदन। सक्तु।। मांसौदनाद् विगृहीतादपि। इति सन्तापादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (सन्तापादिभ्यः) सन्ताप आदि प्रातिपदिकों से (प्रभवति) समर्थ होता है=तैयार होता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सन्ताप=तप करने के लिये जो तैयार होता है वह-सान्तापिक। सन्नाह=कवच और शस्त्र-अस्त्र धारण करने के लिये जो तैयार होता है वह-सान्नाहिक इत्यादि।

__सिद्धि-सान्तापिकः।__ सन्ताप+ङे+ठञ्। सान्ताप्+इक। सान्तापिकः।

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'सन्ताप' शब्द से प्रभवति-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित ठञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सान्नाहिकः** इत्यादि।*

यत्+ठञ्-

(२) योगाद् यच्च।१०१।

प०वि०-योगात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ठञ्, तस्मै, प्रभवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै योगात् प्रभवति यत् ठञ् च।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् योग-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** योगाय प्रभवति योग्यः। **(ठञ्)** योगाय प्रभवति-यौगिकः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (योगात्) योग प्रातिपदिक से (प्रभवति) तैयार होता है, अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(यत्) योग=समाधि लगाने के लिये जो तैयार होता है वह-योग्य। (ठञ्) योग के लिये जो तैयार होता है वह-यौगिक।

*सिद्धि-(१) **योग्यः**। योग+ङे+यत्। योग्+य। योग्य+सु। योग्यः।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'योग' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **यौगिकः**। यहां चतुर्थी-समर्थ 'योग' शब्द से प्रभवति अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित ठञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

*__विशेषः__ महर्षि पतञ्जलि ने योगशास्त्र में योग का यह लक्षण किया है- **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (१।२) अर्थात् चित्त की प्रमाण आदि वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। योग के परिज्ञान के लिये योगशास्त्र का अध्ययन करें।*

उकञ्-

(३) कर्मण उकञ्।१०२।

प०वि०-कर्मणः ५।१ उकञ् १।१।

अनु०-तस्मै, प्रभवति इति चानुवर्त्तते।

अन्वयः-तस्मै कर्मणः प्रभवति उकञ्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थात् कर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे उकञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्मणे प्रभवति-कार्मुकं धनुः। धनुषोऽन्यत्रार्थे प्रत्ययो न भवति, अनभिधानात्=प्रयोगादर्शनात्।

__आर्यभाषाः__ अर्थः-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (कर्मणः) कर्मन् प्रातिपदिक से (प्रभवति) तैयार रहता है, अर्थ में (उकञ्) उकञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-कर्म=शत्रुसंहार रूप कर्म के लिये जो तैयार रहता है वह-कार्मुक धनुष। धनुष से अन्यत्र अर्थ में यह प्रत्यय अनभिधान (प्रयोग-अदर्शन) वश नहीं होता है।

*सिद्धि-**कार्मुकम्**। कर्मन्+ङे+उकञ्। कार्म्+उक। कार्मुक+सु। कार्मुकम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'कर्मन्' शब्द से प्रभवति-अर्थ में तथा धनुः-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से उकञ् प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) समयस्तदस्य प्राप्तम्।१०३।

प०वि०–समयः १।१ तत् १।१ अस्य ६।१ प्राप्तम् १।१।

अनु०–ठञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत् समयाद् अस्य यथाविहितं ठञ्, प्राप्तम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् समय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०–समयः प्राप्तोऽस्य-सामयिकं कार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ:-(तत्) प्रथमा-समर्थ (समयः) समय प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आगया हो।*

उदा०-समय प्राप्त=आ गया है इसका यह-सामयिक कार्य।

सिद्धि-सामयिकम्। *समय+सु+ठञ्। सामय्+इक। सामयिक+सु। सामयिकम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'समय' शब्द से प्राप्त अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

अण्–

(२) ऋतोरण्।१०४।

प०वि०–ऋतोः ५।१ अण् १।१

अनु०–तत्, अस्य, प्राप्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् ऋतोरस्याऽण्, प्राप्तम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऋतु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०–ऋतुः प्राप्तोऽस्य-आर्त्तवं पुष्पम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऋतोः) ऋतु प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आगया हो।*

उदा०-ऋतु जिसका प्राप्त=आ गया है वह-आर्तव पुष्प (फूल)।

सिद्धि-आर्तवम्। *ऋतु+सु+अण्। आर्तो+अ। आर्तव+सु। आर्तवम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'ऋतु' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्राप्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

घस्–

(३) छन्दसि घस्।१०५।

प०वि०-छन्दसि ७।१ घस् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, प्राप्तम्, ऋतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तद् ऋतोरस्य धस् प्राप्तम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऋतु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे घस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-ऋतुः प्राप्तोऽस्य-ऋत्वियः। **'अयं ते योनिर्ऋत्वियः'** (ऋ० ३।२९।१०)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्) प्रथमा-समर्थ (ऋतोः) ऋतु प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (घस्) घस् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आ गया हो।*

*उदा०-ऋतु इसका प्राप्त=आ गया है यह-ऋत्विय। **'अयं ते योनिर्ऋत्वियः'** (ऋ० ३।२९।१०)।*

सिद्धि-ऋत्वियः। *ऋतु+सु+घस्। ऋतो+इय। ऋतव्+इय। ऋत्विय+सु। ऋत्वियः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'ऋतु' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा छन्दोविषय में इस सूत्र से 'घस्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। 'घस्' प्रत्यय के सित् होने से **'सिति च'** (१।४।१६) से ऋतु शब्द की पद संज्ञा होती है। पदसंज्ञा होने से भसंज्ञा निरस्त हो जाती है अतः यहां **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६)*

से पदसंज्ञक अंग को गुण नहीं होता है अपितु 'इको यणचि' (६।१।७६) से यण् आदेश हो जाता है।

यत्—

(४) कालाद् यत्।१०६।

प०वि०-कालात् ५।१ यत् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, प्राप्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कालाद् अस्य यत् प्राप्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-कालः प्राप्तोऽस्य-काल्यस्तापः। काल्यं शीतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कालात्) काल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आ गया हो।*

उदा०-काल=समय इसका प्राप्त=आ गया है यह-काल्य ताप (गर्मी)। काल्य शीत (ठण्ड)।

सिद्धि-काल्यः। काल+सु+यत्। काल्+य। काल्य+सु। काल्यः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'काल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्राप्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

ठञ्—

(५) प्रकृष्टे ठञ्।१०७।

प०वि०-प्रकृष्टे ७।१ ठञ् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रकृष्टे कालाद् अस्य ठञ्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रकृष्टेऽर्थे वर्तमानात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रकृष्टः=दीर्घः कालोऽस्य-कालिकम् ऋणम्। कालिकं वैरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्रकृष्टे) दीर्घ अर्थ में विद्यमान (कालात्) काल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रकृष्ट=दीर्घ है काल इसका यह-कालिक ऋण (कर्जा)। प्रकृष्ट=दीर्घ है काल इसका यह-कालिक वैर (दुश्मनी)।

सिद्धि-कालिकम्। *काल+सु+ठञ्। काल्+इक। कालिक+सु। कालिकम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रकृष्ट अर्थ में विद्यमान, 'काल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*'**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) इस ठञ्-प्रत्यय के अधिकार में पुनः 'ठञ्' प्रत्यय का ग्रहण विस्पष्टता के लिये है।*

यथाविहितं (ठञ्)-

(६) प्रयोजनम्।१०८।

प०वि०-प्रयोजनम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं ठञ् प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य-ऐन्द्रमहिकम्। गाङ्गमहिकम्। बौधरात्रिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन=उद्देश्य हो।*

उदा०-इन्द्रमह=इन्द्र-उत्सव प्रयोजन है इसका यह-ऐन्द्रमहिक। गङ्गामह= गङ्गा-उत्सव (गङ्गा-स्नान) है इसका यह-गाङ्गमहिक। बोधरात्रि नामक उत्सव है प्रयोजन इसका-बौधरात्रिक।

सिद्धि-ऐन्द्रमहिकम्। *इन्द्रमह+सु+ठञ्। ऐन्द्रमह्+इक। ऐन्द्रमहिक+सु। ऐन्द्रमहिकम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'इन्द्रमह' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गाङ्गमहिकम्, बौधरात्रिकम्।***

अण्—

(७) विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः।१०६।

प०वि०-विशाखा-आषाढात् ५।१ अण् १।१ मन्थ-दण्डयोः ७।२।

स०-विशाखा च आषाढश्च एतयोः समाहारो विशाखाषाढम्, तस्मात्-विशाखाषाढात् (समाहारद्वन्द्वः)। मन्थश्च दण्डश्च तौ मन्थदण्डौ, तयोः-मन्थदण्डयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मन्थदण्डयोर्विशाखाषाढाभ्याम् अस्याऽण्, प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां यथासंख्यं मन्थदण्डयोरर्थयो-र्वर्तमानाभ्यां विशाखाषाढाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-**(विशाखा)** विशाखा प्रयोजनमस्य-वैशाखो मन्थः। **(आषाढः)** आषाढः प्रयोजनमस्य-आषाढो दण्डः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मन्थदण्डयोः) यथासंख्य मन्थ और दण्ड अर्थ में विद्यमान (विशाखाषाढात्) विशाखा, आषाढ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

*उदा०-**(विशाखा)** विशाखा है प्रयोजन इसका यह-वैशाख मन्थ=मथानी (रई)। **(आषाढ)** आषाढ है प्रयोजन इसका यह-आषाढ दण्ड (ब्रह्मचारी का पलाश आदि का डंडा)।*

*सिद्धि-**वैशाखः।** विशाखा+सु+अण्। वैशाख्+अ। वैशाख+सु। वैशाखः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मन्थ-अर्थ में विद्यमान 'विशाखा' शब्द से तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही 'आषाढ' शब्द से दण्ड अर्थ में-**आषाढः।***

छः-

(८) अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ।११०।

प०वि०-अनुप्रवचन-आदिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०-अनुप्रवचनम् आदिर्येषां तेऽनुप्रवचनादयः, तेभ्यः-अनुप्रवचनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुप्रवचनादिभ्योऽस्य छः, प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽनुप्रवचनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य-अनुप्रवचनीयो होमः। उत्थापनीयम् आन्दोलनम्, इत्यादिकम्।

अनुप्रवचन। उत्थापन। प्रवेशन। अनुप्रवेशन। उपस्थापन। संवेशन। अनुवेशन। अनुवचन। अनुवादन। अनुवासन। आरम्भण। आरोहण। प्ररोहण। अन्वारोहण। इति अनुप्रवचनादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अनुप्रवचनादिभ्यः) अनुप्रवचन-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

उदा०-अनुप्रवचन है प्रयोजन इसका यह-अनुप्रवचनीय होम। उत्थापन=समाज को उठाना है प्रयोजन इसका-उत्थापनीय आन्दोलन, इत्यादि।

*सिद्धि-**अनुप्रवचनीयः**। अनुप्रवचन+सु+छ। अनुप्रवचन्+ईय। अनुप्रवचनीय+सु। अनुप्रवचनीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अनुप्रवचन' प्रातिपदिक से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उत्थापनीयम्** आदि।*

विशेषः *उपनयन, गोदानव्रत, महानाम्नीव्रत आदि प्रत्येक व्रत की समाप्ति पर 'अनुप्रवचनीय' होम किया जाता था (आश्व० १।२२। प्रवचनात् पश्चात् क्रियते इत्यनुप्रवचनीयहोमः) (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८७)।*

छ:—

(६) समापनात् सपूर्वपदात्।१११।

प०वि०-समापनात् ५।१ सपूर्वपदात् ५।१।

स०-सह पूर्वपदेन इति सपूर्वपद:, तस्मात्-सपूर्वपदात् (बहुव्रीहि:)। **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (४।२।२८) इति बहुव्रीहि:, **'वोपसर्जनस्य'** (६।३।१२) इति सहस्य स्थाने स-आदेश:।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम्, छ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत् सपूर्वपदात् समापनाद् अस्य छ:, प्रयोजनम्।

अर्थ:-तद् इति प्रथमासमर्थात् सपूर्वपदात्=विद्यमानपूर्वपदात् समापन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे छ: प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-छन्द:समापनं प्रयोजनमस्य-छन्द:समापनीयम् अग्निहोत्रम्। व्याकरणसमापनीयम् अग्निहोत्रम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सपूर्वपदात्) पूर्वपद से युक्त (समापन) समापन प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छ:) छ प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन है।*

उदा०-छन्द:समापन=वेद समाप्ति है प्रयोजन इसका यह-छन्द:समापनीय अग्निहोत्र (यज्ञ)। वेदाध्ययन की समाप्ति पर किया जानेवाला होम। व्याकरण-समापन=व्याकरणशास्त्र की समाप्ति है प्रयोजन इसका यह-व्याकरणसमापनीय अग्निहोत्र। व्याकरणशास्त्र की समाप्ति पर किया जानेवाला होम।

*सिद्धि-**छन्द:समापनीयम्।** छन्द:समापन+सु+छ। छन्द:समापन्+ईय। छन्द:समापनीय+सु। छन्द:समापनीयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'छन्द:समापन' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश तथा **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**व्याकरणसमापनीयम्।***

निपातनम् (ठञ्)–

(१०) ऐकागारिकट् चौरे।११२।

प०वि०-ऐकागारिकट् १।१ चौरे ७।१।

अनु०-ठञ्, तत्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ऐकागारिकड् अस्य ठञ्, प्रयोजनम्, चौरे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थम् 'ऐकागारिकट्' इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ्-प्रत्ययान्तं-निपात्यते, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत्, चौरेऽभिधेये।

उदा०-एकागारम् (असहायगृहम्) प्रयोजमस्य-ऐकागारिकश्चौरः। स्त्री चेत्-ऐकारिकी चौरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऐकागारिकट्) ऐकागारिकट् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में निपातित है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो और (चौरे) यदि वहां चौर अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-एकागार (असहाय-घर) प्रयोजन है इसका यह-ऐकागारिक चौर। यदि स्त्री हो तो-ऐकागारिकी चौरी (चौर स्त्री)।

सिद्धि-ऐकागारिकः। *एकागार+सु+ठञ्। ऐकागार्+इक। ऐकागारिक+सु। ऐकागारिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'एकागार' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में, प्रयोजन तथा चौर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां 'एकागार' शब्द से '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है किन्तु चौर अर्थ में उसे निपातित किया गया है। 'ऐकागारिकट्' के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**ऐकागारिकी**।*

विशेषः *'एकागार' शब्द में 'एक' पद असहायवाची है। एकागार अर्थात् अकेला घर। एकागार=अकेला घर जिस पुरुष का प्रयोजन है वह 'ऐकागारिक' चौर कहाता है। ससहाय घर में अनेक पुरुषों का अधिष्ठान होने से उसमें चोरी करना सम्भव नहीं होता है।*

निपातनम् (ठञ्)–

(११) आकालिकडाद्यन्तवचने।११३।

प०वि०–आकालिकट् १।१ आदि-अन्तवचने ७।१।

स०–आदिश्च अन्तश्च तौ आद्यन्तौ, तयोः-आद्यन्तयोः, आद्यन्तयो-र्वचनम्-आद्यन्तवचनम्, तस्मिन्-आद्यन्तवचने (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–ठञ्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् आद्यन्तवचने आकालिकड् अस्य ठञ् प्रयोजनम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थम् आद्यन्तवचनेऽर्थे वर्तमानम् आकालिकट् इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०–समानकालावाद्यन्तौ प्रयोजनमस्य-आकालिकः स्तनयित्नुः। स्त्री चेत्-आकालिकी विद्युत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (आद्यन्तवचने) आदि और अन्त के कथन अर्थ में विद्यमान (आकालिकट्) आकालिकट् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ्-प्रत्ययान्त निपातित है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

उदा०-आकाल=समान कालवाला आदि और अन्त प्रयोजन है इसका यह-आकालिक स्तनयित्नु (बिजली)। यदि स्त्री हो तो-आकालिकी विद्युत् (बिजली)।

*सिद्धि-**आकालिकः**। समानकाल+सु+ठञ्। आकाल्+इक। आकालिक+सु। आकालिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'समानकाल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। 'समानकाल' शब्द के स्थान में 'आकाल' आदेश होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**आकालिकी**।*

विशेषः *(१) व्याकरण महाभाष्य के अनुसार ठञ्-प्रत्यय के अधिकार में 'आगार' शब्द से 'ठञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है 'आद्यन्तवचन' अर्थ के लिये यह निपातन*

किया गया है। काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'ईकक्' प्रत्यय का निपातन किया है। 'ठञ्' प्रत्यय से सिद्धि होने पर 'ईकक्' प्रत्यय की कल्पना अनुचित है।

(२) किसी का समानकाल=एक ही काल में आदि (उत्पत्ति) और अन्त (विनाश) सम्भव नहीं हो सकता अतः यहां उत्पत्ति के पश्चात् तत्काल विनाश होना तात्पर्य समझना चाहिये।

तुल्यार्थप्रत्ययविधिः

वतिः–

(१) तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः।११४।

प०वि०-तेन ३।१ तुल्यम् २।१ क्रिया १।१ चेत् अव्ययपदम्, वतिः १।१। 'तुल्यम्' इत्यत्र क्रियाविशेषणत्वात् कर्मणि द्वितीया।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् तुल्यं वतिः, क्रिया चेत्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तुल्यमित्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति, यत् तुल्यं क्रिया चेत् सा भवति।

उदा०-ब्राह्मणेन तुल्यं वर्तते-ब्राह्मणवत्। राज्ञा तुल्यं वर्तते-राजवत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (तुल्यम्) समान अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है (क्रिया) जो तुल्य है (चेत्) यदि वह क्रिया हो।*

उदा०-ब्राह्मण के तुल्य=समान है पठन-पाठन आदि क्रिया इसकी यह-ब्राह्मणवत्। राजा के तुल्य=समान है प्रजा की रक्षा आदि क्रिया इसकी यह-राजवत्। यहां क्रिया की तुल्यता का कथन इसलिये किया गया है कि गुण की तुल्यता में वति-प्रत्यय न हो जैसे-पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणवत्।** ब्राह्मण+टा+वति। ब्राह्मण+वत्। ब्राह्मणवत्+सु। ब्राह्मणवत्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, 'ब्राह्मण' शब्द से तुल्य अर्थ में तथा क्रिया-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) में पठित '**वत्=वदन्तमव्यय-संज्ञं भवति**' इस गण-सूत्र से 'ब्राह्मणवत्' पद की अव्ययसंज्ञा है अतः 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो जाता है।*

*(२) **राजवत्।** यहां तृतीया-समर्थ 'राजन्' शब्द से पूर्ववत् 'वति' प्रत्यय करने पर '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पद-संज्ञा और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

इवार्थप्रत्ययविधिः

वतिः–

(१) तत्र तस्येव।११५।

प०वि०–तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) तस्य ६ ।१ इव अव्ययपदम्।

अनु०–वतिरित्यनुवर्तते ।

अन्वयः–तत्र, तस्य प्रातिपदिकाद् इव वतिः ।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थात्, तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्च प्रातिपदिकाद् इव इत्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–(तत्र) मथुरायामिव–मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । पाटलिपुत्रे इव पाटलिपुत्रवत् साकेते परिखा। **(तस्य)** देवदत्तस्येव–देवदत्तवद् यज्ञदत्तस्य गावः । यज्ञदत्तस्येव–यज्ञदत्तवद् देवदत्तस्य दन्ताः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्र) सप्तमी–समर्थ और (तस्य) षष्ठी–समर्थ प्रातिपदिक से (इव) समान अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(तत्र)** स्रुघ्न नगर में मथुरावत्=मथुरा के सदृश प्राकार (चाहरदीवारी) है। साकेत=अयोध्या नगरी में पाटलिपुत्रवत्=पटनानगर के सदृश परिखा=खाई है। **(तस्य)** यज्ञदत्त की गौवें देवदत्तवत्=देवदत्त की गौवों के सदृश हैं। देवदत्त के दांत यज्ञदत्तवत्=यज्ञदत्त के दांतों के सदृश हैं।*

*सिद्धि–(१) **मथुरावत्।** मथुरा+ङि+वति। मथुरा+वत्। मथुरावत्+सु। मथुरावत्।*

*यहां सप्तमी–समर्थ 'मथुरा' शब्द से इव (सदृश) अर्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**पाटलिपुत्रवत्।***

*(२) **देवदत्तवत्।** देवदत्त+ङस्+वति। देवदत्त+वत्। देवदत्तवत्+सु। देवदत्तवत्।*

*यहां षष्ठी–समर्थ देवदत्त' शब्द से इव (सदृश) अर्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**यज्ञदत्तवत्।***

अर्हार्थप्रत्ययविधिः

वतिः-

(१) तदर्हम्।११६।

प०वि०–तत् २।१ अर्हम् २।१।

कृद्वृत्तिः-अर्हतीति अर्हः, तम्-अर्हम्। अत्र **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।३४) इति कर्तरि कारकेऽच् प्रत्ययः। 'तत्' इत्यत्र **'कर्तृकर्मणोः कृति'** (२।३।६५) इति कृदन्तयोगे षष्ठ्यां प्राप्तायामस्मादेव सूत्रोक्तान्निपातनाद् द्वितीया वेदितव्या।

अनु०-वतिः, क्रिया, चेद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अर्हं वतिः, क्रिया चेत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हमित्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति, यद् अर्हमिति प्रत्ययार्थ आत्मार्हा क्रिया चेत् सा भवति।

उदा०-राजानमर्हति-राजवत् पालनम्। ब्राह्मणमर्हति-ब्राह्मणवद् वेदाध्ययनम्। ऋषिमर्हति-ऋषिवद् वेदार्थज्ञानम्। क्षत्रियमर्हति-क्षत्रियवत् प्रजारक्षणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अर्हम्) योग्य अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है। (क्रिया चेत्) जो अर्ह-प्रत्ययार्थ है यदि वहां आत्मार्हा क्रिया हो।*

उदा०-राजा को जो योग्य है वह-राजवत् पालन करना। ब्राह्मण को जो योग्य है वह-ब्राह्मणवत् वेद का अध्ययन करना। ऋषि को जो योग्य है वह-ऋषिवत् वेदार्थ को जानना। क्षत्रिय को जो योग्य है वह-क्षत्रियवत् प्रजा की रक्षा करना।

सिद्धि-राजवत्। *राजन्+अम्+वति। राजन्+वत्। राजवत्+सु। राजवत्।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'राजन्' शब्द अर्ह (योग्य) अर्थ में तथा आत्मार्हा क्रिया अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से वति प्रत्यय है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पदसंज्ञा और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राह्मणवत्** आदि।*

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

वतिः—

(१) उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे।११७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ छन्दसि ७।१ धात्वर्थे ७।१।

स०-धातुकृतोऽर्थ इति धात्वर्थः, तस्मिन् धात्वर्थे (उत्तरपदलोपी-तत्पुरुषः)।

अनु०-वतिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धात्वर्थे उपसर्गात् स्वार्थे वतिः।

अर्थः-छन्दसि विषये धात्वर्थे वर्तमानाद् उपसर्गात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे वतिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-उद्गतमिति-उद्वत्। निगतमिति-निवत्। **'यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत्'** (ऋ० १०।१४२।४)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (धात्वर्थे) धातुकृत अर्थ में विद्यमान (उपसर्गात्) उपसर्ग-संज्ञक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है।*

उदा०-उद्गत ही-उद्वत्। ऊपर की ओर गया हुआ। निगत ही-निवत्। नीचे की ओर गया हुआ। ***'यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत्'*** *(ऋ० १०।१४२।४)।*

सिद्धि-*उद्वत्। उत्+सु+वति। उत्+वत्। उद्वत्+सु। उद्वत्।*

यहां वेदविषय में धातुकृत-अर्थ में विद्यमान 'उत्' उपसर्ग से स्वार्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'त्' के स्थान में जश् 'द्' आदेश होता है। ऐसे ही-निवत्।

विशेषः *'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से स्वरादिगण में पठित 'वत्' वदन्तमव्ययसंज्ञं भवति, इस गणसूत्र से 'उद्वत्' आदि शब्द अव्यय हैं किन्तु धातुकृत अर्थ साधन (द्रव्य) होने से उसका लिङ्ग और वचन के साथ योग सम्भव होता है। अतः यहां धात्वर्थ के बल से वेदमन्त्र में 'उद्वतः' आदि पद पुंलिङ्ग और बहुवचन में प्रयुक्त हैं।*

भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

त्वः+तल्-

(१) तस्य भावस्त्वतलौ।११८।

प०वि०-तस्य ६।१ भावः १।१ त्व-तलौ १।२।

स०-त्वश्च तल् च तौ त्वतलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

कृद्वृत्तिः- भवतोऽस्मादभिधानप्रत्ययाविति भावः। अत्र **'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे'** (३।३।२४) इति करणे कारके घञ् प्रत्ययः। अत्र शब्दस्य यत् प्रवृत्तिनिमित्तं तद् भावशब्देनोच्यते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् भावस्त्वतलौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भाव इत्यस्मिन्नर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-अश्वस्य भावः-अश्वत्वम् (त्वः)। अश्वता (तल्)। गोर्भावः-गोत्वम् (त्वः)। गोता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (भावः) शब्द के प्रवृत्ति निमित्त अर्थ में (त्वतलौ) त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अश्व का भाव-अश्वत्व=घोड़ापन (त्व)। अश्वता=घोड़ापन (तल्)। गौ का भाव-गोत्व=गौपन (त्व)। गोता=गौपन (तल्)।

सिद्धि-(१) ***अश्वत्वम्।*** *अश्व+ङस्+त्व। अश्व+त्व। अश्वत्व+सु। अश्वत्वम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से भाव-अर्थ में इस सूत्र से 'त्व' प्रत्यय है। ऐसे ही- ***गोत्वम्।***

(२) ***अश्वता।*** *अश्व+ङस्+तल्। अश्व+त। अश्वत+टाप्। अश्वता+सु। अश्वता।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'तल्' प्रत्यय है। 'तलन्तः' (लिङ्गा० १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही- ***गोता।***

त्वतल्प्रत्ययाधिकारः--

(२) आ च त्वात्।११६।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, त्वात् ५।१।

अनु०-भावः, त्वतलौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आ त्वाच्च भावस्त्वतलौ।

अर्थः-**'ब्रह्मणस्त्वः'** (५।१।१३५) इति वक्ष्यति, आ त्वात्=एतस्मात् त्वशब्दात् यद् इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामस्तत्र भावेऽर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः, इत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-**'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'** (५।१।१२१) इति। पृथोर्भावः-प्रथिमा। पार्थवम्। पृथुत्वम्। पृथुता। इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-पाणिनिमुनि कहेंगे-* ***'ब्रह्मणस्त्वः'*** *(५।१।१३५) इस सूत्र में प्रोक्त (त्वात्) 'त्व' शब्द (आ) तक (च) भी अब जो इससे आगे कहा जायेगा वहां (भावः) भाव अर्थ में (त्वतलौ) त्व और तल् प्रत्यय होते हैं। जैसे आगे कहा जायेगा-* ***'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'*** *(५।१।१२१) अर्थात् पृथु-आदि शब्दों से विकल्प से*

इमनिच् प्रत्यय होता है। अत: इस त्व-तल् प्रत्ययों के अधिकार से वहां विकल्प पक्ष में त्व और तल् प्रत्यय भी होते हैं। जैसे-प्रथिमा। पार्थवम्। पृथुत्वम्। पृथुता इत्यादि।

सिद्धि-प्रथिमा आदि शब्दों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी।

भावार्थप्रत्ययप्रतिषेधः-

(३) न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरमङ्गललवणबुध-कतरसलसेभ्यः।१२०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, नञ्पूर्वात् ५।१ तत्पुरुषात् ५।१ अचतुर-मङ्गल-लवण-बुध-कत-रस-लसेभ्यः ५।३।

स०-नञ् पूर्वो यस्मिन् स नञ्पूर्वः, तस्मात् नञ्पूर्वात् (बहुव्रीहिः)। चतुरश्च मङ्गलं च लवणं च बुधश्च कतश्च रसश्च लसश्च ते चतुरमङ्गललवणबुधकतरसलसाः, न चतुर०लसा इति अचतुर०लसाः, तेभ्यः-अचतुर०लसेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, भाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य चतुरादिवर्जिताद् नञ्पूर्वात् तत्पुरुषाद् भाव इत उत्तरे प्रत्यया न।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्चतुरादिवर्जिताद् नञ्पूर्वात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् भाव इत्यस्मिन्नर्थे इत उत्तरे प्रत्यया न भवन्तीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-**'पत्यन्तपुरोहिताभ्यो यक्'** (५।१।१२७) इति अपतेर्भावः-अपतित्वम्, अपतिता। अपटुत्वम्, अपटुता। अरमणीयत्वम्, अरमणीयता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचतुर०लसेभ्यः) चतुर, मङ्गल, लवण, बुध, कत, रस, लस प्रातिपदिकों को छोड़कर (नञ्पूर्वात्) नञ्पूर्ववाले (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (भावः) भाव अर्थ में (न) इससे आगे विधीयमान प्रत्यय नहीं होते हैं, यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनिमुनि कहेंगे-* ***'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्'*** *(५।१।१२७) अर्थात् पति-अन्तवाले तथा पुरोहित आदि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होता है। वह इस नियम-सूत्र से नञ्-तत्पुरुष से नहीं होता है। जैसे-अपतित्व, अपतिता। अपटुत्व, अपटुता। अरमणीयत्व, अरमणीयता। यहां 'यक्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से* ***'तस्य भावस्त्वतलौ'*** *(५।१।११८) से औत्सर्गिक* ***त्व और*** *तल् प्रत्यय होते हैं।*

इमनिच्-विकल्पः–

(४) पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा।१२१।

प०वि०–पृथु-आदिभ्य ५।३ इमनिच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०–पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयः, तेभ्यः-पृथ्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, भाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पृथ्वादिभ्यो भावो वा इमनिच्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पृथ्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भाव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन इमनिच् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं त्वतलौ च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–पृथुनो भावः-प्रथिमा (इमनिच्)। पार्थवम् (अण्)। पृथुत्वम् (त्वः)। पृथुता (तल्)। मृदुनो भावः-म्रदिमा (इमनिच्)। मार्दवम् (अण्)। मृदुत्वम् (त्वः)। मृदुता (तल्) इत्यादिकम्।

पृथु। मृदु। महत्। पटु। तनु। लघु। बहु। साधु। वेणु। आसु। बहुल। गुरु। दण्ड। ऊरु। खण्ड। चण्ड। बाल। अकिञ्चन। होड। पाक। वत्स। मन्द। स्वादु। ह्रस्व। दीर्घ। प्रिय। वृष। ऋजु। क्षिप्र। क्षुप्र। क्षुद्र। इति पृथ्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पृथ्वादिभ्यः) पृथु आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव अर्थ में (वा) विकल्प से (इमनिच्) प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–पृथु का भाव प्रथिमा (इमनिच्)। पार्थव (अण्)। पृथुत्व (त्व)। पृथुता (तल्)। मोटापन।। मृदु का भाव म्रदिमा (इमनिच्)। मार्दव (अण्) मृदुत्व (त्व)। मृदुता (तल्) कोमलता इत्यादि।

सिद्धि–(१) प्रथिमा। *पृथु+ङस्+इमनिच्। प्रथ्+इमन्। प्रथिमन्+सु। प्रथिमान्+सु। प्रथिमान्+०। प्रथिमा।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से इमनिच् प्रत्यय है। **'तुरिष्ठेमेयस्सु'** (६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५५) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप तथा **'र ऋतो हलादेर्लघोः'** (६।४।१६१) से अंग के 'ऋ' के स्थान में 'रेफ' आदेश होता है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ,*

'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६ ।१ ।६७) से 'सु' का लोप और ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८ ।२ ।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**म्रदिमा।***

(२) ***पार्थवम्।*** *पृथु+ङस्+अण्। पार्थो+अ। पार्थव+सु। पार्थवम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में ***'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्'*** *(५ ।१ ।१३०) से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा* ***'ओर्गुणः'*** *(६ ।४ ।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**मार्दवम्।***

(३) ***पृथुत्वम्।*** *यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में* ***'तस्य भावस्त्वतलौ'*** *(५ ।१ ।११८) से 'त्व' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मृदुत्वम्।***

(४) ***पृथुता।*** *यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में पूर्ववत् 'तल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मृदुता।***

ष्यञ्+इमनिच्+त्व+तल्-

(५) वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च।१२२।

प०वि०-वर्ण-दृढादिभ्यः ५ ।३ ष्यञ् १ ।१ च अव्ययपदम्।

स०-दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः, वर्णश्च दृढादयश्च ते वर्णदृढादयः, तेभ्यः-वर्णदृढादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, त्वतलौ इमनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य वर्णदृढादिभ्यो भावः ष्यञ्, इमनिच्, त्वतलौ च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो वर्णविशेषवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भाव इत्यस्मिन्नर्थे ष्यञ्, इमनिच्, त्वतलौ च प्रत्यया भवन्ति। त्वतलौ प्रत्ययौ तु सर्वत्र भवत एव।

उदा०-(वर्णः) शुक्लस्य भावः-शौक्ल्यम् (ष्यञ्)। शुक्लिमा (इमनिच्)। शुक्लत्वम् (त्वः)। शुक्लता (तल्)। कृष्णस्य भावः-कार्ष्ण्यम् (ष्यञ्)। कृष्णिमा (इमनिच्)। कृष्णत्वम् (त्वः) कृष्णता (तल्)। **(दृढादिः)** दृढस्य भावः-दार्ढ्यम् (ष्यञ्)। द्रढिमा (इमनिच्)। दृढत्वम् (त्वः)। दृढता (तल्) इत्यादिकम्।

दृढ। परिवृढ। भृश। कृश। चक्र। आम्र। लवण। ताम्र। अम्ल। शीत। उष्ण। जड। बधिर। पण्डित। मधुर। मूर्ख। मूक। वेर्यातलाभ-मतिमनःशारदानाम्। समो मतिमनसोर्जवने। इति दृढादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वर्णदृढादिभ्यः) वर्णविशेषवाची तथा दृढ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव अर्थ में (ष्यञ्) ष्यञ् (इमनिच्) इमनिच् (च) और (त्वतलौ) त्व, तल् प्रत्यय होते हैं। त्व और तल् प्रत्यय तो सर्वत्र होते ही हैं।*

उदा०-(वर्ण) शुक्ल=सफेद का भाव-शौक्ल्य (ष्यञ्)। शुक्लिमा (इमनिच्)। शुक्लत्व (त्व)। शुक्लता (तल्)। सफेदपन। कृष्ण का भाव-कार्ष्ण्य (ष्यञ्)। कृष्णिमा (इमनिच्)। कृष्णत्व (त्व)। कृष्णता (तल्) कालापन। (दृढादि) दृढ=मजबूत का भाव-दार्ढ्य (ष्यञ्)। द्रढिमा (इमनिच्)। दृढत्व (त्व)। दृढता (तल्) इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **शौक्ल्यम्।** शुक्ल+ङस्+ष्यञ्। शौक्ल्+य। शौक्ल्य+सु। शौक्ल्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ वर्णविशेषवाची 'शुक्ल' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**दार्ढ्यम्** आदि।*

*(२) **शुक्लिमा** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

भाव-कर्मार्थप्रत्ययप्रकरणम्

ष्यञ्-

(१) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च।१२३।

प०वि०-गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः ५।३ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-गुणमुक्तवन्त इति गुणवचनाः, ब्राह्मण आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः, गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च ते गुणवचनब्राह्मणादयः, तेभ्यः-गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, ष्यञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गुणवचनब्राह्मणदिभ्यो भावे कर्मणि च ष्यञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे ष्यञ् प्रत्ययो भवति। त्वतलौ तु भवत एव। कर्मशब्दोऽत्र क्रियावचनो गृह्यते।

उदा०-(गुणवचनः) जडस्य भावः कर्म वा-जाड्यम् (ष्यञ्)। जडत्वम् (त्वः)। जडता (तल्)। **(ब्राह्मणादिः)** ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा-ब्राह्मण्यम् (ष्यञ्)। ब्राह्मणत्वम् (त्वः)। ब्राह्मणता (तल्)। माणवस्य भावः-माणव्यम् (ष्यञ्)। माणवत्वम् (त्वः)। माणवता (तल्) इत्यादिकम्।

ब्राह्मण। वाडव। माणव। चोर। मूक। आराधय। विराधय। अपराधय। उपराधय। एकभाव। द्विभाव। त्रिभाव। अन्यभाव। समस्थ। विषमस्थ। परमस्थ। मध्यमस्थ। अनीश्वर। कुशल। कपि। चपल। अक्षेत्रज्ञ। निपुण। अर्हतो नुम् च। आर्हन्त्यम्। संवादिन्। संवेशिन्। बहुभाषिन्। बालिश। दुष्पुरुष। कापुरुष। दायाद। विशसि। धूर्त। राजन्। सम्भाषिन्। शीर्षपातिन्। अधिपति। अलस। पिशाच। पिशुन। विशाल। गणपति। धनपति। नरपति। गडुल। निव। निधान। विष। सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे। चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च। चातुर्वैद्यम्। इति ब्राह्मणादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः) गुणवाची तथा ब्राह्मण-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म=क्रिया अर्थ में (ष्यञ्) ष्यञ् प्रत्यय होता है। त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(गुण)** जड़ का भाव वा कर्म-जाड्य (ष्यञ्)। जडत्व (त्व)। जडता (तल्) मूर्खता। **(ब्राह्मणादि)** ब्राह्मण का भाव वा कर्म-ब्राह्मण्य (ष्यञ्)। ब्राह्मणत्व (त्व)। ब्राह्मणता (तल्) ब्राह्मणपन। माणव का भाव वा कर्म-माणव्य (ष्यञ्)। माणवत्व (त्व)। माणवता (तल्) छोकरापन, इत्यादि।*

सिद्धि-जाड्यम्। *जड+ङस्+ष्यञ्। जाड्+य। जाड्य+सु। जाड्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ गुणवाची 'जड' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राह्मण्यम्, माणव्यम्।***

यत् (नलोपः)-

(२) स्तेनाद्यन्नलोपश्च।१२४।

प०वि०-स्तेनात् ५।१ यत् १।१ नलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्तेनाद् भावे कर्मणि च यद् नलोपश्च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्तेन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे यत् प्रत्ययो भवति, नकारस्य च लोपो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-स्तेनस्य भावः कर्म वा-स्तेयम् (यत्)। स्तेनत्वम् (त्वः)। स्तेनता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्तेनात्) स्तेन प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (च) और (नलोपः) नकार का लोप होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-स्तेन=चौर का भाव वा कर्म-स्तेय (यत्)। स्तेनत्व (त्व)। स्तेनता (तल्)।

सिद्धि-(१) स्तेयम्। *स्तेन+ङस्+यत्। स्ते+य। स्तेय+सु। स्तेयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'स्तेन' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। यहां **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से प्रथम अकार का लोप करके इस सूत्र से 'न्' का लोप **'पूर्वत्रासिद्धम्'** (८।२।१) से अकार का लोप असिद्ध हो जाने से, नहीं होता है अतः यहां आरम्भ-सामर्थ्य से संघात रूप न (न्+अ) का लोप किया जाता है।*

(२) कई वैयाकरण यहां योगविभाग से 'स्तेन' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय करके 'स्तैन्य' शब्द भी सिद्ध करते हैं।

यः-

(३) सख्युर्यः ।१२५।

प०वि०-सख्युः ५।१ यः १।१।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सख्युर्भावे कर्मणि च यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सखि-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे यः प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-सख्युर्भावः कर्म वा-सख्यम् (यः)। सखित्वम् (त्वः)। सखिता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सख्युः) सखि प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-सखा का भाव वा कर्म-सख्य (य)। सखित्व (त्व)। सखिता (तल्)।

सिद्धि-सख्यम्। *सखि+ङस्+य। सख्+य। सख्य+सु। सख्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'सखि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

ढक्–

(४) कपिज्ञात्योर्ढक्।१२६।

प०वि०–कपि-ज्ञात्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ढक् १।१।

स०–कपिश्च ज्ञातिश्च ते कपिज्ञाती, ताभ्याम्-कपिज्ञातिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य कपिज्ञातिभ्यां भावे कर्मणि च ढक्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिज्ञातिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भावे कर्मणि चार्थे ढक् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०–**(कपिः)** कपेर्भावः कर्म वा-कापेयम् (ढक्)। कपित्वम् (त्वः)। कपिता (तल्)। **(ज्ञातिः)** ज्ञातेर्भावः कर्म वा-ज्ञातेयम् (ढक्)। ज्ञातित्वम् (त्वः)। ज्ञातिता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कपिज्ञात्योः) कपि, ज्ञाति प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(कपि)** कपि=वानर का भाव वा-कापेय (ढक्)। कपित्व (त्व)। कपिता (तल्)। **(ज्ञाति)** ज्ञाति=सम्बन्धी का भाव वा कर्म-ज्ञातेय (ढक्)। ज्ञातित्व (त्व)। ज्ञातिता (तल्)।*

सिद्धि-कापेयम्। *कपि+ङस्+ढक्। काप्+एय। कापेय+सु। कापेयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कपि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ज्ञातेयम्।***

यक्–

(५) पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्।१२७।

प०वि०–पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यः ५।३ यक् १।१।

स०–पतिरन्ते यस्य तत् पत्यन्तम्, पुरोहित आदिर्येषां ते पुरोहितादयः, पत्यन्तं च पुरोहितादयश्च ते पत्यन्तपुरोहितादयः, तेभ्यः-पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो भावे कर्मणि च यक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे यक् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-(पत्यन्तम्) सेनापतेर्भावः कर्म वा-सेनापत्यम् (यक्)। सेनापतित्वम् (त्वः)। सेनापतिता (तल्)। गृहपतेर्भावः कर्म वा-गार्हपत्यम् (यक्)। गृहपतित्वम् (त्वः)। गृहपतिता (तल्)। **(पुरोहितादिः)** पुरोहितस्य भावः कर्म वा-पौरोहित्यम् (यक्)। पुरोहितत्वम् (त्वः)। पुरोहितता (तल्)। राज्ञो भावः कर्म वा-राज्यम् (यक्)। राजत्वम् (त्वः)। राजता (तल्) इत्यादिकम्।

पुरोहित। राजन्। संग्रामिक। एषिक। वर्मित। खण्डिक। दण्डित। छत्रिक। मिलिक। पिण्डिक। बाल। मन्द। स्तनिक। चूडितिक। कृषिक। पूतिक। पत्रिक। प्रतिक। अजानिक। सलनिक। सूचिक। शाक्वर। सूचक। पक्षिक। सारथिक। जलिक। सूतिक। अञ्जलिक। राजाऽसे सूचक। इति पुरोहितादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः) पति शब्द जिसके अन्त में है उनसे तथा पुरोहित-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यक्) यक् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(पत्यन्त)** सेनापति का भाव वा कर्म-सैनापत्य (यक्)। सेनापतित्व (त्व)। सेनापतिता (तल्)। गृहपति का भाव वा कर्म-गार्हपत्य (यक्)। गृहपतित्व (त्व)। गृहपतिता (तल्)। **(पुरोहितादि)** पुरोहित का भाव वा कर्म-पौरोहित्य (यक्)। पुरोहितत्व (त्व)। पुरोहितता (तल्)। राजा का भाव वा कर्म-राज्य (यक्)। राजत्व (त्व)। राजता (तल्) इत्यादि।*

***सिद्धि-(१) सैनापत्यम्।** सेनापति+ङस्+यक्। सैनापत्+य। सैनापत्य+सु। सैनापत्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, पति-अन्त 'सेनापति' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'यक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गार्हपत्यम्, पौरोहित्यम्।***

(२) राज्यम्। यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'यक्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और 'किति च' (७।२।११८) से पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

अञ्–

(५) प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्।१२८।

प०वि०–प्राणभृज्जाति–वयोवचन–उद्गात्रादिभ्यः ५।३ अञ् १।१।

स०–प्राणं बिभ्रतीति प्राणभृतः=प्राणिनः। प्राणभृतां जातिरिति प्राणभृज्जातिः। वय उक्तवन्त इति वयोवचनाः। उद्गाता आदिर्येषां ते उद्गात्रादयः। प्राणभृज्जातिश्च वयोवचनाश्च उद्गात्रादयश्च ते प्राणभृज्जाति वयोवचनोद्गात्रादयः, तेभ्यः–प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यः (षष्ठी-तत्पुरुषबहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यो भावे कर्मणि चाऽञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणभृज्जातिवाचिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवति एव।

उदा०–**(प्राणभृज्जातिः)** अश्वस्य भावः कर्म वा–आश्वम् (अञ्)। अश्वत्वम् (त्वः)। अश्वता (तल्)। उष्ट्रस्य भावः कर्म वा–औष्ट्रम् (अञ्)। उष्ट्रत्वम् (त्वः)। उष्ट्रता (तल्)। **(वयोवचनः)** कुमारस्य भावः कर्म वा–कौमारम् (अञ्)। कुमारत्वम् (त्वः)। कुमारता (तल्)। किशोरस्य भावः कर्म वा–कैशोरम् (अञ्)। किशोरत्वम् (त्वः)। किशोरता (तल्)। **(उद्गात्रादिः)** उद्गातुर्भावः कर्म वा–औद्गात्रम् (अञ्)। उद्गातृत्वम् (त्वः)। उद्गातृता (तल्)। उन्नेतुभावः कर्म वा–औन्नेत्रम् (अञ्)। उन्नेतृत्वम् (त्वः)। उन्नेतृता (तल्) इत्यादिकम्।

उद्गातृ। उन्नेतृ। प्रतिहर्तृ। रथगणक। पक्षिगणक। सुष्ठु। दुष्ठु। अध्वर्यु। वधू। सुभग मन्त्रे। इति उद्गात्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यः) प्राणभृज्जाति=प्राणी जातिवाची, वयोवचन=आयुवाची तथा उद्गातृ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है, त्व और तल् तो होते ही हैं।*

उदा०- ***(प्राणभृज्जाति)*** *अश्व=घोड़े का भाव वा कर्म-आश्व (अञ्)। अश्वत्व (त्व)। अश्वता (तल्)। उष्ट्र=ऊंट का भाव वा कर्म-औष्ट्र (अञ्)। उष्ट्रत्व (त्व)। उष्ट्रता (तल्)।* ***(वयोवचन)*** *कुमार का भाव वा कर्म-कौमार (अञ्)। कुमारत्व (त्व)। कुमारता (तल्)। किशोर का भाव वा कर्म-कैशोर (अञ्)। किशोरत्व (त्व)। किशोरता (तल्)।* ***(उद्गात्रादि)*** *उद्गाता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म औद्गात्र (अञ्)। उद्गातृत्व (त्व)। उद्गातृता (तल्)। उन्नेता=उद्धारक का भाव वा कर्म-औन्नेत्र (अञ्)। उन्नेतृत्व (त्व)। उन्नेतृता (तल्) इत्यादि।*

सिद्धि-आश्वम्। *अश्व+ङस्+अञ्। आश्व्+अ। आश्व+सु। आश्वम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीजातिवाची 'अश्व' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही- ***औष्ट्रम्, कौमारम्, कैशोरम्, औद्गात्रम्, औन्नेत्रम्।***

अञ्-

(६) हायनान्तयुवादिभ्योऽण्।१२६।

प०वि०-हायनान्त-युवादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-हायनमन्ते येषां ते हायनान्ताः, युवा आदिर्येषां ते युवादयः, हायनान्ताश्च युवादयश्च ते हायनान्तयुवादयः, तेभ्यः-हायनान्तयुवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भाव, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य हायनान्तयुवादिभ्यो भावे कर्मणि चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-(हायनान्तः) द्विहायनस्य भावः कर्म वा-द्वैहायनम् (अण्)। द्विहायनत्वम् (त्वः)। द्विहायनता (तल्)। त्रिहायनस्य भावः कर्म वा-**त्रैहायनम्**

(अण्)। त्रिहायनत्वम् (त्वः)। त्रिहायनता (तल्)। **(युवादिः)** यूनो भावः कर्म वा-यौवनम् (अण्)। युवत्वम् (त्वः)। युवता (तल्)। स्थविरस्य भावः कर्म वा-स्थाविरम् (अञ्) स्थविरत्वम् (त्वः)। स्थविरता (तल्) इत्यादिकम्।

युवन्। स्थविर। होतृ। यजमान। कमण्डलु। पुरुषाऽसे। सुहृत्। यातृ। श्रवण। कुस्त्री। सुस्त्री। सुहृदय। सुभ्रातृ। वृषल। दुर्भ्रातृ। हृदयाऽसे। क्षेत्रज्ञ। कृतक। परिव्राजक। कुशल। चपल। निपुण। पिशुन। सब्रह्मचारिन्। कुतूहल। अनृशंस। इति युवादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हायनान्तयुवादिभ्यः) हायन शब्द जिनके अन्त में है उनसे तथा युवन्-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(हायनान्त)** द्विहायन=दो वर्ष का भाव वा कर्म-द्वैहायन (अण्)। द्विहायनत्व (त्व)। द्विहायनता (तल्)। त्रिहायन=तीन वर्ष का भाव वा कर्म-त्रैहायन (अण्)। त्रिहायनत्व (त्व)। त्रिहायनता (तल्)। **(युवादि)** युवा=जवान का भाव वा कर्म-यौवन (अण्)। युवत्व (त्व)। युवता (तल्)। स्थविर=ठेरे का भाव वा कर्म-स्थाविर (अण्)। स्थविरत्व (त्व)। स्थविरता (तल्)। इत्यादि।*

***सिद्धि-द्वैहायनम्।** द्विहायन+ङस्+अण्। द्वैहायन्+अ। द्वैहायन+सु। द्वैहायनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, हायनान्त 'द्विहायन' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रैहायनम्, यौवनम्, स्थाविरम्।***

अण्-

(७) इगन्ताच्च लघुपूर्वात्।१३०।

प०वि०-इगन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्, लघुपूर्वात् ५।१।

स०-इक् अन्ते यस्य तद् इगन्तम्, तस्मात्-इगन्तात् (बहुव्रीहिः)। लघुः पूर्वोऽवयवोऽस्येति-लघुपूर्वः, तस्मात्-लघुपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, भाव, कर्मणि, च, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघुपूर्वाद् इगन्ताच्च भावे कर्मणि चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाल्लघुपूर्वो यस्मादिकस्तदन्तात् प्रातिपदिकाच्च भावे कर्मणि चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-शुचेर्भावः कर्म वा-शौचम् (अण्)। शुचित्वम् (त्वः)। शुचिता (तल्)। मुनेर्भावः कर्म वा-मौनम् (अण्)। मुनित्वम् (त्वः)। मुनिता (तल्)। पटोर्भावः कर्म वा-पाटवम् (अण्)। पटुत्वम् (त्वः)। पटुता (तल्)। लघुनो भावः कर्म वा-लाघवम् (अण्)। लघुत्वम् (त्वः)। लघुता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (लघुपूर्वात्) लघु वर्ण पूर्व है जिस इक् से (इगन्तात्) उस इगन्त प्रातिपदिक से (च) भी (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय भी होते हैं।*

उदा०-शुचि=शुद्ध का भाव वा कर्म-शौच (अण्)। शुचित्व (त्व)। शुचिता (तल्)। मुनि का भाव वा कर्म-मौन (अण्)। मुनित्व (त्व)। मुनिता (तल्)। पटु=चतुर का भाव वा कर्म-पाटव (अण्)। पटुत्व (त्व)। पटुता (तल्)। लघु=छोटे का भाव वा कर्म-लाघव (अण्) लघुत्व (त्व)। लघुता (तल्)।

सिद्धि-शौचम्। *शुचि+ङस्+अण्। शौच्+अ। शौच+सु। शौचम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, इक् से पहले लघु वर्ण वाले इगन्त 'शुचि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मौनम्, पाटवम्, लाघवम्।***

वुञ्-

(८) योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्।१३१।

प०वि०-योपधात् ५।१ गुरु-उपोत्तमात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-य उपधा यस्य तद् योपधम्, तस्मात्-योपधात् (बहुव्रीहिः)। त्रिप्रभृतीनामन्तिममक्षरमुत्तमम्, उत्तमस्य समीपमुपोत्तमम्, गुरु उपोत्तमं यस्य तद् गुरूपोत्तमम्, तस्मात्-गुरूपोत्तमात् (अव्ययीभावगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य योपधाद् गुरूपोत्तमाद् भावे कर्मणि च वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् यकारोपधाद् गुरूपोत्तमात् प्रातिपदिकाद् **भावे** कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-रमणीयस्य भावः कर्म वा-रामणीयकम् (वुञ्)। रमणीयत्वम् (त्वः)। रमणीयता (तल्)। वसनीयस्य भावः कर्म वा-वसनीयकम् (वुञ्)। वसनीयत्वम् (त्वः)। वसनीयता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (योपधात्) यकार उपधावाले (गुरूपोत्तमात्) गुरु-उपोत्तमवाले प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-रमणीय=रमण करने योग्य (सुन्दर) का भाव वा कर्म-रामणीयक (वुञ्)। रमणीयत्व (त्व)। रमणीयता (तल्)। वसनीय=आच्छादन करने योग्य (उत्तम वस्त्र) का भाव वा कर्म-वासनीयम् (वुञ्)। वसनीयत्व (त्व)। वसनीयता (तल्)।

सिद्धि-रामणीयकम्। *रमणीय+ङस्+वुञ् रामणीय+अक। रामणीयक+सु। रामणीयकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, यकार उपधावाले एवं गुरु-उपोत्तमवाले 'रमणीय' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।२) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वासनीयकम्।***

वुञ्-

(६) द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च।१३२।

प०वि०-द्वन्द्व-मनोज्ञादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-मनोज्ञ आदिर्येषां ते मनोज्ञादयः, द्वन्द्वश्च मनोज्ञादयश्च ते द्वन्द्वमनोज्ञादयः, तेभ्यः-द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च भावे कर्मणि च वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-(**द्वन्द्वः**) गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा-गौपालपशुपालिका (वुञ्)। गोपालपशुपालत्वम् (त्वः)। गोपालपशुपालता (तल्)। शिष्योपाध्याययोर्भावः कर्म वा-शैष्योपाध्यायिका (वुञ्)। शिष्योपाध्यायत्वम् (त्वः)। शिष्योपाध्यायता (तल्)। **(मनोज्ञादिः)** मनोज्ञस्य भावः कर्म वा-मानोज्ञकम् (वुञ्)। मनोज्ञत्वम् (त्वः) मनोज्ञता (तल्)। कल्याणस्य भावः कर्म वा-काल्याणकम् (वुञ्)। कल्याणत्वम् (त्वः)। कल्याणता (तल्) इत्यादिकम्।

मनोज्ञ। कल्याण। प्रियरूप। छान्दस। छात्र। मेधाविन्। अभिरूप। आढ्य। कुलपुत्र। श्रोत्रिय। चोर। धूर्त। वैश्वदेव। युवन्। ग्रामपुत्र। ग्रामखण्ड। ग्रामकुमार। अमुष्यपुत्र। अमुष्यकुल। शतपुत्र। कुशल। इति मनोज्ञादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः) द्वन्द्वसंज्ञक तथा मनोज्ञ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है। त्व और तल् प्रतयय तो होते ही हैं।*

उदा०-गोपाल और पशुपालों का भाव वा कर्म-गोपालपशुपालिका (वुञ्)। गोपालपशुपालत्व (त्व)। गोपालपशुपालता (तल्)। शिष्य और उपाध्याय का भाव वा कर्म-शैष्योपाध्यायिका (वुञ्)। शिष्योपाध्यायत्व (त्व)। शिष्योपाध्यायता (तल्)। ***(मनोज्ञादि)*** *मनोज्ञ=सुन्दर का भाव वा कर्म-मानोज्ञक (वुञ्)। मनोज्ञत्व (त्व)। मनोज्ञता (तल्)। कल्याण का भाव वा कर्म-काल्याणक (वुञ्)। कल्याणत्व (त्व)। कल्याणता (तल्) इत्यादि।*

सिद्धि-गौपालपशुपालिका। *गोपालपशुपाल+आम्+वुञ्। गौपालपशुपाल्अक। गौपालपशुपालक+टाप्। गौपालपशुपालिक्+आ। गौपालपशुपालिका+सु। गौपालपशुपालिका।*

यहां षष्ठी-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'गोपालपशुपाल' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और* ***'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः'*** *(७।३।४४) से इकार-आदेश होता है। ऐसे ही-**शैष्योपाध्यायिका, मानोज्ञकम्, काल्याणकम्।***

वुञ्-

(१०) गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु।१३३।

प०वि०-गोत्र-चरणात् ५।१ श्लाघा-अत्याकार-तदवेतेषु ७।३।

स०-गोत्रं च चरणं च एतयोः समाहारो गोत्रचरणम्, तस्मात्-गोत्रचरणात् (समाहारद्वन्द्वः)। श्लाघा च अत्याकारश्च तदवेतश्च ते श्लाघात्याकारतदवेताः, तेषु-श्लाघात्याकारतदवेतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रचरणाद् भावे कर्मणि च वुञ्, श्लाघात्याकारतदवेतेषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, श्लाघात्याकारतदवेतेषु विषयेषु, त्वतलौ तु भवत एव। तत्र श्लाघा=विकत्थनम्, अत्याकारः=पराधिक्षेपः, तदवेतः=तत्प्राप्तः। तदित्यनेन गोत्रस्य चरणस्य च भावः कर्म च निर्दिश्यते। तत्प्राप्तस्तदवेत इति कथ्यते।

उदा०-(श्लाघा) गार्गिकया श्लाघते। काठिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन श्लाघते। कठत्वेन श्लाघते। गार्ग्यत्वेन कठत्वेन च विकत्थते इत्यर्थः। **(अत्याकारः)** गार्गिकयाऽत्याकुरुते। काठिकयाऽत्याकुरुते। गार्ग्यत्वेनाऽत्याकुरुते। कठत्वेनाऽत्याकुरुते। गार्ग्यत्वेन कठत्वेन च परानधिक्षिपतीत्यर्थः। **(तदवेतः)** गार्गिकामवेतः। काठिकामवेतः। गार्ग्यत्वमवेतः। कठत्वमवेतः। गार्ग्यत्वं कठत्वं च प्राप्त इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(तस्य)* *षष्ठी-समर्थ* *(गोत्रचरणात्)* गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिक से *(भावः)* भाव *(च)* और *(कर्मणि)* कर्म अर्थ में *(वुञ्)* वुञ् प्रत्यय होता है *(श्लाघाऽत्याकारतदवेतेषु)* यदि वहां श्लाघा=प्रशंसा करना (डींग मारना), अत्याकार=दूसरे को दबाना (रौब जमाना), तदवेत=गोत्र एवं चरण भाव, कर्म को प्राप्त होना विषय हो, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(श्लाघा)** गार्गिका से श्लाघा करता है। काठिका से श्लाघा करता है। गार्ग्यत्व से श्लाघा करता है। कठत्व से श्लाघा करता है। गार्ग्यगोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म से अपनी डींग मारता है। **(अत्याकारः)** गार्गिका से दूसरे को दबाता है। काठिका से दूसरे को दबाता है। गार्ग्यत्व से दूसरे को दबाता है। कठत्व से दूसरे को दबाता है। गार्ग्य गोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म से दूसरे पर अपना रौब जमाता है। **(तदवेतः)** गार्गिका को अवेत=प्राप्त हुआ। काठिका को अवेत=प्राप्त हुआ। गार्ग्यत्व*

को अवेत=प्राप्त हुआ। कठत्व को अवेत=प्राप्त हुआ। गार्ग्य गोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म को प्राप्त हो गया। गार्ग्य एवं कठ बन गया।

*सिद्धि-**गार्गिका।** गार्ग्य+ङस्+वुञ्। गार्ग्य्+अक। गार्ग्+अक। गार्गिक+टाप्। गार्गिक+आ। गार्गिका+सु। गार्गिका।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्रवाची 'गार्ग्य' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप तथा **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से अंग के यकार का भी लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। ऐसे ही चरणवाची 'कठ' शब्द से-**काठिका।***

***विशेषः** वैदिक विद्यापीठ का प्राचीन नाम 'चरण' है।*

छः-

(११) होत्राभ्यश्छः।१३४।

प०वि०-होत्राभ्यः ५।३ छः १।१।

कृद्वृत्तिः- 'होत्रा' इत्यत्र **'हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्'** (उणा० ४।१६८) इति हु-धातोस्त्रन् प्रत्ययः। होत्रशब्द ऋत्विग्विशेषवचनः। स्वभावतश्चायमृत्विक्ष्वपि स्त्रीलिङ्गः।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य होत्राभ्यो भावे कर्मणि च छः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो होत्रावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे छः प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-अच्छावाकस्य भावः कर्म वा-अच्छावाकीयम्, अच्छावाकत्वम्, अच्छावाकता। मित्रावरुणस्य भाव कर्म वा-मित्रावरुणीयम्, मित्रावरुणत्वम्, मित्रावरुणता। ब्राह्मणच्छंसिनो भावः कर्म वा-ब्राह्मणाच्छंसीयम्, ब्राह्मच्छंसित्वम्, ब्राह्मणाच्छंसिता। आग्नीध्रस्य भावः कर्म वा-आग्नीध्रीयम्, आग्नीध्रत्वम्, आग्नीध्रता। प्रतिप्रस्थातुर्भावः कर्म वा-प्रतिप्रस्थात्रीयम्, प्रतिप्रस्थातृत्वम्, प्रतिप्रस्थातृता। नेष्टुर्भावः कर्म वा-नेष्ट्रीयम्, नेष्टृत्वम्, नेष्टृता। पोतुर्भावः कर्म वा-पोत्रीयम्, पोतृत्वम्, पोतृता।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (होत्राभ्यः) होत्रावाची=ऋत्विग् विशेषवाची प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय होते ही है।

उदा०-अच्छावाक नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-अच्छावाकीय, अच्छावाकत्व, अच्छावाकता। मित्रावरुण नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-मित्रावरुणीय, मित्रावरुणत्व, मित्रावरुणता। ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-ब्राह्मच्छंसीय, ब्राह्मणाच्छंसित्व, ब्राह्मणाच्छंसिता। आग्नीध्र नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-आग्नीध्रीय, आग्नीध्रत्व, आग्नीध्रता। प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-प्रतिप्रस्थात्रीय, प्रतिप्रस्थातृत्व, प्रतिप्रस्थातृता। नेष्टा नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-नेष्ट्रीय, नेष्टृत्व, नेष्टृता। पोता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-पोत्रीय, पोतृत्व, पोतृता।

सिद्धि-अच्छावाकीयम्। अच्छवाक+ङस्+छ। अच्छावाक्+ईय। अच्छावाकीय+सु। अच्छावाकीयम्।

यहां षष्ठी-समर्थ, ऋत्विग्विशेषवाची 'अच्छावाक' शब्द से भाव और कर्म **अर्थ में** इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश **और** **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मित्रावरुणीयम्** आदि।

विशेषः यज्ञ में १६ सोलह ऋत्विजों का काम एक-दूसरे के साथ सहयोग पर आश्रित था। उनमें से हर एक कर्म और भाव को प्रकट करने के लिये भाषा में अलग-अलग शब्द थे। ये शब्द ऋत्विजों के नामों में प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते थे। **'होत्राभ्यश्छः'** (५।१।१३४) सूत्र में इसका विधान किया गया है। १६ सोलह ऋत्विजों के वेदानुसारी नाम निम्नलिखित हैं-

(१) ऋग्वेद- होता, मित्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत्।
(२) यजुर्वेद-. अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता।
(३) सामवेद- उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, सुब्रह्मण्य।
(४) अथर्ववेद- ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र, पोता।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६६-६७)

त्वः-

(१२) ब्रह्मणस्त्वः।१३५।

प०वि०-ब्रह्मणः ५।१ त्वः १।१।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, होत्राभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य होत्राया ब्रह्मणो भावे कर्मणि च त्वः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् होत्रावाचिनो ब्रह्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे त्वः प्रत्ययो भवति।

उदा०-ब्रह्मणो भावः कर्म वा ब्रह्मत्वम्। अत्र ब्रह्मन्-शब्दात् त्वप्रत्ययविधानं तल्प्रत्ययबाधनार्थम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (होत्राभ्यः) होत्रावाची=ऋत्विग्विशेषवाची (ब्रह्मणः) ब्रह्मन् प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (त्वः) त्व प्रत्यय होता है।*

उदा०-ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-ब्रह्मत्व। यहां ऋत्विग् विशेषवाची 'ब्रह्मन्' शब्द से 'त्व' प्रत्यय का विधान 'तल्' प्रत्यय के प्रतिषेध के लिये किया गया है। जो जातिवाची ब्रह्मन् (ब्राह्मण-पर्याय) शब्द है उससे तो त्व और तल् प्रत्यय होते ही हैं-ब्रह्मत्व, ब्रह्मता।

सिद्धि-ब्रह्मत्त्वम्। ब्रह्मन्+ङस्+त्व। ब्रह्म+त्व। ब्रह्मत्व+सु। ब्रह्मत्वम्।

यहां षष्ठी-समर्थ, होत्रावाची 'ब्रह्मन्' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'त्व' प्रत्यय है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से पद के नकार का लोप होता है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से 'ब्रह्मन्' शब्द की पदसंज्ञा है।

विशेषः *अथर्ववेद के ऋत्विजों में पाणिनि ने ब्रह्मा (५।१।१३५) अग्नीध् (८।२।९२) और पोता (६।४।११) का उल्लेख किया है। ऋग्वेद में ही ब्रह्मा का महत्त्व और ऋत्विजों की अपेक्षा विशेष माना जाने लगा था, उसे सुविप्र कहा गयाा है। ब्रह्मा चारों वेदों का और यज्ञ के सम्पूर्ण कर्मकाण्ड का अधिष्ठाता होता है, यही उसकी विशेषता थी। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६७)।*

*सूचना- **'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्'** (४।१।८७) का अधिकार समाप्त हुआ।*

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

भवनार्थप्रत्ययप्रकरणम्

खञ्–

(१) धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्।१।

प०वि०–धान्यानाम् ६।३ भवने ७।१ क्षेत्रे ७।१ खञ् १।१। **'धान्यानाम्'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते, बहुवचननिर्देशाच्च धान्यविशेषवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यो भवने खञ्, क्षेत्रे।

अर्थः–षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे खञ् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति। भवन्ति=जायन्तेऽस्मिन्नितिभवनम्=उत्पत्तिस्थानम् **'करणाधिकरणयोश्च'** (६।३।११७) इत्यधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः।

उदा०–मुद्गानां भवनम्–मौद्गीनं क्षेत्रम्। कोद्रवीणां भवनम्–कौद्रवीणं क्षेत्रम्। कुलत्थानां भवनम्–कौलत्थीनं क्षेत्रम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ*–*षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची प्रातिपदिकों से (भवने) उत्पत्ति-स्थान अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन=उत्पत्ति-स्थान है, यदि वह क्षेत्र=खेत हो।*

उदा०–मुद्ग=मूंग का भवन=उत्पत्ति-स्थान-मौद्गीन क्षेत्र (खेत)। कोद्रव=कोदो नामक अन्न का भवन=कोद्रवीण क्षेत्र। कुलत्थ=कुलथी नामक अन्न का भवन-कौलत्थीन क्षेत्र। मूंग आदि बोने योग्य क्षेत्र।

***सिद्धि-मौद्गीनम्।** मुद्ग+आम्+खञ्। मौद्ग्+ईन। मौद्गीन+सु। मौद्गीनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'मुद्ग' शब्द से भवन (उत्पत्ति-स्थान) अर्थ में तथा क्षेत्र अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**कौद्रवीणम्, कौलत्थीनम्।***

ढक्–

(२) व्रीहिशाल्योर्ढक् ।२।

प०वि०-व्रीहि-शाल्योः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे) ढक् १ ।१ ।

स०-व्रीहिश्च शालिश्च तौ व्रीहिशाली, तयोः-व्रीहिशाल्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाभ्यां धान्यानां व्रीहिशालिभ्यां भवने ढक्, क्षेत्रे ।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाभ्यां धान्यविशेषवाचिभ्यां व्रीहिशालिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भवनेऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति ।

उदा०-(व्रीहिः) व्रीहिणां भवनम्-व्रैहेयं क्षेत्रम् । **(शालिः)** शालीनां भवनम्-शालेयं क्षेत्रम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (व्रीहिशाल्योः) व्रीहि, शालि प्रातिपदिकों से (भवने) भवन अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो।*

*उदा०-**(व्रीहि)** चावलों का भवन-व्रैहेय क्षेत्र। **(शालि)** जड़हन चावलों का भवन-शालेय क्षेत्र। चावल बोने योग्य खेत।*

***सिद्धि-व्रैहेयम्।** व्रीहि+आम्+ढक्। व्रैह्+एय। व्रैहेय+सु। व्रैहेयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ धान्यविशेषवाची 'व्रीहि' शब्द से भवन-अर्थ में इस सूत्र से ढक् प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शालेयम्।***

यत्–

(३) यवयवकषष्टिकाद् यत् ।३।

प०वि०-यव-यवक-षष्टिकात् ५ ।१ यत् १ ।१ ।

स०-यवश्च यवकश्च षष्टिकश्च एतेषां समाहारो यवयवकष्टिकम्, तस्मात्-यवयवकषष्टिकात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-षष्ठीसमर्थाद् धान्याद् यवयवकषष्टिकाद् भवने यत्, क्षेत्रे।

अर्थ:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यो यवयवकषष्टिकेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति।

उदा०-**(यव:)** यवानां भवनम्-यव्यं क्षेत्रम्। **(यवक:)** यवकानां भवनम्-यवक्यं क्षेत्रम्। **(षष्टिक:)** षष्टिकानां भवनम्-षष्टिक्यं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (यवयवक-षष्टिकात्) यव, यवक, षष्टिक प्रातिपदिकों से (भवने) भवन अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो।*

*उदा०-**(यव)** जौओं का भवन-यव्य क्षेत्र। **(यवक)** जौओं का भवन-यवक्य क्षेत्र। **(षष्टिक)** साठी धानों का भवन-षष्टिक्य क्षेत्र। जौ आदि बोने योग्य खेत।*

सिद्धि-यव्यम्। *यव+आम्+यत्। यव्+य। यव्य+सु। यव्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'यव' शब्द से भवन अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यवक्यम्, षष्टिक्यम्।***

यत्-विकल्प:-

(४) विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्य:।४।

प०वि०-विभाषा १।१ तिल-माष-उमा-भङ्गा-अणुभ्य: ५।३।

स०-तिलं च माषश्च उमा च भङ्गा च अणुश्च ते तिलमाषोमा-भङ्गाणव:, तेभ्य:-तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्येभ्यस्तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यो भवने विभाषा यत्, क्षेत्रे।

अर्थ:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यस्तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति, पक्षे च खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(तिलम्)** तिलानां भवनम्-तिल्यं क्षेत्रम् (यत्)। तैलीनं क्षेत्रम् (खञ्)। **(माष:)** माषाणां भवनम्-माष्यं क्षेत्रम् (यत्)। माषीणं

क्षेत्रम् (खञ्)। **(उमा)** उमानां भवनम्-उम्यं क्षेत्रम् (यत्)। औमीनं क्षेत्रम् (खञ्)। **(भङ्गाः)** भङ्गानां भवनम्-भङ्गयं क्षेत्रम् (यत्)। भाङ्गीनं क्षेत्रम् (खञ्)। **(अणुः)** अणूनां भवनम्-अणव्यं क्षेत्रम् (यत्)। आणवीनं क्षेत्रम् (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (तिलमाषोमा-भङ्गाणुभ्यः) तिल, माष, उमा, भङ्गा, अणु प्रातिपदिकों से (भवने) भवन-अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (यत्) यत् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो और पक्ष में खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(तिल) तिलों का भवन-तिल्य क्षेत्र (यत्)। तैलीन क्षेत्र (खञ्)। **(माष)** *उड़दों का भवन-माष्य क्षेत्र (यत्)। माषीण क्षेत्र (खञ्)।* **(उमा)** *हल्दी का भवन-उम्य क्षेत्र (यत्)। औमीन क्षेत्र (खञ्)।* ***(भङ्गा)*** *भांग का भवन-भङ्गय क्षेत्र (यत्)। भाङ्गीन क्षेत्र (खञ्)।* ***(अणु)*** *सरसों का भवन-अणव्य क्षेत्र (यत्)। आणवीन क्षेत्र (खञ्)। तिल आदि बोने योग्य क्षेत्र।*

सिद्धि-(१) तिल्यम्। *तिल+आम्+य। तिल्+य। तिल्य+सु। तिल्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'तिल' शब्द से भवन अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माष्यम्, उम्यम्, भङ्गयम्।***

(२) अणव्यम्। *यहां 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) तैलीनम्। *तिल+आम्+खञ्। तैल्+ईन। तैलीन+सु। तैलीनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'तिल' शब्द से भवन अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माषीणम्, औमीनम्, भाङ्गीनम्।***

(४) आणवीनम्। *यहां 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

कृतार्थप्रत्ययविधिः

खः+खञ्-

(१) सर्वचर्मणः कृतः खखञौ।५।

प०वि०-सर्वचर्मणः ५।१ कृतः १।१ ख-खञौ १।२।

स०–सर्वं च तच्चर्म इति सर्वचर्म, तस्मात्–सर्वचर्मणः **'पूर्वकालैक-सर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन'** (२।१।४९) इति कर्मधारयः। खश्च खञ् च तौ खखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अत्र 'कृतः' इति प्रत्ययार्थसामर्थ्येन तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थात् सर्वचर्मणः कृतः खखञौ।

अर्थः–तृतीयासमर्थात् सर्वचर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे खखञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–सर्वचर्मणा कृतः–सर्वचर्मीणः (खः)। सार्वचर्मीणः (खञ्)।

आर्यभाषाः अर्थ–*तृतीया-समर्थ (सर्वचर्मणः) सर्वचर्मन् प्रातिपदिक से (कृतः) बनाया गया अर्थ में (खखञौ) ख और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–सर्वचर्म=पूरे चमड़े से बनाया हुआ-सर्वचर्मीण (ख)। सार्वचर्मीण।

*सिद्धि–(१) **सर्वचर्मीणः।** सर्वचर्मन्+टा+ख। सर्वचर्म्+ईन। सर्वचर्मीण+सु। सर्वचर्मीणः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सर्वचर्मन्' शब्द से कृत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'इन्' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(२) **सार्वचर्मीणः।** यहां 'सर्वचर्मन्' शब्द से 'खञ्' प्रत्यय करने पर **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *(१) **'पूरे चमड़े का बना हुआ'** इस अर्थ में सर्वचर्मीण या सार्वचर्मीण प्रयोग भी चलता था। इस शब्द का प्रयोग उस वस्तु के लिये होता था जिसके बनाने में गाय-भैंस के चमड़े का पूरा थान लग जाये। जैसे प्रायः कुएँ से पानी उठाने के लिये गोट, चरस या पुर के बनाने में ऐसा किया जाता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२७)।*

*(२) काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'सर्व' शब्द का 'कृत' प्रत्ययार्थ के साथ सम्बन्ध बतलाया है–**'सर्वश्चर्मणा कृतः'**। यदि 'सर्व' शब्द का 'कृत' शब्द के साथ सम्बन्ध माना जाये तो 'सर्वचर्मन्' शब्द से सामर्थ्याभाव से समास नहीं हो सकता अतः उन्होंने यहां असमर्थ-समास की कल्पना की है जो कि सूत्ररचना के विरुद्ध प्रतीत होती है। यहां 'सर्वचर्म' का अर्थ पूरा चमड़ा है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, चमड़े का पूरा बना हुआ नहीं। इस प्रकरण में आगे भी सर्वादि शब्दों से प्रत्यय-विधान किया गया है।*

दर्शनार्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः।६।

प०वि०–यथामुख-सम्मुखस्य ६।१ दर्शनः १।१ खः १।१।

स०–मुखस्य सदृशमिति यथामुखम्। **'यथाऽसादृश्ये'** (२।१।७) इत्यसादृश्येऽव्ययीभावसमासप्रतिषेधादस्मादेव निपातनात् सादृश्येऽव्ययीभावसमासः। समं मुखमिति सम्मुखम्। समशब्दः सर्वशब्दपर्यायः। अस्मादेव निपातनात् समशब्दस्यान्त्याकारस्य लोपः। यथामुखं च सम्मुखं च एतयोः समाहारो यथामुखसम्मुखम्, तस्य-यथामुखसम्मुखस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

दृश्यन्तेऽस्मिन्निति दर्शनः=आदर्शादिः प्रतिबिम्बाश्रय उच्यते। **'करणाधिकरयोश्च'** (३।३।११७) इत्यधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः। अत्र **'यथामुखसम्मुखस्य'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थाभ्यां यथामुखसम्मुखाभ्यां दर्शनः खः।

अर्थः–षष्ठीसमर्थाभ्यां यथामुखसम्मुखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां दर्शन इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–यथामुखं दर्शनः-यथामुखीन आदर्शः। सम्मुखस्य दर्शनः-सम्मुखीन आदर्शः।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (यथामुखसम्मुखस्य) यथामुख, सम्मुख प्रातिपदिकों से (दर्शनः) दर्शन अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यथामुख)** मुख के सदृश दिखानेवाला-यथामुखीन आदर्श (शीशा)। **(सम्मुख)** सारा मुख दिखानेवाला-सम्मुखीन आदर्श।*

सिद्धि-यथामुखीनः। *यथामुख+ङस्+ख। यथामुख्+ईन। यथामुखीन+सु। यथामुखीनः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'यथामुख' शब्द से दर्शन अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सम्मुखीनः।***

विशेषः *यथामुखीन और सम्मुखीन दो प्रकार के शीशे होते थे। पहला चपटा और दूसरा उन्नतोदर या बीच में उठा हुआ जिसमें सामने से ही ठीक देखा जा सके (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १३८)।*

व्याप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) तत् सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति।७।

प०वि०–तत् २।१ सर्वादेः ५।१ पथि-अङ्ग-कर्म-पत्र-पात्रम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) व्याप्नोति क्रियापदम्।

स०–सर्व आदिर्यस्य स सर्वादिः, तस्मात्-सर्वादेः (बहुव्रीहिः)। पन्थाश्च अङ्गं च कर्म च पत्रं च पात्रं एतेषां समाहारः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम्, तत्-पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–ख इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत् सर्वादेः पत्यङ्गकर्मपत्रपात्राद् व्याप्नोति खः।

अर्थ–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः सर्वादिभ्यः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्याप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(पथिन्)** सर्वपथं व्याप्नोति-सर्वपथीनो रथः। **(अङ्गम्)** सर्वाङ्गं व्याप्नोति-सर्वाङ्गीणस्तापः। **(कर्म)** सर्वकर्म व्याप्नोति-सर्वकर्मीणः पुरुषः। **(पत्रम्)** सर्वपत्रं व्याप्नोति-सर्वपत्रीणः सारथिः। **(पात्रम्)** सर्वपात्रं व्याप्नोति-सर्वपात्रीण ओदनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सर्वादेः) सर्व जिनके आदि में है उन (पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम्) पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र, पात्र प्रातिपदिकों से (व्याप्नोति) व्याप्त करता है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(पथिन्)** सर्वपथ=सब मार्गों पर चलनेवाला-सर्वपथीन रथ। **(अङ्ग)** सर्वाङ्ग=समस्त अङ्ग को घेरनेवाला-सर्वाङ्गीण ताप (बुखार)। **(कर्म)** सर्वकर्म=सब कर्म करनेवाला-सर्वकर्मीण पुरुष। **(पत्र)** सर्वपत्र=सब घोड़ा आदि जानवरों को हांकनेवाला-सर्वपत्रीण सारथि। **(पात्र)** सर्वपात्र=पकते समय पूरे पात्र को फूलकर व्याप्त करनेवाला-सर्वपात्रीण ओदन (भात)।*

सिद्धि-सर्वपथीनः। *सर्वपथिन्+अम्+ख। सर्वपथ्+ईन। सर्वपथीन+सु। सर्वपथीनः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ सर्वादि पथिन् शब्द अर्थात् 'सर्वपथिन्' शब्द से व्याप्नोति-**अर्थ** में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**सर्वाङ्गीणः** आदि।*

विशेषः *वह रथ जो ऐसा मतबूत बना हो कि अच्छे रास्ते के समान ही ऊबड़-खाबड़ मार्ग में भी ले जाया जा सके वह 'सर्वपथीन' कहलाता था। वह सारथि जो सब तरह के अर्थात् सीधे और कड़वे जानवरों को हांक सके 'सर्वपत्रीण' कहा जाता था। यह सारथि की सुघड़ाई का वाचक था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५५)।*

प्राप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) आप्रपदं प्राप्नोति।८।

प०वि०–आप्रपदम् अव्ययपदम्, प्राप्नोति क्रियापदम्।

स०–प्रपदम् इति पादस्याग्रमुच्यते। आ प्रपदाद् इति–आप्रपदम्। '**आङ् मर्यादाभिविध्योः**' (२।१।१३) इत्यव्ययीभावसमासः।

अनु०–तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् आप्रपदं प्राप्नोति खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् आप्रपद-शब्दात् प्रातिपकित् प्राप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–आप्रपदं प्राप्नोति–आप्रपीनः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (आप्रपदम्) आप्रपद प्रातिपदिक से (प्राप्नोति) प्राप्त करता है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०–आप्रपद=पैरों के अग्रभाग को प्राप्त करनेवाला-आप्रपदीन पट (वस्त्र)। पैरों के अग्रभाग तक नीचे लटकती हुई पुरुषों की धोती और स्त्रियों की साड़ी।

सिद्धि–आप्रपदीनः। आप्रपद+अम्+ख। आप्रपद्+ईन्। आप्रपदीन+सु। आप्रपदीनः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आप्रपद' शब्द से प्राप्नोति अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

बद्धाद्यर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु।९।

प०वि०– अनुपद-सर्वान्न-आयानयम् २।१ बद्धा-भक्षयति-नेयेषु ७।३।

स०-पदस्य अनु इति अनुपदम्। **'यस्य चायामः'** (२।१।१६) इति अव्ययीभावसमासः। सर्वं च तद् अन्नम् इति सर्वान्नम्। **'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन'** (२।१।४९) इति कर्मधारयसमासः। अयश्चासावनयश्च इति अयानयः (कर्मधारयः)। अनुपदं च सर्वान्नं च अयानयं च एतेषां समाहारः-अनुपदसर्वान्नायानयम्, तत्-अनुपदसर्वान्नायानयम् (समाहारद्वन्द्वः)। बद्धा च भक्षयतिश्च नेयश्च ते बद्धाभक्षयतिनेयाः, तेषु-बद्धाभक्षयतिनेयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुपदसर्वान्नायानयेभ्यो बद्धाभक्षयतिनेयेषु खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्योऽनुपदसर्वान्नायानयेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं बद्धाभक्षयतिनेयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अनुपदम्) अनुपदं बद्धा-अनुपदीना उपानत्। पदप्रमाणेत्यर्थः। **(सर्वान्नम्)** सर्वान्नानि भक्षयति-सर्वान्नीनः साधुः। **(अयानयः)** अयानयं नेयः-अयानयीनः शारः। फलकशिरसि स्थित इत्यर्थः। अयः=प्रदक्षिणम्, अनयः=प्रसव्यम्। प्रदक्षिणप्रसव्यगामिनां शाराणां यस्मिन् परशारैः पदानामसमावेशः सोऽयानय इति कथ्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ* ***(अनुपदसर्वान्नायानयम्)*** *अनुपद, सर्वान्न, अयानय प्रातिपदिकों से (बद्धाभक्षयतिनेयेषु) यथासंख्य बद्धा, भक्षयति, नेय अर्थों में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अनुपद)** अनुपद=पांव के प्रमाण (पुंवाणा) से बनाई गई-अनुपदीना उपानत् (जूती)। **(सर्वान्न)** सब अन्नों को खानेवाला-सर्वान्नीन साधु। **(अयानय)** अय=दाहिनी ओर तथा अनय=बाईं ओर से चलनेवाले चौपड़ के शारों की जिस चाल में प्रतियोगी की शारों द्वारा पदों में समावेश न होना 'अयानय' कहाता है। अयानय को नेय=ले जाने योग्य-अयानयीन शार (शतरंज का मोहरा)।*

सिद्धि-अनुपदीना। *अनुपद+अम्+ख। अनुपद्+ईन। अनुपदीन+टाप्। अनुपदीना+सु। अनुपदीना।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुपद' शब्द से 'बद्धा' अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सर्वान्नीनः, अयानयीनः।***

विशेषः *(१) लोक में जूता बनवाने के दो प्रकार हैं, एक तो मोची को बुलवा कर, पैर की नाप देकर और दूसरे हाट में जाकर, जो अपने पैर की माप का हो, पहन लेते हैं। पहले प्रकार की पनही के लिये लोक में 'अनुपदीना' शब्द चलता था, जिसका पाणिनि ने उल्लेख किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२७)।*

(२) (चौपड़ के शारों की) दाहिनी ओर की चाल 'अय' है और बाईं ओर की 'अनय' (आमने-सामने बैठे हुये खिलाड़ियों की दृष्टि से गोटें दाहिनी-बाईं ओर से चलती हुई आती हैं)। वह घर 'अयानय' है जिसमें दाहिनें-बायें दोनों ओर से आती हुई गोटें (अर्थात् दोनों खिलाड़ियों की गोटें) एक-दूसरे से या अपनी शत्रु-गोटों से पिट न सकें। ऐसी गोट जिसे ऐसे घर में ले जाना या पुगाना हो वह 'अयानयीन' कही जाती है। चौपड़ के फलक पर बीच का कोठा वह स्थान है जहां पहुंचकर गोटें फिर मरती नहीं। हमारी दृष्टि में यही 'अयानयीन' पद होना चाहिये (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १६९)।

अनुभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति।१०।

प०वि०–परोवर-परम्पर-पुत्रपौत्रम् २।१ अनुभवति क्रियापदम्।

स०–परोवरश्च परम्पराश्च पुत्रपौत्राश्च एतेषां समाहारः परोवर-परम्परपुत्रपौत्रम्, तत्-परोवरपरम्परपुत्रपौत्रम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् परोवरपरम्परपुत्रपौत्रेभ्योऽनुभवति खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः परोवरपरम्परपुत्रपौत्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनुभवतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(परोवराः)** पराँश्च अवराँश्च अनुभवति-परोवरीणः। परावरशब्दस्य परोवरभावो निपात्यते। **(परम्पराः)** पराँश्च परतराँश्च अनुभवति-परम्परीणः। परम्परतरशब्दस्य परम्परभावो निपात्यते। **(पुत्रपौत्राः)** पुत्रपौत्रान् अनुभवति-पुत्रपौत्रीणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परोवरपरम्परपुत्रपौत्रम्) परोवर, परम्पर, पुत्रपौत्र प्रातिपदिकों से (अनुभवति) अनुभव करता है, अर्थ में (खः) ख **प्रत्यय** होता है।*

उदा०-(परोवर) परवर्ती और अवरवर्ती जनों के सुख को अनुभव करनेवाला-परोवरीण। यहां पर-अवर शब्द के स्थान में परोवर भाव निपातित है। (परम्पर) परवर्ती और परतरवर्ती जनों के सुख को अनुभव करनेवाला-परम्परीण। यहां पर-परतर शब्द के स्थान में परम्पर भाव निपातित है। (पुत्रपौत्र) पुत्र और पौत्रों के सुख को अनुभव करनेवाला-पुत्रपौत्रीण।

सिद्धि-परोवरीण:। परोपवर+शस्+ख। परोवर्+ईन। परोवरीण+सु। परोवरीण:।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'परोवर' शब्द से अनुभवति-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप तथा 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।१) से णत्व होता है। यहां पर-अवर शब्द के स्थान में परोवर भाव भी निपातित है (पर+अवर=पर+उवर=परोवर)। ऐसे ही-**परम्परीण:, पुत्रपौत्रीण:।***

गामि-अर्थप्रत्ययविधिः

खः-

(१) अवारपारात्यन्तानुकामं गामी।११।

प०वि०-अवारपार-अत्यन्त-अनुकामम् २।१ गामी १।१।

स०-अवारपारश्च अत्यन्तं च अनुकामं च एतेषां समाहारोऽवारपारात्यन्तानुकामम्, तत्-अवारपारात्यन्तानुकामम् (समाहारद्वन्द्वः)।

कृद्वृत्तिः-गमिष्यतीति गामी। **'भविष्यति गम्यादयः'** (३।३।३) इति गामि-शब्दस्य भविष्यति काले साधुत्वम्। **'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः'** (२।३।७०) इति षष्ठीप्रतिषेधात् **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) इति सूत्रपाठे द्वितीया विभक्तिर्वर्तते।

अनु०-तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवारपारात्यन्तानुकामेभ्यो गामी खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्योऽवारपारात्यन्तानुकामेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गामी इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अवारपारम्) आवारपारं गामी-अवारपारीणः। **विगृहीताद-पीष्यते**-अवारं गामी-अवारीणः। पारं गामी-पारीणः। **विपरीताच्च**-पारावारं

गामी-पारावारीणः। **(अत्यन्तम्)** अत्यन्तं गामी-अत्यन्तीनः, भृशं गन्तेत्यर्थः। **(अनुकामम्)** अनुकामं गामी-अनुकामीनः, यथेष्टं गन्तेत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अवारपारात्यन्तानुकामम्) अवारपार, अत्यन्त, अनुकाम प्रातिपदिकों से (गामी) जानेवाला अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अवारपार) इस ओर तथा उस ओर के नदी तट पर जानेवाला-अवारपारीण। ***विगृहीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है***–*अवार=इस ओर के नदी तट पर जानेवाला-अवारीण। पार=उस ओर के नदी तट पर जानेवाला-पारीण।* ***विपरीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है***–*पारावार अर्थात् उस ओर के तथा इस ओर के नदी तट पर जानेवाला-पारावारीण (तैराक)।* ***(अत्यन्त)*** *अत्यधिक चलनेवाला-अत्यन्तीन।* ***(अनुकाम)*** *इच्छानुसार चलनेवाला-अनुकामीन।*

सिद्धि-अवारपारीणः। *अवारपार+अम्+ख। अवारपार्+ईन। अवारपारीण+सु। अवारपारीणः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, 'अवारपार' शब्द से गामी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग के अकार का लोप और णत्व होता है। ऐसे ही-**आत्यन्तीनः, अनुकामीनः।***

विजायते-अर्थप्रत्ययविधिः

खः—

(१) समां समां विजायते।१२।

प०वि०-समाम् ७।१ (समायाम्-यलोपः)। समाम् ७।१ (समायाम्-यलोपः) विजायते क्रियापदम्।

'समां समाम्' इत्यत्र **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) इति वीप्साया द्विर्वचनं वर्तते। समां समाम् इति सुबन्तसमुदायश्च प्रकृतिर्वेदितव्या समाम् (समायाम्) इति सप्तमी-निर्देशात् सप्तमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-सप्तमी-समर्थात् समां समां सुबन्तसमुदायाद् विजायते खः।

अर्थः-सप्तमी-समर्थात् समां समाम् इति सुबन्तसमुदायाद् विजायते इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-समां समाम् (समायां समायाम्) विजायते-समांसमीना गौः। प्रतिवर्षं प्रसूते इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-सप्तमी-समर्थ (समां समाम्) समा-समा इस सुबन्त-समुदाय से (विजायते) बिआती है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-समा-समा=प्रत्येक वर्ष में बिआनेवाली-समांसमीना गौः (बरस ब्यावा गाया)।

सिद्धि-समांसमीना। *समांसमा+ङि+ख। समांसम्+ईन। समांसमीन्+टाप्। समांसमीना+सु। समांसमीना।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'समांसमा' शब्द से विजायते-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'समांसमाम्' यहां द्वितीया-विभक्ति स्वीकार की है क्योंकि **'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे'** (२।३।५) से कालवाची शब्दों में अत्यन्त-संयोग अर्थ में द्वितीया-विभक्ति होती है। यहां 'विजायते' शब्द का अर्थ बिआती है; है। अत्यन्त प्रसव-क्रिया के समा (वर्ष) के साथ अत्यन्त संयोग नहीं है। पं० जयादित्य के अनुसार 'विजायते' का अर्थ गर्भधारण करती है; है। गर्भधारण करना रूप क्रिया का भी समा (वर्ष) के साथ अत्यन्त संयोग नहीं है क्योंकि वह तात्कालिक क्रिया है। महाभाष्यकार के अनुसार 'समांसमाम्' यहां सप्तमी-विभक्ति (समायाम् समायाम्) है। यहां पूर्वपद के यकार का लोप निपातित है, उत्तरपद ङि-प्रत्यय का **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से लुक् हो ही जाता है।*

खः (निपातनम्)–

(२) अद्यश्वीनाऽवष्टब्धे।१३।

प०वि०-अद्यश्वीना १।१ अवष्टब्धे ७।१।

अनु०-खः, विजायते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तमीसमर्थम् अद्यश्वीना इति पदं विजायते खोऽवष्टब्धे।

अर्थः-सप्तमीसमर्थम् **'अद्यश्वीना'** इति पदं विजायते इत्यस्मिन्नर्थे ख-प्रत्ययान्तं निपात्यते, अवष्टब्धे गम्यमाने।

उदा०-अद्य श्वो वा विजायते-अद्यश्वीना गौः। अद्यश्वीना वडवा।

आर्यभाषाः *अर्थ-सप्तमी-समर्थ (अद्यश्वीना) 'अद्यश्वीना' यह पद (विजायते) बिआती है, अर्थ में (खः) ख-प्रत्ययान्त निपातित है (अवष्टब्धे) यदि वहां अवष्टब्ध=अविदूर (निकट) काल की प्रतीति हो।*

उदा०-अद्य-श्व=आज और कल में बिआनेवाली-अद्यश्वीना गौ। अद्यश्वीना वडवा (घोड़ी)।

सिद्धि-अद्यश्वीना। अद्यश्व+ङि+ख। अद्यश्व्+ईन। अद्यश्वीन+टाप्। अद्यश्वीना+सु। अद्यश्वीना।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अद्यश्वीना' शब्द विजायते-अर्थ में तथा अवष्टब्ध (सामीप्य) अर्थ में इस सूत्र से ख-प्रत्ययान्त निपातित है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग के अकार का लोप और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् **प्रत्यय** होता है।*

***विशेषः** अवष्टब्धः-अव उपसर्ग पूर्वक 'स्तम्भ' धातु के सकार को अविदूर (निकट) अर्थ में **'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः'** (८।१।४) से षत्व होता है। अवष्टब्ध=अविदूर=निकट (समीप)।*

खः (निपातनम्)–

(३) आगवीनः ।१४।

प०वि०-आगवीनः १।१।

अर्थः-आगवीन इति पदं निपात्यते। अत्र आङ्पूर्वाद् गोशब्दात् आ तस्य गोः प्रतिदानात् कारिणि अर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-आगवीनः कर्मकरः। यो गवा भृतः कर्म करोति, आ तस्य गोः प्रत्यर्पणात्, स आगवीन इत्युच्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आगवीनः) आगवीन यह पद निपातित है। यहां उपसर्ग 'गो' शब्द से उसे गौ वापिस लौटाने तक, कारी=कार्य करनेवाला अर्थ में 'ख' **प्रत्यय** निपातित है।*

***उदा०**-आगवीन कर्मकर (नौकर)। जो गो-प्रदान से खरीदा हुआ पुरुष, गोस्वामी के द्वारा उसे गौ के लौटाने तक कार्य करता है, वह सेवक 'आगवीन' कहाता है।*

***सिद्धि-आगवीनः।** आङ्+गो+सु+ख। आ+गव्+ईन। आगवीन+सु। आगवीनः।*

*यहां आङ् उपसर्ग पूर्वक प्रतिदानवाची 'गो' शब्द से कारी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश तथा **'एचोऽयवायावः'** (२।१।७८) से 'अव्' आदेश होता है।*

***विशेषः** आगवीन कर्मकर वह मजदूर था जो गाय मिल जाने तक काम करे। इसका ब्यौंत यूं बैठता है-माँ का दूध छोड़ देने पर बछिया किसी कमेरे को चराई पर दे दी जाती है। यदि वह अपने घर पर चरावे तब गाय के बिआने पर उसका मूल्य कूत कर आधा-आधा कर दिया जाता है। दोनों में कोई आधा मूल्य देकर गाय ले लेता है। इसे अधवट चराई कहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि चरानेवाला मालिक के यहां ही काम करता रहता है। जब गाय बिआ जाती है तो उसकी भृति के बदले में वह गाय उसी को दे दी जाती है। यही 'आगवीन' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २१६)।*

अलङ्गामि-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) अनुग्वलङ्गामी।१५।

प०वि०–अनुगु अव्ययपदम्, अलङ्गामी १।१।

स०–गोः पश्चाद् इति अनुगु **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) इति पश्चादर्थेऽव्ययीभावः। **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) इति च ह्रस्वत्वम्। अलं गच्छतीति–अलङ्गामी। **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) इति णिनिः प्रत्ययः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०–तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् अनुगु अलङ्गामी खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अनुगु–शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–अनुगु अलङ्गामी=पर्याप्तं गच्छतीति–अनुगवीनो गोपालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अनुगु) अनुगु प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन-सामर्थ्यवाला अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०–अनुगु=गौ के पीछे अलङ्गामी जाने का जो सामर्थ्य रखता है वह–अनुगवीन गोपालक।

*सिद्धि–**अनुगवीनः।** अनुगु+आम्+ख। अनुगो+ईन। अनुगवीन+सु। अनुगवीनः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुगु' शब्द से अलङ्गामी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

विशेषः *जब ग्वाले का नौजवान लड़का स्वतन्त्र रूप से जंगल में गायों को चरा लाने की आयु प्राप्त कर लेता तो उसे 'अनुगवीन' कहते थे। जैसे वयःप्राप्त क्षत्रिय कुमार के लिये **'कवचहर'** शब्द था, वैसे ही गोपाल के पुत्र के लिये **'अनुगवीन'** (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २१६)।*

यत्+खः–

(२) अध्वनो यत्खौ।१६।

प०वि०–अध्वनः ५।१ यत्-खौ १।२।

स०–यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अलङ्गामी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अध्वनोऽलङ्गामी यत्खौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अध्वन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-अध्वानम् अलङ्गामी-अध्वन्यः (यत्)। अध्वनीनः (खः)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) द्वितीया-समर्थ (अध्वनः) अध्वन् प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन सामर्थ्यवाला अर्थ में (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अध्वा=मार्ग को तय करने में समर्थ-अध्वन्य (यत्)। अध्वनीन (ख)।

सिद्धि-(१) ***अध्वन्यः।*** *अध्वन्+अम्+यत्। अध्वन्+य। अध्वन्य+सु। अध्वन्यः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अध्वन्' शब्द से अलंगामी अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यहां 'ये च भावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है।*

(२) ***अध्वनीनः।*** *अध्वन्+अम्+ख। अध्वन्+ईन। अध्वनीन+सु। अध्वनीनः।*

यहां 'आत्माध्वानौ खे' (६।४।१६९) से प्रकृतिभाव होता है, शेष कार्य पूर्ववत् है।

छः+यत्+खः--

(३) अभ्यमित्राच्छ च।१७।

प०वि०-अभ्यमित्रात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-न मित्रमिति अमित्रम्, अमित्रम् अभि इति अभ्यमित्रम्, तस्मात्-अभ्यमित्रात् (नञ्गर्भिताव्ययीभावः) **'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये'** (२।१।१४) इत्यव्ययीभावः।

अनु०-तत्, अलङ्गामी, यत्खौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अभ्यमित्राद् अलङ्गामी छो यत्खौ च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अभ्यमित्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे छो यत्खौ च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-अभ्यमित्रम् अलङ्गामी-अभ्यमित्रीयः (छः)। अभ्यमित्र्यः (यत्)। अभ्यमित्रीणः (खः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अभ्यमित्रात्) अभ्यमित्र प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन-सामर्थ्यवाला अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्खौ) यत्, ख प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अभ्यमित्र=अमित्र (शत्रु) के अभिमुख जाने का सामर्थ्य रखनेवाला-अभ्यमित्रीय (छ)। अभ्यमित्र्य (यत्)। अभ्यमित्रीण (ख)।

सिद्धि-(१) ***अभ्यमित्रीयः।*** *अभ्यमित्र+अम्+छः। अभ्यमित्र्+ईय। अभ्यमित्रीय+सु। अभ्यमित्रीयः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अभ्यमित्र' शब्द से अलंगामी अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***अभ्यमित्रीणः।*** *यहां 'अभ्यमित्र' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।*

(३) ***अभ्यमित्रीणः।*** *यहां 'अभ्यमित्र' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है।* ***'अट्कुप्वाङ्०'*** *(८।४।२) से णत्व होता है।*

विशेषः *जो राजा अपने मण्डल में इतना शक्तिशाली होता था कि शत्रु के विरुद्ध चढ़ाई कर सके वह अभ्यमित्रीण, {अभ्यमित्र्य} या अभ्यमित्रीण कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०३)।*

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

खञ्-

(१) गोष्ठात् खञ् भतपूर्वे।१८।

प०वि०-गोष्ठात् ५।१ खञ् १।१ भूतपूर्वे ७।१।

स०-गावस्तिष्ठन्त्यस्मिन्निति-गोष्ठम् (उपपदतत्पुरुषः)। **वा०- 'घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम्'** (३।३।५८) इति अधिकरणे कारके कः प्रत्ययः। पूर्वं भूत इति भूतपूर्वः (केवलसमासः) 'सुप् सुपा' इति समासः।

अन्वयः-प्रथमासमर्थाद् भूतपूर्वेऽर्थे वर्तमानाद् गोष्ठ-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भूतपूर्वो गोष्ठः-गौष्ठीनो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-प्रथमा-समर्थ (भूतपूर्वे) भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान (गोष्ठात्) गोष्ठ प्रातिपदिक से स्वार्थ अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-भूतपूर्व गोष्ठ-गौष्ठीन देश। वह स्थान जहां पहले गौवें बैठती थी। जहां अब गौवें बैठती हैं वह देश 'गोष्ठ' कहाता है।

सिद्धि-गौष्ठीनः । गोष्ठ+सु+खञ्। गौष्ठ्+ईन। गौष्ठीन्+सु। गौष्ठीनः ।

यहां प्रथमा-समर्थ, भूतभूर्व उपाधिमान् 'गोष्ठ' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *पशुओं के गोष्ठ-स्थान नये-नये चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटते रहते थे। पाणिनि ने लिखा है कि वह भूमि जहां पहले कभी गोष्ठ रहा हो, पर अब हट गया हो, गौष्ठीन कही जाती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १४७)।*

एकाहगमार्थप्रत्ययविधिः

खञ्–

अश्वस्यैकाहगमः।१६।

प०वि०-अश्वस्य ६।१ एकाहगमः १।१।

स०-एकं च तद् अहरिति-एकाहः, एकाहेन गम्यते इति एकाहगमः (कर्मधारयगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)। **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३२) इति तृतीयासमासः।

अनु०-खञ् इत्यनुवर्तते। अत्र **'अश्वस्य'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् अश्वाद् एकाहगमः खञ्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् अश्व-शब्दात् प्रातिपदिकाद् एकाहगम इत्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वस्यैकाहगमः-आश्वनोऽध्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-*षष्ठी-समर्थ (अश्वस्य) अश्व प्रातिपदिक से (एकाहगमः) एक दिन में तय करने योग्य अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय है।*

उदा०-अश्व=घोड़े का एक दिन में तय किया जानेवाला-आश्वीन मार्ग।

सिद्धि-आश्वीनः । अश्व+ङस्+खञ्। आश्व्+ईन। आश्वीन+सु। आश्वीनः ।

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से एकाहगम अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *एक घोड़ा एक दिन में जितनी यात्रा करता था वह दूरी 'आश्वीन' कहलाती थी। अथर्ववेद में यह ३ योजन और ५ योजन के बाद आश्वीन दूरी का उल्लेख है- 'यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्वीनम्' (अथर्व० ६।१३१।३)।*

इस सम्बन्ध में भाष्यकार ने रोचक सूचना दी है-जो चार योजन दूरी तय करे वह 'अश्व' है। जो आठ योजन दूरी तय करे वह 'अश्वतर' है। ***"अश्वोऽयं यश्चत्वारि योजनानि गच्छति, अश्वतरोऽयं योऽष्टौ योजनानि गच्छति ५।३।५"*** *(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५७)।*

खञ् (निपातनम्)–

(१) शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः।२०।

प०वि०-शालीन-कौपीने १।२ अधृष्ट-अकार्ययोः ७।२।

स०-शालीनश्च कौपीनं च ते शालीनकौपीने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न धृष्ट इति अधृष्टः, न कार्यमिति अकार्यम्। अधृष्टश्च अकार्यं च ते अधृष्टाकार्ये, तयोः-अधृष्टाकार्ययोः (नञ्गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, खञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शालीनकौपीने खञ् अधृष्टाकार्ययोः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थौ शालीन-कौपीनशब्दौ खञ्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, यथासंख्यम् अधृष्टाकार्ययोरभिधेययोः।

उदा०-शालाप्रवेशमर्हति-शालीनोऽधृष्टः। कूपावतारमर्हति-कौपीनम् अकार्यम् (पापम्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-विभक्ति से समर्थ (शालीनकौपीने) शालीन, कौपीन शब्द (खञ्) खञ्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (अधृष्टाकार्ययोः) यथासंख्य अधृष्ट=अचतुर तथा अकार्य=पाप अर्थ अभिधेय में।*

उदा०-जो शाला (घर) में प्रविष्ट रह सकता है वह-शालीन अधृष्ट (भीरु)। जो कूप में डालने योग्य है वह-कौपीन अकार्य (पाप)।

सिद्धि-(१) शालीनः। शालाप्रवेश+अम्+खञ्। शाला०+ईन। शाल्+ईन। शालीन+सु। कौपीनम्।

यहां द्वितीया-समर्थ 'शालाप्रवेश' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय और 'प्रवेश' उत्तरपद का लोप निपातित है। आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।

*(२) **कौपीनम्।** कूपावतार+अम्+खञ्। कूप०+ईन। कौप्+ईन। कौपीन+सु। कौपीनम्।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'कूपावतार' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय और 'अवतार' उत्तरपद का लोप निपातित है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

***विशेषः** जो कूपावतार कूएं में डालने योग्य अर्थात् छुपाने के योग अकार्य (पाप) है वह कौपीन कहाता है। छुपाने के योग्य होने से पुरुषलिङ्ग को भी कौपीन कहते हैं। लिङ्ग का आच्छादक साधुओं का वस्त्र-विशेष भी लिङ्ग-संयोग से कौपीन कहाता है।*

जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः

खञ्–

(१) व्रातेन जीवति।२१।

प०वि०–व्रातेन ३।१ जीवति क्रियापदम्।

अनु०–खञ् इत्यनुवर्तते। '**व्रातेन**' इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थाद् व्रात-शब्दात् प्रातिपदिकाद् जीवतीत्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–व्रातेन जीवति–व्रातीनः पुरुषः।

नानाजातीया अनियतवृत्तयः शारीरश्रमजीविनः सङ्घा व्राता इत्युच्यन्ते। तत्साहचर्यात् तेषां कर्मापि व्रातमिति कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-तृतीया-समर्थ (व्रातेन) व्रात प्रातिपदिक से (जीवति) जीता है, अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–व्रात=शारीरिक श्रम से जो जीविका कमाता है वह-व्रातीन पुरुष।

नाना जातिवाले, अनिश्चितवृति (जीविका) वाले, शारीरिक श्रम से जीविका-अर्जन करनेवाले लोगों का संघ 'व्रात' कहाता है। उनके साहचर्य से उनका कर्म भी 'व्रात' कहाता है।

*सिद्धि–**व्रातीनः।** व्रात+टा+खञ्। व्रात्+ईन। व्रातीन+सु। व्रातीनः।*

यहां तृतीया-समर्थ, व्रात-कर्मवाची 'व्रात' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *वे लोग जो लूट-मारकर जीविका चलानेवाले, लगभग जंगली हालत में आर्यावर्त की सीमाओं पर प्राचीनकाल से बसे थे, ऐसे उत्सेधजीवी (शारीर श्रमजीवी) लोग पाणिनि के समय व्रात कहलाते थे। ये विशेष करके भारत के उत्तर-पश्चिम कबाइली इलाकों में थे। ये लोग हिन्दूसमाज की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व्यवस्था से बाहर ही माने जाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ९०)।*

खञ् (निपातनम्)–

(१) साप्तपदीनं सख्यम्।२२।

प०वि०–साप्तपदीनम् १।१ सख्यम् १।१।

अनु०–खञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थं साप्तपदीनं खञ्, सख्यम्।

अर्थः–तृतीयासमर्थं साप्तपदीनमिति पदं खञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, सख्यं चेत् तद् भवति।

उदा०–सप्तभिः पदैरवाप्यते-साप्तपदीनं सख्यम्।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*तृतीया-समर्थ (साप्तपदीनम्) साप्तपदीन पद (खञ्) खञ् प्रत्ययान्त निपातित है (सख्यम्) यदि वह सख्य=मित्रता अर्थ का वाचक हो।*

उदा०–जो सात पदों (कदम) से प्राप्त किया जाता है वह-साप्तपदीन सख्य (मित्रता)।

सिद्धि-साप्तपदीनम्। *सप्तपद+भिस्+खञ्। सप्तपद्+ईन। साप्तपदीन+सु। साप्तपदीनम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'सप्तपद' शब्द से अवाप्यते-अर्थ में इस सूत्र से 'ख्' प्रत्यय निपातित है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *वैदिक विवाह-संस्कार विधि में वर और वधू को ईशान दिशा में सात पद चलने का विधान किया गया है जिसमें सातवां पद सख्य=मित्रता अर्थ का द्योतक है। सप्तपदी के मन्त्र निम्नलिखित हैं–*

१. ***ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः।।***

२. ***ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव०।।***

३. ***ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव०।।***

४. ***ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव०।।***

५. *ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव।।*

६. *ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव०।।*

७. *ओ सखे सप्तपदी भव०।। आश्व०गृ० १।७।१९।।*

खञ् (निपातनम्)–

(१) हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्।२३।

प०वि०–हैयङ्गवीनम् १।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–खञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थं हैयङ्गवीनं खञ्, संज्ञायाम्।

अर्थः–षष्ठीसमर्थं हैयङ्गवीनमिति पदं विकारेऽर्थे खञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, संज्ञायां विषये।

उदा०–ह्योगोदोहस्य विकारः–हैयङ्गवीनं घृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–षष्ठी-समर्थ (हैयङ्गवीनम्) हैयङ्गवीन पद खञ्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०–ह्योगोदोह=कल के गो-दोनहन (दूध) का विकार-हैयङ्गवीन घृत (मक्खन)।

***सिद्धि**–हैयङ्गवीनम्। ह्योगोदोह+ङस्+खञ्। हियङ्गु+ईन। हैयङ्गो+ईन। हैयङ्गवीन+सु। हैयङ्गवीनम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'ह्योगोदोह' शब्द से विकार अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से खञ् प्रत्यय और 'ह्योगोदोह' के स्थान में 'हियङ्गु' आदेश निपातित है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) अंग को गुण होता है।

पाक-मूलार्थप्रत्ययविधिः

कुणप्-जाहच्–

(१) तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणप्जाहचौ।२४।

प०वि०–तस्य ६।१ पाक-मूले ७।१ पील्वादि-कर्णादिभ्यः ५।३ कुणप्-जाहचौ १।२।

स०–पाकश्च मूलं च एतयोः समाहारः पाकमूलम्, तस्मिन्–पाकमूले (समाहारद्वन्द्वः)। पीलु आदिर्येषां ते पील्वादयः, कर्ण आदिर्येषां ते कर्णादयः, पील्वादयश्च कर्णादयश्च ते पील्वादिकर्णादयः, तेभ्यः–पील्वादिकर्णादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तस्य पील्वादिकर्णादिभ्यः पाकमूले कुणप्जाहचौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणप्जाहचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(पील्वादि) पीलूनां पाकः-पीलुकुणः। कर्कन्धुकुणः, इत्यादिकम्। **(कर्णादिः)** कर्णस्य मूलम्-कर्णजाहम्। अक्षिजाहम्, इत्यादिकम्।

(१) पीलु। कर्कन्धु। शमी। करीर। कवल। बदर। अश्वत्थ। खदिर। इति पील्वादयः।।

(२) कर्ण। अक्षि। नख। मुख। मख। केश। पाद। गुल्फ। भ्रूभङ्ग। दन्त। ओष्ठ। पृष्ठ। अङ्गुष्ठ। इति कर्णादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पील्वादिकर्णादिभ्यः) पीलु-आदि तथा कर्ण-आदि प्रातिपदिकों से (पाकमूले) यथासंख्य पाक और मूल अर्थ में (कुणप्जाहचौ) यथासंख्य कुणप् और जाहच् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(पील्वादि)** पीलु फल का पाक-पीलुकुण (जाळवृक्ष का पका हुआ फल)। कर्कन्धु फल का पाक-कर्कन्धुकुण (पका हुआ बेर) इत्यादि। **(कर्णादि)** कर्ण का मूल-कर्णजाह (कान की जड़)। अक्षि का मूल-अक्षिजाह (आंख की जड़) इत्यादि।*

सिद्धि-(१) पीलुकुणः। *पीलु+आम्+कुणप्। पीलु+कुण। पीलुकुण+सु। पीलुकुणः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पीलु' शब्द से पाक=फल अर्थ में इस सूत्र से 'कुणप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कर्कन्धुकुणः।***

(२) कर्णजाहम्। *कर्ण+ङस्+जाहच्। कर्ण+जाह। कर्णजाह+सु। कर्णजाहम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कर्ण' शब्द से मूल=जड़ अर्थ में इस सूत्र से 'जाहच्' प्रत्यय है। 'जाहच्' प्रत्यय के जकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत् संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे ही-**अक्षिजाहम्।***

तिः—

(२) पक्षात् तिः।२५।

प०वि०-पक्षात् ५।१ तिः १।१।

अनु०-तस्य, मूलम् इति चानुवर्तते, पाक इति नानुवर्तते। तस्याऽर्थाभावात्। **'एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशोऽनुवर्तते'** इति परिभाषा-वचनात्।

अन्वयः-तस्य पक्षाद् मूलं तिः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् पक्ष-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मूलमित्यस्मिन्नर्थे तिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पक्षस्य मूलम्-पक्षतिः प्रतिपदा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पक्षात्) पक्ष प्रातिपदिक से (मूलम्) मूल अर्थ में (तिः) ति प्रत्यय होता है।*

उदा०-पक्ष का मूल-पक्षति प्रतिपदा। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की मूलतिथि-'पक्षति' (पड़वा) कहाती है। संस्कृत साहित्य में पक्षी के पंख के मूल-स्थान को भी 'पक्षति' कहा गया है।

सिद्धि-पक्षतिः। *पक्ष+ङस्+ति। पक्ष+ति। पक्षति+सु। पक्षतिः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पक्ष' शब्द से मूल अर्थ में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय है।

वित्तार्थप्रत्ययविधिः

चुञ्चुप्+चणप्-

(१) तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।२६।

प०वि०-तेन ३।१ वित्तः १।१ चुञ्चुप्-चणपौ १।२।

स०-चुञ्चुप् च चणप् च तौ-चुञ्चुप्चणपौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् वित्त इत्यस्मिन्नर्थे चुञ्चुप्चणपौ प्रत्ययौ भवतः। वित्तः=प्रतीतः, प्रसिद्ध इत्यर्थः।

उदा०-विद्यया वित्तः-विद्याचुञ्चुः (चुञ्चुप्)। विद्याचणः (चणप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (वित्तः) प्रसिद्ध अर्थ में (चुञ्चुप्चणपौ) चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-विद्या से जो वित्त=प्रसिद्ध है वह-विद्याचुञ्चु (चुञ्चुप्)। विद्याचणः (चणप्)।

सिद्धि-(१) विद्याचुञ्चुः। *विद्या+टा+चुञ्चुप्। विद्या+चुञ्चु। विद्याचुञ्चु+सु। विद्याचुञ्चुः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'विद्या' शब्द से वित्त अर्थ में 'चुञ्चुप्' प्रत्यय है। 'चुञ्चुप्' प्रत्यय के आदि-चकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

(२) विद्याचण: । यहां पूर्वोक्त 'विद्या' शब्द से 'चणप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'चणप्' प्रत्यय के चकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

ना+नाञ्--

(१) विनञ्भ्यां नानाञौ नसह।२७।

प०वि०-वि-नञ्भ्याम् ५।२ ना-नाञौ १।२ न-सह अव्ययपदम्।

स०-विश्च नञ् च तौ विनञौ, ताभ्याम्-विनञ्भ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। नाश्च नाञ् च तौ नानाञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न सह इति नसह (अलुक्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-न सह विनञ्भ्यां स्वार्थे नानाञौ।

अर्थः-नसह=असहार्थे वर्तमानाभ्यां विनञ्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं नानाञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(वि) न सह इति-विना। **(नञ्)** न सह इति-नाना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नसह) असह=पृथक्भाव अर्थ में विद्यमान (विनञ्भ्याम्) वि, नञ् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (नानाञौ) ना और नाञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(वि)** नसह=असह (पृथक्)-विना। **(नञ्)** नसह=असह (पृथक्)-नाना।*

*सिद्धि-(१) **विना।** वि+सु+ना। वि+ना। विना+सु। विना।*

*यहां नसह-अर्थ में विद्यमान 'वि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'ना' प्रत्यय है। 'विना' शब्द का स्वरादिगण में पाठ होने से **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **नाना।** नञ्+सु+नाञ्। न+ना। ना+ना। नाना+सु। नाना।*

*यहां नसह-अर्थ में विद्यमान 'नञ्' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'नाञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है। 'नाञ्' प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**नाना।***

शालच्+शङ्कटच्--

(२) वेः शालच्छङ्कटचौ।२८।

प०वि०-वेः ५।१ शालच्-शङ्कटचौ १।२।

स०-शालच् च शङ्कटच् च तौ शालच्छङ्कटचौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-वेः प्रातिपदिकात् स्वार्थे शालच्छङ्कटचौ।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनाद् वि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे शालच्छङ्कटचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-विगते शृङ्गे-विशाले। विगते शृङ्गे-विशङ्कटे। तच्छृङ्गसंयोगाद् गौरपि विशालः, विशङ्कट इति च कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वेः) ससाधनक्रियावाची 'वि' उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में (शालच्छङ्कटचौ) शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-विगत=विशेष बढ़े हुये शृङ्ग-विशाल। विगत=विशेष बढ़े हुये शृङ्ग-विशङ्कट। विशालो गौः। विशङ्कटो गौः। विशाल=विशेष बढ़े हुये शृंगों (सींग) के संयोग से गौ (बैल) भी विशाल तथा विशङ्कट कहाता है।

सिद्धि-(१) विशालः। *वि+सु+शालच्। वि+शाल। विशाल+सु। विशालः।*

यहां ससाधान क्रियावाचक 'वि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से शालच् प्रत्यय है। ***साधन***=*लिङ्ग, वचन।*

(२) विशङ्कटः। *यहां पूर्वोक्त 'वि' शब्द से 'शङ्कटच्' प्रत्यय है।*

विशेषः *'विशाल' आदि शब्द वास्तव में गुणवाची शब्द हैं, इनकी **जैसे-तैसे** सिद्धि की जाती है। इनमें यथावत् प्रकृति और प्रत्ययार्थ का अभिनिवेश नहीं है।*

कटच्-

(३) सम्प्रोदश्च कटच्।२६।

प०वि०-सम्-प्र-उदः ५।१ च अव्ययपदम्, कटच् १।१।

अनु०-'वेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्प्रोदो वेश्च प्रातिपदिकाद् स्वार्थे कटच्।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनेभ्यः सम्प्रोद्विभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कटच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**सम्**) संहतः=सम्बाध इति सङ्कटः। (**प्र**) प्रज्ञात इति प्रकटः। (**उत्**) उद्भूत इति उत्कटः। (**वि**) विकृत इति विकटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-ससाधन क्रियावाची (सम्प्रोदः) सम् प्र उत् (च) और (वेः) वि उपसर्ग रूप **प्रातिपदिकों से स्वार्थ में** (कटच्) कटच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सम्) जो संहत एवं सम्बाधित है वह-सङ्कट। (प्र) जो प्रज्ञात है वह-प्रकट। (उत्) जो उद्भूत=उत्पन्न है वह उत्कट। (वि) जो विकृत=बिगड़ा हुआ है वह-विकट।

सिद्धि-सङ्कटः। सम्+सु+कटच्। सम्+कट। सङ्कट+सु। सङ्कटः।

यहां ससाधन (लिङ्गवचन सहित) क्रियावाची 'सम्' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'कटच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्रकटः, उत्कटः, विकटः।

कुटारच्–

(४) अवात् कुटारच् च।३०।

प०वि०-अवात् ५।१ कुटारच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कटच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अवात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कुटारच् कटच् च।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनाद् अव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कुटारच् कटच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अव)** अवाचीनमिति-अवकुटारम्। अवाचीनमिति-अवकुटम्, अप्रसिद्धमित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-ससाधन क्रियावाची (अवात्) 'अव' उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कुटारच्) कुटारच् (च) और (कटच्) कटच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अवाचीन-अवकुटार। अवाचीन-अवकुट (अप्रसिद्ध)।

*सिद्धि-(१) **अवकुटारम्।** अव+सु+कुटारच्। अव+कुटार। अवकुटार+सु। अवकुटारम्।*

यहां ससाधन क्रियावाची 'अव' शब्द से स्वार्थ में कुटारच् प्रत्यय है।

*(२) **अवकुटम्।** यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'कटच्' प्रत्यय है।*

टीटच्+नाटच्+भ्रटच्–

(५) नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः।३१।

प०वि०-नते ७।१ नासिकायाः ६।१ संज्ञायाम् ७।१ टीटच्-नाटच्-भ्रटचः १।३।

कृद्वृत्तिः-नतम्=नमनम्। अत्र 'नम्' इत्यस्माद् धातोः **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) इति भावार्थे क्तः प्रत्ययः। नतम्=नीचैस्त्व-मित्यर्थः।

स०-टीटच् च, नाटच् च भ्रटच् च ते-टीटञ्नाटञ्भ्रटच: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अवात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नतेऽवात् स्वार्थे टीटञ्नाटज्भ्रटचः, संज्ञायाम्।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् अव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे टीटञ्नाटज्भ्रटचः प्रत्यया भवन्ति, संज्ञायां विषये।

उदा०-नासिकाया नतम्-अवटीटम् (टीटच्)। अवनाटम् (नाटच्)। अवभ्रटम् (भ्रटच्)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-अवटीटा नासिका। अवनाटा नासिका। अवभ्रटा नासिका। अवटीटः पुरुषः। अवनाटः पुरुषः। अवभ्रटः पुरुषः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नासिकायाः) नासिका=नाक के (नते) झुका हुआ होना अर्थ में विद्यमान (अवात्) 'अव' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (टीटञ्नाटज्भ्रटचः) टीटच्, नाटच्, भ्रटच् प्रत्यय होते हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

उदा०-नासिका का नत होना-अवटीट (टीटच्)। अवनाट (नाटच्)। अवभ्रट (भ्रटच्)। उस नत (नीचे की ओर होना) होने के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं-अवटीट नासिका। अवनाट नासिका। अवभ्रट नासिका। अवटीट पुरुष। अवनाट पुरुष। अवभ्रट पुरुष (नकटा नर)।

*सिद्धि-(१) **अवटीटम्।** अव+सु+टीटच्। अव+टीट। अवटीट+सु। अवटीटम्।*

यहां नासिका के नत होने अर्थ में विद्यमान 'अव' शब्द से स्वार्थ में तथा संज्ञाविशेष में इस सूत्र से 'टीटच्' प्रत्यय है। 'टीटच्' प्रत्यय के आदि टकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

*(२) **अवनाटम्।** यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'नाटच्' प्रत्यय है।*

*(३) **अवभ्रटम्।** यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'भ्रटच्' प्रत्यय है।*

बिडच्+बिरीसच्-

(६) नेर्बिडज्बिरीसचौ।३२।

प०वि०-नेः ५।१ बिडच्-बिरीसचौ १।२।

स०-बिडच् च बिरीसच् च तौ बिडच्बिरीसचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-नते, नासिकायाः, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नते नेर्बिडज्बिरीसचौ, संज्ञायाम्।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् नि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे बिडज्-बिरीसचौ प्रत्ययौ भवतः, संज्ञाया विषये।

उदा०-नासिकाया नतम्-निबिडम् (बिडच्)। निबिरीसम् (बिरीसच्)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-निबिडा नासिका। निबिरीसा नासिका। निबिडः पुरुषः। निबिरीसः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नासिकायाः) नासिका के (नते) झुकने अर्थ में विद्यमान (नेः) 'नि' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (बिडज्बिरीसचौ) बिडच् और बिरीसच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-नासिका का नत होना-निबिड (बिडच्)। निबिरीस (बिरीसच्)। उस नत (नीचे की ओर होना) के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं-निबिडा नासिका। निबिरीसा नासिका (नकटी नाक)। निबिड पुरुष। निबिरीस पुरुष (नकटा नर)।

सिद्धि-(१) निबिडम्। *नि+सु+बिडच्। नि+बिड। निबिड+सु। निबिडम्।*

यहां नासिका के नत अर्थ में विद्यमान 'नि' शब्द से स्वार्थ में 'बिडच्' प्रत्यय है।

(२) ***निबिरीसम्।*** *यहां पूर्वोक्त 'नि' शब्द से 'बिरीसच्' प्रत्यय है।*

इनच्+पिटच्-

(७) इनच्पिटच् चिकचि च।३३।

प०वि०-इनच्-पिटच् १।१ चिकि-चि १।१ च अव्ययपदम्।

स०-इनच् च पिटच् च एतयोः समाहारः-इनच्पिटच् (समाहार-द्वन्द्वः)। चिकश्च चिश्च एतयोः समाहारः-चिकचि (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-नते, नासिकायाः, नेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नते नेरिनच्पिटच्, तस्य च चिकचि।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् नि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे **इनच्**पिटचौ प्रत्ययौ भवतः, तयोः सन्नियोगेन च निशब्दस्य स्थाने यथासंख्यं चिकची आदेशौ भवतः।

उदा०-नासिकाया नतम्-चिकिनम् (इनच्+चिकः)। चिपिटम् (पिटच्+चिः)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-चिकीना नासिका, चिपिटा नासिका। चिकीनः पुरुषः, चिपिटः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नासिकायाः) नासिका के (नत) झुका हुआ होने अर्थ में विद्यमान (नेः) 'नि' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (इनच्पिटच्) इनच् और पिटच् प्रत्यय होते हैं (च) और उनके सन्नियोग से 'नि' के स्थान में (चिकचि) यथासंख्य चिक और चि आदेश होता है।*

उदा०-नासिका का नत होना-चिकिन (इनच्+चिक)। चिपिट (पिटच्+चि)। चिपटी नाक। उस नत (नीचे की ओर होना) के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं। चिकिन नासिका। चिपिट नासिका। चिपटी नाक। चिकिन पुरुष। चिपिट पुरुष। चिपटी नाकवाला नर।

सिद्धि-(१) चिकिनः। *नि+सु+इनच्। चिक्+इन। चिकिन+सु। चिकिनः।*

*यहां नासिका के नत अर्थ में विद्यमान 'नि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'इनच्' प्रत्यय है और 'नि' के स्थान में 'चिक' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) चिपिटः। *नि+सु+पिटच्। चि+पिट। चिपिट+सु। चिपिटः।*

यहां पूर्वोक्त 'नि' शब्द से पूर्ववत् 'पिटच्' प्रत्यय और 'नि' के स्थान में 'चि' आदेश होता है।

त्यकन्-

(८) उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः।३४।

प०वि०-उप-अधिभ्याम् ५।२ त्यकन् १।१ आसन्न-आरूढयोः ७।२।

स०-उपश्च अधिश्च तौ उपाधी, ताभ्याम्-उपाधिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आसन्नं च आरूढश्च तौ-आसन्नारूढौ, तयोः-आसन्नारूढयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संज्ञायाम् इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-आसन्नारूढयोरुपाधिभ्यां स्वार्थे त्यकन्, संज्ञायाम्।

अर्थः-यथासंख्यम् आसन्नारूढयोरर्थयोर्वर्तमानाभ्याम् उपाधिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे त्यकन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये।

उदा०-**(उप)** पर्वतस्यासन्नम्-उपत्यका। **(अधि)** पर्वतस्याऽऽरूढम्-अधित्यका।

आर्यभाषाः अर्थ-(आसन्नारूढयोः) आसन्न-समीप और आरूढ=उच्च-स्थान अर्थ में विद्यमान (उपाधिभ्याम्) उप और अधि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (त्यकन्) त्यकन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।

उदा०-(उप) पर्वत का समीपवर्ती प्रदेश-उपत्यका। (अधि) पर्वत का ऊंचा प्रदेश-अधित्यका।

*सिद्धि-(१) **उपत्यका।** उप+सु+त्यकन्। उप+त्यक। उपत्यक+टाप्। उपत्यका+सु। उपत्यका।*

*यहां आसन्न अर्थ में विद्यमान 'उप' शब्द से स्वार्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से त्यकन् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। संज्ञा-विषय के कारण **'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः'** (७।३।४४) से प्राप्त इत्त्व नहीं होता है क्योंकि 'उपत्यका' संज्ञा नहीं है।*

*(२) **अधित्यका।** यहां आरूढ अर्थ में विद्यमान 'अधि' शब्द से पूर्ववत् 'त्यकन्' तथा 'टाप्' प्रत्यय है।*

घटार्थप्रत्ययविधिः

अठच्–

(१) कर्मणि घटोऽठच्।३५।

प०वि०-कर्मणि ७।१ घटः १।१ अठच् १।१।

कृद्वृत्तिः-घटते इति घटः। **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) इति पचाद्यच् प्रत्ययः। **'कर्मणि'** इति सप्तमी-निर्देशात् सप्तमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-सप्तमीसमर्थात् कर्मणो घटोऽठच्।

अर्थः-सप्तमीसमर्थात् कर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् घट इत्यस्मिन्नर्थेऽठच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्मणि घटते-कर्मठः पुरुषः।

आर्यभाषाः अर्थ-सप्तमी-समर्थ (कर्मणि) कर्मन् प्रातिपदिक से (घटः) चेष्टा=प्रयत्न करनेवाला अर्थ में (अठच्) अठच् प्रत्यय होता है।

उदा०-कर्म में जो घट=चेष्टा (प्रयत्न) करनेवाला है वह-कर्मठ पुरुष।

सिद्धि-कर्मठः। कर्मन्+ङि+अठच्। कर्म्+अठ। कर्मठ+सु। कर्मठः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'कर्मन्' शब्द से घट (प्रयत्न करनेवाला) अर्थ में इस सूत्र से 'अठच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। 'अठच्' प्रत्यय के आदि में अकार-उच्चारण से 'ठस्येकः' (७।३।५०) से प्राप्त 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश नहीं होता है। 'घट चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०) धातु के अकर्मक होने से 'कर्म' शब्द से 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' (१।४।४९) से विहित पारिभाषिक 'कर्म' का ग्रहण नहीं किया जाता है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

इतच्–

(१) तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्।३६।

प०वि०–तत् १।१ अस्य ६।१ सञ्जातम् १।१ तारकादिभ्यः ५।३ इतच् १।१।

स०–तारका आदिर्येषां ते तारकादयः, तेभ्यः-तारकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–तत् तारकादिभ्योऽस्य इतच्, सञ्जातम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं सञ्जातं चेत् तद् भवति।

उदा०–तारकाः सञ्जाता अस्य-तारकितं नभः। पुष्पाणि सञ्जातान्यस्य-पुष्पितो वृक्षः, इत्यादिकम्।

तारका। पुष्प। मुकुल। कण्टक। पिपासा। सुख। दुःख। ऋजीष। कुड्मल। सूचक। रोग। विचार। तन्द्रा। वेग। पुक्षा। श्रद्धा। उत्कण्ठा। भर। द्रोह। गर्भादप्राणिनि। फल। उच्चार। स्तवक। पल्लव। खण्ड। धेनुष्या। अभ्र। अङ्गारक। अङ्गार। वर्णक। पुलक। कुवलय। शैवल। गर्व। तरङ्ग। कल्लोल। पण्डा। चन्द। स्रवक। मुदा। राग। हस्त। कर। सीमन्त। कर्दम। कज्जल। कलङ्क। कुतूहल। कन्दल। आन्दोल। अन्धकार। कोरक। अङ्कुर। रोमाञ्च। हर्ष। उत्कर्ष। क्षुधा। ज्वर। गोर। दोह। शास्त्र। मुकुर। तिलक। बुभुक्षा। निद्रा। इति तारकादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तारकादिभ्यः) तारका आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (इतच्) इतच् प्रत्यय होता है (सञ्जातम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह-संजात=उत्पन्न होगया हो।

उदा०-तारका=तारे संजात=प्रकट हो गये हैं इसके यह-तारकित नभ (आकाश)। पुष्प=फूल संजात=उत्पन्न हो गये हैं इसके यह-पुष्पित वृक्ष इत्यादि।

सिद्धि-तारकितम्। *तारका+जस्+इतच्। तारक+इत। तारकित+सु। तारकितम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तारका' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा सञ्जात अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इतच्' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-पुष्पितः आदि।*

द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्—

(२) प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः।३७।

प०वि०-प्रमाणे ७।१ द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रचः १।३।

स०-द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च ते-द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः, प्रमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-ऊरुः प्रमाणमस्य-ऊरुद्वयसम् उदकम् (द्वयसच्)। ऊरुदघ्नम् उदकम् (दघ्नच्)। ऊरुमात्रम् उदकम् (मात्रच्)। जानुप्रमाणमस्य-जानुद्वयसम् उदकम् (द्वयसच्)। जानुदघ्नम् उदकम् (दघ्नच्)। जानुमात्रम् उदकम् (मात्रच्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः) द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय होते हैं (प्रमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रमाण (मांप) हो।

उदा०-ऊरु (जंघा) प्रमाण है इसका यह-ऊरुद्वयस जल (द्वयसच्)। ऊरुदघ्न जल (दघ्नच्)। ऊरुमात्र जल (मात्रच्)। जानु=घुटना प्रमाण है इसका यह-जानुद्वयस जल (द्वयसच्)। जानुदघ्न जल (दघ्नच्)। जानुमात्र जल (मात्रच्)।

सिद्धि-ऊरुद्वयसम्। ऊरु+सु। द्वयसच्। ऊरु+द्वयस। ऊरुद्वयस+सु। अरुद्वयसम्।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अरु' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा प्रमाण अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'द्वयसच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्** आदि।*

अण्+द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्-

(३) पुरुषहस्तिभ्यामण् च।३८।

प०वि०-पुरुष-हस्तिभ्याम् ५।२ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पुरुषश्च हस्ती च तौ पुरुषहस्तिनौ, ताभ्याम्-पुरुषहस्तिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रमाणे, द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पुरुषहस्तिभ्याम् अस्याण् द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचश्च, प्रमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां पुरुषहस्तिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् द्वयसज्मात्रचश्च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**पुरुषः**) पुरुषः प्रमाणमस्य-पौरुषम् (अण्)। पुरुषद्वयसम् (द्वयसच्)। पुरुषदघ्नम् (दघ्नच्)। पुरुषमात्रम् (मात्रच्)। (**हस्ती**) हस्ती प्रमाणमस्य-हास्तिनम् (अण्)। हस्तिद्वयसम् (द्वयसच्)। हस्तिदघ्नम् (दघ्नच्)। हस्तिमात्रम् (मात्रच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पुरुषहस्तिभ्याम्) पुरुष, हस्ती प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् (च) और (द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः) द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय होते हैं (प्रमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रमाण (मांप) हो।*

उदा०-(पुरुष) पुरुष है प्रमाण इसका यह-पौरुष (अण्)। पुरुषद्वयस (द्वयसच्)। पुरुषदघ्न (दघ्नच्)। पुरुषमात्र (मात्रच्)। खात-(खाई) पौरुष=८४ अंगुल। सेना-पौरुष-६ फुट। (हस्ती) हस्ती=हाथी है प्रमाण इसका यह-हास्तिन (अण्)। हस्तिद्वयस (द्वयसच्)। हस्तिदघ्न (दघ्नच्)। हस्तिमात्र (मात्रच्)। हस्ती=४० वर्षीय उत्तम जाति का हाथी। ऊंचाई=७ अरत्नि (२८×७=२१६ अंगुल)। लम्बाई=९ अरत्नि (२८×९=२५२ अंगुल)। घेरा=१० अरत्नि (२८×१०=२८० अंगुल)। अरत्नि=२८ अंगुल। हस्ती प्रमाण में उसकी लम्बाई ग्राह्य होती है।

*सिद्धि-(१) **पौरुषम्।** पुरुष+सु+अण्। पौरुष्+अ। पौरुष+सु। पौरुषम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रमाणवाची 'पुरुष' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **पुरुषद्वयसम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'द्वयसच्' प्रत्यय है।*

*(३) **पुरुषदघ्नम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'दघ्नच्' प्रत्यय है।*

*(४) **पुरुषमात्रम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'मात्रच्' प्रत्यय है।*

*(५) **हास्तिनम्।** हस्तिन्+सु+अण्। हास्तिन्+अ। हास्तिन+सु। हास्तिनम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, प्रमाणवाची 'हस्तिन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यहां '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। '**इनण्यनपत्ये**' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।*

*(६) **हस्तिद्वयसम्।** हस्तिन्+सु+द्वयसच्। हस्ति+द्वयस। हस्तिद्वयस+सु। हस्तिद्वयसम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'हस्तिन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से द्वयसच् प्रत्यय है। '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'हस्तिन्' शब्द की पद-संज्ञा होकर '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**हस्तिदघ्नम्, हस्तिमात्रम्।***

वतुप्-

(४) यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्।३६।

प०वि०-यत्-तत्-एतेभ्यः ५।३ परिमाणे ७।१ वतुप् १।१।

स०-यच्च तच्च एतच्च तानि-यत्तदेतानि, तेभ्यः-यत्तदेतेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् यत्तदेतेभ्योऽस्य वतुप् परिमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो यत्तदेतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-**(यत्)** यत् परिमाणमस्य-यावत्। **(तत्)** तत् परिमाणमस्य-तावत्। **(एतत्)** एतत् परिमाणमस्य-एतावत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (यत्तदेतेभ्यः) यत्, तत्, एतत् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (वतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है (परिमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण (तोल) हो।*

*उदा०-**(यत्)** जो है परिमाण इसका यह-यावत् (जितना)। **(तत्)** वह है परिमाण इसका यह-तावत् (उतना)। **(एतत्)** यह है परिमाण इसका यह-एतावत् (इतना)।*

*सिद्धि-**यावत्।** यत्+सु+वतुप्। यत्+वत्। या+वत्। यावत्+सु। यावत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'यत्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। '**आ सर्वनाम्नः**' (६।३।९१) से अंग को आकार आदेश होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**तावत्, एतावत्।** पुंलिंग में-यावान्, तावान्, एतावान्। स्त्रीलिंग में-**यावती, तावती, एतावती।***

विशेषः *पाणिनि मुनि के मत में ऊंचाई और लम्बाई का मांप प्रमाण और तोल का मांप परिमाण कहाता है। अन्य वैयाकरण ऊंचाई के मांप को उन्मान, लम्बाई के मांप को प्रमाण और तोल के मांप को परिमाण मानते हैं-*

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामास्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।

वतुप् (घः)-

(५) किमिदंभ्यां वो घः।४०।

प०वि०-किम्-इदंभ्याम् ५।२ वः ६।१ घः १।१।

स०-किम् च इदम् च तौ किमिदमौ, ताभ्याम्-किमिदंभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणे, वतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् किमिदंभ्याम् अस्य वतुप्, वो घ, परिमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां किमिदंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति, अस्य च वकारस्य स्थाने घ आदेशो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(किम्) किं परिमाणमस्य-कियत्। **(इदम्)** इदं परिमाण-मस्य-इयत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (किमिदंभ्याम्) किम्, इदम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (व्रतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है और उसके (वः) व् के स्थान में (घः) घ् आदेश होता है (परिमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण (तोल) हो।*

*उदा०-**(किम्)** क्या है परिमाण इसका यह-कियत् (कितना)। **(इदम्)** यह है परिमाण इसका यह-इयत्।*

सिद्धि-(१) कियत्। *किम्+सु+वतुप्। किम्+वत्। की+घत्। की+इयत्। क्+इयत्। कियत्+सु। कियत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। '**इदंकिमोरीश्की**' (६।३।९०) से 'किम्' के स्थान में 'की' आदेश होता है। इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय के 'व्' के स्थान में 'घ्' आदेश और उसे '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'इय्' आदेश होकर '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। पुंलिंग में 'कियान्' और स्त्रीलिंग में 'कियती' रूप बनता है।*

(२) इयत्। *इदम्+सु+वतुप्। इदम्+वत्। ईश्+वत्। ई+घत्। ई+इयत्। ०+इयत्। इयत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'इदम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। '**इदंकिमोरीश्की**' (६।३।९०) से 'इदम्' के स्थान में 'ईश्' आदेश होता है। 'ईश्' में शकार अनुबन्ध '**अनेकाल्शित्सर्वस्य**' (१।१।५५) से सर्वादेश के लिये है। इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय के 'व्' के स्थान में 'घ्' आदेश और उसे पूर्ववत् 'इय्' आदेश होकर '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। पुंलिंग में 'इयान्' और स्त्रीलिंग में 'इयती' रूप बनता है।*

डतिः+वतुप्–

(६) किमः संख्यापरिमाणे डति च।४१।

प०वि०-किमः ५।१ संख्यापरिमाणे ७।१ डति १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-संख्यायाः परिमाणमिति संख्यापरिमाणम्, तस्मिन्-संख्यापरिमाणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। परिमाणम्=परिच्छेद इयत्तेत्यर्थः।

अनु०-तत्, अस्य, वतुप्, वः, घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्यापरिमाणे किमोऽस्य डतिर्वतुप् च।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यापरिमाणेऽर्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे डतिर्वतुप् च प्रत्ययो भवति, तस्य च वकारस्य स्थाने घ आदेशो भवति।

उदा०-का संख्या परिमाणमेषां ब्राह्मणानामिति-कति ब्राह्मणाः (डतिः) कियन्तो ब्राह्मणाः (वतुप्)।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-**(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यापरिमाणे) संख्या के परिमाण (इयत्ता) अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (डतिः) डति (च) और (वतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है और उसके (वः) वकार के स्थान में (घः) घ आदेश होता है।

उदा०-कौन संख्या परिमाण है इन ब्राह्मणों की ये-कति ब्राह्मण (डति)। कति=कितने। कियान् ब्राह्मण (वतुप्)। कियान्=कितने।

सिद्धि-(१) कति। *किम्+सु+डति। किम्+अति। क्+अति। कति+जस्। कति+०। कति।*

यहां प्रथमा-समर्थ, संख्या-परिमाण अर्थ में विद्यमान 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से डति प्रत्यय है। डति प्रत्यय के 'डित्' होने से ***वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'*** *(६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है।* ***'डति च'*** *(१।१।२५) से डति-प्रत्ययान्त शब्द की षट् संज्ञा होने से* ***'षड्भ्यो लुक्'*** *(७।१।२२) से जस् प्रत्यय का लुक् होता है।*

(२) कियन्तः। *किम्+सु+वतुप्। किम्+वत्। की+घत्। की+इयत्। क्+इयत्। कियत्+जस्। किय नुम् त्+अस्। कियन्त्+अस्। कियन्तः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, संख्यापरिमाणवाची 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय और उसके वकार के स्थान में 'घ' आदेश होता है पूर्ववत् 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और अंग के ईकार का लोप होता है। प्रत्यय के उगित् होने से 'जस्' प्रत्यय परे होने पर ***'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'*** *(७।१।७०) से अंग को 'नुम्' आगम होता है।*

तयप्-

(७) संख्याया अवयवे तयप्।४२।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ अवयवे ७।१ तयप् १।१।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याया अस्य तयप्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अवयवेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चावयवा अस्य-पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। चतुष्टयी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पञ्च=पांच हैं अवयव इसके यह-पञ्चतय। दश=दस हैं अवयव इसके यह-दशतय। चतुर्=चार हैं अवयव इसके यह-चतुष्टय। स्त्रीलिंग में-चतुष्टयी।

सिद्धि-(१) ***पञ्चतयम्।*** *पञ्चन्+जस्+तयप्। पञ्च+तय। पञ्चतय+सु। पञ्चतयम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय है। ***'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'*** *(१।४।१७) से 'पञ्चन्' शब्द की पदसंज्ञा होकर* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। ऐसे ही-***दशतयम्।***

(२) ***चतुष्टयम्।*** *चतुर्+जस्+तयप्। चतुर्+तय। चतुः+तय। चतुस्+तय। चतुष्+टय। चतुष्टय+सु। चतुष्टयम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक संख्यावाची 'चतुर्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय है। ***'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'*** *(८।३।१५) से 'चतुर्' के रेफ को विसर्जनीय आदेश,* ***'विसर्जनीयस्य सः'*** *(८।३।३४) से उस विसर्जनीय के स्थान में 'स्' आदेश और उसे* ***'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते'*** *(८।३।१०१) से मूर्धन्य तथा* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से टुत्व होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'टिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-***चतुष्टयी।***

अयच्-आदेशविकल्पः--

(८) द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा।४३।

प०वि०-द्वि-त्रिभ्याम् ५।२ तयस्य ६।१ अयच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-द्वौ च त्रयश्च ते द्वित्रयः, ताभ्याम्-द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, संख्यायाः, अवयवे, तयप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याभ्यां द्वित्रिभ्याम् अस्य तयप्, तयस्य च वाऽयच्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अवयवेऽर्थे वर्तमानाभ्यां संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति, तयस्य च स्थाने विकल्पेनाऽयजादेशो भवति।

उदा०-(**द्विः**) द्वाववयवावस्य-द्वय (अयच्-आदेशः)। द्वितयम् (तयप्)। (**त्रिः**) त्रयोऽवयवा अस्य-त्रयम् (अयच्-आदेशः)। त्रितयम् (तयप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्रिभ्याम्) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है और (तयस्य) उसके स्थान में (वा) विकल्प से (अयच्) अयच् आदेश होता है।*

उदा०-(द्वि) दो हैं अवयव इसके यह-द्वय (अयच्-आदेश)। द्वितय (तयप्)। (त्रि) तीन हैं अवयव इसके यह-त्रय (अयच्-आदेश)। त्रितय (तयप्)।

सिद्धि-(१) द्वयम्। *द्वि+औ+तयप्। द्वि+तय। द्वि+अयच्। द्व+अय। द्वय+सु। द्वयम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'अयच्' आदेश है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'त्रि' शब्द से-**त्रयम्।***

नित्यमयजादेशः-

(६) उभादुदात्तो नित्यम्।४४।

प०वि०-उभात् ५।१ उदात्तः १।१ नित्यम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, संख्यायाः, अवयवे, तयप्, तयस्य, अयच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याया उभाद् अस्य तयप्, तयस्य च नित्यम् अयज् उदात्तः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अवयवेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन उभ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति, तयस्य च स्थाने नित्यम् अयजादेशो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-उभाववयवावस्य-उभयो मणिः । उभये देवमनुष्याः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (उभात्) उभ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है और (तयस्य) तयप् प्रत्यय के स्थान में (नित्यम्) सदा (अयच्) अयच् आदेश होता है और वह (उदात्तः) उदात्त=आद्युदात्त होता है।*

उदा०-उभ=दो अवयव हैं इसके यह-उभय मणि (रत्न)। उभ=दो अवयव हैं इसके ये-उभय देव और मनुष्य।

सिद्धि-उभयः । *उभ+औ+तयप्। उभ+तय। उभ+अयच्। उभ्+अय। उभय+सु। उभयः ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक, संख्यावाची 'उभ' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से तयप् और उसके स्थान में नित्य उदात्त-अयच् आदेश है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'उभय' शब्द का सर्वादिगण में पाठ होने से **'सर्वादीनि सर्वनामानि'** (१।१।२७) से सर्वनाम संज्ञा होकर **'जसः शी'** (७।१।१७) से जस् के स्थान में 'शी' आदेश होता है-**उभये देवमनुष्याः ।***

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

डः-

(१) तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ।४५।

प०वि०-तत् १।१ अस्मिन् ७।१ अधिकम् १।१ इति अव्ययपदम्, दशान्तात् ५।१ डः १।१।

स०-दश अन्ते यस्य तत्-दशान्तम्, तस्मात्-दशान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्याया इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-तत् संख्याया दशान्ताद् अस्मिन् इति डः, अधिकम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनो दशान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अधिकं चेत् तद् भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः ।

उदा०-एकादश अधिका अस्मिन्निति-एकादशं शतम्। एकादशं सहस्रम्। द्वादश अधिका अस्मिन्निति-द्वादशं शतम्। द्वादशं सहस्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (दशान्तात्) दश जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अस्मिन् इति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (डः) ड प्रत्यय होता है (अधिकम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अधिक हो। इति-करण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-एकादश=ग्यारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकदश शत कार्षापण (१११ कार्षापण)। एकादश=ग्यारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकादश सहस्र कार्षापण (१०११ कार्षापण)। द्वादश=बारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-द्वादश शत कार्षापण (११२ कार्षापण)। द्वादश=बारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-द्वादश सहस्र कार्षापण (१०१२ कार्षापण)। कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का।

सिद्धि-एकादशम्। *एकादशन्+जस्+ड। एकादश्+अ। एकादश+सु। एकादशम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक, संख्यावाची दशान्त 'एकादशन्' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग का (अन्) लोप होता है। ऐसे ही-**द्वादशम्।***

डः-

(२) शदन्तविंशतेश्च।४६।

प०वि०-शदन्त-विंशतेः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शद् अन्ते यस्य सः-शदन्तः, शदन्तश्च विंशतिश्च एतयोः समाहारः शदन्तविंशतिः, तस्मात्-शदन्तविंशतेः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तत्, अस्मिन्, अधिकम्, ड इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्यायाः शदन्तविंशतेश्चास्मिन् डोऽधिकम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः शदन्ताद् विंशतेश्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमधिकं चेत् तद् भवति।

उदा०-(शदन्त) त्रिंशद् अधिका अस्मिन्निति-त्रिंश शतम्। एकत्रिंशं शतम्। एकचत्वारिंशं शतम्। **(विंशतिः)** विंशतिरधिका अस्मिन्निति-विंशं शतम्।

आर्यभाषाः **अर्थ-**(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (शदन्तविंशतेः) शदन्त, विंशति प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (डः) ड प्रत्यय होता है (अधिकम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अधिक हो।

उदा०-(**शदन्त**) त्रिंशत्=तीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-त्रिंश शत कार्षापण (१३० कार्षापण)। एकत्रिंशत्=इकत्तीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकत्रिंश शत कार्षापण। (१३१ कार्षापण)। एकचत्वारिंशत्=इकतालीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकचत्वारिंश शत कार्षापण (१४१ कार्षापण)। (**विंशति**) बीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-विंश शत कार्षापण (१२० कार्षापण)। कार्षापण=८० रत्ती सुवर्ण का सिक्का। ३२ रत्ती चांदी का सिक्का। ८० रत्ती ताम्बे का सिक्का।

सिद्धि-(१) **त्रिंशम्।** त्रिंशत्+सु+ड। त्रिंश्+अ। त्रिंश+सु। त्रिंशम्।

यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक संख्यावाची, शदन्त 'त्रिंशत्' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। ऐसे ही-**एकत्रिंशत्, एकचत्वारिंशम्।**

(२) **विंशम्।** विंशति+सु+ड। विंश+अ। विंश+सु। विंशम्।

यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक, संख्यावाची 'विंशति' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। **'ति विंशतेर्डिति'** (६।४।१४२) से 'विंशति' शब्द के ति-भाग का लोप होता है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

मयट्-

(१) संख्याया गुणस्य निमाने मयट्।४७।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ गुणस्य ६।१ निमाने ७।१ मयट् १।१।

अनु०-'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' (५।२।३६) इत्यस्मात्-तत्, अस्य इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-तत् संख्याया अस्य मयट् गुणस्य निमाने।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे मयट् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं गुणस्य निमानं चेत् तद् वर्तते। गुणः=भागः। निमानम्=मूल्यम्।

उदा०-यवानां द्वौ गुणौ (भागौ) निमानमस्य तक्रगुणस्य (तक्रभागस्य) द्विमयं तक्रयवानम्। त्रिमयम्। चतुर्मयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (गुणस्य निमाने) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह गुण=भाग के निमान=मूल्य अर्थ में विद्यमान हो।*

उदा०-यव=जौओं का दो गुण (भाग) निमान=मूल्य है इस एक तक्र (मट्ठा) भाग का यह-द्विमय तक्र। यव=जौओं का तीन गुण (भाग) निमान=मूल्य है इस एक तक्र भाग का यह त्रिमय तक्र। यव=जौओं का चार गुण (भाग निमान=मूल्य है इस एक तक्र भाग का यह-चतुर्मय तक्र।

सिद्धि-द्विमयम्। *द्वि+औ+मयट्। द्वि+मय। द्विमय+सु। द्विमयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, गुण=भाग के निमान=मूल्य अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**त्रिमयम्, चतुर्मयम्।***

विशेषः *एक वस्तु से बदलकर दूसरी वस्तु लेना निमान कहाता था, जिसे आजकल अदला बदली कहते हैं। जो वस्तु दी जाती थी उसका, उस वस्तु के साथ जो ली जाती थी, मूल्य का आनुपातिक सम्बन्ध निश्चित करना पड़ता था, या तो दोनों वस्तुओं का मूल्य बराबर होता जैसे सेर भर गेहूं के बदले में सेर भर तिल लेना, किन्तु यदि दो सेर जौ देकर सेर भर मट्ठा मिले तो जौ का मूल्य मट्ठे के मूल्य से दुगना होगा। उस समय कहा जायेगा- '**द्विमयम् उदश्विद् यवानाम्**' (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३८)।*

पूरणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

डट्-

(१) तस्य पूरणे डट्।४८।

प०वि०-तस्य ६।१ पूरणे ७।१ डट् १।१।

अनु०-संख्याया इत्यनुवर्तते।

कृद्वृत्तिः-पूर्यतेऽनेनेति-पूरणम् '**करणाधिकरयोश्च**' (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अन्वयः-तस्य संख्यायाः पूरणे डट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकादशानां पूरणः-एकादशः। द्वादशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-एकादश=ग्यारह संख्या को पूरा करनेवाला-एकादश (ग्यारहवां)। द्वादश=बारह संख्या को पूरा करनेवाला-द्वादश (बारहवां)।

सिद्धि-एकादशः। *एकादशन्+आम्+डट्। एकादश्+अ। एकादश+सु। एकादशः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'एकादशन्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से डट् प्रत्यय है। वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**द्वादशः।***

डट् (मट्)-

(२) नान्तादसंख्यादेर्मट्।४६।

प०वि०-न अन्तात् ५।१ असंख्यादेः ५।१ मट् १।१।

स०-नोऽन्ते यस्य स नान्तः, तस्मात्-नान्तात् (बहुव्रीहिः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, न संख्यादिरिति-असंख्यादिः, तस्मात्-असंख्यादेः (बहुव्रीहिगर्भित नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संख्याया, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य असंख्यादेर्नान्तात् संख्यायाः पूरणे डट्, तस्य च मट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् असंख्यादेर्नकारान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च मडागमो भवति।

उदा०-पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः। सप्तमः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) षष्ठी-समर्थ (असंख्यादेः) संख्या जिसके आदि में नहीं है उस (नान्तात्) नकारान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (मट्) मट् आगम होता है।*

उदा०-पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला-पञ्चम (पांचवां)। सप्त=सात को पूरा करनेवाला-सप्तम (सातवां)।

सिद्धि-पञ्चमः। *पञ्चन्+आम्+डट्। पञ्चन्+मट्+अ। पञ्च+म्+अ। पञ्चम+सु। पञ्चमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, असंख्यादि, नकारान्त, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'मट्' आगम होता है। प्रत्यय को 'मट्' आगम होने पर भ-संज्ञा का अभाव होता है। 'टेः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**सप्तमः।***

डट् (थट्)–

(३) थट् च च्छन्दसि।५०

प०वि०–थट् १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, नान्तात्, असंख्यादेः, मट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तस्य असंख्यादेर्नान्तात् संख्यायाः पूरणे डट्, तस्य च थट् मट् च।

अर्थः–छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् असंख्यादेर्नकारान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च थट् मट् चागमो भवति।

उदा०–पञ्चानां पूरणः–पञ्चथः। **पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति** (का०सं० ८।२)। **पञ्चथः** (का०सं० ९।३)। सप्तानां पूरणः–सप्तथः (थट्)। **सप्तथः** (का०सं० ३७।११)। पञ्चानां पूरणः–पञ्चमः (मट्)। **पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत्** (का०सं० ९।१२)।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (असंख्यादेः) संख्या जिसके आदि में नहीं है उस (नान्तात्) नकारान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणः) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (थट्) थट् तथा (मट्) मट् आगम होते हैं।*

उदा०–पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला–पञ्चथ (पांचवां)। ***पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति*** *(का०सं० ८।२)।* ***पञ्चथः*** *(का०सं० ९।३)। सप्त=सात को पूरा करनेवाला-सप्तथ (सातवां) थट् आगम।* ***सप्तथः*** *(का०सं० ३७।११)। पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला-पञ्चम (पांचवां) मट् आगम।* ***पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत्*** *(का०सं० ९।१२)।*

सिद्धि-(१) पञ्चथः। *पञ्चन्+आम्+डट्। पञ्चन्+थट्+अ। पञ्च+थ्+अ। पञ्चथ+सु। पञ्चथः।*

यहां वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ, असंख्यादि, नकारान्त, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'थट्' आगम होता है। प्रत्यय को 'थट्' आगम होने पर भ-संज्ञा का अभाव होने से 'टेः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है।

(२) पञ्चमः। *इस पद की सिद्धि पूर्ववत् (५।२।४९) है।*

डट् (थुक)–

(४) षट् कतिकतिपयचतुरां थुक्।५१।

प०वि०-षट्-कति-कतिपय-चतुराम् ६।३ थुक् १।१।

स०-षट् च कतिश्च कतिपयश्च चतुर् च ते षट् कतिकतिपयचतुरः, तेषाम्-षट्कतिकतिपयचतुराम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यानां षट्कतिकतिपयचतुरां पूरणे थुक्, डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थानां संख्यावाचिनां षट्कतिकतिपयचतुरां प्रातिपदिकानां पूरणेऽर्थे थुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-**(षट्)** षण्णां पूरणः-षष्ठः। **(कति)** कतीनां पूरणः-कतिथः। **(कतिपयः)** कतिपयानां पूरणः-कतिपयथः। **(चतुर्)** चतुर्णां पूरणः-चतुर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (षट्कतिकतिपय-चतुराम्) षट्, कति, कतिपय, चतुर प्रातिपदिकों को (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (थुक्) थुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(षट्)** षट्=छह को पूरा करनेवाला-षष्ठ (छठा)। **(कति)** कति=कितने को पूरा करनेवाला-कतिथ (कितनेवां)। **(कतिपय)** कई को पूरा करनेवाला-कतिपयथ (कईवां)। (चतुर्) चार को पूरा करनेवाला-चतुर्थ (चौथा)।*

***सिद्धि-षष्ठः।** षष्+आम्+डट्। षष्+थुक्+अ। षष्+थ+अ। षष्+ठ्+अ। षष्ठः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'षष्' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय परे होने पर 'षष्' प्रातिपदिक को 'थुक्' आगम होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से 'थ्' को टुत्व (ठ्) होता है। ऐसे ही-**कतिथः, कतिपयथः, चतुर्थः।***

डट् (तिथुक)–

(५) बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्।५२।

प०वि०-बहु-पूग-गण-सङ्घस्य ६।१ तिथुक् १।१।

स०-बहुश्च गणश्च पूगश्च सङ्घश्च एतेषां समाहारो बहुपूगगणसङ्घम्, तस्य-बहुपूगगणसङ्घस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यानां बहुपूगगणसङ्घानां पूरणे तिथुक्, डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थानां संख्यावाचिनां बहुपूगगणसङ्घानां प्रातिपदिकानां पूरणेऽर्थे तिथुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-(बहुः) बहूनां पूरणः-बहुतिथः। **(पूगः)** पूगस्य पूरणः-पूगतिथः। **(गणः)** गणस्य पूरणः-गणतिथः (सङ्घः) सङ्घस्य पूरणः-सङ्घतिथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (बहुपूगगण-सङ्घस्य) बहु, पूग, गण, संघ प्रातिपदिकों को (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (तिथुक्) तिथुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(बहु)** बहुत को पूरा करनेवाला-बहुतिथ (बहुतेरा)। **(पूग)** पूग=समूह को पूरा करनेवाला-पूगतिथ। **(गण)** गण=समुदाय को पूरा करनेवाला-गणतिथ। **(सङ्घ)** सङ्घ=समूह को पूरा करनेवाला-सङ्घतिथ।*

*सिद्धि-**बहुतिथः।** बहुः+आम्+डट्। बहु+तिथुक्+अ। बहु+तिथ्+अ। बहुतिथ+सु। बहुतिथः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'बहु' शब्द को पूरण अर्थ में इस सूत्र से डट् प्रत्यय परे होने पर 'तिथुक्' आगम होता है। 'बहु' शब्द की **'बहुगणवतुडति संख्या'** (१।१।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-**पूगतिथः** आदि।*

डट् (इथुक्)-

(६) वतोरिथुक्।५३।

प०वि०-वतोः ६।१ इथुक् १।१।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया वतोः पूरणे इथुक् डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनो वतु-अन्तस्य प्रातिपदिकस्य पूरणेऽर्थे इथुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-यावतां पूरणः-यावतिथः। तावतिथः। एतावतिथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (वतोः) वतु-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक को (पूरणे) पूरण अर्थ में (इथुक्) इथुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-यावत्=जितने को पूरा करनेवाला-यावतिथ (जितनेवां)। तावत्=उतने को पूरा करनेवाला-तावतिथ (उतनेवां)। एतावत्=इतने को पूरा करनेवाला-एतावतिथ (इतनेवां)।

सिद्धि-यावत्+आम्+डट्। यावत्+इथुक्+अ। यावत्+इथ्+अ। यावतिथ+सु। यावतिथः।

*यहां प्रथमा 'यत्' शब्द से **'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्'** (५।२।३९) से 'वतुप्' प्रत्यय करने पर 'यावत्' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् उस षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची, वतु-प्रत्ययान्त 'यावत्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय परे होने पर 'अथुक्' आगम होता है। 'यावत्' शब्द की **'बहुगणवतुडति संख्या'** (१।१।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-**तावतिथः, एतावतिथः।***

तीयः-

(७) द्वेस्तीयः।५४।

प०वि०-द्वेः ५।१ तीयः १।१।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया द्वेः पूरणे तीयः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनो द्विशब्दात् प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वयोः पूरणः-द्वितीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (द्वेः) द्वि प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (तीयः) तीय प्रत्यय होता है।*

उदा०-द्वि=दो को पूरा करनेवाला-द्वितीय (दूसरा)।

*सिद्धि-**द्वितीयः।** द्वि+ओस्+तीय। द्वि+तीय। द्वितीय+सु। द्वितीयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'तीय' प्रत्यय है। यह **'तस्य पूरणे डट्'** (५।२।४८) का अपवाद है।*

तीयः (सम्प्रसारणम्)-

(८) त्रेः सम्प्रसारणं च।५५।

प०वि०-त्रेः ५।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, तीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यायास्त्रेः पूरणे तीयः सम्प्रसारणं च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनस्त्रिशब्दात् प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति, तत्संयोगेन त्रेः सम्प्रसारणं च भवति।

उदा०-त्रयाणां पूरणः-तृतीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (त्रेः) त्रि प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरण अर्थ में (तीयः) तीय प्रत्यय होता है।*

उदा०-त्रि=तीन को पूरा करनेवाला-तृतीय (तीसरा)।

***सिद्धि-तृतीयः।** त्रि+आम्+तीय। त्रि+तीय। त् ऋइ+तीय। तृ+तीय। तृतीयः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'त्रि' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'तीय' प्रत्यय और सम्प्रसारण होता है। 'त्रि' के रेफ के स्थान में 'ऋ' सम्प्रसारण होकर **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से 'इ' को पूर्वरूप (ऋ) हो जाता है। यहां 'हलः' (६।४।२) से सम्प्रसारण को दीर्घ नहीं होता है क्योंकि वहां **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से 'अण्' की अनुवृत्ति होने से 'अण्' को ही दीर्घ होता है। **'अइउण्'** (प्र० १) में विहित 'अण्' प्रत्याहार से 'ऋ' वर्ण बाह्य है।*

डट् (तमट्)-

(६) विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०-विंशति-आदिभ्यः ५।३ तमट् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-विंशतिरादिर्येषां ते विंशत्यादयः, तेभ्यः-विंशत्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याभ्यो विंशत्यादिभ्यः पूरणे डट्, अन्यतरस्यां मट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः संख्यावाचिभ्यो विंशत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च विकल्पेन मट्-आगमो भवति। अत्र तीयप्रत्ययव्यवधानेऽपि पूरणाधिकाराद् डट् प्रत्यय एवागमी वेदितव्यः।

उदा०-विंशतेः पूरणः-विंशतितमः (तमट्)। विंशः (डट्)। एकविंशतितमः (तमट्)। एकविंशः (डट्)। त्रिंशत्तमः (तमट्)। त्रिंशः

(डट्)। एकत्रिंशत्तमः (तमट्)। एकत्रिंशः (डट्)। अत्र विंशत्यादयो लौकिकाः संख्यावाचिशब्दा गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (विंशत्यादिभ्यः) विंशति-आदि प्रातिपदिकों से (पूरणे) पूरण अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तमट्) आगम होता है।*

उदा०-विंशति=बीस को पूरा करनेवाला-विंशतितम, बीसवां (तमट्)। विंश. बीसवां (डट्)। एकविंशति=इक्कीस को पूरा करनेवाला-एकविंशतितम, इक्कीसवां (तमट्)। एकविंश, इक्कीसवां (डट्)। त्रिंशत्=तीस को पूरा करनेवाला-त्रिंशत्तम, तीसवां (तमट्)। त्रिंश, तीसवां (डट्)। एकत्रिंशत्=इकत्तीस को पूरा करनेवाला-एकत्रिंशत्तम, इकत्तीसवां (तमट्)। एकत्रिंश इकतीसवां (डट्)।

सिद्धि-(१) ***विंशतितमः।*** *विंशति+ङस्+डट्। विंशति+तमट्+अ। विंशति+तम्+अ। विंशतितम+सु। विंशतितमः।*

यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'विंशति' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'तमट्' आगम होता है। 'तमट्' आगम के अन्तर से 'विंशति' शब्द की भ-संज्ञा न होने से ***'ति विंशतेर्डिति'*** *(६।४।१४५) से 'विंशति' के ति-भाग का लोप नहीं होता है। ऐसे ही-****एकविंशतितमः, त्रिंशत्तमः, एकत्रिंशत्तमः।***

(२) ***विंशः।*** *विंशति+ङस्+डट्। विंशति+अ। विंश+अ। विंश+सु। विंशः।*

यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'विंशति' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय है और विकल्प पक्ष में तमट् आगम नहीं होता है। अतः 'विंशति' शब्द की ***'यचि भम्'*** *भ-संज्ञा होने से* ***'ति विंशतेर्डिति'*** *(६।४।१४५) से विंशति के ति-भाग को लोप हो जाता है।* ***'अतो गुणे'*** *(६।१।९६) से दोनों अकारों को पररूप एकादेश (अ) होता है। ऐसे ही-****एकविंशः, त्रिंशः, एकत्रिंशः।***

डट् (नित्यं तमट्)-

(१०) नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च।५७।

प०वि०-नित्यम् १।१ शतादि-मास-अर्धमास-संवत्सरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शतम् आदिर्येषां ते शतादयः, शतादयश्च मासश्च अर्धमासश्च संवत्सरश्च एतेषां समाहारः शतादिमासार्धमाससंवत्सरम्, तस्मात्-शतादिमासार्धमाससंवत्सरात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, तमट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याभ्यः शतादिभ्यो मासार्धमाससंवत्सरेभ्यश्च पूरणे डट्, नित्यं तमट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः संख्यावाचिभ्यः शतादिभ्यो मासार्धमाससंवत्सरेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च नित्यं तमट्-आगमो भवति।

उदा०-(शतादिः) शतस्य पूरणः-शततमः। सहस्रतमः। लक्षतमः। **(मासः)** मासस्य पूरणः-मासतमो दिवसः। **(अर्धमासः)** अर्धमासस्य पूरणः-अर्धमासतमो दिवसः। **(संवत्सरः)** संवत्सरस्य पूरणः-संवत्सरतमो दिवसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) लौकिक संख्यावाची (शतादि-मासार्धमाससंवत्सरेभ्यः) शतादि और मास, अर्धमास, संवत्सर प्रातिपदिकों से (च) भी (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (नित्यम्) सदा (तमट्) तमट् आगम होता है। संख्यावाची विशेषण का सम्बन्ध शतादि शब्दों के ही साथ है, मास आदि शब्दों के साथ नहीं।*

*उदा०-**(शतादि)** शत=सौ को पूरा करनेवाला-शततम (सौवां)। सहस्र=हजार को पूरा करनेवाला-सहस्रतम (हजारवां)। लक्ष=लाख को पूरा करनेवाला-लक्षतम (लाखवां)। **(मास)** मास को पूरा करनेवाला-मासतम दिवस (मास का अन्तिम दिन)। **(अर्धमास)** आधा मास को पूरा करनेवाला-अर्धमास दिवस (अमावस्या, पौर्णमासी)। **(संवत्सर)** संवत्सर=वर्ष को पूरा करनेवाला-संवत्सरतम (वर्ष का अन्तिम दिन-होलिका उत्सव)।*

***सिद्धि-शततमः।** शत+ङस् डट्। शत+तमट्+अ। शत+तम्+अ। शततम+सु। शततमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'शत' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे नित्य 'तमट्' आगम होता है। ऐसे ही-**सहस्रतमः** आदि।*

डट् (नित्यं तमट्)-

(११) षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः।५८।

प०वि०-षष्टि-आदेः ५।१ च अव्ययपदम्, असंख्या-आदेः ५।१।

स०-षष्टिरादिर्यस्य स षष्ट्यादिः, तस्मात् षष्टयादेः (बहुव्रीहिः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, न संख्यादिरिति असंख्यादिः, तस्मात्-असंख्यादेः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, नित्यम्, तमट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया असंख्यादेः षष्ट्यादेश्च पूरणे डट्, नित्यं तमट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनः षष्ट्यादेः प्रातिपदिकाच्च पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च नित्यं तमट्-आगमो भवति।

उदा०-षष्टेः पूरणः-षष्टितमः। सप्ततेः पूरणः-सप्ततितमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (असंख्यादेः) जिसके आदि में संख्या नहीं है उन (षष्ट्यादेः) षष्टि आदि प्रातिपदिकों से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (नित्यम्) सदा (तमट्) तमट् आगम होता है।*

उदा०-षष्टि=साठ को पूरा करनेवाला-षष्टितम (साठवां)। सप्तति=सत्तर को पूरा करनेवाला-सप्ततितम (सत्तरवां)।

सिद्धि-षष्टितमः। *षष्टि+ङस्+डट्। षष्टि+तमट्+अ। षष्टि+तम्+अ। षष्टतम+सु। षष्टितमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'षष्ठी' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे नित्य 'तमट्' आगम होता है। ऐसे ही-**सप्ततितमः**।*

मत्वर्थप्रत्ययप्रकरणम्

छः-

(१) मतौ छः सूक्तसाम्नोः।५६।

प०वि०-मतौ ७।१ छः १।१ सूक्त-साम्नोः ७।२।

स०-सूक्तं च साम च ते सूक्तसाम्नी, तयोः-सूक्तसाम्नोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-मताविति मत्वर्थ उच्यते। अत्र मत्वर्थग्रहणेन **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति प्रथमासमर्थविभक्तिः, प्रकृतिविशेषणं प्रत्ययाश्चेति सर्वमुपस्थाप्यते।

अन्वयः-{तत्} प्रातिपदिकाद् मतौ छः, सूक्तसाम्नोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे छः प्रत्ययो भवति, सूक्ते सामनि चाभिधेये।

उदा०-(**सूक्तम्**) अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-अच्छावाकीयं सूक्तम्। मित्रावरुणीयं सूक्तम्। (**साम**) यज्ञायज्ञाशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-यज्ञायज्ञीयं साम। वारवन्तीयं साम।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (सूक्तसाम्नोः) यदि वहां सूक्त और साम अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(सूक्त)** अच्छावाक-शब्द इसमें है यह-अच्छावाकीय सूक्त। मित्रावरुण शब्द इसमें है यह-मित्रावरुणीय सूक्त। **(साम)** यज्ञायज्ञा शब्द इसमें है यह-यज्ञायज्ञीय साम। वारवन्त शब्द इसमें है य-वारवन्तीय साम।*

सिद्धि-अच्छावाकीयम्। *अच्छावाक+सु+छ। अच्छावाक्+ईय। अच्छावाकीय+सु। अच्छावाकीयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अच्छावाक' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा सूक्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है. **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मित्रावरुणीयम्, यज्ञायज्ञीयम्, वारवन्तीयम्।***

विशेषः *(१) अच्छावाकीय तथा मित्रावरुणीय सूक्त के उदाहरण निम्नलिखित हैं-*

(क) अच्छावाक शब्द ऋग्वेद के खिल में वैदिक पदानुक्रम कोष के अनुसार (५।७।५।१०) पर है। जर्मनी से छपे खिलानि में उक्त पते पर प्रैष में अच्छावाक पद है परन्तु वहां सूक्तविभाग नहीं है।

*(ख) **विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै।***
स या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः।।
(ऋ० ६।६७।१)

(२) यज्ञायज्ञीय तथा वारवन्तीय साम के उदाहरण निम्नलिखित हैं-

*(क) **यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।***
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्। *(साम० १।१।४।१)*

*(ख) **अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।***
सम्राजन्तमध्वराणाम्।। *(ऋ० १।२७।१)*

छस्य लुक्-

(२) अध्यायानुवाकयोर्लुक्।६०।

प०वि०-अध्याय-अनुवाकयोः ७।२ लुक् १।१।

स०-अध्यायश्च अनुवाकश्च तौ अध्यायानुवाकौ, तयोः-अध्यायानुवाकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-{तत्}, मतौ, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} प्रातिपदिकाद् मतौ छस्य लुक्, अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे छ-प्रत्ययस्य लुग् भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः। विकल्पेन लुगयमिष्यते।

उदा०-गर्दभाण्डशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-गर्दभाण्डोऽध्यायः (लुक्)। गर्दभाण्डीयोऽध्यायः (छः)। दीर्घजीवितशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-दीर्घजीवितः (लुक्)। दीर्घजीवितीयः (छः)। पलितस्तम्भशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-पलितस्तम्भः (लुक्)। पलितस्तम्भीयः (छः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (अध्यायानुवाकयोः) यदि वहां अध्याय और अनुवाक अर्थ अभिधेय हो। यह लुक् विकल्प से अभीष्ट है।*

उदा०-गर्दभाण्ड शब्द इसमें है यह-गर्दभाण्ड अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। गर्दभाण्डीय अध्याय वा अनुवाक (छ)। दीर्घजीवित शब्द इसमें है यह-दीर्घजीवित अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। दीर्घजीवतीय अध्याय वा अनुवाक। पलितस्तम्भ शब्द इसमें है यह-पलितस्तम्भ अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। पलितस्तम्भीय अध्याय वा अनुवाक (छ)।

*सिद्धि-(१) **गर्दभाण्डः।** गर्दभाण्ड+सु+छ। गर्दभाण्ड+०। गर्दभाण्ड+सु। गर्दभाण्डः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'गर्दभाण्ड' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही-**दीर्घजीवितः, पलितस्तम्भः।***

*(२) **गर्दभाण्डीयः।** गर्दभाण्ड सु+छ। गर्दभाण्ड्+ईय्। गर्दभाण्डीय+सु। गर्दभाण्डीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'गर्दभाण्ड' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र विकल्प से अभीष्ट 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**दीर्घजीवितीयः, पलितस्तम्भीयः।***

विशेषः *गानरहित ऋचाओं का समूह 'अनुवाक' कहाता है।*

अण्-

(३) विमुक्तादिभ्योऽण्।६१।

प०वि०-विमुक्त-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-विमुक्त आदिर्येषां ते विमुक्तादयः, तेभ्यः-विमुक्तादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-{तत्} मतौ अध्यायानुवाकयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} विमुक्तादिभ्यो मतावण् अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थेभ्यो विमुक्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः।

उदा०-विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-वैमुक्तोऽध्यायोऽनुवाको वा। देवासुरशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-दैवासुरोऽध्यायोऽनुवाको वा, इत्यादिकम्।

विमुक्त। देवासुर। वसुमत्। सत्त्ववत्। उपसत्। दशार्हपयस्। हविर्धान। मित्री। सोमापूषन्। अग्नाविष्णू। वृत्रहति। इडा। रक्षोऽसुर। सदसत्। परिषादक्। वसु। मरुत्वत्। पत्नीवत्। महीयल। दशार्ह। वयस्। पतत्रि। सोम। महित्री। हेतु। इति विमुक्तादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ (विमुक्तादिभ्यः) विमुक्त आदि प्रातिपदिकों से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (अध्यायानुवाकयोः) यदि वहां अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-विमुक्त शब्द इसमें है यह-वैमुक्त अध्याय वा अनुवाक। देवासुर शब्द इसमें है यह-दैवासुर अध्याय वा अनुवाक इत्यादि।

सिद्धि-वैमुक्तः। *विमुक्त+सु+अण्। वैमुक्त्+अ। वैमुक्त+सु। वैमुक्तः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'विमुक्त' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-दैवासुरः आदि।*

वुन्-

(४) गोषदादिभ्यो वुन्।६२।

प०वि०-गोषद-आदिभ्यः ५।२ वुन् १।१।

स०-गोषद आदिर्येषां ते गोषदादयः, तेभ्यः-गोषदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-{तत्} मतौ अध्यायानुवाकयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} गोषदादिभ्यो मतौ वुन्, अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थेभ्यो गोषदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः।

उदा०-गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा। इषेत्वशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-इषेत्वकोऽध्यायोऽनुवाको वा, इत्यादिकम्।

गोषद। इषेत्व। मातरिश्वन्। देवस्य त्वा। देवीराप:। कृष्णोऽस्याखरेष्ट:। दैवींधियम्। रक्षोहण। अञ्जन। प्रभूत। प्रतूर्त। कृशानु। इति गोषदादय:।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (गोषदादिभ्य:) गोषद आदि प्रातिपदिकों से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (अध्यायानुवाकयो:) यदि वहां अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-गोषद शब्द इसमें है यह-गोषदक अध्याय वा अनुवाक। इषेत्व शब्द इसमें है यह-इषेत्वक अध्याय वा अनुवाक इत्यादि।

*सिद्धि-**गोषदक:।** गोषद+सु+वुन्। गोषद्+अक। गोषदक+सु। गोषदक:।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'गोषद' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**इषेत्वक:** आदि।*

कुशलार्थप्रत्ययविधि:

वुन्-

(१) तत्र कुशल: पथ:।६३।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) कुशल: १।१ पथ: ५।१।

अनु०-वुन् इत्यनुवर्तति।

अन्वय:-तत्र पथ: कुशलो वुन्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् कुशल इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पथि कुशल:-पथक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पथ:) पथिन् प्रातिपदिक से (कुशल:) कुशल=चतुर अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पन्था=मार्ग के ज्ञान में कुशल-पथक। मार्ग=रास्ता जाननेवाला।

सिद्धि-पथकः। *पथिन्+ङि+वुन्। पथ्+अक। पथक+सु। पथकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से कुशल अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।२) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

कन्-

(२) आकर्षादिभ्यः कन्।६४।

प०वि०-आकर्ष-आदिभ्यः ५।३ कन् १।१।

स०-आकर्ष आदिर्येषां ते आकर्षादयः, तेभ्यः-आकर्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र कुशल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राऽऽकर्षादिभ्यः कुशलः कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमी-समर्थेभ्यः आकर्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आकर्षे कुशलः-आकर्षकः। त्सरौ कुशलः=त्सरुकः, इत्यादिकम्।

आकर्ष। त्सरु। पिपासा। पिचण्ड। अशनि। अश्मन्। विचय। चय। जय। आचय। अय। नय। निपाद। गद्गद। दीप। ह्रद। ह्राद। ह्लाद। शकुनि। इति आकर्षादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्र) सप्तमी-समर्थ (आकर्षादिभ्यः) आकर्ष आदि प्रातिपदिकों से (कुशल) चतुर अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-आकर्ष=कसौटी पर कसने में कुशल-आकर्षक। त्सरु=तलवार की मूंठ पकड़ने में कुशल-त्सरुक इत्यादि।

सिद्धि-आकर्षकः। *आकर्ष+ङि+कन्। आकर्ष+क। आकर्षक+सु। आकर्षकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'आकर्ष' शब्द से कुशल अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**त्सरुकः आदि।***

कामार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) धनहिरण्यात् कामे।६५।

प०वि०–धन-हिरण्यात् ५।१ कामे ७।१।

स०–धनं च हिरण्यं च एतयोः समाहारो धनहिरण्यम्, तस्मात्-धनहिरण्यात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्र, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र धनहिरण्याभ्यां कामे कन्।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां धनहिरण्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां कामेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति। कामः=इच्छा, अभिलाष इत्यर्थः।

उदा०–**(धनम्)** धने कामः-धनकः। धनको देवदत्तस्य। **(हिरण्यम्)** हिरण्ये कामः-हिरण्यकः। हिरण्यको यज्ञदत्तस्य।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (धनहिरण्यात्) धन, हिरण्य प्रातिपदिकों से (कामे) इच्छा अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(धन)** धन में इच्छा-धनक। देवदत्त को धनक (धन में इच्छा) है। **(हिरण्य)** हिरण्य में इच्छा-हिरण्यक। यज्ञदत्त को हिरण्यक (सुवर्ण में इच्छा) है।*

सिद्धि-धनकः। धन+ङि+कन्। धन+क। धनक+सु। धनकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'धन' शब्द से काम (इच्छा) अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-हिरण्यकः।

प्रसितार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते।६६।

प०वि०–स्वाङ्गेभ्यः ५।३ प्रसिते ७।१ **'स्वाङ्गेभ्यः'** इति बहुवचननिर्देशात् स्वाङ्गवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

अनु०–तत्र, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्र, स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः स्वाङ्गवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रसितेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति। प्रसितः=प्रसक्तः, तत्पर इत्यर्थः।

उदा०-केशेषु प्रसितः-केशकः। केशरचनायां प्रसक्त इत्यर्थः। दन्तौष्ठकः। केशनखकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्वाङ्गेभ्यः) स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकों से (प्रसितः) प्रसक्त=फंसा हुआ अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-केशो में प्रसित=फंसा हुआ-केशक। केश-शृङ्गार में फंसा हुआ पुरुष। दन्त और ओष्ठ के शृङ्गार में फंसा हुआ-दन्तौष्ठक। केश नख के शृङ्गार में फंसा हुआ-केशनखक।

सिद्धि-केशकः। *केश+सुप्+कन्। केश+क। केशक+सु। केशकः।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, स्वाङ्गवाची 'केश' शब्द से प्रसित अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दन्तौष्ठकः, केशनखकः।***

ठक्—

(२) उदराट्ठगाद्यूने।६७।

प०वि०-उदरात् ५।१ ठक् १।१ आद्यूने ७।१।

कृद्वृत्तिः-**'आद्यूनः'** इत्यत्र **'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युति-स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'** (दि०प०) इत्यस्माद् धातोः क्तः प्रत्ययः, **'दिवोऽविजिगीषायाम्'** (८।२।४९) इति च निष्ठातकारस्य नत्वं भवति। आद्यूनः=अविजिगीषुरित्यर्थः।

अनु०-तत्र, प्रसिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उदरात् प्रसिते ठक्, आद्यूने।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् उदर-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रसितेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रसितम् आद्यूनं चेत् तद् भवति।

उदा०-उदरे प्रसितः-औदरिक आद्यूनः। यो बुभुक्षयाऽत्यन्तं पीड्यते स औदरिक आद्यून इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (उदरात्) उदर प्रातिपदिक से (प्रसिते) खाने में फंसा हुआ अर्थ में (ठक्) प्रत्यय होता है (आद्यूने) जो प्रसित अर्थ यदि वह **आद्यून**=अविजिगीषा हो, पूर्ण न हो।*

उदा०-उदर में प्रसित अर्थात् खाने में फंसा हुआ और उससे तृप्त न होनेवाला औदरिक आद्यून (पेटू)।

सिद्धि-औदरिक: । *उदर+ङि+ठक्। औदर्+इक। औदरिक+सु। औदरिक:।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'उदर' शब्द से प्रसित अर्थ में तथा आद्यून अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। ***'ठस्येक'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और* ***'किति च'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

परिजातार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) सस्येन परिजातः ।६८।

प०वि०-सस्येन ३।१ परिजात: १।१।

अनु०-'कन्' इत्यनुवर्तते। अत्र **'सस्येन'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तेन} सस्यात् परिजात: कन्।

अर्थ:-{तेन} तृतीयासमर्थात् सस्यात् प्रातिपदिकात् परिजात इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति। सस्यशब्दोऽयं गुणवाची गृह्यते न तु धान्यवाची, अनभिधानात्। परिजात:=सर्वत: सम्बद्ध इत्यर्थ:।

उदा०-सस्येन परिजात:-सस्यक: शालि:। सस्यक: साधु:। सस्यको मणि:। आकरशुद्ध इत्यर्थ:।

आर्यभाषाः अर्थ- *{तेन} तृतीया-समर्थ (सस्येन) सस्य प्रातिपदिक से (परिजात:) सब ओर से सम्बद्ध अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है। यह 'सस्य' शब्द गुणवाचक है, धान्य=खेती का वाचक नहीं है, अभीष्ट अर्थ का वाचक न होने से।*

उदा०-सस्य=गुण से परिजात=सब ओर से सम्बद्ध-सस्यक शालि (चावल)। सर्वथा दोषरहित चावल। सस्यक मणि। सर्वथा दोषरहित रत्न। आकर=खान से ही शुद्ध निकला हुआ हीरा।

सिद्धि-सस्यक: । *सस्य+टा+कन्। सस्य+क। सस्यक+सु। सस्यक:।*

यहां तृतीया-समर्थ 'सस्य' शब्द से परिजात अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

हारि-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) अंशं हारी।६७।

प०वि०–अंशम् २।१ हारी १।१।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'अंशम्'** इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिगृह्यते।

अन्वयः–{तत} अंशाद् हारी कन्।

अर्थः–{तत्} द्वितीयासमर्थाद् अंश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् हारीत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अंशं हारी-अंशकः पुत्रः। अंशको दायादः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अंशम्) अंश प्रातिपदिक से (हारी) हरण करनेवाला अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अंश (भाग) को ग्रहण करनेवाला-अंशक पुत्र (पैतृक सम्पत्ति में हिस्सेदार)। अंशक दायाद=दायभागी (सम्पत्ति में हिस्सेदार)।

सिद्धि-अंशकः। *अंश+अम्+कन्। अंश+क। अंशक+सु। अंशकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अंश' शब्द से हारी=हरण (ग्रहण) करनेवाला अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

अचिरापहृतार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) तन्त्रादचिरापहृते।७०।

प०वि०–तन्त्रात् ५।१ अचिरापहृते ७।१।

स०–चिरम् अपहृतस्य इति चिरापहृतः न चिरापहृत इति अचिरापहृतः, तस्मिन्-अचिरापहृते **'कालाः परिमाणिना'** (२।२।५) इति षष्ठीतत्पुरुषः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'तन्त्रात्'** इति पञ्चमीनिर्देशात् पञ्चमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{ततः} तन्त्राद् अचिरापहृते कन्।

अर्थः-{ततः} पञ्चमीसमर्थात् तन्त्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अचिरापहृतेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तन्त्राद् अचिरापहृत इति तन्त्रकः पटः।

आर्यभाषाः अर्थ *{ततः} पञ्चमी-समर्थ (तन्त्रात्) तन्त्र प्रातिपदिक से (अचिरापहृतः) जिसे उतारे हुये थोड़ा समय हुआ है, अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-तन्त्र (करघा) से जो अचिरापहृत (जिसे उतारे हुये थोड़ा समय हुआ) है वह-तन्त्रक पट (कपड़ा)। करघे से अभी उतारा हुआ ताज़ा कपड़ा।

सिद्धि-तन्त्रकः। *तन्त्र+ङसि+कन्। तन्त्र+क। तन्त्रक+सु। तन्त्रकः।*

यहां पञ्चमी-समर्थ 'तन्त्र' शब्द से अचिरापहृत अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

कन् (निपातनम्)-

(२) ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्।७१।

प०वि०-ब्राह्मणक-उष्णिके १।२ संज्ञायाम्।

स०-ब्राह्मणकश्च अष्णिका च ते-ब्राह्मणकोष्णिके (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ब्रह्मणोष्णिके कन् संज्ञायाम्।

अर्थः-ब्राह्मणक-उष्णिकाशब्दौ कन् प्रत्ययान्तौ निपात्येते संज्ञायां विषये।

उदा०-ब्राह्मणको देशः। यत्राऽऽयुधजीविनो ब्राह्मणाः सन्ति तस्य देशस्य 'ब्राह्मणकः' इति संज्ञा वर्तते। **उष्णिका यवागूः।** अल्पान्ना यवागूः 'उष्णिका' इति कथ्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ब्राह्मणकोष्णिके) ब्राह्मणक, उष्णिका शब्द (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

*उदा०-**ब्राह्मणक** देश। जिस देश में आयुधजीवी ब्राह्मण रहते हैं उस देश की 'ब्राह्मणक' संज्ञा है। **उष्णिका यवागू।** थोड़े अन्न-भागवाली यवागू (राबड़ी) 'उष्णिका' कहाती है।*

सिद्धि-(१) ब्राह्मणकः। ब्राह्मणस्य+जस+कन्। ब्राह्मण+क। ब्राह्मणक+सु। ब्राह्मणकः।

यहां प्रथमा-समर्थ, आयुधजीवीवाची 'ब्राह्मण' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञाविषय में 'कन्' प्रत्यय निपातित है। ***"ब्राह्मणशब्दादायुधनीव्युपाधिकात् प्रथमान्तात् सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययः" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।***

(२) उष्णिका। अन्न+सु+कन्। उष्ण+कन्। उष्णक+टाप्। उष्णिका+सु। उष्णिका।

यहां प्रथमा-समर्थ, अल्पवाची 'अन्न' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञाविषय में 'कन्' प्रत्यय और उष्ण आदेश निपातित हैं। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।* ***"अन्नशब्दादल्पत्वोपाधिकात् सप्तम्यर्थ एव कन् प्रत्ययः, अन्नशब्दस्योष्ण्यादेशः" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।***

कारि-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) शीतोष्णाभ्यां कारिणि।७२।

प०वि०-शीत-उष्णाभ्याम् ५।२ कारिणि ७।१।

स०-शीतं च उष्णं च ते शीतोष्णे, ताभ्याम्-शीतोष्णाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते। अत्र शीतोष्णशब्दयोः क्रियाविशेषणत्वाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तत्} शीतोष्णाभ्यां कारिणि कन्।

अर्थः-{तत्} द्वितीयासमर्थाभ्यां शीतोष्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां कारिणि अर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शीतम्)** शीतं करोति-शीतकः। अलसः, जड इत्यर्थः। **(उष्णम्)** उष्णं करोति-उष्णकः। शीघ्रकारी, दक्ष इत्यर्थः। अत्र शीतोष्ण-शब्दौ मन्दशीघ्रपर्यायौ वेदितव्यौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} द्वितीया-समर्थ (शीतोष्णाभ्याम्) शीत, उष्ण प्रातिपदिकों से (कारिणि) करनेवाला अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शीत) शीत=मन्द कार्य करनेवाला-शीतक। आलसी, जड़ पुरुष। (उष्ण) उष्ण=शीघ्र कार्य करनेवाला-उष्णक। शीघ्रकारी, दक्ष (चतुर) पुरुष। यहां शीत और उष्ण शब्द मन्द और शीघ्र के पर्यायवाची हैं, ठण्डा और गर्म अर्थक नहीं हैं।

सिद्धि-शीतकः। शीत+अम्+कन्। शीत+क। शीतक+सु। शीतकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'शीत' शब्द से कारी अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। 'शीत' शब्द के क्रिया-विशेषण होने से 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-उष्णकः।

कन् (निपातनम्)-

(२) अधिकम्।७३।

वि०-अधिकम् १।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधिकं कन्।

अर्थः-अधिकम् इति पदं कन्-प्रत्ययान्तं निपात्यते। अध्यारूढशब्दस्योत्तरपदलोपः कन् प्रत्ययश्चात्र निपातितो वेदितव्यः।

उदा०-अधिको द्रोणः खार्याम्। अधिका खारी द्रोणेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अधिकम्) अधिक यह पद (कन्) कन् प्रत्ययान्त निपातित है। यहां अध्यारूढ शब्द के उत्तरपद (आरूढ) का लोप और कन् प्रत्यय का निपातन समझें।*

उदा०-द्रोण परिमाण से खारी परिमाण अधिक है। द्रोण=१० सेर। खारी=१६० सेर (४ मण)।

सिद्धि-अधिकम्। अधि-आरूढ+सु+कन्। अधि+०+क। अधिक+सु। अधिकम्।

यहां अधि-आरूढ शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उत्तरपद 'आरूढ' शब्द का लोप निपातित है। 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' (३।४।७२) से 'क्त' प्रत्यय कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में भी होता है। जब कर्तृवाच्य में 'क्त' प्रत्यय है। तब 'अधिको द्रोणः खार्याम्' यह प्रयोग बनता है। यहां 'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी' (२।३।७) से अधिकवाची 'खारी' शब्द में सप्तमी-विभक्ति होती है और जब कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय होता है तब 'अधिका खारी द्रोणेन' यह प्रयोग बनता है। यहां 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से अनभिहितकर्ता द्रोण में तृतीया और अभिहित कर्म 'खारी' में प्रथमा-विभक्ति होती है।

कन् (निपातनम्)–

(३) अनुकाभिकाभीकः कमिता।७४।

प०वि०-अनुक-अभिक-अभीकः १।१ कमिता १।१।

स०-अनुकश्च अभिकश्च अभीकश्च एतेषां समाहारः-अनुकाभिकाभीकः (समाहारद्वन्द्वः)। अत्र समाहारद्वन्द्वे **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) इति लिङ्गव्यत्ययेन पुंस्त्वं वेदितव्यम्।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुकाभिकाभीकाः शब्दाः कमिता इत्यस्मिन्नर्थे कन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-**(अनुकः)** अनुकामयते-अनुकः। **(अभिकः)** अभिकामयते-अभिकः। **(अभीकः)** अभिकामयते-अभीकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुकाभिकाभीकः) अनुक, अभिक, अभीक शब्द (कमिता) कामुक अर्थ में (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

उदा०-अनुकामना करनेवाला-अनुक। अभिकामना करनेवाला-अभिक अथवा अभीक (कामुक)।

सिद्धि-(१) अनुकः। अनु+सु+कन्। अनु+क। अनुक+सु। अनुकः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'अनु' शब्द से कमिता-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय निपातित है। ऐसे ही 'अभि' शब्द से-अभिकः।

(२) अभीकः। यहां 'अभि' शब्द को दीर्घत्व भी निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अन्विच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) पार्श्वेनान्विच्छति।७५।

प०वि०-पार्श्वेन ३।१ अन्विच्छति क्रियापदम्।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'पार्श्वेन'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिगृह्यते।

अन्वयः-{तेन} पार्श्वाद् अन्विच्छति कन्।

अर्थः-{तिन} तृतीयासमर्थात् पार्श्वशब्दात् प्रातिपदिकाद् अन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति। कुटिलोपायः=पार्श्वम्। पार्श्वेनान्विच्छति-पार्श्वकः। मायावीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तिन} तृतीया-समर्थ (पार्श्वेन) पार्श्व प्रातिपदिक से (अन्विच्छति) प्राप्त करना चाहता है, अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय है। यहां 'पार्श्व' शब्द का अर्थ कुटिल उपाय है।*

उदा०-पार्श्व=कुटिल उपाय से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-पार्श्वक, मायावी (छली)।

सिद्धि-पार्श्वकः। *पार्श्व+टा+कन्। पार्श्व+क। पार्श्वक+सु। पार्श्वकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'पार्श्व' शब्द से अन्विच्छति अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

ठक्+ठञ्-

(२) अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ।७६।

प०वि०-अयःशूल-दण्डाजिनाभ्याम् ३।२ ठक्-ठञौ १।२।

स०-अयःशूलं च दण्डाजिनं च ते अयःशूलदण्डाजिने, ताभ्याम्-अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ठक् च ठञ् च तौ ठक्ठञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्विच्छति इत्यनुवर्तते। अत्र **'अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तिन} अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम् अन्विच्छति ठक्ठञौ।

अर्थः-{तिन} तृतीयासमर्थाभ्याम् अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ठक्ठञौ प्रत्ययौ भवतः। अयःशूलम्=तीक्ष्णोपायः। दण्डाजिनम्=दम्भः।

उदा०-(अयःशूलम्) अयःशूलेनान्विच्छति-आयःशूलिकः (ठक्)। साहसिक इत्यर्थः। **(दण्डाजिनम्)** दण्डाजिनेनान्विच्छति-दाण्डाजिनिक (ठञ्)। दाम्भिक इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्) अयःशूल, दण्डाजिन प्रातिपदिकों से (अन्विच्छति) प्राप्त करना चाहता है, अर्थ में (ठक्ठञौ) ठक् और ठञ् प्रत्यय होते हैं। यहां 'अयःशूल' शब्द का लाक्षणिक अर्थ कठोर उपाय तथा 'दण्डाजिन' शब्द का अर्थ दम्भ (ढोंग) है।*

उदा०-(अयःशूल) अयःशूल=कठोर उपाय से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-आयःशूलिक साहसिक (जबरदस्ती करनेवाला)। (दण्डाजिन) दण्डाजिन=दण्ड और अजिन=मृगचर्म धारण रूप तपस्वी वेष से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-दाण्डाजिनिक (ठञ्) दाम्भिक (ढौंगी)।

सिद्धि-(१) आयःशूलिकः। अयःशूल+टा+ठक्। आयःशूल+इक। आयःशूलिक+सु। आयःशूलिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'अयःशूल' शब्द से अन्विच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

(२) दाण्डाजिनिकः। यहां 'दण्डाजिन' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) आद्युदात्त स्वर होता है-दाण्डाजिनिकः।

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

कन् (पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्)-

(१) तावतिथं ग्रहणमिति लुग् वा।७७।

प०वि०-तावतिथम् २।१ ग्रहणम् १।१ इति अव्ययपदम्, लुक् १।१ वा अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्तिः-तावतां पूरणस्तावतिथः, तम्-तावतिथम्। अत्र **'वतोरिथुक्'** (५।२।५३) इति पूरणार्थे डटि परत इथुगागमः। अत्र **'तावतिथम्'** इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-{तम्} तावतिथात् स्वार्थे कन्, लुग् वा, ग्रहणमिति।

अर्थः-{तम्} द्वितीयासमर्थात् तावतिथात्=पूरणप्रत्ययन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति, पूरणप्रत्ययस्य च विकल्पेन लुग्

भवति, यद् द्वितीयासमर्थं ग्रहणं चेत् तद् भवति, इतिकरणो विवक्षार्थस्तेन ग्रन्थविषयकं ग्रहणमिष्यते।

उदा०-द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-द्विकं ग्रहणम् (लुक्)। द्वितीयकं ग्रहणम् (लुङ् न)। तृतीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-त्रिकं ग्रहणम् (लुक्)। तृतीयकं ग्रहणम् (लुङ् न)। चतुर्थेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-चतुष्कं ग्रहणम् (लुक्)। चतुर्थकं ग्रहणम् (लुङ् न)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (तावतिथम्) पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है और (लुक्, वा) उस पूरणार्थक प्रत्यय का विकल्प से लोप होता है (ग्रहणम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह ग्रहण करना हो, (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है अतः यहां ग्रन्थ-विषयक ग्रहण करना ही अभीष्ट है।*

उदा०-जो द्वितीय रूप से अर्थात् दूसरी बाद सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है (समझता) है वह-द्विक ग्रहण (लुक्)। द्वितीयक ग्रहण (लुक् नहीं)। जो तृतीय रूप से अर्थात् तीसरी बार सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है वह-त्रिक ग्रहण (लुक्)। तृतीयक ग्रहण (लुक् नहीं)। जो चतुर्थ रूप से अर्थात् चौथी बार सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है वह-चतुष्क ग्रहण (लुक्)। चतुर्थक ग्रहण (लुक् नहीं)।

*सिद्धि-(१) **द्विकम्।** द्वितीय+अम्+कन्। द्वि+क। द्विक+सु। द्विकम्।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, ग्रहणवाची 'द्वितीय' शब्द से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय और पूरणार्थक 'तीय' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही 'तृतीय' शब्द से-**त्रिकम्।***

*(२) **द्वितीयकम्।** यहां 'द्वितीय' शब्द से पूर्ववत् 'कन्' प्रत्यय और विकल्प पक्ष में पूरणार्थक 'तीय' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही 'तृतीय' शब्द से-**तृतीयकम्।***

*(३) **चतुष्कम्।** चतुर्थ+अम्+कन्। चतुर्०+क। चतुः+क। चतुस्+क। चतुष्+क। चतुष्क+सु। चतुष्कम्।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, ग्रहणवाची 'चतुर्थ' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और पूरण प्रत्यय डट् का सथुक् लुक् होता है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से 'चतुर्' के रेफ को विसर्जनीय, '**विसर्जनीयस्य सः**' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश और '**इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य**' (८।३।४१) से षत्व होता है।*

*(४) **चतुर्थकम्।** यहां 'चतुर्थ' शब्द 'कन्' प्रत्यय और विकल्प पक्ष में पूरण प्रत्यय 'डट्' का लुक् नहीं होता है।*

***विशेषः** 'तावतिथ' शब्द में '**वतोरिथुक्**' (५।२।५३) से डट् प्रत्यय और वत्वन्त प्रातिपदिक को इथुक् आगम होता है। 'डट्' पूरणार्थक प्रत्यय है अतः यहां 'तावतिथ' शब्द से पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

एषाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स एषां ग्रामणीः।७८।

प०वि०–सः १।१ एषाम् ६।३ ग्रामणीः १।१।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–स प्रातिपदिकाद् एषां कन् ग्रामणीः।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एषामिति षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं ग्रामणीश्चेत् स भवति। ग्रामम्=समूहं नयतीति ग्रामणीः प्रधानो मुख्य इत्यर्थः।

उदा०–देवदत्तो ग्रामणीरेषाम्–देवदत्तकाः। यज्ञदत्तो ग्रामणीरेषाम्–यज्ञदत्तकाः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (एषाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (ग्रामणीः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह ग्रामणी=ग्राम (समूह) का नेता हो। ग्रामणी=प्रधान, मुख्य।

उदा०–देवदत्त है ग्रामणी इनका ये–देवदत्तक। यज्ञदत्त है ग्रामणी इनका ये–यज्ञदत्तक।

सिद्धि–__देवदत्तकाः__। देवदत्त+सु+कन्। देवदत्त+क। देवदत्तक+जस्। देवदत्तकाः।

यहां प्रथमा-समर्थ, ग्रामणी-वाची 'देवदत्त' शब्द से एषाम् (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही–__यज्ञदत्तकाः__।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे।७९।

प०वि०–शृङ्खलम् १।१ अस्य ६।१ बन्धनम् १।१ करभे ७।१।

अनु०–कन्, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स शृङ्खलाद् अस्य कन्, बन्धनं करभे।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् शृङ्खलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं बन्धनं चेत्, यच्चास्येति षष्ठीनिर्दिष्टं करभश्चेत् स भवति। उष्ट्राणां बालकाः करभा भवन्ति, तेषां पादे यत् काष्ठमयं पाशकं बध्यते तत् **'शृङ्खलम्'** इति कथ्यते।

उदा०-शृङ्खलं बन्धनमस्य करभस्य-शृङ्खलकः करभः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सः) प्रथमा-समर्थ (शृङ्खलम्) शृङ्खल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (बन्धनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह बन्धन हो (करभे) और जो अस्य=षष्ठी-अर्थ है यदि वह करभ=ऊंट का बच्चा हो। ऊंट के बच्चे 'करभ' कहाते हैं और उनके पांव में डाला जानेवाला पाश (बन्धन) 'शृङ्खल' कहाता है।*

उदा०-शृङ्खल बन्धन है इस करभ का यह-शृङ्खलक करभ। करभ=वह ऊंट का बच्चा (टोरड़ा) जिसे पराधीन करने के लिये पांव में बन्धन लगाना आवश्यक है।

सिद्धि-शृङ्खलकः। *शृङ्खल+सु+कन्। शृङ्खल+क। शृङ्खलक+सु। शृङ्खलकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, बन्धनवाची 'शृङ्खल' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा करभ-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

कन् (निपातनम्)-

(१) उत्क उन्मनाः।८०।

प०वि०-उत्कः १।१ उन्मनाः १।१।

स०-उद्गत मनो यस्य स उन्मनाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उत्कः कन् उन्मनाः।

अर्थः-उत्क इति पदं कन्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, उन्मनाश्चेत् स भवति।

उदा०-उत्को देवदत्तः। उत्कः प्रवासी। उन्मनाः (उत्सुकः) इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उत्कः) उत्क पद (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित है (उन्मनाः) यदि उसका अर्थ 'उन्मना' (उत्सुक) हो।*

उदा०-उत्क देवदत्त। उत्क प्रवासी। उन्मना=उखड़े मनवाला।

सिद्धि-उत्कः। *उत्+सु+कन्। उत्+क। उत्क+सु। उत्कः।*

यहां साधन और क्रियावाची 'उत्' शब्द से उन्मना अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यहां 'उत्' शब्द से सम्बद्ध 'मन' शब्द साधनवाची और 'गत' शब्द क्रियावाची है।

भवजनितार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) कालप्रयोजनाद् रोगे।८१।

प०वि०–काल-प्रयोजनात् ५।१ रोगे ७।१।

स०–कालश्च प्रयोजनं च एतयोः समाहारः कालप्रयोजनम्, तस्मात्-कालप्रयोजनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्रार्थलभ्या सप्तमी तृतीया च समर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–सप्तमीतृतीयासमर्थाभ्यां कालप्रयोजनाभ्यां भवे जनिते च कन् रोगे।

अर्थः–सप्तमीसमर्थात् तृतीयासमर्थाच्च यथासंख्यं कालवाचिनः प्रयोजनवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं भवे जनिते चार्थे कन् प्रत्ययो भवति, रोगेऽभिधेये। कालः=दिवसादिः। प्रयोजनम्=कारणं रोगस्य फलं च।

उदा०–**(कालः)** द्वितीयेऽहनि भवः–द्वितीयको ज्वरः। चतुर्थेऽहनि भवः–चतुर्थको ज्वरः। **(प्रयोजनम्)** विषपुष्पैर्जनितः–विषपुष्पको ज्वरः। काशपुष्पैर्जनितः–काशपुष्पको ज्वरः। उष्णं कार्यमस्य–उष्णको ज्वरः। शीतं कार्यमस्य–शीतको ज्वरः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(सप्तमी-विभक्ति और तृतीया-विभक्ति समर्थ) (काल-प्रयोजनात्) यथासंख्य कालवाची और प्रयोजनवाची प्रातिपदिक से यथासंख्य (भव और जनित) अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (रोगे) यदि वहां रोग अर्थ अभिधेय हो। प्रयोजन=कारण और रोग का फल।*

*उदा०–**(काल)** द्वितीय दिन होनेवाला–द्वितीयक ज्वर। चतुर्थ दिन होनेवाला–चतुर्थक ज्वर। **(प्रयोजन)** विषपुष्पों से जनित–विषपुष्पक ज्वर। काशपुष्पों (कांस के फूल) से उत्पन्न–काशपुष्पक ज्वर। उष्ण है कार्य इसका–उष्णक ज्वर। गर्मी का बुखार। शीत है कार्य इसका–शीतक ज्वर। जाड़े का बुखार।*

सिद्धि-(१) द्वितीयक: । द्वितीय+ङि+कन् । द्वितीय+क । द्वितीयक+सु । द्वितीयक: ।

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालवाची 'द्वितीय' शब्द से भव-अर्थ में तथा रोग अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**चतुर्थक:** ।*

*(२) **विषपुष्पक:** । यहां तृतीया-समर्थ, प्रयोजन (कारण) वाची 'विषपुष्प' शब्द से जनित-अर्थ में तथा रोग अर्थ अभिधेय में 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**काशपुष्पक:** आदि।*

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम्।८२।

प०वि०-तत् १।१ अस्मिन् ७।१ अन्नम् १।१ प्राये ७।१। संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तद् प्रातिपदिकाद् अस्मिन् कन् अन्नं प्राये संज्ञायाम्।

अर्थ:-तद् इति प्रथमासमर्थाद् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमन्नं चेत् प्रायविषयं भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्। प्राय:=बाहुल्यम्।

उदा०-गुडापूपा: प्रायेणान्नमस्याम्-गुडापूपिका पौर्णमासी। तिलापूपा: प्रायेणान्नमस्याम्-तिलापूपिका पौर्णमासी।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है, (अन्नं प्राये) जो प्रथमा-समर्थ है वह यदि प्रायविषयक अन्न हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-गुडापूप (गुड़ के पूड़े) इसमें प्रायश: (अधिकश:) बनते हैं यह-गुडापूपिका पौर्णमासी। श्रावण मास की पूर्णिमा। तिलापूप=तिल के पूड़े इसमें प्रायश: बनते हैं यह-तिलापूपिका पौर्णमासी। पौष मास की पूर्णिमा।

*सिद्धि-**गुडापूपिका** । गुडापूप+जस्+कन् । गुडापूप+क । गुडापूपक+टाप् । गुडापूपिका+सु । गुडापूपिका ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अन्नप्रायविषयक 'गुडापूप' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से कन् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। ऐसे ही-**तिलापूपिका** ।*

अञ्–

(२) कुल्माषादञ्।८३।

प०वि०–कुल्माषात् ५।१ अञ् १।१।

अनु०–तत्, अस्मिन्, अन्नम्, प्राये, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् कुल्माषाद् अस्मिन् अञ् अन्नं प्राये संज्ञायाम्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् कुल्माषशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नितिसप्तम्यर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अन्नं चेत् प्रायविषयं भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्याम्–कौल्माषी पौर्णमासी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कुल्माषात्) कुल्माष प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (अन्नं प्राये) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रायविषयक अन्न हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०–कुल्माष=चणे आदि के होळे प्रायशः इसमें बनते हैं यह–कौल्माषी पौर्णमासी। फाल्गुन मास की पूर्णिमा।

***सिद्धि–कौल्माषी।** कुल्माष+जस्+अञ्। कौल्माष्+अ। कौल्माष+ङीप्। कौल्माषी+सु। कौल्माषी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ प्रायविषयक 'कुल्माष' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

छन्दोऽधीतेऽर्थे निपातनम्

(१) श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते।८४।

प०वि०–श्रोत्रियन् १।१ छन्दः २।१ अधीते क्रियापदम्।

अर्थः–(१) छन्दोऽधीते इत्यस्य वाक्यस्यार्थे **'श्रोत्रियन्'** इत्येतद् निपात्यते। (२) छन्दसो वा श्रोत्रभावो निपात्यते, तदधीते इत्यस्मिन्नर्थे, घँश्च प्रत्ययः।

उदा०-छन्दोऽधीते इति श्रोत्रियो ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(१)-(छन्दः) वेद को (अधीते) पढ़ता है इस वाक्य के अर्थ में (श्रोत्रियन्) 'श्रोत्रियन्' यह शब्द निपातित है। (२)-अथवा 'छन्दः' शब्द के स्थान में श्रोत्र-आदेश, (अधीते) उस छन्द को पढ़ता है इस अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-जो छन्द को पढ़ता है वह-श्रोत्रिय ब्राह्मण।

सिद्धि-श्रोत्रियः। *छन्दस्+अम्+घन्। श्रोत्र्+इय। श्रोत्रिय+सु। श्रोत्रियः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'छन्दस्' शब्द से अधीते=पढ़ता है अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय निपातित है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'श्रोत्रियन्' शब्द में नकार अनुबन्ध* ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।१९७) से आद्युदात्त स्वर के लिये है-**श्रोत्रियः।***

अनेन (तृतीया) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

इनिः+ठन्-

(१) श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ।८५।

प०वि०-श्राद्धम् १।१ अनेन ३।१ भुक्तम् १।१ इनिठनौ १।२।

स०-इनिश्च ठन् च तौ-इनिठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् श्राद्धाद् अनेन इनिठनौ भुक्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् श्राद्धशब्दात् प्रातिपदिकाद् अनेन इति तृतीयार्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थं भुक्तं चेत् तद् भवति। श्राद्धशब्दः कर्मनामधेयम्, तस्मात्-तत्साधनाद् द्रव्ये वर्तमानात् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-श्राद्धं भुक्तमनेन-श्राद्धी (इनिः)। श्राद्धिकः (ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (श्राद्ध) श्राद्ध प्रातिपदिक से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिठनौ) इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं (भुक्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भुक्त=खाना-पीना हो। श्राद्ध शब्द जीवित माता की श्रद्धापूर्वक सेवा-कर्म का वाचक है। अतः सेवा के साधन द्रव्यविशेष अर्थ में विद्यमान 'श्राद्ध' शब्द* ***से प्रत्यय-विधान किया जाता है।***

उदा०-श्राद्ध को इसने भुक्त=सेवन कर लिया है यह-श्राद्धी (इनि)। श्राद्धिक (ठन्)।

सिद्धि-(१) **श्राद्धी।** श्राद्ध+सु+इनि। श्राद्ध्+इन्। श्राद्धिन्+सु। श्राद्धीन्+सु। श्राद्धीन्+०। श्राद्धी।

यहां प्रथमा-समर्थ, भुक्तवाची 'श्राद्ध' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो० दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।

(२) **श्राद्धिकः।** यहां 'श्राद्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः (१) पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं-एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है। **'श्रत्=सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाये उसका नाम श्राद्ध है (सत्यार्थप्रकाश समु० ३)।

(२) श्राद्ध अर्थात् श्रद्धापूर्वक किये गये यज्ञ आदि शुभकर्मों में जो देव, ऋषि, पितर और परमयोगी लोग भोजन करते हैं वे श्राद्धी अथवा श्राद्धिक कहाते हैं।

इनिः–

(२) पूर्वादिनिः।८६।

प०वि०-पूर्वात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तत्, अनेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पूर्वाद् अनेन इनिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् पूर्वशब्दात् प्रातिपदिकाद् अनेन इति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वं भुक्तमनेन-पूर्वी। पूर्वं पीतमनेन-पूर्वी।। पूर्वी। पूर्विणौ। पूर्विणः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूर्वात्) पूर्व प्रातिपदिक से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।

उदा०-पूर्व=पहले खा लिया है इसने यह-पूर्वी। पूर्व=पहले पी लिया है इसने यह पूर्वी। पूर्वी। पूर्विणौ। पूर्विणः।

*सिद्धि-पूर्वी । पूर्व+सु+इनि । पूर्व्+इन् । पूर्विन्+सु । पूर्वीन्+सु । पूर्वीन्+० । **पूर्वी** ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'पूर्व' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से इनि प्रत्यय है । शेष कार्य '**श्राद्धी**' (५ ।२ ।८५) के समान है ।*

इनिः--

(३) सपूर्वाच्च ।८७।

प०वि०-सपूर्वात् ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०-विद्यमानं पूर्वं यस्मादिति-सपूर्वम्, तस्मात्-सपूर्वात् (अस्वपदबहुव्रीहिः) ।

अनु०-तत्, अनेन, पूर्वात्, इनिरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तत् सपूर्वात् पूर्वाच्च अनेन इनिः ।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् सपूर्वात् पूर्वात् प्रातिपदिकाच्चाऽनेन इति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-कृतं पूर्वमनेन-कृतपूर्वी कटम् । भुक्तं पूर्वमनेन-भुक्तपूर्वी ओदनम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सपूर्वात्) विद्यमान पूर्ववाले (पूर्वात्) पूर्व प्रातिपदिक से (च) भी (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है ।*

उदा०-बनाया है कट पूर्व (पहले) इसने यह-कृतपूर्वी । खाया है ओदन पूर्व इसने यह-भुक्तपूर्वी ।

*सिद्धि-**कृतपूर्वी** । कृतपूर्व+सु+इनि । कृतपूर्व्+इन् । कृतपूर्विन्+सु । कृतपूर्वीन्+० । कृतपूर्वी ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, विद्यमान-पूर्ववाले 'पूर्व' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से इनि प्रत्यय है । 'कृतपूर्व' शब्द में 'सुप् सुपा' से केवल-समास है । ऐसे ही-**भुक्तपूर्वी** ।*

इनिः--

(४) इष्टादिभ्यश्च ।८८।

प०वि०-इष्ट-आदिभ्यः ५ ।३ च अव्ययपदम् ।

स०-इष्ट आदिर्येषां ते इष्टादयः, तेभ्यः-इष्टादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-तत्, अनेन, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् इष्टादिभ्योऽनेन इनिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्य इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनेनेति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-इष्टमनेन-इष्टी यज्ञे। पूर्तमनेन-पूर्ती श्राद्धे, इत्यादिकम्। **वा०-'सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्'** (२।३।३६) इति कर्मणि सप्तमीविभक्तिर्भवति।

इष्ट। पूर्त। उपसादित। निगदित। परिवादित। निकथित। परिकथित। सङ्कलित। निपठित। सङ्कल्पित। अनर्चित। विकलित। संरक्षित। निपतित। पठित। परिकलित। अर्चित। परिरक्षित। पूजित। परिगणित। उपगणित। अवकीर्ण। परिणत। उपकृत। उपाकृत। आयुक्त। आम्नात। श्रुत। अधीत। आसेवित। अपवारित। अवकल्पित। निराकृत। अनुयुक्त। उपनत। अनुगुणित। अनुपठित। व्याकुलित। निगृहीत। इति इष्टादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (इष्टादिभ्यः) इष्टादि प्रातिपदिकों से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

उदा०-इसने यज्ञ किया है यह-इष्टी। ***इष्टी यज्ञे।*** *जो यज्ञ को कर चुका है। इसने पूरा किया है यह-पूर्ती।* ***पूर्ती श्राद्धे।*** *जो श्राद्ध को पूरा कर चुका है। यहां वा०-*_**'सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्'**_ *(२।३।३६) से कर्म में सप्तमी-विभक्ति होती है-* ***इष्टी यज्ञे*** *इत्यादि।*

सिद्धि-इष्टी। *इष्ट+सु+इनि। इष्ट्+इन्। इष्टिन्+सु। इष्टीन्+सु। इष्टीन्+०। इष्टी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'इष्ट' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'श्राद्धी' (५।२।८५) के समान है। ऐसे ही-पूर्ती आदि।

इनिः (निपातनम्)-

(५) छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि।८६।

प०वि०- छन्दसि ७।१ परिपन्थि-परिपरिणौ १।२ **पर्य**वस्थातरि ७।१।

स०-परिपन्थी च परिपरी च तौ-परिपन्थिपरिपरिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणाविनिः, पर्यवस्थातरि।

अर्थः-छन्दसि विषये परिपन्थिपरिपरिणौ शब्दाविनिप्रत्ययान्तौ निपात्येते, पर्यवस्थातरि वाच्ये। पर्यवस्थाता=प्रतिपक्षः सपत्नः कथ्यते।

उदा०-मा त्वा परिपन्थिनो विदन्, मा त्वा परिपरिणो विदन् (मा०सं० ४।३४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (परिपन्थिपरिपरिणौ) परिपन्थी, परिपरी शब्द (इनिः) इनि-प्रत्ययान्त निपातित हैं (पर्यवस्थातरि) यदि वहां पर्यवस्थाता=प्रतिपक्षी (शत्रु) अर्थ वाच्य हो।*

*उदा०-**मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा परिपरिणो** विदन् (मा०सं० ४।३४)। तुझे परिपन्थी=शत्रुओं ने नहीं जाना। तुझे परिपरी=शत्रुओं ने नहीं जाना।*

*सिद्धि-(१) **परिपन्थी**। परि-अवस्थातृ+सु+इनि। परि-पन्थ+इन्। परिपन्थिन्+सु। परिपन्थीन्+सु। परिपन्थीन्+०। परिपन्थी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'परि-अवस्थातृ' शब्द से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसके 'अवस्थातृ' अवयव के स्थान में पन्थ-आदेश निपातित है। शेष कार्य **श्राद्धी**' (५।२।८५) के समान है।*

*(२) **परिपरी**। परि-अवस्थातृ+सु+इनि। परि+परि+इन्। परिपर्+इन्। परिपरिन्+सु। परिपरीन्+सु। परिपरीन्+०। परिपरी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'परि-अवस्थातृ' शब्द से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसके 'अवस्थातृ' अवयव के स्थान में 'परि' आदेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इनिः (निपातनम्)-

(६) अनुपद्यन्वेष्टा।९०।

प०वि०-अनुपदी १।१ अन्वेष्टा १।१।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपदी इनिरन्वेष्टा।

अर्थः-अनुपदीति पदम् इनि-प्रत्ययान्तं निपात्यतेऽन्वेष्टा चेत् स भवति।

उदा०-अनुपदी गवाम्। अनुपदी उष्ट्राणाम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(*अनुपदी*) *अनुपदी शब्द* (*इनिः*) *इनि-प्रत्ययान्त निपातित है* (*अन्वेष्टा*) *यदि वहां अन्वेष्टा=ढूंढनेवाला अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-अनुपदी गवाम्। गौओं के पदचिह्नों पर चलनेवाला अर्थात् उन्हें ढूंढनेवाला। ***अनुपदी उष्ट्राणाम्।*** *ऊंटों के पदचिह्नों पर चलनेवाला अर्थात् उन्हें ढूंढनेवाला।*

सिद्धि-अनुपदी। *अनुपद+सु+इनि। अनुपद्+इन्। अनुपदिन्+सु। अनुपदीन्+सु। अनुपदीन्+०। अनुपदी।*

यहां 'अनुपद' शब्द में ***'पदस्य पश्चात्-अनुपदम्' 'अव्ययं विभक्ति०'*** *(२।१।६) से पश्चात् अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'अनुपद' शब्द से अन्वेष्टा अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य* ***'श्राद्धी'*** *(५।२।८५) के समान है।*

इनिः-

(७) साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्।९१।

प०वि०-साक्षात् अव्ययपदम् (पञ्चम्यर्थे) द्रष्टरि ७।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-तत्, इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् साक्षाद् द्रष्टरि इनिः संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् साक्षात्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् द्रष्टरि इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, संज्ञायामभिधेयायाम्।

उदा०-साक्षाद् द्रष्टा-साक्षी। साक्षी। साक्षिणौ। साक्षिणः। अत्र संज्ञावचनाद् धनस्य दाता (उत्तमर्णः) ग्रहीता (अधमर्णः) च साक्षी न कथ्यतेऽपितु उपद्रष्टैव साक्षीत्युच्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-(*तत्*) *प्रथमा-समर्थ* (*साक्षात्*) *साक्षात् प्रातिपदिक से* (*द्रष्टरि*) *द्रष्टा अर्थ में* (*इनिः*) *इनि प्रत्यय होता है* (*संज्ञायाम्*) *यदि वहां संज्ञा अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-साक्षात्=प्रत्यक्ष द्रष्टा=देखनेवाला-साक्षी। यहां संज्ञा-वचन से धन का दाता=साहूकार तथा ग्रहीता=कर्जदार के द्रष्टा होने पर भी उन्हें 'साक्षी' नहीं कहते अपितु जो उपद्रष्टा=उनके समीप प्रत्यक्षदर्शी पुरुष है, वही 'साक्षी' कहाता है।

सिद्धि-साक्षी। *साक्षात्+सु+इनि। साक्ष्०+इन्। साक्षिन्+सु। साक्षीन्+सु। साक्षीन्+०। साक्षी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'साक्षात्' शब्द से द्रष्टा अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। वा०-'अव्ययानां च सायंप्रातिकाद्यर्थमुपसंख्यानम्' (६।४।१४४) से 'साक्षात्' अव्यय के टि-भाग (आत्) का लोप होता है। शेष कार्य 'श्राद्धी' (५।२।८५) के समान है।

निपातनम्–

(१) क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः।६२।

प०वि०-क्षेत्रियच् १।१ परक्षेत्रे ७।१ चिकित्स्यः १।१।

अर्थः-{१}-परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्येतस्य वाक्यस्यार्थे 'क्षेत्रियच्' इत्येतद् निपात्यते। {२}-परक्षेत्राद् वा तत्र चिकित्स्य इत्येतस्मिन्नर्थे परलोपो घँश्चप्रत्ययो निपात्यते।

उदा०-परक्षेत्रे चिकित्स्यः-क्षत्रियो व्याधिः। क्षेत्रियं कुष्ठम्। परक्षेत्रम्=जन्मान्तरशरीरम्, तत्र चिकित्स्यः क्षेत्रियोऽसाध्यो रोग इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-{१}-(परक्षेत्रे) जन्मान्तर के शरीर में (चिकित्स्यः) चिकित्सा के योग्य, इस वाक्य के अर्थ में (क्षेत्रियच्) क्षत्रिय शब्द निपातित है। {२}-अथवा परक्षेत्र शब्द से (चिकित्स्यः) वहां चिकित्सा के योग्य, इस अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय और 'पर' शब्द का लोप निपातित है।*

उदा०-परक्षेत्र=जन्मान्तरीय शरीर में चिकित्सा के योग्य-क्षत्रिय व्याधि। क्षेत्रिय कुष्ठ रोग। क्षेत्रिय=असाध्य रोग।

***सिद्धि-क्षेत्रियः।** परक्षेत्र+ङि+घन्। क्षेत्र्+इय। क्षेत्रिय+सु। क्षेत्रियः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'परक्षेत्र' शब्द से चिकित्स्य अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय और उसके अवयव 'पर' शब्द का लोप निपातित है।

"परक्षेत्रे-जन्मान्तरशरीरे चिकित्स्यो व्याधिरसाध्यत्वात् क्षेत्रियः। तथा परक्षेत्रे-धान्यार्थे क्षेत्रे यानि तृणानि जातानि विनाश्यानि-तानि क्षेत्रियाणि। तथा-परदारेषु निग्राह्यः क्षेत्रियः। तथा-परशरीरेषु संक्रमय्य यद् विषं चिकित्स्यते तत् क्षेत्रियम्" इति महाभाष्यप्रदीपटीकायां कैयटः।

निपातनम्–

(१) इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्र-जुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा।६३।

प०वि०-इन्द्रियम् १।१ इन्द्रलिङ्गम् १। इन्द्रदृष्टम् १।१ इन्द्रसृष्टम् १।१ इन्द्रजुष्टम् १।१ इन्द्रदत्तम् १।१ इति अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

स०-इन्द्रस्य लिङ्गम्-इन्द्रलिङ्गम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रदृष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रसृष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रजुष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण दत्तम्-इन्द्रदत्तम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अर्थः-इन्द्रियमिति पदम् इन्द्रलिङ्गादिष्वर्थेषु विकल्पेन निपात्यते।

उदा०-इन्द्रस्य लिङ्गम्-इन्द्रियम्। इन्द्र आत्मा स चक्षुरादिना लिङ्गेन (करणेन) अनुमीयते, न हि अकर्तृकं करणं भवति। **इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना दृष्टमित्यर्थः। **इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना सृष्टम्, तत्कृतेन शुभाशुभकर्मणा समुत्पन्नमित्यर्थः। **इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना जुष्टम्=सेवितम्, तद्द्वारा विज्ञानोत्पत्तिभावात्। **इन्द्रेण दत्तम्-इन्द्रियम्।** आत्मना यथायथं ग्रहणाय विषयेभ्यो दत्तमित्यर्थः। अथवा-इन्द्रेण=ईश्वरेणात्मने दत्तम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इन्द्रियम्) इन्द्रिय (इति) यह पद (इन्द्रलिङ्गम्०) इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट, इन्द्रजुष्ट, इन्द्रदत्त इन अर्थों में (वा) विकल्प से निपातित है।*

*उदा०-**इन्द्र का लिङ्ग-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा और उसका जो लिङ्ग (चिह्न) है वह इन्द्रिय कहाता है। लिङ्गदर्शन से लिङ्गी का अनुमान किया जाता है। इन्द्र कर्ता है और चक्षु आदि इन्द्रियां उसका करण हैं। कर्ता के विना करण सम्भव नहीं है। **इन्द्र के द्वारा दृष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा दृष्ट होने से चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा सृष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा किये गये शुभ-अशुभ कर्मों के कारण उत्पन्न होने से चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा जुष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति के लिये इनका सेवन किया जाता है इसलिये चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा दत्त-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा ये वस्तु को यथायथ ग्रहण करने के लिये विषयों को प्रदान की गई हैं अतः चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। अथवा इन्द्र=ईश्वर ने आत्मा के उपयोग के लिये इन्हें प्रदान किया है इसलिये चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं।*

'इन्द्रिय' शब्द चक्षु आदि करणों के लिये रूढ है। इसकी व्युत्पत्ति के अनेक प्रकार यहां दर्शाये गये हैं, अतः इस प्रकार से अन्य व्युत्पत्ति भी संभव है। सूत्र में 'वा' पद का ग्रहण 'इन्द्रलिङ्ग' आदि विकल्प अर्थों का द्योतक है।

सिद्धि-इन्द्रियम्। *इन्द्र+ङस्/टा+घच्। इन्द्र्+इय। इन्द्रिय+सु। इन्द्रियम्।*

षष्ठी-समर्थ तथा तृतीया-समर्थ 'इन्द्र' शब्द से इन्द्रलिङ्ग आदि अर्थों में इस सूत्र से 'घच्' प्रत्यय निपातित है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'घच्' प्रत्यय के चित् होने से 'चितः' (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है-इन्द्रियम्।

अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

मतुप्–

(१) तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्।६४।

प०वि०–तत् १।१ अस्य ६।१ अस्ति क्रियापदम्, अस्मिन् ७।१ इति अव्ययपदम्, मतुप् १।१।

अन्वयः–तत् प्रातिपदिकाद् अस्य, अस्मिन् इति मतुप्।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०–गावोऽस्य सन्ति-गोमान् देवदत्तः। वृक्षा अस्मिन् सन्ति-वृक्षवान् पर्वतः। यवमान्। प्लक्षवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो। इतिकरण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-गौवें इसकी हैं यह-गोमान् देवदत्त। वृक्ष इस पर हैं यह-वृक्षवान् पर्वत। यव=जौ इसमें हैं यह-यवमान्। प्लक्ष=पिलखण इसमें हैं यह-प्लक्षवान्।

सिद्धि-(१) गोमान्। *गो+जस्+मतुप्। गो+मत्। गोमत्+सु। गोमनुम्त्+सु। गोमन्त्+सु। गोमान्त्+सु। गोमान्त्+०। गोमान्।*

यहां प्रथमा-समर्थ अस्ति-उपाधिमान् 'गो' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां-सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (६।४।१४) से अङ्ग को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।

*(२) **वृक्षवान्।** वृक्ष+जस्+मतुप्। वृक्ष+मत्। वृक्ष+वत्। वृक्षवत्+सु। वृक्षवनुम्त्+सु। वृक्षवन्त्+सु। वृक्षवान्त्+सु। वृक्षवान्+०। वृक्षवान्०। वृक्षवान्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वृक्ष' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से मतुप् प्रत्यय है। **'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः'** (८।२।९) से 'मतुप्' के मकार के स्थान में वकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्लक्षवान्।***

*(३) **यवमान्।** यहां 'यव' शब्द से पूर्ववत् प्रत्यय है। **'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः'** (८।२।९) में यवादि के प्रतिषेध से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

मतुप्–

(२) रसादिभ्यश्च।९५।

प०वि०-रस-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् रसादिभ्यश्चास्यास्मिन्निति मतुप्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो रसादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-रसोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रसवान्। रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूपवान्, इत्यादिकम्।

रस। रूप। गन्ध। स्पर्श। शब्द। स्नेह। गुणात्। एकाचः। इति रसादयः। गुणग्रहणं रसादीनां विशेषण्।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (रसादिभ्यः) रस-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-रस इसका है वा इसमें है यह-रसवान्। रूप इसका है वा इसमें है यह-रूपवान्, इत्यादि।

*सिद्धि-**रसवान्।** यहां प्रथमा-समर्थ 'रस' शब्द से अस्य और अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'वृक्षवान्'** (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**रूपवान्** आदि।*

लच्-विकल्पः–

(३) प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्।६६।

प०वि०–प्राणिस्थात् ५।१ आतः ५।१ लच् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–प्राणिनि तिष्ठतीति प्राणिस्थः, तस्मात्-प्राणिस्थात् (उपपद-तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् प्राणिस्थाद् आतोऽस्य, अस्मिन् इति अन्यतरस्यां लच्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् आकरान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–चूडाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-चूडालः (लच्)। चूडावान् (मतुप्)। कर्णिकाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कर्णिकालः (लच्)। कर्णिकावान् (मतुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्राणिस्थात्) प्राणी में अवस्थित (आतः) आकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लच्) लच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो और पक्ष में मतुप् प्रत्यय होता है।*

उदा०–चूडा=शिखा इसकी है वा इसमें है यह-चूडाल (लच्)। चूडावान् (मतुप्) मोर। कर्णिका इसकी है वा इसमें है वह-कर्णिकाल (लच्)। कर्णिकावान् (मतुप्)। हाथी। कर्णिका=हाथी के सूंड की नोक। यहां 'कर्णिका' शब्द कर्ण-आभूषण का वाची नहीं, अपितु प्राणी-अंग का वाचक है।

सिद्धि-(१) चूडालः। चूड+सु+लच्। चूडा+ल। चूडाल+सु। चूडालः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'चूडा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कर्णिकालः**।*

*(२) **चूडावान्** और **कर्णिकावान्** पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। यहां विकल्प-पक्ष में 'मतुप्' प्रत्यय है।*

लच्-विकल्पः–

(४) सिध्मादिभ्यश्च।९७।

प०वि०–सिध्म–आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–सिध्म आदिर्येषां ते सिध्मादयः, तेभ्यः-सिध्मादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन् इति लच्, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् सिध्मादिभ्यश्चाऽस्य, अस्मिन् इति अन्यतरस्यां लच्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः सिध्मादिभ्यः प्रातिपदिकाभ्यश्चा-स्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति, पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सिध्ममस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–सिध्मलः (लच्)। सिध्मवान् (मतुप्)। गडु अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–गडुलः (लच्)। गडुमान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

सिध्म। गडु। मणि। नाभि। जीव। निष्पाव। पांसु। सक्तु। हनु। मांस। परशु। पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च। पार्ष्णीलः। धमनीलः। पर्ण। उदक। प्रज्ञा। मण्ड। पार्श्व। गण्ड। ग्रमि। वातदन्तबलललाटानामूङ् च। वातूलः। दन्तूलः। बलूलः। ललाटूलः। जटाघटाकलाः क्षेपे। जटालः। घटालः। कलालः। सक्थि। कर्ण। स्नेह। शीत। श्याम। पिङ्ग। पित्त। शुष्क। पृथु। मृदु। मञ्जु। पत्र। चटु। कपि। कण्डु। संज्ञा। क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेष्यते। क्षुद्रजन्तु–यूकालः। मक्षिकालः। उपताप-विचर्चिकालः। विपादिकालः। मूर्छालः। इति सिध्मादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिध्मादिभ्यः) सिध्म आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लच्) लच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो और पक्ष में मतुप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सिध्म=कुष्ठ रोग इसका है वा इसमें है यह-सिध्मल (लच्)। सिध्मवान् (मतुप्) कोढ़ी। गडु=कुबड़ापन इसका है वा इसमें है यह-गडुल (लच्)। गडुमान् (मतुप्) कुबड़ा, इत्यादि।

सिद्धि-(१) सिध्मलः। यहां प्रथमा-समर्थ 'सिध्म' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-गडुलः।

(२) सिध्मवान् और गडुमान् पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) तथा 'गोमान्' (५।२।९४) के समान है।

लच्-

(५) वत्सांसाभ्यां कामबले।६८।

प०वि०-वत्स-अंसाभ्याम् ५।२ काम-बले ७।१।

स०-वत्सश्च अंसश्च तौ वत्सांसौ, ताभ्याम्-वत्सांसाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कामश्च बलं च एतयोः समाहारः कामबलम्, तस्मिन्-कामबले (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, लच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वत्सांसाभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च लच् कामबले, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां वत्सांसाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे लच् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं कामवति बलवति चाभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(वत्सः)** वत्सोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वत्सलः पिता। कामवान्=स्नेहवानित्यर्थः। **(अंसः)** अंसोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अंसलो मल्लः। बलवानित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वत्सांसाभ्याम्) वत्स, अंस प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (लच्) लच् प्रत्यय होता है (कामबले) यदि वहां यथासंख्य काम=कामवान् और बल=बलवान् अर्थ अभिधेय हो **और** (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो। यहां काम शब्द से कामवान् (स्नेहवान्) और बल शब्द से बलवान् अर्थ का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-(वत्स) वत्स इसका है वा इसमें है यह-वत्सल=स्नेहवान् पिता। **(अंस)** अंस इसका है वा इसमें है यह-अंसवान् मल्ल। बलवान् पहलवान।*

***सिद्धि-(१) वत्सलः।** यहां प्रथमा-समर्थ, कामवाची 'वत्स' शब्द से अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है।*

***(२) अंसलः।** यहां प्रथमा-समर्थ, बलवाची 'अंस' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'लच्' प्रत्यय है।*

इलच्+लच्+मतुप्-

(६) फेनादिलच् च।६६।

प०वि०-फेनात् ५।१ इलच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, लच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् फेनाद् अस्य, अस्मिन्निति च इलच्, लच्, मतुप् च।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् फेन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इलच्, लच्, मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-फेनमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-फेनिलः (इलच्)। फेनलः (लच्)। फेनवान् (मतुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (फेनात्) फेन प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इलच्) इलच् (लच्) लच् (च) और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-फेन=झाग इसका है वा इसमें है यह-फेनिल (इलच्)। फेनल (लच्)। फेनवान् (मतुप्) झागवाला साबुन आदि।

***सिद्धि-(१) फेनिलः।** फेन+सु+इलच्। फेन्+इल। फेनिल+सु। फेनिलः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'फेन' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

***(२) फेनलः।** यहां 'फेन' शब्द से पूर्ववत् 'लच्' प्रत्यय है।*

***(३) फेनवान्।** यहां 'फेन' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'वृषवान्'** (५।२।९४) के समान है।*

शः+नः+इलच्–

(७) लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ।१००।

प०वि०–लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः ५ ।३ श-न-इलचः १ ।३ ।

स०–लोम आदिर्येषां ते लोमादयः, पाम आदिर्येषां ते पामादयः, पिच्छ आदिर्येषां ते पिच्छादयः । लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छादयश्च ते लोमादिपामादिपिच्छादयः, तेभ्यः-लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । शश्च नश्च इलच् च ते शनेलचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवर्तते ।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यं श-न-इलचो मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति ।

उदा०–**(लोमादिः)** लोमान्यस्य, अस्मिन् वा सन्ति-लोमशः (शः) । लोमवान् (मतुप्) । रोमशः (शः) । रोमवान् (मतुप्) इत्यादिकम् । **(पामादिः)** पामाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पामनः (नः) । पामवान् (मतुप्) । वामनः (नः) । वामवान् (मतुप्) इत्यादिकम् । **(पिच्छादिः)** पिच्छमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पिच्छिलः (इलच्) । पिच्छवान् (मतुप्) । उरसिलः (इलच्) । उरस्वान् (मतुप्) इत्यादिकम् ।

(१) लोमन् । रोमन् । वल्गु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । इति लोमादयः ।।

(२) पामन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कद्रु । बलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् । अङ्गात् कल्याणे । शाकीपलालीदद्र्वां ह्रस्वत्वं च । विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः । लक्ष्म्या अच्च । इति पामादयः ।।

(३) पिच्छ । उरस् । ध्रुवका । क्षुवका । जटाघटाकलाः क्षेपे । वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः) लोमादि, पामादि, पिच्छादि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति*

के अर्थ में (शनेलचः) यथासंख्य श, न, इलच् और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।

*उदा०-(**लोमादि**) लोम हैं इसके वा इसमें यह-लोमश (श)। लोमवान् (मतुप्)। रोंगटेंवाला इत्यादि। (**पामादि**) पामा है इसका वा इसमें यह-पामन (न)। पामवान् (मतुप्)। पामा=चर्मरोग। वामा है इसका वा इसमें यह वामनः (न)। वामवान् (मतुप्)। वामा=कुटिल स्वभाव, इत्यादि। (**पिच्छादि**) पिच्छ है इसका वा इसमें-पिच्छिल (इलच्)। पिच्छवान् (मतुप्) फिसलनवाला। उरस् है इसका वा इसमें उरसिल (इलच्)। उरस्वान् (मतुप्) चौड़ी छातीवाला, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **लोमशः।** यहां प्रथमा-समर्थ 'लोम' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'श' प्रत्यय है। ऐसे ही-**रोमशः।***

*(२) **लोमवान्** और **रोमवान्** पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से लोमन्/रोमन् के नकार का लोप होता है।*

*(३) **पामनः।** यहां 'पामन्' शब्द से पूर्ववत् 'न' प्रत्यय और पूर्ववत् 'पामन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वामनः।***

*(४) **पामवान्** और **वामवान्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

*(५) **पिच्छिलः।** पिच्छ+सु+इलच्। पिच्छ्+इल। पिच्छिल+सु। पिच्छिलः।*

*यहां 'पिच्छ' शब्द से पूर्ववत् 'इलच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उरसिलः।***

*(६) **पिच्छवान्** और **उरस्वान्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

णः-

(८) प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः।१०१।

प०वि०-प्रज्ञा-श्रद्धा-अर्चाभ्यः ५।३ णः १।१।

स०-प्रज्ञा च श्रद्धा च अर्चा च ताः प्रज्ञाश्रद्धार्चाः, ताभ्यः-प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्योऽस्य, अस्मिन्निति णो मतुप् च, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे णो मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। मतुप्-प्रत्ययः सर्वत्र समुच्चीयते।

उदा०-**(प्रज्ञा)** प्रज्ञाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-प्राज्ञः (णः)। प्रज्ञावान् (मतुप्)। **(श्रद्धा)** श्रद्धाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-श्राद्धः (णः)। श्रद्धावान् (मतुप्)। **(अर्चा)** अर्चाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-आर्चः (णः)। अर्चावान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः) प्रज्ञा, श्रद्धा, अर्चा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (णः) ण प्रत्यय और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो। 'मतुप्' प्रत्यय का सर्वत्र संग्रह किया जाता है।*

*उदा०-**(प्रज्ञा)** बुद्धि इसकी है वा इसमें है यह-प्राज्ञ (ण)। प्रज्ञावान् (मतुप्)। **(श्रद्धा)** श्रद्धा=सत्य-धारणा इसकी है वा इसमें है यह-श्राद्ध (ण) श्रद्धावान् (मतुप्)। **(अर्चा)** अर्चा=पूजा-भावना इसकी है वा इसमें है यह-आर्च (ण)। अर्चावान् (मतुप्)।*

*सिद्धि-(१) **प्राज्ञः**। प्रज्ञा+सु+ण। प्राज्ञ्+अ। प्राज्ञ+सु। प्राज्ञः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'प्रज्ञा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्राद्धः, आर्चः**।*

*(२) **प्रज्ञावान्, श्रद्धावान्, अर्चावान्** पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है।*

विशेषः *काशिकावृत्तिकार पं० जयदित्य ने '**प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो णः**' यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है। महाभाष्य के अनुसार '**वृत्तेश्च**' यह कात्यायन मुनि का वार्तिक है। अतः यहां महाभाष्यानुसारी सूत्रपाठ मानकर प्रवचन किया गया है।*

विनिः+इनिः-

(६) तपःसहस्राभ्यां विनीनी।१०२।

प०वि०-तपः-सहस्राभ्याम् ५।२ विनि+इनी १।२।

स०-तपश्च सहस्रं च ते तपःसहस्रे, ताभ्याम्-तपःसहस्राभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विनिश्च इनिश्च तौ-विनीनी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तपः-सहस्राभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च यथासंख्यं **विनीनी, अस्ति**।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां तपःसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यं विनीनी प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तपः) तपोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तपस्वी। **(सहस्रम्)** सहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सहस्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तपःसहस्राभ्याम्) तपस्, सहस्र प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विनीनी) यथासंख्य विनि और इनि प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(तपः)** तप इसका है वा इसमें है यह-तपस्वी। **'द्वन्द्वसहनं तपः'** भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, हानि-लाभ, मान-अपमान रूप द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' कहाता है। **(सहस्र)** सहस्र=हजार कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह-सहस्री (हजारी)।*

*सिद्धि-**(१) तपस्वी।** तपस्+सु+विनि। तपस्+विन्। तपस्विन्+सु। तपस्वीन्+०। तपस्वी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'तपस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। यहां **'तसौ मत्वर्थे'** (१।४।१९) से 'तपस्' शब्द की भ-संज्ञा होने से **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'तपस्' शब्द को 'रुत्व' नहीं होता है।*

*(२) **सहस्री।** यहां 'सहस्र' शब्द से पूर्ववत् 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'तपस्' शब्द से **'अस्मायामेधास्रजो विनिः'** (५।२।१२१) से 'विनि' प्रत्यय सिद्ध था और 'सहस्र' शब्द से **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय सिद्ध था फिर यहां 'विनि' और 'इनि' प्रत्यय का विधान इसलिये किया गया है कि **'अण् च'** (५।२।१०३) से विधीयमान अण् प्रत्यय 'विनि' और 'इनि' प्रत्यय का बाधक न हो।*

अण्–

(१०) अण् च।१०३।

प०वि०-अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, तपःसहस्राभ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तपःसहस्राभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति चाऽण्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां तपःसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽण् प्रत्ययो च भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तपः) तपोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तापसः। **(सहस्रम्)** सहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-साहस्रः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ (तपःसहस्राभ्याम्) तपस्, सहस्र प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय (च) भी होता है, (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(तपः)** तप इसका है वा इसमें है यह-तापस (तपस्वी)। **(सहस्र)** सहस्र=हजार कार्षापण (रुपया) इसके हैं वा इसमें है यह-साहस्र (हजारी)।*

सिद्धि-तापसः। *तपस्+सु+अण्। तापस्+अ। तापस+सु। तापसः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तपस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-साहस्रः।

अण्-

(११) सिकताशर्कराभ्यां च।१०४।

प०वि०-सिकता-शर्कराभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-सिकता च शर्करा च ते सिकताशर्करे, ताभ्याम्-सिकता-शर्कराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सिकताशर्कराभ्यां चाऽस्य, अस्मिन्निति चाऽण्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां सिकताशर्कराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां चास्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(सिकता) सिकताऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सैकतो घटः। **(शर्करा)** शर्कराऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शार्करं मधु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिकताशर्कराभ्याम्) सिकता, शर्करा, प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन् इति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(सिकता)** सिकता=बाळू रेत इसका है वा इसमें यह-सैकत घट=रेतीला घड़ा। **(शर्करा)** शर्करा=मधुरता इसकी है वा इसमें है यह-शार्कर मधु=घणा मीठा शहद।*

***सिद्धि-सैकतः।** सिकता+सु+अण्। सैकत्+अ। सैकत+सु। सैकतः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'सिकता' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शार्करम्।***

लुप्+इलच्+अण्+मतुप्--

(१२) देशे लुबिलचौ च।१०५।

प०वि०-देशे ७।१ लुप्-इलचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-लुप् च इलच् च तौ लुबिलचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, अण् सिकताशर्कराभ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सिकताशर्कराभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च लुबिलचावण् मतुप् च देशे, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां सिकताशर्कराभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे प्रत्ययस्य लुप्, इलच्, अण्, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, देशेऽभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(सिकता) सिकताऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सिकता देशः (लुप्)। सिकतिलो देशः (इलच्)। सैकतो देशः (अण्)। सिकतावान् देशः (मतुप्)। **(शर्करा)** शर्कराऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शर्करा देशः (लुप्)। शर्करिलो देशः (इलच्)। शार्करो देशः (अण्)। शर्करावान् देशः (मतुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिकताशर्कराभ्याम्) सिकता, शर्करा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (लुप्-इलचौ)*

प्रत्यय का लुप्, इलच् (अण्) अण् और मतुप् प्रत्यय होते हैं (देशे) यदि वहां देश अर्थ अभिधेय हो (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।

*उदा०-(**सिकता**) सिकता=बालू रेत इसका है वा इसमें है यह-सिकता देश (प्रत्यय का लुप्)। सिकतिल देश (इलच्)। सैकत देश (अण्)। सिकतावान् देश (मतुप्)। रेतीला देश=बागड़। (**शर्करा**) शर्करा=कांकर इसकी है या इसमें है यह-शर्करा देश (लुप्)। शर्करिल देश (इलच्)। शार्कर देश (अण्)। शर्करावान् देश (मतुप्) कंकरीला देश।*

***सिद्धि-(१) सिकता।** सिकता+सु+०। सिकता+०। सिकता+सु। सिकता।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'सिकता' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) के अर्थ में इस सूत्र से प्रत्यय का 'लुप्' है। प्रत्यय-विशेष का कथन न होने से 'प्रत्ययमात्र' का लुप् समझना चाहिये। '**लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने**' (१।२।५१) से प्रत्यय के लुप् हो जाने पर व्यक्ति=लिङ्ग और वचन युक्तवत्=पूर्ववत् ही रहते हैं। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**शर्करा देश:।***

*(२) **सिकतिल:।** सिकता+सु+इलच्। सिकत्+इल। सिकतिल+सु। सिकतिल:।*

*यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'इलच्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शर्करिलो देश:।***

*(३) **सैकत:।** सिकता+सु+अण्। सैकत्+अ। सैकत+सु। सैकत:।*

*यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शार्करो देश:।***

*(४) **सिकतवान्।** यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य '**वृक्षवान्**' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**शर्करावान् देश:।***

उरच्-

(१३) दन्त उन्नत उरच्।१०६।

प०वि०-दन्त: १।१ (पञ्चम्यर्थे) उन्नते ७।१ उरच् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तद् दन्ताद् अस्य, अस्मिन्निति च उरच्, उन्नतोऽस्ति।

अर्थ:-तद् इति प्रथमासमर्थाद् दन्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे उरच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमुन्नतोऽस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-दन्ता उन्नता अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-दन्तुरः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (दन्तः) दन्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (उरच्) उरच् प्रत्यय होता है (उन्नते, अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'उन्नत है' हो।*

उदा०-दन्त हैं उन्नत=ऊंचे इसके वा इसमें यह-दन्तुर (दांतुआ)।

***सिद्धि-दन्तुरः।** दन्त+जस्+उरच्। दन्त्+उरच्। दन्तुर+सु। दन्तुरः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'दन्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा उन्नत अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'उरच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

रः-

(१४) ऊषसुषिमुष्कमधो रः।१०७।

प०वि०-ऊष-सुषि-मुष्क-मधोः। ५।१ रः १।१।

स०-ऊषश्च सुषिश्च मुष्कश्च मधु च एतेषां समाहार ऊषसुषिमुष्कमधु, तस्मात्-ऊषसुषिमुष्कमधोः (समाहारद्वन्द्वः)। समाहारद्वन्द्वे पुंलिङ्गनिर्देशः सौत्रो वेदितव्यः।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ऊषसुषिमुष्कमधुभ्योऽस्य, अस्मिन्निति च रः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः ऊषसुषिमुष्कमधुभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे रः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमा-समर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(ऊषः)** ऊषा अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-ऊषरं क्षेत्रम्। **(सुषिः)** सुषिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सुषिरं काष्ठम्। **(मुष्कः)** मुष्कावस्य, अस्मिन् वा स्तः-मुष्करः पशुः। **(मधु)** मधु अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मधुरो गुडः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऊषसुषिमुष्कमधोः) ऊष, सुषि, मुष्क, मधु प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (रः) र प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(**ऊष**) ऊष=धूल इसकी है वा इसमें है यह-ऊषर क्षेत्र, बंजर भूमि। (**सुषि**) सुषि=छिद्र इसका है वा इसमें है यह-सुषिर काष्ठ (लकड़ी)। (**मुष्क**) मुष्क=बड़े अण्डकोष इसके हैं वा इसमें हैं यह-मुष्कर पशु। (**मधु**) मधु=मीठा रस इसका है वा इसमें है यह-मधुर गुड।*

*सिद्धि-**ऊषरः**। ऊष+जस्+र। ऊष+र। ऊषर+सु। ऊषरम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'ऊष' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सुषिरम्, मुष्करः, मधुरः**।*

मः—

(१५) द्युद्रुभ्यां मः।१०८।

प०वि०-द्यु-द्रुभ्याम् ५।२ मः १।१।

स०-द्यौश्च द्रुश्च तौ द्युद्रू, ताभ्याम्-द्युद्रुभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् द्युद्रुभ्यामस्य, अस्मिन्निति च मः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् द्युद्रुभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-द्यौरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-द्युमः। द्रुरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-द्रुमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (द्युद्रुभ्याम्) द्यौ, द्रु प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मः) म प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(**द्यौः**) द्यौः=द्युति इसकी है वा इसमें है यह-द्युम (द्युलोक)। (**द्रु**) द्रु=शाखा इसकी है वा इसमें है यह-द्रुम (वृक्ष)।*

*सिद्धि-**द्युमः**। दिव्+सु+म। दिउ+म। द्यु+म। द्युम+सु। द्युमः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'दिव्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'म' प्रत्यय है। 'दिव उत्' (६।१।१३१) से 'दिव्' के वकार को उकार आदेश होता है। ऐसे ही-**द्रुमः**।*

वः+इनि+ठन्+मतुप्–

(१६) केशाद् वोऽन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०-केशात् ५।१ वः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् केशाद् अस्य, अस्मिन्निति चान्यतरस्यां वः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् केश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन वः प्रत्ययो भवति, पक्षे च इनिः, ठन्, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-केशा अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-केशवः (वः)। केशी (इनिः)। केशिकः (ठन्)। केशवान् (मतुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (केशात्) केश प्रातिपदिक से **(अस्य)** षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प **से** (वः) व प्रत्यय होता है और पक्ष में इनि, ठन्, मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) **जो** प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-केश=बाळ इसके हैं वा इसमें हैं यह केशव (व)। केशी (इनि)। केशिक (ठन्)। केशवान् (मतुप्)।

***सिद्धि-(१) केशवः।** केश+जस्+व। केश+व। केशव+सु। केशवः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'केश' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'व' प्रत्यय है।

***(२) केशी।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है।*

***(३) केशिकः।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'ठन्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

***(४) केशवान्।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'वृक्षवान्'** (५।२।९०) के समान है।*

वः–

(१७) गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्।११०।

प०वि०–गाण्डी-अजगात् ५ ।१ संज्ञायाम् ७ ।१ ।

स०–गाण्डी च अजगश्च एतयोः समाहारो गाण्ड्यजगम्, तस्मात्–गाण्ड्यजगात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् गाण्ड्यजगाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च वः, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां गाण्ड्यजगाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–(गाण्डी) गाण्डी अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति गाण्डीवं धनुः। ह्रस्वादपि भवति–गाण्डिवं धनुः। (अजग) अजगोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–अजगवं धनुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्) षष्ठी-समर्थ (गाण्ड्यजगात्) गाण्डी, अजग प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वः) व प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०–**(गाण्डी)** गाण्डी=ग्रन्थिविशेष (गांठ) इसकी है वा इसमें है यह–गाण्डीव धनुष। अर्जुन का लोकप्रसिद्ध धनुष। **(अजग)** अजग=विष्णु इसका है वा इसमें है यह–अजगव धनुष। शिव का धनुष।*

***सिद्धि–गाण्डीवः।** गाण्डी+सु+व। गाडी+व। गाण्डीव+सु। गाण्डीवः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, गाण्डी शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'व' प्रत्यय है। ह्रस्व इकारवान् 'गाण्डि' शब्द से 'व' प्रत्यय होता है–**गाण्डिवः।** ऐसे ही–**अजगवः।***

इरन्+इरच्–

(१८) काण्डाण्डादीरन्निरचौ।१११।

प०वि०–काण्ड-अण्डात् ५ ।१ ईरन्-इरचौ १ ।२ ।

स०-काण्डं च अण्डं च एतयोः समाहारः काण्डाण्डम्, तस्मात्-काण्डाण्डात् (समाहारद्वन्द्वः)। ईरन् च इरच्च तौ ईरन्निरचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् काण्डाण्डाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च ईरन्निरचौ, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां काण्डाण्डाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यम् ईरन्निरचौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(काण्डम्)** काण्डमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-काण्डीरः (ईरन्)। **(अण्डम्)** अण्डमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अण्डीरः (इरच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (काण्डाण्डात्) काण्ड, अण्ड प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति अर्थ में (ईरन्निरचौ) यथासंख्य ईरन् और इरच् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(काण्ड) काण्ड=बड़ा है तणा इसका यह-काण्डीर वृक्ष। (अण्ड) अण्ड=**बड़े हैं** अण्डकोष इसके वा इसमें यह-अण्डीर वृषभ (साण्ड) पूर्ण आयु को प्राप्त साण्ड।*

सिद्धि-(१) काण्डीरः। काण्ड+सु+ईरन्। काण्ड्+ईर। काण्डीर+सु। काण्डीरः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'काण्ड' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ईरन्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) अण्डीरः। यहां 'अण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'ईरच्' प्रत्यय है।

वलच्-

(१६) रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्।११२।

प०वि०-रजः-कृषि-आसुति-परिषदः ५।१ वलच् १।१।

स०-रजश्च कृषिश्च आसुतिश्च परिषच्च एतेषां समाहारो रजःकृष्यासुतिपरिषत्, तस्मात्-रजःकृष्यासुतिपरिषदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् रजःकृष्यासुतिपरिषदोऽस्य, अस्मिन्निति च वलच्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो रजःकृष्यासुतिपरिषद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वलच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(रजः)** रजोऽस्याः, अस्यां वाऽस्ति-रजस्वला स्त्री। **(कृषिः)** कृषिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कृषीवलः कुटुम्बी। **(आसुतिः)** आसुतिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-आसुतीवलः शौण्डिकः। **(परिषद्)** परिषदस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-परिषद्वलो राजा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (रजःकृष्यासुतिपरिषदः) रजस्, कृषि, आसुति, परिषद् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(रजः) रजस्=मासिक रक्तस्राव इसका है वा इसमें है यह-रजस्वला स्त्री। (कृषि) कृषि=खेती इसकी है वा इसमें है यह-कृषीवल कुटुम्बी (किसान)। **(आसुति)** आसुति=निःसरण इसका है वा इसमें है यह-आसुतीवल शौण्डिक (शराब बेचनेवाला)। (परिषद्) परिषद्=न्यायसभा है इसकी वा इसमें है यह-परिषद्वल राजा।*

सिद्धि-(१) रजस्वला। *रजस्+सु+वलच्। रजस्+वल। रजस्वल+टाप्। रजस्वला+सु। रजस्वला।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'रजस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'वलच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**परिषद्वलः।***

*(२) **कृषीवलः।** यहां 'कृषि' शब्द से पूर्ववत् 'वलच्' प्रत्यय है। 'वले' (६।३।११८) से अंग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**आसुतीवलः।***

वलच्-

(२०) दन्तशिखात् संज्ञायाम्।११३।

प०वि०-दन्त-शिखात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०-दन्तश्च शिखा च एतयोः समाहारो दन्तशिखम्, तस्मात्-दन्तशिखात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, वलच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् दन्तशिखाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च वलच्, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां दन्तशिखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वलच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(दन्तः) दन्तावस्य, अस्मिन् वा स्तः-दन्तावलो गजः। **(शिखा)** शिखाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शिखावलं नगरम्। शिखावला स्थूणा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (दन्तशिखात्) दन्त, शिखा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(दन्त) दन्त=बड़े दांत इसके हैं वा इसमें हैं यह-दन्तावल गज (हाथी)। (शिखा) शिखा=ऊंची चोटी इसकी है वा इसमें है यह-शिखावल नगर। शिखावल स्थूणा (खम्भा)।

सिद्धि-दन्तावलः। दन्त+औ+वलच्। दन्त+वल। दन्तावल+सु। दन्तावलः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'दन्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'वलच्' प्रत्यय है। 'वले' (६।३।११८) से अंग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-शिखावलः।

निपातनम् (मतुबर्थे)-

(२१) ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्-मलिनमलीमसाः।११४।

प०वि०-ज्योत्स्ना-तमिस्रा-शृङ्गिण-ऊर्जस्विन्-ऊर्जस्वल-गोमिन्-मलिन-मलीमसाः १।३।

स०-ज्योत्स्ना च तमिस्रा च शृङ्गिणश्च ऊर्जस्विन् च ऊर्जस्वलश्च गोमिन् च मलिनश्च मलीमसश्च ते-ज्योत्स्ना०मलीमसाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ज्योत्स्न॥०मलीमसा अस्य, अस्मिन्निति च संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् प्रथमासमर्था ज्योत्स्नादयः शब्दा अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे निपात्यन्ते, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(**ज्योत्स्ना**) **ज्योत्स्ना=चन्द्रप्रभा।** अत्र ज्योतिष्-शब्द-स्योपधालोपो नः प्रत्ययश्च निपात्यते। **(तमिस्रा) तमिस्रा=रात्रिः।** अत्र तमस्-शब्दस्योपधायां इकारादेशो रः प्रत्ययश्च निपात्यते। स्त्रीलिङ्गमप्रधानम्, अन्यत्रापि प्रयोगदर्शनात्-तमिस्रं नभः। **(शृङ्गिणः) शृङ्गिणः=शृङ्गिणः पशुः।** अत्र शृङ्ग-शब्दाद् इनच् प्रत्ययो निपात्यते। **(ऊर्जस्विन्) ऊर्जस्वी पुरुषः।** अत्र ऊर्ज्-शब्दाद् विनिः प्रत्ययोऽसुगागमश्च निपात्यते। **(ऊर्जस्वलः) ऊर्जस्वलः पुरुषः।** अत्र ऊर्ज्-शब्दाद् वलच् प्रत्ययोऽसुगागमश्च निपात्यते। **(गोमिन्) गोमी पुरुषः।** अत्र गोशब्दाद् मिनिः प्रत्ययो निपात्यते। **(मलिनः) मलिनः पुरुषः।** अत्र मल-शब्दाद् इनच् प्रत्ययो निपात्यते। **(मलीमसः) मलीमसः पुरुषः।** अत्र मल-शब्दाद् ईमसच् प्रत्ययो निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ज्योत्स्ना०मलीमसाः) ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन, मलीमस शब्द (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में निपातित हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(ज्योत्स्ना)** ज्योति इसकी है वा इसमें है यह-ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा (चांदनी)। **(तमिस्रा)** तमस्=अन्धकार इसका है वा इसमें है यह-तमिस्रा रात्रि (रात)। 'तमिस्रा' पद में स्त्रीलिङ्ग गौण है, अन्यत्र भी इसका प्रयोग देखा जाता है-**तमिस्रं नभः।** अन्धकारवाला आकाश। **(शृङ्गिण)** शृङ्ग=सींग इसके है वा इसमें है यह-शृङ्गिण पशु। **(ऊर्जस्विन्)** ऊर्ज्=बल इसका है वा इसमें है यह-ऊर्जस्वी पुरुष। **(ऊर्जस्वल)** ऊर्जस्=बल इसका है वा इसमें है यह-ऊर्जस्वल पुरुष। **(गोमिन्)** गौ इसकी है वा इसमें है यह-गोमी पुरुष गौ का सेवक। **(मलिन)** मल=मैल इसका है वा इसमें है यह-मलिन पुरुष। **(मलीमस)** मल=मैल इसका है वा इसमें है यह-मलीमस पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **ज्योत्स्ना।** ज्योतिष्+सु+न। ज्योत्स्+न। ज्योत्स्न+टाप्। ज्योत्स्ना+सु। ज्योत्स्ना।*

*यहां 'ज्योतिष्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'न' प्रत्यय और अंग की उपधा (इ) का लोप निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है।*

*(२) **तमिस्रा।** तमस्+सु+र। तमिस्+र। तमिस्र+टाप्। तमिस्रा+सु। तमिस्रा।*

यहां 'तमस्' शब्द से पूर्ववत् 'र' प्रत्यय और अंग की उपधा को इकार आदेश निपातित है।

*(३) शृङ्गिणः। यहां 'शृङ्ग' शब्द से पूर्ववत् 'इनच्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(४) **ऊर्जस्विन्।** यहां 'ऊर्ज्' शब्द से पूर्ववत् 'विनि' प्रत्यय और अंग को 'असुक्' आगम निपातित है।*

*(५) **ऊर्जस्वलः।** यहां 'ऊर्ज्' शब्द से पूर्ववत् 'वलच्' प्रत्यय और अंग को 'असुक्' आगम निपातित है।*

*(६) **गोमी।** गो+सु+मिन्। गो+मिन्। गोमिन्+सु। गोमीन्+सु। गोमीन+०। गोमी।*

यहां 'गो' शब्द से पूर्ववत् 'मिन्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है।

*(७) **मलिनः।** यहां 'मल' शब्द से पूर्ववत् 'इनच्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(८) **मलीमसः।** यहां 'मल' शब्द से पूर्ववत् 'ईमसच्' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

इनिः+ठन्+मतुप्–

(२२) अत इनिठनौ।११५।

प०वि०–अतः ५।१ इनिठनौ १।२।

स०–इनिश्च ठँश्च तौ–इनिठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् अतोऽस्य, अस्मिन्निति चान्यतरस्याम् इनिठनौ।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् अकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-दण्डोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-दण्डी (इनिः)। दण्डिकः (ठन्)। दण्डवान् (मतुप्)। छत्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-छत्री (इनिः)। छत्रिकः (ठन्)। छत्रवान् (मतुप्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इनिठनौ) इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं और पक्ष में औत्सर्गिक मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-दण्ड इसका है वा इसमें है यह-दण्डी (इनि)। दण्डिक (ठन्)। दण्डवान् (मतुप्)। छत्र इसका है वा इसमें है यह-छत्री (इनि)। छत्रिक (ठन्)। छत्रवान् (मतुप्)।

***सिद्धि-(१) दण्डी।** दण्ड+सु+इनि। दण्ड्+इन्। दण्डिन्+सु। दण्डीन्+सु। दण्डीन्+०। दण्डी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अकारान्त 'दण्ड' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**छत्री।***

*(२) **दण्डिकः।** यहां 'दण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**छत्रिकः।***

*(३) **दण्डवान्।** यहां 'दण्ड' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् औत्सर्गिक 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**छत्रवान्।***

इनिः+ठन्+मतुप्-

(२३) व्रीह्यादिभ्यश्च।११६।

प०वि०-व्रीहि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-व्रीहि आदिर्येषां ते व्रीह्यादयः, तेभ्यः-व्रीह्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, इनिठनाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् व्रीह्यादिभ्यश्चास्य, अस्मिन्निति चेनिठनौ मतुप् च, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः व्रीह्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चास्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-व्रीहयोऽस्य, अस्मिन् वा सन्ति-व्रीही (इनि:)। व्रीहिक: (ठन्)। व्रीहिमान् (मतुप्)। मायाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मायी (इनि:)। मायिक: (ठन्)। मायावान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

व्रीहि। माया। शिखा। मेखला। संज्ञा। बलाका। माला। वीणा। वडवा। अष्टका। पताका। कर्मन्। चर्मन्। हंसा। यवखद। कुमारी। नौ। शीर्षान्नञ:। अशीर्षी। अशीर्षिका। इति व्रीह्यादय:।।

अत्र-शिखाऽऽदिभ्य इनिरेवष्यते, न तु ठन्, यवखदादिभ्यश्च ठन्नेवेष्यते, शेषाच्चोभौ प्रत्ययावभीष्टौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (व्रीह्यादिभ्य:) व्रीहि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिठनौ) इनि, ठन् और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-व्रीहि=चावल है इसका वा इसमें है यह-व्रीही (इनि)। व्रीहिक (ठन्)। व्रीहिमान् (मतुप्)। माया=छल-कपट है इसका वा इसमें यह-मायी (इनि)। मायिक (ठन्)। मायावान् (मतुप्) धोखेबाज, इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **व्रीही।** व्रीही+सु+इनि। व्रीह्+इन्। व्रीहिन्+सु। व्रहीन्+सु। व्रीहीन्+०। व्रीही।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'व्रीहि' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**मायी।***

*(२) व्रीहिक:। यहां 'व्रीहि' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। **'ठस्येक:'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायिक:।***

*(३) **व्रीहिमान्** पद की सिद्धि **'गोमान्'** (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-मायावान्।*

***विशेषः** व्रीहि-आदिगण में पठित 'शिखा' शब्द से लेकर हंसा शब्द तक 'इनि' प्रत्यय अभीष्ट है। यवखद आदि शब्दों से ठन् (इकन्) प्रत्यय अभीष्ट है। शेष-व्रीहि, माया शब्दों से दोनों प्रत्यय होते हैं।*

इलच्+इनि+ठन्+मतुप्–

(२४) तुन्दादिभ्य इलच् च।११७।

प०वि०–तुन्द-आदिभ्यः ५।३ इलच् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–तुन्द आदिर्येषां ते तुन्दादयः, तेभ्यः-तुन्दादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, इनिठनाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् तुन्दादिभ्योऽस्य, अस्मिन्निति च इलच्, इनिठनौ, मतुप् च, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तुन्दादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इलच्, इनिठनौ, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–तुन्दमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तुन्दिलः (इलच्)। तुन्दी (इनिः)। तुन्दिकः (ठन्)। तुन्दवान् (मतुप्)। उदरमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-उदरिलः (इलच्)। उदरी (इनिः)। उदरिकः (ठन्)। उदरवान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

तुन्द। उदर। पिचण्ड। घट। यव। व्रीहि। स्वाङ्गाद् विवृद्धौ च। इति तुन्दादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तुन्दादिभ्यः) तुन्द आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इलच्) इलच् (इनिठनौ) इनि, ठन् (च) और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-तुन्द=बड़ा तोंद है इसका वा इसमें यह-तुन्दिल (इलच्)। तुन्दी (इनि)। तुन्दिक (ठन्)। उदर=बड़ा पेट है इसका वा इसमें यह-उदरिल (इलच्)। उदरी (इनि)। उदरिल (ठन्)। उदरवान् (मतुप्) इत्यादिक।

***सिद्धि-(१) तुन्दिलः।** तुद+सु+इलच्। तुन्द्+इल। तुन्दिल+सु। तुन्दिलः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तुन्द' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'इलच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

***(२) तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान्** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

नित्यं ठञ्–

(२५) एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्।११८।

प०वि०–एक-गोपूर्वात् ५ ।१ ठञ् १ ।१ नित्यम् १ ।१ ।

स०–एकश्च गौश्च ते–एकगावौ। एकगावौ पूर्वौ यस्य तद्–एकगो-पूर्वम्, तस्मात्–एकगोपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते। अत इति चानुवर्तनीयम् (५ ।२ ।११५)।

अन्वयः–तद् एकगोपूर्वाद् अतोऽस्य, अस्मिन्निति च नित्यं ठञ्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् एकपूर्वाद् गोपूर्वाच्चाकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–**(एकपूर्वम्)** एकशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–ऐकशतिकः। ऐकसहस्रिकः। **(गोपूर्वम्)** गोशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–गौशतिकः। **गौ**सहस्रिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्) प्रथमा-समर्थ (एकगोपूर्वात्) एक शब्द पूर्ववाले तथा गोशब्द पूर्ववाले (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (नित्यम्) सदा (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०–**(एकपूर्व)** एकशत=एक सौ कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह–ऐकशतिक। एकसहस्र=एक हजार कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह–ऐकसाहस्रिक। **(गोपूर्व)** गोशत=सौ गौ इसकी हैं वा इसमें हैं यह–गौशतिक। गोसहस्र=हजार गौ इसकी हैं वा इसमें हैं यह–गौसहस्रिक।*

*सिद्धि–(१) **ऐकशतिकः।** एकशत+सु+ठञ्। ऐकशत्+इक। ऐकशतिक+सु। ऐकशतिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, एक शब्द पूर्ववाले 'एकशत' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'ठञ्' प्रतयय है। **'ठस्येकः'** (७ ।३ ।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**ऐकसहस्रिकः, गौशतिकः, गौसहस्रिकः।***

ठञ्–

(२६) शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्।११६।

प०वि०-शत-सहस्रान्तात् ५।१ च अव्ययपदम् निष्कात् ५।१।

स०-शतं च सहस्रं च ते शतसहस्रे, शतसहस्रे अन्ते यस्य तत्-शतसहस्रान्तम्, तस्मात्-शतसहस्रान्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, नित्यम्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शतसहस्रान्ताद् निष्कादस्य, अस्मिन्निति च नित्यं ठञ्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् शतान्तात् सहस्रान्ताच्च निष्क-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(शतान्तम्)** निष्कशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-नैष्कशतिकः। **(सहस्रान्तम्)** निष्कसहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-नैष्कसहस्रिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शतसहस्रान्तात्) शत और सहस्र शब्द जिसके अन्त में हैं उस (निष्कात्) निष्क प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (नित्यम्) सदा (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(शतान्त)** निष्कशत=सौ निष्क इसके हैं वा इसमें हैं यह-नैष्कशतिक। सौ निष्कवाला। **(सहस्रान्त)** निष्कसहस्र=हजार निष्क इसके हैं वा इसमें हैं यह-नैष्कसहस्रिक। हजार **निष्क**वाला। निष्क=८० रत्ती का सोने का सिक्का।*

***सिद्धि-नैष्कशतिकः।** निष्कशत+सु+ठञ्। नैष्कशत्+इक। नैष्कशतिक+सु। नैष्कशतिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, शतान्त 'निष्कशत' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**नैष्कसहस्रिकः।***

यप्–

(२७) रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्।१२०।

प०वि०-रूपात् ५।१ आहत-प्रशंसयोः ७।२ यप् १।१।

स०-आहतं च प्रशंसा च ते आहतप्रशंसे, तयोः-आहतप्रशंसयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आहत-प्रशंसयो रूपाद् अस्य, अस्मिन्निति च यप्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् आहतप्रशंसयोरर्थयोर्वर्तमानाद् रूप-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(आहतम्)** आहतं रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूप्यो दीनारः। रूप्यः केदारः। रूप्यं कार्षापणम्। **(प्रशंसा)** प्रशस्तं रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूप्यः पुरुषः। निघातिकाताडनादिना दीनारादिषु रूपं यदुत्पद्यते तदाहतमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (आहतप्रशंसयोः) आहत और प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (रूपात्) रूप प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (यप्) यप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(आहत)** आहत रूप इसका है वा इसमें है यह-रूप्य दीनार (सोने का सिक्का)। रूप्य केदार (धन)। रूप्य कार्षापण (सोना, चांदी का सिक्का)। **(प्रशंसा)** प्रशस्त रूप इसका है वा इसमें है यह-रूप्य पुरुष। रूपवान् पुरुष। हथोड़ी के ताडन आदि से दीनार आदि पर जो कोई रूप बनाया जाता है उसे 'आहत' कहते हैं।*

सिद्धि-रूप्यः। *रूप+सु+यप्। रूप्+य। रूप्य+सु। रूप्यः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, आहत और प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'रूप' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'यप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

विनिः–

(२८) असमायामेधास्रजो विनिः।१२१।

प०वि०-अस्-माया-मेधा-स्रजः ५।१ विनिः १।१।

स०-अस् च माया च मेधा च स्रक् च एतेषां समाहारः-असमायामेधास्रक्, तस्मात्-असमायामेधास्रजः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अस्मायामेधास्रग्भ्योऽस्य, अस्मिन्निति च विनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽसन्तेभ्यो मायामेधास्रग्भ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(असन्तः)** यशोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-यशस्वी। तपस्वी। मनस्वी। **(माया)** मायाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मायावी। **(मेधा)** मेधाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मेधावी। **(स्रक्)** स्रग् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-स्रग्वी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अस्मायामेधास्रजः) असन्त, माया, मेधा, स्रक् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विनिः) विनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(असन्त)** यशस् इसका है वा इसमें है यह-यशस्वी। तपस् इसका है वा इसमें है यह-तपस्वी। मनस् इसका है वा इसमें है यह-मनस्वी। **(माया)** माया=छल-कपट इसका है वा इसमें है यह-मायावी। **(मेधा)** मेधा=तीव्रबुद्धि इसकी है वा इसमें है यह-मेधावी। **(स्रक्)** स्रक्=माला इसकी है वा इसमें है यह-स्रग्वी।*

सिद्धि-यशस्वी। *यशस्+सु+विनि। यशस्+विन्। यशस्विन्+सु। यशस्वीन्+सु। यशस्वीन्+०। यशस्वी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, असन्त 'यशस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-मायावी, मेधावी, **स्रग्वी।***

बहुलं विनिः–

(२६) बहुलं छन्दसि।१२२।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, विनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत् प्रातिपदिकाद् अस्य, अस्मिन्निति च बहुलं विनिः, अस्ति।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे बहुलं विनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-तेजोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तेजस्वी। **अग्ने तेजस्विन्** (तै०सं० ३।३।१।१)। न च भवति-वर्चोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वर्चस्वान्। सूर्यो वर्चस्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (विनिः) विनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-तेजस् इसका है वा इसमें है यह-तेजस्वी। अग्ने तेजस्विन् (तै०सं० ३।३।१।१) और बहुलवचन से विनि प्रत्यय नहीं होता है-वर्चस् इसका है वा इसमें है यह-वर्चस्वान्। सूर्यो वर्चस्वान्।

*सिद्धि-(१) **तेजस्वी।** यहां प्रथमा-समर्थ 'तेजस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा वेदविषय में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है।*

*(२) **वर्चस्वान्।** यहां 'वर्चस्' शब्द से बहुलवचन से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'झयः' (८।२।१०) से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश होता है। शेष कार्य **'वृक्षवान्'** (५।२।९४) के समान है।*

युस्-

(३०) ऊर्णाया युस्।१२३।

प०वि०-ऊर्णायाः ५।१ युस् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् उर्णाया अस्य, अस्मिन्निति च युस्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऊर्णा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे युस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-ऊर्णाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-ऊर्णायुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (उर्णायाः) ऊर्णा प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (युस्) युस् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-ऊर्णा=ऊन इसकी है वा इसमें है यह-ऊर्णायुः (ऊनी)।

सिद्धि-ऊर्णायुः। ऊर्णा+सु+युस्। ऊर्णा+यु। ऊर्णायु+सु। ऊर्णायुः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'ऊर्णा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में 'युस्' प्रत्यय है। 'युस्' प्रत्यय के सित् होने से 'ऊर्णा' शब्द की ***'सिति च'*** *(१।४।१६) से पद-संज्ञा होने से* ***'यस्येति च'*** *(४।४।१४८) से अंग के आकार का लोप नहीं होता है।*

ग्मिनिः-

(३१) वाचो ग्मिनिः।१२४।

प०वि०-वाचः ५।१ ग्मिनिः १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वाचोऽस्य, अस्मिन्निति च ग्मिनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् वाच्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ग्मिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-वागस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वाग्मी।। वाग्मी। वाग्मिनौ। वाग्मिनः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(तत्) प्रथमा-समर्थ (वाचः) वाच् प्रातिपदिक से (अस्य)* ***षष्ठी***-*विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ग्मिनिः) ग्मिनि प्रत्यय* ***होता*** *है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वाक् इसकी है वा इसमें है यह-वाग्मी (वाणी का संयमी)।

*सिद्धि-***वाग्मी।** *यहां प्रथमा-समर्थ 'वाच्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ग्मिनि' प्रत्यय है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से* ***'वाच्'*** *के चकार को जश्त्व गकार होता है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के* ***समान*** *है।*

आलच्-आटच्–

(३२) आलजाटचौ बहुभाषिणि।१२५।

प०वि०–आलच्-आटचौ १।२ बहुभाषिणि ७।१।

स०–आलच् च आटच् च तौ-आलजाटचौ (इतरेतरयोग-द्वन्द्वः)। बहुभाषितुं शीलमस्य-बहुभाषी, तस्मिन्-बहुभाषिणि (उपपद-तत्पुरुषः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, वाच इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् वाचोऽस्य, अस्मिन्निति चाऽऽलजाटचौ बहुभाषिणि, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् वाच्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे आलजाटचौ प्रत्ययौ भवतः, बहुभाषिणि अभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–वागस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वाचालो बहुभाषी (आलच्)। वाचाटो बहुभाषी (आटच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वाचः) वाच् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (आलजाटचौ) आलच् और आटच् प्रत्यय होते हैं (बहुभाषिणि) बहुभाषी अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वाक् इसकी है वा इसमें है यह-वाचाल बहुभाषी (आलच्)। वाचाट बहुभाषी (आटच्)।

सिद्धि-(१) वाचालः। वाच्+सु+आलच्। वाच्+आल। वाचाल+सु। वाचालः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'वाच्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा बहुभाषी अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'आलच्' प्रत्यय है।

(२) वाचाटः। यहां 'वाच्' शब्द से पूर्ववत् 'आटच्' प्रत्यय है।

विशेषः *यहां निन्दित बहुभाषी अर्थ में 'वाच्' शब्द से आलच् और आटच् प्रत्यय होते हैं-वाचाल, वाचाट (बकवादी)। प्रशस्त बहुभाषी अर्थ में तो **'वाचो ग्मिनिः'** (५।२।१२४) से ग्मिनि प्रत्यय ही होता है-**वाग्मी**।*

निपातनम्–

(३३) स्वामिन्नैश्वर्ये।१२६।

प०वि०–स्वामिन् (सु-लुक्) ऐश्वर्ये ७।१।

अनु०–तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् स्वामिन् अस्य, अस्मिन्निति निपात्यते, ऐश्वर्ये, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थम् 'स्वामिन्' इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे आमिन्प्रत्ययान्तं निपात्यते, ऐश्वर्ये गम्यमाने, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–स्वम्=ऐश्वर्यमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–स्वामी।। स्वामी। स्वामिनौ। स्वामिनः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) **प्रथमा**-समर्थ (स्वामिन्) स्वामिन् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में आमिन्-प्रत्ययान्त निपातित **है** (ऐश्वर्ये) यदि वहां ऐश्वर्य अर्थ की प्रतीति हो (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०–स्व=ऐश्वर्य इसका है वा इसमें है यह-स्वामी।

***सिद्धि-स्वामी।** स्व+सु+आमिन्। स्व्+आमिन्। स्वामिन्+सु। स्वामीन्+सु। स्वामीन्+०। स्वामी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'स्व' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा ऐश्वर्य अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'आमिन्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है।*

अच्–

(३४) अर्शआदिभ्योऽच्।१२७।

प०वि०–अर्शस्-आदिभ्यः ५।३ अच् १।१।

स०–अर्शस् आदिर्येषां ते-अर्शआदयः, तेभ्यः-अर्शआदिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् अर्शआदिभ्योऽस्य, अस्मिन्निति अच्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽर्शआदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-अर्शांसि अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-अर्शसः। उरोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-उरसः, इत्यादिकम्।

अर्शस्। उरस्। तुन्द। चतुर। पलित। जटा। घटा। अभ्र। कर्दम। आम। लवण। स्वाङ्गादधीनात्। वर्णात्। इति अर्शआदयः आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अर्शआदिभ्यः) अर्शस्-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अच्) अच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-अर्श=बवासीर इसके है वा इसमें है यह-अर्शस। उरस्=छाती इसके है वा इसमें है यह-उरस, ***इत्यादि।***

सिद्धि-अर्शसः। अर्शस्+जस्+अच्। अर्शस्+अ। अर्शस+सु। अर्शसः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'अर्शस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उरसः।

इनिः-

(३५) द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः।१२८।

प०वि०-द्वन्द्व-उपताप-गर्ह्यात् ५।१ प्राणिस्थात् ५।१ इनिः १।१।

स०-द्वन्द्वश्च उपतापश्च गर्ह्यं च एतेषां समाहारो द्वन्द्वोपतापगर्ह्यम्, तस्मात्-द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् (समाहारद्वन्द्वः)। प्राणिनि तिष्ठतीति-प्राणिस्थः, तस्मात्-प्राणिस्थात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्राणिस्थाद् द्वन्द्वोपतापगर्ह्याद् अस्य, अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्राणिस्थेभ्यो द्वन्द्वसंज्ञकेभ्य उपताप-वाचिभ्यो गर्ह्यवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(द्वन्द्व:) कटकश्च वलयं च ते-कटकवलये। कटकवलये अस्या:, अस्यां वा स्त:-कटकवलयिनी नारी। शङ्खश्च नुपूरं च ते-शङ्खनुपूरे। शङ्खनुपूरे अस्या:, अस्यां वा स्त:-शंखनुपूरिणी नारी। **(उपताप:)** कुष्ठोऽस्य, अस्यां वाऽस्ति-कुष्ठी। किलासोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-किलासी। **(गर्ह्यम्)** ककुदावर्तोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-ककुदावर्ती। काकतालुकमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-काकतालुकी।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्राणिस्थात्) प्राणी में अवस्थित (द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्) द्वन्द्वसंज्ञक, उपताप=रोगविशेषवाची और गर्ह्य=निन्दावाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनि:) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(द्वन्द्व)** कटक और वलय इसके हैं वा इसमें हैं यह-कटकवलयिनी नारी। कटक=कड़ूला और वलय=कंगण। शङ्ख और नुपूर इसके हैं वा इसमें हैं यह-शङ्खनुपूरिणी नारी। शङ्ख=शंख नामक आभूषण और नुपूर=घुंघरू आभूषण इसके हैं वा इसमें हैं यह-शङ्खनुपूरिणी नारी। **(उपताप)** कुष्ठ=कोढ़ नामक रोग इसका है वा इसमें है यह-कुष्ठी (कोढ़ी)। किलास=सफेद कोढ़ इसका है वा इसमें है यह-किलासी (सफेद कोढ़वाला)। **(गर्ह्य)** ककुदावर्त नामक दोष इसका है वा इसमें है यह-ककुदावर्ती बैल। ककुदावर्त=थूही का गोल होना। काकतालुक नामक दोष इसका है वा इसमें है यह-काकतालुकी बैल। काकस्थानीय तालु प्रदेश में विद्यमान दोषविशेष।*

सिद्धि-(१) कटकवलयिनी। *कटकवलय+सु+इनि। कटकवलय्+इन्। कटकवलयिन्+ङीप्। कटकवलयिनी+सु। कटक०वलयी। कटकवलयी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'कटकवलय' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**शङ्खनुपूरिणी**।*

*(२) 'कुष्ठी' आदि पदों की सिद्धि '**तपस्वी**' (५।२।१०२) के समान है।*

इनि: (कुक्)-

(३६) वातातिसराभ्यां कुक् च।१२६।

प०वि०-वात-अतिसाराभ्याम् ५।२ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-वातश्च अतिसारश्च तौ वातातिसारौ, ताभ्याम्-वातातिसाराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् कुक् च, वातातिसाराभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति वा इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, कुक् चाऽऽगमो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(**वातः**) वातोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वातकी। (**अतिसारः**) अतिसारोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अतिसारकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वातातिसाराभ्याम्) वात, अतिसार प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (च) और उन्हें कुक् आगम होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(**वात**) वात=वायु रोग इसका है वा इसमें है यह-वातकी (वातरोगी)। (**अतिसार**) अतिसार=दस्त रोग इसका है वा इसमें है यह-अतिसारकी (दस्त का रोगी)।*

सिद्धि-वातकी। *वात+सु+इनि। वात+कुक्+इक्। वात+क्+इन्। वातकिन्+सु। वातकीन्+सु। वातकीन्+०। वातकी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वात' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसे 'कुक्' आगम होता है। शेष कार्य '**तपस्वी**' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**अतिसारकी**।*

इनिः-

(३६) वयसि पूरणात्।१३०।

प०वि०-वयसि ७।१ पूरणात् ५।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पूरणाद् अस्य, अस्मिन्निति इनिर्वयसि, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् पूरण-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, वयसि गम्यमाने, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-पञ्चमो मासः संवत्सरो वाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पञ्चमी उष्ट्रः। दशमी उष्ट्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूरणात्) पूरण-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ की प्रतीति हो और (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-पञ्चम=पांचवां मास वा वर्ष इसका है वा इसमें है यह-पञ्चमी उष्ट्र (ऊंट)। दशम=दसवां मास वा वर्ष इसका है वा इसमें है यह-दशमी उष्ट्र। दश मास वा दश वर्ष का ऊंट।

सिद्धि-पञ्चमी। *पञ्चम+सु+इनि। पञ्चम्+इन्। पञ्चमिन्+सु। पञ्चमीन्+सु। पञ्चमीन्+०। पञ्चमी०। पञ्चमी।*

यहां प्रथमा-समर्थ, पूरण-प्रत्ययान्त 'पञ्चम' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में वयः=आयु अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य ***'तपस्वी'*** *(५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**दशमी।***

इनिः-

(३८) सुखादिभ्यश्च।१३१।

प०वि०-सुख-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयः, तेभ्यः-सुखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सुखादिभ्यश्चाऽस्य, अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः सुखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-सुखमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सुखी। दुःखी, इत्यादिकम्।

सुख। दुःख। तृप्र। कृच्छ्र। आम्र। अलीक। करुणा। कृपण। सोढ। प्रमीप। शील। हल। माला क्षेपे। प्रणय। इति सुखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सुखादिभ्यः) सुख-आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-सुख इसका है वा इसमें है यह-सुखी। दुःख इसका है वा इसमें है यह-दुःखी, इत्यादि।

सिद्धि-सुखी। *सुख+सु+इनि। सुख्+इन्। सुखिन्+सु। सुखीन्+सु। सुखीन्+०। सुखी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'सुख' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-दुःखी।*

इनिः--

(३६) धर्मशीलवर्णान्ताच्च।१३२।

प०वि०-धर्म-शील-वर्णान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-धर्मश्च शीलं च वर्णश्च ते धर्मशीलवर्णाः। धर्मशीलवर्णा अन्ते यस्य तत्-धर्मशीलवर्णान्तम्, तस्मात्-धर्मशीलवर्णान्तात् (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् धर्मशीलवर्णान्ताच्च अस्य अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो धर्मशीलवर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य-श्चास्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(धर्मान्तम्) वैदिकधर्मोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-वैदिकधर्मी। **(शीलान्तम्)** ब्राह्मणशीलमस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-ब्राह्मणशीली। **(वर्णान्तम्)** क्षत्रियवर्णोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-क्षत्रियवर्णी।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ (धर्मशीलवर्णान्तात्) धर्म, शील, वर्ण शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(धर्मान्त)** वैदिकधर्म इसका है वा इसमें है यह-वैदिकधर्मी। **(शीलान्त)** ब्राह्मणशील इसका है वा इसमें है यह-ब्राह्मणशीली। **(वर्णान्त)** क्षत्रियवर्ण इसका है वा इसमें है यह-क्षत्रियवर्णी।*

*सिद्धि-**वैदिकधर्मी।** वैदिकधर्म+सु+इनि। वैदिकधर्म्+इन्। वैदिकधर्मिन्+सु। वैदिकधर्मीन्+सु। वैदिकधर्मिन्०। वैदिकधर्मी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, धर्मान्त 'वैदिकधर्म' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे **ही-ब्राह्मणशीली। क्षत्रियवर्णी।***

इनिः–

(४०) हस्ताज्जातौ ।१३३।

प०वि०–हस्तात् ५ ।१। जातौ ७ ।१।

अनु०–तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् हस्ताद् अस्याऽस्मिन्निति इनिः, जातौ, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् हस्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, जातावभिधेयायाम्, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–हस्तोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-हस्ती।। हस्ती। हस्तिनौ। हस्तिनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्) प्रथमा-समर्थ (हस्तात्) हस्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (जातौ) जाति अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०–हस्त=हाथ इसका है वा इसमें है यह-हस्ती (हाथी)।

सिद्धि-हस्ती। *हस्त+सु+इनि। हस्त्+इन्। हस्तिन्+सु। हस्तीन्+सु। हस्तीन्+०। हस्ती।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'हस्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा जाति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य ***'तपस्वी'*** *(५ ।२ ।१०२) के समान है।*

इनिः–

(४१) वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ।१३४।

प०वि०–वर्णात् ५ ।१ ब्रह्मचारिणि ७ ।१।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् वर्णाद् अस्य अस्मिन्निति इनिः, ब्रह्मचारिणि, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाद् वर्ण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, ब्रह्मचारिणि अभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–वर्णोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-वर्णी ब्रह्मचारी।। वर्णी। वर्णिनौ। वर्णिनः। ब्रह्मचारीति चातुर्वर्णिकोऽभिप्रेतः। स हि विद्याग्रहणार्थमुपनीतो ब्रह्म चरति=नियममासेवते इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वर्णात्) वर्ण प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वर्ण इसका है वा इसमें है यह-वर्णी ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी का अभिप्राय चातुर्वर्णिक है, क्योंकि वह ब्रह्म=वेदाध्ययन के लिये आचार्य के द्वारा उपनीत होकर तत्सम्बन्धी नियमों का आचरण करता है।

*सिद्धि-**वर्णी**। वर्ण+सु+इन्। वर्ण्+इन्। वर्णिन्+सु। वर्णीन्+सु। वर्णीन्+०। वर्णी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'वर्ण' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) विभक्ति के अर्थ में ब्रह्मचारी अर्थ अभिधेय में 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है।

इनिः-

(४२) पुष्करादिभ्यो देशे।१३५।

प०वि०-पुष्कर-आदिभ्यः ५।३ देशे ७।१।

स०-पुष्कर आदिर्येषां ते पुष्करादयः, तेभ्यः-पुष्करादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पुष्करादिभ्योऽस्याऽस्मिन्निति इनिः, देशे, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः पुष्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, देशेऽभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-पुस्करोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-पुष्पकरिणी, पद्मिनी, इत्यादिकर्म्।

पुष्कर। पद्म। उत्पल। तमाल। कुमुद। नड। कपित्थ। बिस। मृणाल। कर्दम। शालूक। विगर्ह। करीष। शिरीष। यवास। प्रवास। हिरण्य। इति पुष्करादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पुष्करादिभ्यः) पुष्कर आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (देशे) देश अर्थ अभिधेय में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-पुष्कर=कमल इसका है वा इसमें है यह-पुष्करिणी (कमलों का तालाब)। पद्म=कमल इसका है वा इसमें है यह-पद्मिनी (कमलों का सरोवर) इत्यादि।

सिद्धि-पुष्करिणी। *पुष्कर+सु+इन्। पुष्कर्+इन्। पुष्करिन्+ङीप्। पुष्करिणी+सु। पुष्करिणी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'पुष्कर' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा देश अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'ऋन्नेभ्यो ङीप्'*** *(४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पद्मिनी।***

मतुप्-विकल्पः–

(४३) बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्।१३६।

प०वि०-बल-आदिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-बलम् आदिर्येषां ते बलादयः, तेभ्यः-बलादिभ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् बलादिभ्योऽस्याऽस्मिन्निति अन्यतरस्यां मतुप्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो बलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन मतुप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-बलमस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-बलवान् (मतुप्)। बली (इनिः)। उत्साहोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-उत्साहवान् (मतुप्)। उत्साही (इनिः) इत्यादिकम्।

बल। उत्साह। उद्भाव। उद्वास। उद्वाम। शिखा। पूग। मूल। देश। कुल। आयाम। व्यायाम। उपयाम। आरोह। अवरोह। परिणाह। युद्ध। इति बलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (बलादिभ्यः) बल-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है और पक्ष में इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-बल इसका है वा इसमें है यह-बलवान् (मतुप्)। बली (इनि)। उत्साह इसका है वा इसमें है यह-उत्साहवान् (मतुप्)। उत्साही (इनि) इत्यादि।

सिद्धि-(१) बलवान् पद की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-उत्साहवान्।

(२) बली पद की सिद्धि 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-उत्साही।

इनिः-

(४४) संज्ञायां मन्माभ्याम्।१३७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ मन्माभ्याम् ५।२।

स०-मन् च मश्च तौ मन्मौ, ताभ्याम्-मन्माभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मन्माभ्यामस्य, अस्मिन्निति इनिः, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् मन्नन्ताद् मकारान्ताच्च प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(मन्नन्तम्) प्रथिमाऽस्या अस्यां वाऽस्ति-प्रथिमिनी। दामाऽस्या अस्यां वाऽस्ति-दामिनी। **(मकारान्तम्)** होमोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-होमिनी। सोमोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-सोमिनी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मन्माभ्याम्) मन्नन्त और मकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(मन्नन्त)** प्रथिमा=जघन-विस्तार इसका है वा इसमें है यह-प्रथिमिनी नारीविशेष। दामा=चमक इसकी है या इसमें है यह-दामिनी विद्युत्। **(मकारान्त)** होम=यज्ञ इसका है वा इसमें है यह-होमिनी। यज्ञ करनेवाली नारीविशेष। सोम=सोमपान इसका है वा इसमें है यह-सोमिनी। सोमपान करनेवाली नारीविशेष।*

*सिद्धि-**प्रथिमिनी**। प्रथिमन्+सु+इनि। प्रथिम्+इन्। प्रथिमिन्+ङीप्। प्रथिमिनी+सु। प्रथिमिनी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मन्नन्त, 'प्रथिमन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से*

*अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**दामिनी, होमिनी, सोमिनी।***

बादयः सप्तप्रत्ययाः-

(४५) कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः।१३८।

प०वि०-कम्-शंभ्याम् ५।२ ब-भ-युस्-ति-तु-त-यसः १।३।

स०-कम् च शम् च तौ कंशमौ, ताभ्याम्-कंशंभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बश्च भश्च युस् च तिश्च तुश्च तश्च यस् च ते-बभयुस्तितुतयसः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कंशंभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति बभयुस्तितुतयसः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां कंशंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ब-भ-युस्-ति-तु-त-यसः सप्त प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(कम्) कम्=उदकम् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कम्बः (बः)। **कम्भः** (भः)। कंयुः (युस्)। कन्तिः (तिः)। कन्तुः (तुः)। कन्तः (तः)। कंयः (यस्)। **(शम्)** शम्=सुखम् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शम्बः (बः)। शम्भः (भः)। शंयुः (युस्)। शन्तिः (तिः)। शन्तुः (तुः)। शन्तः (तः)। शंयः (यस्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कंशंभ्याम्) कम्, शम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (बभयुस्तितुतयसः) ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस् ये सात प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(कम्)** कम्=जल इसका है वा इसमें है यह-कम्ब (ब)। कम्भ (भ)। कंयु (युस्)। कन्ति (ति)। कन्तु (तु)। कन्त (त)। कंय (यस्)। **(शम्)** शम्=सुख इसका है वा इसमें है यह-शम्ब (ब)। शम्भ (भ)। शंयु (युस्)। शन्ति (ति)। शन्तु (तु)। शन्त (त)। शंय (यस्)।*

*सिद्धि-(१) **कम्बः।** कम्+सु+ब। कम्+ब। कं+ब। कम्ब+सु। कम्बः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'कम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ब' प्रत्यय है। **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से 'कम्' के मकार को अनुस्वार*

*आदेश और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५८) से उसे परसवर्ण आदेश होता है। ऐसे ही-**कम्भः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः।***

*(२) **कंयुः।** यहां 'कम्' शब्द से पूर्ववत् 'युस्' प्रत्यय के सित् होने से '**सिति च**' (१।४।१६) से 'कम्' की पदसंज्ञा होकर '**मोऽनुस्वारः**' (८।३।२३) से मकार को अनुस्वार आदेश होता है और '**वा पदान्तस्य**' (८।४।५९) से अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण अनुनासिक यकार आदेश भी होता है-**कय्ँयुः।** ऐसे ही-**कंयः, कय्ँयः।***

*(३) **शम्बः।** यहां 'शम्' शब्द से पूर्ववत् 'ब' प्रत्यय है। शेष कार्य 'कम्बः' के समान है। ऐसे ही-**शम्भः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः।***

*(४) **शंयुः।** यहां 'शम्' शब्द से पूर्ववत् 'युस्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'कंयुः' के समान है-शय्ँयुः, शंयः, शय्ँयः, पूर्ववत्।*

भः-

(४६) तुन्दिबलिवटेर्भः।१३६।

प०वि०-तुन्दि-बलि-वटेः ५।१ भः १।१।

स०-तुन्दिश्च बलिश्च वटिश्च एतेषां समाहारः-तुन्दिबलिवटिः, तस्मात्-तुन्दिबलिवटेः (समाहारद्वन्द्वः)। समाहारद्वन्द्वे सौत्रं पुंस्त्वं वेदितव्यम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तुन्दिबलिवटेरस्य अस्मिन्निति भः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तुन्दिबलिवटिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे भः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तुन्दिः) तुन्दिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-तुन्दिभः। **(बलिः)** बलिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-बलिभः। **(वटिः)** वटिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-वटिभः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तुन्दिबलिवटेः) तुन्दि, बलि, **वटि** प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (भः) **भ** प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(तुन्दि)** तुन्दि=बढ़ी हुई नाभि इसकी है वा इसमें है यह-तुन्दिभ (तूंडला)। **(बलि)** बलि=भूतयज्ञ इसका है वा इसमें है यह-बलिभ। प्राणियों को **भोजन-दान** करनेवाला। **(वटि)** वटि=गोली इसकी है वा इसमें है यह-वटिभ (गोलीवाला)।*

सिद्धि-*तुन्दिभः। तुन्दि+सु+भ। तुन्दि+भ। तुन्दिभ+सु। तुन्दिभः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तुन्दि' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'भ' प्रत्यय है। ऐसे ही-बलिभः, वटिभः।

युस्–

(४७) अहंशुभमोर्युस्।१४०।

प०वि०-अहम्-शुभमोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) युस् १।१।

स०-अहं च शुभं च तौ-अहंशुभमौ, तयोः-अहंशुभमोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। 'अहम्' इति शब्दोऽत्राहङ्कारेऽर्थे वर्तते। 'शुभम्' इति चाव्ययं शुभपर्यायः=कल्याणवाची वेदितव्यः।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अहंशुभम्भ्याम् अस्य अस्मिन्निति च युस्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अहंशुभम्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे युस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(**अहम्**) अहमस्य अस्मिन् वाऽस्ति-अहंयुः=अहङ्कारीत्यर्थः। (**शुभम्**) शुभमस्य अस्मिन् वाऽस्ति-शुभंयुः=कल्याणीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अहंशुभमोः) अहम्, शुभम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (युस्) युस् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(अहम्)** अहम्=अहंकार इसका है वा इसमें है यह-अहंयु=अभिमानी (घमण्डी)। **(शुभम्)** शुभम्=कल्याण इसका है वा इसमें है यह-शुभंयु=कल्याण करनेवाला (परोपकारी)।*

सिद्धि-अहंयुः। *अहम्+सु+युस्। अहम्+यु। अहं+यु। अहंयु+सु। अहंयुः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अहम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'युस्' प्रत्यय है। प्रत्यय के सित् होने से **'सिति च'** (१।४।१६) से 'अहम्' की पदसंज्ञा होकर **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से 'अहम्' के मकार को अनुस्वार आदेश होता है। **'वा पदान्तस्य'** (८।४।५९) से मकार को विकल्प से परसवर्ण आदेश भी होता है-अहय्ँयुः। ऐसे ही-शुभंयुः, शुभय्ँयुः।*

इति मतुबर्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।।

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः

विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्

विभक्ति-अधिकारः–

(१) प्राग् दिशो विभक्तिः ।१।

प०वि०–प्राक् १ ।१ दिशः ५ ।१ विभक्तिः १ ।१ ।

अन्वयः–दिशः प्राग् विभक्तिः ।

अर्थः–"दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्व-स्तातिः" (५ ।३ ।२७) इति वक्ष्यति, इत्येतस्मात् प्राग् वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञका भवन्तीत्यधिकारोऽयम् ।

उदा०–वक्ष्यति–**'पञ्चम्यास्तसिल्'** (५ ।३ ।७) इति, ततः । कुतः । यतः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(दिशः) पाणिनि मुनि पढ़ेंगे–* ***'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी-प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः'*** *(५ ।३ ।२७) इस सूत्र में विद्यमान 'दिक्' शब्द* ***से*** *(प्राक्) पहले विधीयमान प्रत्ययों की (विभक्तिः) विभक्ति संज्ञा होती है।*

उदा०– ***'पञ्चम्यास्तसिल्'*** *(५ ।३ ।७) ततः=वहां से। कुतः=कहां से। यतः= जहां से।*

सिद्धि– *'ततः' आदि पदों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी और प्रत्ययों की विभक्ति-संज्ञा का प्रयोजन भी वहीं बतलाया जायेगा।*

विशेषः *अब इससे आगे स्वार्थिक प्रत्ययों का विधान किया जायेगा।* ***'समर्थानां प्रथमाद् वा'*** *(४ ।१ ।८२) से चला आ रहा* ***'समर्थानाम्, प्रथमात्'*** *इन दो पदों का अधिकार निवृत्त होगया है। 'वा' पद का अधिकार विद्यमान है, अतः वा-अधिकार से 'तसिल्' आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं। विकल्प पक्ष में 'पञ्चमी' विभक्ति आदि भी बनी रहती है–* ***तस्मात्–ततः। कस्मात्–कुतः। यस्मात्–यतः,*** *इत्यादि।*

प्रत्ययविधानाधिकारः-

(२) किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ।२।

प०वि०–किम्-सर्वनाम–बहुभ्यः ५ ।३ अद्वि–आदिभ्यः ५ ।३ ।

स०-किं च सर्वनाम च बहुश्च ते-किंसर्वनामबहवः, तेभ्यः-किंसर्वनामबहुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वि आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयः-अद्व्यादयः, तेभ्यः-अद्व्यादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यो दिशः प्राग् विभक्तिः प्रत्ययाः।

अर्थः-द्व्यादिवर्जितेभ्यः किं सर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वक्ष्यमाणाः प्राग्दिशीयाः विभक्तिसंज्ञकाः प्रत्यया भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-**(किम्)** कुतः। कुत्र। **(सर्वनाम)** ततः। तत्र। यतः। यत्र। **(बहु)** बहुतः। बहुत्र।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अद्व्यादि) द्वि-आदि शब्दों से भिन्न (किं सर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम-संज्ञक, बहु प्रातिपदिकों से (प्राक्-दिशः) प्राग्-दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(किम्)** कुतः=कहां से। कुत्र=कहां। **(सर्वनाम)** ततः=वहां से। तत्र=वहां। यतः=जहां से। यत्र=जहां। **(बहु)** बहुतः=बहुत स्थानों से। बहुत्र=बहुत स्थानों में।*

सिद्धि-'कुतः' आदि पदों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी।

विशेषः *द्वि-आदि शब्द 'सर्वादिगण' (१।१।२७) में पठित हैं-द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम्। इनसे वक्ष्यमाण विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय नहीं होते हैं।*

इश्-आदेशः-

(३) इदम इश्।३।

प०वि०-इदमः ६।१ इश् १।१।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदम इश् प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये।

अर्थः-इदमः स्थाने इश् आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये परतः।

उदा०-अस्मिन्-इह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् के स्थान में (इश्) इश् आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्-दिशीय (विभक्तिः) विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-इसमें-इह (इस स्थान पर) यहां।

सिद्धि-इह। इदम्+ह। इश्+ह। इ+ह। इह+सु। इह+०। इह।

*यहां 'इदम्' शब्द से '**इदमो हः**' (५।३।११) से प्राग्दिशीय, विभक्ति-संज्ञक 'ह' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' आदेश होता है। आदेश के 'शित्' होने से यह '**अनेकाल्शित् सर्वस्य**' (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। 'इह' शब्द की '**तद्धितश्चासर्वविभक्तिः**' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

एत-इदादेशौ-

(४) एतेतौ रथोः।४।

प०वि०-एतश्च इच्च तौ-एतेतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। रश्च थ् च तौ रथौ, तयोः-रथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। रेफेऽकार उच्चारणार्थः।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिः, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदम एतेतौ प्राग्दिशीययोर्विभक्त्यो रथोः।

अर्थः-इदमः स्थाने यथासंख्यम् एत-इतावादेशौ भवतः प्रागदिशीये विभक्तिसंज्ञके रेफादौ थकारादौ च प्रत्यये परतः।

उदा०-(**रेफादिः**) अस्मिन् काले-एतर्हि। (**थकारादिः**) अनेन प्रकारेण-इत्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् के स्थान में (एतेतौ) यथासंख्य एत, इत् आदेश होते हैं (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(रेफादि) इस काल में-एतर्हि। (**थकारादि**) इस प्रकार से-इत्थम्।*

*सिद्धि-(१) **एतर्हि**। इदम्+र्हिल्। एत+र्हि। एतर्हि+सु। एतर्हि।*

*यहां 'इदम्' शब्द से 'इदमो र्हिल्' (५।३।१६) से रेफादि र्हिल् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में 'एत' आदेश होता है। आदेश के अनेकाल् होने से वह '**अनेकाल्शित् सर्वस्य**' (१।१।५) से सर्वादेश किया जाता है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **इत्थम्**। इदम्+थमु। इत्+थम्। इत्थम्+सु। इत्थम्।*

यहां 'इदम्' शब्द से 'इदमस्थमुः' (५।३।२४) से थकारादि 'थमु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में पूर्ववत् 'इत्' सर्वादेश होता है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है।

अन् आदेशः–

(५) एतदोऽन्।५।

प०वि०–एतदः ६।१ अन् १।१।

अनु०–प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–एतदोऽन् प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये।

अर्थः–एतदः स्थानेऽन् आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये परतः।

उदा०–अस्मात्–अतः। अस्मिन्–अत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एतदः) एतद् के स्थान में (अन्) अन् आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०–इस कारण से-अतः। इस स्थान पर-अत्र (यहां)।

सिद्धि-(१) अतः। *एतत्+ङसि+तसिल्। अन्+तस्। अ०+तस्। अतस्+सु। अतस्+०। अतरु। अतर्। अतः।*

*यहां 'एतत्' शब्द से **'पञ्चम्यास्तसिल्'** (५।३।७) से प्राग्दिशीय, विभक्तिसंज्ञक 'तसिल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'एतत्' के स्थान में पूर्ववत् 'अन्' सर्वादेश होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'अन्' के नकार का लोप हो जाता है। पूर्ववत् अव्यय संज्ञा होकर 'सु' का लोप हो जाता है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'स्' को रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।*

(२) अत्र। *एतत्+ङि+त्रल्। अन्+त्र। अ०+त्र। अत्र+सु। अत्र।*

*यहां 'एतत्' शब्द से **'सप्तम्यास्त्रल्'** (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'एतत्' के स्थान में 'अन्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *काशिकावृत्ति में 'एतदोऽश्' सूत्रपाठ है। यहां महाभाष्यानुसारी 'एतदोऽन्' सूत्रपाठ स्वीकार किया गया है।*

स-आदेशः–

(६) सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि।६।

प०वि०–सर्वस्य ६।१ सः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, दि ७।१।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वस्यान्तरस्यां सः, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके दि प्रत्यये।

अर्थः-सर्वस्य स्थाने विकल्पेन स आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके दकारादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-सर्वस्मिन् काले-सर्वदा। सदा (स-आदेशः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सर्वस्य) सर्व के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (सः) स आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक (दि) दकारादि प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-सब काल में-सर्वदा। सदा। (स-आदेश)।

सिद्धि-(१) सर्वदा। *सर्व+ङि+दा। सर्व+दा। सर्वदा+सु। सर्वदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'सर्व' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में ***'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा'*** *(५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) सदा। *सर्व+ङि+दा। स+दा। सदा+सु। सदा।*

यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय और इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'सर्व' के स्थान में 'स' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

तसिल्-

(७) पञ्चम्यास्तसिल्।७।

प०वि०-पञ्चम्याः ५।१ तसिल् १।१।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-पञ्चम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसिल्।

अर्थः-पञ्चम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तसिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(किम्)** कस्मात्-कुतः। **(सर्वनाम)** यस्मात्-यतः। तस्मात्-ततः। **(बहु)** बहोः-बहुतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से भिन्न (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (तसिल्) तसिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०- ***(किम्)*** *किससे-कुतः।* ***(सर्वनाम)*** *जिससे-यतः। उससे-ततः।* ***(बहु)*** *बहुत से-बहुतः।*

सिद्धि-(१) कुतः । किम्+ङसि+तसिल् । कु+तस् । कुतस्+सु । कुतस्+० । कुतरु । कुतर् । कुत+सु । कुतः ।

यहां पञ्चम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। 'कु तिहोः' (७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा होकर 'अव्ययदाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है।

(२) यतः । यत्+ङि+तसिल् । यअ+तस् । य+तस् । यतस्+सु । यतस्+० । यतरु । यतर् । यतः ।

यहां पञ्चम्यन्त, सर्वनामसंज्ञक 'यत्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। 'तसिल्' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होने से 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'यत्' के तकार को अकार आदेश होता है और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-ततः, और 'बहु' शब्द से-बहुतः ।

तसिल्-आदेशः-

(८) तसेश्च।८।

प०वि०-तसेः ६।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः, पञ्चम्याः, तसिल्, इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-पञ्चम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसेश्च तसिल् ।

अर्थः-पञ्चम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परस्य तसिप्रत्ययस्य स्थाने च तसिल् आदेशो भवति ।

उदा०-(किम्) कस्मात्-कुत आगतः । **(सर्वनाम)** यस्मात्-यत आगतः । तस्मात्-तत आगतः । **(बहुः)** बहोः-बहुत आगतः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से विहित (तसेः) तसि प्रत्यय के स्थान में (च) भी (तसिल्) तसिल् आदेश होता है।*

उदा०-(किम्) कुत आगतः । कहां से आया। (सर्वनाम) यत आगतः । जहां से आया। तत आगतः । वहां से आया। (बहु) बहुत आगतः । बहुत स्थानों से आया।

सिद्धि-कुतः । किम्+ङसि+तसि । किम्+तसिल् । कु+तस् । कुतस्+सु । कुतस्+० । कुतरु । कुतर् । कुतः ।

यहां पञ्चम्यन्त 'किम्' शब्द से 'अपादाने चाहीयरुहोः' (५ ।४ ।४५) से 'तसि' प्रत्यय होता है। उस 'तसि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'तसिल्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-यतः, ततः, बहुतः ।

तसिल्-

(९) पर्यभिभ्यां च।९।

प०वि०-परि-अभिभ्याम् ५ ।२ च अव्ययपदम् ।

स०-परिश्च अभिश्च तौ पर्यभी, ताभ्याम्-पर्यभिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-पञ्चम्याः तसिल् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-पञ्चम्यन्ताभ्यां पर्यभिभ्यां च तसिल् ।

अर्थः-पञ्चम्यन्ताभ्यां पर्यभिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च तसिल् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(परिः) परितः । सर्वत इत्यर्थः । **(अभि)** अभितः । उभयत इत्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पर्यभिभ्याम्) परि, अभि प्रातिपदिकों से (च) भी (तसिल्) तसिल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(परि) **परितः** । सब ओर से। **(अभि) अभितः** । दोनों ओर से।*

सिद्धि-परितः । परि+ङसि+तसिल् । परि+तस् । परितस्+सु । परितस्+० । परितरु । परितर् । परितः ।

*यहां पञ्चम्यन्त 'परि' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अभितः** ।*

विशेषः *यहां 'सर्व' और 'उभय' अर्थ में वर्तमान 'परि' और 'अभि' शब्दों से 'तसिल्' प्रत्यय अभीष्ट है।*

त्रल्-

(१०) सप्तम्यास्त्रल् ।१०।

प०वि०-सप्तम्याः ५ ।१ त्रल् १ ।१ ।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तनीयम् ।

अन्वयः-सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः-त्रल्।

अर्थः-सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्त्रल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**किम्**) कस्मिन्-कुत्र। (**सर्वनाम**) यस्मिन्-यत्र। तस्मिन्-तत्र। (**बहुः**) बहौ-बहुत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (त्रल्) त्रल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**किम्**) किसमें-कुत्र (कहां)। (**सर्वनाम**) जिसमें-यत्र (जहां)। उसमें-तत्र (वहां)। (**बहु**) बहुतों में-बहुत्र (बहुत स्थानों पर)।*

सिद्धि-कुत्र। *किम्+ङि+त्रल्। कु+त्र। कुत्र+सु। कुत्र+०। कुत्र।*

यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'त्रल्' प्रत्यय है। 'कुतिहोः' (७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-यत्र, तत्र, बहुत्र।

हः—

(११) इदमो हः।११।

प०वि०-इदमः ५।१ हः १।१।

अनु०-सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्या इदमो हः।

अर्थः-सप्तम्यन्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् हः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अस्मिन् इह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (हः) ह प्रत्यय होता है।*

उदा०-इसमें-इह (यहां)।

सिद्धि-इह। *इदम्+ङि+ह। इश्+ह। इ+ह। इह+सु। इह+०। इह।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से इस सूत्र से 'ह' प्रत्यय है। 'इदम इश्' (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सर्वादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अत्–

(१२) किमोऽत्।१२।

प०वि०–किमः ५।१ अत् १।१।

अनु०–सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्याः किमोऽत्।

अर्थः–सप्तम्यन्तात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कस्मिन्-क्व। क्व भोक्ष्यसे ? क्वाध्येष्यसे ?

***आर्यभाषाः अर्थ**-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (किमः) किम् प्रातिपदिक से (अत्) अत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–किसमें-क्व (कहां)। **क्व भोक्ष्यसे** ? तू कहां भोजन करेगा ? **क्वाध्येष्यसे** ? तू कहां पढ़ेगा।*

***सिद्धि-क्व।** किम्+ङि+अत्। क्व+अ। क्व+सु। क्व।*

*यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'अत्' प्रत्यय है। **'क्वाति'** (७।२।१०५) से 'किम्' के स्थान में 'क्व' आदेश होता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है। 'अत्' प्रत्यय में तकार-अनुबन्ध **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित स्वर के लिये है, अतः **'हलन्त्यम्'** (१।३।३) से तकार की इत् संज्ञा होकर **'तस्य लोपः'** (१।३।९) से उसका लोप हो जाता है **'न विभक्तौ तुस्माः'** (१।३।४) को अनित्य मानकर तकार की इत्संज्ञा का प्रतिषेध नहीं होता है-**क्व**।*

ह-विकल्पः (छान्दसः)–

(१३) वा ह च च्छन्दसि।१३।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, ह १।१ (सु-लुक्), च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–सप्तम्याः, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि सप्तम्यन्तात् किमो वा हः।

अर्थः–छन्दसि विषये सप्तम्यन्तात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन हः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०–कस्मिन्-कुह (ऋ० ८।७३।४)। क्व। कुत्र। कुत्रचिदस्य सा दूरे क्व ब्राह्मणस्य चावकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (किमः) किम् प्रातिपदिक से (वा) विकल्प से (हः) ह प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-किसमें-कुह (ह) (ऋ० ८।७३।४)। क्व (अत्)। कुत्र (त्रल्)। प्रयोग- ***कुत्रचिदस्य सा दूरे क्व ब्राह्मणस्य चावकाः।***

सिद्धि-(१) ***कुह।*** *किम्+ङि+ह। कु+ह। कुह+सु। कुह+०। कुह।*

यहां वेदविषय में, सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'ह' प्रत्यय है। ***'कु तिहोः'*** *(७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) क्व, कुत्र पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

तसिलादयः–

(१४) इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते।१४।

प०वि०-इतराभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः, तसिल्-आदय इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-इतराभ्योऽपि अद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसिलादयो दृश्यन्ते।

अर्थः-इतराभ्यः=पञ्चमीसप्तमीभिन्नविभक्त्यन्तेभ्योऽपि द्व्यादि-वर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तसिलादयः प्रत्यया दृश्यन्ते।

अत्र दृशिग्रहणं प्रायिकविध्यर्थम्। तेन भवदादिभिर्योगे एवैतद्विधानं वेदितव्यम्। के पुनर्भवदादयः ? भवान्। दीर्घायुः। आयुष्मान्। देवानां प्रिय इति। **उदाहरणम्-**

	विभक्तयः	तसिल्	त्रल्	भाषार्थ
(१)	स भवान्	ततो भवान्	तत्र भवान्।	वह आप।
(२)	तं भवन्तम्	ततो भवन्तम्	तत्र भवन्तम्।	उस आपको।
(३)	तेन भवता	ततो भवता	तत्र भवता।	उस आपके द्वारा।
(४)	तस्मै भवते	ततो भवते	तत्र भवते।	उस आपके लिये।

	विभक्तयः	तसिल्	त्रल्	भाषार्थ
(५)	तस्माद् भवतः	ततो भवतः	तत्र भवतः।	उस आपसे।
(६)	तस्य भवतः	ततो भवतः	तत्र भवतः।	उस आपका।
(७)	तस्मिन् भवति	ततो भवति	तत्र भवति।	उस आपमें।

एवम्-दीर्घायुरादिष्वप्युदाहर्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इतराभ्यः) पञ्चमी और सप्तमी विभक्त्यन्त से भिन्न (अपि) भी (अद्वादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (तसिल्-आदयः) तसिल् आदि प्रत्यय (दृश्यन्ते) दिखाई देते हैं।*

उदा०-स भवान्-ततो भवान्, तत्र भवान् इत्यादि उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

यहां सूत्रपाठ में 'दृश्यते' पद का ग्रहण प्रायिक-विधि के लिए किया गया है। अतः भवान् आदि शब्दों के योग में ही यह प्रत्यय-विधि समझनी चाहिये। भवान् आदि शब्द कौन-से हैं ? भवान्, दीर्घायु, आयुष्मान्, देवनां प्रिय ये भवान् आदि शब्द हैं।

*सिद्धि-(१) **ततो भवान्।** तत्+सु+तसिल्। तत्+तस्। तअ+तस्। ततस्+सु। ततस्+०। ततरु। ततर्। ततः।*

यहां प्रथमान्त, सर्वनाम 'तत्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **तत्र भवान्।** तत्+सु+त्रल्। तत्+त्र। तअ+त्र। तत्र+सु। तत्र+०। **तत्र।***

यहां प्रथमा-समर्थ 'तत्' शब्द से इस सूत्र से 'त्रल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इस विधि से शेष सब विभक्त्यन्त पदों की सिद्धि की स्वयं ऊहा कर लेवें।

दा-

(१५) सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा।१५।

प०वि०-सर्व-एक-अन्य-यत्-तदः ५।१ काले ७।१ दा १।१।

स०-सर्वश्च एकश्च अन्यश्च किं च यच्च तच्च एतेषां समाहारः सर्वैकान्यकिंयत्तत्, तस्मात्-सर्वैकान्यकिंयत्तदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्याः सर्वैकान्यकिंयत्तदो दा काले।

अर्थ:-सप्तम्यन्तेभ्यः सर्वैकान्यकिंयत्तद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दा प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०-(**सर्वः**) सर्वस्मिन् काले-सर्वदा, सदा। (**एकः**) एकस्मिन् काले-एकदा। (**अन्यः**) अन्यस्मिन् काले-अन्यदा। (**किम्**) कस्मिन् काले-कदा। (**यत्**) यस्मिन् काले-यदा। (**तत्**) तस्मिन् काले-तदा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (सर्वैकान्ययत्तदः) सर्व, एक, अन्य, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (दा) दा प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल=समय अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-(**सर्व**) सर्व=सब काल में-सर्वदा, सदा। (**एक**) एक काल में-एकदा। (**अन्य**) अन्य काल में-अन्यदा। (**किम्**) किस काल में-कदा (कब)। (**यत्**) जिस काल में-यदा (जब)। (**तत्**) उस काल में-तदा (तब)।*

*सिद्धि-(१) **सर्वदा।** सर्व+ङि+दा। सर्व+दा। सर्वदा+सु। सर्वदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'सर्व' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। ऐसे ही-एकदा, अन्यदा।

*(२) **सदा।** यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है और '**सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि**' (५।३।६) से 'सर्व' के स्थान में 'स' आदेश होता है।*

*(३) **कदा।** यहां 'किम्' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है और '**किमः कः**' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।*

*(४) **यदा।** यत्+ङि+दा। यत्+दा। यअ+दा। यदा+सु। यदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है। 'दा' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'यत्' के अन्त्य तकार को अकार आदेश होता है और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से उसे पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'तत' शब्द से-तदा।

र्हिल्-

(१६) इदमो र्हिल्।१६।

प०वि०-इदमः ५।१ र्हिल् १।१।

अनु०-सप्तम्याः, काले, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्या इदमो र्हिल् काले।

अर्थः-सप्तम्यान्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् र्हिल् प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०-अस्मिन् काले-एतर्हि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (र्हिल्) र्हिल् प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-इस काल में-एतर्हि (अब)।

सिद्धि-एतर्हि। *इदम्+ङि+र्हिल्। एत+र्हि। एतर्हि+सु। एतर्हि।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'र्हिल्' प्रत्यय है। ***'एतेतौ रथोः'*** *(५।३।४) से 'इदम्' के स्थान में 'एत्' आदेश होता है। 'र्हिल्' के 'लित्' होने से 'लिति' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती 'अच्' उदात्त होता है-एतर्हि।*

निपातनम्–

(१७) अधुना।१७।

वि०-अधुना १।१।

अनु०-सप्तम्याः, काले, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्या इदमोऽधुना काले।

अर्थः-{१} सप्तम्यन्ताद् इदमः प्रातिपदिकाद् धुना प्रत्ययः, इदमः स्थाने चाऽश्-आदेशो निपात्यते, कालेऽभिधेये।

{२} सप्तम्यन्ताद् इदमः प्रातिपदिकाद् अधुना प्रत्ययः, इदमश्च लोपो निपात्यते, कालेऽभिधेये।

उदा०-अस्मिन् काले-अधुना।

आर्यभाषाः अर्थ-*{१} (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (धुना) धुना प्रत्यय और इदम् के स्थान में (अश्) अश् आदेश निपातित है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

{२} (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (अधुना) अधुना प्रत्यय और 'इदम्' का लोप निपातित है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-इस काल में-अधुना (अब)।

सिद्धि-(१) अधुना। *(१) इदम्+ङि+धुना। अश्+धुना। अधुना+सु। अधुना।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'धुना' प्रत्यय ***और 'इदम्' के स्थाने 'अश्' सर्वादेश निपातित है। अथवा-***

(२) इदम्+ङि+अधुना। ०+अधुना। अधुना+सु। अधुना।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अधुना' प्रत्यय और 'इदम्' शब्द का सर्वलोप निपातित है।

दानीम्–

(१८) दानीं च।१८।

प०वि०–दानीम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सप्तम्याः, काले, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्या इदमो दानीं च काले।

अर्थः–सप्तम्यन्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दानीं प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०–अस्मिन् काले-इदानीम्, अधुना इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–इस काल में-इदानीम् (अब)।

***सिद्धि–इदानीम्।** इदम्+ङि+दानीम्। इश्+दानीम्। इदानीम्+सु। इदानीम्।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दानीम्' प्रत्यय है। 'इदम इश्' (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सवादेश होता है।

दा+दानीम्–

(१९) तदो दा च।१९।

प०वि०–तदः ५।१ दा १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सप्तम्याः, काले, दानीम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्यास्तदो दा दानीं च काले।

अर्थः–सप्तम्यन्तात् तत्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दा दानीं च प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०–तस्मिन् काले-तदा (दा)। तदानीम् (दानीम्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (तदः) तत् प्रातिपदिक से (दा) दा (च) और (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होते हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-उस काल में-तदा (दा)। तदानीम् (दानीम्) तब।

*सिद्धि-(१) **तदा।** तत्+ङि+दा। तत्+दा। तअ+दा। तदा+सु। तदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'तत्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। 'दा' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'तत्' के तकार को अकार आदेश होता है और 'अतो गुणे' से पूर्व अकार को पररूप एकादेश होता है।

*(२) **तदानीम्।** यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'दानीम्' प्रत्यय है।*

***विशेषः** महाभाष्य के अनुसार 'तदो दा च' से 'दा' प्रत्यय का कथन अनर्थक है क्योंकि 'सर्वैकान्ययत्तदः काले दा' (५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय सिद्ध ही है।*

दा+र्हिल्–

(२०) तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि।२०।

प०वि०-तयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) दा-र्हिलौ १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-दा च र्हिल च तौ दार्हिलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तयोः=इदं तद्भ्यां दार्हिलौ दानीं च काले।

अर्थः-छन्दसि विषये तयोः=ताभ्याम् इदं तद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं दार्हिलौ दानीं च प्रत्यया भवन्ति, कालेऽभिधेये।

उदा०-(इदम्) अस्मिन् काले-इदा। **इदावत्सरीयः** (का०सं० १३।१५)। (दा)। इदानीम् (दानीम्)। (तत्) तस्मिन् काले-तर्हि (र्हिल्)। तदानीम् (दानीम्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तयोः) उन इदम्, तत् प्रातिपदिकों से (दार्हिलौ) यथासंख्य दा, र्हिल् (च) और (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होते हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-इस काल में-इदा। **इदावत्सरीयः** (का०सं० १३।१५) (दा)। इदानीम् (दानीम्) अब। (तत्) उस काल में-तर्हि (र्हिल्)। तदानीम् (दानीम्) तब।*

*सिद्धि-(१) **इदा।** इदम्+ङि+दा। इश्+दा। इदा+सु। इदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से वेदविषय में तथा काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। 'इदम इश्' (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सर्वादेश होता है।

(२) इदानीम्। पूर्ववत् (५।३।१८)।

(३) तर्हि। तत्+ङि+र्हिल्। तत्+र्हि। तअ+र्हि। तर्हि+सु। तर्हि।

यहां सप्तम्यन्त 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'र्हिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) तदानीम्। पूर्ववत् (५।३।१९)।

र्हिल्–

(२१) अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।२१।

प०वि०–अनद्यतने ७।१ र्हिल् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–अद्य भवम्-अद्यतनम्, न अद्यतनम्–अनद्यतनम्, तस्मिन्-अनद्यतने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः इति चानुवर्तनीयम्, सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्योऽन्यतरस्यां र्हिल् अनद्यतने काले।

अर्थः–सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन र्हिल् प्रत्ययो भवति, अनद्यतने कालेऽभिधेये। पक्षे च दा प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(किम्)** कस्मिन् काले–कर्हि (र्हिल्)। कदा (दा)। **(सर्वनाम)** यस्मिन् काले–यर्हि (र्हिल्)। यदा (दा)। तस्मिन् काले–तर्हि (र्हिल्) तदा (दा)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (र्हिल्) र्हिल् प्रत्यय होता है (अनद्यतने काले) यदि वहां अनद्यतन काल अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०–**(किम्)** किस काल में-कर्हि (र्हिल्) कब। कदा (दा) कब। **(सर्वनाम)** जिस काल में-यर्हि (र्हिल्) जब। यदा (दा) जब। उस काल में-तर्हि (र्हिल्) तब। तदा (दा) तब।*

***सिद्धि**-(१) **कर्हि**। किम्+ङि+र्हिल्। क+र्हि। कर्हि+सु। कर्हि।*

यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से अनद्यतन काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'र्हिल्' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(२) कदा। यहां 'किम्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' (५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(३) यर्हि। यत्+ङि+र्हिल्। यत्+र्हि। यअ+र्हि। यर्हि+सु। यर्हि।

यहां 'यत्' शब्द से 'र्हिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तर्हि' (५।३।२०) के समान है।

(४) तदा। यहां 'तत्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

निपातनम्–

(२२) सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः।२२।

प०वि०–सद्यः अव्ययपदम्, परुत् अ०प०, परारि अ०प०, ऐषमः अ०प०, परेद्यवि अ०प०, अद्य अ०प०, पूर्वेद्युः अ०प०, अन्येद्युः अ०प०, अन्यतरेद्युः अ०प०, इतरेद्युः अ०प०, अपरेद्युः अ०प०, अधरेद्युः अ०प०, उभयेद्युः अ०प०, उत्तरेद्युः अ०प०।

अनु०–सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्यन्ताः सद्यः०उत्तरेद्युः काले।

अर्थः–सप्तम्यन्ताः सद्य आदयः शब्दा निपात्यन्ते कालेऽभिधेये।

उदा०–**(सद्यः)** समानेऽहनि–सद्यः। **(परुत्)** पूर्वस्मिन् संवत्सरे–परुत्। **(परारि)** पूर्वतरे संवत्सरे–परारि। **(ऐषमः)** अस्मिन् संवत्सरे–ऐषमः। **(परेद्यवि)** परस्मिन्नहनि–परेद्यवि। **(अद्य)** अस्मिन्नहनि–अद्य। **(पूर्वेद्युः)** पूर्वस्मिन्नहनि–पूर्वेद्युः। **(अन्येद्युः)** अन्यस्मिन्नहनि–अन्येद्युः। **(अन्यतरेद्युः)** अन्यतरस्मिन्नहनि–अन्यतरेद्युः। **(इतरेद्युः)** इतरस्मिन्नहनि–इतरेद्युः। **(अपरेद्युः)** अपरस्मिन्नहनि–अपरेद्युः। **(अधरेद्युः)** अधरस्मिन्नहनि–अधरेद्युः। **(उभयेद्युः)** उभयोरह्नोः–उभयेद्युः। **(उत्तरेद्युः)** उत्तरस्मिन्नहनि–उत्तरेद्युः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (सद्यः०उत्तरेद्युः) सद्यः, परुत्, परारि, ऐषमः, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः शब्द निपातित हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।* ***उदाहरण–***

(१)	सद्य	समान (एक) दिन में।
(२)	परुत्	पहले संवत्सर (वर्ष) में।
(३)	परारि	दो में से पहले संवत्सर में।
(४)	ऐषम	इस संवत्सर में।
(५)	परेद्यवि	परवर्ती दिन में।
(६)	अद्य	इस वर्तमान दिन में।
(७)	पूर्वेद्यु	पूर्ववर्ती दिन में।
(८)	अन्येद्यु	अन्य किसी दिन में।
(९)	अन्यतरेद्यु	दो में से किसी एक दिन में।
(१०)	इतरेद्यु	दूसरे दिन में।
(११)	अपरेद्यु	पिछले दिन में।
(१२)	अधरेद्यु	निचले दिन में।
(१३)	उभयेद्यु	दोनों दिनों में।
(१४)	उत्तरेद्यु	अगले दिन में।

सिद्धि-(१) सद्यः। समान+ङि+द्यस्। स+द्यस्। स+द्यर। स+द्यर्। सद्यर्+सु। सद्यर्+०। सद्यः।

यहां सप्तम्यन्त 'समान' शब्द से काल (दिन) अभिधेय में 'द्यस्' प्रत्यय और 'समान' को 'स' आदेश निपातित है।

(२) परुत्। पूर्व+ङि+उत्। पर्+उत्। परुत्+सु। परुत्।

यहां सप्तम्यन्त 'पूर्व' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में उत् प्रत्यय और 'पूर्व' को 'पर' आदेश निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(३) परारि। पूर्वतर+ङि+आरि। पर्+आरि। परारि+सु। परारि।

यहां सप्तम्यन्त 'पूर्वतर' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में 'आरि' प्रत्यय और 'पूर्वतर' को 'पूर्व' आदेश निपातित है।

(४) ऐषमः। इदम्+ङि+समसण्। इश्+समस्। ऐ+षमस्। ऐषमस्+सु। ऐषमस्+० ऐषमरु। ऐषमर्। ऐषमः।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में समसण् प्रत्यय और 'इदम्' को 'इश्' सर्वादेश निपातित है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(५) परेद्यविः। पर+ङि+एद्यवि। पर्+एद्यवि। परेद्यवि+सु। परेद्यवि+०। परेद्यवि।

यहां सप्तम्यन्त 'पर' शब्द से 'एद्यवि' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(६) अद्य। इदम्+ङि+द्य। अश्+द्य। अद्य+सु। अद्य+०। अद्य।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से 'द्य' प्रत्यय और 'इदम्' को 'अश्' सर्वादेश निपातित है।

(७) पूर्वेद्युः। पूर्व+ङि+एद्युस्। पूर्व्+एद्युस्। पूर्वेद्युस्+सु। पूर्वेद्युस्+०। पूर्वेद्युरु। पूर्वेद्युर्। पूर्वेद्युः।

*यहां सप्तम्यन्त 'पूर्व' शब्द से 'एद्युस्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-अन्येद्युः, **अन्यतरेद्युः**, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः।*

यहां सर्वत्र 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।

थाल्–

(२३) प्रकारवचने थाल्।२३।

प०वि०–प्रकारवचने ७।१ थाल् १।१।

स०–सामान्यस्य विशेषो भेदकः=प्रकारः। प्रकारस्य वचनम्-प्रकारवचनम्, तस्मिन्-प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तते। सप्तम्याः, काले इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–प्रकारवचनेऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्थाल्।

अर्थः–प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(किम्)** केन प्रकारेण–कथा। **(सर्वनाम)** येन प्रकारेण–यथा। तेन प्रकारेण–तथा। सर्वेण प्रकारेण–सर्वथा **(बहु)** बहुना प्रकारण–बहुथा।

***आर्यभाषा*:** *अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार के कथन में विद्यमान (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से भिन्न (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (थाल्) थाल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** किस प्रकार से-कथा (कैसे)। **(सर्वनाम)** जिस प्रकार से-यथा (जैसे)। उस प्रकार से-तथा (वैसे)। सब प्रकार से-सर्वथा (बिल्कुल)। बहुत प्रकार से-बहुथा।*

सिद्धि-(१) कथा। किम्+टा+थाल्। क+था। कथा+सु। कथा+०। कथा।

*यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। '**किमः कः**' (७।२।१०३) से 'किम्' 'क' आदेश होता है।*

(२) यथा। यत्+टा+थाल्। यअ+था। यथा+सु। यथा+०। यथा।

*यहां तृतीयान्त 'यत्' शब्द से प्रकार वचन में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। थाल् प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से 'यत्' के तकार को अकार आदेश और '**अतो गुणे**' (६।१।९६) से पूर्ववर्ती अकार को पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही-**तथा, सर्वथा, बहुथा।***

थमुः-

(२४) इदमस्थमुः।२४।

प०वि०-इदमः ५।१ थमुः।

अनु०-प्रकारवचने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने इदमस्थमुः।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानाद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकात् थमुः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनेन प्रकारेण-इत्थम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार-वचन अर्थ में विद्यमान (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (थमुः) थमु प्रत्यय होता है।*

उदा०-इस प्रकार से-इत्थम् (ऐसे)।

*सिद्धि-**इत्थम्।** इदम्+टा+थमु। इत्+थम्। इत्थम्+सु। इत्थम्+०। इत्थम्।*

*यहां तृतीयान्त 'इदम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थमु' प्रत्यय है। '**एतेतौ रथोः**' (५।३।४) से 'इदम्' को 'इत्' आदेश होता है। 'थमु' का उकार मकार की रक्षा के लिये है।*

थमुः-

(२५) किमश्च।२५।

प०वि०-किमः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकारवचने, थमुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने किमश्च थमुः।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च थमुः प्रत्ययो भवति।

उदा०-केन प्रकारेण-कथम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकारवचन अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (च) भी (थमुः) थमु प्रत्यय होता है।*

उदा०-किस प्रकार से-कथम् (कैसे)।

सिद्धि-कथम्। *किम्+टा+थमु। क+थम्। कथम्+सु। कथम्+०। कथम्।*

यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थमु' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है।

था-

(२६) था हेतौ च च्छन्दसि।२६।

प०वि०-था १।१ हेतौ ७।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-प्रकारवचने, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि हेतौ प्रकारवचने च किमस्था।

अर्थः-छन्दसि विषये हेतौ प्रकारवचने चार्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकात् था प्रत्ययो भवति।

उदा०-(हेतुः) **कथा ग्रामं न पृच्छसि** (ऋ० १०।१४६।१)। केन हेतुना न पृच्छसीत्यर्थः। (प्रकारवचनम्) कथा देवा आसन् पुराविदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हेतौ) हेतु=कारण (च) और (प्रकारवचने) प्रकार-वचन अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (था) था प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(हेतु) **कथा ग्रामं न पृच्छसि** (ऋ० १०।१४६।१)। तू किस कारण से ग्राम को नहीं पूछता है। **(प्रकारवचन) कथा देवा आसन् पुराविदः।** पुरावेत्ता विद्वान् किस प्रकार के थे।*

सिद्धि-कथा। *किम्+टा+था। क+था। कथा+सु। कथा+०। कथा।*

यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से हेतु और प्रकारवचन में इस सूत्र से 'था' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है।

इति विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

अस्तातिः–

(१) दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः।२७।

प०वि०–दिक्शब्देभ्यः ५।३ सप्तमी–पञ्चमी–प्रथमाभ्यः ५।३ दिक्–देश–कालेषु ७।३ अस्तातिः १।१।

स०–दिशां शब्दाः–दिक्शब्दाः, तेभ्यः–दिक्शब्देभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)। सप्तमी च पञ्चमी च प्रथमा च ताः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाः, ताभ्यः–सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दिक् च देशश्च कालश्च ते दिग्देशकालाः, तेषु–दिग्देशकालेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्यः स्वार्थेऽस्तातिः।

अर्थः–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्यः=दिशावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽस्तातिः प्रत्ययो भवति।

उदाहरणम्–

(१) **दिक्**–पूर्वस्यां दिशि वसति–पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः–पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया–पुरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः**–पूर्वस्मिन् देशे वसति–पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्माद् देशादागतः–पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वो देशो रमणीयः–पुरस्ताद् रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः**–पूर्वस्मिन् काले वसति–पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्मात् कालादागतः–पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वः कालो रमणीयः–पुरस्ताद् रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ–(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमी–पञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी–पञ्चमी–प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अस्तातिः) अस्ताति प्रत्यय होता है।*

उदा०-(१) दिक्-पूर्व दिशा में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्व दिशा से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-पूर्व देश में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्व देश से आया-पूरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व काल रमणीय-पुरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-पूर्वकाल में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्वकाल से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्वकाल रमणीय-पुरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि-पुरस्तात्। *पूर्व+ङि+ङसि+सु+अस्ताति। पुर्+अस्तात्। पुरस्तात्+सु। पुरस्तात्+०। पुरस्तात्।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिक्शब्द=दिशावाची 'पूर्व' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अस्ताति' प्रत्यय है। **'अस्ताति च'** (५।३।४०) से 'पूर्व' के स्थान में 'पुर' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३८) से अव्यय-संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो जाता है।*

अतसुच्–

(२) दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्।२८।

प०वि०-दक्षिण-उत्तराभ्याम् ५।२ अतसुच् १।१।

स०-दक्षिणश्च उत्तरश्च तौ दक्षिणोत्तरौ, ताभ्याम्-दक्षिणोत्तराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यां दिक्शब्दाभ्यां दक्षिणोत्तराभ्याम् अतसुच्।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानाभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिक्शब्दाभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थेऽतसुच् प्रत्ययो भवति।

उदाहरणम्–

(१) **दिक्-(दक्षिणः)**-दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणस्या दिश आगतः-दक्षिणत आगतः (पञ्चमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणतो रमणीया (प्रथमा)। **(उत्तरः)** उत्तरस्यां दिशि

वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्या दिश आगतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तरतो रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-(दक्षिणः)**-दक्षिणस्मिन् देशे वसति-दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणस्माद् देशादागतः-दक्षिणत आगतः (पञ्चमी)। दक्षिणो देशो रमणीयः-दक्षिणतो रमणीयः (प्रथमा)। **(उत्तरः)** उत्तरस्मिन् देशे वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्माद् देशादागतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरो देशो रमणीयः-उत्तरतो रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः-(दक्षिणः)**-दक्षिणशब्दः काले न सम्भवति, तस्मान्नोदा-ह्रियते। **(उत्तरः)** उत्तरस्मिन् काले वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्मात् कालादागतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरः कालो रमणीयः-उत्तरतो रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिणो-त्तराभ्याम्) दक्षिण, उत्तर प्रातिपदिकों से (अतसुच्) स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होता है।*
उदाहरण-

*(१) **दिक्-(दक्षिण)** दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षितः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा से आया-दक्षिणतः आया (पञ्चमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणतः रमणीया (प्रथमा)। **(उत्तर)** उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरतः रमणीया (प्रथमा)।*

*(२) **देश-(दक्षिण)** दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणतः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश से आया-दक्षिणतः आया (पञ्चमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणतः रमणीय (प्रथमा)। **(उत्तर)** उत्तर देश में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर देश रमणीय-उत्तरतः रमणीय (प्रथमा)।*

*(३) **काल-(दक्षिण)** दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है। **(उत्तर)** उत्तर काल में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर देश रमणीय उत्तरतः रमणीय (प्रथमा)।*

*सिद्धि-**दक्षिणतः।** दक्षिण+ङि+ङसि+सु+अतसुच्। दक्षिण्+अतस्। दक्षिणतस्+सु। दक्षिणतस्+०। दक्षिणतरु। दक्षिणतर्। दक्षिणतः।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से स्वार्थ में 'अतसुच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-उत्तरतः।*

अतसुच्-विकल्पः–

(३) विभाषा परावराभ्याम्।२६।

प०वि०–विभाषा १।१ पर-अवराभ्याम् ५।२।

स०–परश्च अवरश्च तौ परावरौ, ताभ्याम्-परावराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यां दिक्शब्दाभ्यां परावराभ्यां विभाषाऽतसुच्।

अर्थः–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानाभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिक्शब्दाभ्यां परावराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे विकल्पेनाऽतसुच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽस्तातिः प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

(१) दिक्-(परः) परस्यां दिशि वसति-परतो वसति (अतसुच्)। परस्ताद् वसति (अस्तातिः) (सप्तमी)। परस्या-दिश आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिक् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवरतो वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवरत आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवरतो रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देशः-(परः) परस्मिन् देशे वसति-परतो वसति। परस्ताद् वसति (सप्तमी)। परस्माद् देशाद् आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिग् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्मिन् देशे वसति-अवरतो वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्माद् देशाद् आगतः-अवरत आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवरतो रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(३) कालः-(परः) परस्मिन् काले वसति-परतो वसति। परस्ताद् वसति (सप्तमी)। परस्माद् देशाद् आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिग् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (परावराभ्याम्) पर, अवर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (विभाषा) विकल्प से (अतसुच्) अतसुच् प्रत्यय होता है और पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय होता है। उदाहरण-*

(१) दिक्-(पर) पर दिशा में रहता है-परतः रहता है (अतसुच्)। परस्तात् रहता है (अस्ताति)। पर देश से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर दिशा रमणीया-परतः रमणीया। परस्तात् रमणीया (प्रथमा)। (अवर) अवर दिशा में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी) अवर दिशा रमणीया-अवरतः रमणीया। अवरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-(पर) पर देश में रहता है-परतः रहता है। परस्तात् रहता है (सप्तमी)। पर देश से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर देश रमणीय-परतः रमणीय। परस्तात् रमणीय (प्रथमा)। (अवर) अवर देश में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर देश से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर देश रमणीय-अवरतः रमणीय। अवरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-(पर) पर काल में रहता है-परतः रहता है। परस्तात् रहता है (सप्तमी)। पर काल से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर काल रमणीय-परतः रमणीय। परस्तात् रमणीय (प्रथमा)। (अवर) अवर काल में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर काल से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर काल रमणीय-अवरतः रमणीय। अवरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि-(१) परतः। पर+ङि+ङसि+सु+अतसुच्। पर्+अतस्। परतस्+सु। परतस्+०। परतस्। परतरु। परतर्। परतः।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पर' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'अतसुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अवरतः।

(२) परस्तात्। यहां पूर्वोक्त 'पर' शब्द से विकल्प पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अस्ताति-लुक्–

(४) अञ्चेर्लुक्।३०।

प०वि०–अञ्चे: ५।१ लुक् १।१।

अनु०–दिक्शब्देभ्य:, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य:, दिग्देशकालेषु, अस्तातिरिति चानुवर्तते।

अन्वय:–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्योऽञ्चति-अन्तेभ्योऽस्तातेर्लुक्।

अर्थ:–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्य: सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्योऽञ्चति-अन्तेभ्य: प्रातिपदिकेभ्य उत्तरस्यास्तातिप्रत्ययस्य लुग् भवति। **उदाहरणम्–**

(१) **दिक्**–प्राच्यां दिशि वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राच्या दिश आगत:-प्राग् आगत: (पञ्चमी)। प्राची दिग् रमणीया-प्राग् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देश:**–प्राचि देशे वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राचो देशादागत:-प्राग् आगत: (पञ्चमी)। प्राग् देशो रमणीय:-प्राग् रमणीय: (प्रथमा)।

(३) **काल:**–प्राचि काले वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राच: कालादागत:-प्राग् आगत: (पञ्चमी)। प्राक् कालो रमणीय:-प्राग् रमणीय: (प्रथमा)।

इत्थमेव-प्रत्यग् वसति। प्रत्यग् आगत:। प्रत्यग् रमणीय:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य:) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्य:) दिशावाची (अञ्चे:) अञ्चि-अन्त प्रातिपदिकों से उत्तर (अस्ताति:) अस्ताति प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है। उदाहरण–*

(१) दिक्-प्राची दिशा में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राची दिशा से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राची दिशा रमणीया-प्राक् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-प्राक् देश में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राक् देश से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राक् देश रमणीय-प्राक् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-प्राक् काल में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राक् काल से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राक् काल रमणीय-प्राक् रमणीय (प्रथमा)।

ऐसे ही-प्रत्यक् रहता है। प्रत्यक् आया। प्रत्यक् रमणीय। प्रत्यक्=पश्चिम।

सिद्धि- *प्राक्। प्राची+ङि+ङसि+सु+अस्ताति। प्राच्+०। प्राक्।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'प्राची' शब्द से '**दिक्शब्देभ्यः०**' (५।३।२७) से 'अस्ताति' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से उसका 'लुक्' हो जाता है। '**लुक् तद्धितलुकि**' (१।२।४९) से तद्धित-प्रत्यय के लुक् हो जाने पर स्त्री-प्रत्यय (ङीप्) का भी लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**प्रत्यक्** आदि।*

निपातनम्–

(५) उपर्युपरिष्टात्।३१।

प०वि०–उपरि अव्ययपदम्, उपरिष्टात् अव्ययपदम्।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् ऊर्ध्वाद् रिल्-रिष्टातिलौ, उपश्च।

अर्थः–उपरि, उपरिष्टाद् इत्येतौ शब्दौ निपात्यते। दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिग्वाचिन ऊर्ध्वशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे रिल्-रिष्टातिलो प्रत्ययौ, ऊर्ध्वस्य स्थाने च उप आदेशो निपात्यते, इत्यर्थः। **उदाहरणम्**–

(१) **दिक्**–ऊर्ध्वायां दिशि वसति–उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति (सप्तमी)। ऊर्ध्वाया दिश आगतः–उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः (पञ्चमी)। ऊर्ध्वा दिग् रमणीया–उपरि रमणीया। उपरिष्टाद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः**–ऊर्ध्वे देशे वसति–उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति। (सप्तमी)। ऊर्ध्वाद् देशाद् आगतः–उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः (पञ्चमी)। ऊर्ध्वा दिग् रमणीया–उपरि रमणीया। उपरिष्टाद् रमणीया। (प्रथमा)।

(३) **कालः**–ऊर्ध्वे देशे वसति–उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति। (सप्तमी)। ऊर्ध्वाद् कालाद् आगतः–उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः (पञ्चमी)। ऊर्ध्वः कालो रमणीयः–उपरि रमणीयः। उपरिष्टाद् रमणीयः। (प्रथमा)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपरि-उपरिष्टात्) उपरि और उपरिष्टात् ये शब्द निपातित हैं अर्थात् (दिक्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (ऊर्ध्वात्) ऊर्ध्व प्रातिपदिक से (रिल्रिष्टातिलौ) रिल् और रिष्टातिल् प्रत्यय और (उपः) 'ऊर्ध्व' को 'उप' आदेश निपातित है। उदाहरण-*

(१) दिक्–ऊर्ध्व दिशा में रहता है–उपरि रहता है। उपरिष्टात् रहता है (सप्तमी)। ऊर्ध्व दिशा से आया–उपरि आया। उपरिष्टात् आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व दिशा रमणीया–उपरि रमणीया। उपरिष्टात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश–ऊर्ध्व देश में रहता है–उपरि रहता है। उपरिष्टात् रहता है (सप्तमी)। ऊर्ध्व देश से आया–उपरि आया। उपरिष्टात् आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व दिशा रमणीय–उपरि रमणीया। उपरिष्टात् रमणीया (प्रथमा)।

*(३) काल–ऊर्ध्व काल में रहता है–**उपरि** रहता है। उपरिष्टात् रहता है (सप्तमी)। ऊर्ध्व काल से आया–उपरि आया। **उपरिष्टात्** आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व काल रमणीय–उपरि रमणीय। उपरिष्टात् रमणीय (**प्रथमा**)।*

***सिद्धि**-(१) **उपरि**। ऊर्ध्व+ङि+ङसि+सु+**रिल्**। उप+रि। उपरि+सु। उपरि+०। उपरि।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-सप्तम्यन्त, दिशावाची 'ऊर्ध्व' शब्द से स्वार्थ में 'रिल्' प्रत्यय और 'ऊर्ध्व' को 'उप' आदेश निपातित है।

*(२) **उपरिष्टात्**। यहां पूर्वोक्त 'ऊर्ध्व' शब्द से 'रिष्टातिल्' प्रत्य और 'ऊर्ध्व' को 'उप' आदेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

निपातनम्–

(६) पश्चात्।३२।

वि०–पश्चात् अव्ययपदम्।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वय:-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दाद् अपराद् आति:, पश्चश्च।

अर्थ:-पश्चाद् इत्येष शब्दो निपात्यते। दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिनोऽपरशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आति: प्रत्ययो भवति, अपरस्य स्थाने च पश्च आदेशो भवतीत्यर्थ:। **उदाहरणम्-**

(१) **दिक्**-अपरस्यां दिशि वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्या दिश आगत:-पश्चाद् आगत: (पञ्चमी)। अपरा दिग् रमणीया-पश्चाद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देश:**-अपरस्मिन् देशे वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्माद् देशाद् आगत:-पश्चाद् आगत: (पञ्चमी)। अपरो देशो रमणीय:-पश्चाद् रमणीय: (प्रथमा)।

(३) **काल:**-अपरस्मिन् काले वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्माद् कालाद् आगत:-पश्चाद् आगत: (पञ्चमी)। अपर: कालो रमणीय:-पश्चाद् रमणीय: (प्रथमा)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पश्चात्) पश्चात् यह शब्द निपातित है अर्थात् (दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य:) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्य:) दिशावाची (अपरात्) अपर प्रातिपदिक से (आति:) आति प्रत्यय और अपर को (पश्च) पश्च आदेश निपातित है। उदाहरण-*

*(१) **दिक्**-अपर दिशा में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर दिशा से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर दिशा रमणीया-पश्चात् रमणीया (प्रथमा)।*

*(२) **देश**-अपर देश में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर देश से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर देश रमणीय-पश्चात् रमणीय (प्रथमा)।*

*(३) **काल**। अपर काल में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर काल से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर काल रमणीय-पश्चात् रमणीय (प्रथमा)।*

*सिद्धि-**पश्चात्**। अपर+ङि+ङसि+सु+आति। पश्च्+आत्। पश्चात्+सु। पश्चात्+०। पश्चात्।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, **दिशावाची 'अपर'** शब्द से स्वार्थ में 'आति' प्रत्यय और 'अपर' को 'पश्च' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

निपातनम्–

(७) पश्च पश्चा च च्छन्दसि।३३।

प०वि०–पश्च अव्ययपदम्, पश्चा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु पश्चात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि दिग्देशकालेषु, सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् अपरात् स्वार्थे अः, आः, अतिश्च, पश्चश्च।

अर्थः–छन्दसि विषये पश्च, पश्चा, पश्चादिति च शब्दा निपात्यन्ते। छन्दसि विषये दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिनोऽपरशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽकार आकार आतिश्च प्रत्यया भवन्ति, अपरस्य स्थाने च पश्च आदेशो भवतीत्यर्थः। **उदाहरणम्**- पुरा व्याघ्रो जायते पश्च सिंहः, पश्चा सिंहः, पश्चात् सिंहः।

दिक्–अपरस्यां दिशि वसति–पश्च वसति। पश्चा वसति। पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्या दिश आगतः–पश्च आगतः। पश्चा आगतः। पश्चाद् आगतः (पञ्चमी)। अपरा दिग् रमणीया-पश्च रमणीया। पश्चा रमणीया। पश्चाद् रमणीया। इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (पश्च) पश्च (पश्चा) पश्चा (च) और (पश्चात्) पश्चात् ये शब्द निपातित हैं, अर्थात् (छन्दसि) वेदविषय में (दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (अपरात्) अपर प्रातिपदिक से (अः) अ (आः) आ (आतिः) आति प्रत्यय और अपर को (पश्च) पश्च आदेश निपातित है।*

उदा०–पुरा व्याघ्रो जायते पश्च सिंहः, पश्चा सिंहः, पश्चात् सिंहः।

***दिक्**–अपर दिशा में रहता है-पश्च रहता है। पश्चा रहता है। पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर दिशा से आया-पश्च आया। पश्चा आया। पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर दिशा रमणीया-पश्च रमणीया। पश्चा रमणीया। पश्चात् रमणीया।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) पश्च । अपर+ङि+ङसि+सु+अ । पश्च्+अ । पश्च+सु । पश्च+० । पश्च ।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'अपर' शब्द से छन्दोविषय में 'अ' प्रत्यय और 'अपर' को 'पश्च' आदेश निपातित है ।

(२) पश्चा । यहां पूर्वोक्त 'अपर' शब्द से 'आ' प्रत्यय है । शेष कार्य पूर्ववत् है ।

(३) पश्चात् । पूर्ववत् (५ ।३ ।३२) ।

आतिः-

(८) उत्तराधरदक्षिणादातिः ।३४ ।

प०वि०-उत्तर-अधर-दक्षिणात् ५ ।१ आतिः १ ।१ ।

स०-उत्तरश्च अधरश्च दक्षिणश्च एतेषां समाहार उत्तराधरदक्षिणम्, तस्मात्-उत्तरधरदक्षिणात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्य आतिः ।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे आतिः प्रत्ययो भवति । **उदाहरणम्-**

दिक्-(उत्तरः) उत्तरस्यां दिशि वसति-उत्तराद् वसति (सप्तमी) । उत्तरस्या दिश आगतः-उत्तराद् आगतः (पञ्चमी) । उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तराद् रमणीया (प्रथमा) । **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधराद् वसति (सप्तमी) । अधरस्या दिश आगतः-अधराद् आगतः (पञ्चमी) । अधरा दिग् रमणीया-अधराद् रमणीया (प्रथमा) । **(दक्षिणः)** दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणाद् आगतः (सप्तमी) । दक्षिणस्या दिश आगतः-दक्षिणाद् आगतः (पञ्चमी) । दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणाद् रमणीया (प्रथमा) ।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (उत्तराधरदक्षिणात्) उत्तर, अधर, दक्षिण प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (आतिः) आति प्रत्यय होता है। उदाहरण-*

*दिक्-**(उत्तर)** उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरात् रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा से आया-उत्तरात् आया (पञ्चमी) उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरात् रमणीया (प्रथमा)। **(अधर)** अधर दिशा में रहता है-अधरात् रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधरात् आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधरात् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिण)** दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणात् रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा से आया-दक्षिणात् आया (पञ्चमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणात् रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात् शब्द के सहाय से शेष उदाहारणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-उत्तरात्। *उत्तर+ङि+ङसि+सु+आति। उत्तर्+आत्। उत्तरात्+सु। उत्तरात्+०। उत्तरात्।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'उत्तर' शब्द से स्वार्थ में 'आति' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अधरात्, दक्षिणात्।***

एनप्-विकल्पः-

(६) एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः।३५।

प०वि०-एनप् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, अदूरे ७।१ अपञ्चम्याः ५।१।

स०-न दूरम्-अदूरम्, तस्मिन्-अदूरे (नञ्तत्पुरुषः)। न पञ्चमी-अपञ्चमी, तस्या अपञ्चम्याः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, उत्तराधरदक्षिणाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चमीभ्यः सप्तमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्योऽन्यतरस्याम् एनप्, अदूरे।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः पञ्चमीवर्जितेभ्यः सप्तमी-प्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे

विकल्पेन एनप् प्रत्ययो भवति, अदूरेऽभिधेये। पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति। **उदाहरणम्-**

दिक् (उत्तरः)-उत्तरस्यां दिशि वसति-उत्तरेण वसति (एनप्)। उत्तराद् वसति (आतिः)। उत्तरतो वसति (अतसुच्) (सप्तमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तरेण रमणीया। उत्तराद् रमणीया। उत्तरतो रमणीया। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधरेण वसति। अधराद् वसति। अधस्ताद् वसति (अस्तातिः) (सप्तमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधरेण रमणीया। अधस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिणः)** दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणेन वसति। दक्षिणाद् वसति। दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणेन रमणीया। दक्षिणाद् रमणीया। दक्षिणतो रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशकालयोरपि पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी-अन्त से रहित सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (उत्तराधरदक्षिणात्) उत्तर, अधर, दक्षिण प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एनप्) एनप् प्रत्यय होता है (अदूरे) यदि वहां अदूर=समीप अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं। उदाहरण-*

*दिक्-**(उत्तर)** उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरेण रहता है (एनप्)। उत्तरात् रहता है (आति)। उत्तरतः रहता है (अतसुच्) (सप्तमी)। उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरेण रमणीया। उत्तरात् रमणीया। उत्तरतः रमणीया (प्रथमा)। **(अधर)** अधर दिशा में रहता है-अधरेण रहता है। अधरात् रहता है। अधरस्तात् रहता है (अस्ताति) (सप्तमी)। अधर दिशा रमणीया-अधरेण रमणीया। अधरात् रमणीया। अधस्तात् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिण)** दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणेन रहता है। दक्षिणात् रहता है। दक्षिणतः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणेन रमणीया। दक्षिणात् रमणीया। दक्षिणतः रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

***सिद्धि-(१) उत्तरेण।** उत्तर+ङि+ङसि+सु+एनप्। उत्तर्+एन। उत्तरेण+सु। उत्तरेण+०। उत्तरेण।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'उत्तर' शब्द से अदूर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'एनप्' प्रत्यय है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अधरेण, दक्षिणेन।***

*(२) **उत्तरात्।** यहां पूर्वोक्त 'उत्तर' शब्द से विकल्प पक्ष में '**उत्तराधरदक्षिणादातिः**' (५।३।३४) से 'आति' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अधरात्, दक्षिणात्।***

*(३) उत्तरतः। यहां पूर्वोक्त 'उत्तर' शब्द से विकल्प पक्ष में '**दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्**' (५।३।२८) से 'अतसुच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दक्षिणतः।***

*(४) **अधस्तात्।** यहां पूर्वोक्त 'अधर' शब्द से विकल्प पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय और 'अस्ताति च' (५।३।४०) से 'अधर' को 'अध' आदेश होता है।*

आच्-

(१०) दक्षिणादाच्।३६।

प०वि०-दक्षिणात् ५।१ आच् १।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यान्तात् सप्तमीप्रथमान्ताद् दिक्-शब्दाद् दक्षिणाद् आच्।

अर्थः-दिक्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमी-प्रथमान्तात् दिशावाचिनो दक्षिणशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आच् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

(१) **दिक्-**दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-**दक्षिणे देशे वसति-दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(३) **कालः-**दक्षिणशब्दो काले न सम्भवति, तस्मान्नोदाह्रियते।

आर्यभाषाः अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिण) दक्षिण प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आच्) आच् प्रत्यय होता है। उदाहरण-*

(१) दिक्-दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(३) काल-दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है।

सिद्धि-दक्षिणा। *दक्षिण+ङि+सु+आच्। दक्षिण+आ। दक्षिणा+सु। दक्षिणा+०। दक्षिणा।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से 'आच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'आच्' प्रत्यय में चकार अनुबन्ध **'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते'** (२।३।२९) में विशेषण के लिये है।*

आहिः+आच्–

(११) आहि च दूरे।३७।

प०वि०–आहि १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम् १।१ दूरे ७।१।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्याः, दक्षिणात्, आच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यन्तात् सप्तमीप्रथमान्तात् दिक्शब्दाद् दक्षिणाद् आहिराच् च दूरे।

अर्थः–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमी-प्रथमान्ताद् दिशावाचिनो दक्षिणशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आहिराच् च प्रत्ययो भवति, दूरेऽभिधेये। **उदाहरणम्–**

(१) दिक्–दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणाहि वसति। दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणाहि रमणीया। दक्षिणा रमणीया।

(२) देशः–दक्षिणे देशे वसति-दक्षिणाहि वसति। दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणो देशो रमणीयः-दक्षिणाहि रमणीयः। दक्षिणा रमणीयः।

(३) कालः–दक्षिणशब्दः काले न सम्भवति, तस्मान्नोदाह्रियते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिणात्) दक्षिण प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आहिः) आहि (च) और (आच्) आच् प्रत्यय होते हैं (दूरे) यदि वहां दूर अर्थ अभिधेय हो। **उदाहरण–***

(१) दिक्-दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणाहि रहता है। दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणाहि रमणीया। दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणाहि रहता है। दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणाहि रमणीय। दक्षिणा रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है।

***सिद्धि-(१) दक्षिणाहि।** दक्षिण+ङि+सु+आहि। दक्षिण्+आहि। दक्षिणाहि+सु। दक्षिणाहि+०। दक्षिणाहि।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से स्वार्थ में दूर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'आहि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **दक्षिणा।** यहां पूर्वोक्त 'दक्षिण' शब्द से 'आच्' प्रत्यय है।*

आहिः+आच्-

(१२) उत्तराच्च।३८।

प०वि०-उत्तरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्याः, आच्, आहिः, दूरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यन्तात् सप्तमी-प्रथमान्ताद् दिक्शब्दाद् उत्तराच्चाऽऽहिरांच् च दूरे।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिन उत्तरशब्दात् प्रातिपदिकाच्च स्वार्थे आहिराच् च प्रत्ययो भवति, दूरेऽभिधेये। **उदाहरणम्-**

(१) **दिक्-**उत्तरस्यां दिशि वसति-उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उतराहि-रमणीया। उत्तरा रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-**उत्तरस्मिन् देशे वसति-उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तरो देशो रमणीयः-उतराहि-रमणीयः। उत्तरा रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **काल:**–उत्तरस्मिन् काले वसति–उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तर: कालो रमणीय:–उतराहि–रमणीय:। उत्तरा रमणीय: (प्रथमा)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (अपञ्चम्या:) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्य:) सप्तमी-प्रथमान्त, (दिक्शब्देभ्य:) दिशावाची (उत्तरात्) उत्तर प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (आहि:) आहि और (आच्) आच् प्रत्यय होते हैं (दूरे) यदि वहां दूर अर्थ अभिधेय हो। उदाहरण–*

(१) दिक्–उत्तर दिशा में रहता है–उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा रमणीया–उत्तराहि रमणीया। उत्तरा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश–उत्तर देश में रहता है–उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश रमणीय–उत्तराहि रमणीय। उत्तरा रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल–उत्तर काल में रहता है–उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर काल रमणीय–उत्तराहि रमणीय। उत्तरा रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि–उत्तराहि और उत्तरा पदों की सिद्धि दक्षिणाहि और दक्षिणा पदों के समान है (५।३।३७)।

असि:–

(१३) पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्।३६।

प०वि०–पूर्व–अधर–अवराणाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) असि १।१ (सु-लुक्) पुर्–अध्–अव: १।३ च अव्ययपदम्, एषाम् ६।३।

स०–पूर्वश्च अधरश्च अवरश्च ते पूर्वाधरावरा:, तेषाम्–पूर्वापराधरावराणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। पुर् च अध् च अव् च ते–पुरधव: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–दिक्शब्देभ्य:, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्य:, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते, अपञ्चम्या इति निवृत्तम्।

अन्वय:–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्य: पूर्वाधरावरेभ्योऽसि:, एषां च पुरधव:।

अर्थ:–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्य: सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्य: पूर्वाधरावरेभ्य: प्रातिपदिकेभ्य: स्वार्थेऽसि: प्रत्ययो भवति, एषां च स्थाने यथासंख्यं पुर्–अध्–अव आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्–**

दिक्-(पूर्वः)-पूर्वस्यां दिशि वसति-पुरो वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः-पुर आगतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया-पुरो रमणीया (प्रथमा। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधो वसति (सप्तमी)। अधरस्या दिश आगतः-अध आगतः (पञ्चमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधो रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवो वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अव आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवो रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (पूर्वाधरावराणाम्) पूर्व, अधर, अवर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (असिः) असि प्रत्यय होता है और (एषाम्) पूर्व आदि शब्दों के स्थान में (पुरधवः) यथासंख्य पुर्, अध्, अव् आदेश होते हैं। उदाहरण-*

*दिक् **(पूर्व)** पूर्व दिशा में रहता है-पुरः रहता है (सप्तमी)। पूर्व दिशा से आया-पुरः आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरः रमणीया (प्रथमा)। **(अधर)** अधर दिशा में रहता है-अधः रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधः आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधः रमणीया (प्रथमा)। **(अवर)** अवर दिशा में रहता है-अवः रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवः आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवः रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों को स्वयं ऊहा कर लेवें।

***सिद्धि**-(१) **पुरः।** पूर्व+ङि+ङसि+सु+असि। पुर्+अस्। पुरस्+सु। पुरस्+०। पुररु। पुरर्। पुरः।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पूर्व' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से असि प्रत्यय है और 'पूर्व' को 'पुर्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **अधः।** यहां पूर्ववत् 'अधर' शब्द से इस सूत्र से 'असि' प्रत्यय है और 'अधर' को 'अध्' आदेश होता है।*

*(३) **अवः।** यहां पूर्ववत् 'अवर' शब्द से इस सूत्र से 'असि' प्रत्यय है और 'अवर' को 'अव्' आदेश होता है।*

पुरादय आदेशाः--

(१४) अस्ताति च ।४०।

प०वि०-अस्ताति ७ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, पूर्वाधरावराणाम्, पुराधवः इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्यः पूर्वाधरावरेभ्योऽस्ताति च पुरधवः ।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्योऽस्तातिप्रत्यये परतो यथासंख्यं पुरधव आदेशा भवन्ति । **उदाहरणम्**-

दिक्-(पूर्वः) पूर्वस्यां दिशि वसति-पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः-पुरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया-पुरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधस्ताद् वसति (सप्तमी)। अधरस्या दिश आगतः-अधस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चावद् उदाहार्यम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (पूर्वाधरावराणाम्) पूर्व, अधर, अवर प्रातिपदिकों से (अस्ताति) अस्तात् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (पुरधवः) यथासंख्य पुर्, अध्, अव् आदेश होते हैं। उदाहरण-*

दिक्-(पूर्व) *पूर्व दिशा में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्वदिशा से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।* ***(अधर)*** *अधर दिशा में रहता है-अधस्तात् रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधस्तात् आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधस्तात् रमणीया (प्रथमा)।* ***(अवर)*** *अवर दिशा में रहता है-अवस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवस्तात् रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) पुरस्तात्। पूर्व+ङि/ङसि+सु+अस्तात्। पुर्+अस्तात्। पुरस्तात्+सु। पुरस्तात्+०। पुरस्तात्।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पूर्व' शब्द से इस सूत्र से 'अस्तात्' प्रत्यय के परे होने पर 'पूर्व' शब्द को 'पुर्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) अधस्तात्। यहां 'अधर' शब्द के स्थान में 'अध्' आदेश है।

(३) अवस्तात्। यहां 'अवर' शब्द के स्थान में 'अव्' आदेश है।

अवादेश-विकल्पः-

(१५) विभाषाऽवरस्य।४१।

प०वि०-विभाषा १।१ अवरस्य ६।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अस्ताति, अव्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् अवराद् अस्ताति विभाषा (अव्)।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशवाचिनोऽवरात् प्रतिपदिकाद् अस्तातिप्रत्यये परतो विकल्पेनाव्-आदेशो भवति। **उदाहरणम्-**

दिक्-अवरस्यां दिशि वसति-अवस्ताद् वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवस्ताद् आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवस्ताद् रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(*दिग्देशकालेषु*) *दिग्, देश, काल अर्थों में विद्यमान* (*सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः*) *सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त* (*दिक्शब्देभ्यः*) *दिशावाची* (*अवरस्य*) *अवर प्रातिपदिक से* (*अस्ताति*) *अस्तात् प्रत्यय परे होने पर* (*विभाषा*) *विकल्प से* (*अव्*) *अव् आदेश होता है। उदाहरण-*

दिक्-*अवर दिशा में रहता है-अवस्तात् रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवस्तात् आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवस्तात् रमणीया। अवरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) अवस्तात्। *यहां पूर्वोक्त 'अवर' शब्द से 'अस्तात्' प्रत्यय करने पर 'अवर' के स्थान में 'अव्' आदेश है।*

*(२) **अवरस्तात्।** यहां पूर्वोक्त 'अवर' शब्द से 'अस्तात्' प्रत्यय करने पर विकल्प पक्ष में 'अवर' शब्द के स्थान में 'अव्' नहीं होता है।*

इति स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्।

विधार्थ-अधिकरणविचालविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

धाः–

(१) संख्याया विधार्थे धा।४२।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ विधा-अर्थे ७।१ धा १।१ (सु-लुक्)।

स०-विधाशब्दस्यार्थः-विधार्थः, तस्मिन्-विधार्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)। **विधा**=प्रकारः।

अन्वयः-विधार्थे संख्याया धाः।

अर्थः-विधार्थे=क्रियाप्रकारेऽर्थे वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो धाः प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकया विधया भुङ्क्ते-एकधा भुङ्क्ते। द्वाभ्यां विधाभ्यां गच्छति-द्विधा गच्छति। त्रिधा गच्छति। चतुर्धा गच्छति। पञ्चधा गच्छति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(विधार्थे) क्रिया-प्रकार अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिकों से (धाः) प्रत्यय होता है।*

उदा०-एक प्रकार से खाता-पीता है-एकधा खाता-पीता है। दो प्रकार से जाता है-द्विधा जाता है। तीन प्रकार से जाता है-त्रिधा जाता है। चार प्रकार से जाता है-चतुर्धा जाता है। पांच प्रकार से जाता है-पंचधा जाता है।

सिद्धि-एकधा। *एक+टा+धा। एकधा+सु। एकधा+०। एकधा।*

*यहां 'विधा' अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'एक' शब्द से 'धा' प्रत्यय है। ऐसे ही-**द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा।***

धा:–

(२) अधिकरणविचाले च।४३।

प०वि०-अधिकरण-विचाले ७।१ च अव्ययपदम् १।१।

स०-अधिकरणम्=द्रव्यम्। विचालः=संख्यान्तरापादनम्, एकस्यानेकीकरणम्, अनेकस्य वा एकीकरणम्। अधिकरणस्य विचालः-अधिकरण-विचालः, तस्मिन्-अधिकरणविचाले (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संख्यायाः, धा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणविचाले च संख्याया धाः।

अर्थः-अधिकरणविचाले=द्रव्यस्य संख्यान्तरापादनेऽर्थे च वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे धाः प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकं राशिं पञ्च राशीन् करोति-पञ्चधा करोति। अष्टधा करोति। अनेकं राशि मेकं करोति-अनेकधा करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में (च) भी विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (धाः) धा प्रत्यय होता है।*

उदा०-एक राशि को पांच राशि बनाता है-पञ्चधा बनाता है। एक राशि को आठ राशि बनाता है-अष्टधा बनाता है। अनेक राशि को एक राशि बनाता है-अनेकधा बनता है।

सिद्धि-पञ्चधा। *पञ्च+शस्+धा। पञ्च+धा। पञ्चधा+सु। पञ्चधा+०। पञ्चधा। यहां अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'पञ्च' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अष्टधा, अनेकधा।***

ध्यमुञादेश-विकल्पः–

(३) एकाद् धो ध्यमुञन्यतरस्याम्।४४।

प०वि०-एकात् ५।१ धः ६।१ ध्यमुञ् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्याया एकाद् विधार्थेऽधिकरणविचाले च धोऽन्यतरस्यां ध्यमुञ्।

अर्थ:-संख्यावाचिन एक-शब्दात् परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन **ध्यमुञ्**-आदेशो भवति।

उदा०-अनेकं राशिम् एकं करोति-एकधा करोति (धा)। ऐकध्यं करोति (ध्यमुञ्)। एकया विधया भुङ्क्ते-एकधा भुङ्क्ते (धा)। ऐकध्यं भुङ्क्ते (ध्यमुञ्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संख्यायाः) संख्यावाची (एकात्) एक प्रातिपदिक से परे (विधार्थे) विधा-अर्थ (च) और (अधिकरणविचाले) अधिकरणविचाल अर्थ में विहित धा प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ध्यमुञ्) ध्यमुञ् आदेश होता है।*

उदा०-एक राशि को अनेक राशि बनाता है-एकधा बनाता है (धा)। ऐकध्य बनाता है (ध्यमुञ्)। एक प्रकार से खाता-पीता है-एकधा खाता-पीता है (धा)। ऐकध्य खाता-पीता है (ध्यमुञ्)।

*सिद्धि-(१) **एकधा**। एक+अम्+धा। एक+धा। एकधा+सु। एकधा+०। एकधा।*

यहां विधा अर्थ में तथा अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'एक' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'धा' प्रत्यय को 'ध्यमुञ्' आदेश नहीं है।

*(२) **ऐकध्यम्**। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'ध्यमुञ्' आदेश है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को **आदिवृद्धि** होती है।*

धमुञादेश-विकल्पः-

(४) द्वित्र्योश्च धमुञ्।४५।

प०वि०-द्वि-त्र्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, धमुञ् १।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च तौ द्वित्री, तयोः-**द्वित्र्योः** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च, धः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः=संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां च विधार्थेऽधिकरणविचाले च धो धमुञ्।

अर्थः-संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन **धमुञ्** आदेशो भवति।

उदा०-(द्विः) द्वाभ्यां विधाभ्यां भुङ्क्ते-द्विधा भुङ्क्ते (धाः)। द्वैधं भुङ्क्ते (धमुञ्)। एकं राशिं द्वौ राशी करोति-द्विधा करोति (धाः)। द्वैधं करोति (धमुञ्)। **(त्रिः)** तिसृभिर्विधाभिर्भुङ्क्ते-त्रिधा भुङ्क्ते (धाः)। त्रैधं भुङ्क्ते (धमुञ्)। एकं राशिं त्रीन् राशीन् करोति-त्रिधा करोति (धाः)। त्रैधं करोति (धमुञ्)।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्र्योः) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (च) भी परे (विधार्थे) विधा-अर्थ में (च) और (अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में विहित (धः) धा प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (धमुञ्) धमुञ् आदेश होता है।*

*उदा०-**(द्वि)** दो प्रकार से खाता-पीता है-द्विधा खाता-पीता है (धा)। द्वैध खाता-पीता है (धमुञ्)। एक राशि को दो राशि बनाता है-द्विधा बनाता है (धा)। द्वैध बनाता है (धमुञ्)। **(त्रि)** तीन प्रकार से खाता-पीता है-त्रिधा खाता-पीता है (धा)। त्रैध खाता-पीता है (धमुञ्)। एक राशि को तीन राशि बनाता है-त्रिधा बनाता है (धा)। त्रैध बनाता है (धमुञ्)।*

सिद्धि-(१) द्विधा। *यहां विधा-अर्थ में तथा अधिकरणविचाल अर्थ में 'द्वि' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय को 'धमुञ्' आदेश नहीं है। ऐसे ही-**त्रिधा।***

(२) द्वैधम्। *द्वि+औ+धा। द्वि+धमुञ्। द्वै+धम्। द्वैधम्+सु। द्वैधम्+०। द्वैधम्।*

*यहां विधा-अर्थ तथा अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान 'द्वि' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'धमुञ्' आदेश है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रैधम्।***

एधाच्-आदेशः-

(५) एधाच् च।४६।

प०वि०-एधाच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च, धः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः=संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां विधार्थेऽधिकरणविचाले च धोऽन्यतरस्याम् एधाच् च।

अर्थः-संख्यवाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन **एधाच्** आदेशो **भवति।**

उदा०-(**द्विः**) द्वाभ्यां विधाभ्यां भुङ्क्ते-द्विधा भुङ्क्ते (धा)। द्वेधा भुङ्क्ते (एधाच्)। एकं राशिं द्वौ राशी करोति-द्विधा करोति (धा)। द्वेधा करोति (एधाच्)। (**त्रिः**) तिसृभिर्विधाभिर्भुङ्क्ते-त्रिधा भुङ्क्ते (धा)। त्रेधा भुङ्क्ते (एधाच्)। एकं राशिं त्रीन् राशीन् करोति-त्रिधा करोति (धा)। त्रेधा करोति (एधाच्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्र्योः) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (विधार्थे) विधा-अर्थ में (च) और (अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में विहित (धः) धा-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एधाच्) एधाच् आदेश (च) भी होता है।*

उदा०-(द्वि) दो प्रकार से खाता-पीता है-द्विधा खाता-पीता है (धा)। द्वेधा खाता-पीता है (एधाच्)। एक राशि को दो राशि बनाता है-द्विधा बनाता है (धा)। द्वेधा बनाता है (एधाच्)। (त्रि) तीन प्रकार से खाता-पीता है-त्रिधा खाता-पीता है (धा)। त्रेधा खाता-पीता है (एधाच्)। एक राशि को तीन राशि बनाता है-त्रिधा बनाता है (धा)। त्रेधा बनाता है (एधाच्)। प्रयोग-

द्वेधा वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः।।

सिद्धि-(१) द्विधा। पूर्ववत्।

(२) द्वेधा। द्वि+औ+धा। द्वि+एधाच्। द्व+एधा। द्वेधा+सु। द्वेधा+०। द्वेधा।

*यहां विधा-अर्थ तथा अधिकरण-विचाल अर्थ में विद्यमान 'द्वि' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'एधाच्' आदेश है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

याप्यविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

पाशप्-

(१) याप्ये पाशप्।४७।

प०वि०-याप्ये ७।१ पाशप् १।१।

अन्वयः-याप्ये प्रातिपदिकात् पाशप्।

अर्थः-याप्ये=कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे पाशप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-याप्यः=कुत्सितो वैयाकरणः-वैयाकरणपाशः। याप्यो याज्ञिकः= याज्ञिकपाशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(याप्ये) कुत्सित=निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (पाशप्) पाशप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-याप्य=कुत्सित (निन्दित) वैयाकरण-वैयाकरणपाश। याप्य=निन्दित याज्ञिक-याज्ञिकपाश।

सिद्धि-वैयाकरणपाशः। *वैयाकरण+सु+पाशप्। वैयाकरण+पाश। वैयाकरणपाश+सु। वैयाकरणपाशः।*

*यहां याप्य अर्थ में विद्यमान वैयाकरण शब्द से स्वार्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**याज्ञिकपाशः।***

भागविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

अन्–

(१) पूरणाद् भागे तीयादन्।४८।

प०वि०-पूरणात् ५।१ भागे ७।१ तीयात् ५।१ अन् १।१।

अन्वयः-भागे पूरणात् तीयाद् अन्।

अर्थः-भागेऽर्थे वर्तमानात् पूरणार्थात् तीय-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वितीयो भागः-द्वितीयः। तृतीयो भागः-तृतीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक तीयात् तीय-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्) अन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-द्वितीय (दूसरा) भाग-द्वितीय। तृतीय (तीसरा) भाग-तृतीय।

सिद्धि-द्वितीयः। *द्वितीय+सु+अन्। द्वितीय्+अ। द्वितीय+सु। द्वितीयः।*

*यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, तीय-प्रत्ययान्त 'द्वितीय' शब्द से स्वार्थ में 'अन्' प्रत्यय है। 'अन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**द्वितीयः।** ऐसे ही-**तृतीयः।***

अन्–

(२) प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि।४९।

प०वि०-प्राक् १।१ एकादशभ्यः ५।३ अच्छन्दसि ७।१।

स०-न छन्दः-अच्छन्दः, तस्मिन्-अच्छन्दसि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूरणात्, भागे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्छन्दसि भागे पूरणेभ्यः प्राग् एकादशभ्यः स्वार्थेऽन्।

अर्थः-अच्छन्दसि विषये भागेऽर्थे वर्तमानेभ्यः पूरणार्थेभ्यः प्राग् एकादशभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चमो भागः-पञ्चमः। सप्तमः। नवमः। दशमः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अच्छन्दसि) छन्द विषय को छोड़कर (भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (प्राग्-एकादशभ्यः) एकादश से पहले-पहले संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्) अन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पांचवां भाग-पञ्चम। सातवां भाग-सप्तम। नववां भाग-नवम। दशवां भाग-दशम।

***सिद्धि-पञ्चमः।** पञ्चम+सु+अन्। पञ्चम्+अ। पञ्चम+सु। पञ्चमः।*

*यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, एकादश संख्या से पूर्ववर्ती 'पञ्चम' शब्द से स्वार्थ में तथा अच्छन्द विषय में इस सूत्र से 'अन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पञ्चमः।** ऐसे ही-**सप्तमः। नवमः। दशमः।***

ञः+अन्-

(३) षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च।५०।

प०वि०-षष्ठ-अष्टमाभ्याम् ५।२ ञ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-षष्ठश्च अष्टमश्च तौ षष्ठाष्टमौ, ताभ्याम्-षष्ठाष्टमाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूरणात्, भागे, अन्, अच्छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्छन्दसि भागे पूरणाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां ञोऽन् च।

अर्थः-अच्छन्दसि विषये भागेऽर्थे वर्तमानाभ्यां पूरणार्थाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे ञोऽन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(षष्ठः) षष्ठो भागः-षाष्ठः (ञः)। षष्ठः (अन्)। **(अष्टमः)** अष्टमो भागः-आष्टमः (ञः)। अष्टमः (अन्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अच्छन्दसि) छन्द विषय को छोड़कर (भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (षष्ठाष्टमाभ्याम्) षष्ठ, अष्टम प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञः) ञ (च) और (अन्) अन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(षष्ठ) छठा भाग-षाष्ठ (ञ)। षष्ठ (अन्)। (अष्टम) आठवां भाग-आष्टम (ञ)। अष्टम (अन्)।

सिद्धि-षाष्ठः। षष्ठी+सु+ञ। षाष्ठ्+अ। षाष्ठ+सु। षाष्ठः।

यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक 'षष्ठ' शब्द से स्वार्थ में तथा अच्छन्द विषय में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-आष्टमः।

(२) षष्ठः। यहां पर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से पूर्ववत् 'अन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-षष्ठः। ऐसे ही-अष्टमः।

कन्+लुक्+अन्+ञः--

(४) मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च।५१।

प०वि०-मान-पश्वङ्गयोः ७।२ कन्-लुकौ १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पशोरङ्गम्-पश्वङ्गम्, मानं च पश्वङ्गं च ते मानपश्वङ्गे, तयोः-मानपश्वङ्गयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कन् च लुक् च तौ कन्लुकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूरणात्, भागे, अन्, षष्ठाष्टमाभ्याम्, ञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भागे पूरणाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां कन्लुकावन् ञश्च।

अर्थः-भागेऽर्थे वर्तमानाभ्यां पूरणार्थाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं कन्लुकौ भवतो यथाप्राप्तं-चान्ञौ प्रत्ययौ भवतः, तयोरेव च लुग् भवति, यथासंख्यं मानपश्वङ्गयोरभिधेययोः।

उदा०-**(षष्ठः)** षष्ठो भागः-षष्ठकं मानम् (कन्)। षष्ठं मानम् (अन्)। षाष्ठं मानम् (ञः)। **(अष्टमः)** अष्टमो भागः-अष्टमं पश्वङ्गम् (लुक्)। अष्टमं पश्वङ्गम् (अन्)। आष्टमं पश्वङ्गम् (ञः)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (षष्ठीष्टमाभ्याम्) षष्ठ, अष्ट प्रतिपदिकों से स्वार्थ में (कन्लुकौ) यथासंख्य कन् प्रत्यय और प्रत्यय का लुक् होता है (च) और यथाप्राप्त (अन्) अन् तथा (ञः) ञ प्रत्यय होते हैं और उन्हीं का लुक् होता है (मानपश्वङ्गयोः) यदि वहां यथासंख्य मान और पशु अङ्ग अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(षष्ठ) छठा भाग-षष्ठक मान (कन्)। षष्ठमान (अन्)। षाष्ठ मान (ञ)। (अष्टम) आठवां भाग-अष्टम पशु-अङ्ग (अन्-ञ लुक्)। अष्टम पशु-अङ्ग (अन्) आष्टम पशु-अङ्ग (ञ)।

सिद्धि-(१) षष्ठकम्। षष्ठ+सु+कन्। षष्ठ+क। षष्ठक+सु। षष्ठकम्।

यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, 'षष्ठ' शब्द से मान अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

(२) षष्ठम्। यहां पूर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' (५।३।५०) से यथाप्राप्त 'अन्' प्रत्यय है। ऐसे ही पशु-अङ्ग अभिधेय में-अष्टमम्।

(३) षाष्ठम्। यहां पूर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से पूर्ववत् 'ञ' प्रत्यय है। ऐसे ही पशु-अङ्ग अभिधेय में-अष्टमम्।

(४) अष्टमम्। यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक 'अष्टम' शब्द से पशु-अङ्ग अभिधेय में 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' (५।३।५०) से प्राप्त ञ और अन् प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।

असहायविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

आकिनिच्+कन्+लुक्–

(१) एकादाकिनिच्चासहाये।५२।

प०वि०-एकात् ५।१ आकिनिच् १।१ च अव्ययपदम्, असहाये ७।१।

स०-न सहायः-असहायः, तस्मिन्-असहाये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन्लुकौ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असहाये एकाद् आकिनिच् कन्लुकौ।

अर्थः-असहायेऽर्थे वर्तमानाद् एक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आकिनिच् कन् च प्रत्ययो भवति, तयोश्च लुग् भवति।

उदा०-एकः=असहाय एव-एकाकी (आकिनिच्)। एककः (कन्)। एकः (लुक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(असहाये) असहाय अर्थ में विद्यमान (एकात्) एक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आकिनिच्) आकिनिच् (च) और (कन्लुकौ) कन् प्रत्यय होते हैं और उनका लुक् भी होता है।*

उदा०-एक=असहाय ही-एकाकी (आकिनिच्)। एकक (कन्)। एक (आकिनिच् कन् का लुक्) अकेला।

*सिद्धि-**एकाकी**। एक+सु+आकिनिच्। एक्+आकिन्। एकाकिन्+सु। एकाकीन्+सु। एकाकीन्+०। एकाकी०। एकाकी।*

*यहां असहाय अर्थ में विद्यमान 'एक' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'आकिनिच्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। '**सौ च**' (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(२) **एककः**। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।*

*(३) **एकः**। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से इस सूत्र से आकिनिच् और कन् प्रत्यय का लुक् है।*

भूतपूर्वार्थप्रत्ययविधिः

चरट्–

(१) भूतपूर्वे चरट्।५३।

प०वि०–भूतपूर्वे ७।१ चरट् १।१।

स०–पूर्वं भूत इति–भूतपूर्वः ('सुप् सुपा' इति केवलसमासः)। भूतपूर्वशब्दोऽतीतकालवचनः।

अन्वयः–भूतपूर्वे प्रातिपदिकाच्चरट्।

अर्थः–भूतपूर्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे चरट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–आढ्यो भूतपूर्वः–आढ्यचरः। स्त्री चेत्–आढ्यचरी। सुकुमारो भूतपूर्वः–सुकुमारचरः। स्त्री चेत्–सुकुमारचरी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भूतपूर्वे) अतीत-काल अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (चरट्) चरट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-आढ्य=धनवान् भूतपूर्व-आढ्यचर। यदि स्त्री है तो-आढ्यचरी। सुकुमार=कोमलशील भूतपूर्व-सुकुमारचर। यदि स्त्री है तो-सुकुमारचरी।

*सिद्धि-**आढ्यचरः**। आढ्य+सु+चरट्। आढ्य+चर। आढ्यचर+सु। आढ्यचरः।*

*यहां भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'चरट्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-आढ्यचरी। ऐसे ही-**सुकुमारचरः, सुकुमारचरी**।*

रूप्यः+चरट्–

(२) षष्ठ्या रूप्य च।५४।

प०वि०-षष्ठ्याः ५।१ रूप्य १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-भूतपूर्वे, चरट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठ्याः प्रातिपदिकाद् भूतपूर्वे रूप्यश्चरट् च।

अर्थः-षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकाद् भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यश्चरट् च प्रत्ययो भवति। अत्र भूतपूर्वपदं प्रत्ययार्थविशेषणं न तु प्रकृत्यर्थविशेषणम्।

उदा०-देवदत्तस्य भूतपूर्वो गौः-देवदत्तरूप्यः (रूप्यः)। देवदत्तचरः (चरट्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(षष्ठ्याः) षष्ठी-अन्त प्रातिपदिक से (भूतपूर्वे) भूतपूर्व अर्थ में (रूप्यः) रूप्य (च) और (चरट्) चरट् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-देवदत्त का भूतपूर्व गौः=बैल-देवदत्तरूप्य (रूप्य)। देवदत्तचर (चरट्)।

***सिद्धि-(१) देवदत्तरूप्यः ।** देवदत्त+ङस्+रूप्य। देवदत्तरूप्य+सु। देवदत्तरूप्यः। यहां षष्ठ्यन्त 'देवदत्त' शब्द से भूतपूर्व अर्थ में इस सूत्र से 'रूप्य' प्रत्यय है।*

***(२) देवदत्तचरः ।** यहां षष्ठ्यन्त 'देवदत्त' शब्द से भूतपूर्व अर्थ में इस सूत्र से 'चरट्' प्रत्यय है।*

अतिशायनविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

तमप्-इष्ठन्–

(१) अतिशायने तमबिष्ठनौ।५५।

प०वि०-अतिशायने ७।१ तमप्-इष्ठनौ १।२।

स०-तमप् च इष्ठन् च तौ तमबिष्ठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अतिशायने प्रातिपदिकात् तमबिष्ठनौ।

अर्थः-अतिशायने=प्रकर्षेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तमबिष्ठनौ प्रत्ययौ भवतः। अतिशयनमेव-अतिशायनम्, अत्र निपातनाद्दीर्घत्वम्, प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत्।

उदा०-सर्वे इमे आढ्याः, अयमेषामतिशयेनाऽऽढ्यः-आढ्यतमः। दर्शनीयतमः। सुकुमारतमः (तमप्)। सर्वे इमे पटवः, अयमेषामतिशयेन पटुः-पटिष्ठः। लघिष्ठः। गरिष्ठः (इष्ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतिशायने) प्रकर्ष=आधिक्य अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तमबिष्ठनौ) तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ये सब आढ्य (धनवान्) हैं-यह इनमें अतिशय=प्रकृष्टता से आढ्य है-आढ्यतम है। ये सब दर्शनीय (सुन्दर) हैं-यह इनमें अतिशय से दर्शनीय है-दर्शनीयतम है। ये सब सुकुमार=कोमलशील हैं-यह इनमें अतिशय से सुकुमार है-सुकुमारतम है (तमप्)। ये सब पटु=चतुर हैं-यह इनमें अतिशय से पटु है-पटिष्ठ है। ये सब लघु=छोटे हैं-यह इनमें अतिशय से लघु है-लघिष्ठ है। ये सब गुरु=बड़े हैं-यह इनमें अतिशय से गुरु है-गरिष्ठ है।

सिद्धि-(१) आढ्यतमः। *आढ्य+सु+तमप्। आढ्य+तम। आढ्यतम+सु। आढ्यतमः।*

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से स्वार्थ में 'तमप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दर्शनीयतमः, सुकुमारतमः।***

*(२) **पटिष्ठः।** पटु+सु+इष्ठन्। पट्+इष्ठ। पटिष्ठ+सु। पटिष्ठः।*

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'पटु' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'इष्ठन्' प्रत्यय है। यहां '**तुरिष्ठेमेयस्सु**' (६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५५) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप होता है। ऐसे ही-लघिष्ठः।*

*(३) **गरिष्ठः।** यहां 'गुरु' शब्द से पूर्ववत् 'इष्ठन्' प्रत्यय है। '**प्रियस्थिर०**' (६।४।१५७) से 'गुरु' के स्थान में 'गर्' आदेश होता है।*

विशेषः *जब प्रकर्षवानों का पुनः प्रकर्ष विवक्षित होता है तब आतिशायिकान्त प्रातिपदिक से पुनः आतिशायिक प्रत्यय होता है जैसे देवो वः **सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे** (यजु० १।१)। **युधिष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरूणाम्।***

तमप्--

(२) तिङश्च।५६।

प०वि०-तिङः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अतिशायने इत्यनुवर्तते। 'तमबिष्ठनौ' इत्येतस्मात् पदाच्च 'तमप्' इत्यनुवर्तनीयं न इष्ठन्, सम्बन्धासम्भवात्। '**एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति**' (पारिभाषिक १८ अष्टा० ४।१।२७)।

अन्वयः-अतिशायने तिङश्च मतुप्।

अर्थः-अतिशायनेऽर्थे वर्तमानात् तिङन्ताच्च स्वार्थे तमप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सर्वे इमे पचन्ति-अयमेषामतिशयेन पचति-पचतितमाम्। पठतितमाम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अतिशायने) प्रकर्ष अर्थ में विद्यमान (तिङ:) तिङन्त शब्द से (च) भी स्वार्थ में (तमप्) तमप् प्रत्यय होता है। यहां 'तमबिष्ठनौ' पद में से 'तमप्' की ही अनुवृत्ति की जाती है, इष्ठन् की नहीं क्योंकि 'अजादी गुणवचनादेव' (५।३।५८) से इष्ठन् प्रत्यय गुणवाची शब्द से ही होता है, तिङन्त पद गुणवाची नहीं है।*

उदा०-ये सब पकाते हैं-यह इनमें अतिशय से पकाता है-पचतितमाम्। ये सब पढ़ते हैं-यह इनमें अतिशय से पढ़ता है-पठतितमाम्।

*सिद्धि-**पचतितमाम्।** पचति+तमप्। पचति+तम। पचतितम+आमु। पचतितम+आम्। पचतितमाम्+सु। पचतितमाम्।*

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान तिङन्त 'पचति' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तमप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात्- **'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे'** (५।४।११) से 'आमु' प्रत्यय होता है। 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-**पठतितमाम्।***

तरप्-ईयसुन्–

(३) द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ।५७।

प०वि०-द्विवचन-विभज्योपपदे ७।१ तरप्-ईयसुनौ १।१।

स०-द्वयोर्वचनम्-द्विवचनम्, विभक्तुं योग्यम्-विभज्यम्। द्विवचनं च विभज्यं च एतयोः समाहारो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तद् उपपदम्-द्विवचनविभज्योपपदम्, तस्मिन्-द्विवचनविभज्योपपदे (षष्ठीतत्पुरुष-समाहारद्वन्द्वगर्भितकर्मधारयः)।

अनु०-अतिशायने, तिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विवचनविभज्योपपदेऽतिशायने प्रातिपदिकात् तिङश्च तरबीयसुनौ।

अर्थः-द्विवचने विभज्ये चोपपदेऽतिशायने चार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे तरबीयसुनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(द्विवचने प्रातिपदिकात्) द्वाविमावाढ्यौ-अयमनयोरतिशयेनाऽऽढ्यः-आढ्यतरः। सुकुमारतरः (तरप्)। (द्विवचने तिङन्तात्) द्वाविमौ पचतः-अयमनयोरतिशयेन पचति- पचतितराम्। पठतितराम्

(तरप्)। (द्विवचने प्रातिपदिकात्) द्वाविमौ पटू-अयमनयोरतिशयेन पटुः-पटीयान्। लघीयान् (ईयसुन्)। (द्विवचने तिङन्तात्) अत्र ईयसुन् प्रत्ययो न सम्भवति, गुणवचनाभावात्। (विभज्योपपदे) माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः। दर्शनीयतराः (तरप्)। पटीयांसः। लघीयांसः (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विवचनविभज्योपपदे) द्विवचन और विभज्य शब्द उपपद होने पर (अतिशायने) प्रकर्ष अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से तथा (तिङः) तिङन्त शब्द से भी (तरबीयसुनौ) तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(द्विवचन प्रातिपदिक) ये दोनों आढ्य (धनवान्) हैं-यह इन दोनों में अतिशय से आढ्य है-आढ्यतर है। ये दोनों सुकुमार हैं-यह इन दोनों में अतिशय से सुकुमार है-सुकुमारतर है। (द्विवचन तिङन्त)। ये दोनों पकाते हैं-इन दोनों में यह अतिशय से पकाता है-पचतितराम्। ये दोनों पढ़ते है-यह दोनों में अतिशय से पढ़ता है-पठतितराम् (तरप्)। (द्विवचन प्रातिपदिक) ये दोनों पटु=चतुर हैं-यह इन दोनों में अतिशय पटु है-पटीयान् है। ये दोनों लघु=छोटे हैं-इन दोनों में यह अतिशय से लघु है-लघीयान् है (ईयसुन्)। (द्विवचन तिङन्त) यहां 'ईसुन्' प्रत्यय सम्भव नहीं है ***क्योंकि*** *तिङन्त पद गुणवाची नहीं होते हैं। (विभज्य-उपपद) मथुरा के लोग पटना के लोगों* ***से*** *'आढ्यतर' हैं। दर्शनीयतर हैं (तरप्)। पटीयान् हैं। लघीयान् हैं (ईयसुन्)।*

सिद्धि-(१) आढ्यतरः। *यहां द्विवचन उपपद होने पर अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तरप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सुकुमारतरः।***

(२) पचतितराम्। *यहां द्विवचन उपपद होने पर अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तरप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात्* ***'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे'*** *(५।४।११) से 'आमु' प्रत्यय होता है।*

(३) पटीयान्। *पट+सु+ईयसुन्। पट्+ईयस्। पटीयस्+सु। पटीयनुम्स्+सु। पटीयन्स्+सु। पटीयान्स्+०। पटीयान्०। पटीयान्।*

यहां द्विवचन उपपद होने पर, अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'पटु' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। यहां ***'तुरिष्ठेमेयस्सु'*** *(६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५६) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप होता है। 'ईयसुन्' प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, 'सान्तमहतः संयोगस्य' (६।४।१०) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**लघीयान्।***

इष्ठन्+ईयसुन्–

(४) अजादी गुणवचनादेव।५८।

प०वि०–अजादी १।२ गुणवचनात् ५।१ एव अव्ययपदम्।

स०–अच् आदिर्ययोस्तौ–अजादी (बहुव्रीहिः) इष्ठन्–ईयसुनावित्यर्थः।

अन्वयः–अजादी गुणवचनात् प्रातिपदिकाद् एव।

अर्थः–अजादी=इष्ठन्–ईयसुनौ प्रत्ययौ गुणवचनात् प्रातिपदिकादेव भवतः, नान्यस्मात्।

उदा०–सर्वे इमे पटवः–अयमेषामतिशयेन पटुः–पटिष्ठः। लघिष्ठः। गरिष्ठः (इष्ठन्)। द्वाविमौ पटू–अयमनयोरतिशयेन पटुः–पटीयान्। लघीयान्। गरीयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजादी) अच् जिनके आदि में है वे इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय (गुणवचनात्) गुणवाची प्रातिपदिक से (एव) ही होते हैं, अन्य द्रव्य, जाति तथा क्रियावाची से नहीं होते हैं।*

उदा०-ये सब पटु हैं-यह इनमें अतिशय से पटु है-पटिष्ठ है। ये सब लघु हैं-यह इन सबमें लघु है-लघिष्ठ है। ये सब गुरु हैं-यह इन सब में गुरु है-गरिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों पटु=चतुर हैं-यह इन दोनों में पटु है-पटीयान् है। ये दोनों लघु हैं-यह इन दोनों में लघु है-लघीयान् है। ये दोनों गुरु हैं-यह इन दोनों में गुरु है-गरीयान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि-'पटिष्ठ' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

इष्ठन्+ईयसुन्–

(५) तुश्छन्दसि।५९।

प०वि०–तुः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुः=तृ–अन्ताद् अजादी=इष्ठन्–ईयसुनौ।

अर्थः–छन्दसि विषये तुः=तृ–अन्तात् प्रातिपदिकादपि अजादी=इष्ठन्–ईयसुनौ प्रत्ययौ भवतः। 'तुः' इत्यनेन तृन्–तृचोः सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-सर्वे इमे कर्तारः, अयमेषामतिशयेन कर्ता-करिष्ठः (तृन्)। **'आसुतिं करिष्ठः'** (ऋ० ७।९७।७)। द्वे इमे द्रोग्ध्र्यौ, इयमनयोरतिशयेन द्रोग्ध्री-दोहीयसी। दोहीयसी धेनुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (तुः) तृ-अन्त प्रातिपदिक से भी (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ये सब कर्ता हैं, यह इनमें अतिशय कर्ता है-करिष्ठ है (तृन्)। ***आसुतिं करिष्ठः'*** *(ऋ० ७।९७।७) ये दोनों द्रोग्धी=दुधारू गौवें हैं, इन दोनों में यह अतिशय दोग्ध्री गौ है-दोहीयसी है। दोहीयसी धेनुः।*

सिद्धि-(१) ***करिष्ठः।*** *कर्तृ+सु+इष्ठन्। कर्+इष्ठ। करिष्ठ+सु। करिष्ठः।*

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तृन्-अन्त 'कर्तृ' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय है। ***'तुरिष्ठेमेयस्सु'*** *(६।४।१५४) से 'कर्तृ' के 'तृ' भाग का लोप होता है।*

(२) ***दोहीयसी।*** *दोग्ध्री+सु+ईयसु। दोह्+ईयस्। दोहीयस्+ङीप्। दोहीयसी+सु। दोहीयसी।*

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तृच्-अन्त 'दोग्ध्री' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय है। वा० ***'भस्याढे तद्धिते'*** *(६।३।३५) से पुंवद्भाव करने पर* ***'तुरिष्ठेमेयस्सु'*** *(६।४।१५४) से 'तृच्' के 'तृ' का लोप हो जाता है। 'तृ' शब्द के लोप हो जाने पर निमित्त के अभाव से नैमित्तिक घत्व आदि भी निवृत्त हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'उगितश्च'*** *(४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

श्र-आदेशः-

(६) प्रशस्यस्य श्रः।६०।

प०वि०-प्रशस्यस्य ६।१ श्रः १।१।

अनु०-अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रशस्यस्य श्रोऽजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-प्रशस्यशब्दस्य स्थाने श्र आदेशो भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः-श्रेष्ठः। उभाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः-श्रेयान्। अयमस्मात् श्रेयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रशस्यस्य) प्रशस्य शब्द के स्थान में (श्रः) श्र आदेश होता है (अजादी) अजादि=इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-ये सब प्रशस्य=प्रशंसनीय हैं, यह इनमें अतिशय प्रशस्य है-श्रेष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों प्रशस्य हैं, यह इन दोनों में अतिशय प्रशस्य है-श्रेयान् है।

सिद्धि-(१) श्रेष्ठः। प्रशस्य+सु+इष्ठन्। श्र+इष्ठ। श्रेष्ठ+सु। श्रेष्ठः।

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से 'प्रशस्य' के स्थान में 'श्र' आदेश होता है। 'श्र' शब्द के एकाच् होने से ***'प्रकृत्यैकाच्'*** *(६।४।१६३) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात्* ***'तुरिष्ठेमेयस्सु'*** *(६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अ) का तथा* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से प्राप्त अंग के अकार का लोप नहीं होता है। अतः* ***'आद्गुणः'*** *(६।१।८६) से गुणरूप एकादेश होता है।*

(२) ***श्रेयान्।*** *यहां पूर्वोक्त 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय करने पर 'प्रशस्य' के स्थान में 'श्र' आदेश होता है। प्रकृतिभाव आदि कार्य पूर्ववत् है। शेष कार्य* ***'पटीयान्'*** *(५।३।५७) के समान है।*

ज्य-आदेशः-

(७) ज्य च।६१।

प०वि०-ज्य १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-अजादी, प्रशस्यस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रशस्यस्य ज्योऽजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-प्रशस्यशब्दस्य स्थाने ज्य आदेशश्च भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः-ज्येष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः-ज्यायान् (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रशस्यस्य) प्रशस्य शब्द के स्थान में (ज्यः) ज्य आदेश (च) भी होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-ये सब प्रशस्य=प्रशंसनीय हैं, यह इनमें अतिशय से प्रशस्य है-ज्येष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों प्रशस्य हैं, यह इन दोनों में अतिशय से प्रशस्य है-ज्यायान् है (ईयसुन्)।

*सिद्धि-(१) **ज्येष्ठः** । प्रशस्य+सु+इष्ठन् । ज्य+इष्ठ । ज्येष्ठ+सु । ज्येष्ठः ।*

*यहां 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'ज्य' आदेश होता है। शेष कार्य **'श्रेष्ठः'** (५ ।३ ।६०) के समान है।*

*(२) **ज्यायान्** । प्रशस्य+सु+ईयसुन् । ज्य+आयस् । ज्यायस्+सु । ज्याय+नुम्+स्+सु । ज्यायान्स्+सु । ज्यायान्स्+० । ज्यायान्० । ज्यायान् ।*

*यहां 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। **'ज्यादादीयसः'** (६ ।४ ।१६०) से 'ज्य' से परे 'ईयसुन्' के ईकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५ ।३ ।५७) के समान है।*

ज्य-आदेशः-

(८) वृद्धस्य च ।६२ ।

प०वि०-वृद्धस्य ६ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-अजादी, ज्य इति चानुवर्तते। वृद्धस्य च ज्य अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः) ।

अर्थः-वृद्धशब्दस्य च स्थाने ज्य आदेशो भवति, अजाद्योः= इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः ।

उदा०-सर्वे इमे वृद्धाः, अयमेषामतिशयेन वृद्धः-ज्येष्ठः (इष्ठन्) । उभाविमौ वृद्धौ, अयमनयोरतिशयेन वृद्धः-ज्यायान् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वृद्धस्य) वृद्ध शब्द के स्थान में (च) भी (ज्यः) ज्य आदेश होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-ये सब वृद्ध हैं, यह इनमें अतिशय से वृद्ध है-ज्येष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों वृद्ध हैं, यह इन दोनों में अतिशय से वृद्ध है-ज्यायान् है (ईयसुन्)।

*सिद्धि-**ज्येष्ठः** । वृद्ध+सु+इष्ठन् । ज्य+इष्ठ । ज्येष्ठ+सु । ज्येष्ठः ।*

यहां 'वृद्ध' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। शेष कार्य 'श्रेष्ठः' (५ ।३ ।६०) के समान है।

*(२) **ज्यायान्** । यहां 'वृद्ध' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। 'ज्यादादीयसः' (६ ।४ ।१६०) से 'ज्य' से परे 'ईयसुन्' के ईकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५ ।३ ।५७) के समान है।*

नेद-साधावादेशौ–

(६) अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ।६३।

प०वि०–अन्तिक–बाढयो: ६।२ नेद–साधौ १।२।

स०–अन्तिकं च बाढं च ते–अन्तिकबाढे, तयो:–अन्तिकबाढयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। नेदश्च साधश्च तौ–नेदसाधौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–अन्तिकबाढयोर्नेदसाधावजाद्यो: (इष्ठन्–ईयसुनो:)।

अर्थ:–अन्तिकबाढयो: शब्दयो: स्थाने यथासंख्यं नेदसाधावादेशौ भवत:, अजाद्यो:=इष्ठन्–ईयसुनो: प्रत्यययो: परत:।

उदा०–**(अन्तिकम्)** सर्वाणीमान्यन्तिकानि, इदमेषामतिशयेनान्तिकम्–नेदिष्ठम् (इष्ठन्)। उभे इमे अन्तिके, इदमनयोरतिशयेनान्तिकम्–नेदीय:। इदमस्माद् नेदीय:। **(बाढम्)** सर्वे इमे बाढमधीयते, अयमेषामतिशयेन बाढमधीते–साधिष्ठमधीते (इष्ठन्)। उभाविमौ बाढमधीयाते, अयमनयोरतिशयेन बाढमधीते–साधीयोऽधीते। अयमस्मात् साधीयोऽधीते (ईयसुन्)।

आर्यभाषा: *अर्थ–(अन्तिकबाढयो:) अन्तिक, बाढ शब्दों के स्थान में (नेदसाधौ) यथासंख्य नेद, साध आदेश होते हैं (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–**(अन्तिक)** ये सब अन्तिक (पास) हैं, यह इनमें अतिशय से अन्तिक है–नेदिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों अन्तिक हैं, यह इन दोनों में अतिशय से अन्तिक है–नेदीय है (ईयसुन्)। **(बाढम्)** ये सब ठीक पढ़ते हैं, यह इनमें अतिशय से ठीक पढ़ता है–साधिष्ठ पढ़ता है (इष्ठन्)। ये दोनों ठीक पढ़ते हैं, यह इन दोनों में अतिशय से ठीक पढ़ता है–साधीय पढ़ता है (ईयसुन्)।*

*सिद्धि–(१) **नेदिष्ठम्।** अन्तिक+सु+इष्ठन्। नेद्+इष्ठ। नेदिष्ठ+सु। नेदिष्ठम्।*

यहां 'अन्तिक' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'नेद' आदेश होता है।

*(२) **नेदीय:।** अन्तिक+सु+ईयसुन्। नेद्+ईयसुन्। नेदीयस्+सु। नेदीयस्+०। नेदीयरु। नेदीयर्। नेदीय:।*

यहां अन्तिक शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'नेद' आदेश होता है। नपुंसकत्व-विवक्षा में 'स्वमोर्नपुंसकात्' (७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है।

*(३) **साधिष्ठम्।** बाढ+सु+इष्ठन्। साध्+इष्ठ। साधिष्ठ+सु। साधिष्ठम्।*

यहां 'बाढ' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'साध' आदेश होता है।

*(४) **साधीयः।** बाढ+सु+ईयसुन्। साध्+ईयस्। साधीयस्+सु। साधीयस्+०। साधीयरु। साधीयर्। साधीयः।*

***यहां 'बाढ' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'साध' आदेश होता है।** नपुंसकत्व-विवक्षा में 'स्वमोर्नपुंसकात्' (७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है।*

कन्-आदेशविकल्पः–

(१०) युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्।६४।

प०वि०–युव-अल्पयोः ६।२ कन् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–युवा च अल्पश्च तौ युवाल्पौ, तयोः–युवाल्पयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–युवाल्पयोरन्यतरस्यां कन्, अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः–युवाल्पयोः शब्दयोः स्थाने विकल्पेन कन् आदेशो भवति, अजाद्योरिष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०–**(युवा)** सर्वे इमे युवानः, अयमेषामतिशयेन युवा-कनिष्ठः, यविष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ युवानौ, अयमनयोरतिशयेन युवा-कनीयान्, यवीयान् (ईयसुन्)। **(अल्प)** सर्वे इमे अल्पाः, अयमेषामतिशयेनाऽल्पः-कनिष्ठः, अल्पिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमावल्पौ, अयमनयोरतिशयेनाऽल्पः-कनीयान्, अल्पीयान् (ईयसुन्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युवाल्पयोः) युवा, अल्प शब्दों के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कन्) कन् आदेश होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् **प्रत्यय परे** होने पर।*

उदा०-(युवा) ये सब युवा (जवान) हैं, यह इनमें अतिशय से युवा है-कनिष्ठ है, यविष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों युवा हैं, यह इन दोनों में अतिशय से युवा है-कनीयान् है, यवीयान् है (ईयसुन्)। (अल्प) ये सब अल्प=तुच्छ हैं, यह इनमें अतिशय अल्प है-कनिष्ठ है, अल्पिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों अल्प=तुच्छ हैं, यह इन दोनों में अतिशय से अल्प है-कनीयान् है।, अल्पीयान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि-(१) कनिष्ठः। युवन्+सु+इष्ठन्। कन्+इष्ठ। कनिष्ठ+सु। कनिष्ठः।

यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'कन्' आदेश है। ऐसे ही अल्प शब्द से भी-कनिष्ठः।

(२) यविष्ठः। यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर विकल्प पक्ष में कन् आदेश नहीं होता है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही अल्प शब्द से-अल्पिष्ठः।

(३) कनीयान्। युवन्+सु+ईयसुन्। कन्+ईयस्। कनीयस्+सु। कनीया+नुम्+स्+सु। कनीयान्+सु। कनीयान्+०। कनीयान्।

यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान पर 'कन्' आदेश होता है। शेष कार्य 'पटीयान्' ५।३।५७) के समान है। ऐसे ही-अल्प शब्द से भी-कनीयान्।

(४) यवीयान्। यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर विकल्प पक्ष में 'कन्' आदेश नहीं होता है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'अल्प' शब्द से-अल्पीयान्।

प्रत्यय-लुक्—

(११) विन्मतोर्लुक्।६५।

प०वि०-विन्-मतोः ६।२ लुक् १।१।

स०-विन् च मत् च तौ विन्मतौ, तयोः-विन्मतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विन्मतोः प्रत्यययोर्लुग् अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-विनो मतुपश्च प्रत्ययस्य लुग् भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-(विन्) सर्वे इमे स्रग्विणः, अयमेषामतिशयेन स्रग्वी-स्रजिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ स्रग्विणौ, अयमनयोरतिशयेन स्रग्वी-स्रजीयान्

(ईयसुन्)। **(मतुप्)** सर्वे इमे त्वग्वन्तः, अयमेषामतिशयेन त्वग्वान्-त्वचिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ त्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन त्वग्वान्-त्वचीयान्। अयमस्मात् त्वचीयान्।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(विन्मतोः) विन् और मतुप् का (लुक्) लुक् होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(विन्)** ये सब स्रग्वी=मालाधारी हैं, यह इन सब में अतिशय से स्रग्वी है-स्रजिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों स्रग्वी=मालाधारी हैं, यह इन दोनों में अधिक स्रग्वी है-स्रजीयान् है (ईयसुन्)। **(मतुप्)** ये सब त्वग्वन्त=उत्तम त्वचावाले हैं, यह इनमें अतिशय से त्वग्वान् है-त्वचिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों त्वग्वन्त=उत्तम त्वचावाले हैं, यह इन दोनों में अतिशय से त्वग्वान् है-त्वचीयान् है (ईयसुन्)।*

सिद्धि-(१) स्रजिष्ठः। *स्रग्विन्+सु+इष्ठन्। स्रज्+इष्ठ। स्रजिष्ठ+सु। स्रजिष्ठः।*

*यहां 'स्रज्' प्रातिपदिक से **'अस्मायामेधास्रजो विनिः'** (५।२।१२१) से 'विनि' प्रत्यय है। विनि-प्रत्ययान्त 'स्रग्विन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'विन्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(२) **स्रजीयान्।** यहां पूर्वोक्त विनि-प्रत्ययान्त 'स्रग्विन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'विन्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५।३।५७) के समान है।*

*(३) **त्वचिष्ठः।** त्वग्वत्+सु+इष्ठन्। त्वच्+इष्ठ। त्वचिष्ठ+सु। त्वचिष्ठः।*

*यहां प्रथम 'त्वच्' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। मतुप्-प्रत्ययान्त 'त्वग्वत्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(४) **त्वचीयान्।** यहां पूर्वोक्त 'मतुप्' प्रत्ययान्त 'त्वग्वत्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५।३।५७) के समान है।*

प्रशंसाविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

रूपप्–

(१) प्रशंसायां रूपप्।६६।

प०वि०-प्रशंसायाम् ७।१ रूपप् १।१।

अनु०-'तिङश्च' (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-प्रशंसायां प्रातिपदिकात् तिङश्च **रूपप्।**

अर्थः-प्रशंसार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च रूपप् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-(**प्रातिपदिकम्**) प्रशस्तो वैयाकरणः-वैयाकरणरूपः । याज्ञिकरूपः । (**तिङन्तम्**) प्रशस्तं पचति-पचतिरूपम् । प्रशस्तं लिखति-लिखतिरूपम् ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (च) और (तिङः) तिङन्त शब्द से (रूपप्) रूपप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रातिपदिक)** प्रशस्त वैयाकरण-वैयाकरणरूप। प्रशस्त याज्ञिक याज्ञिकरूप। **(तिङन्त)** वह प्रशस्त पकाता है-पचतिरूप। वह प्रशस्त लिखता है-लिखतिरूप।*

*सिद्धि-**(१) वैयाकरणरूपः ।** वैयाकरण+सु+रूपप्। वैयाकरण+सु। वैयाकरणरूपः।*

*यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'वैयाकरण' शब्द से इस सूत्र से 'रूपप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**याज्ञिकरूपः ।***

*(२) **पचतिरूपम् ।** यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से इस सूत्र से 'रूपप्' प्रत्यय है। **'भावप्रधानमाख्यातम्'** (निरुक्त) आख्यात क्रियाप्रधान होता है। 'पचतिरूपम्' यहां पाक क्रिया एक है अतः इस रूपप्-प्रत्ययान्त शब्द से द्विवचन और बहुवचन नहीं होता है। **'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'** इस परिभाषा से लिङ्ग के लोकाश्रित होने से नपुंसकलिङ्ग होता है।*

ईषदसमाप्तिविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

कल्पप्+देश्यः+देशीयर्-

(१) ईषदसमाप्तौ कल्पप्देश्यदेशीयरः।६७।

प०वि०-ईषद्-असमाप्तौ ७।१ कल्पप्-देश्य-देशीयरः १।३।

स०-न समाप्तिः-असमाप्तिः । ईषच्चासावसमाप्तिः-ईषदसमाप्तिः, तस्याम्-ईषदसमाप्तौ (नञ्तत्पुरुषगर्भितकर्मधारयः) । पदार्थानां सम्पूर्णता समाप्तिरिति कथ्यते। स्तोकेनासम्पूर्णता=ईषदसमाप्तिः=किञ्चिन्न्यूनता इत्यर्थः । कल्पप् च देश्यश्च देशीयर् च ते-कल्पप्देश्यदेशीयरः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः) ।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-ईषदसमाप्तौ प्रातिपदिकात् तिङश्च कल्पब्देश्यदेशीयरः ।

अर्थः-ईषदसमाप्तौ=स्तोकेनाऽसम्पूर्णतार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च कल्पब्देश्यदेशीयरः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-(प्रातिपदिकम्) ईषदसमाप्त ऋषिः-ऋषिकल्पः (कल्पप्)। ऋषिदेश्यः (देश्यः)। ऋषिदेशीयः (देशीयर्)। **(तिङन्तम्)** ईषदसमाप्तं पचति-पचतिकल्पम् (कल्पप्)। पचतिदेश्यम् (देश्यः)। पचतिदेशीयम् (देशीयर्)।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(ईषदसमाप्तौ) थोड़ीसी असम्पूर्णता=न्यूनता अर्थ में विद्यमान (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (च) और (तिङः) तिङन्त शब्द से (कल्पब्देश्यदेशीयरः) कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-__(प्रातिपदिक)__ ईषद् असमाप्त=थोड़ा-सा कम ऋषि-ऋषिकल्प (कल्पप्)। ऋषिदेश्य (देश्य)। ऋषिदेशीय (देशीयर्)। __(तिङन्त)__ ईषद् असमाप्त=थोड़ा-सा कम पकाता है-पचतिकल्प (कल्पप्)। पचतिदेश्य (देश्य)। पचतिदेशीय (देशीयर्)।

सिद्धि-(१) __ऋषिकल्पः।__ ऋषि+सु+कल्पप्। ऋषिकल्प+सु। ऋषिकल्पः।

यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान 'ऋषि' शब्द से इस __सूत्र__ से 'कल्पप्' __प्रत्यय__ है। ऐसे ही-__ऋषिदेश्य, ऋषिदेशीय।__

(२) __पचतिकल्पम्।__ यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' __शब्द__ से इस सूत्र से 'कल्पप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-__पचतिदेश्यम्, पचतिदेशीयम्।__

बहुच्-

(२) विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् तु।६८।

प०वि०-विभाषा १।१ सुपः ५।१ बहुच् १।१ पुरस्तात् अव्ययपदम्, तु अव्ययपदम्।

अनु०-ईषदसमाप्तावित्यनुवर्तते, 'सुप्' इति वचनात् 'तिङश्च' इति नानुवर्तते।

अन्वयः-ईषदसमाप्तौ सुपो विभाषा बहुच्, तु पुरस्तात्।

अर्थः-ईषदसमाप्तौ=स्तोकेनासम्पूर्णतार्थे वर्तमानात् सुबन्ताद् विकल्पेन बहुच् प्रत्ययो भवति, स तु सुबन्तात् पुरस्ताद् भवति, **पक्षे च** कल्पब्देश्यदेशीरः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-ईषदसमाप्तः पण्डितः-बहुपण्डितः। बहुपटुः। बहुमृदुः (बहुच्)। पण्डितकल्पः (कल्पप्)। पण्डितदेश्यः (देश्यः)। पण्डितदेशीयः (देशीर्)। पटुकल्पः। पटुदेश्यः। पटुदेशीयः। मृदुकल्पः। मृदुदेश्यः। मृदुदेशीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ईषदसमाप्तौ) थोड़ीसी असम्पूर्णता=न्यूनता अर्थ में विद्यमान (सुपः) सुबन्त शब्द से (विभाषा) विकल्प से (बहुच्) बहुच् प्रत्यय होता है और वह (तु) तो उस सुबन्त से (पुरस्तात्) पूर्व होता है, पर नहीं और पक्ष में कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ईषद्-असमाप्त=थोड़ा-सा कम पण्डित-बहुपण्डित। ईषद्-असमाप्त पटु-बहुपटु। ईषद्-असमाप्त मृदु=कोमल-बहुमृदु (बहुच्)। ईषद्-असमाप्त पण्डित-पण्डितकल्प (कल्पप्)। पण्डितदेश्य (देश्य)। पण्डितदेशीय (देशीयर्)। ईषद्-असमाप्त पटु=चतुर-पटुकल्प। पटुदेश्य। पटुदेशीय। ईषद्-असमाप्त मृदु=कोमल-मृदुकल्प। मृदुदेश्य। मृदुदेशीय।

सिद्धि-(१) **बहुपण्डितः**। बहुच्+पण्डित+सु। बहु+पण्डितः। बहुपण्डितः।

*यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान, सुबन्त 'पण्डित' शब्द से इस सूत्र से सुबन्त से पूर्व 'बहुच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**बहुपटुः, बहुमृदुः**।*

*(२) **पण्डितकल्पः** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

प्रकारविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

जातीयर्-

(१) प्रकारवचने जातीयर्।६६।

प०वि०-प्रकार-वचने ७।१ जातीयर् १।१।

स०-सामान्यस्य भेदकः (विशेषः) प्रकारः। प्रकारस्य वचनम् (द्योतनम्) प्रकारवचनम्, तस्मिन्-प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-सुप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने सुपो जातीयर्।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानात् सुबन्तात् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पण्डितप्रकारः=पण्डितविशेषः-पण्डितजातीयः। पटुजातीयः। मृदुजातीयः। दर्शनीयजातीयः।

आर्यभाषाः अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार के प्रकाशन अर्थ में विद्यमान (सुपः) सुबन्त शब्द से (जातीयर्) जातीयर् प्रत्यय होता है।

*उदा०-पण्डितप्रकार (**पण्डितविशेष**)-पण्डितजातीय। पटुप्रकार-पटुजातीय। मृदुप्रकार-मृदुजातीय। दर्शनीयप्रकार-दर्शनीयजातीय।*

सिद्धि-पण्डितजातीयः। *पण्डित+सु+जातीयर्। पण्डित+जातीय। पण्डितजातीय+सु। पण्डितजातीयः।*

*यहां प्रकारवचन अर्थ में विद्यमान, सुबन्त 'पण्डित' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से जातीयर् प्रत्यय है। ऐसे ही-**पटुजातीयः, मृदुजातीयः, दर्शनीयजातीयः।***

प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

क-अधिकारः-

(१) प्रागिवात् कः।७०।

प०वि०-प्राक् १।१ इवात् ५।१ कः १।१।

अन्वयः-इवात् प्राक् कः।

अर्थः-'**इवे प्रतिकृतौ**' (५।३।९६) इति वक्ष्याति, एस्माद् इवशब्दात् प्राक् कः प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-'**अज्ञाते**' (५।३।७३) इति। अज्ञातोऽश्वः-अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवात्) '**इवे प्रतिकृतौ**' (५।३।९६) इस सूत्र में **पठित** 'इव' शब्द से (प्राक्) पहले-पहले (कः) क प्रत्यय होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

*उदा०-जैसे पाणिनिमुनि कहेंगे '**अज्ञाते**' (५।३।७३) अर्थात् अज्ञात **अर्थ** में विद्यमान प्रातिपदिक से 'क' प्रत्यय होता है। अज्ञात अश्व-अश्वक। अज्ञात गर्दभ (गधा)-गर्दभक। अज्ञात उष्ट्र (ऊंट)-ऊष्ट्रक।*

सिद्धि-अश्वकः। *अश्व+सु+क। अश्व+क। अश्वक्+सु। अश्वकः।*

*यहां '**अज्ञाते**' (५।३।७३) से प्रागिवीय अज्ञात अर्थ में विद्यमान 'अश्व' शब्द से 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**गर्दभकः। उष्ट्रकः।***

अकच्-अधिकारः-

(२) अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः।७१।

प०वि०-अव्यय-सर्वनाम्नाम् ६।३ अकच् १।१ प्राक् १।१ टेः ५।१।

स०-अव्ययानि च सर्वनामानि च तानि-अव्ययसर्वनामानि, तेषाम्-अव्ययसर्वनाम्नाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुप इत्यनुवर्तते। **'तिङश्च'** (५।३।५६) इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अव्ययसर्वनामभ्यः, प्रातिपदिकेभ्यः सुबन्तेभ्यस्तिङन्तेभ्यश्च प्राग् इवात् प्राक् टेरकच्।

अर्थः-अव्ययेभ्यः सर्वनामभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सुबन्तेभ्यस्तिङन्तेभ्यश्च शब्देभ्यः प्रागिवीयेष्वर्थेषु प्राक् टेरकच् प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

अस्मिन् सूत्रे प्रातिपदिकात्, सुप इति द्वयमप्यनुवर्तते। तेन-क्वचित् प्रातिपदिकस्य 'टेः' प्राक् प्रत्ययो भवति, क्वचिच्च सुबन्तस्य 'टेः' प्राक् प्रत्ययो विधीयते। तत्राभिधानतो व्यवस्था भवति।

उदा०-(अव्ययम्) अल्पमुच्चैः-उच्चकैः। अल्पं नीचैः-नीचकैः। अल्पं शनैः-शनकैः। **(सर्वनाम)** अल्पे सर्वे-सर्वके। अल्पे विश्वे-विश्वके। अल्पे उभये-उभयके। **(सुबन्तम्)** अल्पेन त्वया-त्वयका। अल्पेन मया-मयका। अल्पे त्वयि-त्वयकि। अल्पे मयि-मयकि। **(तिङन्तम्)** अल्पं पचति-पचतकि। अल्पं पठति-पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययसर्वनामभ्यः) अव्यय, सर्वनाम प्रातिपदिकों से (सुपः) सुबन्तों से तथा (तिङः) तिङन्तों से (च) भी (प्राग् इवात्) प्राग्-इवीय अर्थों में (टेः) टि-भाग से (प्राक्) पहले (अकच्) अकच् प्रत्यय होता है।*

इस सूत्र से 'प्रातिपदिकात्' और 'सुपः' इन दोनों की अनुवृत्ति है। अतः कहीं प्रातिपदिक के टि-भाग से पहले अकच् प्रत्यय होता है और कहीं सुबन्त के टि-भाग से पहले अकच् प्रत्यय किया जाता है। यह सब अभिधान (अर्थ-कथन) के सामर्थ्य से व्यवस्था होती है।

*उदा०-**(अव्ययम्)** अल्प उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अल्प नीचैः (नीचा)-नीचकैः। अल्प शनैः (धीरे)-शनकैः। **(सर्वनाम)** अल्प सर्व (सब)-सर्वके। अल्प विश्व (समस्त)-विश्वके। अल्प उभय (दोनों)-उभयके। **(सुबन्त)** अल्प तुझ से-त्वयका। अल्प मुझ में-मयका। अल्प तुझ में-त्वयकि। अल्प मुझ में-मयकि। **(तिङन्त)** अल्प पकाता है-पचतकि। अल्प पढ़ता है-पठतकि।*

सिद्धि-(१) उच्चकैः। उच्चैस्+सु। उच्च्+अकच्+ऐस्+०। उच्चक+ऐस्+०। उच्चकैस्। उच्चकैः।

*यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्यय-संज्ञक 'उच्चैः' शब्द से इस सूत्र से उसके टि-भाग (ऐस्) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नीचकैः। शनकैः।***

*(२) **सर्वके।** सर्व+जस्। सर्व्+अकच्+अ+अस्। सर्व्+अक्+अ+शी। सर्वक्+ई। सर्वके।*

*यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से इस सूत्र से उसके टि-भाग (अ) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। 'अकच्' प्रत्यय का द्वितीय अकार उच्चारणार्थ है और चकार 'चितः' (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर के लिये है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। ऐसे ही-**विश्वके, उभयके।***

*(३) **त्वयका।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तृतीयान्त, सुबन्त 'त्वया' शब्द से 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मयका।***

*(४) **त्वयकि।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सप्तम्यन्त, सुबन्त 'त्वयि' शब्द से 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मयकि।***

*(५) **पचतकि।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से '**अकच्**' प्रत्यय है। ऐसे ही-**पठतकि।***

अकच्-

(३) कस्य च दः।७२।

प०वि०-कस्य ६।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, दः १।१।

अनु०-अव्ययम्, अकच्, प्राक्, टेरिति चानुवर्तते। सर्वनामेति च नानुवर्तते तस्य ककारान्ताऽभावात्।

अन्वयः-अव्ययात् कात् प्राग्-इवात् प्राक् टेरकच्, दश्च।

अर्थः-अव्ययसंज्ञकात् ककारान्तात् प्रातिपदिकात् प्रागिवीयेष्वर्थेषु प्राक् टेरकच् प्रत्ययो भवति, दकारश्चान्तादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-अल्पं धिक्-धकित्। अल्पं हिरुक्-हिरकुत्। अल्पं पृथक्-पृथकत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अव्ययात्) अव्ययसंज्ञक (कस्य) ककारान्त प्रातिपदिक से (प्राग् इवात्) प्राग्-इवीय अर्थों में (टेः) टि-भाग से (प्राक्) पहले (अकच्) अकच् प्रत्यय होता है (च) और (दः) दकार अन्तादेश होता है।*

उदा०-अल्प धिक् (धिक्कार)-धकित्। अल्प हिरुक् (समीप)-हिरकुत्। अल्प पृथक् (अलग)-पृथकत्।

*सिद्धि-**धकित्।** धिक्+सु। ध्+अकच्+इक्+०। ध्+अक्+इद्+०। धकिद्। धकित्।*

यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्यय-संज्ञक, ककारान्त 'धिक्' शब्द से उसके टि-भाग से पूर्व इस सूत्र से 'अकच्' प्रत्यय है और 'धिक्' के ककार को दकार आदेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से 'द्' को 'चर्' तकार आदेश होता है। ऐसे ही-हिरकुत्, पृथकत्।

अज्ञातविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः--

(१) अज्ञाते।७३।

वि०-अज्ञाते ७।१।

अनु०-'**तिङश्च**' (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अज्ञाते प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-अज्ञातेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति (कः/अकच्)।

स्वेन रूपेण ज्ञाते पदार्थे विशेषरूपेण चाज्ञाते प्रत्ययविधानमिदं क्रियते। कस्यायमश्व इति स्वस्वामिसम्बन्धेनाऽज्ञातेऽश्वे प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। एवं सर्वत्राज्ञतता विज्ञातव्या।

उदा०-अज्ञातोऽश्वः-अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः। अज्ञातमुच्चैः-उच्चकैः। नीचकैः। अज्ञाताः सर्वे-सर्वके। विश्वके। अज्ञातं पचति-पचतकि। पठतकि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अज्ञाते) अज्ञात अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त शब्द से (च) भी स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्)।*

स्वरूप से ज्ञात पदार्थ के विषय में विशेष रूप से अज्ञात होने पर यह प्रत्ययविधि की जाती है। यह तो ज्ञात है कि यह एक अश्व है किन्तु यह अज्ञात है कि यह अश्व किसका है, इस अज्ञात अर्थ में यह प्रत्यय होता है। इस प्रकार सर्वत्र 'अज्ञात' शब्द का अभिप्राय समझ लेवें।

उदा०-अज्ञात अश्व (घोड़ा)-अश्वक। अज्ञात गर्दभ (गधा)-गर्दभक। अज्ञात उष्ट्र (ऊंट)-उष्ट्रक। अज्ञात उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अज्ञात नीचैः (नीचा)-नीचकैः। अज्ञात सर्व (सब)-सर्वके। अज्ञात विश्व (समस्त)-विश्वके। अज्ञात पकाता है-पचतकि। अज्ञात पढ़ता है-पठतकि (पता नहीं कि वह क्या पढ़ता है)।

सिद्धि-*'अश्वकः' आदि पदों की सिद्धि अज्ञात अर्थ में पूर्ववत् है।*

कुत्सितविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कुत्सिते ।७४।

वि०–कुत्सिते ७ ।१ ।

अनु०– **'तिङश्च'** (५ ।३ ।५६) इत्यनुवर्तनीयम् ।

अन्वयः–कुत्सिते प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः ।

अर्थः–कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति (कः/अकच्) । कुत्सितम्=गर्हितम्, निन्दितमित्यर्थः ।

उदा०–कुत्सितोऽश्वः–अश्वकः । गर्दभकः । उष्ट्रकः ।। कुत्सितमुच्चैः–उच्चकैः । नीचकैः ।। कुत्सिताः सर्वे–सर्वके । विश्वके ।। कुत्सितं पचति–पचतकि । पठतकि ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(कुत्सिते) निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्) ।*

उदा०–कुत्सित=निन्दित अश्व–अश्वक । कुत्सित गर्दभ–गर्दभक । कुत्सित उष्ट्र–उष्ट्रक । कुत्सित सर्व–सर्वके । कुत्सित विश्व–विश्वके । कुत्सित पकाता है–पचतकि । कुत्सित पढ़ता है–पठतकि ।

सिद्धि–'अश्वक' आदि पदों की कुत्सित अर्थ में सिद्धि पूर्ववत् है ।

कन्–

(२) संज्ञायां कन् ।७५।

प०वि०–संज्ञायाम् ७ ।१ कन् १ ।१ ।

अनु०–कुत्सिते इत्यनुवर्तते । **'तिङश्च'** इति नानुवर्तते, संज्ञाऽभावात् ।

अन्वयः–कुत्सिते प्रातिपदिकात् कन् संज्ञायाम् ।

अर्थः–कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम् ।

उदा०–कुत्सितः शूद्रः–शूद्रकः । कुत्सितो धारः–धारकः । कुत्सितः पूर्णः–पूर्णकः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कुत्सिते) निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-कुत्सित=निन्दित शूद्र-शूद्रक (विदिशा नगरी का एक राजा और मृच्छकटिक नामक काव्य का रचयिता महाकवि)। कुत्सित धार-धारक (कलश आदि)। कुत्सित पूर्ण-पूर्णक (पाचक)।

सिद्धि-शूद्रकः। शूद्र+सु+कन्। शूद्र+क। शूद्रक+सु। शूद्रकः।

*यहां कुत्सित अर्थ में विद्यमान 'शूद्र' शब्द से संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यह 'क' प्रत्यय का अपवाद है। ऐसे ही-**धारकः, पूर्णकः**।*

अनुकम्पार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अनुकम्पायाम्।७६।

वि०-अनुकम्पायाम् ७।१।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययोऽनुकम्पायाम्।

अर्थः-प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति, अनुकम्पायां गम्यमानायाम्। कारुण्येन परस्यानुग्रहः=उपकारोऽनुकम्पेति कथ्यते।

उदा०-अनुकम्पितः पुत्रः-पुत्रकः। वत्सकः। दुर्बलकः। बुभुक्षितकः। अनुकम्पितः स्वपिति-स्वपितकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है (अनुकम्पायाम्) यदि वहां अनुकम्पा अर्थ की प्रतीति हो। करुणापूर्वक दूसरे का उपकार करना-'अनुकम्पा' कहाती है।*

उदा०-अनुकम्पित पुत्र-पुत्रक। करुणापूर्वक उपकृत पुत्र। लाडला बेटा। अनुकम्पित वत्स-वत्सक। लाडला बच्चा। अनुकम्पित सोता है-स्वपितकि। माता के द्वारा लोरी देकर बड़े प्यार से सुलाया हुआ बच्चा जो सो रहा है, वह। अनुकम्पित पढ़ता है-पठतकि। करुणापूर्वक प्रदान की गई छात्रवृत्ति आदि से जो पढ़ रहा है, वह।

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) नीतौ च तद्युक्तात्।७७।

प०वि०–नीतौ ७।१ च अव्ययपदम्, तद्युक्तात् ५।१।

स०–तया {अनुकम्पया} युक्तः–तद्युक्तः, तस्मात्–तद्युक्तात् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०– **'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः–तद्युक्तात् प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययो नीतौ च।

अर्थः–तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्तात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति, नीतौ च गम्यमानायाम्। सामदानदण्डभेदात्मक उपायो नीतिरिति कथ्यते।

उदा०–अनुकम्पिता धानाः–धानकाः। हन्त ! ते धानका देवदत्त ! अनुकम्पितास्तिलाः–तिलकाः। हन्त ते तिलका यज्ञदत्त !।। अनुकम्पित एहि–एहकि। अनुकम्पितोऽद्धि–अद्धकि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा से युक्त प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्), (नीतौ) यदि वहां नीति अर्थ की (च) भी प्रतीति हो। साम, दान, दण्ड, भेद आत्मक उपाय नीति कहाता है।*

*उदा०–**हन्त ! ते धानका देवदत्त।** हे देवदत्त ! ये धान तेरे लिये हैं। कोई धान-दान की नीति से देवदत्त को अपने पक्ष में करता है। 'हन्त' शब्द यहां अनुकम्पा-अर्थ का द्योतक है। **हन्त ! ते तिलका यज्ञदत्त।** हे यज्ञदत्त ! ये तिल तेरे लिये हैं कोई यज्ञदत्त को तिल-दान की नीति से अपना पक्षधर बनाता है। **एहि–एहकि देवदत्त !** हे देवदत्त ! आइये। कोई साम-नीति से देवदत्त को अनुकम्पापूर्वक बुलाता है। **अद्धि–अद्धकि यज्ञदत्त !** हे यज्ञदत्त ! भोजन कीजिये। कोई साम-नीति से यज्ञदत्त को अनुकम्पापूर्वक भोजन के लिये निमन्त्रित करता है।*

*सिद्धि-(१) **धानकाः।** धान+जस्+क। धान+क। धानक+जस्। धानकाः।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त 'धान' शब्द से नीति-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही–**तिलकाः।***

*(२) **एहकि।** एहि। एह अकच्+इ। एह्+अक्+इ। एहकि।*

*यहां अनुकम्पा-अर्थ से युक्त, तिङन्त 'एहि' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। 'एहि' पद में आङ् उपसर्ग पूर्वक 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन है। ऐसे ही 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'अद्धि' और उससे 'अकच्' प्रत्यय करने पर-**अद्धकि**।*

ठच् विकल्पः–

(३) बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा।७८।

प०वि०-बह्वचः ५।१ मनुष्यनाम्नः ५।१ ठच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)। मनुष्यस्य नाम-मनुष्यनाम, तस्मात्-मनुष्यनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् बह्वचो मनुष्यनाम्नो वा ठच्, नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठच् प्रत्ययो भवति, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो देवदत्तः-देविकः (ठच्)। देवदत्तकः (कः)। अनुकम्पितो यज्ञदत्तः-यज्ञिकः (ठच्)। यज्ञदत्तकः (कः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा से युक्त (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनामवाची प्रातिपदिक से (वा) विकल्प से (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि रूप नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित देवदत्त-देविक (ठच्)। देवदत्तक (क)। साम आदि नीति से अनुकम्पा द्वारा अपने अनुकूल किया हुआ देवदत्त। अनुकम्पित यज्ञदत्त-यज्ञिक (ठच्)। यज्ञदत्तक। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) देविकः। *देवदत्त+सु+ठच्। देवदत्त+इक। देव०+इक। देव्+इक। देविक+सु। देविकः।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची 'देवदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक' आदेश होता है। '**ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः**' (५।३।७८) से 'देवदत्त' शब्द के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का लोप होता है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यज्ञदत्त' शब्द से-**यज्ञिकः**।*

*(२) **देवदत्तकः**। यहां पूर्वोक्त 'देवदत्त' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित '**क**' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यज्ञदत्तकः**।*

घन्+इलच्–

(४) घनिलचौ च।७९।

प०वि०–घन-इलचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–घन् च इलच् च तौ–घनिलचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–नीतौ, तद्युक्तात्, बह्वचः, मनुष्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद्युक्ताद् बह्वचो मनुष्यनाम्नो घनिलचौ च नीतौ।

अर्थः–तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् घनिलचौ च प्रत्ययौ भवतः, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०–अनुकम्पितो देवदत्तः–देवियः (घन्)। देविलः (इलच्)। अनुकम्पितो यज्ञदत्तः–यज्ञियः (घन्)। यज्ञिलः (इलच्)।

आर्यभाषाः अर्थ–(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनाम**वाची** प्रातिपदिक से (घनिलचौ) घन् और इलच् प्रत्यय (च) भी होते हैं (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०–अनुकम्पित देवदत्त–देविय (घन्)। देविल (इलच्)। साम आदि नीति से अनुकम्पा द्वारा अपने अनुकूल किया हुआ देवदत्त। अनुकम्पित यज्ञदत्त–यज्ञिय (घन्)। यज्ञिल (इलच्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि–(१) देवियः। *देवदत्त+सु+घन्। देव०+इय। देव्+इय। देविय+सु। देवियः।*

*यहां अनुकम्पा से युक्त, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची 'देवदत्त' शब्द से नीति-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। **'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः'** (५।३।७८) से 'देवदत्त' शब्द के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का लोप होता है। ऐसे ही–**यज्ञियः।***

*(२) **देविलः।** यहां पूर्वोक्त 'देवदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**यज्ञिलः।***

अडच्+वुच्–

(५) प्राचामुपादेरडज्वुचौ च।८०।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ उपादेः ५।१ अडच्-वुचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–उप आदिर्यस्य स उपादिः, तस्मात्–उपादेः (बहुव्रीहिः)। अडच् च वुच् च तौ–अडज्वुचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, बह्वचः, मनुष्यनाम्नः, घनिलचौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् उपादेर्बह्वचो मनुष्यनाम्नोऽडज्वुचौ घनिलचौ च नीतौ प्राचाम्।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् उपादेर्बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् अडज्वुचौ घनिलचौ च प्रत्ययौ भवतः, नीतौ गम्यमानायाम्, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः-उपडः (अडच्)। उपकः (वुच्)। उपियः (घन्)। उपिलः (इलच्) प्राचां मते। उपिकः (ठच्)। उपेन्द्रदत्तकः (कः) पाणिनिमते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (उपादेः) उप शब्द जिसके आदि में है उस (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनामवाची प्रातिपदिक से (अडज्वुचौ) अडच्, वुच् और (घनिलचौ) घन् तथा इलच् प्रत्यय (च) भी होते हैं (नीतौ) यदि वहां नीति अर्थ की प्रतीति हो (प्राचाम्) प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में।*

उदा०-अनुकम्पित उपेन्द्रदत्त-उपड (अडच्)। उपक (वुच्)। उपिय (घन्)। उपिल (इलच्)। प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में। पाणिनिमुनि के मत में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं-उपिक (ठच्)। उपेन्द्रदत्तक (क)।

*सिद्धि-(१) **उपडः।** उपेन्द्रदत्त+सु+अडच्। उप०+अड। उप्+अड। उपड+सु। **उपडः।***

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, उप-आदिमान्, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में तथा प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'अडच्' प्रत्यय है। **'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः'** (५।३।८३) से 'उपेन्द्रदत्त' के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'इन्द्रदत्त' शब्द का लोप होता है।*

*(२) **उपकः।** यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'वुच्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **उपियः।** यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **उपिलः।** यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। **शेष** कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) पाणिनिमुनि के मत में 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से **'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा'** (५ ।३ ।७८) से विकल्प से 'ठच्' प्रत्यय होता। विकल्प पक्ष में यथाविहित 'क' प्रत्यय होता है। उपिकः (ठच्)। उपेन्द्रदत्तकः (कः)। इन पदों की सिद्धि देविकः और देवदत्तकः के समान है (५ ।३ ।७८)।*

कन्–

(६) जातिनाम्नः कन् ।८१।

प०वि०–जातिनाम्नः ५ ।१ कन् १ ।१।

स०–जातेर्नाम–जातिनाम, तस्मात्–जातिनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–नीतौ, तद्युक्तात्, मनुष्यनाम्न इति चानुवर्तते, बह्वच इति च नानुवर्तते।

अन्वयः–तद्युक्ताज्जातिनाम्नो मनुष्यनाम्नः कन्, नीतौ।

अर्थः–तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताज्जातिवचिनो मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, नीतौ गम्यनायाम्।

उदा०–अनुकम्पितो व्याघ्रो नाम मनुष्यः–व्याघ्रकः। अनुकम्पितः सिंहो नाम मनुष्यः–सिंहकः। अनुकम्पितः शरभो नाम मनुष्य-शरभकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (जातिनाम्नः) जातिवाची (मनुष्यनाम्नः) मनुष्य-वाचक प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०–अनुकम्पित व्याघ्र (बाघ) नामक मनुष्य–व्याघ्रक। अनुकम्पित सिंह नामक मनुष्य-सिंहक। अनुकम्पित शरभ (टिड्डी) नामक मनुष्य-शरभक।

सिद्धि–व्याघ्रकः। व्याघ्र+सु+कन्। व्याघ्र+क। व्याघ्रक+सु। व्याघ्रकः।

यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, जातिवाची, मनुष्यवाचक 'व्याघ्र' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही–सिंहकः, शरभकः।

कन्–

(७) अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ।८२।

प०वि०–अजिनान्तस्य ६ ।१ उत्तरपदलोपः १ ।१ च अव्ययपदम्।

स०–अजिनोऽन्ते यस्य सः–अजिनान्तः, तस्य–अजिनान्तस्य (बहुव्रीहिः)। उत्तरपदस्य लोपः–उत्तरपदलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, मनुष्यनाम्नः, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् मनुष्यनाम्नोऽजिनान्तात् कन्, उत्तरपदलोपश्च, नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् मनुष्यवाचिनोऽजिनान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, तस्य उत्तरपदस्य च लोपो भवति, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो नाम मनुष्यः-व्याघ्रकः। सिंहकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (मनुष्यनाम्नः) मनुष्य-वाचक (अजिनान्तस्य) अजिन शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (च) और (उत्तरपदलोपः) उसके उत्तरपद का लोप होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित व्याघ्राजिन नामक मनुष्य-व्याघ्रक। अनुकम्पित सिंहाजिन नामक मनुष्य-सिंहक। व्याघ्राजिन=व्याघ्रचर्म धारण करनेवाला।

सिद्धि-व्याघ्रकः। *व्याघ्राजिन+सु+कन्। व्याघ्र०+क। व्याघ्रक+सु। व्याघ्रकः।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, अजिनशब्दान्त, मनुष्यवाचक 'व्याघ्राजिन' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उसके उत्तरपद 'अजिन' शब्द का लोप होता है। ऐसे ही-**सिंहकः।***

लोप-विधिः--

(८) ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः।८३।

प०वि०-ठ-अजादौ ७।१ ऊर्ध्वम् १।१ द्वितीयात् ५।१ अचः ५।१।

स०-अच् आदिर्यस्य सः-अजादि, ठश्च अजादिश्च एतयोः समाहारः-ठाजादिः, तस्मिन्-ठाजादौ (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-मनुष्यनाम्नः, लोप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकस्य द्वितीयादच ऊर्ध्वं लोपष्ठाजादौ।

अर्थः-**'नीतौ च तद्युक्तात्'** (५।३।७७) इत्यस्मिन् प्रकरणे मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकस्य द्वितीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति, ठ-अजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-अनुकम्पितो देवदत्तः-देविकः (ठच्)। देवियः (घन्)। देविलः (इलच्)। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः-उपडः (अडच्)। उपकः (वुच्)। उपियः (घन्)। उपिलः (इलच्)। उपिकः (ठच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इस प्रकरण में (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यवाचक प्रातिपदिक के (द्वितीयात्) दूसरे (अचः) अच् से (ऊर्ध्वम्) आगे जो शब्द है उसका (लोपः) लोप होता है (ठाजादौ) ठ और अजादि प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-अनुकम्पित देवदत्त-देविक (ठच्)। देविय (घन्)। देविल (इलच्)। अनुकम्पित-उपेन्द्रदत्त-उपड (अडच्) उपक (वुच्)। उपिय (घन्)। उपिल (इलच्)। उपिक (ठच्)।

सिद्धि- *देविकः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

लोप-विधिः-

(६) शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्।८४।

प०वि०- शेवल-सुपरि-विशाल-वरुण-अर्यमादीनाम् ६।३ तृतीयात् ५।१।

स०-शेवलश्च सुपरिश्च विशालश्च वरुणश्च अर्यमा च ते-शेवल-सुपरिविशालवरुणार्यमाणः। शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमाण आदौ येषां ते-शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादयः, तेषाम्-शेवलसुपरिविशालवरुणार्य-मादीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-मनुष्यनाम्नः, लोपः, ठाजादौ, ऊर्ध्वम्, अचः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इत्यस्मिन् प्रकरणे शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां मनुष्यनाम्नां तृतीयादच ऊर्ध्वं लोपष्ठाजादौ।

अर्थः-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इत्यस्मिन् **प्रकरणे** शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां मनुष्यवाचिनां प्रातिपदिकानां तृतीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति, ठाजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-**(शेवलादिः)** अनुकम्पितः शेवलदत्तः-शेवलिकः (ठच्)। शेवलियः (घन्)। शेवलिलः (इलच्)। **(सुपर्यादिः)** अनुकम्पितः

सुपरिदत्तः-सुपरिकः । सुपरियः । सुपरिलः । **(विशालादिः)** अनुकम्पितो **वि**शालदत्तः-विशालिकः । विशालियः । विशालिलः । **(वरुणादिः)** अनुकम्पितो **वरु**णदत्तः-वरुणिकः । वरुणियः । वरुणिलः । **(अर्यमादिः)** अनुकम्पितो-ऽर्यमदत्तः-अर्यमिकः । अर्यमियः । अर्यमिलः ।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इस प्रकरण में (शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनाम्) शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण, अयर्मा शब्द जिनके आदि में है उन (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यवाची प्रातिपदिकों के (तृतीयात्) तीसरे (अचः) अच् से (ऊर्ध्वम्) आगे जो शब्द है उसका (लोपः) लोप होता है (ठाजादौ) ठ और अजादि प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-**(शेवलादि)** अनुकम्पित शेवलदत्त-शेवलिक (ठच्)। शेवलिय (घन्)। शेवलिल (इलच्)। **(सुपर्यादि)** अनुकम्पित सुपरिदत्त-सुपरिक। सुपरिय। सुपरिल। **(विशालादि)** अनुकम्पित विशालदत्त-विशालिक। विशालिय। विशालिल। **(वरुणादि)** अनुकम्पित वरुणदत्त-वरुणिक। वरुणिय। वरुणिल। **(अर्यमादि)** अनुकम्पित अर्यमदत्त-अर्यमिक। अर्यमिय। अर्यमिल।*

*सिद्धि-(१) **शेवलिकः ।** शेवलदत्त+सु+ठच्। शेवल०+इक। शेवलिक+सु। शेवलिकः।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, मनुष्यवाची 'शेवलदत्त' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में **'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा'** (५।३।७८) 'ठच्' प्रत्यय करने पर 'शेवलदत्त' के तृतीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही-**सुपरिकः** आदि।*

*(२) **शेवलियः ।** यहां पूर्वोक्त 'शेवलदत्त' शब्द से **'घनिलचौ च'** (५।३।७९) से घन् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**सुपरियः** आदि।*

*(३) **शेवलिलः ।** यहां पूर्वोक्त 'शेवलदत्त' शब्द से **'घनिलचौ च'** (५।३।७९) से 'इलच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-सुपरिलः आदि।*

अल्पार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः—

(१) अल्पे।८५।

वि०-अल्पे ७।१।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अल्पे प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थ:-अल्पेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति। अत्र परिमाणापचयेऽर्थेऽल्पशब्दो वर्तते।

उदा०-(प्रातिपदिकम्) अल्पं तैलम्-तैलकम्। घृतकम्। **(अव्ययम्)** अल्पमुच्चैः-उच्चकैः। नीचकैः। **(सर्वनाम)** अल्पं सर्वम्-सर्वकम्। विश्वकम्। **(तिङन्तम्)** अल्पं पचति-पचतकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अल्पे) अल्प=परिमाण की न्यूनता अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से भी यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रातिपदिक)** अल्प तैल-तैलक। अल्प घृत-घृतक। **(अव्यय)** अल्प उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अल्प नीचैः (नीचा)-नीचकैः। **(सर्वनाम)** अल्प सर्व (सब)-सर्वक। अल्प विश्व (समस्त)-विश्वक। **(तिङन्त)** वह अल्प पकाता है-पचतकि। वह अल्प पढ़ता है-पठतकि।*

सिद्धि-(१) तैलकम्। *यहां अल्प अर्थ में विद्यमान 'तैल' प्रातिपदिक से **'प्रागिवात् कः'** (५।३।७०) से यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**घृतकम्।***

(२) उच्चकैः। *यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्ययसंज्ञक 'उच्चैस्' शब्द से **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७१) से यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नीचकैः।***

(३) सर्वकम्। *यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सर्वनाम-संज्ञक 'सर्वशब्द' से पूर्ववत् यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**विश्वकम्।***

(४) पचतकि। *यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् 'अकच्' प्रत्यय है।*

ह्रस्वार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) ह्रस्वे।८६।

वि०-ह्रस्वे ७।१।

अन्वय:-ह्रस्वे प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थ:-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति। अत्र ह्रस्वशब्दो दीर्घप्रतियोगी वर्तते।

उदा०-ह्रस्वो वृक्षः-वृक्षकः। प्लक्षकः। स्तम्भकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) छोटे अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व=छोटा वृक्ष-वृक्षक। ह्रस्व प्लक्ष=पिलखण-प्लक्षक। ह्रस्व स्तम्भ=खम्भा-स्तम्भक।

सिद्धि-वृक्षकः। यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'वृक्ष' शब्द से 'प्रागिवात् कः' (५।३।७०) से यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्लक्षकः, स्तम्भकः।

कन्-

(२) संज्ञायां कन्।८७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ कन् १।१।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे प्रातिपदिकात् कन्, संज्ञायाम्।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-ह्रस्वो वंशः-वंशकः। ह्रस्वो वेणुः-वेणुकः। ह्रस्वो दण्डः-दण्डकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-ह्रस्व वंश=बांस=वंशक (बांस की एक पोरी)। ह्रस्व वेणु=वेणुक (बांस की मूठवाला अंकुश)। ह्रस्व दण्ड=दण्डक (सोटा)।

सिद्धि-वंशकः। वंश+सु+कन्। वंश+क। वंशक+सु। वंशकः।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'ह्रस्व' शब्द से संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वेणुकः, दण्डकः।

रः-

(३) कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः।८८।

प०वि०-कुटी-शमी-शुण्डाभ्यः ५।३ रः १।१।

स०-कुटी च शमी च शुण्डा च ताः कुटीशमीशुण्डाः, ताभ्यः-कुटीशमीशुण्डाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानेभ्यः कुटीशमीशुण्डाशब्देभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो रः प्रत्ययो भवति।

उदा०-ह्रस्वा कुटी-कुटीरः। ह्रस्वा शमी-शमीरः। ह्रस्वा शुण्डा-शुण्डारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कुटीशमीशुण्डाभ्यः) कुटी, शमी, शुण्डा प्रातिपदिकों से (रः) र प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व कुटी=झोंपड़ी-कुटीर। ह्रस्व शमी=जांटी-शमीर। ह्रस्व शुण्डा=हाथी का सूंड-शुण्डार।

सिद्धि-कुटीरः। कुटी+सु+र। कुटी+र। कुटीर+सु। कुटीरः।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कुटी' शब्द से इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है। ऐसे ही-शमीरः, शुण्डारः।

डुपच्-

(४) कुत्वा डुपच्।८६।

प०वि०-कुत्वाः ५।१ डुपच् १।१।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे कुतूशब्दाड्डुपच्।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् कुतूशब्दात् प्रातिपदिकाड्डुपच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ह्रस्वा कुतूः-कुतूपम्। कुतूपम्=चर्ममयं तैलपात्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कुत्वाः) कुतू प्रातिपदिक से (डुपच्) डुपच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व कुतू=कुप्पी-कुतूप। चमड़े का बना तैलपात्र।

सिद्धि-कुतुपम्। कुतू+सु+डुपच्। कुत्+उप। कुतुप+सु। कुतुपम्।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कुतू' शब्द से इस सूत्र से 'डुपच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (ऊ) का लोप होता है।

ष्टरच्–

(५) कासूगोणीभ्याम् ५।२ ष्टरच् १।१।

प०वि०–कासूगोणीभ्याम् ५।२ ष्टरच् १।१।

स०–कासूश्च गोणी च ते कासूगोण्यौ, ताभ्याम्-कासूगोणीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ह्रस्वे कासूगोभ्यां ष्टरच्।

अर्थः–ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानाभ्यां कासूगोणीशब्दाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां ष्टरच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कासूः)** ह्रस्वा कासूः–कासूतरी। कासूः=शक्तिः (आयुध-विशेषः)। **(गोणी)** ह्रस्वा गोणी–गोणीतरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कासूगोणीभ्याम्) कासू, गोणी प्रातिपदिकों से ष्टरच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कासू) ह्रस्व कासू=शक्ति (भाला) कासूतरी। ह्रस्व गोणी=बोरी (गूण)-गोणीतरी।

सिद्धि-कासूतरी। *कासू+सु+ष्टरच्। कासू+तर। कासूतर+ङीष्। कासूतर्+ई। कासूतरी+सु। कासूतरी।*

*यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कासू' शब्द से इस सूत्र से 'ष्टरच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**गोणीतरी।***

तनुत्वार्थप्रत्ययविधिः

ष्टरच्–

(१) वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यस्तनुत्वे।६१।

प०वि०–वत्स-उक्ष-अश्व-ऋषभेभ्यः ५।३ तनुत्वे ७।१।

स०–वत्सश्च उक्षा च अश्वश्च ऋषभश्च ते वत्सोक्षाश्वर्षभाः, तेभ्यः–वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ष्टरच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तनुत्वे वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः ष्टरच्।

अर्थः-तनुत्वे=अल्पत्वेऽर्थे वर्तमानेभ्यो वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः ष्टरच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वत्सः) तनुर्वत्सः-वत्सतरः। **(उक्षा)** तनुरुक्षा-उक्षतरः। **(अश्वः)** तनुरश्वः-अश्वतरः। **(ऋषभः)** तनुर्ऋषभः-ऋषभतरः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तनुत्वे) अल्पता अर्थ में विद्यमान (वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः) वत्स, उक्षा, अश्व, ऋषभ प्रातिपदिकों से (ष्टरच्) ष्टरच् प्रत्यय होता है। जिस गुण से शब्द का प्रयोग हो रहा है उसके तनुत्व=अल्पता (कमी) अर्थ में यह प्रत्ययविधि होती है।*

*उदा०-**(वत्स)** तनु वत्स-वत्सतर (बछड़ा)। जिसकी प्रथम आयु तनु=अल्प शेष है और जो द्वितीय आयु को प्राप्त होगया है। **(उक्षा)** तनु उक्षा-उक्षतर। जिसकी द्वितीय (जवानी) अल्प शेष है और जो तृतीय आयु को प्राप्त होगया है। ढलती जवानीवाला बैल। **(अश्व)** तनु अश्व-अश्वतर (खच्चर)। जिसमें अश्वभाव अल्प है अर्थात् अश्व से गर्दभी में अथवा गर्दभ से वडवा में उत्पन्न हुआ। **(ऋषभ)** तनु ऋषभ=ऋषभतर। मन्दशक्तिवाला सांड।*

*सिद्धि-**वत्सतरः।** वत्स+सु+ष्टरच्। वत्स+तर। वत्सतर+सु। वत्सतरः।*

यहां तनुत्व=अल्पता अर्थ में विद्यमान 'वत्स' शब्द से इस सूत्र से 'ष्टरच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उक्षतरः, अश्वतरः, ऋषभतरः।

निर्धारणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

डतरच्-

(१) किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्।६२।

प०वि०-किम्-यत्-तदः ५।१ निर्धारणे ७।१ द्वयोः ६।२ एकस्य ६।१ डतरच् १।१।

स०-किं च यच्च तच्च एतेषां समाहारः किंयत्तत्, तस्मात्-किंयत्तदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वयोरेकस्य निर्धारणे किंयत्तदभ्यो डतरच्।

अर्थः-द्वयोरेकस्य निर्धारणेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किंयत्तदभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो डतरच् प्रत्ययो भवति। जात्या, क्रियया, गुणेन संज्ञया समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणमित्युच्यते।

उदा०-(**किम्**) कतरो भवतो: कठ: (जाति:)। कतरो भवतो: कारक: (क्रिया)। कतरो भवतो: पटु: (गुण:)। कतरो भवतोर्देवदत्त: (संज्ञा)। (**यत्**) यतरो भवतो: कठ:। यतरो भवत: कारक:। यतरो भवतो: पटु:। यतरो भवतोर्देवदत्त:, (तत्) ततर आगच्छतु।

आर्यभाषाः अर्थ-*(द्वयो:) दो में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में विद्यमान (किंयत्तद:) किम्, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (डतरच्) डतरच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**किम्**) आप दोनों में कठ कतर=कौनसा है (जाति)। आप दोनों में करनेवाला कतर=कौनसा है (क्रिया)। आप दोनों में पटु=चतुर कतर=कौनसा है (गुण)। आप दोनों में देवदत्त कतर=कौनसा है (संज्ञा)। (**यत्**) आप दोनों में यतर=जौनसा कठ है। आप दोनों में यतर=जौनसा करनेवाला है। आप दोनों में यतर=जौनसा पटु=चतुर है। आप दोनों में यतर=जौनसा देवदत्त है, (तत्) ततर=दोनों में से वह-आजावे।*

*सिद्धि-**कतर:**। किम्+सु+डतरच्। क्+अतर। कतर+सु। कतर:।*

*यहां दो में से एक के निर्धारण=पृथक्करण अर्थ में विद्यमान 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'डतरच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा-'डित्यभस्यापि टेर्लोप:' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। ऐसे ही-**यतर:, ततर:**।*

डतमच्--

(२) वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्।६३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, जातिपरिप्रश्ने ७।१ डतमच् १।१।

स०-जाते: परिप्रश्न:-जातिपरिप्रश्न:, तस्मिन्-जातिपरिप्रश्ने (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-किंयत्तद:, निर्धारणे, एकस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-बहूनामेकस्य निर्धारणे जातिपरिप्रश्ने च विषये किंयत्तदो वा डतमच्।

अर्थ:-बहूनामेकस्य निर्धारणेऽर्थे जातिपरिप्रश्ने च विषये वर्तमानेभ्य: किंयत्तदभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन डतमच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽकच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(किम्) कतमो भवतां कठः। **(यत्)** यतमो भवतां कठः। **(तत्)** ततम आगच्छतु (डतमच्)। **(किम्)** कको भवतां कठः। **(यत्)** यको भवतां कठः। **(तत्)** सक आगच्छतु (अकच्)।

'समर्थानां प्रथमाद् वा' (४।१।८२) इत्यस्माद् महाविभाषाया अनुवर्तनाद् वाक्यमपि भवति-**(किम्)** को भवतां कठः। **(यत्)** यो भवतां कठः। **(तत्)** स आगच्छतु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहूनाम्) बहुतों में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में और (जातिपरिप्रश्ने) जाति के पूछने विषय में विद्यमान (किंयत्तदः) किम्, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (वा) विकल्प से (डतमच्) डतमच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** आप सब में कतम=कौनसा कठ है। **(यत्)** आप सब में यतम=जौनसा कठ है। **(तत्)** ततम=सब में से वह-आजावे (डतमच्)। **(किम्)** आप में से कक=कौनसा कठ है। **(यत्)** आप सब में से यक=जौनसा कठ है। **(तत्)** सब में से सक=वह आजावे।*

*'**समार्थानां प्रथमाद् वा**' (४।१।८२) से महाविभाषा की अनुवृत्ति से वाक्य भी होता है-**(किम्)** आप सब में से कः=कौन कठ है। **(यत्)** आप सब में से यः=जो कठ है। **(तत्)** आप सब में से सः=वह आजावे।*

*सिद्धि-**कतमः**। किम्+सु+डतमच्। क्+अतम। कतम+सु। कतमः।*

*यहां बहुतों में से एक के निर्धारण=पृथक्करण अर्थ में विद्यमान तथा जातिपरिप्रश्न विषयक 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'डतमच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' होने से वा-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। ऐसे ही-**यतमः, ततमः**।*

*(२) **ककः**। क+सु+अकच्+ :। क्+अक+०+ :। ककः।*

*यहां सुबन्त 'कः' शब्द से विकल्प पक्ष में '**अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः**' (५।३।७१) से टि-भाग से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**यकः। सकः**।*

डतरच्+डतमच्-

(३) एकाच्च प्राचाम्।६४।

प०वि०-एकात् ५।१ च अव्ययपदम्, प्राचाम् ६।३।

अनु०-निर्धारणे, द्वयोः, एकस्य, डतरच्, बहूनाम्, डतमच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वयोर्बहूनां वा एकस्य निर्धारणे एकाच्च डतरच् डतमच्च प्राचाम्।

अर्थः-द्वयोर्बहूनां वा एकस्य निर्धारणेऽर्थे वर्तमानाद् एक-शब्दाच्च यथासंख्यं डतरच् डतमच्च प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-एकतरो भवतोर्देवदत्तः (डतरच्)। एकतमो भवतां देवदत्तः (डतमच्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्वयोः) दो में से अथवा (बहूनाम्) बहुतों में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में विद्यमान (एकात्) एक प्रातिपदिक से (च) भी यथासंख्य (डतरच्) डतरच् और (डतमच्) डतमच् प्रत्यय होते हैं (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।*

उदा०-आप दोनों में एकतर=कोई एक देवदत्त है (डतरच्)। आप सब में एकतम=कोई एक देवदत्त है (डतमच्)।

***सिद्धि**-(१) **एकतरः**। एक+सु+डतरच्। एक्+अतर। एकतर+सु। एकतरः। यहां निर्धारण अर्थ में विद्यमान 'एक' शब्द से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'डतरच्' प्रत्यय है। वा०-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अ) का लोप होता है।*

*(२) **एकतमः**। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से पूर्ववत् 'डतमच्' प्रत्यय है।*

अवक्षेपणार्थप्रत्ययविधिः

कन्-

(१) अवक्षेपणे कन्।६५।

प०वि०-अवक्षेपणे ७।१ कन् १।१।

अन्वयः-अवक्षेपणे प्रातिपदिकात् कन्।

अर्थः-अवक्षेपणे=कुत्सार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अवक्षिप्तं व्याकरणम्-व्याकरणकम्। व्याकरणकेन त्वं गर्वितः। अवक्षिप्तं याज्ञिक्यम्-याज्ञिक्यकम्। याज्ञिक्यकेन त्वं गर्वितः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अवक्षेपणे) कुत्सा=निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-अवक्षिप्त व्याकरण=व्याकरणक। तू व्याकरणक=व्याकरण के **अवक्षिप्त** (अधकचरा) ज्ञान से घमण्ड में चूर है। अवक्षिप्त याज्ञिक्य=याज्ञिक्यक। तू याज्ञिक्यक=कर्मकाण्ड के अवक्षिप्त (अधकचरा) ज्ञान से घमण्ड में चूर है।*

***सिद्धि-व्याकरणकम्।** व्याकरण+सु+कन्। व्याकरण+क। व्याकरण+सु। व्याकरणकम्।*

*यहां अवक्षेपण अर्थ में 'व्याकरण' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**याज्ञिक्यकम्।***

इति प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

कन्–

(१) इवे प्रतिकृतौ।६६।

प०वि०-इवे ७।१ प्रतिकृतौ ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे प्रतिकृतौ च प्रातिपदिकात् कन्।

अर्थः-इवार्थे प्रतिकृतौ च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति। इवार्थः=सादृश्यम्।

उदा०-अश्व इवायमश्वप्रतिकृतिः-अश्वकः। उष्ट्रकः। गर्दभकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृशता अर्थ में और (प्रतिकृतौ) चित्र अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्व के समान यह प्रतिकृति रूप अश्व-अश्वक। उष्ट्र के समान यह प्रकृति रूप उष्ट्र-उष्ट्रक। गर्दभ के समान यह प्रतिकृति रूप गर्दभ-गर्दभक।

***सिद्धि-अश्वकः।** अश्व+सु+कन्। अश्व+क। अश्वक+सु। अश्वकः।*

*यहां इव-अर्थ में तथा प्रतिकृति विषय में विद्यमान 'अश्व' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उष्ट्रकः। गर्दभकः।***

कन्–

(२) संज्ञायां च।६७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कन्, इवे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवे प्रातिपदिकात् कन् संज्ञायां च।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां च गम्यमानायाम्।

उदा०-अश्व इव-अश्वकः। उष्ट्रकः। गर्दभकः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।*

उदा०-अश्व के सदृश-अश्वक (घोड़ा-सा)। उष्ट्र के सदृश-उष्ट्रक (ऊंट-सा)। गर्दभ के सदृश-गर्दभक (गधा-सा)।

सिद्धि-अश्वकः। अश्व+सु+कन्। अश्व+क। अश्वक+सु। अश्वकः।

यहां इव-अर्थ तथा संज्ञा विषय में विद्यमान 'अश्व' शब्द से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उष्ट्रकः। गर्दभकः।

प्रत्ययस्य लुप्–

(३) लुम्मनुष्ये।६८।

प०वि०-लुप् १।१ मनुष्ये ७।१।

अनु०-इवे, संज्ञायाम्, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवे संज्ञायां प्रातिपदिकात् कनो लुप्, मनुष्ये।

अर्थः-इवार्थे संज्ञायां च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, मनुष्येऽभिधेये।

उदा०-चञ्चा इव मनुष्यः-चञ्चा। दासी इव मनुष्यः-दासी। खरकुटी इव मनुष्यः-खरकुटी।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(इवे) सदृश अर्थ में और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में विद्यमान प्रातिपदिक से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (मनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-चञ्चा=तृण-पुरुष के समान निर्बल मनुष्य-चञ्चा। दासी के समान गरीब मनुष्य-दासी। खरकुटी=गर्दभशाला के समान मलिन मनुष्य-खरकुटी।

सिद्धि-चञ्चा। चञ्चा+सु+कन्। चञ्चा+०। चञ्चा+सु। चञ्चा+०। चञ्चा।

*यहां इव-अर्थ में तथा संज्ञाविषय में विद्यमान 'चञ्चा' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप्=लोप होता है। '**लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने**' (१।२।५१) से प्रत्यय का लुप् हो जाने पर शब्द के व्यक्ति=लिङ्ग और वचन युक्तवत्=पूर्ववत् रहते हैं। ऐसे ही-**दासी, खरकुटी**।*

प्रत्ययस्य लुप्–

(४) जीविकार्थे चापण्ये।९९।

प०वि०–जीविकार्थे ७।१ च अव्ययपदम्, अपण्ये ७।१।

स०–जीविकायै इदम्-जीविकार्थम्, तस्मिन्-जीविकार्थे (चतुर्थी-तत्पुरुषः)। पणितुं योग्यम्-पण्यम्, न पण्यम्-अपण्यम्, तस्मिन्-अपण्ये। **'अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु'** (३।१।१०१) इत्यत्र पणितव्येऽर्थे पण्यशब्दो निपात्यते। यद् विक्रीयते तत् पण्यमुच्यते।

अनु०–कन्, प्रतिकृतौ, लुप्, मनुष्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जीविकार्थेऽपण्ये मनुष्यस्य प्रतिकृतौ च प्रातिपदिकात् कनो लुप्।

अर्थः–जीविकार्था याऽपण्या मनुष्यप्रतिकृतिस्तस्यामभिधेयायां च प्रातिपदिकाद् विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०–वासुदेवस्य जीविकार्था याऽपण्या प्रतिकृतिः–वासुदेवः। शिवः। स्कन्दः। विष्णुः। आदित्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जीविकार्थे) जीविका के लिये (अपण्ये) न बेचने योग्य (मनुष्ये, प्रतिकृतौ) मनुष्य की प्रतिमा=मूर्ति अर्थ अभिधेय में (च) भी प्रातिपदिक से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है।*

उदा०–जीविका के लिये जो न बेचने योग्य वासुदेव=कृष्ण की प्रतिकृति=प्रतिमा है वह-वासुदेव। शिव की उक्त प्रतिकृति-शिव। स्कन्द की उक्त प्रतिकृति-स्कन्द। विष्णु की उक्त प्रतिकृति-विष्णु। आदित्य की उक्त प्रतिकृति-आदित्य।

*अत्र पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः प्राह– **"याः प्रतिमाः प्रतिगृह्य गृहाद् गृहं भिक्षमाणा अटन्ति ता एवमुच्यन्ते, ता हि जीविकार्था भवन्ति।"** जिन प्रतिमाओं को लेकर लोग घर-घर भिक्षा के लिये घूमते हैं, वे प्रतिमायें **'वासुदेवः'** इत्यादि कहाती हैं क्योंकि वे जीविका के लिये होती हैं और बेची नहीं जाती हैं।*

*सिद्धि-**वासुदेवः।** वासुदेव+सु+कन्। वासुदेव+०। वासुदेव+सु। वासुदेवः।*

*यहां जीविकार्थ, अपण्य मनुष्य-प्रतिकृति अर्थ में विद्यमान 'वासुदेव' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप्=लोप होता है। ऐसे ही-**शिवः, स्कन्दः, विष्णुः, आदित्यः।***

प्रत्ययस्य लुप्–

(५) देवपथादिभ्यश्च।१००।

प०वि०–देवपथ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–देवपथ आदिर्येषां ते देवपथादयः, तेभ्यः–देवपथादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–कन्, इवे, प्रतिकृतौ, संज्ञायाम्, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इवे प्रतिकृतौ संज्ञायां च देवपथादिभ्यश्च कनो लुप्।

अर्थः–इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विषये देवपथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०–देवपथ इवेयं प्रतिकृतिः–देवपथः। हंसपथः, इत्यादिकम्।

अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु।।

उदा०–अर्चासु-शिव इवेयं प्रतिकृतिः–शिवः। विष्णुः। चित्रकर्मणि-अर्जुन इवेदं चित्रम्–अर्जुनः। दुर्योधनः। ध्वजेषु–कपिरिवायं ध्वजः–कपिः। गरुडः। सिंहः।

देवपथ। हंसपथ। वारिपथ। जलपथ। राजपथ। शतपथ। सिंहगति। उष्ट्रग्रीवा। चामरज्जु। रज्जु। हस्त। इन्द्र। दण्ड। पुष्प। मत्स्य। इति देवपथादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश तथा (प्रतिकृतौ) प्रतिमा अर्थ में और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में विद्यमान (देवपथादिभ्यः) देवपथ आदि प्रातिपदिकों से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है।*

उदा०–देवपथ के समान प्रतिकृति-देवपथ। हंसपथ के समान प्रतिकृति-हंसपथ इत्यादि।

अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु।।

अर्थ–देवपथ आदि शब्दों से ***'इवे प्रतिकृतौ'*** *अर्थ में विहित कन् प्रत्यय का लोप पूजा के लिये अर्चा=प्रतिमा, चित्रकर्म और ध्वज अर्थ में जानना चाहिये।* ***जैसे अर्चा-शिव***

के समान यह प्रतिकृति-शिव। विष्णु के समान यह प्रतिकृति-विष्णु। चित्रकर्म-अर्जुन के समान यह चित्र-अर्जुन। दुर्योधन के समान यह चित्र-दुर्योधन। ध्वज-कपि के समान यह ध्वज-कपि। गरुड के समान यह ध्वज-गरुड। सिंह के समान यह ध्वज-सिंह। कपि आदि की आकृति के ध्वज (झण्डे)।

सिद्धि-देवपथः। *देवपथ+सु+कन्। देवपथ+०। देवपथ+सु। देवपथः।*

यहां इव-अर्थ तथा प्रतिकृति अर्थ में विद्यमान 'देवपथ' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप् होता है। ऐसे ही-हंसपथः आदि।

ढञ्–

(६) वस्तेर्ढञ्।१०१।

प०वि०-वस्तेः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे वस्तेर्ढञ्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाद् वस्तिशब्दात् प्रातिपदिकाड्ढञ् प्रत्ययो भवति।

इतः प्रभृति इवार्थे प्रतिकृतौ चाप्रतिकृतौ च सामान्येन प्रत्यया विधीयन्ते।

उदा०-वस्तिरिवायम्-वास्तेयः। स्त्री चेत्-वास्तेयी।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (वस्तेः) वस्ति प्रातिपदिक से (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वस्ति=दृति (मशक) के समान आकृतिवाला पुरुष-वास्तेय। यदि स्त्री हो तो-वास्तेयी।

सिद्धि-वास्तेयः। *वस्ति+सु+ढञ्। वास्त्+एय। वास्तेय+सु। वास्तेयः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'वस्ति' शब्द से इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

ढः–

(७) शिलाया ढः।१०२।

प०वि०-शिलायाः ५।१ ढः १।१।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे शिलाया ढः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाच्छिला-शब्दात् प्रातिपदिकाड्ढः प्रत्ययो भवति।

उदा०-शिला इवेदम्-शिलेयं दधि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शिलायाः) शिला प्रातिपदिक से (ढः) ढ प्रत्यय होता है।*

उदा०-शिला=पत्थर के समान कठोर यह-शिलेय दधि (दही)।

सिद्धि-शिलेयम्। *शिला+सु+ढ। शिल्+एय। शिलेय+सु। शिलेयम्।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शिला' शब्द से इस सूत्र से 'ढ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

यत्-

(८) शाखादिभ्यो यत्।१०३।

प०वि०-शाखा-आदिभ्यः ५।३ यत् १।१।

स०-शाखा आदिर्येषां ते शाखादयः, तेभ्यः-शाखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे शाखादिभ्यो यत्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्यः शाखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शाखा इव-शाख्यः। मुखमिव-मुख्यः जघन इव-जघन्यः, इत्यादिकम्।

शाखा। मुख। जघन। शृङ्ग। मेघ। चरण। स्कन्ध। शिरस्। उरस्। अग्र। शरण। इति शाखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शाखादिभ्यः) शाखा-आदि प्रातिपदिकों से (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शाखा के समान (गौण)-शाख्य। मुख के समान (प्रधान)-मुख्य। जघन के समान (नीच)-जघन्य, इत्यादि।

सिद्धि-शाख्यः। *शाखा+सु+यत्। शाख्+य। शाख्य+सु। शाख्यः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शाखा' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मुख्यः**, जघन्यः।*

यत् (निपातनम्)-

(९) द्रव्यं च भव्ये।१०४।

प०वि०-द्रव्यम् १।१ च अव्ययपदम्, भव्ये ७।१।

अनु०-इवे, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवे द्रव्यं च यत् भव्ये।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानं द्रव्यमिति च पदं यत्प्रत्ययान्तं निपात्यते, भव्येऽभिधेये।

उदा०-द्रव्योऽयं राजपुत्रः। द्रव्योऽयं माणवकः, भव्य इत्यर्थः। अभिप्रेतार्थानां पात्रभूत इति भावः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इवे) अर्थ में विद्यमान (द्रव्यम्) द्रव्य पद (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित है (भव्य) यदि वहां भव्य=होनहार अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-यह राजकुमार द्रव्य=भव्य (होनहार) है। आशाओं का पात्र है। यह माणवक=बालक द्रव्य=भव्य (होनहार) है। **'भव्यगेयप्रवचनीय०'** (३।४।६८) से **'भव्य'** शब्द कर्ता अर्थ में निपातित है-**भवत्यसौ भव्यः।***

***सिद्धि**-द्रव्यः। द्रु+सु+यत्। द्रो+य। द्रव्+य। द्रव्य+सु। द्रव्यः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'द्रु' शब्द से भव्य अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय निपातित है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। द्रु=काष्ठमय पात्र। काष्ठमय पात्र में दधि आदि पदार्थ विकृत नहीं होता है।*

छः-

(१०) कुशाग्राच्छः।१०५।

प०वि०-कुशाग्रात् ५।१ छः १।१।

स०-कुशाया अग्रम्-कुशाग्रम्, तस्मात्-कुशाग्रात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे कुशाग्रात् छः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानात् कुशाग्रशब्दात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुमाग्रमिव सूक्ष्मा कुशाग्रीया बुद्धिः। कुशाग्रमिव तीक्ष्णम्-कुशाग्रीयं शस्त्रम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (कुशाग्रात्) कुशाग्र प्रातिपदिक से (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुशाग्र=दर्भ के अग्रभाग के समान सूक्ष्म-कुशाग्रीया बुद्धि। कुशाग्र=दर्भ के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण-कुशाग्रीय शस्त्र।

***सिद्धि-कुशाग्रीया।** कुशाग्र+सु+छ। कुशाग्र्+ईय। कुशाग्रीय+टाप्। कुशाग्रीया+सु। कुशाग्रीया+०। कुशाग्रीया।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'कुशाग्र' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

छः-

(११) समासाच्च तद्विषयात्।१०६।

प०वि०-समासात् ५।१ च अव्ययपदम्, तद्विषयात् ५।१।

स०-सः=इवार्थो विषयो यस्य सः-तद्विषयः, तस्मात्-तद्विषयात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे तद्विषयात् समासाच्छः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानात् तद्विषयात्=इवार्थविषयकात् समासात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-काकतालमिव-काकतालीयम्। अजाकृपाणमिव-अजाकृपाणीयम्। अन्धकवर्तिकमिव-अन्धकवर्तीयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृश में विद्यमान (तद्विषयात्) इवार्थ-विषयक (समासात्) समस्त प्रातिपदिक से (च) भी (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-काकताल के समान-काकतालीय। काक=कौवे के उड़ने और ताड-वृक्ष के पके हुये फल के गिरने के समान जहां दो बातें संयोगवश एक साथ होती हैं, उसे 'काकतालीय' कहते हैं।

अजाकृपाण के समान-अजाकृपाणीय। लटकती हुई तलवार के नीचे अजा का आना और तलवार के अकस्मात् गिरने से अजा के गले का कट जाने के समान जो कार्य होता है उसे 'अजाकृपाणीय' कहते हैं।

अन्धकवर्तिक के समान-अन्धकवर्तिकीय। अन्धे व्यक्ति के द्वारा हाथ का फैलाना और वर्तिका=बटेर का उसके हाथ में आ जाने के समान जो कार्य है वह 'अन्धकवर्तिकीय' कहाता है।

***सिद्धि-काकतालीयम्।** काकताल+सु+छ। काकताल्+इय। काकतालीय+सु। काकतालीयम्।*

*यहां प्रथम काकागमनं तालपतनमिव-काकतालम्, इस प्रकार काक और ताल शब्दों का **'सुप् सुपा'** से इव-अर्थ में केवलसमास होता है। तत्पश्चात् इवार्थ-विषयक, समस्त 'काकताल' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अजाकृपाणीयम्, अन्धकवर्तिकीयम्।***

अण्–

(१२) शर्करादिभ्योऽण्।१०७।

प०वि०-शर्करा-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शर्करा आदिर्येषां ते शर्करादयः, तेभ्यः-शर्करादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवतति।

अन्वयः-इवे शर्करादिभ्योऽण्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्यः शर्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शर्करा इव-शार्करम्। कपालिका इव-कापालिकम्, इत्यादिकम्।

शर्करा। कपालिका। पिष्टिक। पुण्डरीक। शतपत्र। गोलोमन्। गोपुच्छ। नरालि। नकुला। सिकता। इति शर्करादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शर्करादिभ्यः) शर्करा-आदि प्रातिपदिकों से (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शर्करा=शक्कर के समान मीठा-शार्कर। कपालिका=खोपड़ी के समान गोलाकार-कापालिक।

सिद्धि-शार्करम्। *शर्करा+सु+अण्। शार्कर्+अ। शार्कर+सु। शार्करम्।*

यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शर्करा' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कापालिकम्।***

ठक्—

(१३) अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्।१०८।

प०वि०-अङ्गुलि-आदिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-अङ्गुलिरादिर्येषां ते-अङ्गुल्यादयः, तेभ्यः-अङ्गुल्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवेऽङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्योऽङ्गुल्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अङ्गुलिरिव-आङ्गुलिकः। भरुज इव-भारुजिकः।

अङ्गुलि। भरुज। बभ्रु। वल्गु। मण्डर। मण्डल। शष्कुल। कपि। उदश्वित्। गोणी। उरस्। शिखा। कुलिश। इति अङ्गुल्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (अङ्गुल्यादिभ्यः) अङ्गुलि आदि प्रातिपदिकों से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अङ्गुलि के समान पतला-आङ्गुलिक। भरुज=भड़भूजा के समान आकृतिवाला-भारुजिक।

सिद्धि-आङ्गुलिकः। *अङ्गुलि+सु+ठक्। आङ्गुल्+इक। आङ्गुलिक+सु। आङ्गुलिकः।*

यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'अङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। ***'ठस्येकः'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है।* ***'किति च'*** *(७।२।११८)*

*से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप **होता** है। ऐसे ही-**भारुजिकः**।*

ठच्-विकल्पः–

(१४) एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०–एकशालायाः ५।१ ठच् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–एका चासौ शाला-एकशाला, तस्याः-एकशालायाः (कर्मधारयः)।

अनु०–इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–इवे एकशालाया अन्यतरस्यां ठच्।

अर्थः–इवार्थे वर्तमानाद् एकशालाशब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चानन्तरष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–एकशाला इव एकशालिकं गृहम् (ठच्)। ऐकशालिकं गृहम् (ठक्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (एकशालायाः) एकशाला प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है और पक्ष में अनन्तर=समीपस्थ ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-एकशाला=एक कमरे के समान-एकशालिक घर (ठच्)। ऐकशालिक घर (ठक्)।

*सिद्धि-(१) **एकशालिकम्**। एकशाला+सु+ठच्। एकशाल्+इक। एकशालिक+सु। एकशालिकम्।*

*यहां इव अर्थ में विद्यमान '**एकशाला**' शब्द से इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में '**इक्**' आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **ऐकशालिकम्**। यहां पूर्वोक्त 'एकशाला' शब्द से विकल्प पक्ष में 'ठक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ईकक्–

(१५) कर्कलोहितादीकक्।११०।

प०वि०–कर्क-लोहितात् ५।१ ईकक् १।१।

स०-कर्कश्च लोहितश्च एतयोः समाहारः कर्कलोहितम्, तस्मात्-कर्कलोहितात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे कर्कलोहिताद् ईकक्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाभ्यां कर्कलोहिताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् ईकक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कर्कः)** कर्कः=श्वेताश्व इव=कार्कीकोऽश्वः। **(लोहितः)** लोहितः=रक्त इव=लौहितीकः स्फटिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (कर्कलोहितात्) कर्क, लोहित प्रातिपदिकों से (ईकक्) ईकक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(कर्क)** कर्क=इन्द्र के श्वेत घोडे के समान जो घोड़ा है वह-कार्कीक। **(लोहित)** जो स्फटिक मणि, उपाश्रय से लोहित=रक्तवर्ण के समान है वह-लौहितीक।*

सिद्धि-कार्कीकः। *कर्क+सु+ईकक्। कार्क्+इक। कार्कीक+सु। कार्कीकः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'कर्क' शब्द से इस सूत्र से 'ईकक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**लौहितीकः।***

थाल्-

(१६) प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल् छन्दसि।१११।

प०वि०-प्रत्न-पूर्व-विश्व-इमात् ५।१ थाल् १।१ छन्दसि ७।१।

स०-प्रत्नश्च पूर्वश्च विश्वश्च इमश्च एतेषां समाहारः प्रत्नपूर्व-विश्वेमम्, तस्मात्-प्रत्नपूर्वविश्वेमात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि इवे प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल्।

अर्थः-छन्दसि विषये इवार्थे वर्तमानेभ्यः प्रत्नपूर्वविश्वेमेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्थाल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**प्रत्न:**) प्रत्न इव-प्रत्नथा। (**पूर्व:**) पूर्व इव-पूर्वथा। (**विश्व:**) विश्व इव-विश्वथा। (**इम:**) इम इव-इमथा।। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ० ५।४४।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (प्रत्नपूर्वविश्वेमात्) प्रत्न, पूर्व, विश्व, इम प्रातिपदिकों से (थाल्) थाल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(प्रत्न) प्रत्न=पुराने के समान-प्रत्नथा। (पूर्व) पूर्व के समान-पूर्वथा। (विश्व) सबके समान-विश्वथा। (इम) इस के समान-इमथा।। "इम-शब्दः इदमा समानार्थः प्रकृत्यन्तरम्" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ० ५।४४।१)।

*सिद्धि-**प्रत्नथा**। प्रत्न+सु+थाल्। प्रत्न+था। प्रत्नथा+सु। प्रत्नथा+०। प्रत्नथा।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'प्रत्न' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-**पूर्वथा, विश्वथा, इमथा**।*

इति इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्

ञ्यः—

(१) पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्।११२।

प०वि०-पूगात् ५।१ ञ्यः १।१ अग्रामणी-पूर्वात् ५।१।

स०-ग्रामणीः पूर्वः=अवयवो यस्य तद् ग्रामणीपूर्वम्, न ग्रामणीपूर्वम्-अग्रामणीपूर्वम्, तस्मात्-अग्रामणीपूर्वात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। पूर्वशब्दोऽत्रावयववचनो गृह्यते।

अनु०-'इवे' इति निवृत्तम्।

अन्वयः-अग्रामणीपूर्वात् पूगाद् ञ्यः।

अर्थः-अग्रामणीपूर्वात्=ग्रामणी-अवयववर्जितात् पूगवाचिनः प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घा पूगा इति कथ्यन्ते।

उदा०-लोहध्वज एव-लौहध्वज्यः। लौहध्वज्यौ। लोहध्वजाः। शिबिरेव-शैब्यः, शैब्यौ, शिबयः। चातक एव-चातक्यः। चातक्यौ। चातकाः।

अग्रामणीपूर्वादिति किम् ? देवदत्तः ग्रामणीरेषां ते इमे–देवदत्तकाः। यज्ञदत्तकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अग्रामणीपूर्वात्) ग्रामणी=ग्राम का नायक पूर्व=अवयव नहीं है जिसका उस (पूगात्) संघवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

नाना जातिवाले, अनिश्चित जीविकावाले, अर्थ और काम की प्रधानतावाले सङ्घों को 'पूग' कहते हैं।

उदा०–लोहध्वज ही–लौहध्वज्य। शिबि ही–शैब्य। चातक ही–चातक्य।

*इस 'ञ्य' प्रत्यय की **'ञ्यादयस्तद्राजा:'** (५।३।११९) से तद्राज-संज्ञा है अतः **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से बहुवचन में इस तद्राजसंज्ञक 'ञ्य' प्रत्यय का लुक् हो जाता है–बहुत लोहध्वज ही–लोहध्वज। बहुत शिबि ही–शिबि। बहुत चातक ही–चातक।*

*यहां **'अग्रामणीपूर्वात्'** पद का ग्रहण इसलिये किया गया है कि यहां 'ञ्य' प्रत्यय न हो–देवदत्त है ग्रामणी इनका वे ये–देवदत्तक। यज्ञदत्त है ग्रामणी इनका वे ये–यज्ञदत्तक। यहां **'स एषां ग्रामणीः'** (५।२।७८) से 'कन्' प्रत्यय होता है।*

***सिद्धि–लौहध्वज्यः।** लोहध्वज+सु+ञ्य। लौहध्वज्+य। लौहध्वज्य+सु। लौहध्वज्यः।*

*यहां अग्रामणीपूर्वक, पूगवाची 'लोहध्वज' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–शैब्यः, **चातक्यः।***

ञ्यः–

(२) व्रातच्फञोरस्त्रियाम्।११३।

प०वि०–व्रात-च्फञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अस्त्रियाम् ७।१।

स०–व्रातश्च च्फञ् च तौ व्रातच्फञौ, तयोः–व्रातच्फञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न स्त्री–अस्त्री, तस्याम्–अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–ञ्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–व्रातच्फञ्भ्यां ञ्योऽस्त्रियाम्।

अर्थः–व्रातवाचिनश्च्फञ्प्रत्ययान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, अस्त्रियामभिधेयायाम्।

नानाजातीया अनियतवृत्तय उत्सेधजीविनः सङ्घा व्राता इति कथ्यन्ते।

उदा०-**(व्रातः)** कपोतपाक एव-कापोतपाक्यः, कापोतपाक्यौ, कपोतपाकाः। व्रीहिमत एव-व्रैहिमत्यः, व्रैहिमत्यौ, व्रीहिमताः। **(च्फञन्तम्)** कौञ्जायन एव-कौञ्जायन्यः, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायनाः। ब्राध्नायन एव-ब्राध्नायन्यः, ब्राध्नायन्यौ, ब्राध्नायनाः।

अस्त्रियामिति किम्-कपोतकी। व्रीहिमती। कौञ्जायनी। ब्राध्नायनी।

आर्यभाषाः अर्थ-*(व्रातच्फञोः) व्रातवाची और च्फञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (अस्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री अर्थ अभिधेय न हो।*

नाना जातिवाले, अनिश्चित जीविकावाले, उत्सेधजीवी=शस्त्र से प्राणियों को मारकर जीवन-निर्वाह करनेवाले संघ 'व्रात' कहाते हैं।

*उदा०-**(व्रात)** कपोतपाक ही-कापोतपाक्य। व्रीहिमत ही-व्रैहिमत्य। यहां इस तद्राजसंज्ञक 'ञ्य' प्रत्यय का बहुवचन में पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कपोतपाक ही-कपोतपाक। बहुत व्रीहिमत ही-व्रीहिमत। कपोतपाक=कबूतर पकानेवाले। व्रीहिमत=जंगली चावलों को ही बहुत माननेवाले। **(च्फञन्त)** कौञ्जायन ही-कौञ्जायन्य। ब्राध्नायन ही-ब्राध्नायन्य। यहां बहुवचन में 'ञ्य' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कौञ्जायन ही-कौञ्जायन। बहुत ब्राध्नायन ही-ब्रध्नायन। स्त्रीलिङ्ग में 'ञ्य' प्रत्यय नहीं होता है-कपोतपाकी, व्रीहिमती, कौञ्जायनी, ब्राध्नायनी।*

सिद्धि-(१) कापोतपाक्यः। *कपोतपाक+सु+ञ्य। कापोतपाक्+य। कापोतपाक्य+सु। कापोतपाक्यः।*

*यहां व्रातवाची 'कपोतपाक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**व्रैहिमत्यः।***

*(२) **कौञ्जायन्यः।** कौञ्जायन+सु+ञ्य। कौञ्जयन्+य। कौञ्जायन्य+सु। कौञ्जायन्यः।*

*यहां प्रथम 'कुञ्ज' शब्द से **'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्'** (४।१।९८) से गोत्रापत्य अर्थ में 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् च्फञ्-प्रत्ययान्त 'कौञ्जायन' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् आदिवृद्धि (पर्जन्यवत्) और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राध्नायन्यः।***

ञ्यट्-

(३) आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड्वाहीकेष्व-ब्राह्मणराजन्यात्।११४।

प०वि०-आयुधजीवि-सङ्घात् ५।१ ञ्यट् १।१ वाहीकेषु ७।३ अब्राह्मणराजन्यात् ५।१।

स०-आयुधजीविनां सङ्घ इति आयुधजीविसङ्घः, तस्मात्-आयुधजीविसङ्घात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। ब्राह्मणश्च राजन्यश्च एतयोः समाहारो ब्राह्मणराजन्यम्, न ब्राह्मणराजन्यम्-अब्राह्मणराजन्यम्, तस्मात्-अब्राह्मणराजन्यात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्याद् आयुधजीविसङ्घाद् ञ्यट्।

अर्थः-वाहीकेषु वर्तमानाद् ब्राह्मणराजन्यवर्जिताद् आयुधसङ्घवाचिनः प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कौण्डीबृस एव-कौण्डीबृस्यः, कौण्डीबृस्यौ, कौण्डीबृसाः। क्षुद्रक एव-क्षौद्रक्यः, क्षौद्रक्यौ, क्षुद्रकाः। मालव एव-मालव्यः, मालव्यौ, मालवाः। स्त्री चेत्-कौण्डीबृसी। क्षौद्रकी। मालवी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वाहीकेषु) वाहीक देश में रहनेवाले (अब्राह्मणराजन्यात्) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण से रहित (आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी संघवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यट्) ञ्यट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कौण्डीबृस ही-कौण्डीबृस्य। क्षुद्रक ही-क्षौद्रक्य। मालव ही-मालव्य। यहां बहुवचन में 'ञ्यट्' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कौण्डीबृस ही-कौण्डीबृस। बहुत क्षुद्रक ही-क्षुद्रक। बहुत मालव ही-मालव। यदि स्त्री हो तो-कौण्डीबृसी। क्षौद्रकी। मालवी।

सिद्धि-कौण्डीबृस्यः। कौण्डीबृस+सु+ञ्यट्। कौण्डीबृस्+य। कौण्डीबृस्य+सु। कौण्डीबृस्यः।

*यहां वाहीक देशनिवासी ब्राह्मण और राजन्य=क्षत्रिय वर्ण से भिन्न आयुजीवी संघवाची 'कौण्डीबृस' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्यट्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-कौण्डीबृसी। **'हलस्तद्धितस्य'** (६।४।१५०) से यकार का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**क्षौद्रक्यः मालव्यः।** यदि स्त्री हो तो-**क्षौद्रकी, मालवी।***

विशेषः ***वाहीक**-सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था जिसके अन्तर्गत मद्र, उशीनर और त्रिगर्त ये मुख्य भाग थे। पांच नदियोंवाला 'पंजाब' प्रदेश।*

टेण्यण्--

(४) वृकाट् टेण्यण्।११५।

प०वि०-वृकात् ५।१ टेण्यण् १।१।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आयुधजीविसङ्घाद् वृकाट् टेण्यण्।

अर्थः-आयुधजीविसङ्घवाचिनो वृक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे टेण्यण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-वृक एव-वार्केण्यः, वार्केण्यौ, वृकाः। स्त्री चेत्-वार्केणी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी सङ्घवाची (वृकात्) वृक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (टेण्यण्) टेण्यण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वृक ही-वार्केण्य। यहां बहुवचन में 'टेण्यण्' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है। बहुत वृक ही-वृक। यदि स्त्री हो तो-वार्केणी।

***सिद्धि-वार्केण्यः।** वृक+सु+टेण्यण्। वार्क्+एण्य। वार्केण्य+सु। वार्केण्यः।*

*यहां आयुधजीवी संघवाची 'वृक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'टेण्यण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'हलस्तद्धितस्य'** (६।४।१५०) से यकार का लोप हो जाता है-**वार्केणी।***

छः--

(५) दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः।११६।

प०वि०-दामन्यादि-त्रिगर्तषष्ठात् ५।१ छः १।१।

स०-दामनी आदिर्येषां ते दामान्यादयः। येषामायुधजीविनां सङ्घानां षड् अन्तर्वर्गाः सन्तिः, तेषु च त्रिगर्तः षष्ठो वर्तते, त्रिगर्तः षष्ठो येषां ते-त्रिगर्तषष्ठाः। दामन्यादयश्च त्रिगर्तषष्ठाश्च एतेषां समाहारो दामन्यादित्रिगर्तषष्ठम्, तस्मात्-दामन्यादित्रिगर्तषष्ठात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-आयुधजीविसङ्घाद् दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठाच्च छः।

अर्थ:-आयुधजीविसङ्घवाचिभ्यो दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दामन्यादि:) दामनी एव-दामनीयः, दामनीयौ, दामन्यः। औलपिरेव-औलपीयः, औलपीयौ, औलपयः, इत्यादिकम्। **(त्रिगर्तषष्ठाः)** कौण्डोपरथ एव-कौण्डोपरथीयः, कौण्डौपरथीयौ, कौण्डोपरथाः। दाण्डकी एव-दाण्डकीयः, दाण्डकीयौ, दाण्डक्यः। क्रौष्टकिरेव-क्रौष्टकीयः, कौष्टकीयौ, कौष्टकयः। जालमानिरेव-जालमानीयः, जालमानीयौ, जालमानयः। ब्राह्मगुप्त एव-ब्राह्मगुप्तीयः, ब्राह्मगुप्तीयौ, ब्राह्मगुप्ताः। जानकिरेव-जानकीयः, जानकीयौ, जानकयः।

आहुस्त्रिगर्तषष्ठाँस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
क्रौष्टकिर्जालमानिश्च ब्राह्मगुप्तोऽथ जानकिः।।

दामनी। औलपि। आकिदन्ती। काकरन्ति। काकदन्ति। शत्रुन्तपि। सार्वसेनि। बिन्दु। मौञ्जायन। उलभ। सावित्रीपुत्र। इति दामन्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी-संघवाची (दामन्यादि-त्रिगर्तषष्ठात्) दामनी आदि और जिन शस्त्रजीवी संघों में छः आन्तरिक वर्ग हैं तथा उनमें त्रिगर्त छठा है, उन शस्त्रजीवी-संघवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (छ:) छ प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(दामनी आदि)** दामनी ही-दामनीय। औलपि ही-औलपीय। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'छ' प्रत्यय का लुक् हो जाता है-बहुत दामनी ही-दामनी। बहुत औलपि ही-औलपि, इत्यादि। **(त्रिगर्तषष्ठ)** कौण्डोपरथ ही-कौण्डोपरथीय। दाण्डकी ही-दाण्डकीय। कौष्टकि ही क्रौष्टकीय। जालमानि ही-जालमानीय। ब्राह्मगुप्त ही-ब्राह्मगुप्तीय। जानकि ही-जानकीय। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'छ' प्रत्यय का लुक् हो जाता है-बहुत कौण्डोपरथ ही-कौण्डोपरथ। बहुत दाण्डकी ही-दाण्डकि। बहुत क्रौष्टकि ही-क्रौष्टकि। बहुत जालमानि ही-जालमानि। बहुत ब्राह्मगुप्त ही-ब्राह्मगुप्त। बहुत जानकि ही-जानकि।*

कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्रौष्टकि, जालमानि, ब्राह्मगुप्त और जानकि ये आयुधजीवी सङ्घ 'त्रिगर्तषष्ठ' कहाते हैं।

***सिद्धि**-दामनीयः। दामनी+सु+छ। दामन्+ईय। दामनीय+सु। दामनीयः।*

*यहां आयुधजीवी संघवाची 'दामनी' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औलपीयः**, आदि।*

अण्-अञ्-

(६) पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ।११७।

प०वि०-पर्श्वादि-यौधेयादिभ्यः ५।३ अण्-अञौ १।२।

स०-पर्शुरादिर्येषां ते पर्श्वादयः, यौधेय आदिर्येषां ते यौधेयादयः, पर्श्वादयश्च यौधेयादयश्च ते पर्श्वादियौधेयादयः, तेभ्यः-पर्श्वादियौधेयादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अण् च अञ् च तौ अणञौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आयुधजीविसङ्घेभ्यः पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ।

अर्थः-आयुधजीतिसङ्घवाचिभ्यः पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्च प्राति-पदिकेभ्यः स्वार्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(पर्श्वादिः) पर्शुरिव-पार्शवः, पार्शवौ, पर्शवः। असुर एव-आसुरः, आसुरौ, असुराः, (अण्) इत्यादिकम्। **(यौधेयादिः)** यौधेय एव-यौधेयः, यौधेयौ, यौधेयाः। कौशेय एव-कौशेयः, कौशेयौ, कौशेयाः (अञ्) इत्यादिकम्।

(१) पर्शु। असुर। रक्षस्। वाल्हीक। वयस्। मरुत्। दशार्ह। पिशाच। विशाल। अशनि। कार्षापण। सत्वत्। वसु। इति पर्श्वादयः।।

(२) योधेय। कौशेय। क्रोशेय। शौक्रेय। शौभ्रेय। धार्तेय। वार्तेय। जाबालेय। त्रिगर्त। भरत। उशीनर। इति यौधेयादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी-संघवाची (पर्श्वादि-यौधेयादिभ्यः) पर्शु-आदि और यौधेय-आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अणञौ) यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(पर्श्वादि) पर्शु ही-पार्शव। असुर ही-आसुर (अण्) इत्यादि। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय का लुक् होता है-बहुत पर्शु ही-पर्शु। बहुत असुर ही-असुर। **(यौधेयादि)** यौधेय ही-यौधेय। शौक्रेय ही-शौक्रेय (अञ्) इत्यादि। यहां बहुवचन में **पूर्ववत्** 'अञ्' प्रत्यय का लुक् होता है-बहुत यौधेय ही-यौधेय। बहुत शौक्रेय ही-शौक्रेय।*

सिद्धि-(१) पार्श्वः । पर्शु+सु+अण् । पार्शो+अ । पार्शव्+अ । पार्शव+सु । पार्शवः ।

*यहां आयुजीवी-संघवाची 'पर्शु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**आसुरः।***

*(२) **यौधेयः।** यौधेय+सु+अञ्। यौधेय्+अ। यौधेय+सु। यौधेयः।*

*यहां आयुधजीवी-संघवाची 'यौधेय' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शौक्रेयः।***

यञ्-

(७) अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमी-वदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ्।११८।

प०वि०- अभिजित्-विदभृत्-शालावत्-शिखावत्-शमीवत्- ऊर्णावत्-श्रुमत्-अणः ५।१। यञ् १।१।

स०-अभिजिच्च विदभृच्च शालावच्च शिखावच्च शमीवच्च ऊर्णावच्च श्रुमच्च ते-अभिजित्०श्रुमतः, तेभ्यः-अभिजित्०श्रुमद्भ्यः, अभिजित्०श्रुमद्भ्यो योऽण्-अभिजित्०श्रीमदण्, तस्मात्-अभिजित्०श्रुमदणः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इति निवृत्तम्।

अन्वयः-अभिजित्०श्रुमद्भ्योऽणन्तेभ्यो यञ्।

अर्थः-अभिजिदादिभ्योऽण्प्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यञ् प्रत्ययो भवति। अत्र गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्याण्प्रत्ययस्य ग्रहणमिष्यते।

उदा०-(**अभिजित्**) अभिजितो गोत्रापत्यम्-आभिजितः। आभिजित एव-आभिजित्यः, आभिजित्यौ, आभिजिताः। (**विदभृत्**) विदभृतो गोत्रापत्यम्-वैदभृतः। वैदभृत एव-वैदभृत्यः, वैदभृत्यौ, वैदभृताः। (**शालावत्**) शालावतो गोत्रापत्यम्-शालवतः। शालावत एव-शालावत्यः, शालावत्यौ, शालावताः। (**शिखावत्**) शिखावतो गोत्रापत्यम्-शैखावतः। शैखावत एव-शैखावत्यः, शैखावत्यौ, शैखावता। (**शमीवत्**) शमीवतो

गोत्रापत्यम्-शामीवतः । शामीवत एव-शामीवत्यः शामीवत्यौ, शामीवताः । **(ऊर्णावत्)** ऊर्णावतो गोत्रापत्यम्-और्णावतः । और्णावत एव-और्णावत्यः, और्णावत्यौ, और्णावताः । **(श्रुमत्)** श्रुमतो गोत्रापत्यम्-श्रौमत्। श्रौमत् एव श्रौमत्यः । श्रौमत्यौ, श्रौमताः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभिजित्०श्रुमदणः) अभिजित्, विदभृत्, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत्, श्रुमत् इन अण्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है। यहां* ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से गोत्रापत्य अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०- ***(अभिजित्)*** *अभिजित् का गोत्रापत्य=पौत्र-आभिजित। आभिजित ही-आभिजित्य।* ***(विदभृत्)*** *विदभृत् का गोत्रापत्य-वैदभृत। वैदभृत ही-वैदभृत्य।* ***(शालावत्)*** *शालावत् का गोत्रापत्य-शालवत। शालवत ही-शालावत्य।* ***(शिखावत्)*** *शिखावत् का गोत्रापत्य-शैखावत। शैखावत ही-शैखावत्य।* ***(शमीवत्)*** *शमीवत् का गोत्रापत्य-शामीवत। शामीवत ही-शामीवत्य।* ***(ऊर्णावत्)*** *ऊर्णावत् का गोत्रापत्य-और्णावत। और्णावत ही-और्णावत्यः।* ***(श्रुमत्)*** *श्रुमत् का गोत्रापत्य-श्रौमत। श्रौमत ही श्रौमत्य।*

यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'यञ्' का लुक् होता है। बहुत आभिजित ही-आभिजित। बहुत वैदभृत ही-वैदभृत। बहुत शालावत ही-शालावत। बहुत शैखावत ही-शैखावत। बहुत शामीवत ही-शामीवत। बहुत और्णावत ही-और्णावत। बहुत श्रौमत ही-श्रौमत।

सिद्धि-आभिजित्यः। *अभिजित्+ङस्+अण्। आभिजित्+अ। आभिजित।। आभिजित्+सु+यञ्। आभिजित्+य। आभिजित्य+सु। आभिजित्यः।*

यहां प्रथम 'अभिजित्' शब्द से ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) गोत्रापतय अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होकर 'आभिजित' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् अण्-प्रत्ययान्त 'आभिजित' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-वैदभृत्यः आदि।*

तद्राजसंज्ञा-

(८) ञ्यादयस्तद्राजाः ।११६।

प०वि०-ञ्य-आदयः १।३ तद्राजाः १।३।

स०-ञ्य आदिर्येषां ते-ञ्यादयः (बहुव्रीहिः)। तेषां राजा-तद्राजः, ते तद्राजाः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अर्थः-'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' (५।३।११२) इत्यस्मात् प्रभृति ये ञ्यादयः प्रत्ययास्ते तद्राजसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-लोहध्वज एव-लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, लोहध्वजाः, इत्यादिक-मुदाहृतमेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ञ्यादयः) 'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' (५।३।११२) इस सूत्र से लेकर यहां तक जो ञ्य-आदि प्रत्यय विधान किये हैं उनकी (तद्राजाः) तद्राज संज्ञा होती है।*

उदा०-लोहध्वज ही-लौहध्वज्य इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

*तद्राज संज्ञा का फल यह है कि **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का बहुवचन में लुक् हो जाता है, जैसे-**लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, लोहध्वजाः।** इस प्रकार इस प्रकरण में सर्वत्र दर्शाया गया है।*

सिद्धि-लोहध्वजाः। *लोहध्वज+जस्+ञ्य। लोहध्वज+०। लोहध्वज+जस्। लोहध्वजाः।*

*यहां पूगवाची 'लोहध्वज' शब्द से 'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' (५।३।११२) से **'ञ्य'** प्रत्यय है। इस सूत्र से उसकी 'तद्राज' संज्ञा होकर बहुवचन में **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से 'ञ्य' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**शिबयः** आदि।*

इति तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

वीप्सार्थप्रत्ययविधिः

वुन्–

(१) पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च।१।

प०वि०–पाद-शतस्य ६।१ संख्यादेः ६।१ वीप्सायाम् ७।१ लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०–पादश्च शतं च एतयोः समाहारः पादशतम्, तस्य-पादशतस्य (समाहारद्वन्द्वः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, तस्य-संख्यादेः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–संख्यादेः पादशताद् वुन् लोपश्च वीप्सायाम्।

अर्थः–संख्यादेः पादान्तात् शतान्ताच्च प्रातिपदिकाद् वुन् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य च लोपो भवति, वीप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(**पादान्तम्**) द्वौ द्वौ पादौ ददाति-द्विपदिकां ददाति। (**शतान्तम्**) द्वे द्वे शते ददाति-द्विशतिकां ददाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यादेः) संख्या जिसके आदि में है उस (पादशतस्य) पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और (लोपः) अन्त्य अकार का लोप होता है (वीप्सायाम्) यदि वहां वीप्सा=व्याप्ति अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-(**पादान्त**) दो-दो पाद (कार्षापण का चौथा भाग) प्रदान करता है-द्विपदिका प्रदान करता है। (**शतान्त**) दो-दो शत=सौ कार्षापण प्रदान करता है-द्विशतिका प्रदान करता है।*

*सिद्धि-**द्विपदिका**। द्वि+औ+पाद+औ। द्विपाद+सु+ वुन्। द्विपाद्+अक। द्विपद्+अक। द्विपदक+टाप्। द्विपदिका+सु। द्विपदिका।*

*यहां प्रथम 'द्वि' और 'पाद' सुबन्तों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से तद्धितार्थ विषय में समानाधिकरण (कर्मधारय) तत्पुरुष समास होता है। तत्पश्चात्-संख्यादि तथा पादान्त 'द्विपाद' शब्द से वीप्सा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय और अन्त्य अकार का लोप होता है। यहां 'यस्येति च' (६।४।१४८) से भी अन्त्य अकार का लोप सिद्ध था पुनः यहां लोप-विधान इसलिये किया है कि '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से विहित लोप पर-निमित्तक है, वह लोपादेश '**पादः पत्**' (६।४।१३०) से पाद के स्थान में पद्-आदेश करते समय 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' (१।१।५७) से*

*स्थानिवत् होकर उक्त पद्-आदेश करने में बाधक न हो। इस प्रकार 'पाद' को पद्-आदेश होकर स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से अकार को इकार आदेश होता है। **'स्वभावाच्च वुन्प्रत्ययान्तं स्त्रियामेव भवति'** वुन्-प्रत्ययान्त शब्द स्वभावतः स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। ऐसे ही-**द्विशतिका।***

दण्ड-व्यवसगार्थप्रत्ययविधिः

वुन्–

(१) दण्डव्यवसर्गयोश्च।२।

प०वि०-दण्ड-व्यवसर्गयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-दण्डश्च व्यवसर्गश्च तौ दण्डव्यवसर्गौ, तयोः-दण्डव्यवसर्गयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पादशतस्य, संख्यादेः, वुन्, लोपः, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यादेः पादशताद् वुन् लोपश्च, दण्डव्यवसर्गयोश्च।

अर्थः-संख्यादेः पादान्तात् शतान्ताच्च प्रातिपदिकाद् वुन् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य च लोपो भवति, दण्डव्यवसर्गयोश्च गम्यमानयोः। दण्डः=दमनम्। व्यवसर्गः=दानम्।

उदा०-**(पादान्त)** द्वौ पादौ दण्डितः-द्विपदिकां दण्डितः (दण्डः)। द्वौ पादौ व्यवसृजति-द्विपदिकां व्यवसर्जीति (व्यवसर्गः)। **(शतान्तम्)** द्वे शते दण्डितः-द्विशतिकां दण्डितः (दण्डः)। द्वे शते व्यवसृजति-द्विशतिकां व्यवसृजति (व्यवसर्गः)।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संख्यादेः) संख्या जिसके आदि में है उस (पादशतस्य) पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और (लोपः) अन्त्य अकार का लोप होता है **(दण्डव्यवसर्गयोः) यदि** वहां दण्ड=दमन और व्यवसर्ग=दान अर्थ **की** (च) भी प्रतीति हो।*

उदा०-(पादान्त) दो पाद (कार्षापण का चतुर्थ-भाग) से दण्डित किया गया-द्विपदिका दण्डित (दण्ड)। दो पाद प्रदान करता है-द्विपदिका प्रदान करता है (व्यवसर्ग)। (शतान्त) दो शत=सौ कार्षापण से दण्डित किया गया-द्विशतिका दण्डित (दण्ड)। दो शत=सौ कार्षापण प्रदान करता है-द्विशतिका प्रदान करता है (व्यवसर्ग)।

***सिद्धि**-द्विपदिका और द्विशतिका पदों की सिद्धि पूर्ववत् है, यहां केवल दण्ड और व्यवसर्ग अर्थ अभिधेय विशेष है।*

प्रकारार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्।३।

प०वि०–स्थूल–आदिभ्यः ५।३ प्रकारवचने ७।१ कन् १।१।

स०–स्थूल आदिर्येषां ते स्थूलादयः, तेभ्यः-स्थूलादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। प्रकारस्य वचनम्-प्रकारवचनम्, तस्मिन्-प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)। प्रकारः=विशेषः।

अन्वयः–प्रकारवचने स्थूलादिभ्यः कन्।

अर्थः–प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः स्थूलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्थूलप्रकारः–स्थूलकः। अणुकः। माषकः, इत्यादिकम्।

स्थूल। अणु। माष। इषु। कृष्ण तिलेषु। यव व्रीहिषु। पाद्यकालावदाताः सुरायाम्। गोमूत्र आच्छादने। सुराया अहौ। जीर्ण शालिषु। पत्रमूले समस्त–व्यस्ते। कुमारीपुत्र। कुमार। श्वशुर। मणिक। इति स्थूलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ–(प्रकारवचने) प्रकार–वचन अर्थ में विद्यमान (स्थूलादिभ्यः) स्थूल–आदि प्रातिपदिकों से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०–स्थूल प्रकारवाला–स्थूलक। अणु=सूक्ष्म प्रकारवाला–अणुक। माष=उड़द (काला) प्रकारवाला–माषक, इत्यादि।

सिद्धि–स्थूलकः। *स्थूल+सु+कन्। स्थूल+क। स्थूलक+सु। स्थूलकः।*

यहां प्रकार अर्थ में विद्यमान 'स्थूल' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही–अणुकः, माषकः।

अनत्यन्तगत्यर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) अनत्यन्तगतौ क्तात्।४।

प०वि०–अनत्यन्त–गतौ ७।१ क्तात् ५।१।

स०–अत्यन्ता चासौ गतिः–अत्यन्तगतिः, न अत्यन्तगतिः–अनत्यन्तगतिः, तस्याम्–अनत्यन्तगतौ (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनत्यन्तगतौ क्तात् कन्।

अर्थः-अनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानात् क्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनत्यन्तं भिन्नः-भिन्नको घटः। अनत्यन्तं छिन्नः-छिन्नको वृक्षः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अनत्यन्तगतौ) अशेष-सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अनत्यन्त भिन्न=सर्वथा न फूटा हुआ-भिन्नक घट। अनत्यन्त छिन्न=सर्वथा न कटा हुआ-छिन्नक वृक्ष।

सिद्धि-भिन्नकः। *भिन्न+सु+कन्। भिन्न+क। भिन्नक+सु। भिन्नकः।*

*यहां अनत्यन्त गति अर्थ में विद्यमान, क्त-प्रत्ययान्त 'भिन्न' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**छिन्नकः।***

कन्-प्रतिषेधः-

(२) न सामिवचने।५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, सामिवचने ७।१।

अनु०-कन्, अनत्यन्तगतौ क्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सामिवचनेऽनत्यन्तगतौ क्तात् कन् न।

अर्थः-सामिवचने उपपदेऽनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानात् क्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-सामि कृतमिति-सामिकृतम्। सामि भुक्तमिति-सामिभुक्तम्। वचनग्रहणं पर्यायार्थम्। अर्धं कृतमिति-अर्धकृतम्। नेमं कृतमिति-नेमकृतम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सामिवचने) सामिवाची शब्द उपपद होने पर (अनत्यन्तगतौ) अशेष सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-सामि=आधा किया-सामिकृत। सामि=आधा खाया-सामिभुक्त। सूत्र में वचन शब्द के पाठ से पर्यायवाची शब्दों का भी ग्रहण होता है-अर्ध=आधा किया-अर्धकृत। नेम=आधा किया-नेमकृत।

सिद्धि-सामिकृतम्। सामि+सु+कृत+सु। सामि+कृत। सामिकृत+सु। सामिकृतम्।

यहां सामि शब्द उपपद होने पर क्त-प्रत्ययान्त 'कृत' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'सामि' (२।१।२७) से तत्पुरुष समास होता है। ऐसे ही-सामिभुक्तम्, अर्धकृतम्, नेमकृतम्।

कन्–

(३) बृहत्या आच्छादने।६।

प०वि०-बृहत्याः ५।१ आच्छादने ७।१।

अनु०-कन् अनत्यन्तगतौ इति चानुवर्तते। 'न' इति च नानुवर्तते।

अन्वयः-अनत्यन्तगतौ बृहत्याः कन्, आच्छादने।

अर्थः-अनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानाद् बृहती-शब्दात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, आच्छादनेऽभिधेये।

उदा०-अनत्यन्ता बृहती-बृहतिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनत्यन्तगतौ) अशेष-सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (बृहत्याः) बृहती प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (आच्छादने) यदि वहां आच्छादन=वस्त्र अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-अनत्यन्त बृहती-बृहतिका (चदरिया)।

सिद्धि-बृहतिका। *बृहती+सु+कन्। बृहति+क। बृहतिक+टाप्। बृहतिका+सु। बृहतिका।*

यहां अनत्यन्तगति अर्थ में विद्यमान 'बृहती' शब्द से आच्छादन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से अंग के अण् (ई) को ह्रस्व होता है।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

खः–

(१) अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः।७।

प०वि०- अषडक्ष-आशितङ्गु-अलङ्कर्म-अलम्पुरुष-अध्युत्तर-पदात् ५।१ खः १।१।

स०-अधि उत्तरपदं यस्य तत्-अध्युत्तरपदम्। अषडक्षश्च आशितङ्गु च अलङ्कर्मा च अलम्पुरुषश्च अध्युत्तरपदं च एतेषां समाहारः-

अषडक्ष०अध्युत्तरपदम्, तस्मात्-अषडक्ष०अध्युत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अषडक्ष०अध्युत्तरपदात् स्वार्थे खः।

अर्थः-अषडक्ष-आशितङ्गु-अलङ्कर्म-अलम्पुरुषेभ्योऽध्युत्तर-पदेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अषडक्षः**) अविद्यमानानि षडक्षीणि यस्मिन् सः-अषडक्षः। अषडक्ष एव-अषडक्षीणो मन्त्रः। यो द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रियते, न बहुभिः। (**आशितङ्गुः**) आशिता गावो यस्मिँस्तत्-आशितङ्गवीनमरण्यम्। (**अलङ्कर्मा**) अलङ्कर्मणे-अलङ्कर्मीणः। (**अलम्पुरुषः**) अलम्पुरुषाय-अलम्पुरुषीणः। (**अध्युत्तरपदम्**) राजनि अधि-राजाधीनम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(अषडक्ष०अध्युत्तरपदात्) अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्मन्, अलम्पुरुष तथा अधि-उत्तरपदवाले **प्रातिपदिकों** से स्वार्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अषडक्ष)** जहां छः आंख विद्यमान नहीं है वह अषडक्ष, अषडक्ष ही-अषडक्षीण मन्त्र। दो पुरुषों के द्वारा किया गया गुप्त विचार। **(आशितङ्गु)** जिसमें गौवें सब घास को चर चुकी हैं वह-आशितङ्गु, आशितङ्गु ही-आशितङ्गवीन अरण्य (जंगल)। **(अलङ्कर्मा)** कर्म करने के लिये जो समर्थ है वह-अलङ्कर्मा, अलङ्कर्मा ही-अलङ्कर्मीण। **(अलम्पुरुष)** जो पुरुष प्रति संघर्ष के लिये पर्याप्त है वह-अलम्पुरुष, अलम्पुरुष ही-अलम्पुरुषीण। **(अध्युत्तरपद)** जो राजा के अधिकार में है वह-राजाधि, राजाधि ही-राजाधीन।*

सिद्धि-(१) अषडक्षीणः। *अषडक्ष+सु+ख। अषडक्ष्+ईन। अषडक्षीण+सु। अषडक्षीणः।*

*यहां 'अषडक्ष' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(२) **आशितङ्गवीनम्।** यहां 'आशितङ्गु' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है और निपातन से पूर्वपद को 'मुम्' आगम होता है।*

*(३) **अलङ्कर्मीणः।** यहां 'अलङ्कर्मन्' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है और पूर्ववत् णत्व होता है। 'अलङ्कर्मा' शब्द में वा०- **'पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या'** (२।२।१८) से प्रादि समास है।*

*(४) **अलम्पुरुषीणः।** यहां 'अलम्पुरुष' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर पूर्ववत् णत्व होता है।*

(५) राजाधीनः। राजन्+ङि+अधि+सु। राज+अधि। राजाधि+सु+ख। राजाध्+ईन। राजाधीन+सु। राजाधीनः।

यहां प्रथम राजन् और अधि सुबन्तों का 'सप्तमी शौण्डैः' (२।१।४०) से सप्तमीतत्पुरुष होता है। 'अधि' शब्द शौण्डादिगण में पठित है। तत्पश्चात् 'राजाधि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ख-विकल्पः—

(२) विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम्।८।

प०वि०-विभाषा १।१ अञ्चेः ५।१ अदिक्-स्त्रियाम् ७।१।

स०-दिक् चासौ स्त्री-दिक्स्त्री, न दिक्स्त्री-अदिक्स्त्री, तस्याम्-अदिक्स्त्रियाम् (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ख इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अदिक्स्त्रियाम् अञ्चेर्विभाषा खः।

अर्थः-अदिक्स्त्रियां वर्तमानाद् अञ्चति-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्राक्, प्राचीनम्। अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अदिक्स्त्रियाम्) दिशावाची स्त्रीलिङ्ग से भिन्न विषय में विद्यमान (अञ्चेः) अञ्चति-अन्तवाले प्रातिपदिक से स्वार्थ में (विभाषा) विकल्प से (ख) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्राक्, प्राचीन (पुराना)। अर्वाक्, अर्वाचीन (नया)।

*सिद्धि-(१) **प्राक्।** प्र उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विक्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय करने पर 'प्राक्' शब्द सिद्ध होता है। इसकी समस्त सिद्धि वहां देख लेवें। यहां दिशावाची, स्त्रीलिङ्ग से भिन्न अञ्चति-अन्त 'प्राक्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय नहीं होता है।*

*(२) **प्राचीनम्।** प्र+अञ्चु+क्विन्। प्र+अच्+वि। प्र+अच्+०। प्र+अच्+ख। प्र+अच्+ईन। प्र+वच्+ईन। प्रा+च्+ईन। प्राचीन+सु। प्राचीनम्।*

यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् दिशावाची, स्त्रीलिङ्ग से भिन्न अञ्चति-अन्त 'प्र+०अच्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय करने पर 'अचः' (६।४।१३८) से अञ्चति के अकार का लोप और 'चौ' (६।१।१२२) से उपसर्ग को दीर्घ होता है।

(३) अर्वाक्। यहां अवर पूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०९) से अवर को 'अर्व' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) अर्वाचीनम्। यहां अवर पूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'अवर+अच्' शब्द से इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय होता है। 'अवर' शब्द को पूर्ववत् 'अर्व' आदेश होता है। शेष कार्य 'प्राचीन' के समान है।

छः-

(३) जात्यन्ताच्छ बन्धुनि।६।

प०वि०-जाति-अन्तात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) बन्धुनि ७।१।

स०-जतिरन्ते यस्य तत्-जात्यन्तम्, तस्मात्-जात्यन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-बन्धुनि जात्यन्ताच् छः।

अर्थः-बन्धुनि अर्थे वर्तमानाज् जात्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति।

बध्यतेऽस्मिञ्जातिरिति बन्धु। येन ब्राह्मणत्वादिजातिर्व्यज्यते तद् बन्धु द्रव्यम् (व्यक्तिः) उच्यते।

उदा०-ब्राह्मणजातिरेव-ब्राह्मणजातीयः। क्षत्रियजातीयः। वैश्य-जातीयः। पशुजातीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बन्धुनि) द्रव्य=व्यक्ति अर्थ में विद्यमान (जात्यन्तात्) जाति शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-ब्राह्मणजाति ही-ब्राह्मणजातीय (ब्राह्मण)। क्षत्रियजाति ही-क्षत्रियजातीय (क्षत्रिय)। वैश्यजाति ही-वैश्यजातीय (वैश्य)। पशुजाति ही-पशुजातीय (पशु)।

सिद्धि-ब्राह्मणजातीयः। यहां बन्धु (व्यक्ति) अर्थ में विद्यमान जात्यन्त 'ब्राह्मणजाति' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-क्षत्रियजातीयः आदि।

छ-विकल्पः-

(४) स्थानान्ताद् विभाषा सस्थानेनेति चेत्।१०।

प०वि०-स्थान-अन्तात् ५।१ विभाषा १।१ सस्थानेन ३।१ इति अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्।

स०-स्थानमन्ते यस्य तत्-स्थानान्तम्, तस्मात्-स्थानान्तात् (बहुव्रीहिः)। समानं स्थानं यस्य तत्-सस्थानम्, तेन-सस्थानेन (बहुव्रीहिः)।

अनु०-छ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्थानान्ताद् विभाषा छः, सस्थानेन इति चेत्।

अर्थः-स्थानान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन छः प्रत्ययो भवति, सस्थानेन=तुल्यशब्देन सह चेत् तत् स्थानान्तं पदमर्थवद् भवति।

उदा०-पित्रा सस्थानः (तुल्यः)-पितृस्थानीयः (छः)। पितृस्थानः (छो न)। मात्रा सस्थानः-मातृस्थानीयः, मातृस्थानः। राज्ञा सस्थानः-राजस्थानीयः, राजस्थानः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्थानान्तात्) स्थान शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (विभाषा) विकल्प से (छः) छ प्रत्यय होता है, (चेत्) यदि वह स्थानान्त पद (सस्थानेन) तुल्य (इति) अर्थ के साथ सार्थक होता है।*

उदा०-पिता का सस्थान (तुल्य)-पितृस्थानीय (छ)। पितृस्थान (छ नहीं)। माता का सस्थान-मातृस्थानीय, मातृस्थान। राजा का संस्थान-राजस्थानीय, राजस्थान।

सिद्धि-पितृस्थानीयः। *पितृस्थान+सु+छ। पितृस्थान्+ईय। पितृस्थानीय+सु। पितृस्थानीयः।*

*यहां तुल्य शब्द के साथ अर्थवान्, स्थानान्त 'पितृस्थान' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मातृस्थानीयः, राजस्थानीयः।***

*(२) **पितृस्थानः।** यहां 'पितृस्थान' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'छ' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-**मातृस्थानः, राजस्थानः।***

आमु-

(५) किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे।११।

प०वि०-किम्-एत्-तिङ्-अव्ययघात् ५।१ आमु १।१ अद्रव्य-प्रकर्षे ७।१।

स०-किम् च एच्च तिङ् च अव्ययं च तानि-किमेत्तिङव्ययानि, तेभ्यः-किमेत्तिङव्ययेभ्यः, किमेत्तिङव्ययेभ्यो यो घः सः-किमेत्तिङव्ययघः, तस्मात्-किमेत्तिङव्ययघात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

द्रव्यस्य प्रकर्षः-द्रव्यप्रकर्षः, न द्रव्यप्रकर्षः-अद्रव्यप्रकर्षः, तस्मिन् अद्रव्यप्रकर्षे (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-अद्रव्यप्रकर्षे किमेत्तिङव्ययघाद् आमु।

अर्थः-अद्रव्यप्रकर्षेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किमेत्तिङव्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यो विहितो घः प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आमु प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**किम्**) किंतर एव-कितराम्। किंतम एव-किंतमाम्। (**एत्**) पूर्वाह्णेतर एव-पूर्वाह्णेतराम्। पूर्वाह्णेतम एव-पूर्वाह्णेतमाम्। (**तिङ्**) पचतितर एव-पचतितराम्। पचतितम एव-पचतितमाम्। (**अव्ययम्**) उच्चैस्तर एव-उच्चैस्तराम्। उच्चैस्तम एव-उच्चैस्तमाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अद्रव्यप्रकर्षे) द्रव्य के प्रकर्ष=अतिशय अर्थ में अविद्यमान (किमेत्तिङव्ययघात्) किम्, एत्=एकारान्त, तिङन्त, अव्यय शब्दों से जो घ प्रत्यय विहित है तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आमु) आमु प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**किम्**) दोनों में से कौन एक प्रकृष्ट-किंतर। किंतर ही-किंतराम्। बहुतों में से कौन एक प्रकृष्ट-किंतम। कितम ही-किंतमाम्। (**एकारान्त**) दो पूर्वाह्णों में से एक में प्रकृष्ट-पूर्वाह्णेतर। पूर्वाह्णेतर ही-पूर्वाह्णेतराम्। बहुत पूर्वाह्णों में से एक में प्रकृष्ट-पूर्वाह्णेतमाम्। (**तिङन्त**) दोनों में से एक प्रकृष्ट पकाता है-पचतितर। पचतितर ही-पचतितराम्। बहुतों में से एक प्रकृष्ट पकाता है-पचतितम। पचतितम ही-पचतितमाम्। (**अव्यय**) दोनों में से एक प्रकृष्ट उच्चैः (ऊंचा)-उच्चैस्तर। उच्चैस्तर ही-उच्चैस्तराम्। बहुतों में एक प्रकृष्ट उच्चैः (ऊंचा)-उच्चैस्तम। उच्चैस्तम ही-उच्चैस्तमाम्।*

*सिद्धि-(१) **किंतराम्।** किम्+सु+तरप्। किम्+तर। किंतर+सु+आमु। किंतर्+आम्। कितराम्+सु। कितराम्+०। कितराम्।*

*यहां प्रथम 'किम्' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। 'तरप्तमपौ घः' (१।१।२२) से 'तरप्' प्रत्यय की 'घ' संज्ञा है। घ-प्रत्ययान्त, अद्रव्यप्रकर्ष अर्थ में विद्यमान 'किंतर' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'आमु' प्रत्यय है। 'किंतराम्' की 'स्वरादिनिपातव्ययम्' (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **किंतमाम्।** यहां प्रथम 'किम्' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५६) से 'तमप्' प्रत्यय है। 'तमप्' प्रत्यय की पूर्ववत् 'घ' संज्ञा है। घ-प्रत्ययान्त 'किंतम' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'आमु' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पूर्वाह्णेतराम्।** पूर्वाह्ण+ङि+तरप्। पूर्वाह्णे+तर। पूर्वाह्णेतर+आमु। पूर्वाह्णेतराम्+सु। पूर्वाह्णेतराम्+०। पूर्वाह्णेतराम्।*

यहां एकारान्त (सप्तम्यन्त) पूर्वाह्णे शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। 'घकालतनेषु कालनाम्नः' (६।३।१७) से सप्तमी का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(४) **पूर्वाह्णेतमाम्।** यहां एकारान्त (सप्तम्यन्त) पूर्वाह्णे शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **पचतितराम्।** यहां तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **पचतितमाम्।** यहां तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) **उच्चैस्तराम्।** यहां अव्यय-संज्ञक 'उच्चैस्' शब्द पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(८) **उच्चैस्तमाम्।** यहां अव्यय-संज्ञक 'उच्चैस्' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अमु+आमु–

(६) अमु च च्छन्दसि।१२।

प०वि०–अमु १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–किमेत्तिङव्ययघात्, आमु, अद्रव्यप्रकर्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अद्रव्यप्रकर्षे किमेत्तिङव्ययघाद् अमु आमु च।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽद्रव्यप्रकर्षेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किमेत्तिङव्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यो घः प्रत्ययो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकाद् अमु आमु च प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(अमु) प्रतरं न आयुः (ऋ० ४।१२।६)। **(आमु) प्रतरां नय** (यजु० १७।५१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अद्रव्यप्रकर्षे) द्रव्य के प्रकर्ष=अतिशय अर्थ में अविद्यमान (किमेत्तिङव्ययघात्) किम्, एत्=एकारान्त, तिङन्त, अव्यय शब्दों से जो घ प्रत्यय विहित है तदन्त प्रातिपदिक से (अमु) अमु (च) और (आमु) आमु प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०–(अमु) प्रतरं न आयुः (ऋ० ४।१२।६)। हमारी आयु प्रकृष्टतर हो। **(आमु)** प्रतरां नय (यजु० १७।५१)। हे ईश्वर ! आप मुझे प्रकृष्टता को प्राप्त कराइये।*

सिद्धि-(१) प्रतरम्। प्र+सु+तरप्। प्र+तर। प्रतर+अमु। प्रतर्+अम्। प्रतरम्+सु। प्रतरम्+०। प्रतरम्।

यहां अव्ययसंज्ञक 'प्र' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। तरप्-प्रत्ययान्त 'प्रतर' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से 'अमु' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **प्रतराम्।** यहां पूर्वोक्त 'प्रतर' शब्द से इस सूत्र से छन्द विषय में 'आमु' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ठक्–

(७) अनुगादिनष्ठक्।१३।

प०वि०–अनुगादिनः ५।१ ठक् १।१।

अन्वयः–अनुगादिनः प्रातिपदिकाट्ठक्।

अर्थः–अनुगादिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अनुगदतीति अनुगादी। अनुगादी एव-आनुगादिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनुगादिनः) अनुगादिन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०–अनुगादी=पीछे बोलनेवाला ही-आनुगादिक।

***सिद्धि-आनुगादिकः।** अनुगादिन्+सु+ठक्। आगाद्+इक। आनुगादिक+सु। आनुगादिकः।*

*यहां 'अनुगादिन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

अञ्–

(८) णचः स्त्रियामञ्।१४।

प०वि०–णचः ५।१ स्त्रियाम् ७।१ अञ् १।१।

अन्वयः–स्त्रियां **णचो**ऽञ्।

अर्थः–स्त्रियां **विषये** णचः=**'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्'** (३।३।४३) इति **यो णच् प्रत्ययो** विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (णचः) **'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्'** (३।३।४३) से जो णच् प्रत्यय विहित है, तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**व्यावक्रोशी वर्तते।** परस्पर आह्वान चल रहा है। **व्यावहासी वर्तते।** परस्पर हास्य चल रहा है।*

*सिद्धि-(१) **व्यवक्रोशी।** वि+अव+क्रुश्+णच्। वि+अव+क्रोश्+अ। व्यावक्रोश+सु+अञ्। व्यावक्रोश्+अ। व्यावक्रोश+ङीप्। व्यावक्रोशी+सु। व्यावक्रोशी।*

*यहां वि, अव उपसर्गपूर्वक **'क्रुश आह्वाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्'** (३।३।४३) से 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग विषय में णजन्त 'व्यवक्रोश' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। **'न कर्मव्यतिहारे'** (७।३।६) से ऐच्-आगम का प्रतिषेध होकर **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

*(२) **व्यावहासी।** 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

अण्-

(६) अणिनुणः।१५।

प०वि०-अण् १।१ इनुणः ५।१।

अन्वयः-इनुणः प्रातिपदिकाद् अण्।

अर्थः-इनुणः='**अभिविधौ भाव इनुण्**' (३।३।४४) इति य इनुण् प्रत्ययो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे इनुण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सांराविणं वर्तते। सांकूटिनं वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इनुणः) 'अभिविधौ भाव इनुण्' (३।३।४४) से जो 'इनुण्' प्रत्यय विहित है, तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**सांराविणं वर्तते।** सब ओर शोर हो रहा है। **सांकूटिनं वर्तते।** सब ओर दहन हो रहा है (आग लगी हुई है)।*

सिद्धि-(१) सांराविणम्। सम्+रु+इनुण्। सम्+रौ+इन्। संराविन्+अण्। सांराविन्+अ। सांराविण+सु। सांराविणम्।

*यहां प्रथम 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से **'अभिविधौ भाव इनुण्'** (३।३।४४) से इनुण् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इनुण्-प्रत्ययान्त 'संराविण' **शब्द** से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय **है। 'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) **से अंग***

*को आदिवृद्धि होती है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।*

(२) सांकूटिनम्। 'कूट परितापे, परिदाह इत्येके' (चु०आ०) धातु से पूर्ववत्।

अण्–

(१०) विसारिणो मत्स्ये।१६।

प०वि०–विसारिणः ५।१ मत्स्ये ७।१।

अनु०–अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–विसारिणः प्रातिपदिकाद् अण् मत्स्ये।

अर्थः–विसारिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, मत्स्येऽभिधेये।

उदा०–विसरतीति-विसारी। विसारी एव-वैसारिणो मत्स्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(विसारिणः) विसारिन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (मत्स्ये) यदि वहां मच्छली अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–विसारी ही-वैसारिण मत्स्य (मछली)।

*सिद्धि-**वैसारिणः**। विसारिन्+सु+अण्। वैसारिन्+अ। वैसारिण+सु। वैसारिणः।*

*यहां 'विसारिन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से पूर्ववत् प्रकृतिभाव होता है।*

कृत्वसुच्–

(११) संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्।१७।

प०वि०–संख्यायाः ५।१ क्रिया-अभ्यावृत्ति-गणने ७।१। कृत्वसुच् १।१।

स०–अभ्यावृत्तिः=पौनःपुन्यम्। क्रियाया अभ्यावृत्तिः क्रियाभ्यावृत्तिः, क्रियाभ्यावृत्तेर्गणनम्, क्रियाभ्यावृत्तिगणनम्, तस्मिन्-क्रियाभ्यावृत्तिगणने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्यायाः कृत्वसुच्।

अर्थः-क्रियाया अभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्च वारान् भुङ्क्ते-पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते देवदत्तः। सप्त वारान् भुङ्क्ते-सप्तकृत्वो भुङ्क्ते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(क्रियाभ्यावृत्तिगणने) क्रिया की पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (कृत्वसुच्) कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पांच बार खाता है-देवदत्त पञ्चकृत्वः खाता है। सात बार खाता है-यज्ञदत्त सप्तकृत्वः खाता है।

सिद्धि-पञ्चकृत्वः। *पञ्चन्+शस्+कृत्वसुच्। पञ्च+कृत्वस्। पञ्चकृत्वस्+सु। पञ्चकृत्व्+०। पञ्चकृत्वस्। पञ्चकृत्वर्। पञ्चकृत्वः।*

*यहां क्रियाभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कृत्वसुच्' प्रत्यय है। **'स्वरादिनिपातनमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**सप्तकृत्वः।***

सुच्-

(१२) द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्।१८।

प०वि०-द्वि-त्रि-चतुर्भ्यः ५।३ सुच् १।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च चतुर् च ते द्वित्रिचतुरः, तेभ्यः-द्वित्रिचतुर्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, क्रियाभ्यावृत्तिगणने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्याभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्।

अर्थः-क्रियाभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे सुच् प्रत्ययो भवति। कृत्वसुचोऽपवादः।

उदा०-(**द्विः**) द्वौ वारान् भुङ्क्ते-द्विर्भुङ्क्ते देवदत्तः। (**त्रिः**) त्रीन् वारान् भुङ्क्ते-त्रिर्भुङ्क्ते यज्ञदत्तः। (**चतुर्**) चतुरो वारान् भुङ्क्ते-चतुर्भुङ्क्ते ब्रह्मदत्तः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(क्रियाभ्यावृतिगणने) क्रिया की अभ्यावृत्ति=पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (द्वित्रिचतुर्भ्यः) द्वि, त्रि, चतुर् प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (सुच्) सुच् प्रत्यय होता है।

उदा०-(द्विः) दो बार खाता है-देवदत्त द्विः खाता है। (त्रिः) तीन बार खाता है-यज्ञदत्त त्रिः खाता है। (चतुर्) चार बार खाता है-ब्रह्मदत्त चतुः खाता है।

सिद्धि-(१) द्विः। द्वि+औट्+सुच्। द्वि+स्। द्विस्+सु। द्विस्+०। द्विरु। द्विर्। द्विः।

यहां क्रियाभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'द्वि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'सुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-द्विः, त्रिः।

(२) चतुः। चतुर्+शस्+सुच्। चतुर्+स्। चतुर्+०। चतुर्+सु। चतुर्+०। चतुः।

यहां 'रात्सस्य' (८।२।२४) से 'सुच्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। प्रत्यय के 'चित्' होने से 'चितः' (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-चतुः।

सुच्-

(१३) एकस्य सकृच्च।१६।

प०वि०-एकस्य ६।१ सकृत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, क्रियागणने, सुच् इति चानुवर्तते। अभ्यावृत्तिश्चात्र न सम्बध्यतेऽर्थासम्भवात्।

अन्वयः-क्रियागणने संख्याया एकात् सुच्, सकृच्च।

अर्थः-क्रियागणनेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन एक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे सुच् प्रत्ययो भवति, एकस्य स्थाने च सकृत्-आदेशो भवति।

उदा०-एकं वारं भुङ्क्ते-सकृद् भुङ्क्ते देवदत्तः। एकं वारमधीते-**सकृद्** अधीते यज्ञदत्तः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(क्रियागणने) क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान (एकस्य) __एक__ प्रातिपदिक से स्वार्थ में (सुच्) सुच् प्रत्यय हो और एक के स्थान में (सकृत्) सकृत् __आदेश__ (च) भी होता है।

उदा०-एक बार खाता है-देवदत्त सकृत् खाता है। एक बार पढ़ता है-यज्ञदत्त __सकृत्__ पढ़ता है।

सिद्धि-सकृत्। एक+अम्+सुच्। सकृत्+स्। सकृत्+०। सकृत्+सु। सकृत्+०। सकृत्।

यहां क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'एक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'सुच्' प्रत्यय और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश है। 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त 'सुच्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

धा-

(१४) विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले।२०।

प०वि०-विभाषा १।१ बहोः ५।१ धा १।१ (सु-लुक्) अविप्रकृष्टकाले ७।१।

स०-विप्रकृष्टः=दूरम्। न विप्रकृष्टः-अविप्रकृष्टः, अविप्रकृष्टः कालो यस्य तत्-अविप्रकृष्टकालम्, तस्मिन्-अविप्रकृष्टकाले (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यायाः, क्रियाभ्यावृत्तिगणने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविप्रकृष्टकाले क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्याया बहोर्विभाषा धाः।

अर्थः-अविप्रकृष्टकालविषयके क्रियाभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिनो बहु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन स्वार्थे धाः प्रत्ययो भवति, पक्षे च कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बहून् वारान् दिवसस्य भुङ्क्ते-बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते देवदत्तः (धाः)। बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते देवदत्तः (कृत्वसुच्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अविप्रकृष्टकाले)=अविप्रकृष्ट निकटकालविषयक (क्रियाभ्यावृत्तिगणने) क्रिया की पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (बहोः) बहु प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से स्वार्थ में (धाः) धा प्रत्यय होता है। पक्ष में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दिन में बहुत बार खाता है-देवदत्त दिन में बहुधा खाता है (धा)। देवदत्त दिन में बहुकृत्वः खाता है (कृत्वसुच्)।

सिद्धि-(१) बहुधा। बहु+शस्+धा। बहु+धा। बहुधा+सु। बहुधा+०। बहुधा।

यहां अविप्रकृष्टकालविषयक, क्रिया-अभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'बहु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय है। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।

(२) बहुकृत्वः। यहां पूर्वोक्त 'बहु' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'कृत्वसुच्' प्रत्यय है।

मयट्–

(१५) तत् प्रकृतवचने मयट्।२१।

प०वि०–तत् १।१ प्रकृतवचने ७।१ मयट् १।१।

स०–प्राचुर्येण कृतम्=प्रकृतम्, प्रस्तुतमित्यर्थः। प्रकृतस्य वचनम्-प्रकृतवचनम्, तस्मिन्–प्रकृतवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–प्रकृतवचने तदिति प्रथमासमर्थाद् मयट्।

अर्थः–प्रकृतवचनेऽर्थे वर्तमानात् तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अन्नं प्रकृतम्–अन्नमयं दानम्। अपूपः प्रकृतः–अपूपमयं भोजनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(प्रकृतवचने) प्रकृत=प्रधानता कथन अर्थ में विद्यमान (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जहां अन्न प्रकृत=प्रधान है वह–अन्नमय दान। जहां अपूप=मालपूवा प्रकृत=प्रधान है वह–अपूपमय भोजन।

*सिद्धि–**अन्नमयम्।** अन्न+सु+मयट्। अन्न+मय। अन्नमय+सु। अन्नमयम्।*

*यहां प्रकृत-वचन अर्थ में विद्यमान, प्रथमा-समर्थ 'अन्न' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही–**अपूपमयम्।** प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है–**अपूपमयी पौर्णमासी।***

समूहवत्-प्रत्ययाः+मयट्–

(१६) समूहवच्च बहुषु।२२।

प०वि०–समूहवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, बहुषु ७।३।

अनु०–तत्, प्रकृतवचने, मयट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रकृतवचनेषु बहुषु तद् इति प्रथमासमर्थात् समूहवद् मयट् च।

अर्थः–प्रकृतवचनेषु बहुष्वर्थेषु वर्तमानात् तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे समूहवद् मयट् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-मोदकाः प्रकृताः-मौदकिकं भोजनम् (ठक्)। मोदकमयं भोजनम् (मयट्)। शष्कुल्यः प्रकृताः-शाष्कुलिकम् (ठक्)। शष्कुलीमयम् (मयट्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकृतवचने) प्रधानता कथन अर्थ में तथा (बहुषु) बहुवचन में विद्यमान (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में (समूहवत्) समूह अर्थ के समान (च) और (मयट्) मयट् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-जहां मोदक=लड्डू प्रकृत=प्रधान हैं वह-मौदकिक भोजन (ठक्)। **मोदकमय** भोजन (मयट्)। जहां शष्कुली=पूरी/कचोरी प्रकृत=प्रधान हैं वह-शाष्कुलिक भोजन (ठक्)। शष्कुलीमय भोजन (मयट्)।*

*सिद्धि-(१) **मौदकिकम्।** मोदक+जस् ठक्। मौदक्+इक। मौदकिक+सु। मौदकिकम्।*

*यहां प्रकृतवचन तथा बहुवचन में विद्यमान, प्रथमा-समर्थ 'मोदक' शब्द से स्वार्थ में **'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'** (४।२।४७) से समूहवत् 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शाष्कुलिकम्।***

*(२) **मोदकमयम्।** यहां प्रकृत वचन तथा बहुवचन में विद्यमान पूर्वोक्त 'मोदक' शब्द से मयट् प्रत्यय है। ऐसे ही-**शष्कुलीमयम्।***

ञ्यः-

(१७) अनन्तावसथभेषजाञ् ञ्यः।२३।

प०वि०-अनन्त-आवसथ-भेषजात् ५।१ ञ्यः १।१।

स०-अनन्तश्च आवसथश्च भेषजं च एतेषां समाहारः-अनन्तावसथभेषजम्, तस्मात्-अनन्तावसथभेषजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अनन्तावसथभेषजात् स्वार्थे ञ्यः।

अर्थः-अनन्तावसथभेषजेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अनन्तः**) अनन्त एव-आनन्त्यम्। (**आवसथः**) आवसथ एव-आवसथ्यम्। (**भेषजम्**) भेषजमेव-भैषज्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनन्तावसथभेषजात्) अनन्त, आवसथ, भेषज प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**अनन्तः**) अनन्त ही-आनन्त्य। (**आवसथः**) आवसथ=गृह ही-**आवसथ्य।** (**भेषजम्**) भेषज=औषध ही-भैषज्य।*

सिद्धि-आनन्त्यम्। अनन्त+सु+ञ्य। आनन्त्+य। आनन्त्य+सु। आनन्त्यम्।

*यहां अनन्त शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आवसथ्यम्, भैषज्यम्।***

यत्–

(१८) देवतान्तात् तादर्थ्ये यत्।२४।

प०वि०-देवता-अन्तात् ५।१ तादर्थ्ये ७।१ यत् १।१।

स०-तस्मै इदम्-तदर्थम्, तदर्थ एव-तादर्थ्यम्, तस्मिन्-तादर्थ्ये (चतुर्थीतत्पुरुषः)। **वा-'चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्'** (५।१।१२४) इति स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अन्वयः-तादर्थ्ये देवदत्तान्ताद् यत्।

अर्थः-तादर्थ्येऽर्थे वर्तमानाद् देवतान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्निदेवतायै इदम्-अग्निदेवत्यं हविः। पितृदेवत्यं हविः। वायुदेवत्यं हविः।

***आर्यभाषाः** अर्थः-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (देवतान्तात्) देवता शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्निदेवता के लिये यह-अग्निदेवता हवि। पितृदेवता के लिये यह-पितृदेवत्य हवि। वायुदेवता के लिये यह-वायुदेवत्य हवि।

*सिद्धि-**अग्निदेवत्यम्।** अग्निदेवता+ङे+यत्। अग्निदेवत्+य। अग्निदेवत्य+सु। अग्निदेवत्यम्।*

*यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान, देवतान्त 'अग्निदेवता' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पितृदेवत्यम्, वायुदेवत्यम्।***

यत्–

(१६) पादार्घाभ्यां च।२५।

प०वि०-पाद-अर्घाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-पादश्च अर्घश्च तौ पादार्घौ, ताभ्याम्-पादार्घाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तादर्थ्ये, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तादर्थ्येऽर्थे पादार्घाभ्यां च यत्।

अर्थः-तादर्थ्ये वर्तमानाभ्यां पादार्घाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां **स्वार्थे** यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**पादः**) पादार्थमिदम्-पाद्यमुदकम्। अर्घार्थमिदम्-अर्घ्यमुदकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (पादार्घाभ्याम्) पाद, अर्घ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(पाद) पांव धोने के लिये यह-पाद्य जल। **(अर्घ)** मुंह धोने के लिये यह-अर्घ्य जल।*

सिद्धि-पाद्यम्। *पाद+भ्याम्+यत्। पाद्+य। पाद्य+सु। पाद्यम्।*

*यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान 'पाद' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय **है।** **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अर्घ्यम्।***

ञ्यः–

(२०) अतिथेर्ञ्यः।२६।

प०वि०-अतिथेः ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-तादर्थ्ये, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तादर्थ्येऽतिथिशब्दाद् ञ्यः।

अर्थः-तादर्थ्येऽर्थे वर्तमानाद् अतिथि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अतिथये इदम्-आतिथ्यं दुग्धम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (अतिथेः) अतिथि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-अतिथि के लिये यह-आतिथ्य दुग्ध।

सिद्धि-आतिथ्यम्। *अतिथि+ङे+ञ्य। आतिथ्+य। आतिथ्य+सु। आतिथ्यम्।*

*यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान 'अतिथि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय **है।** पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।*

तल्–

(२१) देवात् तल्।२७।

प०वि०–देवात् ५।१ तल् १।१।

अन्वयः–देव-शब्दात् स्वार्थे तल्।

अर्थः–देव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–देव एव-देवता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देवात्) देव प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तल्) तल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-देव=विद्वान् ही-देवता।

सिद्धि-देवता। *देव+सु+तल्। देव+त। देवत+टाप्। देवता+सु। देवता+०। देवता।*

*यहां 'देव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तल्' प्रत्यय है। **'तलन्तः'** (लिङ्गा० १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

कः–

(२२) अवेः कः।२८।

प०वि०–अवेः ५।१ कः १।१।

अन्वयः–अवि-शब्दात् स्वार्थे कः।

अर्थः–अवि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कः प्रत्ययो भवति।

उदा०–अविरेव-अविकः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(अवेः) अवि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कः) क प्रत्यय होता है।*

उदा०-अवि=भेड़ ही-अविक।

सिद्धि-अविकः। *अवि+सु+क। अवि+क। अविक+सु। अविकः।*

यहां 'अवि' शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय है।

कन्–

(२३) यावादिभ्यः कन्।२९।

प०वि०–याव-आदिभ्यः ५।३ कन् १।१।

स०–याव आदिर्येषां ते यावादयः, तेभ्यः-यावादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-यावादिभ्यः स्वार्थे कन्।

अर्थः-यावादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-याव एव-यावकः। मणिरेव-मणिकः, इत्यादिकम्।

याव। मणि। अस्थि। चण्ड। पीतस्तम्ब। ऋतावुष्णशीते। पशौ लूनवियाते। अणु निपुणे। पुत्र कृत्रिमे। स्नात वेदसमाप्तौ। शून्य रिक्ते। दान कुत्सिते। तनु सूत्रे। ईयसश्च-श्रेयस्कः। ज्ञात। कुमारीक्रीडनकानि च। इति यावादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यावादिभ्यः) याव आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-याव=(जौ का सत्तू) ही-यावक। मणि (रत्न) ही-मणिक, इत्यादि।

सिद्धि-यावकः। *याव+सु+कन्। याव+क। यावक+सु। यावकः।*

*यहां 'याव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मणिकः।***

कन्-

(२४) लोहितान्मणौ।३०।

प०वि०-लोहितात् ५।१ मणौ ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मणौ लोहित-शब्दात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-मणावर्थे वर्तमानाल्लोहित-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहितो मणिः-लोहितकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मणौ) मणि=रत्न अर्थ में विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) 'कन्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित मणि ही-लोहितक (रत्नविशेष)।

सिद्धि-लोहितकः। *लोहित+सु+कन्। लोहितक+सु। लोहितकः।*

यहां मणि अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है।

कन्-

(२५) वर्णे चानित्ये।३१।

प०वि०-वर्णे ७।१ च अव्ययपदम्, अनित्ये ७।१।

स०-न नित्यम्-अनित्यम्, तस्मिन्-अनित्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन्, लोहिताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनित्ये वर्णे च लोहितात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-अनित्ये वर्णे चार्थे वर्तमानाल्लोहितशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहित एव-लोहितकः कोपेन। लोहितकः पीडनेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनित्ये) अध्रुव=अस्थायी (वर्णे) रंग अर्थ में (च) भी विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित=लाल वर्ण ही-लोहितक (क्रोध से)। लोहित वर्ण ही-लोहितक (पीटने से)।

सिद्धि-लोहितकः। *लोहित+सु+कन्। लोहित+क। लोहित+सु। लोहितकः।*

यहां अनित्य वर्ण अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है।

कन्-

(२६) रक्ते।३२।

वि०-रक्ते ७।१।

अनु०-कन्, लोहिताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रक्ते लोहित-शब्दात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-रक्तेऽर्थे वर्तमानाल्लोहितशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहितः=लाक्षादिना रक्त एव-लोहितकः कम्बलः। लोहितकः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रक्ते) रंगा हुआ अर्थ में विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित=लाख आदि से रंगा हुआ-लोहितक कम्बल। लोहितक पट (कपड़ा)।

सिद्धि-लोहितकः। *यहां रक्त अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।*

कन्–

(२७) कालाच्च ।३३।

प०वि०–कालात् ५ ।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–कन्, वर्णे, च, अनित्ये, रक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनित्ये वर्णे रक्ते च कालाच्च कन्।

अर्थः–अनित्ये वर्णे रक्ते चार्थे वर्तमानात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**अनित्ये वर्णे**) कालमेव-कालकं मुखं वैलक्ष्येण। (**रक्ते**) काल एव-कालकः पटः। कालिका शाटी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनित्ये) अस्थिर (वर्णे) रंग अर्थ में और (रक्ते) रंगा हुआ अर्थ में विद्यमान (कालात्) काल प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**अनित्य वर्ण**) काल ही-कालक मुख वैलक्ष्य=लज्जा से। (**रक्त**) काल ही-कालक पट (काले रंग से रंगा हुआ)। काल ही-कालिका शाटी (काले रंग से रंगी हुई साड़ी)।*

*सिद्धि-**कालकम्**। काल+सु+कन्। काल+क। कालक+सु। कालकः।*

*यहां अनित्य वर्ण अर्थ में विद्यमान काल शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही रक्त अर्थ में-**कालकः पट**। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात्०' (७।३।४४) से इत्त्व होता है-**कालिका शाटी**।*

ठक्–

(२८) विनयादिभ्यष्ठक् ।३४।

प०वि०–विनय-आदिभ्यः ५ ।३ ठक् १ ।१।

स०–विनय आदिर्येषां ते विनयादयः, तेभ्यः-विनयादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–विनयादिभ्यः स्वार्थे ठक्।

अर्थः–विनयादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०–विनय एव-वैनयिकः। समय एव-सामयिकः, इत्यादिकम्।

विनय। समय। उपायाद् ह्रस्वत्वं च। सङ्गति। कथञ्चित्। अकस्माद्। समयाचार। उपचार। समाचार। व्यवहार। सम्प्रदान। समुत्कर्ष। समूह। विशेष। अत्यय। इति विनयादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विनयादिभ्यः) विनय आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-विनय ही-वैनयिक। समय ही-सामयिक, इत्यादि।

सिद्धि-वैनयिकः। *विनय+सु+ठक्। वैनय्+इक। वैनयिक+सु। वैनयिकः।*

यहां 'विनय' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सामयिकः।***

ठक्-

(२६) वाचो व्याहृतार्थायाम्।३५।

प०वि०-वाचः ५।१ व्याहृतार्थायाम् ७।१।

स०-व्याहृतः=प्रकाशितोऽर्थो यस्याः सा-व्याहृतार्था, तस्याम्-व्याहृतार्थायाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्याहृतार्थायां वाचः स्वार्थे ठक्।

अर्थः-व्याहृतार्थे=प्रकाशितार्थे वर्तमानाद् वाक्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। पूर्वमन्येनोक्तात्वात् सन्देशवाग् 'व्याहृतार्था' इति कथ्यते।

उदा०-वाचमेव-वाचिकं कथयति। वाचिकं श्रद्दधे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्याहृतार्थायाम्) व्याहृत=पहले किसी अन्य के द्वारा कही हुई सन्देशात्मक वाणी अर्थ में विद्यमान (वाचः) वाक् शब्द से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वाक् (व्याहृत) ही-वाचिक को कहता है। वाचिक पर श्रद्धा (विश्वास) करता है। पहले किसी अन्य के द्वारा कही हुई सन्देशात्मक वाणी को कहता है अथवा उस पर विश्वास करता है।

सिद्धि-वाचिकम्। *वाच्+सु+ठक्। वाच्+इक। वाचिक+सु। वाचिकम्।*

यहां व्याहृत अर्थ में विद्यमान 'वाक्' शब्द से इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

अण्–

(३०) तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ।३६।

प०वि०–तद्युक्तात् ५ ।१ कर्मणः ५ ।१ अण् १ ।१।

स०–तया (व्याहृतार्थया वाचा) युक्तः–तद्युक्तः, तस्मात्–तद्युक्तात् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अन्वयः–तद्युक्तात् कर्मणः स्वार्थेऽण्।

अर्थः–तद्युक्तात्–व्याहृतार्थया वाचा युक्तात् कर्मन्–शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कर्मैव–कार्मणम्। व्याहृतार्थां वाचम्–वाचिकं श्रुत्वा यत् कर्म क्रियते तत् 'कार्मणम्' इति कथ्यते।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तद्युक्तात्) उस व्याहृतार्थक वाणी से युक्त (कर्मणः) कर्मन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०–कर्म ही–कार्मण। व्याहृतार्थक वाणी को सुनकर जो कर्म किया जाता है उसे 'कार्मण' कहते हैं।

सिद्धि–कार्मणम्। *कर्मन्+सु+अण्। कार्मन्+अ। कार्मण+सु। कार्मणम्।*

यहां व्याहृतार्थक वाणी से युक्त 'कर्मन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। यहां 'अन्' (६ ।४ ।१६७) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् 'नस्तद्धिते' (६ ।४ ।१४४) से प्राप्त अंग के टि–भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८ ।४ ।२) से णत्व होता है।

अण्–

(३१) ओषधेरजातौ ।३७।

प०वि०–ओषधेः ५ ।१ अजातौ ७ ।१।

स०–न जातिः– अजातिः, तस्याम्–अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अजातावोषधेः स्वार्थेऽण्।

अर्थः–अजातौ=जातिवर्जितेऽर्थे वर्तमानाद् ओषधि–शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ओषधिरेव-औषधं पिबति रोगी। औषधं ददाति वैद्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अजातौ) जाति अर्थ से भिन्न (ओषधेः) ओषधि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-ओषधि ही-**औषध**। रोगी **औषध** पीता है। वैद्य **औषध** देता है।*

***सिद्धि-औषधम्।** ओषधि+सु+अण्। औषध्+अ। औषध+सु। औषधम्।*

*यहां अजाति अर्थ में विद्यमान 'ओषधि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। जहां ओषधि' शब्द जातिवाची है वहां 'अण्' प्रत्यय नहीं होता है-**ओषधयः क्षेत्रे रूढा भवन्ति।***

अण्-

(३२) प्रज्ञादिभ्यश्च।३८।

प०वि०-प्रज्ञ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-प्रज्ञ आदिर्येषां ते प्रज्ञादयः, तेभ्यः-प्रज्ञादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रज्ञादिभ्यश्च स्वार्थेऽण्।

अर्थः-प्रज्ञादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रज्ञ एव-प्राज्ञः। वणिगेव-वाणिजः, इत्यादिकम्।

प्रज्ञ। वणिक्। उशिक्। उष्णिक्। प्रत्यक्ष। विद्वस्। विदन्। षोडन्। षोडश। विद्या। मनस्। श्रोत्र शारीरे-श्रौत्रम्। जुह्वत् कृष्णमृगे। चिकीर्षत्। चोर। शक। योध। वक्षस्। धूर्त। वस्। एत्। मरुत्। क्रुङ्। राजा। सत्वन्तु। दशार्ह। वयस्। आतुर। रक्षस्। पिशाच। अशनि। कार्षापण। देवता। बन्धु। इति प्रज्ञादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रज्ञादिभ्यः) पज्ञ आदि प्रातिपदिकों से (च) भी स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रज्ञ ही-प्राज्ञ (विद्वान्)। वणिक् ही-वाणिज (बाणियां) इत्यादि।

***सिद्धि-प्राज्ञः।** प्रज्ञ+सु+अण्। प्राज्ञ्+अ। प्राज्ञ+सु। प्राज्ञः।*

*यहां 'प्रज्ञ' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वाणिजः।***

तिकन्–

(३३) मृदस्तिकन्।३६।

प०वि०–मृदः ५।१ तिकन् १।१।

अन्वयः–मृदः स्वार्थे तिकन्।

अर्थः–मृत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तिकन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–मृद् एव–मृत्तिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(मृदः) मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तिकन्) तिकन् प्रत्यय होता है।*

उदा०–मृत्=मिट्टी ही–मृत्तिका।

*सिद्धि–**मृत्तिका।** मृत्+सु+तिकन्। मृत्+तिक। मृत्तिक+टाप्। मृत्तिका+सु। मृत्तिका+०। मृत्तिका।*

यहां 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तिकन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।

सः+स्नः–

(३४) सस्नौ प्रशंसायाम्।४०।

प०वि०–स-स्नौ १।२ प्रशंसायाम् ७।१।

स०–सश्च स्नश्च तौ सस्नौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–मृद इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रशंसायां मृदः स्वार्थे सस्नौ।

अर्थः–प्रशंसार्थे वर्तमानाद् मृत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे सस्नौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–प्रशस्ता मृत्–मृत्सा (सः)। मृत्स्ना (स्ना)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (मृदः) मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (स-स्नौ) स और स्न प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–प्रशंसनीय मृत्=मिट्टी ही–मृत्सा (स)। मृत्स्ना (स्न)।

*सिद्धि–(१) **मृत्सा।** मृत्+सु+स। मृत्+स। मृत्स+टाप्। मृत्सा+सु। मृत्सा+०। मृत्सा।*

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'स' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(२) **मृत्स्ना**। यहां पूर्वोक्त 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से पूर्ववत् 'स्न' प्रत्यय है।

तिल्+तातिल्–

(३५) वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि।४१।

प०वि०–वृक-ज्येष्ठाभ्याम् ५।२ तिल्-तातिलौ १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०–वृकश्च ज्येष्ठश्च तौ वृकज्येष्ठौ, ताभ्याम्-वृकज्येष्ठाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तिल् च तातिल् च तौ तिल्तातिलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रशंसायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि प्रशंसायां च वृकज्येष्ठाभ्यां स्वार्थे तिल्तातिलौ।

अर्थः–छन्दसि विषये प्रशंसार्थे च वर्तमानाभ्यां वृकज्येष्ठाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं तिल्तातिलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(**वृकः**) प्रशस्तो वृकः-वृकतिः (ऋ० ४।४१।४) (तिल्)। (**ज्येष्ठः**) प्रशस्तो ज्येष्ठः-ज्येष्ठतातिः (ऋ० ५।४४।१) (तातिल्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (च) और (प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (वृकज्येष्ठाभ्याम्) वृक, ज्येष्ठ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (तिल्तातिलौ) यथासंख्य तिल् और तातिल् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–(वृक) प्रशस्त वृक-वृकति (ऋ० ४।४१।४) (तिल्)। वृकति-वृक=भेड़िया के समान शत्रुजनों का हिंसक। (ज्येष्ठ) प्रशस्त ज्येष्ठ ही-ज्येष्ठताति (ऋ० ५।४४।१) (तातिल्)। ज्येष्ठताति-प्रशस्त राजा।

सिद्धि-(१) वृकतिः। वृक+सु+तिल्। वृक+ति। वृकति+सु। वृकतिः।

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'वृक' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से स्वार्थ में 'तिल्' प्रत्यय है।

(२) ज्येष्ठतातिः। ज्येष्ठ+सु+तातिल्। ज्येष्ठ+ताति। ज्येष्ठताति+सु। ज्येष्ठतातिः।

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'ज्येष्ठ' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से स्वार्थ में 'तातिल्' प्रत्यय है।

शस्–

(३६) बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्।४२।

प०वि०–बहु–अल्पार्थात् ५।१ शस् १।१ कारकात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–बहुश्च अल्पश्च तौ बह्वल्पौ, बह्वल्पावर्थौ यस्य तत्–बह्वल्पार्थम्, तस्मात्–बह्वल्पार्थात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः–कारकाद् बह्वल्पार्थात् स्वार्थेऽन्यतरस्यां शस्।

अर्थः–कारकाभिधायिनो बह्वर्थाद् अल्पार्थाच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(बहु–अर्थात्)** बहूनि ददाति–बहुशो ददाति। बहुभिर्ददाति–बहुशो ददाति। बहुभ्यो ददाति–बहुशो ददाति। भूरिशो ददाति। **(अल्पार्थात्)** अल्पं ददाति–अल्पशो ददाति। अल्पेन ददाति–अल्पशो ददाति। अल्पाय ददाति–अल्पशो ददाति। स्तोकशो ददाति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(कारकात्) कारकवाची (बह्वल्पार्थात्) बहु–अर्थक तथा अल्पार्थक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शस्) शस् प्रत्यय होता है।*

उदा०–(बहु–अर्थक) बहुतों को देता है–बहुशः देता है। बहुतों के कारण से देता है–बहुशः देता है। बहुतों के लिये देता है–बहुशः देता है। ऐसे ही बहु–अर्थक 'भूरि' शब्द से–भूरिशः देता है। (अल्पार्थक) अल्प (थोड़ा) पदार्थ को देता है–अल्पशः देता है। अल्प के कारण से देता है–अल्पशः देता है। अल्प के लिये देता है–अल्पशः देता है। ऐसे ही अल्पार्थक 'स्तोक' शब्द से स्तोकशः देता

सिद्धि–बहुशः। बहु+शस्+शस्। बहु+शस्। बहुशस्+सु। बहुशस्+०। बहुशरु। बहुशर्। बहुशः।

यहां कारकवाची बह्वर्थक 'बहु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'शस्' प्रत्यय है। 'स्वरादिनिपातनमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय–संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही–भूरिशः, स्तोकशः।

शस्–

(३७) संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ।४३।

प०वि०–संख्या-एकवचनात् ५ ।१ च अव्ययपदम्, वीप्सायाम् ७ ।१ ।

स०–संख्या च एकवचनं च एतयोः समाहारः संख्यैकवचनम्, तस्मात्-संख्यैकवचनात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–शस्, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–वीप्सायां संख्यैकवचनात् स्वार्थेऽन्यतरस्यां शस् ।

अर्थः–वीप्सार्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन एकवचनान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(संख्या)** द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति-द्विशो ददाति । त्रीन् त्रीन् मोदकान् ददाति-त्रिशो ददाति । **(एकवचनम्)** कार्षापणं कार्षापणं ददाति-कार्षापणशो ददाति । माषशो ददाति । पादशो ददाति ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वीप्सायाम्) व्याप्ति-अर्थ में विद्यमान (संख्यैकवचनात्) संख्यावाची और एकवचनान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शस्) शस् प्रत्यय होता है ।*

उदा०-(संख्या) दो-दो मोदक=लड्डू देता है-द्विशः देता है । तीन-तीन मोदक देता है-त्रिशः देता है । (एकवचनम्) कार्षापण-कार्षापण देता है-कार्षापणशः देता है । माष-माष देता है-माषशः देता है । पाद-पाद देता है-पादशः देता है ।

कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का । माष=२ रत्ती चांदी का सिक्का । पाद= ८ रत्ती का चांदी का सिक्का ।

सिद्धि-(१) द्विशः । द्वि+औट्+शस् । द्वि+शस् । दिशस्+सु । द्विशस्+० द्विशरु । द्विशर् । द्विशः ।

यहां वीप्सा अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'द्वि' शब्द से इस सूत्र से शस् प्रत्यय है । शेष कार्य 'बहुशः' के समान है । ऐसे ही-त्रिशः ।

(२) कार्षापणशः । यहां वीप्सा अर्थ में विद्यमान, एकवचनान्त 'कार्षापण' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'शस्' प्रत्यय है । ऐसे ही-माषशः, पादशः ।

तसिः–

(३८) प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ।४४।

प०वि०–प्रतियोगे ७ ।१ पञ्चम्याः ५ ।१ तसिः १ ।१ ।

स०–प्रतिना योगः प्रतियोगः, तस्मिन्-प्रतियोगे (तृतीयातत्पुरुषः) ।

अनु०-अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रतियोगे पञ्चम्याः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-प्रतियोगे वर्तमानात् पञ्चम्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रद्युम्नो वासुदेवात् प्रति-वासुदेवतः प्रति। अभिमन्युरर्जुनात् प्रति-अर्जुनतः प्रति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रतियोगे) कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति शब्द के योग में विद्यमान (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रद्युम्न वासुदेव (कृष्ण) का प्रतिनिधि है-वासुदेवतः प्रति। अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है-अर्जुनतः प्रति।

सिद्धि-वासुदेवतः। *वासुदेव+ङसि+तसि। वासुदेव+तस्। वासुदेवतस्+सु। वासुदेव+०। वासुदेवतरु। वासुदेवतर्। वासुदेवतः।*

*यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति शब्द के योग में विद्यमान पञ्चम्यन्त 'वासुदेव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्यय-संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का 'लुक्' होता है। शेष कार्य 'बहुशः' के समान है। ऐसे ही-**अर्जुनतः।***

*यहां **'प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः'** (१।४।९२) से 'प्रति' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर **'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्'** (१।३।११) से पञ्चमी विभक्ति होती है।*

तसिः-

(३६) अपादाने चाहीयरुहोः।४५।

प०वि०-अपादाने ७।१ च अव्ययपदम्, अहीय-रुहोः ६।२।

स०-हीयश्च रुह् च तौ हीयरुहौ, न हीयरुहौ-अहीयरुहौ, तयोः-अहीयरुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वनञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्यतरस्याम्, पञ्चम्याः, तसिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहीयरुहोरपादाने च पञ्चम्याः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-हीयरुहसम्बन्धवर्जिताद् अपादाने कारके च वर्तमानात् **पञ्चम्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।**

उदा०-ग्रामाद् आगच्छति देवदत्तः-ग्रामात आगच्छति देवदत्तः। चौराद् बिभेति सोमदत्तः-चौरतो बिभेति सोमदत्तः। अध्ययनात् पराजयते यज्ञदत्तः-अध्ययनतः पराजयते यज्ञदत्तः। अहीयरुहोरिति किम् ? सार्थाद् हीयते देवदत्तः। पर्वताद् अवरोहति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहीयरुहोः) हीय और रुह् धातु के सम्बन्ध से रहित (अपादाने) अपादान कारक में विद्यमान (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-देवदत्त ग्राम से आता है-ग्रामतः आता है। सोमदत्त चौर से डरता है-चौरतः डरता है। यज्ञदत्त अध्ययन से पराजित होता है-अध्ययनतः पराजित होता है।

*सिद्धि-(१) **ग्रामतः।** ग्राम+ङसि+तसि। ग्राम+तस्। ग्रामतस्+सु। ग्रामतस्+०। ग्रामतरु। ग्रामतर्। ग्रामतः।*

*यहां अपादान कारक में विद्यमान 'ग्राम' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां '**ध्रुवमपायेऽपादानम्**' (१।४।२४) से अपादान कारक है।*

*(२) **चौरतः।** यहां '**भीत्रार्थानां भयहेतुः**' (१।४।२५) से अपादान कारक है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अध्ययनतः।** यहां 'पराजेरसोढः' (१।४।२६) से अपादान कारक है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*यहां '**अहीयरुहोः**' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां 'तसि' प्रत्यय न हो-**सार्थाद् हीयते देवदत्तः।** देवदत्त अपने सार्थ (टोळी) से बिछुड़ता है। **पर्वताद् अवरोहति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पर्वत से उतरता है। यहां 'हीय' और 'रुह' धातु के सम्बन्ध में 'तसि' प्रत्यय न हो।*

तसिः-

(४०) अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः।४६।

प०वि०- अतिग्रह-अव्यथन-क्षेपेषु ७।१ अकर्तरि ७।१ तृतीयायाः ५।१।

स०-अतिग्रहश्च अव्यथनं च क्षेपश्च ते-अतिग्रहाव्यथनक्षेपाः, तेषु-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अतिक्रम्य ग्रहः=अतिग्रहः। अव्यथनम्=अचलनम्। क्षेपः=निन्दा। न कर्ता-अकर्ता, तस्मिन्-अकर्तरि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अन्यतरस्याम् तसिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु अकर्तरि कारके तृतीयायाः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वर्थेषु अकर्तरि कारके च वर्तमानात् तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अतिग्रहः**) वृत्तेनातिगृह्यते-वृत्ततोऽतिगृह्यते देवदत्तः। चरित्रेणातिगृह्यते-चरित्रतोऽतिगृह्यते देवदत्तः। वृत्तेन चरित्रेण च गृह्यते इत्यर्थः। (**अव्यथनम्**) वृत्तेन न व्यथते-वृत्ततो न व्यथते यज्ञदत्तः। चरित्रेण न व्यथते-चरित्रतो न व्यथते यज्ञदत्तः। वृत्तेन चरित्रेण च न संचलतीत्यर्थः। (**क्षेपः**) वृत्तेन क्षिप्तः-वृत्ततो क्षिप्तो ब्रह्मदत्तः। चरित्रेण क्षिप्तः-चरित्रेण क्षिप्तो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु) अतिग्रह=अतिक्रमण, अव्यथन=अचलन, क्षेप=निन्दा अर्थ में और (अकर्तरि) कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान (तृतीयायाः) तृतीयान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अतिग्रह)** देवदत्त वृत्त=व्यवहार (लेन-देन आदि) से अतिगृहीत अतिक्रमण पूर्वक स्वीकृत किया जाता है-वृत्ततः अतिगृहीत किया जाता है। देवदत्त चरित्र=आचार से अतिगृहीत किया जाता है-चरित्रतः अतिगृहीत किया जाता है। **(अव्यथन)** यज्ञदत्त वृत्त से संचलित नहीं होता है-वृत्ततः संचलित नहीं होता है। यज्ञदत्त चरित्र से संचलित नहीं होता है-चरित्रतः संचलित नहीं होता है। **(क्षेप)** ब्रह्मदत्त वृत्त से क्षिप्त=निन्दित है-वृत्ततः निन्दित है। ब्रह्मदत्त चरित्र से निन्दित है-चरित्रतः निन्दित है।*

सिद्धि-वृत्ततः। वृत्त+टा+तसि। वृत्त+तस्। वृत्ततस्+सु। वृत्ततस्+०। वृत्ततरु। वृत्ततर्। वृत्ततः।

यहां अतिग्रह, अव्यथन, क्षेप अर्थों में तथा अकर्ता कारक में विद्यमान तृतीयान्त 'वृत्त' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-चरित्रतः।

यहां 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से कर्ता कारक में नहीं अपितु करण करक में तृतीया विभक्ति है।

तसिः–

(४१) हीयमानपापयोगाच्च ।४७।

प०वि०–हीयमान-पापयोगात् ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०–हीयमानश्च पापश्च तौ हीयमानपापौ, ताभ्याम्- हीयमान-पापाभ्याम्, हीयमानपापाभ्यां योगो यस्य तत्-हीयमानपापयोगम्, तस्मात्-हीयमानपायोगात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः) ।

अनु०–अन्यतरस्याम्, तसिः, अकर्तरि, तृतीयाया इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अकर्तरि तृतीयाया हीयमानपापयोगाच्चान्यतरस्यां तसिः ।

अर्थः–कर्तृभिन्ने कारके वर्तमानात् तृतीयान्ताद् हीयमानयोगवाचिनः पापयोगवाचिनश्च प्रातिपदिकादपि स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(हीयमानयोगः)** वृत्तेन हीयते-वृत्ततो हीयते देवदत्तः । चरित्रेण हीयते-चरित्रतो हीयते देवदत्तः । **(पापयोगः)** वृत्तेन पापः-वृत्ततो पापो यज्ञदत्तः । चरित्रेण पापः-चरित्रतो पापो यज्ञदत्तः ।

__आर्यभाषा अर्थ__-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान (तृतीयायाः) तृतीयान्त (हीयमानपापयोगाच्च) हीयमान योगवाची और पापयोगवाची प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।

उदा०–__(हीयमानयोग)__ देवदत्त वृत्त=व्यवहार के कारण से हीन है-वृत्ततः हीन है। देवदत्त चरित्र=आचार के कारण से हीन है-चरित्रतः हीन है। __(पापयोग)__ यज्ञदत्त वृत्त के कारण से पापी है-वृत्ततः पापी है। यज्ञदत्त चरित्र के कारण से पापी है-चरित्रतः पापी है।

__सिद्धि__-वृत्ततः । वृत्त+टा+तसि । वृत्त+तस् । वृत्ततस्+सु । वृत्ततस्+० । वृत्ततरु । वृत्ततर् । वृत्ततः ।

यहां कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान, तृतीयान्त हीयमानयोगवाची तथा पापयोगवाची 'वृत्त' शब्द से इस सूत्र से 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–चरित्रतः । यहां 'हेतौ' (२।३।२३) से कर्ता से भिन्न हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति है।

तसिः–

(४२) षष्ठ्या व्याश्रये ।४८।

प०वि०–षष्ठ्याः ५ ।१ व्याश्रये ७ ।१ ।

अनु०–अन्यतरस्याम्, तसिरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-व्याश्रये षष्ठ्या अन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-व्याश्रये=नानापक्षसमाश्रयेऽर्थे वर्तमानात् षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-देवा अर्जुनस्याभवन्-देवा अर्जुनतोऽभवन्। अर्जुनस्य पक्षेऽभवन्नित्यर्थः। आदित्याः कर्णस्याभवन्-आदित्याः कर्णतोऽभवन्। कर्णस्य पक्षेऽभवन्नित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(व्याश्रये) नाना पक्षों के आश्रय अर्थ में विद्यमान (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-देवता अर्जुन के पक्ष में हुये-अर्जुनतः हुये। आदित्य कर्ण के पक्ष में हुये-कर्णतः हुये।

सिद्धि-अर्जुनतः। अर्जुन+ङसि+तसि। अर्जुन+तस्। अर्जुनतस्+सु। अर्जुनतस्+०। अर्जुनतरु। अर्जुनतर्। अर्जुनतः।

यहां व्याश्रय अर्थ में विद्यमान, षष्ठ्यन्त 'अर्जुन' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कर्णतः।

तसिः-

(४३) रोगाच्चापनयने।४६।

प०वि०-रोगात् ५।१ च अव्ययपदम्, अपनयने ७।१।

अनु०-अन्यतरस्याम्, तसिः, षष्ठ्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपनयने षष्ठ्या रोगाच्चान्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-अपनयनेऽर्थे वर्तमानात् षष्ठ्यन्ताद् रोगवाचिनः प्रातिपदिकाच्च स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-हे वैद्य! त्वं छर्दिकायाः कुरु-छर्दिकातः कुरु। कासस्य कुरु-कासतः कुरु। प्रवाहिकायाः कुरु-प्रवाहिकातः कुरु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपनयने) चिकित्सा अर्थ में विद्यमान (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (रोगात्) रोगवाची प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-हे वैद्य ! तू छर्दिका=वमन रोग की चिकित्सा कर-छर्दिकातः कर। कास=खांसी रोग की चिकित्सा कर-कासतः कर। प्रवाहिका-अतिसार रोग की चिकित्सा कर-प्रवाहिकातः कर।

***सिद्धि**-छर्दिकातः। छर्दिका+ङस्+तसि। छर्दिका+तस्। छर्दिकातस्+सु। छर्दिकातस्+०। छर्दिकातरु। छर्दिकातर्। छर्दिकातः।*

यहां अपनयन=चिकित्सा अर्थ में विद्यमान, षष्ठ्यन्त, रोगवाची 'छर्दिका' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कासतः, प्रवाहिकातः।

अभूततद्भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

च्विः-

(१) {अभूततद्भावे} कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः।५०।

प०वि०-{अभूततद्भावे ७।१} कृ-भू-अस्तियोगे ७।१ सम्पद्य-कर्तरि ७।१ च्विः १।१।

स०-न भूतम्-अभूतम्, तस्य भावस्तद्भावः, अभूतस्य तद्भावः-अभूततद्भावः, तस्मिन्-अभूततद्भावे (नञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। कृश्च भूश्च अस्तिश्च ते कृभ्वस्तयः, तैः-कृभ्वस्तिभिः, कृभ्वस्तिभिर्योगो यस्य तत्-कृभ्वस्तियोगम्, तस्मिन्-कृभ्वस्तियोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। सम्पद्यतेः कर्ता-सम्पद्यकर्ता, तस्मिन्-सम्पद्यकर्तरि।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे च्विः।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे च्विः प्रत्ययो भवति। कारणस्य विकाररूपेणाऽभूतस्य तदात्मना भावः-अभूततद्भावः कथ्यते।

उदा०-अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते, तं करोति-शुक्ली करोति। मलिनं शुक्ली करोतीत्यर्थः। शुक्ली भवति। शुक्ली स्यात्। अघटो घटः सम्पद्यते तं करोति-घटी करोति। घटी भवति। घटी स्यात्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (च्विः) च्वि प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो अशुक्ल=मलिन है, वह शुक्ल बनता है और जो उसे बनाता है-शुक्ली बनता है। मलिन को शुद्ध बनाता है। जो अशुक्ल है, वह शुक्ल होता है-शुक्ली होता है। जो अशुक्ल है वह शुक्ल होवे-शुक्ली होवे। जो अघट (मृत्तिका) घट बनता है और जो उसे बनाता है-घटी बनता है। जो अघट है, वह घट होता है-घटी होता है। जो अघट है, वह घट होवे, घटी होवे।

सिद्धि-शुक्ली करोति। शुक्ल+सु+च्वि। शुक्ल् ई+वि। शुक्ली+०। शुक्ली+सु। शुक्ली+०। शुक्ली।

यहां कृ, भू, अस्ति के योग में और 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान शुक्ल' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में इस सूत्र से 'च्वि' प्रत्यय है। 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) से अंग के अकार को ईकार आदेश और 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'वि' का लोप होता है। 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-शुक्ली भवति, इत्यादि।

***विशेषः** 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इस मूल सूत्रपाठ में वा०-'च्विविधावभूततद्भावग्रहणम्' (महा० ५।४।५०) से सूत्रार्थ की स्वच्छता में 'अभूततद्भावे' पद का नियोग किया गया है।*

च्विः (अन्त्यलोपः)-

(२) अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च।५१।

प०वि०-अरुः-मनः-चक्षुः-चेतः-रहः-रजसाम् ६।३ लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-अरुश्च मनश्च चक्षुश्च चेतश्च रहश्च रजश्च तानि अरु०रजांसि, तेषाम्-अरु०रजसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि, च्विरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहो-रजोभ्यश्च्विः, लोपश्च।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानेभ्योऽरुर्मनश्चक्षु-श्चेतोरहोरजोभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽभूततद्भावेऽर्थे च्विः प्रत्ययो भवति, तेषामन्त्यवर्णस्य च लोपो भवति।

उदा०-(अरुः) अनरुररुः सम्पद्यते, तं करोति-अरू करोति। **अरू भवति**। अरू स्यात्। **(मनः)** अनुन्मना उन्मनाः सम्पद्यते, तं करोति-**उन्मनी**

करोति। उन्मनी भवति। उन्मनी स्यात्। **(चक्षुः)** अनुच्चक्षुरुच्चक्षुः **सम्पद्यते**, तं करोति-उच्चक्षू करोति। उच्चक्षू भवति। उच्चक्षू स्यात्। **(चेतः)** अविचेता विचेताः सम्पद्यते, तं करोति-विचेती करोति। विचेती भवति। विचेती स्यात्। **(रहः)** अविरहा विरहाः सम्पद्यते, तं करोति-विरही करोति। विरही भवति। विरही स्यात्। **(रजः)** अविरजा विरजाः सम्पद्यते, तं करोति-विरजी करोति। विरजी भवति। विरजी स्यात्।

आर्यभाषाः अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान (अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसाम्) अरुष्, मनस्, चक्षुष्, चेतस्, रहस्, रजस् प्रातिपदिकों से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान **कारण** का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (च्विः) च्वि प्रत्यय होता है (च) और **उनके** अन्त्य वर्ण का (लोप) लोप होता है।

*उदा०-(**अरुः**) जो अनरुः=अमर्म, अरुः=मर्म बनता है और जो उसे बनाता **है-अरू** बनाता है। अरू होता है। अरू होवे। (**मनः**) जो अनुन्मना=स्वस्थ मनवाला उन्मना=अस्वस्थ मनवाला बनता है और जौर जो उसे बनाता है-उन्मनी बनाता है। उन्मनी होता है। उन्मनी होवे। (**चक्षुः**) जो अनुद्गत चक्षुष्मान् उद्गत चक्षुष्मान बनता है और जो उसे बनाता है-उच्चक्षू बनाता है। उच्चक्षू होता है। उच्चक्षू होवे। (**चेतः**) जो अविचेता=स्थिर चित्तवान् विचेता=अस्थिर चित्तवान् बनता है और जो उसे बनाता है-विचेती बनाता है। विचेती होता है। विचेती होवे। (रहः) जो अविरहा=अविरहवाला विरहवाला बनता है और जो उसे बनाता है-विरही बनाता है। (रजः) जो अविरजा=अविरागवाला विरागवाला बनता है और जो उसे बनाता है-विरजी बनाता है। विरजी होता है। विरजी होवे।*

*सिद्धि-(१) **अरू करोति**। अरुष्+च्वि। अरु०+वि। अरू+वि। अरू+०। अरू+सु। अरू+०। अरू।*

*यहां कृ, भू, अस्ति के योग में, सम्पद्यते क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान 'अरुष्' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में इस सूत्र से 'च्वि' प्रत्यय और 'अरुष्' के अन्त्यवर्ण सकार का लोप होता है। '**च्वौ च**' (७।४।२६) से अजन्त अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**उच्चक्षू करोति**।*

*(२) **उन्मनी करोति**। यहां पूर्वोक्त 'उन्मनस्' शब्द से पूर्ववत् 'च्वि' प्रत्यय करने तथा अन्त्य वर्ण सकार का लोप हो जाने पर '**अस्य च्वौ**' (७।४।३२) से अंग के अकार को ईकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**विचेती करोति, विरही करोति, विरजी करोति**।*

साति-विकल्पः–

(३) विभाषा साति कार्त्स्न्ये।५२।

प०वि०–विभाषा १।१ साति १।१ (सु-लुक्) कार्त्स्न्ये ७।१।

अनु०–अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे विभाषा सातिः, कार्त्स्न्ये।

अर्थः–कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे विकल्पेन सातिः प्रत्ययो भवति, कार्त्स्न्ये गम्यमाने। यदि प्रकृतिः कृत्स्नां विकारात्मतामापद्यते इत्यर्थः। पक्षे च च्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०–अनग्निरग्निः सम्पद्यते, स भवति-अग्निसाद् भवति शस्त्रम् (सातिः)। अग्नी भवति शस्त्रम् (च्विः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तद्भवति-उदकसाद् भवति लवणम् (सातिः)। उदकी भवति लवणम् (च्विः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सातिः) साति प्रत्यय होता है (कार्त्स्न्ये) यदि वहां प्रकृति समस्त विकार स्वरूप को प्राप्त हो।*

उदा०–जो अग्नि नहीं है, वह अग्नि बनता है, और वह समस्त भाव से अग्नि होता है-अग्निसात् होता है (साति)। अग्नी होता है (च्वि)। जो उदक=जल नहीं है, वह जल बनता है और वह समस्त भाव से जल होता है-उदकसात् होता है। उदकी होता है।

*सिद्धि-(१) **अग्निसाद् भवति।** अग्नि+सु+साति। अग्नि+सात्। अग्निसात्+सु। अग्निसात्+०। अग्निसात्।*

*यहां कृ, भू, अस्ति के योग में तथा 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान 'अग्नि' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में तथा कार्त्स्न्ये अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'साति' प्रत्यय है। 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-**उदकसात्।***

*(२) **अग्नी भवति।** यहां पूर्वोक्त 'अग्नि' शब्द से विकल्प पक्ष में 'च्वि' **प्रत्यय** करने पर **'च्वौ च'** (७।४।२६) से अजन्त अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य **पूर्ववत् है।***

(३) उदकी भवति। यहां 'उदक' शब्द से पूर्ववत् 'च्वि' प्रत्यय करने पर 'अस्य च्वौ' (६।४।३४) से अंग के अकार को ईकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

साति-विकल्पः–

(४) अभिविधौ सम्पदा च।५३।

प०वि०–अभिविधौ ७।१ सम्पदा ३।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि, विभाषा, सातिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे सम्पद्यकर्तरि प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे विभाषा सातिः, अभिविधौ।

अर्थः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे विकल्पेन सातिः प्रत्ययो भवति, अभिविधौ=अभिव्याप्तौ गम्यमानायाम्। पक्षे च कृभ्वस्तिभिर्योगे च्विः प्रत्ययो भवति, न च सम्पदा योगे।

उदा०–अनग्निरग्निः सम्पद्यते तं करोति–अग्निसात् करोति, अग्निसाद् भवति, अग्निसात् स्यात्, अग्निसात् सम्पद्यते (सातिः)। अनग्निरग्निः सम्पद्यते तं करोति–अग्नी करोति। अग्नी भवति। अग्नी स्यात् (च्विः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तत् करोति–उदकसात् करोति, उदकसाद् भवति, उदकसात् स्यात्, उदकसात् सम्पद्यते (सातिः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तत् करोति–उदकी करोति, उदकी भवति, उदकी स्यात् (च्विः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सातिः) साति प्रत्यय होता है (अभिविधौ) यदि वहां अभिव्याप्ति अर्थ की प्रतीति हो और पक्ष में कृ, भू, अस्ति के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है 'सम्पद' के योग में नहीं।*

*उदा०–जो अग्नि नहीं है वह अग्नि बनता है और जो उसे बनाता है-अग्निसात् बनाता है, अग्निसात् होता है, अग्निसात् होवे, अग्निसात् बनाता है (साति)। जो अग्नि नहीं **है वह** अग्नि बनता है और जो उसे बनाता है-अग्नी बनाता है, अग्नी होता है, अग्नी **होवे***

(च्वि)। जो उदक=जल नहीं है वह उदक बनता है और जो उसे बनाता है-उदकसात् बनाता है, उदकसात् होता है, उदकसात् होवे (साति)। जो उदक नहीं है वह उदक बनता है और जो उसे बनाता है-उदकी बनाता है, उदकी होता है, उदकी होवे (च्वि)।

सिद्धि-अग्निसात् करोति और अग्नी करोति आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *अभिविधि=अभिव्याप्ति और कात्स्न्र्य=सम्पूर्णता अर्थ में यह भेद है कि जहां एकदेश रूप में भी सब प्रकृति विकारभाव को प्राप्त हो जाती है उसे अभिविधि कहते हैं। जैसे-इस सेना में उत्पात से सब शस्त्र अग्निसात् होगये, वर्षा में सब लवण उदकसात् होगया। यह अभिविधि वचन है। समस्त रूप से द्रव्य का विकारभाव को प्राप्त हो जाना कात्स्न्र्य कहाता है। अग्निसाद् भवति शस्त्रम्। यह कात्स्न्र्य वचन है।*

अधीनार्थप्रत्ययविधिः

सातिः–

(१) तदधीनवचने।५४।

प०वि०–तदधीन-वचने ७।१।

स०–तस्य (स्वामिनः) अधीनम्-तदधीनम्, तदधीनस्य वचनम्-तदधीनवचनम्, तस्मिन्-तदधीनवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–कृभ्वस्तियोगे, सम्पदा च इति चानुवर्तते। अभूततद्भावे, सम्पद्यकर्तरि, इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनस्तदधीनवचने सातिः।

अर्थः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् तदधीनवचनेऽर्थे सातिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–राजाधीनं करोति-राजसात् करोति, राजसाद् भवति, राजसात् स्यात्, राजसात् सम्पद्यते। आचार्याधीनं करोति-आचार्यसात् करोति, आचार्यसाद् भवति, आचार्यसात् स्यात्, आचार्यसात् सम्पद्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से (तदधीनवचने) उस स्वामिविशेष के अधीन=आश्रित कथन अर्थ में (सातिः) साति प्रत्यय होता है।*

उदा०-राजा के अधीन करता है-राजसात् करता है, राजसात् होता है, राजसात् होवे, राजसात् बनता है। आचार्य के अधीन करता है-आचार्यसात् करता है, आचार्यसात् होता है, आचार्यसात् होवे, आचार्यसात् बनता है।

सिद्धि-राजसात्। *राजन्+ङस्+साति। राजन्+सात्। राज०+सात्। राजसात्+सु। राजसात्+०। राजसात्।*

यहां कृ, भू, अस्ति और सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची 'राजन्' शब्द से तदधीन के कथन अर्थ में इस सूत्र से 'साति' प्रत्यय है। 'साति' प्रत्यय के परे होने पर ***'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'*** *(१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पद-संज्ञा होकर* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।३७) से राजन् पद के नकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-* ***आचार्यसात्।***

त्राः+सातिः-

(२) देये त्रा च।५५।

प०वि०-देये ७।१ त्रा १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे सातिः, सम्पदा च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनस्तदधीने देये वचने त्राः सातिश्च।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् तदधीने देयवचनेऽर्थे त्राः सातिश्च प्रत्ययो भवति।

इदमाचार्येभ्यो देयमिति यत् प्रतिज्ञातम्, तद् यदा तेभ्यः प्रदानेन तदधीनं क्रियते तदा त्राः सातिश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-आचार्याधीनं देयं करोति-आचार्यत्रा करोति, आचार्यत्रा भवति, आचार्यत्रा स्यात्, आचार्यत्रा सम्पद्यते (त्राः)। आचार्यसात् करोति, आचार्यसाद् भवति, आचार्यसात् स्यात्, आचार्यसात् सम्पद्यते (सातिः)।

आर्यभाषाः अर्थ- *(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से (तदधीनवचने देये) उस स्वामिविशेष के अधीन देय द्रव्य के कथन अर्थ में (त्राः) त्रा (च) और (सातिः) साति प्रत्यय होते हैं।*

यह आचार्य जी को देना है इस प्रकार से जो प्रतिज्ञात शाल आदि द्रव्य है जब वह ***उन्हें समर्पित करके उनके अधीन किया जाता है तब यह त्रा और साति प्रत्यय होते हैं।***

उदा०-शिष्य आचार्य जी को देय शाल आदि द्रव्य को उनके अधीन करता है-आचार्यत्रा करता है, आचार्यत्रा होता है, आचार्यत्रा होवे, आचार्यत्रा बनता है (त्रा)। आचार्यसात् करता है, आचार्यसात् होता है, आचार्यसात् होवे, आचार्यसात् बनता है।

सिद्धि-(१) आचार्यत्रा। आचार्य+अम्+त्रा। आचार्य+त्रा। आचार्यत्रा+सु। आचार्यत्रा+०। आचार्यत्रा।

यहां कृ, भू, अस्ति और सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची 'आचार्य' शब्द से तदधीन देय द्रव्य के कथन अर्थ में इस सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) आचार्यसात् पद की सिद्धि पूर्ववत् है।

सामान्यार्थप्रत्ययविधिः

त्राः-

(१) देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्।५६।

प०वि०-देव-मनुष्य-पुरुष-मर्त्येभ्यः ५।३ द्वितीया-सप्तम्योः ६।२ बहुलम् १।१।

स०-देवश्च मनुष्यश्च पुरुषश्च पुरुश्च मर्त्यश्च ते-देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्याः, तेभ्यः-देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वितीया च सप्तमी च ते द्वितीयासप्तम्यौ, तयोः-द्वितीयासप्तम्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे इत्यत्र न सम्बध्यते। 'त्रा' इत्यनुवर्तते, सातिरिति च निवृत्तम्।

अन्वयः-द्वितीयासप्तम्यन्तेभ्यो देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो बहुलं त्राः।

अर्थः-द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सामान्यार्थे बहुलं त्राः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(देवः) देवान् गच्छति-देवत्रा गच्छति (द्वितीया)। देवेषु वसति-देवत्रा वसति (सप्तमी)। **(मनुष्यः)** मनुष्यान् गच्छति-मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु वसति-मनुष्यत्रा वसति। **(पुरुषः)** पुरुषान् गच्छति-पुरुषत्रा गच्छति। पुरुषेषु वसति-पुरुषत्रा वसति। **(पुरुः)** पुरून् गच्छति-पुरुत्रा गच्छति। पुरुषु वसति-पुरुत्रा वसति। **(मर्त्यः)** मर्त्यान् गच्छति-मर्त्यत्रा गच्छति। मर्त्येषु वसति-मर्त्यत्रा वसति। बहुलवचनादन्यत्रापि त्राः प्रत्ययो भवति-**बहुत्रा जीवतो मन इति।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्वितीयासप्तम्योः) द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त (देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः) देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, मर्त्य प्रातिपदिकों से सामान्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (त्राः) त्रा प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(देव) देव=विद्वानों को प्राप्त करता है-देवत्रा प्राप्त करता है। देवों में रहता है-देवत्रा रहता है। (मनुष्य) मनुष्य=मननशील जनों को प्राप्त करता है-मनुष्यत्रा प्राप्त करता है। मनुष्यों में रहता है-मनुष्यत्रा रहता है। (पुरुष) पुरुषों को प्राप्त करता है-पुरुषत्रा प्राप्त करता है। पुरुषों में रहता है-पुरुषत्रा रहता है। (पुरु) पुरु=बहुत जनों को प्राप्त करता है-पुरुत्रा प्राप्त करता है। पुरु=बहुत जनों में रहता है-पुरुत्रा रहता है। (मर्त्य) मर्त्य=मरणधर्मा जनों को प्राप्त करता है-मर्त्यत्रा प्राप्त करता है। मर्त्य=मरणधर्मा जनों में रहता है-मर्त्यत्रा रहता है। बहुलवचन से अन्यत्र भी त्रा प्रत्यय होता है-**बहुत्रा जीवतो मनः।***

*सिद्धि-**देवत्रा।** देव+शस्/सुप्+त्रा। देव+त्रा। देवत्रा+सु। देवत्रा+०। देवत्रा।*

*यहां द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त 'देव' शब्द से सामान्य अर्थ में इस सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**मनुष्यत्रा** आदि।*

डाच्-

(२) अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्।५७।

प०वि०-अव्यक्त-अनुकरणात् ५।१ द्व्यजवरअर्धात् ५।१ अनितौ ७।१ डाच् १।१।

स०-यस्मिन् ध्वनौ अकारादयो वर्णा विशेषरूपेण न व्यज्यन्ते सोऽव्यक्त इति कथ्यते। अव्यक्तस्याऽनुकरणम्-अव्यक्तानुकरणम्, तस्मात्-अव्यक्तानुकरणात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्, द्व्यच् अवरार्धं यस्य तत्-द्व्यजवरार्धम्, तस्मात्-द्व्यजवरार्धात् (बहुव्रीहिः)। न इतिः-अनितिः, तस्मिन्-अनितौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे द्व्यजवरार्धाद् अव्यक्तानुकरणाड् डाच्, अनितौ।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे द्व्यच् अवरार्धं यस्य तस्माद् अव्यक्तानुकरण-वाचिनः प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति, अनितौ परतः।

उदा०-पटत् पटत् करोति-पटपटा करोति, पटपटा भवति, पटपटा स्यात्। दमद् दमत् करोति-दमदमा करोति, दमदमा भवति, दमदमा स्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में (द्व्यजवरार्धात्) जिसके अवरवर्ती भाग में दो अच् हैं उस (अव्यक्तानुकरणात्) अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणवाची शब्द से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है (अनितौ) यदि वहां इति शब्द परे न हो।*

उदा०-पटत् पटत् करता है-पटपटा करता है, पटपटा होता है, पटपटा होवे। दमत् दमत् करता है-दमदमा करता है, दमदमा होता है, दमदमा होवे।

सिद्धि-पटपटा करोति। *पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पटत्+पट्+आ। पट+पट्+आ। पटपटा+सु। पटपटा+०। पटपटा।*

यहां कृ, भू, अस्ति के योग में, जिसके अवरवर्ती भाग में दो अच् हैं उस अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणवाची 'पटत्' शब्द से इस सूत्र से डाच् प्रत्यय है। वा०-'डाचि बहुलं द्वे भवतः' (८।१।१२) से 'पटत्' शब्द को द्वित्व होता है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' (६।१।१००) से पूर्ववर्ती तकार को पररूप आदेश होता है। ऐसे ही-दमदमा करोति।

कर्षणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ।५८।

प०वि०-कृञः ६।१ द्वितीय-तृतीय-शम्ब-बीजात् ५।१ कृषौ ७।१।

स०-द्वितीयश्च तृतीयश्च शम्बश्च बीजं च एतेषां समाहारो द्वितीय-तृतीयसम्बबीजम्, तस्मात्-द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पुनः कृञो ग्रहणं भू-अस्त्योर्निवृत्त्यर्थम्, डाच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे कृषौ द्वितीयतृतीयशम्बबीजाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे कृषि-अर्थे वर्तमानेभ्यो द्वितीयतृतीयशम्बबीजेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**द्वितीयः**) द्वितीयं कर्षणं करोति-द्वितीया करोति। (**तृतीयः**) तृतीयं कर्षणं करोति-तृतीया करोति। (**शम्बः**) शम्बात्मकं कर्षणं करोति-

शम्बा करोति। अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कृषतीत्यर्थः। **(बीजम्)** बीजेन सह कर्षणं करोति-बीजा करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (कृषौ) कृषि=हल चलाने अर्थ में विद्यमान (द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्) द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(द्वितीय)** खेत में दूसरी बार हल चलाता है-द्वितीया करता है (दोसर करता है)। **(तृतीय)** खेत में तीसरी बार हल चलाता है-तृतीया करता है (तिसर करता है)। **(शम्ब)** अनुलोम हल चलाये हुये खेत में पुनः प्रतिलोम हल चलाता है-शम्बा करता है। **(बीज)** बीज के सहित हल चलाता है-बीजा करता है (बीजाई करता है)।*

सिद्धि-द्वितीया करोति। *द्वितीय+अम्+डाच्। द्वितीय्+आ। द्वितीया+सु। द्वितीया+०। द्वितीया।*

*यहां 'कृञ्' के योग में और कृषि=हल चलाने अर्थ में विद्यमान 'द्वितीय' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**तृतीया करोति,** आदि।*

डाच्-

(२) संख्यायाश्च गुणान्तायाः।५६।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ च अव्ययपदम्, गुणान्तायाः ५।१।

स०-गुणशब्दोऽन्ते (समीपे) यस्याः सा-गुणान्ताः, तस्याः-गुणान्तायाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-डाच्, कृञः, कृषाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे कृषौ गुणान्तायाः संख्यायाश्च डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे कृषि-अर्थे वर्तमानाद् गुणान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्षेत्रस्य द्विगुणं कर्षणं करोति-द्विगुणा करोति क्षेत्रम्। त्रिगुणा करोति क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (कृषौ) हल चलाने अर्थ में विद्यमान (गुणान्तः) गुण शब्द जिसके अन्त में है उस (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-खेत में द्विगुण=दुगना हल चलाता है-द्विगुणा करता है। खेत में त्रिगुण=तिगुना हल चलाता है-त्रिगुणा करता है।

सिद्धि-द्विगुणा करोति। द्विगुण+अम्+डाच्। द्विगुण्+आ। द्विगुणा+सु। द्विगुणा+०। द्विगुणा।

यहां कृञ् के योग में और कृषि=हल चलाने अर्थ में, गुण शब्द जिसके अन्त में है उस संख्यावाची 'द्विगुण' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-त्रिगुणा करोति।

यापनार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) समयाच्च यापनायाम्।६०।

प०वि०-समयात् ५।१ च अव्ययपदम्, यापनायाम् ७।१।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे यापनायां समयाच्च डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे यापनार्थे च वर्तमानात् समय-शब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समयं यापयति-समया करोति। कालक्षेपं करोतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (यापनायाम्) बिताने **अर्थ में** विद्यमान (समयात्) समय प्रातिपदिक से (च) भी (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-समय को बिताता है-समया करता है। आज मेरी विवशता है कल **या** परसों मैं यह कार्य कर सकूंगा, इस प्रकार से काल-क्षेप करता है।*

***सिद्धि-समया करोति।** यहां कृञ् के योग और यापना अर्थ में विद्यमान 'समय' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अतिव्यथनार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने।६१।

प०वि०-सपत्र-निष्पत्रात् ५।१ अतिव्यथने ७।१।

स०-सह पत्रेण वर्तते इति सपत्रः। निर्गतं पत्रं यस्मात्-निष्पत्रः। सपत्रश्च निष्पत्रश्च एतयोः समाहारः सपत्रनिष्पत्रम्, तस्मात्-सपत्रनिष्पत्रात्

(बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। अतिशयितं व्यथनम्-अतिव्यथनम्, तस्मिन्-अतिव्यथने (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगेऽतिव्यथने सपत्रनिष्पत्राड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगेऽतिव्यथने चार्थे वर्तमानाभ्यां सपत्रनिष्पत्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सपत्रः)** सपत्रं करोति-सपत्रा करोति मृगं व्याधः। सपत्रं शरं मृगस्य शरीरे प्रवेशयतीत्यर्थः। **(निष्पत्रः)** निष्पत्रं करोति-निष्पत्रा करोति मृगं व्याधः। मृगस्य शरीराच्छरमपरश्वार्थे निष्क्रामयतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(कृञः) कृञ् के योग में और (अतिव्यथने) अत्यन्त पीडा देने अर्थ में विद्यमान (सपत्रनिष्पत्रात्) सपत्र, निष्पत्र प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(सपत्र)** शिकारी मृग को सपत्र करता है-सपत्रा करता है। शिकारी मृग के शरीर में पत्ते सहित बाण को प्रविष्ट करता है जिससे मृग को अत्यन्त पीडा होती है। **(निष्पत्र)** शिकारी मृग के शरीर को निष्पत्र करता है-निष्पत्रा करता है। शिकारी मृग के शरीर से पत्ते सहित बाण को दूसरी ओर निकालता है जिससे मृग को अत्यन्त पीडा होती है।*

सिद्धि-सपत्रा करोति। *यहां कृञ् के योग में तथा अतिव्यथन अर्थ में 'सपत्र' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' पत्र है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**निष्पत्रा करोति।***

निष्कोषणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) निष्कुलान्निष्कोषणे।६२।

प०वि०-निष्कुलात् ५।१ निष्कोषणे ७।१।

स०-निष्कोषणितमन्तरवयवानां कुलं यस्यात्-निष्कुलम्, तस्मात्-निष्कुलात् (बहुव्रीहिः)। निष्कोषणम्=निष्कर्षणम्, अन्तरवयवानां बहिर्निष्कासनमित्यर्थः।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे निष्कोषणे निष्कुलाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे निष्कोषणे चार्थे वर्तमानाद् निष्कुलशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निष्कुलं करोति-निष्कुला करोति पशून्। पशूनामान्तरिकावयवानां बहिर्निष्कर्षणं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (निष्कोषणे) बाहर निकालना अर्थ में विद्यमान (निष्कुलात्) निष्कुल प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पशुओं को निष्कुल करता है-निष्कुला करता है। पशुओं के आन्तरिक अवयवों (आंत आदि) को बाहर निकालता है।

सिद्धि-निष्कुला करोति। *यहां कृञ् के योग में और निष्कोषण अर्थ में विद्यमान 'निष्कुल' शब्द से इस सूत्र से डाच् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आनुलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

डाच्—

(१) सुखप्रियादानुलोम्ये।६३।

प०वि०-सुख-प्रियात् ५।१ आनुलोम्ये।६३।

स०-सुखं च प्रियं च एतयोः समाहारः सुखप्रियम्, तस्मात्-सुखप्रियात् (समाहारद्वन्द्वः)। आनुलोम्यम्=अनुकूलता, आराध्यस्वाम्यादीनां चित्तानुवर्तनम्।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे आनुलोम्ये सुखप्रियाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे आनुलोम्ये चार्थे वर्तमानाभ्यां सुखप्रियाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सुखम्)** सुखं करोति-सुखा करोति, स्वामिनश्चित्तमाराधयतीत्यर्थः। **(प्रियम्)** प्रियं करोति-प्रिया करोति। स्वामिनश्चित्तमनुवर्तयतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (आनुलोम्ये) अनुकूलता* ***अर्थ*** *में विद्यमान (सुखप्रियात्) सुख, प्रिय प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सुख करता है-सुखा करता है। स्वामी के चित्त की आराधना करता है। प्रिय करता है-प्रिया करता है। स्वामी के चित्त के अनुकूल बर्ताव करता है।

सिद्धि-सुखा करोति। *यहां कृञ् के योग में और आनुलोम्य अर्थ में विद्यमान 'सुख' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रिया करोति।***

प्रातिलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

डाच्–

(१) दुःखात् प्रातिलोम्ये।६४।

प०वि०–दुःखात् ५।१ प्रातिलोम्ये ७।१। प्रातिलोम्यम्=प्रतिकूलता, स्वाम्यादीनां चित्तपीडनम्।

अनु०–डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृञ्योगे प्रातिलोम्ये च दुःखाड् डाच्।

अर्थः–कृञ्योगे प्रातिलोम्ये चार्थे वर्तमानाद् दुःखशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–दुःखं करोति-दुःखा करोति भृत्यः। स्वामिनश्चित्तं पीडयतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (प्रातिलोम्ये) प्रतिकूलता अर्थ में विद्यमान (दुःखात्) दुःख प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दुःख करता है-दुःखा करता है। भृत्य=नौकर प्रतिकूल आचरण से स्वामी के चित्त को पीड़ा देता है।

***सिद्धि**-दुःखा करोति। यहां 'कृञ्' के योग में और प्रातिलोम्य अर्थ में विद्यमान 'दुःख' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

पाकार्थप्रत्ययविधिः

डाच्–

(१) शूलात् पाके।६५।

प०वि०–शुलात् ५।१ पाके ७।१।

अनु०–डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे पाके शूलाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे पाके चार्थे वर्तमानाच्छूलशब्दात् प्रातिपदिकाड् **डाच्** प्रत्ययो भवति।

उदा०-शूले पचति-शूला करोति मांसम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (पाके) पकाना **अर्थ में** विद्यमान (शूलात्) शूल प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मांस को शूल पर पकाता है-शूला करता है।

***सिद्धि-शूला करोति।** यहां 'कृञ्' के योग में और पाक अर्थ में विद्यमान 'शूल' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अशपथार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) सत्यादशपथे।६६।

प०वि०-सत्यात् ५।१ अशपथे ७।१।

स०-न शपथम्-अशपथम्, तस्मिन्-अशपथे (नञ्तत्पुरुषः)। **शपथम्**=व्रतमित्यर्थः।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगेऽशपथे च सत्याड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे अशपथे=शपथवर्जितेऽर्थे वर्तमानात् सत्यशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सत्यं करोति-सत्या करोति वणिक् भाण्डम्। मयैतत् क्रेतव्यमस्तीति तथ्यं करोति।

आर्यभाषाः** अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (अशपथे) शपथ=व्रत अर्थ से भिन्न अर्थ में विद्यमान (सत्यात्) सत्य प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय **होता है।

उदा०-वणिक्=व्यापारी भाण्ड=रत्न आदि द्रव्य को सत्य करता है-सत्या करता है। मुझे यह रत्न आदि द्रव्य खरीदना है, इसे तथ्य (पक्का) करता है।

***सिद्धि-सत्या करोति।** यहां 'कृञ्' के योग में और शपथ-वर्जित अर्थ **में विद्यमान** 'सत्य' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। **शेष कार्य** पूर्ववत् है।*

परिवापणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्–

(१) मद्रात् परिवापणे।६७।

प०वि०-मद्रात् ५।१ परिवापणे ७।१।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे परिवापणे च मद्राड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे परिवापणे=मुण्डने चार्थे वर्तमानाद् मद्रशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति। मद्रशब्दो मङ्गलार्थे वर्तते।

उदा०-मद्रं करोति-मद्रा करोति। चौलदीक्षादौ माङ्गल्यं मुण्डनं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(कृञः) कृञ् के योग में और (परिवापणे) मुण्डन अर्थ में विद्यमान (मद्रात्) मद्र प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है। मद्र शब्द मङ्गल-वाची है।*

उदा०-मद्र करता है-मद्रा करता है। चौल (मुण्डन-संस्कार) और संन्यास दीक्षा आदि में माङ्गलिक मुण्डन करता है।

सिद्धि-मद्रा करोति। *यहां 'कृञ्' के योग और परिवापण अर्थ में विद्यमान 'मद्र' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्

अधिकारः–

(१) समासान्ताः।६८।

वि०-समासान्ताः १।३।

स०-समासस्यान्तः=अवयवः-समासान्तः, ते-समासान्ताः (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अर्थः-समासान्ता इत्यधिकारोऽयम्, आ पादपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः समासान्ताः=समासस्यावयवा भवन्तीति वेदितव्यम्। अव्ययीभाव-द्विगु-द्वन्द्व-तत्पुरुष-बहुव्रीहिसंज्ञाः प्रयोजनम्।

उदा०-(अव्ययीभावः) राजनि अधि-अधिराजम्। राज्ञः समीपम्-उपराजम्। **(द्विगुः)** द्वयोः पुरोः समाहारः-द्विपुरी। तिसृणां पुरां समाहारः-त्रिपुरी। **(द्वन्द्वः)** कोशश्च निषच्च एतयोः समाहारः-कोशनिषदम्, कोशनिषदमस्या अस्तीति-कोशनिषदिनी। स्रक् च त्वक् च एतयोः समाहारः स्रक्त्वचम्, स्रक्त्वचमस्या अस्तीति स्रक्त्वचिनी। **(तत्पुरुषः)** विगता धूः-विधुरः। प्रगता धूः-प्रधुरः। **(बहुव्रीहिः)** उच्चैर्धूरस्य-उच्चैर्धुरः। नीचैर्धूरस्य-नीचैर्धुरः।

आर्यभाषाः अर्थ-(समासान्ताः) 'समासान्ता' इसका इस पाद की समाप्ति तक अधिकार है। इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय समासान्त-अर्थात् समास के अवयव होते हैं, ऐसा जानें। इसका अव्ययीभाव, द्विगु, द्वन्द्व, तत्पुरुष और बहुव्रीहि संज्ञा बने रहना प्रयोजन है।

उदा०-***(अव्ययीभाव)*** राजा के विषय में-अधिराज। राजा के समीप-उपराज। ***(द्विगु)*** दो पुरियों का समाहार-द्विपुरी। तीन पुरियों का समाहार-त्रिपुरी। ***(द्वन्द्व)*** कोश=सन्दूक और निषत्=खाट का समाहार-कोशनिषद, प्रशंसनीय कोश निषद है इसके यह-कोशनिषदिनी नारी। स्रक्=माला और त्वक्=छाल का समाहार-स्रक्त्वच, प्रशंसनीय स्रक्त्वच है इसकी यह-स्रक्त्वचिनी नारी। ***(तत्पुरुष)*** विगत धूः (जूआ) विधुर। प्रगत=प्रकृष्ट धूः=जूआ-प्रधुर। ***(बहुव्रीहि)*** ऊंची है धूः=जूआ इसका यह-उच्चैर्धुर। नीची है धूः=जुआ इसका यह-नीचैर्धुर।

सिद्धि-(१) ***अधिराजम्।*** *अधि+सु+राजन्+ङि। अधि+राजन्। अधिराजन्+टच्। अधिराज्०+अ। अधिराज+सु। अधिराज+अम्। अधिराजम्।*

यहां अधि और राजन् सुबन्तों का ***'अव्ययं विभक्तिसमीप०'*** *(२।१।६) से अव्ययीभाव समास है।* ***'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः'*** *(५।४।१०७) की अनुवृत्ति में* ***'अनश्च'*** *(५।४।१०८) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है।* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। 'टच्' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से* ***'नाव्ययीभावदतोऽम्त्वपञ्चम्याः'*** *(२।४।८३) से 'सु' का लुक् नहीं होता है अपितु उसे 'अम्' आदेश हो जाता है। ऐसे ही-* ***उपराजम्।***

(२) ***द्विपुरी।*** *द्वि+औ+पुर्+औ। द्विपुर्+अ। द्विपुर+ङीप्। द्विपुरी+सु। द्विपुरी+०। द्विपुरी।*

यहां द्वि और पुर् सुबन्तों का ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे'*** *(२।१।५१) से समानाधिकरण तत्पुरुष समास होता है और संख्यावाची शब्द पूर्वपद में होने से* ***'संख्यापूर्वो द्विगुः'*** *(२।१।५२) से द्विगु संज्ञा होती है।* ***'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'*** *(५।४।७४) से*

समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से **स्त्रीत्व**-विवक्षा में 'द्विगोः' (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**त्रिपुरी।**

(३) **कोशनिषदिनी।** कोशनिषद्+टच्। कोशनिषद्+अ। कोशनिषद+इनि। **कोश**निषद्+इन्। कोशनिषदिन्+ङीप्। कोशनिषदिनी+सु। कोशनिषदिनी+०। कोशनिषदिनी।

यहां द्वन्द्वसंज्ञक 'कोशनिषद्' शब्द से '**द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे**' (५।४।१०६) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। 'टच्' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से '**द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः**' (५।२।१२८) से 'इनि' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**स्रक्त्वचिनी।**

(४) विधुरः। वि+सु+धुर्+सु। विधुर्+अ। विधुर+सु। विधुरः।

यहां वि और धुर् शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास **है**। तत्पश्चात् 'विधुर्' शब्द से '**ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे**' (५।४।७४) से समासान्त '**अ**' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से '**तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः**' (६।२।२) से पूर्वपद प्रकृति स्वर होता **है**। '**उपसर्गाश्चाभिवर्जम्**' (फिट्० ४।१३) से 'वि' उपसर्ग का आद्युदात्त स्वर है-**विधुरः।** **ऐसे** ही-**प्रधुरः।**

(५) उच्चैर्धुरः। उच्चैस्+सु+धुर्+सु। उच्चैर्धुर्+अ। उच्चैधुर+सु। उच्चैर्धुरः।

यहां उच्चैस् और धुर् शब्द का बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'उच्चैर्धुर' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समसान्त=समास का अवयव होने से यहां '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६।२।१) से 'उच्चैस्' शब्द का पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है। 'उच्चैस्' शब्द स्वरादिगण में अन्तोदात्त पठित है-उच्चैर्धुरः। ऐसे ही-नीचैर्धुरः।

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः-

(२) न पूजनात्।६६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, पूजनात् ५।१।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूजनात् परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थः-पूजनवाचिनः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-सुष्ठु राजा-सुराजा। अतिशयितो राजा-अतिराजा। सुष्ठु गौः-सुगौः। अतिशयिता गौः-अतिगौः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पूजनात्) पूजनवाची शब्द से परे प्रातिपदिक से (समासान्ताः) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-सुष्ठु राजा-सुराजा। अच्छा राजा। अतिशयित राजा-अतिराजा। बढ़िया राजा। सुष्ठु गौ-सुगौ। अच्छी गाय। अतिशयित गौ-अतिगौ। बढ़िया गाय।

***सिद्धि-(१) सुराजा।** सु+सु+राजन्+सु। सु+राजन्। सुराजन्+सु। सुराजान्+सु। सुराजान्+०। सुराजा०। सुराजा।*

*यहां सु और राजन् सुबन्तों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादि तत्पुरुष समास है, तत्पश्चात् **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। पुनः **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अतिराजा।***

***(२) सुगौः।** सु+सु+गो+सु। सु+गो। सुगो+सु। सुगौ+स्। सुगौ+रु। सुगौ+र्। सुगौः।*

*यहां सु और गो सुबन्तों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुषसमास है, तत्पश्चात् **'गोरतद्धितलुकि'** (५।४।९२) से समासान्त 'टच्' प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। पुनः **गोतो णित्'** (७।१।९०) से 'सु' प्रत्यय को णिद्वद्भाव होकर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है। पूर्ववत् 'सु' को रुत्व और रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**अतिगौः।***

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः-

(३) किमः क्षेपे।७०।

प०वि०-किमः ५।१ क्षेपे ७।१।

अनु०-समासान्ताः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षेपे किमः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थः-क्षेपेऽर्थे वर्तमानात् किमः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-कथंभूतो राजा-किंराजा यो न रक्षति प्रजाः। कथंभूतः सखा-किंसखा योऽभिद्रुह्यति। किंभूता गौः-किंगौर्या न दोग्धि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षेपे) निन्दा अर्थ में विद्यमान (किम:) किम् शब्द से परे प्रातिपदिक से (समासान्ता:) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-कैसा राजा-किंराजा जो प्रजा की रक्षा नहीं करता है। कैसा सखा (मित्र)-किंसखा जो द्रोह करता है। कैसी गौ-किंगौ जो दूध नहीं देती है।

सिद्धि-(१) किंराजा। *किम्+सु+राजन्+सु। किंम्+राजन्। किंराजन्+सु। किंराजान्+सु। किंराजान्+०। किंराजा०। किंराजा।*

यहां किम् और राजन् सुबन्तों का ***'किं क्षेपे'*** *(२।१।६४) से कर्मधारय समास है। तत्पश्चात्* ***'राजाहःसखिभ्यष्टच्'*** *(५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-* ***किंसखा।***

(२) किंगौ:। *यहां किम् और गो सुबन्तों का पूर्ववत् कर्मधारय समास होता है। तत्पश्चात्* ***'गोरतद्धितलुकि'*** *(५।४।५२) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः-

(४) नञस्तत्पुरुषात्।७१।

प०वि०-नञ: ५।१ तत्पुरुषात् ५।१।

अनु०-समासान्ता:, न इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्पुरुषाद् नञ: परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थ:-तत्पुरुषसंज्ञकाद् नञ: परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता: प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-न राजा-अराजा। न सखा-असखा। न गौ:-अगौ:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक (नञ्) नञ् से परे प्रातिपदिक से (समासान्ता:) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-राजा नहीं-अराजा। सखा नहीं-असखा। गौ नहीं-अगौ।

सिद्धि-(१) अराजा। *नञ्+सु+राजन्। न+राजन्। अ+राजन्। अराजन्+सु। अराजान्+सु। अराजान्+०। अराजा०। अराजा।*

यहां नञ् और राजन् सुबन्तों का ***'नञ्'*** *(२।२।६) से नञ्-तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात्* ***'राजाहःसखिभ्यष्टच्'*** *(५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-* ***असखा।***

(२) अगौः । यहां नञ् और गो शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'गोरतद्धितलुकि' (५।४।९२) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

समासान्तप्रत्ययविकल्पः–

(५) पथो विभाषा।७२।

प०वि०–पथः ५।१ विभाषा १।१।

अनु०–समासान्ताः, न, नञः, तत्पुरुषाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषाद् नञः पथो विभाषा समासान्तो न।

अर्थः–तत्पुरुषसंज्ञकाद् नञः परस्मात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तः प्रत्ययो भवति। पूर्वेण नित्यः प्रतिषेधः प्राप्तोऽनेन विकल्पो विधीयते।

उदा०–न पन्थाः–अपथम्। न पन्थाः–अपन्थाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक (नञः) नञ् से परे (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होता है। पूर्व सूत्र से नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, इससे विकल्प-विधान किया जाता है।*

उदा०–पन्था नहीं–अपथ। पन्था नहीं–अपन्था। खराब मार्ग।

सिद्धि-(१) अपथम्। *नञ्+सु+पथिन्+सु। न+पथिन्। अपथिन्+अ। अपथ्+अ। अपथ+सु। अपथम्।*

*यहां नञ् और पथिन् सुबन्तों का 'नञ्' (२।२।६) से नञ् तत्पुरुषसमास होता है, तत्पश्चात् **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप और **'अपथं नपुंसकम्'** (२।४।३०) से नपुंसक लिङ्गता होती है।*

*(२) अपथाः। यहां पूर्वोक्त 'पथिन्' शब्द से इस सूत्र से विकल्प विधान से यहां पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय नहीं होता है। 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' (७।१।८५) से 'पथिन्' के नकार को आकार आदेश, 'इतोऽत् सर्वनामस्थाने' (७।१।८६) से 'पथिन्' के इकार को अकार आदेश और **'थो न्थः'** (७।१।८७) से 'पथिन्' के थकार को 'न्थ' आदेश होता है।*

विशेषः *'न वेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है। प्राप्त विभाषा में नकार से पूर्व प्राप्त विधि का प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प किया जाता है। यहां 'न' पद की अनुवृत्ति का यही अभिप्राय है।*

डच्–

(६) बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्।७३।

प०वि०–बहुव्रीहौ ७।१ संख्येये ७।१ डच् १।१ अबहुगणात् ५।१।

स०–बहुश्च गणश्च एतयोः समाहारो बहुगणम्, न बहुगणम्–अबहुगणम्, तस्मात्–अबहुगणात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ संख्येयेऽबहुगणात् संख्यावाचिनः समासान्तो डच्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे संख्येये चार्थे वर्तमानाद् बहुगणवर्जितात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् समासान्तो डच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–दशानां समीपम्–उपदशाः पुरुषाः। उपविंशाः पुरुषाः। उपत्रिंशा पुरुषाः। दशानामासन्नम्–आसन्नदशाः पुरुषाः। दशानामदूरम्–अदूरदशाः पुरुषाः। दशानामधिकम्–अधिकदशाः पुरुषाः। द्वौ च त्रयश्च–द्वित्राः पुरुषाः। पञ्च च षट् च–पञ्चषाः पुरुषाः। पञ्च च दश च–पञ्चदशाः पुरुषाः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में और (संख्येये) गणनीय अर्थ में विद्यमान (अबहुगणात्) बहु और गण से भिन्न संख्यावाची प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (डच्) डच् प्रत्यय होता है।

उदा०–दशों के समीप–उपदश पुरुष। विंशति=बीस के समीप–उपविंश पुरुष। त्रिंशत्=तीस के समीप–उपत्रिंश पुरुष। दशों के आसन्न=निकट–आसन्नदश पुरुष। दशों के अदूर=पास–अदूरदश पुरुष। दशों से अधिक–अधिकदश पुरुष। दो और तीन–द्वित्र पुरुष। पांच और छः–पञ्चष पुरुष। पांच और दश–पञ्चदश पुरुष।

सिद्धि–(१) उपदशाः। उप+सु+दशन्+आम्। उपदशन्+डच्। अपदश्+अ। उपदश+जस्। उपदशाः।

यहां बहुव्रीहि समास में और संख्येय अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'दशन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'डच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०–__'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'__ (६।४।१४३) से अंग के टि–भाग (अन्) का लोप होता है।

(२) उपविंशाः। यहां 'विंशति' शब्द के 'वि' भाग का __'ति विंशतेर्डिति'__ (६।४।१४२) से लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) उपत्रिंशाः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

अः--

(७) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे।७४।

प०वि०-ऋक्-पुर्-अप्-धुर्-पथाम् ६।३ अ १।१। (सुलुक्) अनक्षे ७।१।

स०-ऋक् च पूश्च आपश्च धूश्च पन्थाश्च ते-ऋक्पूरब्धूःपन्थानः, तेषाम्-ऋक्पूरब्धूःपथाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व)। न अक्षः-अनक्षः, तस्मिन्-अनक्षे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋक्पूरब्धूःपथिभ्यः समासान्तोऽकारः, अनक्षे।

अर्थः-ऋक्पूरब्धूःपथान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तोऽकारः प्रत्ययो भवति, अक्षेऽर्थे तु न भवति। अनक्षे इति धुरो विशेषणम्, ऋगादीनां तु न सम्भवति।

उदा०-**(ऋक्)** न विद्यते ऋगस्य-अनृचो माणवकः। **बह्व्य** ऋचोऽस्य-बह्वृचश्चरणः। ऋचोऽर्धम्-अर्धर्चः। **(पुर्)** ललाटस्य पूः-ललाटपुरम्। नान्द्याः पूः-नान्दीपुरम्। **(अप्)** द्विर्गता आपोऽस्मिन्-द्वीपम्। अन्तर्गता आपोऽस्मिन्-अन्तरीपम्। सङ्गता आपोऽस्मिन्-समीपम्। **(धूः)** राज्ञो धूः-राजधुरा। महती धूरस्य-महाधुरः। **(पथिन्)** स्थलस्य पन्थाः-स्थलपथः। जलस्य पन्थाः-जलपथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋक्पूरब्धूःपथाम्) ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, पथिन् शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (अः) अकार प्रत्यय होता है (अनक्षे) अक्ष=चक्रसम्बन्धी अवयव अर्थ में तो नहीं होता है। जिस काष्ठविशेष पर रथ का चक्र घूमता है उसे 'अक्ष' कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल 'धुर्' शब्द के साथ है, ऋक् आदि शब्दों के साथ नहीं।*

उदा०-(ऋक्) जिसके पास ऋक्=ऋग्वेद नहीं है वह-अनृच माणवक। जिसके पास बहुत ऋक्=ऋचायें हैं वह-बह्वृच चरणविशेष (वैदिक विद्यापीठ)। ऋक्=ऋचा का आधा भाग-अर्धर्च। (पुर्) ललाट की पूः=नगरी-ललाटपुर। नान्दी की पूः=नगरी-नान्दीपुर। (अप्) जिसके दो ओर अप्=जल हो वह-द्वीप। जिसके अन्दर अप्=जल हो वह-अन्तरीप। जिसमें अप्=जल संगत हो वह-समीप। (धूः) राजा की धूः=कार्यभार-राजधुरा। महती

धूः=कार्यभार है जिसका वह-महाधुर। (पथिन्) स्थल का पन्था=मार्ग-स्थलपथ। जल का पन्था-जलपथ।

सिद्धि-(१) अनृचः। न+ऋक्+सु। अ+ऋच्। अ+नुट्+ऋच्। अनृच्+अ। अनृच+सु। अनृचः।

यहां ऋजन्त 'अनृच्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। ऐसे ही-बह्वृचः।

(२) अर्धर्चः। अर्ध+सु+ऋच्+ङस्। अर्ध+ऋच्। अर्धर्च्+अ। अर्धर्च+सु। अर्धर्चः।

यहां ऋजन्त 'अर्धर्च' शब्द से इस से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास और 'अर्धर्चाः पुंसि च' (२।४।३१) से पुंलिङ्गता होती है।

(३) ललाटपुरम्। ललाट+ङस्+पुर्+सु। ललाटपुर्+अ। ललाटपुर+सु। ललाटपुरम्।

यहां पुरन्त 'ललाटपुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। यहां 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' इस परिभाषा से 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' (२।४।२६) से प्राप्त परवत्-लिङ्गता नहीं होती है। ऐसे ही-नान्दीपुरम्।

(४) द्वीपम्। द्वि+सु+अप्+जस्। द्वि+अप्। द्वि+ईप्। द्वीप्+अ। द्वीप्+सु। द्वीपम्।

यहां अबन्त 'द्वीप्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' (६।३।९७) से 'अप्' के अकार को ईकार आदेश होता है। ऐसे ही-अन्तरीपम्, समीपम्।

(५) राजधुरा। राजन्+ङस्+धुर्+सु। राजन्+धुर्। राजधुर्+अ। राजधुर+टाप्। राजधुरा+सु। राजधुरा+०। राजधुरा।

यहां धुरन्त 'राजधुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(६) महाधुरः। यहां 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (६।३।४६) से 'महत्' शब्द को आत्त्व और 'स्त्रियाः पुंवत्०' (६।३।३४) से पुंवद्भाव होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) स्थलपथः। स्थल+ङस्+पथिन्+सु। स्थलपथिन्+अ। स्थलपथ्+अ। स्थलपथ+सु। स्थलपथः।

यहां पथिन्नन्त 'स्थलपथिन्' शब्द से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-जलपथः।

अच्–

(८) अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ।७५।

प०वि०–अच् १।१ प्रति-अनु-अवपूर्वात् ५।१ सामलोम्नः ५।१।

स०–प्रतिश्च अनुश्च अवश्च एतेषां समाहारः प्रत्यन्ववम्, प्रत्यन्ववं पूर्वं यस्य तत्-प्रत्यन्ववपूर्वम्, तस्मात्-प्रत्यन्ववपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)। साम च लोम च एतयोः समाहारः सामलोम, तस्मात्-सामलोम्नः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः समासान्तोऽच्।

अर्थः–प्रति-अनु-अवपूर्वात् समासान्तात् लोमान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(साम) प्रतिगतं साम-प्रतिसामम्। अनुगतं साम-अनुसामम्। अवगतं साम-अवसामम्। **(लोम)** प्रतिगतं लोम-प्रतिलोमम्। अनुगतं लोम-अनुलोमम्। अवगतं लोम-अवलोमम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रत्यन्ववपूर्वात्) प्रति, अनु, अव जिसके पूर्व में उस (सामलोम्नः) सामान्त और लोमान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(साम)** प्रतिगत साम-प्रतिसाम। साम के प्रतिकूल। अनुगत साम-अनुसाम। साम के अनुसार। अवगत साम-अवसाम। निकृष्ट साम। **(लोम)** प्रतिगत लोम-प्रतिलोम। लोम के प्रतिकूल। अनुगत लोम-अनुलोम। लोम के अनुसार। अवगत लोम-अवलोम निकृष्ट लोम।*

*सिद्धि-**प्रतिसामम्।** प्रति+सु+सामन्+सु। प्रति+सामन्। प्रतिसामन्+अच्। प्रतिसाम्+अ। प्रतिसाम+सु। प्रतिसामम्।*

*यहां प्रतिपूर्वक 'सामन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग का लोप होता है। यहां **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। ऐसे ही-अनुसामम् आदि।*

अच्–

(९) अक्ष्णोऽदर्शनात् ।७६।

प०वि०–अक्ष्णः ५।१ अदर्शनात् ५।१।

स०-न दर्शनम्-अदर्शनम्, तस्मात्-अदर्शनात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदर्शनाद् अक्ष्णः समासान्तोऽच्।

अर्थः-दर्शनार्थवर्जिताद् अक्षि-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लवणमक्षि इव-लवणाक्षम्। पुष्करमक्षि इव-पुष्कराक्षम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अदर्शनात्) दर्शन अर्थ से भिन्न (अक्ष्णः) अक्षि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो लवण अक्षि=आंख के समान है वह-लवणाक्ष। आंख के आकार का लवणपिण्ड। जो पुष्कर=कमल अक्षि=आंख के समान है वह-पुष्कराक्ष। आंख की आकृति का पुष्कर।

***सिद्धि-लवणाक्षम्।** लवण+सु+अक्षि+सु। लवण+अक्षि। लवणाक्षि+अच्। लवणाक्ष्+अ। लवणाक्ष+सु। लवणाक्षम्।*

*यहां दर्शन अर्थ से भिन्न अक्षि शब्द जिसके अन्त में है उस 'लवणाक्षि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। यहां 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (२।१।५६) से कर्मधारय समास है। ऐसे ही-**पुष्कराक्षम्।***

अच् (निपातनम्)-

(१०) अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः।७७।

प०वि०- अचतुर-विचतुर-सुचतुर-स्त्रीपुंस-धेन्वनडुह-ऋक्साम-वाङ्मनस-अक्षिभ्रुव-दारगव-ऊर्वष्ठीव-पदष्ठीव-नक्तन्दिव-रात्रिंदिव-अहर्दिव-सरजस-निःश्रेयस-पुरुषायुष-द्व्यायुष-त्र्यायुष-ऋग्यजुष-जातोक्ष-महोक्ष-वृद्धोक्ष-उपशुन-गोष्ठश्वाः १।३।

स०-अचतुरश्च विचतुरश्च सुचतुरश्च स्त्रीपुंसौ च धेन्वनडुहौ च ऋक्सामे च वाङ्मनसे च अक्षिभ्रुवं च दारगवं च ऊर्वष्ठीवं च नक्तन्दिवं

च रात्रिंदिवं च अहर्दिवं च सरजसं च निःश्रेयसं च पुरुषायुषं च द्व्यायुषं च त्र्यायुषं च ऋग्यजुषं च जातोक्षश्च महोक्षश्च वृद्धोक्षश्च उपशुनं च गोष्ठश्वश्च ते-अचतुर०गोष्ठश्वाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचतुर०गोष्ठश्वाः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अचतुरादयः शब्दाः समासान्त-अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। अत्र समासव्यवस्थाऽपि निपातनादेव वेदितव्या। उदाहरणम्-

अचतुरः	अविद्यमानानि चत्वारि कार्षापणानि यस्य सः-अचतुरः।	जिसके पास चार कार्षापण (रुपया) भी नहीं है वह-अचतुर।
विचतुरः	विगतानि चत्वारि कार्षापणनि यस्य सः-विचतुरः।	जिसके चार कार्षापण भी खर्च हो चुके हैं वह-विचतुर।
सुचतुरः	शोभनानि चत्वारि कार्षापणानि यस्य सः-सुचतुरः।	जिसके पास चार कार्षापण बड़े सोहणे हैं वह-सुचतुर।
स्त्रीपुंसौ	स्त्री च पुमाँश्च तौ-स्त्रीपुंसौ	स्त्री और पुमान्-स्त्रीपुंस।
धेन्वनडुहौ	धेनुश्च अनड्वांश्च तौ-धेन्वनडुहौ।	धेनु=दुधारू गाय और अनड्वान्=बैल-धेन्वनडुह।
ऋक्सामे	ऋक् च साम च ते-ऋक्सामे	ऋक् और साम मन्त्र-ऋक्साम।
वाङ्मनसे	वाक् च मनश्च ते-वाङ्मनसे	वाक्=वाणी और मन=चित्त वाङ्मनस।
अक्षिभ्रुवम्	अक्षि च भ्रुवौ च-अक्षिभ्रुवम्	अक्षि=आंख और भ्रू=सेली-अक्षिभ्रुव।
दारगवम्	दाराश्च गावश्च-दारगवम्	दारा=स्त्री और गौ=गाय-दारगव।
ऊर्वष्ठीवम्	ऊरू च अष्ठीवन्तौ च-ऊर्वष्ठीवम्।	ऊरू=जंघा और अष्ठीवान्=घुटना=ऊर्वष्ठीव।
पदष्ठीवम्	पादौ च अष्ठीवन्तौ च-पदष्ठीवम्।	पाद=पांव और अष्ठवान्=घुटना=पदष्ठीव।
नक्तन्दिवम्	नक्तं च दिवं च-नक्तन्दिवम्	नक्त=रात्रि दिव=दिन-नक्तन्दिव।
रात्रिंदिवम्	रात्रिश्च दिवं च-रात्रिंदिवम्	रात्रि और दिन।
अहर्दिवम्	अहनि च दिवा च-अहर्दिवम्	अहः=दिन में और दिवा=दिन में-अहर्दिव। प्रत्येक दिन।

सरजसम्	रजसां साकल्यम्-सरजसम्,	रजः=धूल को न छोड़कर-सरजस।
	सरजमसभ्यवहरति-	सरजस=धूल सहित खाता-पीता है।
निश्श्रेयसम्	निश्चिन्तं श्रेयः-निःश्रेयसम्	निश्चित श्रेयः=सुख निश्श्रेयस (मोक्ष)।
पुरुषायुषम्	पुरुषस्यायुः=पुरुषायुषम्	पुरुष की आयु=पुरुषायुष-सौ वर्ष।
द्व्यायुषम्	द्वयोरायुषोः समाहारो द्व्यायुषम्	दो आयुओं का समाहार-द्व्यायुष-दो सौ वर्ष।
त्र्यायुषम्	त्रयाणामायुषां समाहारः-त्र्यायुषम्	तीन आयुओं का समाहार-त्र्यायुष-तीन सौ वर्ष।
ऋग्यजुषम्	ऋक् च यजुश्च-ऋग्यजुषम्	ऋक् और यजुष् के मन्त्र-ऋग्यजुष।
जातोक्षः	जातश्चासावुक्षा च-जातोक्षः	जात=उत्पन्न उक्षा=बैल-जातोक्ष।
महोक्षः	महाँश्चासावुक्षा च-महोक्षः	महान्=बड़ा उक्षा=बैल-महोक्ष।
वृद्धोक्षः	वृद्धश्चासाचुक्षा च-वृद्धोक्षः	वृद्ध=बूढ़ा उक्षा=बैल-वृद्धोक्ष।
उपशुनम्	शुनः समीपम्-उपशुनम्	श्वा=कुत्ते के समीप-उपशुन।
गोष्ठश्वः	गोष्ठे श्वा-गोष्ठश्वः	गोष्ठ=गोशाला में रहनेवाला श्वा=कुत्ता-गोष्ठश्व।

आर्यभाषाः अर्थ-(*अचतुर०गोष्ठश्वाः*) *चतुर आदि शब्द (समासान्तः) समास के अवयव (अच्) अच्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और इनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) अचतुरः। नञ्+सु+चतुर्+जस्। न+चतुर्। अचतुर्+अच्। अचतुर+सु। अचतुरः।

यहां बहुव्रीहिः समास में विद्यमान 'अचतुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-विचतुरः, सुचतुरः।

(२) स्त्रीपुंसौ। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'स्त्रीपुंस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-धेन्वनडुहौ, ऋक्सामे, वाङ्मनसे, अक्षिभ्रुवम्, दारगवम्।

(३) ऊर्वष्ठीवम्। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'ऊर्वष्ठीवत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और अंग के टि-भाग (अत्) का लोप निपातित है।

(४) पदष्ठीवम्। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'पादाष्ठीवत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और 'पाद' को 'पद्' आदेश निपातित है।

*(५) **नक्तन्दिवम्।** यहां सप्तमी-अर्थ तथा द्वन्द्व समास में विद्यमान 'नक्तन्दिवा' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और समास भी निपातित है।*

*(६) **रात्रिन्दिवम्।** यहां सप्तमी अर्थ और द्वन्द्व समास में विद्यमान 'रात्रिदिवा' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय और पूर्व पद का मकारान्त भाव निपातित है।*

*(७) **अहर्दिवम्।** अहः और दिवा शब्द पर्यायवाची हैं यहां वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में द्वन्द्व समास और समासान्त अच् प्रत्यय निपातित है। 'च' के अर्थ में द्वन्द्व समास होता है, अतः यहां वीप्सा अर्थ में निपातित किया गया है।*

*(८) **सरजसम्।** सह+सु+रजस्+टा। सह+रजस्। स+रजस्। सरजस्+अच्। सरजस+सु। सरजसम्।*

*यहां अव्ययीभाव समास में विद्यमान 'सरजस्' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय निपातित है। यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से अव्ययीभाव और **'अव्ययीभावे चाकाले'** (६।३।८१) से 'सह' को 'स' आदेश होता है।*

*(९) **निश्श्रेयसम्।** निस्+सु+श्रेयस्+सु। निश्श्रेयस्+अच्। निश्श्रेयस+सु। निश्श्रेयसम्।*

यहां प्रादितत्पुरुष समास में विद्यमान 'निश्श्रेयस्' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय निपातित है।

*(१०) **जातोक्षः।** यहां कर्मधारय समास में विद्यमान 'जातोक्षन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**महोक्षः, वृद्धोक्षः।***

*(११) **उपशुनम्।** उप+सु+श्वन्+ङस्। उप+श्वन्। अपश्वन्+अच्। उपश्वन्+अ। उपश्उअन्+अ। उपशुन्+अ। उपशुन+सु। उपशुनः।*

*यहां अव्ययीभाव समास में विद्यमान 'उपश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग का लोप निपातन से नहीं होता है। **'श्वयुवमघोनामतद्धिते'** (६।४।१३३) से अप्राप्त सम्प्रसारण निपातन से किया जाता है। **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप आदेश होता है।*

*(१२) **गोष्ठश्वः।** यहां सप्तमी-समास में विद्यमान 'गोष्ठश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।*

अच्–

(११) ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः।७८।

प०वि०-ब्रह्म-हस्तिभ्याम् ५।२ वर्चसः ५।१।

स०-ब्रह्म च हस्ती च तौ ब्रह्महस्तिनौ, ताभ्याम्-ब्रह्महस्तिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-ब्रह्महस्तिभ्यां परस्माद् वर्चःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ब्रह्म)** ब्रह्मणो वर्चः-ब्रह्मवर्चसम्। **(हस्ती)** हस्तिनो वर्चः-हस्तिवर्चसम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ब्रह्महस्तिभ्याम्) ब्रह्म और हस्ती शब्दों से परे (वर्चसः) वर्चस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ब्रह्म)** ब्रह्म का वर्च-ब्रह्मवर्चस। ब्रह्मतेज। **(हस्ती)** हस्ती=हाथी का वर्च-हस्तिवर्चस। हाथी का बल।*

*सिद्धि-**ब्रह्मवर्चसम्।** ब्रह्म+ङस्+वर्चस्+सु। ब्रह्म+वर्चस्। ब्रह्मवर्चस्+अच्। ब्रह्मवर्चस्+सु। ब्रह्मवर्चसम्।*

*यहां षष्ठी-समास में विद्यमान 'ब्रह्मवर्चस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**हस्तिवर्चसम्।***

अच्-

(१२) अवसमन्धेभ्यस्तमसः।७६।

प०वि०-अव-सम्-अन्धेभ्यः ५।३ तमसः ५।१।

स०-अवश्च सम् च अन्धश्च ते-अवसमन्धाः, तेभ्यः-अवसमन्धेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अवसमन्धेभ्यस्तमसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अवसमन्धेभ्यः परस्मात् तमःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अवः)** अवहीनं तमः-अवतमसम्। **(सम्)** सन्ततं तमः-सन्तमसम्। **(अन्धः)** अन्धं च तत् तमः-अन्धतमसम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अवसमन्धेभ्यः) अव, सम्, अन्ध शब्दों से परे **(तमसः)** **तमस्** शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव **(अच्)** अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अव)** अवहीन तम-अवतमस। घटा हुआ अन्धकार। **(सम्)** सन्तत तम-सन्तमस। फैला हुआ अन्धकार। **(अन्ध)** अन्ध तम-अन्धतमस। अन्धा करनेवाला अन्धकार। घोर अन्धेरा।*

***सिद्धि-अवतमसम्।** अव+सु+तमस्+सु। अव+तमस्। अवतमस्+**अच्।** अवतमस+सु। अवतमसम्।*

*यहां प्रादिसमास में विद्यमान 'अवतमस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त **'अच्'** प्रत्यय है। ऐसे ही-**सन्तमसम्, अन्धतमसम्।***

अच्-

(१३) श्वसो वसीयःश्रेयसः।८०।

प०वि०-श्वसः ५।१ वसीयःश्रेयसः ५।१।

स०-वसीयश्च श्रेयश्च एतयोः समाहारो वसीयःश्रेयः, तस्मात्-वसीयःश्रेयसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वसो वसीयःश्रेयसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-श्वसःशब्दात् पराभ्यां वसीयःश्रेयःशब्दान्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वसीयः) श्वश्च तद् वसीयः-श्वोवसीयसं ते भूयात्। **(श्रेयः)** श्वश्च तच्छ्रेयः-श्वःश्रेयसं ते भूयात्। श्वः शब्दोऽत्र उत्तरपदस्याशीर्विषयां प्रशंसां समाचष्टे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्वसः) श्वः शब्द से परे (वसीयःश्रेयसः) वसीयस् और श्रेयस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वसीयः) श्वःवसीयः-श्वोवसीयस तेरा हो। तेरा उत्तम वास हो। श्वःश्रेयः-श्वःश्रेयस तेरा हो। तेरा उत्तम सुख हो। 'श्वः' शब्द यद्यपि कालवाची है, किन्तु यहां शब्द शक्ति के स्वभाव से उत्तरपद के अर्थ की आशीर्वाद विषयक प्रशंसा अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-श्वोवसीयसम्। श्वस्+सु+वसीयस्+सु। श्वस्+वसीयस्। श्वोवसीयस्+अच्। श्वोवसीयस+सु। श्वोवसीयसम्।

*यहां कर्मधारय तत्पुरुष समास में विद्यमान 'श्वोवसीयस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**श्वःश्रेयसम्**। यहां **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७२) से कर्मधारय समास है।*

अच्-

(१४) अन्ववतप्ताद्रहसः।८१।

प०वि०-अनु-अव-तप्तात् ५।१ रहसः ५।१।

स०-अनुश्च अवश्च तप्तं च एतेषां समाहारः-अन्ववतप्तम्, तस्मात्-अन्ववतप्तात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्ववतप्ताद् रहसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अन्ववतप्तेभ्यः परस्माद् रहःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अनुः) अनुगतं रहः-**अनुरह**सम्। **(अव)** अवहीनं रहः-अवरहसम्। **(तप्तम्)** तप्तं रहः-तप्तरहसम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(अन्ववतप्तात्) अनु, अव, तप्त शब्दों से परे (रहसः) रहस् शब्द जिसके अन्त में उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अनु) अनुगतं रहः-अनुरहस। रहस्य के अनुसार। (अव) अवहीन रहः-अवरहस। घटिया रहस्य। (तप्त) तप्त रहः-तप्तरहस। तपा हुआ रहस्य। अत्यन्त कठोर रहस्य।

सिद्धि-(१) अनुरहसम्। अनु+सु+रहस्+सु। अनु+रहस। अनुरहस्+अच्। अनुरहस+सु। अनुरहसम्।

*यहां प्रादि-समास में विद्यमान 'अनुरहस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अवरहसम्**।*

*(२) तप्तरहसम्। यहां **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अच्–

(१५) प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्।८२।

प०वि०–प्रतेः ५।१ उरसः ५।१ सप्तमीस्थात् ५।१।

स०–सप्तम्यां तिष्ठति-सप्तमीस्थः, तस्मात्-सप्तमीस्थात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रतेः सप्तमीस्थाद् उरसः समासान्तोऽच्।

अर्थः–प्रतिशब्दात् परस्मात् सप्तमीस्थाद् उरः-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उरसि वर्तते-प्रत्युरसम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(प्रतेः) प्रति शब्द से परे (सप्तमीस्थात्) सप्तमी-अर्थ में विद्यमान (उरसः) उरः शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो उरः=हृदय में विद्यमान है वह-प्रत्युरस।

*सिद्धि-**प्रत्युरसम्।** प्रति+उरस्+सु। प्रति+उरस्। प्रत्युरस्+अच्। प्रत्युरस+सु। प्रत्युरसम्।*

*यहां प्रति शब्द से परे सप्तमी-अर्थ में विद्यमान उरःशब्दान्त 'प्रत्युरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है।*

अच् (निपातनम्)–

(१६) अनुगवमायामे।८३।

प०वि०–अनुगवम् १।१ आयामे ७।१।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आयामेऽनुगवं समासान्तोऽच्।

अर्थः–आयामेऽर्थे 'अनुगवम्' इत्यत्र समासान्तोऽच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०–गोरनु-अनुगवं यानम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(आयामे) विस्तार अर्थ में (अनुगवम्) अनुगव शब्द में (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-गौ:=बैल के अनु=आयाम (लम्बाई) का-अनुगव यान (रथ)। बैलों के नाप को ध्यान में रखकर बनाया गया पूरा लम्बा रथ।

सिद्धि-अनुगवम्। *अनु+सु+गो+ङस्। अनु+गो। अनुगो+अच्। अनुगव+सु। अनुगवम्।*

*यहां आयाम अर्थ में विद्यमान 'अनुगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय निपातित है। यहां **'यस्य चायामः'** (२।१।१६) से अव्ययीभाव समास होता है।*

अच्–

(१७) द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः।८४।

प०वि०-द्विस्तावा १।१ त्रिस्तावा १।१ वेदिः १।१।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विस्तावा त्रिस्तावा समासान्तोऽच्, वेदिः।

अर्थः-द्विस्तावा, त्रिस्तावा इत्यत्र समासान्तोऽच् प्रत्ययो निपात्यते, वेदिश्चेत् सा भवति।

उदा०-द्विस्तावती-द्विस्तावा वेदिः। त्रिस्तावती-त्रिस्तावा वेदिः।

यावती प्रकृतौ वेदिर्विहिता ततो द्विगुणा त्रिगुणा वा कस्याञ्चिद् विकृतौ वेदिर्विधीयते तत्रेदं निपातनं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विस्तावा, त्रिस्तावा) द्विस्तावा, त्रिस्तावा यहां (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय निपातित है (वेदिः) यदि वह वेदि हो।*

उदा०-द्विगुणा वेदि-द्विस्तावा। त्रिगुणा वेदि-त्रिस्तावा।

मूलयज्ञ में जितनी बड़ी वेदि का विधान किया गया है यदि किसी अश्वमेध आदि विकृति याग में उससे दुगुणी वा तिगुणी बड़ी वेदि बनाई जाये उसे द्विस्तावा वा त्रिस्तावा वेदि कहते हैं।

सिद्धि-द्विस्तावा। *द्विस्+सु+तावत्+सु। द्विस्तावत्+अच्। द्विस्ताव+अ। द्विस्ताव+टाप्। द्विस्तावा+सु। द्विस्तावा।*

*यहां वेदि अर्थ अभिधेय में 'द्विस्तावत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय है, निपातन से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप और समास निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**त्रिस्तावा।***

अच्–

(१८) उपसर्गादध्वनः।८५।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ अध्वनः ५।१।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्गाद् अध्वनः समासान्तोऽच्।

अर्थः–उपसर्गात् परस्माद् अध्वन्-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–प्रगतोऽध्वानम्-प्राध्वो रथः। प्राध्वं शकटम्। निष्क्रान्तमध्वनः-निरध्वं शकटम्। अत्यध्वं शकटम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अध्वनः) अध्वन् शब्द **जिसके** अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का **अवयव** (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–अध्वा=मार्ग में चलनेवाला रथ-प्राध्व रथ। प्राध्व शकट (छकड़ा)। मार्ग से निकला हुआ शकट-निरध्व शकट। मार्ग को पार किया हुआ शकट-अत्यध्व शकट।

*सिद्धि-**प्राध्वम्**। प्र+सु+अध्वन्+अम्। प्र+अध्वन्। प्राध्वन्+अच्। प्राध्व्+अ। प्राध्व+सु। प्राध्वम्।*

*यहां प्रादि-समास में विद्यमान 'प्राध्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग का लोप होता है। यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि तत्पुरुष समास है। ऐसे ही-**निरध्वम्, अत्यध्वम्**।*

(क) तत्पुरुषसमासः

अच्–

(१) तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः।८६।

प०वि०–तत्पुरुषस्य ६।१ अङ्गुलेः ६।१ संख्या-अव्ययादेः ६।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–संख्या च अव्ययं च एतयोः समाहारः संख्याव्ययम्, संख्याव्ययमादिर्यस्य स संख्याव्ययादिः, तस्य-संख्याव्ययादेः (समाहारद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्याव्ययादेरङ्गुलेस्तत्पुरुषात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच्।

अर्थः-संख्यादेरव्ययादेश्चाङ्गुल्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(संख्यादिः)** द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य-द्व्यङ्गुलम्। त्र्यङ्गुलम्। **(अव्ययादिः)** निर्गतमङ्गुलिभ्यः-निरङ्गुलम्। अत्यङ्गुलम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संख्याव्ययादेः) संख्या और अव्यय जिसके आदि में हैं तथा (अङ्गुलेः) अङ्गुलि शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(संख्यादि)** दो अङ्गुलियां प्रमाण (माप) है इसका यह-द्व्यङ्गुल। तीन अङ्गुलियां प्रमाण है इसका यह-त्र्यङ्गुल। **(अव्यय)** अङ्गुलियों से निकला हुआ-निरङ्गुल, अङ्गुलि रहित। अङ्गुलियों को अतिक्रमण किया हुआ-अत्यङ्गुल।*

*सिद्धि-**द्व्यङ्गुलम्।** द्वि+औ+अङ्लि+औ। द्वि+अङ्गुलि+मात्रच्। द्व्यङ्लि+०। द्व्यङ्लि+अच्। द्व्यङ्ल्+अ। द्व्यङ्गुल+सु। द्व्यङ्गुलम्।*

यहां संख्यादि, अङ्गुलि-शब्दान्त, तत्पुरुष-संज्ञक 'द्व्यङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। प्रमाण अर्थ में 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' (५।२।३७) से प्राप्त मात्रच् प्रत्यय का वा-'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्' (५।२।३७) से नित्य लोप होता है। यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगु-तत्पुरुष समास है। ऐसे ही-त्र्यङ्गुलम्।

*(२) **निरङ्गुलम्।** निर्+सु+अङ्गुलि+भ्यस्। निर्+अङ्गुलि। निरङ्गुलि+अच्। निरङ्गुल्+अ। निरङ्गुल+सु। निरङ्गुलम्।*

यहां अव्ययादि, अङ्गुलि-शब्दान्त तत्पुरुष-संज्ञक 'निरङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अत्यङ्गुलम्।

अच्–

(२) अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः।८७।

प०वि०-अहः-सर्व-एकदेश-संख्यात-पुण्यात् ५।१ च अव्ययपदम्, रात्रेः ५।१।

स०-अहश्च सर्वं च एकदेशश्च संख्यातं च पुण्यं च एतेषां **समाहारः**-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यम्, तस्मात्-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच्, तत्पुरुषस्य, संख्याव्ययादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात् संख्याव्ययदेश्च रात्रेस्तत्पुरुषात् समासान्तोऽच्।

अर्थः-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यः संख्यादेरव्ययादेश्च परस्मात् रात्रि-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अहः)** अहश्च रात्रिश्च-अहोरात्रः। **(सर्वम्)** सर्वा चेयं रात्रिः-सर्वरात्रः। **(एकदेशः)** पूर्वं रात्रेः-पूर्वरात्रः। अपररात्रः। **(संख्यातम्)** संख्याता चासौ रात्रिः-संख्यातरात्रः। **(पुण्यम्)** पुण्या चासौ रात्रिः-पुण्यरात्रः। **(संख्यादिः)** द्वयो रात्र्योः समाहारः-द्विरात्रः। त्रिरात्रः। **(अव्ययादिः)** अतिक्रान्तो रात्रिम्-अतिरात्रः। निष्क्रान्तो रात्र्याः-नीरात्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात्) अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य शब्दों से (च) और (संख्याव्ययादेः) संख्यादि और अव्ययादि (रात्रेः) रात्रि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से परे (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अहः) अहः=दिन और रात्रि-अहोरात्र। (सर्व) सर्व=सारी रात्रि-सर्वरात्र। (एकदेश) रात्रि का पूर्व भाग-पूर्वरात्र। रात्रि का अपरभाग (पश्चिमभाग)- अपररात्र। (संख्यात) संख्यात=गिनी हुई रात्रि-संख्यातरात्र। (पुण्य) पुण्य=शुभ रात्रि-पुण्यरात्र। (संख्यादि) दो रात्रियों का समाहार-द्विरात्र। तीन रात्रियों का समाहार-त्रिरात्र। (अव्ययादि) रात्रि का अतिक्रमण किया हुआ-अतिरात्र। रात्रि से निकला हुआ-नीरात्र।

सिद्धि-(१) अहोरात्रः। अहन्+सु+रात्रि+सु। अहन्+रात्रि। अहरुरात्रि। अहर्+रात्रि। अहउ+रात्रि। अहोरात्रि+अच्। अहोरात्र्+अ। अहोरात्र+सु। अहोरात्रः।

यहां अहन् शब्द से उत्तर रात्रि शब्द का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। यहां तत्पुरुष सम्भव नहीं है अतः 'तत्पुरुष' विशेषण इससे अन्यत्र सम्बद्ध होता है। 'अहोरात्रि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। वा०-'अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम्' (८।२।६८) से नकार को रुत्व और 'हशि च' (६।१।११४)

से रेफ को उत्व होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' (२।४।२९) से पुंलिङ्गता होती है।

(२) सर्वरात्र। यहां सर्व और रात्रि शब्दों का 'पूर्वकालैकसर्व०' (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) पूर्वरात्रः। यहां पूर्व और रात्रि शब्दों का 'पूर्वपरावराधर०' (२।१।१) से एकदेशितत्पुरुष समास होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) संख्यातरात्रः। यहां संख्यात और रात्रि शब्दों का 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-पुण्यरात्रः।

(५) द्विरात्रः। यहां द्वि और रात्रि शब्दों का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है, शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-त्रिरात्रः।

(६) अतिरात्रः। यहां अति और रात्रि शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है।

(७) नीरात्रः। यहां निर् और रात्रि शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। 'रो रि' (८।३।१४) से 'निर्' के रेफ का लोप होकर 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' (६।३।१११) से दीर्घत्व होता है।

अह्न-आदेशः-

(३) अह्नोऽह्न एतेभ्यः।८८।

प०वि०-अह्नः ६।१ अह्नः १।१ एतेभ्यः ५।३।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, संख्याव्ययादेः, सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एतेभ्यः=संख्याव्ययादेः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यस्तत्पुरुष-स्याह्नः समासान्तोऽह्नः।

अर्थः-एतेभ्यः=संख्याव्ययादेः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यश्च परस्य तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-शब्दस्य स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो भवति।

उदा०-(संख्यादिः) द्वयोरह्नो भवः-द्व्यह्नः। त्र्यह्नः। **(अव्ययादिः)** अहरतिक्रान्तः-अत्यह्नः। अह्नो निष्क्रान्तः-निरह्नः। **(सर्वम्)** सर्वं च

तदहः-सर्वाह्नः। (एकदेशः) पूर्वम् अह्नः-पूर्वाह्णः। अपराह्णः। **(संख्यातम्)** संख्यातं च तदहः-संख्याताह्नः (पुण्यम्) पुण्यशब्दात् **'उत्तमैकाभ्यां च'** (५।४।९०) इति प्रतिषेधं वक्ष्यति। तत्र उत्तमशब्दः पुण्यवचनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एतेभ्यः) इन संख्यादि और अव्ययादि तथा (सर्वैकदेश-संख्यातपुण्यात्) सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य शब्दों से परे (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष संज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्नः) अह्न आदेश होता है।*

*उदा०-**(संख्यादि)** दो अहन्=दिनों में होनेवाला-द्व्यह्न। तीन अहन्=दिनों में होनेवाला-त्र्यह्न। **(अव्ययादि)** अहन्=दिनों को अतिक्रान्त किया हुआ-अत्यह्न। अहन्=दिन में निकला हुआ-निरह्न। **(सर्व)** सर्व=सारा अहन्=दिन-सर्वाह्ण। **(एकदेश)** अहन्=दिन का पूर्वभाग-पूर्वाह्ण। अहन्=दिन का अपर (पश्चिम) भाग-अपराह्ण। **(संख्यात)** संख्यात=गिना हुआ अहन्=दिन-संख्यातह्न। **(पुण्य)** पुण्य शब्द से **'उत्तमैकाभ्यां च'** (५।५।९०) से अह्न-आदेश का प्रतिषेध किया जायेगा। वहां 'उत्तम' शब्द पुण्यवाची है।*

सिद्धि-(१) द्व्यहनः। द्वि+ओस्+अहन्+ओस्+अण्। द्वि+अहन्+द्वि+अह्न। द्व्यह्न+सु। द्व्यह्नः।

*यहां द्वि और अहन् शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ विषय में द्विगुतत्पुरुष समास है, 'तत्र भवः' (४।३।५३) से तद्धित अण् प्रत्यय और 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (४।१।८८) से उसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'अहन्' के स्थान में समासान्त 'अह्न' आदेश होता है। ऐसे ही-त्र्यह्नः।*

(२) अत्यह्नः आदि की सिद्धि पूर्ववत् है, केवल अहन् के स्थान में अह्न-आदेश विशेष है।

अह्नादेश-प्रतिषेधः--

(४) न संख्यादेः समाहारे।८६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, संख्यादेः ६।१ समाहारे ७।१।

स०-संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, तस्य-संख्यादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, अह्नः, अह्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समाहारे संख्यादेस्तत्पुरुषस्याह्नोऽह्नो न।

अर्थः-समाहारेऽर्थे वर्तमानस्य संख्यादेस्तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-**शब्दस्य** स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो न भवति।

उदा०-द्वयोरह्नोः समाहारः-द्व्यहः। त्र्यहः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समाहारे) समाहार अर्थ में विद्यमान (संख्यादेः) संख्या जिसके आदि में है उस (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुषसंज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्न) अह्न आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-दो अहन्=दिनों का समाहार-द्व्यह। तीन अहन्=दिनों का समाहार-त्र्यह।

सिद्धि-द्व्यहः। द्वि+ओस्+अहन्+ओस्। द्वि+अहन्। द्व्यहन्+टच्। द्व्यह्+अ। द्व्यह+सु। द्व्यहः।

*यहां संख्यादि, तत्पुरुषसंज्ञक अहन्-शब्दान्त 'द्व्यहन्' शब्द से इस सूत्र से अहन् के स्थान में अह्न आदेश का प्रतिषेध है। '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। '**राजाहःसखिभ्यष्टच्**' (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। '**अह्नष्टखोरेव**' (६।४।१४५) से 'अहन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-त्र्यहः।*

अह्नादेश-प्रतिषेधः-

(५) उत्तमैकाभ्यां च।६०।

प०वि०-उत्तम-एकाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-उत्तमं च एकं च ते-उत्तमैके, ताभ्याम्-उत्तमैकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, अह्नः, अह्नः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उत्तमैकाभ्यां तत्पुरुषस्याह्नः समासान्तोऽह्नो न।

अर्थः-उत्तमैकाभ्यां परस्य तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-शब्दस्य स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो न भवति। अन्त्यवचन उत्तमशब्दोऽत्र पुण्यशब्द-माचष्टे, पुण्यग्रहणं तु वैचित्र्यार्थं पाणिनिना नैव कृतम्।

उदा०-(**उत्तमम्**) उत्तमम्=पुण्यं चेदमहः-पुण्याहः। (**एकम्**) एकं च तदहः-एकाहः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्तमैकाभ्याम्) उत्तम और एक शब्दों से परे (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष-संज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्नः) अह्न आदेश (न) नहीं होता है।*

*उत्तम शब्द अन्त्यवाची है किन्तु यहां पुण्य शब्द का वाचक है, पाणिनिमुनि ने यहां **विचित्र-रचना में 'पुण्य' शब्द का उल्लेख नहीं किया।***

उदा०-(उत्तम) उत्तम=पुण्य अहन्=दिन-पुण्याह। (एक) एक अहन्=दिन-एकाह।

सिद्धि-(१) पुण्याहः। यहां पुण्य और अहन् शब्दों का 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (२।१।५७) से कर्मधारय-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'अहन्' के स्थान में अह्न आदि का प्रतिषेध है। पूर्ववत् समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है।

(२) एकाहः। यहां एक और अहन् शब्दों का 'पूर्वकालैकसर्व०' (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टच्-

(६) राजाहःसखिभ्यष्टच्।६१।

प०वि०-राज-अहः-सखिभ्यः ५।३ टच् १।१।

स०-राजा च अहश्च सखा च ते-राजाहःसखायः, तेभ्यः-राजाहःसखिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-राजाहःसख्यान्तात् तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-राजाहःसख्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(राजा) महाँश्चासौ राजा-महाराजः। मद्राणां राजा-मद्रराजः। (अहः) परमं च तदहः-परमाहः। उत्तमं च तदहः-उत्तमाहः। (सखा) राज्ञः सखा-राजसखः। आचार्यस्य सखा-आचार्यसखः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(राजाहःसखिभ्यः) राजन्, अहन्, सखि शब्द जिसके अन्त में हैं उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(राजा) महान् राजा-महाराज। मद्र देश का राजा-मद्रराज। (अहन्) परम अहन्=दिन-परमाह (बड़ा दिन)। उत्तम अहन्=उत्तमाह (शुभ दिन)। (सखा) राजा का सखा=मित्र-राजसख। आचार्य का सखा-आचार्यसख।

सिद्धि-(१) महाराजः। महत्+सु+राजन्+सु। महत्+राजन्। महा+राजन्। महाराजन्+टच्। महाराज्+अ। महाराज+सु। महाराजः।

यहां 'महाराजन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। यहां महत् और राजन् शब्दों में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' (२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है।

(२) मद्रराजः । यहां मद्र और राजन् शब्दों में 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) परमाहः । परम+सु+अहन्+सु । परम+अहन् । परमाहन्+टच् । परमाह्+अ । परमाह+सु । परमाहः ।

यहां परम और अहन् शब्दों में पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'अह्नष्टखोरेव' (६।४।१५४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-उत्तमाहः ।

(४) राजसखः । यहां राजन् और सखि शब्दों में 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'राजसखि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय करने पर 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-आचार्यसखः ।

टच्–

(७) गोरतद्धितलुकि।६२।

प०वि०-गोः ५।१ अतद्धितलुकि ७।१।

स०-तद्धितस्य लुक्-तद्धितलुक्, न तद्धितलुक्-अतद्धितलुक्, तस्मिन्-अतद्धितलुकि (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतद्धितलुकि गोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-अतद्धितलुकि=तद्धितलुग्विषयवर्जिताद् गोशब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-परमश्चासौ गौः-परमगवः। उत्तमगवः। पञ्चानां गवां समाहारः-पञ्चगवम्। दशगवम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतद्धितलुकि) तद्धित-लुक् विषय से भिन्न (गोः) गो शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-परम=बड़ा गौः=बैल-परमगव। उत्तम गौः=बैल-उत्तमगव। पांच गौओं का समाहार-पञ्चगव। दश गौओं का समाहार-दशगव।

सिद्धि-*(१) परमगवः । परम+सु+गो+सु । परम+गो । परमगो+टच् । परमगव+सु । परमगवः ।*

यहां परम और गो शब्दों में 'सन्महत्परम०' (२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'परमगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से अव्-आदेश होता है। ऐसे ही-उत्तमगवः ।

(२) पञ्चगवम्। पञ्चम्+आम्+गो+आम्। पञ्चन्+गो। पञ्चगो+टच्। पञ्चगव+सु। पञ्चगवम्।

*यहां पञ्चन् और गो शब्दों में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। 'परमगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-**दशगवम्।***

टच्–

(८) अग्राख्यायामुरसः।६३।

प०वि०-अग्राख्यायाम् ७।१ उरसः ५।१।

स०-अग्रस्याऽऽख्या-अग्राख्या, तस्याम्-अग्राख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। अग्रम्=प्रधानम्।

अनु०-समासान्ता, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अग्राख्यायामुरसस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-अग्राख्यायाम्=अग्रार्थे वर्तमानाद् उरश्शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वानामुरः-अश्वोरसम्। हस्त्युरसम्। रथोरसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अग्राख्यायाम्) प्रधान अर्थ में विद्यमान (उरसः) उरस् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्व=घोड़ों में उरस्=प्रधान-अश्वोरस। हस्ती=हाथियों में उरस्=प्रधान-हस्त्युरस। रथों में उरस्=प्रधान-रथोरस।

*सिद्धि-**अश्वोरसम्।** अश्व+आम्+उरस्+सु। अश्व+उरस्। अश्वोरस्+टच्। अश्वोरस+सु। अश्वोरसम्।*

*यहां अश्व और उरस् शब्दों में 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'अश्वोरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**हस्त्युरसम्, रथोरसम्।***

जैसे शरीर के अवयवों का उरस्=हृदय प्रधान होता है वैसे अन्य कोई प्रधान भी 'उरस्' कहाता है।

टच्–

(६) अनोऽश्मायस्सरसां जातिसंज्ञयोः।६४।

प०वि०–अनः-अश्म-अयस्-सरसाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) जाति-संज्ञयोः ७।२।

स०–अनश्च अश्मा च अयश्च सरश्च ते-अनोऽश्मायस्सरसः, तेषाम्-अनोऽश्मायस्सरसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। जातिश्च संज्ञा च ते ज्ञातिसंज्ञे, तयोः-ज्ञातिसंज्ञयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जातिसंज्ञयोरनोऽश्मायस्सरोभ्यस्तत्पुरुषेभ्यः समासान्तष्टच्।

अर्थः–जातौ संज्ञायां च विषये वर्तमानेभ्योऽनोऽश्मायस्सरोऽन्तेभ्य-स्तत्पुरुषसंज्ञकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(अनः)** उपगतमनः-उपानसम् (जातिः)। महच्च तदनः-महानसम् (संज्ञा)। **(अश्मा)** अमृतश्चासावश्मा-अमृताश्मः (जातिः)। पिण्डश्चासावश्मा-पिण्डाश्मः (संज्ञा)। **(अयः)** कालश्च तदयः-कालायसम् (जातिः)। लोहितं च तदयः-लोहितायसम् (संज्ञा)। **(सरः)** मण्डूकानां सरः-मण्डूकसरसम् (जातिः)। जलस्य सरः-जलसरसम् (संज्ञा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जातिसंज्ञयोः) जाति और संज्ञा विषय में विद्यमान (अनोऽश्मायस्सरसाम्) अनस्, अश्मन्, अयस्, सरस् शब्द जिसके अन्त में हैं उन (तत्पुरुषेभ्यः) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–उपगत अनः-उपानस=प्राणी (जाति)। महत् अनः-महानस (रसोई) (संज्ञा)। **(अश्मा)** अमृत अश्मा-अमृताश्म पत्थर जातिविशेष। पिण्ड अश्मा-पिण्डाश्म। गोलाकार पत्थर संज्ञाविशेष। **(अयस्)** काल-अयः-कालायस। लोहा जाति। लोहित अयः-लोहितायस। ताम्बा (संज्ञा)। मण्डूकों का सरः-मण्डूकसरस। तालाब (जातिविशेष)। जल का सरः-जलसरस। जल से भरा तालाब (संज्ञा)।*

*सिद्धि-(१) **उपानसम्।** उप+सु+अनस्+सु। उप+अनस्। उपानस्+टच्। उपानस+सु। उपानसम्।*

यहां 'कुगति' प्र और अनस् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'उपानस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है।

*(२) **महानसम्।** यहां महत् और अनस् शब्दों का **'सन्महत्परमोत्तम०'** (२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। **'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'** (६।३।४६) से आत्त्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अमृताश्म।** यहां अमृत और अश्मन् शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'अमृताश्मन्' शब्द से इस सूत्र से 'टच्' प्रत्यय करने पर **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**पिण्डाश्म, कालायसम्, लोहितायसम्।***

*(४) **मण्डूकसरसम्।** यहां मण्डूक और 'सरस्' शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**जलसरसम्।***

टच्-

(१०) ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः।६५।

प०वि०-ग्राम-कौटाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्, तक्ष्णः ५।१।

स०-कुट्यां भवः-कौटः। ग्रामश्च कौटश्च तौ ग्रामकौटौ, ताभ्याम्-ग्रामकौटाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-ग्रामकौटाभ्यां परस्मात् तक्षन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(ग्रामः) ग्रामस्य तक्षा-ग्रामतक्षः। बहूनां साधारण इत्यर्थः। (कौटः) कौटस्य तक्षा-कौटतक्षः। स्वतन्त्रः कर्मजीवी, न कस्यचित् प्रतिबद्ध इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ग्रामकौटाभ्याम्) ग्राम और कौट शब्दों से परे (तक्ष्णः) तक्षन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

***उदा०-(ग्राम)** ग्राम का तक्षा=बढ़ई-ग्रामतक्ष। बहुत जनों का सधारण बढ़ई। (कौट) कौट=अपनी कुटी में रहनेवाला-तक्षा-बढ़ई-कौटतक्ष। स्वतन्त्र बढ़ई।*

***विशेषः** अपनी कुटी या घर की दुकान पर काम करनेवाला कौटतक्ष और भृति या मजदूरी पर गांव में जाकर काम करनेवाला ग्रामतक्ष कहलाता था। अपने ठीहे पर काम करनेवाले को लोग कुछ अधिक सम्मानित समझते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२४)।*

टच्–

(११) अतेः शुनः ।६६।

प०वि०-अतेः ५ ।१ शुनः ५ ।१ ।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अतेः शुनस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच् ।

अर्थः-अतेः परस्मात् श्वन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-अतिक्रान्तः श्वानम्-अतिश्वो वराहः । जववानित्यर्थः । अतिश्वः सेवकः । सुष्ठु स्वामिभक्त इत्यर्थः ।

आर्यभाषाः* अर्थ-**(*अतेः*) *अति शब्द से परे* (*शुनः*) *श्वन् शब्द* ***जिसके अन्त में है *उस* (*तत्पुरुषात्*) *तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से* (*समासान्तः*) *समास का अवयव* ***(टच्)*** *टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-श्वा=कुत्ते को अतिक्रान्त करनेवाला-अतिश्व वराह (सूअर)। कुत्ते से अधिक तेज दौड़नेवाला सूअर। श्वा=कुत्ते को अतिक्रान्त करनेवाला-अतिश्व सेवक। कुत्ते से भी बढ़कर सेवक (स्वामी का भक्त)।

सिद्धि-अतिश्वः । अति+सु+श्वन्+अम् । अति+श्वन् । अतिश्वन्+टच् । अतिश्व्+अ । अतिश्व+सु । अतिश्वः ।

यहां अति और श्वन् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२ ।२ ।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'अतिश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६ ।४ ।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।

टच्–

(१२) उपमानादप्राणिषु ।६७।

प०वि०-उपमानात् ५ ।१ अप्राणिषु ७ ।३ ।

स०-न प्राणिनः-अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच्, शुन इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अप्राणिषु उपमानात् शुनस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच् ।

अर्थः-अप्राणिषु=प्राणिवर्जिताद् उपमानवाचिनः श्वन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-आकर्षः श्वा इव-आकर्षश्वः । फलकः श्वा इव-फलकश्वः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अप्राणिषु) प्राणी अर्थ से भिन्न (उपमानात्) उपमानवाची (शुनः) श्वन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-आकर्ष=चौपड़ की बिसात जो श्वा=कुत्ते के आकार की है वह-आकर्षश्व। फलक=शतरंज का फट्टा जो श्वा=कुत्ते के आकार का है वह-फलकश्व।

सिद्धि-आकर्षश्वः। यहां आकर्ष और अप्राणी तथा उपमानवाची श्वन् शब्दों का 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-फलकश्वः।

टच्-

(१३) उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः।९८।

प०वि०-उत्तर-मृग-पूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्, सक्थ्नः ५।१।

स०-उत्तरं च मृगश्च पूर्वं च एतेषां समाहारः-उत्तरमृगपूर्वम्, तस्मात्-उत्तरमृगपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच्, उपमानाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उत्तरमृगपूर्वाद् उपमानाच्च सक्थ्नस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-उत्तर-मृग-पूर्वाद् उपमानवाचिनश्च परस्मात् सक्थि-अन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(उत्तरम्) उत्तरं सक्थ्नः-उत्तरसक्थम्। **(मृगः)** मृगस्य सक्थि-मृगसक्थम्। **(पूर्वम्)** पूर्वं सक्थ्नः-पूर्वसक्थम्। **(उपमानात्)** फलकमिव सक्थि-फलकसक्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्तरमृगपूर्वात्) उत्तर, मृग, पूर्व (च) और (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से परे (सक्थ्नः) सक्थि शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(उत्तर) सक्थि=जंघा का उत्तरभाग-उत्तरसक्थ। (मृग) मृग की सक्थि-मृगसक्थ। (पूर्व) सक्थि का पूर्वभाग-पूर्वसक्थ। (उपमान) फलक=फट्टे की आकृति की सक्थि-फलकसक्थ।

*सिद्धि-(१) **उत्तरसक्थम्**। उत्तर+सु+सक्थि+ङस्। उत्तर+सक्थि+टच्। उत्तरसक्थ्+अ। उत्तरसक्थ+सु। उत्तरसक्थम्।*

*यहां उत्तर और सक्थि शब्दों का '**पूर्वापराधरोत्तर०**' (२।२।१) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। इस 'उत्तरसक्थि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पूर्वसक्थम्**।*

*(२) **मृगसक्थम्**। यहां मृग और सक्थि शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **फलकसक्थम्**। यहां उपमानवाची फलक और सक्थि शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टच्–

(१४) नावो द्विगोः।९९।

प०वि०-नावः ५।१ द्विगोः ५।१।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नावो द्विगोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-नौशब्दान्ताद् द्विगुसंज्ञकात् तत्पुरुषात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(समाहारे)** द्वयोर्नाव्योः समाहारः-द्विनावम्, त्रिनावम्। **(उत्तरपदे)** द्वे नावौ धनं यस्य-द्विनावधनः। पञ्च नावः प्रिया यस्य-पञ्चनावप्रियः। **(तद्धितार्थे)** द्वाभ्यां नौभ्यामागतम्-द्विनावरूप्यम्, द्विनावमयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नावः) नौ शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*द्विगुतत्पुरुष '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से समाहार, उत्तरपद और तद्धितार्थ विषय में होता है।*

*उदा०-**(समाहार)** दो नौकाओं का समाहार-द्विनाव। तीन नौकाओं का समाहार-त्रिनाव। **(उत्तरपद)** दो नौकायें धन हैं जिसका वह-द्विनावधन। पांच नौकायें धन हैं जिसका वह-पञ्चनावधन। **(तद्धितार्थ)** दो नौकाओं से आया हुआ-द्विनावरूप्य, द्विनावमय द्रव्य।*

*सिद्धि-(१) **द्विनावम्।** द्वि+ओस्+नौ+ओस्। द्वि+नौ। द्विनौ+टच्। द्विनाव्+अ। द्विनाव+सु। द्विनावम्।*

*यहां नौ-अन्त, द्विगुतत्पुरुष-संज्ञक 'द्विनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से औ को आव् आदेश होता है।*

*(२) **द्विनावधनः।** द्वि+औ+नौ+औ+धन। द्वि+नौ+धन। द्विनौ+टच्+धन। द्विनौ+अ+धन। द्विनावधन+सु। द्विनावधनः।*

*यहां द्वि, नौ, धन इन शब्दों का त्रिपद बहुव्रीहि समास करने पर **'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च'** (२।१।५१) से 'द्विनौ' शब्द की **'संख्यापूर्वो द्विगुः'** (२।१।५२) से द्विगुतत्पुरुष संज्ञा होती है। तत्पश्चात् उस 'द्विनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पञ्चनावप्रियः।***

*(३) **द्विनावरूप्यम्।** द्वि+भ्याम्+नौ+भ्याम्+रूप्य। द्वि+नौ+रूप्य। द्विनौ+टच्+रूप्य। द्विनौ+अ+रूप्य। द्विनावरूप्य+सु। द्विनावरूप्यः।*

*यहां पूर्ववत् 'द्विनौ' शब्द की द्विगुतत्पुरुष संज्ञा होकर **'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) से 'आगत' तद्धितार्थ में 'रूप्य' प्रत्यय होता है।*

*(४) द्विनावमयम्। यहां **'मयट् च'** (४।३।८२) से 'आगत' तद्धितार्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टच्-

(१५) अर्धाच्च।१००।

प०वि०-अर्धात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनुवृत्तिः-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, नाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्धाच्च नावस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-अर्धशब्दाच्च परस्माद् नौशब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अर्धं नावः-अर्धनावम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (च) भी (नावः) नौ शब्द जिसके अन्त में उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-नौका का अर्धभाग-अर्धनाव।

***सिद्धि-अर्धनावम्।** अर्ध+सु+नौ+ङस्। अर्धनौ+टच्। अर्धनाव्+अ। अर्धनाव+सु। अर्धनावम्।*

*यहां 'अर्ध' और 'नौ' शब्दों का 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। 'अर्धनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७७) से 'औ' को 'आव्' आदेश होता है। यहां '**परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः**' (२।४।२६) से स्त्रीलिङ्गता प्राप्त है किन्तु '**लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य**' (महाभाष्यम्) से नपुंसक-लिङ्गता होती है।*

टच्–

(१६) खार्याः प्राचाम्।१०१।

प०वि०–खार्याः ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०–समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, द्विगोः, अर्धाच्च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्विगोरर्धाच्च खार्यास्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्, प्राचाम्।

अर्थः–द्विगुसंज्ञकाद् अर्धशब्दाच्च परस्मात् खार्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०–**(द्विगुः)** द्वयोः खार्योः समाहारः–द्विखारम्। द्विखारि। त्रिखारम्। त्रिखारि। **(अर्धात्)** अर्धं खार्याः–अर्धखारम्। अर्धखारी।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (च) और (अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (खार्याः) खारी शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(द्विगु)** दो खारियों का समाहार-द्विखार। द्विखारि। तीन खारियों का समाहार-त्रिखार। त्रिखारि। **(अर्ध)** खारी का अर्धभाग-अर्धखार। अर्धखारी।। खारी=१६ द्रोण=१६० सेर (४ मण)।*

*सिद्धि–**(१) द्विखारम्।** द्वि+ओस्+खारी+ओस्। द्वि+खारी। द्विखारि+टच्। द्विखार्+अ। द्विखार+सु। द्विखारम्।*

*यहां द्वि और खारी शब्दों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगु-तत्पुरुष समास है। द्विगु-संज्ञक 'द्विखारि' शब्द से प्राक्देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। '**यस्येति च**' (४।४।१४८) से अंग के इकार का लोप है। ऐसे ही–**त्रिखारम्।***

*(२) **द्विखारि।** यहां पाणिनिमुनि के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय नहीं है। द्विगु-संज्ञक तत्पुरुष में '**स नपुंसकम्**' (२।४।१७) से नपुंसकलिङ्गता और '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से ह्रस्व होता है। ऐसे–**त्रिखारि।***

(३) अर्धखारम्। यहां अर्ध और खारी शब्दों का *'अर्धं नपुंसकम्'* (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। 'अर्धखारी' शब्द से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) अर्धखारी। यहां अर्ध और खारी शब्दों का पूर्ववत् एकदेशी तत्पुरुष समास है। पाणिनिमुनि के मत में समासान्त 'अच्' प्रत्यय नहीं है।

टच्–

(१७) द्वित्रिभ्यामञ्जलेः।१०२।

प०वि०–द्वित्रिभ्याम् ५।२ अञ्जलेः ५।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च तौ–द्वित्री, ताभ्याम्–द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्वित्रिभ्यामञ्जलेर्द्विगोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–द्वित्रिभ्यां परस्माद् अञ्जलिशब्दान्ताद् द्विगु–तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(द्विः)** द्वयोरञ्जल्योः समाहारः–द्व्यञ्जलम्। **(त्रिः)** त्रयाणामञ्जलीनां समाहारः–त्र्यञ्जलम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(द्वित्रिभ्याम्) द्वि और त्रि शब्दों से परे (अञ्जलेः) अञ्जलि शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगु (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(द्वि)** दो अञ्जलियों का समाहार–द्व्यञ्जल। **(त्रि)** तीन अञ्जलियों का समाहार–त्र्यञ्जल। अञ्जलि=१६ कर्ष (तोला)।*

*सिद्धि–**द्व्यञ्जलम्।** द्वि+ओस्+अञ्जलि+ओस्। द्वि+अञ्जलि। द्व्यञ्जलि+टच्। द्व्यञ्जल्+अ। द्व्यञ्जल+सु। द्व्यञ्जलम्।*

*यहां द्वि और अञ्जलि शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से द्विगुतत्पुरुष समास है। 'द्व्यञ्जलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही–**त्र्यञ्जलम्।***

टच्–

(१८) अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि।१०३।

प०वि०–अन्-असन्तात् ५।१ नपुंसकात् ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-अन् च अस् च तौ-अनसौ, अनसावन्ते यस्य सः-अनसन्तः, तस्मात्-अनसन्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नपुंसकाद् अनसन्तात् तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-छन्दसि विषये नपुंसकलिङ्गाद् अन्नन्ताद् असन्ताच्च तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अन्नन्तम्)** हस्तिनश्चर्म-हस्तिचर्म। हस्तिचर्मे जुहोति। ऋषभस्य चर्म-ऋषभचर्म। ऋषभचर्मेऽभिषिच्यते (का०सं० ३७।२)। **(असन्तम्)** देवानां छन्दः-देवच्छन्दसम्। देवच्छन्दसानि (मै०सं० ३।२।९)। मनुष्याणां छन्दः-मनुष्यच्छन्दसम्। मनुष्यच्छन्दसम् (तै०सं० ५।४।८।६)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अनसन्तात्) अन् और अस् जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अन्नन्त)** हस्ती=हाथी का चर्म-हस्तिचर्म। **हस्तिचर्मे जुहोति।** ऋषभ=बैल का चर्म-ऋषभचर्म। **ऋषभचर्मेऽभिषिच्यते** (का०सं० ३७।२)। **(असन्त)** देवों का छन्द-देवच्छन्दस। **देवच्छन्दसानि** (मै०सं० ३।२।९)। मनुष्यों का छन्द-मनुष्यच्छन्दस। **मनुष्यच्छन्दस** (तै०सं० ५।४।८।६)।*

*सिद्धि-(१) **हस्तिचर्म।** हस्तिन्+ङस्+चर्मन्+सु। हस्ति+चर्मन्। हस्तिचर्मन्+टच्। हस्तिचर्म्+अ। हस्तिचर्म+सु। हस्तिचर्मम्।*

*यहां हस्तिन् और अन्नन्त चर्मन् शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठी-तत्पुरुष समास है। 'हस्तिचर्मन्' इस नपुंसकलिङ्ग शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**ऋषभचर्मम्।***

*(२) **देवच्छन्दसम्।** यहां देव और असन्त छन्दस् शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'देवच्छन्दस्' इस नपुंसकलिङ्ग शब्द से पूर्ववत् 'टच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**मनुष्यच्छन्दसम्।***

टच्–

(१६) ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्।१०४।

प०वि०–ब्रह्मणः ५।१ जानपदाख्यायाम् ७।१।

स०–जनपदेषु भवः–जानपदः। जानपदस्याऽऽख्या–जानपदाख्या, तस्याम्–जानपदाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जानपदाख्यायां ब्रह्मणस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–जानपदाख्यायां वर्तमानाद् ब्रह्मन्–शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा–सुराष्ट्रब्रह्मः। अवन्तिषु ब्रह्मा–अवन्तिब्रह्मः। ब्रह्मा=ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(जानपदाख्यायाम्) जनपद में रहनेवाला अर्थ में विद्यमान (ब्रह्मणः) ब्रह्मन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–सुराष्ट्र जनपद में रहनेवाला-ब्रह्मा=ब्राह्मण-सुराष्ट्रब्रह्म। अवन्ति जनपद में रहनेवाला ब्रह्मा-अवन्तिब्रह्म।

सिद्धि–सुराष्ट्रब्रह्मः। सुराष्ट्र+सुप्+ब्रह्मन्+सु। सुराष्ट्र+ब्रह्मन्। सुराष्ट्रब्रह्मन्+टच्। सुराष्ट्रब्रह्म्+अ। सुराष्ट्रब्रह्म+सु। सुराष्ट्रब्रह्मः।

यहां सुराष्ट्र और जानपदवाची ब्रह्मन् शब्दों का ***'सप्तमी शौण्डैः'*** *(२।१।४०) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'सुराष्ट्रब्रह्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है।* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही–**अवन्तिब्रह्मः।***

विशेषः *(१) सौराष्ट्र–इसका नामान्तर आनर्त है। आधुनिक काठियावाड़ प्रायद्वीप ही प्राचीनकालीन सौराष्ट्र या आनर्त देश है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८९)।*

(२) अवन्ति–नर्मदा नदी के उत्तर का प्रदेश। इसकी राजधानी का प्राचीन और आधुनिक नाम उज्जैन या अवन्तीपुरी है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८१)।

टच्-विकल्पः–

(२०) कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्।१०५।

प०वि०–कु–महद्भ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-कुश्च महाँश्च तौ कुमहान्तौ, ताभ्याम्-कुमहद्भ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य, ब्रह्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कुमहद्भ्यां ब्रह्मणस्तत्पुरुषाद् अन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः-कुमहद्भ्यां परस्माद् ब्रह्मन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कुः)** कुत्सितो ब्रह्मा-कुब्रह्मः, कुब्रह्मा। **(महान्)** महाँश्चासौ ब्रह्मा-महाब्रह्मः, महाब्रह्मा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(कुमहद्भ्याम्) कु और महत् से परे (ब्रह्मणः) ब्रह्मन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(कु)** कुत्सित=निन्दित ब्रह्मा-कुब्रह्म, कुब्रह्मा। **(महत्)** महान् ब्रह्मा-महाब्रह्म, महाब्रह्मा।*

*सिद्धि-(१) **कुब्रह्मः।** कु+सु+ब्रह्मन्+सु। कु+ब्रह्मन्। कुब्रह्मन्+टच्। कुब्रह्म्+अ। कुब्रह्म+सु। कुब्रह्मः।*

*यहां कु और ब्रह्मन् शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। 'कुब्रह्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।*

*(२) **कुब्रह्मा।** यहां कु और ब्रह्मन् शब्दों का पूर्ववत् तत्पुरुष समास है। विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(३) **महाब्रह्मः।** यहां महत् और ब्रह्मन् शब्दों का **'सन्महत्परम०'** (२।१।६१) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। **'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'** (६।३।४६) से महत् के तकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **महाब्रह्मा।** यहां 'महाब्रह्मन्' शब्द से विकल्प पक्ष में समासान्त 'टच्' प्रत्यय नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(ख) समाहारद्वन्द्वसमासः

टच्–

(१) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे।१०६।

प०वि०–द्वन्द्वात् ५।१ चु-द-ष-हान्तात् ५।१ समाहारे ७।१।

स०–चुश्च दश्च षश्च हश्च एतेषां समाहारः-चुदषहम्, चुदषहम् अन्ते यस्य तत्-चुदषहान्तम्, तस्मात्-चुदषहान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०–समासान्ताः टच् इति चानुवर्तते। 'तत्पुरुषस्य' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–समाहारे द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–समाहारे वर्तमानाद् द्वन्द्वसंज्ञकाच्चवर्गान्ताद् दकारान्तात् षकारान्ताद् हकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(चवर्गान्तम्)** वाक् च त्वक् च एतयोः समाहारः-वाक्त्वचम्। स्रक् च त्वक् च एतयोः समाहारः–स्रक्त्वचम्। श्रीश्च स्रक् च एतयोः समाहारः-श्रीस्रजम्। इद् च ऊर्क् च एतयोः समाहारः-इडूर्जम्। वाक् च ऊर्क् च एतयोः समाहारः-वागूर्जम्। **(दकारान्तम्)** समिच्च दृषच्च एतयोः समाहारः-समिद्दृषदम्। सम्पच्च विपच्च एतयोः समाहारः-सम्पद्विपदम्। **(षकारान्तम्)** वाक् च विप्रुट् च एतयोः समाहारः-वाग्विप्रुषम्। **(हकारान्तम्)** छत्रं च उपानच्च एतयोः समाहारः-छत्रोपानहम्। धेनुश्च गोधुक् च एतयोः समाहारः–धेनुगोदुहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समाहारे) संयोग अर्थ में विद्यमान (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसंज्ञक (चुदषहान्तात्) चु=चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(चवर्गान्त)** वाक्=जिह्वा और त्वक्=त्वचा का समाहार=संयोग वाक्त्वच। श्री=लक्ष्मी और स्रक्=माला का समाहार-श्रीस्रज। इट्=इच्छा और ऊर्क्=बल का समाहार-इडूर्ज। वाक्=वाणी और ऊर्क्=बल का समाहार-वागूर्ज। **(दकारान्त)** सम्पत्=सुख और विपत्=दुःख का समाहार-सम्पद्विपद। **(षकारान्त)** वाक्=जिह्वा और विप्रुट्=जल बिन्दु का समाहार-वाग्विप्रुष। **(हकारान्त)** छत्र और उपानत्=जूते का समाहार-छत्रोपानह। धेनु=दुधारू गाय और गोधुक्=गौ के दोग्धा का समाहार-धेनुगोदुह।*

सिद्धि-(१) वाक्त्वचम्। वाक्+सु+त्वच्+सु। वाक्+त्वच्। वाक्त्वच्+टच्। वाक्त्वच्+अ। वाक्त्वच+सु। वाक्त्वचम्।

*यहां वाक् और त्वच् शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्व समास है। चकारान्त 'वाक्त्वच्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**श्रीस्रजम्, इडूर्जम्, वागूर्जम्।***

*(२) **समिद्दृषदम्।** यहां समित् और दकारान्त दृषद् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **वाग्विप्रुषम्।** यहां वाक् और षकारान्त विप्रुष् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **छत्रोपानहम्।** यहां छत्र और हकारान्त उपानह् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है।*

*(५) **धेनुगोदुहम्।** यहां धेनु और हकारान्त गोदुह् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है।*

(ग) अव्ययीभावसमासः

टच्-

(१) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः।१०७।

प०वि०-अव्ययीभावे ७।१ शरत्प्रभृतिभ्यः ५।३।

स०-शरत् प्रभृतिर्येषां ते शरत्प्रभृतयः, तेभ्यः-शरत्प्रभृतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानेभ्यः शरत्प्रभृतिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शरदः समीपम्-उपशरदम्। विपाशः समीपम्-उपविपाशम्। शरदं प्रति-प्रतिशरदम्। विपाशं प्रति-प्रतिविपाशम्, इत्यादिकम्।

शरत्। विपाश। अनस्। मनस्। उपानह्। दिव्। हिमवत्। अनडुह्। दिश्। चतुर्। यद्। तद्। जराया जरश् च। सदृश्। प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः। पथिन्। प्रत्यक्षम्। परोक्षम्। समक्षम्। अन्वक्षम्। प्रतिपथम्। सम्पथम्। अनुपथम्। इति शरत्प्रभृतयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (शरत्प्रभृतिभ्यः) शरत्-आदि प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शरद् ऋतु के समीप-उपशरद। विपाश्=व्यास नदी के पास-उपविपाश। शरद् ऋतु को लक्ष्य करके-प्रतिशरद। विपाश् नदी को लक्ष्य करके-प्रतिविपाश इत्यादि।

सिद्धि-(१) उपशरदम्। *उप+सु+शरद्+ङस्। उप+शरद्। उपशरद्+टच्। उपशरद्+अ। उपशरद्+सु। उपशरदम्।*

*यहां उप और शरद् शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास है। उपशरद् शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उपविपाशम्।***

*(२) **प्रतिशरदम्।** यहां प्रति शरद् शब्दों का **'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये'** (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रतिविपाशम्।***

टच्-

(२) अनश्च।१०८।

प०वि०-अनः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावेऽनश्च समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् अन्नन्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-राज्ञः समीपम्-उपराजम्। राजानं प्रति-प्रतिराजम्। आत्मनि अधि-अध्यात्मम्। आत्मानं प्रति-प्रत्यात्मम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-राजा के समीप-उपराज। राजा को लक्ष्य करके-प्रतिराज। आत्मा के विषय में-अध्यात्म। आत्मा को लक्ष्य करके-प्रत्यात्म।

सिद्धि-(१) उपराजम्। *उप+सु+राजन्+ङस्। उप+राजन्। उपराजन्+टच्। उपराज्+अ। उपराज+सु। उपराजम्।*

*यहां उप और राजन् शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से समीप-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'उपराजन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग का लोप होता है।*

*(२) प्रतिराजम्। यहां प्रति और राजन् शब्दों का 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रत्यात्मम्।***

(३) अध्यात्मम्। यहां अधि और आत्मन् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टच्–

(३) नपुंसकादन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०-नपुंसकात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावे नपुंसकाद् अनोऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् नपुंसकलिङ्गाद् अन्नन्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चर्मणः समीपम्-उपचर्मम्, उपचर्म। चर्म प्रति-प्रतिचर्मम्, प्रतिचर्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-चर्म=चमड़े के पास-उपचर्म, उपचर्मन्। चर्म को लक्ष्य करके-प्रतिचर्म, प्रतिचर्मन्।

सिद्धि-(१) उपचर्मम्। यहां उप और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'उपचर्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) उपचर्म। यहां उप और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'चर्मन्' के नकार का लोप होता है।

(३) प्रतिचर्मम्। यहां प्रति और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) प्रतिचर्म। यहां प्रति और नपुंसकलिङ्ग 'चर्मन्' शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है। तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टच्–

(४) नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः।११०।

प०वि०–नदी–पौर्णमासी–आग्रहायणीभ्यः ५।३।

स०–नदी च पौर्णमासी च आग्रहायणी च ता नदीपौर्णमास्याग्रहायणयः, ताभ्यः–नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्योऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः–अव्ययीभावे समासे वर्तमानेभ्यो नदीपौर्णमास्याग्रहायण्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**नदी**) नद्याः समीपम्–उपनदम्, उपनदि। (**पौर्णमासी**) पौर्णमास्याः समीपम्–उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि। (**आग्रहायणी**) आग्रहायण्याः समीपम्–उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ__–(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।

उदा०–(__नदी__) नदी के समीप=निकट–उपनद, उपनदि। (__पौर्णमासी__) पौर्णमासी के समीप–उपपौर्णमास, उपपौर्णमासि। (__आग्रहायणी__) आग्रहायणी=मार्गशीर्ष की पौर्णमासी के समीप–उपाग्रहायण, उपाग्रहायणि।

सिद्धि–(१) __उपनदम्।__ उप+सु+नदी+ङस्। उप+नदी। उपनदि+टच्। उपनद्+अ। उपनद+सु। उपनदम्।

यहां उप और नदी शब्दों का __'अव्ययं विभक्ति०'__ (२।१।६) से समीप-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। __'अव्ययीभावश्च'__ (२।४।१८) से अव्ययीभाव समास का नपुंसकलिङ्ग होता है अतः __'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'__ (१।२।४७) से नदी के ईकार को ह्रस्व होता है। 'उपनदि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही–__उपपौर्णमासम्, उपाग्रहायणम्।__

(२) __उपनदि।__ यहां उप और नदी शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास और पूर्ववत् ह्रस्वत्व है और विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही–__उपपौर्णमासि, उपाग्रहायणि।__

टच्–

(५) झयः ।१११।

वि०–झयः ५ ।१ ।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे झयोऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच् ।

अर्थः–अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् झयन्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–समिधः समीपम्–उपसमिधम्, उपसमित् । दृषदः समीपम्–उपदृषदम्, उपदृषत् ।

***आर्यभाषाः अर्थ**–(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (झयः) झय् वर्ण जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–समित्=समिधा के समीप–उपसमिध, उपसमित् । दृषद्=पत्थर के समीप–उपदृषद, उपदृषत् ।

सिद्धि–(१) उपसमिधम् । उप+सु+समिध्+ङस् । उप+समिध् । उपसमिध्+टच् । उपसमिध्+अ । उपसमिध+सु । उपसमिधम् ।

यहां उप और समिध् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२ ।१ ।६) से समीप-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। झय्-वर्णान्त 'उपसमिध्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही–उपदृषदम् ।

(२) उपसमित् । यहां उप और समिध् शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। 'झलां जशोऽन्ते' (८ ।२ ।३९) से उपसमिध् के धकार को दकार और 'वाऽवसाने' (८ ।४ ।५६) से दकार का चर् तकार होता है। ऐसे ही–उपदृषत् ।

टच्–

(६) गिरेश्च सेनकस्य ।११२।

प०वि०–गिरेः ५ ।१ अव्ययपदम्, सेनकस्य ६ ।१ ।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे गिरेश्च समासान्तष्टच्, सेनकस्य ।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् गिरिशब्दान्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति, सेनकस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-गिरेरन्तः-अन्तर्गिरम्, अन्तर्गिरि। गिरेः समीपम्-उपगिरम्, उपगिरि।

आर्यभाषाः अर्थ-(अव्ययभावे) अव्ययभाव समास में विद्यमान (गिरेः) गिरि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है (सेनकस्य) सेनक आचार्य के मत में।

उदा०-गिरि=पर्वत के अन्दर-अन्तर्गिर, अन्तगिरि। गिरि के समीप-उपगिर, उपगिरि।

सिद्धि-(१) अन्तर्गिरम्। *यहां अन्तर् और गिरि शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'अन्तर्' शब्द सप्तमी-अर्थ का वाचक है। 'अन्तर्गिरि' शब्द से इस सूत्र से सेनक आचार्य के मत में 'टच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उपगिरम्।***

*(२) **अन्तर्गिरि।** यहां अन्तर् और गिरि शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है तथा पाणिनिमुनि के मत में टच् प्रत्यय नहीं है। **'अव्ययीभावश्च'** (१।१।४१) से अव्यय संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-उपगिरि।*

विशेषः *यहां 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति में सेनक आचार्य के मत का उल्लेख विकल्प के नहीं अपितु पूजा के लिये है।*

(घ) बहुव्रीहिसमासः

षच्-

(१) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्।११३।

प०वि०-बहुव्रीहौ ७।१ सक्थि-अक्ष्णोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्वाङ्गात् ५।१ षच् १।१।

स०-सक्थि च अक्षि च ते सक्थ्यक्षिणी, तयोः-सक्थ्यक्ष्णोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्वाङ्गाभ्यां सक्थ्यक्षिभ्यां समासान्तः षच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे वर्तमानाभ्यां स्वाङ्गवाचिभ्यां सक्थि-अक्ष्यन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समासान्तः षच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**सक्थि**) दीर्घं सक्थि यस्य सः-दीर्घसक्थः। (**अक्षि**) कल्याणे अक्षिणी यस्य सः-कल्याणाक्षः। लोहिताक्षः। विशालाक्षः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (सक्थ्यक्ष्णोः) सक्थि और अक्षि शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (षच्) षच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(सक्थि)** दीर्घ है सक्थि=जंघा जिसकी वह-दीर्घसक्थ। **(अक्षि)** कल्याणकारी हैं अक्षि=आंखें जिसकी वह-कल्याणाक्ष। लोहित=लाल हैं अक्षि जिसकी वह-लोहिताक्ष। विशाल हैं अक्षि जिसकी वह-विशालाक्ष।*

सिद्धि-दीर्घसक्थम्। *दीर्घ+सु+सक्थि+सु। दीर्घ+सक्थि। दीर्घसक्थि+षच्। दीर्घसक्थ्+अ। दीर्घसक्थ+सु। दीर्घसक्थः।*

*यहां दीर्घ और सक्थि शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'दीर्घसक्थि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'षच्' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'अक्षि' शब्द से-**कल्याणाक्षः, लोहिताक्षः, विशालाक्षः।***

विशेषः *(१) 'टच्' प्रत्यय की अनुवृत्ति में षच् प्रत्यय का विधान स्वर-भेद के लिये किया गया है। 'टच्' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ङीप् प्रत्यय के पित् होने से '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर होता है। षच् प्रत्यय के षित् होने से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है। 'ङीष्' प्रत्यय का '**आद्युदात्तश्च**' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

(२) 'बहुव्रीहौ' पद की अनुवृत्ति इस पाद की समाप्ति पर्यन्त है।

षच्-

(२) अङ्गुलेर्दारुणि।११४।

प०वि०-अङ्गुलेः ५।१ दारुणि ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, षच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ समासे दारुणि चार्थे वर्तमानाद् अङ्गुलिशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः षच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वे अङ्गुली यस्य तत्-द्व्यङ्गुलं दारु। त्र्यङ्गुलं दारु। पञ्चाङ्गुलं दारु। अङ्गुलिसदृशावयवं धान्यादीनां विक्षेपणकाष्ठमुच्यते। जेळी इति हारयाणभाषायाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास और (दारु) लकड़ी-विशेष अर्थ में विद्यमान (अङ्गुलेः) अङ्गुलि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (षच्) षच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दो हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-द्व्यङ्गुल दारु। तीन हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-त्र्यङ्गुल दारु। पांच हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-पञ्चाङ्गुल दारु। अङ्गुलियों के सदृश अवयववाला धान्य आदि के फैंकने के लिये जो दारुमय साधन होता है उसे 'द्व्यङ्गुलं दारु' आदि कहते हैं। इसे हरयाणा की लोकभाषा में दो सँग जेळी आदि कहा जाता है।

सिद्धि-द्व्यङ्गुलम्। *द्वि+औ+अङ्गुलि+औ। द्वि+अङ्गुलि। द्व्यङ्गुलि+षच्। द्व्यङ्गुल्+अ। द्व्यङ्गुल+सु। द्व्यङ्गुलम्।*

यहां द्वि और अङ्गुलि शब्दों का ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। दारुविशेष अर्थ में विद्यमान 'द्व्यङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'षच्' प्रत्यय है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-त्र्यङ्गुलम्, पञ्चाङ्गुलम्।*

षः—

(३) द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः।११५।

प०वि०-द्वित्रिभ्याम् ५।२ ष १।१ (सु-लुक्) मूर्ध्नः ५।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च तौ द्वित्री, ताभ्याम्-द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ द्वित्रिभ्यां मूर्ध्नः समासान्तः षः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे द्वित्रिभ्यां परस्माद् मूर्धन्-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः षः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्विः) द्वौ मूर्धानौ यस्य सः-द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान (द्वित्रिभ्याम्) द्वि और त्रि शब्दों से परे (मूर्ध्नः) मूर्धन् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (षः) ष प्रत्यय होता है।*

उदा०-दो हैं मूर्धा=शिर जिसके वह-द्विमूर्ध। दो सिरा। तीन हैं मूर्धा जिसके वह-त्रिमूर्ध। तीन सिरा।

सिद्धि-द्विमूर्धः। द्वि+औ+मूर्धन्+औ। द्वि+मूर्धन्। द्विमूर्धन्+ष। द्विमूर्ध्+अ। द्विमूर्ध+सु। द्विमूर्धः।

*यहां द्वि और मूर्धन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। द्विमूर्धन् शब्द से इस सूत्र से समासान्त ष प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिमूर्धः**। 'षच्' प्रत्यय में 'चितः' (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है और 'ष' प्रत्यय में 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है। अतः स्वरभेद के लिये 'ष' प्रत्यय का विधान किया गया है।*

अप्-

(४) अप् पूरणीप्रमाण्योः।११६।

प०वि०-अप् १।१ पूरणी-प्रमाण्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-पूरणी च प्रमाणी च ते पूरणीप्रमाण्यौ, तयोः-पूरणीप्रमाण्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ पूरणीप्रमाणीभ्यां समासान्तोऽप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे पूरण्यन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र पूरणीशब्देन पूरणप्रत्ययान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दा गृह्यन्ते।

उदा०-(पूरणी) कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः-कल्याणी-पञ्चमा रात्रयः। कल्याणीदशमा रात्रयः। **(प्रमाणी)** स्त्री प्रमाणी येषां ते-स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः। भार्याप्रधाना इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (पूरणीप्रमाण्योः) पूरणी और प्रमाणी जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है। यहां 'पूरणी' शब्द से पूरण-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**(पूरणी)** जिन रात्रियों में पञ्चमी रात्रि कल्याणी=मङ्गलमयी है वे-कल्याणी पञ्चम रात्रियां। जिन रात्रियों में दशमी रात्रि कल्याणी है वे-कल्याणी दशम रात्रियां। **(प्रमाणी)** जिन कुटुम्बी=गृहस्थों में स्त्री प्रमाणी है वे-स्त्री प्रमाण कुटुम्बी। भार्याप्रधान गृहस्थ।*

*सिद्धि-(१) **कल्याणीपञ्चमाः**। कल्याणी+सु+पञ्चमी+सु। कल्याणी+पञ्चमी। कल्याणपञ्चमी+अप्। कल्याणीपञ्चम्+अ। कल्याणीपञ्चम+जस्। कल्याणीपञ्चमाः।*

*यहां कल्याणी और पञ्चमी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। पूरणी-अन्त 'कल्याणी-पञ्चमी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कल्याणीदशमाः**।*

*(२) **स्त्रीप्रमाणाः**। यहां स्त्री और प्रमाणी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। प्रमाणी-अन्त 'स्त्रीप्रमाणी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अप्-

(५) अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः।११७।

प०वि०-अन्तर्-बहिर्भ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्, लोम्नः ५।१।

स०-अन्तर् च बहिर् च तौ-अन्तर्बहिरौ, ताभ्याम्-अन्तर्बहिर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः समासान्तोऽप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासेऽन्तर्बहिर्भ्यां परस्माच्च लोमशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अन्तः**) अन्तर्लोमानि यस्य सः-अन्तर्लोमः प्रावारः। (**बहिः**) बहिर्लोमानि यस्य सः-बहिर्लोमः पटः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अन्तर्बहिर्भ्याम्) अन्तर् और बहिर् शब्दों से परे (च) भी (लोम्नः) लोमन् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है।

*उदा०-(अन्तः) अन्तः=अन्दर हैं लोम=रोम जिसके वह अन्तर्लोम प्रावार (चादर)। **(बहिः)** बहिः=बाहर हैं लोम जिसके वह-बहिर्लोम पट (कपड़ा)।*

*सिद्धि-**अन्तर्लोमः**। अन्तर्+सु+लोमन्+जस्। **अन्तर्लोमन्**+अप्। अन्तर्लोम्+अ। अन्तर्लोम+सु। अन्तर्लोमः।*

*यहां अन्तर् और लोमन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अन्तर्लोमन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**बहिर्लोमः**।*

अच्–

(६) अज्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्।११८।

प०वि०–अच् १।१ नासिकायाः ५।१ संज्ञायाम् ७।१ नसम् १।१ च अव्ययपदम्, अस्थूलात् ५।१।

स०–न स्थूलम्–अस्थूलम्, तस्मात्–अस्थूलात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावस्थूलाद् नासिकायाः समासान्तोऽच्, नसं च, संज्ञायाम्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे स्थूलशब्दवर्जितात् परस्माद् नासिका-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति, नासिकायाः स्थाने च नसमादेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–द्रुरिव नासिका यस्य सः–द्रुणसः। वाध्रीणसः। गोनसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अस्थूलात्) स्थूल से अन्य शब्द से परे (नासिकायाः) नासिका शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है (च) और नासिका के स्थान में (नसम्) नस आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०–द्रु=वृक्ष की शाखा के समान लम्बी नासिका–नाक है जिसकी वह–द्रुणस। वाध्री–चमड़े के तसमे के समान है नासिका जिसकी वह–वाध्रीणस (गेंडा)। गौ=बैल के समान है नासिका जिसकी वह–गोनस (सर्पविशेष)।

*सिद्धि–**द्रुणसः।** द्रु+सु+नासिका+सु। द्रु+नासिका+अच्। द्रु+नस्+अ। द्रुणस+सु। द्रुणसः।*

*यहां द्रु और नासिका शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'द्रुनासिका' शब्द से संज्ञाविषय में समासान्त 'अच्' प्रत्यय और नासिका के स्थान में 'नस' आदेश है। '**पूर्वपदात् संज्ञायामगः**' (८।४।३) से णत्व और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**वाध्रीणसः, गोनसः।***

अच्–

(७) उपसर्गाच्च।११९।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच्, नासिकायाः, नसम्, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावुपसर्गाद् नासिकायाः समासान्तोऽच्, नसं च।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उपसर्गात् परस्माच्च नासिकाशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति, नासिकायाः स्थाने च नसमादेशो भवति। असंज्ञार्थमिदं वचनम्।

उदा०-उन्नता नासिका यस्य सः-उन्नसः। प्रगता नासिका यस्यः-प्रणसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपसर्गात्) उपसर्ग से (च) भी परे (नासिकायाः) नासिका शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और नासिका के स्थान में (नसम्) नस आदेश होता है।*

उदा०-उन्नत है नासिका जिसकी वह-उन्नस। प्रगत=प्रकृष्ट-उत्तम है नासिका जिसकी वह-प्रणस।

सिद्धि-उन्नसः। उत्+नासिका+सु। उत्+नासिका+अच्। उत्+नस्+अ। उन्नस+सु। उन्नसः।

*यहां उत् उपसर्ग और नासिका शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'उन्नासिका' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और नासिका के स्थान में नस आदेश है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्रणसः**। यहां वा०-'उपसर्गाद् बहुलम्' (८।४।२८) से णत्व होता है।*

अच् (निपातनम्)-

(८) सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपद-प्रोष्ठपदाः।१२०।

प०वि०-सुप्रात-सुश्व-सुदिव-शारिकुक्ष-चतुरश्र-एणीपद-अजपद-प्रोष्ठपदाः१।३।

स०-सुप्रातश्च सुश्वश्च सुदिवश्च शारिकुक्षश्च चतुरश्रश्च एणीपदश्च अजपदश्च प्रोष्ठपदश्च ते सुप्रात०प्रोष्ठपदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुप्रात०प्रोष्ठपदाः समासान्तोऽच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुप्रातादयः शब्दाः समासान्त-अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-(**सुप्रातः**) शोभनं प्रातर्यस्य सः-सुप्रातः। (**सुश्वः**) शोभनं श्वो यस्य सः-सुश्वः। (**सुदिवः**) शोभनं दिवा यस्य सः-सुदिवः। (**शारिकुक्षः**) शारेरिव कुक्षिर्यस्य सः-शारिकुक्षः। (**चतुरस्रः**) चतस्रोऽश्रयो यस्य सः-चतुरश्रः। (**एणीपदः**) एण्या इव पादौ यस्य सः-एणीपदः। (**अजपदः**) अजस्य इव पादौ यस्य :-अजपदः। (**प्रोष्ठपदः**) प्रोष्ठस्य इव पादौ यस्य सः-प्रोष्ठपदः। प्रोष्ठः=गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुप्रात०प्रोष्ठपदाः) सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद, प्रोष्ठपद शब्द (समासान्तः) समास के अवयव (अच्) अच् प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

उदा०-(सुप्रातः) अच्छा है प्रातःकालीन सन्ध्यादि कर्म जिसका वह-सुप्रात। (सुश्वः) अच्छा श्वः=आगामी कल जिसका वह-सुश्व। (सुदिवः) अच्छा है दिवा=दिन जिसका वह-सुदिव। (शारिकुक्षः) शारि=शतरंज के मोहरे के समान है कुक्षि=पेट जिसका वह-शारिकुक्ष। (चतुरश्रः) चार हैं अश्रि=कोण जिसकी वह-चतुरश्र चौकोण। (एणीपदः) एणी=काली हरिणी के समान हैं पाद=पांव जिसके वह-एणीपद। (अजपदः) अज=बकरे के समान हैं पाद जिसके वह-अजपद। (प्रोष्ठपदः) प्रोष्ठ=गौ के समान हैं पाद जिसके वह-प्रोष्ठपद।

सिद्धि-(१) सुप्रातः। सु+सु+प्रातर्+सु। सु+प्रातर्+अच्। सुप्रात्+अ। सुप्रात+सु। सुप्रातः।

यहां सु और प्रातर् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सुप्रातर्' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से अंग के टि-भाग (अर्) का लोप होता है। ऐसे ही-सुश्वः, सुदिवः, शारिकुक्षः।

(२) एणीपदः। यहां 'एणीपाद' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'पाद' को पद् आदेश निपातित है। ऐसे ही-अजपदः, प्रोष्ठपदः।

अच्-विकल्पः-

(६) नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्।१२१।

प०वि०-नञ्-दुर्-सुभ्यः ५।३ हलि-सक्थ्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-नञ् च दुर् च सुश्च ते नञ्दुःसवः, तेभ्यः-नञ्दुःसुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थिभ्याम् अन्यतरस्यां समासान्तोऽच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्दुःसुभ्यः परस्माद् हल्यन्तात् सक्थ्यन्ताच्च प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हलिः**) अविद्यमाना हलिर्यस्य सः-अहलः, अहलिः। दुष्ठु हलिर्यस्य सः-दुर्हलः, दुर्हलिः। सुष्ठु हलिर्यस्य सः-सुहलः, सुहलिः। (**सक्थिः**) **अविद्य**मानः सक्थिर्यस्य सः-असक्थः, असक्थिः। दुष्ठु सक्थिर्यस्य सः-दुःसक्थः, दुःसक्थिः। सुष्ठु सक्थिर्यस्य सः-सुसक्थः, सुसक्थिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्दुःसुभ्यः) नञ्, दुर्, सु से परे (हलिसक्थ्योः) हलि और सक्थि शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हलिः) अविद्यमान है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-अहल, अहलि। दुर्=खराब है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-दुर्हल, दुर्हलि। सु=अच्छा है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-सुहल, सुहलि। (सक्थि) अविद्यमान है सक्थि=जंघा जिसकी वह-असक्थ, असक्थि। दुर्=खराब है सक्थि=जंघा जिसकी वह-दुःसक्थ, दुःखक्थि। सु=अच्छी है सक्थि=जंघा जिसकी वह-सुसक्थ, सुसक्थि।

सिद्धि-(१) अहलः। नञ्+सु+हलि+सु। अ+हलि+अच्। अहल्+अ। अहल+सु। अहलः।

यहां नञ् और हलि शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अहलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-दुर्हलः, सुहलः। असक्थः, दुःसक्थः, सुसक्थः।

(२) अहलिः। यहां 'अहलि' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में समसान्त 'अच्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-दुर्हलिः, सुहलिः। असक्थिः, दुःसक्थिः, सुसक्थिः।

असिच्-

(१०) नित्यमसिच् प्रजामेधयोः।१२२।

प०वि०-नित्यम् १।१ असिच् १।१ प्रजा-मेधयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-प्रजा च मेधा च ते प्रजामेधे, तयो:-प्रजामेधयो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-समासान्ता:, बहुव्रीहौ नञ्दु:सुभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-बहुव्रीहौ नञ्दु:सुभ्यो प्रजामेधाभ्यां नित्यं समासान्तोऽसिच्।

अर्थ:-बहुव्रीहौ समासे नञ्दु:सुभ्य: परस्मात् प्रजान्ताद् मेधान्ताच्च प्रातिपदिकाद् नित्यं समासान्तोऽसिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(प्रजा)** अविद्यमाना प्रजा यस्य स:-अप्रजा:। दुष्ठु प्रजा यस्य स:-दुष्प्रजा:। सुष्ठु प्रजा यस्य स:-सुप्रजा:। **(मेधा)** अविद्यमाना मेधा यस्य स:-अमेधा:। दुष्ठु मेधा यस्य स:-दुर्मेधा:। सुष्ठु मेधा यस्य स:-सुमेधा:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्दु:सुभ्य:) नञ्, दुर्, सु शब्दों से परे (प्रजामेधयो:) प्रजा और मेधा शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (नित्यम्) सदा (समासान्त:) समास का अवयव (असिच्) असिच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रजा)** अविद्यमान है प्रजा जिसकी वह-अप्रजा। दुर्=खराब है प्रजा जिसकी वह-दुष्प्रजा। सु=अच्छी है प्रजा जिसकी वह-सुप्रजा। **(मेधा)** अविद्यमान है मेधा=तीव्रबुद्धि जिसकी वह-अमेधा। दुर्=खराब है मेधा जिसकी वह-दुर्मेधा। सु=अच्छी है मेधा जिसकी वह-सुमेधा।*

सिद्धि-अप्रजा:। *नञ्+सु+प्रजा+सु। अ+प्रजा+असिच्। अप्रज्+अस्। अप्रजस्+सु। अप्रजास्+सु। अप्रजास्+०। अप्रजारु। अप्रजार्। अप्रजा:।*

*यहां नञ् और प्रजा शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अप्रजा' शब्द से इस सूत्र से नित्य समासान्त 'असिच्' प्रत्यय है। **'अत्वसन्तस्य चाधातो:'** (६।४।१४) से अंग की उपधा को दीर्घ होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लुक्, **'ससजुषो रु:'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीय:'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**दुष्प्रजा:, सुप्रजा:। अमेधा:, दुर्मेधा:, सुमेधा:।***

असिच् (निपातनम्)-

(११) बहुप्रजाश्छन्दसि।१२३।

प०वि०-बहुप्रजा: १।१ छन्दसि ७।१।

स०-बह्वी प्रजा यस्य स:-बहुप्रजा: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, असिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुव्रीहौ बहुप्रजाः समासान्तोऽसिच्।

अर्थः-छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे बहुप्रजा इत्यत्र समासान्तोऽसिच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०-बह्वी प्रजा यस्य सः-बहुप्रजाः। बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (बहुप्रजाः) बहुप्रजा इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (असिच्) असिच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-बहुत ही प्रजा=सन्तान जिसकी वह-बहुप्रजा। बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२)। बहुत सन्तानवाला पुरुष दुःख में दाखिल होता है।

सिद्धि-बहुप्रजाः शब्द की सिद्धि 'अप्रजाः' शब्द के समान है।

अनिच्-

(१२) धर्मादनिच् केवलात्।१२४।

प०वि०-धर्मात् ५।१ अनिच् १।१ केवलात् ५।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ केवलाद् धर्मात् समासान्तोऽनिच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे केवल-पदात् परस्माद् धर्म-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽनिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कल्याणं धर्मो यस्य सः-कल्याणधर्मा। वेदधर्मा। सत्यधर्मा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (केवलात्) केवल=एक पद से परे (धर्मात्) धर्म शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कल्याण=भलाई करना जिसका धर्म है वह-कल्याणधर्मा। वेद के अनुसार आचरण करना जिसका धर्म है वह-वेदधर्मा। सत्यभाषण करना जिसका धर्म है वह-सत्यधर्मा।

*सिद्धि-**कल्याणधर्मा**। कल्याण+सु+धर्म+सु। कल्याण+धर्म+अनिच्। कल्याणधर्म्+अन्। **कल्याणधर्मन्+सु। कल्याणधर्मान्+सु। कल्याणधर्मान्+०**। कल्याणधर्मा।*

*यहां कल्याण और धर्म शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कल्याणधर्म' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अनिच्' प्रत्यय है। **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वेदधर्मा, सत्यधर्मा।***

*यहां 'केवलात्' पद का अभिप्राय यह है कि केवल एक पद से परे धर्मान्त प्रातिपदिक से यह अनिच् प्रत्यय होता है, अनेक पदों से उत्तर धर्मान्त शब्द से नहीं। **जैसे-परमः स्वो धर्मो यस्य सः-परमस्वधर्मः।***

अनिच् (निपातनम्)-

(१३) जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः ।१२५।

प०वि०-जम्भा १।१ सु-हरित-तृण-सोमेभ्यः ५।३।

स०-सुश्च हरितं च तृणं च सोमश्च ते सुहरिततृणसोमाः, तेभ्यः-सुहरिततृणसोमेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुहरिततृणसोमेभ्यो जम्भा समासान्तोऽनिच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुहरिततृणसोमेभ्यः परं 'जम्भा' इति पदं समासान्त-अनिच्प्रत्ययान्तं निपात्यते। जम्भशब्दोऽभ्यवहार्यवाची दन्त-विशेषवाची च वर्तते।

उदा०-(सुः) शोभनो जम्भो यस्य सः-सुजम्भा देवदत्तः। शोभनाभ्यवहार्यः शोभनादन्तो वा इत्यर्थः। **(हरितम्)** हरितं जम्भो यस्य सः-हरितजम्भः। **(तृणम्)** तृणं जम्भो यस्य सः-तृणजम्भः। **(सोमः)** सोमो जम्भो यस्य सः-सोमजम्भः। दन्तार्थे तु एवं विग्रहः क्रियते-तृणमिव जम्भो यस्य सः-तृणजम्भः। सोम इव जम्भो यस्य सः-सोमजम्भः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुहरिततृणसोमेभ्यः) सु, हरित, तृण, सोम शब्दों से परे (जम्भा) 'जम्भा' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय निपातित है। 'जम्भ' शब्द अभ्यवहार्य=खान-पान और दन्तविशेष (जाड़) का वाचक है।*

*उदा०-(सु) सु=अच्छा है जम्भ=खान-पान जिसका वह-सुजम्भा देवदत्त। **(हरित)** हरित=हरी सब्जी आदि है जम्भ=खाना जिसका वह-हरितजम्भा देवदत्त।*

(तृण) तृण=घास है जम्भ=खाना जिसका वह-तृणजम्भा पशु। (सोम) सोम ओषधि है जम्भ=खान-पान जिसका वह-सोमजम्भा ऋषि।

जब 'जम्भ' शब्द का दन्तविशेष (जाड़) अर्थ होता है तब ऐसे विग्रह किया जाता है-तृण के समान जम्भ=जाड़ है जिसका वह-तृणजम्भा। सोम ओषधि के समान जम्भ है जिसका वह-सोमजम्भा।

***सिद्धि-सुजम्भा।** सु+सु+जम्भ+सु। सु+जम्भ+अनिच्। सु+जम्भ्+अन्। सुजम्भन्+सु। सुजम्भान्+०। सुजम्भा।*

*यहां सु और जम्भ शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुजम्भ' शब्द से इस सूत्र से 'अनिच्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य 'कल्याणधर्मा' (५।४।१२४) के समान है। ऐसे ही-**हरितजम्भा, तृणजम्भा, सोमजम्भा।***

अनिच् (निपातनम्)-

(१४) दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे।१२६।

प०वि०-दक्षिणेर्मा १।१ लुब्ध-योगे ७।१।

स०-लुब्धः=व्याधः। लुब्धस्य योगः-लुब्धयोगः, तस्मिन्-लुब्धयोगे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ दक्षिणेर्मा समासान्तोऽनिच्, लुब्धयोगे।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'दक्षिणेर्मा' इत्यत्र समासान्तोऽनिच् प्रत्ययो निपात्यते, लुब्धयोगे गम्यमाने।

उदा०-दक्षिणमीर्मं यस्य सः-दक्षिणेर्मा मृगः। ईर्मम्=व्रणम्। यस्य दक्षिणमङ्गं व्याधेन व्रणितं स मृगो 'दक्षिणेर्मा' इति कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (दक्षिणेर्मा) 'दक्षिणेर्मा' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय निपातित है (लुब्धयोग) यदि वहां लुब्ध=शिकारी के योग अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-दक्षिण अङ्ग ईर्म=घायल है जिसका वह=दक्षिणेर्मा मृग। जिसका दक्षिण अंग शिकारी ने घायल कर दिया है वह मृग 'दक्षिणेर्मा' कहलाता है।

***सिद्धि-दक्षिणेर्मा।** दक्षिण+सु+ईर्म+सु। दक्षिण+ईर्म+अनिच्। दक्षिणेर्म्+अन्। दक्षिणेर्मन्+सु। दक्षिणेर्मान्+सु। दक्षिणेर्मान्+०। दक्षिणेर्मा।*

यहां दक्षिण और ईर्म शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'दक्षिणेर्म' शब्द से इस सूत्र से लुब्धयोग अर्थ में समासान्त अनिच् प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य ***'कल्याणधर्मा'*** *(५।४।१२४) के समान है।*

इच्–

(१५) इच् कर्मव्यतिहारे।१२७।

प०वि०–इच् १।१ कर्मव्यतिहारे ७।१।

स०–कर्म=क्रिया। व्यतिहार:=विनिमय:। कर्मणो व्यतिहार:-कर्मव्यतिहार:, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०–समासान्ता:, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वय:–कर्मव्यतिहारे बहुव्रीहौ प्रातिपदिकात् समासान्त इच्।

अर्थ:–कर्मव्यतिहारेऽर्थे बहुव्रीहौ समासे च वर्तमानात् प्रातिपदिकात् समासान्त इच् प्रत्ययो भवति। अत्र **'तत्र तेनेदमिति सरूपे'** (२।२।२७) इत्यनेन सूत्रेण विहितो बहुव्रीहिसमासो गृह्यते।

उदा०–केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्-केशाकेशि। कचाकचि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्-दण्डादण्डि। मुसलामुसलि।

आर्यभाषा: *अर्थ-(कर्मव्यतिहारे) क्रिया के विनिमय=बदलना अर्थ में और (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान प्रातिपदिक से (समासान्त:) समास का अवयव (इच्) इच् प्रत्यय होता है। यहां 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' (२।२।२७) इस सूत्र से विहित बहुव्रीहि समास का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-एक दूसरे के केशों में हाथ डालकर जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-केशाकेशि। कचा-कचाकचि। कच=केश। एक दूसरे पर दण्डों से प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-दण्डादण्डि। एक-दूसरे पर मुसलों से प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-मुसलामुसलि।

सिद्धि-केशाकेशि। *केश+सुप्+केश+सुप्। केश+केश+इच्। केशा+केश्+इ। केशाकेशि+सु। केशाकेशि+०। केशाकेशि।*

यहां सप्तम्यन्त दो सरूप केश पदों का ***'तत्र तेनेदमिति सरूपे'*** *(२।२।२७) से बहुव्रीहि समास है। यहां कर्मव्यतिहार अर्थ में विद्यमान 'केशकेश' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'इच्' प्रत्यय है।* ***'अन्येषामपि दृश्यते'*** *(६।३।१३७) से पूर्वपद को दीर्घ होता है।* ***'इच् कर्मव्यतिहारे'*** *का* ***'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च'*** *(२।१।१७) में पाठ होने से इच्-*

*प्रत्ययान्त शब्द की अव्ययीभाव संज्ञा होती है और उसकी 'अव्ययीभावश्च' (१।१।४१) से अव्ययसंज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-**कचाकचि, दण्डादण्डि, मुसलामुसलि।***

इच्–

(१६) द्विदण्ड्यादिभ्यश्च।१२८।

प०वि०–द्विदण्डि-आदिभ्यः ४।३ च अव्ययपदम्।

स०–द्विदण्डि आदिर्येषां ते द्विदण्ड्यादयः, तेभ्यः–द्विदण्ड्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, इच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च समासान्त इच्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे द्विदण्ड्यादिभ्यः=द्विदण्ड्यादिशब्दसिद्ध्यर्थं च समासान्त इच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०–द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तत्–द्विदण्डि प्रहरति। द्विमुसलि प्रहरति, इत्यादिकम्।

द्विदण्डि। द्विमुसलि। उभाञ्जलि। उभयाञ्जलि। उभाकर्णि। उभयाकर्णि। उभादन्ति। उभयादन्ति। उभाहस्ति। उभयाहस्ति। उभापाणि। उभयापाणि। उभाबाहु। उभयाबाहु। एकपदि। प्रोह्यपदि। आढ्यपदि। सपदि। निकुच्यकर्णि। संहतपुच्छि। उभाबाहु। उभयाबाहु इति निपातनाद् इच्प्रत्ययलोपः। प्रत्ययलक्षणेनाव्ययीभावसंज्ञा। इति द्विदण्ड्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (द्विदड्यादिभ्यः) द्विदण्डि आदि शब्दों के सिद्धि के लिये (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (इच्) इच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०–जिस प्रहार में दो दण्ड हैं वह-द्विदण्डि। जिस प्रहार में दो मुसल हैं वह-द्विमुसलि, इत्यादि।

सिद्धि-द्विदण्डि। *द्वि+औ+दण्ड+औ। द्वि+दण्ड+इच्। द्विदण्ड्+इ। द्विदण्डि+सु। द्विदण्डि+०। द्विदण्डि।*

*यहां द्वि और दण्ड शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विदण्ड' शब्द से इस **सूत्र** से समासान्त 'इच्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**द्विमुसलि।***

ज्ञु-आदेशः–

(१७) प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः।१२६।

प०वि०–प्रसम्भ्याम् ५।२ जानुनोः ६।२ ज्ञुः १।१।

स०–प्रश्च सम् च तौ प्रसमौ, ताभ्याम्–प्रसम्भ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ प्रसम्भ्यां जानुनोः समासान्तो ज्ञुः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे प्रसम्भ्यां परस्य जानु-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तो ज्ञुरादेशो भवति।

उदा०–**(प्रः)** प्रकृष्टे जानुनी यस्य सः–प्रज्ञुः। **(सम्)** समीचीने जानुनी यस्य सः–संज्ञुः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (प्रसम्भ्याम्) प्र और सम् शब्दों से परे (जानुनोः) जानु प्रातिपदिक से स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (ज्ञुः) ज्ञु आदेश होता है।*

उदा०–***(प्र)*** *प्रकृष्ट=उत्तम हैं जानु=घुटने जिसके वह–प्रज्ञु।* ***(सम्)*** *समीचीन=अच्छे हैं जानु जिसके वह–संज्ञु।*

सिद्धि–प्रज्ञुः। *प्र+औ+जानु+औ। प्र+जानु। प्र+ज्ञु। प्रज्ञु+सु। प्रज्ञुः।*

यहां प्र और जानु शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'प्रजानु' शब्द के 'जानु' के स्थान में इस सूत्र से समासान्त 'ज्ञु' आदेश है।

विशेषः *'जानुनोः' पद में षष्ठी-द्विवचन का निर्देश सन्देह की निवृत्ति के लिये किया है कि 'जानु' के स्थान में 'ज्ञु' आदेश होता है। 'जानुनः' पाठ पञ्चमी और षष्ठी-विभक्ति का सन्देह हो सकता है और 'ज्ञु' आदेश नहीं यह प्रत्यय है, यह भी सन्देह हो सकता है।*

ज्ञु-आदेशविकल्पः–

(१८) ऊर्ध्वाद् विभाषा।१३०।

प०वि०–ऊर्ध्वात् ५।१ विभाषा १।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, जानुनोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ ऊर्ध्वाज्जानुनोर्विभाषा समासान्तो ज्ञुः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ऊर्ध्व-शब्दात् परस्य जानु-शब्दस्य स्थाने विकल्पेन समासान्तो ज्ञुरादेशो भवति।

उदा०-ऊर्ध्वे जानुनी यस्य सः-ऊर्ध्वज्ञुः। ऊर्ध्वजानुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुवीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऊर्ध्वात्) ऊर्ध्व शब्द से परे (जानुनोः) जानु शब्द के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (ज्ञुः) ज्ञु आदेश होता है।*

उदा०-ऊर्ध्व=ऊंचे हैं जानु=घुटने जिसके वह-ऊर्ध्वज्ञु, ऊर्ध्वजानु।

*सिद्धि-(१) **ऊर्ध्वज्ञुः।** यहां ऊर्ध्व और जानु शब्द का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'ऊर्ध्वजानु' शब्द के जानु शब्द के स्थान में इस सूत्र से 'ज्ञु' आदेश है।*

*(२) **ऊर्ध्वजानुः।** यहां विकल्प पक्ष में 'ऊर्ध्वजानु' शब्द के जानु शब्द के स्थान में 'ज्ञु' आदेश नहीं है।*

अनङ्-आदेशः-

(१६) ऊधसोऽनङ्।१३१।

प०वि०-ऊधसः ६।१ अनङ् १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ ऊधसः समासान्तोऽनङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ऊधःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति।

उदा०-कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः। घटोध्नी गौः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऊधसः) ऊधस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

उदा०-कुण्ड के समान ऊधः=बांक है जिसका वह-कुण्डोध्नी गौ। घट=घड़े के समान ऊधः है जिसका वह-घटोध्नी गौ।

*सिद्धि-**कुण्डोध्नी।** कुण्ड+सु+ऊधस्+सु। कुण्ड+ऊधस्। कुण्डोध अनङ्। कुण्डोधन्+ङीष्। कुण्डोध्न्+ई। कुण्डोध्नी+सु। कुण्डोधी+०। कुण्डोध्नी।*

*यहां कुण्ड और ऊधस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कुण्डोधस्' के सकार के स्थान में इस सूत्र से अनङ् आदेश होता। आदेश के ङित् होने से वह **'ङिच्च'** (१।१।५३) से अन्त्य अल् के स्थान में किया जाता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९७) से*

परस्प एकादेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' (४।१।२५) से ङीष् प्रत्यय और 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-घटोध्नी।

अनङ्-आदेशः-

(२०) धनुषश्च।१३२।

प०वि०-धनुषः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ धनुषश्च समासान्तोऽनङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे धनुःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति।

उदा०-शार्ङ्गं धनुर्यस्य सः-शार्ङ्गधन्वा। गाण्डीवधन्वा। पुष्पधन्वा। अधिज्यधन्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (धनुषः) धनुष् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

उदा०-शार्ङ्ग=सींग का बना हुआ है धनुष् जिसका वह-शार्ङ्गधन्वा विष्णु। गाण्डीव=ग्रन्थिविशेषवाला धनुष् है जिसका वह-गाण्डीवधन्वा अर्जुन। पुष्प का है धनुष् जिसका वह-पुष्पधन्वा कामदेव। अधिज्य=ज्या (डोरी) जिसकी चढ़ी हुई है ऐसा धनुष् है वह-अधिज्यधन्वा।

सिद्धि-शार्ङ्गधन्वा। *शार्ङ्ग+सु+धनुष्+सु। शार्ङ्ग+धनुष्। शार्ङ्गधनु अनङ्। शार्ङ्गधन्वन्+सु। शार्ङ्गधन्वान्+सु। शार्ङ्गधन्वान्+०। शार्ङ्गधन्वा।*

यहां शार्ङ्ग और धनुष् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। शार्ङ्गधनुष् शब्द को इस सूत्र से पूर्ववत् अनङ् आदेश होता है। 'इको यणचि' (६।१।७६) से यण्-आदेश, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-गाण्डीवधन्वा, पुष्पधन्वा, अधिज्यधन्वा।

अनङ्-आदेशविकल्पः-

(२१) वा संज्ञायाम्।१३३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनङ्, धनुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ धनुषो वा समासान्तोऽनङ्, संज्ञायाम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे धनुःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने विकल्पेन समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-शतं धनुर्यस्य सः-शतधन्वा, शतधनुः। दृढं धनुर्यस्य सः-दृढधन्वा, दृढधनुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (धनुष्) धनुष् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (वा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-शत=सौ हैं धनुष् जिसके वह-शतधन्वा, शतधनु। दृढ़ है धनुष् जिसका वह-दृढधन्वा, दृढधनु।

*सिद्धि-(१) **शतधन्वा।** यहां शत और धनुष् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। शतधनुष् शब्द को इस सूत्र से संज्ञा विषय में अनङ् आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**दृढधन्वा।***

*(२) **शतधनुः।** यहां 'शतधनुष्' शब्द को इस सूत्र से विकल्प पक्ष में अनङ् आदेश नहीं है। ऐसे ही-**दृढधनुः।***

निङ्-आदेशः-

(२२) जायाया निङ्।१३४।

प०वि०-जायायाः ६।१ निङ् १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ जायायाः समासान्तो निङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे जाया-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो निङ् आदेशो भवति।

उदा०-युवतिर्जाया यस्य सः-युवजानिः। वृद्धजानिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (जायायाः) जाया शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (निङ्) निङ् आदेश होता है।*

उदा०-युवति है जाया=पत्नी जिसकी वह-युवजानि। वृद्धा है जाया जिसकी वह-वृद्धजानि।

*सिद्धि-**युवजानि।** युवति+सु+जाया+सु। युवति+जाया। युवति जाय् निङ्। युवन्+जा०नि। युवजानि+सु। युवजानिः।*

*यहां युवति और जाया शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'युवति जाया' शब्द को इस सूत्र से समासान्त निङ् आदेश होता है। **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६५) से 'जाय्' के यकार का लोप और 'स्त्रियाः पुंवत्०' (६।३।३४) से युवति शब्द को पुंवद्भाव (युवन्) होता है। ऐसे ही-**वृद्धजानिः।***

इकारादेशः-

(२३) गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः।१३५।

प०वि०-गन्धस्य ६।१ इत् १।१ उत्-पूति-सु-सुरभिभ्यः ५।३।

स०-उच्च पूतिश्च सुश्च सुरभिश्च ते-उत्पूतिसुसुरभयः, तेभ्यः-उत्पूतिसुसुरभिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उत्पूतिसुसुरभिभ्यो गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उत्पूतिसुसुरभिभ्यः परस्य गन्धशब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०-(उत्) उद्गतो गन्धो यस्य सः-उद्गन्धिः। **(पूतिः)** पूतिर्गन्धो यस्य सः-पूतिगन्धिः। **(सुः)** सुष्ठु गन्धो यस्य सः-सुगन्धिः। **(सुरभिः)** सुरभिर्गन्धो यस्य सः-सुरभिगन्धिः।

आर्यभाषाः अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उत्पूतिसुसुरभिभ्यः) उत्, पूति, सु, सुरभि शब्दों से परे (गन्धस्य) गन्ध शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।

*उदा०-**(उत्)** उद्गत=उड़ गया है गन्ध गुण जिसका वह-उद्गन्धि। **(पूति)** पूति=निन्दित है गन्ध गुण जिसका वह-पूतिगन्धि। **(सु)** सु=पूजित है गन्ध गुण जिसका वह सुगन्धि। **(सुरभि)** सुरभि=प्रिय है गन्ध गुण जिसका वह-सुरभिगन्धि।*

*सिद्धि-**उद्गन्धिः।** उत्+सु+गन्ध+सु। उत्+गन्ध। उद्गन्ध् इ। उद्गन्धि+सु। उद्गन्धिः।*

*यहां 'उद्गन्ध' के गन्ध शब्द को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-**पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः।***

इकारादेशः–

(२४) अल्पाख्यायाम्।१३६।

वि०–अल्पाख्यायाम् ७।१।

स०–अल्पस्य आख्या–अल्पाख्या, तस्याम्–अल्पाख्यायाम् (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, गन्धस्य, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावल्पाख्यायां गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासेऽल्पाख्यायां वर्तमानस्य गन्ध-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०–सूपोऽल्पो यस्मिँस्तत्–सूपगन्धि भोजनम्। घृतगन्धि भोजनम्। क्षीरगन्धि भोजनम्। गन्धः=अल्पमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अल्पाख्यायाम्) अल्प-अर्थ में विद्यमान (गन्धस्य) गन्ध शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०–अल्प=थोड़ी है सूप=दाल जिसमें वह-सूपगन्धि भोजन। अल्प है **घृत** जिसमें वह-घृतगन्धि भोजन। अल्प है क्षीर=दूर जिसमें वह-क्षीरगन्धि भोजन।*

सिद्धि-सूपगन्धि। *यहां सूप और गन्ध शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सूपगन्ध' के गन्ध शब्द को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-**घृतगन्धि, क्षीरगन्धि।***

इकारादेशः-

(२५) उपमानाच्च।१३७।

प०वि०–उपमानात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, गन्धस्य, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावुपमानाच्च गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे उपमानवाचिनः शब्दाच्च परस्य गन्ध-शब्दस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०–पद्मस्येव गन्धो यस्य सः–पद्मगन्धिः। उत्पलगन्धिः। करीषगन्धिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से (च) भी परे (गन्ध) गन्ध प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।*

उदा०-पद्म=कमल के समान गन्ध गुण है जिसका वह-पद्मगन्धि। उत्पल=नीलकमल के समान गन्ध गुण है जिसका वह-उत्पलगन्धि। करीष=शुष्क गोमय के समान गन्ध गुण है जिसका वह-करीषगन्धि।

*सिद्धि-**पद्मगन्धिः**। यहां उपमानवाची और गन्ध शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'पद्मगन्ध' के गन्ध शब्दों को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-**उत्पलगन्धिः, करीषगन्धिः**।*

लोपादेशः-

(२६) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः।१३८।

प०वि०-पादस्य ६।१ लोपः १।१ अहस्त्यादिभ्यः ५।३।

स०-हस्ती आदिर्येषां ते हस्त्यादयः, न हस्त्यादयः-अहस्त्यादयः, तेभ्यः-अहस्त्यादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, उपमानाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावहस्त्यादिकाद् उपमानात् पादस्य समासान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे हस्त्यादिवर्जिताद् उपमानवाचिनः शब्दात् परस्य पाद-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-व्याघ्रस्येव पादौ यस्य सः-व्याघ्रपात्, सिंहपात्।

हस्तिन्। कटोल। गण्डोल। गण्डोलक। महिला। दासी। गणिका। कुसूल। इति हस्त्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अहस्त्यादिभ्यः) हस्ती आदि शब्दों से भिन्न (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से परे (पादस्य) पाद प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

*उदा०-व्याघ्र=बाघ के समान हैं पाद=पांव जिसके वह-**व्याघ्रपात्**। सिंह=शेर के समान हैं पाद जिसके वह-सिंहपात्।*

*सिद्धि-**व्याघ्रपात्**। यहां उपमानवाची व्याघ्र और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'व्याघ्रपाद' के पाद शब्द के अन्त्य अकार को इस सूत्र से लोपादेश होता है। ऐसे ही-**सिंहपात्**।*

लोपादेशः–

(२७) कुम्भपदीषु च।१३६।

प०वि०–कुम्भपदीषु ७।३ च अव्ययपदम्।

अनु०–समासान्ताः बहुव्रीहौ, पादस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ कुम्भपदीषु च पादस्य समासान्तो लोपः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे कुम्भपदीप्रभृतिषु च वर्तमानस्य पादशब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०–कुम्भस्येव पादौ यस्याः सा–कुम्भपदी। शतं पादा यस्याः सा–शतपदी, इत्यादिकम्।

कुम्भपदी। शतपदी अष्टापदी। जालपदी। एकपदी। मालापदी। मुनिपदी। गोधापदी। गोपदी। कलशीपदी। घृतपदी। दासीपदी। निष्पदी। आर्द्रपदी। कुणपदी। कृष्णपदी। द्रोणपदी। द्रुपदी। शकृत्पदी। सूपपदी। पञ्चपदी। अर्वपदी। स्तनपदी। इति कुम्भपद्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (कुम्भपदीषु) कुम्भपदी आदि शब्दों में (च) भी विद्यमान (पादस्य) पाद प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

उदा०–कुम्भ=कलश के समान हैं पाद=पांव जिसके वह–कुम्भपदी। शत=सौ हैं पाद जिसके वह–शतपदी, इत्यादि।

*सिद्धि–**कुम्भपदी।** कुम्भ+सु+पाद+सु। कुम्भ+पाद। कुम्भ+पाद्+ङीप्। कुम्भ+पत्+ई। कुम्भपदी+सु। कुम्भपदी।*

*यहां कुम्भ और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। कुम्भपाद के पाद शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'पादोऽन्यतरस्याम्'** (४।१।८) से ङीप् प्रत्यय और **'पादः पत्'** (६।४।१३०) से पाद को पत् आदेश होता है।*

कुम्भपदी आदि शब्दों का समुदाय रूप में पाठ का प्रयोजन यह है कि स्त्रीलिङ्ग में और ङीप् प्रत्यय विषय में ही 'कुम्भपदी' आदि शब्दों में पाद के अन्त्य अकार का लोप होता है; अन्यत्र नहीं।

लोपादेशः–

(२८) संख्यासुपूर्वस्य।१४०।

प०वि०–संख्या-सुपूर्वस्य ६।१।

स०-संख्या च सुश्च तौ संख्यासू, संख्यासू पूर्वौ यस्य स संख्यासुपूर्वः, तस्य-संख्यासुपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, पादस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च पाद-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-**(संख्या)** द्वौ पादौ यस्य सः-द्विपात्। त्रिपात्। **(सुः)** शोभनौ पादौ यस्य सः-सुपात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यासुपूर्वस्य) संख्यावाची और सु शब्द जिसके पूर्व में हैं उस (पादस्य) पाद-अन्तवाले प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

उदा०-(संख्या) दो हैं पाद=पांव जिसके वह-द्विपात्। तीन हैं पाद जिसके वह-त्रिपात्। (सु) सु=सुन्दर हैं पाद जिसके वह-सुपात्।

सिद्धि-द्विपात्।** यहां द्वि और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विपाद' के पाद शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है और वह 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) से पाद शब्द के अन्त्य अकार को होता है। ऐसे ही-**त्रिपात्, सुपात्।

दतृ-आदेशः-

(२६) वयसि दन्तस्य दतृ।१४१।

प०वि०-वयसि ७।१ दन्तस्य ६।१ दतृ १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, संख्यासुपूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ संख्यासुपूर्वस्य दन्तस्य समासान्तो दतृ, वयसि।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च दन्त-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति, वयसि गम्यमाने।

उदा०-**(संख्या)** द्वौ दन्तौ यस्य सः-द्विदन्। त्रिदन्। चतुर्दन्। **(सुः)** शोभना दन्ता यस्य समस्ता जाताः सः-सुदन् कुमारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यासुपूर्वस्य) संख्यावाची और सु शब्द जिसके पूर्व में हैं उस (दन्तस्य) दन्त-अन्तवाले प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

उदा०-(संख्या) दो हैं दन्त जिसके वह-द्विदन्। तीन हैं दन्त जिसके वह-त्रिदन्। चार है दन्त जिसके वह-चतुर्दन्। (सु) सु=सुन्दर निकले हैं समस्त दन्त जिसके वह-सुदन् कुमार।

सिद्धि-द्विदन्। *द्वि+औ+दन्त+औ। द्वि+दन्त। द्वि+दतृ। द्विदतृ+सु। द्विदत्+सु। द्विद्नुम्त्+सु। द्विदन्त्+सु। द्विदन्त्+०। द्विदन्।*

*यहां संख्यावाची द्वि और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश है। दतृ के उगित् (ऋ-इत्) होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से नुम् आगम होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिदन्, चतुर्दन्, सुदन्।***

दतृ-आदेशः–

(३०) छन्दसि च।१४२।

प०वि०-छन्दसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि च बहुव्रीहौ दन्तस्य समासान्तो दतृ।

अर्थः-छन्दसि विषये च बहुव्रीहौ समासे दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति।

उदा०-पत्रदतमालभेत। उभयादत आलभेत (ऋ० १०।९०।१०)। **तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः** (यजु० ३१।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (च) भी (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

*उदा०-पत्रदतमालभेत। **उभयादत आलभेत** (ऋ० १०।९०।१०)। **तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः** (यजु० ३१।८)। अश्व और जो उभयादत्=दोनों और दन्तवाले पशु हैं वे उस परमपुरुष से उत्पन्न हुये हैं।*

सिद्धि-पत्रदत्। *यहां पत्र और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। पत्रदन्त के दन्त शब्द को इस सूत्र से छन्दविषय में दतृ आदेश है। ऐसे ही-**उभयादत्।***

दत्-आदेशः–

(३१) स्त्रियां संज्ञायाम्।१४३।

प०वि०–स्त्रियाम् ७।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ स्त्रियां दन्तस्य समासान्तो दतृ, संज्ञायाम्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे स्त्रियां च विषये दन्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–अय इव दन्ता यस्याः सा–अयोदती। फालदती।

आर्यभाषाः *अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०–अयः=सुवर्ण के समान सुन्दर हैं दन्त जिसके वह–अयोदती। फाल=हळ की फाळी के समान लम्बे हैं दन्त जिसके वह–फालदती।

*सिद्धि–**अयोदती**। अयस्+सु+दन्त+जस्। अयस्+दन्त। अयरु+दन्त। अयर्+दन्त। अय उ+दन्त। अयोदन्त। अयोदतृ। अयोदत्+ङीप्। अयोदत्+ई। अयोदती+सु। अयोदती।*

*यहां अयस् दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अयस्' के सकार का **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से रुत्व, **'हशि च'** (६।१।११२) से रेफ को उत्व और **'आद्गुणः'** (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश होता है। अयोदन्त के दन्त शब्द को इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में तथा संज्ञा विषय में दतृ आदेश होता है। दतृ के उगित् (ऋ-इत्) होने से **'उगितश्च'** (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही–**फालदती**।*

दतृ-आदेशविकल्पः–

(३२) विभाषा श्यावारोकाभ्याम्।१४४।

प०वि०–विभाषा १।१ श्याव-अरोकाभ्याम् ५।२।

स०–श्यावश्च अरोकश्च तौ श्यावारोकौ, ताभ्याम्–श्यावारोकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ श्यावारोकाभ्यां दन्तस्य विभाषा समासान्तो दतृ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे श्यावरोकाभ्यां शब्दाभ्यां परस्य दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य विकल्पेन समासान्तो दतृ-आदेशो भवति।

उदा०- (**श्यावः**) श्यावा दन्ता यस्य सः-श्यावदन्, श्यावदन्तः। (**अरोकः**) अरोका दन्ता यस्य सः-अरोकदन्, अरोकदन्तः।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (श्यावारोकाभ्याम्) श्याव और अरोक शब्दों से परे (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।

उदा०-(श्याव) श्याव=काले हैं दन्त जिसके वह-श्यावदन्, श्यावदन्त। (अरोक) अरोक=दीप्ति से रहित हैं दन्त जिसके वह-अरोकदन्, अरोकदन्त।

*सिद्धि-(१) **श्यावदन्।** यहां श्याव और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'श्यावदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश है। शेष कार्य **'द्विदन्'** (५।४।१४१) के समान है। ऐसे ही-**अरोकदन्।***

*(२) **श्यावदन्तः।** यहां श्याव और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में 'श्यावदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश नहीं है।*

दतृ-आदेशविकल्पः-

(३३) अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च।१४५।

प०वि०-अग्रान्त-शुद्ध-शुभ्र-वृष-वराहेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-अग्रमन्ते यस्य सः-अग्रान्तः, अग्रान्तश्च शुद्धश्च शुभ्रश्च वृषश्च वराहश्च ते अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहाः, तेभ्यः-अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यो दन्तस्य विभाषा समासान्तो दतृ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासेऽग्रान्तात् शुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च शब्देभ्यः परस्य दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य विकल्पेन दतृ-आदेशो भवति।

उदा०- (**अग्रान्तम्**) कुड्मलस्याग्रम्-कुड्मलाग्रम्, कुड्मलाग्रमिव दन्ता यस्य सः-कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः। (**शुद्धः**) शुद्धा दन्ता यस्य

सः-शुद्धदन्, शुद्धदन्तः। **(शुभ्रः)** शुभ्रा दन्ता यस्य सः-शुभ्रदन्, शुभ्रदन्तः। **(विषः)** वृष इव दन्ता यस्य सः-वृषदन्, वृषदन्तः। **(वराहः)** वराह इव दन्ता यस्य सः-वराहदन्, वराहदन्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यः) अग्र शब्द जिसके अन्त में है उस तथा शुद्ध, शुभ्र, वृष, वराह शब्दों से परे (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

*उदा०-**(अग्रान्त)** कुड्मल=खिली हुई फूल की कली के अग्र=अगले भाग के समान हैं दन्त जिसके वह-कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्त। **(शुद्ध)** शुद्ध हैं दन्त जिसके वह-शुद्धदन्, शुद्धदन्त। **(शुभ्र)** शुभ=सफेद हैं दन्त जिसके वह-शुभ्रदन्, शुभ्रदन्त। **(वृष)** वृष=बैल/चूहा के समान हैं दन्त जिसके वह-वृषदन्, वृषदन्त। **(वराह)** वराह=सुअर के समान हैं दन्त जिसके वह-वराहदन्, वराहदन्त।*

*सिद्धि-(१) **कुड्मलाग्रदन्।** यहां अग्र शब्द जिसके अन्त में है उस कुड्मालाग्र और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कुड्मलाग्रदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से दतृ आदेश है। शेष कार्य 'द्विदन्' (५।४।१४१) के समान है। ऐसे ही-**शुद्धदन्** आदि।*

*(२) **कुड्मलाग्रदन्तः।** यहां 'कुड्मलाग्रदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से विकल्प में 'दतृ' आदेश नहीं है। ऐसे ही-**शुद्धदन्तः** आदि।*

लोपादेशः–

(३४) ककुदस्यावस्थायां लोपः।१४६।

प०वि०-ककुदस्य ६।१ अवस्थायाम् ७।१ लोपः।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ ककुदस्य समासान्तो लोपोऽवस्थायाम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ककुद-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति, अवस्थायां गम्यमानायाम्।

उदा०-असंजातं ककुदं यस्य सः-असंजातककुत्। बाल इत्यर्थः। पूर्णं ककदं यस्य सः-पूर्णककुत्। मध्यमवया इत्यर्थः। उन्नतं ककुदं यस्य सः-उन्नतककुत्। वृद्धवया इत्यर्थः। स्थूलं ककुदं यस्य सः-स्थूलककुत्।

बलवानित्यर्थः। यष्टिरिव ककुदं यस्य सः-यष्टिककुत्। नातिस्थूलो नातिकृश इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ककुदस्य) ककुद शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक को (लोपः) लोप आदेश होता है (अवस्थायाम्) यदि वहां अवस्था=आयु आदि वस्तु-धर्मों की प्रतीति हो।*

उदा०-जिसके ककुद (बैल की थूही) असंजात=उत्पन्न नहीं हुआ है वह-असंजातककुत् बछड़ा। पूर्ण=पूरा है ककुद जिसका वह-पूर्णककुत्। मध्यम अवस्था का बैल। उन्नत है ककुद जिसका वह-उन्नतककुत्। वृद्ध अवस्था का बैल। स्थूल=मोटा है ककुद जिसका वह-स्थूलककुत्। बलवान् बैल। यष्टि=लाठी के समान दृढ है ककुद जिसका वह -यष्टिककुत्। न अधिक स्थूल और न अधिक कृश=पतला बैल।

***सिद्धि-असंजातककुत्।** यहां असंजात और ककुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'असंजातककुद' शब्द को इस सूत्र से लोपादेश है और वह '**अलोऽन्त्यस्य**' (१।१।५२) से 'ककुद' के अन्त्य अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पूर्णककुत्** आदि।*

लोपादेशः (निपातनम्)—

(३५) त्रिककुत् पर्वते।१४७।

प०वि०-त्रिककुत् १।१ पर्वते ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ त्रिककुत् समासान्तो लोपः, पर्वते।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'त्रिकुकुत्' इत्यत्र समासान्तो लोपादेशो निपात्यते, पर्वतेऽभिधेये।

उदा०-त्रीणि ककुदानि यस्य सः-त्रिककुत् पर्वतः। ककुदाकारं पर्वतस्य शृङ्गं ककुदमिति कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (त्रिककुत्) त्रिककुत् इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश निपातित है (पर्वते) यदि वहां पर्वत अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-तीन है ककुद जिसके वह-त्रिककुत् पर्वत। ककुद (बैल की थूही) के आकृतिवाले पर्वत के शिखर ककुद कहलाते हैं।

***सिद्धि-त्रिककुत्।** यहां त्रि और ककुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। त्रिककुद के ककुद शब्द को इस सूत्र से लोपादेश निपातित है और वह '**अलोऽन्त्यस्य**' (१।१।५२) से ककुद के अन्त्य अकार का लोप होता है।*

__विशेषः__ सुलेमान के समानान्तर श्रीनगर की पर्वत-शृंखला है जो झोब (वैदिक नाम-यहवती) नदी के पूर्व है एवं दोनों के पीछे टोबा और काकड़ की शृंखलायें हैं। पर्वतों की यह तिहरी दीवार ठीक ही 'त्रिककुत्' कहलाती थी (पं० जयचन्द्र विद्यालंकार-कृत भारतभूमि पृ० १२९)।

लोपादेशः–

(३६) उद्विभ्यां काकुदस्य।१४८।

प०वि०-उद्विभ्याम् ५।२ काकुदस्य ६।१।

स०-उच्च विश्च तौ-उद्वी, ताभ्याम्-उद्विभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावुद्विभ्यां काकुदस्य समासान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उद्विभ्यां परस्य काकुदशब्दस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-(उत्) उद्गतं काकुदं यस्य सः-उत्काकुत्। (**वि**) विगतं काकुदं यस्य सः-विकाकुत्। काकुदम्=तालु।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उद्विभ्याम्) उत् और वि शब्दों से परे (काकुदस्य) काकुद शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोपादेश होता है।

उदा०-(उत्) उत्=उठा हुआ है काकुद=तालु जिसका वह-उत्काकुत्। (वि) वि=दबा हुआ काकुद=तालु जिसका वह-विकाकुत्।

*सिद्धि-उत्काकुत्। यहां उत् और काकुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'उत्काकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश निपातित है और वह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से 'काकुद' शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से 'द्' को चर् 'त्' होता है। समासान्त की बाधा से **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) से प्राप्त 'काकुद' के आदि ककार को लोपादेश नहीं होता है।*

लोपादेश-विकल्पः–

(३७) पूर्णाद् विभाषा।१४९।

प०वि०-पूर्णात् ५।१ विभाषा १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोपः, काकुदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ पूर्णात् काकुदस्य विभाषा समासान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे पूर्णशब्दात् परस्य काकुदशब्दस्य विकल्पेन समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-पूर्णं काकुदं यस्य सः-पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहि समास में (पूर्णात्) पूर्ण शब्द से परे (काकदस्य) काकुद शब्द को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप-आदेश होता है।*

उदा०-पूर्ण=पूरा है काकात्=तालु जिसका वह-पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुद।

*सिद्धि-(१) **पूर्णकाकुत्**। यहां पूर्ण और काकुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'पूर्णकाकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है और वह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से काकुद के अन्त्य अकार का लोप होता है।*

*(२) **पूर्णकाकुदः**। यहां 'पूर्णकाकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से विकल्प पक्ष में लोपादेश नहीं है।*

निपातनम्—

(३८) सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः।१५०।

प०वि०-सुहृद्-दुर्हृदौ १।२ मित्र-अमित्रयोः ७।२।

स०-सुहृच्च दुर्हृच्च तौ-सुहृद्दुर्हृदौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मित्रं च अमित्रं च ते-मित्रामित्रे, तयोः-मित्रामित्रयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः समासान्तौ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुहृद्दुर्हृदौ शब्दौ यथासंख्यं मित्रामित्रयोरर्थयोः समासान्तौ निपात्यते।

सु-शब्दात् परस्य हृदयशब्दस्य समासान्तो हृदादेशः, दुर्-शब्दाच्च परस्य हृदयशब्दस्य समासान्तो हृदादेशो निपात्यते।

उदा०-(सुहृत्) शोभनं हृदयं यस्य सः-सुहृद् मित्रम्। **(दुर्हृत्)** दुष्टं हृदयं यस्य सः-दुर्हृद् अमित्रम् (शत्रुः)।

आर्यभाषाः अर्थ- *(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुहृद्दुर्हृदौ) सुहृद् और दुर्हृद् शब्द (मित्रामित्रयोः) यथासंख्य मित्र और अमित्र अर्थ में (समासान्तौ) समास के अवयव रूप में निपातित हैं।*

यहां सु-शब्द से परे हृदय शब्द को समासान्त हृद् आदेश और दुर् शब्द से परे हृदय शब्द को समासान्त हृद् आदेश निपातित है।

उदा०-सु=अच्छा है हृदय जिसका वह-सुहृद् मित्र। दुर्=खराब है हृदय जिसका वह-दुर्हृद् अमित्र (शत्रु)।

सिद्धि-सुहृद्। *यहां सु और हृदय शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुहृदय' के हृदय शब्द को इस सूत्र से मित्र अर्थ में समानान्त हृद्-आदेश निपातित है। ऐसे ही-दुर्हृद्।*

कप्-

(३६) उरःप्रभृतिभ्यः कप्।१५१।

प०वि०-उरःप्रभृतिभ्यः ५।३ कप् १।१।

स०-उरःप्रभृतिर्येषां ते-उरःप्रभृतयः, तेभ्यः- उरःप्रभृतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उरःप्रभृतिभ्यः समासान्तः कप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उरःप्रभृत्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-व्यूढमुरो यस्य सः-व्यूढोरस्कः। प्रियं सर्पिर्यस्य सः-प्रियसर्पिष्कः। अवमुक्ते उपानहौ येन सः-अवमुक्तोपानत्कः, इत्यादिकम्।

उरस्। सर्पिस्। उपानह्। पुमान्। अनड्वान्। नौः। पयः। लक्ष्मीः। दधि। मधु। शालिः। अर्थान्नञः। अनर्थकः। इत्युरःप्रभृतयः।।

आर्यभाषाः अर्थ- *(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उरःप्रभृतिभ्यः) उरस् आदि शब्द जिसके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-व्यूढ=फैला हुआ (चोड़ा) है उरस् (छाती) जिसका वह-व्यूढोरस्क। प्रिय है सर्पिस् (घृत) जिसका वह-प्रियसर्पिष्क। अवमुक्त=छोड़ दिया है उपानत्=जूता जिसने वह-अवमुक्तोपानत्क इत्यादि।

सिद्धि-(१) व्यूढोरस्कः । व्यूढ+सु+उरस्+सु । व्यूढ+उरस्+कप् । व्यूढोरस्+क । व्यूढोरस्क+सु । व्यूढोरस्कः ।

यहां व्यूढ और उरस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'व्यूढोरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है।

(२) प्रियसर्पिष्कः । यहां 'इणः षः' (८।३।३९) से 'सर्पिः' के विसर्जनीय को षकार आदेश होता है।

(३) अवमुक्तोपानत्कः । यहां 'उपानह्' शब्द के हकार को 'नहो धः' (८।२।३४) से धकार, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से धकार को जश् दकार और 'खरि च' (८।४।५५) से दकार को चर् तकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *उरःप्रभृति में पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीः ये शब्द विभक्त्यन्त पठित हैं, प्रातिपदिक नहीं। इसका यह प्रयोजन है कि इनका एक वचनान्त में ही ग्रहण किया जाता है, द्विवचनान्त और बहुवचनान्त में नहीं। अतः इनसे* ***'शेषाद् विभाषा'*** *(५।४।१५४) से विकल्प से समासान्त कप् प्रत्यय होता है जैसे-* ***द्विपुंस्कः, द्विपुमान्। बहुपुमान्, बहुपुंस्कः*** *इत्यादि।*

कप्—

(४०) इनः स्त्रियाम्।१५२।

प०वि०-इनः ५।१ स्त्रियाम् ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्त्रियाम् इनः समासान्तः कप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे स्त्रियां च विषये इन्नन्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बहवो दण्डिनो यस्यां सा-बहुदण्डिका शाला। बहुच्छत्रिका शाला। बहुस्वामिका नगरी। बहुवाग्मिका सभा।

आर्यभाषाः अर्थ- *(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (इनः) इन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बहु=बहुत हैं दण्डी जन जिसमें वह-बहुदण्डिका शाला। बहु=बहुत हैं छत्री=छत्रधारी जन जिसमें वह-बहुच्छत्रिका शाला। बहु=बहुत हैं स्वामी जिसमें वह-बहुस्वामिका नगरी। बहुत हैं वाग्मी=श्रेष्ठ वक्ता जिसमें वह-बहुवाग्मिका सभा।

*सिद्धि-**बहुदण्डिका**। बहु+जस्+दण्डिन्+जस्। बहु+दण्डिन्+कप्। बहुदण्डि+क। बहुदण्डिक+टाप्। बहुदण्डिका+सु। बहुदण्डिका।*

*यहां बहु और दण्डिन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इन्नन्त 'बहुदण्डिन्' शब्द से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग विषय में समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (४।१।१७) से बहुदण्डिन् की पद संज्ञा होकर '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**बहुच्छत्रिका, बहुस्वामिका, बहुवाग्मिका।***

कप्-

(४१) नद्यृतश्च।१५३।

प०वि०-नदी-ऋत: ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-नदी च ऋच्च एतयो: समाहारो नद्यृत्, तस्मात्-नद्यृत: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-समासान्ता:, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-बहुव्रीहौ नद्यृतश्च समासान्त: कप्।

अर्थ:-बहुव्रीहौ समासे नद्यन्ताद् ऋकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्त: कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(नदीसंज्ञकम्)** बहव: कुमार्यो यस्मिन् स:-बहुकुमारीको देश:। बहुब्रह्मबन्धूको देश:। **(ऋकारान्तम्)** बहव: कर्तारो यस्मिन् स:-बहुकर्तृको देश:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नद्यृत:) नदीसंज्ञक और ऋकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्त:) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(नदीसंज्ञक)** बहु=बहुत हैं कुमारियां जिसमें वह-बहुकुमारीक देश। बहु=बहुत हैं कर्ता (कर्तृ) स्वतन्त्र जिसमें वह-बहुकर्तृक देश।*

*सिद्धि-**बहुकुमारीक:**। बहु+जस्+कुमारी+जस्। बहुकुमारी+कप्। बहुकुमारीक+सु। बहुकुमारीक:।*

*यहां बहु और कुमारी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। कुमारी शब्द की '**यूस्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से नदी संज्ञा है। 'बहुकुमारी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय है। 'कप्' प्रत्यय परे होने पर '**केऽण:**' (७।४।१३) से प्राप्त ह्रस्वत्व का '**न कपि**' (७।४।१४) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**ब्रह्मबन्धूक:, बहुकर्तृक:।***

कप्-विकल्पः–

(४२) शेषाद् विभाषा।१५४।

प०वि०–शेषात् ५।१ विभाषा १।१। उक्तादन्यः शेषः-तस्मात्-शेषात्।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ शेषात् प्रातिपदिकाद् विभाषा समासान्तः कप्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे शेषात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–बह्व्यः खट्वा यस्मिन् सः-बहुखट्वाकः, बहुखट्वकः, बहुखट्वो देशः। बह्व्यो माला यस्मिन् देशे सः-बहुमालाकः, बहुमालकः, बहुमालो देशः। बह्व्यो वीणा यस्मिन् देशे सः-बहुवीणाकः, बहुवीणकः, बहुवीणो देशः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (शेषात्) शेष=इस प्रकरण में प्रोक्त से अन्य प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बहु=बहुत हैं खट्वा=खाट जिसमें वह-बहुखट्वाक, बहुखट्वक, बहुखट्व देश। बहु=बहुत हैं मालायें जिसमें वह-बहुमालाक, बहुमालक, बहुमाल देश। बहु=बहुत हैं वीणायें जिसमें वह-बहुवीणाक, बहुवीणक, अबहुवीण देश (स्थान)।

सिद्धि-(१) *बहुखट्वाकः। बह्वी+जस्+खट्वा+जस्। बह्वी+खट्वा+कप्। बहुखट्वा+क। बहुखट्वाक+सु। बहुखट्वाकः।*

*यहां बह्वी और खट्वा शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'बहुखट्वा' शेष प्रातिपदिक से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**बहुमालाकः, बहुवीणाकः।***

*(२) **बहुखट्वकः।** यहां **'आपोऽन्यतरस्याम्'** (७।४।१५) से अंग को विकल्प पक्ष में ह्रस्व है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**बहुमालकः। बहुवीणकः।***

*(३) **बहुखट्वः।** यहां **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से उपसर्जन-संज्ञक 'खट्वा' शब्द को ह्रस्व होता है। यहां विकल्प पक्ष में प्राप्त 'कप्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-**बहुमालः, बहुवीणः।***

कप्-प्रतिषेधः–

(४३) न संज्ञायाम्।१५५।

प०वि०–न अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ संज्ञायां प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् न।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०–विश्वे देवा यस्य सः–विश्वदेवः। विश्वानि यशांसि यस्य सः–विश्वयशाः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में विद्यमान प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०–विश्व=सब हैं देव=विद्वान् जिसके वह–विश्वदेव (ईश्वर)। विश्व=सब हैं यश जिसके वह–विश्वयशा (इन्द्र)।

सिद्धि–विश्वदेवः। *यहां विश्व और देव शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। यहां संज्ञाविषय में इस सूत्र से 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। ऐसे ही–**विश्वयशाः।***

कप्-प्रतिषेधः–

(४४) ईयसश्च।१५६।

प०वि०–ईयसः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ ईयसश्च समासान्तः कप् न।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे ईयसन्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०–बहवः श्रेयांसो यस्मिन् सः–बहुश्रेयान् ग्रामः। बहुश्रेयसी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ईयसः) ईयस् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-बहु=बहुत है श्रेयान्=प्रशस्य जन जिसमें वह-बहुश्रेयान् ग्राम। बहुश्रेयसी नगरी।

सिद्धि-*(१) **बहुश्रेयान्।** यहां बहु और श्रेयस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। प्रशस्य शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से ईयसुन् प्रत्यय और '**प्रशस्यस्य श्र:**' (५।३।६०) से 'प्रशस्य' को 'श्र' आदेश होता है। ईयसन्त 'बहुश्रेयस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय का प्रतिषेध है। '**शेषाद् विभाषा**' (५।४।१५४) से कप् प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **बहुश्रेयसी।** यहां '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से प्राप्त ह्रस्वत्व का वा०-'**ईयसो बहुव्रीहेः प्रतिषेधो वक्तव्यः**' (१।२।४८) से ह्रस्वत्व का प्रतिषेध होता है।*

कप्-प्रतिषेधः-

(४५) वन्दिते भ्रातुः।१५७।

प०वि०-वन्दिते ७।१ भ्रातुः ५।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ वन्दिते च भ्रातुः समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे वन्दिते चार्थे वर्तमानाद् भ्रातृ-शब्दात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति। वन्दितः=स्तुतः, पूजित इत्यर्थः।

उदा०-शोभनो भ्राता यस्य सः-सुभ्राता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (वन्दिते) पूजित अर्थ में विद्यमान (भ्रातुः) भ्रातृ शब्द से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-सु=पूजित है भ्राता जिसका वह-सुभ्राता।

***सिद्धि-सुभ्राता।** यहां सु और भ्राता शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुभ्रातृ' शब्द से इस सूत्र से वन्दित=पूजित अर्थ में समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है।*

कप्-प्रतिषेधः-

(४६) ऋतश्छन्दसि।१५८।

प०वि०-ऋतः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुव्रीहौ ऋतः समासान्तः कप् न।

अर्थः-छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे ऋकारान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-हता माता यस्य सः- हतमाता (शौ०सं० २।३२।४)। हतपिता। हतस्वसा (शौ०सं० २।३२।४)। सुहोता (ऋ० ७।६७।३)।

आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(छन्दसि) वेदविषय में तथा (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।

उदा०-हता=मर गई है माता जिसकी वह-हतमाता (शौ०सं० २।३२।४)। हत=मर गया है पिता जिसका वह-हतपिता। हता=मर गई है स्वसा=बहिन जिसकी वह-हतस्वसा (शौ०सं० २।३२।४)। सु=पूजित है होता=ऋत्विक् जिसका वह-सुहोता (ऋ० ७।६७।३)।

*सिद्धि-**हतमाता**। यहां हता और माता शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। ऋकारान्त 'हतमातृ' शब्द से इस सूत्र से छन्द विषय में समासान्त 'कप्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-हतपिता, हतस्वसा, सुहोता।*

कप्-प्रतिषेधः-

(४७) नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे।१५६।

प०वि०-नाडी-तन्त्र्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्वाङ्गे ७।१।

स०-नाडी च तन्त्री च ते नाडीतन्त्र्यौ, तयोः-नाडीतन्त्र्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्वस्य अङ्गम्-स्वाङ्गम्, तस्मिन्-स्वाङ्गे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्वाङ्गे नाडीतन्त्रीभ्यां समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे स्वाङ्गेऽर्थे वर्तमानाद् नाड्यन्तात् तन्त्र्यन्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-**(नाडी)** बह्व्यो नाड्यो यस्य सः-बहुनाडिः कायः। **(तन्त्री)** बह्व्यस्तन्त्र्यो यस्य सः-बहुतन्त्रीग्रीवा। तन्त्री=धमनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नाडीतन्त्र्योः) नाडी और तन्त्री शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नाडी) बह्वी=बहुत है नाडियां जिसमें वह-बहुनाडि काय (शरीर)। बह्वी=बहुत हैं तन्त्रियां=धमनियां जिसमें वह-बहुतन्त्री ग्रीवा (गर्दन)।

*सिद्धि-(१) बहुनाडिः। यहां बहु और नाडी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। स्वाङ्गवाची 'बहुनाडी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। '**नद्यृतश्च**' (५।४।१५३) से कप् प्राप्त था। '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से नाडी शब्द को ह्रस्व होता है।*

*(२) बहुतन्त्रीः। यहां 'बहुतन्त्री' शब्द में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (१।२।४८) से प्राप्त ह्रस्वत्व का वा०-'**कृतः स्त्रियाः प्रतिषेधो वक्तव्यः**' (१।२।४८) से प्रतिषेध होता है।*

कप्-प्रतिषेधः—

(४८) निष्प्रवाणिश्च।१६०।

प०वि०-निष्प्रवाणिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ निष्प्रवाणिश्च समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'निष्प्रवाणिः' इत्यत्र च समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

प्रोयते यस्यां सा-प्रवाणी। प्रवयन्ति यया सा वा-प्रवाणी। '**करणाधिकरणयोश्च**' (३।३।११७) इत्यनेन करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः। तन्तुवायस्य शलाका प्रवाणीति कथ्यते।

उदा०-निर्गता प्रवाणी यस्य सः-निष्प्रवाणिः पटः। निष्प्रवाणी कम्बलः। अपनीतशलाकः समाप्तवानः प्रत्यग्रो नवकः पटः 'प्रवाणिः' इत्युच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (निष्प्रवाणिः) 'निष्प्रवाणि' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-निर्=निकल गई है प्रवाणी=तन्तुवाय की नाळ जिसकी वह-निष्प्रवाणि पट (वस्त्र)। निष्प्रवाणि कम्बल। जिसकी बुनाई समाप्त हो चुकी है वह नया-ताजा कपड़ा आदि 'निष्प्रवाणि' कहाता है।

सिद्धि-निष्प्रवाणिः। *निस्+सु+प्रवाणी+सु। निस्+प्रवाणी। निष्प्रवाणि+सु। निष्प्रवाणिः।*

*यहां निस् और प्रवाणी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'निष्प्रवाणी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। '**नद्यृतश्च**' (५।४।१५३) से 'कप्' प्रत्यय प्राप्त था। '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से 'प्रवाणी' शब्द को ह्रस्व होता है।*

इति समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्।

प्रत्ययाधिकारो ङ्याप्प्रातिपदिकाधिकारस्तद्धितार्थधिकारश्च समाप्तः।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चायं पञ्चमोऽध्यायः।।

।। इति चतुर्थो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

चतुर्थभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
४५१	अग्राख्यायामुरसः	५।४।९३
४९५	अग्रान्तशुद्धशुभ्र०	५।४।१४५
४७०	अङ्गुलेर्दारुणि	५।४।११४
३५८	अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्	५।३।१०६
४३४	अचतुरविचतुरसुचतु०	५।४।७७
४३३	अच्प्रत्यन्ववपूर्वाद्०	५।४।७५
३१६	अजादी गुणवचनादेव	५।३।५८
७	अजाविभ्यां थ्यन्	५।१।८
३३७	अजिनान्तस्योत्तरप०	५।३।८२
३३०	अज्ञाते	५।३।७३
२८७	अञ्चेर्लुक्	५।३।३०
४७४	अञ्नासिकायाः०	५।४।११६
२२५	अण् च	५।२।१०३
३८३	अणिनुणः	५।४।१५
२३७	अत इनिठनौ	५।२।११५
४०४	अतिग्रहाव्यथन०	५।४।४६
३९१	अतिथेर्ञ्यः	५।४।२६
३१२	अतिशायने तमबिष्ठनौ	५।३।५५
४५४	अतेः शुनः	५।४।९६
१४६	अद्यश्वीनावष्टब्धे	५।२।१३
१९८	अधिकम्	५।२।७३
३०३	अधिकरणविचाले च	५।३।४३
२७३	अधुना	५।३।१७
२५	अध्यर्धपूर्वाद्विगोर्लुग०	५।१।२८
१८७	अध्यायानुवाकयोर्लुक्	५।२।६०
१४८	अध्वनो यत्खौ	५।२।१६
३७३	अनत्यन्तगतौ क्तात्	५।४।४
२७६	अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्	५।३।२१
३८९	अनन्तावसथेतिह०	५।४।२३
४६५	अनश्च	५।४।१०८
४५९	अनसन्तान्नपुंसका०	५।४।१०३
३३२	अनुकम्पायाम्	५।३।७६
१९९	अनुकाभिकाभीकः०	५।२।७४
४४१	अनुगवमायामे	५।४।८३
३८२	अनुगादिनष्ठक्	५।४।१३
१४८	अनुग्वलंगामी	५।२।१५
१४१	अनुपदसर्वान्नायानयं०	५।२।९
२१२	अनुपद्यन्वेष्टा	५।२।९
१०७	अनुप्रवचनादिभ्यश्छः	५।१।११०
४५२	अनोश्मायस्सरसां०	५।४।९४
४७३	अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः	५।४।११७
३२०	अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ	५।३।६३
४४०	अन्ववतप्ताद्रहसः	५।४।८१
४०३	अपादाने चाहीयरुहोः	५।४।४५
४७२	अप्पूरणीप्रमाण्योः	५।४।११६
३६८	अभिजिद्विदभृच्छाला०	५।३।११८
४१२	अभिविधौ सम्पदा च	५।४।५३
१४९	अभ्यमित्राच्छ च	५।२।१७
३८१	अमु च च्छन्दसि	५।४।१२
२००	अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां०	५।२।७६
४०९	अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहो०	५।४।५१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४५७	अर्धाच्च	५।४।१००
२४८	अर्श आदिभ्योऽच्	५।२।१२७
४८९	अल्पाख्यायाम्	५।४।१३६
३४०	अल्पे	५।३।८५
३४८	अवक्षेपणे कन्	५।३।९५
८१	अवयसि ठंश्च	५।१।८३
४३८	अवसमन्धेभ्यस्तमसः	५।४।७९
१६०	अवात्कुटारच्च	५।२।३०
१४४	अवारपारात्यन्ता०	५।२।११
३९२	अवेः कः	५।४।२८
४१६	अव्यक्तानुकरणाद्०	५।४।५७
३२७	अव्ययसर्वनाम्नाम०	५।३।७१
४६४	अव्ययीभावे शरत्०	५।४।१०७
१५१	अश्वस्यैकाहगमः	५।२।१९
१९५	अंशं हारी	५।२।६७
३७५	अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मा०	५।४।७
१८	असमासे निष्कादिभ्यः	५।१।२०
३००	अस्ताति च	५।३।४०
२४३	अस्मायामेधास्त्रजो०	५।२।१२१
४४४	अहस्सर्वैकदेशसंख्यात०	५।४।८७
२६०	अहंशुभयोर्युस्	५।२।१४०
४४६	अह्नोऽह्न एतेभ्यः	५।४।८८
	(आ)	
१९१	आकर्षादिभ्यः कन्	५।२।६४
११०	आकालिकडाद्यन्तवचने	५।१।११४
१४७	आगवीनः	५।२।११४
११५	आ च त्वात्	५।१।११९
५१	आढकाचितपात्रात्०	५।१।५३
७	आत्मन्विश्वजनभोगो०	५।१।९
१४१	आप्रपदं प्राप्नोति	५।२।८
३६३	आयुधजीविसङ्घाञ्०	५।३।११४
१७	आर्हादगोपुच्छसंख्या०	५।१।१९
२४७	आलजाटचौ बहु०	५।२।१२५
२९६	आहि च दूरे	५।३।३७
	(इ)	
१२६	इगन्ताच्च लघुपूर्वात्	५।१।१३०
४८२	इच् कर्मव्यतिहारे	५।४।१२७
२७०	इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते	५।३।१४
२६२	इदम इश्	५।३।३
२८०	इदमस्थमुः	५।३।२४
२७२	इदमो र्हिल्	५।३।१६
२६८	इदमो हः	५।३।११
५०१	इनः स्त्रियाम्	५।४।१५२
१६२	इनच्पिटच्चिकचि च	५।२।३३
२१४	इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्र०	५।२।९३
३४९	इवे प्रतिकृतौ	५।३।९६
२१०	इष्टादिभ्यश्च	५।२।८८
५०४	ईयसश्च	५।४।१५६
३२४	ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्य०	५।३।६७
	(उ)	
१	उगवादिभ्यो यत्	५।१।२
२०४	उत्क उन्मनाः	५।२।८०
४४८	उत्तमैकाभ्यां च	५।४।९०
७५	उत्तरपथेनाहृतं च	५।१।७६
४५५	उत्तरमृगपूर्वाच्च०	५।४।९८
२९७	उत्तराच्च	५।३।३८
२९२	उत्तराधरदक्षिणादातिः	५।३।३४
१९३	उदराट्ठगाद्यूने	५।२।६७
४९८	उद्विभ्यां काकुदस्य	५।४।१४८
४८९	उपमानाच्च	५।४।१३७
४५४	उपमानादप्राणिषु	५।४।९७
२८८	उपर्युपरिष्टात्	५।३।३१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४७४	उपसर्गाच्च	५।४।११९
११३	उपसर्गाच्छन्दसि०	५।१।११८
४४३	उपसर्गादध्वनः	५।४।८५
१६३	उपाधिभ्यां त्यकन्ना०	५।२।३४
१७३	उभादुदात्तो नित्यम्	५।२।४४
५००	उरःप्रभृतिभ्यः कप्	५।४।१५१
४८५	ऊधसोऽनङ्	५।४।१३१
२४५	ऊर्णाया युस्	५।२।१२३
४८४	ऊर्ध्वाद्विभाषा	५।४।१३०
२२९	ऊषसुषिमुष्कमधो रः	५।२।१०७
	(ऋ)	
४३१	ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे	५।४।७४
५०५	ऋतश्छन्दसि	५।४।१५८
१०२	ऋतोरण्	५।१।१०५
१२	ऋषभोपानहोर्ञ्यः	५।१।१४
	(ए)	
२४१	एकगोपूर्वाट्ठञ्नित्यम्	५।२।११८
३५९	एकशालायाष्ठज०	५।३।१०९
३८६	एकस्य सकृच्च	५।४।१९
३४७	एकाच्च प्राचाम्	५।३।९४
३१०	एकादाकिनिच्चासहाये	५।३।५२
३०३	एकाद्धो ध्यमुञ०	५।३।४४
२६४	एतदोऽच्	५।३।५
२६३	एतेतौ रथोः	५।३।४
३०५	एधाच्च	५।३।४६
२९३	एनबन्यतरस्यामदूरे०	५।३।३५
	(ऐ)	
१०९	ऐकागारिकट् चौरे	५।१।११२
	(ओ)	
३९७	ओषधेरजातौ	५।४।३७
	(क)	
२५८	कंशंभ्यां बभयुस्ति०	५।२।१३८
२३	कंसाट्टिठन्	५।१।२५
४९६	ककुदस्यावस्थायां०	५।४।१४६
६८	कडङ्करदक्षिणाच्छ च	५।१।६८
१२२	कपिज्ञात्योर्ढक्	५।१।१२६
२	कम्बलाच्च संज्ञायाम्	५।१।३
३५९	कर्कलोहितादीकक्	५।३।११०
१०१	कर्मण उकञ्	५।१।१०२
१६४	कर्मणि घटोऽठच्	५।२।३५
९९	कर्मवेषाद्यत्	५।१।९९
३२९	कस्य च दः	५।३।७२
२३२	काण्डाण्डादीरन्नीरचौ	५।२।१११
२०५	कालप्रयोजनाद्रोगे	५।२।८१
३९५	कालाच्च	५।४।३३
७६	कालात्	५।१।७७
१०४	कालाद्यत्	५।१।१०६
३४४	कासूगोणीभ्यां ष्टरच्	५।३।९०
३४५	किंयत्तदो निर्धारणे०	५।३।९२
२६१	किंसर्वनामबहुभ्यो०	५।३।२
४२७	किमः क्षेपे	५।४।७०
१७०	किमः संख्यापरिमाणे०	५।२।४१
२८०	किमश्च	५।३।२५
१६९	किमिदंभ्यां वो घः	५।२।४०
३७९	किमेत्तिङव्ययघादा०	५।४।११
२६९	किमोऽत्	५।३।१२
३४२	कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः	५।३।८८
३४३	कुत्वा डुपच्	५।३।८९
३३१	कुत्सिते	५।३।७४
४६१	कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्	५।४।१०५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४९१	कुम्भपदीषु च	५।४।१३९
५३	कुलिजाल्लुकखौ च	५।१।५५
२०७	कुल्माषादञ्	५।२।८३
३५५	कुशाग्राच्छः	५।३।१०५
४१७	कृञो द्वितीयतृतीय०	५।४।५८
४०८	कृभ्वस्तियोगे संपद्य०	५।४।५०
२३१	केशाद्वोऽन्यतरस्याम्	५०।२।१०९
२१४	क्षेत्रियच्परक्षेत्रे०	५।२।९२
	(ख)	
६	खलयवमाषतिलवृष०	५।४।४९
३१	खार्या ईकन्	५।१।३३
४५८	खार्या प्राचाम्	५।४।१०१
	(ग)	
४८८	गन्धस्येदुत्पूति०	५।४।१३५
२३२	गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्	५।२।११०
४६८	गिरेश्च सेनकस्य (गि)	५।४।११२
११९	गुणवचनब्राह्मणा०	५।१।१२४
१२९	गोत्रचरणाच्छ्लाघा०	५।१।१३३
३८	गोद्व्यचोऽसंख्या०	५।१।११२
४५०	गोरतद्धितलुकि	५।४।९२
१८९	गोषदादिभ्यो वुन्	५।२।६२
१५०	गोष्ठात् खञ्भूतपूर्वे	५।२।१८
४५३	ग्रामकौटाभ्यां च	५।४।९५
	(घ)	
३३५	घनिलचौ च	५।३।७९
	(च)	
१३	चर्मणोऽञ्	५।१।१५
८७	चित्तवति नित्यम्	५।१।८८
	(छ)	
११	छदिरुपधिबलेर्ढञ्	५।१।१३
१०३	छन्दसि घस्	५।१।१०५
६७	छन्दसि च	५।१।६६
४९३	छन्दसि च	५।४।१४२
६५	छेदादिभ्यो नित्यम्	५।१।६३
	(ज)	
४८०	जम्भा सुहरित०	५।४।१२५
३३७	जातिनाम्नः कन्	५।३।८१
३७८	जात्यन्ताच्छ बन्धुनि	५।४।९
४८७	जायाया निङ्	५।४।१३४
३५१	जीविकार्थे चापण्ये	५।३।९९
३१८	ण्य च	५।३।६१
२३५	ज्योत्स्नातमिस्रा०	५।२।११४
	(झ)	
४६८	झयः	५।४।१११
	(ञ)	
३६९	ञ्यादयस्तद्राजाः	५।३।११९
	(ठ)	
३३८	ठाजादावूर्ध्वं०	५।३।८३
	(ण)	
३८२	णचः स्त्रियामञ्	५।४।१४
	(त)	
४४३	तत्पुरुषस्यांगुलेः०	५।४।८६
३८८	तत्प्रकृतवचने मयट्	५।४।२१
१९०	तत्र कुशलः पथः	५।२।६३
९४	तत्र च दीयते कार्य०	५।१।९५
११२	तत्र तस्येव	५।१।११५
४१	तत्र विदित इति च	५।१।४३
१४०	तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्म०	५।२।७
६४	तदर्हति	५।१।६३
११२	तदर्हम्	५।१।११६
१७४	तदस्मिन्नधिकमिति०	५।२।४५
२०६	तदस्मिन्नन्नं प्रायेण०	५।२।८२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४४	तदस्मिन्वृद्ध्यायला०	५।१।४७
१४	तदस्य तदस्मिन्	५।१।१६
५६	तदस्य परिमाणम्	५।१।५७
९२	तदस्य ब्रह्मचर्यम्	५।१।९३
१६५	तदस्य संजातं०	५।२।३६
२१६	तदस्यास्त्यस्मिन्निति०	५।२।९४
२७४	तदो दा च	५।३।१९
४७	तद्धरतिवहत्यावहति०	५।१।५०
३९७	तद्युक्तात्कर्मणोऽण्	५।४।३६
१९५	तन्त्रादचिरापहृते	५।२।७०
२२४	तपःसहस्राभ्यां विनीनी	५।२।१०२
७७	तमधीष्टो भृतो भूतो०	५।१।७९
२७५	तयोर्दार्हिलौ च०	५।३।२०
२६६	तसेश्च	५।३।८
९९	तस्मै प्रभवति	५।१।१००
४	तस्मै हितम्	५।१।५
९३	तस्य च दक्षिणा०	५।१।९४
३७	तस्य निमित्तं संयोगो०	५।१।३८
१५५	तस्य पाकमूले०	५।२।२४
१७७	तस्य पूरणे डट्	५।२।३८
११४	तस्य भावस्त्वतलौ	५।१।११९
४३	तस्य वापः	५।१।४५
४०	तस्येश्वरः	५।१।४२
२०१	तावतिथं ग्रहणमिति०	५।२।७७
३१३	तिङश्च	५।३।५६
२४०	तुन्दादिभ्य इलच्च	५।२।११७
२५९	तुन्दिवलिवटेर्भः	५।२।१३९
३६	तेन क्रीतम्	५।१।३७
१११	तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः	५।१।११५
७७	तेन निर्वृत्तम्	५।१।७८
९१	तेन परिजय्यलभ्य०	५।१।९२
९६	तेन यथा कथा च०	५।२।९७
१५७	तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ	५।२।२६
६३	त्रिंशच्चत्वारिंशतो०	५।१।६२
९७	त्रिककुत्पर्वते	५।४।१४७
१८२	त्रेः संप्रसारणं च	५।२।५५
	(थ)	
१७९	थट् च छन्दसि	५।२।५०
२८१	था हेतौ च छन्दसि	५।३।२६
	(द)	
२९५	दक्षिणादाच्	५।३।३६
४८१	दक्षिणेर्मा लब्धयोगे	५।४।२८
३८३	दक्षिणोत्तराभ्यां तस् च	५।३।२८
३७२	दण्डव्यवसर्गयोश्च	२।४।२
६६	दण्डादिभ्यो यः	५।१।६५
२२८	दन्त उन्नत उरच्	५।२।१०६
२३४	दन्तशिखात्संज्ञायाम्	५।२।११३
२७४	दानीं च	५।३।१८
३६५	दामन्यादित्रिगर्त०	५।३।११६
२८२	दिक्छब्देभ्यः सप्तमी०	५।३।२७
४२२	दुःखात् प्रातिलोम्ये	५।४।६४
४१४	देये त्रा च	५।४।५५
३९०	देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्	५।४।२४
३५३	देवपथादिभ्यश्च	५।३।१००
४१५	देवमनुष्यपुरुषपुरुम०	५।४।५६
३९२	देवात्तल्	५।४।२७
२२७	देशे लुबिलचौ च	५।२।१०५
२३०	द्युद्रुभ्यां मः	५।२।१०८
३५५	द्रव्यं च भव्ये	५।३।१०४
१२८	द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च	५।१।१३२
४६३	द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्०	५।४।१०६
२४९	द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्०	५।२।१२८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५२	द्विगोः ष्ठंश्च	५।१।५४
७९	द्विगोर्यप्	५।१।८१
८२	द्विगोर्वा	५।१।८५
३८५	द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्	५।४।१८
२९	द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्	५।१।३०
४७१	द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः	५।४।११५
१७२	द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा	५।२।४३
४५९	द्वित्रिभ्यामञ्जलेः	५।४।१०२
३०४	द्वित्र्योश्च धमुञ्	५।३।४५
४८३	द्विदण्ड्यादिभ्यश्च	५।४।१२८
३१४	द्विवचनविभज्योपपदे०	५।३।५७
४४२	द्विस्तावा त्रिस्तावा०	५।४।८४
१८२	द्वेस्तीयः	५।२।५४
	(ध)	
१९२	धनहिरण्यात्कामे	५।२।६५
४८६	धनुषश्च	५।४।१३२
२५३	धर्मशीलवर्णान्ताच्च	५।२।१३२
४७९	धर्मादनिच्केवलात्	५।४।१२४
१३४	धान्यानां भवने क्षेत्रे०	५।२।१
	(न)	
४२८	नञस्तत्पुरुषात्	५।४।७१
४७६	नञ्दुःसुभ्यो हलि०	५।४।१२१
१६०	नते नासिकायाः	५।२।३१
४६७	नदीपौर्णमास्याग्र०	५।४।११०
५०२	नद्वृतश्च	५।४।१५३
११६	न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषाद०	५।१।१२१
४६६	नपुंसकादन्यतरस्याम्	५।४।१०९
४२६	न पूजनात्	५।४।६९
४४७	न संख्यादेः समाहारे	५।४।८९
५०४	न संज्ञायाम्	५।४।१५५
३७४	न सामिवचने	५।४।५
५०६	नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे	५।४।१५९
१७८	नान्तादसंख्यादेर्मट्	५।२।४९
४५६	नावो द्विगोः	५।४।९९
१८४	नित्यं शतादिमास०	५।२।५७
४७७	नित्यमसिच्प्रजा०	५।४।१२२
४२०	निष्कुलान्निष्कोषणे	५।४।६३
५०७	निष्प्रवाणिश्च	५।४।१६०
३३३	नीतौ च तद्युक्तात्	५।३।७७
१६१	नेर्बिडज्बिरीसचौ	५।२।३२
	(प)	
१५६	पक्षात्तिः	५।२।२५
५८	पंक्तिविंशतित्रिंशच्च०	५।१।५९
६१	पञ्चद्दशतौ वर्गे वा	५।१।६०
२६५	पञ्चम्यास्तसिल्	५।३।७
१२२	पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो०	५।१।१२८
७४	पथः ष्कन्	५।१।७४
४२९	पथो विभाषा	५।४।७२
७५	पन्थो ण नित्यम्	५।१।७५
३२	पणपादमाष०	५।१।३४
१५	परिखाया ढञ्	५।१।१७
१४३	परोवरपरम्परपुत्रपौत्र०	५।२।१०
२६७	पर्श्वादियौधेयादिभ्यो०	५।३।११७
२९१	पश्चात्	५।३।३२
४३	पात्रात् ष्ठन्	५।१।४६
६७	पात्राद् घँश्च	५।१।६७
३७१	पादशतस्य संख्यादे०	५।४।१
४९०	पादस्य लोपो०	५।४।१३८
३९०	पादार्घाभ्यां च	५।४।२५
७१	पारायणतुरायणाच्चा०	५।१।७१
१९९	पार्श्वेनान्विच्छति	५।२।७५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३९	पुत्राच्छ च	५।१।४०
१६७	पुरुषहस्तिभ्यामण् च	५।२।३८
२५५	पुष्करादिभ्यो देशे	५।२।१३५
३६१	पूगाञ्ञ्योऽग्रामणी०	५।३।११२
३०७	पूरणाद्भागे तीयादन्	५।३।४८
४५	पूरणार्धाट्ठन्	५।१।४८
४९८	पूरणाद्विभाषा	५।४।१४९
२०९	पूर्वादिनिः	५।२।८६
२९८	पूर्वाधरावराणामसि०	५।३।३९
११७	पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा	५।१।१२१
३२६	प्रकारवचने जातीयर्	५।३।६९
२७९	प्रकारवचने थाल्	५।३।२३
१०४	प्रकृष्टे ठञ्	५।१।१०७
३९८	प्रज्ञादिभ्यश्च	५।४।३२
२२३	प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः	५।२।१०१
४०३	प्रतियोगे पञ्चम्या०	५।४।४४
४४१	प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्	५।४।८२
३६०	प्रत्नपूर्वविश्वेमात्०	५।३।१११
१६६	प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्०	५।२।३७
१०५	प्रयोजनम्	५।१।१०८
३२३	प्रशंसायां रूपप्	५।३।६६
३१७	प्रशस्यस्य श्रः	५।३।६०
४८४	प्रसंभ्यां जानुनो ज्ञुः	५।४।१२९
१	प्राक्क्रीताच्छः	५।१।१
३२७	प्रागिवात्कः	५।३।७०
३०७	प्रागेकादशभ्यो०	५।३।४९
२६०	प्राग्दिशो विभक्तिः	५।३।१
१६	प्राग्वतेष्ठञ्	५।१।१८
३३५	प्राचामुपादे०	५।३।८०
१२४	प्राणभृज्जातिवयोवचन०	५।१।१२८
२१८	प्राणिस्थादातो लज०	५।२।९६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(फ)	
२२१	फेनादिलच्च	५।२।९९
	(ब)	
२५६	बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्	५।२।१३६
१८०	बहुपूगगणसंघस्य०	५।२।५२
४७८	बहुप्रजाश्छन्दसि	५।४।१२३
२४४	बहुलं छन्दसि	५।२।१२२
४६९	बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०	५।४।१२३
४३०	बहुव्रीहौ संख्येये०	५।४।७३
३३४	बह्वचो मनुष्यनाम्न०	५।४।७८
४०१	बह्वल्पार्थाच्छस्कारकाद०	५।४।४२
३०	बिस्ताच्च	५।१।३१
३७५	बृहत्या आच्छादने	५।४।६
१३३	ब्रह्मणस्त्वः	५।१।१३५
४६१	ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्	५।४।१०४
४३७	ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः	५।४।७८
१९६	ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्	५।२।७१
	(भ)	
३११	भूतपूर्वे चरट्	
	(म)	
१८६	मतौ छः सूक्तसाम्नोः	५।२।५९
४२४	मद्रात् परिवापणे	५।४।६७
१०	माणवचरकाभ्यां खञ्	५।१।११
३०९	मानपश्वङ्गयोः०	५।३।५१
७८	मासाद्वयसि०	५।१।८०
३९९	मृदस्तिकन्	५।४।३९
	(य)	
७०	यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ	५।१।७०
१६८	यत्तदेतेभ्यः परिमाणे०	५।२।३९
१३९	यथामुखसंमुखस्य०	५।२।६
१३५	यवयवकषष्टिकाद्यत्	५।२।३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३०६	याप्ये पाशप्	५।३।४७
३९२	यावादिभ्यः कन्	५।४।२९
३२१	युवाल्पयोः कन०	५।३।६४
१००	योगाद्यच्च	५।१।१०१
७३	योजनं गच्छति	५।१।७३
१२७	योपधाद्गुरूपोत्तमाद्०	५।१।१३१
	(र)	
३९४	रक्ते	५।४।३२
२३३	रजःकृष्यासुति०	५।२।११२
२१७	रसादिभ्यश्च	५।२।९५
४४९	राजाहःसखिभ्यष्टच्	५।४।९१
८४	रात्र्यहःसंवत्सराच्च	५।१।८६
२४२	रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्	५।२।१२०
४०७	रोगाच्चापनयने	५।४।४९
	(ल)	
३५०	लुम्मनुष्ये	५।३।९८
४२	लोकसर्वलोकाट्ठञ्	५।१।४४
२२२	लोमादिपामादि०	५।२।१००
३९३	लोहितान्मणौ	५।४।३०
	(व)	
२१	वतोरिड् वा	५।१।२३
१८१	वतोरिथुक्	५।२।५३
८९	वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि	५।१।९०
२२०	वत्सांसाभ्यां कामबले	५।२।९८
३४४	वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्य०	५।३।९१
५०५	वन्दिते भ्रातुः	५।४।१५७
४९२	वयसि दन्तस्य दतृ	५।४।१४१
२५१	वयसि पूरणात्	५।२।१३०
११८	वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च	५।१।१२२
२५४	वर्णाद् ब्रह्मचारिणि	५।२।१३४
३९३	वर्णे चानित्ये	५।४।३१
८५	वर्षाल्लुक् च	५।१।८७
३५३	वस्तेर्ढञ्	५।३।१०१
४८	वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ	५।१।५१
२४६	वाचो व्याहृतार्थायाम्	५।४।३५
२५०	वातातीसाराभ्यां०	५।२।१२९
३४६	वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०	५।३।९३
४८६	वा संज्ञायाम्	५।४।१३३
२६९	वा ह च च्छन्दसि	५।३।१३
३१	विंशतिकात् खः	५।१।३२
२२	विंशतित्रिंशद्भ्यां०	५।१।२४
१८३	विंशत्यादिभ्यस्तमड०	५।२।५६
१५८	विनञ्भ्यां नानाञौ०	५।२।२७
३९५	विनयादिभ्यष्ठक्	५।४।३४
३२२	विन्मतोर्लुक्	५।३।६५
३६	विभाषा कार्षापण०	५।१।२९
३७७	विभाषाञ्चेरदिक्०	५।४।८
१३६	विभाषा तिलमाषोमा०	५।२।४
२८५	विभाषा परावराभ्याम्	५।३।२९
३८७	विभाषा बहोर्धा०	५।४।२०
३०१	विभाषाऽवरस्य	५।३।४१
४९४	विभाषा श्यावारोकाभ्याम्	५।४।१४४
४११	विभाषा साति०	५।४।५२
३२५	विभाषा सुपो बहुच्०	५।३।६८
३	विभाषा हविरपूपादि०	५।१।४
१८८	विमुक्तादिभ्योऽण्	५।२।६१
१०६	विशाखाषाढा०	५।१।१०९
३८४	विसारिणो मत्स्ये	५।४।१६
४००	वृकज्येष्ठाभ्यां०	५।४।४१
३६५	वृकाट्टेण्यण्	५।३।११५
३१९	वृद्धस्य च	५।३।६२
१५८	वेः शालच्छङ्कटचौ	५।२।२८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
९५	व्युष्टादिभ्योऽण्	५।१।९७
१५३	व्रातेन जीवति	५।२।२१
३६२	व्रातच्फञोरस्त्रियाम्	५।३।११३
१३५	व्रीहिशाल्योर्ढक्	५।२।२
२३८	व्रीह्यादिभ्यश्च	५।२।११६
	(श)	
२४	शतमानविंशतिक०	५।१।२७
२४२	शतसहस्रान्ताच्च०	५।२।११९
१९	शताच्च ठन्यतावशते	५।१।२१
१७५	शदन्तविंशतेश्च	५।२।४६
५	शरीरावयवाद्यत्	५।१।६
३५७	शर्करादिभ्योऽण्	५।३।१०७
३५४	शाखादिभ्यो यः	५।३।१०३
३३	शाणाद्वा	५।१।३५
१५२	शालीनकौपीने०	५।२।२०
३५३	शिलाया ढः	५।३।१०२
१९७	शीतोष्णाभ्यां कारिणि	५।२।७२
६५	शीर्षच्छेदाद्यच्च	५।१।६४
२३	शूर्पादञन्यतरस्याम्	५।१।२६
४२२	शूलात्पाके	५।४।६५
२०३	शृङ्खलमस्य बन्धनं०	५।२।७९
३३९	शेवलसुपरिविशाल०	५।३।८४
५०३	शेषाद्विभाषा	५।४।१५४
२०८	श्राद्धमनेन भुक्तमिनि०	५।२।८५
२०७	श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते	५।२।८४
४३९	श्वसो वसीयःश्रेयसः	५।४।८०
	(ष)	
१८०	षट्कतिकतिपयचतुरां०	५।२।५१
८०	षण्मासाण्ण्यच्च	५।१।८३
८८	षष्टिकाः षष्टिरात्रेण०	५।१।८९
१८५	षष्ठ्यादेश्चासंख्यादेः	५।२।५८
३०८	षष्ठाष्टमाभ्यां च	५।३।५०
३१२	षष्ठ्या रूप्य च	५।३।५४
४०६	षष्ठ्या व्याश्रये	५।४।४८
	(स)	
२०३	स एषां ग्रामणीः	५।२।७८
१२१	सख्युर्यः	५।१।१२५
२०	संख्याया अतिशद०	५।१।२२
१७१	संख्याया अवयवे तयप्	५।२।४२
३८४	संख्यायाः क्रियाभ्या०	५।४।१७
५७	संख्यायाः संज्ञासंघसूत्र०	५।१।५८
१७६	संख्याया गुणस्य०	५।२।४७
३०२	संख्याया विधार्थे धा	५।३।४२
४१८	संख्यायाश्च गुणान्तायाः	५।४।५९
४९१	संख्यासुपूर्वस्य	५।४।१४०
४०२	संख्यैकवचनाच्च०	५।४।४३
३४२	संज्ञायां कन्	५।३।७५
३३१	संज्ञायां कन्	५।३।८७
३४९	संज्ञायां च	५।३।९७
२५७	संज्ञायां मन्माभ्याम्	५।२।१३७
४२३	सत्यादशपथे	५।४।६६
२६७	सद्यःपरुत्परार्यैषमः०	५।३।२२
४१९	सपत्रनिष्पत्रादति०	५।४।६१
२१०	सपूर्वाच्च	५।२।८७
६२	सप्तनोऽञ्छन्दसि	५।१।६१
२६६	सप्तम्यास्त्रल्	५।३।१०
१०२	समयस्तदस्य प्राप्तम्	५।१।१०३
४१९	समयाच्च यापनायाम्	५।४।६०
१४५	समांसमां विजायते	५।२।१२
१०८	समापनात्सपूर्वपदात्	५।१।११२
८१	समायाः खः	५।१।८४
३५६	समासाच्च०	५।३।१०६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४२४	समासान्ताः	५।४।६८	२५२	सुखादिभ्यश्च	५।२।१३१
३८८	समूहवच्च बहुषु	५।४।२२	४७५	सुप्रातसुश्वसुदिवशा०	५।४।११०
९०	संपरिपूर्वात्ख च	५।१।९२	४९९	सुहृद्दुर्हृदौ मित्रा०	५।४।१५०
९८	संपादिनि	५।१।९८	५५	सोऽस्यांशवस्नभृतयः	५।१।५६
१५९	संप्रोदश्च कटच्	५।२।२९	१२०	स्तेनाद्यन्नलोपश्च	५।१।१२४
५०	संभवत्यवहरति पचति	५।१।५२	४९४	स्त्रियां संज्ञायाम्	५।४।१४३
१३७	सर्वचर्मणः कृतः०	५।२।५	३७८	स्थानान्ताद्विभाषा०	५।४।१०
६	सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ	५।१।१०	६९	स्थालीबिलात्	५।१।६९
३९	सर्वभूमिपृथिवीभ्याम०	५।१।४१	३७३	स्थूलादिभ्यः प्रकार०	५।४।३
२६४	सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि	५।३।६	१९२	स्वांगेभ्यः प्रसिते	५।२।६६
२७१	सर्वैकान्यकियत्तदः०	५।३।१५	२४८	स्वामिन्नैश्वर्ये	५।२।१२६
७२	संशयमापन्नः	५।१।७२		(ह)	
३९९	सस्नौ प्रशंसायाम्	५।४।४०	२५४	हस्ताज्जातौ	५।२।१३३
१९४	सस्येन परिजातः	५।२।६८	१२५	हायनान्तयुवादि०	५।१।१२९
२१३	साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्	५।२।९१	४०६	हीयमानपापयोगाच्च	५।४।४७
१५४	साप्तपदीनं सख्यम्	५।२।२२	१५५	हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्	५।२।२३
२२६	सिकताशर्कराभ्यां च	५।२।१०४	१३१	होत्राभ्यश्छः	५।१।१३४
२१९	सिध्मादिभ्यश्च	५।२।९७	३४१	ह्रस्वे	५।३।८६
४२१	सुखप्रियादानुलोम्ये	५।४।६३			

इति चतुर्थभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

संक्षेप-विवरणम्

१. ऋ०	-	ऋग्वेदः
२. का० सं०	-	काठकसंहिता
३. तै० सं०	-	तैत्तिरीयसंहिता
४. मा० सं०	-	माध्यन्दिनसंहिता
५. यजु०	-	यजुर्वेदः
६. शौ० सं०	-	शौनकसंहिता
७. साम०	-	सामवेदः

ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

पञ्चमो भागः

(षष्ठाध्यायात्मकः)

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय
अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी-टीका)

पञ्चमो भागः

(षष्ठाध्यायात्मकः)

प्रवचनकारः

डॉ0 सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

प्रकाशक :-

ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास

गुरुकुल झज्जर,

जिला झज्जर (हरयाणा)

दूरभाष : ०१२५१ -५२०४४

५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

प्रथम वार : २०००

आर्यसमाज स्थापना दिवस

१० अप्रैल १९९९ ई०

मुद्रक :-

वेदव्रत शास्त्री

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,

गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१

दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४, ५६८३३

ओ३म्

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

उदात्तादि स्वरों का महत्त्व

उदात्त आदि स्वरों के महत्त्व के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने सौवर नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है–

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।। (महाभाष्य १।१।१)

अर्थ–जो शब्द अकार आदि वर्णों के स्थान-प्रयत्नपूर्वक उच्चारण-नियम और उदात्त आदि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उसको **'मिथ्याप्रयुक्त'** कहते हैं, क्योंकि जिस अर्थ को जताने के लिये उसका प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को वह शब्द नहीं कहता, किन्तु उससे विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है। इसलिये उच्चारण किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करने से वज्र के तुल्य वाणीरूप होकर यजमान अर्थात् शब्दार्थ-सम्बन्ध की संगति करनेवाले पुरुष को ही दुःख देता है। अर्थात् प्रयोक्ता के अभिप्राय को बिगाड़ देना ही उसको दुःख देना है।

जैसे–**'इन्द्रशत्रु'** शब्द स्वर के विरुद्ध होने से विरुद्धार्थक हो जाता है। 'इन्द्रशत्रु' तत्पुरुष समास में तो अन्तोदात्त होता है। इन्द्र अर्थात् सूर्य का शत्रु मेघ बढ़कर विजयी हो। 'इन्द्रशत्रुः' यहां बहुव्रीहि समास में पूर्वपद प्रकृतिस्वर से आद्युदात्त स्वर होता है और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करनेवाला वा काटनेवाला **'इन्द्रोऽस्य शमयिता वा शातयिता वा'** (निरुक्त १।१६)। सो तत्पुरुष समास में तो इन्द्र नाम सूर्य का शत्रु=शान्त करनेवाला मेघ आया। जो पुरुष–**'सूर्य का शान्त करनेवाला मेघ है'** इस अभिप्राय से **'इन्द्रशत्रु'** शब्द का उच्चारण किया चाहता है तो उसको अन्तोदात्त उच्चारण करना चाहिये परन्तु जो वह आद्युदात्त उच्चारण कर देवे तो उसका अभिप्राय नष्ट होजावे क्योंकि आद्युदात्त उच्चारण से बहुव्रीहि समास में मेघ का शान्त करनेवाला वा काटनेवाला **'सूर्य'** ठहरेगा। इसलिए जैसे अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक उच्चारण करना चाहिये। जब मनुष्य को उदात्त आदि स्वरों का ठीक-ठीक बोध हो जाता है तब वह स्वर लगे हुये लौकिक और वैदिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है।

जैसे किसी एक पद को आद्युदात्त स्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि इसका अमुक अर्थ में अमुक ञित् वा नित् प्रत्यय हुआ है, इसलिये यही इसका अर्थ होना चाहिये, इससे विरुद्ध नहीं हो सकता। ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है।

जैसे–**स कर्ता। स कर्ता।** इन दो वाक्यों में दो प्रकार के स्वर होने से दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं। पहिले वाक्य में 'लुट्' लकार की क्रिया है। **अर्थ**–वह अगले दिन करेगा। और दूसरे कृदन्त में तृच्-प्रत्ययान्त शब्द है। **अर्थ**–वह करनेवाला पुरुष।

उदात्त आदि स्वर बोध के बिना वेदमन्त्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो सकता क्योंकि षड्ज आदि स्वर गानविद्या में उपयोगी हैं, वे उदात्त आदि के बिना नहीं हो सकते। जैसे–

> उच्चौ निषादगान्धारौ नीचावृषभधैवतौ।
> शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपञ्चमाः।। (याज्ञवल्क्यशिक्षा)

अर्थ–षड्ज आदिकों में निषाद और गान्धार तो उदात्त के लक्षण से ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लक्षण से तथा षड्ज, मध्यम और पंचम ये तीनों स्वरित स्वर से गाये जाते हैं। उदात्तादि के बिना वेदमन्त्रों का उच्चारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्त आदि के सहित उच्चारण किया जाता है तब अतिप्रिय मनोहर लगता है।

उदात्त आदि स्वरों का परिचय

पाणिनीय अष्टाध्यायी के षष्ठ अध्याय में उदात्त आदि स्वरों का विशेष वर्णन किया गया है, अतः पाठकों के हितार्थ यहां उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अकार आदि स्वरों के उदात्त आदि गुण–

महर्षि पतञ्जलिकृत व्याकरण-महाभाष्य के अनुसार अकार आदि स्वरों के उदात्त आदि सात गुण होते हैं–"**सप्त स्वरा भवन्ति–उदात्तः, उदात्ततरः, अनुदात्तः, अनुदात्ततरः, स्वरितः, स्वरिते य उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः, एकश्रुतिः सप्तमः**" (महाभाष्य १।२।३३) **अर्थात्** उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरित में जो उदात्त है वह पूर्वोक्त उदात्त से विशिष्ट होता है, वह उदात्त और एकश्रुति ये सात स्वर हैं।

(२) उदात्त और अनुदात्त का लक्षण–

पाणिनीय अष्टाध्यायी में '**उच्चैरुदात्तः**' (१।२।२९) '**नीचैरनुदात्तः**' (१।२।३०) ये उदात्त और अनुदात्त स्वरों के लक्षण हैं। इन सूत्रों का प्रायशः यह अर्थ समझा जाता है कि जो अकार आदि स्वर ऊंची ध्वनि से उच्चारण किया जाये वह 'उदात्त' है और जो नीची ध्वनि से उच्चारण किया जाये वह 'अनुदात्त' कहाता है, किन्तु ऐसा नहीं है। इन सूत्रों की व्याख्या में महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं–

"इदमुच्चनीचमनवस्थितपदार्थकम्। तदेव कञ्चित् प्रत्युच्चैर्भवति, कञ्चित् प्रति च नीचैः। एवं हि कश्चित् कञ्चिदधीयानमाह-किमुच्चै रोरूयसे शनैर्वर्ततामिति। तमेव तथाऽधीयानमपर आह किमन्तर्दन्तकेनाधीषे उच्चैर्वर्ततामिति। एवमुच्चनीच-मनवस्थितपदार्थकम्, तस्यानवस्थितत्वात् संज्ञाया अप्रसिद्धिः (महाभाष्य १।२।२९)।

अर्थ-ऊंचा और नीचा यह एक अनवस्थित (अनिश्चित) पदार्थ है क्योंकि वही किसी के लिये ऊंचा और वही किसी के लिये नीचा भी हो सकता है। जैसे कोई किसी पढ़ते हुये छात्र से कहता है कि-'क्यों ऊंचे चिल्लाते हो, धीरे-धीरे पढ़ो'। फिर उसी छात्र को वैसा पढ़ते हुये देखकर कोई कहने लगा कि-'क्या दांतों के अन्दर-अन्दर ही पढ़ते हो, ऊंचे स्वर से पढ़ो'। अतः यह ऊंचा है, और यह नीचा है यह एक अनवस्थित पदार्थ है, अतः उदात्त और अनुदात्त संज्ञा की सिद्धि नहीं हो सकती।

इस शंका के समाधान में महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं-**सिद्धं तु समानप्रक्रम-वचनात्। सिद्धमेतत्। कथम्? समानप्रक्रम इति वक्तव्यम्।** कः पुनः **प्रक्रमः? उरः** कण्ठः शिर इति।

अर्थ-समान प्रक्रम के कथन से उदात्त और अनुदात्त संज्ञाओं की सिद्धि होती है। यहां प्रक्रम शब्द स्थान अर्थ का वाचक है और समान शब्द का अर्थ-एक है। कण्ठ और तालु आदि प्रत्येक उच्चारण-स्थान ऊंचे और नीचे भागों से युक्त है। **'उच्चैरुदात्तः'** इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि कण्ठ आदि उच्चारण-स्थान के ऊंचे भाग से उच्चारण किया जानेवाला अकार आदि स्वर उदात्त कहाता है और **'नीचैरनुदात्तः'** इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि कण्ठ आदि उच्चारण-स्थान के नीचे भाग से उच्चारण किया जानेवाला अकार आदि स्वर अनुदात्त कहाता है। ध्वनि के ऊंचा और नीचा होने से उदात्त और अनुदात्त स्वर नहीं बनता है।

उदात्त और अनुदात्त की उच्चारण-विधि के सम्बन्ध में महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है-

(१) **आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य। आयामो गात्राणां निग्रहः। दारुण्यं स्वरस्य, दारुण्यं रूक्षता। अणुता खस्य, कण्ठस्य संवृतता। उच्चैःकराणि शब्दस्य** (महाभाष्यम् १।२।२९)।

अर्थ-कण्ठ का आयाम दारुणता और अणुता ये तीन अकार आदि स्वरों के उच्चैर्भाव में कारण हैं। गात्र=शरीर के अवयवों का निग्रह 'आयाम' कहाता है। स्वर की रूक्षता को दारुणता कहते हैं और कण्ठ की संवृतता (बन्द होना) अणुता कहाती है।

(२) **'अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य'** (महा० १।२।३०)।

अर्थ-कण्ठ का अन्ववसर्ग, मार्दव और उरुता ये तीन अकार आदि स्वरों के नीचैर्भाव के कारण हैं। गात्र=शरीर के अवयवों की शिथिलता 'अन्ववसर्ग' कहता है।

स्वर की कोमलता को 'मार्दव' कहते हैं। कण्ठ की विवृतता (खुला होना) उरुता कहाती है।

(३) स्वरित का लक्षण—

पाणिनि मुनि ने स्वरित का यह लक्षण किया है कि **'समाहारः स्वरितः'** (१।२।३१) अर्थात् उक्त उदात्त और अनुदात्त स्वरों का जो समाहार=सम्मिश्रण है, वह स्वरित कहाता है। स्वरित की रचना में कितनी मात्रा में उदात्त और कितनी मात्रा में अनुदात्त का मिश्रण है, इस तथ्य को समझाने के लिये पाणिनि मुनि लिखते हैं—**'तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्'** (१।२।३२) स्वरित के प्रारम्भ में आधी मात्रा-भाग उदात्त और अन्त में शेष मात्रा-भाग अनुदात्त होता है। जैसे कि 'कन्या' शब्द में द्विमात्रिक 'आ' स्वरित है। इसके आदि की $\frac{१}{२}$ आधी मात्रा उदात्त है और शेष १$\frac{१}{२}$ डेढ़ मात्रा अनुदात्त है। ऐसा ही सर्वत्र समझें।

पाणिनि मुनि के स्वरितविषयक इस सूक्ष्म लेख की स्तुति में महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—**'तद्यथा क्षीरोदके सम्पृक्ते आमिश्रीभूतत्वान्न ज्ञायते-कियत् क्षीरम्, कियदुदकम्, कस्मिन्नवकाशे क्षीरम्, कस्मिन् वोदकमिति ? एवमिहाप्यामिश्रीभूतत्वान्न ज्ञायते-कियदुदात्तम्, कियदनुदात्तम्, कस्मिन्नवकाश उदात्तम्, कस्मिन्नवकाशेऽनुदात्तम् ? तदाचार्यः सुहृद् भूत्वाऽन्वाचष्टे-इयदुदात्तमियदनुदात्तमस्मिन्नवकाश उदात्तम्, अस्मिन्नवकाशेऽनुदात्तम्'** (महाभाष्यम् १।२।३३)।

अर्थ—जैसे दूध और पानी के मिल जाने पर यह विदित नहीं होता है कि इस मिश्रण में कितना दूध और कितना पानी है तथा किस ओर दूध और किस ओर पानी है। वैसे ही यहां 'स्वरित' में भी उदात्त और अनुदात्त के मिश्रित होजाने से यह ज्ञात नहीं होता है कि इसमें कितना उदात्त और कितना अनुदात्त है तथा किस ओर उदात्त और किस ओर अनुदात्त है। इस सूक्ष्म तथ्य को आचार्य पाणिनि मुनि ने हमारा मित्र बनकर हमें उपदेश किया है कि 'स्वरित' में इतना मात्रा-भाग उदात्त और इतना मात्रा-भाग अनुदात्त है तथा इसके पूर्व भाग में आधी मात्रा-भाग उदात्त और शेष मात्रा-भाग अनुदात्त है।

(४) स्वरितवर्ती उदात्त—

स्वरित के पूर्व भाग में जो उदात्त का अंश है वह पूर्वोक्त स्वतन्त्र 'उदात्त' से विशिष्ट है, जैसे कि महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—**'स्वरिते य उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः'** (महाभाष्य १।२।३३) अर्थात् स्वरित में जो उदात्त है वह अन्य अर्थात् स्वतन्त्र उदात्त से विशेष है।

(५) स्वरित के भेद—

याज्ञवल्क्यशिक्षा आदि ग्रन्थों में स्वरित के जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट, तैरोव्यञ्जन, तैरोविराम, पादवृत्त और ताथाभाव्य आठ भेद बतलाये हैं। इनकी व्याख्या अधोलिखित है—

(१) **जात्य**—जो स्वरित अपनी जाति (जन्म=स्वभाव) से स्वरित होता है **अर्थात्** जो अनुदात्त किसी उदात्त स्वर के संयोग से स्वरित नहीं बनता है उसे 'जात्य' **स्वरित** कहते हैं। जैसे—**कन्या॑। धान्य॑म्। क्व॑। स्व॑ः।**

(२) **अभिनिहित**—एकार तथा ओकार से परे जहां अकार का लोप अथवा **पूर्वरूप** हो जाता है उसे प्रातिशाख्यों में 'अभिनिहित' सन्धि कहते हैं। इस सन्धि के कारण **उदात्त** एकार अथवा उदात्त ओकार से परे अनुदात्त अकार का लोप अथवा पूर्वरूप हो **जाने पर** जो स्वरित होता है उसे 'अभिनिहित' स्वरित कहते हैं। जैसे—**ते+अवन्तु=ते॑ऽवन्तु। वेदः+असि=वेदो॑ऽसि।**

(३) **क्षैप्र**—इ, उ, ऋ, ऌ के स्थान में अच् परे होने पर जो य्, व, र्, ल् आदेश रूप सन्धि होती है इसे प्रतिशाख्यों में 'क्षैप्र' सन्धि कहा गया है। इस सन्धि के अनुसार उदात्त इकार, उकार के स्थान में य्, व् आदेश होने पर जिस उत्तरवर्ती अनुदात्त को स्वरित हो जाता है उसे 'क्षैप्र' स्वरित कहते हैं। जैसे—**वाजी+अर्वन्=वा॒ज्य॑र्वन्। नु+इन्द्र=न्वि॑न्द्र।**

(४) **प्रश्लिष्ट**—दो अचों के मेल से जो सन्धि होती है उसे 'प्रश्लिष्ट' **सन्धि कहते** हैं। 'प्रश्लिष्ट' सन्धि के कारण होनेवाला स्वरित 'प्रश्लिष्ट' स्वरित **कहाता है।** जैसे—**स्रुचि+इव=स्रुची॑व। अभि+इन्धताम्=अभी॑न्धताम्।**

(५) **तैरोव्यञ्जन**—एक पद में अथवा अनेक पदों में उदात्त स्वर से परे **व्यञ्जन** से व्यवहित जो स्वरित होता है उसे 'तैरोव्यञ्जन' स्वरित कहते हैं। जैसे—**इडे॑, रन्ते॑, हव्ये॑, काव्ये॑।**

(६) **तैरोविराम**—संहिता में एक पद के पदपाठ में जब अवान्तर **पद-विराम** दर्शाया जाता है, तब उन पद-विभागों के उच्चारण के मध्य में एकमात्रा अथवा **अर्धमात्रा** काल का व्यवधान किया जाता है उसे प्रतिशाख्य ग्रन्थों में 'अवग्रह' कहा गया **है।** इस अवग्रह में एक मात्रा अथवा अर्धमात्रा काल का व्यवधान विराम के तुल्य **होने से** एवं संहिता-धर्म का व्याघात हो जाने से उदात्त से उत्तरवर्ती अनुदात्त को स्वरित प्राप्त नहीं होता है। अतः उस संहिताभव को तिरोहित मानकर किया गया स्वरित 'तैरोविराम' स्वरित कहाता है। जैसे—**गोप॑ता॒विति॒ गोप॑तौ। य॒ज्ञप॑तिरिति य॒ज्ञप॑तिः।**

(७) **पादवृत्त**—संहिता में जहां पदान्त और पदादि दो अचों में सन्धि नहीं होती उसे 'विवृत्ति' कहते हैं। ऐसे स्थलों में पदान्त उदात्त से परे जहां पदादि अनुदात्त को स्वरित होता है उसे 'पादवृत्त' स्वरित कहते हैं। जैसे—**मध्ये॑ सत्यानृ॒ते अ॑व पश्य॑न्। ध्रुवा अ॑सदन्नृ॒तस्य॑।**

(८) **ताथाभाव्य**—उदात्तादि और उदात्तान्त के मध्य में यदि अवग्रह हो **तो उसे** 'ताथाभाव्य' स्वर कहते हैं। जैसे—**तनू॑नप्त्रे इति तनू॑ नप्त्रे॑।** यहां 'नू' अवग्रह **स्वरित है**

इससे पूर्ववर्ती 'त' और उत्तरवर्ती 'न' ये दोनों उदात्त हैं। अतः इसे 'ताथाभाव्य' स्वरित स्वर कहते हैं।

(६) एकश्रुति–

सातवां स्वर एकश्रुति है। महर्षि पतंजलि ने एकश्रुति स्वर की यह व्याख्या की है–

'किं पुनरियमेकश्रुतिरुदात्ता, आहोस्विदनुदात्ता ? नोदात्ता। कथं ज्ञायते ? यदयमुच्चैस्तरां वा वषट्कारः (१।२।३५) इत्याह। कथं कृत्वा ज्ञापकम् ? अतन्त्रं तरब्निर्देशः। यावदुच्चैस्तावदुच्चस्तरामिति। यदि तर्हि नोदात्ता, अनुदात्ता। अनुदात्ता च न। कथं ज्ञायते ? यदयम्-'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः' (१।२।४०) इत्याह। कथं कृत्वा ज्ञापकम् ? अतन्त्रं तरब्निर्देशः। यावत्सन्नस्तावत् सन्नतर इति। सैषा ज्ञापकाभ्यामुदात्तानुदात्तयोर्मध्यमेकश्रुतिरन्तरालं ह्रियते' (महाभाष्यम्)।

अर्थ–क्या यह एकश्रुति उदात्त होती है अथवा अनुदात्त ? उदात्त नहीं होती है। कैसे जाना जाता है ? आचार्य पाणिनि मुनि ने **'उच्चैस्तरां वा वषट्कारः'** (१।२।३५) यह सूत्र जो बनाया है। उदात्त कहो वा उदात्ततर **'उच्चैस्तराम्'** कहो, एक ही बात है। यदि एकश्रुति उदात्त होती तो **'उच्चैस्तरां वा वषट्कारः'** (१।२।३५) इस सूत्र में 'उच्चैस्तराम्' कहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि **'यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु'** (१।२।३४) इस सूत्र से 'एकश्रुति' की अनुवृत्ति थी ही, फिर उक्त सूत्र में **'उच्चैस्तराम्'** (उदात्ततर) कथन से ज्ञापक होता है कि 'एकश्रुति' उदात्त नहीं होती है। उदात्त और उदात्ततर में विशेष अन्तर नहीं है।

यदि एकश्रुति उदात्त नहीं है तो वह अनुदात्त भी नहीं होती है। कैसे जाना जाता है ? आचार्य पाणिनि मुनि ने **'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'** (१।२।४०) में जो सन्नतर (अनुदात्ततर) कहा है। यह कैसे ज्ञापक होता है ? यदि 'एकश्रुति' अनुदात्त होती तो **'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'** (१।२।४०) में 'सन्नतर' कहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि **'एकश्रुतिदूरात् सम्बुद्धौ'** (१।२।३३) से 'एकश्रुति' की अनुवृत्ति थी ही। फिर इस पृथक् 'सन्नतर' कथन से ज्ञापक होता है कि 'एकश्रुति' अनुदात्त नहीं होती है।

अतः इन उक्त ज्ञापकों से यह सार निकलता है कि 'एकश्रुति' न उदात्त है और न अनुदात्त है। इसमें दूध और जल के मिश्रण के तुल्य उदात्त और उदात्त का भेद तिरोहित हो जाता है। अतः यह एक पृथक् स्वर है।

(७) उदात्त आदि स्वरों के चिह्न–

ऋग्वेद आदि संहिता-ग्रन्थों में उदात्त आदि स्वरों को प्रकट करने के लिये कुछ चिह्न निर्धारित किये गये हैं जिन्हें वेदमन्त्रों पर अङ्कित करके उदात्त अदि स्वरों को अभिव्यक्त किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में उदात्त के लिये कोई चिह्न नहीं है। अनुदात्त के लिये स्वर में अधोरेखा दी जाती है। जैसे–अ॒ग्निः। स्वरित के लिये

स्वर पर उपरि-रेखा अंकित की जाती है। जैसे—**कन्या**। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के लिये १, २, ३ अंक निर्धारित किये गये हैं। जैसे—**अग्नि:=अग्नि**। **कन्या=कन्या**।

स्वराङ्कन-विधिः—

पाणिनि मुनि ने स्वराङ्कन की यह विधि बतलाई है कि—**'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५८) स्वर-प्रकरण में यह परिभाषा-सूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है अर्थात् स्वर प्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें उससे पृथक् जितने वर्ण हों, वे सब अनुदात्त होते हैं। जैसे—**गोपायति, धूपायति**। यहां **'धातोः'** (६।१।१५९) से धातु को अन्तोदात्त स्वर विधान किया गया है अतः 'गोपाय' धातु का अन्तिम स्वर (अ) उदात्त होकर शेष सब स्वर अनुदात्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६६) से उदात्त से परवर्ती स्वर अनुदात्त हो जाता है। जैसे कि ऊपर—**गोपयति**, **धूपायति** उदाहरणों में दर्शाया गया है।

'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५८) इस सूत्र के प्रयोजन के विषय में पतंजलि मुनि लिखते हैं—

आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च।
पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः।। (महा० ६।१।१५८)

अर्थ—आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक्-पृथक् स्वर न हो इसलिये इस सूत्र का आरम्भ किया है। जैसे—

(१) **आगम—चत्वारः**। **अनड्वाहः**। यहां चतुर् और अनडुह् शब्दों को जो 'आम्' आगम हुआ है, उसी का स्वर रहता है और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एकपद में एक साथ नहीं रह सकते।

(२) **विकार**—जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश होता है उसे विकार कहते हैं। जैसे—**अस्थ्ना, दध्ना**। यहां अस्थि और दधि शब्द प्रथम आद्युदात्त हैं, पश्चात् तृतीया-आदि अजादि विभक्तियों में इन्हें उदात्त अनङ् आदेश होकर प्रकृति और उक्त आदेश के दो स्वर प्राप्त होते हैं, सो नहीं होते, अपितु आदेश का स्वर होता है।

(३) **प्रकृति**—धातु वा प्रातिपदिक जिससे प्रत्यय उत्पन्न होते हैं उसे प्रकृति कहते हैं। जैसे—**गोपायति, धूपायति**। यहां प्रकृतिस्वर गोपाय, धूपाय धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर 'आय' प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं, सो न हों किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर होजावे।

(४) **प्रत्यय**—जो धातु वा प्रातिपदिक से किया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। जैसे—**कर्तव्यम्, तैत्तिरीयः**। यहां 'कृ' धातु और तित्तिर प्रातिपदिक से 'तव्य' और 'छ'

प्रत्यय हुआ है, प्रकृति और प्रत्यय दोनों स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर होता है।

(८) षड्ज आदि सात स्वर—

गान्धर्ववेद में षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों का उल्लेख है। नारदीय शिक्षा में इन षड्ज आदि स्वरों के उच्चारण का मयूर आदि की उपमा से सुन्दर वर्णन किया है—

> **षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम्।**
> **अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम्।।**
> **पुष्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम्।**
> **अश्वस्तु धैवतं वति निषादं वक्ति कुञ्जरः।।** (ना०शि० १।५।३-४)

अर्थ—मोर षड्ज स्वर बोलता है। गौवें ऋषभ स्वर में रांभती हैं। भेड़ और बकरी गान्धार स्वर में मिमाती हैं। क्रौञ्च पक्षी मध्यम स्वर में कूजता है। पुष्प-साधारण अर्थात् वसन्त ऋतु में कोयल पञ्चम स्वर में कूकती है। घोड़ा धैवत स्वर में हिनहिनाता है और कुञ्जर=हाथी निषाद स्वर में चिंघाड़ता है।

नारदीय शिक्षा के इस लेख से प्रकट होता है कि संगीत-विद्या के ये षड्ज आदि स्वर ऊपर लिखित मयूर आदि पशु-पक्षियों के शब्दो के अध्ययन से संगीतशास्त्र में ग्रहण करके विकसित किये गये हैं।

(९) षड्ज आदि का उदात्त आदि में अन्तर्भाव—

गान्धर्ववेद में जिन षड्ज आदि स्वरों का उपदेश किया गया है वे ही वैदिक संहिताओं में उदात्त आदि स्वरों के नाम से कहे गये हैं। जैसा कि पणिनि शिक्षा में लिखा है—

> **उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ।**
> **स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः।।** (पा०शि० पृ० १२)

अर्थ—षड्ज आदि सात स्वरों का उदात्त आदि तीन स्वरों में अन्तर्भाव हो जाता है। निषाद और गान्धार उदात्त स्वर हैं। ऋषभ और धैवत अनुदात्त स्वर हैं। षड्ज, मध्यम और पञ्चम स्वर स्वरित स्वर से उत्पन्न हुये हैं।

इन उदात्त आदि स्वरों का शिक्षा वेदाङ्गविषयक याज्ञवल्क्य-शिक्षा आदि ग्रन्थों के अध्ययन से यथावत् परिज्ञान प्राप्त करें।

—सुदर्शनदेव आचार्य, संस्कृत सेवा संस्थान
१५।३।९९ ई०		७७६/३४, हरिसिंह कालोनी, रोहतक (हरयाणा)

पञ्चमभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	द्विर्वचनप्रकरणम्	
१.	प्रथमस्यैकाचः	१
२.	द्वितीयस्यैकाचः	२
३.	द्विर्वचनप्रतिषेधः	३
४.	अभ्यास-संज्ञा	४
५.	अभ्यस्त-संज्ञा	६
६.	अभ्यासस्य दीर्घत्वम्	८
७.	द्विर्वचनम्	१०
८.	निपातनम्	१३
	सम्प्रसारण-प्रकरणम्	
१.	ष्यङः सम्प्रसारणम्	१४
२.	किति सम्प्रसारणम्	१६
३.	ङिति किति च सम्प्रसारणम्	१७
४.	अभ्यासस्य संम्प्रसारणम्	२२
५.	चङि सम्प्रसारणम्	२५
६.	यङि सम्प्रसारणम्	२६
७.	यङि सम्प्रसारण-प्रतिषेधः	२६
८.	की-आदेशः	२७
९.	स्फी-आदेशः	२८
१०.	सम्प्रसारणम्	२८
११.	निपातनम्	३१
१२.	पी-आदेशः	३२
१३.	सम्प्रसारण-विकल्पः	३३
१४.	सम्प्रसारणम्	३६
१५.	बहुलं सम्प्रसारणम्	३९
१६.	की-आदेशः	४०
१७.	निपातनम्	४१
१८.	सम्प्रसारण-प्रतिषेधः	४३
१९.	वकारादेश-विकल्पः	४४
२०.	सम्प्रसारण-प्रतिषेधः	४५
२१.	सम्प्रसारण-विकल्पः	४८
	आकारादेश-प्रकरणम्	
१.	शिति	४९
२.	आकारादेश-प्रतिषेधः	५०
३.	घञि	५१
४.	णिचि	५२
५.	णौ	५३
६.	ल्यपि-एज्विषये	५४
७.	आकारादेश-विकल्पः	५५
८.	नित्यमाकारादेशः	६०
	आगम-विधिः	
१.	अम्-आगमः	६१
२.	अमागम-विकल्पः	६२
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	निपातनम्	६३
२.	शीर्षन्-आदेशः	६४
३.	शीर्ष-आदेशः	६५
४.	पदादि-आदेशः	६६
५.	स-आदेशः	७२
६.	न-आदेशः	७३
७.	लोपादेशः	७४
	तुक्-आगमविधिः	
१.	तुक्	८१
	संहिता (सन्धि) प्रकरणम्	
१.	अधिकारः	८२
२.	तुक्-आगमः	८२
३.	यण्-आदेशः	८६
४.	अयादि-आदेशः	८६
५.	वान्त-आदेशः	८८
६.	निपातनम्	९०
७.	एकादेश-अधिकारः	९२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
८.	अन्तादिवद्भावः	९३
९.	एकादेशस्यासिद्धत्वम्	९४
१०.	गुण-एकादेशः	९५
११.	वृद्धि-एकादेशः	९६
१२.	वृद्धि-एकादेशविकल्पः	१००
१३.	आकार-एकादेशः	१०१
१४.	पररूप-एकादेशः	१०२
१५.	पररूप-प्रतिषेधः	१०७
१६.	दीर्घ-एकादेशः	१०८
१७.	पूर्वसवर्ण-एकादेशः	१०९
१८.	नकार-आदेशः	११०
१९.	पूर्वसवर्ण-प्रतिषेधः	११०
२०.	पूर्वसवर्णदीर्घ-प्रतिषेधः	१११
२१.	पूर्वसवर्णदीर्घ-विकल्पः	११३
२२.	पूर्वरूप-एकादेशः	११४
२३.	उकार-आदेशः	११८
२४.	प्रकृतिभावः	१२०
२५.	प्रकृतिभाव-विकल्पः	१२७
२६.	अवङ्-आदेशः	१२७
२७.	प्रकृतिभावः	१२९
२८.	अप्लुतवद्भावः	१३३
२९.	उत्-आदेशः	१३४
३०.	सु-लोपः	१३५
३१.	बहुलं सु-लोपः	१३६
३२.	सु-लोपः (पादपूर्तिः)	१३७
	सुट्-आगमप्रकरणम्	
१.	अधिकारः	१३९
२.	सुट्	१३९
३.	निपातनम् (सुट्)	१४५
४.	निपातनम् (वा सुट्)	१५०
५.	निपातनम् (सुट्)	१५१
	पूर्वस्वरप्रकरणम्	
१.	परिभाषा	१५८
	{अन्तोदात्तप्रकरणम्}	
२.	अन्तोदात्तः	१५९
३.	अन्तोदात्त-विकल्पः	१६७
४.	अन्तोदात्ता (विभक्तिः)	१६८
५.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	१७५
६.	अन्तोदात्तः	१७६
७.	अन्तोदात्त-विकल्पः	१७७
८.	बहुलमन्तोदात्ता (विभक्तिः)	१७८
९.	अन्तोदात्ता	१७९
१०.	उपोत्तमोदात्तम्	१८०
११.	उपोत्तमोदात्त-विकल्पः	१८१
१२.	उक्तस्वर-प्रतिषेधः	१८२
१३.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	१८४
	{स्वरित-विधिः}	
१.	अन्तःस्वरितम्	१८५
	{अनुदात्त-विधिः}	
१.	अन्तानुदात्तम्	१८६
	{आद्युदात्तप्रकरणम्}	
१.	आद्युदात्त-विकल्पः	१८८
२.	आद्युदात्तः	१९१
३.	प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तम्	१९४
४.	प्रत्ययात् पूर्वमुदात्त-विकल्पः	१९७
५.	आद्युदात्त-विकल्पः	१९९
६.	नित्यमाद्युदात्तः	२००
७.	आद्युदात्तः	२०१
८.	युगपदाद्यन्तोदात्तः	२०२
९.	आद्युदात्तः	२०३
१०.	आद्युदात्त-विकल्पः	२०८
११.	आद्युदात्तः	२०९
१२.	आद्युदात्त-विकल्पः	२१३
१३.	उपोत्तमोदात्तम्	२१५
१४.	उपोत्तमोदात्त-विकल्पः	२१६
१५.	आकार उदात्तः	२१७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१६.	अन्तोदात्तः	२१८

षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः

उत्तरस्वरप्रकरणम्

{पूर्वपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	प्रकृतिस्वरः	२२१
२.	प्रकृतिस्वर-प्रतिषेधः	२४४
३.	प्रकृतिस्वर-विकल्पः	२४५
४.	प्रकृतिस्वरः	२४५
५.	आद्युदात्तः	२५२
६.	आद्युदात्त-विकल्पः	२५३
७.	प्रकृतिस्वरः	२५४
८.	प्रकृतिस्वर-विकल्पः	२५६
९.	प्रकृतिस्वरः	२५८
१०.	प्रकृतिस्वर-विकल्पः	२८३

{पूर्वपदाद्युदात्तप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	आद्युदात्ताधिकारः	२९१
२.	आद्युदात्तम्	२९१
३.	अन्त्यात् पूर्वमुदात्तम्	३०७
४.	आद्युदात्तम्	३०८
५.	आद्युदात्त-प्रतिषेधः	३१३

{पूर्वपदान्तोदात्तप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अन्तोदात्ताधिकारः	३१४
२.	अन्तोदात्तम्	३१५
३.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	३२०
४.	अन्तोदात्तम्	३२१
५.	अन्तोदात्त-विकल्पः	३२८

{उत्तरपदाद्युदात्तप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अधिकारः	३२९
२.	आद्युदात्तम्	३२९
३.	आद्युदत्तमेव	३३५
४.	आद्युदात्तम्	३३६
५.	आद्युदात्त-प्रतिषेधः	३४७
६.	आद्युदात्तम्	३४८

{उत्तरपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	प्रकृतिस्वरः	३५१
२.	प्रकृतिस्वरप्रतिषेधः	३५६

{उत्तरपदान्तोदात्तस्वरप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अधिकारः	३५७
२.	अन्तोदात्तम्	३६०
३.	अन्तोदात्त-विकल्पः	३७५
४.	अन्तोदात्तम्	३७६
५.	अन्तोदात्त-विकल्पः	३७८
६.	अन्तोदात्तम्	३७९
७.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	३८१
८.	अन्तोदात्त-विकल्पः	३८३
९.	अन्तोदात्तम्	३८५
१०.	अन्तोदात्त-विकल्पः	३८७
११.	अन्तोदात्तम्	३८८
१२.	अन्त्यात् पूर्वमुदात्तम्	३९०
१३.	नञ्वत् स्वरविधिः	३९१
१४.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	३९२
१५.	अन्तोदात्तम्	३९३
१६.	अन्तोदात्त-प्रतिषेधः	३९६
१७.	अन्तोदात्तम्	३९६
१८.	अन्तोदात्त-विकल्पः	४०८
१९.	अन्तोदात्तम्	४१२

षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः

विभक्ति-अलुक्प्रकरणम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	अधिकारः	४१३
२.	पञ्चमी-अलुक्	४१३
३.	तृतीया-अलुक्	४१४
४.	चतुर्थी-अलुक्	४१७
५.	सप्तमी-अलुक्	४१८
६.	सप्तमी-अलुग्विकल्पः	४२२
७.	बहुलं सप्तमी-अलुक्	४२३
८.	सप्तमी-अलुग्विकल्पः	४२४

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
९.	अलुक्-प्रतिषेधः	४२७
१०.	षष्ठी-अलुक्	४२९
११.	षष्ठी-अलुग्विकल्पः	४२९
१२.	षष्ठी-अलुक्	४३०
१३.	षष्ठी-अलुग्विकल्पः	४३१
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	अनङ्-आदेशः	४३२
२.	ईद्-आदेशः	४३४
३.	इद्-आदेशः	४३५
४.	द्यावा-आदेशः	४३५
५.	दिवस्-आदेशः	४३६
६.	उषासा-आदेशः	४३६
७.	निपातनम्	४३७
	स्त्रियाः पुंवद्भावप्रकरणम्	
१.	पुंवद्भावः	४३८
२.	पुंवद्भावप्रतिषेधः	४४२
३.	पुंवद्भावः	४४८
	ह्रस्व-प्रकरणम्	
१.	ह्रस्वः	४५१
२.	ह्रस्व-विकल्पः	४५२
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	आकारादेशः	४५६
२.	त्रयसादेशः	४५८
३.	आदेश-विकल्पः	४५८
४.	हृदादेशः	४६०
५.	हृदादेश-विकल्पः	४६१
६.	पदादेशः	४६२
७.	पदादेश-विकल्पः	४६५
८.	उदादेशः	४६६
९.	उदादेश-विकल्पः	४६८
१०.	ह्रस्वादेश-विकल्पः	४७०
११.	ह्रस्वादेशः	४७१
१२.	बहुलं ह्रस्वादेशः	४७२
१३.	ह्रस्वादेशः	४७५
	आगम-प्रकरणम्	
१.	मुम्-आगमः	४७७
२.	निपातनम्	४७९
३.	मुम्-आगमः	४८०
४.	मुमागम-विकल्पः	४८२
५.	नकारलोपः	४८२
६.	नुट्-आगमः	४८३
७.	प्रकृतिभावः	४८३
८.	प्रकृतिभाव आदुक्-आगमश्च	४८६
९.	प्रकृतिभाव-विकल्पः	४८७
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	स-आदेशः	४८७
२.	सादेश-विकल्पः	४९०
३.	प्रकृतिभावः	४९२
४.	स-आदेशः	४९२
५.	सादेश-विकल्पः	४९६
६.	स-आदेशः	४९७
७.	ईश्-की आदेशौ	४९८
८.	आकार-आदेशः	४९९
९.	अद्रि-आदेशः	५००
१०.	समि-आदेशः	५०१
११.	तिरि-आदेशः	५०२
१२.	सध्रि-आदेशः	५०३
१३.	सध-आदेशः	५०३
१४.	ईत्-आदेशः	५०४
१५.	ऊत्-आदेशः	५०५
१६.	दुक्-आगमः	५०६
१७.	दुगागम-विकल्पः	५०७
१८.	कत्-आदेशः	५०७
१९.	का-आदेशः	५०९
२०.	कादेश-विकल्पः	५१०
२१.	कव-आदेशः कादेश-विकल्पश्च	५११

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२२.	कव-कादेश-विकल्पः	५१२
२३.	यथोपदिष्टं साधुत्वम्	५१३
२४.	अह्नादेश-विकल्पः	५१५
२५.	दीर्घ-आदेशः	५१६
२६.	ओकार-आदेशः	५१७
२७.	निपातनम्	५१८
	संहिताधिकारीय-दीर्घप्रकरणम्	
१.	संहिता-अधिकारः	५१९
२.	दीर्घ-आदेशः	५२०
	षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः	
	अङ्ग-संज्ञाधिकारः	
	{दीर्घ-प्रकरणम्}	
१.	अङ्गाधिकारः	५४०
२.	दीर्घः	५४०
३.	दीर्घ-प्रतिषेधः	५४३
४.	उभयथा दर्शनम्	५४४
५.	दीर्घः	५४५
६.	दीर्घ-विकल्पः	५४७
७.	दीर्घः	५४७
८.	दीर्घ-विकल्पः	५५७
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	श्+ऊठ्	५५८
२.	ऊडादेशः	५६०
३.	लोपादेशः	५६२
	असिद्धवत्-प्रकरणम्	
१.	असिद्धवत्-अधिकारः	५६३
	{आदेश-प्रकरणम्}	
१.	नलोपः	५६५
२.	निपातनम्	५६९
३.	नलोप-प्रतिषेधः	५७१
४.	नलोप-विकल्पः	५७२
५.	इकार-आदेशः	५७४
६.	शा-आदेशः	५७५
७.	ज-आदेशः	५७६
	{अनुनासिकलोपप्रकरणम्}	
१.	अनुनासिकलोपः	५७७
२.	अनुनासिकलोप-विकल्पः	५७९
३.	अनुनासिकलोप-प्रतिषेधः	५८०
४.	अनुनासिकलोपः	५८१
५.	आकार-आदेशः	५८२
६.	आकारादेश-विकल्पः	५८५
७.	आकारादेशः	५८६
	आर्धधातुकप्रकरणम्	
१.	आर्धधातुकाधिकारः	५८७
२.	रम्-आगमः	५८८
३.	लोपादेशः	५८९
४.	लोपादेश-विकल्पः	५९१
५.	णि-लोपः	५९२
६.	निपातनम्	५९६
७.	अय्-आदेशः	५९६
८.	अयादेश-विकल्पः	६००
९.	दीर्घादेशः	६०१
१०.	दीर्घादेश-विकल्पः	६०३
११.	चिण्वद्भाव-विकल्पः	६०४
१२.	युट्-आगमः	६०९
१३.	लोपादेशः	६१०
१४.	ईद्-आदेशः	६११
१५.	ए-आदेशः	६१४
१६.	एकारादेश-विकल्पः	६१५
१७.	ईकारादेश-प्रतिषेधः	६१६
१८.	इकारादेश-विकल्पः	६१७
	आगमप्रकरणम्	
१.	अट्-आगमः	६१७
२.	आट्-आगमः	६१९
३.	आडागमदर्शनम्	६२०
४.	उक्त-प्रतिषेधः	६२१

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
५.	बहुलम्-अट्-आडागमः	६२२
	आदेश-प्रकरणम्	
१.	रे-आदेशः	६२४
२.	इयङ्-उवङादेशौ	६२६
३.	इयङ्-आदेशः	६२७
४.	इयङादेश-विकल्पः	६२८
५.	यण्-आदेशः	६३०
६.	यणादेश-प्रतिषेधः	६३३
७.	उभयथा-आदेशः	६३४
८.	यण्-आदेशः	६३५
९.	वुक्-आगमः	६३६
१०.	ऊत्-आदेशः	६३७
११.	ऊकारादेश-विकल्पः	६३९
१२.	ह्रस्वादेशः	६४०
१३.	दीर्घादेश-विकल्पः	६४१
१४.	ह्रस्वादेशः	६४२
१५.	लोपादेशः	६४६
१६.	धि-आदेशः	६५०
१७.	लुक्-आदेशः	६५३
१८.	लोपादेश-विकल्पः	६५६
१९.	नित्यं लोपादेशः	६५७
२०.	उकार-आदेशः	६५८
२१.	लोपादेशः	६५९
२२.	ईकारादेशः	६६१
२३.	इकारादेशः	६६३
२४.	इकारादेश-विकल्पः	६६३
२५.	इकाराकारादेश-विकल्पः	६६५
२६.	लोपादेशः	६६६
२७.	एकारादेशः	६६६
२८.	एकारादेश-विकल्पः	६७२
२९.	एकारादेश-प्रतिषेधः	६७५
३०.	तृ-आदेशः	६७७
३१.	बहुलं तृ-आदेशः	६७८
	भ-संज्ञाप्रकरणम्	
१.	भ-अधिकारः	६७९
२.	पत्-आदेशः	६७९
३.	सम्प्रसारणम्	६८१
४.	ऊठ्-सम्प्रसारणम्	६८२
५.	सम्प्रसारणम्	६८३
६.	अकारलोपः	६८४
७.	अकारलोप-विकल्पः	६८५
८.	अकारलोप-प्रतिषेधः	६८६
९.	अकारलोपः	६८७
१०.	ईकारादेशः	६८८
११.	आकारलोपः	६८९
१२.	ति-लोपः	६९०
१३.	टि-लोपः	६९१
१४.	गुण-आदेशः	६९३
१५.	उकारलोपः	६९४
१६.	इकार-उकारलोपः	६९५
१७.	उपधा-लोपः	६९७
१८.	छस्य-लुक्	७०१
१९.	तृ-लोपः	७०२
२०.	टि-लोपः	७०३
२१.	यणादिपरस्य लोपः	७०४
२२.	प्रियादीनां प्रादय आदेशाः	७०५
२३.	इष्ठेमेयसाम् आदिलोपः	७०८
२४.	यिट्-आगमः	७०९
२५.	आकार-आदेशः	७०९
२६.	र-आदेशः	७१०
२७.	रादेश-विकल्पः	७११
२८.	प्रकृतिभावः	७१२
२९.	प्रकृतिभाव-प्रतिषेधः	७१८
३०.	निपातनम्	७१९

।। इति पञ्चमभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम् ।।

षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः

द्विर्वचनप्रकरणम्

प्रथमस्यैकाचः–

(१) एकाचो द्वे प्रथमस्य।१।

प०वि०–एकाचः ६।१ द्वे १।२ प्रथमस्य ६।१।

स०–एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्य–एकाचः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः–प्रथमस्य एकाचो द्वे।

अर्थः–प्रथमस्य एकाचो द्वे भवत इत्यधिकारोऽयम्, प्राक् सम्प्रसारण-विधानात् **'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे'** (६।१।१३)।

उदा०–स जजागार। स पपाठ। स इयाय। स आर।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रथमस्य) प्रथम (एकाचः) एक अच्वाले समुदाय को (द्वे) द्वित्व होता है। यह* ***'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे'*** *(६।१।१३) से पहले-पहले अधिकार है।*

*उदा०–**स जजागार।** वह जागा। **स पपाठ।** उसने पढ़ा। **स इयाय।** उसने गति की। **स आर।** उसने गति की, वह गया।*

*सिद्धि-(१) **जजागार।** जागृ+लिट्। जागृ+तिप्। जागृ+णल्। जागार्+अ। जाग्+जागार्+अ। जा+जागार्+अ। जजागर।*

*यहां **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) लिट् प्रत्यय, **तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'लिट्' लकार को 'तिप्' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश, **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से द्वित्व-विधि और इस सूत्र से 'जागार्' के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व (जाग्+जाग्=आर्) होता है। **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से अभ्यास के आदि हल् का शेषत्व और **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (ज) होता है। ऐसे ही **'पठ व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से-**पपाठ।***

*(२) **इयाय।** इण्+लिट्। इ+तिप्। इ+णल्। ऐ+अ। इ+आय्+अ। इयङ्+आय्+अ। इय्+आय्+अ। इयाय।*

*यहां 'इण् गतौ' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'तिप्' और उसे पूर्ववत् 'णल्' आदेश होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि, **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवद्भाव मान होकर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से द्वित्व-विधि और इस सूत्र से प्रथम एकाच् 'इ' को द्वित्व होता है। **'अभ्यासस्यासवर्णे'** (६।४।७८) से अभ्यास के इकार को 'इयङ्' आदेश होता है।*

(३) आर। ऋ+लिट्। ऋ+तिप्। ऋ+णल्। आर्+अ। ऋ+आर्+अ। अर्+आर्+अ। अ+आर्+अ। आर्+अ। आर।

*यहां 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय, उसके लकार को 'तिप्' आदेश और उसे 'णल्' आदेश होकर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से द्वित्व-विधि और **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवद् भाव होकर इस सूत्र से प्रथम एकाच् 'ऋ' को द्वित्व होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास ऋ को अकार आदेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, **'हलादि: शेषः'** (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व होकर **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) से सवर्ण-दीर्घत्व होता है।*

द्वितीयस्यैकाचः--

(२) अजादेर्द्वितीयस्य।२।

प०वि०-अजादेः ६।१ द्वितीयस्य ६।१।

स०-अच् आदिर्यस्य सः-अजादिः, तस्य-अजादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-एकाचः, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्वे।

अर्थः-अजादेर्धातोरवयवस्य द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः इत्यधिकारोऽयम्, प्राक्सम्प्रसारणविधानात् **'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे'** (६।१।१३)।

उदा०-अटिटिषति। अशिशिषति। अरिरिषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजादेः) अच् जिसके आदि में है उस धातु के अवयव भूत (द्वितीयस्य) द्वितीय एकाच् वाले समुदाय को (द्वे) द्वित्व होता है। यह **'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे'** (६।१।१३) से पहले-पहले अधिकार है।*

*उदा०-**अटिटिषति।** वह घूमना चाहता है। **अशिशिषति।** वह खाना चाहता है। **अरिरिषति।** वह प्राप्त करना चाहता है।*

सिद्धि-(१) अटिटिषति। अट्+सन्। अट्+इट्+स। अट्+इ+ष। अटिष।। अटिष् टिष् अ। अटिटिष+लट्। अटिटिष्+तिप्। अटिटिष+शप्+ति। अटिटिष+अ+ति। अटिटिषति।

यहां 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से उसे 'इट्' आगम, 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से उसे षत्व होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से द्वित्व की प्राप्ति होने पर इस सूत्र से अजादि धातु के अवयवभूत द्वित्व एकाच् 'टिष्' को द्वित्व होता है, प्रथम अच् अकार को नहीं। 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से 'अटिटिष' की धातु संज्ञा होकर 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'अटिटिष' धातु से 'लट्' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से अकार को पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'अश भोजने' (क्र्या०प०) धातु से-अशिशिषति।

(२) अरिरिषति। यहां 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय करने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ऋ' को 'अ' गुण और 'उरण् रपरः' से उसे रपरत्व 'अर्' होता है। 'अर्' को पूर्ववत् 'इट्' आगम होता है। पश्चात् 'अरिष्' धातु को पूर्ववत् कार्य होता है।

द्विवर्चन-प्रतिषेधः—

(३) न न्द्राः संयोगादयः।३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, न्द्राः १।३ संयोगादयः १।३।

स०-नश्च दश्च रश्च ते-न्द्राः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। संयोगस्य आदिः संयोगादिः, ते-संयोगादयः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-द्वे, एकाचः, अजादेः, द्वितीयस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अजादेर्द्वितीयस्यैकाचः संयोगादयो न्द्रा द्वे न।

अर्थः-अजादेर्धातोरवयवस्य द्वितीयस्यैकाचः संयोगादयो न्द्रा न द्विरुच्यन्ते, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-(**नकारः**) उन्दिदिषति। (**दकारः**) अड्डिडिषति। (**रेफः**) अर्चिचिषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजादेः) अच् जिसके आदि में है उस धातु के अवयवभूत (द्वितीयस्य) द्वितीय (एकाचः) एकाच् समुदाय के (संयोगादयः) संयोग के आदि में विद्यमान (न्द्राः) नकार, दकार और रेफ को (द्वे) द्वित्व (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नकार) उन्दिदिषति। वह गीला करना चाहता है। (दकार) अड्डिडिषति। वह अभियोग=संयुक्त करना चाहता है। (रेफः) अर्चिचिषति। वह पूजा करना चाहता है।

सिद्धि-(१) उन्दिदिषति। यहां 'उन्दी क्लेदने' (रु०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'इट्' आगम करने पर अजादि 'उन्दिष' धातु के द्वितीय एकाच् अवयव 'न्दिष्' को द्वित्व प्राप्त होता है किन्तु यहां संयोग के आदि में विद्यमान नकार के द्वित्व का इस सूत्र से प्रतिषेध होने से 'उन्दिष' धातु के द्वितीय एकाच् अवयव 'दिष्' को द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) अड्डिडिषति। यहां 'अड्ड' (अद्ड) अभियोगे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'इट्' आगम करने पर अजादि 'अड्डिष' धातु के द्वितीय एकाच् अवयव 'द्डिष्' को द्वित्व प्राप्त होता है किन्तु यहां संयोग के आदि में विद्यमान दकार के द्वित्व का इस सूत्र से प्रतिषेध होने से 'अड्डिष' धातु के एकाच् अवयव 'डिष्' को द्वित्व होता है। 'अद्ड' धातु में प्रथम दकार है उसे 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से डकार होकर 'अड्ड' रूप ही दिखाई देता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अर्चिचिषति। यहां 'अर्च पूजायाम्' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'इट्' आगम करने पर अजादि 'अर्चिष' धातु के द्वितीय एकाच् अवयव 'र्चिष्' को द्वित्व प्राप्त होता है किन्तु यहां संयोग के आदि में विद्यमान रेफ के द्वित्व का इस सूत्र से प्रतिषेध होने से 'अर्चिष' धातु के एकाच् अवयव 'चिष्' को द्वितीय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अभ्यास-संज्ञा–

(४) पूर्वोऽभ्यासः।४।

प०वि०–पूर्वः १।१ अभ्यासः १।१।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते, तच्चार्थवशादिह षष्ठ्यन्तं जायते।

अन्वयः–ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्यासः।

अर्थः–अस्मिन् प्रकरणे ये द्वे विहिते तयोर्यः पूर्वोऽवयवः सोऽभ्याससंज्ञको भवति।

उदा०–पपाच। पिपक्षति। पापच्यते। जुहोति। अपीपचत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-इस द्विर्वचन प्रकरण में जो (द्वे) द्वित्व विधान किया गया है उन दोनों में जो (पूर्वः) पूर्व अवयव है उसकी (अभ्यासः) अभ्यास संज्ञा होती है।*

उदा०-**पपाच।** उसने पकाया। **पिपक्षति।** वह पकाना चाहता है। **पापच्यते।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **जुहोति।** वह यज्ञ करता है। **अपीपचत्।** उसने पकवाया।

सिद्धि-(१) पपाच। पच्+लिट्। पच्+तिप्। पच्+णल्। पच्+पच्+अ। प+पाच्+अ। पपाच।

यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से लिट् प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' से 'ल' के स्थान में तिप् आदेश, '**परस्मैपदानां णलतुसुस०**' (३।४।८२) से तिप् के स्थान में णल् आदेश और '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'पच्' धातु के प्रथम एकाच् अवयव 'पच्' को द्वित्व होता है। द्विरुक्त पूर्व 'पच्' अवयव की इस सूत्र से अभ्यास संज्ञा होती है। '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को पर्जन्यवत् ह्रस्व, '**हलादिः शेषः**' (७।४।६०) से अभ्यास-संज्ञक 'पच्' का आदि हल् 'प्' शेष रहता है। '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से '**प्रकृतिचरां प्रकृतिचरो भवन्ति**' से अभ्यास 'प्' को चर्त्व 'प्' होता है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से अंग की उपधा को वृद्धि होती है।

(२) पिपक्षति। पच्+सन्। पच्+स। पक्ष। पक्ष्+पक्ष। प+पक्ष। पिपक्ष+लट्। पिपक्ष+तिप्। पिपक्ष+शप्+ति। पिपक्ष+अ+ति। पिपक्षति।

यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् सन् प्रत्यय करने पर '**सन्यङोः**' (६।१।९) से सन्नन्त 'पक्ष' धातु को द्वित्व होकर उसके प्रथम एकाच् 'पक्ष्' अवयव की इस सूत्र से अभ्यास संज्ञा होती है। '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) पापच्यते। पच्+यङ्। पच्+य। पच्य। पच्य्+पच्य। पापच्य+लट्। पापच्य+त। पापच्य+शप्+त। पापच्य+अ+ते। पापच्यते।

यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय करने पर '**सन्यङोः**' (६।१।९) से यङन्त 'पच्य' धातु को द्वित्व होकर उसके प्रथम एकाच् 'पच्य्' अवयव की इस सूत्र से अभ्यास संज्ञा होती है। '**दीर्घोऽकितः**' (७।४।८३) से अभ्यास के अकार को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) जुहोति। हु+लट्। हु+तिप्। हु+शप्+ति। हु+०+ति। हु+हु+०+ति। झु+हु+ति। जु+हु+ति। जु+हो+ति। जुहोति।

यहां '**हु दानादनयोः, आदाने च इत्येके**' (जु०प०) धातु से लट् प्रत्यय करने पर '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु होता है। '**श्लौ**' (६।१।१०) से हु धातु को द्वित्व होकर उसके प्रथम एकाच् अवयव 'हु' की इस सूत्र से अभ्यास संज्ञा होती है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चुत्व=चवर्ग झकार और उसे '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से जश्त्व जकार होता है।

*(५) **अपीपचत्।** पच्+णिच्। पाच्+इ। पाचि+लुङ्। अट्+पाचि+ल्। अ+पाचि+च्लि+ल्। अ+पाचि+तिप्। अ+पाचि+चङ्+त्। अ+पाच्+अ+त्। अ+पच्+अ+त्। अ+पच्+पच्+अ+त्। अ+प-पच्+अ+त। अ+पि-पच्+अ+त्। अ+पी-पच्+अ+त्। अपीपचत्।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय करने पर णिजन्त 'पाचि' धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से लुङ् प्रत्यय, **'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'** (६।४।६२) से अट् आगम. **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से च्लि विकरण प्रत्यय, **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से च्लि के स्थान में चङ् आदेश, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप, **'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'** (७।४।१) से अंग की उपधा को ह्रस्वत्व और **'चङि'** (७।४।१) से पच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव 'पच्' को द्वित्व होता है। इस सूत्र से उस पूर्व एकाच् अवयव 'पच्' की अभ्यास संज्ञा होती है। **'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे'** (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर **'सन्यतः'** (७।४।७९) से 'प' अभ्यास के अकार को इकार आदेश और **'दीर्घो लघोः'** (७।४।९४) से उसे दीर्घ होता है।*

अभ्यस्त-संज्ञा—

(५) उभे अभ्यस्तम्।५।

प०वि०-उभे १।२ अभ्यस्तम् १।१।

अनु०-द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञके भवतः।

उदा०-ददति। ददत्। दधतु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-इस द्विर्वचन प्रकरण में जो (द्वे) द्वित्व विधान किया है उन (उभे) दोनों की (अभ्यस्तम्) अभ्यस्त संज्ञा होती है।*

*उदा०-**ददति।** वे दान करते हैं। **ददत्।** वह दान करता हुआ। **दधतु।** वह धारण करे।*

*सिद्धि-**ददति।** दा+लट्। दा+झि। दा+शप्+झि। दा-दा+०+झि। द+दा+० अत् इ। द-द्+अति। ददति।*

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से लट् प्रत्यय और उसके लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७४) से झि-आदेश. **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और उसे **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से श्लु होकर **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'दा' धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होकर उसके द्विरुक्त 'दा-दा' दोनों की इस*

*सूत्र से अभ्यस्त संज्ञा होती है। अभ्यस्त संज्ञा होने से **'अदभ्यस्तात्'** (७।१।४) से झि के झकार को अत् आदेश होता है। और **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से अभ्यस्त धातु के आकार का लोप होता है।*

*(२) **ददत्।** यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से लट् प्रत्यय और **'लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में शतृ आदेश होता है। शेष अभ्यस्त-संज्ञा कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **दधतु।** यहां **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय और उसके लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से तिप् आदेश है। शेष अभ्यस्त-संज्ञा कार्य पूर्ववत् है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास के धकार को जश् दकार आदेश होता है।*

अभ्यस्त-संज्ञा–

(६) जक्षित्यादयः षट्।६।

प०वि०–जक्ष् १।१ इत्यादयः १।३ षट् १।१।

स०–इति आदिर्येषां ते–इत्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अभ्यस्तम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–जक्ष्, इत्यादयश्च षड् अभ्यस्तम्।

अर्थः–जक्ष् धातुः, इत्यादयः=जक्षादयश्चान्ये षड् धातवोऽभ्यस्तसंज्ञका भवन्ति। ते चेमे–

(१) जक्ष भक्षहसनयोः (अदा०प०) ते जक्षति।

(२) जागृ निद्राक्षये (अदा०प०) ते जाग्रति।

(३) दरिद्रा दुर्गतौ (अदा०प०) ते दरिद्रति।

(४) चकासृ दीप्तौ (अदा०प०) ते चकासति।

(५) शासु अनुशिष्टौ (अदा०प०) ते शासति।

(६) दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः (अदा०आ०) ते दीध्यते। स दीध्यत्।

(७) वेवीङ् वेतिना तुल्ये (अदा०आ०) ते वेव्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जक्ष्) जक्ष् यह धातु तथा (इत्यादयः) यह जक्ष जिनके आदि में है उन (षट्) छः धातुओं की (अभ्यस्तम्) अभ्यस्त संज्ञा होती है।*

*उदा०-(१) **ते जक्षति।** वे सब खाते/हसते हैं। **ते जाग्रति।** वे सब जाते हैं। **ते दरिद्रति।** वे सब दरिद्र होते हैं। **ते चकासति।** वे सब चमकते हैं। **ते शासति।** वे सब*

अनुशासन करते हैं। **ते दीध्यते।** वे सब दीप्ति/देवन (क्रीडा आदि) करते हैं। **स दीध्यत्।** वह दीप्ति/देवन करता हुआ। **ते वेव्यते।** वे सब गति आदि करते हैं।

सिद्धि-(१) जक्षति। जक्ष्+लट्। जक्ष्+झि। जक्ष्+शप्+झि। जक्ष्+०+अत् इ। जक्षति।

यहां **'जक्ष भक्षहसनयो:'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से ल के स्थान में झि-आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्य: शप:'** (२।४।७२) से शप् का लुक् होता है। 'जक्ष्' धातु की इस सूत्र से अभ्यस्त संज्ञा होने से **'अदभ्यस्तात्'** (७।१।४) से 'झि' के झकार को अत् आदेश होता है। ऐसे ही-**जाग्रति, चकासति, शासति।**

(२) दीध्यते। दीधीङ्+लट्। दीधी+झ। दीधी+शप्+झ। दीधी+०+अत् अ। दीध्य्+अते। दीध्यते।

यहां **'दीधीङ् दीप्तिदेवनयो:'** (अदा०आ०) धातु से लट् प्रत्यय और **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल' के स्थान में 'झ' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्य: शप:'** (२।४।७२) से शप् का लुक् होता है। 'दीधीङ्' धातु की इस सूत्र से अभ्यस्त संज्ञा होने से **'अदभ्यस्तात्'** (७।१।४) से 'झ' के झकार को अत् आदेश होता है और **'अभ्यस्तानामादि:'** (६।१।१८६) आद्युदात्त स्वर होता है-**दीध्यते।** ऐसे ही 'वेवीङ्' धातु से-**वेव्यते।**

(३) दीध्यत्। दीधीङ्+लट्। दीधी+शतृ। दीधी+शप्+अत्। दीधी+०+अत्। दीध्य्+अत्। दीध्यत्।

यहां 'दीधीङ्' धातु से 'लट्' प्रत्यय **'लट: शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'** (३।२।१२४) से लट् के स्थान में शतृ आदेश, पूर्ववत् शप् विकरण प्रत्यय और उसका लुक् होता है। दीधीङ् धातु की अभ्यस्त संज्ञा होने से **'नाभ्यस्ताच्छतु:'** (७।१।७८) से 'शतृ' प्रत्यय को नुम् आगम नहीं होता है।

अभ्यासस्य दीर्घत्वम्-

(७) तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य।७।

प०वि०-तुजादीनाम् ६।३ दीर्घ: १।१ अभ्यासस्य ६।१।

स०-तुज आदिर्येषां ते तुजादय:, तेषाम्-तुजादीनाम् (बहुव्रीहि:)।

अन्वय:-तुजादीनामभ्यासस्य दीर्घ:।

अर्थ:-तुजादीनाम्=तुजप्रकाराणां धातूनामभ्यासस्य दीर्घो भवति।

अत्र आदिशब्दः प्रकारवचनः, तुजधातोरभ्यासस्य दीर्घो न विहितः, दृश्यते च, ये तथाभूता धातवस्ते तुजादयः, तेषामभ्यासस्य दीर्घः साधुर्भवतीत्यर्थः। तुजादीनां धातूनां छन्दसि प्रत्ययविशेषे एव दीर्घत्वं दृश्यते, ततोऽन्यत्र तु न भवति-तुतोज शबलान् हरीन्।

उदा०-तूतुजानः (ऋ०१।३।६)। मामहानः (तै०सं० ४।६।३।२)। दाधान। अनड्वान् दाधार (शौ०सं० ४।११।१)। मीमाय (शौ०सं० ५।११।३)। स तूताव (ऋ० १।९४।२)। इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तुजादीनाम्) तुज आदि अर्थात् तुज-प्रकारक धातुओं के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*यहां आदि शब्द प्रकारवाची है, तुज धातु के अभ्यास को किसी सूत्र से दीर्घ विधान नहीं किया गया किन्तु दिखाई देता है। जो इस प्रकार की धातु हैं उन्हें तुजादि समझना चाहिये और उनके अभ्यास को दीर्घ व्याकरणशास्त्र से साधु है। तुजादि धातुओं को छन्द में और प्रत्ययविशेष में ही दीर्घ होता है, उससे अन्यत्र नहीं जैसे-**तुतोज शवलान् हरीन्।***

*उदा०-**तूतुजानः** (ऋ० १।३।६)। **मामहानः** (तै०सं० ४।६।३।२)। **दाधान। अनड्वान् दाधार** (शौ०सं० ४।११।१)। **मीमाय** (शौ०सं० ५।११।३)। **स तूताव** (ऋ० १।९४।२)। इत्यादि।*

सिद्धि-(१) तूतुजानः। *तुज+लिट्। तुज्+कानच्। तुज्-तुज्+आन। तु-तुज्+आन। तू-तुज्+आन। तूतुजान+सु। तूतुजानः।*

*यहां **'तुज हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'छन्दसि लिट्'** (३।२।१०५) से लिट् प्रत्यय, **'लिटः कानज् वा'** (३।२।१०६) से लिट् के स्थान में कानच् आदेश, **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से तुज् धातु को द्वित्व और इस सूत्र से अभ्यास को दीर्घ होता है।*

*(२) **मामहानः।** **'मह पूजायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **दाधानः।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **दाधार।** **'धृञ् धारणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय और **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश और उसके स्थान में **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से णल् आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **मीमाय।** **'डुमिञ् प्रक्षेपणे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(६) **तूताव।** **'तु गतिवृद्धिहिंसासु'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

द्विर्वचनम्–

(८) लिटि धातोरनभ्यासस्य।८।

प०वि०–लिटि ७।१ धातोः ६।१ अनभ्यासस्य ६।१।

स०–न विद्यतेऽभ्यासो यस्मिन् सः–अनभ्यासः, तस्य–अनभ्यासस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–एकाचः, द्वे, प्रथमस्य, अजादेः, द्वितीयस्य, न, न्द्राः, संयोगादयः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लिटि अनभ्यासस्य धातोः प्रथमस्यैकाचः, अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्वे, संयोगादयो न्द्राश्च न द्वे।

अर्थः–लिटि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचः, अजादेश्च द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः, संयोगदयो न्द्राश्च न द्विरुच्यन्ते।

उदा०–स पपाच। स पपाठ। स प्रोर्णुनाव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अनभ्यासस्य) अभ्यास से रहित (धातोः) धातु के अवयव भूत (प्रथमस्य) प्रथम (एकाच्) एकाच् समुदाय को तथा (अजादेः) अजादि धातु के (द्वितीयस्य) द्वितीय (एकाचः) एकाच् समुदाय को (द्वे) द्वित्व होता है किन्तु (संयोगादयः) संयोग के आदिभूत नकार, दकार और रेफ को (द्वे) द्वित्व (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**स पपाच।** उसने पकाया। **स पपाठ।** उसने पढ़ाया। **स प्रोर्णुनाव।** उसने आच्छादित किया।*

*सिद्धि–(१) **पपाच** और **पपाठ** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है (६।१।४)।*

*(२) **प्रोर्णुनाव।** प्र+ऊर्णुञ्+लिट्। प्र+ऊर्णु+तिप्। प्र+ऊर्णु+णल्। प्र+उर् नु-नु+अ। प्र+उर् नु-नौ+अ। प्र+उर् णु-नाव। प्रोर्णुनाव।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से तिप् के स्थान में णल् आदेश और इस सूत्र से इस अजादि धातु के द्वितीय अच् समुदाय 'नु' को द्वित्व होता है और **'न न्द्राः संयोगादयः'** (६।१।३) से प्रतिषेध होने से संयोगादि रेफ को द्वित्व नहीं होता है। 'ऊर्णुञ्' को अधोलिखित कारिकावचन से 'णुवत्' मानकर **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः'** (३।१।३६) से आम् प्रत्यय नहीं होता है।*

*का०- **वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम्।***
आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात्॥

द्विर्वचनम्–

(६) सन्यङोः ।६।

प०वि०–सन्-यङो: ६ ।२।

स०–सन् च यङ् च तौ सन्यङौ, तयो:-सन्यङो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–एकाच:, द्वे, प्रथमस्य, अजादे:, द्वितीयस्य, न न्द्रा: संयोगादय:, धातो:, अनभ्यासस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:–सन्नन्तस्य यङन्तस्य चानभ्यासस्य धातोः प्रथमस्यैकाच:, अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्वे, संयोगादयो न्द्रा न।

अर्थ:–सन्नन्तस्य यङन्तस्य चानभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाच:, अजादेश्च द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः, संयोगादयो न्द्राश्च न द्विरुच्यन्ते।

उदा०–**(सन्)** स पिपक्षति। स पिपठिषति। सोऽरिरिषति। स उन्दिदिषति। **(यङ्)** स पापच्यते। सोऽटाट्यते। स यायज्यते। सोऽरार्यते। स प्रोर्णूनयते। अनभ्यासस्येति किम्-जुगुप्सिषते। लोलूयिषते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सन्यङो:) सन्नन्त और यङन्त (अनभ्यासस्य) अभ्यासरहित (धातो:) धातु के अवयव (प्रथमस्य) प्रथम (एकाच:) एकाच् समुदाय को तथा (अजादे:) अजादि (धातो:) धातु के अवयव को (द्वि) द्वित्व होता है किन्तु (संयोगादय:) संयोग के आदिभूत (न्द्रा:) नकार, दकार और रेफ को (द्वि) द्वित्व (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(सन्) स पिपक्षति।** वह पकाना चाहता है। **स पिपठिषति।** वह पढ़ना चाहता है। **सोऽरिरिषति।** वह प्राप्त करना चाहता है। **स उन्दिदिषति।** वह गीला करना चाहता है। **(यङ्) स पापच्यते।** वह पुन:-पुन: पकाता है। **सोऽटाट्यते।** वह पुन:-पुन: घूमता है। **स यायज्यते।** वह पुन:-पुन: यज्ञ करता है। **सोऽरार्यते।** वह पुन:पुन: प्राप्त करता है। **स प्रोर्णूनूयते।** वह पुन:-पुन: आच्छादित करता है।*

*'अनभ्यासस्य' का कथन इसलिये किया गया है कि अभ्यास सहित धातु के प्रथम एकाच् समुदाय आदि को द्वित्व नहीं होता है। जैसे-**जुगुप्सिषते। लोलूयिषते।** साभ्यास जुगुप्स और लोलूय धातु से 'सन्' प्रत्यय करने पर उन्हें द्वित्व नहीं होता है।*

***सिद्धि**-(१) **पिपक्षति** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है (६।१।४)।*

*(२) **अटाट्यते।** यहां **'अट गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादे: क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय प्राप्त नहीं है अत: **वा०-'यङ्विधौ सूचिसूत्रि०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय होता है। इस धातु के अजादि होने से द्वितीय एकाच् समुदाय (ट्य-ट्य) को द्वित्व होता है। ऐसे ही-**अरार्यते।***

द्विर्वचनम्–

(१०) श्लौ।१०।

प०वि०-श्लौ ७।१।

अनु०-एकाचः, द्वे, प्रथमस्य, अजादेः, द्वितीयस्य, न, न्द्राः, संयोगादयः, धातोः, अनभ्यासस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्लावनभ्यासस्य धातोः प्रथमसस्यैकाचः, अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्वे, संयोगादयो न्द्रा न।

अर्थः-श्लौ परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचः, अजादेश्च द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः, संयोगादयो न्द्राश्च न द्विरुच्यन्ते।

उदा०-स जुहोति। स बिभेति। सा जिह्रेति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(श्लौ) श्लु=प्रत्यय-लोप परे होने पर (अनभ्यासस्य) अभ्यास से रहित (धातोः) धातु के अवयव (प्रथमस्य) प्रथम (एकाच्) एकाच् समुदाय को तथा (अजादेः) अजादि धातु के (द्वितीयस्य) द्वितीय एकाच् समुदाय को (द्वि) द्वित्व होता है किन्तु (संयोगादयः) संयोग के आदि में विद्यमान (न्द्राः) नकार, दकार और रेफ को (द्वि) द्वित्व (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**स जुहोति।** वह यज्ञ करता है। **स बिभेति।** वह डरता है। **सा जिह्रेति।** वह लज्जा करती है।*

*सिद्धि-(१) **जुहोति।** इस पद की सिद्धि पूर्ववत् है (६।१।४)।*

*(२) **बिभेति।** '**ञिभी भये**' (जु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **जिह्रेति।** '**ह्री लज्जायाम्**' (जु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

विशेषः *श्लु कोई प्रत्यय नहीं है अपितु '**प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः**' (१।१।६०) से प्रत्यय के अदर्शन (लोप) की यह एक संज्ञाविशेष है।*

द्विर्वचनम्–

(११) चङि।११।

प०वि०-चङि ७।१।

अनु०-एकाचः, द्वे, प्रथमस्य, अजादेः, द्वितीयस्य, न, न्द्राः, संयोगादयः, धातोः, अनभ्यासस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चङि अनभ्यासस्य धातोः प्रथमस्यैकाचः, अजादेर्द्वितीयस्यैकाचो द्वे, संयोगादयो न्द्रा न।

अर्थः-चङि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचः, अजादेश्च द्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः, संयोगादयो न्द्राश्च न द्विरुच्यन्ते।

उदा०-सोऽपीपचत्। सोऽपीपठत्। स आटिटत्। स आशिशत्। स आर्दिदत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चङि) चङ् प्रत्यय परे होने पर (अनभ्यासस्य) अभ्यास से रहित (धातोः) धातु के अवयवभूत (प्रथमस्य) प्रथम (एकाचः) एकाच्समुदाय को (द्वे) द्वित्व होता है तथा (अजादेः) अजादि धातु के (द्वितीयस्य) द्वितीय (एकाचः) एकाच्समुदाय को द्वित्व होता है किन्तु (संयोगादयः) संयोग के आदि में विद्यमान (न्द्राः) न् द् और रेफ को (द्वे) द्वित्व नहीं होता है।*

*उदा०-**सोऽपीपचत्।** उसने पकवाया। **सोऽपीपठत्।** उसने पढ़ाया। **स आटिटत्।** उनसे भ्रमण कराया। **स आशिशत्।** उसने भोजन कराया। **स आर्दिदत्।** उसने गति/याचना कराई।*

*सिद्धि-(१) **अपीपचत्** और **अपीपठत्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है (६।१।४)।*

*(२) **आटिटत्।** यहां **'अट गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से अजादि होने से उसके द्वितीय एकाच् समुदाय 'टि' को द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आशिशत्।** **'अश् भोजने'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **आर्दिदत्।** **'अर्द गतौ याचने च'** (भ्वा०प०) धातु के अजादि होने उसके द्वितीय एकाच् समुदाय 'दि' को द्वित्व होता है और **'न न्द्राः संयोगादयः'** (६।१।३) से प्रतिषेध होने से संयोगादि रेफ को द्वित्व नहीं होता है।*

निपातनम्–

(१२) दाश्वान् साह्वान् मीढ्वाँश्च।१२।

प०वि०-दाश्वान् १।१ साह्वान् १।१ मीढ्वान् १।१ च अव्ययपदम्।

अर्थः-अस्मिन् द्विर्वचनप्रकरणे दाश्वान्, साह्वान्, मीढ्वान् इत्येते शब्दाश्छन्दसि भाषायां चाऽविशेषेण निपात्यन्ते। अत्र एकवचनमप्रधानम्।

उदा०-**(दाश्वान्)** दाश्वांसो दाशुषः सुतम् (ऋ० १।३।७)। **(साह्वान्)** साह्वान् बलाहकः। **(मीढ्वान्)** मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड (ऋ० २।३३।१४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-इस द्विर्वचन-प्रकरण में (दाश्वान्) दाश्वान् (साह्वान्) साह्वान् (मीढ्वान्) मीढ्वान् शब्द (च) भी छन्द और लौकिक भाषा में अविशेष रूप से निपातित हैं। यहां दाश्वान् आदि शब्दों में एकवचन गौण हैं।*

उदा०-(दाश्वान्) दाश्वान् दाशुषः सुतम् (ऋ० १।३।७)। (साह्वान्) साह्वान् बलाहकः। (मीढ्वान्) मीढवस्तोकाय तनयाय मृड (ऋ० २।३३।१४)।

सिद्धि-(१) दाश्वान्। दाश्+लिट्। दाश्+क्वसु। दाश्+वस्। दाश्वस्+सु। दाशवनुम् स्+स्। दाश्वन्स्+स्। दाश्वान्स्+०। दाश्वान्।

*यहां 'दाशृ दाने' (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय और 'क्वसुश्च' से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से प्राप्त द्वित्व और '**आर्धधातुस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से प्राप्त इट् आगम का अभाव इस सूत्र से निपातित है। क्वसु प्रत्यय के उगित् होने से '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से नुम् आगम, '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से सकार का लोप होता है।*

*(२) **साह्वान्**। यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'क्सु' आदेश है। धातु को परस्मैपद, उपधा को दीर्घ, द्विर्वचन और इट् आगम का अभाव निपातित है।*

*(३) **मीढ्वान्**। यहां '**मिह सेचने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् लिट् प्रत्यय और उसके स्थान में क्वसु आदेश है। द्विर्वचन, इट् आगम का अभाव, उपधा को दीर्घ और हकार को ढकार आदेश निपातित है।*

।। इति द्विर्वचनप्रकरणम्।।

सम्प्रसारणप्रकरणम्

ष्यङः सम्प्रसारणम्–

(१) ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे।१३।

प०वि०-ष्यङः ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ पुत्रपत्योः ७।२ तत्पुरुषे ७।१।

स०-पुत्रश्च पतिश्च तौ पुत्रपती, तयोः-पुत्रपत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तत्पुरुषे समासे पुत्रपत्योः ष्यङः सम्प्रसारणम्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे पुत्रपत्योरुत्तरपदयोः ष्यङः सम्प्रसारणं भवति। यणः **स्थाने इक्-आदेशो भवतीत्यर्थः**।

उदा०-(**पुत्र:**) करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः-करीषगन्धिः। करीषगन्धेरपत्यम्-कारीषगन्ध्यः, स्त्री चेत्-कारीषगन्ध्या, कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः-कारीषगन्धीपुत्रः। कौमुदगन्धीपुत्रः। (**पतिः**) कारीषगन्धीपतिः, कौमुदगन्धीपतिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पुत्रपत्योः) पुत्र, पति शब्द (उत्तरपदयोः) उत्तरपद होने पर (ष्यङः) ष्यङ्प्रत्यय को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् यण् के स्थान में इक् आदेश होता है।*

*उदा०-**(पुत्र)** करीष=शुष्क गोमय के गन्ध के समान गन्ध है जिसका वह-करीषगन्ध। करीषगन्ध का अपत्य=पुत्र कारीषगन्ध्य, यदि स्त्री हो तो-कारीगन्ध्या। कारीषगन्ध्या का पुत्र-कारीषगन्धीपुत्र। कौमुदगन्धीपुत्र। **(पति)** कारीषगन्धीपति। कौमुदगन्धीपति।*

सिद्धि-कारीषगन्धीपुत्र। *करीष+सु+गन्ध+सु। करीषगन्धिः करीषगन्धि+अण्। कारीषगन्ध्+अ। कारीषगन्ध्+ष्यङ्। कारीषगन्ध्+य। कारीषगन्ध्य+टाप्। कारीषगन्ध्या+ङस्+पुत्र+सु। कारीषगन्ध् इ आ+पुत्र। कारीषगन्धि+पुत्र। कारीषगन्धी+पुत्र। कारीषगन्धीपुत्र+सु। कारीषगन्धीपुत्र।*

*यहां प्रथम करीष और गन्ध शब्दों का बहुव्रीहि समास होने पर **'उपमानाच्च'** (५।४।१३७) से गन्ध शब्द को समासान्त इकार आदेश होकर करीषगन्धि शब्द बनता है। करीषगन्धि शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय और उसके स्थान में **'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे'** (४।१।७८) से ष्यङ् आदेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय करने पर करीषगन्ध्या और उसका पुत्र शब्द के साथ षष्ठीसमास होने पर इस सूत्र से ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश (इ) होकर **'सम्प्रसारणस्य'** (६।३।१३९) से इकार को दीर्घ होता है। इस प्रकार 'कारीषगन्धीपुत्रः' शब्द सिद्ध होता है। ऐसे ही-**कौमुदगन्धीपुत्रः।** पति शब्द उत्तरपद होने पर-**कारीषगन्धीपतिः, कौमुदगन्धीपतिः।***

ष्यङः सम्प्रसारणम्-

(२) बन्धुनि बहुव्रीहौ।१४।

प०वि०-बन्धुनि ७।१ बहुव्रीहौ ७।१।

अनु०-ष्यङः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ बन्धुनि ष्यङः सम्प्रसारणम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे बन्धुशब्दे उत्तरपदे ष्यङः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-कारीषगन्ध्या बन्धुर्यस्य सः-कारीषगन्धीबन्धुः। कौमुदगन्धीबन्धुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (बन्धुनि) बन्धु शब्द उत्तरपद होने पर (ष्यङ्) ष्यङ् को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-कारीषगन्ध्या नारी है बन्धु जिसकी वह-कारीषगन्धीबन्धु। कौमुदगन्ध्या नारी है बन्धु जिसकी वह-कौमुदगन्धीबन्धु।

*सिद्धि-**कारीषगन्धीबन्धु।** यहां कारीषगन्ध्या और बन्धु शब्दों का बहुव्रीहि समास है। बन्धु शब्द उत्तरपद होने पर इस सूत्र से ष्यङ् को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कौमुदगन्धीबन्धुः।***

किति सम्प्रसारणम्-

(३) वचिस्वपियजादीनां किति।१५।

प०वि०-वचि-स्वपि-यजादीनाम् ६।३ किति ७।१।

स०-यज आदिर्येषां ते यजादयः, वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्च ते वचिस्वपियजादयः, तेषाम्-वचिस्वपियजादीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते, ष्यङ इति निवृत्तम्।

अन्वयः-वचिस्वपियजादीनां धातूनां किति सम्प्रसारणम्।

अर्थः-वचिस्वपियजादीनां धातूनां किति प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-**(वचिः)** उक्तः, उक्तवान्। **(स्वपिः)** सुप्तः, सुप्तवान्। **(यजादिः)** इष्टः, इष्टवान्। **(वप)** उप्तः, उप्तवान्। इत्यादिकम्।

यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (उ०)। डुवप बीजसन्ताने छेदने च (उ०)। वह प्रापणे (उ०)। वस निवासे (प०)। वेञ् तन्तुसन्ताने (उ०) व्येञ् संवरणे (उ०)। ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च (उ०)। वद व्यक्तायां वाचि (प०)। टुओश्वि गतिवृद्ध्योः (प०)। इति भ्वाद्यन्तर्गतो यजादिगणः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वचिस्वपियजादीनाम्) वच्, स्वप् और यजादि (धातोः) धातुओं को (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण **होता है।***

उदा०-(वचिः) उक्तः, उक्तवान्। उसने कहा। (स्वपिः) सुप्तः, सुप्तवान्। वह सो गया। (यजादिः) इष्टः, इष्टवान्। उसने यज्ञ किया। (वप) उप्तः, उप्तवान्। उसने बीज बोया/काटा।

सिद्धि-(१) उक्तः। वच्+क्त। वच्+त। उ अच्+त। उच्+त। उक्+त। उक्त+सु। उक्तः।

यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'निष्ठा' (२।२।३६) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। 'क्त' प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'वच्' के वकार को उकार सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से-सुप्तः। 'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च' (भ्वा०उ०) धातु से-उप्तः।

(२) उक्तवान्। यहां पूर्वोक्त 'वच्' धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक क्तवतु प्रत्यय है। 'क्तवतु' प्रत्यय के कित् होने से 'वच्' के वकार को उकार सम्प्रसारण और पूर्ववत् अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (६।४।१४) से उपधा को दीर्घ और प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' से नुम् आगम, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।२।६७) से सु का लोप और 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से तकार का लोप होता है। ऐसे ही 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से-सुप्तवान्। 'डुवप् बीजसन्ताने छेदने च' (भ्वा०उ०) धातु से-उप्तवान्।

(३) इष्टः। यज्+क्त। यज्+त। इ अ ज्+त। इज्+त। इष्+ट। इष्ट+सु। इष्टः।

यहां 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। क्त प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'यज्' के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से यज् के जकार को षकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टकार आदेश होता है।

(४) इष्टवान्। यहां पूर्वोक्त 'यज्' धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक 'क्तवतु' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *यजादि धातु भ्वादिगण के अन्तर्गत हैं। उन्हें संस्कृतभाग में देख लेवें।*

ङिति किति च सम्प्रसारणम्-

(४) ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च।१६।

प०वि०-ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनाम् ६।३ ङिति ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-ग्रहिश्च ज्याश्च वयिश्च व्यधिश्च वष्टिश्च विचतिश्च वृश्चतिश्च पृच्छतिश्च भृज्जतिश्च ते-ग्रहि०भृज्जतयः, तेषाम्-ग्रहि०भृज्जतीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, किति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहि०भृज्जतीनां धातूनां ङिति किति च सम्प्रसारणम्।

अर्थः-ग्रहि-आदीनां धातूनां ङिति किति च प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति। **उदाहरणम्**-

	धातु	कित्	ङित्
(१)	ग्रहिः	गृहीतः, गृहीतवान्	गृह्णाति, जरीगृह्यते।
		(ग्रहण किया)	(ग्रहण करता है, पुनः-पुनः ग्रहण करता है)।
(२)	ज्याः	जीनः, जीनवान्	जिनाति, जेजीयते।
		(वृद्ध होगया)	(वृद्ध होता है, अधिक वृद्ध होता है)।
(३)	वयिः	ऊयतुः, ऊयुः	
		उन दोनों ने/उन सबने कपड़ा बुना।	
(४)	व्यधिः	विद्धः, विद्धवान्	विध्यति, वेविध्यते
		(ताडन किया)	(ताडन करता है, पुनः-पुनः- ताडन करता है)।
(५)	वष्टि	उशितः, उशितवान्	उष्टः, उशन्ति
		(कामना की)	(वे दानों/वे सब कामना करते हैं)।
(६)	विचतिः	विचितः, विचितवान्	विचति, वेविच्यते
		(ठग लिया)	(ठगता है, पुनः-पुनः ठगता है)।
(७)	वृश्चतिः	वृक्णः, वृक्णवान्	वृश्चति, वरीवृश्च्यते
		(छेदन किया)	(काटता है, पुनः-पुनः काटता है)।
(८)	पृच्छतिः	पृष्टः, पृष्टवान्	पृच्छति, परीपृच्छ्यते
		(जिज्ञासा की)	(पूछता है, पुनः-पुनः पूछता है)।
(९)	भृज्जति	भृष्टः, भृष्टवान्	भृज्जति, बरीभृज्यते
		(पकाया, भूना)	(पकाता है, पुनः-पुनः पकाता है, भूनता है)।

आर्यभाषाः **अर्थ**-(ग्रहि०भृज्जतीनाम्) ग्रहि, ज्या, वयि, व्यधि, वष्टि, विचति, वृश्चति, पृच्छति, भृज्जति (धातोः) धातुओं को (ङिति) ङित् (च) और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) **गृहीतः।** यहां **'ग्रह उपदाने'** (क्र्या०उ०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'ग्रह' के रेफ को ऋकार सम्प्रसारण होता है। **'ग्रहोऽलिटि दीर्घः'** (७।२।३७) से इट् आगम को दीर्घ होता है।

(२) **गृहीतवान्।** यहां पूर्वोक्त 'ग्रह' धातु से क्तवतु प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **गृह्णाति।** यहां पूर्वोक्त 'ग्रह' धातु से लट् प्रत्यय और **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से श्ना विकरण प्रत्यय है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से श्ना प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से ग्रह् धातु को पूर्ववत् सम्प्रसारण होता है।

(४) **जरीगृह्यते।** यहां पूर्वोक्त 'ग्रह्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने 'ग्रह्' धातु को इस इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। **'रीगृदुपधस्य च'** (७।४।९०) से अभ्यास को रीक् आगम होता है।

(५) **जीनः।** यहां **'ज्या वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'ज्या' धातु के यकार को इकार सम्प्रसारण और **'हलः'** (६।४।२) से उसे दीर्घ होता है। **'ल्वादिभ्यः'** (८।२।४४) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।

(६) **जिनाति।** यहां पूर्वोक्त 'ज्या' धातु से लट् प्रत्यय है और पूर्ववत् 'श्ना' विकरण प्रत्यय होता है। श्ना प्रत्यय के **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से ङित् होने से 'ज्या' धातु को सम्प्रसारण होता है।

(७) **जेजीयते।** यहां पूर्वोक्त 'ज्या' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से 'ज्या' धातु को सम्प्रसारण (जि) होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'जि' को द्वित्व और **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है।

(८) **ऊयतुः।** वेञ्+लिट्। वयि+तस्। वय्+अतुस्। उ अ य्+अतुस्। उय्+अतुस्। उय्-उय्+अतुस्। उ-उय्+अतुस्। ऊयतुः।

यहां **'वेञ् तन्तुसन्ताने'** (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय है। **'वेञो वयिः'** (२।४।४१) से वेञ् के स्थान में वयि आदेश होता है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और **'परस्मैपदानां णलतुसुस०'** (३।४।८२) से तस्

के स्थान में अतुस् आदेश है। 'असंयोगाल्लिट् कित्' (१।२।५) से तस् प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से वय् के वकार को उकार सम्प्रसारण होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से द्वित्व और **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९६) से दीर्घ होता है। ऐसे ही उस् प्रत्यय करने पर-**ऊयुः**।

वेञ् धातु के स्थान में **'वेञो वयिः'** (२।४।४१) से लिट् आर्धधातुक विषय में वयि आदेश होता है और वह लिट् **'असंयोगाल्लिट् कित्'** (१।२।५) से किद्वत् होता है, ङित् नहीं। अतः यहां कित् का ही उदाहरण दिया है, ङित् का नहीं।

(९) **विद्धः**। व्यध्+क्त। व्यध्+त। व् इ अध्+त। विध्+त। विध्+ध। विद्+ध। विद्ध+सु। विद्धः।

यहां **'व्यध ताडने'** (दि०प०) धातु से इस सूत्र से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से 'व्यध्' धातु के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५२) से धकार को जश् दकार आदेश होता है। ऐसे ही क्तवतु प्रत्यय करने पर-**विद्धवान्**

(१०) **विध्यति**। यहां पूर्वोक्त 'व्यध्' धातु से **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से श्यन् विकरण प्रत्यय है। श्यन् के पूर्ववत् ङित् होने से इस सूत्र से 'व्यध्' धातु को सम्प्रसारण होता है।

(११) **वेविध्यते**। यहां पूर्वोक्त 'व्यध्' धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से व्यध् धातु को सम्प्रसारण होता है।

(१२) **उशितः**। यहां **'वश कान्तौ'** (अदा०प०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'वश्' धातु के वकार को उकार सम्प्रसारण होता है। ऐसे ही क्तवतु प्रत्यय करने पर-**उशितवान्**।

(१३) **उष्टः**। यहां पूर्वोक्त 'वश्' धातु से लट् प्रत्यय और उसके लकार के स्थान पर **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तस्' आदेश है। 'तस्' प्रत्यय के **'सार्वधातुकमपित्०'** (१।२।४) से ङित् होने से इस सूत्र से वश् धातु को सम्प्रसारण होता है। ऐसे ही झि प्रत्यय करने पर-**उशन्ति**।

(१४) **विचितः**। यहां **'व्यच व्याजीकरणे'** (तु०प०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'व्यच्' धातु के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। ऐसे ही क्तवतु प्रत्यय करने पर-**विचितवान्**।

(१५) **विचति**। यहां पूर्वोक्त 'व्यच्' धातु से लट् प्रत्यय और **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश और **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय है। 'श' प्रत्यय के **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से ङित् होने से इस सूत्र से व्यच् धातु को सम्प्रसारण होता है।

(१६) **वेविच्यते।** यहां पूर्वोक्त 'व्यच्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'व्यच्' धातु को सम्प्रसारण होता है।

(१७) **वृक्णः।** ओव्रश्चू+क्त। वृश्च्+त। वृश्च्+न। वृच्+न। वृक्+न। वृक्+ण। वृक्णः+सु। वृक्णः।

यहां **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से 'व्रश्च्' के रेफ को ऋकार सम्प्रसारण होता है। **'ओदितश्च'** (७।२।१६) से क्त के तकार को नकार आदेश होता है। **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से संयोगादि सकार (श्) का लोप **'चोः कुः'** (८।२।३०) से चकार को ककार और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से नकार को णत्व होता है। ऐसे ही क्तवतु प्रत्यय करने पर-**वृक्णवान्।**

(१८) **वृश्चति।** यहां पूर्वोक्त 'व्रश्च्' धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में तिप् आदेश है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'श' प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'व्रश्च्' धातु को सम्प्रसारण होता है।

(१९) **वरीवृश्च्यते।** यहां पूर्वोक्त 'वृश्च्' धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'वृश्च्' धातु को सम्प्रसारण होता है। यहां **'रीगृदुपधस्य च'** (७।४।९०) से रीक् आगम प्राप्त नहीं अतः वा०- **'रीगृत्वत इति वक्तव्यम्'** (७।४।९०) से अभ्यास को रीक् आगम होता है।

(२०) **पृष्टः।** प्रच्छ्+क्त। पृच्छ्+त। प्रश्+त। प्रष्+ट। प्रष्ट+सु। प्रष्टः।

यहां **'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्'** (तु०प०) धातु से क्त प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से 'प्रच्छ्' धातु के रेफ को ऋकार सम्प्रसारण होता है। **'छ्वोः शूडनुनासिके च'** (६।४।१९) से 'च्छ्' के स्थान में 'श्' आदेश, **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से श् को ष् आदेश और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) से तकार को टकार आदेश होता है। ऐसे ही क्तवतु प्रत्यय करने पर-**पृष्टवान्।**

(२१) **पृच्छति।** यहां पूर्वोक्त 'प्रच्छ्' धातु से लट् प्रत्यय और उसके स्थान में तिप् आदेश है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'श' प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'प्रच्छ्' धातु को सम्प्रसारण होता है।

(२२) **परीपृच्छयते।** यहां पूर्वोक्त 'प्रच्छ' धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'प्रच्छ' धातु को सम्प्रसारण होता। **'रीगृदुपधस्य च'** (७।४।९०) से अभ्यास को रीक् आगम होता है।

(२३) **भृष्टः।** यहां **'भ्रस्ज पाके'** (तु०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। प्रत्यय के कित् होने से 'भ्रस्ज' धातु के रेफ को ऋकार सम्प्रसारण होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'**

*(८।२।६) से भ्रस्ज् के जकार को षकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से तकार को टकार आदेश होता। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'भ्रस्ज्' के संयोगादि सकार का लोप होता है। ऐसे ही क्तवतु करने पर-**भ्रष्टवान्।***

*(२४) **भृज्जति।** यहां पूर्वोक्त 'भ्रस्ज' धातु लट् प्रत्यय और उसके लकार के स्थान में तिप् आदेश है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'श' प्रत्यय के ङित् होने से 'भ्रस्ज्' धातु को सम्प्रसारण होता है। यहां 'भ्रस्ज्' धातु के सकार 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से जश् दकार और उसे 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से चवर्ग जकार होता है।*

*(२५) **बरीभृज्यते।** यहां पूर्वोक्त 'भ्रस्ज' धातु से 'धातोरेकाचो०' (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से इस सूत्र से 'भ्रस्ज' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'रीगृदुपधस्य च' (७।४।९०) से अभ्यास को रीक् आगम होता है।*

अभ्यासस्य सम्प्रसारणम्–

(५) लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्।१७।

प०वि०-लिटि ७।१ अभ्यासस्य ६।१ उभयेषाम् ६।३।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उभयेषां धातूनां लिटि अभ्यासस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थः-उभयेषाम्=वच्यादीनां ग्रह्यादीनां च धातूनां लिटि प्रत्यये परतोऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः	लिट्		
(१) वचिः	(१) स उवाच	(१)	(१) उसने कहा।
	(२) त्वम् उवचिथ।		(२) तूने कहा।
(२) स्वपिः	(१) स सुष्वाप	(२)	(१) वह सोया।
	(२) त्वं सुष्वपिथ।		(२) तू सोया।
(३) यज	(१) स इयाज	(३)	(१) उसने यज्ञ किया।
	(२) त्वम् इयजिथ		(२) तूने यज्ञ किया।
(४) डुवप्	(१) स उवाप	(४)	(१) उसने बोया/काटा।
	(२) त्वम् उपपिथ		(२) तूने बोया/काटा।

	ग्रह्यादीनाम्		ग्रहि-आदि
(१) ग्रहिः	(१) स जग्राह	(१)	(१) उसने ग्रहण किया।
	(२) त्वं जग्रहिथ		(२) तूने ग्रहण किया।
(२) ज्या	(१) स जिज्यौ	(२)	(१) वह वृद्ध होगया।
	(२) त्वं जिज्यिथ		(२) तू वृद्ध होगया।
(३) वयिः	(१) स उवाय	(३)	(१) उसने कपड़ा बुना।
	(२) त्वं उवयिथ		(२) तूने कपड़ा बुना।
(४) व्यधिः	(१) स विव्याध	(४)	(१) उसने ताडन किया।
	(२) त्वं विव्यधिथ		(२) तूने ताडन किया।
(५) वष्टिः	(१) स उवाश	(५)	(१) उसने कामना की।
	(२) त्वम् उवशिथ		(२) तूने कामना की।
(६) विचतिः	(१) स विव्याच	(६)	(१) उसने ठगा।
	(२) त्वं विव्यचिथ		(२) तूने ठगा।
(७) वृश्चतिः	(१) स वव्रश्च	(७)	(१) उसने काटा।
	(२) त्वं वव्रश्चिथ		(२) तूने काटा।
(८) पृच्छतिः	(१) स पप्रच्छ	(८)	(१) उसने पूछा।
	(२) त्वं जग्रहिथ		(२) तूने पूछा।
(९) भृज्जतिः	(१) स बभ्रज	(९)	(१) उसने पकाया।
	(२) त्वं बभ्रजिथ		(२) तूने पकाया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उभयेषाम्) वचि-आदि तथा ग्रहि-आदि दोनों (धातोः) धातुओं के (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अभ्यासस्य) अभ्यास को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) *उवाच। वच्+लिट्। वच्+तिप्। वच्+णल्। वच्+वच्+अ। व+वाच्+अ। उ अ+वाच्+अ। उ+वाच्+अ। उवाच।*

*यहां '**वच परिभाषणे**' (अ०प०) धातु से लिट् प्रत्यय है। उसके लकार के स्थान में '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से तिप् आदेश और उसे '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से णल् अदेश होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'वच्' धातु को द्वित्व*

होकर इस सूत्र से उसके अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से अंग को वृद्धि होती है। ऐसे ही थल् प्रत्यय करने पर-**उवचिथ**। इसके सहाय से **'सुष्वाप'** आदि पदों की सिद्धि करें।

(२) **जग्राह**। ग्रह्+लिट्। ग्रह्+तिप्। ग्रह्+णल्। ग्रह्+ग्रह्+अ। ग+ग्राह्+अ। ज+ग्राह+अ। जग्राह।

यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से लिट् प्रत्यय है। अभ्यास के गकार को **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) जश् जकार होता है। यहां अभ्यास को सम्प्रसारण-कार्य सम्भव नहीं है। ऐसे ही थल् प्रत्यय करने पर-**जग्रहिथ**।

(३) **जिज्यौ**। ज्या+लिट्। ज्या+तिप्। ज्या+णल्। ज्या+अ। ज्य्+औ। ज्या+ज्या+औ। ज्य+ज्या+औ। ज् इ अ+ज्य्+औ। जि+ज्यौ। जिज्यौ।

यहां **'ज्या वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से लिट् प्रत्यय और उसके स्थान में पूर्ववत् तिप् और णल् आदेश होकर **'आत औ णलः'** (७।१।३४) से णल् को औ-आदेश होता है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से ज्या का आकार का लोप हो जाता है। **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से उस लोपादेश को स्थानिवत् मानकर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'ज्या' को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'ज्या' के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही थल् प्रत्यय करने पर-**जिज्यिथ**।

(४) उवाय, **विव्याध**, उवाश, **विव्याच** पदों की सिद्धि **'उवाच'** की उपरिलिखित सिद्धि के सहाय से करें।

(५) **वव्रश्च**। व्रश्च्+लिट्। व्रश्च्+तिप्। व्रश्च+णल्। व्रश्च्+अ। व्रश्च्+व्रश्च्+अ। व् ऋ अ श् च्+व्रश्च्+अ। व् अर् अ श् च्+व्रश्च्+आ। व+व्रश्च्+अ। वव्रश्च।

यहां **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से लिट् प्रत्यय है। सूत्र में **'उभयेषाम्'** पद के ग्रहण करने से **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) को रोककर प्रथम 'व्रश्च्' के रेफ को सम्प्रसारण होता है। 'व्रश्च्' के रेफ को सम्प्रसारण करके **'उरत्'** (७।४।६६) से उसे अकार आदेश और **'उरण् रपरः'** (१।१।५०) से रपरत्व किया जाता है तब **'उरत्'** (७।४।६६) के **'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ'** (१।१।५६) से स्थानिवत् होने से **'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्'** (६।१।३६) से वकार को सम्प्रसारण नहीं होता है। अतः **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से आदि हल् वकार शेष रहता है तथा अन्य समस्त हलों (र् श् च्) का लोप हो जाता है।

(६) **पप्रच्छ**। प्रच्छ्+लिट्। प्रच्छ्+तिप्। प्रच्छ्+णल्। प्रच्छ्+अ। प्रच्छ्+प्रच्छ्+अ। प् ऋ अ च् छ्+प्रच्छ्+अ। प् अर् अ च् छ्+प्रच्छ्+अ। प+प्रच्छ्+अ। पप्रच्छ।

यहां **'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्'** (तु०प०) धातु से लिट् प्रत्यय है। इसके अभ्यास 'प्रच्छ्' को इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। शेष कार्य 'वव्रश्च' के समान है।

(७) बभ्रज। भ्रस्ज्+लिट्। भ्रस्ज्+तिप्। भ्रस्ज्+णल्। भ्रस्ज्+अ। भ्रस्ज्+भ्रस्ज्+अ। भ् ऋ अ स् ज्+भ्रस्ज्+अ। भ् अर् अ स् ज्+भ्रस्ज्+अ। भ+भ्रस्ज्+अ। ब+भ्र०ज्+अ। बभ्रज।

यहां 'भ्रस्ज पाके' (तु०प०) धातु से लिट् प्रत्यय है। इसके अभ्यास 'भ्रस्ज्' को इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'भ्रस्ज्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य 'वव्रश्च' के समान है।

चङि सम्प्रसारणम्–

(६) स्वापेश्चङि।१८।

प०वि०–स्वापेः ६।१ चङि ७।१।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्वापेर्धातोश्चङि सम्प्रसारणम्।

अर्थः–स्वापि-धातोश्चङि प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति। अत्र 'स्वापेः' इत्यनेन स्वपधातोर्णिजन्तस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०–असूषुपत्। असूषुपताम्। असूषुपन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्वापेः) स्वापि (धातोः) धातु को (चङि) चङ् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०–**असूषुपत्।** उसने सुलाया। **असूषुपताम्।** उन दोनों ने सुलाया। **असूषुपन्।** उन सबने सुलाया।*

सिद्धि-असूषुपत्। *ञिष्वप्+णिच्। स्वप्+इ। स्वाप्+इ। स्वापि+लुङ्। अट्+स्वापि+च्लि+ल्। अ+स्वापि+चङ्+तिप्। अ+स्वापि+अ+ति। अ+स्वाप्+अ+त्। अ+स्वप्+अ+त्। अ+स् उ अ प्+अ+त्। अ+सुप्+अ+त्। अ+सुप्-सुप्+अ+त्। अ+सु+सुप्+अ+त्। अ+सू+षुप्+अ+त्। असूषुपत्।*

*यहां 'ञिष्वप् शये' (अ०प०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। णिजन्त 'स्वापि' धातु से लुङ् प्रत्यय करने पर 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से च्लि के स्थान में 'चङ्' आदेश, 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप, 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से 'स्वाप्' की उपधा को ह्रस्व होता है। 'चङि' से प्राप्त द्विर्वचन से पूर्व 'स्वप्' को सम्प्रसारण होकर पश्चात् द्विर्वचन होता है। 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से अभ्यास के उकार को दीर्घ और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही-**असूषुताम्, असूषुपन्।***

यङि सम्प्रसारणम्–

(७) स्वपिस्यमिव्येञां यङि।१६।

प०वि०–स्वपि-स्यमि-व्येञाम् ६।३ यङि ७।१।

स०–स्वपिश्च स्यमिश्च व्येञ् च ते स्वपिस्यमिव्येञः, तेषाम्-स्वपिस्यमिव्येञाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्वपिस्यमिव्येञां धातूनां यङि सम्प्रसारणम्।

अर्थः–स्वपिस्यमिव्येञां धातूनां यङि प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–**(स्वपिः)** सोषुप्यते। **(स्यमिः)** सेसिम्यते। **(व्येञ्)** वेवीयते।

आर्यभाषाः अर्थ–*(स्वपिस्यमिव्येञाम्) स्वपि, स्यमि, व्येञ् (धातोः) धातुओं को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०–(स्वपिः) ***सोषुप्यते।*** *वह पुनः-पुनः/अधिक सोता है।* ***(स्यमिः) सेसिम्यते।*** *वह पुनः-पुनः/अधिक शब्द करता है।* ***(व्येञ्) वेवीयते।*** *वह पुनः-पुनः/अधिक आच्छादित करता है।*

सिद्धि–(१) ***सोषुप्यते।*** *स्वप्+यङ्। स्वप्+य। स् उ अ प्+य। सुप्+य। सुप्य+सुप्य। सु+सुप्य। सो+षुप्य। सोषुप्य+लट्। सोषुप्य+त। सोषुप्य+शप्+त। सोषुप्य+अ+ते। सोषुप्यते।*

यहां ***'ञिष्वप् शये'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे'*** *(३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से यङ् प्रत्यय परे होने पर 'स्वप्' धातु को सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात्* ***'सन्यङोः'*** *(६।१।९) से उसे द्वित्व,* ***'गुणो यङ्लुकोः'*** *(७।४।८२) से अभ्यास के उकार को गुण और* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से षत्व होता है। 'सोषुप्य' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही* ***'स्यमु शब्दे'*** *(भ्वा०प०) धातु से सेसिम्यते और* ***'व्येञ् संवरणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से–***वेवीयते।***

यङि सम्प्रसारण-प्रतिषेधः–

(८) न वशः।२०।

प०वि०–न अव्ययपदम्, वशः ६।१।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, यङि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वशो यङि सम्प्रसारणं न।

अर्थः–वशो धातोर्यङि प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-वावश्यते, वावश्येते, वावश्यन्ते। **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) इत्यनेन प्राप्तं सम्प्रसारणं प्रतिषिध्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वशः) वश् (धातोः) धातु को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**वावश्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक कामना करता है। **वावश्येते।** वे दोनों पुनः-पुनः/अधिक कामना करते हैं। **वावश्यन्ते।** वे सब पुनः-पुनः/अधिक कामना करते हैं।*

***सिद्धि-वावश्यते।** वश्+यङ्। वश्+य। वश्य+वश्य। व+वश्य। वा+वश्य। वावश्य+लट्। वावश्य+त। वावश्य+शप्+त। वावश्य+अ+ते। वावश्यते।*

*यहां **'वश कान्तौ'** (अदा०प०) धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। यङ् प्रत्यय परे होने पर **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से प्रतिषेध होता है। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'वावश्य' धातु से लट् प्रत्यय है। ऐसे ही-**वावश्येते, वावश्यन्ते।***

की-आदेशः-

(६) चायः की।२१।

प०वि०-चायः ६।१ की १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-धातोः, यङि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चायो धातोर्यङि कीः।

अर्थः-चायो धातोः स्थाने यङि प्रत्यये परतः की-आदेशो भवति।

उदा०-चेकीयते, चेकीयेते, चेकीयन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चायः) चाय् (धातोः) धातु के स्थान में (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (की) की आदेश होता है।*

*उदा०-**चेकीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक पूजा करता है। **चेकीयेते।** वे दोनों पुनः-पुनः/अधिक पूजा करते हैं। **चेकीयन्ते।** वे सब पुनः-पुनः/अधिक पूजा करते हैं।*

***सिद्धि-चेकीयते।** चाय्+यङ्। की+य। कीय्+कीय। की+कीय। के+कीय। चे+कीय। चेकीय+लट्। चेकीय+त। चेकीय+शप्+त। चेकीय+अ+ते। चेकीयते।*

*यहां **'चायृ पूजानिशामनयोः'** (भ्वा०उ०) धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। यङ् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'चाय्' के स्थान में 'की' आदेश होता है। **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से अभ्यास के ककार को चर् चकार होता है। तत्पश्चात् 'चेकीय' धातु से लट् प्रत्यय है।*

स्फी-आदेशः–

(१०) स्फायः स्फी निष्ठायाम्।२२।

प०वि०–स्फायः ६।१ स्फी १।१ (सु-लुक्) निष्ठायाम् ७।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–स्फायो धातोः निष्ठायां स्फीः।

अर्थः–स्फायो धातोः स्थाने निष्ठायां परतः स्फी-आदेशो भवति।

उदा०–स्फीतः, स्फीतवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्फायः) स्फाय (धातोः) धातु के स्थान में (निष्ठायाम्) निष्ठा=क्त, क्तवतु प्रत्यय परे होने पर (स्फी) स्फी-आदेश होता है।*

*उदा०-स्फीतः, **स्फीतवान्।** वह बढ़ा।*

सिद्धि-स्फीतः। *स्फाय्+क्त। स्फी+त। स्फीत+सु। स्फीतः।*

*यहां 'स्फायी वृद्धौ' (भ्वा०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।३६) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'स्फाय्' धातु के स्थान में 'स्फी' आदेश होता है। ऐसे ही-**स्फीतवान्। 'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२५) से क्त और क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा है।*

सम्प्रसारणम्–

(११) स्त्यः प्रपूर्वस्य।२३।

प०वि०–स्त्यः ६।१ प्रपूर्वस्य ६।१।

स०–प्र पूर्वो यस्य स प्रपूर्वः, तस्य-प्रपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रपूर्वस्य स्त्यो निष्ठायां सम्प्रसारम्।

अर्थः–प्रपूर्वस्य स्त्यो धातोर्निष्ठायां परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्। प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रपूर्वस्य) प्र उपसर्गपूर्वक (स्त्यः) स्त्या (धातोः) धातु को (निष्ठायाम्) निष्ठा=क्त, क्तवतु प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्।** उसने जोर से शब्द किया। **प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) प्रस्तीतः। प्र+स्त्या+क्त। प्र+स्त्या+त। प्र+स्+त् इ आ+त। प्र+स्+त् इ+त। प्र+स्+त् ई+त। प्रस्तीत+सु। प्रस्तीतः।

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।३६) से भूतकाल में क्त प्रत्यय है। निष्ठा=क्त प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'स्त्या' धातु को सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से इकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय करने पर-**प्रस्तीतवान्।***

*(२) **प्रस्तीमः।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'स्त्या' धातु से क्त प्रत्यय करने पर **'प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्'** (८।२।५४) से निष्ठा (क्त-क्तवतु) के तकार को मकार आदेश होता है। ऐसे ही-**प्रस्तीमवान्।***

सम्प्रसारणम्—

(१२) द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः।२४।

प०वि०-द्रवमूर्त्ति-स्पर्शयोः ७।२ श्यः ६।१।

स०-द्रवस्य मूर्त्तिः=कठोरता, द्रवमूर्तिः। द्रवमूर्तिश्च स्पर्शश्च तौ द्रवमूर्तिस्पर्शौ, तयोः-द्रव्यमूर्तिस्पर्शयोः(षष्ठीतत्पुरुषगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यो धातोर्निष्ठायां सम्प्रसारणम्।

अर्थः-द्रवमूर्तौ=द्रवकठोरतायां स्पर्शे चार्थे वर्तमानस्य श्यो धातोर्निष्ठायां परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(द्रवमूर्तिः) शीनं घृतम्। शीना वसा। शीनं मेदः। **(स्पर्शः)** शीतं वर्तते। शीतो वायुः। शीतमुदकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्रवमूर्तिस्पर्शयोः) द्रवमूर्ति=द्रव पदार्थ का कठोर होना और स्पर्श अर्थ में विद्यमान (श्यः) श्या (धातोः) धातु को (निष्ठायाम्) निष्ठा प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**(द्रवमूर्ति) शीनं घृतम्।** जमा हुआ घी। **शीना वसा।** जमी हुई चरबी। **शीनं मेदः।** जमी हुई चरबी। **(स्पर्श) शीतं वर्तते।** ठण्ड है। **शीतो वायुः।** ठण्डा वायु। **शीतमुदकम्।** ठण्डा जल।*

*सिद्धि-(१) **शीनम्।** श्या+क्त। श्या+त। श् इ आ+त। शि+न। शी+न। शीन+सु। शीनम्।*

यहां 'श्यैङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।३६) से भूतकाल में निष्ठा=क्त प्रत्यय है। इस सूत्र से 'श्या' के यकार को इकार सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से इकार को दीर्घ होता है। 'श्योऽस्पर्शे' (८।२।४७) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।

*(२) **शीतम्।** यहां स्पर्श अर्थ में निष्ठा के तकार को नकार आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सम्प्रसारणम्–

(१३) प्रतेश्च।२५।

प०वि०–प्रतेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, निष्ठायाम्, श्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रतेश्च श्यो धातोर्निष्ठायां सम्प्रसारणम्।

अर्थः–प्रतेरुत्तरस्य च श्यो धातोर्निष्ठायां परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–प्रतिशीनः, प्रतिशीनवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रतेः) प्रति उपसर्ग से परे (च) भी (श्यः) श्या (धातोः) धातु को (निष्ठायाम्) निष्ठा प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**प्रतिशीनः, प्रतिशीनवान्।** उसने धरना दिया।*

*सिद्धि-**प्रतिशीनः।** प्रति+श्या+क्त। प्रति+श् इ आ+त। प्रति+शि+न। प्रति+शी+नः। प्रतिशीन+सु। अतिशीनः।*

*यहां प्रति उपसर्ग से परे भी 'श्या' धातु को इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। 'श्योऽस्पर्शे' (८।२।४७) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रतिशीनवान्।***

सम्प्रसारणम्–

(१४) विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य।२६।

प०वि०–विभाषा १।१ अभि-अवपूर्वस्य ६।१।

स०–अभिश्च अवश्च तौ अभ्यवौ, अभ्यवौ पूर्वौ यस्य सोऽभ्यवपूर्वः, तस्य–अभ्यवपूर्वस्य।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, निष्ठायाम्, श्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यवपूर्वस्य श्यो धातोर्निष्ठायां विभाषा सम्प्रसारणम्।

अर्थः-अभि-अवपूर्वस्य श्यो धातोर्निष्ठायां परतो विकल्पेन सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(**अभिः**) अभिशीनम्, अभिश्यानम्। (**अवः**) अवशीनम्, अवश्यानम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अभ्यवपूर्वस्य) अभि, अव उपसर्गपूर्वक (श्यः) श्या (धातोः) धातु को (निष्ठायाम्) निष्ठा प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-(अभि) **अभिशीनम्, अभिश्यानम्।** अधिक जमा हुआ (कठोर)। (अव) **अवशीनम्, अवश्यानम्।** कम जमा हुआ (ढीला)।*

*सिद्धि-(१) **अभिशीनम्।** अभि+श्या+क्त। अभि+श् इ आ+त। अभि+शि+न। अभि+शी+न। अभिशीन+सु। अभिशीनम्।*

*यहां अभि उपसर्गपूर्वक 'श्या' धातु को निष्ठा प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। 'श्योऽस्पर्शे' (८।२।४७) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। ऐसे ही-**अवशीनम्।***

*(२) **अभिश्यानम्।** यहां अभि उपसर्गपूर्वक श्या धातु को निष्ठा प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से विकल्प पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अवश्यानम्।***

निपातनम्-

(१५) शृतं पाके।२७।

प०वि०-शृतम् १।१ पाके ७।१।

अनु०-विभाषा इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पाके शृतं विभाषा।

अर्थः-पाकेऽर्थे 'शृतम्' इति पदं विकल्पेन निपात्यते।

उदा०-शृतं क्षीरम्, शृतं हविः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पाके) पाक अर्थ में (शृतम्) शृत यह पद (विभाषा) विकल्प से निपातित है।*

*उदा०-**शृतं क्षीरम्।** पका हुआ दूध। **शृतं हविः।** पकी हुई आहुति।*

*सिद्धि-**शृतम्।** श्रा+क्त। शृ+त। शृत+सु। शृतम्।*

*यहां 'श्रा पाके' (भ्वा०प०, अदा०प०) से निष्ठा प्रत्यय परे होने पर 'श्रा' को 'शृ' आदेश निपातित है। यह एक व्यवस्थित विभाषा है अतः क्षीर और हवि अर्थ अभिधेय में 'श्रा' को नित्य 'शृ' आदेश होता। अन्यत्र नहीं होता जैसे-**श्राणा यवागूः।** पकी हुई राबड़ी।*

पी-आदेशः—

(१६) प्यायः पी।२८।

प०वि०-प्यायः ६।१ पी १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-धातोः, निष्ठायाम्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्यायो धातोर्निष्ठायां विभाषा पीः।

अर्थः-प्यायो धातोः स्थाने निष्ठायां परतो विकल्पेन पी-आदेशो भवति।

उदा०-पीनं मुखम्। पीनौ बाहू। पीनमुरः। आप्यानश्चन्द्रमाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्यायः) प्याय (धातोः) धातु के स्थान में (निष्ठायाम्) निष्ठा प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (पी) पी-आदेश होता है।*

*उदा०-**पीनं मुखम्।** मोटा मुख। **पीनौ बाहू।** मोटी भुजायें। **पीनमुदरम्।** मोटा पेट। **आप्यानश्चन्द्रमाः।** बढ़ा हुआ चन्द्रमा।*

*सिद्धि-(१) **पीनम्।** प्याय्+क्त। पी+त। पी+न। पीन+सु। पीनम्।*

*यहां **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) से **'निष्ठा'** (३।२।२६) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'प्याय्' धातु के स्थान में 'पी' आदेश है। **'ओदितश्च'** (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।*

*(२) **आप्यानः।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'प्याय् धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'प्याय्' के स्थान में 'पी' आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

यह एक व्यवस्थित विभाषा है, अतः यहां उपसर्गरहित 'प्याय्' धातु को नित्य 'पी' आदेश होता है और उपसर्गसहित 'प्याय्' धातु को 'पी' आदेश नहीं होता है।

पी-आदेशः—

(१७) लिड्यङोश्च।२६।

प०वि०-लिट्-यङोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-लिट् च यङ् च तौ लिड्यङौ, तयोः-लिड्यङोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, प्यायः, पी इति चानुवर्तते, विभाषा इति निवृत्तम्।

अन्वयः-लिड्यङोश्च प्यायो धातोः पीः।

अर्थः-लिटि यङि च प्रत्यये परतः प्यायो धातोः स्थाने पी-आदेशो भवति।

उदा०-(लिट्) आपिप्ये। आपिप्याते। आपिप्यिरे। **(यङ्)** आपेपीयते। आपेयीयाते। आपेपीयन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लिड्यङोः) लिट् और यङ् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (प्यायः) प्याय् (धातोः) धातु के स्थान में (पी) पी आदेश होता है।*

*उदा०-(लिट्) **आपिप्ये**। वह बढ़ा। **आपिप्याते**। वे दोनों बढ़े। **आपिप्यिरे**। वे सब बढ़े। (यङ्) **आपेपीयते**। वह पुनः-पुनः/अधिक बढ़ता है। **आपेयीयाते**। वे दोनों पुनः-पुनः/अधिक बढ़ते हैं। **आपेपीयन्ते**। वे सब पुनः-पुनः/अधिक बढ़ते हैं।*

सिद्धि-आपिप्ये। *आङ्+प्याय्+लिट्। आ+पी+त। आ+पी+एश्। आ+पी-पी+ए। आ+पि-प्य्+ए। आपिप्ये।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से लिट् प्रत्यय, उसके लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्०'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश ओता है। इस सूत्र से 'प्याय्' के स्थान में 'पी' आदेश, **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'पी' को दित्व, **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व और **'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य'** (६।४।८२) से यण् आदेश होता है। ऐसे ही-**आपिप्याते, आपिप्यिरे।***

*(२) **आपेपीयते।** आङ्+प्याय्+यङ्। आ+प्याय्+य। आ+पी+य। आ+पीय्-पीय। आ+पी-पीय। आ+पे-पीय। आपेपीय+लट्। आपेपीय+त। आ+पेपीय+शप्+त। आ+पेपीय+अ+ते। आपेपीयते।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'प्याय्' धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'प्याय्' के स्थान में 'पी' आदेश, 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'पीय्' को द्वित्व और **'गुणो यङ् लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। तत्पश्चात् 'आपेपीय' यङन्त धातु से लट् प्रत्यय है। ऐसे ही-**आपेपीयाते, आपेपीयन्ते।***

सम्प्रसारण-विकल्पः-

(१८) विभाषा श्वेः।३०।

प०वि०-विभाषा १।१ श्वेः ६।१।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, लिड्यङोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिड्यङोः श्वेर्धातोर्विभाषा सम्प्रसारणम्।

अर्थः-लिटि यङि च प्रत्यये परतः श्वेर्धातोर्विकल्पेन सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(लिट्) शुशाव, शुशुवतुः, शुशुवुः। शिश्वाय, शिश्वियतुः, शिश्वियुः। **(यङ्)** शोशूयते। शोशूयेते। शोशूयन्ते। शेश्वीयते। शेश्वीयेते। शेश्वीयन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ- *(लिड्यङोः) लिट् और यङ् प्रत्यय परे होने पर (श्वेः) श्वि (धातोः) धातु को (विभाषा) विकल्प से (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-(लिट्) ***शुशाव।*** *उसने गति/वृद्धि की।* ***शुशुवतुः।*** *उन दोनों ने गति/वृद्धि की।* ***शुशुवुः।*** *उन सबने गति/वृद्धि की।* ***शिश्वाय, शिश्वियतुः, शिश्वियुः।*** *अर्थ पूर्ववत् है। यहां विकल्प-पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है। (यङ्)* ***शोशूयते।*** *वह पुनः-पुनः/अधिक गति/वृद्धि करता है।* ***शोशूयेते।*** *वे दोनों पुनः-पुनः/अधिक गति/वृद्धि करते हैं।* ***शोशूयन्ते।*** *वे सब पुनः-पुनः/अधिक गति/वृद्धि करते हैं।* ***शेश्वीयते। शेश्वीयेते। शेश्वीयन्ते।*** *अर्थ पूर्ववत् है। यहां विकल्प-पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है।*

सिद्धि-(१) शुशाव। *श्वि+लिट्। श्वि+तिप्। श्वि+णल्। श् उ इ+अ। शु+अ। शु-शु+अ। शु-शौ+अ। शुशाव।*

यहां ***'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः'*** *(भ्वा०प०) धातु से लिट् प्रत्यय,* ***'तिप्तस्झि०'*** *(३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश,* ***'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'*** *(३।४।८२) से तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'श्वि' धातु को सम्प्रसारण और* ***'सम्प्रसारणाच्च'*** *(६।१।१०५) से इकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। तत्पश्चात् 'शु' को* ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से द्वित्व* ***'अचो ञ्णिति'*** *(७।२।११५) से अंग को वृद्धि और* ***'एचोऽयवायावः'*** *(६।१।७६) से 'आव्' आदेश होता है। ऐसे ही-* ***शुशुवतुः, शुशुवुः।***

(२) ***शिश्वाय।*** *श्वि+लिट्। श्वि+तिप्। श्वि+णल्। श्वि+अ। श्वि-श्वि+अ। शि+श्वै+य। शि-श्वाय्+अ। शिश्वाय।*

यहां 'श्वि' धातु से लिट् प्रत्यय है। यहां विकल्प पक्ष में 'श्वि' धातु को सम्प्रसारण नहीं है। ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से 'श्वि' को द्वित्व, पूर्ववत् अंग को वृद्धि और 'आय्' आदेश होता है। ऐसे ही-* ***शिश्वियतुः, शिश्वियुः।***

(३) ***शोशूयते।*** *श्वि+यङ्। श्वि+य। श् उ इ+य। शु+य। शू+य। शूय-शूय। शू-शूय। शो-शूय। शोशूय+लट्। शोशूय+त। शोशूय+शप्+त। शोशूय+अ+ते। शोशूयते।*

यहां 'टुओश्वि गतिवृद्धयोः' (भ्वा०प०) धातु से ***'धातोरेकाचो०'*** *(३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'श्वि' को सम्प्रसारण और* ***'सम्प्रसारणाच्च'*** *(६।१।१०५) से इकार को पूर्वरूप एकादेश होता है।* ***'अकृत्सार्वधातुकयोः'*** *(७।४।२५) से 'शु' को दीर्घ और* ***गुणो यङ्लुकोः'*** *(७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। तत्पश्चात् 'शोशूय' धातु से लट् प्रतयय है। ऐसे ही-* ***शोशूयेते, शोशूयन्ते।***

(४) ***शेश्वीयते।*** *श्वि+यङ्। श्वि+य। श्विय्+श्विय। शि-श्वि+य। शे-श्वीय। शेश्वीय+लट्। शेश्वीय+त। शेश्वीय+शप्+त। शेश्वीय+अ+ते। शेश्वीयते।*

यहां 'श्वि' धातु से ***'धातोरेकाचो०'*** *(३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'श्वि' धातु को सम्प्रसारण नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सम्प्रसारण-विकल्पः—

(१६) णौ च सँश्चङोः।३१।

प०वि०-णौ ७।१ च अव्ययपदम्, सन्-चङोः ७।२।

स०-सन् च चङ् च तौ सन्चङौ, तयोः-सँश्चङोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, विभाषा, श्वेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ च सँश्चङोः श्वेर्धातोर्विभाषा सम्प्रसारणम्।

अर्थः-सन्परके चङ्परके च णौ प्रत्यये परतः श्वेर्धातोविकल्पेन सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(सन्परके णौ) शुशावयिषति, शिश्वाययिषति। **(चङ्परके णौ)** अशूशवत्, अशिश्वयत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सँश्चङोः) सन्परक और चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (श्वेः) श्वि (धातोः) धातु को (विभाषा) विकल्प से (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

उदा०-(सन्परक णिच्) ***शुशावयिषति, शिश्वाययिषति।*** *वह गति/वृद्धि करना चाहता है। (चङ्परक णिच्)* ***अशूशवत्, अशिश्वयत्।*** *उसने गति/वृद्धि कराई।*

सिद्धि-(१) ***शुशावयिषति।*** *श्वि+णिच्। श्वि+इ। श्वि+इ+सन्। श् उ इ+इ+स। शु+इ+स। शौ+इ+स। शावि+इट्+स। शु-शावि+इ+स। शु-शावे+इ+स। शुशावयिष+लट्। शुशावयिष+तिप्। शुशावयिषति+शप्+ति। शुशावयिष+अ+ति। शुशावयिषति।*

यहां 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय तत्पश्चात् णिजन्त 'श्वि+इ' धातु से 'धातोः कर्मणः कर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से सन् प्रत्यय करने पर, सन्परक णिच् प्रत्यय परे होने से इस सूत्र से 'श्वि' धातु को सम्प्रसारण और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०५) से इकार को पूर्वरूप एकादेश, 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से शु अंग को वृद्धि 'शौ' होती है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से सन् को 'इट्' आगम होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से प्रथम एकाच् समुदाय को द्वित्व प्राप्त होने पर 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से अजादेश को स्थानिवत् मानकर 'शु' को द्विर्वचन होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होकर 'शुशावयिष' धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) **शिश्वाययिषति।** यहां 'श्वि' धातु से सन्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से विकल्प पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **अशूशवत्।** श्वि+णिच्। श्वि+इ। श्व+इ। श्वि+इ लुङ्। अट्+श्वि+इ+च्लि+ल्। अ+श्वि+इ+चङ्+तिप्। अ+शउइ+इ+अ+त्। अ+शु+इ+अ+त्। अ+शौ+इ+अ+त्। अ+शाव्+इ+अ+त्। अ+शु-शाव्+अ+त्। अ+शू+शव्+अ+त्। अशूशवत्।

यहां प्रथम 'श्वि' धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय, तत्पश्चात् णिजन्त 'श्वि+इ' धातु से लुङ् प्रत्यय है। 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक णिच् प्रत्यय पर श्वि धातु को सम्प्रसारण और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०५) से इकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। 'चङि' (६।१।११) से द्विर्वचन प्राप्त होने पर 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से अजादेश को स्थानिवत् मानकर 'शु' को द्वित्व होता है। 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से उपधा को ह्रस्व और 'दीर्घो लघोः' (७।४।१) से अभ्यास को दीर्घ होता है।

(४) **अशिश्वियत्।** यहां श्वि धातु से प्रथम णिच् प्रत्यय और तत्पश्चात् णिजन्त श्वि धातु से लुङ् प्रत्यय है। यहां इस सूत्र से विकल्प पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

"सम्प्रसारणं सम्प्रसारणाश्रयं च कार्यं बलीयो भवति" इस वचन प्रमाण से अन्तरंग वृद्धि आदि कार्य को सम्प्रसारण बाधित करता है। सम्प्रसारण करने पर प्राप्त वृद्धि और आवादेश होता है।

सम्प्रसारणम्–

(२०) ह्वः सम्प्रसारणम्।३२।

प०वि०–ह्वः ६।१ सम्प्रसारणम् १।१।

अनु०–धातोः, णौ च सँश्चङोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ च सँश्चङोर्ह्वो धातोः सम्प्रसारणम्।

अर्थः-सन्परके चङ्परके च णौ परतो ह्वो धातोः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(**सन्परके णौ**) जुहावयिषति, जुहावयिषतः, जुहावयिषन्ति। (**चङ्परके णौ**) अजूहवत्, अजूहवताम्, अजूहवन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सँश्चङोः) सन्परक और चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-(सन्परक णिच्) **जुहावयिषति।** वह स्पर्धा/शब्द कराना चाहता है। **जुहावयिषतः।** वे दोनों स्पर्धा/शब्द कराना चाहते हैं। **जुहावयिषन्ति।** वे सब स्पर्धा/शब्द कराना चाहते हैं। (चङ्परक णिच्) **अजूहवत्।** उसने स्पर्धा/शब्द कराई। **अजूहवताम्।** उन दोनों ने स्पर्धा/शब्द कराई। **अजूहवन्।** उन सबने स्पर्धा/शब्द कराई।*

*सिद्धि-(१) **जुहावयिषति।** ह्वा+णिच्। ह्वा+इ। ह्वा+इ+सन्। ह् उ आ+इ+स। हु+इ+स। हौ+इ+स। हावि+इट्+स। हु-हावि+इ+स। झु+हावे+इ+स। जु+हावे+इ+ष। जुहावयिष+लट्। जुहावयिष+तिप्। जुहावयिष+शप्+ति। जुहावयिष+अ+ति। जुहावयिषति।*

*यहां '**ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च**' (भ्वा०उ०) धातु से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है, तत्पश्चात् णिजन्त 'ह्वा+इ' धातु से '**धातोः कर्मणः समान-कर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से सन् प्रत्यय होता है। सन्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर 'ह्वा' धातु को सम्प्रसारण, '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश, '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'हु' अंग को वृद्धि 'हौ' होती है। '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से सन् को इट् आगम होता है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से प्रथम एकाच्समुदाय को द्वित्व प्राप्त होने पर '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५८) से अजादेश को स्थानिवत् मानकर 'हु' को द्विर्वचन होता है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५३) से अभ्यास के झकार को जश् जकार होता है। '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होकर 'जुहावयिष' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**जुहावयिषतः, जुहावयिषन्ति।** सम्प्रसारण के बलवान् होने से '**शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्**' (७।३।३७) से युक् आगम नहीं होता है।*

*(२) **अजूहवत्।** यहां '**ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च**' (भ्वा०उ०) धातु से 'अशूशवत्' शब्द की सिद्धि के सहाय से 'अजूहवत्' शब्द की सिद्धि करें।*

विशेषः *'संप्रसारण' की अनुवृत्ति में पुनः सम्प्रसारण का ग्रहण 'विभाषा' की निवृत्ति के लिये है।*

सम्प्रसारणम्–

(२१) अभ्यस्तस्य च।३३।

प०वि०–अभ्यस्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, ह्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यस्तस्य च ह्वो धातोः सम्प्रसारणम्।

अर्थः–अभ्यस्तस्य=अभ्यस्तनिमित्तस्य च ह्वो धातोः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–जुहाव (लिट्)। जोहूयते (यङ्)। जुहूषति (सन्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अभ्यस्तस्य) अभ्यस्त के निमित्त (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु को (च) भी (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०–**जुहाव (लिट्)**। उसने स्पर्धा/शब्द किया। **जोहूयते (यङ्)**। वह पुनः-पुन स्पर्धा/शब्द करता है। **जुहूषति (सन्)**। वह स्पर्धा/शब्द करना चाहता है।*

सिद्धि-(१) जुहाव। *ह्वा+लिट्। ह्वा+तिप्। ह्वा+णल्। ह्वा+अ। ह उ आ+अ। हु+अ। हु+हु+अ। झु+हु+अ। जु+हु+अ। जु+हौ+अ। जुहाव्+अ। जुहाव।*

*यहां **'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च'** (भ्वा०उ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश और **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'ह्वा' धातु को द्वित्व प्राप्त होता है अतः अभ्यस्त के निमित्त 'ह्वा' धातु को द्विर्वचन से पूर्व ही इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश होकर 'हु' को द्विर्वचन, **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से झकार जश् जकार होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'हु' अंग को वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) सें आव् आदेश होता है।*

*(२) **जोहूयते।** यहां 'ह्वा' धातु से **'धातोरेकाचो०'** (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'ह्वा' धातु को द्विर्वचन प्राप्त होता है अतः अभ्यस्त के निमित्त 'ह्वा' धातु को द्विर्वचन से पूर्व ही इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से 'हु' को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **जुहूषति।** यहां 'ह्वा' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'ह्वा' धातु को द्वित्व प्राप्त है। **अतः** अभ्यस्त के निमित्त 'ह्वा' धातु को द्विर्वचन से पूर्व ही इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से 'हु' धातु को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

बहुलं सम्प्रसारणम्–

(२२) बहुलं छन्दसि।३४।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, ह्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि ह्वो धातोर्बहुलं सम्प्रसारणम्।

अर्थः–छन्दसि विषये ह्वो धातोर्बहुलं सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–इन्द्राग्नी हुवे (ऋ० ५।४६।३)। देवीं सरस्वतीं हुवे (सम्प्रसारणम्)। न च भवति–ह्वयामि मरुतः शिवान्। ह्वयामि विश्वान् देवान् (ऋ० ७।३४।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ह्वः) ह्वा (धातोः) धातु को (बहुलम्) प्रायशः (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०–**इन्द्राग्नी हुवे** (ऋ० ५।४६।३)। मैं इन्द्र और अग्नि देवता का आह्वान करता हूं। **देवीं सरस्वतीं हुवे।** मैं सरस्वती देवी का आह्वान करता हूं (सम्प्रसारण)। बहुल-वचन से कहीं सम्प्रसारण नहीं होता है–**ह्वयामि मरुतः शिवान्।** मैं कल्याणकारी मरुत् देवताओं का आह्वान करता हूं। **ह्वयामि विश्वान् देवान्** (ऋ० ७।३४।८)। मैं सब देवताओं का आह्वान करता हूं।*

***सिद्धि-(१) हुवे।** ह्व+लट्। ह्वा+इट्। ह्वा+शप्+इ। ह्वा+०+इ। ह् उ आ+इ। हु+ए। ह् उवङ्+ए। हुव्+ए। हुवे।*

*यहां **'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से लट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में उत्तमपुरुष एकवचन में 'इट्' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७३) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'ह्वा' को सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश होकर **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से हु' को उवङ् आदेश और **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व होता है।*

*(२) **ह्वयामि।** ह्वेञ्+लट्। ह्वे+मिप्। ह्वे+शप्+मि। ह्वे+अ+मि। ह्वय्+आ+मि। ह्वयामि।*

*यहां 'ह्वेञ्' धातु को इस सूत्र से बहुल-पक्ष में सम्प्रसारण नहीं है। **'अतो दीर्घो यञि'** (७।३।१०१) से दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

की-आदेशः—

(२३) चायः की।३५।

प०वि०–चायः ६।१ की १।१ (सु-लुक्)।

अनु०–धातोः, बहुलम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि चायो धातोर्बहुलं कीः।

अर्थः–छन्दसि विषये चायो धातोः स्थाने बहुलं की-आदेशो भवति।

उदा०–वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् (ऋ० १।१६४।३८)। की-आदेशः। न च भवति-अग्निज्योतिर्निच्चाय (यजु० ११।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (चायः) चाय् (धातोः) धातु के स्थान में (बहुलम्) प्रायशः (की) की आदेश होता है।*

*उदा०-**वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्** (ऋ० १।१६४।३८) की-आदेश। की आदेश नहीं-**अग्निज्योतिर्निच्चाय** (यजु० ११।१)।*

सिद्धि-(१) निचिक्युः। *नि+चाय्+लिट्। नि+की+उस्। नि+की-की-उस्। नि+कि+की+उस्। नि+चि+क्य+उस्। निचिक्युः।*

*यहां नि उपसर्गपूर्वक '**चायृ पूजानिशामनयोः**' (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झि' आदेश, '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से झि के स्थान में 'उस्' आदेश है। इस सूत्र से 'चाय्' के स्थान में 'की' आदेश होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व, और '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के ककार को चकार आदेश और '**एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य**' (६।४।८२) से यण् आदेश होता है।*

*(२) **निचाय्य।** नि+चाय्+क्त्वा। नि+चाय्+ल्यप्। नि+चाय्+य। निचाय्य+सु। निचाय्य+०। निचाय्य।*

*यहां नि उपसर्गपूर्वक 'चाय्' धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'क्तवा' को 'ल्यप्' आदेश है। सूत्र में बहुल-वचन से 'चाय्' के स्थान में 'की' आदेश नहीं है।*

निपातनम्--

(२४) अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताः श्रितमाशीराशीर्ताः ।३६ ।

प०वि०-अपस्पृधेथाम् क्रियापदम्, आनृचुः क्रियापदम्, आनृहुः क्रियापदम्, चिच्युषे क्रियापदम्, तित्याज क्रियापदम्, श्राताः १ ।३ श्रितम् १ ।१ आशीः १ ।१ आशीर्ताः १ ।३ ।

अनु०-छन्दसि इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-छन्दसि अपस्पृधेथाम्०आशीर्ताः ।

अर्थः-छन्दसि विषये अपस्पृधेथाम्, आनृचुः, आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज, श्राताः, श्रितम्, आशीः, आशीर्ता इत्येते शब्दा निपात्यन्ते ।

उदा०-**(अपस्पृधेथाम्)** इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम् (ऋ० ६ ।६९ ।८) । **(आनृचुः)** य उग्रा अर्कमानृचुः (ऋ० १ ।१९ ।४) । **(आनृहुः)** न वसून्यानृहुः (शौ०सं० २ ।३५ ।१) । **(चिच्युषे)** चिच्युषे (ऋ० ४ ।३० ।२२) । **(तित्याज)** तित्याज (ऋ० १० ।७१ ।६) । **(श्राताः)** श्रातास्त इन्द्र सोमाः (मै०सं० १ ।९ ।१) । **(श्रितम्)** सोमो गौरी अधिश्रितः (ऋ० ९ ।१२ ।३) । यदि श्रातो जुहोतन (ऋ० १० ।१७९ ।१) । **(आशीः)** तमाशीरादुहन्ति । **(आशीर्त)** आशीर्त ऊर्जम् । क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः (ऋ० ८ ।२ ।९) ।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपस्पृधेथाम्०आशीर्ताः) अपस्पृधेथाम्, आनृचुः, आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज, श्राताः, श्रितम्, आशीः, आशीर्ताः शब्द निपातित हैं ।

उदा०-संस्कृत-भाग में देख लेवें ।

*सिद्धि-(१) **अपस्पृधेथाम् ।** स्पर्ध्+लङ् । अट्+स्पर्ध्+आथाम् । अ+स्पर्ध्-स्पर्ध्+शप्+आथाम् । अ+प+स्पर्ध्+अ+इय् थाम् । अ+प+स्पृध्+अ+इ०थाम् । अपस्पृधेथाम् ।*

*(क) यहां **'स्पर्ध सङ्घर्षे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३ ।४ ।७८) से लकार के स्थान में 'आथाम्' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३ ।१ ।६८) से शप् विकरण प्रत्यय है । यहां निपातन से धातु को द्विर्वचन, रेफ को सम्प्रसारण और धातुस्थ अकार का लोप होता है ।*

(ख) अन्य मत है कि यहां अप उपसर्गपूर्वक 'स्पर्ध्' धातु से 'लङ्' में 'आथाम्' प्रत्यय परे होने पर निपातन से रेफ को सम्प्रसारण और धातुस्थ अकार का लोप होता है। **'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'** (६।४।७५) से अट् आगम नहीं होता है।

(२) **आनृचुः।** अर्च्+लिट्। अर्च्+झि। अर्च्+उस्। अ०ऋच्+उस्। ० ऋच्+उस्। ऋच्-ऋच्+उस्। ऋ-ऋच्+उस्। अर्-ऋच्+उस्। आ-ऋच्+उस्। आनुट् ऋच्+उस्। आ-न् ऋ च्+उस्। आनृचुः।

यहां **'अर्च पूजायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झि' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८) से 'झि' के स्थान में 'उस्' आदेश होता है। निपातन से 'अर्च्' के रेफ को सम्प्रसारण और धातुस्थ अकार का लोप होता है। तत्पश्चात् **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'ऋच्' को द्वित्व, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास के ऋकार को अत्त्व, **'उरण् रपरः'** (१।१।५०) से उसे रपरत्व, **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व और **'अत आदेः'** (७।४।७०) से उसे दीर्घ होता है। तत्पश्चात् **'तस्मान्नुड् द्विहलः'** (७।४।७१) से नुट् आगम होता है।

(३) **आनृहुः।** **'अर्ह पूजायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) **चिच्युषे।** च्यु+लिट्। च्यु+से। च्यु-च्यु+से। च् इ उ-च्यु+से। चि-च्यु+षे। चिच्युषे।

यहां **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'थास्' आदेश और उसे **'थासः से'** (३।४।८०) से 'से' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होकर निपातन से अभ्यास को सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से उकार पूर्वरूप एकादेश होता है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से प्राप्त 'इट्' आगम निपातन से नहीं होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(५) **तित्याज।** त्यज्+लिट्। त्यज्+तिप्। त्यज्+णल्। त्यज्-त्यज्+अ। त् इ अ ज्-त्याज्+अ। ति-त्याज्+अ। तित्याज।

यहां **'त्यज हानौ'** (भ्वा०प०) धातु से लिट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होकर निपातन से अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् आगम नहीं होता है।

(६) **श्राताः।** श्री+क्त। श्रा+त। श्रात+जस्। श्राताः।

यहां **'श्रीञ् पाके'** (क्र्या०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (२।२।३६) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। निपातन से 'श्री' के स्थान में 'श्रा' आदेश होता है।

*(७) **श्रितम्।** श्री+क्त। श्रि+त। श्रित+सु। श्रितम्।*

*यहां **'श्रीञ् पाके'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। निपातन से 'श्री' को ह्रस्व आदेश होता है।*

इस उक्त श्राभाव और श्रिभाव का वैयाकरण विषयविभाग चाहते हैं। सोम अर्थ के बहुवचन में श्राभाव और अन्यत्र श्रिभाव होता है।

*(८) **आशीः।** आङ्+श्री+क्विप्। आ+श्री+वि। आ+शीर्+०। आशीः।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'श्रीञ् पाके'** (क्र्या०उ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से क्विप् प्रत्यय है। निपातन से 'श्री' के स्थान में 'शीर्' आदेश होता है।*

*(९) **आशीर्तः।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'श्री' धातु से **'निष्ठा'** (२।२।३६) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। निपातन से 'श्री' के स्थान में 'शीर्' आदेश और **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से प्राप्त निष्ठा के तकार को नकार आदेश नहीं होता है।*

सम्प्रसारण-प्रतिषेधः–

(२५) न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्।३७।

प०वि०–न अव्ययपदम्, सम्प्रसारणे ७।१ सम्प्रसारणम् १।१।

अनु०–धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–सम्प्रसारणे धातोः सम्प्रसारणं न।

अर्थः–सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः स्थाने सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०–**(व्यध)** विद्धः। **(व्यच)** विचितः। **(व्येञ्)** संवीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सम्प्रसारणे) सम्प्रसारण परे होने पर पूर्ववर्ती यण् के स्थान में (धातोः) धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(व्यध) विद्धः।** ताडित किया हुआ। **(व्यच) विचितः।** ठगा हुआ। **(व्येञ्) संवीतः।** आच्छादित किया हुआ।*

*सिद्धि-(१) **विद्धः।** व्यध्+क्त। व्यध्+त। व् इ अ ध्+त। विध्+त। विध्+ध। विद्+ध। विद्ध+सु। विद्धः।*

*यहां **'व्यध ताडने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (२।२।३६) से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। **'ग्रहिज्यावयिव्यधि०'** (६।१।१६) से 'व्यध्' धातु के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। इस सूत्र से यकार को सम्प्रसारण होने पर उसके पूर्ववर्ती 'वकार' को सम्प्रसारण का प्रतिषेध होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से निष्ठा के तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५२) से धातुस्थ धकार को जश् धकार आदेश होता है।*

(२) विचितः। 'व्यच व्याजीकरणे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) संवीतः। सम् उपसर्गपूर्वक 'व्येञ् संवरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

सम्प्रसारण-प्रतिषेधः–

(२६) लिटि वयो यः।३८।

प०वि०–लिटि ७।१ वयः ६।१ यः ६।१।

अनु०–धातोः, सम्प्रसारणम्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लिटि वयो धातोर्यः सम्प्रसारणं न।

अर्थः–लिटि प्रत्यये परतो वयो धातोर्यकारस्य सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०–उवाय, ऊयतुः, ऊयुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (वयः) वय् (धातोः) धातु के (यः) यकार को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*'**न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्**' (६।१।३७) इस ज्ञापक से 'वय्' धातु के यकार को सम्प्रसारण प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*उदा०–**उवाय।** उसने कपड़ा बुना। **ऊयतुः।** उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ऊयुः।** उन सबने कपड़ा बुना।*

सिद्धि-*(१) **उवाय।** वेञ्+लिट्। वय्+तिप्। वय्+णल्। वय्+अ। वय्-वय्+अ। उ अ य्-वाय्+अ। उ-वाय्+अ। उवाय।*

*यहां '**वेञ् तन्तुसन्ताने**' (भ्वा०प०) धातु से लिट् प्रत्यय, '**वेञो वयिः**' (२।४।४१) से 'वेञ्' के स्थान में 'वयि' आदेश और इस सूत्र से 'वय्' के यकार को सम्प्रसारण का प्रतिषेध होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'वय्' को द्वित्व होकर '**लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्**' (६।१।१७) से 'वय्' के अभ्यास को सम्प्रसारण और '**सम्प्रसारणाच्च**' (१।१।१०५) से उकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से 'वय्' को उपधावृद्धि होती है।*

(२) ऊयतुः, ऊयुः पदों की सिद्धि पूर्ववत् है (६।१।१६)।

वकारादेश-विकल्पः–

(२७) वश्चास्यान्यतरस्यां किति।३९।

प०वि०–वः १।१ च अव्ययपदम्, अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, किति ७।१।

स०-क इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-धातोः, लिटि, वयः, य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किति लिटि अस्य वयो धातोर्योऽन्यतरस्यां वः।

अर्थः-किति लिटि प्रत्यये परतोऽस्य वयो धातोर्यकारस्य स्थाने विकल्पेन वकार आदेशो भवति।

उदा०-ऊवतुः, ऊवुः (वकारादेशः)। ऊयतुः, ऊयुः (वकारादेशो न)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(किति) कित् (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अस्य) इस (वयः) वय् (धातोः) धातु के (यः) यकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वः) वकार आदेश होता है।*

*उदा०-**ऊवतुः।** उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ऊवुः।** उन सबने कपड़ा बुना (वकार-आदेश)। **ऊयतुः।** उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ऊयुः।** उन सबने कपड़ा बुना (वकार-आदेश नहीं)।*

*सिद्धि-(१) **ऊवतुः।** वेञ्+लिट्। वय्+तस्। वय्+अतुस्। वव्+अतुस्। उअव्+अतुस्। उव्-उव्+अतुस्। उ-उव्+अतुस्। ऊवतुः।*

*यहां '**वेञ् तन्तुसान्ते**' (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय, उसके लकार के स्थान में '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से तस् आदेश और उसे '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से 'तस्' आदेश है। इस सूत्र से 'वय्' के यकार को वकार आदेश होता है। '**लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्**' (६।१।१७) से अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण, '**सम्प्रसारणाच्च**' (१।१।१०५) से अकार को पूर्वरूप एकादेश और '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९८) से दीर्घ होता है। ऐसे ही-**ऊवुः।***

*(२) **ऊयतुः, ऊयुः।** यहां विकल्प पक्ष में 'वय्' के यकार को वकार आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है (६।१।१६)।*

सम्प्रसारण-प्रतिषेधः-

(२८) वेञः।४०।

वि०-वेञः ६।१।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, लिटि, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिटि वेञो धातोः सम्प्रसारणं न।

अर्थः-लिटि प्रत्यये परतो वेञो धातोः सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-ववौ, ववतुः, ववुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (वेञः) वेञ् (धातोः) धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**ववौ।** उसने कपड़ा बुना। **ववतुः।** उन दोनों ने कपड़ा बुना। **ववुः।** उन सबने कपड़ा बुना।*

सिद्धि-ववौ। *वेञ्+लिट्। वा+ल्। वा+तिप्। वा+णल्। व्+अ। वा+वा+औ। व+वा+औ। ववौ।*

*यहां 'वेञ् **तन्तुसन्ताने**' (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय, उसके लकार के स्थान में '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से तिप् आदेश, उसको '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से णल् आदेश और उसे '**आत औ णलः**' (७।४।३४) से औकार आदेश होता है। '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से 'वा' के आकार का लोप और उसे '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५८) से स्थानिवत् मानकर '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'वा' धातु को द्वित्व होता है। यहां '**लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्**' (६।१।१७) से 'वेञ्' के अभ्यास को प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**ववतुः, ववुः।***

वेञ्-धातुरूपाणि (लिटि)

परस्मैपदम्

उवाय	*ऊयतुः*	*ऊयुः।*
उवयिथ	*ऊयथुः*	*ऊय।*
उवाय-उवय	*ऊयिव*	*ऊयिम।*
		(वेञो वयि-आदेशः)।
ऊवाय	*ऊवतुः*	*ऊवुः।*
उवयिथ	*ऊवथुः*	*ऊव।*
उवाय-उवय	*ऊविव*	*ऊविम।*
		(वयो यकारस्य वकारादेशः)

आत्मनेपदम्

ऊये	*ऊयाते*	*ऊयिरे।*
ऊयिषे	*ऊयाथे*	*ऊयिध्वे।*
ऊये	*ऊयिवहे*	*ऊयिमहे।*
		(वेञो वयि-आदेशः)
ऊवे	*ऊवाते*	*ऊविरे।*
ऊविषे	*ऊवाथे*	*ऊविध्वे।*
ऊवे	*ऊविवहे*	*ऊविमहे।*
		(वयो यकारस्य वकारादेशः)

परस्मैपदम्

ववौ	*ववतुः*	*ववुः*
वक्यिथ-ववाथ	*ववथुः*	*वव*
ववौ	*वविव*	*वविम*

(वेञो वयि-आदेशो न)

आत्मनेपदम्

ववे	*ववाते*	*वविरे।*
वविषे	*ववाथे*	*वविध्वे।*
ववे	*वविवहे*	*वविमहे।*

(वेञो वयि-आदेशो न)

सम्प्रसारण-प्रतिषेधः–

(३६) ल्यपि च।४१।

प०वि०-ल्यपि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, न, वेञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ल्यपि च वेञो धातोः सम्प्रसारणं न।

अर्थः-ल्यपि च प्रत्यये परतो वेञो धातोः सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-प्रवाय, उपवाय।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (वेञः) वेञ् (धातोः) धातु को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**प्रवाय**। कपड़ा बुनकर। **उपवाय**। कपड़ा बुनकर।*

***सिद्धि-प्रवाय**। प्र+वेञ्+क्त्वा। प्र+वा+त्वा। प्र+वा+ल्यप्। प्र+वा+य। प्रवाय+सु। प्रवाय+०। प्रवाय।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश है। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**उपवाय**।*

सम्प्रसारण-प्रतिषेधः–

(३७) ज्यश्च।४२।

प०वि०-ज्यः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातोः, सम्प्रसारणम्, न, ल्यपि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-ज्यश्च धातोर्ल्यपि सम्प्रसारणं न।

अर्थ:-ज्यश्च धातोर्ल्यपि प्रत्यये परत: सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-प्रज्याय। उपज्याय।

आर्यभाषा: *अर्थ-(ज्य:) ज्या (धातो:) धातु को (च) भी (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**प्रज्याय**। वृद्ध होकर। **उपज्याय**। वृद्ध होकर।*

***सिद्धि-प्रज्याय**। यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'ज्या वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् क्त्वा प्रत्यय और उसे ल्यप् आदेश है। **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**उपज्याय**।*

सम्प्रसारण-प्रतिषेध:-

(३१) व्यश्च।४३।

प०वि०-व्य: ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातो:, सम्प्रसारणम्, न, ल्यपि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-व्यश्च धातोर्ल्यपि सम्प्रसारणं न।

अर्थ:-व्यश्च धातोर्ल्यपि प्रत्यये परत: सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-प्रव्याय। उपव्याय।

आर्यभाषा: *अर्थ-(व्य:) व्या (धातो:) धातु को (च) भी (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**प्रव्याय**। आच्छादित करके। **उपव्याय**। आच्छादित करके।*

***सिद्धि-प्रव्याय**। यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'व्येञ् संवरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और उसे 'ल्यप्' आदेश है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**उपव्याय**।*

सम्प्रसारण-विकल्प:-

(३२) विभाषा परे:।४४।

प०वि०-विभाषा १।१ परे: ५।१।

अनु०-धातो:, सम्प्रसारणम्, न, ल्यपि, व्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-परेर्व्योधातोर्ल्यपि विभाषा सम्प्रसारणं न।

अर्थः-परि-उपसर्गात् परस्य व्यो धातोर्ल्यपि प्रत्यये परतो विकल्पेन सम्प्रसारणं न भवति।

उदा०-परिवीय यूपम् (सम्प्रसारणम्)। परिव्याय यूपम् (सम्प्रसारणं न)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(परेः) परि उपसर्ग से परे (व्यः) व्या (धातोः) धातु को (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण (न) नहीं होता है।*

उदा०-परिवीय यूपम् (सम्प्रसारण)। यूप=यज्ञस्थूणा को आच्छादित करके। परिव्याय यूपम् (सम्प्रसारण नहीं)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) ***परिवीय।*** *परि+व्या+क्त्वा। परि+व्या+ल्यप्। परि+व् इ आ+ल्यप्। परि+वि+य। परि+वी+य। परिवीय+सु। परिवीय+०। परिवीय।*

यहां 'परि' उपसर्गपूर्वक ***'व्येञ् संवरणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् क्त्वा प्रत्यय और उसे ल्यप् आदेश है।* ***'वचिस्वपियजादीनां किति'*** *(६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से प्रतिषेध नहीं है।*

(२) ***परिव्याय।*** *यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'व्या' धातु से पूर्ववत् क्त्वा प्रत्यय और उसे 'ल्यप्' आदेश है।* ***'वचिस्वपियजादीनां किति'*** *(६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का इस सूत्र से विकल्प पक्ष में प्रतिषेध है।*

'न वेति विभाषा' *(१।१।४३) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा है। अतः यहां विभाषा-वचन से* ***'वचिस्वपियजादीनां किति'*** *(६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का 'न' से प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प का विधान किया जाता है।*

।। इति सम्प्रसारणप्रकरणम् ।।

आकारादेशप्रकरणम्

शिति-

(१) आदेच उपदेशेऽशिति।४५।

प०वि०-आत् १।१ एचः ६।१ उपदेशे ७।१ अशिति ७।१।

स०-श चासौ इत् शित्, न शित् अशित्, तस्मिन्-अशिति (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे एचो धातोराद् अशिति।

अर्थः-उपदेशे एजन्तस्य धातोराकारादेशो भवति, शिदादिभिन्ने प्रत्यये परतः।

उदा०-**(ग्लै)** ग्लाता, ग्लातुम्, ग्लातव्यम्। **(शो)** निशाता, निशातुम्, निशातव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) पाणिनिमुनि के उपदेश में (एचः) एच् जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु को (आत्) आकार आदेश होता है (अशिति) शित् जिसके आदि में है, उससे भिन्न प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(ग्लै) **ग्लाता।** ग्लानि करनेवाला। **ग्लातुम्।** ग्लानि करने के लिये। **ग्लातव्यम्।** ग्लानि करनी चाहिये। (शो) **निशाता।** तीक्ष्ण करनेवाला। **निशातुम्।** तीक्ष्ण करने के लिये। **निशातव्यम्।** तीक्ष्ण करना चाहिये।*

सिद्धि-*(१) **ग्लाता।** ग्लै+तृच्। गला+तृ। ग्लातृ+सु। ग्लाता।*

*यहां **'ग्लै हर्षक्षये'** (भ्वा०प०) इस एजन्त धातु से **'ण्वुल् तृचौ'** (३।१।१३३) से तृच् प्रत्यय है। इस अशित्-आदि प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'ग्लै' के एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही 'नि' पूर्वक **'शो तनूकरणे'** (दि०प०) धातु से तृच् प्रत्यय करने पर-**निशाता।***

*(२) **ग्लातुम्।** यहां पूर्वोक्त 'ग्लै' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से तुमुन् प्रत्यय है। इस अशित्-आदि प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'ग्लै' के एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही 'नि' पूर्वक 'शो' धातु से-**निशातव्यम्।***

*यहां **'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे'** इस परिभाषा से 'अशिति' इस वचन में शिद्भाव जिसके आदि में नहीं है, वहां एजन्त धातु को आकार आदेश होता है, जैसे-**जग्ले, मम्ले।** यहां लिट् लकार के 'त' प्रत्यय को 'एश्' आदेश है, किन्तु वह प्रत्यय शित्-आदि नहीं अपितु शिदन्त है, अतः यहां 'ग्लै' धातु को आकार आदेश हो जाता है। शित्-आदि 'शप्' प्रत्यय परे होने पर तो आकार आदेश नहीं होता है जैसे-**ग्लायति, म्लायति।***

आकारादेश-प्रतिषेधः-

(२) न व्यो लिटि।४६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, व्यः ६।१ लिटि ७।१।

अनु०-धातोः आत्, एच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लिटि व्यो धातोरेच आद् न।

अर्थः-लिटि प्रत्यये परतो व्यो धातोरेचः स्थाने आकारादेशो न भवति।

उदा०-संविव्याय, संविव्ययिथ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (व्यः) व्येञ् (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (आत्) आकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**संविव्याय**। उसने आच्छादित किया। **संविव्ययिथ**। तूने आच्छादित किया।*

***सिद्धि-संविव्याय**। सम्+व्येञ्+लिट्। सम्+व्ये+तिप्। सम्+व्ये+णल्। सम्+व्ये-व्ये+अ। सम्+व् इ ए-व्यै+अ। सम्+वि-व्याय्+अ। संविव्याय।*

*यहां 'सम्' उपसर्गपूर्वक **'व्येञ् संवरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से लिट् प्रत्यय, उसके लकार के स्थान में पूर्ववत् 'तिप्' आदेश तथा उसके स्थान में णल् आदेश है। **'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्'** (६।१।११७) से अभ्यास के यकार को इकार सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से एकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि और उसे **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) से आय् आदेश होता है। ऐसे ही 'थल्' प्रत्यय परे होने पर-**संविव्ययिथ**। यहां **'इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्'** (७।२।६६) से थल् को इट् आगम होता है।*

घञि-

(३) स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि।४७।

प०वि०-स्फुरति-स्फुलत्योः ६।२ घञि ७।१।

स०-स्फुरतिश्च स्फुलतिश्च तौ स्फुरतिस्फुलती, तयोः-स्फुरति-स्फुलत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, आत्, एच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-घञि स्फुरतिस्फुलत्योर्धात्वोरेच आत्।

अर्थः-घञि प्रत्यये परतः स्फुरतिस्फुलत्योर्धात्वोरेचः स्थाने आकारादेशो भवति।

उदा०-(**स्फुरतिः**) विस्फारः, विष्फारः। (**स्फुलतिः**) विस्फालः विष्फालः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घञि) घञ् प्रत्यय परे होने पर (स्फुरतिस्फुलत्योः) स्फुरति और स्फुलति (धातोः) धातुओं के (एचः) एच् के स्थान में (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(स्फुरतिः) **विस्फारः, विष्फारः।** स्फुरण होना (सूझना)। (स्फुलतिः) **विस्फालः विष्फालः।** प्रकट होना।*

*सिद्धि-**विस्फारः।** वि+स्फुर्+घञ्। वि+स्फोर्+अ। वि+स्फार्+अ। विस्फार+सु। विस्फारः।*

*यहां वि उपसर्गपूर्वक **'स्फुर स्फुरणे'** (तु०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से स्फुर् को गुण होकर इस सूत्र से 'स्फोर' के एच् के स्थान में आकार आदेश होता है।*

*(२) **विष्फारः।** यहां **'स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः'** (८।३।७६) से षत्व होता है। ऐसे ही **'स्फल संचलने'** (तु०प०) धातु से-**विस्फालः, विष्फालः।***

णिचि-

(४) क्रीङ्जीनां णौ।४८।

प०वि०-क्री-इङ्-जीनाम् ६।३ णौ ७।१।

स०-क्रीश्च इङ् च जिश्च ते क्रीङ्जयः, तेषाम्-क्रीङ्जीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, आत्, एच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ क्रीङ्जीनां धातूनामेच आत्।

अर्थः-णौ प्रत्यये परतः क्रीङ्जीनां धातूनामेचः स्थाने आकारादेशो भवति।

उदा०-(क्रीः) क्रापयति। **(इङ्)** अध्यापयति। **(जिः)** जापयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (क्रीङ्जीनाम्) क्री, इङ्, जि (धातोः) धातुओं के (एचः) एच् के स्थान में (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(क्री) **क्रापयति।** वह खरीदवाता है। (इङ्) **अध्यापयति।** वह-पढ़ाता है। (जि) **जापयति।** वह जितवाता है।*

*सिद्धि-(१) **क्रापयति।** क्री+णिच्। क्रै+इ। क्रा+इ। क्रा+पुक्+इ। क्रा+प्+इ। क्रापि+लट्। क्रापि+तिप्। क्रापि+शप्+ति। क्रापे+अ+ति। क्रापय्+अ+ति। क्रापयति।*

*यहां **'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये'** (क्र्या०उ०) धातु से **'हेतुमति'** (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय और **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'क्रै' के एच् को आकार आदेश होता है। **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'क्रा' को पुक् आगम होकर 'क्रापि' धातु से लट् प्रत्यय है।*

*(२) **अध्यापयति।** अधि+इङ्+णिच्। अधि+ऐ+इ। अधि+आ+इ। अधि+आ+पुक्+इ। अधि+आ+प्+इ। अध्यापि+लट्। अध्यापयति।*

*यहां नित्य-अधिपूर्वक 'इङ् **अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से इङ् को वृद्धि ऐ और इस सूत्र से उसके एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **जापयति।** यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से णिच् प्रत्यय, 'जि' धातु को पूर्ववत् वृद्धि 'जै' होकर इस सूत्र से उसके एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

णौ--

(५) सिध्यतेरपारलौकिके।४६।

प०वि०-सिध्यतेः ६।१ अपारलौकिके ७।१।

स०-परलोकः प्रयोजनमस्य तत् पारलौकिकम्, अत्र **'प्रयोजनम्'** (५।१।१०८) इति ठक् प्रत्ययः, **'अनुशतिकादीनां च'** (७।३।२०) इत्युभयपदवृद्धिर्भवति। न पारलौकिकम् अपारलौकिकम्, तस्मिन्-अपारलौकिके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, एचः, आद्, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णावपारलौकिके सिध्यतेरेच आत्।

अर्थः-णौ प्रत्यये परतोऽपारलौकिकेऽर्थे वर्तमानस्य सिध्यतेर्धातोरेचः स्थाने आकारादेशो भवति।

उदा०-अन्नं साधयति देवदत्तः। ग्रामं साधयति यज्ञदत्तः। अपारलौकिके इति किम्-तपस्तापसं सेधयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अपारलौकिके) अपारलौकिक अर्थ में विद्यमान (सिध्यतेः) सिध्यति (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**अन्नं साधयति देवदत्तः।** देवदत्त अन्न को सिद्ध करता है। **ग्रामं साधयति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त ग्राम को सिद्ध (ठीक) करता है। अपारलौकिक का कथन इसलिये किया है कि यहां आकार आदेश न हो-**तपस्तापसं सेधयति।** तप तपस्वी को पारलौकिक सुख प्रदान करता है।*

*सिद्धि-**साधयति।** सिध्+णिच्। सेध्+इ। साध्+इ। साधि+लट्। साधयति।*

यहां 'षिधु संराद्धौ' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'सेध्' गुण होकर इस सूत्र से उसके एच् (ए) को आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ल्यपि+एज्विषये–

(६) मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च।५०।

प०वि०-मीनाति-मिनोति-दीङाम् ६।३ ल्यपि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-मीनातिश्च मिनोतिश्च दीङ् च ते मीनातिमीनोतिदीङः, तेषाम्-मीनातिमिनोतिदीङाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, आद्, एच, उपदेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे ल्यपि, एचश्च विषये मिनातिमीनोतिदीङां धातूनां आत्।

अर्थः-उपदेशावस्थायामेव ल्यपि, एचश्च विषये मिनातिमीनोतिदीङां धातूनामेचः स्थाने आकारादेशो भवति।

उदा०-(**मिनातिः**) ल्यपि-प्रमाय। एचो विषये-प्रमाता, प्रमातुम्, प्रमातव्यम्। (**मिनोतिः**) ल्यपि-निमाय। एचो विषये-निमाता, निमातुम्, निमातव्यम्। (**दीङ्**) ल्यपि-उपदाय। एचो विषये-उपदाता, उपदातुम्, उपदातव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) उपदेश-अवस्था में ही (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय के विषय में (च) और एच्-भाव विषय में (मिनातिमीनोतिदीङाम्) मिनाति, मिनोति, दीङ् धातुओं के (एचः) एच् के स्थान में (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(मिनाति) ल्यप् विषय में-**प्रमाय**। हिंसा करके। एच् विषय में-**प्रमाता**। हिंसा करनेवाला। **प्रमातुम्**। हिंसा करने के लिये। **प्रमातव्यम्**। हिंसा करनी चाहिये। **(मिनोति)** ल्यप् विषय में-**निमाय**। प्रक्षेप करके। एच् विषय में-**निमाता**। प्रक्षेप करनेवाला। **निमातुम्**। प्रक्षेप करने के लिये। **निमातव्यम्**। प्रक्षेप करना चाहिये। **(दीङ्)** ल्यप् विषय में-**उपदाय**। क्षय करके। उपदाता। क्षय करनेवाला। **उपदातुम्**। क्षय करने के लिये। **उपदातव्यम्**। क्षय करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **प्रमाय**। यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'मीञ् हिंसायाम्'** (क्र्या०उ०) धातु से क्त्वा प्रत्यय और उसके स्थान में ल्यप् का विषय प्रस्तुत होने पर उपदेश अवस्था में ही 'मीञ्' धातु के ईकार को इस सूत्र से आकार होता है।*

*(२) **प्रमाता।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'मीञ्' धातु से 'तृच्' प्रत्यय और उसके परे होने पर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'मीञ्' धातु को गुण रूप एच् विषय प्रस्तुत होने पर उपदेश अवस्था में ही 'मीञ्' धातु के एच् (ए) को इस सूत्र से आकार आदेश होता है।*

*(३) **प्रमातुम्।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'मीञ्' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से तुमुन् प्रत्यय है।*

*(४) **प्रमातव्यम्।** यहां प्र उपसर्गपूर्वक 'मीञ्' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से तव्यत् प्रत्यय है।*

*(५) **निमाय।** नि-उपसर्गपूर्वक **'डुमिञ् प्रक्षेपणे'** (स्वा०उ०) धातु से ल्यप्-विषय में पूर्ववत्।*

*(६) **निमाता।** नि-उपसर्गपूर्वक 'मि' धातु से एच्-विषय में पूर्ववत्। ऐसे ही-**निमातुम्, निमातव्यम्।***

*(७) **उपदाय।** उप-उपसर्गपूर्वक **'दीङ् क्षये'** (दि०आ०) धातु से ल्यप्-विषय में पूर्ववत्।*

*(८) **उपदाता।** उप-उपसर्गपूर्वक 'दीङ्' धातु से एच्-विषय में पूर्ववत्। ऐसे ही-**उपदातुम्, उपदातव्यम्।***

*यहां उपदेश अवस्था में आकार आदेश विधान करने का यह प्रयोजन है कि इन 'मीञ्' आदि धातुओं से **'एरच्'** (३।३।५६) से इकारान्त-लक्षण अच् प्रत्यय नहीं होता है और **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से आकारान्त लक्षण युक् आगम होता है-**उपदायो वर्तते** और **'आतो युच्'** (३।३।१२८) से आकारान्त लक्षण 'युच्' प्रत्यय होता है-**ईषदुपदानम्।***

आकारादेश-विकल्पः–

(७) विभाषा लीयतेः।५१।

प०वि०–विभाषा १।१ लीयतेः ६।१।

अनु०–धातोः, आत्, एचः, उपदेशे, ल्यपि च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपदेशे ल्यपि एचश्च विषये लीयतेर्धातोरेचो विभाषा आत्।

अर्थः–उपदेशावस्थायामेव ल्यपि एचश्च विषये लीयतेर्धातोरेचः स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०–ल्यपि विषये–विलाय, विलीय। एचो विषये–विलाता, विलातुम्, विलातव्यम्। विलेता, विलेतुम्, विलेतव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) उपदेश अवस्था में ही (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय के विषय में (च) और एच्-भाव विषय में (लीयतेः) लीयति (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-ल्यप् विषय में-**विलाय, विलीय।** विलीन होकर। एच् विषय में-**विलाता।** विलीन होकर। **विलातुम्।** विलीन होने के लिये। **विलातव्यम्।** विलीन होना चाहिये। **विलेता, विलेतुम्, विलेतव्यम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **विलायः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'लीङ् श्लेषणे'** (क्र्या०आ०) धातु को ल्यप्-प्रत्यय के विषय में उपदेश अवस्था में ही आकार आदेश है।*

*(२) **विलीय।** यहां पूर्वोक्त 'लीङ्' धातु को ल्यप्-प्रत्यय के विषय में आकार आदेश नहीं है।*

*(३) **विलाता** और **विलेता** आदि पदों में पूर्वोक्त 'लीङ्' धातु को एच् विषय में इस सूत्र से विकल्प से आकार आदेश स्पष्ट है। जहां आकार आदेश नहीं होता वहां **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से लीङ् धातु को गुण हो जाता है।*

आकारादेश-विकल्पः–

(८) खिदेश्छन्दसि।५२।

प०वि०-खिदेः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-धातोः, आत्, एचः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि खिदेर्धातोरेचो विभाषा आत्।

अर्थः-छन्दसि विषये खिदेर्धातोरेचः स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०-चित्तं चिखाद। चित्तं चिखेद।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (खिदेः) खिद् (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**चित्तं चिखाद।** उसने चित्त को खिन्न किया। **चित्तं चिखेद।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **चिखाद।** खिद्+लिट्। खिद्+तिप्। खिद्+णल्। खिद्-खिद्+अ। खि-खेद्+अ। चि-खाद्+अ। चिखाद।*

*यहां **'खिद दैन्ये'** (दि०आ०) धातु से लिट् प्रत्यय और उसके स्थान में तिप् और उसे णल् आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से खिद् धातु को द्वित्व होकर **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है। इस सूत्र से छन्द विषय में*

*'खेद्' के एच् (ए) के स्थान में आकार आदेश होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास के खकार को चुत्व होता है।*

*(२) **चिखेद।** यहां 'खिद्' धातु के एच् को छन्द विषय में विकल्प पक्ष में आकार आदेश नहीं है।*

आकारादेश-विकल्पः–

(६) अपगुरो णमुलि।५३।

प०वि०-अपगुरः ६।१ णमुलि ७।१।

अनु०-धातोः, आत्, एचः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णमुलि अपगुरो धातोरेचो विभाषा आत्।

अर्थः-णमुलि प्रत्यये परतोऽप-पूर्वस्य गुरो धातोरेचः स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०-अपगारमपगारम्, अपगोरमपगोरम्।

अत्र **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) इत्यनेन णमुल् प्रत्ययः। असि-अपगारं युध्यन्ते, असि-अपगोरं युध्यन्ते इत्यत्र **'द्वितीयायां च'** (३।४।५३) इत्यनेन णमुल् प्रत्ययः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(णमुलि) णमुल् प्रत्यय परे होने पर (अपगुरः) अप-उपसर्गपूर्वक गुर् (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**अपगारमपगारम्।** उठा-उठाकर। **अपगोरमपगोरम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*यहां **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से णमुल् प्रत्यय है। **असि-अपगारं युध्यन्ते, असि-अपगोरं युध्यन्ते।** तलवार को उठा-उठाकर युद्ध करते हैं। यहां **'द्वितीयायां च'** (३।४।५३) से णमुल् प्रत्यय है।*

सिद्धि-(१) अपगारम्। *अप+गुर्+णमुल्। अप+गोर्+अम्। अप+गार्+अम्। अपगारम्+सु। अपगारम्+०। अपगारम्।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक **'गुरी उद्यमने'** (दि०आ०) धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से णमुल् प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'गुर्' को लघूपध-गुण होता है। इस सूत्र से 'गोर्' के एच् (ओ) को आकार होता है। **वा०-आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से द्वित्व होता है-**अपगोरमपगोरम्।***

*(२) **अपगोरम्।** यहां इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'अपगुर्' के एच् (ओ) को आकार आदेश नहीं है।*

आकारादेश-विकल्पः–

(१०) चिस्फुरोर्णौ।५४।

प०वि०-चि-स्फुरो: ६।२ णौ ७।१।

स०-चिश्च स्फुर् च तौ चिस्फुरौ, तयो:-चिस्फुरो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-धातो:, आत्, एच:, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वय:-णौ चिस्फुरोर्धात्वोरेचो विभाषा आत्।

अर्थ:-णौ प्रत्यये परतश्चिस्फुरोर्धात्वोरेच: स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०-**(चि:)** चापयति, चाययति। **(स्फुर्)** स्फारयति, स्फोरयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (चिस्फुरो:) चि और स्फुर् (धातो:) धातुओं के (एच:) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(चि) **चापयति, चाययति।** चयन कराता है। (स्फुर्) **स्फारयति, स्फोरयति।** सुझाता है।*

*सिद्धि-(१) **चापयति।** चि+णिच्। चै+इ। चा+इ। चा+पुक्+इ। चापि+लट्। चापयति।*

यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'चि' को 'चै' वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'चि' धातु के एच् (ऐ) के स्थान में आकार आदेश होता है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से उसे पुक् आगम होकर 'चापि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

*(२) **चाययति।** यहां णिच् प्रत्यय परे होने पर 'चि' धातु के 'एच्' को इस सूत्र से विकल्प पक्ष में आकार आदेश नहीं है। अत: 'चायि' धातु से लट् प्रत्यय है।*

*(३) **स्फारयति।** स्फुर्+णिच्। स्फोर्+इ। स्फार्+इ। स्फारि+लट्। स्फारयति।*

यहां 'स्फुर स्फुरणे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'स्फुर्' को 'स्फोर्' गुण होता है। इस सूत्र से 'स्फुर्' के 'एच्' (ओ) को आकार आदेश होता है, तत्पश्चात् 'स्फारि' धातु से लट् प्रत्यय है।

*(४) **स्फोरयति।** यहां इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'स्फुर्' धातु के एच् (ओ) को आकार आदेश नहीं है।*

आकारादेश-विकल्पः–

(११) प्रजने वीयतेः।५५।

प०वि०-प्रजने ७।१ वीयतेः ६।१।

अनु०-धातोः, आत्, एचः, विभाषा, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ प्रजने वीयतेर्धातोरेचो विभाषा आत्।

अर्थः-णौ प्रत्यये परतः प्रजनेऽर्थे वर्तमानस्य वीयतेर्धातोरेचः स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०-पुरोवातो गाः प्रवापयति। पुरावातो गाः प्रवाययति। गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः। प्रजनः=जन्मन उपक्रमो गर्भग्रहणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (प्रजने) गर्भग्रहण अर्थ में विद्यमान (वीयतेः) वीयति (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पुरोवातो गाः प्रवापयति। पुरावातो गाः प्रवाययति।** पूर्व का वायु गौओं का गर्भधारण कराता है।*

*सिद्धि-(१) **प्रवापयति।** प्र+वी+णिच्। प्र+वै+इ। प्र+वा+इ। प्र+वा+पुक्+इ। प्रवापि+लट्। प्रवापयति।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक प्रजनार्थक '**वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'वी' को 'वै' वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'वी' धातु के एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। इस सूत्र से उसे 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से पुक् आगम होता है, तत्पश्चात् 'प्रवापि' धातु के लट् प्रत्यय है।*

*(२) **प्रवाययति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक प्रजनार्थक 'वी' धातु से 'णिच्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से विकल्प-पक्ष में 'वी' धातु के 'एच्' को आकार आदेश नहीं है।*

आकारादेश-विकल्पः–

(१२) बिभेतेर्हेतुभये।५६।

प०वि०-बिभेतेः ६।१ हेतुभये ७।१।

स०-'तत्प्रयोजको हेतुश्च' (१।४।५५) इत्यनेन स्वतन्त्रस्य कर्तुः प्रयोजकस्य हेतुसंज्ञा विहिता, तस्येदं ग्रहणम्। हेतोर्भयम्-हेतुभयम्, तस्मिन्-हेतुभये (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-धातोः, आत्, एचः, विभाषा, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ हेतुभये बिभेतेर्धातोर्विभाषा आत्।

अर्थः-णौ प्रत्यये परतो हेतुभयेऽर्थे वर्तमानस्य बिभतेर्धातोरेचः स्थाने विकल्पेनाकारादेशो भवति।

उदा०-मुण्डो भापयते, जटिलो भापयते। मुण्डो भीषयते, जटिलो भीषयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (हेतुभये) हेतु से भय होना अर्थ में विद्यमान (बिभेतेः) बिभेति (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**मुण्डो भापयते, जटिलो भापयते।** शिर मुंडवाया हुआ/जटाधारी पुरुष बालक को डराता है। **मुण्डो भीषयते, जटिलो भीषयते।** शिर मुंडवाया हुआ/जटाधारी पुरुष बालक को डराता है।*

*सिद्धि-(१) **भापयते।** भी+णिच्। भै+इ। भा+इ। भा+पुक्+इ। भापि+लट्। भापयते।*

*यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'भी' को 'भै' वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'भी' के एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से उसे पुक् आगम होता है, तत्पश्चात् 'भापि' धातु से लट् प्रत्यय है।*

*(२) **भीषयते।** यहां 'भी' धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'भी' धातु के 'एच्' को आकार आदेश नहीं है अतः **'भियो हेतुभये षुक्'** (७।३।४०) से 'भी' धातु को षुक् आगम होता है, तत्पश्चात् 'भीषि' धातु से लट् प्रत्यय है। **'भीस्म्योर्हेतुभये'** (१।३।६८) से आत्मनेपद ही होता है।*

नित्यमाकारादेशः-

(१३) नित्यं स्मयतेः।५७।

प०वि०-नित्यम् १।१ स्मयतेः ६।१।

अनु०-धातोः, आत्, एचः, णौ, हेतुभये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णौ हेतुभये स्मयतेर्धातोरेचो नित्यम् आत्।

अर्थः-णौ प्रत्यये परतो हेतुभयेऽर्थे वर्तमानस्य स्मयतेर्धातोरेचः स्थाने नित्यमाकारादेशो भवति।

उदा०-मुण्डो विस्मापयते। जटिलो विस्मापयते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (हेतुभये) हेतु से भय होना अर्थ में विद्यमान (स्मयतेः) स्मयति (धातोः) धातु के (एचः) एच् के स्थान में (नित्यम्) सदा (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**मुण्डो विस्मापयते।** शिर मुंडवाया हुआ पुरुष बालक को डराता है। **जटिलो विस्मापयते।** जटाधारी पुरुष बालक को डराता है।*

सिद्धि-विस्मापयते। *वि+स्मि+णिच्। वि+स्मै+इ। वि+स्मा+इ। वि+स्मा+पुक्+इ। विस्मापि+लट्। विस्मापयते।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक हेतुभय' अर्थ में विद्यमान '**ष्मिङ् ईषद्धसने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् णिच् प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'स्मि' को 'स्मै' वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'स्मि' के एच् (ऐ) को आकार आदेश होता है। '**अर्तिह्री०**' (७।३।३६) से उसे पुक् आगम है। 'विस्मापि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**भीस्म्योर्हेतुभये**' (१।३।६८) से आत्मनेपद ही होता है।*

*पाणिनीय धातुपाठ में स्मिङ् धातु ईषद्धसने (मुस्कराना) अर्थ में पठित है किन्तु '**अनेकार्था हि धातवो भवन्ति**' (महाभाष्य) के प्रमाण से यहां 'स्मि' धातु हेतुभय अर्थ में विद्यमान है। धातुपाठ में धातुओं के निर्दिष्ट अर्थ केवल उदाहरणमात्र हैं।*

।। इति आकारादेशप्रकरणम्।।

अमागमविधिः

अम्-आगमः-

(१) सृजिदृशोर्झल्यमकिति।५८।

प०वि०-सृजि-दृशोः ६।२ झलि ७।१ अकिति ७।१।

स०-सृजिश्च दृश् च तौ सृजिदृशौ, तयोः-सृजिदृशोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। क इद् यस्य स कित्, न कित् अकित्, तस्मिन्-अकिति (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-धातोरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-सृजिदृशोर्धात्वोरकिति झलि अम्।

अर्थः-सृजिदृशोर्धात्वोः किद्भिन्ने झलादौ प्रत्यये परतोऽमागमो भवति।

उदा०-(सृजि) स्रष्टा, स्रष्टुम्, स्रष्टव्यम्। **(दृश्)** द्रष्टा, द्रष्टुम्, द्रष्टव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सृजिदृशोः) सृज् और दृश् (धातोः) धातुओं को (अकिति) कित् से भिन्न (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (अम्) अम् आगम होता है।*

*उदा०-(सृजि) **स्रष्टा।** बनानेवाला। **स्रष्टुम्।** बनाने के लिये। **स्रष्टव्यम्।** बनाना चाहिये। (दृश्) **द्रष्टा।** देखनेवाला। **द्रष्टुम्।** देखने के लिये। **द्रष्टव्यम्।** देखना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **स्रष्टा।** सृज्+तृच्। सृ अम् ज्+तृ। स् र् अ ज्+तृ। स्रज्+तृ। स्रष्+टृ। स्रष्टृ+सु। स्रष्टा।*

*यहां '**सृज् विसर्गे**' (तु०प०) धातु से '**ण्वुल् तृचौ**' (३।१।१३३) से तृच् प्रत्यय है। कित् से भिन्न, झलादि तृच् प्रत्यय परे होने पर 'सृज्' धातु को इस सूत्र से 'अम्' आगम होता है और वह मित् होने से '**मिदचोऽन्त्यात् परः**' (१।१।४६) से 'सृज्' धातु के अन्तिम अच् से परे होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७५) से सृज् के ऋकार को रेफ आदेश होता है। '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८।२।३६) से 'सृज्' के जकार को षत्व और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से तकार को टुत्व होता है।*

*(२) **स्रष्टुम्।** यहां 'सृज्' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से कित्-भिन्न, झलादि 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **स्रष्टव्यम्।** यहां 'सृज्' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से कित्-भिन्न झलादि 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) 'सृज्' धातु के सहाय से 'दृश्' धातुओं के द्रष्टा आदि पदों की सिद्धि करें।

अमागम-विकल्पः-

(२) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्तरस्याम्।५६।

प०वि०-अनुदात्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्, ऋदुपधस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-ऋद् उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्य-ऋदुपधस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-धातोः, उपदेशे, झलि, अम्, अकिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशेऽनुदात्तस्य ऋदुपधस्य च धातोरकिति झल्यन्यतरस्याममम्।

अर्थः-उपदेशेऽनुदात्तस्य ऋकारोपधस्य च धातोः किद्भिन्ने झलादौ प्रत्यये परतो विकल्पेनामागमो भवति।

उदा०-तृप प्रीणने (दि०प०) त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता। दृप हर्षमोहनयोः (दि०प०) द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनिमुनि के उपदेश धातुपाठ में (अनुदात्त) अनिट् (च) और (ऋदुपधस्य) ऋकार उपधावाली (धातोः) धातु को (अकिति) कित् से भिन्न (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अम्) अम् आगम होता है।*

*उदा०-**तृप प्रीणने** (दि०प०) **त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता।** तृप्त करनेवाला। **दृप हर्षमोहनयोः** (दि०प०) **द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।** अभिमान करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **त्रप्ता।** तृप्+तृच्। तृप्+तृ। तृ अम् प्+तृ। तृ अ प्+तृ। त् र् अ प्+तृ। त्रप्तृ+सु। त्रप्ता।*

*यहां **'तृप प्रीणने'** (दि०प०) इस अनुदात्त और ऋकार उपधावाली धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से कित्-भिन्न, झलादि 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तृप्' धातु को अम् आगम होता है और वह मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४६) से 'तृप्' के अन्तिम अच् ऋकार से परे होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'तृप्' के ऋकार को रेफ आदेश होता है।*

*(२) **तर्प्ता।** यहां पूर्वोक्त 'तृप्' धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय है। यहां विकल्प-पक्ष में 'तृप्' धातु को अम् आगम नहीं है अतः **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'तृप्' धातु को लघूपध गुण 'अर्' होता है।*

*(३) **तर्पिता।** यहां पूर्वोक्त 'तृप्' धातु से पूर्ववत् तृच् प्रत्यय है। यहां **'रधादिभ्यश्च'** (७।२।४५) से 'तृच्' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। इट् आगम से 'तृप्' धातु के अनुदात्त न रहने से उसे इस सूत्र से अम् आगम नहीं होता है।*

*(४) **'तृप्'** धातु के सहाय से **'दृप्'** धातु के पदों की सिद्धि करें।*

***विशेषः** पाणिनीय धातुपाठ में उदात्त आदि शब्दों का अर्थ निम्नलिखित है-उदात्त=सेट्। अनुदात्त=अनिट्। स्वरित=वेट्। उदात्तेत्=परस्मैपद। अनुदात्तेत्=आत्मनेपद। स्वरितेत्=उभयपद।*

आदेशप्रकरणम्

निपातनम्-

(१) शीर्षँश्छन्दसि।६०।

प०वि०-शीर्षन् १।१ छन्दसि ७।१।

अन्वयः-छन्दसि शीर्षन्।

अर्थः-छन्दसि विषये शिरःस्थाने शीर्षन् आदेशो निपात्यते।

उदा०-शीर्ष्णा हि तत्र सोमं क्रीतं वहन्ति। यत्ते शीर्ष्णो दौर्भाग्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (शीर्षन्) शीर्षन् आदेश निपातित है।*

*उदा०-**शीर्ष्णा हि तत्र सोमं क्रीतं वहन्ति। यत्ते शीर्ष्णो दौर्भाग्यम्।***

*सिद्धि-(१) **शीर्ष्णा**। शिरस्+टा। शीर्षन्+आ। शीर्षन्+आ। शीर्ष्ण्+आ। शीर्ष्णा।*

*यहां छन्दविषय में 'शीर्षन्' शब्द से तृतीया-विभक्ति का एकवचन 'टा' प्रत्यय है। '**अल्लोपोऽनः**' (६।४।१३४) से शीर्षन् के अकार का लोप और '**रषाभ्यां नो णः समानपदे**' (८।४।१) से णत्व होता है।*

*(२) **शीर्ष्णः**। यह षष्ठीविभक्ति का एकवचन है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *(१) काशिकाकार पं० जयादित्य का मत है कि यह 'शीर्षन्' शब्द छन्द में 'शिरः' शब्द का समानार्थक शब्द है। यह 'शिरः' शब्द के स्थान में शीर्षन् आदेश निपातित नहीं है अपितु यह शब्दान्तर है। यदि शिरः शब्द को शीर्षन् आदेश माना जाये तो 'शिरः' शब्द का छन्द में प्रयोग नहीं होना चाहिये किन्तु वह भी छन्द में प्रयुक्त है।*

(२) न्यासकार पं० जिनेन्द्रबुद्धि का मत है कि 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति करने पर 'शीर्षन्' आदेश पक्ष में भी कोई दोष नहीं है।

*(३) 'शिरः' शब्द के स्थान में 'शीर्षन्' आदेश निपातित करना उचित है। यह '**ये च तद्धिते**' (६।१।६०) में 'चकार' 'च' पद के पाठ से ध्वनित होता है। '**वा च्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति**' इस वचन-प्रमाण से छन्द में दोनों शब्दों का व्यवहार साधु है।*

शीर्षन्-आदेशः-

(२) ये च तद्धिते।६१।

प०वि०-ये ७।१ च अव्ययपदम्, तद्धिते ७।१।

अनु०-शीर्षन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तद्धिते ये च {शिरसः} शीर्षन्।

अर्थः-यकारादौ तद्धिते प्रत्यये च परतः शिरःशब्दस्य स्थाने शीर्षन्-आदेशो भवति।

उदा०-शीर्षण्यो हि मुख्यो भवति। शीर्षण्यः स्वरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ये) यकारादि (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (च) भी शिरस् शब्द के स्थान में (शीर्षन्) शीर्षन् आदेश होता है।*

उदा०-शीर्षण्यो हि मुख्यो भवति। शीर्षण्यः स्वरः। शीर्षण्यः=मुख्य (प्रधान)।

सिद्धि-शीर्षण्यः। *शिरस्+यत्। शीर्षन्+य। शीर्षण्+य। शीर्षण्य+सु। शीर्षण्यः।*

यहां 'शिरस्' शब्द से 'शरीरावयवाच्च' (४।३।५५) से भव-अर्थ में यकारादि, तद्धित 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शिरस्' के स्थान में 'शीर्षन्' आदेश होता है। 'ये चाभावकर्मणोः' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से नकार का णत्व होता है।

शीर्ष-आदेशः-

(३) अचि शीर्षः।६२।

प०वि०-अचि ७।१ शीर्षः १।१।

अनु०-तद्धिते इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अचि तद्धिते {शिरसः} शीर्षः।

अर्थः-अजादौ तद्धिते प्रत्यये परतः शिरःशब्दस्य स्थाने शीर्ष आदेशो भवति।

उदा०-हस्तिशिरसोऽपत्यम्-हास्तिशीर्षिः। स्थूलशिरस इदम्-स्थौलशीर्षम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचि) अजादि (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (शिरसः) शिरस् शब्द के स्थान में (शीर्षः) शीर्ष आदेश होता है।*

उदा०-हस्तिशिरा का अपत्य (पुत्र)-हास्तिशीर्षि। हस्तिशिरा का यह-हास्तिशीर्ष।

सिद्धि-(१) हास्तिशीर्षिः। *हस्तिशिरस्+ङस्+इञ्। हस्तिशीर्ष+इ। हास्तिशीर्षि+सु। हास्तिशीर्षिः।*

*यहां 'हस्तिशिरस्' शब्द से अपत्य अर्थ में **'बाह्वादिभ्यश्च'** (४।१।४५) से 'इञ्' प्रत्यय है, इस अजादि तद्धित प्रत्यय परे होने पर 'शिरस्' शब्द के स्थान में इस सूत्र से 'शीर्ष' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शीर्षन् आदेश होने पर 'अन्' (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव होता, अतः शीर्ष आदेश किया गया है।*

*(२) **स्थौलशीर्षम्।** यहां 'स्थूलशिरस्' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।११९) से अजादि तद्धित 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

पदादि-आदेशाः–

(४) पद्दन्नोमास्हृन्निशन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।६३।

प०वि०- पद्-दत्-नस्-मास्-हृद्-निशन्-यूषन्-दोषन्-यकन्-शकन्-उदन्-आसन् १ ।१ शस्प्रभृतिषु ७ ।३ ।

स०-पच्च दच्च नश्च माश्च हृच्च निशँश्च यूषँश्च दोषँश्च यकँश्च शकँश्च उदँश्च आसँश्च एतेषां समाहारः-पद्दन्नोमास्हृन्निशन्-यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासन् (समाहारद्वन्द्वः)। शस् प्रभृतिर्येषां ते शस्प्रभृतयः, तेषु-शस्प्रभृतिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-'अन्यतरस्याम्' (६ ।१ ।५९) इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि भाषायां च शस्प्रभृतिषु {पाद-दन्त-नासिका-मास-हृदय-निशा-असृज्-यूष-दोष-यकृत्-शकृत्-उदक-आसनानाम्} अन्यतरस्यां पद्दन्मास्हृन्निशन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासन्।

अर्थः-शस्प्रभृतिषु प्रत्ययेषु परतः पाद-दन्त-नासिका-मास-हृदय-निशा-असृज्-यूष-दोष-यकृत्-शकृत्-उदक-आसनानां शब्दानां स्थाने विकल्पेन यथासंख्यम् पद्-दत्-नस्-मास्-हृत्-निश्-असन्-यूषन्-यकन्-शकन्-उदन् आसन्-आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्-**

स्थानी	आदेशः	रूपम् (शसि)	प्रयोगः
पाद	पद्	पादान् (पदः)	निपदश्चतुरो जहि। पदा वर्तय गोदुहम्।
दन्त	दत्	दन्तान् (दतः)	या दतो धावते तस्यै श्यावदन्। (तै०सं० २ ।५ ।१ ।७)
नासिका	नस्	नासिका (नस्)	सूकरस्त्वा खनन्नसः (शौ०सं० २ ।२ ।७ ।२)।
मास	मास्	मासान् (मासः)	मासि त्वा पश्यामि चक्षुषि (तै०सं०२ ।५ ।६ ।६)

स्थानी	आदेशः	रूपम् (शसि)	प्रयोगः
हृदय	हृद्	हृदयानि (हृदः)	हृदा पूतं मनसा जातवेदो० (शौ०सं० ४।३९।१०)।
निशा	निश्	निशाः (निशः)	अमावस्यायां निशि {यजेत} (खि० २।१।८)
असृक्	असन्	असृजः (अस्नः)	असिक्तोऽस्ना {वरोहति} (मै०सं० ३।१।८)
यूष	यूषन्	यूषान् (यूष्णः)	या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि (ऋ० १।१६२।१३)
दोष	दोषन्	दोषान् (दूष्णः)	यत्ते दोष्णो {दौर्भाग्यम्} (मै०सं० ३।१०।३)
यकृत्	यकन्	यकृतः (यक्नः)	यक्नोऽवद्यति (मै०सं० ३।१०।३)
शकृत्	शकन्	शकृतः (शक्नः)	शक्नोऽवद्यति (शौ०सं० १२।४।४)
उदक	उदन्	उदकानि (उद्नः)	उद्नो दित्यस्य {नो धेहि} (तै०सं०२।४।८।२)
आसन	आसन्	आसनानि (आस्नः)	आसनि {किं लभे मधूनि} (ऋ० १५।७५।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-छन्द और भाषा में (शस्प्रभृतिषु) शस् आदि प्रत्यय परे होने पर पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृक्, यूष, यकृत्, शकृत्, उदक, आसन शब्दों के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (पद्०आसन्) यथासंख्य पद्, दत्, नस्, मास्, हृद्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन्, आसन् आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका प्रयोग संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-पदः। पाद+शस्। पद्+अस्। पद्+अरु। पद्+अर्। पदः।

यहां शस् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से पाद के स्थान में पद् आदेश होता है। ऐसे ही-दतः आदि।

पाठकों की सुविधा के लिये 'पाद' आदि सब शब्दों के समस्त रूप यहां लिखे जाते हैं-

(१) पादशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	पादः	पादौ	पादाः
आमन्त्रितम्	हे पाद (सम्बुद्धिः)	हे पादौ !	हे पादाः !
द्वितीया	पादम्	पादौ	पादान् (पदः)
तृतीया	पादेन (पदा)	पादाभ्याम् (पद्भ्याम्)	पादैः (पद्भिः)
चतुर्थी	पादाय (पदे)	पादाभ्याम् (पद्भ्याम्)	पादेभ्यः (पद्भ्यः)
पञ्चमी	पादात् (पदः)	पादाभ्याम् (पद्भ्याम्)	पादेभ्यः (पद्भ्यः)
षष्ठी	पादस्य (पदः)	पादयोः (पदोः)	पादानाम् (पदाम्)
सप्तमी	पादे (पदि)	पादयोः (पदोः)	पादेषु (पत्सु)

(२) दन्तशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	दन्तः	दन्तौ	दन्ताः
आमन्त्रितम्	हे दन्त (सम्बुद्धिः)	हे दन्तौ !	हे दन्ताः !
द्वितीया	दन्तम्	दन्तौ	दन्तान् (दतः)
तृतीया	दन्तेन (दता)	दन्ताभ्याम् (दद्भ्याम्)	दन्तैः (दद्भिः)
चतुर्थी	दन्ताय (दते)	दन्ताभ्याम् (दद्भ्याम्)	दन्तेभ्यः (दद्भ्यः)
पञ्चमी	दन्तात् (दतः)	दन्ताभ्याम् (दद्भ्याम्)	दन्तेभ्यः (दद्भ्यः)
षष्ठी	दन्तस्य (दतः)	दन्तयोः (दतोः)	दन्तानाम् (दताम्)
सप्तमी	दन्ते (दति)	पादयोः (दतोः)	दन्तेषु (दत्सु)

(३) नासिका-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	नासिका	नासिके	नासिकाः
आमन्त्रितम्	हे नासिके (सम्बुद्धिः)	हे नासिके !	हे नासिकाः !
द्वितीया	नासिकाम्	नासिके	नासिकाः (नसः)
तृतीया	नासिकया (नसा)	नासिकाभ्याम् (नाभ्याम्)	नासिकाभिः (नोभिः)
चतुर्थी	नासिकायै (नसे)	नासिकाभ्याम् (नाभ्याम्)	नासिकाभ्यः (नोभ्यः)
पञ्चमी	नासिकायाः (नसः)	नासिकाभ्याम् (नाभ्याम्)	नासिकाभ्यः (नोभ्यः)
षष्ठी	नासिकायाः (नसः)	नासिकयोः (नसोः)	नासिकानाम् (नसाम्)
सप्तमी	नासिकायाम् (नसि)	नासिकयोः (नसोः)	नासिकासु (नस्सु)

(४) मासशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	मासः	मासौ	मासाः
आमन्त्रितम्	हे मास (सम्बुद्धिः)	हे मासौ !	हे मासाः !
द्वितीया	मासम्	मासौ	मासान् (मासः)
तृतीया	मासेन (मासा)	मासाभ्याम् (माभ्याम्)	मासैः (माभिः)
चतुर्थी	मासाय (मासे)	मासाभ्याम् (माभ्याम्)	मासेभ्यः (माभ्यः)
पञ्चमी	मासात् (मासः)	मासाभ्याम् (माभ्याम्)	मासेभ्यः (माभ्यः)
षष्ठी	मासस्य (मासः)	मासयोः (मासोः)	मासानाम् (मासाम्)
सप्तमी	मासे (मासि)	मासयोः (मासोः)	मासेषु (मास्सु)

(५) हृदयशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	हृदयम्	हृदये	हृदयानि
आमन्त्रितम्	हे हृदय (सम्बुद्धिः)	हे हृदये !	हे हृदयानि !
द्वितीया	हृदयम्	हृदये	हृदयानि (हृदः)
तृतीया	हृदयेन (हृदा)	हृदयाभ्याम् (हृद्भ्याम्)	हृदयैः (हृद्भिः)
चतुर्थी	हृदयाय (हृदे)	हृदयाभ्याम् (हृद्भ्याम्)	हृदयेभ्यः (हृद्भ्यः)
पञ्चमी	हृदयात् (हृदः)	हृदयाभ्याम् (हृद्भ्याम्)	हृदयेभ्यः (हृद्भ्यः)
षष्ठी	हृदयस्य (हृदः)	हृदययोः (हृदोः)	हृदयेभ्यः (हृद्भ्यः)
सप्तमी	हृदये (हृदि)	हृदययोः (हृदोः)	हृदयेषु (हृत्सु)

(६) निशा-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	निशा	निशे	निशाः
आमन्त्रितम्	हे निशे (सम्बुद्धिः)	हे निशे !	हे निशाः !
द्वितीया	निशाम्	निशे	निशाः (निशः)
तृतीया	निशया (निशा)	निशाभ्याम् (निड्भ्याम्)	निशाभिः (निड्भिः)
चतुर्थी	निशायै (निशे)	निशाभ्याम् (निड्भ्याम्)	निशाभ्यः (निड्भ्यः)
पञ्चमी	निशायाः (निशः)	निशाभ्याम् (निड्भ्याम्)	निशाभ्यः (निड्भ्यः)
षष्ठी	निशायाः (निशः)	निशयोः (निशोः)	निशानाम् (निशाम्)
सप्तमी	निशायाम् (निशि)	नशयोः (निशोः)	निशासु (निट्सु)

(७) असृक्-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	असृक्	असृजौ	असृजः
आमन्त्रितम्	हे असृक् (सम्बुद्धिः)	हे असृजौ !	हे असृजः !
द्वितीया	असृजम्	असृजौ	असृजः (अस्नः)
तृतीया	असृजा (अस्ना)	असृग्भ्याम् (असभ्याम्)	असृग्भिः (असभिः)
चतुर्थी	असृजे (अस्ने)	असृग्भ्याम् (असभ्याम्)	असृग्भ्यः (असभ्यः)
पञ्चमी	असृजः (अस्नः)	असृग्भ्याम् (असभ्याम्)	असृग्भ्यः (असभ्यः)
षष्ठी	असृजः (अस्नः)	असृजोः (अस्नोः)	असृजाम् (अस्नाम्)
सप्तमी	असृजि (अस्नि)	असृजोः (अस्नोः)	असृक्षु (अससु)

(८) यूष-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	यूषः	यूषौ	यूषाः
आमन्त्रितम्	हे यूष (सम्बुद्धिः)	हे यूषौ !	हे यूषाः !
द्वितीया	यूषम्	यूषौ	यूषान् (यूष्णः)
तृतीया	यूषेण (यूष्णा)	यूषाभ्याम् (यूषभ्याम्)	यूषैः (यूषभिः)
चतुर्थी	यूषाय (यूष्णे)	यूषाभ्याम् (यूषभ्याम्)	यूषेभ्यः (यूषभ्यः)
पञ्चमी	यूषात् (यूष्णः)	यूषाभ्याम् (यूषभ्याम्)	यूषेभ्यः (यूषभ्यः)
षष्ठी	यूषस्य (यूष्णः)	यूषयोः (यूष्णोः)	यूषाणाम् (यूष्णाम्)
सप्तमी	यूषे (यूष्णि, यूषणि)	यूषयोः (यूष्णोः)	यूषेषु (यूषसु)

यूषः=रसः, जूष, शोरवा इति भाषायाम्।

(९) दोषशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	दोषः	दोषौ	दोषाः
आमन्त्रितम्	हे दोष (सम्बुद्धिः)	हे दोषौ !	हे दोषाः !
द्वितीया	दोषम्	दोषौ	दोषान् (दोष्णः)
तृतीया	दोषेण (दोष्णा)	दोषाभ्याम् (दोषभ्याम्)	दोषैः (दोषभिः)
चतुर्थी	दोषाय (दोष्णे)	दोषाभ्याम् (दोषभ्याम्)	दोषेभ्यः (दोषभ्यः)
पञ्चमी	दोषात् (दोष्णः)	दोषाभ्याम् (दोषभ्याम्)	दोषेभ्यः (दोषभ्यः)
षष्ठी	दोषस्य (दोष्णः)	दोषयोः (दोष्णोः)	दोषाणाम् (दोष्णाम्)
सप्तमी	दोषे (दोष्णि, दोषणि)	दोषयोः (दोष्णोः)	दोषेषु (दोषसु)

दोषः=बाहुरित्यर्थः।

(१०) यकृत्-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	यकृत्	यकृतौ	यकृतः
आमन्त्रितम्	हे यकृत् (सम्बुद्धिः)	हे यकृतौ !	हे यकृतः !
द्वितीया	यकृतम्	यकृतौ	यकृतः (यक्नः)
तृतीया	यकृता (यक्ना)	यकृद्भ्याम् (यकभ्याम्)	यकृद्भिः (यकभिः)
चतुर्थी	यकृते (यक्ने)	यकृद्भ्याम् (यकभ्याम्)	यकृद्भ्यः (यकभ्यः)
पञ्चमी	यकृतः (यक्नः)	यकृद्भ्याम् (यकभ्याम्)	यकृद्भ्यः (यकभ्यः)
षष्ठी	यकृतः (यक्नः)	यकृतोः (यक्नोः)	यकृताम् (यक्नाम्)
सप्तमी	यकृति (यक्नि,यकनि)	यकृतोः (यक्नोः)	यकृत्सु(यकसु)

यम्=संयमं करोतीति यकृत्। जिगर इति भाषायाम्।।

(११) शकृत्-शब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	शकृत्	शकृतौ	शकृतः
आमन्त्रितम्	हे शकृत् (सम्बुद्धिः)	हे शकृतौ !	हे शकृतः !
द्वितीया	शकृतम्	शकृतौ	शकृतः (शक्नः)
तृतीया	शकृता (शक्ना)	शकृद्भ्याम् (शकभ्याम्)	शकृद्भिः (शकभिः)
चतुर्थी	शकृते (शक्ने)	शकृद्भ्याम् (शकभ्याम्)	शकृद्भ्यः (शकभ्यः)
पञ्चमी	शकृतः (शक्नः)	शकृद्भ्याम् (शकभ्याम्)	शकृद्भ्यः (शकभ्यः)
षष्ठी	शकृतः (शक्नः)	शकृतोः (शक्नोः)	शकृताम् (शक्नाम्)
सप्तमी	शकृति (शक्नि,शकनि)	शकृतोः (शक्नोः)	शकृत्सु (शकसु)

शकृत्=विशेषतः पशूनां मलम्, विष्ठा इत्यर्थः।

(१२) उदकशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	उदकम्	उदके	उदकानि
आमन्त्रितम्	हे उदक (सम्बुद्धिः)	हे उदके !	हे उदकानि !
द्वितीया	उदकम्	उदके	उदकानि (उद्नः)
तृतीया	उदकेन (उद्ना)	उदकाभ्याम् (उद्भ्याम्)	उदकैः (उदभिः)
चतुर्थी	उदकाय (उद्ने)	उदकाभ्याम् (उद्भ्याम्)	उदकेभ्यः (उद्भ्यः)
पञ्चमी	उदकात् (उद्नः)	उदकाभ्याम् (उद्भ्याम्)	उदकेभ्यः (उद्भ्यः)
षष्ठी	शकृतः (उद्नः)	उदकयोः (उद्नोः)	उदकानाम् (उद्नाम्)
सप्तमी	उदके (उद्नि, उदनि)	उदकयोः (उद्नोः)	उदकेषु (उदसु)

उदकम्=पानीयमित्यर्थः।।

(१३) आसनशब्दस्य रूपाणि

विभक्ति	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	आसनम्	आसने	आसनानि
आमन्त्रितम्	हे आसन (सम्बुद्धिः)	हे आसने !	हे आसनानि !
द्वितीया	आसनम्	आसने	आसनानि (आस्नः)
तृतीया	आसनेन (आस्ना)	आसनाभ्याम् (आसभ्याम्)	आसनैः (आसभिः)
चतुर्थी	आसनाय (आस्ने)	आसनाभ्याम् (आसभ्याम्)	आसनेभ्यः (आसभ्यः)
पञ्चमी	आसनात् (आस्नः)	आसनाभ्याम् (आसभ्याम्)	आसनेभ्यः (आसभ्यः)
षष्ठी	आसनस्य (आस्नः)	आसनयोः (आस्नोः)	आसनानाम् (आस्नाम्)
सप्तमी	आसने (आस्नि,आसनि)	आसनयोः (आस्नोः)	आसनेषु (आससु)

आसनम्=उपवेशनमित्यर्थः ।

स-आदेशः--

(५) धात्वादेः षः सः।६४।

प०वि०-धात्वादेः ६।१ षः ६।१ सः १।१।

स०-धातोरादिः-धात्वादिः, तस्य-धात्वादेः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अर्थः-धात्वादेः षकारस्य स्थाने सकारादेशो भवति।

उदा०-षह-सहते। षिच्-सिञ्चति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धात्वादेः) धातु के आदि के (षः) षकार के स्थान में (सः) सकार आदेश होता है।*

*उदा०-**षह-सहते।** वह सहन करता है। **षिच्-सिञ्चति।** वह सींचता है।*

__सिद्धि-(१) सहते।__ षह्+लट्। सह्+त। सह्+शप्+त। सह्+अ+ते। सहते।

*यहां **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'षह्' के षकार को सकार आदेश होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण प्रत्यय और **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'त' के टि-भाग (अ) को एकारादेश होता है।*

*(२) **सिञ्चति।** षिच्+लट्। सिच्+तिप्। सिच्+श+ति। सि नुम् च्+अ+ति। सिन्च्+अ+ति। सिञ्च्+अ+ति। सिञ्चति।*

*यहां **'षिच् क्षरणे'** (तु०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'षिच्' के षकार को सकार आदेश होता है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय और **'शे मुचादीनाम्'** (७।१।५९) 'षिच्' को 'नुम्' आगम होता है और वह मित् हो जाता*

है। 'मिदचोऽन्त्यात् परः' (१।१।४६) से 'षिच्' के अन्तिम अच् से उत्तर होता है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से नकार को चुत्व ञकार होता है।

विशेषः *पाणिनि मुनि ने धातुपाठ में 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व-व्यवस्था के लिये कुछ धातुओं को षकारादि पढ़ा है। उन षकारादि धातुओं के षकार को इस सूत्र से सकार आदेश विधान किया गया है।*

न-आदेशः--

(६) णो नः।६५।

प०वि०-णः ६।१ नः १।१।

अनु०-धात्वादेरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-धात्वादेर्णो नः।

अर्थः-धात्वादेर्णकारस्य स्थाने नकरादेशो भवति।

उदा०-णीञ्-नयति। णम-नमति। णह-नह्यति।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(धात्वादेः) धातु के आदि के (णः) णकार के स्थान में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**णीञ्-नयति।** वे ले जाता है। **णम-नमति।** वह झुकता है। **णह-नह्यति।** वह बांधता है।*

सिद्धि-(१) नयति। *णीञ्+लट्। नी+तिप्। नी+शप्+ति। नी+अ+ति। ने+अ+ति। नय्+अ+ति। नयति।*

*यहां **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से णीञ् धातु के आदिम णकार को नकार आदेश होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अंग को गुण और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) से अय् आदेश होता है।*

(२) नमति। *यहां **'णम प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'णम' धातु के आदिम णकार को नकार आदेश होता है।*

(३) नह्यति। *यहां **'णह बन्धने'** (दि०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'णह' धातु के आदिम णकार को नकार आदेश होता है।*

विशेषः *पाणिनि मुनि ने धातुपाठ में **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णत्व-विधि की व्यवस्था के लिये कुछ धातुओं को णकारादि पढ़ा है। इस सूत्र से उनके णकार को नकार आदेश विधान किया गया है।*

लोपादेशः–

(७) लोपो व्योर्वलि।६६।।

प०वि०-लोपः १।१ व्योः ६।२ वलि ७।१।

स०-वश्च यश्च तौ व्यौ, तयोः-व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-वलि व्योर्लोपः।

अर्थः-वलि परतो वकार-यकारयोर्लोपो भवति।

उदा०-(वकारः) दिव्-दिदिवान्, दिदिवांसौ, दिदिवांसः। जीरदानुः। आस्रेमाणम्। **(यकारः)** उयी-ऊतम्। क्नूयी-क्नूतम्। गौधेरः। पचेरन्। यजेरन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वलि) वल् वर्ण परे होने पर (व्योः) वकार और यकार का (लोपः) लोप होता है।*

उदा०-(वकारः) ***दिव्-दिदिवान्।*** *क्रीडा आदि करनेवाला।* ***दिदिवांसौ।*** *दो क्रीडा आदि करनेवाले।* ***दिदिवांसः।*** *सब क्रीडा आदि करनेवाले।* ***जीरदानुः।*** *प्राण-धारण करनेवाला।* ***आस्रेमाणम्।*** *गति/शोषण करनेवाले को। (यकार)* ***उयी-ऊतम्।*** *बुना हुआ (कपड़ा)।* ***क्नूयी-क्नूतम्।*** *शब्द/गीला किया हुआ।* ***गौधेरः।*** *गोधा का पुत्र (गोहेरा)।* ***पचेरन्।*** *वे सब पकावें।* ***यजेरन्।*** *वे सब यज्ञ करें।*

सिद्धि-(१) दिदिवान्। *दिव्+लिट्। दिव्+क्वसु। दिव्+वस्। दिव्-दिव्+वस्। दि-दि०+वस्। दिदिवस्+सु। दिदिव नुम् स्+स्। दिदिवान्स्+स्। दिदिवान्स्+०। दिदिवान्०। दिदिवान्।*

*यहां '**दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु**' (दि०प०) धातु से लिट् प्रत्यय और '**क्वसुश्च**' (३।२।१०७) से लिट् के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। इस सूत्र से वल् वर्ण (वस्) परे होने पर 'दिव्' के वकार का लोप होता है। '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**सान्तमहतः संयोगस्य**' (६।४।१०) से नकार की उपधा को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**दिदिवांसौ, दिदिवांसः।***

*(२) **जीरदानुः।** जीव्+रदानुक्। जी०+रदानु। जीरदानु+सु। जीरदानुः।*

*यहां '**जीव प्राणधारणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**जीवेरदानुक्**' (दशपादी उ० १।१६३) से 'रदानुक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वल् वर्ण (रदानुक्) परे होने पर 'जीव्' के वकार का लोप होता है।*

*(३) **आस्रेमाणम्।** आङ्+स्रिवु+मनिन्। आ+सि०+मन्। आ+स्रे+मन्। आस्रेमन्+अम्। आस्रेमान्+अम्। आस्रेमाणम्।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'स्रिवु गतिशोषणयोः'** (दि०प०) धातु से औणादिक मनिन् प्रत्यय है। इस सूत्र से वल् वर्ण (मनिन्) परे होने पर 'स्रिव्' धातु से वकार का लोप होता है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। **'उणादयो बहुलम्'** (३।३।१) में बहुल-वचन से 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६।४।१९) से 'स्रिव्' धातु के वकार को ऊठ् आदेश नहीं होता है।*

*(४) **ऊतम्।** ऊयी+क्त। ऊय्+त। ऊ०+त। ऊत+सु। ऊतम्।*

*यहां **'ऊयी तन्तुसन्ताने'** (भ्वा०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वल् वर्ण (त) परे होने पर 'ऊय्' धातु के यकार का लोप होता है। ऐसे ही **'क्नूयी शब्दे उन्दे च'** (भ्वा०आ०) धातु से-**क्नूतम्।***

*(५) **गौधेरः।** गोधा+ङस्+ढ्रक्। गौधा+एय्र। गौध्+ए०र। गौधेर+सु। गौधेरः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गोधा' शब्द से अपत्य अर्थ में **'गोधाया ढ्रक्'** (४।१।१२९) से ढ्रक् प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश इस सूत्र से वल् वर्ण (र) परे होने पर यकार का लोप होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

*(६) **पचेरन्।** पच्+लिङ्। पच्+सीयुट्+ल्। पच्+शप्+सीय्+झ। पच्+अ+ईय्+रन्। पच्+अ+ई०+रन्। पचेरन्।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से लिङ् प्रत्यय और **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से उसे 'सीयुट्' आगम होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय है। **'झस्य रन्'** (३।४।१०५) से 'झ' के स्थान में 'रन्' आदेश होता है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'सीयुट्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से वल् वर्ण (र) परे होने पर 'ईय्' के यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) से-यजेरन्।*

लोपादेशः--

(८) वेरपृक्तस्य।६७।

प०वि०-वेः ६।१ अपृक्तस्य ६।१।

अनु०-लोप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अपृक्तस्य वेर्लोपः।

अर्थः-अपृक्तसंज्ञकस्य वि-प्रत्ययस्य लोपो भवति।

उदा०-ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् (३।२।८७)-ब्रह्महा, भ्रूणहा। स्पृशोऽनुदके क्विन् (३।२।५८) घृतस्पृक्, तैलस्पृक्। भजो ण्विः (३।२।६२) अर्धभाक्, पादभाक्, तुरीयभाक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपृक्तस्य) अपृक्त-संज्ञक (वेः) वि प्रत्यय का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्** (३।२।८७) **ब्रह्महा।** ब्राह्मण को मारनेवाला। **भ्रूणहा।** गर्भ को नष्ट करनेवाला। **स्पृशोऽनुदके क्विन्** (३।२।५८) **घृतस्पृक्।** घृत का स्पर्श करनेवाला। **तैलस्पृक्।** तैल का स्पर्श करनेवाला। **भजो ण्विः** (३।२।६२) **अर्धभाक्।** आधा भाग प्राप्त करनेवाला। **पादभाक्।** चौथा भाग प्राप्त करनेवाला। **तुरीयभाक्।** चौथा भाग प्राप्त करनेवाला।*

*सिद्धि-**(१) ब्रह्महा।** ब्रह्मन्+अम्+हन्+क्विप्। ब्रह्म+हन्+वि। ब्रह्म+हन्+०। ब्रह्महन्+सु। ब्रह्महान्+स्। ब्रह्महान्+०। ब्रह्महा०। ब्रह्महा।*

*यहां ब्रह्मन् कर्म उपपद होने पर **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'ब्रह्मभ्रूण वृत्रेषु क्विप्'** (३।२।८७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अपृक्तसंज्ञक 'वि' प्रत्यय का लोप होता है। 'वि' में इकार उच्चारणार्थ है। वस्तुतः 'व्' का लोप होता है। **'वेदपृक्तस्य'** (६।१।६५) से 'व्' की अपृक्त संज्ञा है। ऐसे ही-**भ्रूणहा।***

***(२) घृतस्पृक्।** घृत+अम्+स्पृश्+क्विन्। घृत+स्पृश्+वि। घृत+स्पृश्+०। घृतस्पृख्। घृतस्पृग्। घृतस्पृक्+सु। घृतस्पृक्।*

*यहां घृत सुबन्त उपपद होने पर **'स्पृश स्पर्शने'** (तु०प०) धातु से **'स्पृशोऽनुदके क्विन्'** (३।२।५८) से 'क्विन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अपृक्त संज्ञक 'वि' प्रत्यय का लोप होता है। **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से 'स्पृश्' के 'श्' को कुत्व 'ख्', **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से 'ख्' को 'ग्' और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से 'ग्' को 'क्' होता है। ऐसे ही-**तैलस्पृक्।***

***(३) अर्धभाक्।** अर्ध+अम्+भज्+ण्वि। अर्ध+भाज्+वि। अर्ध+भाज्+०। अर्धभाज्। अर्धभाग्। अर्धभाक्+सु। अर्धभाक्।*

*यहां अर्ध सुबन्त उपपद होने पर **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से **'भजो ण्विः'** (३।२।६२) से 'ण्वि' प्रत्यय है। इस सूत्र से अपृक्त संज्ञक 'वि' प्रत्यय का लोप होता है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'भज्' को उपधावृद्धि, **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'ज्' को कुत्व ग् और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से 'ग्' को चर्त्व क् होता है। ऐसे ही-**पादभाक्, तुरीयभाक्।***

लोपादेशः–

(६) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्।६८।

प०वि०–हल्-ङी-आब्भ्यः ५।३ दीर्घात् ५।१ सु-ति-सि १।१ अपृक्तम् १।१ हल् १।१।

स०–हल् च ङीश्च आप् च ते हल्ङ्यापः, तेभ्यः-हल्ङ्याब्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सुश्च तिश्च सिश्च एतेषां समाहारः-सुतिसि (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–लोप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिसि अपृक्तं हल् लोपः।

अर्थः–हलन्ताद् ङी-अन्ताद् आबन्ताच्च दीर्घात् परं सु, ति, सि इत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते।

उदा०–हलन्तात् सुलोपः–राजा, तक्षा, उखास्रत्, पर्णध्वत्। ङ्यन्तात् सुलोपः–कुमारी,गौरी, शाङ्र्गरवी। आबन्तात् सुलोपः–खट्वा, बहुराजा, कारीषगन्ध्या। तिलोपः सिलोपश्च हलन्तादेव भवति। तिलोपः–अबिभर्भवान्। अजागर्भवान्। सिलोपः–अभिनोऽत्र। अच्छिनोऽत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हल्ङ्याब्भ्यः) हलन्त, ङी-अन्त और आबन्त (दीर्घात्) दीर्घ शब्द से परे (सुतिसि) सु, ति, सि इन (अपृक्तम्) अपृक्तसंज्ञक (हल्) हल् रूप प्रत्ययों (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-हलन्त से सु-लोप-**राजा** (भूपाल)। **तक्षा** (खाती)। **उखास्रत्**। उखा (हण्डिया) से गिरनेवाला पदार्थ। **पर्णध्वत्**। पत्तों को गिरानेवाला। ङी-अन्त से सुलोप-**कुमारी**। अविवाहिता कन्या। **गौरी**। पार्वती। **शाङ्र्गरवी**। ऋषि-कन्या का नाम। आबन्त से सु-लोप-**खट्वा**। खाट। **बहुराजा**। बहुत राजाओंवाली। **कारीषगन्ध्या**। करीषगन्धि की पुत्री। ति और सि का लोप हलन्त से परे ही होता है। ति-लोप-**अभिनोऽत्र**। तूने यहां भेदन किया। **अच्छिनोऽत्र**। तूने यहां छेदन किया।*

***सिद्धि-राजा**। राजन्++सु। राजान्+स्। राजान्+०। राजा०। राजा।*

*यहां 'राजन्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त 'राजन्' अंग की उपधा को दीर्घ होता है। हलन्त 'राजान्' शब्द से परे इस सूत्र से अपृक्त संज्ञक 'सु' का लोप होता है। '**अपृक्त***

एकाल्प्रत्ययः' (१।२।४१) से एकाल् प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा है। अतः 'सु' का **उपदेशेऽजनुनासिक इत्'** (१।३।२) से इत् होकर अपृक्त 'स्' का लोप होता है। ऐसे ही-तक्षा, उखास्रत्, पर्णध्वत्।

(२) **कुमारी।** कुमारी+सु। कुमारी+स्। कुमारी+०। कुमारी।

यहां प्रथम 'कुमार' शब्द से **'वयसि प्रथमे'** (४।१।२०) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय है। इस सूत्र से ङी-अन्त 'कुमारी' शब्द से अपृक्तसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(३) **गौरी।** यहां 'गौर' शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) **शाङ्र्गरवी।** यहां 'शाङ्र्गरव' शब्द से **'शाङ्गरवाद्यञो ङीन्'** (४।१।७३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **खट्वा।** खट्वा+सु। खट्वा+स्। खट्वा+०। खट्वा।

यहां 'खट्व' शब्द से **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आबन्त 'खट्वा' शब्द से अपृक्तसंज्ञक 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।

(६) **बहुराजा।** यहां 'बहुराजन्' शब्द से **'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'** (४।१।११३) से 'डाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **कारीषगन्ध्या।** यहां 'कारीषगन्ध्य' शब्द से **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(८) **अबिभः।** भृ+लङ्। अट्+भृ+तिप्। अ+भृ+शप्+ति। अ+भृ+०+ति। अ+भ् इर्-भृ+त्। अ+ब् इ भर्+त्। अ+बि+भर्+०। अबिभः।

यहां **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से लङ् प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप्-विकरण प्रत्यय और **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से शप् को श्लु (लोप) होता है। **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'भृ' धातु को द्वित्व, **'भृञामित्'** (७।४।७५) से 'भृ' धातु के अभ्यास को इकार आदेश और वह **'उरण् रपरः'** (१।१।५०) से रपर होता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से अभ्यास भकार को जश् बकार आदेश होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'भृ' को गुण 'अ' और उसे पूर्ववत् रपर 'अर्' होता है। इस सूत्र से अपृक्तसंज्ञक ति-प्रत्यय (त्) का लोप होता है। **'खरवासनयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०) धातु से-अजागः।

(९) **अभिनः।** भि[illegible]। अट्+भिद्+सिप्। अ+अभि श्नम् द्+सि। अ+भि न द्+स्। अ+भिनद्+[illegible]+स। अभिन+०। **अभिनर्।** **अभिनः।**

*यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से लङ् प्रत्यय और 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में सिप् आदेश है। 'रुधादिभ्यः श्नम्' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय है। 'दश्च' (८।२।७५) से दकार को रुत्व और इस सूत्र से अपृक्तसंज्ञक 'सि' प्रत्यय (स्) का लोप होता है। ऐसे ही 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से-**अच्छिन्नः**।*

लोपादेशः–

(१०) एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः।६६।

प०वि०-एङ्-ह्रस्वात् ५।१ सम्बुद्धेः ६।१।

स०-एङ् च ह्रस्वश्च एतयोः समाहारः एङ्ह्रस्वम्, तस्मात्-एङ्ह्रस्वात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-लोपः, हल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेर्हलो लोपः।

अर्थः-एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्च प्रातिपदिकात् परस्य सम्बुद्धेर्हलो लोपो भवति।

उदा०-एङन्तात्-हे अग्ने ! हे वायो ! ह्रस्वान्तात्-हे देवदत्त ! हे नदि ! हे वधु ! हे कुण्ड !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(एङ्ह्रस्वात्) एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से परे (सम्बुद्धेः) सम्बुद्धिसंज्ञक (हल्) हल् वर्ण का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**एङन्त**-हे अग्ने ! हे वायो ! **ह्रस्वान्त**-हे देवदत्त ! हे नदि ! हे वधू ! हे कुण्ड !*

***सिद्धि-(१) अग्ने।** अग्नि+सु। अग्ने+स्। अग्ने+०। अग्ने।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है इसकी **'एकवचनं सम्बुद्धिः'** (२।३।४९) से सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से एङन्त 'अग्ने' शब्द से परे सम्बुद्धि-संज्ञक हल् 'स्' का लोप होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**हे वायो !***

***(२) देवदत्त।** देवदत्त+सु। देवदत्त+स्। देवदत्त+०। देवदत्त।*

यहां 'देवदत्त' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय और उसकी सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से ह्रस्वान्त 'देवदत्त' शब्द से परे सम्बुद्धि-संज्ञक हल् 'स्' का लोप होता है।

***(३) नदि।** नदी+सु। नदि+स्। नदि+०। नदि।*

*हे 'नदी' शब्द को **'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः'** (७।३।१०७) से ह्रस्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**हे वधु !***

(४) कुण्ड। कुण्ड+सु। कुण्ड+अम्। कुण्ड+म्। कुण्ड+०। कुण्ड।

*हे 'कुण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है और उसे **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'अम्' आदेश होता है। **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०४) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होकर इस सूत्र से ह्रस्वान्त 'कुण्ड' शब्द से परे सम्बुद्धि-संज्ञक हल् 'म्' का लोप होता है।*

लोपादेशः—

(११) शेश्छन्दसि बहुलम्।७०।

प०वि०-शेः ६।१ छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०-लोप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि शेर्बहुलं लोपः।

अर्थः-छन्दसि विषये 'शि' इत्येतस्य प्रत्ययस्य बहुलं लोपो भवति।

उदा०-या क्षेत्रा, यानि क्षेत्राणि (शौ०सं० १४।२।७) या वना (शौ०सं० १४।२।७)। यानि वनानि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (शेः) 'शि' इस प्रत्यय का (बहुलम्) प्रायशः (लोपः) लोप होता है।*

उदा०-या क्षेत्रा, यानि क्षेत्राणि (शौ०सं० १४।२।७) या वना (शौ०सं० १४।२।७)। यानि वनानि।

***सिद्धि-(१) या।** यत्+जस्। यत्+शि। य अ+इ। य+०। य नुम्+०। यन्+०। यान्+०। या०। या।*

*यहां 'यत्' शब्द से **'स्वौजस्०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय, उसके स्थान में **'जश्शसोः शि'** (७।१।२०) से 'शि' आदेश और **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' को अकार आदेश होता है। इस सूत्र से छन्द में 'शि' प्रत्यय का लोप होता है। **'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्'** (१।१।६१) से प्रत्यय का लोप होने पर प्रत्ययलक्षण कार्य की चिकीर्षा में **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से 'नुम्' आगम, **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।१।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही 'क्षेत्र' शब्द से-**क्षेत्रा** और 'वन' शब्द से-**वना**।*

***(२) यानि।** यहां 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'शि' प्रत्यय और बहुल-पक्ष में उसका लोप नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'क्षेत्र' शब्द से-**क्षेत्राणि** और 'वन' शब्द से-**वनानि**।*

।। इति आदेशप्रकरणम्।।

तुक्-आगमविधिः

तुक्—

(१) ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्।७१।

प०वि०-ह्रस्वस्य ६।१ पिति ७।१ कृति ७।१ तुक् १।१।

स०-प इद् यस्य स पित्, तस्मिन्-पिति (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-पिति कृति ह्रस्वस्य तुक्।

अर्थः-पिति कृति प्रत्यये परतो ह्रस्वान्तस्य धातोस्तुक्-आगमो भवति।

उदा०-अग्निचित्। सोमसुत्। प्रकृत्य। प्रहृत्य। उपस्तुत्य।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(पिति) पित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वस्य) ह्रस्वान्त धातु को (तुक्) तुक् आगम होता है।

उदा०-__अग्निचित्।__ अग्नि का चयन करनेवाला। __सोमसुत्।__ सोम का सवन करनेवाला (निचोड़नेवाला)। __प्रकृत्य।__ यथावत् करके। __प्रहृत्य।__ प्रहार करके। __उपस्तुत्य।__ प्रशंसा करके।

__सिद्धि-(१) अग्निचित्।__ अग्नि+अम्+चि+क्विप्। अग्नि+चि+वि। अग्नि+चि+०। अग्नि+चि तुक्+०। अग्निचित्। अग्निचित्+सु। अग्निचित्।०। अग्निचित्।

यहां अग्नि कर्म उपपद होने पर __'चिञ् चयने'__ (स्वा०उ०) धातु से __'अग्नौ चेः'__ (३।२।९१) से क्विप् प्रत्यय है। इस पित् एवं कृत्-संज्ञक प्रत्यय के परे होने पर ह्रस्वान्त 'चि' धातु को 'तुक्' आगम होता है। __'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'__ (७।१।६६) से 'सु' का लोप हो जाता है।

__(२) सोमसुत्।__ यहां सोम कर्म उपपद होने पर __'षुञ् अभिषवे'__ (स्वा०उ०) धातु से __'सोमे सुञः'__ (३।२।९०) से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

__(३) प्रकृत्य।__ प्र+कृ+क्त्वा। प्र+कृ+ल्यप्। प्र+कृ तुक्+य। प्र+कृत्+य। प्रकृत्य+सु। प्रकृत्य+०। प्रकृत्य।

यहां प्र-उपसर्गपूर्वक __'डुकृञ् करणे'__ (तना०उ०) धातु से __'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'__ (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय है। यहां __'कुगतिप्रादयः'__ (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। __'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'__ (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश होता है। इस पित् कृत् प्रत्यय के परे होने पर ह्रस्वान्त 'कृ' धातु को 'तुक्' आगम होता है। ऐसे ही __'हृञ् हरणे'__ (भ्वा०उ०) धातु से प्रहृत्य और __'ष्टुञ् स्तुतौ'__ (अदा०उ०) धातु से-__उपस्तुत्य।__

संहिता (सन्धि) प्रकरणम्

अधिकारः–

(१) संहितायाम्।७२।

वि०-संहितायाम् ७।१।

अर्थः-'**संहितायाम्**' इत्यधिकारोऽयम्, '**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**' (६।१।१५८) इति यावत्। इतोऽग्रे यद् वक्ष्यति '**संहितायाम्**' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'**इको यणचि**' (६।१।७७) इति-दध्यत्र, मध्वत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) 'संहितायाम्' इसका '**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**' (६।१।१५८) इस सूत्र तक अधिकार है। इससे आगे जो कहेंगे उसे (संहितायाम्) सन्धि विषय में समझें। पाणिनि मुनि कहेंगे- '**इको यणचि**' (६।१।७७) अर्थात् संहिता विषय में अच् वर्ण परे होने पर इक् के स्थान में यण् आदेश ओता है। जैसे-दध्यत्र। दधि=दही यहां है। मध्वत्र। मधु=शहद यहां है।*

तुक्-आगमः–

(२) छे च।७३।

प०वि०-छे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ह्रस्व, तुक्, संहितायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छे ह्रस्वस्य तुक्।

अर्थः-संहितायां विषये छकारे परतो ह्रस्वस्य तुक्-आगमो भवति।

उदा०-स इच्छति। स गच्छति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि विषय में (छे) छकार वर्ण परे होने पर (ह्रस्वस्य) ह्रस्व वर्ण को (तुक्) तुक् आगम होता है।*

*उदा०-**स इच्छति।** वह चाहता है। **स गच्छति।** वह जाता है।*

***सिद्धि**-इच्छति। इष्+लट्। इष्+तिप्। इष्+शप्+ति। इछ्+अ+ति। इ तुक्+छ्+अ+ति। इत्छ्+अ+ति। इच्छ्+अ+ति। इच्छति।*

*यहां '**इषु इच्छायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से शप् विकरण-प्रत्यय है। '**इषुगमियमां छः**' (७।३।७७) से 'इष्' के षकार को छकार आदेश होता है उस छकार वर्ण के परे होने पर 'इछ्' के ह्रस्व वर्ण इकार को इस सूत्र से 'तुक्' आगम होता है। '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।३९) से तकार को चुत्व चकार होता है। ऐसे ही '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**गच्छति।***

तुक्-आगमः–

(३) आङ्माङोश्च।७४।

प०वि०-आङ्-माङो: ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-आङ् च माङ् च तौ आङ्माङौ, तयो:-आङ्माङो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०-तुक्, संहितायाम्, छे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायां छे आङ्माङोश्च तुक्।

अर्थ:-संहितायां विषये छकारे परत आङ्माङो: शब्दयोस्तुक्-आगमो भवति। ईषदादिषु चतुर्ष्वर्थेषु य आङ्शब्द: सोऽत्र गृह्यते।

उदा०-**(आङ:)** ईषदर्थे ईषच्छाया=आच्छाया। क्रियायोगे आच्छादयति। मर्यादायाम् आच्छायाया:। अभिविधौ आच्छायाम्। **(माङ्)** माच्छैत्सीत्। माच्छिदत्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (छे) छकार परे होने पर (आङ्माङो:) आङ् और माङ् शब्दों को (तुक्) आगम होता है। ईषत् आदि चार अर्थों में जो 'आङ्' शब्द है यहां उसका ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-(आङ्) ईषत्-**ईषच्छाया=आच्छाया।** थोड़ी छाया। **क्रियायोग-आच्छादयति।** वह ढकता है। **अभिविधि-आच्छायाम्।** छाया तक (छाया सहित सीमा)। **मर्यादायाम् आच्छायाया:।** छाया तक (छाया रहित सीमा)। (माङ्) **माच्छैत्सीत्।** उसने छेदन नहीं किया। **माच्छिदत्।** उसने छेदन नहीं किया।*

*सिद्धि-(१) **आच्छाया।** आङ्+छाया। आ तु क्+छाया। आत्+छाया।आच्+छाया। आच्छाया।*

*यहां संहिता विषय में छकार परे होने पर ईषत् अर्थ में विद्यमान 'आङ्' शब्द को इस सूत्र से 'तुक्' आगम होता है। '**स्तो: श्चुना श्चु:**' (८।४।३९) से तकार को चुत्व चकार होता है।*

*(२) **आच्छादयति।** यहां 'आङ्' शब्द क्रियायोग में है अत: इसकी '**उपसर्गा: क्रियायोगे**' (१।४।५९) से उपसर्ग संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आच्छायाया:।** यहां 'आङ्' शब्द की '**आङ्मर्यादावचने**' (१।४।८८) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। और '**पञ्चम्यपाङ्परिभि:**' (२।३।१०) से उसके योग में पञ्चमी विभक्ति है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **आच्छायाम्।** यहां आङ् और छाया शब्दों का **'आङ्मर्यादाभिविध्योः'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **माच्छैत्सीत्।** यहां **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०प०) धातु से **'माङि लुङ्'** (३।३।१७५) से लुङ् प्रत्यय है। संहिता विषय में छकार परे होने पर इस सूत्र से 'माङ्' शब्द को तुक् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **माच्छिदत्।** यहां 'छिदिर्' धातु से पूर्ववत् लुङ् प्रत्यय है। **'इरितो वा'** (३।१।५७) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

तुक्-आगमः–

(४) दीर्घात्।७५।

वि०–दीर्घात् ५।१।

अनु०–तुक्, संहितायाम्, छे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां दीर्घाच्छे तुक्।

अर्थः–संहितायां विषये दीर्घाद् वर्णाच्छकारे परतस्तस्य दीर्घस्य तुक्-आगमो भवति।

उदा०–स ह्रीच्छति। स म्लेच्छति। सोऽपचाच्छायते। स विचाच्छायते।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (दीर्घात्) दीर्घ वर्ण से उत्तर (छे) छकार परे होने पर उस दीर्घ वर्ण को (तुक्) तुक् आगम होता है।*

*उदा०–**स ह्रीच्छति।** वह लज्जा करता है। **स म्लेच्छति।** वह अव्यक्त शब्द करता है। **सोऽपचाच्छायते।** वह पुनः-पुनः/अधिक अपछेद करता है। **स विचाच्छायते।** वह पुनः-पुनः/अधिक विच्छेद करता है।*

*सिद्धि-(१) **ह्रीच्छति।** ह्री+तुक्+छ्। ह्रीत्+छ्। ह्रीच्+छ्। ह्रीच्छ्+लट्। ह्रीच्छ्+तिप्। ह्रीच्छ्+शप्+ति। ह्रच्छ्+अ+ति। ह्रीच्छति।*

*यहां संहिता विषय में दीर्घ 'ह्री' से उत्तर छकार परे होने पर इस सूत्र से 'ह्री' को तुक् आगम होता है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से तकार को चुत्व चकार होता है। **'ह्री लज्जायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। ऐसे ही **'म्लेछ अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु को 'तुक्' आगम और उससे 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **अपचाच्छायते।** अप+छा+यङ्। अप+छाय्-छाय। अप+छा-छाय। अप+चा तुक्-छाय। अप+चात्-छाय। अप+चाच्+छाय। अपचाच्छाय+लट्। अपचाच्छाय+तिप्। अपचाच्छाय+शप्+ति। अपचाच्छाय+अ+ति। अपचाच्छायति।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'छो छेदने' (दि०प०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से यङ् प्रत्यय, '**आदेच उपदेशेऽशिति**' (६।१।४४) से 'छो' को आकार आदेश होकर '**सन्यङोः**' (६।१।९) से उसे द्वित्व होता है। '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५३) से अभ्यास के छकार को चकार आदेश होता है। दीर्घ 'चा' से उत्तर छकार परे होने पर इस सूत्र से उस दीर्घ 'चा' को 'तुक्' आगम होता है और उसे '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।३९) से चुत्व चकार होता है। यङन्त 'अपच्छाय' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**विचाच्छायते**।*

तुक्-आगमः-

(५) पदान्ताद् वा ।७६।

प०वि०-पदान्तात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-तुक्, संहितायाम्, छे, दीर्घाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदान्ताद् दीर्घाच्छे वा तुक्।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्ताद् दीर्घवर्णाच्छकारे परतस्तस्य दीर्घस्य विकल्पेन तुक् आगमो भवति।

उदा०-कुटीच्छाया, कुटीछाया। कुवलीच्छाया, कुवलीछाया।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पदान्त (दीर्घात्) दीर्घ वर्ण से उत्तर (छे) छकार परे होने पर उस दीर्घ वर्ण को (वा) विकल्प से (तुक्) तुक् आगम होता है।*

*उदा०-**कुटीच्छाया, कुटीछाया**। कुटी=झोंपड़ी की छाया। **कुवलीच्छाया, कुवलीछाया**। कुई (मोतिया) नामक लता की छाया।*

*सिद्धि-(१) **कुटीच्छाया**। कुटी+ङस्+छाया। कुटी+तुक्+छाया। कुटीत्+छाया। कुटीच्+छाया। कुटीछाया।*

*यहां कुटी और छाया शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। अन्तर्वर्तिनी 'ङस्' विभक्ति को मानकर '**सुप्तिङन्तपदम्**' (१।४।१४) से 'कुटी' शब्द की पद-संज्ञा है। 'कुटी' पद के अन्त में विद्यमान दीर्घ वर्ण ईकार को इस सूत्र से तुक् आगम होता है। और '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।३९) से उस तकार को चुत्व चकार होता है। ऐसे ही-**कुवलीच्छाया**।*

*(२) **कुटीछाया**। यहां 'कुटी' शब्द के पदान्त दीर्घ वर्ण ईकार को विकल्प पक्ष में इस सूत्र से तुक् आगम नहीं है। ऐसे ही-**कुवलीछाया**।*

यण्-आदेशः–

(६) इको यणचि ।७७।

प०वि०–इकः ६ ।१। यण् १ ।१ अचि ७ ।१।

अनु०–संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामचि इको यण्।

अर्थः–संहितायां विषयेऽचि परत इकः स्थाने यथासंख्यं यण् आदेशो भवति। उदाहरणम्–

	इक्	यण्	प्रयोगः	भाषार्थ
(१)	इ	य्	दधि+अत्र=दध्यत्र	दधि=दही यहां है।
(२)	उ	व्	मधु+अत्र=मध्वत्र	मधु=शहद यहां है।
(३)	ऋ	र्	कर्तृ+अर्थम्=कर्त्रर्थम्	कर्ता के लिये।
(४)	लृ	ल्	लृ+आकृतिः=लाकृतिः	लृ की आकृति (आकार)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (इकः) इक् के स्थान में यथासंख्य (यण्) यण् आदेश होता है।*

उदा०–उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) दध्यत्र। *दधि+अत्र। दध् य्+अत्र। दध्यत्र।*

यहां संहिता विषय में अच् वर्ण परे होने पर इस सूत्र से इक् (इ) के स्थान में यण् (य्) आदेश है।

(२) मध्वत्र। *मधु+अत्र। मध्व्+अत्र। मध्वत्र।*

यहां इस सूत्र से इक् (उ) के स्थान में यण् (व्) आदेश है।

(३) कर्त्रर्थम्। *कर्तृ+अर्थम्। कर्त्र्+अर्थम्। कर्त्रर्थम्।*

यहां इक् (ऋ) के स्थान में यण् (र्) आदेश है।

(४) लाकृतिः। *लृ+आकृतिः। ल्+आकृतिः। लाकृतिः।*

यहां इक् (लृ) के स्थान में यण् (ल्) आदेश है।

अयादि-आदेशाः–

(७) एचोऽयवायावः ।७८।

प०वि०–एचः ६ ।१ अय्-अव्-आय्-आवः १ ।३।

स०–अय् च अव् च आय् च आव् च ते-अयवायावः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितामचि एचोऽयवायावः

अर्थः-संहितायां विषयेऽचि परत एचः स्थाने यथासंख्यम् अयवायाव आदेशा भवन्ति। उदाहरणम्-

	एच्	अयादयः	प्रयोगः	भाषार्थ
(१)	ए	अय्	चे+अनम्=चयनम्	चुनना।
(२)	ओ	अव्	लो+अनम्=लवनम्	काटना।
(३)	ऐ	आय्	चै+अकः=चायकः	चुननेवाला।
(४)	औ	आव्	लौ+अकः=लावकः	काटनेवाला।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि विषय में (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (एचः) एच=ए, ओ, ऐ, औ के स्थान में यथासंख्य (अयवायावः) अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **चयनम्**। चि+ल्युट्। चि+यु। चे+अन। च् अय्+अन। चयन+सु। चयनम्।*

*यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से '**ल्युट् च**' (३।३।११५) से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से इगन्त अंग (चि) को गुण होता है। इस सूत्र से संहिता-विषय में अच् वर्ण परे होने पर एच् (ए) के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। ऐसे ही-के+एते=कयेते। ये+एते=ययेते।*

*(२) **लवनम्**। लू+ल्युट्। लू+यु। लो+अन। ल् अव्+अन। लवन+सु। लवनम्।*

*यहां '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् ल्युट् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'लू' को गुण होकर इस सूत्र से एच् (ओ) के स्थान में 'अव्' आदेश होता है।*

*(३) **चायकः**। चि+ण्वुल्। चि+वु। चै+अक। च् आय्+अक। चायक+सु। चायकः।*

*यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से अजन्त अंग 'चि' को वृद्धि (ऐ) होती है। इस सूत्र से एच् (ऐ) के स्थान में 'आय्' आदेश होता है।*

*(४) **लावकः**। लू+ण्वुल्। लू+वु। लौ+अक। ल् आव्+अक। लावक+सु। लावकः।*

*यहां '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से एच् (औ) के स्थान में आव् आदेश होता है। ऐसे ही-**वायौ+अवरुणद्धि=वायाववरुणद्धि**। वह वायु में रोकता है।*

वान्त-आदेशः–

(८) वान्तो यि प्रत्यये।७६।

प०वि०-वान्तः १।१ यि ७।१ प्रत्यये ७।१।

स०-वोऽन्ते यस्य स वान्तः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, एच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां यि प्रत्यये एचो वान्तः।

अर्थः-संहितायां विषये यकारादौ प्रत्यये परत एचः स्थाने वान्त आदेशो भवति। वान्तः=अव्-आवावित्यर्थः।

उदा०-**(अव्)** बाभ्रव्यः, माण्डव्यः, शङ्कव्यं दारु, पिचव्यः कार्पासः **(आव्)** नाव्यो ह्रदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (यि) यकारादि (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर (एचः) एच्=ओ और औ के स्थान में (वान्तः) वकारान्त=अव् और आव् आदेश होते हैं।*

उदा०-(अव्) ***बाभ्रव्यः।*** *बभ्रु का पौत्र (कौशिक)।* ***माण्डव्यः।*** *मण्डु का पौत्र।* ***शङ्कव्यं दारु।*** *शङ्कु=खूंटे के लिये हितकारी लकड़ी।* ***पिचव्यः कार्पासः*** *पिचु=रूई के लिये हितकारी कपास। (आव्)* ***नाव्यो ह्रदः।*** *नौका से तरने योग्य तालाब।*

सिद्धि-(१) ***बाभ्रव्यः।*** *बभ्रु+यञ्। बाभ्रो+य। बाभ्र् अव्+य। बाभ्रव्य+सु। बाभ्रव्यः।*

यहां 'बभ्रु' शब्द से ***'मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः'*** *(४।१।१०६) से गोत्रापत्य (कौशिक) अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है।* ***'ओर्गुणः'*** *(६।४।१४६) से अंग को गुण और* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर 'बाभ्रो' के एच् (ओ) के स्थान में वान्त (अव्) आदेश होता है।*

(२) ***माण्डव्यः।*** *यहां 'मण्डु' शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में* ***'गर्गादिभ्यो यञ्'*** *(४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***शङ्कव्यम्।*** *यहां 'शङ्कु' शब्द से* ***'उगवादिभ्यो यत्'*** *(५।१।२) से हित-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) ***पिचव्यः।*** *यहां 'पिचु' शब्द से* ***'उगवादिभ्यो यत्'*** *(५।१।२) से हित-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(५) ***नाव्यः।*** *नौ+यत्। न् आव्+य। नाव्य+सु। नाव्यम्।*

यहां 'नौ' शब्द से ***'नौवयोधर्म०'*** *(४।४।९१) से तार्य-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर एच् (औ) के स्थान में वान्त (आव्) आदेश होता है।*

वान्त-आदेशः–

(६) धातोस्तन्निमित्तस्यैव।८०।

प०वि०–धातोः ६।१ तन्निमित्तस्य ६।१ एव अव्ययपदम्।

स०– स निमित्तं यस्य स तन्निमित्तः, तस्य-तन्निमित्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, एचः, वान्तः, यि, प्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां यि प्रत्यये धातोस्तन्निमित्तस्यैवैचो वान्तः।

अर्थः–संहितायां विषये यकारादौ प्रत्यये परतो धातोस्तन्निमित्तस्य=यकारादिप्रत्ययनिमित्तस्यैव एचः स्थाने वान्त आदेशो भवति।

उदा०–**(अव्)** लव्यम्, पव्यम्। **(आव्)** अवश्यलाव्यम्, अवश्यपाव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (यि) यकारादि प्रत्यय परे होने पर (धातोः) धातु के (तन्निमित्तस्य) उस यकारादि प्रत्यय निमित्तक (एव) ही (एचः) एच्=ओ और औ के स्थान में (वान्तः) वान्त=अव् और आव् आदेश होते हैं।*

उदा०–(अव्) ***लव्यम्।*** *छेदन करने योग्य।* ***पव्यम्।*** *पवित्र करने योग्य। (आव्)* ***अवश्यलाव्यम्।*** *अवश्य छेदन करने योग्य।* ***अवश्यपाव्यम्।*** *अवश्य पवित्र करने योग्य।*

सिद्धि–(१) ***लव्यम्।*** *लू+यत्। लो+य। ल् अव्+य। लव्य+सु। लव्यम्।*

यहां ***'लूञ् छेदने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से* ***'अचो यत्'*** *(३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है।* ***'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'*** *(७।१।८४) से लू इगन्त अंग को गुण (ओ) होता है। यह 'लू' धातु का ओकार यकारादि प्रत्ययनिमित्तक है। अतः इस सूत्र से उसे वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही* ***'पूञ् पवने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से–* ***पव्यम्।***

(२) ***अवश्यलाव्यम्।*** *अवश्यम्+लू+ण्यत्। अवश्यम्+लौ+य। अवश्यम्+ल् आव्+य। अवश्यलाव्य+सु। अवश्यलाव्यम्।*

यहां 'अवश्यम्' उपपद होने पर 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से ***'ओरावश्यके'*** *(३६।१।१२५) से 'ण्यत्' प्रत्यय है।* ***'अचो ञ्णिति'*** *(७।२।११५) से 'लू' को वृद्धि (औ) होती है। यह 'लू' धातु का औकार यकारादि प्रत्ययनिमित्तक है। अतः इस सूत्र से उसे वान्त (आव्) आदेश होता है। ऐसे ही* ***'पूञ् पवने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से–* ***अवश्यपाव्यम्।***

निपातनम्–

(१०) क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे।८१।

प०वि०–क्षय्य-जय्यौ १।२ शक्यार्थे ७।१।

स०–क्षय्यश्च जय्यश्च तौ क्षय्यजय्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। शक्यश्चासावर्थः शक्यार्थः, तस्मिन्-शक्यार्थे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, यि, प्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां शक्यार्थे क्षय्यजय्यौ यि प्रत्यये।

अर्थः–संहितायां विषये शक्यार्थे क्षय्यजय्यौ शब्दौ यकारादौ प्रत्यये परतो निपात्येते।

उदा०–(**क्षय्यः**) क्षेतुं शक्यः-क्षय्यः। (**जय्यः**) जेतुं शक्यः-जय्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शक्यार्थे) शक्य अर्थ में (क्षय्यजय्यौ) क्षय्य और जय्य शब्द (यि) यकारादि (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर निपातित हैं।*

उदा०-(क्षय्य) क्षीण कर सकने योग्य-क्षय्य। (जय्य) जीत सकने योग्य-जय्य।

सिद्धि-क्षय्यः। क्षि+यत्। क्षे+य। क्ष् अय्+य। क्षय्य+सु। क्षय्यः।*

*यहां **'क्षि क्षये'** (भ्वा०प०) धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'क्षि' इगन्त अंग को गुण (ए) होता है। इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर एच् (ए) के स्थान में 'अय्' आदेश निपातित है। वैयाकरण **'क्षि निवासगत्योः'** (तु०प०) **'क्षि हिंसायाम्'** (स्वा०प०) धातु से भी 'क्षय्यः' शब्द की सिद्धि मानते हैं। ऐसे ही **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से-जय्यः।*

निपातनम्–

(११) क्रय्यस्तदर्थे।८२।

प०वि०–क्रय्यः १।१ तदर्थे ७।१।

स०–तस्यार्थः-तदर्थः, तस्मिन्-तदर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, यि, प्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां तदर्थे क्रय्यो यि प्रत्यये।

अर्थः–संहितायां विषये-तदर्थे=क्रयार्थे क्रय्यः शब्दो यकारादौ प्रत्यये परतो निपात्यते।

उदा०-क्रेतुं योग्यः-क्रय्यः गौः। क्रय्यः कम्बलः। क्रयार्थं य आपणे प्रसारितः स क्रय्यः कम्बल इत्युच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तदर्थे) उसी क्री-धातु के अर्थ में (क्रय्यः) क्रय्य शब्द (यि) यकारादि (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर निपातित हैं।*

उदा०-क्रय करने योग्य-क्रय्य गौ (बैल)। ***क्रय्यः कम्बलः।*** *क्रय करने के लिये जो आपण=दुकान में फैलाया जाता है वह 'क्रय्य' कम्बल कहाता है। मूल्य से ग्रहण करने योग्य 'क्रेय' कहाता है।*

सिद्धि-(१) *क्रय्यः। क्री+यत्। क्रे+य। क्र् अय्+य। क्रय्य+सु। क्रय्यः।*

यहां ***'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये'*** *(क्र्या०उ०) धातु से* ***'अचो यत्'*** *(३।१।९७) से यत् प्रत्यय है।* ***'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'*** *(७।३।८४) से क्री इगन्त अंग को गुण (क्रे) होता है। इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर एच् (ए) के स्थान में अय् आदेश निपातित है।*

निपातनम्–

(१२) भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि।८३।

प०वि०-भय्य-प्रवय्ये १।२ च अव्ययपदम् छन्दसि ७।१।

स०-भय्यश्च प्रवय्या च ते-भय्यप्रवय्ये (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, यि, प्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि भय्यप्रवय्ये च यि प्रत्यये।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये भय्यप्रवय्याशब्दौ यकारादौ प्रत्यये परतो निपात्येते।

उदा०-भय्यं किलासीत् (द्र०-का० सं० ३३।४)। वत्सतरी प्रवय्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में एवं (छन्दसि) वेदविषय में (भय्यप्रवय्ये) भय्य और प्रवय्या शब्द (यि) यकारादि (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर निपातित हैं।*

उदा०- ***भय्यं किलासीत्*** *(द्र०-का० सं० ३३।४)।* ***वत्सतरी प्रवय्या।***

सिद्धि-(१) भय्यम्। *भी+यत्। भे+य। भ् अय्+य। भय्य+सु। भय्यम्।*

यहां 'ञिभी भये' *(जु०प०) धातु से* ***'कृत्यल्युटो बहुलम्'*** *(३।३।११३) से अपादान कारक में 'यत्' प्रत्यय है।* ***बिभेत्यस्मादिति भय्यम्। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'***

(७।३।८४) से 'भि' इगन्त अंग को गुण (भे) होता है। इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर एच् (ए) के स्थान में अय् आदेश निपातित है।

*(२) **प्रवय्या।** प्र+वी+यत्। प्र+वे+य। वे+व् अय+य। प्रवय्य+टाप्। प्रवय्या+सु। प्रवय्या।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु'** (अदा०प०) धातु से 'अचो यत्' (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। 'वी' धातु को पूर्ववत् गुण होकर इस सूत्र से यकारादि प्रत्यय परे होने पर एच् (ए) के स्थान में 'अय्' आदेश निपातित है। यह शब्द स्त्रीलिङ् में ही निपातित है। **वत्सतरी प्रवय्या।** गर्भ-ग्रहण करने योग्य बछड़ी।*

एकादेश-अधिकारः–

(१३) एकः पूर्वपरयोः।८४।

प०वि०–एकः १।१ पूर्व-परयोः ६।२।

स०–पूर्वश्च परश्च तौ पूर्वपरौ, तयोः–पूर्वपरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पूर्वपरयोरेकः।

अर्थः–संहितायां विषये पूर्वपरयोः स्थाने एक आदेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्, **'ऋत उत्'** (६।१।१०७) इति यावत्। यथा वक्ष्यति-**'आद्गुणः'** (६।१।८४) इति। तत्रावर्णादचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने गुणरूप एकादेशो भवति।

उदा०–खट्वेन्द्रः, मालेन्द्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपरयोः) पूर्व और पर वर्णों के स्थान में (एकः) एक वर्णरूप आदेश होता है। इसका 'ऋत उत्' (६।१।१७७) तक अधिकार है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे–'आद्गुणः' (६।१।८४)। वहां अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर वर्णों के स्थान में गुण रूप एक-आदेश होता है।*

*उदा०–**खट्वेन्द्रः।** खाट का स्वामी। **मालेन्द्रः।** माला का स्वामी।*

*सिद्धि–**खट्वेन्द्रः।** खट्वा+इन्द्र। खट्व्-ए-न्द्रः। खट्वेन्द्रः।*

*यहां 'आद्गुणः' (६।१।८४) से पूर्ववर्ती खट्वा के आकार और परवर्ती इन्द्र के इकार इन दोनों के स्थान में गुण रूप एकार आदेश होता है। ऐसे ही–**मालेन्द्रः।***

अन्तादिवद्भावः–

(१४) अन्तादिवच्च।८५।

प०वि०–अन्तादिवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०–अन्तश्च आदिश्च तौ अन्तादी, ताभ्याम्-अन्तादिभ्याम्, अन्तादिभ्यां तुल्यम्-अन्तादिवत् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) अत्र **'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः'** (५।१।११४) इति तुल्यार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पूर्वपरयोरेकोऽन्तादिवच्च।

अर्थः–संहितायां विषये यः पूर्वपरयोरेकादेशो विधीयते स पूर्वस्यान्तवत् परस्य चादिवद् भवति।

उदा०–ब्रह्मबन्धूः, वृक्षौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में जो (पूर्वपरयोः) पूर्व और पर वर्णों के स्थान में (एकः) एकादेश किया जाता है वह (अन्तादिवत्) पूर्व वर्ण का अन्तवत् और पर वर्ण का आदिवत् (च) भी होता है।*

*उदा०–**ब्रह्मबन्धूः**। पतित ब्राह्मणी। **वृक्षौ**। दो वृक्ष।*

*सिद्धि–(१) **ब्रह्मबन्धूः**। ब्रह्मबन्धु+ऊङ्। ब्रह्मन्धु+ऊ। ब्रह्मबन्धू+सु। ब्रह्मबन्धूः।*

*यहां ब्रह्मबन्धु के पूर्व उकार और ऊङ् प्रत्यय के पर ऊकार को **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९८) से दीर्घ ऊकार रूप एकादेश है। यह एकादेश इस सूत्र से पूर्व का आदिवत् और पर का अन्तवत् होता है, अर्थात् 'ब्रह्मबन्धु' यह प्रातिपदिक है और ऊङ् अप्रातिपदिक (प्रत्यय) है। इन प्रातिपदिक और अप्रातिपदिक दोनों का जो एकादेश है वह प्रातिपदिक का अन्तवत् होता है। इससे **'ङ्याप्प्रातिपदिकात्'** (८।१।१) से 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।*

*(२) **वृक्षौ**। वृक्ष+औ। वृक्षौ।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द का अकार असुप् है और औ प्रत्यय का औकार सुप् है। इन दोनों असुप् अकार तथा सुप् औकार के स्थान में **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८५) से वृद्धिरूप औकार एकादेश होता है। इस सूत्र से सुप् औकार को आदिवत् मानकर 'वृक्षौ' की **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (१।४।१४) से पद संज्ञा होती है।*

एकादेशस्यासिद्धत्वम्–

(१५) षत्वतुकोरसिद्धः।८६।

प०वि०-षत्व-तुकोः ७।२ असिद्धः १।१।

स०-षत्वं च तुक् च षत्वतुकौ, तयोः-षत्वतुकोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न सिद्धः-असिद्धः (नञ्तत्पुरुषः)। असिद्धः-अनिष्पन्न इत्यर्थः।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां षत्वतुकोः पूर्वपरयोरेकोऽसिद्धः।

अर्थः-संहितायां विषये षत्वे तुकि च कर्त्तव्ये यः पूर्वपरयोर्वर्णयोः स्थाने एकादेशः सोऽसिद्धो भवति।

उदा०-(षत्वे) कोऽसिचत्, कोऽस्य, योऽस्य, कोऽस्मै, योऽस्मै। **(तुकि)** अधीत्य, प्रेत्य।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (षत्वतुकोः) षत्वविधि और तुक्-विधि के करने में (पूर्वपरयोः) पूर्व और पर वर्ण के स्थान में किया हुआ (एकः) एकादेश (असिद्धः) असिद्ध होता है, न किया हुआ समझा जाता है।*

*उदा०-**(षत्वविधि) कोऽसिचत्।** किसने सींचा। **कोऽस्य।** इसका कौन है। **योऽस्य।** इसका जो है। **कोऽस्मै।** इसके लिये कौन है। **योऽस्मै।** इसके लिये जो है। **(तुक्विधि) अधीत्य।** पढ़कर। **प्रेत्य।** मरकर।*

***सिद्धि**-(१) **कोऽसिचत्।** क+सु+असिच्। क+रु+असिचत्। क+र्+असिचत्। क+उ+असिचत्। को+असिच्। कोऽसिचत्।*

*यहां 'क' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय, **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व, **अतो रोरप्लुतादप्लुते'** (६।१।११०) से उत्व, **'आद्गुणः'** (६।१।८५) से अकार, उकार को गुणरूप (ओ) एकादेश और **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। 'को+सिचत्' इस अवस्था में **'इणः षः'** (८।३।३९) से षत्व प्राप्त होता है। इस सूत्र से उक्त एकादेश को असिद्ध=अनिष्पन्न होकर षत्व नहीं होता है। ऐसे ही-**कोऽस्य, योऽस्य, कोऽस्मै, योऽस्मै।***

*(२) **अधीत्य।** अधि+इङ्+क्त्वा। अधि+इ+ल्यप्। अधी+य। अधी तुक्+य। अधीत्+य। अधीत्य+सु। अधीत्य+०। अधीत्य।*

*यहां नित्य अधि-उपसर्ग पूर्वक **(इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से क्त्वा प्रत्यय और उसे **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७)*

*से ल्यप् आदेश होता है। अधि के इकार और इङ् धातु के इकार को **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९८) से दीर्घरूप एकादेश होता है। 'अधी+य' इस स्थिति में **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।६९) से 'इङ्' धातु को तुक् आगम प्राप्त नहीं होता है किन्तु इस सूत्र से उक्त एकादेश को असिद्ध मानकर तुक् आगम होता है।*

गुण-एकादेशः--

(१६) आद् गुणः।८७।

प०वि०-आत् ५।१ गुणः १।१।

अनु०-संहितायाम्, अचि, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आदचि पूर्वपरयोर्गुण एकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णादचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने गुणरूप एकादेशो भवति।

उदा०-(ए) तवेदम्, खट्वेन्द्रः, मालेन्द्रः, तवेहते, खट्वेहते। **(ओ)** तवोदकम्, खट्वोदकम्। **(अर्)** तवर्श्यः, खट्वर्श्यः। **(अल्)** तवल्कारः, खट्वल्कारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से उत्तर (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व और पर वर्णों के स्थान में (गुणः) गुणरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-(ए) **तवेदम्।** तेरा यह। **खट्वेन्द्रः।** खाट का स्वामी। **मालेन्द्रः।** माला का स्वामी। **तवेहते।** तेरा चेष्टा करता है। **खट्वेहते।** खाट चेष्टा करती है। (ओ) **तवोदकम्।** तेरा जल। **खट्वोदकम्।** खाट और जल। (अर्) **तवर्श्यः।** तेरा बारहसिंघा। **खट्वर्श्यः।** खट्वा=खाट, ऋश्यः=बारहसिंघा। (अल्) **तवल्कारः।** तव=तेरा ऌकारः=ऌवर्ण। **खट्वल्कारः।** खट्वा=खाट, ऌकारः=ऌवर्ण।*

*सिद्धि-(१) **तवेदम्।** तव+इदम्। तव्+ए+दम्। तवेदम्।*

यहां 'तव' के अवर्ण से परे इदम् के इकार अच् को इस सूत्र से गुण रूप (ए) एकादेश होता है। ऐसे ही-खट्वा+इन्द्रः=खट्वेन्द्रः, माला+इन्द्रः=मालेन्द्रः, तव+ईहते=तवेहते। खट्वा+ईहते=खट्वेहते।

*(२) **तवोदकम्।** तव+उदकम्। तव्-ओ-दकम्। तवोदकम्।*

यहां 'तव' के अवर्ण से परे उदक के उकार अच् को इस सूत्र से गुण रूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही-खट्वा+उदकम्=खट्वोदकम्।

*(३) **तवर्श्य:** । तव+ऋश्य: । तव्-अर्-श्य: । तवर्श्य: ।*

यहां 'तव' के अवर्ण से परे ऋश्य के ऋकार अच् को इस सूत्र से गुणरूप (अर्) गुण होता है जो कि 'उरण् रपर:' (१।१।५०) से तत्काल रपर (अर्) हो जाता है। ऐसे ही-खट्वा+ऋश्य:=खट्वर्श्य: ।

*(४) **तवल्कार:** । तव+लृकार: । तव्-अल्+कार: । तवल्कार: ।*

*यहां 'तव' के अवर्ण से पर लृकार के लृ अच् को सूत्र से गुणरूप (अ) एकादेश होता है। 'उरण् रपर:' (१।१।५०) से लृकार के स्थान में विधीयमान अण् (अ) लपर होता है (अल्)। ऐसे ही-खट्वा+लृकार:=खट्वल्कार: । **'अदेङ् गुण:'** (१।१।२) से तपर अकार, एकार, ओकार की गुण संज्ञा है।*

वृद्धि-एकादेश:-

(१७) वृद्धिरेचि।८८।

प०वि०-वृद्धि: १।१ एचि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, आत्, एक:, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् आद् एचि पूर्वपरयोर्वृद्धिरेक:।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽवर्णाद् एचि परत: पूर्वपरयो: स्थाने वृद्धिरूप एकादेशो भवति।

उदा०-(ऐ) ब्रह्मैडका, खट्वैडका, ब्रह्मैतिकायन:, खट्वैतिकायन:। **(औ)** ब्रह्मौदन:, खट्वौदन:, ब्रह्मौपगव:, खट्वौपगव:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से उत्तर (एचि) एच्=ए, ओ, ऐ, औ वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयो:) पूर्व और पर वर्णों के स्थान में (वृद्धि:) वृद्धि रूप (एक:) एकादेश होता है।*

*उदा०-(ऐ) **ब्रह्मैडका** । ब्राह्मण की भेड़। **खट्वैडका** । खट्वा=खाट, एडका=भेड़। **ब्रह्मैतिकायन:** । ब्राह्मण ऐतिकायन (इतिक का पुत्र)। **खट्वैतिकायन:** । खट्वा=खाट, ऐतिकायन (इतिक का पुत्र)। (औ) **ब्रह्मौदन:** । ब्रह्म=ब्राह्मण, ओदन=चावल। **खट्वौदन:** । खट्वा=खाट, ओदन=चावल। **ब्रह्मौपगव:** । ब्राह्मण औपगव (उपगु का पुत्र)। **खट्वौपगव:** । खाट, औपगव=उपगु का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **ब्रह्मैडका** । ब्रह्म+एकडा। ब्रह्म्-ऐ-डका। ब्रह्मैडका।*

*यहां ब्रह्म के अवर्ण से उत्तर एडका के एच् (ए) को इस सूत्र से वृद्धिरूप (ऐ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**खट्वैडका, ब्रह्मैतिकायन:, खट्वैतिकायन:** ।*

*(२) **ब्रह्मौदनः।** ब्रह्म+ओदनः। ब्रह्म्-औ-दनः। ब्रह्मौदनः।*

*यहां ब्रह्म के अ-वर्ण से उत्तर ओदन के एच् (ओ) को इस सूत्र से वृद्धिरूप (औ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**ब्रह्मौपगवः, खट्वौपगवः।** 'वृद्धिरादैच्' (१।१।१) से तपर आकार, ऐकार, औकार की वृद्धि संज्ञा की है।*

वृद्धि-एकादेशः--

(१८) एत्येधत्यूठ्सु।८६।

प०वि०-एति-एधति-ऊठ्सु ७।३।

स०-एतिश्च एधतिश्च ऊठ् च ते-एत्येधत्यूठः, तेषु-एत्येधत्यूठ्सु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, आत्, वृद्धिः, एचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् एत्येधत्यूठ्सु एचि पूर्वपरयोर्वृद्धिरेकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णाद् एति-एधति-ऊठ्सु एचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूप एकादेशो भवति।

उदा०-(एतिः) उपैति, उपैषि, उपैमि। **(एधतिः)** उपैधते, प्रैधते। **(ऊठ्)** प्रष्ठौहः, प्रौष्ठोहा, प्रष्ठौहे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से पर (एत्येधत्यूठ्सु) एति, एधति, ऊठ् विषयक (एचि) एच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व, पर के स्थान में (वृद्धिः) वृद्धिरूप (एक) एकादेश होता है।*

*उदा०-(एति) **उपैति।** वह प्राप्त करता है। **उपैषि।** तू प्राप्त करता है। **उपैमि।** मैं प्राप्त करता हूं। (एधति) **उपैधते।** वह बढ़ता है। **प्रैधते।** वह बढ़ता है। (ऊठ्) **प्रष्ठौहः।** आगे ले जानेवालों को।*

*सिद्धि-(१) **उपैति।** उप+एति। उप्-ऐ-ति। उपैति।*

*यहां 'उप' के अ-वर्ण से उत्तर 'एति' के एच् (ए) को इस सूत्र से वृद्धि रूप (ऐ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**उपैषि, उपैमि।** यह **'एङि पररूपम्'** (६।१।९४) का अपवाद है।*

*(२) **उपैधते।** उप+एधते। उप्-ऐ-धते। उपैधते।*

*यहां 'उप' के अ-वर्ण से उत्तर 'एधते' के एच् (ए) को इस सूत्र से वृद्धि रूप (ऐ) एकादेश होता है। यह **'एङि पररूपम्'** (६।१।९४) का अपवाद है।*

*(३) **प्रष्ठौहः।** प्रष्ठवाह्+शस्। प्रष्ठवह्+अस्। प्रष्ठ ऊठ् आह्+अस्। प्रष्ठ् अ आह्+अस्। प्रष्ठ ऊ ह्+अस्। प्रष्ठौवहः।*

*यहां 'प्रष्ठवाह्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से शस् प्रत्यय है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से 'वाह्' के वकार को सम्प्रसारण रूप 'ऊठ्' आदेश और **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०४) से आकार को पूर्वरूप ऊकार आदेश होता है। इस सूत्र से प्रष्ठ के अकार और ऊठ् के ऊकार को वृद्धिरूप (औ) एकादेश होता है। यह **'आद् गुणः'** (६।१।८७) का अपवाद है। 'एचि' का सम्बन्ध केवल एति और एधति से है, ऊठ् से नहीं, सम्भव न होने से। ऐसे ही-**प्रष्ठौहा** (टा), **प्रष्ठौहे** (ङे)।*

वृद्धि-एकादेशः-

(१६) आटश्च।९०।

प०वि०-आटः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, वृद्धिरिति चानुवर्तते, एचि इति निवृत्तम्।

अन्वयः-संहितायाम् आटश्चाऽचि पूर्वपरयोर्वृद्धिरेकः।

अर्थः-संहितायां विषये आट उत्तरस्मादचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूप एकादेशो भवति।

उदा०-ऐक्षत, ऐक्षिष्ट, ऐक्षिष्यत, औभीत्, औब्जीत्, आर्ध्नोत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आटः) आट् आगम से उत्तर (अचि) अच् परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व, पर के स्थान में (वृद्धिः) वृद्धि रूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**ऐक्षत।** उसने देखा। **ऐक्षिष्ट।** उसने देखा। **ऐक्षिष्यत।** यदि वह देखता। **औभीत्।** उसने पूरण किया। **औब्जीत्।** उसने आर्जव=सरल व्यवहार किया। **आर्ध्नोत्।** वह बढ़ा।*

***सिद्धि-(१) ऐक्षत।** ईक्ष+लङ्। आट्+ईक्ष्+त। आ+ईक्ष्+शप्+त। आ+ईक्ष्+अ+त। ऐक्ष्+अ+त। ऐक्षत।*

*यहां **'ईक्ष दर्शने'** (भ्वा०आ०) धातु से लङ् प्रत्यय है। **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से 'आट्' आगम होता है। इस सूत्र से आट् के आकार और ईक्ष के ईकार को वृद्धिरूप (ऐ) एकादेश होता है।*

*(२) **ऐक्षिष्ट।** यहां **'ईक्ष दर्शने'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **ऐक्षिष्यत।** यहां **'ईक्ष दर्शने'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लृङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **औभीत्।** उभ्+लुङ्। आट्+उभ्+च्लि+ल्। आ+उभ्+सिच्+तिप्। आ+उभ्+इट्+स्+ईट्+त्। आ+उभ्+इ+०ई+त्। औभीत्।*

*यहां **'उभ पूरणे'** (तु०प०) धातु से लुङ् प्रत्यय है और **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से आट् आगम होता है। इस सूत्र से आट् के आकार और उभ के उकार को वृद्धिरूप (औ) एकादेश होता है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से च्लि के स्थान में सिच् आदेश, **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से सिच् को इट् आगम, **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से 'तिप्' को ईट् आगम और **'इट ईटि'** (८।२।२८) से सिच् के सकार का लोप होता है। ऐसे ही **'उब्ज आर्जवे'** (तु०प०) धातु से-**औब्जीत्।***

*(५) **आर्ध्नोत्।** ऋध्+लङ्। आट्+ऋध्+तिप्। आ+ऋध्+श्नु+ति। आ+ऋध्+श्नु+त्। आर् ध्+नो+त्। आर्ध्नोत्।*

*यहां **'ऋधु वृद्धौ'** (स्वा०प०) धातु से लङ् प्रत्यय और **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से आट् आगम है। इस सूत्र से आट् के आकार और ऋध् धातु के ऋकार को वृद्धिरूप (आ) एकादेश होता है और उसे 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (आर्) होता है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से श्नु विकरण-प्रत्यय और **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होता है।*

वृद्धि-एकादेशः–

(२०) उपसर्गादृति धातौ।६१।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ ऋति ७।१ धातौ ७।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, आद्, वृद्धिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् उपसर्गाद् ऋति धातौ पूर्वपरयोर्वृद्धिरेकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परतः पूर्वपरयोः स्थाने वृद्धिरूप एकादेशो भवति।

उदा०-उपार्च्छति। प्रार्च्छति। उपार्ध्नोति।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अकारान्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से उत्तर (ऋति) ऋकारादि (धातौ) धातु परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व, पर के स्थान में (वृद्धिः) वृद्धिरूप (एकः) एकादेश होता है।

*उदा०-**उपार्च्छति।** वह प्राप्त करता है। **प्रार्च्छति।** वह प्राप्त करता है। **उपार्ध्नोति।** वह बढ़ता है।*

सिद्धि-(१) उपार्च्छति। उप+ऋच्छ्+लट्। उप+ऋच्छ्+तिप्। उप+ऋच्छ्+शप्+ति। उप+ऋच्छ्+अ+ति। उपार्च्छति।

यहां उप-उपसर्ग के अकार और ऋकारादि ऋच्छ् धातु के ऋकार को इस सूत्र से वृद्धिरूप (आ) एकादेश होता है और उसे 'उरण् रपर:' (१।१।५०) से रपत्व (आर्) होता है। ऐसे ही-प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति।

(२) उपार्ध्नोति। उप+ऋध्+लट्। उप+ऋध्+तिप्। उप+ऋध्+श्नु+ति। उप+ऋध्+नो+ति। उपार्ध्नोति।

यहां उप-उपसर्ग के अकार और ऋकारादि ऋध् धातु के ऋकार को इस सूत्र से वृद्धिरूप (आ) एकादेश और उसे पूर्ववत् रपरत्व होता है। 'स्वादिभ्य: श्नु:' (३।१।७३) से श्नु विकरण-प्रत्यय और 'सार्वधातुकार्धधातुकयो:' (७।३।८४) से गुण होता है।

वृद्धि-एकादेशविकल्प:—

(२१) वा सुप्यापिशले:।६२।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, सुपि ७।१ आपिशले: ६।१।

अनु०-संहितायाम्, एक:, पूर्वपरयो:, आत्, वृद्धि:, उपसर्गात्, ऋति, धाताविति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् आद् उपसर्गात् सुपि ऋति धातौ पूर्वपरयोर्वा वृद्धिरेक आपिशले:।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽकारान्ताद् उपसर्गात् सुबन्तावयवे ऋकारादौ धातौ परत: पूर्वपरयो: स्थाने विकल्पेन वृद्धिरूप एकादेशो भवति, आपिशलेराचार्यस्य मतेन।

उदा०-उपार्षभीयति, उपर्षभीयति। उपाल्कारीयति, उपल्कारीयति। 'वा' इत्यनेनैव विकल्पे सिद्धे आपिशालिग्रहणं पूजार्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अकारान्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से उत्तर (सुपि) सुबन्त के अवयव (ऋति) ऋकारादि (धातौ) धातु परे होने पर (पूर्वपरयो:) पूर्व, पर के स्थान में (वा) विकल्प से (वृद्धि:) वृद्धिरूप (एक:) एकादेश होता है।*

*उदा०-**उपार्षभीयति, उपर्षभीयति।** ऋषभ=बैल के समान आचरण करता है। **उपाल्कारीयति, उपल्कारीयति।** ऌकार के समान उच्चारण करता है। यहां 'वा' वचन से ही विकल्प सिद्ध है अत: आपिशलि का ग्रहण पूजा (आचार्य-सम्मान) के लिये किया गया है।*

*सिद्धि-(१) **उपार्षभीयति**। उप+ऋषभ+क्यच्। उप+ऋषभ+य। उप+ऋषभी+य। उपर्षभीय+लट्। उपार्षभीय+तिप्। उपार्षभीय+शप्+ति। उपार्षभीय+अ+ति। उपार्षभीयति।*

*यहां उप-उपसर्ग से उत्तर सुबन्त के अवयव '**ऋषभीय**' धातु के ऋकार का इस सूत्र से वृद्धिरूप (आ) एकादेश है और उसे 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (आर्) होता है।*

*(२) **उपर्षभीयति**। यहां विकल्प पक्ष में उक्त अकार और ऋकार को वृद्धिरूप एकादेश नहीं होता है अपितु 'आद् गुणः' (६।१।८५) से गुणरूप (अ) एकादेश और उसे पूर्ववत् रपरत्व होता है।*

*(३) **उपाल्कारीयति**। उप+ऌकारीयति। उप्-आल्कारीयति। उपाल्कारीयति।*

यहां उप-उपसर्ग से उत्तर सुबन्त के अवयव 'ऌकारीय' धातु के ऌ को इस सूत्र से वृद्धिरूप (आ) एकादेश और उसे पूर्ववत् लपरत्व होता है।

*(४) **उपल्कारीयति**। यहां विकल्प पक्ष में उक्त अकार और ऌकार को वृद्धिरूप एकादेश नहीं होता है अपितु 'आद् गुणः' (६।१।८५) से गुणरूप एकादेश (अ) और उसे पूर्ववत् लपरत्व होता है।*

*"**ऋकारऌकारयोः सवर्णविधिः**" इस वचन प्रमाण से ऋकार और ऌकार वर्णों का सावर्ण्य है अतः ऋकार के ग्रहण से ऌकार का भी ग्रहण किया जाता है। अतः यह ऌकार का उदाहरण दिया गया है। 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से ऋकार को रपरत्व और ऌकार को लपरत्व होता है।*

आकार-एकादेशः-

(२२) औतोऽम्शसोः।६३।

प०वि०-आ १।१ (सु-लुक्) ओतः ५।१ अम्शसोः ७।२।

स०-अम् च शस् च तौ अम्शसौ, तयोः-अम्शसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् ओतोऽम्शसोः पूर्वपरयोरा एकः।

अर्थः-संहितायां विषये ओकाराद् अमि शसि च प्रत्यये परतः पूर्वपरयोः स्थाने आकाररूप एकादेशो भवति।

उदा०-त्वं गां पश्य, त्वं गाः पश्य। त्वं द्यां पश्य, त्वं द्याः पश्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ओतः) ओ-वर्ण से उत्तर (अम्शसोः) अम् और शस् प्रत्यय परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (आः) आकार रूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-त्वं **गां पश्य**। तू गौ को देख। त्वं **गाः पश्य**। तू गौओं को देख। त्वं **द्यां पश्य**। तू द्युलोक को देख। त्वं **द्याः पश्य**। तू द्युलोकों को देख।*

सिद्धि-(१) गाम्। गो+अम्। ग् आ+अम्। गा+अम्। गाम्।

यहां 'गो' शब्द के ओकार से उत्तर 'अम्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में आकार रूप एकादेश होता है।

(२) गाः। गो+शस्। ग् आ+अस्। गा+अस्। गाः।

*यहां 'गो' शब्द के ओकार से उत्तर शस् प्रत्यय परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में आकार रूप एकादेश होता है। ऐसे ही ओकारान्त 'द्यो' शब्द से-**त्वं द्यां पश्य, त्वं द्याः पश्य**।*

*'गाम्' यहां **'गोतो णित्'** (७।१।९०) से अम् को णिद्वत् होकर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि प्राप्त है, वृद्धि होने पर आकार-आदेश सम्भव नहीं है, अतः वृद्धि को बाध कर यह आकार आदेश होता है।*

पररूप-एकादेशः-

(२३) एङि पररूपम्।६४।

प०वि०-एङि ७।१ पररूपम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, आत्, उपसर्गात्, धाताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् उपसर्गाद् एङि धातौ पूर्वपरयोः पररूपमेकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽकारान्ताद् उपसर्गाद् एङादौ धातौ परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८८) इत्यस्यायमपवादः।

उदा०-उपेलयति। प्रेलयति। उपोषति। प्रोषति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अकारान्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से उत्तर (एङि) एङादि (धातौ) धातु परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश होता है। यह **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८८) का अपवाद है।*

*उदा०-**उपेलयति**। वह प्रेरणा करता है। **प्रेलयति**। वह प्रेरणा करता है। **उपोषति**। वह जलता है। **प्रोषति**। वह जलता है।*

*सिद्धि-(१) **उपेलयति**। उप+इल्+णिच्। उप+एल्+इ। उपेलि+लट्। उपेलि+तिप्। उपेलि+शप्+ति। उपेलि+अ+ति। उपेलयति।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'इल प्रेरणे'** (चु०उ०) धातु से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से णिच् प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'इल्' को लघूपध गुण होता है। 'उप+एलि' इस स्थिति में अकारान्त उपसर्ग से उत्तर एङादि धातु परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (ए) एकादेश होता है। ऐसे ही-प्र+एलयति=प्रेलयति।*

*(२) **उपोषति**। उप+उष्+लट्। उप+उष्+तिप्। उप+उष्+शप्+ति। उप+ओष्+अ+ति। उपोषति।*

*यहां उप-उपसर्ग पूर्वक **'उष दाहे'** (भ्वा०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'उष्' को लघूपध गुण होता है। 'उप+ओषति' इस स्थिति में अकारान्त उपसर्ग से उत्तर एङादि धातु परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही-प्र+ओषति=प्रोषति।*

पररूप-एकादेशः—

(२४) ओमाङोश्च।६५।

प०वि०-ओम्-आङो: ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-ओम् च आङ् च तौ-ओमाङौ, तयो:-ओमाङो: (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, एक:, पूर्वपरयो:, आत्, पररूपम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् ओमाङोश्च पूर्वपरयो: पररूपमेक:।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णाद् ओमि आङि च परत: पूर्वपरयो: स्थाने पररूपमेकादेशो भवति।

उदा०-**(ओम्)** कन्योमित्यवोचत्। **(आङ्)** आङ्+ऊढा=ओढा। अद्य+ओढा=अद्योढा। कदा+ओढा=कदोढा। तदा+ओढा=तदोढा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से उत्तर (ओमाङो:) ओम् और आङ् शब्द परे होने पर (पूर्वपरयो:) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एक:) एकादेश होता है।*

उदा०-(ओम्) कन्योमित्यवोचत्। कन्या ने 'ओम्' ऐसा कहा। (आङ्) आङ्+ऊढा=ओढा। अद्य+ओढा=अद्योढा। आज विवाहिता। कदा+ओढा=कदोढा। कब विवाहिता। तदा+ओढा=तदोढा। तब विवाहिता।

सिद्धि-(१) कन्योम्। कन्या+ओम्। कन्योम्।

यहां कन्या के अ-वर्ण (आ) से उत्तर 'ओम्' शब्द के परे होने पर इस सूत्र से पररूप (ओ) एकादेश होता है।

(२) अद्योढा। आङ्+ऊढा=ओढा। अद्य+ओढा। अद्योढा।

यहां प्रथम आङ् और ऊढा शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास होकर 'आद् गुणः' (६।१।८५) से आकार और ऊकार को गुण रूप (ओ) एकादेश होता है। 'अद्य+ओढा' इस स्थिति में अ-वर्ण से उत्तर आङ् परे होने पर इस सूत्र से पररूप (ओ) एकादेश होता है। 'आङ्+ऊढा=ओढा' यहां आङ् और अनाङ् के एकादेश को 'अन्तादिवच्च' (६।१।८३) से पूर्व का अन्तवत् मानकर 'आङ्' के ग्रहण से गृहीत किया जाता है। ऐसे ही-कदोढा, तदोढा।

पररूप-एकादेशः-

(२५) उस्यपदान्तात्।९६।

प०वि०-उसि ७।१ अपदान्तात् ५।१।

स०-पदस्यान्तः-पदान्तः, न पदान्तः-अपदान्तः, तस्मात्-अपदान्तात् (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, आत्, पररूपमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् उसि पूर्वपरयोः पररूपमेकः।

अर्थः-संहितायां विषये अ-वर्णाद् उसि प्रत्यये परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति।

उदा०-ते भिन्द्युः। ते छिन्द्युः। तेऽदुः। तेऽयुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से उत्तर (उसि) उस् प्रत्यय परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश होता है।*

उदा०-ते भिन्द्युः। वे सब विदारण करें। ते छिन्द्युः। वे सब छेदन करें। तेऽदुः। उन्होंने दान किया। तेऽयुः। उन्होंने प्राप्त किया।

सिद्धि-(१) भिन्द्युः। भिद्+लिङ्। भिद्+यासुट्+ल्। भिद्+यासुट्+झि। भिश्नम् द्+यासुट्+जुस्। भि न द्+यास्+उस्। भिन्द्+या०+उस्। भिन्द्या+उस्। भिन्द्युः।

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से लिङ् प्रत्यय, **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से यासुट् आगम, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झि' आदेश, **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' के स्थान में जुस् आदेश और **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से श्नम् विकरण-प्रत्यय है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'श्नम्' के अकार का लोप और **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'यासुट्' के सकार का लोप होता है। 'भिन्द्या+उस्' ऐसी स्थिति में अपदान्त अ-वर्ण से उत्तर उस् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (उ) एकादेश होता है। **'आद् गुणः'** (६।१।८५) से गुणरूप (ओ) एकादेश प्राप्त था। ऐसे ही **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०प०) धातु से-**छिन्द्युः।***

*(२) **अदुः।** दा+लुङ्। अट्+दा+च्लि+ल्। अ+दा+सिच्+झि। अ+दा+स्+उस्। अ+दा+०+उस्। अ+दा+उस्। अदुः।*

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से लुङ् प्रत्यय, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय, **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से च्लि के स्थान में सिच् आदेश होता है। **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। **'गातिस्थाघु०'** (२।४।७७) से 'सिच्' का लुक् होकर 'अ+दा+उस्' इस स्थिति में अपदान्त अ-वर्ण से उत्तर 'उस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (उ) एकादेश होता है।*

*(३) **अयुः।** या+लङ्। अट्+या+झि। अ+या+शप्+झि। अ+या+०+जुस्। अ+या+उस्। अयुः।*

*यहां **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से लङ् प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झि' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।२।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'लङः शाकटायनस्यैव'** (३।४।१११) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। 'अ+या+उस्' ऐसी स्थिति में अपदान्त अ-वर्ण से उत्तर 'उस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (उ) एकादेश होता है।*

पररूप-एकादेशः-

(२६) अतो गुणे।९७।

प०वि०-अतः ५।१ गुणे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, पररूपम्, अपदान्तादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अपदान्ताद् अतो गुणे पूर्वपरयोः पररूपमेकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽपदान्ताद् अकाराद् गुणे परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति।

उदा०-ते पचन्ति। ते यजन्ति। अहं पचे। अहं यजे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपदान्तात्) अपदान्त (अतः) अकार से उत्तर (गुणे) गुण=अ, ए, ओ वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**ते पचन्ति।** वे सब पकाते हैं। **ते यजन्ति।** वे सब यज्ञ करते हैं। **अहं पचे।** मैं पकाता हूं। **अहं यजे।** मैं यज्ञ करता हूं।*

*सिद्धि-(१) **पचन्ति।** पच्+लट्। पच्+झि। पच्+शप्+अन्ति। पच्+अ+अन्ति। पच्+अन्ति। पचन्ति।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। उसके लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'झि' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। **'झोऽन्तः'** (७।१।३) से 'झ्' के स्थान में 'अन्त' आदेश होता है। 'पच्+अ+अन्ति' इस स्थिति में अकार से उत्तर गुण (अ) परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (अ) एकादेश होता है। ऐसे ही **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से-**यजन्ति।***

*(२) **पचे।** पच्+लट्। पच्+इट्। पच्+शप्+इ। पच्+अ+ए। पच्+ए। पचे।*

*यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'लट्' प्रत्यय और उसके स्थान में आत्मनेपद 'इट्' आदेश है। उसे **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व होता है। 'पच्+अ+ए' इस स्थिति में अकार से उत्तर गुण (ए) परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पररूप (ए) एकादेश होता है। ऐसे ही 'यज्' धातु से-**यजे।***

पररूप-एकादेशः-

(२७) अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ।९८।

प०वि०-अव्यक्तानुकस्य ६।१ अतः ५।१ इतौ ७।१।

स०-अपरिस्फुटवर्णम्=अव्यक्तम्। अव्यक्तस्यानुकरणम्-अव्यक्तानुकरणम्, तस्य-अव्यक्तानुकरणस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, पररूपम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ पूर्वपरयोः पररूपमेकः ।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽव्यक्तध्वनेरनुकरणस्य योऽत्-शब्दस्तस्माद् इति-शब्दे परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति।

उदा०-पटत् इति=पटिति। घटत् इति=घटिति। झटत् इति= झटिति। छमत् इति=छमिति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अव्यक्तानुकरणस्य) अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण के (अतः) 'अत्' शब्द से उत्तर (इतौ) इति शब्द परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश होता है।*

उदा०-पटत् इति=पटिति। पटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि-पटिति। घटत् इति=घटिति। घटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि-घटिति। झटत् इति=झटिति। झटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि-झटिति। छमत्=इति छमिति। छमत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि-छमिति।

*सिद्धि-**पटिति**। पटत्+इति। पट्+इति। पटिति।*

यहां 'पटत्' यह किसी अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण है, इसके 'अत्' शब्द से उत्तर 'इति' शब्द परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पररूप (इ) एकादेश होता है। ऐसे ही-घटिति, झटिति, छमिति।

पररूप-प्रतिषेधः-

(२८) नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा।६६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, आम्रेडितस्य ६।१ अन्त्यस्य ६।१ तु अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, पररूपम्, अव्यक्तानुकरस्य, अतः, इताविति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् आम्रेडितस्याव्यक्तानुकरणस्यात इतौ पूर्वपरयोः पररूपमेको न, अन्त्यस्य तु वा।

अर्थ:-संहितायां विषये आम्रेडितसंज्ञकस्याव्यक्तानुकरणस्य योऽत्-शब्दस्तस्माद् इतौ परतः पूर्वपरयोः स्थाने पररूपमेकादेशो न भवति, तस्यान्त्यस्य तकारस्य तु विकल्पेन पररूपमेकादेशो भवति।

उदा०-पटत्-पटत् इति=पटत्पटदिति, पटत्पटेति।

***आर्यभाषाः** अर्थः-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आम्रेडितस्य) आम्रेडित-संज्ञक (अव्यक्तानुकरणस्य) अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणात्मक शब्द के (अतः) अत् शब्द से उत्तर (इतौ) इति शब्द परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश (न) नहीं होता है (तु) किन्तु उसके (अन्त्यस्य) अन्तिम तकार को (वा) विकल्प से (पररूपम्) पररूप (एकः) एकादेश होता है।*

उदा०-पटत्-पटत् इति=पटत्पटदिति। पटत्-पटत् ऐसी अव्यक्त ध्वनि-पटत्-पटदिति, पटत्पटेति।

***सिद्धि-(१) पटत्पटदिति।** पटत्+इति। पटत्-पटत्+इति। पटपटदिति।*

*यहां अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणात्मक 'पटत्' शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा-अर्थ में द्वित्व होता है। **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती 'पटत्' शब्द की आम्रेडित-संज्ञा है। इस आम्रेडित-संज्ञक 'पटत्' शब्द से उत्तर 'इति' शब्द परे होने पर उसके 'अत्' शब्द और 'इति' के इकार के स्थान में इस सूत्र से पररूप एकादेश नहीं होता है।*

*(२) **पटत्पटेति।** पटत्+इति। पटत्-पटत्+इति। पटत्-पट+इति। पटत्पटेति।*

यहां आम्रेडित-संज्ञक 'पटत्' शब्द के अन्त्य तकार को इस सूत्र से विकल्प से पररूप (इ) एकादेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः** काशिकाकार पं० जयादित्य ने **'नित्यमाम्रेडिते डाचि'** (६।१।१००) इस वार्तिक को पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। **"वार्तिकमेवेदम्, वृत्तिकृता सूत्ररूपेण पठितम्" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।

दीर्घ-एकादेशः—

(२६) अकः सवर्णे दीर्घः।१००।

प०वि०-अकः ५।१ सवर्णे ७।१ दीर्घः १।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते। 'अचि' इति च मण्डूकोत्प्लुत्यानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायाम् अकः सवर्णेऽचि पूर्वपरयोर्दीर्घ एकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽक उत्तरस्मात् सवर्णेऽचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घरूप एकादेशो भवति।

उदा०-दण्डाग्रम्, दधीन्द्रः, मधूदके, होतृश्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अकः) अक् वर्ण से उत्तर (सवर्णे) सवर्ण (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (दीर्घः) दीर्घरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**दण्डाग्रम्।** दण्ड का अग्रभाग (ठोरा)। **दधीन्द्रः।** दधि=दही का स्वामी। **मधूदके।** मधु=शहद और उदक=जल। **होतृश्यः।** होता का ऋश्य=सफेद पैरोंवाला बारहसिंघा।*

सिद्धि-(१) दण्डाग्रम्। *दण्ड+अग्रम्। दण्डाग्रम्।*

यहां दण्ड के अक् (अ) से उत्तर सवर्ण अच् (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से दीर्घरूप (आ) एकादेश होता है।

*(२) **दधीन्द्रः।** दधि+इन्द्रः। दधीन्द्रः।*

यहां दधि के अक् (इ) से उत्तर सवर्ण अच् (इ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से दीर्घरूप (ई) एकादेश होता है।

*(३) **मधूदके।** मधु+उदकम्। मधूदके।*

यहां मधु के अक् (उ) से उत्तर सवर्ण अच् (उ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से दीर्घरूप (ऊ) एकादेश होता है।

*(४) **होतृश्यः।** होतृ+ऋश्यः। होतृश्यः।*

यहां होतृ के अक् (ऋ) से उत्तर सवर्ण अच् (ऋ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से दीर्घरूप (ॠ) एकादेश होता है।

*'**तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्**' (१।१।९) से अकार आदि वर्णों की परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।*

पूर्वसवर्ण-एकादेशः–

(३०) प्रथमयोः पूर्वसवर्णः।१०१।

प०वि०-प्रथमयोः ७।२ पूर्वसवर्णः १।१।

स०-प्रथमा च प्रथमा च ते, प्रथमे, तयोः-प्रथमयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। पूर्वस्य सवर्णः पूर्वसवर्णः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अचि, एकः, पूर्वपरयोः, अकः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अकः प्रथमयोरचि पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णो दीर्घ एकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽक उत्तरस्मात् प्रथमयोः=प्रथमायां द्वितीयायां च विभक्तावचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घरूप एकादेशो भवति।

उदा०-अग्नी। वायू। वृक्षाः। प्लक्षाः। वृक्षान्। प्लक्षान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अकः) अक् वर्ण से उत्तर (प्रथमयोः) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति विषयक (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वसवर्णः) पूर्वसवर्ण (दीर्घः) दीर्घरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**अग्नी।** दो अग्नियों ने/को। **वायू।** दो वायुओं ने/को। **वृक्षाः।** बहुत वृक्ष। **प्लक्षाः।** बहुत प्लक्ष (पिलखण)। **वृक्षान्।** बहुत वृक्षों को। **प्लक्षान्।** बहुत प्लक्षों को।*

सिद्धि-(१) अग्नी। *अग्नि+औ। अग्नी।*

*यहां अग्नि शब्द के अक् (इ) से उत्तर प्रथमा-विभक्ति के अच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ (ई) एकादेश होता है। ऐसे ही '**औट्**' (द्वितीया-द्विवचन) परे होने पर भी-**अग्नी।***

*(२) **वायू।** वायु+औ। वायू।*

*यहां वायु शब्द के अक् (उ) से उत्तर प्रथमा-विभक्ति के अच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ (ऊ) एकादेश होता है। ऐसे ही '**औट्**' (द्वितीया-द्विवचन) परे होने पर-**वायू।***

*(३) **वृक्षाः।** वृक्ष+जस्। वृक्ष+अस्। वृक्षास्। वृक्षारु। वृक्षार्। वृक्षाः।*

*यहां वृक्ष शब्द के अक् (अ) से उत्तर प्रथमा-विभक्ति के अच् (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ (आ) एकादेश होता है। ऐसे ही-प्लक्ष शब्द से-**प्लक्षाः।***

*(४) **वृक्षान्।** वृक्ष+शस्। वृक्ष+अस्। वृक्षास्। वृक्षान्।*

*यहां वृक्ष शब्द के अक् (अ) से उत्तर द्वितीया-विभक्ति के अच् (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ (आ) एकादेश होकर '**तस्माच्छसो नः पुंसि**' (६।१।१००) से शस् के सकार को नकार आदेश होता है। ऐसे ही प्लक्ष शब्द से-प्लक्षान्।*

नकार-आदेशः-

(३१) तस्माच्छसो नः पुंसि।१०२।

प०वि०-तस्मात् ५।१ शसः ६।१ नः १।१ पुंसि ७।१।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां तस्मात् {पूर्वसवर्णदीर्घात्} शसः पुंसि नः।

अर्थः-संहितायां विषये तस्मात्=पूर्वोक्तसवर्णदीर्घादुत्तरस्य शसोऽवयवस्य सकारस्य स्थाने पुंसि नकारादेशो भवति।

उदा०-वृक्षान्। अग्नीन्। वायून्। कर्तॄन्। हर्तॄन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तस्मात्) उस पूर्वोक्त सवर्ण दीर्घ एकादेश से उत्तर (शसः) शस् के अवयव सकार के स्थान में (पुंसि) पुंलिङ्ग में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षान्।** सब वृक्षों को। **अग्नीन्।** सब अग्नियों को। **वायून्।** सब वायुओं को। **कर्तॄन्।** सब कर्ताओं को। **हर्तॄन्।** सब हर्ताओं को।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षान्।** वृक्ष+शस्। वृक्ष+अस्। वृक्षास्। वृक्षान्।*

*यहां **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।९९) से पूर्वसवर्ण दीर्घ रूप (आ) एकादेश होकर इस सूत्र से 'शस्' के सकार को नकार आदेश होता है।*

*(२) **अग्नीन्।** अग्नि+शस्। अग्नि+अस्। अग्नीस्। अग्नीन्।*

यहां पूर्ववत् पूर्वसवर्ण दीर्घ (ई) एकादेश होकर इस सूत्र से 'शस्' के सकार को नकार आदेश होता है।

*(३) **वायून्।** वायु+शस्। वायु+अस्। वायूस्। वायून्।*

यहां पूर्ववत् पूर्वसवर्ण दीर्घ (ऊ) एकादेश होकर इस सूत्र से 'शस्' के सकार को नकार आदेश होता है।

*(४) **कर्तॄन्।** कर्तृ+शस्। कर्तृ+अस्। कर्तॄस्। कर्तॄन्।*

*यहां पूर्ववत् पूर्वसवर्ण दीर्घ (ॠ) एकादेश होकर इस सूत्र से 'शस्' के सकार को नकार आदेश होता है। ऐसे ही हर्तृ शब्द से-**हर्तॄन्।***

पूर्वसवर्णदीर्घ-प्रतिषेधः-

(३२) नादिचि।१०३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, आत् ५।१ इचि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, दीर्घः, पूर्वसवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् आद् इचि पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णो दीर्घ एको न।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णाद् इचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो न भवति।

उदा०-वृक्षौ। प्लक्षौ। खट्वे। कुण्डे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आत्) अ-वर्ण से उत्तर (इचि) इच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वसवर्णः) पूर्वसवर्ण (दीर्घः) दीर्घ रूप (एकः) एकादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**वृक्षौ**। दो वृक्ष/को। **प्लक्षौ**। दो प्लक्ष/को (पलखण)। **खट्वे**। दो खाट/को। **कुण्डे**। दो कुण्ड/को।*

***सिद्धि-(१) वृक्षौ**। वृक्ष+औ। वृक्षौ।*

*यहां वृक्ष शब्द के अ-वर्ण से उत्तर इच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है। '**प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**' (६।१।९९) से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। अतः यहां '**वृद्धिरेचि**' (६।१।८६) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही वृक्ष शब्द से औट् (द्वितीया-द्विवचन) प्रत्यय करने पर-**वृक्षौ**। ऐसे ही प्लक्ष शब्द से-**प्लक्षौ**।*

*(२) **खट्वे**। खट्वा+औ। खट्वा+शी। खट्वा+ई। खट्वे।*

*यहां खट्वा शब्द के अ-वर्ण (आ) से उत्तर इच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश का प्रतिषेध होकर '**औङः शी**' (७।१।१८) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। पश्चात् '**आद् गुणः**' (६।१।८५) से गुणरूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'खट्वा' शब्द से औट् (द्वितीया-द्विवचन) प्रत्यय करने पर-**खट्वे**।*

*(३) **कुण्डे**। कुण्ड+औ। कुण्ड+शी। कुण्ड+ई। कुण्डे।*

*यहां कुण्ड शब्द के अ-वर्ण से उत्तर एच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश का प्रतिषेध होकर '**नपुंसकाच्च**' (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। पश्चात् '**आद् गुणः**' (६।१।८५) से गुणरूप एकादेश होता है। ऐसे ही कुण्ड शब्द से औट् (द्वितीया-द्विवचन) प्रत्यय करने पर-**कुण्डे**।*

पूर्वसवर्णदीर्घ-प्रतिषेधः-

(३३) दीर्घाज्जसि च।१०४।

प०वि०-दीर्घात् ५।१ जसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, दीर्घः, पूर्वसवर्णः, न, इचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां दीर्घाद् इचि जसि च पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णो दीर्घो न।

अर्थः-संहितायां विषये दीर्घवर्णाद् इचि जसि च प्रत्यये परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो न भवति।

उदा०-कुमार्यौ, कुमार्यः। ब्रह्मबन्ध्वौ, ब्रह्मबन्ध्वः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (दीर्घात्) दीर्घ वर्ण से उत्तर (इचि) इच् वर्ण और (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वसवर्णः) पूर्वसवर्ण (दीर्घः) दीर्घ (एकः) एकादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कुमार्यौ**। दो कुमारियों ने/को। **कुमार्यः**। सब कुमार्यों ने/को। **ब्रह्मबन्ध्वौ**। दो पतित ब्राह्मणियों ने/को। **ब्रह्मबन्ध्वः**। सब पतित ब्राह्मणियों ने/को।*

*सिद्धि-(१) **कुमार्यौ**। कुमारी+औ। कुमार्य्+औ। कुमार्यौ।*

*यहां कुमारी शब्द के दीर्घ वर्ण (ई) से उत्तर इच् (औ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है, अतः 'इको **यणचि**' (६।१।७५) से यण् आदेश होता है। ऐसे ही कुमारी शब्द से औट् (द्वितीया-द्विवचन) प्रत्यय करने पर-**कुमार्यौ**।*

*(२) **कुमार्यः**। कुमारी+जस्। कुमारी+अस्। कुमार्य्+अस्। कुमार्यः।*

*यहां कुमारी शब्द के दीर्घ वर्ण (ई) से उत्तर जस् प्रत्यय परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है, अतः पूर्ववत् यण् आदेश होता है। ऐसे ही 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्ध्वौ, ब्रह्मबन्ध्वः**।*

पूर्वसवर्णदीर्घ-विकल्पः–

(३४) वा छन्दसि।१०५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, दीर्घः, पूर्वसवर्णः, न, इचि, दीर्घात्, जसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि दीर्घाद् इचि जसि च पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णो वा दीर्घो एको न।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये दीर्घ-वर्णाद् इचि जसि च प्रत्यये परतः पूर्वपरयोः स्थाने विकल्पेन पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो न भवति।

उदा०-मारुतीश्चतस्रः (का०सं० ११।१०)। मारुत्यश्चतस्रः। पिण्डीः, पिण्ड्यः। वाराही, वाराह्यौ। उपानही (मै०सं० ४।४।६)। उपनह्यौ (लौ०गृ० ३।७)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय एवं (छन्दसि) वेदविषय में (दीर्घात्) दीर्घ-वर्ण से उत्तर (इचि) इच् और (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (वा) विकल्प से (पूर्वसवर्णः) पूर्वसवर्ण (दीर्घः) दीर्घ (एकः) एकादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**मारुतीश्चतस्रः** (का०सं० ११।१०)। **मारुत्यश्चतस्रः।** चार मारुतियां। **पिण्डीः, पिण्ड्यः।** सब पिण्डियां। **वाराही, वाराह्यौ।** दो वाराहियां। **उपानही** (मै०सं० ४।४।६)। **उपनह्यौ** (लौ०गृ० ३।७)। दो उपानहियां (जूतियां)।*

सिद्धि-(१) मारुतीः। *मारुती+जस्। मारुती+अस्। मारुतीस्। मारुतीः।*

*यहां मारुती शब्द के दीर्घ वर्ण (ई) से उत्तर जस् प्रत्यय परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में छन्दविषय में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। ऐसे ही 'पिण्डी' शब्द से-**पिण्डीः।***

(२) मारुत्यः। *मारुती+जस्। मारुती+अस्। मारुत्य्+अस्। मारुत्यः।*

*यहां विकल्प पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं है, अपितु '**इको यणचि**' (६।१।७५) से यण् आदेश होता है। ऐसे ही 'पिण्डी' शब्द से-**पिण्ड्यः।***

(३) वाराही। *वाराही+औ। वाराही।*

यहां 'वाराही' शब्द के दीर्घ-वर्ण (ई) से उत्तर इजादि औ/औट् प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। ऐसे ही 'उपानही' शब्द से-उपानही।

(४) वाराह्यौ। *यहां विकल्प-पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं है, अपितु **इको यणचि**' (६।१।७५) से यण् आदेश होता है। ऐसे ही 'उपानही' शब्द से-उपानह्यौ।*

पूर्वरूप-एकादेशः-

(३५) अमि पूर्वः।१०६।

प०वि०-अमि ७।१ पूर्वः १।१।

अनु०-संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अकोऽमि पूर्वपरयोः पूर्व एकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽक उत्तरस्माद् अमि प्रत्यये परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप एकादेशो भवति।

उदा०-वृक्षम्, प्लक्षम्, अग्निम्, वायुम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अकः) अक्-वर्ण से उत्तर (अमि) अम् प्रत्यय परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वः) पूर्वरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षम्**। वृक्ष को। **प्लक्षम्**। प्लक्ष (पिलखण) को। **अग्निम्**। अग्नि को। **वायुम्**। वायु को।*

*सिद्धि-**वृक्षम्**। वृक्ष+अम्। वृक्षम्।*

*यहां वृक्ष शब्द के अक्-वर्ण (अ) से उत्तर अम् प्रत्यय परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में इस सूत्र से पूर्वरूप (अ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षम्, अग्निम्, वायुम्**।*

पूर्वरूप-एकादेशः-

(३६) सम्प्रसारणाच्च।१०७।

प०वि०-सम्प्रसारणात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, अचि, एकः, पूर्वपरयोः, पूर्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सम्प्रसारणाच्चाऽचि पूर्वपरयोरेकः पूर्वः।

अर्थः-संहितायां विषये सम्प्रसारणाच्चोत्तरस्मात् अचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप एकादेशो भवति।

उदा०-**(यजिः)** इष्टम्। **(वपिः)** उप्तम्। **(ग्रहिः)** गृहीतम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सम्प्रसारणात्) सम्प्रसारण से उत्तर (च) भी (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वः) पूर्वरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**(यजि) इष्टम्**। यज्ञ किया। **(स्वपि) सुप्तम्**। शयन किया। **(ग्रहि) गृहीतम्**। ग्रहण किया।*

*सिद्धि-(१) **इष्टम्**। यज्+क्त। यज्+त। इ अ ज्+त। इज्+त। इष्+ट। इष्ट+सु। इष्टम्।*

*यहां 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'यज्' के यकार को सम्प्रसारण (इ) होता है। इस सूत्र से सम्प्रसारण (इ) से उत्तर अच् वर्ण (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (इ) एकादेश होता है। '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८।२।३६) से 'ज्' को षकार और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से तकार को टुत्व टकार होता है।*

*(२) **उप्तम्।** वप्+क्त। वप्+त। उ अ प्+त। उप्+त। उप्त+सु। उप्तम्।*

*यहां 'डुवप् **बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् क्त प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वप्' के वकार को सम्प्रसारण (उ) होता है। इस सूत्र से सम्प्रसारण (उ) से उत्तर अच् वर्ण (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (उ) एकादेश होता है।*

*(३) **गृहीतम्।** ग्रह्+क्त। ग्रह्+त। ग् ऋ अ ह्+त। गृह्+इट्+त। गृह्+ई+त। गृहीत+सु। गृहीतम्।*

*यहां '**ग्रह उपादाने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**ग्रहिज्यावयि०**' (६।१।१६) से 'ग्रह्' के रेफ को सम्प्रसारण (ऋ) होता है। इस सूत्र से सम्प्रसारण (ऋ) से उत्तर अच् वर्ण (अ) परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (ऋ) एकादेश होता है।*

*'**इग्यणः सम्प्रसारणम्**' (१।१।४४) से यण् के स्थान में भूत और भावी इक् की सम्प्रसारण संज्ञा होती है।*

पूर्वरूप-एकादेशः–

(३७) एङः पदान्तादति।१०८।

प०वि०–एङः ५।१ पदान्तात् ५।१ अति ७।१।

स०–पदस्यान्तः पदान्तः, तस्मात्-पदान्तात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, पूर्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पदान्ताद् एङोऽति पूर्वपरयोः पूर्व एकः।

अर्थः–संहितायां विषये पदान्ताद् एङ उत्तरस्माद् अति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप एकादेशो भवति।

उदा०–अग्नेऽत्र। वायोऽत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पदान्त (एङः) एङ्-वर्ण से उत्तर (अति) अ-वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वः) पूर्वरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०-**अग्नेऽत्र।** हे अग्ने ! यहां (आ)। **वायोऽत्र।** हे वायो ! यहां (आ)।*

*सिद्धि-**अग्नेऽत्र।** अग्ने+अत्र। अग्नेऽत्र।*

*यहां अग्ने शब्द के पदान्त एङ् वर्ण (ए) से उत्तर अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (ए) एकादेश होता है। यहां '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७६) से 'अय्' आदेश प्राप्त था, यह उसका अपवाद है। ऐसे ही-**वायोऽत्र।***

पूर्वरूप-एकादेशः–

(३८) ङसिङसोश्च।१०६।

प०वि०–ङसि-ङसोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०–ङसिश्च ङस् च तौ ङसिङसौ, तयोः-ङसिङसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, पूर्वः, एङः, अति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् एङो ङसिङसोश्चाति पूर्वपरयोः पूर्व एकः।

अर्थः–संहितायां विषये एङ उत्तरयोर्ङसिङसोश्चाति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूप एकादेशो भवति।

उदा०–**(ङसि)** अग्नेरागच्छति, वायोरागच्छति। **(ङस्)** अग्नेः स्वम्, वायोः स्वम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) संन्धि-विषय में (एङः) एङ् वर्ण से उत्तर (ङसिङसोः) ङसि और ङस् प्रत्ययविषयक (अति) अ-वर्ण परे होने पर (च) भी (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (पूर्वः) पूर्वरूप (एकः) एकादेश होता है।*

*उदा०–(ङसि) **अग्नेरागच्छति।** अग्नि से {प्रकाश} आता है। **वायोरागच्छति।** वायु से {स्पर्श} आता है। (ङस्) **अग्नेः स्वम्।** अग्नि का स्व=धन। **वायोः स्वम्।** वायु का स्व=धन।*

*सिद्धि–(१) **अग्नेः।** अग्नि+ङसि। अग्नि+अस्। अग्ने+अस्। अग्ने+स्। अग्नेः।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से 'अग्नि' शब्द को गुण (ए) होता है। इस सूत्र से 'अग्ने' के एङ्-वर्ण (ए) से उत्तर ङसि प्रत्यय विषयक अ-वर्ण परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (ए) एकादेश होता है। ऐसे ही 'ङस्' प्रत्यय में भी–**अग्नेः।***

*(२) **वायोः।** वायु+ङसि। वायु+अस्। वायो+अस्। वायो+स्। वायोः।*

*यहां वायु शब्द से ङसि प्रत्यय है और पूर्ववत् उसे गुण (ओ) होता है। इस सूत्र से वायो के एङ् वर्ण (ओ) से उत्तर ङसि प्रत्ययविषयक अ-वर्ण परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही 'ङस्' प्रत्यय में भी–**वायोः।***

उकार-एकादेशः–

(३९) ऋत उत्।११०।

प०वि०–ऋतः ५।१ उत् १।१।

अनु०–संहितायाम्, एकः, पूर्वपरयोः, अति, ङसिङसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋतो ङसिङसोरति पूर्वपरयोरुद् एकः।

अर्थः–संहितायां विषये ऋकारादुत्तरयोर्ङसिङसोरति परतः पूर्वपरयोः स्थाने उकारादेशो भवति।

उदा०–(**ङसि**) होतुरागच्छति। (**ङस्**) होतुः स्वम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ऋतः) ऋ-वर्ण से उत्तर (ङसिङसोः) ङसि और ङस् प्रत्ययविषयक (अति) अ-वर्ण परे होने पर (पूर्वपरयोः) पूर्व-पर के स्थान में (उत्) उकार आदेश होता है।*

उदा०–(ङसि) होतुरागच्छति। होता से आता है। (ङस्) होतुः स्वम्। होता का स्व=धन। होता=ऋग्वेद का ज्ञाता ऋत्विक्।

सिद्धि–होतुः। होतृ+ङसि। होतृ+अस्। होतुरस्। होतुर्०। होतुः।

यहां 'होतृ' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से होतृ शब्द के ऋ-वर्ण से उत्तर ङसि प्रत्ययविषयक अ-वर्ण परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में उकार रूप एकादेश होता है। जो दो षष्ठी-निर्दिष्टों के स्थान में होता है उसका उनमें से किसी एक से कथन किया जा सकता है। पुत्र का माता वा पिता किसी एक से कथन हो सकता है। अतः यहां एक 'ऋ' के स्थान में उकार-आदेश मानकर 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से उकार आदेश रपर होता है और 'रात् सस्य' (८।२।२४) से सकार का लोप होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।

सूचना:–'एकः पूर्वपरयोः' (६।१।८४) का अधिकार समाप्त हुआ।

उकार-आदेशः–

(४०) ख्यत्यात् परस्य।१११।

प०वि०–ख्य-त्यात् ५।१ परस्य ६।१।

स०–ख्यश्च त्यश्च एतयोः समाहारः–ख्यत्यम्, तस्मात्–ख्यत्यात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, अति, ङसिङसोः, उद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां ख्यत्यात् परस्य ङसिङसोरत उत्।

अर्थः-संहितायां विषये ख्य-त्यात् परयोर्ङसिङसोरकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति।

उदा०-**(ख्यः)** सख्युः। **(त्यः)** पत्युः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ख्य-त्यात्) **ख्य और त्य से** (परस्य) उत्तर (ङसिङसोः) ङसि और ङस् प्रत्ययविषयक (अति) अकार **के स्थान में** (उत्) उकार आदेश होता है।*

*उदा०-(ख्य) **सख्युः।** सखा से/का। (त्य) **पत्युः।** पति से/का।*

सिद्धि-सख्युः। *सखि+ङसि। सखि+अस्। सख्य्+अस्। सख्य्+उस्। सख्युस्। सख्युरु। सख्युर्। सख्युः।*

*यहां 'सखि' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'सखि' के इकार को यण् (य्) आदेश होता है। इस सूत्र से 'सख्य्' के 'ख्य' अवयव से उत्तर 'ङसि' के अ-वर्ण के स्थान में उकार आदेश होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही 'ङस्' प्रत्यय परे होने पर भी-**सख्युः।** ऐसे ही 'पति' शब्द से ङसि और ङस् प्रत्यय में-**पत्युः।***

उकार-आदेशः-

(४१) अतो रोरप्लुतादप्लुते।११२।

प०वि०-अतः ५।१ रोः ६।१ अप्लुतात् ५।१ अप्लुते ७।१।

स०-न प्लुतः-अप्लुतः, तस्मात्-अप्लुतात् (नञ्तत्पुरुषः)। न प्लुतः-अप्लुतः, तस्मिन्-अप्लुते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अति, उद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अप्लुताद् अतो रोरुद् अप्लुतेऽति।

अर्थः-संहितायां विषयेऽप्लुताद् अकारादुत्तरस्य रो रेफस्य स्थाने उकारादेशो भवति, अप्लुतेऽकारे परतः।

उदा०-वृक्षोऽत्र। प्लक्षोऽत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्लुताद्) प्लुत से रहित (अतः) अ-वर्ण से उत्तर (रोः) रु के रेफ के स्थान में (उत्) उकार आदेश होता है (अप्लुते) प्लुत से रहित (अति) अ-वर्ण परे होने पर।*

*उदा०-**वृक्षोऽत्र।** वृक्ष यहां है। **प्लक्षोऽत्र।** प्लक्ष (पिलखण) यहां है।*

***सिद्धि-वृक्षोऽत्र।** वृक्ष+सु+अत्र। वृक्ष्+स्+अत्र। वृक्ष+रु+अत्र। वृक्ष+र्+अत्र। वृक्ष+उ+अत्र। वृक्षो+अत्र। वृक्षोऽत्र।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से 'सु' प्रत्यय, **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व और इस सूत्र से 'रु' के रेफ को उत्व होता है। पश्चात् **'आद्गुणः'** (६।१।७५) से गुणरूप (ओ) एकादेश होकर **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षोऽत्र।***

उकार-आदेशः—

(४२) हशि च।११३।

प०वि०-हशि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, उत्, अतः, रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अतो रोरुद् हशि च।

अर्थः-संहितायां विषयेऽतः उत्तरस्य रो रेफस्य स्थाने उकारादेशो भवति, हशि च परतः।

उदा०-पुरुषो याति। पुरुषो हसति। पुरुषो ददाति, इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अतः) अ-वर्ण से उत्तर (रोः) रु के रेफ के स्थान में (उत्) उकार आदेश होता है (हशि) हश् वर्ण परे होने पर (च) भी।*

*उदा०-**पुरुषो याति।** पुरुष जाता है। **पुरुषो हसति।** पुरुष हंसता है। **पुरुषो ददाति।** पुरुष देता है।*

***सिद्धि-पुरुषो याति।** पुरुष+सु+याति। पुरुष+स्+याति। पुरुष+र्+याति। पुरुष+उ+याति। पुरुषो याति।*

*यहां पुरुष शब्द से 'सु' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व होता है। इस सूत्र से पुरुष के अ-वर्ण से उत्तर रेफ को हश्-वर्ण (य्) परे होने पर उत्व होता है। 'आद्गुणः' (६।१।७५) से पूर्व-पर के स्थान में गुणरूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही-**पुरुषो हसति, पुरुषो ददाति** इत्यादि।*

प्रकृतिभावः—

(४३) प्रकृत्याऽन्तःपादमव्यपरे।११४।

प०वि०-प्रकृत्या ३।१ अन्तःपादम् १।१ अव्यपरे ७।१।

स०-पादस्यान्तः (मध्ये) अन्तःपादम् **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) इति सप्तमीविभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। अन्तःशब्दोऽव्ययमधिकरणभूतं मध्यमार्थमाचष्टे। वश्च यश्च तौ व्यौ, व्यौ परौ यस्मात् स व्यपरः, न व्यपरः-अव्यपरः, तस्मिन्-अव्यपरे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अति इति चानुवर्तते। 'एङः' इति पञ्चम्यन्तं पदमर्थवशादिह प्रथमायां विपरिणम्यते।

अन्वयः-संहितायाम् एङ् प्रकृत्या व्यपरेऽति अन्तःपादम्।

अर्थः-संहितायां विषये य एङ् स प्रकृत्या भवति, अवकारयकारपरकेऽति परतः, अन्तःपादं चेत्।

उदा०-ते अग्ने अश्वमयुञ्जन् (यजु० ९।७)। ते अस्मिन् जवमादधुः (यजु० ९।७)। उपप्रयन्तो अध्वरम् (ऋ० १।७४।१)। शिरो अपश्यम् (ऋ० १।१६३।६)। सुजाते अश्वसूनृते (ऋ० ५।७९।१)। अध्वर्यो अद्रिभिः सुतम् (ऋ० ९।५१।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में जो (एङः) एङ् वर्ण है वह (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है (अव्यपरे) वकार-यकारपरक वर्जित (अति) अ-वर्ण परे होने पर (अन्तःपादम्) यदि वह मन्त्र के पाद=चरण के मध्य में हो।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।

***सिद्धि-ते अग्ने०।** यहां 'ते' शब्द के एङ् वर्ण (ए) से उत्तर अ-वर्ण है और ऋचा के पाद=चरण के मध्य में है, अतः वह इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् इस संहिता-प्रकरण में विहित कार्य नहीं होता है। यहां **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। ऐसे ही 'ते **अस्मिन् जवमादधुः**' (यजु० ९।७) इत्यादि।*

***विशेषः** (१) प्रकृति शब्द का अर्थ स्वभाव एवं कारण है, अपने स्वरूप अर्थ में रहना है। अन्तः शब्द अव्यय है और यह मध्यम अर्थ का वाचक है। पाद शब्द से ऋचा के पाद का ही ग्रहण किया जाता है, श्लोक के पाद (चरण) का नहीं।*

*(२) कई वैयाकरण इस सूत्र को **'नान्तःपादमव्यपरे'** ऐसा पढ़ते हैं। उनका मत है कि ऋचा पाद के मध्य में कोई संहिता-कार्य नहीं होता है।*

प्रकृतिभावः–

(४४) अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च।११५।

प०वि०- अव्यात्-अवद्यात्-अवक्रमुः-अव्रत-अयम्-अवन्तु-अवस्युषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-अव्याच्च अवद्याच्च अवक्रमुश्च अव्रतश्च अयं च, अवन्तुश्च अवस्युश्च ते-अव्यात्०अवस्यवः, तेषु-अव्यात्०अवस्युषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या, अन्तःपादम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् एङ् प्रकृत्या अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्व-वस्युषु चाति, अन्तःपादम्।

अर्थः-संहितायां विषये एङ् प्रकृत्या भवति, अवद्यावद्यादवक्रमुर-व्रतायमवन्त्ववस्युष्वति परतः, अन्तःपादं चेत् तद् भवति।

उदा०-(अव्यात्) अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् (तै०सं० २।१।११।२)। **(अवद्यात्)** मित्रमहो अवद्यात् (ऋ० ४।४।१५)। **(अवक्रमुः)** मा शिवासो अवक्रमुः (ऋ० ७।३२।२७)। **(अव्रतः)** ते नो अव्रताः। **(अयम्)** शतवारो अयं मणिः (शौ०सं० १९।३६।५)। **(अवन्तु)** ते नो अवन्तु पितरः (ऋ० १०।१५।१)। **(अवस्युः)** कुशिकासो अवस्यवः (ऋ० ३।४२।९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (एङ्) एङ् वर्ण (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है (अव्यात्०अवस्युषु) अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु, अवस्यु शब्द विषयक (अति) अ-वर्ण परे होने पर, (अन्तःपादम्) यदि वह एङ् ऋचा के पाद=चरण के मध्य में हो।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-नो अव्यात्। *यहां 'नो' शब्द का एङ् वर्ण (ओ) अव्यात् शब्द के अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है। **प्रकृत्याऽन्तःपादमव्यपरे'** (६।१।११४) से वकार-यकारपरक अ-वर्ण परे होने पर प्रकृतिभाव का प्रतिषेध किया गया है। यहां 'अव्यात्' आदि में वकार-यकारपरक अ-वर्ण परे होने पर भी एङ् को प्रकृतिभाव होता है।*

प्रकृतिभावः–

(४५) यजुष्युरः ।११६।

प०वि०–यजुषि ७ ।१ उरः १ ।१।

अनु०–संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां यजुषि एङन्त उरोऽति प्रकृत्या।

अर्थः–संहितायां यजुषि च विषये एङन्त उरःशब्दोऽति परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०–उरो अन्तरिक्षं सजूः (तै०सं० १ ।३ ।८ ।१)। यजुषि पादानाम-भावादनन्तःपदार्थमिदं वचनं वेदितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) संहिता और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (एङः) एङन्त (उरः) उरः शब्द (अति) अ-वर्ण परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०–**उरो अन्तरिक्ष सजूः** (तै०सं० १ ।३ ।८ ।१)। यजुर्वेद में पाद व्यवस्था न होने से यह अनन्तः पाद के लिये कथन किया गया है।*

*सिद्धि–**उरो अन्तरिक्ष।** यहां याजुष विषय में एङन्त उरः शब्द (उरो) से अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव होता है।*

प्रकृतिभावः–

(४६) आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठेऽम्बेऽम्बालेऽम्बिकेपूर्वे ।११७।

प०वि०–आपो १ ।१ (सु-लुक्) जुषाणो १ ।१ (सु-लुक्) वृष्णो १ ।१ (सु-लुक्) वर्षिष्ठे १ ।१ (सु-लुक्) अम्बे १ ।१ (सु-लुक्) अम्बाले १ ।१ (सु-लुक्) अम्बिकेपूर्वे १ ।२।

स०–अम्बिके शब्दात् पूर्वम्–अम्बिकेपूर्वम्, ते–अम्बिकेपूर्वे (पञ्चमी-तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या, यजुषि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां यजुषि आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, अम्बिकेपूर्वे अम्बे, अम्बाले इत्यत्र एङ् अति प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, इत्यत्र अम्बिकेपूर्वे अम्बे, अम्बाले इत्यत्र च य एङ् सोऽति परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-**(आपो)** आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु (यजु० ४।२)। **(जुषाणो)** जुषाणो अप्तुराज्यस्य (यजु० ५।३५)। **(वृष्णो)** वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः (यजु० ७।१)। **(वर्षिष्ठे)** वर्षिष्ठे अधिनाके (तै०सं० १।१।८।२)। अम्बे अम्बाले अम्बिके (यजु० २३।१८)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (आपो०अम्बिकेपूर्वे) आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे यहां जो (एङ्) एङ् वर्ण है वह और (अम्बिकेपूर्वे) अम्बिके शब्द से पूर्व जो (अम्बे, अम्बालिके) अम्बे और अम्बालिके शब्दों में (एङ्) एङ्-वर्ण है वह (अति) अ-वर्ण परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत भाग में देख लेवें।

सिद्धि-आपो अस्मान्। *यहां 'आपो' शब्द का एङ् वर्ण (ओ) अ-वर्ण परे होने पर याजुष विषय में इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है। '**एङः पदान्तादति**' (६।१।१०६) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। ऐसे ही-**जुषाणो अप्तुराज्यस्य** इत्यादि।*

प्रकृतिभावः-

(४७) अङ्गे इत्यादौ च।११८।

प०वि०-अङ्गे ७।१ इत्यादौ ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-इति=अङ्गशब्दः, तस्यादिः-इत्यादिः, तस्मिन्-इत्यादौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, यजुषि, एङः, अति, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां यजुषि अङ्गे एङ् अति प्रकृत्या, इत्यादौ चाति एङ् प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये 'अङ्गे' इत्यत्र य एङ् वर्णः सोऽकारे परतः प्रकृत्या भवति, इत्यादौ=अङ्गशब्दादौ चाकारे परत एङ् वर्णः प्रकृत्या भवति।

उदा०-(अङ्गे) ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अशोचिषम्। (इत्यादौ=अङ्गशब्दादौ) ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत् (यजु० ६।२०)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (अङ्गे) अङ्गे इस शब्द में विद्यमान जो एङ् है वह (अति) अकार वर्ण परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है तथा (इत्यादौ) अङ्ग शब्द के आदि में विद्यमान (अति) अकार वर्ण परे होने पर (एङ्) एङ् वर्ण (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-**(अङ्गे)** ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अशोचिषम् (इत्यादौ=अङ्शब्दादौ) ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत् (यजु० ६।२०)।*

सिद्धि-(१) अङ्गे अदीध्यत्। *यहां 'अङ्गे' शब्द में विद्यमान एङ्-वर्ण (ए) अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०८) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। ऐसे ही-**अङ्गे अशोचिषम्।***

*(२) **प्राणो अङ्गे अङ्गे।** यहां 'प्राणो' शब्द का एङ् वर्ण (ओ) अङ्ग शब्द के अ-वर्ण परे होने पर प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०८) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। 'अङ्गे अङ्गे' यहां 'अङ्गे' शब्द का एङ् वर्ण (ए) अङ्ग शब्द के अ-वर्ण परे होने पर इसी सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है।*

प्रकृतिभावः-

(४८) अनुदात्ते च कुधपरे।११६।

प०वि०-अनुदात्ते ७।१ च अव्ययपदम्, कु-धपरे ७।१।

स०-कुश्च धश्च तौ कुधौ, कुधौ परौ यस्मात् स कुधपरः, तस्मिन्-कुधपरे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या, यजुषि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां यजुषि एङ् अनुदात्ते कुधपरे चाति प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये य एङ्वर्णः सोऽनुदात्ते कवर्ग-धकारपरकेऽति परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-कवर्गपरकेऽति-अयं नो अग्निः (यजु० ५।३७)। धकार-परकेऽति-अयं सो अध्वरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में जो (एङ्) एङ् वर्ण है वह (अनुदात्ते) अनुदात्त (कु-धपरे) कवर्गपरक और धकारपरक (अति) अ-वर्ण परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-कवर्गपरक अकार-**अयं नो अग्निः** (यजु० ५।३७)। धकारपरक अकार-**अयं सो अध्वरः।***

सिद्धि-(१) नो अग्निः। *यहां 'नो' शब्द का एङ्-वर्ण (ओ) 'अग्नि' शब्द के अनुदात्त एवं कवर्गपरक अ-वर्ण परे होने पर याजुष विषय में इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् '**एङः पदान्तादति**' (६।१।१०८) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। 'अग्नि' शब्द अनुदात्तादि है।*

(२) सो अध्वरः। *यहां 'सो' शब्द का एङ् वर्ण (ओ) 'अध्वर' शब्द के अनुदात्त एवं धकारपरक अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् पूर्ववत् प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। 'अध्वर' शब्द अनुदात्तादि है।*

प्रकृतिभावः-

(४६) अवपथासि च।१२०।

प०वि०-अवपथासि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या, यजुषि, अनुदात्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां यजुषि एङ् अनुदात्तेऽवपथासि चाति प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये य एङ्-वर्णः सोऽनुदात्तेऽवपथासि चाति परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः (का०सं० ३०।६।३२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (एङ्) एङ्-वर्ण (अनुदात्ते) अनुदात्त (अवपथासि) 'अवपथाः' शब्द विषयक (अति) अ-वर्ण परे होने पर (च) भी (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-**त्री रुद्रेभ्यो अवपथाः** (का०सं० ३०।६।३२)।*

सिद्धि-रुद्रेभ्यो अवपथाः। *यहां 'रुद्रेभ्यो' शब्द का एङ्-वर्ण (ओ) अवपथासि शब्द विषयक अनुदात्त अ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् '**एङः पदान्तादति**' (६।१।१०८) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है।*

*'अवपथाः' यहां '**डुवप बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०) धातु से लङ् प्रत्यय **और उसके स्थान में** 'थास्' आदेश है और '**तिङ्ङतिङः**' (८।१।२८) से अनुदात्त होता है।*

प्रकृतिभाव-विकल्पः--

(५०) सर्वत्र विभाषा गोः ।१२१।

प०वि०-सर्वत्र अव्ययपदम्, विभाषा १।१ गोः ६।१।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अति, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सर्वत्र गोरेङ् अति विभाषा प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां सर्वत्र=छन्दसि भाषायां च गोरेङ् अति परतो विकल्पेन प्रकृत्या भवति।

उदा०-(छन्दसि) अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः पशवः गो अश्वान् (तै०सं० ५।२।९।४) **(भाषायाम्)** गोऽग्रम्, गो अग्रम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सर्वत्र) छन्द और लोकभाषा में (गोः) गो शब्द का (एङ्) एङ्-वर्ण (अति) अ-वर्ण परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-(छन्द) **अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः पशवः गो अश्वान्** (तै०सं० ५।२।९।४)। (भाषा) **गोऽग्रम्, गो अग्रम्।** गौ का अगला भाग (मुख)।*

*सिद्धि-(१) **गो अश्वान्।** यहां छन्दविषय में 'गो' शब्द का एङ् वर्ण (ए) 'अश्व' शब्द के अ-वर्ण के परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है। अर्थात् **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है। ऐसे ही-**गो अश्वान्।***

*(२) **गोऽग्रम्।** यहां लोकभाषा विषय में 'गो' शब्द का एङ् वर्ण (ओ) अश्व शब्द के अ-वर्ण के परे होने पर इस सूत्र से विकल्प से प्रकृतिभाव से रहता है। अतः विकल्प पक्ष में **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश (ओ) होता है।*

*(३) **गो अग्रम्।** यहां 'गो' शब्द को एङ् वर्ण (ओ) 'अग्रे' शब्द के अ-वर्ण परे होने पर लोकभाषा में प्रकृतिभाव से रहता है। **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) से प्राप्त पूर्वरूप एकादेश नहीं होता है।*

अवङ्-आदेशः--

(५१) अवङ् स्फोटायनस्य ।१२२।

प०वि०-अवङ् १।१ स्फोटायनस्य ६।१।

अनु०-संहितायाम्, एङः, अचि, गोरिति चानुवर्तते। 'अति' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-संहितायाम् अचि गोरेङोऽवङ्, स्फोटायनस्य।

अर्थः-संहितायां विषयेऽचि परतो गोरेङः स्थानेऽवङ् आदेशो भवति, स्फोटायनस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-गवाग्रम्, गोऽग्रम्। गवाजिनम्, गोऽजिनम्। गवौदनम्, गवोदनम्। गवोष्ट्रम्। गवुष्ट्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचि) अच्-वर्ण परे होने पर (गोः) गो शब्द के (एङः) एङ्-वर्ण के स्थान में (अवङ्) अवङ् आदेश होता है (स्फोटायनस्य) स्फोटायन आचार्य के मत में।*

*उदा०-**गवाग्रम्, गोऽग्रम्।** गौ का अगला भाग (मुख)। **गवाजिनम्, गोऽजिनम्।** गौ का चर्म (चमड़ा)। **गवौदनम्, गवोदनम्।** गौ के लिये निकाला हुआ ओदन (भात)। **गवोष्ट्रम्। गवुष्ट्रम्।** गौ और उष्ट्र (ऊंट)।*

सिद्धि-*(१) **गवाग्रम्।** गो+अग्रम्। ग् अवङ्+अग्रम्। गव+अग्रम्। गवाग्रम्।*

*यहां 'गो' शब्द के एङ् वर्ण (ओ) का अच्-वर्ण (अ) परे होने पर इस सूत्र से स्फोटायन आचार्य के मत में अवङ् आदेश होता है। '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९८) से दीर्घ रूप (आ) एकादेश होता है।*

*(२) **गोऽग्रम्।** गो+अग्रम्। गो+ग्रम्। गोऽग्रम्।*

*यहां पाणिनिमुनि के मत में '**एङः पदान्तादति**' (६।१।१०६) से पूर्वरूप (ओ) एकादेश होता है। ऐसे ही-गो+अजिनम्=गोऽजिनम्।*

*(३) **गवौदनम्।** गो+ओदनम्=गवौदनम्।*

यहां स्फोटायन आचार्य के मत में अवङ् आदेश है। ऐसे ही गो+अजिनम्=गवाजिनम्। गो+उष्ट्रम्=गवोष्ट्रम्।

*(४) **गवोदनम्।** गो+ओदनम्=गवोदनम्।*

*यहां पाणिनिमुनि के मत में '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७६) से अव् आदेश है। ऐसे ही-गो+उष्ट्रम्=गवुष्ट्रम्।*

अवङ्-आदेशः-

(५२) इन्द्रे च।१२३।

प०वि०-इन्द्रे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, अचि, एङः, गोः, अवङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इन्द्रे च अचि गोरेङोऽवङ्।

अर्थः-संहितायां विषे इन्द्रशब्दस्थेऽचि परतो गोरेङः स्थानेऽवङ् आदेशो भवति।

उदा०-गवेन्द्रः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इन्द्रे) इन्द्र शब्द में अवस्थित (अचि) अच्-वर्ण परे (च) भी (गोः) गो शब्द के (एङः) एङ्-वर्ण के स्थान में (अवङ्) अवङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**गवेन्द्रः।** गौओं का राजा (सांड)।*

*सिद्धि-**गवेन्द्रः।** गो+इन्द्र। ग् अवङ्+इन्द्र। गव+इन्द्र। गवेन्द्र+सु। गवेन्द्रः।*

यहां इन्द्र शब्द में अवस्थित अच्-वर्ण (इ) परे होने पर 'गो' शब्द के एङ् वर्ण (ओ) को इस सूत्र से अवङ् आदेश होता है। तत्पश्चात् 'आद्गुणः' (६।१।८५) से गुणरूप (ए) एकादेश होता है।

प्रकृतिभावः--

(५३) प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।१२४।

प०वि०-प्लुत-प्रगृह्याः १।३ अचि ७।१ नित्यम् १।१।

स०-प्लुताश्च प्रगृह्याश्च ते प्लुतप्रगृह्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यं प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां विषये प्लुताः प्रगृह्यसंज्ञकाश्च शब्दा अति परतो नित्यं प्रकृत्या भवन्ति।

उदा०-(प्लुताः) देवदत्त३ अत्र न्वसि? यज्ञदत्त३ इदमानय। **(प्रगृह्याः)** अग्नी इति। वायू इति। खट्वे इति। माले इति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्लुतप्रगृह्याः) प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक शब्द (अचि) अच् वर्ण परे होने पर (नित्यम्) सदा (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहते हैं अर्थात् वहां इस संहिता प्रकरण में विहित कार्य नहीं होता है।*

*उदा०-(प्लुत) देवदत्त३ **अत्र न्वसि**? हे देवदत्त३ क्या तू यहां है? **यज्ञदत्त३ इदमानय।** हे यज्ञदत्त३ तू यह वस्तु ला। (प्रगृह्य) **अग्नी इति।** अग्नी यह शब्द। **वायू इति।** वायू यह शब्द। **खट्वे इति।** खट्वे यह शब्द। **माले इति।** माले यह शब्द (उसने कहा)।*

सिद्धि-(१) देवदत्त३ अत्र। यहां 'देवदत्त' शब्द 'दूराद्धूते च' (८।२।८५) से प्लुत है-देवदत्त३। यह अच्-वर्ण (अ) परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९८) से प्राप्त दीर्घरूप (आ) एकादेश नहीं होता है। यहां 'दूराद्धूते च' (८।२।८५) से किया गया-प्लुत-कार्य इस सूत्र से प्रकृतिभाव करने में 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से असिद्ध नहीं होता है क्योंकि यह प्रकृतिभाव प्लुत के ही आश्रित है।

(२) यज्ञदत्त३ इदम्। यहां यज्ञदत्त शब्द पूर्ववत् प्लुत है-यज्ञदत्त३। यह अच्-वर्ण (इ) परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'आद्गुणः' (६।१।८५) से प्राप्त गुणरूप (ए) एकादेश नहीं होता है।

(३) अग्नी इति। 'अग्नी' शब्द की 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' (१।१।११) से प्रगृह्य संज्ञा है। अतः यह अच्-वर्ण (इ) परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९८) से प्राप्त दीर्घरूप (ई) एकादेश नहीं होता है।

(४) वायू इति। यहां 'वायू' शब्द की पूर्ववत् प्रगृह्य संज्ञा है। अतः यह अच्-वर्ण (इ) परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'इको यणचि' (६।१।७५) से प्राप्त इक् (उ) के स्थान में यण् (व्) आदेश नहीं होता है।

(५) खट्वे इति। यहां 'खट्वे' शब्द की पूर्ववत् प्रगृह्य संज्ञा है। अतः यह अच्-वर्ण (इ) परे होने पर प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'एचोऽयवायावः' (६।१।७६) से प्राप्त अय्-आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-माले इति।

प्रकृतिभावः-

(५४) आङोऽनुनासिकश्छन्दसि।१२५।

प०वि०-आङः ६।१ अनुनासिकः १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, छन्दसि, प्रकृत्या, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अचि आङोऽनुनासिकः प्रकृत्या।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषयेऽचि परत आङोऽनुनासिकादेशो भवति, स च प्रकृत्या भवति।

उदा०-अभ्र आँ अपः (ऋ० ५।४।८।१)। गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः (ऋ० ८।६७।११)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में और (छन्दसि) वेदविषय में (अचि) अच्-वर्ण परे होने पर (आङः) आङ् शब्द को (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है और वह (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

उदा०-अभ्र आँ अपः (ऋ० ५।४८।१)। गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः (ऋ० ८।६७।११)।

सिद्धि-(१) आँ अपः। यहां छन्दविषय में 'आङ्' शब्द को इस सूत्र से अनुनासिक आदेश होता है और वह प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९८) से प्राप्त दीर्घरूप (आ) एकादेश नहीं होता है।

(२) आँ उग्रपुत्रे। यहां छन्दविषय में 'आङ्' शब्द को इस सूत्र से अनुनासिक आदेश होता है और वह प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'आद्गुणः' (६।१।८५) से प्राप्त गुणरूप (ओ) एकादेश नहीं होता है।

प्रकृतिभावः-

(५५) इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च।१२६।

प०वि०-इकः १।३ (६।१) असवर्णे ७।१ शाकल्यस्य ६।१ ह्रस्वः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-न सवर्णः-असवर्णः, तस्मिन्-असवर्णे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, प्रकृत्या, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् असवर्णेऽचि इकः प्रकृत्या शाकल्यस्य, इकश्च ह्रस्वः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽसवर्णेऽचि परत इकः प्रकृत्या भवन्ति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन, इकश्च ह्रस्वो भवति।

उदा०-दधि अत्र, दध्यत्र। मधु अत्र, मध्वत्र। कुमारि अत्र, कुमार्यत्र, किशोरि अत्र, किशोर्यत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (असवर्णे) असवर्ण (अचि) अच्-वर्ण परे होने पर (इकः) इक्-वर्ण (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहते हैं (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (च) और उस (इकः) इक् के स्थान में (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

उदा०-दधि अत्र (शाकल्य) दध्यत्र। (पाणिनि) दही यहां है। मधु अत्र (शाकल्य) मध्वत्र। (पाणिनि) मधु यहां है। कुमारी अत्र (शाकल्य) कुमार्यत्र। (पाणिनि) कुमारी यहां है। किशोरि अत्र (शाकल्य) किशोर्यत्र। (पाणिनि) किशोरी यहां है।

सिद्धि-(१) दधि अत्र। दधि+अत्र। दधि अत्र।

यहां 'दधि' शब्द का इक्-वर्ण (इ) असवर्ण अच्-वर्ण (अ) परे होने पर इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में प्रकृतिभाव से रहता है और उसे पर्जन्यवत् ह्रस्व होता है। ऐसे ही-कुमारि अत्र। किशोरि अत्र।

*(२) **दध्यत्र।** दधि+अत्र। दध्यत्र।*

*यहां 'दधि' शब्द के इक्-वर्ण (इ) को असवर्ण अच्-वर्ण (अ) परे होने पर इस सूत्र से पाणिनिमुनि के मत में **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यण् (य्) आदेश होता है। ऐसे ही-**कुमार्यत्र, किशोर्यत्र। मधु अत्र, मध्वत्र** को भी ऐसे ही समझें।*

प्रकृतिभावः–

(५६) ऋत्यकः।१२७।

प०वि०–ऋति ७।१ अकः १।३ (६।१)।

अनु०–संहितायाम्, प्रकृत्या, शाकल्यस्य, ह्रस्वः, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋति अकः प्रकृत्या, शाकल्यस्य, ह्रस्वश्च।

अर्थः–संहितायां विषये ऋकारे परतोऽकः प्रकृत्या भवन्ति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन, अकश्च ह्रस्वो भवति।

उदा०–खट्व ऋश्यः, खट्वर्श्यः। माल ऋश्यः, मालर्श्यः। होतृ ऋश्यः, होतृश्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ऋति) ऋ-वर्ण परे होने पर (अकः) अक्-वर्ण (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहते हैं (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (च) और उस (अकः) अक्-वर्ण के स्थान में (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

*उदा०–**खट्व ऋश्यः** (शा०) **खट्वर्श्यः** (पा०)। **माल ऋश्यः** (शा०) **मालर्श्यः** (पा०)। **होतृ ऋश्यः** (शा०) **होतृश्यः** (पा०)। ऋश्यः=सफेद पैरोंवाला बारहसिंघा।*

*सिद्धि-(१) **खट्व ऋश्यः।** खट्वा+ऋश्यः। खट्व ऋश्यः।*

यहां 'खट्वा' शब्द का अक्-वर्ण (आ) ऋ-वर्ण परे होने पर इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में प्रकृतिभाव से रहता है और उसे ह्रस्व आदेश (अ) होता है। ऐसे ही-माला+ऋश्यः=माल ऋश्यः। होतृ+ऋश्यः=होतृ ऋश्यः।

*(२) **खट्वर्श्यः।** खट्वा+ऋश्यः। खट्व्-अर्-श्यः। खट्वर्श्यः।*

यहां खट्वा शब्द के आ-वर्ण से उत्तर ऋ-वर्ण परे होने पर पाणिनि मुनि के मत में 'आद्गुणः' (६।१।८५) से पूर्व-पर के स्थान में गुणरूप (अ) एकादेश होता है और उसे 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (अर्) होता है। ऐसे माला+ऋश्यः=मालर्श्यः।

*(३) **होतृश्यः।** यहां पाणिनि मुनि के मत में 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९८) से पूर्व-पर के स्थान में दीर्घरूप (ॠ) एकादेश होता है।*

अप्लुवद्भावः–

(५७) अप्लुतवदुपस्थिते।१२८।

प०वि०–अप्लुतवत् अव्ययपदम्, उपस्थिते ७।१।

स०–न प्लुतः-अप्लुतः, अप्लुतेन तुल्यं वर्तते इति अप्लुतवत् (नञ्तत्पुरुषः)। '**तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः**' (५।१।११५) इति वतिः प्रत्ययः। उपस्थितं नामानार्षः=अवैदिक इतिकरणः। येन समुदायादवच्छिद्य पदं स्वरूपे उपस्थाप्यते तद् उपस्थितम्।

अनु०–संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपस्थितेऽप्लुतवत्।

अर्थः–संहितायां विषये उपस्थिते=अनार्षे (अवैदिके) इति-शब्दे परतः प्लुतोऽप्लुतवद् भवति।

उदा०–सुश्लोक३ इति=सुश्लोकेति। सुमङ्गल३ इति=सुमङ्गलेति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपस्थिते) अनार्ष=अवैदिक इति-शब्द परे होने पर प्लुत-वर्ण (अप्लुतवत्) अप्लुत-वर्ण के तुल्य होता है।*

*उदा०-**सुश्लोक३ इति=सुश्लोकेति।** सुश्लोक३ यह शब्द। **सुमङ्गल३ इति=सुमङ्गलेति।** सुमङ्गल३ यह शब्द (उसने कहा)।*

*सिद्धि-**सुश्लोकेति।** सुश्लोक३+इति। सुश्लोक+इति। सुश्लोक्+ए+ति। सुश्लोकेति।*

*यहां 'सुश्लोक३' का प्लुत अ-वर्ण (अ३) उपस्थित=अनार्ष इति शब्द परे होने पर इस सूत्र से अप्लुतवत्=अप्लुत-वर्ण के तुल्य (अ) हो जाता है। इससे '**प्लुतप्रगृह्या अचिनित्यम्**' (६।१।१२२) से प्रकृतिभाव नहीं होता है, अपितु '**आद्गुणः**' (६।१।८५) से पूर्व-पर के स्थान में गुणरूप (ए) एकादेश होता है। ऐसे ही-**सुमङ्गल३ इति=सुमङ्गलेति।***

अप्लुतवद्भावः–

(५८) ई३ चाक्रवर्मणस्य।१२६।

प०वि०–ई३ १।१ (सु-लुक्) चाक्रवर्मणस्य ६।१।

अनु०–संहितायाम्, अचि, अप्लुतवद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अचि ई३ अप्लुतवत्, चाक्रवर्मणस्य।

अर्थः-संहितायां विषयेऽचि परतः प्लुत ई३-वर्णोऽप्लुतवद् भवति, चाक्रवर्मणस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-अस्तु ही३त्यब्रूताम्, अस्तु हि३ इत्यब्रूताम्। चिनुही३दम्, चिनु हि३ इदम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचि) अच्-वर्ण परे होने पर (ई३) प्लुत ई३ वर्ण (अप्लुतवत्) अप्लुत के तुल्य होता है, (चाक्रवर्मणस्य) चाक्रवर्मण आचार्य के मत में।*

*उदा०-**अस्तु हीत्यब्रूताम्** (चा०) **अस्तु हि३ इत्यब्रूताम्** (पा०)। अच्छा! उन दोनों ने 'हि' ऐसा कहा। **चिनुही३दम्** (चा०) **चिनु हि३ इदम्** (पा०)। तू इसे चुन।*

सिद्धि-(१) ही३ति। *हि+इति। ही३ति।*

*यहां 'हि' शब्द का ई३ वर्ण इस सूत्र से चाक्रवर्मण आचार्य के मत में अप्लुतवत् होता है। अप्लुतवत् होने से **'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्'** (६।१।१२२) से प्रकृतिभाव नहीं होता है अपितु **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९८) से पूर्व-पर के स्थान में दीर्घरूप (ई३) एकादेश होता है। ऐसे ही-**चिनुही३दम्।***

*(२) **हि३इति।** यहां हि३ शब्द इ३ वर्ण पाणिनि मुनि के मत में अप्लुतवत् नहीं होता है अपितु प्लुतवत् ही रहकर **'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्'** (६।१।१२२) से प्रकृतिभाव से रहता है।*

यहां चाक्रवर्मण का ग्रहण विकल्प के लिये किया गया है। यह सूत्र उपस्थित=अनार्ष इति तथा अनुपस्थित=आर्ष (वैदिक) 'इति' शब्द परे होने पर भी विकल्प विधान करता है, अतः यह उभयत्र-विभाषा है।

उत्-आदेशः-

(५६) दिव उत्।१३०।

प०वि०-दिवः ६।१ उत् १।१।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते। **'एङः पदान्तादति'** (६।१।१०६) इत्यस्माद् इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते, तच्चार्थवशात् पदान्तात् षष्ठ्यां विपरिणम्यते।

अन्वयः-संहितायां दिवः पदान्तस्य उत्।

अर्थः-संहितायां विषये दिवः पदान्तस्य उत्=उकारादेशो भवति।

उदा०-दिवि कामो यस्य सः-द्युकामः, द्युमान्। विमलद्यु दिनम्। द्युभ्याम्। द्युभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (दिवः) दिव् के (पदान्तस्य) पदान्त वकार को (उत्) उकार आदेश होता है।*

*उदा०-**दिवि कामो यस्य सः-द्युकामः।** दिव्=(द्यौः) स्वर्ग में काम=इच्छा जिसकी वह-द्युकाम। **द्युमान्।** द्युलोकवाला। **विमलद्यु दिनम्।** विमल द्युलोकवाला दिन। **द्युभ्याम्।** दो द्युलोकों के द्वारा। **द्युभिः।** सब द्युलोकों के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **द्युकामः।** दिव्+ङि+काम+सु। दिव्+काम। दि उ+काम। द्युकाम+सु। द्युकामः।*

*यहां दिव् और काम शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'दिव्' शब्द में अन्तवर्तिनी विभक्ति (ङि) का '**सुपो धातुप्रातिपदिकयोः**' (२।४।७१) सु लुक् हो जाता है, '**सुप्तिङन्तं पदम्**' (१।४।१४) से उसकी पदसंज्ञा मानकर इस सूत्र से 'दिव्' को उकार आदेश और वह '**अलोऽन्त्यस्य**' (१।१।४१) से अन्त्य वकार के स्थान में होता है।*

*(२) **द्युमान्।** दिव्+मतुप्। दिव्+मत्। दि उ+मत्। द्युमत्+सु। द्यु म नुम् त्+सु। द्युमन् त्+सु। द्युमान्त्+सु। द्युमान्त्+०। द्युमान्०। द्युमान्।*

*यहां 'दिव्' शब्द से '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से दिव् की पदसंज्ञा होकर इस सूत्र से 'दिव्' के वकार को उकार आदेश होता है। तत्पश्चात् '**इको यणचि**' (६।१।७५) से यण् आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **विमलद्यु।** विमला द्यौः (आकाशम्) यस्य तद् विमलद्यु दिनम्। विमल+दिव्+सु। विमलदिव्+०। विमलदि उ। विमलद्य् उ। विमलद्यु+सु। विमलद्यु+०। विमलद्यु।*

*यहां 'विमलदिव्' शब्द से 'सु' प्रत्यय, '**स्वमोर्नपुंसकात्**' (७।१।२३) से 'सु' का लुक् होकर इस सूत्र से वकार को उकार आदेश होता है। तत्पश्चात् '**इको यणचि**' (६।१।७५) से यण् (य्) आदेश होता है।*

*(४) **द्युभ्याम्।** दिव्+भ्याम्। दि उ+भ्याम्। द् य् उ+भ्याम्। द्युभ्याम्।*

*यहां 'दिव्' शब्द से 'भ्याम्' प्रत्यय है। '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (१।४।१७) से 'दिव्' शब्द की पदसंज्ञा होकर इस सूत्र से वकार को उकार आदेश होता है। तत्पश्चात् पूर्ववत् यण् (य्) आदेश होता है। ऐसे ही 'भिस्' प्रत्यय करने पर-**द्युभिः।***

सु-लोपः-

(६०) एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि।१३१।

प०वि०-एतत्-तदोः ६।२ सु-लोपः १।१ अकोः ६।२ अनञ्-समासे ७।१ हलि ७।१।

स०-एतच्च तच्च तौ-एतत्तदौ, तयोः-एतत्तदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। सोर्लोपः सुलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। न विद्यते को ययोस्तौ-अकौ, तयोः-अकोः (बहुव्रीहिः)। नञः समास इति नञ्समासः, न नञ्समास इति अनञ्समासः, तस्मिन्-अनञ्समासे (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां हलि अनञ्समासेऽकोरेतत्तदोः सुलोपः।

अर्थः-संहितायां विषये हलि परतोऽनञ्समासे वर्तमानयोः ककार-रहितयोरेतत्तदोः शब्दयोः सु-लोपो भवति।

उदा०-(एतत्) एष ददाति, एष भुङ्क्ते। **(तत्)** स ददाति, स भुङ्क्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (हलि) हल्-वर्ण परे होने पर (अनञ्समासे) नञ्समास से भिन्न (अकोः) अकच् प्रत्यय से रहित (एतत्तदोः) एतत् और तत् शब्दों से सम्बन्धित (सुलोपः) 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

*उदा०-(एतत्) **एष ददाति।** यह देता है। **एष भुङ्क्ते।** यह खाता-पीता है। (तत्) **स ददाति।** वह देता है। **स भुङ्क्ते।** वह खाता-पीता है।*

*सिद्धि-**एष ददाति।** एतत्+सु। एत अ+स्। एष+स्। एषस्+ददाति। एष०+ददाति। एष ददाति।*

*यहां प्रथम 'एतत्' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'एतत्' के तकार को अकार आदेश और उसे **'अतो गुणे'** (६।१।९५) से पूर्वरूप एकादेश होता है। **'तदोः सः सावनन्त्ययोः'** (७।२।१०६) से 'एतत्' के अनन्त्य तकार को सकार आदेश और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से उसे षत्व होता है। 'एषस्+ददाति' ऐसी स्थिति में हल्-वर्ण (द्) परे होने पर इस सूत्र से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**एष भुङ्क्ते।** ऐसे ही 'तत्' शब्द से-**स ददाति, स भुङ्क्ते।***

बहुलं सु-लोपः-

(६१) स्यश्छन्दसि बहुलम्।१३२।

प०वि०-स्यः १।१ (षष्ठ्यर्थे) छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, सुलोपः, हलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि हलि स्यो बहुलं सुलोपः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये हलि परतः 'स्यः' इत्येतस्य बहुलं सुलोपो भवति।

उदा०-उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपि कक्ष आसनि (ऋ० ४।४०।४)। एष स्य पवत इन्द्र सोमः (ऋ० ९।९७।४६)। बहुलवचनान्न च भवति-यत्र स्यो निपतेत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (छन्दसि) वेदविषय में (हलि) हल्-वर्ण परे होने पर (स्यः) 'स्यः' इस शब्द का (बहुलम्) प्रायशः (सुलोपः) 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) स्य वाजी। त्यत्+सु। त्य अ+स्। त्य+स्। स्यस्+वाजी। स्य०+वाजी। स्य वाजी।

*यहां 'त्यत्' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'त्यत्' के तकार को अकार आदेश और उसे **'अतो गुणे'** (६।१।९५) से पूर्व-पर के स्थान में पूर्वरूप (अ) एकादेश होता है। **'तदोः सः सावनन्त्ययोः'** (७।२।१०६) से 'त्यत्' के अनत्य तकार को सकार आदेश होता है। 'स्यस्+वाजी' इस स्थिति में इस सूत्र से हल् वर्ण परे होने पर 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। ऐसे ही-**स्य पवते।***

*(२) **स्यो निपतेत्।** 'स्यस्+निपतेत्' ऐसी स्थिति में इस सूत्र से बहुल-वचन से 'सु' प्रत्यय का लोप नहीं होता है। अतः **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व, **'हशि च'** (६।१।१११) से रेफ को उत्व और **'आद्गुणः'** (६।१।८५) से पूर्व-पर के स्थान में गुणरूप (ओ) एकादेश होता है।*

सु-लोपः (पादपूर्तिः)-

(६२) सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्।१३३।

प०वि०-सः १।१ (षष्ठ्यर्थे) अचि ७।१ लोपे ७।१ चेत् अव्ययपदम्, पादपूरणम् १।१।

स०-पादस्य पूरणम्-पादपूरणम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सुलोपः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि अचि सः सुलोपः, लोपे चेत् पादपूरणम्।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषयेऽचि परतः 'सः' इत्येतस्य सुलोपो भवति, लोपे सति चेत् पादः पूर्यते।

उदा०-सेदुराजा क्षयति चर्षणीनाम् (ऋ० १।३२।१५)। सौषधीरनुरुध्यसे (ऋ० ८।४३।३)।

अत्र पादग्रहणेन श्लोकपादस्यापि ग्रहणं केचिदिच्छन्ति। तेनेदमपि सिद्धं भवति-

सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (छन्दसि) वेदविषय में (अचि) अच्-वर्ण परे होने पर (सः) 'सः' इस शब्द के (सुलोपः) 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। (लोपे) लोप होने पर (चेत्) यदि वहां (पादपूरणम्) पाद=मन्त्रचरण की पूर्ति होती हो।*

*उदा०-**सेदुराजा क्षयति चर्षणीनाम्** (ऋ० १।३२।१५)। **सौषधीरनुरुध्यसे** (ऋ० ८।४३।३)।*

यहां कई वैयाकरण 'पाद' शब्द के ग्रहण से श्लोकपाद का भी ग्रहण मानते हैं। उससे यह पद्य भी सिद्ध हो जाता है-

सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः।।

सिद्धि-(१) सेद्। *तत्+सु। त अ+स्। त+स्। सस्+इत्। स०+इत्। सेत्। सेद्।*

*यहां 'तद्' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। 'सस्+इत्' इति स्थिति में इत् शब्द का अच्-वर्ण (इ) परे होने पर 'सस्' के 'सु' प्रत्यय का इस सूत्र से पादपूर्ति में लोप होता है। तत्पश्चात् **'आद्गुणः'** (६।१।८५) से पूर्व-पर के स्थान में गुणरूप (ए) एकादेश होता है। इस सन्धि से मन्त्र में छन्द की पादपूर्ति होती है।*

*(२) **सौषधीः।** सस्+औषधीः। स०+औषधीः।*

*यहां इस सूत्र से पादपूर्ति में 'सु' प्रत्यय का लोप होकर **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८६) से पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप (औ) एकादेश होता है। इस सन्धि से मन्त्र में गायत्री छन्द की पादपूर्ति होती है।*

सैषः। *सस्+एषः। स०+एषः। सैषः।*

यहां 'सस्' शब्द के 'सु' प्रत्यय का इस सूत्र से श्लोक की पादपूर्ति में कई वैयाकरण लोप मानते हैं। तत्पश्चात् पूर्व-पर के स्थान में वृद्धिरूप (ऐ) एकादेश होता है। 'सु' प्रत्यय के लोप होने पर उक्त सन्धि होने से अनुष्टुप् छन्द का अष्टाक्षरी पाद (चरण) पूरण हो जाता है।

सुट्-आगमप्रकरणम्

अधिकारः–

(६३) सुट् कात् पूर्वः। १३४।

प०वि०–सुट् १।१ कात् ५।१ पूर्वः १।१।

अनु०–संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः–संहितायां विषये इत उत्तरं कात् पूर्वः सुडागमो भवतीत्यधिकारोऽयम् **'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'** (६।१।१५१) इति यावत्। वक्ष्यति-**'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'** (६।१।१३७) इति। सँस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में इससे आगे (कात्) ककार से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है, यह 'पारस्करप्रभृतीनि च' (६।१।१५) तक अधिकार है। पाणिनिमुनि कहेंगे-**'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'** (६।१।१३७)। **संस्कर्ता।** शुद्ध करनेवाला। **संस्कर्तुम्।** शुद्ध करने के लिये। **संस्कर्तव्यम्।** शुद्ध करना चाहिये।*

*सिद्धि-**सँस्कर्ता** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

*सूचना-काशिकाकार पं० वामन ने **'अड्व्याय उपसंख्यानम्'** और **'अभ्यासव्यवाये च'** इन दो वार्तिकों का सम्मिश्रण करके **'अडभ्यासव्यवायेऽपि'** (६।१।१३६) इनकी पाणिनीय सूत्र रूप में व्याख्या की है।*

सुट्–

(६४) सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे।१३५।

प०वि०–सम्-परिभ्याम् ५।२ करोतौ ७।१ भूषणे ७।१।

स०–सम् च परिश्च तौ सम्परी, ताभ्याम्-सम्परिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां सम्परिभ्यां भूषणे करोतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये सम्परिभ्याम् उत्तरस्मिन् भूषणेऽर्थे करोतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति।

उदा०- **(सम्)** सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्। **(परिः)** परिष्कर्ता, परिष्कर्तुम्, परिष्कर्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सम्परिभ्याम्) सम् और परि से उत्तर (भूषणे) भूषण अर्थ में (करोतौ) कृ धातु के परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०-(सम्) **सँस्कर्ता**। भूषित करनेवाला। **सँस्कर्तुम्**। भूषित करने के लिये। **सँस्कर्तव्यम्**। भूषित करना चाहिये। (परि) **परिष्कर्ता**। भूषित करनेवाला। **परिष्कर्तुम्**। भूषित करने के लिये। **परिष्कर्तव्यम्**। भूषित करना चाहिये।*

***सिद्धि-सँस्कर्ता**। सम्+कृ+तृच्। सम्+कर्तृ+सु। सम्+कर्ता। सम्+सुट्+कर्ता। स रु+स्+कर्ता। सँ र्+स्+कर्ता। सँ स्+स्+कर्ता। सँस्स्कर्ता। सँस्कर्ता।*

*यहां सम् शब्द से उत्तर भूषणार्थक 'कृ' धातु के परे होने पर इस सूत्र से क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। '**समः सुटि**' (८।३।५) से 'सम्' के मकार को रुत्व, '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय और '**वा शरि**' (८।३।३६) से व्यवस्थित-विभाषा मानकर विसर्जनीय को सकार ही आदेश होता है। '**अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा**' (८।३।२) से 'स्' से पूर्ववर्ती अ-वर्ण को अनुनासिक तथा द्वितीय पक्ष में '**अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः**' (८।३।४) से अनुस्वार भी होता है। '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६४) से प्रथम सकार का लोप होता है। **वा०-'अयोगवाहानामट्सु'** (प्र०हरवरट्) इस भाष्यवार्तिक से अयोगवाह (अँ) का अट् में उपदेश होने से उसे हल् मानकर उक्त सूत्र से सकार का लोप हो जाता है और अयोगवाहों (अँ) को अचों में भी परिगणित करके '**अनचि च**' (८।४।४६) से 'स्' को द्वित्व भी होता है। इस प्रकार इसके निम्नलिखित रूप बनते हैं-*

(१) सँस्कर्ता (संस्कर्ता)। (२) सँस्स्कर्ता (संस्स्कर्ता)। (३) सँस्स्स्कर्ता (संस्स्स्कर्ता)।

*ऐसे ही 'कृ' धातु से तुमुन् और तव्यत् प्रत्यय करने पर-**सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्**।*

*(२) **परिष्कर्ता**। परि+कर्ता। परि+सुट्+कर्ता। परि+स्+कर्ता। परि+ष्+कर्ता। परिष्कर्ता।*

*यहां परि शब्द से उत्तर भूषणार्थक 'कृ' धातु को इस सूत्र से 'सुट्' आगम होता है। '**परिनिविभ्यः सेव०**' (८।३।७०) से 'सुट्' के सकार को षत्व होता है।*

सुट्–

(६५) समवाये च।१३६।

प०वि०–समवाये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्वः, सम्परिभ्याम्, करोताविति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां सम्परिभ्यां समवाये च करोतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः–संहितायां विषये सम्परिभ्याम् उत्तरस्मिन् समवाये च करोतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति। समवायः समुदाय इत्यर्थः।

उदा०–**(सम्)** तत्र नः संस्कृतम्। **(परिः)** तत्र नः परिष्कृतम्। समुदितमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सम्परिभ्याम्) सम् और परि शब्दों से उत्तर (समवाये) समुदाय अर्थ में (च) भी (करोतौ) 'कृ' धातु के परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०–**(सम्) तत्र नः संस्कृतम्।** वहां हमारा समुदाय है। **(परि) तत्र न परिष्कृतम्।** वहां हमारा समुदाय है।*

सिद्धि-सँस्कृतम्। *सम्+कृ+क्त। सम्+सुट्+कृ+त। सम्+स्+कृ+त। सस्+स्+कृ+तम्। सँरु+स्+कृ+त। सँस्+स्+कृ+त। सँस्कृत+सु। सँस्कृतम्।*

*यहां 'सम्' उत्तर समवायार्थक 'कृ' धातु से **निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। शेष कार्य **'सँस्कर्ता'** के समान है।*

(२) परिष्कृतम्। *यहां 'परि' शब्द से उत्तर 'कृ' धातु को इस सूत्र से क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। **'परिनिविभ्यः सेव०'** (८।३।७०) से 'सुट्' के सकार को षत्व होता है।*

सुट्–

(६६) उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु।१३७।

प०वि०–उपात् ५।१ प्रतियत्न-वैकृत-वाक्याध्याहारेषु ७।३।

स०–सतो गुणान्तराधानमाऽऽधिक्याय, वृद्धस्य वा तादवस्थ्याय समीहा-प्रतियत्नः। विकृतमेव वैकृतम्, **'प्रज्ञादिभ्यश्च'** (५।४।३८) इति

स्वार्थेऽण् प्रत्ययः। गम्यमानार्थस्य वाक्यस्य स्वरूपेणोपादानम्-वाक्याध्याहारः। प्रतियत्नश्च, वैकृतं च वाक्याध्याहारश्च ते-प्रतियत्नवैकृतवाक्याहाराः, तेषु-प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्वः, करोताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु करोतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये उपाद् उत्तरस्मिन् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेष्वर्थेषु करोतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति।

उदा०-(**प्रतियत्नः**) एधो दकस्योपस्कुरुते। काण्डं गुडस्योपस्कुरुते। (**वैकृतम्**) उपस्कृतं भुङ्क्ते, उपस्कृतं गच्छति। (**वाक्याध्याहारः**) उपस्कृतं जल्पति, उपस्कृतमधीते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धिविषय में (उपात्) उप शब्द से उत्तर (प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु) प्रतियत्न, वैकृत, वाक्याध्याहार अर्थों में विद्यमान (करोतौ) 'कृ' धातु के परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*किसी पदार्थ में आधिक्य के लिये गुणान्तरों का आधान करना अथवा बढे हुये गुणों को उसी अवस्था में रखने के लिये जो चेष्टा करना है वह 'प्रतियत्न' कहाता है। विकृत को ही वैकृत कहते हैं, यहां '**प्रज्ञादिभ्यश्च**' (५।४।३८) से स्वार्थ में अण् प्रत्यय है। प्रतीयमान अर्थवाले वाक्य का स्वरूप से कथन करना-वाक्याध्याहार कहाता है।*

*उदा०-(प्रतियत्न) **एधो दकस्योपस्कुरुते**। एध=इन्धन जल के गुणों को बदलता है। शीतल से उष्ण बनाता है। **काण्डं गुडस्योपस्कुरुते**। काण्ड गुड के गुणों को बदलता है। (वैकृत) **उपस्कृतं भुङ्क्ते**। बिगाड़कर खाता है। **उपस्कृतं गच्छति**। बिगाड़कर चलता है। (वाक्याध्याहार) **उपस्कृतं जल्पति**। वाक्य-अध्याहारपूर्वक जैसे-तैसे बकता है। **उपस्कृतमधीते**। वाक्य-अध्याहारपूर्वक जैसे-तैसे पढ़ता है।*

*सिद्धि-(१) **उपस्कुरुते**। उप+कुरुते। उप+सुट्+कुरुते। उप+स्+कुरुते। उपस्कुरुते।*

*यहां 'उप' उपसर्ग से उत्तर प्रतियत्नार्थक 'कृ' धातु परे होने पर इस सूत्र से क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। '**एधो दकस्योपस्कुरुते**' यहां '**कृञः प्रतियत्ने**' (२।३।५३) से षष्ठीविभक्ति और '**गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः**' (१।३।३२) **से आत्मनेपद होता है। ऐसे ही-काण्डं गुडस्योपस्कुरुते।***

(२) उपस्कृतम्। उप+कृ+क्त। उप+सुट्+कृ+त। उप+स्+कृ+त। उपस्कृत+सु। उपस्कृतम्।

*यहां उप-उपसर्ग से उत्तर वैकृत **और वाक्याध्याहार** अर्थ में विद्यमान 'कृ' धातु परे होने पर इस सूत्र से क-वर्ण से पूर्व **'सुट्' आगम होता** है।*

सुट्–

(६७) किरतौ लवने।१३८।

प०वि०–किरतौ ७।१ लवने ७।१।

अनु०–संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्वः, उपाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपाद् लवने किरतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः–संहितायां विषये उपाद् उत्तरस्माद् लवनेऽर्थे किरतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति।

उदा०–उपस्कारं मद्रका लुनन्ति। उपस्कारं काश्मीरा लुनन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपात्) उप-उपसर्ग से उत्तर (लवने) काटने अर्थ में विद्यमान (किरतौ) 'कृ' धातु परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०–**उपस्कारं मद्रका लुनन्ति।** मद्र जनपद के लोग फैंक-फैंककर काटते हैं **उपस्कारं काश्मीरा लुनन्ति।** काश्मीर जनपद के लोग फैंक-फैंककर काटते हैं (लावनी) करते हैं।*

***सिद्धि**-उपस्कारम्। उप+कृ+णमुल्। उप+कृ+अम्। उप+सुट्+कार+अम्। उप+स्+कार्+अम्। उपस्कारम्+सु। उपस्कारम्।*

*यहां उप-उपसर्ग से उत्तर लवन अर्थ में विद्यमान **'कृ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) में बहुल-वचन से णमुल् प्रत्यय है। इस सूत्र से लवनार्थक 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। **'अचो ञ्णिति'** ७।२।११५) से 'कृ' धातु को वृद्धि (कार्) होती है।*

सुट्–

(६८) हिंसायां प्रतेश्च।१३९।

प०वि०–हिंसायाम् ७।१ प्रतेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्वः, उपाद्, किरताविति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां प्रतेरुपाच्च हिंसायां किरतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये प्रतेरुपाच्च उत्तरस्मिन् हिंसाथामर्थे किरतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति।

उदा०-**(प्रतिः)** प्रतिस्कीर्णं हं ते वृषल ! भूयात्। **(उपः)** उपस्कीर्णं हं ते वृषल ! भूयात्। हे वृषल ! ते हिंसानुबद्धो विक्षेपो भूयादित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतेः) प्रति और (उपात्) उप-उपसर्ग से (च) भी उत्तर (हिंसायाम्) हिंसा अर्थ में विद्यमान (किरतौ) कॄ धातु परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०-(प्रति) **प्रतिस्कीर्णं हं ते वृषल ! भूयात्।** (उप) **उपस्कीर्णं हं ते वृषल ! भूयात्।** हे वृषल=नीच तेरा हिंसायुक्त विक्षेप (बिखराव) हो। हम्=कोप-द्योतक है।*

***सिद्धि-प्रतिस्कीर्णम्।** प्रति+कॄ+क्त। प्रति+सुट्+कॄ+त। प्रति+स्+किर्+त। प्रति+स्+किर्+न। प्रति+स्+कीर्+ण। प्रतिस्कीर्ण+सु। प्रतिस्कीर्णम्।*

*यहां प्रति-उपसर्ग से उत्तर '**कॄ विक्षेपे**' (तु०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से हिंसार्थक 'कॄ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। '**ॠत इद्धातोः**' (७।१।१००) से इत्त्व और उसे '**उरण् रपरः**' (१।१।५०) से रपरत्व होकर '**रदाभ्यां निष्ठातो०**' (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नत्व और '**रषाभ्यां नो णः समानपदे**' (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही-**उपस्कीर्णम्।***

सुट्-

(६६) अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने।१४०।

प०वि०-अपात् ५।१ चतुष्पात्-शकुनिषु ७।३ आलेखने ७।१।

स०-चत्वारः पादा यस्य स चतुष्पात्, ते चतुष्पादः, चतुष्पादश्च शकुनयश्च ते-चतुष्पाच्छकुनयः, तेषु-चतुष्पाच्छकुनिषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट्, कात्, पूर्वः, किरताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अपात् चतुष्पात्-शकुनिष्वालेखने किरतौ कात् पूर्वः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये अपाद् उत्तरस्मिन् चतुष्पात्-शकुनिविषयके आलेखनेऽर्थे किरतौ परतः कात् पूर्वः सुडागमो भवति।

उदा०-(चतुष्पात्) अपस्किरते वृषभो हृष्टः। अपस्किरते श्वाऽऽश्रयार्थी। **(शकुनिः)** अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपात्) अप-उपसर्ग से उत्तर (चतुष्पात्-शकुनिषु) चतुष्पात्=चौपाये और शकुनि=पक्षी (दोपाये) विषयक (आलेखने) खोदना अर्थ में विद्यमान (किरतौ) 'कॄ' धातु परे होने पर (कात्) क-वर्ण से (पूर्वः) पहले (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०-(चतुष्पात्) **अपस्किरते वृषभो हृष्टः।** मस्त हुआ बैल मिट्टी को खोदकर इधर-उधर फैंकता है। **अपस्किरते श्वाऽऽश्रयार्थी।** आश्रय का इच्छुक श्वा=कुत्ता मिट्टी को खोदकर बाहर फैंकता है। (शकुनि) **अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी।** भक्ष्य=दाना आदि भक्ष्यपदार्थ का इच्छुक कुक्कुट=मुर्गा मिट्टी को खोदकर पीछे फैंकता है।*

*सिद्धि-**अपस्किरते।** अप+कॄ+लट्। अप+सुट्+कॄ+त। अप+स्+किर्+श+त। अप+स्+किर्+अ+ते। अपस्किरते।*

*यहां अप-उपसर्ग से उत्तर चतुष्पाद् एवं शकुनि=पक्षीविषयक आलेखन=खोदना अर्थ में विद्यमान 'कॄ' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उक्त लेखनार्थक 'कॄ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। वा०- **'किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम्'** (१।३।२१) से 'कॄ' धातु से आत्मनेपद होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण प्रत्यय, 'ऋत इद् धातोः' (७।१।१००) से धातु को इत्त्व और 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से इसे रपरत्व होता है।*

निपातनम् (सुट्)-

(७०) कुस्तुम्बुरूणि जातिः।१४१।

प०वि०-कुस्तुम्बुरूणि १।३ जातिः १।१।

स०-कुत्सितं तुम्बुरु इति कुस्तुम्बुरु, तानि-कुस्तुम्बुरूणि (तत्पुरुष-समासः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां कुस्तुम्बुरूणि सुड् जातिः।

अर्थः-संहितायां विषये 'कुस्तुम्बुरूणि' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते, जातिश्चेत् तद् भवति।

उदा०-कुस्तुम्बुरूणि नाम ओषधिजातिः=धान्यकम्। कुत्सितानि तुम्बुरूणि=कुस्तुम्बुरूणि। तुम्बुरुशब्देनात्र तिन्दुकीफलान्युच्यन्ते, समासेन च तेषां कुत्सा=निन्दा विधीयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कुस्तुम्बुरूणि) 'कुस्तम्बुरु' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**कुत्सितानि तुम्बुरूणि-कुस्तुम्बुरूणि।** तेन्दू नामक पेड़ के निन्दित फल।*

सिद्धि-कुस्तुम्बुरु। *कु+तुम्बुरु। कु+सुट्+तुम्बुरु। कु+स्+तुम्बुरु। कुस्तुम्बुरु+सु। कुस्तुम्बुरु।*

*यहां 'कु' और 'तुम्बुरु' शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'तुम्बुरु' शब्द के त-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम निपातित है।*

निपातनम् (सुट्)-

(७१) अपरस्पराः क्रियासातत्ये।१४२।

प०वि०-अपरस्पराः १।३ क्रियासातत्ये ७।१।

स०-सततम्=निरन्तरम्, सततस्य भावः सातत्यम्। क्रियायाः सातत्यम् इति क्रियासातत्यम्, तस्मिन्-क्रियासातत्ये। क्रियाया नैरन्तर्यमित्यर्थः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां क्रियासातत्येऽपरस्पराः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये क्रियासातत्येऽर्थेऽपरस्परा इत्यत्र सुडागमो निपात्यते।

उदा०-अपरे च परे च ते अपरस्पराः। अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति। सततम्=अविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (क्रियासातत्ये) क्रिया की निरन्तरता अर्थ में (अपरस्पराः) 'अपरस्परा' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति।** सार्थ=व्यापारी-समूह इस महापथ पर निरन्तर जाते हैं।*

सिद्धि-अपरस्पराः। *अपर+जस्+पर+जस्। अपर+पर। अपर+सुट्+पर। अपर+स्+पर। अपरस्पर+जस्। अपरस्पराः।*

*यहां अपर और पर शब्दों का '**चार्थे द्वन्द्वः**' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से 'पर' शब्द के प-वर्ण से पूर्व सुट् आगम निपातित है। '**अल्पाच्तरम्**' (२।२।३४) से द्वन्द्वसमास में 'पर' शब्द का पूर्वनिपात प्राप्त है किन्तु इसी निपातन से उसका परनिपात समझना चाहिये।*

निपातनम् (सुट्)–

(७२) गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु।१४३।

प०वि०–गोष्पदम् १।१ सेवित–असेवित–प्रमाणेषु ७।३।

स०–न सेवितम्–असेवितम्। सेवितं च असेवितं च प्रमाणं च तानि–सेवितासेवितप्रमाणानि, तेषु–सेवितासेवितप्रमाणेषु (नञ्गर्भित–इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां सेवितासेवितप्रमाणेषु गोष्पदं सुट्।

अर्थः–संहितायां विषये सेवितासेवितप्रमाणेष्वर्थेषु गोष्पदम् इत्यत्र सुडागमो निपात्यते।

उदा०–(सेवितम्) गोष्पदो देशः। गावः पद्यन्ते यस्मिन् देशे स गोभिः सेवितो देशो गोष्पद इत्युच्यते। **(असेवितम्)** अगोष्पदान्यरण्यानि। **(प्रमाणम्)** गोष्पदमात्रं क्षेत्रम्, गोष्पदपूरं वृष्टो देवः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि–विषय में (सेवितासेवितप्रमाणेषु) सेवित, असेवित और प्रमाण अर्थों में (गोष्पदम्) 'गोष्पदम्' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०–(सेवित) **गोष्पदो देशः।** जिस देश में गौवें घूमती हैं वह गौओं के द्वारा सेवित देश। (असेवित) **अगोष्पदान्यरण्यानि।** गौओं के द्वारा असेवित देश अर्थात् वे महारण्य जहां गौओं का जाना अत्यन्त असम्भव है। (प्रमाणम्) **गोष्पदमात्रं क्षेत्रम्।** गौओं के पांवों की लम्बाई प्रमाण खेत। **गोष्पदपूरं वृष्टो देवः।** गौ के खुर–भर प्रमाण की इन्द्रदेव ने वर्षा की।*

*सिद्धि–(१) **गोष्पदम्।** गो+ङस्+पद+सु। गो+सुट्+पद। गो+स्+पद। गो+ष्+पद। गोष्पद+सु। गोष्पदम्।*

*यहां गो और पद शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सेवित, असेवित और प्रमाण अर्थों में सुट् आगम और उसे षत्व निपातित है। **गावः पद्यन्ते यस्मिन् देशे सः–गोष्पदः।** यहां **'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण'** (३।३।११८) से अधिकरण कारक में 'घ' प्रत्यय है।*

*(२) **अगोष्पदम्।** यहां असेवित अर्थ के बल से 'गोष्पद' शब्द में नञ्तत्पुरुष समास है।*

*(३) **गोष्पदमात्रम्।** यहां 'गोष्पद' शब्द से '**प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः**' (५।२।३७) से प्रमाण अर्थ में 'मात्रच्' प्रत्यय है।*

*(४) **गोष्पदपूरम्।** यहां '**वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्**' (३।४।३२) से 'पूरि' धातु से वर्ष-प्रमाण अर्थ में 'णमुल्' प्रत्यय है।*

निपातनम् (सुट्)–

(७३) आस्पदं प्रतिष्ठायाम्।१४४।

प०वि०-आस्पदम् १।१ प्रतिष्ठायाम् ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्रतिष्ठायाम् आस्पदं सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये प्रतिष्ठायामर्थे 'आस्पदम्' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते। आत्मयापनाय=प्राणधारणाय यत् स्थानं सा प्रतिष्ठा इत्युच्यते।

उदा०-आस्पदमनेन लब्धम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा अर्थ में (आस्पदम्) 'आस्पदम्' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है। आत्मयापन=जीवन-यापन के लिये जो स्थान है उसे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं।*

*उदा०-**आस्पदमनेन लब्धम्।** इसने जीवन-यापन के लिये स्थान प्राप्त कर लिया है।*

*सिद्धि-**आस्पदम्।** आङ्+पद्+घ। आ+सुट्+पद्+अ। आ+स्+पद्+अ। आस्पद+सु। आस्पदम्।*

*यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**पद गतौ**' (दि०आ०) धातु से '**पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**' (३।३।११८) से 'घ' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रतिष्ठा अर्थ में 'पद' शब्द के प-वर्ण से पूर्व सुट् आगम निपातित है। सूत्रोक्त निपातन से यह नपुंसकलिङ्ग होता है।*

निपातनम् (सुट्)–

(७४) आश्चर्यमनित्ये।१४५।

प०वि०-आश्चर्यम् १।१ अनित्ये ७।१।

स०-न नित्यम् अनित्यम्, तस्मिन्-अनित्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अनित्ये आश्चर्यं सुट्।

अर्थः-संहितायाम् अनित्येऽर्थे 'आश्चर्यम्' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते। अनित्यतया विषयभूतयाऽद्भुतत्वमत्र लक्ष्यते।

उदा०-आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अनित्ये) अद्भुत अर्थ में (आश्चर्यम्) 'आश्चर्यम्' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत।** आश्चर्य है यदि वह रोगी भोजन करे। **आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत।** आश्चर्य है यदि वह बहरा अध्ययन करे।*

*सिद्धि-**आश्चर्यम्।** आङ्+चर्+यत्। आ+सुट्+चर्+य। आ+स्+चर्+य। आ+श्+चर्+य। आश्चर्य+सु। आश्चर्यम्।*

*यहां आङ्-उपसर्ग पूर्वक **'चर गतौ भक्षणे च'** (भ्वा०प०) धातु से **वा०- 'चरेराङि चागुरौ'** (३।१।१००) से यत् प्रत्यय है। इस सूत्र से अनित्य=अद्भुत अर्थ में 'चर्' धातु के च-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम निपातित है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से सकार को शत्व होता है।*

निपातनम् (सुट्)-

(७५) वर्चस्केऽवस्करः।१४६।

प०वि०-वर्चस्के ७।१ अवस्करः १।१।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां वर्चस्केऽवस्करः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये वर्चस्केऽर्थे 'अवस्करः' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते। कुत्सितं वर्चो वर्चस्कम्, अन्नमलमित्यर्थः।

उदा०-अवकीर्यते इत्यवस्करोऽन्नमलम्, तत्सम्बन्धाद् देशोऽपि 'अवस्करः' इत्युच्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (वर्चस्के) अन्न-मल अर्थ में (अवस्करः) 'अवस्करः' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**अवकीर्यते इत्यवस्करोऽन्नमलम्।** जो वायु-बल से नीचे की ओर फैंका जाता है वह 'अवस्कर' अन्न-मल (विष्ठा) होता है। उसके सम्बन्ध से मल-स्थान को भी 'अवस्कर' कहते हैं।*

सिद्धि-अवस्करः । अव+कॄ+अप् । अव+सुट्+कॄ+अ । अव+स्+कर्+अ । अवस्कर+सु । अवस्करः ।

यहां अव-उपसर्ग पूर्वक 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से 'ऋदोरप्' (३ ।३ ।५७) से कर्म में 'अप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वर्चस्क=अन्न-मल अर्थ में 'कॄ' धातु के क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७ ।३ ।८४) से 'कॄ' धातु को गुण (अ) और उसे 'उरण् रपरः' (१ ।१ ।५०) से रपरत्व (अर्) होता है।

निपातनम् (सुट्)-

(७६) अपस्करो रथाङ्गम् ।१४७।

प०वि०-अपस्करः १ ।१ रथाङ्गम् १ ।१ ।

स०-रथस्य अङ्गम्-रथाङ्गम् (षष्ठीतत्पुरुषः) ।

अनु०-संहितायाम्, सुट्, इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संहितायाम् अपस्करः सुड् रथाङ्गम् ।

अर्थः-संहितायां विषये अपस्कर इत्यत्र सुडागमो निपात्यते, रथाङ्गं चेत् स भवति ।

उदा०-अपस्करो रथावयवः (चक्रम्) ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपस्करः) 'अपस्करः' इस पद में (सुट्) सुट् आगम निपातित है (रथाङ्गम्) यदि वह रथ का अवयव हो।*

उदा०-अपस्करो रथावयवः (पहिया) ।

सिद्धि-अपस्करः । अप+कॄ+अप् । अप+सुट्+कॄ+अ । अप+स्+कर्+अ । अपस्करः ।

यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से 'ऋदोरप्' (३ ।३ ।५७) से कर्म-कारक में 'अप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से रथाङ्ग अर्थ में 'कॄ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ***अपकीर्यते इत्यपस्करो रथाङ्गम्।*** *जिसे आवश्यकता अनुसार रथ से दूर हटाया जाता है वह अपस्कर (रथ का चक्र)।*

निपातनम् (वा सुट्)-

(७७) विष्किरः शकुनौ वा ।१४८।

प०वि०-विष्किरः १ ।१ शकुनौ ७ ।१ वा अव्ययपदम् ।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संहितायां शकुनौ विष्किरो वा सुट् ।

अर्थः-संहितायां विषये शकुनावर्थे विष्किर इत्यत्र विकल्पेन सुडागमो निपात्यते।

उदा०-विष्किरः शकुनिः। विकिरः शकुनिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शकुनौ) पक्षी अर्थ में (विष्किरः) 'विष्किरः' इस पद में (वा) विकल्प से (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**विष्किरः शकुनिः।** विष्किर=पक्षी। **विकिरः शकुनिः।** विकिर=पक्षी।*

*सिद्धि-(१) **विष्किरः।** वि+कॄ+क। वि+सुट्+कॄ+अ। वि+स्+किर्+अ। वि+ष्+किर्+अ। विष्किर+सु। विष्किरः।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से **'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'** (३।१।१३५) से 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से शकुनि अर्थ में 'कॄ' के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम और उसे षत्व निपातित है। **'ऋत इद्धातोः'** (७।१।१००) से इत्त्व और उसे 'उरण् रपरः' (१।१।५०) से रपरत्व (इर्) होता है। **विविधं किरति=विक्षिपति निजपक्षान् इति-विष्किरः शकुनिः।***

*(२) **विकिरः।** यहां विकल्प पक्ष में 'सुट्' आगम नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *काशिकावृत्ति में **'विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा'** यह सूत्रपाठ है। महाभाष्य में **'विष्किरः शकुनौ वा'** ऐसा सूत्रपाठ मिलता है। यहां महाभाष्य का श्रेष्ठ सूत्रपाठ स्वीकार किया गया है।*

निपातनम् (सुट्)-

(७८) ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे।१४६।

प०वि०-ह्रस्वात् ५।१ चन्द्रोत्तरपदे ७।१ मन्त्रे ७।१।

स०-चन्द्रश्चासौ उत्तरपदं च चन्द्रोत्तरपदम्, तस्मिन्-चन्द्रोत्तरपदे (कर्मधारयः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां मन्त्रे चन्द्रोत्तरपदे ह्रस्वात् सुट्।

अर्थः-संहितायां मन्त्रे च विषये चन्द्रशब्दे उत्तरपदे ह्रस्वात् परः सुडागमो निपात्यते।

उदा०-सुश्चन्द्र {युष्मान्} (ऋ० ५।६।५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (मन्त्रे) मन्त्र-विषय में (चन्द्रोत्तरपदे) चन्द्र शब्द उत्तरपद परे होने पर (ह्रस्वात्) ह्रस्व-वर्ण से परे (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**सुश्चन्द्र** {युष्मान्} (ऋ० ५।६।५)।*

***सिद्धि-(१) सुश्चन्द्रः।** सु+चन्द्र। सु+सुट्+चन्द्र। सु+स्+चन्द्र। सु+श्+चन्द्र। सुश्चन्द्र+सु। सुश्चन्द्रः।*

*यहां मन्त्र-विषय में इस सूत्र से चन्द्र शब्द उत्तरपद होने पर 'सु' शब्द के ह्रस्व-वर्ण (उ) से परे 'चन्द्र' के च-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम निपातित है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से सकार को शकार आदेश होता है। सु और चन्द्र शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है-**सुश्चन्द्रः।***

निपातनम् (सुट्)-

(७६) प्रतिष्कशश्च कशेः।१५०।

प०वि०-प्रतिष्कशः १।१ च अव्ययपदम्, कशेः ६।१।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्रतिकशश्च कशेः सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये 'प्रतिकशः' इत्यत्र च कशेर्धातोः सुडागमो निपात्यते। **उदाहरणम्**-

ग्राममद्य प्रवेक्ष्यामि भव मे त्वं प्रतिष्कशः।।

वार्तापुरुषः, सहायः, पुरोयायी वा 'प्रतिष्कशः' इत्यभिधीयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में 'प्रतिष्कशः' इस पद में (च) भी (कशेः) कश धातु को (सुट्) सुट् आगम निपातित है। उदाहरण-*

ग्राममद्य प्रवेक्ष्यामि भव मे त्वं प्रतिष्कशः।।

आज मैं ग्राम में प्रवेश करूंगा (जाऊंगा) तू मेरा प्रतिष्कश=वार्तापुरुष (सहाय) हो। दोनों वहां तक बातचीत करते हुये चलेंगे।

***सिद्धि-प्रतिष्कशः।** प्रति+कश्+अच्। प्रति+सुट्+कश्+अ। प्रति+स्+कश्+अ। प्रति+ष्+कश्+अ। प्रतिष्कश+सु। प्रतिष्कशः।*

*यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक **'कश गतिशासनयोः'** (भ्वा०उ०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से पचादि 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'कश्' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम और उसे षत्व भी निपातित है। यहां प्रति और कश शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है।*

निपातनम् (सुट्)–

(८०) प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी।१५१।

प०वि०–प्रस्कण्व-हरिश्चन्द्रौ १।२ ऋषी १।२।

स०–प्रस्कण्वश्च हरिश्चन्द्रश्च तौ–प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। ऋषिश्च ऋषिश्च तौ–ऋषी (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रौ सुड् ऋषी।

अर्थः–संहितायां विषये 'प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रौ' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते, ऋषी चेत् तौ भवतः।

उदा०–(**प्रस्कण्वः**) प्रगतं कण्वम्=पापं यस्मात् सः–प्रस्कण्व ऋषिः। (**हरिश्चन्द्रः**) हरिरिव चन्द्रो यस्य सः–हरिश्चन्द्र ऋषिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रौ) प्रस्कण्व और हरिश्चन्द्र इन पदों में (सुट्) सुट् आगम निपातित है (ऋषी) यदि वे दोनों ऋषि हों।*

*उदा०–(प्रस्कण्वः) **प्रगतं कण्वम्=पापं यस्मात् सः–प्रस्कण्व ऋषिः।** जिससे पापाचरण चला गया है वह–'प्रस्कण्व' ऋषि। (हरिश्चन्द्रः) **हरिरिव चन्द्रो यस्य सः–हरिश्चन्द्र ऋषिः।** हरि=विष्णु के समान चन्द्र है पूज्य जिसका वह–हरिश्चन्द्र ऋषि।*

*सिद्धि–(१) **प्रस्कण्वः।** प्र+कण्व। प्र+सुट्+कण्व। प्र+स्+कण्व। प्रस्कण्व+सु। प्रस्कण्वः।*

यहां प्र और कण्व शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ऋषि अर्थ में 'कण्व' शब्द के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है।

*(२) **हरिश्चन्द्रः।** हरि+चन्द्र। हरि+सुट्+चन्द्र। हरि+स्+चन्द्र। हरि+श्+चन्द्र। हरिश्चन्द्र+सु। हरिश्चन्द्रः।*

*यहां हरि और चन्द्र शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से ऋषि अर्थ में 'चन्द्र' शब्द के च-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से सकार को शकार आदेश होता है।*

निपातनम् (सुट्)–

(८१) मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः।१५२।

प०वि०–मस्कर-मस्करिणौ १।२ वेणु-परिव्राजकयोः ७।२।

स०–मस्करश्च मस्करी च तौ–मस्करमस्करिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

वेणुश्च परिव्राजकश्च तौ-वेणुपरिव्राजकौ, तयोः-वेणुपरिव्राजकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां वेणुपरिव्राजकयोर्मस्करमस्करिणौ सुट्।

अर्थः-संहितायां विषये वेणुपरिव्राजकयोरर्थयोर्यथासंख्यं 'मस्करमस्करिणौ' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते।

उदा०-(**मस्करः**) मस्करो वेणुः। (**मस्करी**) मस्करी परिव्राजकः।

"न वै मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजकः। किं तर्हि ? मा कृत कर्माणि मा कृत कर्माणि, शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहाऽतो मस्करी परिव्राजकः" (महाभाष्यम् ६।१।१५२)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (वेणुपरिव्राजकयोः) वेणु=दण्ड और परिव्राजक=संन्यासी अर्थ में यथासंख्य (मस्करमस्करिणौ) मस्कर और मस्करी पदों में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**(मस्कर)** मस्कर वेणु=दण्ड। **(मस्करी)** मस्करी परिव्राजक (संन्यासी)।*

*"जिसके पास मस्कर (दण्ड) है वह दण्डधारी पुरुष मस्करी संन्यासी नहीं कहाता है अपितु काम्य कर्म मत करो, काम्य कर्म मत करो, तुम्हारे लिये शान्ति श्रेयसी=कल्याणकारिणी हो ऐसा जो उपदेश करता है, इसलिये परिव्राजक (संन्यासी) 'मस्करी' कहाता है (महा० ६।१।१५२)। **'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः** (गीता)।*

सिद्धि-(१) मस्करः। *माङ्+कृ+अप्। मा+सुट्+कर्+अ। मा+स्+कर्+अ। म+स्+कर्+अ। मस्कर+सु। मस्करः।*

*यहां माङ्-पूर्वक 'कृ' धातु से **'ऋदोरप्'** (३।३।५७) से करण कारक में 'अप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम निपातित है। माङ् को निपातन से ह्रस्व (म) होता है। **मा क्रियते=प्रतिषिध्यते पापाचरणं येन सः-मस्करो वेणुः (दण्डः)।***

*(२) **मस्करी।** माङ्+कृ+इनि। मा+सुट्+कृ+इन्। म+स्+कर्+इन्। मस्करिन्+सु। मस्करी।*

यहां माङ्-पूर्वक 'कृ' धातु से इनि प्रत्यय और माङ् को ह्रस्वत्व निपातित है। इस सूत्र से 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है।

निपातनम् (सुट्)–

(८२) कास्तीराजस्तुन्दे नगरे।१५३।

प०वि०–कास्तीर-अजस्तुन्दे १।२ नगरे ७।१।

स०–कास्तीरं च अजस्तुन्दं च ते–कास्तीराजस्तुन्दे (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां नगरे कास्तीराजस्तुन्दे सुट्।

अर्थः–संहितायां विषये नगरेऽभिधेये 'कास्तीराजस्तुन्दे' इत्यत्र सुडागमो निपात्यते।

उदा०–**(कास्तीरम्)** कास्तीरं नाम नगरम्। **(अजस्तुन्दम्)** अजस्तुन्दं नाम नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ*-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नगरे) नगर अर्थ अभिधेय में (कास्तीराजस्तुन्दे) कास्तीर और अजस्तुन्द इन पदों में (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०–**(कास्तीर)** कास्तीर नामक नगर। **(अजस्तुन्द)** अजस्तुन्द नामक नगर।*

*सिद्धि–(१) **कास्तीरम्।** आङ्+तीर। आ+सुट्+तीर। आ+स्+तीर। का+स्+तीर। कास्तीर+सु। कास्तीरम्।*

*यहां आङ् और तीर शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। ईषत् तीरमस्य तत्–कास्तीरम्। आङ् के स्थान में 'का' आदेश निपातित है। इस सूत्र से नगर अर्थ में 'तीर' शब्द के त-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है।*

*(२) **अजस्तुन्दम्।** अज+तुन्द। अज+सुट्+तुन्द। अज+स्+तुन्द। अजस्तुन्द+सु। अजस्तुन्दम्।*

*यहां अज और तुन्द शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है–अजस्येव तुन्दमस्य–अजस्तुन्दम्। इस सूत्र से नगर अर्थ में 'तुन्द' शब्द के त-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है।*

निपातनम् (सुट्)–

(८३) पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्।१५४।

प०वि०–पारस्कर-प्रभृतीनि १।३ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

स०–पारस्करः प्रभृतिर्येषां तानि पारस्करप्रभृतीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, सुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां पारस्करप्रभृतीनि च सुट्।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये 'पारस्करप्रभृतीनि' इत्यत्र च सुडागमो निपात्यते।

उदा०-पारस्करो देशः। कारस्करो वृक्षः। रथस्या नदी। किष्कुः प्रमाणम्। किष्किन्धा गुहा।

पारस्करप्रभृतिराकृतिगणः। अविहितलक्षणः सुट् पारस्करप्रभृतिषु द्रष्टव्यो यथा-प्रायश्चित्तम्, प्रायश्चित्तिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय और (संज्ञायाम्) संज्ञा-विषय में (पारस्करप्रभृतीनि) पारस्कर आदि पदों में (च) भी (सुट्) सुट् आगम निपातित है।*

*उदा०-**पारस्करो** देशः। पारस्कर=देश। कारस्कर=वृक्ष। रथस्या=नदी। किष्कु=प्रमाण। किष्किन्धा=गुहा।*

पारस्कर आदि आकृतिगण है। सूत्र से अविहित जो सुट् आगम हो उसे पारस्कर आदि में समझकर शब्दसिद्धि करनी चाहिये। जैसे-प्रायश्चित्त और प्रायश्चित्ति शब्द में सुट् आगम इसी गण में पाठ मानकर सिद्ध किया जाता है।

***सिद्धि-(१) पारस्करः।** पार+कृ+ट। पार+सुट्+कृ+अ। पार+स्+कर्+अ। पारस्कर+सु। पारस्करः।*

*यहां पार शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से **'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु'** (३।२।२०) से 'ट' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा विषय में 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। यहां **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। **पारं करोतीति-पारस्करः।***

*(२) **कारस्करः।** कार+कृ+ट। कार+सुट्+कृ+अ। कार+स्+कर्+अ। कारस्कर+सु। कारस्करः।*

*यहां कार शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से **'दिवाविभा०'** (३।२।२१) से 'ट' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा विषय में 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है। **कारं करोति-कारस्करो वृक्षः** (उपपदतत्पुरुष)।*

*(३) **रथस्या।** रथ+या+क। रथ+सुट्+या+अ। रथ+स्+य्+अ। रथस्य+टाप्। रथस्या+सु। रथस्या।*

*यहां रथ उपपद होने पर 'या' धातु से **'आतोऽनुपसर्गे कः'** (२।२।३) से 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा-विषय में 'या' धातु के य-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है।*

स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय है। **रथं यातीति-रथस्या** (उपपदतत्पुरुष)।

(४) **किष्कुः।** किम्+कृ+डु। किम्+सुट्+कृ+उ। किम्+स्+क्+उ। कि०+स्+क्+उ। कि+ष्+क्+उ। किष्कु+सु। किष्कुः।

यहां 'किम्' शब्द उपपद होने पर 'कृ' धातु से औणादिक 'डु' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा-विषय में 'कृ' धातु के क-वर्ण से पूर्व 'सुट्' आगम होता है। **वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'कृ' के टि-भाग (ऋ) का लोप होता है। 'किम्' के मकार का लोप और सकार को षत्व निपातन से होता है। **किं करोतीति किष्कुः** (उपपदतत्पुरुष)।

(५) **किष्किन्धा।** किम्+धः+क। किम्-किम्+धा+अ। किम्+सुट्+किम्+ध्+अ। किष्किन्ध+टाप्। किष्किन्धा+सु। किष्किन्धा।

यहां 'किम्' शब्द उपपद होने पर 'धा' धातु से **'आतोऽनुपसर्गे कः'** (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। 'किम्' शब्द को द्वित्व और उसके मकार का लोप निपातन से होता है। इस सूत्र से संज्ञा-विषय में 'किम्' के क-वर्ण से पूर्व सुट् आगम होता है और निपातन से षत्व होता है।

विशेषः (१) काशिकावृत्ति में 'कारस्करो वृक्षः' इसकी पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है। यह **'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'** इसी सूत्र से सिद्ध है।

(२) **पारस्कर।** यह सिन्ध का पूर्वी जिला थर-पारकर जान पड़ता है। 'थर' रेगिस्तानवाची 'थल' का सिन्धी रूप है। कच्छ के इरिण या रन्न प्रदेश के उत्तर का समस्त भूभाग 'पारकर' देश था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६६)।

(३) **रथस्या।** महाभारत के आदिपर्व में सरस्वती और गंडकी के बीच की सात पावन नदियों में इसका नाम 'रथस्था' है। रथस्था पंचाल देश की रामगंगा नदी थी जो ऊपरले भाग में अब भी 'रहुत' कहाती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५४)।

(४) **किष्कु।** अर्थशास्त्र के अनुसार ३२ अंगुल या दो फुट का साधारण किष्कु होता था। आराकश एवं राजबढ़ई का किष्कु ४२ अंगुल या साढ़े ३१ इंच लम्बा माना जाता था। किष्कु ही यहां का पुराना गज था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २४८)।

(५) **किष्किन्धा।** यह गोरखपुर के पास का प्राचीन खुखुदों था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७६)।

।। इति संहिता (सन्धि) प्रकरणम्।।

पूर्व-स्वरप्रकरणम्

परिभाषा–

(१) अनुदात्तं पदमेकवर्जम्।१५५।

प०वि०–अनुदात्तम् १।१ पदम् १।१ एकवर्जम् १।१।

तद्धितवृत्तिः–अनुदात्ता अस्य सन्तीति–अनुदात्तम्। **'अर्शआदिभ्योऽच्'** (५।२।१२७) इति मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः।

स०–एकं वर्जयित्वेति–एकवर्जम् (उपपदतत्पुरुषः) **'द्वितीयायां च'** (३।४।५३) इति णमुल् प्रत्ययः।

अन्वयः–एकवर्जं पदम् अनुदात्तम्।

अर्थः–अस्मिन् स्वरप्रकरणे यत्राऽन्यः स्वर उदात्तः स्वरितो वा विधीयते तत्रैकवर्जं पदमनुदात्तं भवतीत्येतदुपस्थितं द्रष्टव्यम्। परिभाषेयं स्वरविधानार्था। यथा वक्ष्यति **'धातोः'** (६।१।१५६) धातोरन्तोदात्तो भवति। अत्र धातोरन्त्यमचं वर्जयित्वा परिशिष्टमनुदात्तं भवति।

उदा०–गोपायति, धूपायति।

आर्यभाषाः अर्थ–*इस स्वर-प्रकरण में जहां कोई स्वर उदात्त वा स्वरित विधान किया जाता है वहां उस (एकवर्जम्) एक स्वर को छोड़कर शेष (पदम्) पद (अनुदात्तम्) अनुदात्त स्वरवाला होता है, यह जानना चाहिये। यह स्वरविधायिका परिभाषा है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे–**'धातोः'** (६।१।१५६) अर्थात् धातु को अन्तोदात्त स्वर होता है। यहां धातु के अन्तिम अच्-वर्ण को छोड़कर शेष पद इस परिभाषा से अनुदात्त हो जाता है।*

*उदा०–**गोपायति**। वह रक्षा करता है। **धूपायति**। वह तपाता है।*

सिद्धि–गोपायति। *गुप्+आय। गोप्+आय। गोपाय+लट्। गोपाय+तिप्। गोपाय+शप्+ति। गोपाय+अ+ति। गोपायति।*

*यहां **'गुपू रक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः'** (३।१।२८) से 'आय' प्रत्यय है। **'सनाद्यन्ता धातवः'** (३।१।३२) से 'गोपाय' शब्द की धातु संज्ञा होती है। **'धातोः'** (६।१।१५६) से धातु के अन्तिम अच्-वर्ण को अन्तोदात्त होकर इस परिभाषा सूत्र से शेष पद अनुदात्त होता है–**गोपायति**। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित हो जाता है–**गोपायति**। ऐसे ही **'धूप सन्तापे'** (भ्वा०प०) धातु से–**धूपायति**।*

अन्तोदात्तप्रकरणम्

अन्तोदात्तः-

(२) कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः।१५६।

प०वि०-कर्ष-आत्वतः ६।१ घञः ६।१ अन्तः १।१ उदात्तः १।१।

स०-आद् अस्मिन्नस्तीति-आत्वान्। कर्षश्च आत्वाँश्च एतयोः समाहारः-कर्षात्वत्, तस्य कर्षात्वतः (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः।

अर्थः-कर्षतिधातोराकारवतश्च धातोर्घञन्तस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-(कर्षतिः) कर्षः। **(आत्वान्)** पाकः, त्यागः, रागः, दायः, धायः।

सूत्रपाठे 'कर्षः' इति विकृतनिर्देशः कृषतेर्निवृत्त्यर्थः। तौदादिकस्य घञन्तस्य कृषतिधातोर्घञन्तस्य 'कर्षः' इति **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) इत्याद्युदात्त एव भवति।

***आर्यभाषाः** अर्थः-(कर्षात्वतः) कर्षति (भ्वा०प०) धातु और आकारवान् धातु के (घञः) घञ्प्रत्ययान्त शब्दों का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**(कर्षति)** कर्षः। हल चलाना। **(आकारवान्)** पाकः। पकाना। **त्यागः।** छोड़ना। **रागः।** रंगना। **दायः।** देना। **धायः।** धारण-पोषण करना।*

***सिद्धि-(१)** कर्षः। कृष्+घञ्। कर्ष्+अ। कर्ष+सु। कर्षः।*

*यहां **'कृष विलेखने'** (भ्वा०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'कृष्' धातु को लघूपध गुण होता है। इस सूत्र से घञन्त कर्षः' शब्द का अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*सूत्रपाठ में 'कर्ष' यह विकृत-निर्देश **'कृष विलेखने'** (तु०उ०) धातु के ग्रहण की निवृत्ति के लिये किया है। इससे **'कृष विलेखने'** (भ्वा०प०) धातु का ही ग्रहण किया जाता है। तौदादिक 'कृष्' धातु का घञन्त 'कर्षः' शब्द **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त ही होता है-**कर्षः।***

(२) पाकः। पच्+घञ्। पाच्+अ। पाक्+अ। पाक+सु। पाकः।

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'पच्' धातु को उपधावृद्धि होने से यह आकारवान् धातु होती है अतः इस*

*सूत्र से इसके घजन्त शब्द 'पाकः' को अन्तोदात्त स्वर होता है। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) से चकार को कुत्व गकार होता है। ऐसे ही **'त्यज हानौ'** (भ्वा०प०) धातु से-त्यागः।*

*(३) रागः। यहां **'रञ्ज रागे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् घञ् प्रत्यय, **'घञि च भावकरणयोः'** (६।४।२७) से अनुनासिक का लोप और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) दायः। यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय और **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से युक् आगम होता है। ऐसे ही **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से-धायः।*

अन्तोदात्तः-

(३) उञ्छादीनां च।१५७।

प०वि०- उञ्छ-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०- उञ्छ आदिर्येषां ते उञ्छादयः, तेषाम्-उञ्छादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०- अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः- उञ्छादीनां च अन्त उदात्तः।

अर्थः- उञ्छादीनां शब्दानां च अन्त उदात्तो भवति।

उदा०- उञ्छः, म्लेच्छः, जञ्जः, जल्पः इत्यादिकम्।

उञ्छ। म्लेच्छ। जञ्ज। जल्प। जप। व्यध। वध। युग कालविशेषे रथाद्युपकरणे च। गरो दूष्येऽबन्तः। वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे। स्तुयुद्रुवश्छन्दसि। परिष्टत्। संयुत्। परिद्रुत्। वर्तनिः स्तोत्रे। श्वभ्रे दरः। साम्बतापौ भावगर्हायाम्। उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र। भक्षमन्थभोगदेहाः। इत्युञ्छादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उञ्छादीनाम्) उञ्छ आदि शब्दों का (च) भी (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-उञ्छः, म्लेच्छः, जञ्जः, जल्पः इत्यादि।

*सिद्धि-(१) उञ्छः। यहां 'उछि उञ्छे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् घञ् प्रत्यय है। इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।५३) से शेष अनुदात्त होता है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से नुम् आगम और उसे **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) से चुत्व ञकार होता है।*

(२) म्लेच्छः। यहां 'म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) जञ्जः। यहां 'जजि युद्धे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से प्राप्त कुत्व इसी निपातन से नहीं होता है।

(४) जल्पः। यहां 'जल्प व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'व्यधजपोरनुपसर्गे' (३।१।६१) से 'अप्' प्रत्यय है।

अन्तोदात्तः-

(४) अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः।१५८।

प०वि०-अनुदात्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्, यत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) उदात्तलोपः १।१।

स०-उदात्तस्य लोपः-उदात्तलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अन्तः उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यत्र=यस्मिन्ननुदात्ते उदात्तलोपः, तस्यानुदात्तस्य चान्तोदात्तः।

अर्थः-यत्र=यस्मिन्ननुदात्ते परतोऽनुदात्तस्य लोपो भवति, तस्यानुदात्तस्य चान्तोदात्तो भवति।

उदा०-कुमारी। पथः। पथा। पथे। कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यत्र) जिस अनुदात्त के परे होने पर (उदात्तलोपः) उदात्त का लोप होता है (अनुदात्तस्य) उस अनुदात्त को (च) भी (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**कुमारी**। अविवाहिता। **पथः**। मार्गों को। **पथा**। मार्ग के द्वारा। **पथे**। मार्ग के लिये। **कुमुद्वान्**। श्वेत कमलवाला। **नड्वान्**। सरपतवाला। **वेतस्वान्**। बैंतवाला।*

*सिद्धि-(१) **कुमारी**। कुमार+ङीप्। कुमार्+ई। कुमारी+सु। कुमारी।*

*यहां कुमार शब्द से '**वयसि प्रथमे**' (४।१।२०) से 'ङीप्' प्रत्यय है। यह '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त है। उस अनुदात्त के परे होने पर '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से 'कुमार' शब्द के उदात्त अकार का लोप होता है। इस सूत्र से जिस अनुदात्त के परे होने पर उदात्त का लोप होता है उस अनुदात्त को अन्तोदात्त होता है अतः ङीप् (ई) प्रत्यय अन्तोदात्त हो जाता है। 'कुमार' शब्द '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है।*

(२) कुमुद्वान्। कुमुद+ड्मतुप्। कुमुद्+मत्। कुमुद्+वत्। कुमुद्वत्+सु। कुमुद्वान्।

यहां कुमुद शब्द से 'कुमुदनड्वेतसेभ्यो ड्मतुप्' (४।२।८६) से ड्मतुप् है। यह 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है। वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से कुमुद के उदात्त अकार का लोप होता है। इस सूत्र से अनुदात्त के परे होने पर उदात्त का लोप होने से अनुदात्त को अन्तोदात्त स्वर होता है। 'कुमुद' शब्द पूर्ववत् अन्तोदात्त है। ऐसे ही-नड्वान्, वेतस्वान्।

विशेषः *काशिकावृत्ति में इस सूत्र का आद्युदात्तपरक अर्थ किया है जो कि पाणिनिमुनि के प्रकरण के प्रतिकूल है। गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री के शिष्य पं० वेदव्रत शास्त्री की हस्तलिखित वृत्ति में अन्तोदात्तपरक अर्थ है।*

अन्तोदात्तः-

(५) धातोः।१५६।

वि०-धातोः ६।१।

अनु०-अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरन्त उदात्तः।

अर्थः-धातोरन्त उदात्तो भवति।

उदा०-पचति। पठति। ऊर्णोति। गोपायति। याति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धातोः) धातु का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-पचति। वह पकाता है। पठति। वह पढ़ता है। ऊर्णोति। वह आच्छादित करता है। गोपायति। वह रक्षा करता है। याति। वह जाता है।

सिद्धि-(१) पचति। पच्+लट्। पच्+तिप्। पच्+शप्+ति। पच्+अ+ति। पचति।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पच्' धातु को अन्तोदात्त होता है। 'शप्' और 'तिप्' प्रत्यय पित् होने से 'अन्तोदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त हैं। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से 'शप्' का अनुदात्त अकार स्वरित होता है। 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से 'तिप्' के अनुदात्त इकार को एकश्रुति स्वर होता है।

(२) पठति। 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) से पूर्ववत्।

(३) ऊर्णोति। यहां 'ऊर्णुञ् आच्छादने' (अदा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है।

(४) गोपायति। यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'गुपूधूप०' (३।१।२८) से स्वार्थ में 'आय' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) याति। यहां 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अन्तोदात्तः-

(६) चितः।१६०।

वि०-चितः ६।१।

स०-च इद् यस्य स चित्, तस्य-चितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चितोऽन्त उदात्तः।

अर्थः-चितः=प्रत्ययान्तस्य शब्दस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-भङ्गुरम्। भासुरम्। मेदुरम्। कुण्डिनाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चितः) चित्-प्रत्ययान्त शब्द का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-भङ्गुरम्। टूटनेवाला। भासुरम्। चमकनेवाला। मेदुरम्। स्नेहवाला (चिकणा)। कुण्डिनाः। कुण्डिनी ऋषिका के बहुत पौत्र।

सिद्धि-(१) भङ्गुरम्। भञ्ज्+घुरच्। भञ्ज्+उर। भङ्गु+सु। भङ्गुरम्।

यहां 'भञ्जो आमर्दने' (रुधा०प०) धातु से 'भञ्जभासमिदो घुरच्' (३।२।१६१) से 'घुरच्' प्रत्यय है। इसके चित् होने से इस सूत्र से इसे अन्तोदात्त होता है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से जकार को कुत्व गकार होता है।

(२) भासुरम्। 'भासृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

(३) मेदुरम्। 'ञिमिदा स्नेहने' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।

(४) कुण्डिनाः। कुण्डिनी+यञ्+जस्। कुण्डिनच्+०+अस्। कुण्डिन+अस्। कुण्डिनाः।

यहां कुण्डिनी प्रातिपदिक से 'गर्गादिभ्यो यञ्' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। कुण्डिनी के बहुत पौत्र अर्थ की विवक्षा में 'आगस्त्य-कौण्डन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्' (२।४।७०) से 'कुण्डिनच्' आदेश होता है। इसके चित् होने से इस सूत्र से इसका अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्तोदात्तः-

(७) तद्धितस्य।१६१।

वि०-तद्धितस्य ६।१।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, चित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्धितस्य चितोऽन्त उदात्तः।

अर्थः-तद्धितसंज्ञकस्य चित्प्रत्ययस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-कौञ्जायनाः। भौञ्जायनाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्धितस्य) तद्धित-संज्ञक (चितः) चित् प्रत्यय का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**कौञ्जायनाः। भौञ्जायनाः।***

*सिद्धि-**कौञ्जायनाः।** कुञ्ज+च्फञ्। कौञ्ज्+आयन। कौञ्जायन+जस्। कौञ्जायनाः।*

*यहां 'कुञ्ज' शब्द से **'गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्'** (४।१।९८) से च्फञ् प्रत्यय है। इसके चित् होने से इस सूत्र से इसका अन्तोदात्त स्वर होता है। इसके 'ञित्' होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त होता है किन्तु उसे बाधकर इस सूत्र से चित्-स्वर=अन्तोदात्त ही होता है। प्रत्यय के ञित् होने से **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' को 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही 'भुञ्ज' शब्द से-**भौञ्जायनाः।***

अन्तोदात्तः-

(८) कितः।१६२।

वि०-कितः ६।१।

स०-क इद् यस्य स कित्, तस्य-कितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, तद्धितस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्धितस्य कितोऽन्त उदात्तः।

अर्थः-तद्धितसंज्ञकस्य कित्-प्रत्ययस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-नाडायनः, चारायणः। आक्षिकः, शालाकिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तद्धितस्य) तद्धित (कितः) कित् प्रत्यय का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-नाडायनः। नड का पौत्र। चारायणः। चर का पौत्र। आक्षिकः। अक्ष=पाशों से खेलनेवाला (जुआरी)। शालाकिकः। शलाका आकृति के पाशों से खेलनेवाला (जुआरी)।

सिद्धि-(१) नाडायनः। *नड+फक्। नाड्+आयन। नाडायन+सु। नाडायनः।*

*यहां 'नड' शब्द से **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से गोत्रापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। इस तद्धित प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि भी होती है। पूर्ववत् 'फ्' को 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही 'चर' शब्द से-**चारायणः।***

(२) आक्षिकः। *अक्ष+ठक्। आक्ष्+इक। आक्षिक+सु। आक्षिकः।*

*यहां 'अक्ष' शब्द से **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से दीव्यति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस तद्धित प्रत्यय के कित् होने से इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है और **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि भी होती है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। ऐसे ही 'शलाका' शब्द से-**शालाकिकः।***

अन्तोदात्तः-

(६) तिसृभ्यो जसः।१६३।

प०वि०-तिसृभ्यः ५।३ जसः ६।१।

अनु०-अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तिसृभ्यो जसोऽन्त उदात्तः।

अर्थः-तिसृ-शब्दाद् उत्तरस्य जस्-प्रत्ययस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-तिस्रस्तिष्ठन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तिसृभ्यः) तिसृ शब्द से उत्तर (जसः) जस् प्रत्यय का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**तिस्रस्तिष्ठन्ति।** तीन नारियां खड़ी हैं।*

सिद्धि-तिस्रः। *तिसृ+जस्। तिसृ+अस्। तिस् र्+अस्। तिस्रस्। तिस्ररु। तिस्रर्। तिस्रः।*

*यहां 'तिसृ' शब्द से 'जस्' प्रत्यय है। यह **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त है। इसके परे रहने पर **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'तिसृ' शब्द को यणादेश (र्) होता है। यह यणादेश उदात्त ऋ के स्थान में है। **'फिषोऽन्तोदात्तः'** (फिट्० १।१)*

से 'त्रि' शब्द के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में किया तिसृ आदेश भी स्थानिवद्भाव से अन्तोदात्त है। अतः 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (८।२।४) से उदात्त यण् से उत्तर अनुदात्त जस् को स्वरित आदेश प्राप्त था, इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है।

अन्तोदात्तः–

(१०) चतुरः शसि।१६४।

प०वि०–चतुरः ६।१ शसि ७।१।

अनु०–अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चतुरोऽन्त उदात्तः शसि।

अर्थः–चतुर्-शब्दस्यान्त उदात्तो भवति, शसि प्रत्यये परतः।

उदा०–चतुरः पश्य।

आर्यभाषाः अर्थ–*(चतुरः) चतुर् शब्द का (अन्तः) अन्तिम अच् (उदात्तः) उदात्त होता है (शसि) शस् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०–चतुरः पश्य। तू चारों को देख।

सिद्धि–चतुरः। चतुर्+शस्। चतुर्+अस्। चतुरस्। चतुररु। चतुरर्। चतुरः।

*यहां इस सूत्र से 'चतुर्' शब्द 'शस्' प्रत्यय परे होने पर अन्तोदात्त है। '**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**' (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त तथा '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से 'शस्' प्रत्यय भी अनुदात्त होकर '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६५) से स्वरित होता है। 'चतुर्' शब्द '**चतेरुरन्**' (उणा० ५।५९) से उरन्-प्रत्ययान्त होने से '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से 'शस्' विषय में अन्तोदात्त किया गया है।*

अन्तोदात्तः–

(११) सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः।१६५।

प०वि०–सौ ७।१ एकाचः ५।१ तृतीयादिः १।१ विभक्तिः १।१।

स०–एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्-एकाचः (बहुव्रीहिः)। तृतीया आदिर्यस्याः सा तृतीयादिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अन्तः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-सौ परतो य एकाच् शब्दस्तस्माद् उत्तरा तृतीयादिर्विभक्ति-रन्तोदात्ता भवति। 'सौ' इति सप्तमीबहुवचनस्य सु-शब्दस्य ग्रहणं क्रियते।

उदा०-वाचा, वाग्भ्याम्, वाग्भिः। याता, याद्भ्याम्, याद्भिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सौ) सप्तमी-विभक्ति का बहुवचन 'सुप्' प्रत्यय परे होने पर (एकाचः) जो एक अच्वाला शब्द है उससे उत्तर (तृतीयादिः) टा आदि विभक्तियां (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती हैं।*

*उदा०-**वाचा।** वाणी के द्वारा। **वाग्भ्याम्।** दो वाणियों के द्वारा। **वाग्भिः।** सब वाणियों के द्वारा। **याता।** जाते हुये के द्वारा। **याद्भ्याम्।** दो जाते हुओं के द्वारा। **याद्भिः।** सब जाते हुओं के द्वारा।*

*सिद्धि-**(१) वाचा।** वाच्+टा। वाच्+आ। वाचा।*

*'वाक्' शब्द सु (७।३) प्रत्यय परे होने पर एकाच् है, अतः इससे उत्तर तृतीयादि 'टा' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**वाग्भ्याम्, वाग्भिः।***

*(२) **याता।** या+लट्। या+शतृ। या+अत्। यात्+सु। यात्। यात्+टा। यात्+आ। याता।*

*यहां 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और '**लटः शतृशानचा०**' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में शतृ आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**याद्भ्याम्, याद्भिः।***

अन्तोदात्त-विकल्पः-

(१२) अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे।१६६।

प०वि०-अन्तोदात्तात् ५।१ उत्तरपदात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्यय-पदम्, अनित्यसमासे ७।१।

स०-अन्त उदात्तो यस्य सः-अन्तोदात्तः, तस्मात्-अन्तोदात्तात् (बहुव्रीहिः)। उत्तरं च तत् पदम्-उत्तरपदम्, तस्मात्-उत्तरपदात् (कर्मधारयः)। नित्यश्चासौ समासो नित्यसमासः, न नित्यसमासः-अनित्यसमासः, तस्मिन्-अनित्यसमासे (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, एकाचः, तृतीयादिः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनित्यसमासे एकाचोऽन्तोदात्तात् उत्तरपदाद् तृतीयादि-विभक्तिरन्यतरस्यामन्तोदात्ता।

अर्थः-अनित्यसमासे एकाचोऽन्तोदात्ताद् उत्तरपदाद् उत्तरा तृतीयादिर्विभक्तिर्विकल्पेनान्तोदात्ता भवति, पक्षे च **'समासस्य'** (६।१।२२३) इत्यन्तोदात्ता भवति।

उदा०-परमवाचा, परमवाचे। **पक्षे**-परमवाचा, परमवाचे। परमत्वचा, परमत्वचे। **पक्षे**-परमत्वचा, परमत्वचे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनित्यसमासे) अनित्य समास में (एकाचः) एक अच्वाले (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (उत्तरपदात्) उत्तरपद से परे (तृतीयादिर्विभक्तिः) तृतीया आदि विभक्ति (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अन्त-उदात्ता) अन्तोदात्त होती है और पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२२३) से अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-**परमवाचा।** परमवाणी के द्वारा। **परमवाचे।** परमवाणी के लिये। **पक्ष में-परमवाचा, परमवाचे।** अर्थ पूर्ववत् है। **परमत्वचा।** परमत्वक् के द्वारा। **परमत्वचे।** परमत्वक् के लिये। **पक्ष में-परमत्वचा, परमत्वचे।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-(१) परमत्वचा। *परमत्वच्+टा। परमत्वच्+आ। परमवाचा।*

*यहां परम और वाक् शब्दों का 'सन्महत्परम०' (२।१।६०) से कर्मधारय समास है और यह महाविभाषा अधिकार से अनित्य समास है क्योंकि पक्ष में वाक्य भी बना रहता है। इसके उत्तरपद में 'वाक्' शब्द एकाच् और अन्तोदात्त है। अतः 'परमवाक्' इस उक्त शब्द से उत्तर तृतीया आदि (टा) विभक्ति अन्तोदात्त होती है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**परमवाचे। परमत्वचा, परमत्वचे।***

*(२) **परमवाचा।** यहां विकल्प पक्ष में 'परमवाक्' शब्द **'समासस्य'** (६।१।२२३) से अन्तोदात्त होता है। **'परमवाचा'** इस स्थिति में **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से अनुदात्त 'टा' को स्वरित आदेश होता है-**परमवाचा।** ऐसे ही-**परमवाचे, परमत्वचा, परमत्वचे।***

अन्तोदात्ता-

(१३) अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम्।१६७।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ छन्दसि ७।१ असर्वनामस्थानम् १।१।

स०-न सर्वनामस्थानम्-असर्वनामस्थानम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अञ्चेरसर्वनामस्थानं विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽञ्चेः पराऽसर्वनामस्थानविभक्तिरन्तोदात्ता भवति।

उदा०-इन्द्रो दधीचो अस्थभिः (ऋ० १।८४।१३)। प्रतीचो बाहून् प्रतिभङ्ध्येषाम् (ऋ० १०।८७।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में अञ्चेः) अञ्चु धातु से उत्तर (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान को छोड़कर शेष विभक्ति (अन्तोदात्ता) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-**इन्द्रो दधीचो अस्थभिः** (ऋ० १।८४।१३)। **प्रतीचो बाहून् प्रतिभङ्ध्येषाम्** (ऋ० १०।८७।४)।*

*सिद्धि-**दधीचः**। दधि+अञ्च्+क्विन्। दधि+अञ्च्+०। दधि+अच्+०। धि+०च्। दधीच्+ङस्। दधीच्+अस्। दधीचः।*

*यहां दधि उपपद होने पर '**अञ्चु गतिपूजनयोः**' (भ्वा०प०) धातु से '**ऋत्विग्दधृक्०**' (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप, '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से 'अञ्चु' के 'न्' का लोप होता है। '**अचः**' (६।४।१३८) से अकार का लोप और '**चौ**' (६।१।११६) से दीर्घ होता है। '**चौ**' (६।१।१२२) से पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था। इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर का विधान किया गया है।*

*(२) **प्रतीचः**। यहां प्रति उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु' धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय और तत्पश्चात् असर्वनामस्थान 'शस्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अन्तोदात्ता-

(१४) ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः।१६८।

प०वि०-ऊठ्-इदं-पदादि-अप्-पुम्-रै-द्युभ्यः ५।३।

स०-पद् आदिर्येषां ते पदादयः, ऊठ् च इदं च पदादयश्च अप् च पुम् च रैश्च द्यौश्च ते ऊठ्०दिवः, तेभ्यः-ऊठ्०द्युभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, असर्वनामस्थानम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्योऽसर्वनामस्थानं विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्य उत्तराऽसर्वनामस्थाविभक्तिरन्तोदात्ता भवति।

उदा०-(ऊठ्) प्रष्ठौहः। प्रष्ठौहे। (इदम्) आभ्याम्, एभिः। (पदादयः) 'पद्दन्नोमास०' (६।१।६३) इत्येवमादयो निश्-शब्दपर्यन्ता अत्र गृह्यन्ते। (पद्) नि पदश्चतुरो जहि। (दत्) या दतो धावते तस्यै श्यावदन् (तै०सं० २।५।१।७)। (नस्) सूकरस्त्वा खनन् नसा (शौ०सं० २।२७।२)। (मास्) मासि {त्वा पश्यामि चक्षुषा} (तै०सं० २।५।६।६)। (हृद्) हृदा पूतं मनसा जातवेदो०। (निश्) अमावस्यायां निशि {यजेत} (खि० २।१।८)। (अप्) अपः पश्य, अद्भिः, अद्भ्यः। (पुम्) पुंसा, पुंसे, पुंसः, पुम्भ्याम्, पुम्भ्यः। (रै) रायः पश्य, राभ्याम्, राभिः। (दिव्) दिवः पश्य, दिवा, दिवे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उद्०द्युभ्यः) ऊठ, इदम्, पदादि, अप्, पुम्, रै, दिव् शब्दों से उत्तर (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान से भिन्न (विभक्ति) विभक्ति (अन्तोदात्ता) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-(ऊठ्) **प्रष्ठौहः।** अग्रगामी पुरुष को वहन करनेवालों (हाथी) को। **प्रष्ठौहे।** अग्रगामी पुरुष को वहन करनेवालों (हाथी) के लिये। (इदम्) **आभ्याम्।** इन दोनों के द्वारा। **एभिः।** इन सबके द्वारा। (पदादयः) यहां **'पद्दन्नोमास०'** (६।१।६३)। इस सूत्र में कथित पदादि शब्दों का निश् शब्दपर्यन्त ग्रहण किया जाता है। (पद्) **नि पदश्चतुरो जहि।** दत्-**या दतो धावते तस्यै श्यावदन्** (तै०सं० २।५।१।७)। **नस्-सूकरस्त्वा खनन् नसा** (शौ०सं० २।२७।२)। **मास्-मासि {त्वा पश्यामि चक्षुषा}** (तै०सं० २।५।६।६)। **हृद्-हृदा पूतं मनसा जातवेदो०। निश्-अमावस्यायां निशि {यजेत}** (खि० २।१।८)। (अप्) **अपः पश्य।** जलों को देख। **अद्भिः।** जलों के द्वारा। **अद्भ्यः।** जलों के लिये। (पुम्) **पुंसा।** पुरुष के द्वारा। **पुंसे।** पुरुष के लिये। **पुंसः।** पुरुष से। **पुम्भ्याम्।** दो पुरुषों से। **पुम्भ्यः।** सब पुरुषों से। (रै) **रायः पश्य।** तू धनों को देख। **राभ्याम्।** दो धनों के द्वारा। **राभिः।** सब धनों के द्वारा। (दिव्) **दिवः पश्य।** तू द्युलोकों को देख। **दिवा।** द्युलोक के द्वारा। **दिवे।** द्युलोक के लिये।*

*सिद्धि-(१) **प्रष्ठौहः।** प्रष्ठ+वाह्+शस्। प्रष्ठवाह्+अस्। प्रष्ठ ऊठ् आह्+अस्। प्रष्ठ् अ आह्+अस्। प्रष्ठ् ऊह्+अस्। प्रष्ठौहः।*

*यहां 'प्रष्ठवाह्' शब्द से असर्वनामस्थान 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से वाह् के वकार को सम्प्रसारण रूप 'ऊठ्' आदेश, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप ऊकार आदेश और **'एत्येधत्यूठ्सु'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही असर्वनामस्थान 'ङे' प्रत्यय परे होने पर-**प्रष्ठौहे।***

(२) आभ्याम्। इदम्+भ्याम्। इद अ+भ्याम्। ० अ अ+भ्याम्। अ+भ्याम्। आ+भ्याम्। आभ्याम्।

*यहां 'इदम्' शब्द से असर्वनामस्थान 'भ्याम्' प्रत्यय है। यह इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से अकार-आदेश, '**हलि लोपः**' (७।२।११३) से 'इद्' भाग का लोप, '**अतो गुणे**' से पररूप एकादेश (अ) और '**सुपि च**' (७।३।१०२) से दीर्घ होता है।*

*(३) एभिः। यहां 'इदम्' शब्द से असर्वनामस्थान 'भिस्' प्रत्यय है। '**बहुवचने झल्येत्**' (७।३।१०३) से अकार को एकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) पदः। पाद्+शस्। पद्+अस्। पदः।

*यहां 'पाद' शब्द से असर्वनामस्थान 'शस्' प्रत्यय है। यह इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। '**पद्दन्नोमास्०**' (६।१।६१) से 'पाद' के स्थान में 'पद्' आदेश होता है।*

(५) दतः। दन्त+शस्। दत्+अस्। दतः। पूर्ववत्।

(६) नसा। नासिका+टा। नस्+आ। नसा। पूर्ववत्।

(७) मासि। मास+ङि। मास्+इ। मासि। पूर्ववत्।

(८) हृदा। हृदय+टा। हृद्+आ। हृदा। पूर्ववत्।

(९) निशि। निशा+ङि। निश्+इ। निशि। पूर्ववत्।

*(१०) अपः। अप्+शस्। अप्+अस्। अपः। पूर्ववत्। 'अद्भिः' यहां '**अपो भि**' (७।४।४८) से पकार को तकार आदेश और '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से उसे जश् दकार होता है। ऐसे ही-अद्भ्यः।*

(११) पुंसा। पुंस्+टा। पुंस्+आ। पुंसा। पूर्ववत्।। पुंसे (ङे)। पुंसः (ङसि)। पुंभ्याम् (भ्याम्)। पुंभ्यः (भ्यस्)।

*(१२) रायः। रै+शस्। रै+अस्। राय्+अस्। रायः। '**एचोऽयवायावः**' (६।१।८६) से आय् आदेश होता है। राभ्याम् (भ्याम्)। राभिः (भिस्)। पूर्ववत्।*

(१३) दिवः। दिव्+शस्। दिव्+अस्। दिवः। दिवा (टा)। दिवे (ङे)। पूर्ववत्।

अन्तोदात्ता--

(१५) अष्टनो दीर्घात्।१६६।

प०वि०-अष्टनः ५।१ दीर्घात् ५।१।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, असर्वनामस्थानम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीर्घाद् अष्टनोऽसर्वनामस्थानं विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-दीर्घाद् अष्टन्-शब्दाद् उत्तराऽसर्वनामस्थानविभक्तिरन्तोदात्ता भवति।

उदा०-अष्टाभिः, अष्टाभ्यः, अष्टासु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दीर्घात्) दीर्घ (अष्टनः) अष्टन् शब्द से उत्तर (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान से भिन्न (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-**अष्टाभिः**। आठों के द्वारा। **अष्टाभ्यः**। आठों के लिये/से। **अष्टासु**। आठों में/पर।*

सिद्धि-अष्टाभिः। *अष्टन्+भिस्। अष्ट आ+भिस्। अष्टाभिस्। अष्टाभिः।*

*यहां 'अष्टन्' शब्द से असर्वनामस्थान 'भिस्' प्रत्यय है। **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) से आकार आदेश होता है। दीर्घ 'अष्टा' शब्द से उत्तर असर्वनामस्थान विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है। **'घृतादीनां च'** (फिट्० १।२१) से 'अष्टन्' शब्द अन्तोदात्त है। **'झल्युपोत्तमम्'** (६।१।१८०) से उपोत्तम (अन्तिम से पूर्ववर्ती) वर्ण उदात्त प्राप्त था, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

अन्तोदात्ता-

(१६) शतुरनुमो नद्यजादी।१७०।

प०वि०-शतुः ५।१ अनुमः ५।१ नदी-अजादी १।२।

स०-न विद्यते नुम् यस्मिन् सः-अनुम्, तस्मात्-अनुमः (बहुव्रीहिः)। अच् आदिर्यस्याः सा-अजादिः, नदी च अजादिश्च ते-नद्यजादी (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, असर्वनामस्थानम् इति चानुवर्तते। **'अन्तोदात्ताद्'** (१।१।६५) इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अन्तोदात्ताद् अनुमः शतुर्नदी, असर्वनामस्थानम् अजादि-र्विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-अन्तोदात्ताद् नुम्-रहितात् शतृप्रत्ययान्ताद् उत्तरो नदीसंज्ञक-प्रत्ययोऽसर्वनामस्थानम् अजादिर्विभक्तिश्चान्तोदात्ता भवति।

उदा०-**(नदी)** तुदती, नुदती, लुनती, पुनती। **(अजादिविभक्तिः)** तुदता, नुदता, लुनता, पुनता।

आर्यभाषाः *अर्थः-(अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त (अनुम्) नुम्-आगम से रहित (शतुः) शतृ-प्रत्ययान्त शब्द से उत्तर (नदी) नदी-संज्ञक प्रत्यय और (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान से भिन्न (अजादिः) अजादि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-(नदी) **तुदती।** पीड़ा देती हुई। **नुदती।** प्रेरणा करती हुई। **लुनती।** काटती हुई। **पुनती।** पवित्र करती हुई। **(अजादि विभक्ति) तुदता।** पीड़ा देते हुये के द्वारा। **नुदता।** प्रेरणा करते हुये के द्वारा। **लुनता।** काटते हुये के द्वारा। **पुनता।** पवित्र करते हुये के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **तुदती।** तुद्+लट्। तुद्+शतृ। तुद्+श+अत्। तुद्+अ+अत्। तुदत्+ङीप्। तुदत्+ई। तुदती+सु। तुदती।*

*यहां अन्तोदात्त, नुम-आगमरहित, शतृ-प्रत्ययन्त 'तुदत्' शब्द से '**उगितश्च**' (४।१।६) नदी-संज्ञक 'ङीप्' प्रत्यय है। '**यू स्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से 'ङीप्' की नदी संज्ञा है। इस सूत्र से यह प्रत्यय अन्तोदात्त होता है। '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से इसे अनुदात्त स्वर प्राप्त था।*

*(२) **नुदती।** '**णुद प्रेरणे**' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **लुनती।** '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् शतृ प्रत्यय, '**क्र्यादिभ्यः श्ना**' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय और '**श्नाभ्यस्तयोरातः**' (६।४।११२) से 'श्ना' के आकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **पुनती।** '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **तुदता।** तुदत्+टा। तुदत्+आ। तुदता।*

*यहां पूर्वोक्त 'तुदत्' शब्द से असर्वनामस्थान अजादि 'टा' प्रत्यय (विभक्ति) है। इस सूत्र से इसे अन्तोदात्त होता है। '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त स्वर प्राप्त था।*

*(६) **नुदता।** '**णुद प्रेरणे**' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(७) **लुनता।** '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(८) **पुनता।** '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

अन्तोदात्ता–

(१७) उदात्तयणो हल्पूर्वात्।१७१।

प०वि०–उदात्तयणः ५।१ हल्पूर्वात् ५।१।

स०–उदात्तस्य यण्–उदात्तयण्, तस्मात्–उदात्तयणः (षष्ठीतत्पुरुषः)। हल् पूर्वो यस्मात् स हल्पूर्वः, तस्मात्–हल्पूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, असर्वनामस्थानम्, नद्यजादी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उदात्तयणो हल्पूर्वाद् नदी, असर्वनामस्थानम् अजादि-र्विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-उदात्तस्य स्थाने यो यण् हल्पूर्वस्तस्माद् उत्तरो नदीसंज्ञक-प्रत्ययोऽसर्वनामस्थानमजादिर्विभक्तिश्चान्तोदात्ता भवति।

उदा०-**(नदी)** कर्त्री, हर्त्री, प्रलवित्री, प्रसवित्री **(अजादिविभक्तिः)** कर्त्रा, हर्त्रा, प्रलवित्रा। प्रसवित्रा। एते तृजन्ता अन्तोदात्ताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उदात्तयणः) उदात्त के स्थान में जो यण् (हल्पूर्वात्) हल्-पूर्ववाला है, उससे उत्तर (नदी) नदी-संज्ञक प्रत्यय और (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान से भिन्न (अजादिः) अजादि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-**(नदी) कर्त्री।** करनेवाली। **हर्त्री।** हरनेवाली। **प्रलवित्री।** काटनेवाली। **प्रसवित्री** उत्पन्न करनेवाली। **(अजादि विभक्ति) कर्त्रा।** कर्ता के द्वारा। **हर्त्रा।** हर्ता के द्वारा। **प्रलवित्रा।** काटनेवाले के द्वारा। **प्रसवित्रा।** उत्पन्न करनेवाले के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **कर्त्री।** कर्तृ+ङीप्। कर्तर्+ई। कर्त्री+सु। कर्त्री।*

*यहां 'कर्तृ' शब्द से **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। 'कर्तृ' शब्द तृच्-प्रत्ययान्त होने से **'चितः'** (६।१।१५८) से अन्तोदात्त है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से उदात्त 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश है जो कि हल्पूर्व (त्) है। अतः नदी-संज्ञक 'ङीप्' प्रत्यय इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। 'ङीप्' प्रत्यय को **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त प्राप्त था।*

*(२) **हर्त्री।** हर्तृ+ङीप्। हर्तर्+ई। हर्त्री+सु। हर्त्री। पूर्ववत्।*

*(३) **प्रलवित्री।** प्रलवितृ+ङीप्। प्रलवितर्+ई। प्रलवित्री+सु। प्रलवित्री। पूर्ववत्।*

*(४) **प्रसवित्री।** प्रसवितृ+ङीप्। प्रसवितर्+ई। प्रसवित्री+सु। प्रसवित्री। पूर्ववत्।*

*(५) **कर्त्रा।** कर्तृ+टा। कर्तर्+आ। कर्त्रा।*

*यहां 'कर्तृ' शब्द से असर्वनामस्थान, अजादि 'टा' प्रत्यय है। 'कर्तृ' शब्द पूर्ववत् अन्तोदात्त है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से उदात्त 'ऋ' के स्थान में यण् (र्) आदेश है और वह हल्पूर्व (त्) है। अतः इससे उत्तर असर्वनामस्थान अजादि 'टा' प्रत्यय (विभक्ति) इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त प्राप्त था। ऐसे ही-**हर्त्रा, प्रलवित्रा, प्रसवित्रा।***

अन्तोदात्त-प्रतिषेधः–

(१८) नोङ्धात्वोः ।१७२।

प०वि०–न अव्ययपदम्, ऊङ्-धात्वोः ६।२।

स०–ऊङ् च धातुश्च तौ–ऊङ्धातू, तयोः–ऊङ्धात्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, असर्वनामस्थानम्, तृतीयादिः, अजादिः, उदात्तयणः, हल्पूर्वाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऊङ्धात्वोरुदात्तयणो हल्पूर्वात् तृतीयादिरजादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता न।

अर्थः–ऊङो धातोश्च य उदात्तस्य स्थाने यण् हल्पूर्वस्तस्मादुत्तरा तृतीयादिरजादिविभक्तिरन्तोदात्ता न भवति।

उदा०–**(ऊङ्)** ब्रह्मबन्ध्वा, ब्रह्मबन्ध्वै। वीरबन्ध्वा, वीरबन्ध्वै। **(धातुः)** सकृल्ल्वा, सकृल्लवे। खलप्वा, खलप्वे।

***आर्यभाषाः** अर्थ*–*(ऊङ्धात्वोः) ऊङ्प्रत्यय और धातु के स्थान में जो (उदात्तयणः) उदात्त-यण् (हल्पूर्वः) हल्पूर्व है, उससे उत्तर (असर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान से भिन्न (तृतीयादिः) तृतीया आदि (अजादिः) अजादि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदान्तः) अन्तोदात्त (न) नहीं होती है।*

*उदा०–(ऊङ्) **ब्रह्मबन्ध्वा**। ब्रह्मबन्धू (पतित ब्राह्मणी) नारी के द्वारा। **ब्रह्मबन्ध्वै**। ब्रह्मबन्धू नारी के लिये। **वीरबन्ध्वा**। वीरबन्धू नारी के द्वारा। **वीरबन्ध्वै**। वीरबन्धू (पतित क्षत्रिया) नारी के लिये। (धातु) **सकृल्ल्वा**। एक बार काटनेवाले के द्वारा। **सकृल्लवे**। एक बार काटनेवाले के लिये। **खलप्वा**। खलिहान को शुद्ध करनेवाले के द्वारा। **खलप्वे**। खलिहान को शुद्ध करनेवाले के लिये।*

*सिद्धि–(१) **ब्रह्मबन्ध्वा**। ब्रह्मबन्धु+ऊङ्। ब्रह्मबन्धू+टा। ब्रह्मबन्ध् व्+आ। ब्रह्मबन्ध्वा।*

*यहां 'ब्रह्मबन्धु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **'ऊङुतः'** (४।१।६६) से 'ऊङ्' प्रत्यय है। यह 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से उदात्त है। इससे तृतीयादि अजादि 'टा' प्रत्यय है। **'एकादेश उदात्तेनोदात्तः'** (८।२।५) से एकादेश (उ+ऊ) भी उदात्त है। इसके स्थान में **'इको यणचि'** (६।१।७५) से 'यण्' आदेश होता है। इस ऊङ् के स्थान में जो उदात्तयण् (व्) है और वह हल्पूर्व (ध्) भी है उसे परे असर्वनामस्थान, अजादि प्रत्यय (विभक्ति) 'टा' अन्तोदात्त नहीं होता है। अतः **'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य'** (८।२।४) से स्वरित होता है। ऐसे ही–**ब्रह्मबन्ध्वै, वीरबन्ध्वा, वीरबन्ध्वै।***

(२) सकृल्ल्वा। सकृत्+लू+क्विप्। सकृत्+लू+वि। सकृत्+लू+०। सकृल्लू+टा। सकृल्व्+आ। सकृल्ल्वा।

यहां सकृत्-उपपदवान् 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'क्विबन्तो धातुत्वं न जहाति' क्विबन्त शब्द धातुभाव को नहीं छोड़ता है इस आप्त-वचन से यहां 'लू' धातुरूप ही है। यह 'धातोः' (६।१।१६२) से धातु-स्वर से अन्तोदात्त है और 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३८) से भी यह अन्तोदात्त ही ठहरता है। इससे तृतीयादि अजादि 'टा' प्रत्यय (विभक्ति) है। 'ओः सुपि' (६।४।८३) से यण्-आदेश (व्) होता है, जो हल्-पूर्व (ल्) है। इस सूत्र से यह अजादि प्रत्यय (विभक्ति) अन्तोदात्त नहीं होता है, अपितु 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (८।२।४) से स्वरित होता है। ऐसे ही-सकृल्ल्वे, खलप्वा, खलप्वे।

अन्तोदात्तः--

(१६) ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्।१७३।

प०वि०-ह्रस्व-नुड्भ्याम् ५।२ मतुप् १।१।

स०-ह्रस्वश्च नुट् च तौ ह्रस्वनुटौ, ताभ्याम्-ह्रस्वनुड्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः इति चानुवर्तते। **'अन्तोदात्ताद्'** (६।१।१६३) इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-ह्रस्वाद् अन्तोदात्ताद् नुटश्च मतुब् अन्तोदात्तः।

अर्थः-ह्रस्वान्ताद् अन्तोदात्ताद् नुटश्चोत्तरो मतुप्-प्रत्ययोऽन्तोदात्तो भवति।

उदा०-**(ह्रस्वः)** अग्निमान्, वायुमान्, कर्तृमान्, हर्तृमान्। **(नुट्)** अक्षण्वता, शीर्षण्वता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वात्) ह्रस्व-वर्णान्त, (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त और (नुटः) नुट् से उत्तर (मतुप्) मतुप् प्रत्यय (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(ह्रस्व) **अग्निमान्**। अग्निवाला। **वायुमान्**। वायुवाला। **कर्तृमान्**। कर्तावाला। **हर्तृमान्**। हर्तावाला। (नुट्) **अक्षण्वता**। अक्ष (पाशा) वाले के द्वारा। **शीर्षण्वता**। उत्तम शिरवाले के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **अग्निमान्**। अग्नि+मतुप्। अग्नि+मत्। अग्निमत्+सु। अग्निमनुम्त्+सु। अग्निमन्त्+सु। अग्निमन्०+सु। अग्निमान्+सु। अग्निमान्+०। अग्निमान्।*

यहां ह्रस्वान्त, अन्तोदात्त 'अग्नि' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। यह 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है। इस सूत्र से इसे अन्तोदात्त होता है। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम् आगम, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से तकार का लोप, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-वायुमान्, कर्तृमान्, हर्तृमान्।

(२) अक्षण्वता। अक्ष+मतुप्। अक्ष् अनङ्+मत्। अक्षन्+नुट्+मत्। अक्षन्+न् वत्। अक्ष+न वत्। अक्षणवत्+टा। अक्षण्वत्+आ। अक्षणवता।

यहां 'अक्ष' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'छन्दस्यपि दृश्यते' (६।४।७३) अक्ष के अकार को 'अनङ्' आदेश और 'अनो नुट्' (८।२।१६) से 'मतुप्' को 'नुट्' आगम, 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से पूर्व नकार का लोप होता है। 'झयः' (८।२।१०) से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'नुट्' से उत्तर 'मतुप्' प्रत्यय को अन्तोदात्त होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से नकार को णत्व होता है।

(३) शीर्षण्वता। यहां 'शिरः' शब्द के स्थान में 'शीर्षंश्छन्दसि' (६।१।५९) से 'शीर्षन्' आदेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अन्तोदात्त-विकल्पः-

(२०) नामन्यतरस्याम्।१७४।

प०वि०-नाम् १।१ अन्यतरस्याम् १।१।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, अन्तोदात्तात्, विभक्तिः, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मतुपि ह्रस्वाद् अन्तोदात्ताद् नाम्-विभक्तिरन्यतरस्याम् अन्तोदात्ता।

अर्थः-मतुपि यो ह्रस्वस्तदन्ताद् अन्तोदात्ताद् उत्तरा नाम्-विभक्ति-र्विकल्पेनान्तोदात्ता भवति।

उदा०-अग्नीनाम्, अग्नीनाम्। वायूनाम्, वायूनाम्। कर्तॄणाम्, कर्तॄणाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मतुपि) मतुप् प्रत्यय परे होने पर जो (ह्रस्वात्) ह्रस्व है, उस ह्रस्वान्त (अन्तोदात्तात्) अन्तोदात्त शब्द से उत्तर (नाम्) नाम् (विभक्तिः) विभक्ति (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

उदा०-अग्नीनाम्, अग्नीनाम्। सब अग्नियों का। वायूनाम्, वायूनाम्। सब वायुओं का। कर्तॄणाम्, कर्तॄणाम्। सब कर्ताओं का।

सिद्धि-(१) अग्नीनाम्। अग्नि+आम्। अग्नि+नुट् आम्। अग्नि+न् आम्। अग्नि+नाम्। अग्नी+नाम्। अग्नीनाम्।

*यहां 'अग्नि' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व है। इस ह्रस्वान्त, अन्तोदात्त 'अग्नि' शब्द से उत्तर 'नाम्' प्रत्यय (विभक्ति) इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-**वायूनाम्, कर्तॄणाम्, हर्तॄणाम्।***

*(२) **अग्नीनाम्।** यहां विकल्प पक्ष में अग्नि शब्द से उत्तर 'नाम्' विभक्ति अन्तोदात्त नहीं है। अतः '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से अनुदात्त होती है। '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६५) से स्वरित होता है। ऐसे ही-**वायूनाम्, कर्तॄणाम्, हर्तॄणाम्।***

बहुलमन्तोदात्ता-

(२१) ङ्याश्छन्दसि बहुलम्।१७५।

प०वि०-ङ्याः ५।१ छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः नाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ङ्या नाम् विभक्तिर्बहुलम् अन्तोदात्ता।

अर्थः-छन्दसि विषये ङ्यन्ताद् उत्तरा नाम्-विभक्तिर्बहुलमन्तोदात्ता भवति।

उदा०-देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् (ऋ० १०।१०३।८)। बह्वीनां पिता (६।७५।५)। बहुलवचनान्न च भवति-नदीनां पारे। जयन्तीनां मरुतः (ऋ० १०।१०३।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ङ्याः) ङी-अन्त शब्द से उत्तर (नाम्) नाम् (विभक्तिः) विभक्ति (बहुलम्) प्रायशः (अन्तः उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

*उदा०-**देवसेनानामभिभञ्जतीनाम्** (ऋ० १०।१०३।८)। **बह्वीनां पिता** (ऋ० ६।७५।५)। बहुलवचन से अन्तोदात्त नहीं भी होता है-**नदीनां पारे। जयन्तीनां मरुतः** (ऋ० १०।१०३।८)।*

*सिद्धि-(१) **अभिभञ्जतीनाम्।** अभिभञ्जत्+ङीप्। अभिभञ्जत्+ई। अभिभञ्जती+आम्। अभिभञ्जती+नुट् आम्। अभिभञ्जती+न् आम्। अभिभञ्जतीनाम्।*

*यहां 'अभिभञ्जत्' इस शतृ-अन्त शब्द से '**उगितश्च**' (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। 'अभिञ्जती' इस ङ्यन्त शब्द से उत्तर 'नाम्' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है।*

(२) बह्वीनाम्। बहु+ङीष्। बह्व्+ई। बह्वी+आम्। बह्वी+नुट् आम्। बह्वी+न् आम्। बह्वीनाम्।

*यहां 'बहु' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **'बह्वादिभ्यश्च'** (४।१।४५) से 'ङीष्' प्रत्यय है। 'बह्वी' इस ङ्यन्त शब्द से उत्तर 'नाम्' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है।*

(३) नदीनाम्। नदट्+अच्। नद्+अ। नद+ङीप्। नद+ई। नदी+आम्। नदी+नुट् आम्। नदी+न् आम्। नदीनाम्।

*यहां 'नदट्' धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से पचादि 'अच्' प्रत्यय है। **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ङ्यन्त 'नदी' शब्द से उत्तर 'नाम्' विभक्ति इस सूत्र से बहुलवचन से अन्तोदात्त नहीं होती है, अपितु **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त होती है। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से स्वरित होता है।*

*(४) **जयन्तीनाम्।** यहां 'जयन्त्' इस शतृ-अन्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **'उगितश्च'** (४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है। ङ्यन्त 'जयन्ती' शब्द से उत्तर 'नाम्' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त नहीं होती है, अपितु पूर्ववत् अनुदात्त होकर स्वरित होती है।*

अन्तोदात्ता—

(२२) षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः।१७६।

प०वि०-षट्-त्रि-चतुर्भ्यः ५।३ हलादिः १।१।

स०-षट् च त्रिश्च चतुश्च ते षट्त्रिचतुरः, तेभ्यः-षट्त्रिचतुर्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। हल् आदिर्यस्याः सा हलादिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिरिति चानुवर्तते। 'अन्तोदात्ताद्' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता।

अर्थः-षट्संज्ञकेभ्यस्त्रिचतुर्भ्यां चोत्तरा हलादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता भवति।

उदा०-(षट्) षड्भिः, षड्भ्यः, षण्णाम्। पञ्चानाम्, सप्तानाम्। **(त्रिः)** त्रिभिः। त्रिभ्यः, त्रयाणाम्। **(चतुर्)** चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(षट्त्रिचतुर्भ्यः) षट्-संज्ञक और त्रि, चतुर् शब्दों से उत्तर (हलादिः) हल्-आदि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होती है।*

उदा०-(षट्) षड्भिः। छहों के द्वारा। षड्भ्यः। छहों के लिये/से। षण्णाम्। छहों का। पञ्चानाम्। पांचों का। सप्तानाम्। सातों का। (त्रि) त्रिभिः। तीनों के द्वारा। त्रिभ्यः। तीनों के लिये/से। त्रयाणाम्। तीनों का। (चतुर्) चतुर्भिः। चारों के द्वारा। चतुर्भ्यः। चारों के लिये/से। चतुर्णाम्। चारों का।

सिद्धि-(१) षड्भिः। षष्+भिस्। षड्+भिः। षड्भिः।

यहां 'षष्' शब्द की 'ष्णान्ता षट्' (१।१।२३) से 'षट्' संज्ञा है। इससे उत्तर हलादि 'भिस्' विभक्ति अन्तोदात्त होती है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार होता है। ऐसे ही-षष्+भ्यः=षड्भ्यः।

(२) षण्णाम्। षष्+आम्। षष्+नुट् आम्। षष्+न् आम्। षष्+नाम्। षष्+णाम्। षण्+णाम्। षण्णाम्।

यहां 'षट्चतुर्भ्यश्च' (७।१।५५) से 'आम्' को नुट् आगम, 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' (८।४।४४) से विकल्प से अनुनासिक आदेश प्राप्ति में वा०- 'यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यम्' (८।४।४४) से नित्य अनुनासिक (ण्) आदेश होता है। शेष स्वर-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-पञ्चानाम्, सप्तानाम्।

(३) त्रिभिः। त्रि+भिस्। त्रिभिः।

यहां 'त्रि' शब्द से उत्तर हलादि 'भिस्' विभक्ति अन्तोदात्त होती है। ऐसे ही-त्रि+भ्यस्=त्रिभ्यः। त्रि+आम्। त्रय+आम्। त्रय+नुट् आम्। त्रय+नाम्। त्रया+नाम् त्रयाणाम्। यहां 'त्रेस्त्रयः' (६।३।४८) से त्रि के स्थान में 'त्रय' आदेश होता है। 'नामि' (४।४।३) से दीर्घ और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

(४) चतुर्भिः। चतुर्+भिस्। चतुर्भिः।

यहां 'चतुर्' शब्द से उत्तर हलादि 'भिस्' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है। ऐसे ही-चतुर्+भ्यस्=चतुर्भ्यः। चतुर्+आम्। चतुर्+नुट् आम्। चतुर्+न् आम्। चतुर्+नाम्। चतुर्णाम्। यहां 'षट्चतुर्भ्यश्च' (७।१।५५) से आम् को 'नुट्' आगम और उसे 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है।

उपोत्तमोदात्तम्–

(२३) झल्युपोत्तमम्।१७७।

प०वि०-झलि ७।१ उपोत्तमम् १।१।

स०-त्रिप्रभृतीनामन्तिममक्षरमुत्तमम्, उत्तमस्य समीपम्-उपोत्तमम् (अव्ययीभावः)।

अनु०-उदात्तः, विभक्तिः, षट्त्रिचतुर्भ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षट्त्रिचतुर्भ्यो झलि विभक्तावुपोत्तममुदात्तम्।

अर्थः-षट्त्रिचतुर्भ्य उत्तरा या झलादिविभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तम-मक्षरमुदात्तं भवति।

उदा०-(षट्) पञ्चभिः {तपस्तपति} (तै०सं० ५।२।७।५)। सप्तभिः परान् जयति। (त्रिः) तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता (शौ०सं० ७।४।१)। **(चतुर्)** चतुर्भिः (यजु० २३।१३)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(षट्त्रिचतुर्भ्यः) षट्-संज्ञक त्रि और चतुर् शब्दों से उत्तर जो (झलि) झलादि (विभक्ति) है, उस पद में (उपोत्तमम्) उपोत्तम अक्षर (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-(षट्) **पञ्चभिः** {तपस्तपति} (तै०सं० ५।२।७।५)। **सप्तभिः परान् जयति**। (त्रिः) **तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता** (शौ०सं० ७।४।१)। (चतुर्) **चतुर्भिः** (यजु० २३।१३)।*

***सिद्धि-पञ्चभिः।** पञ्चन्+भिस्। पञ्च+भिस्। पञ्चभिः।*

*यहां 'पञ्चन्' शब्द की **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२३) से षट् संज्ञा है। इससे उत्तर झलादि 'भिस्' विभक्ति परे होने पर यहां 'पञ्चभिः' पद का उपोत्तम अक्षर उदात्त है। तीन अक्षरों में जो अन्तिम अक्षर होता है उसे उत्तम कहते हैं और उत्तम के समीपवर्ती अक्षर को 'उपोत्तम' कहा जाता है। अतः यहां उपोत्तम (अ) वर्ण उदात्त होकर **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से उदात्त से उत्तरवर्ती अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही-**सप्तभिः।***

*(२) **तिसृभिः।** त्रि+भिस्। तिसृ+भिस्। तिसृभिः।*

*यहां स्त्रीत्व-विवक्षा में **'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ'** (७।२।९९) से तिसृ-आदेश होता है। 'त्रिभिः' में तीन अक्षर न होने से 'उपोत्तम' अक्षर नहीं बनता है, अतः यह 'तिसृभिः' उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। स्वरकार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **चतुर्भिः।** चतुर्+भिस्। चतुर्भिः। पूर्ववत्।*

उपोत्तमोदात्त-विकल्पः-

(२४) विभाषा भाषायाम्।१७८।

प०वि०-विभाषा १।१ भाषायाम् ७।१।

अनु०-उदात्तः, विभक्तिः, षट्त्रिचतुर्भ्यः, झलि, उपोत्तमम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां षट्त्रिचतुर्भ्यो झलि विभक्तावुपोत्तमं विभाषा उदात्तम्।

अर्थ:-भाषायां विषये षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे विकल्पेनोपोत्तममुदात्तं भवति।

उदा०-(**षट्**) पञ्चभिः, पञ्चभिः। सप्तभिः, सप्तभिः। (**त्रि**) तिसृभिः, तिसृभिः। (**चतुर्**) चतुर्भिः, चतुर्भिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भाषायाम्) लौकिक भाषा विषय में (षट्त्रिचतुर्भ्यः) षट्-संज्ञक, त्रि और चतुर् शब्दों से उत्तर (झलि) जो झलादि (विभक्तिः) विभक्ति है, तदन्त पद में (विभाषा) विकल्प से (उपोत्तमम्) उपोत्तम अक्षर (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-(षट्) **पञ्चभिः**, **पञ्चभिः**। पांचों के द्वारा। **सप्तभिः**, **सप्तभिः**। सातों के द्वारा। (त्रि) **तिसृभिः**, **तिसृभिः**। तीन नारियों के द्वारा। (चतुर्) **चतुर्भिः**, **चतुर्भिः**। चारों के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **पञ्चभिः**। यहां षट्-संज्ञक 'पञ्चन्' शब्द से झलादि 'भिस्' प्रत्यय है। 'पञ्चभिः' इस पद में इस सूत्र से भाषा में उपोत्तम अक्षर उदात्त होता है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होकर **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही-**सप्तभिः**, **तिसृभिः**, **चतुर्भिः**।*

*(२) **पञ्चभिः**। इस पद में इस सूत्र से भाषा में विकल्प-पक्ष में उपोत्तम अक्षर उदात्त नहीं है। अतः **'षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः'** (६।१।१७३) से हलादि 'भिस्' विभक्ति अन्तोदात्त होती है। शेष पद पूर्ववत् अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**सप्तभिः**, **तिसृभिः**, **चतुर्भिः**।*

उक्तस्वर-प्रतिषेधः-

(२५) न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः।१७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, गो-श्वन्-साववर्ण (सौ+अवर्ण) राट्-अङ्-क्रुङ्-कृद्भ्यः ५।३।

स०-गौश्च श्वा च साववर्णश्च राट् च अङ् च क्रुङ् च कृच्च ते-गो०कृतः, तेभ्यः-गो०कृद्भ्यः।

अन्वय:-गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यो यदुक्तं तन्न।

अर्थ:-अस्मिन् स्वरप्रकरणे गो, श्वन्, साववर्ण=सौ प्रथमैकवचने यद् अवर्णान्तम्, राट्, अङ्, क्रुङ्, कृद् इत्येतेभ्यः शब्देभ्यो यदुक्तं तन्न भवति।

उदा०-(**गौः**) गवा, गवे, गोभ्याम्। सुगुना, सुगवे, सुगुभ्याम्। (**श्वा**) शुना, शुने, श्वभ्याम्। परमशुना, परमशुने, परमश्वभ्याम्। (**सावर्णः**) येभ्यः, तेभ्यः, केभ्यः। (**राट्**) राजा, परमराजे। (**अङ्**) प्राञ्चा, प्राङ्भ्याम्। (**क्रुङ्**) क्रुञ्चा, परमक्रुञ्चा। (**कृत्**) कृता, परमकृता।

आर्यभाषाः *अर्थ-इस स्वर प्रकरण में (गो०कृद्भ्यः) गो, श्वन्, सावर्ण=प्रथमा-विभक्ति के एकवचन 'सु' प्रत्यय परे होने पर जो अ-वर्णान्त है, वह शब्द, राट्, अङ्, क्रुङ् कृत् इन शब्दों से उत्तर जो स्वर विहित किया गया है, वह (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(गौ) **गवा**। गौ के द्वारा। **गवे**। गौ के लिये। **गोभ्याम्**। दो गौओं के लिये/से। **सुगुना**। उत्तम गौ वाले के द्वारा। **सुगवे**। उत्तम गौवाले के लिये। **सुगुभ्याम्**। दो उत्तम गौवालों के लिये/से। (श्वन्) **शुना**। कुत्ते के द्वारा। **शुने**। कुत्ते के लिये। **श्वभ्याम्**। दो कुत्तों के लिये/से। **परमशुना**। उत्तम कुत्तेवाले के द्वारा। **परमशुने**। उत्तम कुत्तेवाले के लिये। **परमश्वभ्याम्**। दो उत्तम कुत्तेवालों के लिये/से। (सावर्ण) प्रथमा-विभक्ति के एकवचन 'सु' प्रत्यय परे होने पर जो अ-वर्णान्त है-**येभ्यः**। जिनके लिये/से। **तेभ्यः**। उनके लिये/से। **केभ्यः**। किनके लिये/से। (राट्) **राजा**। राजा के द्वारा। **परमराजे**। उत्तम राजा के लिये। (अङ्) **प्राञ्चा**। पूर्व दिशा से। **प्राङ्भ्याम्**। दो पूर्व-दिशाओं से। (क्रुङ्) **क्रुञ्चा**। क्रौंच पक्षी के द्वारा। **परमक्रुञ्चा**। उत्तम क्रौंच पक्षी के द्वारा। (कृत्) **कृता**। कर्ता के द्वारा। **परमकृता**। उत्तम कर्ता के द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **गवा**। गो+टा। गव्+आ। गवा।*

*यहां 'गो' शब्द से 'टा' प्रत्यय है। '**सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः**' (६।१।१६२) से 'टा' विभक्ति को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था, उसका सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से 'गो' शब्द अन्तोदात्त है। '**अनुदात्तौ सुप्पितौ**' (३।१।४) से टा-विभक्ति अनुदात्त है अतः यही स्वर रहता है। **गवा**। '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६५) से अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही-**गवे, गोभ्याम्**।*

*(२) **सुगुना**। शोभना गावो यस्य सः-सुगुः, तेन-सुगुना।*

*यहां '**अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे**' (६।१।१६३) से 'टा' विभक्ति को विकल्प से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था, उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। अतः '**नञ्सुभ्याम्**' (६।२।१७१) से प्राप्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**सुगवे, सुगुभ्याम्**।*

*(३) **शुना**। श्वन्+टा। श् उ अन्+आ। शुन्+आ। शुना।*

*यहां 'श्वन्' शब्द से 'टा' प्रत्यय है। '**श्वयुवमघोनामतद्धिते**' (६।४।१३३) से सम्प्रसारण और '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०५) से अकार को पूर्वरूप एकादेश होता है। स्वर-कार्य 'गवा' के समान है।*

(४) परमशुनो। यहां 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-परमशुने, परमश्वभ्याम्।

(५) येभ्यः। यत्+भ्यस्। य अ+भ्यः। य+भ्यस्। ये+भ्यस्। येभ्यः।

'यत्' शब्द 'सु' (१।१) प्रत्यय परे होने पर 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अकार आदेश होने से अवर्णान्त है। 'बहुवचने झल्येत्' (७।३।१०३) से एकार आदेश होता है। स्वर-कार्य 'गवा' के समान है। ऐसे ही तत्+भ्यस्=तेभ्यः। किम्+भ्यस्=केभ्यः। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(६) राज्ञा। राज्+टा। राज्+आ। राज्ञा।

यहां स्वर-कार्य 'गवा' के समान है।

(७) परमराज्ञे। पूर्ववत्।

(८) प्राञ्चा। स्वर-कार्य 'गवा' के समान है। ऐसे ही-प्राञ्चे।

(९) क्रुञ्चा। स्वर-कार्य 'गवा' के समान है।

(१०) परमक्रुञ्चा। यहां 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है।

(११) कृता। स्वर-कार्य 'गवा' के समान है।

(१२) परमकृता। यहां 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्तोदात्त-प्रतिषेधः–

(२६) दिवो झल्।१८०।

प०वि०-दिवः ५।१ झल् १।१।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिवो झलादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता न।

अर्थः-दिव उत्तरा झलादिर्विभक्तिरन्तोदात्ता न भवति।

उदा०-द्युभ्याम्, द्युभिः।

आर्यभाषाः अर्थ-(दिवः) दिव् शब्द से उत्तर (झल्) झलादि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त (न) नहीं होती है।

उदा०-**द्युभ्याम्**। दो द्युलोकों से। **द्युभिः**। सब द्युलोकों से।

सिद्धि-द्युभ्याम्। दिव्+भ्याम्। दि उ+भ्याम्। द् य् उ+भ्याम्। द्युभ्याम्।

यहां 'दिव्' शब्द से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः' (६।१।१६२) तथा 'ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः' (६।१।१६५) से 'भ्यास्' विभक्ति को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था, इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। अतः यहां 'गवा' के समान स्वर-कार्य होता है। ऐसे ही-द्युभिः।

अन्तोदात्त-प्रतिषेधः-

(२७) नृ चान्यतरस्याम्।१८१।

प०वि०-नृ ५।१ (लुप्तपञ्चमीनिर्देशः) च अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अन्तः, उदात्तः, विभक्तिः, न, झल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नृ झलादिर्विभक्तिरन्यतरस्यामन्तोदात्ता न।

अर्थः-'नृ' इत्येतस्माद् उत्तरा झलादिर्विभक्तिर्विकल्पेनान्तोदात्ता न भवति।

उदा०-नृभिः, नृ॒भिः। नृभ्याम्, नृ॒भ्याम्। नृभ्यः, नृ॒भ्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नृ) 'नृ' इस शब्द से उत्तर (झल्) झलादि (विभक्तिः) विभक्ति (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**नृभिः, नृ॒भिः।** नरों के द्वारा। **नृभ्याम्, नृ॒भ्याम्।** दो नरों के लिये/से। **नृभ्यः, नृ॒भ्यः।** सब नरों के लिये/से।*

*सिद्धि-(१) **नृभिः।** यहां 'नृ' शब्द से उत्तर झलादि 'भिस्' विभक्ति विकल्प पक्ष में अन्तोदात्त नहीं होती है, अतः यह **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त होती है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से अनुदात्त के स्थान में स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही-**नृभ्याम्, नृभ्यः।***

*(२) **नृ॒भिः।** नृ+भिस्। नृभिः।*

*यहां 'नृ' शब्द से उत्तर झलादि 'भिस्' विभक्ति इस सूत्र से अन्तोदात्त होती है। ऐसे ही-**नृ॒भ्याम्, नृ॒भ्यः।***

।। इति अन्तोदात्तप्रकरणम्।।

स्वरित-विधिः

अन्तस्वरितम्-

(२८) तित् स्वरितम्।१८२।

प०वि०-तित् १।१ स्वरितम् १।१।

स०-त इद् यस्य स तित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तिद् अन्तः स्वरितम्।

अर्थः-तिद् अन्तः स्वरितो भवति।

उदा०-कर्तव्यम्, चिकीर्ष्यम्, जिहीर्ष्यम्, कार्यम्, हार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तित्) 'त' जिसका इत् है वह शब्द (अन्तः स्वरितम्) अन्त-स्वरित होता है।*

*उदा०-**कर्तव्यम्।** करना चाहिये। **चिकीर्ष्यम्।** चिकीर्षा के योग्य। **जिहीर्ष्यम्।** जिहीर्षा के योग्य। **कार्यम्।** करने के योग्य। **हार्यम्।** हरने के योग्य।*

सिद्धि-(१) कर्तव्यम्। *कृ+तव्यत्। कर्+तव्य। कर्तव्य+सु। कर्तव्यम्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। यह तित् होने से इस सूत्र से अन्त-स्वरित होता है, **'सार्वधातुकार्ध-धातुकयोः'** (७।३।८४) से इगन्त अंग को गुण होता है।*

*(२) **चिकीर्ष्यम्।** चिकीर्ष+यत्। चिकीर्ष्+य। चिकीर्ष्य+सु। चिकीर्ष्यम्।*

*यहां 'चिकीर्ष' धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। यह तित् होने से अन्त-स्वरित होता है। ऐसे ही 'जिहीर्ष' धातु से-**जिहीर्ष्यम्।** चिकर्ष और जिहीर्ष सन्नन्त धातु हैं।*

*(३) **कार्यम्।** कृ+ण्यत्। कार्+य। कार्य+सु। कार्यम्।*

*यहां 'कृ' धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय है। यह तित् होने से इस सूत्र से अन्त-स्वरित होता है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हार्यम्। 'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है।*

अनुदात्त-विधिः

अन्तानुदात्तम्-

(२६) तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुक-मनुदात्तमह्न्विङोः।१८३।

प०वि०-तासि-अनुदात्तेत्-ङित्-अदुपदेशात् ५।१ लसार्वधातुकम् १।१ अनुदात्तम् १।१ अह्नु-इङोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-अनुदात्त इद् यस्य सः-अनुदात्तेत्। ङ इद् यस्य सः-ङित्। अच्चासावुपदेशः- अदुपदेशः। तासिश्च, अनुदात्तेच्च, ङिच्च, अदुपदेशश्च एतेषां समाहारः-तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशम्, तस्मात्-तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशात्

(बहुव्रीहिकर्मधारयगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। लस्य सार्वधातुकम्-लसार्वधातुकम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। ह्नुश्च इङ् च तौ ह्न्विङौ, न ह्न्विङ्गौ-अह्न्विङौ, तयोः-अह्न्विङोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अन्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तासि-अनुदात्तेत्-ङित्-अदुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अन्तोऽनुदात्तम्, अह्न्विङोः।

अर्थः-तासेरनुदात्तेतो ङितोऽकारोपदेशाच्चोत्तरं ल-सार्वधातुकमन्तानुदात्तं भवति, ह्नु-इङ्भ्यां परं वर्जयित्वा।

उदा०-(**तासिः**) कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। (**अनुदात्तेत्**) आस्ते, वस्ते। (**ङित्**) सूते, शेते। (**अदुपदेशः**) तुदतः, नुदतः, पचतः, पठतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तासि०अदुपदेशात्) तासि प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, ङित् धातु और पाणिनीय उपदेश में अ-वर्णवान् शब्द से उत्तर (लसार्वधातुकम्) लकार के स्थान में जो सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय है, वह (अन्तः, अनुदात्तम्) अन्त अनुदात्त होता है।*

*उदा०-(तासि) **कर्ता**। वह कल करेगा। **कर्तारौ**। वे दोनों कल करेंगे। **कर्तारः**। वे सब कल करेंगे। (अनुदात्तेत्) **आस्ते**। वह बैठता है। **वस्ते**। वह ढकता है। (ङित्) **सूते**। वह सूती (ब्याती) है। **शेते**। वह सोता है। (अदुपदेश) **तुदतः**। वे दोनों पीड़ा देते हैं। **नुदतः**। वे दोनों प्रेरणा करते हैं। **पचतः**। वे दोनों पकाते हैं। **पठतः**। वे दोनों पढ़ते हैं।*

*सिद्धि-(१) **कर्ता**। कृ+लुट्। कृ+तासि+त। कृ+तास्+त। कृ+तास्+डा। कृ+त्+आ। कर्+त्+आ। कर्ता।*

*यहां 'कृ' धातु से 'लुट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'तासि' विकरण प्रत्यय होता है। 'ल' के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से त-आदेश है और इसकी **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) से सार्वधातुक संज्ञा है। 'तास्' से उत्तर यह ल-सार्वधातुक 'त' प्रत्यय इस सूत्र से अनुदात्त है। **'लुटः प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से 'त' के स्थान में 'डा' आदेश होता है। वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'तास्' के टि-भाग (आस्) का लोप होता है। यहां अनुदात्त 'त' प्रत्यय के परे होने पर उदात्त 'आस्' का लोप होने से **'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'** (६।१।१६१) से अनुदात्त 'त' उदात्त हो जाता है।*

*(२) **कर्तारौ**। यहां 'तासि' से उत्तर ल-सार्वधातुक 'आताम्' के स्थान में 'रौ' आदेश अनुदात्त है, इसे **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से स्वरित होता है।*

'रि च' (७।४।५१) से 'तास्' के सकार का लोप होता है। ऐसे ही 'झ' के स्थान में 'रस्' आदेश होने पर-कर्तारः।

(३) आस्ते। आस्+लट्। आस्+त। आस्+शप्+त। आस्+०+त। आस्ते।

यहां अनुदात्तेत्=आत्मनेपद 'आस् उपवेशने' (अदा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इसके ल-सार्वधातुक 'त' प्रत्यय को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से उसे स्वरित होता है। ऐसे ही- 'वस आच्छादने' (अदा०आ०) धातु से-वस्ते।

(४) सूते। सू+लट्। सू+त। सू+शप्+त। सू+०+त। सूते।

यहां 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) इस ङित् धातु से लट् प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से-शेते।

(५) तुदतः। तुद्+लट्। तुद्+तस्। तुद्+श+तस्। तुद्+अ+तस्। तुदतः।

यहां 'तुद व्यथने' (तु०प०) इस उपदेश में अ-वर्णवान् धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस अ-वर्णवान् धातु से उत्तर ल-सार्वधातुक 'तस्' प्रत्यय इस सूत्र से अनुदात्त होता है। शेष स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(६) नुदतः। 'णुद प्रेरणे' (तु०प०) पूर्ववत्।

(७) पचतः। पच्+लट्। पच्+तस्। पच्+शप्+तस्। पच्+अ+तस्। पचतः।

यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय होता है। इस अ-वर्णवान् धातु से उत्तर है ल-सार्वधातुक 'तस्' प्रत्यय अनुदात्त होता है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से 'शप्' प्रत्यय भी अनुदात्त है। अतः 'धातोः' (६।१।१६२) से 'पच्' धातु को उदात्त होकर 'शप्' के अनुदात्त अकार को 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से स्वरित होता है और स्वरित से उत्तर 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से अनुदात्त 'तस्' प्रत्यय एकश्रुति स्वर में रहता है। ऐसे ही 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से-पठतः।

ह्नुङ् और इङ् धातु का प्रतिषेध इसलिये किया है कि यहां 'ल-सार्वधातुक' को अनुदात्त न हो-ह्नुते, अधीते।

आद्युदात्तप्रकरणम्

आद्युदात्त-विकल्पः-

(३०) आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्।१८४।

प०वि०-आदिः १।१ सिचः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सिचोऽन्यतरस्याम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-सिज्वतः शब्दस्य विकल्पेनादिरुदात्तो भवति।

उदा०-मा हि कार्ष्टाम्, मा हि कार्ष्टाम्। एकोऽत्राद्युदात्तः, अपरोऽन्तोदात्तः। मा हि लाविष्टाम्, मा हि लाविष्टाम्। एकोऽत्राद्युदात्तः, अपरो मध्योदात्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सिचः) सिच्वाले शब्द को (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**मा हि कार्ष्टाम्। मा हि कार्ष्टाम्।** उन दोनों ने नहीं किया। यहां पहला सिच्वाला शब्द आद्युदात्त और दूसरा अन्तोदात्त है। **मा हि लाविष्टाम्, मा हि लाविष्टाम्।** उन दोनों ने नहीं काटा। यहां पहला सिच्वाला शब्द आद्युदात्त और दूसरा मध्योदात्त है।*

*सिद्धि-(१) **मा हि कार्ष्टाम्।** माङ्+कृ+लुङ्। मा+कृ+च्लि+ल्। मा+कृ+सिच्+तस्। मा+कृ+स्+ताम्। मा+कार्+ष्+टाम्। मा कार्ष्टाम्।*

*यहां 'कृ' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, इसे च्लि विकरण-प्रत्यय और '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में सिच् आदेश है। यह सिच्वाला 'कार्ष्टाम्' शब्द इस सूत्र से आद्युदात्त होता है। '**न माङ्योगे**' (६।४।७४) से अट् आगम नहीं होता है। '**सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु**' (७।२।१) से अंग को वृद्धि (आर्) होती है। '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से टुत्व होता है।*

*(२) **मा हि कार्ष्टाम्।** यहां विकल्प पक्ष में सिच्वाला 'कार्ष्टाम्' शब्द '**आद्युदात्तश्च**' (३।१।३) से 'ताम्' प्रत्यय आद्युदात्त होकर, अन्तोदात्त होता है।*

*(३) **मा हि लाविष्टाम्।** यहां सिच्वाला 'लाविष्टाम्' शब्द इस सूत्र से आद्युदात्त है।*

*(४) **मा हि लाविष्टाम्।** लू+लुङ्। लू+च्लि+ल्। लू+सिच्+तस्। लू+इट्+स्+ताम्। लौ+इ+ष्+टाम्। लाविष्टाम्।*

*यहां 'सिच्' के चित् होने से '**चितः**' (६।१।१५८) से अन्तोदात्त होकर इसे मध्योदात्त स्वर होता है-**लाविष्टाम्।** इट् आगम 'सिच्' का भक्त होने से यह '**आगमा अनुदात्ता भवन्ति**' इस आप्त-वचन से अनुदात्त नहीं होता है।*

आद्युदात्त-विकल्पः-

(३१) स्वपादिहिंसामच्यनिटि।१८५।

प०वि०-स्वपादि-हिंसाम् ६।१ अचि ७।१ अनिटि ७।१।

स०-स्वप आदिर्येषां ते स्वपादयः, स्वपादयश्च, हिंस् च ते स्वपादिहिंसः, तेषाम्-स्वपादिहिंसाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न इड् विद्यते यस्य सः-अनिट्, तस्मिन्-अनिटि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, लसार्वधातुकम्, आदिः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते। 'लसार्वधातुकम्' इति चार्थवशादिह सप्तम्यां विपरिणम्यते।

अन्वयः-स्वपादिहिंसाम् अच्यनिटि लसार्वधातुकेऽन्तरस्याम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-स्वपादीनां हिंसेश्च धातोरजादावनिटि लसार्वधातुके प्रत्यये परतो विकल्पेनादिरुदात्तो भवति, पक्षे च प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तो भवति।

उदा०-(स्वपादिः) स्वपन्ति, स्वपन्ति। श्वसन्ति, श्वसन्ति, इत्यादिकम्। **(हिंसः)** हिंसन्ति, हिंसन्ति।

ञिष्वप् शये। श्वस प्राणने। अन च। जक्ष भक्षहसनयोः। जागृ निद्राक्षये। दरिद्रा दुर्गतौ। चकासृ दीप्तौ। शासु अनुशिष्टौ। दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः। वेवीङ् वेतिना तुल्ये। षस, सस्ति स्वप्ने। वश कान्तौ। चर्करीतं च। ह्नुङ् अपनयने। इति अदादिगणान्तर्गताः स्वपादयो धातवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्वपादिहिंसाम्) स्वप आदि तथा हिंस धातु को (अचि) अजादि (अनिटि) इट् से रहित (लसार्वधातुके) ल-सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है और पक्ष में प्रत्यय स्वर से मध्योदात्त होता है।*

उदा०-(स्वपादि) ***स्वपन्ति, स्वपन्ति।*** *वे सब सोते हैं।* ***श्वसन्ति, श्वसन्ति।*** *वे सब सांस लेते हैं इत्यादि।* ***(हिंस) हिंसन्ति, हिंसन्ति।*** *वे सब हिंसा करते हैं।*

सिद्धि-(१) ***स्वपन्ति।*** *स्वप्+लट्। स्वप्+झि। स्वप्+अन्ति। स्वप्+शप्+अन्ति। स्वप्+०+अन्ति। स्वपन्ति।*

यहां 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि, अनिट्, लसार्वधातुक झि (अन्ति) प्रत्यय परे होने पर 'स्वप्' धातु को आद्युदात्त होता है। ऐसे ही- ***श्वसन्ति, हिंसन्ति।***

(२) ***स्वपन्ति।*** *यहां 'स्वप्' धातु विकल्प पक्ष में आद्युदात्त नहीं होता, अपितु* ***'आद्युदात्तश्च'*** *(३।१।३) से झि (अन्ति) आद्युदात्त होता है। अतः इस प्रत्यय स्वर से मध्योदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-* ***श्वसन्ति, हिंसन्ति।***

आद्युदात्तः-

(३२) अभ्यस्तानामादिः।१८६।

प०वि०-अभ्यस्तानाम् ६।३ आदिः १।१।

अनु०-उदात्तः, लसार्वधातुकम्, अचि, अनिटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यस्तानाम् अच्यनिटि लसार्वधातुके आदिरुदात्तः।

अर्थः-अभ्यस्तानां धातूनाम् अजादावनिटि लसार्वधातुके प्रत्यये परत आदिरुदात्तो भवति। आदिरित्यनुवर्तमाने पुनरादिवचनं नित्यार्थं वेदितव्यम्।

उदा०-ददति, ददतु। दधति, दधतु। जक्षति, जक्षतु। जाग्रति, जाग्रतु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यस्तानाम्) अभ्यस्त-संज्ञक धातुओं को (अचि) अजादि (अनिटि) इट् से रहित (लसार्वधातुके) ल-सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय पर होने पर (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है। 'आदि' पद की अनुवृत्ति में पुनः 'आदि' शब्द का कथन नित्यविधि के लिये है।*

*उदा०-**ददति।** वे सब देते हैं। **ददतु।** वे सब देवें। **दधति।** वे सब धारण-पोषण करते हैं। **दधतु।** वे सब धारण-पोषण करें। **जक्षति।** वे सब खाते/हंसते हैं। **जक्षतु।** वे सब खावें/हंसें। **जाग्रति।** वे सब जागते हैं। **जाग्रतु।** वे सब जागें।*

***सिद्धि-(१) ददति।** दा+लट्। दा+झि। दा+शप्+झि। दा-दा+०+अति। द-द्+अति। ददति।*

*यहां '**डुदाञ् दाने**' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' ३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और उसे '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से श्लु (लोप) होता है। 'श्लौ' से 'दा' धातु को द्वित्व होता है। '**उभे अभ्यस्तम्**' (६।१।५) से इसकी अभ्यस्त संज्ञा होने से इस सूत्र से इसे आद्युदात्त होता है। '**अदभ्यस्तात्**' (७।१।४) से 'झि' के 'झ्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (अ) और '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से आकार का लोप होता है।*

***(२) दधति।** '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

***(३) जक्षति।** '**जक्ष भक्षहसनयोः**' (अदा०प०)। '**जक्षित्यादयः षट्**' (६।१।६) से 'जक्ष' धातु की अभ्यस्त संज्ञा है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

(४) जाग्रति। 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।

'ददतु' आदि प्रयोग लोट् लकार के हैं। उन्हें 'एरुः' (३।४।८६) से 'लि' प्रत्यय के इकार को उकार आदेश होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

आद्युदात्तः–

(३३) अनुदात्ते च।१८७।

प०वि०–अनुदात्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–अविद्यमानमुदात्तं यस्मिँस्तद् अनुदात्तम्, तस्मिन्–अनुदात्ते (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, आदिः, लसार्वधातुकम्, अभ्यस्तानाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यस्तानाम् अनुदात्ते लसार्वधातुके चादिरुदात्तः।

अर्थः–अभ्यस्तानां धातूनामनुदात्ते लसार्वधातुके च प्रत्यये परत आदिरुदात्तो भवति।

उदा०–ददाति। जहाति। दधाति। जिहीते। मिमीते।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अभ्यस्तानाम्) अभ्यस्त धातुओं को (अनुदात्ते) उदात्त से रहित (लसार्वधातुके) ल-सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**ददाति**। वह देता है। **जहाति**। वह छोड़ता है। **दधाति**। वह धारण-पोषण करता है। **जिहीते**। वह गति करता है। **मिमीते**। वह मापता है।*

सिद्धि–*(१) **ददाति**। दा+लट्। दा+तिप्। दा+शप्+ति। दा+०+ति। दा-दा+ति। द-दा+ति। ददाति।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय और **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से उसको श्लु (लोप) होता है। **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'दा' धातु को द्वित्व होकर **'उभे अभ्यस्तम्'** (६।१।५) से इसकी अभ्यस्त संज्ञा होती है। इस सूत्र से इस अभ्यस्त-संज्ञक धातु को अनुदात्त ल-सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर आद्युदात्त होता है। 'तिप्' **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त है।*

*(२) **जहाति**। हा+लट्। हा+तिप्। हा+शप्+ति। हा+०+ति। हा-हा+ति। ह+हा+ति। झ-हा+ति। ज-हा+ति। जहाति।*

*यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से हकार को चुत्व झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से जश् जकार होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत्।*

*(३) **दधाति।** धा+लट्। धा+तिप्। धा+शप्+ति। धा+०+ति। धा-धा+ति। ध-धा+ति। द-धा+ति। दधाति।*

*यहां **'डुधाञ् धारण-पोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५३) से अभ्यास को जश् दकार होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **जिहीते।** हा+लट्। हा+त। हा+शप्+त। हा+०+त। हा-हा+त। ह-हा+त। हि-ही+त। झि-ही+त। जि+ही+ते। जिहीते।*

*यहां **'ओहाङ् गतौ'** (जु०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'भृञामित्'** (७।४।७६) से अभ्यास के अकार को इत्व और **'जहातेश्च'** (६।४।११६) से 'हा' को इत्व होता है। शेष कार्य 'जहाति' के समान है। **'तास्यनुदात्तेत्०'** (६।१।१८०) से ल-सार्वधातुक 'त' प्रत्यय अनुदात्त है। शेष स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **मिमीते।** यहां **'माङ् माने'** (दि०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'भृञामित्'** (७।४।७६) से अभ्यास के अकार को इत्व और **'ई हल्यघोः'** (६।४।११३) से 'मा' को ईत्व होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*अनुदात्त पद में बहुव्रीहि समास इसलिये किया है कि **'मा हि स्म दधात्'** यहां तिप् प्रत्यय का लोप होने पर भी आद्युदात्त हो जाये क्योंकि यहां 'तिप्' का 'त्' उदात्त गुण से रहित है।*

आद्युदात्तः–

(३४) सर्वस्य सुपि।१८८।

प०वि०–सर्वस्य ६।१ सुपि ७।१।

अनु०–उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–सर्वस्य सुपि आदिरुदात्तः।

अर्थः–सर्व–शब्दस्य सुपि प्रत्यये परत आदिरुदात्तो भवति।

उदा०–सर्वः। सर्वौ। सर्वे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सर्वस्य) सर्व शब्द को (सुपि) सुप् प्रत्ययों के परे होने पर (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**सर्वः।** एक सब ने। **सर्वौ।** दो सबों ने। **सर्वे।** सबों ने।*

*सिद्धि–**सर्वः।** सर्व+सु। सर्व+स्। सर्वः।*

*यहां 'सर्व' शब्द से सुप्-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इसके परे होने पर 'सर्व' शब्द इस सूत्र से आद्युदात्त होता है। ऐसे ही–**सर्वौ, सर्वे।***

प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तम्–

(३५) भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति।१८६।

प०वि०- भी-ह्री-भृ-हु-मद-जन-धन-दरिद्रा-जागराम् ६।३ प्रत्ययात् ५।१ पूर्वम् १।१ पिति ७।१।

स०-भीश्च ह्रीश्च भृश्च हुश्च मदश्च जनश्च धनश्च दरिद्राश्च जागृश्च ते-भी०जागरः तेषाम्-भी०जागराम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प इद् यस्य स पित्, तस्मिन्-पिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, लसार्वधातुकम्, अभ्यस्तानाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यस्तानां भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां पिति लसार्वधातुके प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तम्।

अर्थः-अभ्यस्तसंज्ञकानां भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां धातूनां पिति लसार्वधातुके प्रत्यये परतः प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवति।

उदा०-(भीः) बिभेति। **(ह्रीः)** जिह्रेति। **(भृः)** बिभर्ति। **(हुः)** जुहोति। **(मदः)** ममत्तु नः परिज्मा (तै०सं० २।१।११।१)। **(जनः)** जजनदिन्द्रम् (तै०आ० ३।२।१)। **(धनः)** दधनत् (तै०ब्रा० २।८।३।५)। **(दरिद्राः)** दरिद्राति। **(जागृः)** जागर्ति।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अभ्यस्तानाम्) अभ्यस्त-संज्ञक (भी०जागराम्) भी, ह्री, भृ, मद, जन, धन, दरिद्रा, जागृ धातुओं को (पिति) पित् (लसार्वधातुके) ल-सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर (प्रत्ययात्) प्रत्यय से (पूर्वम्) पूर्ववर्ती अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-(भी) **बिभेति।** वह डरता है। (ह्री) **जिह्रेति।** वह लज्जा करती है। (भृ) **बिभर्ति।** वह धारण-पोषण करता है। (हु) **जुहोति।** वह यज्ञ करता है। (मद) **ममत्तु** नः परिज्मा (तै०सं० २।१।११।१)। ममत्तु=वह हर्षित करे। (जन) **जजनदिन्द्रम्** (तै०आ० ३।२।१)। जजनत्=वह उत्पन्न करे। (धन) **दधनत्** (तै०ब्रा० २।८।३।५)। वह धनी होते हैं। (दरिद्रा) **दरिद्राति।** वह दुर्गत होता है। (जागृ) **जागर्ति।** वह जागता है।*

सिद्धि-बिभेति। *भी+लट्। भी+तिप्। भी+शप्+ति। भी+०+ति। भी-भी+ति।* ***बि+भे+ति।*** *बिभेति।*

यहां 'ञिभी भये' (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'भी' धातु को द्वित्व होकर 'उभे अभ्यस्ताम्' (६।१।५) से इसकी अभ्यस्त संज्ञा होती है। इस अभ्यस्त 'भी' धातु को पित्, ल-सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'तिप्' प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से अभ्यास के भकार को जश् बकार होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से इगन्त अंग को गुण होता है।

(२) जिह्रेति। ह्री+लट्। ह्री+तिप्। ह्री+शप्+ति। ह्री+०+ति। ह्री-ह्री+ति। झि+ह्री+ति। जिह्रे+ति। जिह्रेति।

यहां 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०) धातु से लट् प्रत्यय है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'ह्री' को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से 'ही' शेष, 'ह्रस्वः' ७।४।५९) से ह्रस्व 'हि' 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से हकार को कवर्ग झकार और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से झकार को जश् जकार होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(३) बिभर्ति। भृ+लट्। भृ+तिप्। भृ+शप्+ति। भृ+० ति। भृ-भृ+ति। भि-भर्+ति। बि-भर्+ति। बिभर्ति।

यहां 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इत्व होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(४) जुहोति। हु+लट्। हु+तिप्। हु+शप्+ति। हु+०+ति। हु-हु+ति। झु-हु+ति। जु-हो+ति। जुहोति।

यहां 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से झकार को जश् जकार होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(५) ममत्तु। मद्+लोट्। मद्+तिप्। मद्+श्यन्+ति। मद्+०+ति। मद्-मद्+तु। म-मद्+तु। ममत्तु।

यहां 'मदी हर्षे' (दि०प०) धातु से 'लोट्' प्रत्यय है। 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से छन्द में बहुलवचन से 'श्यन्' को 'श्लु' होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से मद् धातु को द्वित्व और 'एरुः' (३।४।८६) से 'तिप्' के इकार को उकार आदेश होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(६) जजनत्। जन्+लेट्। जन्+तिप्। जन्+श्यन्+ति। जन्+० अट्+ति। जन्-जन्+अ+त्। ज+जन्+अ+त्। जजनत्।

यहां 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय है। 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से छन्द में बहुल-वचन से 'श्यन्' विकरण प्रत्यय को 'श्लु' होकर 'श्लौ'

(६।१।१०) से 'जन्' धातु को द्वित्व होता है। 'लेटोऽडाटौ' (३।४।९४) से 'अट्' आगम 'इतश्च' (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'व्यत्ययो बहुलम्' (३।१।८५) से आत्मनेपद धातु से व्यत्यय से परस्मैपद होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(७) दधनत्। यहां 'धन धान्ये' (जु०प०) धातु से 'लेट्' प्रत्यय है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५३) से अभ्यास के धकार को जश् दकार आदेश होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(८) दरिद्राति। यहां 'दरिद्रा दुर्गतौ' (अ०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(९) जागर्ति। यहां 'जागृ निद्राक्षये' (अ०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तम्–

(३६) लिति।१९०।

वि०–लिति ७।१।

स०–ल इद् यस्य स लित्, तस्मिन्-लिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, प्रत्ययात्, पूर्वम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लिति प्रत्ययात् पूर्वम् उदात्तम्।

अर्थः–लिति=लकारेत्संज्ञके शब्दे प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवति।

उदा०–चिकीर्षकः। जिहीर्षकः। भौरिकिविधम्। भौलिकिविधम्। ऐषुकारिभक्तम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(लिति) लकार इत्संज्ञावाले शब्द में (प्रत्ययात्) प्रत्यय से (पूर्वम्) पूर्ववर्ती अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**चिकीर्षकः।** करने का इच्छुक। **जिहीर्षकः।** हरने का इच्छुक। **भौरिकिविधम्।** भौरिकि जनों का देश। **भौलिकिविधम्।** भौलिकि जनों का देश। **ऐषुकारिभक्तम्।** ऐषुकारि जनों का देश।*

*सिद्धि–**चिकीर्षकः।** चिकीर्ष+ण्वुल्। चिकीर्ष+वु। चिकीर्ष्+अक। चिकीर्षक+सु। चिकीर्षकः।*

*यहां सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से इस सूत्र से 'चिकीर्षकः' इस पद में प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। ऐसे ही–**जिहीर्षकः।***

*(२) **भौरिकिविधम्।** भौरिकि+विधल्। भौरिकि+विध। भौरिकिविध+सु। भौरिकिविधम्।*

*यहां भौरिकि शब्द से विषय (देश) अर्थ में **'भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ'** (४।२।५४) से 'विधल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। ऐसे ही-**भौलिकिविधम्।***

*(३) **ऐषुकारिभक्तम्।** ऐषुकारि+भक्तल्। ऐषुकारि+भक्त। ऐषुकारिभक्त+सु। ऐषुकारिभक्तम्।*

यहां 'ऐषुकारि' शब्द से विषय (देश) अर्थ में पूर्ववत् 'भक्तल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से 'ऐषुकारिभक्तम्' इस पद में प्रत्यय से पूववर्ती अच् उदात्त होता है।

प्रत्ययात् पूर्वमुदात्त-विकल्पः–

(३७) आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम्।१६१।

प०वि०–आदिः १।१ णमुलि ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–धातोर्णमुल्यन्यतरस्यामादिरुदात्तः।

अर्थः–धातोर्णमुलि परतो विकल्पेनादिरुदात्तो भवति, पक्षे च प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवति।

उदा०–लोलूयंलोलूयम्, लोलूयंलोलूयम्। पोपूयंपोपूयम्, पोपूयं-पोपूयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थः-(धातोः) धातु को (णमुलि) णमुल् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**लोलूयंलोलूयम्।** पुनः पुनः/अधिक काट-काटकर। **लोलूयंलोलूयम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **पोपूयंपोपूयम्।** पुनः पुनः/अधिक पवित्र-पवित्र करके। **पोपूयंपोपूयम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**लोलूयंलोलूयम्।** लू+यङ्। लूय-लूय। लो-लूय। लोलूय+णमुल्। लोलूय+अम्। लोलूयम्। लोलूयंलोलूयम्।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से प्रथम **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। यङन्त 'लोलूय' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से द्वित्व होता है। **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) द्विरुक्त के परवर्ती शब्द रूप की आम्रेडित संज्ञा होती है और वह **'अनुदात्तं च'** (८।१।३) से अनुदात्त होता है। इस सूत्र से 'लोलूय' धातु को णमुल् प्रत्यय परे होने पर आद्युदात्त होता है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त और **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से उदात्त से उत्तर*

अनुदात्त को स्वरित होता है। 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से स्वरित से उत्तर समस्त अनुदात्तों की एकश्रुति होती है।

(२) लोलूयंलोलूयम्। यहां विकल्प पक्ष में 'णमुल्' प्रत्यय के लित् होने से 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। शेष स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

*ऐसे ही 'पूञ् पवने' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्-**पोपूयंपोपूयम्, पोपूयंपोपूयम्।***

आद्युदात्त-विकल्पः--

(३८) अचः कर्तृयकि।१६२।

प०वि०-अचः ५।१ कर्तृ-यकि ७।१।

स०-कर्तरि विहितो यक्-कर्तृयक्, तस्मिन्-कर्तृयकि (सप्तमी-तत्पुरुषः)।

अनु०-'**आदेच उपदेशेऽशिति**' (६।१।४४) इत्यस्माद् 'उपदेशे' इति पदं मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्। उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशेऽचः कर्तृयकि अन्यतरस्यामादिरुदात्तः।

अर्थः-उपदेशे येऽजन्ता धातवस्तेषां कर्तृवाचिनि यकि परतो विकल्पेनादिरुदात्तो भवति, पक्षे च '**तास्यनुदात्तेन्ङिन्ददुपदेशात्०**' (६।१।१८०) इति लसार्वधातुकमनुदात्तं भवति।

उदा०-लूयते केदारः स्वयमेव, लूयते केदारः स्वयमेव। स्तीर्यते केदारः स्वयमेव, स्तीर्यते केदारः स्वयमेव।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनि मुनि के उपदेश में (अजन्ताः) जो अजन्त धातु हैं उन्हें (कर्तृयकि) कर्तृवाची यक् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**लूयते केदारः स्वयमेव, लूयते केदारः स्वयमेव।** केदार=खेत स्वयं ही कट रहा है। **स्तीर्यते केदारः स्वयमेव, स्तीर्यते केदारः स्वयमेव।** केदार=खेत स्वयं ही आच्छादित हो रहा है।*

*सिद्धि-(१) **लूयते।** लू+लट्। लू+त। लू+यक्+त। लू+य+ते। लूयते।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से कर्मकर्तृवाच्य में लट् प्रत्यय है। कर्मवद्भाव से '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से यक् विकरण-प्रत्यय है। अतः कर्मकर्तृवाची 'यक्' प्रत्यय परे होने पर अजन्त 'लू' धातु को इस सूत्र से आद्युदात्त होता है।*

(२) स्तीर्यते। यहां 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से लट् प्रत्यय और पूर्ववत् यक् विकरण-प्रत्यय है। 'ऋत इद् धातोः' (७।१।१००) से इत्त्व और इसे 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

(३) लूयते। यहां विकल्प पक्ष में 'तास्यनुदात्तेन्ङिद्दुपदेशात्०' (६।१।१८०) से ल-सार्वधातुक 'त' प्रत्यय अनुदात्त होता है। 'यक्' विकरण-प्रत्यय 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से उदात्त है। अतः 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

(४) स्तीर्यते। 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से विकल्प पक्ष में पूर्ववत्।

आद्युदात्तादि-विकल्पः—

(३६) थलि च सेटीडन्तो वा।१६३।

प०वि०-थलि ७।१ च अव्ययपदम्, सेटि ७।१ इट् १।१ अन्तः १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-इटा सह वर्तते इति सेट्, तस्मिन्-सेटि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, आदिः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सेटि थलि इड् च उदात्तः, अन्तो वाऽऽदिरन्यतरस्याम्।

अर्थः-सेटि थलि च इडुदात्तो भवति, विकल्पेन चादिरुदात्तो भवति। पक्षे च 'लिति' इति प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवति।

उदा०-**(इट्-उदात्तः)** लुलविथ। **(अन्तोदात्तः)** लुलविथ। **(आद्युदात्तः)** लुलविथ। **(प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तम्)** लुलविथ। एवं पर्यायेण चत्वार उदात्ता भवन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सेटि) इट्-सहित वाले (थलि) थलन्त पद में (च) भी (इट्) इट् (उदात्तः) उदात्त होता है और (वा) अथवा (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है और (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है और पक्ष में 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् (उदात्तः) उदात्त होता है। इस प्रकार पर्याय से चार उदात्त होते हैं।*

उदा०-(इट्-उदात्त) लुलविथ। (अन्तोदात्त) लुलविथ। (आद्युदात्त) लुलविथ। (प्रत्यय से पूर्व उदात्त) लुलविथ। तूने काटा।

सिद्धि-लुलविथ। लू+लिट्। लू+सिप्। लू+थल्। लू-लू+इट्+थ। लू-लो+इ+थ। लुलविथ।

यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। 'कृसृभृ०' (७।२।१३) इस कृ-आदि नियम से थल् को इट् आगम होता है। 'लुलविथ' इस सेट् थलन्त पद में प्रथम 'इट्' उदात्त होता है-लुलविथ। तत्पश्चात् यह अन्तोदात्त होता है-लुलविथ। पुन: यह विकल्प से आद्युदात्त होता है-लुलविथ। विकल्प पक्ष में 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है-लुलविथ। इस प्रकार यहां पर्याय से चार उदात्त होते हैं।

नित्यमाद्युदात्त:-

(४०) ञ्नित्यादिर्नित्यम्।१६४।

प०वि०-ञ्निति ७।१ आदि: १।१ नित्यम् १।१।

स०-ञश्च नश्च तौ ञ्नौ, इच्च इच्च तौ-इतौ, ञ्नौ इतौ यस्य स ञ्नित्, तस्मिन्-ञ्निति (इतरेतरद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहि:)।

अनु०-उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-ञ्निति नित्यमादिरुदात्त:।

अर्थ:-ञित्प्रत्ययान्ते नित्प्रत्ययान्ते च पदे नित्यमादिरुदात्तो भवति। प्रत्ययस्वरापवादोऽयम्।

उदा०-**(ञित्)** गार्ग्य:, वात्स्य:। **(नित्)** वासुदेवक:, अर्जुनक:।

***आर्यभाषा:* *अर्थ*-(ञ्निति) ञित्-प्रत्ययान्त और नित्-प्रत्ययान्त पद में (नित्यम्) सदा (आदि:, उदात्त:) आद्युदात्त होता है।**

*उदा०-**(ञित्)** **गार्ग्य:।** गर्ग का पौत्र। **वात्स्य:।** वत्स का पौत्र। **(नित्)** **वासुदेवक:।** वासुदेव=कृष्ण का सेवक। **अर्जुनक:।** अर्जुन का सेवक।*

***सिद्धि*-(१) *गार्ग्य:।* गर्ग+यञ्। गार्ग्+य। गार्ग्य+सु। गार्ग्य:।**

*यहां 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है। इस ञित्-प्रत्ययान्त पद को इस सूत्र से नित्य आद्युदात्त होता है। ऐसे ही 'वत्स' शब्द से-**वात्स्य:।***

*(२) **वासुदेवक:।** वासुदेव+वुन्। वासुदेव+क। वासुदेवक+सु। वासुदेवक:।*

*यहां 'वासुदेव' शब्द से **'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'** (४।३।९८) से 'वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। इस नित्-प्रत्ययान्त पद को इस सूत्र से नित्य आद्युदात्त होता है।*

आद्युदात्तः–

(४१) आमन्त्रितस्य च।१६५।

प०वि०–आमन्त्रितस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आमन्त्रितस्य चादिरुदात्तः।

अर्थः–आमन्त्रितस्य पदस्य चादिरुदात्तो भवति।

उदा०–दे॒वदत्त ! दे॒वदत्तौ ! दे॒वदत्ताः !

आर्यभाषाः *अर्थ-(आमन्त्रितस्य) आमन्त्रित=सम्बोधन के पद को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–दे॒वदत्त ! हे एक देवदत्त ! **दे॒वदत्तौ।** हे दो देवदत्तो ! **दे॒वदत्ताः।** हे सब देवदत्तो !*

सिद्धि–दे॒वदत्त ! देवदत्त+सु। देवदत्त+०। देवदत्त !

*यहां देवदत्त' शब्द से प्रथमा-एकवचन 'सु' प्रत्यय है। '**साऽऽमन्त्रितम्**' (२।३।४८) से प्रथमा-विभक्ति की आमन्त्रित संज्ञा भी है और उसके एकवचन की '**एकवचनं सम्बुद्धिः**' (२।३।४९) से सम्बुद्धि संज्ञा भी होती है। '**एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः**' (६।१।६७) से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' का लोप होता है। देवदत्त ! इस आमन्त्रित पद को इस सूत्र से आद्युदात्त होता है। '**कारकाद् दत्तश्रुतयोरेवाशिषि**' (६।२।१४८) से प्राप्त अन्तोदात्त स्वर नहीं होता है। ऐसे ही–**दे॒वदत्तौ ! दे॒वदत्ताः !***

आद्युदात्तः–

(४२) पथिमथोः सर्वनामस्थाने।१६६।

प०वि०–पथि-मथोः ६।२ सर्वनामस्थाने ७।१।

स०–पन्थाश्च मन्थाश्च तौ पथिमन्थानौ, तयोः–पथिमथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–पथिमथोः सर्वनामस्थाने आदिरुदात्तः।

अर्थः–पथिमथिशब्दयोः सर्वनामस्थाने प्रत्यये परत आदिरुदात्तो भवति।

उदा०-(**पथिन्**) पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः। (**मथिन्**) मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पथिमथोः) पथिन्, मथिन् शब्दों को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-(पथिन्) ***पन्थाः।*** *एक मार्ग।* ***पन्थानौ।*** *दो मार्ग।* ***पन्थानः।*** *सब मार्ग।* ***(मथिन्) मन्थाः।*** *एक रई।* ***मन्थानौ।*** *दो रइयां।* ***मन्थानः।*** *सब रइयां (दूध बिलोने का उपकरण)।*

सिद्धि-(१) पन्थाः। *पथिन्+सु। पथि आ+स्। पथ् अ। आ+स्। पन्थ् अ। आ+स्। प न्थ् अ आ+स्। पन्थास्। पन्थाः।*

यहां 'पथिन्' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र में से 'पथिन्' शब्द को आद्युदात्त होता है। ***'पथिमथ्यृभुक्षामात्'*** *(७।१।८५) से 'पथिन्' के नकार को आकार आदेश,* ***'इतोऽत् सर्वनामस्थाने'*** *(७।१।८६) से 'पथिन्' के इकार को अकार आदेश और* ***'थो न्थः'*** *(७।१।८७) से थकार के स्थान में 'न्थ' आदेश होता है। ऐसे ही पन्थानौ, पन्थानः।*

(२) ***मन्थाः।*** *'मथिन्' शब्द से पूर्ववत्। ऐसे ही-***मन्थानौ, मन्थानः।***

यहां ***'पत्लृ गतौ'*** *(भ्वा० प०) धातु से* ***'पतस्थ च'*** *(उणा० ४।१२) से 'इनि' प्रत्यय करने पर 'पथिन्' शब्द सिद्ध होता है।* ***'मन्थ विलोडने'*** *(भ्वा० पा०) धातु से* ***'मन्थः'*** *(उणा० ४।११) से इनि प्रत्यय करने पर 'मथिन्' शब्द सिद्ध होता है। ये दोनों शब्द प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त हैं। इस सूत्र से सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर आद्युदात्त स्वर विधान किया गया है।* ***'सुडनपुंसकस्य'*** *(१।१।४२) से सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पांच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान संज्ञा है।*

युगपदाद्यन्तोदात्तः—

(४३) अन्तश्च तवै युगपत्।१६७।

प०वि०-अन्तः १।१ च अव्ययपदम्, तवै ६।१ (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) युगपत् अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तवै आदिश्चान्तश्च युगपद् उदात्तः।

अर्थः-तवै-प्रत्ययान्तस्य शब्दस्यादिश्चान्तश्च युगपद् उदात्तो भवति।

उदा०-कर्तवै, हर्तवै। प्रत्ययाद्युदात्तस्वरापवादः।

आर्यभाषाः *अर्थ:-(तवै) तवै-प्रत्ययान्त शब्द को (आदिः) आदि और (अन्तः) अन्त को (युगपत्) एक साथ (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**कर्तवै।** करने के लिये। **हर्तवै।** हरने के लिए।*

सिद्धि-कर्तवै। *कृ+तवै। कर्+तवै। कर्तवै+सु। कर्तवै+०। कर्तवै।*

यहां 'कृ' धातु से 'कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः' (३।४।१४) से 'तवै' प्रत्यय है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से इगन्त अंग (कृ) को गुण होता है। इस सूत्र से तवै-प्रत्ययान्त 'कर्तवै' शब्द युगपत्=एकदम आद्युदात्त और अन्तोदात्त होता है। अतः यहां युगपत्-वचन से 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५३) इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती है। 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्' (८।४।६७) से स्वरित का प्रतिषेध होने से 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से अनुदात्त को स्वरित आदेश नहीं होता है।

आद्युदात्तः–

(४४) क्षयो निवासे।१६८।

प०वि०-क्षयः १।१ निवासे ७।१।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-निवासे क्षय आदिरुदात्तः।

अर्थः-निवासेऽर्थे क्षयशब्द आदिरुदात्तो भवति।

उदा०-क्षयन्ति=निवसन्त्यस्मिन्निति क्षयः (निवासः)। क्षये (जागृहि प्रपश्यन्) (ऋ० १०।११८।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निवासे) निवास अर्थ में विद्यमान (क्षयः) क्षय शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-क्षये (जागृहि प्रपश्यन्) (ऋ० १०।११८।१)। **निवासे इति किम्? क्षयो वर्तते दस्यूनाम्।***

सिद्धि-क्षयः। *क्षि+घ। क्षे+अ। क्षय्+अ। क्षय+सु। क्षयः।*

*यहां 'क्षि निवासगत्योः' (तु.प.) धातु से 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' (३।३।११८) से 'घ' प्रत्यय है। निवास अर्थ में विद्यमान 'क्षय' शब्द इस सूत्र से आद्युदात्त होता है। प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त प्राप्त था। जहां निवास अर्थ नहीं है वहां अन्तोदात्त होता है–**क्षयः।***

आद्युदात्तः-

(४५) जयः करणम्।१६६।

प०वि०-जयः १।१ करणम् १।१।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-करणं जय आदिरुदात्तः।

अर्थः-करणवाची जयशब्द आदिरुदात्तो भवति।

उदा०-जयन्ति येनेति-जयः। जयोऽश्वः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(करणम्) करणवाची (जयः) जय शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-जिससे युद्ध को जीतते हैं वह (घोड़ा)-जय। **जयोऽश्वः। करणमिति किम्? जयो वर्तते ब्राह्मणानाम्।***

*सिद्धि-**जयः।** जि+घ। जे+अ। जय्+अ। जय+सु। जयः।*

*यहां **'जि (त्रि) अभिभवे'** (भ्वा०प०) धातु से **'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण'** (३।३।११८) से 'घ' प्रत्यय है। करणवाची 'जय' शब्द इस सूत्र से आद्युदात्त होता है। प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त प्राप्त था। जहां जय शब्द करणवाची नहीं है वहां अन्तोदात्त होता है-**जयः। जयो वर्तते ब्राह्मणानाम्।** ब्राह्मणों की जीत है। यहां 'एरच्' (३।४।८६) से 'अच्' प्रत्यय है।*

आद्युदात्तः-

(४६) वृषादीनां च।२००।

प०वि०-वृष-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-वृष आदिर्येषां ते वृषादयः, तेषाम्-वृषादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृषादीनां चादिरुदात्तः।

अर्थः-वृषादीनां शब्दानां चादिरुदात्तो भवति।

उदा०-वृषः। जनः। ज्वरः। ग्रहः। हयः। गयः, इत्यादिकम्।

वृषः। जनः। ज्वरः। ग्रहः। हयः। गयः। नयः। तयः। पयः वेदः। अंशः। दवः। सूदः। गुहा। शमरणौ संज्ञायां सम्मतौ भावकर्मणोः।

मन्त्रः । शान्तिः । कामः । यामः । आरा । धारा । कारा । वहः । कल्पः । पादः । आकृतिगणोऽयम् । अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृषादीनाम्) वृष-आदि शब्दों को (च) भी (आदिः उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-वृषः । बैल । जनः । मनुष्य । ज्वरः । बुखार । ग्रहः । सूर्य की परिक्रमा करनेवाला तारा । हयः । घोड़ा । गयः । एक राजर्षि का नाम, इत्यादि ।

सिद्धि-(१) वृषः। *वृष्+अच् । वृष्+अ । वृष+सु । वृषः ।*

यहां 'वृषु सेचने' (भ्वा०प०) धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (३।१।१३४) से पचादि 'अच्' प्रत्यय है। 'चितः' (६।१।१५८) से अन्तोदात्त प्राप्त था, इस सूत्र से आद्युदात्त होता है।

(२) जनः । 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) पूर्ववत् ।

(३) ज्वरः । 'ज्वर रोगे' (भ्वा०प०) पूर्ववत् ।

(४) ग्रहः । 'ग्रह उपादने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत् ।

(५) हयः । 'हि गतौ वृद्धौ च' (स्वा०प०) पूर्ववत् ।

(६) गयः । 'गै शब्दे' (भ्वा०प०) 'गै' को निपातन से एत्व (गे) होता है। पूर्ववत् ।

आद्युदात्तः—

(४७) संज्ञायामुपमानम् ।२०१।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ उपमानम् १।१।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायामुपमानमादिरुदात्तम् ।

अर्थः-संज्ञायां विषये उपमानवाची शब्द आदिरुदात्तो भवति।

उदा०-चञ्चा इव मनुष्यः-चञ्चा । दासी इव मनुष्यः-दासी । खरकुटी इव मनुष्यः-खरकुटी । वध्रिका इव मनुष्यः-वध्रिका ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (उपमानम्) उपमानवाची शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**चञ्चा इव मनुष्यः-चञ्चा** । तृण के समान निर्बल मनुष्य-चञ्चा । **दासी इव मनुष्यः-दासी** । दासी के समान गरीब मनुष्य-दासी । **खरकुटी इव मनुष्यः-खरकुटी** ।*

*गर्दभशाला के समान मलिन मनुष्य-खरकुटी। **वध्रिका इव मनुष्यः-वध्रिका।** वध्रिका= चमड़े के तसमे के समान सुदृढ मनुष्य-वध्रिका।*

*सिद्धि-**चञ्चा।** चञ्चा+कन्। चञ्चा+०। चञ्चा+सु। चञ्चा+०। चञ्चा।*

*यहां उपमानवाची 'चञ्चा' शब्द इस सूत्र से संज्ञा विषय में आद्युदात्त होता है। '**लुम्मनुष्ये**' (५।३।९८) से विहित 'कन्' प्रत्यय का लुप् होता है। ऐसे ही-**दासी**, खरकुटी, वध्रिका।*

आद्युदात्तः-

(४८) निष्ठा च द्व्यजनात्।२०२।

प०वि०-निष्ठा १।१ च अव्ययपदम्, द्व्यच् १।१ अनात् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तद्-द्व्यच् (बहुव्रीहिः)। न आत्-अनात् (नञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, आदिः, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां निष्ठा च द्व्यज् आदिरुदात्तः, अनात्।

अर्थः-संज्ञायां विषये निष्ठान्तश्च द्व्यच्-शब्द आदिरुदात्तो भवति, स चेदादिराकारो न भवति।

उदा०-दत्तः, गुप्तः, बुद्धः, अनादिति किम् ? त्रातः, आप्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (निष्ठा) निठान्त (द्व्यच्) दो अचोंवाला शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है (अनात्) यदि उस निष्ठा के आदि में आकार न हो।*

*उदा०-**दत्तः।** दिया हुआ। **गुप्तः।** रक्षा किया हुआ। **बुद्धः।** समझा हुआ। 'अनात्' का कथन इसलिये है कि यहां आद्युदात्त न हो-**त्रातः।** पालन किया हुआ। **आप्तः।** पहुंचा हुआ।*

*सिद्धि-**दत्तः।** दा+क्त। दद्+त। दत्+त। दत्त+सु। दत्तः।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। '**क्तक्तवतू निष्ठा**' (१।१।२५) से 'क्त' प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा है। इस सूत्र से दो अचोंवाला, निष्ठान्त 'दत्त' शब्द आद्युदात्त होता है। '**दो दद् घोः**' (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में 'दद्' आदेश होता है। '**खरि च**' (८।४।५४) से 'दद्' के दकार को चर् तकार आदेश होता है।*

*(२) **गुप्तः।** '**गुपू रक्षणे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **बुद्धः।** '**बुध अवगमने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

आद्युदात्तः—

(४९) शुष्कधृष्टौ।२०३।

प०वि०-शुष्क-धृष्टौ १।२।

स०-शुष्कश्च धृष्टश्च तौ-शुष्कधृष्टौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, आदिः-निष्ठा इति चानुवर्तते।

अनु०-निष्ठा शुष्कधृष्टावादिरुदात्तौ।

अर्थः-निष्ठान्तौ शुष्कधृष्टौ शब्दावादिरुदात्तौ भवतः। असंज्ञार्थः सूत्रारम्भः।

उदा०-शुष्कः। धृष्टः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निष्ठा) निष्ठान्त (शुष्कधृष्टौ) शुष्क, धृष्ट शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-शुष्कः। सूखा हुआ। धृष्टः। चतुर बना हुआ।

सिद्धि-(१) शुष्कः। शुष्+क्त। शुष्+क। शुष्क+सु। शुष्कः।

यहां 'शुष शोषणे' (दि० प०) धातु से पूर्ववत् निष्ठासंज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। 'शुषः कः' (८।२।५१) से 'निष्ठा' के तकार को ककार आदेश होता है। इस सूत्र से निष्ठान्त 'शुष्क' शब्द आद्युदात्त होता है। 'शुषः कः' (८।२।५१) यह त्रिपादी का है। उसे इस स्वर-कार्य में असिद्ध मानकर इसका निष्ठान्तत्व सिद्ध होता है।

(२) धृष्टः। धृष्+क्त। धृष्+त। धृष्+ट। धृष्ट+सु। धृष्टः।

यहां 'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' (स्वा० प०) धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक क्त प्रत्यय है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) से 'क्त' के तकार को टुत्व होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४०) त्रिपादी का है। इसे यहां असिद्ध मानकर इसका निष्ठान्तत्व सिद्ध होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।

आद्युदात्तः—

(५०) आशितः कर्ता।२०४।

प०वि०-आशितः १।१ कर्ता १।१।

अनु०-उदात्तः, आदिः, निष्ठा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्ता निष्ठा आशित आदिरुदात्तः।

अर्थः-कर्तृवाची निष्ठान्त आशितः शब्द आदिरुदात्तो भवति।

उदा०-आशितो देवदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्ता) कर्तृवाची (निष्ठा) निष्ठा-प्रत्ययान्त (आशितः) आशित शब्द (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**आशितो देवदत्तः।** देवदत्त ने भोजन किया।*

*सिद्धि-**आशितः।** आङ्+अश्+क्त। आ+अश्+इट्+त। आ+अश्+इ+त। आशित+सु। आशितः।*

*यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'अश भोजने'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। **'गत्यर्थाकर्मक०'** (३।४।७२) से 'क्त' प्रत्यय कर्ता में है। इस सूत्र से कर्तृवाची निष्ठान्त 'आशित' शब्द आद्युदात्त होता है। **'थाथघञ्क्त०'** (६।२।१४४) से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था।*

आद्युदात्त-विकल्पः—

(५१) रिक्ते विभाषा।२०५।

प०वि०-रिक्ते ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-उदात्तः, आदिः, निष्ठा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निष्ठा रिक्ते विभाषा आदिरुदात्तः।

अर्थः-निष्ठान्ते रिक्ते शब्दे विकल्पेनादिरुदात्तो भवति।

उदा०-रिक्तः, रिक्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निष्ठा) निष्ठा-प्रत्ययान्त (रिक्ते) रिक्त शब्द में (विभाषा) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**रिक्तः, रिक्तः।** यह किसी पुरुष की संज्ञा (नाम) है।*

*सिद्धि-**रिक्तः।** रिच्+क्त। रिच्+त। रिक्+त। रिक्त+सु। रिक्तः।*

*यहां 'रिचिर् विरेचने' (रु०उ०) धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। **'निष्ठा च द्व्यजनात्'** (६।१।२०१) से नित्य आद्युदात्त स्वर प्राप्त था। इस सूत्र से विकल्प-विधान किया गया है। पक्ष में प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है-**रिक्तः।** 'चोः कु' (८।२।३०) से 'रिच्' के चकार को कुत्व होता है।*

आद्युदात्त-विकल्पः—

(५२) जुष्टार्पिते च च्छन्दसि।२०६।

प०वि०-जुष्ट-अर्पिते १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-जुष्टं च अर्पितं च ते-जुष्टार्पिते (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, आदिः, निष्ठा, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि निष्ठा जुष्टार्पिते च विभाषा आदिरुदात्ते।

अर्थः-छन्दसि विषये निष्ठान्तौ जुष्टार्पितौ शब्दौ विकल्पेनादिरुदात्तौ भवतः।

उदा०-(**जुष्टः**) जुष्टः, जुष्टः। (**अर्पितः**) अर्पितः, अर्पितः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (निष्ठा) निष्ठान्त (जुष्टार्पिते) जुष्ट और अर्पित शब्द (विभाषा) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आदि उदात्त होते हैं।*

*उदा०-जुष्टः। प्रिय/सेवित। **अर्पितः**। भेंट किया गया।*

सिद्धि-(१) जुष्टः। जुष्+क्त। जुष्+त। जुष्+ट। जुष्ट+सु। जुष्टः।

*यहां '**जुषी प्रीतिसेवनयोः**' (तु० आ०) धातु से पूर्ववत् निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४०) से 'क्त' के तकार को टुत्व टकार होता है। इस सूत्र से निष्ठान्त 'जुष्ट' शब्द छन्दविषय में आद्युदात्त होता है। और विकल्प-पक्ष में प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त होता है-जुष्टः। लौकिकभाषा में प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त ही होता है-जुष्टः।*

*(२) **अर्पितः**। ऋ+णिच्। ऋ+पुक्+इ। अरप्+इ। अरप्+इ+त। अर्पित+सु। अर्पितः।*

*यहां 'ऋ गतौ' (जु०प०) धातु से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। '**अर्तिह्री०**' (७।३।३६) से 'णिच्' परे होने पर 'ऋ' धातु को 'पुक्' आगम होता है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'ऋ' धातु को पुगन्तलक्षण गुण (अर्) होता है। इस सूत्र से निष्ठान्त 'अर्पित' शब्द छन्दविषय में आद्युदात्त होता है। शेष स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्तः-

(५३) नित्यं मन्त्रे।२०७।

प०वि०-नित्यम् १।१ मन्त्रे ७।१।

अनु०-उदात्तः, आदिः, निष्ठा, जुष्टार्पिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रे निष्ठा जुष्टार्पिते नित्यमादिरुदात्ते।

अर्थः-मन्त्रे विषये निष्ठान्तौ जुष्टार्पितौ शब्दौ नित्यमादिरुदात्तौ भवतः।

उदा०-(**जुष्टम्**) जुष्टं देवानाम्। (**अर्पितम्**) अर्पितं पितॄणाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (निष्ठा) निष्ठा-प्रत्ययान्त (जुष्टार्पिते) जुष्ट और अर्पित शब्द (नित्यम्) सदा (अदिः, उदात्तः) आदि उदात्त होते हैं।*

*उदा०-**जुष्टं देवानाम्।** देवों की सेवा करना। **अर्पितं पितॄणाम्।** पितरजनों को अर्पण करना।*

*सिद्धि-**जुष्टम्** और **अर्पितम्** शब्दों की सिद्धि पूर्ववत् है। यहां मन्त्र विषय में इन्हें नित्य आद्युदात्त स्वर विधान किया गया है।*

आद्युदात्तः-

(५४) युष्मदस्मदोर्ङसि।२०८।

प०वि०-युष्मदस्मदोः ६।२ ङसि ७।१।

स०-युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ङसि युष्मदस्मदोरादिरुदात्तः।

अर्थः-ङसि प्रत्यये परतो युष्मदस्मदोः शब्दयोरादिरुदात्तो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) तव स्वम्। (**अस्मद्**) मम स्वम्।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(ङसि) ङस् प्रत्यय परे होने पर (युष्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् शब्दों को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **तव स्वम्।** तेरा धन। **(अस्मद्) मम स्वम्।** मेरा धन।*

सिद्धि-*(१) **तव।** युष्मद्+ङस्। युष्मद्+अश्। तव अद्+अ। तव+अ। तव।*

*यहां युष्मद् शब्द से 'ङस्' प्रत्यय है। **'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्'** (७।१।२७) से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश, **'तवममौ ङसि'** (७।२।९६) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तव' आदेश **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) 'अद्' भाग का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९५) से पररूप एकादेश होता है। इस सूत्र से युष्मद् (तव) शब्द ङस् प्रत्यय परे होने पर आद्युदात्त होता है। प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त प्राप्त था।*

*(२) **मम।** 'अस्मद्' शब्द से 'ङस्' प्रत्यय करने पर समस्त कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्तः–

(५५) ङयि च।२०६।

प०वि०–ङयि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–उदात्तः, आदिः, युष्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–ङयि च युष्मदस्मदोरादिरुदात्तः।

अर्थः–ङयि च प्रत्यये परतो युष्मदस्मदोः शब्दयोरादिरुदात्तो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** तुभ्यम्। **(अस्मद्)** मह्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ङयि) ङे-प्रत्यय परे होने पर (च) भी (युष्मदस्मदोः) युष्मद् और अस्मद् शब्दों को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–(युष्मद्) **तुभ्यम्।** तेरे लिये। (अस्मद्) **मह्यम्।** मेरे लिये।*

*सिद्धि–(१) **तुभ्यम्।** युष्मद्+ङे। युष्मद्+अम्। तुभ्य अद्+अम्। तुभ्य+अम्। तुभ्यम्।*

*यहां युष्मद् शब्द से 'ङे' प्रत्यय है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'ङे' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। '**तुभ्यमह्यौ ङयि**' (७।२।९५) से युष्मद के म-पर्यन्त के स्थान में 'तुभ्य' आदेश होता है। '**शेषे लोपः**' (७।२।९०) से 'अद्' भाग का लोप और **अतो गुणे** (६।१।९७) से पररूप एकादेश होता है। इस सूत्र से युष्मद् (तुभ्यम्) शब्द 'ङे' प्रत्यय परे होने पर आद्युदात्त होता है। प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त प्राप्त था।*

*(२) **मह्यम्।** 'अस्मद्' शब्द से 'ङे' प्रत्यय परे होने पर समस्त कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्तः–

(५६) यतोऽनावः।२१०।

प०वि०–यतः ६।१ अनावः ६।१।

स०–न नौः-अनौः, तस्याः- अनावः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–उदात्तः, आदिः, **'निष्ठा च द्व्यजनात्'** (६।१।१९९) इत्यतश्च 'द्व्यच्' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः–अनावो यतो द्व्यच आदिरुदात्तः।

अर्थः–अनावः=नौवर्जितस्य यत्प्रत्ययान्तस्य द्व्यचः शब्दस्यादिरुदात्तो भवति।

उदा०–चेयम्। जेयम्। कण्ठ्यम्, ओष्ठ्यम्। **'तित्स्वरितम्'** (६।१।१७९) इत्यस्यायमपवादः। अनाव इति किम् ? नाव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनावः) नौ शब्द से भिन्न (यतः) यत्-प्रत्ययान्त (द्व्यचः) दो अचोंवाले शब्द को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**चेयम्।** चुनने योग्य। **जेयम्।** जीतने योग्य। **कण्ठ्यम्।** कण्ठ में होनेवाला। **ओष्ठ्यम्।** ओष्ठों में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **चेयम्।** चि+यत्। चे+य। चेय+सु। चेयम्।*

*यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से इगन्त अंग 'चि' को गुण होता है। इस सूत्र से यत्-प्रत्ययान्त, दो अचोंवाला 'चेयम्' शब्द आद्युदात्त होता है। **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरित प्राप्त था। ऐसे ही-**'जि जये'** (भ्वा० प०) धातु से-**जेयम्।***

*(२) **कण्ठ्यम्।** कण्ठ+यत्। कण्ठ्+य। कण्ठ्य+सु। कण्ठ्यम्।*

*यहां 'कण्ठ' शब्द से **'शरीरावयवाद् यत्'** (४।३।५५) से 'यत्' प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-'ओष्ठ' शब्द से-ओष्ठ्यम्।*

*'नौः' शब्द का प्रतिषेध इसलिये किया है कि यहां आद्युदात्त न हो-**नाव्यम्।** यहां **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरित स्वर होता है।*

आद्युदात्तः-

(५७) ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः।२११।

प०वि०-ईड-वन्द-वृ-शंस-दुहाम् ६।३ ण्यतः ६।१।

स०-ईडश्च वन्दश्च वृश्च शंसश्च दुह् च ते-ईड०दुहः, तेषाम्-ईड०दुहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ण्यताम् ईडवन्दवृशंसदुहामादिरुदात्तः।

अर्थः-ण्यत्-प्रत्ययान्तानाम् ईडवन्दवृशंसदुहां धातूनामादिरुदात्तो भवति।

उदा०-(**ईडः**) ईड्यम्। (**वन्दः**) वन्द्यम्। (**वृः**) वार्यम्। (**शंसः**) शंस्यम् (**दुहः**) दोह्या धेनुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ण्यतः) ण्यत्-प्रत्ययान्त (ईड०दुहाम्) ईड्, वन्द, वृ, शंस, दुह् धातुओं को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(ईड) **ईड्यम्।** स्तुति करने योग्य। (वन्द) **वन्द्यम्।** अभिवादन/स्तुति करने योग्य। (वृ) **वार्यम्।** सेवा=परिचर्या करने योग्य। (शंस) **शंस्यम्।** प्रशंसा करने योग्य। (दुह) **दोह्या धेनुः।** दुहने योग्य गाय।*

***सिद्धि**-(१) ईड्यम्। ईड्+ण्यत्। ईड्+य। ईड्य+सु। ईड्यम्।*

*यहां 'ईड स्तुतौ' (अदा०आ०) धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ण्यत्-प्रत्ययान्त 'ईड्यम्' शब्द आद्युदात्त होता है। **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरित स्वर प्राप्त था।*

*(२) **वन्द्यम्।** 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **वार्यम्।** 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०आ०) से पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'वृ' अंग की वृद्धि होती है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **शंस्यम्।** 'शंसु स्तुतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **दोह्या।** 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्त-विकल्पः—

(५८) विभाषा वेण्विन्धानयोः।२१२।

प०वि०-विभाषा १।१ वेणु-इन्धानयोः ६।२।

स०-वेणुश्च इन्धानश्च तौ वेण्विन्धानौ, तयोः-वेण्विन्धानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्त, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वेण्विन्धानयोर्विभाषाऽऽदिरुदात्तः।

अर्थः-वेणु-इन्धानयोः शब्दयोर्विकल्पेनादिरुदात्तो भवति।

उदा०-(**वेणुः**) वेणुः, वेणुः। (**इन्धानः**) इन्धानः, इन्धानः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(वेण्विन्धानयोः) वेणु और इन्धान शब्दों को (विभाषा) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(वेणुः) **वेणुः, वेणुः।** वंश=बांस। (इन्धानः) **इन्धानः, इन्धानः।** दीप्तिशील एवं जलता हुआ।*

सिद्धि-(१) वेणुः । अज+णु । वी+णु । वे+सु । वेणु+सु । वेणुः ।

*यहां 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से **'अजिवृरीभ्यो निच्च'** (उणा० ३ ।३८) से 'णु' प्रत्यय है। **'अजेर्व्यघञपोः'** (२ ।४ ।५६) से 'अज' के स्थान में 'वी' आदेश होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७ ।३ ।८५) से 'वी' को इगन्तलक्षण गुण होता है। इस सूत्र से 'वेणु' शब्द आद्युदात्त होता है। 'णु' प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६ ।१ ।१९१) से नित्य आद्युदात्त प्राप्त था। इस सूत्र से विकल्पविधान किया गया है।*

*(२) इन्धानः । इन्ध्+चानश् । **इन्ध्+आन । इन्धान+सु** । इन्धानः ।*

*यहां **'ञिइन्धी दीप्तौ'** (रुधा. आ.) धातु से **'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्'** (३ ।२ ।१२९) से 'चानश्' प्रत्यय है। अतः 'चितः' (६ ।१ ।१५८) से अन्तदोत्त स्वर प्राप्त था, इस सूत्र से विकल्प से आद्युदात्त स्वर विधान किया गया है। पक्ष में पूर्ववत् अन्तोदात्त भी होता है-**इन्धानः ।***

(क) इन्ध्+लट् । इन्ध्+शानच् । इ श्नम् न् ध्+आन । इ न न् ध्+आन । इन ०ध्+आन । इन् ध्+आन । इन्धान+सु । इन्धानः ।

*यहां पूर्वोक्त 'इन्ध्' धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३ ।२ ।१२४) से लट् के स्थान में शानच् आदेश है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३ ।१ ।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। **'श्नान्नलोपः'** (६ ।४ ।२३) से 'श्नम्' से उत्तरवर्ती नकार का लोप होता है। **'तास्यनुदात्तेत्०'** (६ ।१ ।१८०) से धातु के अदुपदेशवान् होने से (श्नम्) ल-सार्वधातुक 'शानच्' को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। अनुदात्त 'शानच्' के परे होने पर **'श्नसोरल्लोपः'** (६ ।४ ।१११) से उदात्त 'श्नम्' के अकार का लोप होता है। अतः **'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'** (६ ।१ ।१५६) से मध्योदात्त स्वर होता है-**इन्धानः ।***

आद्युदात्त-विकल्पः—

(५६) त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् ।२१३ ।

प०वि०-त्याग-राग-हास-कुह-श्वठ-क्रथानाम् ६ ।३ ।

स०-त्यागश्च रागश्च हासश्च कुहश्च श्वठश्च क्रथश्च ते-त्याग०क्रथाः, तेषाम्-त्याग०क्रथानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, आदिः, विभाषा इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानां विभाषाऽऽदिरुदात्तः ।

अर्थः-त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानां शब्दानां विकल्पेनादिरुदात्तो भवति ।

उदा०-(**त्यागः**) त्यागः, त्यागः। (**रागः**) रागः, रागः। (**हासः**) हासः, हासः। (**कुहः**) कुहः, कुहः। (**श्वठः**) श्वठः, श्वठः। (**क्रथः**) क्रथः, क्रथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(त्याग०क्रथानाम्) त्याग, राग, हास, कुह, श्वठ और क्रथ शब्दों को (विभाषा) विकल्प से (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-(त्यागः) त्यागः, त्यागः। छोड़ना। (रागः) रागः, रागः। रंगना। (हासः) हासः, हासः। हंसना। (कुहः) कुहः, कुहः। चकित करनेवाला/डरानेवाला। (श्वठः) श्वठः, श्वठः। धूर्त। (क्रथः) क्रथः, क्रथः। हिंसक।

सिद्धि-(१) त्यागः। त्यज्+घञ्। त्यज्+अ। त्याग्+अ। त्यागः।

*यहां '**त्यज हानौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। 'चजोः कु घिण्यतोः' (७।३।५२) से जकार को कुत्व गकार होता है। इस सूत्र से यह विकल्प से आद्युदात्त होता है। विकल्प पक्ष में '**कर्षात्वतो घञोऽन्तोदात्तः**' (६।१।१५४) से अन्तोदात्त होता है। पहले उक्त सूत्र से अन्तोदात्त ही प्राप्त था।*

*(२) रागः। यहां '**रञ्ज रागे**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। '**रञ्जेश्च**' (६।४।२६) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) हासः। '**हसे हसने**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

(४) कुहः। कुह+अच्। कुह+अ। कुह+सु। कुहः।

*यहां 'कुह **विस्मापने**' (चु०आ०) धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से पचादि 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प से आद्युदात्त होता है। '**चितः**' (६।१।१५८) से अन्तोदात्त स्वर ही प्राप्त था। पक्ष में अन्तोदात्त स्वर भी होता है-कुहः।*

*(५) श्वठः। 'श्वठ **असंस्कारगत्योः**' (चु०उ०) से पूर्ववत् पचादि 'अच्' प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत्।*

*(६) क्रथः। '**क्रथ हिंसार्थः**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् पचादि अच् प्रत्यय है। स्वर-कार्य पूर्ववत् है।*

उपोत्तममुदात्तम्—

(६०) उपोत्तमं रिति।२१४।

प०वि०-उपोत्तमम् १।१ रिति ७।१।

स०-त्रिप्रभृतीनामन्तिममक्षरम्-उत्तमम्, उत्तमस्य समीपम्-उपोत्तमम् (अव्ययीभावः)। र इद् यस्य स रित्, तस्मिन्-रिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-रिति उपोत्तमम् उदात्तम्।

अर्थः-रिति=रित्-प्रत्ययान्ते शब्दे उपोत्तममक्षरमुदात्तं भवति।

उदा०-करणीयम्, हरणीयम्। पटुजातीयः, मृदुजातीयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रिति) रित्-प्रत्ययान्त शब्द में (उपोत्तमम्) अन्तिम से पूर्ववर्ती अक्षर (उदात्तम्) उदात्त होता है। तीन अथवा उससे अधिक अचोंवाले शब्द में अन्तिम अच् उत्तम कहाता है, और उत्तम के समीपवर्ती अच् को उपोत्तम कहते हैं।*

*उदा०-**करणीयम्**। करना चाहिये। **हरणीयम्**। हरना चाहिये। **पटुजातीयः**। चतुर प्रकार का। **मृदुजातीयः**। मृदु=कोमल प्रकार का।*

***सिद्धि**-(१) **करणीयम्**। कृ+अनीयर्। कर्+अनीय। करणीय+सु। करणीयम्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से 'अनीयर्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के 'रित्' होने से इस सूत्र से '**करणीयम्**' रिदन्त पद उपोत्तम उदात्त होता है। ऐसे 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**हरणीयम्**।*

*(२) **पटुजातीयः**। पटु+जातीयर्। पटु+जातीय। पटुजातीय+सु। पटुजातीयः।*

*यहां 'पटु' शब्द से '**प्रकारवचने जातीयर्**' (५।३।७९) से 'जातीयर्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के रित् होने से इस सूत्र से 'पटुजातीयः' यह रिदन्त पद उपोत्तम उदात्त होता है। ऐसे ही 'मृदु' शब्द से-**मृदुजातीयः**।*

उपोत्तमोदात्त-विकल्पः—

(६१) चङ्यन्यतरस्याम्।२१५।

प०वि०-चङि ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, उपोत्तमम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चङि अन्यतरस्यामुपोत्तमम् उदात्तम्।

अर्थः-चङ्प्रत्ययान्ते पदेऽविकल्पेनोपोत्तममक्षरमुदात्तं भवति।

उदा०-मा हि चीकरताम्, मा हि चीकरताम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चङि) चङ्प्रत्ययान्त पद में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (उपोत्तमम्) उपोत्तम अक्षर (उदात्तम्) उदात्त होता है।*

*उदा०-**मा हि चीकरताम्, मा हि चीकरताम्**। उन दोनों ने नहीं कराया।*

***सिद्धि**-**चीकरताम्**। कृ+णिच्। कार्+इ। कारि। कारि+लुङ्। कारि+च्लि+ल्। कारि+चङ्+तस्। कर्+अ+ताम। कृ-कर्+अ+ताम्। च-कर्+अ+ताम्। चि-कर्+अ+ताम्। ची-कर्+अ+ताम्। चीकरताम्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना० अ०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से लुङ् प्रत्यय 'च्लि लुङि' (२३।१।४४) से च्लि विकरण-प्रत्यय और 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।४।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप तथा 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से उपधा को ह्रस्व होकर, 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५८) से रूपातिदेश को स्थानिवत् मानकर 'चङि' (६।१।११) से 'कृ' को द्वित्व होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ककार को चकार आदेश होता है। 'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे' (७।४।८३) से अभ्यास को सन्वद्भाव होकर 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व और 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से उसे दीर्घ होता है। यहां 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से अट् आगम का प्रतिषेध है। 'मा हि चीकरताम्' यहां 'हि' से उत्तर 'चीकरताम्' यह तिङन्त पद होने से 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से निघात=अनुदात्त प्राप्त था, किन्तु 'हि च' (८।१।३४) से उसका प्रतिषेध होता है। अतः 'चङ्' के अकार से धातु को अदुपदेश मानकर 'तास्यनुदात्तेत्०' (६।१।१८०) से ल-सार्वधातुक 'ताम्' प्रत्यय अनुदात्त होता है। प्रत्यय-स्वर से 'चङ्' के अकार को ही उदात्तस्वर प्राप्त था। इस सूत्र से चङन्त अर्थात् 'चीकर' शब्द के उपोत्तम अक्षर को उदात्त होता है-**चीकरताम्**। विकल्प पक्ष में प्रत्ययस्वर से उदात्त होता है-**चीकरताम्**।*

आकार उदात्तः—

(६२) मतोः पूर्वमात् संज्ञायां स्त्रियाम्।२१६।

प०वि०-मतोः ५।१ पूर्वम् १।१ आत् १।१ संज्ञायाम् ७।१ स्त्रियाम् ७।१।

अनु०-उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मतोः पूर्वम् आद् उदात्तः, स्त्रियां संज्ञायाम्।

अर्थः-मतोः पूर्वो य आकारः स उदात्तो भवति, तच्चेद् मत्वन्तं शब्दरूपं स्त्रीलिङ्गे संज्ञा भवति।

उदा०-उदुम्बरावती, पुष्करावती, वीरणावती, शरावती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मतोः) मतुप् प्रत्यय से (पूर्वम्) पूर्ववर्ती (आत्) आकार (उदात्तः) उदात्त होता है, यदि वह शब्द (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग (संज्ञायाम्) संज्ञावाची हो।*

*उदा०-**उदुम्बरावती, पुष्करावती, वीरणावती, शरावती**। ये नदी-विशेष की संज्ञायें हैं।*

सिद्धि-उदुम्बरावती। उदुम्बर+मतुप्। उदुम्बर+मत्। उदुम्बरा+वत्। उदुम्बरावत्। उदुम्बरावत्+ङीप्। उदुम्बरावती+सु। उदुम्बरावती।

यहां उदुम्बर शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।६४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'मादुपधायाश्च०' (८।२।९) से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश होता है। 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' (६।३।११९) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से इस आकार को उदात्त स्वर होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-पुष्करावती, वीरणावती, शरावती।

अन्तोदात्तः-

(६३) अन्तोऽवत्याः।२१७।

प०वि०-अन्तः १।१ अवत्याः ६।१।

अनु०-उदात्तः, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायाम् अवत्या अन्त उदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषयेऽवती-शब्दान्तस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-अजिरवती, खदिरवती, हंसवती, कारण्डवती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (अवत्याः) अवती शब्द जिसके अन्त में है उसे (अन्तः, उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-अजिरवती, खदिरवती, हंसवती, कारण्डवती।

सिद्धि-अजिरवती। इस शब्द के अन्त में 'अवती' है। अतः इस सूत्र से इसे अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-खदिरवती, हंसवती, कारण्डवती। ये नदी-विशेष की संज्ञायें हैं।

अन्तोदात्तः-

(६४) ईवत्याः।२१८।

प०वि०-ईवत्याः ६।१।

अनु०-उदात्तः, संज्ञायाम्, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायाम् ईवत्या अन्त उदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषये ईवती-शब्दान्तस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-अहीवती। कृषीवती। मुनीवती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (ईवत्याः) ईवती शब्द जिसके अन्त में उसे (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-अहीवती, कृषीवती, मुनीवती।

सिद्धि-अहीवती। इस वतीशब्दान्त 'अहीवती' शब्द को इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-कृषीवती, मुनीवती। ये नदी-विशेष की संज्ञायें हैं।

अन्तोदात्तः-

(६५) चौ।२१६।

वि०-चौ ७।१।

अनु०-उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चौ पूर्वस्यान्त उदात्तः।

अर्थः-चौ परतः पूर्वस्यान्त उदात्तो भवति। अञ्चतेर्नकारस्याकारस्य च लोपं कृत्वा 'चौ' इति निर्देशः कृतः।

उदा०-दधीचः पश्य। दधीचा, दधीचे। मधूचः पश्य। मधूचा, मधूचे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चौ) 'चु' परे होने पर पूर्ववर्ती अच् को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है। यहां 'अञ्चति' धातु के नकार और अकार का लोप करके 'चु' शेष रहता है, उसका सप्तमी-एकवचन में निर्देश किया गया है।*

उदा०-दधीचः पश्य। दधि प्राप्त करनेवालों को तू देख। दधीचा। दधि प्राप्त करनेवाले के द्वारा। दधीचे। दधि प्राप्त करनेवाले के लिये। मधूचः पश्य। मधु प्राप्त करनेवालों को देख। मधूचा। मधु प्राप्त करनेवाले के द्वारा। मधूचे। मधु प्राप्त करनेवाले के लिये।

सिद्धि-दधीचः। दधि+अञ्चु+क्विन्। दधि+अञ्च्+वि। दधि+अञ्च्+०। दधि+अच्+०। दधि+अच्+शस्। दधि+अच्+अस्। दधि+०च+अस्। दधी+०च+अस्। दधीचः।

यहां दधि-उपपद होने पर 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'ऋत्विग्दधृक्०' (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से 'अञ्चु' के नकार का लोप होता है। उससे 'शस्' प्रत्यय करने पर 'अचः' (६।४।१३९) से 'अञ्चति' के अकार का लोप होकर 'चौ' (६।३।१३८) से पूर्वपद को दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'चु' (लुप्तनकार अञ्चति) परे होने पर पूर्ववर्ती अच् अन्तोदात्त होता है। 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३८) से उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होने से 'अञ्चति' के अकार को उदात्त होता है। 'अचः' (६।४।१३८) से असर्वनामस्थान, अजादि विभक्त परे

*होने पर 'अञ्चति' के उदात्त अकार का लोप हो जाता है। अतः **'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'** (६।१।१५६) से उदात्तनिवृत्तिस्वर अर्थात् विभक्ति को अनुदात्त स्वर प्राप्त होता है। यह सूत्र उसका अपवाद है। ऐसे ही-दधीचा, दधीचे, मधूचः, मधूचा, मधूचे।*

अन्तोदात्तः—

(६६) समासस्य।२२०।

वि०-समासस्य ६।१।

अनु०-उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते

अन्वयः-समासस्यान्त उदात्तः।

अर्थः-समासस्यान्त उदात्तो भवति।

उदा०-राजपुरुषः। ब्राह्मणकम्बलः। कन्यास्वनः। पटहशब्दः। नदीघोषः। राजपृषत्। ब्राह्मणसमित्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासस्य) समास को (अन्तः उदात्तः) अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*उदा०-**राजपुरुषः।** राजा का पुरुष। **ब्राह्मणकम्बलः।** ब्राह्मण का कम्बल। **कन्यास्वनः।** कन्या की आवाज़। **पटहशब्दः।** ढोल का शब्द। **नदीघोषः।** नदी का शब्द। **राजपृषत्।** राजा का बिन्दु (चिह्नविशेष)। **ब्राह्मणसमित्।** ब्राह्मण की समिधा।*

सिद्धि-राजपुरुषः। *राजन्+ङस्+पुरुष। राजन्+पुरुष। राजपुरुष+सु। राजपुरुषः।*

*यहाँ राजन् और पुरुष शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राह्मणकम्बलः** आदि।*

'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्' *इस परिभाषा से स्वर-विधि में व्यञ्जन-वर्ण अविद्यमान के समान होता है। अतः इस सूत्र से राजपृषत् और ब्राह्मणसमित् इन व्यञ्जनान्त समासपदों में भी अन्तोदात्त स्वर होता है। यह सूत्र नानापदों के पृथक्-पृथक् स्वर का अपवाद है।*

।। इति पूर्वस्वरप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।।

षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः

उत्तरस्वरप्रकरणम्

(पूर्वपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम्)

प्रकृतिस्वरः—

(१) बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्।१।

प०वि०—बहुव्रीहौ ७।१ प्रकृत्या ३।१ पूर्वपदम् १।१

अन्वयः—बहुव्रीहौ पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः—बहुव्रीहौ समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति, पूर्वपदस्य यः स्वरः स प्रकृत्या भवति, स्वभावेनाऽवतिष्ठते, न विकारमनुदात्तत्वमापद्यते इत्यर्थः।

उदा०—कार्ष्णम् उत्तरासङ्गं यस्य सः-कार्ष्णोत्तरासङ्गः। यूपो वलजो यस्य सः-यूपवलजः। ब्रह्मचारी परिस्कन्दो यस्य सः-ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः। स्नातकः पुत्रो यस्य सः-स्नातकपुत्रः। अध्यापकः पुत्रो यस्य सः-अध्यापकपुत्रः। श्रोत्रियः पुत्रो यस्य सः-श्रोत्रियपुत्रः। मनुष्यो नाथो यस्य सः-मनुष्यनाथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (पूर्वपदम्) पूर्व-पद (प्रकृत्या) प्रकृति स्वरवाला होता है, पूर्वपद का जो स्वर है वह प्रकृतिभाव से रहता है, स्वभाव में अवस्थित रहता है, अनुदात्त रूप विकारभाव को प्राप्त नहीं होता है।*

*उदा०-**कार्ष्णोत्तरासङ्गः**। कृष्णमृग-चर्म है उत्तरासङ्ग=ऊपर धारण करने का वस्त्र (चादर) जिसका वह-कार्ष्णोत्तरासङ्ग। **यूपवलजः**। यूप है वलज जिसका वह-यूपवलज। यूप=यज्ञीय स्तम्भ, वलज=बन्धन। **ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः**। ब्रह्मचारी है परिस्कन्द=सेवक जिसका वह-ब्रह्मचारिपरिस्कन्द। **स्नातकपुत्रः**। गुरुकुल का स्नातक है पुत्र जिसका वह-स्नातकपुत्र। **अध्यापकपुत्रः**। अध्यापक है पुत्र जिसका वह-अध्यापकपुत्र। **श्रोत्रियपुत्रः**। श्रोत्रियः=वेद का अध्ययन करनेवाला पुत्र है जिसका वह-श्रोत्रियपुत्र। **मनुष्यनाथः**। मनुष्य=मननशील पुरुष है नाथ (स्वामी) जिसका वह-मनुष्यनाथ।*

*सिद्धि-**कार्ष्णोत्तरासङ्गः**। कार्ष्ण+सु+उत्तरासङ्ग+सु। कार्ष्णोत्तरासङ्ग+सु। कार्ष्णोत्तरासङ्गः।*

यहां बहुव्रीहि समास के 'कार्ष्ण' पूर्वपद में मृगवाची 'कृष्ण' शब्द से **'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्'** (४।३।१५४) से विकार अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है, अतः प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से 'कार्ष्ण' शब्द आद्युदात्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है। **'समासस्य'** (६।१।२१८) से प्राप्त अन्तोदात्त स्वर नहीं होता है।

(२) **यूपवलजः।** यूप+सु+वलज+सु। यूपवलज+सु। यूपवलजः।

यहां बहुव्रीहि समास का 'यूप' पूर्वपद **'कुसुयुभ्यश्च'** (दश०उ० ७।५) से प-प्रत्ययान्त है, वहां दीर्घ और नित् की अनुवृत्ति है। अतः प्रत्यय के नित् होने से 'यूप' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृति स्वर से रहता है।

(३) **ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः।** ब्रह्मचारिन्+सु+परिस्कन्द+सु। ब्रह्मचारिपरिस्कन्द+सु। ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः।

यहां बहुव्रीहि समास के 'ब्रह्मचारी' पूर्वपद में **'व्रते'** (३।२।८०) से 'णिनि' प्रत्यय और **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है **'गतिकारकोपपदात् कृत्'** (६।२।१३८) से 'ब्रह्मचारी' शब्द कृत्स्वर से अन्तोदात्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(४) **स्नातकपुत्रः।** स्नातक+सु+पुत्र+सु। स्नातकपुत्र+सु। स्नातकपुत्रः।

यहां बहुव्रीहि समास के 'स्नातक' पूर्वपद में 'यावादिभ्यः कन्' (५।४।२९) से 'कन्' प्रत्यय है। अतः प्रत्यय के नित् होने से 'स्नातक' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(५) **अध्यापकपुत्रः।** अध्यापक+सु+पुत्र+सु। अध्यापकपुत्र+सु। अध्यापकपुत्रः।

यहां बहुव्रीहि समास के 'अध्यापक' पूर्वपद में **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है, अर्थात् 'अध्यापक' शब्द मध्योदात्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(६) **श्रोत्रियपुत्रः।** श्रोत्रियन्+सु+पुत्र+सु। श्रोत्रियपुत्र+सु। श्रोत्रियपुत्रः।

यहां बहुव्रीहि समास का 'श्रोत्रियन्' पूर्वपद नित् होने से पूर्ववत् आद्युदात्त है। इस सूत्र में वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(७) **मनुष्यनाथः।** मनुष्य+सु+नाथ+सु। मनुष्यनाथ+सु। मनुष्यनाथः।

यहां बहुव्रीहि समास के पूर्ववद में 'मनुष्य' शब्द में **'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च'** (५।१।१६१) से 'यत्' प्रत्यय है। प्रत्यय के तित् होने से **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७६) से 'मनुष्य' शब्द स्वरितान्त है। इस सूत्र से वह बहुव्रीहि समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।

यहां 'कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः' (६।१।१५४) से उदात्त की और 'तित् स्वरितम्' (६।१।१७९) से स्वरित की अनुवृत्ति होने से सर्वानुदात्तवाले पूर्वपद में यह पूर्वपद प्रकृतिस्वर की विधि नहीं होती है। जैसे-समभागः। यहां पूर्वपद का 'सम' शब्द सर्वानुदात्त है। अतः यहां 'समासस्य' (६।१।२१९) से अन्तोदात्त स्वर होता है।

प्रकृतिस्वरः-

(२) तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-द्वितीयाकृत्याः।२।

प०वि०-तत्पुरुषे ७।१ तुल्यार्थ-तृतीया-सप्तमी-उपमान-अव्यय-द्वितीया-कृत्याः १।३।

स०-तुल्योऽर्थो यस्य तत्-तुल्यार्थम्। तुल्यार्थं च तृतीया च सप्तमी च उपमानं च अव्ययं च द्वितीया च कृत्याश्च ते-तुल्यार्थ०कृत्याः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे तुल्यार्थ०कृत्याः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे तुल्यार्थम्, तृतीयान्तम्, सप्तम्यन्तम्, उपमानवाचि, अव्ययम्, द्वितीयान्तम्, कृत्यप्रत्ययान्तं च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(तुल्यार्थम्) तुल्यश्चासौ श्वेतः-तुल्यश्वेतः। तुल्यलोहितः। तुल्यमहान्। सदृक् चासौ श्वेतः-सदृक्च्छ्वेतः। सदृग्लोहितः। सदृग्महान्। सदृशश्चासौ श्वेतः-सदृशश्वेतः। सदृशलोहितः। सदृशमहान्। (तृतीयान्तम्) शङ्कुलया खण्डः-शङ्कुलाखण्डः। किरिणा काणः-किरिकाणः। (सप्तम्यन्तम्) अक्षेषु शौण्डः-अक्षशौण्डः। पानशौण्डः (उपमानम्) शस्त्री इव श्यामा-शस्त्रीश्यामा। कुमुदश्येनी। हंसगद्गदा। न्यग्रोधपरिमण्डला। दूर्वाकाण्डश्यामा। शरकाण्डगौरी। (अव्ययम्) न ब्राह्मणः-अब्राह्मणः। अवृषलः। कुत्सितो ब्राह्मणः-कुब्राह्मणः। कुवृषलः। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः-निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः। खट्वामतिक्रान्तः-अतिखट्वः। अतिमालः। (द्वितीया) मुहूर्तं सुखम्-मुहूर्तसुखम्। मुहूर्तरमणीयम्। सर्वरात्रं कल्याणी-सर्वरात्रकल्याणी।

सर्वरात्रशोभना। (कृत्यान्तम्) भोज्यं च तद् उष्णम्-भोज्योष्णम्। पानीयशीतम्। हरणीयचूर्णम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (तुल्यार्थ०कृत्याः) तुल्यार्थक, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-(तुल्यार्थ) ***तुल्यश्वेतः।*** *समान श्वेत (सफेद)।* ***तुल्यलोहितः।*** *समान लोहित (लाल)।* ***तुल्यमहान्।*** *समान महान् (पूज्य)।* ***सदृक्छ्वेतः। सदृग्लोहितः। सदृग्महान्।*** *अर्थ पूर्ववत् है।* ***सदृशश्वेतः। सदृशलोहितः। सदृशमहान्।*** *अर्थ पूर्ववत् है।* ***(तृतीया)*** ***शङ्कुलाखण्डः।*** *शङ्कुला=सरौता से किया हुआ खण्ड (टुकड़ा)।* ***किरिकाणः।*** *किरि=बाण से किया गया काणा।* ***(सप्तमी) अक्षशौण्डः।*** *अक्ष=द्यूतक्रीडा में चतुर।* ***पानशौण्डः।*** *सुरापान में चतुर।* ***(उपमानवाची) शस्त्रीश्यामा।*** *शस्त्री=बर्छी के समान श्यामवर्णवाली।* ***कुमुदश्येनी।*** *कुमुद=कमल के समान श्वेत वर्णवाली।* ***हंसगद्गदा।*** *हंस के समान गद्गद्=वाक्स्खलनवाली।* ***न्योग्रोधपरिमण्डला।*** *न्यग्रोध=बड़ के समान परिमण्डल (घेरा) वाली।* ***दूर्वाकाण्डश्यामा।*** *दूर्वा=दूब के काण्ड=शाखा के समान श्यामवर्णवाली।* ***शरकाण्डगौरी।*** *शरकाण्ड=सरकण्डे के समान गौर वर्णवाली।* ***(अव्यय) अब्राह्मणः।*** *जो ब्राह्मण नहीं है।* ***अवृषलः।*** *जो वृषल=नीच नहीं है।* ***कुब्राह्मणः।*** *कुत्सित=निन्दित ब्राह्मण।* ***कुवृषलः।*** *कुत्सित वृषल=नीच।* ***निष्कौशाम्बिः।*** *कौशाम्बी नगरी से निकला हुआ।* ***निर्वाराणसिः।*** *वाराणसी नगरी से निकला हुआ।* ***अतिखट्वः।*** *खट्वा=खाट का अतिक्रमण करनेवाला।* ***अतिमालः।*** *माला का अतिक्रमण करनेवाला।* ***(द्वितीया) मुहूर्त्तसुखम्।*** *मुहूर्त भर को सुख।* ***मुहूर्त्तरमणीयम्।*** *मुहूर्त भर को रमणीय (सुन्दर)।* ***सर्वरात्रकल्याणी।*** *समस्त रात्रि सुखदायिनी।* ***सर्वरात्रशोभना।*** *समस्त रात्रि सोहणी।* ***(कृत्यान्त) भोज्योष्णम्।*** *उष्ण भोज्य पदार्थ।* ***भोज्यलवणम्।*** *नमकीन भोज्य पदार्थ।* ***पानीयशीतम्।*** *पीने योग्य शीतल पदार्थ।* ***हरणीयचूर्णम्।*** *आहार के योग्य चूर्ण।*

सिद्धि०-(१) तुल्यश्वेतः। *तुल्य+सु+श्वेत+सु। तुल्यश्वेत+सु। तुल्यश्वेतः।*

यहां तुल्य और श्वेत शब्दों का ***'कृत्यतुल्याख्या अजात्या'*** *(१।१।६७) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इसके पूर्वपद 'तुल्य' शब्द में* ***'नौवयोधर्म०'*** *(४।४।९१) से 'यत्' प्रत्यय है।* ***'यतोऽनावः'*** *(६।१।२०७) से 'तुल्य' शब्द आद्युदात्त है। इस सूत्र से वह तत्पुरुष समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-तुल्यलोहितः,* ***तुल्यमहान्।***

(२) ***सदृक्छ्वेतः।*** *यहां तुल्यार्थक 'सदृक्' शब्द और 'श्वेत' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है।* ***'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च'*** *(३।२।६०) से 'सदृक्' शब्द क्विप्-प्रत्ययान्त है।* ***'दृग्दृशवतुषु'*** *(६।३।१८८) से समान को स-भाव होता है।* ***'गतिकारकोपपदात् कृत्'*** *(६।३।८८) से 'सदृक्' शब्द अन्तोदात्त है। इस सूत्र*

से वह तत्पुरुष समास के पूर्वपद में प्रकृति स्वर से रहता है। ऐसे ही-सदृग्लौहितः, सदृग्महान्।

(३) सदृशश्वेतः। यहां तुल्यार्थक 'सदृश' शब्द और 'श्वेत' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय समास है। 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' (३।२०।६०) से 'सदृश' शब्द कञ्-प्रत्ययान्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-सदृशलौहितः, सदृशमहान्।

(४) शङ्कुलाखण्डः। शङ्कुला+टा+खण्ड+सु। शङ्कुलाखण्ड+सु। शङ्कुलाखण्डः।

यहां शङ्कुला और खण्ड शब्दों का 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' (२।२।२९) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इसका तृतीयान्त 'शङ्कुला' पूर्वपद शङ्कु-पूर्वक 'ला आदाने' (अदा०प०) धातु से वा०-'घञर्थे कविधानम्' (३।३।५८) से क-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(५) किरिकाणः। यहां किरि और काण शब्दों का पूर्ववत् तृतीया समास है। इसका तृतीयान्त 'किरि' पूर्वपद 'कॄगॄशॄपॄकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्च' (उ० ३।१४४) से इकार-प्रत्ययान्त होने से आन्तोदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(६) अक्षशौण्डः। अक्ष+सुप्+शौण्ड+सु। अक्षशौण्ड+सु। अक्षशौण्डः।

यहां अक्ष और शौण्ड शब्दों का 'सप्तमी शौण्डैः' (२।१।३९) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इसका सप्तम्यन्त 'अक्ष' पूर्वपद 'अशो देवने' (उ० ३।६५) से स-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(७) पानशौण्डः। यहां पान और शौण्ड शब्दों का पूर्ववत् सप्तमी तत्पुरुष समास है। इसका सप्तम्यन्त 'पान' पूर्वपद ल्युट्-प्रत्ययान्त होने से 'लिति' (६।१।१८७) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(८) शस्त्रीश्यामा। शस्त्री+सु+श्यामा+सु। शस्त्रीश्यामा+सु। शस्त्रीश्यामा।

यहां शस्त्री और श्यामा शब्दों का 'उपमानानि सामान्यवचनैः' (२।१।५४) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इसका उपमानवाची 'शस्त्री' पूर्वपद ङीष्-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(९) कुमुदश्येनी। यहां कुमुद और श्येनी शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इसका 'कुमुद' पूर्वपद 'कौ मोदते इति कुमुदम्' 'मूलविभुजादि' (वा० ३।२।५) से क-प्रत्ययान्त और 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य' (फिट्० २।३) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(१०) हंसगद्गदा। यहां हंस और गद्गदा शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इसका उपमानवाची 'हंस' पूर्वपद 'वृतॄवदिहनिकमिकषिभ्यः सः' (उणा० ३।६५) से स-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(११) **न्यग्रोधपरिमण्डला।** यहां न्यग्रोध और परिमण्डल शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इसका उपमानवाची 'न्यग्रोध' पूर्वपद **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०'** (३।१।१३४) से अच्-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। **'न्यग्रोधस्य च केवलस्य'** (७।३।५) इस सूत्रोक्त निपातन से 'रुह्' धातु के हकार को धकार आदेश **(न्यग् रोहतीति न्यग्रोधः)** और मध्योदात्त होता है। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(१२) **दूर्वाकाण्डश्यामा।** यहां दूर्वाकाण्ड और श्यामा शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इसके उपमानवाची 'दूर्वाकाण्ड' पूर्वपद में षष्ठीतत्पुरुष समास होने से **'समासस्य'** (६।१।२१७) से अन्तोदात्त है- **'दूर्वायाः काण्डम्- दूर्वाकाण्डम्'**। इस सूत्र से यह तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**शरकाण्डगौरी।**

(१३) **अब्राह्मणः।** नञ्+सु+ब्राह्मण+सु। अ+ब्राह्मण+अब्राह्मण+सु। अब्राह्मणः।

यहां नञ् और ब्राह्मण शब्दों का **'नञ्'** (२।१।६) से नञ् तत्पुरुष समास है। इस का अव्यय 'नञ्' पूर्वपद **'निपाता आद्युदात्ताः'** (फिट्० ४।१२) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से तत्पुरुष समास में प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**अवृषलः।**

(१४) **कुब्राह्मणः।** यहां कु और ब्राह्मण शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**कुवृषलः।**

(१५) **निष्कौशाम्बिः।** यहां निस् और कौशाम्बी शब्दों का पूर्ववत् प्रादि-तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**निर्वाराणसिः।**

(१६) **अतिखट्वः।** यहां अति और खट्वा शब्दों का पूर्ववत् प्रादि-तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अतिमालः।**

(१७) **मुहूर्तसुखम्।** मुहूर्त+अम्+सुख+सु। मुहूर्तसुख+सु। मुहूर्तसुखम्।

यहां मुहूर्त और सुख शब्दों का **'अत्यन्तसंयोगे च'** (२।१।२९) से द्वितीयातत्पुरुष समास है। इसका द्वितीयान्त 'मुहूर्त' शब्द **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०८) से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(१८) **सर्वरात्रकल्याणी।** यहां सर्वरात्र और कल्याण शब्दों का पूर्ववत् द्वितीया तत्पुरुष समास है। इसका द्वितीयान्त 'सर्वरात्र' शब्द **'अहःसर्वैकदेश०'** (५।४।८७) से समासान्त अच्-प्रत्ययान्त होने से अन्दोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**सर्वरात्रशोभना।**

(१९) **भोज्योष्णम्।** यहां भोज्य और उष्ण शब्दों का **'कृत्यतुल्याख्या अजात्या'** (२।१।६८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इसके 'भोज्यम्' पूर्वपद **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।२४) से ण्यत्-प्रत्ययान्त होने से अन्तस्वरित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२०) **पानीयशीतम्।** यहां पानीय और शीत शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इसके 'पानीयम्' पूर्वपद के **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से अनीयर्-प्रत्ययान्त होने से **'उपोत्तमं रिति'** (६।१।२११) से इसका ईकार उदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

प्रकृतिस्वरः—

(३) वर्णो वर्णेष्वनेते ।३।

प०वि०—वर्णः १ ।१ वर्णेषु ७ ।३ अनेते ७ ।१ ।

स०—न एतः-अनेतः, तस्मिन्-अनेते (नञ्तत्पुरुषः), एतः-रंग-बिरंगा इति भाषायाम् ।

अनु०—प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते ।

अन्वयः—तत्पुरुषेऽनेतेषु वर्णेषु वर्णः पूर्वपदं प्रकृत्या ।

अर्थः—तत्पुरुषे समासे एत-शब्दवर्जितेषु वर्णवाचिषु उत्तरपदेषु वर्णवाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति ।

उदा०—कृष्णश्चासौ सारङ्ग इति कृ॒ष्णसा॑रङ्गः । लोहि॒त॑सारङ्गः । कृ॒ष्णक॑ल्माषः । लोहि॒त॑कल्माषः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अनेते) एत-शब्द से भिन्न (वर्णेषु) वर्णवाची उत्तरपद होने पर (वर्णः) वर्णवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कृ॒ष्णसा॑रङ्गः** । काला और चितकबरा। **लोहि॒त॑सारङ्गः** । लाल और चितकबरा। **कृ॒ष्णश॑बलः** । काला और रंग-बिरंगा। **लोहि॒त॑शबलः** । लाल और रंग-बिरंगा।*

सिद्धि-(१) कृ॒ष्णसा॑रङ्गः । कृष्ण+सु+सारङ्ग+सु । कृष्णसारङ्ग+सु । कृष्णसारङ्गः ।

*यहां कृष्ण और सारङ्ग शब्दों का **'वर्णो वर्णेन'** (२ ।१ ।६९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। यहां एत-शब्द से भिन्न वर्ण विशेषवाची 'सारङ्ग' शब्द उत्तरपद होने पर वर्णविशेषवाची 'कृष्ण' पूर्वपद इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से रहता है। **'कृषेर्वर्णे'** (उणा० ३ ।४) से 'कृष्ण' शब्द नक्-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। ऐसे ही-**कृ॒ष्णक॑ल्माषः** ।*

*(२) **लोहि॒त॑सारङ्गः** । यहां लोहित और सारङ्ग शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। एत-शब्द से भिन्न वर्ण विशेषणवाची सारङ्ग शब्द उत्तरपद होने पर वर्णविशेषवाची 'लोहित' पूर्वपद इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से रहता है। लोहित शब्द **'रुहेरश्च लो वा'** (उणा० ३ ।९४) से इतन्-प्रत्ययान्त होने से आद्युदात्त है। ऐसे ही-**लोहि॒त॑शबलः** ।*

प्रकृतिस्वरः—

(४) गाधलवणयोः प्रमाणे ।४।

प०वि०—गाध-लवणयोः ७ ।२ प्रमाणे ७ ।१ ।

स०-गाधश्च लवणं च ते गाधलवणे, तयोः-गाधलवणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रमाणे तत्पुरुषे गाधलवणयोः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे समासे गाधलवणयोरुत्तरपदयोः परतः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-**(गाधः)** शम्बस्य गाधम्-शम्बगाधम् उदकम्। अरित्रस्य गाधम्-अरित्रगाधम् उदकम्। शम्बप्रमाणम्, अरित्रप्रमाणं चेत्यर्थः। **(लवणम्)** गोर्लवणम् गोलवणम्। अश्वस्य लवणम्-अश्वलवणम्। यावल्लवणं गवेऽश्वाय च दीयते तावदित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रमाणे) प्रमाणवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गाधलवणयोः) गाध और लवण शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**शम्बगाधम् उदकम्**। शम्ब=भूखण्ड भर प्रमाण का जल। **अरित्रगाधम् उदकम्**। अरित्र=नौका के दण्ड (चप्पू) प्रमाण का जल। **गोलवणम्**। जितना गौ को दिया जाता है उतना लवण (नमक)। **अश्वलवणम्**। जितना घोड़े को दिया जाता है उतना लवण।*

*सिद्धि-(१) **शम्बगाधम्**। शम्ब+ङस्+गाध+सु। शम्बगाध+सु। शम्बगाधम्।*

यहां प्रमाणवाची शम्ब और गाध शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से गाध शब्द उत्तरपद होने पर शम्ब पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'शमेर्वन्' (उणा० ४।९४) से शम्ब शब्द वन्-प्रत्ययान्त होने से नित्स्वर से आद्युदात्त है।

*(२) **अरित्रगाधम्**। यहां प्रमाणवाची अरित्र और गाध शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से गाध शब्द उत्तरपद होने पर 'अरित्र' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'अर्तिलूधू०' (३।२।१८४) से 'अरित्र' शब्द इत्र-प्रत्ययान्त होने से प्रत्ययस्वर से मध्योदात्त है।*

*(३) **गोलवणम्**। यहां प्रमाणवाची गो और लवण शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से लवण शब्द उत्तरपद होने पर 'गो' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'गमेर्डोः' (उणा० १।१।५१) से डो-प्रत्ययान्त 'गो' शब्द प्रत्ययस्वर से उदात्त है।*

*(४) **अश्वलवणम्**। यहां प्रमाणवाची अश्व और लवण शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से लवण शब्द उत्तरपद होने पर 'अश्व' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'अशुप्रुषिलटि०' (उणा० २।६७) से 'अश्व' शब्द क्वन्-प्रत्ययान्त होने से नित्स्वर से आद्युदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः–

(५) दायाद्यं दायादे।५।

प०वि०–दायाद्यम् १।१ दायादे ७।१।

स०–दायमादत्ते इति दायादः (उपपदतत्पुरुषः) मूलविभुजादित्वात् कः प्रत्ययः। दायादस्य भावः–दायाद्यम्। **'गुणवचनब्राह्मणदिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादित्वाद् भावे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे दायादे दायाद्यं पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे दायाद–शब्दे उत्तरपदे दायाद्यवाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–विद्याया दायादः–विद्यादायादः। धनस्य दायादः–धनदायादः। दायः=भागः, अंश इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (दायादे) दायाद शब्द उत्तरपद होने पर (दायाद्यम्) दायाद्यवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०–**विद्यादायादः**। विद्या के भाग को लेनेवाला। **धनदायादः**। धन के भाग को लेनेवाला। पूर्वजों से प्राप्त करने योग्य पदार्थ को 'दायाद्य' कहते हैं।*

सिद्धि–(१) विद्यादायादः। *विद्या+ङस्+दायाद+सु। विद्यादायद+सु। विद्यादायादः।*

*यहां विद्या और दायाद शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से दायाद शब्द उत्तरपद होने पर दायाद्यवाची 'विद्या' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। **'संज्ञायां समजनिषद०'** (३।३।९९) से 'विद्या' शब्द क्यप्-प्रत्ययान्त है और वहां क्यप् प्रत्यय के उदात्तवचन से अन्तोदात्त है।*

*(२) **धनदायादः**। यहां धन और दायाद शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से दायाद शब्द उत्तरपद होने पर दायाद्यवाची 'धन' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। **'कृपृवृजिमन्दिनिधाञ्भ्यः क्युः'** (द० उणा० ५।२६) में बहुल-वचन से केवल 'धाञ्' धातु से 'क्यु' प्रत्यय होने से 'धन' शब्द प्रत्ययस्वर से आद्युदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः–

(६) प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः।६।

प०वि०–प्रतिबन्धि १।१ चिरकृच्छ्रयोः ७।२।

कृदवृत्तिः–कार्यसिद्धिं प्रतिबध्नाति=व्याहन्तीति प्रबन्धि। **'आवश्यकाधर्मण्ययोर्णिनिः'** (३।३।१७०) इति आवश्यके णिनिः प्रत्ययः।

स०-चिरं च कृच्छ्रं च ते चिरकृच्छ्रे, तयो:-चिरकृच्छ्रयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्पुरुषे चिरकृच्छ्रयो: प्रतिबन्धि पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थ:-तत्पुरुषे समासे चिरकृच्छ्रयोरुत्तरपदयो: प्रतिबन्धिवाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-**(चिरम्)** गमनं च तच्चिरम्-गमनचिरम्। व्याहरणचिरम्। **(कृच्छ्रम्)** गमनं च तत् कृच्छ्रम्-गमनकृच्छ्रम्। व्याहरणकृच्छ्रम्। अत्र **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) इति कर्मधारयतत्पुरुष:।

गमनं हि कारणविकलतया चिरकालभावि कृच्छ्रयोगि वा सत् प्रतिबन्धि जायते।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (चिरकृच्छ्रयो:) चिर और कृच्छ्र शब्द उत्तरपद होने पर (प्रतिबन्धि) प्रतिबन्धी=विघातीवाची पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(चिर) **गमनचिरम्।** चिरकालभावी गमन (जाना)। **व्याहरणचिरम्।** चिरकालभावी व्याहरण (बोलना)। (कृच्छ्र) **गमनकृच्छ्रम्।** दु:खदायी गमन (जाना)। **व्याहरणकृच्छ्रम्।** दु:खदायी व्याहरण (बोलना)।*

गाड़ी आदि के अभाव से गमन आदि चिरकालभावी वा कृच्छ्रयोगी होता हुआ प्रतिबन्धी (रुकावटी) हो जाता है।

*सिद्धि-(१) **गमनचिनम्।** गमन+सु+चिर+सु। गमनचिर+सु। गमनचिरम्।*

*यहां प्रतिबन्धीवाची गमन और चिर शब्दों का 'मयूरव्यंसकारदयश्च' (२।१।७१) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से चिर शब्द उत्तरपद होने पर प्रतिबन्धीवाची गमन पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'गमन' शब्द ल्युट्-प्रत्ययान्त होने से लित्स्वर से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्तवाला अर्थात् आद्युदात्त है। ऐसे ही-**गमनकृच्छ्रम्।***

*(२) **व्याहरणचिरम्।** यहां प्रतिबन्धीवाची व्याहरण और चिर शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से चिर शब्द उत्तरपद होने पर प्रतिबन्धीवाची व्याहरण पूर्वपद् प्रकृतिस्वर से रहता है। 'व्याहरण' शब्द ल्युट्-प्रत्ययान्त होने से लित् स्वर से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्तवाला अर्थात् मध्योदात्त है। ऐसे ही-**व्याहरणकृच्छ्रम्।***

प्रकृतिस्वरः–

(७) पदेऽपदेशे।७।

प०वि०–पदे ७।१ अपदेशे ७।१।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषेऽपदेशे पदे पूर्ववदं प्रकृत्या।

अर्थः–तत्पुरुषे समासेऽपदेशवाचिनि पद-शब्दे उत्तरपदे परतः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–मूत्रं च तत् पदम्–मूत्रपदम्। मूत्रपदेन प्रस्थितः। उच्चारं च तत् पदम्–उच्चारपदम्। उच्चारपदेन प्रस्थितः। अपदेशः=व्याजः। मूत्रव्याजेन, उच्चारव्याजेन वा गत इत्यर्थः। उच्चारः=मलत्यागः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अपदेशे) अपदेश=व्याज (बहाना) वाची (पदे) पद शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**मूत्रपदेन प्रस्थितः।** लघुशंका के बहाने से चला गया। **उच्चारपदेन प्रस्थितः।** मलत्याग (शौच) के बहाने से चला गया।*

*सिद्धि-(१) **मूत्रपदम्।** मूत्र+सु+पद+सु। मूत्रपद+सु। मूत्रपदम्।*

*यहां मूत्र और अपदेशवाची पद शब्दों का **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अपदेशवाची 'पद' शब्द उत्तरपद होने पर 'मूत्र' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'मूत्र' शब्द **'सिविमुच्योष्टेरू च'** (उणा० ४।१६३) से ष्ट्रन्-प्रत्ययान्त होने से नित्स्वर से आद्युदात्त है।*

*(२) **उच्चारपदम्।** यहां उच्चार और अपदेशवाची पद शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अपदेशवाची 'पद' शब्द उत्तरपद होने पर 'उच्चार' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'उच्चार' शब्द घञ्-प्रत्ययान्त होने से **'थाथघञ्क्त०'** (६।२।१४३) से अन्तोदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः–

(८) निवाते वातत्राणे।८।

प०वि०–निवाते ७।१ वातत्राणे ७।१।

स०–वातस्याभावः–निवातम्, तस्मिन्–निवाते। **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।२।६) इत्यर्थाभावेऽव्ययीभावः। अथवा–निरुद्धो वातो यस्मिन् सः–

निवातः, तस्मिन्-निवाते (बहुव्रीहिः) वातात् त्राणम्-वातत्राणम्, तस्मिन्-वातत्राणे (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे वातत्राणे निवाते पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे वातत्राणवाचिनि निवातशब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-कुटी एव निवातम्-कुटीनिवातम्। शमीनिवातम्। कुड्य-निवातम्।

अत्र कुट्यादिहेतुके निवाते कुट्यादयो वर्तमानाः सन्तः समानाधिकरणेन निवातशब्देन सह समस्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुष) तत्पुरुष समास में (वातत्राण) वात-त्राण=हवा से बचाव-वाची (निवाते) निवात शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कुटीनिवातम्।** हवा से बचाव करनेवाली कुटीर। **शमीनिवातम्।** हवा से बचाव करनेवाली शमी (जांटी वृक्ष)। **कुड्यनिवातम्।** हवा से बचाव करनेवाली कुड्य (दीवार)।*

*सिद्धि-(१) **कुटीनिवातम्।** कुटी+सु+निवात+सु। कुटीनिवात+सु। कुटीनिवातम्।*

*यहां कुटी और वातत्राणवाची 'निवात' शब्दों का **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वातत्राणवाची 'निवात' शब्द उत्तरपद होने पर 'कुटी' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'कुटी' शब्द गौरादिगण में पठित होने से प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। ऐसे ही-**शमीनिवातम्।***

*(२) **कुड्यनिवातम्।** यहां 'कुड्य' और वातत्राणवाची 'निवात' शब्दों का पूर्वपद कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'निवात' शब्द उत्तरपद होने पर 'कुड्य' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'कुड्य' शब्द **'कवतेर्यत्'** से यत्-प्रत्ययान्त होने से **'यतोऽनावः'** (६।१।२०७) से आद्युदात्त है। कई आचार्यों का मत है कि **'कवतेर्ड्यक्'** से 'कुड्य' शब्द ड्यक्-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। **कुड्यनिवातम्।** (कई आचार्यों के मत में)। महर्षि दयानन्द द्वारा पंचपादी उणादिवृत्ति (४।११३) में 'कुड्य' शब्द बहुलवचन से यक्-प्रत्ययान्त व्याख्यात है।*

प्रकृतिस्वरः-

(६) शारदेऽनार्तवे।६।

प०वि०-शारदे ७।१ अनार्तवे ७।१।

स०-ऋतौ भवम्-आर्तवम्, न आर्तवम्-अनार्तवम्, तस्मिन्-अनार्तवे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषेऽनार्तवे शारदे पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासेऽनार्तववाचिनि शारद-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-रज्जूद्धृतं च तच्छारदम्-रज्जुशारदम् उदकम्। दृषत्पिष्टाः शारदाः-दृषच्छारदाः सक्तवः।

शारदशब्दोऽत्र प्रत्यग्रवाची, तस्य नित्यसमासोऽस्वपदविग्रहश्चेष्यते। सद्यो रज्जूद्धृतम् प्रत्यग्रम्=अभिनवम् उदकं रज्जुशारदमुच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अनार्तवे) आर्तव से भिन्न अर्थवाची (शारदे) शारद शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**रज्जुशारदम् उदकम्।** अभी-अभी रस्सी से निकाला हुआ ताजा जल। **दृषच्छारदाः सक्तवः।** दृषत्=पत्थर से (चक्की में) पिसे हुये ताजा सत्तू।*

*सिद्धि-(१) **रज्जुशारदम्।** रज्जु+सु+शारद+सु। रज्जुशारद+सु। रज्जुशारदम्।*

*यहां रज्जु और आर्तव अर्थ से भिन्न अर्थ में विद्यमान शारद शब्दों का **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। यह नित्य और अस्वपदविग्रही समास है। इस सूत्र से अनार्तववाची 'शारद' शब्द उत्तरपद होने पर 'रज्जु' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'रज्जु' शब्द **'सृजेः सुम् च'** (उणा० १।१५) से उ-प्रत्ययान्त है और वहां नित् की अनुवृत्ति से नित्स्वर से आद्युदात्त है। यहां शारद अभिनववाची है, आर्तववाची नहीं। आर्तव=ऋतुसम्बन्धी।*

*(२) **दृषच्छारदाः।** यहां दृषत् और अनार्तववाची शारद शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अनार्तववाची शारद शब्द उत्तरपद होने पर 'दृषत्' पूर्ववत् प्रकृतिस्वर से रहता है। 'दृषत्' शब्द 'दृणातेः षुग्घ्रस्वश्च' (उणा० १।१३१) से अदि-प्रत्ययान्त होने से प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः—

(१०) अध्वर्युकषाययोर्जातौ ।१०।

प०वि०—अध्वर्यु-कषाययोः ७।२ जातौ ७।१।

स०—अध्वर्युश्च कषायश्च तौ—अध्वर्युकषायौ, तयोः—अध्वर्युकषाययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०—प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः—तत्पुरुषेऽध्वर्युकषाययोः पूर्वपदं प्रकृत्या, जातौ।

अर्थः—तत्पुरुषे समासेऽध्वर्युकषाययोरुत्तरपदयोः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति, जातौ गम्यमानायाम्।

उदा०—**(अध्वर्युः)** कठश्चासावध्वर्युः—कठाध्वर्युः। कालापाध्वर्युः। प्राच्याध्वर्युः। **(कषायः)** सर्पिर्मण्डस्य कषायम्—सर्पिर्मण्डकषायम्। उमापुष्पकषायम्। दौवारिककषायम्।

आर्यभाषाः अर्थ—*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अध्वर्युकषाययोः) अध्वर्यु और कषाय शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है (जातौ) यदि वहां जाति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०—(अध्वर्यु) ***कठाध्वर्युः।*** *कठ जाति का अध्वर्यु (ऋत्विक्)।* ***कालापाध्वर्युः।*** *कालाप जाति का अध्वर्यु (ऋत्विक्)।* ***प्राच्याध्वर्युः।*** *प्राच्य भरत का अध्वर्यु।* ***(कषाय) सर्पिर्मण्डकषायम्।*** *घृत की मांड के समान कसैला पदार्थ।* ***उमापुष्पकषायम्।*** *हल्दी के फूल के समान कसैला पदार्थ।* ***दौवारिककषायम्।*** *द्वारपाल के समान कसैले (कड़वे) स्वभाव का पुरुष।*

सिद्धि—*(१)* ***कठाध्वर्युः।*** *कठ+सु+अध्वर्यु+सु। कठाध्वर्यु+सु। कठाध्वर्युः।*

यहां कठ और अध्वर्यु शब्दों का ***'मयूरव्यंसकादयश्च'*** *(२।१।७१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अध्वर्यु शब्द उत्तरपद परे होने पर 'कठ' पूर्वपद जातिविशेष अर्थ अभिधेय में प्रकृतिस्वर से रहता है। 'कठ' शब्द* ***'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'*** *(३।१।१३४) से पचादि अच्-प्रत्ययान्त व्युत्पादित है। उस 'कठ' शब्द से* ***'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च'*** *(४।३।१०४) से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है और उसका* ***'कठचरकाल्लुक्'*** *(४।३।१०७) से लुक् हो जाता है। इस प्रकार 'कठ' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है।*

(२) ***कालापाध्वर्युः।*** *यहां कालाप और अध्वर्यु शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अध्वर्यु शब्द उत्तरपद होने पर 'कालाप' पूर्वपद जाति अर्थ अभिधेय*

में प्रकृतिस्वर से रहता है। 'कलापिनोऽण्' (४।३।१०८) से कलापी शब्द से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'इनण्यनपत्ये' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव प्राप्त होने पर वा०- 'नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारि०' (६।४।१४४) से टि-लोप होता है। इस प्रकार 'कालाप' शब्द प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है।

*(३) **प्राच्याध्वर्युः।** यहां प्राच्य और अध्वर्यु शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अध्वर्यु शब्द उत्तरपद होने पर 'प्राच्य' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'प्राच्य' शब्द **'द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्'** (४।२।१००) से यत्-प्रत्ययान्त है। अतः **'यतोऽनावः'** (६।१।२०७) से आद्युदात्त है।*

*(४) **सर्पिर्मण्डकषायम्।** सर्पिर्मण्ड+ङस्+कषाय+सु। सर्पिर्मण्डकषाय+सु। सर्पिर्मण्डकषायम्।*

*यहां सर्पिर्मण्ड और कषाय शब्दों का जाति अर्थ अभिधेय में **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कषाय शब्द उत्तरपद होने पर 'सर्पिर्मण्ड' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'सर्पिर्मण्ड' शब्द में भी षष्ठीसमास होने से यह **'समासस्य'** (६।१।२१७) से अन्तोदात्त है। ऐसे ही-**उमापुष्पकषायम्।***

*(५) **दौवारिककषायम्।** यहां दौवारिक और कषाय शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कषाय शब्द उत्तरपद होने पर 'दौवारिक' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। दौवारिक शब्द **'तत्र नियुक्तः'** (४।४।६९) से नियुक्त अर्थ में ठक्-प्रत्ययान्त है, अतः प्रत्यय के कित् होने से **'कितः'** (६।१।१५९) से अन्तोदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः-

(११) सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये।११।

प०वि०-सदृश-प्रतिरूपयोः ७।२ सादृश्ये ७।१।

स०-सदृशं च प्रतिरूपं च ते सदृशप्रतिरूपे, तयोः-सदृशप्रतिरूपयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-सदृशस्य भावः-सादृश्यम्। अत्र **'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इत्यनेन ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वाद् भावे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सादृश्ये सदृशप्रतिरूपयोः प्रकृत्या पूर्वपदम्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सादृश्यवाचिनोः सदृशप्रतिरूपयोरुत्तरपदयोः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**सदृशम्**) पित्रा सदृश इति पितृसदृशः। मात्रा सदृश इति मातृसदृशः। (**प्रतिरूपम्**) पित्रा प्रतिरूप इति पितृप्रतिरूपः। मात्रा प्रतिरूप इति मातृप्रतिरूपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सादृश्ये) सदृशतावाची (सदृशप्रतिरूपयोः) सदृश और प्रतिरूप शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(सदृश) **पितृसदृशः**। पिता के समान। **मातृसदृशः**। माता के समान (**प्रतिरूप**) **पितृप्रतिरूपः**। पिता के समान। **मातृप्रतिरूपः**। माता के समान।*

*सिद्धि-(१) **पितृसदृशः**। पितृ+टा+सदृश+सु। पितृसदृश+सु। पितृसदृशः।*

*यहां पितृ और सदृश शब्दों का '**पूर्वसदृश०**' (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सादृश्य अर्थ में 'सदृश' शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद 'पितृ' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। 'पितृ' शब्द '**नप्तृनेष्टृत्वष्टृ०**' (उणा० २।९५) से अन्तोदात्त निपातित है। ऐसे ही-**पितृप्रतिरूपः**।*

*(२) **मातृसदृशः**। यहां मातृ और सदृश शब्दों का पूर्ववत् तृतीयातत्पुरुष समास है। शेष सब कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**मातृप्रतिरूपः**।*

प्रकृतिस्वरः--

(१२) द्विगौ प्रमाणे।१२।

प०वि०-द्विगौ ७।१ प्रमाणे ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे प्रमाणे द्विगौ पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे प्रमाणवाचिनि द्विगुसंज्ञके शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-प्राच्यश्चासौ सप्तशमः-प्राच्यसप्तशमः। गान्धारिसप्तशमः।

सप्तशमाः प्रमाणमस्य इत्यस्मिन्नर्थे उत्पन्नस्य मात्रच् प्रत्ययस्य **वा०-'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्'** (५।२।३७) इत्यनेन लुग् भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (प्रमाणे) प्रमाणवाची (द्विगौ) द्विगुसंज्ञक शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**प्राच्यसप्तशमः**। प्राच्य भरत के लोगों के सात हाथ प्रमाणवाला। **गान्धारिसप्तशमः**। गन्धार देश के लोगों के सात हाथ प्रमाणवाला। शम=हाथ।*

*सिद्धि-(१) **प्राच्यसप्तशमः।** यहां प्राच्य और प्रमाणवाची द्विगुसंज्ञक 'सप्तशम' शब्दों का '**मयूरव्यंसकादयश्च**' (२।१।७१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'सप्तशम' शब्द में 'सप्तशमाः प्रमाणस्य' अर्थ में उत्पन्न 'मात्रच्' प्रत्यय का वा०-'**प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्**' (५।२।३७) से नित्य लुक् होता है। 'सप्तशमाः' इस प्रमाणवाची द्विगुसंज्ञक शब्द की '**संख्यापूर्वो द्विगुः**' (२।१।५१) से द्विगु संज्ञा है। इस सूत्र से प्रमाणवाची, द्विगुसंज्ञक 'सप्तशम' शब्द उत्तरपद होने पर 'प्राच्य' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। प्राच्य शब्द '**द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्**' (४।२।१००) से यत्-प्रत्ययान्त है और '**यतोऽनावः**' (६।१।२०७) से आद्युदात्त है।*

*(२) **गान्धारिसप्तशमः।** यहां गान्धारि और प्रमाणवाची, द्विगुसंज्ञक 'सप्तशम' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'गान्धारि' शब्द '**कर्दमादीनां च**' (फिट्० ३।१०) से आद्युदात्त और विकल्पपक्ष में मध्योदात्त भी है-**गान्धारिसप्तशमः।** शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रकृतिस्वरः-

(१३) गन्तव्यपण्यं वाणिजे।१३।

प०वि०-गन्तव्य-पण्यम् १।१ वाणिजे ७।१।

गन्तुमर्हम्=गन्तव्यम्। पणितुमर्हम्=पण्यम्।

स०-गन्तव्यं च पण्यं च एतयोः समाहारः-गन्तव्यपण्यम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे समासे वाणिज-शब्दे उत्तरपदे गन्तव्यवाचि पण्यवाचि च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**गन्तव्यम्**) मद्रेषु वाणिजः-मद्रवाणिजः। काश्मीरवाणिजः। गान्धारिवाणिजः। मद्रादिषु जनपदेषु गत्वा व्यवहरन्तीत्यर्थः। (**पण्यम्**) गवां वाणिजः-गोवाणिजः। अश्ववाणिजः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (वाणिजे) वाणिज शब्द उत्तरपद होने पर (गन्तव्यपण्यम्) गन्तव्यवाची और पण्यवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(**गन्तव्य**) **मद्रवाणिजः।** मद्र जनपद में जाकर व्यापार करनेवाला। **काश्मीरवाणिजः।** काश्मीर जनपद में जाकर व्यापार करनेवाला। **गान्धारिवाणिजः।** गन्धार जनपद में जाकर व्यापार करनेवाला। (**पण्य**) **गोवाणिजः।** गौओं का व्यापारी। **अश्ववाणिजः।** घोड़ों का व्यापारी।*

सिद्धि-(१) मद्रवाणिजः । मद्र+सुप्+वाणिज+सु । मद्रवाणिज+सु । मद्रवाणिजः ।

*यहां गन्तव्यवाची मद्र और वाणिज शब्दों का **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।३९) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'वाणिज' शब्द उत्तरपद होने पर गन्तव्यवाची 'मद्र' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। 'मद्र' शब्द **'स्फायितञ्चि०'** (उणा० २।१३) से रक्-प्रत्ययान्त होने से प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है।*

*(२) **काश्मीरवाणिजः ।** यहां गन्तव्यवाची काश्मीर और वाणिज शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'काश्मीर' शब्द **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०८) से मध्योदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **गान्धारिवाणिजः ।** यहां गन्तव्यवाची गान्धारि और वाणिज शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'गान्धारि' शब्द **'कर्दमादीनां च'** (फिट्० ३।१०) से आद्युदात्त अथवा मध्योदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। मध्योदात्त पक्ष में-**गान्धारिवाणिजः ।***

*(४) **गोवाणिजः ।** यहां पण्यवाची गो और वाणिज शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'गो' शब्द आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **अश्ववाणिजः ।** यहां पण्यवाची अश्व और वाणिज शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'अश्व' शब्द आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। पण्य=क्रय-विक्रय के योग्य पदार्थ।*

प्रकृतिस्वरः-

(१४) मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके।१४।

प०वि०-मात्र-उपज्ञा-उपक्रम-छाये ७।१ नपुंसके ७।१।

स०-मात्रं च उपज्ञा च उपक्रमश्च छाया च एतेषां समाहारो मात्रोपज्ञोपक्रमच्छायम्, तस्मिन्-मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसके तत्पुरुषे मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-नपुंसकवाचिनि तत्पुरुषे समासे मात्र-उपज्ञा-उपक्रम-छायासु उत्तरपदेषु पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(मात्रम्) भिक्षामात्रं न ददाति याचितः। समुद्रमात्रं न सरोऽस्ति किञ्चन। **(उपज्ञा)** पाणिनोपज्ञम् अकालकं व्याकरणम्। व्याड्युपज्ञं दशहुष्करणम्। आपिशल्युपज्ञं गुरुलाघवम्। **(उपक्रमः)** आढ्योपक्रमं प्रासादः। दर्शनीयोपक्रमम्। सुकुमारोपक्रमम्। नन्दोपक्रमाणि मानानि। **(छाया)** इषुच्छायम्। धनुश्छायम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये) मात्र, उपज्ञा, उपक्रम, छाया उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-(मात्र) ***भिक्षामात्रं न ददाति याचितः।*** *वह मांगने पर भिक्षा के तुल्य प्रमाण भी नहीं देता है।* ***समुद्रमात्रं न सरोऽस्ति किञ्चन।*** *समुद्र के तुल्य प्रमाण कोई तालाब नहीं है। (उपज्ञा)* ***पाणिनोपज्ञम् अकालकं व्याकरणम्।*** *पाणिनिमुनि ने अपने उपज्ञान से काललक्षण रहित व्याकरणशास्त्र की रचना की।* ***व्याड्युपज्ञं दशहुष्करणम्।*** *व्याडि मुनि ने अपने उपज्ञान से सर्वप्रथम दश हुष् शब्दों सहित काललक्षणयुक्त व्याकरणशास्त्र की रचना की। पाणिनिमुनि के 'वृत्' शब्द के समान व्याडि मुनि का 'हुष्' शब्द समाप्ति का सूचक है।* ***आपिशल्युपज्ञं गुरुलाघवम्।*** *आपिशलि मुनि ने सर्वप्रथम गुरु और लघु लक्षणयुक्त व्याकरणशास्त्र की रचना की।* ***(उपक्रम) आद्योपक्रमं प्रासादः।*** *आद्य (विश्वकर्मा) ने सर्वप्रथम प्रासाद=महल बनाने का कार्य प्रारम्भ किया।* ***दर्शनीयोपक्रमम्।*** *दर्शनीय के द्वारा सर्वप्रथम बनाया हुआ।* ***सुकुमारोपक्रमम्।*** *सुकुमार के द्वारा सर्वप्रथम बनाया हुआ।* ***नन्दोपक्रमाणि मानानि।*** *नन्द नामक राजा ने सर्वप्रथम मान=बांटों से तोलने की पद्धति प्रारम्भ की।* ***(छाया) इषुच्छायम्।*** *इषु=बहुत धान्यों की छाया।* ***धनुश्छायम्।*** *धनुषों की छाया।*

सिद्धि-(१) ***भिक्षामात्रम्। भिक्षायास्तुल्यप्रमाणमिति भिक्षामात्रम्।*** *यहां भिक्षा और तुल्य प्रमाण शब्दों का अस्वपदविग्रह तथा षष्ठी तत्पुरुष समास है। मात्र शब्द समासवृत्ति में ही तुल्यप्रमाण अर्थ में होता है। 'भिक्षा' शब्द में* ***'भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च'*** *(भ्वा०आ०) से* ***गुरोश्च हलः'*** *(३।३।१०३) से 'अ' प्रत्यय है। अतः यह अ-प्रत्ययान्त होने से प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'मात्र' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(२) ***समुद्रमात्रम्।*** *'समुद्र' शब्द 'पाटलापालङ्कासागरार्थानाम्' (फिट्० १।२) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'मात्र' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(३) ***पाणिनोपज्ञम्।*** *पाणिन+ङस्+उपज्ञा+सु। पाणिनोपज्ञ+सु। पाणिनोपज्ञम्।*

यहां पाणिन और उपज्ञा शब्दों का ***'षष्ठी'*** *(२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। यह* ***'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्'*** *(२।४।२१) से नपुंसकलिङ्ग है।* ***पणिनोऽपत्यं पाणिनः।*** *यहां 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय है। अण्-प्रत्ययान्त 'पाणिन' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से उपज्ञा उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(४) ***व्याड्युपज्ञम्।*** *व्याडि+ङस्+उपज्ञा+सु। व्याड्युपज्ञ+सु। व्याड्युपज्ञम्।*

*यहां 'व्याडि' शब्द में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। यह इञ्-प्रत्ययान्त होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही–**आपिशल्युपज्ञम्।***

*(५) **आद्योपक्रमम्।** 'आद्य' यहां 'आदि' शब्द से **'दिगादिभ्यो यत्'** (४।३।५४) से 'भव' अर्थ में यत्-प्रत्यय है। अतः यह **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से स्वरितान्त है। यह इस सूत्र से 'उपक्रम' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(६) **दर्शनीयोपक्रमम्।** यहां 'दर्शनीय' शब्द में 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है। अतः यह **'उपोत्तमं रिति'** (६।१।२११) से उपोत्तम-उदात्त है। यह इस सूत्र से 'उपक्रम' उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(७) **सुकुमारोपक्रमम्।** 'सुकुमार' शब्द **'नञ्सुभ्याम्'** (६।२।१७२) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'उपक्रम' उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(८) **नन्दोपक्रमम्।** 'नन्द' शब्द में **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय है। अतः यह **'चितः'** (६।१।१५८) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'उपक्रम' उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(९) **इषुच्छायम्।** 'इषु' शब्द में 'इषेः किच्च' (उणा० १।१३) से 'उ' प्रत्यय है। यहां **'धान्ये नित्'** (उणा० १।९) से 'नित्' की अनुवृत्ति मानकर 'उ' प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से यह आद्युदात्त है। इस सूत्र से यह 'छाया' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। **'छाया बाहुल्ये'** (२।४।२२) से नपुंसकलिङ्ग होता है।*

*(१०) **धनुश्छायम्।** 'धनुष्' शब्द **'नब्विषयस्यानिसन्तस्य'** (फिट्० २६) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से यह 'छाया' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः–

(१५) सुखप्रिययोर्हिते।१५।

प०वि०–सुख-प्रिययोः ७।२ हिते ७।१।

स०–सुखं च प्रियश्च तौ सुखप्रियौ, तयोः–सुखप्रिययोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–हिते तत्पुरुषे समासे सुखप्रिययोः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–हितवाचिनि तत्पुरुषे समासे सुखप्रिययोरुत्तरपदयोः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**सुखम्**) गमनसुखम्। वचनसुखम्। व्याहरणसुखम्। (**प्रियम्**) गमनप्रियम्। वचनप्रियम्। व्याहरणप्रियम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हिते) हितवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सुखप्रिययोः) सुख और प्रिय शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(सुख) **गमनसुखम्**। गमन=जाना परिणाम में हितकर है। **वचनसुखम्**। वचन=कहना परिणाम में हितकर है। **व्याहरणसुखम्**। व्याहरण=बोलना परिणाम में हितकर है। (प्रिय) **गमनप्रियम्**। जाना परिणाम में हितकर है। **वचनप्रियम्**। कहना परिणाम में हितकर है। **व्याहरणप्रियम्**। बोलना परिणाम में हितकर है।*

*सिद्धि-**गमनसुखम्**। यहां गमन और सुख शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५६) से समानाधिकरण (कर्मधारय) तत्पुरुष समास है। 'गमन' शब्द ल्युट्-प्रत्ययान्त होने से लित् स्वर से 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है। इस सूत्र से यह सुख शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**वचनसुखम्**, आदि।*

प्रकृतिस्वरः-

(१६) प्रीतौ च।१६।

प०वि०-प्रीतौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे, सुखप्रिययोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सुखप्रिययोः पूर्वपदं प्रकृत्या, प्रीतौ च।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सुखप्रिययोरुत्तरपदयोः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति, प्रीतौ च गम्यमानायाम्।

उदा०-(**सुखम्**) ब्राह्मणसुखं पायसम्। (**प्रियः**) छात्रप्रियोऽनध्यायः। कन्याप्रियो मृदङ्गः।

सुखप्रिययोः प्रीत्यात्मकत्वादिह प्रीतिग्रहणं तदतिशयद्योतनार्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सुखप्रिययोः) सुख और प्रिय शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है (च) और (प्रीतौ) वहां प्रीति अर्थ की प्रतीति होने पर।*

*उदा०-(सुख) **ब्राह्मणसुखं पायसम्**। खीर ब्राह्मण के लिये अत्यन्त सुखदायक है। (प्रिय) **छात्रप्रियोऽनध्यायः**। अनध्याय=छुट्टी छात्रों के लिये अत्यन्त प्रिय है। **कन्याप्रियो मृदङ्गः**। मृदङ्ग=वाद्यविशेष (मुरज) कन्याओं के लिये अत्यन्त प्रिय है।*

सुख और प्रिय प्रीत्यात्मक ही हैं फिर यहां प्रीति का ग्रहण उनकी अधिकता को प्रकाशित करने के लिये किया गया है।

सिद्धि-(१) ब्राह्मणसुखम्। *ब्राह्मण+ङे+सुख+सु। ब्राह्मणसुख+सु। ब्राह्मणसुखम्।*

यहां ब्राह्मण और सुख शब्दों का ***'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'*** *(२।१।३६) से चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'ब्राह्मण' शब्द में 'ब्रह्मन्' शब्द से* ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से सुख शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(२) छात्रप्रियः। *यहां छात्र और प्रिय शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'छात्र' शब्द में* ***'छत्रादिभ्यो णः'*** *(४।४।६२) से 'ण' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से प्रिय शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(३) कन्याप्रियः। *यहां कन्या और प्रिय शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'कन्या' शब्द* ***'तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः'*** *(फिट्० ४।८) से स्वरितान्त है। यह इस सूत्र से 'प्रिय' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(१७) स्वं स्वामिनि।१७।

प०वि०-स्वम् १।१ स्वामिनि ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे स्वामिनि स्वं पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे स्वामि-शब्दे उत्तरपदे स्ववाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-गवां स्वामी-गोस्वामी। अश्वानां स्वामी-अश्वस्वामी। धनस्य स्वामी-धनस्वामी।

आर्यभाषाः अर्थ- *(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (स्वामिनि) स्वामिन् शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**गोस्वामी।** गौओं का स्वामी।* ***अश्वस्वामी।*** *घोड़ों का स्वामी।* ***धनस्वामी।*** *धन का स्वामी।*

सिद्धि-(१) गोस्वामी। *यहां गो और स्वामिन् शब्दों का* ***'षष्ठी'*** *(२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'गो' शब्द प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'स्वामिन्' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(२) अश्वस्वामी । यहां अश्व और स्वामिन् शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'अश्व' शब्द आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से 'स्वामिन्' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(३) धनस्वामी । यहां धन और स्वामिन् शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'धन' शब्द आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से 'स्वामिन्' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

प्रकृतिस्वरः--

(१८) पत्यावैश्वर्ये ।१८।

प०वि०-पत्यौ ७ ।१ ऐश्वर्ये ७ ।१ ।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-ऐश्वर्ये तत्पुरुषे पत्यौ पूर्वपदं प्रकृत्या ।

अर्थः-ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पति-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति ।

उदा०-गृहस्य पतिः-गृहपतिः । सेनायाः पतिः-सेनापतिः । नराणां पतिः-नरपतिः । धान्यानां पतिः-धान्यपतिः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऐश्वर्ये) ऐश्वर्यवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पत्यौ) पति शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**गृहपतिः** । घर का ईश्वर (स्वामी)। **सेनापतिः** । सेना का ईश्वर। **नरपतिः** । नरों का ईश्वर। **धान्यपतिः** । धान्यों का ईश्वर।*

*सिद्धि-(१) **गृहपतिः** । यहां गृह और पति शब्दों का '**षष्ठी**' (२ ।२ ।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'गेहे कः' (३ ।१ ।१४४) से 'गृह' शब्द प्रकृतिस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में 'पति' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(२) **सेनापतिः** । यहां सेना और पति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। **सह इनेन वर्तते इति सेना** (बहुव्रीहिः)। सेना शब्द '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६ ।२ ।१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में 'पति' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **नरपतिः** । यहां नर और पति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'नर' शब्द '**नॄ नये**' (क्रया०आ०) धातु से '**ऋदोरप्**' (३ ।३ ।५७) से अप्-प्रत्ययान्त **होने से***

आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास 'पति' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

*(४) **धान्यपतिः**। यहां धान्य और पति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'धान्य' शब्द '**धन धान्ये**' (जु०प०) धातु से '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से ण्यत्-प्रत्ययान्त होने से '**तित् स्वरितम्**' (६।१।१७९) से अन्तस्वरित है। यह इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में 'पति' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरप्रतिषेधः–

(१६) न भूवाक्चिद्दिधिषु।१६।

प०वि०–न अव्ययपदम्, भू-वाक्-चित्-दिधिषु १।१।

स०–भूश्च वाक् च चिच्च दिधिषूश्च एतेषां समाहारः-भूवाक्-चिद्दिधिषु (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे, पत्यौ, ऐश्वर्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऐश्वर्ये तत्पुरुषे पत्यौ भूवाक्चिद्दिधिषु पूर्वपदं प्रकृत्या न।

अर्थः–ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पति-शब्दे उत्तरपदे भू, वाक्, चिद्, दिधिषू इत्येतानि पूर्वपदानि प्रकृतिस्वराणि न भवन्ति।

उदा०–भुवः पतिः-भूपतिः। वाचः पतिः-वाक्पतिः। चितः पतिः-चित्पतिः। दिधिष्वाः पतिः-दिधिषुपतिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऐश्वर्ये) ऐश्वर्यवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पत्यौ) पति-शब्द उत्तरपद होने पर (भूवाक्चिद्दिधिषु) भू, वाक्, चित्, दिधिषू ये (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से (न) नहीं रहते हैं।*

*उदा०-(भू) **भूपतिः**। भू=पृथिवी का ईश्वर (स्वामी)। **वाक्पतिः**। वाणी का ईश्वर। **चित्पतिः**। चेतन आत्मा का ईश्वर। **दिधिषूपतिः**। अपने भाई की विधवा स्त्री का ईश्वर। वह मनुष्य जिसने अपने भाई की विधवा स्त्री से विवाह किया हो।*

*सिद्धि-**भूपतिः**। यहां भू और पति शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति शब्द उत्तरपद होने पर 'भू' शब्द के प्रकृतिस्वर का प्रतिषेध है। अतः '**समासस्य**' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**वाक्पतिः**, **चित्पतिः**, **दिधिषूपतिः**।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः--

(२०) वा भुवनम्।२०।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, भुवनम् १।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे, पत्यौ, ऐश्वर्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऐश्वर्ये तत्पुरुषे पत्यौ भुवनं पूर्वपदं वा प्रकृत्या।

अर्थः-ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे पति-शब्दे उत्तरपदे भुवनमिति पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-भुवनस्य पतिः-भुवनपतिः। भुवनपतिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऐश्वर्ये) ऐश्वर्यवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पत्यौ) पति-शब्द उत्तरपद होने पर (भुवनम्) भुवन-शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (वा) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-भुवनपतिः, भुवनपतिः। भुवन=जगत् का ईश्वर (स्वामी)।

*सिद्धि-भुवनपतिः। यहां भुवन और पति शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'भुवन' शब्द **'रञ्जेः क्युन्'** (उणा० २।८०) से 'क्युन्' प्रत्यय की अनुवृत्ति में **'भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि'** (उणा० २।८१) से क्युन्-प्रत्ययान्त है। यह इस सूत्र से ऐश्वर्यवाची तत्पुरुष समास में पति-शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है और विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-भुवनपतिः।*

*उणादि कोष (२।८१) में 'भुवन' शब्द वैदिकभाषा में आद्युदात्त कहा गया है किन्तु **'उणादयो बहुलम्'** (३।३।१) में बहुलवचन से लौकिकभाषा में भी वह आद्युदात्त होता है। जैसे-भुवनपतिरादित्यः।*

प्रकृतिस्वरः--

(२१) आशङ्काबाधनेदीयस्सु सम्भावने।२१।

प०वि०-आशङ्क-आबाध-नेदीयस्सु ७।३ सम्भावने ७।१।

स०-आशङ्कश्च आबाधश्च नेदीयाँश्च तानि आशङ्काबाधनेदीयांसि, तेषु-आशङ्काबाधनेदीयस्सु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सम्भावने तत्पुरुषे आशङ्काबाधनेदीयस्सु पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-सम्भावनवाचिनि तत्पुरुषे समासे आशङ्काबाधनेदीयस्सु उत्तरपदेषु पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। अस्तित्वाध्यवसायः सम्भावनमुच्यते। अध्यवसायः=निश्चयः।

उदा०-(**आशङ्कः**) गमनाशङ्कं वर्तते। गमनमाशङ्क्यते इति सम्भाव्यते। वचनाशङ्कं वर्तते। व्याहरणाशङ्कं वर्तते। (**आबाधः**) गमनाबाधं वर्तते। गमनं बाध्यते इति सम्भाव्यते। वचनाबाधं वर्तते। व्याहरणाबाधं वर्तते। (**नेदीयः**) गमननेदीयो वर्तते। गमनमतिनिकटतरमिति सम्भाव्यते। व्याहरणनेदीयो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सम्भावने) अस्तित्व के निश्चयवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (आशङ्काबाधनेदीयस्सु) आशङ्क, आबाध और नेदीयस् शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(आशङ्क) **गमनाशङ्कं वर्तते।** गमन की आशंका सम्भावित है। **वचनाशङ्कं वर्तते।** कथन की आशंका सम्भावित है। **व्याहरणाशङ्कं वर्तते।** बोलने की आशंका सम्भावित है। (आबाध) **गमनाबाधं वर्तते।** गमन में बाधा सम्भावित है। **वचनाबाधं वर्तते।** वचन में बाधा सम्भावित है। **व्याहरणाबाधं वर्तते।** बोलने में बाधा सम्भावित है। (नेदीयस्) **गमननेदीयो वर्तते।** गमन अति निकटतर है, सम्भावना है। **व्याहरणनेदीयो वर्तते।** बोलना अति निकट है, सम्भावना है।*

*सिद्धि-**गमनाशङ्कम्।** यहां गमन और आशङ्क शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है अथवा **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) से भी उक्त समास हो सकता है। 'गमन' शब्द ल्युट्-प्रत्ययान्त होने से **'लिति'** (६।१।१८७) से इसका प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है। यह इस सूत्र से सम्भावनवाची तत्पुरुष समास में आशङ्क शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**वचनाशङ्कम्, व्याहरणाशङ्कम्** आदि।*

प्रकृतिस्वरः-

(२२) पूर्वे भूतपूर्वे।२२।

प०वि०-पूर्वे ७।१ भूतपूर्वे ७।१।

स०-भूतः पूर्वमिति-भूतपूर्वः, **'सुप् सुपा'** इति केवलसमासः।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूतपूर्वे तत्पुरुषे पूर्वे पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-भूतपूर्ववाचिनि तत्पुरुषे समासे पूर्व-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृत्या भवति।

उदा०-आढ्यो भूतपूर्वः-आढ्यपूर्वः। दर्शनीयपूर्वः। सुकुमारपूर्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भूतपूर्वे) भूतपूर्ववाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पूर्वे) पूर्व-शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**आढ्यपूर्वः**। भूतपूर्व आढ्य=धनवान्। **दर्शनीयपूर्वः**। भूतपूर्व दर्शनीय=देखने योग्य। **सुकुमारपूर्वः**। भूतपूर्व अत्यन्त कोमल।*

*सिद्धि-(१) **आढ्यपूर्वः**। यहां आढ्य और भूतपूर्व शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से अथवा '**मयूरव्यंसकादयश्च**' (२।१।७२) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। समास में अर्थ के गम्यमान होने से 'भूत' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है। जैसे-**दध्नोपसिक्त ओदनः, दध्योदनः**, यहां उपसिक्त शब्द का प्रयोग नहीं होता है अथवा समासवृत्ति में 'पूर्व' शब्द भूतपूर्व अर्थ में है। 'आढ्य' शब्द में आङ्पूर्वक '**ध्यै चिन्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से वा०-'**घञर्थे कविधानम्**' (३।३।५८) से 'क' प्रत्यय और '**पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्**' (६।३।१०८) से धकार को ढकार आदेश है। **तत्रैत्येनं ध्यायन्तीत्याढ्यः**। यह 'आढ्य' शब्द '**थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्**' (६।२।१४४) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से भूतपूर्ववाची तत्पुरुष समास में पूर्व-शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(२) **दर्शनीयपूर्वः**। यहां दर्शनीय और भूतपूर्व शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय समास है। दर्शनीय शब्द में '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है। प्रत्यय के रित् होने से '**उपोत्तमं रिति**' (६।१।२११) से 'दर्शनीय' शब्द का उपोत्तम अच् उदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्व-शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **सुकुमारपूर्वः**। यहां सुकुमार और भूतपूर्व शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'सुकुमार' शब्द '**नञ्सुभ्याम्**' (६।२।१७२) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्व-शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(२३) सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये।२३।

प०वि०-सविध-सनीड-समर्याद-सवेश-सदेशेषु ७।३ सामीप्ये ७।१।

स०-सविधं च सनीडं च समर्यादं च सवेशं च सदेशं च तानि सविध०सदेशानि, तेषु-सविध०सदेशेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समीपस्य भावः सामीप्यम्, तस्मिन्-सामीप्ये।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सामीप्ये तत्पुरुषे सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-सामीप्यवाचिनि तत्पुरुषे समासे सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु उत्तरपदेषु पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-**(सविधम्)** मद्राणां सविधमिति म॒द्रसविधम्। गान्धारिसविधम्। का॒श्मीरसविधम्। **(सनीडम्)** मद्राणां सनीडमिति म॒द्रसनीडम्। गान्धारिसनीडम्। का॒श्मीरसनीडम्। **(समर्यादम्)** मद्राणां समर्यादमिति म॒द्रसमर्यादम्। गान्धारिसमर्यादम्। का॒श्मीरसमर्यादम्। **(सदेशम्)** मद्राणां सदेशमिति म॒द्रसदेशम्। गान्धारिसदेशम्। का॒श्मीरसदेशम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सामीप्ये) समीपतावाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सविध०सदेशेषु) सविध, सनीड, समर्याद, सवेश, सदेश शब्दों के उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(सविध) **म॒द्रसविधम्।** मद्र के समीप। **गान्धारिसविधम्।** गान्धारि के समीप। **का॒श्मीरसविधम्।** काश्मीर के समीप। (सनीड) **म॒द्रसनीडम्।** मद्र के समीप। **गान्धारिसनीडम्।** गान्धारि के समीप। **का॒श्मीरसनीडम्।** काश्मीर के समीप। (समर्याद) **म॒द्रसमर्यादम्।** मद्र के समीप। **गान्धारिसमर्यादम्।** गान्धारि के समीप। **का॒श्मीरसमर्यादम्।** काश्मीर के समीप। (सदेश) **म॒द्रसदेशम्।** मद्र के समीप। **गान्धारिसदेशम्।** गान्धारि के समीप। **का॒श्मीरसदेशम्।** काश्मीर के समीप।*

*सिद्धि-(१) **म॒द्रसविधम्।** यहां मद्र और सविध शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'सविध' शब्द में **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (२।२।२८) से बहुव्रीहि समास और **'वोपसर्जनस्य'** (६।३।८१) से 'सह' के स्थान में 'स' आदेश होता है। ऐसे ही 'सनीड' आदि शब्दों में भी बहुव्रीहि समास जानें। 'सविध' आदि शब्दों की **'सह विधयेति सविधम्'** इत्यादि केवल व्युत्पत्तिमात्र है। ये शब्द-समुदाय वस्तुतः समीपवाची हैं। 'मद्र' शब्द रक्-प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से सविध शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**म॒द्रसनीडम्** आदि।*

*(२) **गान्धारिसविधम्।** यहां गान्धारि और सविध शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। गान्धारि शब्द कर्दमादिगण में पठित है इसे **'कर्दमादीनां वा'** (फिट्० ३।१०) से आद्युदात्त अथवा द्वितीय अच् उदात्त होता है। यह इस सूत्र से सविध शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**गान्धारिसनीडम्** आदि।*

*(३) **का॒श्मीरसविधम्।** यहां काश्मीर और सविध शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। काश्मीर शब्द **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०९) से मध्योदात्त है।*

यह इस सूत्र से सविध शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-काश्मीरसनीडम् आदि।

विशेषः *(१) मद्र-मद्र जनपद प्राचीन वाहीक का उत्तरी भाग था इसकी राजधानी शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान अयक) नदी पर स्थित है। यह छोटी नदी जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट के पास से होती हुई वर्षा ऋतु में चनाब से मिलती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६७)।*

(२) गान्धार-पाणिनिमुनि ने इस जनपद का अधिक पुराना नाम गान्धारि एक सूत्र में (४।१।६९) में दिया है। गन्धार महाजनपद कुनड़ या काश्कर नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। पश्चिमी गन्धार की राजधानी पुष्कलावती (यूनानी पिउकलाउती) थी, जहां स्वात और काबुल नदी के संगम पर वर्तमान चारसद्दा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ६७)।

(३) काश्मीर जनपद लोकप्रसिद्ध है।

प्रकृतिस्वरः-

(२४) विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु।२४।

प०वि०-विस्पष्टादीनि १।३ गुणवचनेषु ७।३।

स०-विस्पष्ट आदिर्येषां तानि-विस्पष्टदीनि (बहुव्रीहिः)। गुणान् उक्तवन्त इति गुणवचनाः, तेषु-गुणवचनेषु (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विस्पष्टादीनि पूर्वपदानि गुणवचनेषु प्रकृत्या।

अर्थः-विस्पष्टादीनि पूर्वपदानि गुणवचनेषु उत्तरपदेषु प्रकृतिस्वराणि भवन्ति।

उदा०-विस्पष्टं कटुकमिति विस्पष्टकटुकम्। विचित्रकटुकम्। व्यक्तकटुकम्। विस्पष्टं लवणमिति विस्पष्टलवणम्। विचित्रलवणम्। व्यक्तलवणम्।

विस्पष्टं कटुकमिति विगृह्य विस्पष्टकटुकमित्यत्र **'सुप् सुपा'** इत्यनेन केवलसमासो वेदितव्यः। विस्पष्टादयः शब्दाः प्रवृत्तिनिमित्तस्य विशेषणं वर्तन्ते। कटुकादिभिश्च शब्दैस्तत्तद् गुणवद् द्रव्यमभिधीयते इत्यतो नास्ति सामान्याधिकरण्यम्, अतो न कर्मधारयसमासः।

विस्पष्ट। विचित्र। व्यक्त। सम्पन्न। कटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण इति विस्पष्टादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-(विस्पष्टादीनि) विस्पष्ट आदि (पूर्वपदम्) पूर्वपद (गुणवचनेषु) गुणवाची शब्दों के उत्तरपद होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।

उदा०-**विस्पष्टकटुकम्।** साफ कड़ुवा। **विचित्रकटुकम्।** विचित्र कड़ुवा। **व्यक्तकटुकम्।** प्रकट कड़ुवा। **विस्पष्टलवणम्।** साफ नमकीन। **विचित्रलवणम्।** विचित्र नमकीन। **व्यक्तलवणम्।** प्रकट नमकीन।

'विस्पष्टकटुकम्' यहां 'विस्पष्टं कटुकम्' ऐसा विग्रह करके 'सुप् सुपा' से केवल समास जानें। विस्पष्ट आदि शब्द प्रवृत्ति-निमित्त के विशेषण हैं। कटुक आदि शब्दों से उस गुणवान् द्रव्यों का कथन किया जाता है इसलिये विस्पष्ट और कटुक शब्द का परस्पर समानाधिकरण नहीं है, अतः यहां कर्मधारय समास नहीं है।

सिद्धि-(१) **विस्पष्टकटुकम्।** यहां विस्पष्ट और गुणवाची कटुक शब्दों का **'सुप् सुपा'** से केवलसमास है। विस्पष्ट शब्द **'गतिरनन्तरः'** (६।२।४९) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से गुणवाची कटुक शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**विस्पष्टलवणम्।**

(२) **विचित्रकटुकम्।** यहां विचित्र और कटुक शब्दों का पूर्ववत् केवलसमास है। 'विचित्र' शब्द में 'वि' उपसर्गपूर्वक **'चित्र चित्रीकरणे'** (चु०उ०) धातु से 'घञ्' प्रत्यय है-**विशेषेण चित्रम्-विचित्रम्** (प्रादितत्पुरुष)। **'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-द्वितीयाकृत्याः'** (६।२।२) से 'वि' अव्यय प्रकृतिस्वर से रहता है। **'निपाता आद्युदात्ताः'** (फिट्० ४।१२) से निपात (अव्यय) आद्युदात्त होते हैं। अतः 'विचित्र' शब्द आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से गुणवाची कटुक शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**विचित्रलवणम्।**

(३) **व्यक्तकटुकम्।** यहां व्यक्त और कटुक शब्दों का पूर्ववत् केवलसमास है। 'व्यक्त' शब्द (वि+अक्त) **'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य'** (८।२।४) से आदिस्वरित है। यह इस सूत्र से गुणवाची 'कटुक' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**व्यक्तलवणम्।**

विस्पष्ट आदि गण में जो अन्य शब्द पठित हैं उनमें-'सम्पन्न' शब्द **'थाथाघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'** (६।२।१४३) से अन्तोदात्त है। पटु और पण्डित शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। 'कुशल' शब्द **'गतिकारकोपपदात् कृत्'** (६।२।३८) से अन्तोदात्त है। 'चपल' शब्द **'चुपेरच्चोपधायाः'** (उणा० १।१११) से कल-प्रत्ययान्त है। यहां **'वृषादिभ्यश्चित्'** (उणा० १।१०६) से 'चित्' की अनुवृत्ति है। अतः **'चितः'** (६।१।१५८) से अन्तोदात्त 'निपुण' शब्द में नि-उपसर्गपूर्वक **'पुण कर्मणि शुभे'** (तु०प०) धातु से **'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'** (३।१।१३५) से 'क' प्रत्यय है। अतः यह **'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'** (६।२।१४३) से अन्तोदात्त है।

प्रकृतिस्वरः–

(२५) श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये।२५।

प०वि०– श्र-ज्य-अवम-कन्-पापवत्सु ७।३ भावे ७।१ कर्मधारये ७।१।

स०–श्रश्च ज्यश्च अवमश्च कन् च पापवाँश्च ते श्रज्यावमकन्-पापवन्तः, तेषु-श्रव्यावमकन्पापवत्सु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मधारये श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–कर्मधारये समासे श्रज्यावमकन्पापवत्सु च शब्देषु उत्तरपदेषु भाववाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–(श्रः) गमनं च तच्छ्रेष्ठम्-गमनश्रेष्ठम्। गमनश्रेयः। **(ज्यः)** वचनं च तज्ज्येष्ठम्-वचनज्येष्ठम्। वचनज्यायः। **(अवमम्)** गमनं च तदवमम्-गमनावमम्। वचनावमम्। **(कन्)** गमनं च तत् कनिष्ठम्-गमनकनिष्ठम्। गमनकनीयः। **(पापवत्)** गमनं च तत् पापिष्ठम्-गमनपापिष्ठम्। गमनपापीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (श्रज्या०) श्र, ज्य, अवम, कन् और पापवन् शब्दों के उत्तरद होने पर (भावे) भाववाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) पकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(श्र) **गमनश्रेष्ठम्।** श्रेष्ठ=बहुतों मे प्रशस्य गमन (जाना)। **गमनश्रेयः।** श्रेय=दोनों में प्रशस्य गमन। (ज्य) **वचनज्येष्ठम्।** ज्येष्ठ=बहुतों में प्रशस्य वचन। **वचनज्यायः।** ज्यायः=दोनों में प्रशस्य वचन। (अवम) **गमनावमम्।** तिरस्करणीय गमन। **वचनावमम्।** तिरस्करणीय वचन। (कन्) **गमनकनिष्ठम्।** कनिष्ठ=बहुतों में अल्प गमन। **गमनकनीयः।** कनीय=दोनों में अल्प गमन। (पापवत्) **गमनपापिष्ठम्।** पापिष्ठ=बहुतों में पापरूप गमन। **गमनपापीयः।** पापीय=दोनों में पापरूप गमन।*

*सिद्धि-**गमनश्रेष्ठम्।** यहां गमन और श्रेष्ठ शब्दों का **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७१) से कर्मधारय समास है। अतः गमन विशेष्य का समास में पूर्वनिपात है। 'गमन' शब्द ल्युट्-प्रत्ययान्त है, अतः प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है। इस सूत्र से 'श्र' शब्द उत्तरपद परे होने पर यह भाववाची 'गमन' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**वचनश्रेष्ठम्** आदि।*

प्रकृतिस्वरः–

(२६) कुमारश्च।२६।

प०वि०–कुमारः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम् कर्मधारये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मधारये कुमारः पूर्वपदं च प्रकृत्या।

अर्थः–कर्मधारये समासे कुमार-शब्दः पूर्वपदं च प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–कुमारी चेयं श्रमणा–कुमारश्रमणा। कुमारी चेयं कुलटा–कुमारकुलटा। कुमारी चेयं तापसी–कुमारतापसी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (कुमारः) कुमार शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (च) भी (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कुमारश्रमणा।** श्रमणा=संन्यासिनी कुमारी। **कुमारकुलटा।** कुलटा=व्यभिचारिणी कुमारी। **कुमारतापसी।** तपस्विनी कुमारी (ब्रह्मचारिणी)।*

*सिद्धि-**कुमारश्रमणा।** यहां कुमारी और श्रमणा शब्दों का '**कुमारः श्रमणादिभिः**' (२।२।६९) से कर्मधारय समास है। '**प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्**' इस परिभाषा से स्त्रीलिङ्ग कुमारी शब्द का ग्रहण किया जाता है। '**पुंवत् कर्मधारयजातीय-देशीयेषु**' (३।३।४३) से 'कुमारी' शब्द को पुंवद्भाव होता है। 'कुमार' शब्द में '**कुमार क्रीडायाम्**' (चु०उ०) धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से पचादि अच् प्रत्यय है। प्रत्यय के चित् होने से '**चितः**' (६।१।१५८) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मधारय समास में पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

आद्युदात्तः–

(२७) आदिः प्रत्येनसि।२७।

प०वि०–आदिः ५।१ प्रत्येनसि ७।१।

स०–प्रतिगतम् एनो यस्य स प्रत्येनाः, तस्मिन्–प्रत्येनसि (बहुव्रीहिः)। एनः=पापम्।

अनु०–पूर्वपदम्, कर्मधारये, कुमार इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मधारये प्रत्येनसि कुमारः पूर्वपदम् आदिः (उदात्तम्)।

अर्थः–कर्मधारये समासे प्रत्येनसि शब्दे उत्तरपदे कुमारशब्दः पूर्वपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०-कुमारश्चासौ प्रत्येना इति कुमारप्रत्येनाः। पापरहितः कुमार इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (प्रत्येनसि) प्रत्येनस् शब्द उत्तरपद होने पर (कुमारः) कुमार शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**कुमारप्रत्येनाः**। पापरहित कुमार। राजा का अंगरक्षक राजकुमार (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ३९७)।*

*सिद्धि-**कुमारप्रत्येनाः**। यहां कुमार और प्रत्येनस् शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५६) से कर्मधारय समास है। इस सूत्र से 'प्रत्येनस्' शब्द उत्तरपद होने पर 'कुमार' शब्द पूर्वपद आद्युदात्त होता है। 'उदात्त' शब्द इस सूत्र में पठित नहीं है किन्तु अर्थसामर्थ्य से उदात्त-अर्थ ग्रहण किया जाता है।*

आद्युदात्तविकल्पः—

(२८) पूगेष्वन्यतरस्याम्।२८।

प०वि०-पूगेषु ७।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-पूर्वपदम्, कर्मधारये, कुमारः, आदिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मधारये पूगेषु कुमारः पूर्वपदमन्यतरस्याम् आदिः (उदात्तम्)।

अर्थः-कर्मधारये समासे पूगवाचिषु उत्तरपदेषु कमारशब्दः पूर्वपदं विकल्पेन आद्युदात्तं भवति। नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः संघाः पूगा इत्युच्यन्ते।

उदा०-कुमाराश्च ते चातकाः कुमारचातकाः। कुमारचातकाः। कुमारलोहध्वजाः। कुमारलोहध्वजाः। कुमारबलाहकाः। कुमारबलाहकाः। कुमारजीमूताः। कुमारजीमूताः।

अत्र यदाऽऽद्युदात्तत्वं न भवति तदा **'कुमारश्च'** (६।२।२६) इत्यत्र ये **'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्'** इति परिभाषया प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिच्छन्ति तेषां मते **'समासस्य'** (६।१।२१७) इत्यनेनान्तोदात्तत्वमेव भवति-कुमारचातकाः। कुमारलोहध्वजाः। कुमारबलाहकाः। कुमारजीमूताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (पूगेषु) पूग=गणविशेषवाची शब्द उत्तरपद होने पर (कुमारः) कुमार शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (आदिः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-कुमारचातकाः । कुमारचातकाः । चातक कुमार । कुमारलोहध्वजाः । कुमारलोहध्वजाः । लोहध्वज कुमार । कुमारबलाहकाः । कुमारबलाहकाः । बलाहक कुमार । कुमारजीमूताः । कुमारजीमूताः । जीमूत कुमार । ये चातक आदि शब्द नाना जातिवाले, अनिश्चितवृत्ति (आजीविका) वाले, अर्थ और काम प्रधान पूग=संघों के वाचक हैं।

*यहां जब आद्युदात्त स्वर नहीं होता है तब '**कुमारश्च**' (६।२।२६) से कई आचार्य पूर्वपद प्रकृतिस्वर चाहते हैं और जो आचार्य '**कुमारश्च**' (६।२।२६) में '**लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्**' इस परिभाषा से प्रतिपदोक्त 'कुमार' (एकवचन) का ही ग्रहण चाहते हैं, उनके मत में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-कुमारचातकाः, कुमारलोहध्वजाः । कुमारबलाहकाः । कुमारजीमूताः ।*

*सिद्धि-कुमारचातकाः । यहां कुमार और चातक शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५६) से कर्मधारय समास है। इस सूत्र से पूगवाची 'चातक' शब्द उत्तरपद होने पर 'कुमार' शब्द आद्युदात्त होता है। विकल्प पक्ष में '**कुमारश्च**' (६।२।२६) से पूर्वपद कुमार शब्द प्रकृतिस्वर (अन्तोदात्त) से रहता है। जो आचार्य '**कुमारश्च**' (६।२।२६) में प्रतिपदोक्त ग्रहण के पक्षधर हैं उनके मत में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है जैसा कि ऊपर उदाहरण में दर्शाया गया है।*

*'**कुमारचातक**' आदि शब्दों में '**पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्**' (५।३।११२) से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है किन्तु उसका '**तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्**' (२।४।६२) से बहुवचन में लुक् हो जाता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(२६) इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ।२६।

प०वि०-इगन्त-काल-कपाल-भगाल-शरावेषु ७।३ द्विगौ ७।१।

स०-इक् अन्ते यस्य स इगन्तः। इगन्तश्च कालश्च भगालश्च शरावश्च ते इगन्त०शरावाः, तेषु-इगन्त०शरावेषु (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विगौ इगन्तकालकपालभगालशरावेषु पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-द्विगौ समासे इगन्तेषु, कालवाचिषु, कपालभगालशरावेषु च शब्देषु उत्तरपदेषु पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(इगन्तः) पञ्चारत्नयः प्रमाणमस्येति पञ्चारत्निः। दशारत्निः। **(कालः)** पञ्च मासान् भृतो भूतो भावी वेति पञ्चमास्यः। दशमास्यः। पञ्चभिर्वर्षैर्निर्वृत्त इति पञ्चवर्षः। दशवर्षः। **(कपालः)** पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः। दशकपालः। **(भगालः)** पञ्चसु भगालेषु संस्कृतः पञ्चभगालः। दशभगालः। **(शरावः)** पञ्चसु शरावेषु संस्कृतः पञ्चशरावः। दशशरावः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विगौ) द्विगुसमास में (इगन्त०शरावेषु) इगन्त, कालवाची और कपाल, भगाल, शराव शब्दों के उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(इगन्त) **पञ्चारत्निः।** पांच अरत्नि प्रमाण (लम्बाई) वाला। **दशारत्निः।** दश अरत्नि प्रमाणवाला। अरत्नि=डेढ़ फुट लम्बा। (काल) **पञ्चमास्यः।** पांच मास तक भृत, भूत वा भावी सेवक आदि। **दशमास्यः।** दश मास तक भृत, भूत वा भावी सेवक आदि। (कपाल) **पञ्चकपालः।** पांच कपालों में संस्कृत पुरोडाश। **दशकपालः।** दश कपालों में संस्कृत पुरोडाश। कपाल=प्याला (कटोरा)। (भगाल) **पञ्चभगालः।** पांच भगालों में संस्कृत पुरोडाश। **दशभगालः।** दश भगालों में संस्कृत पुरोडाश। भगाल=खोपड़ी की आकृति का पात्रविशेष। (शराव) **पञ्चशरावः।** पांच भगालों में संस्कृत पुरोडाश। **दशशरावः।** दश भगालों में संस्कृत पुरोडाश। शराव=शकोरा, मिट्टी का पात्रविशेष।*

*सिद्धि-(१) **पञ्चारत्निः।** यहां पञ्चन् और इगन्त अरत्नि शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५०) से तद्धितार्थ में द्विगुसमास है। **'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः'** (५।२।३७) से प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होता है किन्तु वा०- **'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्'** (५।२।३७) से उसका नित्य लोप हो जाता है। 'पञ्चन्' शब्द 'न्नः संख्यायाः' (फिट्० २।५) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से द्विगुसमास में इगन्त अरत्नि शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**दशारत्निः।***

*(२) **पञ्चमास्यः।** यहां पञ्चन् और कालवाची मास शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। उससे **'द्विगोर्यप्'** (५।१।८२) से भूत अर्थ में तथा वयः (आयु) अभिधेय में 'यप्' प्रत्यय है। शेष स्वरकार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**दशमास्यः।***

*(३) **पञ्चकपालः।** यहां पञ्चन् और कपाल शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। **'संस्कृतं भक्षाः'** (४।२।१६) से संस्कृत अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और **'द्विगोर्लुगनपत्ये'***

*(४।१।८८) से उसका लुक् हो जाता है। शेष स्वरकार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**दशकपालः, पञ्चभगालः, दशभगालः, पञ्चशरावः, दशशरावः।***

*(३) **पञ्चवर्षः।** यहां पञ्चन् और कालवाची वर्ष शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। 'वर्षाल्लुक् च' (५।१।८८) से निर्वृत्त आदि अर्थों में विहित 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। शेष स्वरकार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**दशवर्षः।***

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(३०) बह्वन्यतरस्याम्।३०।

प०वि०-बहु १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, इगन्तकालकपालभगालशरावेषु, द्विगाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विगाविगन्तकालकपालभगालशरावेषु बहुपूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-द्विगौ समासे इगन्तेषु कालवाचिषु कपालभगालशरावेषु चोत्तरपदेषु बहु-शब्दः पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(इगन्तः) बह्व्योऽरत्नयः प्रमाणमस्येति बह्वरत्निः। बह्वरत्निः। **(कालः)** बहून् मासान् भृतो भूतो भावी वेति बहुमास्यः। बहुमास्यः। **(कपालः)** बहुषु कपालेषु संस्कृतो बहुकपालः। बहुकपालः। **(भगालः)** बहुषु भगालेषु संस्कृतो बहुभगालः। बहुभगालः। **(शरावः)** बहुषु शरावेषु संस्कृतो बहुशरावः। बहुशरावः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्विगौ) द्विगुसमास में (इगन्त०शरावेषु) इगन्त, कालवाची और कपाल, भगाल, शराव शब्दों के उत्तरपद होने पर (बहु) बहु-शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(इगन्त) **बह्वरत्निः। बह्वरत्निः।** बहुत अरत्नि प्रमाणवाला। अरत्नि=डेढ़ फुट लम्बा। (काल) **बहुमास्यः। बहुमास्यः।** बहुत मासों तक भृत, भूत, भावी सेवक आदि। (कपाल) **बहुकपालः। बहुकपालः।** बहुत कपालों में संस्कृत पुरोडाश। (भगाल) **बहुभगालः। बहुभगालः।** बहुत भगालों में संस्कृत पुरोडाश। (शराव) **बहुशरावः। बहुशरावः।** बहुत शरावों में संस्कृत पुरोडाश।*

*सिद्धि-(१) **बह्वरत्निः।** यहां बहु और इगन्त अरत्नि शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। 'बहु' शब्द **'फिषोऽन्तोदात्तः'** (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है। उसे इस सूत्र*

*से प्रकृतिस्वर करने पर **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यण्-आदेश होने पर **'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य'** (८।२।४) से स्वरित स्वर होता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-बह्वरत्निः।*

*(२) बहुमास्यः। यहां बहु और कालवाची मास शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। उससे **'द्विगोर्यप्'** (५।१।८२) से भूत अर्थ में तथा वयः (आयु) अभिधेय में 'यप्' प्रत्यय है। 'बहु' शब्द इस सूत्र से द्विगुसमास में कालवाची मास शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में पूर्ववत् अन्तोदात्त स्वर होता है-बहुमास्यः।*

(३) बहुकपालः। यहां बहु और कपाल शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। 'बहु' शब्द पूर्ववत् अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से द्विगुसमास में कपाल शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्व से रहता है। विकल्प पक्ष में पूर्ववत् अन्तोदात्त स्वर होता है-बहुकपालः। ऐसे ही- बहुभगालः, बहुभगालः। बहुशरावः, बहुशरावः।

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(३१) दिष्टिवितस्त्योश्च।३१।

प०वि०-दिष्टि-वितस्त्योः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-द्विष्टिश्च वितस्तिश्च ते दिष्टिवितस्ती, तयोः-दिष्टिवितस्त्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, द्विगौ, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विगौ दिष्टिवितस्त्योश्च पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-द्विगौ समासे दिष्टिवितस्त्योश्चोत्तरपदयोः पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-**(दिष्टिः)** पञ्च दिष्टयः प्रमाणमस्येति पञ्चदिष्टिः। पञ्चदिष्टिः। **(वितस्तिः)** पञ्च वितस्तयः प्रमाणमस्येति पञ्चवितस्तिः। पञ्चवितस्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विगौ) द्विगुसमास में (दिष्टिवितस्त्योः) दिष्टि और वितस्ति शब्द उत्तरपद होने पर (च) भी (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-(दिष्टि) पञ्चदिष्टिः। पञ्चदिष्टिः। पांच दिष्टि प्रमाणवाला। दिष्टि=प्रादेश (अंगूठे के शिर से तर्जनी अंगुलि के शिर तक की दूरी का प्रमाणविशेष)। प्राचीनकाल का एक मान जो अंगूठे की नोक से लेकर तर्जनी की नोक तक का होता था और नापने के काम

में आता था (शब्दार्थकौस्तुभ)। (वितस्ति) पञ्चवितस्तिः। पञ्चवितस्तिः। पांच वितस्ति प्रमाणवाला। वितस्ति=१२ अंगुल (९ इंच)। दिष्टि और वितस्ति शब्द पर्यायवाची हैं।

सिद्धि-पञ्चदिष्टिः। यहां पञ्चन् और दिष्टि शब्दों का तद्धितार्थ में पूर्ववत् द्विगुसमास है। 'पञ्चन्' शब्द 'न्रः संख्यायाः' (फिट्० २।५) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से द्विगुसमास में दिष्टि शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-पञ्चदिष्टिः। ऐसे ही-पञ्चवितस्तिः, पञ्चवितस्तिः।

प्रकृतिस्वरः-

(३२) सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात्।३२।

प०वि०-सप्तमी १।१ सिद्ध-शुष्क-पक्व-बन्धेषु ७।३ अकालात् ५।१।

स०-सिद्धश्च शुष्कश्च पक्वश्च बन्धश्च ते सिद्धशुष्कपक्वबन्धाः, तेषु-सिद्धशुष्कपक्वबन्धेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न काल इति अकालः, तस्मात्-अकालात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सिद्धशुष्कपक्वबन्धेषु सप्तमी पूर्वपदं प्रकृत्या, अकालात्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सिद्धशुष्कपक्वबन्धेषु उत्तरपदेषु सप्तम्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति, सा चेत् सप्तमी कालाद् न भवति।

उदा०-(**सिद्धः**) सांकाश्ये सिद्ध इति सांकाश्यसिद्धः। काम्पिल्ये सिद्ध इति काम्पिल्यसिद्धः। (**शुष्कः**) ओके शुष्क इति ओकशुष्कः। निधने शुष्क इति निधनशुष्कः। (**पक्वः**) कुम्भ्यां पक्व इति कुम्भीपक्वः। कलस्यां पक्व इति कलसीपक्वः। भ्राष्ट्रे पक्व इति भ्राष्ट्रपक्वः। (**बन्धः**) चक्रे बन्ध इति चक्रबन्धः। चारके बन्ध इति चारकबन्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सिद्ध०बन्धेषु) सिद्ध, शुष्क, पक्व, बन्ध शब्दों के उत्तरपद होने पर (सप्तमी) सप्तम्यन्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है (अकालात्) यदि वह सप्तमी कालवाची शब्द से उत्तर न हो।*

उदा०-(सिद्ध) सांकाश्यसिद्धः। सांकाश्य नगर में बना हुआ। काम्पिल्यसिद्धः। काम्पिल्य नगर में बना हुआ। (शुष्क) ओकशुष्कः। घर में सूखा हुआ। निधनशुष्कः।

गरीबी में सूखा हुआ। (पक्व) कुम्भीपक्वः। हंडिया में पका हुआ। कलसीपक्वः। गागरी में पका हुआ। भ्राष्ट्रपक्वः। भाड़ में पका हुआ। (बन्ध) चक्रबन्धः। चक्र में बन्धा हुआ। चारकबन्धः। कारागार (जेळ) में बन्धा हुआ।

सिद्धि-(१) सांकाश्यसिद्धः। यहां सांकाश्य और सिद्ध शब्दों का 'सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च' (२।१।४१) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। सांकाश्य शब्द 'वुञ्छण्०' (४।२।७९) से ण्य-प्रत्ययान्त है, अतः प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से तत्पुरुष समास में सिद्ध शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। फिट् सूत्र में 'सांकाश्यकाम्पिल्य०' (फिट्० ३।१६) से सांकाश्य शब्द मध्योदात्त भी है। अतः शान्तनव आचार्य के मत में यह मध्योदात्त भी होता है-सांकाश्यसिद्धः। ऐसे ही-काम्पिल्यसिद्धः।

(२) ओकशुष्कः। यहां ओक और शुष्क शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'ओक' शब्द में 'सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्' (उणा० ३।४१) से विहित कक् प्रत्यय बहुलवचन से 'अव रक्षणादिषु' (भ्वा०प०) धातु से भी होता है। 'ज्वरत्वर०' (६।४।२०) से 'अव्' धातु के वकार और उपधा भूत अकार को ऊठ् होता है और उसे 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण होकर 'ओक' शब्द सिद्ध होता है। इस प्रकार 'ओक' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से तत्पुरुष समास में शुष्क शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

काशिकावृत्ति में 'ऊकशुष्कः' पाठ है किन्तु महर्षि दयानन्द ने 'सृवृभू०' (उणा० ३।४१) की संस्कृतवृत्ति में बहुलवचन से 'ओक' शब्द सिद्ध किया है, ऊक नहीं।

(३) निधनशुष्कः। यहां निधन और शुष्क शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'निधन' शब्द में नि-उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'कृपृवृजिमन्दिनिधाञः क्युः' (उणा० २।८२) से 'क्यु' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' को अन-आदेश और 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'धा' के आकार का लोप कर 'निधन' शब्द सिद्ध होता है। अतः यह प्रत्यय स्वर से मध्योदात्त है। यह इस सूत्र से शुष्क शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(४) कुम्भीपक्वः। यहां कुम्भी और पक्व शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'कुम्भी' शब्द में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात है। यह इस सूत्र से 'पक्व' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-कलसीपक्वः।

(५) भ्राष्ट्रपक्वः। यहां भ्राष्ट्र और पक्व शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'भ्राष्ट्र' शब्द 'भ्रस्जिगमि०' (उणा० ४।१६०) से ष्ट्रन्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के नित् होने से यह 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से 'पक्व' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(६) चक्रबन्धः। यहां चक्र और बन्ध शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'चक्र' शब्द 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'क' प्रत्यय और वा०- 'कृञादीनां के द्वे भवतः' (६।१।१२) से द्वित्व होकर सिद्ध होता है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'बन्ध' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(७) चारकबन्धः। यहां चारक और बन्ध शब्दों का पूर्ववत् सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'चारक' शब्द 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुलतृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। प्रत्यय के लित् होने से 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् होता है। अतः यह इस सूत्र से बन्ध शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

'अकालात्' के कथन से यहां प्रकृतिस्वर नहीं होता है-पूर्वाह्णसिद्धः। अपराह्णसिद्धः। यहां 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है। 'सांकाश्यसिद्धः' आदि में 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३९) से कृदन्त उत्तरपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, अतः यह कथन किया गया है।

विशेषः *(१) सांकाश्य-फर्रुखाबाद जिले में इक्षुमती (वर्तमान ईखन) नदी के किनारे वर्तमान नाम संकिसा है, जहां अशोककालीन स्तम्भ के चिह्न मिले हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८७)।*

(२) काम्पिल्य-संकाश आदिगण में काम्पिल्य का पाठ है, जो फर्रुखाबाद जिले की कायमगंज तहसील में वर्तमान नाम कम्पिल है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८७)।

प्रकृतिस्वरः-

(३३) परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु।३३।

प०वि०-परि-प्रति-उप-अपाः १।३ वर्ज्यमान-अहोरात्रावयवेषु ७।३।

स०-परिश्च प्रतिश्च उपश्च अपश्च ते-परिप्रत्युपापाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अहश्च रात्रिश्च तौ-अहोरात्रौ, तयोः-अहोरात्रयोः, अहोरात्रयोरवायवाः-अहोरात्रावयवाः, वर्ज्यमानं च अहोरात्रावयवाश्च ते-वर्ज्यमानाहोरात्रावयवाः, तेषु-वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु (षष्ठीतत्पुरुषगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-{अव्ययीभावे} वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु परिप्रत्युपापा पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-{अव्ययीभावसमासे} वर्ज्यमानवाचके अहरवयववाचिनि, रात्र्यवयववाचिनि चोत्तरपदे परि-प्रति-उप-अपाः पूर्वपदभूताः प्रकृतिस्वरा भवन्ति।

उदा०-(परिः) त्रिगर्तात् परि इति परित्रिगर्तम्। परित्रिगर्तं वृष्टो देवः। परिसौवीरं वृष्टो देवः। परिसार्वसेनि वृष्टो देवः। **(प्रतिः)** पूर्वाह्णं पूर्वाह्णं प्रति इति प्रतिपूर्वाह्णम्। प्रत्यपराह्णम्। प्रतिपूर्वरात्रम्। प्रत्यपररात्रम्। **(उपः)** पूर्वाह्णस्य समीपमिति उपपूर्वाह्णम्। उपापराह्णम्। उपपूर्वरात्रम्। उपापररात्रम्। **(अपः)** त्रिगर्ताद् अप इति अपत्रिगर्तम्। अपत्रिगर्तं वृष्टो देवः। अपसौवीरं वृष्टो देवः। अपसार्वसेनि वृष्टो देवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{अव्ययीभाव समास में} (वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु) वर्ज्यमानवाचक, अहरवयववाची और रात्र्यवयववाची शब्दों के उत्तरपद होने पर (परिप्रत्युपापाः) परि, प्रति, उप, अप (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-**(परि) परित्रिगर्तं वृष्टो देवः।** त्रिगर्त देश को छोड़कर बादल बरसा। **परिसौवीरं वृष्टो देवः।** सौवीर देश को छोड़कर बादल बरसा। **परिसार्वसेनि वृ[illegible] देवः।** सार्वसेनि देश को छोड़कर बादल बरसा। **(प्रति) प्रतिपूर्वाह्णम्।** प्रत्येक पूर्वाह्ण=दिन का पूर्व भाग। **प्रत्यपराह्णम्।** प्रत्येक अपराह्ण=दिन का अपर भाग। **प्रतिपूर्वरात्रम्।** प्रत्येक पूर्वरात्र=रात्रि का पूर्व भाग। **प्रत्यपररात्रम्।** प्रत्येक अपररात्र=रात्रि का अपर भाग। **(उप) उपपूर्वाह्णम्।** पूर्वाह्ण के समीप। **उपापराह्णम्।** अपराह्ण के समीप। **उपपूर्वरात्रम्।** पूर्वरात्र के समीप। **उपापररात्रम्।** अपररात्र के समीप। **(अप) अपत्रिगर्तं वृष्टो देवः।** त्रिगर्त देश को छोड़कर बादल बरसा। **अपसौवीरं वृष्टो देवः।** सौवीर देश को छोड़कर बादल बरसा। **अपसार्वसेनि वृष्टो देवः।** सार्वसेनि देश को छोड़कर बादल बरसा।*

'अपपरी वर्जने' (१।४।८८) से अप और परि शब्द ही वर्जनार्थक है अतः उनके योग में ही वर्ज्यमान उत्तरपद है, प्रति और उप शब्दों के योग में नहीं।

सिद्धि-(१) परित्रिगर्तम्। *यहां परि और त्रिगर्त शब्दों का **'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास है। 'परि' शब्द **'निपाता आद्युदात्ताः'** (फिट्० ४।१२) उपसर्गाश्चाभिवर्जम् (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से वर्ज्यमानवाची 'त्रिगर्त' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**परिसौवीरम्, परिसार्वसेनि।***

*(२) **प्रतिपूर्वाह्णम्।** यहां प्रति और अहरवयववाची 'पूर्वाह्ण' शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से यथा (वीप्सा) अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'प्रति' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से अहरवचववाची 'पूर्वाह्ण' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**प्रत्यपराह्णम्, प्रतिपूर्वरात्रम्, प्रत्यपररात्रम्।***

(३) उपपूर्वाह्णम्। यहां उप और पूर्वाह्ण शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'उप' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से अहरवयववाची 'पूर्वाह्ण' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-उपापराह्णम्, उपपूर्वरात्रम्, उपापररात्रम्।

(४) अपत्रिगर्तम्। यहां अप और वर्ज्यमानवाची 'त्रिगर्त' शब्दों का 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः' (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास है। 'अप' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। यह वर्ज्यमानवाची 'त्रिगर्त' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-अपसौवीरम्, अपसार्वसेनि।

***विशेषः** (१) त्रिगर्त-रावी, व्यास और सतलुज इन तीन नदी-घाटियों के बीच का प्रदेश त्रिगर्त (कुल्लू कांगड़ा) कहलाता था।*

(२) सौवीर-वर्तमानकाल में सिन्धु प्रान्त या सिन्ध नद के निचले काठे का नाम सौवीर (सिन्ध बहावलपुर) जनपद था इसकी राजधानी रौरुव (संस्कृत-नाम रौरुक) थी। इसका वर्तमान नाम रोड़ी है।

(३) सार्वसेनि-बीकानेर का उत्तरी भूभाग। यह ऐसे लोगों का संघ था जो कि सब सैनिक थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४६०)।

प्रकृतिस्वरः-

(३४) राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु।३४।

प०वि०-राजन्य-बहुवचन-द्वन्द्वे ७।१ अन्धक-वृष्णिषु ७।३।

स०-राजन्यानि च तानि बहुवचनानीति राजन्यबहुवचनानि, तेषाम्-राजन्यबहुवचनानाम्, राजन्यबहुवचनानां द्वन्द्व इति राजन्यबहुवचनद्वन्द्वः, तस्मिन्-राजन्यबहुवचनद्वन्द्वे (कर्मधारयगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। अन्धकाश्च वृष्णयश्च ते-अन्धकवृष्णयः, तेषु-अन्धकवृष्णिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्धकवृष्णिषु राजन्यबहुवचनद्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-अन्धकेषु वृष्णिषु च वर्तमानानां राजन्यवाचिनां बहुवचनान्तानां द्वन्द्वे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**अन्धकः**) श्वफलकस्यापत्यम्-श्वाफलकः, चित्रकस्यापत्यम्-चैत्रकः। श्वाफलकाश्च चैत्रकाश्च ते-श्वाफलकचैत्रकाः। चैत्रकाश्च रोधकाश्च ते-चैत्रकरोधकाः। (**वृष्णयः**) शिनयश्च वासुदेवाश्च ते-शिनिवासुदेवाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अन्धकवृष्णिषु) अन्धक और वृष्णि वंश में विद्यमान (राजन्य-बहुवचने) राजन्यवाची बहुवचनान्त द्वन्द्वसमास में (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**(अन्धक) श्वाफलकचैत्रका:।** अन्धकवंशीय श्वफलक और चित्रक के सन्तान। **चैत्रकरोधका:।** अन्धकवंशीय चित्रक और रोधक के सन्तान। **(वृष्णि) शिनिवासुदेवा:।** वृष्णिवंशीय शिनि और वसुदेव के सन्तान। शिनि के सन्तान अभेदोपचार से 'शिनि' कहाते हैं।*

सिद्धि-(१) श्वाफलकचैत्रका:। *यहां श्वाफलक और चैत्रक शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्व:'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। श्वाफलक और चैत्रक शब्दों में **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। अत: अण्-प्रत्ययान्त 'श्वाफलक' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह पूर्वपद इस सूत्र से अन्धकवंश में वर्तमान राजन्यवाची बहुवचनान्त शब्दों के द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**चैत्रकरोधका:।***

*(२) **शिनिवासुदेवा:।** यहां शिनि और वासुदेव शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। शिनि शब्द आद्युदात्त है। यह पूर्वपद इस सूत्र से वृष्णिवंश में वर्तमान राजन्यवाची बहुवचनान्त शब्दों के द्वन्द्व समास में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

विशेषः *महाभारत और कौटिल्य दोनों के अनुसार अन्धक-वृष्णि संघ-राज्य था। पाणिनि के अनुसार अन्धक-वृष्णिसंघ में राजन्यों द्वारा शासन की व्यवस्था थी। इसमें दूसरे संघों की भांति कुलों का शासन था। प्रत्येक कुल का अधिपति राजा कहलाता था। उन्हीं के अपत्यों की संज्ञा राजन्य थी। अक्रूर, श्वाफल्क {चैत्रक} अन्धकों के और {शिनि} कृष्ण (वासुदेव), बलराम, नकुल आदि वृष्णियों के नेता थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४६४)।*

प्रकृतिस्वरः--

(३५) संख्या।३५।

प०वि०-संख्या १।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, द्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-द्वन्द्वे संख्या पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थ:-द्वन्द्वे समासे संख्यावाचि पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-एकश्च दश चेति एकादश। द्वौ च दश चेति द्वादश। त्रयश्च दश चेति त्रयोदश।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्वन्द्वे) द्वन्द्वसमास में (संख्या) संख्यावाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-एकादश। एक और दश=ग्यारह। द्वादश। दो और दश=बारह। त्रयोदश। तीन और दश=तेरह।

सिद्धि-(१) एकादश। यहां एक और दश शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' (६।३।४५) से एक शब्द को आत्त्व होता है। 'एक' शब्द 'इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्' (उणा० ३।४३) से कन्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से यह आद्युदात्त है। यह संख्यावाची पूर्वपद इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(२) द्वादश। यहां द्वि और दश शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' (६।४।४६) से 'द्वि' शब्द को आत्त्व होता है। 'द्वि' शब्द 'फिषोऽन्तोदात्तः' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है। यह संख्यावाची पूर्वपद इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

(३) त्रयोदश। यहां त्रि और दश शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। 'त्रेस्त्रयः' (६।३।४८) से 'त्रि' के स्थान में त्रयस् आदेश होता है और वह स्थानिवद्भाव से अन्तोदात्त है। यह संख्यावाची पूर्वपद इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है।

प्रकृतिस्वरः–

(३६) आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी।३६।

प०वि०–आचार्योपसर्जनः १।१ च अव्ययपदम्, अन्तेवासी १।१।

स०–आचार्य उपसर्जनम्=अप्रधानं यस्मिन् सः-आचार्योपसर्जनः (बहुव्रीहिः)। अन्ते वसतीति-अन्तेवासी (उपपदतत्पुरुषः)। '**शयवासवासिष्व-कालात्**' (६।३।१७) इति सप्तम्या अलुग् भवति।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, द्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आचार्योपसर्जनानामन्तेवासिनां द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–आचार्योपसर्जनानामन्तेवासिवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–आपिशलाश्च पाणिनीयाश्च ते-आपिशलपाणिनीयाः। पाणिनीयाश्च रौढीयाश्च ते-पाणिनीयरौढीयाः। रौढीयाश्च काशकृत्स्नाश्च ते-रौढीयकाशकृत्स्नाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आचार्योपसर्जनः) जहां आचार्य का कथन उपसर्जन=गौण है ऐसे (अन्तेवासी) शिष्यवाची शब्दों के (द्वन्द्वे) द्वन्द्वसमास में (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-आपिशलपाणिनीयाः । श्री अपिशलि और श्री पाणिनि आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य)। पाणिनीयरौढीयाः । श्री पाणिनि और श्री रौढि आचार्य के अन्तेवासी। रौढीयकाशकृत्स्नाः । श्री रौढि और श्री काशकृत्स्न आचार्य के अन्तेवासी।

*सिद्धि-आपिशलपाणिनीयाः । यहां आपिशल और पाणिनीय शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। **अपिशलस्यापत्यम्-आपिशलिः ।** अपिश... का अपत्य (पुत्र) 'आपिशलि' कहाता है। यहां **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। **आपिशलिना प्रोक्तम्-आपिशलम् ।** आपिशलि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ 'आपिशल' कहाता है। यहां **'तेन प्रोक्तम्'** (४।३।१०१) से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **आपिशलमधीयते ये तेऽन्तेवासिन आपिशलाः ।** आपिशल ग्रन्थ को जो पढ़ते हैं वे अन्तेवासी भी 'आपिशल' कहाते हैं। यहां **'प्रोक्ताल्लुक्'** (४।२।६३) से अध्येता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का लुक् हो जाता है। इस प्रकार 'आपिशल' शब्द आचार्य-उपसर्जनीभूत अन्तेवासी वाची है। ऐसे ही-**पाणिनिना प्रोक्तम्-पाणिनीयम् । पाणिनीयमधीयते-पाणिनीयाः ।** पाणिनि आचार्य के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ (अष्टाध्यायी आदि) पाणिनीय कहाते हैं। यहां **'तेन प्रोक्तम्'** (४।३।१०१) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'प्रोक्ताल्लुक्'** (४।२।६३) से अध्येता अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् हो जाता है। इस प्रकार 'पाणिनीय' शब्द आचार्य-उपसर्जनीभूत अन्तेवासी वाची है। इन उक्त 'आपिशल' और पाणिनीय शब्दों के द्वन्द्वस... में 'आपिशल' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है। 'आपिशल' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। ऐसे ही-**पाणिनीयरौढीयाः, रौढीयकाशकृत्स्नाः ।***

'आपिशलपाणिनीयाः' आदि में आपिश... और पाणिनीय शब्द उनके द्वारा प्रोक्त ग्रन्थों के अध्येता अन्तेवासी (शिष्य) अर्थों में प्रधान और आचार्य अर्थ में उपसर्जन (गौण) हैं।

प्रकृतिस्वरः-

(३७) कार्तकौजपादयश्च ।३७।

प०वि०-कार्तकौजप-आदयः १।३ च अव्ययपदम् ।

स०-कार्तकौजप आदिर्येषां ते-कार्तकौजपादयः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, द्वन्द्वे इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-कार्तकौजपादीनां च द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या ।

अर्थः-कार्तकौजपादीनां च शब्दानां द्वन्द्वे समासे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति ।

उदा०-कार्तश्च कौजपश्च तौ-कार्तकौजपौ । सावर्णिश्च माण्डूकेयश्च तौ सावर्णिमाण्डूकेयौ । अवन्तयश्च अश्मकाश्च ते-अवन्त्यश्मकाः । पैलाश्च श्यापर्णेयाश्च ते-पैलश्यापर्णेयाः, इत्यादिकम् ।

कार्तकौजपौ। सावर्णिमाण्डूकेयौ। पैलश्यापर्णेयाः। पैलश्यापर्णेयौ। कपिश्यापर्णेयाः। शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः। कटुकवार्चलेयौ। शाकलशुनकाः। शाकलसणकाः। शुनकधात्रेयाः। सणकबाभ्रवाः। आर्चाभिमौद्गलाः। कुन्तिसुराष्ट्राः। चिंतिसुराष्ट्राः। तण्डवतण्डाः। गर्गवत्साः। अविमत्त-कामविद्धाः। बाभ्रवशालङ्कायनाः। बाभ्रवदानच्युताः। कठकालापाः। कठकौथुमाः। कौथुमलौकाक्षाः। स्त्रीकुमारम्। मौदपैप्पलादाः। द्विपाठः समासान्तोदात्तार्थः। वत्सजरत्। सौश्रुतपार्थवाः। जरामृत्यू। याज्यानुवाक्ये इति कार्तकौजपादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कार्तकौजपादयः) कार्तकौजप आदि शब्दों के (च) भी (द्वन्द्वे) द्वन्द्वसमास में (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कार्तकौजपौ।** कृत और कुजप के पुत्र। **सावर्णिमाण्डूकेयौ।** सवर्ण और मण्डूक के पुत्र। **अवन्त्यश्मकाः।** अवन्ति और अश्मकजनों का निवास। **पैलश्यापर्णेयाः।** पीला और श्यापर्णी के पौत्र, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **कार्तकौजपौ।** यहां कार्त और कौजप शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। **कृतस्यापत्यं कार्तः।** कृत का पुत्र कार्त कहाता है। 'कृत' शब्द के ऋषिवाची होने से **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है। 'कौजप' शब्द में भी पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय जानें।*

*(२) **सावर्णिमाण्डूकेयौ।** यहां सावर्णि और माण्डूकेय शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। 'सावर्णि' शब्द में **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से यह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है। 'माण्डूकेय' शब्द में मण्डूक शब्द से **'ढक् च मण्डूकात्'** (४।१।१२०) से ढक् प्रत्यय है।*

*(३) **अवन्त्यश्मकाः।** यहां अवन्ति और अश्मक शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। 'अवन्ति' शब्द से **'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्यङ्'** (४।१।१७१) से अपत्य अर्थ में 'ञ्यङ्' प्रत्यय है, उसका **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से उसका बहुवचन में लुक् होता है-**अवन्तेरपत्यानि बहूनि-अवन्तयः। पुनः 'तस्य निवासः'** (४।२।६९) से निवास अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और उसका **'जनपदे लुप्'** (४।२।८०) से लोप होता है-**अवन्तीनां निवासो जनपदः-अवन्तयः।** 'अवन्ति' शब्द **'घृतादीनां च'** (फिट्० १।२१) से अन्तोदात्त है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यण्-आदेश होकर **'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य'** (८।२।४) से यण् (य) स्वरित होता है। 'अश्मकाः' शब्द की सिद्धि 'अवन्तयः' के समान समझें।*

(४) पैलश्यापर्णेयाः। यहां पैल और श्यापर्णेय शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। पैल शब्द में 'पीलाया वा' (४।१।११८) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। उससे 'अणो द्व्यचः' (४।१।१५६) से युवापत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होकर उसका 'पैलादिभ्यश्च' (२।४।५९) से लुक् हो जाता है। इस प्रकार 'पैल' शब्द प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से द्वन्द्वसमास में प्रकृतिस्वर से रहता है। 'श्यापर्ण' शब्द के विदादि गण में पठित होने से 'अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्' (४।१।१०४) से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय और उससे स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय करने पर 'श्यापर्णी' शब्द सिद्ध होता है। इससे 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) से युवापत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होकर 'श्यापर्णेय' शब्द बनता है।

प्रकृतिस्वरः-

(३८) महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारत-हैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु।३८।

प०वि०-महान् १।१ व्रीहि-अपराह्ण-गृष्टि-इष्वास-जाबाल-भार-भारत-हैलिहिल-रौरव-प्रवृद्धेषु ७।३।

स०-व्रीहिश्च अपराह्णश्च गृष्टिश्च इष्वासश्च जाबालश्च भारश्च भारतश्च हैलिहिलश्च रौरवश्च प्रवृद्धश्च ते-व्रीहि०प्रवृद्धाः, तेषु-व्रीहि०प्रवृद्धेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या पूर्वपदमिति चानुवर्तते। 'द्वन्द्वे' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-व्रीह्यपराह्ण०प्रवृद्धेषु महान् पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु उत्तरपदेषु महानिति पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-महाँश्चासौ व्रीहिरिति-महाव्रीहिः। महापराह्णः। महागृष्टिः। महेष्वासः। महाजाबालः। महाभारः। महाभारतः। महाहैलिहिलः। महारौरवः। महाप्रवृद्धः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(व्रीह्यपराह्ण०प्रवृद्धेषु) व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत, हैलिहिल, रौरव, प्रवृद्ध शब्दों के उत्तरपद होने पर (महान्) महान् यह (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-महाव्रीहिः। चावल विशेष की संज्ञा। महापराह्णः। अपराह्ण का अन्तिम भाग। महागृष्टिः। एक बार ब्याई हुई बड़ी गाय। महेष्वासः। बहुत बड़ा धनुर्धर।

महाजाबाल: । एक ऋषिविशेष की संज्ञा । महाभार: । बहुत बोझ । महाभारत: । इस नाम से लोकप्रसिद्ध ग्रन्थविशेष । महाहैलिहिल: । बहुत बड़ा खिलाड़ी । महारौरव: । घोर नरक । महाप्रवृद्ध: । बहु बूढ़ा ।

*सिद्धि-महाव्रीहि: । यहां महान् और व्रीहि शब्दों का **'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा: पूज्यमानै:'** (२ ।१ ।६१) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। यहां **'लक्षणप्रतिपदोक्तयो: प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्'** इस परिभाषा से 'सन्महत्०' (२ ।१ ।६१) में प्रतिपदोक्त समास का ही ग्रहण 'महत्' शब्द से ग्रहण किया जाता है। महत् शब्द **'वर्तमाने पृषद्बृहन्-महज्जगच्छतृवच्च'** (उणा० २ ।८५) से अति-प्रत्ययान्त निपातित है, अत: प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से 'व्रीहि' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-महापराह्ण: आदि ।*

प्रकृतिस्वर:-

(३६) क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ।३६ ।

प०वि०-क्षुल्लक: १ ।१ च अव्ययपदम्, वैश्वदेवे ७ ।१ ।

स०-क्षुधं लातीति क्षुल्ल:, ह्रस्व: क्षुल्ल:-क्षुल्लक: (उपपदतत्पुरुष:)। अत्र **'आतोऽनुपसर्गे क:'** (३ ।२ ।३) इति लाधातो: क: प्रत्यय: । **'तोर्लि'** (८ ।४ ।५९) इति तकारस्य लकार: । ततश्च **'ह्रस्वे'** (५ ।३ ।८६) इति ह्रस्वेऽर्थे तद्धित: क: प्रत्यय: । क्षुद्रपर्याय: क्षुल्लकशब्द: ।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, महानिति चानुवर्तते ।

अन्वय:-वैश्वदेवे क्षुल्लको महाँश्च पूर्वपदं प्रकृत्या ।

अर्थ:-वैश्वदेवे उत्तरपदे क्षुल्लको महानिति च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति ।

उदा०-**(क्षुल्लक:)** क्षुल्लकं च तद् वैश्वदेवमिति क्षुल्लकवैश्वदेवम् । **(महान्)** महच्च तद् वैश्वदेवमिति महावैश्वदेवम् ।

आर्यभाषा: *अर्थ-(वैश्वदेवे) वैश्वदेव शब्द उत्तरपद होने पर (क्षुल्लक:) क्षुल्लक (च) और (महान्) महान् (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-(क्षुल्लक) **क्षुल्लकवैश्वदेवम् ।** लघु यज्ञविशेष। (महान्) **महावैश्वदेवम् ।** महान् यज्ञविशेष।*

*सिद्धि-(१) **क्षुल्लकवैश्वदेवम् ।** यहां क्षुल्लक और वैश्वदेव शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२ ।१ ।५६) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'क्षुल्लक' शब्द में 'क्षुत्'*

उपपद 'ला आदाने' (अदा०प०) धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। 'तोर्लि' (८।४।५९) से तकार को परसवर्ण लकार आदेश होता है। पुनः 'ह्रस्वे' (५।३।८६) से ह्रस्व अर्थ में तद्धित 'क' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से वैश्वदेव शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(२) महावैश्वदेवम्। यहां महत् और वैश्वदेव शब्दों का 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' (२।१।६० से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'आन्महतः समानाधिकरण-जातीययोः' (६।३।४५) से महत् को आत्त्व होता है। 'महत्' शब्द पूर्ववत् अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से वैश्वदेव शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

प्रकृतिस्वरः-

(४०) उष्ट्रः सादिवाम्योः।४०।

प०वि०-उष्ट्रः १।१ सादि-वाम्योः ७।२।

स०-सादिश्च वामी च ते सादिवाम्यौ, तयोः-सादिवाम्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सादिवाम्योरुष्ट्रः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-सादिवाम्योरुत्तरपदयोरुष्ट्रशब्दः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(सादिः) उष्ट्रस्य सादिरिति उष्ट्रसादिः। उष्ट्रसारथिरित्यर्थः। **(वामी)** उष्ट्रोऽयं वामीव इति उष्ट्रवामी। वामी=वडवा।

आर्यभाषाः अर्थ-(सादिवाम्योः) सादि और वामी शब्द उत्तरपद होने पर (उष्ट्रः) उष्ट्र (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।

उदा०-(सादि) **उष्ट्रसादिः**। ऊंट का सारथि। (वामी) **उष्ट्रवामी**। वामी=घोड़ी के समान शीघ्रगामी ऊंट।

सिद्धि-(१) उष्ट्रसादिः। यहां उष्ट्र और सादि शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'उष्ट्र' शब्द में **'उषिखनिभ्यां कित्'** (उणा० ४।१६२) से 'उष दाहे' धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से यह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (७।२।१०२) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से 'सादि' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

(२) उष्ट्रवामी। यहां उष्ट्र और वामी शब्दों का **'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे'** (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। व्याघ्रादि आकृतिगण है। उष्ट्र शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से वामी उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

प्रकृतिस्वरः-

(४१) गौः सादसादिसारथिषु।४१।

प०वि०-गौः १।१ साद-सादि-सारथिषु ७।३।

स०-सादश्च सादिश्च सारथिश्च ते सादसादिसारथयः, तेषु-सादसादिसारथिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सादसादिसारथिषु गौः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-सादसादिसारथिषु उत्तरपदेषु गोशब्दः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**सादः**) गोः साद इति गोसादः। (**सादिः**) गोः सादिरिति गोसादिः। (**सारथिः**) गोः सारथिरिति गोसारथिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सादसादिसारथिषु) साद, सादि, सारथि शब्दों के उत्तरपद होने पर (गौः) गौ शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**(साद) गोसादः।** बैल को संताप देनेवाला। **(सादि) गोसादिः।** बैल का सवार (शिव)। **(सारथि) गोसारथिः।** बैलों का सारथि।*

***सिद्धि-गोसादः।** यहां गो और साद शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'गो' शब्द 'गमेर्डोः' (उणा० २।६७) से डो-प्रत्ययान्त है। अतः यह प्रत्ययस्वर से उदात्त है। यह इस सूत्र से 'साद' उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-गोसादिः, गोसारथिः।*

प्रकृतिस्वरः-

(४२) कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च।४२।

प०वि०-कुरुगार्हपत १।१ (सु-लुक्) रिक्तगुरु १।१ (सु-लुक्) असूतजरती १।१ अश्लीलदृढरूपा १।१ पारेवडवा १।१ तैतिलकद्रूः १।१ पण्यकम्बलः १।१ दासीभाराणाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः- कुरुगार्हपत-रिक्तगुरु-असूतजरती-अश्लीलदृढरूपा-पारेवडवा-तैतिलकद्रू-पण्यकम्बलानां दासीभाराणां च पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः- कुरुगार्हपत-रिक्तगुरु-असूतजरती-अश्लीलदृढरूपा-पारेवडवा-तैतिलकद्रू-पण्यकम्बलानां दासीभाराणाम् :दासीभारादीनां च शब्दानां पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**कुरुगार्हपतम्**) कुरूणां गार्हपतमिति कुरुगार्हपतम्। (**रिक्तगुरुः**) रिक्तो गुरुरिति रिक्तगुरुः। (**असूतजरती**) असूता जरतीति असूतजरती। (**अश्लीलदृढरूपा**) अश्लीला दृढरूपेति अश्लीलदृढरूपा। पारेवडवा इवेति पारेवडवा। (**तैतिलकद्रूः**) तैतिलानां कद्रूरिति तैतिलकद्रूः। (**पण्यकम्बलः**) पण्यः कम्बल इति पण्यकम्बलः। (**दासीभारादयः**) दास्या भार इति दासीभारः। देवानां हूतिरिति देवहूतिः, इत्यादिकम्।

दासीभारः। देवहूतिः। देवजूतिः। देवसूतिः। देवनीतिः। वसुनीतिः। ओषधिः। चन्द्रमाः। अविहितलक्षणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कुरुगार्हपत०दासीभाराणाम्) कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल, दासीभार आदि शब्दों का (च) भी (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कुरुगार्हपतम्**। कुरु जनपद के गृहपतियों की संस्था। **रिक्तगुरुः**। खाली रहने पर भी भारी। **असूतजरती**। सन्तानोत्पत्ति न होने पर भी वृद्धा। **अश्लीलदृढरूपा**। अश्लील=अ श्रील-अर्थात् श्री (कान्ति) से रहित होने पर भी स्थिर रूपवाली संस्थानमात्र से सुन्दर। **पारेवडवा**। पार उतारने में वडवा=घोड़ी के समान। **तैतिलकद्रूः**। तैतिल=तितिली के पुत्रों/छात्रों की माता। **पण्यकम्बलः**। बिकाऊ कम्बल। **दासीभारः**। दासी के द्वारा वहन करने योग्य बोझ। **देवहूतिः**। देवों का आह्वान, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **कुरुगार्हपतम्**। यहां कुरु और गार्हपत शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'कुरु' शब्द '**कृग्रोरुच्च**' (उणा० १।२४) से कु-प्रत्ययान्त है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(२) **रिक्तगुरुः**। यहां रिक्त और गुरु शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'रिक्त' शब्द '**रिक्ते विभाषा**' (६।१।२०२) से विकल्प से आद्युदात्त और अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **असूतजरती**। यहां असूता और जरती शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'असूता' शब्द में नञ्तत्पुरुष समास है-**न सूतेति असूता**। 'नञ्' शब्द '**निपाता आद्युदात्ताः**' (फिट्० ४।१२) से आद्युदात्त है, अतः असूता शब्द भी आद्युदात्त हुआ। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(४) **अश्लीलदृढरूपा।** यहां अश्लीला और दृढरूपा शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'अश्लीला' शब्द में नञ्तत्पुरुष समास है-**न श्रीलेति।** अश्रीला=अश्लीला (रेफस्य लत्वम्)। 'नञ्' शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है, अत: अश्लीला शब्द भी आद्युदात्त हुआ। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(५) **पारेवडवा।** यहां पार और वड़वा शब्दों का इसी निपातन से इव-अर्थ में समास है तथा सप्तमी-विभक्ति का लोप नहीं होता है। 'पार' शब्द '**घृतादीनां च**' (फिट्० १।२१) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(६) **तैतिलकद्रूः।** यहां तैतिल और कद्रू शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'तैतिल' शब्द में '**तस्यापत्यम्**' (४।१।९२) से 'अण्' प्रत्यय है-**तितिलिनोऽपत्यम् तैतिलः।** अत: यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(७) **पण्यकम्बलः।** यहां पण्य और कम्बल शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'पण्य' शब्द '**अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु**' (३।१।१०१) से यत्-प्रत्ययान्त निपातित है, अत: यह '**यतोऽनावः**' (६।१।२०७) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(८) **दासीभारः।** यहां दासी और भार शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'दासी' शब्द में '**दंसेष्टटनौ न आ च**' (उणा० ५।१०) से 'ट' प्रत्यय और नकार को आकार आदेश होकर 'दास' शब्द बनता है। पुन: स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय है। अत: यह '**अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः**' (६।१।१५५) से उदात्तनिवृत्ति स्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(९) **देवहूतिः।** यहां देव और हूति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'देव' शब्द '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१) से अच्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के चित् होने से यह '**चितः**' (६।१।१५६) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(४३) चतुर्थी तदर्थे।४३।

प०वि०-चतुर्थी १।१ तदर्थे ७।१।

स०-तस्मै इदमिति तदर्थम्, तस्मिन्-तदर्थे। तदर्थम्=चतुर्थ्यन्तार्थमित्यर्थः (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तदर्थे चतुर्थी पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तदर्थे उत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-यूपाय दारु इति यूपदारु। कुण्डलाय हिरण्यमिति कुण्डलहिरण्यम्। रथाय दारु इति रथदारु। वल्ल्यै हिरण्यमिति वल्लीहिरण्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तदर्थे) उस चतुर्थ्यन्त के अभिधेयवाची उत्तरपद होने पर (चतुर्थी) चतुर्थी-अन्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**यूपदारु।** यज्ञ-स्तम्भ के लिये लकड़ी। **कुण्डलहिरण्यम्।** कुण्डल के लिये सुवर्ण। **रथदारु।** रथ के लिये लकड़ी। **वल्लीहिरण्यम्।** बाली के लिये सुवर्ण।*

*सिद्धि-(१) **यूपदारु।** यहां यूप और दारु शब्दों का **'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'** (२।१।३५) से चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'यूप' शब्द में **'कुयुभ्यां च'** (उणा० ३।२७) से 'प' प्रत्यय है और यहां **'स्तुवो दीर्घश्च'** (उणा० ३।२५) से दीर्घ की तथा **'सुशभ्यां निच्च'** (उणा० ३।२६) से नित् की अनुवृत्ति है। अतः प्रत्यय के नित् होने से यह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से तदर्थवाची दारु शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(२) **कुण्डलहिरण्यम्।** यहां कुण्डल और हिरण्य शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'कुण्डल' शब्द में **'वृषादिभ्यश्चित्'** (उणा० १।१०६) से आकृतिगण से कल प्रत्यय और वह चित् है। प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१५८) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से तदर्थवाची हिरण्य शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **रथदारु।** यहां रथ और दारु शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'रथ' शब्द में **'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्'** (उणा० २।२) से 'क्थन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से यह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से तदर्थवाची दारु शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(४) **वल्लीहिरण्यम्।** यहां वल्ली और हिरण्य शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'वल्ली' शब्द में **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से तदर्थवाची हिरण्य शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः–

(४४) अर्थे।४४।

प०वि०-अर्थे ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, चतुर्थी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्थे चतुर्थी पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-अर्थशब्दे उत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-मात्रे इदमिति मात्रर्थम्। पित्रर्थम्। देवतार्थम्। अतिथ्यर्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अर्थे) अर्थ शब्द उत्तरपद होने पर (चतुर्थी) चतुर्थी-अन्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**मात्रर्थम्**। माता के लिये। **पित्रर्थम्**। पिता के लिये। **देवतार्थम्**। देवता के लिये। **अतिथ्यर्थम्**। अतिथि के लिये।*

*सिद्धि-(१) **मात्रर्थम्**। यहां मातृ और अर्थ शब्दों का '**चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः**' (२।१।३५) से चतुर्थी तत्पुरुष समास है। 'मातृ' शब्द '**नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ**' (उणा० २।९७) से अन्तोदात्त निपातित है। यह इस सूत्र से अर्थ शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**पित्रर्थम्**।*

*(२) **देवतार्थम्**। यहां देवता और अर्थ शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी-तत्पुरुष समास है। 'देवता' शब्द में '**देवात्तल्**' (५।४।२७) से तल् प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से यह '**लिति**' (६।१।१२७) से मध्योदात्त है। यह इस सूत्र से अर्थ शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **अतिथ्यर्थम्**। यहां अतिथि और अर्थ शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी-तत्पुरुष समास है। अतिथि शब्द में '**ऋतन्यञ्जि०**' (उणा० ४।२) से इथिन् प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से अर्थ शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(४५) क्ते च।४५।

प०वि०-क्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, चतुर्थी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्ते च चतुर्थी पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-क्तान्ते शब्दे चोत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-गवे हितमिति गोहितम्। अश्वहितम्। मनुष्यहितम्। गवे **रक्षित**मिति गोरक्षितम्। अश्वरक्षितम्। वनं तापसरक्षितम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (च) भी (चतुर्थी) चतुर्थी-अन्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**गोहितम्**। गौ के लिये हितकारी। **अश्वहितम्**। घोड़े के लिये हितकारी। **मनुष्यहितम्**। मनुष्य के लिये हितकारी। **गोरक्षितम्**। गौ के लिये रखा हुआ। **अश्वरक्षितम्**। घोड़े के लिये रखा हुआ। वनं **तापसरक्षितम्**। तपस्वियों के लिये रखा हुआ वन।*

*सिद्धि-(१) **गोहितम्**। यहां गो और क्त-प्रत्ययान्त हित शब्दों का **'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'** (२।१।३५) से चतुर्थीतत्पुरुष समास है। 'गो शब्द अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त हित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**गोरक्षितम्**।*

*(२) **अश्वहितम्**। यहां अश्व और हित शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। अश्व शब्द आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त हित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**अश्वरक्षितम्**।*

*(३) **मनुष्यहितम्**। यहां मनुष्य और हित शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। मनुष्य शब्द में **'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च'** (४।१।६१) से यत् प्रत्यय है। प्रत्यय के तित् होने से यह **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१७९) से अन्तस्वरित है। यह इस सूत्र से क्तान्त हित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(४) **तापसरक्षितम्**। यहां तापस और क्तान्त रक्षित शब्दों का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। तापस शब्द में **'तपःसहस्राभ्यां विनीनी'** (५।२।१०२) की अनुवृत्ति में **'अण् च'** (५।२।१०३) से अण्-प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त रक्षित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(४६) कर्मधारयेऽनिष्ठा।४६।

प०वि०-कर्मधारये ७।१ अनिष्ठा १।१।

स०-न निष्ठेति अनिष्ठा (नञ्तत्पुरुषः)। **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२५) इति निष्ठा संज्ञा विहिता।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, क्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मधारये क्तेऽनिष्ठा पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-कर्मधारये समासे क्तान्ते शब्दे उत्तरपदेऽनिष्ठान्तं पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-अश्रेणयः श्रेणयः कृता इति श्रेणिकृताः। ओककृताः। पूगकृताः। निधनकृताः।

आर्यभाषाः *अर्थः-(कर्मधारये) कर्मधारय समास में (क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (अनिष्ठा) निष्ठा-प्रत्ययान्त से भिन्न (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-श्रेणिकृताः। जो श्रेणिबद्ध नहीं थे उन्हें श्रेणिबद्ध किया गया। ओककृताः। जो बेघर थे उन्हें घरयुक्त किया गया है। पूगकृताः। जो संघ में नहीं थे उन्हें संघ में सम्मिलित किया गया। निधनकृताः। जो गरीब नहीं थे उन्हें गरीब बनाया गया।

*सिद्धि-(१) श्रेणिकृताः। यहां श्रेणि और क्तान्त कृत शब्दों का '**श्रेण्यादयः कृतादिभिः**' (२।१।५९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। श्रेणि शब्द में '**वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्**' (उणा० ४।५२) से 'नि' प्रत्यय और वह नित् है। अतः यह '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त 'कृत' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(२) ओककृताः। यहां ओक और क्तान्त 'कृत' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। ओक शब्द अन्तोदात्त है। इसकी सिद्धि पूर्वोक्त (६।२।३२) है। यह इस सूत्र से क्तान्त कृत शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

*(३) पूगकृताः। यहां पूग और क्तान्त 'कृत' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। पूग शब्द में '**छापूञ्खडिभ्यो गक्**' (दश०उणा० ३।६९) से गक् प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त कृत शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(४) निधनकृताः। यहां निधन और क्तान्त 'कृत' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। निधन शब्द मध्योदात्त है। इसकी सिद्धि पूर्वोक्त (६।२।३२) है। यह इस सूत्र से क्तान्त कृत शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

यहां 'अनिष्ठा' का कथन इसलिये किया है कि यहां पूर्वपद प्रकृतिस्वर न हो-कृताकृतम्।

प्रकृतिस्वरः-

(४७) अहीने द्वितीया।४७।

प०वि०-अहीने ७।१ द्वितीया १।१।

स०-हीनम्=त्यक्तम्। न हीनमिति अहीनम्, तस्मिन्-अहीने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, क्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहीने क्ते द्वितीया पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-अहीनवाचिनि समासे क्तान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-कष्टं श्रित इति कुष्टश्रितः। त्रिशकलपतितः। ग्रामगतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहीने) अहीन=अत्यागवाची समास में (क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कुष्टश्रितः**। कष्ट को प्राप्त हुआ। **त्रिशकलपतितः**। आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक तीन खण्डों वाले दुःख में पड़ा हुआ। **ग्रामगतः**। गांव को गया हुआ।*

सिद्धि-(१) कुष्टश्रितः। *यहां कष्ट और श्रित शब्दों का '**द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः**' (२।१।२४) से द्वितीया तत्पुरुष समास है। कष्ट शब्द में '**कष हिंसायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से क्त-प्रत्यय और '**कृच्छ्रगहनयोः कषः**' (७।२।२२) से इट् आगम का प्रतिषेध है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से अहीनवाची, क्तान्त श्रित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृति से रहता है।*

*(२) **त्रिशकलपतितः**। यहां त्रिशकल और पतित शब्दों का पूर्ववत् द्वितीया तत्पुरुष समास है। 'त्रिशकल' शब्द में '**त्रीणि शकलानि यस्य स त्रिशकलः**' बहुव्रीहि समास है। अतः '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६।२।१) से इसका प्रकृतिस्वर से रहता है। इसका **त्रि** पूर्वपद '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है। इस प्रकार त्रिशकल शब्द आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से अहीनवाची, क्तान्त 'पतित' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **ग्रामगतः**। यहां ग्राम और अहीनवाची क्तान्त गत शब्दों का पूर्ववत् द्वितीया तत्पुरुष समास है। ग्राम शब्द '**ग्रसेरा च**' (उणा० १।१४३) से मन्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के नित् होने से यह '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से अहीनवाची और क्तान्त गत शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*यहां 'अहीने' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां हीनवाची समास में द्वितीयान्त पूर्वपद प्रकृतिस्वर से न रहे-**कान्तारातीतः**। कान्तार=वन को पार किया हुआ (छोड़ा हुआ)। **योजनातीतः**। एक योजन मार्ग को पार किया हुआ।*

प्रकृतिस्वरः—

(४८) तृतीया कर्मणि।४८।

प०वि०-तृतीया १।१ कर्मणि ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, क्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मणि क्ते तृतीया पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-कर्मवाचिनि क्तान्ते शब्दे उत्तरपदे तृतीयान्तं पूर्वपदं प्रकृति-स्वरं भवति।

उदा०-अहिना हत इति अहिहतः। वज्रहतः। महाराजहतः। नखनिर्भिन्ना। दात्रलूना।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कर्मणि) कर्मवाची (क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (तृतीया) तृतीयान्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**अहिहतः**। सर्पदंश से मरा हुआ। **वज्रहतः**। वज्रपात से मरा हुआ। **महाराजहतः**। महाराज के द्वारा मृत्युदण्ड दिया हुआ। **नखनिर्भिन्ना**। नखों से नौंची हुई नारी। **दात्रलूना**। दाती से काटी हुई ओषधि।*

*सिद्धि-(१) **अहिहतः**। यहां अहि और कर्मवाची क्तान्त हत शब्दों का **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३१) से तृतीया तत्पुरुष समास है। अहि शब्द में **'आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च'** (उणा० ४।१३८) से इण् प्रत्यय है। यहां **'वातेर्डिच्च'** (उणा० ४।१३५) से **डित्** की अनुवृत्ति से **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'हन्' के टि-भाग (अन्) का लोप और 'आङ्' को ह्रस्व होकर 'अहिः' शब्द सिद्ध होता है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मवाची 'हत' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(२) **वज्रहतः**। यहां वज्र और पूर्वोक्त हत शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। वज्र शब्द **'वज्रेन्द्र०माला:'** (उणा० २।२९) से रक्-प्रत्ययान्त निपातित है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मवाची 'हत' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **महाराजहतः**। यहां महाराज और पूर्वोक्त हत शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। महाराज शब्द में **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के चित् होने से यह **'चितः'** (६।१।१५८) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मवाची, क्तान्त हत शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(४) **नखनिर्भिन्ना**। यहां नख और पूर्वोक्त निर्भिन्ना शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। 'नख' शब्द में **'न खमस्यास्तीति नखः'** बहुव्रीहि समास है। यहां **'नभ्राण्नपान्नवेदा०'** (६।३।७३) से 'नञ्' को प्रकृतिभाव होने से **'नलोपो नञः'** (६।३।७२) से नकार का लोप नहीं होता है। यह **'नञ्सुभ्याम्'** (६।२।१७१) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मवाची क्तान्त निर्भिन्ना शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।*

(५) दात्रलूना। यहां दात्र और पूर्वोक्त लूना शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। दात्र शब्द 'दाम्नीशस०' (३।२।१८२) से ष्ट्रन्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के नित् होने से यह 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मवाची, क्तान्त लूना शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है।

यहां 'हत' आदि शब्दों में 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (३।४।७०) से कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय है।

प्रकृतिस्वरः–

(४६) गतिरनन्तरः।४६।

प०वि०–गतिः १।१ अनन्तरः १।१।

स०–न विद्यते अन्तरं यस्य सः–अनन्तरः (बहुव्रीहिः)।

'अनन्तर' इति पुंलिङ्गनिर्देशाद् गतिशब्दः **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) इति क्तिच्प्रत्ययान्तो निपातनाच्चानुनासिकलोपो वेदितव्यः।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, क्ते, कर्मणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कर्मणि क्तेऽनन्तरो गतिः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–कर्मवाचिनि क्तान्ते शब्दे उत्तरपदेऽनन्तरो गतिः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति। अनन्तरः=अव्यवहित इत्यर्थः।

उदा०–प्रकर्षेण कृत इति प्रकृतः। प्रहृतः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(कर्मणि) कर्मवाची (क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (अनन्तरः) अव्यवहित (गतिः) गति-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०–प्रकृतः। प्रकर्ष से बनाया हुआ। प्रहृतः। प्रकर्ष से हरण किया हुआ।

सिद्धि–प्रकृतः। यहां प्र और कर्मवाची, क्तान्त हृत शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गतिसमास है। 'प्र' शब्द 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त है और 'गतिश्च' (१।४।५९) इसकी 'गति' संज्ञा है। अतः यह अव्यवहित गति-संज्ञक शब्द इस सूत्र से कर्मवाची, क्तान्त 'कृत' शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही–प्रहृतः।

यहां 'अनन्तरः' का कथन इसलिये किया गया है व्यवहित गति प्रकृतिस्वर से न रहे जैसे–अभ्युद्धृतः। समुद्धृतः। समुदाहृतः। यहां व्यवहित अभि आदि गतियों का आद्युदात्त स्वर नहीं होता है।

प्रकृतिस्वरः-

(५०) तादौ च निति कृत्यतौ।५०।

प०वि०-त-आदौ ७।१ च अव्ययपदम्, निति ७।१ कृति ७।१ अतौ ७।१।

स०-त आदिर्यस्य स तादिः, तस्मिन्-तादौ (बहुव्रीहिः)। न इद् यस्य स नित्, तस्मिन्-निति। न तुरिति अतुः, तस्मिन्-अतौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, गतिः, अनन्तर इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतौ तादौ निति कृति चानन्तरो गतिः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तुशब्द-वर्जिते तकारादौ निति कृति च प्रत्यये परतोऽनन्तरो गतिः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-प्रकर्षेण कर्ता इति प्रकर्ता। प्रकर्तुम्। प्रकृतिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतौ) तु शब्द से भिन्न (तादौ) तकार-आदि (निति) नित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (च) भी (अनन्तरः) अव्यवहित (गतिः) गति-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**प्रकर्ता**। प्रकृष्ट कर्ता। **प्रकर्तुम्**। प्रकृष्ट करने के लिये। **प्रकृतिः**। प्रकृष्ट कृति।*

सिद्धि-(१) प्रकर्ता*। यहां 'प्र' और 'कर्तृ' शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से गति-समास है। 'कर्तृ' शब्द में '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**तृन्**' (३।२।१३५) से तच्छील आदि अर्थों में तृन् प्रत्यय है। यह तकारादि, नित् कृत् है। इसके उत्तरपद होने पर गति-संज्ञक 'प्र' पूर्वपद इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से रहता है। 'प्र' शब्द '**उपसर्गाश्चाभिवर्जम्**' (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त है। यहां '**गतिकारकोपदात् कृत्**' (६।२।३९) से कृत्-स्वर प्राप्त था, उसका यह बाधक है।*

*(२) **प्रकर्तुम्**। यहां 'प्र' और 'कर्तुम्' शब्दों का पूर्ववत् गतिसमास है। 'कर्तुम्' शब्द में '**कृ**' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से तुमुन् प्रत्यय है। यह तकारादि नित् कृत् है। इसके उत्तरपद होने पर गति-संज्ञक 'प्र' पूर्वपद इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*(३) **प्रकृतिः**। यहां 'प्र' और 'कृति' शब्दों का पूर्ववत् गतिसमास है। कृति शब्द में 'कृ' धातु से '**स्त्रियां क्तिन्**' (३।३।　) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। यह तकारादि, नित् कृत् है। इसके उत्तरपद होने पर गति-संज्ञक 'प्र' पूर्वपद प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*यहां 'अतौ' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां गति पूर्वपद प्रकृतिस्वर से न हो-**आगन्तुः**। यहां '**सितनिगमि०**' (उणा० १।६९) से 'तुन्' प्रत्यय है। यहां '**गतिकारकोपदात् कृत्**' (६।२।१३८) से कृत्-स्वर (आद्युदात्त) होता है।*

युगपत्स्वरः--

(५१) तवै चान्तश्च युगपत् ।५१।

प०वि०-तवै १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, अन्तः १।१ च अव्ययपदम्, युगपत् अव्ययपदम् ।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, गतिः, अनन्तर इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तवैश्चान्त उदात्तोऽनन्तरो गतिश्च पूर्वपदं प्रकृत्या युगपत् ।

अर्थः-तवै-प्रत्ययस्य चान्त उदात्तो, अनन्तरो गतिश्च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरमित्येतदुभयं युगपद् भवति ।

उदा०-अन्वेतवै (तै०सं० १।४।४५।१) । परिस्तरितवै । परिपातवै । तस्मादग्निचिन्नाभिचरितवै ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तवै) तवै-प्रत्यय को (च) भी (अन्तः) अन्तोदात्त (च) और (अनन्तरः) अव्यवहित (गतिः) गति-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद को (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर ये दोनों (युगपत्) एक साथ होते हैं।*

*उदा०-**अन्वेतवै** (तै०सं० १।४।४५।१)। अन्वित होने के लिये। **परिस्तरितवै।** आच्छादित करने के लिये। **परिपातवै।** परिपालन के लिये। **अभिचरितवै।** अभिचरण= सम्मुख चलने के लिये।*

*सिद्धि-(१) **अन्वेतवै।** यहां अनु और एतवै शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से गति-तत्पुरुष समास है। 'एतवै' शब्द में '**इण् गतौ**' (अदा०प०) धातु से '**तुमर्थे सेसेन०**' (३।४।९) से 'तवै' प्रत्यय है। यह इस सूत्र से अन्तोदात्त और गति-संज्ञक 'अनु' शब्द प्रकृतिस्वर से युगपत् होते हैं।*

*(२) **परिस्तरितवै।** यहां परि और स्तरितवै शब्दों का पूर्ववत् गतितत्पुरुष समास है। 'स्तरितवै' शब्द में '**स्तृञ् आच्छादने**' (क्रया०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तवै' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **परिपातवै।** यहां परि और पातवै शब्दों का पूर्ववत् गतितत्पुरुष समास है। 'पातवै' शब्द में '**पा रक्षणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तवै' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **अभिचरितवै।** यहां अभि और चरितवै शब्दों का पूर्ववत् गतितत्पुरुष समास है। 'चरितवै' शब्द में '**चर गतिभक्षणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तवै' प्रत्यय है। '**उपसर्गाश्चाभिवर्जम्**' (फिट्० ४।१३) से 'अभि' शब्द अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यह सूत्र '**गतिकारकोपपदात् कृत्**' (६।२।१३८) से विहित कृत्स्वर का अपवाद है।*

प्रकृतिस्वरः–

(५२) अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये।५२।

प०वि०–अनिगन्तः १।१ अञ्चतौ ७।१ वप्रत्यये ७।१।

स०–इक् अन्ते यस्य स इगन्तः, न इगन्त इति अनिगन्तः (बहुव्रीहिगर्भितो नञ्तत्पुरुषः)। व प्रत्ययो यस्य स वप्रत्ययः, तस्मिन्-वप्रत्यये (बहुव्रीहिः)।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, गतिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–व-प्रत्ययेऽञ्चतावनिगन्तो गतिः पूर्वपदं प्रकृत्या।

अर्थः–व-प्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परतोऽनिगन्तो गतिः पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०–प्राङ्। प्राञ्चौ। प्राञ्चः। पराङ्। पराञ्चौ। पराञ्चः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(व-प्रत्यये) व-प्रत्ययान्त (अञ्चतौ) अञ्चति धातु के परे होने पर (अनिगन्तः) जिसके अन्त में इक् नहीं है वह (गतिः) गति-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**प्राङ्।** पूर्व दिशा। **प्राञ्चौ।** दो पूर्व दिशायें। **प्राञ्चः।** सब पूर्व दिशायें। **पराङ्।** पश्चिम दिशा। **पराञ्चौ।** दो पश्चिम दिशायें। **पराञ्चः।** सब पश्चिम दिशायें।*

*सिद्धि-**प्राङ्।** यहां प्र और अङ् शब्दों का पूर्ववत् गतितत्पुरुष समास है। 'अङ्' शब्द **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' प्रत्यय के अनुबन्ध लोप के पश्चात् 'व' शेष रहता है, अतः यह व-प्रत्यय है। इस सूत्र से व-प्रत्ययान्त अञ्चति धातु परे होने पर अनिगन्त गति-संज्ञक 'प्र' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। ऐसे ही-**पराङ्।***

'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ'** (८।२।६) से पदादि अनुदात्त परे होने पर अनुदात्त के साथ जो एकादेश है वह विकल्प से स्वरित होता है-**प्राङ्। प्राञ्चौ। प्राञ्चः। पराङ्। पराञ्चौ। पराञ्चः।

*'प्राङ्' की सम्पूर्णसिद्धि **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) के प्रवचन में देख लेवें।*

प्रकृतिस्वरः–

(५३) न्यधी च।५३।

प०वि०–नि-अधी १।२ च अव्ययपदम्।

स०–निश्च अधिश्च तौ–न्यधी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, गतिः, अञ्चतौ, वप्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-व-प्रत्ययेऽञ्चतौ न्यधी गती पूर्वपदे च प्रकृत्या।

अर्थः-व-प्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परतो न्यधी च गती पूर्वपदे प्रकृतिस्वरे भवतः।

उदा०-(**निः**) न्यञ्चतीति-न्यङ्। न्यञ्चौ। न्यञ्चः। (**अधिः**) अध्यञ्चतीति-अध्यङ्। अध्यञ्चौ। अध्यञ्चः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(व-प्रत्यये) व-प्रत्ययान्त (अञ्चतौ) अञ्चति धातु के परे होने पर (न्यधी) नि और अधि (गतिः) गति-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद (च) भी (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-(नि) **न्यङ्**। एक नीचे की दिशा। **न्यञ्चौ**। दो नीचे की दिशायें। **न्यञ्चः**। सब नीचे की दिशायें। (अधि) **अध्यङ्**। एक ऊपर की दिशा (ऊर्ध्वा)। **अध्यञ्चौ**। दो ऊपर की दिशायें। **अध्यञ्चः**। सब ऊपर की दिशायें।*

*__सिद्धि__-**न्यङ्**। यहां नि और अङ् शब्दों का पूर्ववत् गतिसमास है। इस सूत्र से व-प्रत्ययान्त अञ्चति धातु परे होने पर गति-संज्ञक, पूर्वपद 'नि' शब्द प्रकृतिस्वर से रहता है। 'नि' शब्द 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त है। '**उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य**' (८।२।४) से उदात्त यण् और स्वरित यण् से परे अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही-**अध्यङ्**।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः--

(५४) ईषदन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-ईषत् अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम् इति चानुवर्तते, गतिरिति च निवृत्तम्।

अन्वयः-ईषत् पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-ईषदिति पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-ईषत्कडारः। ईषत्कडारः। ईषत्पिङ्गलः। ईषत्पिङ्गलः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ईषत्) ईषत् यह (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-ईषत्कडारः। ईषत्कडारः। थोड़ा भूरा। ईषत्पिङ्गलः। ईषत्पिङ्गलः। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-ईषत्कडारः। यहां ईषत् और कडार शब्दों का 'ईषदकृता' (२।२।७) से तत्पुरुष समास है। 'ईषत्' शब्द 'फिषोऽन्तोदात्तः' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में 'समासस्य' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त होता है-ईषत्कडारः। ऐसे ही-ईषत्पिङ्गलः। ईषत्पिङ्गलः।

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(५५) हिरण्यपरिमाणं धने।५५।

प०वि०-हिरण्यपरिमाणम् १।१ धने ७।१।

स०-हिरण्यं च तत् परिमाणमिति हिरण्यपरिमाणम् (कर्मधारय-तत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धने हिरण्यपरिमाणं पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-धनशब्दे उत्तरपदे हिरण्यपरिमाणवाचि पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-द्वौ सुवर्णौ परिमाणमस्येति द्विसुवर्णम्, द्विसुवर्णं च तद् धनमिति द्विसुवर्णधनम्, द्विसुवर्णधनम्।

आर्यभाषाः अर्थ- *(धने) धन शब्द उत्तरपद होने पर (हिरण्यपरिमाणम्) सुवर्ण-परिवाणवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-द्विसुवर्णधनम्। द्विसुवर्णधनम्। दो सुवर्ण-परिमाणवाला धन। सुवर्ण=एक कर्ष १० गुंजा (रत्ती)। द्विसुवर्ण=२० रत्ती।

सिद्धि-द्विसुवर्णधनम्। यहां द्विसुवर्ण और धन शब्दों का 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'द्विसुवर्ण' शब्द 'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। यहां 'तदस्य परिमाणम्' (५।१।५७) से 'ठञ्' प्रत्यय और 'अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' (५।१।२८) से उसका लुक् होता है। 'द्विसुवर्ण' शब्द 'समासस्य' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त है। यह हिरण्य परिमाणवाची शब्द इस सूत्र से धन शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में 'समासस्य' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है-द्विसुवर्णधनम्।

प्रकृतिस्वरविकल्पः–

(५६) प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ ।५६।

प०वि०–प्रथमः १ ।१ अचिरोपसम्पत्तौ ७ ।१ ।

स०–अचिरा चेयमुपसम्पत्तिरिति अचिरोपसम्पत्तिः, तस्याम्-अचिरोप-सम्पत्तौ (कर्मधारयतत्पुरुषः)। उपसम्पत्तिः=उपश्लेषः सम्बन्ध इति यावत्, अभिनव इत्यर्थः ।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अचिरोपसम्पत्तौ प्रथमः पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या ।

अर्थः–अचिरोपसम्पत्तौ गम्यमानायां प्रथमशब्दः पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति ।

उदा०–प्रथमश्चासौ वैयाकरण इति प्रथमवैयाकरणः, प्रथमवैयाकरणः । सम्प्रति व्याकरणमध्येतुं प्रवृत्तोऽभिनववैयाकरण इत्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थः–(अचिरोपसम्पत्तौ) अचिर उपश्लेष=अभिनव अर्थ की प्रतीति में वर्तमान (प्रथमः) प्रथम शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०–प्रथमवैयाकरणः । प्रथमवैयाकरणः । जिसने अभी व्याकरण अध्ययन प्रारम्भ किया है वह नया वैयाकरण ।

*सिद्धि–प्रथमवैयाकरणः । यहां प्रथम और वैयाकरण शब्दों का **'पूर्वापरप्रथम-चरमजघन्यमध्यमध्यमवीराश्च'** (२ ।१ ।५८) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। प्रथम शब्द में **'प्रथेरमच्'** (उणा० ५ ।३८) से 'अमच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६ ।१ ।१५८) से अन्तोदात्त है। यह पूर्वपद अचिरोपसम्पत्ति अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६ ।१ ।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है–प्रथमवैयाकरणः ।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः–

(५७) कतरकतमौ कर्मधारये ।५७।

प०वि०–कतर-कतमौ १ ।२ कर्मधारये ७ ।१ ।

स०–कतरश्च कतमश्च तौ कतरकतमौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-कर्मधारये कतरकतमौ पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-कर्मधारये समासे कतरकतमौ पूर्वपदे विकल्पेन प्रकृतिस्वरे भवतः।

उदा०-(**कतरः**) कतरश्चासौ कठ इति कतरकठः। कतरकठः। (**कतमः**) कतमश्चासौ कठ इति कतमकठः। कतमकठः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय तत्पुरुष समास में (कतरकतमौ) कतर और कतम शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-(कतर) कतरकठः। कतरकठः। इन दोनों में कौन-सा कठ है? **(कतम)** कतमकठः। कतमकठः। इन सब में कौन-सा कठ है?*

*सिद्धि-(१) कतरकठः। यहां कतर और कठ शब्दों का '**कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने**' (२।१।६२) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। कतर शब्द में '**किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्**' (५।३।९२) से डतरच् प्रत्यय है। प्रत्यय के चित् होने से '**चितः**' (६।१।१५८) से यह अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से कर्मधारय समास के पूर्वपद में प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त होता है-कतरकठः।*

*(२) कतमकठः। यहां कतम और कठ शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'कतम' शब्द में '**वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्**' (५।३।९३) से 'डतमच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(५८) आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः।५८।

प०वि०-आर्यः ५।१ ब्राह्मण-कुमारयोः ७।२।

स०-ब्राह्मणश्च कुमारश्च तौ ब्राह्मणकुमारौ, तयोः-ब्राह्मणकुमारयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्याम्, कर्मधारय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मधारये ब्राह्मणकुमारयोरार्यः पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-कर्मधारये समासे ब्राह्मणकुमारयोरुत्तरपदयोरार्यः शब्दः पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**ब्राह्मणः**) आर्यश्चासौ ब्राह्मण इति आर्यब्राह्मणः। आर्यब्राह्मणः। (**कुमारः**) आर्यश्चासौ कुमार इति आर्यकुमारः। आर्यकुमारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय तत्पुरुष समास में (ब्राह्मणकुमारयोः) ब्राह्मण और कुमार शब्द उत्तरपद होने पर (आर्यः) आर्य शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(ब्राह्मण) **आर्यब्राह्मणः। आर्यब्राह्मणः।** श्रेष्ठ ब्राह्मण। (कुमार) **आर्यकुमारः। आर्यकुमारः।** श्रेष्ठ कुमार। आर्य=ईश्वरपुत्र।*

*__सिद्धि-आर्यब्राह्मणः।__ यहां आर्य और ब्राह्मण शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'आर्य' शब्द में **'ऋ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।१।१२४) से ण्यत् प्रत्यय है। प्रत्यय के तित् होने से यह **'तित् स्वरितम्'** से अन्तस्वरित है। यह इस सूत्र से ब्राह्मण शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है-**आर्यब्राह्मणः।** ऐसे ही-**आर्यकुमारः, आर्यकुमारः।***

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(५६) राजा च।५६।

प०वि०-राजा १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्याम्, कर्मधारये, ब्राह्मणकुमारयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मधारये ब्राह्मणकुमारयो राजा च पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-कर्मधारये समासे ब्राह्मणकुमारयोरुत्तरपदयो राजा च पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(ब्राह्मणः) राजा चासौ ब्राह्मण इति राजब्राह्मणः। राजब्राह्मणः। **(कुमारः)** राजा चासौ कुमार इति राजकुमारः। राजकुमारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मधारये) कर्मधारय तत्पुरुष समास में (ब्राह्मणकुमारयोः) ब्राह्मण और कुमार शब्द उत्तरपद होने पर (राजा) राजा (पूर्वपदम्) पूर्वपद (च) भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(ब्राह्मण) **राजब्राह्मणः। राजब्राह्मणः।** ब्राह्मण राजा। (कुमारः) **राजकुमारः। राजकुमारः।** कुमार राजा।*

*सिद्धि-राजब्राह्मणः। यहां राजन् और ब्राह्मण शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। राजन् शब्द में '**कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः**' (उणा० १।१५६) से कनिन् प्रत्यय। प्रत्यय के नित् होने से यह '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से ब्राह्मण शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त होता है-राजब्राह्मणः। ऐसे ही-राजकुमारः। राजकुमारः।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(६०) षष्ठी प्रत्येनसि।६०।

प०वि०-षष्ठी १।१ प्रत्येनसि ७।१।

स०-प्रतिगतम् एनो यस्य स प्रतेनाः, तस्मिन्-प्रत्येनसि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्याम्, राजा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रत्येनसि षष्ठी राजा पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-प्रत्येनसि शब्दे उत्तरपदे षष्ठ्यन्तं राजा इति पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-राज्ञाः प्रत्येना इति राजप्रत्येनाः। राजप्रत्येनाः। राज्ञोऽङ्गरक्षक इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रत्येनसि) प्रत्येनस् शब्द उत्तरपद होने पर (षष्ठी) षष्ठी-अन्त (राजा) राजन् यह (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

उदा०-राजप्रत्येनाः। राजप्रत्येनाः। राजा का अङ्गरक्षक।

*सिद्धि-राजप्रत्येनाः। यहां राजन् और प्रत्येनस् शब्दों का '**षष्ठी**' (२।१।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। राजन् शब्द पूर्वोक्त आद्युदात्त है। यह प्रत्येनस् शब्द उत्तरपद होने पर इस सूत्र से प्रकृतिस्वर से विकल्प पक्ष में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त होता है-राजप्रत्येनाः।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(६१) क्ते च नित्यार्थे।६१।

प०वि०-क्ते ७।१ च अव्ययपदम्, नित्यार्थे ७।१।

स०-नित्योऽर्थो यस्य स नित्यार्थः, तस्मिन्-नित्यार्थे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नित्यार्थे क्ते च पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः-नित्यार्थे समासे क्तान्ते शब्दे चोत्तरपदे पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-नित्यं प्रहसित इति नित्यप्रहसितः। नित्यप्रहसितः। सततं प्रहसित इति सततप्रहसितः। सततप्रहसितः।

नित्यशब्दोऽयमाभीक्ष्ण्ये कूटस्थे चार्थेऽवर्तते, अत्र चाभीक्ष्ण्येऽर्थे गृह्यते, क्तस्य धातुना सह योगात्, धातोश्च क्रियावचनात्, क्रियायाश्च क्षणिकत्वात् कौटस्थ्यं नोपपद्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नित्ये) नित्य=आभीक्ष्ण्यार्थक समास में (क्ते) क्त-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**नित्यप्रहसितः। नित्यप्रहसितः।** सदा हंसनेवाला। **सततप्रहसितः। सततप्रहसितः।** अर्थ पूर्ववत् है। आभीक्ष्ण्य=पुनः पुनः होना।*

*सिद्धि-**नित्यप्रहसितः।** यहां नित्य और प्रहसित शब्दों का 'कालाः' (२।१।२८) से द्वितीयातत्पुरुष समास है। **'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे'** (२।३।६) से द्वितीया विभक्ति होती है। नित्य शब्द में वा०- **'त्यब्नेर्ध्रुवे'** (४।२।१०३) से 'त्यप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के पित् होने से यह **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त है और **'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्'** (फिट्० ४।१३) से 'नि' शब्द आद्युदात्त है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६५) से त्यप् को स्वरित होकर यह स्वरितान्त होता है। यह इस सूत्र से क्तान्त शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है-नित्यप्रहसितः।*

*(२) **सततप्रहसितः।** यहां सतत और प्रहसित शब्दों का पूर्ववत् द्वितीया तत्पुरुष समास है। सतत शब्द में भाव अर्थ में क्त प्रत्यय है अतः यह **'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'** (६।२।१४३) से अन्तोदात्त है। यह इस सूत्र से क्तान्त शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है-सततप्रहसितः।*

प्रकृतिस्वरविकल्पः-

(६२) ग्रामः शिल्पिनि।६२।

प०वि०-ग्रामः १।१ शिल्पिनि ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वय:-शिल्पिनि ग्राम: पूर्वपदमन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थ:-शिल्पिवाचिनि शब्दे उत्तरपदे ग्रामशब्द: पूर्वपदं विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-ग्रामस्य नापित इति ग्रामनापित:। ग्रामनापित:। ग्रामस्य कुलाल इति ग्रामकुलाल:। ग्रामकुलाल:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(शिल्पिनि) शिल्पीवाची शब्द उत्तरपद होने पर (ग्राम:) ग्राम शब्द (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**ग्रामनापित:। ग्रामनापित:।** ग्राम का नाई। **ग्रामकुलाल: ग्रामकुलाल:।** ग्राम का कुम्हार।*

*सिद्धि-**ग्रामनापित:।** यहां ग्राम और नापित शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) षष्ठीतत्पुरुष समास है। ग्राम शब्द में **'प्रसेराच'** (उणा० १।४३) से मन् प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से यह **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से शिल्पीवाची नापित शब्द उत्तरपद होने पर प्रकृति से रहता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**ग्रामनापित:।** ऐसे ही-**ग्रामकुलाल:। ग्रामकुलाल:।***

प्रकृतिस्वरविकल्प:-

(६३) राजा च प्रशंसायाम्।६३।

प०वि०-राजा १।१ च अव्ययपदम्, प्रशंसायाम् ७।१।

अनु०-प्रकृत्या, पूर्वपदम्, अन्यतरस्याम्, शिल्पिनि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-शिल्पिनि राजा पूर्वपदं चान्यतरस्यां प्रकृत्या, प्रशंसायाम्।

अर्थ:-शिल्पिवाचिनि शब्दे उत्तरपदे राजा इति शब्द: पूर्वपदं च विकल्पेन प्रकृतिस्वरं भवति, प्रशंसायां गम्यमानायाम्।

उदा०-राज्ञो नापित इति राजनापित:। राजनापित:। राज्ञ: कुलाल इति राजकुलाल:। राजकुलाल:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(शिल्पिनि) शिल्पीवाची शब्द उत्तरपद होने पर (राजा) राजन् शब्द (पूर्वपदम्) पूर्वपद (च) भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है (प्रशंसायाम्) यदि वहां प्रशंसा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**राजनापित:। राजनापित:।** राजकुल का प्रशंसनीय नाई। **राजकुलाल:। राजकुलाल:।** राजकुल का प्रशंसनीय कुम्हार।*

*सिद्धि-राजनापितः। यहां राजन् और नापित शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'राजन्' शब्द में '**कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः**' (उणा० १।५६) से कनिन् प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से यह '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। यह इस सूत्र से शिल्पीवाची शब्द उत्तरपद होने पर तथा प्रशंसा अर्थ अभिधेय में प्रकृतिस्वर से रहता है। विकल्प पक्ष में '**समासस्य**' (६।१।२१७) से अन्तोदात्त स्वर होता है-राजनापितः। ऐसे ही-राजकुलालः। राजकुलालः।*

।। इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम् ।।

पूर्वपदाद्युदात्तप्रकरणम्

आद्युदात्ताधिकारः-

(१) आदिरुदात्तः।६४।

प०वि०-आदिः १।१ उदात्तः १।१।

अनु०-पूर्वपदमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-इतोऽग्रे यद् वक्ष्यति तत्र पूर्वपदमाद्युदात्तं भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- '**सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे**' (६।२।६५) इति। स्तूपेशाणः। मुकुटेकार्षपणम्। याज्ञिकाश्वः। दृषदिमाषकः।

आदिरिति प्राक् '**अन्तः**' (६।२।९२) इत्यधिकारात्। उदात्त इति च प्राक् '**प्रकृत्या भगालम्**' (६।२।१३७) इति यावद् वेदितव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वहां (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- '**सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे**' (६।२।६५) **स्तूपेशाणः। मुकुटेकार्षपणम्। याज्ञिकाश्वः।** दृषदिमाषकः।*

इन उदाहरणों का भाषार्थ और सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

*'आदि' का अधिकार 'अन्तः' (६।२।९२) के अधिकार से पहले-पहले है और 'उदात्त' का अधिकार '**प्रकृत्या भगालम्**' (६।२।१३७) से पहले-पहले जानें।*

आद्युदात्तम्-

(२) सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे।६५।

प०वि०-सप्तमी-हारिणौ १।१ धर्म्ये ७।१ अहरणे ७।१।

स०-सप्तमी च हारी च तौ-सप्तमीहारिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न हरणमिति अहरणम्, तस्मिन्-अहरणे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहरणे धर्म्ये सप्तमीहारिणौ पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-हरणवर्जिते धर्म्यवाचिनि शब्दे उत्तरपदे सप्तम्यन्तं हारिवाचि च पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-(सप्तमी) स्तूपेशाणः। मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। हलेत्रिपदिका। दृषदिमाषकः। **(हारी)** याज्ञिकस्याश्व इति याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणस्य हस्तीति वैयाकरणहस्ती। मातुलस्याश्व इति मातुलाश्वः। पितृव्यस्य गौरिति पितृव्यगवः।

यो देयं स्वीकरोति स 'हारी' इत्युच्यते। आचारनियतं यद् देयं तद् धर्म्यमिति कथ्यते। 'धर्म्यम्' इत्यत्र **'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते'** (४।४।९२) इत्यनेनानपेतेऽर्थे यत् प्रत्ययः। 'बीजनिषेकादुत्तरकालं शरीरपुष्ट्यर्थं यद् दीयते हरणमिति तदुच्यते' इति काशिकायाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अहरणे) हरण शब्द से भिन्न (धर्म्ये) आचारनियत देयवाची शब्द उत्तरपद होने पर (सप्तमीहारिणौ) सप्तमी-अन्त और हारीवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(सप्तमी) **स्तूपेशाणः।** स्तूप (स्मृति-चिह्न) निर्माण के समय देय शाण नामक सिक्का। शाण=साढ़े बारह रत्ती का चांदी का सिक्का। **मुकुटेकार्षापणम्।** मुकुट धारण=राज्यारोहण के समय देय कार्षापण नामक सिक्का। कार्षापण=८० रत्ती सोने का, ३२ रत्ती चांदी का और ८० रत्ती ताम्बे का सिक्का। **हलेद्विपदिका।** हल जोतने योग्य भूमि पर देय पाद नामक दो सिक्के। पाद=८ रत्ती चांदी का सिक्का (कार्षापण की रेजगारी)। **हलेत्रिपदिका।** हल जोतने योग्य भूमि पर देय पाद नामक तीन सिक्के। **दृषदिमाषकः।** दृषद्=महल आदि का पत्थर (आधारशिला) रखने पर देय माष नामक सिक्का। माष=२ रत्ती चांदी का सिक्का। (हारी) **याज्ञिकाश्वः।** यज्ञ करानेवाले ऋत्विक् (विद्वान्) को दक्षिणा में देने योग्य घोड़ा। **वैयाकरणहस्ती।** व्याकरणशास्त्र के आचार्य को उपहार में देय हाथी। **मातुलाश्वः।** मामा जी के सम्मान में देय घोड़ा। **पितृव्यगवः।** पितृव्य=चाचा जी के सम्मान में देय गौ।*

जो देय द्रव्य को स्वीकार करता है वह 'हारी' कहाता है। कुलपरम्परा वा देशपरम्परा के आचार के अनुसार देय वस्तु धर्म्य कहाती है। वीर्य-निषेक के पश्चात् शरीर की पुष्टि के लिये जो खाद्यवस्तु दे जाती है उसे 'हरण' कहते हैं (काशिका)।

*सिद्धि-(१) **स्तूपेशाण:** । यहां सप्तम्यन्त स्तूप और धर्म्यवाची शाण शब्दों का **'संज्ञायाम्'** (२।१।४४) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। यह नित्यसमास है क्योंकि विग्रहवाक्य से संज्ञा की प्रतीति नहीं होती है। **'कारनाम्नि च प्राचां हलादौ'** (६।३।१०) से सप्तमीविभक्ति का अलुक् होता है। इस सूत्र से धर्म्यवाची 'शाण' शब्द उत्तरपद होने पर सप्तम्यन्त 'स्तूपे' पूर्वपद आद्युदात्त होता है। यह **'समासस्य'** (६।१।१२७) से प्राप्त अन्तोदात्त स्वर का अपवाद है। ऐसे ही-**मुकुटेकार्षापणम्, हलेद्विपदिका, हलेत्रिपदिका, दृषदिमाषक:** ।*

*(२) **याज्ञिकाश्व:** । यहां हारीवाची याज्ञिक और धर्म्यवाची अश्व शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से धर्म्यवाची अश्व शब्द उत्तरपद होने पर हारीवाची याज्ञिक पूर्वपद आद्युदात्त होता है। ऐसे ही-**वैयाकरणहस्ती, मातुलाश्व:, पितृव्यगव:** ।*

आद्युदात्तम्-

(३) युक्ते च।६६।

प०वि०-युक्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पूर्वपदम्, आदि:, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वय:-युक्ते च पूर्वपदमादिरुदात्त:।

अर्थ:-युक्तवाचिनि च समासे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-गवां बल्लव इति गोबल्लव:। अश्वानां बल्लव इति अश्वबल्लव:। गवां मणिन्द इति गोमणिन्द:। अश्वानां मणिन्द इति अश्वमणिन्द:। गवां संख्य इति गोसंख्य:। अश्वानां संख्य इति अश्वसंख्य:।

युक्त:=समाहित:। य: स्वकर्त्तव्ये तत्पर: स युक्त इत्यभिधीयते।

आर्यभाषाः अर्थ-(युक्ते) युक्तवाची समास में (च) भी (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्त:) आद्युदात्त होता है।

*उदा०-**गोबल्लव:** । गौओं का पालक अर्थात् उनके पालन में युक्त=तत्पर। **अश्वबल्लव:** । घोड़ों का पालक। **गोमणिन्द:** । गौओं पर पहचान के लिये मणि नामक लक्षण (चिह्न) लगानेवाला। **अश्वमणिन्द:** । घोड़ों पर पहचान के लिये मणि नामक लक्षण लगानेवाला। **गोसंख्य:** । गौओं की भलीभांति देखभाल करनेवाला। **अश्वसंख्य:** । घोड़ों की भलीभांति देखभाल करनेवाला।*

'युक्त' शब्द समाहित अर्थात् अपने कर्त्तव्य में तत्पर अर्थ का वाचक है।

*सिद्धि-(१) **गोबल्लव:** । यहां गो और बल्लव शब्द का **'षष्ठी'** (२।२।८) से युक्तवाची षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इसके 'गो' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता*

है। 'बल्ल' शब्द अधिकारवाची है, इससे वा०- 'व-प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते' (५।२।१०९) से 'अस्यास्ति' अर्थ में 'व' प्रत्यय है। ऐसे ही-अश्वबल्लवः।

(२) गोमणिन्दः। यहां गो और मणिन्द शब्दों का पूर्ववत् युक्तवाची षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इसके गो पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। 'मणिन्दः' शब्द में 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६।३।१३) से द्वितीया विभक्ति का अलुक् होता है। 'कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नछिन्न-छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य' (६।३।११५) के प्रमाण से 'मणि' शब्द लक्षणविशेषवाची है। ऐसे ही-अश्वमणिन्दः।

(३) गोसंख्यः। यहां गो और संख्य शब्दों का पूर्ववत् युक्तवाची तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इसके पूर्वपद 'गो' शब्द को आद्युदात्त स्वर होता है। 'संख्य' शब्द में 'समि ख्यः' (३।२।७) से 'क' प्रत्यय है। 'चक्षिङः ख्याञ्' (२।४।५४) से 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि' (अदा०आ०) धातु को ख्याञ् आदेश होता है। ऐसे ही-अश्वसंख्यः।

आद्युदात्तम्-

(४) विभाषाऽध्यक्षे।६७।

प०वि०-विभाषा १।१ अध्यक्षे ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अध्यक्षे पूर्वपदं विभाषा आदिरुदात्तः।

अर्थः-अध्यक्षशब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं विकल्पेनाद्युदात्तं भवति।

उदा०-गवामध्यक्ष इति गवाध्यक्षः। गवाध्यक्षः। अश्वानामध्यक्ष इति अश्वाध्यक्षः। अश्वाध्यक्षः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अध्यक्ष) अध्यक्ष शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (विभाषा) विकल्प से (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।

उदा०-गवाध्यक्षः। गवाध्यक्षः। गौओं का उच्चतम प्रशासन-अधिकारी। अश्वाध्यक्षः। अश्वाध्यक्षः। घोड़ों का उच्चतम प्रशासन-अधिकारी।

सिद्धि-गवाध्यक्षः। यहां गो और अध्यक्ष शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास में। इस सूत्र से अध्यक्ष शब्द उत्तरपद होने पर 'गो' पूर्वपद आद्युदात्त होता है। विकल्प पक्ष में 'समासस्य' (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है-गवाध्यक्षः। ऐसे ही-अश्वाध्यक्षः। अश्वाध्यक्षः।

गो+अध्यक्षः=गवाध्यक्षः। 'अवङ् स्फोटायनस्य' (६।१।१२३) से 'गो' शब्द को अवङ् आदेश होता है।

आद्युदात्तम्–

(५) पापं च शिल्पिनि।६८।

प०वि०–पापम् १।१ च अव्ययपदम्, शिल्पिनि ७।१।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–शिल्पिनि पापं पूर्वपदं विभाषाऽऽदिरुदात्तः।

अर्थः–शिल्पिवाचिनि शब्दे उत्तरपदे पापमिति पूर्वपदं विकल्पेनाऽऽद्युदात्तं भवति।

उदा०–पापश्चासौ नापित इति पापनापितः। पापनापितः। कुत्सितनापित इत्यर्थः। पापश्चासौ कुलाल इति पापकुलालः। पापकुलालः। कुत्सितकुम्भकार इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(शिल्पिनि) शिल्पीवाची शब्द उत्तरपद होने पर (पापम्) पाप यह (पूर्वपदम्) पूर्वपद (विभाषा) विकल्प से (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०–पापनापितः। पापनापितः। कुत्सित=निन्दित नाई जो ठीक प्रकार से क्षौरकर्म नहीं करता है। पापकुलालः। पापकुलालः। कुत्सित कुम्भकार जो उत्तम रीति से कुम्भ नहीं बनाता है।

सिद्धि–पापनापितः। *यहां पाप और नापित शब्दों का **'पापाणके कुत्सितैः'** (२।१।५३) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से शिल्पीवाची नापित शब्द उत्तरपद होने पर 'पाप' पूर्वपद आद्युदात्त होता है। विकल्प पक्ष में **'समासस्य'** (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है–**पापनापितः**। ऐसे ही–पापकुलालः। पापकुलालः।*

आद्युदात्तम्–

(६) गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे।६९।

प०वि०–गोत्र-अन्तेवासि-माणव-ब्राह्मणेषु ७।३ क्षेपे ७।१।

स०–गोत्रं च अन्तेवासी च माणवश्च ब्राह्मणश्च ते गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणाः, तेषु–गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्षेपे गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः–क्षेपवाचिनि समासे गोत्रवाचिनि अन्तेवासिवाचिशब्दे चोत्तरपदे माणवब्राह्मणयोश्चोत्तरपदयोः पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-(**गोत्रम्**) जङ्घा वात्स्य इति जङ्घावात्स्य:। भार्या प्रधानं सौश्रुत इति भार्यासौश्रुत:। वशाप्रधानं ब्राह्मकृतेय इति वशाब्राह्मकृतेय:। (**अन्तेवासी**) कुमारीलाभकामा दाक्षा इति कुमारीदाक्षा:। कम्बललाभकामा श्चारायणीया इति कम्बलचारायणीया:। घृतलाभाकामा रौढीया इति घृतरौढीया:। ओदनलाभकामा: पाणिनीया इति ओदनपाणिनीया:। (**माणव:**) भिक्षालाभकामो माणव इति भिक्षामाणव:। (**ब्राह्मण:**) दास्या: कामयिता ब्राह्मण इति दासीब्राह्मण:। वृषल्या: कामयिता ब्राह्मण इति वृषलीब्राह्मण:। भयेन ब्राह्मण इति भयब्राह्मण:। "यो ब्राह्मण एव सन् राजदण्डादिभयेन ब्राह्मणाचारं करोति, न श्रद्धया स एवं क्षिप्यते" (पदमञ्जरी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षेपे) निन्दावाची समास में (गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु) गोत्रवासी और अन्तेवासीवाची शब्द उत्तरपद होने पर तथा माणव और ब्राह्मण शब्दों के उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्त:) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(**गोत्र**) **जङ्घावात्स्य:**। श्राद्ध आदि कर्मों में वात्स्यगोत्रीय ब्राह्मणों का ही चरण-प्रक्षालन की कामना से 'वात्स्योऽहम्' कहता है वह 'जङ्घावात्स्य:' कहाता है। **भार्यासौश्रुत:**। सौश्रुत=सुश्रुत का पुत्र भार्याप्रधान है अर्थात् उसके घर में उसकी भार्या की चलती है, सौश्रुत की नहीं। **वशाब्राह्मकृतेय:**। ब्राह्मकृतेय=ब्रह्मकृत का पुत्र वशाप्रधान है, अर्थात् उसकी पत्नी वशा (वन्ध्या) है और घर में उसी की चलती है। (**अन्तेवासी**) **कुमारीदाक्षा:**। कुमारी की प्राप्ति (विवाह) के लिये जो दाक्षि आचार्य के अन्तेवासी (शिष्य) बने हुये हैं। दाक्षि (व्याडि) कृत संग्रह नामक ग्रन्थ को पढ़नेवाले। **कम्बलचारायणीया:**। कम्बल की प्राप्ति के लिये जो चारायण आचार्य के शिष्य बने हुये हैं। **घृतरौढीया:**। घृत प्राप्ति के लिये जो रौढि आचार्य के शिष्य बने हुये हैं। **ओदनपाणिनीया:**। जो ओदन (भात) प्राप्ति के लिये पाणिनि मुनि के शिष्य बने हुये हैं। (**माणव**) **भिक्षामाणव:**। भिक्षाप्राप्ति के लिये जो माणव (ब्रह्मचारी) बना हुआ है। (**ब्राह्मण**) **दासीब्राह्मण:**। दासी का कामुक ब्राह्मण। **वृषलीब्राह्मण:**। वृषली का कामुक ब्राह्मण। **भयब्राह्मण:**। जो ब्राह्मण होता हुआ भी राजदण्ड आदि के भय से ब्राह्मण-धर्म का आचरण करता है, श्रद्धापूर्वक नहीं। इन '**जङ्घावात्स्य:**' आदि समस्त उदाहरणों में क्षेप (निन्दा) अर्थ स्पष्ट है।*

*सिद्धि-(१) **जङ्घावात्स्य:**। यहां जङ्घा और गोत्रवाची वात्स्य शब्दों का '**सुप् सुपा**' (२।१।४) से क्षेपवाची केवलसमास है। इस सूत्र से जङ्घा पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। 'वात्स्य' शब्द में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है।*

*(२) **भार्यासौश्रुत:**। यहां भार्याप्रधान और गोत्रवाची सौश्रुत शब्दों का वा०-'**शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च**' (२।१।५९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास*

है और 'प्रधान' उत्तरपद का लोप होता है। 'सौश्रुतः' में सुश्रुत् शब्द से ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है।*

(३) ***वशाब्राह्मकृतेयः।*** *यहां वशाप्रधान और गोत्रवाची ब्राह्मकृतेय शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास और उत्तरपद का लोप है। 'ब्राह्मकृतेय' में ब्रह्मकृत शब्द के शुभ्रादिगण में पठित होने से* ***'शुभ्रादिभ्यश्च'*** *(४।१।१२३) से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय है।*

(४) ***कुमारीदाक्षाः।*** *यहां कुमारीलाभकाम और अन्तेवासीवाची दाक्ष शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष और 'लाभकाम' उत्तरपद का लोप है। 'दाक्ष' शब्द में* **दाक्षिणा प्रोक्तम्-दाक्षम्, दाक्षमधीयते इति दाक्षाः।** *दाक्षि (व्याडि) आचार्य के द्वारा प्रोक्त संग्रह नामक ग्रन्थ 'दाक्ष' कहाता है।* ***'इञश्च'*** *(४।२।११२) से अण् प्रत्यय होता है और दाक्ष (संग्रह) ग्रन्थ के अध्येता भी 'दाक्ष' कहाते हैं।* ***'प्रोक्ताल्लुक्'*** *(४।२।६३) से अधीते-वेद अर्थों में विहित 'अण्' का लुक् हो जाता है।*

(५) ***कम्बलचारायणीयाः।*** *कम्बलाभकाम और अन्तेवासीवाची चारायणीय शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास और उत्तरपद का लोप है। इस सूत्र से अन्तेवासीवाची चारायणीय शब्द उत्तरपद होने पर कम्बल पूर्वपद को आद्युदात्त होता है। 'चारायणीय' शब्द में प्रथम 'चर' शब्द से* ***'नडादिभ्यः फक्'*** *(४।१।९९) से अपत्य अर्थ में 'फक्' होकर 'चारायण' और* ***'तेन प्रोक्तम्'*** *(४।३।१०१) से चारायण के द्वारा प्रोक्त अर्थ में* ***'वृद्धाच्छः'*** *(४।२।११३) से 'छ' प्रत्यय होकर 'चारायणीय' (ग्रन्थ) और उसके अध्येता अर्थ में पूर्ववत्* ***'प्रोक्ताल्लुक्'*** *(४।२।६२) से विहित 'अण्' प्रत्यय का लुक् होता है-* ***चारायणीयाः।*** *ऐसे ही-* ***घृतरौढीयाः। औदनपाणिनीयाः। भिक्षामाणवः।***

(६) ***दासीब्राह्मणः।*** *यहां दासी और ब्राह्मण शब्दों का* ***'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'*** *(२।१।३१) में बहुलवचन से अकृदन्त ब्राह्मण शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ब्राह्मण शब्द उत्तरपद होने पर दासी पूर्वपद आद्युदात्त होता है। ऐसे ही-* ***वृषलीब्राह्मणः। भयब्राह्मणः।***

आद्युदात्तम्—

(७) अङ्गानि मैरेये।७०।

प०वि०-अङ्गानि १।३ मैरेये ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मैरेयेऽङ्गानि पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-मैरेयशब्दे उत्तरपदे तस्याङ्गवाचीनि पूर्वपदान्याद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-गुडस्य मैरेय इति गुडमैरेयः। मधुनो मैरेय इति मधुमैरेयः।

'अङ्गानि' इत्यत्र बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम्। सुराव्यतिरिक्तं मद्यम्-मैरेयम् (पदमञ्जरी)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मैरेये) मैरेय शब्द उत्तरपद होने पर (अङ्गानि) उसके अङ्ग=अवयववाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-गुडमैरेयः। गुड की बनी हुई मैरेय (मद्य)। ***मधुमैरेयः।*** *मधु=शहद की बनी हुई मैरेय।*

*सिद्धि-**गुडमैरेयः।** यहां गुड और मैरेय शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से मैरेय का अङ्गवाची पूर्वपद गुड को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**मधुमैरेयः।***

विशेषः *कौटिल्य ने मैरेय का नुस्खा इस प्रकार दिया है-**मेषशृङ्गीत्वक्क्वाथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसम्भारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः** (२।२५) अर्थात् मेषशृङ्गी की छाल का काढ़ा बनाकर उसमें गुड़ डालकर उसे उठाओ। फिर पीपल, कालीमिर्च या त्रिफला का चूर्ण मिलाओ यही मैरेय है। इस योग में काकड़ासींगी, मिर्च और त्रिफला-यह ओषधिवर्ग एक ओर और गुड़ दूसरी ओर है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १३०)।*

आद्युदात्तम्-

(८) भक्ताख्यास्तदर्थेषु।७१।

प०वि०-भक्ताख्याः १।३ तदर्थेषु ७।३।

स०-भक्तम्=अन्नम्। भक्तस्याख्या इति भक्ताख्याः (षष्ठीतत्पुरुषः)। तेभ्य इमानि तदर्थानि, तेषु-तदर्थेषु (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तदर्थेषु भक्ताख्याः पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-तदर्थेषु उत्तरपदेषु भक्ताख्यानि पूर्वपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-भिक्षायै कंस इति भिक्षाकंसः। श्राणाकंसः। भाजीकंसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तदर्थेषु) उन अन्न-विशेषों के लिये पात्रवाची शब्दों के उत्तरपद होने पर (भक्ताख्याः) अन्नविशेषवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-**भिक्षाकंसः।** भिक्षा के लिये कंस=कांसी का बेला। **श्राणाकंसः।** श्राणा=यवागू (लापसी) के लिये कंस (बेला)। **भाजीकंसः।** भाजी=यवागू के लिये कंस (बेला)। श्राणा और भाजी शब्द पर्यायवाची हैं।*

*सिद्धि-भिक्षाकंसः। यहां भक्तविशेषवाची भिक्षा और तदर्थवाची कंस शब्दों का **'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'** (१।३५) से चतुर्थीतत्पुरुष समास है। जो यहां 'तदर्थ' से प्रकृति-विकारभाव का ग्रहण मानते हैं उनके मत में यहां **'षष्ठी'** (२।१।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तदर्थवाची कंस शब्द उत्तरपद होने पर भक्तविशेषवाची भिक्षा पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है।*

आद्युदात्तम्–

(६) गोविडालसिंहसैन्धवेषूपमाने।७२।

प०वि०–गो-विडाल-सिंह-सैन्धवेषु ७।३ उपमाने ७।१।

स०–गौश्च विडालश्च सिंहश्च सैन्धवश्च ते गोविडालसिंहसैन्धवाः, तेषु–गोविडालसिंहसैन्धवेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपमानेषु गोविडालसिंहसैन्धवेषु पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः–उपमानवाचिषु गोविडालसिंहसैन्धवेषु शब्देषु उत्तरपदेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०–**(गौः)** धान्यं गौरिव इति धान्यगवः। **(हिरण्यम्)** हिरण्यं गौरिव इति हिरण्यगवः। **(विडालः)** भिक्षा विडाल इव इति भिक्षाविडालः। **(सिंहः)** तृणं सिंह इव इति तृणसिंहः। काष्ठं सिंह इव काष्ठसिंह। **(सैन्धवः)** सक्तुः सैन्धव इव इति सक्तुसैन्धवः। पानं सैन्धव इव इति पानसैन्धवः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(उपमाने) उपमानवाची (गोविडालसिंहसैन्धवेषु) गो, विडाल, सिंह, सैन्धव शब्दों के उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–(गौ) **धान्यगवः।** गौ के आकार में सन्निवेशित (लगाया हुआ) धान्य। (हिरण्य) **हिरण्यगवः।** गौ के वर्ण का पीला सुवर्ण। (विडाल) **भिक्षाविडालः।** विडाल के समान दुर्लभ भिक्षा। (सिंह) **तृणसिंहः।** सिंह के आकार में सन्निवेशित तृण (घास)। **काष्ठसिंहः।** सिंह के आकार में सन्निवेशित काष्ठ (लकड़ी)। (सैन्धव) **सक्तुसैन्धवः।** सैन्धव (नमक) के समान सफेद सक्तु (सत्तू)। **पानसैन्धवः।** नमक के समान सफेद पान (पेयपदार्थ)।*

*सिद्धि-**धान्यगवः।** यहां उपमितवाची धान्य और उपमानवाची गौ शब्दों का **'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे'** (२।१।५५) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। **'गोरतद्धितलुकि'** (५।४।९२) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उपमानवाची 'गौ' शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद 'धान्य' को आद्युदात्तस्वर होता है। ऐसे ही–**हिरण्यगवः** आदि।*

आद्युदात्तम्–

(१०) अके जीविकार्थे।७३।

प०वि०–अके ७।१ जीविकार्थे ७।१।

स०–जीविकाया अर्थ इति जीविकार्थः, तस्मिन्–जीविकार्थे (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जीविकार्थेऽके पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः–जीविकार्थवाचिनि समासेऽकप्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वमादिरुदात्तं भवति।

उदा०–दन्तलेखकः। नखलेखकः। अवस्करशोधकः। रमणीयकारकः।

अत्र जीविकाशब्देन तद्वान्=जीविकावानित्यर्थो गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जीविकार्थे) जीविकार्थवाची समास में (अके) अक-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**दन्तलेखकः।** दांतों पर लिखनेवाला। **नखलेखकः।** नाखुनों पर पॉलिश करनेवाला। **अवस्करशोधकः।** कूड़ा साफ करनेवाला (सफाई कर्मचारी)। **रमणीयकारकः।** सुन्दर बनानेवाला (मेक-अप करनेवाला)।*

*सिद्धि-**दन्तलेखकः।** यहां 'दन्त' और जीविकार्थवाची, अक-प्रत्ययान्त 'लेखक' शब्दों का '**नित्यं क्रीडाजीविकयोः**' (२।२।१७) से नित्य षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'लेखक' शब्द में '**लिख अक्षरविन्यासे**' (तु०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से ण्वुल् प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। इस सूत्र से जीविकार्थवाची अक-प्रत्ययान्त 'लेखक' शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद 'दन्त' शब्द को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**नखलेखकः, अवस्करशोधकः, रमणीयकारकः।** यहां नित्य समास में विग्रहवाक्य नहीं होता है।*

आद्युदात्तम्–

(११) प्राचां क्रीडायाम्।७४।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ क्रीडायाम् ७।१।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त, अके इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्राचां क्रीडायाम् अके पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-प्राचाम्=प्राग्देशवासिनां क्रीडावाचिनि समासेऽकप्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-उद्दा॑लकपुष्पभञ्जिका। वी॑रणपुष्पप्रचायिका। शा॑लभञ्जिका। ता॑लभञ्जिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्राचाम्) पूर्वदेशवासी जनों के क्रीडावाची समास में (अके) अक-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**उद्दा॑लकपुष्पभञ्जिका।** राजा उद्दालक के वन में रानियों द्वारा फूल तोड़ने की क्रीडा। **वी॑रणपुष्पप्रचायिका।** रानियों द्वारा वीरण (खस) वृक्ष के फूलों को चुनने की क्रीडा। **शा॑लभञ्जिका।** रानियों द्वारा शाल वृक्ष के शाखाओं को झुकाने की क्रीडा। **ता॑लभञ्जिका।** रानियों द्वारा ताल वृक्ष की शाखाओं को झुकाने की क्रीडा।*

*सिद्धि-**उद्दा॑लकपुष्पभञ्जिका।** यहां उद्दालकपुष्प और अक-प्रत्ययान्त भञ्जिका शब्दों का **'नित्यं क्रीडाजीविकयोः'** (२।२।१७) से नित्य षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'भञ्जिका' शब्द में **'भञ्जो आमर्दने'** (रुधा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से ण्वुल् प्रत्यय है और **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप्-प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। इस सूत्र से प्राग्देशवासी जनों के क्रीडावाची समास में अक-प्रत्ययान्त 'भञ्जिका' शब्द उत्तरपद होने पर 'उद्दालकपुष्प' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**वी॑रणपुष्पप्रचायिका** आदि।*

*'**उद्दालकपुष्पभञ्जिका**' आदि क्रीडायें प्राचीदेशवासी जनों की क्रीडायें हैं उदीची देशवासी जनों की नहीं। उनकी '**जीवपुत्रप्रचायिका**' आदि क्रीडायें हैं।*

आद्युदात्तम्-

(१२) अणि नियुक्ते।७५।

प०वि०-अणि ७।१ नियुक्ते ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नियुक्तेऽणि पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-नियुक्तवाचिनि समासेऽण्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-छत्रं धरतीति छ॑त्रधारः। तू॑णीरधारः। भृ॑ङ्गारधारः। कमण्डलुं गृह्णातीति क॑मण्डलुग्राहः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नियुक्ते) नियुक्त=अधिकृतवाची समास में (अणि) अण्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-छत्रधारः। छत्र-धारण में नियुक्त। तूणीरधारः। तूणीर=बाणकोष (इषुधि) धारण में नियुक्त। भृङ्गारधारः। राज्याभिषेक के समय सुवर्ण-घट के धारण में नियुक्त। कमण्डलुग्राहः। कमण्डलु=जलपात्रविशेष के ग्रहण करने में नियुक्त।

सिद्धि-छत्रधारः। *यहां छत्र कर्म उपपद होने पर 'धृञ् धारणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। यह उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से नियुक्तवाची समास में अण्-प्रत्ययान्त 'धार' शब्द उत्तरपद होने पर 'छत्र' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-तूणीरधारः, भृङ्गारधारः, कमण्डलुग्राहः।*

आद्युदात्तम्-

(१३) शिल्पिनि चाकृञः।७६।

प०वि०-शिल्पिनि ७।१ च अव्ययपदम्, अकृञः ५।१।

स०-न कृञ् इति अकृञ्, तस्मात्-अकृञः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त, अणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शिल्पिनि चाणि पूर्वपदमादिरुदात्तः, अकृञः।

अर्थः-शिल्पिवाचिनि समासे चाण्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति, स चेद् अण् कृञः परो न भवति।

उदा०-तन्तून् वयतीति तन्तुवायः। तुन्नानि वयतीति तुन्नवायः। बालान् वयतीति बालवायः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शिल्पिनि) शिल्पीवाची समास में (च) भी (अणि) अण्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है (अकृञः) यदि वह अण्-प्रत्यय कृञ् धातु से उत्तर न हो।*

उदा०-तन्तुवायः। जुलाहा नामक शिल्पी। तुन्नवायः। दर्जी नामक शिल्पी। बालवायः। ऊनी वस्त्र बुननेवाला शिल्पी।

सिद्धि-तन्तुवायः। *यहां तन्तु कर्म उपपद होने पर 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातु को आत्त्व और 'आतो युक् चिण्कृतोः' (७।३।३३) से धातु को युक् आगम होता है। इस सूत्र से शिल्पीवाची समास में अण्-प्रत्ययान्त 'वाय' शब्द उत्तरपद होने पर 'तन्तु' पूर्वपद आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-तुन्नवायः, बालवायः।*

आद्युदात्तम्–

(१४) संज्ञायां च।७७।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः, अणि, अकृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संज्ञायां चाणि पूर्वपदमादिरुदात्तः, अकृञः।

अर्थः–संज्ञायां च विषयेऽण्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति, स चेद् अण् कृञः परो न भवति।

उदा०–तन्तुवायो नाम कीटः। बालवायो नाम पर्वतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (च) भी (अण्) अण्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है, (अकृञः) यदि वह अण्-प्रत्यय कृञ् धातु से उत्तर न हो।*

*उदा०-**तन्तुवायो नाम कीटः।** रेशम का कीड़ा। **बालवायो नाम पर्वतः।** बालवाय नामक पहाड़। वैदूर्यमणि का उत्पत्तिस्थान। सातपुड़ा पर्वत (पारजीटर-मार्कण्डेयपुराण की व्याख्या)।*

*सिद्धि-तन्तुवाय और **बालवाय** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है (६।२।७६)।*

आद्युदात्तम्–

(१५) गोतन्तियवं पाले।७८।

प०वि०–गो-तन्ति-यवम् १।१ पाले ७।१।

स०–गौश्च तन्तिश्च यवश्च एतेषां समाहारः-गोतन्तियवम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पाले गोतन्तियवं पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः–पालशब्दे उत्तरपदे गोतन्तियवानि पूर्वपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०–**(गौः)** गाः पालयतीति गोपालः। **(तन्तिः)** तन्तिं पालयतीति तन्तिपालः। **(यवः)** यवान् पालयतीति यवपालः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पाले) पाल शब्द उत्तरपद होने पर (गोतन्तियवम्) गौ, तन्ति, यव (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-(गौ) **गोपालः**। गौओं का पाळी। (तन्ति) **तन्तिपालः**। गौओं के झुण्ड का पाळी। राजा विराट् के यहां रहते समय सहदेव ने अपना बनावटी नाम 'तन्तिपाल' रखा था। (यव) **यवपालः**। जौ के खेत का रखवाला।*

सिद्धि-गोपालः। *यहां गो उपपद 'पाल रक्षणे' (चु०प०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पाल शब्द उत्तरपद होने पर 'गो' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**तन्तिपालः, यवपालः**।*

आद्युदात्तम्-

(१६) णिनि।७६।

प०वि०-णिनि ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-णिनिः पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-णिन्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-फलानि हरतीति फलेहारी। पर्णहारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(णिनि) णिन्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**फलेहारी**। फलाहार का व्रती। **पर्णहारी**। पर्णाहार का व्रती।*

सिद्धि-फलेहारी। *यहां फल उपपद होने पर 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'व्रते' (३।२।८०) से 'णिनि' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'हृ' धातु को वृद्धि होती है। इस सूत्र से णिन्-प्रत्ययान्त 'हारी' शब्द उत्तरपद होने पर 'फल' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**पर्णहारी**।*

आद्युदात्तम्-

(१७) उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव।८०।

प०वि०-उपमानम् १।१ शब्दार्थ-प्रकृतौ ७।१ एव अव्ययपदम्।

स०-शब्दार्थः प्रकृतिर्यस्मिन् स शब्दार्थप्रकृतिः, तस्मिन्-शब्दार्थप्रकृतौ (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः, णिनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शब्दार्थप्रकृतावेव णिनि उपमानं पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-शब्दार्थकप्रकृतावेव णिन्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे उपमानवाचि पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्ष इव रौतीति ध्वाङ्क्षरावी। खर इव नदतीति खरनादी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शब्दार्थप्रकृतौ) शब्दार्थक प्रकृति=धातुवाले (एव) ही (णिनि) णिन्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (उपमानम्) उपमानवाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**उष्ट्रक्रोशी।** उष्ट्र की भांति बलबलानेवाला। **ध्वाङ्क्षरावी।** कौवे की भांति कांव-कांव करनेवाला। **खरनादी।** गधे की भांति होंची-होंची शब्द करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **उष्ट्रक्रोशी।** यहां उष्ट्र उपपद होने पर शब्दार्थक **'क्रुश आह्वाने रोदने च'** (भ्वा०प०) धातु से **'कर्तर्युपमाने'** (३।२।७९) से णिनि प्रत्यय है। इस सूत्र से णिन्-प्रत्ययान्त 'क्रोशी' शब्द उत्तरपद होने पर 'उष्ट्र' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है।*

*(२) **ध्वाङ्क्षरावी।** यहां ध्वाङ्क्ष उपपद होने पर शब्दार्थक **'रु शब्दे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् णिनि प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **खरनादी।** यहां खर उपपद होने पर **'णद अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् णिनि प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्ताः-

(१८) युक्तारोह्यादयश्च।८१।

प०वि०-युक्तारोही-आदयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-युक्तारोही आदिर्येषां ते-युक्तारोह्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युक्तारोह्यादयश्च पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-युक्तारोह्यादिषु च शब्देषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-युक्तारोही। आगतरोही। आगतयोधी, इत्यादिकम्।

युक्तारोही। आगतरोही। आगतयोधी। आगतवञ्ची। आगतनर्दी। आगतप्रहारी। आगतमत्स्या। क्षीरहोता। भगिनीभर्ता। ग्रामगोधुक्। अश्वत्रिरात्रः। गर्गत्रिरात्रः। व्युष्टत्रिरात्रः। शणपादः। समपादः। एकशितिपात्। पात्रेसम्मितादयश्च। इति **युक्तारोह्यादयः**।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युक्तरोह्यादयः) युक्तरोही आदि शब्दों में (च) भी (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**युक्तारोही।** अश्वशाला में नियुक्त अधिकारी। **आगतरोही।** नये आये हुये घोड़े को रोहण योग्य बनानेवाला। **आगतयोधी।** नये आये हुये घोड़े आदि को प्रहार से साधनेवाला, इत्यादि।*

*सिद्धि-**युक्तारोही।** यहां युक्त उपपद आङ्पूर्वक '**रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च**' (भ्वा०प०) धातु से '**सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**' (३।२।७८) से णिनि प्रत्यय है। इस सूत्र से 'युक्त' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**आगतरोही, आगतयोधी।***

विशेषः *पाणिनि ने अश्वशाला के युक्त अधिकारियों को 'युक्तारोही' कहा है (६।२।८१)। उन्हें ही अर्थशास्त्र में युक्तारोहक कहा गया है (५।३)। उन्हें प्रतिवर्ष ५०० से १००० कार्षापण तक पूजा-वेतन दिया जाता था। युक्तारोहक अधिकारियों का कर्त्तव्य अविनीत हाथी और घोड़ों को शिक्षा देकर उन्हें आरोहण के योग्य बनाना था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४०२)।*

आद्युदात्तम्-

(१६) दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे।८२।

प०वि०-दीर्घ-काश-तुष-भ्राष्ट्र-वटम् १।१ जे ७।१।

स०-दीर्घश्च काशश्च तुषश्च भ्राष्ट्रं च वटश्च एतेषां समाहारः-दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जे दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं पूर्वपदमादिरुदात्तः।

अर्थः-जे-शब्दे उत्तरपदे दीर्घान्तं पूर्वपदं काशतुषभ्राष्ट्रवटानि च पूर्वपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(**दीर्घः**) कुट्यां जात इति कुटीजः। शमीजः। (**काशः**) काशे जात इति काशजः। (**तुषः**) तुषे जात इति तुषजः। (**भ्राष्ट्रम्**) भ्राष्ट्रे **जात** इति भ्राष्ट्रजः। (**वटः**) वटे जात इति वटजः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जे) ज-शब्द उत्तरपद होने पर (दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटम्) दीर्घान्त पूर्वपद और काश, तुष, भ्राष्ट्र, वट (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-(दीर्घ) कुटीजः । कुटी=झोंपड़ी में पैदा होनेवाला-निर्धन। शमीजः । शमी (जांटी) वृक्ष पर पैदा होनेवाला फलविशेष (सांगर)। (काश) काशेजः । कास (सरकंडा) पर पैदा होनेवाला पुष्पविशेष। (तुष) तुषेजः । तुष=छिलके में पैदा होनेवाला चावल। (भ्राष्ट्र) भ्राष्ट्रेजः । भ्राष्ट्र=भाड़ में पकनेवाला भूंगड़ा आदि। (वट) वटेजः । वट वृक्ष पर पैदा होनेवाला फलविशेष (वरवंटी)।

सिद्धि-कुटीजः । यह सप्तम्यन्त कुटी शब्द उपपद 'जनी प्रादुर्भावे' (भ्वा०प०) धातु से 'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) से 'ड' प्रत्यय है। वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'जन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। इस सूत्र से ज-शब्द उत्तरपद होने पर दीर्घान्त 'शमी' शब्द को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-शमीजः आदि।

अन्त्यात्पूर्वमुदात्तम्-

(२०) अन्त्यात् पूर्वं बह्वचः ।८३।

प०वि०-अन्त्यात् ५।१ पूर्वम् १।१ बह्वचः ६।१।

तद्धितवृत्तिः-अन्ते भवम्-अन्त्यम्, तस्मात्-अन्त्यात्, **'दिगादिभ्यो यत्'** (४।३।५४) इति भवार्थे यत्-प्रत्ययः।

स०-बहवोऽचौ यस्मिन् स बह्वच्, तस्य-बह्वचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, जे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जे बह्वचः पूर्वपदस्यान्त्यात् पूर्वम् उदात्तम्।

अर्थः-ज-शब्दे उत्तरपदे बह्वचः पूर्वपदस्यान्त्यात् पूर्वमुदात्तं भवति।

उदा०-उपसरे जात इति उपसरेजः । मन्दुरे जात इति मन्दुरेजः । आमलक्यां जात इति आमलकीजः । वडवायां जात इति वडवाजः ।

आर्यभाषाः अर्थ-(जे) ज-शब्द उत्तरपद होने पर (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (पूर्वपदम्) पूर्वपद का (अन्त्यात्) अन्तिम अच् से (पूर्वम्) पूर्ववर्ती अच् (उदात्तः) उदात्त होता है।

उदा०-उपसरेजः । उपसर=प्रथम गर्भग्रहण पर उत्पन्न हुआ। मन्दुरेजः । अश्वशाला में उत्पन्न हुआ। आमलकीजः । आमलकी वृक्ष पर उत्पन्न हुआ फलविशेष (आंवला)। वडवाजः । वडवा=घोड़ी से उत्पन्न हुआ-खच्चर। अथवा-वडवा वेश्या से उत्पन्न हुआ पुरुष।

सिद्धि-उपसरेजः । यहां बहुत अचोंवाला उपसर उपपद 'जनी प्रादुर्भावे' (भ्वा०प०) धातु से 'सप्तम्यां जनेर्डः' (३।२।९७) से 'ड' प्रत्यय है। इस सूत्र से ज-शब्द उत्तरपद होने पर बहुत अचोंवाला 'उपसर' पूर्वपद को अन्तिम अच् से पूर्ववर्ती अच् उदात्त होता है।

आद्युदात्तम्–

(२१) ग्रामेऽनिवसन्तः।८४।

प०वि०–ग्रामे ७।१ अनिवसन्तः १।१।

कृद्वृत्तिः–'अनिवसन्तः' इत्यत्र नि-पूर्वात् **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) इत्यस्माद् धातोः **'तॄभूवहिवसिभासिसाधिगडिभण्डिजिनन्दिभ्यश्च'** (उणा० ३।१२८) इत्यनेन झच् प्रत्ययः, **'झोऽन्तः'** (७।१।३) इति झकारस्य स्थानेऽन्तादेशः।

स०–न निवसन्त इति अनिवसन्तः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ग्रामे पूर्वपदम् आदिरुदात्तः, अनिवसन्तः।

अर्थः–ग्राम-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति, तच्चेद् पूर्वपदं निवसन्तवाचि न भवति।

उदा०–मल्लानां ग्राम इति मल्लग्रामः। ग्रामः समूह इत्यर्थः। वणिजां ग्राम इति वणिग्ग्रामः। वणिजां समूह इत्यर्थः। देवग्रामः। देवस्वामिको गृहसमुदाय इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ग्रामे) ग्राम शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है (अनिवसन्तः) जो पूर्वपद है यदि वह निवासीवाची न हो।*

*उदा०–**मल्लग्रामः।** पहलवानों का समूह। **वणिग्ग्रामः।** व्यापारियों का समूह। **देवग्रामः।** देव है स्वामी जिसका वह ग्राम (गृहसमुदाय)।*

*सिद्धि–**मल्लग्रामः।** यहां मल्ल और ग्राम शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'मल्लग्रामः' का अर्थ 'मल्लों का समूह' है अतः मल्ल पूर्वपद निवसन्त=निवासीवाची नहीं है। इस सूत्र से ग्राम शब्द उत्तरपद होने पर अनिवसन्तवाची मल्ल पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**वणिक्ग्रामः। देवग्रामः।***

आद्युदात्तम्–

(२२) घोषादिषु च।८५।

प०वि०–घोष-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–घोष आदिर्येषां ते घोषादयः, तेषु–घोषादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-घोषादिषु च पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-घोषादिषु शब्देषु चोत्तरपदेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-दाक्षेर्घोष इति दाक्षिघोषः। दाक्षिकटः। दाक्षिह्रदः, इत्यादिकम्।

दाक्षिघोषः। दाक्षिकटः। दाक्षिपल्वलः। दाक्षिवल्लभः। दाक्षिह्रदः। दाक्षिबदरी। दाक्षिपिङ्गलः। दाक्षिपिशङ्गः। दाक्षिशालः। दाक्षिरक्षः। दाक्षिशिल्पी। दाक्ष्यश्वत्थः। कुन्दतृणम्। दाक्षिशाल्मली। आश्रममुनिः। शाल्मलिमुनिः। दाक्षिपुंसा (दाक्षिप्रेक्षा)। दाक्षिकूटः। इति घोषादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(घोषादिषु) घोष आदि शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**दाक्षिघोषः।** दाक्षिजनों की बस्ती। दाक्षि=दक्ष के पुत्र। **दाक्षिकटः।** दाक्षिजनों की चटाई। **दाक्षिह्रदः।** दाक्षिजनों का तालाब इत्यादि।*

सिद्धि-दाक्षिघोषः। *यहां दाक्षि और घोष शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'घोष' शब्द उत्तरपद होने पर 'दाक्षि' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**दाक्षिकटः, दाक्षिह्रदः।***

आद्युदात्तम्-

(२३) छात्र्यादयः शालायाम्।८६।

प०वि०-छात्रि-आदयः १।३ शालायाम् ७।१।

स०-छात्रिरादिर्येषां ते-छात्र्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शालायां छात्र्यादयः पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-शाला-शब्दे उत्तरपदे छात्र्यादयः पूर्वपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-छात्रिशाला। ऐलिशाला (पैलिशाला)। भाण्डिशाला। व्याडिशाला। आपिशलिशाला, इत्यादिकम्।

छात्रि। ऐलि (पैलि)। भाण्डि। आपिशलि। आखण्डि। आपारि। गौमि। इति छात्र्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शालायाम्) शाला शब्द उत्तरपद होने पर (छात्र्यादयः) छात्रि-आदि (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-**छात्रिशाला।** छात्रि नामक आचार्य की पाठशाला (गुरुकुल)। **ऐलिशाला (पैलिशाला)।** ऐलि/पैलि नामक आचार्य की पाठशाला। **भाण्डिशाला।** भाण्डि नामक आचार्य की पाठशाला। **व्याडिशाला।** व्याडि नामक आचार्य की पाठशाला। **आपिशलिशाला।** आपिशलि नामक आचार्य की पाठशाला।*

*सिद्धि-**छात्रिशाला।** यहां छात्रि और शाला शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'शाला' शब्द उत्तरपद होने पर 'छात्रि' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**ऐलिशाला (पैलिशाला)** आदि।*

आद्युदात्तम्—

(२४) प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम्।८७।

प०वि०-प्रस्थे ७।१ अवृद्धम् १।१ अकर्क्यादीनाम् ६।३।

स०-न वृद्धमिति अवृद्धम् (नञ्तत्पुरुषः)। कर्की आदिर्येषां ते कर्क्यादयः, न कर्क्यादय इति अकर्क्यादयः, तेषाम्-अकर्क्यादीनाम् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रस्थेऽकर्क्यादीनाम् अवृद्धं पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-प्रस्थ-शब्दे उत्तरपदे कर्क्यादिवर्जितम् अवृद्धसंज्ञकं पूर्वपद-माद्युदात्तं भवति।

उदा०-इन्द्रस्य प्रस्थ इति इन्द्रप्रस्थः। कुण्डप्रस्थः। ह्रदप्रस्थः। सुवर्णप्रस्थः।

कर्की। मघी। मकरी। कर्कन्धू। शमी। करीर। कटुक। कुरल (कुवल)। बदर। इति कर्क्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रस्थे) प्रस्थ शब्द उत्तरपद होने पर (अकर्क्यादीनाम्) कर्की आदि तथा (अवृद्धम्) वृद्धसंज्ञक शब्दों से भिन्न (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**इन्द्रप्रस्थः।** इन्द्र का स्थान। **कुण्डप्रस्थः।** कुण्ड का स्थान। **ह्रदप्रस्थः।** ह्रद का स्थान। **सुवर्णप्रस्थः।** सुवर्ण का स्थान (सोनीपत)।*

सिद्धि-इन्द्रप्रस्थः। यहां इन्द्र और प्रस्थ शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'प्रस्थ' शब्द उत्तरपद होने पर कर्क्यादि से भिन्न तथा अवृद्धसंज्ञक 'इन्द्र' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-कुण्डप्रस्थः आदि।

विशेषः *प्रस्थान्त नाम कुरुक्षेत्र और कुरु जनपद के प्रदेश की भौगोलिक विशेषता थे। वहां 'प्रस्थ' की जगह 'पत' स्थान-नामों के अन्त में पाया जाता है, जैसे-पानीपत, बाघपत, सोनीपत, मारीपत, तिलपत (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८०-८१)।*

आद्युदात्तम्-

(२५) मालादीनां च।८८।

प०वि०-माला-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-माला आदिर्येषां ते मालादयः, तेषाम्-मालादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः, प्रस्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रस्थे मालादीनां च पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-प्रस्थ-शब्दे उत्तरपदे मालादीनां शब्दानां च पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-**(माला)** मालायाः प्रस्थ इति मालाप्रस्थः। **(शाला)** शालाप्रस्थः, इत्यादिकम्।

माला। शाला। शोणा। द्राक्षा। क्षौमा। क्षामा। काञ्ची। एक। काम। इति मालादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रस्थे) प्रस्थ शब्द उत्तरपद होने पर (मालादीनाम्) माला आदि शब्दों में विद्यमान (पूर्वपदम्) पूर्वपद (च) भी (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

उदा०-(माला) मालाप्रस्थः। स्थानविशेष का नाम। (शाला) शालाप्रस्थः। स्थानविशेष का नाम इत्यादि।

सिद्धि-मालाप्रस्थः। यहां माला और प्रस्थ शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'प्रस्थ' शब्द उत्तरपद होने पर 'माला' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-शालाप्रस्थः।

आद्युदात्तम्-

(२६) अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम्।८९।

प०वि०-अमहत्-नवम् १।१ नगरे ७।१ अनुदीचाम् ६।३।

स०-महच्च नवं च एतयोः समाहारः-महन्नवम्, न महन्नवमिति अमहन्नवम् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। न उदञ्च इति अनुदञ्चः, तेषाम्-अनुदीचाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नगरेऽमहन्नवं पूर्वपदम् आदिरुदात्तः, अनुदीचाम्।

अर्थः-नगर-शब्दे उत्तरपदे महत्-नवशब्दवर्जितं पूर्वपदम् आद्युदात्तं भवति, तच्चेन्नगरम् उदीचां न भवति।

उदा०-सुह्मस्य नगरम् इति सुह्मनगरम्। पुण्ड्रनगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नगरे) नगर शब्द उत्तरपद होने पर (अमहन्नवम्) महत् और नव शब्दों से भिन्न (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है (अनुदीचाम्) यदि वह नगर उत्तरदेशीय नगरों में से न हो।*

*उदा०-**सुह्मनगरम्।** नगरविशेष का नाम। **पुण्ड्रनगरम्।** नगरविशेष का नाम।*

*सिद्धि-**सुह्मनगरम्।** यहां सुह्म और नगर शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से नगर शब्द उत्तरपद होने पर महत् और नव शब्दों से भिन्न सुह्म पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**पुण्ड्रनगरम्।***

आद्युदात्तम्-

(२७) अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच्।६०।

प०वि०-अर्मे ७।१ च अव्ययपदम् १।१ अवर्णम् १।१ द्व्यच् १।१ त्र्यच् १।१।

स०-द्वावचौ यस्मिन् सः-द्व्यच् (बहुव्रीहिः)। त्रयोऽचो यस्मिन् सः-त्र्यच् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्मे च द्व्यच् त्र्यच् चावर्णं पूर्वपदम् आदिरुदात्तः।

अर्थः-अर्म-शब्दे चोत्तरपदे द्व्यच् त्र्यच्चावर्णान्तं पूर्वपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०-**(द्व्यच्)** दत्तस्य अर्ममिति दत्तार्मम्। गुप्तार्मम्। **(त्र्यच्)** कुक्कुटस्य अर्ममिति कुक्कुटार्मम्। वायसार्मम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्मे) अर्म शब्द उत्तरपद होने पर (च) भी (द्व्यच्) दो अचोंवाला और (त्र्यच्) तीन अचोंवाला (अवर्णम्) अकारान्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(द्व्यच्) **दत्तार्मम्।** दत्त का अर्म=ऊजड़ खेड़ा। **गुप्तार्मम्।** गुप्त का ऊजड़ खेड़ा। (त्र्यच्) **कुक्कुटार्मम्।** कुक्कुट का ऊजड़ खेड़ा। **वायसार्मम्।** वायस का ऊजड़ खेड़ा।*

***सिद्धि-दत्तार्मम्।** यहां दत्त और अर्म शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'अर्म' शब्द उत्तरपद होने पर दो अचोंवाला, अवर्णान्त 'दत्त' पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**गुप्तार्मम्** आदि।*

आद्युदात्त-प्रतिषेधः-

(२८) न भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम्।६१।

प०वि०- न अव्ययपदम्, भूत-अधिक-सञ्जीव-मद्र-अश्म-कज्जलम् १।१।

स०-भूतं च अधिकं च सञ्जीवश्च मद्रश्च अश्मा च कज्जलं च एतेषां समाहारः-भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पूर्वपदम्, आदिः, उदात्तः अर्मे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्मे भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलं पूर्वपदम् आदिरुदात्तं न।

अर्थः-अर्म-शब्दे उत्तरपदे भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलानि पूर्वपदानि आद्युदात्तानि न भवन्ति।

उदा०-(**भूतम्**) भूतस्यार्ममिति भूतार्मम्। (**अधिकम्**) अधिकार्मम्। (**सञ्जीवः**) सञ्जीवार्मम्। मद्राश्मग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्-मद्रार्मम्। अश्मार्मम्। मद्राश्मार्मम्। (**कज्जलम्**) कज्जलार्मम्। अत्र **'समासस्य'** (६।१।२१८) इत्यनेनान्तोदात्तस्वरो भवति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्मे) अर्म शब्द उत्तरपद होने पर (भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम्) भूत, अधिक, सञ्जीव, मद्र, अश्म, कज्जल (पूर्वपदम्) पूर्वपद शब्दों को (आदिरुदात्तः) आद्युदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(भूत) **भूतार्मम्।** (अधिक)। **अधिकार्मम्।** (सञ्जीव) **सञ्जीवार्मम्।** (मद्राश्म) मद्र-अश्म का संघात और विगृहीत पद के लिये किया गया है-**मद्रार्मम्। अश्मार्मम्। मद्राश्मार्मम्।** (कज्जल) **कज्जलार्मम्।** ये सब प्राचीन अर्म=ऊजड़-खेड़ों के नाम हैं।*

सिद्धि-भूतार्मम्। यहां भूत और अर्म शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अर्म शब्द उत्तरपद होने पर भूत पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर नहीं होता है। 'अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच्' (६।२।९८) से पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया है। 'समासस्य' (६।१।२१८) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अधिकार्मम् आदि।

।। इति पूर्वपदाद्युदात्तप्रकरणम्।।

पूर्वपदान्तोदात्तप्रकरणम्

अन्तोदात्ताधिकारः-

(१) अन्तः।६२।

वि०-अन्तः १।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्त इति चानुवर्तते। आदिरिति च निवृत्तम्।

अन्वयः-पूर्वपदम् अन्तोदात्तः।

अर्थः-अन्त इत्यधिकारोऽयम्, इत उत्तरं यद् वक्ष्यति तत्र पूर्वपदमन्तोदात्तं भवतीति वेदितव्यम्। वक्ष्यति- **'सर्वं गुणकार्त्स्न्ये'** (६।२।९३) इति। सर्वश्वेतः। सर्वकृष्णः।

'उत्तरपदस्यादिः' (६।२।१११) इत्यस्मात् प्रागयमधिकारो वेदितव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-'अन्तः' यह अधिकार सूत्र है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वहां (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है, ऐसा जानें। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे-'सर्वं गुणकार्त्स्न्ये' (६।२।९३) सर्वश्वेतः। सारा सफेद। सर्वकृष्णः। सारा काला।*

'उत्तरपदस्यादिः' (६।२।१११) से पहले-पहले यह अधिकार समझना चाहिये।

सिद्धि-सर्वश्वेतः आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

अन्तोदात्तम्-

(२) सर्वं गुणकार्त्स्न्ये।६३।

प०वि०-सर्वम् १।१ गुण-कार्त्स्न्ये ७।१।

स०-गुणस्य कार्त्स्न्यमिति गुणकार्त्स्न्यम्, तस्मिन्-गुणकार्त्स्न्ये (षष्ठीतत्पुरुषः)। कृत्स्नस्य भावः कार्त्स्न्यम्=सर्वत्रभाव इत्यर्थः। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इत्यनेन ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वाद् भावे ष्यञ्प्रत्ययः।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गुणकात्स्न्र्ये सर्वं पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-गुणकात्स्न्र्येऽर्थे वर्तमानं सर्वमिति पूर्वपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-सर्वश्चासौ श्वेत इति सर्वश्वेतः। सर्वकृष्णः। सर्वमहान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गुणकात्स्न्र्ये) गुण के सर्वत्र भाव अर्थ में विद्यमान (सर्वम्) सर्व (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**सर्वश्वेतः**। सारा सफेद। **सर्वकृष्णः**। सारा काला। **सर्वमहान्**। सारा महान् (पूज्य)।*

***सिद्धि-सर्वश्वेतः**। यहां गुणकात्स्न्र्यवाची 'सर्व' और 'श्वेत' शब्दों का '**पूर्वकालैक-सर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन**' (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से गुण-कात्स्न्र्य अर्थ में विद्यमान 'सर्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**सर्वकृष्णः, सर्वमहान्**।*

अन्तोदात्तम्-

(३) संज्ञायां गिरिनिकाययोः।६४।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ गिरि-निकाययोः ७।२।

स०-गिरिश्च निकायश्च तौ गिरिनिकायौ, तयोः-गिरिनिकाययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां गिरिनिकाययोः पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषये गिरिनिकाययोरुत्तरपदयोः पूर्वपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(गिरिः) अञ्जनागिरिः। भञ्जनागिरिः। **(निकायः)** शापिण्डिनिकायः। मौण्डिनिकायः। चिखिल्लिनिकायः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (गिरिनिकाययोः) गिरि और निकाय शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदत्त होता है।*

*उदा०-(गिरि) **अञ्जनागिरिः**। अञ्जन (सुर्मा) का पहाड़। **भञ्जनागिरिः**। भञ्जनागिरि नामक पर्वत। (निकाय) **शापिण्डिनिकायः**। शापिण्डिजनों का घर/समूह। **मौण्डिनिकायः**। मौण्डिजनों का घर/समूह। **चिखिल्लिनिकायः**। चिखिल्लीजनों का घर/समूह।*

*सिद्धि-अञ्जनागिरिः। यहां अञ्जन और गिरि शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञा विषय में 'गिरि' शब्द उत्तरपद होने पर 'अञ्जन' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। **'वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्'** (६।३।११७) से 'अञ्जन' पूर्वपद को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**भञ्जनागिरिः**। संज्ञा विषय में विग्रह वाक्य नहीं होता है क्योंकि वाक्य से संज्ञा अर्थ की प्रतीति नहीं होती है।*

*'शापिण्डि' और 'मौण्डि' शब्दों में **'अत इञ्'** (४।१९५) से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय है और 'चिखिल्ली' शब्द में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से इनि प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अन्तोदात्तम्-

(४) कुमार्यां वयसि।६५।

प०वि०-कुमार्याम् ७।१ वयसि ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कुमार्यां पूर्वपदम् अन्त उदात्तः, वयसि।

अर्थः-कुमारी-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदम् अन्तोदात्तं भवति, वयसि गम्यमाने।

उदा०-वृद्धा चासौ कुमारी इति वृद्धकुमारी। जरती चासौ कुमारी इति जरत्कुमारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कुमार्याम्) कुमारी शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (वयसि) यदि वह आयु अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**वृद्धकुमारी**। वृद्ध आयु की कुमारी। **जरत्कुमारी**। जीर्ण आयु की कुमारी।*

*सिद्धि-**वृद्धकुमारी**। यहां वृद्धा और कुमारी शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। **'पुंवत् कर्मधारजातीयदेशीयेषु'** (६।३।४२) से वृद्धा शब्द को पुंवद्भाव होता है। इस सूत्र से 'कुमारी' शब्द उत्तरपद होने पर 'वृद्ध' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**जरत्कुमारी**।*

अन्तोदात्तम्-

(५) उदकेऽकेवले।६६।

प०वि०-उदके ७।१ अकेवले ७।१।

स०-न केवलमिति अकेवलम्, तस्मिन्-अकेवले (नञ्तत्पुरुषः)। अकेवलम्=मिश्रमित्यर्थः।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अकेवले उदके पूर्वपदम् अन्त उदात्तः ।

अर्थः-अकेवले=मिश्रवाचिनि समासे उदकशब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति ।

उदा०-गुडमिश्रमुदकम् इति गुडोदकम् । तिलोदकम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अकेवले) मिश्रवाची समास में (उदके) उदक-शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**गुडोदकम्**। गुड़ मिश्रित उदक (जल)। **तिलोदकम्**। तिल मिश्रित उदक।*

*सिद्धि-**गुडोदकम्**। यहां गुडमिश्र और उदक शब्दों का वा०-'**समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च**' (२।१।५९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास और मिश्र उत्तरपद का लोप होता है। इस सूत्र से अकेवल=मिश्रवाची समास में उदक शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*गुड और उदक शब्दों का एकादेश (गुड+उदकम्=गुडोदकम्) होने पर '**स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ**' (८।२।६) से पक्ष में स्वरित स्वर भी होता है-**गुडोदकम्, तिलोदकम्**।*

अन्तोदात्तम्-

(६) द्विगौ क्रतौ।६७।

प०वि०-द्विगौ ७।१ क्रतौ ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-क्रतौ द्विगौ पूर्वपदम् अन्त उदात्तः ।

अर्थः-क्रतुवाचिनि समासे द्विगुसंज्ञके शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति ।

उदा०-गर्गाणां त्रिरात्र इति गर्गत्रिरात्रः । चरकत्रिरात्रः । कुसुरविन्दसप्तरात्रः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रतौ) यज्ञविशेषवाची समास में (द्विगौ) द्विगु-संज्ञक शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**गर्गत्रिरात्रः**। गर्गजनों का त्रिरात्र नामक यज्ञविशेष। **चरकत्रिरात्रः**। चरकजनों का त्रिरात्र नामक यज्ञविशेष। **कुसुरविन्दसप्तरात्रः**। कुसुरविन्दजनों का सप्तरात्र नामक यज्ञविशेष।*

सिद्धि-गार्गत्रैरात्रः । यहां गर्ग और त्रिरात्र शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'त्रिरात्र' शब्द में 'तिसृणां रात्रीणां समाहारः-त्रिरात्रः, 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से समाहार अर्थ में द्विगुसमास है और 'अहः-सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' ५।४।८७) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से क्रतुविशेषवाची समास में द्विसंज्ञक 'त्रिरात्र' शब्द उत्तरपद होने पर गर्ग पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-चरकत्रैरात्रः, कुसुरविन्दसप्तरात्रः ।

अन्तोदात्तम्–

(७) सभायां नपुंसके।६८।

प०वि०-सभायाम् ७।१ नपुंसके ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसके सभायां पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे समासे सभा-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-गोपालस्य सभेति गोपालसभम्। पशुपालसभम्। स्त्रीसभम्। दासीसभम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग समास में (सभायाम्) सभा शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**गोपालसभम्।** गोपाल का घर। **पशुपालसभम्।** पशुपाल का घर। **स्त्रीसभम्।** स्त्री का घर। **दासीसभम्।** दासी का घर।*

*सिद्धि-**गोपालसभम्।** यहां गोपाल और सभा शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा' (२।४।२३) से सभान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग होता है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग समास में सभा-शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

विशेषः *सभा शब्द के समुदाय और शाला दो अर्थ हैं। यहां शाला (घर) अर्थ का ग्रहण किया गया है। 'वासः कुटी शाला सभा' इत्यमरः ।*

अन्तोदात्तम्–

(८) पुरे प्राचाम्।६९।

प०वि०-पुरे ७।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुरे पूर्वपदम् अन्त उदात्तः, प्राचाम्।

अर्थः-पुर-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति, प्राचां देशेऽभिधेये।

उदा०-ललाटस्य पुरमिति ललाटपुरम्। काञ्चीपुरम्। शिवदत्तपुरम्। कार्णिपुरम्। नार्मपुरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पुरे) पुर-शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (प्राच्यम्) यदि वहां प्राच्य-भरत के देशविशेष का कथन हो।*

*उदा०-**ललाटपुरम्।** ललाट का ग्राम। **काञ्चीपुरम्।** काञ्ची का ग्राम। **शिवदत्तपुरम्।** शिवदत्त का ग्राम। **कार्णिपुरम्।** कार्णि का ग्राम। **नार्मपुरम्।** नार्म का ग्राम।*

*सिद्धि-**ललाटपुरम्।** यहां ललाट और पुर शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से प्राग्देशवाची समास में पुर-शब्द उत्तरपद होने पर ललाट पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**काञ्चीपुरम्** आदि।*

***विशेषः** शरावती (नदी) के दक्षिण-पूर्व का देश प्राच्य और पश्चिमोतर का उदीच्य कहलाता था। सम्भवतः अम्बाला जिले में बहनेवाली घग्घर नदी शरावती कही जाती थी और वही प्राची और उदीची की सीमाओं को अलग करती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४२)।*

अन्तोदात्तम्-

(६) अरिष्टगौडपूर्वे च।१००।

प०वि०-अरिष्ट-गौडपूर्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-अरिष्टं च गौडश्च तौ-अरिष्टगौडौ, अरिष्टगौडौ पूर्वौ यस्मिन् सः-अरिष्टगौडपूर्वः, तस्मिन्-अरिष्टगौडपूर्वे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, पुरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अरिष्टगौडपूर्वे पुरे पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-अरिष्टगौडपूर्वे समासे पुर-शब्दे उत्तरपदे पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(अरिष्टम्)** अरिष्टस्य पुरम् इति अरिष्टपुरम्। **(गौडः)** गौडस्य पुरम् इति गौडपुरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अरिष्टगौडपूर्वे) अरिष्ट और गौड शब्द पूर्वपदवाले समास में (पुरे) पुर-शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(अरिष्ट) **अरिष्टपुरम्।** अरिष्ट का ग्राम। (गौड) **गौडपुरम्।** गौड का ग्राम।*

सिद्धि-अरिष्टपुरम्। यहां अरिष्ट और पुर शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अरिष्ट शब्द पूर्वपद पुर-शब्द उत्तरपद होने पर अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-गौडपुरम्।

विशेषः *(१) अरिष्टपुर-यह शिवि जनपद में शिवि क्षत्रियों की राजधानी थी (अरिट्ठसाह्वनगर, चरिया पिटक १।८।१, शिविजातक ६।४०१।१२)।*

(२) गौडपुर-यह गौड देश बंगाल में था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७८)।

अन्तोदात्तप्रतिषेधः-

(१०) न हास्तिनफलकमार्देयाः।१०१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, हास्तिन-फलक-मार्देयाः १।३।

स०-हास्तिनं च फलकं च मार्देयश्च ते-हास्तिनफलकमार्देयाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, पुरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुरे हास्तिनफलकमार्देयाः पूर्वपदम् अन्त उदात्तो न।

अर्थः-पुर-शब्दे उत्तरपदे हास्तिनफलकमार्देयाः पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि न भवन्ति।

उदा०-(**हास्तिनम्**) हास्तिनस्य पुरम् इति हास्तिनपुरम्। (**फलकम्**) फलकपुरम्। (**मार्देयः**) मार्देयपुरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पुरे) पुर-शब्द उत्तरपद होने पर (हास्तिनफलकमर्देयाः) हास्तिन, फलक और मार्देय (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तेदात्त (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-(हास्तिन) हास्तिनपुरम्। हास्तिन का ग्राम। (फलक) फलकपुरम्। फलक का ग्राम। (मार्देय) मार्देयपुरम्। मार्देय का ग्राम।

सिद्धि-हास्तिनपुरम्। यहां हास्तिन और पुर शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पुर-शब्द उत्तरपद होने पर हास्तिन पूर्वपद को अन्तोदात्त का प्रतिषेध है, अतः 'समासस्य' (६।१।२१८) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-फलकपुरम्, मार्देयपुरम्।

विशेषः *हास्तिनपुर कुरु जनपद की प्रसिद्ध राजधानी था। फलकपुर सम्भवतः फिल्लौर (जि० जालन्धर) और मार्देयपुर मंडावर (जि० बिजनौर) था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ७८)।*

अन्तोदात्तम्–

(११) कुसूलकूपकुम्भशालं बिले।१०२।

प०वि०–कुसूल-कूप-कुम्भ-शालम् १।१ बिले ७।१।

स०–कुसूलं च कूपश्च कुम्भं च शाला च एतेषां समाहारः- कुसूलकूपकुम्भशालम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बिले कुसूलकूपकुम्भशालं पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–बिल-शब्दे उत्तरपदे कुसूलकूपकुम्भशालानि पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०–(कुसूलम्) कुसूलस्य बिलम् इति कुसूलबिलम्। **(कूपः)** कूपबिलम्। **(कुम्भम्)** कुम्भबिलम्। **(शाला)** शालाबिलम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(बिले) बिल शब्द उत्तरपद होने पर (कुसूलकूपकुम्भशालम्) कुसूल, कूप, कुम्भ और शाला (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०–(कुसूल) **कुसूलबिलम्।** कुठले का मुख। (कूप) **कूपबिलम्।** कूए का मुख। (कुम्भ) **कुम्भबिलम्।** घड़े का मुख। (शाला) **शालाबिलम्।** घर का मुख=द्वार।*

***सिद्धि–कुसूलबिलम्।** यहां कुसूल और बिल शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से बिल-शब्द उत्तरपद होने पर कुसूल पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**कूपबिलम्** आदि।*

***विशेषः** (१) **कुसूल**–बहुत बड़ा लम्बोतरा मिट्टी का बना हुआ कुठला या कोठी जो मनुष्य की ऊंचाई से कुछ ऊंची है और जिसमें १५ से २० मन तक अनाज आ सके।*

*(२) **कूप**–इसका तात्पर्य पक्की मिट्टी की बनी हुई लगभग ३ फुट व्यास की उन चकरियों से ज्ञात होता है जिन्हें एक के ऊपर एक रखकर अन्नसंग्रह के लिये कुठले जैसे बनाया जाता था।*

*(३) **कुम्भ**–मिट्टी का बड़ा घड़ा जिसका मुंह अपेक्षाकृत छोटा हो। इसे सिन्ध की ओर गोदी कहा जाता है। इसमें कुसूल से लगभग आधा अन्न आयेगा।*

*(४) **शाला**–इस सूत्र में जिस शाला-बिल का उल्लेख है वह अन्न रखने के भण्डार का आनन या छोटा मुख होना चाहिये। अन्न रखने के बखार को ही यहां सूत्रकार ने शाला कहा है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५०-५१)।*

अन्तोदात्तम्–

(१२) दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु।१०३।

प०वि०–दिक्-शब्दा: १।३ ग्राम-जनपद-आख्यान-चानराटेषु ७।३।

स०–दिशि दृष्टा: शब्दा इति दिक्शब्दा: (उत्तरपदलोपी सप्तमीतत्पुरुष:)।

अनु०–पूर्वपदम्, उदात्त:, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वय:–ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु दिक्शब्दा: पूर्वपदम् अन्त उदात्त:।

अर्थ:–ग्रामजनपदाख्यानवाचिषु उत्तरपदेषु चानराटशब्दे चोत्तरपदे दिक्शब्दा: पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०–**(ग्राम:)** पूर्वा चेयम् इषुकामशमी इति पूर्वेषुकामशमी। अपरेषुकामशमी। पूर्वा चेयं कृष्णमृत्तिका इति पूर्वकृष्णमृत्तिका। अपरकृष्णमृत्तिका। **(जनपद:)** पूर्वे च ते पञ्चाला इति पूर्वपञ्चाला:। अपरपञ्चाला:। **(आख्यानम्)** आधिरामस्य पूर्वम् इति पूर्वाधिरामम्। पूर्वयायातम्। अपरयायातम्। **(चानराट:)** चानराटस्य पूर्वम् इति पूर्वचानराटम्। अपरचानराटम्।

आर्यभाषा: *अर्थ–(ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु) ग्राम, जनपद और आख्यानवाची तथा चानराट शब्दों के उत्तरपद होने पर (दिक्शब्दा:) दिशावाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्त:) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०–(ग्राम:) **पूर्वेषुकामशमी।** इषुकामशमी नामक ग्राम का पूर्वभाग। **अपरेषुकामशमी।** इषुकामशमी नामक ग्राम का अपर (पश्चिम) भाग। **पूर्वकृष्णमृत्तिका।** कृष्णमृत्तिका नामक ग्राम का पूर्वभाग। **अपरकृष्णमृत्तिका।** कृष्णमृत्तिका नामक ग्राम का अपर भाग। (जनपद) **पूर्वपञ्चाला:।** पञ्चाल नामक जनपद का पूर्वभाग। **अपरपञ्चाला:।** पञ्चाल नामक जनपद का अपर भाग। (आख्यान) **पूर्वाधिरामम्।** अधिराम=राम के विषय को अधिकृत करके लिखा गया ग्रन्थ-आधिराम, उसका पूर्व भाग। **पूर्वयायातम्।** ययाति राजा को अधिकृत करके लिखा गया ग्रन्थ-यायात, उसका पूर्व भाग। **अपरयायातम्।** यायात नामक ग्रन्थ का अपर भाग। (चानराट) **पूर्वचानराटम्।** चानराट नगर का पूर्व भाग। **अपरचानराटम्।** चानराट नगर का अपर भाग।*

*सिद्धि–**पूर्वेषुकामशमी।** यहां पूर्व और इषुकामी शब्दों का **'दिक्संख्ये संज्ञायाम्'** (२।१।५०) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ग्रामवाची इषुकामशमी शब्द उत्तरपद होने पर दिशावाची 'पूर्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**अपरेषुकामशमी** आदि।*

अन्तोदात्तम्–

(१३) आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि।१०४।

प०वि०-आचार्योपसर्जनः १।१ (सप्तम्यर्थे) च अव्ययपदम्, अन्तेवासिनि ७।१।

स०-आचार्य उपसर्जनम्=अप्रधानं यस्य स आचार्योपसर्जनः (बहुव्रीहिः)। सुपां सुर्भवतीति सप्तम्येकवचनस्य स्थाने प्रथमैकवचनं छान्दसम्। छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, दिक्शब्दा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आचार्योपसर्जनेऽन्तेवासिनि च दिक्शब्दाः पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-आचार्योपसर्जनेऽन्तेवासिवाचिनि शब्दे चोत्तरपदे दिक्शब्दाः पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-पाणिनेश्छात्रा इति पाणिनीयाः। पूर्वे च ते पाणिनीया इति पूर्वपाणिनीयाः। अपरपाणिनीयाः। काशकृत्स्नस्य छात्राः काशकृत्स्नाः। पूर्वे च ते काशकृत्स्ना इति पूर्वकाशकृत्स्ना। अपरकाशकृत्स्नाः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-(आचार्योपसर्जनः) आचार्य का कथन जहां उपसर्जन=अप्रधान है, उस (अन्तेवासिनि) शिष्यवाची शब्द के उत्तरपद होने पर (च) भी (दिक्शब्दाः) दिशावाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।

*उदा०-**पूर्वपाणिनीयाः**। पाणिनि आचार्य के पूर्वकालीन अन्तेवासी=शिष्य। **अपरपाणिनीयाः**। पाणिनि आचार्य के अपरकालीन अन्तेवासी। **पूर्वकाशकृत्स्ना**। काशकृत्स्न आचार्य के पूर्वकालीन अन्तेवासी। **अपरकाशकृत्स्नाः**। काशकृत्स्न आचार्य के अपरकालीन अन्तेवासी।*

*सिद्धि-(१) **पूर्वपाणिनीयाः**। यहां पूर्व और पाणिनीय शब्दों का '**पूर्वापरप्रथमचरममध्यमध्यमवीराश्च**' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'पाणिनीय' शब्द में आचार्यवाची 'पाणिनि' शब्द से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से शैषिक अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। अतः यहां आचार्य अर्थ उपसर्जन=अप्रधान और शैषिक अर्थ (अन्तेवासी) प्रधान है। इस सूत्र से आचार्य उपसर्जनवाले अन्तेवासीवाची 'पाणिनीय' शब्द उत्तरपद होने पर दिशावाची 'पूर्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**अपरपाणिनीयाः**।*

(२) पूर्वकाशकृत्स्ना: । यहां 'काशकृत्स्न' शब्द में आचार्यवाची 'काशकृत्स्न' शब्द से 'तस्येदम्' (४।३।१२०) से शैषिक अर्थ (अन्तेवासी) में औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अपरकाशकृत्स्ना: ।

अन्तोदात्तम्-

(१४) उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च।१०५।

प०वि०-उत्तरपद-वृद्धौ ७।१ सर्वम् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-उत्तरपदस्य वृद्धिरिति उत्तरपदवृद्धि:, तस्याम्-उत्तरपदवृद्धौ (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्त:, अन्त:, दिक्शब्दा इति चानुवर्तते।

अन्वय:-उत्तरपदवृद्धौ सर्वं दिक्शब्दाश्च पूर्वपदम् अन्त उदात्त:।

अर्थ:-'उत्तरपदस्य' (७।३।१०) इत्येवमधिकृत्य या वृद्धिर्विहिता तद्वति शब्दे उत्तरपदे सर्वं दिक्शब्दाश्च पूर्वपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(सर्वम्) सर्वे च ते पञ्चाला इति सर्वपञ्चाला:। सर्वपञ्चालेषु भव:-सर्वपाञ्चालक:। **(दिक्शब्दा:)** पूर्वे च ते पञ्चाला इति पूर्वपञ्चाला:। पूर्वपञ्चालेषु भव:-पूर्वपाञ्चालक:। उत्तरपाञ्चालक:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(उत्तरपदवृद्धौ) 'उत्तरपदस्य' (७।३।१०) इस सूत्र के अधिकार में जो वृद्धि विहित की गई है उस वृद्धिमान् शब्द के उत्तरपद होने पर (सर्वम्) सर्वशब्द (च) और (दिक्शब्दा:) दिशावाची (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्त:) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-(सर्व) **सर्वपाञ्चालक:** । समस्त पञ्चाल जनपद में होनेवाला। (दिक्शब्द) **पूर्वपाञ्चालक:** । पञ्चाल जनपद के पूर्वभाग में होनेवाला। **उत्तरपाञ्चालक:** । पञ्चाल जनपद के उत्तरभाग में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **सर्वपाञ्चालक:** । यहां प्रथम सर्व और पञ्चाल शब्दों का '**पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवला: समानाधिकरणेन**' (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है, तत्पश्चात् तदन्तविधि से '**अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्**' (४।२।१२५) से शैषिक अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है और '**उत्तरपदस्य**' (७।३।१०) के अधिकार में पठित '**सुसर्वार्धाज्जनपदस्य**' (७।३।२५) से जनपदवाची 'पञ्चाल' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। इस सूत्र से '**उत्तरपदस्य**' (७।३।१०) के अधिकार में विहित वृद्धिमान् 'पाञ्चालक' उत्तरपद होने पर 'सर्व' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

(२) पूर्वपाञ्चालकः। यहां पूर्व और पञ्चाल शब्दों का 'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य-समानमध्यमध्यमवीराश्च' (२।१।५८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'पूर्वपञ्चाल' शब्द से पूर्ववत् 'वुञ्' प्रत्यय और 'दिशोऽमद्राणाम्' (७।३।१३) से उत्तरपद-वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-उत्तरपाञ्चालः।

अन्तोदात्तम्–

(१५) बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्।१०६।

प०वि०-बहुव्रीहौ ७।१ विश्वम् १।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ संज्ञायां विश्वं पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां च विषये विश्वम् इति पूर्वपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-विश्वदेवः। विश्वयशाः। विश्वमहान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास तथा (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (विश्वम्) विश्व (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**विश्वदेवः।** यह संज्ञा-विशेष है। **विश्वयशाः।** यह संज्ञा-विशेष है। **विश्वमहान्।** यह संज्ञा-विशेष है।*

सिद्धि-विश्वदेवः। *यहां विश्व और देव शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास तथा **संज्ञाविषय** में **विश्व पूर्वपद** को अन्तोदात्त स्वर होता है। **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से 'विश्व' **पूर्वपद** को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, यह उसका अपवाद है। 'विश्व' शब्द में **'अशिप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्'** (उणा० १।१५१) से 'क्वन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से 'विश्व' शब्द **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है।*

विश्वदेव आदि शब्द संज्ञावाची होने से इनका विग्रह-वाक्य नहीं होता है क्योंकि वाक्य से संज्ञा की प्रतीति नहीं होती है।

अन्तोदात्तम्–

(१६) उदराश्वेषुषु।१०७।

प०वि०-उदर-अश्व-इषुषु ७।३।

स०-उदरं च अश्वश्च इषुश्च ते-उदराश्वेषवः, तेषु-उदराश्वेषुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, बहुव्रीहौ, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ संज्ञायाम् उदराश्वेषुषु पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां विषये उदराश्वेषुषु उत्तरपदेषु पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(उदरम्)** वृकोदरः। दामोदरः। **(अश्वः)** हर्यश्वः। यौवनाश्वः। **(इषुः)** सुवर्णपुङ्खेषुः। महेषुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (उदराश्वेषुषु) उदर, अश्व और इषु शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदत्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(उदर) **वृकोदरः**। वृक=भेड़िया के समान उदर (पेट) वाला (संज्ञाविशेष-भीम)। **दामोदरः**। दाम=बन्धन है उदर पर जिसके वह पुरुष (संज्ञाविशेष-कृष्ण)। (अश्व) **हर्यश्वः**। हरि=भूरा है अश्व (घोड़ा) जिसका वह पुरुष (संज्ञाविशेष-इन्द्र)। **यौवनाश्वः**। यौवन ही है अश्व जिसका वह पुरुष (संज्ञाविशेष)। (इषु) **सुवर्णपुङ्खेषुः**। सुन्दर वर्णवाले पुङ्ख (पत्र) से युक्त बाणवाला पुरुष (संज्ञाविशेष)। **महेषुः**। महान्=बड़ा है इषु (बाण) जिसका वह पुरुष (संज्ञाविशेष)।*

*सिद्धि-**वृकोदरः**। यहां वृक और उदर शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास तथा संज्ञाविषय में उदर शब्द उत्तरपद होने पर 'वृक' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**दामोदरः** आदि।*

अन्तोदात्तम्-

(१७) क्षेपे।१०८।

वि०-क्षेपे ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, बहुव्रीहौ, संज्ञायाम्, उदराश्वेषुषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ संज्ञायाम् उदराश्वेषुषु पूर्वपदम् अन्त उदात्तः, क्षेपे।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां विषये उदराश्वेषुषु उत्तरपदेषु पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति, क्षेपे गम्यमाने।

उदा०-**(उदरम्)** कुण्डोदरः। घटोदरः। **(अश्वः)** कटुकाश्वः। स्पन्दिताश्वः। **(इषुः)** अनिघातेषुः। चलाचलेषुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहि) बहुव्रीहि समास में तथा (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (उदराश्वेषुषु) उदर, अश्व और इषु शब्द उत्तरपद होने पर (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (क्षेपे) यदि वहां क्षेप=निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-(उदर) कुण्डोदरः। कुण्ड के समान उदर (पेट) वाला (संज्ञाविशेष)। घटोदरः। घट=घड़े के समान उदरवाला पुरुष (संज्ञाविशेष) (अश्व) कटुकाश्वः। कड़वे स्वभाव के घोड़ेवाला पुरुष (संज्ञाविशेष)। स्पन्दिताश्वः। मन्द चाल के घोड़ेवाला पुरुष (संज्ञाविशेष)। (इषु) अनिघातेषुः। निघात से रहित बाणवाला पुरुष (संज्ञाविशेष)। चलाचलेषुः। अति चलायमान बाणवाला पुरुष (संज्ञाविशेष)।

*सिद्धि-कुण्डोदरः। यहां कुण्ड और उदर शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास, संज्ञाविषय तथा क्षेप (निन्दा) की प्रतीति में उदर शब्द उत्तरपद होने पर कुण्ड पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-घटोदरः आदि।*

अन्तोदात्तम्-

(१८) नदी बन्धुनि।१०६।

प०वि०-नदी १।१ बन्धुनि ७।१।

अनु०-पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ बन्धुनि नदी पूर्वपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे बन्धु-शब्दे उत्तरपदे नदी-संज्ञकं पूर्वपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-गार्गी बन्धुर्यस्य सः-गार्गीबन्धुः। वात्सीबन्धुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (बन्धुनि) बन्धु शब्द उत्तरपद होने पर (नदी) नदी-संज्ञक (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**गार्गीबन्धुः**। गार्गी है बन्धु जिसका वह गार्गीबन्धु। जो गार्गी जैसी महाविदुषी ऋषिका के बन्धुभाव से अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध करना चाहता है वह गार्गीबन्धु कहाता है। **वात्सीबन्धुः**। वात्सी है बन्धु जिसकी वह वात्सीबन्धु।*

*सिद्धि०-**गार्गीबन्धुः**। यहां गार्गी और बन्धु शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में बन्धु शब्द उत्तरपद होने पर नदी-संज्ञक 'गार्गी' पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। गार्गी शब्द की **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।४) से नदी संज्ञा है। ऐसे ही-**वात्सीबन्धुः**।*

अन्तोदात्तविकल्पः–

(१६) निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम्।११०।

प०वि०–निष्ठा १।१ उपसर्गपूर्वम् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–उपसर्गः पूर्वो यस्य तत्-उपसर्गपूर्वम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पूर्वपदम्, उदात्तः, अन्तः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावुपसर्गपूर्वं निष्ठापूर्वपदमन्यतरस्याम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे उपसर्गपूर्वं निष्ठान्तं पूर्वपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०–प्रधौतं मुखं येन सः-प्रधौतमुखः। प्रधौतमुखः। प्रधौतमुखः। प्रक्षालितौ पादौ येन सः-प्रक्षालितपादः। प्रक्षालितपादः।

'प्रधौतमुखः' इत्यत्र यदि मुखशब्दः स्वाङ्गवाची तदा विकल्पपक्षे **'मुखं स्वाङ्गम्'** (६।२।१६७) इत्यनेन मुखशब्दोऽन्तोदात्तो भवति-**प्रधौतमुखः**। यदि मुखशब्दो न स्वाङ्गवाची तदा **'गतिरनन्तरः'** (६।२।४९) इत्यनेन पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणाद्युदात्तः स्वरो भवति-**प्रधौतमुखः**।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपसर्गपूर्वम्) उपसर्ग-पूर्ववाला (निष्ठा) निष्ठान्त (पूर्वपदम्) पूर्वपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-प्रधौतमुखः। प्रधौतमुखः। प्रधौतमुखः। धोये हुये मुखवाला। प्रक्षालितपादः। प्रक्षालितपादः। धोये हुये चरणोंवाला।

'प्रधौतमुखः' यहां यदि मुख शब्द स्वाङ्वाची है तो विकल्प पक्ष में 'मुखं स्वाङ्गम्' (६।२।१६७) से मुख शब्द अन्तोदात्त होता है-प्रधौतमुखः। यदि मुख शब्द स्वाङ्गवाची नहीं है तो 'गतिरनन्तरः' (६।२।४९) से पूर्वपद को आद्युदात्त प्रकृतिस्वर होता है-प्रधौतमुखः।

सिद्धि-(१) प्रधौतमुखः। यहां प्रधौत और मुख शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'प्रधौत' शब्द में प्र-उपसर्गपूर्वक 'धावु गतिशुद्धयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६।४।१९) से धातु के वकार को ऊठ् आदेश और 'एत्येधत्यूठ्सु' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। इस सूत्र से यह उपसर्गपूर्वी निष्ठान्त 'प्रधौत' पूर्वपद विकल्प से अन्तोदात्त होता है। विकल्प पक्ष में 'मुखं स्वाङ्गम्' (६।२।१६७) से मुख शब्द को अन्तोदात्त स्वर होता है जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

*(२) प्रक्षालितमुखः। यहां प्रक्षालित और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'प्रक्षालित' शब्द में प्र-उपसर्गपूर्वक '**क्षल शौचकर्मणि**' (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

।। इति पूर्वपदान्तोदात्तप्रकरणम्।।

उत्तरपदाद्युदात्तप्रकरणम्

अधिकारः-

(१) उत्तरपदादिः।१११।

प०वि०-उत्तरपद-आदिः १।१।

स०-उत्तरपदस्य आदिरिति उत्तरपदादिः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्त इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उत्तरपदस्यादिरुदात्तः।

अर्थः-उत्तरपदादिरित्यधिकारोऽयम्। यद् इतोऽग्रे वक्ष्यति तत्रोत्तरपदस्यादिरुदात्तो भवतीति तद् वेदितव्यम्।

उदा०-वक्ष्यति-कर्णो वर्णलक्षणात् (६।२।११२) इति, शुक्लकर्णः। कृष्णकर्णः, इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उत्तरपदादिः) 'उत्तरपदादिः' यह अधिकार सूत्र है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वहां उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है, ऐसा जानें।*

*उदा०-जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- '**कर्णो वर्णलक्षणात्**' (६।२।११२) यहां उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है-**शुक्लकर्णः। कृष्णकर्णः**, इत्यादि।*

*सिद्धि-**शुक्लकर्णः** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

आद्युदात्तम्-

(२) कर्णो वर्णलक्षणात्।११२।

प०वि०-कर्णः १।१ वर्ण-लक्षणात् ५।१।

स०-वर्णश्च लक्षणं च एतयोः समाहारो वर्णलक्षणम्, तस्मात्-वर्णलक्षणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ वर्णलक्षणात् कर्ण उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे वर्णवाचिनो लक्षणवाचिनश्च परः कर्णशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-(**वर्णः**) शुक्लौ कर्णौ यस्य सः-शुक्लकर्णः। कृष्णकर्णः। (**लक्षणम्**) दात्रं कर्णे यस्य सः-दात्राकर्णः। शङ्कूकर्णः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (वर्णलक्षणात्) वर्णवाची और लक्षणवाची शब्द से परे (कर्णः) कर्ण (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद को आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(वर्ण) **शुक्लकर्णः**। सफेद कानोंवाला। **कृष्णकर्णः**। काले कानोंवाला। (लक्षण) **दात्राकर्णः**। कान पर दात्र (दाती) के लक्षण (चिह्न) वाला। **शङ्कूकर्णः**। कान पर शङ्कु (तीर) के लक्षणवाला।*

*सिद्धि-(१) **शुक्लकर्णः**। यहां शुक्ल और कर्ण शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से वर्णवाची कृष्ण-शब्द से परे कर्ण उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**शुक्लकर्णः**।*

*(२) **दात्राकर्णः**। यहां दात्र और कर्ण शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। '**कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नछिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य**' (६।३।११५) से लक्षणवाची दात्र-शब्द को दीर्घ होता है। इस सूत्र से लक्षणवाची दात्र शब्द से परे कर्ण उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**शङ्कूकर्णः**।*

आद्युदात्तम्-

(३) संज्ञौपम्योश्च।११३।

प०वि०-संज्ञा-औपम्ययोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-उपमाया भाव इति औपम्यम्। संज्ञा च औपम्यं च ते संज्ञौपम्ये, तयोः-संज्ञौपम्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिः, कर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञौपम्ययोश्च बहुव्रीहौ कर्ण उत्तरपदादिरादिरुदात्तः।

अर्थः-संज्ञायाम् औपम्ये च विषयके बहुव्रीहौ समासे च कर्ण-शब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०-(**संज्ञा**) कुञ्चिकर्णः। मणिकर्णः। (**औपम्यम्**) गो कर्णाविव कर्णौ यस्य सः-गोकर्णः। खरकर्णः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञौपम्ययोः) संज्ञा और औपम्य (उपमा) विषयवाले (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (च) भी (कर्णः) कर्ण (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद को आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-(**संज्ञा**) **कुञ्चिकर्णः**। कुञ्चिकर्ण नामक पुरुषविशेष। **मणिकर्णः**। मणिकर्ण नामक पुरुषविशेष। (**औपम्य**) **गोकर्णः**। गौ के कानों के समान कानोंवाला पुरुष। **खरकर्णः**। गधे के कानों के समान कानोंवाला पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **कुञ्चिकर्णः**। यहां मणि और कर्ण शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास में। इस सूत्र से संज्ञाविषयक बहुव्रीहि समास में कर्ण उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**मणिकर्णः**।*

*(२) **गोकर्णः**। यहां गो और कर्ण शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से औपम्य-विषयक बहुव्रीहि समास में कर्ण उत्तरपद आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**खरकर्णः**।*

आद्युदात्तम्-

(४) कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च।११४।

प०वि०-कण्ठ-पृष्ठ-ग्रीवा-जङ्घम् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-कण्ठश्च पृष्ठं च ग्रीवा च जङ्घा च एतेषां समाहारः-कण्ठपृष्ठ-ग्रीवाजङ्घम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिः, संज्ञौपम्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञौपम्ययोर्बहुव्रीहौ कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं चोत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-संज्ञायाम् औपम्ये च विषयके बहुव्रीहौ समासे कण्ठपृष्ठग्रीवा-जङ्घानि उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(**संज्ञायां कण्ठः**) शितिकण्ठः। नीलकण्ठः। (**औपम्ये**) खरकण्ठ इव कण्ठो यस्य सः-खरकण्ठः। उष्ट्रकण्ठः। (**संज्ञायां पृष्ठम्**) काण्डपृष्ठः। नाकपृष्ठः। (**औपम्ये**) गोपृष्ठः। अजपृष्ठः। (**संज्ञायां ग्रीवा**) सुग्रीवः। नीलग्रीवः। (**औपम्ये**) गोग्रीवः। अश्वग्रीवः। (**संज्ञायां जङ्घा**) नारीजङ्घः। तालजङ्घः। (**औपम्ये**) गोजङ्घः। अश्वजङ्घः। एणीजङ्घः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञौपम्ययोः) संज्ञा और औपम्य (उपमा) विषयक (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घम्) कण्ठ, पृष्ठ, ग्रीवा और जङ्घा (उत्तरपदादिरुदात्तः) ये उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-(संज्ञा-कण्ठ) **शितिकण्ठः।** नीले कण्ठवाला-शिव। **नीलकण्ठः।** नीले कण्ठवाला-शिव। (औपम्य) **खरकण्ठः।** गधे के कण्ठ के समान कण्ठवाला पुरुष। **उष्ट्रकण्ठः।** ऊंट के कण्ठ के समान कण्ठवाला पुरुष। (संज्ञा-पृष्ठ) **काण्डपृष्ठः।** सैनिक/शस्त्रजीवी। **नाकपृष्ठः।** संज्ञाविशेष। (औपम्य) **गोपृष्ठः।** गौ (बैल) की पीठ के समान पीठवाला पुरुष। **अजपृष्ठः।** अज (बकरा) की पीठ के समान पीठवाला पुरुष। (संज्ञा-ग्रीवा) **सुग्रीवः।** सुन्दर गर्दनवाला-रामायणकालीन एक राजा का नाम। **नीलग्रीवः।** नीली गर्दनवाला-शिव। (औपम्य) **गोग्रीवः।** गौ (बैल) की गर्दन के समान गर्दनवाला पुरुष। **अश्वग्रीवः।** घोड़े की गर्दन के समान गर्दनवाला पुरुष। (संज्ञा-जङ्घा) **नारीजङ्घः।** संज्ञाविशेष। **तालजङ्घः।** तालजङ्घ नामक देश का राजा/एक वीरजाति के पूर्वज का नाम। (औपम्य) **गोजङ्घः।** गौ की जंघा के समान जंघावाला पुरुष। **अश्वजङ्घः।** घोड़े की जंघा के समान जंघावाला पुरुष। **एणीजङ्घः।** काली हिरनी की जंघा के समान जंघावाला पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **शितिकण्ठः।** यहां शिति और कण्ठ शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषयक बहुव्रीहि समास में कण्ठ उत्तरपद को आद्युदात्तस्वर होता है। ऐसे ही-**काण्ठपृष्ठः** आदि।*

*(२) **खरकण्ठः।** यहां खर और कण्ठ शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से औपम्य विषयक बहुव्रीहि समास में कण्ठ उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**गोपृष्ठः** आदि।*

आद्युदात्तम्-

(५) शृङ्गमवस्थायां च।११५।

प०वि०-शृङ्गम् १।१ अवस्थायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिः, संज्ञौपम्ययोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अवस्थायां संज्ञौपम्ययोर्बहुव्रीहौ शृङ्गम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-अवस्थायां संज्ञायाम् औपम्ये च विषयके बहुव्रीहौ समासे शृङ्गशब्द उत्तरपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०-(अवस्था) उद्गते शृङ्गे यस्य सः-उद्गतशृङ्गः। द्व्यङ्गुले शृंगे यस्य सः-द्व्यङ्गुलशृङ्गः। त्र्यङ्गुलशृङ्गः। अत्र शृङ्गोद्गमादिकृतो गवादेर्वयोविशेषोऽवस्था ज्ञायते। **(संज्ञा)** ऋष्यशृङ्गः। **(औपम्यम्)** गोशृङ्गे इव शृङ्गे यस्य सः-गोशृङ्गः। मेषशृङ्गः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अवस्थायाम्) आयु (संज्ञौपम्ययोः) संज्ञा और औपम्य (उपमा) विषयक (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (शृङ्गम्) शृङ्ग-शब्द (उत्तरपदादिरुदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होता है।*

उदा०-(अवस्था) उद्गतशृङ्गः। निकले हुये सींगोंवाला बैल। द्व्यङ्गुलशृङ्गः। दो अंगुल प्रमाण सींगोंवाला बैल। त्र्यङ्गुलशृङ्गः। तीन अंगुल प्रमाण सींगोंवाला बैल। यहां सींगों के निकलने आदि से गौ (बैल) आदि की अवस्था (आयु) जानी जाती है। (संज्ञा) ऋष्यशृङ्गः। विभाण्डक ऋषि के पुत्र का नाम। (औपम्य) गोशृङ्गः। गौ (बैल) के सींगों के समान सींगोंवाला पशु। मेषशृङ्गः। मेष (भेड़) के सींगों के समान सींगोंवाला पशु।

सिद्धि-उद्गतशृङ्गः। यहां उद्गत और शृङ्ग शब्दों का ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से अवस्था विषयक बहुव्रीहि समास में शृङ्ग उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-द्व्यङ्गुलशृङ्गः आदि।*

आद्युदात्तम्-

(६) नञो जरमरमित्रमृताः।११६।

प०वि०-नञः ५।१ जर-मर-मित्र-मृताः १।३।

स०-जरश्च मरश्च मित्रं च मृतश्च ते-जरमरमित्रमृताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञो जरमरमित्रमृताः उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञः परे जरमरमित्रमृताः शब्दा उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(**जरः**) अविद्यमानो जरो यस्य सः-अजरः। (**मरः**) अविद्यमानो मरो यस्य सः-अमरः। (**मित्रम्**) अविद्यमानं मित्रं यस्य सः-अमित्रः। (**मृतः**) अविद्यमानो मृतो यस्य सः-अमृतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञः) नञ् से परे (जरमरमित्रमृताः) जर, मर, मित्र और मृत शब्द (उत्तरपदादिरुदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-(जर) अजरः। अविद्यमान जरणवाला (ईश्वर)। (मर) अमरः। अविद्यमान मरणवाला (ईश्वर)। (मित्र) अमित्रः। अविद्यमान मित्रवाला पुरुष। (मृत) अमृतः। अविद्यमान मरणवाला (ईश्वर)।

सिद्धि-अजरः। यहां नञ् और जर शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से नञ् से परे जर उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अमरः आदि।

आद्युदात्तम्-

(७) सोर्मनसी अलोमोषसी।११७।

प०वि०-सोः ५।१ मनसी १।२ अलोमोषसी १।२।

स०-मन् च अस् च ते-मनसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। लोम च उषस् च ते लोमोषसी, न लोमोषसी इति अलोमोषसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सोर्मनसी, उत्तरपदादिरुदात्तः, अलोमोषसी।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सु-शब्दात् परं मन्नन्तम् असन्तं चोत्तरपदम् आद्युदात्तं भवति, लोमोषसी शब्दौ वर्जयित्वा।

उदा०-(मन्) शोभनं कर्म यस्य सः-सुकर्मा। सुधर्मा। सुप्रथिमा। **(अस्)** शोभनं पयो यस्य सः-सुपयाः। सुयशाः। सुस्रोताः। सुस्रत्। सुध्वत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सोः) सु-शब्द से परे (मनसी) मन्नन्त और असन्त शब्द (उत्तरपदादिरुदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं (अलोमोषसी) लोमन् और उषस् शब्दों को छोड़कर।*

*उदा०-(मन्) **सुकर्मा**। शोभन कर्मवाला। **सुधर्मा**। शोभन धर्मवाला। **सुप्रथिमा**। शोभन प्रसिद्धिवाला। (अस्) **सुपयाः**। शोभन पयस् (दूध/पानी) वाला। **सुयशाः**। शोभन यशवाला। **सुस्रोताः**। शोभन स्रोतवाला। **सुस्रत्**। अति अधःपतनवाला। **सुध्वत्**। अति अधःपतनवाला।*

*सिद्धि-(१) **सुकर्मा**। यहां सु और कर्मन् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सु' शब्द से परे अन्नन्त 'कर्मन्' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**सुधर्मा** आदि।*

*(२) **सुस्रत्**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक 'स्रंसु ध्वंसु अधःपतने' (दि०प०) धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर 'सुस्रस्' शब्द सिद्ध होता है। 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' (८।२।७२) से सकार को दकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से दकार को तकार आदेश होता है। ऐसे ही-**सुध्वत्**। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्तम्–

(८) क्रत्वादयश्च ।११८।

प०वि०–क्रतु–आदयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्रतुरादिर्येषां ते–क्रत्वादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादि, सोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ सोः क्रत्वादयश्च उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे सु–शब्दात् परे क्रत्वादयः शब्दाश्च उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०–शोभनः क्रतुर्यस्य सः–सुक्रतुः। सुदृशीकः, इत्यादिकम्।

क्रतु। दृशीक। प्रतीक। प्रपूर्ति। हव्य। भग। इति क्रत्वादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सोः) सु–शब्द से परे (क्रत्वादयः) क्रतु–आदि शब्द (च) भी (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०–सुक्रतुः। शोभन क्रतु (सोमयज्ञ) वाला। सुदृशीकः। सुन्दर आंखोंवाला, इत्यादि।

*सिद्धि–सुक्रतुः। यहां सु और क्रतु शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से सु–शब्द से परे क्रतु उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–सुदृशीकः।*

आद्युदात्तमेव–

(९) आद्युदात्तं द्व्यच् छन्दसि ।११९।

प०वि०–आद्युदात्तम् १।१ द्व्यच् १।१ छन्दसि ७।१।

स०–आदिरुदात्तो यस्य तत्–आद्युदात्तम् (बहुव्रीहिः)। द्वावचौ यस्मिँस्तत्–द्व्यच् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिः, सोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि बहुव्रीहौ सोर्द्व्यज् आद्युदात्तम्, उत्तरपदादिः, उदात्तः।

अर्थः–छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे सु–शब्दात् परं द्व्यच् आद्युदात्तम् उत्तरपदम्, आद्युदात्तमेव भवति।

उदा०–शोभना अश्वा येषां ते–स्वश्वाः। शोभना रथा येषां ते–सुरथाः। स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेम (ऋ० ४।४।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सोः) सु-शब्द से परे (द्व्यच्) दो अचोंवाला (आद्युदात्तम्) आद्युदात्त (उत्तरपादादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त ही होता है।*

*उदा०-**स्वश्वाः।** सुन्दर घोड़ोंवाले। **सुरथाः।** सुन्दर रथोंवाले। **स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेम** (ऋ० ४।४।८)।*

***सिद्धि-स्वश्वाः।** यहां सु और अश्व शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से वेदविषय में तथा बहुव्रीहि समास में सु-शब्द से परे दो अचोंवाला 'अश्व' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर ही होता है। ऐसे ही-**सुरथाः।** यह '**नञ्सुभ्याम्**' (६।२।१७२) से प्राप्त अन्तोदात्त स्वर का अपवाद है।*

आद्युदात्तम्-

(१०) वीरवीर्यौ च।१२०।

प०वि०-वीर-वीर्यौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-वीरश्च वीर्यं च तौ-वीरवीर्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अस्मादेव निपातनात् पूर्ववल्लिङ्गं वेदितव्यम्।

अनु०-उदात्तः, बहुव्रीहौ, उत्तरपदादिः, सोः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुव्रीहौ सोर्वीरवीर्यौ चोत्तरपदादिः, उदात्तः।

अर्थः-छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे सु-शब्दात् परौ वीरवीर्यौ शब्दौ चोत्तरपदे आद्युदात्ते भवतः।

उदा०-**(वीरः)** शोभनो वीरो यस्य सः-सुवीरः। सुवीरस्ते (ऋ० ४।१७।४)। शोभनं वीर्यं यस्य सः-सुवीर्यः। सुवीर्यस्य पतयः स्याम (तै०सं० १।७।१३।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में तथा (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सोः) सु-शब्द से परे (वीरवीर्यौ) वीर और वीर्य शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-(वीर) **सुवीरः।** सुन्दर वीरवाला। **सुवीरस्ते** (ऋ० ४।१७।४)। **सुवीर्यः।** शुद्ध वीर्यवाला। **सुवीर्यस्य पतयः स्याम** (तै०सं० १।७।१३।४)।*

सिद्धि-सुवीरः।** यहां सु और वीर शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से वेदविषय में तथा बहुव्रीहि समास में सु-शब्द से परे वीर उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**सुवीर्यः।

आद्युदात्तम्–

(११) कूलतीरतूलमूलशालाक्षसममव्ययीभावे।१२१।

प०वि०–कूल–तीर–तूल–मूल–शाला–अक्ष–समम् १।१ अव्ययी-भावे ७।१।

स०–कूलं च तीरं च तूलं च मूलं च शाखा च अक्षं च समं च एतेषां समाहारः–कूलतीरतूलमूलशालाक्षसमम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे कूलतीरतूलमूलशालाक्षसमम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–अव्ययीभावे समासे कूलतीरतूलमूलशालाक्षसमानि उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०–**(कूलम्)** परि कूलादिति परिकूलम्। कूलस्य समीपमिति उपकूलम्। **(तीरम्)** परितीरम्। उपतीरम्। **(तूल)** परितूलम्। उपतूलम्। **(मूलम्)** परिमूलम्। उपमूलम्। **(शाला)** परिशालम्। उपशालम्। **(अक्षम्)** पर्यक्षम्। उपाक्षम्। **(समम्)** सुषमम्। विषमम्। निषमम्। दुःषमम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में (कूल०समम्) कूल, तीर, तूल, मूल, शाला, अक्ष और सम शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०–(कूल) **परिकूलम्**। कूल=तट को छोड़कर। **उपकूलम्**। तट के समीप। (तीर) **परितीरम्**। तीर को छोड़कर। **उपतीरम्**। तीर के समीप। (तूल) **परितूलम्**। तूल (रूई) को छोड़कर। **उपतूलम्**। तूल के समीप। (मूल) **परिमूलम्**। मूल को छोड़कर। **उपमूलम्**। मूल के समीप। (शाला) **परिशालम्**। शाला (घर) को छोड़कर। **उपशालम्**। शाला के समीप। (अक्ष) **पर्यक्षम्**। अक्ष=पासे को छोड़कर। **उपाक्षम्**। पासे के समीप। (सम) **सुषमम्**। अति सम (समान)। **विषमम्**। विकृत सम। **निषमम्**। निकृष्ट सम। **दुःषमम्**। दुष्ट सम। सम=सदृश।*

सिद्धि–(१) परिकूलम्। *यहां परि और कूल शब्दों का **'अपपरिवहिरञ्चवः पञ्चम्या'** (२।१।११) से अव्ययीभाव समास है। परि शब्द की **'अपपरी वर्जने'** (१।४।८७) से कर्म प्रवचनीय संज्ञा और उसके योग में **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** (२।३।१०) से पंचमी विभक्ति होती है। इस सूत्र से अव्ययीभाव समास में कूल उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**परितीरम्** आदि।*

(२) उपकूलम्। यहां उप और कूल शब्दों का 'अव्ययं विभक्तिसमीप०' (२।१।६) से अव्ययीभाव समास है। इस सूत्र से अव्ययीभाव समास में कूल उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-उपतीरम् आदि।

(३) सुषमम्। यहां सु और सम शब्दों का 'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च' (२।१।१६) से अव्ययीभाव समास है। 'सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः' (८।३।८८) से षत्व होता है। उसके असिद्ध अधिकार में होने से यह यहां 'सम' शब्द ही माना जाता है। इस सूत्र से अव्ययीभाव समास में सम उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-विषमम्, निषमम्, दुःषमम्।

आद्युदात्तम्—

(१२) कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ।१२२।

प०वि०-कंस-मन्थ-शूर्प-पाय्य-काण्डम् १।१ द्विगौ ७।१।

स०-कंसं च मन्थश्च शूर्पं च पाय्यं च काण्डं च एतेषां समाहारः-कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विगौ कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डम् उत्तरपदादिः, उदात्तः।

अर्थः-द्विगौ समासे कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डानि उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(कंसम्) द्वाभ्यां कंसाभ्यां क्रीत इति द्विकंसः। त्रिकंसः। **(मन्थः)** द्वाभ्यां मन्थाभ्यां क्रीत इति द्विमन्थः। त्रिमन्थः। **(शूर्पम्)** द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीत इति द्विशूर्पः। त्रिशूर्पः। **(पाय्यम्)** द्वाभ्यां पाय्याभ्यां क्रीत इति द्विपाय्यः। त्रिपाय्यः। **(काण्डम्)** द्वे काण्डे प्रमाणमस्येति द्विकाण्डः। त्रिकाण्डः।

आर्यभाषाः अर्थ-(द्विगौ) द्विगु समास में (कंस०काण्डम्) कंस, मन्थ, शूर्प, पाय्य और काण्ड शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होते हैं।

उदा०-(कंस) द्विकंसः। दो कंसों से खरीदा हुआ पदार्थ। त्रिकंसः। तीन कंसों से खरीदा हुआ पदार्थ। (मन्थ) द्विमन्थः। दो मन्थों से खरीदा हुआ पदार्थ। त्रिमन्थः। तीन मन्थों से खरीदा हुआ पदार्थ। (शूर्प) द्विशूर्पः। दो शूर्पों से खरीदा हुआ पदार्थ। त्रिशूर्पः। तीन शूर्पों से खरीदा हुआ पदार्थ। (पाय्य) द्विपाय्यः। दो पाय्यों से खरीदा हुआ पदार्थ। त्रिपाय्यः। तीन पाय्यों से खरीदा हुआ पदार्थ। (काण्ड) द्विकाण्डः। दो काण्ड प्रमाण (लम्बाई) वाला पदार्थ। त्रिकाण्डः। तीन काण्ड प्रमाणवाला पदार्थ।

सिद्धि-(१) द्विकंसः। यहां द्वि और कंस शब्दों का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५०) से तद्धित-अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। द्विकंस शब्द में 'कंसाट्टिठन्' (५।१।२५) से क्रीत-अर्थ में टिठन् प्रत्यय और 'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्' (५।१।२८) से उसका लुक् होता है। इस सूत्र से द्विगुसमास में कंस उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-त्रिकंसः द्विमन्थः। त्रिमन्थः।

(२) द्विशूर्पः। यहां द्वि और शूर्प शब्दों का पूर्ववत् द्विगुतत्पुरुष समास है। द्विशूर्प शब्द से 'शूर्पादञन्यतरस्याम्' (५।१।२६) से क्रीत-अर्थ में अञ् प्रत्यय और उसका पूर्ववत् लुक् होता है। इस सूत्र से द्विगुसमास में शूर्प उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-त्रिशूर्पः।

(३) द्विपाय्यः। यहां द्वि और पाय्य शब्दों का पूर्ववत् द्विगुतत्पुरुष समास है। 'द्विपाय्य' शब्द से 'तेन क्रीतम्' (५।१।३७) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय और उसका पूर्ववत् लुक् होता है। इस सूत्र से द्विगुसमास में 'पाय्य' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-त्रिपाय्यः।

(४) द्विकाण्डः। यहां द्वि और काण्ड शब्दों का पूर्ववत् द्विगुतत्पुरुष समास है। 'द्विकाण्ड' शब्द से 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' (५।२।३७) से 'द्वयसच्' आदि प्रत्यय और उनका वा०-'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्' (५।२।३७) से लुक् होता है। इस सूत्र से द्विगुसमास में काण्ड उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-त्रिकाण्डः।

विशेषः (१) कंस-चरक के अनुसार कंस आठ प्रस्थ या दो आढक के बराबर था। वह अर्थशास्त्र की तालिका के अनुसार पांच सेर और चरक की तालिका के अनुसार ६$\frac{२}{५}$ सेर के बराबर हुआ।

(२) मन्थ-इसकी ठीक तोल किसी तालिका में नहीं मिलती। सम्भव है 'मन्थ' द्रोण का पर्यायवाची हो। कौटिल्य के अनुसार द्रोण १० सेर की तोल थी। वही सम्भवतः मन्थ की भी तोल थी।

(३) शूर्प-चरक ने दो द्रोण का शूर्प माना है, जिसे कुम्भ भी कहते थे। उनकी तालिका के अनुसार शूर्प=४०९६ तोला=१ मन ११ सेर १६ तोला (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २४५)।

(४) पाय्य-अन्न मांपने का पात्रविशेष मांप आदि।

(५) काण्ड-काण्ड एक नाप थी। जिसकी लम्बाई १६ हाथ मानी जाती थी 'षोडशारत्न्यायामो दण्डः काण्डम्' (बालमनोरमा)। अरत्नि=दो वितस्ति या २४ अंगुल=१८ इंच। इस प्रकार एक काण्ड खेत २४ फुट से २४ फुट हुआ (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १९९)।

आद्युदात्तम्–

(१३) तत्पुरुषे शालायां नपुंसके।१२३।

प०वि०–तत्पुरुषे ७।१ शालायाम् ७।१ नपुंसके ७।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–नपुंसके शालायां तत्पुरुषे उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–नपुंसकलिङ्गे शाला-शब्दान्ते तत्पुरुषे समासे उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०–ब्राह्मणस्य शालेति ब्राह्मणशालम्। क्षत्रियस्य शालेति क्षत्रियशालम्। आर्यशालम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में (शालायाम्) शाला-शब्दान्तवाले (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**ब्राह्मणशालम्।** ब्राह्मण का घर। **क्षत्रियशालम्।** क्षत्रिय का घर। **आर्यशालम्।** आर्य का घर।*

*सिद्धि–**ब्राह्मणशालम्।** यहां ब्राह्मण और शाला शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। यह **'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्'** (२।४।२५) से नपुंसकलिङ्ग है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग, शालाशब्दान्त तत्पुरुष समास में शाला उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**क्षत्रियशालम्, आर्यशालम्।***

आद्युदात्तम्–

(१४) कन्था च।१२४।

प०वि०–कन्था १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे, नपुंसके इति चानुवर्तते।

अन्वयः–नपुंसके तत्पुरुषे कन्था चोत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–नपुंसकलिङ्गे तत्पुरुषे समासे कन्था-शब्दश्चोत्तरपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०–सौशमिनां कन्था इति सौशमिकन्थम्। आह्वरकन्थम्। चप्पकन्थम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कन्था) कन्था शब्द (च) भी (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**सौशमिकन्थ्यम्**। उशीनर देशवासी सौशमिजनों की कन्था (बिछौना-विशेष)। **आह्वरकन्थम्**। आह्वरजनों की कन्था। **चप्पकन्थम्**। चप्पजनों की कन्था।*

*सिद्धि-**सौशमिकन्थम्**। यहां सौशमि और कन्था शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। यह **'संज्ञायां कन्थोशीनरेषु'** (२।४।२०) से नपुंसकलिङ्ग है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्गवाले तत्पुरुष समास में कन्था उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है।*

आद्युदात्तम्-

(१५) आदिश्चिहणादीनाम्।१२५।

प०वि०-आदिः १।१ चिहण-आदीनाम् ६।३।

स०-चिहण आदिर्येषां ते चिहणादयः, तेषाम्-चिहणादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, तत्पुरुषे, नपुंसके, कन्था इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसके कन्थान्ते तत्पुरुषे चिहणादीनामादिरुदात्तः।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गे कथान्ते तत्पुरुषे समासे चिहणादीनां पूर्वपदानामाद्युदात्तो भवति।

उदा०-चिहणानां कन्था इति चिहणकन्थम्। मडरकन्थम्। आदिरित्यनुवर्तमाने पुनरादिग्रहणं पूर्वपदानामाद्युदात्तार्थं वेदितव्यम्।

चिहण। मडर (मडुर)। वैतुल। पटत्क। वैडालिकर्ण। वैतालिकर्ण। कुक्कुट। चित्कण। चिक्कण इति चिहणादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नपुंसके) नपुंसकलिङ्ग में (कन्था) कन्था-शब्दान्तवाले (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (चिहणादीनाम्) चिहण आदि पूर्वपदों को (आदिः, उदात्तः) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**चिहणकन्थम्**। उशीनर देशवासी चिहणजनों की कन्था (बिछौना-विशेष)। **मडरकन्थम्**। मडरजनों की कन्था।*

*सिद्धि-**चिहणकन्थम्**। यहां चिहण और कन्था शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। यह **'संज्ञायां कन्थोशीनरेषु'** (२।४।२०) से नपुंसकलिङ्ग है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्गवाले कन्थान्त तत्पुरुष समास में चिहण पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**मडरकन्थम्**।*

यहां 'आदिः' पद की अनुवृत्ति होने पर पुनः 'आदिः' पद का ग्रहण चिहण-आदि पूर्वपदों को आद्युदात्त विधान के लिये किया गया है।

आद्युदात्तम्–

(१६) चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम्।१२६।

प०वि०–चेल-खेट-कटुक-काण्डम् १।१ गर्हायाम् ७।१।

स०–चेलं च खेटं च कटुकं च काण्डं च एतेषां समाहारः-चेलखेट-कटुककाण्डम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे चेलखेटकटुककाण्डम् उत्तरपदादिरुदात्तः, गर्हायाम्।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे चेलखेटकटुककाण्डानि उत्तपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति, गर्हायां गम्यमानायाम्।

उदा०–**(चेलम्)** पुत्रश्चेलमिव इति पुत्रचेलम्। भार्याचेलम्। **(खेटम्)** उपानत् खेटमिव इति उपानत्खेटम्। नगरखेटम्। **(कटुकम्)** दधि कटुकमिव इति दधिकटुकम् उदश्वित्कटुकम्। **(काण्डम्)** भूतं काण्डमिव इति भूतकाण्डम्। प्रजाकाण्डम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (चेलखेटकटुककाण्डम्) चेल, खेट, कटुक और काण्ड शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं, (गर्हायाम्) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०–(चेल) **पुत्रचेलम्।** जो पुत्र जीर्ण वस्त्र के समान त्याज्य है-कुपुत्र। **भार्याचेलम्।** जो भार्या (पत्नी) जीर्ण वस्त्र के समान हेय है-कुभार्या। **(खेटम्)** **उपानत्खेटम्।** उपानत् (जूता) खेट=ऊजड़ खेड़ा के समान दुःखदायक है-खराब जूता। **नगरखेटम्।** जो नगर खेट=ऊजड़ खेड़ा के समान है-कुनगर। (कटुक) **दधिकटुकम्।** कटु पदार्थ के समान अस्वादु दही। **उदश्वित्कटुकम्।** कटु पदार्थ के समान अस्वादु लस्सी। (काण्ड) **भूतकाण्डम्।** काण्ड=शर (बाण) के समान पीड़ाकर भूत (प्राणी)। **प्रजाकाण्डम्।** शर के समान पीड़ाकर प्रजा।*

*सिद्धि–**पुत्रचेलम्।** यहां पुत्र और चेल शब्दों का '**उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे**' (२।१।५५) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में तथा गर्हा (निन्दा) अर्थ की प्रतीति में 'चेल' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**भार्याचेलम्** आदि।*

आद्युदात्तम्–

(१७) चीरमुपमानम्।१२७।

प०वि०–चीरम् १।१ उपमानम् १।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे समासे उपमानं चीरम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे उपमानवाचि चीरम् उत्तरपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०–वस्त्रं चीरम् इव इति वस्त्रचीरम्। पटचीरम्। कम्बलचीरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (उपमानम्) उपमानवाची (चीरम्) चीर शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**वस्त्रचीरम्।** जो वस्त्र चीर (चिथड़ा) के समान है–फटा वस्त्र। **पटचीरम्।** जो कपड़ा चीर के समान है–फटा कपड़ा। **कम्बलचीरम्।** जो कम्बल चीर के समान है–फटा कम्बल।*

सिद्धि–वस्त्रचीरम्।** यहां वस्त्र और चीर शब्दों का '**उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे**' (२।१।५५) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में उपमानवाची 'चीर' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**पटचीरम्, कम्बलचीरम्।

आद्युदात्तम्–

(१८) पललसूपशाकं मिश्रे।१२८।

प०वि०–पलल–सूप–शाकम् १।१ मिश्रे ७।१।

स०–पललं च सूपश्च शाकं च एतेषां समाहारः–पललसूपशाकम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मिश्रे तत्पुरुषे पललसूपशाकम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–मिश्रवाचिनि तत्पुरुषे समासे पललसूपशाकानि उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०–(**पललम्**) गुडेन मिश्रं पललमिति–गुडपललम्। घृतपललम्। (**सूपः**) घृतेन मिश्रः सूप इति घृतसूपः। मूलकसूपः। (**शाकम्**) घृतेन मिश्रं शाकमिति घृतशाकम्। मुद्गशाकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मिश्रे) मिश्रीकरणवाची (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पललसूप-शाकम्) पलल, सूप और शाक शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-(पलल) गुडपललम्। गुड़ मिला हुआ मांस। घृतपललम्। घी मिला हुआ मांस। (सूप) घृतसूपः। घी मिली हुई दाल। मूलकसूपः। मूली मिली हुई दाल। (शाक) घृतशाकम्। घी मिला हुआ साग। मुद्गशाकम्। मूंग मिला हुआ साग।

*सिद्धि-गुडपललम्। यहां गुड और पलल शब्दों का **'भक्ष्येण मिश्रीकरणम्'** (२।१।३४) से मिश्रीकरणवाची तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से उक्त तत्पुरुष समास में 'पलल' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-घृतपललम् आदि।*

आद्युदात्तम्-

(१६) कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम्।१२६।

प०वि०-कूल-सूद-स्थल-कर्षाः १।३ संज्ञायाम् ७।१।

स०-कूलं च सूदं च स्थलं च कर्षश्च ते-कूलसूदस्थलकर्षाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां तत्पुरुषे कूलसूदस्थलकर्षा उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषये कूलसूदस्थलकर्षा उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-**(कूलम्)** दाक्षिकूलम्। माहकिकूलम्। **(सूदम्)** देवसूदम्। भाजीसूदम्। **(स्थलम्)** दाण्डायनस्थली। माहकिस्थली। **(कर्षः)** दाक्षिकर्षः। एतानि ग्रामनामानि सन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कूलसूदस्थलकर्षाः) कूल, सूद, स्थल और कर्ष शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-(कूल) दाक्षिकूलम्। माहकिकूलम्। (सूद) देवसूदम्। भाजीसूदम्। (स्थल) दाण्डायनस्थली। माहकिस्थली। (कर्ष) दाक्षिकर्षः। ये 'दाक्षिकूल' आदि ग्रामों की संज्ञायें हैं।

*सिद्धि-दाक्षिकूलम्। यहां दाक्षि और कूल शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञा-विषयक तत्पुरुष समास में 'कूल' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-माहकिकूलम् आदि।*

आद्युदात्तम्–

(२०) अकर्मधारये राज्यम्।१३०।

प०वि०–अकर्मधारये ७।१ राज्यम् १।१।

स०–न कर्मधारय इति अकर्मधारयः, तस्मिन्– अकर्मधारये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्मधारये तत्पुरुषे राज्यम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–कर्मधारयभिन्ने तत्पुरुषे समासे राज्यमिति उत्तरपदमाद्युदात्तं भवति।

उदा०–ब्राह्मणानां राज्यमिति ब्राह्मणराज्यम्। क्षत्रियराज्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अकर्मधारये) कर्मधारय से भिन्न (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (राज्यम्) राज्य यह (उत्तरपदादिः) उत्तरपद आद्युदात्त होता है।*

*उदा०–**ब्राह्मणराज्यम्**। ब्राह्मणों का राज्य। **क्षत्रियराज्यम्**। क्षत्रियों का राज्य।*

*सिद्धि–**ब्राह्मणराज्यम्**। यहां ब्राह्मण और राज्य शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कर्मधारय भिन्न तत्पुरुष समास में राज्य शब्द उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**क्षत्रियराज्यम्**।*

आद्युदात्तम्–

(२१) वर्ग्यादयश्च।१३१।

प०वि०–वर्ग्य-आदयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०–वर्ग्य आदिर्येषां ते–वर्ग्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे, अकर्मधारये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्मधारये तत्पुरुषे वर्ग्यादयश्च उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः–कर्मधारयभिन्ने तत्पुरुषे समासे वर्ग्यादयः शब्दाश्च उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०–वासुदेवस्य वर्ग्य इति वासुदेववर्ग्यः। वासुदेवपक्ष्यः। अर्जुनस्य वर्ग्य इति अर्जुनवर्ग्यः। अर्जुनपक्ष्यः।

'दिगादिभ्यो यत्' (४।३।५४) इत्यत्र दिगादिषु ये वर्गादयः शब्दाः पठ्यन्ते ते एव यत्प्रत्ययान्ताः सन्तोऽत्र वर्ग्यादय इति कथ्यन्ते। ते चेमे-वर्ग। पूग। गण। पक्ष। धाय्या। मित्र। मेधा। अन्तर। पथिन्। रहस्। अलीक। उखा। साक्षिन्। आदि। अन्त। मुख। जघन। मेघ। यूथ। उदकात् संज्ञायाम्। न्याय। वंश। अनुवंश। विश। काल। अप। आकाश इति वर्गादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकर्मधारये) कर्मधारय से भिन्न (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (वर्ग्यादयः) वर्ग्य-आदि शब्द (च) भी (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं।*

उदा०-वासुदेववर्ग्यः। वासुदेव (कृष्ण) के वर्ग में रहनेवाला पुरुष। वासुदेवपक्ष्यः। वासुदेव के पक्ष में रहनेवाला पुरुष। अर्जुनवर्ग्यः। अर्जुन के वर्ग में रहनेवाला पुरुष। अर्जुनपक्ष्यः। अर्जुन के पक्ष में रहनेवाला पुरुष।

*सिद्धि-वासुदेववर्ग्यः। यहां वासुदेव और वर्ग्य शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कर्मधारय से भिन्न तत्पुरुष समास में वर्ग्य उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-वासुदेवपक्ष्यः आदि।*

आद्युदात्तम्-

(२२) पुत्रः पुंभ्यः।१३२।

प०वि०-पुत्रः १।१ पुंभ्यः ५।३।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे पुंभ्यः पुत्र उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे पुंलिङ्गशब्देभ्यः परं पुत्रशब्द उत्तरपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०-कौनटेः पुत्र इति कौनटिपुत्रः। दामकपुत्रः। माहिषकपुत्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (पुंभ्यः) पुंलिङ्ग शब्दों से परे (पुत्रः) पुत्र-शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होता है।*

उदा०-कौनटिपुत्रः। कौनटि का पुत्र। दामकपुत्रः। दामक का पुत्र। माहिषकपुत्रः। माहिषक का पुत्र।

*सिद्धि-कौनटिपुत्रः। यहां कौनटि और पुत्र शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पुंलिङ्ग कौनटि शब्द से परे पुत्र उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-दामकपुत्रः, माहिषकपुत्रः।*

आद्युदात्तप्रतिषेधः–

(२३) नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः ।१३३।

प०वि०–न अव्ययपदम्, आचार्य-राज-ऋत्विक्-संयुक्त-ज्ञात्याख्येभ्यः ५ ।३ ।

स०–आचार्यश्च राजा च ऋत्विक् च संयुक्तश्च ज्ञातिश्च ताः–आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञातयः, आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञातय आख्या येषां ते–आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्याः, तेभ्यः–आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः) ।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे, पुत्र इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तत्पुरुषे आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः पुत्र उत्तरपदादिरुदात्तो न ।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे आचार्यर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः पुत्र-शब्द उत्तरपदमाद्युदात्तं न भवति ।

उदा०–**(आचार्यः)** आचार्यस्य पुत्र इति आचार्यपुत्रः । उपाध्यायपुत्रः । शाकटायनपुत्रः । **(राजा)** राज्ञः पुत्र इति राजपुत्रः । ईश्वरपुत्रः । नन्दपुत्रः । **(ऋत्विक्)** ऋत्विजः पुत्र इति ऋत्विक्पुत्रः । याजकपुत्रः । होतुःपुत्रः । **(संयुक्तः)** संयुक्तस्य पुत्र इति संयुक्तपुत्रः । सम्बन्धिपुत्रः । श्यालपुत्रः । **(ज्ञातिः)** ज्ञातेः पुत्र इति ज्ञातिपुत्रः । स्वपुत्रः । भ्रातुष्पुत्रः ।

अत्राऽऽख्याशब्दग्रहणात् तत्स्वरूपस्य तत्पर्यायाणां तद्विशेषाणां च शब्दानां ग्रहणं क्रियते ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (आचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः) आचार्य, राजा, ऋत्विक्, संयुक्त और ज्ञाति शब्दों, इनके पर्यायवाची तथा इनके विशेषवाची शब्दों से परे (पुत्रः) पुत्र-शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त (न) नहीं होता है ।*

उदा०-(आचार्य) आचार्यपुत्रः । आचार्य का पुत्र (स्वरूप) । उपाध्यायपुत्रः । उपाध्याय का पुत्र (पर्यायवाची) । शाकटायनपुत्रः । शाकटायन का पुत्र (आचार्यविशेष) । (राजा) राजपुत्रः । राजा का पुत्र (स्वरूप) । ईश्वरपुत्रः । ईश्वर का पुत्र (पर्यायवाची) । नन्दपुत्रः । नन्द का पुत्र (राजाविशेष) । (ऋत्विक्) ऋत्विक्पुत्रः । ऋत्विक् का पुत्र (स्वरूप) ।

याजकपुत्रः। याजक का पुत्र (पर्यायवाची)। होतुःपुत्रः। होता का पुत्र (ऋत्विग्विशेष)। (संयुक्त) संयुक्तपुत्रः। संयुक्त का पुत्र (स्वरूप)। सम्बन्धिपुत्रः। सम्बन्धी का पुत्र (पर्यायवाची)। श्यालपुत्रः। साळे का पुत्र (संयुक्तविशेष)। (ज्ञाति) ज्ञातिपुत्रः। ज्ञाति का पुत्र (स्वरूप)। स्वपुत्रः। खुद का पुत्र (पर्यायवाची)। भ्रातुष्पुत्रः। भाई का पुत्र (ज्ञातिविशेष)।

यहां सूत्र में आख्या-शब्द के ग्रहण करने से आचार्य आदि के स्वरूप का, उनके पर्यायवाची शब्दों का तथा उनके विशेषवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है, जैसे कि उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है।

***सिद्धि-(१)** आचार्यपुत्रः। यहां आचार्य और पुत्र शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में आचार्य शब्द से परे 'पुत्र' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर नहीं होता है। अतः **'समासस्य'** (६।१।२१७) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-उपाध्यायपुत्रः आदि।*

*(२) होतुःपुत्रः और भ्रातुष्पुत्रः शब्दों में **'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः'** (६।३।२३) से षष्ठीविभक्ति का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आद्युदात्तम्-

(२४) चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः।१३४।

प०वि०-चूर्ण-आदीनि १।३ अप्राणि-षष्ठ्याः ५।१।

स०-चूर्ण आदिर्येषां तानि-चूर्णादीनि (बहुव्रीहिः)। न प्राणी इति अप्राणी, अप्राणिनः षष्ठी इति अप्राणिषष्ठी, तस्याः-अप्राणिषष्ठ्याः (नञ्तत्पुरुषगर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषेऽप्राणिषष्ठ्याश्चूर्णादीनि उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासेऽप्राणिवाचिनः षष्ठ्यन्ताच्छब्दात् पराणि चूर्णादीनि उत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-मुद्गस्य चूर्णमिति मुद्गचूर्णम्। मसूरचूर्णम् इत्यादिकम्।

चूर्ण। करिप। करिव। शाकिन। शाकट। द्राक्षा। तूस्त। कुन्दम। दलप। चमसी। चक्कन। चौल इति चूर्णादयः।।

'चूर्णादीन्यप्राण्युपग्रहात्' इति सूत्रस्य पाठान्तरम्, तत्र उपग्रह इति षष्ठ्यन्तमेव पूर्वाचार्योपचारेण गृह्यते' (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अप्राणिषष्ठ्याः) अप्राणीवाची षष्ठयन्त शब्द से परे (चूर्णादीनि) चूर्ण आदि शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-**मुद्गचूर्णम्।** मूंग दाल का चून (आटा)। **मसूरचूर्णम्।** मसूर दाल का चून इत्यादि।*

सिद्धि-मुद्गचूर्णम्। *यहां मुद्ग और चूर्ण शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अप्राणीवाची षष्ठ्यन्त मुद्ग शब्द से परे 'चूर्ण' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**मसूरचूर्णम्।***

आद्युदात्तम्–

(२५) षट् च काण्डादीनि।१३५।

प०वि०-षट् १।१ च अव्ययपदम्, काण्ड-आदीनि १।३।

स०-काण्ड आदिर्येषां तानि-काण्डादीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०- उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे, अप्राणिषष्ठ्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे, अप्राणिषष्ठ्याः षट् काण्डादीनि चोत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासेऽप्राणिवाचिनः षष्ठ्यन्ताच्छब्दात् पराणि षट् काण्डादीनि चोत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(काण्डम्) दर्भस्य काण्डमिति दर्भकाण्डम्। शरकाण्डम्। **(चीरम्)** दर्भस्य चीरमिति दर्भचीरम्। कुशचीरम्। **(पललम्)** तिलस्य पललमिति तिलपललम्। **(सूपः)** मुद्गस्य सूप इति मुद्गसूपः। **(शाकम्)** मूलकस्य शाकमिति मूलकशाकम्। **(कूलम्)** नद्याः कूलमिति नदीकूलम्। समुद्रकूलम्।

अत्र **'चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम्'** (६।२।१२६) इत्यस्मात् प्रारम्य आ **'कूलसूदकर्षाः संज्ञायाम्'** (६।२।१२९) इति यावत् काण्डादयः षट् शब्दा गृह्यन्ते। ते चेमे-(१) काण्डम्। (२) चीरम्। (३) पललम्। (४) सूपः। (५) शाकम्। (६) कूलम् इति।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अप्राणिषष्ठ्याः) अप्राणीवाची षष्ठ्यन्त शब्द से परे (षट्) छः (काण्डादीनि) काण्ड आदि शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होते हैं।*

*उदा०-(काण्ड) **दर्भकाण्डम्।** डाभ का तणा। **शरकाण्डम्।** सरकंडे का तणा। **(चीर) दर्भचीरम्।** डाभ का खण्ड। **कुशचीरम्।** कुश (तृणविशेष) का खण्ड। **(पलल) तिलपललम्।** तिल का चोकर (भूसी)। **(सूप) मुद्गसूपः।** मूंग की दाळ। **(शाक) मूलकशाकम्।** मूळी का साग। **(कूल) नदीकूलम्।** नदी का तट। **समुद्रकूलम्।** सागर का तट।*

*सिद्धि-**दर्भकाण्डम्।** यहां दर्भ और काण्ड शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में अप्राणीवाची षष्ठ्यन्त दर्भ शब्द से परे काण्ड उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**शरकाण्डम्** आदि।*

विशेषः *'चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम्' (६।२।१२६) आदि से गर्हा, उपमान, मिश्र और संज्ञा अर्थों में काण्ड आदि शब्दों को उत्तरपद में आद्युदात्त स्वर का विधान किया गया है। इस सूत्र से गर्हा आदि अर्थों से अन्यत्र भी काण्ड आदि छः शब्दों को उत्तरपद में आद्युदात्त स्वर होता है।*

आद्युदात्तम्-

(२६) कुण्डं वनम्।१३६।

प०वि०-कुण्डम् १।१ वनम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदादिः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे वनं कुण्डम् उत्तरपदादिरुदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे वनवाचि कुण्डमित्युत्तरपदम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०-दर्भस्य कुण्डमिति दर्भकुण्डम्। दर्भवनमित्यर्थः। शरकुण्डम्। शरवणमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (वनम्) वनवाची (कुण्डम्) कुण्ड शब्द (उत्तरपदादिः, उदात्तः) उत्तरपद में आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**दर्भकुण्डम्।** डाभ का वन। **शरकुण्डम्।** सरकंडों का वन।*

*सिद्धि-**दर्भकुण्डम्।** यहां दर्भ और कुण्ड शब्दों का **'षष्ठी'** (६।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वनवाची 'कुण्ड' शब्द को उत्तरपद में आद्युदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-शरकुण्डम्।*

।। इति उत्तरपदाद्युदात्तप्रकरणम्।।

उत्तरपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम्

प्रकृतिस्वरः-

(१) प्रकृत्या भगालम्।१३७।

प०वि०-प्रकृत्या ३।१ भगालम् १।१।

अनु०-उत्तरपदम्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे भगालम् उत्तरपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे भगालवाचि उत्तरपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-कुम्भ्या भगालमिति कुम्भीभगालम्। कुम्भीकपालम्। कुम्भीनदालम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (भगालम्) भगालवाची (उत्तरपदम्) उत्तरपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**कुम्भीभगालम्।** घड़िया का आधा टुकड़ा (ठेकरा)। **कुम्भीकपालम्।** अर्थ पूर्ववत् है। **कुम्भीनदालम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**कुम्भीभगालम्।** यहां कुम्भी और भगाल शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में भगाल उत्तरपद को प्रकृतिस्वर से रहता है। 'भगाल' शब्द **'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः'** (फिट्० २।१९) से मध्योदात्त है। ऐसे ही-**कुम्भीकपालम्। कुम्भीनदालम्।***

'प्रकृत्या' पद का अधिकार 'अन्तः' (६।२।१४३) सूत्र तक है।

प्रकृतिस्वरः-

(२) शितेर्नित्याबह्वज् बहुव्रीहावभसत्।१३८।

प०वि०-शितेः ५।१ नित्य-अबह्वच् १।१ बहुव्रीहौ ७।१ अभसत् १।१।

स०-बहवोऽचो यस्मिँस्तत्-बह्वच्, न बह्वच् इति अबह्वच्, नित्यं च तद् अबह्वच् इति नित्याबह्वच् (बहुव्रीहिनञ्गर्भितकर्मधारयतत्पुरुषः)। न भसद् इति अभसत् (नञ्तत्पुरुषः)। भसत्=योनिः।

अनु०-उत्तपरदम्, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ शितेरभसद् नित्याबह्वच् उत्तरपदं प्रकृत्या।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे शिति-शब्दात् परं यद् भसत्-शब्दवर्जितं नित्यमबह्वज् उत्तरपदं तत् प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-शिती पादौ यस्य सः-शितिपादः। शित्यंसः। शित्योष्ठः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (शितेः) शिति-शब्द से परे (अभसत्) भसत् शब्द से भिन्न जो (नित्याबह्वच्) नित्य-अबह्वच् (उत्तरपदम्) उत्तरपद है वह (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-**शितिपादः।** काळे चरणोंवाला पुरुष। **शित्यंसः।** काळे कन्धोंवाला पुरुष। **शित्योष्ठः।** काळे होठोंवाला पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **शितिपादः।** यहां शिति और पाद शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास शिति शब्द से परे नित्य-अबह्वच्वाले पाद उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है। पाद शब्द **'वृषादीनां च'** (६।१।१६७) से आद्युदात्त है।*

*(२) **शित्यंसः** और **शित्योष्ठः** शब्दों में अंस उत्तरपद **'अमेः सन्'** (उणा० ५।१) से सन्-प्रत्ययान्त है और ओष्ठ उत्तरपद **'उषिकुषिगातिभ्यस्थन्'** (उणा० २।४) से थन्-प्रत्ययान्त है। अतः दोनों शब्दों में प्रत्यय के नित् होने से ये **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त हैं। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*यहां **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से 'शितिपाद' को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। यह सूत्र उसका अपवाद है। 'शिति' शब्द **'वर्णानां तणतिनितान्तानाम्'** (फिट्० २।१०) से आद्युदात्त है।*

प्रकृतिस्वरः-

(३) गतिकारकोपपदात् कृत्।१३६।

प०वि०-गति-कारक-उपपदात् ५।१ कृत् १।१।

स०-गतिश्च कारकं च उपपदं च एतेषां समाहारो गतिकारकोपपदम्, तस्मात्-गतिकारकोपपदात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे गतिकारकोपपदात् कृद् उत्तरपदं प्रकृत्या।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे गतेः कारकाद् उपपदाच्च परं कृदन्तम् उत्तरपदं प्रकृतिस्वरं भवति।

उदा०-(**गति**) प्रकृष्टः कारकः इति प्रकारकः। प्रहारकः। प्रकृष्टं करणमिति प्रकरणम्। प्रहरणम्। (**कारकम्**) इध्मं प्रव्रश्च्यते येन सः- इध्मप्रव्रश्चनः। पलाशानि शात्यन्ते येन सः-पलाशशातनः (दण्डविशेषः)। श्मश्रु कल्प्यते येन सः-श्मश्रुकल्पनः। (**उपपदम्**) ईषत् क्रियते इति ईषत्करः। दुष्करः। सुकरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गतिकारकोपपदात्) गति, कारक और उपपद से परे (कृत्) कृत्-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहता है।*

*उदा०-(गति) **प्रकारकः**। उत्तम रीति से बनानेवाला। **प्रहारकः**। उत्तम रीति से हरण करनेवाला। **प्रकरणम्**। उत्तम रीति से बनाना। **प्रहरणम्**। उत्तम रीति से हरण करना। (कारक) **इध्मप्रव्रश्चनः**। इंधन को काटने का साधन-कुल्हाड़ा। **पलाशशातनः**। पत्तों को तोड़ने का साधन-दण्डविशेष। **श्मश्रुकल्पनः**। मूंछ को काटने का साधन-कैंची आदि। (उपपद) **ईषत्करः**। थोड़े प्रयत्न (सुख) से बनाने योग्य। **दुष्करः**। दुःख से बनाने योग्य। **सुकरः**। सुख से बनाने योग्य।*

*सिद्धि-(१) **प्रकारकः**। यहां प्र और कारक शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गति तत्पुरुष समास है। प्र-शब्द की **'गतिश्च'** (१।४।५९) से गति-संज्ञा है। इस सूत्र से गति-संज्ञक प्र-शब्द से परे कृदन्त कारक उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है। कारक शब्द में **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से कृत्-संज्ञक ण्वुल् प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१९३) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है। ऐसे ही-**प्रहारकः**।*

*(२) **प्रकरणम्**। यहां प्र और करण शब्दों का पूर्ववत् गतिसमास है। करण शब्द में **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से पूर्ववत् प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रहरणम्**।*

*(३) **इध्मप्रव्रश्चनः**। यहां इध्म और प्रव्रश्चन शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इध्म कारक से परे कृदन्त प्रव्रश्चन उत्तरपद को प्रकृतिस्वर है। 'प्रव्रश्चन' शब्द में प्र-उपसर्गपूर्वक **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) से करण कारक में कृत्-संज्ञक ल्युट् प्रत्यय है। अतः यहां **'लिति'** (६।१।१९३) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है।*

*(४) **पलाशशातनः**। यहां पलाश और शातन शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पलाश कारक से परे कृदन्त शातन उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है। शातन शब्द में णिजन्त **'शद्लृ शातने'** (भ्वा०प०) से पूर्ववत् ल्युट् प्रत्यय और **'शदेरगतौ तः'** (७।३।४२) से धातु को तकार-आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(५) श्मश्रुकल्पनः। यहां श्मश्रु और कल्पन शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से श्मश्रु कारक से परे कृदन्त कल्पन उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है। कल्पन शब्द में 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् ल्युट् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) ईषत्करः। यहां ईषत् और कर शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ईषत् उपपद से परे कृदन्त कर उत्तरपद को प्रकृतिस्वर होता है। 'कर' शब्द में 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' (३।३।१२६) से खल् प्रत्यय है। प्रत्यय के लित् होने से 'लिति' (६।१।१८७) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती अच् उदात्त है। ऐसे ही-दुष्करः, सुकरः।

प्रकृतिस्वरः--

(४) उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्।१४०।

प०वि०-उभे १।२ वनस्पति-आदिषु ७।३ युगपत् अव्ययपदम्।

स०-वनस्पतिरादिर्येषां ते वनस्पत्यादयः, तेषु-वनस्पत्यादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वनस्पत्यादिषु उभे युगपत् प्रकृत्या।

अर्थः-वनस्पत्यादिषु समासेषु उभे पूर्वपद-उत्तरपदे युगपत् प्रकृतिस्वरे भवतः।

उदा०-वनस्य पतिरिति वनस्पतिः। बृहतां पतिरिति बृहस्पतिः, इत्यादिकम्।

वनस्पतिः। बृहस्पतिः। शचीपतिः। तनूनपात्। नराशंसः। शुनःशेपः। शण्डामर्कौ। तृष्णावरूची। बम्बाविश्ववयसौ। मर्मृत्युः। इति वनस्पत्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वनस्पत्यादिषु) वनस्पति आदि शब्दों के समास में (उभे) दोनों पूर्वपद और उत्तरपद (युगपत्) एक साथ (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-**वनस्पतिः**। बड़ा जंगली वृक्ष जिस पर फूलों के बिना ही फल लगते हैं। **बृहस्पतिः**। देवताओं का गुरु, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) वनस्पतिः। यहां वन और पति शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में पूर्वपद वन और उत्तरपद पति शब्द युगपत् प्रकृतिस्वर से रहते हैं। वन शब्द '**नब्विषयस्यानिसन्तस्य**' (फिट्० २।३) से आद्युदात्त है और पति शब्द में '**पातेर्डति**' (उणा० ४।५८) से डति-प्रत्यय है. अतः यह भी*

प्रत्ययस्वर से आद्युदात्त है। वन+सुट्+पति=वनस्पतिः। **'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'** (६।१।१५७) से सुट् आगम होता है।

*(२) बृहस्पतिः। यहां बृहत् और पति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में पूर्वपद बृहत् और उत्तरपद पति शब्द युगपत् प्रकृतिस्वर से रहते हैं। 'बृहत्' शब्द **'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च'** (उणा० २।८५) से अन्तोदात्त है और पति शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त है।*

*बृहत्+पति। बृहत्+सुट्+पति। बृह०+स्+पति। बृहस्पतिः। वा०- **'तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च'** (६।२।१४०) से सुट् आगम और बृहत् के तकार का लोप होता है।*

प्रकृतिस्वरः-

(५) देवताद्वन्द्वे च।१४१।

प०वि०-देवता-द्वन्द्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-देवतानां द्वन्द्व इति देवताद्वन्द्वः, तस्मिन्-देवताद्वन्द्वे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-प्रकृत्या, उभे, युगपद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे च उभे युगपत् प्रकृत्या।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे च उभे पूर्वपद-उत्तरपदे युगपत् प्रकृतिस्वरे भवतः।

उदा०-इन्द्रश्च सोमश्च तौ-इन्द्रासोमौ। इन्द्रावरुणौ। इन्द्राबृहस्पती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) भी (उभे) दोनों पूर्वपद और उत्तरपद (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से रहते हैं।*

*उदा०-**इन्द्रासोमौ।** इन्द्र और सोम देवता। **इन्द्रावरुणौ।** इन्द्र और वरुण देवता। **इन्द्राबृहस्पती।** इन्द्र और बृहस्पति देवता।*

सिद्धि-(१) इन्द्रासोमौ। *यहां इन्द्र और सोम शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है। इस सूत्र से देवतावाची इन्द्र पूर्वपद और सोम उत्तरपद को युगपत् प्रकृतिस्वर होता है। इन्द्र शब्द **'ऋज्रेन्द्र०मालाः'** (उणा० २।२९) से रन्-प्रत्ययान्त निपातित है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर होता है। सोम शब्द **'अर्तिस्तुसु०नीभ्यो मन्'** (उणा० १।१४०) से मन्-प्रत्ययान्त है। प्रत्यय के नित् होने से यह भी पूर्ववत् आद्युदात्त है।*

इन्द्र+सोम+औ। इन्द्र् आनङ्+सोम+औ। इन्द्र्+आन्+सोम+औ। इन्द्र्+आ+सोम+औ। इन्द्रासोमौ।

यहां 'देवताद्वन्द्वे च' (६।३।१२५) से इन्द्र शब्द के अन्त्य अकार को आनङ् आदेश होकर 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।२) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझें।

(२) इन्द्रावरुणौ। यहां इन्द्र और वरुण शब्दों का पूर्ववत् इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है। वरुण शब्द में 'कॄवृदारिभ्य उनन्' (उणा० ३।५३) से उनन् प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से यह पूर्ववत् आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) इन्द्राबृहस्पती[1]। यहां इन्द्र और बृहस्पति शब्दों का पूर्ववत् इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है। बृहस्पति शब्द का स्वर पूर्वोक्त (६।२।१४०) है।

प्रकृतिस्वरप्रतिषेधः—

(६) नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु।१४२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, अनुदात्तादौ ७।१ अपृथिवी-रुद्र-पूष-मन्थिषु ७।३।

स०-अनुदात्त आदौ यस्य सः-अनुदात्तादिः, तस्मिन्-अनुदात्तादौ (बहुव्रीहिः)। पृथिवी च रुद्रश्च पूषा च मन्थी च ते पृथिवीरुद्रपूषमन्थिनः, तेषु-पृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्रकृत्या, उभे, युगपत्, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुदात्तादावुत्तरपदेऽपृथ्वीरुद्रपूषमन्थिषु देवताद्वन्द्वे उभे युगपत् प्रकृत्या न।

अर्थः-अनुदात्तादौ शब्दे उत्तरपदे पृथिवीरुद्रपूषमन्थिवर्जिते देवताद्वन्द्वे समासे उभे पूर्वपद-उत्तरपदे प्रकृतिस्वरे न भवतः।

उदा०-इन्द्रश्च अग्निश्च इति इन्द्राग्नी। इन्द्रवायू।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनुदात्तौ) अनुदात्तादि शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु) पृथिवी, रुद्र, पूषा और मन्थी से भिन्न (देवताद्वन्द्वे) देवतावाची द्वन्द्वसमास में (उभे) दोनों पूर्वपद और उत्तरपद (युगपत्) एक साथ (प्रकृत्या) प्रकृतिस्वर से (न) नहीं रहते हैं।*

*उदा०-**इन्द्राग्नी**। इन्द्र और अग्नि देवता। **इन्द्रवायू**। इन्द्र और वायु देवता।*

***सिद्धि-इन्द्राग्नी**। यहां इन्द्र और अग्नि शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से इतरेतरयोग द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से देवतावाची द्वन्द्वसमास में पूर्व सूत्र से प्राप्त पूर्वपद और उत्तरपद के युगपत् प्रकृतिस्वर का प्रतिषेध होता है। अग्नि शब्द में 'अगि*

गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'अङ्गेर्नलोपश्च' (उणा० ४।५१) से 'नि' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त अर्थात् अनुदात्तादि है-अग्निः। 'देवताद्वन्द्वे च' (६।३।२६) से पूर्ववत् आनङ् आदेश होता है। 'समासस्य' (६।१।२१८) से समास को अन्तोदात्त स्वर होता है।

(२) इन्द्रवायू। यहां इन्द्र और वायु शब्दों का पूर्ववत् द्वन्द्वसमास है। वायु शब्द में 'वा गतिगन्धनयोः' (अदा०प०) धातु से 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' (उणा० १।१) से 'उण्' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त अर्थात् अनुदात्तादि है-वायुः। वा०-'उभयत्र वायोः प्रतिषेधो वक्तव्यः' (६।३।२६) से आनङ् आदेश का प्रतिषेध होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

।। इति उत्तरपदप्रकृतिस्वरप्रकरणम्।।

उत्तरपदान्तोदात्तस्वरप्रकरणम्

अधिकारः-

(१) अन्तः।१४३।

वि०-अन्तः १।१।

अनु०-समासस्य, उदात्तः, उत्तरमिति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-समासस्य उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-अन्त इत्यधिकारोऽयम् आ पादपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे वक्ष्यति तत्र समासस्योत्तरपदस्यान्तोदात्तो भवतीति वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'** (६।२।१४४) इति। सुनीथः। अवभृथः इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अन्तः) 'अन्तः' इस सूत्र का पाद की समाप्तिपर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वहां (समासस्य) समास के (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है, यह जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्' (६।२।१४४)। सुनीथः। अवभृथः इत्यादि।*

सिद्धि-सुनीथः आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

अन्तोदात्तम्-

(२) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्।१४४।

प०वि०-थ-अथ-घञ्-क्त-अच्-अप्-इत्र-काणाम् ६।३।

स०-थश्च अथश्च घञ् च क्तश्च अच् च अप् च इत्रश्च कश्च ते थाथघञ्क्ताजबित्रकाः, तेषाम्-थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, गतिकारकोपपदात्, अन्त इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-तत्पुरुषे गतिकारकोपपदात् थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे गतिकारकोपपदात् परेषां थाथघञ्क्ताजबित्र-कान्तानाम् उत्तरपदानामन्तोदात्तो भवति।

उदा०-**(थः)** सुनीथः। अवभृथः। **(अथः)** आवसथः। उपवसथः। **(घञ्)** प्रभेदः। काष्ठभेदः। रज्जुभेदः। **(क्तः)** दूरादागतः। विशुष्कः। आतपशुष्कः। **(अच्)** प्रक्षयः। प्रजयः। **(अप्)** प्रलवः। प्रसवः। **(इत्रः)** प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। **(कः)** गोवृषः। खरीवृषः। प्रवृषः। प्रहर्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गतिकारकोपपदात्) गति, कारक और उपपद से परे (थाथ०काणाम्) थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र और क-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपदों को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(थ) **सुनीथः**। धर्मशील पुरुष। **अवभृथः**। यज्ञान्त स्नान। (अथ) **आवसथः**। घर। **उपवसथः**। निकट निवास। (घञ्) **प्रभेदः**। भेद का भेद। **काष्ठभेदः**। लकड़ी का फाड़ना। **रज्जुभेदः**। रस्सी को तोड़ना। (क्त) **दूरादागतः**। दूर से आया हुआ। **विशुष्कः**। बिल्कुल सूखा हुआ। **आतपशुष्कः**। धूप में सूखा हुआ। (अच्) **प्रक्षयः**। निवास। **प्रजयः**। जीतने का साधन। (अप्) **प्रलवः**। प्रच्छेदन करना। **प्रसवः**। पैदा होना। (इत्र) **प्रलवित्रम्**। काटने का साधन। (चाकू आदि)। **प्रसवित्रम्**। प्रसव का साधनविशेष। (क) **गोवृषः**। गौ को सींचनेवाला (सांड)। **खरीवृषः**। गधी को सींचनेवाला (गधा)। **प्रवृषः**। सींचनेवाला। **प्रहर्षः**। हर्षित करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **सुनीथः**। यहां सु और नीथ शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गति-तत्पुरुष समास है। 'नीथ' शब्द में **'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्'** (उणा० २।२) से क्थन् (थ) प्रत्यय है। इस सूत्र से थ-प्रत्ययान्त 'नीथ' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। यहां **'गतिकारकोपपदात् कृत्'** (६।२।१३९) से कृदन्त उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर प्राप्त था।*

*(२) **अवभृथः**। यहां अव और भृथ शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। 'भृथ' शब्द में **'अवे भृथः'** (उणा० २।३) से क्थन् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) आवसथः । यहां आङ् और वसथ शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। 'वसथः' शब्द में 'उपर्गे वसेः' (उणा० ३।११६) से अथन् (अथ) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-उपवसथः ।

(४) प्रभेदः । यहां प्र और भेद शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। भेद शब्द में 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में घञ् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) काष्ठभेदः । यहां काष्ठ और भेद शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। भेद शब्द में पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-रज्जुभेदः ।

(६) दूरादागतः । यहां दूरात् और आगत शब्दों का 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन' (२।१।३८) से पञ्चमीतत्पुरुष समास है। 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' (६।३।२) से पञ्चमी विभक्ति का अलुक् होता है। 'आगतः' शब्द में आङ् उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में क्त-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) विशुष्कः । यहां वि और शुष्क शब्दों का 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३२) से गति-तत्पुरुष समास है। 'शुष्क' शब्द में 'शुष शोषणे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् क्त-प्रत्यय है। 'शुषः कः' (८।२।५१) से 'क्त' प्रत्यय के तकार को ककार आदेश होता है। वहां 'गतिरनन्तरः' (६।२।४९) से पूर्वपद प्रकृतिस्वर (आद्युदात्त) प्राप्त था। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(८) आतपशुष्कः । यहां आतप और शुष्क शब्दों का 'सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च' (२।१।४०) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। यहां 'सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात्' (६।२।३२) से पूर्वपद प्रकृतिस्वर प्राप्त था।

(९) प्रक्षयः । यहां प्र और क्षय शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। 'क्षयः' शब्द में 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) धातु से 'एरच्' (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्रजयः । यहां 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।१।१३८) से प्रकृतिस्वर की प्राप्ति होकर क्रमशः 'क्षयो निवासे' (६।१।१९५) से तथा 'जयः करणम्' (६।१।१९६) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त था।

(१०) प्रलवः । यहां प्र और लव शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। 'लव' शब्द में 'लञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'ऋदोरप्' (३।३।५७) से अप् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) से-प्रसवः ।

(११) प्रलवित्रम् । यहां प्र और लवित्र शब्दों का पूर्ववत् गति-तत्पुरुष समास है। 'लवित्र' शब्द में 'अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः' (७।३।२६) से 'इत्र' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'षूञ्' धातु से-प्रसवित्रम् ।

*(१२) गोवृषः। यहां गो और वृष शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपद-तत्पुरुष समास है। 'वृष' शब्द में '**वृषु सेचने**' (भ्वा०प०) धातु से वा०- '**कप्रकरणे मूलविभुजादीनामुपसंख्यानम्**' (३।२।५) से 'क' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-खरीवृषः.*

(१३) प्रवृषः। यहां प्र और वृष शब्दों का पूर्ववत् गतितत्पुरुष समास है। 'वृष' शब्द में 'वृषु सेचने' (भ्वा०प०) धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (३।१।१३५) से 'क' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- 'हृष तुष्टौ' (दि०प०) धातु से-प्रहर्षः।

अन्तोदात्तम्–

(३) सूपमानात् क्तः।१४५।

प०वि०-सु-उपमानात् ५।१ क्तः १।१।

स०-उपमीयतेऽनेनेति उपमानं सिंहादिकम्। सुश्च उपमानं च एतयोः समाहारः सूपमानम्, तस्मात्-सूपमानात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सूपमानात् क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सु-शब्दाद् उपमानवाचिनश्च परं क्तान्तम् उत्तरपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(**सुः**) सुष्ठु कृतमिति सुकृतम्। सुभुक्तम्। सुपीतम्। (**उपमानम्**) वृकैरिवावलुप्तमिति वृकावलुप्तम्। शशकप्लुप्तम्। सिंहविनर्दितम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सूपमानात्) सु-शब्द और उपमानवाची शब्द से परे (क्तः) क्तप्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(सु) **सुकृतम्**। सत्कारपूर्वक किया। **सुभुक्तम्**। सत्कारपूर्वक खाया। **सुपीतम्**। सत्कारपूर्वक पीया। (उपमान) **वृकावलुप्तम्**। भेड़ियों के समान लुप्त हुआ। **शशकप्लुप्तम्**। खरगोशों के समान उछला। **सिंहविनर्दितम्**। सिंहों की समान गर्जना की।*

*सिद्धि-(१) **सुकृतम्**। यहां सु और कृत शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से गति-तत्पुरुष समास है। कृत शब्द में '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से सु-शब्द से परे क्तान्त कृत उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। '**गतिरनन्तरः**' (६।२।४९) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर (आद्युदात्त) प्राप्त था। उसका यह अपवाद है। ऐसे ही-**सुभुक्तम्**। **सुपीतम्**।*

(२) वृकावलुप्तम्। यहां वृक और अवलुप्त शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। 'अवलुप्त' शब्द में अव-उपसर्गपूर्वक 'लुप्लृ छेदने' (तु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से उपमानवाची वृक-शब्द से परे क्त-प्रत्ययान्त अवलुप्त शब्द को अन्तोदात्त स्वर होता है। 'तृतीया कर्मणि' (६।२।४८) से तृतीयान्त वृक पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। यह उसका अपवाद है। ऐसे ही-शशकप्लुतम्, सिंहविनर्दितम्।

अन्तोदात्तम्–

(४) संज्ञायामनाचितादीनाम्।१४६।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ अनाचित-आदीनाम् ६।३।

स०-आचित आदिर्येषां ते आचितादयः, न आचितादय इति अनाचितादयः, तेषाम्-अनाचितादीनाम् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्त, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, गतिकारकोपपदात्, क्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां तत्पुरुषे गतिकारकोपपदात् क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः, अनाचितादीनाम्।

अर्थः-संज्ञायां विषये तत्पुरुषे समासे गतिकारकोपपदात् परं क्तान्तम् उत्तरपदमन्तोदात्तं भवति, आचितादीन् शब्दान् वर्जयित्वा।

उदा०-सम्भूतो रामायणः। उपहूतः शाकल्यः। परिजग्धः कौण्डिन्यः।

आचितम्। पर्याचितम्। आस्थापितम्। परिगृहीतम्। निरुक्तम्। प्रतिपन्नम्। प्रश्लिष्टम्। उपहतम्। उपस्थितम्। इत्याचितादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गतिकारकोपपदात्) गति-संज्ञक, कारक और उपपद से परे (क्तः) क्त-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता (अनाचितादीनाम्) आचित आदि शब्दों को छोड़कर।*

उदा०-सम्भूतो रामायणः। समाप्त हुआ रामायण। उपहूतः शाकल्यः। पास बुलाया हुआ शाकल्य। परिजग्धः कौण्डिन्यः। सर्वतः खाया हुआ कौण्डिन्य।

सिद्धि-सम्भूतः। यहां सम् और भूत शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से गति-तत्पुरुष समास है। यहां सम्-उपसर्ग 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु प्राप्ति अर्थक है। भूत शब्द में 'निष्ठा' (३।२।१०२) से क्त-प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा विषय में तथा तत्पुरुष समास में 'सु' गति से परे क्तान्त 'भूत' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर (आद्युदात्त) प्राप्त था। यह उसका अपवाद है। ऐसे ही-उपहूतः। परिजग्धः।

*'अनाचितादीनाम्' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां यह अन्तोदात्त स्वर न हो–**आचितम्। पर्याचितम्।** यहां 'गतिरनन्तरः' (६।२।४९) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर (आद्युदात्त) होता है।*

अन्तोदात्तम्–

(५) प्रवृद्धादीनां च।१४७।

प०वि०–प्रवृद्ध-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०–प्रवृद्ध आदिर्येषां ते प्रवृद्धादयः, तेषाम्–प्रवृद्धादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, क्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे प्रवृद्धादीनां च क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे प्रवृद्धादीनां शब्दानां च क्तान्तम् उत्तरपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०–प्रवृद्धं यानम्। प्रवृद्धो वृषलः। प्रयुक्ताः सक्तवः, इत्यादिकम्।

प्रवृद्धं यानम्। प्रवृद्धो वृषलः। प्रयुक्ताः सक्तवः। आकर्षेऽवहितः। अवहितो भोगेषु। खट्वारूढः। कविशस्तः। आकृतिगणोऽयम्। तेन–पुनरुत्स्यूतं वसो देयम्, पुनर्निष्कृतो रथः, इत्येवमादि सिद्धं भवति।

यानादीनामत्र गणे पाठः प्रायोवृत्तिप्रदर्शनार्थो वेदितव्यः, न तु विषयनियमार्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (प्रवृद्धादीनाम्) प्रवृद्ध आदि शब्दों का (च) भी (क्तः) क्त-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०–**प्रवृद्धं यानम्।** बहुत पुरानी गाड़ी। **प्रवृद्धो वृषलः।** बहुत बूढा वृषल। **प्रयुक्ताः सक्तवः।** प्रयोग किये हुये सत्तू इत्यादि।*

*सिद्धि–**प्रवृद्धम्।** यहां प्र और वृद्ध शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। 'वृद्ध' शब्द में 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल में क्त-प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रवृद्ध शब्द के क्तान्त 'वृद्ध' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**प्रवृद्धो वृषलः। प्रयुक्ताः सक्तवः।***

प्रवृद्धादि गण में यान आदि शब्दों का पाठ इनकी प्रायिक वृत्ति के प्रदर्शन के लिये किया गया है; विषय-नियम के लिये नहीं।

अन्तोदात्तम्–

(६) कारकाद् दत्तश्रुतयोरेवाशिषि।१४८।

प०वि०-कारकात् ५।१ दत्त-श्रुतयोः ६।२ एव अव्ययपदम्, आशिषि ७।१।

स०-दत्तश्च श्रुतश्च तौ दत्तश्रुतौ, तयोः-दत्तश्रुतयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, क्तः, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां तत्पुरुषे कारकाद् दत्तश्रुतयोरेव क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः, आशिषि।

अर्थः-संज्ञायां विषये तत्पुरुषे समासे कारकात् परयोर्दत्तश्रुतयोरेव क्तान्तयोरुत्तरपदयोरन्तोदात्तं भवति, आशिषि गम्यमानायाम्।

उदा०-**(दत्तः)** देवा एनं देयासुरिति देवदत्तः। **(श्रुतः)** विष्णुरेनं श्रृणुयादिति विष्णुश्रुतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कारकात्) कारक से परे (दत्तश्रुतयोः) दत्त और श्रुत (क्तः) क्त-प्रत्ययान्त शब्दों को (एव) ही (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (आशिषि) यदि वहां आशीर्वाद अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(दत्त) देवदत्तः।** देवों ने इसे आशीर्वादपूर्वक दिया है यह-देवदत्त। **(श्रुत) विष्णुश्रुतः।** विष्णु ने इसे आशीर्वादपूर्वक सुना है यह-विष्णुश्रुत।*

*सिद्धि-**देवदत्तः।** यहां देवदत्त शब्दों का **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। दत्त शब्द में **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) से क्त-प्रत्यय है। **'दो दद् घोः'** (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में दद्-आदेश होता है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में तथा तत्पुरुष समास में और आशीर्वाद अभिधेय में 'देव' कारक से परे क्तान्त 'दत्त' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**विष्णुश्रुतः।***

*यहां **'संज्ञायामनाचितादीनाम्'** (६।२।१४५) से क्तान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था। उसका यहां नियम किया गया है कि यदि कारक से परे कोई क्तान्त उत्तरपद हो तो केवल 'दत्त' और 'श्रुत' शब्दों को ही अन्तोदात्त स्वर हो; अन्यों को नहीं। अन्यत्र **'तृतीया कर्मणि'** (६।२।४८) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।*

अन्तोदात्तम्--

(७) इत्थम्भूतेन कृतमिति च।१४६।

प०वि०-इत्थम्भूतेन ३।१ कृतम् १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०-इमं प्रकारं प्राप्त इति इत्थम्भूतः, तेन-इत्थम्भूतेन (द्वितीया-तत्पुरुषोऽस्वपदविग्रहश्च)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, क्तः, कारकादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-इत्थम्भूतेन कृतमिति च तत्पुरुषे क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-इत्थम्भूतेन कृतमित्यस्मिन्नर्थे च तत्पुरुषे समासे कारकात्परं क्तान्तम् उत्तरपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-सुप्तेन प्रलपितमिति-सुप्तप्रलपितम्। उन्मत्तप्रलपितम्। प्रमत्तगीतम्। विपन्नश्रुतम्। इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इत्थम्भूतेन) इस प्रकार को प्राप्त हुये के द्वारा (कृतम्) किया हुआ (इति) इस अर्थ में (च) भी (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कारकात्) कारक से परे (क्तः) क्त-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**सुप्तप्रलपितम्।** सोये हुये के द्वारा प्रलाप किया हुआ। **उन्मत्तप्रलपितम्।** पागल हुये के द्वारा प्रलाप किया हुआ। **प्रमत्तगीतम्।** मस्त हुये के द्वारा गाया हुआ। **विपन्नश्रुतम्।** विपत्ति में पड़े हुये के द्वारा सुना हुआ।*

*सिद्धि-**सुप्तप्रलपितम्।** यहां सुप्त और प्रलपित शब्दों का **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। प्रलपित शब्द में प्र-उपसर्गपूर्वक **'लप व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में क्त-प्रत्यय है। इस सूत्र से इत्थम्भूत अर्थ में तथा तत्पुरुष समास में सुप्त कारक से परे क्तान्त प्रलपित उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। 'सुप्त' शब्द इत्थम्भूत अर्थ का द्योतक है। यहां **'तृतीया कर्मणि'** (६।२।४८) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। यह उसका अपवाद है। ऐसे ही-**उन्मत्तप्रलपितम्** आदि।*

अन्तोदात्तम्--

(८) अनो भावकर्मवचनः।१५०।

प०वि०-अनः १।१ भाव-कर्मवचनः १।१।

स०-भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, तयोः-भावकर्मणोः, भाव-कर्मणोर्वचन इति भावकर्मवचनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, कारकादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कारकाद् भावकर्मवचनोऽन उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कारकात् परं भाववचनं कर्मवचनं चानप्रत्ययान्तम् उत्तरपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(**भाववचनम्**) ओदनभोजनं सुखम्। पयःपानं सुखम्। चन्दनप्रियङ्गुकालेपनं सुखम्। (**कर्मवचनम्**) राजभोजनाः शालयः। राजाच्छादनानि वासांसि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कारकात्) कारक से परे (भावकर्मवचनः) भाववाची और कर्मवाची (अनः) अन-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(**भाववचन**) **ओदनभोजनं सुखम्।** ओदन का भोजन सुखदायक है। **पयःपानं सुखम्।** दूध का पीना सुखदायक है। **चन्दनप्रियङ्गुकालेपनं सुखम्।** चन्दन और प्रियङ्गुका (राई) का लेप करना सुखदायक है। (**कर्मवचन**) **राजभोजनाः शालयः।** राजा के भोजन योग्य चावल। **राजाच्छादनानि वासांसि।** राजा के पहनने योग्य वस्त्र।*

*सिद्धि-(१) **ओदनभोजनम्।** यहां ओदन और भोजन शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। भोजन शब्द में '**भुज पालनाभ्यवहारयोः**' (रुधा०आ०) से '**कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम्**' (३।३।११६) से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान में अन-आदेश होता है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में ओदन कारक से परे अन-प्रत्ययान्त भोजन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**पयःपानं सुखम्** आदि।*

*(२) **राजभोजनाः।** यहां राजन् और भोजन शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। भोजन शब्द में पूर्वोक्त सूत्र से कर्म अर्थ में ल्युट् प्रत्यय है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में राजन् कारक से परे अन-प्रत्ययान्त भोजन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। यह 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३८) का अपवाद है।*

अन्तोदात्तम्-

(६) मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थान-याजकादिक्रीताः।१५१।

प०वि०- मन्-क्तिन्-व्याख्यान-शयन-आसन-स्थान-याजकादि-क्रीताः १।३।

स०-मन् च क्तिन् च व्याख्यानं च शयनं च आसनं च स्थानं च याजकादयश्च क्रीतश्च ते-मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्त, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, कारकादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कारकाद् मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीता उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कारकात् परं मन्नन्तं क्तिन्नन्तं व्याख्यान-शयनासनस्थानानि याजकादयः क्रीतशब्दश्चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(मन्)** रथस्य वर्त्मेति रथवर्त्म। शकटवर्त्म। **(क्तिन्)** पाणिनेः कृतिरिति पाणिनिकृतिः। आपिशलिकृतिः। दयानन्दकृतिः। **(व्याख्यानम्)** ऋगयनस्य व्याख्यानमिति ऋगयनव्याख्यानम्। छन्दोव्याख्यानम्। वेदव्याख्यानम्। **(शयनम्)** राज्ञः शयनमिति राजशयनम्। ब्राह्मणशयनम्। **(आसनम्)** राज्ञ आसनमिति राजासनम्। ब्राह्मणासनम्। **(स्थानम्)** गवां स्थानमिति गोस्थानम्। अश्वस्थानम्। **(याजकादयः)** ब्राह्मणस्य याजक इति ब्राह्मणयाजकः। क्षत्रिययाजकः। ब्राह्मणस्य पूजक इति ब्राह्मणपूजकः। क्षत्रियपूजकः। **(क्रीतः)** गवा क्रीत इति गोक्रीतः। अश्वक्रीतः।

'याजकादिभिश्च' (२।२।९) इत्यत्र ये षष्ठीसमासार्था याजकादयः पठ्यन्ते ते एवात्र गृह्यन्ते। ते चेमे-याजक। पूजक। परिचारक। परिषेचक। परिवेषक। स्नातक। अध्यापक। उत्सादक। उद्वर्तक। हर्तृ। वर्तक। होतृ। पोतृ। भर्तृ। रथगणक। पतिगणक। इति याजकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कारकात्) कारक से परे (मन्०क्रीताः) मन्-अन्त, क्तिन्-अन्त, आख्यान, शयन, आसन, स्थान, याजकादि और क्रीत-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-(मन्) **रथवर्त्म**। रथ का मार्ग। **शकटवर्त्म**। गाड़ी का मार्ग। (क्तिन्) **पाणिनिकृतिः**। पाणिनिमुनि की रचना (अष्टाध्यायी आदि)। **आपिशलिकृतिः**। आपिशलि मुनि की रचना (शिक्षा)। **दयानन्दकृतिः**। महर्षि दयानन्द की रचना (वेदभाष्य आदि)। (व्याख्यान) **ऋगयनव्याख्यानम्**। ऋगयन नामक ग्रन्थ की व्याख्या। **छन्दोव्याख्यानम्**। छन्दःशास्त्र की व्याख्या। **वेदव्याख्यानम्**। वेदों की व्याख्या। (शयन) **राजशयनम्**। राजा*

का बिस्तर। ब्राह्मणशयनम्। ब्राह्मण का बिस्तर। (आसन) राजासनम्। राजा का आसन। ब्राह्मणासनम्। ब्राह्मण का आसन। (स्थान) गोस्थानम्। गौओं का स्थान। अश्वस्थानम्। घोड़ों का स्थान। (याजकादि) ब्राह्मणयाजकः। ब्राह्मण को यज्ञ करानेवाला ऋत्विक्। क्षत्रिययाजकः। क्षत्रिय को यज्ञ करानेवाला ऋत्विक्। ब्राह्मणपूजकः। ब्राह्मणों का पूजक। क्षत्रियपूजकः। क्षत्रियों का पूजक। (क्रीत) गोक्रीतः। गौ से खरीदा हुआ। अश्वक्रीतः। घोड़े से खरीदा हुआ गौ अथवा घोड़े के बदले में लिया हुआ।

'याजकादिभिश्च' (२।२।९) यहां जो याचक आदि शब्द षष्ठीसमास के लिये पढ़े हैं, वे ही यहां याजकादि नाम से ग्रहण किये जाते हैं। उनका पाठ ऊपर संस्कृतभाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) रथवर्त्म। यहां रथ और वर्त्मन् शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'वर्त्मन्' शब्द में 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (२।३।७५) से अधिकरण कारक में मनिन् (मन्) प्रत्यय है। इस सूत्र से कारक से परे मन-अन्त वर्त्मन् उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-शकटवर्त्म। यहां 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (६।२।१३८) से कृत्-स्वर प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।

(२) पाणिनिकृतिः। यहां पाणिनि और कृति शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। कृति शब्द में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-आपिशलिकृतिः, दयानन्दकृतिः।

(३) ऋगयनव्याख्यानम्। यहां ऋगयन और व्याख्यान शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-छन्दोव्याख्यानम्, वेदव्याख्यानम्, आदि।

(४) ब्राह्मणयाजकः। यहां ब्राह्मण और याजक शब्दों का 'याजकादिभिश्च' (२।२।९) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-ब्राह्मणपूजकः, आदि।

(५) गोक्रीतः। यहां गो और क्रीत शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३२) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से गो कारक से परे 'क्रीत' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। 'तृतीया कर्मणि' (६।२।४८) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, यह सूत्र उसका अपवाद है।

अन्तोदात्तम्-

(१०) सप्तम्याः पुण्यम्।१५२।

प०वि०-सप्तम्याः ५।१ पुण्यम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सप्तम्याः पुण्यम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सप्तम्यन्ताच्छब्दात् परं पुण्यमित्युत्तरपद-मन्तोदात्तं भवति।

उदा०-अध्ययने पुण्यमिति अध्ययनपुण्यम्। वेदे पुण्यमिति वेदपुण्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सप्तम्याः) सप्तमी-अन्त शब्द से परे (पुण्यम्) पुण्य (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**अध्ययनपुण्यम्।** अध्ययन में पुण्य है। **वेदपुण्यम्।** वेद के स्वाध्याय में पुण्य है।*

***सिद्धि-अध्ययनपुण्यम्।** यहां अध्ययन और पुण्य शब्दों का **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।४०) में 'सप्तमी' इस योगविभाग से सप्तमीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सप्तमी-अन्त अध्ययन शब्द से परे 'पुण्य' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**वेदपुण्यम्।** यहां 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (६।२।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

अन्तोदात्तम्-

(११) ऊनार्थकलहं तृतीयायाः।१५३।

प०वि०-ऊनार्थ-कलहम् १।१ तृतीयायाः ५।१।

स०-ऊनोऽर्थो यस्य स ऊनार्थः। ऊनार्थश्च कलहश्च एतयोः समाहार ऊनार्थकलहम् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे तृतीयाया ऊनार्थकलहम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे तृतीयान्ताच्छब्दात् परम् ऊनार्थकं कहल-शब्दश्चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(ऊनार्थकम्)** माषेण ऊनमिति माषोनम्। कार्षापणोनम्। माषेण विकलमिति माषविकलम्। कार्षापणविकलम्। **(कलहः)** असिना कलह इति असिकलहः। वाक्कलहः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (तृतीयायाः) तृतीया-अन्त शब्द परे (ऊनार्थकलहम्) न्यूनार्थक और कलह-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-**(ऊनार्थक) माषोनम्।** एक माष से कम। **कार्षापणोनम्।** एक कार्षापण से कम। **माषविकलम्।** एक माष से कम। **कार्षापणविकलम्।** एक कार्षापण से कम।*

*माष=२ रत्ती चांदी का सिक्का। कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का। (कलह) **असिकलहः**। तलवार से झगड़ा करना। **वाक्कलहः**। वाणी से झगड़ा करना।*

*सिद्धि-(१) **माषोनम्**। यहां माष और ऊन शब्दों का '**पूर्वसदृशसमोनार्थकलह-निपुणमिश्रश्लक्ष्णैः**' (२।१।३१) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तृतीया-अन्त माष शब्द से परे ऊन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**कार्षापणोनम्**, आदि।*

*(२) **असिकलहः**। यहां असि और कलह शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वाक्कलहः**। यहां '**तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमान-द्वितीयाकृत्याः**' (६।२।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

अन्तोदात्तम्–

(१२) मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ।१५४।

प०वि०-मिश्रम् १।१ च अव्ययपदम्, अनुपसर्गम् १।१ असन्धौ ७।१।

स०-न विद्यते उपसर्गो यस्मिँस्तत्-अनुपसर्गम् (बहुव्रीहिः)। न सन्धिरिति असन्धिः, तस्मिन्-असन्धौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, तृतीयाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे तृतीयाया अनुपसर्गं मिश्रम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः, असन्धौ।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे तृतीयान्ताच्छब्दात् परम् उपसर्गरहितं मिश्रमित्युत्तरपदमन्तोदात्तं भवति, असन्धौ गम्यमाने।

उदा०-गुडेन मिश्रा इति गुडमिश्राः। तिलमिश्राः। सर्पिर्मिश्राः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (तृतीयायाः) तृतीया-अन्त शब्द से परे (अनुपसर्गम्) उपसर्ग से रहित (मिश्रम्) मिश्र शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (असन्धौ) यदि वहां सन्धि (मेल) अर्थ की प्रतीति न हो।*

*उदा०-**गुडमिश्राः**। गुड से मिश्रित धान आदि। **तिलमिश्राः**। तिल से मिश्रित धान आदि। **सर्पिर्मिश्राः**। घृत से मिश्रित ओदन आदि।*

*सिद्धि-**गुडमिश्राः**। यहां गुड और मिश्र शब्दों का '**पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुण-मिश्रश्लक्ष्णैः**' (२।१।३१) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में तृतीया-अन्त गुड शब्द से परे उपसर्ग रहित मिश्र उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**तिलमिश्राः**, **सर्पिर्मिश्राः**।*

अन्तोदात्तम्–

(१३) नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः।१५५।

प०वि०- नञः ५।१ गुण-प्रतिषेधे ७।१ सम्पादि-अर्ह-हित-अलमर्थाः १।३ तद्धिताः १।३।

स०-गुणस्य प्रतिषेध इति गुणप्रतिषेधः, तस्मिन्-गुणप्रतिषेधे (षष्ठी-तत्पुरुषः)। सम्पादी च अर्हं च हितं च अलं च ते सम्पाद्यर्हहितालमः। सम्पाद्यर्हहितालमोऽर्था येषां ते सम्पाद्यर्हहितालमर्थाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे गुणप्रतिषेधे नञः सम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिता उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे गुणप्रतिषेधेऽर्थे वर्तमानाद् नञः पराणि सम्पाद्यर्हहितालमर्थकानि तद्धितप्रत्ययान्तानि उत्तरपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-**(सम्पादि)** कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि मुखम्-कार्णवेष्टिकम्, न कार्णवेष्टिकमिति अकार्णवेष्टिकम्। **(अर्हम्)** छेदमर्हति-छैदिकः, न छैदिक इति अच्छैदिकः। **(हितम्)** वत्सेभ्यो हितः-वत्सीयः, न वत्सीय इति अवत्सीयः। **(अलम्)** सन्तापाय प्रभवति-सान्तापिकः, न सान्तापिक इति असान्तापिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गुणप्रतिषेधे) गुण के निषेध अर्थ में विद्यमान (नञः) नञ्-शब्द से परे (सम्पाद्यर्हहितालमर्थाः) सम्पादी, अर्ह, हित और अलम्-अर्थक (तद्धिता) तद्धित-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदत्त होते हैं।*

*उदा०-(सम्पादी) **अकार्णवेष्टिकम्।** कानों की दो बालियों से असम्पन्न=अनलंकृत मुख। (अर्ह) **अच्छैदिकः।** जो छेदन नहीं कर सकता है वह पुरुष। (हित) **अवत्सीयः।** जो बछड़ों के लिये हितकारी नहीं है वह पुरुष। (अल) **असान्तापिकः।** जो तप करने के लिये तैयार नहीं होता है वह पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **अकार्णवेष्टिकम्।** यहां प्रथम कर्णवेष्ट शब्द से 'सम्पादिनि' (५।१।९८) से सम्पादी अर्थ में यथाविहित तद्धित 'ठञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'कार्णवेष्टिक' शब्द से*

'नञ्' (२।२।६) से गुणप्रतिषेध अर्थ में नञ्तत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में गुणप्रतिषेध अर्थ में विद्यमान नञ् से परे सम्पादी-अर्थक तद्धितान्त 'काणविष्टिक' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

*(२) अच्छेदिकः। यहां छेद शब्द से **'छेदादिभ्यो नित्यम्'** (५।१।६३) से अर्हति अर्थ में यथाविहित तद्धित 'ठक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) अवत्सीयः। यहां वत्स शब्द से **'तस्मै हितम्'** (५।१।५) से हित-अर्थ में यथाविहित तद्धित 'छ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) असान्तापिकः। यहां सन्ताप शब्द से **'तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः'** (५।१।१००) से प्रभवति (अलम्) अर्थ में यथाविहित तद्धित 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अन्तोदात्तम्–

(१४) ययतोश्चातदर्थे।१५६।

प०वि०–य-यतोः ६।२ च अव्ययपदम्, अतदर्थे ७।१।

स०–यश्च यच्च तौ ययतौ, तयोः-ययतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तस्मै इदम्-तदर्थम्, न तदर्थमिति अतदर्थम्, तस्मिन्-अतदर्थे (चतुर्थीतत्पुरुषगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, नञः, गुणप्रतिषेधे, तद्धिता इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे गुणप्रतिषेधे नञोऽतदर्थे तद्धितयोर्ययतोश्चोत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे गुणप्रतिषेधेऽर्थे वर्तमानाद् नञः परम् अतदर्थे वर्तमानं तद्धितं य-प्रत्ययान्तं यत्-प्रत्ययान्तं चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०–**(यः)** पाशानां समूहः-पाश्या, न पाश्या इति अपाश्या। अतृण्या। **(यत्)** दन्तेषु भवम्-दन्त्यम्, न दन्त्यमिति अदन्त्यम्। अकर्ण्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (गुणप्रतिषेधे) गुण के निषेध अर्थ में विद्यमान (नञः) नञ्-शब्द से परे (अतदर्थे) तदर्थ से भिन्न अर्थ में विद्यमान (तद्धिताः) तद्धित-संज्ञक (ययतोः) य-प्रत्ययान्त और यत्-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (च) भी (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०–(य) **अपाश्या**। पाशों का समूह नहीं। **अतृण्या**। तृणों का समूह नहीं। **(यत्) अदन्त्यम्**। दांतों में न होनेवाला। **अकर्ण्यम्**। कानों में न होनेवाला।*

सिद्धि-(१) अपाश्या। यहां प्रथम पाश शब्द से 'पाशादिभ्यो यः' (४।२।४९) से समूह अर्थ में तद्धित य-प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'पाश्य' शब्द से 'नञ्' (२।२) से नञ्तत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में गुण-प्रतिषेध अर्थ में विद्यमान नञ् से परे 'पाश्य' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। य-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-अतृण्या।

(२) अदन्त्यम्। यहां दन्त शब्द से 'शरीरावयवाच्च' (४।३।५५) से भव-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अकर्ण्यम्।

अन्तोदात्तम्–

(१५) अच्कावशक्तौ।१५७।

प०वि०-अच्कौ १।२ अशक्तौ ७।१।

स०-अच् च कश्च तौ-अच्कौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न शक्तिरिति अशक्तिः, तस्याम्-अशक्तौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, नञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे नञोऽच्कावुत्तरपदमन्त उदात्तः, अशक्तौ।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे नञः परम् अच्-प्रत्ययान्तं क-प्रत्ययान्तं चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति, अशक्तौ गम्यमानायाम्।

उदा०-**(अच्)** पचतीति पचः, न पच इति अपचः। अजयः। **(क)** विक्षिपतीति विक्षिपः, न विक्षिप इति अविक्षिपः। अविलिखः।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (नञः) नञ्-शब्द से परे (अच्कौ) अच्-प्रत्ययान्त और क-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है (अशक्तौ) यदि वहां अशक्ति=असामर्थ्य अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-(अच्) अपचः। पकाने में अशक्त पुरुष। अजयः। जीतने में अशक्त पुरुष। (क) अविक्षिपः। विक्षेपण में अशक्त पुरुष। अविलिखः। विलेखन में अशक्त पुरुष।

सिद्धि-(१) अपचः। यहां प्रथम 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'पचः' शब्द से 'नञ्' (२।२।६) से नञ् तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में नञ्-शब्द से परे अच्-प्रत्ययान्त 'पचः' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अजयः। यहां 'तत्पुरुषे तुल्यार्थ०' (६।२।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।

(२) अविक्षिपः। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'क्षिप प्रेरणे' (तु०प०) धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (३।१।१३५) से 'क' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अविलिखः।

अन्तोदात्तम्–

(१६) आक्रोशे च।१५८।

प०वि०-आक्रोशे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, नञः, अच्काविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे आक्रोशे च नञोऽच्कावुत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे आक्रोशे च गम्यमाने नञः परम् अच्-प्रत्ययान्तं क-प्रत्ययान्तं चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(अच्) अपचोऽयं जाल्मः। अपठोऽयं जाल्मः। पक्तुं पठितुं च शक्तोऽप्येवमाक्रुश्यते। **(कः)** अविलिखः। अविलिखः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (च) और (आक्रोशे) दोषवचन अर्थ की प्रतीति में (नञः) नञ् से परे (अच्कौ) अच्-प्रत्ययान्त और क-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(अच्) अपचोऽयं जाल्मः। यह नीच पकानेवाला नहीं है (भर्त्सना)। अपठोऽयं जाल्मः। यह नीच पढ़नेवाला नहीं है। (क) अविक्षिपः। यह विक्षेपण करनेवाला नहीं है। अविलिखः। यह विलेखन (हल-चालन) करनेवाला नहीं है (भर्त्सना)।

सिद्धि-अपचः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है, यहां आक्रोश (भर्त्सना) अर्थ विशेष है।

अन्तोदात्तम्–

(१७) संज्ञायाम्।१५९।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, नञः, आक्रोशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां तत्पुरुषे आक्रोशे नञ उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषये तत्पुरुषे समासे आक्रोशे च गम्यमाने नञः परम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-न देवदत्त इति अदेवदत्तः। अयज्ञदत्तः। अविष्णुमित्रः।

यो देवदत्तः सन् तत् कार्यं न करोति स एवमाक्रुश्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में तथा (आक्रोशे) भर्त्सना अर्थ में (नञः) नञ्-शब्द से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-अदेवदत्तः। जो देवदत्त होता हुआ अपने नाम के सदृश कार्य नहीं करता है। अयज्ञदत्तः। जो यज्ञदत्त होता हुआ अपने नाम के सदृश कार्य नहीं करता है। अविष्णुमित्रः। जो विष्णुमित्र होता हुआ अपने नाम के सदृश कार्य नहीं करता है।

सिद्धि-अदेवदत्तः। यहां नञ् और देवदत्त शब्दों का 'नञ्' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय, तत्पुरुष समास तथा आक्रोश अर्थ की प्रतीति में नञ्-शब्द से परे 'देवदत्त' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अयज्ञदत्तः, अविष्णुमित्रः।

अन्तोदात्तम्-

(१८) कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च।१६०।

प०वि०-कृत्य-उक-इष्णुच्-चार्वादयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-चारु आदिर्येषां ते चार्वादयः। कृत्याश्च उकश्च इष्णुच् च चार्वादयश्च ते-कृत्योकेष्णुच्चार्वादयः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयेगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, नञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे नञः कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्चोत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे नञः परे कृत्य-उक-इष्णुच्प्रत्ययान्ताश्चार्वादयश्च शब्दा उत्तरपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-**(कृत्याः)** कर्तुमर्हम्-कर्त्तव्यम्, न कर्त्तव्यमिति अकर्त्तव्यम्। अकरणीयम्। **(उकः)** आगन्तुं शीलमस्येति आगामुकम्, न आगामुकमिति अनागामुकम्। अनपलाषुकम्। **(इष्णुच्)** अलङ्कर्तुं शीलमस्येति अलङ्करिष्णुः, न अलङ्करिष्णुरिति अनलङ्करिष्णुः। अनिराकरिष्णुः **(चार्वादिः)** न चारुरिति अचारुः। असाधुः। अयौधिकः। अवदान्यः, इत्यादिकम्।

चारु। साधु। यौधिक। अनङ्गमेजय। वदान्य। अकस्मात्। वा०-वर्तमानवर्धमानत्वरमाणध्रियमाणक्रियमाणरोचमानशोभमानाः संज्ञायाम्। वा०-

विकासदृशे व्यस्तसमस्ते। अविकारः। असदृशः। अविकारसदृशः। गृहपति। गृहपतिक। वा०-राजाह्नोश्छन्दसि। अराजा। अनहः। इति चार्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (नञः) नञ्-शब्द से परे (कृत्योकेष्णुच्चार्वादयः) कृत्य, उक और इष्णुच् प्रत्ययान्त तथा चारु-आदि शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-**(कृत्य) अकर्त्तव्यम्।** न करने योग्य कर्म। **अकरणीयम्।** न करने योग्य कर्म। **(उक) अनागामुकम्।** जो आगमनशील नहीं है। **अनपलाषुकम्।** जो दुष्कामनाशील नहीं है। **(इष्णुच्) अनलङ्करिष्णुः।** जो अलंकरणशील है। **अनिराकरिष्णुः।** जो निराकरणशील नहीं है। **(चार्वादि) अचारुः।** जो चारु=सुन्दर नहीं है। **असाधुः।** जो साधु नहीं है। **अयौधिकः।** जो युद्ध करनेवाला नहीं है। **अवदान्यः।** जो दानशील नहीं है, इत्यादि।*

*सिद्धि-**(१) अकर्तव्यम्।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से कृत्य-संज्ञक 'तव्य' प्रत्यय है। तत्पश्चात् नञ् और कर्तव्य शब्दों का **'नञ्'** (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में नञ्-शब्द से परे कृत्य-प्रत्ययान्त कर्त्तव्य उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*(२) **अकरणीयम्।** यहां पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से पूर्ववत् 'अनीयर्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अनागामुकम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्य उकञ्'** (३।२।१५४) से 'उकञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही अप-उपसर्गपूर्वक **'लष कान्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**अनपलाषुकम्।***

*(४) **अनलङ्करिष्णुः।** यहां अलम्-पूर्वक पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से **'अलङ्कृञ्-निराकृञ्०चर इष्णुच्'** (३।२।१३६) से 'इष्णुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-निर् और आङ्पूर्वक पूर्वोक्त 'कृञ्' धातु से-**अनिराकरिष्णुः।***

*(५) **अचारुः।** यहां नञ् और चारु शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**असाधुः** आदि।*

अन्तोदात्तविकल्पः-

(१६) विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु।१६१।

प०वि०-विभाषा १।१ तृन्-अन्न-तीक्ष्ण-शुचिषु ७।३।

स०-तृन् च अन्नं च तीक्ष्णं च शुचिश्च ताः-तृन्नन्नतीक्ष्णशुचयः, तासु-तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, तत्पुरुषे, अन्तः, नञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे नञस्तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु उत्तरपदं विभाषाऽन्तोदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे नञः परं तृन्-प्रत्ययान्तम् अन्नतीक्ष्णशुचि-शब्दाश्चोत्तरपदानि विकल्पेनान्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(**तृन्**) कर्तुं शीलमस्येति-कर्ता, न कर्ता इति अकर्ता। अकर्ता। (**अन्नम्**) न अन्नमिति अनन्नम्। अनन्नम्। (**तीक्ष्णम्**) न तीक्ष्णमिति अतीक्ष्णम्। अतीक्ष्णम्। (**शुचिः**) न शुचिरिति अशुचिः। अशुचिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (नञः) नञ्-शब्द से परे (तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु) तृन्-प्रत्ययान्त तथा अन्न, तीक्ष्ण और शुचि शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (विभाषा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-(तृन्) **अकर्ता। अकर्ता।** अकरणशील पुरुष। (अन्न) **अनन्नम्। अनन्नम्।** जो अन्न नहीं है। (तीक्ष्ण) **अतीक्ष्णम्। अतीक्ष्णम्।** जो तीक्ष्ण=तेज नहीं है। (शुचि) **अशुचिः। अशुचिः।** अशुद्धि।*

*सिद्धि-**अकर्ता।** यहां प्रथम '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**तृन्**' (३।२।१३५) से तच्छील आदि अर्थों में 'तृन्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् नञ् और कर्ता शब्दों का '**नञ्**' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास होता है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में नञ्-शब्द से परे तृन्-प्रत्ययान्त कर्ता उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में '**तत्पुरुषे तुल्यार्थ०**' (६।२।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। '**निपाता आद्युदात्ताः**' (फिट्० ४।१२) से नञ्-शब्द आद्युदात्त होता है-**अकर्ता।***

*(२) **अनन्नम्।** यहां नञ् और अन्न शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अतीक्ष्णम्, अतीक्ष्णम्। अशुचिः, अशुचिः।***

अन्तोदात्तम्-

(२०) बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने।१६२।

प०वि०-बहुव्रीहौ ७।१ इदम्-एतत्-तद्भ्यः ५।३ प्रथम-पूरणयोः ७।२ क्रिया-गणने ७।१।

स०-इदं च एतच्च तच्च ते-इदमेतत्तदः, तेभ्यः-इदमेतत्तद्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्रथमश्च पूरणं च ते प्रथमपूरणे, तयोः-प्रथमपूरणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क्रियाया गणनमिति क्रियागणनम्, तस्मिन्-क्रियागणने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः क्रियागणने प्रथमपूरणयोरुत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे इदमेतत्तद्भ्यः परं, क्रियागणने वर्तमानः प्रथमशब्दः, पूरणप्रत्ययान्तश्चोत्तरपदमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(इदम्)** इदं प्रथमं भोजनम्/गमनं यस्य सः-इदम्प्रथमः। **(एतत्)** एतत्प्रथमः। **(तत्)** तत्प्रथमः (प्रथमः)। **(इदम्)** इदं द्वितीयं भोजनम्/गमनं यस्य सः-इदन्द्वितीयः। इदन्तृतीयः। **(एतत्)** एतद्द्वितीयः। एतत्तृतीयः। **(तत्)** तद्द्वितीयः। तत्तृतीयः (पूरणम्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (इदमेतत्तद्भ्यः) इदम्, एतत् और तत् शब्दों से परे (क्रियागणने) क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान (प्रथमपूरणयोः) प्रथम और पूरण-प्रत्ययान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(इदम्) ***इदम्प्रथमः।*** *यह प्रथम भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष। (एतत्)* ***एतत्प्रथमः।*** *अर्थ पूर्ववत् है। (तत्)* ***तत्प्रथमः*** *वह प्रथम भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष (प्रथम)। (इदम्)* ***इदन्द्वितीयः।*** *यह दूसरा भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष।* ***इदन्तृतीयः।*** *यह तीसरा भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष। (एतत्)* ***एतद्द्वितीयः।*** *अर्थ पूर्ववत् है।* ***एतत्तृतीयः।*** *अर्थ पूर्ववत् है। (तत्)* ***तद्द्वितीयः।*** *वह द्वितीय भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष।* ***तत्तृतीयः।*** *वह तृतीय भोजन/गमन है जिसका वह पुरुष।*

सिद्धि-(१) ***इदम्प्रथमः।*** *यहां इदम् और प्रथम शब्दों का* ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इदम् शब्द से परे क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान प्रथम उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।* ***'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'*** *(६।२।१) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। ऐसे ही-**एतत्प्रथमः, तत्प्रथमः।***

(२) ***इदन्द्वितीयः।*** *यहां इदम् और द्वितीय शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में इदम् शब्द से परे क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान पूरण-प्रत्ययान्त 'द्वितीय' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।* ***'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'*** *(६।१।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। द्वितीय शब्द में* ***'द्वेस्तीयः'*** *(५।२।५४) से पूरण-अर्थ में 'तीय' प्रत्यय है। ऐसे ही-एतद्द्वितीयः, तद्द्वितीयः, इदन्तृतीयः, एतत्तृतीयः, तत्तृतीयः। 'तृतीय' शब्द में 'त्रि' शब्द से* ***'त्रेः सम्प्रसारणं च'*** *(५।२।५५) से 'तीय' प्रत्यय और 'त्रि' को सम्प्रसारण भी होता है।*

अन्तोदात्तम्–

(२१) संख्यायाः स्तनः ।१६३।

प०वि०–संख्यायाः ५ ।१ स्तनः १ ।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ संख्यायाः स्तन उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे संख्यावाचिनः शब्दात् परः स्तनशब्द उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०–द्वौ स्तनौ यस्याः सा-द्विस्तना। त्रिस्तना। चतुःस्तना।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (स्तनः) स्तन-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**द्विस्तना।** दो स्तनोंवाली बकरी। **त्रिस्तना।** तीन स्तनोंवाली (तिथण)। **चतुःस्तना।** चार स्तनोंवाली गौ।*

*सिद्धि-**द्विस्तना।** यहां द्वि और स्तन शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में संख्यावाची द्वि-शब्द से परे 'स्तन' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**त्रिस्तना, चतुःस्तना।***

अन्तोदात्तविकल्पः–

(२२) विभाषा छन्दसि ।१६४।

प०वि०–विभाषा १ ।१ छन्दसि ७ ।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहौ, संख्यायाः, स्तन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि बहुव्रीहौ संख्यायाः स्तन उत्तरपदं विभाषा अन्त उदात्तः।

अर्थः–छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे संख्यावाचिनः शब्दात् परः स्तन-शब्द उत्तरपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०–द्विस्तनां कुर्याद् वामदेवः। द्विस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहाय चतुःस्तनां करोति पशूनां दोहाय (तै०सं० ५ ।१ ।६ ।४)। चतुःस्तनां करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (स्तनः) स्तन-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (विभाषा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-द्विस्तनां कुर्याद् वामदेवः। द्विस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहाय चतुःस्तनां करोति। पशूनां दोहाय (तै०सं० ५।१।६।४)। चतुःस्तनां करोति।

सिद्धि-(१) द्विस्तना। यहां द्वि और स्तन शब्दों का ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से वेदविषय में तथा बहुव्रीहि समास में संख्यावाची द्वि-शब्द से परे 'स्तन' शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में* ***'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'*** *(६।२।१) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। 'द्वि' शब्द* ***'फिषोऽन्तोदात्तः'*** *(१।१।१) से अन्तोदत्त है-द्विस्तना।*

(२) चतुःस्तना। यहां चतुर् और स्तन शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। चतुर्-शब्द में 'चतेरुरन्' (उणा० ५।५८) से उरन् प्रत्यय है। अतः यह प्रत्यय के नित् होने से ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६।१।१९७) से आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अन्तोदात्तम्-

(२३) संज्ञायां मित्राजिनयोः।१६५।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ मित्र-अजिनयोः ६।२।

स०-मित्रं च अजिनं च ते मित्राजिने, तयोः-मित्राजिनयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां बहुव्रीहौ मित्राजिनयोरुत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-संज्ञायां विषये बहुव्रीहौ समासे मित्राजिनयोरुत्तरपदयोरन्तोदात्तो भवति।

उदा०-(मित्रम्) देवो मित्रं यस्य सः-देवमित्रः। ब्रह्ममित्रः। **(अजिनम्)** वृकमजिनं यस्य सः-वृकाजिनः। कूलाजिनः। कृष्णाजिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में तथा (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (मित्राजिनयोः) मित्र और अजिन (उत्तरपदम्) उत्तरपदों को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(मित्र) देवमित्रः। देव है मित्र जिसका वह पुरुष। ब्रह्ममित्रः। ब्रह्मा है मित्र जिसका वह पुरुष। (अजिन) वृकाजिनः। वृक=भेड़िये का चर्म है आच्छादन जिसका वह

तपस्वी। कूलाजिनः। कूल=नदी तट आदि है आच्छादन जिसका वह तपस्वी। कृष्णाजिनः। कृष्ण हरिण का चर्म है आच्छादन जिसका वह ब्रह्मचारी।

सिद्धि-(१) देवमित्रः। यहां देव और मित्र शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय मे तथा बहुव्रीहि समास में 'देव' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-ब्रह्ममित्रः।

(२) वृकाजिनः। यहां वृक और अजिन शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। यहां वृक शब्द वृक के विकार (चर्म) अर्थ में है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कूलाजिनः, कृष्णाजिनः।

अन्तोदात्तम्–

(२४) व्यवायिनोऽन्तरम्।१६६।

प०वि०-व्यवायिनः ५।१ अन्तरम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ व्यवायिनोऽन्तरम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे व्यवायिवाचिनः शब्दात् परम् अन्तरमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति। व्यवायी=व्यवधायक इत्यर्थः।

उदा०-वस्त्रमन्तरं यस्य सः-वस्त्रान्तरः। पटान्तरः। कम्बलान्तरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (व्यवायिनः) व्यवायी=व्यवधायकवाची शब्द से परे (अन्तरम्) अन्तर-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-वस्त्रान्तरः। वस्त्र है अन्तर (व्यवधान) जिसका वह पुरुष। पटान्तरः। कपड़ा है अन्तर जिसका वह पुरुष। कम्बलान्तरः। कम्बल है अन्तर जिसका वह पुरुष। अन्तर=पर्दा।

सिद्धि-वस्त्रान्तरः। यहां वस्त्र और अन्तर शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में व्यवायी=व्यवधायकवाची वस्त्र-शब्द से परे अन्तर उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-पटान्तरः, कम्बलान्तरः।

अन्तोदात्तम्–

(२५) मुखं स्वाङ्गम्।१६७।

प०वि०-मुखम् १।१ स्वाङ्गम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्वाङ्गं मुखम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे स्वाङ्गवाचि मुखमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-गौरं मुखं यस्य सः-गौरमुखः। भद्रमुखः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (स्वाङ्गम्) स्वाङ्गवाची (मुखम्) मुख-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-गौरमुखः। गौर वर्ण है मुख जिसका वह पुरुष। भद्रमुखः। भद्र=सुखकारी है मुख जिसका वह पुरुष।

*सिद्धि-गौरमुखः। यहां गौर और मुख शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में स्वाङ्गवाची 'मुख' शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-भद्रमुखः।*

अन्तोदात्तप्रतिषेधः-

(२६) नाव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः।१६८।

प०वि०-न अव्ययपदम्, अव्यय-दिक्शब्द-गो-महत्-स्थूल-मुष्टि-पृथु-वत्सेभ्यः ५।३।

स०-अव्ययं च दिक्शब्दश्च गौश्च महच्च स्थूलं च मुष्टिश्च पृथु च वत्सश्च ते-अव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्साः, तेभ्यः-अव्ययदिक्शब्द-गोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहौ, मुखम्, स्वाङ्गमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ अव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः स्वाङ्गं मुखम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तो न।

अर्थः-बहुव्रीहौ अव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः परं स्वाङ्गवाचि मुखमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं न भवति।

उदा०-(अव्ययम्) उच्चैर्मुखं यस्य सः-उच्चैर्मुखः। नीचैर्मुखः। **(दिक्शब्दः)** प्राङ् मुखं यस्य सः-प्राङ्मुखः। प्रत्यङ्मुखः। **(गौः)** गौरिव मुखं यस्य सः-गोमुखः। **(महत्)** महद् मुखं यस्य सः-महामुखः। **(स्थूलम्)**

स्थूलं मुखं यस्य सः-स्थूलमुखः। (**मुष्टिः**) मुष्टिरिव मुखं यस्य सः-मुष्टिमुखः। (**पृथु**) पृथु मुखं यस्य सः-पृथुमुखः। (**वत्सः**) वत्स इव मुखं यस्य सः-वत्समुखः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अव्यय०वत्सेभ्यः) अव्यय, दिशावाची शब्द, गौ, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु और वत्स शब्दों से परे (स्वाङ्गम्) स्वाङ्गवाची (मुखम्) मुख-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अव्यय) अन्तोदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(अव्यय) उच्चैर्मुखः।** ऊंचा है मुख जिसका वह पुरुष। **नीचैर्मुखः।** नीचा है मुख जिसका वह पुरुष। **(दिक्शब्द) प्राङ्मुखः।** पूर्व दिशा की ओर है मुख जिसका वह उपासक। **प्रत्यङ्मुखः।** पश्चिम दिशा की ओर है मुख जिसका वह उपासक। **(गौ) गोमुखः।** गौ के मुख के समान है मुख जिसका वह पुरुष। **(महत्) महामुखः।** महान्=बड़ा है मुख जिसका वह पुरुष। **(स्थूल) स्थूलमुखः।** मोटा है मुख जिसका वह पुरुष। **(मुष्टि) मुष्टिमुखः।** मुट्ठी के समान है मुख जिसका वह पुरुष। **(पृथु) पृथुमुखः।** पृथु के समान है मुख जिसका वह पुरुष। **(वत्स) वत्समुखः।** बच्चे के समान है मुख जिसका वह पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **उच्चैर्मुखः।** यहां उच्चैस् और मुख शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में उच्चैस् अव्यय से परे स्वाङ्गवाची 'मुख' शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर का प्रतिषेध होता है। अतः **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।२) से 'उच्चैस्' शब्द **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्यय है और यह वहां स्वरादिगण में अन्तोदात्त पठित है। ऐसे ही-**नीचैर्मुखः।***

*(२) **प्राङ्मुखः।** यहां प्राक् और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहि समास में **'अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये'** (६।२।५२) से प्राक्-शब्द को पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है। प्राक्-शब्द में प्र-शब्द **'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्'** (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त है। इस प्रकार 'प्राक्' शब्द आद्युदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **प्रत्यङ्मुखः।** यहां प्रत्यक् और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। प्रत्यक् शब्द में प्रति-उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'गतिकारकोपपदात् कृत्'** (६।२।१३९) से गतिसंज्ञक प्रति-शब्द से परे अक् कृदन्त को पूर्वोक्त नित् प्रत्यय होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९७) से आद्युदात्त होता है। इस प्रकार प्रत्यक् शब्द अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **गोमुखः।** यहां गो और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। गो शब्द में **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'गमेर्डो'** (उणा० २।६८) से 'डो' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है।*

*(५) महामुखः। यहां महत् और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। महत् शब्द **'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च'** (उणा० २।८५) से अति-प्रत्ययान्त निपातित है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। **'निष्ठोपमानादन्यतरस्याम्'** (६।२।१६९) से विकल्प से उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था, उसका यह पूर्व प्रतिषेध है।*

*(६) स्थूलमुखः। यहां स्थूल और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। स्थूल शब्द **'स्थूल परिबृंहणे'** (चु०आ०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से पचादि 'अच्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१६३) से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) मुष्टिमुखः। यहां मुष्टि और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। मुष्टि शब्द **'मुष स्तेये'** (क्र्या०प०) धातु से **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) से क्तिच्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१६३) से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां पूर्ववत् पूर्वप्रतिषेध है।*

*(८) पृथुमुखः। यहां पृथु और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। पृथु शब्द में **'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च'** (उणा० १।२८) से 'कु' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(९) वत्समुखः। यहां वत्स और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। वत्स शब्द में **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से **'वृतृवदिवचिवसिहनिकमिकषिभ्यः सः'** (उणा० ३।६२) से 'स' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां पूर्ववत् पूर्वप्रतिषेध है।*

अन्तोदात्तविकल्पः—

(२७) निष्ठोपमानादन्यतरस्याम्।१६६।

प०वि०-निष्ठा-उपमानात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-उपमीयतेऽनेनेति उपमानं सिंहादिकम्। निष्ठा च उपमानं च एतयोः समाहारो-निष्ठोपमानम्, तस्मात्-निष्ठोपमानात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहौ, मुखम्, स्वाङ्गमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ निष्ठोपमानात् स्वाङ्गं मुखम् उत्तरपदम् अन्यतरस्याम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे निष्ठान्ताद् उपमानवाचिनश्च शब्दात् परं स्वाङ्गवाचि मुखमित्युत्तरपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०-(निष्ठा) प्रक्षालितं मुखं येन सः-प्रक्षालितमुखः। प्रक्षालितमुखः। प्रक्षालितमुखः। **(उपमानम्)** सिंह इव मुखं यस्य सः-सिंहमुखः। सिंहमुखः। व्याघ्रमुखः। व्याघ्रमुखः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (निष्ठोपमानात्) निष्ठा-प्रत्ययान्त और उपमानवाची शब्द से परे (स्वाङ्गम्) स्वाङ्गवाची (मुखम्) मुख-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(निष्ठा) **प्रक्षालितमुखः। प्रक्षालितमुखः। प्रक्षालितमुखः।** धो लिया है मुख जिसने वह पुरुष। (उपमान) **सिंहमुखः। सिंहमुखः।** शेर के मुख के समान है जिसका वह वीरपुरुष। **व्याघ्रमुखः। व्याघ्रमुखः।** बाघ के मुख के समान मुख है जिसका वह शूर पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **प्रक्षालितमुखः।** यहां प्रक्षालित और मुख शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। प्रक्षालित शब्द में प्र-उपसर्गपूर्वक **'क्षल शौचकर्मणि'** (चु०प०) णिजन्त धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में निष्ठा-संज्ञक क्त-प्रत्यय है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में इस निष्ठान्त-शब्द से परे स्वाङ्गवाची मुख-शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम्'** (६।१।११०) से पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर होता है और उसका भी विकल्प-वचन होने से **'गतिरनन्तरः'** (६।२।४९) से गति-संज्ञक प्र-शब्द को उदात्तस्वर होता है। इस प्रकार यहां उपरिलिखित तीन स्वर होते हैं।*

*(२) **सिंहमुखः।** यहां सिंह और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में उपमानवाची सिंह-शब्द से परे स्वाङ्गवाची मुख-शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से सिंह पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। सिंह-शब्द में **'हिसि हिंसायाम्'** (रुधा०प०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय। प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१६३) से अन्तोदात्त होता है। **'पृषदोदरादीनि यथोपदिष्टम्'** (६।३।१०७) से वर्ण-विपर्यय होने से 'सिंहः' शब्द सिद्ध होता है-**सिंहमुखः।***

*(३) **व्याघ्रमुखः।** यहां व्याघ्र और मुख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में उपमानवाची व्याघ्र शब्द से परे स्वाङ्गवाची 'मुख' शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

विकल्प पक्ष में व्याघ्र शब्द को पूर्ववत् पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। व्याघ्र शब्द में वि-आङ्-उपसर्गपूर्वक 'घ्रा गन्धोपादाने' (रुधा०प०) धातु 'आतश्चोपसर्गे' (३।१।१३६) से 'क' प्रत्यय है। अत: यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। 'व्याघ्र' शब्द में 'पाघ्राध्माधेट्दृशः शः' (३।१।१३७) से 'श' प्रत्यय नहीं है क्योंकि वहां वा०-'जिघ्रतेः संज्ञायां प्रतिषेधः' (३।१।१३७) से संज्ञा विषय में श-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है।

अन्तोदात्तम्–

(२८) जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छदनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः।१७०।

प०वि०-जाति-काल-सुखादिभ्यः ५।३ अनाच्छदनात् ५।१ क्तः १।१ अकृत-मित-प्रतिपन्नाः १।३।

स०-सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयः। जातिश्च कालश्च सुखादयश्च ते जातिकालसुखादयः, तेभ्यः-जातिकालसुखादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आच्छाद्यतेऽनेनेति आच्छादनम्, न आच्छादनमिति अनाच्छादनम्, तस्मात्-आच्छादनात् (नञ्तत्पुरुषः)। **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः। कृश्च मितश्च प्रतिपन्नश्च ते कृतमितप्रतिपन्नाः, न कृतमितप्रतिपन्ना इति अकृतमितप्रतिपन्नाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ अनाच्छादनाज्जातिकालसुखादिभ्योऽकृतमितप्रतिपन्नाः क्त उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे आच्छादनवर्जितेभ्यो जातिवाचिभ्यः कालवाचिभ्यः सुखादिभ्यश्च शब्देभ्यः परं कृतमितप्रतिपन्नवर्जितं क्तान्तम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-**(जातिः)** सारङ्गो जग्धो येन सः-सारङ्गजग्धः। पलाण्डुभक्षितः। सुरापीतः। **(कालः)** मासो जातो यस्य सः-मासजातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः। **(सुखादिः)** सुखं जातं यस्य सः-सुखजातः। दुःखजातः। तृप्रजातः।

सुख। दुःख। तृप्त। गहन। कृच्छ्र। अस्र। अलीक। प्रतीप। करुण। कृपण। सोढ। इति सुखादयः।। एते **'सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्'** (३।१।१८) इत्यत्र सूत्रे पठ्यन्ते।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अनाच्छादनात्) आच्छादनवाची शब्द को छोड़कर (जातिकालसुखादिभ्यः) जातिवाची, कालवाची और सुखादि शब्दों से परे (अकृतमितप्रतिपन्नाः) कृत, मित और प्रतिपन्न इन शब्दों को छोड़कर (क्तः) क्त-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(जाति) सारङ्गजग्धः। जिसने सारङ्ग (चितकबरा हरिण) खा लिया है वह मांसभक्षी पुरुष। पलाण्डुभक्षितः। जिसने पलाण्डु (प्याज) खा लिया है वह तामसभोजी पुरुष। सुरापीतः। जिसने सुरा का पान कर लिया है वह शराबी। (काल) मासजातः। जिसे उत्पन्न हुये एक मास हो चुका है वह बालक। संवत्सरजातः। जिसे उत्पन्न हुये एक वर्ष हो चुका है वह बालक। द्व्यहजातः। जिसे उत्पन्न हुये दो दिन हो चुके हैं वह बालक। त्र्यहजातः। जिसे उत्पन्न हुये तीन दिन हो चुके हैं वह बालक। (सुखादि) सुखजातः। जिसे सुख हो गया है वह सुखी पुरुष। दुःखजातः। जिसे दुःख हो गया है वह दुःखी पुरुष। तृप्रजातः। जिसे तृप्र=पुरोडाश प्राप्त हो चुका है वह यज्ञीय पुरुष।

*सिद्धि-(१) सारङ्गजग्धः। यहां सारङ्ग और जग्ध शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि में जातिवाची सारङ्ग शब्द से परे **क्त-प्रत्ययान्त** जग्ध उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। जग्ध-शब्द में **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति'** (२।४।३६) से अद् के स्थान में जग्धि-आदेश होता है। बहुव्रीहि समास में **'निष्ठा'** (२।३।३६) से निष्ठान्त पद का पूर्वनिपात प्राप्त है किन्तु **वा०-'निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम्'** (२।२।३९) से क्तान्त पद का परनिपात होता है। ऐसे ही-पलाण्डुभक्षितः, सुरापीतः।*

*(२) मासजातः। यहां मास और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास में कालवाची मास शब्द से परे क्तान्त 'जात' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। जात-शब्द में **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'जनसनखनां सञ्झलोः' (६।४।४२) से आत्त्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-संवत्सरजातः आदि।*

*(३) सुखजातः। यहां सुख और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। सुखादि शब्द **'सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्'** (३।१।१८) सूत्र में पठित हैं। ऐसे ही-दुःखजातः आदि।*

*(४) तृप्रजातः । यहां तृप्र और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में 'तृप्र' पूर्वपद को पूर्ववत् प्रकृतिस्वर होता है। 'तृप्र' शब्द में '**तृप प्रीणने**' (दि०प०) धातु से '**स्फायितञ्चि०**' (उणा० २।१३) से 'र' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। शेष कार्य पूर्वोक्त है।*

अन्तोदात्तविकल्पः–

(२६) वा जाते।१७१।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, जाते ७।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहौ, जातिकालसुखादिभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ जातिकालसुखादिभ्यो जात उत्तरपदं वाऽन्त उदात्तः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे जातिकालवाचिभ्यः कालवाचिभ्यः सुखादिभ्यश्च शब्देभ्यः परं जात इत्युत्तरपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०–**(जातिः)** दन्ता जाता यस्य सः–दन्तजातः। दन्तजातः। स्तनजाता। स्तनजाता। **(कालः)** मासो जातो यस्य सः–मासजातः। मासजातः। संवत्सरजातः। संवत्सरजातः। **(सुखादिः)** सुखं जातं यस्य सः–सुखजातः। सुखजातः। दुःखजातः। दुःखजातः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (जातिकालसुखादिभ्यः) जातिवाची, कालवाची और सुखादि शब्दों से परे (जाते) जात-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (वा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०–(जाति) दन्तजातः। दन्तजातः। जिसके दांत उत्पन्न हो चुके हैं वह बालक। स्तनजाता। स्तनजाता। जिसके स्तन उत्पन्न हो चुके हैं वह कुमारी। (काल) मासजातः। मासजातः। जिसे उत्पन्न हुये एक मास हो चुका है वह बालक। संवत्सरजातः। संवत्सरजातः। जिसे उत्पन्न हुये एक वर्ष हो चुका है वह बालक। (सुखादि) सुखजातः। सुखजातः। जिसे सुख हो चुका है वह सुखी पुरुष। दुःखजातः। दुःखजातः। जिसे दुःख हो चुका है वह दुःखी पुरुष।

सिद्धि–(१) दन्तजातः। यहां दन्त और जात शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से जातिवाची दन्त शब्द से परे 'जात' शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

*यहां विकल्प पक्ष में '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६।२।१) से दन्त पूर्वपद को*

प्रकृतिस्वर होता है। 'दन्त' शब्द 'स्वाङ्गशिष्टानामदन्तानाम्' (फिट्० २।६) से अन्तोदात्त है-दन्तजातः। ऐसे ही-स्तनजाता। स्तनजाता।

*(२) मासजातः। यहां मास और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में मास पूर्वपद को पूर्ववत् प्रकृतिस्वर होता है। मास शब्द में '**मसी परिमाणे**' (दि०प०) धातु से 'हलश्च' (३।३।१२१) से करणकारक में 'घञ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ञित् होने से यह 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९७) आद्युदात्त है-मासजातः। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) संवत्सरजातः। यहां संवत्सर और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में संवत्सर पूर्वपद को पूर्ववत् प्रकृतिस्वर होता है। संवत्सर शब्द में सम्-उपसर्गपूर्वक '**वस निवासे**' (भ्वा०प०) धातु से '**सम्पूर्वाच्चित्**' (उणा० ३।७२) से सर-प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है-संवत्सरजातः। शेष कार्य पूर्वोक्त है।*

*(४) सुखजातः। यहां सुख और जात शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में सुख पूर्वपद को पूर्ववत् प्रकृतिस्वर होता है। सुख-शब्द में सु-उपसर्ग पूर्वक '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**अन्येष्वपि दृश्यते**' (३।२।१०१) से 'ड' प्रत्यय है अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है-सुखजातः। ऐसे ही-दुःखजातः, दुःखजातः।*

अन्तोदात्तम्-

(३०) नञ्सुभ्याम्।१७२।

प०वि०-नञ्-सुभ्याम् ५।२।

स०-नञ् च सुश्च तौ-नञ्सू, ताभ्याम्-नञ्सुभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्सुभ्यां शब्दाभ्यां परम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(**नञ्**) न विद्यन्ते यवा यस्मिन् सः-अयवो देशः। अव्रीहिर्देशः। अमाषो देशः। (**सुः**) शोभना यवा यस्मिन् सः-सुयवो देशः। सुव्रीहिर्देशः। सुमाषो देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्सुभ्याम्) नञ् और सु-शब्दों से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(नञ्) अयवो देशः। वह देश जिसमें यव=जौ नहीं होते हैं। अव्रीहिर्देशः। वह देश जिसमें व्रीहि=चावल नहीं होते हैं। अमाषो देशः। वह देश जिसमें माष=उड़द नहीं

होते हैं। (सु) सुयवो देशः। वह देश जिसमें यव अच्छे होते हैं। सुव्रीहिर्देशः। वह देश जिसमें व्रीहि अच्छे होते हैं। सुमाषो देशः। वह देश जिसमें माष अच्छे होते हैं।

सिद्धि-(१) अयवः। यहां नञ् और यव शब्दों 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे यव उत्तरपद को अन्तोदात्त होता है। 'नलोपो नञः' (६।३।७३) से नञ् के नकार का लोप होकर अकार शेष रहता है। ऐसे ही-अव्रीहिः, अमाषः।

(२) सुयवः। यहां सु और यव शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में सु-शब्द से परे यव उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-सुव्रीहिः। सुमाषः।

अन्तोदात्तम्-

(३१) कपि पूर्वम्।१७३।

प०वि०-कपि ७।१ पूर्वम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहौ, नञ्सुभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम् उत्तरपदं कपि पूर्वम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्सुभ्यां शब्दाभ्यां परम् उत्तरपदं कपि प्रत्यये परतः पूर्वमन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(नञ्) न विद्यन्ते कुमार्यो यस्मिन् सः-अकुमारीको देशः। अवृषलीको देशः। अब्रह्मबन्धूको देशः। (सुः) शोभना विद्यन्ते कुमार्यो यस्मिन् सः-सुकुमारीको देशः। सुवृषलीको देशः। सुब्रह्मबन्धूको देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्सुभ्याम्) नञ् और सु शब्दों से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (कपि) कप्-प्रत्यय से (पूर्वम्) पूर्व (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(नञ्) अकुमारीको देशः। वह देश जिसमें कुमारियां नहीं हैं। अवृषलीको देशः। वह देश जिसमें वृषलियां नहीं हैं। वृषली=अविवाहित रजस्वला कन्या। अब्रह्मबन्धूको देशः। वह देश जिसमें ब्रह्मबन्धू स्त्रियां नहीं हैं। ब्रह्मबन्धू=पतित ब्राह्मणी। (सु) सुकुमारीको देशः। वह देश जिसमें सुन्दर कुमारियां नहीं हैं। सुवृषलीको देशः। वह देश जिसमें सुन्दर वृषलियां नहीं हैं। सुब्रह्मबन्धूको देशः। वह देश जिसमें सुन्दर ब्रह्मबन्धू स्त्रियां नहीं हैं।

सिद्धि-(१) अकुमारीकः। यहां नञ् और कुमारी शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे

कुमारी उत्तरपद को कप्-प्रत्यय परे होने पर अन्तोदात्त स्वर होता है। कुमारी-शब्द की 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' (१।४।३) से नदी संज्ञा है। 'नद्यृतश्च' (५।४।१५३) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-अवृषलीकः, अब्रह्मबन्धूकः।

(२) सुकुमारीकः। यहां सु और कुमारी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। शेष कार्य पूर्वोक्त है। ऐसे ही-सवृषलीकः, सुब्रह्मबन्धूकः।

अन्त्यात् पूर्वमुदात्तम्–

(३२) ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम्।१७४।

प०वि०-ह्रस्वान्ते ७।१ अन्त्यात् ५।१ पूर्वम् १।१।

स०-ह्रस्वोऽन्ते यस्य तत्-ह्रस्वान्तम्, तस्मिन्-ह्रस्वान्ते (बहुव्रीहिः)। अन्ते भवम्-अन्त्यम्, तस्मात्-अन्त्यात्। **'दिगादिभ्यो यत्'** (४।३।५४) इति भवार्थे यत् प्रत्ययः।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, बहुव्रीहौ, नञ्सुभ्याम्, कपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यां ह्रस्वान्तम् उत्तरपदम् कपि अन्त्यात् पूर्वम् उदात्तम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्सुभ्यां शब्दाभ्यां परं ह्रस्वान्तम् उत्तरपदं कपि प्रत्यये परतोऽन्त्यात् पूर्वम् उदात्तं भवति।

उदा०-**(नञ्)** न विद्यन्ते यवा यस्मिन् सः-अयवको देशः। अव्रीहिको देशः। अमाषको देशः। **(सुः)** शोभना यवा यस्मिन् सः-सुयवको देशः। सुव्रीहिको देशः। सुमाषको देशः।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ__-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्सुभ्याम्) नञ् और सु शब्दों से परे (ह्रस्वान्त) ह्रस्व-वर्णान्त (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (कपि) कप् प्रत्यय परे होने पर (अन्त्यात्) अन्तिम वर्ण से (पूर्वम्) पूर्व वर्ण (उदात्तः) उदात्त होता है।

*उदा०-(नञ्) **अयवको देशः।** वह देश जिसमें यव=जौ नहीं होते हैं। **अव्रीहिको देशः।** वह देश जिसमें व्रीहि=चावल नहीं होते हैं। **अमाषको देशः।** वह देश जिसमें माष=उड़द नहीं होते हैं। (सु) **सुयवको देशः।** वह देश जिसमें यव=जौ अच्छे होते हैं। **सुव्रीहिको देशः।** वह देश जिसमें व्रीहि अच्छे होते हैं। **सुमाषको देशः।** वह देश जिसमें माष अच्छे होते हैं।*

सिद्धि-अयवकः । यहां नञ् और यव शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'शेषाद् विभाषा' (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे ह्रस्वान्त 'यव' उत्तरपद को अन्त्य वकार से पूर्ववर्ती यकार को उदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अव्रीहिकः आदि।

नञ्वत्स्वरविधिः--

(३३) बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि।१७५।

प०वि०-बहोः ५।१ नञ्वत् अव्ययपदम्, उत्तरपदभूम्नि ७।१।

तद्धितवृत्तिः-नञ इव इति नञ्वत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति इवार्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-उत्तरपदस्य भूमा इति उत्तरपदभूमा, तस्मिन्-उत्तरपदभूम्नि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपरम्, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उत्तरपदभूम्नि बहोरुत्तरपदं नञ्वत्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उत्तरपदस्य बहुत्वेऽर्थे वर्तमानाद् बहु-शब्दात् परम् उत्तरपदं नञ्वत्स्वरं भवति। **उदाहरणम्**--

(१) **'नञ्सुभ्याम्'** (६।२।१७२) इत्युक्तम्, तद् बहोरपि तथा भवति-बहुयवो देशः। बहुव्रीहिर्देशः। बहुतिलो देशः।

(२) **'कपि पूर्वम्'** (६।२।१७३) इत्युक्तम्, तद् बहोरपि तथा भवति-बहुकुमारीको देशः। बहुवृषलीको देशः। बहुब्रह्मबन्धूको देशः।

(३) **'ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम्'** (६।२।१७४) इत्युक्तम्, तद् बहोरपि तथा भवति-बहुयवको देशः। बहुव्रीहिको देशः। बहुमाषको देशः।

(४) **'नञो जरमरमित्रमृताः'** (६।२।११६) इत्युक्तम्, तद् बहोरपि भवति-बहुजरः। बहुमरः। बहुमित्रः। बहुमृतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उत्तरपदभूम्नि) उत्तरपद के बहुत्व अर्थ में विद्यमान (बहोः) बहु-शब्द से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (नञ्वत्) नञ् के समान स्वर होता है। उदाहरण--*

*(१) 'नञ्सुभ्याम्' (६।२।१७२) से बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर कहा है सो बहु-शब्द से परे भी होता है-**बहुयवो देशः।** वह देश कि*

जिसमें बहुत यव=जौ होते हैं। बहुव्रीहिर्देश:। वह देश कि जिसमें व्रीहि=चावल अधिक होते हैं। बहुतिलो देश:। वह देश कि जिसमें तिल अधिक होते हैं।

(२) 'कपि पूर्वम्' (६।२।१७३) से बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे उत्तरपद को कप्-प्रत्यय से पूर्व अन्तोदात्त स्वर कहा है सो बहु-शब्द से परे भी होता है-बहुकुमारीको देश:। वह देश कि जिसमें कुमारियां बहुत हैं। बहुवृषलीको देश:। वह देश कि जिसमें बहुत वृषलियां हैं। वृषली=अविवाहित रजस्वला कन्या। बहुब्रह्मबन्धूको देश:। वह देश कि जिसमें ब्रह्मबन्धू स्त्रियां बहुत हैं। ब्रह्मबन्धू=पतित ब्राह्मणी।

(३) 'ह्रस्वान्तेऽन्त्यात् पूर्वम्' (६।२।१७४) से बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे ह्रस्वान्त उत्तरपद को कप्-प्रत्यय परे होने पर अन्तिम वर्ण से पूर्ववर्ती वर्ण को उदात्त स्वर कहा है सो बहु-शब्द से भी परे होता है-बहुयवको देश:। वह देश कि जिसमें यव अधिक होते हैं। बहुव्रीहिको देश:। वह देश कि जिसमें व्रीहि अधिक होते हैं। बहुमाषको देश:। वह देश कि जिसमें माष अधिक होते हैं।

(४) 'नञो जरमरमित्रमृता:' (६।२।११६) से बहुव्रीहि समास में नञ्-शब्द से परे जर, मर, मित्र और मृत उत्तरपदों को आद्युदात्त स्वर कहा है सो बहु-शब्द से परे भी होता है-बहुजर:। बहुत है जर (जीर्णता) जिसका वह पुरुष। बहुमर:। बहुत है मरण जिसका वह पुरुष। बहुमित्र:। बहुत हैं मित्र जिसके वह पुरुष। बहुमृत:। बहुत हैं मृत जिसके वह पुरुष।

सिद्धि-बहुयवो देश: आदि पदों की सिद्धि 'अयवो देश:' आदि पदों के समान है। उन्हें यथास्थान देख लेवें।

अन्तोदात्तप्रतिषेध:-

(३४) न गुणादयोऽवयवा:।१७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, गुण-आदय: १।३ अवयवा: १।३।

स०-गुण आदिर्येषां ते गुणादय: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-उदात्त:, उत्तरपदम्, अन्त:, बहुव्रीहौ, बहोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-बहुव्रीहौ बहोरवयवा गुणादय उत्तरपदम् अन्त उदात्तो न।

अर्थ:-बहुव्रीहौ समासे बहु-शब्दात् परेऽवयववाचिनो गुणादय: शब्दा उत्तरपदानि अन्तोदात्तानि न भवति।

उदा०-बहवो गुणा यस्यां सा-बहुगुणा रज्जु:। बह्वक्षरं पदम्। बहुच्छन्दोमानं यस्मिँस्तत्-बहुच्छन्दोमानं काव्यम्। बहूनि सूक्तानि यस्मिन्

सः-बहुसूक्तो ग्रन्थः। बहवोऽध्याया यस्मिन् सः-बह्वध्यायो ग्रन्थः। "गुणादिराकृतिगणो द्रष्टव्यः" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (बहोः) बहु-शब्द से परे (अवयवाः) अवयववाची (गुणादयः) गुणादि-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद में (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-(गुण) **बहुगुणा रज्जुः**। बहुत गुणों (लड़) वाली रस्सी। **बह्वक्षरं पदम्**। बहुत अच्छरोंवाला पद। **बहुच्छन्दोमानं काव्यम्**। बहुत छन्दोनिर्माणवाला काव्य। **बहुसूक्तो ग्रन्थः**। बहुत सूक्तोंवाला ग्रन्थ (ऋग्वेद)। **बह्वध्यायो ग्रन्थः**। बहुत अध्यायोंवाला ग्रन्थ (यजुर्वेद)। "गुणादि आकृतिगण हैं" (काशिका)।*

सिद्धि-बहुगुणा। *यहां बहु और गुण शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में 'बहु' शब्द से परे अवयववाची गुण उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर का प्रतिषेध है। अतः **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से बहु पूर्वपद को प्रकृतिस्वर है। बहु शब्द में **'बहि वृद्धौ'** धातु से **'लंघिबंह्योर्नलोपश्च'** (उणा० १।२९) से उ-प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। ऐसे ही-बह्वक्षरम् आदि।*

अन्तोदात्तम्-

(३५) उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु।१७७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ स्वाङ्गम् १।१ ध्रुवम् १।१ अपर्शु १।१।

स०-न पर्शु इति अपर्शु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, बहुव्रीहाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उपसर्गाद् अपर्शु ध्रुवं स्वाङ्गम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उपसर्गात् परं पर्शुवर्जितं ध्रुवं स्वाङ्गवाचि उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-प्रगतं पृष्ठं यस्य :-प्रपृष्ठः। प्रोदरः। प्रललाटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अपर्शु) पर्शु-शब्द को छोड़कर (ध्रुवम्) एकरूप (स्वाङ्गम्) स्वाङ्गवाची (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**प्रपृष्ठः**। ऊपर को उठी हुई पीठवाला पुरुष (कुबड़ा)। **प्रोदरः**। आगे को उठे हुये उदर=पेटवाला पुरुष (पिटला)। **प्रललाटः**। आगे को बढ़े हुये ललाट=माथेवाला पुरुष।*

सिद्धि-प्रपृष्ठः। यहां प्र और पृष्ठ शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में प्र-उपसर्ग से परे ध्रुव (एकरूप) स्वाङ्गवाची पृष्ठ उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-प्रोदरः, प्रललाटः।

पर्शु के निषेध से यहां अन्तोदात्त स्वर नहीं होता है-उत्पर्शु, विपर्शु। पर्शु=पसली।

अन्तोदात्तम्—

(३६) वनं समासे।१७८।

प०वि०-वनम् १।१ समासे ७।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासे उपसर्गाद् वनम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रे उपसर्गात् परं वनमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-प्रकृष्टं वनमिति प्रवणम्। प्रवणे यष्टव्यम्। निर्गतं वनादिति निर्वणम्। निर्वणे प्रणिधीयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समास मात्र में (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (वनम्) वन-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**प्रवणम्।** इस पद का यौगिक अर्थ प्रकृष्ट वन है किन्तु यह नीचा अर्थ में रूढ है। **प्रवणे यष्टव्यम्।** पूर्व दिशा की ओर निम्न यज्ञकुण्ड में यज्ञ करना चाहिये। प्राक्प्रवण=पूर्व दिशा में नीची यज्ञवेदिका बनाने का विधान है। **निर्वणम्।** इस पद का यौगिक अर्थ वन से निकला हुआ है किन्तु यह चारों ओर सम-भूमि अर्थ में रूढ है। **निर्वणे प्रणिधीयते।** चारों ओर सम-भूमि पर ईश्वर-प्रणिधान किया जाता है।*

*सिद्धि-**प्रवणम्।** यहां प्र और वन शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस तत्पुरुष समास में प्र-उपसर्ग से परे वन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। **'प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्राकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि'** (८।४।५) से वन-शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-**निर्वणम्।***

अन्तोदात्तम्—

(३७) अन्तः।१७९।

वि०-अन्तः अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, वनम्, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽन्तर्वनम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽन्तः-शब्दात् परम् वनमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-अन्तर्वनं यस्मिन् सः-अन्तर्वणो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समासमात्र में (अन्तः) अन्तर् शब्द से परे (वनम्) वन-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**अन्तर्वणो** देशः। वह देश कि जिसके अन्तः=मध्य में वन है। अन्तर् शब्द स्वरादिगण में पठित होने से '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय है।*

सिद्धि-अन्तर्वणः। *यहां अन्तर् और वन शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में अन्तर्-शब्द से परे वन उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। '**प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि**' (८।४।५) से वन-शब्द के नकार को णकार आदेश होता है।*

अन्तोदात्तम्-

(३८) अन्तश्च।१८०।

वि०-अन्तः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गात्, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासे उपसर्गाद् अन्तश्चोत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रे उपसर्गात् परोऽन्त-शब्दश्चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-प्रगतोऽन्तो यस्य सः-प्रान्तः। परिगतोऽन्तो यस्य सः-पर्यन्तः। अथवा-प्रगतोऽन्त इति प्रान्तः। परितोऽन्त इति पर्यन्तः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(समासे) समास मात्र में (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अन्तः) अन्त-शब्द (च) भी (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**प्रान्तः**। जिसका अन्त भाग प्रगत (प्रसृत) है वह प्रदेश। **पर्यन्तः**। जिसका अन्त भाग परिगत (परिसृत) है वह प्रदेश। अथवा-**प्रगतः**। प्रगत अन्त। **पर्यन्तः**। परिगत अन्त।*

सिद्धि-प्रान्तः। *यहां प्र और अन्त शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस बहुव्रीहि समास में उपसर्ग से परे अन्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। यहां '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादि-समास भी है। ऐसे ही-**पर्यन्तः**।*

अन्तोदात्तप्रतिषेधः–

(३६) न निविभ्याम्।१८१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, नि-विभ्याम् ५।२।

स०-निश्च विश्च तौ निवी, ताभ्याम्-निविभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गात्, समासे अन्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासे निविभ्याम् उपसर्गाभ्याम् अन्त उत्तरपदं अन्त उदात्तो न।

अर्थः-समासमात्रे निविभ्यामुपसर्गाभ्यां परोऽन्त-शब्द उत्तरपदम् अन्तोदात्तं न भवति।

उदा०-(निः) निगतोऽन्तो यस्य सः-न्यन्तः। अथवा-निगतोऽन्त इति न्यन्तः। **(विः)** विगतोऽन्तो यस्य सः-व्यन्तः। अथवा-विगतोऽन्त इति व्यन्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समास मात्र में (निविभ्याम्) नि और वि (उपसर्गात्) उपसर्गों से परे (अन्तः) अन्त-शब्द (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-(नि) न्यन्तः। जिसका अन्त निगत (निकृष्ट) है वह आरम्भ। अथवा-निकृष्ट अन्त। (वि) व्यन्तः। जिसका अन्त विगत (व्यतीत) है वह आरम्भ। अथवा-विगत अन्त।

*सिद्धि-न्यन्तः। यहां नि और अन्त शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से नि-उपसर्ग से परे अन्त उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। अथवा यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास भी है। ऐसे ही-व्यन्तः।*

अन्तोदात्तम्–

(४०) परेरभितोभावि मण्डलम्।१८२।

प०वि०-परेः ५।१ अभितोभावि १।१ मण्डलम् १।१।

कृद्वृत्तिः-अभितो भवितुं शीलमस्य तत्-अभितोभावि। **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) इत्यनेन ताच्छील्येऽर्थे णिनिः प्रत्ययः।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गात्, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासे परेरुपसर्गाद् अभितोभाविमण्डलम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रे परेरुपसर्गात् परम् अभितोभाविवाचि मण्डलशब्दश्चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भावति।

उदा०-(अभितोभावि) परितः कूलं यस्य तत्-परिकूलम्। परितीरम् (बहुव्रीहिः)। परिगतं कूलमिति परिकूलम् (प्रादितत्पुरुषः)। परि कूलादिति परिकूलम् (अव्ययीभावः)। एवमेव-परितीरम्। **(मण्डलम्)** परितो मण्डलं यस्य तत्-परिमण्डलम् (बहुव्रीहिः)। परिगतं मण्डलमिति परिमण्डलम् (प्रादितत्पुरुषः)। परि मण्डलादिति परिमण्डलम् (अव्ययीभावः)।

"अभित इत्युभयतः। अभितो भावोऽस्यास्यास्तीति तदभितोभावि, यच्चैवंस्वभावं कूलादि तदभितोभाविग्रहणेन गृह्यते" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समासमात्र में (परेः) परि (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अभितोभावि) उभयतोभावीवाची शब्द और (मण्डलम्) 'मण्डल' (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**(अभितोभावी) परिकूलम्।** जिसके सब ओर कूल (किनारा) है वह सरोवर (बहुव्रीहि)। **परिकूलम्।** सब ओर फैला हुआ किनारा (प्रादितत्पुरुषः)। **परिकूलम्** किनारे को छोड़कर (अव्ययीभाव)।। **परितीरम्।** जिसके सब ओर तीर=घाट हैं वह सरोवर (बहुव्रीहि)। **परितीरम्।** सब ओर फैला हुआ तीर (प्रादितत्पुरुष)। **परितीरम्।** तीर को छोड़कर (अव्ययीभाव)। **(मण्डल) परिमण्डलम्।** जिसके सब ओर मण्डल (घेरा) है वह वन आदि (बहुव्रीहि)। **परिमण्डलम्।** सब ओर फैला हुआ मण्डल। (प्रादितत्पुरुषः)। **परिमण्डलम्।** मण्डल को छोड़कर (अव्ययीभाव)।*

सिद्धि-परिकूलम्। *यहां परि और कूल शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में परि-उपसर्ग से परि अभितोभावी (दोनों ओर होनेवाला) वाचक कूल-शब्द उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*समासमात्र के कथन से यहां **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष और **'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः'** (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास भी होता है। ऐसे ही-**परितीरम्, परिमण्डलम्।***

अन्तोदात्तम्–

(४१) प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम्।१८३।

प०वि०–प्रात् ५।१ अस्वाङ्गम् १।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०–स्वस्य अङ्गमिति स्वाङ्गम्, न स्वाङ्गमिति अस्वाङ्गम् (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गात्, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–समासे संज्ञायां प्राद् उपसर्गाद् अस्वाङ्गम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–समासमात्रे संज्ञायां च विषये प्राद् उपसर्गात् परम् अस्वाङ्गवाचि उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०–प्रगतं कोष्ठमिति प्रकोष्ठम्। प्रगतं गृहमिति प्रगृहम्। प्रगतं द्वारमिति प्रद्वारम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(समासे) समासमात्र में तथा (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (प्रात्) प्र (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अस्वाङ्गम्) स्वाङ्गवाची शब्द से भिन्न (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०–**प्रकोष्ठम्।** कोहनी के नीचे का भाग। दरवाजे के समीप का कमरा। **प्रगृहम्।** घर का आंगन। **प्रद्वारम्।** दरवाजे के सामने का स्थान।*

सिद्धि–प्रकोष्ठम्।** यहां प्र और कोष्ठ शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में तथा संज्ञाविषय में प्र-उपसर्ग से परे अस्वाङ्गवाची कोष्ठ उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**प्रगृहम्, प्रद्वारम्।

अन्तोदात्तम्–

(४२) निरुदकादीनि च।१८४।

प०वि०–निरुदक-आदीनि १।३ च अव्ययपदम्।

स०–निरुदकम् आदिर्येषां तानि-निरुदकादीनि (बहुव्रीहिः)।

अनु०–उदात्तः, अन्तः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–समासे निरुदकादीनि चान्त उदात्तः।

अर्थः–समासमात्रे निरुदकादीनि शब्दरूपाणि चान्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-निर्गतमुदकं यस्मादिति-निरुदकं पात्रम् (बहुव्रीहिः)। निर्गत-मुदकमिति निरुदकम् (प्रादिसमासः)। निर्मक्षिकम्। निर्मशकम्, इत्यादिकम्।

निरुदकम्। निरुलपम्। निरुपलम्। निर्मशकम्। निर्मक्षिकम्। निष्कालकः। निकालिकः। निष्पेषः। दुस्तरीपः। निस्तरीपः। निस्तरीकः। निरजिनम्। उदजिनम्। उपाजिनम्। वा०-परेर्हस्तपादकेशकर्षाः। परिहस्तः। परिपादः। परिकेशः। परिकर्षः। आकृतिगणोऽयम्। इति निरुदकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समासमात्र में (निरुदकादीनि) निरुदक-आदि शब्द (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होते हैं।*

*उदा०-**निरुदकम्।** जिससे उदक=जल निकल चुका है वह पात्र (बहुव्रीहि)। **निरुदकम्।** निकला हुआ जल (प्रादितत्पुरुष)। **निर्मक्षिकम्।** जिससे मक्षिका=मक्खियां निकल चुकी हैं वह स्थान। (बहुव्रीहि)। **निर्मक्षिकम्।** निकली हुई मक्खी (प्रादितत्पुरुष)। **निर्मशकम्।** जिससे मशक=मच्छर निकल चुके हैं वह स्थान (बहुव्रीहि)। **निर्मशकम्।** निकला हुआ मच्छर (प्रादितत्पुरुष) इत्यादि।*

सिद्धि-निरुदकम्। *यहां निस् और उदक शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में निस्-उपसर्ग से परे उदक उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*यहां **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास भी होता है। ऐसे ही-**निर्मक्षिकम्, निर्मशकम्।***

अन्तोदात्तम्-

(४३) अभेर्मुखम्।१८५।

प०वि०-अभेः ५।१ मुखम् १।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, उपसर्गात्, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासे अभेरुपसर्गाद् मुखम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽभेरुपसर्गात् परं मुखमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-अभिगतं मुखं येन सः-अभिमुखः (बहुव्रीहिः)। अभिगतं मुखमिति अभिमुखम् (प्रादितत्पुरुषः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समासमात्र में (अभेः) अभि (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (मुखम्) मुख (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**अभिमुखः।** अभिगत (सामने) किया है मुख जिसने वह पुरुष (बहुव्रीहि)। **अभिमुखम्।** अभिगत मुख (प्रादितत्पुरुष)।*

सिद्धि-अभिमुखः। यहां अभि और मुख शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में अभि-उपसर्ग से परे मुख उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास भी होता है।

अन्तोदात्तम्–

(४४) अपाच्च।१८६।

प०वि०-अपात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गात्, मुखमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽपाद् उपसर्गाच्च मुखम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽपाद् उपसर्गाच्च परं मुखमित्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-अपगतं मुखं यस्मात् सः-अपमुखः (बहुव्रीहिः)। अपगतं मुखमिति अपमुखम् (प्रादितत्पुरुषः)। अप मुखादिति अपमुखम् (अव्ययीभावः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समासे) समास मात्र में (अपात्) अप (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (मुखम्) मुख (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**अपमुखः**। अपगत=हटा लिया है मुख जिससे वह द्रव्यविशेष (बहुव्रीहि)। **अपमुखम्**। हटाया हुआ मुख (प्रादितत्पुरुष)। **अपमुखम्**। मुख को छोड़कर (अव्ययीभाव)।*

सिद्धि-अपमुखः। यहां अप और मुख शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में अप-उपसर्ग से परे मुख उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास और 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास भी होता है। अव्ययीभाव पक्ष में 'परिप्रत्युपापा वर्जमानाहोरात्रावयवेषु' (६।२।३३) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था, यह उसका अपवाद है।

अन्तोदात्तम्–

(४५) स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च।१८७।

प०वि०-स्फिग-पूत-वीणा-अञ्जस्-अध्वन्-कुक्षि-सीरनाम-नाम १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्फिगश्च पूतश्च वीणा च अञ्जस् च अध्वा च कुक्षि च सीरनाम च नाम च एतेषां समाहारः-स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, अपादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽपाद् उपसर्गात् स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम चोत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽपादुपसर्गात्पराणि स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षि-सीरनामनामान्युत्तरपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०- **(स्फिगः)** अपगतं स्फिगं यस्मात्, तत्-अपस्फिगम् (बहुव्रीहिः)। अपगतं स्फिगमिति अपस्फिगम् (प्रादितत्पुरुषः)। अप स्फिगादिति अपस्फिगम् (अव्ययीभावः)। **(पूतः)** अपगतं पूतं यस्मात् तत्-अपपूतम् (बहुव्रीहिः)। अपगतं पूतमिति अपपूतम् (प्रादितत्पुरुषः)। अप पूतादिति अपपूतम् (अव्ययीभावः)। **(वीणा)** अपगता वीणा यस्मात् तत्-अपवीणम् (बहुव्रीहिः)। अपगता वीणेति अपवीणम् (प्रादितत्पुरुषः)। अप वीणाया इति अपवीणम् (अव्ययीभावः)। **(अञ्जः)** अपगतम् अञ्जो यस्मात् तत्-अपाञ्जः (बहुव्रीहिः)। अपगतम् अञ्ज इति अपाञ्जः (प्रादितत्पुरुषः)। अप अञ्जस इति अपाञ्जः (अव्ययीभावः)। **(अध्वा)** अपगतोऽध्वा यस्य सः-अपाध्वा (बहुव्रीहिः)। अपगतोऽध्वा इति अपाध्वा (प्रादितत्पुरुषः)। अप अध्वन इति अपाध्वा (अव्ययीभावः)। **(कुक्षिः)** अपगतः कुक्षिर्यस्या सा-अपकुक्षिः (बहुव्रीहिः)। अपगतः कुक्षिरिति अपकुक्षिः (प्रादितत्पुरुषः)। अप कुक्षेरिति अपकुक्षि (अव्ययीभावः)। **(सीरनाम)** अपगतः सीरो यस्मात् सः-अपसीरः (बहुव्रीहिः)। अपगतः सीर इति अपसीरः (प्रादितत्पुरुषः)। अप सीरादिति अपसीरम् (अव्ययीभावः)। एवम्-अपहलम्, अपलाङ्गलम्। **(नाम)** अपगतं नाम यस्मात् तत्-अपनाम (बहुव्रीहिः)। अपगतं नाम इति अपनाम (प्रादितत्पुरुषः)। अप नाम्न इति अपनाम (अव्ययीभावः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समास मात्र में (अपात्) अप (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (स्फिग०नाम) स्फिग, पूत, वीणा, अञ्जस्, अध्वन्, कुक्षि, सीरनाम=हलवाची शब्द और नाम (उत्तरपदम्) उत्तरपद (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त **होते हैं**।*

उदा०-(स्फिग) अपस्फिगम्। नितम्ब=रहित (बहुव्रीहि)। अपस्फिगम्। दूर हुआ नितम्ब। (प्रादितत्पुरुष)। अपस्फिगम्। नितम्ब को छोड़कर (अव्ययीभाव)। नितम्ब=चूतड़। (पूत) अपपूतम्। पवित्रता रहित (बहुव्रीहि)। अपपूतम्। दूर हुई पवित्रता (प्रादितत्पुरुष)। अपपूतम्। पवित्रता को छोड़कर (अव्ययीभाव)। (वीणा) अपवीणम्। वीणा रहित (बहुव्रीहि)। अपवीणम्। दूर हुई वीणा (प्रादितत्पुरुष)। अपवीणम्। वीणा को छोड़कर (अव्ययीभाव)। (अञ्जस्) अपाञ्जः। अञ्जन रहित (बहुव्रीहि)। अपाञ्जः। दूर हुआ अञ्जन (प्रादितत्पुरुष)। अपाञ्जः अञ्जन को छोड़कर (अव्ययीभाव)। (अध्वन्) अपाध्वा। मार्ग रहित (बहुव्रीहि)। अपाध्वा। दूर हुआ मार्ग (प्रादितत्पुरुष)। अपाध्वा। मार्ग को छोड़कर (अव्ययीभाव)। (कुक्षि) अपकुक्षिः। कुक्षि=गर्भाशय से रहित (बहुव्रीहि)। अपकुक्षिः। दूर हुई कुक्षि (प्रादितत्पुरुष)। अपकुक्षि। कुक्षि को छोड़कर (अव्ययीभाव)। (सीरनाम) अपसीरः। सीर=हल से रहित (बहुव्रीहि)। अपसीरः। दूर हुआ हल (प्रादितत्पुरुष)। अपसीरम्। हल को छोड़कर (अव्ययीभाव)। ऐसे ही हल के पर्यायवाची-अपहलम्, अपलाङ्गलम्। अर्थ पूर्ववत् है। (नाम) अपनाम। नाम रहित (बहुव्रीहि)। अपनाम। दूर हुआ नाम (प्रादितत्पुरुष)। अपनाम। नाम को छोड़कर (अव्ययीभाव)।

सिद्धि-अपस्फिगम्। यहां अप और स्फिग शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में अप-उपसर्ग से परे 'स्फिग' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास तथा 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' (२।१।१२) से अव्ययीभाव समास भी होता है। ऐसे ही-अपपूतम् आदि।

अन्तोदात्तम्-

(४६) अधेरुपरिस्थम्।१८८।

प०वि०-अधेः ५।१ उपरिस्थम् १।१।

स०-उपरि तिष्ठतीति उपरिस्थम् (उपपदसमासः)। **'सुपि स्थः'** (३।२।४) इति कः प्रत्ययः।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽधेरुपसर्गाद् उपरिस्थम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽधेरुपसर्गात् परम् उपरिस्थवाचि उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-अध्यारूढो दन्त इति अधिदन्तः। अधिकर्णः। अधिकेशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समास मात्र में (अधेः) अधि (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (उपरिस्थम्) उपरिस्थितवाची (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-अधिदन्तः । दांत के ऊपर उत्पन्न हुआ दांत। अधिकर्णः । कान के ऊपर उत्पन्न हुआ कान। अधिकेशः । केश=बाळ के ऊपर उत्पन्न हुआ बाळ।

सिद्धि-अधिदन्तः । यहां अधि और दन्त शब्दों को 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में अधि-उपसर्ग से परे उपरि-स्थितवाची 'दन्त' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अधिकर्णः, अधिकेशः ।

अध्यारूढो दन्त इति अधिदन्तः । यहां वा०-'समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च' (२।१।६०) से उत्तरपदलोपी समानाधिकरण (कर्मधारय) समास भी है।

अन्तोदात्तम्--

(४७) अनोरप्रधानकनीयसी।१८६।

प०वि०-अनोः ५।१ अप्रधान-कनीयसी १।२।

स०-न प्रधानमिति अप्रधानम्। अप्रधानं च कनीयस् च ते-अप्रधानकनीयसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽनोरुपसर्गाद् अप्रधानकनीयसी उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-समासमात्रेऽनोरुपसर्गात् परम् अप्रधानवाचि कनीयःशब्दश्चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(**अप्रधानम्**) अनुगतो ज्येष्ठमिति अनुज्येष्ठः। अनुमध्यमः। पूर्वपदार्थप्रधानः प्रादिसमासोऽयम्। (**कनीयान्**) अनुगतः कनीयानिति अनुकनीयान्। उत्तरपदार्थप्रधानः प्रादिसमासोऽयम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(समासे) समासमात्र में (अनोः) अनु (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अप्रधानकनीयसी) अप्रधानवाची और कनीयस् (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।

उदा०-(अप्रधान) अनुज्येष्ठः । ज्येष्ठ के पश्चात् गया हुआ पुरुष। अनुमध्यमः । मध्यम के पश्चात् गया हुआ पुरुष। यहां पूर्वपदार्थ प्रधान प्रादिसमास है। (कनीयस्) प्रकनीयान् । पश्चात् गया हुआ कनीयान् (छोटा पुरुष)। यहां उत्तरपदार्थप्रधान प्रादिसमास है।

सिद्धि-(१) अनुज्येष्ठः । यहां अनु और ज्येष्ठ शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से पूर्वपदार्थप्रधान प्रादिसमास है। अतः ज्येष्ठ उत्तरपद अप्रधान है। इस सूत्र से इस समास

में अनु-उपसर्ग से परे अप्रधानवाची ज्येष्ठ उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-अनुमध्यमः ।

(२) अनुकनीयान् । यहां अनु और कनीयान् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से उत्तरपदार्थ प्रधान प्रादिसमास है। सूत्र में कनीयस्-शब्द का पाठ उत्तरपदार्थ की प्रधानता के लिये है। इस सूत्र से इस समास में अनु-उपसर्ग से परे कनीयस् उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्तोदात्तम्–

(४८) पुरुषश्चान्वादिष्टः।१६०।

प०वि०–पुरुषः १।१ च अव्ययपदम्, अन्वादिष्टः १।१।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गात्, अनोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–समासेऽनोरुपसर्गाद् अन्वादिष्टः पुरुष उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–समासमात्रेऽनोरुपसर्गात् परम् अन्वादिष्टवाची पुरुष इत्युत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०–अन्वादिष्टः पुरुष इति अनुपुरुषः। "अनादिष्टः अन्वाचितः कथितानुकथितो वा" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासे) समासमात्र में (अनोः) अनु (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अन्वादिष्टः) अप्रधान शिष्ट अथवा कथितानुकथितवाची (पुरुषः) पुरुष (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-अनुपुरुषः । अन्वाचित पुरुष अर्थात् जैसे 'कर्तुः क्यङ् सलोपः' (३।१।११) इस सूत्र में सकार का लोप अप्रधानशिष्ट है यदि शब्द में सकार हो तो लोप हो जाता है इसी प्रकार से जो पुरुष किसी कार्य में अप्रधानशिष्ट होता है उसे अन्वादिष्ट पुरुष कहते हैं। अथवा एक प्रधान कथन में जो गौण कथन किया जाता है उसे अन्वादिष्ट= कथितानुकथित कहते हैं जैसे- '**भिक्षामट गौ चानय**' हे शिष्य ! तू भिक्षाटन कर और गौ भी ले आ। यहां भिक्षाटन कथन प्रधान और गो-आनयन अप्रधान है। इस प्रकार से आदिष्ट पुरुष को अन्वादिष्ट पुरुष कहते हैं।*

सिद्धि-अनुपुरुषः । यहां अनु और पुरुष शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में अनु-उपसर्ग से परे अन्वादिष्टवाची पुरुष उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।

अन्तोदात्तम्–

(४९) अतेरकृतपदे।१६१।

प०वि०–अतेः ५।१ अकृत-पदे १।२।

स०–न कृद् इति अकृत्। अकृच्च पदं च ते-अकृत्पदे (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–समासेऽतेरुपसर्गात् अकृत्-पदे उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः–समासमात्रेऽतेरुपसर्गात् परम् अकृदन्तं पदमिति चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०–**(अकृत्)** अङ्कुशमतिक्रान्त इति अत्यङ्कुशो नागः। कशामतिक्रान्त इति अतिकशोऽश्वः। **(पदम्)** पदमतिक्रान्ता इति अतिपदा शक्वरी।

आर्यभाषाः अर्थ–*(समासे) समास मात्र में (अतेः) अति (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अकृत्पदे) अकृदन्त और पद (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०–(अकृत्) **अत्यङ्कुशो नागः।** अङ्कुश को अतिक्रान्त हाथी अर्थात् वह हाथी जो अंकुश की कोई परवाह नहीं करता है। **अतिकशोऽश्वः।** कशा=कोड़े को अतिक्रान्त घोड़ा अर्थात् वह घोड़ा जो कोड़े की कोई परवाह नहीं करता है। (पद) **अतिपदा शक्वरी।** पद-व्यवस्था का अतिक्रमण करनेवाली ऋचा।*

*सिद्धि–(१) अत्यङ्कुशः। यहां अति और अङ्कुश शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में अति-उपसर्ग से परे अकृदन्त 'अङ्कुश' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही–**अतिकशः, अतिपदा।***

अन्तोदात्तम्–

(५०) नेरनिधाने।१६२।

प०वि०–नेः ५।१ अनिधाने ७।१।

स०–न निधानमिति अनिधानम्, तस्मिन्-अनिधाने (नञ्तत्पुरुषः)। निधानम्=अप्रकाशनम्। अनिधानम्=प्रकाशनमित्यर्थः।

अनु०–उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-समासेऽनिधाने नेरुपसर्गाद् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः ।

अर्थः-समासमात्रेऽनिधाने चार्थे नेरुपसर्गात् परम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-निगतानि मूलानि यस्य तत्-निमूलम् (बहुव्रीहिः)। निगतं मूलमिति निमूलम् (प्रादितत्पुरुषः)। न्यक्षम्। नितृणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समासे) समास मात्र में (अनिधाने) प्रकाशित=प्रकट अर्थ में (नेः) नि (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**निमूलम्।** जिसका मूल निकला हुआ वह वृक्ष आदि (बहुव्रीहि)। **निमूलम्।** निकला हुआ मूल (प्रादितत्पुरुष)। **न्यक्षम्।** जिसका अक्ष (धुरा) निकला हुआ है वह रथ आदि (बहुव्रीहि)। निकला हुआ अक्ष (प्रादि०)। **नितृणम्।** जिसके तृण निकले हुये वह छप्पर आदि (बहुव्रीहि)। निकले हुये तृण (प्रादि०)।*

सिद्धि-निमूलम्।** यहां नि और मूल शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में अनिधान (प्रकट) अर्थ में नि-उपसर्ग से परे मूल उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**न्यक्षम्, नितृणम्।

यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास भी होता है।

अन्तोदात्तम्-

(५१) प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे।१६३।

प०वि०-प्रतेः ५।१ अंशु-आदयः १।३ तत्पुरुषे ७।१।

स०-अशु आदिर्येषां ते-अंश्वादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे समासे प्रतेरुपसर्गाद् अंश्वादय उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे प्रतेरुपसर्गात् पराणि अंश्वादीनि उत्तरपदानि अन्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-प्रतिगतोंऽशुरिति प्रत्यंशुः। प्रतिजनः। प्रतिराजा, इत्यादिकम्।

अंशु। जन। राजा। उष्ट्र। खेटक। अजिर। आर्द्रा। श्रवण। कृत्तिका। अर्ध। पुर। इत्यंश्वादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष (समासे) समास में (प्रतेः) प्रति (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अंश्वादयः) अंशु-आदि (उत्तरपदम्) उत्तरपदों को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**प्रत्यंशुः**। प्रतिगत=लौटी हुई अंशु=किरण। **प्रतिजनः**। लौटा हुआ पुरुष। **प्रतिराजा**। लौटा हुआ राजा, इत्यादि।*

*सिद्धि-**प्रत्यंशुः**। यहां प्रति और अंशु शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में प्रति-उपसर्ग से परे 'अंशु' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**प्रतिजनः, प्रतिराजा**।*

अन्तोदात्तम्-

(५२) उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः।१६४।

प०वि०-उपात् ५।१ द्व्यच् १।१ अजिनम् १।१ अगौरादयः १।३।

स०-द्वावचौ यस्मिँस्तत्-द्व्यच् (बहुव्रीहिः) गौर आदिर्येषां ते गौरादयः, न गौरादय इति अगौरादयः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, उपसर्गात्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे समासे उपाद् उपसर्गाद् अगौरादयो द्व्यच्, अजिनम् उत्तरपदम् अन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे उपाद् उपसर्गात् परं गौरादिवर्जितं द्व्यच्, अजिनमिति चोत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति।

उदा०-(द्व्यच्) उपगतो देवमिति उपदेवः। उपसोमः। उपेन्द्रः। उपहोडः। **(अजिनम्)** उपगतम् अजिनमिति उपाजिनम्।

गौर। तैष। नैष। तैट। लट। लोट। जिह्वा। कृष्णा। कन्या। गुड। कल्य। पाद। इति गौरादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष (समासे) समास में (अगौरादयः) गौर आदि शब्दों से भिन्न (द्व्यच्) दो अचोंवाला शब्द और (अजिनम्) अजिन (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(द्व्यच्) **उपदेवः**। देव के समीप गया हुआ पुरुष। **उपसोमः**। सोम के समीप गया हुआ पुरुष। **उपेन्द्रः**। इन्द्र के समीप गया हुआ पुरुष। **उपहोडः**। होड=बेड़ा/नौका के पास गया हुआ पुरुष। (अजिन) **उपाजिनम्**। प्राप्त अजिन (मृगचर्म)।*

सिद्धि-उपदेव:। यहां उप और देव शब्दों का 'कुगतिप्रादय:' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में उप-उपसर्ग से परे द्वि-अच् (दो अचोंवाले) देव' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-उपसोम: आदि।

अन्तोदात्तम्–

(५३) सोरवक्षेपणे।१६५।

प०वि०-सो: ५।१ अवक्षेपणे ७।१।

अनु०-उदात्त:, उत्तरपदम्, अन्त:, समासे, उपसर्गात्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्पुरुषे समासे सोरुपसर्गाद् उत्तरपदम् अन्त उदात्त:, अवक्षेपणे।

अर्थ:-तत्पुरुषे समासे सोरुपसर्गात् परम् उत्तरपदम् अन्तोदात्तं भवति, अक्षेपणे गम्यमाने। अवक्षेपणम्=निन्दा।

उदा०-इह खल्विदानीं सुस्थण्डिले सुस्फिगाभ्यां सुप्रत्यवस्थित:।

सुशब्दोऽत्र पूजायामर्थे वर्तते किन्तु वाक्यार्थेन तु अवक्षेपणम् (निन्दा) अर्थोऽवगम्यते।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष (समासे) समास में (सो:) सु (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (अन्त उदात्त:) अन्तोदात्त होता है (अवक्षेपणे) यदि वहां निन्दा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-इह **खल्विदानीं सुस्थण्डिले सुस्फिगाभ्यां सुप्रत्यवस्थित:**। अब आप यहां इस सुन्दर चबूतरे पर सुन्दर स्फिगों (नितम्ब=चूतड़) से सुन्दर रीति से बैठे हुये हो। कोई पुरुष अनर्थ उपस्थित होने पर भी सुखपूर्वक बैठा रहे उसे इस प्रकार चिड़ाया जाता है। यहां अवक्षेपण=निन्दा अर्थ स्पष्ट है।*

*सिद्धि-सुस्थण्डिलम्। यहां सु और स्थण्डिल शब्दों का वा०- **'स्वती पूजायाम्'** (भा० २।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में सु-उपसर्ग से परे स्थण्डिल उत्तरपद को अवक्षेपण अर्थ की प्रतीति में अन्तोदात्त स्वर होता है। यद्यपि यहां 'सु' शब्द पूजा अर्थ में है किन्तु वाक्य से अवक्षेपण अर्थ प्रकट हो रहा है। ऐसे ही-**सुस्फिगाभ्याम्**, सुप्रत्यवस्थित:।*

अन्तोदात्तविकल्प:–

(५४) विभाषोत्पुच्छे।१६६।

प०वि०-विभाषा १।१ उत्पुच्छे ७।१।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे समासे उत्पुच्छे उत्तरपदं विभाषाऽन्त उदात्तः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे उत्पुच्छे शब्दे वर्तमानम् उत्तरपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०-उत्क्रान्तः पुच्छादिति उत्पुच्छः। उत्पुच्छः।

"यदा तु पुच्छमुदस्यति-उत्पुच्छयति, उत्पुच्छयतेरच् उत्पुच्छः, तदा थाथादिसूत्रेण नित्यमन्तोदात्तत्वे प्राप्ते विकल्पोऽयमिति सेयमुभयत्रविभाषा भवति" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष (समासे) समास में (उत्पुच्छे) उत्पुच्छ-शब्द में विद्यमान (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (विभाषा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

उदा०-उत्पुच्छः। उत्पुच्छः। पूछ से उठा हुआ (पशु)।

सिद्धि-*उत्पुच्छः। यहां उत् और पुच्छ शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस तत्पुरुष समास में उत्पुच्छ शब्द में विद्यमान पुच्छ उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। यहां किसी सूत्र से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त नहीं था।*

*यहां विकल्प पक्ष में **'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः'** (६।२।२) से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।*

*"और जब **'पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्'** (३।१।२०) से णिङन्त 'उत्पुच्छ' धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से अच् प्रत्यय करने पर 'उत्पुच्छः' शब्द सिद्ध किया जाता है तब **'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'** (६।२।१४४) से अनतोदात्त स्वर प्राप्त था। इस प्रकार प्राप्त और अप्राप्त होने से यह उभयत्र विभाषा है" (काशिका)।*

अन्तोदात्तविकल्पः-

(५५) द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ।१६७।

प०वि०-द्वित्रिभ्याम् ५।२ पाद्-दन्-मूर्धसु ७।३ बहुव्रीहौ ७।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च तौ द्वित्री, ताभ्याम्-द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाच्च दच्च मूर्धा च ते पाद्दन्मूर्धानः, तेषु-पाद्दन्मूर्धसु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ समासे द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु उत्तरपदं विभाषा अन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे द्वित्रिभ्यां पराणि पद्दन्मूर्धन उत्तरपदानि विकल्पेनान्तोदात्तानि भवन्ति।

उदा०-(**द्विः**) द्वौ पादौ यस्य सः-द्विपात्, द्विपात्। (**त्रिः**) त्रयः पादाः यस्य सः-त्रिपात्, त्रिपात् (पात्)। (**द्विः**) द्वौ दन्तौ यस्य सः-द्विदन्, द्विदन्। (**त्रिः**) त्रयो दन्ता यस्य सः-त्रिदन्, त्रिदन् (दन्)। (**द्विः**) द्वौ मूर्धानौ यस्य सः-द्विमूर्धा, द्विमूर्धा, द्विमूर्धः, द्विमूर्धः। (**त्रिः**) त्रयो मूर्धानो यस्य सः-त्रिमूर्धा, त्रिमूर्धा, त्रिमूर्धः, त्रिमूर्धः (मूर्धन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि (समासे) समास में (द्वित्रिभ्याम्) द्वि और त्रि शब्दों से परे (पाद्दन्मूर्धसु) पाद, दन् और मूर्धन् (उत्तरपदम्) उत्तरपदों को (विभाषा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-(द्वि) **द्विपात्, द्विपात्।** दो पावोंवाला। (त्रि) **त्रिपात्, त्रिपात्।** तीन पावोंवाला छन्द आदि (पात्)। (द्वि) **द्विदन्, द्विदन्।** दो दांतोंवाला। (त्रि) **त्रिदन्, त्रिदन्।** तीन दांतोंवाला पशु (दन्)। (द्वि) **द्विमूर्धा, द्विमूर्धा, द्विमूर्धः, द्विमूर्धः।** दो शिरोंवाला पुरुष। (त्रि) **त्रिमूर्धा, त्रिमूर्धा, त्रिमूर्धः, त्रिमूर्धः।** शिरोंवाला पुरुष (मूर्धन्)।*

*सिद्धि-(१) **द्विपात्।** यहां द्वि और पाद शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में द्वि-शब्द से परे 'पात्' उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है। '**पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः**' (५।४।१३८) से पाद शब्द के अकार का समासान्त-लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिपात्।***

*(२) **द्विदन्।** यहां द्वि और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। '**वयसि दन्तस्य दतृ**' (५।४।१४१) से 'दन्त' शब्द के स्थान में समासान्त 'दतृ' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रिदन्।***

*(३) **द्विमूर्धा।** यहां द्वि और मूर्धन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। सूत्र में पात् और दत् शब्दों का समासान्त रूप में पाठ है अतः उनका उसी रूप में ग्रहण किया जाता है किन्तु 'मूर्धन्' शब्द का समासान्त रूप में पाठ नहीं है अतः इसका असमासान्त और समासान्त दोनों रूपों में ग्रहण किया जाता है। '**द्वित्रिभ्यां षो मूर्ध्नः**' (५।४।११५) से समासान्त 'ष' प्रत्यय करने पर 'द्विमूर्ध' शब्द सिद्ध होता है। इसे भी इस सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*यहां विकल्प पक्ष में '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६।२।१) से द्वि और त्रि पूर्वपदों को प्रकृतिस्वर होता है। '**फिषोऽन्तोदात्तः**' (फिट्० १।१) से द्वि और त्रि शब्द अन्तोदात्त हैं, जैसे कि ऊपर उदाहरणों में स्वराङ्कन से दर्शाया गया है।*

अन्तोदात्तविकल्पः-

(५६) सक्थं चाक्रान्तात्।१६८।

प०वि०-सक्थम् १।१ च अव्ययपदम्, अक्रान्तात् ५।१।

स०-क्र-शब्दोऽन्ते यस्य सः-क्रान्तः, न क्रान्त इति अक्रान्तः, तस्मात्-अक्रान्तात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उदात्तः, उत्तरपदम्, अन्तः, समासे, विभाषा, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ समासेऽक्रान्तात् सक्थम् उत्तरपदं च विभाषाऽन्त उदात्तः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे क्रान्तवर्जिताच्छब्दात् परं सक्थमित्युत्तरपदं विकल्पेनान्तोदात्तं भवति।

उदा०-गौरं सक्थि यस्य सः-गौरसक्थः। गौरसक्थः। श्लक्ष्णसक्थः। श्लक्ष्णसक्थः। अक्रान्तादिति किम्-चक्रसक्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि (समासे) समास में (अक्रान्तात्) क्रान्त से भिन्न शब्द से परे (सक्थम्) सक्थ (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (विभाषा) विकल्प से (अन्त उदात्तः) अन्तोदात्त होता है।*

*उदा०-**गौरसक्थः। गौरसक्थः।** गौरवर्ण सक्थि=जंघावाला पुरुष। **श्लक्ष्णसक्थः। श्लक्ष्णसक्थः।** श्लक्ष्ण=चिकनी जंघावाला पुरुष।*

सिद्धि-गौरसक्थः। *यहां गौर और सक्थि शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इस समास में क्रान्त शब्द से भिन्न गौर शब्द से परे सक्थ उत्तरपद को अन्तोदात्त स्वर होता है।*

*यहां सूत्र में सक्थ-शब्द का समासान्त रूप में पाठ है। '**बहुव्रीहौ सक्थक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्**' (५।४।११३) से 'सक्थि' शब्द से समासान्त 'षच्' प्रत्यय है। अतः यहां समासान्त 'सक्थ' रूप का ही ग्रहण किया जाता है।*

*यहां विकल्प पक्ष में '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' (६।२।१) से गौर पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है। गौर शब्द में 'गोर' शब्द से '**प्रज्ञादिभ्यश्च**' (५।४।३८) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। अतः यह प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है-**गौरसक्थः।** इस प्रकार 'श्लक्ष्ण' शब्द में '**श्लिष आलिङ्गने**' (दि०प०) धातु से '**श्लिषेरच्चोपधायाः**' (उणा० ३।१९) से 'क्स्न' प्रत्यय है। अतः यह भी प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है-**श्लक्ष्णसक्थः।***

अन्तोदात्तम्–

(५७) परादिश्छन्दसि बहुलम्।१६६।

प०वि०–परादि: १।१ छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१।

स०–परस्य आदिरिति परादि: (षष्ठीतत्पुरुष:)। अत्र पर-शब्देन परगत: सक्थ-शब्दो गृह्यते।

अनु०–उदात्त:, उत्तरपदम्, समासे, इति चानुवर्तते।

अन्वय:–छन्दसि समासे परम्=सक्थम् उत्तरपदं बहुलम् आदि:।

अर्थ:–छन्दसि विषये समासे च परम्=सक्थमित्युत्तरपदं बहुलम् आद्युदात्तं भवति।

उदा०–अ॒ञ्जिस॑क्थमालभेत। त्वा॒ष्ट्रौ लोम॑स॒क्थौ (तै०सं० ५।५।२३।१)।

अत्र बहुलवचनात् पदान्तरे समासान्तरे चादिरुदात्तो भवति–ऋ॒जु॒बाहु॑: (बहुव्रीहि:)। वा॒क्पति॑:, चि॒त्पति॑: (षष्ठीतत्पुरुष:)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में और (समासे) समास मात्र में (परम्) परोक्त=पश्चात् कहा सक्थ (उत्तरपदम्) उत्तरपद को (बहुलम्) प्रायश: (आदि:) आद्युदात्त होता है।*

*उदा०-**अ॒ञ्जिस॑क्थमालभेत।** अञ्जिसक्थम्=चमकीली/चन्दनादि से लिप्त जंघा। **त्वा॒ष्ट्रौ लोम॑स॒क्थौ।** लोमसक्थम्=लोमवाली जंघा।*

*सिद्धि-**अ॒ञ्जिस॑क्थम्।** यहां अञ्जि और सक्थि शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस समास में 'सक्थ' उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है। **'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो: स्वाङ्गात् षच्'** (५।४।११३) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होकर बहुव्रीहि समास में ही 'सक्थ' शब्द सिद्ध होता है किन्तु बहुलवचन से छन्द में बहुव्रीहि से अन्यत्र भी 'सक्थ' शब्द को आद्युदात्त स्वर होता है।*

*यहां बहुलवचन से सक्थ से भिन्न पदों में तथा अन्य समासों में भी छन्द में आद्युदात्त स्वर होता है-**ऋ॒जु॒बाहु॑:।** वह पुरुष कि जिसकी भुजायें ऋजु=सरल है। यहां बहुव्रीहि समास में भी उत्तरपद को आद्युदात्त स्वर होता है जबकि **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से बहुव्रीहि समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर का विधान है। **वा॒क्पति॑:** और **चि॒त्पति॑:** शब्दों में षष्ठीतत्पुरुष है। यहां 'समासस्य' (६।१।२२३) से समास को अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है किन्तु छन्द में उत्तरपद पति-शब्द को आद्युदात्त स्वर होता है। यह सब बहुल-वचन की महिमा है।*

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने षष्ठाध्यायस्य द्वितीय: पाद: समाप्त:।।

षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः

विभक्ति-अलुक्प्रकरणम्

अधिकारः–

(१) अलुगुत्तरपदे।१।

प०वि०–अलुक् १।१ उत्तरपदे ७।१।

स०–न लुक् इति अलुक् (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः–अलुक् उत्तरपदे इत्यधिकारोऽयम्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति–अलुग् उत्तरपदे इत्येव तद् वेदितव्यम्। वक्ष्यति–**'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः'** (६।३।२) इति। स्तोकादिभ्यः परस्याः पञ्चम्या उत्तरपदे परतोऽलुग् भवतीत्यर्थः।

उदा०–स्तोकान्मुक्तः, अल्पान्मुक्तः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अलुक्-उत्तरपदे) 'अलुक् उत्तरपदे' यह अधिकार सूत्र है। पाणिनिमुनि जो इससे आगे कहेंगे वह 'उत्तरपद परे होने पर अलुक् होता है' ऐसा जानना चाहिये। जैसे कि पाणिनिमुनि कहेंगे–**'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः'** (६।३।२) अर्थात् उत्तरपद परे होने पर स्तोक आदि शब्दों से परे पंचमी-विभक्ति का अलुक् होता है।*

*उदा०-**स्तोकान्मुक्तः**। थोड़े प्रयत्न से मुक्त हुआ। **स्वल्पान्मुक्तः**। बहुत थोड़े प्रयत्न से मुक्त हुआ।*

*सिद्धि-**स्तोकान्मुक्तः** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

पञ्चमी-अलुक्–

(२) पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः।२।

प०वि०–पञ्चम्याः ६।१ स्तोकादिभ्यः ५।३।

स०–स्तोक आदिर्येषां ते स्तोकादयः, तेभ्यः–स्तोकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अलुक्, उत्तरपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्तोकादिभ्यः पञ्चम्या उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः–स्तोकादिभ्यः शब्देभ्यः परस्याः पञ्चम्या उत्तरपदे परतोऽलुग् भवति।

उदा०-(स्तोकम्) स्तोकाद् मुक्त इति स्तोकान्मुक्तः। **(अल्पम्)** अल्पान्मुक्तः। **(अन्तिकम्)** अन्तिकादगतः। **(अभ्याशम्)** अभ्याशादागतः। **(दूरम्)** दूरादागतः। **(विप्रकृष्टम्)** विप्रकृष्टादागतः। **(कृच्छ्रम्)** कृच्छ्रान्मुक्तः। **'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन'** (२।१।३९) इत्यत्र पठिताः स्तोकादयः शब्दा अत्र गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्तोकादिभ्यः) स्तोक आदि शब्दों से परे (पञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक्=लोप नहीं होता है।*

*उदा०-**(स्तोक) स्तोकान्मुक्तः।** थोड़े प्रयत्न से मुक्त हुआ। **(अल्प) अल्पान्मुक्तः।** बहुत थोड़े प्रयत्न से मुक्त हुआ। **(अन्तिक) अन्तिकादगतः।** समीप से आया। **(अभ्याश) अभ्याशादागतः।** पास से आया। **(दूर) दूरदागतः।** दूर से आया। **(विप्रकृष्ट) विप्रकृष्टादागतः।** दूर से आया। **(कृच्छ्र) कृच्छ्रान्मुक्तः।** दुःख से मुक्त हुआ।*

*सिद्धि-**स्तोकान्मुक्तः।** यहां स्तोक और मुक्त शब्दों का **'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन'** (२।१।३९) से पञ्चमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से स्तोक आदि शब्दों से परे क्तान्त 'मुक्त' शब्द उत्तरपद होने पर पंचमी विभक्ति का लुक् नहीं होता है। 'सुपो धातुप्रादिपदिकयोः' (२।४।७१) से सुप् का लुक् प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*यहां **'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन'** (२।१।३९) इस सूत्र में पठित स्तोक आदि शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

तृतीया-अलुक्-

(३) ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः।३।

प०वि०-ओजः-सहः-अम्भः-तमसः ५।१ तृतीयायाः ६।१।

स०-ओजश्च सहश्च अम्भश्च तमश्च एतेषां समाहारः-ओजःसहोऽम्भस्तमः, तस्मात्-ओजःसहोऽम्भस्तमसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयाया उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-ओजःसहोऽम्भस्तमोभ्यः शब्देभ्यः परस्यास्तृतीयाया उत्तरपदे परतोऽलुग् भवति।

उदा०-(ओजः) ओजसा कृतमिति ओजसाकृतम्। **(सहः)** सहसाकृतम्। **(अम्भः)** अम्भसाकृतम्। **(तमः)** तमसाकृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ओजःसहोऽम्भस्तमसः) ओजस्, सहस्, अम्भस् और तमस् शब्दों से परे (तृतीयायाः) तृतीया विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-(ओजः) **ओजसाकृतम्।** बल से किया हुआ। (सहः) **सहसाकृतम्।** शक्ति से किया हुआ। (अम्भः) **अम्भसाकृतम्।** जल से शुद्ध किया हुआ। (तमः) **तमसाकृतम्।** अन्धकार से आच्छादित किया हुआ।*

*सिद्धि-**ओजसाकृतम्।** यहां ओजस् और कृत शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३२) से तृतीयातत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ओजस् शब्द से परे कृत उत्तरपद होने पर तृतीया विभक्ति का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**सहसाकृतम्** आदि।*

तृतीया-अलुक्-

(४) मनसः संज्ञायाम्।४।

प०वि०-मनसः ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तृतीयाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां मनसस्तृतीयाया उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-संज्ञायां विषये मनःशब्दात् परस्यास्तृतीयाया उत्तरपदे परतोऽलुग् भवति।

उदा०-मनसा दत्ता इति-मनसादत्ता। मनसागुप्ता। मनसासङ्गता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (मनसः) मनस्-शब्द से परे (तृतीयायाः) तृतीया विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**मनसादत्ता।** मन से प्रदान की हुई नारी। **मनसागुप्ता।** मन से रक्षा की हुई नारी। **मनसासङ्गता।** मन से संगत हुई नारी। ये नारियों की संज्ञाविशेष हैं।*

*सिद्धि-**मनसादत्ता।** यहां मनस् और दत्ता शब्दें का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (३।१।३२) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से मनस् शब्द से परे दत्ता उत्तरपद होने पर तृतीया विभक्ति का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**मनसागुप्ता** आदि। लोक में भी 'मनसाराम' आदि इस प्रकार के नाम मिलते हैं।*

तृतीया-अलुक्-

(५) आज्ञायिनि च।५।

प०वि०-आज्ञायिनि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-आज्ञातुं शीलं यस्य सः-आज्ञायी, तस्मिन्-आज्ञायिनि (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तृतीयायाः, मनस इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मनसस्तृतीयाया आज्ञायिनि उत्तरपदे चालुक्।

अर्थः-मनःशब्दात् परस्यास्तृतीयाया आज्ञायिनि शब्दे चोत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-मनसाऽऽज्ञातुं शीलं यस्य सः-मनसाज्ञायी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मनसः) मनस्-शब्द से परे (तृतीयायाः) तृतीया विभक्ति का (आज्ञायिनि) आज्ञायिन् शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**मनसाज्ञायी।** मन से आज्ञा करने का स्वभावी।*

*सिद्धि-**मनसाज्ञायी।** यहां मनस् और आज्ञायिन् शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३२) से तृतीया तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से मनस् शब्द से परे आज्ञायिन् उत्तरपद होने तृतीया विभक्ति का लुक् नहीं होता है।*

तृतीया-अलुक्-

(६) आत्मनश्च पूरणे।६।

प०वि०-आत्मनः ५।१ च अव्ययपदम्, पूरणे ७।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तृतीयाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आत्मनश्च तृतीयायाः पूरणे उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-आत्मनः शब्दाच्च परस्यास्तृतीयायाः पूरणप्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-आत्मना पञ्चम इति आत्मनापञ्चमः। आत्मनाषष्ठः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आत्मनः) आत्मन् शब्द से परे (च) भी (तृतीयायाः) तृतीयाविभक्ति का (पूरण) पूरण-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**आत्मनापञ्चमः।** अपने से पांचवां पुरुष। **आत्मनाषष्ठः।** अपने से छठा पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **आत्मनापञ्चमः।** यहां आत्मन् और पञ्चम शब्दों का **'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन'** (२।१।३०) इस सूत्र में **'तृतीया'** इस योग विभाग से तृतीया तत्पुरुष समास है और यहां वा०- **'तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** (२।३।१८) से तृतीया विभक्ति होती है। इस सूत्र से आत्मन् शब्द से परे तृतीया विभक्ति का पूरण-प्रत्ययान्त पञ्चम शब्द उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। 'पञ्चमः' शब्द में **'नान्तादसंख्यादेर्मट्'** (५।२।४९) से पञ्चन् शब्द से पूरणार्थक डट् प्रत्यय और उसे मट् आगम है।*

*(२) **आत्मनाषष्ठः।** यहां आत्मन् और षष्ठ शब्दों का पूर्ववत् तृतीया तत्पुरुष समास है। षष्ठ शब्द में **'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्'** (५।२।५१) से षष् शब्द से पूरणार्थक डट् प्रत्यय और थुक् आगम है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

चतुर्थी-अलुक्--

(७) वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः।७।

प०वि०-वैयाकरण-आख्यायाम् ७।१ चतुर्थ्याः ६।१।

स०-वैयाकरणानाम् आख्या इति वैयाकरणाख्या, तस्याम्-वैयाकरणाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। आख्या=संज्ञा इत्यर्थः।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, आत्मन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वैयाकरणाख्यायाम् आत्मनश्चतुर्थ्या उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-वैयाकरणाख्यायां विषये आत्मनः शब्दात् परस्याश्चतुर्थ्या उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-आत्मने पदमिति आत्मनेपदम्। आत्मनेभाषः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वैयाकरणाख्यायाम्) वैयाकरणों की संज्ञा विषय में (आत्मनः) आत्मन् शब्द से परे (चतुर्थ्याः) चतुर्थी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**आत्मनेपदम्।** अपने लिये प्रयुक्त होनेवाला पद। **आत्मनेभाषः।** अर्थ पूर्ववत्।*

*सिद्धि-**आत्मनेपदम्।** यहां आत्मन् और पद शब्दों का **'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः'** (२।१।३६) में 'चतुर्थी' इस योगविभाग से तदर्थ-अर्थ में चतुर्थी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वैयाकरणों की संज्ञा विशेष में आत्मन् शब्द से परे चतुर्थी विभक्ति का 'पद' उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**आत्मनेभाषः।***

चतुर्थी-अलुक्–

(८) परस्य च।८।

प०वि०–परस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अलुक्, उत्तरपदे, आत्मनः, वैयाकरणाख्यायाम्, चतुर्थ्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वैयाकरणाख्यायां परस्य च चतुर्थ्या उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः–वैयाकरणाख्यायां विषये परस्य च चतुर्थ्या उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०–परस्मैपदमिति परस्मैपदम्। परस्मैभाषः।

***आर्यभाषा** अर्थ–(वैयाकरणाख्यायाम्) वैयाकरणों की संज्ञा विषय में (परस्य) पर-शब्द की (च) भी (चतुर्थ्याः) चतुर्थी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०–**परस्मैपदम्।** दूसरे के लिये प्रयुक्त होनेवाला पद। **परस्मैभाषः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि–परस्मैपदम्।** यहां पर और पद शब्दें का पूर्ववत् चतुर्थी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वैयाकरणों की संज्ञाविशेष में 'पर' शब्द से परे चतुर्थी विभक्ति का पद उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। यहां चतुर्थी विभक्ति 'ङे' के स्थान में 'सर्वनाम्नः स्मै' (७।१।१४) से स्मै-आदेश होता है। ऐसे ही–**परस्मैभाषः।

सप्तमी-अलुक्–

(९) हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्।९।

प०वि०–हल्-अदन्तात् ५।१ सप्तम्याः ६।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०–हल् च अच्च तौ हलतौ, हलतावन्ते यस्य सः–हलदन्तः, तस्मात्–हलदन्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अलुक्, उत्तरपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संज्ञायां हलदन्तात् सप्तम्या उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः–संज्ञायां विषये हलन्ताद् अदन्ताच्च शब्दात् परस्याः सप्तम्या उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-(हलन्तः) युधि तिष्ठतीति युधिष्ठिरः। त्वचिसारः। 'गविष्ठरः' इत्यत्र तु **'गवियुधिभ्यां स्थिरः'** (८।३।८५) इत्यस्मादेव वचनाद् अलुग् भवति। (अदन्तः) अरण्ये तिलका इति अरण्येतिलकाः। अरण्येमाषकाः। वनेकिंशुकाः। वनेहरिद्रकाः। वनेबल्वजकाः। पूर्वाह्णेस्फोटकाः। कूपेपिशाचकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (हलदन्तात्) हलन्त और अकारान्त शब्द से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-(हलन्त) **युधिष्ठिरः।** युध्=युद्ध में स्थिर होनेवाला, धर्मराज युधिष्ठिर। **गविष्ठरः।** गौ=अपनी वाणी पर स्थिर रहनेवाला। **(अदन्त) अरण्येतिलकाः।** अरण्य=जंगल में होनेवाले तिल। **अरण्येमाषकाः।** अरण्य में होनेवाले माष=उड़द। **वनेकिंशुकाः।** वन में होनेवाले किंशुक=ढाक। **वनेहरिद्रकाः।** वन में होनेवाली हरिद्रा=हल्दी। **वनेबल्वजकाः।** वन में होनेवाली बल्वज नामक घासविशेष। **पूर्वाह्णेस्फोटकाः।** पूर्वाह्ण में शब्दविशेष करनेवाले। **कूपेपिशाचकाः।** कूप में रहनेवाले पिशाच लोग।*

*सिद्धि-(१) **युधिष्ठिरः।** यहां युध् और स्थिर शब्दों का **'संज्ञायाम्'** (२।१।४४) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविशेष में हलन्त युध्-शब्द से परे सप्तमी-विभक्ति का स्थिर उपपद होने पर लुक् नहीं होता है। **'गवियुधिभ्यां स्थिरः'** (८।३।९५) से स्थिर के सकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को ठकार होता है।*

*(२) **गविष्ठिरः।** यहां गो और स्थिर शब्दों का पूर्ववत् सप्तमी तत्पुरुष समास है। गो शब्द न तो हलन्त है और न ही अकारान्त है अतः यहां **'गवियुधिभ्यां स्थिरः'** (८।३।९५) इसी सूत्रोक्त कथन से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अरण्येतिलकाः।** यहां अरण्य और तिलक शब्दों का पूर्ववत् सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविशेष में अकारान्त अरण्य शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का 'तिलक' उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**वनेकिंशुकाः** आदि।*

सप्तमी-अलुक्-

(१०) कारनाम्नि च प्राचां हलादौ।१०।

प०वि०-कार-नाम्नि ७।१ च अव्ययपदम्, प्राचाम् ६।३ हलादौ ७।१।

स०-वणिग्भि: कर्षकै: पशुपालैश्च राज्ञे रक्षनिबन्धनो देयो भाग: कार:। कारस्य नाम इति कारनाम, तस्मिन्-कारनाम्नि (षष्ठीतत्पुरुष:)। हल् आदिर्यस्य स:-हलादि:, तस्मिन्-हलादौ (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, हलदन्तात्, सप्तम्या इति चानुवर्तते।

अन्वय:-हलदन्तात् सप्तम्या: प्राचां कारनाम्नि हलादौ चोत्तरपदेऽलुक्।

अर्थ:-हलन्ताद् अकारान्ताच्च शब्दात् परस्या: सप्तम्या: प्राचां देशीये-कारवाचिनि हलादौ चोत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-स्तूपे शाण इति स्तूपेशाण:। दृषदिमाषक:। हलेद्विपदिका। हलेत्रिपदिका।

आर्यभाषा: *अर्थ-(हलदन्तात्) हलन्त और अकारान्त शब्द से परे (सप्तम्या:) सप्तमी विभक्ति का (प्राचाम्) प्राग्देशीय (कारनाम्नि) कारवाचक (हलादौ) हलादि (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**स्तूपेशाण:।** स्तूप=स्मृति-चिह्न के निर्माण के समय देय शाण राशि। शाण=साढ़े बारह रत्ती चांदी का सिक्का। **दृषदिमाषक:।** महल आदि की आधारशिला पर देय माषक राशि। माषक=दो रत्ती चांदी का सिक्का। **हलेद्विपदिका।** हल की जोत पर देय द्विपदिका राशि। पाद=आठ रत्ती चांदी का सिक्का। **हलेत्रिपदिका।** हल की जोत पर देय त्रिपदिका राशि।*

सिद्धि-(१) स्तूपेशाण:। *यहां स्तूप और शाण शब्दों का **'संज्ञायाम्'** (२।१।४४) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अकारान्त स्तूप शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का प्राग्देशीय, कारवाची, हलादि 'शाण' उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**दृषदिमाषक:।***

*(२) **हलेद्विपदिका।** यहां हल और द्विपाद शब्दों का पूर्ववत् सप्तमी तत्पुरुष समास है। पाद शब्द से **'पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च'** (५।४।१) से वुन् प्रत्यय और पाद के अन्त्य अकार का लोप होता है। **'पाद: पत्'** (६।४।१३०) से पाद के स्थान में पत् आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**हलेत्रिपदिका।***

सप्तमी-अलुक्-

(११) मध्याद् गुरौ।११।

प०वि०-मध्यात् ५।१ गुरौ ७।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मध्यात् सप्तम्या गुरावुत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-मध्यशब्दात् परस्याः सप्तम्या गुरुशब्दे उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-मध्ये गुरुरिति मध्येगुरुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मध्यात्) मध्य शब्द से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (गुरौ) गुरु (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**मध्येगुरुः**। मध्य में गुरु जैसे छन्दःशास्त्र का जगण ।ऽ। (करोति)।*

***सिद्धि-मध्येगुरुः**। यहां मध्य और गुरु शब्दों का **'संज्ञायाम्'** (२।१।४४) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से मध्य शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का गुरु उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है।*

सप्तमी-अलुक्–

(१२) अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे।१२।

प०वि०-अमूर्ध-मस्तकात् ५।१ स्वाङ्गात् ५।१ अकामे ७।१।

स०-मूर्धा च मस्तकं च एतयोः समाहारः-मूर्धमस्तकम्, न मूर्धमस्तकमिति अमूर्धमस्तकम्, तस्मात्-अमूर्धमस्तकात् (समाहारद्वन्द्व-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)। स्वस्य अङ्गमिति स्वाङ्गम्, तस्मात्-स्वाङ्गात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। न काम इति अकामः, तस्मिन्-अकामे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, हलदन्तात्, सप्तम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गात् सप्तम्या अकामे उत्तरपदे-ऽलुक्।

अर्थः-मूर्धमस्तकवर्जितात् स्वाङ्गवाचिनः शब्दात् परस्याः सप्तम्या कामवर्जिते उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-कण्ठे स्थितः कालो यस्य सः-कण्ठेकालः। उरसिलोमा। उदरेमणिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अमूर्धमस्तकात्) मूर्धा और मस्तक शब्दों से भिन्न (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची शब्द से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (अकामे) काम शब्द से भिन्न (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**कण्ठेकाल:।** वह पुरुष कि कण्ठ में काल स्थित है, मरणासन्न पुरुष। **उरसिलोमा।** वह पुरुष कि जिसके उर:स्थल (छाती) पर रोम स्थित है। **उदरेमणि:।** वह पुरुष कि जिसके उदर में मणि स्थित है।*

*सिद्धि-**कण्ठेकाल:।** यहां कण्ठ और काल शब्दों का वा०-**'सप्तम्युपमान-पूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्य:'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से स्वाङ्गवाची कण्ठ शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का काल उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**उरसिलोमा, उदरेमणि:।***

सप्तमी-अलुग्विकल्प:-

(१३) बन्धे च विभाषा।१३।

प०वि०-बन्धे ७।१ च अव्ययपदम्, विभाषा १।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, हलदन्तात्, सप्तम्या इति चानुवर्तते।

अन्वय:-हलदन्तात् सप्तम्या बन्धे चोत्तरपदे विभाषाऽलुक्।

अर्थ:-हलदन्तात् अदन्ताच्च परस्या: सप्तम्या बन्धे चोत्तरपदे विकल्पेनाऽलुग् भवति।

उदा०-हस्ते बन्ध इति हस्तबन्ध:, हस्तेबन्ध:। चक्रे बन्ध इति चक्रबन्ध:, चक्रेबन्ध:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(हलदन्तात्) हलन्त और अकारान्त शब्द से परे (सप्तम्या:) सप्तमी विभक्ति का (बन्धे) बन्ध शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (विभाषा) विकल्प से (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**हस्तबन्ध:, हस्तेबन्ध:।** हाथ में बन्ध। **चक्रबन्ध:, चक्रेबन्ध:।** चक्र में बन्ध।*

*सिद्धि-**हस्तबन्ध:।** यहां हस्त और बन्ध शब्दों को **'सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च'** (२।१।४१) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से अकारान्त हस्त शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का बन्ध उत्तरपद होने पर विकल्प पक्ष में लुक् होत है और पक्ष में सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता है-**हस्तेबन्ध:।** ऐसे ही-**चक्रबन्ध:, चक्रेबन्ध:।***

बहुलं सप्तमी-अलुक्-

(१४) तत्पुरुषे कृति बहुलम्।१४।

प०वि०-तत्पुरुषे ७।१ कृति ७।१ बहुलम् १।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सप्तम्या कृति उत्तरपदे बहुलम् अलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सप्तम्याः कृदन्ते उत्तरपदे बहुलम् अलुग् भवति।

उदा०-स्तम्बे रमते इति स्तम्बेरमः। कर्णे जपतीति कर्णेजपः। बहुलवचनान्न च भवति-मद्रेषु चरतीति मद्रचरः। कुरुषु चरतीति कुरुचरः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (कृति) कृदन्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (बहुलम्) प्रायशः (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-**स्तम्बेरमः**। वृक्षों की शाखा अथवा घास में रमण करनेवाला हाथी। हाथी घास नामक एक प्रसिद्ध घास है। **कर्णेजपः**। कान में कुछ कहनेवाला-चुगलखोर। बहुलवचन से कहीं सप्तमी विभक्ति का अलुक् नहीं होता है-**मद्रचरः**। मद्र देश में घूमनेवाला पुरुष। **कुरुचरः**। कुरु देश में घूमनेवाला पुरुष।*

*सिद्धि-**स्तम्बेरमः**। यहां स्तम्ब और रम शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'स्तम्बकर्णयोरमिजपोः' (३।२।१३) से स्तम्ब उपपद होने पर 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से कृत्संज्ञक 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस उपपद तत्पुरुष समास में सप्तमी विभक्ति का कृदन्त 'रम' उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**कर्णेजपः**।*

बहुलं सप्तमी-अलुक्-

(१५) प्रावृट्शरत्कालदिवां जे।१५।

प०वि०-प्रावृट्-शरत्-काल-दिवाम् ६।३ जे ७।१।

स०-प्रावृट् च शरच्च कालश्च द्यौश्च ताः-प्रावृट्शरत्कालदिवः, तासाम्-प्रावृट्शरत्कालदिवाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रावृट्शरत्कालदिवां सप्तम्या जे उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे प्रावृट्शरत्कालदिवां शब्दानां सप्तम्या ज-शब्दे उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-(**प्रावृट्**) प्रावृषि जात इति प्रावृषिजः। (**शरत्**) शरदिजः। (**कालः**) कालेजः। (**दिव्**) दिविजः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (प्रावृट्शरत्कालदिवाम्) प्रावृट्, शरत्, काल और दिव् सम्बन्धी (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (जे) ज-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

उदा०-(प्रावृट्) ***प्रावृषिजः।*** *वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुआ। (शरत्)* ***शरदिजः।*** *शरद् ऋतु में उत्पन्न हुआ। (काल)* ***कालेजः।*** *समय पर उत्पन्न हुआ। (दिव्)* ***दिविजः।*** *द्यौ (द्युलोक) में उत्पन्न हुआ।*

सिद्धि-प्रावृषिजः। *यहां प्रावृट् और ज-शब्दों का* ***'उपपदमतिङ्'*** *(२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। ज-शब्द में* ***'सप्तम्यां जनेर्डः'*** *(३।२।९७) से* ***'जनी प्रादुर्भावे'*** *(दि०आ०) धातु से भूतकाल में 'ड' प्रत्यय है। वा०-* ***'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'*** *(६।४।१४३) से जन् के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। इस सूत्र से प्रावृट् की सप्तमी विभक्ति का ज-शब्द उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-शरदिजः आदि।*

सप्तमी-अलुग्विकल्पः-

(१६) विभाषा वर्षक्षरशरवरात्।१६।

प०वि०-विभाषा १।१ वर्ष-क्षर-शर-वरात् ५।१।

स०-वर्षश्च क्षरश्च शरश्च वरश्च एतेषां समाहारः-वर्षक्षरशरवरम्, तस्मात्-वर्षक्षरशरवरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे, जे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे वर्षक्षरशरवरात् सप्तम्या जे उत्तरपदे विभाषाऽलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे वर्षक्षरशरवरात् परस्याः सप्तम्या ज-शब्दे उत्तरपदे विकल्पेनालुग् भवति।

उदा०-(वर्षः) वर्षे जात इति वर्षेजः, वर्षजः। **(क्षरः)** क्षरेजः, क्षरजः। **(शरः)** शरेजः, शरजः। **(वरः)** वरेजः, वरजः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (वर्षक्षरशरवरात्) वर्ष, क्षर, शर और वर शब्दों से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (जे) ज-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

उदा०-(वर्ष) ***वर्षेजः, वर्षजः।*** *एक वर्ष में उत्पन्न हुआ। (क्षर)* ***क्षरेजः, क्षरजः।*** *प्रवाह में उत्पन्न हुआ। (शर)* ***शरेजः, शरजः।*** *बाण में उत्पन्न हुआ। (वर)* ***वरेजः, वरजः।*** *वर (श्रेष्ठ) में उत्पन्न हुआ।*

सिद्धि-वर्षेजः। यहां वर्ष और ज-शब्दों का *'उपपदमतिङ्'* (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस उपपद तत्पुरुष समस में वर्ष-शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का ज-शब्द उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। विकल्प पक्ष में *'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'* (२।४।७१) से सप्तमी विभक्ति का लुक् होता है-*वर्षजः।* ऐसे ही-क्षरेजः, क्षरजः आदि।

सप्तमी-अलुग्विकल्पः-

(१७) घकालतनेषु कालनाम्नः।१७।

प०वि०-घ-काल-तनेषु ७।३ कालनाम्नः ५।१।

स०-घश्च कालश्च तनश्च ते-घकालतनाः, तेषु-घकालतनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कालस्य नाम इति कालनाम, तस्मात्-कालनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कालनाम्नः सप्तम्या घकालतनेषु उत्तरपदेषु विभाषाऽलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कालवाचिनः शब्दात् परस्याः सप्ताम्या घ-संज्ञके प्रत्यये कालशब्दे तन-प्रत्यये चोत्तरपदे विकल्पेनालुग् भवति।

उदा०-(घः) पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे। पूर्वाह्णेतमे, पूर्वाह्णतमे। **(कालः)** पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले। **(तनः)** पूर्वाह्णेतने। पूर्वाह्णतने।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कालनाम्नः) कालवाची शब्द से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (घकालतनेषु) घ-संज्ञक प्रत्यय, काल-शब्द और तन-प्रत्यय (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-(घ) **पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे।** दो में से अधिक पूर्वाह्ण में। पूर्वाह्ण=दिन का पूर्वभाग। **पूर्वाह्णेतमे, पूर्वाह्णतमे।** बहुत में अधिक पूर्वाह्ण में। (काल) **पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले।** पूर्वाह्ण समय में। (तन) **पूर्वाह्णेतने। पूर्वाह्णतने।** पूर्वाह्ण में होनेवाले कर्म में।*

*सिद्धि-(१) **पूर्वाह्णेतरे।** यहां सप्तम्यन्त 'पूर्वाह्ण' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से कालवाची पूर्वाह्ण शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय परे होने पर लुक् नहीं होता है।*

*'**तरप्तमपौ घः**' (१।१।२२) से तरप्-प्रत्यय की घ-संज्ञा है। विकल्प पक्ष में '**सुपो धातुप्रातिपदिकयोः**' (२।४।७१) से सप्तमी विभक्ति (ङि) का लुक् हो जाता है-* ***पूर्वाह्णतरे।***

*(२) **पूर्वाह्णेतमे।** यहां सप्तम्यन्त पूर्वाह्ण शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। '**तरप्तमपौ घः**' (१।१।२२) से 'तमप्' प्रत्यय की घ-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पूर्वाह्णेकाले।** यहां पूर्वाह्ण और काल शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। सप्तमी विभक्ति के अलुक् प्रकरण में सप्तम्यन्त रूप दर्शाया गया है। 'तत्पुरुषे' पद की अनुवृत्ति का सम्भवबल से इसी के साथ सम्बन्ध है क्योंकि 'घ' और 'तन' तो प्रत्यय है अतः वहां तत्पुरुष सम्भव नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **पूर्वाह्णेतने।** यहां पूर्वाह्ण शब्द से '**विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्**' (४।३।२४) से 'ट्यु' और 'ट्युल्' प्रत्यय और उसे 'तुट्' आगम है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' के स्थान मे अन-आदेश होता है। इस प्रकार तन-प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से कालवाची पूर्वाह्ण शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सप्तमी-अलुग्विकल्पः—

(१८) शयवासवासिष्वकालात्।१८।

प०वि०-शय-वास-वासिषु ७।३ अकालात् ५।१।

स०-शयश्च वासश्च वासी च ते-शयवासवासिनः, तेषु-शयवास-वासिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न काल इति अकालः, तस्मात्-अकालात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषेऽकालात् शयवासवासिषु उत्तरपदेषु विभाषाऽलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासेऽकालवाचिनः शब्दात् परस्याः सप्तम्याः शयवासवासिषु उत्तरपदेषु विकल्पेनालुग् भवति।

उदा०-(**शयः**) खे शेते इति खेशयः, खशयः। (**वासः**) ग्रामे वास इति ग्रामेवासः, ग्रामवासः। (**वासी**) ग्रामे वस्तुं शीलं यस्य सः-ग्रामेवासी, ग्रामवासी। अन्तेवासी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (अकालात्) कालवाची से भिन्न शब्द से परे (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (शयवासवासिषु) शय, वास, और वासी (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (अलुक्) लुक् नहीं होता है।*

*उदा०-(शय) **खेशयः, खशयः**। आकाश में शयन करनेवाली वृक्ष की शाखा। (वासः) **ग्रामेवासः, ग्रामवासः**। ग्राम में रहना। (वासी) **ग्रामेवासी, ग्रामवासी**। ग्राम में रहनेवाला। अन्तेवासी। शिष्य।*

*सिद्धि-(१) **खेशयः**। यहां ख और शय शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'शयः' शब्द में **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से **'अधिकरणे शेतेः'** (३।२।१५) से 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकालवाची, ख-शब्द से परे सप्तमी विभक्ति का 'शय' उत्तरपद होने पर लुक् नहीं होता है। विकल्प पक्ष में **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से सप्तमी विभक्ति का लुक् होता है-**खशयः**।*

*(२) **ग्रामेवासः**। यहां ग्राम और वास शब्दों का **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।४०) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **ग्रामेवासी**। यहां और वासी शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। वासी शब्द में **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अन्तेवासी** आदि।*

अलुक्-प्रतिषेधः-

(१६) नेन्सिद्धबध्नातिषु च।१६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इन्-सिद्ध-बध्नातिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-इन् च सिद्धश्च बध्नातिश्च ते-इन्सिद्धबध्नातयः, तेषु-इन्सिद्धबध्नातिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे सप्तम्या इन्सिद्धबध्नातिषु चोत्तरपदेऽलुङ् न।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे सप्तम्या इन्प्रत्ययान्ते सिद्धशब्दे बध्नातौ चोत्तरपदेऽलुङ् न भवति।

उदा०-(इन्) स्थण्डिले शयितुं व्रतं यस्य सः-स्थण्डिलशायी, स्थण्डिलवर्ती। **(सिद्धः)** सांकाश्ये सिद्ध इति सांकाश्यसिद्धः। काम्पिल्यसिद्धः। **(बध्नातिः)** चक्रे बन्ध इति चक्रबन्धः, चारबन्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (इन्सिद्धबध्नातिषु) इन्-प्रत्ययान्त, सिद्ध और बध्नाति धातु से निष्पन्न शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (अलुक्) अलुक् (न) नहीं होता है।*

उदा०-(इन्) ***स्थण्डिलशायी।*** *स्थण्डिल=चबूतरे पर शयन का व्रती।* ***स्थण्डिलवर्ती।*** *स्थण्डिल पर रहने का व्रती। (सिद्ध)* ***सांकाश्यसिद्धः।*** *सांकाश्य नगर में सिद्ध=बना हुआ।* ***काम्पिल्यसिद्धः।*** *काम्पिल्य नगर में सिद्ध हुआ। (बध्नाति)* ***चक्रबन्धः।*** *चक्र में बन्द।* ***चारबन्धः।*** *चार=बन्दीगृह में बन्द।*

सिद्धि-(१) ***स्थण्डिलशायी।*** *यहां स्थण्डिल और शायिन् शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में स्थण्डिल शब्द से परे इन्-अन्त शायिन् उत्तरपद होने पर सप्तमी विभक्ति का अलुक् नहीं होता है। '**तत्पुरुषे कृति बहुलम्**' (६।३।१४) से अलुक् प्राप्त था, उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। स्थण्डिलशायी में '**व्रते**' (३।२।८०) से 'णिनि' प्रत्यय है। ऐसे ही-**स्थण्डिलव्रती।***

(२) ***सांकाश्यसिद्धः।*** *यहां सांकाश्य और सिद्ध शब्दों का '**सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च**' (२।१।४१) से सप्तमी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में सिद्ध शब्द उत्तरपद होने पर सप्तमी विभक्ति का अलुक् नहीं होता है। पूर्ववत् लुक् प्राप्त था। ऐसे ही-**चक्रबन्धः, चारबन्धः।***

*सूत्र में बध्नाति-शब्द के पाठ से काशिका में 'बद्धः' शब्द का भी ग्रहण किया है-**चक्रबद्धः, चारबद्धः।***

अलुक्-प्रतिषेधः-

(२०) स्थे च भाषायाम्।२०।

प०वि०-स्थे ७।१ च अव्ययपदम्, भाषायाम् ७।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, सप्तम्याः, तत्पुरुषे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां तत्पुरुषे सप्तम्याः स्थे चोत्तरपदेऽलुङ् न।

अर्थः-भाषायां विषये तत्पुरुषे समासे सप्तम्याः स्थ-शब्दे चोत्तरपदेऽलुङ् न भवति।

उदा०-समे तिष्ठतीति समस्थः। विषमस्थः। कूटस्थः। पर्वतस्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषायाम्) लौकिक भाषा में तथा (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (सप्तम्याः) सप्तमी विभक्ति का (स्थे) स्थ-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (अलुक्) अलुक् (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**समस्थः**। हानि-लाभ आदि में सम रहनेवाला पुरुष। **विषमस्थः**। हानि-लाभ आदि में विषम रहनेवाला पुरुष। **कूटस्थः**। स्थिर रहनेवाला। **पर्वतस्थः**। पर्वत पर रहनेवाला।*

*सिद्धि-**समस्थः**। यहां सम और स्थ शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपद तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से भाषा में तथा तत्पुरुष समास में सप्तमी विभक्ति का 'स्थ' शब्द उत्तरपद होने पर अलुक् नहीं होता है। 'समस्थः' में सम उपपद 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से 'सुपि स्थः' (३।२।४) से 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-विषमस्थः आदि।*

षष्ठी-अलुक्-

(२१) षष्ठ्या आक्रोशे।२१।

प०वि०-षष्ठ्याः ६।१ आक्रोशे ७।१।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे षष्ठ्या उत्तरपदेऽलुक्, आक्रोशे।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे षष्ठ्या उत्तरपदेऽलुग् भवति, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०-चौरस्य कुलमिति-चौरस्यकुलम्। वृषलस्यकुलम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (षष्ठ्याः) षष्ठी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) लुक् नहीं होता है (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश=भर्त्सना अर्थ प्रकट हो।*

*उदा०-**चौरस्यकुलम्**। यह चौर का कुल है। **वृषलस्यकुलम्**। यह नीच का कुल है, ऐसा कहकर आक्रोश प्रकट किया जा रहा है।*

*सिद्धि-**चौरस्यकुलम्**। यहां चौर और कुल शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में तथा आक्रोश (भर्त्सना) अर्थ की प्रतीति में षष्ठीविभक्ति का कुल उत्तरपद होने पर अलुक् होता है। ऐसे ही-वृषलस्यकुलम्।*

षष्ठी-अलुग्विकल्पः-

(२२) पुत्रेऽन्यतरस्याम्।२२।।

प०वि०-पुत्रे ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, षष्ठ्याः, आक्रोशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे षष्ठ्याः पुत्रे उत्तरपदेऽन्यतरस्याम् अलुक्, आक्रोशे।

अर्थ:-तत्पुरुषे समासे षष्ठ्या: पुत्र-शब्दे उत्तरपदे विकल्पेनाऽलुग् भवति, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०-दास्या: पुत्र इति दास्या:पुत्र:, दासीपुत्र:। वृषल्या:पुत्र:, वृषलीपुत्र:।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (षष्ठ्या:) षष्ठीविभक्ति का (पुत्रे) पुत्र-शब्द उत्तरपद होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अलुक्) अलुक् होता है (आक्रोशे) यदि वहां आक्रोश=भर्त्सना अर्थ प्रकट हो।*

उदा०-दास्या:पुत्र:, दासीपुत्र:। दासी का पुत्र। वृषल्या:पुत्र:, वृषलीपुत्र:। वृषली का पुत्र।

*सिद्धि-दास्या:पुत्र:। यहां दासी और पुत्र शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में तथा आक्रोश अर्थ की प्रतीति में पुत्र-शब्द उत्तरपद होने पर षष्ठी विभक्ति का अलुक् होता है। विकल्प पक्ष में **'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:'** (२।४।७१) से षष्ठीविभक्ति का लुक् होता है-**दासीपुत्र:**। ऐसे ही-वृषल्या:पुत्र:, वृषलीपुत्र:।*

षष्ठी-अलुक्-

(२३) ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य:।२३।

प०वि०-ऋत: ५।१ विद्या-योनिसम्बन्धेभ्य: ५।३।

स०-विद्या च योनिश्च ते विद्यायोनी, विद्यायोनिभ्यां कृत: सम्बन्धो येषां ते विद्यायोनिसम्बन्धा:, तेभ्य:-विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहि:)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तत्पुरुषे, षष्ठ्या इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्पुरुषे ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य: षष्ठ्या उत्तरपदेऽलुक्।

अर्थ:-तत्पुरुषे समासे ऋकारान्तेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च शब्देभ्य: परस्या: षष्ठ्या उत्तरपदेऽलुग् भवति।

उदा०-**(विद्यासम्बन्ध:)** होतुरन्तेवासीति-होतुरन्तेवासी। होतु:पुत्र:। **(योनिसम्बन्ध:)** पितुरन्तेवासीति-पितुरन्तेवासी। पितु:पुत्र:।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (ऋत:) ऋकारान्त (विद्यायोनि-सम्बन्धेभ्य:) विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची शब्दों से परे (षष्ठ्या:) षष्ठी विभक्ति का (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अलुक्) अलुक् होता है।*

*उदा०-(विद्यासम्बन्ध) **होतुरन्तेवासी।** होता नामक ऋत्विक् का शिष्य। **होतुःपुत्रः।** होता नामक ऋत्विक् का पुत्र। (योनिसम्बन्ध) **पितुरन्तेवासी।** पिता का शिष्य। **पितुःपुत्रः।** पिता का पुत्र।*

*सिद्धि-**होतुरन्तेवासी।** यहां होतृ और अन्तेवासी शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में ऋकारान्त विद्या-सम्बन्धवाची होतृ-शब्द से परे षष्ठीविभक्ति का अन्तेवासी उत्तरपद होने पर अलुक् होता है।*

*'होतुः' शब्द में-होतृ+ङस्। होतृ+अस्। हो त् उ र्+स्। होतुर्+०। होतुः। षष्ठीविभक्ति का ङस् प्रत्यय, **'ऋत उत्'** (६।१।११) से ऋकार और अकार के स्थान में उकार आदेश, उसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'रात्सस्य'** (८।२।२४) से सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**होतुःपुत्रः। पितुरन्तेवासी, पितुःपुत्रः।***

षष्ठी-अलुग्विकल्पः-

(२४) विभाषा स्वसृपत्योः।२४।

प०वि०-विभाषा १।१ स्वसृ-पत्योः ७।२।

स०-स्वसा च पतिश्च तौ-स्वसृपती, तयोः-स्वसृपत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अलुक्, उत्तरपदे, तत्पुरुषे, षष्ठ्याः, ऋतः, विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः षष्ठ्याः स्वसृपत्योर्विभाषाऽलुक्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे ऋकारान्तेभ्यो विद्यासम्बन्धवाचिभ्यो योनिसम्बन्धवाचिभ्यश्च शब्देभ्यः परस्याः षष्ठ्याः स्वसृपत्योः शब्दयोरुत्तरपदयोर्विकल्पेनाऽलुग् भवति।

अत्र स्वसृपत्योरुत्तरपदयोर्योनिसम्बन्ध एव सम्भवति, न विद्यासम्बन्धः।

उदा०-(स्वसा) मातुः स्वसा इति मातुःष्वसा, मातुःस्वसा, मातृष्वसा। **(पतिः)** दुहितुः पतिरिति दुहितुःपतिः, दुहितृपतिः। ननान्दुःपतिः, ननान्दृपतिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (ऋतः) ऋकारान्त (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची शब्दों से परे (षष्ठ्याः) षष्ठीविभक्ति का (स्वसृपत्योः) स्वसा और पति शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (अलुक्) अलुक् होता है।*

*उदा०-(स्वसा) **मातुःष्वसा, मातृस्वसा, मातृष्वसा।** माता की बहिन=मासी। (पति) **दुहितुःपतिः, दुहितृपतिः।** पुत्री का पति=दामाद। **ननान्दुःपतिः, ननान्दृपतिः।** नणन्द का पति=नणदोइया।*

यहां स्वसृ और पति उत्तरपद के कथन से योनिसम्बन्ध का सम्भव है, विद्यासम्बन्ध का नहीं। एकपद के बल से 'विद्या' पद की भी अनुवृत्ति दिखाई गई है।

*सिद्धि-**मातुःस्वसा।** यहां मातृ और स्वसृ शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से योनिसम्बन्धवाची ऋकारान्त मातृ-शब्द से परे षष्ठीविभक्ति का स्वसृ शब्द उत्तरपद होने पर अलुक् होता है। विकल्प पक्ष में **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से षष्ठीविभक्ति क लुक् होता है-**मातृस्वसा। 'मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्'** (८।३।८५) से विकल्प से षत्व भी होता है-**मातुःष्वसा।** ऐसे ही-पितुःस्वसा आदि।*

।। इति विभक्ति-अलुक्प्रकरणम्।।

आदेश-प्रकरणम्

आनङ्-आदेशः—

(१) आनङ् ऋतो द्वन्द्वे।२५।

प०वि०-आनङ् १।१ ऋतः ६।१ द्वन्द्वे ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धानां द्वन्द्वे उत्तरपदे पूर्वपदस्य आनङ्।

अर्थः-ऋकारान्तानां विद्यासम्बन्धवाचिनां योनिसम्बन्धवाचिनां च शब्दानां द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे पूर्वपदस्यानङ् आदेशो भवति।

उदा०-(विद्यासम्बन्धः) होता च पोता च तौ होतापोतारौ। नेष्टोद्गातारौ। प्रशास्ताप्रतिहर्तारौ। **(योनिसम्बन्धः)** माता च पिता च तौ **मातापितरौ।** याताननान्दरौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः) विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची शब्दों के (द्वन्द्वे) द्वन्द्व समास में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर पूर्वपद को (आनङ्) आनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**(विद्यासम्बन्ध) होतापोतारौ।** होता और पोता। होता=ऋग्वेदज्ञ ऋत्विक्। पोता=चतुर्वेदज्ञ ब्रह्मा। **नेष्टोद्गातारौ।** नेष्टा और उद्गाता। नेष्टा=सोमयाग के १६ याज्ञिक ऋत्विक्। उद्गाता=सामवेदज्ञ विद्वान्। **प्रशास्ताप्रतिहर्तारौ।** प्रशास्ता और प्रतिहर्ता। प्रशास्ता=होता ऋत्विक् का प्रधान सहायक इसे मैत्रावरुण भी कहते हैं। प्रतिहर्ता=१६ प्रकार के ऋत्विजों में से एक का नाम। **(योनिसम्बन्ध) मातापितरौ।** माता और पिता। **याताननान्दरौ।** याता और ननान्दा। याता=दोराणी-जेठानी। ननान्दा=नणन्द।*

*सिद्धि-**होतापोतारौ।** यहां होतृ और पोतृ शब्दों का '**चार्थे द्वन्द्वः**' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से ऋकारान्त, विद्यासम्बन्धवाची होतृ और पोतृ शब्दों के इस द्वन्द्वसमासे पोतृ-शब्द उत्तरपद होने पर पूर्वपद के होतृ के ऋकार के स्थान में आनङ् आदेश होता है। आनङ् आदेश के ङित् होने से यह '**ङिच्च**' (१।१।५३) से अन्त्य अल् (ऋ) के स्थान में होता है। 'आनङ्' आदेश में नकार अनुबन्ध के वचन से '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व नहीं होता है, क्योंकि ऋकार के स्थान में विधीयमान अण् को रपरत्व होता है, अण् और अनण् को नहीं है। यहां ऋकार के स्थान में अकार और नकार आदेश अनण् है।*

*होतृ+सु+पोतृ+सु। होत् आनङ्+सु+पोतृ+सु। होत् आन्+सु+पोतृ+सु। होता०+पोतृ। होतापोतृ+औ। होतापोत् अर्+औ। होतापोत् आर्+औ। होतापोतारौ। यहां '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप, '**ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः**' (७।३।११०) से गुण और '**अप्तृन्तृच्०**' (६।४।११) से दीर्घ होता है। ऐसे ही-**नेष्टोद्गातारौ** आदि।*

आनङ्-आदेशः-

(२) देवताद्वन्द्वे च।२६।

प०वि०-देवता-द्वन्द्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-देवतानां द्वन्द्व इति देवताद्वन्द्वः, तस्मिन्-देवताद्वन्द्वे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, आनङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे चोत्तरपदे पूर्वपदस्याऽऽनङ्।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां च द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे पूर्वपदस्याऽऽनङ् आदेशो भवति।

उदा०-इन्द्रस्य वरुणश्च तौ-इन्द्रावरुणौ। इन्द्रासोमौ। इन्द्राबृहस्पती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) भी (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर पूर्वपद को (आनङ्) आनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**इन्द्रावरुणौ।** इन्द्र और वरुण देवता। **इन्द्रासोमौ।** इन्द्र और सोम देवता। **इन्द्राबृहस्पती।** इन्द्र और बृहस्पति देवता।*

*सिद्धि-**इन्द्रावरुणौ।** यहां इन्द्र और वरुण शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में वरुण उत्तरपद होने पर इन्द्र पूर्वपद को आनङ् आदेश होता है। शेष कार्य **'होतापोतारौ'** (६।३।२५) के समान है। ऐसे ही-**इन्द्रासोमौ** आदि।*

ईद्-आदेशः-

(३) ईदग्नेः सोमवरुणयोः।२७।

प०वि०-ईत् १।१ अग्नेः ६।१ सोम-वरुणयोः ७।२।

स०-सोमश्च वरुणश्च तौ सोमवरुणौ, तयोः-सोमवरुणयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे सोमवरुणयोरुत्तरपदयोरग्नेरीत्।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे सोमवरुणयोः शब्दयो-रुत्तरपदयोरग्नेः पूर्वपदस्य ईद्-आदेशो भवति।

उदा०-**(सोमः)** अग्निश्च सोमश्च तौ-अग्नीषोमौ। **(वरुणः)** अग्निश्च वरुणश्च तौ-अग्नीवरुणौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (सोमवरुणयोः) सोम और वरुण शब्द उत्तरपद होने पर (अग्नेः) अग्नि पूर्वपद को (ईत्) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-(सोम) **अग्नीषोमौ।** अग्नि और सोम देवता। (वरुण) **अग्नीवरुणौ।** अग्नि और वरुण देवता।*

*सिद्धि-**अग्नीषोमौ।** यहां अग्नि और सोम शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस द्वन्द्वसमास में सोम शब्द उत्तरपद होने पर अग्नि पूर्वपद को ईकार अन्त्य आदेश होता है। **'अग्नेः स्तुतस्तोमसोमाः'** (८।३।८२) से षत्व होता है। ऐसे ही-**अग्नीवरुणौ।***

इद्-आदेशः–

(४) इद् वृद्धौ।२८।

प०वि०–इत् १।१ वृद्धौ ७।१।

अनु०–उत्तरपदे, देवताद्वन्द्वे, अग्नेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–देवताद्वन्द्वे वृद्धावुत्तरपदेऽग्नेरित्।

अर्थः–देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे कृतवृद्धौ शब्दे उत्तरपदेऽग्नेः पूर्वपदस्य इदादेशो भवति।

उदा०–आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत (का०सं० १३।६)। आग्निमारुतं कर्म क्रियते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (वृद्धौ) वृद्धि किया हुआ शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अग्नेः) अग्नि पूर्वपद को (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०-**आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत** (का०सं० १३।६)। **आग्निमारुतं कर्म क्रियते।***

सिद्धि-आग्निवारुणी।** यहां प्रथम अग्नि और वरुण शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। तत्पश्चात् 'अग्नीवरुण' शब्द से **'साऽस्य देवता'** (४।२।२३) से देवता-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है और **'देवताद्वन्द्वे च'** (७।३।२१) से उभयपद-वृद्धि होकर 'आग्नीवारुणम्' शब्द बनता है। इस सूत्र से इस द्वन्द्वसमास में वृद्धिमान् वारुण-शब्द उत्तरपद होने पर आग्नी शब्द के ईकार को इकार आदेश होता है। **'ईदग्नेः सोमवरुणयोः'** (६।२।२६) से ईकार आदेश प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-**आग्निवारुणी।** ऐसे ही-**आग्निमारुतम्।

द्यावा-आदेशः–

(५) दिवो द्यावा।२६।

प०वि०–दिवः ६।१ द्यावा १।१।

अनु०–उत्तरपदे, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे दिवो द्यावा।

अर्थः–देवतावाचिनां शब्दनां द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे दिवः स्थाने द्यावाऽऽदेशो भवति।

उदा०-द्यौश्च क्षामा च ते-द्यावाक्षामे। द्यावाक्षामा (ऋ० ८।१८।१६)। द्यौश्च भूमिश्च ते-द्यावाभूमी (ऋ० १०।६५।४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (दिवः) दिव्-शब्द के स्थान में (द्यावा) द्यावा आदेश होता है।*

*उदा०-**द्यावाक्षामा** (ऋ० ८।१८।१६) द्युलोक और पृथिवीलोक देवता। **द्यावाभूमी** (ऋ० १०।६५।४) द्युलोक और भूमि लोक देवता।*

सिद्धि-द्यावाक्षामे।** यहां दिव् और क्षामा शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस देवतावाची द्वन्द्वसमास में दिव् के स्थान में द्यावा आदेश होता है। ऐसे ही-**द्यावाभूमी।

दिवस्-आदेशः-

(६) दिवसश्च पृथिव्याम्।३०।

प०वि०-दिवसः १।१ च अव्ययपदम्, पृथिव्याम् ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, देवताद्वन्द्वे, दिवः द्यावा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे पृथिव्याम् उत्तरपदे दिवो दिवसो द्यावा च।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे पृथिव्याम् उत्तरपदे दिवः स्थाने दिवसो द्यावा चाऽऽदेशो भवति।

उदा०-(**दिवसः**) द्यौश्च पृथिवी च ते-दिवस्पृथिव्यौ। (**द्यावा**) द्यावापृथिव्यौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (पृथिव्याम्) पृथिवी-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (दिवः) दिव्-शब्द के स्थान में (दिवसः) दिवस् (च) और (द्यावा) द्यावा आदेश होते हैं।*

*उदा०-**(दिवस्) दिवस्पृथिव्यौ।** द्यौ और पृथिवी देवता। **(द्यावा) द्यावापृथिव्यौ।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-दिवस्पृथिव्यौ।** यहां दिव् और पृथिवी शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस देवतावाची द्वन्द्वसमास में दिव् के स्थान में पृथिवी-शब्द उत्तरपद होने पर दिवस्-आदेश होता है। ऐसे ही द्वितीय पक्ष में-**द्यावापृथिव्यौ।

उषासा-आदेशः-

(७) उषासोषसः।३१।

प०वि०-उषासा १।१ उषसः ६।१।

अनु०-उत्तरपदे, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे उषस उषासा।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे उषसः स्थाने उषासाऽऽदेशो भवति।

उदा०-उषाश्च सूर्यश्च एतयोः समाहारः-उषासासूर्यम्। उषाश्च नक्तं च ते-उषासानक्ते। उषासानक्ता (ऋ० १।१२२।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (उषसः) उषस् के स्थान में (उषासा) उषासा आदेश होता है।*

*उदा०-**उषासासूर्यम्।** उषा और सूर्य देवता। **उषासानक्ता** (ऋ० १।१२२।२)। उषा और रात्रि देवता।*

*सिद्धि-**उषासासूर्यम्।** यहां उषस् और सूर्य शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस देवतावाची द्वन्द्वसमास में सूर्य उत्तरपद परे होने पर उषस् के स्थान में उषासा आदेश होता है। ऐसे ही-**उषासानक्ता।** यहां 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से सुप्=औ के स्थान में आकार आदेश विशेष है।*

निपातनम्—

(८) मातरपितरावुदीचाम्।३२।

प०वि०-मातर-पितरौ १।२ उदीचाम् ६।३।

स०-माता च पिता च तौ-मातरपितरौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-उदीचां मातरपितरौ।

अर्थः-उदीचामाचार्याणां मतेन मातरपितराविति शब्दो निपात्यते। अत्र मातृ-शब्दस्य उत्तरपदेऽरङ्-आदेशो निपात्यते।

उदा०-माता च पिता च तौ-मातरपितरौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उदीचाम्) उत्तर भारतीय आचार्यों के मत में (मातरपितरौ) मातरपितरौ यह शब्द निपातित है अर्थात् यहां मातृ शब्द को उत्तरपद परे होने पर अरङ् आदेश निपातित है।*

*उदा०-**मातरपितरौ।** माता और पिता देवता।*

*सिद्धि-**मातरपितरौ।** यहां मातृ और पितृ शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से इस देवतावाची द्वन्द्वसमास में मातृ-शब्द को पितृ-शब्द उत्तरपद होने पर उत्तर भारतीय आचार्यों के मत में अरङ्-आदेश निपातित है। आदेश के ङित् होने से यह 'ङिच्च' (१।१।५३) से मातृ-शब्द के अन्त्य ऋकार के स्थान में होता है।*

निपातनम्–

(६) पितरामातरा च छन्दसि।३३।

प०वि०–पितरा-मातरा १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०–पिता च माता च ते-पितरामातरौ (पितरामतरा)।

अनु०–छन्दसि पितरामातरा च।

अर्थः–छन्दसि विषये पितरामातरा च शब्दो निपात्यते।

अत्र पूर्वपदस्य पितृ-शब्दस्य उत्तरपदे अराङ् आदेशो निपात्यते।

उदा०–पिता च माता च ते-पितरामातरौ। छन्दसि-पितरामातरा। आ मा गन्तां पितरामातरा च (यजु० ९।१९)

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (पितरामातरा) पितरामातरा शब्द (च) भी निपातित है।*

यहां पितृ पूर्वपद को उत्तरपद परे होने पर अराङ् आदेश निपातित है।

*उदा०–**पितरामातरौ।** पिता और माता देवता।*

*सिद्धि–**पितरामातरा।** यहां पितृ और मातृ शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से देवतावाची द्वन्द्वसमास में पितृ पूर्वपद को मातृ उत्तरपद परे होने पर वेदविषय में अराङ् आदेश निपातित है। आदेश के ङित् होने से यह 'ङिच्च' (१।१।५३) से पितृ शब्द के अन्त्य ऋकार के स्थान में होता है। 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से सुप्='औ' प्रत्यय के स्थान में 'आकार' आदेश और '**ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः**' (७।३।११०) से अंग को गुण होता है।*

।। इति आदेश-प्रकरणम्।।

स्त्रियाः पुंवद्भावप्रकरणम्

पुंवद्भावः–

(१) स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु।३४।

प०वि०–स्त्रियाः ६।१ पुंवत् अव्ययपदम्, भाषितपुंस्कादनूङ् लुप्तषष्ठीकं पदम्, समानाधिकरणे ७।१ स्त्रियाम् ७।१ अपूरणी-प्रियादिषु ७।३।

तद्धितवृत्तिः-पुंस इव इति पुंवत्। **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति इवार्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-भाषितः पुमान् येन समानायामाकृतौ=एकस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कः, तस्मात्-भाषितपुंस्कात्। न ऊङ् इति अनूङ्। भाषितपुंस्काद् अनूङ् इति भाषितपुंस्कादनूङ्, तस्याः-भाषितपुंस्कादनूङ् (बहुव्रीहिनञ्गर्भित-पञ्चमीतत्पुरुषः)। अत्रास्मादेव निपातनात् पञ्चम्या अलुग् वेदितव्यः। छन्दोवशाच्च लुप्तषष्ठीकं पदमिदम्। छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति।

प्रिया आदिर्येषां ते प्रियादयः, पूरणी च प्रियादयश्च ते पूरणीप्रियादयः, न पूरणीप्रियादय इति अपूरणीप्रियादयः, तेषु-अपूरणीप्रियादिषु (बहुव्रीहिद्वन्द्व-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-भाषितपुंस्कादनूङ् स्त्रियाः अपूरणीप्रियादिषु स्त्रियां समानाधिकरणे उत्तरपदे पुंवत्।

अर्थः-भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य पूरणीप्रियादिवर्जिते स्त्रीलिङ्गे समानाधिकरणे उत्तरपदे परतः पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं भवति।

उदा०-दर्शनीया भार्या यस्य सः-दर्शनीयभार्यः। श्लक्ष्णचूडः। दीर्घजङ्घः।

प्रिया। मनोज्ञा। कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। भक्तिः। सचिवा। अम्बा। कान्ता। क्षान्ता। समा। चपला। दुहिता। वामा। इति प्रियादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में अर्थात् एक प्रवृत्तिनिमित्त में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है उस ऊङ्-प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (अपूरणीप्रियादिषु) पूरण-प्रत्ययान्त और प्रिया आदि शब्दों से भिन्न (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग (समानाधिकरणे) समानाधिकरणवाला (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (पुंवत्) पुंलिङ्गवाची शब्द के समान होता है।*

*उदा०-**दर्शनीयभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी भार्या (पत्नी) दर्शनीया है। **श्लक्ष्णचूडः**। वह पुरुष कि जिसकी चूडा (चोटी) कोमल है। **दीर्घजङ्घः**। वह पुरुष कि जिसकी जांघ दीर्घ हैं।*

*सिद्धि-**दर्शनीयभार्यः**। यहां दर्शनीया और भार्या शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से ऊङ्-प्रत्यय से रहित, भाषितपुंस्क, स्त्रीलिङ्ग दर्शनीया शब्द के स्थान में पूरण-प्रत्ययान्त और प्रिया-आदिगण पठित शब्दों से भिन्न, समानाधिकरणवाला भार्या-शब्द उत्तरपद होने पर पुंलिङ्ग शब्द के समान 'दर्शनीय' रूप हो जाता है। तत्पश्चात् **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से 'भार्या' शब्द को ह्रस्व होता है। 'दर्शनीया' शब्द इसी आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ का भी वाचक रहा है-दर्शनीयः पुरुषः, और यह टाप्-प्रत्ययान्त होने से ऊङ्प्रत्यय से रहित है।*

पुंवद्भावः-

(२) तसिलादिष्वाकृत्वसुचः।३५।

प०वि०-तसिल्-आदिषु ७।३ आ अव्ययपदम्, कृत्वसुचः ५।१।

स०-तसिल् आदिर्येषां ते तसिलादयः, तेषु-तसिलादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ् इति चानुवर्तते। 'उत्तरपदे' इति च नानुवर्ततेऽर्थासम्भवात्।

अन्वयः-तसिलादिषु आकृत्वसुचो भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रियाः पुंवत्।

अर्थः-तसिलादिषु प्रत्ययेषु परतो भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य पुंलिङ्शब्दस्येव रूपं भवति।

उदा०-**(तसिल्)** तस्याः शालाया इति ततः। यस्याः शालाया इति यतः। **(त्रल्)** तस्यां शालायामिति तत्र। यस्यां शालायामिति यत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तसिलादिषु) **'पञ्चम्यास्तसिल्'** (५।३।७) से लेकर (आकृत्वसुचः) **'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्'** (५।४।१७) इस सूत्र तक जो प्रत्यय हैं, उनके परे होने पर (भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है उस ऊङ्-प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (पुंवत्) पुंलिङ्गवाची शब्द के समान रूप होता है।*

*उदा०-(तसिल्) **ततः**। उस शाला से। **यतः**। जिस शाला से। (त्रल्) **तत्र**। उस शाला में। **यत्र**। जिस शाला में।*

*सिद्धि-(१) **ततः**। तत्+ङसि+तसिल्। तत्+तस्। त अ+तस्। त+टाप्+तस्। त+०+तस्। ततः।*

*यहां 'तत्' शब्द से '**पञ्चम्यास्तसिल्**' (५।३।७) से तसिल् प्रत्यय है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से 'तत्' के तकार को अकार आदेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग 'ता' शब्द के स्थान में तसिल्-प्रत्यय परे होने पर उसे पुंलिङ्ग शब्द के समान 'त' रूप हो जाता है।*

*(२) **यतः**। यहां 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'तसिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **तत्र**। यहां 'तत्' शब्द से '**सप्तम्यास्त्रल्**' (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **यत्र**। यहां 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'त्रल्' प्रत्यय है।*

***विशेषः** तसिलादि प्रत्यय-महाभाष्यकार पतंजलि ने तसिलादि प्रत्ययों में इन प्रत्ययों का परिगणन किया है-त्र, तस्, तरप्, तमप्, चरट्, जातीयर्, कल्पप्, देश्य, देशीयर, रूपप्, पाशप्, थम्, थाल्, दा, र्हिल्, तिल्, तातिल्।*

पुंवद्भावः—

(३) क्यङ्मानिनोश्च।३६।

प०वि०-क्यङ्-मानिनोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-क्यङ् च मानिन् च तौ क्यङ्मानिनौ, तयोः-क्यङ्मानिनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्यङ्मानिनोश्चोत्तरपदे भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रियाः पुंवत्।

अर्थः-क्यङ्प्रत्यये मानिनि शब्दे चोत्तरपदे भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं भवति।

उदा०-**(क्यङ्)** एनी इवाचरति-एतायते। श्येनी इवाचरति-श्येतायते। **(मानिन्)** दर्शनीयामिमां मन्यतेऽयमिति-दर्शनीयमानी अयमस्याः। दर्शनीयमानिनीयमस्याः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्यङ्मानिनोः) क्यङ् और मानिन् शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है, उस ऊङ्प्रत्यय से रहित, (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (पुंवत्) पुंलिङ्गवाची शब्द के समान रूप होता है।*

*उदा०-(**क्यङ्**) **एतायते।** जो एनी के समान आचरण करता है। एनी=अनेक वर्णोंवाली। **श्येतायते।** जो श्येनी के समान आचरण करता है। श्येनी=सफेद वर्णवाली। (**मानिन्**) **दर्शनीयमानी अयमस्याः।** यह पुरुष इस स्त्री का दर्शनीयमानी है अर्थात् यह इसे दर्शनीय मानती है। **दर्शनीयमानिनीयमस्याः।** यह स्त्री इस स्त्री की दर्शनीयमानिनी है अर्थात् यह स्त्री इस स्त्री को दर्शनीय मानती है।*

*सिद्धि-(१) **एतायते।** एनी+क्यङ्। एत+य। एताय+लट्। एताय+शप्+त। एताय+अ+ते। एतायते।*

*यहां 'एनी' शब्द से '**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च**' (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्-प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग 'एनी' शब्द को 'क्यङ्' प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव होता है अर्थात् उसका पुंलिङ्ग के समान 'एत' रूप हो जाता है। '**अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः**' (७।४।५४) से दीर्घ होता है। 'एनी' शब्द में 'एत' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः**' (४।१।३९) से ङीप् प्रत्यय और तकार को नकार आदेश है। ऐसे ही श्येनी शब्द से-**श्येतायते।***

*(२) **दर्शनीयमानी।** यहां दर्शनीया और मानिन् शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्-प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग दर्शनीया शब्द को मानिन्-शब्द उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव होता है। ऐसे ही-**दर्शनीयमानिनी।***

पुंवद्भाव-प्रतिषेधः-

(४) न कोपधायाः ।३७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कोपधायाः ६।१।

स०-क उपधा यस्याः सा कोपधा, तस्याः-कोपधायाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषितापुंस्कादनूङः कोपधायाः स्त्रिया उत्तरपदे पुंवन्न।

अर्थः-भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य ककारोपधस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य उत्तरपदे परतः पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं न भवति।

उदा०-(स्त्रियां समानाधिकरणे उत्तरपदे) पाचिका भार्या यस्य सः-पाचिकाभार्यः। कारिकाभार्यः। मद्रिकाभार्यः। वृजिकाभार्यः। **(तसिलादिषु)** ईषद् असमाप्ता मद्रिका इति मद्रिकाकल्पा। **(क्यङ्)**

मद्रिका इवाचरति-मद्रिकायते। वृजिकायते। **(मानिन्)** मद्रिकामानिनी। वृजिकामानिनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है, उस ऊङ्प्रत्यय से रहित (कोपधायाः) ककार उपधावाले (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (पुंवत्) पुंलिङ्ग शब्द के समान रूप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(स्त्रियां समानाधिकरणे उत्तरपदे) पाचिकाभार्यः।** वह पुरुष कि जिसकी भार्या (पत्नी) पाचिका है। **कारिकाभार्यः।** वह पुरुष कि जिसकी भार्या कारिका=कार्य करनेवाली है। **मद्रिकाभार्यः।** वह पुरुष कि जिसकी भार्या मद्र जनपद की है। **वृजिकाभार्यः।** वह पुरुष कि जिसकी भार्या वृजि जनपद की है। **(तसिल आदि में) मद्रिकाकल्पा।** मद्रिका नारी से कुछ कम। **(क्यङ्) मद्रिकायते।** जो नारी मद्रिका के समान आचरण करती है। **वृजिकायते।** जो नारी वृजिका के समान आचरण करती है। **(मानिन्) मद्रिकामानिनी।** स्वयं को मद्रिका माननेवाली नारी। **वृजिकामानिनी।** स्वयं को वृजिका माननेवाली नारी।*

सिद्धि-(१) पाचिकाभार्यः। *यहां पाचिका और भार्या शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्-प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग पाचिका शब्द को समानाधिकरणवाले स्त्रीलिङ्ग भार्या-शब्द उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव का प्रतिषेध है, क्योंकि 'पाचिका' ककारोपध है। यहां **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३४) से पुंवद्भाव प्राप्त था, उसका इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**कारिकाभार्यः** आदि।*

(२) मद्रिकाकल्पा। *यहां 'मद्रिका' शब्द से **'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'** (५।३।६७) से 'कल्पप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से मद्रिका शब्द को कल्पप् प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव का प्रतिषेध है, क्योंकि मद्रिका शब्द ककारोपध है। यहां **'तसिलादिष्वाकृत्वसुचः'** (६।३।३५) से पुंवद्भाव प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है।*

(३) मद्रिकायते। *यहां 'मद्रिका' शब्द से **'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च'** (३।१।११) से आचार अर्थ में क्यङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से मद्रिका शब्द को क्यङ् प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव का प्रतिषेध है, क्योंकि मद्रिका-शब्द ककारोपध है। यहां **'क्यङ्मानिनोश्च'** (६।३।३६) से पुंवद्भाव प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**वृजिकायते, मद्रिकामानिनी, वृजिकामानिनी।***

पुंवद्भाव-प्रतिषेधः--

(५) संज्ञापूरण्योश्च।३८।

प०वि०-संज्ञा-पूरण्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-संज्ञा च पूरणी च ते संज्ञापूरण्यौ, तयो:-संज्ञापूरण्यो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रिया:, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ्, न इति चानुवर्तते।

अन्वय:-भाषितपुंस्कादनूङ: संज्ञापूरण्योश्च स्त्रिया: उत्तरपदे पुंवन्न।

अर्थ:-भाषितपुंस्कादनूङ:=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ् प्रत्ययो न कृतस्तस्य संज्ञावाचिन: पूरणप्रत्ययान्तस्य च स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य उत्तरपदे परत: पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं न भवति।

उदा०-**(संज्ञा)** दत्ताभार्य:। गुप्ताभार्य:। दत्तापाशा। गुप्तापाशा। दत्तायते। गुप्तायते। दत्तामानिनी। गुप्तामानिनी। **(पूरणी)** पञ्चमीभार्य:। दशमीभार्य:। पञ्चमीपाशा। दशमीपाशा। पञ्चमीयते। दशमीयते। पञ्चमीमानिनी। दशमीमानिनी।

आर्यभाषा: *अर्थ-(भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है, उस उङ्प्रत्यय से रहित, (संज्ञापूरण्यो:) संज्ञावाची और पूरणप्रत्ययान्त (स्त्रिया:) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (च) भी (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (पुंवत्) पुंलिङ्ग शब्द के समान रूप (न) नहीं होता है।*

उदा०-(संज्ञा) ***दत्ताभार्य:।*** *वह पुरुष कि जिसकी दत्ता नामिका भार्या है।* ***गुप्ताभार्य:।*** *वह पुरुष कि जिसकी गुप्ता नामिका भार्या है।* ***दत्तापाशा।*** *दत्ता नामिका निन्दित नारी।* ***गुप्तापाशा।*** *गुप्ता नामिका निन्दित नारी।* ***दत्तायते।*** *दत्ता नामिका नारी के समान आचरण करनेवाली।* ***गुप्तायते।*** *गुप्ता नामिका नारी के समान आचरण करनेवाली।* ***दत्तामानिनी।*** *स्वयं को दत्ता नामिका नारी माननेवाली।* ***गुप्तामानिनी।*** *स्वयं को गुप्ता नामिका नारी माननेवाली। (पूरणी)* ***पञ्चमीभार्य:।*** *वह पुरुष कि जिसकी पांचवीं भार्या है।* ***दशमीभार्य:।*** *वह पुरुष कि जिसकी दशवीं भार्या है।* ***पञ्चमीपाशा।*** *पांचवीं निन्दित नारी।* ***दशमीपाशा।*** *दशवीं निन्दित नारी।* ***पञ्चमीयते।*** *वह नारी कि जो पांचवीं के समान आचरण करती है।* ***दशमीयते।*** *वह नारी कि जो दशवीं के समान आचरण करती है।* ***पञ्चमीमानिनी।*** *स्वयं को पांचवीं माननेवाली नारी।* ***दशमीमानिनी।*** *स्वयं को दशवीं माननेवाली नारी।*

सिद्धि-(१) ***दत्ताभार्य:।*** *यहां दत्ता और भार्या शब्दों का* ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, संज्ञावाची दत्ता शब्द भार्या उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव नहीं होता है। 'स्त्रिया: पुंवद्०' (६।३।३४) से पुंवद्भाव प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-* ***गुप्ताभार्य:।***

*(२) **दत्तापाशा।** यहां दत्ता शब्द से '**याप्ये पाशप्**' (५।३।४७) से 'पाशप्' प्रत्यय है। '**तसिलादिष्वाकृत्वसुचः**' (६।३।३५) से संज्ञावाची दत्ता-शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त था। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**गुप्तापाशा।***

*(३) **दत्तायते।** यहां दत्ता शब्द से '**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च**' (३।१।११) से आचार अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय है। '**क्यङ्मानिनोश्च**' (६।३।३६) से संज्ञावाची दत्ता शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त था। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**गुप्तायते, दत्तामानिनी, गुप्तामानिनी।***

*(४) **पञ्चमीभार्यः।** यहां पञ्चमी और भार्या शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'पञ्चमी' शब्द में पञ्चन् शब्द से '**नान्तादसंख्यादेर्मट्**' (५।२।४९) से पूरणार्थक डट्-प्रत्यय और इसे मट् आगम है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होकर 'पञ्चमी' शब्द सिद्ध होता है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, पूरण-प्रत्ययान्त ीलिङ्ग पञ्चमी शब्द को स्त्रीलिङ् भार्या शब्द उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव नहीं होता है। '**स्त्रियाः पुंवद्०**' (६।३।३४) से पुंवद्भाव प्राप्त था, इस सूत्र से उसका प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**दशमीभार्यः।***

***पञ्चमीपाशा** आदि शब्दों की सिद्धि दत्तापाशा आदि शब्दों के समान है।*

पुंवद्भाव-प्रतिषेधः-

(६) वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे।३६।

प०वि०-वृद्धिनिमित्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्, तद्धितस्य ६।१ अरक्तविकारे ७।१।

स०-वृद्धेर्निमित्तं यस्मिन् सः-वृद्धिनिमित्तः, तस्य-वृद्धिनिमित्तस्य (बहुव्रीहिः)। रक्तं च विकारश्च एतयोः समाहारो रक्तविकारम्, न रक्तविकारमिति अरक्तविकारम्, तस्मिन्-अरक्तविकारे (समाहारद्वन्द्व-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, अभाषितपुंस्कादनूङ्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अरक्तविकारे वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्य भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रिया उत्तरपदे पुंवन्न।

अर्थः-रक्ते विकारे चार्थेऽविहितो यो वृद्धिनिमित्तस्तद्धितप्रत्ययः, तदन्तस्य भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न

कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य उत्तरपदे परतः पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं न भवति।

उदा०-स्रौघ्नी भार्या यस्य सः-स्रौघ्नीभार्यः। माथुरीभार्यः। याप्या स्रौघ्नीति-स्रौघ्नीपाशा। माथुरीपाशा। स्रौघ्नीवाचरति-स्रौघ्नीयते। माथुरीयते। आत्मानं स्रौघ्नीं मन्यते इति स्रौघ्नीमानिनी। माथुरीमानिनी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अरक्तविकारे) जो रक्त और विकार अर्थ में अविहित (वृद्धिनिमित्तस्य) वृद्धि का हेतु (तद्धितस्य) तद्धित प्रत्यय है, उस तद्धितप्रत्ययान्त (भाषितपुंस्कादनूङः) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है, उस ऊङ् प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (च) भी (पुंवत्) पुंलिङ्ग शब्द के समान रूप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**स्रौघ्नीभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी भार्या स्रुघ्न जनपद की है। **माथुरीभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी भार्या मथुरा जनपद की है। **स्रौघ्नीपाशा**। स्रुघ्न जनपद की निन्दित नारी। **माथुरीपाशा**। मथुरा जनपद की निन्दित नारी। **स्रौघ्नीयते**। स्रुघ्न जनपद की नारी के समान आचरण करती है। **माथुरीयते**। मथुरा जनपद की नारी के समान आचरण करती है। **स्रौघ्नीमानिनी**। स्वयं को स्रुघ्न जनपद की नारी माननेवाली। **माथुरीमानिनी**। स्वयं को मथुरा जनपद की नारी माननेवाली।*

*सिद्धि-**स्रौघ्नीभार्यः**। यहां स्रौघ्नी और भार्या शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। स्रौघ्नी शब्द में स्रुघ्न शब्द में **'तत्र भवः'** (४।३।५३) से भव अर्थ में अण्-प्रत्यय है जो कि वृद्धि का निमित्त तद्धित प्रत्यय है और रक्त और विकार अर्थों से भिन्न है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग स्रौघ्नी शब्द को भार्या उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव नहीं होता है। ऐसे ही-**माथुरीभार्यः**।*

स्रौघ्नीपाशा आदि शब्दों की सिद्धि दत्तापाशा आदि (६।३।३८) शब्दों के समान है।

पुंवद्भाव-प्रतिषेधः-

(७) स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि।४०।

प०वि०-स्वाङ्गात् ५।१ च अव्ययपदम्, ईतः ५।१ अमानिनि ७।१।

स०-स्वस्य अङ्गमिति स्वाङ्गम्, तस्मात्-स्वाङ्गात् (षष्ठी-तत्पुरुषः)। न मानी इति अमानी, तस्मिन् अमानिनि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ईतः स्वाङ्गाद् भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रियाश्च अमानिनि उत्तरपदे पुंवन्न।

अर्थः-ईकारान्तात् स्वाङ्गवाचिनो भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दात् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य मानिनिवर्जिते उत्तरपदे परतश्च पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं न भवति।

उदा०-दीर्घकेशी भार्या यस्य सः-दीर्घकेशीभार्यः। याप्या दीर्घकेशी इति दीर्घकेशीपाशा। श्लक्ष्णकेशीपाशा। दीर्घकेशीवाचरति-दीर्घकेशीयते। श्लक्ष्णकेशीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ईतः) ईकारान्त (स्वाङ्गात्) स्वाङ्वाची (भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है, उस ऊङ्प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (च) भी (अमानिनि) मानी से भिन्न (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (पुंवत्) पुंलिङ्ग शब्द के समान रूप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**दीर्घकेशीभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी दीर्घ केशोंवाली **भार्या है**। **दीर्घकेशीपाशा**। दीर्घ केशोंवाली निन्दित नारी। **श्लक्ष्णकेशीपाशा**। कोमल **केशोंवाली** निन्दित नारी। **दीर्घकेशीयते**। जो दीर्घ केशोंवाली नारी के समान आचरण **करती है**। **श्लक्ष्णकेशीयते**। जो कोमल केशोंवाली नारी के समान आचरण करती है।*

*सिद्धि-**दीर्घकेशीभार्यः**। यहां दीर्घकेशी और भार्या शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। दीर्घकेशी शब्द में **'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्'** (४।१।५४) से 'दीर्घकेशी' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ईकारान्त, स्वाङ्गवाची, भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग 'दीर्घकेशी' शब्द को 'भार्या' शब्द उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव नहीं होता है।*

'दीर्घकेशीपाशा' आदि शब्दों की सिद्धि 'दत्तापाशा' आदि (६।३।३८) शब्दों के समान है।

पुंवद्भाव-प्रतिषेधः—

(८) जातेश्च।४१।

प०वि०-जातेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ्, न अमानिनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः- जातेर्भाषितपुंस्कादनूङः स्त्रियाश्च अमानिनि उत्तरपदे पुंवन्न।

अर्थः-जातिवाचिनो भाषितपुंस्कादनूङः=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य च मानिशब्दवर्जिते उत्तरपदे पुंलिङ्गशब्दस्येव रूपं न भवति।

उदा०-कठी भार्या यस्य सः-कठीभार्यः। बह्वृचीभार्यः। याप्या कठीति कठीपाशा। बह्वृचीपाशा। कठीवाचरति-कठीयते। बह्वृचीयते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(जातेः) जातिवाची (भाषितपुंस्कादूनङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है उस ऊङ्प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (अमानिनि) मानी शब्द से भिन्न (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (पुंवत्) पुंलिङ्ग शब्द के समान रूप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कठीभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी भार्या कठ जाति की है। **बह्वृचीभार्यः**। वह पुरुष कि जिसकी भार्या बह्वृच जाति की है। **कठीपाशा**। कठ जाति की निन्दित नारी। **बह्वृचीपाशा**। बह्वृच जाति की निन्दित नारी। **कठीयते**। कठ जाति की नारी के समान आचरण करनेवाली। **बह्वृचीयते**। बह्वृच जाति की नारी के समान आचरण करनेवाली।*

सिद्धि-कठीभार्यः। *यहां कठी और भार्या शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से जातिवाची, भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग कठी शब्द को भार्या उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव नहीं होता है।*

*'**कठीपाशा**' आदि शब्दों की सिद्धि '**दत्तापाशा**' आदि (६।३।३८) शब्दों के समान है।*

पुंवद्भावः-

(६) पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु।४२।

प०वि०-पुंवत् अव्ययपदम्, कर्मधारय-जातीय-देशीयेषु ७।३।

स०-कर्मधारयश्च जातीयश्च देशीयश्च ते कर्मधारयजातीयदेशीयाः, तेषु-कर्मधारयजातीयदेशीयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, स्त्रियाः, पुंवत्, भाषितपुंस्कादनूङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषितपुंस्कादनूङ: स्त्रियाः कर्मधारयजातीयदेशीयेषु उत्तरपदे पुंवत्।

अर्थः-भाषितपुंस्कादनूङ:=यस्माद् भाषितपुंस्काच्छब्दाद् ऊङ्प्रत्ययो न कृतस्तस्य स्त्रीलिङ्गस्य शब्दस्य स्थाने कर्मधारयसमासे उत्तरपदे जातीयदेशीययोश्च प्रत्यययोः परतः पुंवद्भावो भवति। प्रतिषेधार्थोऽयमारम्भः। **उदाहरणम्**-

(१) **'न कोपधायाः'** (६।३।३७) इत्युक्तम्, तत्रापि भवति-**(कर्मधारयः)** पाचिका चासौ वृन्दारिका इति पाचकवृन्दारिका। **(जातीयः)** पाचकजातीया। **(देशीयः)** पाचकदेशीया।

(२) **'संज्ञापूरण्योश्च'** (६।३।३८) इत्युक्तम्, तत्रापि भवति-**(संज्ञा)** दत्तवृन्दारिका। दत्तजातीया। दत्तदेशीया। **(पूरणी)** पञ्चमवृन्दारिका। पञ्चमजातीया। पञ्चमदेशीया।

(३) **'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे'** (६।३।३९) इत्युक्तम्, तत्रापि भवति-स्रौघ्नवृन्दारिका। स्रौघ्नजातीया। स्रौघ्नदेशीया।

(४) **'स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि'** (६।३।४०) इत्युक्तम्, तत्रापि भवति-श्लक्ष्णमुखवृन्दारिका। श्लक्ष्णमुखजातीया। श्लक्ष्णमुखदेशीया।

(५) **'जातेश्च'** (६।३।४१) इत्युक्तम्, तत्रापि भवति-कठवृन्दारिका। कठजातीया। कठदेशीया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषितपुंस्कादनूङ्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ को कहा है उस उङ्-प्रत्यय से रहित (स्त्रियाः) स्त्रीलिङ्ग शब्द के स्थान में (कर्मधारय-जातीयदेशीयेषु) कर्मधारय समासविषयक (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर तथा जातीय और देशीय प्रत्यय परे होने पर (पुंवत्) पुलिङ् शब्द के समान रूप होता है। पहले जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया है उसके प्रतिषेध के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया गया है।*

*उदा०-(१) **'न कोपधायाः'** (६।३।३७) से जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया गया है, वहां कर्मधारय समास, जातीय और देशीय प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव होता है-**(कर्मधारय) पाचकवृन्दारिका।** श्रेष्ठ पाचिका। **(जातीय) पाचकजातीया।** विशेष पाचिका। **(देशीय) पाचकदेशीया।** पाचिका से कम नहीं।*

*(२) 'संज्ञापूरण्योश्च' (६।३।३८) से जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया है वहां इस सूत्रोक्त विषय में पुंवद्भाव होता है-(**संज्ञा**) **दत्तवृन्दारिका**। दत्ता नामक श्रेष्ठ नारी। **दत्तजातीया**। दत्ता नामिका विशेष नारी। **दत्तदेशीया**। दत्ता नामिका नारी से कम नहीं। (**पूरणी**) **पञ्चमवृन्दारिका**। **पञ्चमजातीया**। **पञ्चमदेशीया**।*

*(३) 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे' (६।३।३९) से जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया गया है वहां इस सूत्रोक्त विषय में पुंवद्भाव होता है-**स्रौघ्नवृन्दारिका**। स्रुघ्न जनपद की श्रेष्ठ नारी। **स्रौघ्नजातीया**। स्रुघ्न जनपद की विशेष नारी। **स्रौघ्नदेशीया**। स्रुघ्न जनपद की नारी से कम नहीं।*

*(४) 'स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि' (६।३।४०) से जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया है वहां इस सूत्रोक्त विषय में पुंवद्भाव होता है-**श्लक्ष्णमुखवृन्दारिका**। कोमल मुखवाली श्रेष्ठ नारी। **श्लक्ष्णमुखजातीया**। कोमल मुखवाली विशेष नारी। **श्लक्ष्णमुखदेशीया**। कोमल मुखवाली नारी से कम नहीं।*

*(५) 'जातेश्च' (६।३।४१) से जहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध किया गया है वहां इस सूत्रोक्त विषय में पुंवद्भाव होता है-**कठवृन्दारिका**। कठ जाति की श्रेष्ठ नारी। **कठजातीया**। कठ जाति की विशेष नारी। **कठदेशीया**। कठ जाति की नारी से कम नहीं।*

***सिद्धि-(१) पाचकवृन्दारिका**। यहां पाचिका और वृन्दारिका शब्दों का 'वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्' (२।१।६२) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित स्त्रीलिङ्ग पाचिका शब्द को वृन्दारिका शब्द उत्तरपद होने पर पुंवद्भाव होता है। '**न कोपधायाः**' (६।३।३७) से यहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध प्राप्त था, यह सूत्र उसका बाधक है। ऐसे ही-**दत्तवृन्दारिका** आदि।*

*(२) **पाचकजातीया**। यहां पाचिका शब्द से '**प्रकारवचने जातीयर्**' (५।३।६९) से जातीयर् प्रत्यय है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्यय से रहित, स्त्रीलिङ्ग पाचिका शब्द को जातीयर् प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव होता है। '**न कोपधायाः**' (६।३।३७) से यहां पुंवद्भाव का प्रतिषेध प्राप्त था, यह सूत्र उसका बाधक है। ऐसे ही-**दत्तजातीया** आदि।*

*(३) **पाचकदेशीया**। यहां पाचिका शब्द से '**ईषदसमाप्तौ** कल्पब्देश्यदेशीयरः' (५।३।६७) से देशीयर् प्रत्यय है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, ऊङ्प्रत्य से रहित, स्त्रीलिङ्ग पाचिका शब्द को देशीयर् प्रत्यय परे होने पर पुंवद्भाव होता है। 'न कोपधायाः' (६।३।३७) से पुंवद्भाव का प्रतिषेध प्राप्त था। यह सूत्र उसका बाधक है। ऐसे ही-**दत्तदेशीया** आदि।*

।। इति स्त्रियाः पुंवद्भावप्रकरणम् ।।

ह्रस्व-प्रकरणम्

ह्रस्वः-

(१) घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः।४३।

प०वि०-घ-रूप-कल्प-चेलड्-ब्रुव-गोत्र-मत-हतेषु ७।३ ङ्यः ६।१ अनेकाचः ६।१ ह्रस्वः १।१।

स०-घश्च रूपश्च कल्पश्च चेलट् च ब्रुवश्च गोत्रं च मतश्च हतश्च ते घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहताः, तेषु-घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्र-मतहतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अनेकोऽच् यस्मिन् सः-अनेकाच्, तस्य-अनेकाचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, भाषितपुंस्काद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषितपुंस्काद् अनेकाचो ङ्यो घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु उत्तरपदेषु ह्रस्वः।

अर्थः-भाषितपुंस्कस्यानेकाचो ङीप्रत्ययान्तस्य शब्दस्य घरूपकल्प-चेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु उत्तरपदेषु परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-(घः) ब्राह्मणितरा। ब्राह्मणितमा। **(रूपः)** ब्राह्मणिरूपा। **(कल्पः)** ब्राह्मणिकल्पा। **(चेलट्)** ब्राह्मणिचेली। **(ब्रुवः)** ब्राह्मणिब्रुवा। **(गोत्रम्)** ब्राह्मणिगोत्रा। **(मतः)** ब्राह्मणिमता। **(हतः)** ब्राह्मणिहता।

अत्र घरूपकल्पास्त्रयः प्रत्ययाः, चेलडादीनि चोत्तरपदानि ज्ञेयानि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भाषितपुंस्कात्) जिस शब्द ने समान आकृति में पुंलिङ्ग अर्थ के कहा है उस (अनेकाचः) अनेक अच्वाले (ङ्यः) ङी-प्रत्ययान्त शब्द को (घ०हतेषु) घ, रूप, कल्प प्रत्यय तथा चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत और हत (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-(घ) **ब्राह्मणितरा।** दोनों में से अधिक ब्राह्मणी (विदुषी)। **ब्राह्मणितमा।** बहुत में से अधिक ब्राह्मणी। (रूप) **ब्राह्मणिरूपा।** प्रशंसनीय ब्राह्मणी। (कल्प) **ब्राह्मणिकल्पा।** जो ब्राह्मणी से कम नहीं। (चेलट्) **ब्राह्मणिचेली।** गर्हित ब्राह्मणी। (ब्रुव) **ब्राह्मणिब्रुवा।** ब्राह्मणी कहानीवाली। (गोत्रा) **ब्राह्मणिगोत्रा।** गोत्र=जाति[illegible] से*

*ब्राह्मणी। (मत) **ब्राह्मणिमता।** मानी हुई ब्राह्मणी। (हत) **ब्राह्मणिहता।** निन्दित ब्राह्मणी।*

यहां घ, रूप और कल्प ये तीन प्रत्यय हैं और चेलड् आदि उत्तरपद हैं। अतः यहां उत्तरपद का यथासम्भव सम्बन्ध है।

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणितरा।** ब्राह्मणी+तरप्। ब्राह्मणी+तर। ब्राह्मणितर+टाप्। ब्राह्मणितरा+सु। ब्राह्मणितरा।*

*यहां ब्राह्मणी शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। '**तरप्तमपौ घः**' (१।१।२२) से 'तरप्' प्रत्यय की 'घ' संज्ञा है। इस सूत्र से भाषितपुंस्क, अनेकाच्, ङी-प्रत्ययान्त ब्राह्मणी शब्द को घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व होता है। 'ब्राह्मणी' शब्द में '**पुंयोगादाख्यायाम्**' (४।१।४८) से 'ङीष्' प्रत्यय है।*

*(२) **ब्राह्मणितमा।** यहां ब्राह्मणी शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **ब्राह्मणिरूपा।** यहां ब्राह्मणी शब्द से '**प्रशंसायां रूपप्**' (५।३।६६) से 'रूपप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **ब्राह्मणिकल्पा।** यहां ब्राह्मणी शब्द से '**ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः**' (५।३।६७) से 'कल्पप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **ब्राह्मणिचेली।** यहां ब्राह्मणी और चेली शब्दों का '**कुत्सितानि कुत्सनैः**' (२।१।५३) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। चेलट् शब्द कुत्सनवाची है। इसके टित् होने से '**टिड्ढाणञ्०**' (४।१।१५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**ब्राह्मणिब्रुवा** और **ब्राह्मणिगोत्रा।** ब्रुव और गोत्र शब्द कुत्सनवाची हैं।*

*(६) **ब्राह्मणिमता।** यहां ब्राह्मणी और मता शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**ब्राह्मणिहता।***

ह्रस्व-विकल्पः--

(२) नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्।४४।

प०वि०-नद्याः ६।१ शेषस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-उत्तरपदे, घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शेषस्य नद्या घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु उत्तरपदेषु अन्यतरस्यां ह्रस्वः।

अर्थः-शेषस्य नदीसंज्ञकस्य शब्दस्य घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु उत्तरपदेषु विकल्पेन ह्रस्वो भवति। पूर्वसूत्रोक्तादन्यः शेषः। कश्च स शेषः ? अङी च या नदी, ङ्यन्तं च यदेकाच् स शेषः।

उदा०-(**घः**) ब्रह्मबन्धूतरा, ब्रह्मबन्धुतरा। ब्रह्मबन्धूतमा, ब्रह्मबन्धुतमा। स्त्रीतरा, स्त्रितरा। स्त्रीतमा, स्त्रितमा। रूपबादीनामुदाहरणानि-

उत्तरपदम्		रूपम्	भाषार्थः
(रूपप्-	(क)	ब्रह्मबन्धूरूपा, ब्रह्मबन्धुरूपा	प्रशंसनीया ब्रह्मबन्धू।
प्रत्ययः)	(ख)	स्त्रीरूपा, स्त्रिरूपा	प्रशंसनीया स्त्री।
(कल्पप्-	(क)	ब्रह्मबन्धूकल्पा, ब्रह्मबन्धुकल्पा	ब्रह्मबन्धू से कम नहीं।
प्रत्ययः)	(ख)	स्त्रीकल्पा, स्त्रिकल्पा	स्त्री से कम नहीं।
चेलट्	(क)	ब्रह्मबन्धूचेली, ब्रह्मबन्धुचेली	गर्हित ब्रह्मबन्धू।
	(ख)	स्त्रीचेली, स्त्रिचेली	गर्हित स्त्री।
ब्रुवः	(क)	ब्रह्मबन्धूब्रुवा, ब्रह्मबन्धुब्रुवा	ब्रह्मबन्धू कहानेवाली।
	(ख)	स्त्रीब्रुवा, स्त्रिब्रुवा	स्त्री कहानेवाली।
गोत्र	(क)	ब्रह्मबन्धूगोत्रा, ब्रह्मबन्धुगोत्रा	जातिमात्र से ब्रह्मबन्धू।
	(ख)	स्त्रीगोत्रा, स्त्रिगोत्रा	जातिमात्र से स्त्री।
मतः	(क)	ब्रह्मबन्धूमता, ब्रह्मबन्धुमता	मानी हुई ब्रह्मबन्धू।
	(ख)	स्त्रीमता, स्त्रिमता	मानी हुई स्त्री।
हतः	(क)	ब्रह्मबन्धूहता, ब्रह्मबन्धुहता	हिंसित ब्रह्मबन्धू।
	(ख)	स्त्रीहता, स्त्रिहता	निन्दित स्त्री।

ब्रह्मबन्धू=पतित ब्राह्मणी। वीरबन्धू=पतित क्षत्रिया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शेषस्य) पूर्व सूत्रोक्त से अन्य (नद्याः) नदी-संज्ञक शब्द को (घ०हतेषु) घ, रूप, कल्प प्रत्यय तथा चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत और हत (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

पूर्व सूत्रोक्त से अन्य शेष शब्द कौन है ? जो कि ङी-अन्त नहीं है और नदी-संज्ञक है जैसे कि-ब्रह्मबन्धू और जो कि ङी-अन्त है तथा एकाच् है जैसे कि-स्त्री।

*उदा०-(घ) **ब्रह्मबन्धूतरा, ब्रह्मबन्धुतरा।** दोनों में से अधिक ब्रह्मबन्धू (पतित ब्राह्मणी)। **ब्रह्मबन्धूतमा, ब्रह्मबन्धुतमा।** बहुत में से अधिक ब्रह्मबन्धू।*

कल्पप् आदि के उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में देख लेवें।

*सिद्धि- **'ब्रह्मबन्धूतरा'** आदि पदों की सिद्धि **'ब्राह्मणितरा'** आदि पदों के समान है, यहां केवल ह्रस्व-विकल्प विशेष है।*

ह्रस्व-विकल्पः-

(३) उगितश्च।४५।

प०वि०-उगितः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-उक् इद् यस्य स उगित्, तस्य-उगितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु, ह्रस्वः, नद्याः, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उगितो नद्याश्च घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु अन्यतरस्यां ह्रस्वः।

अर्थः-उगित्सम्बन्धिनो नदीसंज्ञकस्य शब्दस्य च घरूपकल्पचेलड्-ब्रुवगोत्रमतहतेषु उत्तरपदेषु विकल्पेन ह्रस्वो भवति। **उदाहरणानि-**

उत्तरपदम्		रूपम्	भाषार्थः
(घः	(१)	श्रेयसीतरा, श्रेयसितरा	दोनों में से अधिक प्रशस्या नारी।
प्रत्ययः)	(२)	श्रेयसीतमा, श्रेयसितमा	बहुत में अधिक प्रशस्या नारी।
	(१)	विदुषीतरा, विदुषितरा	दोनों में से अधिक विदुषी।
	(२)	विदुषीतमा, विदुषितमा	बहुत में अधिक विदुषी।
(रूपप्-	(१)	श्रेयसीरूपा, श्रेयसिरूपा	दोनों में से अत्यधिक प्रशस्या नारी।
प्रत्ययः)	(२)	विदुषीरूपा, विदुषिरूपा	प्रशंसनीय विदुषी।
(कल्पप्-	(१)	श्रेयसीकल्पा, श्रेयसिकल्पा	श्रेयसी नारी से कम नहीं।
प्रत्ययः)	(२)	विदुषीकल्पा, विदुषिकल्पा	विदुषी से कम नहीं।

उत्तरपदम्		रूपम्	भाषार्थः
चेलट्	(१)	श्रेयसीचेली, श्रेयसिचेली	गर्हित श्रेयसी नारी।
	(२)	विदुषीचेली, विदुषिचेली	गर्हित विदुषी नारी।
ब्रुवः	(१)	श्रेयसीब्रुवा, श्रेयसिब्रुवा	श्रेयसी कहानेवाली नारी।
	(२)	विदुषीब्रुवा, विदुषिब्रुवा	विदुषी कहानेवाली नारी।
गोत्रम्	(१)	श्रेयसीगोत्रा, श्रेयसिगोत्रा	जातिमात्र से श्रेयसी नारी।
	(२)	विदुषीगोत्रा, विदुषिगोत्रा	जातिमात्र से विदुषी नारी।
मतः	(१)	श्रेयसीमता, श्रेयसिमता	श्रेयसी मानी हुई नारी।
	(२)	विदुषीमता, विदुषिमता	विदुषी मानी हुई नारी।
हतः	(१)	श्रेयसीहता, श्रेयसिहता	हिंसित श्रेयसी नारी।
	(२)	विदुषीहता, विदुषिहता	निन्दित विदुषी नारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उगित्) उगित् से सम्बन्धित (नद्याः) नदीसंज्ञक शब्द को (च) भी (घ०हतेषु) घ, रूप, कल्प, चेलट्, ब्रुव, गोत्र, मत और हत शब्द (**उत्तरपदे**) उत्तरपद होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में देख लेवें।

*सिद्धि-**श्रेयसीतरा**। यहां श्रेयसी शब्द से 'द्विवचनविभज्योपपदे **तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। 'तरप्' प्रत्यय की '**तरप्तमपौ** घः' (१।१।२२) से 'घ' संज्ञा है। इस सूत्र से घ-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर उगित्सम्बन्धी नदीसंज्ञक **श्रेयसी** शब्द को विकल्प से ह्रस्व होता है। ह्रस्व पक्ष में-**श्रेयसितरा**।*

*प्रशस्य+ईयसुन्। श्र+ईयस्। श्रेयस्। श्रेयस्+ङीप्। श्रेयसी+सु। श्रेयसी। **प्रशस्य** शब्द से '**प्रशस्यस्य श्रः**' (५।३।६०) से 'ईयसुन्- प्रत्यय और उसे श्र-आदेश होता है। प्रत्यय के उगित् होने से '**उगितश्च**' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ङीबन्त श्रेयसी शब्द की '**यू स्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।२) से नदी संज्ञा है।*

*(२) **विदुषीतरा**। यहां विदुषी शब्द से पूर्ववत् 'तरप्' प्रत्यय है। 'विदुषी' शब्द की सिद्धि अधोलिखित है-*

विद्+लट्। विद्+शप्+शतृ। विद्+०+वसु। विद्+वस्। विद्वस्। विद् उ अस्। विदुस्। विदुष्+ङीप्। विदुष्+ई। विदुषी+सु। विदुषी।

*यहां '**विद ज्ञाने**' (अदा०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, '**लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे**' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में*

'शतृ' आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से शप्-विकरण प्रत्यय, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, 'विदेः शतुर्वसुः' (७।१।३६) से 'शतृ' के स्थान में 'वसु' आदेश, 'वसोः सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०८) से पूर्वरूप एकादेश होता है। प्रत्यय के उगित् होने से 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

'श्रेयसीरूपा' आदि पदों की सिद्धि 'ब्राह्मणिरूपा' आदि (६।३।४३) पदों के समान है, ह्रस्व-विकल्प विशेष है।

आदेश-प्रकरणम्

आकारादेशः–

(१) आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः।४६।

प०वि०-आत् १।१ महतः ६।१ समानाधिकरण-जातीययोः ७।२।

स०-समानाधिकरणं जातीयश्च तौ समानाधिकरणजातीयौ, तयोः-समानाधिकरणजातीययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-महतः समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये चाऽऽत्।

अर्थः-महच्छब्दस्य समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये प्रत्यये च परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(समानाधिकरणम्)** महाँश्चासौ देव इति महादेवः। महाब्राह्मणः। महान् बाहुर्यस्य सः-महाबाहुः। महाबलः। **(जातीयः)** महाजातीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(महतः) महत् शब्द को (समानाधिकरणजातीययोः) समानाधिकरण विषयक (उत्तरपदे) उत्तरपद तथा जातीय प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(समानाधिकरण) महादेवः।** महान्=पूज्य देवता। **महाब्राह्मणः।** पूज्य ब्राह्मण। **महाबाहुः।** वह पुरुष कि जिसका बाहु (भुजा) महान् है। **महाबलः।** वह पुरुष कि जिसका बल महान् है। **(जातीय) महाजातीयः।** विशेष प्रकार का महान् पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **महादेवः।** महत्+सु+देव+सु। मह आ+देव। महादेव+सु। महादेवः।*

यहां महत् और देव शब्दों का 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' (२।२।६१) से समानाधिकरण (कर्मधारय) तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'महत्' शब्द के तकार को

*समानाधिकरण तत्पुरुष समास में 'देव' शब्द उत्तरपद होने पर आकार आदेश होता है। ऐसे ही-**महाब्राह्मणः।***

*(२) **महाबाहुः।** यहां महत् और बाहु शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से समानाधिकरण-बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से महत् शब्द के तकार को समानाधिकरण बहुव्रीहि समास में बाहु-शब्द उत्तरपद होने पर आकार आदेश होता है। ऐसे ही-**महाबलः।***

*(३) **महाजातीयः।** यहां महत् शब्द से '**प्रकारवचने जातीयर्**' (५।३।६९) से 'जातीयर्' प्रत्यय है। इस सूत्र से महत् शब्द के 'तकार' को जातीयर् प्रत्यय परे होने पर 'आकार' आदेश होता है।*

आकारादेशः-

(२) द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः।४७।

प०वि०-द्वि-अष्टनः ६।१ संख्यायाम् ७।१ अबहुव्रीहि-अशीत्योः ७।२।

स०-द्विश्च अष्टन् च एतयोः समाहारः-द्व्यष्टन्, तस्मात्-द्व्यष्टनः (समाहारद्वन्द्वः)। बहुव्रीहिश्च अशीतिश्च तौ बहुव्रीह्यशीती, न बहुव्रीह्यशीती इति अबहुव्रीह्यशीती, तयोः-अबहुव्रीह्यशीत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, आद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्व्यष्टनः संख्यायाम् उत्तरपदे आत्, अबहुव्रीह्यशीत्योः।

अर्थः-द्वि-अष्टनोः शब्दयोः संख्यावाचिनि शब्दे उत्तरपदे आकारादेशो भवति, बहुव्रीहिसमासेऽशीतिशब्दे चोत्तरपदे न भवति।

उदा०-(द्विः) द्वौ च दश च एतयोः समाहारः-द्वादश। द्वाविंशति। **(अष्टन्)** अष्ट च दश च एतयोः समाहारः-अष्टादश। अष्टाविंशतिः। अष्टात्रिंशत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्व्यष्टनः) द्वि और अष्टन् शब्दों को (संख्यायाम्) संख्यावाची शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (आत्) आकार आदेश होता है (अबहुव्रीह्यशीत्योः) बहुव्रीहि समास में तथा अशीति शब्द उत्तरपद होने पर तो नहीं होता है।*

*उदा०-(द्वि) **द्वादश।** दो और दश-बारह। **द्वाविंशति।** दो और बीस-बाईस। (अष्टन्) **अष्टादश।** आठ और दश-अठारह। **अष्टाविंशतिः।** आठ और बीस-अठाईस। **अष्टात्रिंशत्।** आठ और तीस-अठतीस।*

सिद्धि-द्वादश। द्वि+औ+दशन्+जस्। द्वि+दश। दव् आ+दश। द्वादशन्+सु। द्वादश।

*यहां द्वि और दशन् शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से समाहारद्वन्द्व समास है। इस सूत्र से द्वि-शब्द को संख्यावाची दशन् शब्द उत्तरपद होने पर आकार आदेश होता है। **'स नपुंसकम्'** (२।४।१७) से यहां समाहारद्वन्द्व में नपुंसकलिङ्ग नहीं होता है क्योंकि लिंग पर शासन करना सम्भव नहीं है क्योंकि वह लोकाश्रित है-**'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'**। ऐसे ही- 'द्वाविंशतिः' और 'अष्टादश' आदि।*

त्रयसादेशः-

(३) त्रेस्त्रयः।४८।

प०वि०-त्रेः ६।१ त्रयः १।१।

अनु०-उत्तरपदे, संख्यायाम्, अबहुव्रीह्यशीत्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-त्रेः संख्यायाम् उत्तरपदे त्रयः, अबहुव्रीह्यशीत्योः।

अर्थः-त्रि-शब्दस्य संख्यावाचिनि शब्दे उत्तरपदे त्रयसादेशो भवति, बहुव्रीहिसमासेऽशीतिशब्दे चोत्तरपदे न भवति।

उदा०-त्रयश्च दश च एतयोः समाहारः-त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्। 'त्रयः' इति सकारान्तोऽयमादेशः (त्रयस्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(त्रेः) त्रि-शब्द के स्थान में (संख्यायाम्) संख्यावाची शब्द उत्तरपद होने पर (त्रयः) त्रयस् आदेश होता है (अबहुव्रीह्यशीत्योः) बहुव्रीहि समास में तथा अशीति शब्द उत्तरपद होने पर तो नहीं होता है।*

*उदा०-**त्रयोदश**। तीन और दश-तेरह। **त्रयोविंशतिः**। तीन और बीस-तेईस। **त्रयस्त्रिंशत्**। तीन और तीस-तैंतीस।*

*सिद्धि-**त्रयोदश**। यहां त्रि और दश शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से त्रि-शब्द के स्थान में संख्यावाची दश-शब्द उत्तरपद होने पर 'त्रयस्' आदेश होता है। उसके सकार को **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से रुत्व, **'हशि च'** (६।१।११४) से रेफ को उत्व और **'आद्गुणः'** (६।१।८७) से अकार-उकार को गुणरूप एकादेश (ओ) होता है। ऐसे ही-**त्रयोविंशतिः** आदि।*

आदेश-विकल्पः-

(४) विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्।४९।

प०वि०-विभाषा १।१ चत्वारिंशत्प्रभृतौ ७।१ सर्वेषाम् ६।३।

स०-चत्वारिंशत् प्रभृतिर्यस्याः सा चत्वारिंशत्प्रभृतिः, तस्याम्-चत्वारिंशत्प्रभृतौ (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, संख्यायाम्, अबहुव्रीह्यशीत्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वेषाम्=द्वि-अष्टन्-त्रीणां चत्वारिंशत्प्रभृतौ संख्यायाम् उत्तरपदे विभाषा, अबहुव्रीह्योरशीत्योः।

अर्थः-सर्वेषाम्=द्वि-अष्टन्-त्रीणां पूर्वोक्तानां शब्दानां चत्वारिंशत्प्रभृतौ संख्यावाचिनि शब्दे उत्तरपदे यदुक्तं तद् विकल्पेन भवति, बहुव्रीहिसमासेऽशीतिशब्दे चोत्तरपदे न भवति।

उदा०-(**द्विः**) द्वौ च चत्वारिंशच्च एतयोः समाहारः-द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत्। (**त्रिः**) त्रयश्च पञ्चाशच्च एतयोः समाहारः-त्रिपञ्चाशत्, त्रयःपञ्चाशत्। (**अष्टन्**) अष्ट च पञ्चाशच्च एतयोः समाहारः-अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सर्वेषाम्) द्वि, अष्टन् और त्रि इन सबको (चत्वारिंशत्प्रभृतौ) चत्वारिंशत् ४० आदि (संख्यायाम्) संख्यावाची शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) जो कहा गया है, वह विकल्प से होता है (अबहुव्रीह्यशीत्योः) बहुव्रीहि समास और अशीति शब्द उत्तरपद होने पर तो नहीं होता है।*

*उदा०-**(द्वि) द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत्।** दो और चालीस-बियालीस। **(त्रि) त्रिपञ्चाशत्, त्रयःपञ्चाशत्।** तीन और पचास-तिरेपन। **(अष्टन्) अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्।** आठ और पचास-अठावन।*

*सिद्धि-(१) **द्विचत्वारिंशत्।** यहां द्वि और चत्वारिंशत् शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से द्वि-शब्द को संख्यावाची चत्वारिंशत् शब्द उत्तरपद होने पर आकार आदेश नहीं होता है और विकल्प पक्ष में **'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः'** (६।३।४७) से आकार आदेश भी होता है-**द्वाचत्वारिंशत्।***

*(२) **त्रिपञ्चाशत्।** यहां त्रि और पञ्चाशत् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से 'त्रि' शब्द को संख्यावाची पञ्चाशत् शब्द उत्तरपद होने पर 'त्रयस्' आदेश नहीं होता है और विकल्प पक्ष में **'त्रेस्त्रयः'** (६।४।४८) से त्रयस् आदेश भी होता है-**त्रयःपञ्चाशत्।***

*(३) **अष्टपञ्चाशत्।** यहां अष्टन् और पञ्चाशत् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। इस सूत्र से अष्टन् शब्द को संख्यावाची पञ्चाशत् शब्द उत्तरपद होने पर*

आकार आदेश नहीं होता है और विकल्प पक्ष में 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' (६।३।४७) से आकार आदेश भी होता है-अष्टापञ्चाशत्।

हृदादेशः–

(५) हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु।५०।

प०वि०–हृदयस्य ६।१ हृत् १।१ लेख-यत्-अण्-लासेषु ७।३।

स०–लेखश्च यच्च अण् च लासश्च ते-लेखयदण्लासाः, तेषु लेखयदण्लासेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–हृदयस्य लेखयदण्लासेषु उत्तरपदेषु हृद्।

अर्थः–हृदयस्य स्थाने लेखयदण्लासेषु उत्तरपदेषु हृद् आदेशो भवति।

अत्र यदणौ प्रत्ययौ लेखलासौ च पदे वर्तेते, अत उत्तरपदस्य यथायोगं सम्बन्धो भवति, एवमन्यत्रापि बोध्यम्।

उदा०–**(लेखः)** हृदयं लिखतीति हृल्लेखः। **(यत्)** हृदयस्य प्रियमिति हृद्यम्। **(अण्)** हृदयस्येदमिति हार्दम्। **(लासः)** हृदयस्य लास इति हृल्लासः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हृदयस्य) हृदय शब्द के स्थान में (लेखयदण्लासेषु) लेख, यत्, अण् और लास (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (हृत्) हृत् आदेश होता है।*

यहां 'यत्' और 'अण्' प्रत्यय हैं तथा लेख और लस पद हैं अतः उत्तरपद शब्द का यथायोग सम्बन्ध होता है। ऐसे ही अन्यत्र भी समझें।

*उदा०-**(लेख)** हृल्लेखः। हृदय को काटनेवाला। **(यत्)** हृद्यम्। हृदय को प्रिय। **(अण्)** हार्दम्। हृदयसम्बन्धी। **(लास)** हृल्लासः। हृदय की कामना।*

*सिद्धि-(१) हृल्लेखः। यहां हृदय और लेख शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। हृदय शब्द उत्तरपद होने पर 'लिख **अक्षरविन्यासे**' (भ्वा०प०) धातु से '**कर्मण्यण्**' (३।२।१) से अण् प्रत्यय है।*

*यहां 'लिख' धातु काटने अर्थ में है- **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" (महाभाष्यम्)**। इस सूत्र से हृदय के स्थान में लेख शब्द उत्तरपद होने पर हृत् आदेश होता है। '**तोर्लि**' (८।४।६०) से तकार को परसवर्ण लकार होता है।*

*(२) हृद्यम्। यहां हृदय शब्द से '**हृदयस्य प्रियः**' (४।४।९५) से 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से हृदय के स्थान में 'यत्' प्रत्यय परे होने पर 'हृत्' आदेश होता है।*

(३) हार्दम्। यहां हृदय शब्द से 'तस्येदम्' (४।३।१२०) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से हृदय के स्थान में 'अण्' प्रत्यय परे होने पर 'हृत्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।

(४) हृल्लासः। यहां हृदय और लास शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से हृदय के स्थान में लास उत्तरपद होने पर हृत् आदेश होता है। 'तोर्लि' (८।४।५९) से तकार को लकार परे होने पर परसवर्ण होता है।

हृदादेश-विकल्पः—

(६) वा शोकष्यञ्रोगेषु।५१।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, शोक-ष्यञ्-रोगेषु ७।३।

स०–शोकश्च ष्यञ् च रोगश्च ते शोकष्यञ्रोगाः, तेषु-शोकष्यञ्रोगेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उत्तरपदे, हृदयस्य, हृद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–हृदयस्य शोकष्यञ्रोगेषु उत्तरपदेषु वा हृत्।

अर्थः–हृदयस्य स्थाने शोकष्यञ्रोगेषु उत्तरपदेषु विकल्पेन हृद् आदेशो भवति।

अत्र ष्यञ् इति प्रत्यय उत्तरपदेन न युज्यतेऽर्थासम्भवात्।

उदा०–**(शोकः)** हृदयस्य शोक इति हृच्छोकः, हृदयशोकः। **(ष्यञ्)** सुहृदयस्य भाव इति सौहार्द्यम्, सौहृदय्यम्। **(रोगः)** हृदयस्य रोग इति हृद्रोगः, हृदयरोगः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हृदयस्य) हृदय शब्द के स्थान में (शोकष्यञ्रोगेषु) शोक, ष्यञ् और रोग (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (वा) विकल्प से (हृत्) हृत् आदेश होता है।*

यहां ष्यञ् प्रत्यय है अतः इसका उत्तरपद के साथ योग नहीं है।

उदा०–(शोक) हृच्छोकः, हृदयशोकः। हृदय का शोक। (ष्यञ्) सौहार्द्यम्, सौहृदय्यम्। सुहृदय का भाव/कर्म। (रोग) हृद्रोगः, हृदयरोगः। हृदय का रोग।

सिद्धि– हृच्छोकः। हृदय और शोक शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से हृदय शब्द को शोक शब्द उत्तरपद होने पर हृत् आदेश होता है। 'शश्छोऽटि' (८।४।६३) से शोक के शकार को छकार और 'स्तोः श्चुना श्चुः'

*(८।४।४०) से हृत् के तकार को चकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में हृदय के स्थान में हृत् आदेश नहीं होता है-**हृदयशोकः**। ऐसे ही-**हृद्रोगः, हृदयरोगः**।*

*(२) **सौहार्दम्**। सु+हृदय+ष्यञ्। सु+हृत्+य। सौ+हार्द्+य। सौहार्द+सु। सौहार्दम्।*

*यहां 'सुहृदय' शब्द से '**गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**' (५।१।१२३) से भाव और कर्म अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हृदय' के स्थान में 'ष्यञ्' प्रत्यय परे होने पर 'हृत्' आदेश होता है। '**हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च**' (७।३।१९) से उभयपदवृद्धि होती है। विकल्प पक्ष में 'हृदय' के स्थान में 'हृत्' आदेश नहीं होता है-**सौहृदय्यम्**। '**यस्येति च**' से अंग के अकार का लोप और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

पदादेशः--

(७) पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु।५२।

प०वि०-पादस्य ६।१ पद १।१ (सु-लुक्) आजि-आति-ग-उपहतेषु ७।३।

स०-आजिश्च आतिश्च गश्च उपहतश्च ते-आज्यातिगोपहताः, तेषु-आज्यातिगोपहतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पादस्य आज्यातिगोपहतेषु उत्तरपदेषु पदः।

अर्थः-पादस्य स्थाने आज्यातिगोपहतेषु उत्तरपदेषु पद आदेशो भवति।

उदा०-(**आजिः**) पादाभ्यामजतीति पदाजिः। (**आतिः**) पादाभ्याममततीति पदातिः। (**गः**) पादाभ्यां गच्छतीति पदगः। (**उपहतः**) पादेनोपहत इति पादोपहतः।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(पादस्य) पाद शब्द के स्थान में (आज्यातिगोपहतेषु) आजि, आति, ग और उपहत (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (पदः) पद आदेश **होता है**।*

*उदा०-(आजि) **पदाजिः**। पांवों से चलनेवाला-पैदल। (आति) **पदातिः**। पांवों से निरन्तर चलनेवाला-पैदल। (ग) **पदगः**। पांवों से जानेवाला-पैदल। (उपहत) **पादोपहतः**। पांव से घायल किया हुआ।*

*सिद्धि-(१) **पदाजिः**। यहां 'पाद' और 'आजि' शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) **से उपपदतत्पुरुष समास है**। 'आजिः' शब्द में '**अज गतिक्षेपणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से*

'पादे च' (उणा० ४।१३३) से 'इण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पाद के स्थान में आजि उत्तरपद होने पर 'पद' आदेश होता है।

(२) पदातिः। यहां 'आतिः' शब्द में 'अत सातत्यगमने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'इण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) पदगः। यहां 'पाद' और 'ग' शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'गः' शब्द में वा०- 'डप्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते' (३।२।४८) से पाद उत्तरपद होने पर भी 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'ड' प्रत्यय है। वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'गम्' के टि-भाग (अम्) का लोप होता है। इस सूत्र से पाद के स्थान में 'ग' उत्तरपद होने पर 'पद' आदेश होता है।

(४) पदोपहतः। यहां पाद और उपहत शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पाद के स्थान में उपहत उत्तरपद होने पर 'पद' आदेश होता है।

पद्-आदेशः-

(८) पद् यत्यतदर्थे।५३।

प०वि०-पद् १।१ यति ७।१ अतदर्थे ७।१।

स०-तस्मै इदमिति तदर्थम्, न तदर्थमिति अतदर्थम्, तस्मिन्-अतदर्थे (चतुर्थीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, पादस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पादस्य पद् अतदर्थे यति।

अर्थः-पादस्य स्थाने पद्-आदेशो भवति, तदर्थवर्जिते यति प्रत्यये परतः।

उदा०-पादौ विध्यन्तीति पद्याः शर्कराः, पद्याः कण्टकाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पादस्य) पाद शब्द के स्थान में (पद्) पद् आदेश होता है (अतदर्थे) यदि तदर्थ से भिन्न (यति) यत् प्रत्यय परे हो।*

उदा०-पद्याः शर्कराः। पांवों को बींधनेवाली कांकर। पद्याः कण्टकाः। पांवों को बींधनेवाले कांटे।

सिद्धि-पद्याः। यहां पाद शब्द से 'विध्यत्यधनुषा' (४।४।८३) से विध्यति-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पाद' के स्थान में 'यत्' प्रत्यय परे होने पर पद् आदेश होता है।

यहां 'अतादर्थ्ये' का कथन इसलिये किया है कि यहां पाद के स्थान में 'पद्' आदेश न हो-पादार्थमुदकम्-पाद्यम्। यहां 'पादार्घाभ्यां च' (५।४।२५) से तादर्थ्य अभिधेय में 'यत्' प्रत्यय है।

पद्-आदेशः--

(६) हिमकाषिहतिषु च।५४।

प०वि०-हिम-काषि-हतिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-हिमं च काषी च हतिश्च ता हिमकाषिहतयः, तासु-हिमकाषिहतिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, पादस्य, पद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पादस्य हिमकाषिहतिषु चोत्तरपदेषु पद्।

अर्थः-पादस्य स्थाने हिमकाषिहतिषु चोत्तरपदेषु पद् आदेशो भवति।

उदा०-(**हिमम्**) पादस्य हिममिति पद्धिमम्। हिमम्=शीतमित्यर्थः। (**काषी**) पादौ कषन्तीति पत्काषिणः। पादचारिण इत्यर्थः। (**हतिः**) पादाभ्यां हन्यते इति पद्धतिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पादस्य) पाद शब्द के स्थान में (हिमकाषिहतिषु) हिम, काषिन् और हति (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (पद्) पद् आदेश होता है।*

*उदा०-(हिम) **पद्धिमम्।** पांव को लगनेवाली ठण्ड। (काषी) **पत्काषिणः।** पांवों से चलनेवाले पैदल। (हति) **पद्धतिः।** जो पांवों से आहत की जाती है-राह, रीति।*

*सिद्धि-(१) **पद्धिमम्।** यहां पाद और हिम शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'पाद' के स्थान में 'हिम' उत्तरपद होने पर 'पद्' आदेश होता है। 'झयो होऽन्यतरस्याम्' (८।४।६१) से हिम के हकार को पूर्वसवर्ण धकार आदेश होता है।*

*(२) **पत्काषिणः।** यहां पाद और काषिन् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पाद के स्थान में काषिन् उत्तरपद होने पर पद् आदेश होता है। 'काषिन्' शब्द में 'कष हिंसार्थः' (भ्वा०प०) धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। यहां 'कष' धातु गत्यर्थक है- 'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति' (महाभाष्यम्)।*

*(३) **पद्धतिः।** यहां पाद और हति शब्दों का पूर्ववत् उपपद तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'पाद' के स्थान में 'हति' उत्तरपद होने पर 'पद्' आदेश होता है। 'झयो होऽन्यतरस्याम्' (८।४।६२) से 'हति' के हकार को पूर्वसवर्ण धकार आदेश होता है।*

पद्-आदेशः–

(१०) ऋचः शे।५५।

प०वि०–ऋचः ६।१ शे ७।१।

अनु०–उत्तरपदे, पादस्य, पद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऋचः पादस्य शे पद्।

अर्थः–ऋक्सम्बिन्धनः पादस्य स्थाने शे प्रत्यये परतः पद् आदेशो भवति।

उदा०–पादं पादं शंसतीति–पच्छः शंसति। पच्छो गायत्रीं शंसति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ऋचः) ऋचासम्बन्धी (पादस्य) पाद शब्द के स्थान में (शे) शस् प्रत्यय परे होने पर (पद्) पद् आदेश होता है।*

*उदा०–**पच्छो गायत्रीं शंसति।** गायत्री छन्द की ऋचा के एक-एक पाद (चरण) का जप करता है।*

सिद्धि–पच्छः। *यहां 'पाद' शब्द से '**संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्**' (५।४।४३) से वीप्सा अर्थ में 'शस्' प्रत्यय है। सूत्रपाठ में शस् के अवयव 'श' का ग्रहण किया गया है। इस सूत्र से ऋचासम्बन्धी पाद के स्थान में 'शस्' प्रत्यय परे होने पर 'पद्' आदेश होता है। '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।४०) से पत् के तकार को चकार और '**शश्छोऽटि**' (८।४।६३) से शस् के शकार को छकार आदेश होता है।*

पद्-आदेशविकल्पः–

(११) वा घोषमिश्रशब्देषु।५६।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, घोष-मिश्र-शब्देषु ७।३।

स०–घोषश्च मिश्रश्च शब्दश्च ते घोषमिश्रशब्दाः, तेषु-घोषमिश्र-शब्देषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उत्तरपदे, पादस्य, पद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पादस्य घोषमिश्रशब्देषु उत्तरपदेषु वा पद्।

अर्थः–पादस्य स्थाने घोषमिश्रशब्देषु उत्तरपदेषु विकल्पेन पद् आदेशो भवति।

उदा०–**(घोषः)** पादस्य घोष इति पद्घोषः, पादघोषः। **(मिश्रः)** पादेन मिश्र इति पन्मिश्रः, पादमिश्रः। **(शब्दः)** पादस्य शब्द इति पच्छब्दः, पादशब्दः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पादस्य) पाद शब्द के स्थान में (घोषमिश्रशब्देषु) घोष, मिश्र और शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (वा) विकल्प से (पद्) पद् आदेश होता है।*

*उदा०-**(घोष) पद्घोषः, पादघोषः।** पांव की गम्भीर ध्वनि। **(मिश्र) पन्मिश्रः, पादमिश्रः।** पांव से मिश्रित किया हुआ। (शब्द) **पच्छब्दः, पादशब्दः।** पांव की ध्वनि।*

*सिद्धि-(१) **पद्घोषः।** यहां पाद और घोष शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पाद के स्थान में घोष उत्तरपद होने पर 'पद्' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'पद्' आदेश नहीं होता है-**पादघोषः।** ऐसे ही-**पच्छब्दः, पादशब्दः।***

*(२) **पन्मिश्रः।** यहां पाद और मिश्र शब्दों का **'पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुण-मिश्रश्लक्ष्णैः'** (२।१।३१) से तृतीयातत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पाद के स्थान में मिश्र उत्तरपद होने पर पद् आदेश होता है। **'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा'** (८।४।४४) से द् को अनुनासिक नकार आदेश है। विकल्प पक्ष में पद् आदेश नहीं होता है-**पादमिश्रः।***

उदादेशः-

(१२) उदकस्योदः संज्ञायाम्।५७।

प०वि०-उदकस्य ६।१ उदः १।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायाम् उदकस्य उत्तरपदे उदः।

अर्थः-संज्ञायां विषये उदकस्य स्थाने उत्तरपदे उद आदेशो भवति।

उदा०-उदकस्य मेघ इति उदमेघः। उदमेघो नाम-यस्य औदमेघिः पुत्रः। उदकं वहतीति-उदवाहः। उदवाहो नाम-यस्य औदवाहिः पुत्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (उदकस्य) उदक शब्द के स्थान में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (उदः) उद आदेश होता है।*

*उदा०-**औदमेघिः पुत्रः।** उदक=जल से भरा हुआ मेघ=बादल-उदमेघ। उदमेघ नामक पुरुष का पुत्र-'औदमेघि' कहाता है। **औदवाहिः पुत्रः।** उदक को वहन करनेवाला-उदवाह। उदवाह नामक पुरुष का पुत्र-'औदवाहि' कहाता है।*

*सिद्धि-(१) **औदमेघिः।** यहां उदक और मेघ शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में 'उदक' के स्थान में मेघ उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। 'उदमेघ' शब्द से **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

(२) औदवाहिः। यहां उदक और वाह शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। उदक उपपद 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

उदादेशः–

(१३) पेषंवासवाहनधिषु च।५८।

प०वि०–पेषम्-वास-वाहन-धिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–पेषं च वासश्च वाहनश्च धिश्च ते पेषंवासवाहनधियः, तेषु-पेषंवासवाहनधिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उत्तरपदे, उदकस्य, उद इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उदकस्य पेषंवासवाहनधिषु चोत्तरपदेषु उदः।

अर्थः–उदकस्य स्थाने पेषंवासवाहनधिषु चोत्तरपदेषु उद आदेशो भवति।

उदा०–**(पेषम्)** उपदेषं पिनष्टि। उदकेन पिनष्टीत्यर्थः। **(वासः)** उदकस्य वास इति उदवासः। **(वाहनः)** उदकस्य वाहन इति उदवाहनः। **(धिः)** उदकं धीयतेऽस्मिन्निति-उदधिः कुम्भः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उदकस्य) उदक शब्द के स्थान में (पेषंवासवाहनधिषु) पेषम्, वास, वाहन और धि शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (उदः) उद आदेश होता है।*

उदा०-(पिषम्) उपदेषं पिनष्टि। जल के सहाय से औषध आदि को पीसता है। (वास) उदवासः। जल का निवास। (वाहन) उदवाहनः। जल का वाहन (गाड़ी)। (धि) उदधिः कुम्भः। जिसमें जल रखा जाता है वह घट आदि। यहां उदधि शब्द का समुद्र अर्थ नहीं है क्योंकि संज्ञाविषय में पूर्वसूत्र से ही 'उद' आदेश सिद्ध है।

सिद्धि-(१) उदपेषम्। यहां उदक और पेषम् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। उदक उपपद होने पर 'पिष्लृ संचूर्णने' (रुधा०प०) धातु से 'स्नेहने पिषः' (३।४।३८) से 'णमुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में पेषम् उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है।

(२) उदवासः। यहां उदक और वास शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में 'वास' उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। ऐसे ही-उदवाहनः।

(३) उदधिः। यहां उदक और धि शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। उदक उपपद 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'कर्मण्यधिकरणे च' (३।३।९३) से अधिकरण कारक में 'कि' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से 'धा' के आकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में 'धि' उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है।

उदादेश-विकल्पः–

(१४) एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०–एकहलादौ ७।१ पूरयितव्ये ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–एको हल् आदिर्यस्य सः–एकहलादिः, तस्मिन्–एकहलादौ (त्रिपद-बहुव्रीहिः)।

अनु०–उत्तरपदे, उदकस्य, उद इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उदकस्य एकहलादौ पूरयितव्ये उत्तरपदेऽन्यतरस्याम् उदः।

अर्थः–उदकस्य स्थाने एकहलादौ पूरयितव्यवाचिनि शब्दे उत्तरपदे विकल्पेन उद आदेशो भवति।

उदा०–उदकस्य कुम्भ इति उदकुम्भः, उदककुम्भः। उदकस्य पात्रमिति उदपात्रम्, उदकपात्रम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(उदकस्य) उदक शब्द के स्थान में (एकहलादौ) जिसके आदि में एक हल है उस (पूरितव्ये) पूरयितव्य {भरने योग्य} वाची शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (उदः) उद आदेश होता है।*

*उदा०–**उदकुम्भः, उदककुम्भः।** जल का कुम्भ (घड़ा)। **उदपात्रम्, उदकपात्रम्।** जल का पात्र।*

सिद्धि**–उदकुम्भः। यहां उदक और कुम्भ शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में पूरयितव्यवाची कुम्भ शब्द उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'उद' आदेश नहीं होता–**उदककुम्भः।** ऐसे ही–**उदपात्रम्, उदकपात्रम्।

उदादेश-विकल्पः–

(१५) मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च।६०।

प०वि०– मन्थ-ओदन-सक्तु-बिन्दु-वज्र-भार-हार-वीवीध-गाहेषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-मन्थश्च ओदनं च सक्तुश्च बिन्दुश्च वज्रश्च भारश्च हारश्च वीवधश्च गाहश्च ते मन्थ०गाहा:, तेषु-मन्थ०गाहेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, उदकस्य, उदः, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उदकस्य मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु उत्तरपदेषु चान्यतरस्याम् उदः।

अर्थः-उदकस्य स्थाने मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु चोत्तरपदेषु विकल्पेन उद आदेशो भवति। **उदाहरणम्**-

उत्तरपदम्	शब्दरूपम्	भाषार्थः
मन्थः	उदकेन संयुक्तो मन्थ इति उदमन्थः, उदकमन्थः	जल से संयुक्त मन्थ।
ओदनः	उदकेन संयुक्त ओदन इति उदौदनः, उदकौदनः	जल से संयुक्त ओदन(भात)
सक्तुः	उदकेन संयुक्तः सक्तुरिति उदसक्तुः, उदकसक्तुः	जल से संयुक्त सत्तु।
बिन्दुः	उदकस्य बिन्दुरिति उदबिन्दुः, उदकबिन्दुः	जल का बिन्दु।
वज्रः	उदकस्य वज्र इति उदवज्रः, उदकवज्रः	जल का वज्र (बिजली)।
भारः	उदकं बिभर्तीति उदभारः, उदकभारः	जल भरनेवाला पुरुष।
हारः	उदकं हरतीति उदहारः, उदकहारः	जल ढोनेवाला पुरुष।
वीवधः	उदकस्य वीवध इति उदवीवधः, उदकवीवधः	जल की बहंगी।
गाहः	उदकं गाहते इति उदगाहः, उदकगाहः	जल का विलोडन करनेवाला (गोता खोर)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उदकस्य) उदक शब्द के स्थान में (मन्थौदन०गाहेषु) मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध और गाह शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (उदः) उद आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका अर्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) उदमन्थः। यहां उदक और मन्थ शब्दों का **'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन'** (२।१।३०) में 'तृतीया' इस योग-विभाग से तृतीयातत्पुरुष समास है। इस सूत्र से उदक के स्थान में मन्थ उत्तरपद होने पर उद आदेश होता है। किसी द्रव पदार्थ से संयुक्त सत्तु 'मन्थ' कहाता है। विकल्प पक्ष में उद आदेश नहीं है-**उदकमन्थः**। ऐसे ही-**उदौदनः, उदकौदनः। उदसक्तुः, उदकसक्तुः।***

*(२) **उदबिन्दुः**। यहां उदक और बिन्दु शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में बिन्दु उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'उद' आदेश नहीं है-**उदकबिन्दुः**।*

(३) उदभारः। यहां उदक और भार शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। यहां उदक उपपद 'भृञ् भरणे' (भ्वा०उ०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से 'भृ' को वृद्धि होती है। इस सूत्र से 'उदक' के स्थान में भार उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'उद' आदेश नहीं है-उदकभारः। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-उदहारः, उदकहारः।

(४) उदवीवधः। यहां उदक और वीवध शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से उदक के स्थान में 'वीवध' उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'उद' आदेश नहीं है-उदकवीवधः।

(५) उदकगाहः। यहां उदक और गाह शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। यहां उदक उपपद 'गाहू विलोडने' (भ्वा०आ०) धातु से 'कर्मण्यण्' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उदक के स्थान में 'गाह' उत्तरपद होने पर 'उद' आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'उद' आदेश नहीं है-उदकगाहः।

ह्रस्वादेश-विकल्पः--

(१६) इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य।६१।

प०वि०-इकः ६।१ ह्रस्वः १।१ अङ्यः ६।१ गालवस्य ६।१।

स०-न ङी इति अङी, तस्य-अङ्यः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्य इक उत्तरपदेऽन्यतरस्यां ह्रस्वः, गालवस्य।

अर्थः-ङ्यन्तवर्जितस्य इगन्तस्य शब्दस्य उत्तरपदे विकल्पेन ह्रस्वादेशो भवति, गालवस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-ग्रामण्या पुत्र इति ग्रामणिपुत्रः, ग्रामणीपुत्रः। ब्रह्मबन्ध्वाः पुत्र इति ब्रह्मबन्धुपुत्रः, ब्रह्मबन्धूपुत्रः।

अत्र गालवग्रहणं पूजार्थं न तु विकल्पार्थम्, अन्यतरस्यामिति हि अनुवर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्यः) ङी-अन्त से भिन्न (इकः) इगन्त शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है (गालवस्य) गालव आचार्य के मत में।*

उदा०-ग्रामणिपुत्रः, ग्रामणीपुत्रः। गांव के नेता (प्रधान) का पुत्र। ब्रह्मबन्धुपुत्रः, ब्रह्मबन्धूपुत्रः। पतित ब्राह्मणी का पुत्र।

यहां गालव आचार्य का ग्रहण पूजा के लिये किया गया है, विकल्प के लिये नहीं क्योंकि उसके लिये तो 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति है ही।

*सिद्धि-ग्रामणिपुत्रः । यहां ग्रामणी और पुत्र शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इससे ङी-अन्त से भिन्न, इगन्त 'ग्रामणी' शब्द को पुत्र उत्तरपद होने पर ह्रस्व-आदेश होता है। विकल्प पक्ष में ह्रस्व आदेश नहीं है-**ग्रामणीपुत्रः ।** 'ग्रामणी' शब्द में 'सत्सूद्विष०' (३।२।६१) से क्विप् प्रत्यय है-**ग्रामं नयतीति ग्रामणीः ।** ऐसे ही-ब्रह्मबन्धुपुत्रः, ब्रह्मबन्धूपुत्रः ।*

ह्रस्वादेशः-

(१७) एक तद्धिते च।६२।

प०वि०-एक ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) तद्धिते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-उत्तरपदे, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एकस्य उत्तरपदे तद्धिते च ह्रस्वः।

अर्थः-एकशब्दस्य उत्तरपदे तद्धिते च परतो ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-(**उत्तरपदम्**) एकस्याः क्षीरमिति एकक्षीरम्। एकदुग्धम्। (**तद्धितः**) एकस्या आगतमिति एकरूप्यम्। एकमयम्। एकस्या भाव एकत्वम्, एकता।

अत्र एकशब्दः स्त्रियां गृह्यते तत्रैवार्थस्य सम्भवात्, स चाऽसहायपर्यायो न संख्यावचनः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(एकस्य) एक शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद और (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (च) भी (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-(उत्तरपद) **एकक्षीरम् ।** अकेली गौ का दूध। **एकदुग्धम् ।** अर्थ पूर्ववत् है। (तद्धित) **एकरूप्यम् ।** अकेली शुल्कशाला से आया हुआ द्रव्य। **एकमयम् ।** अर्थ पूर्ववत् है। **एकत्वम् ।** अकेली होना। **एकता ।** अर्थ पूर्ववत् है।*

यहां स्त्रीलिङ्ग एका शब्द का ग्रहण किया जाता है क्योंकि ह्रस्वादेश वहीं संभव है और यहां एक शब्द असहायवाची है; संख्यावाची नहीं।

*सिद्धि-(१) **एकक्षीरम् ।** यहां एका और क्षीर शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से असहायवाची 'एका' शब्द को क्षीर उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही-**एकदुग्धम् ।***

*(२) **एकरूप्यम् ।** यहां 'एका' शब्द से हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः' (४।३।८१) से तद्धित 'रूप्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से असहायवाची एका शब्द को तद्धित 'रूप्य' प्रत्यय पदे होने पर ह्रस्व आदेश होता है।*

(३) एकमयम्। यहां 'एका' शब्द से 'मयट् च' (४।३।८२) से तद्धित 'मयट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) एकत्वम्। यहां 'एका' शब्द से 'तस्य भावस्त्वतलौ' (५।१।११९) से तद्धित 'त्व' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) एकता। यह 'एका' शब्द से पूर्वोक्त सूत्र से 'तल्' प्रत्यय है। 'तलन्तः' (लिङ्गा० १७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

बहुलं ह्रस्वादेशः-

(१८) ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्।६३।

प०वि०-ङ्यापोः ६।२ संज्ञा-छन्दसोः ७।२ बहुलम् १।१।

स०-ङीश्च आप् च तौ ङ्यापौ, तयोः-ङ्यापोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। संज्ञा च छन्दश्च ते संज्ञाच्छन्दसी, तयोः-संज्ञाच्छन्दसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञाच्छन्दसोर्ङ्यापोरुत्तरपदे बहुलं ह्रस्वः।

अर्थः-संज्ञायां छन्दसि च विषये ङ्यन्तस्य आबन्तस्य च शब्दस्य उत्तरपदे बहुलं ह्रस्वो भवति। **उदाहरणम्-**

	विषयः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	ङ्यन्तस्य	रेवतिपुत्रः	रेवती का पुत्र।
	संज्ञायाम्	रोहिणिपुत्र	रोहिणी का पुत्र।
		भरणिपुत्रः	भरणी का पुत्र।
	बहुलवचनान्न	नान्दीकरः	नान्दीपाठ करनेवाला।
	च भवति-	नान्दीघोषः	नान्दी में घोष करनेवाला।
		नान्दीविशालः	नान्दी को विशाल करनेवाला।
(२)	ङ्यन्तस्य	कुमारिदा	कुमारी को देनेवाली।
	च्छन्दसि	प्रफर्विदा	प्रफर्वी को देनेवाली।

	विषयः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
	बहुलवचनान्न	फाल्गुनीपौर्णमासी	फाल्गुन की पौर्णमासी।
	च भवति-	जगतीच्छन्दः	जगती नामक छन्द।
(३)	आबन्तस्य	शिलवहम्	शिलवह नामक नगर।
	संज्ञायाम्	शिलप्रस्थम्	शिलप्रस्थ नामक नगर।
	बहुलवचनान्न	लोमकागृहम्	लोमका का घर।
	च भवति-	लोमकाषण्डम्	लोमका का षण्ड (रोग)।
(४)	आबन्तस्य	अजक्षीरेण जुहोति	अजा के दूध से होम करता है।
	संज्ञायाम्	ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत (शा०सं० १८।३।४९)।	दक्षिणावान् की ऊन के समान मृदु (सुखद) पृथिवी।
	बहुलवचनान्न च भवति-	ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति।	कवि जन ऊन के सूत से कपड़ा बुनते हैं।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञाच्छन्दसोः) संज्ञा और वेदविषय में (ङ्यापोः) ङी-प्रत्ययान्त और आप्-प्रत्ययान्त शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (बहुलम्) प्रायशः (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) रेवतिपुत्रः। यहां रेवती और पुत्र शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में ङी-प्रत्ययान्त 'रेवती' शब्द को पुत्र उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही-**रोहिणिपुत्रः, भरणिपुत्रः**।*

*(२) **नान्दीकरः**। यहां नान्दी और कर शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। नान्दी-उपपद '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**दिवाविभा०**' (३।२।२१) से 'ट' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में ङी-प्रत्ययान्त 'नान्दी' शब्द को 'कर' उत्तरपद होने पर बहुलवचन से ह्रस्व आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-**नान्दीघोषः, नान्दीविशालः**।*

*(३) **कुमारिदा**। यहां कुमारी और दा शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। कुमारी-उपपद '**डुदाञ् दाने**' (जु०उ०) धातु से '**आतोऽनुपसर्गे कः**' (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से वेदविषय में ङी-प्रत्ययान्त कुमारी शब्द को 'दा' उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही-**प्रफर्विदा**।*

*(४) **फाल्गुनीपौर्णमासी।** यहां फाल्गुनी और पौर्णमासी शब्दों का '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वेदविषय में ङीप्रत्ययान्त फाल्गुनी शब्द को पौर्णमासी उत्तरपद होने पर बहुलवचन से ह्रस्व आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-**जगतीच्छन्दः।***

*(५) **शिलवहम्।** यहां शिला और वह शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में आबन्त 'शिला' शब्द को वह-उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही-**शिलप्रस्थम्।***

*(६) **लोमकागृहम्।** यहां लोमका और गृह शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में आबन्त 'लोमका' शब्द को गृह उत्तरपद होने पर बहुलवचन से ह्रस्व आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-**लोमकाषण्डम्।***

*(७) **अजक्षीरम्।** यहां अजा और क्षीर शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वेदविषय में आबन्त 'अजा' शब्द को क्षीर उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है।*

*(८) **ऊर्णम्रदाः।** यहां ऊर्णा और म्रदीयसी शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है-**ऊर्णावद् म्रदीयसीति ऊर्णम्रदाः।** इस सूत्र से वेदविषय में आबन्त 'ऊर्णा' शब्द को म्रदीयसी उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है।*

*'ईयसी' शब्द को आकार आदेश छान्दस है। "**तैत्तिरीयास्तु दीर्घमधीयते-ऊर्णाम्रदसं चास्तृणामीति**" (पदमञ्जरी)।*

*(९) **ऊर्णासूत्रम्।** यहां ऊर्णा और सूत्र शब्द का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वेदविषय में आबन्त 'ऊर्णा' शब्द को सूत्र-उत्तरपद होने पर बहुलवचन से ह्रस्व आदेश नहीं होता है।*

बहुलं ह्रस्वादेशः-

(१६) त्वे च।६४।

प०वि०-त्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ह्रस्वः, ङ्यापोः, छन्दसि इति चानुवर्तते, संज्ञायामिति च नानुवर्ततेऽर्थासम्भावात्।

अन्वयः-छन्दसि ङ्यापोस्त्वे च बहुलं ह्रस्वः।

अर्थः-छन्दसि विषये ङ्यन्तस्य आबन्तस्य च शब्दस्य त्व-प्रत्यये च परतो बहुलं ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-(अप्) तदजाया भावोऽजत्वम्, अजात्वम्। **(आप्)** तद् रोहिण्या भावो रोहिणित्वम्, रोहिणीत्वम् (काठ०सं० ८।१)। **"संज्ञायामसम्भवाच्छन्दस्येवोदाहरणानि भवन्ति"** (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ङ्यापोः) ङी-प्रत्ययान्त और आप्-प्रत्ययान्त शब्दों को (त्वे) त्व-प्रत्यय परे होने पर (च) भी (बहुलम्) प्रायशः (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

उदा०-(आप्) ***तदजाया भावोऽजत्वम्, अजात्वम्।*** *वह अजा (बकरी) का होना अजत्व, अजात्व कहाता है। (ङी)* ***तद् रोहिण्या भावो रोहिणित्वम्, रोहिणीत्वम्।*** *वह रोहिणी का होना रोहिणित्व, रोहिणीत्व कहाता है।*

सिद्धि-(१) ***अजत्वम्।*** *यहां अजा शब्द से* ***'तस्य भावस्त्वतलौ'*** *(५।१।११९) से 'त्व' प्रत्यय है। इस सूत्र से वेदविषय में आबन्त 'अजा' शब्द को 'त्व' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व आदेश होता है और बहुलवचन से नहीं भी होता है-****अजात्वम्।***

(२) ***रोहिणित्वम्।*** *यहां रोहिणी शब्द से पूर्ववत् 'त्व' प्रत्यय है। इस सूत्र से वेदविषय में ङी-अन्त रोहिणी शब्द को 'त्व' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व आदेश होता है और बहुलवचन से नहीं भी होता है-****रोहिणीत्वम्।***

ह्रस्वादेशः-

(२०) इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु।६५।

प०वि०-इष्टका-इषीका-मालानाम् ६।३ चित-तूल-भारिषु ७।३।

स०-इष्टका च इषीका च माला च ता इष्टकेषीकामालाः, तासाम्-इष्टकेषीकामालानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। चितं च तूलं च भारी च ते चिततूलभारिणः, तेषु-चिततूलभारिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु उत्तरपदेषु ह्रस्वः।

अर्थः-इष्टकेषीकामालानां शब्दानां यथासंख्यं चिततूलभारिषु उत्तरपदेषु ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-**(इष्टका)** इष्टकाभिश्चितमिति इष्टकचितम्। **(इषीका)** इषीकाणां तूलमिति इषीकतूलम्। **(माला)** मालां भर्तुं शीलमस्या इति मालभारिणी कन्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इष्टकेषीकामालानाम्) इष्टका, इषीका और माला शब्दों को यथासंख्य (चिततूलभारिषु) चित, तूल और भारी (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

उदा०-(इष्टका) ***इष्टकचितम्।*** *ईंटों के द्वारा चिणना। (इषीका)* ***इषीकतूलम्।*** *सींक (सरकंडा) का तूल (रूई)। (माला)* ***मालभारिणी कन्या।*** *स्वभाव से माला धारण करनेवाली कन्या।*

सिद्धि-(१) इष्टकचितम्। *यहां इष्टका और चित शब्दों का '**कर्तृकरणे कृता बहुलम्**' (२।१।३२) से तृतीयातत्पुरुष समास है। 'चित' शब्द में '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से कृत्-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इष्टका' शब्द को 'चित' उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है।*

(२) इषीकतूलम्। *यहां इषीका और तूल शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'इषीका' शब्द को 'तूल' उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है।*

(३) मालभारिणी। *यहां माला और भारिणी शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'भारिणी' शब्द में '**डुभृञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से '**सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**' (३।२।७८) से ताच्छील्य अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

ह्रस्वादेशः-

(२१) खित्यनव्ययस्य।६६।

प०वि०-खिति ७।१ अनव्ययस्य ६।१।

स०-ख इद् यस्य सः-खित्, तस्मिन्-खिति (बहुव्रीहिः)। न अव्ययमिति अनव्ययम्, तस्य-अनव्ययस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनव्ययस्य खिति उत्तरपदे ह्रस्वः।

अर्थः-अनव्ययस्य=अव्ययवर्जितस्य शब्दस्य खित्प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदे ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-कालीमात्मानं मन्यते इति कालिम्मन्या। हरिणिम्मन्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनव्ययस्य) अव्यय से भिन्न शब्द को (खित्) खित्-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व आदेश होता है।*

*उदा०-**कालिम्मन्या**। स्वयं को काली=पार्वती माननेवाली नारी। **हरिणिम्मन्या**। स्वयं को हरिणी=सुन्दरी माननेवाली नारी।*

*सिद्धि-**कालिम्मन्या**। यहां काली और मन्या शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। काली शब्द उपपद होने पर '**मन ज्ञाने**' (दि०आ०) धातु से '**आत्ममाने खश् च**' (३।२।८३) से खश् प्रत्यय है। प्रत्यय के शित्-धर्म से सार्वधातुक होने से '**दिवादिभ्यः श्यन्**' (३।१।६९) से श्यन् विकरण प्रत्यय होता है और इस सूत्र से 'काली' शब्द को खित्-प्रत्ययान्त 'मन्या' शब्द उत्तरपद होने पर ह्रस्व आदेश होता है। '**अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**' (६।३।६७) से मुम् आगम है। मुम् आगम ह्रस्व आदेश में बाधक नहीं होता है। ऐसे ही-**हरिणिम्मन्या**।*

।। इति आदेश-प्रकरणम् ।।

आगम-प्रकरणम्

मुम्-आगमः-

(१) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्।६७।

प०वि०-अरुस्-द्विषत्-अजन्तस्य ६।१ मुम् १।१।

स०-अच् अन्ते यस्य सः-अजन्तः, अरुश्च द्विषन् च अजन्तश्च एतेषां समाहारः-अरुर्द्विषदजन्तम्, तस्य-अरुर्द्विषदजन्तस्य (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, खिति, अनव्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अरुर्द्विषदजन्तस्यानव्ययस्य खिति उत्तरपदे मुम्।

अर्थः-अरुर्द्विषतोरव्ययवर्जितस्य अजन्तस्य शब्दस्य च खित्प्रत्ययान्ते उत्तरपदे मुम् आगमो भवति।

उदा०-(**अरुस्**) अरुषं तुदतीति अरुन्तुदः। (**द्विषत्**) द्विषन्तं तापयतीति द्विषन्तपः। (**अजन्तः**) आत्मानं कालीं मन्यते इति कालिम्मन्या। हरिणिम्मन्या।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अरुर्द्विषत्) अरुष्, द्विषत् और (अनव्ययस्य) अव्यय से भिन्न (अजन्तस्य) अजन्त शब्द को (खिति) खित्-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (मुम्) मुम् आगम होता है।*

उदा०-(अरुस्) अरुन्तुदः। मर्मस्थल को पीड़ित करनेवाला। (द्विषत्) द्विषन्तपः। द्वेष करनेवाले (शत्रु) को सन्ताप देनेवाला। (अजन्तः) कालिम्मन्या। स्वयं को काली=पार्वती माननेवाली नारी। हरिणिम्मन्या। स्वयं को हरिणी=सुन्दरी माननेवाली नारी।

सिद्धि-(१) अरुन्तुदः। यहां अरुष् और तुद शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। अरुष् कर्म उपपद होने पर 'तुद व्यथने' (तु०प०) धातु से 'विध्वरुषोस्तुदः' (३।२।३५) से खश् प्रत्यय है। इस सूत्र से अरुष् शब्द को खित्-प्रत्ययान्त 'तुद' उत्तरपद होने पर मुम् आगम होता है। यह आगम मित् होने से 'मिदचोऽन्त्यात् परः' (१।१।४६) से अरुष् के अन्त्य अच् उकार से परे किया जाता है। 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से सकार का लोप, 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से मकार को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है।

(२) द्विषन्तपः। यहां द्विषत् और तपः शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। द्विषत् कर्म-उपपद होने पर 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से 'द्विषत्परयोस्तापेः' (३।२।३९) से खच् प्रत्यय है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और 'खचि ह्रस्वः' (६।४।९४) से 'ताप्' को ह्रस्व (तप्) होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) 'कालिम्मन्या' और 'हरिणिम्मन्या' पदों की सिद्धि पूर्ववत् (६।३।६६) है।

अम्-आगमः-

(२) इचः एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च।६८।

प०वि०-इचः ६।१ एकाचः ६।१ अम् १।१ प्रत्ययवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०-एकोऽच् यस्मिन् सः-एकाच्, तस्य-एकाचः (बहुव्रीहिः)। अम् च अम् एतयोः समाहारः-अम् (एकशेषसमाहारद्वन्द्वः)।

तद्धितवृद्धिः-प्रत्ययस्य इव इति प्रत्ययवत्। **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति इवार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-उत्तरपदे, खिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एकाच इचः खिति उत्तरपदेऽम्, स च प्रत्ययवत्।

अर्थः-एकाच इजन्तस्य शब्दस्य खित्-प्रत्ययान्ते शब्दे उत्तरपदेऽम् आगमो भवति, स च अम्-आगमः प्रत्ययवत् (द्वितीयैकवचनवत्) भवति।

उदा०-(ई) आत्मानं स्त्रीं मन्यते इति स्त्रीम्मन्यः, स्त्रियम्मन्यः। श्रियम्मन्यः। (ऊ) आत्मनं भ्रुवं मन्यते इति भ्रुवम्मन्यः। (ऋ) आत्मानं नरं मन्यते इति नरम्मन्यः। (ओ) आत्मानं गां मन्यते इति गाम्मन्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एकाचः) एक अच्वाले (इचः) इजन्त शब्द को (खिति) खित्-प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद होने पर (अम्) अम् आगम होता है (च) और (अम्) वह अम् (प्रत्ययवत्) द्वितीया एकवचन 'अम्' प्रत्यय के समान होता है।*

*उदा०-(ई) **स्त्रियम्मन्यः।** स्वयं को स्त्री के तुल्य माननेवाला। **श्रियम्मन्यः।** स्वयं को श्री=लक्ष्मी माननेवाला। (ऊ) **भ्रुवम्मन्यः।** स्वयं को भ्रू=भौं के समान भ्रमणशील माननेवाला। (ऋ) **नरम्मन्यः।** स्वयं को नर माननेवाला। (ओ) **गाम्मन्यः।** स्वयं को गौ के समान निर्बल माननेवाला।*

*सिद्धि-(१) **स्त्रीम्मन्यः।** यहां स्त्री और मन्य शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'अम्' आगम के प्रत्यय के समान होने से **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०३) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। **'वाऽम्शसोः'** (६।४।८०) से विकल्प-पक्ष में इयङ् आदेश भी होता है-**स्त्रियम्मन्यः।***

*(२) **श्रियम्मन्यः।** यहां श्री और मन्य शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'अम्' आगम को अजादि प्रत्यय मानकर **'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ'** (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **नरम्मन्यः।** यहां नृ और मन्य शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'अम्' आगम को सर्वनामस्थान के समान मानकर **'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'** (७।३।११०) से 'नृ' को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **गाम्मन्यः।** यहां गो और मन्य शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'मन्य' शब्द में **'मनु अवबोधने'** (दि०आ०) धातु से **'आत्ममाने खश् च'** (३।२।८३) से 'खश्' प्रत्यय है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से एक अच्वाले तथा इजन्त 'गो' शब्द को खित्-प्रत्ययान्त 'मन्य' शब्द उत्तरपद होने पर 'अम्' आगम होता है। आगम के 'अम्' प्रत्यय के समान होने से **'औतोऽम्शसोः'** (६।१।९०) से पूर्व-पर के स्थान में 'आकार' एकादेश होता है।*

निपातनम्-

(३) वाचंयमपुरन्दरौ च।६६।

प०वि०-वाचंयम-पुरन्दरौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०:-वाचंयमश्च पुरन्दरश्च तौ-वाचंयमपुरन्दरौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, अम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वाचंयमपुरन्दरौ चोत्तरपदेऽम्।

अर्थः-'वाचंयमपुरन्दरौ' इत्यत्र चोत्तरपदे परतः पूर्वपदस्यामन्तत्वं निपात्यते।

उदा०-वाचं यच्छतीति वाचंयमः। पुरं दारयतीति पुरन्दरः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वाचंयमपुरन्दरौ) वाचंयम और पुरन्दर इन शब्दों में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर पूर्वपद को (अम्) अमन्त भाव निपातित है।*

*उदा०-**वाचंयमः।** वाणी को शास्त्रोक्त विधि से नियम में रखनेवाला व्रती। **पुरन्दरः।** किले को तोड़नेवाला इन्द्र।*

*सिद्धि-(१) **वाचंयमः।** यहां वाच् और यम शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'वाच्' पूर्वपद को 'यम' उत्तरपद होने पर अमन्तभाव निपातित है। 'वाच्' कर्म उपपद होने पर **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०) धातु से **'वाचि यमो व्रते'** (३।२।४०) से 'खच्' प्रत्यय है।*

*(२) **पुरन्दरः।** यहां पुर् और दर शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से पुर् पूर्वपद को दर उत्तरपद होने पर **'दॄ विदारणे'** (क्र्या०प०) इस णिजन्त धातु से **'पूःसर्वयोर्दारिसहोः'** (३।२।४१) से 'खच्' प्रत्यय है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और **'खचि ह्रस्वः'** (६।४।९४) से 'दार्' को ह्रस्व (दर्) होता है।*

मुम्-आगमः-

(४) कारे सत्यागदस्य।७०।

प०वि०-कारे ७।१ सत्य-अगदस्य ६।१।

स०-सत्यं च अगदं च एतयोः समाहारः सत्यागदम्, तस्य-सत्यागदस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, मुमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सत्यागदस्य कारे उत्तरपदे मुम्।

अर्थः-सत्यागदयोः शब्दयोः कारे शब्दे उत्तरपदे मुम् आगमो भवति।

उदा०-**(सत्यम्)** सत्यं करोतीति सत्यङ्कारः। **(अगदम्)** अगदं करोतीति-अगदङ्कारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सत्यागदस्य) सत्य और अगद शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (मुम्) मुम् आगम होता है।*

*उदा०-(सत्य) **सत्यङ्कारः**। सत्य प्रतिज्ञावाला। (अगद) **अगदङ्कारः**। औषध बनानेवाला। '**विषप्रतिपक्षद्रव्यविशेषकरणम्**' (पदमञ्जरी)।*

*सिद्धि-**सत्यङ्कारः**। यहां सत्य और कार शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'सत्य' कर्म-उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**कर्मण्यण्**' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सत्य' शब्द को 'कार' उत्तरपद होने पर 'मुम्' आगम होता है। '**मोऽनुस्वारः**' (८।३।२३) से मकार को अनुस्वार और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण ङकार होता है। ऐसे ही-**अगदङ्कारः**।*

मुम्-आगमः--

(५) श्येनतिलस्य पाते ञे।७१।

प०वि०-श्येन-तिलस्य ६।१ पाते ७।१ ञे ७।१।

स०-श्येनश्च तिलं च एतयोः समाहारः श्येनतिलम्, तस्य श्येनतिलस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, मुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्येनतिलस्य पाते उत्तरपदे ञे मुम्।

अर्थः-श्येनतिलयोः शब्दयोः पाते शब्दे उत्तरपदे ञे प्रत्यये परतो मुमागमो भवति।

उदा०-(श्येनः) श्येनपातोऽस्यां क्रीडायां वर्तते सा श्यैनंपाता मृगया। **(तिलम्)** तिलपातोऽस्यां क्रीडायां वर्तते सा तैलम्पाता क्रीडा।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(श्येनतिलस्य) श्येन और तिल शब्दों को (पाते) पात शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद में (ञे) ञ-प्रत्यय परे होने पर (मुम्) मुम् आगम होता है।*

*उदा०-(श्येन) **श्यैनंपाता मृगया**। वह मृगया (शिकार खेलना) कि जिसमें बाज गिराया जाता है। (तिल) **तैलम्पाता मृगया**। वह मृगया कि जिसमें तिल गिराया जाता है।*

*सिद्धि-**श्यैनम्पाता**। यहां श्येन और पात शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'पात्' शब्द में '**पत्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'पात' शब्द से 'घञः **साऽस्यां क्रियेति ञः**' (४।२।५७) से 'ञ' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'श्येन' शब्द को 'पात' शब्द उत्तरपद होने पर कि जिससे 'ञ' प्रत्यय परे है, मुम् आगम होता है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**तैलम्पाता क्रीडा**।*

मुमागम-विकल्पः--

(६) रात्रेः कृति विभाषा।७२।

प०वि०-रात्रेः ६।१ कृति ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-उत्तरपदे, मुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रात्रेः कृति उत्तरपदे विभाषा मुम्।

अर्थः-रात्रि-शब्दस्य कृदन्ते शब्दे उत्तरपदे विकल्पेन मुमागमो भवति।

उदा०-रात्रौ चरतीति रात्रिञ्चरः, रात्रिचरः। रात्रावटतीति-रात्रिमटः, रात्र्यटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रात्रेः) रात्रि शब्द को (कृति) कृत्-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (मुम्) मुम् आगम होता है।*

*उदा०-**रात्रिञ्चरः, रात्रिचरः।** रात्रि में विचरण करनेवाला। **रात्रिमटः, रात्र्यटः।** रात्रि में घूमनेवाला।*

*उदा०-**रात्रिञ्चरः।** यहां रात्रि और चर शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। रात्रि उपपद **'चर गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'चरेष्टः'** (३।२।१६) से कृत्-संज्ञक 'ट' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रात्रि' शब्द को कृदन्त 'चर' उत्तरपद होने पर 'मुम्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में 'मुम्' आगम नहीं है-**रात्रिचरः।** ऐसे ही 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**रात्रिमटः, रात्र्यटः।***

नकार-लोपः--

(७) नलोपो नञः।७३।

प०वि०-न-लोपः १।१ नञः ६।१।

स०-नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नञो नलोप उत्तरपदे।

अर्थः-नञो नकारस्य लोपो भवति, उत्तरपदे परतः।

उदा०-न ब्राह्मण इति अब्राह्मणः। अवृषलः। असुरापः। असोमपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नञः) नञ् शब्द के (नलोपः) नकार का लोप होता है (उत्तरपदे) उत्तरपद **परे होने** पर।*

*उदा०-**अब्राह्मणः**। जो कि ब्राह्मण नहीं है। **अवृषलः**। जो कि वृषल नहीं है। **असुरापः**। जो कि सुरापान करनेवाला नहीं है। **असोमपः**। जो कि सोमपान करनेवाला नहीं है।*

*सिद्धि-**अब्राह्मणः**। यहां नञ् और ब्राह्मण शब्दों का 'नञ्' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'नञ्' शब्द के नकार का ब्राह्मण उत्तरपद होने पर लोप होता है और अकार शेष रहता है। ऐसे ही-अवृषलः आदि।*

नुट्-आगमः-

(८) तस्मान्नुडचि।७४।

प०वि०-तस्मात् ५।१ नुट् १।१ अचि ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, नञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्माद् नञोऽचि उत्तरपदे नुट्।

अर्थः-तस्माल्लुप्तनकाराद् नञः परस्य अजादेरुत्तरपदस्य नुडागमो भवति।

उदा०-न अश्व इति अनश्वः। अनजः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तस्मात्) उस लुप्त नकारवाले (नञः) नञ् शब्द से परे (अचि) अजादि (उत्तरपदे) उत्तरपद को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**अनश्वः**। जो कि घोड़ा नहीं है। **अनजः**। जो कि बकरा नहीं है।*

*सिद्धि-**अनश्वः**। यहां नञ् और अश्व शब्दों का 'नञ्' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। 'नलोपो नञः' (६।३।७२) से 'नञ्' शब्द के नकार का लोप होता है। इस सूत्र से उस लुप्त नकारवाले 'नञ्' शब्द से परे अजादि अश्व उत्तरपद को 'नुट्' आगम होता है। ऐसे ही-अनजः।*

प्रकृतिभावः-

(९) नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनख-नपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या।७५।

प०वि०-नभ्राट्-नपात्-नवेदास्-नासत्याः-नमुचि-नकुल-नख-नपुंसक-नक्षत्र-नक्र- नाकेषु ७।३ प्रकृत्या ३।१।

स०-नभ्राट् च नपाच्च, नवेदाश्च, नासत्याश्च नमुचिश्च नकुलश्च, नखं च नपुंसकं च नक्षत्रं च नक्रश्च नाकं च तानि-नभ्राण्०नाकानि, तेषु-नभ्राण्०नाकेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, नञ इति चनुवर्तते।

अन्वयः-नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्र-नाकेषु नञ् उत्तरपदे प्रकृत्या।

अर्थः-नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्र-नाकेषु शब्देषु नञ्-शब्द उत्तरपदे परतः प्रकृत्या भवति। **उदाहरणम्**-

शब्दः	विग्रहः	भाषार्थः
नभ्राट्	न भ्राजते इति नभ्राट्	न चमकनेवाली।
नपात्	न पातयतीति नपात्	कुल को न गिरानेवाला (पौत्र)।
नवेदाः	न वेत्तीति नवेदाः	न जाननेवाला।
नासत्याः	सत्सु साधवः सत्याः, न सत्या इति असत्याः, न असत्या इति नासत्याः।	सज्जनों में साधु सत्य, जो सत्य नहीं वे असत्य और जो असत्य नहीं हैं, वे नासत्या कहाते हैं (अश्विनीकुमार)
नमुचिः	न मुञ्चतीति नमुचिः	न छोड़नेवाला, कामदेव।
नकुलः	नास्य कुलमस्तीति नकुलः	कुल से रहित, नेवला।
नखम्	नास्य खमस्तीति नखम्	आकाश से रहित, नाखुन।
नपुंसकम्	न स्त्री न पुमानिति नपुंसकम्	न स्त्री और न पुरुष, नपुंसक।
नक्षत्रम्	न क्षरति क्षीयते इति वा नक्षत्रम्	क्षरण और क्षीणता से रहित-नक्षत्र।
नक्रः	न क्रामतीति नक्रः	पांव से न चलनेवाला मगरमच्छ, घड़ियाल।
नाकम्	नास्मिन्नकमस्तीति नाकम्	क=सुख। अक=दुःख। जिसमें अक= दुःख नहीं है वह नाक (स्वर्ग)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नभ्राण्०नाकेषु) नभ्राट्, नपात्, नवेदा, नासत्या, नमुचि, नकुल, नख, नपुंसक, नक्षत्र, नक्र और नाक शब्दों में (नञ्) नञ् शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है, अर्थात् उसके नकार का लोप नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **नभ्राट्**। यहां नञ् और भ्राट् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'नञ्' शब्द 'भ्राट्' उत्तरपद होने पर प्रकृतिभाव*

से रहता है अर्थात् **'नलोपो नञः'** (६।३।७३) से प्राप्त उसके नकार का लोप नहीं होता है। 'भ्राट्' शब्द में **'भ्राजृ दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिग्रावस्तुवः क्विप्'** (३।२।१७७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से 'भ्राज्' के जकार को षकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है।

(२) **नपात्।** यहां नञ् और पात् शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। 'पात्' शब्द में **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से क्विप्-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **नवेदाः।** यहां नञ् और वेदस् शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'वेदस्' शब्द में **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से **'सर्वधातुभ्योऽसुन्'** (उणा० ४।१९०) से 'असुन्' प्रत्यय है। **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से दीर्घ होता है।

(४) **नासत्याः।** यहां नञ् और असत्य शब्दों का **'नञ्'** (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। असत्य शब्द में प्रथम सत् शब्द से **'तत्र साधुः'** (४।४।९८) से साधु (योग्य) अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है पश्चात् 'सत्य' शब्द से पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास होकर-असत्य और तत्पश्चात् 'नञ्' और 'असत्य' के नञ्तत्पुरुष समास में इस सूत्र से प्रकृतिभाव होता है।

(५) **नमुचिः।** यहां नञ् और मुचि शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'मुचि' शब्द में **'मुच्लृ मोचने'** (रुधा०प०) धातु से **'इगुपधात् कित्'** (उणा० ४।१२१) से 'इन्' प्रत्यय और वह कित् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) **नकुलः।** यहां नञ् और कुल शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **नखम्।** यहां नञ् और खम् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है।

(८) **नपुंसकम्।** यहां नञ् और स्त्रीपुंस शब्दों का नञ्तत्पुरुष समास है 'स्त्रीपुंस' के स्थान में पुंसकभाव निपातित है।

(९) **नक्षत्रम्।** यहां नञ् और क्षत्र शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'क्षत्र' शब्द में **'क्षर संचलने'** (भ्वा०प०) धातु से 'त्र' प्रत्यय और धातु के रेफ का लोप निपातित है और **'क्षि निवासगत्योः'** (तु०प०) धातु से 'त्र' प्रत्यय और 'क्षि' धातु के इकार को अकार आदेश निपातित है।

(१०) **नक्रः।** यहां नञ् क्र शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'क्रः' शब्द **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से 'ड' प्रत्यय निपातित है।

*(११) **नाकम्।** यहां नञ् और अक शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है।*

कम्=सुखम्। अकम्=दुःखम्, तद् यत्र नास्ति स नाकः स्वर्गः।

दुःखेन यन्न सम्भिन्नं न ग्रस्तमनन्तरम्।
***अभिलाषोपनीतं च सुखं स्वर्गपदास्पदम्।।** पदमञ्जरी।।*

प्रकृतिभाव आदुक्-आगमश्च-

(१०) एकादिश्चैकस्य चादुक्।७६।

प०वि०-एकादिः १।१ च अव्ययपदम्, एकस्य ६।१ च अव्ययपदम्, आदुक् १।१।

स०-एक आदिर्यस्य सः-एकादिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, नञः, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एकादिश्च नञ् उत्तरपदे प्रकृत्या, एकस्य चाऽऽदुक्।

अर्थः-एकादिश्च नञ्-शब्दे उत्तरपदे परतः प्रकृत्या भवति, एकशब्दस्य चाऽऽदुग् आगमो भवति।

उदा०-एकेन न विंशतिरिति एकान्नविंशतिः, एकान्नत्रिंशत्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(एकादिः) एक शब्द आदि में है जिसके वह (नञ्) नञ्-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है (च) और (एकस्य) एक शब्द को (आदुक्) आदुक् आगम होता है।*

*उदा०-**एकान्नविंशतिः।** जो कि एक से बीस नहीं है अर्थात् उन्नीस। **एकान्नत्रिंशत्।** जो कि एक से तीस नहीं है अर्थात् उणतीस।*

***सिद्धि-एकान्नविंशतिः।** एक+नञ्+विंशति। एक+आदुक्+न+विंशति। एक+आत्+न विंशति। एक+आन्+न+विंशति। एकान्नविंशति+सु। एकान्नविंशति।*

*यहां एक और नविंशति शब्दों का '**तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन**' (२।१।३०) इस सूत्र में 'तृतीया' इस योगविभाग से तृतीयातत्पुरुष समास है।*

*एक शब्द से परे नञ्-शब्द विंशति शब्द उत्तरपद होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से 'आत्' के तकार को दकार, '**यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा**' से इसे अनुनासिक नकार आदेश है। आदुक् आगम को पूर्व का अन्तवत् मानकर विकल्प-पक्ष में '**एकाद्नविंशतिः**' रूप भी होता है। ऐसे ही-**एकान्नत्रिंशत्, एकाद्नत्रिंशत्।***

प्रकृतिभाव-विकल्पः–

(११) नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्।७७।

प०वि०–नगः १।१ अप्राणिषु ७।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–न प्राणिन इति अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–उत्तरपदे, नञः, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अप्राणिषु नगो नञ् उत्तरपदेऽन्यतरस्यां प्रकृत्या।

अर्थः–अप्राणिषु वर्तमानो यो नगः शब्दोऽत्र च यो नञ् स उत्तरपदे परतो विकल्पेन प्रकृत्या भवति।

उदा०–न गच्छन्तीति नगाः। नगा वृक्षाः, अगा वृक्षाः। नगाः पर्वताः, अगाः पर्वताः।

आर्यभाषाः अर्थ–(अप्राणिषु) अप्राणी अर्थों में विद्यमान (नगः) जो नग शब्द है (नञ्) और इसमें जो नञ् शब्द है वह (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।

*उदा०–**नगा** वृक्षाः। **अगा** वृक्षाः। न चलनेवाले-वृक्ष। **नगाः** पर्वताः, **अगाः** पर्वताः। न चलनेवाले पहाड़।*

*सिद्धि–**नगः**। यहां 'नञ्' और 'ग' शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'ग' शब्द में '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से वा०–'**अन्येष्वपि दृश्यते**' (३।२।४८) से 'ड' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०–'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से गम् के टि-भाग (अम्) का लोप होता है। इस सूत्र से अप्राणीवाची 'नग' शब्द में 'ग' शब्द उत्तरपद होने पर 'नञ्' शब्द प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् '**नलोपो नञः**' (६।३।७३) से नञ् के नकार का लोप नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में नकार का लोप होकर 'अगः' रूप भी बनता है।*

।। इति आगम-प्रकरणम्।।

आदेश-प्रकरणम्

स-आदेशः–

(१) सहस्य स संज्ञायाम्।७८।

प०वि०–सहस्य ६।१ सः १।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां सहस्य उत्तरपदे सः।

अर्थः-संज्ञायां विषये सह-शब्दस्य स्थाने उत्तरपदे परतः स-आदेशो भवति।

उदा०-अश्वत्थेन सह वर्तते इति साश्वत्थम्। सपलाशम्, सशिंशपम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (सहस्य) सह शब्द के स्थान में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**साश्वत्थम्।** अश्वत्थ (पीपळ) के साथ वर्तमान। **सपलाशम्।** पलाश (ढाक) के साथ वर्तमान। **सशिंशपम्।** शिंशपा (शीशम) के साथ वर्तमान।*

*सिद्धि-**साश्वत्थम्।** यहां सह और अश्वत्थ शब्दों का 'तेन सहेति तुल्ययोगे' (२।२।८) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में सह के स्थान में अश्वत्थ उत्तरपद होने पर स-आदेश होता है। ऐसे ही-**सपलाशम्, सशिंशिपम्।***

स-आदेशः-

(२) ग्रन्थान्ताधिके च।७६।

प०वि०-ग्रन्थान्त-अधिके ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-ग्रन्थस्य अन्त इति ग्रन्थान्तः। ग्रन्थान्तश्च अधिकं च एतयोः समाहारः-ग्रन्थान्ताधिकम्, तस्मिन्-ग्रन्थान्ताधिके (षष्ठीगर्भितसमाहार-द्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रन्थान्ताधिके च सहस्य उत्तरपदे सः।

अर्थः-ग्रन्थान्तेऽधिके चार्थे वर्तमानस्य सह-शब्दस्य स्थाने उत्तरपदे परतः स-आदेशो भवति।

उदा०-(ग्रन्थान्तम्) सह कलया वर्तते इति सकलम्। सकलं ज्यौतिषमधीते। कला=कालविशेषः, तत्सहचरितो ग्रन्थोऽपि 'कला' इत्युच्यते। मुहूर्तेन सह वर्तते इति समुहूर्तम्। समुहूर्तं ज्यौतिषमधीते। **(अधिकम्)** द्रोणेन सह वर्तते इति सद्रोणा खारी। समाषः कार्षापणः। सकाकिणीको माषः।

"ससंग्रहं व्याकरणमधीयते, इत्येतदुदाहरणं प्रमादादिदानीन्तनैः कुलेखकैर्लिखितम्, तत्र हि **'अव्ययभावे चाकाले'** (६।३।८१) इत्येव सिद्धः सभावः" (न्यासकारः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ग्रन्थान्ताधिके) ग्रन्थान्त और अधिक अर्थ में (च) भी विद्यमान (सहस्य) सह शब्द के स्थान में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-(ग्रन्थान्त) **सकलं ज्यौतिषमधीते।** कालविशेष को 'कला' कहते हैं, तत्सहचरित ग्रन्थ भी 'कला' कहाता है। वह कलापर्यन्त ज्यौतिष ग्रन्थ को पढ़ता है। **समुहूर्तं ज्यौतिषमधीते।** वह मुहूर्त विषयपर्यन्त ज्यौतिष ग्रन्थ को पढ़ता है। (अधिक) **सद्रोणा खारी।** खारी परिमाण द्रोण से अधिक है। **समाषः कार्षापणः।** कार्षापण सिक्का माष नामक सिक्के से अधिक है। **सकाकिणीको माषः।** माष नामक सिक्का काकिणी नामक सिक्के से अधिक है।*

***विशेषः** (१) कला=चन्द्रमण्डल का १६वां भाग। (२) द्रोण=२०० पल=८०० तोला (१० सेर)। खारी=१६० सेर (४ मण)। कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का। माष=२ रत्ती चांदी का सिक्का। काकिणी=१/२ रत्ती चांदी का सिक्का।*

स-आदेशः-

(३) द्वितीये चानुपाख्ये।८०।

प०वि०-द्वितीये ७।१ च अव्ययपदम्, अनुपाख्ये ७।१।

स०-उपाख्यायते=प्रत्यक्षत उपलभ्यते यः स उपाख्यः, न उपाख्य इति अनुपाख्यः, तस्मिन्-अनुपाख्ये, अनुमेये इत्यर्थः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सहस्य अनुपाख्ये द्वितीये चोत्तरपदे सः।

अर्थः-सह-शब्दस्य स्थानेऽनुपाख्ये द्वितीये शब्दे उत्तरपदे परतः स-आदेशो भवति।

उदा०-अग्निना सह वर्तते इति साग्निः। साग्निर्धूमः। सवृष्टिर्मेघः। द्वयोः सहयुक्तयोर्योऽप्रधानः स द्वितीय इति कथ्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सहस्य) सह शब्द के स्थान में (अनुपाख्ये) अनुमान के योग्य (द्वितीये) अप्रधानवाची (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (च) भी (सः)-आदेश होता है।*

उदा०-साग्निर्धूमः। धूम (धूंवा) अग्नि के साथ वर्तमान है। ***यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः'*** जहां-जहां धूम होता है वहां-वहां अग्नि होती है। यहां धूम और अग्नि दो सहयुक्त पदार्थ हैं, इनमें धूम प्रधान और अग्नि द्वितीय अर्थात् अप्रधान और अनुपाख्य=अनुमेय है। धूम को देखकर अग्नि का अनुमान किया जाता है। ***सवृष्टिर्मेघः।*** मेघ वृष्टि के साथ वर्तमान है। ***'मेघोन्नतिं दृष्ट्वाऽनुमीयते भविष्यति वृष्टिरिति।'*** मेघों की वृद्धि को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि वृष्टि होगी। यहां वृष्टि और मेघ दो सहयुक्त पदार्थ हैं, इनमें मेघ प्रधान और वृष्टि अर्थात् द्वितीय अप्रधान है और अनुपाख्य=अनुमेय है।

*सिद्धि-**साग्निः।*** यहां सह और अग्नि शब्दों का ***'तेन सहेति तुल्ययोगे'***(२।२।२८) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सह' शब्द के स्थान में अनुपाख्य (अनुमेय) तथा द्वितीय=अप्रधानवाची अग्नि शब्द उत्तरपद होने पर स-आदेश होता है। ऐसे ही-***सवृष्टिः।***

विशेषः यहां काशिका में ***'साग्निः कपोतः, सपिचाशा वात्या'*** और ***'सराक्षसीका शाला'*** उदाहरण दिये गये हैं। कपोत को देखकर अग्नि का अनुमान, वात्या (भबूळिया) को देखकर पिशाच का अनुमान और शाला (फूटा ढूंढ) को देखकर राक्षसी का अनुमान करना अन्धविश्वास से ग्रस्त है।

स-आदेशः-

(४) अव्ययीभावे चाकाले।८१।

प०वि०-अव्ययीभावे ७।१ च अव्ययपदम्, अकाले ७।१।

स०-न काल इति अकालः, तस्मिन्-अकाले (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावे सहस्य अकाले उत्तरपदे च सः।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे सह-शब्दस्य स्थाने अकालवाचिनि शब्दे उत्तरपदे च स-आदेशो भवति।

उदा०-युगपच्चक्रमिति सचक्रम्। सचक्रं धेहि। सधुरं प्राज। महाभाष्यस्यान्त इति समहाभाष्यम्। समहाभाष्यं व्याकरणमधीते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में (सहस्य) सह शब्द के स्थान में (अकाले) कालवाची शब्द से भिन्न (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**सचक्रं धेहि।*** तू युगपत् (एक साथ) चक्र को धारण कर। ***सधुरं प्राज।*** तू युगपत् धुर् (जूआ) को दूर फैंक। ***समहाभाष्यं व्याकरणमधीते।*** वह महाभाष्य पर्यन्त व्याकरण पढ़ता है।

*सिद्धि-(१) **सचक्रम्**। यहां सह और चक्र शब्दों का '**अव्ययं विभक्ति०**' (२।१।६) से यौगपद्य अर्थ में अव्ययीभाव समास है। इस सूत्र से अव्ययीभाव समास में सह शब्द को कालवाची से भिन्न चक्र शब्द उत्तरपद होने पर स-आदेश होता है।*

*(२) **सधुरम्**। यहां सह और धुर् शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है। '**ऋक्पूरब्धू:पथामानक्षे**' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **समहाभाष्यम्**। यहां सह और महाभाष्य शब्दों का पूर्ववत् अन्तवचन अर्थ में अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सादेश-विकल्पः–

(५) वोपसर्जनस्य।८२।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, उपसर्जनस्य ६।१।

उपसर्जनसर्वावयवः समास उपसर्जनमिति कथ्यते। यस्य समासस्य सर्वेऽवयवा उपसर्जनीभूताः स सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहिसमासोऽत्रोपसर्जनशब्देन गृह्यते।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्जनस्य सहस्य उत्तरपदे वा सः।

अर्थः-उपसर्जनस्य=बहुव्रीहिसमासस्यावयवभूतस्य सह-शब्दस्य स्थाने उत्तरपदे परतो विकल्पेन स-आदेशो भवति।

उदा०-पुत्रेण सह इति सपुत्रः, सहपुत्रः। सच्छात्रः, सहच्छात्रः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपसर्जनस्य) जिसमें सब अवयव उपसर्जन हैं उस बहुव्रीहि समास के अवयव भूत (सहस्य) सह शब्द के स्थान में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (वा) विकल्प से (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**सपुत्रः, सहपुत्रः**। पुत्र के सहित पिता। **सच्छात्रः, सहच्छात्रः**। छात्रों के सहित उपाध्याय।*

*सिद्धि-**सपुत्रः**। यहां सह और पुत्र शब्दों का '**तेन सहेति तुल्ययोगे**' (२।२।२७) से उपसर्जन=बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहि समास में सब शब्द उपसर्जन-संज्ञक होते हैं क्योंकि '**प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्**' (१।२।४३) अर्थात् समास-विधायक सूत्रों में जो पद प्रथमा-विभक्ति से निर्दिष्ट किया गया है उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है।*

'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) इस बहुव्रीहि समासविधायक सूत्र में 'अनेकम्' पद प्रथमा-विभक्ति से निर्दिष्ट है अतः इस समास में सब शब्द उपसर्जन हैं। यहां 'उपसर्जन' शब्द से सर्वोपसर्जन=बहुव्रीहि समास का ही ग्रहण किया गया है। इस सूत्र से उपसर्जन= बहुव्रीहि समास में सह शब्द को उत्तरपद परे होने पर स-आदेश होता है। विकल्प पक्ष में स-आदेश नहीं है-सहपुत्रः। ऐसे ही-सच्छात्रः, सहच्छात्रः।

प्रकृतिभावः-

(६) प्रकृत्याशिषि।८३।

प०वि०-प्रकृत्या ३।१ आशिषि ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि सह उत्तरपदे प्रकृत्या।

अर्थः-आशिषि विषये सह-शब्द उत्तरपदे परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-पुत्रेण सह इति सहपुत्रः, तस्मै-सहपुत्राय। स्वस्ति देवदत्ताय सहपुत्राय, सहच्छात्राय, सहामात्याय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आशिषि) आशीर्वाद विषय में (सहः) सह-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

उदा०-स्वस्ति देवदत्ताय सहपुत्राय, सहच्छात्राय, सहामात्याय। पुत्रों के सहित, छात्रों के सहित और मन्त्रियों के सहित राजा देवदत्त का कल्याण हो।

सिद्धि-सहपुत्राय। यहां सह और पुत्र शब्दों का 'तेन सहेति तुल्ययोगे' (२।२।२८) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से आशीर्वाद विषय में सह शब्द पुत्र उत्तरपद होने पर प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् उसके स्थान में स-आदेश नहीं होता है। 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' (२।३।१६) से स्वस्ति के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। ऐसे ही-सहच्छात्राय, सहामात्याय।

विशेषः *'प्रकृत्याशिषि' यह पाणिनीय सूत्रपाठ है। काशिकाकार ने इसमें 'अगोवत्सहलेषु' यह पाठ मिश्रित किया है।*

स-आदेशः-

(७) समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु।८४।

प०वि०-समानस्य ६।१ छन्दसि ७।१ अमूर्ध-प्रभृति-उदर्केषु ७।३।

स०-मूर्धा च प्रभृतिश्च उदर्कश्च ते मूर्धप्रभृत्युदर्काः, न मूर्धप्रभृत्युदर्का इति अमूर्धप्रभृत्युदर्काः, तेषु-अमूर्धप्रभृत्युदर्केषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि समानस्य अमूर्धप्रभृत्युदर्केषु उत्तरपदेषु सः।

अर्थः-छन्दसि विषये समान-शब्दस्य स्थाने मूर्धप्रभृत्युदर्कवर्जितेषु उत्तरपदेषु परतः स-आदेशो भवति।

उदा०-अनु भ्राता सगर्भ्यः (यजु० ४।२०)। अनु सखा सयूथ्यः (यजु० ४।२०)। यो नः सनुत्यः (ऋ० २।३०।९)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (समानस्य) समान शब्द के स्थान में (अमूर्धप्रभृत्युदर्केषु) मूर्धन्, प्रभृति और उदर्क से भिन्न (उत्तरपदेषु) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**अनु भ्राता सगर्भ्यः** (यजु० ४।२०)। हे मुनष्य ! तुझे सगर्भ्य=सगा भाई विद्याप्राप्ति के लिये अनुमति प्रदान करे। **अनु सखा सयूथ्यः** (यजु० ४।२०)। एक समूह में रहनेवाला मित्र तुझे विद्या-प्राप्ति के लिये अनुमति प्रदान करे। **यो नः सनुत्यः** (ऋ० २।३०।९)। वह बृहस्पति (वेदज्ञ विद्वान्) हमारे लिये समान रूप से स्तुति के योग्य है।*

*सिद्धि-**सगर्भ्यः**। यहां समान और गर्भ शब्दों का '**पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च**' (२।१।५८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वेदविषय में समान शब्द के स्थान में गर्भ उत्तरपद होने परे स-आदेश होता है। तत्पश्चात् 'सगर्भ' शब्द से '**सगर्भसयूथसनुताद् यन्**' (४।४।११४) से भव-अर्थ में 'यन्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-'सयूथ' शब्द से-**सयूथ्यः**, और 'सनुत' शब्द से-**सनुत्यः**।*

स-आदेशः–

(८) ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूप-स्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु।८५।

प०वि०- ज्योतिर्-जनपद-रात्रि-नाभि-नाम-गोत्र-रूप-स्थान-वर्ण-वयस्-वचन-बन्धुषु ७।३।

स०-ज्योतिश्च जनपदश्च रात्रिश्च नाभिश्च नाम च गोत्रं च रूपं च स्थानं च वर्णश्च वयश्च वचनं च बन्धुश्च ते ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभि-नामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुव:, तेषु-ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्र-रूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-उत्तरपदे, समानस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वय:-समानस्य ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयो-वचनबन्धुषु उत्तरपदेषु स:।

अर्थ:-समानशब्दस्य स्थाने ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थान-वर्णवयोवचनबन्धुषु उत्तरपदेषु परत: स-आदेशो भवति। **उदाहरणम्**-

उत्तरपदम्	शब्द-रूपम्	भाषार्थ:
ज्योति:	समानं ज्योतिर्यस्य स:-सज्योति:	समान ज्योतिवाला।
जनपद:	समानो जनपदो यस्य स:-सजनपद:	समान जनपदवाला।
रात्रि:	समाना रात्रिर्यस्य स:-सरात्रि:	समान रात्रिवाला।
नाभि:	समाना नाभिर्यस्य स:-सनाभि:	समान नाभिवाला।
नामन्	समानं नाम यस्य स:-सनामा	समान नामवाला।
गोत्रम्	समानं गोत्रं यस्य स:-सगोत्र:	समान गोत्रवाला।
रूपम्	समानं रूपं यस्य स:-सरूप:	समान रूपवाला।
स्थानम्	समानं स्थानं यस्य स:-सस्थान:	समान स्थानवाला।
वर्ण:	समानो वर्णो यस्य स:-सवर्ण:	समान वर्णवाला।
वय:	समानं वयो यस्य स:-सवया:	समान आयुवाला।
वचन:	समानं वचनं यस्य स:-सवचन:	समान वचनवाला।
बन्धु:	समानो बन्धुर्यस्य स:-सबन्धु:	समान बन्धुवाला।
		समान=सदृश/एक।

आर्यभाषा: *अर्थ-(समानस्य) समान शब्द के स्थान में (ज्योतिर्०बन्धुषु) ज्योतिर्, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और गोत्र (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (स:)* ***स-आदेश होता है।***

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ ***संस्कृत-भाग में लिखा है।***

*सिद्धि-सज्योतिः। यहां समान और ज्योतिष् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से समान के स्थान में ज्योतिष् उत्तरपद होने पर स-आदेश होता है। ऐसे ही-**सजनपदः**, आदि।*

*'सनामा' यहां **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।९) से तथा 'सवयाः' यहां **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

स-आदेशः-

(९) चरणे ब्रह्मचारिणि।८६।

प०वि०-चरणे ७।१ ब्रह्मचारिणि ७।१।

स०-ब्रह्म=वेदः, वेदस्याध्ययनार्थं यद् व्रतं तदपि 'ब्रह्म' इत्युच्यते। ब्रह्म=वेदाध्ययनव्रतं चरतीति ब्रह्मचारी (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, समानस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानस्य ब्रह्मचारिणि उत्तरपदे सः, चरणे।

अर्थः-समानशब्दस्य स्थाने ब्रह्मचारिणि उत्तरपदे परतः स-आदेशो भवति, चरणे गम्यमाने।

उदा०-समानो ब्रह्मचारीति सब्रह्मचारी। समाने ब्रह्मणि व्रतचारीति सब्रह्मचारी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समानस्य) समान शब्द के स्थान में (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है (चरणे) यदि वहां चरण अर्थ अभिधेय हो। चरण=वैदिक विद्यापीठ।*

*उदा०-**सब्रह्मचारी**। ब्रह्म शब्द का अर्थ वेद है। वेद के अध्ययन के लिये जो व्रत किया जाता है वह भी 'ब्रह्म' कहाता है। जो एक काल में वेद की एक शाखाविशेष के लिये व्रत का अनुष्ठान करते हैं, वे परस्पर सब्रह्मचारी कहाते हैं।*

*सिद्धि-**सब्रह्मचारी**। यहां समान और ब्रह्मचारी शब्दों का **'पूर्वापरप्रथमचरमजघन्य-समानमध्यमध्यमवीराश्च'** (२।१।५८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से शब्द के स्थान में ब्रह्मचारी उत्तरपद होने पर तथा चरणविशेष अर्थ में स-आदेश होता है।*

स-आदेशः-

(१०) तीर्थे ये।८७।

प०वि०-तीर्थे ७।१ ये ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, समानस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानस्य ये तीर्थे उत्तरपदे सः।

अर्थः-समानशब्दस्य स्थाने य-प्रत्ययान्ते तीर्थशब्दे उत्तरपदे परतः स-आदेशो भवति।

उदा०-समाने तीर्थे वसतीति सतीर्थ्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समानस्य) समान शब्द के स्थान में (ये) य-प्रत्ययान्त (तीर्थे) तीर्थ-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**सतीर्थ्यः**। समान तीर्थ=उपाध्याय (गुरु) के पास में रहनेवाला।*

*सिद्धि-**सतीर्थ्यः**। यहां समान और तीर्थ शब्दों का 'पूर्वापर०' (२।१।५८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'समानतीर्थ' शब्द से '**समानतीर्थे वासी**' (४।४।१०७) से 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'समान' शब्द के स्थान में यत्-प्रत्ययान्त 'तीर्थ्य' शब्द उत्तरपद होने पर स-आदेश होता है।*

सादेश-विकल्पः-

(११) विभाषोदरे।८८।

प०वि०-विभाषा १।१ उदरे ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य, सः, ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समानस्य ये उदरे उत्तरपदे विभाषा सः।

अर्थः-समानशब्दस्य स्थाने य-प्रत्ययान्ते उदरशब्दे उत्तरपदे परतो विकल्पेन स-आदेशो भवति।

उदा०-समानोदरे शयित इति सोदर्यो भ्राता। समानोदर्यो भ्राता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समानस्य) समान शब्द के स्थान में (ये) य-प्रत्ययान्त (उदरे) उदरशब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०-**सोदर्यो भ्राता**। समान=एक उदर में शयन किया हुआ सगा भाई। **समानोदर्यो भ्राता**। अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **सोदर्यः**। यहां समान और उदर शब्दों का 'पूर्वापर०' (२।२।५८) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। '**सोदराद् यः**' (४।४।१०९) से 'य' प्रत्यय की विवक्षा में इस सूत्र से समान के स्थान में स-आदेश होता है।*

*(२) **समानोदर्य:।** यहां समान और उदर शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। उदर शब्द से **'समानोदरे शयित ओ चादात्तः'** (४।४।१०८) से यत् प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प पक्ष में समान के स्थान में स-आदेश नहीं है।*

विशेषः *यहां 'य' प्रत्यय का सामान्य से ग्रहण किया है अतः इससे 'य' और 'यत्' दोनों प्रत्ययों का ग्रहण होता है। 'सोदर्य:' में 'य' प्रत्यय और **'समानोदर्य:'** में 'यत्' प्रत्यय है। 'सतीर्थ्य:' में भी 'यत्' प्रत्यय है।*

स-आदेशः–

(१२) दृक्दृशवतुषु।८९।

प०वि०–दृक्-दृश-वतुषु ७।३।

स०–दृक् च दृशश्च वतुश्च ते–दृक्दृशवतवः, तेषु–दृक्दृशवतुषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–उत्तरपदे, समानस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः–समानस्य दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु सः।

अर्थः–समानशब्दस्य स्थाने दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु परतःस–आदेशो भवति।

उदा०–**(दृक्)** समानं पश्यतीति सदृक्। **(दृशः)** समानं पश्यतीति सदृशः। अत्र दृशधातुस्तुल्यभावेऽर्थे वर्तते नालोचने, **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'** (महाभाष्यम्)।

अत्र वतु-ग्रहणमुत्तरार्थम्, स च प्रत्ययोऽत उत्तरपदेन सह न युज्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(समानस्य) समान शब्द के स्थान में (दृक्दृशवतुषु) दृक्, दृश और वतु (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सः) स-आदेश होता है।*

*उदा०–(दृक्) **सदृक्।** समान=एक के तुल्य होना। (दृश) **सदृशः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

यहां 'वतु' का ग्रहण उत्तर-सूत्र के लिये किया गया है। 'वतु' प्रत्यय है अतः इसका उत्तरपद के साथ योग नहीं होता है।

सिद्धि–सदृक्।** यहां समान और दृक् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'दृक्' शब्द में **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च'** (३।२।६०) से 'क्विन्' प्रत्यय है। यहां 'दृश्' धातु तुल्यभाव अर्थ में है प्रेक्षण=आलोचन (देखना) अर्थ में नहीं **'अनेकार्था हि धातवो भवन्ति'

(महाभाष्य)। 'क्विन्' प्रत्यय का 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६७) से सर्वहारी लोप होकर 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से दृश् के शकार को कुत्व खकार, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से खकार को जश्त्व गकार और 'वावसाने' (८।४।५५) से गकार को चर्त्व ककार होता है। इस सूत्र से समान के स्थान में दृश्-उत्तरपद परे होने पर स-आदेश होता है।

(२) सदृशः। यहां समान और दृश शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'दृश' शब्द में 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' (३।२।६०) से 'कञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ईश्-की आदेशौ–

(१३) इदं किमोरीश्की।६०।

प०वि०-इदम्-किमोः ६।२ ईश्-की १।१।

स०-इदं च किं च तौ-इदं किमौ, तयोः-इदं किमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ईश् च की च एतयोः समाहार ईश्की (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, दृक्दृशवतुषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदंकिमोर्दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु ईश्की।

अर्थः-इदंकिमोः शब्दयोः स्थाने दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु परतो यथासंख्यम् ईश्की आदेशौ भवतः।

उदा०-**(इदम्)** इदमिव पश्यतीति-ईदृक्, ईदृशः। इदं परिमाणमस्य इति इयान्। **(किम्)** किमिव पश्यतीति-कीदृक्, कीदृशः। किं परिमाणमस्य इति कियान्।

ईदृक्, ईदृश। कीदृक्, कीदृश इत्यत्र व्युत्पत्तिमात्रार्थे विग्रहः क्रियते, न तु विग्रहवाक्येनावयवार्थ उपदर्शितो भवति, रूढिशब्दा हि एते। 'वतुः' इति प्रत्ययः स उत्तरपदेन सह न युज्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदंकिमोः) इदम् और किम् शब्दों के स्थान में (दृक्दृशवतुषु) दृक्, दृश् और वतु (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (ईश्की) यथासंख्य ईश् और की आदेश होते हैं।*

उदा०-(इदम्) ईदृक्, ईदृशः। इसके तुल्य=ऐसा। इयान्। यह परिमाणवाला=इतना। (किम्) कीदृक्, कीदृशः। किसके तुल्य=कैसा। कियान्। क्या परिमाणवाला=कितना।

ईदृक्, ईदृशः और कीदृक्, कीदृशः यहां व्युत्पत्तिमात्र के लिये विग्रह किया जाता है, विग्रहवाक्य से अवयवार्थ उपदर्शित नहीं होता है क्योंकि ये रूढि शब्द है। यहां 'वतु' प्रत्यय है, अतः इसका उत्तरपद के साथ योग नहीं है।

सिद्धि-(१) ईदृक्। यहां इदम् और दृक् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इदम् के स्थान में 'दृक्' उत्तरपद होने पर 'ईश्' आदेश होता है। आदेश के शित् होने से यह 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' (१।१।५५) से सर्वादेश किया जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-ईदृशः।

(२) इयान्। यहां इदम् शब्द से 'किमिदंभ्यां वो घः' (५।२।४०) से वतुप् प्रत्यय है। इस सूत्र से इदम् के स्थान में वतुप् प्रत्यय परे होने पर 'ईश्' आदेश होता है। पूर्वोक्त सूत्र से 'वतुप्' के 'व' को 'घ' आदेश और 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ' को 'इय' आदेश होकर 'यस्येति च' (६।४।१४८) से 'ईश्' के ईकार का लोप होता है। प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम् आगम और 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से उपधा को दीर्घ होता है।

(३) कीदृक्। यहां किम् और दृक् शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से किम् के स्थान में दृक् उत्तरपद होने पर की-आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कीदृशः।

(४) कियान्। यहां किम् शब्द से पूर्ववत् वतुप् प्रत्यय है। इस सूत्र से किम् के स्थान पर वतुप्-प्रत्यय परे होने पर की-आदेश होता है। शेष कार्य 'इयान्' के समान है।

आकार-आदेशः-

(१४) आ सर्वनाम्नः।६१।

प०वि०-आ १।१ (सु-लुक्) सर्वनाम्नः ६।१।

अनु०-उत्तरपदे, दृक्दृशवतुषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वनाम्नो दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु आः।

अर्थः-सर्वनामसंज्ञकस्य शब्दस्य दृक्दृशवतुषु उत्तरपदेषु परत आकारादेशो भवति।

उदा०-(दृक्) तत् पश्यतीति तादृक्। यत् पश्यतीति यादृक्। **(दृशः)** तत् पश्यतीति तादृशः। यत् पश्यतीति यादृशः। **(वतुः)** तत् परिमाणमस्य इति तावान्। यत् परिमाणमस्य इति यावान्।

आर्यभाषाः अर्थ-(सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक शब्द को (दृक्दृशवतुषु) दृक्, दृश और वतु (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (आ) आकार आदेश होता है।

उदा०-(दृक्) तादृक्। उसके तुल्य-वैसा। यादृक्। जिसके तुल्य-जैसा। (दृश) तादृशः, यादृशः। अर्थ पूर्ववत् है। (वतु) तावान्। उस परिमाणवाला=उतना। यावान्। जिस परिमाणवाला=जितना।

सिद्धि-(१) तादृक्। यहां तत् और दृक् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (१।१।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सर्वनामसंज्ञक 'तत्' शब्द को दृक् उत्तरपद परे होने पर आकार आदेश होता है। यह 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) से अन्त्य अल् के स्थान में किया जाता है। तत् शब्द की 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (१।१।२७) से सर्वनाम संज्ञा है। ऐसे ही 'यत्' शब्द से-यादृक्।

(२) तादृशः। यहां तत् दृश शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'यत्' प्रत्यय से-यादृशः।

(३) तावान्। यहां तत् शब्द से 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्' (५।२।३९) से 'वतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से तत् को वतुप् प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। शेष कार्य 'इयान्' (६।३।९०) के समान है। ऐसे ही 'यत्' शब्द से-यावान्।

अद्रि-आदेशः-

(१५) विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये।६२।

प०वि०-विष्वक्-देवयोः ६।२ च अव्ययपदम्, टेः ६।१ अद्रि १।१ (सु-लुक्) अञ्चतौ ७।१ अप्रत्यये ७।१।

स०-विष्वक् च देवश्च तौ विष्वग्देवौ, तयोः-विष्वग्देवयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अविद्यमानः प्रत्ययो यस्मात् सः-अप्रत्ययः, तस्मिन्-अप्रत्यये (बहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे, सर्वनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विष्वग्देवयोः सर्वनाम्नश्च टेरप्रत्ययेऽञ्चतौ उत्तरपदेऽद्रिः।

अर्थः-विष्वग्देवयोः शब्दयोः सर्वनामसंज्ञकस्य शब्दस्य टि-भागस्य स्थाने अप्रत्ययान्तेऽञ्चतावुत्तरपदे परतोऽद्रिरादेशो भवति।

उदा०-(विष्वक्) विश्वगञ्चतीति विष्वद्र्यङ्। **(देवः)** देवमञ्चतीति देवद्र्यङ्। **(सर्वनाम)** तद् अञ्चतीति तद्र्यङ्। यदञ्चतीति यद्र्यङ्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विष्वग्देवयोः) विष्वक् और देव शब्द और (सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक शब्द के (टेः) टि-भाग को (अप्रत्यये) अ-प्रत्ययान्त (अञ्चतौ) अञ्चति-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (अद्रिः) अद्रि आदेश होता है।*

उदा०-(विष्वक्) विष्वद्र्यङ्। विष्वक्=सब में व्यापक। (देव) देवद्र्यङ्। देवों में व्यापक। (सर्वनाम) तद्र्यङ्। उसमें व्यापक। यद्र्यङ्। उसमें व्यापक।

सिद्धि-विष्वद्र्यङ्। विष्व्+अञ्चु+क्विन्। विष्वक्+अञ्च्+वि। विष्वक्+अञ्च्+०। विष्व् अद्रि+अनुम् च्+०। विष्वद्रि+अन् च्। विष्वद्रि+अन्०। विष्वद्रि+अङ्। विष्वद्र्यङ्+सु। विष्वद्र्यङ्।

यहां विष्वक् उपपद 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च' (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६७) से 'क्विन्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से विष्वक् शब्द के टि-भाग (अक्) को व-प्रत्ययान्त अञ्च्-शब्द परे होने पर अद्रि आदेश होता है। यहां 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अञ्च् धातु के उपधाभूत नकार का लोप, प्रत्यय के उगित् होने से 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से अच् को नुम् आगम होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से सु का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त चकार का लोप, 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' (८।२।६२) से नुम् के नकार को कुत्व ङकार होता है। ऐसे ही-देवद्र्यङ्।

(२) तद्र्यङ्। यहां तत् और अङ् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सर्वनामसंज्ञक तत् शब्द के टि-भाग (अत्) को व-प्रत्ययान्त 'अञ्च्' शब्द परे होने पर अद्रि-आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'यत्' शब्द से-यद्र्यङ्।

***विशेषः** इस सूत्र में 'अप्रत्यये' के स्थान में 'वप्रत्यये' पाठ भी काशिका में मिलता है। अश्रूयमाणः प्रत्ययः=अप्रत्ययः। अश्रूयमाण प्रत्यय अप्रत्यय कहाता है। 'क्विन्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होने से यह सुनाई नहीं देता है, अतः यह 'अप्रत्यय' है। प्रत्ययस्थ वकार की दृष्टि से इसे 'वप्रत्यय' भी कहा जा सकता है।*

समि-आदेशः-

(१६) समः समि।६३।

प०वि०-समः ६।१ समि १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-उत्तरपदे, अञ्चतौ, अप्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समोऽप्रत्ययेऽञ्चतावुत्तरपदे समिः।

अर्थः-सम्-शब्दस्य स्थानेऽप्रत्ययान्तेऽञ्चतावुत्तरपदे परतः समिरादेशो भवति।

उदा०-समञ्चतीति सम्यङ्। सम्यङ्, सम्यञ्चौ, सम्यञ्चः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समः) सम् शब्द के स्थान में (अप्रत्यये) अ-प्रत्ययन्त (अञ्चतौ) अञ्चति शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (समिः) समि आदेश होता है।*

*उदा०-**सम्यङ्**। मिलकर चलनेवाला (ठीक)। **सम्यञ्चौ**। दो मिलकर चलनेवाले। **सम्यञ्चः**। सब मिलकर चलनेवाले। "**सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया**" (अथर्व० ३।३०।३)।*

***सिद्धि-सम्यङ्**। यहां सम् और अङ् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सम्-शब्द के स्थान में अ-प्रत्ययान्त अञ्च् उत्तरपद होने पर समि आदेश होता है। शेष कार्य 'विष्वद्र्यङ्' (६।३।९२) के समान है।*

तिरि-आदेशः-

(१७) तिरसस्तिर्यलोपे।६४।

प०वि०-तिरसः ६।१ तिरि १।१ (सु-लुक्) अलोपे ७।१।

स०-न लोप इति अलोपः, तस्मिन्-अलोपे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, अञ्चतौ, अप्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तिरसोऽलोपेऽप्रत्ययेऽञ्चतावुत्तरपदे तिरिः।

अर्थः-तिरस्-शब्दस्य स्थाने लोपरहितेऽप्रत्ययान्तेऽञ्चतावुत्तरपदे परतस्तिरिरादेशो भवति।

उदा०-तिरोऽञ्चतीति तिर्यङ्। तिर्यङ्, तिर्यञ्चौ, तिर्यञ्चः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तिरसः) तिरस् शब्द के स्थान में (अलोपे) लोप आदेश से रहित (अप्रत्यये) अ-प्रत्ययान्त (अञ्चतौ) अञ्चति शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (तिरिः) तिरि आदेश होता है।*

*उदा०-**तिर्यङ्**। टेढ़ा चलनेवाला। **तिर्यञ्चौ**। दो टेढ़े चलनेवाले। **तिर्यञ्चः**। सब टेढ़े चलनेवाले।*

***सिद्धि-तिर्यङ्**। यहां तिरस् और अङ् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तिरस् के स्थान में लोप आदेश से रहित, अ-प्रत्ययान्त, अञ्च् उत्तरपद होने पर 'तिरि' आदेश होता है। शेष कार्य 'विष्वद्र्यङ्' (६।३।९२) के समान है।*

'अलोप' का कथन इसलिये किया गया है कि जहां अञ्चति के अकार को लोप-आदेश होता है वहां तिरस् को तिरि आदेश न हो जैसे- 'तिरश्चा' (३।१), 'तिरश्चे' (४।१)। यहां 'अचः' (६।४।१३८) से अञ्चति के अकार का लोप होता है अतः यहां तिरस् को तिरि आदेश नहीं होता है।

सध्रि-आदेशः–

(१८) सहस्य सध्रिः।६५।

प०वि०-सहस्य ६।१ सध्रि: १।१।

अनु०-उत्तरपदे, अञ्चतौ, अप्रत्यये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सहस्य अप्रत्ययेऽञ्चतावुत्तरपदे सध्रिः।

अर्थः-सहशब्दस्य स्थानेऽप्रत्ययान्तेऽञ्चतावुत्तरपदे परतः सध्रिरादेशो भवति।

उदा०-सहाञ्चतीति सध्र्यङ्। सध्र्यङ्। सध्र्यञ्चौ। सध्र्यञ्चः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सहस्य) सह शब्द के स्थान में (अप्रत्यये) अ-प्रत्ययान्त (अञ्चतौ) अञ्चति शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सध्रिः) सध्रि आदेश होता है।*

*उदा०-**सध्र्यङ्**। साथ चलनेवाला। **सध्र्यञ्चौ**। दो साथ चलनेवाले। **सध्र्यञ्चः**। सब साथ चलनेवाले।*

*सिद्धि-**सध्र्यङ्**। यहां सह और अङ् शब्दों का **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से सह के स्थान में अ-प्रत्ययान्त अञ्च् उत्तरपद होने पर सध्रि आदेश होता है। शेष कार्य **'विष्वद्र्यङ्'** (६।३।९२) के समान है।*

सध-आदेशः–

(१९) सध मादस्थयोश्छन्दसि।६६।

प०वि०-सध १।१ (सु-लुक्) माद-स्थयो: ७।२ छन्दसि ७।१।

स०-मादश्च स्थश्च तौ मादस्थौ, तयो:-मादस्थयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, सहस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सहस्य मादस्थयोरुत्तरपदयोः सधः।

अर्थः-छन्दसि विषये सहशब्दस्य स्थाने मादस्थयोरुत्तरपदयोः परतः सध आदेशो भवति।

उदा०-**(मादः)** सधमादो द्युम्निनीराप: (यजु० १०।७)। **(स्थः)** सधस्था: (तै०सं० ५।७।७।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सहस्य) सह शब्द के स्थान में (मादस्थयोः) माद और स्थ (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (सधः) सध-आदेश होता है।*

*उदा०-**(माद) सधमादो द्युम्निनीरापः** (यजु० १०।७)। साथ हर्षित होनेवाली, प्रशस्त धनवाली और जल के समान शान्त स्वभाववाली स्त्रियां। **(स्थ) सधस्थाः** (तै०सं० ५।७।७।१)। साथ अवस्थित रहनेवाले।*

*सिद्धि-**(१) सधमादः।** यहां सह और माद शब्दों का '**तेन सहेति तुल्ययोगे**' (२।२।२८) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से वेदविषय में सह के स्थान में माद उत्तरपद होने पर सध आदेश होता है। 'माद' शब्द में '**मदी हर्षग्लेपनयोः**' (भ्वा०प०) धातु से '**भावे**' से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है।*

(२) सधस्थाः। *यहां सह और स्थ शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'स्थः' शब्द में '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**सुपि स्थः**' (३।२।४) से 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से वेदविषय में 'सह' के स्थान में 'स्थ' उत्तरपद होने पर 'सध' आदेश होता है।*

ईत्-आदेशः-

(२०) द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्।६७।

प०वि०-द्वि-अन्तर्-उपसर्गेभ्यः ५।३ अपः ६।१ ईत् १।१।

स०-द्विश्च अन्तश्च उपसर्गश्च ते द्व्यन्तरुपसर्गाः, तेभ्यः- द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप उत्तरपदस्य ईत्।

अर्थः-द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यः परस्याप उत्तरपदस्य ईदादेशो भवति।

उदा०-(द्विः) द्विर्गता आपो यस्मिन्निति द्वीपम्। **(अन्तः)** अन्तर्गता आपो यस्मिन्निति अन्तरीपम्। **(उपसर्गः)** संगता आपो यस्मिन्निति समीपम्। विगता आपो यस्मिन्निति वीपम्। निगता आपो यस्मिन्निति नीपम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यः) द्वि, अन्तर् और उपसर्ग से परे (अपः) अप् (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (ईत्) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-(द्वि) **द्वीपम्।** भूमि का वह भाग जिसके दोनों ओर जल हो वह-द्वीप। (अन्तर्) **अन्तरीपम्।** भूमि का एक टुकड़ा जो किसी समुद्र या खाड़ी के भीतर तक चला गया हो वह-अन्तरीप। (उपसर्ग) **समीपम्।** जिसमें जल संगत हो वह-समीप। **वीपम्।** जिसमें जल विगत हो वह-वीप। **नीपम्।** जिसमें जल निगत हो वह-नीप।*

***सिद्धि-द्वीपम्।** यहां द्वि और अप् शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'द्वि' शब्द से परे 'अप्' उत्तरपद को ईकार आदेश होता है और वह 'आदेः परस्य' (१।१।५३) के 'अप्' के आदिम अल् अकार के स्थान में होता है। ऐसे ही-अन्तरीपम्, आदि।*

ऊत्-आदेशः-

(२१) ऊदनोर्देशे।६८।

प०वि०-ऊत् १।१ अनोः ५।१ देशे ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, अप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनोरप उत्तरपदस्य ऊत्, देशे।

अर्थः-अनोः परस्याप उत्तरपदस्य ऊकार आदेशो भवति, देशेऽभिधेये।

उदा०-अनुगता आपो यस्मिन् सः-अनूपो देशः।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(अनोः) अनु शब्द से परे (अपः) अप् (उत्तरपदस्य) उत्तरपद को (ऊत्) ऊकार अदेश होता है (देशे) यदि वहां देश अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**अनूपो देशः।** जल का समीपवर्ती देश।*

***सिद्धि-अनूपः।** यहां अनु और अप् शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।१९) से बहुव्रीहि समास है। इससे अनु शब्द से परे अप् शब्द को देश अभिधेय में ऊकार आदेश होता है और यह 'आदेः परस्य' (१।१।५३) से अप् के आदिम अल् अकार के स्थान में होता है।*

दुक्-आगमः-

(२२) अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशाऽऽस्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु।६९।

प०वि०-अषष्ठी-अतृतीयास्थस्य ६।१ अन्यस्य ६।१ दुक् १।१ आशिस्-आशा-आस्थित-उत्सुक-ऊति-कारक-राग-छेषु ७।३।

स०-न षष्ठीति अषष्ठी, न तृतीयेति अतृतीया। अषष्ठी च अतृतीया च ते अषष्ठ्यतृतीये, तयोः-अषष्ठ्यतृतीययोः, अषष्ठ्यतृतीययोस्तिष्ठतीति

अषष्ठ्यतृतीयास्थः, तस्य-अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य। (नञितरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितोपपदतत्पुरुषः)। आशीश्च आशा च आस्थितश्च उत्सुकश्च ऊतिश्च कारकश्च रागश्च छश्च ते-आशीराशास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छाः, तेषु-आशीराशास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः- अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्याऽऽशीराशास्थितोत्सुकोतिकारक-रागच्छेषु उत्तरपदेषु दुक्।

अर्थः-अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्याऽऽशीराशास्थितोत्सुकोतिकारक-रागच्छेषु उत्तरपदेषु परतो दुगागमो भवति। **उदाहरणम्**-

उत्तरपदम्	शब्द-रूपम्	भाषार्थः
१. आशीः	अन्याऽऽशीरिति अन्यदाशीः	अन्य इच्छा।
२. आशा	अन्याऽऽशेति अन्यदाशा	अन्य आशा।
३. आस्थितः	अन्य आस्थित इति अन्यदास्थितः	अन्य आस्थित।
४. उत्सुकः	अन्य उत्सुक इति अन्यदुत्सुकः	अन्य उत्सुक।
५. ऊतिः	अन्या ऊतिरिति अन्यदूतिः	अन्य ऊति (रक्षा आदि)
६. कारकः	अन्यः कारक इति अन्यत्कारकः	अन्य कारक।
७. रागः	अन्यो राग इति अन्यद्रागः	अन्य राग।
८. छः	अन्यस्मिन् भव इति अन्यदीयः	अन्य में होनेवाला।

अत्र 'छ' इति प्रत्ययोऽत्र उत्तरपदेन सह न युज्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य) अषष्ठी और अतृतीया विभक्ति में अवस्थित (अन्यस्य) अन्य शब्द को (आशीराशा०छेषु) आशिस्, आशा, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक, राग और छ (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दुक्) दुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) अन्यदाशीः। *यहां अन्य और आशिस् शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से षष्ठी और तृतीया विभक्ति से रहित अन्य शब्द को आशिस् उत्तरपद होने पर दुक् आगम होता है। ऐसे ही-**अन्यदाशा** आदि।*

(२) अन्यदीयः। यहां अन्य शब्द से 'गहादिभ्यश्छः' (४।२।१३७) से भव-अर्थ में 'छ' प्रत्यय है। इस सूत्र से षष्ठी और तृतीया विभक्ति से रहित अन्य शब्द को 'छ' प्रत्यय परे होने पर दुक् आगम होता है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ' के स्थान में 'ईय' आदेश होता है।

दुगागम-विकल्पः--

(२३) अर्थे विभाषा।१००।

प०वि०-अर्थे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-उत्तरपदे, अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य, अन्यस्य, दुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अषष्ठ्यतृतीयास्थस्याऽन्यस्याऽर्थे उत्तरपदे विभाषा दुक्।

अर्थः-अषष्ठीस्थस्यातृतीयास्थस्य चान्यशब्दस्य अर्थशब्दे उत्तरपदे परतो विकल्पेन दुगागमो भवति।

उदा०-अन्यस्मै इदमिति अन्यदर्थम्, अन्यार्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अषष्ठ्यतृतीयास्थस्य) षष्ठी और तृतीया विभक्ति से रहित (अन्यस्य) अन्य शब्द को (अर्थे) अर्थ (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (दुक्) दुक् आगम होता है।*

*उदा०-**अन्यदर्थम्, अन्यार्थम्।** अन्य के लिये।*

*सिद्धि-**अन्यदर्थम्।** यहां अन्य और अर्थ शब्दों का '**चतुर्थी तदर्थार्थबलिहित-सुखरक्षितैः**' (२।१।३६) से चतुर्थी तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से षष्ठी और तृतीया विभक्ति से रहित अन्य शब्द को अर्थ उत्तरपद होने पर दुक् आगम होता है। विकल्प पक्ष में दुक् आगम नहीं है-**अन्यार्थम्।***

कत्-आदेशः--

(२४) कोः कत् तत्पुरुषेऽचि।१०१।

प०वि०-कोः ६।१ कत् १।१ तत्पुरुषे ७।१ अचि ७।१।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कोरचि उत्तरपदे कत्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थानेऽजादौ शब्दे उत्तरपदे परतः कदादेशो भवति।

उदा०-कुत्सितोऽज इति कदजः। कदश्वः। कदुष्ट्रः। कदन्नम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कु-शब्द के स्थान में (अचि) अजादि शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (कत्) कत् आदेश होता है।*

*उदा०-**कदजः**। कुत्सित=निन्दित बकरा। **कदश्वः**। कुत्सित घोड़ा। **कदुष्ट्रः**। कुत्सित ऊंट। **कदन्नम्**। कुत्सित अन्न।*

***सिद्धि-कदजः**। यहां कु और अज शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में 'कु' शब्द को अजादि 'अज' शब्द उत्तरपद होने पर 'कत्' आदेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से 'कत्' के तकार को 'जश्' दकार होत है। ऐसे ही-**कदश्वः** आदि।*

कत्-आदेशः-

(२५) रथवदयोश्च।१०२।

प०वि०-रथ-वदयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-रथश्च वदश्च तौ रथवदौ, तयोः-रथवदयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, कोः, कत्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे को रथवदयोश्चोत्तरपदयोः कत्।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने रथवदयोश्चोत्तरपदयोः परतः कदादेशो भवति।

उदा०-(रथः) कुत्सितो रथ इति कद्रथः। **(वदः)** कुत्सितो वद इति कद्वदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कु-शब्द के स्थान में (रथवदयोः) रथ और वद शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (कत्) कत् आदेश होता है।*

*उदा०-(रथ) **कद्रथः**। कुत्सित=निन्दित रथ। (वद) **कद्वदः**। कुत्सित बोलनेवाला।*

*सिद्धि-कद्रथः। यहां कु और रथ शब्दों का **'कुगतिप्रादय'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में 'कु' शब्द को 'रथ' उत्तरपद होने पर 'कत्' आदेश होता है। ऐसे ही 'वद' शब्द से उत्तरपद होने पर-**कद्वदः**।*

कत्-आदेशः-

(३६) तृणे च जातौ।१०३।

प०वि०-तृणे ७।१ च अव्ययपदम्, जातौ ७।१।

स०-उत्तरपदे, कोः, कत्, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कोस्तृणे चोत्तरपदे कत्, जातौ।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने तृणशब्दे चोत्तरपदे कदादेशो भवति, जातावभिधेयायाम्।

उदा०-कुत्सितं तृणमिति कत्तृणम्। कत्तृणा नाम जातिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कुशब्द के स्थान में (तृणे) तृण-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (कत्) कत् आदेश होता है (जातौ) यदि जाति अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**कत्तृणा नाम जातिः।** कत्तृण नामक जाति। कत्तृण=कुत्सित (निन्दित घासविशेष)।*

*सिद्धि-**कत्तृणम्।** यहां कु और तृण शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'कु' शब्द के स्थान में 'तृण' उत्तरपद होने पर तथा जाति अर्थ अभिधेय में 'कत्' आदेश होता है।*

का-आदेशः-

(२७) का पथ्यक्षयोः।१०४।

प०वि०-का १।१ (सु-लुक्) पथि-अक्षयोः ७।२।

स०-पन्थाश्च अक्षश्च तौ पथ्यक्षौ, तयोः-पथ्यक्षयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, कोः, तत्पुरुषे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कोः पथ्यक्षयोरुत्तरपदयोः काः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने पथ्यक्षयोरुत्तरपदयोः परतः का-आदेशो भवति।

उदा०-कुत्सितः पन्था इति कापथः। कुत्सितोऽक्ष इति काक्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कुशब्द के स्थान में (पथ्यक्षयोः) पथिन् और अक्ष शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (काः) का-आदेश होता है।*

*उदा०-**कापथः।** कुत्सित पन्था (मार्ग) **काक्षः।** गाड़ी का कुत्सित धुरा।*

*सिद्धि-**कापथः।** कु+पथिन्। का+पथिन्। कापथिन्+अ। कापथ्+अ। कापथ+सु। कापथः।*

यहां कु और पथिन् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से तत्पुरुष समास में कुशब्द को पथिन् शब्द उत्तरपद होने पर का-आदेश होता है। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होत है। ऐसे ही 'अक्ष' शब्द उत्तरपद होने पर-काक्षः।

का-आदेशः—

(२८) ईषदर्थे च।१०५।

प०वि०–ईषदर्थे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–ईषदोऽर्थ इति ईषदर्थः, तस्मिन्-ईषदर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–उत्तरपदे, कोः, का इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्पुरुषे ईषदर्थे च कोरुत्तरपदे काः।

अर्थः–तत्पुरुषे समासे ईषदर्थे च वर्तमानस्य कुशब्दस्य स्थाने उत्तरपदे परतः का-आदेशो भवति।

उदा०–ईषद् मधुरमिति कामधुरम्। कालवणम्। अजादावपि परत्वात् का-आदेश एव भवति-ईषदम्लमिति काम्लम्। कोष्णम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में और (ईषदर्थे) ईषत्=थोड़ा अर्थ में (च) भी विद्यमान (कोः) कुशब्द के स्थान में (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (काः) का आदेश होता है।*

*उदा०-**कामधुरम्।** थोड़ा मीठा। **कालवणम्।** थोड़ा नमक (खारा)।*

*अजादि शब्द उत्तरपद होने पर भी परत्व से का-आदेश ही होता है-**ईषदम्लम्।** थोड़ा खट्टा। **कोष्णम्।** थोड़ा गर्म। '**कोः कत् तत्पुरुषेऽचि**' (६।३।१०१) से प्राप्त कत्-आदेश नहीं होता है।*

सिद्धि-कामधुरम्। *यहां कु और मधुर शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ईषद् अर्थ में विद्यमान कुशब्द को मधुर उत्तरपद होने पर का-आदेश होता है। ऐसे ही-**कालवणम्** आदि।*

कादेश-विकल्पः—

(२९) विभाषा पुरुषे।१०६।

प०वि०–विभाषा १।१ पुरुषे ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, कोः, तत्पुरुषे, का इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कोः पुरुषे उत्तरपदे विभाषा काः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने पुरुषशब्दे उत्तरपदे परतो विकल्पेन का-आदेशो भवति।

उदा०-कुत्सितः पुरुष इति कापुरुषः, कुपुरुषः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कुशब्द के स्थान में (पुरुषे) पुरुष शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (विभाषा) विकल्प से (काः) का-आदेश होता है।*

*उदा०-**कुत्सितः पुरुष इति कापुरुषः, कुपुरुषः।** कुत्सित=निन्दित पुरुष।*

*सिद्धि-**कापुरुषः।** यहां कु और पुरुष शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कुशब्द को पुरुष शब्द उत्तरपद होने पर का-आदेश होता है। विकल्प पक्ष में का-आदेश नहीं है-**कुपुरुषः।***

कव-आदेशः कादेशविकल्पश्च-

(३०) कवं चोष्णे।१०७।

प०वि०-कवम् १।१ च अव्ययपदम्, उष्णे ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, कोः, तत्पुरुषे, का, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषे कोष्णे उत्तरपदे कवं च विभाषा च काः।

अर्थः-तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने उष्णशब्दे उत्तरपदे परतः कवमादेशो भवति, विकल्पेन च का-आदेशो भवति।

उदा०-कुत्सितमुष्णमिति कवोष्णम् (कवादेशः)। कोष्णम् (कादेशः)। कदुष्णम् (कदादेशः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ततपुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कुशब्द के स्थान में (उष्णे) उष्ण शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (कवम्) कव आदेश (च) भी होता है और (विभाषा) विकल्प से (काः) का-आदेश होता है।*

*उदा०-**कवोष्णम्।** (कवादेश) कुत्सित गर्म। **कोष्णम्।** (कादेश) अर्थ पूर्ववत् है। **कदुष्णम्।** (कदादेश) अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **कवोष्णम्।** यहां कु और उष्ण शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१९) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से कुशब्द को उष्ण शब्द उत्तरपद होने पर कव-आदेश होता है।*

*(२) **कोष्णम्।** यहां कु और उष्ण शब्दों का पूर्ववत् तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'कु' शब्द को उष्ण शब्द उत्तरपद होने पर का-आदेश है। विकल्प पक्ष में '**कोः कत् तत्पुरुषेऽचि**' (६।३।१०१) से कत्-आदेश होता है-**कोष्णम्।***

कव-कादेशविकल्पः-

(३१) पथि च च्छन्दसि।१०८।

प०वि०-पथि ७।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, कोः, तत्पुरुषे, काः, विभाषा, कवमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत्पुरुषे कोः पथि चोत्तरपदे कवम्, विभाषा काः।

अर्थः-छन्दसि विषये तत्पुरुषे समासे कुशब्दस्य स्थाने पथिन्-शब्दे चोत्तरपदे कवमादेशो भवति, विकल्पेन च का-आदेशो भवति।

उदा०-कुत्सितः पन्था इति कवपथः (कवादेशः)। कापथः (कादेशः)। कुपथः (न कादेशः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्पुरुषे) तत्पुरुष समास में (कोः) कुशब्द के स्थान में (पथि) पथिन् शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (कवम्) कव-आदेश होता है और (विभाषा) विकल्प से (काः) का-आदेश होता है।*

*उदा०-**कवपथः** (कव-आदेश) कुत्सित मार्ग। **कापथः।** (का-आदेश) अर्थ पूर्ववत् है। **कुपथः** (विकल्प पक्ष में का-आदेश नहीं) अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**कवपथः।** यहां कु और पथिन् शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से वेदविषय में तथा तत्पुरुष समास में कुशब्द को पथिन् शब्द उत्तरपद परे होने पर कव-आदेश होता है। '**ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे**' (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय और '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से पथिन् के टि-भाग (इन्) का लोप हेता है।*

*(२) **कापथः।** यहां कुशब्द के स्थान में का-आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में का-आदेश नहीं है-**कुपथः।***

यथोपदिष्टं साधुत्वम्–

(३२) पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्।१०६।

प०वि०-पृषोदरादीनि १।३ यथोपदिष्टम् १।१।

स०-पृषोदर आदिर्येषां तानीमानि-पृषोदरादीनि (बहुव्रीहिः)। शिष्टैर्यानि यानि उपदिष्टानीति यथोपदिष्टम्। **'यथाऽसादृश्ये'** (२।१।७) इति वीप्सार्थेऽव्ययीभावसमासः।

अन्वयः-पृषोदरादीनि यथोपदिष्टं साधूनि।

अर्थः-पृषोदरादीनि शब्दरूपाणि यथोपदिष्टम्=शिष्टैर्यथा यथोच्चारितानि तानि तथैव साधूनि भवन्ति। **उदाहरणम्–**

(१) पृषद् उदरं यस्य तत्-पृषोदरम्। पृषद् उद्वानं यस्य तत् पृषोद्वानम्। अत्र तकारलोपो भवति।

(२) वारिवाहको बलाहकः। अत्र वारिशब्दस्य ब-आदेशः, उत्तरपदादेश्च लत्वं भवति।

(३) जीवनस्य मूत इति जीमूतः। अत्र वन-शब्दस्य लोपो भवति।

(४) शवानां शयनमिति श्मशानम्। अत्र शवशब्दस्य श्मादेशः शयनशब्दस्य च शानादेशो भवति।

(५) ऊर्ध्वं खमस्येति उलूखलम्। अत्र ऊर्ध्वखशब्दयोर्यथासंख्यम् उलू-खलावादेशौ भवतः।

(६) पिशिताश इति पिशाचः। अत्र पिशित-आशशब्दयोर्यथायोगं पिश-आचावादेशौ भवतः।

(७) ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति बृसी। अत्र **'षद्लृ विशरणगत्यव-सादनेषु'** (भ्वा०प०) इत्यस्माद् धातोरधिकरणे कारके डट् प्रत्ययः, ब्रुवत्-उपपदस्य च स्थाने बृ-आदेशो भवति।

(८) मह्यां रौतीति मयूरः। अत्र **'रु शब्दे'** (अ०प०) इत्यस्माद् धातोः **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) इत्यच् प्रत्ययः, टेर्लोपः, महीस्थाने च मयू-आदेशो भवति।

एवमन्येऽपि-अश्वत्थ-कपित्थादयः शब्दा यथायोगमनुगन्तव्याः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पृषोदरादीनि) जो पृषोदर आदि शब्द (यथोपदिष्टम्) शिष्ट=विद्या पारंगत जनों के द्वारा यथा-उच्चारित हैं वे उसी रूप में साधु हैं। उदाहरण-*

*(१) **पृषोदरम्।** बिन्दुमान् उदरवाला (मृगविशेष)। **पृषोद्वानम्।** बिन्दुमान् (बुलबुला) वमन करनेवाला। यहां पृषत् के तकार का लोप है।*

*(२) **बलाहकः।** बादल। यहां 'वारिवाह' शब्द के वारि शब्द को ब-आदेश और वाह उत्तरपद के आदिम वकार को लकार आदेश है।*

*(३) **जीमूतः।** मेघ वा पर्वत। यहां जीवनमूत शब्द के 'वन' का लोप है।*

*(४) **श्मशान।** मरघट। यहां 'शवशयन' शब्द के शव को श्म और शयन को शान आदेश है।*

*(५) **उलूखल।** ऊखल। यहां 'ऊर्ध्वख' शब्द के ऊर्ध्व को उलू और ख को खल आदेश है।*

*(६) **पिशाच।** कच्चा मांस खानेवाला। यहां 'पिशिताश' शब्द के पिशित को पिश और आश को आच आदेश है।*

*(७) **बृसी।** यज्ञीय आसन। यहां **'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०) धातु से अधिकरण कारक में 'ड' प्रत्यय और ब्रुवत् उपपद को बृ-आदेश है।*

*(८) **मयूरः।** मही=पृथिवी पर शब्द करनेवाला मोर। यहां मही उपपद **'रु शब्दे'** (अदा०प०) धातु से पचादि अच् प्रत्यय, धातु के टि-भाग (उ) का लोप और मही को मयू आदेश है।*

इस प्रकार अन्य अश्वत्थ और कपित्थ आदि शब्द भी जो कि शिष्ट जनों के द्वारा उपदिष्ट हैं, वे हमारे अनुगमनीय हैं।

शिष्टलक्षणम्-

(१) एतस्मिन्नार्यनिवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्या, अलोलुपा, अगृह्यमाणकारणाः किञ्चिदन्तरेण कस्याश्चिद् विद्यायाः पारगास्ते तत्रभवन्तः शिष्टाः।

(महाभाष्यम् ६।३।१०७)।

(२) आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते।।
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते।। (पदमञ्जरी ६।३।१०७)।

अह्नादेश-विकल्पः--

(३३) संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहनन्यतरस्यां ङौ।११०।

प०वि०-संख्या-वि-सायपूर्वस्य ६।१ अह्नस्य ६।१ अहन् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, ङौ ७।१।

स०-संख्या च विश्च सायश्च एतेषां समाहारः संख्याविसायम्, संख्याविसायं पूर्वं यस्य सः संख्याविसायपूर्वः, तस्य संख्याविसायपूर्वस्य (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्य उत्तरपदस्य ङावन्यतरस्यामहन्।

अर्थः-संख्यापूर्वस्य विपूर्वस्य सायपूर्वस्य चाह्नस्य उत्तरपदस्य ङिप्रत्यये परतो विकल्पेनाऽहन् आदेशो भवति।

उदा०-**(संख्यापूर्वः)** द्वयोरह्नोर्भव इति द्व्यह्नः, तस्मिन्-द्व्यह्नि, द्व्यहनि, द्व्यह्ने। त्र्यह्नि, त्र्यहनि, त्र्यह्ने। **(विपूर्वः)** व्यपगतमह इति व्यह्नः, तस्मिन्-व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने। **(सायपूर्वः)** सायमह्न इति सायाह्नः, तस्मिन्-सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संख्याविसायपूर्वस्य) संख्यापूर्वक, विपूर्वक और सायपूर्वक (अह्नस्य) अह्न (उतरपदस्य) उत्तरपद के स्थान में (ङौ) ङिप्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अहन्) अहन् आदेश होता है।*

*उदा०-(संख्यापूर्वक) **द्व्यह्नि, द्व्यहनि, द्व्यह्ने।** दो दिन में होनेवाले कर्म में। **त्र्यह्नि, त्र्यहनि, त्र्यह्ने।** तीन दिन में होनेवाले कर्म में। (विपूर्वक) **व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने।** बीते हुये दिन में। (सायपूर्वक) **सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने।** दिन के अन्तिम भाग में।*

*सिद्धि-**द्व्यह्नि।** यहां द्वि और अहन् शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५०) से द्विगुतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से भव-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय और उसका **'द्विगोर्लुगनपत्ये'** (४।१।८८) से लुक् होता है। **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय और **'अह्नोऽह्न एतेभ्यः'** (५।४।८८) से अह्न आदेश होता है। 'ङि' प्रत्यय परे होने पर **'विभाषा ङिश्योः'** (६।४।१३६) से विकल्प से अहन् के अकार का लोप होता है-**द्व्यह्नि।** जहां विकल्प पक्ष में अकार का लोप नहीं है वहां-**द्व्यहनि।** जहां अहन् आदेश नहीं होता है वहां-**द्व्यह्ने।***

*यहां 'आद्गुणः' (६।१।८७) से ङि' प्रत्यय को गुणरूप एकादेश है। ऐसे ही-**त्र्यह्नि, त्र्यहनि, त्र्यह्ने।***

*(२) **व्यह्नि।** यहां वि और अहन् शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सायाह्नि।** यहां सायम् और अहन् शब्दों का **'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे'** (२।२।१) से एकदेशितत्पुरुष समास है। 'सायम्' शब्द इस सूत्र में पठित नहीं है किन्तु सूत्रोक्त ज्ञापक से सायंपूर्वक तथा पूर्वादि से अन्यपूर्वक का भी एकदेशितत्पुरुष समास होता है जैसे-**मध्याह्न** आदि। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

दीर्घ-आदेशः-

(३४) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः।१११।

प०वि०-ढ्रलोपे ७।१ पूर्वस्य ६।१ दीर्घः १।१ अणः ६।१।

स०-ढश्च रश्च तौ ढ्रौ, तयोः-ढ्रोः। ढ्रोर्लोपो यस्मिन् स ढ्रलोपः, तस्मिन्-ढ्रलोपे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-उत्तरपदे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वस्याणो ढ्रलोपे उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-पूर्वस्याणो ढ्रकारलोपे रेफलोपे चोत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(ढलोपः) लीढम्। मीढम्। उपगूढम्। मूढः। **(रलोपः)** नीरक्तम्। अग्नी रथः। इन्दू रथः। पुना रक्तं वासः। प्राता राजक्रयः।

अत्र सूत्रे पूर्वग्रहणादनुत्तरपदेऽपि पूर्वमात्रस्याणो दीर्घो भवति। ढलोप-उत्तरपदेन सह न युज्यते, तत्र ढलोपस्यासम्भवात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण को (ढ्रलोपे) ढकार और रेफ लोपवाला (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है।*

*उदा०-(ढलोप) **लीढम्।** आस्वादित किया हुआ (चखा हुआ)। **मीढम्।** सींचा हुआ। **उपगूढम्।** संवृत किया हुआ (ढका हुआ)। **मूढः।** मूर्ख। **(रलोप) नीरक्तम्।** रक्त से निष्क्रान्त=निकला हुआ। **अग्नी रथः।** अग्नि, रथ। **इन्दू रथः।** इन्दु=चन्द्रमा, रथ। **पुना रक्तं वासः।** पुनः रंगा हुआ कपड़ा। **प्राता राजक्रयः।** प्रातःकाल, राजक्रय।*

यहां सूत्र में 'पूर्वस्य' के ग्रहण करने से अनुत्तरपद में भी पूर्वमात्र अण् को दीर्घ होता है। ढलोप का उत्तरपद के साथ योग नहीं है क्योंकि वहां ढलोप सम्भव नहीं।

सिद्धि-(१) लीढम्। लिह्+क्त। लिह्+त। लिढ+ध। लिढ्+ढ। लि०+ढ। लीढ+सु। लीढम्।

यहां 'लिह आस्वादने' (अदा०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से लिह् के हकार को ढकार, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से क्त के तकार को धकार, 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से धकार को ढकार और 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से ढकार परे होने पर पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। इस सूत्र से ढलोप परे होने पर 'लिह्' के पूर्ववर्ती इकार अण् को दीर्घ होता है।

(२) मीढम्। यहां 'मिह सेचने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) उपगूढम्। यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'गुहू संवरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) मूढः। यहां 'मुह वैचित्त्ये' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।

(५) नीरक्तम्। यहां निर् और रक्त शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) प्रादितत्पुरुष समास है। 'रो रि' (८।३।१४) से 'रक्त' का रेफ परे होने पर पूर्ववर्ती रेफ का लोप होता है। इस सूत्र से रेफलोपी रक्त उत्तरपद परे होने पर पूर्ववर्ती इकार अण् को दीर्घ होता है।

ऐसे ही-अग्निर्+रथः। अग्नि०+रथः। अग्नी रथः। इन्दुर्+रथः। इन्दु०+रथः। इन्दू रथः।। पुनर्+रक्तम्। पुन०+रक्तम्। पुना रक्तम्।। प्रातर्+राजक्रयः। प्रात०+राजक्रयः। प्राता राजक्रयः।।

ओकार आदेशः-

(३५) सहिवहोरोदवर्णस्य।११२।

प०वि०-सहि-वहोः ६।२ ओत् १।१ अवर्णस्य ६।१।

स०-सहिश्च वह् च तौ सहिवहौ, तयोः-सहिवहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अश्चासौ वर्ण इति अवर्णः, तस्य-अवर्णस्य (कर्मधारयः)।

अनु०-उत्तरपदे इति नानुवर्तते, अर्थासम्भवात्, ढ्रलोपे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सहिवहोरवर्णस्य ढ्रलोपे परत ओकारादेशो भवति।

उदा०-**(सहिः)** सोढा, सोढुम्, सोढव्यम्। **(वह्)** वोढा, वोढुम्, वोढव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सहिवहोः) सह और वह धातुओं के (अवर्णस्य) अकार के स्थान में (ढ्रलोपे) ढकारलोपी और रेफलोपी वर्ण परे होने पर (ओत्) ओकार आदेश होता है।*

उदा०-(सहि) ***सोढा।*** *सहन करनेवाला।* ***सोढुम्।*** *सहन करने के लिये।* ***सोढव्यम्।*** *सहन करनेवाला। (वह्)* ***वोढा।*** *वहन करनेवाला।* ***वोढुम्।*** *वहन करने के लिये।* ***वोढव्यम्।*** *वहन करना चाहिये।*

*'**ढ्रलोपे**' यह एक पद है अतः एकपद के वशीभूत हुई रलोप की अनुवृत्ति की जाती है किन्तु सह और वह धातुओं में रलोप का सम्भव नहीं है।*

सिद्धि-(१) सोढा। *सह्+तृच्। सह+तृ। सढ्+धृ। सद्+ढृ। स०+ढृ। सो+ढृ। सोढृ+सु। सोढ् अनङ्+सु। सोढन्+सु। सोढान्+सु। सोढान्+०। सोढा०। सोढा।*

*यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से 'सह्' धातु के हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तृच् के तकार को धकार, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को ढकार और 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से ढकार परे होने पर सह् के पूर्ववर्ती ढकार का होता है। इस सूत्र से 'सह्' के अकार को ओकार आदेश होता है। '**ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च**' (७।१।९४) से अनङ्, '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्**०' (६।१।६८) से सु का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से-**वोढा।***

(२) ***सोढुम्।*** *यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से तव्यत् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से-**वोढव्यम्।***

निपातनम्–

(३६) साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे।११३।

प०वि०-साढ्यै अव्ययपदम्, साढ्वा अव्ययपदम्, साढा १।१ इति अव्ययपदम्, निगमे ७।१।

अर्थः-निगमे साढ्यै, साढ्वा, साढा इत्येते शब्दा निपात्यन्ते।

उदा०-साढ्यै समन्तात् (मै०सं० १।६।३)। साढ्वा शत्रून् (मै०सं० ३।८।५)। साढा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निगमे) वेदविषय में (साढ्यै) साढ्यै (साढ्वा) साढ्वा और (साढा) साढा (इति) ये शब्द निपातित हैं।*

*उदा०-**साढ्यै समन्तात्** (मै०सं० १।६।३)। सब ओर से सहन करके। **साढ्वा शत्रून्** (मै०सं० ३।८।५)। शत्रुओं का मर्षण करके। **साढा**। सहन करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **साढ्यै**। सह्+क्त्वा। सह्+त्वा। सढ्+ध्यै। सढ्+ढ्यै। स०+ढ्यै। सा+ढ्यै। साढ्यै+सु। साढ्यै।*

*यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान में ध्यै-आदेश निपातित है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से 'ध्यै' के धकार को ढकार, '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से सढ् के ढकार का लोप और '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से सह् के अकार अण् को दीर्घ होता है। वेद में '**सहिवहोरोदवर्णस्य**' (६।३।११२) से अवर्ण को ओकार आदेश नहीं होता है।*

*(२) **साढ्वा**। यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'क्त्वा' के स्थान में ध्यै-आदेश नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साढा**। यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।११३) से 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

।। इति आदेशप्रकरणम्।।

संहिताधिकारीयदीर्घप्रकरणम्

संहिता-अधिकारः-

(१) संहितायाम्।११४।

प०वि०-संहितायाम् ७।१।

अर्थः-'संहितायाम्' इत्यधिकारोऽयम् आ पादपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे वक्ष्यति 'संहितायाम्' इति तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-'**द्व्यचोऽतस्तिङः**' (६।३।१३५) इति। विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् (ऋ० १०।४७।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) 'संहितायाम्' यह अधिकार सूत्र है, इसका इस पाद की समाप्ति तक अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वह संहिता विषय में जानना चाहिये। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-'**द्व्यचोऽतस्तिङः**' (६।३।१३५) अर्थात् ऋग्वेद में दो अचोंवाले तिङन्त शब्द के अकार को दीर्घ होता है, जैसे- **विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्** (ऋ० १०।४७।१)।*

सिद्धि- 'विद्मा' इस पद की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

दीर्घः–

(२) कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्न-च्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य।११५।

प०वि०-कर्णे ७।१ लक्षणस्य ६।१ अविष्ट-अष्ट-पञ्च-मणि-भिन्न-छिन्न-छिद्र-स्रुव-स्वस्तिकस्य ६।१।

स०-विष्टं च अष्ट च पञ्च च मणिश्च भिन्नं च छिन्नं च छिद्रं च स्रुवश्च स्वस्तिकं च एतेषां समाहारोऽविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्न-च्छिद्रस्रुवस्वस्तिकम्, न विष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकमिति अविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकम्, तस्य अविष्टाष्टपञ्च-मणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुव-स्वस्तिकस्य लक्षणस्य पूर्वस्याणः कर्णे उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुव-स्वस्तिकस्य लक्षणवाचिनः शब्दस्य पूर्वस्याणः कर्णशब्दे उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-दात्रं कर्णे यस्य सः-दात्राकर्णः। द्विगुणाकर्णः। त्रिगुणाकर्णः। द्व्यङ्गुलाकर्णः। त्र्यङ्गुलाकर्णः।

"यत् पशूनां स्वामिविशेषसम्बन्धज्ञापनार्थं दात्राकारादि क्रियते तदिह लक्षणं गृह्यते" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) संहिता विषय में (अविष्ट०स्वस्तिकस्य) विष्ट, अष्ट, पञ्च, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव और स्वस्तिक शब्दों से भिन्न (लक्षणस्य) लक्षणवाची शब्द के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (कर्णे) कर्ण शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**दात्राकर्णः।** वह पशु की जिसके कान पर दांती का लक्षण (चिह्न) है। **द्विगुणाकर्णः।** कान पर दो ओर से मुड़े हुये लक्षणवाला पशु। **त्रिगुणाकर्णः।** कान पर तीन ओर से मुड़े हुये लक्षणवाला पशु। **द्व्यङ्गुलाकर्णः।** कान पर दो अंगुलियों के लक्षणवाला पशु। **त्र्यङ्गुलाकर्णः।** कान पर तीन अंगुलियों के लक्षणवाला पशु।*

*सिद्धि-**दात्राकर्णः**। यहां दात्र और कर्ण शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से लक्षणवाची दात्र शब्द के कर्ण-शब्द उत्तरपद होने पर पूर्ववर्ती अण् अकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**द्विगुणाकर्णः** आदि।*

दीर्घः--

(३) नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ।११६।

प०वि०-नहि-वृति-वृषि-व्यधि-रुचि-सहि-तनिषु ७।३ क्वौ ७।१।

स०-नहिश्च वृतिश्च वृषिश्च व्यधिश्च रुचिश्च सहिश्च तनिश्च ते नहि०तनयः, तेषु-नहि०तनिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-उत्तरपदे, पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वस्याणः क्वौ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु उत्तरपदेषु दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वस्याणः क्विप्-प्रत्ययान्तेषु नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु उत्तरपदेषु परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(**नहिः**) उपनह्यते इति उपानत्। परिणह्यतीति परीणत्। (**वृतिः**) निवर्तते इति नीवृत्। (**वृषिः**) प्रवर्षतीति प्रावृट्। (**व्यधिः**) मर्माणि विध्यतीति मर्मावित्। (**रुचिः**) निरोचणमिति नीरुक्। (**सहिः**) ऋतिं सहते इति ऋतीषट्। (**तनिः**) परितनोतीति परीतत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (क्वौ) क्विप्-प्रत्ययान्त (नहि०तनिषु) नहि, वृति, वृषि, व्यधि, रुचि, सहि, और तनि (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(नहि) **उपानत्**। जूता। **परीणत्**। परिबन्धक। (वृति) **नीवृत्**। आबाद स्थान। (वृषि) **प्रावृट्**। वर्षा ऋतु। (व्यधि) **मर्मावित्**। मर्मस्थलों को बींधनेवाला शस्त्र। (रुचि) **नीरुक्**। मन्द दीप्ति। (सहि) **ऋतीषट्**। निन्दा को सहन करनेवाला। (तनि) **परीतत्**। विस्तारक।*

*सिद्धि-(१) **उपानत्**। यहां उप और नत् शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'नत्' शब्द में '**णह बन्धने**' (दि०प०) धातु से वा०-'**सम्पदादिभ्यः क्विप्**' (३।३।९४) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**नहो धः**' (८।२।२४) से 'नह' धातु के हकार को धकार, '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३८) से धकार को 'जश्' हकार और*

'**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होता है। इस सूत्र से क्विबन्त नत्-शब्द उत्तरपद होने पर पूर्ववर्ती उप के अण् अकार को दीर्घ होता है।

(२) **परीणत्।** यहां परि और नत् शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। यहां नत् शब्द में '**णह बन्धने**' (दि०प०) धातु से '**अन्येभ्योऽपि दृश्यते**' (३।२।७५) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य**' (८।४।१४) से णत्व होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(३) **नीवृत्।** यहां नि और वृत् शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। 'वृत्' शब्द में '**वृतु वर्तने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(४) **प्रावृट्।** यहां प्र और वृट् शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। '**वृषु सेचने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३८) से वृष् के षकार को जश् डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(५) **मर्मावित्।** यहां मर्म और वित् शब्दों का '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। 'वित्' शब्द में '**व्यध ताडने**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। '**ग्रहिज्यावयिव्यधि०**' (६।१।१६) से 'व्यध्' धातु के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। धकार को पूर्ववत् जश् हकार और दकार को चर् तकार होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(६) **नीरुक्।** यहां नि और रुक् शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। रुक्-शब्द में '**रुच दीप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। 'रुच्' धातु के चकार को '**चोः कुः**' (८।२।३०) से कुत्व ककार होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(७) **ऋतीषट्।** यहां ऋति और षट् शब्दों का पूर्ववत् उपपदतत्पुरुष समास है। 'षट्' शब्द में '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से 'सह' धातु के हकार को ढकार, '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३८) से ढकार को जश् डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है। '**सहेः पृतनर्ताभ्यां च**' (८।३।१०९) में योगविभाग से 'सह' को षत्व होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

(८) **परीतत्।** यहां परि और तत् शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। 'तत्' शब्द में '**तनु विस्तारे**' (तना०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। **वा०- 'गमादीनामिति वक्तव्यम्**' (६।४।४०) से 'तन्' के अनुनासिक नकार का लोप तथा '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७१) से तुक् आगम होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

दीर्घः–

(४) वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्।११७।

प०वि०–वन-गिर्योः ७।२ संज्ञायाम् ७।१ कोटर-किंशुलका-दीनाम् ६।३।

स०–वनं च गिरिश्च तौ वनगिरी, तयोः–वनगिर्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। कोटरश्च किंशुलकश्च तौ कोटरकिंशुलकौ, कोटरकिंशुलकौ आदी येषां ते कोटरकिंशुलकादयः, तेषाम्–कोटरकिंशुलकादीनाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–उत्तरपदे, पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां संज्ञायां च कोटरकिंशुलकादीनां पूर्वस्याणो वनगिर्योरुत्तरपदयोर्दीर्घः।

अर्थः–संहितायां संज्ञायां च विषये कोटरादीनां किंशुलकादीनां च शब्दानां पूर्वस्याणो यथासंख्यं वनशब्दे गिरिशब्दे चोत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०–**(कोटरादयः)** कोटरावणम्, मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, सारिकावणम्। **(किंशुलकादयः)** किंशुलकागिरिः, अञ्जनागिरिः।

(१) कोटर। मिश्रक। पुरक। सिध्रक। सारिक। इति कोटरादयः।।

(२) किंशुलक। शाल्वक। अञ्जन। भञ्जन। लोहित। कुक्कुट। इति किंशुलकादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (कोटरकिंशुलकादीनाम्) कोटर आदि और किंशुल आदि सम्बन्धी (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (वनगिर्योः) यथासंख्य वन और गिरि शब्द उत्तरपद होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–(कोटरादि) **कोटरावणम्।** कोटरावण नामक जंगल। **मिश्रकावणम्।** मिश्रकावण नामक जंगल। **सिध्रकावणम्।** सिध्रका नामक जंगल। **सारिकावणम्।** सारिकावण नामक जंगल। (किंशुलकादि) **किंशुलकागिरिः।** किंशुलकागिरि नामक पहाड़। **अञ्जनागिरिः।** अञ्जनागिरि नामक पहाड़।*

*सिद्धि-(१) कोटरावणम्। यहां कोटर और वन शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में कोटर शब्द के पूर्ववर्ती अण् अकार का वन उत्तरपद होने पर दीर्घ होता है। 'वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः' (८।४।४) से 'वन' के नकार को णत्व होता है। ऐसे ही-**मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, सारिकावणम्।***

*(२) **किंशुलकागिरिः।** यहां किंशुलका और गिरि शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में किंशुलक शब्द के पूर्ववर्ती अण् अकार को गिरि-शब्द उत्तरपद परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**अञ्जनागिरिः।***

***विशेषः** (१) **कोटरावण**-यह लखीमपुर जिले का कोई जंगल ज्ञात होता है जहां कोटरा नामक रियासत है। यहां अधिकतर साखू और शीशम के वृक्ष हैं।*

*(२) **मिश्रकावण**-यह नैमिषारण्य के पास वर्तमान मिसरिख ज्ञात होता है, जो अब नीमखार मिसरिख (सीतापुर से १३ मील दक्षिण) कहलाता है।*

*(३) **सिध्रकावण**-यह सिध्रक नाम की लकड़ियों का वन था। सामविधान ब्राह्मण में सैध्रकमयी समिधाओं को घी में डुबाकर सहस्र आहुतियों से हवन करने का उल्लेख है।*

*(४) **सारिकावण**-यह आर्वाचीन सारन (बिहार) का पुराना नाम जान पड़ता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४८)।*

*(५) **किंशुलकागिरि**-पलाश के वृक्षों का पहाड़। "भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर पर अफगानिस्तान से बलूचिस्तान तक उत्तर-दक्खिन दौड़ती हुई पहाड़ों की जो ऊंची दीवार है, उसी की बड़ी चोटियों में से किसी का नाम" (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४८)।*

*(६) **अञ्जनागिरि**-त्रिककुत् पर्वत, जहां का प्रसिद्ध अंजन वैदिककाल से ही सारे पंजाब में जाता था। यही पाणिनि का अंजनागिरि है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४८)।*

दीर्घः-

(५) वले।११८।

प०वि०-वले ७।१।

अनु०-पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायाम्, संज्ञायामिति चानुवर्तते। 'वलच्' इत्यत्र प्रत्ययोऽत 'उत्तरपदे' इति नानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां पूर्वस्याणो वले दीर्घः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये पूर्वस्याणो वले परतो दीर्घो भवति।

उदा०-दन्तावलः, कृषीवलः, आसुतीवलः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (वले) वलच् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**दन्तावलः**। बड़े दांतोंवाला-हाथी। **कृषीवलः**। कृषिवाला-किसान। आसुतीवलः। आसववाला-शौण्डिक (शराब बेचनेवाला)।*

*सिद्धि-(१) **दन्तावलः**। यहां दन्त शब्द से '**दन्तशिखात् संज्ञायाम्**' (५।२।११३) से मतुप्-अर्थ में वलच् प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में पूर्ववर्ती अकार अण् को वलच् प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है।*

*(२) **कृषीवलः**। यहां कृषि शब्द से '**रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्**' (५।२।११२) से वलच् प्रत्यय है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आसुतीवलः**।*

विशेषः *यहां 'वलच्' प्रत्यय है, अतः 'उत्तरपदे' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है।*

दीर्घः-

(६) मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्।११६।

प०वि०-मतौ ७।१ बह्वचः ६।१ अनजिरादीनाम् ६।३।

स०-बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्य-बह्वचः (बहुव्रीहिः)। अजिर आदिर्येषां ते अजिरादयः, न अजिरादय इति अनजिरादयः, तेषाम्-अनजिरादीनाम् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायाम्, संज्ञायामिति चानुवर्तते। 'मतुप्' इत्यत्र प्रत्ययोऽस्त उत्तरपदे इति नानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां अनजिरादीनां बह्वचः पूर्वस्याणो मतौ दीर्घः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषयेऽजिरादिवर्जितस्य बह्वचः शब्दस्य पूर्वस्याणो मतौ परतो दीर्घो भवति।

उदा०-उदुम्बरा यस्यां सन्तीति उदुम्बरावती। मशकावती। वीरणावती। पुष्करावती। अमरावती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविष्य में (अनजिरादीनाम्) अजिर-आदि शब्दों से भिन्न (बह्वचः) बहुत अचोंवाले शब्द के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (मतौ) मतुप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**उदुम्बरावती**। **मशकावती**। **वीरणावती**। **पुष्करावती**। **अमरावती**। ये नदीविशेष के संयोग से देशविशेष की संज्ञायें हैं।*

*सिद्धि-**उदुम्बरावती**। यहां उदुम्बर शब्द से '**नद्यां मतुप्**' (४।२।८५) से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय है। '**संज्ञायाम्**' (८।२।११) से मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में बहुत अचोंवाले उदुम्बर शब्द के पूर्ववर्ती अकार अण् को मतुप् प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**मशकावती** आदि।*

***विशेषः** (१) **उदुम्बरावती**-व्यास और रावी के बीच में त्रिगर्त (कांगड़ा) का जहां से रास्ता गया है, वहां गुरुदासपुर, पठानकोट और नूरपुर इलाके में औदुम्बरों के सिक्के मिले हैं। औदुम्बरों (क्षत्रिय) के देश की ही किसी नदी का नाम उदुम्बराती होना चाहिये।*

*(२) **मशकावती**। मशकावती नाम मस्सग या मस्सक से सम्बन्धित है जो गंधार के आश्वकायनों की राजधानी थी। यूनानियों के अनुसार मस्सग का किला पहाड़ी था, जिसके नीचे नदी बहती थी। अश्वक लोग स्वात नहीं के कांठे पर रहते थे उन्होंने दुरासह मशकावती (मस्सक) के दुर्ग में युद्ध का साज सजाकर अभियान करते हुए सिकन्दर का मार्ग छेद दिया था।*

*(३) **वीरणावती**-वीरणावती नदी ही प्राचीन वरणावती ज्ञात होती है, आश्वकायनों की शान्तिकाल की राजधानी मशकावती थी किन्तु संकटकाल के लिये सुदृढ़ पहाड़ी दुर्ग 'वरणा' था। इसी के पास वरणावती नदी होनी चाहिये।*

*(४) **पुष्करावती**-सुवास्तु और कुंभा के संगम पर स्थित पच्छिमी गन्धार की राजधानी थी जिसके प्राचीन अवशेष आधुनिक चारसदा और प्राङ् में पाये गये हैं। इस दृष्टि से संभव है गौरीसुवास्तु संगम तक की सम्मिलित धारा पुष्कलावती कही जाती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ५४-५५)*

*(५) **अमरावती**-इन्द्र की पुरी का नाम है।*

(६) यहां 'मतुप्' प्रत्यय है, अतः 'उत्तरपदे' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है।

दीर्घः-

(७) शरादीनां च।१२०।

प०वि०-शर-आदीनां ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-शर आदिर्येषां ते शरादयः, तेषाम्-शरादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, संहितायाम्, संज्ञायाम्, मताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां शरादीनां च मतौ दीर्घः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये शरादीनां च शब्दानां पूर्वस्याणो मतौ परतो दीर्घो भवति।

उदा०-शरा यस्यां सन्तीति शरावती, वंशावती, इत्यादिकम्।

शर। वंश। धूम। अहि। कपि। मणि। मुनि। शुचि। इति शरादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (शरादीनाम्) शर आदि शब्दों के (च) भी (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (मतौ) मतुप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

उदा०-शरावती, वंशावती इत्यादि।

*सिद्धि-**शरावती**। यहां शर शब्द से **'नद्यां मतुप्'** (४।२।८५) से मतुप् प्रत्यय है। **'संज्ञायाम्'** (८।२।११) से मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है। ऐसे ही-**वंशावती**।*

विशेषः *(१) शरावती-कुरुक्षेत्र की घग्घर नदी के साथ इसकी पहचान की गई है। यह भारत के प्राच्य और उदीच्य देशों की बीच की सीमा थी।*

(२) यहां 'मतुप्' प्रत्यय है, अतः 'उत्तरपदे' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है।

दीर्घः-

(८) इको वहेऽपीलोः।१२१।

प०वि०-इकः ६।१ वहे ७।१ अपीलोः ६।१।

स०-न पीलुरिति अपीलुः, तस्य-अपीलोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अपीलोरिको वहे उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-पीलुवर्जितस्य इगन्तस्य पूर्वपदस्य वह-शब्दे उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-ऋषेर्वहमिति ऋषीवहम्। मुनीवहम्। कपीवहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (अपीलोः) पीलु शब्द से भिन्न (इकः) इगन्त पूर्वपद को (वहे) वह-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**ऋषीवहम्**। ऋषि की सवारी (घोड़ा आदि)। **मुनीवहम्**। मुनि की सवारी। **कपीवहम्**। वानरों की गाड़ी।*

*सिद्धि-**ऋषीवहम्**। यहां ऋषि और वह शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'वह' शब्द में **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'नन्दिग्रहि०'** (३।१।१३४) से पचादि-अच् प्रत्यय है। इस सूत्र से इगन्त 'ऋषि' पूर्वपद को 'वह' उत्तरपद परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**मुनीवहम्, कपीवहम्**।*

दीर्घः-

(६) उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्।१२२।

प०वि०-उपसर्गस्य ६।१ घञि ७।१ अमनुष्ये ७।१ बहुलम् १।१।

स०-न मनुष्य इति अमनुष्यः, तस्मिन्-अमनुष्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घः, अण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्याणो घञि उत्तरपदे बहुलं दीर्घः, अमनुष्ये।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्याणो घञन्ते शब्दे उत्तरपदे परतो बहुलं दीर्घो भवति, अमनुष्येऽभिधेये।

उदा०-विक्लिद्यते येन सः-वीक्लेदः। वीमार्गः। अपामार्गः। बहुलवचनान्न च भवति-प्रसेवः, प्रसारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (अणः) अण् को (घञि) घञ्-प्रत्ययान्त शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (बहुलम्) प्रायशः (दीर्घः) दीर्घ होता है (अमनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय न हो।*

*उदा०-विक्लेदः। आर्द्रीभाव को दूर करने का साधन। **वीमार्गः**। विशुद्धि का साधन। **अपामार्गः**। विष आदि को दूर करने का साधन ओषधिविशेष (चिरचिटा)। बहुलवचन से कहीं दीर्घ नहीं भी होता है-**प्रसेवः**। थैला आदि। **प्रसारः**। फैलाव।*

*सिद्धि-(१) **विक्लेदः**। यहां 'वि' और 'क्लेद' शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'वि' उपसर्ग के अण् इकार को घञन्त 'क्लेद' शब्द उत्तरपद परे होने पर दीर्घ हेत है। 'क्लेद' शब्द में **'क्लिदू आर्द्रीभावे'** (दि०प०) धातु से 'हलश्च' (३।३।१२१) से संज्ञाविषय में 'घञ्' प्रत्यय है।*

*(२) **वीमार्गः**। यहां 'वि' और 'मार्ग' शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। 'मार्ग' शब्द में **'मृजूष शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'मृज्' धातु के जकार को कुत्व गकार होता है। ऐसे ही-**अपामार्गः**।*

*(३) **प्रसेवः**। यहां 'प्र' और 'सेव' शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। यहां बहुलवचन से उपसर्ग को दीर्घ नहीं होता है। 'सेव' शब्द में **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से 'घञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'प्र' उपसर्गपूर्वक **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**प्रसारः**।*

*यहां अमनुष्य का कथन इसलिये किया गया है कि यहां दीर्घ न हो-**निषादो मनुष्यः**।*

दीर्घः–

(१०) इकः काशे।१२३।

प०वि०–इकः ६।१ काशे ७।१।

अनु०–उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घः, उपसर्गस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इक उपसर्गस्य काशे उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः–संहितायां विषये इगन्तस्य उपसर्गस्य काश-शब्दे उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०–निगतः काश इति नीकाशः। विगतः काश इति वीकाशः। अनुगतः काश इति अनूकाशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (इकः) इगन्त (उपसर्गस्य) उपसर्ग को (काशे) काश-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**नीकाशः**। निम्न दीप्तिवाला। **वीकाशः**। अतीत दीप्तिवाला। **अनूकाशः**। अनुकूल दीप्तिवाला (दीपक आदि)।*

सिद्धि-नीकाशः। *यहां 'नि' और 'काश' शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'काश' शब्द में **'काशृ दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'नन्दिग्रहि०'** (३।१।१३४) से पचादि-अच् प्रत्यय हे, 'घञ्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-**वीकाशः, अनूकाशः**।*

दीर्घः–

(११) दस्ति।१२४।

प०वि०–दः ६।१ ति ७।१।

अनु०–उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घः, उपसर्गस्य, इक इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इक उपसर्गस्य दस्ति उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः–संहितायां विषये इगन्तस्य उपसर्गस्य दा-स्थाने यस्तकारादि-रादेशस्तस्मिन् उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०–नीत्तम्, वीत्तम्, परीत्तम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (इकः) इगन्त (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (दा) दा धातु को (ति) जो तकारादि आदेश है उस (उत्तरपदे) उत्तरपद के परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**नीत्तम्**। निम्न दान। **वीत्तम्**। विशेष दान। **परीत्तम्**। सर्वतः दान।*

सिद्धि-नीत्तम्। नि+दा+क्त। नि+दा+त। नि+द् त्+त्। नि+तत्+त। नि+त्०+त। नीत्त+सु। नीत्तम्।

यहां 'नि' और 'त्त' शब्दों का *'कुगतिप्रादयः'* (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'त्त' शब्द में *'डुदाञ् दाने'* (जु०उ०) धातु से *'नपुंसके भावे क्तः'* (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। *'अच उपसर्गात् तः'* (७।४।४७) से 'दा' धातु के अन्त्य आकार को तकार-आदेश होता है तत्पश्चात् *'खरि च'* (८।४।५५) से दकार को चर् तकार आदेश होता है। *'झरो झरि सवर्णे'* (८।४।६५) से अन्त्य तकार को लोप हो जाता है। इस सूत्र से इगन्त 'नि' उपसर्ग को दा-धातुसम्बन्धी तकारादि आदेश के उत्तरपद में होने पर दीर्घ होता है।

विशेषः यद्यपि *'अच उपसर्गात्तः'* (७।४।४७) से 'दा' धातु के अन्त्य आकार को तकार आदेश होता है किन्तु दकार को *'खरि च'* (८।४।५५) से विहित तकार को मानकर यह तकारादि आदेश है। इस सूत्र से दीर्घविधि करते समय चर्त्व से विहित तकार असिद्ध नहीं होता है, अपितु दीर्घ-आश्रय से सिद्ध माना जाता है, यदि उक्त तकार आदेश असिद्ध हो जाये तो यह दीर्घविधान अनर्थक हो जायेगा।

दीर्घः-

(१२) अष्टनः संज्ञायाम्।१२५।

प०वि०-अष्टनः ६।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायाम् अष्टन उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषयेऽष्टन्-शब्दस्य उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-अष्टौ वक्राणि यस्य सः-अष्टावक्रः। अष्टाबन्धुरः। अष्टापदम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (अष्टनः) **अष्टन्** शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**अष्टावक्रः।** अष्टावक्र नामक ऋषि। **अष्टाबन्धुरः।** आठ अंगों में लहराता हुआ-हंस। **अष्टापदम्।** आठ चरणोंवाला।*

सिद्धि-अष्टावक्रः। यहां अष्टन् और वक्र शब्दों का *'अनेकमन्यपदार्थे'* (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में अष्टन् शब्द को उत्तरपद परे होने पर दीर्घ होता है। *'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'* (८।२।७) से नकार का लोप हो जाता है। ऐसे ही-*अष्टाबन्धुरः, अष्टापदम्।*

दीर्घः–

(१३) छन्दसि च।१२६।

प०वि०–छन्दसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घः, अष्टन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च अष्टन उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये अष्टन्-शब्दस्य उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०–आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् (मै०सं० २।१।३)। अष्टाहिरण्या दक्षिणा। अष्टापदी देवता सुमती।

आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(संहिता) संहिता और (छन्दसि) वेदविषय में (च) भी (अष्टनः) अष्टन् शब्द को (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।

*उदा०-**आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्** (मै०सं० २।१।३)। **अष्टाहिरण्या दक्षिणा। अष्टापदी देवता सुमती।***

*सिद्धि-(१) **अष्टाकपालम्।** यहां अष्ट और कपाल शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धित-अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है-**अष्टसु कपालेषु संस्कृतमिति अष्टाकपालम्।** 'संस्कृतं भक्षाः' (४।२।१६) से संस्कृत-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और उसका **'द्विगोर्लुगनपत्ये'** (४।१।८८) से लुक् होता है। इस सूत्र से वेदविषय में अष्टन् शब्द को कपाल उत्तरपद होने पर दीर्घ होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(२) **अष्टाहिरण्या।** यहां अष्टन् और हिरण्य शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है-**अष्टौ हिरण्यानि यस्यां सा-अष्टाहिरण्या।** स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अष्टापदी।** यहां अष्टन् और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है-**अष्टौ पादा यस्या सा-अष्टापदी। 'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः'** (५।४।१३८) से पाद शब्द के अकार का समासान्त-लोप और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'पादोऽन्यतरस्याम्'** (४।१।८) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

दीर्घः–

(१४) चितेः कपि।१२७।

प०वि०–चितेः ६।१ कपि ७।१।

अनु०–पूर्वस्य, अणः, दीर्घः, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां चितेः पूर्वस्याणः कपि दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषये चिति-शब्दस्य पूर्वस्याणः कपि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-एका चितिर्यस्य स एकचितीकः, द्विचितीकः, त्रिचितीकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (चितेः) चिति शब्द के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (कपि) कप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**एकचितीकः**। एक चिति=राशि (ढेर) वाला। **द्विचितीकः**। दो राशियों वाला। **त्रिचितीकः**। तीन राशियों वाला।*

***सिद्धि**-एकचितीकः। यहां एक और चिति शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'एकचिति' शब्द में '**स्त्रियाः पुंवत्०**' (६।३।३२) से पुंवद्भाव और 'शेषाद् विभाषा' (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से चिति शब्द के पूर्ववर्ती अण् (इकार) को कप् प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**द्विचितीकः, त्रिचितीकः**।*

दीर्घः-

(१५) विश्वस्य वसुराटोः।१२८।

प०वि०-विश्वस्य ६।१ वसु-राटोः ७।२।

स०-वसुश्च राट् च तौ वसुराटौ, तयोः-वसुराटोः।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विश्वस्य वसुराटोरुत्तरपदयोर्दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषये विश्व-शब्दस्य वसुराटोरुत्तरपदयोः परतो दीर्घो भवति।

उदा०-**(वसुः)** विश्वं वसु यस्य सः-विश्वावसुः। **(राट्)** विश्वस्मिन् राजते इति विश्वाराट्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (विश्वस्य) विश्व शब्द को (वसुराटोः) वसु और राट् शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(वसु) **विश्वावसुः**। विश्व=समस्त वसु=धनवाला ईश्वर। अमरावती में रहनेवाले एक गन्धर्व का नाम (श०कौ०)। (राट्) **विश्वाराट्**। विश्व में विराजमान ईश्वर।*

सिद्धि-(१) विश्वावसुः। यहां विश्व और वसु शब्दों क 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'विश्व' शब्द को 'वसु' उत्तरपद होने पर दीर्घ होता है।

(२) विश्वाराट्। यहां विश्व और राट् शब्दों का 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है। 'राट्' शब्द में 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'सत्सूद्विष०' (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है।

दीर्घः-

(१५) नरे संज्ञायाम्।१२९।

प०वि०-नरे ७।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, पूर्वस्य, दीर्घः, अणः, विश्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां विश्वस्य पूर्वस्याणो नरे उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये विश्व-शब्दस्य पूर्वस्याणो नर-शब्दे उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-विश्वानरो नाम कश्चित्, यस्य वैश्वानरिः पुत्रः।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में (विश्वस्य) विश्व शब्द के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (नरे) नर-शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।

*उदा०-**विश्वानरो नाम कश्चित्, यस्य वैश्वानरिः पुत्रः।** विश्वानर नामक कोई पुरुष है उसका पुत्र वैश्वानरि कहाता है। विश्वानर=सविता, इन्द्र, अग्नि के पिता, सबका नेता।*

सिद्धि-विश्वानरः। यहां विश्व और नर शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से संज्ञाविषय में विश्व शब्द के पूर्ववर्ती अण् अकार को उत्तरपद परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'विश्वानर' शब्द से 'अत इञ्' (४।१।७५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है-वैश्वानरिः।

दीर्घः-

(१६) मित्रे चर्षौ।१३०।

प०वि०-मित्रे ७।१ च अव्ययपदम्, ऋषौ ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, पूर्वस्य, अणः, दीर्घः, विश्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विश्वस्य पूर्वस्याणो मित्रे चोत्तरपदे दीर्घः, ऋषौ।

अर्थः-संहितायां विषये विश्वशब्दस्य पूर्वस्याणो मित्र-शब्दे चोत्तरपदे परतो दीर्घो भवति, ऋषावभिधेये।

उदा०-विश्वामित्रो नाम ऋषिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (विश्वस्य) विश्व-शब्द के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अण्) अण् को (मित्रे) मित्र शब्द (उत्तरपदे) उत्तरपद होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है (ऋषौ) यदि वहां ऋषि अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**विश्वामित्रो नाम ऋषिः।** विश्वामित्र नामक ऋषि। एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि जो गाधिज, गांगेय और कौशिक भी कहलाते हैं। आयुर्वेद-पारदर्शी सुश्रुत के पिता का नाम (श०कौ०)।*

दीर्घः-

(१७) मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ।१३१।

प०वि०-मन्त्रे ७।१ सोम-अश्व-इन्द्रिय-विश्वदेव्यस्य ६।१ मतौ ७।१।

स०-सोमश्च अश्वश्च इन्द्रियं च विश्वदेव्यं च एतेषां समाहारः सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यम्, तस्य-सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, पूर्वस्य, दीर्घः, अण इति चानुवर्तते। अत्र 'मतुप्' इति प्रत्ययोऽत उत्तरपदे इति नानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य पूर्वस्याणो मतौ दीर्घः।

अर्थः-संहितायां मन्त्रे च विषये सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यशब्दानां पूर्वस्याणो मतुप्-प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-**(सोमः)** सोमावती (ऋ० १०।९७।७)। **(अश्वः)** अश्वावती (ऋ० १०।९७।७)। **(इन्द्रियम्)** इन्द्रियावती (तै०सं० २।४।२।१)। **(विश्वदेव्यम्)** विश्वदेव्यावती (तै०सं० ४।१।६।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (मन्त्रे) मन्त्र विषय में (सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य) सोम, अश्व, इन्द्रिय और विश्वदेव्य शब्दों के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (मतौ) मतुप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(सोम) **सोमावती** (ऋ० १०।९७।७)। सोमवाली। (अश्व) **अश्वावती** (ऋ० १०।९७।७)। घोड़ोंवाली। (इन्द्रिय) **इन्द्रियावती** (तै०सं० २।४।२।१)। इन्द्रियोंवाली। (विश्वदेव्यम्) **विश्वदेव्यावती** (तै०सं० ४।१।६।१)। विश्वदेव्यवाली।*

*सिद्धि-**सोमावती**। यहां सोम शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।१।९६) से मतुप् प्रत्यय है। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' (८।२।९) से मतुप् के मकार को वकार आदेश होता है। प्रत्यय के उगित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'उगितश्च' (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से मन्त्र विषय में सोम शब्द के पूर्ववर्ती अण् (अकार) को मतुप् प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**अश्वावती, इन्द्रियावती, विश्वदेव्यावती**।*

***विशेषः** यहां 'मतुप्' प्रत्यय है, अतः 'उत्तरपदे' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है।*

दीर्घः-

(१८) ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम्।१३२।

प०वि०-ओषधेः ६।१ च अव्ययपदम्, विभक्तौ ७।१ अप्रथमा-याम् ७।१।

स०-न प्रथमा इति अप्रथमा, तस्याम्-अप्रथमायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, पूर्वस्य, अणः, दीर्घः, मन्त्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां मन्त्रे ओषधेश्चाप्रथमायां विभक्तौ दीर्घः।

अर्थः-संहितायां मन्त्रे च विषये ओषधि-शब्दस्य च प्रथमावर्जितायां विभक्तौ परतो दीर्घो भवति।

उदा०-ओषधीभिः पुनीतात् (ऋ० १०।३०।५)। नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः (तै०आ० २।१२।१)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (मन्त्रे) मन्त्र विषय में (ओषधेः) ओषधि शब्द को (च) भी (अप्रथमायाम्) प्रथमा से भिन्न (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता होता है।

*उदा०-**ओषधीभिः पुनीतात्** (ऋ० १०।३०।५)। ओषधियों से स्वयं को पवित्र (स्वस्थ) करें। **नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः** (तै०आ० २।१२।१)। पृथिवी को नमस्कार, ओषधियों को नमस्कार अर्थात् उनका यथावत् उपयोग करना चाहिये।*

*सिद्धि-**ओषधीभिः**। ओषधि+भिस्। ओषधीभिरु। ओषधीभीर्। ओषधीभिः।*

यहां 'ओषधि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। 'भिस्' की 'विभक्तिश्च' (१।४।१०४) से विभक्ति संज्ञा है। इस सूत्र से मन्त्र विषय में ओषधि

*शब्द को प्रथमा से भिन्न 'भिस्' तृतीया-विभक्ति (बहुवचन) परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही 'भ्यस्' प्रत्यय परे होने पर-**ओषधीभ्यः**।*

दीर्घः-

(१६) ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्।१३३।

प०वि०-ऋचि ७।१ तु-नु-घ-मक्षु-तङ्-कुत्र-उरुष्याणाम् ६।३।

स०-तुश्च नुश्च घश्च मक्षुश्च तङ् च कुत्रश्च उरुष्यश्च ते तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याः, तेषाम्-तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, दीर्घः, अण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् अणो दीर्घः।

अर्थः-संहितायाम् ऋचि च विषये तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणां शब्दानामणो दीर्घो भवति।

उदा०-(तु) आ तू न इन्द्र वृत्रहन् (ऋ० ४।३२।१)। **(नु)** नू करणे। **(घ)** उत वा घा स्यालात् (ऋ० १।१०९।२)। **(मक्षु)** मक्षू गोमन्तमीमहे (ऋ० ८।३३।३)। **(तङ्)** भरता जातवेदसम् (ऋ० १०।१७६।२)। **(कु)** कू मनः। **(त्र)** अत्रा गौः। **(उरुष्य)** उरुष्या णो अभिशस्तेः (ऋ० १।९१।१५)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (ऋचि) ऋग्वेद विषय में (तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्) तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कुत्र और उरुष्य शब्दों के (अणः) अण् को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-सब उदाहरण संस्कृतभाग में लिखे हैं। सूत्रोक्त पदों का अर्थ यह है-तु=किन्तु, प्रत्युत, और, अब, इस सम्बन्ध में, भेदसूचक। नु=सन्देह और अनिश्चितता सूचक अव्यय है, यह सम्भावना और अवश्य के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। घ=एव-अर्थक तथा अपि-अर्थक निपात है। मक्षु=शीघ्र। क्षिप्र-नाम (निघण्टु २।१५)। तङ्-थ-प्रत्यय के स्थान में त-आदेश है। कुत्र=कहां। **उरुष्य=पाहि** (तू रक्षा कर) 'उरुष रक्षायाम्' (कण्ड्वादि आकृतिगण से)।*

*सिद्धि-**तू**। 'तु' शब्द को इस सूत्र से ऋचा विषय में दीर्घ होता है-तू। ऐसे ही-'नू' आदि।*

दीर्घः–

(२०) इकः सुञि।१३४।

प०वि०–इकः ६।१ सुञि ७।१।

अनु०–उत्तरपदे, संहितायाम्, दीर्घः, ऋचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋचि इकः सुञि दीर्घः।

अर्थः–संहितायाम् ऋचि च विषये इगन्तस्य शब्दस्य सुञि परतो दीर्घो भवति।

उदा०–अभी षु णः सखीनाम् (ऋ० ४।३१।३)। ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये (ऋ० १।३६।१३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (ऋचि) ऋग्वेद विषय में (इकः) इगन्त शब्द को (सुञि) सु-शब्द परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**अभी षु णः सखीनाम्** (ऋ० ४।३१।३)। **ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (ऋ० १।३६।१३)।*

*सिद्धि–**अभी षु णः।** यहां इस सूत्र से इगन्त अभि शब्द को 'सु' शब्द परे होने पर दीर्घ होता है–**अभी।** 'सु' शब्द को 'सुञः' (८।३।१०५) से षत्व और 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' (८।४।२७) से 'नः' को णत्व होता है–**णः।** ऐसे ही–'**ऊ षु णः**'।*

दीर्घः–

(२१) द्व्यचोऽतस्तिङः।१३५।

प०वि०–द्व्यचः ६।१ अतः ६।१ तिङः ६।१।

स०–द्वावचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्य-द्व्यचः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, दीर्घः, ऋचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋचि द्व्यचस्तिङोऽतो दीर्घः।

अर्थः–संहितायाम् ऋचि च विषये द्व्यचस्तिङन्तस्य शब्दस्याकारस्य दीर्घो भवति।

उदा०–विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् (ऋ० १०।४७।१)। विद्मा शरस्य पितरम् (शौ०सं० १।२।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (ऋचि) ऋग्वेद विषय में (द्व्यचः) दो अचोंवाले (तिङः) तिङन्त शब्द के (अतः) अकार को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**विद्मा** हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् (ऋ० १०।४७।१)। **विद्मा** शरस्य पितरम् (शौ०सं० १।२।१)।*

*सिद्धि-**विद्मा।** यहां **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से लोट् प्रत्यय और इसके लकार के स्थान में **'तिप्तसझि०'** (३।४।७८) से 'मस्' आदेश है। **'नित्यं ङितः'** (३।४।९९) से मस् के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से दो अचोंवाले, तिङन्त 'विद्म' शब्द के अकार को दीर्घ होता है-**विद्मा।***

दीर्घः-

(२२) निपातस्य च।१३६।

प०वि०-निपातस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, दीर्घः, ऋचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् ऋचि निपातस्य च दीर्घः।

अर्थः-संहितायाम् ऋचि च विषये निपातस्य च दीर्घो भवति।

उदा०-एवा ते (ऋ० १०।२०।१०)। अच्छा जरितारः (ऋ० १।२।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता और (ऋचि) ऋग्वेद विषय में (निपातस्य) निपात-संज्ञक शब्द को (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**एवा** ते (ऋ० १०।२०।१०)। **अच्छा** जरितारः (१।२।२)। एव=निश्चयार्थक निपात है। अच्छ=उत्तमार्थक निपात है।*

*सिद्धि-**एवा।** 'एव' शब्द की **'चादयोऽसत्त्वे'** (१।४।५७) से निपात संज्ञा है। इस सूत्र से ऋग्वेद विषय में 'एव' निपात को दीर्घ होता है-**एवा।** ऐसे ही-**अच्छा।***

दीर्घः-

(२३) अन्येषामपि दृश्यते।१३७।

प०वि०-अन्येषाम् ६।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-संहितायाम्, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अन्येषामपि दीर्घः दृश्यते।

अर्थः-संहितायां विषयेऽन्येषामपि शब्दानां दीर्घो दृश्यते, यस्य शब्दस्य दीर्घत्वं न विहितं, शिष्टप्रयोगे च दृश्यते तस्यानेन साधुत्वं वेदितव्यम्।

उदा०-केशाकेशि। कचाकचि। नारकः। पूरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (अन्येषाम्) अन्य शब्दों को (अपि) भी (दीर्घः) दीर्घ (दृश्यते) देखा जाता है। जिस शब्द को पहले दीर्घ-विधान नहीं किया गया है, और शिष्ट प्रयोग में दीर्घ देखा जाता है, उसका इस सूत्र से साधुत्व जानें।*

*उदा०-**केशाकेशि।** परस्पर के केश पकड़ कर प्रवृत्त हुआ युद्ध। **कचाकचि।** अर्थ पूर्ववत् है। **नारकः।** नरक। **पूरुषः।** पुरुष।*

सिद्धि-केशाकेशि। *यहां केश और केश शब्दों का '**तत्र तेनेदमिति सरूपे**' (२।२।२७) से बहुव्रीहि समास है। 'इच् **कर्मव्यतिहारे**' (५।४।१२७) से समासान्त 'इच्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से केश शब्द को केश शब्द उत्तरपद होने पर दीर्घत्व को साधु माना जाता है। ऐसे ही-**कचाकचि, नारकः, पूरुषः।***

दीर्घः—

(२४) चौ।१३८।

वि०-चौ ७।१।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, पूर्वस्य, दीर्घः, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वस्याणश्चावुत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वस्याणश्चावुत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-दधि अञ्चतीति-दध्यङ्। दधीचः पश्य। दधीचा कृतम्। दधीचे देहि। मधु अञ्चतीति-मध्वङ्। मधूचः पश्य। मधूचा कृतम्। मधूचे देहि।

अत्र 'चौ' इत्यनेन लुप्तनकाराकारोऽञ्चतिर्गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अणः) अण् को (चौ) लुप्त नकारक अञ्चति शब्द परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**दध्यङ्।** दधि (दही) को प्राप्त करनेवाला। **दधीचः पश्य।** तू दधि को प्राप्त करनेवालों को देख। **दधीचा कृतम्।** दधि को प्राप्त करनेवाले के द्वारा किया गया कार्य। **दधीचे देहि।** दधि को प्राप्त करनेवाले को दे। **मध्वङ्।** मधु को प्राप्त करनेवाला। **मधूचः पश्य।** मधु को प्राप्त करनेवालों को देख। **मधूचा कृतम्।** मधु को प्राप्त करनेवाले के द्वारा किया गया। **मधूचे देहि।** मधु को प्राप्त करनेवाले को दे।*

सिद्धि-दधीचः। *दधि+अञ्चु+क्विप्। दधि+अञ्च्+वि। दधि+अञ्च्+०। दधि+अच्+शस्। दधि+अच्+अस्। दधी+०च्+अस्। दधीचस्। दधीचरु। दधीचर्। दधीचः।*

*यहां दधि उपपद '**अञ्चु गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**ऋत्विग्दधृक्०**' (३।२।५९) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से 'अञ्चु' के*

*नकार का लोप और 'अचः' (६।४।१३८) से 'अञ्चु' के अकार का भी होता है। 'अञ्चु' का केवल 'चु' शेष रहता है। लुप्त नकार तथा लुप्त अकारवाली 'अञ्चु' धातु का 'चौ' नाम से ग्रहण किया गया है। इस सूत्र से पूर्वपद दधि के इकार अण् को उक्त अञ्चति (चु) शब्द परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**दधीचा, दधीचे।** मधु शब्द से-**मधूचः, मधूचा, मधूचे।***

दीर्घः-

(२५) सम्प्रसारणस्य।१३६।

वि०-सम्प्रसारणस्य ६।१।

अनु०-उत्तरपदे, संहितायाम्, पूर्वस्य, अणः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सम्प्रसारणस्य पूर्वस्याण उत्तरपदे दीर्घः।

अर्थः-संहितायां विषये सम्प्रसारणान्तस्य पूर्वपदस्याण उत्तरपदे परतो दीर्घो भवति।

उदा०-कारीषगन्धीपुत्रः, कारीषगन्धीपतिः। कौमुदगन्धीपुत्रः। कौमुदगन्धीपतिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (सम्प्रसारणस्य) सम्प्रसारण जिसके अन्त में है, उस (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती पद के (अणः) अण् को (उत्तरपदे) उत्तरपद परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**कारीषगन्धीपुत्रः।** कारीषगन्ध्या का पुत्र। **कारीषगन्धीपतिः।** कारीषगन्ध्या का पति। **कौमुदगन्धीपुत्रः।** कौमुदगन्ध्या का पुत्र। **कौमुदगन्धीपतिः।** कौमुदगन्ध्या का पति।*

*सिद्धि-**कारीषगन्धीपुत्रः।** यहां कारीषगन्ध्या और पुत्र शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'कारीषगन्ध्या' शब्द में **'अणिञोरनार्ष-योर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे'** (४।१।७८) से गोत्रापत्य अर्थ में अण्-प्रत्यय को 'ष्यङ्' आदेश और **'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे'** (६।१।१३) से 'ष्यङ्' के यकार को इकार सम्प्रसारण होता है। इस सूत्र से सम्प्रसारणान्त कारीषगन्धि शब्द के अण् (इकार) को पुत्र उत्तरपद होने पर दीर्घ होता है-**कारीषगन्धीपुत्रः।** ऐसे ही-**कारीषगन्धीपतिः। कौमुदगन्धीपुत्रः, कौमुदगन्धीपतिः।***

।। इति संहिताधिकारीयदीर्घप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः
अङ्गसंज्ञा-अधिकारः
{दीर्घ-प्रकरणम्}

अङ्गाधिकारः–

(१) अङ्गस्य।१।

वि०–अङ्गस्य ६।१।

अर्थः–'अङ्गस्य' इत्यधिकारोऽयम्, आ सप्तमाध्यायपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे यद् वक्ष्यति 'अङ्गस्य' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-हलः (६।४।२) इति। हूतः। जीनः। संवीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्गस्य यह अधिकार सूत्र है। इसका सप्तम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह अंग के सम्बन्ध में जानना चाहिये। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे–'हलः' (६।४।२) **हूतः।** बुलाया/पुकारा हुआ। **जीनः।** जीर्ण हुआ। **संवीतः।** आच्छादित किया हुआ।*

सिद्धि– *'हूतः' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' *(१।४।१३) से जो अङ्ग संज्ञा की गई है, यहां तत्सम्बन्धी कार्यों का विधान किया जायेगा।*

दीर्घः–

(२) हलः।२।

वि०–हलः ५।१।

अनु०–दीर्घः, अणः, सम्प्रसारणस्य, अङ्गस्य दीर्घः।

अन्वयः–हलः सम्प्रसारणस्य अङ्गस्य दीर्घः।

अर्थः–अङ्गावयवाद् हल उत्तरं यत् सम्प्रसारणं तदन्तस्य अङ्गस्य दीर्घो भवति।

उदा०–हूतः। जीनः। संवीतः।

आर्यभाषा: *अर्थ-(हल:) अङ्ग के अवयवभूत हल् से परे जो (सम्प्रसारणस्य) सम्प्रसारण है, उस सम्प्रसारणान्त (अङ्गस्य) अंग को (दीर्घ:) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**हूत:।** बुलाया/पुकारा हुआ। **जीन:।** जीर्ण हुआ। **संवीत:।** आच्छादित किया हुआ।*

सिद्धि-(१) हूत:। *ह्वेञ्+क्त। ह्वा+त। ह उ आ+त। हु+त। हू+त। हूत+सु। हूत:।*

*यहां **'ह्वेञ् स्पर्धायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् निष्ठा प्रत्यय है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'ह्वा' के वकार को उकार सम्प्रसारण, आकार को पूर्ववत् पूर्वसवर्ण उकार और इस सूत्र से हल् से उत्तरवर्ती सम्प्रसारणभूत उकार को दीर्घ होता है।*

(२) जीन:। *ज्या+क्त। ज्या+त। ज्या+न। ज इ आ+न। जि+न। जी+न। जीन+सु। जीन:।*

*यहां **'ज्या वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'ल्वादिभ्य:'** (८।२।४४) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। **'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से 'ज्या' को सम्प्रसारण इकार, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०८) से 'ज्या' के आकार को पूर्वरूप इकार और इस सूत्र से हल् से उत्तरवर्ती सम्प्रसारणभूत इकार को दीर्घ होता है।*

(३) संवीत:। *सम्+व्यञ्+क्त। सम्+व्या+त। सम्+व् इ आ+त। सम्+वि+त। सम्+वी+त। संवीत+सु। संवीत:।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'व्येञ् संवरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और पूर्ववत् सम्प्रसारण तथा पूर्वसवर्ण होकर इस सूत्र से हल् से उत्तरवर्ती सम्प्रसारणभूत इकार को दीर्घ होता है।*

दीर्घ:-

(३) नामि।३।

वि०-नामि ७।१।

अनु०-दीर्घ:, अङ्गस्य इति चानुवर्तते। 'अण:' इति च निवृत्तम्।

अन्वय:-अङ्गस्य नामि दीर्घ:।

अर्थ:-{अजन्तस्य} अङ्गस्य नामि परतो दीर्घो भवति।

उदा०-अग्नीनाम्। वायूनाम्। कर्तॄणाम्।

'नाम्' इत्येतत् षष्ठीबहुवचनम् आगतनुट्कं गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अजन्त अंग को (नामि) नुट्-आगम सहित आम् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**अग्नीनाम्।** बहुत अग्नियों का। **वायूनाम्।** बहुत वायुओं का। **कर्तॄणाम्।** बहुत कर्ताओं का।*

सिद्धि-(१) अग्नीनाम्। *अग्नि+आम्। अग्नि+नुट्+आम्। अग्नि+न्+आम्। अग्नी+नाम्। अग्नीनाम्।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से षष्ठीविभक्ति के बहुवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है, **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'आम्' को 'नुट्' आगम होता है। इस सूत्र से अजन्त 'अग्नि' शब्द को 'नाम्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**वायूनाम्।***

*(२) **कर्तॄणाम्।** यहां कर्तृ शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय और 'नुट्' आगम है। वा०-**'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से णत्व होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।*

दीर्घ-प्रतिषेधः—

(४) न तिसृचतसृ।४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, तिसृ-चतसृ ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्)।

स०-तिसृश्च चतसृश्च एतयोः समाहारः-तिसृचतसृ। अत्र **'सुपां सुलुक्०'** (७।१।३९) इत्यनेन षष्ठ्या लुक्।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नामि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तिसृचतसृ अङ्गस्य नामि दीर्घो न।

अर्थः-तिसृ, चतसृ इत्येतरङ्योर्नामि परतो दीर्घो न भवति। पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते।

उदा०-(तिसृ) तिसृणाम्। **(चतसृ)** चतसृणाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तिसृचतसृ) तिसृ और चतसृ इन (अङ्गस्य) अंगों को (नामि) नाम् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(तिसृ) **तिसृणाम्।** तीन स्त्रियों का। (चतसृ) **चतसृणाम्।** चार स्त्रियों का।*

सिद्धि-तिसृणाम्। *तिसृ+आम्। तिसृ+नुट्+आम्। तिसृ+न्+आम्। तिसृ+नाम्। तिसृणाम्।*

*यहां 'तिसृ' शब्द से षष्ठी बहुवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय और इसे **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम होता है। इस सूत्र*

*से 'तिसृ' अंग को 'नाम्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ नहीं होता है। **'नामि'** (६।४।३) से दीर्घ प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। वा०- **'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही-**चतसृणाम्।***

उभयथा दर्शनम्–

(५) छन्दस्युभयथा।५।

प०वि०-छन्दसि ७।१ उभयथा अव्ययपदम्।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नामि, तिसृचतसृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तिसृचतसृ अङ्गस्य नामि उभयथा दीर्घः।

अर्थः-छन्दसि विषये तिसृचतस्रोरङ्गयोर्नामि परत उभयथा दीर्घोऽदीर्घश्च दृश्यते।

उदा०-**(तिसृ)** तिसृणां मध्यन्दिने (द्र०का०सं० २७।९)। तिसृणां मध्यन्दिने (द्र०ऋ० ५।६९।२)। **(चतसृ)** चतसृणां मध्यन्दिने (द्र०का०सं० २७।९)। चतसृणां मध्यन्दिने।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तिसृचतसृ) तिसृ और चतसृ (अ॰ ॰स्य) अंगों का (नामि) नाम् प्रत्यय परे होने पर (उभयथा) दीर्घ और अदीर्घ दोनों प्रकार का रूप देखा जाता है।*

*उदा०-(तिसृ) **तिसृणां मध्यन्दिने** (द्र०का०सं० २७।९)। **तिसृणां मध्यन्दिने** (द्र०ऋ० ५।६९।२)। (चतसृ) **चतसृणां मध्यन्दिने** (द्र०का०सं० २७।९)। **चतसृणां मध्यन्दिने।***

*सिद्धि-**तिसृणाम्** और **चतसृणाम्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् (६।४।४) है। दीर्घभाव विशेष है-**तिसृणाम्, चतसृणाम्।***

उभयथा दर्शनम्–

(६) नृ च।६।

प०वि०-नृ ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) च अव्ययपदम्।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नामि, छन्दसि, उभयथा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नृ चाऽङ्गस्य नामि उभयथा दीर्घः।

अर्थः-छन्दसि विषये नृ इत्येतस्याङ्गस्य नामि परत उभयथा दीर्घोऽदीर्घश्च दृश्यते।

उदा०-त्वां नृणां नृपते (द्र०पै०सं० २।१०।४)। त्वं नृणां नृपते (ऋ० २।१।१)।

अत्र केचित् 'छन्दसि' इति नानुवर्तयन्ति, तेन लौकिकभाषायामपि विकल्पो भवति-नृणाम्, नॄणाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नृ) नृ इस (अङ्गस्य) अंग को (नामि) नाम् प्रत्यय परे होने पर (उभयथा) दीर्घ और अदीर्घ दोनों प्रकार का रूप देखा जाता है।*

*उदा०-**त्वां नृणां नृपते** (द्र०पै०सं० २।१०।४)। **त्वं नृणां नृपते** (ऋ० २।१।१)।*

*यहां कई आचार्य 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति नहीं करते हैं। अतः लौकिक भाषा में भी यह विकल्प होता है-**नृणाम्, नॄणाम्**। सब नरों का।*

***सिद्धि-नृणाम्** और **नॄणाम्** पदों की सिद्धि **तिसृणाम्** और **तिसॄणाम्** पदों के समान है।*

दीर्घः-

(७) नोपधायाः।७।

प०वि०-न ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) उपधायाः ६।१।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नामि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नस्य अङ्गस्य उपधाया नामि दीर्घः।

अर्थः-नकारान्तस्याङ्गस्य उपधाया नामि दीर्घो भवति।

उदा०-पञ्चानाम्, सप्तानाम्, नवानाम्, दशानाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नस्य) नकारान्त (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (नामि) नाम् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**पञ्चानाम्**। पांचों का। **सप्तानाम्**। सातों का। **नवानाम्**। नौओं का। **दशानाम्**। दशों का।*

***सिद्धि-पञ्चनाम्**। पञ्चन्+आम्। पञ्चन्+नुट्+आम्। पञ्चन्+नाम्। पञ्चान्+नाम्। पञ्चा०+नाम्। पञ्चानाम्।*

*यहां 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी बहुवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। **'षट्चतुर्भ्यश्च'** (७।१।५५) से 'आम्' को 'नुट्' आगम होता है। इस सूत्र से नकारान्त 'पञ्चन्' अंग के उपधाभूत अकार को 'नाम्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सप्तानाम्** आदि।*

दीर्घः-

(८) सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ।८।

प०वि०-सर्वनामस्थाने ७।१ च अव्ययपदम्, असम्बुद्धौ ७।१।

स०-न सम्बुद्धिरिति असम्बुद्धिः, तस्याम्-असम्बुद्धौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नामि, नस्य, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नस्य अङ्गस्य उपधाया असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने च दीर्घः।

अर्थः-नकारान्तस्याङ्गस्य उपधायाः सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने च परतो दीर्घो भवति।

उदा०-राजा, राजानौ, राजानः। राजानम्, राजानौ। सामानि तिष्ठन्ति, सामानि पश्य।

आर्यभाषाः अर्थ- *(नस्य) नकारान्त (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**राजा।** एक राजा ने। **राजानौ।** दो राजाओं ने। **राजानः।** सब राजाओं ने। **राजानम्।** एक राजा को। **राजानौ।** दो राजाओं को। **सामानि तिष्ठन्ति।** बहुत साम हैं। **सामानि पश्य।** तू बहुत सामों को देख।*

सिद्धि-(१) राजा। *राजन्+सु। राजान्+सु। राजान्+०। राजा०। राजा।*

*यहां 'राजन्' शब्द से प्रथमा एकवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सु' प्रत्यय की **'सुडनपुंसकस्य'** (१।१।४३) से सर्वनामस्थान संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त राजन् अंग की उपधा को सर्वनामस्थान संज्ञक 'सु' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**राजानौ** आदि।*

*(२) **सामानि।** सामन्+जस्। सामन्+शि। सामन्+इ। सामान्+इ। सामानि।*

*यहां 'सामन्' शब्द से प्रथमा बहुवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'जश्शसोः शिः'** (७।१।२०) से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है और इसकी **'शि सर्वनामस्थानम्'** (१।१।४२) से सर्वनामस्थान संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त 'सामन्' अंग की उपधा को सर्वनामस्थान संज्ञक 'शि' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही 'शस्' प्रत्यय में-**त्वं सामानि पश्य।***

दीर्घ-विकल्पः–

(९) वा षपूर्वस्य निगमे।९।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, षपूर्वस्य ६।१ निगमे ७।१।

स०-षः पूर्वो यस्मात् स षपूर्वः, तस्य-षपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नस्य, उपधायाः, सर्वनामस्थाने, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे षपूर्वस्य नस्याङ्गस्य उपधाया असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने वा दीर्घः।

अर्थः-निगमे विषये षपूर्वस्य नकारान्तस्याङ्गस्य उपधायाः सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने परतो विकल्पेन दीर्घो भवति।

उदा०-स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत् (मै०सं० २।४।१)। स तक्षणं तिष्ठन्तमब्रवीत्। ऋभुक्षाणमिन्द्रम्। ऋभुक्षणमिन्द्रम् (ऋ० १।११२।४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निगमे) वेदविषय में (षपूर्वस्य) षकार पूर्ववाले (नस्य) नकारान्त (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत्** (मै०सं० २।४।१)। तक्षाणम्=बढ़ई को। **स तक्षणं तिष्ठन्तमब्रवीत्।** तक्षणम्=बढ़ई को। **ऋभुक्षाणमिन्द्रम्।** ऋभुक्षाणम्=महान् इन्द्र को। **ऋभुक्षणमिन्द्रम्** (ऋ० १।१११।४)। ऋभुक्षणम्=महान् इन्द्र को।*

*सिद्धि-(१) **तक्षाणम्।** तक्षन्+अम्। तक्षान्+अम्। तक्षाण्+अम्। तक्षाणम्।*

*यहां 'तक्षन्' शब्द से द्वितीया एकवचन की विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वेदविषय में षकारपूर्वी, नकारान्त 'तक्षन्' अंग के उपधाभूत आकार को सर्वनामस्थानसंज्ञक 'अम्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। विकल्प पक्ष में दीर्घ नहीं है-**तक्षणम्। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

*(२) **ऋभुक्षाणम्।** यहां 'ऋभुक्षिन्' शब्द से पूर्ववत् 'अम्' प्रत्यय है। प्रथम **'इतोऽत् सर्वनामस्थाने'** (७।१।८६) से 'ऋभुक्षिन्' के इकार को अकार आदेश होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से अकार को दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में दीर्घ नहीं है-**ऋभुक्षणम्।***

दीर्घः–

(१०) सान्तमहतः संयोगस्य।१०।

प०वि०-सान्तमहतः ६।१ संयोगस्य ६।१।

स०-सोऽन्ते यस्य सः-सान्तः। सान्तश्च महाँश्च एतयोः समाहारः सान्तमहत्, तस्य-सान्तमहतः।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, नस्य, उपधायाः, सर्वनामस्थाने, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सान्तमहतोऽङ्गस्य संयोगस्य नस्य उपधाया असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने दीर्घः।

अर्थः-सकारान्तस्य महतश्चाङ्गस्य संयोगस्थस्य नकारस्य उपधाया सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने परतो दीर्घो भवति।

उदा०-**(सान्तः)** श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः। श्रेयांसि, पयांसि, यशांसि। **(महत्)** महान्, महान्तौ, महान्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सान्तमहतः) सकारान्त और (महतः) महत् (अङ्गस्य)* ***अंग के*** *(संयोगस्य) संयोगस्थ के (नस्य) नकार की (उपधायाः) उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

उदा०-(सान्त) ***श्रेयान्।*** *एक प्रशस्य ने।* ***श्रेयांसौ।*** *दो प्रशस्यों ने।* ***श्रेयांसः।*** *सब प्रशस्यों ने।* ***श्रेयांसि।*** *बहुत प्रशस्यों ने/को।* ***पयांसि।*** *बहुत दूध/जलों ने/को।* ***यशांसि।*** *बहुत यशों ने/को।* ***(महत्) महान्।*** *एक महान् ने।* ***महान्तौ।*** *दो महानों ने।* ***महान्तः।*** *सब महानों ने।*

सिद्धि-(१) श्रेयान्। *प्रशस्य+ईयसुन्। श्र+ईयस्। श्रेयस्+सु। श्रेय नुम् स्+सु। श्रेयन्स्+सु। श्रेयान्स्+सु। श्रेयान्स्+०। श्रेयान्०। श्रेयान्।*

यहां 'प्रशस्य' शब्द से ***'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'*** *(५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है।* ***'प्रशस्यस्य श्रः'*** *(५।३।६०) से 'प्रशस्य' को 'श्र' आदेश होता है। प्रत्यय के उगित् होने से* ***'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'*** *(७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। इस सूत्र से इस सकारान्त संयोग के उपधाभूत अकार को दीर्घ होता है।* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६८) से 'सु' का लोप और* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से सकार का लोप होता है। ऐसे ही-****श्रेयांसौ, श्रेयांसः।***

(२) श्रेयांसि। *यहां पूर्वोक्त 'श्रेयस्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय और* ***'जश्शसोः शि'*** *(७।१।२०) से जस् के स्थान में 'शि' आदेश और इसकी* ***'शि सर्वनामस्थानम्'*** *(१।१।४२) से सर्वनामस्थान संज्ञा है।* ***'नपुंसकस्य झलचः'*** *(७।१।७२) से 'नुम्' आगम और इसके नकार को* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से अनुस्वार होता है। ऐसे ही-****पयांसि, यशांसि।***

(३) महान्। महत्+सु। महानमृत्+सु। महन्त्+सु। महान्त्+०। महान्०। महान्।

यहां 'महत्' शब्द से 'सु' प्रत्यय 'वर्तमाने पृषद्वृहन्महज्जगच्छतृवच्च' (उणा०) से 'महत्' को शतृवद्भाव होने से 'उदगिचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम होता है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है।

दीर्घः–

(११) अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृ-होतृपोतृप्रशास्तॄणाम्।११।।

प०वि०- अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तॄणाम् ६।३।

स०-आपश्च तृन् च तृच् च स्वसा च नप्ता च नेष्टा च त्वष्टा च होता च पोता च प्रशास्ता च ते-अप्०प्रशास्तारः, तेषाम्-अप्०प्रशास्तॄणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, उपाधायाः, सर्वनामस्थाने, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् अङ्गानाम् उपधाया असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने दीर्घः।

अर्थः-अप् इत्येतस्य तृन्नन्तस्य तृजन्तस्य स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृ-प्रशास्तॄणां चाङ्गानाम् उपधाया सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने परतो दीर्घो भवति। **उदाहरणम्**–

	अङ्गानि	शब्दरूपम्	भाषार्थः
१.	अप्	आपः, आपः।	जल, सर्वव्यापक ईश्वर।
२.	तृन्-अन्त	कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः।	करणशील, करणधर्मा, साधुकारी।
३.	तृच्-अन्त	कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः।	करनेवाला।
४.	स्वसृ	स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः।	बहिन।
५.	नप्तृ	नप्ता, नप्तारौ, नप्तारः।	नाती। पौत्र/दौहित्र।

अङ्गानि	शब्दरूपम्	भाषार्थः
६. नेष्टृ	नेष्टा, नेष्टारौ, नेष्टारः।	सोमयाग के १६ याज्ञिकों में से एक। यजुर्वेदज्ञ ऋत्विक्।
७. त्वष्टृ	त्वष्टा, त्वष्टारौ, त्वष्टारः।	बढ़ई। विश्वकर्मा।
८. क्षत्तृ	क्षत्ता, क्षत्तारौ, क्षत्तारः।	मूर्तिकार।
९. होतृ	होता, होतारौ, होतारः।	ऋग्वेदज्ञ ऋत्विक्।
१०. पोतृ	पोता, पोतारौ, पोतारः।	चतुर्वेदज्ञ ब्रह्मा।
११. प्रशास्तृ	प्रशास्ता, प्रशास्तारौ, प्रशास्तारः।	प्रशास्ता (ऋत्विक् विशेष)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अप्०प्रशास्तॄणाम्) अप्, तृन्-प्रत्ययान्त, तृच्-प्रत्ययान्त, स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ और प्रशास्तृ अंगों की उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (दीर्घ) दीर्घ होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***आपः।*** *अप्+जस्। अप्+अस्। आपस्। आपरु। आपर्। आपः।*

यहां 'अप्' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अप्' अंग के उपधाभूत अकार को सर्वनामस्थान संज्ञक 'सु' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है।

(२) ***कर्ता।*** *कृ+तृन्। कृ+तृ। कर्तृ+सु। कर्तृ अनङ्+सु। कर्तन्+सु। कर्तान्+सु। कर्तान्+०। कर्ता०। कर्ता।*

यहां ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०) धातु से* ***'तृन्'*** *(३।२।१३५) से 'तृन्' प्रत्यय है।* ***'ऋदुशनस्०'*** *(७।१।९५) से अनङ् आदेश है। इस सूत्र से तृन्नन्त अंग के उपधाभूत अकार को दीर्घ होता है।* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६८) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

(३) ***कर्तारौ।*** *कर्तृ+औ। कतर्+औ। कर्तार्+औ। कर्तारौ।*

यहां कर्तृ शब्द से औ प्रत्यय करने पर ***'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'*** *(७।३।११०) से ऋकार गुण अकार (अर्) होता है। इस सूत्र से तृन्नन्त कर्तर् अंग के उपधाभूत अकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही-* ***कर्तारः।***

(४) ***कर्ता।*** *यहां 'कृ' धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य तृन्नन्त 'कर्तृ' शब्द के समान है।*

(५) ***स्वसा*** *आदि पदों की सिद्धि* ***कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः*** *के समान है।*

दीर्घः-

(१२) इन्हन्पूषार्यम्णां शौ।१२।

प०वि०-इन्-हन्-पूष-अर्यम्णाम् ६।३ शौ ७।१।

स०-इन् च हन् च पूषा च अर्यमा च ते-इन्हन्पूषार्यमाणः, तेषाम्-इन्हन्पूषार्यम्णाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, उपधायाः, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इन्हन्पूषार्यम्णाम् अङ्गानाम् उपधायाः सर्वनामस्थाने शौ दीर्घः।

अर्थः-इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन् इत्येवमन्तानाम् अङ्गानाम् उपधायाः सर्वनामस्थाने शौ परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(इन्) बहवो दण्डिनो एषां सन्तीति-बहुदण्डीनि कुलानि। बहुच्छत्रीणि कुलानि। **(हन्)** बहवो वृत्रहण एषु सन्तीति-बहुवृत्रहाणि कुलानि। बहुभ्रूणहानि कुलानि। **(पूषन्)** बहवः पूषाण एषु सन्तीति बहुपूषाणि कुलानि। **(अर्यमन्)** बहवोऽर्यमाण एषु सन्तीति-बह्वर्यमाणि कुलानि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इन्हन्पूषार्यम्णाम्) इन, हन्, पूषन् और अर्यमन् शब्द जिनके अन्त में हैं उन (अङ्गानाम्) अंगों की (उपधायाः) उपधा को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान संज्ञक (शौ) शि-प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(इन्) **बहुदण्डीनि कुलानि।** बहुत दण्डी जनों वाला कुल। **बहुच्छत्रीणि कुलानि।** बहुत छत्री जनों वाला कुल। (हन्) **बहुवृत्रहाणि कुलानि।** बहुत वृत्रहा=इन्द्रवाले कुल। **बहुभ्रूणहानि कुलानि।** बहुत भ्रूणहा (गर्भघाती) वाला कुल। (पूषन्) **बहुपूषाणि कुलानि।** बहुत पूषा देवताओं वाला कुल। (अर्यमन्) **बह्वर्यमाणि कुल।** बहुत न्यायाधीशों वाला कुल।*

*सिद्धि-(१) **बहुदण्डीनि।** यहां 'बहु' और 'दण्डिन्' शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'दण्डिन्' शब्द में 'दण्ड' शब्द से **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय है। 'बहुदण्डिन्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय और 'जश्शसोः शिः' (७।१।२०) 'जस्' को 'शि' आदेश होता है। इस सूत्र से इन्नन्त 'बहुदण्डिन्' शब्द के उपधाभूत इकार को सर्वनामस्थान-संज्ञक 'शि' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही-**बहुच्छत्रीणि।***

*(२) **बहुवृत्रहाणि।** यहां 'बहुवृत्रहन्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय और इसे पूर्ववत् 'शि' आदेश है। दीर्घ-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**बहुपूषाणि, बह्वर्यमाणि।***

दीर्घः-

(१३) सौ च।१३।

प०वि०-सौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, उपधायाः, असम्बुद्धौ, इनहन्पूषार्यम्णामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-इन्हन्पूषार्यम्णाम् अङ्गानाम् उपधाया असम्बुद्धौ सौ च दीर्घः।

अर्थः-इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन् इत्येवमन्तानाम् अङ्गानाम् उपधायाः सम्बुद्धिवर्जिते सौ च परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(इन्) दण्डी। **(हन्)** वृत्रहा। **(पूषन्)** पूषा। **(अर्यमन्)** अर्यमा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इन्हन्पूषार्यम्णाम्) इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन् शब्द जिनके अन्त में हैं उन (अङ्गानाम्) अंगों की (उपधायाः) उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु-प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

उदा०-(इन्) ***दण्डी।*** *दण्डवाला। (हन्)* ***वृत्रहा।*** *वृत्रा को मारनेवाला-इन्द्र। (पूषन्)* ***पूषा।*** *पूषा नामक देवता-चन्द्र (ओषधियों को पुष्ट करनेवाला)। (अर्यमन्)* ***अर्यमा।*** *न्यायाधीश।*

सिद्धि-दण्डी। *दण्ड+इनि। दण्ड्+इन्। दण्डिन्+सु। दण्डीन्+सु। दण्डीन्+०। दण्डी०। दण्डी।*

यहां 'दण्ड' शब्द से ***'अत इनिठनौ'*** *(५।२।११५) से मतुप्-अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। इस सूत्र से इन्नन्त अंग 'दण्डिन्' शब्द के सम्बुद्धि से भिन्न उपधाभूत इकार को 'सु' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है।* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६८) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-वृत्रहा, पूषा, अर्यमा।*

दीर्घः-

(१४) अत्वसन्तस्य चाधातोः।१४।

प०वि०-अतु-असन्तस्य ६।१ च अव्ययपदम्, अधातोः ६।१।

स०-अतुश्च अस् च तौ-अत्वसौ, अत्वसावन्ते यस्य सः-अत्वसन्तः, तस्य-अत्वसन्तस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। न धातुरिति अधातुः, तस्य-अधातोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, उपधायाः, असम्बुद्धौ, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधातोरत्वसन्तस्य चाङ्गस्य उपधाया असम्बुद्धौ सौ दीर्घः।

अर्थः-धातुवर्जितस्य अत्वन्तस्य असन्तस्य चाङ्गस्य उपधायाः सम्बुद्धिवर्जिते सौ परतो दीर्घो भवति।

उदा०-**(अत्वन्तः)** डवतु-भवान्। क्तवतु-कृतवान्। मतुप्-गोमान्। यवमान्। **(असन्तः)** सुपयाः। सुयशाः। सुस्रोताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अधातोः) धातु से भिन्न (अत्वसन्तस्य) अतु-अन्तवाले और अस्-अन्तवाले (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(अत्वन्त) डवतु-**भवान्**। आप। क्तवतु-**कृतवान्**। उसने किया। **मतुप्-गोमान्**। गौवाला। **यवमान्**। जौवाला। **(असन्त) सुपयाः**। उत्तम दूध/जलवाला। **सुयशाः**। उत्तम कीर्तिवाला। **सुस्रोताः**। उत्तम स्रोतवाला।*

__सिद्धि-(१) भवान्।__ भा+डवतुप्। भा+अवत्। भ्+अवत्। भवत्+सु। भवात्+सु। भवानुम् त्+सु। भवान्त्+०। भवान्०। भवान्।

*यहां **'भा दीप्तौ'** (अदा०प०) धातु से **'भातेर्डवतुप्'** (उणा० १।६३) से 'डवतुप्' प्रत्यय है। वा०- **'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'भा' के टि-भाग (आ) का लोप होता है। इस सूत्र से अत्वन्त 'भवत्' अंग को 'सु' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् प्रत्यय के उगित् होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम है। यद्यपि 'नुम्' आगम पर और नित्य है किन्तु यह दीर्घ-विधि के पश्चात् ही किया जाता है क्योंकि प्रथम 'नुम्' आगम करने पर दीर्घ की निमित्तभूत उपधा का विघात होता जाता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से तकार का लोप होता है।*

*(२) **कृतवान्**। कृ+क्तवतु। कृ+तवत्। कृतवत्+सु। कृतवात्+सु। कृतवा नुम् त्+सु। कृतवान्त्+सु। कृतवान्त्०। कृतवान्०। कृतवान्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्तवतु' प्रत्यय है। दीर्घ और 'नुम्' आदि कार्य पूर्ववत् हैं।*

(३) गोमान्। गो+मतुप्। गो+मत्। गोमत्+सु। गोमात्+सु। गोमानुम्त्+सु। गोमान्त्+सु। गोमानत्+०। गोमान्०। गोमान्।

*यहां 'गो' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। दीर्घ और 'नुम्' आदि कार्य पूर्ववत् हैं। ऐसे ही-**यवमान्।***

(४) सुपयाः। सुपयस्+सु। सुपयास्+सु। सुपयास्+०। सुपयारु। सुपयार्। सुपयाः।

*यहां 'सुपयस्' शब्द से प्रथमा एकवचन की विवक्षा में 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से असन्त 'सुपयस्' के उपधाभूत अकार को 'सु' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप, 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से विसर्जनीय होता है। ऐसे ही-**सुयशाः, सुस्रोताः।***

दीर्घः-

(१५) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति।१५।

प०वि०-अनुनासिकस्य ६।१ क्वि-झलोः ७।२ क्ङिति ७।१।

स०-क्विश्च झल् च तौ क्विझलौ, तयोः-क्विझलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कश्च ङश्च तौ क्ङौ, क्ङौ इतौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु-दीर्घः, अङ्गस्य, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुनासिकस्याङ्गस्य उपधायाः क्विझलोः क्ङिति दीर्घः।

अर्थः-अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य उपधायाः क्विप्प्रत्यये झलादौ च क्ङिति प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-क्वौ-प्रशान्, प्रतान्। **झलादौ किति-**शान्तः, शान्तवान्, शान्त्वा, शान्तिः। **झलादौ ङिति-**तौ शंशान्तः, तौ तन्तान्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनुनासिकस्य) अनुनासिक अन्तवाले (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (क्विझलोः) क्विप् प्रत्यय और झलादि (क्ङिति) कित्-ङित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**क्वौ-प्रशान्।** उपशमन करनेवाला। **प्रतान्।** आकांक्षा करनेवाला। **झलादि कित्-शान्तः।** उपशमन किया। **शान्तवान्।** अर्थ पूर्ववत् है। **शान्त्वा।** उपशमन करके। **शान्तिः।** उपशमन करना। **झलादि ङित्-तौ शंशान्तः।** वे दोनों अधिक उपशमन करते हैं। **तौ तन्तान्तः।** वे दोनों अधिक आकांक्षा करते हैं।*

सिद्धि-प्रशान्। प्र+शम्+क्विप्। प्र+शम्+वि। प्र+शाम्+०। प्र+शान्+०। प्रशान्+सु। प्रशान्+। प्रशान्।

यहां प्र-उपसर्ग पूर्वक **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनुनासिकान्त 'शम्' धातु के उपधाभूत अकार को 'क्विप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। **'मो नो धातोः'** (८।२।६४) से धातु के मकार को नकार आदेश होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही- **'तमु काङ्क्षायाम्'** (दि०प०) धातु से-**प्रतान्।**

(२) **शान्तः।** शम्+क्त। शम्+त। शाम्+त। शा ं+त। शान्+त। शान्त+सु। शान्तः।

यहां **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनुनासिकान्त 'शम्' धातु के उपधाभूत अकार को झलादि 'क्त' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से मकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है।

(३) **शान्तवान्।** यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्तवतु' प्रत्यय है। दीर्घ आदि कार्य पूर्ववत् हैं।

(४) **शान्त्वा।** यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। दीर्घ आदि कार्य पूर्ववत् हैं।

(५) **शान्तिः।** यहां **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। दीर्घ आदि कार्य पूर्ववत् हैं।

(६) **शशान्तः।** शम्+यङ्। शम्+शम्+य। श+शम्+य। श नुक्+शम्+य। शन्+शम्+०। शंशम्+लट्। शंशाम्+तस्। शं शा ं+तस्। शंशान्तस्। शंशान्तरु। शंशान्तर्। शंशान्तः।

यहां **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय, **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व, **'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य'** (७।४।८५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम, **'यङोऽचि च'** (२।४।७४) से यङ् का लुक् होता है। तत्पश्चात् यङ्लुगन्त 'शंशम्' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'तस्' लादेश, **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'तस्' को ङित्त्व होकर इस सूत्र से अनुनासिकान्त 'शंशम्' धातु के उपधाभूत अकार को झलादि ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही **'तमु काङ्क्षायाम्'** (दि०प०) धातु से-**तन्तान्तः।**

दीर्घः-

(१६) अज्झनगमां सनि।१६।

प०वि०-अच्-हन्-गमाम् ६।३ सनि ७।१।

स०-अच् च हन् च गम् च ते-अज्झनगमः, तेषाम्-अज्झनगमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दीर्घः, अङ्गस्य, उपधायाः, झलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अज्झनगमाम् अङ्गानाम् उपधाया झलि सनि दीर्घः।

अर्थः-अजन्तानाम् अङ्गानां हनिगम्योश्च अङ्गयोरुपधाया झलादौ सनि परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(अजन्तः) चिचीषति। तुष्टूषति। चिकीर्षति। **(हन्)** जिघांसति। **(गम्)** अधिजिगांसते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अज्झनगमाम्) अजन्त अंगों और हन् और गम् (अङ्गस्य) अंगों की (उपधायाः) उपधा को (झलि) झलादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(अजन्त) **चिचीषति।** वह चयन करना चाहता है। **तुष्टूषति।** वह स्तुति करना चाहता है। **चिकीर्षति।** वह करना चाहता है। (हन्) **जिघांसति।** वह हिंसा/गति करना चाहता है। (गम्) **अधिजिगांसते।** वह अध्ययन करना चाहता है।*

***सिद्धि-(१) चिचीषति।** चि+सन्। ची+सन्। ची+ची+स। चिचीष+लट्। चिचीष+तिप्। चिचीष+शप्+ति। चिचीष+अ+ति। चिचीषति।*

*यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजन्त 'चि' धातु को झलादि सन् प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'सन्यङोः' (६।१।९) से दीर्घीभूत 'ची' धातु को द्वित्व होता है। पुनः सन्नन्त 'चिचीष' धातु से लट् आदि कार्य होते हैं।*

*(२) **तुष्टूषति।** यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। 'शर्पूर्वाः खयः' (७।४।६१) से अभ्यास को खय् तकार शेष रहता है। दीर्घ आदि कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **चिकीर्षति।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजन्त 'कृ' धातु को झलादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'ऋत इद्धातोः' (७।१।१००) से ॠकार को इत्त्व, 'उरण् रपरः' (१।१।५१)*

से इसे रपरत्व, 'हलि च' (८।३।७७) से दीर्घत्व और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास को चुत्व होता है।

*(४) **जिघांसति।** यहां '**हन् हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हन्' धातु के उपधाभूत अकार को झलादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्वित्व, '**अभ्यासाच्च**' (७।३।५५) से 'हान्' के हकार के चुत्व घकार, '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार के चुत्व झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से जश्त्व जकार होता है।*

*(५) **अधिजिगांसते।** यहां अधि-उपसर्गपूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। 'इङश्च' (२।४।४८) से 'इङ्' को 'गमि' आदेश होता है। इस सूत्र से 'गम्' धातु के उपधाभूत अकार का झलादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। यहां 'इङ्' के स्थान में विहित 'गमि' आदेश का ग्रहण है, '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु का नहीं।*

दीर्घ-विकल्पः–

(१७) तनोतेर्विभाषा।१७।

प०वि०–तनोतेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०–दीर्घः, अङ्गस्य, झलि, उपधायाः, सनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तनोतेरङ्गस्य उपधाया झलि सनि विभाषा दीर्घः।

अर्थः–तनोतेरङ्गस्य उपधाया झलादौ सनि परतो विकल्पेन दीर्घो भवति।

उदा०–तितांसति, तितंसति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तनोतेः) तनु इस (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (झलि) झलादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**तितांसति, तितंसति।** वह विस्तार करना चाहता है।*

*सिद्धि–**तितांसति।** यहां '**तनु विस्तारे**' (तना०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तनु' अंग के उपधाभूत अकार को झलादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। तत्पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व, '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास को 'इत्त्व' और '**नश्चापदान्तस्य झलि**' (८।४।२७) से धातु के नकार को अनुस्वार होता है। विकल्प-पक्ष में दीर्घ नहीं है–**तितंसति।***

दीर्घ-विकल्पः–

(१८) क्रमश्च क्त्वि ।१८।

प०वि०–क्रमः ६ ।१ च अव्ययपदम्, क्त्वि ७ ।१ ।

अनु०–दीर्घः, अङ्गस्य, उपधायाः, झलि, विभाषा इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–क्रमोऽङ्गस्य च उपधायाः झलि क्त्वि विभाषा दीर्घः ।

अर्थः–क्रमोऽङ्गस्य चोपधाया झलादौ क्त्वा-प्रत्यये परतो विकल्पेन दीर्घो भवति ।

उदा०–क्रान्त्वा, क्रन्त्वा ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(क्रमः) क्रम् (अङ्गस्य) अंग की (उपधायाः) उपधा को (झलि) झलादि (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से दीर्घ होता है।*

उदा०–क्रान्त्वा, क्रन्त्वा । चलकर ।

सिद्धि-क्रान्त्वा । *यहां 'क्रमु पादविक्षेपे' (दि०प०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३ ।४ ।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्रम्' अंग के उपधाभूत अकार को झलादि 'क्त्वा' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ है। विकल्प-पक्ष में दीर्घ नहीं है-**क्रन्त्वा ।***

।। इति दीर्घप्रकरणम् ।।

आदेश-प्रकरणम्

श-ऊठ्–

(१) च्छ्वोः शूडनुनासिके च ।१९।

प०वि०–च्छ्-वोः ७ ।२ श्-ऊठ् १ ।१ अनुनासिके ७ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०–च्छश्च वश्च तौ च्छ्वौ, तयोः-च्छ्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । शश्च ऊठ् च एतयोः समाहारः-शूठ् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–अङ्गस्य, क्विझलोः, क्ङिति इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अङ्गस्य च्छ्वोरनुनासिके क्विझलोः क्ङिति च शूठ् ।

अर्थः–अङ्गस्य च्छकार-वकारयोः स्थानेऽनुनासिकादौ, क्वौ, झलादौ क्ङिति च परतो यथासंख्यं श-ऊठावादेशौ भवतः ।

उदा०–**अनुनासिकादौ**–प्रश्नः, विश्नः (शादेशः) । स्योनः (ऊडादेशः) । **क्वौ**–शब्दप्राट्, गोविट् (शादेशः) । अक्षद्यूः । हिरण्यद्यूः ।

(ऊठ्)। **झलादौ किति**-पृष्टः, पृष्टवान्, पृष्ट्वा (शादेशः)। द्यूतः, द्यूतवान्, द्यूत्वा (ऊठ्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अंग के (च्छ्वोः) च्छकार और वकार के स्थान में (अनुनासिके) अनुनासिक आदि, (क्वौ) क्विप् और (झलि) झलादि (क्ङिति) कित् तथा ङित् प्रत्यय परे होने पर (च) भी यथासंख्य (शूठ्) शकार और ऊठ् आदेश होते हैं।*

*उदा०-अनुनासिकादि-**प्रश्नः**। पूछना। **विश्नः**। गति करना (शादेश)। **स्योनः**। सुखी (ऊठ्)। **क्वौ-शब्दप्राट्**। शब्द को पूछनेवाला। **गोविट्**। गौ को प्राप्त करनेवाला (शादेश)। **अक्षद्यूः**। पासों से खेलनेवाला-जुआरी। **हिरण्यद्यूः**। स्वर्ण का व्यवहार करनेवाला-स्वर्णकार। (ऊठ्)। **झलादि कित्-पृष्टः**। पूछा। **पृष्टवान्**। पूछा। **पृष्ट्वा**। पूछकर (शादेश)। **द्यूतः**। जूआ खेला। **द्यूतवान्**। जूआ खेला। **द्यूत्वा**। जूआ खेलकर। (ऊठ्)।*

सिद्धि-(१) प्रश्नः। *प्रच्छ्+नङ्। प्रश्+न। प्रश्न+सु। प्रश्नः।*

*यहां '**प्रछ ज्ञीप्सायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्**' (३।३।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'प्रछ्' के च्छकार को अनुनासिकादि 'नङ्' प्रत्यय परे होने पर शकार आदेश होता है। ऐसे ही '**विछ गतौ**' (तु०प०) धातु से-**विश्नः**।*

*(२) **स्योनः**। सिव्+न। सि ऊठ्+न। सि ऊ+न। स्यू+न। स्यो+न। स्योन+सु। स्योनः।*

*यहां '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) धातु से '**सिवेष्टेर्यु च**' (उणा० ३।९) से बहुवचन से केवल 'न' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सिव्' के वकार को अनुनासिकादि 'न' प्रत्यय परे होने पर 'ऊठ्' आदेश होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण्-आदेश और '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से गुण होता है।*

*(३) **शब्दप्राट्**। शब्द+प्रच्छ्+क्विप्। शब्द+प्राश्+वि। शब्द+प्राश्+०। शब्दप्राष्। शब्दप्राड्। शब्दप्राट्।*

*यहां शब्द उपपद '**प्रछ ज्ञीप्सायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**क्विब् वचिप्रच्छि-श्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च**' (उणा० २।५८) से 'क्विप्' प्रत्यय, दीर्घ और '**ग्रहिज्यावयि०**' (६।१।१६) से प्राप्त सम्प्रसारण का प्रतिषेध है। इस सूत्र से 'प्रच्छ्' के च्छकार को शकार, '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८।२।३६) से शकार को षकार, '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है।*

(३) अक्षद्यूः। अक्ष+दिव्+क्विप्। अक्ष्+दि ऊठ्+वि०। अक्ष+ दि ऊ+०। अक्षद्यू+सु। अक्षद्यूः।

*यहां अक्ष-उपपद **'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदस्वप्नकान्तिगतिषु'** (दि०आ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दिव्' के वकार को 'क्विप्' प्रत्यय परे होने पर ऊठ् आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से 'यण्' आदेश होता है। ऐसे ही-**हिरण्यद्यूः**।*

(५) पृष्टः। प्रच्छ्+क्त। प्रच्छ्+त। पृश्+त। पृष्+त। पृष्+ट। पृष्ट+सु। पृष्टः।

*यहां **'प्रछ ज्ञीप्सायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'प्रच्छ्' के छकार को झलादि कित् 'त' प्रत्यय परे होने पर शकार आदेश होता है। **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) से धातु को सम्प्रसारण, **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकारवर्ग को टवर्ग टकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय करने पर-**पृष्टवान्**।*

*(६) पृष्ट्वा। यहां **'प्रछ ज्ञीप्सायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (८।२।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(७) द्यूतः। दिव्+क्त। दि ऊठ्+त। दि ऊ+त। द्यूत+सु। द्यूतः।

*यहां **'दिवु क्रीडादिषु'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दिव्' के वकार को झलादि, कित् 'त' प्रत्यय परे होने पर 'ऊठ्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (७।१।७६) से 'यण्' आदेश है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय करने पर द्यूतवान् और 'क्त्वा' प्रत्यय करने पर 'द्यूत्वा' शब्द सिद्ध होता है।*

ऊडादेशः-

(२) ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च।२०।

प०वि०-ज्वर-त्वर-स्रिवि-अवि-मवाम् ६।३ उपधायाः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-ज्वरश्च त्वरश्च स्रिविश्च अविश्च मव् च ते- ज्वरत्वर-स्रिव्यविमवः, तेषाम्-ज्वरत्वरस्रिव्यविमवाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्विझलोः, क्ङिति, वः, ऊठ् इति चानुवर्तते। 'च्छ्वोः' इत्यस्माद् 'वः' शूठ् इत्यस्माच्च ऊठ् इत्यनुवर्तनीयमर्थसम्भवात्।

अन्वयः-ज्वरत्वरस्रिव्यविमवाम् अङ्गानां वस्य उपधायाश्च क्विझलोः क्ङिति च ऊठ्।

अर्थः-ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामङ्गानां वकारस्य उपधायाश्च स्थाने क्वौ झलादौ क्ङिति, च प्रत्यये परतः ऊडादेशो भवति।

उदा०-**(ज्वरः) क्विप्**-जूः, जूरौ, जूरः। **झलादौ किति**-जूर्तिः। **(त्वरः) क्विप्**-तूः तूरौ, तूरः। **झलादौ किति**-तूर्तिः। **(स्रिविः) क्विप्**-स्रूः, स्रुवौ, स्रुवः। **झलादौ किति**-स्रूतिः। **(अविः) क्विप्**-ऊः, उवौ, उवः। **झलादौ किति**-ऊतिः। **(मवः) क्विप्**-मूः, मुवौ, मुवः। **झलादौ किति**-मूतिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ज्वरत्वर०) ज्वर, त्वर, स्रिवि, अवि और मव (अङ्गस्य) अंगों के (वः) वकार और (उपधायाः) उपधा के स्थान में (च) भी (क्विझलोः) क्विप् और झलादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर (ऊठ्) ऊठ् आदेश होता है।*

*उदा०-**(ज्वर) क्विप्-जूः, जूरौ, जूरः।** जूः=रोगी। **झलादि कित्-जूर्तिः।** रोगी होना। **(त्वर) क्विप्-तूः तूरौ, तूरः।** तूः=सम्भ्रान्त। **झलादि कित्-तूर्तिः।** सम्भ्रान्ति। **(स्रिवि) क्विप्-स्रूः, स्रुवौ, स्रुवः।** स्रू=गति/शोषण करनेवाला। **झलादि कित्-स्रूतिः।** गति/शोषण करना। **(अवि) क्विप्-ऊः, उवौ, उवः।** ऊः=रक्षा आदि करनेवाला। **झलादि कित्-ऊतिः।** रक्षा आदि करना। **(मव) क्विप्-मूः, मुवौ, मुवः।** मूः=बांधनेवाला। **झलादि कित्-मूतिः।** बांधना।*

सिद्धि-(१) जूः। *ज्वर्+क्विप्। ज् ऊठ् र्+वि। ज ऊ र्+०। जूर्+सु। जूर्+०। जूः।*

*यहां 'ज्वर रोगे' (भ्वा०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ज्वर्' के वकार और उपधाभूत अकार को 'क्विप्' प्रत्यय परे होने पर 'ऊठ्' आदेश होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'सु' का लोप और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही- **'जित्वरा सम्भ्रमे'** (भ्वा०आ०) धातु से-तूः, **'स्रिवु गतिशोषणयोः'** (दि०प०) धातु से-स्रूः, **'अव रक्षणादिषु'** (भ्वा०प०) धातु से-ऊः, **'मव बन्धने'** (भ्वा०प०) धातु से-मूः।*

*(२) **जूर्तिः।** ज्वर्+क्तिन्। ज्वर्+ति। ज् ऊठ् र्+ति। जूर्+ति। जूर्ति+सु। जूर्तिः।*

*यहां **'ज्वर रोगे'** (भ्वा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ज्वर' के वकार और उपधाभूत अकार को झलादि क्तिन् प्रत्यय परे होने पर ऊठ् आदेश होता है। ऐसे ही-'त्वर' से-**तूर्तिः**, स्रिवु से-**स्रुतिः**, अव से-**ऊतिः**, मव से-**मूतिः।***

लोपादेशः–

(३) राल्लोपः ।२१।

प०वि०–रात् ५ ।१ लोपः १ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, क्विझलोः, क्ङिति, छ्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्य रात् च्छ्वोः क्विझलोः क्ङिति लोपः ।

अर्थः–अङ्गावयवाद् रेफात् परयोश्छकारवकारयोः क्वौ झलादौ च क्ङिति प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०–**छकारलोपः–(मुर्छा) क्विप्**–मूः, मुरौः, मुरः। **झलादौ किति**–मूर्तः, मूर्तवान्, मूर्तिः। **(हुर्छा) क्विप्**–हूः, हुरौ, हुरः। **झलादौ किति**–हूर्णः, हूर्णवान्, हूर्तिः। **वकारलोपः–(तुर्वी) क्विप्**–तूः, तुरौ, तुरः। **झलादौ किति**–तूर्णः, तूर्णवान्, तूर्तिः। **(धुर्वी)** धूः, धुरौ, धुरः। **झलादौ किति**–धूर्णः, धूर्णवान्, धूर्तिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अङ्गस्य) अंग के (रात्) रेफ से परे (छ्वोः) छकार और वकार का (क्विझलोः) क्विप् और झलादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–छकारलोप–**(मुर्छा) क्विप्–मूः, मुरौः, मुरः**। मूः=मोह करनेवाला। **झलादि कित्–मूर्तः**। मोह किया। **मूर्तवान्**। मोह किया। **मूर्तिः**। मोह करना/समुच्छ्राय=ऊंचा होना। **(हुर्छा) क्विप्–हूः, हुरौ, हुरः**। हूः=कुटिल। **झलादि कित्–हूर्णः**। कुटिलता की। **हूर्णवान्**। कुटिलता की। **हूर्तिः**। कुटिलता करना। वकारलोप–**(तुर्वी) क्विप्–तूः, तुरौ, तुरः**। तूः=हिंसा करनेवाला। **झलादि कित्–तूर्णः**। हिंसा की। **तूर्णवान्**। हिंसा की। **तूर्तिः**। हिंसा करना। **(धुर्वी) धूः, धुरौ, धुरः**। धूः=हिंसा करनेवाला। **झलादि कित्–धूर्णः**। हिंसा की। **धूर्णवान्**। हिंसा की। **धूर्तिः**। हिंसा करना।*

*सिद्धि–**मूः**। मूर्छ्+क्विप्। मूर्+0+वि। मूर्+0। मूर्। मूः।*

*यहां **'मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मुर्छ्' के रेफ से परवर्ती छकार का 'क्विप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही–**'हुर्छा कौटिल्ये'** (भ्वा०प०) धातु से–हूः।*

*(२) **मूर्तः**। मूर्छ्+क्त। मूर्0+त। मूर्त+सु। मूर्तः।*

*यहां 'मुर्छ्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मुर्छ्' के रेफ से परवर्ती छकार का झलादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर*

*लोप होता है। 'न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम्' (८।२।५७) से निष्ठातकार को नकरादेश और 'आदितश्च' (८।३।७७) से इट्-आगम का प्रतिषेध है। 'हलि च' (८।२।७७) से रेफान्त की उपधा को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**मूर्तवान्।** ऐसे ही '**हुर्छा कौटिल्ये**' (भ्वा०प०) धातु से-हूर्णः, हूर्णवान्। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकार और '**रषाभ्यां णो नः समानपदे**' (८।४।१) से णत्व होता है।*

*(३) **मूर्तिः।** यहां 'मुर्छ्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'हुर्छ्' धातु से-**हूर्तिः।***

*(४) **तूः।** यहां 'तुर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तुर्व्' के रेफ से परवर्ती वकार को लोप होता है। ऐसे ही-क्त, क्तवतु और क्तिन् प्रत्यय करने पर-तूर्णः, तूर्णवान्, तूर्तिः। 'धुर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०) धातु से-धूः, धूर्णः, धूर्णवान्, धूर्तिः।*

असिद्धवत्-प्रकरणम्

असिद्धवत्-अधिकारः-

(१) असिद्धवदत्राभात्।२२।

प०वि०-असिद्धवत् अव्ययपदम्, अत्र अव्ययपदम्, आ अव्ययपदम्, भात् ५।१।

स०-न सिद्धमिति असिद्धम्, असिद्धेन तुल्यं वर्तते इति असिद्धवत् (नञ्तत्पुषः)।

सिद्धशब्दोऽत्र निष्पन्नपर्यायः। 'आ भात्' इत्यत्राभिविधावर्थे आङ् वेदितव्यः।

अर्थः-अत्र=एकाश्रये आ भात् अर्थाद् भाधिकारपर्यन्तम्=आ अध्यायपरिसमाप्तेर्यद् वक्ष्यति तद् असिद्धवद् भवतीत्यधिकारोऽयम्।

'आभीये कार्ये कर्तव्ये जातमाभीयमसिद्धं स्यादित्यधिकारोऽयम्' इति गुरुवरपण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणः प्राहुः।

उदा०-एधि। शाधि। आगहि। जहि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अत्र) यहां एक आश्रय=निमित्त में (आ भात्) भ-अधिकार पर्यन्त अर्थात् इस अध्याय की समाप्ति तक पाणिनि मुनि जो कहेंगे वह (असिद्धवत्) असिद्ध=अनिष्पन्न के तुल्य होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

तात्पर्य यह है कि "यहां भ-अधिकार तक के कार्य करने में किया हुआ भ-सम्बन्धी कार्य असिद्ध के समान हो जाता है" (गुरुवर पण्डित विश्वप्रिय शास्त्री)।

उदा०-एधि। तू हो। शाधि। तू शिक्षा कर। आगहि। तू आ। जहि। तू हिंसा कर (मार)।

सिद्धि-(१) एधि। अस्+लोट्। अस्+सिप्। अस्+शप्+सि। अस्+०हि। ०स्+हि। ए+हि। ए+धि। एधि।

यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से लोट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'सिप्', **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् और **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) से 'सिप्' को 'हि' आदेश होता है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का लोप और **'घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च'** (६।४।११९) से शेष सकार को एकार आदेश होता है। इस अवस्था में **'हुझल्भ्यो हेर्धिः'** (६।४।१०१) से 'हि' को 'धि' आदेश प्राप्त नहीं होता है, अतः उक्त एकार-आदेश को असिद्ध (न हुआ) मानकर 'धि' आदेश होता है।

(२) शाधि। शास्+लोट्। शास्+सिप्। शास्+शप्+सि। शास्+०+हि। शा+हि। शा+धि। शाधि।

यहां **'शासु अनुशिष्टौ'** (अदा०प०) धातु से 'लोट्' आदि कार्य पूर्ववत् है। 'शास्' के स्थान में **'शा हौ'** (६।४।३५) से 'शा' आदेश होता है। इस अवस्था में **'हु झल्भ्यो हेर्धिः'** (६।४।१०१) से 'हि' को 'धि' आदेश प्राप्त नहीं होता है, अतः उक्त शा-आदेश को असिद्ध मानकर 'धि' आदेश होता है।

(३) आगहि। आङ्+गम्+लोट्। आ+गम्+सिप्। आ+गम्+शप्+सि। अ+गम्+०हि। आ+ग०+हि। आगहि।

यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' आदि कार्य हैं। **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७६) से 'शप्' का लुक् होता है। **'अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति'** (६। ।३७) से 'गम्' के अनुनासिक मकार का लोप होता है, तत्पश्चात् **'अतो हेः'** (६।४।१०५) से 'हि' का लोप प्राप्त होता है, अतः उक्त अनुनासिक-लोप को असिद्ध मानकर 'हि' का लुक् नहीं होता है।

(४) जहि। हन्+लोट्। हन्+सिप्। हन्+शप्+सि। हन्+०+हि। ज+हि। जहि।

यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से 'लोट्' आदि कार्य पूर्ववत् है। **'हन्तेर्जः'** (६।४।३६) से 'हन्' के स्थान में 'ज' आदेश करने पर पूर्ववत् 'हि' का लुक् प्राप्त होता है, अतः ज-आदेश को असिद्ध मानकर 'हि' का लुक् नहीं होता है।

आदेश-प्रकरणम्

नलोपः–

(१) श्नान्नलोपः।२३।

प०वि०–श्नात् ५।१ नलोपः १।१।

स०–नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–श्नाद् अङ्गस्य नलोपः।

अर्थः–श्नात्=श्नम्-प्रत्ययात् परस्य अङ्गावयवस्य नकारस्य लोपो भवति।

उदा०–अनक्ति देवदत्तः। भनक्ति यज्ञदत्तः। हिनस्ति ब्रह्मदत्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्नात्) श्नम् प्रत्यय से परे (अङ्गस्य) अंग के अवयवभूत (नलोपः) नकार का लोप होता है।*

*उदा०-**अनक्ति देवदत्तः।** देवदत्त प्रकट करता है। **भनक्ति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त तोड़ता है। **हिनस्ति ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त हिंसा करता है (मारता है)।*

*सिद्धि-(१) **अनक्ति।** अञ्ज्+लट्। अञ्ज्+तिप्। अश्नम् न् ज्+ति। अ न न्ज्+ति। अन०ज्+ति। अनग्+ति। अनक्+ति। अनक्ति।*

*यहां **'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु'** (रुधा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'तिप्' और **रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। प्रत्यय के 'मित्' होने से यह **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४७) से 'अञ्ज्' के अन्त्य अच् अकार से परे रहता है। इस सूत्र से इस 'श्नम्' से परवर्ती नकार का लोप होता है। अञ्ज् में दृश्यमान ञकार वस्तुतः नकार है, **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से इसे चवर्ग ञकार हो गया है। ऐसा ही सर्वत्र जानें।*

*(२) **भनक्ति।** यहां **'भञ्जो आमर्दने'** (रुधा०प०) धातु से 'लट्' आदि सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **हिनस्ति।** यहां **'हिसि हिंसायाम्'** (रुधा०प०) धातु के इदित् होने से **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। इस सूत्र से 'श्नम्' से परवर्ती इस 'नुम्' के नकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नलोपः–

(२) अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति।२४।

प०वि०–अनिदिताम् ६।३ हलः ६।१ उपधायाः ६।१ क्ङिति ७।१।

स०–इकार इद् येषां ते इदितः, न इदित इति अनिदितः, तेषाम्-अनिदिताम् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। कश्च ङश्च तौ क्ङौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, नलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनिदितां हलाम् अङ्गानाम् उपधायाः क्ङिति नलोपः।

अर्थः–अनिदितां हलन्तानाम् अङ्गानाम् उपधायाः क्ङिति प्रत्यये परतो नकारस्य लोपो भवति।

उदा०–**किति**–स्रस्तः, ध्वस्तः, स्रस्यते, ध्वस्यते। **ङिति**–सनीस्रस्यते, दनीध्वस्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनिदिताम्) जिनका इकार इत् नहीं है उन (हलः) हलन्त (अङ्गस्य) अंगों की (उपधायाः) उपधा के (नलोपः) नकार का लोप होता है (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–**किति**–**स्रस्तः**। नीचे गिरा हुआ। **ध्वस्तः**। नीचे गिरा हुआ। **स्रस्यते**। नीचे गिरा जाता है। **ध्वस्यते**। नीचे गिरा जाता है। **ङिति–सनीस्रस्यते**। पुनः-पुनः नीचे गिरता है। **दनीध्वस्यते**। पुनः-पुनः नीचे गिरता है।*

*सिद्धि–(१) **स्रस्तः**। स्रंस्+क्त। स्रंस्+त। स्रस्+त। स्रस्त+सु। स्रस्तः।*

*यहां **'स्रंसु अधःपतने'** (भ्वा०आ०) से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र अनिदित, हलन्त, स्रंस् अंग के उपधाभूत नकार का कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही **'ध्वंसु अधःपतने'** धातु से–**ध्वस्तः**।*

*(२) **स्रस्यते**। स्रस्+लट्। स्रंस्+त। स्रंस्+यक्+त। स्रस्+य+ते। स्रस्यते।*

*यहां **'स्रंसु अधःपतने'** (भ्वा०आ०) से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय और **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से अनिदित, हलन्त 'स्रंस्' अंग के उपधाभूत नकार का कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही **'ध्वंसु अधःपतने'** (भ्वा०आ०) धातु से–**ध्वस्यते**।*

*(३) **सनीस्रस्यते**। स्रंस्+यङ्। स्रंस्+य। स्रस्+य। स्रस्+स्रस्+य। स+स्रस्+य। स नीक्+स्रस्+य। सनी+स्रस्+य। सनीस्रस्य+लट्। सनीस्रस्यते।*

यहां 'स्रंसु अधःपतने' (भ्वा०आ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनिदित, हलन्त 'स्रस्' अंग के उपधाभूत नकार का ङित् 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'नीग् वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम्' (८।४।८४) से अभ्यास को 'नीक्' आगम होता है।

नलोपः–

(३) दंशसञ्जस्वञ्जां शपि।२५।

प०वि०–दंश-सञ्ज-स्वञ्जाम् ६।३ शपि ७।१।

स०–दंशश्च सञ्जश्च स्वञ्ज् च ते दंशसञ्जस्वञ्जः, तेषाम्-दंशसञ्जस्वञ्जाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, नलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दंशसञ्जस्वञ्जाम् अङ्गानाम् उपधायाः शपि प्रत्यये परतो नकारस्य लोपो भवति।

उदा०–(**दंशः**) दशति देवदत्तः। (**सञ्जः**) सजति यज्ञदत्तः। (**स्वञ्जः**) परिष्वजते ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दंशसञ्जस्वञ्जाम्) दंश, सञ्ज और स्वञ्ज (अङ्गस्य) अंगों के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप होता है (शपि) शप् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–**(दंश) दशति देवदत्तः।** देवदत्त दांतों से काटता है। **(सञ्ज) सजति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त आलिंगन करता है। **(स्वञ्ज) परिष्वजते ब्रह्मदत्तः।** ब्रह्मदत्त सर्वतः आलिंगन करता है।*

*सिद्धि-**(१) दशति।** दंश्+लट्। दंश+तिप्। दंश्+शप्+ति। दंश्+अ+ति। दशति।*

*यहां **'दंश दशने'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'दंश्' अंग के उपधाभूत नकार का 'शप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है।*

*(२) **सजति। 'सञ्ज सङ्गे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **स्वजति। 'स्वञ्ज परिष्वङ्गे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

नलोपः–

(४) रञ्जेश्च।२६।

प०वि०–रञ्जेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, नलोपः, शपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रञ्जेरङ्गस्य च उपधायाः शपि नलोपः।

अर्थः-रञ्जेरङ्गस्य चोपधायाः शपि प्रत्यये परतो नकारस्य लोपो भवति।

उदा०-रजति, रजतः, रजन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रञ्जेः) रञ्ज् (अङ्गस्य) अंग के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप होता है (शपि) शप् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**रजति**। वह रंगता है। **रजतः**। वे दोनों रंगते हैं। **रजन्ति**। वे सब रंगते हैं।*

***सिद्धि-रजति**। रञ्ज्+लट्। रञ्ज्+तिप्। रञ्ज्+शप्+ति। रज्+अ+ति। रजति।*

*यहां 'रञ्ज रागे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रञ्ज्' अंग के उपधाभूत नकार का 'शप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही-**रजतः, रजन्ति**।*

नलोपः-

(५) घञि च भावकरणयोः।२७।

प०वि०-घञि ७।१ च अव्ययपदम्, भावकरणयोः ७।२।

स०-भावश्च करणं च ते भावकरणे, तयोः-भावकरणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, नलोपः, रञ्जेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रञ्जेरङ्गस्य उपधाया भावकरणयोर्घञि च नलोपः।

अर्थः-रञ्जेरङ्गस्य उपधाया भावकरणवाचिनि घञि प्रत्यये च परतो नकारस्य लोपो भवति।

उदा०-भावे-आश्चर्यो रागः। विचित्रो रागः। **करणे**-रज्यतेऽनेनेति रागः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रञ्जेः) रञ्ज् (अङ्गस्य) अंग के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप होता है (भावकरणयोः) भाववाची और करणवाची (घञि) घञ् प्रत्यय परे होने पर (च) भी।*

*उदा०-भाव-**आश्चर्यो रागः**। क्या अद्भुत रंगाई है। **विचित्रो रागः**। क्या विचित्र रंगाई है (रंगणा)। करण-**रागः**। जिससे वस्त्र आदि रंगा जाता है वह लोहित आदि रंग (द्रव्य)।*

सिद्धि-(१) रागः। रञ्ज्+घञ्। रञ्ज्+अ। रज्+अ। राज्+अ। राग्+अ। राग+सु। रागः।

यहां 'रञ्ज रागे' (दि०उ०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रञ्ज्' अंग के उपधाभूत नकार का भाववाची 'घञ्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'चजोः कु घिण्यतोः' (७।३।५२) से जकार को कुत्व गकार और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(२) रागः। यहां 'रञ्ज रागे' (दि०उ०) धातु से 'हलश्च' (३।३।१२१) से करण-कारक में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

निपातनम्–

(६) स्यदो जवे।२८।

प०वि०–स्यदः १।१ जवे ७।१।

अनु०–उपधायाः, नलोपः, घञि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जवे स्यदो घञि उपधाया नलोपः।

अर्थः–जवेऽर्थे स्यद इत्यत्र घञि परत उपधाया नकारस्य लोपो वृद्ध्यभावश्च निपात्यते।

उदा०–गवां स्यद इति गोस्यदः। अश्वस्यदः। गवाम् अश्वानां च गतिविषयको वेग इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जवे) वेग अर्थ में (स्यदः) स्यद इस पद में (घञि) घञ् प्रत्यय परे होने पर (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप और वृद्धि का अभाव निपातित है।*

*उदा०-**गोस्यदः**। गौओं का गतिविषयक वेग। **अश्वस्यदः**। घोड़ों का गति-विषयक वेग।*

सिद्धि-स्यदः। स्यन्द्+घञ्। स्यन्द्+अ। स्यद्+अ। स्यदः। गो+स्यदः=गोस्यदः।

*यहां 'स्यन्दू प्रस्रवणे' (भ्वा०आ०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। निपातन से उपधाभूत नकार का लोप और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का अभाव है। ऐसे ही-**अश्वस्यदः**।*

निपातनम्–

(७) अवोदैधोद्मप्रश्रथहिमश्रथाः।२६।

प०वि०–अवोद-एध-ओद्म-प्रश्रथ, हिमश्रथाः १।३।

स०-अवोदश्च एधश्च ओद्मश्च प्रश्रथश्च हिमश्रथश्च ते अवोदैधोद्मप्रश्रथहिमश्रथा: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-उपधाया:, नलोप इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अवोदैधोद्मप्रश्रथहिमश्रथेषु उपधाया नलोप:।

अर्थ:-अवोदैधोद्मप्रश्रथहिमश्रथेषु शब्देषु उपधाया नकारस्य लोपो निपात्यते।

उदा०-अवोद:। एध:। ओद्म:। प्रश्रथ:। हिमश्रथ:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अवोद०) अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ और हिमश्रथ इन शब्दों में (उपधाया:) उपधा के (नलोप:) नकार का लोप निपातित है।*

*उदा०-**अवोद:**। कम गीला करना। **एध:**। इंधन। **ओद्म:**। गीला करनेवाला। **प्रश्रथ:**। अति शिथिल होना। **हिमश्रथ:**। हिम (बर्फ) का पिंघलना।*

*सिद्धि-(१) **अवोद:**। अव+उन्द्+घञ्। अव+उन्द्+अ। अव+उद्+अ। अवोद+सु। अवोद:।*

*यहां अव-उपसर्गपूर्वक 'उन्दी क्लेदने' (रु०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'उन्द्' के उपधाभूत नकार का 'घञ्' प्रत्यय परे होने पर लोप निपातित है।*

*(२) **एध:**। इन्ध्+घञ्। इन्ध्+अ। इध्+अ। एध्+अ। एध+सु। एध:।*

*यहां **'ञिइन्धी दीप्तौ'** (रुधा०आ०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इन्ध्' के उपधाभूत नकार का 'घञ्' प्रत्यय परे होने पर लोप और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (८।३।८६) से गुण भी निपातित है। **'न धातुलोप आर्धधातुके'** (१।१।४) से प्राप्त गुण का प्रतिषेध नहीं होता है।*

*(३) **ओद्म:**। उन्द्+मन्। उन्द्+म। उद्+म। ओद्+म। ओद्+म। ओद्म+सु। ओद्म:।*

*यहां **'उन्दी क्लेदने'** (रुधा०प०) धातु से औणादिक 'मन्' प्रत्यय है। **'अर्तिस्तु०'** (उणा० १।१४०) से विहित 'मन्' प्रत्यय, बहुलवचन से 'उन्दी' धातु से भी होता है। इस सूत्र से उन्द् धातु के उपधाभूत नकार का लोप और पूर्ववत् गुणभाव निपातित है।*

*(४) **प्रश्रथ:**। प्र+श्रन्थ्+घञ्। प्र+श्रन्थ्+अ। प्र+श्रथ्+अ। प्रश्रथ+सु। प्रश्रथ:।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'श्रन्थ मोचनप्रतिहर्षणयो:, सन्दर्भे च'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'श्रन्थ्' के उपधाभूत नकार का 'घञ्' प्रत्यय परे होने पर लोप और **'अत उपधाया:'** (७।३।११६) से प्राप्त वृद्धि का अभाव निपातित है। ऐसे ही 'हिम' उपपद होने पर-**हिमश्रथ:**।*

नलोप-प्रतिषेधः–

(८) नाञ्चेः पूजायाम्।३०।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अञ्चेः ६।१ पूजायाम् ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, नलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पूजायाम् अञ्चेरङ्गस्य उपधाया नलोपो न।

अर्थः–पूजायामर्थे वर्तमानस्य अञ्चतेरङ्गस्य उपधाया नकारस्य लोपो न भवति।

उदा०–अञ्चिता अस्य गुरवः। अञ्चितमिव शिरो वहति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूजायाम्) पूजा अर्थ में विद्यमान (अञ्चेः) अञ्चि (अङ्गस्य) अंग के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**अञ्चिता अस्य गुरवः।** यह गुरुजनों का पूजक है। **अञ्चितमिव शिरो वहति।** वह पूजित के तुल्य शिर को धारण करता है।*

सिद्धि-अञ्चिताः। *अञ्च्+क्त। अञ्च्+त। अञ्च्+इट्+त। अञ्च्+इ+त। अञ्चित+जस्। अञ्चिताः।*

*यहां 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूजा अर्थ में **'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'** (३।२।१८८) से वर्तमानकाल में 'क्त' प्रत्यय है और **'अञ्चेः पूजायाम्'** (७।२।५३) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से पूजा अर्थ में 'अञ्चि' अंग के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से नकार का लोप प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*'**अञ्चिता अस्य गुरवः**' यहां **'क्तस्य च वर्तमाने'** (२।३।६७) से कर्ता कारक में षष्ठीविभक्ति है।*

नलोप-प्रतिषेधः–

(९) क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः।३१।

प०वि०–क्त्वि ७।१ स्कन्दि-स्यन्दोः ७।२।

स०–स्कन्दिश्च स्यन्द् च तौ स्कन्दिस्यन्दौ, तयोः-स्कन्दिस्यन्दोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, नलोपः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्कन्दिस्यन्दोरङ्गयोः क्त्वि उपधाया नलोपो न।

अर्थः–स्कन्दिस्यन्दोरङ्गयोः क्त्वा प्रत्यये परतो नकारस्य लोपो न भवति।

उदा०-(**स्कन्दिः**) स्कन्त्वा। (**स्यन्दः**) स्यन्त्वा, स्यन्दित्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्कन्दिस्यन्दोः) स्कन्दि और स्यन्द (अङ्गस्य) अंगों के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप (न) नहीं होता है (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(**स्कन्दि**) **स्कन्त्वा**। गति करके/सूखकर। (**स्यन्द**) **स्यन्त्वा, स्यन्दित्वा**। बहकर।*

*सिद्धि-(१) **स्कन्त्वा**। स्कन्द्+क्त्वा। स्कन्द्+त्वा। स्कन्त्+त्वा। स्कन्०+त्वा। स्कन्त्वा।*

*यहां '**स्कन्दिर् गतिशोषणयोः**' (भ्वा०आ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्कन्द्' के उपधाभूत नकार का 'क्त्वा' प्रत्यय परे होने पर लोप नहीं होता है। '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से नकार का लोप प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। '**खरि च**' (८।४।५४) से दकार को चर् तकार आदेश और '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६४) से पूर्ववर्ती तकार का लोप होता है।*

*ऐसे ही '**स्यन्दू प्रस्रवणे**' (भ्वा०आ०) धातु से-**स्यन्त्वा**। इस धातु के उदित् होने से '**स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा**' (७।२।४४) से विकल्प से 'इट्' आगम होता है-**स्यन्दित्वा**। इट्-पक्ष में '**न क्त्वा सेट्**' (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् न होने से धातु के उपधाभूत नकार-लोप की प्राप्ति नहीं होती है।*

नलोप-विकल्पः--

(१०) जान्तनशां विभाषा।३२।

प०वि०-जान्त-नशाम् ६।३ विभाषा १।१।

स०-जोऽन्ते येषां ते जान्ताः, जान्ताश्च नश् च ते जान्तनशः, तेषाम्-जान्तनशाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, नलोपः, न, क्त्वि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जान्तनशामङ्गानां क्त्वि उपधाया विभाषा नलोपो न।

अर्थः-जकारान्तानां नशेश्चाङ्गस्य क्त्वा प्रत्यये परत उपधाया विकल्पेन नलोपो न भवति।

उदा०-(**जान्तः**) **रञ्ज्**-रङ्क्त्वा, रक्त्वा। **भञ्ज्**-भङ्क्त्वा, भक्त्वा। (**नश्**) नंष्ट्वा, नष्ट्वा, इट्पक्षे-नशित्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-(जान्तनशाम्) जकारान्त और नश् (अङ्गस्य) अंग के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप (विभाषा) विकल्प से (न) नहीं होता है।

उदा०-(जान्त) रञ्ज्-**रङ्क्त्वा, रक्त्वा।** रंगकर। भञ्ज्-**भङ्क्त्वा, भक्त्वा।** तोड़कर। (नश्) **नंष्ट्वा, नष्ट्वा,** इट्-पक्ष में-**नशित्वा।** अदृष्ट होकर।

सिद्धि-(१) **रङ्क्त्वा।** रञ्ज्+क्त्वा। रञ्ज्+त्वा। रङ्ग्+त्वा। रङ्क्+त्वा। रङ्क्त्वा।

यहां 'रञ्ज रागे' (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।२।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से जकारान्त 'रञ्ज्' अंग के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से नकार का लोप प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से जकार को कवर्ग गकार और **'खरि च'** (८।४।५४) से गकार को चर् ककार होता है। विकल्प-पक्ष में नकार का लोप है-**रक्त्वा।**

(२) **नंष्ट्वा।** नश्+क्त्वा। नश्+त्वा। न नुम् श्+त्वा। न न् श्+त्वा। न श्+त्वा। न ष्+ट्त्वा। नंष्ट्त्वा।

यहां **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'मस्जिनशोर्झलि'** (७।१।६०) से 'नश्' को 'नुम्' आगम होता है। इस सूत्र से 'नंश्' के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है। पूर्वोक्त प्राप्ति का इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (१।१।४४) से नकार को अनुस्वार होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (७।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टकार होता है। विकल्प-पक्ष में नकार का लोप है-**नष्ट्त्वा।** 'नशित्वा' यहां **'रधादिभ्यश्च'** (७।२।४५) से विकल्प से इट् आगम होता है।

विशेषः **'रङ्क्त्वा'** आदि में **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से नकार लोप प्राप्त था, अतः यह प्राप्त विभाषा है। **'नवेति विभाषा'** (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा-संज्ञा की गई है, अतः इस प्राप्त विभाषा-सूत्र में नकार से प्राप्त का प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प होता है। **'विभाषा न भवति'** का यही अभिप्राय है।

नलोप-विकल्पः—

(११) भञ्जेश्च चिणि।३३।

प०वि०-भञ्जेः ६।१ च अव्ययपदम्, चिणि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, नलोपः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भञ्जेश्चाङ्गस्य चिणि उपधाया विभाषा नलोपः।

अर्थ:-भञ्जेरङ्गस्य चिणि परत उपधाया विकल्पेन नकारस्य लोपो भवति।

उदा०-अभाजि देवदत्तेन। अभञ्जि देवदत्तेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भञ्जे:) भञ्ज् (अङ्गस्य) अंग के (उपधायाः) उपधाभूत (नलोपः) नकार का लोप (विभाषा) विकल्प से होता है (चिणि) चिण् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**अभाजि देवदत्तेन। अभञ्जि देवदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा तोड़ा गया।*

सिद्धि-अभाजि। *भञ्ज्+लुङ्। अट्+भञ्ज्+च्लि+ल्। अ+भञ्ज्+चिण्+त। अ+भज्+इ+०। अ+भाज्+इ। अभाजि।*

*यहां **'भञ्जो आमर्दने'** (रुधा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय और **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से कर्म-अर्थ में 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। इस सूत्र से 'भञ्ज्' अंग के उपधाभूत नकार का 'चिण्' परे होने पर लोप होता है। तत्पश्चात् **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में नकार का लोप नहीं है-**अभञ्जि।***

इकार-आदेशः-

(१२) शास इदङ्हलोः।३४।

प०वि०-शासः ६।१ इत् १।१ अङ्हलोः ७।२।

स०-अङ् च हल् च तौ-अङ्हलौ, तयोः-अङ्हलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, उपधाया इति चानुवर्तते। 'क्ङिति' इति चात्र मण्डूकप्लुतगत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-शासोऽङ्गस्य उपधाया अङ्हलोः क्ङिति इत्।

अर्थः-शासोऽङ्गस्य उपधाया अङि हलादौ च क्ङिति प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-अङि-अन्वशिषत्, अन्वशिषताम्, अन्वशिषन्। **हलादौ किति**-शिष्टः, शिष्टवान्। **हलादौ ङिति**-आवां शिष्वः। वयं शिष्मः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शासः) शास् (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा को (इत्) इकार आदेश होता है (अङ्हलोः) अङ् और हलादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-अङि-**अन्वशिषत्।** उसने आज्ञा की। **अन्वशिषताम्।** उन दोनों ने आज्ञा की। **अन्वशिषन्।** उन सबने आज्ञा की। हलादि कित्-**शिष्टः।** आज्ञा की। **शिष्टवान्।** आज्ञा की। हलादि ङित्-**आवां शिष्वः।** हम दोनों आज्ञा करते हैं। **वयं शिष्मः।** हम सब आज्ञा करते हैं।*

*सिद्धि-(१) **अन्वशिषत्।** अनु+शास्+लुङ्। अनु+अट्+शास्+च्लि+ल्। अनु+अ+शास्+अङ्+तिप्। अनु+अ+शिष्+अ+त्। अन्वशिषत्।*

*यहां अनु-उपसर्गपूर्वक **'शासु अनुशिष्टौ'** (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च'** (३।१।५६) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र 'शास्' के उपधाभूत आकार को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर इकार आदेश होता है। तत्पश्चात् **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व होता है।*

*(२) **शिष्टः।** शास्+क्त। शास्+त। शिष्+ट। शिष्ट+सु। शिष्टः।*

*यहां पूर्वोक्त 'शास्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शास्' अंग के उपधाभूत आकार को हलादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकार आदेश होता है। पूर्ववत् षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में **शिष्टवान्।***

*(३) **शिष्वः।** शास्+लट्। शास्+वस्। शास्+शप्+वस्। शास्+०+वस्। शिष्+वस्। शिष्वस्। शिष्वरु। शिष्वर्। शिष्वः।*

*यहां पूर्वोक्त 'शास्' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'वस्', **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'शास्' अंग के उपधाभूत आकार को हलादि ङित् 'वस्' प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'वस्' प्रत्यय ङिद्वत् है। ऐसे ही 'मस्' प्रत्यय में-**शिष्मः।***

शा-आदेशः-

(१३) शा हौ।३५।

प०वि०-शाः १।१ हौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, शास इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शासोऽङ्गस्य हौ शाः।

अर्थः-शासोऽङ्गस्य स्थाने हौ परतः शा-आदेशो भवति।

उदा०-अनुशाधि गुरुवर ! प्रशाधि राजन् !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शासः) शास् (अङ्गस्य) अंग के स्थान में (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर (शाः) शा-आदेश होता है।*

*उदा०-**अनुशाधि गुरुवर !** हे गुरुवर ! आज्ञा करो। **प्रशाधि राजन् !** हे राजन् ! प्रशासन करो।*

***सिद्धि-अनुशाधि।** अनु+शास्+लोट्। अनु+शास्+सिप्। अनु+शास्+शप्+सि। अनु+शास्+०+हि। अनु+शा+हि। अनु+शा+धि। अनुशाधि।*

*यहां अनु-उपसर्गपूर्वक **'शासु अनुशिष्टौ'** (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से विधि-आदि अर्थों में 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'सिप्', **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शास्' अंग को 'हि' परे होने पर शा-आदेश होता है। **'असिद्धवदत्राभात्'** (३।४।२२) से इसे असिद्ध मानकर **'हुझल्भ्यो हेर्धिः'** (६।४।१०१) से 'हि' को 'धि' आदेश होता है। ऐसे ही-**प्रशाधि।***

ज-आदेशः-

(१४) हन्तेर्जः।३६।

प०वि०-हन्तेः ६।१ जः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, हाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-हन्तेरङ्गस्य हौ जः।

अर्थः-हन्तेरङ्गस्य स्थाने हौ परतो ज-आदेशो भवति।

उदा०-वीर ! शत्रून् जहि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हन्तेः) हन् (अङ्गस्य) अंग के स्थान में (हौ) हि प्रत्यय परे होने पर (जः) ज-आदेश होता है।*

*उदा०-वीर ! **शत्रून् जहि।** हे वीर ! शत्रुओं का वध करो।*

***सिद्धि-जहि।** हन्+लोट्। हन्+सिप्। हन्+शप्+सि। हन्+०+सि। हन्+हि। ज+हि। जहि।*

*यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से विधि-आदि अर्थों में लोट् प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'सिप्', **'कर्तरि शप्'***

(३।४।७८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (३।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। इस सूत्र से 'हन्' अंग को 'हि' प्रत्यय परे होने पर ज-आदेश होता है। 'असिद्धवदत्राभात्' (३।४।२२) से ज-आदेश को असिद्ध मानकर 'अतो हेः' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् नहीं होता है।

अनुनासिकलोपप्रकरणम्

अनुनासिक-लोपः-

(१) अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति।३७।

प०वि०-अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनाम् ६।३ अनुनासिक-लोपः १।१ झलि ७।१ क्ङिति ७।१।

स०-अनुदात्ताश्च ते उपदेशा इति अनुदात्तोपदेशाः। उपदिश्यमानाव-स्थायाम् अनुदात्ता इत्यर्थः। तनोतिरादिर्येषां ते तनोत्यादयः। अनुदात्तोपदेशाश्च वनतिश्च तनोत्यादयश्च ते-अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादयः, तेषाम्-अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् (कर्मधारयबहुव्रीहिगर्भित इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। अनुनासिकस्य लोप इति अनुनासिकलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। कश्च ङश्च तौ क्ङौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् अङ्गानाम् अनुनासिकलोपो झलि क्ङिति।

अर्थः-अनुदात्तोपदेशानाम्, वनतेः, तनोत्यादीनां चाङ्गानाम् अनुनासिकस्य लोपो भवति, झलादौ क्ङिति प्रत्यये परतः।

उदा०-(अनुदात्तोपदेशाः) रम्-रत्वा, रतः, रतवान्, रतिः। अनुदात्तोपदेशा अनुनासिकान्ता यमिरमिनमिगमिहनिमन्यतयो वर्तन्ते। **(वनतिः)** वतिः। **(तनोत्यादयः) तनु-**ततः, ततवान्। **क्षणु-**क्षतः, क्षतवान्। **ऋणु-**ऋतः, ऋतवान्। **तृणु-**तृतः, तृतवान्। **घृणु-**घृतः, घृतवान्। **वनु-**वतः, वतवान्। **मनु-**मतः, मतवान्, **ङिति-**अतत, अतथाः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अनुदात्तोपदेश०) उपदिश्यमान अवस्था में अनुदात्त, वनति और तनोति आदि (अङ्गस्य) अंगों के (अनुनासिकलोपः) अनुनासिक का लोप होता है (झलि) झलादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-**(अनुदात्तोपदेश) रम्-रत्वा।** खेलकर। **रतः।** खेला। **रतवान्।** खेला। **रतिः।** खेलना। **(वनति) वतिः।** सेवा करना। **(तनोत्यादि) तनु-ततः।** विस्तार किया। **ततवान्।** विस्तार किया। **क्षणु-क्षतः।** हिंसा की। **क्षतवान्।** हिंसा की। **ऋणु-ऋतः।** गया। **ऋतवान्।** गया। **तृणु-तृतः।** दान किया। **तृतवान्।** दान किया। **घृणु-घृतः।** चमका। **घृतवान्।** चमका। **वनु-वतः।** याचना की। **वतवान्।** याचना की। **मनु-मतः।** समझा। **मतवान्।** समझा। **ङिति-अतत। अतथाः।**

सिद्धि-(१) रत्वा। रम्+क्त्वा। रम्+त्वा। र०+त्वा। रत्वा+सु। रत्वा।

यहां **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनुदात्तोपदेश (अनिट्) रम् धातु के अनुनासिक (म्) का झलादि 'क्त्वा' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है।

(२) **रतः।** रम्+क्त। रम्+त। र०+त। रत+सु। रतः।

यहां पूर्वोक्त 'रम्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस धतु के अनुनासिक का झलादि 'क्त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही क्तवतु में-**रतवान्।**

(३) **रतिः।** रम्+क्तिन्। रम्+ति। र०+ति। रति+सु। रतिः।

यहां पूर्वोक्त 'रम्' धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। अनुनासिक-लोप कार्य पूर्ववत् है।

(४) **वतिः।** वन्+क्तिन्। वन्+ति। व०+ति। वति+सु। वतिः।

यहां **'वन सम्भक्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। यहां 'क्तिच्' प्रत्यय नहीं है क्योंकि 'क्तिच्' प्रत्यय में तो **'न क्तिचि दीर्घश्च'** (६।४।३९) से अनुनासिक-लोप का प्रतिषेध है।

(५) **ततः।** **'तनु विस्तारे'** (त०उ०)।

(६) **क्षतः।** **'क्षणु हिंसायाम्'** (त०उ०)।

(७) **ऋतः।** **'ऋणु गतौ'** (त०उ०)।

(८) **वतः।** **'वनु याचने'** (त०आ०)।

(९) **मतः।** **'मनु अवबोधने'** (त०आ०)।

(१०) **अतत।** तनू+लुङ्। अट्+तन्+च्लि+ल्। अ+तन्+सिच्+त। अ+त+०त। अतत।

*यहां 'तनु विस्तारे' (त०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। '**तनादिभ्यस्तथासोः**' (२।४।७९) से 'सिच्' का लुक् हो जाता है। इस सूत्र से 'तन्' अंग के अनुनासिक नकार का झलादि ङित् 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से सार्वधातुक 'त' प्रत्यय ङिद्वत् है। 'थास्' प्रत्यय में-**अतथाः**।*

अनुनासिकलोप-विकल्पः–

(२) वा ल्यपि।३८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, ल्यपि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम्, अनुनासिकलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् अङ्गानां वाऽनुनासिकलोपो ल्यपि।

अर्थः–अनुदात्तोपदेशानाम्, वनतेः, तनोत्यादीनां चाङ्गानां अनुनासिकस्य विकल्पेन लोपो भवति, ल्यपि प्रत्यये परतः।

व्यवस्थितविभाषा चेयम्। मकारान्तानां विकल्पो भवति, अन्यत्र तु नित्यमेव लोपो जायते।

उदा०–**(अनुदात्तोपदेशः) यम्**–प्रयत्य, प्रयम्य। **रम्**–प्ररत्य, प्ररम्य। **नम्**–प्रणत्य, प्रणम्य। **गम्**–आगत्य, आगम्य। **हन्**–आहत्य। **मन्**–प्रमत्य। **(वनतिः)** प्रवत्य। **(तनोत्यादिः) तन्**–प्रतत्य। **क्षण्**–प्रक्षत्य। इत्यादिकम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(अनुदात्तोपदेश०) उपदेश अवस्था में अनुदात्त, वनति और तनोति आदि (अङ्गस्य) अंगों के (अनुनासिकलोपः) अनुनासिक का लोप (वा) विकल्प से होता है (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर।*

यह व्यवस्थित-विभाषा है, अतः मकारान्त अंगों का विकल्प से और अन्यत्र अनुनासिक का नित्य लोप होता है।

*उदा०-(अनुदात्तोपदेश) यम्-**प्रयत्य, प्रयम्य**। नियम में करके। रम्-**प्ररत्य, प्ररम्य**। रमण करके। नम्-**प्रणत्य, प्रणम्य**। प्रणाम करके। गम्-**आगत्य, आगम्य**। आकर। हन्-**आहत्य**। धक्का देकर। मन्-**प्रमत्य**। खूब समझकर। (वनति) **प्रवत्य**।*

खूब मांगकर। (तनोति) तन्-प्रतत्य। खूब फैलाकर। क्षण्-प्रक्षत्य। खूब हिंसा करके। इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **प्रयत्य**। प्र+यम्+क्त्वा। प्र+यम्+ल्यप्। प्र+य०+य। प्र+य तुक्+य। प्र+यत्+य। प्रयत्य+सु। प्रयत्य।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय और '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश होता है। इस सूत्र से अनुदात्तोपदेश 'यम्' अंग के अनुनासिक का 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७०) से 'तुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में अनुनासिक का लोप नहीं है-**प्रयम्य**।*

*(२) **प्ररत्य, प्ररम्य**। 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०)।*

*(३) **प्रणत्य, प्रणम्य**। 'णम प्रह्वत्वे शब्दे च' (भ्वा०आ०)।*

*(४) **आगत्य, आगम्य**। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०आ०)।*

*(५) **आहत्य**। 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०)।*

*(६) **प्रमत्य**। 'मनु अवबोधने' (त०आ०)।*

*(७) **प्रवत्य**। 'वनु याचने' (त०आ०)।*

*(८) **प्रतत्य**। 'तनु विस्तारे' (त०उ०)।*

*(९) **प्रक्षत्य**। 'क्षणु हिंसायाम्' (त०उ०)।*

अनुनासिकलोप-प्रतिषेधः-

(३) न क्तिचि दीर्घश्च।३६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, क्तिचि ७।१ दीर्घः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम्, अनुनासिकलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् अङ्गानाम् अनुनासिकलोपो दीर्घश्च न क्तिचि।

अर्थः-अनुदात्तोपदेशानां वनतेः, तनोत्यादीनां चाङ्गानाम् अनुनासिकस्य लोपो दीर्घश्च न भवति, क्तिचि प्रत्यये परतः।

उदा०-**(अनुदात्तोपदेशः) यम्**-यन्तिः। **(वनतिः)** वन्तिः। **(तनोत्यादिः) तन्**-तन्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुदात्तोपदेश०) उपदेश अवस्था में अनुदात्त, वनति और तनोति आदि (अङ्गस्य) अंगों के (अनुनासिकलोपः) अनुनासिक का लोप और (दीर्घः) दीर्घ (च) भी (न) नहीं होता है (क्तिचि) क्तिच् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-(अनुदात्तोपदेश) यम्-यन्तिः। उपरति। (वनति) वन्तिः। मांग। (तनोत्यादि) तन्-तन्तिः। गो-समूह।

सिद्धि-(१) यन्तिः। यम्+क्तिच्। यम्+ति। यन्+ति। यन्तिः।

*यहां **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०) धातु से **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।७४) से 'क्तिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनुदात्तोपदेश 'यम्' अंग के अनुनासिक का 'क्तिच्' प्रत्यय परे होने पर लोप नहीं होता है और **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से प्राप्त दीर्घ भी नहीं होता है।*

*(२) वन्तिः। **'वनु याचने'** (त०आ०)।*

*(३) तन्तिः। **'तनु विस्तारे'** (त०आ०)।*

अनुनासिक-लोपः-

(४) गमः क्वौ।४०।

प०वि०-गमः ६।१ क्वौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अनुनासिकलोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमोऽङ्गस्यानुनासिकलोपः क्वौ।

अर्थः-गमोऽङ्गस्यानुनासिकस्य लोपो भवति, क्वौ प्रत्यये परतः।

उदा०-अङ्गान् गच्छतीति-अङ्गगत्। कलिङ्गगत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गमः) गम् (अङ्गस्य) अंग के (अनुनासिकलोपः) अनुनासिक का लोप होता है (क्वौ) क्विप् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**अङ्गगत्।** अंग देश में जानेवाला। **कलिङ्गगत्।** कलिंग देश में जानेवाला।*

*सिद्धि-**अङ्गगत्।** अङ्ग+गम्+क्विप्। अङ्ग+गम्+वि। अङ्ग+ग+वि। अङ्ग+ग तुक्+वि। अङ्ग+ग त्+०। अङ्गगत्+सु। अङ्गगत्।*

*यहां अङ्ग उपपद **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'गम्' अंग को 'क्विप्' प्रत्यय परे होने पर अनुनासिक मकार का लोप होता है। तत्पश्चात् **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७०) से 'तुक्' आगम होता है। ऐसे ही-**कलिङ्गगत्।***

विशेषः *(१) अङ्ग-श्री गंगा के तट पर अवस्थित प्राचीन एक प्रसिद्ध राज्य। इस राज्य की राजधानी का नाम चम्पा नगरी था। चम्पा नगरी का दूसरा नाम अनङ्गपुरी भी था। यह चम्पा नगरी आधुनिक भागलपुर के समीप विहार प्रान्त में थी (श०कौ०)।*

(२) कलिङ्ग-उड़ीसा के दक्षिण की ओर का प्रदेश। यह प्रदेश गोदावरी नदी के उद्गम स्थान तक फैला हुआ था। इस राज्य की राजधानी कलिङ्गनगर, समुद्र-तट से कुछ फासले पर थी, और सम्भवतः उस स्थान पर भी जहां आधुनिक राजमहेन्द्री नामक नगर है (श०कौ०)।

आकार-आदेशः–

(५) विड्वनोरनुनासिकस्यात्।४१।

प०वि०–विट्-वनोः ७।२ अनुनासिकस्य ६।१ आत् १।१।

स०–विट् च वन् च तौ विड्वनौ, तयोः-विड्वनोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अनुनासिकस्याङ्गस्य आत्, विड्वनोः।

अर्थः–अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य आकार आदेशो भवति, विटि वनि च प्रत्यये परतः।

उदा०-विट्-(जन्) अब्जाः, गोजा, ऋतजाः, अद्रिजाः। **(सन्)** गोषा इन्द्रो नृषा असि। **(खन्)** कूपखाः, शतखाः, सहस्रखाः। **(क्रम्)** दधिक्राः। **(गम्)** अग्रेगा उन्नेतॄणाम्। **वन्**–विजावा, अग्रेजावा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुनासिकस्य) अनुनासिक जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अंग के (अनुनासिकस्य) अनुनासिक के स्थान में (आत्) आकार आदेश होता है (विड्वनोः) विट् और वन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-विट्-(जन्) ***अब्जाः।*** *जल में उत्पन्न होनेवाला।* ***गोजा।*** *गौओं में उत्पन्न होनेवाला।* ***ऋतजाः।*** *ठीक/उचित स्थान पर उत्पन्न होनेवाला।* ***अद्रिजाः।*** *पहाड़ पर उत्पन्न होनेवाला। (सन्)* ***गोषा इन्द्रो नृषा असि।*** *गोषा=गोदान करनेवाला। नृषाः=नरदान करनेवाला। (खन्)* ***कूपखाः।*** *कूआ खोदनेवाला।* ***शतखाः।*** *सौ कूप खोदनेवाला।* ***सहस्रखाः।*** *हजार कूप खोदनेवाला। (क्रम्)* ***दधिक्राः।*** *घोड़ा। (गम्)* ***अग्रेगा उन्नेतॄणाम्।*** *अग्रेगाः=आगे चलनेवाला। वन्-* ***विजावा।*** *उत्पन्न होनेवाला।* ***अग्रेजावा।*** *आगे उत्पन्न होनेवाला। अग्रे=प्रारम्भ में।*

सिद्धि-(१) अब्जाः । अप्+जन्+विट् । अप्+जन्+वि । अप्+ज आ+वि । अब्जा+० । अब्जा+सु । अब्जाः ।

यहां अप्-उपपद 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से 'जनसनखनक्रमगमो विट्' (३।२।६७) से 'विट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से जन् के अनुनासिक को 'विट्' प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से झल् पकार को जश् बकार आदेश होता है। ऐसे ही-गोजाः आदि।

(२) गोषाः । 'षणु दाने' (त०उ०)। ऐसे ही-नृषाः ।

(३) कूपखा। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०)। ऐसे ही-शतखाः, सहस्रखाः ।

(४) दधिक्राः । 'क्रमु पादविक्षेपे' (भ्वा०प०)।

(५) अग्रेगाः । 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।

(६) विजावा । वि+जन्+वनिप् । वि+जन्+वन् । वि+ज आ+वन् । विजावन्+सु । विजावान्+सु । विजावान्+० । विजावा० । विजावा ।

यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (३।२।७२) से 'वनिप्' प्रत्यय है। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-अग्रेजावा ।

आकार-आदेशः--

(६) जनसनखनां सञ्झलोः ।४२।

प०वि०-जन-सन-खनाम् ६।३ सन्-झलोः ७।२।

स०-जनश्च सनश्च खन् च ते जनसनखनः, तेषाम्-जनसनखनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सन् च झल् च तौ सञ्झलौ, तयोः-सञ्झलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, आद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जनसनखनाम् अङ्गानाम् आत् सञ्झलोः क्ङिति।

अर्थः-जनसनखनाम् अङ्गानाम् आकार आदेशो भवति, झलादौ सनि झलादौ क्ङिति च प्रत्यये परतः।

उदा०-(जन्) **झलादौ किति**-जातः, जातवान्, जातिः। **(सन्) झलादौ सनि**-सिषासति। **झलादौ किति**-सातः, सातवान्, सातिः। **(खन्) झलादौ किति**-खातः, खातवान्, खातिः।

आर्यभाषाः अर्थ-(जनसखनाम्) जन्, सन् और खन् (अङ्गानाम्) अंगों को (आत्) आकार आदेश होता है (सन्झलोः) झलादि सन् और झलादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-(जन्) **झलादि कित्-जातः।** उत्पन्न हुआ। **जातवान्।** उत्पन्न हुआ। **जातिः।** उत्पन्न होना। **(सन्) झलादि सनि-सिषासति।** देवदत्त दान करना चाहता है। **सातः।** दान किया। **सातवान्।** दान किया। **सातिः।** दान करना। **(खन्) झलादि कित्-खातः।** खोदा। **खातवान्।** खोदा। **खातिः।** खोदना।

सिद्धि-(१) **जातः।** जन्+क्त। जन्+त। ज आ+त। जात+सु। जातः।

यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जन्' अंग को झलादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर **आकार** आदेश होता है और वह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से अन्तिम अल् नकार के स्थान में किया जाता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**जातवान्।**

(२) **जातिः।** जन्+क्तिन्। जन्+ति। ज आ+ति जाति+सु। जातिः।

यहां पूर्वोक्त 'जन्' धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय हे। इस सूत्र से पूर्ववत् आकार आदेश होता है।

(३) **सिषासति।** सन्+सन्। स ओ+सन्। सा+सन्। सा सा+सन्। स सा+स। सिषाष। सिषास+लट्। सिषास+तिप्। सिसाष+शप्+ति। सिषास+अ+ति। सिषासति।

यहां **'षणु दाने'** (त०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सन्' को झलादि सन् प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। तत्पश्चात् **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'सा' को द्वित्व होता है। **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास के अकार को इकार आदेश और **'आदेशप्रत्ययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। तत्पश्चात् सन्नन्त 'सिषास' धातु से लट् आदि कार्य होते हैं।

(४) **सातः, सातवान्, सातिः।** **'षणु दाने'** (त०उ०) पूर्ववत्।

(५) **खातः, खातवान्, खातिः।** **खनु अवदारणे'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

विशेषः यहां **'सञ्झलोः'** से झलादि सन् और कित् प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है। जन् और खन् धातुओं में 'सन्' को इट् आगम होने से झलादि 'सन्' उपलब्ध नहीं है। 'सन्' धातु में **'सनीवन्त०'** (७।२।४९) से 'सन्' प्रत्यय परे होने पर विकल्प से इट्-आगमविधि होने से झलादि सन् उपलब्ध हो जाता है। इट् पक्ष में- **'सिसनिषति'** रूप बनता है।

आकारादेश-विकल्पः–

(७) ये विभाषा।४३।

प०वि०-ये ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, आत्, जनसनखानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जनसनखनाम् अङ्गानां ये क्ङिति विभाषाऽऽत्।

अर्थः-जनसनखनाम् अङ्गानां यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतो विकल्पेनाऽऽकार आदेशो भवति।

उदा०-(जन्) **किति**-जायते, जन्यते। **ङिति**-जाजायते, जञ्जन्यते। (सन्) **किति**-सायते, सन्यते। **ङिति**-सासायते, संसान्यते। (खन्) **किति**-खायते, खन्यते। **ङिति**-चाखायते, चङ्खन्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जनसनखनाम्) जन्, सन् और खन् (अङ्गानाम्) अंगों को (ये) यकारादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(जन्) कित् में-**जायते, जन्यते।** उत्पन्न किया जाता है। ङित् में-**जाजायते, जञ्जन्यते।** पुनः-पुनः उत्पन्न होता है। (सन्) कित् में-**सायते, सन्यते।** दान किया जाता है। ङित् में-**सासायते, संसान्यते।** पुनः-पुनः दान करता है। (खन्) कित् में-**खायते, खन्यते।** खोदा जाता है। ङित् में-**चाखायते, चङ्खन्यते।** पुनः-पुनः खोदता है।*

*सिद्धि-(१) **जायते।** जन्+लट्। जन्+त। जन्+यक् त। ज आ+य+ते। जायते।*

*यहां '**जनी प्रादुर्भावे**' (भ्वा०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से कर्म अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है, '**तप्तिस्झि०**' (३।४।७८) से लादेश 'त' प्रत्यय, '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से यक् विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से जन् अंग को यकारादि, कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में आकार आदेश नहीं है-**जन्यते।***

*(२) **सायते, सन्यते।** '**षणु दाने**' (त०उ०)।*

*(३) **खायते, खन्यते।** '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०)।*

*(४) **जाजायते।** जन्+यङ्। ज आ+य। जा+जा+य। ज+जा+य। जाजाय+लट्। जाजाय+त। जाजाय+शप्+त। जाजाय+अ+ते। जाजायते।*

*यहां पूर्वोक्त 'जन्' धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जन्' अंग को यकारादि ङित् 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर*

*आकार आदेश होता है। तत्पश्चात् 'सन्यङोः' (६।१।९) से द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व और 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। तत्पश्चात् यङन्त 'जाजाय' धातु से 'लट्' आदि कार्य होते हैं। विकल्प-पक्ष में आकार आदेश नहीं है-**जञ्जन्यते**। 'नुगतोऽनुनासिकस्य' (७।४।८५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है।*

*(५) **सासायते, संसन्यते**। '**षणु अवदाने**' (त०उ०)।*

*(६) **चाखायते, चङ्खन्यते**। '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०)। पूर्ववत् अभ्यास को 'नुक्' आगम और 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास को चुत्व होता है।*

आकारादेश-विकल्पः-

(८) तनोतेर्यकि।४४।

प०वि०-तनोतेः ६।१ यकि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आत्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तनोतेरङ्गस्य यकि विभाषाऽऽत्।

अर्थः-तनोतेरङ्गस्य यकि प्रत्यये परतो विकल्पेनाऽऽकार आदेशो भवति।

उदा०-तायते देवदत्तेन। तन्यते देवदत्तेन।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तनोतेः) तनोति (अङ्गस्य) अंग को (यकि) यक् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**तायते देवदत्तेन**। देवदत्त के द्वारा विस्तार किया जाता है। **तन्यते देवदत्तेन**। अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**तायते**। तन्+लट्। तन्+त। तन्+यक्+त। त आ+य+ते। तायते।*

*यहां '**तनु विस्तारे**' (तना०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'तन्' अंग को 'यक्' प्रत्यय परे होने पर आकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में आकार आदेश नहीं है-**तन्यते**।*

आकार-आदेशः-

(९) सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम्।४५।

प०वि०-सनः ६।१ क्तिचि ७।१ लोपः १।१ च अव्ययपदम्, अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सनोऽङ्गस्य क्तिचि आत्, अस्यान्यतरस्यां लोपश्च।

अर्थः-सनोतेरङ्गस्य क्तिचि प्रत्यये परत आकार आदेशो भवति, अस्याङ्गावयवस्य नकारस्य विकल्पेन लोपश्च भवति।

उदा०-(**सन्**) सातिः (आकारादेशः)। सन्तिः (न नकारलोपः)। सतिः (नकारलोपः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सनः) सनोति (अङ्गस्य) अंग को (क्तिचि) क्तिच् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकार आदेश होता है और (अस्य) इस अंग के अवयवभूत नकार का (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोप (च) भी होता है।*

*उदा०-(**सन्**) **सातिः**। दान करना (आकारादेश)। **सन्तिः**। दान करना (नकार का लोप नहीं)। **सतिः**। दान करना (नकार का लोप)।*

सिद्धि-सातिः। *सन्+क्तिच्। सन्+ति। स आ+ति। साति+सु। सातिः।*

*यहां '**षणु दाने**' (त०उ०) धातु से '**क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्**' (३।३।१७४) से 'क्तिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सन्' अंग को आकार आदेश होता है और नकार-लोप के विकल्प से-**सन्तिः** और **सतिः** रूप भी होते हैं।*

।। इति अनुनासिकलोपप्रकरणम्।।

आर्धधातुकप्रकरणम्

आर्धधातुक-अधिकारः--

(१) आर्धधातुके।४६।

वि०-आर्धधातुके ७।१।

अर्थः-'आर्धधातुके' इत्यधिकारोऽयम्। '**मयतेरिदन्यतरस्याम्**' (६।४।७०) इत्यस्मात् प्राग् यद् वक्ष्यति 'आर्धधातुके' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'**अतो लोपः**' (८।४।४८) इति **चिकीर्षिता, जिहीर्षिता**।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आर्धधातुके) 'आर्धधातुके' यह अधिकार है। पाणिनि मुनि '**मयतेरिदन्यतरस्याम्**' (६।४।७०) से पूर्व जो कहेंगे वह आर्धधातु-परक जानना चाहिये।*

*जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'अतो लोपः'** (६।४।४८) अर्थात् अकारान्त अंग का लोप होता है, आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर। **चिकीर्षिता।** करने का इच्छुक। **जिहीर्षिता।** हरने का इच्छुक।*

***सिद्धि-चिकीर्षिता** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

रम्-आगमः-

(२) भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्।४७।

प०वि०-भ्रस्जः ६।१ र-उपधयोः ६।२ रम् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-रश्च उपधा च ते रोपधे, तयोः-रोपधयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्रस्जोऽङ्गस्य रोपधया आर्धधातुकेऽन्यतरस्यां रम्।

अर्थः-भ्रस्जोऽङ्गस्य रेफस्य उपधायाश्च स्थाने आर्धधातुके परतो विकल्पेन रम्-आगमो भवति। 'रोपधयोः' इति स्थानषष्ठीनिर्देशाद् रेफ उपधा च निवर्तते।

उदा०-भ्रष्टा, भर्ष्टा। भ्रष्टुम्, भर्ष्टुम्। भ्रष्टव्यम्, भर्ष्टव्यम्। भ्रज्जनम्, भर्जनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भ्रस्जः) भ्रस्ज (अङ्गस्य) अङ्ग के (रोपधायोः) रेफ और उपधा के स्थान में (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (रम्) रम् आगम होता है।*

*उदा०-**भ्रष्टा, भर्ष्टा।** पकाने (भूनने) वाला। **भ्रष्टुम्, भर्ष्टुम्।** पकाने के लिये। **भ्रष्टव्यम्, भर्ष्टव्यम्।** पकाना चाहिये। **भ्रज्जनम्, भर्जनम्।** पकाना।*

*सिद्धि-(१) **भ्रष्टा।** भ्रस्ज्+तृच्। भ्रस्ज्+तृ। भ्रस्ष्+तृ। भ्र ष् ट्+सु। भ्रष्टा।*

*यहां **'भ्रस्ज पाके'** (तु०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से संयोगादि सकार का लोप, **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से 'भ्रस्ज्' के जकार को षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से 'तृच्' के तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*(२) **भर्ष्टा।** भ्रस्ज्+तृच्। भ्रस्ज्+तृ। भ् अ रम् ज्+तृ। भ र् ज्+त। भ र्+ष्+ट्। भर्ष्ट्+सु। भर्ष्टा।*

*यहां पूर्वोक्त 'भ्रस्ज' धातु से पूर्ववत् आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भ्रस्ज्' धातु के रेफ और उपधाभूत सकार के स्थान में विकल्प-पक्ष में 'रम्' आगम होता है। 'रम्' आगम मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४६) से 'भ्रस्ज्' के अन्तिम अच् अकार से परे होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **भ्रष्टुम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से आर्धधातुक 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **भर्ष्टुम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से पूर्ववत् आर्धधातुक 'तुमुन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प-पक्ष में 'रम्' आगम है।*

*(५) **भ्रष्टव्यम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से आर्धधातुक 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **भर्ष्टव्यम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से पूर्ववत् आर्धधातुक 'तव्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प-पक्ष में 'रम्' आगम है।*

*(७) **भ्रज्जनम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव-अर्थ में आर्धधातुक 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश हेता है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से 'भ्रस्ज्' के सकार के जश्त्व 'दकार' और इसको 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से चवर्ग जकार होता है।*

*(८) **भर्जनम्।** यहां 'भ्रस्ज' धातु से पूर्ववत् आर्धधातुक 'ल्युट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विकल्प-पक्ष में 'रम्' आगम है। **'अचो रहाभ्यां द्वे'** (८।४।४६) से यर् (जकार) को विकल्प से द्वित्व होता है-**भर्जनम्, भर्ज्जनम्।***

लोपादेशः–

(३) अतो लोपः ।४८।

प०वि०–अतः ६।१ लोपः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अतोऽङ्गस्य अर्धधातुके लोपः।

अर्थः–अकारान्तस्याङ्गस्य आर्धधातुके परतो लोपो भवति।

उदा०–चिकीर्षिता। चिकीर्षितुम्। चिकीर्षितव्यम्। धिनुतः। कृणुतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप-आदेश होता है।*

*उदा०-**चिकीर्षिता**। करने का इच्छुक। **चिकीर्षितुम्**। करने की इच्छा के लिये। **चिकीर्षितव्यम्**। करने की इच्छा करनी चाहिये। **धिनुतः**। वे दोनों तृप्त करते हैं। **कृणुतः**। वे दोनों हिंसा करते हैं/करते हैं।*

*सिद्धि-(१) **चिकीर्षिता**। चिकीर्ष+तृच्। चिकीर्ष+तृ। चिकीर्ष्+इट्+तृ। चिकीर्ष्+इ+तृ। चिकीर्षितृ+सु। चिकीर्षिता।*

*यहां सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है और इसे **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'चिकीर्ष' धातु के **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से अन्तिम अकार का लोप होता है।*

*(२) **चिकीर्षितुम्**। यहां 'चिकीर्ष' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से आर्धधातुक 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **चिकीर्षितव्यम्**। यहां 'चिकीर्ष' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से आर्धधातुक 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **धिनुतः**। धिन्व्+लट्। धिन्व्+तस्। धिन्व्+उ+तस्। धिन्अ+उ+तस्। धिन्०+उ+तस्। धिनुतः।*

*यहां **'धिवि प्रीणनार्थः'** (भ्वा०प०) धातु से **'धिन्विकृण्व्योर च'** (३।१।८०) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और 'धिन्व्' के वकार को अकार आदेश होता है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'उ' प्रत्यय परे होने पर इस अन्तिम अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**'कृवि हिंसाकरणयोश्च'** (भ्वा०प०) धातु से-**'कृणुतः**। यह धातु चकार से गत्यर्थक भी है।*

लोपादेशः-

(४) यस्य हलः ।४६।

प०वि०-यस्य ६।१ हलः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलो यस्य आर्धधातुके लोपः।

अर्थः-हल उत्तरस्य य-शब्दस्य आर्धधातुके परतो लोपो भवति।

उदा०-बेभिदिता। बेभिदितुम्। बेभिदितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हलः) हल् से परे (यस्य) य-शब्द को (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप-आदेश होता है।*

*उदा०-**बेभिदिता।** पुनः-पुनः अधिक भेदन (फाड़ना) करनेवाला। **बेभिदितुम्।** पुनः-पुनः अधिक भेदन करने के लिये। **बेभिदितव्यम्।** पुनः-पुनः अधिक भेदन करना चाहिए।*

*सिद्धि-**बेभिदिता।** बेभिद्य+तृच्। बेभिद्य+तृ। बेभिद्य+इट्+तृ। बेभिद्०+इ+तृ। बेभिदितृ+सु। बेभिदिता।*

*यहां यङन्त 'बेभिद्य' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है और इसे **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'बेभिद्य' अंग के य-शब्द (य्+अ) का संघात-रूप में ग्रहण किया गया है, अतः यहां **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से प्रथम अकार का लोप नहीं होता है अपितु इस सूत्र से संघात-रूप यकार और अकार का लोप होता है।*

*(२) **बेभिदितुम्।** यहां यङन्त 'बेभिद्य' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **बेभिदितव्यम्।** यहां यङन्त 'बेभिद्य' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।१३३) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लोपादेश-विकल्पः–

(५) क्यस्य विभाषा।५०।

प०वि०-क्यस्य ६।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोपः, हल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलः क्यस्य आर्धधातुके विभाषा लोपः।

अर्थः-अङ्गावयवाद् हल उत्तरस्य क्य-प्रत्ययस्य आर्धधातुके परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-आत्मनः समिधमिच्छति, समिद् इवाचरतीति वा-समिध्यिता, समिधिता। दृषद्यिता, दृषदिता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के अवयव (हलः) हल् से परे (क्यस्य) क्यच् और क्यङ् प्रत्यय को (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-**समिध्यिता, समिधिता।** अपनी समिधा को चाहनेवाला अथवा समिधा के समान आचरण करनेवाला। **दृषद्यिता, दृषदिता।** अपने पत्थर को चाहनेवाला अथवा पत्थर के समान आचरण करनेवाला।*

__सिद्धि-समिध्यिता।__ समिध्+क्यच्। समिध्+य। समिध्य+तृच्। समिध्य+इट्+तृ। समिध्य+इ+तृ। समितध्यतृ+सु। समिध्यिता।

*यहां प्रथम 'समिध्' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है अथवा '**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च**' (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् क्यच्-प्रत्ययान्त 'समिध्य' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। '**अतो लोपः**' (६।४।४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में क्यच्/क्यङ् प्रत्यय का इस सूत्र से लोप होता है-**समिधिता।** ऐसे ही 'दृषद्' शब्द से -**दृषद्यिता, दृषिदिता।** यहां 'क्य' से क्यच् और क्यङ् प्रत्यय का सामान्यरूप से ग्रहण किया जाता है।*

णि-लोपः--

(६) णेरनिटि।५१।

प०वि०-णेः ६।१ अनिटि ७।१।

स०-न इड् यस्य सः-अनिट्, तस्मिन्-अनिटि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य णेरनिटि आर्धधातुके लोपः।

अर्थः-अङ्गस्य णि-प्रत्ययस्य अनिडादावार्धधातुके प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-अततक्षत्। अररक्षत्। आटिटत्। आशिशत्। कारणा। हारणा। कारकः। हारकः। कार्यते। हार्यते। ज्ञीप्सति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्सम्बन्धी (णेः) णिच् प्रत्यय को (अनिटि) अनिट्-आदि (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-**अततक्षत्।** उसने तनूकरण (छिलाई) कराया। **अररक्षत्।** उसने रक्षा कराई। **आटिटत्।** उसने भ्रमण (घुमाई) कराया। **आशिशत्।** उसने भोजन कराया। **कारणा।** कार्य कराना। **हारणा।** चोरी कराना। **कारकः।** करानेवाला। **हारकः।** हरानेवाला। **कार्यते।** उसके द्वारा कराया जाता है। **हार्यते।** उसके द्वारा हराया जाता है। **ज्ञीप्सति।** वह बतलाना चाहता है।*

सिद्धि-(१) **अततक्षत्।** तक्ष्+णिच्। तक्ष्+इ। तक्षि। तक्षि+लुङ्। अट्+तक्षि+च्लि+ल्। अ+तक्षि+चङ्+तिप्। अ+तक्षि+अ+त्। अ+तक्ष्+अ+त्। अ+तक्ष्-तक्ष्+अ+त्। अ+त-तक्ष्+अ+त्। अततक्षत्।

यहां 'तक्षू तनूकरणे' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'तक्षि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में लुङ् प्रत्यय है। **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से अनिट्-आदि, आर्धधातुक 'चङ्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। तत्पश्चात् **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है।

(२) **अररक्षत्।** 'रक्ष पालने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) **आटिटत्।** 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) **आशिशत्।** 'अश भोजने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) **कारणा।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+युच्। कारि+अन। कार्+अन। कारण+टाप्। कारण+आ। कारणा+सु। कारणा।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से **'ण्यासश्रन्थो युच्'** ३।३।१०७) से स्त्रीलिङ्ग में 'युच्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। इस सूत्र से अनिट्-आदि आर्धधातुक 'युच्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।१।३) से णत्व और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**हारणा।**

(६) **कारकः।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+ण्वुल्। कारि+अक। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।

यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनिट्-आदि आर्धधातुक 'ण्वुल्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हारकः।**

(७) **कार्यते।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+लट्। कारि+त। कारि+यक्+त। कार्+य+ते। कार्यते।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से कर्म-वाच्य अर्थ में 'लट्' प्रत्यय

*तथा 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से कर्मवाच्य अर्थ में 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से अनिट्-आदि, आर्धधातुक 'यक्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से एत्व होता है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हार्यते।***

*(८) **ज्ञीप्सति।** ज्ञा+णिच्। ज्ञा+इ। ज्ञा+पुक्+इ। ज्ञा+प्+इ। ज्ञापि। ज्ञपि+सन्। ज्ञप्-ज्ञपि+स। ज्ञ+ज्ञपि+स। ज्ञ+ज्ञप्+स। ज्ञ+ज्ञीप्+स। ०+ज्ञीप्+स। ज्ञीप्स। ज्ञीप्स+लट्। ज्ञीप्स+शप्+तिप्। ज्ञीप्स+अ+ति। ज्ञीप्सति।*

*यहां **'ज्ञा अवबोधने'** (क्र्या०प०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'ज्ञा' धातु को 'पुक्' आगम होता है। **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वा० गणसूत्र) से 'ज्ञा' धातु की मित्-संज्ञा होकर **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से इसे ह्रस्व होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'ज्ञपि' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय होता है। 'सनीवन्तर्ध०' (७।२।४९) से विकल्प-पक्ष में 'इट्' आगम का अभाव है। इस सूत्र से अनिट्-आदि आर्धधातुक 'सन्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। **'आप्ज्ञप्यृधामीत्'** (७।४।५५) से ईत्व और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है।*

णि-लोपः–

(७) निष्ठायां सेटि।५२।

प०वि०-निष्ठायाम् ७।१ सेटि ७।१।

स०-इटा सह वर्तते इति सेट्, तस्याम्-सेटि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोपः, णेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य णेः सेटि निष्ठायाम् आर्धधातुके लोपः।

अर्थः-अङ्गस्य णि-प्रत्ययस्य सेटि निष्ठायाम् आर्धधातुके प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-कारितम्। हारितम्। गणितम्। लक्षितम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग-सम्बन्धी (णेः) णिच् प्रत्यय को (सेटि) सेट् (निष्ठायाम्) निष्ठासंज्ञक (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-**कारितम्।** कराया हुआ। **हारितम्।** चोरी कराया हुआ। **गणितम्।** गिना हुआ। **लक्षितम्।** देखा हुआ।*

*सिद्धि-(१) **कारितम्।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+क्त। कारि+त। कारि+इट्+त। कार्+इ+त। कारित+सु। कारितम्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इसे **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से सेट्, निष्ठा-संज्ञक, आर्धधातुक 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप होता है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हारितम्।***

*(२) **गणितम्।** 'गण संख्याने' (चु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **लक्षितम्।** 'लक्ष दर्शनाङ्कनयोः' (चु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

निपातनम्–

(८) जनिता मन्त्रे।५३।

प०वि०-जनिता १।१ मन्त्रे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोपः, णेः, सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मन्त्रे जनिता इत्यङ्गस्य णेः सेटि आर्धधातुके लोपः।

अर्थः-मन्त्रे विषये 'जनिता' इत्येतस्य अङ्गस्य णिच्-प्रत्ययस्य सेटि आर्धधातुके प्रत्यये परतो लोपो निपात्यते।

उदा०-यो नः पिता जनिता (ऋ० १०।८२।३)। स नो बन्धुर्जनिता (यजु० ३२।१०)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मन्त्रे) मन्त्र विषय में (जनिता) 'जनिता' इस अङ्ग के (णेः) णिच्-प्रत्यय को (सेटि) सेट् (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश निपातित है।*

*उदा०-**यो नः पिता जनिता** (ऋ० १०।८२।३)। जो ईश्वर हमारा पिता और जनक है। **स नो बन्धुर्जनिता** (यजु० ३२।१०)। वह ईश्वर हमारा बन्धु और सकल जगत् का उत्पादक है।*

*सिद्धि-**जनिता।** जन्+णिच्। जान्+इ। जनि।। जनि+तृच्। जनि+तृ। जनि+इट्+तृ। जनि+इ+तृ। जन्+इ+तृ। जनितृ+सु। जनिता।*

*यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'जन्' धातु को **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि और **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से इसे ह्रस्व आदेश होता है। 'जनी' धातु की **'जनी जृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च'** (भ्वा० गणसूत्र) से मित्-संज्ञा है। **तत्पश्चात्** णिजन्त 'जनि'*

धातु से 'ण्वुलतृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय और इसे 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'सेट्' सार्वधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' प्रत्यय का लोप निपातित है। 'णेरनिटि' (६।३।५१) से अनिट्-आदि आर्धधातुक परे होने पर ही णिच्-लोप प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।

निपातनम्–

(९) शमिता यज्ञे।५४।

प०वि०–शमिता १।१ यज्ञे ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, लोपः, णेः , सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञे शमिता इत्यङ्गस्य णेः सेटि आर्धधातुके लोपः।

अर्थः–यज्ञे कर्मणि शमिता इत्येतस्य अङ्गस्य णिच्-प्रत्ययस्य सेटि आर्धधातुके प्रत्यये परतो लोपो निपात्यते।

उदा०–शृतं हवि३ः शमितः (तै०सं० ६।३।१०।१)। 'शमितः' इति सम्बुद्ध्यन्तं रूपमेतत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञे) यज्ञ कर्म में (शमिता) शमिता इस अङ्ग-सम्बन्धी (णेः) णिच्-प्रत्यय को (सेटि) सेट् (आर्धधातुके) आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश निपातित है।*

उदा०–शृतं हवि३ः शमितः (तै०सं० ६।३।१०।१)। हे शमितः ! हवि (आहुति) पकी हुई है।

*सिद्धि–**शमिता।** शम्+णिच्। शम्+इ। शाम्+इ। शमि+तृच्। शम्+तृ। शम्+इट्+तृ। शम्+इ+तृ। शमितृ+सु। समिता।*

यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'शमि' धातु से 'ण्वुलतृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। शेष मित्-संज्ञा और ह्रस्व आदि कार्य 'जनिता' (६।३।५३) के समान है। उदाहरण में 'शमितः' सम्बुद्धि (सम्बोधन एकवचन) का रूप है।

अय्-आदेशः–

(१०) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु।५५।

प०वि०–अय् १।१ आम्-अन्त-आलु-आय्य-इत्नु-इष्णुषु ७।३।

स०–आम् च अन्तश्च आलुश्च आय्यश्च इत्नुश्च इष्णुश्च ते-आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णवः, तेषु-आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, णेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य णेरार्धधातुकेषु आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु अय्।

अर्थः-अङ्गस्य णिच्-प्रत्ययस्य स्थाने आर्धधातुकेषु आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु प्रत्ययेषु परतोऽय्-आदेशो भवति।

उदा०-(आम्) कारयाञ्चकार। हारयाञ्चकार। **(अन्तः)** गण्डयन्तः। मण्डयन्तः। **(आलुः)** स्पृहयालुः। गृहयालुः। **(आय्यः)** स्पृहयाय्यः। गृहयाय्यः। **(इत्नुः)** स्तनयित्नुः। **(इष्णुः)** पोषयिष्णुः। पारयिष्णवः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के अवयव (णेः) णिच् प्रत्यय के स्थान में (आर्धधातुके) आर्धधातुक (आम०) आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे होने पर (अय्) अय्-आदेश होता है।*

*उदा०-(आम्) **कारयाञ्चकार।** उसने कराया। **हारयाञ्चकार।** उसने हरण (चोरी) कराया। (अन्त) **गण्डयन्तः।** सेचन का हेतु मेघ। **मण्डयन्तः।** मण्डन का हेतु आभूषण। (आलु) **स्पृहयालुः।** प्राप्ति का इच्छुक। **गृहयालुः।** ग्रहण करनेवाला। (आय्य) **स्पृहयाय्यः।** प्राप्ति का इच्छुक वा नक्षत्र। **गृहयाय्यः।** पदार्थों का ग्रहण करनेवाला, गृहस्वामी। (इत्नु) **स्तनयित्नुः।** शब्द करनेवाला, मेघ वा विद्युत्। (इष्णु) **पोषयिष्णुः।** पुष्टि करानेवाला। **पारयिष्णवः।** पार=कर्म समाप्ति करानेवाले, पार करनेवाले।*

*सिद्धि-(१) **कारयाञ्चकार।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि+आम्+लिट्। कार् अय्+आम्+०। कारयाम्। कारयाम्+चकार=कारयाञ्चकार।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से '**कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि**' (३।१।३५) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'आम्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**हारयाञ्चकार।***

*(२) **गण्डयन्तः।** गडि+णिच्। गड्+इ। गाड्+इ। गड्+इ। ग नुम् ड्+इ। गन्ड्+इ। गण्डि+झच्। गण्डि+अन्त। गण्ड् अय्+अन्त। गण्डयन्त+सु। गण्डयन्तः।*

*यहां 'गडि वदनैकदेशे (सेचने)' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय हे। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से उपधावृद्धि और '**मितां ह्रस्वः**' (६।४।९२) से इसे ह्रस्व होता है। '**घटादयो मितः**' (भ्वा० गणसूत्र) से इसकी 'मित्'*

संज्ञा है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'गण्डि' धातु से '**तॄभूवहिवसिभासिसाधिगण्डिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च**' (उणा० ३।१२८) 'झच्' प्रत्यय और इसे 'झोऽन्तः' (७।१।३) से अन्त-आदेश होता है। ऐसे ही '**मडि भूषायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से-**मण्डयन्तः**।

(३) **स्पृहयालुः**। स्पृह+णिच्। स्पृह्+इ। स्पृहि+आलुच्। स्पृह् अय्+आलु। स्पृहयालु+सु। स्पृहयालुः।

यहां '**स्पृह ईप्सायाम्**' (चु०उ०) अकारान्त धातु से प्रथम '**सत्यापपाश०**' (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। '**अतो लोपः**' (६।४।४८) से 'स्पृह' धातु के अकार का लोप होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्पृहि' धातु से '**स्पृहिगृहि०**' (३।२।१५८) से 'आलुच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'आलुच्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। ऐसे ही '**ग्रह ग्रहणे**' (क्र्या०उ०) धातु से-**गृहयालुः**।

(४) **स्पृहयाय्यः**। स्पृहि+आय्य। स्पृह् अय्+आय्य। स्पृहयाय्य+सु। स्पृहयाय्यः।

यहां '**स्पृह ईप्सायाम्**' (तु०प०) अकारान्त धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और णिजन्त 'स्पृहि' धातु से '**श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः**' (उणा० ३।९६) से 'आय्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'आय्य' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। ऐसे ही '**ग्रह ग्रहणे**' (क्र्या०उ०) धातु से-**गृहयाय्यः**।

(५) **स्तनयित्नुः**। स्तन+णिच्। स्तन्+इ। स्तनि+इत्नु। स्तन् अय्+इत्नु। स्तनयित्नु+सु। स्तनयित्नुः।

यहां '**स्तन देवशब्दे**' (चु०उ०) अकारान्त धातु से प्रथम '**सत्यापपाश०**' (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। '**अतो लोपः**' (६।४।४८) से 'स्तन' धातु के अकार का लोप होता है, उसके स्थानिवद्भाव से '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से 'स्तन्' धातु को उपधावृद्धि नहीं होती है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्तनि' धातु से '**स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुः**' (उणा० ३।२९) से 'इत्नु' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'इत्नु' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है।

(६) **पोषयिष्णुः**। पुष्+णिच्। पुष्+इ। पोष्+इ। पोषि+इष्णुच्। पोषि+इष्णु। पोष् अय्+इष्णु। पोषयिष्णु+सु। पोषयिष्णुः।

यहां '**पुष पुष्टौ**' (क्र्या०प०) धातु से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'पोषि' धातु से '**णेश्छन्दसि**' (३।२।१३७) से छन्द विषय में 'इष्णुच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'इष्णुच्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। ऐसे ही '**पार कर्मसमाप्तौ**' (चु०उ०) धातु से-**पारयिष्णुः**।

अय्-आदेशः–

(११) ल्यपि लघुपूर्वात्।५६।

प०वि०–ल्यपि ७।१ लघुपूर्वात् ५।१।

स०–लघुः पूर्वो यस्मात् स लघुपूर्वः, तस्मात्-लघुपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, णेः, अय् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लघुपूर्वाद् अङ्गस्य णेरार्धधातुके ल्यपि अय्।

अर्थः–लघुपूर्वाद् वर्णाद् उत्तरस्य अङ्गस्य णिच्-प्रत्ययस्य स्थाने आर्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतोऽय्-आदेशो भवति।

उदा०–प्रणमय्य गतः। प्रतमय्य गतः। प्रदमय्य गतः। प्रशमय्य गतः। सन्दमय्य गतः। प्रबेभिदय्य गतः। प्रगणय्य गतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लघुपूर्वात्) लघुपूर्व वर्ण से परे (अङ्गस्य) अङ्ग के अवयव (णेः) णिच् प्रत्यय के स्थान में (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (अय्) अय्-आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रणमय्य गतः।** प्रणाम कराकर गया। **प्रतमय्य गतः।** आकाङ्क्षा कराकर गया। **प्रदमय्य गतः।** प्रदमन कराकर गया। **प्रशमय्य गतः।** प्रशमन कराकर गया। **सन्दमय्य गतः।** सन्दमन कराकर गया। **प्रबेभिदय्य गतः।** अत्यन्त प्रभेद कराकर गया। **प्रगणय्य गतः।** प्रगणन कराकर गया।*

सिद्धि-प्रणमय्य। *प्र+नम्+णिच्। प्र+नम्+इ। प्र+णाम्+इ। प्र+णम्+इ। प्रणमि+क्त्वा। प्रणमि+त्वा। प्रणमि+ल्यप्। प्रणमि+य। प्रणम् अय्+य। प्रणमय्य+सु। प्रणमय्य+०। प्रणमय्य।*

*यहां प्रथम प्र-उपसर्गपूर्वक **'णम् प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'नम्' धातु की **'जनीजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च'** (भ्वा० गणसूत्र) से मित्-संज्ञा होकर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से 'नम्' धातु को उपधावृद्धि और **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से इसे ह्रस्वादेश होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'प्रणमि' धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय और इसे **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'ल्यप्' आदेश होता है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'प्रणमि' के लघु अ-वर्ण से उत्तरवर्ती 'णिच्' प्रत्यय को 'अय्' आदेश होता है। **'क्त्वातोसुनकसुनः'** (१।१।४०) से अव्यय संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **प्रतमय्य।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'तमु काङ्क्षायाम्'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **प्रदमय्य।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'दमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **प्रशमय्य।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **सन्दमय्य।** सम्-उपसर्गपूर्वक 'दमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(६) **प्रबेभिदय्य।** प्र+बेभिद्य+णिच्। प्र+बेभिद्+इ। प्रबेभिदि+क्त्वा। प्रबेभिदि+ल्यप्। प्रबेभिदि+य। प्रबेभिद् अय्+य। प्रबेभिदय्य+सु। प्रबेभिदय्य+०। प्रबेभिदय्य।*

*यहां प्रथम प्र-उपसर्गपूर्वक **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। पुनः यङन्त 'प्रबेभिद्य' धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। **'यस्य हलः'** (६।४।४८) से 'यङ्' के यकार का लोप होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'प्रबेभिदि' धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और इसका 'ल्यप्' आदेश परे होने पर 'प्रबेभिदि' धातु के लघु-वर्ण इकार से उत्तरवर्ती 'णिच्' प्रत्यय को 'अय्' आदेश होता है।*

*(७) **प्रगणय्य।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'गण संख्याने' (चु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

अयादेश-विकल्पः–

(१२) विभाषाऽऽपः।५७।

प०वि०–विभाषा १।१ आपः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, णेः, अय्, ल्यपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आपो अङ्गस्य णेरार्धधातुके ल्यपि विभाषा अय्।

अर्थः–आप उत्तरस्याङ्गस्य णिच्-प्रत्ययस्य आर्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतो विकल्पेन अय्-आदेशो भवति।

उदा०–प्रापय्य गतः। प्राप्य गतः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आपः) आप् से परे (अङ्गस्य) अङ्ग के अवयव (णेः) णिच्-प्रत्यय के स्थान में (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (अय्) अय्-आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रापय्य गतः।** प्राप्त कराकर गया। **प्राप्य गतः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-प्रापय्य। *प्र+आप्+णिच्। प्र+आप्+इ। प्रापि+क्त्वा। प्रापि+ल्यप्। प्रापि+य। प्राप् अय्+य। प्रापय्य+सु। प्रापय्य+०। प्रापय्य।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'आप्लृ लम्भने'** (चु०उ०) और **'आप्लृ व्याप्तौ'** (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'णिच्' के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'अय्' आदेश नहीं है-**प्राप्य।** यहां **'णेरनिटि'** (६।३।५१) से 'णिच्' का लोप होता है।*

दीर्घादेशः–

(१३) युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि।५८।

प०वि०–यु-प्लुवोः ६।२ दीर्घः १।१ छन्दसि ७।१।

स०–युश्च प्लुश्च तौ युप्लुवौ, तयोः–युप्लुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, ल्यपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि युप्लुवोरङ्गयोरार्धधातुके ल्यपि दीर्घः।

अर्थः–छन्दसि विषये युप्लुवोरङ्गयोरार्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०–(**युः**) दान्त्यनुपूर्वं वियूय (ऋ० १०।१३१।२)। (**प्लुः**) यत्रापो दक्षिणा परिप्लूय (काठ०सं० २५।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (युप्लुवोः) यु और प्लु (अङ्गस्य) अङ्गों को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है।*

*उदा०–(यु) **दान्त्यनुपूर्वं वियूय** (ऋ० १०।१३१।२)। (प्लु) **यत्रापो दक्षिणा परिप्लूय** (काठ०सं० २५।३)।*

सिद्धि–वियूय। *वि+यु+क्त्वा। वि+यु+त्वा। वि+यु+ल्यप्। वि+यु+य। वि+यू+य। वियूय+सु। वियूय+०। वियूय।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक '**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और इसे 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'यु' अङ्ग को दीर्घ आदेश (यू) होता है। ऐसे ही परि-उपसर्गपूर्वक '**प्लुङ् गतौ**' (भ्वा०आ०) धातु से-**परिप्लूय**।*

दीर्घादेशः–

(१४) क्षियः।५९।

वि०–क्षियः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, ल्यपि, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुके ल्यपि दीर्घः।

अर्थः–क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०–प्रक्षीय गतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षियः) क्षि (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रक्षीय गतः।** प्रक्षीण करके गया।*

*सिद्धि-**प्रक्षीय।** प्र+क्षि+क्त्वा। प्र+क्षि+त्वा। प्र+क्षि+ल्यप्। प्र+क्षी+य। प्रक्षीय+सु। प्रक्षीय+०। प्रक्षीय।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक '**क्षि क्षये**' (भ्वा०प०) और '**क्षि निवासगत्योः**' (स्वा०प०) से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय और इसे 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ आदेश (क्षी) होता है।*

दीर्घादेशः-

(१५) निष्ठायामण्यदर्थे।६०।

प०वि०-निष्ठायाम् ७।१ अण्यत्-अर्थे ७।१।

स०-ण्यतोऽर्थ इति ण्यदर्थः, न ण्यदर्थ इति अण्यदर्थः, तस्मिन्-अण्यदर्थे (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, दीर्घः, क्षिय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुकेऽण्यदर्थे निष्ठायां दीर्घः।

अर्थः-क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुके अण्यदर्थे=ण्यदर्थभिन्ने निष्ठा-प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

ण्यदर्थः=भावकर्मणी, ताभ्यामन्यत्र कर्तरि, अधिकरणे च निष्ठायां दीर्घो विधीयते।

उदा०-(कर्तरि) आक्षीणः। प्रक्षीणः। परिक्षीणः। **(अधिकरणे)** प्रक्षीणमिदं देवदत्तस्य।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षियः) क्षि (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (अण्यदर्थे) ण्यत्-प्रत्यय से भिन्न अर्थ में विद्यमान (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है।*

*'ण्यत्' प्रत्यय कृत्य-संज्ञक है और '**तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**' (३।४।७०) से कृत्य-संज्ञक प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में होते हैं। यहां अण्यत्-अर्थ का अभिप्राय भाव और कर्म से भिन्न अर्थ का है।*

*उदा०-(कर्तरि) **आक्षीणः।** सामने से क्षीण हुआ। **प्रक्षीणः।** अति क्षीण हुआ। **परिक्षीणः।** सर्वतः क्षीण हुआ। (अधिकरणे) **प्रक्षीणमिदं देवदत्तस्य।** यह देवदत्त का प्रकृष्ट निवास-स्थान है।*

सिद्धि-(१) आक्षीणः। आङ्+क्षि+क्त। आ+क्षि+त। आ+क्षी+न। आ+क्षी+ण। आक्षीण+सु। आक्षीणः।

*यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'क्षि क्षये'** (भ्वा०प०) और **'क्षि निवासगत्योः'** (स्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है और यह **'गत्यर्थाकर्मक०'** (३।४।७२) से अकर्मक 'क्षि' धातु से कर्ता-अर्थ में है। इस सूत्र से 'क्षि' को आर्धधातुक, ण्यत्-अर्थ से भिन्न कर्तृ-अर्थक, निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। **'क्षियो दीर्घात्'** (८।२।४६) से निष्ठा-तकार को नकार और इसे **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**प्रक्षीणः। परिक्षीणः।***

*(२) **प्रक्षीणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'क्षि' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है और यह **'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः'** (३।४।७६) से अधिकरण-अर्थ में है। इस सूत्र से ध्रौव्यार्थक=अकर्मक 'क्षि' धातु को आर्धधातुक, ण्यत्-अर्थ से भिन्न=अधिकरण-अर्थक, निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। **'अधिकरणवाचिनश्च'** (२।३।६८) से षष्ठीविभक्ति होती-**प्रक्षीणमिदं देवदत्तस्य।***

दीर्घादेश-विकल्पः-

(१६) वाऽऽक्रोशदैन्ययोः।६१।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, आक्रोश-दैन्ययोः ७।२।

स०-दीनस्य भावः-दैन्यम् (दीनता)। आक्रोशश्च दैन्यं च ते आक्रोशदैन्ये, तयोः-आक्रोशदैन्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, दीर्घः, क्षियः, निष्ठायाम्, अण्यदर्थे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुके अण्यदर्थे निष्ठायां वा दीर्घः, आक्रोशदैन्ययोः।

अर्थः-क्षियोऽङ्गस्य आर्धधातुकेऽण्यदर्थे निष्ठा-संज्ञके प्रत्यये परतो विकल्पेन दीर्घो भवति, आक्रोशे दैन्ये च गम्यमाने।

उदा०-**(आक्रोशः)** त्वं क्षितायुरेधि। त्वं क्षीणायुरेधि। **(दैन्यम्)** क्षितकः। क्षीणकः। क्षितोऽयं तपस्वी। क्षीणोऽयं तपस्वी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षियः) क्षि (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (अण्यदर्थे) ण्यत्-अर्थ से भिन्न (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है (आक्रोशदैन्ययोः) यदि वहां आक्रोश=भर्त्सना और दीनता अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-(आक्रोश) त्वं क्षितायुरेधि। तू क्षीण (अल्प) आयुवाला हो। **त्वं क्षीणायुरेधि।** अर्थ पूर्ववत् है। (दैन्य) क्षितकः। वह बेचारा दीन है। **क्षीणकः।** अर्थ पूर्ववत् है। **क्षितोऽयं तपस्वी।** यह तपस्वी दीन=निर्बल है। **क्षीणोऽयं तपस्वी।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-(१) **क्षीणः।** क्षि+क्त। क्षि+त। क्षी+न। क्षीण+सु। क्षीणः।*

*यहां 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है और यह '**गत्यर्थकर्मक०**' (३।४।७२) से अकर्मक 'क्षि' धातु से कर्ता अर्थ में है। इस सूत्र से 'क्षि' को आर्धधातुक, ण्यत्-अर्थ से भिन्न, कर्तृ-अर्थक निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय परे होने पर तथा आक्रोश और दैन्य अर्थ की प्रतीति में दीर्घ होता है। 'क्त' प्रत्यय को नकारादेश और णत्व पूर्ववत् है।*

*(२) **क्षितः।** यहां पूर्वोक्त 'क्षि' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में 'क्षि' धातु को दीर्घ नहीं है।*

*(३) **क्षीणकः।** क्षीण+क। क्षीणक+सु। क्षीणकः।*

*यहां 'क्षीण' शब्द से अनुकम्पा=करुणा अर्थ में '**अनुकम्पायाम्**' (५।३।७६) से 'क' प्रत्यय है और यह दीनता अर्थ का द्योतक है। ऐसे ही 'क्षि' शब्द से-**क्षितकः।***

चिण्वद्भाव-विकल्पः-

(१७) स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन-ग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च।६२।

प०वि०-स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु ७।३ भाव-कर्मणोः ७।२ उपदेशे ७।१ अच्-हन-ग्रह-दृशाम् ६।३ वा अव्ययपदम्, चिण्वत् अव्ययपदम्, इट् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-स्यश्च सिच् च सीयुट् च तासिश्च ते स्यसिच्सीयुट्तासयः, तेषु-स्यसिच्सीयुट्तासिषु (इतरयोगद्वन्द्वः)। भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, तयोः-भावकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अच् च हनश्च ग्रहश्च दृश् च ते अज्झनग्रहदृशः, तेषाम्-अज्झनग्रहदृशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-चिणीव इति चिण्वत्, '**तत्र तस्येव**' (५।१।११५) इति सप्तमीसमर्थाद् वतिः प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशेऽज्झनग्रहदृशाम् अङ्गानाम् भावकर्मणोरार्धधातुकेषु स्यसिच्सीयुट्तासिषु वा चिण्वद्, इट् च।

अर्थः-उपदेशेऽजन्तानां हनग्रहदृशां चाङ्गानां भावकर्मविषयकेषु आर्धधातुकेषु स्यसिच्सीयुट्तासिषु प्रत्ययेषु परतो विकल्पेन चिण्वत् कार्यं भवति, इट् चागमो भवति। यदा चिण्वत् कार्यं तदा स्यसिच्सीयुट्-तासीनामिडागमो भवति। **उदाहरणम्**-

(१) **(स्यः) अजन्ताः-(चि) चायिष्यते, चेष्यते।** चयन किया जायेगा। **अचायिष्यत, अचेष्यत।** यदि चयन किया जाता। **(दा) दायिष्यते, दास्यते।** दान किया जायेगा। **अदायिष्यत, अदास्यत।** यदि दान किया जाता। **(शमिः) शामिष्यते, शमिष्यते।** उपशान्त कराया जायेगा। **अशामिष्यत, अशमिष्यत, अशमयिष्यत।** यदि उपशान्त कराया जाता। **(हन्) घानिष्यते, हनिष्यते।** हनन किया जायेगा। **अघानिष्यत, अहनिष्यत।** यदि हनन किया जाता। **(ग्रह) ग्राहिष्यते, ग्रहीष्यते।** ग्रहण किया जायेगा। **अग्राहिष्यत, अग्रहीष्यत।** यदि ग्रहण किया जाता। **(दृश्) दर्शिष्यते, द्रक्ष्यते।** देखा जायेगा। **अदर्शिष्यत, अद्रक्ष्यत।** यदि देखा जाता।

(२) **(सिच्) अजन्ताः-(चि)- अचायिषाताम्, अचेषाताम्।** उन दोनों का चयन किया गया। **(दा) अदायिषाताम्, अदिषाताम्।** उन दोनों का दान किया गया। **(शमि) अशामिषाताम्, अशमिषाताम्, अशमयिषाताम्।** उन दोनों को उपशान्त कराया गया। **(हन्) अघानिषाताम्, अवधिषाताम्, अहसाताम्।** उन दोनों का हनन किया गया। **(ग्रह) अग्राहिषाताम्, अग्रहीषताम्।** उन दोनों का ग्रहण किया गया। **(दृश्) अदर्शिषाताम्, अदृक्षाताम्।** उन दोनों को देखा गया।

(३) **(सीयुट्) अजन्ताः-(चि)-चायिषीष्ट, चेषीष्ट।** चयन किया जाये। **(दा) दायिषीष्ट, दासीष्ट।** दान किया जाये। **(शमि) शामिशिष्ट, शमिषीष्ट, शमयिसीष्ट।** उपशान्त कराया जाये। **(हन्) घानिषीष्ट, वधिषीष्ट।** हनन किया जाये। **(ग्रह) ग्राहिषीष्ट, ग्रहीषीष्ट।** ग्रहण किया जाये। **(दृश्) दार्शिषीष्ट, द्रक्षीष्ट।** देखा जाये।

(४) (तासिः) अजन्ताः-(चि)-**चायिता, चेता।** वह चयन करेगा। (दा) **दायिता, दाता।** वह दान करेगा। (शमि) **शामिता, शमिता, शमयिता।** वह उपशान्त करायेगा। (हन्) **घानिता, हन्ता।** वह हनन करेगा। (ग्रह) **ग्राहिता, ग्रहीता।** वह ग्रहण करेगा। (दृश्) **दर्शिता, द्रष्टा।** वह देखेगा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) उपदेश अवस्था में (अज्झनग्रहदृशाम्) अजन्त और हन, ग्रह, दृश् (अङ्गस्य) अंगों को (भावकर्मणोः) भाव और कर्म अर्थ में (आर्धधातुके) आर्धधातुक (स्यसिच्सीयुट्तासिषु) स्य, सिच्, सीयुट्, तासि प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (चिण्वत्) चिण्-प्रत्यय के समान कार्य होता है (च) और (इट्) इट् आगम होता है तभी स्य, सिच्, सीयुट् और तासि प्रत्ययों को 'इट्' आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) चायिष्यते। *चि+लृट्। चि+ल्। चि+स्य+त। चि+इट्+स्य+त। चै+इ+स्य+त। चाय्+इ+ष्य+ते। चायिष्यते।*

*यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) इस अजन्त (इ) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से कर्मवाच्य में 'लृट्' प्रत्यय और **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को चिण्वत् होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अङ्ग (चि) को वृद्धि होती है और 'स्य' प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद् भाव नहीं है-**चेष्यते।***

*(२) **अचायिष्यत।** चि+लृङ्। अट्+चि+ल्। अ+चि+स्य+त। अ+चि+इट्+स्य+त। अ+चै+इ+स्य+त। अ+चाय्+इ+ष्य+त। अचायिष्यत।*

*यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से कर्मवाच्य में 'लृङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम होता है। पूर्ववत् 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष चिण्वद्भाव और 'इट्' आगम पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद् भाव नहीं है-**अचेष्यत।***

*(३) **दायिष्यते।** दा+लृट्। दा+ल्। दा+स्य+त। दा+इट्+स्य+त। दा+युक्+इ+स्य+त। दा+य्+इ+ष्य+ते। दायिष्यते।*

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) इस अजन्त धातु से पूर्ववत् कर्मवाच्य में 'लृट्' प्रत्यय और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को चिण्वत् होने से **'आतो युक् चिण्कृतोः'** (७।३।३३) से अङ्ग (दा) को 'युक्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**दास्यते।***

(४) **अदायिष्यत।** यहां पूर्वोक्त अजन्त 'दा' धातु से पूर्ववत् कर्मवाच्य में 'लृङ्' और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। चिण्वद्भाव कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं होता है-**अदास्यत।**

(५) **शामिष्यते।** शम्+णिच्। शम्+इ। शाम्+इ=शामि। शामि।। शमि+लृट्। शमि+ल्। शमि+स्य+त। शमि+इट्+स्य+त। शम्०+इ+ष्य+ते। शाम्+इ+ष्य+ते। शामिष्यते।

यहां प्रथम **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से अङ्ग (शम्) को उपधावृद्धि होती है। **'जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च'** (भ्वा० गणसूत्र) से 'शम्' धातु की मित्-संज्ञा है अतः **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से इसे ह्रस्व होता है-**शमि। 'सनाद्यन्ता धातवः'** (३।१।३२) से इस णिजन्त 'शमि' की धातु संज्ञा है, अतः यह उपदेश अवस्था में अजन्त है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को चिण्वद्भाव और 'इट्' आगम होता है। इस 'इट्' आगम के **'असिद्धवदत्राभात्'** (६।४।२२) से असिद्ध प्रकरण में होने से यह **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णि-लोप करते समय असिद्ध रहता है। 'स्य' प्रत्यय के 'चिण्वत्' होने से **अचो ञ्णिति'** (७।२।११६) से अङ्ग (शम्) को उपधावृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**शमिष्यते।** णिजन्त अवस्था में **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होकर-**शमयिष्यते।** ऐसे ही 'लृङ्' लकार में-**अशामिष्यत, अशमिष्यत, अशमयिष्यत।**

(६) **घानिष्यते।** हन्+लृट्। हन्+लृ। हन्+स्य+त। हन्+इट्+स्य+त। हान्+इ+स्य+त। घान्+इ+ष्य+ते। घानिष्यते।

यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को चिण्वत् होने से अङ्ग (हन्) को **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है तथा **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से 'हन्' के हकार को कुत्व घकार होता है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**हनिष्यते।** ऐसे ही लृङ् लकार में-**अघानिष्यत, अहनिष्यत।**

(७) **ग्राहिष्यते।** यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को चिण्वत् होने से अङ्ग (ग्रह्) को पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**ग्रहीष्यते।** यहां **'ग्रहोऽलिटिदीर्घः'** (७।२।३७) से 'इट्' को दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही 'लृङ्' लकार में-**अग्राहिष्यत, अग्रहीष्यत।**

(८) **दर्शिष्यते।** यहां **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्य' प्रत्यय को 'चिण्वत्' होने से अङ्ग (दृश्) को **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से गुण तथा 'स्य' को 'इट्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**द्रक्ष्यते।** ऐसे ही लृङ्लकार में-**अदर्शिष्यत, अद्रक्ष्यत।**

(९) **अचायिषाताम्।** चि+लुङ्। अट्+चि+च्लि+ल्। अ+चि+सिच्+आताम्। अ+चि+इट्+स्+आताम्। अ+चै+इ+ष्+आताम्। अ+चाय्+इष्+आताम्। अचायिषाताम्।

यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से 'लुङ्' (३।३।११०) से कर्मवाच्य में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, **'च्लि लुङि'** (३।१।४१) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४२) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'सिच्' प्रत्यय के चिण्वत् होने से अङ्ग (चि) को **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है तथा 'सिच्' को 'इट्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**अचेषाताम्।**

ऐसे ही 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से-**अदायिषाताम्।** 'अदिषाताम्' यहां 'स्थाघ्वोरिच्च' 'दा' को इत्त्व होता है। णिजन्त 'शमि' धातु से-**अशामिषाताम्, अशमिषाताम्, अशमयिषाताम्।** 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से-**अघानिषाताम्।** 'अवधिषाताम्' यहां 'लुङि च' (२।४।४३) से 'हन्' के स्थान में 'वध' आदेश होता है। 'अहसाताम्' यहां **'हनः सिच्'** (१।२।१४) से 'सिच्' को कित्त्व और **'अनुदात्तोपदेश०'** (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**अदर्शिषाताम्, अद्रक्षाताम्।**

(१०) **चायिषीष्ट।** चि+लिङ्। चि+सीयुट्+ल्। चि+सीय्+त। चि+सीय्+सुट्+त। चि+इट्+सी०+स्+त। चै+इ+सी+ष्+ट। चाय्+इ+षी+ष्+ट। चायिषीष्ट।

यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से कर्मवाच्य में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङः **सीयुट्'** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम है। इस सूत्र से 'सीयुट्' को चिण्वत् होने से **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अङ्ग (चि) को वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-**चेषीष्ट।**

ऐसे ही-**'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से-**दायिषीष्ट, दासीष्ट।** णिजन्त 'शमि' धातु से-**शामयिषीष्ट, शमिषीष्ट, शमयिषीष्ट।** 'हन **हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से-**घानिषीष्ट,** यहां पूर्ववत् हकार कुत्व घकार होता है। **वधिषीष्ट,** यहां पूर्ववत् 'हन्' को 'वध' आदेश होता है। **'ग्रह उपादाने'** (क्रया०प०) धातु से-**ग्राहिषीष्ट, ग्रहीषीष्ट।** यहां **'ग्रहोऽलिटि दीर्घः'** (७।२।३८) से 'इट्' को दीर्घ होता है। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**दर्शिषीष्ट, द्रक्षीष्ट।**

(११) **चायिता।** चि+लुट्। चि+ल्। चि+त। चि+तासि+त। चि+तास्+डा। चि+इट्+तास्+आ। चि+इ+त्०+आ। चै+इ+त्+आ। चाय्+इ+त्+आ। चायिता।

यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से कर्मवाच्य में 'लुट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से तासि विकरण-प्रत्यय होता है। 'लुटः **प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से 'त' के स्थान में 'डा' आदेश होता है। इस सूत्र से

'तास्' प्रत्यय के चिण्वत् होने से अङ्ग (चि) को 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में चिण्वद्भाव नहीं है-चेता।

*ऐसे ही-'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से-दायिता, दाता। णिजन्त 'शमि' धातु से-**शामिता, शमिता, शमयिता**। 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से-**घातिता**, यहां पूर्ववत् 'हन्' धातु के हकार को कुत्व घकार होता है-**हन्ता**। 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से-दर्शिता, द्रष्टा।*

यहां चिण्वद्भाव विधान के निम्नलिखित प्रयोजन है-

चिण्वद्वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्वम्,
दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति।
इट् चासिद्धस्तेन मे लुप्यते णिनिः,
नित्यश्चायं वल्निमित्तो विघाती।।

*अर्थः-चिण्वद्भाव होने से स्य आदि प्रत्यय परे होने पर 'चि' आदि अजन्त धातुओं को वृद्धि होती है। 'दा' आदि आकारान्त धातुओं को 'युक्' आगम होता है। 'हन्' धातु को कुत्व घकार होता है। 'शम्' आदि मित्-संज्ञक धातुओं को विकल्प से दीर्घ होता है। चिण्वद्भाव के साथ विहित 'इट्' प्रत्यय '**असिद्धवदत्राभात्**' (६।४।२२) से असिद्ध हो जाता है। अतः इसके असिद्ध होने से '**शमिष्यते**' आदि में मेरा णि-लोप सिद्ध हो जाता है। यह इट्-आगम नित्य है, अतः यहां '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से विहित वल्-निमित्तक इट्-आगम विघाती अर्थात् निमित्ताभाव से प्रवृत्त नहीं होता है।*

युट्-आगमः—

(१८) दीङो युडचि क्ङिति।६३।

प०वि०-दीङः ५।१ युट् १।१ अचि ७।१ क्ङिति ७।१।

स०-कश्च ङश्च तौ क्ङौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीङोऽङ्गाद् आर्धधातुकेऽचि क्ङिति युट्।

अर्थः-दीङोऽङ्गाद् उत्तरस्माद् आर्धधातुके अजादौ क्ङिति प्रत्यये परतस्तस्य युडागमो भवति।

उदा०-स **उपदिदीये**। तौ **उपदिदीयाते**। ते **उपदिदीयिरे**।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दीङः) दीङ् (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (अचि) अजादि (क्ङिति) कित्-ङित् प्रत्यय परे होने पर उसे (युट्) युट् आगम होता है।*

*उदा०-**स उपदिदीये।** वह उपक्षीण हुआ। **तौ उपदिदीयाते।** वे दोनों उपक्षीण हुये। **ते उपदिदीयिरे।** वे सब उपक्षीण हुये।*

सिद्धि-उपदिदीये। *उप+दीङ्+लिट्। उप+दी+ल्। उप+दी+त। उप+दी+एश्। उप+दी+युट्+ए। उप+दी-दी-य्+ए। उप+दि+दी+य्+ए। उपदिदीये।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'दीङ् क्षये'** (दि०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से भूतकाल अर्थ में 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटस्तझयोरशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश होता है। इस सूत्र से अजादि, कित् 'एश्' प्रत्यय को 'युट्' आगम होता है। **'असंयोगाल्लिट् कित्'** (१।२।५) से अजादि 'एश्' प्रत्यय कित् है। **'आद्यन्तौ टकितौ'** (१।४।४६) से 'युट्' आगम प्रत्यय के आदि में होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'दीङ्' धातु को द्वित्व और **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व आदेश (दि) होता है। ऐसे ही-**उपदिदीयते, उपदिदीयिरे।***

लोपादेशः-

(१६) आतो लोप इटि च।६४।

प०वि०-आतः ६।१ लोपः ५।१ इटि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, अचि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गस्य इटि अचि आर्धधातुके क्ङिति च लोपः।

अर्थः-आकारान्तस्य अङ्गस्य इटि अजादावार्धधातुके क्ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-इटि-त्वं पपिथ। त्वं तस्थिथ। **किति-**तौ पपतुः। ते पपुः। तौ तस्थतुः। ते तस्थुः। गोदः। कम्बलदः। **ङिति-**प्रदा। प्रधा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आतः) आकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (इटि) इट् (अचि) अजादि (आर्धधातुके) आर्धधातुक (च) और अजादि (क्ङिति) कित्-ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोप) लोपादेश होता है।*

*उदा०-(इट्) **त्वं पपिथ।** तूने पान किया। **त्वं तस्थिथ।** तू ठहरा। (कित्) **तौ पपतुः।** उन दोनों ने पान किया। **ते पपुः।** उन सबने पान किया। **तौ तस्थतुः।** वे दोनों ठहरे। **ते तस्थुः।** वे सब ठहरे। **गोदः।** गोदान करनेवाला। **कम्बलदः।** कम्बल-दान करनेवाला। (ङित्) **प्रदा।** प्रदान करना। **प्रधा।** प्रधारण और प्रपोषण करना।*

सिद्धि-(१) पपिथ। *पा+लिट्। पा+ल्। पा+थस्। पा+थल्। पा+इट्+थ। पा+इ+थ। प्+इ+थ। पा-पा+इ+थ। प-प्+इ+थ। पपिथ।*

यहां **'पा पाने'** *(भ्वा०प०) अथवा* **'पा रक्षणे'** *(अदा०प०) धातु से* **'परोक्षे लिट्'** *(३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है।* **'परस्मैपदानां णल०'** *(३।४।८२) से 'थस्' के स्थान में 'थल्' आदेश होता है।* **'ऋतो भारद्वाजस्य'** *(७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से इट्-अजादि 'थल्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (पा) के आकार का लोप होता है।* **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** *(६।१।८) से द्विर्वचन करते समय इस लोपादेश को स्थानिवत् मानकर 'पा' को द्वित्व होता है। ऐसे ही* **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** *(भ्वा०प०) धातु से-***तस्थिथ।**

(२) **पपतुः।** *पा+लिट्। पा+ल्। पा+तस्।* **पा+अतुस्।** *प्+अतुस्। पा-पा+अतुस्। प-प्+अतुस्। पपतुः।*

यहां पूर्वोक्त 'पा' धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'तस्' और इसके भी स्थान में **'परस्मैपदानां णल०'** *(३।४।८२) से 'अतुस्' आदेश है। अजादि, कित् 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (पा) के आकार का लोप होता है।* **'असंयोगाल्लिट् कित्'** *(१।२।५) से 'अतुस्' प्रत्यय किद्वत् है।*

ऐसे ही 'झि' (उस्) प्रत्यय करने पर- **पपुः।** **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** *(भ्वा०प०) धातु से-तस्थतुः, तस्थुः।*

(३) गोदः। गो+दा+क। गो+दा+अ। गो+द्+अ। गोद+सु। गोदः।

यहां 'गो' कर्म-उपपद 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'आतोऽनुपसर्गे कः'** *(३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक, अजादि, कित् 'क' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (दा) के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-***कम्बलदः।**

(४) **प्रदा।** *प्र+दा+अङ्। प्र+दा+अ। प्र+द्+अ। प्रद+टाप्। प्रद+आ। प्रदा+सु। प्रदा+०। प्रदा।*

यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'आतश्चोपसर्गे'** *(३।३।१०६) से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक, अजादि ङित् 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (दा) के आकार का लोप होता है। पुनः स्त्रीत्व-विवक्षा में* **'अजाद्यतष्टाप्'** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही* **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** *(जु०उ०) धातु से-***प्रधा।**

ईद्-आदेशः-

(२०) ईद् यति।६५।

प०वि०-ईत् १।१ यति ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, आत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गस्य आर्धधातुके यति ईत्।

अर्थ:-आकारान्तस्याङ्गस्य आर्धधातुके यति प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-देयम्। धेयम्। हेयम्। स्थेयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आतः) आकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (यति) यत् प्रत्यय परे होने पर (ईत्) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-**देयम्।** देना चाहिये। **धेयम्।** धारण-पोषण करना चाहिये। **हेयम्।** त्याग करना चाहिये। **स्थेयम्।** ठहरना चाहिये।*

सिद्धि-देयम्। *दा+यत्। दा+य। द ई+य। द् ए+य। देय+सु। देयम्।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'अचो यत्'** (३।१।९७) से 'यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आकारान्त अङ्ग (दा) के अन्त्य आकार को आर्धधातुक 'यत्' प्रत्यय परे होने पर ईकार आदेश होता है। पुनः इसे **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण (ए) हो जाता है।*

*ऐसे ही-'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (७।३।८४) धातु से-**धेयम्।** 'ओहाक् त्यागे' (जु०प०) धातु से-**हेयम्।** 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-**स्थेयम्।***

ईद्-आदेशः-

(२१) घुमास्थागापाजहातिसां हलि।६६।

प०वि०-घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-साम् ६।१ हलि ६।१।

स०-घुश्च माश्च स्थाश्च गाश्च पाश्च जहातिश्च साश्च ते घुमास्थागापाजहातिसाः, तेषाम्-घुमास्थागापाजहातिसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, क्ङिति, ईत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-घुमास्थागापाजहातिसाम् अङ्गानाम् आर्धधातुके हलि क्ङिति ईत्।

अर्थः-घु-संज्ञकानां स्थागापाजहातिसां चाङ्गानाम् आर्धधातुके हलादौ क्ङिति प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-**(घुः)** दीयते, देदीयते। धीयते, देधीयते। **(माः)** मीयते, मेमीयते। **(स्थाः)** स्थीयते, तेष्ठीयते। **(गाः)** गीयते, जेगीयते। अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्। **(पाः)** पीयते, पेपीयते। **(जहातिः)** हीयते, जेहीयते। **(साः) अवसीयते, अवसेसीयते।**

आर्यभाषाः अर्थ-(घुमास्थागापाजहातिसाम्) घु-संज्ञक और मा, स्था, गा, पा, जहाति (हा) और सा (अङ्गस्य) अङ्गों को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (हलि) हलादि (क्ङिति) कित्-ङित् प्रत्यय परे होने पर (ईत्) ईकार आदेश होता है।

उदा०-(घु) **दीयते।** दान किया जाता है। **देदीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक दान करता है। **धीयते।** धारण-पोषण किया जाता है। **देधीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक धारण-पोषण करता है। (मा) **मीयते।** नापा जाता है। **मेमीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक नापता है। (स्था) **स्थीयते।** ठहरा जाता है। **तेष्ठीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक ठहरता है। (गा) **गीयते।** स्तुति की जाती है। **जेगीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक स्तुति करता है। **अध्यगीष्ट।** उसने अध्ययन किया। **अध्यगीषाताम्।** उन दोनों ने अध्ययन किया। (पा) **पीयते।** पीया जाता है। **पेपीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक पीता है। (जहाति) **हीयते।** त्याग किया जाता है। **जेहीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक त्याग करता है। (सा) **अवसीयते।** समाप्त किया जाता है। **अवसेसीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक समाप्त करता है।

सिद्धि-(१) **दीयते।** दा+लट्। दा+ल्। दा+त। दा+यक्+त। दा+य+त। द् ई+य+ते। दीयते।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०प०) घु-संज्ञक धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय है। 'दाधा घ्वदाप्' (१।१।२०) से 'दा' धातु की 'घु' संज्ञा है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक, हलादि, कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर घु-संज्ञक 'दा' धातु के अन्त्य आकार को ईकार आदेश होता है।

ऐसे ही-'डुधाञ् धारण-पोषणयोः' (जु०उ०) घु-संज्ञक धातु से-**धीयते।** 'मा माने' (अदा०प०) धातु से-**मीयते।** 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-**स्थीयते।** 'गा स्तुतौ' (जु०प०) धातु से-**गीयते।** ओहाक् त्यागे (हा) (जु०प०) धातु से-**हीयते।** षोऽन्तकर्मणि (सा) (दि०प०) धातु से-**अवसीयते।**

(२) **देदीयते।** दा+यङ्। दा+य। द्ई+य। दीय्-दीय। दी-दीय। दिदीय। देदीय।। देदीय+लट्=देदीयते।

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) घु-संज्ञक धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक, हलादि, ङित् 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर 'दा' धातु के अन्त्य आकार को ईकार आदेश होता है। 'ह्रस्वः' (७।३।५९) से अभ्यास को ह्रस्वादेश (दि) और 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से इगन्त अभ्यास को गुण (ए) होता है।

ऐसे ही उपरिलिखित धातुओं से 'देधीयते' आदि प्रयोग सिद्ध करें।

*(३) **अध्यगीष्ट।** अधि+इङ्+लुङ्। अधि+गाङ्+ल्। अधि+अट्+गा+च्लि+ल्। **अधि**+अ+गा+सिच्+त। अधि+अ+ग् ई+स्+त। अधि+अ+गी+ष्+ट। अध्यगीष्ट।*

*यहां नित्य-अधिपूर्वक 'इङ् **अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से '**लुङ्**' प्रत्यय है। '**विभाषा लुङ्लृङो:**' (२।४।५०) से 'इङ्' के स्थान में 'गाङ्' आदेश **होता है**। इस सूत्र से आर्धधातुक, हलादि, ङित् 'सिच्' प्रत्यय परे होने पर 'गा' के अन्त्य **आकार** को ईकार आदेश होता है। '**गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्**' (२।१।१) से 'गाङ्' से **परे** 'सिच्' प्रत्यय ङिद्वत् होता है। '**आदेशप्रत्यययो:**' (८।३।५९) से षत्व और '**ष्टुना ष्टु:**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*विशेष- '**गामादाग्रहणेष्वविशेष:**' इस परिभाषा से 'इङ्' के स्थान में विहित 'गाङ्' आदेश **का भी** ग्रहण किया जाता है। इस परिभाषा से '**माङ् माने शब्दे च**' (जु०आ०) '**मा माने**' (अदा०प०)। '**गाङ् गतौ**' (भ्वा०आ०)। '**गै शब्दे**' (भ्वा०प०)। '**गा स्तुतौ**' (जु०प०)। '**इणो गा लुङि**' (२।४।४५) से 'इण्' के स्थान में विहित 'गा' आदेश का सामान्य रूप से ग्रहण किया जाता है।*

ए-आदेश:—

(२२) एर्लिङि।६७।

प०वि०-ए: १।१ लिङि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, घुमास्थागापाजहातिसाम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-घुमास्थागापाजहातिसाम् अङ्गानाम् आर्धधातुके लिङि ए:।

अर्थ:-घु-संज्ञकानां मास्थागापाजहातिसां चाङ्गनाम् आर्धधातुके लिङि प्रत्यये परत एकारादेशो भवति।

उदा०-(**घु:**) देयात्। (**मा:**) मेयात्। (**स्था:**) स्थेयात्। (**गा:**) गेयात्। (**पा:**) पेयात्। (**जहाति:**) {हा}-हेयात्। (**सा**) अवसेयात्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(घुमास्थागापाजहातिसाम्) घु-संज्ञक और मा, स्था, गा, पा, जहाति {हा} तथा सा (अङ्गस्य) अङ्गों को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (ए:) एकारादेश होता है।*

*उदा०-(घु) **देयात्।** वह दान करे। (मा) **मेयात्।** वह नाप-तौल करे। (स्था) **स्थेयात्।** वह ठहरे। (गा) **गेयात्।** वह गान करे। (पा) **पेयात्।** वह पान करे। (जहाति) {हा}-**हेयात्।** वह त्याग करे। (सा) **अवसेयात्।** वह विराम करे।*

*सिद्धि-**देयात्।** दा+लिङ्। दा+ल्। दा+तिप्। दा+यासुट्+ति। दा+यास्+त्। **द** ए+या०+त्। देयात्।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) इस घु-संज्ञक धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम होता है। **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक है और **'किदाशिषि'** (३।४।१०४) से यह कित् भी है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'लिङ्' प्रत्यय परे होने पर 'दा' धातु के अन्त्य आकार के स्थान में एकार आदेश होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' (८।२।२९) से 'यास्' के सकार का लोप होता है। ऐसे ही **'मा माने'** (अदा०प०) आदि धातुओं से- **'मेयात्'** आदि पद सिद्ध होते हैं।*

एकारादेश-विकल्पः–

(२३) वाऽन्यस्य संयोगादेः।६८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, अन्यस्य ६।१ संयोगादेः ६।१।

स०–संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, घुमास्थागापाजहातिसाम्, एः, लिङि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–घुमास्थागापाजहातिसाभ्योऽन्यस्य संयोगादेरङ्गस्य आर्धधातुके लिङि वा एः।

अर्थः–घु-संज्ञकेभ्यो मास्थागापाजहातिसाभ्यश्चान्यस्य संयोगादेरङ्गस्य आर्धधातुके लिङि प्रत्यये परतो विकल्पेन एकारादेशो भवति।

उदा०–स ग्लेयात्, ग्लायात्। स म्लेयात्, म्लायात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घुमास्थागापाजहातिसाम्) घु-संज्ञक और मा, स्था, गा, पा, जहाति और सा धातुओं से (अन्यस्य) भिन्न (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (एः) एकारादेश होता है।*

*उदा०–**स ग्लेयात्, ग्लायात्।** वह ग्लानि करे। **स म्लेयात्, म्लायात्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि–**ग्लेयात्।** ग्ला+लिङ्। ग्ला+ल्। ग्ला+तिप्। ग्ला+यासुट्+ति। ग्ला+यास्+त। ग्ल्ए+या०+त्। ग्लेयात्।*

*यहां **'ग्लै हर्षक्षये'** (भ्वा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्वोक्त घु-संज्ञक आदि धातुओं से भिन्न संयोगादि 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु के अन्त्य आकार को आर्धधातुक 'लिङ्' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। शेष कार्य **'दियात्'** (६।४।६७) के समान है। ऐसे ही **'म्लै हर्षक्षये'** (भ्वा०प०) धातु से–**म्लेयात्।***

ईकारादेश-प्रतिषेधः–

(२४) न ल्यपि।६६।

प०वि०–न अव्ययपदम्, ल्यपि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुके, घुमास्थागापाजहातिसाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–घुमास्थागापाजहातिसाम् अङ्गानाम् आर्धधातुके ल्यपि यदुक्तं तन्न।

अर्थः–घु-संज्ञकानां मास्थागापाजहातिसाम् अङ्गानाम् आर्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति, ईकारादेशो न भवतीत्यभिप्रायः।

उदा०–**(घुः)** प्रदाय, प्रधाय। **(माः)** प्रमाय। **(स्थाः)** प्रस्थाय। **(गाः)** प्रगाय। **(पाः)** प्रपाय। **(जहातिः)** {हा} प्रहाय। **(साः)** अवसाय।

आर्यभाषाः *अर्थ–(घुमास्थागापाजहातिसाम्) घु-संज्ञक और मा, स्था, गा, पा, जहाति {हा} तथा सा इन धातुओं से (अन्यस्य) भिन्न (संयोगादेः) संयोग जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (न) जो पूर्व-कार्य कहा है वह नहीं होता, अर्थात् ईकारादेश नहीं होता है।*

*उदा०–(घु) **प्रदाय।** प्रदान करके। **प्रधाय।** प्रकृष्ट धारण-पोषण करके। (मा) **प्रमाय।** नाप-तौल करके। (स्था) **प्रस्थाय।** प्रस्थान करके। (गा) **प्रगाय।** प्रशंसा करके। (पा) **प्रपाय।** प्रकृष्ट पान करके। (जहाति) {हा} **प्रहाय।** परित्याग करके। (सा) **अवसाय।** विराम करके।*

सिद्धि–प्रदाय। *प्र+दाय+क्त्वा। प्र+दा+त्वा। प्र+दा+ल्यप्। प्र+दा+य। प्रदाय+सु। प्रदाय+०। प्रदाय।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०प०) घु-संज्ञक धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२५) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से '**घुमास्थागापाजहातिसां हलि**' (६।४।६६) से विहित ईकार आदेश का प्रतिषेध किय गया है। '**क्त्वातोसुन्कसुनः**' (१।१।४०) से अव्यय-संज्ञा और '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*ऐसे ही–'**डुधाञ् धारण-पोषणयोः**' (जु०उ०) आदि पूर्वोक्त धातुओं से '**प्रधाय**' आदि पद सिद्ध करें।*

इकारादेश-विकल्पः—

(२५) मयतेरिदन्यतरस्याम् ।७०।

प०वि०-मयतेः ६ ।१ इत् १ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुके, ल्यपि इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-मयतेरङ्गस्य आर्धधातुके ल्यपि अन्यतरस्याम् इत् ।

अर्थः-मयतेरङ्गस्य आर्धधातुके ल्यपि प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति ।

उदा०-**(मा)** अपमित्य, अपमाय ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मयतेः) मा (अङ्गस्य) अङ्ग को (आर्धधातुके) आर्धधातुक (ल्यपि) ल्यप् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**(मा) अपमित्य, अपमाय।** विनिमय (बदला) करके।*

सिद्धि-अपमित्य। *अप+मा+क्त्वा। अप+मा+त्वा। अप+मा+ल्यप्। अप+म् इ+य। अप+मितुक्+य। अप+मित्+य। अपमित्य+सु। अपमित्य+०। अपमित्य।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक **'मेङ् प्रणिदाने'** (भ्वा०आ०) धातु से **'उदीचां माङो व्यतीहारे'** (३।४।१९) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'मा' अङ्ग को इकारादेश होता है। **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७०) से 'तुक्' आगम है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**अपमाय।***

।। इति आर्धधातुकप्रकरणम् ।।

आगमप्रकरणम्

अट्-आगमः—

(१) लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।७१।

प०वि०-लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु ७ ।३ अट् १ ।१ उदात्तः १ ।१ ।

स०-लुङ् च लङ् च लृङ् च ते लुङ्लङ्लृङः, तेषु-लुङ्लङ्लृङ्क्षु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु अङ्गस्य अट्, उदात्तः ।

अर्थः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु प्रत्ययेषु परतोऽङ्गस्य अडागमो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(**लुङ्**) अकार्षीत्, अहार्षीत्। (**लङ्**) अकरोत्, अहरत्। (**लृङ्**) अकरिष्यत्, अहरिष्यत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लुङ्लङ्लृङ्क्षु) लुङ्, लङ् और लृङ् प्रत्यय परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग को (अट्) अट् आगम होता है (उदात्तः) और वह उदात्त होता है।*

उदा०-(लुङ्) ***अकार्षीत्।*** *उसने किया।* ***अहार्षीत्।*** *उसने हरण किया। (लङ्)* ***अकरोत्।*** *उसने किया।* ***अहरत्।*** *उसने हरण किया। (लृङ्)* ***अकरिष्यत्।*** *यदि वह करता।* ***अहरिष्यत्।*** *यदि वह हरण करता।*

सिद्धि-(१) अकार्षीत्। *कृ+लुङ्। अट्+कृ+ल्। अ+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+सिच्+तिप्। अ+कृ+स्+ति। अ+कार्+स्+त्। अ+कार्+स्+ईट्+त्। अ+कार्+ष्+ई+त्। अकार्षीत्।*

यहां ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०) धातु से* ***'लुङ्'*** *(३।२।११०) से सामान्य भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (कृ) को उदात्त अट्-आगम होता है।* ***'च्लि लुङि'*** *(३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय,* ***'च्लेः सिच्'*** *(३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश,* ***'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु'*** *(७।२।१) से वृद्धि,* ***'अस्तिसिचोऽपृक्ते'*** *(७।३।९६) से 'ईट्' आगम और* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही* ***'हृञ् हरणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से-****अहार्षीत्।***

(२) अकरोत्। *कृ+लङ्। अट्+कृ+ल्। अ+कृ+तिप्। अ+कृ+उ+ति। अ+कर्+उ+त्। अ+कर्+ओ+त्। अकरोत्।*

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से ***'अनद्यतने लङ्'*** *(२।१।१११) से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (कृ) को उदात्त 'अट्' आगम होता है।* ***'तनादिकृञ्भ्य उः'*** *(३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय है।* ***'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'*** *(७।३।८४) से 'कृ' और 'उ' दोनों अङ्गों को गुण होता है। ऐसे ही* ***'हृञ् हरणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से-****अहरत्।***

(३) अकरिष्यत्। *कृ+लृङ्। अट्+कृ+ल्। अ+कृ+स्य+तिप्। अ+कृ+इट्+स्य+ति। अ+कृ+इ+स्य+त्। अ+कर्+इ+ष्य+त्। अकरिष्यत्।*

यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से ***'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'*** *(३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (कृ) को उदात्त 'अट्' आगम होता है।* ***'स्यतासी लृलुटोः'*** *(३।१।३३) से 'स्य' प्रत्यय,* ***'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'*** *(७।२।३५) से 'इट्' आगम,* ***'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'*** *(७।३।८४) से अङ्ग को गुण और* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही-* ***'हृञ् हरणे'*** *(भ्वा०उ०) से-****अहरिष्यत्।***

आट्-आगमः–

(२) आडजादीनाम् ।७२।

प०वि०-आट् १।१ अजादीनाम् ६।३।

स०-अच् आदिर्येषां तानि अजादीनि, तेषु-अजादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, लुङ्लङ्लृङ्क्षु, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु अजादीनाम् अङ्गानाम् आट्, उदात्तः।

अर्थः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु प्रत्ययेषु परतोऽजादीनाम् अङ्गानाम् आडागमो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(लुङ्) ऐक्षिष्ट। ऐहिष्ट। औब्जीत्। औम्भीत्। (लङ्) ऐक्षत। ऐहत। औब्जत्। औम्भत्। (लृङ्) ऐक्षिष्यत। ऐहिष्यत। औब्जिष्यत्। औम्भिष्यत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लुङ्लङ्लृङ्क्षु) लुङ्, लङ् और लृङ् प्रत्यय परे होने पर (अजादीनाम्) अच् जिनके आदि में है उन (अङ्गस्य) अङ्गों को (आट्) आट् आगम होता है (उदात्तः) और वह उदात्त होता है।*

*उदा०-(लुङ्) **ऐक्षिष्ट**। उसने देखा। **ऐहिष्ट**। उसने चेष्टा (प्रयत्न) की। **औब्जीत्**। उसने सरलता से व्यवहार किया। **औम्भीत्**। उसने भरा, पूरण किया। (लङ्) **ऐक्षत**। उसने देखा। **ऐहत**। उसने चेष्टा (प्रयत्न) की। **औब्जत्**। उसने सरलता से व्यवहार किया। **औम्भत्**। उसने भरा, पूरण किया। (लृङ्) **ऐक्षिष्यत**। यदि वह देखता। **ऐहिष्यत**। यदि वह चेष्टा (प्रयत्न) करता। **औब्जिष्यत्**। यदि वह सरलता से व्यवहार करता। **औम्भिष्यत्**। यदि वह भरता, पूरण करता।*

*सिद्धि-(१) **ऐक्षिष्ट**। ईक्ष+लुङ्। आट्+ईक्ष्+ल्। आ+ईक्ष्+च्लि+ल्। आ+ईक्ष+सिच्+त। आ+ईक्ष्+स्+त। आ+ईक्ष+इट्+स्+त। आ+ईक्ष्+इ+ष्+ट। ऐक्षिष्ट।*

यहां 'ईक्ष दर्शने' (भ्वा०प०) धातु सूत्र से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर अजादि अङ्ग (ईक्ष) को उदात्त 'आट्' आगम होता है। 'आटश्च' (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है-आ+ई=ऐ। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*ऐसे ही 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**ऐहिष्ट**। 'उब्ज आर्जवे' (तु०प०) धातु से-**औब्जीत्**। 'उम्भ पूरणे' (तु०प०) धातु से-**औम्भीत्**।*

*(२) **ऐक्षत**। ईक्ष्+लङ्। आट्+ईक्ष्+ल्। आ+ईक्ष्+त। आ+ईक्ष्+शप्+त। [illegible]त। ऐक्षत।*

*यहां 'ईक्ष दर्शने' (भ्वा०आ०) धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय परे होने पर अजादि अङ्ग (ईक्ष्) को उदात्त 'आट्' आगम होता है। 'आटश्च' (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही- 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**ऐहत**। 'उब्ज आर्जवे' (तु०प०) धातु से-**औब्जत्**। 'उम्भ पूरणे' (तु०प०) धातु से-**औम्भत्**।*

*(३) **ऐक्षिष्यत**। ईक्ष्+लृङ्। आट्+ईक्ष्+ल्। आ+ईक्ष्+स्य+त। आ+ईक्ष्+इट्+स्य+त। आ+ईक्ष्+इ+ष्य+त। ऐक्षिष्यत।*

*यहां 'ईक्ष दर्शने' (भ्वा०आ०) धातु से **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लृङ्' प्रत्यय परे होने पर अजादि अङ्ग (ईक्ष्) को उदात्त 'आट्' आगम होता है। 'आटश्च' (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही- 'ईह चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**ऐहिष्यत**। 'उब्ज आर्जवे' (तु०प०) धातु से-**औब्जिष्यत्**। 'उम्भ पूरणे' (तु०प०) धातु से-**औम्भिष्यत्**।*

आडागमदर्शनम्–

(३) छन्दस्यपि दृश्यते।७३।

प०वि०-छन्दसि ७।१ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-अङ्गस्य, उदात्तः, आट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दस्यपि उदात्त आड् दृश्यते।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपि उदात्त आडागमो दृश्यते। यतो विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते इत्यभिप्रायः। **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) इत्युक्तम्, अनजादीनामपि दृश्यते।

उदा०-सुरुचो वेन आवः (यजु० १३।३)। आनक्। आयुनक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपि) भी (उदात्तः) उदात्त (आट्) आट् आगम (दृश्यते) देखा जाता है, अर्थात् यह जिससे विधान किया गया है उससे अन्यत्र भी दिखाई देता है। 'आडजादीनाम्' (६।४।७२) से अजादि अङ्गों को उदात्त आट् आगम का विधान किया गया है किन्तु यह छन्द में अनजादि=हलादि अङ्गों को भी देखा जाता है।*

*उदा०-**सुरुचो वेन आवः** (यजु० १३।३)। **आवः**। उसने वरण किया। **आनक्**। उसने नष्ट किया। **आयुनक्**। उसने योग किया।*

*सिद्धि-(१) **आवः**। वृ+लुङ्। आट्+वृ+ल्। आ+वृ+च्लि+ल्। आ+वृ+लि+तिप्। आ+वृ+०+ति। आ+वर्+त्। आ+वर्+०। आवः।*

*यहां 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से सामान्य भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में अनजादि=हलादि अङ्ग (वृ) को 'आट्' आगम होता है। **'मन्त्रे घसह्वरणश०'** (२।४।८) से 'च्लि' प्रत्यय के 'लि' का लुक्, **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'तिप्' का लोप होता है।*

*(२) **आनक्।** नश्+लुङ्। आट्+नश्+ल्। आ+नश्+च्लि+ल्। आ+नश्+लि+तिप्। आ+नश्+०+ति। आ+नश्+त्। आ+नश्+०। आ+नक्। आनक्।*

*यहां **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में अनजादि=हलादि अङ्ग (नश्) को आट् आगम होता है। पूर्ववत् 'लि' का लुक् और 'तिप्' का लोप होकर **'नशेर्वा'** (८।२।६३) से कुत्व होता है।*

*(३) **आयुनक्।** युज्+लङ्। आट्+युज्+ल्। आ+युज्+तिप्। आ+यु श्नम् ज्+ति। आ+युनज्+त्। आयुनज्+०। आयुनग्। आयुनक्।*

*यहां **'युजिर् योगे'** (रुधा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में अनजादि=हलादि अङ्ग (युज्) को 'आट्' आगम होता है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६८) से 'तिप्' का लोप, **'चोः कुः'** (८।२।३०) से जकार को कुत्व गकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से चर्त्व ककार होता है।*

उक्त-प्रतिषेधः—

(४) न माङ्योगे।७४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, माङ्योगे ७।१।

स०-माङो योग इति माङ्योगः, तस्मिन्-माङ्योगे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, लुङ्लङ्लृङ्क्षु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु माङ्योगेऽङ्गस्य यद् उक्तं तन्न।

अर्थः-लुङ्लङ्लृङ्क्षु प्रत्ययेषु परतो माङ्योगेऽङ्गस्य यद् उक्तं तन्न भवति। अट्-आटावागमौ न भवत इत्यर्थः।

उदा०-**(लुङ्)** मा भवान् कार्षीत्। मा भवान् हार्षीत्। मा भवान् ईक्षिष्ट। मा भवान् ईहिष्ट। **(लङ्)** मा स्म करोत्। मा स्म हरत्। **(लृङ्)** मा स्म भवान् ईक्षत। मा स्म भवान् ईहत।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लुङ्लङ्लृङ्क्षु) लुङ्, लङ् और लृङ् प्रत्यय परे होने पर (माङ्योगे) माङ् शब्द के योग में (अङ्गस्य) अङ्ग को (न) जो कार्य विहित किया है वह नहीं होता है, अर्थात् अट् और आट् आगम नहीं होते हैं।*

*उदा०-(लुङ्) **मा भवान् कार्षीत्।** आपने नहीं किया। **मा भवान् हार्षीत्।** आपने हरण नहीं किया। **मा भवान् ईक्षिष्ट।** आपने नहीं देखा। **मा भवान् ईहिष्ट।** आपने चेष्टा=प्रयत्न नहीं किया। (लङ्) **मा स्म करोत्।** उसने नहीं किया। **मा स्म हरत्।** उसने हरण नहीं किया। (लृङ्) **मा स्म भवान् ईक्षत।** आपने नहीं देखा। **मा स्म भवान् ईहत।** आपने चेष्टा=प्रयत्न नहीं किया।*

सिद्धि**-(१) **मा भवान् कार्षीत्।** यहां माङ्-उपपद '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**माङि लुङ्**' (३।३।१७५) से 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर 'माङ्' शब्द के योग में अङ्ग (कृ) को अट्-आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**मा भवान् हार्षीत्।

*(२) **मा भवान् ईक्षिष्ट।** यहां माङ्-उपपद '**ईक्ष दर्शने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर 'माङ्' शब्द के योग में अजादि अङ्ग (ईक्ष्) को 'आट्' आगम नहीं होता है। ऐसे ही '**ईह चेष्टायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से-**मा भवान् ईहिष्ट।***

*(३) **मा स्म करोत्।** यहां माङ्-उपपद '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**स्मोत्तरे लङ् च**' (३।३।१७६) से 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लङ्' प्रत्यय परे होने पर 'माङ्' शब्द के योग में अङ्ग (कृ) को 'अट्' आगम नहीं होता है।*

*ऐसे ही-'**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**मा स्म भवान् हरत्।** '**ईक्ष दर्शने**' (भ्वा०आ०) धातु से-**मा स्म भवान् ईक्षत।** '**ईह चेष्टायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से-**मा स्म भवान् ईहत।** यहां 'आट्' आगम नहीं होता है।*

बहुलम् अट्-आडागमः-

(५) बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि।७५।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१ अमाङ्योगे ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-माङो योग इति माङ्योगः, न माङ्योग इति अमाङ्योगः, तस्मिन्-अमाङ्योगे (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, लुङ्लङ्लृङ्क्षु, अट्, आट्, माङ्योगे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि लुङ्लङ्लृङ्क्षु माङ्योगेऽमाङ्योगेऽपि अङ्गस्य बहुलम् अट्, आट्।

अर्थः-छन्दसि विषये लुङ्लङ्लृङ्क्षु प्रत्ययेषु परतो माङ्योगेऽमाङ्योगेऽपि अङ्गस्य बहुलम् अट्-आटवागमौ भवतः। बहुलवचनाद् अमाङ्योगेऽपि न भवतः, माङ्योगेऽपि च भवतः।

उदा०-**(अमाङ्योगे)** जनिष्ठा उग्रः (ऋ० १० ।७३ ।१)। काममूनयीः (ऋ० १ ।५३ ।३)। काममर्दयीत्। **(माङ्योगे)** मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः (आप०धर्म० २ ।६ ।१३ ।५)। मा अभित्थाः। मा आवः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (लुङ्लङ्लृङ्क्षु) लुङ्, लङ् और लृङ् प्रत्यय परे होने पर (माङ्योगे) माङ् शब्द के योग में और (अमाङ्योगे) माङ् शब्द का योग न होने पर (अपि) भी (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुलम्) प्रायशः (अट्, आट्) अट् और आट् आगम होते हैं। बहुलवचन से अमाङ्योग में भी नहीं होते हैं और माङ्योग में भी हो जाते हैं।*

*उदा०-(अमाङ्योग) जनिष्ठा उग्रः (ऋ० १० ।७३ ।१)। **काममूनयीः** (ऋ० १ ।५३ ।३)। **काममर्दयीत्। (माङ्योग) मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः** (आप० धर्म० २ ।६ ।१३ ।५)। **मा अभित्थाः। मा आवः।***

सिद्धि-(१) जनिष्ठाः। जन्+लुङ्। जन्+ल्। जन्+च्लि+ल्। जन्+सिच्+थास्। जन्+इट्+स्+थास्। जन्+इ+ष्+ठास्। जनिष्ठाः।

*यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से **'लुङ्'** (३ ।२ ।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्द में अमाङ्योग में भी **'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'** (६ ।४ ।७१) से प्राप्त 'अट्' आगम नहीं होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८ ।३ ।५९) से षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८ ।४ ।४१) से थकार को टवर्ग ठकार होता है।*

(२) ऊनयीः। ऊन+णिच्। उन्+इ। ऊनि+लुङ्। ऊनि+ल्। ऊनि+च्लि+ल्। ऊनि+सिच्+ सिप्। ऊनि+इट्+स्+ईट्+स्। ऊनि+इ+०+ई+स्। उने+ई+रु। ऊनय्+ ई+र्। ऊनयीः।

*यहां **'ऊन परिहाणे'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्द में अमाङ्योग में भी **'आडजादीनाम्'** (६ ।४ ।७२) से प्राप्त 'आट्' आगम नहीं होता है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७ ।२ ।३५) से 'सिच्' को 'इट्' आगम, **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७ ।३ ।९६) से अपृक्त सिप् (स्) को ईट् आगम और **'इट ईटि'** (७ ।२ ।२८) से 'सिच्' का लोप होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'***

(७।३।८४) से इगन्त अङ्ग (ऊनि) को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से आय्-आदेश होता है।

*(३) अर्दयीत्। यहां '**अर्द हिंसायाम्**' (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्द में अमाङ्योग में भी '**आडजादीनाम्**' (६।४।७२) से प्राप्त 'आट्' आगम नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) अवाप्सुः। वप्+लुङ्। अट्+वप्+ल्। अ+वप्+च्लि+ल्। अ+वप्+सिच्+झि। अ+वप्+स्+जुस्। अ+वाप्+स्+उस्। अवाप्सुः।

*यहां '**डुवप बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में माङ्योग में भी 'अट्' आगम होता है। "**मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः**"। '**न माङ्योगे**' (६।४।७४) से माङ्योग में 'अट्' आगम का प्रतिषेध है। '**झेर्जुस्**' (३।४।१०८) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश और '**वदव्रजहलन्तस्याचः**' (७।२।३) से अङ्ग (वप्) को वृद्धि होती है।*

(५) अभित्थाः। भिद्+लुङ्। अट्+भिद्+ल्। अ+भिद्+च्लि+ल्। अ+भिद्+सिच्+थास्। अ+भिद्+स्+थास्। अ+भिद्+०+थास्। अ+भित्+थास्। अभित्थाः।

*यहां '**भिदिर् विदारणे**' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लुङ्' प्रत्यय परे होने पर छन्दविषय में माङ्योग में भी अङ्ग (भिद्) को 'अट्' आगम होता है-**मा अभित्थाः**। '**न माङ्योगे**' (६।४।७४) से माङ्योग में 'अट्' आगम का प्रतिषेध है। '**झलो झलि**' (८।२।२६) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है।*

*(६) आवः। इस पद की सिद्धि पूर्ववत् है (द्र० ६।४।७३)। यहां माङ्योग में भी अनजादि=हलादि अङ्ग (वृज्) के छन्द में 'आट्' आगम है-**मा आवः**।*

यह सब बहुलवचन का प्रपञ्च है।

आदेशप्रकरणम्

रे-आदेशः-

(१) इरयो रे।७६।

प०वि०-इरयोः ६।२ रे १।१ (सु-लुक्)।

स०-इरश्च इरेश्च तौ इरयौ, तयोः-इरयोः।

अनु०-बहुलम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि इरयो बहुलं रेः।

अर्थः-छन्दसि विषये 'इरे' इत्येतस्य स्थाने बहुलं रे-आदेशो भवति।

उदा०-गर्भं प्रथमं दध्र आपः (ऋ० १० ।८२ ।५) । याश्च परिददृश्रे (मै०सं० ४ ।४ ।१) । बहुलवचनान्न च भवति-परमाया धियोऽग्निकर्माणि चक्रिरे ।

"अत्र रेशब्दस्य सेटां धातूनामिटि कृते पुना रेभावः क्रियते, तदर्थं च इरयोरित्ययं द्विवचननिर्देशः" (काशिका) ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इरयोः) 'इरे' अथवा इ+रे शब्दों के स्थान में (बहुलम्) प्रायशः (रे) रे-आदेश होता है।*

*उदा०-**गर्भं प्रथमं दध्र आपः** (ऋ० १० ।८२ ।५) । **याश्च परिददृश्रे** (मै०सं० ४ ।४ ।१) । बहुलवचन से रे-आदेश नहीं भी होता है-**परमाया धियोऽग्निकर्माणि चक्रिरे ।***

यहां 'रे' शब्द के सेट् धातुओं में इट्-आगम करने पर पुनः 'रे' आदेश होता है। इस प्रकार 'इ' और 'रे' के स्थान में 'रे' आदेश होता है। इसलिये सूत्रपाठ में 'इरयोः' यह द्विर्वचन मे निर्देश किया गया है।

***सिद्धि-(१) दध्रे ।** धा+लिट् । धा+ल् । धा+झ । धा+इरेच् । धा+इरे । धा+रे । ध्०+रे । धा-धा+रे । ध-ध्+रे । द-ध्-रे । दध्रे ।*

*यहां '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३ ।२ ।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३ ।४ ।८१) से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'इरे' के स्थान में 'रे' आदेश होता है। यह रे-आदेश '**असिद्धवदत्राभात्**' (६ ।४ ।२२) से असिद्ध प्रकरण का है। अतः इसे असिद्ध मानकर '**आतो लोपः**' (६ ।४ ।४८) से अङ्ग के आकार का लोप होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६ ।१ ।८) से 'धा' को द्विर्वचन करने में '**द्विर्वचनेऽचि**' (१ ।१ ।५९) से आकार के लोपादेश को स्थानिवत् मानकर 'धा' को द्वित्व होता है। '**ह्रस्वः**' (७ ।४ ।५९) से अभ्यास को ह्रस्वादेश (ध) और इसे '**अभ्यासे चर्च**' (८ ।४ ।५९) से धकार को जश् (द्) आदेश होता है। ऐसे ही परि-उपसर्गपूर्वक '**दृशिर् प्रेक्षणे**' (भ्वा०प०) धातु से-**परिददृश्रे ।***

*(२) **चक्रिरे ।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। बहुलवचन से यहां 'इरेच्' के स्थान में 'रे' आदेश नहीं है।*

***विशेषः** जो धातु सेट् हैं उनसे परे प्रथम 'इरेच्' के स्थान पर 'रे' आदेश किया जाता है, तत्पश्चात् उसे 'इट्' आगम होकर 'इरे' रूप बनता है। उसे भी इस सूत्र से छन्द में पुनः 'रे' आदेश किया जाता है। 'इरेच्' आदेश अथवा इट् सहित रे-आदेश (इरे) इन दोनों को ही रे-आदेश का विधान किया गया है। अतः सूत्रपाठ मे-**इरश्च इरेश्च तौ इरयौ, तयोः-इरयोः**' यह द्विर्वचन में निर्देश किया गया है।*

इयङ्-उवङादेशौ—

(२) अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ।७७।

प०वि०-अचि ७।१ श्नु-धातु-भ्रुवाम् ६।३ य्वोः ६।२ इयङ्-उवङौ १।२।

स०-श्नुश्च धातुश्च भ्रूश्च ताः श्नुधातुभ्रुवः, तासाम्-श्नुधातुभ्रुवाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। इश्च उश्च तौ यू, तयोः-य्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। इयङ् च उवङ् च तौ-इयङुवङौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-श्नुधातुभ्रुवाम् य्वोरङ्गस्य अचि इयङुवङौ।

अर्थः-श्नु-प्रत्ययान्तस्य धातोर्भ्रुवश्च इकारान्तस्य उकारान्तस्याङ्गस्य अजादौ प्रत्यये परतो यथासंख्यम् इयङुवङावादेशौ भवतः।

उदा०-(**श्नुः**) ते आप्नुवन्ति। ते राध्नुवन्ति। ते शक्नुवन्ति। (**धातुः**) तौ चिक्षियतुः, ते चिक्षियुः। तौ लुलुवतुः, ते लुलुवुः। नियौ, नियः। लुवौ, लुवः। (**भ्रूः**) भ्रुवौ, भ्रुवः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(श्नुधातुभ्रुवाम्) श्नु-प्रत्ययान्त, धातु और भ्रू इन (य्वोः) इकारान्त और उकारान्त (अङ्गस्य) अङ्गों को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (इयङुवङौ) इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।*

*उदा०-(श्नु) **ते आप्नुवन्ति।** वे व्याप्त होते हैं। **ते राध्नुवन्ति।** वे सिद्ध करते हैं। **ते शक्नुवन्ति।** वे शक्त होते हैं। (**धातु**) **तौ चिक्षियतुः।** वे दोनों क्षीण हुये। **ते चिक्षियुः।** वे सब क्षीण हुये। **तौ लुलुवतुः।** उन दोनों ने छेदन किया। **ते लुलुवुः।** उन सबने छेदन किया। **नियौ।** दो नायकों ने। **नियः।** सब नायकों ने। **लुवौ।** दो छेदकों ने। **लुवः।** सब छेदकों ने। (**भ्रू**) **भ्रुवौ।** दो भ्रू। **भ्रुवः।** सब भ्रू। भ्रू=आंख की भौंह (Eay Brow)।*

*सिद्धि-(१) **आप्नुवन्ति।** आप्+लट्। आप्+ल्। आप्+श्नु+झि। आप्+नु+अन्ति। आप्+न् उवङ्+अन्ति। आप्+न् उव्+अन्ति। आप्नुवन्ति।*

यहां 'आप्लृ व्याप्तौ' (स्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से वर्तमान काल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। 'स्वादिभ्यः श्नुः' (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से श्नु-प्रत्ययान्त 'आप्नु' अङ्ग को अजादि 'अन्ति' प्रत्यय परे होने पर 'उवङ्' आदेश होता है। यह 'ङित्' होने से 'ङिच्च' (१।१।५३) से अन्त्य अल् (उ) के स्थान में होता है।

ऐसे ही 'राध संसिद्धौ' (स्वा०प०) धातु से-राध्नुवन्ति। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) धातु से-शक्नुवन्ति।

(२) चिक्षियतुः। क्षि+लिट्। क्षि+ल्। क्षि+तस्। क्षि+अतुस्। क्षि-क्षि-अतुस्। कि-क्षि-अतुस्। चि-क्षि+अतुस्। चि-क्ष् इयङ्+अतुस्। चि+क्ष् इय्+अतुस्। चिक्षियतुः।

यहां 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से भूतकाल अर्थ में 'लिट्' प्रत्यय है। 'परस्मैपदानां णल०' (३।४।८२) से 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश और 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से इकारान्त 'क्षि' धातु को अजादि 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर 'इयङ्' आदेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के ककार को चवर्ग चकार होता है। ऐसे ही 'उस्' प्रत्यय परे होने पर-चिक्षियुः। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-लुलुवतुः, लुलुवुः। यहां 'उवङ्' आदेश है।

(३) नियौ। नी+औ। न् इयङ्+औ। न इय्+औ। नियौ।

यहां 'णीञ् प्रापणे' धातु से 'सत्सूद्विष०' (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। 'क्विबन्तो धातुत्वं न जहाति' इस आप्तवचन से 'क्विप्-प्रत्ययान्त शब्द धातुभाव को नहीं छोड़ता है'। अतः इस सूत्र से ईकारान्त 'नी' धातु को अजादि 'औ' प्रत्यय परे होने पर 'इयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-नियः।

(४) लुवौ। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् ऊकारान्त 'लू' धातु को अजादि 'औ' प्रत्यय परे होने पर 'उवङ्' आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-लुवः।

(५) भ्रुवौ। भ्रू+औ। भ्र उवङ्+औ। भ्र् उव्+औ। भ्रुवौ।

यहां 'भ्रू' शब्द को अजादि 'औ' प्रत्यय परे होने पर 'उवङ्' आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-भ्रुवः।

इयङ्-उवङादेशौ–

(३) अभ्यासस्यासवर्णे।७८।

प०वि०-अभ्यासस्य ६।१ असवर्णे ७।१।

स०-न सवर्णम् इति असवर्णम्, तस्मिन्-असवर्णे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, य्वोः, इयङुवङौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य य्वोरभ्यासस्य असवर्णेऽचि इयङुवङौ।

अर्थः-अङ्गस्य इकारान्तस्य उकारान्तस्य चाभ्यासस्य असवर्णेऽचि परतो यथासंख्यम् इयङुवङावादेशौ भवतः।

उदा०-स इयेष। स उवोष। स इयर्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (य्वोः) इकारान्त और उकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (असवर्णे) असवर्ण (अचि) अच् परे होने पर यथासंख्य (इयङुवङौ) इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।*

*उदा०-**स इयेष।** उसने इच्छा की। **स उवोष।** उसने दाह किया। **स इयर्ति।** वह गति (ज्ञान-गमन-प्राप्ति) करता है।*

***सिद्धि**-(१) **स इयेष।** इष्+लिट्। इष्+ल्। इष्+तिप्। इष्+णल्। एष्+अ। इष्-इष्+अ। इ-एष्+अ। इयङ्-एष्+अ। इय्-एष्+अ। इयेष।*

*यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपध गुण की प्राप्ति में परत्व से गुण होता है। पुनः **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवत् होकर 'इष्' को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'इष्' के अभ्यास को असवर्ण अच् (ए) परे होने पर 'इयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही **'उष दाहे'** (भ्वा०प०) धातु से- **'उवोष'।** यहां 'उवङ्' आदेश है।*

*(२) **इयर्ति।** ऋ+लट्। ऋ+ल्। ऋ+शप्+ति। ऋ+०+ति। ऋ-ऋ+ति। अर्-ऋ+ति। अ-ऋ+ति। इ+अर्+ति। इयङ्-अर्+ति। इय्-अर्+ति। इयर्ति।*

*यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से वर्तमानकाल में 'लट्' प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु (लोप) और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। 'उरत्' (७।४।६) से अभ्यास को अकार, **'अर्तिपिपर्त्योश्च'** (७।४।७७) से इकार आदेश होता है। इस सूत्र से असवर्ण अच् (अ) परे होने पर इकार को 'इयङ्' आदेश होता है।*

इयङ्-आदेशः-

(४) स्त्रियाः।७६।

वि०-स्त्रियाः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, इयङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्त्रिया अङ्गस्य योऽचि इयङ्।

अर्थः-स्त्रिया अङ्गस्य ईकारस्य अजादौ प्रत्यये परत इयङ् आदेशो भवति।

उदा०-स्त्रियौ। स्त्रियः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्त्रियाः) स्त्री (अङ्गस्य) अङ्ग के (यः) ईकार को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (इयङ्) इयङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**स्त्रियौ**। दो स्त्रियां। **स्त्रियः**। सब स्त्रियां।*

*सिद्धि-**स्त्रियौ**। स्त्री+औ। स्त्र् इयङ्+औ। स्त्र् इय्+औ। स्त्रियौ।*

*यहां 'स्त्री' शब्द से द्वित्व-विवक्षा में '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'स्त्री' अंग के इकार को अजादि 'औ' प्रत्यय परे होने पर 'इयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-**स्त्रियः**।*

इयङादेश-विकल्पः–

(५) वाऽम्शसोः।८०।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, अम्-शसोः ७।२।

स०-अम् च शस् च तौ अम्शसौ, तयोः-अम्शसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, यः, इयङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्त्रिया अङ्गस्य योऽम्शसोर्वा इयङ्।

अर्थः-स्त्रिया अङ्गस्य ईकारस्य अमि शसि च प्रत्यये परतो विकल्पेन इयङ् आदेशो भवति।

उदा०-**(अम्)** त्वं स्त्रीं पश्य, स्त्रियं पश्य। **(शस्)** त्वं स्त्रीः पश्य, स्त्रियः पश्य।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्त्रियाः) स्त्री (अङ्गस्य) अङ्ग के (यः) ईकार को (अम्शसोः) अम् और शस् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (इयङ्) आदेश होता है।*

*उदा०-**(अम्) त्वं स्त्रीं पश्य, स्त्रियं पश्य**। तू स्त्री को देख। **(शस्) त्वं स्त्रीः पश्य, स्त्रियः पश्य**। तू स्त्रियों को देख।*

*सिद्धि-(१) **स्त्रीम्**। स्त्री+अम्। स्त्री+०म्। स्त्रीम्।*

*यहां 'स्त्री' शब्द से कर्म कारक में तथा एकत्व-विवक्षा में '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्त्री अङ्ग के इकार को विकल्प-पक्ष में 'इयङ्' आदेश नहीं है। '**अमि पूर्वः**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश है।*

*(२) **स्त्रियम्।** स्त्री+अम्। स्त्र् इयङ्+अम्। स्त्र् इय्+अम्। स्त्रियम्।*

यहां 'स्त्री' शब्द से पूर्ववत् 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्त्री अङ्ग के इकार को 'अम्' प्रत्यय परे होने पर 'इयङ्' आदेश होता है।

*ऐसे ही 'स्त्री' शब्द से 'शस्' प्रत्यय करने पर '**त्वं स्त्रीः पश्य।** यहां '**प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**' (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण-दीर्घ एकादेश होता है। **त्वं स्त्रियः पश्य।** यहां 'इयङ्' आदेश है।*

यण्-आदेशः–

(६) इणो यण्।८१।

प०वि०–इणः ६।१ यण् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इणोऽङ्गस्य अचि यण्।

अर्थः–इणोऽङ्गस्य अजादौ प्रत्यये परतो यण् आदेशो भवति।

उदा०–ते यन्ति। ते यन्तु। ते आयन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इणः) इण् (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (यण्) यण् आदेश होता है।*

*उदा०-**ते यन्ति।** वे सब जाते हैं। **ते यन्तु।** वे सब जायें। **ते आयन्।** वे सब गये।*

*सिद्धि-(१) **यन्ति।** इण्+लट्। इ+ल्। इ+झि। इ+अन्ति। य्+अन्ति। यन्ति।*

*यहां '**इण् गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से वर्तमानकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इण्' अङ्ग को अजादि 'अन्ति' प्रत्यय परे होने पर 'यण्' आदेश होता है। यह '**अचि श्नुधातुभ्रुवां**' (६।४।७७) से प्राप्त 'इयङ्' आदेश का अपवाद है। ऐसे ही लोट् लकार में-**यन्तु।** यहां 'एरुः' (३।४।८६) से 'अन्ति' के इकार को उकार आदेश होता है। लङ् लकार में-**आयन्।** '**संयोगान्तय लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। '**आडजादीनाम्**' (६।४।७२) से 'आट्' आगम नहीं है।*

यण्-आदेशः–

(७) एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य।८२।

प०वि०–एः ६।१ अनेकाचः ६।१ असंयोगपूर्वस्य ६।१।

स०–न एक इति अनेकः। अनेकोऽच् यस्मिन् सः-अनेकाच्, तस्य अनेकाचः (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)। अविद्यमानः संयोगः पूर्वो यस्मात् सः-असंयोगपूर्वः, तस्य-असंयोगपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, यण् इति चानुवर्तते। **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) इत्यत्र 'धातोः' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते, तेन च संयोगो विशेष्यते।

अन्वयः-धातोरसंयोगपूर्वस्य एरनेकाचोऽङ्गस्य अचि यण्।

अर्थः-धातोरवयवः संयोगो यस्मादिकारात् पूर्वो न भवति, तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य अजादौ प्रत्यये परतो यणादेशो भवति।

उदा०-तौ निन्यतुः, ते निन्युः। उन्न्यौ, उन्न्यः। ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(धातोः) धातु का अवयवभूत, (असंयोगपूर्वस्य, एः) संयोग जिस इकार-वर्ण से पूर्व नहीं है, उस इकारान्त (अनेकाचः) अनेक अचोंवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (यण्) यण् आदेश होता है।*

*उदा०-**तौ निन्यतुः**। उन दोनों ने प्राप्त कराया (पहुंचाया)। **ते निन्युः**। उन सबने प्राप्त कराया। **उन्न्यौ**। दो ऊंचा उठानेवाले। **उन्न्यः**। सब ऊंचा उठानेवाले। **ग्रामण्यौ**। दो ग्रामणी=ग्राम के नेता। **ग्रामण्यः**। सब ग्रामणी।*

***सिद्धि-(१) निन्यतुः**। नि+लिट्। नी+ल्। नी+तस्। नी+अतुस्। नी-नी+अतुस्। नि+न्य+अतुस्। निन्यतुः।*

*यहां **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से भूतकाल मे 'लिट्' प्रत्यय है। **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु के द्वित्व होता है-नी-नी। इस अवस्था में धातु के ईकार से पूर्व उसका अवयव संयोगपूर्व नहीं है और द्वित्व-अवस्था में यह अनेक अचोंवाली भी है, अतः इस अङ्ग को अजादि 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर यण् (य्) आदेश होता है। यह पूर्वोक्त 'इयङ्' आदेश का अपवाद है। ऐसे ही 'उस्' प्रत्यय परे होने पर-**निन्युः**।*

*(२) **उन्न्यौ**। उत्+नी+औ। उत्+न् य्+औ। उन्न्यौ।*

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से प्रथम **'सत्सूद्विष०'** (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (३।१।६६) क्विप् का सर्वहारी होता है। **'क्विबन्तो धातुत्वं न जहाति'** इस आप्तवचन से क्विप्-प्रत्ययान्त शब्द धातुभाव को नहीं छोड़ता है, अतः इस धातु के ईकार से पूर्व इसका अवयव संयोगपूर्व नहीं है। जो यहां संयोग दिखाई देता है वह उत्-उपसर्गजन्य है, धातु का नहीं। उत्-उपसर्ग के योग से यह अनेकाच् अङ्ग है। अतः इस सूत्र से अजादि 'औ' प्रत्यय परे होने पर इसे यण् (य्) आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-**उन्न्यः**। ऐसे ही 'ग्रामणी' शब्द से-**ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः**।*

यण्-आदेशः–

(८) ओः सुपि।८३।

प०वि०–ओः ६।१ सुपि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अचि, अनेकाचः, असंयोगपूर्वस्य इति चानुवर्तते। 'धातोः' इति च मण्डूकोत्प्लुत्या पूर्ववदनुवर्तते, तेन च संयोगो विशेष्यते।

अन्वयः–धातोरसंयोगपूर्वस्य ओरनेकाचोऽङ्गस्य अचि सुपि यण्।

अर्थः–धातोरवयवः संयोगो यस्मादुकारात् पूर्वो न भवति, तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य अजादौ सुपि प्रत्यये परतो यणादेशो भवति।

उदा०–खलप्वौ, खलप्वः। शतस्वौ, शतस्वः। सकृल्ल्वौ, सकृल्ल्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धातोः) धातु का अवयवभूत (असंयोगपूर्वस्य ओः) संयोग जिस उकार वर्ण से पूर्व नहीं है, उस उकारान्त (अनेकाचः) अनेक अचोंवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (यण्) यण् आदेश होता है।*

*उदा०–**खलप्वौ**। दो खलिहान को शुद्ध करनेवाले। **खलप्वः**। सब खलिहान को शुद्ध करनेवाले। **शतस्वौ**। दो सौ को उत्पन्न करनेवाले। **शतस्वः**। सब सौ को उत्पन्न करनेवाले। **सकृल्ल्वौ**। दो एक बार छेदन करनेवाले। **सकृल्ल्वः**। सब एक बार छेदन करनेवाले।*

***सिद्धि-खलप्वौ**। खल+पू+क्विप्। खल+पू+वि०। खलपू+०। खलपू+औ। खलप्व्+औ। खलप्वौ।*

*यहां प्रथम खल-उपपद '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) धातु से '**अन्येभ्योऽपि दृश्यते**' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। तत्पश्चात् 'खलपू' शब्द से द्वित्व-विवक्षा में '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से धातु का अवयवभूत संयोग जिसके पूर्व नहीं है उस उकारान्त तथा अनेक अचोंवाले 'खलपू' अङ्ग को 'यण्' (व्) आदेश होता है। ऐसे ही 'जस् प्रत्यय परे होने पर–**खलप्वः**।*

*(२) **शतस्वौ**। यहां प्रथम शत-उपपद '**षूङ् प्राणिगर्भविमोचने**' (अदा०आ०) धातु से '**सत्सूद्विष०**' (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर–**शतस्वः**।*

*(३) **सकृल्ल्वौ**। यहां प्रथम सकृत्-उपपद '**लूञ् छेदने**' (क्र्या०उ०) धातु से '**अन्येभ्योऽपि दृश्यते**' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**तोर्लि**' (८।४।६०) से तकार को परसवर्ण लकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर–**सकृल्ल्वः**।*

यण्-आदेशः-

(६) वर्षाभ्वश्च।८४।

प०वि०-वर्षाभ्वः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, यण्, सुपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वर्षाभ्वोऽङ्गस्य च अचि सुपि यण्।

अर्थः-वर्षाभू-इत्येतस्याङ्गस्य च अजादौ सुपि प्रत्यये परतो यणादेशो भवति।

उदा०-वर्षाभ्वौ, वर्षाभ्वः।

आर्यभाषाः अर्थ-(वर्षाभ्वः) वर्षाभू इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (अचि) अजादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (यण्) यण् आदेश होता है।

*उदा०-**वर्षाभ्वौ।** दो वर्षाभू (मण्डूक=मेंढक)। **वर्षाभ्वः।** सब वर्षाभू।*

सिद्धि-वर्षाभ्वौ। *वर्षा+भू+क्विप्। वर्षा+भू+वि। वर्षा+भू+०। वर्षाभू+औ। वर्षाभ्व्+औ। वर्षाभ्वौ।*

*यहां वर्षा-उपपद **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। तत्पश्चात् 'वर्षाभू' शब्द से द्वित्व-विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से अजादि, सुप् 'औ' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से यण् (व्) आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय करने पर-**वर्षाभ्वः।** यहां **'न भूसुधियोः'** (६।४।८५) से यण्-आदेश का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह उसका पुरस्तात् अपवाद है।*

यणादेश-प्रतिषेधः-

(१०) न भूसुधियोः।८५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, भू-सुधियोः ६।२।

स०-भूश्च सुधीश्च तौ भूसुधियौ, तयोः-भूसुधियोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, यण्, सुपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूसुधियोरङ्गयोरचि सुपि यण् न।

अर्थः-भू-सुधियोरङ्गयोरजादौ सुपि प्रत्यये परतो यणादेशो न भवति।

उदा०-(**भूः**) प्रतिभुवौ, प्रतिभुवः। (**सुधीः**) सुधियौ, सुधियः।

आर्यभाषाः अर्थ-(भूसुधियोः) भू और सुधी (अङ्गस्य) अङ्गों को (अचि) अजादि (सुपि) सुप्-प्रत्यय परे होने पर (यण्) यणादेश (न) नहीं होता है।

*उदा०-(भू) **प्रतिभुवौ।** दो प्रतिभू (जामिन)। **प्रतिभुवः।** सब प्रतिभू। (सुधी) **सुधियौ।** दो सुधी (विद्वान्)। **सुधियः।** सब सुधी।*

*सिद्धि-(१) **प्रतिभुवौ।** प्रति+भू+क्विप्। प्रति+भू+वि। प्र+भू+०। प्रतिभू+औ। प्रति+भ् उवङ्+औ। प्रति+भ् उव्+औ। प्रतिभुवौ।*

*यहां प्रथम प्रति-उपपद **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'भुवः संज्ञान्तरयोः'** (३।२।१७९) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। तत्पश्चात् 'प्रतिभू' शब्द से द्वित्व-विवक्षा में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से अजादि, सुप् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'प्रतिभू' अङ्ग को यणादेश का प्रतिषेध होता है। **'ओः सुपि'** (६।४।८३) से यणादेश प्राप्त था। अतः यथाप्राप्त **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से 'उवङ्' आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर-**प्रतिभुवः।***

*(२) **सुधियौ।** सु+ध्या+क्विप्। सु+ध्या+०। सु+ध् इ आ+०। सुधी+औ। सुध् इयङ्+औ। सुध् इय्+औ। सुधियौ।*

*यहां प्रथम सु-उपपद **'ध्यै चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **वा०-'ध्यायतेः सम्प्रसारणं च'** (३।२।१७८) से सम्प्रसारण होता है। तत्पश्चात् 'सुधी' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय करने पर **'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य'** (६।४।८२) से यण्-आदेश प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। अतः यथाप्राप्त **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से 'इयङ्' आदेश होता है।*

उभयथा-आदेशः--

(११) छन्दस्युभयथा।८६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ उभयथा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, सुपि भूसुधियोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि भूसुधियोरङ्गयोरचि सुपि उभयथा।

अर्थः-छन्दसि विषये भूसुधियोरङ्गयोरजादौ सुपि परत उभयथा दृश्यते, यणादेश उवङादेशश्च।

उदा०-(भूः) वनेषु चित्रं विभ्वं विशे (ऋ० ४।७।१)। विभुवं विशे (तै०सं० १।५।५।१)। **(सुधीः)** सुध्यो३ नव्यमग्ने (ऋ० ६।१।७)। सुधियो नव्यमग्ने (तै०ब्रा० ३।६।१०।३)। 'हव्यमग्ने' (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (भूसुधियोः) भू और सुधी (अङ्गस्य) अङ्गों को (अचि) अजादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (उभयथा) यण् और उवङ् यह दो प्रकार का आदेश देखा जाता है।*

उदा०-(भू) ***वनेषु चित्रं विभ्वं विशे*** *(ऋ० ४।७।१)।* ***विभुवं विशे*** *(तै०सं० १।५।५।१)। (सुधी)* ***सुध्यो३ नव्यमग्ने*** *(ऋ० ६।१।७)।* ***सुधियो नव्यमग्ने*** *(तै०ब्रा० ३।६।१०।३)।*

सिद्धि-(१) विभ्वम्। *विभू+अम्। वि+भ्व्+अम्। विभ्वम्।*

यहां 'विभू' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'विभू' अङ्ग को अजादि सुप् 'अम्' प्रत्यय परे होने पर 'यण्' (व्) आदेश होता है। 'विभुवम्' यहां 'उवङ्' आदेश है।*

(२) सुध्यः। *सुधी+जस्। सुधी+अस्। सुध् य्+अस्। सुध्यः।*

यहां 'सुधी' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'सुधी' अङ्ग को यण् (य्) आदेश होता है। 'सुधियः' यहां इयङ् आदेश है।

यण्-आदेशः-

(१२) हुश्नुवोः सार्वधातुके।८७।

प०वि०-हु-श्नुवोः ६।२ सार्वधातुके ७।१।

स०-हुश्च श्नुश्च तौ हुश्नुवौ, तयोः-हुश्नुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, अनेकाचः, असंयोगपूर्वस्य, यण इति चानुवर्तते। **'ओः सुपि'** (६।४।८३) इत्यस्माद् मण्डूकोत्प्लुत्या 'ओः' इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हुश्नुवोरसंयोगपूर्वस्य ओरनेकाचोऽङ्गस्य अचि सार्वधातुके यण्।

अर्थः-'हु' इत्येतस्य श्नु-प्रत्ययान्तस्य च संयोगो यस्माद् उकारात् पूर्वो न भवति, तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य अजादौ सार्वधातुके प्रत्यये परतो यणादेशो भवति।

उदा०-**(हुः)** ते जुह्वति, स जुह्वतु। जुह्वत्। ते सुन्वन्ति। ते सुन्वन्तु, ते असुन्वन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हुश्नुवोः) 'हु' इसको और श्नु-प्रत्यय की (असंयोगपूर्वस्य ओः) जिसके उकार से पूर्व संयोग नहीं है उस उकारान्त (अनेकाचः) अनेक अचोंवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर (यण्) यण् आदेश होता है।*

*उदा०-(हु) ते **जुह्वति**। वे सब यज्ञ करते हैं। ते **जुह्वतु**। वह यज्ञ करे। **जुह्वत्**। यज्ञ करता हुआ। (श्नु) ते **सुन्वन्ति**। वे सब पैदा होते हैं। ते **सुन्वन्तु**। वे सब पैदा होवें। ते **असुन्वन्**। वे सब पैदा हुये।*

सिद्धि-(१) जुह्वति। *हु+लट्। हु+ल्। हु+झि। हु+शप्+झि। हु+०+झि। हु-हु+अत् इ। झु-हु+अति। जु-ह्व्+अति। जुह्वति।*

*यहां '**हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके**' (जु०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से वर्तमानकाल अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु (लोप) और '**श्लौ**' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। '**अदभ्यस्तात्**' (७।१।४) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है। इस सूत्र से अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर 'यण्' (व्) आदेश होता है। 'हु' धातु के उकार से पूर्व संयोग नहीं है तथा द्वित्व अवस्था में (हु-हु) यह अनेकाच् है। ऐसे ही 'लोट्' लकार में-**जुह्वतु**। 'हु' धातु से '**लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे**' (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय करने पर-**जुह्वत्**।*

*(२) **सुन्वन्ति**। सु+लट्। सु+ल्। सु+झि। सु+श्नु+अन्ति। सु+नु+अन्ति। सु+न् उ+अन्ति। सु+न् व्+अन्ति। सुन्वन्ति।*

*यहां '**षुञ् अभिषवे**' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। '**स्वादिभ्यः श्नुः**' (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से जिसके उकार से पूर्व संयोग नहीं है तथा जो अनेकाच् अङ्ग है उस इस 'सु+नु' श्नु-प्रत्ययान्त अङ्ग को अजादि सार्वधातुक 'अन्ति' प्रत्यय परे होने पर 'यण्' (व्) आदेश होता है। ऐसे ही 'लोट्' लकार में-**सुन्वन्तु**, और 'लङ्' लकार में-**असुन्वन्**।*

वुक्-आगमः-

(१३) भुवो वुग् लुङ्लिटोः।८८।

प०वि०-भुवः ६।१ वुक् १।१ लुङ्-लिटोः ७।२।

स०-लुङ् च लिट् च तौ लुङ्लिटौ, तयोः-लुङ्लिटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भुवोऽङ्गस्य अचि लुङ्लिटोर्वुक्।

अर्थः-भुवोऽङ्गस्य अजादौ लुङि लिटि च प्रत्यये परतो वुगागमो भवति।

उदा०-**(लुङ्)** ते अभूवन्। अहम् अभूवम्। **(लिट्)** स बभूव। तौ बभूवतुः। ते बभूवुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भुवः) भू (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि (लुङ्लिटोः) लुङ् और लिट् प्रत्यय परे होने पर (वुक्) वुक् आगम होता है।*

*उदा०-(लुङ्) ते **अभूवन्**। वे सब हुये। अहम् **अभूवम्**। मैं हुआ। (लिट्) स **बभूव**। वह हुआ। तौ **बभूवतुः**। वे दोनों हुये। ते **बभूवुः**। वे सब हुये।*

*सिद्धि-(१) **अभूवन्**। भू+लुङ्। अट्+भू+ल्। अ+भू+च्लि+ल्। अ+भू+सिच्+झि। अ+भू+०+अन्ति। अ+भू वुक्+अन्ति। अ+भू+व्+अन्ति। अ+भूव्+अन्त्। अ+भूव्+अन्०। अभूवन्।*

*यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से '**लुङ्**' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। '**गतिस्थाघु०**' (२।४।७७) से 'सिच्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'भू' अङ्ग को अजादि, लुङ्विषयक 'अन्ति' प्रत्यय परे होने पर 'वुक्' आगम होता है। '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। ऐसे ही उत्तम पुरुष एकवचन में-**अभूवम्**।*

*(२) **बभूव**। भू+लिट्। भू+ल्। भू+तिप्। भू+णल्। भू+अ। भू वुक्+अ। भूव्+अ। ब-भूव्+अ। बभूव।*

*यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। इस सूत्र से 'भू' अङ्ग को लिट्-विषयक, अजादि 'अ' प्रत्यय परे होने पर 'वुक्' आगम होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व, '**भवतेरः**' (७।४।७३) से अभ्यास को अकारादेश और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से अभ्यास के भकार को जश् बकार होता है। ऐसे ही द्विवचन और बहुवचन में-**बभूवतुः**, **बभूवुः**।*

ऊत्-आदेशः-

(१४) ऊदुपधाया गोहः।८९।

प०वि०-ऊत् १।१ उपधायाः ६।१ गोहः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गोहोऽङ्गस्य उपधाया अचि ऊत्।

अर्थः-गोहोऽङ्गस्य उपधायाः स्थाने अजादौ प्रत्यये परत ऊकारादेशो भवति।

उदा०-स निगूहति। निगूहकः। साधुनिगूही। निगूहंनिगूहम्। निगूहो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोहः) गोह (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (ऊत्) ऊकारादेश होता है।*

*उदा०-**स निगूहति।** वह छुपाता है। **निगूहकः।** छुपानेवाला। **साधुनिगूही।** छुपाने के स्वभाववाला। **निगूहंनिगूहम्।** छुपा-छुपाकर। **निगूहो वर्तते।** छुपाना है।*

*सिद्धि-(१) **निगूहति।** नि+गुह्+लट्। नि+गुह्+ल्। नि+गुह्+शप्+तिप्। नि+गुह्+अ+ति। नि+गोह+अ+ति। नि+गूह्+अ+ति। निगूहति।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'गुहू संवरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से धातु को लघूपध गुण (ओ) होता है। इस सूत्र से अजादि 'शप्' प्रत्यय परे होने पर 'गोह्' अङ्ग की उपधा (ओ) के स्थान में ऊकार आदेश होता है।*

*(२) **निगूहकः।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गुह्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साधुनिगूही।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गुह्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से ताच्छील अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **निगूहंनिगूहम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गुह्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। **वा०-'आभीक्ष्ण्ये' (द्वे भवतः)** (८।१।१२) से द्विर्वचन होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **निगूहः।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'गुह्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ऊत्-आदेशः-

(१५) दोषो णौ।६०।

प०वि०-दोषः ६।१ णौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, ऊत्, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दोषोऽङ्गस्य उपधाया णौ ऊत्।

अर्थः-दोषोऽङ्गस्य उपधायाः स्थाने णौ प्रत्यये परत ऊकारादेशो भवति।

उदा०-स दूषयति। तौ दूषयतः। ते दूषयन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दोषः) दोष् (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ऊत्) ऊकार आदेश होता है।*

उदा०-स ***दूषयति।*** *वह विकृत करता है (बिगाड़ता) है।* ***तौ दूषयतः।*** *वे दोनों विकृत करते हैं।* ***ते दूषयन्ति।*** *वे सब विकृत करते हैं।*

सिद्धि-दूषयति। *दुष्+णिच्। दुष्+इ। दोष्+इ। दूष्+इ। दूषि।। दूषि+लट्। दूषि+ल्। दूषि+तिप्। दूषि+शप्+ति। दूषे+अ+ति। दूष् अय्+अ+ति। दूषयति।*

यहां प्रथम ***'दुष वैकृत्ये'*** *(दि०प०) धातु से* ***'हेतुमति च'*** *(३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है।* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से धातु को लघूपध गुण (ओ) होता है। इस सूत्र से 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'दोष्' के उपधाभूत ओकार के स्थान में ऊकार आदेश होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'दोषि' धातु से* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही द्विवचन और बहुवचन में-***तौ दूषयतः, ते दूषयन्ति।***

ऊकारादेश-विकल्पः--

(१६) वा चित्तविरागे।६१।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, चित्त-विरागे ७।१।

स०-चित्तस्य विराग इति चित्तविरागः, तस्मिन्-चित्तविरागे। विरागः=विकार इत्यर्थः।

अनु०-अङ्गस्य, ऊत्, उपधायाः, दोषः, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चित्तविरागे दोषोऽङ्गस्य उपधाया णौ वा ऊत्।

अर्थः-चित्तविरागे=चित्तविकारेऽर्थे दोषोऽङ्गस्य उपधायाः स्थाने णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन ऊकारादेशो भवति।

उदा०-चित्तं दूषयति, चित्तं दोषयति। प्रज्ञां दूषयति, प्रज्ञां दोषयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चित्तविरागे) चित्त-विकार अर्थ में (दोषः) दोष् (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (ऊत्) ऊकारादेश होता है।*

*उदा०-***चित्तं दूषयति, चित्तं दोषयति।*** *वह चित्त को बिगाड़ता है।* ***प्रज्ञां दूषयति, प्रज्ञां दोषयति।*** *वह प्रज्ञा को बिगाड़ता है। प्रज्ञा=बुद्धि।*

सिद्धि-दूषयति *शब्द की सिद्धि पूर्ववत् है। केवल चित्तविराग अर्थविशेष है। विकल्प-पक्ष में 'दोष्' अङ्ग की उपधा को ऊकारादेश नहीं है-***दोषयति।***

ह्रस्वादेशः–

(१७) मितां ह्रस्वः।६२।

प०वि०–मिताम् ६।३ ह्रस्वः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मिताम् अङ्गानाम् उपधाया णौ ह्रस्वः।

अर्थः–मिताम् अङ्गानाम् उपधायाः स्थाने णौ प्रत्यये परतो ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०–स घटयति। स व्यथयति। स जनयति। स रजयति। स शमयति। स ज्ञपयति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(मिताम्) मित्-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०–**स घटयति।** वह चेष्टा (प्रयत्न) कराता है। **स व्यथयति।** वह भय और संचलन कराता है। **स जनयति।** वह प्रादुर्भाव कराता है। **स रजयति।** वह मृगों को मारता है। **स शमयति।** वह उपशान्त करता है। **स ज्ञपयति।** वह मारता है।*

सिद्धि–(१) घटयति। *घट्+णिच्। घट्+इ। घाट्+इ। घट्+इ। घटि।। घटि+लट्। घटयति।*

*यहां **'घट चेष्टायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११५) से 'घट्' को उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से मित्-संज्ञक 'घट्' धातु की उपधा को 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश होता है।*

*(२) **व्यथयति।** **'व्यथ भयसञ्चलनयोः'** (भ्वा०आ०) से पूर्ववत्।*

*(३) **जनयति।** 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्। 'जनी' की **'जनीजृष्-क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च'** (भ्वा० गणसूत्र) से मित्-संज्ञा है।*

*(४) **रजयति।** 'रञ्ज रागे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय वा०- **'रञ्जेर्णौ मृगमारणे उपसंख्यानम्'** (६।४।२६) से अनुनासिक (ञ्) का लोप और **'अत उपधायाः'** (७।२।११५) से वृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'रञ्ज' धातु की **'जनीजृष्-क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च'** (भ्वा० गणसूत्र) से मित्-संज्ञा है।*

*(५) **शमयति।** **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् **'शमोऽदर्शने'** (भ्वा० गणसूत्र) से 'शमु' धातु की दर्शन अर्थ से अन्यत्र मित्-संज्ञा होती है।*

*(६) **ज्ञपयति**। यहां 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से 'पुक्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। '**मारणतोषण-निशामनेषु ज्ञा**' (भ्वा० गणसूत्र) से 'ज्ञा' धातु की मारण-आदि अर्थों में मित्-संज्ञा होती है, अन्यत्र नहीं।*

***विशेषः** 'घट चेष्टायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से लेकर '**फण गतौ**' (वृत्) तक घटादि धातुओं की मित्-संज्ञा है। 'वृत्' शब्द घटादि गण की समाप्ति का द्योतक **है**। मित्-संज्ञक धातु पाणिनीय धातुपाठ के भ्वादिगण में देख लेवें।*

दीर्घादेश-विकल्पः–

(१८) चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्।६३।

प०वि०–चिण्-णमुलोः ७।२ दीर्घः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–चिण् च णमुल् च तौ चिण्णमुलौ, तयोः–चिण्णमुलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, उपधायाः, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मिताम् अङ्गानाम् उपधायाश्चिण्णमुलोर्णावन्यतरस्यां दीर्घः।

अर्थः–मिताम् अङ्गानाम् उपधायाः स्थाने चिण्परके च णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन दीर्घो भवति।

उदा०–**चिण्परके णौ**–तेन अशमि, अशामि। तेन अतमि, अतामि। **णमुल्परके णौ**–शमंशमम्, शामंशामम्। तमंतमम्, तामंतामम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(मिताम्) मित्-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चिण्णमुलोः) चिण्परक और णमुल्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ आदेश होता है।*

*उदा०–**चिण्परक णिच्–तेन अशमि, अशामि**। उसके द्वारा उपशान्त कराया गया। **तेन अतमि, अतामि**। उसके द्वारा आकाङ्क्षा (इच्छा) कराई गई। **णमुल्परक णिच्–शमंशमम्, शामंशामम्**। उपशान्त करा-कराकर। **तमंतमम्, तामंतामम्**। आकाङ्क्षा करा-कराकर।*

*सिद्धि-(१) **अशमि**। शम्+णिच्। शम्+इ। शाम्+इ। शामि। शमि+लुङ्। अट्+शमि+ल्। अ+शमि+च्लि+ल्। अ+शमि+चिण्+तिप्। अ+शम्+इ+त्। अ+शम्+इ+०। अशमि।*

*यहां प्रथम 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११५) से उपधावृद्धि होती है और 'मितां ह्रस्व:' (६।४।९२) से ह्रस्वादेश होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'शमि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से कर्मवाच्य अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'चिण् भावकर्मणो:' (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से चिण्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (शम्) की उपधा को दीर्घ होता है-**अशामि**।*

*(२) **अतमि**। 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में अङ्ग (शम्) की उपधा को दीर्घ होता है-**अतामि**।*

*(३) **शमंशमम्**। शम्+णिच्। शम्+इ। शाम्+इ। शामि+णमुल्। शामि+अम्। शम्+अम्। शमम्। शमंशमम्।*

*यहां 'शमु उपशमे' धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। णिजन्त 'शमि' धातु से 'अभीक्ष्ण्ये णमुल् च' (३।४।२२) से आभीक्ष्ण्य अर्थ में 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०- 'आभीक्ष्ण्ये' (द्वे भवत:) (८।१।१२) से द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से णमुल्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग (शम्) की उपधा को दीर्घ नहीं है। विकल्प-पक्ष में अङ्ग (शम्) की उपधा को दीर्घ होता है-**शामंशामम्**। ऐसे ही 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से-**तमंतमम्, तामंतामम्**।*

ह्रस्वादेश:-

(१६) खचि ह्रस्व:।६४।

प०वि०-खचि ७।१ ह्रस्व: १।१।

अनु०-अङ्गस्य, उपधाया:, णौ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अङ्गस्य उपधाया: खचि णौ ह्रस्व:।

अर्थ:-अङ्गस्य उपधाया: स्थाने खच्परके णौ परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-द्विषन्तप:। परन्तप:। पुरन्दर:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधाया:) उपधा के स्थान में (खचि) खच्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्व:) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**द्विषन्तप:**। द्वेष करनेवाले को सन्ताप देनेवाला। **परन्तप:**। शत्रु को सन्ताप देनेवाला। **पुरन्दर:**। नगर का विदारण करनेवाला (इन्द्र)।*

*सिद्धि-(१) **द्विषन्तप:**। तप्+णिच्। तप्+इ। तापि।। द्विषत्+तापि+खच्। द्विषत्+तापि+अ। द्विषत्+तपि+अ। द्विष मुम्त्+तप्+अ। द्विषम्त्+तप्+अ। द्विषम्०+तप+अ। द्विषन्तप+सु। द्विषन्तप:।*

*यहां प्रथम **'तप सन्तापे'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११५) से अङ्ग (तप्) को उपधावृद्धि होती है। तत्पश्चात् द्विषत्-उपपद णिजन्त 'तापि' धातु से **'द्विषत्परयोस्तापेः'** (३।२।३९) से 'खच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से खच्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। **'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्'** (६।३।६५) से 'मुम्' आगम और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'द्विषत्' के तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**परन्तपः।***

*(२) पुरन्दरः। यहां प्रथम **'दॄ विदारणे'** (स्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् पुर्-उपपद णिजन्त 'दारि' धातु से **'पूःसर्वयोर्दारिसहोः'** (३।२।४१) से 'खच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ह्रस्वादेशः-

(२०) ह्लादो निष्ठायाम्।६५।

प०वि०-ह्लादः ६।१। निष्ठायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्लादोऽङ्गस्य उपधाया निष्ठायां ह्रस्वः।

अर्थः-ह्लादोऽङ्गस्य उपधायाः स्थाने निष्ठायां प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-प्रह्लन्नः, प्रह्लन्नवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्लादः) ह्लाद् (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**प्रह्लन्नः, प्रह्लन्नवान्।** प्रसन्न हुआ।*

*सिद्धि-**प्रह्लन्नः।** प्र+ह्लाद्+क्त। प्र+ह्लाद्+त। प्र+ह्लद्+त। प्र+ह्लद्+न। प्रह्लन्+न। प्रह्लन्न+सु। प्रह्लन्नः।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ह्लादी सुखे च'** (भ्वा०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' है। **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (१।१।२६) से 'क्त' प्रत्यय की 'निष्ठा' संज्ञा है। इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'ह्लाद्' अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से 'निष्ठा' (क्त) के तकार को नकारादेश और धातु के पूर्ववर्ती दकार को भी नकारादेश होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय करने पर-**प्रह्लन्नवान्।***

ह्रस्वादेशः--

(२१) छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य।६६।

प०वि०-छ-आदेः ६।१ घे ७।१ अद्वि-उपसर्गस्य ६।१।

स०-छ आदिर्यस्य स छादिः, तस्य-छादेः (बहुव्रीहिः)। द्वौ उपसर्गौ यस्य स द्व्युपसर्गः, न द्व्युपसर्ग इति अद्व्युपसर्गः, तस्य-अद्व्युपसर्गस्य (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अद्व्युपसर्गस्य छादेरङ्गस्य उपधाया घे ह्रस्वः।

अर्थः-अद्व्युपसर्गस्य छकारादेरङ्गस्य उपधायाः स्थाने घे प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-उरश्छन्दः। प्रच्छदः। दन्तच्छदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अद्व्युपसर्गस्य) दो उपसर्गों से रहित (छादेः) छकार जिसके आदि में उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (घे) घ-प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**उरश्छन्दः।** छाती की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला कवचविशेष। **प्रच्छदः।** बिछावन की चादर। **दन्तच्छदः।** दांतों को ढकनेवाला-ओष्ठ (होठ)।*

*सिद्धि-**उरश्छन्दः।** छद्+णिच्। छद्+इ। छाद्+इ। छादि।। उरस्+छादि+घ। उरस्+छादि+अ। उरस्+छाद्+अ। उरस्+छद्+अ। उरश्छद+सु। उरश्छदः।*

*यहां प्रथम **'छद अपवारणे'** (चु०उ०) धातु से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् उरस्-उपपद णिजन्त 'छादि' धातु से **'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण:'** (३।३।११८) से संज्ञाविषय में 'घ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय परे होने पर दो उपसर्गों से रहित, छकारादि अङ्ग (छाद्) की उपधा को ह्रस्वादेश होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णि' का लोप है। 'उरसश्छद इति उरश्छदः। **वा०-'कृद्योगा च षष्ठी समस्यते'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। ऐसे ही-**प्रच्छदः, दन्तच्छदः।** यहां 'छे च' (८।१।७२) से 'तुक्' आगम होता है।*

ह्रस्वादेशः--

(२२) इस्मन्त्रन्क्विषु च।६७।

प०वि०-इस्-मन्-त्रन्-क्विषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-इस् च मन् च त्रन् च क्विश्च ते इस्मन्त्रन्क्वयः, तेषु-इस्मन्त्रन्क्विषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, उपधायाः, ह्रस्वः, छादेः।

अन्वयः-छादेरङ्गस्य उपधाया इस्मन्त्रन्क्विषु च ह्रस्वः।

अर्थः-छकारादेरङ्गस्य उपधायाः स्थाने इस्मन्त्रन्क्विषु प्रत्ययेषु च परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(इस्)** छदिः। **(मन्)** छद्म। **(त्रन्)** छत्रम्। **(क्विप्)** धामच्छत्। उपच्छत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छादेः) छकार जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (इस्मन्त्रन्क्विषु) इस्, मन्, त्रन् और क्विप् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-(इस्) **छदिः**। गाड़ी की छत/घर की छत। (मन्) **छद्म**। कपटवेश। (त्रन्) **छत्रम्**। छाता। (क्विप्) **धामच्छत्**। घर को आच्छादित करनेवाला छप्पर आदि। **उपच्छत्**। ढक्कन/परदा।*

*सिद्धि-(१) **छदिः**। छादि+इसि। छादि+इस्। छाद्+इस्। छद्+इस्। छदिस्+सु। छदिस्+०। छदिः।*

*यहां 'छद **अपवारणे**' (चु०प०) इस णिजन्त धातु से '**अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्यः इसिः**' (उणा० २।१०९) से 'इसि' प्रत्यय है। '**णेरनिटि**' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। इस सूत्र से छकारादि अङ्ग (छाद्) की उपधा के स्थान में 'इस्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश (छद्) होता है।*

*(२) **छद्म**। छादि+मनिन्। छादि+मन्। छाद्+मन्। छद्+मन्। छद्मन्+सु। छद्मन्+०। छद्मन्। छद्म।*

*यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'छादि' धातु से '**सर्वधातुभ्यो मनिन्**' (उणा० ४।१४६) से 'मनिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छकारादि अङ्ग (छाद्) की उपधा को ह्रस्वादेश होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६८) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(३) **छत्रम्**। छादि+ष्ट्रन्। छादि+त्रन्। छाद्+त्र। छद्+त्र। छत्+त्र। छत्र+सु। छत्रम्।*

*यहां पूर्वोक्त णिजन्त 'छादि' धातु से '**सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्**' (उणा० ४।१६०) से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छकारादि अङ्ग (छाद्) की उपधा को ह्रस्वादेश होता है।*

*(४) **धामच्छत्**। धाम+छादि+क्विप्। धाम+छादि+ति। धाम+छादि+०। धाम+छाद्+०। धाम+छद्+०। धाम+तुक्+छद्+०। धाम+च्+छत्+०। धामच्छत्।*

यहां धाम-उपपद पूर्वोक्त छकारादि 'छादि' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (३।३।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छकारादि अङ्ग (छाद्) की उपधा को ह्रस्वादेश होता है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप है। 'छे च' (६।१।७२) से 'तुक्' आगम होता है। ऐसे ही उप-उपसर्ग पूर्वक से -उपच्छत्।

लोपादेशः–

(२३) गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि।६८।

प०वि०-गम-हन-जन-खन-घसाम् ६।३ लोपः १।१ क्ङिति ७।१ अनङि ७।१।

स०-गमश्च हनश्च जनश्च खनश्च घस् च ते गमहनजनखनघसः, तेषाम्-गमहनजनखनघसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कश्च ङश्च तौ क्ङौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (बहुव्रीहिः) न अङ् इति अनङ्, तस्मिन्-अनङि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमहनजनखनघसाम् अङ्गानाम् उपधाया अनङि अचि क्ङिति लोपः।

अर्थः-गमहनजनखनघसाम् अङ्गानाम् उपधाया अङ्वर्जितेऽजादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(**गमः**) तौ जग्मतुः। ते जग्मुः। (**हनः**) तौ जघ्नतुः। ते जघ्नुः। (**जनः**) स जज्ञे। तौ जज्ञाते। ते जज्ञिरे। (**खनः**) तौ चख्नतुः। ते चख्नुः। (**घस्**) तौ जक्षतुः। ते जक्षुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गमहनजनखनघसाम्) गम, हन, जन, खन, घस् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (अनङि) अङ्ग को छोड़कर (अचि) अजादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-(गम) **तौ जग्मतुः।** वे दोनों गये। **ते जग्मुः।** वे सब गये। (हन) **तौ जघ्नतुः।** उन दोनों ने हिंसा/गति की। **ते जघ्नुः।** उन सब ने हिंसा/गति की। (जन) **स जज्ञे।** वह उत्पन्न हुआ। **तौ जज्ञाते।** वे दोनों उत्पन्न हुये। **ते जज्ञिरे।** वे सब उत्पन्न हुये। (खन) **तौ चख्नतुः।** उन दोनों ने खोदा। **ते चख्नुः।** उन सब ने खोदा। (घस्) **तौ जक्षतुः।** उन दोनों ने खाया। **ते जक्षुः।** उन सब ने खाया।*

सिद्धि-(१) जग्मतुः । गम्+लिट् । गम्+ल् । गम्+तस् । गम्+अतुस् । ग्म्+अतुस् । गम्-ग्म्+अतुस् । ग-गम्+अतुस् । ज-ग्म्+अतुस् । जग्मतुः ।

*यहां **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'गम्' अङ्ग की उपधा (अ) का अजादि कित् 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। **'असंयोगाल्लिट् कित्'** (१।२।५) से 'अतुस्' प्रत्यय किद्वत् होता है। अङ्ग के उपधा लोप को **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवत् मानकर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'गम्' धातु को द्विर्वचन होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से 'अभ्यास' के गकार को चवर्ग 'जकार' आदेश है। ऐसे ही 'उस्' प्रत्यय करने पर-**जग्मुः ।***

*(२) **जघ्नतुः ।** यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'अतुस्' प्रत्यय है। **'अभ्यासाच्च'** (७।३।५५) से अभ्यास से उत्तर 'हन्' के हकार को कुत्व घकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**जघ्नुः ।***

*(३) **जज्ञे ।** जन्+लिट् । जन्+ल् । जन्+त । जन्+एश् । ज्न्+ए । जन्-ज्न्+ए । ज+ज्ञ्+ए । जज्ञे ।*

*यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्', इसके स्थान में 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से नकार को चवर्ग 'ञकार' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'आताम्' प्रत्यय परे होने पर-**जज्ञाते ।** 'झ' (इरेच्) प्रत्यय परे होने पर-**जज्ञिरे ।***

*(४) **चख्नतुः ।** **'खनु अवदारणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'उस्' प्रत्यय परे होने पर-**चख्नुः ।***

*(५) **जक्षतुः ।** अद्+लिट् । अद्+ल् । घस्+ल् । घस्+तस् । घ्स्+अतुस् । घस्-घ्स्+अतुस् । घ-घ्स्+अतुस् । ज+क्ष्+अतुस् । जक्षतुः ।*

*यहां **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्', इसके स्थान में 'त' आदेश और इसके स्थान में 'अतुस्' आदेश है। **'खरि च'** (८।४।५५) से घकार को चर् ककार और **'शासिवसिघसीनां च'** (८।३।६०) से षत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'उस्' प्रत्यय परे होने पर-**जक्षुः ।***

लोपादेशः-

(२४) तनिपत्योश्छन्दसि ।६६।

प०वि०-तनि-पत्योः ६।२ छन्दसि ७।१।

स०-तनिश्च पतिश्च तौ तनिपती, तयोः-तनिपत्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, उपधायाः, लोपः, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तनिपत्योरङ्गयोरुपधाया अचि क्ङिति लोपः।

अर्थः-छन्दसि विषये तनिपत्योरङ्गयोरुपधाया अजादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(**तनिः**) वितत्निरे कवयः (ऋ० १।१६४।५)। (**पतिः**) शकुना इव पप्तिम (ऋ० ९।१०७।२०)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तनिपत्योः) तनि और पति (अङ्गस्य) अंगों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (अचि) अजादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-(तनिः) **वितत्निरे कवयः** (ऋ० १।१६४।५)। (पतिः) **शकुना इव पप्तिम** (ऋ० ९।१०७।२०)।*

सिद्धि-(१) वितत्निरे। *वि+तन्+लिट्। वि+तन्+ल्। वि+तन्+झ। वि+तन्+इरेच्। वि+तन्+इरे। वि+तन्-तन्+इरे। वि+त-तन्+इरे। वितत्निरे।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'तनु विस्तारे'** (तना०उ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।४।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (६।१।८) से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश होता है। इस सूत्र से अजादि, कित् 'इरेच्' प्रत्यय परे होने पर 'तन्' अङ्ग की उपधा का लोप होता है। **'असंयोगाल्लिट् कित्'** (१।२।५) से 'इरेच्' प्रत्यय किद्वत् है। अङ्ग के उपधालोप को **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवत् मानकर **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'तन्' धातु को द्विर्वचन होता है।*

*(२) **पप्तिम।** यहां **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। **'परस्मैपदानां णल०'** (३।४।८२) से 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लोपादेशः--

(२५) घसिभसोर्हलि च।१००।

प०वि०-घसि-भसोः ६।२ हलि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-घसिश्च भस् च तौ घसिभसौ, तयोः-घसिभसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचि, उपधायाः, लोपः, क्ङिति, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि घसिभसोरङ्गयोरुपधाया हलि अचि च क्ङिति लोपः।

अर्थः-छन्दसि विषये घसिभसोरङ्गयोरुपधाया हलादावजादौ च किति ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(घसिः) सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे (यजु० १८।९)। बब्धां ते हरी धानाः (निरुक्तम्-५।१२)। अजादौ-बप्सति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (घसिभसोः) घसि और भस् (अङ्गस्य) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (हलि) हलादि (च) और (अचि) अजादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

उदा०-(घसि) ***सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे*** *(यजु० १८।९)। सग्धिः=समान भोजन।* ***(भस्) बब्धां ते हरी धानाः*** *(निरुक्तम्-५।१२)।* ***बब्धाम्।*** *वे दोनों भर्त्सन/दीप्त करें। अजादि-ते* ***बप्सति।*** *वे सब भर्त्सन/दीप्त करते हैं।*

सिद्धि-(१) सग्धिः। *अद्+क्तिन्। अद्+ति। घस्लृ+ति। घस्+ति। घ्स्+ति। घ्०+ति। ग्+धि। गृधि+सु। समाना ग्धिरिति-सग्धिः।*

यहां ***'अद भक्षणे'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'स्त्रियां क्तिन्'*** *(३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय और और* ***'बहुलं छन्दसि'*** *(२।४।३९) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश है। इस सूत्र से हलादि, कित् 'क्तिन्' प्रत्यय परे होने पर 'घस्' की उपधा (अ) का लोप होता है। तत्पश्चात् कर्मधारय समास में* ***'समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु'*** *(६।३।८४) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है।*

(२) बब्धाम्। *भस्+लोट्। भस्+ल्। भस्+तस्। भस्+ताम्। भस्+शप्+ताम्। भस्+०+ताम्। भस्-भस्-ताम्। भ-भ्स्+ताम्। भ-भ्स्+धाम्। भ-पस्-धाम्। भ-प्०+धाम्। भ-ब्+धाम्। ब-ब्+धाम्। बब्धाम्।*

यहां ***'भस भर्त्सनदीप्त्योः'*** *(जु०प०) धातु से* ***'लोट् च'*** *(३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है।* ***'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'*** *(३।४।१०१) से 'तस्' के स्थान में 'ताम्' आदेश है।* ***'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'*** *(२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश होता है।* ***'श्लौ'*** *(६।१।१०) से 'भस्' धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से हलादि, ङित् 'ताम्' प्रत्यय परे होने पर 'भस्' अङ्ग की उपधा (अ) का लोप होता है।* ***'झलो झलि'*** *(८।२।२६) से सकार का लोप,* ***'झषस्तथोर्धोऽधः'*** *(८।२।४०) से तकार को धकार,* ***'झलां जश् झशि'*** *(८।४।५३) से पकार को 'जश्' बकार होता है।* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५४) से अभ्यास के भकार को जश् बकार होता है।*

*(३) **बप्सति।** भस्+लट्। भस्+ल्। भस्+झि। भस्+शप्+झि। भस्+०+झि। भस्-भस्+अति। भ-भस्+अति। भ-भ्स्+अति। भ-प्स्+अति। बप्स्+अति। बप्सति।*

*यहां पूर्वोक्त 'भस्' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' को 'श्लु' और 'भस्' धातु को द्विर्वचन होता है। **'अदभ्यस्तात्'** (७।१।४) से 'झ्' के स्थान में 'अत्' आदेश है। इस सूत्र से अजादि, ङित् 'अति' प्रत्यय परे होने पर 'भस्' अङ्ग की उपधा (अ) का लोप होता है। **'खरि च'** (८।४।५५) से 'भ्' को चर् पकार होता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से भकार को 'जश्' बकार होता है।*

धि-आदेशः–

(२६) हुझल्भ्यो हेर्धिः।१०१।

प०वि०–हु-झल्भ्यः ५।३ हेः ६।१ धिः १।१।

स०–हुश्च झलश्च ते हुझलः, तेभ्यः–हुझल्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, हलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–हुझल्भ्योऽङ्गेभ्यो हलो हेर्धिः।

अर्थः–'हु' इत्यस्माद् झलन्तेभ्यश्च अङ्गेभ्यः परस्य हलादेर्हेः प्रत्ययस्य स्थाने धिरादेशो भवति।

उदा०–(हुः) त्वं जुहुधि। (झलन्तः) त्वं भिन्द्धि। त्वं छिन्द्धि।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(हुझल्भ्यो) 'हु' इससे और झलन्त (अङ्गात्) अङ्गों से परे (हलि) हलादि (हेः) हि-प्रत्यय के स्थान में (धिः) धि-आदेश होता है।*

*उदा०–(हु) **त्वं जुहुधि।** तू यज्ञ कर। (झलन्त) **त्वं भिन्द्धि।** तू भेदन कर। **त्वं छिन्द्धि।** तू छेदन कर।*

***सिद्धि**–(१) **जुहुधि।** हु+लोट्। हु+ल्। हु+सिप्। हु+शप्+सि। हु+०+सि। हु-हु+सि। हु-हु+हि। हु-हु+धि। झु-हु+धि। जु-हु+धि। जुहुधि।*

*यहां **'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके'** (जु०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।४।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है और वह 'अपित्' होता है। अपित् होने से **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से वह ङिद्वत् माना जाता है। इस सूत्र से हलादि, 'हि' प्रत्यय के स्थान में 'धि' आदेश होता है। इसके ङिद्वत् होने से **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८५) से अङ्ग (हु) को गुण नहीं होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और इसे **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से जश् जकार आदेश होता है।*

*(२) **भिन्धि।** भिद्+लोट्। भिद्+ल्। भिद्+सिप्। भि नम् द्+सि। भिनद्+हि। भिन्द्+धि। भिन्धि।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय और 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'श्नम्' के अकार का लोप होता है। इस सूत्र से झलन्त 'भिन्द्' अङ्ग से परे 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है। ऐसे ही **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०प०) धातु से-**छिन्धि।***

धि-आदेशः–

(२७) श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि।१०२।

प०वि०-श्रु-शृणु-पृ-कृ-वृभ्यः ५।३ छन्दसि ७।१।

स०-श्रुश्च शृणुश्च पृश्च कृश्च वृश्च ते श्रुशृणुपृकृवरः, तेभ्यः-श्रुशृणुपृकृवृभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, हेः, धिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि श्रुशृणुपृकृवृभ्योऽङ्गेभ्यो हेर्धिः।

अर्थः-छन्दसि विषये श्रुशृणुपृकृवृभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य हि-प्रत्ययस्य स्थाने धिरादेरादेशो भवति।

उदा०-(श्रुः) श्रुधी हवम् (ऋ० २।११।१) **(शृणुः)** गिरः शृणुधी (ऋ० ८।१३।७)। **(पृः)** पूर्धि (ऋ० ८।७८।१०)। **(कृः)** उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। **(वृः)** अपा वृधि (ऋ० १।७।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (श्रु०वृभ्यः) श्रु, शृणु, पृ, कृ और वृ (अङ्गस्य) अङ्गों से परे (हेः) हि-प्रत्यय के स्थान में (धि) धि-आदेश होता है।*

*उदा०-(श्रु) **श्रुधी हवम्** (ऋ० २।११।१)। श्रुधि=तू सुन। (शृणु) गिरः **शृणुधी** (ऋ० ८।१३।७)। शृणुधि=तू सुन। (पृ) **पूर्धि** (ऋ० ८।७८।१०)। पूर्धि=तू पालन/पूषण कर। (कृः) उरु **णस्कृधि** (ऋ० ८।७५।११)। कृधि=तू कर। (वृ) **अपा वृधि** (ऋ० १।७।६)। वृधि=तू आच्छादित कर।*

*सिद्धि-(१) **श्रुधि।** श्रु+लोट्। श्रु+ल्। श्रु+शप्+सिप्। श्रु+०+सि। श्रु+हि। श्रु+धि। श्रुधि।*

*यहां **'श्रु श्रवणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) से व्यत्यय से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७३) से इसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'श्रु' अङ्ग से परे 'हि' के स्थान में*

*'धि' आदेश होता है। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से छन्दविषय में दीर्घ होता है-**श्रुधी।***

*(२) **शृणुधि।** श्रु+लोट्। श्रु+ल्। श्रु+सिप्। श्रु+श्नु+सि। शृ+नु+हि। शृ+नु+धि। शृ+णु+धि। शृणुधि।*

*यहां पूर्वोक्त 'श्रु' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। **'श्रुवः शृ च'** (३।१।७४) से 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश और 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'शृणु' अङ्ग से परे 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है। धि-आदेश के विधान-सामर्थ्य से **'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्'** (६।४।१०६) से 'हि' का लुक् नहीं होता है। **'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३५) से छन्दविषय में दीर्घ है-**शृणुधी।***

*(३) **पूर्धि।** पॄ+लोट्। पॄ+ल्। पॄ+सिप्। पॄ+शप्+सि। पॄ+०+सि। पॄ+हि। पॄ+धि। पुर्+धि। पूर्+धि। पूर्धि।*

*यहां **'पॄ पालनपूरणयोः'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'पॄ' अङ्ग से परे 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश होता है। **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से 'पॄ' के ॠकार को उकार आदेश, इसे **'उरण्रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ (पूर्) होता है।*

*(४) **कृधि।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **वृधि।** **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

धि-आदेशः-

(२८) अङितश्च।१०३।

प०वि०-अङितः ६।१। च अव्ययपदम्।

स०-ङ इद् यस्य स ङित्, न ङिद् इति अङित्, तस्य-अङितः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, हेः, धिः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् अङितो हेश्च धिः।

अर्थः-छन्दसि विषये अङ्गात् परस्य अङितो हि-प्रत्ययस्य स्थाने च धिरादेशो भवति।

उदा०-सोम रारन्धि (ऋ० १।९१।१३)। अस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्रयन्धि (ऋ० ३।३६।९)। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः (ऋ० १।१८९।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अङितः) ङित् से भिन्न (हिः) हि-प्रत्यय के स्थान में (च) भी (धिः) धि-आदेश होता है।*

*उदा०-**सोम रारन्धि** (ऋ० १।९१।१३)। रारन्धि=तू रमण कर। **अस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्रयन्धि** (ऋ० ३।३६।९)। प्रयन्धि=तू प्रकर्षतः उपरमण कर। **युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः** (ऋ० १।१८९।१)। युयोधि=तू दूर कर।*

***सिद्धि-(१) रारन्धि।** रम्+लोट्। रम्+ल्। रम्+सिप्। रम्+शप्+सि। रम्+०+सि। रम्-रम्+सि। र-रम्+धि। रा-रम्+धि। रारन्धि।*

*यहां **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) से व्यत्यय से छन्द में परस्मैपद, 'शप्' को 'श्लु' और अभ्यास को दीर्घ होता है। 'वा छन्दसि' (३।४।८८) से 'हि' आदेश 'पित्' है अतः यह **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से ङिद्वत् नहीं होता है और इसके अङित् होने से **'अनुदात्तोपदेशवनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति'** (६।४।३७) से अनुनासिक मकार का लोप नहीं होता है।*

*(२) **प्रयन्धि।** प्र+यम्+लोट्। प्र+यम्+ल्। प्र+यम्+सिप्। प्र+यम्+शप्+सि। प्र+यम्+०+सि। प्र+यम्+धि। प्रयन्धि।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से 'शप्' का लुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **युयोधि।** यु+लोट्। यु+ल्। यु+सिप्। यु+शप्+सि। यु+०+सि। यु-यु+०+धि। यु-यु+धि। यु-यो+धि। युयोधि।*

*यहां **'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७६) से 'शप्' को 'श्लु' और **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'यु' धातु को द्विर्वचन होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लुक्-आदेशः–

(२६) चिणो लुक्।१०४।

प०वि०-चिणः ५।१ लुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गात् चिणो लुक्।

अर्थः-अङ्गात् परस्य चिण उत्तरस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-तेन अकारि। तेन अहारि। तेन अलावि। तेन अपाचि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (चिण्) चिण् से उत्तरवर्ती प्रत्यय को (लुक्) लुक् आदेश होता है।*

*उदा०-**तेन अकारि**। उसने किया। **तेन अहारि**। उसने हरण किया। **तेन अलावि**। उसने छेदन किया। **तेन अपाचि**। उसने पकाया।*

*सिद्धि-(१) **अकारि**। कृ+लुङ्। अट्+कृ+ल्। अ+कृ+च्लि+ल्। अ+कृ+चिण्+त। अ+कृ+इ+०। अ+कार्+इ। अकारि।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।३।११०) से कर्मवाच्य अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। '**चिण् भावकर्मणोः**' (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'चिण्' से उत्तरवर्ती 'त' प्रत्यय का लुक् (लोप) होता है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से अङ्ग (कृ) को वृद्धि होती है।*

*(२) **अहारि**। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **अलावि**। 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **अपाचि**। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।*

लुक्-आदेशः-

(३०) अतो हेः।१०५।

प०वि०-अतः ५।१ हेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गाद् हेर्लुक्।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य हि-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०-त्वं पच। त्वं पठ। त्वं गच्छ। त्वं धाव।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (हेः) हि-प्रत्यय को (लुक्) लुक् आदेश होता है।*

*उदा०-**त्वं पच**। तू पका। **त्वं पठ**। तू पढ़। **त्वं गच्छ**। तू जा। **त्वं धाव**। तू दौड़/शुद्ध कर।*

*सिद्धि-(१) **पच**। पच्+लोट्। पच्+ल्। पच्+सिप्। पच्+शप्+सि। पच्+अ+हि। पच्+अ+०। पच्+अ। पच।*

*यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से अकारान्त अङ्ग (पच) से परे 'हि' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(२) **पठ**। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) गच्छ। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। **'इषुगमियमां छः'** (७।३।७५) से मकार को छकार आदेश होता है।*

(४) धाव। 'धावु गतिशुद्ध्योः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

लुक्-आदेशः–

(३१) उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्।१०६।

प०वि०–उतः ५।१ च अव्ययपदम्, प्रत्ययात् ५।१ असंयोग-पूर्वात् ५।१।

स०–अविद्यमानः संयोगः पूर्वो यस्य सः–असंयोगपूर्वः, तस्मात्–असंयोगपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, हेः, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्य असंयोगपूर्वाद् उतः प्रत्ययाच्च हेर्लुक्।

अर्थः–अङ्गस्यासंयोगपूर्वो य उकारस्तदन्ताद् प्रत्ययात् परस्य च हि-प्रत्ययस्य लुग् भवति।

उदा०–त्वं चिनु। त्वं सुनु। त्वं कुरु।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(अङ्गस्य) अङ्ग का (असंयोगपूर्वात्) असंयोगपूर्वक जो (उतः) उकार है तदन्त (प्रत्ययात्) उकार-प्रत्यय से परे (च) भी (हेः) हि-प्रत्यय को (लुक्) लुक्-आदेश होता है।*

*उदा०–त्वं **चिनु**। तू चयन कर। त्वं **सुनु**। तू अभिषवण कर, निचोड़। त्वं **कुरु**। तू कर।*

*सिद्धि-(१) **चिनु**। चि+लोट्। चि+ल्। चि+सिप्। चि+श्नु+सि। चि+नु+हि। चि+नु+०। चि+नु। चिनु।*

*यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लोट्' प्रत्यय है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से असंयोगपूर्वी उकारान्त 'श्नु' प्रत्यय से उत्तरवर्ती 'हि' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(२) **सुनु**। 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **कुरु**। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण, **'उरण्रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से उकारादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

लोपादेश-विकल्पः—

(३२) लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः।१०७।

प०वि०-लोपः १।१ च अव्ययपदम्, अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, म्वोः ७।२।

स०-मश्च वश्च तौ म्वौ, तयोः-म्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, उतः, प्रत्ययात्, असंयोगपूर्वस्य, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य असंयोगपूर्वस्य उतः प्रत्ययस्य म्वोरन्यतरस्यां लोपश्च।

अर्थः-अङ्गस्य योऽसंयोगपूर्व उकारस्तदन्तस्य प्रत्ययस्य मकार-वकारादौ प्रत्यये परतो विकल्पेन लोपश्च भवति।

उदा०-आवां सुन्वः, सुनुवः। वयं सुन्वः, सुनुमः। आवां तन्वः, तनुवः। वयं तन्मः, तनुमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग का जो (असंयोगपूर्वस्य) असंयोगपूर्व (उतः) उकार है तदन्त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के उकार को (म्वोः) मकारादि और वकारादि प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोपादेश (च) भी होता है।*

*उदा०-**आवां सुन्वः, सुनुवः।** हम दोनों अभिषवण करते हैं, निचोड़ते हैं। **वयं सुन्वः, सुनुमः।** हम सब अभिषवण करते हैं। **आवां तन्वः, तनुवः।** हम दोनों विस्तार करते हैं। **वयं तन्मः, तनुमः।** हम सब विस्तार करते हैं।*

*सिद्धि-(१) **सुन्वः।** सु+लट्। सु+ल्। सु+वस्। सु+श्नु+वस्। सु+नु+वस्। सु+न्+वस्। सुन्वस्। सुन्वः।*

*यहां **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से असंयोगपूर्वी 'श्नु' प्रत्यय के उकार का वकारादि 'वस्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। विकल्प-पक्ष में उकार का लोप नहीं है-**सुनुवः।** ऐसे ही मकारादि 'मस्' प्रत्यय परे होने पर-**सुन्मः, सुनुमः।***

*(२) **तन्वः।** 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में उकार का लोप नहीं है-**तनुवः।** ऐसे ही मकारादि 'मस्' प्रत्यय परे होने पर-**तन्मः, तनुमः।***

नित्यं लोपादेशः–

(३३) नित्यं करोतेः।१०८।

प०वि०–नित्यम् १।१ करोतेः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, उतः, प्रत्ययात्, लोपः, म्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–करोतेरङ्गाद् उतः प्रत्ययस्य म्वोर्नित्यं लोपः।

अर्थः–करोतेरङ्गात् परस्य उकार-प्रत्ययस्य मकारवकारादौ **प्रत्यये** परतो नित्यं लोपो भवति।

उदा०–आवां कुर्वः। वयं कुर्मः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(करोतेः) करोति=कृ (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर **(उतः)** उकार (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (म्वोः) मकारादि और वकारादि प्रत्यय परे **होने** पर (नित्यम्) सदा (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-**आवां कुर्वः।** हम दोनों करते हैं। **वयं कुर्मः।** हम सब करते हैं।*

*सिद्धि-**कुर्वः।** कृ+लट्। कृ+ल्। कृ+वस्। कृ+उ+वस्। कर्**+उ+वस्**। कर्+०+वस्। कुर्+वस्। कुर्वस्। कुर्वः।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) **से 'लट्'** प्रत्यय है। इस सूत्र से 'कृ' अंग से उत्तर वकारादि 'वस्' प्रत्यय परे होने पर **'उ' प्रत्यय** का नित्य लोप होता है। ऐसे ही मकारादि 'मस्' प्रत्यय परे होने पर-**कुर्मः।***

नित्यं लोपादेशः–

(३४) ये च।१०६।

प०वि०–ये ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, उतः, प्रत्ययात्, लोपः, नित्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–करोतेरङ्गात् उतः प्रत्ययस्य ये च नित्यं लोपः।

अर्थः–करोतेरङ्गात् परस्य उकार-प्रत्ययस्य यकारादौ च **प्रत्यये** परतो नित्यं लोपो भवति।

उदा०–स कुर्यात्। तौ कुर्याताम्। ते कुर्युः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(करोतेः) करोति=कृ (अङ्गात्) अङ्ग से **परे (उतः)** उकार **(प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (ये) यकारादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (नित्यम्) सदा** (लोपः) लोपादेश **होता है।***

*उदा०-स **कुर्यात्**। वह करे। **तौ कुर्याताम्**। वे दोनों करें। **ते कुर्युः**। वे सब करें।*

***सिद्धि-कुर्यात्**। कृ+लिङ्। कृ+ल्। कृ+यासुट्+ल्। कृ+उ+यास्+तिप्। कृ+उ+यास्+त्। कर्+उ+या०+त्। कुर्+उ+या+त्। कुर्+०+या+त्। कुर्यात्।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु**' (३।३।१६१) से लिङ्' प्रत्यय है। '**यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च**' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम और '**तनादिकृञ्भ्य उः**' (३।१।१७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से करोति (कृ) अङ्ग से उत्तरवर्ती 'उ' प्रत्यय का यकारादि 'यासुट्' प्रत्यय परे होने पर नित्य लोप होता है। ऐसे ही-**कुर्याताम्, कुर्युः**।*

उकार-आदेशः-

(३५) अत उत् सार्वधातुके।११०।

प०वि०-अतः ६।१ उत् १।१ सार्वधातुके ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, उतः, प्रत्ययात्, करोतेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उतः प्रत्ययस्य करोतेरङ्गस्य सार्वधातुके क्ङिति उत्।

अर्थः-उकार-प्रत्ययान्तस्य करोतेरङ्गस्य अकारस्य स्थाने सार्वधातुके क्ङिति प्रत्यये परत उकारादेशो भवति।

उदा०-तौ कुरुतः। ते कुर्वन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उतः, प्रत्ययस्य) उकार-प्रत्ययान्त (करोतेः) करोति=कृ (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकार के स्थान में (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (उत्) उकारादेश होता है।*

*उदा०-**तौ कुरुतः**। वे दोनों करते हैं। **ते कुर्वन्ति**। वे सब करते हैं।*

***सिद्धि-कुरुतः**। कृ+लट्। कृ+ल्। कृ+तस्। कृ+उ+तस्। कर्+उ+तस्। कुर्+उ+तस्। कुरुतस्। कुरुतः।*

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**तनादिकृञ्भ्यः उः**' (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय होता है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से अङ्ग (कृ) को गुण होता है। इस सूत्र से उकार-प्रत्ययान्त 'कृ' अंग के 'अकार' के स्थान में सार्वधातुक ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर उकारादेश होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'तस्' प्रत्यय ङिद्वत् होता है। ऐसे ही 'झि' (अन्ति) प्रत्यय परे होने पर-**कुर्वन्ति**।*

लोपादेशः–

(३६) श्नसोरल्लोपः।१११।

प०वि०–श्न–असोः ६।२ अल्लोपः १।१।

स०–श्नश्च अस् च तौ श्नसौ, तयोः–श्नसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) अत्र **वा०**–**'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्'** (६।१।९४) इत्यनेन पररूपं वेदितव्यम्। अतो लोप इति अल्लोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः–श्नसोरङ्गयोरल्लोपः, सार्वधातुके क्ङिति।

अर्थः–श्नस्य अस्तेश्चाङ्गस्य अकारस्य लोपो भवति सार्वधातुके क्ङिति प्रत्यये परतः।

उदा०–**(श्नम्)** तौ रुन्धः, ते रुन्धन्ति। तौ भिन्तः, ते भिन्दन्ति। **(अस्)** तौ स्तः, ते सन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्नसोः) श्नम् और अस्ति=अस् (अङ्गस्य) अङ्ग के (अल्लोपः) अकार को लोपादेश होता है (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०–(श्नम्) **तौ रुन्धः।** वे दोनों रोकते हैं। **ते रुन्धन्ति।** वे सब रोकते हैं। **तौ भिन्तः।** वे दोनों विदारण करते हैं। **ते भिन्दन्ति।** वे सब विदारण करते हैं। विदारण=फाड़ना। **(अस्) तौ स्तः।** वे दोनों हैं। **ते सन्ति।** वे सब हैं।*

*सिद्धि–**(१) रुन्धः।** रुध्+लट्। रुध्+ल्। रुध+तस्। रु श्नम् ध्+तस्। रुनध्+तस्। रुन्ध्+तस्। रुन्ध्+धस्। रुनद्+धस्। रुन्०+धस्। रुन्धस्। रुन्धः।*

*यहां **'रुधिर् आवरणे'** (रुधा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'श्नम्' के अकार का सार्वधातुक, ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से 'रुध्' के धकार को जश् दकार और **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६५) से दकार का लोप होता है। ऐसे ही 'झि' (अन्ति) प्रत्यय करने पर–**रुन्धन्ति। 'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से–**भिन्तः, भिन्दन्ति।***

*(२) **स्तः।** अस्+लट्। अस्+ल्। अस्+तस्। अस्+शप्+तस्। अस्+०+तस्। अस्+तस्। ०स्+तस्। स्तस्। स्तः।*

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' प्रत्यय का लुक् होता है। इस*

सूत्र से 'अस्' अङ्ग के अकार का सार्वधातुक, ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही 'झि' प्रत्यय करने पर-सन्ति।

लोपादेशः-

(३७) श्नाभ्यस्तयोरातः।११२।

प०वि०-श्ना-अभ्यस्तयोः ६।२ आतः ६।१।

स०-श्नाश्च अभ्यस्तं च ते श्नाभ्यस्ते, तयोः-श्नाभ्यस्तयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्नाभ्यस्तयोरङ्गयोरातः सार्वधातुके क्ङिति लोपः।

अर्थः-श्ना-इत्येतस्य, अभ्यस्तानां चाङ्गानाम् आकारस्य सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(श्नाः) ते लुनते। ते लुनताम्। तेऽलुनत। **(अभ्यस्तम्)** ते मिमते। ते मिमताम्। तेऽमिमत्। ते सञ्जिहते। ते सञ्जिहताम। ते समजिहत।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्नाभ्यस्तयोः) 'श्ना' इसके और अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गानाम्) अङ्गों के (आतः) आकार को (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित और ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-(श्ना) ते **लुनते।** वे सब काटते हैं। ते **लुनताम्।** वे सब काटें। **तेऽलुनत।** उन सब ने काटा। **(अभ्यस्त) ते मिमते।** वे सब नापते हैं। ते **मिमताम्।** **वे सब** नापें। **तेऽमिमत्।** उन सब ने नापा। ते **सञ्जिहते।** वे सब संगति करते हैं। ते **सञ्जिहताम्।** वह संगति करें। **ते समजिहत।** उसने संगति की।*

***सिद्धि-(१) लुनते।** लू+लट्। लू+ल्। लू+झ। लू+श्ना+झ। लू+ना+अत। लु+न्०+अते। लुनते।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' **प्रत्यय** है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'श्ना' प्रत्यय के आकार **का** सार्वधातुक, ङित् 'झ' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'झ' प्रत्यय ङिद्वत् होता है।*

***(२) लुनताम्।** लू+लोट्। लू+ल्। लू+झ। लू+श्ना+झ। लू+ना+अत। लू+न्+अते। **लू+न्+अत्** आम्। लुनताम्।*

*यहां पूर्वोक्त 'लूञ्' धातु से '**लोट् च**' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। '**टित आत्मनेपदानां टेरे**' (३।४।७९) से 'अत' के टि-भाग (अ) को एकार आदेश और इसे '**आमेतः**' (३।४।९०) से 'आम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अलुनत।** यहां पूर्वोक्त 'लूञ्' धातु से '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से भूतकाल में 'लङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **मिमते।** मा+लट्। मा+ल्। मा+झ। मा+शप+झ। मा+०+झ। मा-मा+०+अत। मा+म्०+अते। मि+म्+अते। मिमते।*

*यहां '**माङ् माने शब्दे च**' (जु०आ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को -आदेश और '**श्लौ**' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। '**अदभ्यस्तात्**' (७।१।४ से 'झ' के स्थान में 'अत' आदेश होता है। इस सूत्र से सार्वधातुक ङित् 'अत' प्रत्यय परे होने पर अभ्यस्त अङ्ग (मा) के आकार का लोप होता है। '**भृञामित्**' (७।४।७६) से अभ्यास को इकार आदेश होता है।*

*(५) **मिमताम्।** पूर्वोक्त 'माङ्' धातु से '**लोट् च**' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है।*

*(६) **अमिमत।** पूर्वोक्त 'माङ्' धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है।*

*(७) **सञ्जिहते, सञ्जिहताम्, समजिहत।** सम्-उपसर्गपूर्वक '**ओहाङ् गतौ**' (जु०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

ईकारादेशः–

(३८) ई हल्यघोः।११३।

प०वि०–ई १।१ (सु-लुक्) हलि ७।१ अघोः ६।१।

स०–न घुरिति अघुः, तस्य-अघोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके, लोपः, श्नाभ्यस्तयोः, आत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अघोः श्नाभ्यस्तयोरातो हलि क्ङिति ईः।

अर्थः–श्ना-प्रत्ययन्तानां घुवर्जितानाम् अभ्यस्तानां चाङ्गानाम् आकारस्य स्थाने हलादौ सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-(श्ना:) स लुनीते। तौ लुनीतः। युवां लुनीथः। स पुनीते। तौ पुनीतः। युवां पुनीथः। **(अभ्यस्तम्)** स मिमीते। त्वं मिमीषे। यूयं मिमीध्वे। स सञ्जीहीते। त्वं सञ्जिहीषे। यूयं सञ्जिहीध्वे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अघोः) घु-संज्ञक से भिन्न (श्नाभ्यस्तयोः) श्ना-प्रत्ययान्त और अभ्यस्तसंज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों के (आतः) आकार के स्थान में (हलि) हलादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-(श्ना) **स लुनीते।** वह काटता है। **तौ लुनीतः।** वे दोनों काटते हैं। **युवां लुनीथः।** तुम दोनों काटते हो। **स पुनीते।** वह पवित्र करता है। **तौ पुनीतः।** वे दोनों पवित्र करते हैं। **युवां पुनीथः।** तुम दोनों पवित्र करते हो। **(अभ्यस्त) स मिमीते।** वह नापता है। त्वं **मिमीषे।** तू नापता है। **यूयं मिमीध्वे।** तुम सब नापते हो। **स सञ्जीहीते।** वह संगति करता है। त्वं **सञ्जिहीषे।** तू संगति करता है। **यूयं सञ्जिहीध्वे।** तुम सब संगति करते हो।*

*सिद्धि-(१) **लुनीते।** लू+लट्। लू+ल्। लू+त। लू+श्ना+त। लू+ना+त। लू+न् ई+ते। लुनीते।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**क्र्यादिभ्यः श्ना**' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से श्ना-प्रत्ययान्त (लू+ना) अङ्ग के आकार के स्थान में हलादि, सार्वधातुक, ङित् 'त' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'त' प्रत्यय ङिद्वत् होता है। ऐसे ही 'तस्' और 'थस्' प्रत्यय करने पर-**लुनीतः, लुनीथः।***

*(२) **पुनीते।** 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **मिमीते।** मा+लट्। मा+ल्। मा+त। मा+शप्+त। मा+०+त। मा-मा+त। मा-मई+त। मि-मी+ते। मिमीते।*

*यहां 'माङ् माने शब्दे च' (जु०आ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और '**श्लौ**' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यस्त-संज्ञक 'मा' धातु के आकार को हलादि, सार्वधातुक ङित् 'त' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। '**भृञामित्**' (७।४।७६) से अभ्यास को इकारादेश होता है। ऐसे ही 'थास्' और 'ध्वम्' प्रत्यय करने पर-**मिमीषे, मिमीध्वे।***

*(४) **संजिहीते।** सम्-उपसर्गपूर्वक '**ओहाङ् गतौ**' (जु०आ०) धातु से पूर्ववत्। ऐसे ही थास् (से) और 'ध्वम्' प्रत्यय करने पर-**सञ्जिहीषे, सञ्जिहीध्वे।***

इकारादेशः–

(३६) इद् दरिद्रस्य।११४।

प०वि०–इद् १।१ दरिद्रस्य ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके, आतः, हलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दरिद्रस्य अङ्गस्यातो सार्वधातुके क्ङिति इत्।

अर्थः–दरिद्रातेरङ्गस्य आकारस्य स्थाने हलादौ सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०–तौ दरिद्रितः। युवां दरिद्रिथः। आवां दरिद्रिवः। वयं दरिद्रिमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दरिद्रस्य) दरिद्रा (अङ्गस्य) अङ्ग के (आतः) आकार के स्थान में (हलि) हलादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०–**तौ दरिद्रितः।** वे दोनों दरिद्र होते हैं। **युवां दरिद्रिथः।** तुम दोनों दरिद्र होते हो। **आवां दरिद्रिवः।** हम दोनों दरिद्र होते हैं। **वयं दरिद्रिमः।** हम सब दरिद्र होते हैं।*

*सिद्धि-**दरिद्रितः।** दरिद्रा+लट्। दरिद्रा+ल्। दरिद्रा+तस्। दरिद्रा+शप्+तस्। दरिद्रा+०+तस्। दरिद्रइ+तस्। दरिद्रितस्। दरिद्रितः।*

*यहां **'दरिद्रा दुर्गतौ'** (अदा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। इस सूत्र से 'दरिद्रा' अङ्ग के आकार को हलादि, सार्वधातुक, ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर इकार आदेश होता है। 'तस्' प्रत्यय **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से ङिद्वत् होता है। ऐसे ही **'दरिद्रिथः'** आदि।*

विशेषः *सूत्रपाठ में **'दरिद्रस्य'** पद में **'दरिद्रा'** धातु का ह्रस्वपाठ छान्दस है **"छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति"** (महाभाष्यम्)।*

इकारादेश-विकल्पः–

(४०) भियोऽन्यतरस्याम्।११५।

प०वि०–भियः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके, हलि, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भियोऽङ्गस्य हलि सार्वधातुके क्ङिति अन्यतरस्याम् इत्।

अर्थः-भी-इत्येतस्याङ्गस्य हलादौ सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०-तौ बिभितः, बिभीतः। युवां बिभिथः, बिभीथः। आवां बिभिवः, बिभीवः। वयं बिभिमः, बिभीमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भियः) 'भी' इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-तौ **बिभितः, बिभीतः।** वे दोनों डरते हैं। **युवां बिभिथः, बिभीथः।** तुम दोनों डरते हो। **आवां बिभिवः, बिभीवः।** हम दोनों डरते हैं। **वयं बिभिमः, बिभीमः।** हम सब डरते हैं।*

सिद्धि-बिभितः। *भी+लट्। भी+ल्। भी+तस्। भी+शप्+तस्। भी+०+तस्। **भी-भी**+तस्। भी-भ् इ+तस्। बि-भि+तस्। बिभितस्। बिभितः।*

*यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'भी' अङ्ग को हलादि, सार्वधातुक, ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। 'तस्' प्रत्यय पूर्ववत् ङित् है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**बिभीतः।** ऐसे ही-**बिभिथः'** आदि।*

इकारादेश-विकल्पः–

(४१) जहातेश्च।११६।

प०वि०-जहातेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके, हलि, इद्, अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अन्वयः-जहातेरङ्गस्य च हलि सार्वधातुके क्ङिति अन्यतरस्याम् इत्।

अर्थः-जहातेरङ्गस्य च हलादौ सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०-तौ जिहितः, जिहीतः। युवां जिहिथः, जिहीथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जहातेः) जहाति=हा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (हलि) हलादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-तौ **जिहितः, जिहीतः।** वे दोनों त्याग करते हैं। युवां **जिहिथः, जिहीथः।** तुम दोनों त्याग करते हो।*

सिद्धि-जिहितः। *हा+लट्। हा+ल्। हा+तस्। हा+शप्+तस्। हा+०+तस्। हा-हा+०+तस्। हा-ह् इ+तस्। झि-हि+तस्। जि-हि+तस्। जिहितस्। जिहितः।*

*यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से जहाति (हा) अङ्ग को हलादि, सार्वधातुक, ङित् 'तस्' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। 'तस्' प्रत्यय पूर्ववत् ङिद्वत् है। **'भृञामित्'** (७।४।७६) से अभ्यास को इकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में इकारादेश नहीं है-**जिहीतः।** ऐसे ही-**जिहिथः, जिहीथः।***

इकाराकारादेश-विकल्पः-

(४२) आ च हौ।११७।

प०वि०-आ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, हौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, इत्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जहातेरङ्गस्य हावन्यतरस्याम् इद् आ च।

अर्थः-जहातेरङ्गस्य हौ प्रत्यये परतो विकल्पेन इकार-आकारावादेशौ भवतः।

उदा०-त्वं जहिहि, जहाहि, जहीहि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जहातेः) जहाति=हा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हौ) हि-प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इद् आ च) इकार और आकार आदेश होते हैं।*

*उदा०-त्वं **जहिहि, जहाहि, जहीहि।** तू त्याग कर।*

सिद्धि-जहिहि। *हा+लोट्। हा+ल्। हा+सिप्। हा+शप्+सि। हा+०+हि। हा-हा+०+हि। हा-ह् इ+हि। झ-हि+हि। ज-हि+हि। जहिहि।*

*यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'हि' प्रत्यय परे होने पर 'हा' अङ्ग को इकारादेश*

*होता है और आकारादेश भी होता है-**जहाहि**। विकल्प-पक्ष में 'ईं हल्यघोः' (६।४।११३) से ईकारादेश होता है-जहीहि।*

लोपादेशः-

(४३) लोपो यि।११८।

प०वि०-लोपः १।१ यि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, सार्वधातुके, जहातेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जहातेरङ्गस्य यि सार्वधातुके क्ङिति लोपः।

अर्थः-जहातेरङ्गस्य यकारादौ सार्वधातुके किति ङिति च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-स जह्यात्। तौ जह्याताम्। ते जह्युः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जहातेः) जहाति=हा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोपादेश होता है।*

*उदा०-**स जह्यात्।** वह त्याग करे। **तौ जह्याताम्।** वे दोनों त्याग करें। **ते जह्युः।** वे सब त्याग करें।*

*सिद्धि-(१) **जह्यात्।** हा+लिङ्। हा+यासुट्+ल्। हा+यास्+तिप्। हा+शप्+यास्+ति। हा+०+यास्+त्। हा-हा+०+यास्+त्। झ-ह्+या०+त्। ज-ह्+या+त्। जह्यात्।*

*यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से 'लिङ्' को उदात्त और ङित् 'यासुट्' आगम होता है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'हा' अङ्ग को यकारादि, सार्वधातुक, ङित् 'यासुट्' प्रत्यय परे होने पर लोपादेश होता है अर्थात् **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५१) के नियम से इसके अन्त्य आकार का लोप होता है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'यासुट्' के सकार का लोप होता है। ऐसे ही-जह्याताम्, जह्युः।*

एकारादेशः-

(४४) घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च।११९।

प०वि०-घु-असोः ६।२ एत् १।१ हौ ७।१ अभ्यासलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-घुश्च अस् च तौ घ्वसौ, तयोः-घ्वसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अभ्यासस्य लोप इति अभ्यासलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः-घ्वसोरङ्गयोर्हौ एद् अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-घु-संज्ञकानामङ्गानाम् अस्तेश्चाङ्गस्य हौ प्रत्यये परत एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०-(घुः) त्वं देहि। त्वं धेहि। **(अस्)** त्वम् एधि।

शिदयमभ्यासलोपः, तेन सर्वस्याभ्यासस्य लोपो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घ्वसोः) घु-संज्ञक और अस् (अङ्गस्य) अङ्ग को (हौ) हि-प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) सर्व-अभ्यास का लोप होता है।*

*उदा०-**(घु) त्वं देहि।** तू दान कर। **त्वं धेहि।** तू धारण-पोषण कर। **(अस्) त्वम् एधि।** तू हो।*

*यह लोपादेश 'शित्' है अतः **'अनेकाल्शित्सर्वस्य'** (१।१।५५) से सर्व-अभ्यास को लोपादेश होता है।*

सिद्धि-(१) देहि। *दा+लोट्। दा+ल्। दा+सिप्। दा+शप्+सि। दा+०+सि। दा-दा+सि। ०-द् ए+हि। दे+हि। देहि।*

*यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से घु-संज्ञक 'दा' अंग को 'हि' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश और सर्व-अभ्यास का लोप होता है। **'दाधा घ्वदाप्'** (१।१।२०) से 'दा' धातु की 'घु' संज्ञा है।*

*(२) धेहि। **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **एधि।** अस्+लोट्। अस्+ल्। अस्+सिप्। अस्+शप्+सि। अस्+०सि। अस्+हि। ०स्+धि। ए+धि। एधि।*

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। इस सूत्र से 'अस्' अंङ्ग को 'हि' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का लोप और **'हुझल्भ्यो हेर्धिः'** (६।४।८७) से 'हि' को 'धि' आदेश होता है। सूत्रपाठ में 'अभ्यासलोप' अन्वाचयशिष्ट है अर्थात् यदि अभ्यास हो तो लोप हो जाता है। यहां अभ्यास नहीं है अतः इस लोपादेश की प्रवृत्ति नहीं होती है।*

एकारादेशः-

(४५) अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि।१२०।

प०वि०-अतः ६।१ एकहल्मध्ये ७।१ अनादेशादेः ६।१ लिटि ७।१।

स०-एकश्च एकश्च तौ एकौ, एकौ च तौ हलाविति एकहलौ, तयोः-एकहलोः, एकहलोर्मध्य इति एकहलमध्यः, तस्मिन्-एकहल्ध्ये (एकशेषकर्मधारयगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। अविद्यमान आदेश आदिर्यस्य सः-अनादेशादिः, तस्य-अनादेशादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनादेशादेरङ्गस्य एकहल्मध्येऽतः क्ङिति लिटि एद् अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-अनादेशादेः=आदेश आदिर्यस्य नास्ति तस्याङ्गस्य एकहल्मध्ये= असहाययोर्हलोर्मध्ये वर्तमानस्याकारस्य किति ङिति च लिटि प्रत्यये परत एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०-तौ रेणतुः, ते रेणुः। तौ येमतुः, ते येमुः। तौ पेचतुः, ते पेचुः। तौ देमतुः, ते देमुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनादेशादेः) जिसके आदि में कोई आदेश नहीं है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (एकहल्मध्ये) एक=असहाय (असंयुक्त) दो हलों के मध्य में विद्यमान (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप होता है।*

*उदा०-**तौ रेणतुः।** उन दोनों ने शब्द किया। **ते रेणुः।** उन सब ने शब्द किया। **तौ येमतुः।** उन दोनों ने रोका। **ते येमुः।** उन सब ने रोका। **तौ पेचतुः।** उन दोनों ने पकाया। **ते पेचुः।** उन सब ने पकाया। **तौ देमतुः।** उन दोनों ने उपशान्त किया। **ते देमुः।** उन सब ने उपशान्त किया।*

सिद्धि-(१) रेणतुः। रण्+लिट्। रण्+ल्। रण्+तस्। रण्+अतुस्। रण्-रण्+अतुस्। ०+रण्+अतुस्। रेण्+अतुस्। रेणतुस्। रेणतुः।

*यहां **'रण शब्दार्थः'** (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अनादेशादि 'रण्' धातु के दो हलों के मध्य में विद्यमान अकार को कित् 'लिट्' प्रत्यय परे*

होने पर एकारादेश होता है और अभ्यास का लोप होता है। ऐसे ही झि (उस्) प्रत्यय परे होने पर-रेणतुः। 'असंयोगाल्लिट् कित्' (१।२।५) से 'तस्' प्रत्यय किद्वत् होता है।

(२) येमतुः। 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) पेचतुः। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(४) देमतुः। 'दमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

एकारादेशः--

(४६) थलि च सेटि।१२१।

प०वि०-थलि ७।१ च अव्ययपदम्, सेटि ७।१।

स०-इटा सह वर्तते इति सेट्, तस्मिन्-सेटि (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, एत्, अभ्यासलोपः, च, अतः, एकहल्मध्ये, अनादेशादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनादेशादेरङ्गस्य एकहल्मध्येऽतः सेटि थलि च एत्, अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-अनादेशादेः=आदेश आदिर्यस्य नास्ति तस्याङ्गस्य एकहल्मध्ये=असहाययोर्हलोर्मध्ये वर्तमानस्याकारस्य सेटि थलि च प्रत्यये परत एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०-त्वं पेचिथ। त्वं शेकिथ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(अनादेशादेः) जिसके आदि में कोई आदेश नहीं है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (एकहल्मध्ये) एक=असहाय (असंयुक्त) दो हलों के मध्य में विद्यमान (अतः) अकार को (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकादेश होता है।*

*उदा०-**त्वं पेचिथ**। तूने पकाया। **त्वं शेकिथ**। तू शक्त=समर्थ हुआ (कर सका)।*

***सिद्धि-(१) पेचिथ**। पच्+लिट्। पच्+ल्। पच्+सिप्। पच्+थल्। पच्+इट्+थल्। पच्-पच्+इ+थ। ०-पेच्+इ+थ। पेच्+इ+थ। पेचिथ।*

*यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'पच्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अनादेशादि 'पच्' धातु के दो हलों के मध्य में विद्यमान अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होता है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) के नियम से 'थल्' को 'इट्' आगम होता है।*

*(२) **शेकिथ**। **'शक्लृ शक्तौ'** स्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

एकारादेशः–

(४७) तृफलभजत्रपश्च।१२२।

प०वि०–तृ-फल-भज-त्रपः ६।१ च अव्ययापदम्।

स०–तृश्च फलश्च भजश्च त्रप् च एतेषां समाहारः–तृफलभजत्रप्, तस्य-तृफलभजत्रपः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च, लिटि, थलि, च, सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तृफलभजत्रपश्चाङ्गस्य अत क्ङिति लिटि सेटि च थलि एत्, अभ्यासलोपश्च।

अर्थः–तृफलभजत्रपाम् अङ्गानाम् अकारस्य किति ङिति च लिटि, सेटि थलि च प्रत्यये परत एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०–**(तृः)** तौ तेरतुः। ते तेरुः। त्वं तेरिथ। **(फलः)** तौ फेलतुः। ते फेलुः। त्वं फेलिथ। **(भजः)** तौ भेजतुः। ते भेजुः। त्वं भेजिथ। **(त्रप्)** स त्रेपे। तौ त्रेपाते। ते त्रेपिरे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तृफलभजत्रपः) तृ, फल, भज और त्रप् (अङ्गस्य) अङ्गों के (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् तथा (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप होता है।*

*उदा०-(तृ) **तौ तेरतुः**। वे दोनों तरे। **ते तेरुः**। वे सब तरे। **त्वं तेरिथ**। तू तरा। (फल) **तौ फेलतुः**। वे दोनों सफल हुये। **ते फेलुः**। वे सब सफल हुये। **त्वं फेलिथ**। तू सफल हुआ। (भज) **तौ भेजतुः**। उन दोनों ने सेवा की। **ते भेजुः**। उन सब ने सेवा की। **त्वं भेजिथ**। तूने सेवा की। (त्रप्) **स त्रेपे**। उसने लज्जा की। **तौ त्रेपाते**। उन दोनों ने लज्जा की। **ते त्रेपिरे**। उन सब ने लज्जा की।*

*सिद्धि-(१) **तेरतुः**। तृ+लिट्। तृ+ल्। तृ+तस्। तृ+अतुस्। तृ-तृ+अतुस्। तृ-तर्+अतुस्। ०-तेर+अतुस्। तेरतुस्। तेरतुः।*

*यहां '**तॄ प्लवनसन्तरणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'तृ' धातु को द्वित्व होता है। '**ऋच्छत्यॄताम्**' (७।४।११) से ॠकारान्त 'तृ' धातु को गुण होता है। इस सूत्र से*

*तॄ (तर्) धातु के अकार को लिट् (तस्) प्रत्यय परे होने पर एकारादेश और अभ्यास का लोप होता है। ऐसे ही 'उस्' प्रत्यय परे होने पर-**तेरुः**। 'थल्' प्रत्यय परे होने पर-**तेरिथ**। 'न शसददवादिगुणानाम्' (६।४।१२६) से एकारादेश और अभ्यास लोप का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह विधान किया गया है।*

*(२) **फेलतुः**। **'फल निष्पत्तौ'** और **'ञिफला विशरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। इस धातु के आदेशादि (प) होने से 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' (६।४।१२०) से एकारादेश और अभ्यास लोप की प्राप्ति नहीं थी, अतः यह विधान किया गया है।*

*(३) **भेजतुः**। **'भज सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **त्रेपे**। त्रप्+लिट्। त्रप्+ल्। त्रप्+त। त्रप्+एश्। त्रप्-त्रप्+ए। ०-त्रेप्+ए। त्रेप्+ए। त्रेपे।*

*यहां **'त्रपूष् लज्जायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' को 'एश्' आदेश होता है। 'त्रप्' धातु के एकहल्-मध्यवान् न होने से **'अत एकहल्मध्ये०'** (६।४।१२०) से एकारादेश और अभ्यासलोप की प्राप्ति नहीं थी, अतः यह विधान किया गया है। 'त्रप्' धातु के आत्मनेपद होने से परस्मैपद के 'थल्' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है।*

एकारादेशः-

(४८) राधो हिंसायाम्।१२३।

प०वि०-राधः ६।१ हिंसायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च, अतः, लिटि, थलि, च, सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हिंसायां राधोऽङ्गस्य अतः क्ङिति लिटि सेटि च थलि एत्, अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-हिंसायामर्थे वर्तमानस्य राधोऽङ्गस्य अकारस्य किति ङिति च लिटि सेटि च थलि प्रत्यये परत एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०-तौ अपरेधतुः। ते अपरेधुः। त्वम् अपरेधिथ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हिंसायाम्) हिंसा अर्थ में विद्यमान (राधः) राध (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् तथा (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप होता है।*

*उदा०-**तौ अपरेधतुः।** उन दोनों ने अपराध (हिंसा) किया। **ते अपरेधुः।** उन सब ने अपराध किया। **त्वम् अपरेधिथ।** तूने अपराध किया।*

सिद्धि-अपरेधतुः। *अप+राध्+लिट्। अप+राध्+ल्। अप+राध्+तस्। अप+राध्+अतुस्। अप+राध्-राध्+अतुस्। अप+०-रेध्+अतुस्। अपरेधतुस्। अपरेधतुः।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक **'राध संसिद्धौ'** (स्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से कित्, लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर हिंसार्थक 'राध्' धातु के आकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होता है।*

विशेषः *पाणिनीय धातुपाठ में 'राध' धातु संसिद्धि अर्थ में पठित है, किन्तु **"अनेकार्था हि धातवो भवन्ति"** (महाभाष्यम्) इस आप्तवचन से 'राध' धातु हिंसार्थक भी है। यहां पर 'अतः' की अनुवृत्ति से अकार को ही एकारादेश होता है। 'राध' धातु में अकार नहीं है, अतः विधान-सामर्थ्य से 'राध्' के आकार को ही एकारादेश होता है। ऐसे ही-**अपरेधुः** (उस्)। **अपरेधिथ** (थल्)।*

एकारादेश-विकल्पः—

(४६) वा जृभ्रमुत्रसाम्।१२४।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, जृ-भ्रमु-त्रसाम् ६।३।

स०-जृश्च भ्रमुश्च त्रस् च ते जृभ्रमुत्रसः, तेषाम्-जृभ्रमुत्रसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च, अतः, लिटि, थलि, च, सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-जृभ्रमुत्रसाम् अङ्गानाम् अतः क्ङिति लिटि सेटि च थलि वा एत्, अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-जृभ्रमुत्रसाम् अङ्गानाम् अकारस्य किति ङिति च लिटि, सेटि थलि च प्रत्यये परतो विकल्पेन एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति।

उदा०-(जृः) तौ जेरतुः, जजरतुः। ते जेरुः, जजरुः। त्वं जेरिथ, जजरिथ। **(भ्रमुः)** तौ भ्रेमतुः, बभ्रमतुः। ते भ्रेमुः, बभ्रमुः। त्वं भ्रेमिथ, बभ्रमिथ। **(त्रस)** तौ त्रेसतुः, तत्रसतुः। ते त्रेसुः, तत्रसुः। त्वं त्रेसिथ, तत्रसिथ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जृभ्रमुत्रसाम्) जृ, भ्रमु, त्रस् (अङ्गस्य) अङ्गों के (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् तथा (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (वा) विकल्प से (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप होता है।*

*उदा०-(जृ) तौ **जेरतुः, जजरतुः**। वे दोनों जीर्ण हुये। ते **जेरुः, जजरुः**। वे सब जीर्ण हुये। त्वं **जेरिथ, जजरिथ**। तू जीर्ण हुआ। (भ्रमु) तौ **भ्रेमतुः, बभ्रमतुः**। उन दोनों ने भ्रमण किया। ते **भ्रेमुः, बभ्रमुः**। उन सब ने भ्रमण किया। त्वं **भ्रेमिथ, बभ्रमिथ**। उन तूने भ्रमण किया। (त्रस्) तौ **त्रेसतुः, तत्रसतुः**। वे दोनों उद्विग्न हुये। ते **त्रेसुः, तत्रसुः**। वे सब उद्विग्न हुये। त्वं **त्रेसिथ, तत्रसिथ**। तू उद्विग्न हुआ।*

सिद्धि- *(१) जेरतुः। जृ+लिट्। जृ+ल्। जृ+तस्। जृ+अतुस्। जृ-जृ+अतुस्। ०-जृ+अतुस्। जेर्+अतुस्। जेर्+अतुस्। जेरतुस्। जेरतुः।*

*यहां '**जॄ वयोहानौ**' (क्र्या०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'जृ' धातु को द्वित्व होता है। 'जृ' धातु को '**ऋच्छत्यॄताम्**' (७।४।११) से गुण होता है। इस सूत्र से जृ (जर्) के अकार को कित् लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर एकारदेश और अभ्यास का लोप होता है। यह '**न शसददवादिगुणानाम्**' (६।४।१२६) का अपवाद है। विकल्प-पक्ष में एकारादेश और अभ्यास का लोप नहीं है-जजरतुः। ऐसे ही-जेरुः, जजरुः (उस्)। जेरिथ, जजरिथ (थल्)।*

*(२) **भ्रेमतुः, बभ्रमतुः**। '**भ्रमु अनवस्थाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। यह '**अत एकहल्मध्ये०**' (६।४।१२०) का अपवाद है क्योंकि 'भ्रमु' धातु आदेशादि और अकार अनेक हल्मध्यवान् है। ऐसे ही-**भ्रेमुः, बभ्रमुः** (उस्)। **भ्रेमिथ, बभ्रमिथ** (थल्)।*

*(३) **त्रेसतुः, तत्रसतुः**। '**त्रसी उद्वेगे**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। यह '**अत एकहल्मध्ये०**' (६।४।१२०) का अपवाद है क्योंकि 'त्रसी धातु में अकार अनेक हल्मध्यवान् है। ऐसे ही-त्रेसुः, तत्रसुः (उस्)। **त्रेसिथ, तत्रसिथ** (थल्)।*

एकारादेश-विकल्पः-

(५०) फणां च सप्तानाम्।१२५।

प०वि०-फणाम् ६।३ च अव्ययपदम्, सप्तानाम् ६।३।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च, अतः, लिटि, थलि, च, सेटि, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-फणां सप्तानां च अङ्गानाम् अतः क्ङिति लिटि, सेटि थलि च वा एत्, अभ्यासलोपश्च।

अर्थः-फणाम्=फणादीनां सप्तानाम् अङ्गानाम् अकारस्य किति ङिति च लिटि, सेटि थलि च प्रत्यये परतो विकल्पेन एकारादेशो भवति, अभ्यासस्य च लोपो भवति। **उदाहरणम्**-

संख्या	फणादयः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	फण	तौ फेणतुः, पफणतुः।	वे दोनों गये।
		ते फेणुः, पफणुः।	वे सब गये।
		त्वं फेणिथ, पफणिथ।	तू गया।
(२)	राज	तौ रेजतुः, रराजतुः।	वे दोनों चमके।
		ते रेजुः, रराजुः।	वे सब चमके।
		त्वं रेजिथ, रराजिथ।	तू चमका।
(३)	भ्राज	स भ्रेजे, बभ्राजे।	वह चमका।
		तौ भ्रेजाते, बभ्राजाते।	वे दोनों चमके।
		ते भ्रेजिरे, बभ्राजिरे।	वे सब चमके।
(४)	भ्राश	स भ्रेशे, बभ्राशे।	वह चमका।
		तौ भ्रेशाते, बभ्राशाते।	वे दोनों चमके।
		ते भ्रेशिरे, बभ्राशिरे।	वे सब चमके।
(५)	भ्लाश	स भ्लेशे, बभ्लाशे।	वह चमका।
		तौ भ्लेशाते, बभ्लाशाते।	वे दोनों चमके।
		ते भ्लेशिरे, बभ्लाशिरे।	वे सब चमके।
(६)	स्यम	तौ स्येमतुः, सस्यमतुः।	उन दोनों ने शब्द किया।
		ते स्येमुः, सस्यमुः।	उन सबने शब्द किया।
		त्वं स्येमिथ, सस्यमिथ।	तूने शब्द किया।
(७)	स्वन	तौ स्वेनतुः, सस्वनतुः।	उन दोनों ने शब्द किया।
		ते स्वेनुः, सस्वनुः।	उन सबने शब्द किया।
		त्वं स्वेनिथ, सस्वनिथ।	तूने शब्द किया।

'फणाम्' इत्यत्र बहुवचननिर्देशात् फणादयो धातवो गृह्यन्ते। ते चेमे-फण गतौ (भ्वा०प०)। राजृ दीप्तौ (भ्वा०उ०)। टुभ्राजृ, टुभ्राशृ,

टुभ्लाशृ दीप्तौ (भ्वा०आ०)। स्यमु, स्वन शब्दे (भ्वा०प०) इति भ्वादिगणान्तर्गताः सप्त फणादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(फणाम्) फण-आदि (सप्तानाम्) सात (अङ्गस्य) अङ्गों के (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् तथा (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (वा) विकल्प से (एत्) एकारादेश होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) फेणतुः। *फण्+लिट्। फण्+ल्। फण्+तस्। फण्+अतुस्। फण्-फण्+अतुस्। ०+फेण्+अतुस्। फेणतुस्। फेणतुः।*

यहां 'फण गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से कित्, लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर 'फण्' के अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में एकारादेश और अभ्यास का लोप नहीं है-**पफणतुः।** ऐसे ही-**फेणुः, पफणुः** (उस्)। **फेणिथ, पफणिथ** (थल्)।*

(२) रेजतुः। 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।

*(३) **भ्रेजे।** 'भ्राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

*(४) **भ्रेशे।** 'भ्राशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

*(५) **भ्लेशे।** 'भ्लाशृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

*(६) **स्येमतुः।** 'स्यमु शब्दे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(७) **स्वेनतुः।** 'स्वन शब्दे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

विशेषः *'फणाम्' इस बहुवचन-निर्देश से भ्वादिगण अन्तर्गत फणादि सात धातुओं का ग्रहण किया जाता है।*

एकारादेशप्रतिषेधः-

(५१) न शसददवादिगुणानाम्।१२६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, शस-दद-वादि-गुणानाम् ६।३।

स०-व आदिर्येषां ते वादयः। शसश्च ददश्च वादयश्च गुणश्च ते शसददवादिगुणाः, तेषाम्-शसददवादिगुणानाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्ङिति, एत्, अभ्यासलोपः, च, अतः, लिटि, थलि, च, सेटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शसददवादिगुणानाम् अतः क्ङिति लिटि, सेटि थलि च एद् न, अभ्यासलोपश्च न।

अर्थः-शसददवादिगुणानाम्=शसः, दद इत्येतयोः, वकारादीनाम्, गुणशब्देन चाभिनिर्वृत्तस्य अङ्गस्य अकारस्य किति ङिति च लिटि, सेटि थलि च प्रत्यये परत एकारादेशो न भवति, अभ्यासस्य च लोपो न भवति।

उदा०-(शसः) तौ विशशसतुः। ते विशशसुः। त्वं विशशसिथ। **(ददः)** स ददद। तौ ददाते। ते ददिरे। (वकारादिः) तौ ववमतुः। ते ववमुः। त्वं ववमिथ। **(गुणः)** तौ विशशरतुः। ते विशशरुः। त्वं विशशरिथ। त्वं लुलविथ। त्वं पुपविथ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(शसददवादिगुणानाम्) शस, दद, वकारादि और गुण-शब्द से बने हुये (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकार को (क्ङिति) कित् और ङित् (लिटि) लिट् तथा (सेटि) सेट् (थलि) थल् प्रत्यय परे होने पर (च) भी) एत्) एकारादेश (न) नहीं होता है (च) और (अभ्यासलोपः) अभ्यास का लोप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(शस) तौ विशशसतुः।** उन दोनों ने हिंसा की। **ते विशशसुः।** उन सब ने हिंसा की। **त्वं विशशसिथ।** तूने हिंसा की। **(दद) स ददद।** उसने दान किया। **तौ ददाते।** उन दोनों ने दान किया। **ते ददिरे।** उन सब ने दान किया। **(वकारादि) तौ ववमतुः।** उन दोनों ने वमन (उल्टी) किया। **ते ववमुः।** उन सब ने वमन किया। **त्वं ववमिथ।** तूने वमन किया। **(गुण से निर्वृत्त अकार) तौ विशशरतुः।** उन दोनों ने हिंसा की। **ते विशशरुः।** उन सब ने हिंसा की। **त्वं विशशरिथ।** तूने हिंसा की। **त्वं लुलविथ।** तूने छेदन किया। **त्वं पुपविथ।** तूने पवित्र किया।*

सिद्धि-(१) विशशसतुः। *वि+शस्+लिट्। वि+शस्+ल्। वि+शस्+तस्। वि+शस्+अतुस्। वि+शस्-शस्+अतुस्। वि+श-शस्+अतुस्। विशशतुस्। विशशसतुः।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'शसु हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से कित् लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर 'शस्' धातु के अकार को एकारादेश और अभ्यास का लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**विशशसुः** (उस्)। **विशशसिथ** (थल्)।*

(२) ददद। 'दद दाने' *(भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

(३) ववमतुः। 'टुवम उद्गिरणे' *(भ्वा०आ०) पूर्ववत्।*

*(४) **विशशरतुः।** 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।*

*(५) **लुलविथ।** 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।*

*(६) **पुपविथ।** 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) पूर्ववत्।*

तृ-आदेशः–

(५२) अर्वणस्त्रसावनञः।१२७।

प०वि०-अर्वणः ६।१ तृ १।१ (सु-लुक्) असौ ७।१ अनञः ५।१।

स०-न सुरिति असुः, तस्मिन्-असौ (नञ्तत्पुरुषः)। न नञ् इति अनञ्, तस्मात्-अनञः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनञोऽर्वणोऽङ्गस्य तृ, असौ।

अर्थः-अनञ उत्तरस्य 'अर्वन्' इत्येतस्य अङ्गस्य तृ-आदेशो भवति, सु-वर्जिते प्रत्यये परतः।

उदा०-अर्वन्तौ, अर्वन्तः। अर्वता, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भिः। अर्वती। आर्वतम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(अनञः) जो नञ् से परे नहीं है उस (अर्वणः) अर्वन् (अङ्गस्य) अङ्ग को (तृ) तृ-आदेश होता है (असौ) 'सु' (१।१) से भिन्न प्रत्यय परे होने पर।

*उदा०-**अर्वन्तौ।** दो घोड़े। **अर्वन्तः।** सब घोड़े। **अर्वता।** एक घोड़े के द्वारा। **अर्वद्भ्याम्।** दो घोड़ों के द्वारा। **अर्वद्भिः।** सब घोड़ों के द्वारा। **अर्वती।** घोड़ी। **आर्वतम्।** घोड़े का अपत्य (सन्तान)।*

सिद्धि-(१) अर्वन्तौ। *अर्वन्+औ। अर्वतृ+औ। अर्वत्+औ। अर्व नुम् त्+औ। अर्वन्त्+औ। अर्वन्तौ।*

*यहां 'अर्वन्' प्रातिपदिक से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' (१।१) से भिन्न 'औ' प्रत्यय परे होने पर 'अर्वन्' शब्द के अन्त्य नकार को **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) के नियम से 'तृ' आदेश होता है। 'तृ' में ऋकार अनुबन्ध है। **'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्'** इस परिभाषा से यह अनेकाल् नहीं है अतः **'अनेकाल्शित् सर्वस्य'** (१।१।५५) से सर्व-आदेश नहीं होता है। 'तृ' के 'उगित्' होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' अगम होता है। ऐसे ही-**अर्वन्तः** (जस्)। **अर्वता** (टा)। **अर्वद्भ्याम्** (भ्याम्)। **अर्वद्भिः** (भिस्)।*

*(२) **अर्वती।** अर्वन्+ङीप्। अर्वतृ+ई। अर्वत्+ई। अर्वती+सु। अर्वती।*

*यहां 'अर्वन्' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'तृ' के उगित् होने से '**उगितश्च**' (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

*(३) **आर्वतम्।** अर्वन्+अण्। अर्वतृ+अ। आर्वत्+अ। आर्वत+सु। अर्वतम्।*

*यहां 'अर्वन्' शब्द से '**तस्यापत्यम्**' (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय परे होने पर 'तृ' आदेश होता है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।१७) से अङ्ग को आदिवृद्धि होती है।*

बहुलं तृ-आदेशः–

(५३) मघवा बहुलम्।१२८।

प०वि०–मघवा १।१ (षष्ठ्यर्थे) बहुलम् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, तृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मघवा अङ्गस्य बहुलं तृ।

अर्थः–'मघवा' इत्येतस्य अङ्गस्य बहुलं तृ-आदेशो भवति।

उदा०–मघवान्, मघवन्तौ, मघवन्तः। मघवन्तम्, मघवन्तौ, मघवतः। मघवता।। मघवती। माघवतम्। बहुलवचनाद् न च भवति–मघवा, मघवानौ, मघवानः। मघवानम्, मघवानौ, मघोनः। मघोना। मघोनी। माघवनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(मघवा) मघवन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुलम्) प्रायशः (तृ) तृ-आदेश होता है।*

*उदा०–**मघवान्।** इन्द्र। **मघवन्तौ।** दो इन्द्र। **मघवन्तः।** सब इन्द्र। **मघवन्तम्।** इन्द्र को। **मघवन्तौ।** दो इन्द्रों को। **मघवतः।** सब इन्द्रों को। **मघवता।** इन्द्र के द्वारा। **मघवती।** इन्द्र की पत्नी। **माघवतम्।** इन्द्र का अपत्य (सन्तान)। बहुलवचन से तृ-आदेश नहीं है होता है–**मघवा, मघवानौ, मघवानः। मघवानम्, मघवानौ, मघोनः। मघोना। मघोनी। माघवनम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि–(१) **मघवान्।** मघवन्+सु। मघवतृ+सु। मघवत्+सु। मघव नुम् त्+सु। मघवन्त्+सु। मघवन्+सु। मघवान्+सु। मघवान्+०। मघवान्।*

*यहां 'मघवन्' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'मघवन्' शब्द को 'तृ' आदेश होता है। 'तृ' के उगित् होने से '**उगिदचां सर्वनमस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से तकार का लोप, '**सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की*

*उपधा का दीर्घ और 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**मघवन्तौ** आदि।*

*(२) **मघवती।** मघवन्+ङीप्। मघवतृ+ई। मघवत्+ई। मघवती+सु। मघवती।*

*यहां 'मघवन्' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'तृ' के उगित् हेने से **'उगितश्च'** (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

*(३) **माघवतम्।** मघवन्+अण्। मघवतृ+अ। माघवत्+अ। माघवत+सु। माघवतम्।*

*यहां 'मघवन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय परे होने पर 'तृ' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि होती है।*

*बहुलवचन से **मघवा, मघवानौ, मघवानः** इत्यादि में 'मघवान्' शब्द को तृ-आदेश नहीं है।*

।। इति आदेशप्रकरणम्।।

भ-संज्ञाप्रकरणम्

भ-अधिकारः-

(१) भस्य।१२६।

वि०-भस्य ६।१।

अर्थः-'भस्य' इत्यधिरोऽयम्, आ अध्यायपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे वक्ष्यति **'भस्य'** इत्येवं तद् वेदितव्यम्। वक्ष्यति-**'पादः पत्'** (६।४।१३०) इति। द्विपदः पश्य। द्विपदा कृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भस्य) 'भस्य' यह अधिकार सूत्र है, इसका षष्ठ अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह 'भस्य' भ-संज्ञक को कार्य होगा, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**पादः पत्**' (६।४।१३०) अर्थात् 'पाद्' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। **द्विपदः पश्य।** तू दो पांवोंवालों को देख। **द्विपदा कृतम्।** दो पांवों केद्वारा किया गया।*

सिद्धि-'द्विपद' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

पत्-आदेशः-

(२) पादः पत्।१३०।

प०वि०-पादः ६।१ पत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पादो भस्य अङ्गस्य पत्।

अर्थः-पादन्तस्य भ-संज्ञकस्य अङ्गस्य पदादेशो भवति।

उदा०-द्विपदः पश्य। द्विपदा। द्विपदे। द्विपदिकां ददाति। त्रिपदिकां ददाति। वैयाघ्रपद्यः।

'पादः' इत्यत्र लुप्ताकारः पादशब्दो गृह्यते। **'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति'** इति परिभाषया च पात्-शब्दस्यैव स्थाने पत्-आदेशो विधीयते, न तु सर्वस्य पादान्तस्य शब्दस्य पत्-आदेशो भवति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पादः) 'पाद्' शब्द जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (पत्) पत्-आदेश होता है।*

*उदा०-**द्विपदः पश्य।** तू दो पांवोंवालों को देख। **द्विपदा।** दो पांवोंवाले के द्वारा। **द्विपदे।** दो पांवोंवाले के लिये। **द्विपदिकां ददाति।** दो-दो पाद दान करता है। पाद=८ रत्ती चांदी का सिक्का। **त्रिपदिकां ददाति।** तीन-तीन पाद दान करता है। **वैयाघ्रपद्यः।** व्याघ्र=बाघ के समान जिसके पाद=चरण हैं वह-व्याघ्रपात्, व्याघ्रपात् पुरुष का अपत्य (सन्तान)-वैयाघ्रपद्य।*

*सिद्धि-**द्विपदः।** द्वि+पाद। द्विपाद्।। द्विपाद्+शस्। द्विपाद्+अस्। द्विपत्+अस्। द्विपदस्। द्विपदः।*

*यहां प्रथम द्वि और पाद शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है-**द्वौ पादौ यस्य स द्विपाद्। 'संख्यासुपूर्वस्य'** (५।४।१४०) से 'पाद' शब्द के **अकार** का समासान्त-लोप होता है। तत्पश्चात् 'द्विपाद्' शब्द से 'शस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से भ-संज्ञक 'पाद' के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से 'पाद्' की भ-सज्ञा है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से तकार को जश् दकार होता है।*

*सूत्रपाठ में लुप्त अकारवाले 'पाद्' शब्द का ग्रहण किया गया है। **'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति'** इस परिभाषा से निर्दिश्यमान 'पाद्' शब्द को ही 'पत्' आदेश किया जाता है, पादान्त 'द्विपाद' को नहीं। ऐसे ही-**द्विपदा** (टा)। **द्विपदे** (ङे)।*

*(२) **द्विपदिका।** द्विपाद+वुन्। द्विपाद+अक। द्विपाद्+अक। द्विपत्+अक। द्विपदक+टाप्। द्विपदक+आ। द्विपदिका+सु। द्विपदिका।*

*यहां प्रथम 'द्विपाद' शब्द से **'पादशतस्य संख्यादेर्वुन् लोपश्च'** (५।४।१) से वीप्सा-अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय और 'पाद्' के अन्त्य अकार का लाप होता है। तत्पश्चात् इस सूत्र से भ-संज्ञक 'पाद्' के स्थान में 'पत्' अदेश होता है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से 'पाद्' की भ-संज्ञा है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्कात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। ऐसे ही-**त्रिपदिका।***

*(३) **वैयाघ्रपद्यः।** व्याघ्र+पाद। व्याघ्रपाद्।। व्याघ्रपाद्+यञ्। व्यघ्रपाद्+य। वैयाघ्रपाद्+य। वैयाघ्रपत्+य। वैयाघ्रपद्य+सु। वैयाघ्रपद्यः।*

*यहां प्रथम व्याघ्र और पाद शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है-**व्याघ्रस्येव पादौ यस्य स व्याघ्रपाद्।** **'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः'** (५।४।१३८) से 'पाद' के अकार का समासान्त लोप होता है। पुनः **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से अपत्य-अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से भ-संज्ञक 'पाद्' शब्द के स्थान में 'पत्' आदेश होता है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से 'पाद्' शब्द की भ-संज्ञा है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से अङ्ग को आदिवृद्धि न हेकर 'ऐच्' (ऐ) आदेश होता है।*

सम्प्रसारणम्–

(३) वसोः सम्प्रसारणम्।१३१।

प०वि०–वसोः ६।१ सम्प्रसारणम् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वसोर्भस्य अङ्गस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थः–वसु–अन्तस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य सम्प्रसारणं भवति।

उदा०–त्वं विदुषः पश्य। विदुषा। विदुषे। त्वं पेचुषः पश्य। पेचुषा। पेचुषे। त्वं पपुषः पश्य।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वसोः) वसु जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०–**त्वं विदुषः पश्य।** तू विद्वानों को देख। **विदुषा।** एक विद्वान् के द्वारा। **विदुषे।** एक विद्वान् के लिये। **त्वं पेचुषः पश्य।** तू पेचिवानों को देख। **पेचुषा।** पेचिवान् के द्वारा। **पेचुषे।** पेचिवान् के लिये। पेचिवान्=पकानेवाला। **त्वं पपुषः पश्य।** तू पपिवानों को देख। पपिवान्=पान करनेवाला।*

*सिद्धि-**(१) विदुषः।** विद्+लट्। विद्+ल्। विद्+शतृ। विद्+अत्। विद्+शप्+अत्। विद्+०+अत्। विद्+वसु। विद्+वस्। विद्वस्+शस्। विद्वस्+अस्। विद् उ अ स्+अस्। वि द् उस्+अस्। विद् उष्+अस्। विदुष्+अस्। विदुषस्। विदुषः।*

*यहां **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'लटः शतृशानचाव-प्रथमासमानाधिकरणे'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, **'विदेः शतुर्वसुः'** (७।१।३६) से 'शतृ' के स्थान में 'वसु' आदेश होता*

*है। तत्पश्चात् वसु-अन्त भ-संज्ञक अङ्ग को 'शस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही-**विदुषा** (टा)। **विदुषे** (ङे)।*

*(२) **पेचुषः**। पच्+लिट्। पच्+ल्। पच्+क्वसु। पच्+वस्। पच्-पच्+वस्। ०-पेच्+वस्। पेच्+वस्+शस्। पेच्+उ अस्+अस्। पेच्+उस्+अस्। पेचुष्+अस्। पेचुषस्। पेचुषः।*

*यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। '**क्वसुश्च**' (३।२।१०७) से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश, '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'पच्' धातु के द्वित्व, '**अत एकहल्मध्ये०**' (६।४।१२०) से एत्त्व और अभ्यास का लोप होता है। 'शस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से भ-संज्ञक वसु-अन्त अङ्ग को सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारण हो जाने पर वलादि आर्धधातुक न रहने से '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से 'इट्' आगम नहीं होता है।*

*(३) **पपुषः**। '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। क्वसु और '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से 'पा' के आकार का लोप होता है। आकार का लोप करने में '**असिद्धवदत्राभात्**' (६।४।२२) से सम्प्रसरण असिद्ध नहीं होता है क्योंकि सम्प्रसारण 'शस्' विभक्ति पर आश्रित है, समानाश्रित कार्य असिद्ध होता है, व्याश्रित नहीं।*

विशेषः *सूत्रपाठ में 'वसु' के ग्रहण से 'क्वसु' प्रत्यय का भी ग्रहण किया जाता है।*

ऊठ्-सम्प्रसारणम्–

(४) वाह ऊठ्।१३२।

प०वि०-वाहः ६।१ ऊठ् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वाहो भस्य अङ्गस्य ऊठ् सम्प्रसारणम्।

अर्थः-वाहन्तस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य ऊठ् इति सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-प्रष्ठौहः, प्रष्ठौहा, प्रष्ठौहे। दित्यौहः, दित्यौहा, दित्यौहे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वाहः) वाह् जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (ऊठ्) ऊठ् यह (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**प्रष्ठौहः**। बैलों को। **प्रष्ठौहा**। बैल के द्वारा। **प्रष्ठौहे**। बैल के लिये। प्रष्ठवाह् (पुं) जवान बैल जिसे हल जोतने का अभ्यास कराया जाता हो (शब्दार्थकौस्तुभ)। हलाऊ नारा। **दित्यौहः**। दैत्य-वोढाओं को। **दित्यौहा**। दैत्य-वोढा के द्वारा। **दित्यौहे**। दैत्य-वोढा के लिये।*

सिद्धि-प्रष्ठौहः। प्रष्ठ+वह्+ण्वि। प्रष्ठ+वह्+वि। प्रष्ठ+वाह्+०। प्रष्ठवाह्+शस्। प्रष्ठवाह्+अस्। प्रष्ठ+ऊठ् आह्+अस्। प्रष्ठ्+ऊ आ ह्+अस्। प्रष्ठ+ऊह्+अस्। प्रष्ठौह्+अस्। प्रष्ठौहस्। प्रष्ठौहः।

*यहां प्रष्ठ उपपद 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से 'वहश्च' (३।२।६४) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११५) से उपधावृद्धि और 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६।) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'शस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से वाहन्त 'प्रष्ठवाह्' को ऊठ् रूप सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश और 'एत्येधत्यूठ्सु' (६।१।८८) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। 'ऊठ्' में ठकार-अनुबन्ध 'एत्येधत्यूठ्सु' (६।१।८८) में विशेषणार्थ है। ऐसे ही-**प्रष्ठौहा** (टा)। **प्रष्ठौहे** (ङे)। ऐसे ही-**दित्यौहः, दित्यौहा, दित्यौहे।***

सम्प्रसारणम्-

(५) श्वयुवमघोनामतद्धिते।१३३।

प०वि०-श्व-युव-मघोनाम् ६।३ अतद्धिते ७।१।

स०-श्वा च युवा च मघवा च ते श्वयुवमघवानः, तेषाम्-श्वयुवमघोनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न तद्धित इति अतद्धितः, तस्मिन् अतद्धिते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, सम्प्रसारणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वयुवमघोनां भानाम् अङ्गानाम् अतद्धिते सम्प्रसारणम्।

अर्थः-श्वयुवमघोनां भसंज्ञकानाम् अङ्गानां तद्धितवर्जिते प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-(श्वा) शुनः। शुना। शुने। **(युवा)** यूनः। यूना। यूने। **(मघवा)** मघोनः। मघोना। मघोने।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्वयुवमघोनाम्) श्वन्, युवन्, मघवन् इन (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों को (अतद्धिते) तद्धित से भिन्न प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-(श्वा) **शुनः।** कुत्तों को। **शुना।** कुत्ते केद्वारा। **शुने।** कुत्ते केलिये। (युवा) **यूनः।** युवकों को। **यूना।** युवक केद्वारा। **यूने।** युवक केलिये। (मघवा) **मघोनः।** इन्द्रों को। इन्द्र=राजा। **मघोना।** इन्द्र केद्वारा। **मघोने।** इन्द्र केलिये।*

*सिद्धि-(१) **शुनः।** श्वन्+शस्। श्वन्+अस्। श उ अ न्+अस्। श उ न्+अस्। शुनस्। शुनः।*

यहां श्वन् शब्द से शस् प्रत्यय करने पर भ-संज्ञक 'श्वन्' शब्द को इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश होता है। ऐसे ही-शुना (टा)। शुने (ङे)।

(२) यूनः। 'युवन्' शब्द से पूर्ववत्।

(३) मघोनः। 'मघवन्' शब्द से पूर्ववत्।

अकारलोपः-

(६) अल्लोपोऽनः।१३४।

प०वि०-अल्लोपः १।१ अनः ६।१।

स०-अतो लोप इति अल्लोपः {अत्+लोपः} (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनो भस्य अङ्गस्य अल्लोपः।

अर्थः-अन्-अन्तस्य भस्य अङ्गस्य अकारलोपो भवति।

उदा०-त्वं राज्ञः पश्य। राज्ञा। राज्ञे। त्वं तक्ष्णः पश्य। तक्ष्णा। तक्ष्णे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (अल्लोपः) अकार का लोप होता है।*

*उदा०-त्वं राज्ञः **पश्य**। तू राजाओं को देख। **राज्ञा**। एक राजा केद्वारा। **राज्ञे**। एक राजा केलिये। **त्वं तक्ष्णः पश्य**। तू तक्षाओं को देख। तक्षा=खाती (बढ़ई)। **तक्ष्णा**। एक तक्षा केद्वारा। **तक्ष्णे**। एक तक्षा केलिये।*

*सिद्धि-(१) **राज्ञः**। राजन्+शस्। राजन्+अस्। राज्न्+अस्। राज्ञ्+अस्। राजस्। राज्ञः।*

*यहां राजन् शब्द से शस् प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से भ-संज्ञक 'राजन्' अङ्ग के अकार का लोप होता है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से तवर्ग नकार को चवर्ग जकार आदेश होता है। ऐसे ही-**राज्ञा** (टा)। **राज्ञे** (ङे)।*

(२) तक्ष्णः। 'तक्षन्' शब्द से पूर्ववत्।

अकारलोपः-

(७) षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि।१३५।

प०वि०-षपूर्व-हन्-धृतराज्ञाम् ६।३ अणि ७।१।

स०-षः पूर्वो यस्मात् स षपूर्वः। षपूर्वश्च हन् च धृतराजा च ते षपूर्वहन्धृतराजानः, तेषाम्-षपूर्वहन्धृतराज्ञाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अल्लोपः, अन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षपूर्वहन्धृतराज्ञाम् अनोऽणि अल्लोपः।

अर्थः-षपूर्वस्य हनो धृतराज्ञश्च अन्-अन्तस्य भस्य अङ्गस्य अणि प्रत्यये परतोऽकारलोपो भवति।

उदा०-**(षपूर्वः)** उक्ष्णोऽपत्यम्-औक्ष्णः। तक्ष्णोऽपत्यम्-ताक्ष्णः। **(हन्)** भ्रूणघ्नोऽपत्यम्-भ्रौणघ्नः। **(धृतराजन्)** धृतराज्ञोऽपत्यम्-धार्तराज्ञः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(षपूर्वहन्धृतराज्ञाम्) षकार पूर्ववाले, हन् और धृतराजन् इन (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों के (अनः) अन् के (अल्लोपः) अकार का लोप होता है (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(षपूर्व)** उक्षा का अपत्य (सन्तान)-औक्ष्ण। तक्षा का अपत्य-ताक्ष्ण। तक्षा=खाती (बढ़ई)। **(हन्)** भ्रूणहा का अपत्य-भ्रौणघ्न। **(धृतराजन्)** धृतराजा का अपत्य-धार्तराज्ञ।*

***सिद्धि-(१) औक्ष्णः।** उक्षन्+अण्। औक्षन्+अ। औक्ष्न्+अ। औक्ष्ण्+अ। औक्ष्ण+सु। औक्ष्णः।*

*यहां 'उक्षन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से षकारपूर्वी 'अन्' के अकार का 'अण्' प्रत्यय परे होने पर होप होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही 'तक्षन्' शब्द से-ताक्ष्णः।*

*(२) **भ्रौणघ्नः।** यहां प्रथम 'भ्रूणहन्' शब्द में **'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु'** (३।२।८७) से 'हन्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'भ्रूणहन्' शब्द से अपत्य अर्थ में पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय परे होने पर 'हन्' के अकार का लोप होता है। **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से हकार को कुत्व घकार होता है।*

*(३) **धार्तराज्ञः।** यहां प्रथम धृत और राजन् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'धृतराजन्' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है।*

अकारलोप-विकल्पः—

(८) विभाषा ङिश्योः।१३६।

प०वि०-विभाषा १।१ ङि-श्योः ७।२।

स०-**ङिश्च शीश्च** तौ ङीश्यौ, तयोः-ङिश्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अल्लोपः, अन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनो भस्य अङ्गस्य ङिश्योर्विभाषाऽल्लोपः।

अर्थः-अन्-अन्तस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य ङिप्रत्यये शीप्रत्यये च परतो विकल्पेन अकारलोपो भवति।

उदा०-(ङिः) राज्ञि, राजनि। साम्नि, सामनि। **(शीः)** साम्नी, सामनी।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(अनः) 'अन्' जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (अल्लोपः) अकार का लोप होता है (ङिश्योः) ङि और शी प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से।

उदा०-(ङि) __राज्ञि, राजनि।__ राजा में/पर। __साम्नि, सामनि।__ साम में/पर। (शी) __साम्नी, सामनी।__ दो साम (मन्त्र)।

__सिद्धि-(१) राज्ञि।__ राजन्+ङि। राजन्+इ। राज्न्+इ। राज्ञ्+इ। राज्ञि।

यहां 'राजन्' शब्द से 'ङि' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'राजन्' के अकार का लोप होता है। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार आदेश है। विकल्प-पक्ष में अकार का लोप नहीं है-__राजनि।__ ऐसे ही 'सामन्' शब्द से-__साम्नि, सामनि।__

__(२) साम्नी।__ सामन्+औ। सामन्+शी। सामन्+ई। साम्न्+ई। साम्नी।

यहां 'सामन्' शब्द से 'औ' प्रत्यय है। 'नपुंसकाच्च' (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शी' प्रत्यय परे होने पर 'सामन्' के अकार का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में अकार का लोप नहीं है-__सामनी।__

अकारलोप-प्रतिषेधः-

(६) न संयोगाद् वमन्तात्।१३७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, संयोगात् ५।१ वमन्तात् ५।१।

स०-वश्च मश्च तौ वमौ, वमावन्ते यस्य स वमन्तः, तस्मात्-वमन्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अल्लोपः, अन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वमन्तात् संयोगाद् भस्य अङ्गस्य अनोऽल्लोपो न।

अर्थः-वकारान्ताद् मकारान्ताच्च संयोगाद् उत्तरस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अनोऽकारस्य लोपो न भवति।

उदा०-(वान्तसंयोगात्) पर्वणा, पर्वणे। अथर्वणा, अथर्वणे। **(मान्तसंयोगात्)** शर्मणा, शर्मणे। चर्मणा, चर्मणे।

आर्यभाषाः अर्थ- *(वमन्तात्) वकारान्त और मकारान्त (संयोगात्) संयोग से परवर्ती (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गसम्बन्धी (अनः) अन् के (अल्लोपः) अकार का लोप (न) नहीं होता है।*

उदा०-(वकारान्त संयोग) ***पर्वणा।*** *पर्व केद्वारा।* ***पर्वणे।*** *पर्व केलिये। पर्व=उत्सव (त्यौहार)।* ***अथर्वणा।*** *अथर्वा केद्वारा।* ***अथर्वणे।*** *अथर्वा केलिये। अथर्वा=एक ऋषि का नाम। (मकारान्त संयोग)* ***शर्मणा।*** *शर्मा केद्वारा।* ***शर्मणे।*** *शर्मा केलिये।* ***चर्मणा।*** *चर्म=चाम केद्वारा।* ***चर्मणे।*** *चर्म केलिये।*

सिद्धि-(१) पर्वणा। *पर्वन्+टा। पर्वन्+आ। पर्वण+आ। पर्वणा।*

यहां 'पर्वन्' शब्द से 'टा' प्रत्यय है। 'पर्वन्' शब्द में वकारान्त संयोग (र्व्) से उत्तर भ-संज्ञक 'अन्' है। इस सूत्र से इस 'अन्' के अकार का लोप नहीं होता है। ***'अट्कुप्वाङ्०'*** *(८।४।२) से नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-* ***पर्वणे*** *(ङे)। 'अथर्वन्' शब्द से-* ***अथर्वणा*** *(टा)।* ***अथर्वणे*** *(ङे)।*

(२) शर्मणा। *यहां 'शर्मन्' शब्द से 'टा' प्रत्यय है। 'शर्मन्' शब्द में मकारान्त संयोग (र्म्) से उत्तर भ-संज्ञक 'अन्' है। इस सूत्र से इस 'अन्' के अकार का लोप नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-* ***शर्मणे*** *(ङे)। 'चर्मन्' शब्द से-* ***चर्मणा*** *(टा)।* ***चर्मणे*** *(ङे)।*

अकारलोपः-

(१०) अचः।१३८।

वि०-अचः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अल्लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचो भस्य अङ्गस्य अल्लोपः।

अर्थः-अचः=अञ्चति-अन्तस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अकारस्य लोपो भवति।

उदा०-त्वं दधीचः पश्य। दधीचा। दधीचे। त्वं मधूचः पश्य। मधूचा। मधूचे।

अत्र 'अचः' इति लुप्तनकारोऽञ्चतिर्गृह्यते।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(अचः) जिसके अन्त में अञ्चति है, उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (अल्लोपः) अकार का लोप होता है।

*उदा०-त्वं **दधीचः** पश्य। तू दधि (दही) प्राप्तकर्ता को देख। **दधीचा।** दधि प्राप्तकर्ता केद्वारा। **दधीचे।** दधि प्राप्तकर्ता केलिये। त्वं **मधूचः** पश्य। तू मधु प्राप्तकर्ता को देख। **मधूचा।** मधु प्राप्तकर्ता केद्वारा। **मधूचे।** मधु प्राप्तकर्ता केलिये।*

*सिद्धि-(१) **दधीचः।** दधि+अञ्चु+क्विन्। दधि+अञ्च्+वि। दधि+अच्+वि। दधि+अच्+०। दधी+अच्+०।। दधि+अच्+शस्। दधि+अच्+अस्। दधि+०च्+अस्। दधी+च्+अस्। दधीचस्। दधीचः।*

*यहां प्रथम दधि-उपपद **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से 'अञ्च्' के अनुनासिक (न्) का लोप और **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'अञ्चति' के 'अच्' रूप के अकार का लोप होता है। **'चौ'** (६।३।१३८) से 'दधि' के इकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**दधीचा** (टा)। **दधीचे** (ङे)।*

*(२) **मधूचः।** मधु-उपपद 'अञ्चु' धातु से पूर्ववत्।*

ईकारादेशः-

(११) उद ईत्।१३६।

प०वि०-उदः ५।१ ईत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उदोऽचो भस्य अङ्गस्य {अतः} ईत्।

अर्थः-उदः परस्य अच इत्येतस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य {अकारस्य} ईकारादेशो भवति।

उदा०-त्वं उदीचः पश्य। उदीचा। उदीचे।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(उदः) उत्-उपसर्ग से परे (अचः) अच्=अञ्चति इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के {अतः} अकार को (ईत्) ईकार आदेश होता है।

*उदा०-त्वं **उदीचः** पश्य। तू उत्तरगामियों को देख। **उदीचा।** उत्तरगामी के द्वारा। **उदीचे।** उत्तरगामी केलिये।*

*सिद्धि-**उदीचः।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** (भ्वा०प०) **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उत्-उपसर्ग से परे 'अच्' (अञ्चति) के अकार को ईकारादेश होता है। शेष कार्य **'दधीचः'** (६।४।१३८) के समान है। ऐसे ही-**उदीचा** (टा) **उदीचे** (ङे)।*

आकारलोपः–

(१२) आतो धातोः।१४०।

प०वि०–आतः ६।१ धातोः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आतो धातोर्भस्य अङ्गस्य लोपः।

अर्थः–आकारान्तस्य धातोर्भसंज्ञकस्य अङ्गस्य लोपो भवति।

उदा०–त्वं कीलालपः पश्य। कीलालपा। कीलालपे। त्वं शुभंयः पश्य। शुभंया। शुभंये।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आतः) आकारान्त (धातोः) धातु के (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**त्वं कीलालपः पश्य।** तू कीलालपाओं को देख। कीलालपा=अमृत का पान करनेवाले देवता। **कीलालपा।** कीलालपा केद्वारा। **कीलालपे।** कीलालपा केलिये। **त्वं शुभंयः पश्य।** तू कल्याण मार्ग के पथिकों को देख। **शुभंया।** कल्याण मार्ग के पथिक के द्वारा। **शुभंये।** कल्याण मार्ग के पथिक केलिये।*

*सिद्धि-(१) **कीलालपः।** कीलाल+पा+विच्। कीलाल+पा+वि। कीलाल+पा+०। कीलालपा।। कीलालपा+शस्। कीलालपा+अस्। कीलालप्०+अस्। कीलालपस्। कीलालपः।*

*यहां कीलाल-उपपद **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च'** (३।२।७४) 'विच्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। तत्पश्चात् 'कीलालपा' शब्द से 'शस्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'पा' धातु के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कीलालपा** (टा)। **कीलालपे** (ङे)।*

*(२) **शुभंयः।** यहां 'शुभम्' (अव्यय) उपपद **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'विच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। **शुभंया** (टा)। **शुभंये** (ङे)।*

आकारलोपः–

(१३) मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः।१४१।

प०वि०–मन्त्रेषु ७।३ आङि ७।१ आदेः ६।१ आत्मनः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, लोपः, आत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–मन्त्रेषु आत्मनो भस्य अङ्गस्य आङि आदेरातो लोपः।

अर्थः–मन्त्रेषु आत्मनो भस्य अङ्गस्य आङि प्रत्यये परतो आदेराकारस्य लोपो भवति।

उदा०-त्मना देवेभ्यः। त्मना सोमेषु। त्मना=आत्मना इत्यर्थः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(मन्त्रेषु) वेद-मन्त्रों में (आत्मनः) आत्मन् इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (आदेः) आदि के (आतः) आकार का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**त्मना देवेभ्यः। त्मना सोमेषु।** त्मना=आत्मना। आत्मा केद्वारा।*

*सिद्धि-**त्मना।** आत्मन्+टा। आत्मन्+आ। ०त्मन्+आ। त्मना।*

यहां 'आत्मन्' शब्द से 'टा' प्रत्यय है। 'टा' (आङ्) प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से मन्त्रविषय में 'आत्मन्' शब्द के आदिभूत आकार का लोप होता है।

विशेषः *पाणिनि मुनि से प्राचीन आचार्यों के व्याकरणशास्त्र में 'टा' प्रत्यय को 'आङ्' कहा गया है। पाणिनि मुनि ने उसे उसी रूप में यहां ग्रहण किया है।*

ति-लोपः--

(१४) ति विंशतेर्डिति।१४२।

प०वि०-ति ६।१ (लुप्तषष्ठीनिर्देशः) विंशतेः ६।१ डिति ७।१।

स०-ड इद् यस्य डित्, तस्मिन्-डिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विंशतेर्भस्य अङ्गस्य ति {तिः} डिति लोपः।

अर्थः-विंशतेर्भस्य अङ्गस्य तिशब्दस्य डिति प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-विंशत्या क्रीतः-विंशकः पटः। विंशतिरधिकाऽस्मिन्निति-विंशं शतम्। विंशतेः पूरणः-विंशः। एकविंशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विंशते) विंशति इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (ति) ति-शब्द का (डिति) डित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**विंशकः पटः।** बीस कार्षापणों से खरीदा हुआ कपड़ा। **विंशं शतम्।** वह शत (सौ) कार्षापण कि जिसमें बीस अधिक हैं १००+२०=१२०। **विंशः।** बीस को पूरा करनेवाला-बीसवां। **एकविंशः।** इक्कीस को पूरा करनेवाला-इक्कीसवां।*

*सिद्धि-(१) **विंशकः।** विंशति+ड्वुन्। विंशति+वु। विंशति+अक। विंश०अक। विंशक+सु। विंशकः।*

*यहां 'विंशति' शब्द से **'विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम्'** (५।१।२४) से क्रीत-अर्थ में 'ड्वुन्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश होता*

*है। 'ड्वुन्' इस डित् प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'विंशति' शब्द के 'ति' का लोप होता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप (अ+अ=अ) एकादेश होता है।*

*(२) **विंशम्।** यहां 'विंशति' शब्द से **'शदन्तविंशतेश्च'** (५।२।४६) से **'अस्मिन्नधिकम्'** अर्थ में ड' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **विंशः।** यहां 'विंशति' शब्द से **'तस्य पूरणे डट्'** (५।२।४८) से पूरण-अर्थ में 'डट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टि-लोपः–

(१५) टेः।१४३।

वि०–टेः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, लोपः, डिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भस्य अङ्गस्य टेर्डिति टेर्लोपः।

अर्थः–भसंज्ञकस्य अङ्गस्य टेर्डिति प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०–कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान्। उपसरजः। मन्दुरजः। त्रिंशता क्रीतः-त्रिंशकः पटः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (टेः) टि-भाग का (डिति) डित् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**कुमुद्वान्।** सफेद कमलोंवाला देश। **नड्वलः।** सरपतोंवाला देश। सरपत=सरकंडा। **वेतस्वान्।** बेंतोंवाला देश। **उपसरजः।** उपसर=प्रथम गर्भग्रहण पर उत्पन्न हुआ। **मन्दुरजः।** घुड़शाला में उत्पन्न हुआ। **त्रिंशकः पटः।** तीस कार्षापणों से खरीदा हुआ कपड़ा।*

***सिद्धि-(१) कुमुद्वान्।** कुमुद+ड्मतुप्। कुमुद+मत्। कुमुद्+मत्। कुमुद्+वत्। कुमुद्वत्+सु। कुमुद्वान्।*

*यहां 'कुमुद' शब्द से **'अस्मिन् सन्ति'** अर्थ में **'कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्'** (४।२।८६) से 'ड्मतुप्' प्रत्यय है। इस डित् प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'कुमुद' के टि-भाग (अ) का लोप होता है। **'झयः'** (८।२।१०) से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश होता है। ऐसे ही-**नड्वान्, वेतस्वान्।***

*(२) **उपसरजः।** उपसर+जन्+ड। उपसर+जन्+अ। उपसर+ज्०+अ। उपसरज+सु। उपसरजः।*

*यहां उपसर-उपपद **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से **'सप्तम्यां जनेर्डः'** (३।२।९७) से 'ड' प्रत्यय है। इस डित् प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'जन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**मन्दुरजः।***

(३) त्रिंशकः । त्रिंशत्+ड्वुन् । त्रिंशत्+वु । त्रिंशत्+अक । त्रिंश्०+अक । त्रिंशक+सु । त्रिंशकः ।

*यहां 'त्रिशत्' शब्द से **'विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम्'** (५ ।१ ।२४) से क्रीत-अर्थ में 'ड्वुन्' प्रत्यय है। इस डित् प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'त्रिंशत्' के टि-भाग (अत्) का लोप होता है।*

टि-लोपः–

(१६) नस्तद्धिते ।१४४।

प०वि०-नः ६ ।१ तद्धिते ७ ।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, टेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नो भस्य अङ्गस्य टेस्तद्धिते लोपः।

अर्थः-नः=नकारान्तस्य भस्य अङ्गस्य टेस्तद्धिते प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-अग्निशर्मणोऽपत्यम्-आग्निशर्मिः। उडुलोम्नोऽपत्यम्-औडुलोमिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नः) नकारान्त (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (टेः) टि-भाग का (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**आग्निशर्मिः।** अग्निशर्मा का अपत्य (सन्तान)। **औडुलोमिः।** उडुलोम का अपत्य (पुत्र)।*

सिद्धि-आग्निशर्मिः। *अग्निशर्मन्+इञ्। अग्निशर्मन्+इ। आग्निशर्म्०+इ। आग्निशर्मि+सु। आग्निशर्मिः।*

*यहां 'अग्निशर्मन्' शब्द से **'बाह्वादिभ्यश्च'** (४ ।१ ।९६) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस तद्धित 'इञ्' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से नकारान्त 'अग्निशर्मन्' शब्द के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही 'उडुलोमन्' शब्द से-**औडुलोमिः।***

टिलोपः–

(१७) अह्नष्टखोरेव ।१४५।

प०वि०-अह्नः ६ ।१ ट-खोः ७ ।२ एव अव्ययपदम्।

स०-टश्च ख् च तौ टखौ, तयोः-टखोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, टेः, तद्धिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अह्नो भस्य अङ्गस्य टेस्तद्धितयोष्टखोरेव लोपः।

अर्थः-अह्नः=अहन्-इत्येतस्य भस्य अङ्गस्य टेस्तद्धितयोष्टखोः प्रत्यययोरेव परतो लोपो भवति।

उदा०-(टः) द्वे अहनी समाहृते इति द्व्यहः। त्र्यहः। (खः) द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा-द्व्यहीनः। त्र्यहीनः। अह्नां समूहः क्रतुः-अहीनः क्रतुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अह्नः) अहन् इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (टेः) टि-भाग का (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (टखोः) ट और ख प्रत्यय परे होने पर (एव) ही (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(ट) **द्व्यहः।** दो दिनों का समाहार। **त्र्यहः।** तीन दिनों का समाहार। (ख) **द्व्यहीनः।** दो दिन तक अधीष्ट=पूजित (आचार्य), भृत=वृत्ति से रखा हुआ (सेवक), भूत=हुआ, भावी=होनेवाला (उत्सव)। **त्र्यहीनः।** तीन दिनों तक अधीष्ट=पूजित (आचार्य), भृत (सेवक), भूत वा भावी (उत्सव)। **अहीनः क्रतुः।** दिनों के समूह से साध्य यज्ञविशेष।*

*सिद्धि-(१) **द्व्यहः।** द्व्यहन्+टच्। द्व्यहन्+अ। द्व्यह्+अ। द्व्यह+सु। द्व्यहः।*

*यहां प्रथम द्वि और अहन् शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।२।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'द्व्यहन्' शब्द से **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से तद्धित, समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। इस 'ट' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'द्व्यहन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे-**त्र्यहः।***

*(२) **द्व्यहीनः।** यहां प्रथम द्वि और अहन् शब्दों का पूर्ववत् तद्धितार्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'द्व्यहन्' शब्द से **'रात्र्यहःसंवत्सराच्च'** (५।१।८७) से अधीष्ट आदि अर्थों में तद्धित 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। इ 'ख' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'द्व्यहन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**त्र्यहीनः।***

*(३) **अहीनः क्रतुः।** यहां 'अहन्' शब्द से **वा०-'अह्नः खः क्रतौ'** (४।२।४२) से समूह-अर्थ में तद्धित 'ख' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

गुणः-

(१८) ओर्गुणः।१४६।

प०वि०-ओः ६।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, तद्धिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओर्भस्य अङ्गस्य तद्धिते गुणः।

अर्थः-ओः=उकारान्तस्य भस्य अङ्गस्य तद्धिते प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-बभ्रोर्गोत्रापत्यम्-बाभ्रव्यः कौशिकः। मण्डोर्गोत्रापत्यम्-माण्डव्यः। शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यं दारु। पिचवे हितः-पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलवे हिता-कमण्डलव्या मृत्तिका। परशवे हितम्-परशव्यम् अयः। उपगोरपत्यम्-औपगवः। कपटोरपत्यम्-कापटवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ओः) उकार जिसके अन्त में है उस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**बाभ्रव्यः**। बभ्रु का पौत्र (कौशिक)। **माण्डव्यः**। मण्डु का पौत्र। **शङ्कव्यं दारु**। शङ्कु=खूंटा के लिये हितकारी लकड़ी। **पिचव्यः कार्पासः**। पिचु (रूई) के लिये हितकारी कपास। **कमण्डलव्या मृत्तिका**। कमण्डलु=जलपात्र के लिये हितकारी मिट्टी। **परशव्यम् अयः**। परशु=कुठार के लिये हितकारी लोहा। **औपगवः**। उपगु का पुत्र। **कापटवः**। कपटु का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **बाभ्रव्यः**। बभ्रु+यञ्। बभ्रु+य। बाभ्रो+य। बाभ्रअव्+य। बाभ्रव्य+सु। बाभ्रव्यः।*

*यहां उकारान्त 'बभ्रु' शब्द से **'मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः'** (४।२।१०६) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'बभ्रु' शब्द को तद्धित 'यञ्' प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से अव्-आदेश और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **माण्डव्यः**। यहां 'मण्डु' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।२।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **शङ्कव्यम्**। यहां 'शङ्कु' शब्द से **'उगवादिभ्यो यत्'** (५।१।२) से हित-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'पिचु' शब्द से 'पिचव्यः, कमण्डलु' शब्द से-**कमण्डलव्या**, 'परशु' शब्द से-**परशव्यम्**।*

*(४) **औपगवः**। यहां 'उपगु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'कपटु' शब्द से-**कापटवः**।*

उकार-लोपः-

(१६) ढे लोपोऽकद्र्वाः।१४७।

प०वि०-ढे ७।१ लोपः १।१ अकद्र्वाः ६।१।

स०-न कद्रूरिति अकद्रूः, तस्याः-अकद्र्वाः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, तद्धिते, ओरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकद्र्वा ओर्भस्य अङ्गस्य तद्धिते ढे लोपः।

अर्थः-कद्रूशब्दवर्जितस्य उकारान्तस्य भस्य अङ्गस्य तद्धिते ढे प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-कमण्डल्वा अपत्यम्-कामण्डलेयः। शीतबाह्वा अपत्यम्-शैतबाहेयः। जम्ब्वा अपत्यम्-जाम्ब्वेयः। मद्रबाह्वा अपत्यम्-माद्रबाहेयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकद्र्वाः) कद्रू शब्द से भिन्न (ओः) उकारान्त (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ढे) ढ-प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**कामण्डलेयः।** कमण्डलू नामक पशुविशेष का पुत्र। **शैतबाहेयः।** शीतबाहू नामक पशुविशेष का पुत्र। **जाम्ब्वेयः।** जम्बू=गीदड़ी का बच्चा। **माद्रबाहेयः।** मद्रबाहू नामक स्त्री का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **कामण्डलेयः।** कमण्डलू+ढञ्। कमण्डलू+ढ। कामण्डलू+एय। कामण्डल्+एय। कामण्डलेय+सु। कामण्डलेयः।*

*यहां चतुष्पादवाची उकारान्त 'कमण्डलू' शब्द से '**चतुष्पाद्भ्यो ढञ्**' (४।१।१३५) से अपत्य-अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय है। 'ढ' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'कमण्डलू' शब्द के अन्त्य ऊकार का लोप होता है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अङ्ग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-शैतबाहेयः, जाम्ब्वेयः।*

*(२) **माद्रबाहेयः।** यहां 'मद्रबाहू' शब्द से '**स्त्रीभ्यो ढक्**' (४।१।१२०) से 'ढक्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*'अकद्र्वाः' का कथन इसलिये है कि यहां ऊकार का लोप न हो-**काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत्।** कद्रू=कश्यप ऋषि की पत्नी के पुत्र ने मन्त्र का दर्शन किया।*

इकार-अकारलोपः—

(२०) यस्येति च।१४८।

प०वि०-यस्य ६।१ ईति ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-इश्च अश्च एतयोः समाहारः-यम्, तस्य-यस्य (इ+अ=य)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, तद्धिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यस्य भस्य अङ्गस्य ईति तद्धिते च लोपः।

अर्थः-यस्य=इकारान्तस्य अकारान्तस्य च भस्य अङ्गस्य ईकारे तद्धिते च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-इकारान्तस्य ईकारे-दक्षस्य अपत्यं स्त्री-दाक्षी। प्लाक्षी। सखी। **इकारान्तस्य तद्धिते**-दुलेरपत्यम्-दौलेयः। वालेयः। आत्रेयः। **अकारान्तस्य ईकारे**-कुमारी। गौरी। शाङ्गर्रवी। **अकारान्तस्य तद्धिते**-दक्षस्य अपत्यम्-दाक्षिः। प्लाक्षिः। चौडिः। बालाकिः। सौमित्रिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यस्य) इकारान्त और अकारान्त (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (ईति) ईकार (च) और (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**इकारान्त का ईकार परे होने पर-दाक्षी।** दक्ष की पुत्री। पाणिनि मुनि की माता का नाम। **प्लाक्षी।** प्लक्ष की पुत्री। **सखी।** सहेली। **इकारान्त का तद्धित परे होने पर-दौलेयः।** दुलि का पुत्र। **वालेयः।** वालि का पुत्र। **आत्रेयः।** अत्रि का पुत्र। **अकारान्त का ईकार परे होने पर-कुमारी।** कन्या। **गौरी।** पार्वती। **शाङ्गर्रवी।** एक ऋषि कन्या का नाम। **अकारान्त का तद्धित परे होने पर-दाक्षिः। प्लाक्षिः। चौडिः। बालाकिः। सौमित्रिः।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**(१) दाक्षी।** दाक्षि+ङीप्। दाक्षि+ई। दाक्ष्+ई। दाक्षी+सु। दाक्षी।*

*यहां 'दाक्षि' शब्द से **'इतो मनुष्यजातेः'** (४।१।६५) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय है। ईकार परे होने पर इस सूत्र से 'दाक्षि' के अन्त्य इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्लाक्षी।***

*(२) **सखी।** यहां 'सखि' शब्द से **'सख्यशिश्वीति भाषायाम्'** (४।१।६२) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **दौलेयः।** दुलि+ढक्। दुलि+ढ। दौलि+एय। दौल्+एय। दौलेय+सु। दौलेयः।*

*यहां 'दुलि' शब्द से **'इतश्चानिञः'** (४।१।१२२) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है। तद्धित 'ढक्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'दुलि' के अन्त्य इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वालेयः, आत्रेयः।***

*(४) **कुमारी।** कुमार+ङीप्। कुमार+ई। कुमार्+ई। कुमारी+सु। कुमारी।*

*यहां 'कुमार' शब्द से **'वयसि प्रथमे'** (४।१।२०) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **गौरी।** यहां 'गौर' शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्गमें 'ङीष्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(६) शाङ्गरवी। यहां 'शाङ्गरव' शब्द से 'शाङ्गरवाद्यञो ङीन्' (४।१।७३) स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) दाक्षिः। दक्ष+इञ्। दक्ष+इ। दाक्ष्+इ। दाक्षि+सु। दाक्षिः।

यहां 'दक्ष' शब्द से 'अत इञ्' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। तद्धित 'इञ्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'दक्ष' के अन्त्य अकार का लोप होता है। ऐसे ही-प्लाक्षिः, चौडिः।

(८) बालाकिः। यहां 'बलाका' शब्द से 'बाह्वादिभ्यश्च' (४।१।९६) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'सुमित्रा' शब्द से-सौमित्रिः।

उपधा-लोपः--

(२१) सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः।१४६।

प०वि०-सूर्य-तिष्य-अगस्त्य-मत्स्यानाम् ६।३ (सम्बन्धषष्ठी) यः ६।१ उपधायाः ६।१।

स०-सूर्यश्च तिष्यश्च अगस्त्यश्च मत्स्यश्च ते सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्याः, तेषाम्-सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, तद्धिते, ईति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां भानाम् अङ्गानाम् उपधाया य ईति तद्धिते च लोपः।

अर्थः-सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां भसंज्ञकानाम् अङ्गानाम् उपधाभूतस्य यकारस्य ईकारे तद्धिते च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(**सूर्यः**) सूर्येण एकदिक्-सौरी बलाका। (**तिष्यः**) तिष्येण युक्तम्-तैष्यम् अहः। तैषी रात्रिः। (**अगस्त्यः**) अगस्त्यस्य अपत्यं स्त्री-आगस्ती। आगस्त्या अयम्-आगस्तीयः। (**मत्स्यः**) मत्सी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानाम्) सूर्य, तिष्य, अगस्त्य, मत्स्य-सम्बन्धी (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों के (उपधायाः) उपधाभूत (यः) यकार का (ईति) ईकार और (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**(सूर्य) सौरी बलाका।** सूर्य के एकदिक्=समान दिशावाली बगुलों की पंक्ति। **(तिष्य) तैष्यम् अहः।** तिष्य नक्षत्र से युक्त दिन। तिष्य=पुष्य नक्षत्र। **(अगस्त्य) आगस्ती।** अगस्त्य ऋषि की पुत्री। **आगस्तीयः।** अगस्त्य की दिशा (दक्षिण) में होनेवाला। **(मत्स्य) मत्सी।** मछली।*

*सिद्धि-(१) **सौरी।** सूर्य+अण्। सूर्य+अ। सौर्य्+अ। सौर्य।। सौर्य+ङीप्। सौर्य+०ङीप्। सौर्य+ई। सौय्+ई। सौर्०+ई। सौरी+सु। सौरी।*

*यहां प्रथम 'सूर्य' शब्द से **'तेनैकदिक्'** (४।३।११२) से एकदिक्=समान दिशा-अर्थ में तद्धित 'अण्' प्रत्यय है। 'अण्' प्रत्यय परे होने पर 'सूर्य' शब्द के अकार का **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से लोप होता है। तत्पश्चात् अणन्त 'सौर्य' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय है। ईकार परे होने पर इस सूत्र सूर्यसम्बन्धी 'सौर्य' शब्द के उपधाभूत यकार का लोप होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अकार का लोप भी होती है। **'असिद्धवदत्राभात्'** (६।४।२२) से इसे असिद्ध मानकर 'यकार' उपधाभूत होता है।*

*(२) **तैषम्।** तिष्य+अण्। तिष्य+अ। तिष्य्+अ। तैष्+अ। तैष+सु। तैषम्।*

*यहां 'तिष्य' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४।२।३) से युक्त-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। स्त्रीलिङ्ग में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय है-**तैषी रात्रिः।***

*(३) **आगस्ती।** यहां अगस्त्य' शब्द से **'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'** (४।१।११४) से ऋषि-अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग में पूर्ववत् 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'आगस्ती' शब्द से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) से शैषिक भव-अर्थ में 'छ' प्रत्यय होकर-**आगस्तीयः।***

*(४) **मत्सी।** मत्स्य+ङीष्। मत्स्य+ई। मत्स्य्+ई। मत्स्+ई। मत्सी+सु। मत्सी।*

*यहां 'मत्स्य' शब्द से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से 'ङीष्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उपधा-लोपः-

(२२) हलस्तद्धितस्य।१५०।

प०वि०-हलः ५।१ तद्धितस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, ईति, यः, उपधाया इति चानुवर्तते। 'तद्धिते' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-भस्य अङ्गस्य हलस्तद्धितस्य उपधाया य ईति लोपः।

अर्थः-भसंज्ञकस्य अङ्गस्य हल उत्तरस्य तद्धितस्य उपधाभूतस्य यकारस्य ईकारे लोपो भवति।

उदा०-गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री-गार्गी। वात्सी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (हल:) हल् से परे (तद्धितस्य) तद्धित-प्रत्यय के (उपधायाः) उपधाभूत (यः) यकार का (ईति) ईकार परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**गार्गी।** गर्ग की पौत्री। **वात्सी।** वत्स की पौत्री।*

सिद्धि-गार्गी। *गर्ग+यञ्। गर्ग+य। गार्ग्+य। गार्ग्य+ङीप्। गार्ग्य+ई। गार्ग्य्+ई। गार्ग्+ई। गार्गी+सु। गार्गी।*

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'गार्ग्य' शब्द से **'यञश्च'** (४।१।१६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से हल् (र्) से उत्तरवर्ती तद्धित-प्रत्यय के उपधाभूत यकार का ईकार परे होने पर लोप होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से जो अकार का लोप होता है इसे **'असिद्धवदत्राभात्'** (६।४।२२) से असिद्ध मानकर तद्धित-यकार उपधाभूत होता है। ऐसे ही 'वत्स' शब्द से-**वात्सी।***

उपधा-लोपः--

(२३) आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति।१५१।

प०वि०-आपत्यस्य ६।१ च अव्ययपदम्, तद्धिते ७।१ अनाति ७।१।

तद्धितवृत्तिः-अपत्यस्य इदमिति आपत्यम्, तस्य-आपत्यस्य। **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) इति इदमर्थेऽण् प्रत्ययः।

स०-न आत् इति अनात्, तस्मिन्-अनाति (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, यः, उपधायाः, हल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भस्य अङ्गस्य हल आपत्यस्य उपधाया योऽनाति तद्धिते लोपः।

अर्थः-भसंज्ञकस्य अङ्गस्य हल उत्तरस्य आपत्यस्य=अपत्यसम्बन्धिन उपधाभूतस्य यकारस्य आकारादिवर्जिते तद्धिते प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-गर्गाणां समूहः-गार्गकम्। वात्सकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (हलः) हल् से उत्तरवर्ती (आपत्यस्य) आपत्य-अर्थसम्बन्धी (उपधायाः) उपधाभूत (यः) यकार का (अनाति) आकार आदि से भिन्न (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**गार्गकम्।** गार्ग्यों का समूह। **वात्सकम्।** वात्स्यों का समूह।*

*सिद्धि-**गार्गकम्।** गर्ग+यञ्। गर्ग+य। गार्ग्+य। गार्ग्य+वुञ्। गार्ग्य+वु। गार्ग्य+अक। गार्ग्य्+अक। गार्ग्+अक। गार्गक+सु। गार्ग+अम्। गार्गकम्।*

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् गोत्रप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शब्द से **'गोत्रोक्षोष्ट्र०'** (४।२।३८) से समूह-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश होता है। इस सूत्र से हल् (र्) से उत्तरवर्ती, अपत्यसम्बन्धी, उपधाभूत यकार का लोप होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से जो अकार का लोप होता है इसे **'असिद्धवदत्राभात्'** (६।४।२२) से असिद्ध मानकर यकार उपधाभूत होता है। ऐसे ही 'वत्स' शब्द से-**वात्सकम्।***

उपधालोपः-

(२४) क्यच्व्योश्च।१५२।

प०वि०-क्य-च्व्योः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-क्यश्च च्विश्च तौ क्यच्वी, तयोः-क्यच्व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, यः, उपधायाः, हल, आपत्यस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भस्य अङ्गस्य हल आपत्यस्य उपधाया यः क्यच्व्योश्च लोपः।

अर्थः-भसंज्ञकस्य अङ्गस्य हल उत्तरस्य आपत्यस्य=अपत्यसम्बन्धिन उपधाभूतस्य यकारस्य क्ये च्वौ प्रत्यये च परतो लोपो भवति।

उदा०-(क्यः) आत्मनो गार्ग्यमिच्छति-गार्गीयति। वात्सीयति (क्यच्)। गार्ग्य इवाचरति-गार्गायते। वत्सायते (क्यङ्)। **(च्विः)** अगार्ग्यो गार्ग्यो भूत इति-गार्गीभूतः। वात्सीभूतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (हलः) हल् से उत्तरवर्ती (आपत्यस्य) अपत्य-अर्थसम्बन्धी (उपधायाः) उपधाभूत (यः) यकार का (क्यच्व्योः) क्य और च्वि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(क्य) **गार्गीयति।** अपने गार्ग्य की इच्छा करता है। **वात्सीयति।** अपने गार्ग्य की इच्छा करता है। (क्यच्)। **गार्गायते।** गार्ग्य के समान आचरण करता है। **वत्सायते।** वात्स्य के समान आचरण करता है (क्यङ्)। (च्वि) **गार्गीभूतः।** जो गार्ग्य नहीं है वह गार्ग्य बना हुआ है। **वात्सीभूतः।** जो वात्स्य नहीं है वह वात्स्य बना हुआ है।*

सिद्धि-(१) गार्गीयति। गार्ग्य+क्यच्। गार्ग्य+य। गार्ग् ई+य। गार्ग्०ई+य। गार्गीय+लट्। गार्गीयति।

*यहां प्रथम 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् गोत्रप्रत्ययान्त 'गार्ग्य' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'हल्' (र्) से उत्तरवर्ती, अपत्यसम्बन्धी उपधाभूत 'यकार' का लोप होता है। **'क्यचि च'** (७।४।३३) से अकार को ईकार आदेश होता है। ऐसे ही-**वात्सीयति**।*

*(२) **गार्गायते**। यहां उपमानवाची 'गार्ग्य' शब्द से आचार-अर्थ में **'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च'** (३।१।११) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से अकार को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वात्सायते**।*

*काशिकावृत्ति में **गार्गीयते, वात्सीयते** यह अपपाठ है।*

*(३) **गार्गीभूतः**। यहां 'गार्ग्य' शब्द से **'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) से अभूत तद्भाव अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय है। **'अस्य च्वौ'** (७।४।३२) से अकार को ईकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छस्य लुक्–

(२५) बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्।१५३।

प०वि०-बिल्वक-आदिभ्यः ५।३ छस्य ६।१ लुक् १।१।

स०-बिल्वक आदिर्येषां ते बिल्वकादयः, तेभ्यः-बिल्वकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, तद्धिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बिल्वकादिभ्यो भस्य अङ्गस्य छस्य तद्धिते लुक्।

अर्थः-बिल्वकादिभ्य उत्तरस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य छ-प्रत्ययस्य तद्धिते प्रत्यये परतो लुग् भवति।

उदा०-बिल्वा यस्यां सन्तीति-बिल्वकीया। बिल्वकीयायां भवाः-बिल्वकाः। वेणुकीया-वैणुकाः। वेत्रकीया-वैत्रकाः। वेतसकीया-वैतकाः। तृणकीया-तार्णकाः। इक्षुकीया-ऐक्षुकाः। काष्ठकीया-काष्ठकाः। कपोतकीया-कापोतकाः।

नडादिषु (४।१।९९) बिल्वादयः शब्दाः पठ्यन्ते। तेषां च **'नडादीनां कुक् च'** (४।२।९१) इति कुगागमो विधीयते। ते चात्र सकुगामा बिल्वकादयः शब्दा गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बिल्वकादिभ्यः) बिल्वक आदि शब्दों से परे जो (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग (छस्य) छ-प्रत्यय है उसका (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-बिल्व जिस वाटिका में वह-बिल्वकीया। उस बिल्वकीया वाटिका में होनेवाले वृक्ष आदि-**बैल्वकाः**। ऐसे ही-**वैणुकाः** आदि। शेष उदाहरण संस्कृतभाग में देख लेवें।*

सिद्धि-बिल्वकाः। *बिल्व+छ। बिल्व+ईय। बिल्व+कुक्+ईय। बिल्व+क्+ईय। बिल्वकीय+अण्। बिल्वकीय+अ। बैल्व्0+अ। बैल्व+जस्। बैल्वाः।*

*यहां प्रथम 'बिल्व' शब्द से **'उत्करादिभ्यश्छः'** (४।२।९०) से चातुरर्थिक 'छ' प्रत्यय है। **'नडादीनां कुक् च'** (४।२।९१) से 'कुक्' आगम होता है। तत्पश्चात् **'तत्र भवः'** (४।३।५३) से प्राग्दीव्यतीय तद्धित 'अण्' प्रत्यय है। इस 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'छ' (ईय) प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही-**वैणुकाः** आदि।*

तृ-लोपः-

(२६) तुरिष्ठेमेयस्सु।१५४।

प०वि०-तुः ६।१ इष्ठ-इम-ईयस्सु ७।३।

स०-इष्ठश्च इमा च ईयाँश्च ते इष्ठेमेयांसः, तेषु इष्ठेमेयस्सु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तुर्भस्य अङ्गस्य इष्ठेमेयस्सु लोपः।

अर्थः-तुः=तृ इत्येतस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो लोपो भवति।

उदा०-(इष्ठन्) आसुतिं करिष्ठः (ऋ० ७।९७।७)। विजयिष्ठः। वहिष्ठः। **(ईयसुन्)** दोहीयसी धेनुः। इमनिज्ग्रहणमुत्तरार्थम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(तुः) 'तृ' इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-(इष्ठन्) आसुतिं करिष्ठः (ऋ० ७।९७।७)। करिष्ठः=बहुतों में अतिशयकर्ता। विजयिष्ठः। वहिष्ठः। (इमनिच्) इसका उदाहरण नहीं है। (ईयसुन्) **दोहीयसी धेनुः।** दोनों में से अधिक दूध देनेवाली गौ। 'इमनिच्' का ग्रहण उत्तरार्थ है।*

सिद्धि-(१) करिष्ठः। कृ+तृच्। कृ+तृ। कर्+तृ। कर्तृ+इष्ठन्। कर्तृ+इष्ठ। कर्०+इष्ठ। करिष्ठ+सु। करिष्ठः।

*यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से **'ण्वुलतृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'कर्तृ' शब्द से **'तुश्छन्दसि'** (५।३।५९) से अतिशायन अर्थ में 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'कर्तृ' के 'तृ' का लोप होता है।*

*(२) **दोहीयसी।** दुह्+तृच्। दोह्+तृ। दोह्+तृ+ईयसुन्। दोह्+ईयस्। दोहीयस्+ङीप्। दोहीयस्+ई। दोहीयसी+सु। दोहीयसी।*

*यहां प्रथम **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'तुश्छन्दसि'** (५।३।५९) से अतिशायन अर्थ में 'ईयसुन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'दोह्+तृ' के 'तृ' का लोप होता है। पुनः प्रत्यय के उगित् होने से **'उगितश्च'** (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

विशेषः *तृ-अन्त शब्दों से 'तुश्छन्दसि' (५।३।५९) से अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों का विधान किया गया है, इष्ठन् का नहीं। अतः यह 'इष्ठन्' प्रत्यय का उदाहरण सम्भव नहीं है। 'इष्ठन्' का ग्रहण उत्तरार्थ किया गया है।*

टि-लोपः-

(२७) टेः।१५५।

वि०-टेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भस्य अङ्गस्य टेरिष्ठेमेयस्सु लोपः।

अर्थः-भसंज्ञकस्य अङ्गस्य टेरिष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो लोपो भवति।

उदा०-**(इष्ठन्)** पटिष्ठः, लघिष्ठः। **(इमनिच्)** पटिमा, लघिमा। **(ईयसुन्)** पटीयान्, लघीयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (टेः) टि-भाग का (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(इष्ठन्) **पटिष्ठः।** बहुतों में पटु (चतुर)। **लघिष्ठः।** बहुतों में लघु (छोटा)। (इमनिच्) **पटिमा।** चतुरता। **लघिमा।** लघुता। (ईयसुन्) **पटीयान्।** दो में से चतुर। **लघीयान्।** दो में से लघु।*

सिद्धि-(१) पटिष्ठः। पटु+इष्ठन्। पटु+इष्ठ। पट्+इष्ठ। पटिष्ठ+सु। पटिष्ठः।

*यहां 'पटु' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से अतिशायन (प्रकर्ष) अर्थ में 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'पटु' के टि-भाग (उ) का लोप होता है। ऐसे ही-**लघिष्ठः।***

*(२) **पटिमा।** यहां 'पटु' शब्द से **'पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा'** (५।१।१२२) से भाव-अर्थ में 'इमनिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**लघिमा।***

*(३) **पटीयान्।** यहां 'पटु' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**लघीयान्।***

यणादिपरस्य लोपः-

(२८) स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः।१५६।

प०वि०-स्थूल-दूर-युव-ह्रस्व-क्षिप्राणाम् ६।३ यणादिपरम् १।१ पूर्वस्य ६।१ च अव्ययपदम्, गुणः १।१।

स०-स्थूलं च दूरं च युवा च ह्रस्वश्च क्षिप्रं च, क्षुद्रश्च ते स्थूल०क्षुद्राः, तेषाम्-स्थूल०क्षुद्राणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यण् आदि यस्य तद् यणादि, यणादि च अदः परं च इति यणादिपरम् (बहुव्रीहिगर्भित-कर्मधारयः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, लोपः, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां भानाम् अङ्गानां इष्ठेमेयस्सु यणादिपरं लोपः, पूर्वस्य च गुणः।

अर्थः-स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां भसंज्ञकानाम् अङ्गानाम् इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो यणादि परस्य भागस्य लोपो भवति, पूर्वस्य च गुणो भवति।

उदा०-(स्थूलम्) स्थविष्ठः (इष्ठन्)। स्थवीयान् (ईयसुन्)। **(दूरम्)** दविष्ठः (इष्ठन्)। दवीयान् (ईयसुन्)। **(युवन्)** यविष्ठः (इष्ठन्)। यवीयान् (ईयसुन्)। **(ह्रस्वः)** ह्रसिष्ठः (इष्ठन्)। ह्रसिमा (इमनिच्)। ह्रसीयान् (ईयसुन्)। **(क्षिप्रम्)** क्षेपिष्ठः (इष्ठन्)। क्षेपिमा (इमनिच्)।

क्षेपीयान् (ईयसुन्)। (क्षुद्रः) क्षोदिष्ठः (इष्ठन्)। क्षोदिमा (इमनिच्)। क्षोदीयान् (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्थूल०क्षुद्राणाम्) स्थूल, दूर, युवन्, ह्रस्व, क्षिप्र, क्षुद्र इन (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों के (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (यणादिपरम्) परवर्ती यणादि भाग का (लोपः) लोप होता है (च) और उस यणादि से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती इक् को (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(स्थूल) **स्थविष्ठः**। बहुतों में अति स्थूल (मोटा)। **स्थवीयान्**। दो में अति स्थूल। (दूर) **दविष्ठः**। बहुतों में अति दूर। **दवीयान्**। दो में अति दूर। (युवन्) **यविष्ठः**। बहुतों में अति युवा (जवान)। **यवीयान्**। दो में अति युवा। (ह्रस्व) **ह्रसिष्ठः**। बहुतों में अति ह्रस्व (छोटा)। **ह्रसिमा**। ह्रस्वभाव (छोटापन)। **ह्रसीयान्**। दो में अति ह्रस्व। (क्षिप्र) **क्षेपिष्ठः**। बहुतों में अति क्षिप्र (शीघ्र)। **क्षेपिमा**। शीघ्रता। **क्षेपीयान्**। दो में अति शीघ्र। (क्षुद्र) **क्षोदिष्ठः** बहुतों में अति क्षुद्र (छोटा)। **क्षोदिमा**। क्षुद्रता (छोटापन)। **क्षोदीयान्** दो में अति क्षुद्र (छोटा)।*

*सिद्धि-(१) **स्थविष्ठः**। स्थूल+इष्ठन्। स्थूल+इष्ठ। स्थू०+इष्ठ। स्थो+इष्ठ। स्थव्+इष्ठ। स्थविष्ठ+सु। स्थविष्ठः।*

*यहां 'स्थूल' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'स्थूल' के परवर्ती यणादि भाग (ल् अ) का लोप होता है और यणादि से पूर्ववर्ती इक् (ऊ) को गुण होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से 'अव्' आदेश है। ऐसे ही- 'दविष्ठः' आदि।*

*(२) **स्थवीयान्**। यहां स्थूल शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे०'** (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- **'दवीयान्'** आदि।*

*(३) **ह्रसिमा**। ह्रस्व+इमनिच्। ह्रस्व+इमन्। ह्रस्०+इमन्। ह्रसिमन्+सु। ह्रसिमा।*

*यहां 'ह्रस्व' शब्द से **'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'** (५।१।१२२) से भाव-अर्थ में 'इमनिच्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'ह्रस्व' के परवर्ती यणादि भाग का लोप होता है। ऐसे ही-**क्षेपिमा, क्षोदिमा**। ह्रस्व, क्षिप्र, क्षुद्र ये शब्द पृथ्वादिगण में पठित हैं, अतः इन से **'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'** (५।१।१२२) से 'इमनिच्' प्रत्यय होता है।*

प्रियादीनां प्रादय आदेशाः-

(२६) प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रप्द्राघिवृन्दाः।१५७।

प०वि०- प्रिय-स्थिर-स्फिर-उरु-बहुल-गुरु-वृद्ध-तृप्र-दीर्घ-वृन्दार-काणाम् ६।३ प्र-स्थ-स्फ-वर्-बंहि-गर्-वर्षि-त्रप्-द्राघि-वृन्दाः १।३।

स०-प्रियं च स्थिरं च स्फिरं च उरु च बहुलं च गुरु च वृद्धं च तृप्रं च दीर्घं च वृन्दारकश्च ते प्रिय०वृन्दारका:, तेषाम्-प्रिय०वृन्दारकाणाम्। प्रश्च स्थश्च स्फश्च वर् च बंहिश्च गर् च वर्षिश्च त्रप् च द्राघिश्च वृन्दश्च ते-प्र०वृन्दा: ।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वय:-प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां भानाम् अङ्गानाम् इष्ठेमेयस्सु प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रपद्राघिवृन्दा: ।

अर्थ:-प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां भसंज्ञकानाम् अङ्गानां स्थाने इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो यथासंख्यं प्रस्थस्फवर्बंहिगर्-वर्षित्रपद्राघिवृन्दा आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**-

	स्थानी	आदेश:	प्रत्यय:	शब्दरूपम्	भाषार्थ:
(१)	प्रियम्	प्र:	इष्ठन्	प्रेष्ठ:	बहुतों में अति प्रिय।
			इमनिच्	प्रेमा	प्रेमभाव।
			ईयसुन्	प्रेयान्	दो में अति प्रिय।
(२)	स्थिरम्	स्थ:	इष्ठन्	स्थेष्ठ:	बहुतों में अति स्थिर।
			इमनिच्	× ×	× × × ×
			ईयसुन्	स्थेयान्	दो में अति स्थिर।
(३)	स्फिरम्	स्फ:	इष्ठन्	स्फेष्ठ:	बहुतों में अति स्फिर (विशाल)।
			इमनिच्	× ×	× × × ×
			ईयसुन्	स्फेयान्	दो में अति स्फिर (विशाल)।
(४)	उरु	वर्	इष्ठन्	वरिष्ठ:	बहुतों में अति उरु (महान्)।
			इमनिच्	वरिमा	उरुता (महिमा)।
			ईयसुन्	वरीय:	दो में अति उरु (महान्)।
(५)	बहुलम्	बंहि:	इष्ठन्	बंहिष्ठ:	बहुतों में अति बहुल (अधिक)।
			इमनिच्	बंहिमा	बहुलता (अधिकता)।
			ईयसुन्	बंहीय:	दो में अति बहुल (अधिक)।

स्थानी	आदेशः	प्रत्ययः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(६) गुरु	गर्	इष्ठन्	गरिष्ठः	बहुतों में अति गुरु (भारी)।
		इमनिच्	गरिमा	गुरुता (भारीपन)।
		ईयसुन्	गरीयः	दो में अति गुरु (भारी)।
(७) वृद्धम्	वर्षिः	इष्ठन्	वर्षिष्ठः	बहुतों में अति वृद्ध (बड़ा)।
		इमनिच्	× ×	× × × ×
		ईयसुन्	वर्षीयान्	दो में अति वृद्ध (बड़ा)।
(८) तृप्रम्	त्रप्	इष्ठन्	त्रपिष्ठः	बहुतों में अति तृप्र (सन्तुष्ट)।
		इमनिच्	× ×	× × × ×
		ईयसुन्	त्रपीयान्	दो में अति तृप्र (सन्तुष्ट)।
(९) दीर्घम्	द्राघिः	इष्ठन्	द्राघिष्ठः	बहुतों में अति दीर्घ (लम्बा)।
		इमनिच्	द्राघिमा	दीर्घता (लम्बाई)।
		ईयसुन्	द्राघीयान्	दो में अति दीर्घ (लम्बा)।
(१०) वृन्दारकः	वृन्दः	इष्ठन्	वृन्दिष्ठः	बहुतों में अति वृन्दारक (पूज्य)।
		इमनिच्	× ×	× × × ×
		ईयसुन्	वृन्दीयान्	दो में अति वृन्दारक (पूज्य)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रिय०वृन्दारकाणाम्) प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ, वृन्दारक इन (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्गों के स्थान में (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (प्र०वृन्दाः) प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि, वृन्द आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृतभाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **प्रेष्ठः**। प्रिय+इष्ठन्। प्रिय+इष्ठ। प्र+इष्ठ। प्रेष्ठ+सु। प्रेष्ठः।*

*यहां 'प्रिय' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से अतिशायन (प्रकर्ष) अर्थ में 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'प्रिय' को 'प्र' आदेश होता है। ऐसे ही- **'स्थेष्ठः'** आदि।*

*(२) **प्रेयान्**। यहां 'प्रिय' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'प्रिय' को 'प्र' आदेश होता है। ऐसे ही- **'स्थेयान्'** आदि।*

*(३) **प्रेमा।** यहां 'प्रिय' शब्द से '**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा**' (५।१।१२२) से 'इमनिच्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'प्रिय' को 'प्र' आदेश होता है। ऐसे ही-**वरिमा, बंहिमा, द्राघिमा।***

*प्रिय, उरु, बहुल और दीर्घ शब्द पृथ्वादिगण में पठित हैं अत: इने '**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा**' (५।१।१२२) से भाव-अर्थ में 'इमनिच्' प्रत्यय होता है, शेष शब्दों से नहीं।*

इष्ठेमेयस्साम् आदिलोपः–

(३०) बहोर्लोपो भू च बहोः।१५८।

प०वि०-बहो: ५।१ लोप: १।१ भू १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, बहो: ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहोर्भाद् अङ्गाद् इष्ठेमेयसां लोप:, बहोश्च भू:।

अर्थः-बहोरित्यस्माद् भसंज्ञकाद् अङ्गाद् उत्तरेषाम् इष्ठेमेयसां प्रत्ययानाम् आदिलोपो भवति, बहोश्च स्थाने भूरादेशो भवति।

उदा०-(इमनिच्) भूमा। **(ईयसुन्)** भूयान्। अग्रे इष्ठस्य यिडागमं वक्ष्यति (६।४।१५९)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहो:) बहु इस (भात्) भ-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (इष्ठेमेयसाम्) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्ययों के आदिम वर्ण का (लोप:) लोप होता है (च) और (बहो:) बहु के स्थान में (भू:) भू आदेश होता है।*

*उदा०-**(इमनिच्) भूमा।** बहुता (अधिकता)। **(ईयसुन्) भूयान्।** दोनों से बहु (अधिक)।*

*पाणिनि मुनि आगे '**इष्ठस्य यिट् च**' (६।४।१५९) से 'इष्ठ' को 'यिट्' आगम का विधान करेंगे अत: यहां 'इष्ठन्' का उदाहरण नहीं दिया है।*

***सिद्धि**-(१) **भूमा।** बहु+इमनिच्। बहु+इमन्। भू+इमन्। भू+०मन्। भूमन्+सु। भूमा।*

*यहां 'बहु' शब्द से '**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा**' (५।१।१२२) से 'इमनिच्' प्रत्यय है। 'बहु' शब्द से उत्तरवर्ती इस प्रत्यय के इस सूत्र में आदिवर्ण (इ) का लोप होता है। '**आदे: परस्य**' (१।१।५४) के नियम से 'इयसुन्' प्रत्यय के आदिम वर्ण का लोप किया जाता है। 'बहु' के स्थान में 'भू' आदेश भी होता है।*

*(२) **भूयान्।** बहु+ईयसुन्। बहु+ईयस्। भू+०यस्। भूयस्+सु। भूयान्।*

*यहां 'बहु' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) 'ईयसुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

यिट्-आगमः–

(३१) इष्ठस्य यिट् च।१५६।

प०वि०-इष्ठस्य ६।१ यिट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, बहोः, भूः, बहोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहोर्भाद् अङ्गाद् इष्ठस्य यिट्, बहोश्च भूः।

अर्थः-बहोरित्येतस्माद् भसंज्ञकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य इष्ठन्-प्रत्ययस्य यिडागमो भवति, बहोः स्थाने च भूरादेशो भवति।

उदा०-भूयिष्ठः। भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम (यजु० ४०।१६)

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहोः) बहु इस (भात्) भ-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (इष्ठस्य) इष्ठन् प्रत्यय को (यिट्) यिट् आगम होता है (च) और (बहोः) बहु के स्थान में (भूः) भू आदेश होता है।*

*उदा०-**भूयिष्ठः**। बहुतों में से बहु (अधिक)। **भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।** (यजु० ४०।१६)।*

*सिद्धि-**भूयिष्ठः**। बहु+इष्ठन्। बहु+इष्ठ। बहु+यिट्+इष्ठ। भू+य्+इष्ठ। भूयिष्ठ+सु। भूयिष्ठः।*

*यहां 'बहु' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५७) से 'इष्ठन्' प्रत्यय है। 'बहु' शब्द से उत्तरवर्ती इस प्रत्यय को इस सूत्र से 'यिट्' आगम होता है और 'बहु' को 'भू' आदेश भी होता है। 'यिट्' आगम में इकार उच्चारणार्थ (य्) है।*

आकार-आदेशः–

(३२) ज्यादादीयसः।१६०।

प०वि०-ज्यात् ५।१ आत् १।१ ईयसः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ज्याद् भाद् अङ्गाद् ईयस आत्।

अर्थः-ज्याद् इत्येतस्माद् भसंज्ञकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य ईयसुन्-प्रत्ययस्य आकारादेशो भवति।

उदा०-ज्यायान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ज्यात्) ज्य इस (भात्) भ-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ईयसः) ईयसुन् प्रत्यय को (आत्) आकार आदेश होता है।*

उदा०-ज्यायान्। दो में प्रशस्य (प्रशंसनीय) वृद्ध।

सिद्धि-ज्यायान्। प्रशस्य+ईयसुन्। प्रशस्य+ईयस्। ज्य+ईयस्। ज्य+आ यस्। ज्यायस्+सु। ज्यायान्।

यहां 'प्रशस्य' शब्द से 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। 'ज्य च' (५।३।६१) से 'प्रशस्य' को 'ज्य' आदेश होता है और 'वृद्धस्य च' (५।३।६२) से 'वृद्ध' को भी 'ज्य' आदेश होता है। इस सूत्र से 'ज्य' शब्द से उत्तरवर्ती 'ईयसुन्' प्रत्यय को आकार आदेश होता है और यह 'आदेः परस्य' (१।१।५४) के नियम से 'ईयसुन्' के आदिमवर्ण (ई) के स्थान पर किया जाता है।

र-आदेशः-

(३३) र ऋतो हलादेर्लघोः।१६१।

प०वि०-रः १।१ ऋतः ६।१ हलादेः ६।१ लघोः ६।१।

स०-हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्य-हलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलादेर्लघोर्भस्य अङ्गस्य ऋत इष्ठेमेयस्सु रः।

अर्थः-हलादेर्लघोर्भसंज्ञकस्य अङ्गस्य ऋतः स्थाने इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो रादेशो भवति।

उदा०-**(इष्ठन्)** प्रथिष्ठः। म्रदिष्ठः। **(इमनिच्)** प्रथिमा। म्रदिमा। **(ईयसुन्)** प्रथीयान्। म्रदीयान्।

पृथुं मृदुं भृशं चैव कृशं च दृढमेव च।
परिपूर्वं वृढं चैव षडेतान् रविधौ स्मरेत्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हलादेः) हलादि (लघोः) लघु मात्रावाले (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (ऋतः) ऋकार के स्थान में (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (रः) रकार=र्+अ आदेश होता है।*

*उदा०-(इष्ठन्) **प्रथिष्ठः।** बहुतों में अति पृथु (स्थूल)। **म्रदिष्ठः।** बहुतों में अति मृदु (कोमल)। (इमनिच्) **प्रथिमा।** स्थूलता। **म्रदिमा।** मृदुता (कोमलता)। (ईयसुन्) **प्रथीयान्।** दो में अति पृथु (स्थूल)। **म्रदीयान्।** दो में अति मृदु (कोमल)।*

*सिद्धि-(१) **प्रथिष्ठः।** पृथु+इष्ठन्। पृथु+इष्ठ। पृथ्+इष्ठ। प्रथ्+इष्ठ। प्रथिष्ठ+सु। प्रथिष्ठः।*

*यहां 'पृथु' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर हलादि, लघु 'पृथु' के ऋकार को 'र' (र्+अ) आदेश होता है। टे:' (६।४।५५) से 'पृथु' के टि-भाग (उ) का लोप होता है। ऐसे ही 'मृदु' शब्द से-**म्रदिष्ठ:**।*

*(२) **प्रथिमा**। यहां 'पृथु' शब्द से '**पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा**' (५।१।१२२) से भाव-अर्थ में 'इमनिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'मृदु' शब्द से-**म्रदिमा**।*

*(३) **प्रथीयान्**। यहां 'पृथु' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से अतिशायन अर्थ में 'ईयसुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'मृदु' शब्द से-**म्रदीयान्**।*

***विशेष**: इस र-विधि में वैयाकरण पृथु, मृदु, भृश, कृश और परिवृढ इन छ: शब्दों का स्मरण करते हैं।*

रादेश-विकल्पः—

(३४) विभाषर्जोश्छन्दसि।१६२।

प०वि०-विभाषा १।१ ऋजो: ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, इष्ठेमेयस्सु, र:, ऋत इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि ऋजोर्भस्य अङ्गस्य ऋत इष्ठेमेयस्सु विभाषा र:।

अर्थ:-छन्दसि विषये ऋजोरित्येतस्य भसंज्ञकस्य अङ्गस्य ऋत: स्थाने इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतो विकल्पेन रादेशो भवति।

उदा०-रजिष्ठं नेषि पन्थाम् (ऋ० १।९१।१)। त्वमृजिष्ठ:।

***आर्यभाषा**: **अर्थ**-(छन्दसि) वेदविषय में (ऋजो:) ऋजु इस (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (ऋत:) ऋकार के स्थान में (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (र:) र (र्+अ) आदेश होता है।*

*उदा०-**रजिष्ठं नेषि पन्थाम्** (ऋ० १।९१।१)। रजिष्ठ:=सरलतम। **त्वमृजिष्ठ:**। ऋजिष्ठ:=सरलतम।*

***सिद्धि-रजिष्ठ:**। ऋजु+इष्ठन्। ऋजु+इष्ठ। ऋज्+इष्ठ। रज्+इष्ठ। रजिष्ठ+सु। रजिष्ठ:।*

*यहां 'ऋजु' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से अतिशायन अर्थ में 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'ऋजु' के ऋकार को र-आदेश होता है। टे:' (६।४।१५५) से 'ऋजु' के टि-भाग (उ) का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में 'ऋजु' को र-आदेश नहीं है-**ऋजिष्ठ:**।*

प्रकृतिभावः–

(३५) प्रकृत्यैकाच्।१६३।

प०वि०–प्रकृत्या ३।१ एकाच् १।१।

स०–एकोऽच् यस्मिन् स एकाच् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, इष्ठेमेयस्सु इति चानुवर्तते।

अन्वयः–एकाच् भम् अङ्गम् इष्ठेमेयस्सु प्रकृत्या।

अर्थः–एकाज् यद् भसंज्ञकम् अङ्गम् तद् इष्ठेमेयस्सु प्रत्ययेषु परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०–**(इष्ठन्)** स्रजिष्ठः, स्रुचिष्ठः। **(ईयसुन्)** स्रजीयान्, स्रुचीयन्। **णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य**–स्रजयति, स्रुचयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(एकाच्) एक अच्वाला जो (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग है वह (इष्ठेमेयस्सु) इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०–(इष्ठन्) **स्रजिष्ठः**। बहुतों में अति स्रग्वी (मालाधारी)। **स्रुचिष्ठः**। बहुतों में अति स्रुग्वी। स्रुक्=चमसोंवाला। स्रुक्=यज्ञीय चमस। (ईयसुन्) **स्रजीयान्**। दो में अति स्रुग्वी। **स्रुचीयन्**। दो में अति स्रुग्वी। **णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य**=णिच् प्रत्यय परे होने पर प्रातिपदिक को 'इष्ठन्' प्रत्यय के तुल्य कार्य होता है–**स्रजयति**। वह स्रक्=माला बनाता है। **स्रुचयति**। वह स्रुक्=यज्ञीय चमस बनाता है।*

*सिद्धि–(१) **स्रजिष्ठः**। स्रज्+विनि। स्रज्+विन्। स्रग्विन्+इष्ठन्। स्रग्विन्+इष्ठ। स्रच्०+इष्ठ। स्रजिष्ठ+सु। स्रजिष्ठः।*

*यहां प्रथम 'स्रज्' शब्द से '**अस्मायामेधास्रजो विनिः**' (५।२।१२१) से मतुप्-अर्थ में 'विनि' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'स्रग्विन्' शब्द से '**अतिशायनो तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से अतिशायन अर्थ में 'इष्ठन्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर '**विन्मतोर्लुक्**' (५।३।६५) से 'विन्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। इस स्थिति में एकाच् 'स्रक्' शब्द 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त टि-भाग (अक्) का लोप नहीं होता है।*

*(२) **स्रुचिष्ठः**। यहां प्रथम 'स्रुच्' शब्द से '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **स्रजीयान्**। यहां 'स्रक्' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे०**' (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'स्रुच्' शब्द से–**स्रुचीयान्**।*

*(४) **स्रजयति।** स्रज्+णिच्। स्रज्+इ। स्रजि+लट्। स्रजयति।*

*यहां 'स्रज्' शब्द से वा०- '**तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम्**' (३।१।२६) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। वा० '**णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति वक्तव्यम्**' (६।४।१५५) से 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर भी 'इष्ठन्' प्रत्यय के तुल्य कार्य होता है। अतः यहां भी एकाच् 'स्रज्' शब्द 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से प्रकृतिभाव रहता है अर्थात् 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त टि-भाग (अक्) का लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'स्रुक्' शब्द से-**स्रुचयति।***

प्रकृतिभावः-

(३६) इनण्यनपत्ये।१६४।

प०वि०-इन् १।१ अणि ७।१ अनपत्ये ७।१।

स०-न अपत्यम् इति अनपत्यम्, तस्मिन्-अनपत्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इन् भम् अङ्गम् अनपत्येऽणि प्रकृत्या।

अर्थः-इन्=इन्-अन्तं भसंज्ञकम् अङ्गम् अपत्यवर्जितेऽणि प्रत्यये परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-सांकूटिनं वर्तते। सांराविणं वर्तते। साम्मार्जनं वर्तते। स्रग्विण इदम्-स्राग्विणम्।

*__आर्यभाषाः__ **अर्थ-**(इन्) इन् जिसके अन्त में है वह (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग, (अनपत्ये) अपत्य-अर्थ से भिन्न (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-**सांकूटिनं वर्तते।** सब ओर दहन हो रहा है (आग लगी हुई है)। **सांराविणं वर्तते।** सब ओर शोर हो रहा है। **साम्मार्जनं वर्तते।** सब ओर मार्जन (सफाई) हो रहा है। **स्राग्विणम्।** स्रग्वी=मालाधारी सम्बन्धी पदार्थ।*

*सिद्धि-(१) **सांकूटिनम्।** सम्+कूट+इनुण्। सम्+कुट+इन्। सांकूटिन्+अण्। सांकूटिन्+अ। सांकूटिन+सु। सांकूटिनम्।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक '**कूट परितापे, परिदाहे इत्येके**' (चु०आ०) धातु से भाव **अर्थ में** तथा अभिविधि अर्थ की प्रतीति में '**अभिविधौ भाव इनुण्**' (३।२।१४४) से **'इनुण्' प्रत्यय है।** तत्पश्चात् 'अणिनुणः' (५।४।१५) से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता **है। इस सूत्र से इन्नन्त** 'सांकूटिन्' शब्द, अपत्यार्थ से भिन्न 'अण्' प्रत्यय परे होने पर*

प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् 'नस्तद्धिते' (६ ।४ ।१४४) से प्राप्त टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।

*(२) **सांराविणम्।** 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **साम्मार्जिनम्।** 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **स्राग्विणम्।** यहां प्रथम 'स्रक्' शब्द से 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (५ ।२ ।१२१) से 'विनि' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'स्रग्विन्' शब्द से 'तस्येदम्' (४ ।३ ।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रकृतिभावः–

(३७) गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च।१६५।

प०वि०–गाथि-विदथि-केशि-गणि-पणिनः १ ।३ च अव्ययपदम्।

स०–गाथी च विदथी च केशी च गणी च पणी च ते-गाथिविदथिकेशिगणिपणिनः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या, इन्, अणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गाथिविदथिकेशिगणिपणिन इन भानि अङ्गानि च अणि प्रकृत्या।

अर्थः–गाथिविदथिकेशिगणिपणिन इत्येतानि इन्नन्तानि भसंज्ञकानि अङ्गानि च अणि प्रत्यये परतः प्रकृत्या भवन्ति।

उदा०–**(गाथी)** गाथिनोऽपत्यम्-गाथिनः। **(विदथी)** विदथिनोऽपत्यम्-वैदथिनः। **(केशी)** केशिनोऽपत्यम्-केशिनः। **(गणी)** गणिनोऽपत्यम्-गाणिनः। **(पणी)** पणिनोऽपत्यम्-पाणिनः। अपत्यार्थोऽयमारम्भः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(गाथि०पाणिनः) गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्, पणिन् ये (इन्) अन्-अन्त (भानि) भ-संज्ञक (अङ्गानि) अङ्ग (च) भी (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहते हैं।*

*उदा०-**(गाथी) गाथिनः।** गाथी का पुत्र। **(विदथी) वैदथिनः।** विदथी का पुत्र। **(केशी) केशिनः।** केशी का पुत्र। **(गणी) गाणिनः।** गणी का पुत्र। **(पणी) पाणिनः।** पणी का पुत्र। और पाणिन का पुत्र पाणिनि मुनि है, जिसकी यह 'अष्टाध्यायी' नामक अद्भुत रचना है।*

*सिद्धि-**गाथिनः**। गाथिन्+अण्। गाथिन्+अ। गाथिन+सु। गाथिनः।*

*यहां 'गाथिन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'गाथिन्' शब्द प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप नहीं होता है। ऐसे ही- **'वैदथिनः'** आदि।*

इस सूत्र का आरम्भ अपत्यार्थक 'अण्' प्रत्यय के लिये किया गया है। अनपत्य अर्थ में पूर्वसूत्र से प्रकृतिभाव सिद्ध है।

प्रकृतिभावः-

(३८) संयोगादिश्च।१६६।

प०वि०-संयोगादिः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या, इन्, अणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगादिरिन् भम् अङ्गं च अणि प्रकृत्या।

अर्थः-संयोगादिरिन्नन्तं भसंज्ञकम् अङ्गं च अणि प्रत्यये परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०-शङ्खिनोऽपत्यम्-शाङ्खिनः। मद्रिणोऽपत्यम्-माद्रिणः। वज्रिणोऽपत्यम्-वाज्रिणः। अपत्यार्थोऽयमारम्भः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संयोगादिः) संयोग जिसके आदि में वह (इन्) इन्-अन्त (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग (च) भी (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-**शाङ्खिनः**। शङ्खी का पुत्र। **माद्रिणः**। मद्री का पुत्र। **वाज्रिणः**। वज्री का पुत्र। अपत्य-अर्थ के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया गया है।*

*सिद्धि-**शाङ्खिनः**। शङ्ख+इनि। शङ्ख्+इन्। शङ्खिन्+अण्। शाङ्खिन्+अ। शाङ्खिन+सु। शाङ्खिनः।*

*यहां प्रथम 'शङ्ख' शब्द से **'अत इनिठनौ'** (३।२।११५) से मतुप्-अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'शङ्खिन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर संयोगादि, इन्नन्त 'शङ्खिन्' शब्द इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।११४) से प्राप्त टि-लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'मद्रिन्' शब्द से-**माद्रिणः**, 'वज्रिन्' शब्द से-**वाज्रिणः**।*

प्रकृतिभावः–

(३६) अन्।१६७।

वि०–अन् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या, अणि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अन् भम् अङ्गम् अणि प्रकृत्या।

अर्थः–अन्=अन्नन्तं भसंज्ञकम् अङ्गम् अणि प्रत्यये परतः प्रकृत्या भवति।

उदा०–साम्नोऽपत्यम्–सामनः। वेम्नोऽपत्यम्–वैमनः। सुत्वनोऽपत्यम्–सौत्वनः। जित्वनोऽपत्यम्–जैत्वनः। सामान्येनाण्मात्रेऽपत्येऽनपत्ये चायं विधिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अन्) अन् जिसके अन्त में है वह (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०–**सामनः**। सामा का पुत्र। **वैमनः**। वेमा का पुत्र। **सौत्वनः**। सुत्वा का पुत्र। **जैत्वनः**। जित्वा का पुत्र।*

यह सामान्य से 'अण्' प्रत्ययमात्र अर्थात् अपत्य और अनपत्य अर्थ में विधि है।

***सिद्धि**–(१) **सामनः**। सामन्+अण्। सामन्+अ। सामन+सु। सामनः।*

*यहां 'सामन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (६।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर अन्नन्त 'सामन्' शब्द इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है, अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'वेमन्' शब्द से–**वैमनः**।*

*(२) **सौत्वनः**। यहां प्रथम **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से **'सुयजोर्ङ्वनिप्'** (३।२।१०३) से 'ङ्वनिप्' प्रत्यय है और **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७१) से 'तुक्' आगम होता है। तत्पश्चात् 'सुत्वन्' शब्द से शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **जैत्वनः**। यहां प्रथम **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'** (३।२।७५) से 'क्वनिप्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'तुक्' आगम होता है। तत्पश्चात् 'जित्वन्' शब्द से शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रकृतिभावः–

(४०) ये चाभावकर्मणोः।१६८।

प०वि०–ये ७।१ च अव्ययपदम्, अभावकर्मणोः ७।२।

स०-भावश्च कर्म च ते भावकर्मणी, न भावकर्मणी इति अभावकर्मणी, तयोः-अभावकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या, अन् इति चानुवर्तते। **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) इत्यस्माच्च 'तद्धिते' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः-अन् भम् अङ्गस्य अभावकर्मणोर्ये तद्धिते च प्रकृत्या।

अर्थः-अन्=अन्नन्तं भसंज्ञकम् अङ्गं भावकर्मवर्जिते ये=यकारादौ तद्धिते प्रत्यये परतश्च प्रकृत्या भवति।

उदा०-सामसु साधुः-सामन्यः। वेमनि साधुः-वेमन्यः। अभावकर्मणोरिति किम्-राज्ञो भावः कर्म वा-राज्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अन्) अन् जिसके अन्त में है वह (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग (अभावकर्मणोः) भाव और कर्म अर्थ से भिन्न (ये) यकारादि (तद्धिते) तद्धित प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहता है।*

*उदा०-**सामन्यः**। सामगान में सिद्ध (कुशल)। **वेमन्यः**। वेमा=करघा चलाने में सिद्धहस्त।*

***सिद्धि-सामन्यः**। सामन्+यत्। सामन्+य। सामन्य+सु। सामन्यः।*

*यहां 'सामन्' शब्द से **'तत्र साधुः'** (४।४।९८) से साधु-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। इस 'यत्' प्रत्यय के परे होने पर अन्-अन्त 'सामन्' शब्द प्रकृतिभाव से रहता है, अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'वेमन्' शब्द से-**वेमन्यः**।*

*'अभावकर्मणोः' का कथन इसलिये किया है कि यहां प्रकृतिभाव न हो-**राज्ञो भावः कर्म वा-राज्यम्**। यहां **'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्'** (५।१।१२८) से भाव और कर्म अर्थ में 'यक्' प्रत्यय है।*

प्रकृतिभावः-

(४१) आत्माध्वानौ खे।१६६।

प०वि०-आत्म-अध्वानौ १।२ खे ७।१।

स०-आत्मा च अध्वा च तौ-आत्माध्वानौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आत्माध्वानौ भौ अङ्गौ खे प्रकृत्या।

अर्थः-आत्माध्वानौ भसंज्ञकावङ्गौ खे प्रत्यये परतः प्रकृत्या भवतः।

उदा०-(आत्मन्) आत्मने हित इति आत्मनीनः। (अध्वन्) अध्वानम् अलङ्गामी इति अध्वनीनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आत्माध्वानौ) आत्मन्, अध्वन् ये (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग (खे) ख-प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से रहते हैं।*

*उदा०-**(आत्मन्) आत्मनीनः।** आत्मा के लिये हितकारी। **(अध्वन्) अध्वनीनः।** अध्वा=मार्ग को तय करने में समर्थ।*

*सिद्धि-**(१) आत्मनीनः।** आत्मन्+ख। आत्मन्+ईन। आत्मनीन+सु। आत्मनीनः।*

*यहां 'आत्मन्' शब्द से **'आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः'** (५।१।९) से हित-अर्थ में 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। इस 'ख' प्रत्यय के परे होने पर 'आत्मन्' शब्द इस सूत्र से प्रकृतिभाव से रहता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप नहीं होता है।*

*(२) **अध्वनीनः।** यहां 'अध्वन्' शब्द से **'अध्वनो यत्खौ'** (५।२।१६) से अलङ्गामी-अर्थ में 'ख' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

प्रकृतिभाव-प्रतिषेधः-

(४२) न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः।१७०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, मपूर्वः १।१ अपत्ये ७।१ अवर्मणः ५।१।

स०-मः पूर्वो यस्य सः-मपूर्वः (बहुव्रीहिः)। न वर्मा इति अवर्मा, तस्य-अवर्मणः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, प्रकृत्या, अन् इति चानुवर्तते। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) इत्यस्माच्च 'अणि' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तते।

अन्वयः-अवर्मणो मपूर्वोऽन् भम् अङ्गम् अपत्येऽणि प्रकृत्या न।

अर्थः-वर्मशब्दवर्जितं मपूर्वम् अन्=अन्-अन्तं भसंज्ञकम् अङ्गम् अपत्यार्थेऽणि प्रत्यये परतः प्रकृत्या न भवति।

उदा०-सुषाम्नोऽपत्यम्-सौषामनः। चन्द्रसाम्नोऽपत्यम्-चान्द्रसामनः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अवर्मणः) वर्मन् शब्द से भिन्न (मपूर्वः) मकार जिसके पूर्व में है वह (अन्) अन्=अन्-अन्त (भम्) भ-संज्ञक (अङ्गम्) अङ्ग (अपत्ये) अपत्यार्थक (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर (प्रकृत्या) प्रकृतिभाव से (न) नहीं रहता है।*

*उदा०-**सौषामनः**। सुषामा का पुत्र। **चान्द्रसामनः**। चन्द्रसामा का पुत्र।*

***सिद्धि-सौषामनः**। सुषामन्+अण्। सौषामन्+अ। सौषामण+सु। सौषामणः।*

*यहां 'सुषामन्' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (६।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर मपूर्वी, अन्-अन्त 'सुषामन्' शब्द इस सूत्र से प्रकृतिभाव से नहीं रहता है अर्थात् यहां **'नस्तद्धिते'**(६।४।१४४) से प्राप्त टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'चन्द्रसामन्' शब्द से-**चान्द्रसामनः**।*

निपातनम्–

(४३) ब्राह्मोऽजातौ।१७१।

प०वि०-ब्राह्मः १।१ अजातौ ७।१।

स०-न जातिरिति अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, भस्य, अणि, अपत्ये इति चानुवर्तते।

योगविभागोऽत्र क्रियते–

(क) ब्राह्मः।

अर्थः-'ब्राह्मः' इत्यत्र भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अणि प्रत्यये परतष्टिलोपो निपात्यते।

उदा०-ब्रह्मणोऽयम्-ब्राह्मो गर्भः। ब्रह्मण इदम्-ब्राह्मम् अस्त्रम्। ब्रह्मण इदम्-ब्राह्मं हविः।

(ख) अजातौ।

अनु०-अपत्ये, ब्राह्म इति चानुवर्तते।

अर्थः-'ब्राह्म' इत्यत्र भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अपत्यार्थेऽणिप्रत्यये परतो जातौ टिलोपो न भवति।

उदा०-ब्रह्मणोऽपत्यम्-ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *इस सूत्र में योगविभाग करके अर्थ किया जाता है–*

(क) ब्राह्मः।

अर्थ-(ब्राह्मः) ब्राह्म इस शब्द में (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर टि-लोप निपातित है।

*उदा०-**ब्राह्मो गर्भः**। ब्रह्मा का गर्भ। **ब्राह्मम् अस्त्रम्**। ब्रह्मा का अस्त्र। **ब्राह्मं हविः**। ब्रह्मा की हवि (आहुति)।*

(ख) अजातौ।

*अर्थ-(ब्राह्मः) ब्राह्म इस शब्द में (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (अपत्ये) अपत्य अर्थ में (अणि) अण्-प्रत्यय परे होने पर (अजातौ) जातिविषय में टिलोप नहीं होता है। **ब्राह्मणः।** ब्रह्मा का पुत्र।*

सिद्धि-(१) ब्राह्मः। ब्रह्मन्+अण्। ब्राह्मन्+अ। ब्राह्म+सु। ब्राह्मः।

*यहां 'ब्रह्मन्' शब्द से '**तस्येदम्**' (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर 'ब्रह्मन्' शब्द का टिलोप (अन्) निपातित है। यहां '**अन्**' (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव प्राप्त था।*

*(२) **ब्राह्मणः।** ब्रह्मन्+अण्। ब्राह्मन्+अ। ब्राह्मण+सु। ब्राह्मणः।*

*यहां 'ब्रह्मन्' शब्द से '**तस्यापत्यम्**' (६।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस 'अण्' प्रत्यय के परे होने पर अपत्यार्थक जाति में टि-लोप नहीं होता है, अपितु '**अन्**' (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव होता है। 'अजातौ' यहां पर्युदास प्रतिषेध से जाति में टि-लोप नहीं होता है।*

निपातनम्–

(४४) कार्मस्ताच्छील्ये।१७२।

प०वि०–कार्मः १।१ ताच्छील्ये ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कार्मो भस्य अङ्गस्य ताच्छील्ये णे टिलोपः।

अर्थः–कार्म इत्यत्र भसंज्ञकस्य अङ्गस्य ताच्छील्येऽर्थे णे प्रत्यये परतष्टिलोपो निपात्यते।

उदा०–कर्मशीलमस्य इति कार्मः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कार्मः) कार्म इस शब्द में (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (ताच्छील्ये) शील-अर्थक, ण-प्रत्यय परे होने पर टिलोप निपातित है।*

*उदा०-**कार्मः।** कर्मशील।*

*सिद्धि-**कार्मः।** कर्मन्+ण। कर्मन्+अ। कार्म्+अ। कार्म+सु। कार्मः।*

*यहां 'कर्मन्' शब्द '**छत्रादिभ्यो णः**' (४।४।६२) से शील-अर्थ में 'ण' प्रत्यय है। इस 'ण' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'कर्मन्' शब्द का टि-लोप (अन्) निपातित है, '**अन्**' (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव प्राप्त था।*

निपातनम्–

(४५) औक्षमनपत्ये।१७३।

प०वि०–औक्षम् १।१ अनपत्ये ७।१।

स०–न अपत्यम् इति अनपत्यम्, तस्मिन्–अनपत्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, भस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–औक्षं भस्य अङ्गस्य अनपत्येऽणि टिलोपः।

अर्थः–औक्षम् इत्यत्र भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अपत्यवर्जितेऽणि प्रत्यये परतष्टिलोपो निपात्यते।

उदा०–उक्ष्ण इदम्–औक्षं पदम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(औक्षम्) औक्षम् इस शब्द में (भस्य) भ-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (अनपत्ये) अपत्यार्थ से भिन्न (अणि) अण् प्रत्यय परे होने पर टि-लोप निपातित है।*

उदा०–औक्षं पदम्। उक्षा=बैल का पद (स्थान)।

*सिद्धि–**औक्षम्**। उक्षन्+अण्। औक्षन्+अ। औक्ष्+अ। औक्ष+सु। औक्षम्।*

*यहां 'उक्षन्' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस अपत्यार्थ से भिन्न 'अण्' प्रत्यय है। इस अपत्यार्थ से भिन्न 'अण्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'अक्षन्' शब्द का टि-लोप (अन्) निपातित है, **'अन्'** (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव प्राप्त था।*

निपातनम्–

(४६) दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेय-वासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाक-मैत्रेयहिरण्मयानि।१७४।

प०वि०– दाण्डिनायन-हास्तिनायन-आथर्वणिक-जैह्माशिनेय-वासिनायनि-भ्रौणहत्य-धैवत्य-सारव-ऐक्ष्वाक-मैत्रेय-हिरण्मयानि १।३।

स०–दाण्डिनायनश्च हास्तिनायनश्च आथर्वणिकश्च जैह्माशिनेयश्च वासिनायनिश्च भ्रौणहत्यं च धैवत्यं च सारवं च ऐक्ष्वाकं च मैत्रेयश्च हिरण्मयं च तानि–दाण्डिनायन०हिरण्मयानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-दाण्डिनायनादयः शब्दा निपात्यन्ते। **उदाहरणम्**--

(१) {**दाण्डिनायनः**} दण्डिनो गोत्रापत्यम्-दाण्डिनायनः। दण्डी का पौत्र।

(२) {**हास्तिनायनः**} हस्तिनो गोत्रापत्यम्-हास्तिनायनः। हस्ती का पौत्र।

(३) {**आथर्वणिकः**} अथर्वणा प्रोक्तो ग्रन्थोऽपि उपचाराद् 'अथर्वन्' इत्युच्यते। अथर्वाणमधीयते वेद वा यः सः-आथर्वणिकः। अथर्वा ऋषि द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ का अध्येता/ज्ञाता।

(४) {**जिह्माशिनेयः**} जिह्माशिनोऽपत्यम्-जिह्माशिनेयः। जिह्माशी का पुत्र।

(५) {**वासिनायनिः**} वासिनोऽपत्यम्-वासिनायनः। वासी का पुत्र।

(६) {**भ्रौणहत्यम्**} भ्रौणघ्नो भाव इति भ्रौणहत्यम्। भ्रूणहा का भाव (होना)।

(७) {**धैवत्यम्**} धीव्नोऽपत्यम्-धैवत्यम्। धीवा का भाव (होना)।

(८) {**सारवम्**} सरय्वां भवम्-सारवम् उदकम्। सरयू नदी का जल।

(९) {**ऐक्ष्वाकः**} इक्ष्वाकोरपत्यम्-ऐक्ष्वाकः। इक्ष्वाकु राजा का पुत्र।

(१०) {**मैत्रेयः**} मित्रयोरपत्यम्-मैत्रेयः। मित्रयु का पुत्र।

(११) {**हिरण्मयः**} हिरण्यस्य विकारः-हिरण्मयः। हिरण्य=सुवर्ण का विकार।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दाण्डिनायन०हिरण्मयानि) दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जिह्माशिनेय, वासिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय, हिरण्मय* ***ये शब्द*** *निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) दाण्डिनायनः। *दण्डिन्+फक्। दण्डिन्+फ। दण्डिन्+आयन।* ***दाण्डिनायन+सु।*** *दाण्डिनायनः।*

यहां 'दण्डिन्' शब्द से ***'नडादिभ्यः फक्'*** *(४।१।९९) से गोत्रापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। इस सूत्र*

से प्रकृतिभाव निपातित है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से टि-लोप (इन्) प्राप्त था। ऐसे ही 'हतिन्' शब्द से-हास्तिनायनः।

(२) **आथर्वणिकः।** अथर्वन्+ठक्। आथर्वन्+इक। आथर्वणिक+सु। आथर्वणिकः।

यहां 'अथर्वन्' शब्द से '**वसन्तादिभ्यष्ठक्**' (४।२।६३) से 'ठक्' प्रत्यय है। '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। इस सूत्र से ठ (इक) प्रत्यय परे होने पर प्रकृतिभाव निपातित है, पूर्ववत् टिलोप प्राप्त था।

(३) **जिह्माशिनेयः।** जिह्माशिन्+ढक्। जैह्माशिन्+एय। जैह्माशिनेय+सु। जैह्माशिनेयः।

यहां 'जिह्माशिन्' शब्द से '**शुभ्रादिभ्यश्च**' (४।१।१२३) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। इस सूत्र से ढक् (एय्) प्रत्यय परे होने पर प्रकृतिभाव निपातित है। पूर्ववत् टिलोप प्राप्त था।

(४) **वासिनायनिः।** वासिन्+फिञ्। वासिन्+आयन् इ। वासिनायिनि+सु। वासिनायिनिः।

यहां 'वासिन्' शब्द से '**उदीचां वृद्धादगोत्रात्**' (४।१।१५७) से अपत्य-अर्थ में 'फिञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **भ्रौणहत्यम्।** भ्रूणहन्+ष्यञ्। भ्रूणहन्+य। भ्रौणहत्+य। भ्रौणहत्य+सु। भ्रौणहत्यम्।

यहां 'भ्रूणहन्' शब्द से '**गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**' (५।१।१२४) से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। यहां 'हन्' को तकारादेश निपातित है।

(६) **धैवत्यम्।** यहां 'धीवन्' शब्द से पूर्ववत् 'ष्यञ्' प्रत्यय और तकारादेश निपातित है।

(७) **सारवम्।** सरयू+अण्। सारयू+अ। सार्०ऊ+अ। सार् ओ+अ। सारव+सु। सारवम्।

यहां 'सरयू' शब्द से '**तत्र भवः**' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सरयू' के अय्-शब्द का लोप निपातित है। '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अङ्ग को गुण और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७८) से अव्-आदेश होता है।

(८) **ऐक्ष्वाकः।** इक्ष्वाकु+अञ्। इक्ष्वाकु+अ। ऐक्ष्वाक्+अ। ऐक्ष्वाक+सु। ऐक्ष्वाकः।

यहां 'इक्ष्वाकु' शब्द '**जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्**' (४।१।१६८) से अपत्य-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इक्ष्वाकु' का उकार लोप निपातित है।

इक्ष्वाकुषु जनपदेषु भवः-ऐक्ष्वाकः। इक्ष्वाकु जनपद में होनेवाला। यहां '**कोपधादण्**' (४।२।१३२) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। उकार का लोप पूर्ववत् निपातित है।

ऐक्ष्वाक' शब्द सूत्रपाठ में एकश्रुति-स्वर से पठित है। यह पूर्वोक्त अञ्-प्रत्ययान्त होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से आद्युदात्त और अण्-प्रत्ययान्त होने से 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से प्रत्यय-स्वर से अन्तोदात्त होता है।

*(९) **मैत्रेयः।** मित्रयु+ढञ्। मैत्रयु+एय। मैत्र०+एय। मैत्रेय+सु। मैत्रेयः।*

यहां 'मित्रयु' शब्द से 'गृष्ट्यादिभ्यश्च' (४।१।१३६) से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'ढञ्' प्रत्यय परे होने पर 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' (७।३।२) से इसके यादि-भाग 'यु' को इय्-आदेश प्राप्त है। किन्तु इस सूत्र से 'यु' का लोप निपातित है।

*(१०) **हिरण्मयः।** हिरण्य+मयट्। हिरण्य+मय। हिरण्०+मय। हिरण्मय+सु। हिरण्मयः।*

यहां 'हिरण्य' शब्द से 'मयड्वैतयो०' (४।३।१४३) से विकार-अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। 'मयट्' प्रत्यय परे होने पर 'हिरण्य' शब्द के यादि-भाग (य) का लोप निपातित है।

निपातनम्—

(४७) ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि।१७५।

प०वि०- ऋत्व्य-वास्त्व्य-वास्त्व-माध्वी-हिरण्ययानि १।३ छन्दसि ७।१।

स०-ऋत्व्यं च वास्त्व्यं च वास्त्वश्च माध्वी च हिरण्ययं च तानि-ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-छन्दसि ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि।

अर्थः-छन्दसि विषये ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि शब्दरूपाणि निपात्यन्ते। **उदाहरणम्-**

(१) **ऋत्व्यम्**-ऋतौ भवम्-ऋत्व्यम्।

(२) **वास्त्वम्**-वास्तौ भवम्-वास्त्व्यम्।

(३) **वास्त्वः**-वस्तुनि भवः-वास्त्वः।

(४) **माध्वीः**-मधून इदम्-माधवम्, स्त्री चेत्-माध्वीः। **'माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः** (१।९०।६)।

(५) **हिरण्ययम्**-हिरण्यस्य विकारः-हिरण्ययः **'हिरण्ययेन सविता रथेन'** (ऋ० १।३५।२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ऋत्व्य०हिरण्ययानि) ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी, हिरण्यय शब्द निपातित हैं।*

*उदा०-**ऋत्व्यम्।** ऋतु में होनेवाला। **वास्त्वम्।** वास्तु=घर में होनेवाला। **वास्त्वः।** वस्तु में होनेवाला। **माध्वीः।** मधु-सम्बन्धिनी। **हिरण्ययम्।** हिरण्य=सुवर्ण का विकार।*

*सिद्धि-(१) **ऋत्व्यम्।** ऋतु+यत्। ऋतु+य। ऋत्व्+य। ऋत्व्य+सु। ऋत्व्यम्।*

*यहां 'ऋतु' शब्द से **'भवे छन्दसि'** (४।४।११०) से भव-अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। 'यत्' प्रत्यय परे होने पर 'ऋतु' के उकार को यणादेश (व्) निपातित है। ऐसे ही 'वास्तु' शब्द से-**वास्त्व्यम्।***

*(२) **वास्त्वः।** वस्तु+अण्। वास्तु+अ। वास्त्व्+अ। वास्त्व+सु। वास्त्वः।*

*यहां 'वस्तु' शब्द से 'तत्र भवः' (४।२।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अङ्ग को गुण प्राप्त था, किन्तु निपातन से यणादेश (व्) होता है।*

*(३) **माध्वीः।** मधु+अण्। माधु+अ+ङीप्। माध्+अ+ई। माध्+०+ई। माध्वी+सु। माध्वीः।*

*यहां 'मधु' शब्द से 'तस्येदम्' (४।३।१२०) से 'अण्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अङ्ग को गुण प्राप्त है, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में यणादेश (व्) निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है।*

*(४) **हिरण्ययम्।** हिरण्य+मयट्। हिरण्य+मय। हिरण्य+य। हिरण्यय+सु। हिरण्ययम्।*

*यहां 'हिरण्य' शब्द से **'मयड्वैतयोर्भाषायाम०'** (४।३।१४३) से विकार-अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। निपातन से 'मयट्' प्रत्यय के मकार का लोप होता है।*

।। इति भसंज्ञाधिकारः सम्पूर्णः ।।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः।

समाप्तश्चायं षष्ठोऽध्यायः।।

।। इति पञ्चमो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

पञ्चमभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
१०८	अकः सवर्णे दीर्घः	६।१।१०१
३४५	अकर्मधारये राज्यम्	६।२।१३०
३००	अके जीविकार्थे	६।२।७३
६५२	अङितश्च	६।४।१०३
१२४	अङ्ग इत्यादौ च	६।१।१२८
२९७	अङ्गानि मैरेये	६।२।७०
६८७	अचः	६।४।१३८
१९९	अचः कर्तृयकि	६।१।१९८
६५	अचि शीर्षः	६।१।६२
६२६	अचिश्नुधातुभ्रुवां०	६।४।७७
३७२	अच्कावशक्तौ	६।२।१५७
२	अजादेर्द्वितीयस्य	६।१।२
५६६	अज्झनगमां सनि	६।४।१६
१६८	अञ्चेश्छन्दस्य०	६।१।१६७
३०१	अणि नियुक्ते	६।२।७५
६५८	अत उत् सार्वधातुके	६।४।११०
६६८	अत एकहल्मध्ये०	६।४।१२०
४०५	अतेरकृत्पदे	६।२।१९१
१०५	अतो गुणे	६।१।९७
११९	अतो रोरप्लुतादप्लुते	६।१।११२
५८९	अतो लोपः	६।४।४८
६५४	अतो हेः	६।४।१०५
५५२	अत्वसन्तस्य चाधातोः	६।४।१४
४०२	अधेरुपरिस्थम्	६।२।१८८
२३४	अध्वर्युकषाययो०	६।२।१०
७१६	अन्	६।४।१६७
२८५	अनिगन्तोऽञ्चतौ०	६।२।५२
५६६	अनिदितां हल उपधाया०	६।४।२४
१५८	अनुदात्तं पदमेकवर्जम्	६।१।१५५
१६१	अनुदात्तस्य च यत्रो०	६।१।१५८
६२	अनुदात्तस्य चर्दुपधस्या०	६।१।५९
१९३	अनुदात्ते च	६।१।१९२
१२५	अनुदात्ते च कुधपरे	६।१।११९
५७७	अनुदात्तोपदेशवनति०	६।४।२७
२५४	अनुनासिकस्य क्विझलोः०	६।४।१५
३६४	अनो भावकर्मवचनः	६।२।१५०
४०३	अनोरप्रधानकनीयसी	६।२।१८९
३१४	अन्तः	६।२।९२
३५७	अन्तः	६।२।१४३
३९४	अन्तः	६।२।१७९
३९५	अन्तश्च	६।२।१८०
२०२	अन्तश्च तवै युगपत्	६।१।१९७
९३	अन्तादिवच्च	६।१।८५
१६७	अन्तोदात्तादुत्तरपदा०	६।१।१६६
२१८	अन्तोऽवत्याः	६।१।२२०
३०७	अन्त्यात् पूर्वं बह्वचः	६।२।८२
५३८	अन्येषामपि दृश्यते	६।३।१३७
५७	अपगुरो णमुलि	६।१।५३
१४६	अपरस्पराः क्रिया०	६।१।१४२
१५०	अपस्करो रथाङ्गम्	६।१।१४७
४१	अपस्पृधेथामानृचु०	६।१।३६
४००	अपाच्च	६।२।१८६
१४४	अपाच्चतुष्पाच्छकुनि०	६।१।१४०
५४९	अप्तृन्तृच्स्वसृ०	६।४।११
३९९	अभेर्मुखम्	६।२।१८५
३८	अभ्यस्तस्य च	६।१।३३
१९१	अभ्यस्तानामादिः	६।१।१८६
६२७	अभ्यासस्यासवर्णे	६।४।७८
३११	अमहन्नवं नगरे०	६।२।८९
११४	अमि पूर्वः	६।१।१०६
४२१	अमूर्धमस्तकात्०	६।३।१२
५९६	अयामन्ताल्वाय्य०	६।४।५५
३१९	अरिष्टगौडपूर्वे च	६।२।१००

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४७७	अरुर्द्विषदजन्तस्य०	६।३।६७
२७३	अर्थे	६।२।४४
५०७	अर्थे विभाषा	६।३।१००
३१२	अर्मे चावर्णं द्व्यच्०	६।२।९०
६७७	अवर्णस्त्रसावनञः	६।४।१२७
४१३	अलुगुत्तरपदे	६।३।१
६८४	अल्लोपोऽनः	६।४।१३४
१२७	अवङ् स्फोटायनस्य	६।१।१२२
१२६	अवपथासि च	६।१।१२०
५६९	अवोदैधौद्मप्रश्रथ०	६।४।२९
१०६	अव्यक्तानुकरणस्या०	६।१।९८
४९०	अव्ययीभावे चाकाले	६।३।८१
१२२	अव्यादवद्यादवक्रमु०	६।१।११५
५०५	अषष्ठ्यतृतीयास्थ०	६।३।९९
५३०	अष्टनः संज्ञायाम्	६।३।१२५
१७१	अष्टनो दीर्घात्	६।१।१६९
५६३	असिद्धवदत्राभात्	६।४।२२
२७६	अहीने द्वितीया	६।२।४७
६९२	अह्नष्टखोरेव	६।४।१४५
	{आ}	
३७३	आक्रोशे च	६।२।१५८
१३०	आङोऽनुनासिक०	६।१।१२५
८३	आङ्माङोश्च	६।१।७४
६६५	आ च हौ	६।४।११७
३२३	आचार्योपसर्जन०	६।२।१०४
२६४	आचार्योपसर्जनश्चा०	६।२।३६
४१५	आज्ञायिनि च	६।३।५
९८	आटश्च	६।१।९०
६१९	आडजादीनाम्	६।४।७२
६८९	आतो धातोः	६।४।१४०
६१०	आतो लोप इटि च	६।४।६४
४१६	आत्मनश्च पूरणे	६।३।६
७१७	आत्माध्वानौ खे	६।४।१६९
२५२	आदिः प्रत्येनसि	६।२।२७
१८८	आदिः सिचोऽन्य०	६।१।१८४
२९१	आदिरुदात्तः	६।२।६४
१९७	आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम्	६।१।१९१
३४१	आदिश्चिहणादीनाम्	६।२।१२५
४९	आदेच उपदेशेऽशिति	६।१।४५
९५	आद्गुणः	६।१।८७
३३५	आद्युदात्तं द्व्यच्०	६।२।११९
४३२	आनङ् ऋतो द्वन्द्वे	६।३।२५
४५६	आन्महतः समानाधिकरण०	६।३।४६
६९९	आपत्यस्य च तद्धिते	६।४।१५१
१२३	आपो जुषाणो वृष्णो०	६।१।११७
२०१	आमन्त्रितस्य च	६।१।१९५
५८७	आर्धधातुके	६।४।४६
२८६	आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः	६।२।५८
२४५	आशङ्काबाधनेदीय०	६।२।२१
२०७	आशितः कर्ता	६।१।२०७
१४८	आश्चर्यमनित्ये	६।१।१४७
४९९	आसर्वनाम्नः	३६।३।९१
१४८	आस्पदं प्रतिष्ठायाम्	६।१।१४४
	{इ}	
५२९	इकः काशे	६।३।१२३
५३७	इकः सुञि	६।३।१३४
८६	इको यणचि	६।१।७७
५२७	इको वहेऽपीलोः	६।३।१२१
१३१	इकोऽसवर्णे शाकल्य०	६।१।१२६
४७०	इको ह्रस्वोऽङ्यो०	६।३।६१
२५४	इगन्तकालकपाल०	६।२।२९
४७८	इच एकाचोऽम्प्रत्यया०	६।३।६८
६३०	इणो यण्	६।४।८१
३६४	इत्थम्भूतेन कृत०	६।२।१४९
४९८	इदं किमोरीश्की	६।३।९०
६६३	इद् दरिद्रस्य	६।४।११४
४३५	इद् वृद्धौ	६।३।२८
७१३	इनण्यनपत्ये	६।४।१६७
१२८	इन्द्रे च	६।१।१२३
५५१	इन्हन्पूषार्यम्णां०	६।४।१२
६२४	इरयो रे	६।४।७६
४७५	इष्टकेषीकामालानां०	६।३।६५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
७०९	इष्ठस्य यिट् च		६३७	ऊदुपधाया गोहः	६।४।८९
६४४	इस्मन्त्रन्क्विषु च	६।४।९७	३६८	ऊनार्थकलहं तृतीयायाः	६।२।१५३
	(ई)			(ऋ)	
२१२	ईडवृन्दवृशंसदुहां०	६।१।२११	४६५	ऋचः शे	६।३।५५
४३४	ईदग्नेः सोमवरुणयोः	६।३।२७	५३६	ऋचि तुनुघमक्षु०	६।३।१३३
६११	ईद् यति	६।४।६५	११८	ऋचि उत्	६।१।११०
२८३	ईषदन्यतरस्याम्	६।२।२४	४३०	ऋतो विद्यायोनि०	६।२।२३
५१०	ईषदर्थे च	६।३।१०५	१३२	ऋत्यकः	६।१।१२७
६६१	ई हल्यघोः	६।४।११३	७२४	ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्व०	६।४।१७५
१३३	ई३ चाक्रवर्मणस्य	६।१।१२९		(ए)	
	(उ)		९२	एकः पूर्वपरयोः	६।१।८४
४५४	उगितश्च	६।३।४५	४७१	एकतद्धिते च	६।३।६२
१६०	उञ्छादीनां च	६।१।१५७	४६८	एकहलादौ पूरयितव्ये०	४।३।५९
६५५	उतश्च प्रत्ययाद्०	६।४।१०६	१	एकाचो द्वे प्रथमस्य	६।१।१
३२४	उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च	६।२।१०५	४८६	एकादिश्चैकस्य चादुक्	६।३।७६
३२९	उत्तरपदादिः	६।२।१११	११६	एङः पदान्तादति	६।१।१०८
६८८	उद ईत्	६।४।१३९	१०२	एङि पररूपम्	६।१।९४
४६६	उदकस्योदः संज्ञायाम्	६।३।५७	९७	एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः	६।१।६९
३१६	उदकेऽकेवले	६।२।९६	८६	एचोऽयवायावः	६।१।७८
३२५	उदराश्वेषुषु	६।२।१०७	१३५	एतत्तदोः सुलोपो०	६।१।१३१
१७३	उदात्तयणो हल्पूर्वात्	६।१।१७१	९७	एत्येधत्यूठ्सु	६।१।८९
३०४	उपमानं शब्दार्थ०	६।२।८०	६३०	एरनेकाचोऽसंयोग०	६।४।८२
५२८	उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये०	६।३।१२२	६१४	एर्लिङि	६।४।६७
३९३	उपसर्गात् स्वाङ्गं०	६।२।१७७		(ओ)	
९९	उपसर्गादृति धातौ	६।१।९१	६३२	ओः सुपि	६।४।८३
१४१	उपात् प्रतियत्नवैकृता०	६।१।१३७	४१४	ओजःसहोऽम्भस्तमस०	६।३।३
४०७	उपाद् द्व्यजजिनम०	६।२।१९४	१०३	ओमाङोश्च	६।१।९५
२१५	उपोत्तमं रिति	६।१।२१४	६९३	ओर्गुणः	६।४।१४६
६	उभे अभ्यस्तम्	६।१।५	५३५	ओषधेश्च विभक्ता०	६।३।१३२
३५४	उभे वनस्पत्यादिषु०	६।२।१४०		(औ)	
४३६	उषासोषसः	६।३।३१	७२१	औक्षमनपत्ये	६।४।१७३
२६९	उष्ट्रः सादिवाम्योः	६।२।४०	१०१	औतोऽम्शसोः	६।१।९३
१०४	उस्यपदान्तात्	६।१।९६		(क)	
	(ऊ)		३३८	कंसमन्थशूर्पपाय्य०	६।२।१२२
१६९	ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रै०	६।१।१६८	३३१	कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च	६।२।११४
५०५	ऊदनोर्देशे	६।३।९८	२८५	कतरकतमौ कर्मधारये	६।२।५७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३४०	कन्था च	६।२।१२४
३८९	कपि पूर्वम्	६।२।१७३
५२०	कर्णे लक्षणस्याविष्ठ०	६।३।११५
३२९	कर्णो वर्णलक्षणात्	६।२।११२
२५७	कर्मधारयेऽनिष्ठा	६।२।४६
१५९	कर्षात्वतो घञो०	६।१।१५९
५११	कवं चोष्णे	६।३।१०७
५०९	क पथ्यक्षयोः	६।३।१०४
३६३	कारकाद्दत्तश्रुतयो०	६।२।१४८
४१९	कारनाम्नि च प्राचां०	६।३।१०
४८०	कारे सत्यागदस्य	६।३।७०
२६५	कार्तकौजपादयश्च	६।२।३७
७२०	कार्मस्ताच्छील्ये	६।४।१७२
२६५	कास्तीराजस्तुन्दे०	६।२।३७
१६४	कितः	६।१।१६२
१४३	किरतौ लवने	६।१।१३९
३५०	कुण्डं वनम्	६।२।१३६
२५२	कुमारश्च	६।२।२६
३१६	कुमार्यां वयसि	६।२।९५
२७०	कुरुगार्हपतरिक्त०	६।२।४२
३२१	कुसूलकूपकुम्भशालं०	६।२।१०२
१४५	कुस्तुम्बुरुणि जातिः	६।१।१४१
३३७	कूलतीरतूलमूल०	६।२।१२१
३४४	कूलसूदस्थल०	६।२।१२९
३७४	कृत्योकेष्णुच्०	६।२।१६०
५०७	कोः कत्तत्पुरुषेऽचि	६।३।१०१
२७४	क्ते च	६।२।४५
२८८	क्ते नित्यार्थे	६।२।६१
५७१	क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः	६।४।३१
४४१	क्यङ्मानिनोश्च	६।३।३६
७००	क्यच्व्योश्च	६।४।१५२
५९१	क्यस्य विभाषा	६।४।५०
३३५	क्रत्वादयश्च	६।२।११८
५५८	क्रमश्च क्त्वि	६।४।१८
९०	क्रय्यस्तदर्थे	६।१।८२
५२	क्रीङ्जीनां णौ	६।१।४८
२०३	क्षयो निवासे	६।१।१९८
९०	क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे	६।१।८१
६०१	क्षियः	६।४।५९
२२६	क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे	६।२।३९
२२६	क्षेपे	६।२।१०८
	{ख}	
६४२	खचि ह्रस्वः	६।४।९४
४७६	खित्यनव्ययस्य	६।३।६६
५६	खिदेश्छन्दसि	६।१।५२
११८	ख्यत्यात् परस्य	६।१।१११
	{ग}	
३५२	गतिकारकोपपदात्०	६।२।१३९
२७९	गतिरनन्तरः	६।२।४९
२३७	गन्तव्यपण्यं वाणिजे	६।२।१३
५८१	गमः क्वौ	६।४।४०
६४६	गमहनजनखनघसां०	६।४।९८
७१४	गाथिविदथिकेशि०	६।४।१६५
२२७	गाधलवणयोः प्रमाणे	६।२।४
२९५	गोत्रान्तेवासिमाणव०	६।२।६९
२९९	गोबिडालसिंहसैन्धव०	६।२।७२
१४७	गोष्पदं सेवितासेवित०	६।१।१४३
२७०	गौः सादसादिसारथि०	६।२।४१
४८८	ग्रन्थान्ताधिके च	६।३।७९
१७	ग्रहिज्यावयिव्यधि०	६।१।१६
२८९	ग्रामः शिल्पिनि	६।२।६२
३०८	ग्रामेऽनिवसन्तः	६।२।८४
	{घ}	
४२५	घकालतनेषु०	६।३।१७
५६८	घञि च भावकरणयोः	६।४।२७
४५१	घरूपकल्पचेलड्०	६।३।४३
६४८	घसिभसोर्हलि च	६।४।१००
६१२	घुमास्थागापा०	६।४।६६
३०८	घोषादिषु च	६।२।८५
६६६	घ्वसोरेद्धावभ्यास०	६।४।११९
	{ङ}	
२११	ङयि च	६।१।२०९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
११७	ङसिङसोश्च	६।१।१०९
१७८	ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसो०	६।१।१७५
१७८	ङ्याश्छन्दसि बहुलम्	६।१।१७५
	{च}	
१२	चङि	६।१।११
२१६	चङ्यन्यतरस्याम्	६।१।२१५
१६६	चतुरः शसि	६।१।१६४
२७२	चतुर्थी तदर्थे	६।२।४३
४९५	चरणे ब्रह्मचारिणि	६।२।९६
२७	चायः की	६।१।२१
४०	चायः की	६।१।३५
६५३	चिणो लुक्	६।४।१०४
६४१	चिण्णमुलोर्दीर्घो०	६।२।९३
१६३	चितः	६।३।१२७
५३१	चितेः कपि	६।३।१२७
५८	चिस्फुरोर्णौ	६।१।५४
३४३	चीरमुपमानम्	६।२।१२७
३४८	चूर्णादीन्यप्राणि०	६।२।१३४
३४२	चेलखेटकटुककाण्डं०	६।२।१२६
२२९	चौ	६।१।२१९
५३९	चौ	६।३।१३८
५५८	च्छ्वोः शूडनुनासिके च	६।४।१९
	{छ}	
५३१	छन्दसि च	६।२।१२६
६२०	छन्दस्यपि दृश्यते	६।४।७३
५४४	छन्दस्युभयथा	६।४।५
६३४	छन्दस्युभयथा	६।४।८६
३०९	छात्र्यादयः शालायाम्	६।२।८६
६४४	छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य	६।२।९६
८२	छे च	६।१।७३
	{ज}	
७	जक्षित्यादयः षट्	६।१।६
५८३	जनसनखनां०	६।४।४२
५९५	जनिता मन्त्रे	६।४।५३
२०४	जयः करणम्	६।१।१९९
६६४	जहातेश्च	६।४।११६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३८५	जातिकालसुखादिभ्य०	६।२।१७०
४४७	जातेश्च	६।३।४१
५७२	जान्तनशां विभाषा	६।४।३२
२०८	जुष्टार्पिते च च्छन्दसि	६।१।२०६
४७	ज्यश्च	६।१।४२
७०९	ज्यादादीयसः	६।४।१६०
४९३	ज्योतिर्जनपद०	६।३।८५
५६०	ज्वरत्वरस्रिव्यवि०	६।४।२०
	{झ}	
१८०	झल्युपोत्तमम्	६।१।१७७
	{ञ}	
२००	ञ्नित्यादिर्नित्यम्	६।१।१९४
	{ट}	
६९१	टेः	६।४।१४३
७०३	टेः	६।४।१५५
	{ढ}	
६९४	ढे लोपोऽकद्र्वाः	६।४।१४७
५१६	ढ्रलोपे पूर्वस्य०	६।२।१११
	{ण}	
३०४	णिनि	६।२।७९
५९२	णेरनिटि	६।४।५१
७३	णो नः	६।१।६५
३५	णौ च संश्चङोः	६।१।३१
	{त}	
४२२	तत्पुरुषे कृति बहुलम्	६।१।१४
२२३	तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीया०	६।२।२
३४०	तत्पुरुषे शालायां०	६।२।१२३
१६४	तद्धितस्य	६।१।१६१
६४७	तनिपत्योश्छन्दसि	६।४।९९
५८६	तनोतेर्यकि	६।४।४४
५५७	तनोतेर्विभाषा	६।४।१७
२८१	तवै चान्तश्च युगपत्	६।४।१७
४४०	तसिलादिष्वाकृत्वसुचः	६।३।३५
११०	तस्माच्छसो नः पुंसि	६।१।१०२
४८३	तस्मान्नुडचि	६।३।७४
१८६	तादौ च निति कृत्यतौ	६।२।५०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१८६	तास्यनुदात्तेङिद०	६।१।१८३
१८५	तित्स्वरितम्	६।१।१८२
५०२	तिरसस्तिर्यलोपे	६।३।९४
६९०	ति विंशतेर्डिति	६।४।१४२
१६५	तिसृभ्यो जसः	६।३।१६३
४९५	तीर्थे ये	६।३।८७
८	तुजादीनां दीर्घो०	६।१।७
७०२	तुरिष्ठेमेयस्सु	६।४।१५४
५०८	तृणे च जातौ	६।३।१०३
२७७	तृतीया कर्मणि	६।२।४८
६७०	तृफलभजतृपश्च	६।४।१२२
२१४	त्यागरागहासकुह०	६।१।२१३
४५८	त्रेस्त्रयः	६।३।४८
४७४	त्वे च	६।३।६४
	(थ)	
६६९	थलि च सेटि	४।६।१२१
१९९	थलि च सेटीडन्तो वा	६।१।१९६
३५७	थाथघञ्क्ता०	६।२।१४४
	(द)	
६६९	दंशसञ्जस्वञ्जां०	६।४।२५
५२९	दस्ति	६।३।१२४
७२१	दाण्डिनायनहास्ति०	६।४।१७४
२२९	दायाद्यं दायदे	६।२।५
१३	दाश्वान्साह्वान्०	६।१।१२
३२२	दिक्शब्दाः ग्राम०	६।२।१०३
१३४	दिव उत्	६।१।१३०
४३६	दिवसश्च पृथिव्याम्	६।३।३०
१८४	दिवो झल्	६।१।१८०
४३५	दिवो द्यावा	६।३।२९
२५७	दिष्टिवितस्त्योश्च	६।२।३१
६०९	दीङो युडचि क्ङिति	६।४।६३
३०६	दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्र०	६।२।८३
११२	दीर्घाज्जसि च	६।१।१०५
८४	दीर्घात्	६।१।७५
४९७	दृग्दृशवतुषु	६।३।८९
३५५	देवताद्वन्द्वे च	६।२।१४१
४३२	देवताद्वन्द्वे च	६।३।२५
६३८	दोषो णौ	६।४।९०
२९	द्रवमूर्तिस्पर्शयोः०	६।१।२४
३१७	द्विगौ क्रतौ	६।२।९७
२३६	द्विगौ प्रमाणे	६।२।१२
४८९	द्वितीये चानुपाख्ये	६।३।८०
४०९	द्वित्रिभ्यां पाद्दन्०	६।२।१९७
५३७	द्व्यचोऽतस्तिङः	६।३।१३५
५०४	द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो०	६।३।९७
४५७	द्व्यष्टनः संख्यायाम०	६।३।४७
	(ध)	
११२	धातोः	६।१।५९
८९	धातोस्तन्निमित्त०	६।१।८०
७२	धात्वादेः षः सः	६।१।६४
	(न)	
४४२	न कोपधायाः	६।३।३७
५८०	न क्तिचि दीर्घश्च	६।४।३९
३९२	न गुणादयोऽवयवाः	६।२।१३६
४८७	नगोऽप्राणिष्व०	६।३।७७
१८२	न गोश्वन्साववर्ण०	६।१।१७९
३७०	नञो गुणप्रतिषेधे०	६।२।१५५
३३३	नञो जरमरमित्र०	६।२।११६
२८८	नञ्सुभ्याम्	६।२।१७२
५४३	न तिसृचतसृ	६।४।४
३२७	नदी बन्धुनि	६।२।१०९
४५२	नद्याः शेषस्या०	६।३।४४
३९६	न निविभ्याम्	६।२।१८२
३	नन्द्राः संयोगादयः	६।१।३
३१३	न भूताधिकसंजीव०	६।२।९१
२४४	न भूवाक्चिद्दिधिषु	६।२।१९
६३३	न भूसुधियोः	६।४।८५
४८३	नभ्राण्नपान्नवेदा०	६।३।७५
७१८	न मपूर्वोऽपत्ये०	६।४।१७०
६२१	न माङ्योगे	६।४।७४
५३३	नरे संज्ञायाम्	६।३।१२९
४८२	नलोपो नञः	६।३।७३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६१६	न ल्यपि	६।४।९६
२६	न वशः	६।१।२०
५०	न व्योलिटि	६।१।४६
६७५	न शसददवादि०	६।४।१२६
६८६	न संयोगाद् वमन्तात्	६।४।१३७
४३	न सम्प्रसारणे सम्प्रसरणम्	६।१।३७
६९२	नस्तद्धिते	६।४।१४४
३२०	न हास्तिनफलक०	६।२।१०१
५२१	नहिवृतिवृषि०	६।३।११६
३४७	नाचार्यराजर्त्विग्०	६।२।१३३
५७१	नाञ्चेः पूजायाम्	५।४।३०
१११	नादिचि	६।१।१०४
१७७	नामन्यतरस्याम्	६।१।१७४
५४२	नामि	६।४।३
१०७	नाम्रेडितस्यान्त्यस्य०	६।१।९९
३८१	नाव्ययदिक्शब्द०	६।२।१६८
५९	नित्यं स्मयतेः	६।१।५७
६५७	नित्यं करोतेः	६।४।१०८
२०९	नित्यं मन्त्रे	६।१।२०७
३२८	निपातस्य च	६।२।११०
३९८	निरुदकादीनि च	६।२।१८४
२३१	निवाते वातत्राणे	६।२।८
२०६	निष्ठा च द्व्यजनात्	६।१।२०२
५९४	निष्ठायां सेटि	६।४।५२
६०२	निष्ठायामण्यदर्थे	६।४।६०
३८३	निष्ठोपमानाद०	६।२।१६९
३२८	निष्ठोपसर्गपूर्वम०	६।२।११०
५४४	नृ च	६।४।६
१८५	नृ वान्यतरस्याम्	६।१।१८१
४२७	नेतिसद्धबध्नातिषु च	६।३।१९
४०५	*नेरनिधाने*	*६।२।१९२*
१७५	नोङ्धात्वोः	६।१।१७२
३५६	नोत्तरपदेऽनुदात्ता०	६।२।१४२
५४५	नोपधायाः	६।४।७
२८२	न्यधी च	६।२।५३
	{प}	
४१३	पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः	६।३।१२
२४३	पत्यावैश्वर्ये	६।२।१८
५१२	पथि च च्छन्दसि	६।३।१०८
२०१	पथिमथोः सर्वनामस्थाने	६।१।१९६
८५	पदान्ताद् वा	६।१।७६
२३१	पदेऽपदेशे	६।२।७
६६	पद्दन्नोमास्०	६।१।६३
४६३	पद्यत्यतदर्थे	६।३।५३
४१८	परस्य च	६।३।८
४१२	परादिश्छन्दसि०	६।२।१९९
२६०	परिप्रत्युपापवर्ज्य०	६।२।३३
३९६	परेरभितो भावि०	६।२।१८२
३४३	पललसूपशाक०	६।२।१२८
६७९	पादः पत्	६।४।१३०
४६२	पादस्य पदाज्याति०	६।२।५२
२९५	पापं च शिल्पिनि	६।२।६८
१५५	पारस्करप्रभृतीनि०	६।१।१५४
४३८	पितरामातरा च०	६।३।३३
४४८	पुंवत् कर्मधारयजातीय०	६।३।४२
३४६	पुत्रः पुंभ्यः०	६।२।१३२
४२९	पुत्रेऽन्यतरस्याम्	६।३।२२
४०४	पुरुषश्चान्वयादिष्टः	६।२।१९०
३१८	पुरे प्राचाम्	६।२।९९
२५३	पूगेष्वन्यतरस्याम्	६।२।२८
२४६	पूर्वे भूतपूर्वे	६।२।२२
४१३	पृषोदरादीनि०	६।३।१०९
४६७	पेषं वासवाहनधिषु च	६।३।५८
३२	प्यायः पी	६।१।२८
१२०	प्रकृत्याऽन्तःपादम०	६।१।११५
३५१	प्रकृत्या भगालम्	६।२।१३७
४९२	*प्रकृत्याशिष्य०*	*६।३।८३*
७१२	प्रकृत्यैकाच्	६।४।१६३
५९	प्रजने वीयतेः	६।१।५५
२२९	प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः	६।२।८
१५२	प्रतिष्काशश्च कशेः	६।१।१५०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४०६	प्रतेरश्वादय०	७।२।१९३
३०	प्रतेश्च	६।१।२५
१०९	प्रथमयोः पूर्वसवर्णः	६।१।१०२
२८५	प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ	६।२।५६
३६२	प्रवृद्धादीनां च	६।२।१४७
१५३	प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रा०	६।१।१५१
३१०	प्रस्थेऽवृद्धम०	६।२।८७
३००	प्राचां क्रीडायाम्	६।२।७४
३९८	प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम्	६।२।१८३
४२३	प्रावृट्शरत्काल०	६।३।१५
७०५	प्रियस्थिरस्फिरोरु०	६।४।१५७
२४१	प्रीतौ च	६।२।१६
१२९	प्लुतप्रगृह्या अचि०	६।१।१२४
	{फ}	
६७३	फणां च सप्तानाम्	६।४।१२५
	{ब}	
१५	बन्धुनि बहुव्रीहौ	६।१।१४
४२२	बन्धे च विभाषा	६।३।१३
३९	बहुलं छन्दसि	६।१।३४
६२२	बहुलं छन्यस्यमाङ्०	६।४।७५
३७६	बहुव्रीहाविदमेतत्०	६।२।१६१
२२१	बहुव्रीहौ प्रकृत्या०	६।२।१
३२५	बहुव्रीहौ विश्वं०	६।२।१०६
३२५	बहोर्नञ्वदुत्तरपद०	६।२।१७५
७०८	बहोर्लोपो भू च बहोः	६।४।१५८
२५६	बह्वन्यतरस्याम्	६।२।३०
५९	बिभेतेर्हेतुभये	६।१।५६
७०१	बिल्वकादिभ्यः०	६।४।१५३
७१९	ब्राह्मोऽजातौ	६।४।१७१
	{भ}	
२९८	भक्ताख्यास्तदर्थेषु	६।२।७१
५७३	भञ्जेश्च चिणि	६।४।३३
९१	भय्यप्रवय्ये च०	६।१।८३
६७९	भस्य	६।४।१२९
६६३	भियोऽन्यतरस्याम्	६।४।११५
१९४	भीह्रीभृमदजन०	१।१।१८९
६३६	भुवो वुग्लुङ्लिटोः	६।४।८८
५८८	भ्रस्जो रोपधयो०	६।४।४७
	{म}	
६७८	मघवा बहुलम्	६।४।१२८
२१७	मतोः पूर्वमात्०	६।१।२१६
५२५	मतौ बह्वचो०	६।२।११९
४२०	मध्याद् गुरौ	६।३।११
४१५	मनसः संज्ञायाम्	६।३।४
३६५	मन्क्तिन्व्याख्यान०	६।२।१५१
६८९	मन्त्रेष्वाङ्यादे०	६।४।१४१
५३४	मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०	६।३।१३१
४६८	मन्थौदनसक्तुबिन्दु०	६।३।६०
६१७	मयतेरिदन्यतरस्याम्	६।४।७०
१५३	मस्करमस्करिणौ०	६।१।१५२
२६७	महान् व्रीह्यपराह्ण०	६।२।३८
४३७	मातरपितरावुदीचाम्	६।३।३२
२३८	मात्रोपज्ञोपक्रम०	६।२।१४
३११	मालादीनां च	६।२।८८
६४०	मितां ह्रस्वः	६।४।९२
५३३	मित्रे चर्षौ	६।३।१३०
३६९	मिश्रं चानुपसर्गम०	६।२।१५४
५४	मीनातिमिनोतीङां०	६।१।५०
३८०	मुखं स्वाङ्गम्	६।३।१६७
	{य}	
१२३	यजुष्युरः	६।१।११७
२११	यतोऽनावः	६।१।२१०
३७१	ययतोश्चातदर्थे	६।२।१५६
५९१	यस्य हलः	६।४।४९
६९५	यस्येति च	६।४।१४८
३०५	युक्तारोह्यादयश्च	६।२।८१
२९३	युक्ते च	६।२।६६
६०१	युप्लुवोर्दीर्घ०	६।४।५८
२१०	युष्मदस्मदोर्ङसि	६।१।२०८
६५७	ये च	६।४।१०९
६४	ये च तद्धिते	६।१।६१
७१६	ये चाभावकर्मणोः	६।४।१६८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५८५	ये विभाषा	६।४।४३
	(र)	
७१०	र ऋतोर्हलादेर्लघोः	६।४।१६१
५६७	रञ्जेश्च	६।४।२६
५०८	रथवदयोश्च	६।३।१०२
२६२	राजन्यबहुवचन०	६।२।३४
२८७	राजा च प्रशंसायाम्	६।२।५९
४८२	रात्रेः कृति विभाषा	६।३।७२
६७१	राधो हिंसायाम्	६।४।१२३
५६३	राल्लोपः	६।४।२१
२०८	रिक्ते विभाषा	६।१।२०५
	(ल)	
१०	लिटि धातोरनभ्यासस्य	६।१।८
४४	लिटि वयो यः	६।१।३८
२२	लिट्यभ्यासस्यो०	६।१।१७
३२	लिड्यङोश्च	६।१।२९
१९७	लिति	६।१।१९३
६१७	लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः	६।४।१७
६५६	लोपश्चास्यान्यतरस्यां०	६।४।१०७
६६६	लोपो यि	६।४।११८
७४	लोपो व्योर्वलि	६।१।६६
४७	ल्यपि च	६।१।४१
५९९	ल्यपि लघुपूर्वात्	६।४।५६
	(व)	
१६	वचिस्वपियजादीनां०	४८
३९०	वनं समासे	६।२।१७८
५२३	वनगिर्योः संज्ञायां०	६।३।११७
३४५	वर्ग्यादयश्च	६।२।१३१
१४९	वर्चस्केऽवस्करः	६।१।१४६
२२७	वर्णो वर्णेष्वनेते	६।२।३
६३३	वर्षाभ्वश्च	६।४।८४
४४	वश्चास्यान्यतरस्याम्०	६।१।३९
६८१	वसोः सम्प्रसारणम्	६।४।१३१
६०३	वाक्रोशदैन्ययोः	६।४।६१
४६५	वा घोषमिश्रशब्देषु	६।३।५६
४७९	वाचंयमपुरन्दरौ च	६।३।६९
६३९	वा चित्तविरागे	६।४।९१
११३	वा छन्दसि	६।३।११५
३८७	वा जाते	६।२।१६१
६७२	वा जॄभ्रमुत्रसाम्	६।४।२४
८८	वान्तो यि प्रत्यये	६।१।७९
६१५	वान्यस्य संयोगादेः	६।४।६८
२४५	वा भुवनम्	६।२।२०
६२९	वाम्शसोः	६।४।८०
५७९	वा ल्यपि	६।४।३८
४६१	वा शोकष्यञ्रोगेषु	६।३।५१
५४७	वा षपूर्वस्य निगमे	६।४।९
१००	वा सुप्यापिशलेः	६।१।९२
६८२	वाह ऊठ्	६।४।१३२
५८२	विड्वनोरनुनासिक०	६।४।४१
७११	विभाषर्जोश्छन्दसि	६।४।१६२
६८५	विभाषा ङिश्योः	६।४।१३६
४५८	विभाषा चत्वारिंशत्०	६।३।४९
३७८	विभाषा छन्दसि	६।२।१६४
३७५	विभाषा तृन्नन्न०	६।२।१६१
२९४	विभाषाध्यक्षे	६।२।६७
६००	विभाषाऽऽपः	६।४।५७
४८	विभाषा परेः	६।१।४४
५१०	विभाषा पुरुषे	६।३।१०६
१८१	विभाषा भाषायाम्	६।१।१७५
३०	विभाषाभ्यवपूर्वस्य	६।१।२६
५५	विभाषा लीयतेः	६।१।५१
४२४	विभाषा वर्षक्षरशर०	६।३।१६
२१३	विभाषा वेण्विन्धानयोः	६।१।२१२
३३	विभाषा श्वेः	६।१।३०
४३१	विभाषा स्वसृपत्योः	६।३।२४
४०८	विभाषोत्पुच्छे	६।२।१९६
४९६	विभाषोदरे	६।३।८८
५३२	विश्वस्य वसुराटोः	६।३।१२८
१५०	विष्किरः शकुनि०	६।१।१४८
५००	विष्वग्देवयोश्च०	६।४।९२
२४९	विस्पष्टादीनि०	६।२।२४
३३६	वीरवर्यौ च	६।२।१२०
४४५	वृद्धिनिमित्तस्य च०	६।३।३९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या	पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
९६	वृद्धिरेचि	६।१।८८	४२९	षष्ठ्या आक्रोशे	६।३।२१
२०४	वृषादीनां च	६।१।२००	१४	ष्यङः सम्प्रसारणम्	६।१।१३
४५	वेञः	६।१।४०		(स)	
७५	वेरपृक्तस्य	६।१।६७	७१५	संयोगादिश्च	६।४।१६६
४१७	वैयाकरणाख्यायां०	६।३।७	८२	संहितायाम्	६।१।७२
४९१	वोपसर्जनस्य	६।३।८२	५१९	संहितायाम्	६।३।११४
३८०	व्यवायिनोऽन्तरम्	६।२।१६६	४११	सक्थं चाक्रान्तात्	३।२।१९८
४८	व्यश्च	६।१।४३	२६३	सङ्ख्या	६।२।३५
	(श)		३७८	सङ्ख्यायाः स्तनः	६।२।१६३
१७२	शतुरनुमो नद्यजादी	६।१।१७०	५१५	सङ्ख्याविसायपूर्व०	६।३।११०
५९६	शमिता यज्ञे	६।४।५४	४४३	संज्ञापूरण्योश्च	६।३।३८
४२६	शयवासवासि०	६।३।१८	३१५	संज्ञायां गिरिनिकाययोः	६।२।९४
५२६	शरादीनां च	६।३।१२०	३०३	संज्ञायां च	६।२।७७
२३३	शारदेऽनार्तवे	६।२।९	३७३	संज्ञायाम्	६।२।१५
५७४	शास इदङ्हलोः	६।४।३४	३६१	संज्ञायामनाचितादीनाम्	६।२।१४६
५७५	शा हौ	६।४।३५	२०५	संज्ञायामुपमानम्	६।१।२०१
३५१	शितेर्नित्याबह्वज्०	६।२।१३८	३७९	संज्ञायां मित्राजिनयोः	६।२।१६५
३०२	शिल्पिनि चाकृञः	६।२।७६	३३०	संज्ञौपम्ययोश्च	६।२।११३
६३	शीर्षंश्छन्दसि	६।१।६०	२३५	सदृशप्रतिरूपयोः०	६।२।११
२०७	शुष्कधृष्टौ	६।१।२०३	५०३	सधमादस्थयो०	६।३।९६
३३२	शृङ्गमवस्थायां च	६।१।११५	५८६	सनः क्तिचि लोप०	६।४।४५
३१	शृतं पाके	६।१।२७	११	सन्यङोः	६।१।९
८०	शेश्छन्दसि बहुलम्	६।१।७०	२५८	सप्तमी सिद्धशुष्क०	६।२।३२
६५९	श्नसोरल्लोपः	६।४।१११	२९१	सप्तमीहारिणौ०	६।२।६५
५६५	श्नान्नलोपः	६।४।२३	३६७	सप्तम्याः पुण्यम्	६।२।१५२
६६०	श्नाभ्यस्तयोरातः	६।४।११२	३१८	सभायां नपुंसके	६।२।९८
४८१	श्येनतिलस्य पाते ञे	६।३।७१	५०१	समः समि	६।३।९३
२५१	श्रज्याबमकन्पापवत्सु०	६।२।२५	१४१	समवाये च	६।१।१३७
६५१	श्रुशृणुपृकृवृ०	६।४।१०२	४९२	समानस्य छन्दस्य०	६।३।८४
१२	श्लौ	६।१।१०	२२०	समासस्य	६।१।२२०
६८३	श्वयुवमघोनाम०	६।४।१३३	२६३	संख्या	६।२।३५
	(ष)		१३९	सम्पर्युपेभ्यः करोतौ०	६।१।१३५
३४९	षट् च काण्डादीनि	६।२।१३५	५७	सम्प्रसारणस्य	६।३।१३९
१७९	षट्चतुर्भ्यो हलादिः	६।१।१७६	११५	सम्प्रसारणाच्च	६।१।१०७
९४	षत्वतुकोरसिद्धः	६।१।८६	३१४	सर्वं गुणकार्त्स्न्ये	६।१।९३
६८४	षपूर्वहन्धृत०	६।४।१२५	१२७	सर्वत्र विभाषा गोः	६।१।१२१
२८८	षष्ठी प्रत्येनसि	६।२।६०	५४६	सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ	६।४।८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१९३	सर्वस्य सुपि	६।१।१८८
२४७	सविधसनीडसमर्याद०	६।२।२३
४८७	सहस्य सः संज्ञायाम्	६।३।९५
५०३	सहस्य सध्रिः	६।३।९५
५१७	सहिवहोरोदवर्णस्य	६।३।११२
५१८	साढ्यै साढ्वा साढे०	६।३।११३
५४७	सान्तमहतः संयोगस्य	६।४।१०
१६६	सावेकाचस्तृतीया०	६।१।१६६
५३	सिध्यतेरपरलौकिके	६।१।४९
२४०	सुखप्रिययोर्हिते	६।२।१५
१३९	सुट् कात् पूर्वः	६।१।१३४
३६०	सूपमानात् क्तः	६।२।१४५
६९७	सूर्यतिष्यागस्त्य०	६।४।१४९
६१	सृजिदृशोर्झल्यकिति	६।१।५८
१३७	सोऽचि लोपे चेत्०	६।१।१३३
४०८	सोरवक्षेपणे	६।२।१९५
३३४	सोर्मनसी अलोमो०	६।२।११७
५५२	सौ च	६।४।१३
२८	स्त्यः प्रपूर्वस्य	६।१।२३
६२८	स्त्रियाः	६।४।७९
४३८	स्त्रियाः पुंवद्भाषित०	६।३।३४
७०४	स्थूलदूरयुवह्रस्व०	६।४।१५६
४२८	स्थे च भाषायाम्	६।३।२०
२८	स्फायः स्फी निष्ठायाम्	६।१।२२
४००	स्फिगपूतवीणा०	६।१।१८७
५१	स्फुरतिस्फुलत्यो०	६।१।४७
५६९	स्यदो जवे	६।४।२८
१३६	स्यश्छन्दसि बहुलम्	६।१।१३२
६०४	स्यसिच्सीयुट्तासिषु०	६।४।६२
२४२	स्वं स्वामिनि	६।२।१७
१८९	स्वपादिर्हिसाम०	६।१।१८५
२६	स्वपिस्यमिव्येञां०	६।१।१९
२४२	स्वाङ्गाच्चेतो०	६।३।४०
२५	स्वापेश्चङि	६।१।१८
	{ह}	
५७६	हन्तेर्जः	६।४।३६
५४१	हलः	६।४।२
४१८	हलदन्तात् सप्तम्याः०	६।३।९
६९८	हलस्तद्धितस्य	६।४।१५०
७७	हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०	६।१।६८
१२०	हशि च	६।१।११३
१४३	हिंसायां प्रतेश्च	६।१।१३९
४६४	हिमकाषिहतिषु च	६।३।५४
६५०	हुझल्भ्यो हेर्धिः	६।४।८७
६३५	हुश्नुवोः सार्वधातुके	६।४।१०१
४६०	हृदयस्य हृल्लेख०	६।३।५०
१७६	ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्	६।१।१७३
८१	ह्रस्वस्य पिति कृति०	६।१।७१
१५१	ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्०	६।२।१७४
६४३	ह्लादो निष्ठायाम्	६।४।९५
३६	ह्वः सम्प्रसरणम्	६।१।३२

।। इति पञ्चमभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका ।।

संक्षेप-विवरणम्

१. आप० ध० - अपस्तम्बधर्मसूत्रम्
२. उणा० - उणादिकोषः
३. ऋ० - ऋग्वेदसंहिता
४. का० सं० - काठकसंहिता
५. खि० - खिलपाठः (ऋग्वेदः)
६. तै० आ० - तैत्तिरीय-आरण्यकम्
७. तै० ब्रा० - तैत्तिरीय ब्राह्मणम्
८. तै० सं० - तैत्तिरीयसंहिता
९. फिट्० - फिट्सूत्रम्
१०. मै० सं० - मैत्रायणीसंहिता
११. यजु० - यजुर्वेदसंहिता
१२. लौ० गृ० - लौगाक्षिगृह्यसूत्रम्
१३. श० कौ० - शब्दार्थकौस्तुभ (कोष)
१४. शौ० सं० - शौनकीयसंहिता

।। इति संक्षेप-विवरणम् ।।

ओ३म्

पाणिनीय

अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं
'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

षष्ठो भागः

सप्तमाष्टमाध्यायात्मकः

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

षष्ठो भागः

सप्तमाष्टमाध्यायात्मकः

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

ओ३म्

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

व्याकरणशास्त्र के प्राचीन आचार्य

व्याकरणशास्त्र के इतिहास के अनुसार अष्टाध्यायी के प्रवक्ता पाणिनि मुनि से पूर्ववर्ती निम्नलिखित व्याकरणशास्त्र के २५ प्रमुख आचार्य माने गये हैं–

१-महेश्वर (शिव), २-इन्द्र, ३-वायु, ४-भारद्वाज, ५-भागुरि, ६-पौष्करसादि, ७-चारायण, ८-काशकृत्स्न, ९-शन्तनु, १०-वैयाघ्रपद्य, ११-माध्यन्दिनि, १२-रौढि, १३-शौनकि, १४-गौतम, १५-व्याडि, १६-आपिशालि, १७-काश्यप, १८-गार्ग्य, १९-गालव, २०-चाक्रवर्मण, २१-भरद्वाज, २२-शाकटायन, २३-शाकल्य, २४-सेनक, २५-स्फोटायन।

पणिनि मुनि ने इन २५ आचार्यों में से आपिशलि से लेकर स्फोटायन पर्यन्त १० आचार्यों का अष्टध्यायी में उल्लेख किया है। अत: उनका पाठकवृन्द के लाभार्थ वर्णानुक्रम से संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

(१) आपिशलि (३००० वि० पूर्व)

आचार्य आपिशलि एक सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में इनका एक बार '**वा सुप्यापिशलेः**' (६।१।९२) सूत्र में स्मरण किया है। आपिशलि शब्द अपत्य-प्रत्ययान्त है-**अपिशलस्यापत्यमिति आपिशलिः**। इससे प्रकट होता है इनके पिता का नाम 'अपिशल' था। पाणिनि मुनि ने आपिशलि शब्द का क्रौड्यादिगण (४।१।८०) में पाठ किया है। अत: कई विद्वानों का मत है कि बहिन का नाम 'आपिशल्या' था। पाणिनि मुनि ने '**छात्र्यादयः शालायाम्**' (६।२।८६) सूत्र में 'आपिशलिशाला' का भी उल्लेख किया है–'**पदेषु पदैकदेशाः प्रयुज्यन्ते**' के अनुसार यहां 'शाला' शब्द पाठशाला का वाचक है। यह लेख आचार्य आपिशलि की एक विशिष्ट पाठशाला की ओर संकेत करता है।

समय–पाणिनीय अष्टाध्यायी में आचार्य आपिशलि का उल्लेख होने से यह स्पष्ट है कि आपिशलि पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। पाणिनि मुनि का स्थितिकाल २९०० वि०पू० माना जाता है। इससे सिद्ध है कि आपिशलि विक्रम से लगभग ३००० वर्ष प्राचीन हैं।

बौधायन श्रौतसूत्र के प्रवर अध्याय के भृगुवंश में आपिशलि का वर्णन मिलता है। अत: आपिशलि भृगुवंशीय आचार्य हैं।

रचना–जैन सम्प्रदाय के आचार्य पाल्यकीर्ति ने शाकटायन व्याकरण की वृत्ति (३।२।१६१) में एक उदाहरण दिया है–'**अष्टका आपिशला पाणिनीयाः**'। इससे

विदित होता है कि आपिशलि के व्याकरणशास्त्र का परिमाण अष्टाध्यायी के तुल्य आठ अध्याय आत्मक था।

आचार्य वररुचि (कात्यायन) और पतञ्जलि के समय इनके व्याकरणशास्त्र का अच्छा प्रचार था। जैसा कि पतञ्जलि ने लिखा है–**आपिशलमधीते इति आपिशला ब्राह्मणी।** इससे ज्ञात होता है कि आपिशलि का व्याकरणशास्त्र बहुत सरल था जो कि बालक और स्त्री आदि सुकुमार बुद्धि जनों को अतिप्रिय था।

(१) आठ अध्याय आत्मक व्याकरणशास्त्र, धातुपाठ, गणपाठ, उणादि सूत्र, शिक्षा, कोष, अक्षरतन्त्र ये आचार्य आपिशलि की रचनायें मानी जाती हैं। उणादि सूत्र और शिक्षा नामक रचनायें आज भी उपलब्ध हैं।

(२) काश्यप (३००० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने आचार्य काश्यप का अष्टाध्यायी में दो बार नाम-उल्लेख किया है–**'तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य'** (१।२।२५) और **'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्'**। आचार्य काश्यप महान् वैयाकरण और कल्पशास्त्र के प्रवक्ता थे।

रचना–काश्यप कल्प, काश्यपीय सूत्र, काश्यप संहिता (आयुर्वेद) छन्दःशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकारशास्त्र, पुराण ये आचार्य काश्यप की रचनायें मानी जाती हैं।

(३) गार्ग्य (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य गार्ग्य के मत का तीन स्थानों पर प्रयोग किया है–**'अड् गार्ग्यगालवयोः'** (७।३।९९), **'ओतो गार्ग्यस्य'** (८।३।२०), **'नोदात्त-स्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्'** (८।४।६७)। गार्ग्य शब्द में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है–**गर्गस्य गोत्रापत्यमिति गार्ग्यः।** इससे स्पष्ट है कि इनके पितामह का नाम 'गर्ग' था, जो कि प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य भारद्वाज के पुत्र थे।

समय–आचार्य यास्क ने निरुक्तशास्त्र में एक नैरुक्त आचार्य के मत का उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य गार्ग्य, यास्क से प्राचीन हैं। यास्क का समय महाभारत युद्ध के समीप का माना जाता है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने गार्ग्य को धन्वन्तरि का शिष्य बतलाया है और आचार्य गालव को उनका समकालीन कहा है। यदि आचार्य गार्ग्य और गालव समकालीन हों तो इनका समय पूर्वोक्त महाभारत काल से भी प्राचीन है जो कि लगभग ५५०० वि० पूर्व होना चाहिये।

रचना–व्याकरणशास्त्र, निरुक्त, सामवेद पदपाठ, सामतन्त्र, भूवर्णन, तक्षशास्त्र, तन्त्रशास्त्र ये आचार्य गार्ग्य की रचनायें मानी जाती हैं।

(४) गालव (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य गालव का चार स्थानों पर उल्लेख किया है– **'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य'** (६।३।६१) **'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य'** (७।१।७४), **'अड् गार्ग्यगालवयोः'** (७।३।९९), **'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्'** (८।४।६७)। पुरुषोत्तमदेव ने भी भाषावृत्ति में गालव का मत प्रस्तुत किया है।

समय–यदि धन्वन्तरि का शिष्य गालव ही व्याकरणशास्त्र का प्रवक्ता हो तो इनका समय ४५०० वि० पूर्व का हो सकता है।

रचना–व्याकरणशास्त्र, गालवसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, क्रमपाठ, शिक्षा, निरुक्त, दैवतग्रन्थ, शालाक्यतन्त्र, कामसूत्र, भूवर्णन ये आचार्य गालव की रचनायें मानी जाती हैं।

(५) चाक्रवर्मण (३००० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी और उणादि सूत्रों में भी आचार्य चाक्रवर्मण को स्मरण किया है– **'ई चाक्रवर्मणस्य'** (अष्टा० ६।१।१३०) **'कपश्चाक्रवर्मणस्य'** (पञ्चपाद्युणादि० ३।१४४) पं० भट्टोजिदीक्षित ने भी शब्दकौस्तुभ में इनका मत उद्धृत किया है।

चाक्रवर्मण शब्द अपत्य-प्रत्ययान्त है–**चक्रवर्मणोऽपत्यमिति चाक्रवर्मणः।** इससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम चक्रवर्मा था। व्याकरणदर्शन के कर्ता पं० गुरुपद हलदार ने वायुपुराण के आधार पर लिखा है कि चक्रवर्मा कश्यप मुनि के पौत्र थे (पृ० ५१९)।

समय–पञ्चपादी उणादि सूत्र के कर्ता आपिशलि हैं। उणादि सूत्र में चाक्रवर्मण के उल्लेख से स्पष्ट है कि इनका काल आपिशलि से प्राचीन है और वह विक्रमादित्य से ३००० वर्ष पूर्व का है, ऐसा विद्वानों का मत है।

(६) भारद्वाज (३००० वि० पूर्व)

पाणिनीय अष्टाध्यायी में वैयाकरण भारद्वाज का एक स्थान पर उल्लेख मिलता है– **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६६)। इससे अन्यत्र अष्टाध्यायी में जो भारद्वाज का उल्लेख है वह देशवाची है, आचार्यवाची नहीं। संस्कृत साहित्य में अनेक भारद्वाजों का वर्णन मिलता है किन्तु वे सब वैयाकरण भारद्वाज नहीं हैं। वैयाकरण भारद्वाज तो बार्हस्पत्य भरद्वाज के पुत्र द्रोण भारद्वाज हैं–**भरद्वाजस्यापत्यमिति भारद्वाजः।**

समय–इनका समय विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व का माना जाता है।

रचना–व्याकरणशास्त्र, भारद्वाज वार्तिक, आयुर्वेद संहिता (कायचिकित्सा) अर्थशास्त्र।

(७) शाकटायन (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने आचार्य शाकटायन को तीन बार स्मरण किया है-'**लङः शाकटायनस्यैव**' (३।४।१११) '**व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य**' (८।३।१८) '**त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य**' (८।४।५०)। निरुक्तकार आचार्य यास्क ने वैयाकरण शाकटायन का मत उद्धृत किया है। पतञ्जलि मुनि ने भी शाकटायन को व्याकरणशास्त्र का प्रवक्ता माना है और शाकटायन के पिता का नाम शकट लिखा है। पाणिनि मुनि ने भी शकट शब्द का नडादिगण में पाठ किया है। अतः शकट शब्द से '**नडादिभ्यः फक्**' (४।१।९९) से फक् (आयन) प्रत्यय करने पर शाकटायन शब्द सिद्ध होता है।

अनन्त देव ने शुक्लयजुःप्रातिशाख्य में शाकटायन को काण्व का शिष्य लिखा है और शैशिरि शिक्षा में इन्हें शैशिरि का शिष्य बतलाया गया है। एक व्यक्ति समकालीन दो आचार्यों का भी शिष्य हो सकता है।

पतञ्जलि मुनि ने आचार्य शाकटायन के जीवनकाल की एक घटना का चित्रण किया है-'**अथवा भवति वै कश्चिद् जागृदपि वर्तमानकालं नोपलभते तद्यथा वैयाकरणानां शाकाटायनो रथमार्ग आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे** (महा० ३।२।११५) अर्थात्-कोई जागरित अवस्था में भी वर्तमानकाल में होनेवाली क्रिया को उपलब्ध नहीं करता है कि जैसे रथमार्ग में बैठे हुये वैयाकरण शाकटायन ने जाते हुये शकट समूह (गाड़ियां) को नहीं देखा क्योंकि उनका ध्यान कहीं अन्यत्र था।

समय-आचार्य यास्क ने शाकटायन का नामग्राहम् उल्लेख किया है अतः इनका स्थितिकाल ३१०० वि० पूर्व का है।

रचना-व्याकरणशास्त्र, दैवतग्रन्थ, निरुक्त, कोष, ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र, पञ्चपादी उणादिसूत्र, श्राद्धकल्प ये इनकी रचनायें मानी जाती हैं।

(८) शाकल्य (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य शाकल्य का चार स्थानों पर मत उद्धृत किया है-'**सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे**' (१।१।१६), '**इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च**' (६।१।१२७), '**लोपः शाकल्यस्य**' (८।३।१९), '**सर्वत्र शाकल्यस्य**' (८।४।५१)। शौकन ने ऋक् प्रातिशाख्य में और कात्यायन ने वाजसनेय प्रातिशाख्य में शाकल्य के मत का उल्लेख किया है।

शाकल्य शब्द में शकल शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है-**शकलस्य गोत्रापत्यमिति शाकल्यः**। इससे सिद्ध है कि शाकल्य के पितामह का नाम शकल है। कहीं-कहीं शाकल नाम से भी इन्हें स्मरण किया गया है।

समय—अष्टाध्यायी के **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** (४।३।१०६) सूत्र में शौनक का उल्लेख किया गया है और शौनक ने ऋक् प्रातिशाख्य में शाकल्य के मत की चर्चा की है। शौनक का समय २९०० वि० पूर्व का है अत: शाकल्य का समय इससे भी पूर्व ३१०० वि०पू० का होना चाहिये।

(९) सेनक (२९५० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य सेनक का एक ही स्थल पर उल्लेख किया है- **'गिरेश्च सेनकस्य'** (५।४।११)। इसके अतिरिक्त इनका परिचय उपलब्ध नहीं है।

(१०) स्फोटायन (२९५० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य स्फोटायन का एक स्थल पर मत उद्धृत किया है– **'अवङ् स्फोटायनस्य'** (६।१।१२३)। पं० हरदत्तमिश्र काशिकावृत्ति की व्याख्या पदमञ्जरी में लिखते हैं– **'स्फोटोऽयनं पारायणं यस्य स स्फोटायन:'** (६।१।१२३) अर्थात् ये स्फोट सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य थे अत: इनका स्फोटायन नाम प्रसिद्ध हो गया।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका नाम औदुम्बरायण था। आचार्य हेमचन्द्र और केशव का मत है कि इनका नाम कक्षीवान् था।

समय—आचार्य स्फोटायन पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। पाणिनि मुनि का समय २९०० वि० पूर्व माना जाता है अत: इनका समय २९५० वि० पूर्व होना चाहिये।

अष्टाध्यायी के वार्तिककार

पाणिनि मुनि के समय में इन उपरिलिखित आचार्यों के व्याकरणशास्त्र विद्यमान थे। उन सब व्याकरणशास्त्रों का परिष्कार करके पाणिनि मुनि ने यह अष्टाध्यायी नामक अद्भुत व्याकरणशास्त्र की रचना की है।

वररुचि (कात्यायन), भारद्वाज, सुनाग, क्रोष्टा, वाडव, व्याघ्रभूति, वैयाघ्रपद्य इन आचार्यों ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्बन्धी वार्तिक सूत्रों की रचना करके पाणिनीय व्याकरणशास्त्र को पूर्ण व्याकरण बनाने में सहयोग प्रदान किया और पतञ्जलि मुनि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी और वार्तिक सूत्रों को लेकर व्याकरण महाभाष्य नामक आकर ग्रन्थ की रचना की।

इच्छा पूर्ण हुई

मैंने गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) में सन् १९४७ से १९५१ पर्यन्त गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री के चरणों में बैठकर पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। विद्यार्थीकाल से ही पाणिनीय व्याकरणशास्त्र की सरल व्याख्या लिखने की इच्छा थी। इसी

इच्छा के फलस्वरूप सर्वप्रथम गुरुवर की प्रेरणा से 'व्याकरणकारिका-प्रकाश' नामक रचना लिखकर २०१८ वि० (१९६१ ई०) श्रावणी उपाकर्म के शुभ अवसर पर आचार्यप्रवर भगवान्देव आचार्य (वर्तमान स्वामी ओमानन्द सरस्वती) को भेंट की गई और आर्यकुमार सभा गुरुकुल झज्जर ने उसका प्रकाशन किया।

अष्टाध्यायी पर भी वृत्ति लिखने का कार्य अनेक बार प्रारम्भ किया किन्तु वह मध्य में ही छुट जाता था क्योंकि किसी महापुरुष के सहयोग के बिना कोई भी महान् कार्य पूरा नहीं हो सकता। दिनांक ११ अक्तूबर १९९६ को आर्यसमाज जनकपुरी नई दिल्ली में विद्वद् गोष्ठी के अवसर पर स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने अष्टाध्यायी पर एक अच्छी व्याख्या लिखने की प्रेरणा दी और उसके प्रकाशित करवाने का भी आश्वासन दिया। अक्तूबर १९९२ से अष्टाध्यायी प्रवचन का कार्य चल रहा था। स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से इस कार्य को बड़ी प्रगति मिली। जुलाई १९९३ में रोग के झञ्झावत ने कायातरु को मूल से उखाड़ने का प्रयत्न किया किन्तु प्रभु की इच्छा के सामने रोग को परास्त होना पड़ा और मैं स्वास्थ्यलाभ करके दिसम्बर १९९५ में राजकीय सेवा से निवृत्त होकर इस महान् कार्य की पूर्ति में संलग्न हो गया। परमपिता परमात्मा की असीम दया और गुरुवर स्वामी ओमानन्द सरस्वती आचार्य गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) के शुभ आशीर्वाद से यह महान् कार्य लगभग ७ वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् दिनांक २६-८-९९ (श्रावणी उपाकर्म) को पूरा हो गया और मेरे जीवन की एक प्रबल इच्छा पूर्ण हो गई।

धन्यवाद

इस ग्रन्थ के शुद्ध मुद्रण तथा अपनी हस्तलिखित अष्टाध्यायी वृत्ति के प्रदान से भी इस कार्य में पं० वेदव्रत शास्त्री मालिक आचार्य प्रिंटिंग प्रेस रोहतक ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आचार्य प्रिंटिंग प्रेस के कर्मचारी श्री सुरेन्द्रकुमार चतुर्वेदी ग्राम-शिवपुर (नारायण-गुफा) पो०-विन्ध्याचल, जिला-मिर्जापुर (उ०प्र०) ने उत्तम टङ्कण कार्य किया है। श्रीमती सुशीला देवी ने मुझे गृहकार्यों से निश्चिन्त करके इस साहित्य-यज्ञ में अपनी अनुपम आहुति डाली है। इस महान् कार्य में जिन सज्जनों ने किसी भी रूप में मुझे सहयोग प्रदान किया है, उनका हार्दिक धन्यवाद है।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये वेदकामानां छात्राणामार्तिनाशनम्॥

—सुदर्शनदेव आचार्य
संस्कृत सेवा संस्थान
दूरभाष : ०१२६२-७००७० ७७६/३४, हरिसिंह कालोनी, रोहतक (हरयाणा)

षष्ठभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	प्रत्ययादेशप्रकरणम्	
१.	अनाकावादेशौ	१
२.	आयनादय-आदेशाः	२
३.	अन्त-आदेशः	३
४.	अत्-आदेशः	५
५.	अतो रुडागमः	७
६.	अतो रुडागमविकल्पः	७
७.	बहुलं रुडागमः	८
८.	ऐस्-आदेशः	९
९.	बहुलम् ऐस्-आदेशः	१०
१०.	ऐसादेश-प्रतिषेधः	११
११.	इनादय आदेशाः	१२
१२.	य-आदेशः	१३
१३.	स्मात्स्मिनावादेशौ	१४
१४.	स्मात्स्मिन्नादेश-विकल्पः	१५
१५.	शी-आदेशः	१७
१६.	शि-आदेशः	१९
१७.	औश्-आदेशः	२०
१८.	लुक्-आदेशः	२१
१९.	अम्-आदेशः	२२
२०.	अद्ड्-आदेशः	२३
२१.	अद्डादेश-प्रतिषेधः	२४
२२.	अश्-आदेशः	२५
२३.	अम्-आदेशः	२६
२४.	नकारादेशः	२७
२५.	अभ्यम्-आदेशः	२८
२६.	अत्-आदेशः	२९
२७.	आकम्-आदेशः	३०
२८.	औ-आदेशः	३१
२९.	तातङादेश-विकल्पः	३२
३०.	वसु-आदेशः	३३
३१.	ल्यप्-आदेशः	३४
३२.	क्त्वा-आदेशः	३५
३३.	सु-आदय आदेशाः	३६
३४.	मश्-आदेशः	३८
३५.	त-लोपः	३९
३६.	ध्वात्-आदेशः	४१
३७.	निपातनम्	४१
३८.	तात्-आदेशः	४२
३९.	तबादय-आदेशाः	४३
	आगमप्रकरणम्	
१.	इदन्तत्वम्	४५
२.	यक्-आगमः	४६
३.	निपातनम्	४६
४.	असुक्-आगमः	४८
५.	सुट्-आगमः	५०
६.	त्रय-आदेशः	५१
७.	नुट्-आगमः	५१
८.	नुम्-आगमः	५६
९.	नुमागम-प्रतिषेधः	६०
१०.	नुम्-आगमः	६१
११.	नुमागम-प्रतिषेधः	६५
१२.	नुमागम-विकल्पः	६६
१३.	नुम्-आगमः	६७
१४.	नपुंसकस्य पुंवद्भावः	७१
१५.	अनङ् आदेशः	७३
१६.	अनङादेशदर्शनम्	७४
१७.	ईकारादेशः	७६
१८.	नुमागम-प्रतिषेधः	७६
१९.	नुमागमविकल्पः	७७
२०.	नित्यं नुमागमः	७९
२१.	नुम्-आगमः	८०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	आदेशागमप्रकरणम्	
१.	औत्-आदेशः	८२
२.	आत्-आदेशः	८३
३.	अत्-आदेशः	८४
४.	न्थ-आदेशः	८४
५.	टि-लोपः	८५
६.	असुङ्-आदेशः	८६
७.	णित्-आदेशः	८७
८.	णित्-आदेशविकल्पः	८७
९.	णित्-आदेशः	८८
१०.	अनङ्-आदेशः	८९
११.	तृज्वद्भावः	९०
१२.	तृज्वद्भाव-विकल्पः	९१
१३.	आम्-आगमः	९३
१४.	अम्-आगमः	९४
१५.	इत्-आदेशः	९५
१६.	उत्-आदेशः	९६
१७.	बहुलम् उत्-आदेशः	९७
	सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः	
	वृद्धिप्रकरणम्	
१.	वृद्धिः	९९
२.	वृद्धि-प्रतिषेधः	१०१
३.	वृद्धि-विकल्पः	१०४
	इट्प्रतिषेधप्रकरणम्	
१.	इट्-प्रतिषेधः	१०६
२.	इडागम-विकल्पः	११७
३.	निपातनम्	११८
४.	इट्-प्रतिषेधः	१२०
५.	निपातनम्	१२१
६.	इट्-प्रतिषेधः	१२२
७.	निपातनम्	१२५
८.	इडागम-विकल्पः	१२६
९.	निपातनम्	१३१
१०.	ह्नु-आदेशः	१३१
११.	निपातनम्	१३३
	इडागमप्रकरणम्	
१.	इडागमः	१३६
२.	इटो दीर्घत्वम्	१३८
३.	इटो दीर्घत्वविकल्पः	१३९
४.	इटो दीर्घत्वप्रतिषेधः	१४०
५.	इडागमविकल्पः	१४१
६.	इडागमः	१४९
७.	इडागमविकल्पः	१४९
८.	इडागमः	१५६
९.	इडागमविकल्पः	१६०
१०.	इडागमः	१६२
११.	इडागमप्रतिषेधः	१६३
१२.	निपातनम्	१६७
१३.	इडागमविकल्पः	१६९
१४.	इडागमः	१७०
१५.	इडागमविकल्पः	१७२
१६.	निपातनम्	१७२
१७.	इडागमः	१७३
१८.	इडागमः सक् च	१७५
१९.	इडागमः	१७६
	आदेशप्रकरणम्	
१.	सकार-लोपः	१८०
२.	इय-आदेशः	१८२
३.	मुक्-आगमः	१८३
४.	ईट्-आदेशः	१८४
५.	आकार-आदेशः	१८५
६.	यकार-आदेशः	१८८
११.	लोपादेशः	१८९
१२.	अधिकारः (मपर्यन्तम्)	१९१
१३.	युव-आवौ	१९१
१४.	यूय-वयौ	१९२
१५.	त्व-अहौ	१९२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१६.	तुभ्य-मह्यौ	१९३
१७.	तव-ममौ	१९४
१८.	त्व-मौ	१९४
१९.	तिसृ-चतसृ	१९८
२०.	र-आदेशः	१९८
२१.	जरसादेशविकल्पः	२००
२२.	अकार-आदेशः	२०१
२३.	क-आदेशः	२०२
२४.	कु-आदेशः	२०३
२५.	क्व-आदेशः	२०४
२६.	स-आदेशः	२०४
२७.	औ-आदेशः	२०५
२८.	म-आदेशः	२०६
२९.	य-आदेशः	२०७
३०.	अय्-आदेशः	२०७
३१.	अन-आदेशः	२०८
३२.	लोपादेशः	२०९
	पूर्ववृद्धिप्रकरणम्	
१.	वृद्धिः	२१०
२.	उपधावृद्धिः	२११
३.	आदिवृद्धिः	२१२
	सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः	
	उत्तरवृद्धिप्रकरणम्	
१.	आत्-आदेशः	२१५
२.	वृद्धिरियादेशश्च	२१६
३.	वृद्धिप्रतिषेध ऐजादेशश्च	२१८
४.	वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च	२२०
५.	उक्तप्रतिषेधः	२२१
६.	उक्तप्रतिषेध-विकल्प	२२४
	{उत्तरपदवृद्धिः}	
१.	अधिकारः	२२४
२.	उत्तरपदवृद्धिः	२२५
	{उभयपदवृद्धिः}	
१.	उभयपदवृद्धिः	२३४
२.	उक्तप्रतिषेधः	२३७
३.	उभयपदवृद्धिः	२३९
४.	उभयपदवृद्धिः (उत्तरस्य विभाषा)	२३९
५.	उभयपदवृद्धिः (पूर्वपदस्य वा)	२४१
६.	वृद्धिप्रतिषेधः (पूर्वपदस्य वा)	२४१
७.	उभयपदवृद्धिः (पूर्वपदस्य वा)	२४३
८.	पर्यायेण वृद्धिः	२४५
	{आदेश-विधिः}	
१.	त-आदेशः	२४६
	आगमप्रकरणम्	
१.	युक्-आगमः	२४७
२	उक्तप्रतिषेधः	२४८
३.	पुक्-आगमः	२५१
४.	युक्-आगमः	२५२
५.	जुक्-आगमः	२५३
६.	नुग्लुकावागमौ	२५३
७.	षुक्-आगमः	२५४
	आदेशप्रकरणम्	
१.	व-आदेशः	२५५
२.	त-आदेशः	२५५
३.	प-आदेशविकल्पः	२५६
४.	इट्-आदेशः	२५६
५.	इदादेशप्रतिषेधः	२५७
६.	आद्-आदेशः	२६२
७.	इक-आदेशः	२६३
८.	क-आदेशः	२६४
९.	कु-आदेशः	२६५
१०.	कु-आदेशविकल्पः	२७१
११.	कु-आदेशप्रतिषेधः	२७२
१२.	निपातनम्	२७४
१३.	कु-आदेशप्रतिषेधः	२७५
१४.	निपातनम्	२७६
१५.	कु-आदेशप्रतिषेधः	२७७
१६.	निपातनम्	२७९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१७.	लोपादेशविकल्पः	२८०
१८.	लोपादेशः	२८१
१९.	लुग्विकल्पः	२८३
२०.	दीर्घादेशः	२८४
२१.	छ-आदेशः	२८६
२२.	पादीनां पिबादय आदेशाः	२८७
२३.	ज्ञा-आदेशः	२८८
२४.	ह्रस्वादेशः	२८९
२५.	गुणादेशः	२९०
२६.	गुणादेशप्रतिषेधः	२९५
२७.	वृद्धि-आदेशः	२९७
२८.	वृद्धि-आदेशविकल्पः	२९८
२९.	गुण-आदेशः	२९८
	आगमप्रकरणम्	
१.	इम्-आगमः	२९९
२.	ईट्-आगमः	३००
३.	ईडागम-विकल्पः	३०१
४.	ईडागमः	३०२
५.	बहुलमीडागमः	३०४
६.	ईडागमः	३०६
७.	अडागमः	३०७
	आदेशप्रकरणम्	
१.	दीर्घादेशः	३०८
२.	एत्-आदेशः	३१०
३.	ह्रस्वादेशः	३१२
४.	गुणादेशः	३१३
	आगमप्रकरणम्	
१.	आट्-आगमः	३१६
२.	याट्-आगमः	३१७
३.	स्याट्-आगमः	३१८
४.	स्याडागम-विकल्पः	३१९
	आदेशप्रकरणम्	
१.	आम्-आदेशः	३२०
२.	औत्-आदेशः	३२२
३.	ना-आदेशः	३२३
	सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः	
	आदेशप्रकरणम्	
१.	ह्रस्वादेशः	३२४
२.	ह्रस्वादेशप्रतिषेधः	३२५
३.	ह्रस्वादेशविकल्पः	३२६
४.	लोपादेशः	३२७
५.	इत्-आदेशः	३२८
६.	इकारादेशविकल्पः	३२९
७.	झकारादेशः	३३०
८.	नित्यमृकारादेशः	३३१
९.	दिगि-आदेशः	३३१
१०.	गुणादेशः	३३२
११.	ह्रस्वादेशविकल्पः	३३४
१२.	ह्रस्वादेशः	३३५
१३.	ह्रस्वादेशप्रतिषेधः	३३५
१४.	ह्रस्वादेशविकल्पः	३३६
१५.	गुणादेशः	३३६
	आगमविधिः	
१.	थुक्-आगमः	३३८
	आदेशविधिः	
१.	अकारादेशः	३३८
	आगमविधिः	
१.	पुम्-आगमः	३३९
२.	उम्-आगमः	३३९
	आदेशप्रकरणम्	
१.	गुणादेशः	३४०
२.	अयङ्-आदेशः	३४१
३.	ह्रस्वादेशः	३४२
४.	दीर्घादेशः	३४३
५.	रीङ्-आदेशः	३४५
६.	रिङ्-आदेशः	३४६
७.	गुणादेशः	३४७
८.	ई-आदेशः	३४९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
९.	निपातनम्	३५१
१०.	उक्तप्रतिषेधः	३५२
११.	निपातनम्	३५३
१२.	आत्-आदेशः	३५४
१३.	लोपादेशः	३५५
१४.	इत्-आदेशः	३५६
१५.	ईत्-आदेशविकल्पः	३५७
१६.	हि-आदेशः	३५८
१७.	हि-आदेशविकल्पः	३५९
१८.	निपातनम्	३६०
१९.	इट्-आदेशः	३६१
२०.	त-आदेशः	३६२
२१.	सकारलोपः	३६४
२२.	ह-आदेशः	३६६
२३.	लोपादेशः	३६६
२४.	इस्-आदेशः	३६८
२५.	ईत्-आदेशः	३६९
२६.	इत्-आदेशश्च	३७१
२७.	गुणविकल्पः	३७१
	अभ्यासकार्यप्रकरणम्	
१.	अभ्यासस्य लोपः	३७२
२.	ह्रस्वादेशः	३७३
३.	आदिहलः शेषत्वम्	३७४
४.	खयः शेषत्वम्	३७५
५.	चु-आदेशः	३७५
६.	चु-आदेशप्रतिषेधः	३७६
७.	निपातनम्	३७७
८.	अत्-आदेशः	३८२
९.	सम्प्रसारणम्	३८३
१०.	दीर्घादेशः	३८५
११.	नुट्-आगमः	३८६
१२.	अ-आदेशः	३८८
१३.	निपातनम्	३८८
१४.	गुणादेशः	३८९
१५.	इत्-आदेशः	३९०
१६.	इत्-आदेशः (बहुलम्)	३९२
१७.	इत्-आदेशः	३९३
१८.	इत्-आदेशविकल्पः	३९५
१९.	गुणादेशः	३९६
२०.	दीर्घादेशः	३९८
२१.	नीक्-आगमः	३९८
२२.	नुक्-आगमः	४००
२३.	उत्-आदेशः	४०४
२४.	रीक्-आगमः	४०५
२५.	रुक्-रिक्-रीक्-आगमाः	४०६
२६.	सन्वद्भावः	४०७
२७.	दीर्घादेशः	४०९
२८.	अत्-आदेशः	४१०
२९.	अत्-आदेशविकल्पः	४११
३०.	ईकार-अकारादेशौ	४१२
	अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः	
	द्विर्वचनप्रकरणम्	
१.	द्विर्वचनाधिकारः	४१३
२.	आम्रेडितसंज्ञा	४१३
३.	अनुदात्तस्वरः	४१४
४.	द्विर्वचनम्	४१४
५.	द्विर्वचनं बहुव्रीहिवद्भावश्च	४२०
६.	कर्मधारयवद्भावः	४२१
७.	द्विर्वचनम्	४२२
८.	द्विर्वचनविकल्पः	४२३
९.	निपातनम्	४२४
	पदकार्यप्रकरणम्	
१.	पदस्याधिकारः	४२६
२.	पदात्-अधिकारः	४२७
	{सर्वानुदात्तप्रकरणम्}	
१.	अनुदात्त-अधिकारः	४२७
२.	सर्वमनुदात्तम्	४२८
३.	वान्नावादेशौ	४२९

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
४.	वस्-नसावादेशौ	४३०
५.	तेमयावादेशौ	४३१
६.	त्वामावादेशौ	४३२
७.	उक्तादेशप्रतिषेधः	४३३
८.	उक्तादेशविकल्पः	४३८
९.	सर्वमनुदात्तम्	४३९
१०.	सर्वमनुदात्तप्रतिषेधः	४४१
११.	अनुदात्तमेव	४५०
१२.	सर्वानुदात्तप्रतिषेधः	४५२
१३.	सर्वानुदात्तविकल्पः	४५३
१४.	सर्वानुदात्तप्रतिषेधः	४५५
१५.	सर्वानुदात्तविकल्पः	४५७
१६.	सर्वानुदात्तप्रतिषेधः	४६०
१७.	सर्वानुदात्तविकल्पः	४६१
१८.	सर्वानुदात्तप्रतिषेधः	४६३
१९.	सर्वानुदात्तविकल्पः	४६४
२०.	सर्वानुदात्तप्रतिषेधः	४६६
२१.	सर्वानुदात्तविकल्पः	४७५
२२.	अनुदात्तम्	४७९
	अविद्यमानवद्भावप्रकरणम्	
१.	अविद्यमानवत्	४८३
२.	अविद्यमानवत्प्रतिषेधः	४८५
३.	अविद्यमानवद्विकल्पः	४८६
	अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः	
	{अथ त्रिपादी प्रारभ्यते}	
	असिद्धप्रकरणम्	
१.	असिद्धाधिकारः	४८८
२.	असिद्धत्वम्	४८९
३.	असिद्धत्वप्रतिषेधः	४९१
	{आदेशप्रकरणम्}	
१.	स्वरितादेशः	४९२
२.	उदात्तः (एकादेशः)	४९३
३.	वा स्वरितः (एकादेशः)	४९४
४.	नलोपादेशः	४९५
५.	नलोपप्रतिषेधः	४९६
६.	वकारादेशः	४९७
७.	निपातनम्	५००
	{आगमविधिः}	
१.	नुट्-आगमः	५०३
	{आदेशप्रकरणम्}	
१.	ल-आदेशः	५०४
२.	लकारादेशविकल्पः	५०६
३.	लोपादेशः	५०८
४.	स-लोपः	५०९
५.	सकार-ककारलोपः	५१३
६.	कवर्गादेशः	५१४
७.	ढ-आदेशः	५१५
८.	घ-आदेशः	५१६
९.	घकारादेशविकल्पः	५१७
१०.	ध-आदेशः	५१९
११.	थ-आदेशः	५२०
१२.	ष-आदेशः	५२०
१३.	भष्-आदेशः	५२३
१४.	जश्-आदेशः	५२८
१५.	ध-आदेशः	५२९
१६.	क-आदेशः	५३०
	{निष्ठातकारादेशप्रकरणम्}	
१.	न-आदेशः	५३१
२.	निपातनम्	५३८
३.	क-आदेशः	५३८
४.	व-आदेशः	५३९
५.	म-आदेशः	५३९
६.	मादेशविकल्पः	५४०
७.	निपातनम्	५४१
८.	नादेशविकल्पः	५४२
९.	निपातनम्	५४५
	{आदेशप्रकरणम्}	
१.	कु-आदेशः	५४७

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२.	कु-आदेशविकल्पः	५४८
३.	न-आदेशः	५४९
	{रु-आदेशप्रकरणम्}	
१.	रु-आदेशः	५५०
२.	निपातनम्	५५१
३.	रु-आदेशः	५५२
४.	र-आदेशः	५५३
५.	उभयथा (रुः+रः)	५५३
६.	द-आदेशः	५५६
७.	रु-आदेशविकल्पः	५५७
	{आदेशप्रकरणम्}	
१.	दीर्घादेशः	५५८
२.	दीर्घादेशप्रतिषेधः	५६१
३.	उकारमकारादेशौ	५६२
४.	ईत्-आदेशः	५६३
	{प्लुतादेशप्रकरणम्}	
१.	अधिकारः	५६४
२.	प्लुतः (उदात्तः)	५६४
३.	प्लुतः (अनुदात्तः)	५६६
४.	प्लुतः (स्वरितः)	५७८
५.	प्लुतविधिमाह	५८१
६.	यवावादेशौ	५८३
	अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः	
	पूर्वसंहिताप्रकरणम्	
	{रु-आदेशप्रकरणम्}	
१.	रु-आदेशः	५८५
२.	अनुनासिकादेशाधिकारः	५८६
३.	नित्यमनुनासिकः	५८७
४	अनुस्वारादेशः	५८७
५.	रु-आदेशः	५८८
६.	ऋक्षु उभयथा (रु+न्)	५९१
७.	रु-आदेशः	५९२
	आदेशप्रकरणम्	
१.	लोपादेशः	५९४
२.	विसर्जनीयादेशः	५९६
३.	य-आदेशः	५९७
४.	लघुप्रयत्नतरादेशः	५९९
५.	लोपादेशः	६००
६.	अनुस्वारादेशः	६०३
७.	म-आदेशः	६०४
८.	मकारादेशविकल्पः	६०५
९.	नकारादेशविकल्पः	६०६
	{आगमप्रकरणम्}	
१.	कुक्टुगागमविकल्पः	६०६
२.	धुडागमविकल्पः	६०७
३.	तुक्-आगमः	६०९
४.	ङमुट्-आगमः	६०९
	{आदेशप्रकरणम्}	
१.	वकारादेशविकल्पः	६१०
२.	स-आदेशः	६११
३.	विसर्जनीयादेशः	६१२
४.	विसर्जनीयादेशविकल्पः	६१२
५.	≍क≍पावादेशौ	६१३
६.	स-आदेशः	६१४
७.	ष-आदेशः	६१७
८.	स-आदेशविकल्पः	६१८
९.	ष-आदेशविकल्पः	६१९
१०.	नित्यं षकारादेशः	६२०
११.	नित्यं सकारादेशः	६२१
१२.	स-आदेशः	६२२
१३.	षकारः सकारो वाऽऽदेशः	६२३
१४.	सकारादेशविकल्पः	६२४
१५.	सकारादेशः	६२५
१६.	बहुलं सकारादेशः	६२७
१७.	सकारादेशः	६२८
१८.	सकारादेशविकल्पः	६२९
	{मूर्धन्यादेशप्रकरणम्}	
१.	अधिकारः	६३०

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
२.	मूर्धन्यादेशः	६३०
३.	अधिकारः	६३१
४.	मूर्धन्यादेशः	६३२
५.	सकारादेशः	६३७
६.	अधिकारः	६३८
७.	मूर्धन्यादेशः	६४०
८.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६५२
९.	निपातनम्	६५६
१०.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६५७
११.	नित्यं मूर्धन्यादेशः	६५८
१२.	मूर्धन्यादेशः	६५८
१३.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६५९
१४.	मूर्धन्यादेशः	६६०
१५.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६६१
१६.	मूर्धन्यादेशः	६६४
१७.	निपातनम्	६६९
१८.	मूर्धन्यादेशः	६७३
१९.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६७८
२०.	मूर्धन्यादेशः	६७८
२१.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६८२
२२.	मूर्धन्यादेशः	६८५
२३.	मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः	६८९
२४.	निपातनम्	६९२
२५.	मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः	६९२
२६.	मूर्धन्यादेशविकल्पः	६९७

अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

उत्तरसंहिताप्रकरणम्

{णकारादेशप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	णकारादेशः	६९९
२.	णकारादेशविकल्पः	७०९
३.	णकारादेशः	७११
४.	णकारादेशविकल्पः	७२०
५.	णकारादेशः	७२१
६.	णकारादेशविकल्पः	७२३
७.	णकारादेशः	७२४
८.	णकारादेशविकल्पः	७३०
९.	णकारादेशः	७३२
१०.	णकारादेशविकल्पः	७३३
११.	णकारादेशः	७३४
१२.	णकारादेशप्रतिषेधः	

{आदेशप्रकरणम्}

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१.	शकारचवर्गौ	७४१
२.	षकारटवर्गौ	७४३
३.	षकारटवर्गप्रतिषेधः	७४५
४.	टवर्गप्रतिषेधः	७४६
५.	उक्तप्रतिषेधः	७४७
६.	अनुनासिकादेशविकल्पः	७४७
७.	द्विर्वचनम्	७४८
८.	द्विर्वचनप्रतिषेधः	७४९
९.	जशादेशः	७५२
१०.	चर्+जश्	७५३
११.	चरादेशः	७५५
१२.	चरादेशविकल्पः	७५६
१३.	परसवर्णादेशः	७५७
१४.	परसवर्णादेशविकल्पः	७५९
१५.	परसवर्णादेशः	७५९
१६.	परसवर्णादेशविकल्पः	७६१
१७.	छकारादेशविकल्पः	७६२
१८.	लोपादेशः	७६३
१९.	लोपादेशविकल्पः	७६४
२०.	स्वरितादेशः	७६५
२१.	स्वरितादेशप्रतिषेधः	७६६
२२.	संवृतादेशः	७६७

।। इति षष्ठभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम् ।।

सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्रत्ययाऽऽदेशप्रकरणम्

अनाकावादेशौ–

(१) युवोरनाकौ।१।

प०वि०–युवोः ६।१ अनाकौ १।२।

स०–युश्च वुश्च एतयोः समाहारो युवु, तस्य–युवोः (समाहारद्वन्द्वः)। अनश्च अकश्च तौ अनाकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गाद् युवोरनाकौ।

अर्थः–अङ्गात् परयोर्युवोः स्थाने यथासंख्यम् अनाकावादेशौ भवतः।

उदा०–(युः) नन्दनः। रमणः। सायन्तनः। चिरन्तनः। (वुः) कारकः। हारकः। वासुदेवकः। अर्जुनकः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (युवोः) यु और वु के स्थान में यथासंख्य (अनाकौ) अन और अक आदेश होते हैं।*

*उदा०–(यु) **नन्दनः**। आनन्दित करनेवाला (पुत्र)। **रमणः**। रमण करनेवाला। **सायन्तनः**। सायंकाल होनेवाला। **चिरन्तनः**। चिरकाल में होनेवाला। (वु) **कारकः**। करनेवाला। **हारकः**। हरण करनेवाला। **वासुदेवकः**। वासुदेव=कृष्ण का भक्त। **अर्जुनकः**। अर्जुन का भक्त।*

*सिद्धि–(१) **नन्दनः**। नन्द्+णिच्+ल्यु। नन्द्+०+अन। नन्दन+सु। नन्दनः।*

*यहां णिजन्त **'टुनदि समृद्धौ'** (भ्वा०आ०) से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०'** (३।१।१३४) से 'ल्यु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। ऐसे ही **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से–**रमणः**।*

*(२) **सायन्तनः**। सायम्+ट्यु। सायम्+तुट्+यु। सायम्+त्+अन। सायन्तन+सु। सायन्तनः।*

*यहां 'सायम्' शब्द से **'सायंचिरंप्राह्णे०'** (४।३।२३) से 'जात' आदि शेष-अर्थों में **'ट्यु'** प्रत्यय है और इसे 'तुट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही 'चिरम्' शब्द से–**चिरन्तनः**।*

(३) कारकः। कृ+ण्वुल्। कृ+वु। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से कर्ता-अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अङ्ग को वृद्धि होती है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-हारकः।

(४) वासुदेवकः। वासुदेव+वुन्। वासुदेव+वु। वासुदेव्+अक। वासुदेवक+सु। वासुदेवकः।

यहां 'वासुदेव' शब्द से 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (६।३।९८) से भक्ति-अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही 'अर्जुन' शब्द से-अर्जुनकः।

आयनादय आदेशाः-

(२) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।२।

प०वि०-आयन्-एय्+ईन्-ईय्-इयः १।३ फ-ढ-ख-छ-घाम् ६।३ प्रत्ययादीनाम् ६।३।

स०-आयन् च एय् च ईन् च ईय् च इय् च ते-आनेयीनीयियः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। फश्च ढश्च खश्च छश्च घ् च ते फढखछघः, तेषाम्-फढखछघाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्रत्ययस्य आदिरिति प्रत्ययादिः, ते प्रत्ययादयः, तेषाम्-प्रत्ययादीनाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गात् प्रत्ययादीनां फढखछघाम् आयनेयीनीयियः।

अर्थः-अङ्गात् परेषां प्रत्ययादीनां फ-ढ-ख-छ-घां स्थाने यथासंख्यम् आयन्-एय्-ईन्-ईय्-इय आदेशा भवन्ति।

उदा०-**(फः)** नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः। चारायणः। **(ढः)** सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः। वैनतेयः। **(खः)** आढ्यकुले जातः-आढ्यकुलीनः। श्रोत्रियकुलीनः। **(छः)** गार्ग्यस्यायं छात्रः-गार्गीयः। वात्सीयः। **(घः)** क्षत्रस्य अपत्यम्-क्षत्रियः। फादिष्वकार उच्चारणार्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (प्रत्ययादीनाम्) प्रत्यय के* ***आदि में विद्यमान (फढखछघाम्)*** *फ, ढ, ख, छ, घ् के स्थान में यथासंख्य (आयनेयीनीयियः)* ***आयन्, एय्, ईन्, ईय्, इय् आदेश होते हैं।***

उदा०-(फ) **नाडायनः** । नड का पौत्र। **चारायणः** । चर का पौत्र। (ढ) **सौपर्णेयः** । सुपर्णी का पुत्र। **वैनतेयः** । विनता का पुत्र (गरुड़)। (ख) **आढ्यकुलीनः** । आढ्यकुल में उत्पन्न। **श्रोत्रियकुलीनः** । वेदपाठी कुल में उत्पन्न। (छ) **गार्गीयः** । गार्ग्य का शिष्य। **वात्सीयः** । वात्स्य का शिष्य। (घ) **क्षत्रियः** । राजा का पुत्र। फ-आदि में अकार उच्चारणार्थ है।

सिद्धि-(१) **नाडायनः** । नड+फक्। नाड्+आयन। नाडायन+सु। नाडायनः।

यहां 'नड' शब्द से **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से गोत्रापत्य-अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है। ऐसे ही 'चर' शब्द से-**चारायणः** ।

(२) **सौपर्णेयः** । सुपर्णी+ढक्। सौपर्ण्+एय। सौपर्णेय+सु। सौपर्णेयः।

यहां 'सुपर्णी' शब्द से **'स्त्रीभ्यो ढक्'** (४।१।१२०) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। ऐसे ही 'विनता' शब्द से-**वैनतेयः** ।

(३) **आढ्यकुलीनः** । आढ्यकुलीन+ख। आढ्यकुलीन+ईन। आढ्यकुलीन+सु। आढ्यकुलीनः।

यहां 'आढ्यकुल' शब्द से **'कुलात् खः'** (४।१।१४०) से 'ख' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ऐसे ही 'श्रोत्रियकुल' शब्द से-**श्रोत्रियकुलीनः** ।

(४) **गार्गीयः** । गार्ग्य+छ। गार्ग्य्+ईय। गार्ग्+ईय। गार्गीय+सु। गार्गीयः।

यहां 'गार्ग्य' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।१।१२०) से इदम्-अर्थ में **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'छ्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही 'वात्स्य' शब्द से-**वात्सीयः** ।

(५) **क्षत्रियः** । क्षत्र+घ। क्षत्र्+इय। क्षत्रिय+सु। क्षत्रियः।

यहां 'क्षत्र' शब्द से **'क्षत्राद् घः'** (४।१।१३८) से अपत्य-अर्थ में 'घ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।

अन्त-आदेशः-

(३) झोऽन्तः ।३।

प०वि०-झः ६।१ अन्तः १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। 'प्रत्ययादीनाम्' इत्यस्माच्च प्रत्ययग्रहणमनुवर्तते, आदिग्रहणं निवृत्तम्।

अन्वयः-अङ्गात् प्रत्ययस्य झोऽन्तः।

अर्थः-अङ्गात् परस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽन्तादेशो भवति।

उदा०-ते कुर्वन्ति। ते सुन्वन्ति। ते चिन्वन्ति। अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै (वासिष्ठगृह्यसूत्रम् १०।२४)। जरन्तः। वेशन्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अवयवभूत (झः) झकार के स्थान में (अन्तः) अन्त आदेश होता है।*

*उदा०-**ते कुर्वन्ति।** वे सब करते हैं। **ते सुन्वन्ति।** वे सब अभिषव करते हैं। अभिषव=रस निचोड़ना। **ते चिन्वन्ति।** वे चयन करते हैं। **अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै** (वासिष्ठ गृह्यसूत्र १०।२४)। शयान्तै=सोती हैं। **जरन्तः।** वृद्ध पुरुष अथवा भैंसा। **वेशन्तः।** छोटा तालाब।*

सिद्धि-(१) कुर्वन्ति। *कृ+लट्। कृ+ल्। कृ+झि। कृ+उ+अन्ति। कर्+उ+अन्ति। कुर्+व्+अन्ति। कुर्वन्ति।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'झि' प्रत्यय के 'झकार' को 'अन्त' आदेश होता है। **'तनादिकृञ्भ्यः उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से 'कर्' के अकार को उकार आदेश होता है।*

(२) सुन्वन्ति। ***'षुञ् अभिषवे'*** *(स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से-**चिन्वन्ति।***

(३) शयान्तै। *शी+लेट्। शी+आट्+ल्। शी+आ+झ। शी+शप्+आ+अन्त। शे+०+आ+अन्ते। शय्+आ+अन्तै। शयान्तै।*

*यहां **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से **लिङर्थे लेट्'** (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से लेट्' को 'आट्' आगम, **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'अन्त' के टि-भाग (अ) को एत्व और **'वैतोऽन्यत्र'** (३।४।९६) से एकार को ऐकार आदेश होता है। **'शीङः सार्वधातुके गुणः'** (७।४।२१) से 'शीङ्' धातु को गुण होता है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है।*

*यहां **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से लकार-अवस्था में 'आट्' आगम होता है अतः 'झ' प्रत्यय झकारादि नहीं रहता है। इसलिये यहां **'प्रत्ययादीनाम्'** (७।१।२) से 'आदि' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है, केवल 'प्रत्यय' की अनुवृत्ति होती है। इससे प्रत्यय के अवयव झकार को अन्त आदेश होता है, ऐसा सूत्रार्थ किया जाता है।*

(४) जरन्तः। जॄ+झच्। जॄ+झ। जॄ+अन्त। जर्+अन्त। जरन्त+सु। जरन्तः।

*यहां **'जॄ वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से **'जॄविशिभ्यां झच्'** (उणा० ३।१२६) से 'झच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

(५) वेशन्तः। ***'विश प्रवेशने'*** *(तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

अत्-आदेशः–

(४) अदभ्यस्तात् ।४।

प०वि०–अत् १ ।१ अभ्यस्तात् ५ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अभ्यस्ताद् अङ्गात् प्रत्ययस्य झोऽत् ।

अर्थः–अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽत्-आदेशो भवति ।

उदा०–ते ददति । ते दधति । ते जक्षति । ते जाग्रति । ते ददतु । ते दधतु । ते जक्षतु । ते जाग्रतु ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अव्ययभूत (झः) झकार के स्थान में (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०-**ते ददति।** वे सब दान करते हैं। **ते दधति।** वे सब धारण-पोषण करते हैं। **ते जक्षति।** वे सब खाते हैं/हंसते हैं। **ते जाग्रति।** वे सब जागते हैं। **ते ददतु।** वे सब दान करें। **ते दधतु।** वे सब धारण-पोषण करें। **ते जक्षतु।** वे सब खायें/हंसे। **ते जाग्रतु।** वे सब जागें।*

***सिद्धि-(१) ददति।** दा+लट्। दा+ल्। दा+झि। दा+शप्+झि। दा+०+अति। दा-दा+अति। द-द्+अति। ददति।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश और '**श्लौ**' (६।१।१०) से 'दा' धातु को द्वित्व होता है। '**उभे अभ्यस्तम्**' (६।१।५) से 'दा-दा' की अभ्यस्त संज्ञा होती है। इस अभ्यस्त-संज्ञक अङ्ग से उत्तर 'झि' के झकार को 'अत्' आदेश होता है। '**श्नाभ्यस्तयोरातः**' (६।४।११२) से 'दा' के आकार का लोप होता है। लोट् लकार में-**ददतु।** 'एरुः' (३।४।८६) से उत्व होता है।*

(२) दधति।** 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्। लोट्लकार में-**दधतु।

(३) जक्षति।** 'जक्ष भक्षहसनयोः' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। इसकी '**जक्षित्यादयः षट्**' (६।१।६) से अभ्यस्त संज्ञा है। लोट्लकार में-**जक्षतु।

***(४) जाग्रति।** 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। इसकी पूर्ववत् अभ्यस्त-संज्ञा है।*

अत्-आदेशः–

(५) आत्मनेपदेष्वनतः।५।

प०वि०–आत्मनेपदेषु ७।३ अनतः ५।१।

स०–न अत् इति अनत्, तस्मात्-अनतः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनतोऽङ्गाद् आत्मनेपदेषु प्रत्ययस्य झोऽत्।

अर्थः-अनतः=अनकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽदादेशो भवति।

उदा०–ते चिन्वते। ते लुनते। ते पुनते। ते चिन्वताम्। ते लुनताम्। ते पुनताम्। ते अचिन्वत। ते अलुनत। ते अपुनत।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अनतः) अकारान्त से भिन्न (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्ययों में विद्यमान (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अवयवभूत (झः) झकार के स्थान में (अत्) अत् आदेश होता है।*

उदा०–ते ***चिन्वते।*** *वे सब चयन करते हैं। ते* ***लुनते।*** *वे सब काटते हैं। ते* ***पुनते।*** *वे सब पवित्र करते हैं। ते* ***चिन्वताम्।*** *वे सब चयन करें। ते* ***लुनताम्।*** *वे सब लावणी करें। ते* ***पुनताम्।*** *वे सब पवित्र करें। ते* ***अचिन्वत।*** *उन सब ने चयन किया। ते* ***अलुनत।*** *उन सब ने लावणी की। ते* ***अपुनत।*** *उन सब ने पवित्र किया।*

सिद्धि-(१) चिन्वते। *चि+लट्। चि+ल्। चि+झ। चि+श्नु+झ। चि+नु+अत। चि+न्व्+अते। चिन्वते।*

यहां ***'चिञ् चयने'*** *(स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है।* ***'स्वादिभ्यः श्नुः'*** *(३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्ययों में विद्यमान, प्रत्यय के अवयवभूत झकार के स्थान में 'अत्' आदेश होता है।* ***'हुश्नुवोः सार्वधातुके'*** *(६।४।८७) से यणादेश (व्) होता है।* ***'टित आत्मनेपदानां टेरे'*** *(३।४।७९) से 'अत' के टि-भाग (अ) को एकार आदेश होता है। यहां 'झ' प्रत्यय अनकारान्त अङ्ग से उत्तर स्पष्ट है।*

*लोट्लकार में-**चिन्वताम्।*** ***'आमेतः'*** *(३।४।९०) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। लङ्लकार में-**अचिन्वत।***

(२) लुनते। ***'लूञ् छेदने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है।* ***'श्नाभ्यस्तयोरातः'*** *(६।४।११२) से 'श्ना' प्रत्यय के आकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। लोट्लकार में-**लुनताम्।** लङ्लकार में-**अलुनत।***

*(३) पुनते। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। लोट्लकार में-**पुनताम्**। लङ्लकार में-**अपुनत**।*

अतो रुडागमः–

(६) शीङो रुट्।६।

प०वि०–शीङः ५।१ रुट् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–शीङोऽङ्गाद् झः प्रत्ययस्य अतो रुट्।

अर्थः–शीङोऽङ्गाद् उत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य रुडागमो भवति।

उदा०–ते शेरते। ते शेरताम्। ते अशेरत।

आर्यभाषाः अर्थ-*(शीङः) शीङ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (रुट्) रुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ते शेरते**। वे सब सोते हैं। **ते शेरताम्**। वे सब सोवें। **ते अशेरत**। उन सबने शयन किया।*

*सिद्धि-**शेरते**। शीङ्+लट्। शी+ल्। शी+झ। शी+शप्+झ। शी+०+अत। शी+रुट्+अते। शे+र्+अते। शेरते।*

*यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**आत्मनेपदेष्वनतः**' (७।१।५) से 'झ्' को 'अत्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु से उत्तर 'झ' के अत्-आदेश को 'रुट्' आगम होता है। '**अदिप्रभृतिभ्यः शपः**' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है।*

*लोट्लकार में-**शेरताम्**। 'आमेतः' (३।४।९०) से एकार के आम्-आदेश होता है। लङ्लकार में-**अशेरत**।*

अतो रुडागम-विकल्पः–

(७) वेत्तेर्विभाषा।७।

प०वि०–वेत्तेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अत्, रुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः–वेत्तेरङ्गाद् झः प्रत्ययस्य अतो विभाषा रुट्।

अर्थः–वेत्तेरङ्गाद् उत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य विकल्पेन रुडागमो भवति।

उदा०-ते संविद्रते, संविदते। ते संविद्रताम्, संविदताम्। ते समविद्रत, समविदत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वेत्तेः) वेत्ति=विद् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (विभाषा) विकल्प से (रुट्) रुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ते संविद्रते, संविदते।** वे सब सम्यक् जानते हैं। **ते संविद्रताम्, संविदताम्।** वे सब सम्यक् जानें। **ते समविद्रत, समविदत।** उन सबने सम्यक् जाना।*

सिद्धि-(१) संविद्रते। *सम्+विद्+लट्। सम्+विद्+ल्। सम्+विद्+झ। सम्+विद्+शप्+झ। सम्+विद्+०+अत। सम्+विद्+रुट्+अते। सम्+विद्+र्+अते। संविद्रते।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **वा०- 'समो गमादिषु विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्'** (१।३।२९) से आत्मनेपद होता है। **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ्' के स्थान में अत्-आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'अत्' आदेश को 'रुट्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'रुट्' आगम नहीं है-**संविदते।***

*लोट्लकार में-**संविद्रताम्, संविदताम्। 'आमेतः'** (३।४।९१) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। लङ्लकार में-**समविद्रत, समविदत।***

बहुलं रुडागमः-

(८) बहुलं छन्दसि।८।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अत्, रुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गात् झः प्रत्ययस्य अतो बहुलं रुट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गादुत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य बहुलं रुडागमो भवति।

उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। न च भवति-अदुहत। बहुलवचनादत्रापि भवति-अदृश्रमस्य केतवः (ऋ० १।५०।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (बहुलम्) प्रायशः (रुट्) रुट् आगम होता है।*

*उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४ ।२ ।१३)। देवताओं ने दोहन (प्रपूरण) किया। **गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र** (मै०सं० ४ ।२ ।१३)। गन्धर्व और अप्सराओं ने दोहन किया। विकल्प पक्ष में रुट् आगम नहीं है-**अदुहत।** उन्होंने दोहन किया। बहुलवचन से अत्-आदेश से अन्यत्र भी 'रुट्' आगम होता है-**अदृश्रमस्य केतवः** (ऋ० १ ।५० ।३)। मैंने (प्रष्कण्व) इस सूर्य की किरणों को देखा है।*

सिद्धि-(१) अदुह्र। *दुह्+लङ्। अट्+दुह्+ल्। अ+दुह्+झ। अ+दुह्+शप्+झ। अ+दुह्+० अत। अ+दुह्+रुट्+अत। अ+दुह्+र्+अ०। अदुह्र।*

*यहां **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०उ०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झ-प्रत्यय के अत-आदेश को 'रुट्' आगम होता है। **'लोपस्त आत्मनेपदेषु'** (७ ।१ ।४१) से तकार का लोप होता है। विकल्प पक्ष में रुट्-आगम नहीं है-**अदुहत।***

(२) अदृश्रम्। *दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+ल्। अ+दृश्+च्लि+मिप्। अ+दृश्+अङ्+अम्। अ+दृश्+अ+रुट्+अम्। अ+दृश्+अ+र्+अम्। अदृश्रम्।*

*यहां **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'इरितो वा'** (३ ।१ ।५७) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३ ।४ ।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश है। इस सूत्र से बहुलवचन से इस 'अम्' को भी 'रुट्' आगम होता है। बहुलवचन से ही दृश् धातु को **'ऋदृशोऽङि गुणः'** (७ ।४ ।१६) से प्राप्त गुण नहीं होता है।*

ऐस्-आदेशः-

(६) अतो भिस ऐस्।६।

प०वि०-अतः ५ ।१ भिसः ६ ।१ ऐस् १ ।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गाद् भिसः प्रत्ययस्य ऐस्।

अर्थः-अदन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य भिसः प्रत्ययस्य स्थाने ऐसादेशो भवति।

उदा०-वृक्षैः। प्लक्षैः। अतिजरसैः।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ऐस्) ऐस् आदेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षैः।** वृक्षों के द्वारा। **प्लक्षैः।** प्लक्षों (पिलखण) के द्वारा। **अतिजरसैः।** जरा के विजेताओं के द्वारा।*

सिद्धि-(१) वृक्षैः। वृक्ष+भिस्। वृक्ष+ऐस्। वृक्षैस्। वृक्षैः।

*यहां 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से उत्तर 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश होता है। '**वृद्धिरेचि**' (६।१।८७) से वृद्धिरूप (अ+ऐ=ऐ) एकादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-* ***प्लक्षैः।***

*(२) **अतिजरसैः।** अति+जरा। अति+जर। अतिजर+भिस्। अतिजर+ऐस्। अतिजरस्+ऐस्। अतिजरसैस्। अतिजरसैः।*

*यहां प्रथम 'अति' और 'जरा' शब्दों का वा०-'**अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से 'जरा' शब्द को ह्रस्वादेश (जर) होता है। इस अकारान्त 'अतिजर' शब्द से उत्तर इस सूत्र से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है। '**एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति**' इस परिभाषा के बल से '**जराया जरसन्यतरस्याम्**' (७।२।१०१) से 'जरा' को विहित 'जरस्' आदेश 'जर' के स्थान में भी किया जाता है।*

बहुलम् ऐसादेशः--

(१०) बहुलं छन्दसि।१०।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, भिसः, ऐस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अतोऽङ्गाद् भिसः प्रत्ययस्य बहुलम् ऐस्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽदन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य भिसः प्रत्ययस्य स्थाने बहुलम् ऐसादेशो भवति।

उदा०-अत इत्युक्तम्, अनतोऽपि भवति-नद्यैः। अतश्च न भवति-देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तम्। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम (यजु० २५।२१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (बहुलम्) प्रायशः (ऐस्) ऐस् आदेश होता है।*

*उदा०-'**अतो भिस ऐस्**' (५।१।९) से अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश कहा है। छन्द में बहुल वचन से अनकारान्त से भी उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है, जैसे-**नद्यैः।** नदियों के द्वारा। बहुलवचन से अकारान्त से उत्तर भी नहीं होता है, जैसे-**देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तम्।** सब देवताओं ने कहा। **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम** (यजु० २५।२१)। हम कानों से कल्याणकारी उपदेश सुनें।*

*सिद्धि-(१) **नद्यैः**। नदी+भिस्। नदी+ऐस्। नद्यैस्। नद्यैः।*

*यहां 'नदी' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र में बहुलवचन से ईकारान्त 'नदी' शब्द से उत्तर भी 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है।*

*(२) **देवेभिः**। देव+भिस्। देव् ए+भिस्। देवेभिस्। देवेभिः।*

*यहां 'देव' शब्द से पूर्ववत् 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से बहुलवचन से '**अतो भिस ऐस्**' (७।१।९) से अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को विहित 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। '**बहुलवचने झल्येत्**' (७।३।१०३) से एकार आदेश होता है। व्याकरणशास्त्र में बहुलवचन से लक्षण व्यभिचरित हो जाते हैं।*

ऐसादेश-प्रतिषेधः-

(११) नेदमदसोरकोः।११।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इदमदसोः ६।२ अकोः ६।२।

स०-इदम् च अदस् च तौ इदमदसौ, तयोः-इदमदसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। अविद्यमानः ककारो ययोस्तौ-अकौ, तयोः-अकोः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, भिसः, ऐस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकोरिदमदसोर्भिसः प्रत्ययस्य ऐस् न।

अर्थः-अकोः=ककारवर्जितयोरिदमदसोः सम्बन्धिनो भिसः प्रत्ययस्य स्थाने ऐसादेशो न भवति।

उदा०-(**इदम्**) एभिः। (**अदस्**) अमीभिः।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(अकोः) ककार से रहित (इदमदसोः) इदम् और अदस् सम्बन्धी (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ऐस्) ऐस् आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(**इदम्**) **एभिः**। इनके द्वारा। (**अदस्**) **अमीभिः**। उनके द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **एभिः**। इदम्+भिस्। इद अ+भिस्। इद+भिस्। अ+भिस्। ए+भिस्। एभिस्। एभिः।*

*यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से मकार को अकार आदेश, '**अतो गुणे**' (६।१।९६) से पररूप अकार आदेश (अ+अ=अ) और '**हलि लोपः**' (७।२।११३) से 'इद्' भाग का लोप होता है। 'अ+भिस्' इस स्थिति में '**अतो भिस ऐस्**' (७।१।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त है। इस सूत्र से ककार-रहित 'इदम्' सम्बन्धी 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। '**बहुवचने झल्येत्**' (७।३।१०३) से 'अकार' को एकार आदेश होता है।*

(२) अमीभिः । अदस्+भिस् । अद अ+भिस् । अद+भिस् । अद+भि । अदे+भिस् । अमी+भिस् । अमीभिः ।

*यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'भिस्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'अदस्' के सकार को अकार आदेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप अकार आदेश (अ+अ=अ) है। 'अद+भिस्' इस स्थिति में **'अतो भिस ऐस्'** (७।१।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त है। इस सूत्र से ककार-रहित 'अदस्' सम्बन्धी 'भिस्' को ऐस् आदेश नहीं होता है। **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अकार को एकार आदेश, **'एत ईद् बहुवचने'** (८।२।८१) से 'एकार' को 'ईकार' आदेश और 'दकार' को 'मकार' आदेश होता है।*

*सूत्रपाठ में 'अकोः' के कथन से यहां ऐसादेश का प्रतिषेध नहीं होता है- **(इदम्)** इमकैः। **(अदस्)** अमुकैः। यहां **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७१) से 'अकच्' प्रत्यय है, अतः 'इदम्' और 'अदस्' शब्द ककारसहित हैं।*

इनादय आदेशाः-

(१२) टाङसिङसामिनात्स्याः ।१२।

प०वि०-टा-ङसि-ङसाम् ६।३ इन-आत्-स्याः १।३।

स०-टाश्च ङसिश्च ङस् च ते टाङसिङसः, तेषाम्-टाङसिङसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। इनश्च आच्च स्यश्च ते इनात्स्याः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् टाङसिङसां प्रत्ययानाम् इनात्स्याः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरेषां टा-ङसि-ङसां प्रत्ययानां स्थाने यथासंख्यम् इन-आत्-स्या आदेशा भवन्ति।

उदा०-**(टा)** वृक्षेण, प्लक्षेण। **(ङसि)** वृक्षात्, प्लक्षात्। **(ङस्)** वृक्षस्य, प्लक्षस्य।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (टाङसिङसाम्) टा, ङसि, ङस् इन (प्रत्ययानाम्) प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (इनात्स्याः) इन, आत्, स्य आदेश होते हैं।*

*उदा०-**(टा) वृक्षेण।** वृक्ष के द्वारा। **प्लक्षेण।** प्लक्ष (पिलखण) के द्वारा। **(ङसि) वृक्षात्।** वृक्ष से। **प्लक्षात्।** प्लक्ष से। **(ङस्) वृक्षस्य।** वृक्ष का। **प्लक्षस्य।** प्लक्ष का।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षेण**। वृक्ष+टा। वृक्ष+इन। वृक्षेण।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'टा' को 'इन' आदेश होता है। '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षेण**।*

*(२) **वृक्षात्**। वृक्ष+ङसि। वृक्ष+आत्। वृक्षात्।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङसि' को 'आत्' आदेश होता है। '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश (अ+अ=आ) होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षात्**।*

*(३) **वृक्षस्य**। वृक्ष+ङस्। वृक्ष+स्य। वृक्षस्य।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङस्' को 'स्य' आदेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षस्य**।*

य-आदेशः-

(१३) ङेर्यः।१३।

प०वि०-ङेः ६।१ यः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गाद् ङेः प्रत्ययस्य यः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् परस्य ङेः प्रत्ययस्य स्थाने य आदेशो भवति।

उदा०-वृक्षाय। प्लक्षाय।

आर्यभाषाः अर्थ-(*अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङेः) ङे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (यः) य-आदेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षाय**। वृक्ष के लिये। **प्लक्षाय**। प्लक्ष (पिलखण) के लिये।*

*सिद्धि-**वृक्षाय**। वृक्ष+ङे। वृक्ष+य। वृक्षा+य। वृक्षाय।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है। 'सुपि च' (७।३।१०२) से अङ्ग को दीर्घ होता है।*

स्मै-आदेशः-

(१४) सर्वनाम्नः स्मै।१४।

प०वि०-सर्वनाम्नः ५।१ स्मै १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, ङेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतः सर्वनाम्नोऽङ्गाद् ङेः प्रत्ययस्य स्मैः।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरस्य ङेः प्रत्ययस्य स्थाने स्मैरादेशो भवति।

उदा०-सर्वस्मै। विश्वस्मै। कस्मै। तस्मै।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक (ङे) ङे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (स्मैः) स्मै आदेश होता है।*

*उदा०-**सर्वस्मै**। सबके लिये। **विश्वस्मै**। सबके लिये। **कस्मै**। किसके लिये। **तस्मै**। उसके लिये।*

*सिद्धि-(१) **सर्वस्मै**। सर्व+ङे। सर्व+स्मै। सर्वस्मै।*

*यहां 'सर्व' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से सर्वनामसंज्ञक, अकारान्त 'सर्व' शब्द से परे 'ङे' के स्थान में 'स्मै' आदेश होता है। 'सर्व' शब्द की 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (१।१।२७) से 'सर्वनाम' संज्ञा है। ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वस्मै**।*

*(२) **कस्मै**। किम्+ङे। क+स्मै। कस्मै।*

यहां 'किम्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

*(३) **तस्मै**। तत्+ङे। त अ+ङे। त+स्मै। तस्मै।*

यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'तत्' के तकार को अकारादेश और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

स्मात्स्मिनावादेशौ-

(१५) ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ।१५।

प०वि०-ङसि-ङ्योः ६।२ स्मात्-स्मिनौ १।२।

स०-ङसिश्च ङिश्च तौ ङसिङी, तयोः-ङसिङ्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्माच्च स्मिँश्च तौ स्मात्स्मिनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्नः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतः सर्वनाम्नोऽङ्गाद् ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्मात्स्मिनौ।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरयोर्ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्थाने यथासंख्यं स्मात्स्मिनावादेशौ भवतः।

उदा०-(ङसि) सर्वस्मात्। विश्वस्मात्। यस्मात्। तस्मात्। कस्मात्। **(ङि)** सर्वस्मिन्। विश्वस्मिन्। यस्मिन्। तस्मिन्। कस्मिन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङसिङ्योः) ङसि और ङि (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (स्मात्स्मिनौ) स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं।*

उदा०-(ङसि) ***सर्वस्मात्।*** *सबसे।* ***विश्वस्मात्।*** *सबसे।* ***यस्मात्।*** *जिससे।* ***तस्मात्।*** *उससे।* ***कस्मात्।*** *किससे। (ङि)* ***सर्वस्मिन्।*** *सबमें।* ***विश्वस्मिन्।*** *सबमें।* ***यस्मिन्।*** *जिसमें।* ***तस्मिन्।*** *उसमें।* ***कस्मिन्।*** *किसमें।*

सिद्धि-(१) ***सर्वस्मात्।*** *सर्व+ङसि। सर्व+स्मात्। सर्वस्मात्।*

यहां सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'स्मात्' आदेश होता है। ऐसे ही-* ***विश्वस्मात्।***

'यस्मात्' और 'तस्मात्' यहां 'यत्' और 'तत्' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। ***'त्यादादीनामः'*** *(७।२।१०२) से 'यत्' और 'तत्' को अकार आदेश होता है।* ***'कस्मात्'*** *यहां 'किम्' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है।* ***'किमः कः'*** *(७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) ***सर्वस्मिन्।*** *सर्व+ङि। सर्व+स्मिन्। सर्वस्मिन्।*

यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' आदेश होता है। ऐसे ही- ***'विश्वस्मिन्'*** *आदि।*

स्मात्स्मिनादेश-विकल्पः-

(१६) पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा।१६।

प०वि०-पूर्वादिभ्यः ५।३ नवभ्यः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-पूर्व आदिर्येषां ते पूर्वादयः, तेभ्यः-पूर्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्नः, ङसिङ्योः, स्मात्स्मिनाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वनामभ्योऽद्भ्यो नवभ्यः पूर्वादिभ्योऽङ्गेभ्यो ङसिङ्योः प्रत्यययो वा स्मात्स्मिनौ।

अर्थः-सर्वनामसंज्ञकेभ्योऽकारान्तेभ्यो नवभ्यः पूर्वादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्थाने विकल्पेन यथासंख्यं स्मात्स्मिनावादेशौ भवतः। **उदाहरणम्-**

शब्दः		शब्दरूपम्	भाषार्थः
१. पूर्वम्	(ङसि)	पूर्वस्मात्, पूर्वात्।	पूर्व से।
	(ङि)	पूर्वस्मिन्, पूर्वे।	पूर्व में।
२. परम्	(ङसि)	परस्मात्, परात्।	पर (अन्य) से।
	(ङि)	परस्मिन्, परे।	पर (अन्य) में।
३. अवरम्	(ङसि)	अवरस्मात्, अवरात्।	अवर (इधर) से।
	(ङि)	अवरस्मिन्, अवरे।	अवर (इधर) में।
४. दक्षिणम्	(ङसि)	दक्षिणस्मात्, दक्षिणात्।	दक्षिण से।
	(ङि)	दक्षिणस्मिन्, दक्षिणे।	दक्षिण में।
५. उत्तरम्	(ङसि)	उत्तरस्मात्, उत्तरात्।	उत्तर से।
	(ङि)	उत्तरस्मिन्, उत्तरे।	उत्तर में।
६. अपरम्	(ङसि)	अपरस्मात्, अपरात्।	अपर (पश्चिम) से।
	(ङि)	अपरस्मिन्, अपरे।	अपर (पश्चिम) में।
७. अधरम्	(ङसि)	अधरस्मात्, अधरात्।	अधर (नीचे) से।
	(ङि)	अधरस्मिन्, अधरे।	अधर (नीचे) में।
८. स्वम्	(ङसि)	स्वस्मात्, स्वात्।	स्व (अपने) में।
	(ङि)	स्वस्मिन्, स्वे।	स्व (अपने) में।
९. अन्तरम्	(ङसि)	अन्तरस्मात्, अन्तरात्।	अन्तर (व्यवधान) में।
	(ङि)	अन्तरस्मिन्, अन्तरे।	अन्तर (व्यवधान) में।

पूर्वादयो नवशब्दाः सर्वादिषु पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ- *(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अतः) अकारान्त (नवभ्यः) नौ (पूर्वादिभ्यः) पूर्व-आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (ङसिङ्योः) ङसि और ङि (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (स्मात्स्मिनौ) स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) पूर्वस्मात्। *यहां सर्वनाम-संज्ञक, अकारान्त 'पूर्व' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'स्मात्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'स्मात्' आदेश नहीं है-***पूर्वात्।*** *ऐसे ही-***परस्मात्, परात्*** *आदि।*

*(२) **पूर्वस्मिन्।** यहां सर्वनाम-संज्ञक 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'स्मिन्' आदेश नहीं है-**पूर्वे।** ऐसे ही-**परस्मिन्** आदि।*

शी-आदेशः–

(१७) जसः शी।१७।

प०वि०–जसः ६।१ शी १।१ (सु-लुक्)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सर्वनाम्नोऽतोऽङ्गाज्जसः प्रत्ययस्य शीः।

अर्थः–सर्वनामसंज्ञकाद् अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य जसः प्रत्ययस्य स्थान शी-आदेशो भवति।

उदा०–सर्वे। विश्वे। ये। के। ते।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (जसः) जस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शीः) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**सर्वे।** सब। **विश्वे।** सब। **ये।** जो सब। **के।** कौन सब। **ते।** वे सब।*

***सिद्धि-सर्वे।** सर्व+जस्। सर्व+शी। सर्व+ई। सर्वे।*

*यहां सर्वनाम-संज्ञक, अकारान्त 'सर्व' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। **'आद्गुणः'** (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश (अ+इ=ए) है।*

*ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वे,** 'यत्' शब्द से-**ये,** 'किम्' शब्द से-के और 'तत्' शब्द से-**ते।***

शी-आदेशः–

(१८) औङ आपः।१८।

प०वि०–औङः ६।१ आपः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, शीरिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आपोऽङ्गाद् औङः प्रत्ययस्य, शीः।

अर्थः–आबन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य औङः प्रत्ययस्य स्थाने शी-आदेशो भवति।

उदा०-खट्वे तिष्ठतः। त्वं खट्वे पश्य। बहुराजे। कारीषगन्ध्ये।

औङ इत्यत्र ङकारः सामान्यग्रहणार्थः, येन औटोऽपि ग्रहणं यथा स्यात्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आपः) आप् जिसके अन्त में है, उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (औङः) औ और औट् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शी) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**खट्वे तिष्ठतः।** दो खाट हैं। **त्वं खट्वे पश्य।** तू दो खाटों को देख। **बहुराजे।** बहुत राजाओंवाली दो स्त्रियों ने/को। **कारीषगन्ध्ये।** दो कारीषगन्ध्याओं ने/को।*

सिद्धि-*(१) **खट्वे।** खट्वा+औ। खट्वा+शी। खट्वा+ई। खट्वे।*

*यहां आबन्त 'खट्वा' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। **'आद्गुणः'** (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश (अ+ई=ए) है। ऐसे ही **'औट्'** (२।२) प्रत्यय करने पर भी-**खट्वे।***

*यहां 'औङ्' में ङकार अनुबन्ध सामान्य ग्रहण करने के लिये है। इससे **'औ'** (१।२) तथा **'औट्'** (२।२) इन दोनों प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। क्योंकि पूर्वाचार्यों ने इन दोनों प्रत्ययों को 'औङ्' ही पढ़ा है।*

*(२) **बहुराजे।** यहां प्रथम 'बहुराजन्' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'** (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'बहुराजा' शब्द से पूर्ववत् 'औ' और 'औट्' प्रत्यय है।*

*(३) **कारीषगन्ध्ये।** 'करीषस्येव **गन्धोऽस्येति**-करीषगन्धिः' (बहुव्रीहिः)। यहां प्रथम **'उपमानाच्च'** (५।४।१७३) से समासान्त 'इच्' प्रत्यय है। **करीषगन्धेरपत्यं स्त्री-कारीषगन्ध्या।** यहां 'करीषगन्धि' शब्द से 'तस्यापत्यम्' से अपत्य-अर्थ (स्त्री) में 'अण्' प्रत्यय और उसके स्थान में **'अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे'** (४।१।७८) से 'ष्यङ्' आदेश होता है और पुनः स्त्रीत्व-विवक्षा में **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से 'चाप्' प्रत्यय है। 'आप्' इस सामान्य वचन से 'टाप्', 'डाप्' और 'चाप्' प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। आबन्त कारीषगन्ध्या शब्द से पूर्ववत् 'औ' और 'औट्' प्रत्यय है।*

शी-आदेशः—

(१६) नपुंसकाच्च।१६।

प०वि०-नपुंसकात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, शीः, औङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकाद् अङ्गाच्च औङः प्रत्ययस्य शीः।

अर्थः-नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य च औङः प्रत्ययस्य स्थाने शी-आदेशो भवति।

उदा०-कुण्डे तिष्ठतः। त्वं कुण्डे पश्य। दधिनी। मधुनी। त्रपुणी। जतुनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (च) भी (औङः) औ और औट् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शी) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**कुण्डे तिष्ठतः।** दो कुण्ड हैं। **त्वं कुण्डे पश्य।** तू कुण्डों को देख। **दधिनी।** दो दही। **मधुनी।** दो मधु। **त्रपुणी।** दो त्रपु (सीसा, रांगा)। **जतुनी।** दो जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत)।*

*सिद्धि-**(१) कुण्डे।** कुण्ड+औ। कुण्ड+शी। कुण्ड+ई। कुण्डे।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में शी-आदेश होता है। ऐसे ही 'औट्' प्रत्यय करने पर भी-**कुण्डे।** यहां **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप प्राप्त होता है किन्तु **'वा०-श्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः'** अकार-लोप का प्रतिषेध हो जाता है।*

*(२) **दधिनी।** दधि+औ। दधि+शी। दधि+ई। दधि+नुम्+ई। दधि+न्+ई। दधिनी।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'दधि' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से 'नुम्' आगम है। ऐसे ही 'औट्' प्रत्यय करने पर भी-**दधिनी।** ऐसे ही 'मधु' शब्द से-**मधुनी।** 'त्रपु' शब्द से-**त्रपुणी।** 'जतु' शब्द से-**जतुनी।***

शि-आदेशः-

(२०) जश्शसोः शिः।२०।

प०वि०-जश्-शसोः ६।२ शिः १।१।

स०-जस् च शस् च तौ जश्शसौ, तयोः-जश्शसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, नपुंसकाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकाद् अङ्गाज्जश्शसोः प्रत्यययोः शिः।

अर्थः-नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोः स्थाने शिरादेशो भवति।

उदा०-(जस्) कुण्डानि तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वं कुण्डानि पश्य। दधीनि। मधूनि। त्रपूणि। जतूनि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (जश्शसोः) जस् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्यय के स्थान में (शिः) शि-आदेश होता है।*

*उदा०-(जस्) **कुण्डानि तिष्ठन्ति।** बहुत कुण्ड हैं। **(शस्) त्वं कुण्डानि पश्य।** तू कुण्डों को देख। **दधीनि।** बहुत दही। **मधूनि।** बहुत मधु। **त्रपूणि।** बहुत त्रपु (सीसा, रांगा)। **जतूनि।** बहुत जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत)।*

*सिद्धि-**कुण्डानि।** कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड+नुम्+इ। कुण्ड+न्+इ। कुण्डान्+इ। कुण्डानि।*

*यहां नपुंसक 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से 'नुम्' आगम और **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ होता है। **'शि सर्वनामस्थानम्'** (१।१।४२) से 'शि' की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा है। ऐसे ही-दधि शब्द से-**दधीनि**, मधु शब्द से-**मधूनि**, जतु शब्द से-**जतूनि**, त्रपु शब्द से-**त्रपूणि।***

औश्-आदेशः-

(२१) अष्टाभ्य औश्।२१।

प०वि०-अष्टाभ्यः ५।१ औश् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य जश्शसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अष्टाभ्योऽङ्गेभ्यो जश्शसोः प्रत्यययोरौश्।

अर्थः-अष्टाभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोः स्थाने औश्-आदेशो भवति।

उदा०-(जस्) अष्टौ तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वम् अष्टौ पश्य।

अष्टाभ्य इत्यत्र कृताकारग्रहणात् कृताकारोऽष्टन्-शब्दो गृह्यते। एतदेव कृतात्वग्रहणम् **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) इत्यनेनात्व-विकल्पस्य ज्ञापकं भवति। तेन-अष्ट तिष्ठन्ति, त्वम् अष्ट पश्य इत्यत्रात्वं न भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अष्टाभ्यः) अष्टा इस (अङ्गेभ्यः) अङ्ग से परे (जश्शसोः) जस् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (औश्) औश् आदेश होता है।*

*उदा०-(जस्) **अष्टौ तिष्ठन्ति।** आठ हैं। (शस्) **त्वम् अष्टौ पश्य।** तू आठों को देख।*

*'अष्टाभ्यः' यहां अष्टन् शब्द का कृताकार (अष्टा) रूप में ग्रहा किया गया है। यही कृताकार रूप में 'अष्टा' शब्द का ग्रहण **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) से विहित आकारादेश के विकल्प भाव का ज्ञापक है। इससे **'अष्ट तिष्ठन्ति, त्वम् अष्ट पश्य'** यहां आत्व नहीं होता है।*

***सिद्धि-अष्टौ।** अष्टन्+जस्। अष्ट आ+अस्। अष्टा+औश्। अष्टा+औ। अष्टौ।*

*यहां 'अष्टन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) से 'अष्टन्' शब्द को आकार-आदेश होता है। इससे सूत्र से कृताकार 'अष्टा' शब्द से परे 'जस्' के स्थान में 'औश्' आदेश होता है। इस आदेश के शित् होने से यह **'अनेकाल्शित्सर्वस्य'** (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। यह **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) का अपवाद है। अतः 'औश्' का लुक् नहीं होता है।*

लुक्-आदेशः-

(२२) षड्भ्यो लुक्।२२।

प०वि०-षड्भ्यः ५।३ लुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, जश्शसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-षड्भ्योऽङ्गेभ्यो जश्शसोः प्रत्यययोर्लुक्।

अर्थः-षट्संज्ञकेभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोर्लुग् भवति।

उदा०-(जस्) षट् तिष्ठन्ति। पञ्च तिष्ठन्ति। सप्त तिष्ठन्ति। नव तिष्ठन्ति। दश तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वं षट् पश्य। पञ्च पश्य। सप्त पश्य। नव पश्य। दश पश्य।

आर्यभाषाः अर्थ-(षड्भ्यः) षट्-संज्ञक (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (जश्शसोः) जश् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों का लुक् होता है।*

*उदा०-(जस्) **षट् तिष्ठन्ति।** छः खड़े हैं। **पञ्च तिष्ठन्ति।** पांच खड़े हैं। **सप्त तिष्ठन्ति।** सात खड़े हैं। **नव तिष्ठन्ति।** नौ खड़े हैं। **दश तिष्ठन्ति।** दश खड़े हैं। (शस्) **त्वं षट् पश्य।** तू छः को देख। **पञ्च पश्य।** तू पांच को देख। **सप्त पश्य।** तू सात को देख। **नव पश्य।** तू नौ को देख। **दश पश्य।** तू दश को देख।*

***सिद्धि-षट्।** षष्+जस्। षष्+०। षड्+० षट्+०। षट्।*

*यहां षट्-संज्ञक 'षष्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२४) से 'षष्' की षट् संज्ञा है। इस सूत्र से 'जस्' प्रत्यय लुक्*

*(लोप) होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'षष्' के षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।२६) से डकार को चर् टकार होता है। ऐसे ही 'षष्' शब्द से 'शस्' प्रत्यय करने पर-**षट्।** ऐसे ही-**पञ्च, सप्त, नव, दश।***

लुक्-आदेशः-

(२३) स्वमोर्नपुंसकात्।२३।

प०वि०-सु-अमोः ६।२ नपुंसकात् ५।१।

स०-सुश्च अम् च तौ स्वमौ, तयोः-स्वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकाद् अङ्गात् स्वमोर्लुक्।

अर्थः-नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोर्लुग् भवति।

उदा०-**(सुः)** दधि तिष्ठति। मधु तिष्ठति। त्रपु तिष्ठति। जतु तिष्ठति। **(अम्)** त्वं दधि पश्य। मधु पश्य। त्रपु पश्य। जतु पश्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**(सु) दधि तिष्ठति।** दही है। **मधु तिष्ठति।** मधु है। **त्रपु तिष्ठति।** त्रपु (सीसा, रांगा) है। **जतु तिष्ठति।** जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत) है। **(अम्) त्वं दधि पश्य।** तू दही को देख। **मधु पश्य।** तू मधु को देख। **त्रपु पश्य।** तू त्रपु को देख। **जतु पश्य।** तू जतु को देख।*

***सिद्धि-दधि।** दधि+सु। दधि+०। दधि।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'दधि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर-**दधि।** ऐसे ही-**मधु, त्रपु, जतु।***

अम्-आदेशः-

(२४) अतोऽम्।२४।

प०वि०-अतः ५।१ अम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोः, नपुंसकादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतो नपुंसकाद् अङ्गात् स्वमोः प्रत्यययोरम्।

अर्थः-अकारान्तान्नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽम्-आदेशो भवति।

उदा०-(सुः) कुण्डं तिष्ठति। वनं तिष्ठति। पीठं तिष्ठति। (अम्) त्वं कुण्डं पश्य। वनं पश्य। पीठं पश्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अम्) अम् आदेश होता है।*

*उदा०-(सु) **कुण्डं तिष्ठति।** कुण्ड है। **वनं तिष्ठति।** वन है। **पीठं तिष्ठति।** आसन है। (अम्) **त्वं कुण्डं पश्य।** तू कुण्ड को देख। **वनं पश्य।** तू वन को देख। **पीठं पश्य।** तू आसन को देख।*

***सिद्धि-कुण्डम्।** कुण्ड+सु। कुण्ड+अम्। कुण्डम्।*

*यहां अकारान्त, नपुंसकलिङ्ग 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) है। ऐसे ही **'अम्'** (२।१) प्रत्यय करने पर भी-**कुण्डम्।** ऐसे ही-**वनम्, पीठम्।***

अद्ड्-आदेशः–

(२५) अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः।२५।

प०वि०-अद्ड् १।१ डतरादिभ्यः ५।३ पञ्चभ्यः ५।३।

स०-डतर आदिर्येषां ते डतरादयः, तेभ्यः-डतरादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पञ्चभ्यो डतरादिभ्योऽङ्गेभ्यः स्वमोः प्रत्यययोरद्ड्।

अर्थः-पञ्चभ्यो डतरादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽदडादेशो भवति।

उदा०-(सुः) कतरत् तिष्ठति। कतमत् तिष्ठति। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्। (अम्) कतरत् पश्य। कतमत् पश्य। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्।

डतरादयः पञ्च शब्दाः सर्वादिषु पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पञ्चभ्यः) पांच (डतरादिभ्यः) डतर-आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अद्ड्) अद्ड् आदेश होता है।*

उदा०-(सु) **कतरत् तिष्ठति।** दो में से कौन-सा खड़ा है। **कतमत् तिष्ठति।** बहुत में से कौन-सा खड़ा है। **इतरत्।** दो में से कोई। **अन्यतरत्।** दो में से कोई। **अन्यत्।** कोई। (अम्) **त्वं कतरत् पश्य।** तू दो में से किसी के देख। **कतमत् पश्य।** तू बहुत में से किसी को देख। **इतरत्।** दो में से किसी को। **अन्यतरत्।** दो में से किसी को। **अन्यत्।** किसी को।

ये 'डतर' आदि पांच शब्द सर्वादिगण (१।१।२७) में पठित हैं।

सिद्धि-(१) कतरत्। किम्+डतरच्। किम्+अतर। क्+अतर। कतर।। कतर+सु। कतर+अद्ड्। कतर+अद्। कतर्+अत्। कतरत्।

यहां प्रथम 'किम्' शब्द से **'किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्'** (५।३।९२) से 'डतरच्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के डित् होने से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'किम्' के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। तत्पश्चात् डतर-प्रत्ययान्त 'कतर' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अद्ड्' आदेश होता है। इस आदेश के भी 'डित्' होने से पूर्ववत् 'कतर' के टि-भाग (अ) का लोप होता है। इसका फल यह है कि **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।१००) से प्राप्त दीर्घ रूप एकादेश (अ+अ=आ) नहीं होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर भी-**कतरत्।** ऐसे ही-**इतरत्** आदि।

(२) कतमत्। यहां प्रथम 'किम्' शब्द से **'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्'** (५।३।९३) से 'डतमच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अद्डादेश-प्रतिषेधः-

(२६) नेतराच्छन्दसि।२६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इतरात् ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोः, अद्ड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि इतराद् अङ्गात् स्वमोः प्रत्यययोरद्ड् न।

अर्थः-छन्दसि विषये इतराद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽद्डादेशो न भवति।

उदा०-मृतमितरमाण्डमवापद्यत (मै०सं० १।६।१२) वार्त्रघ्नमितरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इतरात्) इतर इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अद्ड्) अद्ड् आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-मृतमितरमाण्डमवापद्यत (मै०सं० १।६।१२) वार्त्रघ्नमितरम्।

सिद्धि-इतरम्। इतर+सु। इतर+अम्। इतरम्।

यहां छन्द विषय में 'इतर' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अम्' आगम का प्रतिषेध है। अतः अतोऽम्' (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश और 'अमि पूर्वः' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश (अ+अ=अ) होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर भी-इतरम्।

अश्-आदेशः-

(२७) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्।२७।

प०वि०-युष्मद्-अस्मद्भ्याम् ५।२ ङसः ६।१ अश् १।१।

स०-युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तभ्याम्-युष्मदस्मद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां ङसः प्रत्ययस्याऽश्।

अर्थः-युस्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङसः प्रत्ययस्य स्थानेऽशादेशो भवति।

उदा०-(युष्मद्) तव स्वम्। **(अस्मद्)** मम स्वम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङसः) ङस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अश्) अश् आदेश होता है।*

उदा०-(युष्मद्) तव स्वम्। तेरा धन। (अस्मद्) मम स्वम्। मेरा धन।

सिद्धि-(१) तव। युष्मद्+ङस्। युष्मद्+अश्। युष्मद्+अ। तवद्+अ। तव+अ। तव।

यहां 'युष्मद्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश है। यह आदेश शित् होने से 'अनेकालशित्सर्वस्य' (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। 'तवममौ ङसि' (१।१।५५) से 'युस्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तव' आदेश, 'शेषे लोपः' (७।२।९०) से दकार का लोप और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।

(२) मम। यहां 'अस्मद्' शब्द के स्थान में 'तवममौ ङसि' (७।२।९६) से 'मम' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अम्-आदेश–

(२८) ङे प्रथमयोरम्।२८।

प०वि०–ङे ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) प्रथमयो: ६।२ अम्।

स०–प्रथमा च प्रथमा च ते प्रथमे, तयो:-प्रथमयो: (एकशेषद्वन्द्व:)। प्रथमाद्वितीयाविभक्त्योरित्यर्थ:।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वय:–युस्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां ङे: प्रथमयो: प्रत्यययोरम्।

अर्थ:–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङे: स्थाने प्रथमयो:= प्रथमाद्वितीययोर्विभक्त्योश्च प्रत्यययो: स्थानेऽमादेशो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** ङे–तुभ्यं दीयते। **(अस्मद्)** ङे–मह्यं दीयते। **(युष्मद्) प्रथमा**–त्वम्। युवाम्। यूयम्। **द्वितीया**–त्वाम्। युवाम्। **(अस्मद्) प्रथमा**–अहम्। आवाम्। वयम्। **द्वितीया**–माम्। आवाम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङे:) ङे इस प्रत्यय के और (प्रथमयो:) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के (प्रत्यययों) प्रत्ययों के स्थान में (अम्) अम् आदेश होता है।*

*उदा०–(युष्मद्) ङे–**तुभ्यं दीयते।** तेरे लिये दान किया जाता है। **(अस्मद्) ङे–मह्यं दीयते।** मेरे लिये दान किया जाता है। **(युष्मद्) प्रथमा–त्वम्।** तू। **युवाम्।** तुम दोनों। **यूयम्।** तुम सब। **द्वितीया–त्वाम्।** तुझको। **युवाम्।** तुम दोनों को। **(अस्मद्) प्रथमा–अहम्।** मैं। **आवाम्।** हम दोनों। **वयम्।** हम सब। **द्वितीया–माम्।** मुझको। **आवाम्।** हम दोनों को।*

*सिद्धि–(१) **तुभ्यम्।** युष्मद्+ङे। युष्मद्+अम्। तुभ्यद्+अम्। तुभ्य०+अम्। तुभ्यम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्दों से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङे' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। '**तुभ्यमह्यौ ङयि**' (७।२।९५) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तुभ्य' आदेश. '**शेषे लोप:**' (७।२।९०) से दकार का लोप और '**अमि पूर्व:**' (६।१।१०५) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।*

*(२) **मह्यम्।** यहां 'अस्मद्' के स्थान में '**तुभ्यमह्यौ ङयि**' (७।२।९५) से 'मह्य' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **त्वम्।** यहां 'युष्मद्' से 'सु' प्रत्यय परे होने पर '**त्वाहौ सौ**' (७।२।९४) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से–**अहम्।***

*(४) **युवाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'औ' प्रत्यय परे होने पर **'युवावौ द्विवचने'** (७।२।९२) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश है। **'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्'** (७।२।८८) से आत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्।***

*(५) **यूयम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय परे होने पर **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'यूय' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्।***

*(६) **त्वाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द 'अम्' प्रत्यय परे होने पर **'त्वमावेकवचने'** (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से आत्व होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**माम्।***

*(७) **युवाम्, आवाम्।** पूर्ववत् (सं० ४)।*

नकारादेशः—

(२६) शसो न।२६।

प०वि०-शसः ६।१ न १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां शसः प्रत्ययस्य नः।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य शसः प्रत्ययस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(युष्मद्) युष्मान् ब्राह्मणान्। युष्मान् ब्राह्मणीः। युष्मान् कुलानि। **(अस्मद्)** अस्मान् ब्राह्मणान्। अस्मान् ब्राह्मणीः। अस्मान् कुलानि।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (शसः) शस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्मान् ब्राह्मणान्।** तुम ब्राह्मणों को। **युष्मान् ब्राह्मणीः।** तुम ब्राह्मणियों को। **युष्मान् कुलानि।** तुम कुलों को। (अस्मद्) **अस्मान् ब्राह्मणान्।** हम ब्राह्मणों को। **अस्मान् ब्राह्मणीः।** हम ब्राह्मणियों को। **अस्मान् कुलानि।** हम कुलों को।*

*सिद्धि-**युष्मान्।** युष्मद्+शस्। युष्मद्+अस् युष्मद्+न्स्। युष्मा+न्स्। युष्मान्०। युष्मान्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शस्' को नकारादेश होता है और यह **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) के नियम से 'शस्' के*

*आदिभूत अकार के स्थान में किया जाता है। **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२४) से सकार का लोप और **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से आत्व होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मान्।***

*युस्मद् और अस्मद् शब्द अव्यय है। अतः स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में समान रूप होते हैं-**युष्मान् ब्राह्मणीः। युष्मान् कुलानि।***

अभ्यम्-आदेशः-

(३०) भ्यसोऽभ्यम्।३०।।

प०वि०-भ्यसः ६।१ अभ्यम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य भ्यसः प्रत्ययस्याऽभ्यम्।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य भ्यसः प्रत्ययस्य स्थानेऽभ्यमादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** युष्मभ्यं दीयते। **(अस्मद्)** अस्मभ्यं दीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (भ्यसः) भ्यस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अभ्यम्) अभ्यम् आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्मभ्यं दीयते।** तुम्हारे लिये दान किया जाता है। **(अस्मद्) अस्मभ्यं दीयते।** हमारे लिये दान किया जाता है।*

***सिद्धि-युष्मभ्यम्।** युष्मद्+भ्यस्। युष्मद्+अभ्यम्। युष्म०+अभ्यम्। युष्मभ्यम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भ्यस्' के स्थान में 'अभ्यम्' आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से गुणरूप एकादेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मभ्यम्।***

***विशेषः** यहां काशिकावृत्ति में **'भ्यसो भ्यम्'** ऐसा सूत्रपाठ मानकर 'भ्यस्' के स्थान में 'भ्यम्' आदेश स्वीकार किया है। 'भ्यम्' आदेश करने पर तथा **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप हो जाने पर **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अकार के स्थान में एकार आदेश प्राप्त होता है इस दोष का **'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्य'** इस परिभाषा के बल से परिहार किया है कि अङ्गाधिकार में एक कार्य होने पर उत्तरकालवर्ती अङ्ग-कार्य की विधि नहीं होती है। गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री ने **'भ्यसोऽभ्यम्'** ऐसा सूत्रपाठ मानकर 'अभ्यम्' आदेश पढ़ाया है। इसमें परिभाषा के आश्रय की आवश्यकता नहीं है।*

अत्-आदेशः–

(३१) पञ्चम्या अत्।३१।

प०वि०–पञ्चम्या: ६।१ अत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम्, भ्यस इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां पञ्चम्या भ्यसः प्रत्ययस्याऽत्।

अर्थः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य पञ्चम्या भ्यसः प्रत्ययस्य स्थानेऽदादेशो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** ते युष्मद् अपगच्छन्ति। **(अस्मद्)** ते अस्मद् अपगच्छन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (पञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति के (भ्यसः) भ्यस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०–(युष्मद्) **ते युष्मद् अपगच्छन्ति।** वे सब तुमसे दूर होते हैं। **(अस्मद्) ते अस्मद् अपगच्छन्ति।** वे सब हमसे दूर होते हैं।*

***सिद्धि-युष्मत्।** युष्मद्+भ्यस्। युष्मद्+अत्। युष्म०+अत्। युष्मत्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से पञ्चमी विभक्ति का बहुवचन 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भ्यस्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। **'भ्यसोऽभ्यम्'** (७।१।३०) से 'अभ्यम्' आदेश प्राप्त था, यह उसका अपवाद है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मत्।***

अत्-आदेशः–

(३२) एकवचनस्य च।३२।

प०वि०–एकवचनस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम्, पञ्चम्याः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् पञ्चम्या एकवचनस्य प्रत्ययस्य च अत्।

अर्थः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य पञ्चम्या एकवचनस्य प्रत्ययस्य स्थाने चाऽदादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) ते त्वद् अपगच्छन्ति। (**अस्मद्**) ते मद् अपगच्छन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (पञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति के (एकवचनस्य) एकवचन के (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (च) भी (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **ते त्वद् अपगच्छन्ति।** वे सब तुझ से दूर होते हैं। (अस्मद्) **ते मद् अपगच्छन्ति।** वे सब हम से दूर होते हैं।*

*सिद्धि-**त्वत्।** युष्मद्+ङसि। युष्मद्+अत्। त्वद्+अत्। त्व०+अत्। त्व+अत्। त्वत्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन का 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश है। **'त्वमावेकवचने'** (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश, **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप ओर **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्।***

आकम्-आदेशः-

(३३) साम आकम्।३३।

प०वि०-सामः ६।१ आकम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां सामः प्रत्ययस्याऽऽकम्।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य सामः प्रत्ययस्य स्थाने आकमादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) युष्माकं स्वम्। (**अस्मद्**) अस्माकं स्वम्।

'सामः' इति षष्ठीबहुवचनमागतसुट्कं गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और (अस्मद्) इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (सामः) साम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (आकम्) आकम् आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्माकं स्वम्।** तुम्हारा धन। (अस्मद्) **अस्माकं स्वम्।** हमारा धन।*

*सिद्धि-**युष्माकम्।** युष्मद्+आम्। युष्मद्+सुट्+आम्। युष्मद्+स्+आम्। युष्मद्+साम्। युष्मद्+आकम्। युष्म०+आकम्। युष्माकम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से षष्ठीविभक्ति का बहुवचन 'आम्' प्रत्यय है। इसे '**आमि सर्वनाम्नः सुट्**' (७।१।५२) से 'सुट्' आगम होता है। तत्पश्चात् सुट्-आगम सहित 'आम्' प्रत्यय (साम्) के स्थान में इस सूत्र से 'आकम्' आदेश होता है। '**शेषे लोपः**' (७।२।९०) से दकार का लोप और '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्माकम्।***

औ-आदेशः-

(३४) आत औ णलः।३४।

प०वि०-आतः ५।१ औ १।१ (सु-लुक्) णलः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गाद् णलः प्रत्ययस्य औः।

अर्थः-आकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य णलः प्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति।

उदा०-स पपौ। स तस्थौ। स जग्लौ। स मम्लौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आतः) आकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (णलः) णल् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (औः) औकार आदेश होता है।*

*उदा०-**स पपौ।** उसने पान किया। **स तस्थौ।** वह ठहरा। **स जग्लौ।** उसने ग्लानि की। **स मम्लौ।** उसने ग्लानि की।*

*सिद्धि-(१) **पपौ।** पा+लिट्। पा+तिप्। पा+णल्। पा+औ। पौ। पा-पौ। प-पौ। पपौ।*

*यहां '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लादेश 'तिप्' और '**णल तुसुस्०**' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'णल्' के स्थान में 'औ' आदेश होता है। '**वृद्धिरेचि**' (६।१।८५) से वृद्धिरूप एकादेश 'पौ' होकर पश्चात् '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५८) से रूपातिदेश रूप स्थानिवद्भाव से 'पा-पौ' इस प्रकार '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से द्वित्व होता है। '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व है।*

*(२) **तस्थौ।** यहां '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। '**शर्पूर्वाः खयः**' (७।४।६१) से अभ्यास का 'खय्' वर्ण 'थ्' शेष रहता है। '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से थकार को 'चर्' तकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) जग्लौ। यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। 'कुहोश्चु:' (७।४।६२) से अभ्यास के गकार को चवर्ग जकार होता है। ऐसे ही 'म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से-मम्लौ।

तातङादेश-विकल्पः–

(३५) तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्।३५।

प०वि०–तु-ह्यो: ६।२ तातङ् १।१ आशिषि ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–तुश्च हिश्च तौ तुही, तयो:-तुह्यो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:–आशिषि अङ्गात् तुह्यो: प्रत्यययोरन्यतरस्यां तातङ्।

अर्थ:–आशिषि विषयेऽङ्गाद् उत्तरयोस्तुह्यो: प्रत्यययो: स्थाने विकल्पेन तातङ् आदेशो भवति।

उदा०–**(तु:)** जीवताद् भवान्। जीवतु भवान्। **(हि:)** जीवतात् त्वम्। जीव त्वम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आशिषि) आशीर्वाद विषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तुह्यो:) तु और हि इन (प्रत्यययो:) प्रत्ययों के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तातङ्) तातङ् आदेश होता है।*

*उदा०–(तु) **जीवताद् भवान्। जीवतु भवान्।** आप जीवित रहें। (हि) **जीवतात् त्वम्। जीव त्वम्।** तू जीवित रह।*

*सिद्धि-(१) **जीवतात्।** जीव्+लोट्। जीव+ल्। जीव+तिप्। जीव्+शप्+ति। जीव्+अ+तु। जीव्+अ+तातङ्। जीव्+अ+तात्। जीवतात्।*

*यहां 'जीव **प्राणधारणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**आशिषि लिङ्लोटौ**' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में लोट् प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लादेश 'तिप्' और 'एरु:' (३।४।८६) से 'तिप्' के इकार को उकार आदेश है-**तु।** इस सूत्र से 'तु' के स्थान में 'तातङ्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'तातङ्' आदेश नहीं है-**जीव।***

*(२) **जीवतात्।** यहां पूर्वोक्त 'जीव' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' और इसके स्थान में 'सिप्' आदेश है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। इस सूत्र से 'हि' के स्थान में 'तातङ्' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'तातङ्' आदेश नहीं है-जीव। 'अतो हे:' (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् हो जाता है।*

विशेषः *'तातङ्' आदेश में ङकार अनुबन्ध* ***'क्ङिति च'*** *(१।१।५) से गुण-वृद्धि प्रतिषेध के लिये है। अतः यहां* ***'ङिच्च'*** *(१।१।५३) से अन्त्य-आदेश न होकर* ***'अनेकाल्शित्सर्वस्य'*** *(१।१।५५) से सर्वादेश होता है।*

वसु-आदेशः–

(३६) विदेः शतुर्वसुः।३६।

प०वि०–विदेः ६।१ शतुः ६।१ वसुः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–विदेरङ्गाच्छतुः प्रत्ययस्य वसुः।

अर्थः–विदेरङ्गाद् उत्तरस्य शतृ-प्रत्ययस्य स्थाने वसुरादेशो भवति।

उदा०–विद्वांन्। विद्वांसौ। विद्वांसः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(विदेः) विद इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (वसु) वसु आदेश होता है।*

उदा०–***विद्वांन्।*** *ज्ञानी।* ***विद्वांसौ।*** *दो ज्ञानी।* ***विद्वांसः।*** *सब ज्ञानी।*

सिद्धि–*(१)* ***विद्वान्।*** *विद्+लट्। विद्+शतृ। विद्+शप्+वसु। विद्+०+वस्। विद्वस्+सु। विद्वनुम् स्+स्। विद्वन्स्+स्। विद्वान्स्+स्। विद्वान्स्+०। विद्वान्०। विद्वान्।*

यहां ***'विद ज्ञाने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और* ***'लटः शतृशानचा०'*** *(३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। इस सूत्र से 'शतृ' के स्थान में 'वसु' आदेश होता है।* ***'कर्तरि शप्'*** *(३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय,* ***'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'*** *(२।४।७२) से शप् का लुक्,* ***'सार्वधातुकमपित्'*** *(१।२।४) से 'शतृ' के ङित् होने से* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण नहीं होता है। 'विद्वस्+सु' इस स्थिति में 'वसु' के उगित् होने से* ***'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'*** *(७।१।७०) से 'नुम्' आगम,* ***'सान्तमहतः संयोगस्य'*** *(६।४।१०) से नकार की उपधा को दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से सकार का लोप होता है। इस सकार-लोप के असिद्ध होने से* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप नहीं होता है।*

(२) ***विद्वांसौ।*** *यहां 'विद्वस्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'नुम्' आगम और इसके नकार को* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से अनुस्वार (ं) आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर*–***विद्वांसः।***

ल्यप्-आदेशः–

(३७) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्।३७।

प०वि०–समासे ७।१ अनञ्पूर्वे ७।१ क्त्वः ६।१ ल्यप् १।१।

स०–न नञ् इति अनञ्। अनञ् पूर्वो यस्मिन् सः–अनञ्पूर्वः, तस्मिन् अनञ्पूर्वे (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनञ्पूर्वे समासे क्त्वः प्रत्ययस्याङ्गस्य ल्यप्।

अर्थः–अनञ्पूर्वे समासे वर्तमानस्य क्त्वा-प्रत्ययस्याऽङ्गस्य ल्यप्-आदेशो भवति।

उदा०–प्रकृत्य। प्रहृत्य। पार्श्वतः कृत्य। नानाकृत्य। द्विधाकृत्य। अनञ्पूर्वे इति किम्? अकृत्वा, अहृत्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अनञ्पूर्वे) नञ्-पूर्व से भिन्न (समासे) समास में विद्यमान (क्त्वः) क्त्वा (प्रत्ययस्य) प्रत्ययरूप इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (ल्यप्) ल्यप् आदेश होता है।*

*उदा०–**प्रकृत्य।** आरम्भ करके। **प्रहृत्य।** प्रहार करके। **पार्श्वतः कृत्य।** पार्श्व से करके। **नानाकृत्य।** जो नाना नहीं था उसे नाना (अनेक) करके। **द्विधाकृत्य।** जो दो नहीं था, उसे दो करके।*

*'अनञ्पूर्व' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां 'ल्यप्' आदेश न हो–**अकृत्वा।** न करके। **अहृत्वा।** हरण न करके।*

*सिद्धि–(१) **प्रकृत्य।** प्र+कृ+क्त्वा। प्र+कृ+त्वा। प्र+कृ+ल्यप्। प्र+कृ+तुक्+य। प्र+कृ+त्+य। प्रकृत्य+सु। प्रकृत्य+०। प्रकृत्य।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस नञ्-पूर्व से भिन्न तत्पुरुष समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है। '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७०) से 'तुक्' आगम होता है। '**क्त्वातोसुन्कसुनः**' (१।१।४०) से अव्ययसंज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **पार्श्वतःकृत्य।** यहां 'कृ' धातु से स्वाङ्गवाची, तस्-प्रत्ययान्त 'पार्श्वतः' शब्द उपपद होने पर '**स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः**' (३।४।६१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**तृतीयाप्रभृतीन्यतरस्याम्**' (२।२।२१) से उपपदतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **नानाकृत्य।** यहां 'कृ' धातु से '**नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे**' (३।४।६२) से 'क्त्वा' प्रत्यय है और पूर्ववत् उपपद-तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**द्विधाकृत्य।***

क्त्वा-आदेशः–

(३८) क्त्वाऽपि च्छन्दसि।३८।

प०वि०–क्त्वा १।१ अपि अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, समासे, अनञ्पूर्वे, क्त्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अनञ्पूर्वे समासे क्त्वः प्रत्ययस्याऽङ्गस्य क्त्वाऽपि।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽनञ्पूर्वे समासे वर्तमानस्य क्त्वः प्रत्ययस्या-ऽङ्गस्य स्थाने क्त्वाऽप्यादेशो भवति। अपिवचनाल्ल्यबपि भवति।

उदा०–कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा (काठ०सं० ११।१०)। प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा (शौ०सं० १२।२।५५)। अपिवचनाल्ल्यबपि भवति–उद्धृत्य जुहुयात् (काठ०सं० ६।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अनञ्पूर्वे) नञ्पूर्व से भिन्न (समासे) समास में विद्यमान (क्त्वः) क्त्वा (प्रत्ययस्य) प्रत्यय रूप (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (क्त्वा) क्त्वा यह आदेश (अपि) भी होता है। यहां अपि-वचन से ल्यप्-आदेश भी हो जाता है।*

*उदा०–**कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा** (काठ०सं० ११।१०)। **प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा** (शौ०सं० १२।२।५५)। अपि-वचन से ल्यप्-आदेश भी होता है–**उद्धृत्य जुहुयात्** (काठ०सं० ६।६)।*

***सिद्धि**-(१) **परिधापयित्वा।** परि+धापि+क्त्वा। परि+धापि+क्त्वा। परि+धापि+इट्+त्वा। परि+धापे+इ+त्वा। परिधापयित्वा+सु। परिधापयित्वा+०। परिधापयित्वा।*

*यहां परि-उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'धापि' धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस नञ्-पूर्व से भिन्न समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'क्त्वा' आदेश है। '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से 'इट्' आगम है। '**न क्त्वा सेट्**' (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय के कित्व-प्रतिषेध से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध नहीं होता, अपितु '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से इगन्त अङ्ग को गुण होता है।*

*(२) **प्रत्यर्पयित्वा।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'अर्पि' धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) उद्धृत्य। उत्+हृ+क्त्वा। उत्+हृ+त्वा। उद्+हृ+ल्यप्। उत्+हृ+य। उत्+हृ+तुक्+य। उत्+हृ+त्+य। उद्+धृ+त्+य। उद्धृत्य+सु। उद्धृत्य+०। उद्धृत्य।

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र में अपि-वचन से 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है। **'झयोहोऽन्यतरस्याम्'** (८।४।६१) से हकार को पूर्वसवर्ण धकार आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सु-आदय आदेशाः–

(३६) सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः।३६।

प०वि०–सुपाम् ६।३ सु-लुक्-पूर्वसवर्ण-आत्-शे-या-डा-ड्या-याच्-आलः १।३।

स०–सुश्च लुक् च पूर्वसवर्णश्च आच्च शेश्च याश्च डाश्च ड्याश्च याच् च आल् च ते सु०आलः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गात् सुपां प्रत्ययानां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया-डाड्यायाजालः।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरेषां सुपां प्रत्ययानां स्थाने सुलुक्पूर्व-सवर्णाच्छेयाडाड्यायाजाल आदेशा भवन्ति। उदाहरणम्–

(१) **सु-आदेशः**–अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः (ऋ० १०।८५।२३) पन्थान इति प्राप्ते।

(२) **लुक्-आदेशः**–आर्द्रे चर्मन् (तै०सं० ७।५।९।३) लोहिते चर्मन् (ऋ १।१६४।८) 'चर्मणि' इति प्राप्ते। हविधनि यत् सुन्वन्ति तत् सामिधेनीरन्वाह। यस्मिन् सुन्वन्ति तस्मिन् सामिधेनीरिति प्राप्ते।

(३) **पूर्वसवर्णादेशः**–धीती (ऋ० १।६४।८)। मती (ऋ० १।८२।२)। सुष्टुती (ऋ० २।३२।४)। धीत्या, मत्या, सुष्टुत्या इति प्राप्ते।

(४) **आत्-आदेशः**–न ताद् ब्राह्मणान् निन्दामि। न तान् ब्राह्मणानिति प्राप्ते।

(५) **शे-आदेशः**-न युष्मे वाजबन्धवः (ऋ० ८।६८।१९)। अस्मे इन्द्राबृहस्पती (ऋ० ४।४९।४)। यूयम्, वयमिति प्राप्ते। यूयादेशो वयादेशश्च च्छान्दसत्वान्न भवति।

(६) **या-आदेशः**-उरुया (मै०सं० २।७।८)। धृष्णुया (ऋ० १।२३।२)। उरुणा, धृष्णुना इति प्राप्ते।

(७) **डा-आदेशः**-नाभा पृथिव्याम् (शौ०सं० ७।६२।१)। नाभौ पृथिव्यामिति प्राप्ते।

(८) **ड्या-आदेशः**-अनुष्ट्या व्यावयतात्। अनुष्टुभा इति प्राप्ते।

(९) **याच्-आदेशः**-साधुया (ऋ० १०।६६।१२) साधु इति सोर्लुकि प्राप्ते।

(१०) **आल्-आदेशः**-वसन्ता यजेत (मै०सं० २१।४)। वसन्ते इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सुपाम्) सुप् (प्रत्ययानाम्) प्रत्ययों के स्थान में (सु०आलः) सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल् आदेश होते हैं।*

उदा०-इनके उदाहरण संस्कृत-भाग में लिखे हैं।

सिद्धि-(१) पन्थाः। *पथिन्+जस्। पथिन्+सु। पथि आ+सु। पथ्आ+स्। पन्थ आ+स्। पन्थाः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द में 'जस्' के स्थान में 'सु' आदेश होता है। '**पथिमथ्यृभुक्षामात्**' (७।१।८५) नकार को आकार-आदेश, '**इतोऽत् सर्वनामस्थाने**' (७।१।८६) से इकार को अकार-आदेश और '**थोन्थः**' (७।१।८७) से थकार को 'न्थ' आदेश होता है।*

*(२) **चर्मन्।** चर्मन्+ङि। चर्मन्+०। चर्मन्।*

यहां 'चर्मन्' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'ङि' का लुक् होता है।

*(३) **धीती।** धीती+टा। धीती+आ। धीती।*

*यहां 'धीती' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'टा' (आ) को पूर्वसवर्ण (ई) होता है। ऐसे ही-**मती, सुष्टुती।***

(४) **तात्।** तत्+शस्। तत्+आत्। त अ+आत्। तात्।

यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'शस्' को 'आत्' आदेश होता है। **'त्यादादीनाम:'** (७।२।१०२) से 'तत्' को अकार अन्तादेश होता है।

(५) **युष्मे।** युष्मद्+जस्। युष्मद्+शे। युष्मद्+ए। युष्म+ए। युष्मे।

यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' को 'शे' आदेश होता है। **'शेषे लोप:'** (७।२।७२) से 'युष्मद्' के टि-भाग (अद्) का लोप होता है। छन्दोविषय होने से **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से यूय-आदेश नहीं होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मे।**

(६) **उरुया।** उरु+टा। उरु+या। उरुया।

यहां 'उरु' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'टा' को 'या' आदेश होता है। ऐसे ही 'धृष्णु' शब्द से-**धृष्णुया।**

(७) **नाभा।** नाभि+ङि। नाभि+डा। नाभ्+आ। नाभा।

यहां 'नाभि' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'ङि' को 'डा' आदेश होता है। आदेश के डित् होने से **वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोप:'** (६।४।१४३) से अङ्ग के टि-भाग (इ) का लोप होता है।

(८) **अनुष्ट्या।** अनुष्टुप्+टा। अनुष्टुप्+ड्या। अनुष्टुप्+या। अनुष्ट्+या। अनुष्ट्या।

यहां 'अनुष्टुप्' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'टा' को 'ड्या' आदेश होता है। आदेश के डित् होने से **वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोप:'** (६।४।१४३) से अङ्ग के टि-भाग (उप्) का लोप होता है।

(९) **साधुया।** साधु+सु। साधु+याच्। साधु+या। साधुया।

यहां 'साधु' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'सु' को 'याच्' होता है।

(१०) **वसन्ता।** वसन्त+ङि। वसन्त+आल्। वसन्त+अ। वसन्ता।

यहां 'वसन्त' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' को 'आल्' आदेश होता है।

मश्-आदेश:-

(४०) अमो मश्।४०।

प०वि०-अम: ६।१ मश् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् अमः प्रत्ययस्य मश्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य अमः प्रत्ययस्य स्थाने मशादेशो भवति।

उदा०-वधीं वृत्रम् (ऋ० १।१६५।८)। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्।

अत्र 'अम्' इति **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) इत्यनेन विहितो मिबादेशो गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अमः) अम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (मश्) मश् आदेश होता है।*

उदा०-वधीं वृत्रम् (ऋ० १।१६५।८)। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्। क्रमीम्=मैंने चलाया।

***सिद्धि-वधीम्।** हन्+लुङ्। हन्+च्लि+ल्। हन्+सिच्+ल्। वध्+सिच्+मिप्। वध्+इट्+स्+ईट्+अम्। वध्+इ+स्+ई+मश्। वध्+इ+०+ई+म्। वधीम्।*

*यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से च्लि, 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से सिच् आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम, **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम और 'इट ईटि' (८।२।२८) से सिच् का लोप होता है। 'लुङि च' (२।४।४३) से 'हन्' के स्थान में 'वध्' आदेश है। **'बहुलं छन्दस्य माङ्योगेऽपि'** (६।४।७५) से 'अट्' आगम नहीं होता है। **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (६।४।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'अम्' के स्थान में 'मश्' आदेश होता है। ऐसे ही **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से-**क्रमीम्।***

त-लोपः-

(४१) लोपस्त आत्मनेपदेषु।४१।

प०वि०-लोपः १।१ तः ६।१ आत्मनेपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् आत्मनेपदेषु तः प्रत्ययस्य लोपः।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य तः प्रत्ययस्य लोपो भवति।

उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। गन्धर्वाप्सरसोऽदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। 'अदुहत' इति प्राप्ते। दुह्रामश्विभ्यां पयोऽघ्न्येयम् (ऋ० १।१६४।२७) 'दुग्धाम्' इति प्राप्ते। दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये (कां०सं० २०।६) 'शेते' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आत्मनेषु) आत्मनेपदों में विद्यमान (तः) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**देवा अदुह्र** (मै०सं० ४।२।१३)। **गन्धर्वाप्सरसोऽदुह्र** (मै०सं० ४।२।१३)। 'अदुहत' यह रूप प्राप्त था। **दुह्रामश्विभ्यां पयोऽघ्न्येयम्** (ऋ० १।१६४।२७) 'दुग्धाम्' यह रूप प्राप्त था। **दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये** (कां०सं० २०।६) 'शेते' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-(१) अदुह्र। *दुह्+लङ्। अट्+दुह्+ल्। अ+दुह्+झ। अ+दुह्+शप्+झ। अ+दुह्+०अत। अ+दुह्+रुट्+अत। अ+दुह्रुअ+०अ। अ+दुह्+र्+अ। अदुह्र।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।३।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। 'आत्मनेपदेष्वनतः' (७।१।५) से 'झ' के स्थान में 'अत' आदेश और 'बहुलं छन्दसि' (७।१।८) से इसे रुट् आगम होता है। इस सूत्र से 'अत' के 'त्' का लोप होता है। 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।*

(२) दुह्राम्। *दुह्+लोट्। दुह्+ल्। दुह्+झ। दुह्+शप्+झ। दुह्+०+अत। दुह्+रुट्+अते। दुह्+र्+अताम्। दुह्+र्+अ०आम्। दुह्+र्+आम्। दुह्राम्।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से बहुवचन में लादेश 'झ', **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश, और **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व, **'आमेतः'** (३।४।९०) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। **'बहुलं छन्दसि'** (७।१।८) से 'रुट्' आगम है। इस सूत्र से 'अताम्' के 'त्' का लोप होता है। पुनः **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश है (अ+आम्=आम्)।*

(३) उपशये। *उप+शीङ्+लट्। उप+शी+ल्। उप+शी+शप्+त। उप+शी+०+त। उप+शी+ते। उप+शे+०ए। उप+श् अय्+ए। उपशये।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'त' पूर्ववत् 'शप्' का लुक्, **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व और **'शीङः सार्वधातुके गुणः'** (७।४।२१) से 'शीङ्' को गुण होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के 'त्' का लोप होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से 'अय्' आदेश है।*

ध्वात्-आदेशः--

(४२) ध्वमो ध्वात् ।४२।

प०वि०-ध्वमः ६ ।१ ध्वात् १ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् ध्वमः प्रत्ययस्य ध्वात् ।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य ध्वमः प्रत्ययस्य स्थाने ध्वादादेशो भवति ।

उदा०-अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् (का०सं० १६ ।२१) । 'वारयध्वम्' इति प्राप्ते ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ध्वमः) ध्वम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ध्वात्) ध्वात् आदेश होता है।*

*उदा०-**अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्** (का०सं० १६ ।२१) । वारयध्वात्=तुम निवारण करो। 'वारयध्वम्' यह रूप प्राप्त था।*

***सिद्धि-वारयध्वात्।** वारि+लोट्। वारि+ल्। वारि+ध्वम्। वारि+शप्+ध्वम्। वारे+अ+ध्वात्। वार् अय्+अ+ध्वात्। वारयध्वात्।*

*यहां **'वृञ् वरणे'** (चु०उ०) इस णिजन्त='वारि' धातु से **'लोट् च'** (३ ।३ ।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३ ।४ ।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। इस सूत्र से 'ध्वम्' के स्थान में 'ध्वात्' आदेश होता है।*

निपातनम्--

(४३) यजध्वैनमिति च ।४३।

प०वि०-यजध्व क्रियापदम्, एनम् २ ।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम् ।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि, ध्वम इति चानुवर्तते । **'लोपस्त आत्मनेपदेषु'** (७ ।१ ।४१) इत्यस्माच्च लोप इत्यनुवर्तनीयम् ।

अन्वयः-छन्दसि यजध्वम् इत्यङ्गस्य एनमिति च (म-लोपः) ।

अर्थः-छन्दसि विषये यजध्वम् इत्यस्य अङ्गस्य एनम् इति शब्दे च परतो मकारलोपो निपात्यते ।

उदा०-यजध्वैनं प्रियमेधा: (ऋ० ८।२।३७)। यजध्वमेनमिति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (यजध्व) यजध्वम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग का (एनम्) एनम् (इति) यह शब्द से परे होने पर (च) भी {म-लोप:} मकार-लोप निपातित है।*

*उदा०-**यजध्वैनं प्रियमेधा:** (ऋ० ८।२।३७)। 'यजध्वम्' यह रूप प्राप्त था। यजध्व=तुम सब यज्ञ=पूजा करो।*

सिद्धि-यजध्व+एनम्। *यज्+लोट्। यज्+ल्। यज्+शप्+ध्वम्। यज्+अ+ध्वम्। यज्+अ+ध्व०। यजध्व।*

*यहां '**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' 'ध्वम्' आदेश है। इस सूत्र से 'एनम्' शब्द परे होने पर 'ध्वम्' के मकार का लोप निपातित है।*

विशेषः *काशिकावृत्ति में '**यजध्यैनम्**' यह पाठ माना है। पदमञ्जरी के अनुसार '**यजध्वैनम्**' पाठ ठीक है-**बह्वृचास्तु वकारमेवाधीयते** (पदमञ्जरी)। पं० भट्टोजिदीक्षित के अनुसार '**यजध्यैनम्**' पाठ प्रामादिक है। 'ध्वम्' के प्रकरण तथा गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री के अनुसार '**यजध्वैनम्**' पाठ संगत है।*

तात्-आदेशः–

(४४) तस्य तात्।४४।

प०वि०-तस्य ६।१ तात् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि अङ्गात् तस्य प्रत्ययस्य तात्।

अर्थ:-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य तस्य प्रत्ययस्य स्थाने तादादेशो भवति।

उदा०-गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'कृणुत' इति प्राप्ते। ऊवध्य गोहं पार्थिवं खनतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'खनत' इति प्राप्ते। अस्ना रक्ष: संसृजतात् (मै०सं० ४।१३।४) 'संसृजत' इति प्राप्ते। सूर्यं चक्षुर्गमयतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'गमयत' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तस्य) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (तात्) तात् आदेश होता है।*

उदा०-गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'कृणुत' यह रूप प्राप्त था। ऊवध्य गोहं पार्थिवं खनतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'खनत' यह रूप प्राप्त था। अस्ना रक्षः संसृजतात् (मै०सं० ४।१३।४) 'संसृजत' इति प्राप्ते। सूर्यं चक्षुर्गमयतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'गमयत' यह रूप प्राप्त था।

कृणुतात्। तुम सब करो। खनतात्। तुम सब खोदो। संसृजतात्। तुम सब बनाओ। गमयतात्। तुम सब भेजो।

सिद्धि-(१) कृणुतात्। कृवि+लोट्। कृव्+ल्। कृनुम्व्+ल्। कृन्व्+ल्। कृण्व्+ल्। कृण्व्+त। कृण्व्+उ+त। कृण् अ+उ+त। कृण्०+उ+तात्। कृणुतात्।

यहां 'कृवि हिंसाकरणयोश्च' (भ्वा०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और 'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' (८।४।१) से णत्व होता है। 'धिन्विकृण्व्योर च' (३।१।८०) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और अकार अन्तादेश तथा 'अतो लोपः' (६।४।४८) से इस अकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तात्' आदेश होता है।

(२) खनतात्। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) संसृजतात्। सम्-उपसर्गपूर्वक 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) गमयतात्। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) इस णिजन्त 'गमि' धातु से पूर्ववत्।

तबादय आदेशाः–

(४५) तप्तनप्तनथनाश्च।४५।

प०वि०-तप्-तनप्-तन-थनाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-तप् च तनप् च तनश्च थनश्च ते-तप्तनप्तनथनाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि, तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गात् तस्य प्रत्ययस्य तप्तनप्तनथनाश्च।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य तस्य प्रत्ययस्य स्थाने तप्तनप्तनथनाश्चाऽऽदेशा भवन्ति।

उदा०-(तप्) शृणोत ग्रावाणः (तै०सं० १।३।१३।१)। 'शृणुत' इति प्राप्ते। सुनोत (ऋ० ७।३२।८)। 'सुनुत' इति प्राप्ते। **(तनप्)**

सं वरत्रा दधातन (ऋ० १०।१०१।५)। 'धत्त' इति प्राप्ते। **(तनः)** जुजुष्टन (ऋ० ४।३६।७)। 'जुषत' इति प्राप्ते। **(थनः)** यदिष्ठन। 'यद् इच्छत' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तस्य) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (तप्तनप्तनथनाः) तप्, तनप्, तन, थन ये आदेश (च) भी होते हैं।

*उदा०-(तप्) शृणोत ग्रावाणः (तै०सं० १।३।१३।१)। 'शृणुत' यह रूप प्राप्त था। **सुनोत** (ऋ० ७।३२।८)। 'सुनुत' यह रूप प्राप्त था। **(तनप्) सं वरत्रा दधातन** (ऋ० १०।१०१।५)। 'धत्त' यह रूप प्राप्त था। **(तन) जुजुष्टन** (ऋ० ४।३६।७)। 'जुषत' यह रूप प्राप्त था। **(थन) यदिष्ठन।** 'यद् इच्छत' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-(१) शृणोत। *श्रु+लोट्। श्रु+ल्। श्रु+श्नु+त। शृ+नु+तप्। शृ+णु+त। शृणुत।*

*यहां **'श्रु श्रवणे'** (स्वा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।१।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। **'श्रुवः शृ च'** (३।१।७४) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय और 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान नें 'तप्' आदेश होता है। इस आदेश के 'पित्' होने से यह **'सार्वधातुकमपित्'** (२।२।४) से ङित् नहीं होता है। अतः **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है।*

*(२) **सुनोत।** **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **दधातन।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तनप्' आदेश है। यहां 'तनप्' प्रत्यय के 'पित्' होने से यह पूर्ववत् ङित् नहीं है अतः **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से प्राप्त अङ्ग के आकार का लोप नहीं होता है।*

*(४) **जुजुष्टन।** यहां **'जुषी प्रीतिसेवनयोः'** (तु०आ०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तन' आदेश है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय और 'श' को छान्दस 'श्लु' आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तन' आदेश है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*(५) **इष्ठन।** यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'थन' आदेश है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार होता है।*

।। इति प्रत्ययाऽऽदेशप्रकरणम् ।।

आगमप्रकरणम्

इदन्तत्वम्–

(१) इदन्तो मसि।४६।

प०वि०–इदन्तः ५।१ मसि १।१ (सु-लुक्)।

स०–इद् अन्तो यस्य स इदन्तः (बहुव्रीहिः)। अन्तशब्दोऽत्रावयववचनः।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गाद् मसिः प्रत्यय इदन्तः।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरो मसिरिति प्रत्यय इकारान्तो भवति। मसिरित्यत्र इकार उच्चारणार्थः।

उदा०–पुनस्त्वोद्दीपयामसि (शौ०सं० १२।२।५)। उद्दीपयाम इति प्राप्ते। शलभान् भञ्जयामसि (पै०सं० ५।२०।४)। भञ्जयाम इति प्राप्ते। त्वयि रात्रिं वसामसि (शौ०सं० १९।४७।९) वसाम इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (मसिः) मस् यह (प्रत्ययः) प्रत्यय (इदन्तः) इकारान्त होता है, अर्थात् इस प्रत्यय के अन्त में इकार आगम होता है।*

*उदा०-**पुनस्त्वोद्दीपयामसि** (शौ०सं० १२।२।५)। 'उद्दीपयामः' यह रूप प्राप्त था। **शलभान् भञ्जयामसि** (पै०सं० ५।२०।४)। 'भञ्जयामः' यह रूप प्राप्त था। **त्वयि रात्रिं वसामसि** (शौ०सं० १९।४७।९) 'वसामः' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-(१) उद्दीपयामसि। *उत्+दीपि+लट्। उत्+दीपि+ल्। उत्+दीपि+शप्+मस्। उत्+दीपे+अ+मसि। उत्+दीपे+अ+मसि। उद्दीपयामसि।*

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'दीपी दीप्तौ'** (दि०आ०) इस णिजन्त धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'मस्' आदेश है। इस सूत्र से छन्दविषय में यह 'मस्' प्रत्यय इकारान्त होता है अर्थात् इसके अन्त में इकार आगम होता है।*

(२) भञ्जयामसि। 'भञ्जो आमर्दने' *(रुधा०प०) इस णिजन्त 'भञ्जि' धातु से पूर्ववत्।*

(३) वसामसि। 'वस निवासे' *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

यक्-आगमः–

(२) क्त्वो यक्।४७।

प०वि०–क्त्वः ६।१। यक् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गात् क्त्वः प्रत्ययस्य यक्।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वः प्रत्ययस्य यगागमो भवति।

उदा०–दत्त्वाय सविता धियः (ऋ०ऋ० १०।८५।३३)। 'दत्त्वा' इति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय को (यक्) यक् आगम होता है।*

*उदा०–**दत्त्वाय सविता धियः** (ऋ०ऋ० १०।८५।३३)। 'दत्त्वा' यह रूप प्राप्त था। दत्त्वाय=देकर।*

***सिद्धि**–**दत्त्वाय।** दा+क्त्वा। दद्+त्वा+यक्। दद्+त्वा+य। दत्त्वाय+सु। दत्त्वाय+०। दत्त्वाय।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय को 'यक्' आगम होता है। **'दो दद् घोः'** (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में 'दद्' आदेश होता है।*

निपातनम्–

(३) इष्ट्वीनमिति च।४८।

प०वि०–इष्ट्वीनम् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि इष्ट्वीनमिति च।

अर्थः–छन्दसि विषये इष्ट्वीनमिति शब्दश्च निपात्यते। यजेरङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वाप्रत्ययस्यान्ते ईनमादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०–इष्ट्वीनं देवान्। इष्ट्वा देवान् इति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (इष्ट्वीनम्) इष्ट्वीनम् यह शब्द (च) भी निपातित है, अर्थात्–यज् अङ्ग से परे क्त्वा-प्रत्यय के अन्त में ईनम् आदेश होता है।*

उदा०-इष्ट्वीनं देवान्। 'इष्ट्वा देवान्' यह प्रयोग प्राप्त था। इष्ट्वीनम्=पूजा करके।

सिद्धि-इष्ट्वीनम्। यज्+क्त्वा। यज्+त्वा। इ अज्+त्वा। इज्+त्वा। इष्+त्वा। इष्+ट्व् ईनम्। इष्ट्वीनम्+सु। इष्ट्वीनम्+०। इष्ट्वीनम्।

यहां 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'क्त्वा' प्रत्यय को ईनम्-आदेश निपातित है। 'वचिस्वपियजादीनां किति' (६।१।१५) से 'यज्' को सम्प्रसारण (इ) और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से जकार को षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।

निपातनम्–

(४) स्नात्व्यादयश्च।४६।

प०वि०-स्नात्वी-आदयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्नात्वी आदिर्येषां ते स्नात्व्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि स्नात्व्यादयश्च निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये स्नात्व्यादयश्च शब्दा निपात्यन्ते। स्ना-अङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वा-प्रत्ययस्य ईकारादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०-स्नात्वी मलादिव (मै०सं० ३।११।१०)। स्नात्वा इति प्राप्ते। पीत्वी सोमस्य वावृधे (ऋ० ३।४०।७)। पीत्वा इति प्राप्ते।

'स्नात्व्यादयः' इत्यत्रादिशब्दः प्रकारवचनः। न हि स्नात्व्यादयः शब्दा गणे पठ्यन्ते। एवम्प्रकारा ये शब्दास्ते स्नात्व्यादयो वेदितव्याः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (स्नात्व्यादयः) स्नात्वी-आदि शब्द (च) भी निपातित हैं। अर्थात्-स्ना-अङ्ग से परे क्त्वा प्रत्यय को ईकार आदेश होता है।*

उदा०-स्नात्वी मलादिव (मै०सं० ३।११।१०)। 'स्नात्वा' यह रूप प्राप्त था। पीत्वी सोमस्य वावृधे (ऋ० ३।४०।७)। 'पीत्वा' यह रूप प्राप्त था। स्नात्वी=स्नान करके। पीत्वी=पान करके।

'स्नात्व्यादयः' यहां आदि शब्द प्रकारवाची है, क्योंकि 'स्नात्व्यादि' शब्द गणरूप में पठित नहीं हैं। इस प्रकार के सब शब्द स्नात्वी आदि समझने चाहियें।

सिद्धि-स्नात्वी। स्ना+क्त्वा। स्ना+त्वा। स्ना+त्वी। स्नात्वी+सु। स्नात्वी+०। स्नात्वी।

यहां 'ष्णा शौचे' (अदा०अ०) धातु से 'समानकर्तृकयो: पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में क्त्वा-प्रत्यय के अन्त में ईकार आदेश होता है। ऐसे ही 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से-पीत्वी।

असुक्-आगमः–

(५) आज्जसेरसुक्।५०।

प०वि०-आत् ५।१ जसे: ६।१ असुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि आद् अङ्गाज्जसे: प्रत्ययस्याऽसुक्।

अर्थ:-छन्दसि विषयेऽकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य जसे: प्रत्ययस्याऽसुगागमो भवति।

उदा०-ब्राह्मणास: पितर: सोम्यास: (ऋ० ६।७५।१०)। ब्राह्मणा:, सोम्या इति प्राप्ते। ये पूर्वासो ये उपरास: (ऋ० १०।१५।२)। पूर्वे, परे इति प्राप्ते। स जनास इन्द्र: (ऋ० २।१२।१) जना इति प्राप्ते।

आर्यभाषा: अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (आत्) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (जसे:) जस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (असुक्) असुक् आगम होता है।*

*उदा०-**ब्राह्मणास: पितर: सोम्यास:** (ऋ० ६।७५।१०)। 'ब्राह्मणा:, सोम्या:' यह रूप प्राप्त था। **ये पूर्वासो ये उपरास:** (ऋ० १०।१५।२)। पूर्वे, परे यह रूप प्राप्त था। **स जनास इन्द्र:** (ऋ० २।१२।१) 'जना:' यह रूप प्राप्त था।*

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणास:।** ब्राह्मण+जस्। ब्राह्मण+अस्। ब्राह्मण+असुक्+अस्। ब्राह्मण+अस्+अस्। ब्राह्मणासस्। ब्राह्मणास:।*

*यहां 'ब्राह्मण' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'जस्' को 'असुक्' आगम होता है। ऐसे ही-**जनास:।***

*(२) **पूर्वास:।** यहां 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय और इसे 'असुक्' आगम होता है। यहां परत्व से 'जस्' को असुक् आगम होता है, '**जस: शी**' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है। '**पुन: प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम्**' इस परिभाषा से 'जस्' को पुन: शी-आदेश प्राप्त होता है किन्तु '**सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव**' इस परिभाषा के आश्रय से पुन: शी-आदेश नहीं होता है।*

असुक्-आगमः-

(६) अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि।५१।

प०वि०-अश्व-क्षीर-वृष-लवणानाम् ६।३ आत्मप्रीतौ ७।१ क्यचि ७।१।

स०-अश्वश्च क्षीरं च वृषश्च लवणं च तानि-अश्वक्षीरवृषलवणानि, तेषाम्-आश्वक्षीरवृषलवणानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आत्मनः प्रीतिरिति आत्मप्रीतिः, तस्याम्-आत्मप्रीतौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आत् असुगिति चानुवर्तते। छन्दसि इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-आत्मप्रीतौ आनाम् अश्वक्षीरवृषलवणानाम् अङ्गानां क्यचि प्रत्ययेऽसुक्।

अर्थः-आत्मप्रीतिविषयेऽकारान्तानाम् अश्वक्षीरवृषलवणानाम् अङ्गानां क्यचि प्रत्यये परतोऽसुगागमो भवति।

उदा०-(**अश्वः**) अश्वस्यति वडवा। (**क्षीरम्**) क्षीरस्यति माणवकः। (**वृषः**) वृषस्यति गौः। (**लवणम्**) लवणस्यति उष्ट्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आत्मप्रीतौ) आत्मिक प्रीति विषय में (आनाम्) अकारान्त (अश्वक्षीरवृषलवणानाम्) अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर (असुक्) आगम होता है।*

*उदा०-(अश्व) **अश्वस्यति वडवा।** घोड़ी अश्व से मैथुन करना चाहती है। (क्षीर) **क्षीरस्यति माणवकः।** बालक दूध पीना चाहता है। (वृष) **वृषस्यति गौः।** गाय सांड से मैथुन करना चाहती है। (लवण) **लवणस्यति उष्ट्रः।** ऊंट नमक की लालसा करता है।*

सिद्धि-(१) अश्वस्यति। *अश्व+क्यच्। अश्व+य। अश्व+असुक्+य। अश्व+अस्+य। अश्वस्य।। अश्वस्य+लट्। अश्वस्य+शप्+तिप्। अश्वस्य+अ+ति। अश्वस्यति।*

*यहां प्रथम 'अश्व' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आत्म-प्रीति विषय में 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'अश्व' को 'असुक्' आगम होता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) है। तत्पश्चात् 'अश्वस्य' शब्द की 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। यहां मैथुनेच्छा अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(२) **क्षीरस्यति।** यहां 'क्षीर' शब्द को लालसा-अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(३) **वृषस्यति।** यहां 'वृष' शब्द को मैथुन-इच्छा अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(४) **लवणस्यति।** यहां 'लवण' शब्द को लालसा-अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

सुट्-आगमः–

(७) आमि सर्वनाम्नः सुट्।५२।

प०वि०-आमि ७।१ सर्वनाम्नः ५।१ सुट् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आत् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् प्रत्ययस्य सुट्।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरस्य आमः प्रत्ययस्य सुडागमो भवति।

उदा०-सर्वेषाम्। विश्वेषाम्। येषाम्। तेषाम्। सर्वासाम्। यासाम्। तासाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आत्) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०-**सर्वेषाम्।** सब पुरुषों का। **विश्वेषाम्।** सब पुरुषों का। **येषाम्।** जिन पुरुषों का। **तेषाम्।** उन पुरुषों का। **सर्वासाम्।** सब स्त्रियों का। **यासाम्।** जिन स्त्रियों का। **तासाम्।** उन स्त्रियों का।*

*सिद्धि-(१) **सर्वेषाम्।** सर्व+आम्। सर्व+सुट्+आम्। सर्व+सु+आम्। सर्वे+ष्+आम्। सर्वेषाम्।*

*यहां अकारान्त सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'सुट्' आगम होता है। **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से एकार-आदेश और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वेषाम्।***

*(२) **येषाम्।** यहां सर्वनाम-संज्ञक 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' को अकार अन्तादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-**तेषाम्।***

*(३) **सर्वासाम्।** यहां प्रथम सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'सर्वा' शब्द से पूर्ववत्।*

*(४) **यासाम्।** यहां प्रथम सर्वनाम-संज्ञक 'यत्' प्रत्यय से स्त्रीलिङ्ग शब्द में पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय है। यत्+टाप्। यत्+आ। य अ+आ=या। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' को अकार अन्तादेश होता है। तत्पश्चात् 'या' शब्द से पूर्ववत्। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-**तासाम्।***

*यहां **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम प्राप्त था। यह सूत्र उसका पुरस्ताद् अपवाद है।*

त्रय-आदेशः–

(८) त्रेस्त्रयः।५३।

प०वि०–त्रेः ६।१ त्रयः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–त्रेरङ्गस्य आमि प्रत्यये त्रयः।

अर्थः–त्रेरङ्गस्य आमि प्रत्यये परतस्त्रय आदेशो भवति।

उदा०–त्रयाणां लोकानाम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(त्रेः) त्रि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (आमि) आम् (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर (त्रयः) त्रय-आदेश होता है।

*उदा०–**त्रयाणां लोकानाम्।** तीन लोकों का।*

__सिद्धि-त्रयाणाम्।__ त्रि+आम्। त्रय+आम्। त्रय+नुट्+आम्। त्रय+न्+आम्। त्रया+ण्+आम्। त्रयाणाम्।

*यहां 'त्रि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय परे होने पर 'त्रि' के स्थान में 'त्रय' आदेश होता है। **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम, **'सुपि च'** (७।३।१०२) से दीर्घ और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

नुट्-आगमः–

(९) ह्रस्वनद्यापो नुट्।५४।

प०वि०–ह्रस्व-नदी-आपः ५।१ नुट् १।१।

स०–ह्रस्वश्च नदी च आप् च एतेषां समाहारो ह्रस्वनद्याप्, तस्मात्-ह्रस्वनद्यापः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वनद्यापोऽङ्गाद् आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-ह्रस्वान्ताद् नद्यन्ताद् आबन्ताच्च अङ्गाद् उत्तरस्य आमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-**ह्रस्वान्तात्**-वृक्षाणाम्। प्लक्षाणाम्। अग्नीनाम्। वायूनाम्। कर्तॄणाम्। **नद्यन्तात्**-कुमारीणाम्। किशोरीणाम्। गौरीणाम्। शार्ङ्गवीराणाम्। लक्ष्मीणाम्। ब्रह्मबन्धूनाम्। वीरबन्धूनाम्। **आबन्तात्**-खट्वानाम्। मालानाम्। बहुराजानाम्। कारीषगन्ध्यानाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वनद्यापः) ह्रस्वान्त, नदी-अन्त और आबन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ह्रस्वान्त-वृक्षाणाम्।** वृक्षों का। **प्लक्षाणाम्।** पिलखणों का। **अग्नीनाम्।** अग्नि देवताओं का। **वायूनाम्।** वायु देवताओं का। **कर्तॄणाम्।** कर्ता पुरुषों का। **नद्यन्त-कुमारीणाम्।** कुमारियों का। **किशोरीणाम्।** किशोरियों का। **गौरीणाम्।** गौरियों का। **शार्ङ्गवीराणाम्।** शार्ङ्गरवियों का। **लक्ष्मीणाम्।** लक्ष्मियों का। **ब्रह्मबन्धूनाम्।** पतिता ब्राह्मणियों का। **वीरबन्धूनाम्।** पतित क्षत्रियाओं का। **आबन्त-खट्वानाम्।** सब खाटों का। **मालानाम्।** सब मालाओं का। **बहुराजानाम्।** बहुत राजाओंवाली स्त्रियों का। **कारीषगन्ध्यानाम्।** कारीषगन्ध्याओं का।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षाणाम्।** वृक्ष+आम्। वृक्ष+नुट्+आम्। वृक्ष+न्+आम्। वृक्षा+ण्+आम्। वृक्षाणाम्।*

*यहां ह्रस्वान्त 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस ह्रस्वान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**सुपि च**' (७।३।१०२) से दीर्घ और '**अट्कुप्वाङ्०**' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**प्लक्षाणाम्** आदि।*

*(२) **कुमारीणाम्।** यहां प्रथम 'कुमार' शब्द से '**वयसि प्रथमे**' (४।१।२०) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। '**यू स्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से 'कुमारी' शब्द की नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**किशोरीणाम्।***

*(३) **गौरीणाम्।** यहां प्रथम 'गौर' शब्द से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **शार्ङ्गरवीणाम्।** यहां प्रथम 'शार्ङ्गरव' शब्द से '**शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्**' (४।१।७३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **लक्ष्मीणाम्।** यहां प्रथम '**लक्ष दर्शनाङ्कनयोः**' (चु०उ०) धातु से '**लक्षेर्मुट् च**' (उणा० ३।१६०) से 'ई' प्रत्यय और इसे 'मुट्' आगम होता है। 'लक्ष्मी' शब्द की पूर्ववत् नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **ब्रह्मबन्धूनाम्।** यहां प्रथम 'ब्रह्मबन्धु' शब्द से 'ऊङुतः' (४।१।६६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊङ्' प्रत्यय है। 'ब्रह्मबन्धू' शब्द की पूर्ववत् नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वीरबन्धूनाम्।***

*(७) **खट्वानाम्।** यहां प्रथम 'खट्व' शब्द से '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**मालानाम्।***

*(८) **बहुराजानाम्।** यहां प्रथम 'बहुराजन्' शब्द से '**डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्**' (४।१।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(९) **कारीषगन्ध्यानाम्।** यहां 'कारीषगन्ध्य' शब्द से '**यङश्चाप्**' (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुट्-आगमः-

(१०) षट्चतुर्भ्यश्च।५५।

प०वि०-षट्चतुर्भ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-षट् च चत्वारश्च ते षट्चत्वारः, तेभ्यः-षट्चतुर्भ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि, नुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षट्चतुर्भ्योऽङ्गेभ्यश्च आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-षट्संज्ञकेभ्योऽङ्गेभ्यश्चतुःशब्दाच्च उत्तरस्याऽऽमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-(षट्) षण्णाम्। पञ्चानाम्। सप्तानाम्। नवानाम्। दशानाम्। **(चतुर्)** चतुर्णाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(षट्चतुर्भ्यः) षट्-संज्ञक और चतुर् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-(षट्) **षण्णाम्।** छहों का। **पञ्चानाम्।** पांचों का। **सप्तानाम्।** सातों का। **नवानाम्।** नौओं का। **दशानाम्।** दशों का। (चतुर्) **चतुर्णाम्।** चारों का।*

सिद्धि-(१) षण्णाम्।** षष्+आम्। षष्+नुट्+आम्। षष्+न्+आम्। षड्+न्+आम्। षण्+ण्+आम्। **षण्णाम्।

*यहां षट्-संज्ञक 'षष्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से 'षष्' के षकार को 'जश्' डकार आदेश और '**यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा**' (८।४।४४) से*

*ङकार को अनुनासिक णकार तथा **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार होता है। **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२४) से 'षष्' शब्द की षट्-संज्ञा है।*

*(२) **पञ्चानाम्।** पञ्चन्+आम्। पञ्चन्+नुट्+आम्। पञ्चन्+न्+आम्। पञ्चान्+न्+आम्। पञ्चा०+नाम्। पञ्चानाम्।*

*यहां षट्-संज्ञक 'पञ्चन्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। स सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'नोपधायाः'** (६।४।८) से नकारान्त 'पञ्चन्' अङ्ग को दीर्घ और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सप्तानाम्** आदि।*

*(३) **चतुर्णाम्।** यहां 'चतुर्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

नुट्-आगमः-

(११) श्रीग्रामण्योश्छन्दसि।५६।

प०वि०-श्री-ग्रामण्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) छन्दसि ७।१।

स०-श्रीश्च ग्रामणीश्च तौ श्रीग्रामण्यौ, तयोः-श्रीग्रामण्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य आमि, नुड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि श्रीग्रामणीभ्याम् अङ्गाभ्याम् आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये श्रीग्रामणीभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्याऽऽमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-**(श्री)** श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् (ऋ० १०।४५।५)। **(ग्रामणीः)** अपि तत्र सूतग्रामणीनाम् (काठ०सं० २८।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (श्रीग्रामण्योः) श्री, ग्रामणी इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट्-आगम होता है।*

*उदा०-(श्री) **श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्** (ऋ० १०।४५।५)। श्रीणाम्=लक्ष्मियों का। (ग्रामणी) **अपि तत्र सूतग्रामणीनाम्** (काठ०सं० २८।३)। ग्रामणीनाम्=ग्राम के नेताओं का।*

*सिद्धि-(१) **श्रीणाम्।** श्री+आम्। श्री+नुट्+आम्। श्री+न्+आम्। श्री+ण्+आम्। श्रीणाम्।*

*यहां 'श्री' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। 'श्री' शब्द की **'वाऽमि'** (१।४।५) से विकल्प से नदी संज्ञा है। नदी-संज्ञा के पक्ष में **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम सिद्ध है किन्तु विकल्प-पक्ष में 'नुट्' आगम प्राप्त नहीं था, अतः छन्दविषय में नित्य 'नुट्' आगम का विधान किया गया है।*

*(२) **ग्रामणीनाम्।** यहां सूत और ग्रामणी शब्दों का इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है- **सूताश्च ग्रामण्यश्च ते-सूतग्रामण्यः।** यहां इस इतरेतरयोगद्वन्द्व समास में शब्द ह्रस्वान्त न होने से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (७।१।५४) से 'नुट्' आगम प्राप्त नहीं था, अतः छन्दविषय में 'नुट्' आगम का विधान किया गया है।*

नुट्-आगमः-

(१२) गोः पादान्ते।५७।

प०वि०-गोः पादान्ते ७।१।

स०-पादस्य अन्त इति पादान्तः, तस्मिन्-पादान्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि, नुट्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि पादान्ते गोरङ्गाद् आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये पादान्ते=ऋक्पादस्यान्ते वर्तमानाद् गोरङ्गाद् उत्तरस्य आमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् (ऋ० १०।४७।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (पादान्ते) ऋचा के पाद (चरण) के अन्त में विद्यमान (गोः) गो इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट्-आगम होता है।*

*उदा०-**विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्** (ऋ० १०।४७।१)। गोनाम्=गौओं का।*

*सिद्धि-**गोनाम्।** गो+आम्। गो+नुट्+आम्। गो+न्+आम्। गोनाम्।*

*यहां 'गो' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द-विषय में तथा ऋचा के पाद (चरण) के अन्त में विद्यमान इस 'गो' शब्द से परे 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। यहां छन्दोऽधिकार में ऋचा (मन्त्र) का पादान्त ग्रहण किया जाता है, श्लोक का नहीं। पादान्त से अन्यत्र-**गवाम्।***

नुम्-आगमः-

(१३) इदितो नुम् धातोः।५८।

प०वि०-इदितः ६।१ नुम् १।१ धातोः ६।१।

स०-इद् इद् यस्य सः-इदित्, तस्य-इदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। प्रत्ययस्य इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-इदितो धातोरङ्गस्य नुम्।

अर्थः-इदितो धातोरङ्गस्य नुमागमो भवति।

उदा०-(कुण्डि) कुण्डिता। कुण्डितम्। कुण्डितव्यम्। कुण्डा। **(हुडि)** हुण्डिता। हुण्डितुम्। हुण्डितव्यम्। हुण्डा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदितः) इकार जिसका इत् है, उस (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (नुम्) नुम्-आगम होता है।*

उदा०-(कुडि) ***कुण्डिता।*** *दाह करनेवाला।* ***कुण्डितम्।*** *दाह करने के लिये।* ***कुण्डितव्यम्।*** *दाह करना चाहिये।* ***कुण्डा।*** *दाह करना। (हुडि)* ***हुण्डिता।*** *संघात (एकत्र)/वरण करनेवाला।* ***हुण्डितुम्।*** *संघात/वरण करने के लिये।* ***हुण्डितव्यम्।*** *संघात/वरण करना चाहिये।* ***हुण्डा।*** *संघात/वरण (स्वीकार) करना।*

सिद्धि-(१) कुण्डिता। *कुडि+तृच्। कुड्+तृच्। कु नुम् ड्+इट्+तृ। कु न् ड्+इ+तृ। कु ड्+इ+तृ। कुण् ड्+इ+तृ। कुण्डितृ+सु। कुण्डिता।*

यहां 'कुण्डि दाहे' (भ्वा०प०) धातु से ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से कर्ता अर्थ में 'तृच्' प्रत्यय है। 'कुडि' धातु के इकार की* ***'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'*** *(१।३।२) से इत्-संज्ञा होकर* ***'तस्य लोपः'*** *(३।१।९) से इकार का लोप हो जाता है। अतः इस इदित् धातु को इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। यह आगम 'मित्' होने से* ***'मिदचोऽन्त्यात् परः'*** *(१।१।४७) से धातु के अन्तिम 'अच्' से उत्तर किया जाता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और* ***'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'*** *(८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण णकार होता है। ऐसे ही 'हुडि संघाते वरणे च' (भ्वा०प०) धातु से-***हुण्डिता।***

(२) ***कुण्डितुम्।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'*** *(३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-***हुण्डितुम्।***

(३) ***कुण्डितव्यम्।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'तव्यत्तव्यानीयरः'*** *(३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-***हुण्डितव्यम्।***

(४) ***कुण्डा।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'गुरोश्च हलः*** *(३।३।१०३) से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'कुण्ड' शब्द से* ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-***हुण्डा।***

नुम्-आगमः–

(१४) शे मुचादीनाम्।५६।

प०वि०-शे ७।१ मुचादीनाम् ६।३।

स०-मुच् आदिर्येषां ते मुचादयः, तेषाम्-मुचादीनाम्।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मुचादीनाम् अङ्गानां शे नुम्।

अर्थः-मुचादीनाम् अङ्गानां शे परतो नुमागमो भवति।

उदा०-मुच्लृ मोचने-स मुञ्चति। **लुप्लृ छेदने**-स लुम्पति। **विद्लृ लाभे**-स विन्दति। **लिप उपदेहे**-स लिम्पति। **षिच क्षरणे**-स सिञ्चति। **कृती छेदने**-स कृन्तति। **खिद परिघातने**-स खिन्दति। **पिश अवयवे**-स पिंशति। एते मुचादयो धातवस्तुदादिगणे पठ्यन्ते।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(मुचादीनाम्) मुच्-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गो को (शे) श-प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-__स मुञ्चति।__ वह छोड़ता है। __स लुम्पति।__ वह काटता है। __स विन्दति।__ वह प्राप्त करता है। __स लिम्पति।__ वह लीपता है। __स सिञ्चति।__ वह सींचता है। __स कृन्तति।__ वह काटता है। __स खिन्दति।__ वह दुःख देता है (सताता है)। __स पिंशति।__ वह टुकड़े-टुकड़े करता है।

ये मुचादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तुदादिगण में पठित हैं।

__सिद्धि-मुञ्चति।__ मुच्+लट्। मुच्+ल्। मुच्+तिप्। मुच्+श+ति। मु नुम् च्+अ+ति। मुन् च्+अ+ति। मु ं च्+अ+ति। मुञ्च्+अ+ति। मुञ्चति।

यहां __'मुच्लृ मोचने'__ (तु०प०) धातु से __'वर्तमाने लट्'__ (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। __'तुदादिभ्यः शः'__ (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'श' प्रत्यय के परे होने पर 'मुच्' को 'नुम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से __'मिदचोऽन्त्यात् परः'__ (१।१।४७) से 'मुच्' धातु के अन्तिम अच् से परे किया जाता है। __'नश्चापदान्तस्य झलि'__ (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और __'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'__ (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण ञकार होता है। ऐसे ही-__लुम्पति__ आदि।

नुम्-आगमः–

(१५) मस्जिनशोर्झलि।६०।

प०वि०-मस्जि-नशोः ६।२ झलि ७।१।

स०-मस्जिश्च नश् च तौ मस्जिनशौ, तयोः-मस्जिनशोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मस्जिनशोरङ्गयोर्झलि नुम्।

अर्थः-मस्जिनशोरङ्गयोर्झलादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(**मस्जिः**) मङ्क्ता। मङ्क्तुम्। मङ्क्तव्यम्। (नश्) नंष्टा। नंष्टुम्। नंष्टव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मस्जिनशोः) मस्जि, नश् इन (अङ्गयो) अङ्गों को (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-(मस्जि) ***मङ्क्ता।*** *शुद्ध करनेवाला।* ***मङ्क्तुम्।*** *शुद्ध करने के लिये।* ***मङ्क्तव्यम्।*** *शुद्ध करना चाहिये। (नश्)* ***नंष्टा।*** *नष्ट करनेवाला।* ***नंष्टुम्।*** *नष्ट करने के लिये।* ***नंष्टव्यम्।*** *नष्ट करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) ***मङ्क्ता।*** *मस्ज्+तृच्। मस्ज्+तृ। मस् नुम् ज्+तृ। मस्न्ज्+तृ। म०न्ज्+तृ। मन्ज्+तृ। मन्क्+तृ। म ं क्+तृ। मङ्क्+तृ। मङ्क्तृ+सु। मङ्क्ता।*

यहां ***'टुमस्जो शुद्धौ'*** *(तु०प०) धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'मस्ज्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। इस आगम के मित् होने से यह* ***'मिदचोऽन्त्यात् परः'*** *(१।१।४७) के नियम से 'मस्ज्' धातु के अन्तिम अच् से उत्तर होना चाहिये किन्तु वा०-* ***'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्'*** *(१।१।४६) से यह 'नुम्' आगम 'मस्ज्' धातु के अन्तिम वर्ण जकार से पूर्व किया जाता है।* ***'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'*** *(८।२।२९) से 'मस्न्ज्' के सकार का लोप,* ***'चोः कुः'*** *(८।२।३७) से जकार को कवर्ग गकार और* ***'खरि च'*** *(८।४।५४) से गकार को चर् ककार होता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और* ***'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'*** *(८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङकार होता है।*

(२) ***मङ्क्तुम्।*** *यहां 'मस्ज्' धातु से* ***'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'*** *(३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***मङ्क्तव्यम्।*** *यहां 'मस्ज्' धातु से* ***'तव्यत्तव्यानीयरः'*** *(३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) ***नंष्टा।*** *नश्+तृच्। नश्+तृ। न नुम् श्+तृ। न न् श्+तृ। न न् ष्+तृ। न ं ष्+टृ। नंष्टृ+सु। नंष्टा।*

यहां 'णश अदर्शने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'नश्' को 'नुम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से ***'मिदचोऽन्त्यात् परः'*** *(१।१।४६) के नियम से 'नश्' के अन्तिम 'अच्' से उत्तर किया जाता है।* ***'व्रश्चभ्रस्ज०'*** *(८।२।३६) शकार को षकार और* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार होता है।*

(५) ***नंष्टुम्।*** *यहां 'नश्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(६) ***नंष्टव्यम्।*** *यहां 'नश्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुम्-आगमः--

(१६) रधिजभोरचि।६१।

प०वि०-रधि-जभोः ६।२ अचि ७।१।

स०-रधिश्च जभ् च तौ रधिजभौ, तयोः-रधिजभोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधिजभोरङ्गयोरचि नुम्।

अर्थः-रधिजभोरङ्गयोरजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(रधिः) स रन्धयति। रन्धकः। साधुरन्धी। रन्धंरन्धम्। रन्धो वर्तते। **(जभ्)** स जम्भयति। जम्भकः। साधुजम्भी। जम्भंजम्भम्। जम्भो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रधिजभोः) रधि, जभ इन (अङ्गयोः) इन अङ्गों को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०- ***(रधि) स रन्धयति।*** *वह हिंसा/संसिद्धि कराता है।* ***रन्धकः।*** *हिंसा/संसिद्धि करनेवाला।* ***साधुरन्धी।*** *यथावत् हिंसाशील/संसिद्धिशील।* ***रन्धंरन्धम्।*** *पुनः-पुनः हिंसा/संसिद्धि करके।* ***रन्धो वर्तते।*** *हिंसा/संसिद्धि है।* ***(जभ्) स जम्भयति।*** *वह जम्भाई लेता है।* ***जम्भकः।*** *जम्भाई लेनेवाला।* ***साधुजम्भी।*** *यथावत् जम्भाईशील।* ***जम्भंजम्भम्।*** *पुनः-पुनः जम्भाई लेकर।* ***जम्भो वर्तते।*** *जम्भाई है।*

सिद्धि-(१) ***रन्धयति।*** *रध्+णिच्। रध्+इ। रनुम् ध्+इ। रन्ध्+इ। रं ध्+इ। रन्ध्+इ। रन्धि। रन्धि+लट्। रन्धयति।*

*यहां 'रध हिंसासंराद्ध्योः' (दि०प०) धातु से **हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि 'णिच्' (इ) प्रत्यय परे होने पर 'रध्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'रन्धि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही **'जभी गात्रविनामे'** (भ्वा०आ०) धातु से-**जम्भयति।***

*(२) **रन्धकः।** यहां 'रध्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भकः।***

*(३) **साधुरन्धी।** यहां 'साधु' उपपद 'रध्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**साधुजम्भी।***

*(४) **रन्धंरन्धम्।** यहां 'रध्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से आभीक्ष्ण्य-अर्थ में द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भंजम्भम्।***

*(५) **रन्धः।** यहां 'रध्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भः।***

नुमागम-प्रतिषेधः–

(१७) नेट्यलिटि रधेः।६२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इटि ७।१ अलिटि ७।१ रधेः ६।१।

स०-न लिड् इति अलिट्, तस्मिन्-अलिटि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधेरङ्गस्य अलिटि इटि नुम् न।

अर्थः-रधेरङ्गस्य लिड्वर्जिते इडादौ प्रत्यये परतो नुमागमो न भवति।

उदा०-रधिता। रधितुम्। रधितव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(रधेः) रधि इस (अङ्गस्य) अंग को (अलिटि) लिट् से भिन्न (इटि) इडादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**रधिता।** हिंसा/संसिद्धि करनेवाला। **रधितुम्।** हिंसा/संसिद्धि करने के लिये। **रधितव्यम्।** हिंसा/संसिद्धि करनी चाहिए।*

सिद्धि-(१) रधिता। रध्+तृच्। रध्+इट्+तृ। रध्+इ+तृ। रधितृ+सु। रधिता।

यहां **'रध हिंसासंराद्ध्योः'** (दि०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इसे **'रधादिभ्यश्च'** (७।२।४५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से इडादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'रध्' धातु को 'नुम्' आगम का प्रतिषेध होता है।

(२) रधितुम्। यहां 'रध्' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) रधितव्यम्। यहां 'रध्' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

नुम्-आगमः-

(१८) रभेरशब्लिटोः।६३।

प०वि०-रभेः ६।१ अशप्-लिटोः ७।२।

स०-शप् च लिट् च तौ शब्लिटौ, न शब्लिटाविति अशब्लिटौ, तयोः-अशब्लिटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रभेरङ्गस्य अशब्लिटोरजादौ नुम्।

अर्थः-रभेरङ्गस्य शप्-लिड्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-स आरम्भयति। आरम्भकः। साध्वारम्भी। आरम्भमारम्भम्। आरम्भो वर्तते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रभेः)* रभि इस *(अङ्गस्य)* अङ्ग को *(अशब्लिटोः)* शप् और लिट् से भिन्न *(अचि)* अजादि प्रत्यय परे होने पर *(नुम्)* नुम् आगम होता है।

उदा०-**स आरम्भयति।** वह आरम्भ कराता है। **आरम्भकः।** आरम्भ करनेवाला। **साध्वारम्भी।** यथावत् आरम्भशील। **आरम्भमारम्भम्।** पुनः पुनः आरम्भ करके। **आरम्भो वर्तते।** आरम्भ है।

सिद्धि-(१) आरम्भयति। आङ्+रभ्+णिच्। आ+रभ्+इ। आ+र नुम् भ्+इ। आ+रन् भ्+इ। आ+र ं भ्+इ। आ+र म् भ्+इ। आरम्भि।। आरम्भि+लट्। आरम्भयति।

यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'रभ राभस्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि णिच् (इ) प्रत्यय परे होने पर 'रभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और

'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। तत्पश्चात् 'आरम्भि' इस णिजन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

*(२) **आरम्भकः।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है।*

*(३) **साध्वारम्भी।** यहां साधु-उपपद और आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से '**सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**' (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है।*

*(४) **आरम्भमारम्भम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से '**आभीक्ष्ण्ये णमुल् च**' (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-'**आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः**' (८।१।१२) से द्वित्व होता है।*

*(५) **आरम्भः।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है।*

*'अशप्-लिटोः' के वचन से यहां नुम्-आगम नहीं होता है-**(शप्) आरभते। (लिट्) आरेभे।***

नुम्-आगमः–

(१६) लभेश्च।६४।

प०वि०–लभेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, अचि, अशब्लिटोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–लभेरङ्गस्य चाऽशब्लिटोरजादौ नुम्।

अर्थः–लभेरङ्गस्य च शप्-लिड्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०–स लम्भयति। लम्भकः। साधुलम्भी। लम्भंलम्भम्। लम्भो वर्तते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (अशब्लिटोः) शप् और लिट् से भिन्न (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-**स लम्भयति।** वह प्राप्त कराता है। **लम्भकः।** प्राप्त करनेवाला। **साधुलम्भी।** यथावत् प्राप्तिशील। **लम्भंलम्भम्।** पुनः पुनः प्राप्त करके। **लम्भो वर्तते।** प्राप्ति है।*

*सिद्धि-(१) **लम्भयति।** लभ्+णिच्। लभ्+इ। लनुम्भ्+इ। लन्भ्+इ। लं भ्+इ। लम्भ्+इ। लम्भि। लम्भि+लट्। लम्भयति।*

यहां 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि णिच् (इ) प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।२८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। तत्पश्चात् 'लम्भि' इस णिजन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) लम्भकः। यहां 'लभ्' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है।

(३) साधुलम्भी। यहां साधु-उपपद 'लभ्' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है।

(४) लम्भंलम्भम्। यहां 'लभ्' धातु से 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' (८।१।१२) से द्वित्व होता है।

(५) लम्भः। यहां 'लभ्' धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है।

नुम्-आगमः–

(२०) आङो यि।६५।

प०वि०–आङः ५।१ यि ७।१ (विषयसप्तमी)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आङो लभेरङ्गस्य यि नुम्।

अर्थः–आङ उत्तरस्य लभेरङ्गस्य यकारादौ प्रत्ययविषये नुमागमो भवति।

उदा०–आलम्भ्या गौः। आलम्भ्या वडवा।

आर्यभाषाः अर्थ-(आङः) आङ्-उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि प्रत्यय विषय (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-आलम्भ्या गौः। यज्ञ हेतु (घृतादि) प्राप्त करने योग्य गौ। आलम्भ्या वडवा। आरोहण हेतु प्राप्त करने योग्य घोड़ी।

सिद्धि-आलम्भ्या। आङ्+लभ्+०। आ+ल नुम् भ्+ण्यत्। आ+लन् भ्+य। आ+ल ं भ्+य। आ+लम्भ्+य। आलम्भ्य+टाप्। आलम्भ्या+सु। आलम्भ्या।

यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से प्रथम यकारादि प्रत्यय का विषय उपस्थित होने पर इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। तत्पश्चात् इस धातु

*की उपधा में अकार न रहने से '**पोरदुपधात्**' (३।१।९८) से प्राप्त 'यत्' प्रत्यय नहीं होता, अपितु '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। '**नश्चापदान्तस्य झलि**' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। 'ण्यत्' प्रत्यय करने पर '**गतिकारकोपपदात् कृत्**' (६।२।१३९) से कृत्-उत्तरपद को 'अन्त-स्वरित' प्रकृतिस्वर होता है-**आलम्भ्या**। 'यत्' प्रत्यय हो जाने पर 'यतोऽनावः' (६।१।२१३) आद्युदात्त स्वर होता।*

नुम्-आगमः–

(२१) उपात् प्रशंसायाम्।६६।

प०वि०-उपात् ५।१ प्रशंसायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेः, यि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपाल्लभेरङ्गस्य यि नुम्, प्रशंसायाम्।

अर्थः-उपाद् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य यकारादौ प्रत्ययविषये नुमागमो भवति, प्रशंसायां गम्यमानायाम्।

उदा०-उपलम्भ्या भवता विद्या। उपलम्भ्यानि भवता धनानि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपात्) उप-उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अंग को (यि) यकारादि प्रत्यय विषय में (नुम्) नुम् आगम होता है (प्रशंसायाम्) यदि वहां प्रशंसा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**उपलम्भ्या भवता विद्या**। आप विद्या प्राप्त कर सकते हैं। **उपलम्भ्यानि भवता धनानि**। आप नाना धन प्राप्त कर सकते हैं। ये किसी के प्रशंसावचन हैं।*

*सिद्धि-**उपलम्भ्या**। यहां उप-उपसर्गपूर्वक '**डुलभष् प्राप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से यकारादि प्रत्ययविषय में पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। नपुंसकलिङ्ग बहुवचन में-**उपलम्भ्यानि**।*

नुम्-आगमः–

(२२) उपसर्गात् खल्घञोः।६७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ खल्-घञोः ७।२।

स०-खल् च घञ् च तौ खल्घञौ, तयोः-खल्घञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गाल्लभेरङ्गस्य खल्घञोर्नुम्।

अर्थः-उपसर्गाद् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य खलि घञि च परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(खल्) ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। सुप्रलम्भः। **(घञ्)** प्रलम्भः। विप्रलम्भः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (खल्घञोः) खल् और घञ् प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-(खल्) ***ईषत्प्रलम्भः।*** *उपलब्ध करना सफल है।* ***दुष्प्रलम्भः।*** *दुःख से उपलब्ध करना।* ***सुप्रलम्भः।*** *सुख से उपलब्ध करना।* ***(घञ्) प्रलम्भः।*** *उपलब्धि।* ***विप्रलम्भः।*** *छल-कपट।*

सिद्धि-(१) ईषत्प्रलम्भः। *ईषत्+प्र+लभ्+खल्। ईषत्+प्र+ल नुम् भ्+अ। ईषत्+प्र+ल न् भ्+अ। ईषत्+प्र ल ं भ्+अ। ईषत्+प्र ल म् भ्+अ। ईषत्प्रलम्भ+सु। ईषत्प्रलम्भः।*

यहां ईषद्-उपपद तथा प्र-उपसर्गपूर्वक ***'डुलभष् प्राप्तौ'*** *(भ्वा०आ०) धातु से* ***'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्'*** *(३।३।१२६) से 'खल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खल्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दुस्-उपपद होने पर-* ***दुष्प्रलम्भः।*** *सु-उपपद होने पर-* ***सुप्रलम्भः।***

(२) ***प्रलम्भः।*** *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'लभ्' धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-* ***विप्रलम्भः।***

नुमागम-प्रतिषेधः-

(२३) न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम्।६८।

प०वि०-न अव्ययपदम्, सु-दुर्भ्याम् ५।२ केवलाभ्याम् ५।२।

स०-सुश्च दुर् च तौ सुदुरौ, ताभ्याम्-सुदुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। केवलश्च केवलश्च तौ केवलौ, ताभ्याम्-केवलाभ्याम् (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेः, उपसर्गात् खलघञोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-केवलाभ्यां सुदुर्भ्यामुपसर्गाभ्यां लभेरङ्गस्य खल्घञोर्नुम् न।

अर्थः-केवलाभ्यां सुदुर्भ्याम् उपसर्गाभ्याम् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य खलि घञि च परतो नुमागमो न भवति।

उदा०-(खल्) दुर्लभम्। सुलभम्। सुदुर्लभम्। (घञ्) सुलाभः। दुर्लभः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(केवलाभ्याम्) केवल (सुदुर्भ्याम्) सु और दुर् इन (उपसर्गाभ्याम्) उपसर्गों से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(खल्) **दुर्लभम्।** दुःख से प्राप्त करने योग्य। **सुलभम्।** सुख से प्राप्त करने योग्य। **सुदुर्लभम्।** अति दुःख से प्राप्त करने योग्य। (घञ्) **सुलाभः।** सुखपूर्वक प्राप्त करना। **दुर्लभः।** दुःखपूर्वक प्राप्त करना।*

*सिद्धि-(१) **दुर्लभम्।** यहां केवल दुर्-उपसर्ग से परे 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' (३।३।१२६) से 'खल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लभ्' को 'नुम्' आगम का प्रतिषेध है। ऐसे ही-**सुलभम्, सुदुर्लभम्।***

*(२) **सुलाभः।** यहां केवल सु-उपसर्ग से परे 'लभ्' धातु से 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लभ्' को 'नुम्' आगम का प्रतिषेध है।*

नुमागम-विकल्पः--

(२४) विभाषा चिण्णमुलोः।६६।

प०वि०-विभाषा १।१ चिण्-णमुलोः ७।२।

स०-चिण् च णमुल् च तौ चिण्णमुलौ, तयोः-चिण्णमुलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-लभेरङ्गस्य चिण्णमुलोर्विभाषा नुम्।

अर्थः-लभेरङ्गस्य चिणि णमुलि च परतो विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(चिण्) अलम्भि भवता। अलाभि भवता। (णमुल्) लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिण्णमुलोः) चिण् और णमुल् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(चिण्) **अलम्भि भवता। अलाभि भवता।** आपके द्वारा प्राप्त किया गया। (णमुल्) **लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्।** पुनः-पुनः प्राप्त करके।*

सिद्धि-(१) अलम्भि। *लभ्+लुङ्। अट्+लभ्+च्लि+ल्। अ+लभ्+चिण्+त। अ+ल नुम् भ्+इ+त। अ+लम्भ्+इ+०। अ+ल ं भ्+इ+०। अ+लम्भ्+इ। अलम्भि।*

*यहां **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से कर्मवाच्य अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'चिण्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु से 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार पूर्ववत् है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। विकल्प-पक्ष में नुम्-आगम नहीं है-**अलाभि।** यहां **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से अङ्ग को उपधावृद्धि होती है।*

(२) लम्भंलम्भम्। *यहां 'लभ्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार पूर्ववत् है। **वा०- 'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से द्वित्व होता है। विकल्प-पक्ष में नुम्-आगम नहीं है-**लाभंलाभम्।** यहां पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।*

नुम्-आगमः-

(२५) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः।७०।

प०वि०-उगिद्-अचाम् ६।३ सर्वनामस्थाने ७।१ अधातोः ६।१।

स०-उग् इद् येषां ते उगितः, उगितश्च अच्च ते उगिदचः, तेषाम्-उगिदचाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न धातुरिति अधातुः, तस्य-अधातोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधातोरुगिदचाम् अङ्गानां सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः-धातुवर्जितानामुगिताम् अञ्चतेश्चाङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(उगित्) भवतु-भवान्, भवन्तौ, भवन्तः। **ईयसुन्-**श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः। **शतृ-**पचन्, पचन्तौ, पचन्तः। **(अञ्चतिः)** प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अधातोः) धातु से भिन्न (उगिदचाम्) उक् जिनका इत् है उनको तथा अञ्चति इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-(उगित्) **भवतु-भवान्।** आप। **भवन्तौ।** आप दोनों। **भवन्तः।** आप सब। ईयसुन्-**श्रेयान्।** प्रशस्य। **श्रेयांसौ।** दो प्रशस्य। **श्रेयांसः।** सब प्रशस्य। शतृ-**पचन्।** पकाता हुआ। **पचन्तौ।** दो पकाते हुये। **पचन्तः।** सब पकाते हुये। (अञ्चति) **प्राङ्।** पूर्व दिशा। **प्राञ्चौ।** दो पूर्व दिशायें। **प्राञ्चः।** सब पूर्व दिशायें।

सिद्धि-(१) **भवान्।** भवतु+सु। भवत्+सु। भव नुम् त्+सु। भवन्त्+सु। भवान्त्+सु। भवान्त्+०। भवान्०। भवान्।

यहां 'भवतु' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' प्रत्यय के परे होने पर उगित् 'भवतु' शब्द को नुम् आगम होता है। '**सान्तमहतः संयोगस्य**' (६।४।१०) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भवन्तौ, भवन्तः।**

(२) **श्रेयान्।** प्रशस्य+ईयसुन्। श्र+ईयस्। श्रेयस्+सु। श्रेयनुम्स्+सु। श्रेयन्स्+सु। श्रेयानस्+सु। श्रेयान्स्+०। श्रेयान्०। श्रेयान्।

यहां प्रथम प्रशस्य शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। '**प्रशस्यस्य श्रः**' (५।३।६०) से प्रशस्य के स्थान में 'श्र' आदेश और '**प्रकृत्यैकाच्**' (६।४।१६३) से प्रकृति भाव होने से 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त अङ्ग का टि-लोप (अ) नहीं होता है। 'ईयसुन्' प्रत्यय के उगित् होने से इसे इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। पूर्ववत् 'सु' का और संयोगान्त सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्रेयांसौ, श्रेयांसः।**

(३) **पचन्।** पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+सु। पचनुम्त्+सु। पचन्त्+सु। पचन्त्+०। पचन्०। पचन्।

यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'शतृ' आदेश है। इस 'शतृ' आदेश के उगित् होने से इस सूत्र से इसे 'नुम्' आगम होता है। 'सु' का और संयोगन्त तकार का लोप पूर्ववत् है।

(४) **प्राङ्।** प्र+अञ्च्+क्विन्। प्र+अच्+वि०। प्र+अच्+०। प्र+अच्+सु। प्र+अनुम्च्+सु। प्र+अन्च्+स्। प्र+अन्च्+०। प्र+अन्०। प्र+अङ्। प्राङ्।

यहां प्र-उपसर्गपूर्वक '**अञ्चु गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'अच्' को 'नुम्' आगम होता है। 'सु' और संयोगान्त चकार का पूर्ववत् लोप होता है। '**क्विन् प्रत्ययस्य कुः**' (८।२।६२) से नकार को कुत्व ङकार होता है। ऐसे ही-**प्राञ्चौ, प्राञ्चः।**

नुम्-आगमः–

(२६) युजेरसमासे।७१।

प०वि०–युजेः ६।१ असमासे ७।१।

स०–न समास इति असमासः, तस्मिन्–असमासे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–असमासे युजेरङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः–असमासे वर्तमानस्य युजेरङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०–युङ्, युञ्जौ, युञ्जः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(असमासे) समास से रहित (युजेः) युजि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०–**युङ्**। जोड़नेवाले। **युञ्जौ**। दो जोड़नेवाले। **युञ्जः**। सब जोड़नेवाले।*

***सिद्धि-युङ्**। युज्+क्विन्। युज्+वि। युज्+०। युज्+सु। यु नुम् ज्+स्। युनुज्+०। युन्०। युन्। युङ्।*

*यहां **'युजिर् योगे'** (रुधा०उ०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से असमास में विद्यमान 'युज्' को 'नुम्' आगम होता है। शेष कार्य 'प्राङ्' के समान है। ऐसे ही-**युञ्जौ, युञ्जः**।*

नुम्-आगमः–

(२७) नपुंसकस्य झलचः।७२।

प०वि०–नपुंसकस्य ६।१ झलचः ६।१।

स०–झल् च अच् च एतयोः समाहारो झलच्, तस्य-झलचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–नपुंसकस्य झलचोऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः–नपुंसकलिङ्गस्य झलन्तस्याऽजन्तस्य चाऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(झलन्त:) उदश्विन्ति। शकृन्ति। यशांसि। पयांसि। **(अजन्त:)** कुण्डानि। वनानि। त्रपूणि। जतूनि।

आर्यभाषाः *अर्थ:-(नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्गवाले (झलच:) झलन्त और अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-(झलन्त) ***उदश्विन्ति।*** *सब उदश्वित् (लस्सी)।* ***शकृन्ति।*** *सब मल।* ***यशांसि।*** *सब यश।* ***पयांसि।*** *सब दूध/जल। (अजन्त)* ***कुण्डानि।*** *सब कुण्ड।* ***वनानि।*** *सब वन।* ***त्रपूणि।*** *सब शीशा, रांगा।* ***जतूनि।*** *सब गोंद, लाख।*

सिद्धि-(१) उदश्विन्ति। *उदश्वित्+जस्। उदश्वित्+शि। उदश्वित्+इ। उदश्वि नुम् त्+इ। उदश्विन्त्+इ। उदश्वि ं त्+इ। उदश्विन्त्+इ। उदश्विन्ति।*

यहां 'उदश्वित्' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है।* ***'जश्शसो: शि:'*** *(७।२।२०) से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है।* ***'शि सर्वनामस्थानम्'*** *(१।१।४२) से 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग, झलन्त 'उदश्वित्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। पूर्ववत् नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। ऐसे ही-शकृन्ति,* ***यशांसि। पयांसि।*** *यहां* ***'सान्तमहत: संयोगस्य'*** *(६।४।१०) से दीर्घ होता है।*

(२) ***कुण्डानि।*** *कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड नुम्+इ। कुण्डन्+इ। कुण्डान्+इ। कुण्डानि।*

यहां 'कुण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय और 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग, अजन्त 'कुण्ड' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। ***'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'*** *(६।४।८) से दीर्घ होता है। ऐसे ही-वनानि,* ***त्रपूणि, जतूनि।***

नुम्-आगमः-

(२८) इकोऽचि विभक्तौ।७३।

प०वि०-इक: ६।१ अचि ७।१ विभक्तौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, नपुंसकस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-नपुंसकस्य इकोऽङ्गस्य अचि विभक्तौ नुम्।

अर्थ:-नपुंसकलिङ्गस्य इगन्तस्याऽङ्गस्याऽजादौ विभक्तौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-त्रपुणी। जतुनी। तुम्बुरुणी। त्रपुणे। जतुने। तुम्बुरुणे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्ग (इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-**त्रपुणी।** दो सीसा, रांगा। **जतुनी।** दो गोंद, लाख। **तुम्बुरुणी।** दो धनियां। **त्रपुणे।** सीसा, रांगा के लिये। **जतुने।** गोंद, लाख के लिये। **तुम्बुरुणे।** धनियां के लिये।*

*उदा०-(१) **त्रपुणी।** त्रपु+औ। त्रपु+शी। त्रपु+ई। त्रपु नुम्+ई। त्रपुन्+ई। त्रपुन्+ई। त्रपुण्+ई। त्रपुणी।*

*यहां 'त्रपु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से इगन्त 'त्रपु' शब्द को अजादि औ (शी) प्रत्यय परे होने पर 'नुम्' आगम होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**जतुनी, तुम्बुरुणी।***

*(२) **त्रपुणे।** यहां 'त्रपु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**जतुने, तुम्बुरुणे।***

नपुंसकस्य पुंवद्भावः-

(२६) तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य।७४।

प०वि०-तृतीयादिषु ७।३ भाषितपुंस्कम् १।१ पुंवत् अव्ययपदम्, गालवस्य ६।१।

स०-तृतीया आदिर्यासां ताः-तृतीयादयः, तासु-तृतीयादिषु (बहुव्रीहिः)। भाषितः पुमान् येन {समानायामाकृतौ, एकस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्ते} तत्-भाषितपुंस्कम् (बहुव्रीहिः)।

तद्धितवृत्तिः-पुंसा तुल्यमिति पुंवत् **'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः'** (५।१।११५) इति तृतीयार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः अचि, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषितपुंस्कम् इग् नपुंसकं तृतीयादिषु अजादिषु विभक्तिषु गालवस्य पुंवत्।

अर्थः-भाषितपुंस्कम् इगन्तं नपुंसकं शब्दरूपं तृतीयादिष्वजादिषु विभक्तिषु परतो गालवस्याचार्यस्य मतेन पुंवद् भवति। यथा पुंसि ह्रस्वनुमौ न भवतस्तथाऽत्रापि न भवत इत्यर्थः। **उदाहरणम्-**

विभक्तिः	गालवमतम् (पुंवद्भावः)	पाणिनिमतम् (पुंवद्भावो न)	भाषार्थः
प्रतीकम्	**{ग्रामणीर्ब्राह्मणः}**	**{ग्रामणि ब्राह्मणकुलम्}**	**{ग्रामणी ब्राह्मणकुल}**
टा	ग्रामण्या ब्राह्मणकुलेन	ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन	ग्रामणी (ब्रा०कु०) के द्वारा।
ङे	ग्रामण्ये ब्राह्मणकुलाय	ग्रामणिने ब्राह्मणकुलाय	,, ,, के लिये।
ङसि	ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलात्	ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलात्	,, ,, से।
ङस्	ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलस्य	ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलस्य	,, ,, का।
ओस्	ग्रामण्योर्ब्राह्मणकुलयोः	ग्रामणिनोर्ब्राह्मणकुलयोः	दो ,, ,, का।
आम्	ग्रामण्यां ब्राह्मणकुलानाम्	ग्रामणीनां ब्राह्मणकुलानाम्	सब ,, ,, का।
ङि	ग्रामण्यां ब्राह्मणकुले	ग्रामणिनि ब्राह्मणकुले	,, ,, में/पर।
प्रतीकम्	**{शुचिर्ब्राह्मणः}**	**{शुचि ब्राह्मणकुलम्}**	**{शुद्ध ब्राह्मण/कुल}**
टा	शुचिना ब्राह्मणकुलेन	शुचिना ब्राह्मणकुलेन	शुद्ध (ब्रा०कु०) के द्वारा।
ङे	शुचये ब्राह्मणकुलाय	शुचिने ब्राह्मणकुलाय	,, ,, के लिये।
ङसि	शुचेर्ब्राह्मणकुलात्	शुचिनो ब्राह्मणकुलात्	,, ,, से।
ङस्	शुचेर्ब्राह्मणकुलस्य	शुचिनो ब्राह्मणकुलस्य	,, ,, का।
ओस्	शुच्योर्ब्राह्मणकुलयोः	शुचिनोर्ब्राह्मणकुलयोः	दो ,, ,, का।
ङि	शुचौ ब्राह्मणकुले	शुचिनि ब्राह्मणकुले	,, ,, में।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भाषितपुंस्कम्) समान आकृति में तथा समान प्रवृत्ति-निमित्त में पुलिङ्ग को कहनेवाले (इकः) इगन्त (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग शब्द को (तृतीयादिषु) तृतीया-आदि (अजादिषु) अजादि (विभक्तिषु) विभक्ति परे होने पर (गालवस्य) गालव आचार्य के मत में (पुंवत्) पुंवद्भाव होता है, वह शब्द पुंलिङ्ग के समान हो जाता है, अर्थात् वहां नपुंसकलिङ्ग में विहित ह्रस्वादेश और नुम्-आगम नहीं होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **ग्रामण्या।** ग्रामणी+टा। ग्रामणी+आ। ग्राम य्+आ। ग्रामण्या।*

*यहां 'ग्रामणी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। ब्राह्मणकुल के विशेषण भाव से 'ग्रामणी' नपुंसकलिङ्ग है। गालव आचार्य के मत में पुंवद्भाव होने पर **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से नपुंसकलिङ्ग में विहित ह्रस्वादेश और **'इकोऽचि विभक्तौ'** (७।२।७३) से नुम्-आगम नहीं होता है। **'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य'***

*(६।४।८२) से यणादेश होता है। पाणिनि मुनि के मत में पूर्वोक्त ह्रस्वादेश और नुम्-आगम होता है-**ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन**। ऐसे ही शेष ङे आदि आदि विभक्तियों में भी समझें।*

*(२) **शुचिना।** यहां 'शुचि' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। गालव आचार्य के मत में पुंवद्भाव होने से **'आङो नाऽस्त्रियाम्'** (७।३।१२०) से 'टा' के स्थान में 'ना' आदेश होता है। पाणिनि मुनि के मत में **'इकोऽचि विभक्तौ'** (७।१।७३) से नपुंसकलिङ्ग में 'नुम्' आगम होता है-**शुचिना।** ऐसे ही शेष 'ङे' आदि अजादि विभक्तियों में भी समझें।*

अनङ्-आदेशः-

(३०) अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः।७५।

प०वि०-अस्थि-दधि-सक्थि-अक्ष्णाम् ६।३ अनङ् १।१ उदात्तः १।१।

स०-अस्थि च दधि च सक्थि च अक्षि च तानि-अस्थिदधि-सक्थ्यक्षीणि, तेषाम्-अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अचि, विभक्तौ, तृतीयादिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानाम् अजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु अनङ्, उदात्तः।

अर्थः-नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामिगन्तानाम् अङ्गानाम् अजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु परतोऽनङादेशो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(अस्थि) अस्थ्ना, अस्थ्ने। **(दधि)** दध्ना, दध्ने। **(सक्थि)** सक्थ्ना, सक्थ्ने। **(अक्षि)** अक्ष्णा, अक्ष्णे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (अजादिषु) अजादि (तृतीयादिषु) तृतीया-आदि (विभक्तिषु) विभक्तियां परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है, और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**(अस्थि) अस्थ्ना।** हड्डी के द्वारा। **अस्थ्ने।** हड्डी के लिये। **(दधि) दध्ना।** दही के द्वारा। **दध्ने।** दही के लिये। **(सक्थि) सक्थ्ना।** जंघा के द्वारा। **सक्थ्ने।** जंघा के लिये। **(अक्षि) अक्ष्णा।** आंख के द्वारा। **अक्ष्णे।** आंख के लिये।*

सिद्धि-अस्थ्ना। अस्थि+टा। अस्थि+आ। अस्थ् अनङ्+आ। अस्थ् अन्+आ। अस्थ्०न्+आ। अस्थ्ना।

यहां नपुंसकलिङ्ग, इगन्त 'अस्थि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे अजादि 'टा' प्रत्यय परे होने पर अनङ् आदेश होता है। यह आदेश ङित् होने से 'ङिच्च' (१।१।५३) के नियम से 'अस्थि' के अन्तिम अच् (इ) के स्थान में किया जाता है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अनङ्' के आदिम अकार का लोप होता है। 'अनङ्' में नकारस्थ अकार उच्चारणार्थ है।

'अस्थि' शब्द 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य' (फिट्० २।३) से आद्युदात्त है। शेष को 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५५) से अनुदात्त स्वर होता है-अस्थि। इस अनुदात्त इकार के स्थान में विधीयमान 'अनङ्' आदेश भी स्थानिवद्भाव से 'अनुदात्त' प्राप्त था। अतः इस सूत्र में 'उदात्त' विधान किया गया है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अनङ्' के अकार का लोप हो जाने पर 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (६।१।१६१) से 'टा' विभक्ति उदात्त होती है-अस्थ्ना। 'ङे' प्रत्यय करने पर-अस्थ्ने। ऐसे ही-दध्ना आदि।

अनङ्-आदेशदर्शनम्-

(३१) छन्दस्यपि दृश्यते।७६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अनङ्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानाम् उदात्तोऽनङ् दृश्यते।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णानिगन्तानाम् अङ्गानाम् उदात्तोऽनङादेशो दृश्यते। **उदाहरणम्**-

(१) अचि=अजादावित्युक्तम्, अनजादावपि दृश्यते-इन्द्रो दधीचोऽस्थभिः (ऋ० १।८४।१३)। भद्रं पश्येमाक्षभिः (यजु० २५।२१)।

(२) 'तृतीयादिषु विभक्तिषु' इत्युक्तम्। अतृतीयादिष्वपि दृश्यते-अस्थान्युत्कृत्य जुहोति।

(३) 'विभक्तौ' इत्युक्तम् अविभक्तावपि दृश्यते-अक्षण्वता लाङ्गलेन (पै०सं० ९।८।१)। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति (ऋ० १।१६४।४)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपि) भी (नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (उदात्तः) उदात्त (अनङ्) अनङ् आदेश (दृश्यते) देखा जाता है। उदाहरण-

(१) 'अचि' अर्थात् अजादि विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश कहा है, यह छन्द में अनजादि=हलादि विभक्ति परे होने पर भी होता है-**इन्द्रो दधीचोऽस्थभिः** (ऋ० १।८४।१३) **भद्रं पश्येमाक्षभिः** (यजु० २५।२१)।

(२) तृतीया-आदि विभक्तियों के परे होने पर अनङ् आदेश कहा है, यह छन्द में अतृतीयादि (प्रथमा-द्वितीया) विभक्ति परे होने पर भी होता है-**अस्थान्युत्कृत्य जुहोति।**

(३) विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश कहा गया है, यह अविभक्ति=विभक्ति से भिन्न विषय में भी होता है-**अक्षण्वता लाङ्गलेन। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति** (ऋ० १।१६४।४)।

सिद्धि-(१) अस्थभिः। अस्थिन्+भिस्। अस्थ् अनङ्+भिस्। अस्थ् अन्+भिस्। अस्थ् अ०+भिस्। अस्थभिः।

यहां 'अस्थि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में अनजादि=हलादि 'भिस्' विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश होता है। '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।

(२) **अस्थानि।** अस्थि+शस्। अस्थि+शि। अस्थि+इ। अस्थ्+अनङ्+इ। अस्थन्+इ। अस्थान्+इ। अस्थानि।

यहां 'अस्थि' शब्द से पूर्ववत् 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द-विषय में तृतीया-आदि विभक्तियों से भिन्न द्वितीया-विभक्ति (शस्) परे होने पर भी अनङ् आदेश होता है। '**जश्शसोः शिः**' (७।१।२०) से 'शस्' के स्थान में 'शि' आदेश है। '**इन्हन्पूषार्यम्णां शौ**' (६।४।१२) से दीर्घ होता है।

(३) **अक्षण्वता।** अक्षि+मतुप्। अक्षि+मत्। अक्ष् अनङ्+मत्। अक्ष् अन्+मत्। अक्ष् अन्+नुट्+मत्। अक्ष् अन्+न्+मत्। अक्ष०न्वत्। अक्षण्वत्+टा। अक्षण्वता।

यहां 'अक्षि' शब्द से '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विभक्ति से भिन्न इस 'मतुप्' प्रत्यय के परे होने पर छन्द में 'अक्षि' शब्द को अनङ् आदेश होता है। '**अनो नुट्**' (८।२।१६) से 'मतुप्' को 'नुट्' आगम, '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'अक्षन्' के नकार का लोप और '**मादुपधायाश्च**' (८।२।९) से 'मतुप्' के मकार को वकारादेश है। तत्पश्चात् 'टा' प्रत्यय करने पर-**अक्षण्वता।** ऐसे ही 'अस्थि' शब्द से-**अस्थन्वतम्** (२।१)। द्रष्टव्य-**अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः** (ऋ० १०।७१।७)।

ईकार-आदेशः–

(३२) ई च द्विवचने।७७।

प०वि०–ई १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, द्विवचने ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्, उदात्तः छन्दसि, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानां द्विवचने ईश्च उदात्तः।

अर्थः–छन्दसि विषये नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इगन्तानाम् अङ्गानां द्विवचने प्रत्यये ईकारादेशश्च भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव (तु०-मीमांसा २।१।३२ शाबरभाष्यम्)। अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम् (ऋ० १०।१६३।१)।

आर्यभाषा अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (ईः) ईकार आदेश (च) भी होता है, और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।

*उदा०-**अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव** (तु०-मीमांसा २।१।३२ शाबरभाष्य)। **अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्** (ऋ० १०।१६३।१)।*

__सिद्धि-अक्षी।__ अक्षि+औ। अक्षि+शी। अक्षि+ई। अक्ष् ई+ई। अक्षी।

*यहां 'अक्षि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से द्विवचन औ (शी) प्रत्यय परे होने पर ईकार आदेश होता है। ऐसे ही द्विवचन 'भ्याम्' प्रत्यय परे होने पर-**अक्षीभ्याम्।***

नुमागम-प्रतिषेधः–

(३३) नाभ्यस्ताच्छतुः।७८।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अभ्यस्तात् ५।१ शतुः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यस्ताद् अङ्गात् शतुर्नुम् न।

अर्थः–अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य शतृ-प्रत्ययस्य नुमागमो न भवति।

उदा०-(दा) ददत्, ददतौ, ददतः। (धा) दधत्, दधतौ, दधतः। (जक्ष) जक्षत्, जक्षतौ, जक्षतः। (जागृ) जाग्रत्, जाग्रतौ, जाग्रतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(दा) **ददत्**। देता हुआ। **ददतौ**। दो देते हुये। **ददतः**। सब देते हुये। (धा) **दधत्**। धारण-पोषण करता हुआ। **दधतौ**। दो धारण-पोषण करते हुये। **दधतः**। सब धारण-पोषण करते हुये। (जक्ष) **जक्षत्**। खाता/हंसता हुआ। **जक्षतौ**। दो खाते/हंसते हुये। **जक्षतः**। सब खाते/हंसते हुये। (जागृ) **जाग्रत्**। जागता हुआ। **जाग्रतौ**। दो जागते हुये। **जाग्रतः**। सब जागते हुये।*

*सिद्धि-(१) **ददत्**। दा+लट्। दा+शतृ। दा+शप्+अत्। दा+०+अत्। दा-दा+अत्। द+द्+अत्। ददत्+सु। ददत्+०। ददत्।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) इस उभयपद से 'लट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में शतृ-आदेश है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु (लोप) और 'श्लौ' (६।१।१०) से 'दा' को द्वित्व होता है। दिरुक्त 'दा-दा' की 'उभे अभ्यस्तम्' (६।१।५) से अभ्यस्त-संज्ञा है। इस सूत्र से अभ्यस्त-संज्ञक 'द-दा' धातु से परे 'शतृ' प्रत्यय को नुम् आगम का प्रतिषेध है। 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से आकार का लोप होता है। उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से प्राप्त नुम् आगम का इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से-**दधत्**।*

*(२) **जक्षत्**। यहां 'जक्ष भक्षहसनयोः' (अ०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। 'जक्षित्यादयः षट्' (६।१।६) से 'जक्ष्' धातु की अभ्यस्त-संज्ञा है। ऐसे ही 'जागृ निद्राक्षये' (अ०प०) धातु से-**जाग्रत्**।*

विशेषः *यहां 'ई च द्विवचने' (७।१।७७) से ईकार की अनुवृत्ति नहीं होती है, क्योंकि 'शतृ' प्रत्यय को किसी सूत्र से ईकारादेश विहित नहीं है, अतः उसके प्रतिषेध का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। 'शतृ' प्रत्यय को 'उगिदचां सर्वामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से नुम्-आगम प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है, अतः यहां अनङ् आदेश आदि से व्यवहित 'नुम्' पद की सम्भव-प्रमाण से अनुवृत्ति की जाती है।*

नुमागम-विकल्पः—

(३४) वा नपुंसकस्य।७६।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, नपुंसकस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, अभ्यास्तात्, शतुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यस्ताद् अङ्गात् शतुर्नपुंसकस्य वा नुम्।

अर्थः-अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरो यः शतृ-प्रत्ययः, तदन्तस्य नपुंसकस्य विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(**दा**) ददन्ति कुलानि। ददति कुलानि। (**धा**) दधन्ति कुलानि। दधति कुलानि। (जक्ष) जक्षन्ति कुलानि। जक्षति कुलानि। (**जागृ**) जाग्रन्ति कुलानि। जाग्रति कुलानि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ-प्रत्ययान्त (नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्ग को (वा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(दा) **ददन्ति कुलानि। ददति कुलानि।** दानी कुल। (धा) **दधन्ति कुलानि। दधति कुलानि।** धारक-पोषक कुल। (जक्ष) **जक्षन्ति कुलानि। जक्षति कुलानि।** भक्षक कुल। (जागृ) **जाग्रन्ति कुलानि। जाग्रति कुलानि।** जागरूक कुल।*

***सिद्धि-ददन्ति।** दा+लट्। दा+शतृ। दा+शप्+अत्। दा+0+अत्। दा-दा+अत्। द-द्+अत्। ददत्+जस्। ददत्+शि। ददत्+इ। ददनुम्त्+इ। ददन्त्+इ। ददन्ति।*

*यहां अभ्यस्त-संज्ञक 'दा' धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। इस सूत्र से शतृ-प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग 'ददत्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में 'नुम्' आगम नहीं है-**ददति कुलानि।** ऐसे ही-**दधन्ति, दधति कुलानि** आदि।*

नुमागम-विकल्पः-

(३५) आच्छीनद्योर्नुम्।८०।

प०वि०-आत् ५।१ शीनद्योः ७।२ नुम् १।१।

स०-शीश्च नदीश्च ते शीनद्यौ, तयोः-शीनद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शतुः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आद् अङ्गाद् शतुः शीनद्योर्वा नुम्।

अर्थः-अकाराद् उत्तरस्य शतुरङ्गस्य शी-नद्योः परतो विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(**शी**) तुदन्ती कुले, तुदती कुले। यान्ती कुले। याती कुले। करिष्यन्ती कुले, करिष्यती कुले। (**नदी**) तुदन्ती ब्राह्मणी, तुदती ब्राह्मणी। यान्ती ब्राह्मणी, याती ब्राह्मणी। करिष्यन्ती ब्राह्मणी, करिष्यती ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः अर्थ-(आत्) अकार से परे (शतुः) शतृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शीनद्योः) शी और नदी-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-(शी) **तुदन्ती कुले, तुदती कुले।** दो दुःखदायी कुल। **यान्ती कुले। याती कुले।** दो जानेवाले कुल। **करिष्यन्ती कुले, करिष्यती कुले।** भविष्यत् में करनेवाले दो कुल। (नदी) **तुदन्ती ब्राह्मणी, तुदती ब्राह्मणी।** दुःखी ब्राह्मणी। **यान्ती ब्राह्मणी, याती ब्राह्मणी।** जानेवाली ब्राह्मणी। **करिष्यन्ती ब्राह्मणी, करिष्यती ब्राह्मणी।** भविष्यत् काल में करनेवाली ब्राह्मणी।

सिद्धि-(१) **तुदन्ती।** तुद्+शतृ। तुद्+श+अत्। तुद्+अ+अत्। तुदत्।। तुदत्+औ। तुदत्+शी। तुदनुमत्+ई। तुदन्त्+ई। तुदन्ती।

यहां **'तुद व्यथने'** (तु०प०) धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस शतृ-प्रत्ययान्त 'तुदत्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शी' प्रत्यय परे होने पर 'श' के अकार से परे 'शतृ' प्रत्यय को नुम् आगम होता है। विकल्प-पक्ष में 'नुम्' आगम नहीं है-**तुदती।** ऐसे ही **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से-**यान्ती, याती।**

(२) **करिष्यन्ती।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से भविष्यत्-काल में 'लृट्' प्रत्यय है। 'लृटः सद् वा' (३।३।१४) से 'लृट्' के स्थान में शतृ-आदेश होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **तुदन्ती,** तुदती ब्राह्मणी आदि प्रयोगों में 'तुदत्' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'उगितश्च'** (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। इसकी **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।३) से नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

नित्यं नुमागमः-

(३६) शप्श्यनोर्नित्यम्।८१।

प०वि०-शप्-श्यनोः ६।२ नित्यम् १।१।

स०-शप् च श्यन् च तौ शप्श्यनौ, तयोः-शप्श्यनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शतुः, आत्, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शप्श्यनोरात् शतुरङ्गस्य शीनद्योर्नित्यं नुम्।

अर्थः-शप्श्यनोरकाराद् उत्तरस्य शतुरङ्गस्य शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति।

उदा०-**(शी)** शप्-पचन्ती कुले। श्यन्-दीव्यन्ती कुले। सीव्यन्ती कुले। **(नदी)** शप्-पचन्ती ब्राह्मणी। श्यन्-दीव्यन्ती ब्राह्मणी। सीव्यन्ती ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शप्श्यनोः) शप् और श्यन् प्रत्यय सम्बन्धी (आत्) अकार से परे (शतुः) शतृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शीनद्योः) शी और नदी-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्) सदा (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(शी) शप्-**पचन्ती कुले**। दो पकानेवाले कुल। श्यन्-**दीव्यन्ती कुले**। दो खेलनेवाले कुल। **सीव्यन्ती कुले**। दो सिलाई करनेवाले कुल। **(नदी) शप्-पचन्ती ब्राह्मणी**। पकानेवाली ब्राह्मणी। **श्यन्-दीव्यन्ती ब्राह्मणी**। जूआ खेलनेवाली ब्राह्मणी। **सीव्यन्ती ब्राह्मणी**। सिलाई करनेवाली ब्राह्मणी।*

सिद्धि-(१) पचन्ती। *पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्।। पचत्+औ। पचत्+शी। पचत्+ई। पचनुम्त्+ई। पचन्त्+ई। पचन्ती+सु। पचन्ती।*

*यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**लटः शतृशानचा०**' (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से शप्-सम्बन्धी अकार से परे 'शतृ' को नित्य 'नुम्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **दीव्यन्ती**। यहां '**दिवु क्रीडादिषु**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् प्रत्यय है। '**दिवादिभ्यः श्यन्**' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-'**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) से-**सीव्यन्ती**।*

*(३) '**पचन्ती ब्राह्मणी**' आदि में 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**उगितश्च**' (४।१।६) 'ङीप्' प्रत्यय होता है। इसकी '**युस्त्र्याख्यौ नदी**' (२।४।३) से नदी संज्ञा है।*

नुम्-आगमः-

(३७) सावनडुहः।८२।

प०वि०-सौ ७।१ अनडुहः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनडुहोऽङ्गस्य सौ नुम्।

अर्थः-अनडुहोऽङ्गस्य सौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-अनड्वान्। हे अनड्वन्!

आर्यभाषाः अर्थ-(अनडुहः) अनडुह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-अनड्वान्। बैल। अनः=शकटं वहतीति अनड्वान्। हे अनड्वन्! हे बैल।

सिद्धि-(१) अनड्वान्। अनडुह्+सु। अनडु नुम् ह्+स्। अनडुन्ह्+स्। अनडु आम् न् ह्+स्। अनड्व् आ न्ह्+स्। अनड्वान्ह्+०। अनड्वान्०। अनड्वान्।

यहां 'अनडुह्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सु' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'अनडुह्' को 'नुम्' आगम होता है। तत्पश्चात् 'चतुरनडुहोरामुदात्तः' (७।१।९८) से 'आम्' आगम भी होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से हकार का लोप और 'इको यणचि' (६।१।७६) से यण् आदेश होता है। हे अनड्वन्! यहां सम्बोधन में 'अम् सम्बुद्धौ' (७।१।९९) से 'अम्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

नुम्-आगमः–

(३८) दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि।८३।

प०वि०-दृक्-स्ववस्-स्वतवसाम् ६।३ छन्दसि ७।१।

स०-दृक् च स्ववस् च स्वतवस् च ते दृक्स्ववस्स्वतवसः, तेषाम्-दृक्स्ववस्स्वतवसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दृकस्ववस्स्वतवसाम् अङ्गानां सौ नुम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दृक्स्ववस्स्वतवसाम् अङ्गानां सौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(दृक्) ईदृङ्। तादृङ्। यादृङ्। सदृङ् (ऋ० १।९४।७)। **(स्ववस्)** स्ववान् (ऋ० १०।९२।९)। **(स्वतवस्)** स्वतवाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दृक्स्ववस्स्वतवसाम्) दृक्, स्ववस्, स्वतवस् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-(दृक्) ईदृङ्। ऐसा। तादृङ्। वैसा। **यादृङ्।** जैसा। सदृङ् (ऋ० १।९४।७)। सदृश=समान। (स्ववस्) स्ववान् (ऋ० १०।९२।९)। स्वगृहपति। (स्वतवस्) स्वतस्वाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)। स्वतवस्वान्। विद्वान्/राजा।

सिद्धि-(१) ईदृङ्। इदम्+दृश्+क्विन्। इदम्+दृश्+वि। इदम्+दृश्+०। ईश्+दृश्। ई+दृश्। ईदृश्+सु। ईदृ नुम् श्+सु। ईदृन्श्+स्। ईदृन्श्+०। ईदृन्०। ईदृन्। ईदृङ्।

*यहां इदम्-उपपद **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च'** (३।२।६०) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'इदङ्किमोरीश्की'** (६।३।९०) से 'इदम्' के स्थान में 'ईश्' आदेश होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त शकार का लोप होता है। **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से नकार को कुत्व ङकार होता है।*

*(२) **तादृङ्।** यहां तत्-उपपद 'दृश्' धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय है। **'आ सर्वनाम्नः'** (६।३।९१) से आत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सदृङ्।** यहां समान-उपपद 'दृश्' धातु से वा०- **'समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्'** (३।२।६०) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'दृक्दृशवतुषु'** (६।३।८९) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **स्ववान्।** स्ववस्+सु। स्ववनुम्स्+स्। स्ववन्स्+स्। स्ववान्स्+स्। स्ववान्स्+०। स्ववान्०। स्ववान्।*

*यहां 'स्ववस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'स्ववस्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। पूर्ववत् सुलोप और संयोगान्त सकार का भी लोप होता है। शोभनम् अवसम्=रक्षणादिकं यस्य स स्ववान् (गृहपतिः)। महर्षिदयानन्द ऋग्वेदभाष्य (५।८।२)।*

ऐसे ही 'स्वतवस्' शब्द से स्वतवस्वान् स्वम्=स्वकीयं तवः=बलं यस्य स स्वतवान् (विद्वान्)। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदभाष्य (१।६६।२)। स्वैर्गुणैर्वृद्धः (इन्द्रः=राजा) महर्षिदयानन्द ऋग्वेदभाष्य (४।२।६)।

।। इति आगमप्रकरणम्।।

आदेशागमप्रकरणम्

औत्-आदेशः—

(१) दिव औत्।८४।

प०वि०-दिवः ६।१ औत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिवोऽङ्गस्य सावौत्।

अर्थः-दिवोऽङ्गस्य सौ परत औकारादेशो भवति।

उदा०-द्यौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिवः) दिव् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु-प्रत्यय परे होने पर (औत्) औकार आदेश होता है।*

*उदा०-**द्यौः**। स्वर्ग, आकाश, दिन।*

*सिद्धि-**द्यौः**। दिव्+सु। दि औ+स्। द्यौस्। द्यौः।*

*यहां 'दिव्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'दिव्' को औकार अन्त्य-आदेश होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यणादेश है।*

आत्-आदेशः-

(२) पथिमथ्यृभुक्षामात्।८५।

प०वि०-पथि-मथि-ऋभुक्षाम् ६।३ आत् १।१।

स०-पन्थाश्च मन्थाश्च ऋभुक्षाश्च ते पथिमथ्यृभुक्षाणः, तेषाम्-पथिमथ्यृभुक्षाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां सावाऽऽत्।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां सौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(पथिन्)** पन्थाः। **(मथिन्)** मन्थाः। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(पथिन्) पन्थाः**। मार्ग। **(मथिन्) मन्थाः**। रई, दही बिलौने की एक लकड़ी विशेष। **(ऋभुक्षिन्) ऋभुक्षाः**। इन्द्र। ऋभवः=देवा क्षियन्ति=वसन्त्यत्र इति ऋभुक्षः=स्वर्गः।*

*सिद्धि-**पन्थाः**। पथिन्+सु। पथिन्+स्। पथि आ+स्। पथ आ+स्। पन्थ आ+स्। पन्थाः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पथिन्' के नकार को आकार आदेश होता है। '**इतोऽत् सर्वनामस्थाने**' (७।१।८६) से इकार को अकार आदेश और '**थो न्थः**' (७।१।८७) से 'थ' को 'न्थ' आदेश होता है।*

*ऐसे ही 'मथिन्' शब्द से-**मन्थाः**। 'ऋभुक्षिन्' शब्द से-**ऋभुक्षाः**।*

अत्-आदेशः–

(३) इतोऽत् सर्वनामस्थाने।८६।

प०वि०–इतः ६।१ अत् १।१ सर्वनामस्थाने ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानाम् इतः सर्वनामस्थानेऽत्।

अर्थः–पशिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानाम् इकारस्य स्थाने सर्वनामस्थाने परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०–(पथिन्) पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। **(मथिन्)** मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः मन्थानम्, मन्थानौ। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (इतः) इकार के स्थान में (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (अत्) अकार आदेश होता है।*

*उदा०–(पथिन्) **पन्थाः**। मार्ग। **पन्थानौ**। दो मार्ग। **पन्थानः**। सब मार्ग। **पन्थानम्**। मार्ग को। **पन्थानौ**। दो मार्गों को। (मथिन्) **मन्थाः**। रई। **मन्थानौ**। दो रई। **मन्थान**। सब रई। **मन्थानम्**। रई को। **मन्थानौ**। दो रइयों को। (ऋभुक्षिन्) **ऋभुक्षाः**। इन्द्र। **ऋभुक्षाणौ**। दो इन्द्र। **ऋभुक्षाणः**। सब इन्द्र। **ऋभुक्षाणम्**। इन्द्र। को। **ऋभुक्षाणौ**। दो इन्द्रों को।*

*सिद्धि–**पन्थाः**। यहां 'पथिन्' शब्द के सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पथिन्' के इकार के स्थान में अकार आदेश होता है। '**भथिमथ्यृभुक्षामात्**' (७।१।८५) से आकार आदेश (थ) और '**थो न्थः**' (७।१।८७) से थकार को 'न्थ' आदेश होता है। ऐसे ही–**मन्थाः, ऋभुक्षाः**।*

*'**पन्थानौ**' आदि पदों में '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।*

न्थ-आदेशः–

(४) थो न्थः।८७।

प०वि०–थः ६।१ न्थः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां थः सर्वनामस्थाने न्थः।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां थकारस्य स्थाने सर्वनामस्थाने परतो न्थ आदेशो भवति।

उदा०-**(पथिन्)** पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। **(मथिन्)** मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। **(ऋभुक्षिन्)** अत्र थकारो नास्ति।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (थः) थकार के स्थान में (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न्थः) न्थ आदेश होता है।

उदा०-(पथिन्) __पन्थाः। पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। (मथिन्)__ __मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। (ऋभुक्षिन्)__ इस शब्द में थकार नहीं है। एक पद होने से बलात् अनुवृत्तिमात्र है।

__सिद्धि-पन्थाः।__ यहां 'पथिन्' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। '__इतोऽत् सर्वनामस्थाने__' (७।१।८६) से इकार को अकार आदेश (थ) और इस सूत्र से थकार को न्थ आदेश होता है। '__पथिमथ्यृभुक्षामात्__' (७।१।८५) से आकार आदेश है। ऐसे ही-__मन्थाः।__

'__पन्थानौ__' आदि पदों में '__सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ__' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टि-लोपः-

(५) भस्य टेर्लोपः।८८।

प०वि०-भस्य ६।१ टेः ६।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षां भानाम् अङ्गानां टेर्लोपः।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षां भ-संज्ञकानाम् अङ्गानां टेर्लोपो भवति।

उदा०-**(पथिन्)** पथः, पथा, पथे। **(मथिन्)** मथः, मथा, मथे। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षे।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(पथिमथ्युभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (भानाम्) भ-संज्ञक (अङ्गानाम्) अङ्गों के (टेः) टि-भाग का (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-(पथिन्) **पथः।** मार्गों को। **पथा।** मार्ग से। **पथे।** मार्ग के लिये। (मथिन्) **मथः।** रइयों को। **मथा।** रई से। **मथे।** रई के लिये। (ऋभुक्षिन्) **ऋभुक्षः।** इन्द्रों को। **ऋभुक्षा।** इन्द्र से। **ऋभुक्षे।** इन्द्र के लिये।*

सिद्धि-पथः। *पथिन्+शस्। पथिन्+अस्। पथ्०+अस्। पथस्। पथः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से 'पथिन्' की भ-संज्ञा है। इस सूत्र से भ-संज्ञक 'पथिन्' शब्द के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**पथा** (टा)। **पथे** (ङे)। ऐसे ही-**मथः, मथा, मथे। ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षे।***

असुङ्-आदेशः-

(६) पुंसोऽसुङ्।८६।

प०वि०-पुंसः ६।१ असुङ् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुंसोऽङ्गस्य, सर्वनामस्थानेऽसुङ्।

अर्थः-पुंसोऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतोऽसुङ् आदेशो भवति।

उदा०-पुमान्, पुमांसौ, पुमांसः। पुमांसम्, पुमांसौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पुंसः) पुंस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (असुङ्) असुङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**पुमान्।** पुरुष। **पुमांसौ।** दो पुरुष। **पुमांसः।** सब पुरुष। **पुमांसम्।** पुरुष को। **पुमांसौ।** दो पुरुष को।*

सिद्धि-पुमान्। *पुंस्+सु। पुम् असुङ्+स्। पुम् अस्+स्। पुमस्+स्। पुम नुम् स्+स्। पुमन्स्+स्। पुमान्स्+स्। पुमान्स्+०। पुमान्०। पुमान्।*

*यहां 'पुंस्' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञा 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पुंस्' को असुङ् आदेश होता है। असुङ् आदेश के उगित् (उ) होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से नुम् आगम होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।*

*'**पुमांसौ**' आदि पदों में **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

णित्-आदेशः–

(७) गोतो णित्।६०।

प०वि०–गोतः ५।१ णित् १।१।

स०–ण इद् यस्य स णित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गोतोऽङ्गात् सर्वनामस्थानं णित्।

अर्थः–गोतोऽङ्गाद् उत्तरं सर्वनामस्थानं णिद्वद् भवति।

उदा०–गौः, गावौ, गावः, गाम्, गावौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोतः) गो इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय (णित्) णिद्वत् होता है।*

*उदा०-**गौः।** गाय। **गावौ।** दो गाय। **गावः।** सब गाय। **गाम्।** गाय को। **गावौ।** दो गायों को।*

सिद्धि-(१) गौः। *गो+सु। गो+स्। गौ+स्। गौस्। गौः।*

*यहां 'गो' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से यह 'सु' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (औ) होती है। **गावौ, गावः** इन पदों में **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से आव्-आदेश होता है।*

*(२) **गाम्।** गो+अम्। गौ+अम्। ग् आ+अम्। गाम्।*

*यहां वृद्धिभूत औकार को **'औतोऽम्शसोः'** (६।१।९०) से आकार आदेश होता है।*

णित्-आदेशविकल्पः–

(८) णलुत्तमो वा।६१।

प०वि०–णल् १।१ उत्तमः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, णिद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गाद् उत्तमो णल् वा णित्।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरम् उत्तमपुरुषस्य णल् विकल्पेन णिद्वद् भवति।

उदा०–अहं चकार, अहं चकर। अहं पपाच, अहं पपच।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (उत्तमः) उत्तम पुरुष का (णल्) णल् प्रत्यय (वा) विकल्प से (णित्) णिद्वत् होता है।

उदा०-अहं चकार, अहं चकर। मैंने किया। अहं पपाच। अहं पपच। मैंने पकाया।

सिद्धि-(१) चकार। कृ+लिट्। कृ+ल्। कृ+मिप्। कृ+णल्। कृ+अ। कृ-कृ+अ। क-कृ+अ। च-कार्+अ। चकार।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णलतुसुस०' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में उत्तमपुरुषीय 'णल्' आदेश होता है। 'णल्' के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (आर्) होती है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋकार को अकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'णल्' णित् नहीं है, अतः यहां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है-चकर।

(२) पपाच। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् उत्तमपुरुषीय 'णल्' प्रत्यय है। इसके णित् पक्ष में 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में 'णल्' णित् नहीं है, अतः यहां उपधावृद्धि नहीं होती है-पपच।

णित्-आदेशः-

(६) सख्युरसम्बुद्धौ।६२।

प०वि०-सख्युः ५।१ असम्बुद्धौ ७।१।

स०-न सम्बुद्धिरिति असम्बुद्धिः, तस्याम्-असम्बुद्धौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने, णिद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सख्युरङ्गाद् असम्बुद्धि सर्वनामस्थानं णित्।

अर्थः-सख्युरङ्गाद् उत्तरं सम्बुद्धिवर्जितं सर्वनामस्थानं णिदवद् भवति।

उदा०-सखायौ, सखायः। सखायम्, सखायौ।

आर्यभाषाः अर्थ-(सख्युः) सखि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (असम्बुद्धि) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान-संज्ञक (प्रत्ययस्य) प्रत्यय (णित्) णिद्वत् होता है।

उदा०-सखायौ। दो मित्र। सखायः। सब मित्र। सखायम्। मित्र को। सखायौ। दो मित्रों को।

सिद्धि-सखायौ। सखि+औ। सखै+औ। सखाय्+औ। सखायौ।

यहां 'सखि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'औ' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (ऐ) होती है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से 'आय्' आदेश होता है। ऐसे ही-सखायौ, सखायम्।

अनङ्-आदेशः–

(१०) अनङ् सौ।६३।

प०वि०-अनङ् १।१ सौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सख्युः, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सख्युरङ्गस्य असम्बुद्धौ सावनङ्।

अर्थः-सख्युरङ्गस्य सम्बुद्धिवर्जिते सौ परतोऽनङादेशो भवति।

उदा०-सखा।

आर्यभाषाः अर्थ-(सख्युः) सखि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।

*उदा०-**सखा**। मित्र।*

***सिद्धि-सखा**। सखि+सु। सख् अनङ्+स्। सख् अन्+स्। सखन्+स्। सखान्+स्। सखान्+०। सखा०। सखा।*

*यहां 'सखि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सखि' शब्द को अनङ् आदेश होता है। '**सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

अनङ्-आदेशः--

(११) ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च।६४।

प०वि०-ऋत्-उशनस्-पुरुदंसस्-अनेहसाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऋच्च उशना च पुरुदंसा च अनेहा च ते ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसः, तेषाम्-ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, असम्बुद्धौ, अनङ् साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् अङ्गानां चासम्बुद्धौ सावनङ्।

अर्थः-ऋकारान्ताद् उशनसः पुरुदंसोऽनेहसोऽङ्गस्य च सम्बुद्धिवर्जिते सौ परतोऽनङादेशो भवति।

उदा०-**(ऋकारान्तः)** कर्ता। हर्ता। माता। पिता। भ्राता। **(उशनस्)** उशना। **(पुरुदंस्)** पुरुदंसा। **(अनेहसस्)** अनेहा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम्) ऋकारान्त उशनस्, पुरुदंसस्, अनेहस् इन (अङ्गस्य) अङ्गों को (च) भी (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु-प्रत्यय परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

उदा०-(ऋकारान्त) ***कर्ता।*** *करनेवाला।* ***हर्ता।*** *हरण करनेवाला।* ***माता।*** *जननी।* ***पिता।*** *जनक।* ***भ्राता।*** *भाई। (उशनस्)* ***उशना।*** *शुक्र ग्रह, सामद्रष्टा ऋषि का नाम। (पुरुदंसस्)* ***पुरुदंसा।*** *हंस (अनेहस्)* ***अनेहा।*** *काल/समय।*

सिद्धि- ***कर्ता।*** *कर्तृ+सु। कर्तृ अनङ्+स्। कर्त् अन्+स्। कर्तन्+स्। कर्तान्+स्। कर्तान्+०। कर्ता०। कर्ता।*

यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनङ् आदेश होता है।* ***'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'*** *(६।४।८) से दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-* ***हर्ता*** *आदि तथा* ***उशना, पुरुदंसा, अनेहा।***

तृजवद्भावः-

(१२) तृज्वत् क्रोष्टुः।६५।

प०वि०-तृज्वत् अव्ययपदम्, क्रोष्टुः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

तद्धितवृत्तिः-तृचा तुल्यं वर्तते इति तृज्वत्। **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'** (५।१।११४) इत्यनेन तुल्यार्थे वतिः प्रत्ययः।

अन्वयः-क्रोष्टुरङ्गस्य असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने तृज्वत्।

अर्थः-क्रोष्टुरित्येतस्याङ्गस्य सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने परतस्तृज्वत् कार्यं भवति। तृजन्तस्य यद्रूपं तदस्यापि भवतीत्यर्थः।

उदा०-क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (तृज्वत्) तृच् प्रत्यय के समान कार्य होता है। तृच्-प्रत्ययान्त शब्द का जो रूप होता है, वह इसका भी होता है।*

उदा०- ***क्रोष्टा।*** *शृगाल (गीदड़)।* ***क्रोष्टारौ।*** *दो शृगाल।* ***क्रोष्टारः।*** *सब शृगाल।* ***क्रोष्टारम्।*** *शृगाल को।* ***क्रोष्टारौ।*** *दो शृगालों को।*

सिद्धि-क्रोष्टा। *क्रोष्टु+सु। क्रोष्टृ+स्। क्रोष्ट् अन्+स्। क्रोष्टन्+स्। क्रोष्टान्+स्। क्रोष्टान्+०। क्रोष्टा०। क्रोष्टा।*

यहां 'क्रोष्टु' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से यह तृज्-प्रत्ययान्त 'कर्तृ' आदि शब्दों के समान ऋकारान्त हो जाता है। अतः इसे* ***'ऋदुशनसपुरुदंसोऽनेहसां च'*** *(७।१।९४) से अनङ् आदेश होता है। शेष कार्य 'कर्ता' शब्द के समान है।*

'क्रोष्टारौ' *आदि पदों में* ***'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'*** *(७।३।११०) से गुण, (अ) 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से इसे रपरत्व (अर्) और* ***'अप्तृन्तृच्०'*** *(६।४।११) से दीर्घ (आर्) होता है।*

तृजवद्भावः–

(१३) स्त्रियां च।६६।

प०वि०–स्त्रियाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, तृज्वत् क्रोष्टुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्रोष्टुरङ्गस्य स्त्रियां च तृज्वत्।

अर्थः–क्रोष्टुरित्येतस्याङ्गस्य स्त्रियां च तृजवत् कार्यं भवति।

उदा०–क्रोष्ट्री। क्रोष्ट्रीभ्याम्। क्रोष्ट्रीभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (च) भी (तृज्वत्) तृच्-प्रत्यय के समान कार्य होता है।*

*उदा०–**क्रोष्ट्री।** शृगाली (गीदड़ी)।* ***क्रोष्ट्रीभ्याम्।*** *दो शृगालियों से।* ***क्रोष्ट्रीभिः।*** *सब शृगालियों से।*

सिद्धि-क्रोष्ट्री। *क्रोष्टु+ङीप्। क्रोष्टृ+ई। क्रोष्ट्री+सु। क्रोष्ट्री+०। क्रोष्ट्री।*

यहां 'क्रोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होने से स्त्रीलिङ्ग में ***'उगितश्च'*** *(४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'इको* ***यणचि'*** *(६।१।७६) से ऋकार को 'यण्' (र्) आदेश होता है।* ***'उदात्तयणो*** *हल्पूर्वात्' (६।१।१७१) से 'क्रोष्ट्री' शब्द अन्तोदात्त ही होता है-**क्रोष्ट्री।** ऐसे ही-**क्रोष्ट्रीभ्याम्, क्रोष्ट्रीभिः।***

तृज्वद्भाव-विकल्पः–

(१४) विभाषा तृतीयादिष्वचि।६७।

प०वि०–विभाषा १।१ तृतीयादिषु ७।३ अचि ७।१।

स०–तृतीया आदिर्यासां ताः-तृतीयादयः, तासु-तृतीयादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, तृज्वत्, क्रोष्टुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रोष्टुरङ्गस्य अजादिषु तृतीयादिषु विभाषा तृज्वत्।

अर्थः-क्रोष्टुरित्येतस्याऽङ्गस्याऽजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु परतो विकल्पेन तृज्वत् कार्यं भवति।

उदा०-**(टा)** क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। **(ङे)** क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। **(ङसि)** क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। **(ङस्)** क्रोष्टुः, क्रोष्ट्रोः। **(ओस्)** क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः। **(ङि)** क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। **(ओस्)** क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अजादिषु) अजादि (तृतीयादि) तृतीया-आदि विभक्ति परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (तृज्वत्) तृच् के समान कार्य होता है।*

*उदा०-(टा) **क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना।** शृगाल (गीदड़) से। (ङे) **क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे।** शृगाल के लिये। (ङसि) **क्रोष्टुः, क्रोष्टोः।** शृगाल से। (ङस्) **क्रोष्टुः, क्रोष्ट्रोः।** शृगाल का। (ओस्) **क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।** दो शृगालों का। (ङि) **क्रोष्टरि, क्रोष्टौ।** शृगाल में/पर। (ओस्) **क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।** दो शृगालों में/पर।*

*सिद्धि-(१) **क्रोष्ट्रा।** क्रोष्टु+टा। क्रोष्टृ+आ। क्रोष्ट्र्+आ। क्रोष्ट्रा।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से तृतीया-आदि और अजादि 'टा' (आ) प्रत्यय है। इस सूत्र 'कोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होता है। अतः क्रोष्टु शब्द क्रोष्टृ रूप हो जाता है। '**इको यणचि**' (७।३।११०) से 'यण्' आदेश (र्) है। ऐसे ही-**क्रोष्ट्रे, क्रोष्ट्रोः।***

*(२) **क्रोष्टुः।** क्रोष्टु+ङसि। क्रोष्टृ+अस्। क्रोष्ट्+उ+स्। क्रोष्टुस्। क्रोष्टुः।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। तृज्वद्भाव होकर '**ऋत उत्**' (६।१।१११) से उकार रूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'ङस्' में-**क्रोष्टुः।***

*(३) **क्रोष्टरि।** क्रोष्टु+ङि। क्रोष्टृ+इ। क्रोष्ट् अर्+इ। क्रोष्टरि।*

*यहां 'कोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। तृज्वद्भाव होकर '**ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः**' (७।३।११०) से गुण (अर्) होता है।*

*(४) **क्रोष्टुना।** क्रोष्टु+टा। क्रोष्टु+आ। क्रोष्टु+ना। क्रोष्टुना।*

*यहां क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः '**आङो नाऽस्त्रियाम्**' (७।३।१२०) से 'टा' के स्थान में 'ना' आदेश होता है।*

*(५) **क्रोष्टवे।** क्रोष्टु+ङे। क्रोष्टु+ए। क्रोष्टो+ए। क्रोष्टव्+ए। क्रोष्टवे।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः '**घेर्ङिति**' (७।३।१११) से गुण और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७७) से अव्--आदेश होता है।*

*(६) **क्रोष्टोः।** क्रोष्टु+ङसि। क्रोष्टु+अस्। क्रोष्टो+अस्। क्रोष्टोस्। क्रोष्टोः।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से गुण (ओ) होता है। 'ङसिङसोश्च' (६।१।११०) से पूर्वरूप एकादेश (ओ+अ=ओ) होता है। ऐसे ही 'ङस्' में भी-**क्रोष्टुः।***

*(७) **क्रोष्टौ।** क्रोष्टु+ङि। क्रोष्टु+इ। क्रोष्ट् अ+औ। क्रोष्टौ।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः **'अच्च घेः'** (७।३।११८) से 'ङि' के स्थान में 'औ' आदेश और अङ्ग के अन्त में अकार आदेश होता है।*

क्रोष्टु शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	*एकवचन*	*द्विवचन*	*बहुवचन*
प्रथमा	*क्रोष्टा*	*क्रोष्टारौ*	*क्रोष्टारः*
द्वितीया	*क्रोष्टारम्*	*क्रोष्टारौ*	*क्रोष्टून्*
तृतीया	*क्रोष्ट्रा (क्रोष्टुना)*	*क्रोष्टुभ्याम्*	*क्रोष्टुभिः*
चतुर्थी	*क्रोष्ट्रे (क्रोष्टवे)*	,,	*क्रोष्टुभ्यः*
पञ्चमी	*क्रोष्टुः (क्रोष्टोः)*	,,	,,
षष्ठी	,,	*क्रोष्ट्रोः (क्रोष्ट्वोः)*	*क्रोष्टूनाम्*
सप्तमी	*क्रोष्टरि (क्रोष्टौ)*	,, ,,	*क्रोष्टुषु*
सम्बोधन	*हे क्रोष्टः !*	*हे क्रोष्टारौ !*	*हे क्रोष्टारः !*

क्रोष्टा=शृगाल (गीदड़)।

आम्-आगमः–

(१५) चतुरनडुहोरामुदात्तः।६८।

प०वि०–चतुर्-अनडुहोः ६।२ आम् १।१ उदात्तः १।१।

स०–चत्वारस्य अनड्वाँश्च तौ चतुरनडुहौ, तयोः-चतुरनडुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चतुरनडुहोरङ्गयोः सर्वनामस्थाने आम् उदात्तः।

अर्थः–चतुरनडुहोरङ्गयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति। स चोदात्तो भवति।

उदा०–**(चतुर्)** चत्वारः। **(अनडुह्)** अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः। अनड्वाहम्, अनड्वाहौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चतुरनडुहोः) चतुर्, अनडुह् इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (आम्) आम् आगम होता है (उदात्तः) और वह उदात्त होता है।*

*उदा०-(चतुर्) **चत्वारः।** चार। (अनडुह्) **अनड्वान्।** बैल। **अनड्वाहौ।** दो बैल। **अनड्वाहः।** सब बैल। **अनड्वाहम्।** बैल को। **अनड्वाहौ।** दो बैलों को।*

*सिद्धि-(१) **चत्वारः।** चतुर्+जस्। चतुर्+अस्। चतु आम्+र्+अस्। चत्व् आर्+अस्। चत्वारस्। चत्वारः।*

*यहां 'चतुर्' शब्द से पूर्ववत् सर्वनामस्थान-संज्ञक 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उदात्त आम्-आगम होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से यण्-आदेश (व्) है। आम्-आगम के उदात्त होने से **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५५) से शेष पद अनुदात्त होता है और **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६६) से उदात्त से परवर्ती अच् स्वरित होता है- **चत्वारः।***

*(२) **अनड्वान्।** अनडुह्+सु। अनडु अनङ्+स्। अनडु अन्+स्। अनडु आम् अन्+स्। अनड्व् आ अन्। अनड्वान्+सु। अनड्वान्+०। अनड्वान्।*

*यहां 'अनडुह्' शब्द से पूर्ववत् सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। **'सावनडुहः'** (७।१।८२) से अनङ् आदेश और इस सूत्र से आम् आगम होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से यण् आदेश (व्) है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**अनड्वाहौ** आदि।*

अम्-आगमः—

(१६) अम् सम्बुद्धौ।६६।

प०वि०-अम् १।१ सम्बुद्धौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चतुरनडुहोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सम्बुद्धावम्।

अर्थः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सम्बुद्धौ परतोऽमागमो भवति।

उदा०-(चतुर्) हे प्रियचत्वः ! **(अनडुह्)** हे अनड्वन् ! हे प्रियानडवन् !

आर्यभाषाः *अर्थ-(चतुरनडुहोः) चतुर् और अनडुह् इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि {सु} परे होने पर (अम्) अम् आगम होता है।*

*उदा०-**(चतुर्)** हे **प्रियचत्वः** ! हे चार वर्णों से प्रेम करनेवाले विद्वन् ! **(अनडुह्)** हे **अनड्वन्** ! हे बैल ! अथवा तत्सदृश पुरुष। हे **प्रियानडवन्** ! हे बैल से प्रेम करनेवाले किसान !*

सिद्धि-(१) प्रियचत्वः ! प्रियचतुर्+सु। प्रियचतुर्+स्। प्रियचतु अम् र्+स्। प्रियचतु अर्+स्। प्रियचत्वर्+स्। प्रियचत्वर्+०। प्रियचत्वर्। प्रियचत्वः।

*यहां प्रथम प्रिय और चतुर् शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'प्रियचतुर्' शब्द से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। '**एकवचनं सम्बुद्धिः**' (२।३।४९) से आमन्त्रित के एकवचन (सु) की सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से 'प्रियचतुर्' को 'अम्' आगम होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय होता है।*

*(२) **अनड्वन्।** अनडुह्+सु। अनडु अनड्+स्। अनडु अम्+स्। अनड्व् अ अन्+स्। अनड्वन्+स्। अनड्वन्+०। अनड्वन्।*

*यहां 'अनडुह्' शब्द से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। '**सावनडुहः**' (७।१।८२) से अनङ् आदेश और इस सूत्र से 'अम्' आगम होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण् आदेश (व्) है। ऐसे ही-**प्रियानड्वन्।***

इत्-आदेशः-

(१७) ऋत इद् धातोः।१००।

प०वि०-ऋतः ६।१ इत् १।१ धातोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋतो धातोरङ्गस्य इत्।

अर्थः-ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य इकारादेशो भवति।

उदा०-(कॄ) स किरति। **(गॄ)** स गिरति। **(तॄ)** आस्तीर्णम्। **(शॄ)** विशीर्णम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (धातोः) धातुरूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०-(कॄ) **स किरति।** वह फैंकता है। (गॄ) **स गिरति।** वह निगलता है। (तॄ) **आस्तीर्णम्।** आच्छादन। (शॄ) **विशीर्णम्।** टूटा-फूटा।*

*सिद्धि-(१) **किरति।** कॄ+लट्। कॄ+ल्। किर्+तिप्। किर्+श+ति। किर्+अ+ति। किरति।*

*यहां '**कॄ विक्षेपे**' (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकार के स्थान में इकार आदेश और इसे '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। '**तुदादिभ्यः शः**' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है। ऐसे ही '**गॄ निगरणे**' (तु०प०) धातु से-**गिरति।***

*(२) **आस्तीर्णम्।** आङ्+स्तॄ+क्त। आ+स्तिर्+त। आ+स्तिर्+न। आ+स्तीर्+ण। आस्तीर्ण+सु। आस्तीर्णम्।*

*यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**स्तॄञ् आच्छादने**' (स्वा०उ०) धातु से '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से ॠकार के स्थान में इकार आदेश और इसे पूर्ववत् रपरत्व होता है। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) से 'त' को 'न' आदेश, '**हलि च**' (८।२।७७) से दीर्घ और '**रषाभ्यां नो णः समानपदे**' (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही वि-उपसर्गपूर्वक '**शॄ हिंसायाम्**' (क्र्या०प०) धातु से-**विशीर्णम्।***

इत्-आदेशः--

(१८) उपधायाश्च।१०१।

प०वि०-उपधायाः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ॠतः, इद्, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरङ्गस्य उपधाया ॠतश्च इत्।

अर्थः-धातोरङ्गस्य उपधाया ॠकारस्य स्थाने च इकारादेशो भवति।

उदा०-स कीर्तयति। तौ कीर्तयतः। ते कीर्तयन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग के (उपधायाः) उपधाभूत (ॠतः) ॠकार के स्थान में (च) भी (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०-**स कीर्तयति।** वह प्रसिद्ध करता है। **तौ कीर्तयतः।** वे दोनों प्रसिद्ध करते हैं। **ते कीर्तयन्ति।** वे सब प्रसिद्ध करते हैं।*

*सिद्धि-**कीर्तयति।** कॄत्+णिच्। कॄत्+इ। किर्त्+इ। कीरत्+इ। कीर्ति+लट्। कीर्तयति।*

*यहां '**कॄत संशब्दने**' (चु०उ०) धातु से प्रथम '**सत्यापपाश०**' (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से धातु के उपधाभूत ॠकार को इकार आदेश, पूर्ववत् रपरत्व और '**उपधायां च**' (८।२।७८) से दीर्घ होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कीर्ति' धातु से लट् प्रत्यय है। ऐसे ही-**कीर्तयतः, कीर्तयन्ति।***

उत्-आदेशः--

(१९) उदोष्ठ्यपूर्वस्य।१०२।

प०वि०-उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१।

स०-ओष्ठयोर्भव ओष्ठ्यः। ओष्ठ्यः पूर्वो यस्मात् स ओष्ठ्यपूर्वः, तस्य-ओष्ठ्यपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओष्ठ्यपूर्वस्य ऋतो धातोरङ्गस्य उत्।

अर्थः-ओष्ठ्यपूर्वस्य ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य उकारादेशो भवति।

उदा०-पूर्ताः पिण्डाः। स पुपूर्षति। स मुमूर्षति। स सुस्वूर्षति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ओष्ठ्यपूर्वस्य) ओष्ठ्य वर्ण जिसके पूर्व है उस (ऋतः) ऋकारान्त (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (उत्) उकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पूर्ताः पिण्डाः।** पूरण किये गये पिण्ड। स **पुपूर्षति।** वह पालन/पूरण करना चाहता है। स **मुमूर्षति।** वह मरना चाहता है। स **सुस्वूर्षति।** वह शब्द/उपताप करना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **पूर्ताः।** पृ+क्त। पृ+त। पुर्+त। पूर्+त। पूर्त+जस्। पूर्ताः।*

*यहां '**पृ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से ओष्ठ्यपूर्वी 'पृ' धातु के ऋकार को उकार आदेश होता है। '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व और '**हलि च**' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। '**न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्**' (८।२।५७) से प्राप्त नत्व का प्रतिषेध है।*

*(२) **पुपूर्षति।** पृ+सन्। पृ+स। पुर्+सन्। पुर्-पुर्+स। पुपूर्ष।। पुपूर्ष+लट्। पुपूर्षति।*

*यहां '**पृ पालनपूरणयो**' (क्र्या०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ओष्ठ्यपूर्वी 'पृ' धातु के ऋकार को उकार आदेश होता है। पूर्ववत् रपरत्व और दीर्घ होता है। तत्पश्चात् सन्नन्त 'पुपूर्ष' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही '**मृ हिंसायाम्**' (क्र्या०प०) धातु से-**मुमूर्षति।** '**स्वृ शब्दोपतापयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**सुस्वर्षति।***

बहुलम् उत्-आदेशः-

(२०) बहुलं छन्दसि।१०३।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, ऋत, धातोः, ओष्ठ्यपूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ओष्ठ्यपूर्वस्य ऋतो धातोरङ्गस्य बहुलम् उत्।

अर्थः-छन्दसि विषये ओष्ठ्यपूर्वस्य ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य बहुलम् उकारादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

(१) ओष्ठ्यपूर्वस्य इत्युक्तम्, अनोष्ठ्यपूर्वस्यापि भवति-मित्रावरुणा ततुरिम् (ऋ० ४।३९।२)। दूरे ह्यध्वा जगुरिः (ऋ० [illegible]।१०८।१)।

(२) ओष्ठ्यपूर्वस्यापि न भवति-पप्रितमम्। वव्रितमम्।

(३) क्वचिद् ओष्ठ्यपूर्वस्य भवति-पपुरिः (ऋ० १।४६।४)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (ओष्ठ्यपूर्वस्य) ओष्ठ्य वर्ण जिसके पूर्व है **उस** (ॠतः) ॠकारान्त (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुलम्) प्रायशः (उत्) उकार आदेश होता है। उदाहरणम्*-

*(१) ओष्ठ्यपूर्वी धातु को उकार आदेश कहा है किन्तु छन्द में बहुल-वचन से अनोष्ठ्यपूर्वी धातु को भी उकार आदेश होता है-**मित्रावरुणा ततुरिम्** (ऋ० ४।३९।२)। ततुरिः=तरनेवाला। **दूरे ह्यध्वा जगुरिः** (ऋ० १०।१०८।१)। जगुरिः=निगलनेवाला।*

*(२) ओष्ठ्यपूर्वी धातु को भी छन्द में बहुल-वचन से उकार आदेश नहीं होता है-**पप्रितमम्।** अतिशय पालन-पोषण करनेवाला। **वव्रितमम्।** अतिशय वरण करनेवाला।*

*(३) कहीं छन्द में बहुलवचन से ओष्ठ्यपूर्वी धातु को उकार आदेश हो भी जाता है-**पपुरिः** (ऋ० १।४६।४)। पपुरिः=पालन-पोषण करनेवाला।*

सिद्धि-(१) ततुरिः। *तॄ+लिट्। तॄ+किन्। तॄ+इ। त् उर+इ। तुर्+इ। तॄ+तॄ+इ। तर्+तुर्+इ। त-तुर्+इ। ततुरि+सु। ततुरिः।*

*यहां 'तॄ **प्लवनसन्तरणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से '**आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च**' (३।२।१७१) से 'किन्' प्रत्यय और लिट्वत् कार्य है। इस सूत्र से अनोष्ठ्यपूर्वी 'तॄ' धातु को उकार आदेश होता है। तत्पश्चात् '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से इसे स्थानिवत् मानकर 'तॄ' को लिड्वद्भाव से द्वित्व, '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही '**गॄ निगरणे**' (तु०प०) धातु से-**जगुरिः।** '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यासस्थ गकार को चवर्ग जकार होता है।*

(२) पप्रितमम्। *यहां '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'किन्' प्रत्यय है। यहां ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु को उकार आदेश नहीं है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण् आदेश होता है। तत्पश्चात् 'पप्रि' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।६८) से अतिशायन अर्थ में 'तमप्' प्रत्यय है। ऐसी ही '**वॄ वरणे**' (क्र्या०प०) धातु से-**वव्रितमम्।***

(३) पपुरिः। *यहां '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'किन्' प्रत्यय है। यहां छन्दविषय में ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु को उकार आदेश है।*

बहुलवचन से छन्द में सब विधियां व्यभिचरित हो जाती हैं।

।। इति आदेशागमप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

वृद्धिप्रकरणम्

वृद्धिः–

(१) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु।१।

प०वि०–सिचि ७।१ वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः–इकोऽङ्गस्य परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः–इगन्तस्याङ्गस्य परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–**(इ)** अचैषीत्। अनैषीत्। **(उ)** अलावीत्। अपावीत्। **(ऋ)** अकार्षीत्। अहार्षीत्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद परक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) होती है।*

उदा०–(इ) ***अचैषीत्।*** *उसने चयन किया।* ***अनैषीत्।*** *उसने पहुंचाया। (उ)* ***अलावीत्।*** *उसने छेदन किया।* ***अपावीत्।*** *उसने पवित्र किया। (ऋ)* ***अकार्षीत्।*** *उसने किया।* ***अहार्षीत्।*** *उसने हरण किया।*

सिद्धि–(१) अचैषीत्। *चि+लुङ्। अट्+चि+च्लि+ल्। अ+चि+सिच्+तिप्। अ+चि+स्+त्। अ+चि+स्+ईट्+त्। अ+चै+ष्+ई+त्। अचैषीत्।*

यहां ***'चिञ् चयने'*** *(स्वा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम,* ***'च्लि लुङि'*** *(३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय* ***'च्लेः सिच्'*** *(३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से परस्मैपद-परक 'सिच्' प्रत्यय परे होने पर इगन्त 'चि' अङ्ग को वृद्धि होती है।* ***'अस्तिसिचोऽपृक्ते'*** *(७।३।९६) से ईट् आगम और* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से षत्व होता है।*

(२) ***अनैषीत्।*** ***'णीञ् प्रापणे'*** *(भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

(३) ***अलावीत्।*** ***'लूञ् छेदने'*** *(क्र्या०उ०)।*

(४) ***अपावीत्।*** ***'पूञ् पवने'*** *(क्र्या०उ०)।*

(५) ***अकार्षीत्।*** ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०)।*

(६) ***अहार्षीत्।*** ***'हृञ् हरणे'*** *(भ्वा०प०)।*

वृद्धिः–

(२) अतो रलान्तस्य।२।

प०वि०-अतः ६।१ रल ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) अन्तस्य ६।१।

स०-रश्च लश्च एतयोः समाहारः रलम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽन्तस्य रलस्याङ्गस्यात् परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः-अतः समीपौ यौ रेफलकारौ तदन्तस्याङ्स्यात एव स्थाने परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(रः) अक्षारीत्। अत्सारीत्। (लः) अज्वालीत्। अह्नालीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार के (अन्तः) समीपवर्ती जो (रलस्य) रेफ और लकार हैं उस रेफान्त और लकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकार के ही स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(र) **अक्षारीत्।** वह झरा/बहा। **अत्सारीत्।** वह टेढा चला। (ल) **अज्वालीत्।** वह जला/दीप्त हुआ। **अह्नालीत्।** वह कांपा/थरथराया।*

सिद्धि-(१) अक्षारीत्।** यहां **'क्षर संचलने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से रेफान्त 'क्षर्' धातु के अकार को वृद्धि होती है। ऐसे ही **'त्सर छद्मगतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**अत्सारीत्।

*(२) **अज्वालीत्।** यहां **'ज्वल दीप्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् लुङ् और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से लकारान्त 'ज्वल्' धातु के अकार को वृद्धि होती है। ऐसे ही **'ह्मल संचलने'** (भ्वा०प०) धातु से-**अह्मालीत्।***

*यह **'अतो हलादेर्लघोः'** (७।२।७) से प्राप्त विकल्प का अपवाद है।*

वृद्धिः–

(३) वदव्रजहलन्तस्याचः।३।

प०वि०-वद-व्रज-हलन्तस्य ६।१ अचः ६।१।

स०-हल् अन्ते यस्य स हलन्तः। वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च एतेषां समाहारो वदव्रजहलन्तम्, तस्य-वदव्रजहलन्तस्य (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वदव्रजहलन्तस्याङ्गस्याचः परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः-वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(वद) अवादीत्। **(व्रज)** अव्राजीत्। **(हलन्तः)** अपाक्षीत्। अभैत्सीत्। अच्छैत्सीत्। अरौत्सीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वदव्रजहलन्तस्य) वद, व्रज और हल् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

उदा०-(वद) ***अवादीत्।*** *वह बोला। (व्रज)* ***अव्राजीत्।*** *वह गया। (हलन्त)* ***अपाक्षीत्।*** *उसने पकाया।* ***अभैत्सीत्।*** *उसने विदारण किया (फाड़ा)।* ***अच्छैत्सीत्।*** *उसने छेदन किया (दो टुकड़े किये)।* ***अरौत्सीत्।*** *उसने रोका (घेरा)।*

सिद्धि-(१) ***अवादीत्।*** *यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय परे है। इस सूत्र से 'वद्' धातु के अच् (अ) को वृद्धि होती है।*

(२) ***अव्राजीत्।*** *'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

(३) ***अपाक्षीत्।*** *'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०)।*

(४) ***अभैत्सीत्।*** *'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०)।*

(५) ***अच्छैत्सीत्।*** *'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०)।*

(६) ***अअरौत्सीत्।*** *'रुधिर् आवरणे' (रुधा०प०)।*

यह 'अतो हलादेर्लघोः' (७।२।७) से प्राप्त विकल्प का अपवाद है।

वृद्धि-प्रतिषेधः-

(४) नेटि।४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इटि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, हलन्तस्य, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलन्तस्याङ्गस्याचः परस्मैपदेषु इटि सिचि वृद्धिर्न।

अर्थः-हलन्तस्याङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हलन्तस्य) हल् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**अदेवीत्।** उसने क्रीडा आदि की। **असेवीत्।** उसने सिलाई की। **अकोषीत्।** उसने बाहर निकाला। कसौटी पर कसकर स्वर्ण आदि की परीक्षा की। **अमोषीत्।** उसने चोरी की।*

*सिद्धि-(१) **अदेवीत्।** यहां '**दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिषु**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और परस्मैपद-परक इडादि 'सिच्' प्रत्यय है। अतः इस सूत्र से हलन्त 'दिव्' धातु के अच् के स्थान में वृद्धि नहीं होती है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।*

*(२) **असेवीत्।** '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **अकोषीत्।** '**कुष निष्कर्षे**' (क्रया०प०)।*

*(४) **अमोषीत्।** '**मुष स्तेये**' (क्रया०प०)।*

यहां 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) अतिव्याप्ति से सूत्र की वृद्धि प्राप्त थी, उसका प्रतिषेध किया गया है।

वृद्धि-प्रतिषेधः—

(५) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्।५।

प०वि०-ह्-म्-यन्त-क्षण-श्वस-जागृ-णि-श्वि-एदिताम् ६।३।

स०-हश्च मश्च यश्च ते ह्म्यः, ह्म्योऽन्ते यस्य सः-ह्म्यन्तः। एद् इद् यस्य सः-एदित्। ह्म्यन्तश्च क्षणश्च श्वसश्च जागृश्च णिश्च श्विश्च एदिच्च ते-ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदितः, तेषाम्-ह्म्यन्तक्षण-श्वसजागृणिश्व्येदिताम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, अचः, न, इटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् अङ्गानाम् अचः परस्मैपदेषु इटि सिचि वृद्धिर्न।

अर्थः-हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानां क्षण-श्वस-जागृ-णिजन्त-श्वस-एदितां चाङ्गानामचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-(**हकारान्तः**) अग्रहीत्। (**मकारान्तः**) अस्यमीत्। अवमीत्। (**यकारान्तः**) अव्ययीत्। (**क्षण**) अक्षणीत्। (**श्वस**) अश्वसीत्। (**जागृ**) अजागरीत्। (**णिजन्तः**) ऊनि-औनयीत्। एलि-ऐलयीत्। (**श्वि**) अश्वयीत्। (**एदित्**) कखे-अकखीत्। रगे-अरगीत्। हसे-अहसीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्) हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णि=णिजन्त, श्वि, एदित्=जिसका एकार इत् है, इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-(हकारान्त) **अग्रहीत्।** उसने ग्रहण किया। (मकारान्त) **अस्यमीत्।** उसने शब्द (आवाज) किया। **अवमीत्।** उसने वमन (उल्टी) किया। (यकारान्त) **अव्ययीत्।** उसने व्यय किया। (क्षण) **अक्षणीत्।** उसने हिंसा की, जान से मारा। (श्वस) **अश्वसीत्।** उसने श्वास लिया। (जागृ) **अजागरीत्।** वह जागा। (णिजन्त) **ऊनि-औनयीत्।** उसने परित्याग किया। **एलि-ऐलयीत्।** उसने प्रेरित किया। (श्वि) **अश्वयीत्।** उसने गति/वृद्धि की। (एदित्) **कखे-अकखीत्।** वह जोर से हंसा। **रगे-अरगीत्।** उसने शंका की। **हसे-अहसीत्।** वह हंसा, ठठ्ठा किया।*

*सिद्धि-(१) **अग्रहीत्।** ग्रह्+लुङ्। अट्+ग्रह्+ल्। अ+ग्रह्+च्लि+ल्। अ+ग्रह्+सिच्+तिप्। अ+ग्रह्+स्+त्। अ+ग्रह्+इट्+स्+ईट्+त्। अ+ग्रह्+इ+०+ई+त्। अग्रहीत्।*

*यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सिच्' को इट् आगम होता है। इस परस्मैपदपरक इडादि 'सिच्' प्रत्यय परे होने पर हकारान्त 'ग्रह्' धातु के अच् (अ) को वृद्धि नहीं होती है। **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम और **'इट ईटि'** (८।२।२८) से 'सिच्' का लोप होता है। **'अतो हलादेर्लघोः'** (७।२।७) से विकल्प से वृद्धि प्राप्त थी, यह उसका पुरस्तात् अपवाद है।*

*(२) **अस्यमीत्।** मकारान्त **'स्यमु शब्दे'** (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **अवमीत्।** मकारान्त **'टुवम् उद्गिरणे'** (भ्वा०प०)।*

*(४) **अव्ययीत्।** यकारान्त **'व्यय गतौ'** (भ्वा०प०)। **'व्यय वित्तसमुत्सर्गे'** (न्यास)।*

*(५) **अक्षणीत्।** **'क्षणु हिंसायाम्'** (त०उ०)।*

*(६) **अश्वसीत्।** **'श्वस प्राणने'** (अदा०प०)।*

*(७) **अजागरीत्।** **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०)।*

(८) औनयीत्। 'ऊन परिहाणे' (चु०उ०) णिजन्त।

(९) ऐलयीत्। 'इल प्रेरणे' (चु०प०)।

(१०) अश्वयीत्। 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०)।

(११) अकखीत्। 'कखे हसने' (भ्वा०प०) एदित्।

(१२) अरगीत्। 'रगे शङ्कायाम्' (भ्वा०प०) एदित्।

वृद्धि-विकल्पः–

(६) ऊर्णोतेर्विभाषा।६।

प०वि०–ऊर्णोतेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०–अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, अचः, न, इटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऊर्णोतेरङ्गस्याचः परस्मैपदेषु इटि सिचि विभाषा वृद्धिर्न।

अर्थः–ऊर्णोतेरङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो विकल्पेन वृद्धिर्न भवति।

उदा०–प्रौर्णवीत्। प्रौर्णावीत् (वृद्धिः)। प्रौर्णुवीत् (सिच् ङित्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऊर्णोतेः) ऊर्णुञ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०–**प्रौर्णवीत्।** **प्रौर्णावीत्** (वृद्धि)। **प्रौर्णुवीत्** (सिच् ङित्)। उसने आच्छादित किया (ढका)।*

*सिद्धि-(१) **प्रौर्णवीत्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अ०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। यहां इस सूत्र से वृद्धि का प्रतिषेध होता है। अतः **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होकर **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) से अव्-आदेश होता है।*

*(२) **प्रौर्णावीत्।** यहां विकल्प-पक्ष में इस सूत्र से वृद्धि होती है और पूर्ववत् आव्-आदेश है।*

*(३) **प्रौर्णुवीत्।** यहां परस्मैपदपरक, इडादि 'सिच्' प्रत्यय, **'विभाषोर्णोः'** (१।२।३) से ङिद्वत् है। अतः **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण और वृद्धि दोनों का प्रतिषेध होने से **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से उवङ्-आदेश होता है।*

विशेषः *यहां 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से नित्य वृद्धि प्राप्त थी। अतः विभाषा-वचन से नकार से उसका प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प होता है, क्योंकि 'नवेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है। विभाषा न भवति=विकल्प से वृद्धि होती है।*

वृद्धि-विकल्पः--

(७) अतो हलादेर्लघोः।७।

प०वि०-अतः ६।१ हलादेः ६।१ लघोः ६।१।

स०-हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्य-हलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, न, इटि, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलादेरङ्गस्य लघोरतः परस्मैपदेषु इटि सिचि विभाषा वृद्धिर्न।

अर्थः-हलादेरङ्गस्य लघोरकारस्य स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो विकल्पेन वृद्धिर्न भवति।

उदा०-**(कण)** अकणीत्, अकाणीत्। **(रण)** अरणीत्, अराणीत्।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(हलादेः) हल् जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (लघोः) ह्रस्व (अतः) अकार के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**(कण) अकणीत्, अकाणीत्।** वह रोया, समीप गया, छोटा हुआ। **(रण) अरणीत्, अराणीत्।** उसने आवाज की/वह गया।*

सिद्धि-अकणीत्। *यहां '**कण शब्दार्थः**' (भ्वा०प०) '**कण गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से हलादि 'कण्' धातु के लघु अकार को परस्मैपदपरक, इडादि सिच् प्रत्यय परे होने पर वृद्धि नहीं होती है। विकल्प पक्ष में 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से वृद्धि होती है-**अकाणीत्।***

*ऐसे ही '**रण शब्दार्थः**' (भ्वा०प०) '**रण गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**अरणीत्, अराणीत्।***

*यहां लघु-अकार का कथन इसलिये किया है कि यहां वृद्धि न हो-**अतक्षीत्, अरक्षीत्।** यहां '**तक्ष तनूकरणे**' और '**रक्ष पालने**' (भ्वा०प०) इन धातुओं में '**संयोगे गुरु**' (१।४।११) से अकार गुरु है, लघु नहीं है।*

।। इति वृद्धि-प्रकरणम्।।

इट्प्रतिषेधप्रकरणम्

इट्-प्रतिषेधः—

(१) नेड्वशि कृति।८।

प०वि०- न अव्ययपदम्, इट् १।१ वशि ७।१ कृति ७।१।

अनु०- अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः- अङ्गाद् वशादेः कृत इड् न।

अर्थः- अङ्गाद् उत्तरस्य वशादेः कृतः प्रत्ययस्येडागमो न भवति। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) इति इटं वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपवादः। व-र-म-नादौ प्रयोजनम्। **(वादौ)** ईश्-ईश्वरः। **(रादौ)** दीप्-दीप्रः। **(मादौ)** भस्-भस्म। **(नादौ)** याच्-याच्ञा।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अङ्गात्) अङ्ग से परे (वशादेः) वश् वर्ण जिसके आदि में है उस (कृतः) कृत्-प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३७) इस सूत्र से जो इडागम का विधान किया जायेगा यह उसका पुरस्तात् अपवाद है। इस सूत्र का यह प्रयोजन है कि वकारादि, रेफादि, मकारादि और नकारादि कृत प्रत्ययों को इडागम न हो। **उदाहरण-***

*(१) वकारादि-**(ईश्) ईश्वरः।** जगत् का कर्ता।*

*(२) रेफादि-**(दीप्) दीप्रः।** चमकनेवाला।*

*(३) मकारादि-**(भस्) भस्म।** राख।*

*(४) नकारादि-**(याच्) याच्ञा।** मांगना।*

सिद्धि-(१) ईश्वरः। *ईश्+वरच्। ईश्+वर। ईश्वर+सु। ईश्वरः।*

*यहां **'ईश ऐश्वर्ये'** (अदा०आ०) धातु से **'स्थेशभासपिसकसो वरच्'** (३।२।१७५) से कृत्-संज्ञक, वशादि 'वरच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है।*

(२) दीप्रः। *दीप्+र+दीप् र+सु। दीप्रः।*

*यहां 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०) धातु से **'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः'** (३।२।१६७) से 'र' प्रत्यय है।*

(३) भस्म। *भस्+मनिन्। भस्+मन्। भस्मन्+सु। भस्मन्+०। भस्म०। भस्म।*

*यहां **'भस भर्त्सनदीप्त्योः'** (जु०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'** (३।२।७५) से 'मनिन्' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

(४) याच्ञा। याच्+नङ्। याच्+न। याच्+ञ। याच्ञ+टाप्। याच्ञ्+आ। याच्ञा+सु। याच्ञा+०। याच्ञा।

*यहां 'टुयाचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से **'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्'** (३।२।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४१) से नकार को चवर्ग ञकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

इट्-प्रतिषेधः–

(२) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च।६।

प०वि०–ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–तिश्च तुश्च त्रश्च तश्च थश्च सिश्च सुश्च सरश्च कश्च सश्च ते–ति०साः, तेषु–ति०सेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, कृति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गात् कृतां तितुत्रतथसिसुसरकसानां च इड् न।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरेषां कृत्संज्ञकानां तितुत्रतथसिसुरकसानां प्रत्ययानां च इडागमो न भवति। **उदाहरणम्–**

कृत्प्रत्ययाः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) तिः (क्तिन्)	तन्तिः	रेखा। गौः।
(क्तिन्)	दीप्तिः	चमक।
(२) तुः (तुन्)	सक्तुः	सत्तू।
(३) त्रः (ष्ट्रन्)	पत्रम् (वाहनम्)	गाड़ी आदि।
	तन्त्रम्	करघा।
(४) तः (तन्)	हस्तः	हाथ।
	लोतः	चोरी का धन।
	पोतः	जानवर का बच्चा।
	धूर्तः	ठग।
(५) थः (क्थन्)	कुष्ठम्	कोढ (रोगविशेष)।
	काष्ठम्	लकड़ी।

कृत्प्रत्ययाः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(६) सिः (क्सिः)	कुक्षिः	कोख।
	इक्षुः	ईख।
(७) सरः (क्सरन्)	अक्षरम्	वर्ण।
(८) कः (कन्)	शल्कः	छिलका।
(९) सः	वत्सः	बछड़ा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (कृताम्) कृत्-संज्ञक (ति०सानाम्) ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स इन प्रत्ययों को (च) भी (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-**(१) तन्तिः।** तन्+क्तिच्। तन्+ति। तन्ति+सु। तन्तिः।*

*यहां '**तनु विस्तारे**' (तना०उ०) धातु से '**क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्**' (३।३।१७४) से कृत्संज्ञक 'क्तिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। '**अनुदात्तोपदेशवनतितनोति०**' (६।४।३७) से अनुनासिक (न्) का लोप और '**अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति**' (६।४।१५) से दीर्घ प्राप्त है, किन्तु '**न क्तिचि दीर्घश्च**' (६।४।३९) उनका प्रतिषेध हो जाता है।*

*(२) **दीप्तिः।** दीप्+क्तिन्। दीप्+ति। दीप्ति+सु। दीप्तिः।*

*यहां '**दीपी दीप्तौ**' (दि०आ०) धातु से '**स्त्रियां क्तिन्**' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है।*

*(३) **सक्तुः।** सच्+तुन्। सच्+तु। सक्+तु। सक्तु+सु। सक्तुः।*

*यहां '**षच समवाये**' (भ्वा०आ०) धातु से '**सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन्**' (उणा० १।६९) से 'तुन्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से चकार को कवर्ग ककार होता है।*

*(४) **पत्रम्।** पत्+ष्ट्रन्। पत्+त्र। पत्र+सु। पत्रम्।*

*यहां '**पत्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**दाम्नीशस०**' (३।२।८२) से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है।*

*(५) **हस्तः।** हस्+तन्। हस्+त। हस्त+सु। हस्तः।*

*यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से **हसिमृग्रिण्वमिदमितमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्** (उणा० ३।८६) से 'तन्' प्रत्यय है। ऐसे ही '**लूञ् लवने**' (क्र्या०उ०) धातु से-**लोतः**, '**पूञ् पवने**' धातु से-**पोतः।** **धुर्वी गत्यर्थः** (भ्वा०प०) धातु से-**धूर्तः।***

यहां इस औणादिक 'त' प्रत्यय का ही ग्रहण किया जाता है; 'क्त' प्रत्यय का नहीं। 'क्त' प्रत्यय करने पर- 'हसितम्' यह शब्दरूप बनता है।

*(६) **कुष्ठम्।** कुष्+क्थन्। कुष्+थ। कुष्ठ+सु। कुष्ठम्।*

*यहां **'कुष निष्कर्षे'** (क्र्या०उ०) धातु से **'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्'** (उणा० २।२) से 'क्थन्' प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार होता है। ऐसे ही **'काशृ दीप्तौ'** (दि०आ०) धातु से-**काष्ठम्।***

*(७) **कुक्षिः।** कुष्+क्सि। कुष्+सि। कुक्+षि। कुक्षि+सु। कुक्षिः।*

*यहां **'कुष निष्कर्षे'** (क्र्या०प०) धातु से **'प्लुषिशुचिकुषिभ्यः क्सिः'** (उणा० ३।१५५) से 'क्सि' प्रत्यय है। **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से षकार को ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।६०) से षत्व होता है।*

*(८) **इक्षुः।** इष्+क्सु। इष्+सु। इक्+षु। इक्षु+सु। इक्षुः।*

*यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'इषेः क्सुः'** (उणा० ३।१५७) से 'क्सु' प्रत्यय है। पूर्ववत् षकार को ककार और षत्व होता है।*

*(९) **अक्षरम्।** अश्+सरन्। अश्+सर। अष्+सर। अक्+षर। अक्षर+सु। अक्षरम्।*

*यहां **'अशूङ् व्याप्तौ'** (रुधा०आ०) धातु से **'अशेः सरन्'** (उणा० ३।७०) से 'सरन्' प्रत्यय है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार, **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से षकार को ककार और पूर्ववत् षत्व होता है।*

*(१०) **शल्कः।** शल्+कन्। शल्+क। शल्क+सु। शल्कः।*

*यहां **'शल गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्'** (उणा० ३।४३) से 'कन्' प्रत्यय है।*

*(११) **वत्सः।** वद्+स। वत्+स। वत्स+सु। वत्सः।*

*यहां **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से **'वृतृवदिहनिक्रमिकषियुमुचिभ्यः सः'** (उणा० ३।६२) से 'स' प्रत्यय है। **'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होता है।*

इट्-प्रतिषेधः–

(३) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्।१०।

प०वि०–एकाचः ५।१ उपदेशे ७।१ अनुदात्तात् ५।१।

स०–एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्-एकाचः (बहुव्रीहिः)। न विद्यते उदात्तो यस्मिन् सः-अनुदात्तः, तस्मात् अनुदात्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे एकाचोऽनुदात्ताद् अङ्गात् प्रत्ययस्य इड् न।

अर्थः-उपदेशे (पाणिनीयधातुपाठे) एकाचोऽनुदात्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य प्रत्ययस्य इडागमो न भवति।

उदा०-दाता। नेता। चेता। स्तोता। कर्ता। हर्ता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में (एकाचः) एक अच्वाले (अनुदात्तात्) धातु-रूप अङ्ग से परे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**दाता**। दान करनेवाला। **नेता**। नायक। **चेता**। चयन करनेवाला। **स्तोता**। स्तुति करनेवाला। **कर्ता**। करनेवाला। **हर्ता**। हरण करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **दाता**। दा+तृच्। दा+तृ। दातृ+सु। दात् अनङ्+सु। दातन्+सु। दातान्+सु। दातान्+०। दाता०। दाता।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में एक अच्वाली तथा अनुदात्त 'दा' धातु से परे 'तृच्' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। **'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च'** (७।१।९४) से अनङ् आदेश, **'अप्तृन्तृच०'** (६।४।११) से दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(२) **नेता**। **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

*(३) **चेता**। **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०)।*

*(४) **स्तोता**। **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०)।*

*(५) **कर्ता**। **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)।*

*(६) **हर्ता**। **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०)।*

इट्-प्रतिषेधः--

(४) श्र्युकः किति।११।

प०वि०-श्रि-उकः ५।१ किति ७।१।

स०-श्रिश्च उक् च एतयोः समाहारः श्र्युक्, तस्मात्-श्र्युकः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्र्युकोऽङ्गात् कित इट् न।

अर्थः-श्रिरित्येतस्माद् उगन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य कितः प्रत्ययस्य इडागमो न भवति।

उदा०-**(श्रिः)** श्रित्वा, श्रितः, श्रितवान्। **(उगन्तम्)** युत्वा, युतः, युतवान्। लूत्वा, लूनः, लूनवान्। वृ-वृत्वा, वृतः, वृतवान्। तृ-तीर्त्वा, तीर्णः, तीर्णवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्र्युकः) श्रि और उक् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (कितः) कित् प्रत्यय को (इट्) इट् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(श्रि) **श्रित्वा।** सेवा करके। **श्रितः।** सेवा की। **श्रितवान्।** सेवा की। **(उगन्त) युत्वा।** मिश्रित-अमिश्रित करके। **युतः।** मिश्रित-अमिश्रित किया। **युतवान्।** अर्थ पूर्ववत्। लू-**लूत्वा।** काटकर। **लूनः।** काटा। **लूनवान्।** अर्थ पूर्ववत्। वृ-**वृत्वा।** वरण करके। **वृतः।** वरण किया। **वृतवान्।** अर्थ पूर्ववत्। तृ-**तीर्त्वा।** तरकर। **तीर्णः।** तरा। **तीर्णवान्।** अर्थ पूर्ववत्।*

***सिद्धि**-(१) **श्रित्वा।** श्रि+क्त्वा। श्रि+त्वा। श्रित्वा+सु। श्रित्वा+०। श्रित्वा।*

*यहां **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से कित् 'क्त्वा' प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।*

*(२) **श्रितः।** यहां पूर्वोक्त 'श्रि' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है।*

*(३) **श्रितवान्।** यहां पूर्वोक्त 'श्रि' धातु से पूर्ववत् 'क्तवतु' प्रत्यय है।*

*(४) **युत्वा, युतः, युतवान्।** **'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **लूत्वा, लूनः, लूनवान्।** **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्। **'ल्वादिभ्यः'** (८।२।४४) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।*

*(६) **वृत्वा, वृतः, वृतवान्।** **'वृञ् वरणे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(७) **तीर्त्वा।** तॄ+क्त्वा। तॄ+त्वा। तिर्+त्वा। तीर्+त्वा। तीर्त्वा+सु। तीर्त्वा+०। तीर्त्वा।*

*यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'ॠत इद् धातोः'** (७।१।१०) से ॠकार के स्थान में इकार आदेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है।*

*(८) **तीर्णः।** यहां पूर्वोक्त 'तॄ' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**तीर्णवान्।***

इट्-प्रतिषेधः--

(५) सनि ग्रहगुहोश्च।१२।

प०वि०-सनि ७।१ ग्रह-गुहो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०-ग्रहश्च गुह् च तौ ग्रहगुहौ, तयो:-ग्रहगुहो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, उक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहगुहिभ्याम् उकश्चाङ्गात् सन इड् न।

अर्थः-ग्रहगुहिभ्याम् उगन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य सन इडागमो न भवति।

उदा०-**(ग्रहः)** जिघृक्षति। **(गुहः)** जुघुक्षति। **(उगन्तः)** रु-रुरूषति। लू-लुलूषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रहगुहिभ्याम्) ग्रह् और गुह् (च) और (उकः) उक् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सनः) सन् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(ग्रह) **जिघृक्षति।** वह ग्रहण करना चाहता है। (गुह) **जुघुक्षति।** वह छुपाना चाहता है। (उगन्त) रु-**रुरूषति।** वह शब्द करना चाहता है। लू-**लुलूषति।** वह काटना चाहता है।*

***सिद्धि**-(१) **जिघृक्षति।** ग्रह्+सन्। गृह्+स। गृढ्+स। गृक्+स। गृक्+ष। घृक्+ष्। घृक्ष्-घृक्ष। घृ-घृक्ष। जृ-घृक्ष। जर्-घृक्ष। जि-घृक्ष। जिघृक्ष। जिघृक्ष+लट्। जिघृक्षति।*

*यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। '**रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः सँश्च**' (१।२।८) से 'सन्' प्रत्यय किद्वत् होता है। '**ग्रहिज्यावयि०**' (६।१।१६) से 'ग्रह' को सम्प्रसारण (गृह्), '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकार आदेश (गृढ्), '**षढोः कः सि**' (८।२।४१) से ढकार को ककार आदेश (गृक्) और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है (गृक्+ष)। '**एकाचो बशो भष्०**' (८।२।३७) से भष्भाव से गकार को घकार होता है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्वित्व होकर '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यासस्थ घकार को चवर्ग जकार, '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार और इसे (सन्यतः) से इकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'सन्' प्रत्यय को 'इट्' आगम का प्रतिषेध है।*

*(२) **जुघुक्षति।** 'गुह संवरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **रुरूषति।** 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **जुघुक्षति।** 'गुह संवरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

इट्-प्रतिषेधः—

(६) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि।१३।

प०वि०-कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवः ५।१ लिटि ७।१।

स०-कृश्च सृश्च भृश्च वृश्च स्तुश्च द्रुश्च स्रुश्च श्रुश्च एतेषां समाहारः-कृ०श्रु, तस्मात्-कृ०श्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवोऽङ्गाल्लिट इड् न।

अर्थः-कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य लिट इडागमो न भवति।

उदाहरणम्—

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	कृ	आवां चकृव।	हम दोनों ने किया।
		वयं चकृम।	हम सबने किया।
(२)	सृ	आवां ससृव।	हम दोनों सरके।
		वयं ससृम।	हम सब सरके।
(३)	भृ	आवां बभृव।	हम दोनों ने धारण-पोषण किया।
		वयं बभृम।	हम सब ने धारण-पोषण किया।
(४)	वृ	आवां ववृव।	हम दोनों ने वरण किया (चुना)।
		वयं ववृम।	हम सब ने वरण किया (चुना)।
(५)	वृङ्	आवां ववृवहे।	हम दोनों ने सेवा की।
		वयं ववृमहे।	हम सब ने सेवा की।
(६)	स्तु	आवां तुष्टुव।	हम दोनों ने स्तुति की।
		वयं तुष्टुम।	हम सब ने स्तुति की।
(७)	द्रु	आवां दुद्रुव।	हम दोनों दौड़े।
		वयं दुद्रुम।	हम सब दौड़े।
(८)	स्रु	आवां सुस्रुव।	हम दोनों बहे।
		वयं सुस्रुम।	हम सब बहे।
(९)	श्रु	आवां शुश्रुव।	हम सब ने सुना।
		वयं शुश्रुम।	हम सब ने सुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृ०श्रुवः) कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (लिटः) लिट् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) चकृव। *कृ+लिट्। कृ+ल्। कृ+वस्। कृ+व। कृ+व। कृ-कृ+व। कर्-कृ+व। क-कृ+व। च-कृ+व। चकृव।*

*यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में वस् आदेश, '**परस्मैपदानां णलतुसुस०**' (३।४।८२) से वस् के स्थान में 'व' आदेश होता है। इस सूत्र से इस लिट् (व) प्रत्यय को इट् आगम का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही मस् (म) प्रत्यय में-**चकृम।** 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकार और '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चकार आदेश होता है।*

*(२) **ससृव, ससृम।** 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **बभृव, बभृम।** 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।*

*(४) **ववृव, ववृम।** 'वृञ् वरणे' (स्वा०प०)।*

*(५) **ववृवहे, ववृमहे।** 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०आ०)।*

*(६) **तुष्टुव, तुष्टुम।** 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०)।*

*(७) **दुद्रुव, दुद्रुम।** 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(८) **सुस्रुव, सुस्रुम।** 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(९) **शुश्रुव, शुश्रुम।** 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०)।*

इट्-प्रतिषेधः–

(७) श्वीदितो निष्ठायाम्।१४।

प०वि०-श्वि-ईदितः ५।१ निष्ठायाम् ७।१।

स०-ईद् इद् यस्य स ईदित्, श्विश्च ईदिच्च एतयोः समाहारः श्वीदित्, तस्मात्-श्वीदितः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वीदितोऽङ्गान्निष्ठाया इड् न।

अर्थः-श्विरित्येतस्माद् ईदितश्चाङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(श्वि) शूनः, शूनवान्। **(ईदितः) ओलजी**-लग्नः, लग्नवान्। **ओविजी**-उद्विग्नः, उद्विग्नवान्। **दीपी**-दीप्तः, दीप्तवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(श्वीदितः) श्वि और जिसका ईकार इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(श्वि) शूनः।** गया/बढ़ा। **शूनवान्।** पूर्ववत्। **(ईदित) ओलजी-लग्नः।** लज्जा की। **लग्नवान्।** पूर्ववत्। **ओविजी-उद्विग्नः।** व्याकुल हुआ। **उद्विग्नवान्।** पूर्ववत्। **दीपी-दीप्तः।** प्रदीप्त हुआ। **दीप्तवान्।** पूर्ववत्।*

सिद्धि-शूनः। *श्वि+क्त। श्वि+त। श् उ इ+न। श् उ+न। शू+न। शून+सु। शूनः।*

*यहां **'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः'** धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। **'ओदितश्च'** (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। **'वचिस्वपि०'** (६।१।१५) से 'श्वि' को सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप (उ+इ=उ) और 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**शूनवान्।***

(२) लग्नः। लज्+क्त। लज्+त। लज्+न। लग्+न। लग्न+सु। लग्नः।

*यहां **'ओलजी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'ओदितश्च'** (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। इसे असिद्ध मानकर **'चोः कुः'** (८।२।३०) से जकार को कुत्व गकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**लग्नवान्।***

*(३) **उद्विग्नः।** उत्-उपसर्गपूर्वक **'ओविजी भयचलनयोः'** (तु०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **दीप्तः।** **'दीपी दीप्तौ'** (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

इट्-प्रतिषेधः-

(८) यस्य विभाषा।१५।

प०वि०-यस्य ६।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यस्याङ्गस्य विभाषा इट् तस्माद् निष्ठाया न।

अर्थः-यस्याङ्गस्य क्वचिद् विभाषा इड् विहितस्तस्माद् निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-वक्ष्यति **'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) इति। धूञ्-विधूतः, विधूतवान्। **गुहू**-गुढः, गूढवान्। **'उदितो वा'** (७।२।५६) इति-**वृधु**-वृद्धः, वृद्धवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यस्य) जिस धातुरूप (अङ्गस्य) अङ्ग के सम्बन्ध में कहीं (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम का विधान किया गया है उससे परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- **'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) अर्थात् इन स्वरति आदि धातुओं से परे निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इडागम होता है। **धूञ्-विधूतः।** विकम्पित हुआ। **विधूतवान्।** पूर्ववत्। **गुहू-गुढः।** छुपा हुआ। **गूढवान्।** पूर्ववत्। 'उदितो वा' (७।२।५६) अर्थात् उदित् धातु से परे क्त्वा प्रत्यय को विकल्प से इडागम होता है। **वृधु-वृद्धः।** बढ़ा हुआ। **वृद्धवान्।** पूर्ववत्।*

सिद्धि-(१) विधूतः। *वि+धू+क्त। वि+धू+त। विधूत+सु। विधूतः।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'धूञ् कम्पने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस से परे **'स्वरतिसूति०'** (७।२।४४) से वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है। अतः इस सूत्र से निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**विधूतवान्।***

(२) गूढः। गुह्+क्त। गुह्+त। गुढ्+ढ। गू०+ढ। गूढ+सु। गूढः।

*यहां **'गुहू संवरणे'** (भ्वा०प०) इस ऊदित धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४०) से धकार को टवर्ग ढकार होता है। **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**गूढवान्।***

(३) वृद्धः। वृध्+क्त। वृध्+त। वृध्+ध। वृद्+ध। वृद्ध+सु। वृद्धः।

*यहां **'वृधु वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) इस उदित् धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'उदितो वा'** (७।२।५६) से उदित् धातु से परे 'क्त्वा' प्रत्यय को विकलप से इडागम का विधान किया गया है। अतः इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से 'वृध्' के धकार को जश् दकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**वृद्धवान्।***

इट्-प्रतिषेधः–

(६) आदितश्च।१६।

प०वि०–आदितः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–आद् इद् यस्य स आदित्, तस्मात्-आदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आदितोऽङ्गाच्च निष्ठाया इड् न।

अर्थः–आदितोऽङ्गाच्चोत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०–**ञिमिदा**–मिन्नः, मिन्नवान्। **ञिक्ष्विदा**–क्ष्विन्नः। क्ष्विन्नवान्। **ञिष्विदा**–स्विन्नः, स्विन्नवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आदितः) आकार जिसका इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (च) भी (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**ञिमिदा-मिन्नः।** पिंघल गया। **मिन्नवान्।** पूर्ववत्। **ञिक्ष्विदा-क्ष्विन्नः।** तैल मालिश किया हुआ/मुक्त किया हुआ। **क्ष्विन्नवान्।** पूर्ववत्। **ञिष्विदा-स्विन्नः।** गीला किया हुआ/मुक्त किया हुआ। **स्विन्नवान्।** पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **मिन्नः।** मिदा+क्त। मिद्+त। मिद्+न। मिन्+न। मिन्न+सु। मिन्नः।*

*यहां **'ञिमिदा स्नेहने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'ञिमिदा'** धातुस्थ आकार की **'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'** (१।३।२) से इत्-संज्ञा है अतः यह आदित् धातु है। अतः इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार और उससे पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**मिन्नवान्।***

*(२) **क्ष्विन्नः।** 'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **स्विन्नः।** 'ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

इडागम-विकल्पः–

(१०) विभाषा भावादिकर्मणोः।१७।

प०वि०–विभाषा १।१ भाव-आदिकर्मणोः ७।२।

स०–भावश्च आदिकर्म च ते भावादिकर्मणी, तयोः–भावादिकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, आदित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावादिकर्मणोरादितोऽङ्गाद् निष्ठाया विभाषा इड् न।

अर्थः- भावे आदिकर्मणि चार्थे वर्तमानाद् आदितोऽङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०-**(भावे)** मिन्नमनेन, मेदितमनेन **(आदिकर्मणि)** प्रमिन्नः, प्रमेदितः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भावादिकर्मणोः) भाव और आदिकर्म अर्थ में विद्यमान (आदितः) जिसका आकार इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(भावे) **मिन्नमनेन**। इसने स्नेह किया। **मेदितमनेन** पूर्ववत्। (आदिकर्मणि) **प्रमिन्नः**। उसने स्नेह करना प्रारम्भ किया। **प्रमेदितः**। पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **मिन्नम्**। यहां **'ञिमिदा स्नेहने'** (दि०प०) अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**मेदितम्**।*

*(२) **प्रमिन्नः**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त **'ञिमिदा'** धातु से आदि कर्म के अर्थ में पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**प्रमेदितः**।*

विशेषः *'**नवेति विभाषा**' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की संज्ञा की गई है। अतः प्राप्त इडागम का 'न' से प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प होता है।*

निपातनम्-

(११) क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु।१८।

प०वि०- क्षुब्ध-स्वान्त-ध्वान्त-लग्न-म्लिष्ट-विरिब्ध-फाण्ट-बाढानि १।३ मन्थ-मनः-तमः-सक्त-अविस्पष्ट-स्वर-अनायास-भृशेषु ७।३।

स०-क्षुब्धश्च स्वान्तं च ध्वान्तं च लग्नं च म्लिष्टं च विरिब्धं च फाण्टं च बाढं च तानि-क्षुब्ध०बाढानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मन्थश्च मनश्च तमश्च सक्तं च अविस्पष्टं च स्वरश्च अनायासश्च भृशं च तानि-मन्थ०भृशानि, तेषु-मन्थ०भृशेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि शब्दरूपाणि यथासंख्यं मन्थमनस्तमःसक्तविस्पष्टस्वरानायासभृशेष्वर्थेषु निपात्यन्ते।

उदाहरणम्-क्षुब्धो मन्थः। स्वान्तं मनः। ध्वान्तं तमः। लग्नं सक्तम्। म्लिष्टम् अविस्पष्टम्। विरिब्धं स्वरः। फाण्टोऽनायासः। बाढं भृशम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(क्षुब्ध०बाढानि) क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये शब्दरूप यथासंख्य (मन्थ०भृशेषु) मन्थ, मनः, तमः, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में निपातित हैं।*

*उदा०-**क्षुब्धो मन्थः।** क्षुब्ध का अर्थ मन्थ है, यहां मन्थ का अभिप्राय जलादि द्रव-पदार्थ से युक्त सत्तू है। **स्वान्तं मनः।** स्वान्त का अर्थ मन है। बाह्यविषयों में अविक्षिप्त एवं अनाकुल मन स्वान्त कहलाता है। **ध्वान्तं तमः।** ध्वान्त का अर्थ तम (अन्धकार) है। **लग्नं सक्तम्।** लग्न का अर्थ सक्त (फंसा हुआ) है। **म्लिष्टम् अविस्पष्टम्।** म्लिष्ट का अर्थ अविस्पष्ट (अव्यक्त) है। **विरिब्धं स्वरः।** विरिब्ध का अर्थ स्वर (ध्वनि) है। **फाण्टम् अनायासः।** फाण्ट का अर्थ अनायास है। जो न पकाया गया हो और न पीसा गया हो वह कषाय पदार्थ जो कि केवल जलसम्पर्क मात्र से पृथग्भूत रसवाला कुछ उष्णपदार्थ फाण्ट कहाता है। यह अल्प प्रयत्न से साध्य होने से अनायास कहलाता है। **'यदशृतमपिष्टं च कषायमुदकसम्पर्कमात्राद्विभक्तरसमीषदुष्णं तत् फाण्टम्"** (काशिका)। **बाढं भृशम्।** बाढ का अर्थ भृश (अतिशय) है।*

***सिद्धि-(१) क्षुब्धः।** क्षुभ्+क्त। क्षुभ्+त। क्षुभ्+ध। क्षुब्+ध। क्षुब्ध+सु। क्षुब्धः।*

*यहां **'क्षुभ सञ्चलने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से मन्थ-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से भकार को जश् बकार होता है।*

***(२) स्वान्तम्।** स्वन्+क्त। स्वन्+त। स्वान्+त। स्वान्त+सु। स्वान्तम्।*

*यहां **'स्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से मन-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

***(३) ध्वान्तम्।** ध्वन्+क्त। ध्वन्+त। ध्वाद्+त। ध्वान्त+सु। ध्वान्तम्।*

*यहां **'ध्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से तम-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। पूर्ववत् दीर्घ होता है।*

***(४) लग्नः।** लग्+क्त। लग्+त। लग्+न। लग्न+सु। लग्नः।*

*यहां **'लगे सङ्गे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से सक्त-अर्थ में निष्ठा के तकार को नकार आदेश निपातित है।*

*(५) **म्लिष्टम्।** म्लेच्छ्+क्त। म्लेच्छ्+त। म्लेष्+ट। म्लिष्+ट। म्लिष्ट+सु। म्लिष्टम्।*

*यहां **'म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अविस्पष्ट अर्थ में इडागम का अभाव तथा ह्रस्वभाव निपातित है। अविस्पष्ट अर्थात् शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण करना।*

*(६) **विरिब्धम्।** वि+रेभ्+क्त। वि+रेभ्+त। वि+रेभ्+ध। वि+रेब्+ध। वि+रिब्+ध। विरिब्ध+सु। विरिब्धम्।*

*यहां **'रेभृ शब्दे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्वर-अर्थ में इडागम का अभाव और ह्रस्वभाव निपातित है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से भकार को जश् बकार होता है।*

*(७) **फाण्टम्।** फण्+क्त। फण्+त। फाण्+त। फाण्+ट। फाण्ट+सु। फाण्टम्।*

*यहां **'फण गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनायास-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

*(८) **बाढम्।** बाह्+क्त। बाह्+त। बाढ्+त। बाढ्+ध। बाढ्+ढ। बा०+ढ। बाढ+सु। बाढम्।*

*यहां **'बाहृ प्रयत्ने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से भृश-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, पूर्ववत् तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार, **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से पूर्ववर्ती अण् को पर्जन्यवत् दीर्घ होता है।*

इट्-प्रतिषेधः–

(१२) धृषिशसी वैयात्ये।१६।

प०वि०–धृषिशसी १।२ (पञ्चम्यर्थे) वैयात्ये ७।१।

स०–धृषिश्च शसिश्च तौ धृषिशसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विरूपं यातम्=गमनं, चेष्टितम् यस्य स वियातः=अविनीत इत्यर्थः। वियातस्य भावः=वैयात्यम्, तस्मिन्-वैयात्ये (बहुव्रीहिः)। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इत्यनेन भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वैयात्ये धृषिशसिभ्यामङ्गाभ्यां निष्ठाया इड् न।

अर्थः-वैयात्येऽर्थे वर्तमानाभ्यां धृषिशसियाम् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(धृषिः) धृष्टः। प्रगल्भः, अविनीतः। **(शसिः)** विशस्तः। प्रगल्भः, अविनीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वैयात्ये) प्रगल्भ=अविनीत अर्थ में विद्यमान (धृषिशसिभ्याम्) धृषि, शसि इन (अङ्गानाम्) अङ्गों से परे (निष्ठायाः) निष्ठा को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(धृषि) **धृष्टः।** प्रगल्भ, अविनीत पुरुष। (शसि) **विशस्तः।** प्रगल्भ, अविनीत पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **धृष्टः।** धृष्+क्त। धृष्+त। धृष्+ट। धृष्ट+सु। धृष्टः।*

*यहां **'ञिधृषा प्रागल्भ्ये'** (स्वा०प०) धातु से **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वैयात्य-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*(२) **विशस्तः।** वि+शस्+क्त। वि+शस्+त। विशस्त+सु। विशस्तः।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'शसु हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वैयात्य-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है।*

निपातनम्–

(१३) दृढः स्थूलबलयोः।२०।

प०वि०-दृढः १।१ स्थूल-बलयोः ७।२।

स०-स्थूलं च बलश्च तौ स्थूलबलौ, तयोः-स्थूलबलयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बलशब्दे **'अर्श आदिभ्योऽच्'** (५।२।१२७) इति मतुबर्थेऽच्प्रत्ययः। बलः=बलवान्।

अन्वयः-स्थूलबलयोर्दृढो निपातनम्।

अर्थः-स्थूले बलवति चार्थे दृढ इति शब्दो निपात्यते।

उदा०-दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्थूलबलयोः) स्थूल और बलवान् अर्थ में (दृढः) दृढ यह शब्द निपातित है।*

उदा०-दृढः स्थूलः। मोटा। दृढो बलवान्। बली।

सिद्धि-दृढः। दृंह्+क्त। दृंह्+त। दृ०+ढ। दृ+ढ। दृढ+सु। दृढः।

यहां 'दृहि वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्थूल और बलवान् अर्थ में इडागम का अभाव तकार को ढकार, हकार और नकार का लोप निपातित है।

निपातनम्–

(१४) प्रभौ परिवृढः।२१।

प०वि०–प्रभौ ७।१ परिवृढः १।१।

अर्थः–प्रभावर्थे परिवृढ इति शब्दो निपात्यते।

उदा०–परिवृढः प्रभुः, कुटुम्बीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रभौ) प्रभु अर्थात् कुटुम्बी अर्थ में (परिवृढः) परिवृढ यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-**परिवृढः प्रभुः**। कुटुम्बी, परिवार का स्वामी।*

*सिद्धि-**परिवृढः**। परि+वृंह्+क्त। परि+वृंह्+त। परि+वृ०+ढ। परिवृढ+सु। परिवृढः।*

यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'वृहि वृद्धौ' (भ्वा०आ०) इस धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रभु-अर्थ में इडागम का अभाव, तकार को ढकार, हकार और नकार का लोप निपातित है।

इट्-प्रतिषेधः–

(१५) कृच्छ्रगहनयोः कषः।२२।

प०वि०–कृच्छ्र-गहनयोः ७।२ कषः ५।१।

स०–कृच्छ्रं च गहनं च ते कृच्छ्रगहने, तयोः-कृच्छ्रगहनयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृच्छ्रगहनयोः कषोऽङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थः–कृच्छ्रे गहने चार्थे वर्तमानात् कषोऽङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(कृच्छ्रे) कष्टोऽग्निः। कष्टं व्याकरणम्। ततोऽपि कष्टतराणि सामानि। "कृच्छ्रम्=दुःखम्, तत्कारणमप्यग्न्यादिकं कृच्छ्रमित्युच्यते" (काशिका)। **(गहने)** कष्टानि वनानि। कष्टाः पर्वताः।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(कृच्छ्रगहनयोः) *कृच्छ्र और गहन अर्थ में विद्यमान (कषः) कष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-(कृच्छ्र) ***कष्टोऽग्निः।*** *अग्नि दुःख का हेतु है।* ***कष्टं व्याकरणम्।*** *व्याकरणशास्त्र दुःख का हेतु है अर्थात् कठिन है।* ***ततोऽपि कष्टतराणि सामानि।*** *सामगान उस व्याकरणशास्त्र भी अधिक दुःख का हेतु है अर्थात् कठिन हैं।* ***(गहन) कष्टानि वनानि।*** *वन गहन हैं।* ***कष्टाः पर्वताः।*** *पर्वत गहन हैं।*

सिद्धि-कष्टम्। *कष्+क्त। कष्+त। कष्+ट। कष्ट+सु। कष्टम्।*

यहां ***'कष हिंसार्थः'*** *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से कृच्छ्र और गहन अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है।* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

इट्-प्रतिषेधः-

(१६) घुषिरविशब्दने।२३।

प०वि०-घुषिः १।१ (पञ्चम्यर्थे) अविशब्दने ७।१।

स०-विशब्दनम्=प्रतिज्ञानम्। न विशब्दनम् इति अविशब्दनम्, तस्मिन्-अविशब्दने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविशब्दने घुषेरङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थः-अविशब्दने=अप्रतिज्ञानेऽर्थे वर्तमानाद् घुषेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-घुष्टा रज्जुः। घुष्टौ पादौ। अविशब्दने इति किम्-अवघुषितं वाक्यमाह, प्रतिज्ञातमित्यर्थः।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(अविशब्दने) *प्रतिज्ञात से भिन्न अर्थ में विद्यमान (घुषेः) घुषि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-घुष्टा रज्जुः। वह रज्जु=रस्सी (नेजू) जिसकी लड़े घुटकर एकाकार हो गई हैं, घिसी हुई रस्सी। **घुष्टौ पादौ।** रगड़कर धोये हुये पैर। घिसे हुये पांव।*

***सिद्धि-घुष्टा।** घुष्+क्त। घुष्+त। घुष्+ट। घुष्ट+टाप्। घुष्टा+सु। घुष्टा+०। घुष्टा।*

*यहां 'घुषिरविशब्दने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अविशब्दने-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**घुष्टौ पादौ।***

इट्-प्रतिषेधः–

(१७) अर्देः सन्निविभ्यः।२४।

प०वि०-अर्देः ५।१ सम्-नि-विभ्यः ५।३।

स०-सम् च निश्च विश्च ते सन्निवयः, तेभ्यः-सन्निविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सन्निविभ्योऽर्देरङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थः-सन्निविभ्य उपसर्गेभ्यः परस्माद् अर्देरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(सम्) समर्णः। **(निः)** न्यर्णः। **(विः)** व्यर्णः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सन्निविभ्यः) सम्, नि, वि इन उपसर्गों से परे (अर्देः) अर्दि इस (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तरवर्ती (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सम्) **समर्णः।** सङ्गत/संयाचित। (नि) **न्यर्णः।** निगत/नियाचित। (वि) **व्यर्णः।** विगत/वियाचित।*

***सिद्धि-समर्णः।** सम्+अर्द्+क्त। सम्+अर्द्+त। सम्+अर्न्+न। सम्+अर्ण्+ण। सम्+अर्०+ण। समर्ण+सु। समर्णः।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'अर्द गतौ याचने च'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार और पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार और **'हलो यमां यमि लोपः'** (८।४।६३) से पूर्ववर्ती णकार का लोप होता है। ऐसे ही-**न्यर्णः, व्यर्णः।***

इट्-प्रतिषेधः--

(१८) अभेश्चाविदूर्ये।२५।

प०वि०-अभेः ५।१ च अव्ययपदम्, आविदूर्ये ७।१।

स०-विदूरम्=विप्रकृष्टम्। न विदूरमिति अविदूरम्। अविदूरस्य भाव आविदूर्यम्, तस्मिन्-आविदूर्ये (नञ्तत्पुरुषः)। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) इति भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, अर्देरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविदूर्येऽभेश्चार्देर्निष्ठाया इड् न।

अर्थः-अविदूर्येऽर्थे वर्तमानाद् अभेः परस्माद् अर्देरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-अभ्यर्णा सेना। अभ्यर्णा शरत्। समीपस्थेत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आविदूर्ये) समीपता-अर्थ में विद्यमान, (अभेः) अभि-उपसर्ग से परे (अर्देः) अर्दि इस (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तरवर्ती (निष्ठायाः) निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अभ्यर्णा सेना।** सेना समीपस्थ है। **अभ्यर्णा** शरत्। शरद् ऋतु समीपस्थ है।*

सिद्धि-अभ्यर्णा। *यहां अभि-उपसर्ग पूर्वक, आविदूर्य=समीपता अर्थ में विद्यमान **'अर्द गतौ याचने च'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। शेष नत्व आदि कार्य पूर्ववत् हैं।*

निपातनम्--

(१९) णेरध्ययने वृत्तम्।२६।

प०वि०-णेः ५।१ अध्ययने ७।१ वृत्तम् १।१।

कृद्वृत्तिः-अधीयते यद् इत्यध्ययनम्। अत्र **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति कर्मणि कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृत्तम्=णेर्वृत्तेरङ्गाद् अध्ययने निष्ठाया इड् न।

अर्थः-वृत्तमित्यत्र ण्यन्ताद् वृत्तेरङ्गादुत्तरस्या अध्ययनवाचिन्या निष्ठाया इडागमो न भवतीति निपात्यते।

उदा०-वृत्तो गुणो देवदत्तेन। वृत्तः सम्पादितः। गुणः=पाठः पदक्रम-संहितारूपोऽध्ययनविशेषः (पदमञ्जरी)। वृत्तं पारायणं यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वृत्तम्) वृत्त इस पद में (णेः) णिजन्त (वृत्तेः) वृत्ति इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अध्ययने) अध्ययनवाची (निष्ठाया) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है, यह निपातन है।*

*उदा०-**वृत्तो गुणो देवदत्तेन।** देवदत्त ने गुण अर्थात् पदपाठ, क्रमपाठ और संहितापाठ रूप अध्ययन सम्पादित किया। **वृत्तं पारायणं यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त ने वेदपारायण आत्मक अध्ययन सम्पादित किया।*

सिद्धि-वृत्तम्। *वृत्+णिच्+क्त। वृत्+०+त। वृत्त+सु। वृत्तम्।*

*यहां णिजन्त '**वृतु वर्तने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अध्ययनवाची निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को इडागम का प्रतिषेध होता है। 'णिच्' प्रत्यय का लुक् निपातित है, लोप नहीं। लोप-निपातन करने से '**प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**' (१।१।६२) से प्रत्ययलक्षण गुण प्राप्त होता है। लुक्-निपातन से '**न लुमताऽङ्गस्य**' (१।१।६३) से प्रत्ययलक्षण गुण नहीं होता है।*

इडागम-विकल्पः—

(२०) वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः।२७।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, दान्त-शान्त-पूर्ण-दस्त-स्पष्ट-च्छन्न-ज्ञप्ताः १।३।

स०-दान्तश्च शान्तश्च पूर्णश्च दस्तश्च स्पष्टश्च छन्नश्च ज्ञप्तश्च ते-दान्त०ज्ञप्ताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ता णेरङ्गाद् निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः-दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ता इत्यत्र ण्यन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवतीति निपात्यते। **उदाहरणम्**—

	अनिट्	इडागमः	भाषार्थः
(१)	दान्तः	दमितः	उपशान्त किया।
(२)	शान्तः	शमितः	उपशान्त किया।

	अनिट्	इडागमः	भाषार्थः
(३)	पूर्णः	पूरितः	भरा हुआ।
(४)	दस्तः	दासितः	उपक्षीण हुआ।
(५)	स्पष्टः	स्पाशितः	बाधित/स्पर्श किया।
(६)	छन्नः	छादितः	आच्छादित किया।
(७)	ज्ञप्तः	ज्ञपितः	मारण आदि किया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दान्त०) दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न, ज्ञप्त इन शब्दों में (णेः) णिजन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है, यह निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **दान्तः ।** दम्+णिच्+क्त। दाम्+इ+त। दम्+०+त। दम्+त। दाम्+त। दान्+त। दान्त+सु। दान्तः।*

*यहां **'दमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और पूर्ववत् निष्ठा प्रत्यय है। इस सूत्र से णिच् का लुक् और इडागम का प्रतिषेध निपातित है। 'णिच्' परे होने पर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से की गई उपधा वृद्धि को **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। पुनः **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है। विकल्प पक्ष में इडागम होता है-**दमितः ।** यहां पूर्ववत् ह्रस्व होता है। ऐसे ही 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से-**शान्तः, शमितः ।***

*(२) **पूर्णः ।** पूर्+णिच्+क्त। पूर्+इ+त। पूर्+०+न। पूर्+ण। पूर्ण+सु। पूर्णः।*

*यहां णिजन्त **'पूरी आप्यायने'** (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से तकार को नकार और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**पूरितः ।***

*(३) दस्तः । यहां णिजन्त **'दसु उपक्षये'** (दि०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में-**दासितः ।***

*(४) **स्पष्टः ।** स्पश्+णिच्+क्त। स्पश्+इ+त। स्पश्+इ+त। स्पश्+०+त। स्पष्+ट। स्पष्ट+सु। स्पष्टः।*

*यहां णिजन्त **'स्पश बाधनस्पर्शयोः'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३५) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प-पक्ष में-**स्पाशितः ।***

*(५) **छन्नः ।** यहां णिजन्त **'छद अपवारणे'** (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से तकार को नकार और*

धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। यहां णिलोप, इडागम के अभाव के अतिरिक्त उपधा ह्रस्वत्व भी निपातित है। विकल्प-पक्ष में- ***छादितः।***

(६) ***ज्ञप्तः।*** *ज्ञप्+णिच्+त। ज्ञाप्+इ+त। ज्ञा+प्+इ+त। ज्ञाप्+०+त। ज्ञाप्+त। ज्ञप्त+सु। ज्ञप्तः।*

यहां णिजन्त ***'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'*** *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।* ***'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'*** *(भ्वा०गणसूत्र) से इसकी मित्-संज्ञा और* ***'मितां ह्रस्वः'*** *(६।४।९२) से ह्रस्व होता है। इस सूत्र से णिच् का लुक् और इडागम का अभाव निपातित है। विकल्प-पक्ष में-* ***ज्ञपितः।***

'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्' *(७।२।४९) से 'ज्ञप्' धातु को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है, अतः* ***'यस्य विभाषा'*** *(७।२।१५) से निष्ठा में नित्य इडागम प्रतिषेध प्राप्त था, इसलिये यहां पुनः विकल्प का विधान किया गया है।*

इडागम-विकल्पः–

(२१) रुष्यमत्वरसंघुषास्वानाम्।२८।

प०वि०- रुषि-अम-त्वर-संघुष-आस्वनाम् ६।३।

स०- रुषिश्च अमश्च त्वरश्च संघुषश्च आस्वन् च ते रुषि०आस्वनः, तेषाम्-रुषि०आस्वनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०- अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः- रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्योऽङ्गेभ्यो निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः- रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०- **(रुषि)** रुष्टः, रुषितः। **(अम)** अभ्यान्तः, अभ्यमितः। **(त्वर)** तूर्णः, त्वरितः। **(संघुष)** संघुष्टौ, पादौ, संघुषितौ पादौ। संघुष्टं वाक्यमाह, संघुषितं वाक्यमाह। **(आस्वन्)** आस्वान्तो देवदत्तः, आस्वनितो देवदत्तः। आस्वान्तं मनः, आस्वनितं मनः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्यः) रुषि, अम, त्वर, संघुष, आस्वन् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०- ***(रुषि) रुष्टः, रुषितः।*** *रोष किया।* ***(अम) अभ्यान्तः, अभ्यमितः।*** *रोगी हुआ।* ***(त्वर) तूर्णः, त्वरितः।*** *सम्भ्रान्त हुआ।* ***(संघुष) संघुष्टौ, पादौ, संघुषितौ***

पादौ। रगड़कर धोये हुये चरण। **संघुष्टं वाक्यमाह, संघुषितं वाक्यमाह।** उसने प्रतिज्ञापूर्ण वचन कहा। **(आस्वन्) आस्वान्तो देवदत्तः, आस्वनितो देवदत्तः।** आमन्त्रित देवदत्त। **आस्वान्तं मनः, आस्वनितं मनः।** मन=चित्त।

सिद्धि-(१) रुष्टः। रुष्+क्त। रुष्+त। रुष्+ट। रुष्ट+सु। रुष्टः।

यहां **'रुष रोषे'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार के टवर्ग टकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**रुषितः।**

(२) अभ्यान्तः। अभि+अम्+क्त। अभि+अम्+त। अभि+आम्+त। अभ्यान्तः।

यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'अम रोगे'** (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (८।४।१५) से दीर्घ और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**अभ्यमितः।**

(३) तूर्णः। त्वर्+क्त। त्वर्+त। त् ऊठ् र्+त। तऊ र्+त। तूर्+न। तूर्+ण। तूर्ण+सु। तूर्णः।

यहां **'ञित्वरा सम्भ्रमे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च'** (६।४।२०) से ऊठ्-रूप सम्प्रसारण, **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। **'आदितश्च'** (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से विकल्प-विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**त्वरितः।**

(४) संघुष्टः। सम्+घुष्+क्त। सम्+घुष्+त। सम्+घुष्+ट। संघुष्ट+सु। संघुष्टः।

यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'घुषिर् अविशब्दने'** (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**संघुषितः।** **'घुषिर् विशब्दने'** (भ्वा०प०) से अविशब्दन अर्थ में इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से अविशब्दन अर्थ में भी विकल्प से इडागम होता है-**संघुष्टं वाक्यमाह, सुघुषितं वाक्यमाह।**

(५) आस्वान्तः। आङ्+स्वन्+क्त। आ+स्वन्+त। आ+स्वान्+त। आस्वान्त+सु। आस्वान्तः।

यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**आस्वनितः।**

*आङ्पूर्वक 'स्वन' धातु को मन-अर्थ में भी इसी सूत्र से विकल्प से इडागम होता है-**अस्वान्तं मनः, आस्वानितं मनः।** 'क्षुब्धस्वान्तध्वान्त०' (७।२।१८) से मन-अर्थ में जो इडागम का प्रतिषेध निपातित है उसका यह बाधक है अर्थात् आङ्पूर्वक 'स्वन' धातु से मन-अर्थ में भी निष्ठा को विकल्प से इडागम होता है-**आस्वान्तं मनः। आस्वनितं मनः।***

इडागम-विकल्पः–

(२२) हृषेर्लोमसु।२६।

प०वि०–हृषेः ५।१। लोमसु ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लोमसु हृषेरङ्गाद् निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः–लोमसु वर्तमानाद् हृषेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०–हृष्टानि लोमानि, हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः, हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः, हृषिताः केशाः। हृष्टं कैशैः। हृषितं केशैः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लोमसु) लोम=केश विषय में विद्यमान (हृषेः) हृषि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**हृष्टानि लोमानि, हृषितानि लोमानि।** उत्स्फुटित (खड़े हुये) लोम (कर्तृवाच्य)। **हृष्टं लोमभिः, हृषितं लोमभिः।** लोमों के द्वारा उत्स्फुटित होना (भाववाच्य)। **हृष्टाः केशाः**, हृषिताः केशाः। अर्थ पूर्ववत् है (कर्तृवाच्य)। **हृष्टं कैशैः। हृषितं केशैः।** अर्थ पूर्ववत् है (भाववाच्य)।*

*सिद्धि-**हृष्टानि लोमानि।** यहां 'हृषु अलीके' (भ्वा०प०) अथवा 'हृष तुष्टौ' (दि०प०) धातु से '**गत्यर्थाकर्मक०**' (३।४।७२) से कर्ता अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से लोम-विषय में इडागम का प्रतिषेध होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प पक्ष में इडागम है-**हृषितानि लोमानि।***

*'**हृष्टं लोमभिः, हर्षितं लोमभिः**' यहां '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से भाव-अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। अतः '**कर्तृकरणयोस्तृतीया**' (२।३।१८) से कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।*

*'हृषु' धातु के उदित् होने से '**उदितो वा**' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है। अतः '**यस्य विभाषा**' (७।२।१५) से निष्ठा*

प्रत्यय को इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से विकल्प से इडागम का विधान किया गया है।

विशेषः *लोम और केश शब्दों के पृथक्-पृथक् अर्थ हैं किन्तु यहां लोम और केश दोनों का सामान्य रूप से ग्रहण किया गया है।*

निपातनम्--

(२३) अपचितश्च।३०।

प०वि०-अपचितः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपचितश्च वा निपातनम्।

अर्थः-अपचित इति च विकल्पेन निपात्यते, अर्थात् अप-पूर्वाच्चायतेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडभावोऽङ्गस्य च चिभावो निपात्यते।

उदा०-अपचितोऽनेन गुरुः, अपचायितोऽनेन गुरुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपचितः) अपचित यह शब्द (वा) विकल्प से निपातित है अर्थात् अप-उपसर्गपूर्वक चाय् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इड् न) इडागम का अभाव और अङ्ग को चि-आदेश निपातित है।*

*उदा०-**अपचितोऽनेन गुरुः, अपचायितोऽनेन गुरुः।** इसने गुरु का सम्मान किया।*

*सिद्धि-**अपचितः।** अप+चाय्+क्त। अप+चाय्+त। अप+चि+त। अपचित+सु। अपचितः।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'चायृ पूजानिशामनयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-प्रत्यय को इडागम का अभाव और 'चि' आदेश नहीं है-**अपचायितः।***

हु-आदेशः--

(२४) हु ह्वरेश्छन्दसि।३१।

प०वि०-हु १।१ (सु-लुक्) ह्वरेः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ह्वरेरङ्गस्य निष्ठायां हुः।

अर्थः-छन्दसि विषये ह्वरेरङ्गस्य स्थाने निष्ठायां परतो ह्रुरादेशो भवति।

उदा०-ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च। अह्रुतमसि हविर्धानम् (यजु० १।९)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ह्वरेः) ह्वरि=ह्वृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (ह्रुः) ह्रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च। अह्रुतमसि हविर्धानम्** (यजु० १।९)। अह्रुतम्=कुटिलतारहित।*

***सिद्धि-ह्रुतम्।** ह्वृ+क्त। ह्वृ+त। ह्रु+त। ह्रुत+सु। ह्रुतम्।*

*यहां **'ह्वृ कौटिल्ये'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ह्वृ' के स्थान में 'ह्रु' आदेश होता है। 'ह्वृ' धातु के अनुदात्त होने से **'एकाच उपदेशऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इट्-प्रतिषेध तो है ही, यह सूत्र ह्रु-आदेश करने के लिये है।*

निपातनम्—

(२५) अपरिह्वृताश्च।३२।

प०वि०-अपरिह्वृताः १।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, निष्ठायाम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपरिह्वृताश्च निष्ठायां निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपरिह्वृता इति च निष्ठायां परतो निपात्यते, ह्वरेरङ्गस्य ह्रु-आदेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०-अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् (ऋ० १।१००।१९)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपरिह्वृताः) अपरिह्वृताः यह शब्द (च) भी (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर निपातित है अर्थात् 'ह्वृ' इस अङ्ग के स्थान में पूर्वोक्त ह्रु-आदेश नहीं होता है।*

*उदा०-**अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्** (ऋ० १।१००।१९)।*

***सिद्धि-अपरिह्वृताः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'ह्वृ कौटिल्ये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'ह्रु ह्वरेश्छन्दसि' (७।२।३१) से विहित 'ह्वृ' के स्थान में 'ह्रु' आदेश नहीं होता है। न और परिह्वृत शब्दों का नञ्तत्पुरुष समास है-**न परिह्वृता इति अपरिह्वृताः।** सब ओर से कुटिलता रहित सरल पुरुष।*

निपातनम्–

(२६) सोमे ह्वरितः ।३३।

प०वि०–सोमे ७।१ ह्वरितः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, निष्ठायाम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि ह्वरितो निष्ठायां सोमः।

अर्थः–छन्दसि विषये ह्वरित इति निष्ठायां परतो निपात्यते, सोमश्चेत् स भवति। ह्वृधातोर्निष्ठायां परतो गुण इडागमश्च निपात्यते इत्यर्थः।

उदा०–मा नः सोमो ह्वरितः, विह्वरितस्त्वम् (द्र०मा०श्रौ० २।५।४।२४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेद-विषय में (ह्वरितः) ह्वरित यह शब्द (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर निपातित है (सोमः) यदि वह सोम हो, अर्थात् 'ह्वृ' धातु से निष्ठा-प्रत्यय परे होने पर गुण और इडागम निपातित है।*

उदा०–मा नः सोमो ह्वरितः, विह्वरितस्त्वम् (द्र०मा०श्रौ० २।५।४।२४)।

सिद्धि-ह्वरितः। यहां 'ह्वृ कौटिल्ये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से धातु को गुण और निष्ठा-प्रत्यय को इडागम निपातित है।

निपातनम्–

(२६) ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमितीति च ।३४।

प०वि०–ग्रसित-स्कभित-स्तभित-उत्तभित-चत्त-विकस्ताः १।३ विशस्तृ-शंस्तृ-शास्तृ-तरुतृ-तरूतृ-वरुतृ-वरूत्रीः १।३ उज्ज्वलिति-क्षरिति-क्षमितिवमित्यमिति १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०–ग्रसितश्च स्कभितश्च स्तभितश्च उत्तभितश्च चत्तश्च विकस्तश्च ते ग्रसित०विकस्ताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वितस्ता च शंस्ता च शास्ता च तरुता च तरूता च वरुता च वरूता च वरूत्री च ताः-विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीः (जसि पूर्वसवर्णं छान्दसम्)। उज्ज्वलितिश्च क्षरितिश्च क्षमितिश्च वमितिश्च अमितिश्च एतेषां समाहारः-उज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमिति (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अर्थः-छन्दसि विषये ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, क्षमिति, वमिति, अमिति इत्येतानि शब्दरूपाणि निपात्यन्ते। **उदाहरणम्**--

(१) **ग्रसितः**-ग्रसितं वा एतत् सोमस्य (मै०सं० ३।७।४)। ग्रस्तमिति भाषायाम्।

(२) **स्कभितः**-विष्कभिते अजरे (ऋ० ६।७०।१)। विस्कब्ध इति भाषायाम्।

(३) **स्तभितः**-येन स्तः स्तभितम् (ऋ० १०।१२१।५)। स्तब्धमिति भाषायाम्।

(४) **उत्तभितः**-सत्येनोत्तभिता भूमिः (ऋ० १०।८५।१)। उत्तब्धेति भाषायाम्।

(५) **चत्तः**-चत्ता वर्षेण विद्युत्। चतितेति भाषायाम्।

(६) **विकस्तः**-उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम् (मै०सं० २।७।४)। विकसितमिति भाषायाम्।

(७) **विशस्ता**-एकस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता (ऋ० १।१६२।१९)। विशसितेति भाषायाम्।

(८) **शंस्ता**-उत शंस्ता सुविप्तः (ऋ० १।१६२।५)। शंसितेति भाषायाम्।

(९) **शास्ता**-प्रशास्ता (ऋ० १।९४।६)। प्रशासितेति भाषायाम्।

(१०) **तरुता**-तरुतारं रथानाम् (ऋ० १०।१७८।१)।

(११) **तरूता**-तरूतारम्। तरितारम्।

(१२) **वरुता**-वरुतारं रथानाम्।

(१३) **वरूता**-वरूतारं रथानाम्। वरितारम्। वरूतारमिति च भाषायाम्।

(१४) **वरूत्री:**-वरूत्रीष्ट्वा देवीविश्वदेव्यावती: (यजु० ११।६१)।

(१५) **उज्ज्वलिति**-अग्निरुज्ज्वलिति। उज्ज्वलतीति भाषायाम्।

(१६) **क्षरिति**-स्तोकं क्षरिति। क्षरतीति भाषायाम्।

(१७) **क्षमिति**-स्तोमं क्षमिति। क्षमतीति भाषायाम्।

(१८) **वमिति**-य: सोमं वमिति। वमतीति भाषायाम्।

(१९) **अमिति**-अभ्यमिति वरुण:। अभ्यमतीति भाषायाम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेद-विषय में (ग्रसित०) ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्ता, शंस्ता, शास्ता, तरुता, तरूता, वरुता, वरूता, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति क्षमिति, वमिति, अमिति ये शब्द निपातित हैं।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) ग्रसित:। ग्रस्+क्त। ग्रस्+त। ग्रस्+इट्+त। ग्रस्+इ+त। ग्रसित+सु। ग्रसित:।

यहां 'ग्रसु अदने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'ग्रसु' धातु के उदित् होने से 'उदितो वा' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय का विकल्प से इडागम का विधान किया गया है, अत: 'यस्य विभाषा' (७।२।१५) से निष्ठा में इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, इसलिये इस सूत्र से यहां इडागम का निपातन किया गया है।

(२) स्कभित:। यहां 'स्कम्भु स्तम्भे' (सौत्रधातु) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) स्तभित:। 'स्तम्भु निष्कोषणे' (सौत्रधातु) से पूर्ववत्।

(४) उत्तभित:। यहां उत्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तम्भु' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'उद: स्थास्तम्भो: पूर्वस्य' (८।४।६१) से पूर्व सवर्ण आदेश होता है-उत्+स्तभित:। उत्+०तभित:=उत्तभित:। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) चत्त:। यहां 'चते याचने' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।

(६) विकस्त:। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'कस गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।

(७) विशस्ता। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'शसु हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इडागम का अभाव निपातित है।

(८) शंस्ता। यहां 'शंसु स्तुतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इडागम का अभाव निपातित है।

*(९) **शास्ता।** यहां **'शासु अनुशिष्टौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इडागम का अभाव निपातित है।*

*(१०) **तरुता।** यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। उट्-आगम निपातित है।*

*(११) **तरूता।** यहां पूर्वोक्त 'तॄ' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। ऊट्-आगम निपातित है।*

*(१२) **वरुता।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) तथा **'वृञ् वरणे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। उट्-आगम निपातित है।*

*(१३) **वरूता।** यहां पूर्वोक्त वृङ् और वृञ् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। ऊट्-आगम निपातित है।*

*(१४) **वरूत्री।** यहां 'वरुतृ' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (३।१।६८) 'ङीप्' प्रत्यय है।*

*(१५) **उज्ज्वलिति।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'ज्वल दीप्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। यहां 'शप्' के स्थान में इकारादेश निपातित है। अथवा-शप् का लुक् और 'तिप्' को इडागम निपातित है।*

*(१६) **क्षरिति।** **'क्षर सञ्चलने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१७) **क्षमिति।** **'क्षमूष् सहने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१८) **वमिति।** **'टुवम् उद्गिरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१९) **अमिति।** **'अम गत्यादिषु'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

।। इति इट्प्रतिषेधप्रकरणम् ।।

इडागमप्रकरणम्

इडागमः–

(१) आर्धधातुकस्येड्वलादेः।३५।

प०वि०–आर्धधातुकस्य ६।१ इट् १।१ वलादेः ६।१।

स०–वल् आदिर्यस्य स वलादिः, तस्य-वलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। 'छन्दसि' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–अङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य इट्।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-लूञ्-लविता, लवितुम्, लवितव्यम्। **पूञ्**-पविता, पवितुम्, पवितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वल्-वर्ण जिसके आदि में उस (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-लूञ्-**लविता**। काटनेवाला। **लवितुम्**। काटने के लिये। **लवितव्यम्**। काटना चाहिये। **पूञ्-पविता**। पवित्र करनेवाला। **पवितुम्**। पवित्र करने के लिये। **पवितव्यम्**। पवित्र करना चाहिये।*

***सिद्धि**-(१) लविता। लू+तृच्। लू+इट्+तृ। लो+इ+तृ। लवितृ+सु। लविता।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से वलादि, आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम होता है। '**आर्धधातुकं शेषः**' (३।४।११४) से 'तृच्' प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा है। ऐसे ही 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**पविता**।*

*(२) **लवितुम्**। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'पू' धातु से-**पवितुम्**।*

*(३) **लवितव्यम्**। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'पू' धातु से-**पवितव्यम्**।*

इडागमः—

(२) स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते।३६।

प०वि०-स्नु-क्रमोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनात्मनेपदनिमित्ते १।२।

स०-स्नुश्च क्रम् च तौ स्नुक्रमौ, तयोः-स्नुक्रमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आत्मनेपदस्य निमित्तमिति आत्मनेपदनिमित्तम्, न आत्मनेपदनिमित्तमिति अनात्मनेपदनिमित्तम्, ते (१।२) अनात्मनेपदनिमित्ते (षष्ठीगर्भितनञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनात्मपदनिमित्ताभ्यां स्नुक्रमिभ्याम् अङ्गाभ्यां वलादेरार्ध-धातुकस्य इट्।

अर्थः-आत्मनेपदनिमित्तरहिताभ्यां स्नुक्रमिभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-(स्नुः) प्रस्नविता, प्रस्नवितुम्, प्रस्नवितव्यम्। **(क्रम्)** प्रक्रमिता, प्रक्रमितुम्, प्रक्रमितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनात्मपदनिमित्ताभ्याम्) आत्मनेपद के निमित्त से रहित (स्नुक्रमिभ्याम्) स्नु और क्रम् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(स्नु) **प्रस्नविता।** झरनेवाला। **प्रस्नवितुम्।** झरने के लिये। **प्रस्नवितव्यम्।** झरना चाहिये। (क्रम्) **प्रक्रमिता।** चलनेवाला। **प्रक्रमितुम्।** चलने के लिये। **प्रक्रमितव्यम्।** चलना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **प्रस्नविता।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ष्णु प्रस्रवणे'** (अदा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वलादि, आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से-**प्रक्रमिता।***

*(२) **प्रस्नवितुम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्नु' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक 'क्रम्' धातु से-**प्रक्रमितुम्।***

*(३) **प्रस्नवितव्यम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्नु' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक 'क्रम्' धातु से-**प्रक्रमितव्यम्।***

'स्नु' और 'क्रम्' धातु आत्मनेपद का निमित्त कहां है ? जहां उनके आश्रय से आत्मनेपद होता है जैसे-भाववाच्य, कर्मवाच्य, कर्मकर्तृवाच्य और कर्मव्यतिहार, प्रस्नोषीष्ट, प्रस्नोष्यते। प्रक्रसीष्ट, प्रक्रस्यते इत्यादि। यहां इडागम नहीं होता है।

इटो दीर्घत्वम्-

(३) ग्रहोऽलिटि दीर्घः।३७।

प०वि०-ग्रहः ५।१ अलिटि ७।१। दीर्घः १।१।

स०-न लिडिति अलिट्, तस्मिन्-अलिटि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहोऽङ्गादऽलिटो वलादेरार्धधातुकस्य इटो दीर्घः।

अर्थः-ग्रहोऽङ्गाद् उत्तरस्य लिड्वर्जितस्य वलादेरार्धधातुकस्य इटो दीर्घो भवति।

उदा०-ग्रहीता, ग्रहीतुम्, ग्रहीतव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रहः) ग्रह इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अलिटः) लिट् से भिन्न (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय के (इटः) इडागम को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**ग्रहीता।** ग्रहण करनेवाला। **ग्रहीतुम्।** ग्रहण करने के लिये। **ग्रहीतव्यम्।** ग्रहण करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) ग्रहीता।** यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्रया०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम को दीर्घ होता है। तुमुन्-**ग्रहीतुम्।** तव्यत्-**ग्रहीतव्यम्।

इटो दीर्घत्व-विकल्पः—

(४) वृतो वा।३८।

प०वि०-वृ-ॠतः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-वृश्च ॠच्च एतयोः समाहारः-वृत्, तस्मात्-वृतः (समाहार-द्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य इटो वा दीर्घः।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ॠकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य इटो विकल्पेन दीर्घो भवति।

उदा०-(वृ) वरिता, वरीता। प्रवरिता, प्रवरीता। **(ॠकारान्तः)** तरिता, तरीता। आस्तरिता, आस्तरीता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृतः) 'वृ' इस और ॠकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय के (इटः) इडागम को (वा) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(वृ) **वरिता, वरीता।** सेवा करनेवाला। **प्रवरिता, प्रवरीता।** आच्छादित करनेवाला। (ॠकारान्त) **तरिता, तरीता।** तरनेवाला। **आस्तरिता, आस्तरीता।** आच्छादित करनेवाला।*

सिद्धि-(१) वरिता।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम को दीर्घ होता है-**वरीता।** प्र-उपसर्ग पूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रवरिता, प्रवरीता।

(२) तरिता।** यहां ॠकारान्त **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम को दीर्घ होता है-**तरीता।** आङ्पूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्रया०उ०) धातु से-**आस्तरिता, आस्तरीता।

इटो दीर्घत्वप्रतिषेधः—

(५) न लिङि।३९।

प०वि०—न अव्ययपदम्, लिङि ७।१।

अनु०—अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः—वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य लिङ इटो दीर्घो न।

अर्थः—वृ-इत्येतस्माद् ॠकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य लिङ इटो दीर्घो न भवति।

उदा०—**(वृ)** विवरिषीष्ट। प्रावरिषीष्ट। **(ॠकारान्तः)** आस्तरिषीष्ट। विस्तरिषीष्ट।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृतः) वृ इस और ॠकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (लिङः) लिङ्लकार के (इटः) इडागम को (दीर्घः) दीर्घ (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(वृ) **विवरिषीष्ट।** वह सेवा करे (आशीर्वाद)। **प्रावरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे। (ॠकारान्त) **आस्तरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। **विस्तरिषीष्ट।** वह विस्तार करे।*

*सिद्धि-(१) **विवरिषीष्ट।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'वृङ् **सम्भक्तौ**' (क्र्या०आ०) धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङः सीयुट्' (४।१०२) से 'सीयुट्' आगम होता है। इस लिङ्सम्बन्धी, वलादि, आर्धधातुक के इडागम को इस सूत्र से दीर्घ नहीं होता है। '**वृतो वा**' (७।२।३८) से विकल्प से दीर्घ प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक '**वृञ् आच्छादने**' (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावरिषीष्ट।** आङ्पूर्वक '**स्तृञ् आच्छादने**' (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तरिषीष्ट।** वि-उपसर्गपूर्वक 'स्तृ' धातु से-**विस्तरिषीष्ट।***

इटो दीर्घत्वप्रतिषेधः—

(६) सिचि च परस्मैपदेषु।४०।

प०वि०—सिचि ७।१ च अव्ययपदम्, परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०—अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घः, वृतः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदपरस्य सिचश्च इटो दीर्घो न।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य परस्मैपदपरस्य सिचश्च इटो दीर्घो न भवति।

उदा०-(वृ) तौ प्रावरिष्टाम्, ते प्रावरिषुः। **(ऋकारान्तः)** तौ अतारिष्टाम्, ते अतारिषुः। तौ आस्तरिष्टाम्, ते आस्तरिषुः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(वृतः) वृ-इस और ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (परस्मैपदपरस्य) परस्मैपदपरक (सिचः) सिच् के (इटः) इट् को (च) भी (दीर्घः) दीर्घ (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(वृ) **तौ प्रावरिष्टाम्।** उन दोनों ने आच्छादित किया। **ते प्रावरिषुः।** उन सब ने आच्छादित किया। **(ऋकारान्त) तौ अतारिष्टाम्।** वे दोनों तरें। **ते अतारिषुः।** वे सब तरें। **तौ आस्तरिष्टाम्।** उन दोनों ने आच्छादित किया। **ते आस्तरिषुः।** उन सब ने आच्छादित किया।*

*सिद्धि-(१) **प्रावरिष्टाम्।** यहां प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और इसके स्थान में **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'ताम्' आदेश है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इस परस्मैपदपरक 'सिच्' के इडागम को दीर्घ नहीं होता है।*

*(२) **प्रावरिषुः।** यहां लकार के स्थान में 'झि' आदेश और **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*ऐसे ही **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से-**अतारिष्टाम्, अतारिषुः।** आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तारिष्टाम्, आस्तारिषुः।***

इडागम-विकल्पः–

(७) इट् सनि वा।४१।

प०वि०-इट् १।१ सनि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, वृत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य सनो वा इट्।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य सनो विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(वृ) वुवूर्षति, विवरिषते, विवरीषते। प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति। **(ॠकारान्तः)** तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति। आतिस्तीर्षते, आतिस्तरिषते, आतिस्तरीषते। **'सनि ग्रहगुहोश्च'** (७।२।१२) इति इट्प्रतिषेधे प्राप्ते पक्षे इडागमो विधीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वृतः) वृ-इस और ॠकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (सनः) सन् प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वृ) **वुवूर्षति, विवरिषते, विवरीषते।** वह सेवा करना चाहता है। **प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति।** वह आच्छादित करना चाहता है। **(ॠकारान्त) तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति।** वह तरना चाहता है। **आतिस्तीर्षते, आतिस्तरिषते, आतिस्तरीषते।** वह आच्छादित करना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **वुवूर्षति।** वृ+सन्। वृ+स। वृ+स। वुर्+स। वुर् स्-वुरस। वु-वुरस। वुवूर्ष। वुवुर्ष+लट्। वुवूर्षति।*

*यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'इको झल्'** (१।२।९) से 'सन्' प्रत्यय किद्वत् है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से अङ्ग (वृ) को दीर्घ (वॄ) होता है। **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से उकार-आदेश और यह 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपर (वुर्) होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से सनन्त धातु को द्वित्व और 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदिम हल् (वु) शेष रहता है और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ (वू) है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**विवरिषते।** 'वृतो वा' (७।२।३८) से इडागम को दीर्घ होता है-**विवरीषते।***

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति।** 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' (भ्वा०प०) धातु से-**तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति।** आङ्-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-**आतिस्तीर्षति, आतिस्तरिषति, आतिस्तरीषति।***

इडागम-विकल्पः-

(८) लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु।४२।

प०वि०-लिङ्-सिचोः ७।२ आत्मनेपदेषु ७।३।

स०-लिङ् च सिच् च तौ लिङ्सिचौ, तयोः-लिङ्सिचोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, वृतः, इट्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरस्य लिङः सिचश्च वा इट्।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ॠकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरस्य लिङः सिचश्च विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(वृ) लिङ्-वृषीष्ट, वरिषीष्ट। प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट। **सिच्**-अवृत, अवरिष्ट, अवरीष्ट, प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट **(ॠकारान्तः) लिङ्**-आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट। **सिच्**-आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृतः) वृ इस और ॠकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (आत्मनेपदपरस्य) आत्मनेपदपरक (लिङः सिचश्च) लिङ् और सिच् को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वृ) लिङ्-**वृषीष्ट, वरिषीष्ट।** वह सेवा करे (आशीर्वाद)। **प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। सिच्-**अवृत, अवरिष्ट, अवरीष्ट।** उसने सेवा की। **प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट।** उसने आच्छादित किया। **(ॠकारान्त) लिङ्-आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। **सिच्-आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट।** उसने आच्छादित किया।*

*सिद्धि-(१) **वृषीष्ट।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है और यहां **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आर्धधातुक है। **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम होता है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**वरिषीष्ट।** **'न लिङि'** (७।२।३९) से इडागम को दीर्घ नहीं होता है।*

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट।** आङ्-उपसर्गपूर्वकपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट।***

*(२) **अवृत।** वृ+लुङ्। अट्+वृ+च्लि+ल्। अ+वृ+सिच्+त। अ+वृ+०+त। अवृत।*

*यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। **'उश्च'** (१।२।१२) से 'सिच्' प्रत्यय किद्वत् है। **'ह्रस्वादङ्गात्'** (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**अवरिष्ट।** **'वृतो वा'** (७।२।३८) से इडागम का दीर्घ होता है-**अवरीष्ट।***

*ऐसे ही प्र और आङ्पूर्वक 'वृञ् आच्छादने' (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट।** आङ्पूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट।***

इडागम-विकल्प:–

(६) ऋतश्च संयोगादेः।४३।

प०वि०-ऋतः ५।१ च अव्ययपदम्, संयोगादेः ५।१।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्मात्-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, दीर्घः, इट्, लिङ्सिचोः, आत्मनेपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगादेर्ऋतश्चाङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरयोर्लिङ्सिचोर्वा इट्।

अर्थः-संयोगादेर्ऋकारान्ताद् अङ्गाच्च उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य **आत्मनेपदपरस्य** लिङः सिचश्च विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(लिङ्) ध्वृषीष्ट, ध्वरिषीष्ट। स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट। **(सिच्)** तौ अध्वृषाताम्, अध्वरिषाताम्। तौ अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(संयोगादेः) संयोग जिसके आदि में है उस (ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से (च) भी परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (आत्मनेदपरस्य) आत्मनेपदपरक (लिङः सिचश्च) लिङ् और सिच् को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(लिङ्) **ध्वृषीष्ट, ध्वरिषीष्ट।** वह कुटिलता करे (आशीर्वाद)। **स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट।** वह स्मरण करे (आशीर्वाद)। **(सिच्) तौ अध्वृषाताम्, अध्वरिषाताम्।** उन दोनों ने कुटिलता की। **तौ अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्।** उन दोनों ने स्मरण किया।*

*सिद्धि-(१) **ध्वृषीष्ट।** यहां 'ध्वृ हूर्च्छने' (भ्वा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। यह धातु संयोगादि और ऋकारान्त है। इस सूत्र से लिङ्-सम्बन्धी 'सीयुट्' को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**ध्वरिषीष्ट।** 'न लिङि' (७।२।३९) से इडागम को दीर्घ नहीं होता है। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से-**स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट।***

(२) अध्वरिषाताम्। यहां पूर्वोक्त 'ध्वृ' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। 'उश्च' (१।२।१२) से 'सिच्' किद्वत् है। इस सूत्र से 'सिच्' को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-अध्वरिषाताम्। ऐसे ही 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्।

इडागम-विकल्पः--

(१०) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा।४४।

प०वि०-स्वरति-सूति-सूयति-धूञ्-ऊदितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-ऊद् इद् यस्य ऊदित्। स्वरतिश्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदिच्च एतेषां समाहारः स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदित्, तस्मात्-स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-स्वरतिसूतिसूयतिधूञिभ्य ऊदिद्भ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(स्वरतिः) स्वृ-स्वर्ता, स्वरिता। **(सूतिः) षूङ् अदादिः**-प्रसोता, प्रसविता। **(सूयतिः) षूङ् दिवादिः**-सोता, प्रविता। **(धूञ्)** धोता, धविता। **(ऊदित्) गाहू**-विगाढा, विगाहिता। गुपू-गोप्ता, गोपिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्वरति०) स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और जिनका ऊकार इत् है उन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-(स्वरतिः) स्वृ-स्वर्ता, स्वरिता। शब्द/उपताप (दुःख) करनेवाला। (सूति) षूङ् अदादि-प्रसोता, प्रसविता। पैदा होनेवाला। (सूयति) षूङ् दिवादि-सोता, सविता। अर्थ पूर्ववत्। (धूञ्) धोता, धविता। कांपनेवाला। (ऊदित्) गाहू-विगाढा, विगाहिता। बिलोडन करनेवाला। गुपू-गोप्ता, गोपिता। रक्षा करनेवाला।

सिद्धि-(१) स्वर्ता। यहां 'स्वृ शब्दोपतापयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-स्वरिता।

*(२) **प्रसोता**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'षूङ् **प्राणिगर्भविमोचने**' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**प्रसविता**।*

*(३) **सोता**। यहां 'षूङ् **प्राणिप्रसवे**' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**सविता**।*

*(४) **धोता**। यहां 'धूङ् **कम्पने**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**धविता**।*

*(५) **विगाढा**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'गाहू **विलोडने**' (भ्वा०आ०) इस ऊदित् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' से तकार को धकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार होता है। '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**विगाहिता**।*

*(६) **गोप्ता**। यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) इस ऊदित् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**गोपिता**।*

इडागम-विकल्पः-

(११) रधादिभ्यश्च।४५।

प०वि०-रध-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-रध आदिर्येषां ते रधादयः, तेभ्यः-रधादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधादिभ्योऽङ्गेभ्यश्च वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-रधादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-एते रधादयोऽष्टौ धातवो दिवादिगणे पठ्यन्ते-

(१) रध हिंसासंराध्योः-रद्धा, रधिता।

(२) णश अदर्शने-नंष्टा, नशिता।

(३) तृप प्रीणने-त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता।

(४) दृप हर्षमोहनयोः-द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।

(५) द्रुह जिघांसायाम्-द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता।

(६) मुह वैचित्ये-मोग्धा, मोढा, मोहिता।

(७) ष्णुह उद्गिरणे-स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता।

(८) ष्णिह प्रीतौ-स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(रधादिभ्यः) रध आदि आठ (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(रध) रद्धा, रधिता।** हिंसा/संसिद्धि (पूर्ण) करनेवाला। **(णश) नंष्टा, नशिता।** नाश करनेवाला। **(तृप) त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता।** तृप्त (प्रसन्न) करनेवाला। **(दृप) द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।** हर्ष और मोहित करनेवाला। **(द्रुह) द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता।** द्रोह (मारने की इच्छा) करनेवाला। **(मुह) मोग्धा, मोढा, मोहिता।** पागल/बुद्धिभ्रष्ट। **(ष्णुह) स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता।** वमन करनेवाला। **(ष्णिह) स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता।** प्रीति करनेवाला।*

*सिद्धि-**(१) रद्धा।** यहां **'रध हिंसासंराध्योः'** (दि०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**रधिता।***

(२) नंष्टा।** यहां **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'मस्जिनशोर्झलि'** (७।१।६०) से 'नुम्' आगम होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**नशिता।

(३) त्रप्ता।** यहां **'तृप प्रीणने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्'** (६।१।५९) से अम्-आगम और ऋकार को यणादेश (र्) है। अमागम के विकल्प-पक्ष में-**तर्प्ता।** इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**तर्पिता।

***(४) द्रप्ता।** यहां 'दृप हर्षमोहनयोः' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***(५) द्रोग्धा।** यहां **द्रुह जिघांसायाम्'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्'** (८।२।३३) से हकार को घकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घकार को जश् गकार होता है। विकल्प-पक्ष में हकार को घकारादेश नहीं है-**द्रोढा।** यहां पूर्ववत् हकार को ढकार,*

*तकार को धकार, धकार को टवर्ग ढकार और पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**द्रोहिता**।*

*(६) **मोग्धा**। **'मुह वैचित्ये'** (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) **स्नोग्धा**। **'ष्णुह उद्गिरणे'** (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(८) **स्नेग्धा**। **'ष्णिह प्रीतौ'** (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः–

(१२) निरः कुषः।४६।

प०वि०-निरः ५।१ कुषः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निरः कुषोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-निरः पूर्वात् कुषोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-निष्कोष्टा, निष्कोषिता। निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम्। निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(निरः) निर्-उपसर्गपूर्वक (कुषः) कुष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**निष्कोष्टा, निष्कोषिता**। तलवार आदि को खैंचकर बाहर निकालनेवाला। **निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम्**। बाहर निकालने के लिये। **निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम्**। बाहर निकालना चाहिये।*

***सिद्धि**-(१) **निष्कोष्टा**। यहां निर्-उपसर्गपूर्वक **'कुष् निष्कर्षे'** (क्र्या०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। 'निर्' के रेफ को **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।३५) से विसर्जनीय की अनुवृत्ति में **'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य'** (८।३।४१) से विसर्जनीय के षत्व होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**निकोषिता**।*

*(२) **निष्कोष्टुम्**। यहां निर्-उपसर्गपूर्वक 'कुष्' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **निष्कोष्टव्यम्**। यहां निर्-उपसर्गपूर्वक 'कुष्' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागमः–

(१३) इण् निष्ठायाम्।४७।

प०वि०–इट् १।१ निष्ठायाम् ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, निरः, कुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः–निरः कुषोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य निष्ठाया इट्।

अर्थः–निरः पूर्वात् कुषोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य निष्ठाप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०–निष्कुषितः, निष्कुषितवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निरः) निर्-उपसर्गपूर्वक (कुषः) कुष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**निष्कुषितः, निष्कुषितवान्।** तलवार आदि को खैंचकर बाहर निकाला।*

सिद्धि-निष्कुषितः। *यहां निर्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'कुष' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**निष्कुषितवान्।***

इडागम-विकल्पः–

(१४) तीषसहलुभरुषरिषः।४८।

प०वि०–ति ७।१ इष-सह-लुभ-रुष-रिषः ५।१।

स०–इषश्च सहश्च लुभश्च रुषश्च रिष् च एतेषां समाहार इषसहलुभरुषरिष्, तस्मात्-इषसहलुभरुषरिषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–इषसहलुभरुषरिषोऽङ्गादेर्वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः–इषसहलुभरुषरिषिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य तकारादेर्वलादेरार्ध-धातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–**(इष)** एष्टा, एषिता। **(सह)** सोढा, सहिता। **(लुभ)** लोब्धा, लोभिता। **(रुष)** रोष्टा, रोषिता। **(रिष)** रेष्टा, रेषिता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इष०) इष, सह, लुभ, रुष, रिष इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (तादेः) तकारादि रूप (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(इष) **एष्टा, एषिता।** इच्छा करनेवाला। (सह) **सोढा, सहिता।** सहन करनेवाला। (लुभ) **लोब्धा, लोभिता।** लोभ करनेवाला। (रुषः) **रोष्टा, रोषिता।** रोष करनेवाला। (रिषः) **रेष्टा, रेषिता।** हिंसा करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **एष्टा।** यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**एषिता।***

*यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु का ग्रहण है, **'इष गतौ'** (दि०प०) इस दैवादिक धातु का नहीं, इसे नित्य इडागम होता है-**प्रेषिता, प्रेषितुम्, प्रेषितव्यम्। 'इष आभीक्ष्ण्ये'** (क्र्या०प०) धातु क्र्यादिगण में पठित है। उसका भी यहां ग्रहण अभीष्ट नहीं है। अतः कई आचार्य सूत्र में 'इषु' पाठ मानते हैं।*

*(२) **सोढा।** यहां **'षह मर्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'सहिवहोरोदवर्णस्य'** (६।३।११२) से अ-वर्ण को 'ओकार' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **लोब्धा।** यहां **'लुभ गार्ध्ये'** (दि०प०) और **'लुभ विमोहने'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से भकार को 'जश्' बकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **रोष्टा।** यहां **'रुष रोषे'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **रेष्टा।** यहां **'रिष हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः-

(१५) सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्।४६।

प०वि०-सनि ७।१ इवन्त-ऋध-भ्रस्ज-दम्भु-श्रि-स्वृ-यु-ऊर्णु-भर-ज्ञपि-सनाम् ६।३।

स०-इव् अन्ते यस्य स इवन्तः। इवन्तश्च ऋधश्च भ्रस्जश्च दम्भुश्च श्रिश्च स्वृश्च युश्च ऊर्णुश्च भरश्च ज्ञपिश्च सन् च ते-इवन्त०सनः, तेषाम्-इवन्त०सनाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयुर्णुभरज्ञपिसनिभ्योऽङ्गेभ्यो वलादेरार्धधातुकस्य सनो वा इट्।

अर्थः-इवन्तेभ्य ऋधभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य सनो विकल्पेन इडागमो भवति। **उदाहरणम्**-

सं०	धातुः इवन्तः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	दिव्	दिदेविषति	वह क्रीडा आदि करना चाहता है।
		दुद्यूषति	-सम-
(२)	सिव्	सिसेविषति	वह सिलाई करना चाहता है।
		सुस्यूषति	-सम-
(३)	ऋध्	अर्दिधिषति	वह बढ़ना चाहता है।
		ईर्त्सति	-सम-
(४)	भ्रस्ज	बिभ्रज्जिषति	वह पकाना चाहता है।
		बिभ्रक्षति	-सम-
		बिभर्ज्जिषति	-सम-
		बिभर्क्षति	-सम-
(५)	दम्भु	दिदम्भिषति	वह दम्भ (ढोंग) करना चाहता है।
		धिप्सति	-सम-
		धीप्सति	-सम-
(६)	श्रि	उच्छिश्रयिषति	वह सेवा करना चाहता है।
		उच्छिश्रीषति	-सम-
(७)	स्वृ	सिस्वरिषति	वह शब्द/उपताप (पीड़ा) करना चाहता है।
		सुस्वूर्षति	-सम-
(८)	यु	यियविषति	वह मिश्रण-अमिश्रण करना चाहता है।
		युयूषति	-सम-

सं०	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(९)	ऊर्णु	प्रौर्णुनविषति	वह आच्छादि करना चाहता है।
		प्रौर्णुनुविषति	–सम–
		प्रौर्णुनूषति	–सम–
(१०)	भर	बिभरिषति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
		बुभूर्षति	–सम–
(११)	ज्ञपि	जिज्ञपयिषति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
		ज्ञीप्सति	–सम–
(१२)	सनि	सिसनिषति	वह दान करना चाहता है।
		सिषासति	–सम–

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवन्त०) इव् जिसके अन्त में हैं उससे तथा ऋध, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि और सन् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (सनः) सन्-प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०–उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***दिदेविषति।*** *यहां* ***'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिगतिषु'*** *(दि०प०) धातु से* ***'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'*** *(३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम होता है। तत्पश्चात् सनन्त 'देविष' धातु से द्वित्व और 'लट्' प्रत्यय है।*

(२) ***दुद्यूषति।*** *दिव्+सन्। दि ऊठ्+स। द्यू+स। द्यूर्ष। द्यूष्-द्यूष। दु+द्यूष। दुद्यूष+लट्। दुद्यूषति।*

यहां पूर्वोक्त 'दिव्' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है। ***'हलन्ताच्च'*** *(१।२।१०) से 'सन्' प्रत्यय को कित्त्व,* ***'च्छ्वोः शूडनुनासिके च'*** *(६।४।१९) से वकार को ऊठ्-आदेश,* ***'इको यणचि'*** *(६।१।७६) से यणादेश होकर* ***'सन्यडोः'*** *(६।१।९) से 'द्युष' को द्वित्व होता है।* ***'हलादिः शेषः'*** *(७।४।६०) से आदि-हल् (व्) का शेषत्व और* ***'ह्रस्वः'*** *(७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (उ) होता है।*

ऐसे ही ***'षिवु तन्तुसन्ताने'*** *(दि०प०) धातु से-*~~~~***सिसेविषति, सुस्यूषति।***

(३) ***अर्दिधिषति।*** *यहां* ***'ऋधु वृद्धौ'*** *(दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से लघूपध गुण*

करने पर 'अजादेर्द्वितीयस्य' (६।१।२) से अजादि 'अर्धि' के द्वितीय एकाच् 'धिस' को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व (धि) होता है। 'न न्द्राः संयोगादयः' (६।१।३) से संयोगादि रेफ को द्वित्व नहीं होता है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है।

(४) **ईर्त्सीति।** ऋध्+सन्। ऋध्+स। ऋध्स। ऋ+ध्स्-धस। ऋ+ध्-ध्स। ऋ+द-ध्स। ऋ+दि-ध्स। ईर्+०+ध्स्। ईर्+त्स। ईर्त्स। ईर्त्स+लट्। ईर्त्सीति।

यहां **'ऋधु वृद्धौ'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) से द्वितीय एकाच् अवयव (ध्स) को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व, **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है। **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व (दि), **'आप्ज्ञप्यृधामीत्'** (७।४।५५) से ईत्व और 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' (७।४।५८) से अभ्यास का लोप और **'खरि च'** (८।४।५५) से से धकार को चर् तकार होता है।

(५) **बिभ्रज्जिषति।** यहां **'भ्रस्ज पाके'** (तु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से सकार को जश् दकार और **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से दकार को चवर्ग जकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**बिभ्रक्षति। बिभर्ज्जिषति** में **'भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्'** (६।४।४७) से 'भ्रस्ज्' के रेफ और उपधाभूत सकार के स्थान में 'रम्' आगम है। **बिभर्क्षति**-में विकलप-पक्ष में इडागम नहीं है। पूर्ववत् 'रम्' आगम रेफ और उपधाभूत सकार की निवृत्ति होकर **'चोः कुः'** (८।२।३०) से जकार को कुत्व गकार और **'खरि च'** (८।४।५५) से गकार को चर् ककार और 'आदेशप्रत्ययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

(६) **दिदम्भिषति।** यहां 'दम्भु दम्भे' (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **धिप्सति।** दम्भ्+सन्। दभ्+स। दभ्स। दभ्स्-दभ्स। ०-दभ्स। धभ्स। धिप्स।। धिप्स+लट्। धिप्सति।। धीप्सति।

यहां **'दम्भु दम्भे'** (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है। पूर्ववत् अभ्यास का लोप, **'एकाचो बशो भष्०'** (८।२।३७) से दकार को भष् धकार, **'खरि च'** (८।४।५५) से भकार को चर् पकार होता है। 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से 'सन्' के किद्वत् होने से **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। **'दम्भ इच्च'** (७।४।५६) से इत्त्व और ईत्त्व भी होता है-**धीप्सति।**

(८) **उच्छिश्रयिषति।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'शश्छोऽटि'** (८।४।६३) से शकार को छकार और **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से तकार को चवर्ग चकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**उच्छिश्रीषति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ होता है।

(९) **सिस्वरिषति।** यहां **'स्वृ शब्दोपतापयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'उरत्'** (७।३।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार आदेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से इसे रपरत्व और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से इकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**सुस्वूर्षति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ (स्वॄ) **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से 'ॠ' के स्थान में उकारादेश और **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'स्वूर्ष' इसको द्वित्व और अभ्यास-कार्य होता है।

(१०) **यियविषति।** यहां **'यु मिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'ओः पुयण्ज्यपरे'** (७।४।८०) से अभ्यास को इकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(११) **प्रौर्णुनविषति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) से द्वितीय एकाच् अवयव (नुस्) को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम होता है। **'विभाषोर्णोः'** (१।२।३) से 'सन्' के ङित्वत् होने से **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से उवङ्-आदेश होता है-**प्रोर्णुनुविषति।** विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**प्रोर्णुनूषति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से अङ्ग को दीर्घ होता है।

(१२) **बिभरिषति।** यहां **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**बुभूर्षति। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।२।१०२) से ऋकार को उत्व, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से इसे रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है।

(१३) **जिज्ञपयिषति।** यहां **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**ज्ञीप्सति। 'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम, **'आप्ज्ञप्यृधामीत्'** (७।४।५५) से ईकार आदेश और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है।

(१४) **सिसनिषति।** यहां **'षणु दाने'** (त०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प पक्ष में इडागम नहीं है-**सिषासति। 'जनसनखनां सञ्झलोः'** (६।४।४३) से आकार आदेश होता है।

इडागम-विकल्पः—

(१६) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः।५०।

प०वि०–क्लिशः ५।१ क्त्वा-निष्ठयोः ६।२।

स०–क्त्वा च निष्ठा च ते क्त्वानिष्ठे, तयोः–क्त्वानिष्ठयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्लिशोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्वा इट्।

अर्थः–क्लिशोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयो-र्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–**(क्त्वा)** क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा। **(निष्ठा)** क्लिष्टः, क्लिष्टवान्। क्लेशितः, क्लेशितवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(क्लिशः) क्लिश इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–**(क्त्वा) क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा।** दुःख देकर। **(निष्ठा) क्लिष्टः, क्लिष्टवान्। क्लेशितः, क्लेशितवान्।** दुःख दिया।*

*सिद्धि–(१) **क्लिष्ट्वा।** यहां **'क्लिशू विबाधने'** (क्र्या०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है–**क्लिशित्वा। 'मृडमृदगुधकुष-क्लिशवदवसः क्त्वा'** (१।२।७) से सेट् क्त्वा के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **क्लिष्टः।** यहां पूर्वोक्त 'क्लिश्' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। क्तवतु प्रत्यय में–**क्लिष्टवान्।** विकल्प-पक्ष में इडागम है–**क्लिशितः, क्लिशितवान्।***

इडागम-विकल्पः—

(१७) पूङश्च।५१।

प०वि०–पूङः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा, क्त्वानिष्ठयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूङोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्वा इट्।

अर्थः-पूङोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) पूत्वा, पवित्वा। **(निष्ठा)** सोमोऽतिपूतः, सोमोऽतिपवितः। पूतवान्, पवितवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पूङः) पूङ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-प्रत्ययों को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(क्त्वा) **पूत्वा, पवित्वा।** पवित्र करके। (निष्ठा) **सोमोऽतिपूतः, सोमोऽतिपवितः।** सोम को अति पवित्र (शुद्ध) किया गया। **पूतवान्, पवितवान्।** पवित्र किया गया।*

*सिद्धि-**पूत्वा।** यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**पवित्वा।** ऐसे ही निष्ठा प्रत्यय में-**पूतः, पवितः। पूतवान्, पवितवान्।** 'श्र्युकः किति' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः विकल्प-विधान किया गया है।*

इडागमः--

(१८) वसतिक्षुधोरिट्।५२।

प०वि०-वसति-क्षुधोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) इट् १।१।

स०-वसतिश्च क्षुध् च तौ वसतिक्षुधौ, तयोः-वसतिक्षुधोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वसतिक्षुधिभ्यामङ्गाभ्यां वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वा-निष्ठयोरिट्।

अर्थः-वसतिक्षुधिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वा-निष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(**वसतिः**) **क्त्वा**-उषित्वा। **निष्ठा**-उषितः, उषितवान्। (**क्षुधिः**) **क्त्वा**-क्षुधित्वा। **निष्ठा**-क्षुधितः, क्षुधितवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वसतिक्षुधिभ्याम्) वसति, क्षुधि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वसति) **क्त्वा-उषित्वा**। निवास करके। **निष्ठा-उषितः, उषितवान्**। निवास किया। (क्षुधि) **क्त्वा-क्षुधित्वा**। भूखा होकर। **निष्ठा-क्षुधितः, क्षुधितवान्**। भूखा हुआ।*

*सिद्धि-(१) **उषित्वा**। यहां **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है, इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।४।१५) से सम्प्रसारण और **'शासिवसिघसीनाम्'** (८।३।६०) से षत्व होता है। **'न क्त्वा सेट्'** (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय को कित्त्व प्रतिषेध की प्राप्ति में **'मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा'** (१।२।७) से सेट् क्त्वा किद्वत् होता है। 'वस' धातु के अनिट् होने से **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इडागम का विधान किया गया है।*

*ऐसे ही निष्ठा-प्रत्यय में-**उषितः, उषितवान्**। **'क्षुध बुभुक्षायाम्'** (दि०प०) धातु से-**क्षुधित्वा, क्षुधितः, क्षुधितवान्**।*

इडागमः–

(१६) अञ्चेः पूजायाम्।५३।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ पूजायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूजायाम् अञ्चेरङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिट्।

अर्थः-पूजायामर्थे वर्तमानाद् अञ्चेरङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) अञ्चित्वा। **(निष्ठा)** अञ्चिता अस्य गुरवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूजायाम्) पूजा अर्थ में विद्यमान (अञ्चेः) अञ्चि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(क्त्वा) **अञ्चित्वा।** पूजा करके। (निष्ठा) **अञ्चिता अस्य गुरवः।** यह गुरुजनों का पूजक है।*

सिद्धि-(१) अञ्चित्वा। *यहां 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूजा अर्थ में 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'अञ्चति' धातु का 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप प्राप्त है, किन्तु 'नाञ्चेः पूजायाम्' (६।४।३०) से प्रतिषेध होता है।*

'अञ्चु' धातु के उदित होने से 'उदितो वा' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय को विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः यह नित्य इडागम विधान किया गया है।

*(२) **अञ्चिता अस्य गुरवः।** यहां 'अञ्चु' धातु से **'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'** (३।२।१८८) से वर्तमानकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'क्तस्य च वर्तमाने'** (२।३।६७) से कर्ता में (अस्य) षष्ठीविभक्ति का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः-

(२०) लुभो विमोहने।५४।

प०वि०-लुभः ५।१ विमोहने ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-विमोहने लुभोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिट्।

अर्थः-विमोहनेऽर्थे वर्तमानाल्लुभोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) लुभित्वा, लोभित्वा। **(निष्ठा)** विलुभिताः केशाः, विलुभितः सीमन्तः, विलुभितानि पदानि।

आर्यभाषाः अर्थ-(विमोहने) व्याकुल करने अर्थ में विद्यमान (लुभः) लुभ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(क्त्वा) लुभित्वा, लोभित्वा।** व्याकुल करके। **(निष्ठा) विलुभिताः केशाः।** बिखरे हुये बाल। **विलुभितः सीमन्तः।** बिखरी हुई केशों की मांग। **विलुभितानि पदानि।** बिखरे हुये पद।*

सिद्धि-लुभित्वा। *यहां 'लुभ विमोहने' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च' (१।२।२६) से सेट् क्त्वा प्रत्यय के किद्वत् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में लघूपध गुण होता है लोभित्वा। ऐसे ही निष्ठा में-विलुभिताः केशाः इत्यादि।*

'क्त्वा' प्रत्यय में 'तीषसहलुभरुषरिषः' (७।२।४८) से विकल्प से इडागम प्राप्त था और निष्ठा में 'यस्य विभाषा' (७।२।१५) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।

इडागमः-

(२१) जृव्रश्च्योः क्त्वि।५५।

प०वि०- जृ-व्रश्च्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) क्त्वि ७।१।

स०- जृश्च व्रश्चिश्च तौ जृव्रश्ची, तयोः-जृव्रश्च्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०- अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः- जृव्रश्चिभ्यामङ्गाभ्यां वलादेरार्धधातुकस्य क्त्व इट्।

अर्थः- जृव्रश्चिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वाप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०- **(जृ)** जरित्वा, जरीत्वा। **(व्रश्चिः)** व्रश्चित्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जृव्रश्चिभ्याम्) जृ, व्रश्चि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (क्त्व.) क्त्वा प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-(जृ) जरित्वा, जरीत्वा। जीर्ण (वृद्ध) होकर। (व्रश्चि) व्रश्चित्वा। काटकर।

सिद्धि-(१) जरित्वा। यहां 'जृ वयोहानौ' (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'वृतो वा' (७।२।३५) से इडागम को विकल्प से दीर्घ होता है-जरीत्वा। 'आधृषाद्वा' (चु०गणसूत्र) से 'जृ' धातु को विकल्प से 'णिच्' प्रत्यय होता है। अतः 'णिच्' प्रत्यय नहीं है।

(२) व्रश्चित्वा। 'ओव्रश्चू छेदने' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। 'न क्त्वा सेट्' (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय के कित् न होने से 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से 'व्रश्च्' को सम्प्रसारण नहीं है।

'जॄ' धातु से परे 'क्त्वा' प्रत्यय को 'श्र्युक: किति' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। 'व्रश्चु' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय को 'उदितो वा' (७।२।५६) से विकल्प में इडागम प्राप्त था। अत: यह नित्य इडागम का विधान का विधान किया गया है।

इडागम-विकल्पः–

(२२) उदितो वा।५६।

प०वि०–उदितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०–उद् इद् यस्य स उदित्, तस्मात्–उदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, इट्, क्त्वि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उदितोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वो वा इट्।

अर्थः–उदितोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वाप्रत्ययस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–**शमु**–शमित्वा, शान्त्वा। **तमु**–तमित्वा, तान्त्वा। **दमु**–दमित्वा, दान्त्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उदितः) जिसका उकार इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (क्त्वः) क्त्वा-प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–शमु-**शमित्वा, शान्त्वा**। उपशान्त करके। तमु-**तमित्वा, तान्त्वा**। आकाङ्क्षा करके। दमु-**दमित्वा, दान्त्वा**। उपशान्त करके।*

*सिद्धि-(१) **शमित्वा**। यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**शान्त्वा**। '**अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति**' (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

*ऐसे ही 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से-**तमित्वा, तान्त्वा**। 'दमु उपशमे' (दि०प०) धातु से-**दमित्वा, दान्त्वा**।*

इडागम-विकल्पः–

(२३) सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः।५७।

प०वि०–से ७।१ असिचि ७।१ कृत-चृत-च्छृद-तृद-नृतः ५।१।

स०–न सिजिति असिच्, तस्मिन्–असिचि (नञ्तत्पुरुषः)। कृतश्च चृतश्च छृदश्च तृदश्च नृच्च एतेषां समाहारः–कृतचृतच्छृदतृदनृत्, तस्मात्–कृतचृतच्छृदतृदनृतः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वा, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृतचृतच्छृदतृदनृतोऽङ्गाद् असिचः सस्यार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-कृतचृतच्छृदतृदनृतिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सिज्वर्जितस्य सकारादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति। **उदाहरणम्**--

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	कृत	कर्त्स्यति, कर्तिष्यति।	वह काटेगा/लपेटेगा (कातेगा)।
		अकर्त्स्यत्, अकर्तिष्यत्।	यदि वह काटता/लपेटता।
		चिकृत्सति, चिकर्तिष्यति।	वह काटना/लपेटना चाहता है।
(२)	चृत	चर्त्स्यति, चर्तिष्यति।	वह मारेगा/गूंथेगा।
		अचर्त्स्यत्, अचर्तिष्यत्।	यदि वह मारता/गूंथता।
		चिचृत्सति, चिचर्तिषति।	वह मारना/गूंथना चाहता है।
(३)	छृद	छर्त्स्यति, छर्दिष्यति।	वह चमकेगा/खेलेगा।
		अच्छर्त्स्यत्, अच्छर्दिष्यत्।	यदि वह चमकता/खेलता।
		चिच्छृत्सति, चिच्छर्दिष्यति।	वह चमकना/खेलना चाहता है।
(४)	तृद	तर्त्स्यति, तर्दिष्यति।	वह हिंसा/दान करेगा।
		अतर्त्स्यत्, अतर्दिष्यत्।	यदि वह हिंसा/दान करता।
		तितृत्सति, तितर्दिष्यति।	वह हिंसा/दान करना चाहता है।
(५)	नृत	नर्त्स्यति, नर्तिष्यति।	वह नाचेगा।
		अनर्त्स्यत्, अनर्तिष्यत्।	यदि वह नाचता।
		निनृत्सति, निनर्तिष्यति।	वह नाचना चाहता है।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृत०) कृत, चृत, छृद, तृद, नृत् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (असिचः) सिच् से भिन्न (सकारादेः) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

***सिद्धि-(१) कर्त्स्यति।** यहां 'कृती छेदने' (रुधा०प०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय*

*है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**कर्तिष्यति**।*

*(२) **अकर्त्स्यत्**। यहां पूर्वोक्त 'कृती' धातु से '**लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ**' (३।३।१३९) से लृङ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**अकर्तिष्यत्**।*

*(३) **चिकृत्सति**। यहां पूर्वोक्त 'कृती' धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सकारादि प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**चिकर्तिषति**।*

*(४) **चर्त्स्यति**। '**चृती हिंसासंग्रन्थनयोः**' (तु०प०) पूर्ववत्।*

*(५) **छर्त्स्यति**। '**उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः**' (रु०उ०) पूर्ववत्।*

*(६) **तर्त्स्यति**। '**उतृदिर् हिंसादानयोः**' (रु०उ०) पूर्ववत्।*

*(७) **नर्त्स्यति**। '**नृती गात्रविक्षेपे**' (तु०प०) पूर्ववत्।*

इडागमः–

(२४) गमेरिट् परस्मैपदेषु।५८।

प०वि०-गमेः ५।१ इट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमेरङ्गात् सस्यार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इट्।

अर्थः-गमेरङ्गाद् उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो भवति।

उदा०-गमिष्यति। अगमिष्यत्। जिगमिषति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गमेः) गमि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**गमिष्यति**। वह जायेगा। **अगमिष्यत्**। यदि वह जाता। **जिगमिष्यति**। वह जाना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **गमिष्यति**। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' और 'स्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम होता है।*

*(२) **अगमिष्यत्**। यहां पूर्वोक्त 'गम्लृ' धातु से पूर्ववत् 'लृङ्' प्रत्यय है।*

*(३) **जिगमिषति**। यहां पूर्वोक्त 'गम्लृ' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है।*

इडागम-प्रतिषेधः–

(२५) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ।५६।

प०वि०–न अव्ययपदम्, वृद्भ्यः ५ ।३ चतुर्भ्यः ५ ।३ ।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से, इट्, परस्मैपदेषु, न इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–चतुर्भ्यो वृद्भ्योऽङ्गेभ्यः सस्यार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इड् न ।

अर्थः–चतुर्भ्यो वृद्भ्यः–वृत्-आदिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो न भवति । **उदाहरणम्–**

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	वृतु	वर्त्स्यति ।	वह वर्ताव करेगा ।
		अवर्त्स्यत् ।	यदि वह वर्ताव करता ।
		विवृत्सति ।	वह वर्ताव करना चाहता है ।
(२)	वृधु	वर्त्स्यति ।	वह बढ़ेगा ।
		अवर्त्स्यत् ।	यदि वह बढ़ता ।
		विवृत्सति ।	वह बढ़ना चाहता है ।
(३)	शृधु	शर्त्स्यति ।	वह पादेगा ।
		अशर्त्स्यत् ।	यदि वह पादता ।
		शिशृत्सति ।	वह पादना चाहता है ।
(४)	स्यन्दू	स्यन्त्स्यति ।	वह बहेगा ।
		अस्यन्त्स्यत् ।	यदि वह बहता ।
		सिस्यन्त्सति ।	वह बहना चाहता है ।

वृतु वर्तने, वृधु वृद्धौ, शृधु शब्दकुत्सायाम्, स्यन्दू प्रसवणे इति भ्वादिगणान्तर्गताश्चत्वारो वृतादयः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चतुर्भ्यः) चार (वृद्भ्यः) वृत् आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम (न) नहीं होता है ।*

उदा०–*उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है ।*

सिद्धि-(१) वर्त्स्यति। यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम नहीं होता है। 'वृद्भ्यः स्यसनोः' (१।३।९२) से परस्मैपद होता है।

(२) अवर्त्स्यत्। यहां पूर्वोक्त 'वृतु' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) विवृत्सति। यहां पूर्वोक्त 'वृतु' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है।

ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' आदि धातुओं से शेष पदों की सिद्धि करें।

इडागम-प्रतिषेधः–

(२६) तासि च क्लृपः।६०।

प०वि०–तासि ७।१ च अव्ययपदम्, क्लृपः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से, इट्, परस्मैपदेषु, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्लृपोऽङ्गात् तासेः सस्य चार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इड् न।

अर्थः–क्लृपोऽङ्गाद् उत्तरस्य तासेः सकारादेश्चाऽऽर्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो न भवति।

उदा०–**(तास्)** स श्वः कल्प्ता। **(सकारादिः)** कल्प्स्यति। अकल्प्स्यत्। चिक्लृप्सति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्लृपः) क्लृप् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तासेः) तासि (च) और (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-(तासि) स श्वः कल्प्ता। वह कल समर्थ होगा। (सकारादि) कल्प्स्यति। वह समर्थ होगा। अकल्प्स्यत्। यदि वह समर्थ होता। चिक्लृप्सति। वह समर्थ होना चाहता है।

सिद्धि-(१) कल्प्ता। यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तासि' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम नहीं होता है। 'कृप्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८५) से लघूपध गुण होकर 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से रेफ को लकारादेश होता है। कृप्=करप्=कल्प्। 'लुटि च क्लृपः' (१।३।९३) से परस्मैपद होता है।

*(२) **कल्प्स्यति**। यहां पूर्वोक्त 'कृप्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अकल्प्स्यत्**। यहां पूर्वोक्त 'कृप्' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **चिक्लृप्सति**। यहां पूर्ववत् 'कृप्' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। यह 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से किद्वत् होता है अतः प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से 'कृप्' धातु के ऋकारस्थ रेफांश को लकार आदेश होता है। कृप्=क्लृऋप्=क्लृप्। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-प्रतिषेधः--

(२७) अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्।६१।

प०वि०- अचः ५।१ तास्वत् १।१ थलि ७।१ अनिटः ५।१ नित्यम् १।१।

तद्धितवृत्तिः-तासाविव इति तासवत् '**तत्र तस्येव**' (५।१।११५) इत्यनेन सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-न विद्यते इड् यस्य सः-अनिट्, तस्मात्-अनिटः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न। उत्तरसूत्राद् 'उपदेशे' इत्यनुकर्षणीयम्।

अन्वयः-उपदेशेऽचस्तासवन्नित्यमनिटः, तासवत् थल इड् न।

अर्थः-उपदेशे येऽजन्ता धातवः, तासौ नित्यमनिटः तेभ्यस्तास्वत् थल इडागमो न भवति।

उदा०-**(या) याता**-ययाथ। **(चि) चेता**-चिचेथ। **(नी) नेता**-निनेथ। **(हु) होता**-जुहोथ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो (अचः) अजन्त धातु (तास्वत्) तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्-अनिटः) नित्य-अनिट् हैं, उनसे परे (तास्वत्) तास् प्रत्यय के समान (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(या) याता-ययाथ**। तूने पहुंचाया। **(चि) चेता-चिचेथ**। तूने चयन किया। **(नी) नेता-निनेथ**। तूने पहुंचाया। **(हु) होता-जुहोथ**। तूने यज्ञ किया।*

*सिद्धि-**ययाथ**। यहां '**या प्रापणे**' (अदा०प०) इस अजन्त, नित्य अनिट् धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे तास्-प्रत्यय के समान इडागम नहीं होता है।*

*ऐसे ही-'**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से-**चिचेथ**। '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**निनेथ**। 'हु दानादनयो:, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से-**जुहोथ**।*

इडागम-प्रतिषेधः—

(२८) उपदेशेऽत्वतः।६२।

प०वि०-उपदेशे ७।१ अत्वत: ५।१।

स०-अत् (अकार:) अस्मिन्नस्तीति अत्वान्, तस्मात्-अत्वत: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, तास्वत्, थलि, अनिट:, नित्यमिति चानुवर्तते।

अन्वय:-उपदेशे योऽत्ववान् तासौ नित्यम् अनिट्, तस्माद् अत्वतोऽङ्गात् थलस्तासवद् इड् न।

अर्थ:-उपदेशे यो धातुरकारवान्, तासौ च नित्यम् अनिट्, तस्माद् अकारवतोऽङ्गाद् उत्तरस्य थलस्तास्वद् इडागमो न भवति।

उदा०-**(पच) पक्ता**-पपक्थ। **(यज) यष्टा**-इयष्ठ। **(शक्लृ) शक्ता**-शशक्थ।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो धातु अकारवाली है और तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम् अनिट्) नित्य-अनिट् है उस (अत्वत:) अकारवाले (अङ्गात्) अङ्ग से परे (थल:) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(पच) **पक्ता-पपक्थ**। तूने पकाया। **(यज) यष्टा-इयष्ठ**। तूने यज्ञ किया। **(शक्लृ) शक्ता-शशक्थ**। तू समर्थ हुआ।*

*सिद्धि-**पपक्थ**। यहां '**डुपचष् पाके**' (स्वा०उ०) इस अकारवान् धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे तास्-प्रत्यय के समान इडागम नहीं होता है।*

*ऐसे ही '**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से-**इयष्ठ**। '**शक्लृ शक्तौ**' (स्वा०प०) धातु से-**शशक्थ**।*

इडागम-प्रतिषेधः--

(२९) ऋतो भारद्वाजस्य।६३।

प०वि०-ऋतः ५।१ भारद्वाजस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, तासवत्, थलि, अनिटः, नित्यम्, उपदेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे य ऋदन्यस्तासौ च नित्यमनिट्, तस्माद् ऋतोऽङ्गात् थल इड् न, भारद्वाजस्य।

अर्थः-उपदेशे यो ऋकारान्तस्तासौ च नित्यमनिट्, तस्माद् ऋकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य थलस्तास्वद् इडागमो न भवति, भारद्वाजस्याऽऽचार्यस्य मतेन।

उदा०-(स्मृ) स्मर्ता-सस्मर्थ। **(ध्वृ) ध्वर्ता-**दध्वर्थ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो धातु ऋकारान्त है और तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्-अनिट्) नित्य-अनिट् है उस (ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है (भारद्वाजस्य) भारद्वाज आचार्य के मत में।*

*उदा०-**(स्मृ) स्मर्ता-सस्मर्थ।** तूने चिन्ता (स्मरण) की। **(ध्वृ) ध्वर्ता-दध्वर्थ।** तूने हूर्छा (कुटिलता) की।*

सिद्धि-सस्मृथ। *यहां 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) इस ऋकारान्त धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे भारद्वाज आचार्य के मत में इडागम नहीं होता है। ऐसे ही 'ध्वृ हूर्च्छने' (भ्वा०प०) धातु से-**दध्वर्थ।***

विशेषः *भारद्वाज आचार्य के मत में केवल ऋकारान्त धातुओं से परे थल् को इडागम नहीं होता है, अन्यत्र तो होता है-**ययिथ, पेचिथ, शेकिथ।** इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों सूत्रों में विकल्प-विधान हो जाता है।*

निपातनम्-

(३०) बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे।६४।

प०वि०-बभूथ क्रियापदम्, आततन्थ क्रियापदम्, जगृम्भ क्रियापदम्, ववर्थ क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, निगमे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे बभूथ ततन्थ जगृम्भ ववर्थेति निपातनम्।

अर्थः-निगमे=वेदविषये बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ, ववर्थ इत्येतानि पदानि निपात्यन्ते, अर्थात्-एतेषु क्रादिनियमात् प्राप्तस्येडागमस्याऽभावो निपात्यते। उदाहरणम्--

(१) **बभूथ**-त्वं हि होता प्रथमो बभूथ (तै०सं० ३।१।४।४)। **बभूथ**=तू हुआ। बभूविथ इति भाषायाम्।

(२) **आततन्थ**-येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ (ऋ० ३।२२।२)। आततन्थ=तूने विस्तार किया। आतेनिथ इति भाषायाम्।

(३) **जगृम्भ**-जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् (१०।४७।१) जगृम्भ=हमने ग्रहण किया। जगृहिम इति भाषायाम्।

(४) **ववर्थ**-त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ (ऋ० १।९१।२२)। ववर्थ त्वं हि ज्योतिषा (काशिका)। ववर्थ=तूने वरण किया। ववरिथ इति भाषायाम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(निगमे) वेदविषय में (बभूथ०) बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ ववर्थ (इति) ये पद निपातित हैं, अर्थात्* ***'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि'*** *(७।२।१३) इस क्रादि नियम से प्राप्त इडागम का अभाव निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***बभूथ।*** *यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय,* ***'तिप्तस्झि०'*** *(३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और* ***'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'*** *(३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे कृ-आदि नियम से प्राप्त इडागम का प्रतिषेध होता है।*

(२) ***आततन्थ।*** *आङ्पूर्वक 'तनु विस्तारे' (त०प०) धातु से पूर्ववत्।*

(३) ***जगृम्भ।*** *यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'मस्' आदेश,* ***'परस्मैपदानां णलतुतुस्०'*** *(३।४।८२) से 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश है।* ***'ग्रहिज्यावयि०'*** *(६।१।१६) से सम्प्रसारण और वा०-* ***'हृग्रहोर्भश्छन्दसि'*** *(८।२।३५) से हकार को भकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) ***ववर्थ।*** *'वृञ् वरणे' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

यहां ***'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि'*** *(७।२।१३) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त ही था, पुनः वेद में यह नियमार्थ कथन किया गया है कि वेद में इडागम नहीं होता है, भाषा में तो होता है-* ***ववरिथ।***

इडागम-विकल्पः--

(३१) विभाषा सृजिदृशोः।६५।

प०वि०-विभाषा १।१ सृजि-दृशोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-सृजिश्च दृश् च तौ सृजिदृशौ, तयो:-सृजिदृशोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, थलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सृजिदृशिभ्याम् अङ्गाभ्यां थलो विभाषा इड् **न**।

अर्थः-सृजिदृशिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य थलो विकल्पे**न इडागमो** न भवति।

उदा०-**(सृजि)** त्वं सस्रष्ठ, ससर्जिथ। **(दृशि)** त्वं दद्रष्ठ, **ददर्शिथ**।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सृजिदृशिभ्याम्) सृजि, दृशि इन (अङ्गानाम्) **अङ्गों से** परे (थलः) थल् प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सृजि) त्वं **सस्रष्ठ, ससर्जिथ।** तूने सृष्टि की। (दृशि) त्वं दद्रष्ठ, ददर्शिथ। तूने दर्शन किया।*

*सिद्धि-(१) **सस्रष्ठ।** यहां 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् लिट्, सिप् आदेश और इसके स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**ससर्जिथ।** 'कृसृभृवृ०' (७।२।१३) इस कृ-आदि नियम से नित्य इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से विकल्प-विधान किया गया है।*

*(२) **दद्रष्ठ।** यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' (६।१।५८) से 'अम्' आगम और 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से शकार को षत्व होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-ददर्शिथ।*

***विशेषः** 'नवेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है अतः प्राप्त-विभाषा में 'न' से निषेध होकर 'वा' से विकल्प किया जाता है।*

इडागमः--

(३२) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्।६६।

प०वि०-इट् १।१ अत्ति-अर्ति-व्ययतीनाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-अत्तिश्च अर्तिश्च व्ययतिश्च ते-अत्त्यर्तिव्ययतयः, तेषाम्-अत्त्यर्तिव्ययतीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, थलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अत्त्यर्तिव्ययतिभ्योऽङ्गेभ्यस्थल इट्।

अर्थः-अत्त्यर्तिव्ययतिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य थल इडागमो भवति।

उदा०-**(अत्तिः)** त्वम् आदिथ। **(अर्तिः)** त्वम् आरिथ। **(व्ययतिः)** त्वं संविव्ययिथ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अत्त्यर्तिव्ययतिभ्यः) अत्ति, अर्ति, व्ययति इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(अत्ति) त्वम् आदिथ।** तूने भक्षण किया। **(अर्ति) त्वम् आरिथ।** तूने गति=ज्ञान, गमन, प्राप्ति की। **(व्ययति) त्वं संविव्ययिथ।** तूने वस्त्र धारण किया।*

*सिद्धि-(१) **आदिथ।** यहां **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

*(२) **आरिथ।** यहां **'ऋ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र इसे इडागम होता है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह इडागम विधान किया गया है।*

*(३) **संविव्ययिथ।** यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'व्येञ् संवरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) के नियम से अत्ति और व्ययति धातुओं को विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः यह नित्य इडागम विधान किया गया है। 'व्येञ्' धातु को प्राप्त आत्त्व का **'न व्यो लिटि'** (६।१।४६) से प्रतिषेध होता है।*

इडागमः—

(३३) वस्वेकाजाद्घासाम्।६७।

प०वि०-वसु ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) एकाच्-आत्-घासाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्। एकाच् च आच्च घस् च ते-एकाजाद्घसः, तेषाम्-एकाजाद्घसाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-एकाजाद्घसिभ्योऽङ्गेभ्यो वसोरिट्।

अर्थः-एकाचः (कृतद्विर्वचनात्) आकारान्ताद् घसेश्चाङ्गाद् उत्तरस्य वसोरिडागमो भवति।

उदा०-(**एकाच्**) आदिवान्, आशिवान्, पेचिवान्, शेकिवान्। (**आत्**) ययिवान्, तस्थिवान्। (घस्) जक्षिवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(एकाजादघसिभ्यः) कृतद्विर्वचन, एक अच्वाले, आकारान्त और घस् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(एकाच्) **आदिवान्।** भक्षण करनेवाला। **आशिवान्।** भोजन करनेवाला। **पेचिवान्।** पकानेवाला। **शेकिवान्।** समर्थ होनेवाला। (**आत्**) **ययिवान्।** पहुंचानेवाला। **तस्थिवान्।** ठहरनेवाला। (**घस्**) **जक्षिवान्।** भक्षण करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **आदिवान्।** अद्+लिट्। अद्+क्वसु। अद्+वसु। अद्-अद्+वस्। अ-अद+वस्। आ-अद्+वस्। आद्+इट्+वस्। आदिव। आदिवस्+सु। आदिव नुम् स्+स्। आदिवन्स्+स्। आदिवान्स्+स्। आदिवान्स्+०। आदिवान्०। आदिवान्।*

*यहां 'अद **भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**छन्दसि लिट्**' (३।२।१०५) से लिट् प्रत्यय, '**क्वसुश्च**' (३।२।१०७) से लकार के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'अद्' को द्वित्व, '**हलादिः शेषः**' (६।४।६०) से अभ्यास-कार्य, '**अत आदेः**' (६।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ, '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९९) से सवर्ण दीर्घ होता है। इस स्थिति में इस सूत्र से 'वसु' को इडागम होता है। '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**सान्तमहतः संयोगस्य**' (६।४।१०) से दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।*

*ऐसे ही 'अश **भोजने**' (क्र्या०प०) धातु से-**आशिवान्।** '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०प०) धातु से-**पेचिवान्।** 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' (६।४।१२०) से एत्त्व और अभ्यास का लोप होता है। 'शक्लृ शक्तौ' (स्वा०प०) धातु से-**शेकिवान्।** '**या प्रापणे**' (अदा०प०) धातु से-**ययिवान्।** 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-**तस्थिवान्।** '**शर्पूर्वाः खयः**' ७।४।६१) से अभ्यास का खय् (थ्) वर्ण शेष और '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से अङ्ग के आकार का लोप होता है।*

*(२) **जक्षिवान्।** अद्+लिट्। अद्+क्वसु। घस्+वसु। घस्+इट्+वस्। घस्-घस्+इ+वस्। घ-घ्स्+इ+वस्। झ-घस्+इ+वस्। ज-क्ष्+इ+वस्। ज-क्षिवस्+सु। जक्षिवान्।*

*यहां 'अद **भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। '**लिट्यन्यतरस्याम्**' (२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश है। इस सूत्र से 'घस्' से परे 'वसु' को इडागम होता है। '**गमहन०**' (६।४।९८) से 'घस्' का उपधालोप, '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से घकार को चवर्ग झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है और '**खरि च**' (८।४।५५) से परवर्ती घकार को चर् ककार और '**शासिवसिघसीनां च**' (८।३।६०) से षत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः--

(३४) विभाषा गमहनविदविशाम्।६८।

प०वि०-विभाषा १।१ गम-हन-विद-विशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-गमश्च हनश्च विदश्च विश् च ते गमहनविदविशः, तेषाम्-गमहनविदविशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, वसुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमहनविदविशिभ्योऽङ्गेभ्यो वसोर्विभाषा इट्।

अर्थः-गमहनविदविशिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वसोर्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(**गम**) जग्मिवान्, जगन्वान्। (**हन**) जघ्निवान्, जघन्वान्। (**विद**) विविदिवान्, विविद्वान्। (**विश**) विविशिवान्, विविश्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गमहनविदविशिभ्यः) गम, हन, विद, विश इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(गम) **जग्मिवान्, जगन्वान्**। जानेवाला। (हन) **जघ्निवान्, जघन्वान्**। हिंसा/गति करनेवाला। (विद) **विविदिवान्, विविद्वान्**। प्राप्त (लाभ) करनेवाला। (विश) **विविशिवान्, विविश्वान्**। प्रवेश करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **जग्मिवान्**। यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'गमहन०' (६।४।९८) से 'गम्' का उपधालोप होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**जगन्वान्**। 'मो नो धातोः' (८।२।६४) से 'गम्' धातु के मकार को नकार आदेश होता है।*

*ऐसे ही 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से-**जघ्निवान्, जघ्नवान्**। 'अभ्यासाच्च' (७।३।५५) से हकार को कवर्ग घकार होता है। 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) धातु से-**विविदिवान्, विविद्वान्**। 'विश प्रवेशने' (तु०प०) इस धातु के साहचर्य से 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) इस लाभार्थक तौदादिक धातु का ग्रहण किया जाता है; 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु का नहीं। इसे तो नित्य इडागम होता है-**विविदिवान्**। जाननेवाला। 'विश प्रवेशने' (तु०प०) धातु से-**विविशिवान्, विविश्वान्**।*

निपातनम्--

(३५) सनिंससनिवांसम्।६९।

प०वि०-सनिम् २।१ ससनिवांसम् २।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, वसुरिति चानुवर्तते।

अर्थः-वेदे सनिंससनिवांसम् इति पदं निपात्यते, सनिम्-पूर्वात् सनोतेः सनतेर्वाऽङ्गाद् उत्तरस्य वसोरिडागम एत्त्वमभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते इत्यर्थः।

उदा०-आजिं त्वाग्ने०सनिंससनिवांसम् (मा०श्रौ० १।३।४।२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सनिंससनिवांसम्) सनिंससनिवांसम् यह पद निपातित है, अर्थात् सनिम्-पूर्वक सनोति अथवा सनति (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (इट्) इडागम और एत्त्व तथा अभ्यासलोप का अभाव निपातित है।*

*उदा०-**आजिं त्वाग्ने०सनिंससनिवांसम्** (मा०श्रौ० १।३।४।२)। सनिः=अर्चा, पूजन, नैवेद्य, भेंट (आ०कौ०)। **ससनिवांसम्।** दान करनेवाले को/सेवा करनेवाले को।*

*सिद्धि-**ससनिवांसम्।** यहां '**षणु दाने**' अथवा '**षण सम्भक्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। इस सूत्र से 'वसु' को इडागम और एत्त्व तथा अभ्यास-लोप का अभाव निपातित है। यह द्वितीया-एकवचनान्त पद है।*

विशेषः *'सनिंससनिवांसम्' इन पदों की नियतानुपूर्वी को देखकर यह माना जाता है कि यह निपातन वैदिक है, क्योंकि पदों की नियतानुपूर्वी वेद में ही होती है, भाषा में नहीं। भाषा में '**सेनिवांसम्**' प्रयोग होता है।*

इडागमः-

(३६) ऋद्धनोः स्ये।७०।

प०वि०-ऋत्-हनोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्ये ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-ऋच्च हन् च तौ ऋद्धनौ, तयोः-ऋद्धनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋद्धनिभ्याम् अङ्गाभ्यां स्यस्य इट्।

अर्थः-ऋकारान्ताद् हन्तेश्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य स्यप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०-(**ऋकारान्तः**) स करिष्यति, स हरिष्यति। (**हन्**) स हनिष्यति।

आर्यभाषाः अर्थ-(ऋद्धनिभ्याम्) ऋकारान्त और हन्ति इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (स्यस्य) स्य-प्रत्यय को *(इट्) इडागम **होता है।***

*उदा०-(ऋकारान्त) **स करिष्यति।** वह करेगा। **स हरिष्यति।** वह हरण करेगा। (हन्) **स हनिष्यति।** वह हिंसा/गति करेगा।*

सिद्धि-करिष्यति। *यहां ऋकारान्त 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१०) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। इस 'कृ' और 'हन्' धातु के अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इट् का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया गया है।*

*ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**हरिष्यति।** 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से-**हनिष्यति।***

इडागमः--

(३७) अञ्चेः सिचि।७१।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ सिचि ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अञ्जेरङ्गात् सिच इट्।

अर्थः-अञ्जेरङ्गाद् उत्तरस्य सिच इडागमो भवति।

उदा०-स आञ्जीत्। तौ आञ्जिष्टाम्। ते आञ्जिषुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अञ्जेः) अञ्जि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**स आञ्जीत्।** वह प्रकाशित हुआ। **तौ आञ्जिष्टाम्।** वे दोनों प्रकाशित हुये। **ते आञ्जिषुः।** वे सब प्रकाशित हुये।*

सिद्धि-आञ्जीत्। *अञ्ज्+लुङ्। आट्+अञ्ज्+ल्। आ+अञ्ज्+च्लि+ल्। आ+अञ्ज्+सिच्+तिप्। आ+अञ्ज् स्+त्। आ+अञ्ज्+इट्+स्+ईट्+त्। आ+अञ्ज्+इ+०+ई+त्। आञ्जीत्।*

*यहां 'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' (रुधा०प०) से 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से ईट् आगम होकर 'इट ईटि' (८।२।२) से 'सिच्' का लोप हो जाता है। ऐसे ही द्विवचन और बहुवचन में-**आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः।***

'अञ्जू' धातु के ऊदित होने से 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' (७।२।४४) से विकल्प से इडागम प्राप्त था, इस सूत्र से 'सिच्' को नित्य इडागम होता है।

***विशेषः** 'अञ्जू' धातु का जाना, साफ करना, स्वच्छ करना, सराहना, विख्यात करना, चमकना, प्रकाशित होना, तैल मर्दन करना, अभ्यञ्जन करना, संवारना, सजाना आदि अर्थों में प्रयोग होता है।*

इडागमः–

(३८) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु।७२।

प०वि०–स्तु-सु-धूञ्भ्यः ५।३ परस्मैपदेषु ७।३।

स०–स्तुश्च सुश्च धूञ् च ते स्तुसुधूञः, तेभ्यः-स्तुसुधूञ्भ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, इट्, सिचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्तुसुधूञ्भ्योऽङ्गेभ्यः सिचः परस्मैपदेषु इट्।

अर्थः–स्तुसुधूञ्भ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु परत इडागमो भवति।

उदा०–(**स्तु**) अस्तावीत्। (**सु**) असावीत्। (**धुञ्**) अधावीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(स्तुसुधूञ्भ्यः) स्तु, सु, धूञ् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–(स्तु) **अस्तावीत्**। उसने स्तुति की। (सु) **असावीत्**। उसने अभिषवण (रस निचोड़ना) किया। (धूञ्) **अधावीत्**। उसने कम्पन किया।*

***सिद्धि-अस्तावीत्**। यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से इसे 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य **'आज्जीत्'** (७।२।१०१) के समान है।*

*ऐसे ही-**'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से-**असावीत्**। 'धूञ् कम्पने' (स्वा०उ०) धातु से-**अधावीत्**।*

*'स्तु' और 'सु' धातु के उपदेश में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था और 'धूञ्' धातु के **'स्वरतिसूति-सूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) इस सूत्र में पठित होने से विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः सक् च–

(३९) यमरमनमातां सक् च।७३।

प०वि०–यम-रम-नम-आताम् ६।२ सक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–यमश्च रमश्च नमश्च आच्च ते यमरमनमातः, तेषाम्-**यमरमनमाताम्** (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सिचि, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यमरमनमाद्भ्योऽङ्गेभ्यः सिचः परस्मैपदेषु इट्, एतेषां सक् च।

अर्थः-यमरमनमिभ्याम् आकारान्तेभ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु इडागमो भवति, एतेषां च सगागमो भवति।

उदा०-**(यम)** अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयंसिषुः। **(रम)** व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः। **(नम)** अनंसीत्, अनंसिष्टाम्, अनंसिषुः। **(आकारान्तः)** अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यमरमनमाताम्) यम, रम, नम और आकारान्त (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम होता है (च) और इन यम आदि धातुओं को (सक्) सक् आगम होता है।*

*उदा०-(यम) **अयंसीत्।** उसने उपरमण (प्रतिबन्ध) किया। **अयंसिष्टाम्। अयंसिषुः।** (रम) **व्यरंसीत्।** उसने विराम (अवसान) किया। **व्यंसिष्टाम्। व्यरंसिषुः।** (नम) **अनंसीत्।** उसने नमन किया। **अनंसिष्टाम्। अनंसिषुः।** (आकारान्त) **अयासीत्।** वह गया/पहुचा। **अयासिष्टाम्। अयासिषुः।***

*सिद्धि-**अयंसीत्।** यहां 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है और 'यम्' धातु को सक् आगम भी होता है।*

*ऐसे ही वि-उपसर्गपूर्वक 'रमु क्रीडायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**व्यरंसीत्।** 'व्याङ्परिभ्यो रमः' (१।३।८३) से 'रम्' धातु से परस्मैपद होता है। 'णम प्रह्वत्वे शब्दे च' (भ्वा०प०) धातु से-**अनंसीत्।** 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से-**अयासीत्।***

इडागमः-

(४०) स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि।७४।

प०वि०-स्मि-पूङ्-ऋ-अञ्जू-अशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) सनि ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-स्मिश्च पूङ् च ऋश्च अञ्जूश्च अश् च ते स्मिपूङ्रञ्ज्वशः, तेषाम्-स्मिपूङ्रञ्ज्वशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्योऽङ्गेभ्यः सन इट्।

अर्थः-स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सन इडागमो भवति।

उदा०-(**स्मिङ्**) स सिस्मयिषते। (**पूङ्**) स पिपविषते। (**ऋ**) अरिरिषति। (**अञ्जू**) अञ्जिजिषति। (**अश्**) अशिशिषते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्यः) स्मि, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अश् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सनः) सन् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(स्मिङ्) **स सिस्मयिषते।** वह मुस्कराना चाहता है। (पूङ्) **स पिपविषते।** वह पवित्र करना चाहता है। (ऋ) **अरिरिषति।** वह गति (ज्ञान-गमन-प्राप्ति) करना चाहता है। (अञ्जू) **अञ्जिजिषति।** वह प्रकाशित होना चाहता है। (अश्) **अशिशिषते।** वह व्याप्त होना चाहता है।*

*सिद्धि-**सिस्मयिषते।** यहां 'स्मिङ् ईषद्धसने' (भ्वा०आ०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

*ऐसे ही-पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से-**पिपविषते।** 'ओः पुयण्ज्यपरे' (७।४।८०) से अभ्यास को इत्त्व होता है। 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**अरिरिषति।** 'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' (रुधा०प०) धातु से-**अञ्जिजिषति।** 'अशूङ् व्याप्तौ' (स्वा०आ०) धातु से-**अशिशिषते।***

*'स्मिङ्' धातु के उपदेश में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, पूङ्, ऋ और अशूङ् धातुओं के उगन्त होने से '**सनि ग्रहगुहोश्च**' (७।२।१२) से नित्य इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था और 'अञ्जू' धातु के ऊदित् होने से 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' (७।२।४४) से विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः-

(४१) किरश्च पञ्चभ्यः।७५।

प०वि०-किरः ५।१ च अव्ययपदम्, पञ्चभ्यः ५।३।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किरादिभ्यः पञ्चभ्यश्चाङ्गेभ्यः सन इट्।

अर्थः-किरादिभ्यः पञ्चभ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य सन इडागमो भवति।

उदा०-(**कॄ**) स चिकरिषति। (**गॄ**) स जिगरिषति। (**दृङ्**) स दिदरिषते। (**धृङ्**) दिधरिषते। (**प्रच्छ**) स पिप्रच्छिषति।

कॄ विक्षेपे। गॄ निगरणे। दृङ् आदरे। धृङ् अवस्थाने। प्रछ ज्ञीप्सायाम्। इति पञ्च किरादयो धातवस्तुदादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-(किरादिभ्यः) *कॄ आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (सनः) सन् प्रत्यय को* ***(इट्)*** *इडागम होता है।*

*उदा०-**(कॄ) स चिकरिषति।** वह फैंकना चाहता है। **(गॄ) स जिगरिषति।** वह निगलना चाहता है। **(दृङ्) स दिदरिषते।** वह आदर करना चाहता है। **(धृङ्) दिधरिषते।** वह अवस्थित रहना चाहता है। **(प्रछ) स पिप्रच्छिषति।** वह पूछना चाहता है।*

सिद्धि-चिकरिषति। *यहां **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) धातु से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

*ऐसे ही **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) आदि धातुओं से **'जिगरिषति'** आदि पद सिद्ध करें।*

*कॄ, गॄ, प्रछ इन धातुओं के उपदेश में अनुदात्त होने से **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था। दृङ् और धृङ् धातुओं के उगन्त होने से **'सनिग्रहगुहोश्च'** (७।२।१२) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया है।*

इडागमः-

(४२) रुदादिभ्यः सार्वधातुके।७६।

प०वि०-रुदादिभ्यः ५।३ सार्वधातुके ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-रुद आदिर्येषां ते रुदादयः, तेभ्यः-रुदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वलादेः इट्, पञ्चभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्य इट्।

अर्थः-रुदादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेः सार्वधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-(रुद्) स रोदिति। **(स्वप्)** स स्वपिति। **(श्वस)** स श्वसिति। **(अन)** स प्राणिति। **(जक्ष)** स जक्षिति।

रुदिर् अश्रुविमोचने। ञिष्वप शये। श्वस प्राणने। अन च (प्राणने)। जक्ष भक्षहसनयोः। इति पञ्च रुदादयो धातवोऽदादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रुदादिभ्यः) रुद-आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः)* ***अङ्गों से*** *परे (वलादेः) वलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम* ***होता है।***

उदा०-(रुद्) ***स रोदिति।*** *वह रोता है।* ***(स्वप) स स्वपिति।*** *वह सोता है।* ***(श्वस) स श्वसिति।*** *वह श्वास लेता है।* ***(अन) स प्राणिति।*** *वह प्राण लेता है।* ***(जक्ष) स जक्षिति।*** *वह खाता/हंसता है।*

सिद्धि-(१) रोदिति। *यहां* ***'रुदिर् अश्रुविमोचने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और* ***'तिप्तस्झि०'*** *(३।४।७८) से लकार के स्थान में सार्वधातुक 'तिप्' आदेश है। इस सत्र से इसे इडागम होता है। ऐसे ही* ***'ञिष्वप शये'*** *(अदा०प०) आदि धातुओं से स्वपिति आदि पद सिद्ध करें।*

(२) प्राणिति। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक* ***'अन च (प्राणने)'*** *(अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है।* ***'अनितेरन्तः'*** *(८।४।१९) से नकार को णत्व होता है।*

इडागमः-

(४३) ईशः से।७७।

प०वि०-ईशः ५।१ से ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ईशोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य सेरिट्।

अर्थः-ईशोऽङ्गात् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य से-प्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०-त्वम् ईशिषे। त्वम् ईशिष्व।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ईशः) ईश् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (से) से-प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०- ***त्वम् ईशिषे।*** *तू ईश्वर (स्वामी) होता है।* ***त्वम् ईशिष्व।*** *तू ईश्वर (स्वामी) हो।*

सिद्धि-(१) ईशिषे। *यहां* ***'ईश ऐश्वर्ये'*** *(अदा०आ०) धातु से* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और* ***'तिप्तस्झि०'*** *(३।४।७८) से लकार के स्थान में 'थास्' आदेश* ***और 'थासः से'*** *(३।४।८०) से थास् के स्थान में 'से' आदेश है। इस सूत्र से इस सार्वधातुक 'से' प्रत्यय को इडागम होता है।*

(२) ईशिष्व। *यहां पूर्वोक्त 'ईश्' धातु से* ***'लोट् च'*** *(३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है।* ***'सवाभ्यां वामौ'*** *(३।४।९१) से 'से' के एकार को वकार आदेश होता है।* ***'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति'*** *इस परिभाषा के बल से 'स्व' को भी 'से' मानकर इस* ***सूत्र से*** *इसे इडागम* ***होता है।*** ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से षत्व होता है।*

इडागमः–

(४४) ईडजनोर्ध्वे च।७८।

प०वि०–ईड-जनो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ध्वे ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) च अव्ययपदम्।

स०–ईडश्च जन् च तौ-ईडजनौ, तयो:-ईडजनो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, इट्, सार्वधातुके, से इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ईडजनिभ्याम् अङ्गाभ्यां सार्वधातुकस्य ध्वे: सेश्च इट्।

अर्थ:–ईडजनिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य ध्वे: सेश्च प्रत्ययस्य इडागमो **भवति।**

उदा०–**(ईड्) ध्वे-ईडिध्वे, ईडिध्वम्**। **से**-ईडिषे, ईडिष्व। **(जन) ध्वे**–जनिध्वे, जनिध्वम्। **से**–जनिषे, जनिष्व।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ईडजनिभ्याम्) ईड और जनि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों **से** परे (ध्वे) ध्वे प्रत्यय (च) और (से) से प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–**(ईड) ध्वे–ईडिध्वे।** तुम सब स्तुति करते हो। **ईडिध्वम्।** तुम सब स्तुति करो। **से–ईडिषे।** तू स्तुति करता है। **ईडिष्व।** तू स्तुति कर। **(जन) ध्वे–जनिध्वे।** तुम सब प्रकट होते हो। **जनिध्वम्।** तुम सब प्रकट होओ। **से–जनिषे।** तू प्रकट होता है। **जनिष्व।** तू प्रकट हो।*

*सिद्धि–**ईडिध्वे।** यहां **'ईड स्तुतौ'** (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय **और** लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश और इसे **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एकार आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'ध्वे' प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही लोट् लकार में–**ईडिध्वम्।** से-प्रत्यय में लट् लकार में–**ईडिषे** और लोट् लकार में–**ईडिष्व।** ऐसे ही **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से–**जनिध्वे, जनिध्वम्। जनिषे, जनिष्व।***

।। इति इडागमप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

सकारलोपः–

(१) लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य।७९।

प०वि०–लिङ: ६।१ सलोप: १।१ अनन्त्यस्य ६।१।

स०–सस्य लोप इति सलोप: (षष्ठीतत्पुरुषः)। अन्ते भवोऽन्त्य:, **न अन्त्य** इति अनन्त्य:, तस्य अनन्त्यस्य।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गात् सार्वधातुकस्य लिङोऽनन्त्यस्य सलोपः।

अर्थः-अङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य लिङोऽनन्त्यस्य सकारस्य लोपो भवति।

यासुट्-सुट्-सीयुटां यो सकारः स लिङोऽनन्त्यः सकारो वेदितव्यः।

उदा०-स कुर्यात्। तौ कुर्याताम्। ते कुर्युः। स कुर्वीत। तौ कुर्वीयाताम्। ते कुर्वीरन्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (अनन्त्यस्य) अनन्तवर्ती (सलोपः) सकार का लोप होता है।*

यासुट्, सुट् और सीयुट् आगम का जो सकार है उसे ही लिङ् लकार का अनन्त्य सकार जानें।

*उदा०-**स कुर्यात्।** वह करे। **तौ कुर्याताम्।** वे दोनों करें। **ते कुर्युः।** वे सब करें। **स कुर्वीत।** वह करे। **तौ कुर्वीयाताम्।** वे दोनों करें। **ते कुर्वीरन्।** वे सब करें।*

*सिद्धि-(१) **कुर्यात्।** कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+ल्। कृ+यास्+तिप्। कृ+या०+उ+त्। कर्+०+या+त्। कुर्+या+त्। कुर्यात्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से लिङ् को 'यासुट्' आगम होता है। इस सूत्र से इसके अनन्त्य सकार का लोप होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय है और इसका **'ये च'** (६।४।१०९) से लोप होता है। 'कृ' धातु को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।४।८४) से गुण, इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से अकार को उकार आदेश होता है।*

*ऐसे ही द्विवचन में-**कुर्याताम्।** **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'तस्' को 'ताम्' आदेश है। बहुवचन में-**कुर्युः।** **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' को 'जुस्' आदेश और **'उस्यपदान्तात्'** (६।१।९५) पररूप-एकादेश होता है-आ+उस्=उस्।*

*(२) **कुर्वीत।** कृ+लिङ्। कृ+सीयुट्+ल्। कृ+सीय्+त। कृ+सीय्+सुट्+त। कृ+सीय्+स्+त। कृ+उ+सीय्+स्+त। कर्+उ+ईय्+०+त। कुर्+उ+ई०+त। कुर्वीत।*

*यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय, **'लिङः सीयुट्'** ३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'त' को 'सुट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'सीयुट्' और 'सुट्' के सकार का लोप होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९)*

से 'उ' विकरण-प्रत्यय है। इसे ***'इको यणचि'*** *(६।१।७६) से यणादेश (व्) और* ***'लोपो व्योर्वलि'*** *(६।१।६४) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही द्विवचन में-**कुर्वीयाताम्।** बहुवचन में-**कुर्वीरन्।** 'झस्य रन्' (३।४।१०५) से 'झ' को 'रन्' आदेश होता है।*

'लिङाशिषि' (३।४।११६) से आशीर्लिङ् की आर्धधातुक संज्ञा है, किन्तु 'विधिलिङ्' सार्वधातुक-संज्ञक है।

इय-आदेशः--

(२) अतो येयः।८०।

प०वि०-अतः ५।१ या ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) इयः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य या इयः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य या इत्येतस्य स्थाने इय आदेशो भवति।

उदा०-स पचेत्। तौ पचेताम्। ते पचेयुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (या) 'या' इस प्रत्यय के स्थान में (इयः) इय आदेश होता है।*

*उदा०-**स पचेत्।** वह पकाये। **तौ पचेताम्।** वे दोनों पकायें। **ते पचेयुः।** वे सब पकायें।*

*सिद्धि-(१) **पचेत्।** पच्+लिङ्। पच्+यासुट्+ल्। पच्+शप्+यास्+तिप्। पच्+अ+या०+त्। पच्+अ+इय्+त। पच्+अ+इ०+त्। पचेत्।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय और इसे 'यासुट्' आगम है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'यास्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से शेष 'या' को 'इय्' आदेश होता है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६५) से इसके यकार का लोप होता है। ऐसे ही द्विवचन में-**पचेताम्।** बहुवचन में-पचेयुः।*

इय-आदेशः--

(३) आतो ङितः।८१।

प०वि०-आतः ६।१ ङितः ६।१।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित्, तस्य-ङितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके, अतः, इय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य ङित आत इयः।

अर्थः-अकारान्तादङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य ङिदवयवस्याऽऽकारस्य स्थाने इय आदेशो भवति।

उदा०-तौ पचेते। युवां पचेथे। तौ पचेताम्। युवां पचेथाम्। तौ यजेते। युवां यजेथे। तौ यजेताम्। युवां यजेथाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (ङितः) ङित्-प्रत्यय के अवयवभूत (आतः) आकार के स्थान में (इयः) इय आदेश होता है।*

*उदा०-**तौ पचेते।** वे दोनों पकाते हैं। **युवां पचेथे।** तुम दोनों पकाते हो। **तौ पचेताम्।** वे दोनों पकायें। **युवां पचेथाम्।** तुम दोनों पकाओ। **तौ यजेते।** वे दोनों यज्ञ करते हैं। **युवां यजेथे।** तुम दोनों यज्ञ करते हो। **तौ यजेताम्।** वे दोनों यज्ञ करें। **युवां यजेथाम्।** तुम दोनों यज्ञ करो।*

*सिद्धि-**पचेते।** पच्+लट्। पच्+ल्। पच्+शप्+आताम्। पच्+अ+आताम्। पच्+अ+इय् ताम्। पच्+अ+इ०ते। पचेते।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'आताम्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सार्वधातुक तथा ङित् 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'इय' आदेश होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से आताम् प्रत्यय ङिद्वत् है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से आताम् के टि-भाग (आम्) को 'ए' आदेश होता है। ऐसे ही आथाम् प्रत्यय में-**पचेथे।***

***पचेताम्, पचेथाम्** ये लोट् लकार के प्रयोग हैं। **'लोटो लङ्वत्'** (३।४।८५) से लोट् को लङ्वद्भाव होने से पूर्ववत् टि-भाग (आम्) को 'ए' आदेश नहीं होता है।*

***'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से-**यजेते** आदि प्रयोग सिद्ध करें।*

मुक्-आगमः-

(४) आने मुक्।८२।

प०वि०-आने ७।१ मुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य आने मुक्।

अर्थः-अकारान्तस्याङ्गस्य आने परतो मुगागमो भवति।

उदा०-पचमानः। यजमानः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (आने) आन-प्रत्यय परे होने पर (मुक्) मुक् आगम होता है।*

*उदा०-**पचमानः।** पकाता हुआ। **यजमानः।** यज्ञ करता हुआ।*

सिद्धि-पचमानः। *पच्+लट्। पच्+ल्। पच्+शप्+शानच्। पच्+अ+आन। पच्+अ+मुक्+आन। पच्+अ+म्+आन। पचमान+सु। पचमानः।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शानच्' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त अङ्ग (पच) को मुक् आगम होता है। ऐसे ही **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से **'पूङ्यजोः शानन्'** (३।२।१२८) से 'शानन्' प्रत्यय करने पर-**यजमानः।***

ईद्-आदेशः-

(५) ईदासः।८३।

प०वि०-ईत् १।१ आसः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, आने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आसोऽङ्गाद् आनस्य ईत्।

अर्थः-आसोऽङ्गाद् उत्तरस्याऽऽनप्रत्ययस्य ईकारादेशो भवति।

उदा०-आसीनो यजते देवदत्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आसः) आस् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आनस्य) आन-प्रत्यय को (ईत्) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-**आसीनो यजते देवदत्तः।** देवदत्त बैठा हुआ यज्ञ कर रहा है।*

सिद्धि-आसीनः। *आस्+लट्। आस्+शप्+शानच्। आस्+०+आन। आस्+ईन। आसीन+सु। आसीनः।*

*यहां **'आस उपवेशने'** (अदा०आ०) धातु से **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२४) से लट् के स्थान में 'शानच्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से लुक् होता है। इस सूत्र से 'आन' प्रत्यय को ईकार आदेश होता है। **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) के नियम से यह ईकारादेश 'आन' आदि-अल् (आ) के स्थान में किया जाता है।*

आकार-आदेशः–

(६) अष्टन आ विभक्तौ।८४।

प०वि०–अष्टनः ६।१ आः १।१ विभक्तौ १।१।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अष्टनोऽङ्गस्य विभक्तौ आः।

अर्थः–अष्टनोऽङ्गस्य विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०–अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अष्टनः) अष्टन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०–**अष्टाभिः।** आठों के द्वारा। **अष्टाभ्यः।** आठों के लिये/से। **अष्टानाम्।** आठों का। **अष्टासु।** आठों में।*

***सिद्धि-अष्टाभिः।** यहां अष्टन् शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का बहुवचन 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस विभक्ति के परे होने पर 'अष्टन्' शब्द को आकार आदेश होता है। यह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) के नियम से अन्तिम अल् (न्) के स्थान में किया जाता है। ऐसे ही–**अष्टाभ्यः** आदि।*

आकार-आदेशः–

(७) रायो हलि।८५।

प०वि०–रायः ६।१ हलि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आः, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः–रायोऽङ्गस्य हलि विभक्तौ आः।

अर्थः–रायोऽङ्गस्य हलादौ विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०–राभ्याम्। राभिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रायः) रै इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०–**राभ्याम्।** दो धनों के द्वारा। **राभिः।** सब धनों के द्वारा।*

सिद्धि-राभ्याम्।** यहां 'रै' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का द्विवचन 'भ्याम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस हलादि विभक्ति के परे होने पर 'रै' शब्द के अन्त्य अल् (ऐ) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही–**राभिः।

आकार-आदेशः–

(८) युष्मदस्मदोरनादेशे।८६।

प०वि०–युष्मद्-अस्मदोः ६।२ अनादेशे ७।१।

स०–युष्मच्च अस्मच्च ते युष्मदस्मदी, तयोः–युष्मदस्मदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। न आदेश इति अनादेशः, तस्मिन्–अनादेशे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, आः, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोरनादेशे विभक्तौ आः।

अर्थः–युष्मदस्मदोरङ्गयोरनादेशे विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** युष्माभिः। युष्मासु। **(अस्मद्)** अस्माभिः। अस्मासु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (अनादेशे) आदेश-रहित (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०–(युष्मद्) **युष्माभिः।** तुम सब के द्वारा। **युष्मासु।** तुम सब में/पर। (अस्मद्) **अस्माभिः।** हम सब के द्वारा। **अस्मासु।** हम सब में/पर।*

सिद्धि-युष्माभिः।** यहां युष्मद् शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का बहुवचन 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आदेशरहित 'भिस्' विभक्ति के परे होने पर युष्मद् के अन्त्य अल् (द्) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही–**युष्मासु।** अस्मद् शब्द से–**अस्माभिः, अस्मासु।

आकार-आदेशः–

(९) द्वितीयायां च।८७।

प०वि०–द्वितीयायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, **आः, विभक्तौ,** युस्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्द्वितीयायां विभक्तौ च आः।

अर्थः–युष्मदस्मदोरङ्गयोः स्थाने द्वितीयायां विभक्तौ च परत आकारादेशो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** त्वाम्, युवाम्, युष्मान्। **(अस्मद्)** माम्, आवाम्, अस्मान्।

आर्यभाषाः अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (द्वितीयायाम्) द्वितीया (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (च) भी (आः) आकार आदेश होता है।

उदा०-(युष्मद्) ***त्वाम्।*** *तुझ को।* ***युवाम्।*** *तुम दोनों को।* ***युष्मान्।*** *तुम सब को।* ***माम्।*** *मुझ को।* ***आवाम्।*** *हम दोनों को।* ***अस्मान्।*** *हम सब को।*

सिद्धि-(१) ***त्वाम्।*** *युष्मद्+अम्। युष्म आ+अम्। त्व अ आ+अम्। त्व आ+अम्। त्वा+अम्। त्वाम्।*

यहां 'युष्मद्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का एकवचन 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस द्वितीया विभक्ति के परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) को आकार आदेश होता है। ***'त्वमावेकवचने'*** *(७।२।९७) से 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है।* ***'अतो गुणे'*** *(६।१।९६) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) और* ***'अकः सवर्णे दीर्घः'*** *(६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश (अ+आ=आ) होता है।* ***'ङेप्रथमयोरम्'*** *(७।१।२८) से 'अम्' के स्थान में 'अम्' आदेश और* ***'अमि पूर्वः'*** *(६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-* ***माम्।***

(२) ***युवाम्।*** *यहां 'युष्मद्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का द्विवचन 'औ' प्रत्यय है।* ***'युवावौ द्विवचने'*** *(७।२।९२) से 'युष्मद्' शब्द के मपर्यन्त के स्थान में 'युव्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-* ***आवाम्।***

(३) ***युष्मान्।*** *युष्मद्+शस्। युष्मा+अस्। युष्मान्स्। युष्मान्०। युष्मान्।*

यहां 'युष्मद्' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का बहुवचन 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस द्वितीया विभक्ति के परे होने पर आकार आदेश होता है।* ***'शसो न'*** *(७।१।२९) से 'शस्' के अकार को नकार आदेश होकर* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से 'शस्' के सकार का लोप होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-* ***अस्मान्।***

आकार-आदेशः—

(१०) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्।८८।

प०वि०- प्रथमायाः ६।३ च अव्ययपदम्, द्विवचने ७।१ भाषायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आः, युष्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां युष्मदस्मदोरङ्गयोः प्रथमायाश्च द्विवचने आः।

अर्थः-भाषायां विषये युष्मदस्मदोरङ्गयोः स्थाने प्रथमायाश्च द्विवचने परत आकारादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) युवाम्। (**अस्मद्**) आवाम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(भाषायाम्) लौकिक भाषा में (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (प्रथमायाः) प्रथमा विभक्ति को (च) भी (द्विवचने) द्विवचन परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युवाम्।** तुम दोनों। (अस्मद्) **आवाम्।** हम दोनों।*

सिद्धि-युवाम्। *युष्मद्+औ। युष्मद्+अम्। युव अद्+अम्। युव अ+आ+अम्। युव आ+अम्। युवा+अम्। युवाम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से प्रथमा विभक्ति का द्विवचन 'औ' प्रत्यय है। '**ङे प्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'औ' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस अम् (औ) प्रत्यय के परे होने पर युष्मद् के अन्त्य अल् (द्) के स्थान में आकार आदेश होता है। '**युवावौ द्विवचने**' (७।२।९२) से युष्मद् के मपर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश, '**अतो गुणे**' (६।१।९७) से पररूप एकादेश और '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।१०१) से दीर्घरूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्।***

यकार-आदेशः-

(११) योऽचि।८६।

प०वि०-यः १।१ अचि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, अनादेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदयोरङ्गयोरनादेशेऽचि विभक्तौ यः।

अर्थः-युष्मदस्मदयोरङ्गयोः स्थानेऽनादेशेऽजादौ विभक्तौ परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) त्वया। त्वयि। युवयोः। (**अस्मद्**) मया। मयि। आवयोः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (अनादेशे) आदेश से रहित (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (यः) यकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वया।** तुझ द्वारा। **त्वयि।** तुझ में। **युवयोः।** तुम दोनों में। (अस्मद्) **मया।** मुझ द्वारा। **मयि।** मुझ में। **आवयोः।** हम दोनों का/हम दोनों में।*

सिद्धि-त्वया। युष्मद्+टा। त्व अ य्+टा। त्व य्+आ। त्वया।

यहां युष्मद् शब्द से 'स्वौजस्०' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का एकवचन 'टा' प्रत्यय है। 'त्वमावेकवचने' (७।२।९७) से 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। इस सूत्र से आदेश रहित, अजादि 'टा' विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) के स्थान में यकार आदेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-मया।

लोपादेशः-

(१२) शेषे लोपः।६०।

प०वि०-शेषे ७।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोः शेषे विभक्तौ लोपः।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोः शेषे विभक्तौ परतोऽन्त्यस्यालो लोपो भवति।

उदा०-(युष्मद्) त्वम्। यूयम्। तुभ्यम्। युष्मभ्यम्। त्वत्। युष्मत्। तव। युष्माकम्। **(अस्मद्)** अहम्। वयम्। मह्यम्। अस्मभ्यम्। मत्। अस्मत्। मम। अस्माकम्।

कश्चात्र शेषः ? यत्राकारादेशो यकारादेशश्च न विहितः स शेषः। यथा चोक्तम्-

पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठीप्रथमयोरपि।
यान्यद्विवचनान्यत्र तेषु लोपो विधीयते।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के अन्त्य अल् (द्) का (शेषे) शेष (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वम्**। तू। **यूयम्**। तुम सब। **तुभ्यम्**। तेरे लिये। **युष्मभ्यम्**। तुम सब के लिये। **त्वत्**। तुझ से। **युष्मत्**। तुम सब से। **तव**। तेरा। **युष्माकम्**। तुम सब का। (अस्मद्) **अहम्**। मैं। **वयम्**। हम सब। **मह्यम्**। मेरे लिये। **अस्मभ्यम्**। हम सब के लिये। **मत्**। मुझ से। **अस्मत्**। हम सब से। **मम**। मेरा। **अस्माकम्**। हम सब का।*

यहां शेष कौन है ? जिस विभक्ति के परे होने पर आकारादेश और यकारादेश का विधान नहीं किया गया है वह विभक्ति शेष है। उपरिलिखित कारिका में कहा गया है

कि पञ्चमी, चतुर्थी, षष्ठी और प्रथमा विभक्ति के द्विवचनों को छोड़कर अन्य विभक्तियां शेष हैं। वहां युष्मद् और अस्मद् के अन्त्य अल् (द्) का लोप होता है।

सिद्धि-(१) त्वम्। युष्मद्+सु। त्व अद्+अम्। त्व अ०+अम्। त्व+अम्। त्वम्।

यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस शेष विभक्ति सु (अम्) परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) का लोप होता है। **'त्वाहौ सौ'** (७।२।९४) से युष्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अहम्।**

(२) **यूयम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से युष्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में 'यूय' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्।**

(३) **तुभ्यम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। **'तुभ्यमह्यौ ङयि'** (७।२।९५) से युष्मद् के स्थान में 'तुभ्य' आदेश होता है। शेष सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मह्यम्।**

(४) **युष्मभ्यम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'भ्यस्' प्रत्यय है। **'भ्यसोऽभ्यम्'** (७।१।३०) से 'भ्यस्' के स्थान में 'अभ्यम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मभ्यम्।**

(५) **त्वत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। **'एकवचनस्य च'** (७।१।३३) से पञ्चमी-एकवचन 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। **'त्वमावेकवचने'** (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्।**

(६) **युष्मत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'भ्यस्' प्रत्यय है। **'पञ्चम्या अत्'** (७।१।३१) से पञ्चमी-विभक्ति के 'भ्यस्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मत्।**

(७) **तव।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। **'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्'** (७।१।२७) से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश और **'तवममौ ङसि'** (७।२।९६) से युष्मद् के स्थान में 'तव' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मम।**

(८) **युष्माकम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। **'आमि सर्वनाम्नः सुट्'** (७।१।५२) से इसे 'सुट्' आगम होकर 'साम्' रूप होता है। **'साम आकम्'** (७।१।३३) से 'साम्' के स्थान में 'आकम्' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्माकम्।**

अधिकारः–

(१३) मपर्यन्तस्य।६१।

वि०–म-पर्यन्तस्य ६।१।

स०–मकारः पर्यन्तो यस्य स मपर्यन्तः, तस्य-मपर्यन्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अर्थः–मपर्यन्तस्य-इत्यधिकारोऽयम्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति मपर्यन्तस्य इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'युवावौ द्विवचने'** (७।२।९२) इति। युवाम्। आवाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मपर्यन्तस्य) 'म-पर्यन्तस्य के स्थान में' यह अधिकार सूत्र है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह 'म-पर्यन्त के स्थान में' जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-'**युवावौ द्विवचने**' (७।२।९२) अर्थात् युष्मद् और अस्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में यथासंख्य युव और आव आदेश होते हैं। **युवाम्**। तुम दोनों। **आवाम्**। हम दोनों।*

*सिद्धि-**युवाम्** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

युव-आवौ–

(१४) युवावौ द्विवचने।६२।

प०वि०–युव-आवौ १।२ द्विवचने ७।१।

स०–युवश्च आवश्च तौ -युवावौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वयोरर्थयो-र्वचनम् इति द्विवचनम्, तस्मिन्-द्विवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य द्विवचने विभक्तौ युवावौ।

अर्थः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने द्विवचने विभक्तौ परतो यथासंख्यं युवावावादेशौ भवतः।

उदा०–**(युष्मद्)** युवाम्। युवाभ्याम्। युवयोः। **(अस्मद्)** आवाम्। आवाभ्याम्। आवयोः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के **(मपर्यन्तस्य)** मकारपर्यन्त के स्थान में (द्विवचने) द्विवचन विषयक (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (युवावौ) युव, आव आदेश होते है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युवाम्**। तुम दोनों। **युवाभ्याम्**। तुम दोनों के द्वारा। **युवयोः**। तुम दोनों का। (अस्मद्) **आवाम्**। हम दोनों। **आवाभ्याम्**। हम दोनों के द्वारा। **आवयोः**। हम दोनों का।*

*सिद्धि-**युवाम्**। यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से से 'औ' प्रत्यय है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'औ' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस द्विवचन विषयक अम् (औ) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश होता है। '**प्रथमयाश्च द्विवचने भाषायाम्**' (७।२।८८) से 'युस्मद्' के अन्त्य अल् (द्) को अकार आदेश होता है। ऐसे ही-**युवाभ्याम्, युवयोः**। 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्, आवाभ्याम्, आवयोः**।*

यूय-वयौ–

(१५) यूयवयौ जसि।६३।

प०वि०-यूय-वयौ १।२ जसि ७।१।

स०-यूयश्च वयश्च तौ-यूयवयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य जसि विभक्तौ यूयवयौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने जसि विभक्तौ परतो यथासंख्यं यूयवयावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** यूयम्। **(अस्मद्)** वयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकारपर्यन्त के स्थान में (जसि) जस् (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (यूयवयौ) यूय, वय आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **यूयम्**। तुम सब। (अस्मद्) **वयम्**। हम सब।*

*सिद्धि-**यूयम्**। यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'जस्' के स्थान में अम् आदेश होता है। इस सूत्र से अम् (जस्) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के स्थान में 'यूय' आदेश होता है। '**शेषे लोपः**' (७।२।९०) से 'युष्मद्' अन्त्य दकार का लोप और '**अमि पूर्वः**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्**।*

त्व-अहौ–

(१६) त्वाहौ सौ।६४।

प०वि०-त्व-अहौ १।२ सौ ७।१।

स०-त्वश्च अहश्च तौ-त्वाहौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, **मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।**

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य सौ विभक्तौ त्वाहौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो यथासंख्यं त्वाहावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** त्वम्। **(अस्मद्)** अहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकारपर्यन्त के स्थान में (सौ) सु (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (त्वाहौ) त्व, अह आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वम्।** तू। (अस्मद्) **अहम्।** मैं।*

*सिद्धि-**त्वम्।** यहां 'अस्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से यह अम् (सु) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में **'त्व'** आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अहम्।***

तुभ्य-मह्यौ-

(१७) तुभ्यमह्यौ ङयि।६५।

प०वि०-तुभ्य-मह्यौ १।२ ङयि ७।१।

स०-तुभ्यश्च मह्यश्च तौ-तुभ्यमह्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य ङयि विभक्तौ तुभ्यमह्यौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने ङयि विभक्तौ परतो यथासंख्यं तुभ्यमह्यावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** तुभ्यम्। **(अस्मद्)** मह्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों में (मपर्यन्त) मकार-पर्यन्त के स्थान में (ङयि) ङे (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (तुभ्यमह्यौ) तुभ्य, मह्य आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **तुभ्यम्।** तेरे लिये। (अस्मद्) **मह्यम्।** मेरे लिये।*

*सिद्धि-**तुभ्यम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'ङे' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस*

अम् (ङे) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'तुभ्य' आदेश होता है। ***'शेषे लोपः'*** *(७।२।९०) से युष्मद् के अन्त्य दकार का लोप और* ***'अमि पूर्वः'*** *(६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-* ***मह्यम्।***

तव-ममौ–

(१८) तवममौ ङसि।६६।

प०वि०–तव-ममौ १।२ ङसि ७।१।

स०–तवश्च ममश्च तौ-तवममौ (इतरेयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य ङसि विभक्तौ तवममौ।

अर्थः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने ङसि विभक्तौ परतो यथासंख्यं तवममावादेशौ भवतः।

उदा०–**(युष्मद्)** तव। **(अस्मद्)** मम।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार-पर्यन्त के स्थान में (ङसि) ङस् (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (तवममौ) तव, मम आदेश होते हैं।*

उदा०-(युष्मद्) ***तव।*** *तेरा।* ***(अस्मद्) मम।*** *मेरा।*

सिद्धि-तव। *यहां 'युष्मद्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'ङस्' प्रत्यय है।* ***'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्'*** *(७।१।२७) से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस अश् (ङस्) विभक्ति के परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तव' आदेश होता है। 'शेषे लोपः' (७।२।९०) से 'युष्मद्' के दकार का लोप और* ***'अतो गुणे'*** *(६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-* ***मम।***

त्व-मौ–

(१९) त्वमावेकवचने।६७।

प०वि०–त्व-मौ १।२ एकवचने ७।१।

स०–त्वश्च मश्च तौ-त्वमौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। एकस्यार्थस्य वचनमिति एकवचनम्, तस्मिन्-एकवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य एकवचने विभक्तौ त्वमौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने एकवचने विभक्तौ परतो यथासंख्यं त्वमावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) त्वाम्। त्वया। त्वत्। त्वयि। **(अस्मद्)** माम्। मया। मत्। मयि।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-**(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार पर्यन्त के स्थान में (एकवचने) एकवचन विषयक (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (त्वमौ) त्व, म आदेश होते हैं।

*उदा०-(युष्मद्) **त्वाम्।** तुझ को। **त्वया।** तेरे द्वारा। **त्वत्।** तुझ से। **त्वयि।** तुझ में। (अस्मद्) **माम्।** मुझ को। **मया।** मेरे द्वारा। **मत्।** मुझ से। **मयि।** मुझ में।*

*सिद्धि-(१) **त्वाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'अम्' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'अम्' एकवचन विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से 'युष्मद्' के अन्त्य **दकार** को आकार आदेश होता है। अस्मद् शब्द से-**माम्।***

*(२) **त्वया।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। **'योऽचि'** (७।२।८९) से 'युष्मद्' के दकार को यकार आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'अस्मद्' शब्द से-**मया।***

*(३) **त्वत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। **'एकवचनस्य च'** (७।१।३२) से इस पञ्चमी विभक्ति के एकवचन 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। शेष सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मया।***

*(४) **त्वयि।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस एकवचन 'ङि' विभक्ति के परे होने पर **'योऽचि'** (७।२।८९) से 'युष्मद्' के दकार को यकार आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मयि।***

त्व-मौ-

(२०) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च।६८।

प०वि०-प्रत्यय-उत्तरपदयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-प्रत्ययश्च उत्तरपदं च ते प्रत्ययोत्तरपदे, तयोः-प्रत्ययोत्तरपदयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य, त्वमौ, एकवचने इति **चानुवर्तते।**

अन्वयः-एकवचने विभक्तौ युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य प्रत्ययोत्तरपदयोश्च त्वमौ।

अर्थः-एकवचने विभक्तौ वर्तमानयोर्युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने प्रत्यये उत्तरपदे च परतो यथासंख्यं त्वमावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) प्रत्यये-तवायमिति त्वदीयः। अतिशयेन त्वमिति त्वत्तरः। त्वामिच्छतीति त्वद्यति। त्वमिवाऽऽचरतीति त्वद्यते। **उत्तरपदे**-तव पुत्र इति त्वत्पुत्रः। त्वं नाथोऽस्येति-त्वन्नाथः। **(अस्मद्) प्रत्यये**-ममायमिति मदीयः। अतिशयेन अहमिति मत्तरः। मामिच्छतीति मद्यति। अहमिवाऽऽचरतीति-मद्यते। **उत्तरपदे**-मम पुत्र इति मत्पुत्रः। अहं नाथोऽस्येति-मन्नाथः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(एकवचने) एकवचन **विषयक (विभक्तौ) विभक्ति में** विद्यमान (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) **अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार-पर्यन्त** के स्थान में (प्रत्ययोत्तरपदयोः) प्रत्यय और उत्तरपद **परे होने** पर (च) भी **यथासंख्य** (त्वमौ) त्व, म आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) प्रत्यय-**तवायमिति त्वदीयः।** यह तेरा है। **अतिशयेन त्वमिति त्वत्तरः।** दो में से अतिशायी तू। **त्वामिच्छतीति त्वद्यति।** वह तुझ को चाहता है। **त्वमिवाऽऽचरतीति त्वद्यते।** जो तेरे **समान** आचरण **करता** है। **उत्तरपद-तव पुत्र इति त्वत्पुत्रः।** तेरा पुत्र। त्वं **नाथो यस्य स-त्वन्नाथः।** वह कि जिसका तू नाथ (स्वामी) है। **(अस्मद्) प्रत्यय-ममायमिति मदीयः।** यह मेरा है। **अतिशयेन अहमिति मत्तरः।** दोनों में से अतिशायी मैं। **मामिच्छतीति मद्यति।** वह मुझ को चाहता है। **अहमिवाऽऽचरतीति-मद्यते।** मेरे समान आचरण करता है। **उत्तरपद-मम पुत्र इति मत्पुत्रः।** मेरा पुत्र। **अहं नाथोऽस्येति-मन्नाथः।** वह कि जिसका मैं नाथ (स्वामी) हूं।*

*सिद्धि-(१) **त्वदीयः।** युष्मद्+छ। युष्मद्+ईय। त्व अद्+ईय। त्वद्+ईय। त्वदीय+सु। त्वदीयः।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में **'वृद्धाच्छः'** (४।२।१४) से शैषिक 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'त्यदादीनि च'** (१।१।७४) से 'युष्मद्' शब्द की वृद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय परे होने पर 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मदीयः।***

*(२) **त्वत्तरः।** यहां 'युष्मद्' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्तरः।***

*(३) **त्वद्यति।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मद्यति।***

*(४) **त्वद्यते।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (३।१।११) से आचार-अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मद्यते।***

*(५) **त्वत्पुत्रः।** यहां 'युष्मद्' और 'पुत्र' शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'पुत्र' शब्द उत्तरपद होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्पुत्रः।***

*(६) **त्वन्नाथः।** यहां युष्मद् और नाथ शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'नाथ' शब्द उत्तरपद होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है।*

युष्मद् शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्।
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्।
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः।
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्।
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्।
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्।
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु।

अस्मद् शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्।
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्।
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः।
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्।
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्।
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्।
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु।

तिसृ-चतसृ–

(२१) त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ।६६।

प०वि०–त्रि-चतुरो: ६।२ स्त्रियाम् ७।१ तिसृ-चतसृ १।१।

स०–त्रिश्च चतुर् च तौ त्रिचतुरौ, तयो:-त्रिचतुरो: (इतरेतरयोग-द्वन्द्व:)। तिसृश्च चतसृश्च एतयो: समाहार:-तिसृचतसृ (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वय:–स्त्रियां त्रिचतुरोरङ्गयोर्विभक्तौ तिसृचतसृ।

अर्थ:–स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचतुरोरङ्गयो: स्थाने विभक्तौ परतो यथासंख्यं तिसृचतसृ-आदेशौ भवत:।

उदा०–**(त्रि:)** तिस्र: कन्या:। तिसृभि: कन्याभि:। **(चतर्)** चतस्र: कन्या:, चतसृभि: कन्याभि:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान (त्रिचतुरो:) त्रि, चतुर् इन (अङ्गयो:) अङ्गों के स्थान में (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (तिसृचतसृ) तिसृ, चतसृ आदेश होते हैं।*

*उदा०-(त्रि) **तिस्र: कन्या:।** तीन कन्यायें। **तिसृभि: कन्याभि:।** तीन कन्याओं के द्वारा। (चतुर्) **चतस्र: कन्या:।** चार कन्यायें। **चतसृभि: कन्याभि:।** चार कन्याओं के द्वारा।*

सिद्धि-तिस्र:। *त्रि+जस्। तिसृ+अस्। तिस्रस्। तिस्र:।*

*यहां 'त्रि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में इस सूत्र से 'त्रि' के स्थान में 'तिसृ' आदेश होता है। 'अचि र ऋत:' (७।२।१००) से 'ऋ' के स्थान में 'र' आदेश है। भिस्-प्रत्यय में-**तिसृभि:।** ऐसे ही चतुर् शब्द से-**चतस्र:, चतसृभि:।***

र-आदेश:–

(२२) अचि र ऋत:।१००।

प०वि०–अचि ७।१ र: १।१ ऋत: ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, तिसृचतसृ इति चानुवर्तते।

अन्वय:–तिसृचतस्रोरङ्गयोर्ऋतोऽचि विभक्तौ र:।

अर्थः-तिसृचतस्रोरङ्गयोर्ऋकारस्य स्थानेऽजादौ विभक्तौ परतो रेफादेशो भवति।

उदा०-(तिसृ) तिस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति। तिस्रः कन्याः पश्य। प्रियतिस्र आनय। प्रियतिस्रः स्वम्। प्रियतिस्रि निधेहि। **(चतसृ)** चतस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति। चतस्रः कन्याः पश्य। प्रियचतस्र आनय। प्रियचतस्रः स्वम्। प्रियचतस्रि निधेहि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तिसृचतस्रोः) तिसृ, चतसृ इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (ऋतः) ऋकार के स्थान में (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (रः) रेफ आदेश होता है।*

*उदा०-(तिसृ) **तिस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति।** तीन कन्यायें खड़ी है। **तिस्रः कन्याः पश्य।** तू तीन कन्याओं को देख। **प्रियतिस्र आनय।** तू तीन प्रियाओंवाले पुरुष को इधर ला। **प्रियतिस्रः स्वम्।** यह तीन प्रियाओंवाले पुरुष का धन है। **प्रियतिस्रि निधेहि।** तू इसे तीन प्रियाओंवाले पुरुष में रख। (चतसृ) **चतस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति।** चार कन्यायें खड़ी हैं। **चतस्रः कन्याः पश्य।** तू चार कन्याओं को देख। **प्रियचतस्र आनय।** तू चार प्रियाओंवाले पुरुष को इधर ला। **प्रियचतस्रः स्वम्।** यह चार प्रियाओंवाले पुरुष का धन है। **प्रियचतस्रि निधेहि।** तू इसे चार प्रियाओंवाले पुरुष में रख।*

*सिद्धि-(१) **तिस्रः।** तिसृ+जस्। तिसृ+अस्। तिस्‌र्+अस्। तिस्रस्। तिस्रः।*

*यहां 'तिसृ' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि विभक्ति (जस्) के परे होने पर 'तिसृ' के ऋकार को रेफ आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से भी यह रेफ आदेश सम्भव है किन्तु **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।१००) से प्राप्त पूर्वसवर्ण के प्रतिषेध के लिये यह रेफ आदेश का विधान किया गया है। शस् प्रत्यय में-**तिस्रः कन्याः पश्य।** ऐसे ही 'चतसृ' शब्द से-**चतस्रः।** ऐसे ही-**प्रियचतस्रः।** प्रिय और तिसृ तथा चतसृ शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। **'स्त्रियाः पुंवद्०'** (६।३।३४) से पुंवद्भाव होता है।*

*(२) **प्रियतिस्रः स्वम्।** प्रियतिसृ+ङस्। प्रियतिसृ+अस्। प्रियतिस्‌र्+अस्। प्रियतिस्रस्। प्रियतिस्रः।*

*यहां 'प्रियतिसृ' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अजादि विभक्ति (ङस्) के परे होने पर 'प्रियतिसृ' के ऋकार को रेफ आदेश होता है। **'ऋत उत्'** (६।१।१०९) से प्राप्त उकार आदेश नहीं होता है। ऐसे ही ङि-प्रत्यय में-**प्रियतिस्रि।** **'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'** (७।३।११०) से प्राप्त गुण नहीं होता है। ऐसे ही-**प्रियचतस्रः, प्रियचतस्रि।***

जरसादेश-विकल्पः–

(२३) जराया जरसन्यतरस्याम्।१०१।

प०वि०–जरायाः ६।१ जरस् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, अचीति चानुवर्तते।

अन्वयः–जराया अङ्गस्याऽचि विभक्तावन्यतरस्यां जरस्।

अर्थः–जराया अङ्गस्य स्थानेऽजादौ विभक्तौ परतो विकल्पेन जरसादेशो भवति।

उदा०–जरसा दन्ताः शीर्यन्ते, जरया दन्ताः शीर्यन्ते। जरसे त्वा परिदद्युः, जरायै त्वा परिदद्युः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(जरायाः) जरा इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (जरस्) जरस् आदेश होता है।*

*उदा०–**जरसा दन्ताः शीर्यन्ते, जरया दन्ताः शीर्यन्ते।** जरा (बुढ़ापा) से दांत शीर्ण हो जाते हैं। **जरसे त्वा परिदद्युः, जरायै त्वा परिदद्युः।** वे तुझे जरा के लिये परिदान करें अर्थात् तू जरा-अवस्था तक जीवित रह।*

सिद्धि–जरसा। *जरा+टा। जरा+आ। जरस्+आ। जरसा।*

*यहां 'जरा' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अजादि टा (आ) प्रत्यय परे होने पर 'जरा' के स्थान में 'जरस्' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'जरस्' आदेश नहीं है–**जरया।** '**आङि चापः**' (७।३।१०५) से एकार आदेश और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७७) से इसे अय् आदेश होता है। ऐसे ही 'ङे' विभक्ति में–**जरसे।** विकल्प-पक्ष में–**जरायै।** '**याडापः**' (७।३।१०५) से 'याट्' आगम और '**वृद्धिरेचि**' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश (अ+ए=ऐ) होता है।*

जरा शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	*एकवचन*	*द्विवचन*	*बहुवचन*
प्रथमा	*जरा*	*जरे (जरसौ)*	*जराः (जरसः)*
द्वितीया	*जराम् (जरसम्)*	*जरे (जरसौ)*	*जराः (जरसः)*
तृतीया	*जरया (जरसा)*	*जराभ्याम्*	*जराभिः।*
चतुर्थी	*जरायै (जरसे)*	*जराभ्याम्*	*जराभ्यः*
पञ्चमी	*जरायाः (जरसः)*	*जराभ्याम्*	*जराभ्यः*
षष्ठी	*जरायाः (जरसः)*	*जरयोः (जरसोः)*	*जराणाम् (जरसाम्)*
सप्तमी	*जरायाम् (जरसि)*	*जरयोः (जरसोः)*	*जरासु*
सम्बोधन	*हे जरे!*	*हे जरे (जरसौ)!*	*हे जराः (जरसः)!*

जरा=वृद्धावस्था इत्यर्थः।

अकार-आदेशः–

(२४) त्यदादीनामः ।१०२।

प०वि०-त्यद्-आदीनाम् ६ ।३ अः १ ।१।

स०-त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषाम्-त्यदादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-त्यदादीनामङ्गानां विभक्तौ अः।

अर्थः-त्यदादीनामङ्गानां स्थाने विभक्तौ परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-(त्यद्) स्यः, त्यौ, त्ये। **(तद्)** सः, तौ, ते। **(यद्)** यः, यौ, ये। **(एतद्)** एषः, एतौ, एते। **(इदम्)** अयम्, इमौ, इमे। **(अदस्)** असौ, अमू, अमी। **(द्वि)** द्वौ, द्वाभ्याम्।

एते त्यदादयः शब्दाः सर्वादिगणे पठ्यन्ते। **'द्विपर्यन्तानां त्यदादीनामत्वमिष्यते, इह न भवति, भवत्-भवान्** (काशिका)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(त्यदादीनाम्) त्यद् आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अः) अकार आदेश होता है।*

*उदा०-(त्यद्) **स्यः।** वह। **त्यौ।** वे दोनों। **त्ये।** वे सब। (तद्) **सः।** वह। **तौ।** वे दोनों। **ते।** वे सब। (यद्) **यः।** जो। **यौ।** जो दोनों। **ये।** जो सब। (एतद्) **एषः।** यह। **एतौ।** ये दोनों। **एते।** ये सब। (इदम्) **अयम्।** यह। **इमौ।** ये दोनों। **इमे।** ये सब। (अदस्) **असौ।** वह। **अमू।** वे दोनों। **अमी।** वे सब। (द्वि) **द्वौ।** दो। **द्वाभ्याम्।** दो के द्वारा।*

ये 'त्यद्' आदि शब्द सर्वादिगण में पठित हैं। यहां 'त्यद्' से लेकर 'द्वि' पर्यन्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-(१) **स्यः।** त्यद्+सु। त्य अ+स्। स्य अ+स्। स्यस्। स्यः।*

*यहां 'त्यद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'त्यद्' अन्त्य दकार को अकार आदेश होता है। **'अतो गुणे'** (६ ।१ ।९६) से पररूप एकादेश और **'तदोः सः सावनन्त्ययोः'** (७ ।२ ।१०६) से तकार को सकार आदेश होता है। द्विवचन में-**त्यौ।** बहुवचन में-**त्ये।***

*ऐसे ही 'तद्' शब्द से-**सः, तौ, ते।** 'यद्' शब्द से-**यः, यौ, ये।** 'एतद्' शब्द से-**एषः, एतौ, एते।***

*(२) **अयम्।** यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। **'इदमो मः'** (७ ।२ ।१०८) से 'इदम्' के मकार के स्थान में मकार आदेश होता है। यह **'त्यदादीनामः'** (७ ।२ ।१०२)*

का अपवाद है। 'इदोऽय् पुंसि' (७।२।१११) से 'इदम्' के 'इद्' भाग को 'अय्' आदेश होता है।

(३) **इमौ।** यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के अन्त्य मकार को अकार आदेश होता है। 'दश्च' (७।२।१०९) से दकार को मकार आदेश है। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' (६।१।१०२) से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त होने पर 'नादिचि' (६।१।१०४) से उसका प्रतिषेध होकर 'वृद्धिरेचि' (६।१।८८) से पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश (अ+औ=औ) होता है। जस् प्रत्यय में-**इमे।** 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' को 'शी' आदेश है।

(४) **असौ।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। 'अदस औ सुलोपश्च' (७।२।१०७) से 'अदस्' के सकार को आकार आदेश और 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' (७।२।१०६) से 'अदस्' के दकार को सकार आदेश होता है।

(५) **अमू।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को अकार आदेश होता है। अद अ+औ। इस स्थिति में 'अतो गुणे' (६।१।९७) से पररूप एकादेश और 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश होकर 'अदसोऽसेर्दादु दो मः' (८।२।८०) से दकार को मकार तथा औकार को ऊकार आदेश होता है।

(६) **अमी।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'जस्' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को अकार आदेश होता है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश, 'आद्गुणः' (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश एकार होकर 'एत ईद् बहुवचने' (८।२।८१) से एकार को ईकार आदेश होता है।

(७) **द्वौ।** यहां 'द्वि' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'द्वि' शब्द के अन्त्य इकार को अकार आदेश होता है। 'भ्याम्' प्रत्यय में-**द्वाभ्याम्।** 'सुपि च' (७।४।१०२) से दीर्घ है।

क-आदेशः-

(२५) किमः कः।१०३।

प०वि०-किमः ६।१ कः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-किमोऽङ्गस्य विभक्तौ कः।

अर्थः-किमोऽङ्गस्य स्थाने विभक्तौ परतः कादेशो भवति।

उदा०-कः, कौ, के।

आर्यभाषाः *अर्थ-(किमः) किम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (कः) क-आदेश होता है।*

उदा०-कः। कौन। कौ। कौन दो। के। कौन सब।

सिद्धि-कः। यहां 'किम्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'किम्' को 'क' आदेश होता है। द्विवचन 'औ' में-कौ। बहुवचन 'जस्' में-के।

कु-आदेशः–

(२६) कु तिहोः।१०४।

प०वि०-कु १।१ (सु-लुक्) ति-होः ७।२।

स०-तिश्च ह् च तौ तिहौ, तयोः-तिहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, किम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किमोऽङ्गस्य तिहोर्विभक्त्योः कुः।

अर्थः-किमोऽङ्गस्य स्थाने तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परतः कुरादेशो भवति।

उदा०-तकारादौ-कुतः, कुत्र। **हकारादौ**-कुह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(किमः) **किम्** इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (तिहोः) तकारादि और हकारादि (विभक्तौ) **विभक्ति** परे होने पर (कुः) कु-आदेश होता है।*

*उदा०-तकारादौ-कुतः। **कहां से**। कुत्र। कहां। हकारादौ-कुह। कहां।*

*सिद्धि-(१) कुतः। **किम्+तसिल्**। कु+तस्। कुतस्+सु। कुतस्+०। कुतस्। कुतः।*

यहां 'किम्' शब्द से 'पञ्चम्यास्तसिल्' (५।३।७) से 'तसिल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस तकारादि 'तसिल्' विभक्ति के परे होने पर 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। 'प्राग् दिशो विभक्तिः' (५।३।१) से विभक्ति संज्ञा है। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से 'कुतस्' की अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।

(२) कुत्र। यहां 'किम्' शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) कुह। यहां 'किम्' शब्द से 'वा ह च च्छन्दसि' (५।३।१३) से 'ह' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

क्व-आदेशः–

(२७) क्वाति।१०५।

प०वि०–क्व १।१ (सु-लुक्) अति ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः–किमोऽङ्गस्य अति विभक्तौ क्वः।

अर्थः–किमोऽङ्गस्य स्थानेऽति विभक्तौ परतः क्वादेशो भवति।

उदा०–स क्व गमिष्यति ? स क्व भोक्ष्यते ?

आर्यभाषाः अर्थ-*(किमः) किम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (अति) अत् इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (क्व) क्व आदेश होता है।*

*उदा०–**स क्व गमिष्यति** ? वह कहां जायेगा ? **स क्व भोक्ष्यते** ? वह कहां भोजन करेगा ?*

*सिद्धि–**क्व**। यहां 'किम्' शब्द से 'किमोऽत्' (५।३।१२) से 'अत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अत्' विभक्ति के परे होने पर 'किम्' को 'क्व' आदेश होता है।*

स-आदेशः–

(२८) तदोः सः सावनन्त्ययोः।१०६।

प०वि०–तदोः ६।२ सः १।१ सौ ७।१ अनन्त्ययोः ६।२।

स०–तश्च द् च तौ तदौ, तयोः-तदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अन्त्ये भवोऽन्त्यः। न अन्त्याविति अनन्त्यौ, तयोः अनन्त्ययोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते। त्यदादीनामिति च मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः–त्यदादीनामङ्गानामनन्त्ययोस्तदोः सौ विभक्तौ सः।

अर्थः–त्यदादीनामङ्गानामनन्त्ययोस्तकारदकारयोः स्थाने सौ विभक्तौ परतः सकारादेशो भवति।

उदा०–**(त्यद्) तकारस्य**–स्यः। **(तद्)** सः। **(एतद्)** एषः। **(अदस्) दकारस्य**–असौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(त्यदादीनाम्) त्यद्-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अनन्त्ययोः) अनन्त्य अर्थात् जो कि अन्त में नहीं है उन (तदोः) तकार और दकार के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (सः) सकार आदेश होता है।*

*उदा०-(त्यद्) तकार के स्थान में-**स्यः।** वह। (तद्) सः। वह। (एतद्) एषः। यह। (अदस्) दकार के स्थान में-**असौ।** वह।*

सिद्धि-स्यः। *यहां 'त्यद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'त्यद्' के अनन्त्य तकार को सकार आदेश होता है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से अकारादेश है। ऐसे ही 'तद्' शब्द से-**सः**, 'एतद्' शब्द से-एषः, 'अदस्' शब्द से-**असौ। 'अदस औ सुलोपश्च'** (७।३।१०७) से 'अदस्' के सकार को 'औ' आदेश और 'सु' का लोप होता है।*

औ-आदेशः (सु-लोपः)–

(२६) अदस औ सुलोपश्च।१०७।

प०वि०- अदसः ६।१ औ १।१ (सु-लुक्) सुलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सोर्लोप इति सुलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदसोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ औः, सुलोपश्च।

अर्थः-अदसोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ परत औकारादेशो भवति, सोश्च लोपो भवति।

उदा०-असौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अदसः) अदस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (औः) औकार आदेश होता है (च) और (सुलोपः) सु का लोप होता है।*

*उदा०-**असौ।** वह।*

सिद्धि-असौ। *अदस्+सु। अद औ+स्। अस औ+स्। असौ+०। असौ।*

*यहां 'अदस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को औकार आदेश और 'सु' का लोप होता है। '**तदोः सः सावनन्त्ययोः**' (७।२।१०६) से 'अदस्' से अनन्त्य दकार को सकार आदेश होता है।*

म-आदेशः–

(३०) इदमो मः।१०८।

प०वि०-इदमः ६।१ मः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ मः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-इयं कन्या। अयं माणवकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (मः) मकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इयं कन्या।** यह कन्या है। **अयं माणवकः।** यह बालक है।*

सिद्धि-(१) इयम्। *यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के मकार को मकार आदेश होता है। यह '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से प्राप्त अकार आदेश का अपवाद है। '**यः सौ**' (७।२।११०) से दकार को यकार आदेश होता है।*

(२) अयम्। *यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। '**इदोऽय् पुंसि**' (७।२।१११) से 'इदम् के इद्-भाग को 'अय्' आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

म-आदेशः-

(३१) दश्च।१०६।

प०वि०-दः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य दश्च विभक्तौ मः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य दकारस्य स्थाने च विभक्तौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-इमौ माणवकौ। इमे माणवकाः। इमं माणवकम्। इमौ माणवकौ। इमान् माणवकान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (दः) दकार के स्थान में (च) भी (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (मः) मकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इमौ माणवकौ।** ये दो बालक। **इमे माणवकाः।** ये सब बालक। **इमं माणवकम्।** इस बालक को। **इमौ माणवकौ।** इन दो बालकों को। **इमान् माणवकान्।** **इन सब बालकों को।***

*सिद्धि-**इमौ**। यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के दकार को भी मकार आदेश होता है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से मकार को अकार आदेश होता है।*

*औ विभक्ति में-**इमौ**। जस् विभक्ति में-**इमे**। '**जसः शी**' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश है। अम् विभक्ति में-**इमम्**। '**अमि पूर्वः**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश है। औ विभक्ति (२।२) में-**इमौ**। शस् विभक्ति में-**इमान्**। '**तस्माच्छसो नः पुंसि**' (६।१।१०१) से सकार को नकार आदेश होता है।*

य-आदेशः--

(३२) यः सौ।११०।

प०वि०-यः १।१ सौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य मः सौ विभक्तौ यः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य अकारस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-इयं कन्या।

अग्रिमसूत्रे पुंसि इति वचनात् स्त्रियामयं यकारादेशो विधीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (मः) मकार के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (यः) यकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इयं कन्या**। यह कन्या।*

आगामी सूत्र में 'पुंसि' इस पद के वचन से यह यकारादेश स्त्रीलिङ्ग में होता है।

*सिद्धि-**इयम्**। यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सु' विभक्ति के परे होने पर '**दश्च**' (७।२।१०९) से 'इदम्' के दकार को मकार आदेश होता है और इस सूत्र से इस मकार को स्त्रीलिङ्ग में यकार आदेश किया जाता है। 'इदमो मः' (७।२।१०८) से मकार को मकार आदेश होता है।*

अय्-आदेशः--

(३३) इदोऽय् पुंसि।१११।

प०वि०-इदः ६।१ अय् १।१ पुंसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुंसि इदमोऽङ्गस्य इदः सौ विभक्तौ अय्।

अर्थः-पुंसि वर्तमानस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य सौ विभक्तौ परतोऽयादेशो भवति।

उदा०-अयं माणवकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पुंसि) पुंलिङ्ग में विद्यमान (इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्-भाग के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (अय्) अय् आदेश होता है।*

*उदा०-**अयं माणवकः।** यह बालक।*

सिद्धि-अयम्। *यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। '**इदमो मः**' (७।२।१०८) से 'इदम्' के मकार को मकार आदेश होता है।*

अन-आदेशः-

(३४) अनाप्यकः।११२।

प०वि०-अन १।१ (सु-लुक्) आपि ७।१ अकः ६।१।

स०-न विद्यते को यस्मिँस्तत्-अक्, तस्य-अकः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, इद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक इदमोऽङ्गस्य इद आपि विभक्तौ अनः।

अर्थः-अकः=ककारवर्जितस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य स्थाने आपि विभक्तौ परतोऽनादेशो भवति।

उदा०-अनेन माणवकेन। अनयोर्माणवकयोः।

आपि-इत्यत्र तृतीयैकवचनात् प्रभृति सुपः पकारेण 'आप्' इति प्रत्याहारो गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकः) ककार=अकच् से रहित (इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्भाग के स्थान में (आपि) आप् यह (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अनः) अन-आदेश होता है।*

*उदा०-**अनेन माणवकेन।** इस बालक के द्वारा। **अनयोर्माणवकयोः।** इन बालकों का/में।*

*'आपि' यहां तृतीया-विभक्ति के एकवचन 'टा' से लेकर 'सुपः' इसके **पकार** पर्यन्त 'आप्' इस प्रत्याहार का ग्रहण किया जाता है।*

सिद्धि-अनेन। *यहां 'इदम्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आप् (टा) विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग के स्थान में **'अन'** आदेश होता है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से मकार को अकार आदेश होकर **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश होता है। 'ओस्' प्रत्यय में-**अनयोः।***

लोपादेशः-

(३५) हलि लोपः।११३।

प०वि०-हलि ७।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, इदः, अक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक इदमोऽङ्गस्य इदो हलि विभक्तौ लोपः।

अर्थः-अकः=ककारवर्जितस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य हलादौ विभक्तौ परतो लोपो भवति।

उदा०-आभ्यां माणवकाभ्याम्। एभिर्माणवकैः। एभ्यो माणवकेभ्यः। एषां माणवकानाम्। एषु माणवकेषु।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अकः) ककार=अकच् प्रत्यय से रहित (इदमः) इदम् **इस** (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्-भाग का (हलि) हल् जिसके आदि में है उस **(विभक्तौ)** विभक्ति के परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**आभ्यां माणवकाभ्याम्।** इन दो बालकों के द्वारा। **एभिर्माणवकैः।** इन सब बालकों के द्वारा। **एभ्यो माणवकेभ्यः।** इन सब बालकों के लिये/से। **एषां माणवकानाम्।** इन सब बालकों का। **एषु माणवकेषु।** इन सब बालकों में।*

*सिद्धि-**आभ्याम्।** यहां 'इदम्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'भ्याम्' हलादि विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग का लोप होता है। इदम्+भ्याम्। अ अ+भ्याम्। अ+भ्याम्। आभ्याम्। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अकार आदेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश होकर **'सुपि च'** (७।३।१०२) से दीर्घ होता है। 'भिस्' विभक्ति में-**एभिः।** 'भ्यस्' विभक्ति में-**एभ्यः।** 'आम्' विभक्ति मे-**एषाम्।** सुप् विभक्ति में-**एषु।***

।। इति आदेशप्रकरणम् ।।

पूर्ववृद्धिप्रकरणम्

वृद्धिः–

(१) मृजेर्वृद्धिः ।११४।

प०वि०–मृजे: ६ ।१ वृद्धि: १ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। विभक्ताविति च निवृत्तम्। '**इको गुणवृद्धी**' (१ ।१ ।३) इति परिभाषया च इक: इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः–मृजेरङ्गस्य इको वृद्धिः।

अर्थः–मृजेरङ्गस्य अक: स्थाने वृद्धिर्भवति।

उदा०–मार्ष्टा। मार्ष्टुम्। मार्ष्टव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(मृजे:) मृज् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इक:) इक् वर्ण के स्थान में (वृद्धि:) वृद्धि होती है।*

*उदा०–**मार्ष्टा।** शुद्ध करनेवाला। **मार्ष्टुम्।** शुद्ध करने के लिये। **मार्ष्टव्यम्।** शुद्ध करना चाहिये।*

*सिद्धि–**(१) मार्ष्टा।** मृज्+तृच्। मृज्+तृ। मार्ज्+तृ। मार्ष्+टृ। मार्ष्टृ+सु। मार्ष्टा।*

*यहां '**मृजूष् शुद्धौ**' (अदा०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३ ।१ ।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'तृच्' प्रत्यय के परे होने पर 'मृज्' धातु के इक् वर्ण (ऋ) को वृद्धि (आ) होती है और इसे 'उरण् रपर:' (१ ।१ ।५१) से रपरत्व होता है। '**व्रश्चभ्रस्ज०**' (८ ।२ ।३६) से जकार को षकार और '**ष्टुना ष्टुः**' (८ ।४ ।४१) से सकार को टवर्ग टकार होता है।*

***(२) मार्ष्टुम्।** यहां पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३ ।३ ।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***(३) मार्ष्टव्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३ ।१ ।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

वृद्धिः–

(२) अचो ञ्णिति ।११५।

प०वि०–अच: ६ ।१ ञ्णिति ७ ।१ ।

स०–ञश्च णश्च तौ–ञ्णौ। ञ्णावितौ यस्य स:–ञ्णित्, तस्मिन्–ञ्णिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचोऽङ्गस्य ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थः-अजन्तस्याऽङ्गस्य ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-**ञिति**-एकस्तण्डुलनिचायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। द्वौ कारौ। **णिति**-गौः, गावौ, गावः। सखायौ, सखायः। जैत्रम्। यौत्रम्। च्यौत्नम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचः) अच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**ञित् में-एकस्तण्डुलनिचायः।** एक तण्डुल राशि। **द्वौ शूर्पनिष्पावौ।** दो छाज शुद्ध किये हुये तण्डुल (चावल)। **द्वौ कारौ।** धान्य आदि के दो विक्षेप (बरसाना)। **णित् में-गौः, गावौ, गावः।** अर्थ स्पष्ट है। **सखायौ, सखायः।** अर्थ स्पष्ट है। **जैत्रम्।** जीतने का साधन। **यौत्रम्।** मिश्रित करने का साधन। **च्यौत्नम्।** बल।*

*सिद्धि-(१) **तण्डुलनिचायः।** यहां तण्डुल-उपपद और नि-उपसर्गपूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से **'परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः'** (३।३।२०) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस ञित् प्रत्यय के परे होने पर अजन्त 'चि' अङ्ग को वृद्धि होती है।*

*(२) **शूर्पनिष्पावौ।** यहां शूर्प-उपपद और निस्-उपसर्गपूर्वक **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **द्वौ कारौ।** यहां **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **गौः।** यहां 'गो' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'गोतो णित्'** (७।१।९०) से 'सु' प्रत्यय णिद्वत् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'औ' प्रत्यय में-**गावौ।** 'जस्' प्रत्यय में-**गावः।** ऐसे ही 'सखि' शब्द से-**सखायौ, सखायः।** **'सख्युरसम्बुद्धौ'** (७।१।९२) से 'औ' और 'जस्' प्रत्यय णिद्वत् हैं।*

*(५) **जैत्रम्।** यहां **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से **'सार्वधातुभ्यः ष्ट्रन्'** (उणा० ४।१५९) से औणादिक 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। यह बहुल-वचन से णित् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **च्यौत्नम्।** यहां **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'जनिदाच्यु०'** (उणा० ४।१०५) से औणादिक 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उपधावृद्धिः-

(३) अत उपधायाः।११६।

प०वि०-अतः ६।१ उपधायाः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धि, ञ्णिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्य उपधाया अतो ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थः–अङ्गस्य उपधाभूतस्याऽकारस्य स्थाने ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–**ञिति**–पाकः। त्यागः। रागः। **णिति**–पाचयति। पाचकः। पाठयति। पाठकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अङ्गस्य) अङ्ग के (उपधायाः) उपधाभूत (अतः) अकार के स्थान में (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०–**ञित्**–**पाकः**। पकाना। **त्यागः**। त्याग करना। **रागः**। रंगना। **णित्**–**पाचयति**। वह पकवाता है। **पाचकः**। पकानेवाला रसोइया। **पाठयति**। वह पढ़ाता है। **पाठकः**। पढ़ानेवाला उपाध्याय।*

*सिद्धि–(१) **पाकः**। यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'ञित्' प्रत्यय के परे होने पर 'पच्' धातु के उपधाभूत अकार को वृद्धि (आ) होती है। '**चजोः कु घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व होता है।*

*'**त्यज हानौ**' (भ्वा०प०) धातु से–**त्यागः**। '**रञ्ज रागे**' (भ्वा०उ०) धातु से–**रागः**। '**घञि च भावकरणयोः**' (६।४।२७) से अनुनासिक (ञ्) का लोप होता है।*

*(२) **पाचयति**। यहां '**डुपचष् पाके**' धातु से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रत्यय के णित् होने से 'पच्' धातु के उपधाभूत अकार को वृद्धि होती है। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से–**पाठयति**।*

*(३) **पाचकः**। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश है। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से–**पाठकः**।*

आदिवृद्धिः–

(४) तद्धितेष्वचामादेः।११७।

प०वि०–तद्धितेषु ७।३ अचाम् ६।३ आदेः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने तद्धिते ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थः-अङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-ञिति-गार्ग्यः। वात्स्यः। दाक्षिः। प्लाक्षिः। **णिति**-औपगवः। कापटवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग-सम्बन्धी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदि के (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-ञित्-**गार्ग्यः।** गर्ग का पौत्र। **वात्स्यः।** वत्स का पौत्र। **दाक्षिः।** दक्ष का पुत्र। **प्लाक्षिः।** प्लक्ष का पुत्र। **णित्-औपगवः।** उपगु का पुत्र। **कापटवः।** कपटु का पुत्र।*

सिद्धि-(१) गार्ग्यः। *यहां 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धित-संज्ञक 'यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस प्रत्यय के ञित् होने से 'गर्ग' अङ्ग के आदिम अच् (अ) को वृद्धि होती है। 'वत्स' शब्द से-**वात्स्यः।***

*(२) **दाक्षिः।** यहां 'दक्ष' शब्द से **'अत इञ्'** (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लाक्षिः।***

*(३) **औपगवः।** यहां 'उपगु' शब्द से **'तस्यापत्यम्'** (४।१।९२) से तद्धित-संज्ञक 'अण्' प्रत्यय है। **'ओर्गुणः'** (७।४।१४६) से अङ्ग को गुण होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'कपटु' शब्द से-**कापटवः।***

आदिवृद्धिः-

(५) किति च।११८।

प०वि०-किति ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-क इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धि, अचः, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते किति वृद्धिः।

अर्थः-अङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने तद्धिते किति प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-'नडादिभ्यः फक्' (४।१।९९) नाडायनः, चारायणः। **'प्राग्वहतेष्ठक्'** (४।४।१) आक्षिकः, शालाकिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग-सम्बन्धी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदि के (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०- **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) **नाडायनः।** नड का पौत्र। **चारायणः।** चर का पौत्र। **'प्राग्वहतेष्ठक्'** (४।४।१) **आक्षिकः।** अक्ष नामक पाशों से खेलनेवाला जुआरी। **शालाकिकः।** शलाका नामक पाशों से खेलनेवाला जुआरी।

सिद्धि-नाडायनः। यहां 'नड' शब्द से **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से गोत्रापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस फक् प्रत्यय के 'कित्' होने से 'नड' के आदिम अच् को वृद्धि (आ) होती है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश है। 'चर' शब्द से-**चारायणः।**

(२) **आक्षिकः।** यहां 'अक्ष' शब्द से **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से दीव्यति-अर्थ में प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'शलाका' शब्द से-**शालाकिकः।**

।। इति पूर्ववृद्धिप्रकरणम् ।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।
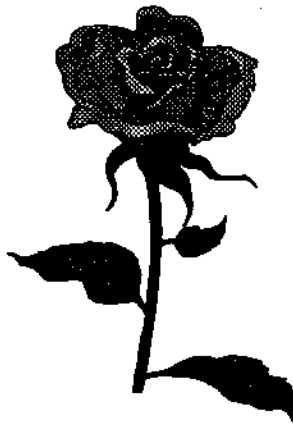
सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः

उत्तरवृद्धिप्रकरणम्

आत्-आदेशः–

(१) देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्।१।

प०वि०– देविका-शिंशपा-दित्यवाट्-दीर्घसत्र-श्रेयसाम् ६।३ आत् १।१।

स०–देविका च शिंशपा च दित्यवाट् च दीर्घसत्रं च श्रेयाँश्च ते देविका०श्रेयाँसः, तेषाम्–देविका०श्रेयसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः– देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामऽङ्गानामऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति चाऽऽत्।

अर्थः– देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामऽङ्गानामऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परत आकारादेशो भवति।

उदा०–(देविका) देविकायां भवम् उदकम् इति दाविकमुदकम्। देविका कूले भवाः शालय इति दाविकाकूलाः शालयः। पूर्वदेविका नाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वदाविकः। **(शिंशपा)** शिंशपाया विकारश्चमस इति शांशपश्चमसः। शिंशपास्थले भवा इति शांशपास्थला देवाः। पूर्वशिंशपानाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वशांशपः। **(दित्यवाट्)** दित्यौह इदमिति दात्यौहम्। **(दीर्घसत्रम्)** दीर्घसत्रे भवमिति दार्घसत्रम्। **(श्रेयान्)** श्रेयसि भवमिति श्रायसम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(देविका०) देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र, श्रेयस् (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है।*

*उदा०-(देविका) **दाविकमुदकम्।** देविका नदी में होनेवाला जल। **दाविकाकूला: शालय:।** देविका नदी के तट पर होनेवाले चावल। **पूर्वदाविक:।** पूर्वदेविका नामक प्राग्देशीय ग्राम है उसमें होनेवाला। (शिंशपा) **शांशपश्चमस:।** शिंशपा (शीशम) की लकड़ी का बना हुआ चमस। (दित्यवाट्) **दात्यौह:।** कृष्ण काक=कौआ। (दीर्घसत्र) **दीर्घसत्रम्।** दीर्घसत्र नामक सोमयाग में होनेवाला। (श्रेयस्) **श्रायसम्।** श्रेय मार्ग में होनेवाले आनन्द।*

*सिद्धि-(१) **दाविकम्।** यहां 'देविका' शब्द से **'तत्र भव:'** (४।३।५२) से भव-अर्थ में प्राग्वहतीय 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'देविका' शब्द के आदिम अच् एकार को आकार आदेश होता है। ऐसे ही-**दाविकाकूला: शालय:, पूर्वदाविक:। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्'** (७।३।१४) से उत्तरपद को वृद्धि प्राप्त थी, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

*(२) **शांशप:।** यहां 'शिंशपा' शब्द से **'पलाशादिभ्यो वा'** (४।३।१३९) से विकार-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पूर्वशांशप:। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्'** (७।३।१४) से उत्तरपद को वृद्धि प्राप्त थी, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

*(३) **दित्यौह:।** यहां 'दित्यवाट्'-शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से ऊठ्-रूप सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश प्राप्त होने पर **'एत्येधत्यूठ्सु'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है।*

*(४) **दीर्घसत्रम्।** यहां 'दीर्घसत्र' शब्द से **'तत्र भव:'** (४।३।५३) से भव-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'श्रेयस्' शब्द से-**श्रायसम्।***

***विशेष:** देविका-यह मद्रदेश में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी थी। इसकी निश्चित पहचान देग नदी के साथ होती है जो जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट, शेखुपुरा में होती हुई रावी में मिल जाती है। आज भी उसके किनारे कई प्रकार के बढ़िया, सुगन्धित, बासमती चावल होते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष का इतिहास पृ० ५३)।*

वृद्धिरियादेशश्च–

(२) केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरिय: ।२।

प०वि०-केकय-मित्रयु-प्रलयानाम् ६।३ यादे: ६।१ इय: १।१।

स०-केकयश्च मित्रयुश्च प्रलयश्च ते केकयमित्रयुप्रलया:, तेषाम्-केकयमित्रयुप्रलयानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। य आदिर्यस्य स यादि:, तस्य-यादे: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धि:, अच:, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदे:, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-केकयमित्रयुप्रलयानाम् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, यादेश्चेयः।

अर्थः-केकयमित्रयुप्रलयानामऽङ्गानाम् अचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, अङ्गस्य अकारादेश्च भागस्य स्थाने इयादेशो भवति।

उदा०-(केकयः) केकयस्यापत्यम्-कैकेयः। **(मित्रयुः)** मित्रयुभावेन श्लाघते-मैत्रिकया श्लाघते। **(प्रलयः)** प्रलयादागतम्-प्रालेयम् उदकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(केकयमित्रयुप्रलयानाम्) केकय, मित्रयु, प्रलय इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है और (अङ्गस्य) अङ्गसम्बन्धी (यादेः) यकारादि भाग के स्थान में (इयः) इय् आदेश होता है।*

*उदा०-**(केकय) कैकेयः।** केकय का पुत्र। **(मित्रयु) मैत्रिकया श्लाघते।** मित्रयु नामक ऋषिभाव से प्रशंसित होता है। **(प्रलय) प्रालेयम् उदकम्।** प्रलय=हिमालय से आया हुआ गङ्गाजल। **प्रकर्षेण लीनाः सन्ति पदार्था अत्रेति प्रलयो हिमालयः** (श०कौ०)।*

सिद्धि-(१) कैकेयः। *कैकेय+अण्। कैकय+अ। कैक इय्+अ। कैकेय्+अ। कैकेय+सु। कैकेयः।*

*यहां 'केकय' शब्द से **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से अपत्य-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'केकय' के आदिम अच् (ए) को वृद्धि (ऐ) और यकारादि-भाग (य् अ) के स्थान में इय-आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अन्त्य अकार का लोप और **'आद्गुणः'** (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।*

*(२) **मैत्रिकया।** मित्रयु+वुञ्। मित्रयु+अक। मैत्रयु+अक। मैत्र इय्+अक। मैत्रेयक।। मैत्रेयक+टाप्। मैत्रेयक+आ। मैत्रेयिक+आ। मैत्रेयिका।। मैत्रेयिका+टा। मैत्रेयिकया।*

*यहां 'मित्रयु' शब्द से **'गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु'** (५।१।१३३) से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। इस सूत्र से 'मित्रयु' के आदिम अच् को वृद्धि और इसके यकारादि भाग (यु) के स्थान में 'इय' आदेश होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्कात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। **गोत्रचरणा०'** (५।१।१३३) यहां लौकिक गोत्र का ग्रहण किया जाता है। **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं। लोक में ऋषिवाची शब्द गोत्र कहाता है। **'लोके च ऋषिशब्दो गोत्रमित्यभिधीयते'** (काशिका)।*

(३) प्रालेयम्। यहां 'प्रलय' शब्द से 'तत आगतः' (४।३।७४) से आगत-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः केकय-वर्णु (वन्नू) देश की सीध में सिन्धु के पूरब की ओर 'केकय' जनपद था, जो आधुनिक झेलहम, गुजरात और शाहपुर जिलों का केन्द्रीय भाग है।

वृद्धिप्रतिषेध ऐजादेशश्च—

(३) न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्।३।

प०वि०—न अव्ययपदम्, य्वाभ्याम् ५।२ पदान्ताभ्याम् ५।१ पूर्वौ १।२ तु अव्ययपदम्, ताभ्याम् ५।२ ऐच् १।१।

स०—य् च वश्च तौ य्वौ, ताभ्याम्-य्वाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पदस्याऽन्ताविति पदान्तौ, ताभ्याम्-पदान्ताभ्याम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। पूर्वश्च पूर्वश्च तौ पूर्वौ (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०—अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः—पदान्ताभ्यां य्वाभ्यामऽङ्गाभ्याम् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐच्।

अर्थः—पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, ताभ्यां यकारवकाराभ्यां पूर्वौ तु ऐजागमौ भवतः।

उदा०—**यकारात् पूर्वमैकारः**—व्यसने भवम्-वैयसनम्। व्याकरणमधीते वेद वा-वैयाकरणः। **वकारात् पूर्वमौकारः**—स्वश्वस्यापत्यम्-सौवश्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पदान्ताभ्याम्) पद के अन्त में विद्यमान (य्वाभ्याम्) यकार और वकार से परे (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (तु) अपितु (ताभ्याम्) उन यकार और वकारों से (पूर्वौ) पहले (ऐच्) ऐच्=ऐकार और औकार आगम होते हैं।*

*उदा०-यकार से पूर्व ऐकार-**वैयसनम्।** व्यसन में होनेवाला दुःख। **वैयाकरणः।** व्याकरण शास्त्र का अध्येता वा वेत्ता। वकार से पूर्व औकारः-**सौवश्वः।** स्वश्व का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **वैयसनम्।** व्यसन+अण्। व् ऐ य सन्+अ। वैयसन+सु। वैयसनम्।*

*यहां 'व्यसन' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'वि+असनम्' इस स्थिति में इस सूत्र से आदिम अच् (इ) को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके यकार से पूर्व ऐच् (ऐ) आगम होता है। ऐसे ही 'व्याकरण' (वि+आकरण) शब्द से-**वैयाकरणः।** 'तदधीते तद्वेद' (४।२।५९) से अधीते-वेद अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है।*

*(२) **सौवश्व।** यहां 'स्वश्व' शब्द से 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। 'सु+अश्वः' इस स्थिति में इस सूत्र से वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके वकार से पूर्व ऐच् (औ) आगम होता है।*

वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च–

(४) द्वारादीनां च।४।

प०वि०-द्वारादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-द्वार आदिर्येषां ते द्वारादयः, तेषाम्-द्वारादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, न, य्वाभ्याम्, पूर्वौ, तु, ताभ्याम्, ऐजिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वारादीनामङ्गानां च य्वाभ्यामचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐच्।

अर्थः-द्वारादीनामङ्गानां च यकारवकाराभ्याम् उत्तरस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐजागमौ भवतः।

उदा०-द्वारे नियुक्त इति दौवारिकः। द्वारपालस्येदमिति दौवारपालम्। तदादिविधिरत्र भवति। स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इति सौवरः।

द्वार। स्वर। स्वाध्याय। व्यल्कश। स्वस्ति। स्वर। स्फ्यकृत। स्वादुमृदु। श्वन्। स्व। इति द्वारादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्वारादीनाम्) द्वार-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (च) भी (य्वाभ्याम्) यकार और वकार से परे (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे*

होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (तु) अपितु (ताभ्याम्) उन यकार और वकारों से (पूर्वौ) पहले (ऐच्) ऐच्=ऐकार और औकार आगम होते हैं।

*उदा०-**दौवारिकः।** द्वार पर नियुक्त पुरुष। **दौवारपालम्।** द्वारपाल सम्बन्धी द्रव्य। यहां तदादिविधि होती है। **सौवरः।** स्वरविषय को अधिकृत करके बनाया गया ग्रन्थविशेष।*

*सिद्धि-(१) **दौवारिकः।** द्वार+ठक्। द्वार+इक। द् औ वा र्+इक। दौवारिक+सु। दौवारिकः।*

*यहां 'द्वार' शब्द से **'तत्र नियुक्तः'** (४।४।६९) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। इस सूत्र से आदिम अच् को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके वकार से पूर्व ऐच् (औ) आगम होता है।*

*(२) **दौवारपालम्।** यहां 'द्वारपाल' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। यहां तदादिविधि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सौवरः।** यहां 'स्वर' शब्द से **'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'** (४।३।८७) से अधिकृत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च–

(५) न्यग्रोधस्य च केवलस्य।५।

प०वि०-न्यग्रोधस्य ६।१ च अव्ययपदम्, केवलस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, आचाम्, आदेः, किति, न, यात्, पूर्व, तु, तस्मात्, ऐजिति चानुवर्तते।

अन्वयः-केवलस्य न्यग्रोधस्याऽङ्गस्य च यकाराद् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, तस्मात् पूर्व तु ऐच्।

अर्थः-केवलस्य न्यग्रोधस्याऽङ्गस्य च यकारादुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, तस्माद् यकारात् पूर्वं तु ऐजागमो भवति।

उदा०-न्यग्रोधस्य विकार इति नैयग्रोधश्चमसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(केवलस्य) केवल (न्यग्रोधस्य) न्यग्रोध इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि*

(न) नहीं होती है (तु) अपितु (तस्मात्) उस (यात्) यकार से (पूर्वम्) पूर्व (ऐच्) ऐच् आगम होता है।

*उदा०-**नैयग्रोधश्चमसः।** न्यग्रोध (बरगद=बड़) की लकड़ी का बना हुआ यज्ञिय चमस।*

*सिद्धि-**नैयग्रोधः।** यहां 'न्यग्रोध' शब्द से **'अनुदात्तादेरञ्'** (४।२।४४) से विकार-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'न्यग्रोध' शब्द के आदिम अच् (अ) को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके यकार के पूर्व ऐच् (ऐ) आगम होता है।*

विशेषः *'न्यग्रोध' शब्द में यकार है; वकार नहीं। अतः सम्भवप्रमाण के बल से **'य्वाभ्याम्'** इस पद में से यकार की अनुवृत्ति की जाती है, वकार की नहीं।*

उक्तप्रतिषेधः–

(६) न कर्मव्यतिहारे।६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कर्मव्यतिहारे ७।१।

स०-कर्मणो व्यतिहार इति कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। कर्म=क्रिया, व्यतिहारः=परस्परं करणम्।

अन्वयः-यदुक्तं कर्मव्यतिहारे तन्न।

अर्थः-अस्मिन् प्रकरणे यदुक्तं कर्मव्यतिहारेऽर्थे तन्न भवति।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावलेखी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-इस प्रकरण में जो विधान किया गया है वह (कर्मव्यतिहारे) कर्मव्यतिहार अर्थ में (न) नहीं होता है। किसी क्रिया का परस्पर करना कर्मव्यतिहार कहाता है।*

*उदा०-**व्यावक्रोशी वर्तते।** परस्पर आह्वान हो रहा है। **व्यावलेखी वर्तते।** परस्पर लेखन-कार्य चल रहा है। **व्यावहासी वर्तते।** परस्पर हास्य चल रहा है।*

*सिद्धि-**व्यावक्रोशी।** यहां वि-अव उपसर्ग पूर्वक **'क्रुश आह्वाने'** (भ्वा०प०) धातु से भाव तथा कर्मव्यतिहार अर्थ में 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'णचः स्त्रियामञ्'** (५।४।१४) से स्वार्थ में तद्धित 'अञ्' प्रत्यय है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से वृद्धि का प्रतिषेध और ऐच् आगम का विधान किया गया है। इस सूत्र से कर्मव्यतिहार अर्थ में यहां आदिम अच् को वृद्धि होती है और ऐच् आगम नहीं होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

ऐसे ही 'लिख अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) धातु से व्यावलेखी। 'हसे हसने' (भ्वा०प०) धातु से-व्यावहासी।

उक्तप्रतिषेधः--

(७) स्वागतादीनां च।७।

प०वि०-स्वागतादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्वागत आदिर्येषां ते स्वागतादयः, तेषाम्-स्वागतादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-यदुक्तं स्वागतादीनामङ्गानां च तन्न।

अर्थः-अस्मिन् प्रकरणे यदुक्तं स्वागतादीनामङ्गानां च तन्न भवति।

उदाहरणम्–

(१) **स्वागत**-स्वागतमित्याह इति स्वागतिकः।

(२) **स्वध्वर**-स्वध्वरेण चरतीति स्वाध्वरिकः।

(३) **स्वङ्ग**-स्वङ्गस्यापत्यमिति स्वाङ्गिः।

(४) **व्यङ्ग**-व्यङ्गस्यापत्यमिति व्याङ्गिः।

(५) **व्यड**-व्यडस्यापत्यमिति व्याडिः।

(६) **व्यवहार**-व्यवहारेण चरतीति व्यावहारिकः।

(७) **स्वपति**-स्वपतौ साधुरिति स्वापतेयः।

स्वागत। स्वध्वर। स्वङ्ग। व्यङ्ग। व्यड। व्यवहार। स्वपति। इति स्वागतादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*इस प्रकरण में जो विधान किया गया है वह (स्वागतादीनाम्) स्वागत-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (च) भी (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(स्वागत) **स्वागतिकः**। जो 'स्वागतम्' ऐसा कहता है वह पुरुष। (स्वधर) **स्वाधरिकः**। सु-अध्वर=उत्तम यज्ञ हेतु विचरण करनेवाला पुरुष। (स्वङ्ग) **स्वाङ्गिः**। स्वङ्ग का पुत्र। (व्यङ्ग) **व्याङ्गिः**। व्यङ्ग का पुत्र। (व्यड) **व्याडिः**। व्यड का पुत्र। (व्यवहार) **व्यावहारिक**। व्यवहार से विचरण करनेवाला पुरुष। (स्वपति) **स्वापतेयः**। वह द्रव्य कि जिस पर स्वपति=मालिक का उचित अधिकार हो।*

*सिद्धि-(१) **स्वागतिकः**। यहां 'स्वागत' शब्द से वा०-'**आहौ प्रभूतादिभ्यः**' (४।४।१) से आह-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से '**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ ताभ्यामैच्**' (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम नहीं होता है।*

*(२) **स्वाध्वरिकः**। यहां 'स्वध्वर' शब्द से '**चरति**' (४।४।८) से चरति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'व्यवहार' शब्द से-**व्यावहारिकः**।*

*(३) **स्वाङ्गिः**। यहां 'स्वङ्ग' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'व्यङ्ग' शब्द से-**व्याङ्गि**, 'व्यड' शब्द से-**व्याडिः**।*

*(४) **स्वापतेयः**। यहां 'स्वपति' शब्द से '**पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्**' (४।४।१०४) से चरति-अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उक्तप्रतिषेधः-

(८) श्वादेरिञि।८।

प०वि०-श्वादेः ६।१ इञि ७।१।

स०-श्वा आदिर्यस्य स श्वादिः, तस्य-श्वादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वादेरङ्गस्य इञि यदुक्तं तन्न।

अर्थः-श्वादेरङ्गस्य इञि प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति।

उदा०-श्वभस्त्रस्यापत्यमिति श्वाभस्त्रिः। श्वादंष्ट्रिः।

आर्यभाषाः अर्थ-(*श्वादेः*) *श्वा जिसके आदि में है, उस* (*अङ्गस्य*) *अङ्ग को* (*इञि*) *इञ् प्रत्यय परे होने पर जो इस प्रकरण में विधान किया गया है वह कार्य* (*न*) *नहीं होता है।*

*उदा०-**श्वाभस्त्रिः**। श्वभस्त्र का पुत्र। **श्वादंष्ट्रिः**। श्वदंष्ट्र का पुत्र।*

*सिद्धि-**श्वाभस्त्रिः**। यहां 'श्वभस्त्र' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से '**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्**' (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम भी नहीं होता है। ऐसे ही 'श्वदंष्ट्र' शब्द से-**श्वादंष्ट्रिः**।*

उक्तप्रतिषेध-विकल्पः--

(६) पदान्तस्यान्यतरस्याम्।६।

प०वि०-पदान्तस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-पदशब्दोऽन्ते यस्य स पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, श्वादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदान्तस्य श्वादेरङ्गस्य यदुक्तं तदन्यतरस्यां न।

अर्थः-पदशब्दान्तस्य श्वादेरङ्गस्य यदुक्तं तद् विकल्पेन न भवति।

उदा०-शुन इव पदमस्येति श्वपदः, श्वपदस्येदमिति श्वापदम्, शौवापदम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(पदान्तस्य) पद शब्द जिसके अन्त में है और (श्वादेः) श्वा शब्द जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को जो इस प्रकरण में विधान किया गया है वह कार्य (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (न) नहीं होता है।

उदा०-__श्वापदम्, शौवापदम्।__ श्वा (कुत्ता) के समान पदचिह्न है जिसका वह प्राणी 'श्वपद' कहाता है। श्वपद का सम्बन्धी-श्वापद अथवा शौवापद। 'शौवापद' शब्द में __'अन्येषामपि दृश्यते'__ (६।३।१३७) से दीर्घ है।

__सिद्धि-श्वापदम्।__ यहां प्रथम श्वन् और पद शब्दों का __'अनेकमन्यपदार्थे'__ (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'श्वपद' शब्द से __'तस्येदम्'__ (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से __'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'__ (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम भी नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में ऐच् (औ) आगम है-__शौवापदम्।__

__'श्वापद'__ शब्द में वार्तिककार कात्यायन के मत में वा०-__'शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु'__ (६।३।१३७) से दीर्घ होता है।

{उत्तरपदवृद्धिः}

अधिकारः--

(१०) उत्तरपदस्य।१०।

वि०-उत्तरपदस्य ६।१।

अर्थः-उत्तरपदस्य इत्यधिकारोऽयम्। **'हनस्तोऽचिण्णलोः'** (७।३।३२) प्रागेतस्माद् यदितोऽग्रे वक्ष्यति 'उत्तरपदस्य' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'अवयवादृतोः'** (७।३।११) इति।

उदा०-पूर्ववार्षिकम्। अपरवार्षिकम्। पूर्वहैमनम्। अपरहैमनम्।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(उत्तरपदस्य) 'उत्तरपदस्य' यह अधिकार-सूत्र है। पाणिनि मुनि '__हनस्तोऽचिण्णलोः__' (७।३।३२) इस सूत्र से पहले-पहले जो इससे आगे कहेंगे वह 'उत्तरपद' को होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-'__अवयवादृतोः__' (७।३।११) अर्थात् अवयववाची पद से परे ऋतुवाची उत्तरपद के अचों में से आदिम अच् को तद्धित ञित्, णित् और कित् प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है।

उदा०-__पूर्ववार्षिकम्।__ वर्षा ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला। __अपरवार्षिकम्।__ वर्षा ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला। __पूर्वहैमनम्।__ हेमन्त ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला। __अपरहैमनम्।__ हेमन्त ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला।

__सिद्धि-__ '__पूर्ववार्षिकम्__' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

उत्तरपदवृद्धिः—

(११) अवयवादृतोः।११।

प०वि०-अवयवात् ५।१ ऋतोः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अवयवाद् ऋतोरङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-अवयववाचिनः पूर्वपदाद् उत्तरस्य ऋतुवाचिनोऽङ्गस्य उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-पूर्वं वर्षाणामिति पूर्ववर्षाः। पूर्ववर्षासु भवमिति पूर्ववार्षिकम्। अपरं वर्षाणामिति अपरवर्षाः। अपरवर्षासु भवमिति अपरवार्षिकम्। पूर्वं हेमन्तस्येति पूर्वहेमन्तम्। पूर्वहेमन्ते भवमिति पूर्वहैमनम्। अपरं हेमन्तस्येति अपरहेमन्तम्। अपरहेमन्ते भवमिति अपरहैमनम्।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(अवयवात्) अवयववाची पूर्वपद से परे (ऋतोः) ऋतुवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

*उदा०-**पूर्ववार्षिकम्**। वर्षा ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला कार्य। **अपरवार्षिकम्**। वर्षा ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला कार्य। **पूर्वहैमनम्**। हेमन्त ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला कार्य। **अपरहैमनम्**। हेमन्त ऋतु के अपर भाग में होनेवाला कार्य।*

*सिद्धि-(१) **पूर्ववार्षिकम्**। यहां प्रथम 'पूर्व' और 'वर्षा' शब्दों का '**पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे**' (२।२।१) से एकदेशितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'पूर्ववर्षा' इस ऋतु अवयववाची शब्द से '**वर्षाभ्यष्ठक्**' (४।३।१८) से भव-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उत्तरपदस्थ 'वर्षा' शब्द के आदिम 'अच्' को वृद्धि होती है। ऐसे ही-**अपरवार्षिकम्**।*

*(२) **पूर्वहैमनम्**। यहां प्रथम 'पूर्व' और हिमन्त' शब्दों का पूर्ववत् एकदेशितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'पूर्वहिमन्त' इस ऋतु अवयववाची शब्द से '**सर्वत्राण् च तलोपश्च**' (४।३।२२) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और हिमन्त' के तकार का लोप होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अपरहैमनम्**।*

उत्तरपदवृद्धिः-

(१२) सुसर्वार्धाज्जनपदस्य।१२।

प०वि०-सु-सर्व-अर्धात् ५।१ जनपदस्य ६।१।

स०-सुश्च सर्वश्च अर्धं च एतेषां समाहारः सुसर्वार्धम्, तस्मात्-सुसर्वार्धात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुसर्वार्धाज्जनपदस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-सुसर्वार्धात् पूर्वपदाद् उत्तरस्य जनपदवाचिनोऽङ्गस्य उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(सुः) शोभनाश्च ते पञ्चाला इति सुपञ्चालाः, सुपञ्चालेषु जात इति सुपाञ्चालकः। **(सर्वः)** सर्वे च ते पञ्चाला इति सर्वपञ्चालाः, सर्वपञ्चालेषु जात इति सर्वपाञ्चालकः। **(अर्धम्)** पञ्चालानामर्धमिति अर्धपञ्चालाः, अर्धपञ्चालेषु जात इति अर्धपाञ्चालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सुसर्वार्धात्) सु, सर्व, अर्ध इन पूर्वपदों से परे (जनपदस्य) जनपदवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(सु) **सुपाञ्चालकः**। उत्तम पञ्चाल में उत्पन्न हुआ। (सर्व) **सर्वपाञ्चालकः**। सब पञ्चाल में उत्पन्न हुआ। (अर्धम्) **अर्धपाञ्चालकः**। आधे पञ्चाल में उत्पन्न हुआ।*

*सिद्धि-(१) **सुपाञ्चालकः**। यहां प्रथम 'सु' और 'पञ्चाल' शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'सुपञ्चाल' शब्द से 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' (४।२।१२४) से जात-आदि अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पञ्चाल' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **सर्वपाञ्चालकः**। यहां 'सर्व' और 'पाञ्चाल' शब्दों का 'पूर्वकालैकसर्वजरत्-पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अर्धपाञ्चालकः**। यहां 'अर्ध' और 'पञ्चाल' शब्दों का 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशितत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उत्तरपदवृद्धिः-

(१३) दिशोऽमद्राणाम्।१३।

प०वि०-दिशः ५।१ अमद्राणाम् ६।३।

स०-न मद्रा इति अमद्राः, तेषाम्-अमद्राणाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, जनपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिशोऽमद्रस्य जनपदस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-दिग्वाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य मद्रवर्जितस्य जनपदवाचिनोऽङ्गस्य उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-पूर्वेषु पञ्चालेषु भव इति पूर्वपाञ्चालकः। अपरपाञ्चालकः। दक्षिणपाञ्चालकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(दिशः) दिशावाची पूर्वपद से परे (अमद्रस्य) मद्र से भिन्न (जनपदस्य) जनपदवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०-**पूर्वपाञ्चालकः**। पूर्व पञ्चाल में होनेवाला। **अपरपाञ्चालकः**। अपर (पश्चिम) पञ्चाल में होनेवाला। **दक्षिणपाञ्चालकः**। दक्षिण पञ्चाल में होनेवाला।

सिद्धि-(१) पूर्वपाञ्चालकः। यहां 'पूर्व' और 'पञ्चाल' शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५०) से तद्धितार्थ में कर्मधारय तत्पुरुष समास है। **'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्'** (४।२।१२५) से भव-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पञ्चाल' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**अपरपाञ्चालकः, दक्षिणपाञ्चालकः।**

विशेषः पञ्चाल जनपद के तीन हिस्से थे-पूर्वपञ्चाल, अपरपञ्चाल और दक्षिणपञ्चाल। महाभारत के अनुसार दक्षिण और उत्तर पञ्चाल के बीच गंगा-नदी सीमा थी। एटा-फर्रुखाबाद के जिले दक्षिण-पञ्चाल थे। ज्ञात होता है कि उत्तर-पञ्चाल के भी पूर्व और अपर दो भाग थे, दोनों को रामगंगा नदी बांटती थी। ये ही व्याकरण के पूर्वपञ्चाल और अपरपञ्चाल हैं। इसी प्रकार समस्त जनपद अथवा उसके आधे भाग के वाचक नाम भाषा में प्रचलित थे-**सर्वपञ्चाल, अर्धपञ्चाल** (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५८)।

उत्तरपदवृद्धिः-

(१४) प्राचां ग्रामनगराणाम्।१४।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ ग्राम-नगराणाम् ६।३।

स०-ग्रामाश्च नगराणि च तानि ग्रामनगराणि, तेषाम्-ग्रामनगराणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, दिश इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिशः प्राचां ग्रामनगराणाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानाम-चामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-दिग्वाचिनः शब्दाद् उत्तरेषां प्राचां देशे वर्तमानानां ग्रामवाचिनां नगरवाचिनां चोत्तरपदानामचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-ग्रामाणाम्-पूर्वेषुकामशम्यां भव इति पूर्वैषुकामशमः। अपरैषुकामशमः। पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः। अपरकार्ष्णमृत्तिकः। **नगराणाम्**-पूर्वस्मिन् पाटलिपुत्रे भव इति पूर्वपाटलिपुत्रकः। अपरपाटलिपुत्रकः। पूर्वकान्यकुब्जकः। अपरकान्यकुब्जकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(दिशः) दिशावाची शब्द से परे (प्राचाम्) प्राग्देशीय (ग्रामनगराणाम्) ग्रामवाची और नगरवाची (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदानाम्) उत्तरपदों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०-(ग्राम) ***पूर्वैषुकामशमः।*** *पूर्व-इषुकामशमी ग्राम में होनेवाला।* ***अपरैषुकामशमः।*** *अपर-इषुकामशमी ग्राम में होनेवाला।* ***पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः।*** *पूर्व-कृष्णमृत्तिका ग्राम में होनेवाला।* ***अपरकार्ष्णमृत्तिकः।*** *अपर-कृष्णमृत्तिका ग्राम में होनेवाला। (नगर)* ***पूर्वपाटलिपुत्रकः।*** *पूर्व-पाटलिपुत्र नगर में होनेवाला।* ***अपरपाटलिपुत्रकः।*** *अपर-पाटलिपुत्र नगर में होनेवाला।* ***पूर्वकान्यकुब्जकः।*** *पूर्व-कान्यकुब्ज नगर में होनेवाला।* ***अपरकान्यकुब्जकः।*** *अपर-कान्यकुब्ज नगर में होनेवाला।*

सिद्धि-(१) ***पूर्वैषुकामशमः।*** *यहां प्रथम 'पूर्वा' और 'इषुकामशमी' शब्दों का* ***'दिक्संख्ये संज्ञायाम्'*** *(२।१।५०) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है-* ***पूर्वा चेयम् इषुकामशमीति पूर्वेषुकामशमी।*** *तत्पश्चात् 'पूर्वेषुकामशमी' शब्द से* ***'तत्र भवः'*** *(४।२।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ग्रामवाची 'इषुकामशमी' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-* ***अपरैषुकामशमी*** *आदि।*

(२) ***पूर्वपाटलिपुत्रकः।*** *यहां 'पूर्व' और 'पाटलिपुत्र' शब्दों का* ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'*** *(२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात्-* ***'रोपधेतोः प्राचाम्'*** *(४।२।१२३) से भव-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***पूर्वकान्यकुब्जः।*** *यहां 'पूर्व' और 'कान्यकुब्ज' शब्दों का पूर्ववत् तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात्* ***'तत्र भवः'*** *(४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः (१) पाटलिपुत्र-*मगध या दक्षिण बिहार के एक नगर का नाम। यह गंगा और सोननदी के संगम पर बसाया गया था। इसका दूसरा नाम कुसुमपुर है (श०कौ०)।*

(२) ***कान्यकुब्ज***-*इक्षुमती या काली नदी तथा गंगा के संगम पर अवस्थित प्राचीनकालीन एक राज्य। इसकी राजधानी आधुनिक कन्नौज कस्बा है, जो फर्रुखाबाद जिले के अन्तर्गत है। यह राजा गाधि की राजधानी थी (श०कौ०)।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१५) संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च।१५।

प०वि०–संख्यायाः ५।१ संवत्सर-संख्यस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०–संवत्सरश्च संख्या च एतयोः समाहारः संवत्सरसंख्यम्, तस्य-संवत्सरसंख्यस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्याऽङ्गयोत्तरपदस्याचामादेरच-स्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य संवत्सरशब्दस्य संख्यावाचिन-श्चाङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–**(संवत्सरः)** द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वेति द्विसांवत्सरिकः। त्रिसांवत्सरिकः। **(संख्या)** द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वेति द्विषाष्टिकः। द्विसाप्ततिकः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (संवत्सरसंख्यस्य) संवत्सर और संख्यावाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (च) भी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

उदा०–(संवत्सर) ***द्विसांवत्सरिकः।*** *दो संवत्सर तक अधीष्ट=सत्कृत (आचार्य), भृत, भूत व भावी कार्य।* ***त्रिसांवत्सरिकः।*** *तीन संवत्सर तक अधीष्ट=सत्कृत (आचार्य), भृत, भूत व भावी कार्य।* ***(संख्या) द्विषाष्टिकः।*** *२+६०=६२ वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत व भावी कार्य।* ***द्विसाप्ततिकः।*** *२+७०=७२ वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत व भावी कार्य।*

सिद्धि–द्विसांवत्सरिकः। *यहां 'द्वि' और 'संवत्सर' शब्दों का* ***'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च'*** *(२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है।* ***'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी'*** *(५।१।७९) से अधीष्ट-आदि अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से संवत्सर उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–* ***त्रिसांवत्सरिकः। द्विषाष्टिकः। त्रिसाप्तिकः।*** *द्विषष्टि आदि शब्द संख्येय वर्ष अर्थ के वाचक हैं, अतः इससे काल-अधिकार में विहित पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय होता है।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१६) वर्षस्याभविष्यति ।१६।

प०वि०–वर्षस्य ६ ।१ अभविष्यति ७ ।१।

स०– न भविष्यद् इति अभविष्यत्, तस्मिन्–अभविष्यति (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, संख्यायाः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संख्याया वर्षस्योत्तरपदस्याऽङ्गस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, अभविष्यति।

अर्थः–संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य वर्षशब्दस्योत्तरपदस्याऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, स चेत् तद्धितो भविष्यत्यर्थे न भवति।

उदा०–द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वेति द्विवार्षिकः, त्रिवार्षिकः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (वर्षस्य) वर्ष इस (उत्तरपदस्य) उत्तरपद रूप (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (अभविष्यति) यदि वह तद्धित प्रत्यय भविष्यत्काल {भावी} अर्थ में न हो।*

*उदा०–**द्विवार्षिकः।** दो वर्ष तक अधीष्ट, भृत वा भूत कार्य। **त्रिवार्षिकः।** तीन वर्ष तक अधीष्ट, भृत वा भूत कार्य।*

*सिद्धि–**द्विवार्षिकः।** यहां 'द्वि' और वर्ष शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'वर्ष' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–**त्रिवार्षिकः।***

*'**अभविष्यति**' का कथन इसलिये किया है कि यहां उत्तरपद को आदिवृद्धि न हो–**त्रीणि वर्षाणि भावीति–त्रैवर्षिकम्।** तीन वर्ष तक होनेवाला कार्य।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१७) परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ।१७।

प०वि०–परिमाणान्तस्य ६ ।१ असंज्ञा-शाणयोः ७ ।२।

स०-परिमाणमन्ते यस्य स परिमाणान्तः, तस्य-परिमाणान्तस्य (बहुव्रीहिः)। संज्ञा च शाणं च ते संज्ञाशाणे, न संज्ञाशाणे इति असंज्ञाशाणे, तयोः-असंज्ञाशाणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, संख्याया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः परिमाणान्तरस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, असंख्याशाणयोः।

अर्थः-संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य परिमाणान्तस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, संज्ञायां विषये शाणे चोत्तरपदे तु न भवति।

उदा०-द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्येति द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतमिति द्विसौवर्णिकम्। द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतमिति द्विनैष्किकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (परिमाणान्तस्य) परिमाणवाची शब्द जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (असंज्ञाशाणयोः) संज्ञा विषय और शाण-उत्तरपद में तो नहीं होती है।*

*उदा०-**द्विकौडविकः**। जिसका दो कुडव प्रयोजन है वह पुरुष। कुडव=साढे बारह तोला (ढाई छटांक) सुवर्ण आदि। **द्विसौवर्णिकम्**। दो सुवर्णों से क्रीत (खरीदा हुआ) वस्त्र आदि। सुवर्ण=एक कर्ष, १० गुंजा (रत्ती)। **द्विनैष्किकम्**। दो निष्कों से क्रीत वस्त्र आदि। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का।*

***सिद्धि-(१) द्विकौडविकम्**। यहां 'द्वि' और 'कुडव' शब्दों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'द्विकुडव' शब्द से '**प्रयोजनम्**' (५।१।१०८) से प्रयोजन-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से परिमाणवाची 'कुडव' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **द्विसौवर्णिकम्**। यहां 'द्वि' और 'सुवर्ण' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'द्विसुवर्ण' शब्द से '**तेन क्रीतम्**' (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**द्विनैष्किकम्**।*

उत्तरपदवृद्धिः--

(१८) जे प्रोष्ठपदानाम्।१८।

प०वि०-जे ७।१ प्रोष्ठपदानाम् ६।३।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रोष्ठपदानाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानामाचामादेरचो जे तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-प्रोष्ठपदानाम्=प्रोष्ठपदवाचिनाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानामचामादेरचः स्थाने, जे=जातार्थे तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-प्रोष्ठपदाभिर्युक्तः कालः प्रोष्ठपदाः। प्रोष्ठपदासु जात इति प्रोष्ठपादो माणवकः। भद्रपदाभिर्युक्तः कालो भद्रपदाः। भद्रपदासु जात इति भद्रपादो माणवकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रोष्ठपदानाम्) प्रोष्ठपदवाची (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदानाम्) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (जे) जात-अर्थ में विद्यमान (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**प्रोष्ठपादो माणवकः।** प्रोष्ठपदा नक्षत्र से युक्त काल-प्रोष्ठपदा कहाता है। प्रोष्ठपदा में उत्पन्न प्रोष्ठपाद बालक। ऐसे ही-**भद्रपादो माणवकः।***

सिद्धि-प्रोष्ठपादः। *यहां प्रथम 'प्रोष्ठपदा' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४।२।३) से युक्त-काल अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और इसका **'लुबविशेषे'** (४।२।४) से लुप् हो जाता है। तत्पश्चात् **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४।३।१६) से जात-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'प्रोष्ठपदा' में विद्यमान 'पद' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *(१) सूत्रपाठ में **'प्रोष्ठपदानाम्'** इस बहुवचन निर्देश से उसके पर्यायवाची 'भद्रपदा' शब्द का भी ग्रहण किया जाता है-**भद्रपादो माणवकः।***

(२) 'जे' शब्द से जात-अर्थ का ग्रहण होता है।

(३) प्रोष्ठपदा चार नक्षत्रों का समूह है। दो पूर्वप्रोष्ठपदा और दो उत्तरपोष्ठपदा नामक नक्षत्र हैं।

*(४) **प्रोष्ठः=गौरिव पादा यस्य स प्रोष्ठपदः।** 'सुप्रातः०' (५।४।१२०) **इति निपातनात्** 'पादः पत्' (६।३।१२०) **इत्यनेन प्राप्तः पदादेशो न भवति। भद्रः=गौः।***

{उभयपदवृद्धिः}

उभयपदवृद्धिः—

(१६) हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च।१९।

प०वि०-हृद्-भग-सिन्ध्वन्ते ७।१ पूर्वपदस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-हृच्च भगं च सिन्धुश्च एतेषां समाहारो हृद्भगसिन्धु। हृद्भगसिन्धु अन्ते यस्य तद् हृद्भगसिन्ध्वन्तम्, तस्मिन्-हृद्भगसिन्ध्वन्ते (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-हृद्भगसिन्ध्वन्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-हृद्भगसिन्ध्वन्तेऽङ्गे पूर्वदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(हृद्) सुहृदयस्य भाव इति सौहार्दम्। सुहृदयस्येदमिति सौहार्दम्। **(भगम्)** सुभगस्य भाव इति सौभाग्यम्। दुर्भगस्य भाव इति दौर्भाग्यम्। सुभगाया अपत्यमिति सौभागिनेयः। दुर्भगाया अपत्यमिति दौर्भागिनेयः। **(सिन्धुः)** सक्तुप्रधानाः सिन्धव इति सक्तुसिन्धवः। सक्तुसिन्धुषु भव इति साक्तुसैन्धवः। पानसिन्धुषु भव इति पानसैन्धवः।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(हृद्भगसिन्ध्वन्ते) हृद्, भग, सिन्धु हैं अन्त में जिसके उस (अङ्गे) अङ्ग में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (च) और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०-(हृद्) __सौहार्दम्।__ सुहृदय का भाव, सुहृदय से सम्बन्धित। __(भग) सौभाग्यम्।__ सुभग का भाव। __दौर्भाग्यम्।__ दुर्भग का भाव। __सौभागिनेय।__ सुभगा का पुत्र। __दौर्भागिनेयः।__ दुर्भगा का पुत्र। __(सिन्धु) साक्तुसिन्धवः।__ सक्तुप्रधान सिन्धु में होनेवाला। __पानसैन्धवः।__ पानप्रधान सिन्धु में होनेवाला। सिन्धु=नदी।

__सिद्धि-(१) सौहार्दम्।__ यहां 'सुहृदय' शब्द से __'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'__ (५।१।१२४) से भाव-अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। __'वा शोकष्यञ्रोगेषु'__ (६।३।५१) __से हृदय__ के स्थान में 'हृद्' आदेश होता है। इस सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद को आदिवृद्धि __होती है।__

*(२) **सौहार्दम्।** यहां 'सुहृदय' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु'** (६।३।५०) से 'हृदय' के स्थान में 'हृद्' आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सौभाग्यम्।** यहां 'सुभग' शब्द से पूर्ववत् भाव-अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'दुर्भग' शब्द से-**दौर्भाग्यम्।***

*(४) **सौभागिनेयः।** यहां 'सुभगा' शब्द से **'कल्याण्यादीनामिनङ् च'** (४।१।१२६) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय और इनङ् आदेश है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'दुर्भगा' शब्द से-**दौर्भागिनेयः।***

*(५) **साक्तुसैन्धवः।** यहां प्रथम सक्तुप्रधान और सिन्धु शब्दों का वा०-**'शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम्'** (२।१।६०) से मध्यपदलोपी कर्मधारय समास है। तत्पश्चात् 'सक्तुसिन्धु' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पानसैन्धवः।***

उभयपदवृद्धिः–

(२०) अनुशतिकादीनां च।२०।

प०वि०–अनुशतिकादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०–अनुशतिक आदिर्येषां ते-अनुशतिकादयः, तेषाम्–अनुशतिकादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनुशतिकादीनामङ्गानां च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–अनुशतिकादीनामङ्गानां च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–अनुशतिकस्येदमिति आनुशातिकम्। अनुहोडेन चरतीति आनुहौडिकः। अनुसंवरणे दीयते इति आनुसांवरणम्। अनुसंवत्सरे दीयते इति आनुसांवत्सरिकः, इत्यादिकम्।

अनुशतिक। अनुहोड। अनुसंवरण। अनुसंवत्सर। अङ्गारवेणु। असिहत्य। वध्योग। पुष्करसत्। अनुहरत्। कुरुकत। कुरुपञ्चाल।

उदकशुद्ध। इहलोक। परलोक। सर्वलोक। सर्वपुरुष। सर्वभूमि। प्रयोग। परस्त्री। राजपुरुषात् ष्यञि। सूत्रनड। इति अनुशतिकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुशतिकादीनाम्) अनुशतिक आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**आनुशतिकम्।** अनुशतिक सम्बन्धी कार्य। **'शुक्रनीति'** (२।१।४४) के अनुसार सेना में शतानीक नामक अधिकारी का सहायक अनुशातिक कहलाता था। **आनुहौडिकः।** बेड़ा/नाव से विचरण करनेवाला। **आनुसांवरणम्।** सुरक्षा-कोष में देय द्रव्य। **आनुसांवत्सरिकः।** संवत्सर में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **आनुशतिकम्।** यहां 'अनुशतिक' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अनुशतिक' शब्द के पूर्वपद और उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **आनुहोडिकम्।** यहां 'अनुहोड' शब्द से **'चरति'** (४।४।८) से चरति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आनुसांवरणम्।** यहां 'अनुसंवरण' शब्द से **'तत्र च दीयते कार्यं भववत्'** (५।१।९५) से भववत्-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **आनुसांवत्सरिकम्।** यहां 'अनुसंवत्सर' शब्द से **'तत्र च दीयते कार्यं भववत्'** (५।१।९५) से भववत् अतिदेश होकर **'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्'** (४।३।६७) से भव-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उभयपदवृद्धिः--

(२१) देवताद्वन्द्वे च।२१।

प०वि०-देवताद्वन्द्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-देवतानां द्वन्द्व इति देवताद्वन्द्वः, तस्मिन्-देवताद्वन्द्वे (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे चाऽङ्गस्य पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे चाऽङ्गस्य पूर्वपदस्योत्तर-पदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-अग्निमारुतीं पृश्निमालभेत (मै०सं० २।५।७)। अग्नि-मारुतं कर्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) भी (अङ्गस्य) अङ्ग के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**अग्निमारुतीं पृश्निमालभेत** (मै०सं० २।५।७)। **अग्निमारुतं कर्म।***

*सिद्धि-**आग्निमारुतीम्।** यहां प्रथम देवतावाची अग्नि और मरुत् शब्दों का द्वन्द्वसमास है-**अग्निश्च मरुच्च तौ अग्निमरुतौ।** तत्पश्चात्-**सास्य देवता'** (४।२।२४) से देवता-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है-**अग्निमरुतौ देवते अस्या इति-आग्निमारुती।** इस **सूत्र** से देवतावाची अग्नि और मरुत् शब्दों को उभयपद वृद्धि होती है। **'इद्वृद्धौ'** (६।३।२८) से 'अग्नि' शब्द को आनङ्-विषय में इकार आदेश और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**अग्निमारुतं कर्म।***

उक्तप्रतिषेधः--

(२२) नेन्द्रस्य परस्य।२२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इन्द्रस्य ६।१ परस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे परस्येन्द्रस्याङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे परस्येन्द्रस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-सौमेन्द्रः। आग्नेन्द्रः।

आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (परस्य) पर=उत्तरपदवर्ती (इन्द्रस्य) इन्द्र इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में **(वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।

*उदा०-**सौमेन्द्रः**। सोम और इन्द्र जिसके देवता हैं। **आग्नेन्द्रः**। अग्नि और इन्द्र जिसके देवता हैं।*

*सिद्धि-सौमेन्द्रः। यहां प्रथम देवतावाची सोम और इन्द्र शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास हैं-**सोमश्च इन्द्रश्च तौ सोमेन्द्रौ**। तत्पश्चात् **'साऽस्य देवता'** (४।२।२४) में देवता-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से पर=उत्तरपदवर्ती 'इन्द्र' शब्द को आदिवृद्धि का प्रतिषेध होता है। **सोमेन्द्रौ देवते अस्येति-सौमेन्द्रः**। 'देवताद्वन्द्वे च' (६।३।२६) से अनङ् आदेश और **'आद्गुणः'** (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश होता है। ऐसे ही-**आग्नेन्द्रः**।*

उक्तप्रतिषेधः-

(२३) दीर्घाच्च वरुणस्य।२३।

प०वि०-दीर्घात् ५।१ च अव्ययपदम्, वरुणस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, देवताद्वन्द्वे, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे दीर्घाच्च वरुणस्याङ्गस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे दीर्घादुत्तरस्य च वरुणस्याऽङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-ऐन्द्रावरुणम्। मैत्रावरुणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) और (दीर्घात्) दीर्घान्त शब्द से परे (वरुणस्य) वरुण इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**ऐन्द्रावरुणम्**। इन्द्र और वरुण जिसके देवता हैं वह हवि। **मैत्रावरुणम्**। मित्र और वरुण जिसके देवता हैं वह हवि।*

*सिद्धि-**ऐन्द्रावरुणम्**। यहां प्रथम देवतावाची इन्द्र और वरुण शब्दों का **'चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है-**इन्द्रश्च वरुणश्च तौ इन्द्रावरुणौ**। **'देवताद्वन्द्वे च'** (६।३।२६) से आनङ् आदेश होता है। तत्पश्चात् **'साऽस्य देवता'** (४।२।२४) से 'अण्' प्रत्यय है-**इन्द्रावरुणौ देवते अस्येति-ऐन्द्रावरुणम्**। इस सूत्र से दीर्घान्त 'इन्द्रा' शब्द से परे 'वरुण' शब्द को आदिवृद्धि नहीं होती है। ऐसे ही-**मैत्रावरुणम्**।*

उभयपदवृद्धिः–

(२४) प्राचां नगरान्ते।२४।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ नगरान्ते ७।१।

स०–नगरमन्ते यस्य तदिति नगरान्तम्, तस्मिन्-नगरान्ते (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्राचां नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–सुह्मनगरे भव इति सौह्मनागरः। पुण्ड्रनगरे भव इति पौण्ड्रनागरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्राचाम्) प्राग्देश में विद्यमान (नगरान्ते) नगर जिसके अन्त में है उस (अङ्गे) अङ्ग में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०–**सौह्मनागरः।** सुह्मनगर में होनेवाला। **पौण्ड्रनागरः।** पुण्ड्रनगर में होनेवाला।*

*सिद्धि–**सौह्मनागरः।** यहां प्राग्देशवाची, नगरान्त 'सुह्मनगर' शब्द से **'तत्र भवः'** (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उभयपद वृद्धि होती है। ऐसे ही–**पौण्ड्रनगरः।***

विशेषः *सुह्म–बंग देश के पश्चिम का देश। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी। इसका आधुनिक नाम 'तमलूक' है जो कोसी नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है (श०कौस्तुभ)।*

उभयपदवृद्धिः {उत्तरपदस्य विभाषा}–

(२५) जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्।२५।

प०वि०– जङ्गल-धेनु-वलजान्तस्य ६।१ विभाषितम् १।१ उत्तरम् १।१।

स०–जङ्गलं च धेनुश्च वलजं च एतेषां समाहारो जङ्गलधेनुवलजम्, जङ्गलधेनुवलजमन्ते यस्य तदिति जङ्गलधेनुवलजान्तम्, तस्य-जङ्गलधेनुवलजान्तस्य (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–जङ्गलधेनुवलजान्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, उत्तरं विभाषितम्।

अर्थः–जङ्गलधेनुवलजान्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, उत्तरपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०–**(जङ्गलम्)** कुरुजङ्गलेषु भवमिति कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्। **(धेनुः)** विश्वेषां धेनुरिति विश्वधेनुः, विश्वधेनौ भवमिति वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्, धेनुः=नवप्रसूता गौः। **(वलजम्)** सुवर्णविकारो वलजमिति सुवर्णवलम्, सुवर्णवलजे भव इति सौवर्णवलजः, सौवर्णवालजः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(जङ्गलधेनुवलजान्तस्य) जङ्गल, धेनु, वलज हैं अन्त में जिसके उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होनेप पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है, और (उत्तरम्) उत्तरपद को तो (विभाषितम्) विकल्प से होती है।*

उदा०–(जङ्गल) ***कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्।*** *कुरुजङ्गल नामक देश में होनेवाला। कुरुजङ्गल=रोहतक-हिसार का क्षेत्र। (धेनु)* ***वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्।*** *विश्वदेव (कुत्ता, बिल्ली आदि उपकारी पशु) से सम्बन्धित, धेनु=नवप्रसूता गौ। (वलज)* ***सुवर्णवलम्, सौवर्णवलजः।*** *सुवर्ण से बना हुआ गोलाकार आभूषण विशेष।*

*सिद्धि–**कौरुजङ्गलम्।** यहां जङ्गलान्त 'कुरुजङ्गल' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके पूर्वपद को आदिवृद्धि होती है और इसके उत्तरपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**कौरुजाङ्गलम्।** ऐसे ही-**वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्। सौवर्णवलजः, सौवर्णवालजः।***

उभयवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}–

(२६) अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा।२६।

प०वि०–अर्धात् ५। परिमाणस्य ६।१ पूर्वस्य ६।१ तु अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–अर्धात् परिमाणस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः–अर्धाद् उत्तरस्य परिमाणवाचिनोऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वस्य= पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०–अर्धद्रोणेन क्रीतमिति आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्। अर्धकुडवेन क्रीतमिति आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (परिमाणस्य) परिमाणवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।

उदा०-__आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्।__ आधा द्रौण से खरीदा हुआ द्रव्य। द्रोण= १० सेर। __आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।__ आधा कुडव से खरीदा हुआ द्रव्य। कुडव= १ प्रस्थ (५० तोले)।

__सिद्धि-आर्धद्रौणिकम्।__ यहां 'अर्धद्रोण' शब्द से __'तेन क्रीतम्'__ (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके परिमाणवाची उत्तरपद 'द्रोण' शब्द को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-__अर्धद्रौणिकम्।__ ऐसे ही-__आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।__

वृद्धिप्रतिषेधः {पूर्वपदस्य वा}–

(२७) नातः परस्य।२७।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अतः ६।१ परस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, किति, अर्धात्, परिमाणस्य, पूर्वस्य, तु, वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्धात् परिमाणस्याङ्गस्य परस्याऽतस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-अर्धाद् उत्तरस्य परिमाणवाचिनोऽङ्गस्य परस्य=उत्तरपद-स्याऽकारस्य स्थाने, ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, पूर्वस्य=पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-अर्धप्रस्थेन क्रीत इति आर्धप्रस्थिकः, अर्धप्रस्थिकः। अर्धकंसेन क्रीत इति आर्धकंसिकः, अर्धकंसिकः।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (परिमाणस्य) परिमाणवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (परस्य) उत्तरपद के (अतः) अकार के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से वृद्धि होती है।

उदा०-__आर्धप्रस्थिकः, अर्धप्रस्थिकः__। आधा प्रस्थ से खरीदा हुआ पदार्थ। प्रस्थ=५० तोले। __आर्धकंसिकः, अर्धकंसिकः__। आधा कंस से खरीदा हुआ पदार्थ। कंस=८ प्रस्थ (४०० तोले)।

__सिद्धि-आर्धप्रस्थिकः__। यहां 'अर्धप्रस्थ' शब्द से __तेन क्रीतम्__' (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रस्थ उत्तरपद के अकार को आदिवृद्धि का प्रतिषेध होता है।

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}-

(२८) प्रवाहणस्य ढे।२८।

प०वि०-प्रवाहणस्य ६।१ ढे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य तु वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रवाहणस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ढे वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-प्रवाहणस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ढकि प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-प्रवाहणस्यापत्यमिति प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रवाहणस्य) प्रवाहरण इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदिः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ढि) ढक् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-**प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।** प्रवाहण का पुत्र।*

सिद्धि-प्रावाहणेयः। *यहां 'प्रवाहण' शब्द से '**शुभ्रादिभ्यश्च**' (४।१।१२३) से अपत्य-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयः।***

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}-

(२६) तत्प्रत्ययस्य च।२६।

प०वि०-तत्प्रत्ययस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-स प्रत्ययो यस्मात् स तत्प्रत्ययः, तस्य-तत्प्रत्ययस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, तु, वा, प्रवाहणस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्प्रत्ययस्य प्रवाहणस्याऽङ्गस्य चोत्तरपदस्याऽचामादेरच-स्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-तत्प्रत्ययस्य=ढक्प्रत्ययान्तस्य प्रवाहणस्याऽङ्गस्य चोत्तरपद-स्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-प्रवाहणेयस्यापत्यमिति प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः। प्रवाहणेय-स्येदमिति प्रावाहणेयकम्, प्रवाहणेयकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तत्प्रत्ययस्य) उस ढक्-प्रत्ययान्त (प्रवाहणस्य) प्रवाहण (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-**प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः।** प्रवाहणेय का युवापत्य (प्रपौत्र)। **प्रावाहणेयकम्, प्रवाहणेयकम्।** प्रवाहणेय से सम्बन्धित।*

*सिद्धि-(१) **प्रावाहणेयिः।** यहां ठक् प्रत्ययान्त 'प्रवाहणेय' शब्द से **'अत इञ्'** (४।१।९५) से युवापत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके उत्तरपद को वृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयिः।***

*(२) **प्रावाहणेयकम्।** यहां ठक्-प्रत्ययान्त 'प्रवाहणेय' शब्द से **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से इदम्-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयकम्।***

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}-

(३०) नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्।३०।

प०वि०-नञः ५।१ शुचि-ईश्वर-क्षेत्रज्ञ-कुशल-निपुणानाम् ६।३।

स०-शुचिश्च ईश्वरश्च क्षेत्रज्ञश्च कुशलश्च निपुणश्च ते शुचीश्वर-क्षेत्रज्ञकुशलनिपुणाः, तेषाम्-शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, तु, वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानामङ्गानाम् उत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-नञ उत्तरेषां शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानामङ्गानाम् उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-**(शुचिः)** अशुचेर्भावः कर्म वेति आशौचम्, अशौचम्। **(ईश्वरः)** अनीश्वरस्य भावः कर्म वेति आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। **(क्षेत्रज्ञः)** अक्षेत्रज्ञस्य भावः कर्म वेति आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्। **(कुशलः)** अकुशल-स्येदमिति आकौशलम्, अकौशलम्। **(निपुणः)** निपुणस्येदमिति आनैपुणम्, अनैपुणम्।

*__आर्यभाषाः__ **अर्थ**-(नञः) नञ् से परे (शुचि०) शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, निपुण इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान मे (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-(शुचि) **आशौचम्, अशौचम्।** अशुचि का भाव वा कर्म। (ईश्वर) **आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्।** अनीश्वर का भाव वा कर्म। (क्षेत्रज्ञ) **आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्।** अक्षेत्रज्ञ का भाव वा कर्म। क्षेत्रज्ञ=चतुर। (कुशल) **आकौशलम्, अकौशलम्।** अकुशल से सम्बन्धित। (निपुण) **आनैपुणम्, अनैपुणम्।** निपुण से सम्बन्धित।*

*सिद्धि-(१) **आशौचम्।** यहां 'नञ्' और 'शुचि' शब्द का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है **'न विद्यते शुचिर्यस्मिन् सः-अशुचिः।** तत्पश्चात् इस 'अशुचि' शब्द से **'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्'** (५।१।१३१) से भाव-कर्म अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शुचि' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि है-**अशौचम्।***

*(२) **आनैश्वर्यम्।** यहां 'नञ्' और 'ईश्वर' शब्दों का **'नञ्'** (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अनीश्वर' शब्द से **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) से भाव-कर्म अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्।***

*(३) **आकौशलम्।** यहां 'नञ्' और 'कुशल' शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अकुशल' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आनैपुणम्, अनैपुणम्।***

पर्यायेण वृद्धिः-

(३१) यथातथयथापुरयोः पर्यायेण।३१।

प०वि०-यथातथ-यथापुरयोः ६।२ पर्यायेण ३।१।

स०-यथातथं च यथापुरं च तौ यथातथायथापुरौ, तयोः-यथातथ-यथापुरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, नञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञो यथातथयथापुरयोरङ्गयोरुत्तरपदस्य पूर्वस्याऽचामादेरच-स्तद्धिते ञ्णिति किति च पर्यायेण वृद्धिः।

अर्थः-नञ उत्तरयोर्यथातथयथापुरयोरङ्गयोरुत्तरपदस्य पूर्वपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतः पर्यायेण वृद्धिर्भवति।

उदा०-(**यथातथम्**) अयथातथस्य भाव इति आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्। (**यथापुरम्**) अयथापुरस्य भाव इति आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नञः) नञ् से परे (यथातथयथापुरयोः) यथातथा, यथापुर इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद और (पूर्वस्य) पूर्वपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (पर्यायेण) क्रमशः (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(**यथातथ**) **आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्।** यथातथ का अभाव, जैसे का तैसा न होना। (**यथापुरम्**) **आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।** यथापूर्व का अभाव, जैसा कि पहले था वैसा न होना।*

सिद्धि-आयथातथ्यम्। *यहां 'नञ्' और 'यथातथ' शब्दों का '**नञ्**' (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अयथातथ' शब्द से '**गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**' (५।१।१२४) से ब्राह्मणादि के आकृतिगण होने से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद के पर्यायशः (क्रमशः) वृद्धि होती है। यहां पूर्वपद को वृद्धि है और यहां उत्तरपद को आदिवृद्धि है-**अयाथातथ्यम्।** ऐसे ही-**आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।***

।। इति उत्तरवृद्धिप्रकरणम्।।

आदेशागमप्रकरणम्

{आदेश-विधिः}

त-आदेशः-

(१) हनस्तोऽचिण्णलोः।३२।

प०वि०-हनः ६।१ तः १।१ अचिण्णलोः ७।२।

स०-चिण् च णल् च तौ चिण्णलौ, न चिण्णलाविति अचिण्णलौ, तयोः-अचिण्णलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-हनोऽङ्गस्याऽचिण्णलोर्ञ्णिति तः।

अर्थः-हन्तेरङ्गस्य चिण्णल्वर्जिते ञिति णिति च प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-स घातयति। घातकः। साधुघाती। घातंघातम्। घातो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हनः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचिण्णलोः) चिण् और णल् से भिन्न (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०-**स घातयति।** वह हिंसा/गति कराता है। **घातकः।** हिंसक/गतिकारक। **साधुघाती।** ठीक हिंसा/गति करनेवाला। **घातंघातम्।** पुनः-पुनः हिंसा/गति करके। **घातो वर्तते।** हिंसा/गति है।*

*सिद्धि-**(१) घातयति।** हन्+णिच्। हन्+इ। हत्+इ। घत्+इ। घात्+इ। घाति+लट्। घातयति।*

*यहां प्रथम **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से णित् णिच् प्रत्यय परे होने पर 'हन्' के अन्त्य नकार को तकारादेश होता है। **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से हकार को कुत्व घकार और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। तत्पश्चात् णिजन्त 'घाति' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **घातकः।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (१।३।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साधुघाती।** यहां साधु-उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **घातंघातम्।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३।४।२२) से द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **घातः।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आगमप्रकरणम्

युक्-आगमः-

(१) आतो युक् चिण्कृतोः।३३।

प०वि०-आतः ६।१ युक् १।१ चिण्-कृतोः ७।२।

स०-चिण् च कृच्च तौ चिण्कृतौ, तयोः-चिण्कृतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गस्य चिणि ञ्णिति कृति च युक्।

अर्थः-आकारान्तस्याऽङ्गस्य चिणि, ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो युगागमो भवति।

उदा०-(**चिण्**) अदायि भवता। अधायि भवता। (**कृत्**) दायः, दायकः। धायः, धायकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आतः) आकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (किति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (युक्) युग आगम होता है।*

उदा०-(चिण्) ***अदायि भवता।*** *आपके द्वारा दान किया गया।* ***अधायि भवता।*** *आपके द्वारा धारण-पोषण किया गया। (कृत्)* ***दायः।*** *दान करना।* ***दायकः।*** *दान करनेवाला।* ***धायः।*** *धारण-पोषण करना।* ***धायकः।*** *धारण-पोषण करनेवाला।*

सिद्धि-*(१)* ***अदायि।*** *यहां* ***'डुदाञ् दाने'*** *(जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।* ***'चिण् भावकर्मणोः'*** *(३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'चिण्' परे होने पर आकारान्त 'दा' धातु को 'युक्' आगम होता है।* ***'चिणो लुक्'*** *(६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही* ***'डुधाञ् धारणपोषणयोः'*** *(जु०उ०) धातु से-* ***अधायि।***

(२) ***दायः।*** *यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से* ***'भावे'*** *(३।३।१८) से भाव-अर्थ में कृत्-संज्ञक 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'धा' धातु से-* ***धायः।***

(३) ***दायकः।*** *यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से कृत्-संज्ञक 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'धा' धातु से-* ***धायकः।***

उक्तप्रतिषेधः-

(२) नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः।३४।

प०वि०- न अव्ययपदम्, उदात्तोपदेशस्य ६।१ मान्तस्य ६।१ अनाचमेः ६।१।

स०-उपदेशे उदात्त इति उदात्तोपदेशः, तस्य-उदात्तोपदेशस्य (सप्तमीतत्पुरुषः)। मकारोऽन्ते यस्य स मान्तः, तस्य-मान्तस्य (बहुव्रीहिः)। न आचमिरिति अनाचमिः, तस्य-अनाचमेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णिति, चिण्कृतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनाचमेरुदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽङ्गस्य चिणि ञ्णिति कृति च न।

अर्थः-आचमिवर्जितस्योदात्तोपदेशस्य मकारान्तस्याऽङ्गस्य चिणि, ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) इति विहिता उपधावृद्धिर्न भवतीत्यर्थः।

उदा०-(चिण्) अशमि भवता। अतमि भवता। अदमि भवता। **(कृत्)** शमकः। तमकः। दमकः। शमः। तमः। दमः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अनाचमेः) आङ्पूर्वक चमु धातु से भिन्न (उदात्तोपदेशस्य) उपदेश में उदात्त (मान्तस्य) मकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है वह नहीं होता है, अर्थात्* ***'अत उपधायाः'*** *(७।२।११६) से विहित उपधावृद्धि नहीं होती है।*

उदा०-(चिण्) ***अशमि भवता।*** *आपके द्वारा उपशमन किया गया।* ***अतमि भवता।*** *आपके द्वारा आकाङ्क्षा की गई।* ***अदमि भवता।*** *आपके द्वारा दमन किया गया। (कृत्)* ***शमकः।*** *उपशमन करनेवाला।* ***तमकः।*** *आकाङ्क्षा करनेवाला।* ***दमकः।*** *दमन करनेवाला।* ***शमः।*** *उपशमन करना।* ***तमः।*** *आकाङ्क्षा करना।* ***दमः।*** *दमन करना।*

सिद्धि-(१) अशमि। *यहां* ***'शमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से* ***'लुङ्'*** *(३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है* ***'चिण् भावकर्मणोः'*** *(३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। इस सूत्र से 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है।* ***'चिणो लुक्'*** *(६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही* ***'तमु काङ्क्षायाम्'*** *(दि०प०) धातु से-***अतमि।** ***'दमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से-***अदमि।**

(२) शमकः। *यहां* ***'शमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'तमु' धातु से-***तमकः** *और 'दमु' धातु से-***दमकः।**

(३) शमः। *यहां पूर्वोक्त 'शमु' धातु से* ***'भावे'*** *(३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'तमु' धातु से-***तमः** *और 'दमु' धातु से-***दमः।**

ये 'शमु' आदि मकारान्त धातु पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में उदात्त (सेट्) पठित हैं।

उक्तप्रतिषेधः-

(३) जनिवध्योश्च।३५।

प०वि०-जनिवध्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-जनिश्च वधिश्च तौ जनिवधी, तयोः-जनिवध्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, ञ्णिति, चिण्कृतोः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-जनिवध्योरङ्गयोश्च चिणि ञ्णिति कृति च न।

अर्थः-जनिवध्योरङ्गयोश्च चिणि ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) इति विहिता उपधावृद्धिर्न भवतीत्यर्थः।

उदा०-(चिण्) जनिः-अजनि भवता। **वधिः**-अवधि भवता। **(कृत्) जनिः**-जनकः। प्रजनः। **वधिः**-वधकः। वधः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जनिवध्योः) जनि, वधि इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (च) भी (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है वह नहीं होता है, अर्थात् **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से विहित उपधावृद्धि नहीं होती है।*

*उदा०-**(चिण्) जनि-अजनि भवता।** आपके द्वारा उत्पन्न किया गया। **वधि-अवधि भवता।** आपके द्वारा वध (हत्या) किया गया। **(कृत्) जनि-जनकः।** उत्पन्न करनेवाला। **प्रजनः।** उत्पन्न करना। **वधि-वधकः।** वध=हत्या करनेवाला। **वधः।** वध करना।*

*सिद्धि-(१) **अजनि।** यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। इस सूत्र से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही **'वध हिंसायाम्'** (भ्वादि, पदमञ्जरी) धातु से-**अवधि।***

*(२) **जनकः।** यहां पूर्वोक्त 'जन्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वध' धातु से-**वधकः।***

*(३) **प्रजनः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'जन्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वध्' धातु से-**वधः।***

***विशेषः** 'हनो वध लिङि' (२।४।४३) से 'हन्' के स्थान में विहित 'वध' आदेश अकारान्त है, उसे उपधावृद्धि प्राप्त नहीं होती है, अतः यहां उसका ग्रहण नहीं किया गया है। **'वध हिंसायाम्'** यह पृथक् धातु है, उसका यहां ग्रहण किया जाता है। जैसे 'ण्वुल्' प्रत्यय में भी 'वध' धातु का प्रयोग देखा जाता है-*

भक्षकश्चेन्न विद्येत वधकोऽपि न विद्यते।।

***अर्थ**-यदि मांसभक्षक न हो तो प्राणियों का कोई वधक (घातक) भी न रहे।*

पुक्-आगमः–

(४) अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ।३६।

प०वि०–अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्मायी-आताम् ६।३ पुक् १।१ णौ ७।१।

स०–अर्तिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्नूयीश्च क्ष्मायीश्च आच्च ते अर्ति०आतः, तेषाम्-अर्ति०आताम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातामऽङ्गानां णौ पुक्।

अर्थः–अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्मायीनामाऽऽकारान्तानां चाऽङ्गानां णौ प्रत्यये परतः पुगागमो भवति।

उदा०–**(अर्तिः)** सोऽर्पयति। **(ह्री)** स ह्रेपयति। **(व्ली)** स व्लेपयति। **(री)** स रेपयति। **(क्नूयी)** स क्नोपयति। **(क्ष्मायी)** स क्ष्मापयति। **(आकारान्त)** स दापयति। स धापयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अर्ति०) ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (पुक्) पुक् आगम होता है।*

*उदा०-**(अर्ति) सोऽर्पयति।** वह अर्पण करता है। **(ह्री) स ह्रेपयति।** वह लज्जित करता है। **(व्ली) स व्लेपयति।** वह वरण (पसन्द) करता है। **(री) स रेपयति।** वह गमन/अरण्यपशु के समान पुकारता है। **(क्नूयी) स क्नोपयति।** वह शब्द/गीला करता है। **(क्ष्मायी) स क्ष्मापयति।** वह हिलाता है। **(आकारान्त) दा-स दापयति।** वह दान कराता है। **धा-स धापयति।** वह धारण-पोषण कराता है।*

सिद्धि-(१) अर्पयति। *ऋ+णिच्। ऋ+इ। ऋ पुक्+इ। ऋ प्+इ। अर् प्+इ। अर्पि+लट्। अर्पयति।*

*यहां **'ऋ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे णिच् प्रत्यय परे होने पर 'पुक्' आगम होता है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'ऋ' को गुण (अर्) होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'अर्पि' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **ह्रेपयति।** **'ह्री लज्जायाम्'** (जु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **व्लेपयति।** **'व्ली वरणे'** (क्र्या०प०)।*

*(४) **रेपयति।** **'री गतिरेषणयोः'** (क्र्या०प०)।*

(५) क्नोपयति। 'क्नूयी शब्द उन्दे च' (भ्वा०आ०)। 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६६) से यकार का लोप होता है।

(६) क्ष्मापयति। 'क्ष्मायी विधूनने' (भ्वा०आ०)।

(७) दापयति। 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०)।

(८) धापयति। 'डुधाञ् धारणपोषणयो:' (जु०उ०)।

युक्-आगमः—

(५) शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्।३७।

प०वि०-शा-च्छा-सा-ह्वा-व्या-वे-पाम् ६।३ युक् १।१।

स०-शाश्च छाश्च साश्च ह्वाश्च व्याश्च वेश्च पाश्च ते-शा०पा:, तेषाम्-शा०पाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वय:-शाच्छासाह्वाव्यावेपामऽङ्गानां णौ युक्।

अर्थ:-शाच्छासाह्वाव्यावेपामऽङ्गानां णौ प्रत्यये परतो युगागमो भवति।

उदा०-**(शा)** निशाययति। **(छा)** अवच्छाययति। **(सा)** अवसाययति। **(ह्वा)** ह्वाययति। **(व्या)** संव्याययति। **(वे)** वेञ्-वाययति। **(पा)** पाययति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(शा०) शा, छा, सा, ह्वा, व्या, वे, पा इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (युक्) युक् आगम होता है।*

*उदा०-**(शा) निशाययति।** वह तीक्ष्ण कराता है। **(छा) अवच्छाययति।** वह कतरवाता है। **(सा) अवसाययति।** वह विध्वंस कराता है। **(ह्वा) ह्वाययति।** वह बुलाता है। **(व्या) संव्याययति।** वह आच्छादित कराता है। **(वे) वेञ्-वाययति।** वह बुनवाता है (वस्त्र)। **(पा) पाययति।** वह पिलाता है।*

*सिद्धि-(१) **निशाययति।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'शो तनूकरणे' (दि०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे युक् आगम होता है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४५) से ओकार को आत्व होता है। पूर्वसूत्र (७।३।३६) से 'पुक्' आगम प्राप्त था, अत: इस सूत्र से 'युक्' आगम का विधान किया गया है।*

*(२) **अवच्छाययति।** अव-उपसर्गपूर्वक 'छो छेदने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **अवसाययति।** अव-उपसर्गपूर्वक 'षोऽन्तकर्मणि' (दि०प०)।*

(४) ह्वाययति। 'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च' (भ्वा०उ०)।

(५) संव्याययति। सम्-उपसर्गपूर्वक 'व्येञ् संवरणे' (भ्वा०प०)।

(६) वाययति। 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०)।

(७) पाययति। 'पा पाने' (भ्वा०प०)।

जुक्-आगमः—

(६) वो विधूनने जुक्।३८।

प०वि०-वः ६।१ विधूनने ७।१ जुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-विधूनने वोऽङ्गस्य णौ जुक्।

अर्थः-विधूननेऽर्थे वर्तमानस्य वोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो जुगागमो भवति।

उदा०-पक्षेणोपवाजयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विधूनने) विकम्पित करने अर्थ में विद्यमान (वः) वा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (जुक्) जुक् आगम होता है।*

*उदा०-**पक्षेणोपवाजयति।** वह पंखे से हवा कराता है (बीजणा करता है)।*

*सिद्धि-**उपवाजयति।** यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयोः'** (अदा०प०) धातु से विधूनन अर्थ में इस सूत्र से 'जुक्' आगम होता है। **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

नुग्लुकावागमौ—

(७) लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने।३९।

प०वि०-लीलोः ६।२ नुग्लुकौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, स्नेहविपातने ७।१।

स०-लीश्च लाश्च तौ लीलौ, तयोः-लीलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। नुक् च लुक् च तौ नुग्लुकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्नेहस्य विपातनमिति स्नेहविपातनम्, तस्मिन्-स्नेहविपातने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्नेहविपातने लीलोरङ्गयोर्णावन्यतरस्यां नुग्लुकौ।

अर्थः-स्नेहविपातनेऽर्थे वर्तमानयोर्लीलोरङ्गयोर्णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन यथासंख्यं नुग्लुकावागमौ भवतः।

उदा०-(ली) स घृतं विलीनयति (नुक्)। विलाययति। **(ला)** स घृतं विलालयति (लुक्)। विलापयति। विलाययति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्नेहविपातने) घृत आदि पदार्थों के पिघालने अर्थ में विद्यमान (लीलोः) ली, ला इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से यथासंख्य (नुग्लुकौ) नुक् और लुक् आगम होते हैं।*

*उदा०-(ली) स घृतं विलीनयति (नुक्)। **विलाययति।** वह घृत को पिघलाता है। (ला) स घृतं विलालयति (लुक्)। **विलापयति। विलाययति।** वह घृत को पिघलाता है।*

सिद्धि-(१) विलीनयति। *यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०) धातु से स्नेहविपातन अर्थ में पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'लुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'लुक्' आगम नहीं है-**विलाययति।***

*(२) **विलालयति।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'ला आदाने' (अदा०प०) धातु से स्नेहविपातन अर्थ में 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'नुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'नुक्' आगम नहीं है-**विलापयति। 'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से पुक्-आगम होता है।*

विशेषः *'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०) धातु को 'ली' रूप में ही नुक् आगम होता है-**विलीनयति।** इसे 'विभाषा लीयतेः' (६।१।५०) से विकल्प से आत्व होता है। आत्व-पक्ष में **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से पुक् आगम होता है-**विलापयति।** जहां आत्व नहीं होता है वहा-**विलाययति।***

षुक्-आगमः-

(८) भियो हेतुभये षुक्।४०।

प०वि०-भियः ६।१ हेतुभये ७।१ षुक् १।१।

स०-हेतोर्भयमिति हेतुभयम्, तस्मिन् हेतुभये (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-हेतुभये भियोऽङ्गस्य णौ षुक्।

अर्थः-हेतुभयेऽर्थे वर्तमानस्य भियोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतः षुगागमो भवति।

उदा०-मुण्डो भीषयते माणवकम्। जटिलो भीषयते माणवकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हेतुभये) हेतु से भय अर्थ में विद्यमान (भियः) भी इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (षुक्) षुक् आगम होता है।*

*उदा०-**मुण्डो भीषयते माणवकम्।** शिरोमुण्डित पुरुष बालक को डराता है। **जटिलो भीषयते माणवकम्।** जटाधारी पुरुष बालक को डराता है।*

सिद्धि-भीषयते। *यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'षुक्' आगम होता है।*

आदेशप्रकरणम्

व-आदेशः-

(१) स्फायो वः।४१।

प०वि०-स्फायः ६।१ वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्फायोऽङ्गस्य णौ वः।

अर्थः-स्फायोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो वकारादेशो भवति।

उदा०-स स्फावयति धनम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्फायः) स्फाय् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वः) वकारादेश होता है।*

*उदा०-स **स्फावयति धनम्।** वह धन को बढ़ाता है।*

सिद्धि-स्फावयति। *यहां **'स्फायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे वकार अन्त्य आदेश होता है।*

त-आदेशः-

(२) शदेरगतौ तः।४२।

प०वि०-शदेः ६।१ अगतौ ७।१ तः १।१।

स०-न गतिरिति अगतिः, तस्याम्-अगतौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अगतौ शदेरङ्गस्य णौ तः।

अर्थः-गत्यर्थवर्जितस्य शदेरङ्गस्य णौ प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-सा पुष्पाणि शातयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अगतौ) गति अर्थ से भिन्न (शदेः) शदि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

उदा०-सा ***पुष्पाणि शातयति।*** *वह फूलों को तुड़वाती है।*

सिद्धि-शातयति। *यहां 'शद्लृ शातने' (भ्वा०आ०) धातु से गति से भिन्न अर्थ में हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे तकार अन्त्य आदेश होता है।*

प-आदेशविकल्पः--

(३) रुहः पोऽन्यतरस्याम्।४३।

प०वि०-रुहः ६।१ पः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुहोऽङ्गस्य णावन्यतरस्यां पः।

अर्थः-रुहोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन पकारादेशो भवति।

उदा०-स व्रीहिन् रोपयति। स व्रीहिन् रोहयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रुहः) रुह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (पः) पकारादेश होता है।*

उदा०-स ***व्रीहिन् रोपयति।*** *स* ***व्रीहिन् रोहयति।*** *वह धान लगवाता है।*

सिद्धि-रोपयति। *यहां 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे पकार अन्त्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में पकारादेश नहीं है-**रोहयति।***

इद्-आदेशः--

(४) प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।४४।

प०वि०-प्रत्ययस्थात् ५।१ कात् ५।१ पूर्वस्य ६।१ अतः ६।१ इत् १।१ आपि ७।१ असुपः ५।१।

स०-प्रत्यये तिष्ठतीति प्रत्ययस्थः, तस्मात्-प्रत्ययस्थात् (उपपद-तत्पुरुषः)। न सुबिति असुप्, तस्मात्-असुपः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात आपि इत्, असुपः।

अर्थः-अङ्गस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्याऽकारस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति, स चेदाऽऽप् सुपः परो न भवति।

उदा०-जटिलिका। मुण्डिका। कारिका। हारिका। एतिकाश्चरन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार वर्ण से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अतः) अकार के स्थान में (आपि) आप्=टाप्, डाप्, चाप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो।*

*उदा०-**जटिलिका**। जटाधारिणी अज्ञात नारी। **मुण्डिका**। शिरोमुण्डिता अज्ञात नारी। **कारिका**। करनेवाली। **हारिका**। हरण करनेवाली। **एतिकाश्चरन्ति**। ये अज्ञात कन्यायें घूम रही हैं।*

*सिद्धि-(१) **जटिलिका**। जटिला+क। जटिल+क। जटिलक+टाप्। जटिलक+आ। जटिलिका+सु। जटिलिका+०। जटिलिका।*

*यहां प्रथम 'जटिला' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी सम्बन्ध रूप से अज्ञात-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आप्-प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग के प्रत्ययस्थ ककार से पूर्ववर्ती अकार को इकारादेश होता है। **'केऽणः'** (७।४।१३) से आकार को ह्रस्व होता है। ऐसे ही 'मुण्ड' शब्द से-**मुण्डिका**।*

*(२) **कारिका**। यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। तत्पश्चात् 'कारक' शब्द से शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हारिका**।*

*(३) **एतिका**। एत् अकच् अद्। एतक् अ अ। एतक+टाप्। एतक+आ। एतिका+सु। एतिका+०। एतिका।*

*यहां 'एतद्' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी रूप सम्बन्ध से अज्ञात अर्थ में **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७२) के नियम से टि-भाग (अद्) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०) ये अन्त्य दकार को अकारादेश और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।१) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

इदादेश-प्रतिषेधः—

(५) न यासयोः।४५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, या-सयोः ६।२।

स०-या च सा च ते यासे, तयोः-यासयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः इद्, आपि, असुप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यासयोरङ्गयोः प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात आपि इद् न, असुपः।

अर्थः-यासयोरङ्गयोः प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्याऽकारस्याऽऽपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति।

उदा०-(**या**) यका कन्या। (**सा**) सका कन्या।

"या सा इति निर्देशोऽतन्त्रम्, यत्तदोरुपलक्षणमेतत्। इहापि प्रतिषेध इष्यते-यकां यकामधीमहे। तकां तकां पचामहे" (काशिका)।

***आर्यभाषाः** अर्थ*-*(यासयोः) या, सा इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार वर्ण से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अतः) अकार के स्थान में (आपि) आप् (टाप्, डाप्, चाप्) प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(या) यका** कन्या। जो अज्ञात कन्या। **(सा) सका कन्या।** वह अज्ञात कन्या।*

*"सूत्रपाठ में **'या सा'** यह अप्रधान निर्देश है, यह यत् और तद् शब्दों का उपलक्षण है। अतः यहां भी इकारादेश का प्रतिषेध अभीष्ट है-**यकां यकामधीमहे। तकां तकां पचामहे**" (काशिका)।*

***सिद्धि-यका।** य् अकच् अद्। य् अक् अ अ। यक अ। यक+टाप्। यक+आ। यका+सु। यका+0। यका।*

*यहां प्रथम 'यद्' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी सम्बन्ध से अज्ञात अर्थ में **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७१) के नियम से टि-भाग से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् दकार को अकार और पररूप एकादेश होकर स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इकारादेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही 'तद्' शब्द से-सका। 'तदोः स सावनन्त्ययोः' (७।२।१०६) से तकार को सकारादेश है।*

इदादेश-प्रतिषेधः-

(६) उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः।४६।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ आतः ६।१ स्थाने ७।१ यकपूर्वायाः ६।३।

स०-यश्च कश्च तौ यकौ, यकौ पूर्वौ यस्याः सा यकपूर्वा, तस्याः-यकपूर्वायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य यकपूर्वाया आतः स्थानेऽतः, प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यापि इद् न, असुपः, उदीचाम्।

अर्थः-अङ्गस्य यकारपूर्वस्याः ककारपूर्वायाश्चाऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन। पाणिनिमते तु भवत्येव।

उदा०-**यकारपूर्वायाः**-इभ्यका, इभ्यिका। क्षत्रियका, क्षत्रियिका। **ककारपूर्वायाः**-चटकका, चटकिका। मूषिकका, मूषिकिका।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अङ्ग के (यकपूर्वायाः) यकारपूर्ववाले और ककारपूर्ववाले (आतः) आकार के स्थान में (अतः) जो अकार आदेश होता है, (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती उस अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के अचार्यों के मत में। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता ही है।*

*उदा०-**यकारपूर्वा-इभ्यका, इभ्यिका।** छोटी हथिनी। **क्षत्रियका, क्षत्रियिका।** छोटी क्षत्रिया नारी। **ककारपूर्वा-चटकका, चटकिका।** छोटी चिड़िया। **मूषिकका, मूषिकिका।** छोटी मूसी (चूही)।*

सिद्धि-इभ्यका। *यहां 'इभ्या' शब्द से **'ह्रस्वे'** (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। **'केऽणः'** (७।४।१३) से 'क' प्रत्यय परे होने पर अण् (आकार) को ह्रस्व होता है। इस सूत्र से इस यकारपूर्वा आकार के स्थान में विहित, प्रत्ययस्थ ककार से पूर्ववर्ती अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकार आदि का प्रतिषेध हेता है। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता है-**इभ्यिका।** ऐसे ही-**क्षत्रियका, क्षत्रियिका** आदि।*

विशेषः *सूत्रपाठ में **'यकारपूर्वायाः'** पद में स्त्रीलिङ्ग निर्देश आप् (स्त्रीलिङ्ग) प्रत्यय की दृष्टि से किया गया है।*

इदादेश-प्रतिषेधः--

(७) भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि।४७।

प०वि०-भस्त्रा-एषा-जा-ज्ञा-द्वा-स्वा ६।३ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) **नञ्पूर्वाणाम् ६।३ अपि अव्ययपदम्।**

स०-भस्त्रा च एषा च जा च ज्ञा च द्वा च स्वा च ता:-भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा:, तासाम्-भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। नञ् पूर्वो यासां ता नञ्पूर्वा:, तासाम्-नञ्पूर्वाणाम् (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अत:, इद्, आपि, असुप:, न उदीचाम्, आत:, स्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वय:-नञ्पूर्वाणामपि भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानामङ्गानामाऽऽत: स्थानेऽत: प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽऽपि इद् न, असुप:, उदीचाम्।

अर्थ:-नञ्पूर्वाणाम् अनञ्पूर्वाणामपि भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानामऽङ्गानामाऽऽत: स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुप: परो न भवति, उदीचामाऽऽचार्याणां मतेन, पाणिनिमते तु भवत्येव। **उदाहरणम्**-

(१) **भस्त्रा**-भस्त्रका, भस्त्रिका। (नञ्पूर्वा) अभस्त्रका, अभस्त्रिका।

(२) **एषा**-एषका, एषिका। (नञ्पूर्वा) अनेषका, अनेषिका।

(३) **जा**-जका, जिका। (नञ्पूर्वा) अजका, अजिका।

(४) **ज्ञा**-ज्ञका, ज्ञिका। (नञ्पूर्वा) अज्ञका, अज्ञिका।

(५) **द्वा**-द्वके, द्विके। (नञ्पूर्वा) अद्वके, अद्विके।

(६) **स्वा**-स्वका, स्विका। (नञ्पूर्वा) अस्वका, अस्विका।

आर्यभाषा: अर्थ-*(नञ्पूर्वाणाम्, अपि) नञ्पूर्वक और अनञ्पूर्वक भी (भस्त्रा०) भस्त्रा, एषा, जा, ज्ञा, द्वा, स्वा इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (आत:) आकार के स्थान में जो (अत:) अकारादेश होता है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुप:) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में, पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता है।*

*उदा०-(भस्त्रा) **भस्त्रका, भस्त्रिका**। छोटी मशक चर्ममय जलपात्रविशेष। (नञ्पूर्वा) **अभस्त्रका, अभस्त्रिका**। मशक नहीं। (एषा) **एषका, एषिका**। थोड़ी इच्छा। (नञ्पूर्वा) **अनेषका, अनेषिका**। थोड़ी इच्छा नहीं। (जा) **जका, जिका**। छोटी स्त्री। (नञ्पूर्वा) **अजका, अजिका**। छोटी स्त्री नहीं। (ज्ञा) **ज्ञका, ज्ञिका**। अल्पज्ञा नारी। (नञ्पूर्वा) **अज्ञका, अज्ञिका**। अल्पज्ञा नारी नहीं। (द्वा) **द्वके, द्विके**। दो निन्दित नारियां। (नञ्पूर्वा)*

अद्वके, अद्विके। दो निन्दित नारी नहीं। (स्वा) स्वका, स्विका। अपनी अनुकम्पित नारी। (नञ्पूर्वा) अस्वका, अस्विका। अपनी अनुकम्पित नारी नहीं।

सिद्धि-(१) भस्त्रका। यहां 'भस्त्रा' शब्द से 'ह्रस्वे' (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से आकार को ह्रस्व होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस आकार के स्थान में विहित अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकारादेश नहीं होता है। पाणिनि मुनि के मत में होता है-भस्त्रिका। ऐसे ही नञ्पूर्वक से-अभस्त्रका, अभस्त्रिका।

'प्रागिवात् कः' (५।३।७०) से अज्ञात, कुत्सित, अनुकम्पा, अल्प, ह्रस्व आदि अर्थों में 'क' प्रत्यय का विधान किया गया है। तदनुसार एषका, एषिका आदि शब्दों के अर्थों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

इदादेश-प्रतिषेधः-

(८) अभाषितपुंस्काच्च।।४८।।

प०वि०-अभाषितपुंस्कात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-भाषितः पुमान् येन यस्मिन्नर्थे स भाषितपुंस्कः, न भाषितपुंस्कः इति अभाषितपुंस्कः, तस्मात्-अभाषितपुंस्कात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, न, उदीचाम्, आतः, स्थाने, नञ्पूर्वाणाम्, अपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्कादऽङ्गाच्चाऽऽतः स्थानेऽतः प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य स्थाने आपि इद् न, असुपः, उदीचाम्।

अर्थः-नञ्पूर्वाद् अनञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्काद् अङ्गाच्च विहितस्याऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-खट्वका, खट्विका। (नञ्पूर्वः) अखट्वका, अखट्विका। परमखट्वका, परमखट्विका।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अनञ्पूर्वादपि) नञ् से पूर्व और अनञ् से पूर्व (अभाषित-पुंस्कात्) जिसने पुंलिङ्ग को नहीं कहा है उस (अङ्गात्) अङ्ग से विहित (आतः) आकार से स्थान में जो (अतः) अकारादेश होता है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्)*

ककार से पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता ही है।

उदा०-खट्वका, खट्विका। छोटी खाट। (नञ्पूर्व) अखट्वका, अखट्विका। छोटी खाट नहीं। परमखट्वका, परमखट्विका। कुत्सित बड़ी खाट।

सिद्धि-खट्वका। यहां अभाषितपुंस्क 'खट्वा' शब्द से **'ह्रस्वे'** (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से आकार के स्थान में अकार आदेश होता है। इस सूत्र से इस अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकारादेश नहीं होता है। पाणिनिमुनि के मत में तो होता ही है-खट्विका। ऐसे ही नञ्पूर्वक से-अखट्वका, अखट्विका। परमखट्वका, परमखट्विका। यहां **'कुत्सिते'** (५।३।७४) से कुत्सित=निन्दित अर्थ में 'क' प्रत्यय है।

आद्-आदेशः-

(६) आदाचार्याणाम्।४६।।

प०वि०-आत् १।१ आचार्याणाम् ६।३ आदरार्थं बहुवचनम्।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, आतः, स्थाने, नञ्पूर्वाणाम्, अपि अभाषितपुंस्कादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्कादऽङ्गादाऽऽतः स्थानेऽतः, प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य स्थाने आपि आद्, असुपः, आचार्याणाम्।

अर्थः-नञ्पूर्वाद् अनञ्पूर्वादपि भाषितपुंस्कादऽङ्गाद् विहितस्याऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति, आचार्याणां मतेन।

उदा०-खट्वाका। (नञ्पूर्वः) अखट्वाका। परमखटवाका।

आर्यभाषाः अर्थ-(नञ्पूर्वादपि) नञ्पूर्वक और अनञ्पूर्वक भी (अभाषितपुंस्कात्) जिसने पुंलिङ्ग को नहीं कहा है उस (अङ्गात्) अङ्ग से विहित (आतः) आकार के स्थान में जो (अतः) अकारादेश है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वः) पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आत्) आकारादेश होता है (आचार्याणाम्) पाणिनि मुनि के गुरुवर आचार्य के मत में।

उदा०-खट्वाका। छोटी खाट। (नञ्पूर्व) अखट्वाका। छोटी खाट नहीं। परमखट्वाका। कुत्सित बड़ी खाट।

सिद्धि-खट्वाका। यहां 'खट्वा' शब्द से 'ह्रस्वे' (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से आकार को ह्रस्वादेश होता है। इस सूत्र से इस अकार के स्थान में पाणिनि मुनि के गुरुवर आचार्य (वर्ष) के मत में आकारादेश होता है। ऐसे ही नञ्पूर्व से-**अखट्वाका। परमखट्वाका।** यहां 'कुत्सिते' (५।३।७४) से कुत्सित-अर्थ में 'कन्' प्रत्यय है।

विशेषः अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में जहां 'आचार्याणाम्' इस बहुवचनान्त पद का प्रयोग है, वहां पाणिनि मुनि के गुरुवर वर्ष आचार्य के मत का ग्रहण किया जाता है। इस पद में बहुवचन आदर के लिये है-**आदरार्थं बहुवचनम्।**

इक-आदेशः—

(१०) ठस्येकः।५०।

प०वि०-ठस्य ६।१ इकः १।१।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गाट्ठस्येकः।

अर्थः-अङ्गाद् उत्तरस्य ठस्य स्थाने इकादेशो भवति।

उदा०-**प्राग्वहतेष्ठक्** (४।४।१) आक्षिकः, शालाकिकः। **लवणाट्ठञ्** (४।४।५२) लावणिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ*-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (ठस्य) ठ-प्रत्यय के स्थान में (इकः) इक-आदेश होता है।

उदा०-प्राग्वहतेष्ठक् (४।४।१) **आक्षिकः।** पासों से खेलनेवाला, जुआरी। **शालाकिकः।** शलाका के आकार के पासों से खेलनेवाला, जुआरी। **लवणाट्ठञ्** (४।४।५२) लावणिकः। लवण (नमक) का व्यापारी।

सिद्धि-(१) **आक्षिकः।** अक्ष+ठक्। अक्ष+इक। आक्ष्+इक। आक्षिक+सु। आक्षिकः।

यहां 'अक्ष' शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४।४।२) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'ठ' के स्थान में 'इक' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है।

(२) **लावणिकः।** यहां 'लवण' शब्द से 'लवणाट्ठञ्' (४।४।५२) से पण्य-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

क-आदेशः–

(११) इसुसुक्तान्तात् कः।५१।

प०वि०–इस्-उस-उक्-तान्तात् ५।१ कः १।१।

स०–इस् च उस् च उक् च तश्च एतेषां समाहार इसुसुक्तम्, इसुसुक्तम् अन्ते यस्य स इसुसुक्तान्तः, तस्मात्-इसुसुक्तान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, ठस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–इसुसुक्तान्ताद् अङ्गाट्ठस्येकः।

अर्थः–इसन्ताद् उसन्ताद् उगन्तात् तकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य ठस्य स्थाने इकारादेशो भवति।

उदा०–(इस्) सार्पिष्कः। **(उस्)** याजुष्कः, धानुष्कः। **(उक्)** नैषादकर्षुकः, शाबरजम्बुकः, मातृकम्, पैतृकम्। **(तान्तः)** औदश्वित्कः, याकृत्कः, शाकृत्कः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इसुसुक्तान्तात्) इस्, उस्, उक् और तकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ठस्य) ठ-प्रत्यय के स्थान में (कः) क-आदेश होता है।*

*उदा०-**(इस्) सार्पिष्कः।** सर्पि=घृत का व्यापारी। **(उस्) याजुष्कः।** यज्ञ से जीतनेवाला। **धानुष्कः।** धनुषशस्त्रधारी। **(उक्) नैषादकर्षुकः।** निषादकर्षू देश में उत्पन्न। **शाबरजम्बुकः।** शबरजम्बू देश में उत्पन्न। **मातृकम्।** माता से आया हुआ द्रव्य। **पैतृकम्।** पिता से आया हुआ धन आदि। (तकारान्त) **औदश्वित्कम्।** उदश्वित्=लस्सी को संस्कृत करनेवाला लवण आदि। **याकृत्कः।** यकृत् से संसृष्ट। यकृत्=जिगर। **शाकृत्कः।** शकृत्=मल से संसृष्ट (मिश्रित)।*

सिद्धि-(१) सार्पिष्कः। *यहां इसन्त 'सर्पिष्' शब्द से '**तदस्य पण्यम्**' (४।४।५१) से पण्य-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ठ' के स्थान में 'क' आदेश होता है। '**इणः षः**' (८।४।३९) से विसर्जनीय को षकारादेश होता है।*

(२) याजुष्कः। *यहां उसन्त 'यजुष्' शब्द से '**तेन दीव्यति खनति जयति जितम्**' (४।४।२) से जयति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है।*

(३) नैषादकर्षुकः। *यहां उगन्त 'निषादकर्षू' शब्द से '**ओर्देशे ठञ्**' (४।२।११८) से जात-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही शबरजम्बू शब्द से-शाबरजम्बुकः। '**केऽणः**' (७।४।१३) से ह्रस्व (उ) होता है।*

*(४) **मातृकम्।** यहां उगन्त 'मातृ' शब्द से 'ऋतष्ठञ्' (४।३।७८) से आगत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय प्रत्यय है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पैतृकम्।***

*(५) **औदश्वित्कः।** यहां तकारान्त 'उदश्वित्' शब्द से 'उदश्वितोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१८) से संस्कृत अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है।*

*(६) **याकृत्कः।** यहां तकारान्त 'यकृत्' शब्द से 'संसृष्टे' (४।४।२२) से संसृष्ट-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'शकृत्' शब्द से-**शाकृत्कः।***

कु-आदेशः-

(१२) चजोः कु घिण्ण्यतोः।।५२।।

प०वि०-चजोः ६।२ कु १।१ (सु-लुक्) घित्-ण्यतोः ७।२।

स०-चश्च ज् च तौ चजौ, तयोः-चजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। घ इद् यस्य स घित्, घिच्च ण्यच्च तौ घिण्ण्यतौ, तयोः-घिण्ण्यतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य चजोर्घिण्ण्यतोः कुः।

अर्थः-अङ्गस्य चकार-जकारयोः स्थाने घिति ण्यति च **प्रत्यये** परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(घित्) पाकः, त्यागः, रागः। **(ण्यत्)** पाक्यम्, वाक्यम्, रेक्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (घिण्ण्यतोः) घित् और ण्यत् प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्ग आदेश होता है।*

*उदा०-**(घित्)** पाकः। पकाना। **त्यागः।** छोड़ना। **रागः।** रंगना। **(ण्यत्)** **पाक्यम्।** पकाना चाहिये। **वाक्यम्।** कहना चाहिये। **रेक्यम्।** मलशुद्धि करनी चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **पाकः।** यहां 'डुपचष्' (भ्वा०उ०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्ग (क्) आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही 'त्यज हानौ' (भ्वा०प०) धातु से-**त्यागः। 'रञ्ज रागे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**रागः। 'घञि च भावकरणयोः'** (६।४।२७) से 'रञ्ज्' के नकार का लोप होता है।*

*(२) **पाक्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्ग (क्) आदेश होता है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही 'वच **परिभाषणे**' (अदा०प०) धातु से-**वाक्यम्। 'रिचिर् विरेचने'** (रुधा०उ०) धातु से-**रेक्यम्।***

कु-आदेशः–

(१३) न्यङ्क्वादीनां च।५३।

प०वि०-न्यङ्कु-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-न्यङ्कु आदिर्येषां ते न्यङ्क्वादयः, तेषाम्-न्यङ्क्वादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-न्यङ्क्वादीनामऽङ्गानां च कुः।

अर्थः-न्यङ्क्वादीनामङ्गानां च कवर्गादेशो भवति।

उदा०-न्यङ्कुः, मद्गुः, भृगुः, इत्यादिकम्।

न्यङ्कुः। मद्गुः। भृगुः। दूरेपाकः। फलेपाकः। फलेपाका। क्षणेपाकः। दूरेपाकः। फलेपाकः। तक्रम्। वक्रम्। व्यतिषङ्गः। अनुषङ्गः। अवसर्गः। उपसर्गः। मेघः। श्वपाकः। मांसपाकः। कपोतपाकः। उलूकपाकः। संज्ञायाम्। अर्घः। अवदाघः। निदाघः। न्यग्रोधः। इति न्यङ्क्वादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(न्यङ्क्वादीनाम्) न्यङ्कु आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (च) भी (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**न्यङ्कुः।** हरिणविशेष। **मद्गुः।** जलप्लवी पक्षी। **भृगुः।** ऋषिविशेष। इत्यादि।*

***सिद्धि-(१) न्यङ्कुः।** नि+अञ्च्+उ। नि+अङ्क्+उ। न्यङ्कु+सु। न्यङ्कुः।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'नावञ्चेः' (उणा० १।१७) से 'उ' प्रत्यय है। इस सूत्र से कवर्ग आदेश होता है।*

***(२)मद्गुः।** मस्ज्+उ। मद्ज्+उ। मद्ग्+उ। मद्गु+सु। मद्गुः।*

*यहां 'टुमस्जो शुद्धौ' (तु०प०) धातु से **'भृमृशीङ्मस्जिभ्य उः'** (उणा० १।७) 'उ' प्रत्यय है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से सकार को जश् दकार होता है। इस सूत्र से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है।*

***(३) भृगुः।** भ्रस्ज्+उ। भृस्ज्+उ। भृ०ज्+उ। भृग्+उ। भृगु+सु। भृगुः।*

*यहां 'भ्रस्ज पाके' (तु०उ०) धातु से **'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च'** (उणा० १।२८) से 'उ' प्रत्यय, सम्प्रसारण और सकार का लोप होता है। इस सूत्र से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। **भृज्जति तपसा शरीरमिति-भृगुः, ऋषिविशेषः।***

कु-आदेशः--

(१४) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु।५४।

प०वि०-हः ६।१ हन्तेः ६।१ ञ्णिन्नेषु ७।१।

स०-ञश्च णश्च तौ ञ्णौ, इच्च इच्च तौ इतौ, ञ्णावितौ येषां ते ञ्णितः, ञ्णितश्च नश्च ते ञ्णिन्नाः, तेषु-ञ्णिन्नेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-हन्तेरङ्गस्य हो ञ्णिन्नेषु कुः।

अर्थः-हन्तेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने, ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(ञित्) घातो वर्तते। **(णित्)** स घातयति, घातकः, साधुघाती, घातंघातम्। **(नकारः)** ते घ्नन्ति। ते घ्नन्तु। तेऽघ्नन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हन्तेः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (ञ्णिन्नेषु) ञित् और णित् प्रत्यय तथा नकार परे होने पर (कुः) कवर्गादेश होता है।*

उदा०-(ञित्) घातो वर्तते। हिंसा है। (णित्) स घातयति। वह हिंसा कराता है। घातकः। हिंसक। साधुघाती। साधु हिंसाशील। घातंघातम्। पुनः-पुनः हिंसा करके। (नकार) ते घ्नन्ति। वे हिंसा करते हैं। ते घ्नन्तु। वे हिंसा करें। तेऽघ्नन्। उन्होंने हिंसा की।

सिद्धि-(१) घातः। *हन्+घञ्। हन्+अ। घन्+अ। घत्+अ। घात्+अ। घात+सु। घातः।*

यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हन्' के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है-'हकारेण चतुर्थः' (पा०शि० ४।९)। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से तकारादेश और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(२) घातयति। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) घातकः। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) साधुघाती। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(५) **घातंघातम्।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३।४।२२) से द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **घ्नन्ति।** हन्+लट्। हन्+झि। हन्+शप्+अन्ति। हन्+०+अन्ति। ह्न्+अन्ति। घ्न्+अन्ति। घ्नन्ति।*

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'गमहनजन०'** (६।४।९८) से 'हन्' धातु के उपधा-अकार का लोप होता है। इस सूत्र से नकार परे होने पर, हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। ऐसे ही लोट् लकार में-**घ्नन्तु।** **'एरुः'** (३।४।८६) से उकारादेश है। लङ् लकार में-**अघ्नन्।***

कु-आदेशः-

(१५) अभ्यासाच्च।५५।

प०वि०-अभ्यासात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, हः, हन्तेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाच्च च हन्तेरङ्गस्य हः कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य च हन्तेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने कवर्गादेशो भवति।

उदा०-स जिघांसति। स जङ्घन्यते। अहं जघन।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (च) भी (हन्तेः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**स जिघांसति।** वह हिंसा करना चाहता है। **स जङ्घन्यते।** वह पुनः पुनः हिंसा करता है। **अहं जघन।** मैंने हिंसा की (मिथ्या भाषण)।*

***सिद्धि**-(१) **जिघांसति।** हन्+सन्। हन्+स। हन्-हन्+स। ह-हन्+स। ह-घन्+स। ह-घान्स। झ-घान्+स। झि-घान्+स। जिघां+स। जिघांस+लट्। जिघांसति।*

*यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ, **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है।*

*(२) **जङ्घन्यते।** हन्+यङ्। हन्+य। हन्-हन्+य। ह-हन्+य। ह-घन्+य। ह नुक्-घन्+य। हन्-घन्+य। झन्-घन्+य। जन्-घन्+य। जङ्-घन्+य। जङ्घन्य+लट्। जङ्घन्यते।*

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'हन्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य'** (७।४।८५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम और इसे **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से परसवर्ण होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **जघन।** हन्+लिट्। हन्+मिप्। हन्+णल्। हन्+अ। हन्-हन्+अ। ह+हन्+अ। ह-घन्+अ। झ-हन्+अ। ज-घन्+अ। जघन।*

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'हन्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'णलुत्तमो वा'** (७।१।९१) से उत्तमपुरुष का णल् विकल्प से णित् है अतः विकल्प-पक्ष में **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं होती है। यह अणित् पक्ष का उदाहरण है। णित्-पक्ष में तो पूर्व-सूत्र (७।३।५४) से कुत्व हो जाता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

कु-आदेशः–

(१६) हेरचङि।५६।

प०वि०–हेः ६।१ अचङि ७।१।

स०–न चङ् इति अचङ्, तस्मिन्–अचङि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, कुः, हः, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यासाद् हेरङ्गस्य होऽचङि कुः।

अर्थः–अभ्यासाद् उत्तरस्य हिनोतेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने चङ्वर्जिते प्रत्यये परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०–स प्रजिघीषति। स प्रजेघीयते। स प्रजिघाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (हेः) हि=हिनोति इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (अचङि) चङ् से भिन्न प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०–स **प्रजिघीषति।** वह प्रेरणा करना चाहता है। स **प्रजेघीयते।** वह पुनः-पुनः प्रेरणा करता है। स **प्रजिघाय।** उसने प्रेरणा की।*

सिद्धि-(१) प्रजिघीषति। प्र+हि+सन्। प्र+हि-हि+स। प्र+हि-घि+स। प्र+हि-घी+स। प्र+झि-घी+स। प्र+जि-घी+स। प्रजिघीष+लट्। प्रजिघीषति।

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'हि गतौ वृद्धौ च'** (स्वा०प०) से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'हि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हि' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से 'सन्' को इडागम का प्रतिषेध, **'इको झल्'** (१।२।९) से 'सन्' को किद्वद्भाव होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध और **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **प्रजेघीयते।** प्र+हि+यङ्। प्र+हि-हि+य। प्र+हि-घि+य। प्र+हि-घी+य। प्र+झि-घी+य। प्र+जे-घी+य। प्रजेघीय+लट्। प्रजेघीयते।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हि' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२२) से 'हि' को दीर्घ और **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **प्रजिघाय।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हि' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'णल्' प्रत्यय परे होने पर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'हि' को वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (७।१।७७) से आय्-आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

कु-आदेशः—

(१७) सन्लिटोर्जेः।५७।

प०वि०-सन्-लिटोः ७।२ जेः ६।१।

स०-सँश्च लिट् च तौ सन्लिटौ, तयोः-सन्लिटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाज्जेरङ्गस्य सन्लिटोः कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य जयतेरङ्गस्य सनि लिटि च प्रत्यये परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(सन्) स जिगीषति। (लिट्) स जिगाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (जे:) जि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सन्लिटो:) सन् और लिट् प्रत्यय परे होने पर (कु:) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-(सन्) स **जिगीषति।** वह विजय करना चाहता है। (लिट्) स **जिगाय।** उसने विजय किया।*

*सिद्धि-(१) **जिगीषति।** जि+सन्। जि-जि+स। जि-गि+स। जि-गी+स। जिगीष+लट्। जिगीषति।*

*यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से **'धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङो:'** (६।१।९) से 'जि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'जि' धातु के जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ और 'आदेशप्रत्ययो:' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) जिगाय। यहां पूर्वोक्त 'जि' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'जि' धातु को द्वित्व होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'अचो **ञ्णिति**' (७।२।११५) से वृद्धि और **'एचोऽयवायाव:'** (६।१।७७) से 'आय्' आदेश है।*

कु-आदेशविकल्पः–

(१८) विभाषा चे:।५८।

प०वि०-विभाषा १।१ चे: ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, कु:, अभ्यासात्, सन्लिटोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-अभ्यासाच्चेरङ्गस्य सन्लिटोर्विभाषा कु:।

अर्थ:-अभ्यासाद् उत्तरस्य चिनोतेरङ्गस्य सनि लिटि च प्रत्यये परतो विकल्पेन कवर्गादेशो भवति।

उदा०-**(सन्)** स चिचीषति, चिकीषति। **(लिट्)** स चिचाय, चिकाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (चे:) चि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सन्लिटो:) सन् और लिट् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (कु:) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-(सन्) स **चिचीषति, चिकीषति।** वह चयन करना चाहता है। (लिट्) **स चिचाय, चिकाय।** उसने चयन किया।*

सिद्धि-(१) चिचीषति। यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से परे 'चि' धातु को कवर्गादेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में कवर्गादेश है-चिकीषति। 'अज्झनगमां सनि' (६।४।१६) से दीर्घ होता है।

(२) चिचाय। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में कवर्गादेश है-चिकाय।

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(१६) न क्वादेः।५६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कु-आदेः ६।१।

स०-कुरादिर्यस्य स क्वादिः, तस्य-क्वादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) इत्यस्माच्च चजोरिति च मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-क्वादेरङ्गस्य चजोः कुर्न।

अर्थः-कवर्गादिरङ्गस्य चकारस्य जकारस्य च स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-कूजो वर्तते। खर्जः। गर्जः। कूज्यं भवता। खर्ज्यं भवता। गर्ज्यं भवता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्वादेः) कवर्ग जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कूजो वर्तते।** पक्षियों का कूजन (चहचाना) है। **खर्जो वर्तते।** दुःख है। गर्जो वर्तते। मेघ का गर्जन है। **कूज्यं भवता।** आपको कूजन करना चाहिये। **खर्ज्यं भवता।** आपको पूजित होना चाहिये। **गर्ज्यं भवता।** आपको गर्जन करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) कूजः। यहां 'कुज अव्यक्ते शब्दे' (भ्वा०प०) इस कवर्गादि धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही 'खर्ज व्यथने पूजने च' (भ्वा०प०) से-खर्जः। 'गर्ज शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से-गर्जः।

(२) कूज्यम्। यहां 'कूज अव्यक्ते शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'खर्ज' और 'गर्ज' धातुओं से-खर्ज्यम्, गर्ज्यम्।

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(२०) अजिव्रज्योश्च।६०।

प०वि०–अजि-व्रज्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०–अजिश्च व्रजिश्च तौ अजिव्रजी, तयोः-अजिव्रज्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः–अजिव्रज्योरङ्गयोश्च चजोः कुर्न।

अर्थः–अजिव्रज्योरङ्गयोश्च चकार-जकारयोः स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०–(**अजिः**) समाजः, उदाजः। (**व्रजिः**) परिव्राजः, परिव्राज्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजिव्रज्योः) अजि, व्रजि इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (च) भी (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(अजि) समाजः। मनुष्यों का समुदाय। उदाजः। प्रेरणा। (व्रजि) परिव्राजः। परिव्राट्-संन्यासी। परिव्राज्यम्। परिव्रजन (भ्रमण) करना चाहिये।

सिद्धि-(१) समाजः। यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'हलश्च' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही उत्-उपसर्गपूर्वक 'अज' धातु से-उदाजः।

(२) परिव्राजः। यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

(३) परिव्राज्यम्। यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'व्रज' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से अङ्ग को उपधावृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *'अज' धातु को 'घञ्' और 'अप्' प्रत्यय से भिन्न आर्धधातुक विषय में 'अजेर्व्यघञपोः' (२।४।५६) से 'वी' आदेश होता है। अतः इसका 'ण्यत्' प्रत्यय में उदाहरण दिया गया है।*

निपातनम्–

(२१) भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः।६१।

प०वि०-भुज-न्युब्जौ १।२ पाणि-उपतापयोः ७।२।

स०-भुजश्च न्युब्जश्च तौ भुजन्युब्जौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिश्च उपतापश्च तौ पाण्युपतापौ, तयोः-पाण्युपतापयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-पाण्युपतापयोर्भुजन्युब्जौ {अङ्गयोश्चजोः कुर्न}।

अर्थः-पाण्युपतापयोरर्थयोर्यथासंख्य भुजन्युब्जशब्दौ निपात्येते, अर्थात्-एतयोरङ्गयोश्चकारजकारयोः स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-(भुजः) भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः। (न्युब्जः) न्युब्जिता=अधोमुखाः शेरतेऽस्मिन्निति न्युब्जः उपतापः, रोग इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-(पाण्युपतापयोः) पाणि=हाथ और उपताप=रोग अर्थ में यथासंख्य (भुजन्युब्जौ) भुज और न्युब्ज शब्द निपातित है अर्थात् इन के (अङ्गयोः) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।

उदा०-(भुजः) भुजः=पाणि (हाथ)। इससे पालन और अभ्यवहार (खानपान) किया जाता है अतः यह 'भुज' कहलाता है। (न्युब्जः) न्युब्जः=उपताप (रोग)। इसमें लोग अधोमुख पड़े रहते हैं अतः रोग को 'न्युब्ज' कहते हैं।

सिद्धि-(१) भुजः। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०आ०) धातु से 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' (३।३।१९) से संज्ञा अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध और 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपधलक्षण गुण का अभाव निपातित है।

(२) न्युब्जः। यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'उब्ज आर्जवे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था।

निपातनम्–

(२२) प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे।६२।

प०वि०-प्रयाज-अनुयाजौ १।२ यज्ञाङ्गे ७।१।

स०-प्रयाजश्च अनुयाजश्च तौ प्रयाजानुयाजौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यज्ञस्य अङ्गमिति यज्ञाङ्गम्, तस्मिन्-यज्ञाङ्गे।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञाङ्गे प्रयाजानुयाजौ {अङ्गयोश्च जोः कुर्न}।

अर्थः-यज्ञाङ्गे विषये प्रयाजानुयाजौ शब्दौ निपात्येते, अर्थात्-एतयोरङ्गयोश्चकारजकारयोः स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-पञ्च प्रयाजाः (तै०सं० २।६।१०)। त्रयोऽनुयाजाः (श०ब्रा० ११।४।१।११)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यज्ञाङ्गे) यज्ञ के अवयव विषय में (प्रयाजानुयाजौ) प्रयाज और अनुयाज शब्द निपातित है, अर्थात् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**पञ्च प्रयाजाः** (तै०सं० २।६।१०)। पांच प्रयाज नामक यज्ञ। **त्रयोऽनुयाजाः** (श०ब्रा० ११।४।१।११)। तीन अनुयाज नामक यज्ञ।*

सिद्धि-प्रयाजाः। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से संज्ञा-विषय में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। ऐसे ही-**अनुयाजाः।***

विशेषः *(१) दर्शपौर्णमास-इष्टि में पांच आहुतियां दी जाती हैं, जिन्हें पांच प्रयाज कहते थे। यह यज्ञ का पूर्वाङ्ग या पूर्वभाग था। इसके बाद की तीन गौण आहुति अनुयाज कहलाती थी।*

*(२) शतपथ के अनुसार समिध्-प्रयाज आदि पांच प्रयाज ये हैं- **{१} समिधो यजति {२} तनूनपातं यजति {३} बर्हिर्यजति {४} इडो यजति {५} स्वाहाकारं यजति** (श० १।५।३।१-१३)।*

*(३) अनुयाज तीन हैं-**त्रयोऽनुयाजाश्चत्वारः पत्नीसंयाजाः** (शत० ११।४।१।११)। दर्शपौर्णमास-इष्टि में तीन अनुयाजों के बाद यजमान-पत्नी चार पत्नी-संयाज आहुति देती है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० ३७१)।*

(४) काशिकावृत्ति में 'पञ्चानुयाजा' यह अपपाठ है। अनुयाज तीन हैं, पांच नहीं।

कु-आदेशप्रतिषेधः-

(२३) वञ्चेर्गतौ।६३।

प०वि०-वञ्चेः ६।१ गतौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-गतौ वञ्चेरङ्गस्य चजोः कुर्न।

अर्थः-गतावर्थे वर्तमानस्य वञ्चेरङ्गस्य चकारस्य स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गतौ) गति-अर्थ में विद्यमान (वञ्चेः) वञ्चि इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः।** व्यापारी लोग अपने गन्तव्य देश को जाते हैं।*

***सिद्धि-वञ्च्यम्।** यहां **'वञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।४।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था।*

***विशेषः** 'वञ्चि' धातु में चकार है, जकार नहीं। अतः जकार की अनुवृत्ति एकपद की परवशता से की गई है।*

निपातनम्-

(२४) ओक उचः के।६४।

प०वि०-ओकः १।१ उचः ५।१ के ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उचोऽङ्गात् के ओकः कुः।

अर्थः-उचोऽङ्गात् के प्रत्यये परत ओक इति निपात्यते, अत्र कवर्गादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०-न्युचतीति न्योकः शकुन्तः। न्युचन्त्यस्मिन्निति न्योको गृहम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(उचः) उच् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ओकः) ओक यह शब्द निपातित है **अर्थात्** यहां (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**न्योकः शकुन्तः।** जो समुदाय बनाकर रहता है वह-पक्षी। **न्योको गृहम्।** जिस में लोग निवास करते हैं वह-घर।*

*सिद्धि-**न्योकः।** नि+उच्+क। नि+उक्+अ। न्योक+सु। न्योकः।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'उच समवाये'** (दि०प०) धातु से **'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'** (३।१।१३५) से कर्ता अर्थ में 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से प्राप्त गुणप्रतिषेध भी नहीं होता है। अथवा-**'घञर्थे कविधानं०'** (३।३।५८) से अधिकरण कारक में 'क' प्रत्यय है।*

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(२५) ण्य आवश्यके।६५।

प०वि०-ण्ये ७।१ आवश्यके ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-आवश्यके ण्येऽङ्गस्य कुर्न।

अर्थः-आवश्यकेऽर्थे ण्ये प्रत्यये परतोऽङ्गस्य कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। अवश्यरेच्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(*आवश्यके*) *आवश्यक अर्थ में* (*ण्ये*) *ण्य-प्रत्यय परे होने पर* (*अङ्गस्य*) *अङ्ग को* (*कुः*) *कवर्गादेश* (*न*) *नहीं होता है।*

*उदा०-**अवश्यपाच्यम्।** अवश्य पकाने योग्य। **अवश्यवाच्यम्।** अवश्य कहने योग्य। **अवश्यरेच्यम्।** अवश्य मलशुद्धि करने योग्य।*

*सिद्धि-**अवश्यपाच्यम्।** यहां अवश्य-उपपद 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'कृत्याश्च' (३।३।७१) से कृत्य-संज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। अवश्यम् और पाच्य शब्दों का 'मयूरव्यंसकादयश्च' (२।१।७२) से कर्मधारय समास है और 'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि' (महा० ६।१।१३९) से 'अवश्यम्' के मकार का लोप होता है। ऐसे ही 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से-**अवश्यवाच्यम्।** 'रिचिर् विरेचने' (रुधा०आ०) धातु से-अवश्यरेच्यम्।*

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(२६) यजयाचरुचप्रवचर्चश्च।६६।।

प०वि०-यज-याच-रुच-प्रवच-ऋचः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-यजश्च याचश्च रुचश्च प्रवचश्च ऋच् च एतेषां समाहारो यज०ऋच्, तस्य यज०ऋचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यजयाचरुचप्रवचर्चामङ्गानां च चजोर्ण्ये कुर्न।

अर्थः-यजयाचरुचप्रवचर्चामङ्गानां च चकारस्य जकारस्य च स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-(**यज**) याज्यम्। (**याच**) याच्यम्। (**रुच**) रोच्यम्। (**प्रवच**) प्रवाच्यम्। (**ऋच**) अर्च्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यज०) यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवगादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(**यज**) **याज्यम्**। यज्ञ करना चाहिये। (**याच**) **याच्यम्**। मांगना चाहिये। (**रुच**) **रोच्यम्**। चमकना चाहिये। (**प्रवच**) **प्रवाच्यम्**। प्रवचन करना चाहिये। (**ऋच**) **अर्च्यम्**। स्तुति करनी चाहिये।*

*सिद्धि-**याज्यम्**। यहां '**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवगादेश का प्रतिषेध होता है। '**चजोः कु घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही '**टुयाचृ याच्ञायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से-**याच्यम्**। '**रुच दीप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से-**रोच्यम्**। प्र-उपसर्गपूर्वकपूर्वक '**वच परिभाषणे**' (अदा०प०) धातु से-**प्रवाच्यम्**। '**ऋच स्तुतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**अर्च्यम्**।*

कु-आदेशप्रतिषेधः-

(२७) वचोऽशब्दसंज्ञायाम्।६७।

प०वि०-वचः ६।१ अशब्दसंज्ञायाम् ७।१।

स०-शब्दस्य संज्ञेति शब्दसंज्ञा न शब्दसंज्ञेति अशब्दसंज्ञा, तस्याम्-अशब्दसंज्ञायाम् (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अशब्दसंज्ञायां वचोऽङ्गस्य चजोर्ण्ये कुर्न।

अर्थः-शब्दसंज्ञावर्जिते विषये वचोऽङ्गस्य चकारस्य जकारस्य च स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवगादिशो न भवति।

उदा०-स वाच्यमाह। सोऽवाच्यमाह।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अशब्दसंज्ञायाम्) शब्दशास्त्र की संज्ञा से भिन्न विषय में (वचः) वच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवगादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-स **वाच्यमाह**। वह कहने योग्य वचन कहता है। **सोऽवाच्यमाह**। वह न कहने योग्य वचन कहता है।*

सिद्धि-वाच्यम्। यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे अशब्दसंज्ञा विषय में कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। नञ्पूर्वक से-अवाच्यम्।

निपातनम्-

(२८) प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे।६८।

प०वि०-प्रयोज्य-नियोज्यौ १।२ शक्यार्थे ७।१।

स०-प्रयोज्यश्च नियोज्यश्च तौ-प्रयोज्यनियोज्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। शक्यश्चासावर्थ इति शक्यार्थः, तस्मिन्-शक्यार्थे (कर्मधारयः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शक्यार्थे प्रयोज्यनियोज्यौ {एतयोश्चजोर्ण्ये कुर्न}।

अर्थः-शक्यार्थे प्रयोज्यनियोज्यौ शब्दौ निपात्येते अर्थात् एतयोरङ्गयोर्जकारस्य स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-**(प्रयोज्यः)** प्रयोक्तुं शक्य इति प्रयोज्यो भृत्यः। **(नियोज्यः)** नियोक्तुं शक्य इति नियोज्यो दासः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शक्यार्थे) शक्य-अर्थ में (प्रयोज्यनियोज्यौ) प्रयोज्य और नियोज्य ये शब्द निपातित है, अर्थात् इन अङ्गों के जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(प्रयोज्य) प्रयोग कर सकने योग्य-प्रयोज्य भृत्य (नौकर)। (नियोज्य) नियोग=आज्ञा कर सकने योग्य-नियोज्य दास।

सिद्धि-प्रयोज्यः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'युजिर् योगे' (रुधा०उ०) धातु से 'शकि लिङ् च' (३।३।१७२) से शक्यार्थ में कृत्य-संज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही अनु-उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से-अनुयोज्यः।

निपातनम्-

(२९) भोज्यं भक्ष्ये।६९।

प०वि०-भोज्यम् १।१ भक्ष्ये ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भक्ष्ये भोज्यम् {चजोर्ण्ये कुन्} ।

अर्थः-भक्ष्येऽर्थे भोज्यमिति निपात्यते, अर्थात्-एतस्याऽङ्गस्य जकारस्य ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-भोज्य ओदनः । भोज्या यवागूः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भक्ष्य) भक्ष्य अर्थ में (भोज्यम्) भोज्य यह शब्द निपातित है, अर्थात् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) जकार को (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**भोज्य ओदनः**। खाने योग्य भात (चावल)। **भोज्या यवागूः**। खाने योग्य यवागू (लापसी)।*

***सिद्धि-भोज्यः**। यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०प०) धातु से भक्ष्य-अर्थ में **'ऋहलोर्ण्यत्'** (३।४।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु **घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। स्त्रीत्व-विवक्षा में-**भोज्या यवागूः**।*

{इति कवर्गादेशप्रकरणम्}

लोपादेशप्रकरणम्

लोपादेश-विकल्पः-

(३०) घोर्लोपो लेटि वा।७०।

प०वि०-घोः ६।१ लोपः १।१ लेटि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-घोरङ्गस्य लेटि वा लोपः ।

अर्थः-घुसंज्ञकस्याङ्गस्य लेटि प्रत्यये परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-दधद् रत्नानि दाशुषे (ऋ० ४।१५।३)। सोमो ददद् गन्धर्वाय (ऋ० १०।८५।४१) न च भवति-यदग्निरग्नये ददात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(घोः) घु-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (लेटि) लेट् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-दधद् रत्नानि दाशुषे (ऋ० ४।१५।३)। दधत्=धारण करता है। **सोमो ददद् गन्धर्वाय** (ऋ० १०।८५।४१) ददत्=देता है। और कहीं लोपादेश नहीं भी होता **है-यदग्निरग्नये ददात्**। ददात्=देता है।*

सिद्धि-दधत्। धा+लेट्। धा+ल्। धा+तिप्। धा+शप्+ति। धा+०+त्। धा-धा+अट्+त्। ध-धा+अ+त्। द-ध्+अ+त्। दधत्।

यहां **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से **'लिङर्थे लेट्'** (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है। **'दाधा घ्वदाप्'** (१।१।१९) से 'धा' धातु की 'घु' संज्ञा है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसको **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से श्लु (लोप) और **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'धा' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'धा' के अन्त्य आकार का लोप होता है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से 'अट्' आगम और **'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु'** (३।४।९७) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को 'ह्रस्व' और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है। ऐसे ही **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) **धातु** से-ददत्। विकल्प-पक्ष में लोपादेश नहीं है-ददात्।

लोपादेशः–

(३१) ओतः श्यनि।७१।

प०वि०-ओतः ६।१ श्यनि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओतोऽङ्गस्य श्यनि लोपः।

अर्थः-ओकारान्तस्याऽङ्गस्य श्यनि प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-**(शो)** स निश्यति। **(छो)** सोऽवच्छ्यति। **(दो)** सोऽवद्यति। **(सो)** सोऽवस्यति।

आर्यभाषाः *अर्थ*-(ओतः) ओकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग का (श्यनि) श्यन् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।

उदा०-**(शो) स निश्यति।** वह तीक्ष्ण करता है (पैनाता) है। **(छो) सोऽवच्छ्यति।** वह काटता है। **(दो) सोऽवद्यति।** वह टुकड़े करता है। **(सो) सोऽवस्यति।** वह अन्त (समाप्त) करता है।

सिद्धि-(१) निश्यति। यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'शो तनूकरणे'** (दि०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शो' धातु के अन्त्य ओकार का लोप होता है।

(२) **अवच्छ्यति।** अव-उपसर्गपूर्वक **'छो छेदने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) **अवद्यति।** अव-उपसर्गपूर्वक **'दो उवखण्डने'** (दि०प०)।

(४) **अवस्यति।** अव-उपसर्गपूर्वक **'षोऽन्तकर्मणि'** (दि०प०)।

लोपादेशः–

(३२) क्सस्याचि ।७२।

प०वि०–क्सस्य ६।१ अचि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्सस्याङ्गस्याऽचि लोपः।

अर्थः–क्सस्याऽङ्गस्याऽजादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०–तौ अधुक्षाताम्। युवाम् अधुक्षाथाम्। अहम् अधुक्षि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्स) क्स इस (अङ्गस्य) अङ्ग का (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**तौ अधुक्षाताम्।** उन दोनों ने दोहन किया, दूध निकाला। **युवाम् अधुक्षाथाम्।** तुम दोनों ने दोहन किया। **अहम् अधुक्षि।** मैंने दोहन किया।*

***सिद्धि-अधुक्षाताम्।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+आताम्। अ+दुघ्+स्+आताम्। अ+धुघ्+स्+आताम्। अ+धुक्+स्+आताम्। अ+धुक्+ष्+आताम्। अधुक्षाताम्।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से 'च्लि' के स्थान में 'क्स' आदेश होता है। इस सूत्र से अजादि 'आताम्' प्रत्यय परे होने पर 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) के नियम से 'क्स' के अन्त्य अकार का लोप होता है। 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से दकार को भष् धकार, 'खरि च' (८।४।५५) से घकार को चर् ककार और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'आथाम्' प्रत्यय में-**अधुक्षाथाम्।** इट् (उ०पु० एकवचन) में-**अधुक्षि।***

लुग्-विकल्पः–

(३३) लुग् वा दुहदिहलिहामात्मनेपदे दन्त्ये ।७३।

प०वि०–लुक् १।१ वा अव्ययपदम्, दुह-दिह-लिहाम् ६।३ आत्मनेपदे ७।१ दन्त्ये ७।१।

स०–दुहश्च दिहश्च लिह् च ते दुहदिहलिहः, तेषाम्-दुहदिहलिहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–दुहदिहलिहामऽङ्गानां क्सस्य दन्त्ये आत्मनेपदे वा लुक्।

अर्थः-दुहदिहलिहामङ्गानां क्सप्रत्ययस्य, दन्त्यादावाऽऽत्मनेपदे परतो विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-(**दुह**) सोऽदुग्ध, अधुक्षत। त्वम् अदुग्धाः, अधुक्षथाः। यूयम् अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। आवाम् अदुह्वहि, अधुक्षावहि। (**दिह**) सोऽदिग्ध, अधिक्षत। (**लिह**) सोऽलीढ, अलिक्षत। (**गुह**) स न्यूगढ, न्यधुक्षत।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दुह०) दुह, दिह, लिह इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (क्सस्य) क्सप्रत्यय का (दन्त्ये) दन्त्य वर्ण जिसके आदि में है उस (आत्मनेपदे) आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (लुक्) लुक् होता है।*

*उदा०-(दुह) **सोऽदुग्ध, अधुक्षत।** उसने दोहन किया, दूध निकाला। **त्वम् अदुग्धाः, अधुक्षथाः।** तूने दोहन किया। **यूयम् अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्।** तुम सबने दोहन किया। **आवाम् अदुह्वहि, अधुक्षावहि।** हम दोनों ने दोहन किया। (दिह) **सोऽदिग्ध, अधिक्षत।** वह बढ़ा। (लिह) **सोऽलीढ, अलिक्षत।** उसने आस्वादन किया, चाटा। (गुह) **स न्यूगढ, न्यधुक्षत।** उसने आच्छादित किया, छुपाया।*

*सिद्धि-(१) **अदुग्ध।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+त। अ+दुह्+०+त। अ+दुघ्+त। अ+अदुघ्+ध। अ+दुग्+ध। अदुग्ध।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) 'लुङ्' प्रत्यय है। '**शल इगुपधादनिटः क्सः**' (३।१।४५) से 'च्लि' के स्थान में 'क्स' आदेश है। इस सूत्र से दन्त्यादि आत्मनेपद 'त' प्रत्यय परे होने पर 'क्स' प्रत्यय का लुक् होता है। '**दादेर्धातोर्घः**' (८।२।३२) से हकार को घकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार और '**झलां जश् झशि**' (८।४।५३) से घकार को जश् गकार होता है। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अधुक्षत।** ऐसे ही 'थास्' प्रत्यय में-**अदुग्धाः, अधुक्षथाः।** 'ध्वम्' प्रत्यय में-**अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्।** 'वहि' प्रत्यय में-**अदुह्वहि, अधुक्षावहि।***

*(२) **अदिग्ध। 'दिह उपचये'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अधिक्षत।***

*(३) **अलीढ। 'लिह आस्वादने'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को ढकार, '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अलिक्षत।***

*(४) **न्यगूढ।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गुहू संवरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**न्यधुक्षत।***

दीर्घः–

(३४) शमामष्टानां दीर्घः श्यनि।७४।

प०वि०-शमाम् ६।३ बहुवचनमादित्वद्योतनार्थम्, दीर्घः १।१ श्यनि ७।१।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शमामष्टानामङ्गानां श्यनि दीर्घः।

अर्थः-शमाम्=शमादीनामष्टामऽङ्गानां श्यनि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति। उदाहरणम्–

	धातुः	रूपम्	भाषार्थः
(१)	शम्	स शाम्यति	वह उपशमन करता है।
(२)	तम्	स ताम्यति	वह आकाङ्क्षा (इच्छा) करता है।
(३)	दम्	स दाम्यति	वह उपशमन करता है।
(४)	श्रम्	स श्राम्यति	वह श्रान्त होता है।
(५)	भ्रम्	स भ्राम्यति	वह अवस्थित नहीं रहता है, घूमता है।
(६)	क्षम्	स क्षाम्यति	वह क्षमा (सहन) करता है।
(७)	क्लम्	स क्लाम्यति	वह ग्लानि करता है।
(८)	मदी	स माद्यति	वह हर्षित होता है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शमाम्) शम् आदि (अष्टानाम्) आठ (अङ्गानाम्) अङ्गों को (श्यनि) श्यन् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-शाम्यति। *यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे 'श्यन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही 'तमु काङ्क्षायाम्' धातु से-ताम्यति। 'दमु उपशमे' धातु से-**दाम्यति**। 'श्रमु तपसि खेदे च' धातु से-**भ्राम्यति**। 'क्षमु सहने' धातु से-क्षाम्यति। 'क्लमु ग्लानौ' धातु से-क्लाम्यति। 'मदी हर्षे' धातु से-माद्यति।*

ये 'शमु उपशमे' आदि आठ धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में पठित हैं।

दीर्घः-

(३५) ष्ठिवुक्लमुचमां शिति।७५।

प०वि०-ष्ठिवु-क्लमु-चमाम् ६।३ शिति ७।१।

स०-ष्ठिवुश्च क्लमुश्च चम् च ते ष्ठिवुक्लमुचमः, तेषाम्-ष्ठिवुक्लमुचमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श् इद् यस्य स शित्, तस्मिन् शिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ष्ठिवुक्लमुचमामऽङ्गानां शिति दीर्घः।

अर्थः-ष्ठिवुक्लमुचमामऽङ्गानां शिति प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(ष्ठिवु) स ष्ठीवति। **(क्लमु)** स क्लामति। **(चम्)** स आचामति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ष्ठिवुक्लमुचमाम्) ष्ठिवु, क्लमु, चम् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**(ष्ठिवु) स ष्ठीवति।** वह थूकता है। **(क्लमु) स क्लामति।** वह ग्लानि करता है। **(चम्) स आचामति।** वह आचमन करता है।*

*सिद्धि-**ष्ठीवति।** यहां **'ष्ठिवु निरसने'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही **'क्लमु ग्लानौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**क्लामति।** आङ्पूर्वक **'चमु अदने'** (भ्वा०प०) धातु से-**आचामति।***

दीर्घः-

(३६) क्रमः परस्मैपदेषु।७६।

प०वि०-क्रमः ६।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, दीर्घः, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रमोऽङ्गस्य परस्मैपदपरके शिति दीर्घः।

अर्थः-क्रमोऽङ्गस्य परस्मैपदपरके शिति प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-स क्रामति। तौ क्रामतः। ते क्रामन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रमः) क्रम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (परस्मैपदे) परस्मैपद-परक (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-स **क्रामति**। वह जाता है, चलता है। **तौ क्रामतः**। वे दोनों जाते हैं। **ते क्रामन्ति**। वे सब जाते हैं।*

*सिद्धि-**क्रामति**। यहां '**क्रमु पादविक्षेपे**' (भ्वा०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' ३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में परस्मैपद-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे परस्मैपदपरक, शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है। ऐसे ही 'तस्' प्रत्यय में-**क्रामतः**। 'झि' प्रत्यय में-**क्रामन्ति**।*

छ-आदेशः--

(३७) इषुगमियमां छः।७७।

प०वि०-इषु-गमि-यमाम् ६।३ छः १।१।

स०-इषुश्च गमिश्च यम् च ते इषुगमियमः, तेषाम्-इषुगमियमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-इषुगमियमामऽङ्गानां शिति छः।

अर्थः-इषुगमियमामऽङ्गानां शितिप्रत्यये परतश्छकारादेशो भवति।

उदा०-(**इषुः**) स इच्छति। (**गमिः**) स गच्छति। (**यम्**) स यच्छति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इषुगमियमाम्) इषु, गमि, यम् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (छः) छकार आदेश होता है।*

*उदा०-(इषु) **स इच्छति**। वह इच्छा करता है, चाहता है। (गमि) **स गच्छति**। वह गति करता है, जाता है। (यम्) **स यच्छति**। वह उपरत होता है, रोकता है।*

*सिद्धि-**इच्छति**। यहां 'इषु **इच्छायाम्**' (तु०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श' प्रत्यय परे होने पर 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) के नियम से षकार को छकारादेश होता है। 'छे च' (६।१।७२) से 'तुक्' आगम और इसे 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से चवर्ग चकारादेश होता है। ऐसे ही 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**गच्छति**। 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से-**यच्छति**।*

पादीनां पिबादय आदेशाः–

(३८) पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ।७८।

प०वि०–पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृशि-अर्ति-सर्ति-शद-सदाम् ६।३ पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-ऋच्छ-धौ-शीय-सीदाः १।३।

स०–पाश्च घ्राश्च ध्माश्च स्थाश्च म्नाश्च दाण् च दृशिश्च अर्तिश्च शदश्च सद् च ते-पा०सदः, तेषाम्-पा०सदाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पिबश्च जिघ्रश्च धमश्च तिष्ठश्च मनश्च यच्छश्च पश्यश्च ऋच्छश्च धौश्च शीयश्च सीदश्च ते-पिब०सीदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः–पा०सदामङ्गानां शिति पिब०सीदाः।

अर्थः–पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदामऽङ्गानां स्थाने शिति प्रत्यये परतो यथासंख्यं पिबजिघ्रतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**–

स्थानी	आदेशः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) पा	पिब	स पिबति	वह पान करता है।
(२) घ्रा	जिघ्र	स जिघ्रति	वह गन्ध ग्रहण करता है।
(३) ध्मा	धम	स धमति	वह बाजा बजाता है अथवा अग्नि सुलगाता है।
(४) स्था	तिष्ठ	स तिष्ठति	वह ठहरता है।
(५) म्ना	मन	स मनति	वह अभ्यास करता है।
(६) दाण्	यच्छ	स यच्छति	वह दान करता है।
(७) दृशि	पश्य	स पश्यति	वह देखता है।
(८) अर्ति (ऋ)	ऋच्छ	स ऋच्छति	वह जाता है।
(९) सर्ति (सृ)	धौ	स धावति	वह दौड़ता है।
(१०) शद	शीय	स शीयते	वह जीर्ण होता है।
(११) सद	सीद	स सीदति	वह जाता है, चलता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(पा०) पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, अर्ति (**ऋ**), सर्ति (सृ), शद, सद् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के स्थान में (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (पिब०) पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, सीद आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **पिबति**। यहां '**पा पाने**' धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर 'पिब' आदेश होता है।*

*(२) **जिघ्रति**। '**घ्रा गन्धोपादाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **धमति**। '**ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः**' (भ्वा०प०)।*

*(४) **तिष्ठति**। '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०)।*

*(५) **मनति**। '**म्ना अभ्यासे**' (भ्वा०प०)।*

*(६) **यच्छति**। '**दाण् दाने**' (भ्वा०प०)।*

*(७) **पश्यति**। '**दृशिर् प्रेक्षणे**' (भ्वा०प०)।*

*(८) **ऋच्छति**। '**ऋ गतौ**' (भ्वा०प०)।*

*(९) **धावति**। '**सृ गतौ**' (भ्वा०प०)।*

*(१०) **शीयते**। '**शद्लृ शातने**' (भ्वा०आ०)।*

*(११) **सीदति**। '**षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु**' (भ्वा०प०)।*

ज्ञा-आदेशः—

(३६) ज्ञाजनोर्जा।७६।

प०वि०-ज्ञा-जनोः ६।२ जा १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ज्ञाजनोरङ्गयोः शिति जाः।

अर्थः-ज्ञाजनोरङ्गयोः स्थाने शिति प्रत्यये परतो जाऽऽदेशो भवति।

उदा०-(**ज्ञा**) स जानाति। (**जन्**) स जायते।

आर्यभाषाः अर्थ-(ज्ञाजनोः) ज्ञा, जन् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (जाः) जा-आदेश होता है।

*उदा०-(ज्ञा) स जानाति। वह समझता है, जानता है। (जन्) **स जायते**। वह प्रकट होता है, पैदा होता है।*

सिद्धि-(१) जानाति। यहां 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर 'जा' आदेश होता है।

(२) जायते। यहां 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

ह्रस्वादेशः-

(४०) प्वादीनां ह्रस्वः।८०।

प०वि०-पू-आदीनाम् ६।३ ह्रस्वः १।१।

स०-पू-आदिर्येषां ते प्वादयः, तेषाम्-प्वादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्वादीनामङ्गानां शिति ह्रस्वः।

अर्थः-प्वादीनामङ्गानां शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-(पूञ्) स पुनाति। **(लूञ्)** स लुनाति। **(स्तॄञ्)** स स्तृणाति।

एते प्वादयो धातवः पाणिनीयधातुपाठस्य क्र्यादिगणे पठ्यन्ते। 'पूञ् पवने' इत्यतः प्रभृति व्ली गतौ (वृत्) इति यावत् प्वादयः। अपरे आ गणान्ताः प्वादय इति मन्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्वादीनाम्) पूञ् पवने इत्यादि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**(पूञ्) स पुनाति।** वह पवित्र करता है। **(लूञ्) स लुनाति।** वह काटता है। (स्तॄञ्) स स्तृणाति। वह आच्छादित करता है, ढकता है।*

सिद्धि-पुनाति। यहां 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (उ) होता है। ऐसे ही 'लूञ् लवने' (क्र्या०उ०) धातु से-लुनाति। 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-स्तृणाति।

ये पू-आदि धातु पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में पठित हैं। 'पूञ् पवने' से लेकर 'व्ली गतौ' (वृत्) इस वृत्कार पर्यन्त पू-आदि धातु हैं। कई आचार्य गण की समाप्ति पर्यन्त पू-आदि धातु मानते हैं।

ह्रस्वादेशः--

(४१) मीनातेर्निगमे।८१।

प०वि०-मीनातेः ६।१ निगमे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, शिति, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे मीनातेरङ्गस्य शिति ह्रस्वः।

अर्थः-निगमे विषये मीनातेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-न किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि (ऋ० १०।१०।५)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(निगमे) वेद में (मीनातेः) मीनाति इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**न किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि** (ऋ० १०।१०।५)। इस सविता देव के व्रत नष्ट नहीं होते हैं।*

सिद्धि-मिनन्ति। *यहां 'मीञ् हिंसायाम्' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे वेदविषय में शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (इ) होता है। 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से 'श्ना' के आकार का लोप होता है।*

{गुणादेशप्रकरणम्}

गुणादेशः--

(४२) मिदेर्गुणः।८२।

प०वि०-मिदेः ६।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-मिदेरङ्गस्य शिति गुणः।

अर्थः-मिदेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स मेद्यति। तौ मेद्यतः। ते मेद्यन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(मिदेः) मिदि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**स मेद्यति।** वह स्नेह करता है। **तौ मेद्यतः।** वे दोनों स्नेह करते हैं। **ते मेद्यन्ति।** वे सब स्नेह करते हैं।*

सिद्धि-मेद्यति। यहां *'ञिमिदा स्नेहने'* (दि०प०) धातु से *'वर्तमाने लट्'* (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। *'दिवादिभ्यः श्यन्'* (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। यह प्रत्यय *'सार्वधातुकमपित्'* (१।२।४) से ङिद्वत् है। अतः *'क्ङिति च'* (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था। अतः इस सूत्र से गुण का विधान किया गया है। ऐसे ही तस्-प्रत्यय में-**मेद्यतः**। झि-प्रत्यय में-**मेद्यन्ति**।

गुणादेशः–

(४३) जुसि च।८३।

प०वि०-जुसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चाऽत्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-इकोऽङ्गस्य जुसि च गुणः।

अर्थः-इगन्तस्याऽङ्गस्य जुसि च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-तेऽजुहवुः। तेऽबिभयुः। तेऽबिभरुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (जुसि) जूस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**तेऽजुहवुः।** उन सबने हवन किया। **तेऽबिभयुः।** वे सब भयभीत हुये। **तेऽबिभरुः।** उन्होंने धारण-पोषण किया।*

*सिद्धि-**अजुहवुः।** हु+लङ्। अट्+हु+ल्। अ+हु+झि। अ+हु+शप्+झि। अ+हु+०+झि। अ+हु-हु+झि। अ+हु-हु+जुस्। अ+झु-हु+उस्। अ+जु-हो+उस। अ+जु-हव्+उस्। अजुहवु+स्। अजुहवुः।*

*यहां 'हु दानादनयोः' (जु०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१५) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। **'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च'** ३।४।१०९) से अभ्यस्त **'हु' धातु** से परे 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। इस सूत्र से इसे 'जुस्' परे होने पर गुण होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है। ऐसे ही **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से-**अबिभयुः।** 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से-**अबिभरुः।** 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इकारादेश होता है।*

गुणादेशः–

(४४) सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।८४।

प०वि०-सार्वधातुक-आर्धधातुकयोः ७।२।

स०-सार्वधातुकं च आर्धधातुकं च ते सार्वधातुकार्धधातुके, तयोः-सार्वधातुकार्धधातुकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चाऽत्र इक इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-इकोऽङ्गस्य सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणः।

अर्थः-इगन्तस्याऽङ्गस्य सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-(सार्वधातुके) स तरति। स नयति। स भवति। **(आर्धधातुके)** कर्ता, चेता, स्तोता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(सार्वधातुक) **स तरति।** वह तैरता है। **स नयति।** वह पहुंचाता है। **स भवति।** वह होता है। (आर्धधातुक) **कर्ता।** करनेवाला। **चेता।** चयन करनेवाला। **स्तोता।** स्तुति करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **तरति।** यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सार्वधातुक 'शप्' प्रत्यय के परे होने पर इगन्त 'तॄ' धातु को गुण होता है। **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) से 'शप्' प्रत्यय की शित्-लक्षण सार्वधातुक संज्ञा है। ऐसे ही **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**नयति। 'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से-**भवति।***

*(२) **कर्ता।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर इगन्त 'कृ' धातु को गुण होता है। **'आर्धधातुकं शेषः'** (३।४।११४) से 'तृच्' प्रत्यय की शेष-लक्षण आर्धधातुक संज्ञा है। ऐसे ही **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से-**चेता। 'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से-**स्तोता।***

गुणादेशः–

(४५) जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु।८५।

प०वि०–जाग्रः ६।१ अविचिण्णल्ङित्सु ७।३।

स०–ङ् इद् यस्य स ङित्। विश्च, चिण् च णल् च ङिच्च ते विचिण्णल्ङितः, न विचिण्णल्ङित इति अविचिण्णल्ङितः, तेषु-अविचिण्णल्ङित्सु (बहुव्रीहि–इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, गुणः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–जाग्रोऽङ्गस्याऽविचिण्णल्ङित्सु सार्वधातुकार्धधातुकेषु गुणः।

अर्थः–जाग्रोऽङ्गस्य विचिण्णल्ङिद्वर्जितेषु सार्वधातुकार्धधातुकार्ध-धातुकेषु प्रत्ययेषु परतो गुणो भवति।

उदा०–स जागरयति। जागरकः। साधुजागरी। जागरं जागरम्। जागरो वर्तते। जागरितः। जागरितवान्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(जाग्रः) जागृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अविचिण्णल्ङित्सु) वि, चिण्, णल्, ङित् इन प्रत्ययों से भिन्न (सार्वधातुकार्धधातुकेषु) सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (गुण) गुण होता है।*

*उदा०–**स जागरयति।** वह जगाता है। **जागरकः।** जागनेवाला। **साधुजागरी।** साधुजागरणशील। **जागरंजागरम्।** पुनः-पुनः जागकर। **जागरो वर्तते।** जागरण है। **जागरितः।** जागा हुआ। **जागरितवान्।** जागा।*

*सिद्धि–(१) **जागरयति।** यहां **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक णिच् प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से वृद्धि प्राप्त थी। यह उसका अपवाद है।*

*(२) **जागरकः।** यहां पूर्वोक्त 'जागृ' शब्द से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साधुजागरी।** यहां साधु-उपपद 'जागृ' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है।*

*(४) **जागरंजागरम्।** यहां 'जागृ' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०–**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३।४।२२) से द्वित्व होता है*

*(५) **जागरः।** यहां 'जागृ' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है।*

(६) जागरितः। यहां जागृ धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इसके कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से 'जागृ' को गुण होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-जागरितवान्।

गुणादेशः–

(४६) पुगन्तलघूपधस्य च।८६।

प०वि०-पुगन्त-लघूपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-पुग् अन्ते यस्य तत्-पुगन्तम्, लघ्वी उपधा यस्य तत्-लघूपधम्। पुगन्तं च लघूपधं च एतयोः समाहारः पुगन्तलधूपधम्, तस्य-पुगन्तलघूपधस्य (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुणः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चात्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-पुगन्तलघूपधस्याऽङ्गस्य चेकः सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणः।

अर्थः-पुगन्तस्य लघूपधस्याऽङ्गस्य चेकः स्थाने सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-(पुगन्तम्) स ह्रेपयति। स व्लेपयति। स क्नोपयति। **(लघूपधम्)** भेदनम्। छेदनम्। भेत्ता। छेत्ता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पुगन्तलघूपधस्य) पुक् जिसके अन्त में है और जिसकी लघु उपधा है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(पुगन्त) **स ह्रेपयति।** वह लज्जित करता है। **स व्लेपयति।** वह वरण (पसन्द) करता है। **स क्नोपयति।** वह शब्द/गीला करता है। (लघूपध) **भेदनम्।** फाड़ना। **छेदनम्।** काटना। **भेत्ता।** फाड़नेवाला। **छेत्ता।** काटनेवाला।*

*सिद्धि-(१) ह्रेपयति। यहां **'ह्री लज्जायाम्'** (जु०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से इसे 'पुक्' आगम होता है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर पुगन्तलक्षण गुण (ए) होता है। ऐसे ही 'व्ली वरणे' (क्रया०प०) धातु से-**व्लेपयति।** 'क्नूयी शब्दे उन्दे च' (भ्वा०आ०) धातु से-**क्नोपयति।***

(२) भेदनम्। यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव-अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'ल्युट्' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण होता है। ऐसे ही 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से-छेदनम्।

(३) भेत्ता। यहां पूर्वोक्त 'भिद्' धातु से 'ण्वुलतृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'छिद्' धातु से-छेत्ता।

गुणादेशप्रतिषेधः–

(४७) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके।८७।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अभ्यस्तस्य ६।१ अचि ७।१ पिति ७।१ सार्वधातुके ७।१।

स०–पकारो इद् यस्य स पित्, तस्मिन्–पिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, गुणः, लघूपधस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–लघूपधस्याभ्यस्तस्याऽङ्गस्येकोऽचि पिति सार्वधातुके गुणो न।

अर्थः–लघूपधस्याऽभ्यस्तसंज्ञकस्याऽङ्गस्येकः स्थानेऽजादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो न भवति।

उदा०–अहं नेनिजानि, अहम् अनेनिजम्। अहं वेविजानि, अहम् अवेविजम्। अहं परिवेविषाणि, अहं पर्यवेविषम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लघूपधस्य) लघु उपधावाले (अभ्यस्तस्य) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (अचि) अजादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण (न) नहीं होता है।*

उदा०–अहं नेनिजानि। मैं शौच/पोषण करूं। अहम् अनेनिजम्। मैंने शौच/पोषण किया। अहं वेविजानि। मैं पृथक् होऊं। अहम् अवेविजम्। मैं पृथक् हुआ। अहं परिवेविषाणि। मैं सब ओर फैल जाऊं। अहं पर्यवेविषम्। मैं सब ओर फैला।

सिद्धि-(१) नेनिजानि। निज्+लोट्। निज्+ल्। निज्+मिप्। निज्+नि। निज्+आट्+नि। निज्+शप्+आ+नि। निज्+०+आ+नि। निज्-निज्+आ+नि। नि-निज्+आ+नि। ने-निज्+आ+नि। नेनिजानि।

यहां 'णिजिर् शौचपोषणयोः' (जु०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश, 'मेर्निः' (३।४।८९) से 'मि' के स्थान में 'नि' आदेश, 'आडुत्तमस्य पिच्च' (३।४।९२)

से पित् आट्-आगम, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से इस अभ्यस्तसंज्ञक धातु के इक् को अजादि, पित्, सार्वधातुक 'आनि' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण का प्रतिषेध होता है। **'णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ'** (७।४।७५) से अभ्यास को गुण होता है। ऐसे ही लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**अनेनिजम्**। **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'मिप्' को 'अम्' आदेश होता है।

(२) **वेविजानि**। **'विजिर् पृथग्भावे'** (जु०प०) धातु से पूर्ववत्। लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**अवेविजम्**।

(३) **परिवेविषाणि**। परि-उपसर्गपूर्वक **'विष्लृ व्याप्तौ'** (जु०प०) धातु से पूर्ववत्। लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**पर्यवेविषम्**।

गुणादेशप्रतिषेधः–

(४८) भूसुवोस्तिङि।८८।

प०वि०-भू-सुवोः ६।२ तिङि ७।१।

स०-भूश्च सूश्च तौ भूसुवौ, तयोः-भूसुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुणः, न, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूसुवोरङ्गयोरिकः सार्वधातुके तिङि गुणो न।

अर्थः-भूसुवोरङ्गयोरिकः स्थाने सार्वधातुके तिङि प्रत्यये परतो गुणो न भवति।

उदा०-(**भू**) सोऽभूत्। त्वम् अभूः। अहम् अभूवम्। (सू) अहं सुवै। आवां सुवावहै। वयं सुवामहै।

आर्यभाषाः अर्थ-(भूसुवोः) भू, सू इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (सार्वधातुके) सार्वधातुक संज्ञक (तिङि) तिङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण (न) नहीं होता है।

उदा०-(**भू**) **सोऽभूत्**। वह हुआ/था। **त्वम् अभूः**। तू हुआ/था। **अहम् अभूवम्**। मैं हुआ/था। (**सू**) **अहं सुवै**। मैं प्रसव करूं। **आवां सुवावहै**। हम दोनों प्रसव करें। **वयं सुवामहै**। हम सब प्रसव करें।

सिद्धि-अभूत्। यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु'** (२।४।७७) से 'सिच्' का लुक् होता है। इस सूत्र से इसे पित्, सार्वधातुक, तिङ् (तिप्) प्रत्यय परे होने पर गुण नहीं

*होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण प्राप्त था। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**अभूः**। 'मिप्' प्रत्यय में-**अभूवम्**। 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' (६।४।८८) से वुक्-आगम है।*

*(२) **सुवै**। यहां 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'इट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे सार्वधातुक तिङ् (इट्) प्रत्यय परे होने पर गुण नहीं होता है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से उवङ् आदेश होता है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'इट्' के टि-भाग को एत्त्व, 'एत ऐ' (३।४।९३) से ऐकारादेश, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, 'आडुत्तमस्य पिच्च' (३।४।९२) से आट् आगम है। ऐसे ही 'वहि' प्रत्यय में-**सुवावहै**। 'महिङ्' प्रत्यय में-**सुवामहै**।*

वृद्धि-आदेशः-

(४६) उतो वृद्धिर्लुकि हलि।८६।

प०वि०-उतः ६।१ वृद्धिः १।१ लुकि ७।१ हलि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उतोऽङ्गस्य लुकि हलि पिति सार्वधातुके वृद्धिः।

अर्थः-उकारान्तस्याऽङ्गस्य लुकि सति हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(यु) स यौति। त्वं यौषि। अहं यौमि। **(नु)** स नौति। त्वं नौषि। अहं नौमि। **(स्तु)** स स्तौति। त्वं स्तौषि। अहं स्तौमि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उतः) उकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (लुकि) प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(यु) स **यौति**। वह मिश्रण/अमिश्रण करता है। त्वं **यौषि**। तू मिश्रण/अमिश्रण करता है। अहं **यौमि**। मैं मिश्रण/अमिश्रण करता हूं। (नु) स **नौति**। वह स्तुति करता है। त्वं **नौषि**। तू स्तुति करता है। अहं **नौमि**। मैं स्तुति करता हूं। (स्तु) स **स्तौति**। वह स्तुति करता है। त्वं **स्तौषि**। तू स्तुति करता है। अहं **स्तौमि**। मैं स्तुति करता हूं।*

*सिद्धि-(१) **यौति**। यहां 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'*

*(२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से इसे 'शप्' प्रत्यय का लुक् होने पर हलादि, पित् सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**यौषि**। 'मिप्' प्रत्यय में-**यौमि**।*

*(२) **नौमि**। **'णुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **स्तौमि**। **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

वृद्धि-आदेशविकल्पः-

(५०) ऊर्णोतेर्विभाषा।६०।

प०वि०-ऊर्णोतेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, वृद्धिः, हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्णोतिरङ्गस्य हलि पिति सार्वधातुके विभाषा वृद्धिः।

अर्थः-ऊर्णोतिरङ्गस्य हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो विकल्पेन वृद्धिर्भवति।

उदा०-स प्रोर्णौति, प्रोर्णोति। त्वं प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि। अहं प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऊर्णोतेः) ऊर्णोति=ऊर्णु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-स **प्रोर्णौति, प्रोर्णोति**। वह आच्छादित करता है, ढकता है। त्वं **प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि**। तू आच्छादित करता है। अहं **प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि**। मैं ढकता हूं।*

*सिद्धि-**प्रोर्णौति**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से इसे हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में वृद्धि नहीं है-**प्रोर्णोति**। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि**। 'मिप् प्रत्यय में **प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि**।*

गुण-आदेशः-

(५१) गुणोऽपृक्ते।६१।

प०वि०-गुणः १।१ अपृक्ते ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, हलि, ऊर्णोतेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्णोतिरङ्गस्याऽपृक्ते हलि पिति सार्वधातुके गुणः।

अर्थः-ऊर्णोतिरङ्गस्याऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स प्रौर्णोत्। त्वं प्रौर्णोः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऊर्णोतेः) ऊर्णोति=ऊर्णु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अपृक्ते) अपृक्त (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**स प्रौर्णोत्।** उसने आच्छादित किया। **त्वं प्रौर्णोः।** तूने आच्छादित किया।*

***सिद्धि-प्रौर्णोत्।** प्र+ऊर्णु+लङ्। प्र+आट्+ऊर्णु+ल्। प्र+आ+ऊर्णु+तिप्। प्र+आ+ऊर्णु+शप्+ति। प्र+आ+ऊर्णु+०+त्। प्र+आ+ऊर्णो+त्। प्रौर्णोत्।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०उ०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'इतश्च'** (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। इस सूत्र से इसे अपृक्त, हलादि, पित् सार्वधातुक तिप् (त्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से शप् का लुक् और **'आटश्च'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है प्र+आट्+उ+०=प्रौ। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**प्रौर्णोः।***

{आगमप्रकरणम्}

इम्-आगमः--

(१) तृणह इम्।६२।

प०वि०-तृणहः ६।१ इम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृणहोऽङ्गस्य हलि पिति सार्वधातुके इम्।

अर्थः-तृणहोऽङ्गस्य हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परत इमागमो भवति।

उदा०-स तृणेढि। त्वं तृणेक्षि। अहं तृणेह्मि। सोऽतृणेट्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तृणहः) तृणह इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इम्) इम् आगम होता है।*

*उदा०-स **तृणेढि**। वह हिंसा करता है, मार डालता है। त्वं **तृणेक्षि**। तू हिंसा करता है। अहं **तृणेह्मि**। मैं हिंसा करता हूं। सोऽतृणेट्। उसने हिंसा की।*

***सिद्धि-तृणेढि**। तृह्+लट्। तृह्+ल्। तृह्+तिप्। तृ श्नम् ह्+ति। तृनह्+ति। तृणह्+ति। तृण इम् ह+ति। तृण इ ह्+ति। तृणेह्+ति। तृणेढ्+धि। तृणेढ्+ढि। तृणे०+ढि। तृणेढि।*

*यहां '**तृह हिंसायाम्**' (रुधा०प०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। '**रुदादिभ्यः श्नम्**' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'इम्' आगम होता है। यह मित् होने से '**मिदचोऽन्त्यात् परः**' (१।१।४७) के नियम से अन्तिम अच् से उत्तर किया जाता है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार, '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**तृणेक्षि**। '**षढोः कः सि**' (८।२।४१) से ढकार को ककार और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है। 'मिप्' प्रत्यय में-**तृणेह्मि**। लङ् लकार में-**अतृणेट्**। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप और '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से ढकार को डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है।*

ईट्-आगमः-

(२) ब्रुव ईट्।६३।

प०वि०-ब्रुवः ५।१ ईट् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ब्रुवोऽङ्गाद् हलः पितः सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः-ब्रुवोऽङ्गाद् उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०-स ब्रवीति। त्वं ब्रवीषि। अहं ब्रवीमि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ब्रुवः) ब्रू इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (हलः) हलादि (पितः) पित् (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईडागम होता है।*

*उदा०-स **ब्रवीति**। वह कहता है। त्वं **ब्रवीषि**। तू कहता है। अहं **ब्रवीमि**। मैं कहता हूं।*

*सिद्धि-**ब्रवीति**। यहां 'ब्रुञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय को ईट् आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ब्रू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से अव्-आदेश है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**ब्रवीषि**। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। 'मिप्' प्रत्यय में-**ब्रवीमि**।*

ईडागम-विकल्पः-

(३) यङो वा।९४।

प०वि०-यङः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, हलि, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यङोऽङ्गाद् हलः पितः सार्वधातुकस्य वा ईट्।

अर्थः-यङन्तादऽङ्गाद् उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य विकल्पेन ईडागमो भवति।

उदा०-शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्वावदीति। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति (ऋ० ४।५८।३)। न च भवति-वर्वर्ति चक्रम् (ऋ० १।१६४।११)। स चर्कर्ति जगत्।

"हलादेः पितः सार्वधातुकस्य यङन्तादभाव इति यङ्लुगन्तस्योदाहरणम्" (काशिकावृत्तिः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यङः) यङ् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (हलः) हलादि (पितः) पित् (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (ईट्) ईट् आगम होता है।*

*उदा०-**शाकुनिको लालपीति**। चिड़ीमार (बहेलिया) शोर मचाता है। **दुन्दुभिर्वावदीति**। ढोल पुनः-पुनः/अधिक बजता है। **त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति** (ऋ० ४।५८।३)। तीन स्थानों (उरः, कण्ठ, शिर) में बंधा हुआ वृषभ शब्द करता है और कहीं ईट् आगम नहीं होता है-**वर्वर्ति चक्रम्** (ऋ० १६४।११)। चक्र घूमता है। **स चर्कर्ति जगत्**। वह ईश्वर जगत् को पुनः-पुनः बनाता है।*

*सिद्धि-**लालपीति**। यहां प्रथम 'लप व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।७) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) में बहुलवचन से*

अनच् में भी यङ् का लुक् होता है। 'चर्करीतं च' इस अदादिक गणसूत्र से यङ्लुगन्त को अदादिगण में पठित तथा परस्मैपद माना जाता है। **'अतः अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से यङ्लुगन्त 'लालप्' धातु से परे हलादि पित् सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय को ईट् आगम होता है। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से-**वावदीति।** 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से-रोरवीति **गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है।

(२) **वर्वर्ति।** 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम नहीं है।

(३) **चर्कर्ति।** 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम नहीं है।

ईडागम-विकल्पः-

(४) तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके।६५।

प०वि०-तु-रु-स्तु-शमि-अमः ५।१ सार्वधातुके ७।१।

स०-तुश्च रुश्च स्तुश्च शमिश्च अम् च एतेषां समाहारः तुरुस्तुशम्यम्, तस्मात्-तुरुस्तुशम्यमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, ईट्, वा इति चानुवर्तते। पितीति च निवृत्तम्।

अन्वयः-तुरुस्तुशम्यमोऽङ्गाद् हलादेः सार्वधातुकस्य वा ईट्।

अर्थः-तुरुस्तुशम्यमिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य हलादेः सार्वधातुकस्य विकल्पेन ईडागमो भवति।

उदा०-**(तु)** स उत्तौति, उत्तवीति। **(रु)** स उपरौति, उपरवीति। **(स्तु)** स उपस्तौति, उपस्तवीति। **(शमि)** यूयं शाम्यध्वम्, शमीध्वम् (मै०सं० ४।१३।४)। **(अम्)** अभ्यमति। अभ्यमीति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तुरुस्तुशम्यमः) तु, रु, स्तु, शमि, अम् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (ईट्) ईट् आगम होता है।*

उदा०-(तु) स उत्तौति, उत्तवीति। वह उन्नति करता है। (रु) स उपरौति, उपरवीति। वह शब्द करता है, शोर करता है। (स्तु) स उपस्तौति, उपस्तवीति। वह स्तुति करता है। (शमि) यूयं शाम्यध्वम्, शमीध्वम् (मै०सं० ४।१३।४)। तुम सब शान्त हो जाओ। (अम्) अभ्यमति, अभ्यमीति। वह गति करता है।

सिद्धि-(१) उत्तौति। यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'तु गतिवृद्धिहिंसासु' (सौत्रधातु-संस्कृत धातुकोष पृ० ५६) से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से हलादि सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय को ईडागम नहीं होता है। 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' ७।३।८९) से 'तु' को वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**उत्तवीति।**

(२) **उपरौति।** उप-उपसर्गपूर्वक **'रु शब्दे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**उपरवीति।**

(३) **उपस्तौति।** उप-उपसर्गपूर्वक **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**उपस्तवीति।**

(४) **शाम्यध्वम्।** यहां **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६७) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। यह छान्दस प्रयोग होने से **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) से आत्मनेपद होता है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय और **'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि'** (७।३।७४) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**शमीध्वम्।** यहां 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७६) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। विकरण-प्रत्यय का लुक् होने पर ही हलादि सार्वधातुक अनन्तर (समीप) होता है।

(५) **अभ्यमति।** अभि-उपसर्गपूर्वक **'अम गत्यादिषु'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**अभ्यमीति।** यहां भी **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७६) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। विकरण-प्रत्यय का लुक् होने पर ही हलादि सार्वधातुक अनन्तर होता है।

विशेषः (१) **'सार्वधातुके'** पद की अनुवृत्ति होने पर पुनः **'सार्वधातुके'** पद का ग्रहण 'पिति' पद की निवृत्ति के लिये किया गया है।

(२) यह सूत्र छन्दोविषयक है। आपिशल वैयाकरण **'तरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासु छन्दसि'** ऐसा सूत्र पढ़ते हैं।

ईडागमः-

(५) अस्तिसिचोऽपृक्ते।६६।

प०वि०-अस्ति-सिचः ५।१ अपृक्ते ७।१।

स०-अस्तिश्च सिच् च एतयोः समाहारः-अस्तिसिच्, तस्मात्-अस्तिसिचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ईट्, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्तिसिचोऽङ्गाद् अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः-अस्तेः सिजन्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०-**(अस्ति)** स आसीत्। त्वम् आसीः। **(सिजन्तम्)** अकार्षीत्। असावीत्। अलावीत्। अपावीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्तिसिचः) अस्ति=अस् और सिच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त=(एकाल् प्रत्यय) (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईट् आगम होता है।*

*उदा०-(अस्ति) स **आसीत्**। वह था। त्वम् **आसीः**। तू था। (सिजन्त) **अकार्षीत्**। उसने किया। **असावीत्**। उसने अभिषवण किया। **अलावीत्**। उसने काटा। **अपावीत्**। उसने पवित्र किया।*

*सिद्धि-(१) **आसीत्**। अस्+लट्। आट्+अस्+ल्। आ+अस्+तिप्। आ+अस्+शप्+ति। अ+अस्+०+त्। आस्+अस्+ईट्+त्। आ+अस्+ई+त्। आसीत्।*

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप्' आदेश और **'इतश्च'** (३।४।१००) से इसके इकार का लोप होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से इसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'अस्' धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक 'त्' 'तिप्' प्रत्यय को ईडागम होता है। **'आटश्च'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है।*

*(२) **अकार्षीत्**। यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से सिजन्त अङ्ग से अपृक्त सार्वधातुक 'त्' (तिप्) प्रत्यय को ईडागम होता है। **'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु'** (७।२।१) से वृद्धि और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(३) **असावीत्**। **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **अलावीत्**। **'लुञ् छेदने'** (क्र्या०उ०)।*

*(५) **अपावीत्**। **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०)।*

बहुलमीडागमः-

(६) बहुलं छन्दसि।६७।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, ईट्, सार्वधातुके, अस्तिसिचः, अपृक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अस्तिसिचोऽङ्गस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य बहुलम् ईट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽस्तेः सिजन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य बहुलमीडागमो भवति।

उदा०-(सिच्) सलिलं सर्वमा इदम् (ऋ० १०।१२९।३)। आसीदित्यस्य स्थाने 'आः' इति क्रियापदम्। अहर्वाव तर्ह्यासीन्न रात्रिः (मै०सं० १।५।१२)। **(सिजन्तम्)** गोभिरक्षाः (ऋ० ९।१०७।९)। प्रत्यञ्चमत्साः (१०।२८।४)। भवति-चेडागमः-अभैषीर्मा पुत्रक। छन्दसि माङ्योगेऽप्यडागमो भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अस्तिसिचः) अस्ति=अस् और सिच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त=एकाल्-प्रत्यय (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (बहुलम्) प्रायशः (ईट्) ईडागम होता है।*

*उदा०-**(सिच्) सलिलं सर्वमा इदम्** (ऋ० १०।१२९।३)। यह सब सलिल (जल) था। 'आसीत्' इसके स्थान में 'आः' इस क्रियापद का प्रयोग है। **अहर्वाव तर्ह्यासीन्न** रात्रिः (मै०सं० १।५।१२)। **(सिजन्त) गोभिरक्षाः** (ऋ० ९।१०७।९)। **अक्षाः**=तू क्षरित हुआ (बहा)। **प्रत्यञ्चमत्साः** (१०।२८।४)। **अत्साः**। तूने छद्मगति **की** (कुटिल चाल चला)। छन्द में ईडागम भी होता है-**अभैषीर्मा पुत्रक**। बेटा ! मत डरो। यहां छन्द में माङ् के योग में 'भी' धातु को अडागम है।*

सिद्धि-(१) आः। अस्+लङ्। आ+अस्+ल्। आ+अस्+तिप्। आ+अस्+शप्+ति। आ+अस्+०+त्। आ+अस्+०। आस्। आः।

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०)धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' **प्रत्यय है। अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से अपृक्त, हलादि सार्वधातुक त् (तिप्) प्रत्यय को ईडागम होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त हल् 'त्' का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**आसीत्**।*

*(२) **अक्षाः**। क्षर्+लुङ्। अट्+क्षर्+च्लि+ल्। अ+क्षर्+सिच्+तिप्। अ+क्षर्+स्+त्। अ+क्षार्+स्+त्। अ+क्षार्+स्+०। अक्षार्+०। अक्षार्। अक्षाः।*

*यहां 'क्षर **सञ्चलने**' (तु०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **'अतो ल्रान्तस्य'** (७।२।२) से 'क्षर्' को वृद्धि होती है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप. **'रात् सस्य'** (८।२।२४) से 'सिच्' का लोप **और***

*धातुस्थ रेफ को **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही **'त्सर छद्मगतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**अत्सः।** कहीं ईडागम हो भी जाता है-**अभैषीः।** यहां छन्दविषय में **'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'** (६।४।७५) से माङ् के योग में भी अडागम है।*

ईडागमः–

(७) रुदश्च पञ्चभ्यः।६८।

प०वि०–रुदः ५।१ (व्यत्ययेन बहुवचनस्यैकवचनम्) च अव्ययपदम्, पञ्चभ्यः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, हलि, ईट्, सार्वधातुके, अपृक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–रुद्भ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यश्चाऽपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः–रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यश्च उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०–**(रुदिर्)** सोऽरोदीत्। त्वम् अरोदीः। **(स्वप)** सोऽस्वपीत्। त्वम् अस्वपीः। **(श्वस)** सोऽश्वसीत्। त्वम् अश्वसीः। **(अन)** स प्राणीत्। त्वम् प्राणीः। **(जक्ष)** सोऽजक्षीत्। त्वम् अजक्षीः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रुदभ्यः) रुद्-आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (अपृक्तस्य) अपृक्त {एकाल्-प्रत्यय}, (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईडागम होता है।*

*उदा०-(रुदिर्) **सोऽरोदीत्।** वह रोया। **त्वम् अरोदीः।** तू रोया। (स्वप्) **सोऽस्वपीत्।** वह सोया। **त्वम् अस्वपीः।** तू सोया। (श्वस) **सोऽश्वसीत्।** उसने श्वास लिया। **त्वम् अश्वसीः।** तूने श्वास लिया। (अन) **स प्राणीत्।** उसने प्राण धारण किया। **त्वं प्राणीः।** तूने प्राण धारण किया। (जक्ष) **सोऽजक्षीत्।** उसने खाया/हंसा। **त्वम् अजक्षीः।** तूने खाया/हंसा।*

*सिद्धि-(१) **अरोदीत्।** रुद्+लङ्। अट्+रुद्+ल्। अ+रुद्+तिप्। अ+रुद्+शप्+ति। अ+रुद्+०त्। अ+रुद्+ईट्+त्। अ+रोद्+ई+त्। अरोदीत्।*

*यहां **'रुदिर् अश्रुविमोचने'** (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'रुद्' से परे **अपृक्त, हलादि, सार्वधातुक** 'त्' (तिप्) **प्रत्यय** को ईडागम होता है। **'रुदादिभ्यः सार्वधातुके'***

(७।२।७६) से इडागम प्राप्त था, उसका अपवाद ईडागम विधान किया गया है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-अरोदीः।

(२) अस्वपीत्। 'ञिष्वप शये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) अश्वसीत्। 'श्वस प्राणने' (अदा०प०)।

(४) प्राणीत्। प्र-उपसर्गपूर्वक 'अन प्राणने' (अदा०प०)।

(५) अजक्षीत्। 'जक्ष भक्षहसनयोः' (अदा०प०)।

अडागमः--

(८) अड् गार्ग्यगालवयोः।९९।

प०वि०-अट् १।१ गार्ग्य-गालवयोः ७।२।

स०-गार्ग्यश्च गालवश्च तौ गार्ग्यगालवौ, तयोः-गार्ग्यगालवयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, सार्वधातुके, अपृक्ते, रुदः, पञ्चभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुद्भ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्योऽपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य अट्, गार्ग्यगालवयोः।

अर्थः-रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य अडागमो भवति, गार्ग्यगालवयोराचार्ययोर्मतेन। **उदाहरणम्**--

धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) रुद	सोऽरोदत्	वह रोया।
	त्वम् अरोदः	तू रोया।
(२) स्व	सोऽस्वपत्	वह सोया।
	त्वम् अस्वपः	तू सोया।
(३) श्वस	सोऽश्वसत्	उसने श्वास लिया।
	त्वम् अश्वसः	तूने श्वास लिया।
(४) अन	स प्राणत्	उसने प्राण धारण किया।
	त्वम् प्राणः	तूने प्राण धारण किया।
(५) जक्ष	सोऽजक्षत्	उसने खाया/हंसा।
	त्वम् अजक्षः	तूने खाया/हंसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रुद्भ्यः) रुद् आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त {एकाल-प्रत्यय} (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (अट्) अडागम होता है (गार्ग्यगालवयोः) गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-अरोदत् आदि सब पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। केवल अडागम विशेष है।

अडागमः-

(६) अदः सर्वेषाम्।१००।

प०वि०-अदः ५।१ सर्वेषाम् ६।३।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, सार्वधातुके, अपृक्ते, अडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदोऽङ्गाद् अपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य अट्, सर्वेषाम्।

अर्थः-अदोऽङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्याऽडागमो भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-स आदत्। त्वम् आदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अदः) अद् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त {एकाल्-प्रत्यय} (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (अट्) अडागम होता है (सर्वेषाम्) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**स आदत्।** उसने भक्षण किया, खाया। **त्वम् आदः।** तूने भक्षण किया।*

*सिद्धि-**आदत्।** अट्+लङ्। आट्+अद्+ल्। आ+अद्+तिप्। आ+अद्+शप्+ति। आ+अद्+०+त्। आ+अद्+अट्+त्। आद्+अ+त्। आदत्।*

*यहां **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'अद्' से परे अपृक्त, हलादि, सार्वधातुक 'त्' (तिप्) प्रत्यय को सब आचार्यों के मत में 'अट्' आगम होता है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**आदः।***

आदेशप्रकरणम्

दीर्घादेशः-

(१) अतो दीर्घो यञि।१०१।

प०वि०-अतः ६।१ दीर्घः १।१ यञि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य यञि सार्वधातुके दीर्घः ।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य यञादौ सार्वधातुके प्रत्यये परतो दीर्घो भवति ।

उदा०-अहं पचामि । आवां पचावः । वयं पचामः । अहं पक्ष्यामि । आवां पक्ष्यावः । वयं पक्ष्यामः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यञि) यञादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है ।*

*उदा०-अहं **पचामि** । मैं पकाता हूं । आवां **पचावः** । हम दोनों पकाते हैं । वयं **पचामः** । हम सब पकाते हैं । अहं **पक्ष्यामि** । मैं पकाऊंगा । आवां **पक्ष्यावः** । हम दोनों पकायेंगे । वयं **पक्ष्यामः** । हम सब पकायेंगे ।*

*सिद्धि-(१) **पचामि** । यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३ ।२ ।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है । 'तिप्तस्झि०' (३ ।४ ।७८) से लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश होता है । 'कर्तरि शप्' (३ ।१ ।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है । इस सूत्र से इस यञादि, सार्वधातुक 'मिप्' प्रत्यय के परे होने पर शप्-प्रत्ययस्थ अकार को दीर्घ होता है । ऐसे ही 'वस्' प्रत्यय में-**पचावः** । 'मस्' प्रत्यय में-**पचामः** ।*

*(२) **पक्ष्यति** । यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३ ।३ ।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है । 'स्यतासी लृलुटोः' (३ ।१ ।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है । सूत्र-कार्य पूर्ववत् है । 'वस्' प्रत्यय में-**पक्ष्यावः** । 'मस्' प्रत्यय में-**पक्ष्यामः** । 'आदेशप्रत्यययोः' (८ ।३ ।५९) से षत्व होता है ।*

दीर्घादेशः-

(२) सुपि च ।१०२ ।

प०वि०-सुपि ७ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, दीर्घः, यञीति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य यञि सुपि च दीर्घः ।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य यञादौ सुपि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति ।

उदा०-वृक्षाय, प्लक्षाय । वृक्षाभ्याम्, प्लक्षाभ्यम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यञि) यञादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है ।*

*उदा०-वृक्षाय। वृक्ष के लिये। **प्लक्षाय।** पिलखण के लिये। **वृक्षाभ्याम्।** दो वृक्षों के द्वारा/के लिये/से। **प्लक्षाभ्यम्।** दो पिलखणों के द्वारा/के लिये/से।*

*सिद्धि-**वृक्षाय।** वृक्ष+ङे। वृक्ष+य। वृक्षा+य। वृक्षाय।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से 'स्वौजस्०' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। 'ङेर्यः' (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है। इस सूत्र से इस यञादि, सुप्, 'य' (ङे) प्रत्यय के परे होने पर वृक्षस्थ अकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षाय।** 'भ्याम्' प्रत्यय में-**वृक्षाभ्याम्, प्लक्षाभ्याम्।***

एत्-आदेशः-

(३) बहुवचने झल्येत्।१०३।

प०वि०-बहुवचने ७।१ झलि ७।१ एत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, सुपीति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य बहुवचने झलि सुपि एत्।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य बहुवचने झलादौ सुपि प्रत्यये परत एकारादेशो भवति।

उदा०-वृक्षेभ्यः, प्लक्षेभ्यः। वृक्षेषु, प्लक्षेषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुवचने) बहुवचन में (झलि) झलादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षेभ्यः।** वृक्षों के लिये/से। **प्लक्षेभ्यः।** पिलखणों के लिये/से। **वृक्षेषु।** वृक्षों मे। **प्लक्षेषु।** पिलखणों में।*

*सिद्धि-**वृक्षेभ्यः।** यहां 'वृक्ष' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृक्ष' शब्द के अन्त्य अकार को, बहुवचन, झलादि, भ्यस् प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षेभ्यः।** 'सुप्' (७।३) प्रत्यय में-**वृक्षेषु, प्लक्षेषु।***

एत्-आदेशः-

(४) ओसि च।१०४।

प०वि०-ओसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, एदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य ओसि च एत्।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य ओसि प्रत्यये परतश्च एकारादेशो भवति।

उदा०-वृक्षयोः स्वम्। प्लक्षयोः स्वम्। वृक्षयोर्निधेहि। प्लक्षयोर्निधेहि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ओसि) ओस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षयोः स्वम्।** दो वृक्षों का धन। **प्लक्षयोः स्वम्।** दो पिलखणों का धन। **वृक्षयोर्निधेहि।** दो वृक्षों में रख। **प्लक्षयोर्निधेहि।** दो पिलखणों में रख।*

*सिद्धि-**वृक्षयोः।** यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ओस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृक्ष' शब्द के अन्त्य अकार को 'ओस्' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षयोः।** सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में-**वृक्षयोर्निधेहि, प्लक्षयोर्निधेहि।***

एत्-आदेशः-

(५) आङि चाऽऽपः।१०५।

प०वि०-आङि ७।१ च अव्ययपदम्, आपः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, एत्, ओसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गस्याऽऽङि ओसि च एत्।

अर्थः-आबन्तस्याङ्गस्याऽऽङि ओसि च प्रत्यये परत एकारादेशो भवति।

'आङ्' इति पूर्वाचार्याणां निर्देशेन तृतीयैकवचनं टाप्रत्ययो गृह्यते।

उदा०-**(टा)** खट्वया, मालया। बहुराजया, कारीषगन्ध्यया। **(ओस्)** खट्वयोः, मालयोः। बहुराजयोः, कारीषगन्ध्ययोः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (आङि) आङ्=टा प्रत्यय (च) और (ओसि) ओस् प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-(टा) **खट्वया।** एक खाट के द्वारा। **मालया।** एक माला के द्वारा। **बहुराजया।** एक बहुराजा नारी के द्वारा। **कारीषगन्ध्यया।** कारीषगन्ध्या नारी के द्वारा। (ओस्) **खट्वयोः।** दो खाटों का/में। **मालयोः।** दो मालाओं का/में। **बहुराजयोः।** दो बहुराजा नारियों का/में। **कारीषगन्ध्ययोः।** दो कारीषगन्ध्या नारियों का/में।*

*सिद्धि-**खट्वया।** यहां टाप्-प्रत्ययान्त 'खट्वा' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खट्वा' शब्द के अन्त्य आकार को 'टा' प्रत्यय परे होने*

पर एकारादेश होता है। 'खट्वा' शब्द में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'माला' शब्द से-***मालया।*** *'बहुराजा' शब्द से-***बहुराजया।*** *यहां 'बहुराजन्' शब्द से* ***'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'*** *(४।१।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-***कारीषगन्ध्यया।*** *यहां* ***'यङश्चाप्'*** *(४।१।७४) से 'कारीषगन्ध्य' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। ओस् प्रत्यय में-***खट्वयो:, मालयो:, बहुराजयो:, कारीषगन्ध्ययो:।***

एत्-आदेशः–

(६) सम्बुद्धौ च।१०६।

प०वि०–सम्बुद्धौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, एत्, आप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आपोऽङ्गस्य सम्बुद्धौ च एत्।

अर्थः–आबन्तस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ परतश्च एकारादेशो भवति।

उदा०–हे खट्वे। हे बहुराजे। हे कारीषगन्ध्ये।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-***हे खट्वे।** *हे खाट।* ***हे बहुराजे।*** *हे बहुराजा नारी।* ***हे कारीषगन्ध्ये।*** *हे कारीषगन्ध्या नारी।*

सिद्धि-खट्वे। *यहां खट्वा शब्द से सम्बुद्धि अर्थ में 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खट्वा' शब्द के आकार को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। तत्पश्चात्* ***'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'*** *(६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है।* ***'एकवचनं सम्बुद्धिः'*** *(२।३।४९) से 'सु' प्रत्यय की सम्बुद्धि संज्ञा है। ऐसे ही 'बहुराजा' शब्द से-***हे बहुराजे।*** *'कारीषगन्ध्या' शब्द से-***हे कारीषगन्ध्ये।***

ह्रस्वादेशः–

(७) अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः।१०७।

प०वि०–अम्बार्थ-नद्योः ६।२ ह्रस्वः १।१।

स०–अम्बाऽर्थो यस्य सः-अम्बार्थः। अम्बार्थश्च नदी च ते अम्बार्थनद्यौ, तयोः-अम्बार्थनद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अम्बार्थनद्योरङ्गयोः सम्बुद्धौ ह्रस्वः।

अर्थः-अम्बार्थानां नदीसंज्ञकानां चाऽङ्गानां सम्बुद्धौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(अम्बार्थकः)** हे अम्ब! हे अक्क! हे अल्ल! **(नदी)** हे कुमारि! हे शार्ङ्गरवि! हे ब्रह्मबन्धु! हे वीरबन्धु!

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अम्बार्थनद्योः) अम्बा के पर्यायवाची और नदी-संज्ञक (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**(अम्बार्थक) हे अम्ब! हे अक्क! हे अल्ल!।** हे मातः!। **(नदी) हे कुमारि!।** हे कन्ये!। **हे शार्ङ्गरवि!।** हे शार्ङ्गरवी नामक ऋषिकन्ये!। **हे ब्रह्मबन्धु!।** हे पतितब्राह्मणी!। **हे वीरबन्धु!।** हे पतित क्षत्रिया नारी!।*

***सिद्धि-अम्ब।** अम्बा+सु। अम्ब+स्। अम्ब+०। अम्ब।*

*यहां 'अम्बा' शब्द से सम्बुद्धि अर्थ में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अम्बा' शब्द को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व होता है। तत्पश्चात् **'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'** (६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। ऐसे ही अम्बार्थक 'अक्का' शब्द से-हे **अक्क**! 'अल्ला' शब्द से-हे **अल्ल**! नदीसंज्ञक 'कुमारी' शब्द से-हे **कुमारि**! 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-हे **ब्रह्मबन्धु!।** 'वीरबन्धू' शब्द से-हे **वीरबन्धु!।** कुमारी आदि शब्दों की **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।३) से नदी-संज्ञा है।*

गुणादेशः-

(८) ह्रस्वस्य गुणः।१०८।

प०वि०-ह्रस्वस्य ६।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ गुणः।

अर्थः-ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-हे अग्ने! हे वायो! हे पटो!

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ह्रस्वस्य) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-हे **अग्ने** ! हे अग्नि देवता ! हे **वायो** ! हे वायु देवता ! हे **पटो** ! हे चतुर वटु (बालक) !*

सिद्धि-अग्ने। *यहां ह्रस्वान्त 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। तत्पश्चात् **'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'** (६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-हे **वायो** ! 'पटु' शब्द से-हे **पटो** !*

गुणादेशः-

(६) जसि च।१०६।

प०वि०-जसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्वस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वस्याऽङ्गस्य जसि च गुणः।

अर्थः-ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य जसि प्रत्यये परतश्च गुणो भवति।

उदा०-(अग्निः) अग्नयः। **(वायुः)** वायवः। **(पटुः)** पटवः। **(धेनुः)** धेनवः। **(बुद्धिः)** बुद्धयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(अग्नि) अग्नयः।** बहुत अग्नि देवता। **(वायु) वायवः।** बहुत वायु देवता। **(पटु) पटवः।** बहुत चतुर वटु (बालक)। **(धेनु) धेनवः।** बहुत दुधारु गौवें। **(बुद्धिः) बुद्धयः।** नाना प्रकार की बुद्धियां।*

सिद्धि-अग्नयः। *अग्नि+जस्। अग्नि+अस्। अग्ने+अस्। अग्न् अय्+अस्। अग्नयस्। अग्नयः।*

*यहां ह्रस्वान्त 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द के अन्त्य इकार को जस् प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से अय्-आदेश होता है। ऐसे ही-**वायवः** आदि।*

गुणादेशः-

(१०) ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः।११०।

प०वि०-ऋतः ६।१ ङि-सर्वनामस्थानयोः ७।२।

स०-ङिश्च सर्वनामस्थानं च ते ङिसर्वनामस्थाने, तयोः-ङिसर्वनामस्थानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य ङिसर्वनामस्थानयोर्गुणः।

अर्थः-ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य ङिप्रत्यये सर्वनामस्थानसंज्ञके प्रत्यये च परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ङि)** मातरि। पितरि। भ्रातरि। कर्तरि। **(सर्वनामस्थानम्)** कर्तारौ, कर्तारः। मातरौ, पितरौ, भ्रातरौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋतः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ङिसर्वनामस्थानयोः) ङि प्रत्यय और सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण आदेश होता है।*

*उदा०-(ङि) **मातरि**। माता में। **पितरि**। पिता में। **भ्रातरि**। भ्राता में। **कर्तरि**। कर्ता में। **(सर्वनामस्थान) कर्तारौ**। दो कर्ताओं ने/को। **कर्तारः**। सब कर्ताओं ने। **मातरौ**। दो माताओं ने/को। **पितरौ**। दो पिताओं ने/को। **भ्रातरौ**। दो भ्राताओं ने/को।*

*सिद्धि-(१) **मातरि**। मातृ+ङि। मातृ+इ। मात् अर्+इ। मातरि।*

*यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'मातृ' शब्द के ऋकार को 'ङि' प्रत्यय परे होने पर गुण (अ) होता है तत्पश्चात् 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व (अर्) होता है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पितरि**। 'भ्रातृ' शब्द से-**भ्रातरि**।*

*(२) **कर्तारौ**। कर्तृ+औ। कर्त् अर्+औ। कर्त् आर्+औ। कर्तारौ।*

*यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कर्तृ' शब्द को इस 'औ' प्रत्यय परे होने पर गुण (अ) होता है। तत्पश्चात् पूर्ववत् रपरत्व होता है। पुनः 'अप्तृन्तृच०' (६।४।११) से उपधा-अकार को दीर्घ होता है। 'सुडनपुंसकस्य' (१।१।४३) से 'औ' प्रत्यय की सर्वनामस्थान संज्ञा है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय में-**कर्तारः**। 'मातृ' शब्द से-**मातरौ**। 'पितृ' शब्द से-**पितरौ**। 'भ्रातृ' शब्द से-**भ्रातरौ**।*

गुणादेशः-

(११) घेर्ङिति।१११।

प०वि०-घेः ६।१ ङिति ७।१।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित्, तस्मिन्-ङिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-घेरङ्गस्य ङिति गुणः।

अर्थः-घि-संज्ञकस्याऽङ्गस्य ङिति प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ङे)** अग्नये, वायवे। **(ङसि)** अग्नेः, वायोः। **(ङस्)** अग्नेः स्वम्। वायोः स्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घिः) घि-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (ङिति) ङित् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(ङे) अग्नये।** अग्नि देवता के लिये। **वायवे।** वायु देवता के लिये। **(ङसि) अग्नेः।** अग्नि देवता से। **वायोः।** वायु देवता से। **(ङस्) अग्नेः स्वम्।** अग्नि देवता का धन। **वायोः स्वम्।** वायु देवता का धन।*

सिद्धि-(१) अग्नये। *अग्नि+ङे। अग्नि+ए। अग्ने+ए। अग्नय्+ए। अग्नये।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' को इकार को ङित् 'ङे' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से अय्-आदेश होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायवे।** अग्नि और वायु शब्दों की **'शेषो घ्यसखि'** (१।४।७) से 'घि' संज्ञा है।*

(२) अग्नेः। *अग्नि+ङसि। अग्नि+अस्। अग्ने+अस्। अग्ने+०स्। अग्नेस्। अग्नेः।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् गुण होता है। 'ङसिङसोश्च' (६।१।१०८) से 'ङसि' के अकार को पूर्वरूप एकादेश (ए) होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायोः।** 'ङस्' प्रत्यय में भी-अग्नेः, **वायोः।***

{आगमप्रकरणम्}

आट्-आगमः--

(१) आण् नद्याः।११२।

प०वि०-आट् १।१ नद्याः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-नद्या अङ्गाद् ङित आट्।

अर्थः-नदीसंज्ञकादङ्गाद् उत्तरस्य ङित प्रत्ययस्याऽऽडागमो भवति।

उदा०-**(ङे)** कुमार्यै, ब्रह्मबन्ध्वै। **(ङसि)** कुमार्याः, ब्रह्मबन्ध्वाः। **(ङस्)** कुमार्याः, ब्रह्मबन्ध्वाः।

आर्यभाषाः अर्थ-(नद्याः) नदी-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (आट्) आट् आगम होता है।

*उदा०-(ङे) **कुमार्यै**। कुमारी के लिये। **ब्रह्मबन्ध्वै**। ब्रह्मबन्धू=पतित ब्राह्मणी के लिये। (ङसि) **कुमार्याः**। कुमारी से। **ब्रह्मबन्ध्वाः**। पतित ब्राह्मणी से। (ङस्) **कुमार्याः**। कुमारी का। **ब्रह्मबन्ध्वाः**। पतित ब्राह्मणी का।*

*सिद्धि-**कुमार्यै**। कुमारी+ङे। कुमारी+ए। कुमारी+आट्+ए। कुमारी+आ+ए। कुमारी+ऐ। कुमार्य्+ऐ। कुमार्यै।*

*यहां नदी-संज्ञक 'कुमारी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कुमारी' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'आट्' आगम होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८७) से पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) होता है। 'इको **यणचि'** (६।१।७६) से यण् आदेश है। ऐसे ही 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्ध्वै**। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**कुमार्याः**, **ब्रह्मबन्ध्वाः**।*

याट्-आगमः--

(२) याडापः।११३।

प०वि०-याट् १।१ आपः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गाद् ङितो याट्।

अर्थः-आबन्तादङ्गाद् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य याडाऽऽगमो भवति।

उदा०-**(ङे)** खट्वायै, बहुराजायै, कारीषगन्ध्यायै। **(ङसि)** खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीषगन्ध्यायाः। **(ङस्)** खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीष-गन्ध्याः।

आर्यभाषाः अर्थ-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (याट्) याट् आगम होता है।

*उदा०-(ङे) **खट्वायै**। खाट के लिये। **बहुराजायै**। बहुराजा नारी के लिये। **कारीषगन्ध्यायै**। कारीषगन्ध्या नारी के लिये। (ङसि) **खट्वायाः**। खाट से। **बहुराजायाः**। बहुराजा नारी से। **कारीषगन्ध्यायाः**। कारीषगन्ध्या नारी से। (ङस्) **खट्वायाः**। खाट का। **बहुराजायाः**। बहुराजा नारी का। **कारीषगन्ध्याः**। कारीषगन्ध्या नारी का।*

*सिद्धि-**खट्वायै**। खट्वा+ङे। खट्वा+याट्। खट्वा+या+ए। खट्वा+य+ए। खट्वा+य् ऐ। खट्वायै।*

*यहां आबन्त 'खट्वा' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आबन्त खट्वा से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'याट्' आगम होता है। **'वृद्धिरेचि'***

*(६ ।१ ।८७) से पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) होता है। ऐसे ही 'बहुराजा' शब्द से-**बहुराजायै।** यहां '**डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्**' (४ ।१ ।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**कारीषगन्ध्यायै।** यहां '**यङश्चाप्**' (४ ।१ ।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीषगन्ध्यायाः।***

स्याट्-आगमः-

(३) सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ।११४।

प०वि०-सर्वनाम्नः ५ ।१ स्याट् १ ।१ ह्रस्वः १ ।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ङिति, आप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वनाम्न आपोऽङ्गाद् ङितः स्याट्, ह्रस्वश्च।

अर्थः-सर्वनामसंज्ञकाद् आबन्तादङ्गाद् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य स्याडाऽऽगमो भवति, सर्वनाम्नश्च ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(ङे)** सर्वस्यै। विश्वस्यै। यस्यै। तस्यै। कस्यै। अन्यस्यै। **(ङसि)** सर्वस्याः। विश्वस्याः। यस्याः। तस्याः। कस्याः। अन्यस्याः। **(ङस्)** सर्वस्याः। विश्वस्याः। यस्याः। तस्याः। कस्याः। अन्यस्याः।

आर्यभाषाः अर्थ-(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (आपः) आप्-प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (स्याट्) स्याट् आगम होता है (च) और उस सर्वनाम को (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-(ङे) **सर्वस्यै।** समस्त सभा के लिये। **विश्वस्यै।** समस्त सभा के लिये। **यस्यै।** जिस कन्या के लिये। **तस्यै।** उस कन्या के लिये। **कस्यै।** किस कन्या के लिये। **अन्यस्यै।** अन्य कन्या के लिये। **(ङसि) सर्वस्याः।** समस्त सभा से। **विश्वस्याः।** समस्त सभा से। **यस्याः।** जिस कन्या से। **तस्याः।** उस कन्या से। **कस्याः।** किस कन्या से। **अन्यस्याः।** अन्य कन्या से। **(ङस्) सर्वस्याः।** समस्त सभा का। **विश्वस्याः।** समस्त सभा का। **यस्याः।** जिस कन्या का। **तस्याः।** उस कन्या का। **कस्याः।** किस कन्या का। **अन्यस्याः।** अन्य कन्या का।*

*सिद्धि-**सर्वस्यै।** सर्वा+ङे। सर्वा+ए। सर्वा+स्याट्+ए। सर्वा+स्या+ए। सर्व+स्या+ए। सर्व+स्य् ऐ। सर्वस्यै।*

*यहां प्रथम सर्वनामसंज्ञक 'सर्व' शब्द से **अजाद्यतष्टाप्**' (४ ।१ ।४) स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् सर्वनामसंज्ञक, आबन्त 'सर्वा' शब्द से '**स्वौजस०**' (४ ।१ ।२)*

*से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सर्वनाम, आबन्त 'सर्वा' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को स्याट् आगम और सर्वनाम सर्वा शब्द को ह्रस्व होती है। 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) है। ऐसे ही 'विश्वा' शब्द से-**विश्वस्यै**। 'या' शब्द से-**यस्यै**। 'ता' शब्द से-**तस्यै**। 'का' शब्द से-**कस्यै**। 'अन्या' शब्द से-**अन्यस्यै**। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**सर्वस्याः, विश्वस्याः, यस्याः, तस्याः, कस्याः, अन्यस्याः**। 'सर्वा' आदि शब्दों की 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (१।१।२७) से सर्वनाम-संज्ञा है।*

स्याडागम-विकल्पः--

(४) विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम्।११५।

प०वि०-विभाषा १।१ द्वितीया-तृतीयाभ्याम् ५।२।

स०-द्वितीया च तृतीया च ते द्वितीयातृतीये, ताभ्याम्-द्वितीया-तृतीयाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ङिति, स्याट्, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयातृतीयाभ्यामङ्गाभ्यां ङितो विभाषा स्याट्, ह्रस्वश्च।

अर्थः-द्वितीयातृतीयामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विकल्पेन स्याडागमो भवति, तयोश्च तत्सन्नियोगेन ह्रस्वो भवति।

उदा०-(द्वितीया) ङे-द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। **(तृतीया)** तृतीयस्यै, तृतीयायै।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्वितीयातृतीयाभ्याम्) द्वितीया, तृतीया इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (स्याट्) स्याट् आगम होता और उन दोनों को उस स्याट् आगम के सन्नियोग में (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**(द्वितीया)** ङे-**द्वितीयस्यै, द्वितीयायै**। द्वितीया श्रेणी के लिये। **(तृतीया) तृतीयस्यै, तृतीयायै**। तृतीया श्रेणी के लिये।*

***सिद्धि-द्वितीयस्यै**। द्वितीया+ङे। द्वितीया+ए। द्वितीया+स्याट्+ए। द्वितीया+स्या+ए। द्वितीय+स्य् ऐ। द्वितीयस्यै।*

*यहां 'द्वितीया' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'द्वितीया' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'स्याट्' आगम और 'द्वितीया' शब्द के आकार को ह्रस्व (अ) होता है। 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। विकल्प-पक्ष में स्याट् आगम और ह्रस्वादेश नहीं होता है-**द्वितीयायै**। यहां 'याडापः' (७।३।११३) से 'याट्' आगम है। तृतीया शब्द से-**तृतीयस्यै, तृतीयायै**।*

{आदेशप्रकरणम्}

आम्-आदेशः–

(१) ङेराम् नद्याम्नीभ्यः।११६।

प०वि०–ङेः ५।१ आम् १।१ नदी-आप्-नीभ्यः ५।३।

स०–नदी च आप् च नीश्च ते नद्याम्न्यः, तेभ्यः-नद्याम्नीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः–नद्याम्नीभ्योऽङ्गेभ्यो ङेराम्।

अर्थः–नदीसंज्ञकाद् आबन्ताद् न्यन्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने आमाऽऽदेशो भवति।

उदा०–**(नदी)** कुमार्याम्, गौर्याम्, ब्रह्मबन्ध्वाम्, वीरबन्ध्वाम्। **(आप्)** खट्वायाम्, बहुराजायाम्, कारीषगन्ध्यायाम्, **(नी)** राजन्याम्, सेनान्याम्, ग्रामण्याम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(नद्याम्नीभ्यः) नदीसंज्ञक, आबन्त और नी जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङेः) ङि प्रत्यय के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।*

उदा०–(नदी) ***कुमार्याम्।*** *कुमारी में।* ***गौर्याम्।*** *गौरी में।* ***ब्रह्मबन्ध्वाम्।*** *पतित ब्राह्मणी में।* ***वीरबन्ध्वाम्।*** *पतित क्षत्रिया में। (आप्)* ***खट्वायाम्।*** *खाट में।* ***बहुराजायाम्।*** *बहुराजा नारी में।* ***कारीषगन्ध्यायाम्।*** *कारीषगन्ध्या नारी में। (नी)* ***राजन्याम्।*** *राजा के नायक में।* ***सेनान्याम्।*** *सेना के नायक में।* ***ग्रामण्याम्।*** *ग्राम के नायक में।*

*सिद्धि–**कुमार्याम्।** कुमारी+ङि। कुमारी+इ। कुमारी+आम्। कुमार् य्+आम्। कुमार्याम्।*

*यहां नदी-संज्ञक 'कुमारी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कुमारी' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को 'आम्' आदेश होता है। 'आम्' आदेश अनेकाल् होने से **'अनेकाल्शित् सर्वस्य'** (१।१।५५) के नियम से सर्वादेश होता है। 'कुमारी' शब्द की **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।३) से नदी-संज्ञा है। ऐसे ही 'गौरी' शब्द से-**गौर्याम्।** 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्ध्वाम्।** 'वीरबन्धू' शब्द से-**वीरबन्ध्वाम्।** टाबन्त 'खट्वा' शब्द से-**खट्वायाम्।** डाबन्त 'बहुराजा' शब्द से-**बहुराजायाम्।** चाबन्त 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**कारीषगन्ध्यायाम्। नी-अन्त**- 'राजनी' शब्द से-**राजन्याम्।***

*'सेनानी' शब्द से-**सेनान्याम्।** 'ग्रामणी' शब्द से-**ग्रामण्याम्।** यहां **'सत्सूद्विष०'** (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय, **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व और **'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य'** (६।४।८२) से 'यण्' आदेश होता है।*

आम्-आदेशः–

(२) इदुद्भ्याम्।११७।

प०वि०–इद्-उद्भ्याम् ५।२।

स०–इच्च उच्च तौ इदुतौ, ताभ्याम् इदुद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, ङेः, आम्, नदीति चानुवर्तते।

अन्वयः–नदीभ्याम् इदुद्भ्यां ङेराम्।

अर्थः–नदीसंज्ञकाभ्याम् इकारान्तोकारान्ताभ्यामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने आमाऽऽदेशो भवति।

उदा०–(इद्) कृत्याम्। (उद्) धेन्वाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नदीभ्याम्) नदी-संज्ञक (इदुद्भ्याम्) इकारान्त और उकारान्त (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङे) ङि-प्रत्यय के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।*

*उदा०-(इद्) **कृत्याम्।** कृति=रचना में। (उद्) **धेन्वाम्।** दुधारु गौ में।*

सिद्धि-कृत्याम्।** यहां इकारान्त 'कृति' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कृति' शब्द से परे 'ङि' को 'आम्' आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यणादेश है। ऐसे ही 'धेनु' शब्द से-**धेन्वाम्।

आम्-आदेशः–

(३) औत्।११८।

प०वि०–औत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, इदुद्भ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इदुद्भ्यामऽङ्गाभ्यां ङेरौत्।

अर्थः–इकारान्तोकारान्ताभ्यामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङि-प्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति।

उदा०–(इद्) सख्यौ। पत्यौ। (उद्) ×। यदिकारान्तं न नदीसंज्ञकं नापि घिसंज्ञकं तदिहोदाहरणं वेदितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इदुद्भ्याम्) इकारान्त और उकारान्त (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङेः) ङि प्रत्यय के स्थान में (औत्) औकारादेश होता है।*

*उदा०-(इद्) **सख्यौ।** सखा में। **पत्यौ।** पति में। (उद्) ×।*

*जो इकारान्त शब्द नदी-संज्ञक नहीं है और घि-संज्ञक भी नहीं है उसे यहां उदाहरण समझें। जैसे-**सखि, पति।***

***सिद्धि-सख्यौ।** सखि+ङि। सखि+इ। सखि+औ। सख्य्+औ। सख्यौ।*

*यहां नदी और घि-संज्ञा से भिन्न 'सखि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सखि' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को औकारादेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यणादेश है। ऐसे ही 'पति' शब्द से-**पत्यौ।***

औत् आदेशः-

(४) अच्च घेः।११६।

प०वि०-अत् १।१ च अव्ययपदम्, घेः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङेः, औदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-घेरङ्गाद् ङेरौत्, घेरच्च।

अर्थः-घि-संज्ञकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति, तस्य च घिसंज्ञकस्याऽकारादेशश्च भवति।

उदा०-अग्नौ। वायौ। कृतौ। धेनौ। पटौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(घेः) घि-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङे) ङि प्रत्यय के स्थान में (औत्) औकारादेश होता है और उस (घेः) घि-संज्ञक अङ्ग को (अत्) अकारादेश (च) भी होता है।*

*उदा०-**अग्नौ।** अग्नि देवता में। **वायौ।** वायु देवता में। **कृतौ।** रचना में। **धेनौ।** दुधारु गौ में। **पटौ।** चतुर वटु (बालक) में।*

***सिद्धि-अग्नौ।** अग्नि+ङि। अग्नि+इ। अग्नि+औ। अग्न् अ+औ। अग्नौ।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को औकारादेश होता है और 'अग्नि' शब्द के अन्त्य इकार को अकारादेश भी होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायौ।** 'कृति' शब्द से-**कृतौ।** 'धेनु' शब्द से-**धेनौ।** 'पटु' शब्द से-**पटौ।***

ना-आदेशः–

(५) आङो नास्त्रियाम्।१२०।

प०वि०–आङः ६।१ ना १।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०–न स्त्रीति अस्त्री, तस्याम्–अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, घेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–घेरङ्गाद् आङो ना।

अर्थः–स्त्रीलिङ्गवर्जिताद् घिसंज्ञकादऽङ्गाद् उत्तरस्याऽऽङः स्थाने नाऽऽदेशो भवति।

उदा०–अग्निना, वायुना, पटुना।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से भिन्न (घेः) घि-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आङः) टा-प्रत्यय के स्थान में (ना) ना-आदेश होता है।*

*उदा०–**अग्निना।** अग्नि देवता के द्वारा। **वायुना।** वायु देवता के द्वारा। **पटुना।** चतुर वटु के द्वारा।*

*सिद्धि–**अग्निना।** यहां स्त्रीलिङ्ग से भिन्न, पुंलिङ्ग 'अग्नि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द से परे 'टा' को 'ना' आदेश होता है। '**शेषो घ्यसखि**' (१।४।७) से 'अग्नि' शब्द की घि-संज्ञा है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से–**वायुना।** 'पटु' शब्द से–**पटुना।***

विशेषः *'आङ्' यह 'टा' प्रत्यय की पूर्वाचार्यकृत संज्ञा है।*

।। इति आदेशागमप्रकरणम् ।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः
आदेशप्रकरणम्

ह्रस्वादेशः--

(१) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ।१।

प०वि०-णौ ७।१ चङि ७।१ उपधायाः ६।१ ह्रस्वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्योपधायाश्चङि णौ ह्रस्वः।

अर्थः-अङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-सोऽचीकरत्। सोऽजीहरत्। सोऽलीलवत्। सोऽपीपवत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**सोऽचीकरत्।** उसने कराया। **सोऽजीहरत्।** उसने हरण कराया। **सोऽलीलवत्।** उसने कटाया। **सोऽपीपवत्।** उसने पवित्र कराया।*

*सिद्धि-**अचीकरत्।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि।। कारि+लुङ्। अट्+कारि+ल्। अ+कारि+च्लि+ल्। अ+कारि+चङ्+तिप्। अ+कारि+अ+त्। अ+कार्+अ+त्। अ+कर्+अ+त्। अ+कृ+कृ+अ+त्। अ+क+कृ+अ+त्। अ+कि+कर्+अ+त्। अ+की+कर्+अ+त्। अ+ची+कर्+त्। अचीकरत्।*

*यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से **हेतुमति च** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**च्लि लुङि**' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। 'चङ्' परे होने पर '**चङि**' (६।१।११) से धातु को द्वित्व और इस सूत्र से उपधाह्रस्वत्व की प्राप्ति में परत्व से उपधाह्रस्वत्व होता है। तत्पश्चात् '**णौ कृतं स्थानिवद् भवति**' से 'कृ' धातु को ही द्विर्वचन किया जाता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋकार को अकारादेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, '**सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे**' (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इत्त्व और इसे '**दीर्घो लघोः**' (७।४।९४) से दीर्घ होता है। ऐसे ही '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**अजीहरत्।***

*'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-**अलीलवत्**। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**अपीपवत्**। 'लू' और 'पू' धातु के अभ्यास को 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से ह्रस्वादेश करने पर '**ओः पुयण्ज्यपरे**' (७।४।८०) से ईकारादेश होता है।*

ह्रस्वादेशप्रतिषेधः-

(२) नाग्लोपिशास्वृदिताम्।२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, अग्लोपि-शासु-ऋदिताम् ६।३।

स०-अको लोप इति अग्लोपः। अग्लोपोऽस्यास्तीति अग्लोपी। '**अत इनिठनौ**' (५।२।११५) इत्यनेन मतुबर्थे इनिप्रत्ययः। ऋद् इद् यस्य स ऋदित्। अग्लोपी च शासुश्च ऋदिच्च ते-अग्लोपिशास्वृदितः, तेषाम्-अग्लोपिशास्वृदिताम् (नञ्बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अग्लोपिशास्वृदितामङ्गानामुपधायाश्चङि णौ ह्रस्वो न।

अर्थः-अग्लोपिनाम्, शासेः, ऋदितां चाऽङ्गानामुपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो न भवति।

उदा०-(**अग्लोपी**) मालामाख्यदिति अममालत्। मातरमाख्यदिति अममातत्। राजानमतिक्रान्तवानिति अत्यरराजत्। लोमान्यनुमृष्टवानिति अन्वलुलोमत्। (**शासु**) सोऽशशासत्। (**ऋदित्**) **बाधृ**-सोऽबबाधत्। **याचृ**- सोऽययाचत्। **ढौकृ**-सौऽडुढौकत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अग्लोपिशास्वृदिताम्) अक् वर्ण लोपवाले, शासु और ऋकार इत्वाले (अङ्गानाम्) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(अग्लोपी) **अममालत्**। उसने माला को बनाया। **अममातत्**। उसने माता को कहा। **अत्यरराजत्**। उसने राजा का अतिक्रमण किया, जीता। **अन्वलुलोमत्**। उसने लोमों को शुद्ध किया। (शासु) **सोऽशशासत्**। उसने शिक्षा दिलाई। (ऋदित्) **बाधृ-सोऽबबाधत्**। उसने विलोडन कराया। **याचृ-सोऽययाचत्**। उसने याचना कराई। **ढौकृ-सोऽडुढौकत्**। उसने गमन कराया।*

*सिद्धि-(१) **अममालत्**। यहां प्रथम 'माला' शब्द से '**तत् करोति, तदाचष्टे**' (चुरादि० गणसूत्र) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् वा०-'**णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य**' (६।४।१५५) से इष्ठवद्भाव होने से '**तुरिष्ठेमेयस्सु**' (६।४।१५४) से*

टि-भाग का लोप होता है। अतः 'मालि' यह 'अग्लोपी' धातु है। इससे पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में चङ् आदेश करने पर इस सूत्र से उपधा-आकार को ह्रस्वादेश (अ) नहीं होता है।

*(२) **अममालत्।** यहां 'मातृ' शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' (चुरादि० गणसूत्र) से आचष्टे अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अत्यरराजत्।** यहां अति-पूर्वक 'राजन्' शब्द से 'प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च' (चुरादि० गणसूत्र) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **अन्वलुलोमत्।** यहां अनु-पूर्वक 'लोमन्' शब्द से 'सत्यापपाशरूप०' (३।१।२५) से अनुमार्जन अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **अबबाधत्।** यहां 'बाधृ विलोडने' (भ्वा०आ०) इस ऋदित् धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'याचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**अययाचत्।** 'ढौकृ गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से-**अडुढौकत्।***

ह्रस्वादेशविकल्पः–

(३) भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्।३।

प०वि०- भ्राज-भास-भाष-दीप-जीव-मील-पीडाम् ६।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-भ्राजश्च भासश्च भाषश्च दीपश्च जीवश्च मीलश्च पीड् च ते-भ्राज०पीडः, तेषाम्-भ्राज०पीडाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामङ्गानाम् उपधायाश्चङि णावन्यतरस्यां ह्रस्वः।

अर्थः-भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामऽङ्गानाम् उपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो भवति। **उदाहरणम्-**

	धातुः		शब्दरूपम्	भाषार्थ
(१)	भ्राज	अबिभ्रजत्	अबभ्राजत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।
(२)	भास	अबीभसत्	अबभासत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।
(३)	भाष	अबीभषत्	अबभाषत्	उसने भाषण कराया।
(४)	दीप	अदिदीपत्	अदिदीपत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।

	धातुः	शब्दरूपम्		भाषार्थ
(५)	जीव	अजिजिवत्	अजिजीलत्	उसने जिलाया।
(६)	मील	अमीमिलत्	अमिमीलत्	उसने निमेष कराया।
(७)	पीड	अपीपिडत्	अपिपीडत्	उसने दुःख दिया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भ्राज०) भ्राज, भास, भाष, दीप, जीव, मील, पीड इन (अङ्गानाम्) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-अबिभ्राजत्। *यहां **'भ्राज दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'भ्राजि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'भ्राज' के उपधा-आकार को ह्रस्व होता है। **'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे'** (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में उपधा-आकार को ह्रस्वादेश नहीं है-**अबभ्राजत्।***

*(२) **अबीभसत्।** **'भासृ दीप्तौ'** (भ्वा०आ०)।*

*(३) **अबीभषत्।** **'भाष व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०आ०)।*

*(४) **अदिदीपत्।** **'दीपी दीप्तौ'** (दि०आ०)।*

*(५) **अजिजीवत्।** **'जीव प्राणधारणे'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **अमिमीलत्।** **'मील निमेषणे'** (भ्वा०प०)।*

*(७) **अपिपीडत्।** **'पीड अवगाहने'** (चु०आ०)।*

लोपादेशः-

(४) लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य।४।

प०वि०- लोपः १।१ पिबतेः ६।१ ईत् १।१ च अव्ययपदम्, अभ्यासस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पिबतेरङ्गस्योपधाश्चङि णौ लोपः, अभ्यासस्य ईच्च।

अर्थः-पिबतेरङ्गस्योपधायाश्चङ्परके णौ प्रत्यये परतो लोपो भवति, अभ्यासस्य ईकारादेशश्च भवति।

उदा०-अपीप्यत्। अपीप्यताम्। अपीप्यन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पिबतेः) पा इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा का (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (ईत्) ईकारादेश (च) भी होता है।*

*उदा०-**अपीप्यत्।** उसने पान कराया। **अपीप्यताम्।** उन दोनों ने पान कराया। **अपीप्यन्।** उन सब ने पान कराया।*

सिद्धि-अपीप्यत्। *पा+णिच्। पा+इ। पा+युक्+इ। पा+य्+इ। पायि।। पायि+लुङ्। अट्+पायि+ल्। अ+पायि+चङ्+तिप्। अ+पा-पा य्+०+अ+त्। अ+प-प्य्+अ+त्। अ+पी+प्य्+अ+त्। अपीप्यत्।*

*यहां प्रथम **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'शाच्छासाह्वाव्येपां युक्'** (७।३।३७) से 'पा' को 'युक्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'पायि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'पाय्' के उपधा आकार का लोप और अभ्यास-अकार के स्थान में ईकारादेश होता है।*

इत्-आदेशः-

(५) तिष्ठतेरित्।५।

प०वि०-तिष्ठतेः ६।१ इत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तिष्ठतेरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ इत्।

अर्थः-तिष्ठतेरङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-अतिष्ठिपत्। अतिष्ठिपताम्। अतिष्ठिपन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तिष्ठतेः) स्था इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**अतिष्ठिपत्।** उसने ठहराया। **अतिष्ठिपताम्।** उन दोनों ने ठहराया। **अतिष्ठिपन्।** उन सब ने ठहराया।*

सिद्धि-अतिष्ठिपत्। *यहां प्रथम **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'अर्तिह्रीव्ली०'** (७।३।३६) से ष्ठा (स्था) को पुक् आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्थापि' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय*

*और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर 'स्थाप्' धातु के उपधा-आकार को इकारादेश होता है। '**शर्पूर्वाः खयः**' (७।४।६१) से अभ्यास का खय् (थ्) शेष और इसे '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से चर् तकारादेश, '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग टकार होता है।*

इकारादेशविकल्पः–

(६) जिघ्रतेर्वा।६।

प०वि०–जिघ्रतेः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जिघ्रतेरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ वा इत्।

अर्थः–जिघ्रतेरङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०–अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत्। अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्। अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जिघ्रतेः) घ्रा इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत्।** उसने सुंघाया। **अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्।** उन दोनों ने सुंघाया। **अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।** उन सबने सुंघाया।*

सिद्धि-अजिघ्रिपत्।** यहां प्रथम '**घ्रा गन्धोपदाने**' (भ्वा०प०) धातु से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। '**अर्तिह्रीव्ली०**' (७।३।३६) से 'घ्रा' को 'पुक्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'घ्रापि' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'घ्राप्' धातु के उपधा-आकार को इकारादेश होता है। '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से अभ्यास-घकार को जश्-जकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**अजिघ्रपत्।** '**णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः**' (७।४।१) से उपधा-आकार को ह्रस्व होता है। ऐसे ही 'तस्' प्रत्यय में-**अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्।** 'झि' प्रत्यय में-**अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।

ऋकारादेशः-

(७) उर्ऋत् ।७।

प०वि०-उः ६।१ ऋत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ वा णित्।

अर्थः-उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन ऋकारादेशो भवति। इर्-अर्-आरामपवादः।

उदा०-(इर्) अचिकीर्तत्, अचीकृतत्। **(अर्)** अववर्तत्, अवीवृतत्। **(आर्)** अममार्जत्, अमीमृजत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (ऋत्) ऋकारादेश होता है। यह इर्, अर्, आर् आदेशों का अपवाद है।*

*उदा०-(इर्) **अचिकीर्तत्, अचीकृतत्।** उसने प्रसिद्ध कराया। (अर्) **अववर्तत्, अवीवृतत्।** उसने चमकाया। (आर्) **अममार्जत्, अमीमृजत्।** उसने शुद्धि कराई।*

*सिद्धि-(१) **अचिकीर्तत्।** यहां प्रथम **'कृत संशब्दने'** (चु०उ०) धातु से प्रथम **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय होता है। **'उपधायाश्च'** (७।१।१०१) से 'कृत्' धातु के उपधा-ऋकार को इकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कीर्ति' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से ऋकार के स्थान में ऋकारादेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में ऋकारादेश है-**अचीकृतत्।** यहां 'कृत्' धातु के उपधा-ऋकार को इर् आदेश नहीं होता है।*

*(२) **अववर्तत्।** यहां प्रथम **'वृतु भासार्थः'** (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। इससे चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से अकार गुण और इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व होता है। विकल्प-पक्ष में गुण (अर्) नहीं है। विकल्प-पक्ष में ऋकार के स्थान में ऋकारादेश है-**अवीवृतत्।***

*(३) **अममार्जत्।** यहां प्रथम **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'मृजेर्वृद्धिः'** (७।२।११४) से ऋकार के स्थान में आकार वृद्धि और इसे पूर्ववत् रपरत्व (आर्) होता है। विकल्प-पक्ष में ऋकार के स्थान में ऋकारादेश है-**अमीमृजत्।***

नित्यमृकारादेशः--

(८) नित्यं छन्दसि।८।

प०वि०-नित्यम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, उरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि उरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ नित्यम् ऋत्।

अर्थः-छन्दसि विषये उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो नित्यम् ऋकारादेशो भवति।

उदा०-अवीवृधत् पुरोडाशेन (यजु० २८।२३)। अवीवृधताम्। अवीवृधन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (उः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्) सदा (ऋत्) ऋकारादेश होता है।*

*उदा०-**अवीवृधत् पुरोडाशेन** (यजु० २८।२३)। अवीवृधत्=उसने बढ़ाया। **अवीवृधताम्।** उन दोनों ने बढ़ाया। **अवीवृधन्।** उन सबने बढ़ाया।*

सिद्धि-अवीवृधत्। *यहां प्रथम 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'वर्धि' पूर्ववत् धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर वेदविषय में ऋकार के स्थान में नित्य ऋकारादेश होता है।*

दिगि-आदेशः--

(९) दयतेर्दिगि लिटि।९।

प०वि०-दयतेः ६।१ दिगि १।१ (सु-लुक्) लिटि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-दयतेरङ्गस्य लिटि दिगिः।

अर्थः-दयतेरङ्गस्य स्थाने लिटि प्रत्यये परतो दिगिरादेशो भवति।

उदा०-अवदिग्ये। अवदिग्याते। अवदिग्यिरे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दयतेः) देङ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दिगिः) दिगि आदेश होता है।*

*उदा०-**अवदिग्ये।** उसने रक्षा की। **अवदिग्याते।** उन दोनों ने रक्षा की। **अवदिग्यिरे।** उन सब ने रक्षा की।*

*सिद्धि-**अवदिग्ये।** अव+दा+लिट्। अव+दा+ल्। अव+दिग्+त। अव+दिग्+एश्। अव+दिग्+ए। अवदिग्ये।*

*यहां अव-उपसर्गपूर्वक **'देङ् रक्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से देङ् (दयति) के स्थान में दिगि आदेश होता है। दिगि-आदेश विधान से द्विर्वचन का बाधन अभीष्ट है, अतः **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'दिगि' को द्वित्व नहीं होता है। **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।११) से आत्मनेपद और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' को 'एश्' आदेश होता है। आताम् प्रत्यय में-**अवदिग्याते,** 'झ' प्रत्यय में-**अवदिग्यिरे।***

गुणादेशः-

(१०) ऋतश्च संयोगादेर्गुणः।१०।

प०वि०-ऋतः ६।१ च अव्ययपदम्, संयोगादेः ६।१ गुणः १।१।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगादेर्ऋतोऽङ्गस्य च लिटि गुणः।

अर्थः-संयोगादेर्ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य च लिटि प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(स्वृ)** तौ सस्वरतुः। ते सस्वरुः। **(ध्वृ)** तौ दध्वरतुः। ते दध्वरुः। **(स्मृ)** तौ सस्मरतुः। ते सस्मरुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (संयोगादेः) संयोग आदिवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(स्वृ) **तौ सस्वरतुः।** उन दोनों ने शब्द/उपताप किया। **ते सस्वरुः।** उन सब ने शब्द/उपताप किया। (ध्वृ) **तौ दध्वरतुः।** उन दोनों ने कुटिलता की। **ते दध्वरुः।** उन सब ने कुटिलता की। (स्मृ) **तौ सस्मरतुः।** उन दोनों ने स्मरण किया। **ते सस्मरुः।** उन सब ने स्मरण किया।*

*सिद्धि-**सस्वरतुः।** स्वृ+लिट्। स्वृ+ल्। स्वृ+तस्। स्वृ+अतुस्। स्वृ-स्वृ+अतुस्। स् अ+स्वर्+अतुस्। सस्वरतुस्। सस्वरतुः।*

*यहां **'स्वृ शब्दोपतापयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और*

'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' (३।४।८२) से 'तस्' को 'अतुस्' आदेश है। इस सूत्र से इस संयोगादि, ऋकारान्त 'स्वृ' धातु को 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। ऐसे ही झि (उस्) प्रत्यय में-सस्वरुः। 'असंयोगाल्लिट् कित्' (१।२।५) से लिट् (तस्) प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह गुण विधान किया गया है। ऐसे ही 'ध्वृ हूर्छने' (भ्वा०प०) धातु से-दध्वरतुः, दध्वरुः। 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-सस्मरतुः, सस्मरुः।

गुणादेशः-

(११) ऋच्छत्यृताम्।११।

प०वि०-ऋच्छति-ऋ-ऋताम् ६।३।

स०-ऋच्छतिश्च ऋश्च ॠच्च ते ऋच्छत्यृतः, तेषाम्-ऋच्छत्यृताम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, लिटि, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋच्छत्यृतामङ्गानां लिटि गुणः।

अर्थः-ऋच्छतेर्ऋ इत्येतस्य ॠकारान्तस्य चाऽङ्गस्य लिटि प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ऋच्छतिः)** आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः। **(ऋ)** आरतुः, आरुः। **(ॠकारान्तः)** निचकरतुः, निचकरुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋच्छत्यृताम्) ऋच्छति, ऋ और ॠकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(ऋच्छति) आनर्च्छ।** वह गया। **आनर्च्छतुः।** वे दोनों गये। **आनर्च्छुः।** वे सब गये। **(ऋ) आरतुः।** वे दोनों गये। **आरुः।** वे सब गये। **(ॠकारान्त) कॄ-निचकरतुः।** उन दोनों ने विक्षेप किया, फैंका। **निचकरुः।** उन सबने विक्षेप किया।*

*सिद्धि-**आनर्च्छ।** ऋच्छ्+लिट्। ऋच्छ्+ल्। ऋच्छ्+तिप्। ऋच्छ्+णल्। अर्च्छ्+अ। अर्च्छ्-अर्च्छ्+अ। अ-अर्च्छ्+अ। आ-अर्च्छ्+अ। आ नुट्-अर्च्छ्+अ। आ न्-अर्च्छ्+अ। आनर्च्छ।*

यहां 'ऋच्छ गतौ' (तु०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' (३।४।८२) से णल् आदेश है। इस सूत्र से 'ऋच्छ्' को लिट् (णल्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। तत्पश्चात् 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'अर्च्छ्'

को द्वित्व, 'हलादि: शेष:' (७।४।६०) से अभ्यास का अकार शेष, इसे 'अत आदे:' (७।४।७०) से दीर्घ और इसे 'तस्मान्नुड् द्विहल:' (७।४।७१) से नुट्-आगम होता है। ऐसे ही तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आनर्च्छतु:**। झि (उस्) प्रत्यय में-**आनर्च्छु:**। '**ऋ गतौ**' (जु०प०) धातु से-**आरतु, आरु:**। नि-उपसर्गपूर्वक ॠकारान्त '**कॄ विक्षेपे**' (तु०प०) धातु से-**निचकरतु:, निचकरु:**।

ह्रस्वादेशविकल्प:-

(१२) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा।१२।

प०वि०-शॄ-दॄ-प्राम् ६।३ ह्रस्व: १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-शॄश्च दॄश्च पॄश्च ते शॄदॄप्र:, तेषाम्-शॄदॄप्राम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-अङ्गस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वय:-शॄदॄप्रामङ्गानां लिटि वा ह्रस्व:।

अर्थ:-शॄदॄप्रामङ्गानां लिटि प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(शॄ)** विशश्रतु:, विशश्रु:। विशशरतु:, विशशरु:। **(दॄ)** विदद्रतु:, विदद्रु:। विददरतु:, विददरु:। **(पॄ)** निपप्रतु:, निपप्रु:। निपपरतु:, निपपरु:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(शॄदॄप्राम्) शॄ, दॄ, पॄ इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (लिटि) लिट्-प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (ह्रस्व:) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**(शॄ) विशश्रतु:, विशश्रु:**। उन दोनों ने हिंसा की, मार डाला। **विशशरतु:, विशशरु:**। उन सब ने हिंसा की। **(दॄ) विदद्रतु:, विदद्रु:**। उन दोनों ने विदारण किया, फाड़ा। **विददरतु:, विददरु:**। उन सब ने विदारण किया। **(पॄ) निपप्रतु:, निपप्रु:**। उन दोनों ने पालन-पूरण किया। **निपपरतु:, निपपरु:**। उन सब ने पालन-पूरण किया।*

***सिद्धि-(शॄ) विशश्रतु:**। वि+शॄ+लिट्। वि+शॄ+ल्। वि+शॄ+अतुस्। वि+शॄ-शॄ+अतुस्। वि+श् अर्+श्र्+अतुस्। वि+श-श्र्+अतुस्। विशश्रतु:।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक '**शॄ हिंसायाम्**' (क्र्या०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर 'शॄ' को ह्रस्व (शृ) होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७७) से ऋकार को यणादेश (र्) है। '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, '**उरण् रपर:**' (१।१।५१) से इसे रपरत्व और '**हलादि: शेष:**' (७।४।६०) से शकार शेष रहता है। विकल्प-पक्ष में 'शॄ' को ह्रस्व नहीं होता है अत: '**ऋच्छत्यॄताम्**' (७।४।११) से 'शॄ' को गुण होता है-**विशशरतु:**। ऐसे ही 'झि' (उस्) प्रत्यय में-**विशश्रु:, विशशरु:**। ऐसे ही '**दॄ विदारणे**' (क्र्या०प०) धातु से-**विदद्रतु:, विददरतु:**। **विदद्रुत:, विदद्रु:**। '**पॄ पालनपूरणयो:**' (क्र्या०प०) धातु से-**निपप्रतु:, निपपरतु:**। **निपप्रु:, निपपरु:**।*

ह्रस्वादेशः–

(१३) केऽणः।१३।

प०वि०–के ७।१ अणः।

अनु०–अङ्गस्य, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अणोऽङ्गस्य के ह्रस्वः।

अर्थः–अणन्तस्याङ्गस्य के प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०–ज्ञका। कुमारिका। किशोरिका।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अणः) अण् वर्ण जिसके अन्त में उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (के) क-प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०–**ज्ञका।** अनुकम्पिता (दयापात्रा) ज्ञानिनी। **कुमारिका।** ह्रस्वा (छोटी) कुमारी। **किशोरिका।** ह्रस्वा किशोरी।*

*सिद्धि–(१) **ज्ञका।** ज्ञा+क। ज्ञ+क। ज्ञक+टाप्। ज्ञक+आ। ज्ञका+सु। ज्ञका।*

*यहां 'ज्ञा' शब्द से **'अनुकम्पायाम्'** (५।३।७६) से अनुकम्पा अर्थ में 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ज्ञा' अणन्त अङ्ग को 'क' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (अ) होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। **'भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि'** (७।३।४७) से इकारादेश का प्रतिषेध है।*

*(२) **कुमारिका।** यहां 'कुमारी' शब्द से **'ह्रस्वे'** (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'किशोरी शब्द से–**किशोरिका।***

ह्रस्वादेशप्रतिषेधः–

(१४) न कपि।१४।

प०वि०–न अव्ययपदम्, कपि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, ह्रस्वः, अण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अणोऽङ्गस्य कपि ह्रस्वो न।

अर्थः–अणन्तस्याऽङ्गस्य कपि प्रत्यये परतो ह्रस्वो न भवति।

उदा०–बहुकुमारीको देशः। बहुब्रह्मबन्धूको देशः। बहुलक्ष्मीको राजा।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अणः) अण् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (कपि) कप्-प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**बहुकुमारीको देशः।** बहुत कुमारियोंवाला देश। **बहुब्रह्मबन्धूको देशः।** बहुत पतित ब्राह्मणियोंवाला देश। **बहुलक्ष्मीको राजा।** बहुत लक्ष्मीवाला राजा।*

*सिद्धि-**बहुकुमारीकः।** यहां प्रथम बहु और कुमारी शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् **'नद्यृतश्च'** (५।४।१५३) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से अणन्त 'बहुकुमारी' शब्द को 'कप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (इ) नहीं होता है। 'केऽणः' (७।४।१३) से ह्रस्वादेश प्राप्त था। ऐसे ही 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्धूकः।** 'बहुलक्ष्मी' शब्द से-**बहुलक्ष्मीकः।***

ह्रस्वादेशविकल्पः-

(१५) आपोऽन्यतरस्याम्।१५।

प०वि०-आपः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्वः, न, कपीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गस्य कपि अन्यतरस्यां ह्रस्वो न।

अर्थः-आबन्तस्याऽङ्गस्य कपि प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो न भवति।

उदा०-बहुखट्वाको देशः, बहुखट्वको देशः। बहुमालाको देशः, बहुमालको देशः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (कपि) कप् प्रत्यय परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**बहुखट्वाको देशः, बहुखट्वको देशः।** बहुत खाटोंवाला देश। **बहुमालाको देशः, बहुमालको देशः।** बहुत मालाओंवाला देश।*

*सिद्धि-**बहुखट्वाकः।** यहां प्रथम बहु और खट्वा शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् **'शेषाद् विभाषा'** (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से आबन्त 'खट्वा' शब्द को 'कप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में ह्रस्वादेश है-**बहुखट्वकः।** ऐसे ही 'बहुमाला' शब्द से-**बहुमालाकः, बहुमालकः।***

गुणादेशः-

(१६) ऋदृशोऽङि गुणः।१६।

प०वि०-ऋ-दृशः ६।१ अङि ७।१ गुणः १।१।

स०-ऋश्च दृश् च एतयोः समाहार ऋदृश्, तस्य-ऋदृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋदृशोऽङ्गस्याऽङि गुणः।

अर्थः-ऋकारान्तस्य दृशेश्चाऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ऋकारान्तः)** शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८)। सोऽसरत्। आरत्। जरा। **(दृशिः)** अदर्शत्, अदर्शताम्, अदर्शन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋदृशः) ऋकारान्त और दृश् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(ऋकारान्त) **शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्।** अकरत्=उसने किया। **अहं तेभ्योऽकरं नमः** (यजु० १६।८)। अकरम्=मैंने किया। **सोऽसरत्।** उसने गति की। **आरत्।** उसने गति की। **जरा।** वयोहानि (बुढ़ापा)। **(दृशि) अदर्शत्।** उसने देखा। **अदर्शताम्।** उन दोनों ने देखा। **अदर्शन्।** उन सबने देखा।*

***सिद्धि-अकरत्।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि'** (३।१।५९) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**असरत्। 'ऋ गतिप्रापणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से-**आरत्।** यहां **'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च'** (३।१।५६) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। 'ऋ' धातु के अजादि होने से **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से आट्-आगम और **'आटश्च'** (६।१।९०) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**अदर्शत्।** यहां **'इरितो वा'** (३।१।५७) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है।*

*(२) **जरा।** जॄ+अङ्। ज् अर्+अ। जर्+टाप्। जस्+आ। जरा+सु। जरा।*

*यहां **'जॄष् वयोहानौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'षिद्भिदादिभ्योऽङ्'** (३।३।१०४) से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'जॄ' धातु को अङ् प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

{आगमविधिः}

थुक्-आगमः—

(१) अस्यतेस्थुक्।१७।

प०वि०-अस्यतेः ६।१ थुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्यतेरङ्गस्याऽङि थुक्।

अर्थः-अस्यतेरङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतस्थुगागमो भवति।

उदा०-आस्थत्, आस्थताम्, आस्थन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्यतेः) अस्यति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (थुक्) थुक् आगम होता है।*

*उदा०-**आस्थत्।** उसने क्षेपण किया, फैंका। **आस्थताम्।** उन दोनों ने क्षेपण किया। **आस्थन्।** उन सब ने क्षेपण किया।*

*सिद्धि-**आस्थत्।** यहां 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्'** (३।१।५२) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'थुक्' आगम होता है। 'अस्' धातु के अजादि होने से **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से 'आट्' आगम और **'आटश्च'** (६।१।९०) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**आस्थताम्।** 'झि' प्रत्यय में-**आस्थन्।***

{आदेशविधिः}

अकारादेशः—

(१) श्वयतेरः।१८।

प०वि०-श्वयतेः ६।१ अः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वयतेरङ्गस्याऽङि अः।

अर्थः-श्वयतेरङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-अश्वत्, अश्वताम्, अश्वन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्वयतेः) श्वयति=श्वि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है।*

*उदा०-**अश्वत्**। उसने गति/वृद्धि की। **अश्वताम्**। उन दोनों ने गति/वृद्धि की। **अश्वन्**। उन सब ने गति/वृद्धि की।*

***सिद्धि-अश्वत्**। यहां **'टुओश्वि गतिवृद्धयोः'** (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च'** (३।१।५८) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'श्वि' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर अकार अन्त्य आदेश होता है। अ+श्व् अ+अ+त्। इस स्थिति में **'अतो गुणे'** (६।१।९७) से प्रथम अकार को पररूप एकादेश (अ) होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अश्वताम्**। 'झि' प्रत्यय में-**अश्वन्**।*

{आगमविधिः}

पुम्-आगमः--

(१) पतः पुम्।१६।

प०वि०-पतः ६।१ पुम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-पतोऽङ्गस्याऽङि पुम्।

अर्थः-पतोऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतः पुमाऽऽगमो भवति।

उदा०-अपप्तत्। अपप्ताम्। अपप्तन्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(पतः) पत् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (पुम्) पुम् आगम होता है।*

*उदा०-**अपप्तत्**। वह गिरा। **अपप्ताम्**। वे दोनों गिरे। **अपप्तन्**। वे सब गिरे।*

***सिद्धि-अपप्तत्**। यहां **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु'** (३।१।५५) से 'च्लि' के स्थान में ॡदिल्लक्षण 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'पत्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'पुम्' आदेश होता है। अ+प पुम् त्+अ+त्। अ+प प् त्+अ+त्। अपप्तत्। 'पुम्' आगम मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४७) के नियम से 'पत्' के अन्त्य अच् से परे किया जाता है। ऐसे ही तस् (तास्) प्रत्यय में-**अपप्ताम्**। 'झि' प्रत्यय में-**अपप्तन्**।*

उम्-आगमः--

(२) वच उम्।२०।

प०वि०-वचः ६।१ उम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-वचोऽङ्गस्याऽङि उम्।

अर्थः-वचोऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परत उमागमो भवति।

उदा०-अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वचः) वच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (उम्) उम् आगम होता है।*

*उदा०-**अवोचत्।** उसने कहा। **अवोचताम्।** उन दोनों ने कहा। **अवोचन्।** उन सब ने कहा।*

सिद्धि-अवोचत्। *यहां '**वच परिभाषणे**' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्**' (३।१।५२) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। इस सूत्र से 'वच्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'उम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से '**मिदचोऽन्त्यात्परः**' (१।१।४७) के नियम से 'वच्' के अन्त्य अच् से परे किया जाता है। अ+व उम् च्+अ+त्। अ+व उच्+अ+त्। अवोचत्। '**आद्गुणः**' (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश (ओ) होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अवोचताम्।** झि-प्रत्यय में-**अवोचन्।***

{आदेशप्रकरणम्}

गुणादेशः--

(१) शीङः सार्वधातुके गुणः।२१।

प०वि०-शीङः ६।१ सार्वधातुके ७।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके गुणः।

अर्थः-शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स शेते, तौ शयाते, ते शेरते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शीङः) शीङ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**स शेते।** वह सोता है। **तौ शयाते।** वे दोनों सोते हैं। **ते शेरते।** वे सब सोते हैं।*

सिद्धि-शेते। *यहां '**शीङ् स्वप्ने**' (अदा०आ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका '**अदिप्रभृतिभ्यः शपः**'*

*(२।४।७२) से लुक् होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को सार्वधातुक-संज्ञक 'त' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। '**सार्वधातुकमपित्**' (१।२।४) से 'त' प्रत्यय के ङिद्वत् होने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही 'आताम्' प्रत्यय में-**शयाते**। 'झ' प्रत्यय में-**शेरते**। यहां '**शीङो रुट्**' (७।१।६) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश और इसे 'रुट्' आगम होता है।*

अयङ्-आदेशः–

(२) अयङ् यि क्ङिति।२२।

प०वि०-अयङ् १।१ यि ७।१ क्ङिति ७।१।

स०-कश्च ङश्च तौ क्ङौ, इच्च इच्च तौ इतौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शीङोऽङ्गस्य यि क्ङिति अयङ्।

अर्थः-शीङोऽङ्गस्य यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतोऽयङादेशो भवति।

उदा०-तेन शय्यते। स शाशय्यते। प्रशय्य। उपशय्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शीङः) शीङ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर (अयङ्) अयङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**तेन शय्यते**। उसके द्वारा सोया जाता है। **स शाशय्यते**। वह पुनः-पुनः/अधिक सोता है। **प्रशय्य**। अधिक सो कर। **उपशय्य**। पास सो कर।*

***सिद्धि-(१) शय्यते**। यहां '**शीङ् स्वप्ने**' (अदा०आ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से भाव-अर्थ में 'लट्' लकार है। '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु के यकारादि कित् यक् प्रत्यय परे होने पर अयङ् अन्त्य आदेश होता है। श् अय्+य+ते। शय्यते।*

*(२) **शाशय्यते**। यहां पूर्वोक्त 'शीङ्' धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को यकारादि, ङित् यङ् प्रत्यय परे होने पर 'अयङ्' आदेश होता है। परत्व और नित्यत्व से 'शीङ्' को 'अयङ्' आदेश करने पर '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्वित्व होता है। '**दीर्घोऽकितः**' (७।४।८३) से अभ्यास-अकार को दीर्घ होता है।*

*(३) **प्रशय्य**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'शीङ्' धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष*

*समास है। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है। यह स्थानिवद्भाव से 'कित्' है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को यकारादि कित् 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'अयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही-**उपशय्य।***

ह्रस्वादेशः-

(३) उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः।२३।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ ह्रस्वः १।१ ऊहतेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गाद् ऊहतेरङ्गस्य यि क्ङिति ह्रस्वः।

अर्थः-उपसर्गाद् उत्तरस्य ऊहतेरङ्गस्य यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-तेन समुह्यते। तेन अभ्युह्यते। स समुह्य गतः। सोऽभ्युह्य गतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (ऊहतेः) ऊहति=ऊह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित् ङित् प्रत्यय परे होने पर (अयङ्) अयङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**तेन समुह्यते।** उसके द्वारा इकट्ठा किया जाता है। **तेन अभ्युह्यते।** उसके द्वारा तर्क किया जाता है। **स समुह्य गतः।** वह इकट्ठा करके गया। **सोऽभ्युह्य गतः।** वह तर्क करके गया।*

सिद्धि-(१) समुह्यते।** यहां सम् उपसर्गपूर्वक 'ऊह वितर्के' (भ्वा०आ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से भाव-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'ऊह्' धातु को यकारादि, कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश (उ) होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्गपूर्वक 'ऊह' धातु से-**अभ्युह्यते।

(२) समुह्य।** यहां सम्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ऊह' धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२२) से 'क्त्वा' प्रत्यय है और इसके स्थान में '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से 'ऊह्' धातु को यकारादि कित् 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्गपूर्वक 'ऊह' धातु से-**अभ्युह्य।

ह्रस्वादेशः–

(४) एर्लिङि।२४।

प०वि०–एः ६।१ लिङि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, उपसर्गात्, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्गाद् एतेरङ्गस्य यि क्ङिति लिङि ह्रस्वः।

अर्थः–उपसर्गाद् उत्तरस्य एतेरङ्गस्य यकारादौ क्ङिति लिङि प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०–उदियात्। समियात्। अन्वियात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (एतेः) एति=इण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित्, ङित् (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**उदियात्।** वह उदित होवे (आशीर्वाद)। **समियात्।** वह संघटित होवे (आशीर्वाद)। **अन्वियात्।** वह अन्वित (युक्त) होवे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-**उदियात्।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से ङित् 'यासुट्' आगम है। प्रथम **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से 'इण्' धातु को दीर्घ (ई) होकर इस सूत्र से ह्रस्व (इ) होता है। ऐसे ही उप-उपसर्गपूर्वक से-**समियात्।** अनु-उपसर्गपूर्वक-**अन्वियात्।***

दीर्घादेशः–

(५) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः।२५।

प०वि०–अकृत्सार्वधातुकयोः ७।२ दीर्घः १।१।

स०–कृच्च सार्वधातुकं चे ते कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके इति अकृत्सार्वधातुके, तयोः-अकृत्सार्वधातुकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अचोऽङ्गस्याऽकृत्सार्वधातुके यि क्ङिति दीर्घः।

अर्थः–अजन्तस्याऽङ्गस्य कृद्वर्जिते सार्वधातुकवर्जिते च यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-भृशायते। सुखायते। दुःखायते। चीयते। चेचीयते। स्तूयते। तोष्टूयते। चीयात्। स्तूयात्।

आर्यभाषाः अर्थ-*अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (अकृत्सार्वधातुकयोः) कृत् और सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न (यि) यकारादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**भृशायते**। जो सब नहीं वह सब होता है। **सुखायते**। वह सुख अनुभव करता है। **दुःखायते**। वह दुःख अनुभव करता है। **चीयते**। उसके द्वारा चयन किया जाता है। **चेचीयते**। वह पुनः-पुनः/अधिक चयन करता है। **स्तूयते**। उसके द्वारा स्तुति की जाती है। **तोष्टूयते**। वह पुनः-पुनः/अधिक स्तुति करता है। **चीयात्**। वह चयन करे (आशीर्वाद)। **स्तूयात्**। वह स्तुति करे (आशीर्वाद)।*

***सिद्धि-(१) भृशायते**। यहां 'भृश' शब्द से '**भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः**' (३।१।१२) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भृश' शब्द को कृत् और सार्वधातुक से भिन्न, यकारादि, ङित् 'क्यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है।*

*(२) **सुखायते**। यहां 'सुख' शब्द से '**सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्**' (३।१।१८) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सुख' शब्द को पूर्वोक्त 'क्यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है। ऐसे ही 'दुःख' शब्द से-**दुःखायते**।*

*(३) **चीयते**। यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'चि' धातु को कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**स्तूयते**।*

*(४) **चेचीयते**। यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'चि' धातु को पूर्ववत् ङित् 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**तोष्टूयते**।*

*(५) **चीयात्**। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से '**आशिषि लिङ्लोटौ**' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। यह '**लिङाशिषि**' (३।४।११६) से आर्धधातुक है। '**यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च**' (३।४।१०३) से ङित् 'यासुट्' आगम है। इस सूत्र से 'चि' धातु को ङित् 'यासुट्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**स्तूयात्**।*

दीर्घादेशः–

(६) च्वौ च।२६।

प०वि०–च्वौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अजन्तस्याऽङ्गस्य च्वौ च दीर्घः।

अर्थः–अजन्तस्याऽङ्गस्य च्वौ प्रत्यये परतश्च दीर्घो भवति।

उदा०–शुची करोति। शुची भवति। शुची स्यात्। पटू करोति। पटू भवति। पटू स्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

***उदा०**–**शुची करोति।** वह अशुचि (अशुद्ध) को शुचि (शुद्ध) करता है। **शुची भवति।** जो अशुचि है वह शुचि होता है। **शुची स्यात्।** जो अशुचि है वह शुचि होवे। **पटू करोति।** वह अपटु को पटु (चतुर) बनाता है। **पटू भवति।** जो पटु नहीं है वह पटु होता है। **पटू स्यात्।** जो पटु नहीं है वह पटु होवे।*

***सिद्धि**–**शुची करोति।** यहां 'शुचि' शब्द से **'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजन्त 'शुचि' शब्द को 'च्वि' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६७) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही–**शुची भवति, शुची स्यात्,** इत्यादि।*

रीङ्-आदेशः–

(७) रीङ् ऋतः।२७।

प०वि०–रीङ् १।१ ऋतः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, यि, अकृत्सार्वधातुकयोः, च्वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऋतोऽङ्गस्य अकृत्सार्वधातुके यि, च्वौ च दीर्घः।

अर्थः–ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य कृद्वर्जिते सार्वधातुकवर्जिते च यकारादौ च्वौ च प्रत्यये परतो रीङादेशो भवति।

उदा०–मात्रीयति। मात्रीयते। पित्रीयति। पित्रीयते। चेक्रीयते। मात्रीभूतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (अकृत्सार्वधातुकयोः) कृत् और सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न (यि) यकारादि और (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (रीङ्) रीङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**मात्रीयति।** वह अपनी माता की इच्छा करता है। **मात्रीयते।** वह माता के समान आचरण करती है। **पित्रीयति।** वह अपने पिता की इच्छा करता है। **पित्रीयते।** वह पिता के समान आचरण करता है। **चेक्रीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक बनाता है। **मात्रीभूतः।** जो माता नहीं है वह माता बना हुआ पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **मात्रीयति।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मातृ' शब्द को यकारादि 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'रीङ्' आदेश होता है। मात्‌रीङ्+य+ति। मात्रीयति। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पित्रीयति।***

*(२) **मात्रीयते।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च**' (३।१।११) से आचार-अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से '**अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पित्रीयते।***

*(३) **चेक्रीयते।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को यकारादि 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर 'रीङ्' आदेश होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'क्री' धातु को द्वित्व होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण (ए) होता है।*

*(४) **मात्रीभूतः।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

रिङ्-आदेशः-

(८) रिङ् शयग्लिङ्क्षु।२८।

प०वि०-रिङ् १।१ श-यक्-लिङ्क्षु ७।३।

स०-शश्च यक् च लिङ् च ते शयग्लिङः, तेषु-शयग्लिङ्क्षु। **'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्'** (८।३।३२) इति ङमुट् (ङ्) आगमः। **'खरि च'** (८।४।५४) इति ङकारस्य चर्त्वं ककारः।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, यि, असार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य शे यकि यि असार्वधातुके लिङि च रिङ्।

अर्थः-ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य शे, यकि, यकारादावसार्वधातुके लिङि च प्रत्यये परतो रिङादेशो भवति।

उदा०-**(शः)** आद्रियते। आध्रियते। **(यक्)** क्रियते। ह्रियते। **(लिङ्)** क्रियात्। ह्रियात्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (शे) श-प्रत्यय (यकि) यक् और (यि) यकारादि (असार्वधातुके) सार्वधातुक से (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (रिङ्) रिङ् आदेश होता है।*

*उदा०-(श) **आद्रियते।** वह आदर करता है। **आध्रियते।** वह अवस्थित रहता है। (यक्) **क्रियते।** उसके द्वारा किया जाता है। **ह्रियते।** उसके द्वारा हरण किया जाता है। (लिङ्) **क्रियात्।** वह करे (आशीर्वाद)। **ह्रियात्।** वह हरण करे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-(१) **आद्रियते।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'दृङ् आदरे'** (तु०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'दृ' धातु को 'श' प्रत्यय परे होने पर 'रिङ्' आदेश होता है। अ+द् रि+अ+ते। इस स्थिति में **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से इयङ् आदेश होता है। ऐसे ही **'धृङ् अवस्थाने'** (तु०आ०) धातु से-**आध्रियते।***

*(२) **क्रियते।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को 'यक्' प्रत्यय परे होने पर रिङ् आदेश होता है। क्रिङ्+य+ते। क्रियते। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**ह्रियते।***

*(३) **क्रियात्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु से आर्धधातुक लिङ् (यासुट्) प्रत्यय परे होने पर 'रिङ्' आदेश होता है।*

गुणादेशः--

(६) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः।२९।

प०वि०-गुणः १।१ अर्तिसंयोगाद्योः ६।२।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, अर्तिश्च संयोगादिश्च तौ अर्तिसंयोगादी, तयोः-अर्तिसंयोगाद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, यि, असार्वधातुके, लिङि, यकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिसंयोगाद्योरङ्गयोर्ऋतो यकि यि असार्वधातुके लिङि च गुणः ।

अर्थः-अर्तेः संयोगादेश्च ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य यकि यकारादाव सार्वधातुके लिङि च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-(**यक्**) **ऋ**-अर्यते। **संयोगादि-ऋतः**-स्मर्यते। (**लिङ्**) **ऋ**-अर्यात्। **संयोगादि-ऋतः**-स्मर्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्तिसंयोगाद्योः, ऋतः) ऋ और संयोगादि (अङ्गयो) अङ्गों को (यकि) यक् प्रत्यय और (यि) यकारादि (असार्वधातुके) सार्वधातुक से भिन्न (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(यक्) **ऋ-अर्यते।** उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है। **संयोगादि-स्मर्यते।** उसके द्वारा स्मरण किया जाता है। **(लिङ्) ऋ-अर्यात्।** वह प्राप्त करे (आशीर्वाद)। **संयोगादि ऋकारान्त-स्मर्यात्।** वह स्मरण करे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-(१) **अर्यते।** यहां 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को 'यक्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण-प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) इस संयोगादि धातु से-**स्मर्यते।***

*(२) **अर्यात्।** यहां पूर्वोक्त 'ऋ' धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को यकारादि, असार्वधातुक लिङ् (यासुट्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) इस संयोगादि धातु से-**स्मर्यात्।***

गुणादेशः-

(१०) यङि च।३०।

प०वि०-यङि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, गुणः, अर्तिसंयोगाद्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिसंयोगाद्योर्ऋतो यङि गुणः ।

अर्थः-अर्तेः संयोगादेर्ऋकारान्तस्याङ्गस्य च यङि प्रत्यये परतश्च गुणो भवति।

उदा०-(ऋ) अरार्यते। संयोगादेर्ऋतः-(स्मृ) सास्मर्यते। (ध्वृ) दाध्वर्यते। (स्मृ) सास्मर्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्तिसंयोगाद्योः) अर्ति=ऋ और संयोगादि (ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(ऋ) **अरार्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक प्राप्त करता है। **संयोगादि ऋकारान्त-(स्मृ) सास्मर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक शब्द करता है। (ध्वृ) **दाध्वर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक कुटिलता करता है। (स्मृ) **सास्मर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक स्मरण करता है।*

***सिद्धि-अरार्यते।** ऋ+यङ्। ऋ+य। अर्+य। अ+र्य-र्य। अ+र-अ-र्य। अ+र् आ-र् य। अरार्य+लट्। अरार्यते।*

*यहां 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प०) से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्विर्वचन की प्राप्ति में '**अजादेर्द्वितीयस्य**' (६।१।२) के नियम से द्वितीय एकाच् अवयव (र्य) को द्वित्व होता है। '**हलादि शेषः**' (७।४।६०) से अभ्यास का आदि हल् (र्अ) शेष रहता है। '**दीर्घोऽकितः**' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ (रा) होता है। ऐसे ही संयोगादि और ऋकारान्त '**स्वृ शब्दोपतापयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**सास्वर्यते।** '**ध्वृ हूर्च्छने**' (भ्वा०प०) धातु से-**दाध्वर्यते।** '**स्मृ चिन्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से-**सास्मर्यते।** '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुणप्रतिषेध प्राप्त था।*

ई-आदेशः-

(११) ई घ्राध्मोः।३१।

प०वि०-ई १।१ (सु-लुक्) घ्राध्मोः ६।२।

स०-घ्राश्च ध्माश्च तौ घ्राध्मौ, तयोः-घ्राध्मोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, यङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-घ्राध्मोरङ्गयोर्यङि ईः।

अर्थः-घ्राध्मोरङ्गयोर्यङि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-(घ्रा) जेघ्रीयते। **(ध्मा)** देध्मीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(घ्राध्मोः) घ्रा, ध्मा इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-(घ्रा) **जेघ्रीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक सूंघता है। (ध्मा) **देध्मीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक फूंकता है। मुख से वंशी आदि वाद्य बजाता है।*

*सिद्धि-**जेघ्रीयते**। यहां 'घ्रा गन्धोपादाने' (जु०प०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'घ्रा' को 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश (घ्री) होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्विर्वचन होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से अभ्यास-घकार को जश् जकार होता है। ऐसे ही '**ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**देध्मीयते**।*

ई-आदेशः--

(१२) अस्य च्वौ।३२।

प०वि०-अस्य ६।१ च्वौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, ईरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्याऽङ्गस्य च्वौ ईः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य च्वौ प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-शुक्ली भवति, शुक्ली स्यात्। खट्वी करोति, खट्वी स्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-**शुक्ली भवति**। जो शुक्ल (श्वेत) नहीं है वह शुक्ल होता है। **शुक्ली स्यात्**। जो शुक्ल नहीं है वह शुक्ल होवे। **खट्वी करोति**। जो खट्वा (खाट) नहीं है उसे खट्वा बनाता है। **खट्वी स्यात्**। जो खट्वा नहीं है वह खट्वा होवे।*

*सिद्धि-**शुक्ली भवति**। यहां 'शुक्ल' शब्द से '**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शुक्ल' शब्द को 'च्वि' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६७) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही अस्ति के योग में-**शुक्ली स्यात्**। 'खट्वा' शब्द से-**खट्वी करोति, खट्वी स्यात्**। यह '**च्वौ च**' (७।४।४६) से प्राप्त दीर्घादेश का अपवाद है।*

ई-आदेशः--

(१३) क्यचि च।३३।

प०वि०-क्यचि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ईः, अस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्याऽङ्गस्य क्यचि ईः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य क्यचि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-पुत्रीयति। खट्वीयति। घटीयति। मालीयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-**पुत्रीयति।** वह अपने पुत्र की इच्छा करता है। **खट्वीयति।** वह अपनी खट्वा (खाट) की इच्छा करता है। **घटीयति।** वह अपने घट (घड़ा) की इच्छा करता है। **मालीयति।** वह अपनी माला की इच्छा करता है।*

***सिद्धि-पुत्रीयति।** यहां 'पुत्र' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पुत्र' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। ऐसे ही **'खट्वीयति'** आदि। यह **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से प्राप्त दीर्घादेश का अपवाद है।*

निपातनम्--

(१४) अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु।३४।

प०वि०-अशनाय-उदन्य-धनायाः १।३ बुभुक्षा-पिपासा-गर्धेषु ७।३।

स०-अशनायश्च उदन्यश्च धनायश्च ते-अशनायोदन्यधनायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बुभुक्षा च पिपासा च गर्धश्च ते बुभुक्षापिपासागर्धाः, तेषु-बुभुक्षापिपासागर्धेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यचि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अशनायोदन्यधनायाः क्यचि बुभुक्षापिपासागर्धेषु निपातनम्।

अर्थः-अशनायोदन्यधनायाः शब्दाः क्यचि परतो यथासङ्ख्यं बुभुक्षापिपासागर्धेष्वर्थेषु निपात्यन्ते। **उदाहरणम्**-

(१) **अशनाय**-अशनायतीति भवति, बुभुक्षा चेत्। 'अशनीयति' इत्यन्यत्र भवति। अशनशब्दस्य क्यचि परत आत्वं निपात्यते।

(२) **उदन्य**-उदन्यतीति भवति, पिपासा चेत्। 'उदकीयति' इत्यन्यत्र भवति। उदकशब्दस्य क्यचि परत उदन्नादेशो निपात्यते।

(३) **धनाय**-धनायतीति भवति, गर्धश्चेत्। 'धनीयति' इत्यन्यत्र भवति। **धनशब्दस्य क्यचि परत आत्वं निपात्यते।**

आर्यभाषाः अर्थ- *(अशनायोदन्यधनायाः) अशनाय, उदन्य, धानाय ये शब्द (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (बुभुक्षापिपासासागर्धेषु) बुभुक्षा, पिपासा, गर्ध अर्थों में निपातित है। उदाहरण–*

*(१) **अशनाय-अशनायति।** उसे बुभुक्षा है। बुभुक्षा=भोक्तुमिच्छा। खाने की इच्छा। बुभुक्षा अर्थ से अन्यत्र-**अशनीयति।** वह अशन (भोजन) चाहता है। यहां 'अशन' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर आकरादेश निपातित है।*

*(२) **उदन्य-उदन्यति।** उसे पिपासा है। पातुमिच्छा=पिपासा। पीने की इच्छा। पिपासा से अन्यत्र-**उदकीयति।** वह उदक=जल चाहता है। 'उदक' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर उदन्-आदेश निपातित है।*

*(३) **धनाय-धनीयति।** वह गर्ध (लालच) करता है। गर्ध से अन्यत्र-**धनीयति।** वह धन चाहता है। 'धन' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर आकारादेश निपातित है।*

सिद्धि-अशनायति *आदि शब्दों में '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। निपातन-कार्य उपरिलिखित है।*

उक्तप्रतिषेधः–

(१५) न च्छन्दस्यपुत्रस्य।३५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१ अपुत्रस्य ६।१।

स०-न पुत्र इति अपुत्रः, तस्य-अपुत्रस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, अस्य, क्यचि, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपुत्रस्याऽस्याङ्गस्य क्यचि न।

अर्थः-छन्दसि विषये पुत्रवर्जितस्याऽकारान्तस्याऽङ्गस्य क्यचि परतो यदुक्तं तन्न भवति। किं चोक्तम् ? दीर्घत्वम्, ईत्वं च।

उदा०-मित्रयुः (मै०सं० २।६।१२)। स स्वेदयुः (मै०सं० ४।१२।२)। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः (ऋ० ३।२७।१)।

आर्यभाषाः अर्थ- *(छन्दसि) वेदविषय में (अपुत्रस्य) पुत्र शब्द को छोड़कर (अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है, वह नहीं होता है। क्या कहा गया है ? दीर्घ और ईकारादेश।*

*उदा०-**मित्रयुः** (मै०सं० २।६।१२)। मित्रयुः=अपने मित्रों की इच्छा करनेवाला पुरुष। **स स्वेदयुः** (मै०सं० ४।१२।२)। स्वदेयुः=पुरुषार्थ की इच्छा करनेवाला पुरुष। **देवाञ्जिगाति सुम्नयुः** (ऋ० ३।२७।१)। सुम्नयुः=अपने सुम्न=मोक्षसुख की इच्छा करनेवाला पुरुष।*

सिद्धि-मित्रयुः। यहां 'मित्र' शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। पश्चात् 'मित्रय' धातु से 'क्याच्छन्दसि' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय होता है। 'अतो लोपः' (६।४।४८) से अकार का लोप होता है। यहां 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (७।४।२५) से प्राप्त दीर्घत्व और 'क्यचि च' (७।४।३३) से प्राप्त इकारादेश नहीं होता है। ऐसे ही 'स्वेद' शब्द से-स्वेदयुः। 'सुम्न' शब्द से-सुम्नयुः।

निपातनम्—

(१६) दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति।३६।

प०वि०-दुरस्युः १।१ द्रविणस्युः १।१ वृषण्यति क्रियापदम्, रिषण्यति क्रियापदम्।

अनु०-क्यचि, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति इति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति, रिषण्यति इत्येते शब्दाः क्यचि प्रत्यये परतो निपात्यन्ते। **उदाहरणम्—**

(१) **दुरस्युः-**अवबाढो दुरस्युः (का०सं० २।११) दुष्टीयतीति प्राप्ते।

(२) **द्रविणस्युः-**द्रविणस्युर्विपन्यया (ऋ० ६।१६।३४) द्रविणीयतीति प्राप्ते।

(३) **वृषण्यति-**वृषण्यति (ऋ० ९।५।६) वृषीयतीति प्राप्ते।

(४) **रिषण्यति-**रिषण्यति (ऋ० २।२३।१२) रिष्यतीति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दुरस्यु०) दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति, रिषण्यति ये शब्द (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर निपातित किये जाते हैं।*

*उदा०-(दुरस्युः) **अवबाढो दुरस्युः** (का०सं० २।११) दुष्टीयति यह रूप प्राप्त था। दुरस्युः=दुष्ट की इच्छा करनेवाला। (द्रविणस्युः) **द्रविणस्युर्विपन्यया** (ऋ० ६।१६।३४) द्रविणीयति यह रूप प्राप्त था। द्रविणस्युः=द्रविण (धन) की इच्छा करनेवाला। (वृषण्यति) **वृषण्यति** (ऋ० ९।५।६) वृषीयति यह रूप प्राप्त था। गौ वृष=सांड को चाहती है। (रिषण्यति) **रिषण्यति** (ऋ० २।२३।१२) रिषण्यति यह रूप प्राप्त था। वह नाश चाहता है।*

सिद्धि-(१) दुरस्युः। यहां 'दुष्ट' शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दुष्ट' शब्द को 'दुरस्' आदेश निपातित है। 'क्याच्छन्दसि' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय होता है।

(२) द्रविणस्युः । यहां 'द्रविण' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'द्रविण' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'द्रविणस्' आदेश निपातित है। पूर्ववत् 'उ' प्रत्यय होता है।

(३) वृषण्यति। यहां 'वृष' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृष' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'वृषन्' आदेश निपातित है।

(४) रिषण्यति। यहां 'रिष्ट' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रिष्ट' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'रिषन्' आदेश निपातित है।

आत्-आदेशः–

(१७) अश्वाघस्यात्।३७।

प०वि०–अश्वाघस्य ६।१ आत् १।१।

स०–अश्वश्च अघश्च एतयोः समाहारः-अश्वाघम्, तस्य-अश्वाघस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचि, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अश्वाघस्याऽङ्गस्य क्यचि आत्।

अर्थः–छन्दसि विषये अश्वाघयोरङ्गयोः क्यचि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति।

उदा०–**(अश्वः)** अश्वायन्तो मघवन् (**ऋ०** ७।३२।२)। **(अघः)** मा त्वा वृका अघायवो विदन् (यजु० ४।३४)।

आर्यभाषाः ***अर्थ***–*(छन्दसि) वेदविषय में (अश्वाघस्य) अश्व, अघ इन (अङ्गस्य) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है।*

*उदा०–**(अश्व) अश्वायन्तो मघवन्** (ऋ० ७।३२।२)। **अश्वायन्तः।** अश्व की इच्छा करनेवाले। **(अघ) मा त्वा वृका अघायवो विदन्** (यजु० ४।३४)। **अघायवः।** अघायुः=पाप की इच्छा करनेवाला।*

*सिद्धि–(१) **अश्वायन्तः।** यहां 'अश्व' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अश्व' शब्द को आकारादेश होता है। पश्चात् 'अश्वाय' धातु से **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२६) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है-**अश्वायन्, अश्वायन्तौ, अश्वायन्तः।***

*(२) **आघायवः।** यहां 'अघ' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अघ' शब्द को आकारादेश होता है। **'क्याच्छन्दसि'** (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। **अघायुः, अघायू, अघायवः।***

आत्-आदेशः–

(१८) देवसुम्नयोर्यजुषि काठके।३८।

प०वि०–देव-सुम्नयोः ६।२ यजुषि ७।१ काठके ७।१।

स०–देवश्च सुम्नं च ते देवसुम्ने, तयोः-देवसुम्नयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचि, आदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यजुषि काठके देवसुम्नयोरङ्गयोः क्यचि आत्।

अर्थः–यजुषि काठके विषये देवसुम्नयोरङ्गयोः क्यचि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति।

उदा०–**(देवः)** देवायते यजमानाय (काठ०सं० २।९)। **(सुम्नम्)** सुम्नायन्तो हवामहे (काठ०सं० ८।१७)।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(यजुषि काठके) यजुर्वेद की काठकसंहिता में (देवसुम्नयोः) देव, सुम्न इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है।*

*उदा०–**(देव)** **देवायते यजमानाय** (काठ०सं० २।९)। देवायते=देव (विद्वान्) के इच्छुक के लिये। **(सुम्न) सुम्नायन्तो हवामहे** (काठ०सं० ८।१७)। सुम्नायन्तः=मोक्षसुख के इच्छुक हम लोग।*

सिद्धि–देवायते। *यहां 'देव' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'देव' शब्द को आकारादेश होता है। तत्पश्चात् 'देवाय' धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ-आदेश है। **देवायन्, देवायन्तौ, देवायन्तः। देवायते** (४।१)। ऐसे ही 'सुम्न' शब्द से-**सुम्नायन्तः** (१।३)।*

लोपादेशः–

(१९) कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः।३९।

प०वि०–कवि-अध्वर-पृतनस्य ६।१ ऋचि ७।१ लोपः १।१।

स०–कविश्च अध्वरश्च पृतना च एतेषां समाहारः कव्यध्वरपृतनम्, तस्य-कव्यध्वरपृतनस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचीति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऋचि कव्यध्वरपृतनस्य क्यचि लोपः।

अर्थः-ऋचि विषये कव्यध्वरपृतनानामऽङ्गानां क्यचि प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(**कविः**) स पूर्वया निविदा कव्यता (ऋ० १।९६।२)। (**अध्वरः**) शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहि (ऋ० ३।५३।३)। (**पृतना**) वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् (ऋ० १।३३।१२)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋचि) ऋग्वेद विषय में (कव्यध्वरपृतनानाम्) कवि, अध्वर, पृतना इन (अङ्गानाम्) अङ्गों का (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**(कवि) स पूर्वया निविदा कव्यता** (ऋ० १।९६।२)। कवि की इच्छाकरनेवाले के द्वारा। **(अध्वर) शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहि** (ऋ० ३।५३।३)। अध्वर्यो! हे हिंसारहित यज्ञ की इच्छा करनेवाले! **(पृतना) वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्** (ऋ० १।३३।१२)। पृतन्युम्=अपनी सेना के इच्छुक शत्रु को।*

सिद्धि-(१) कव्यता। *यहां 'कवि' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'कवि' शब्द के अन्त्य इकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'कव्य' धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। **कव्यन्, कव्यन्तौ, कव्यन्तः, कव्यता** (३।१)।*

(२) अध्वर्युः। *यहां 'अध्वर' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अध्वर' शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'अध्वर्य' धातु से '**क्याच्छन्दसि**' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। '**अतो लोपः**' (६।४।४८) से अकार का लोप होता है। सम्बुद्धि में-हे **अध्वर्यो**!*

(३) पृतन्युम्। *यहां 'पृतना' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पृतना' शब्द के अन्त्य आकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'पृतन्य' धातु से '**क्याच्छन्दसि**' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। द्वितीया एकवचन में-**पृतन्युम्**।*

इत्-आदेशः-

(२०) द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति।४०।

प०वि०-द्यति-स्यति-मा-स्थाम् ६।३ इत् १।१ ति ७।१ किति ७।१।

स०-द्यतिश्च स्यतिश्च माश्च स्थाश्च ते द्यतिस्यतिमास्थाः, तेषाम्-द्यतिस्यतिमास्थाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क् इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्यतिस्यतिमास्थामऽङ्गानां ति किति इत्।

अर्थः-द्यतिस्यतिमास्थामऽङ्गानां तकारादौ किति प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-(द्यतिः) निर्दितः, निर्दितवान्। **(स्यतिः)** अवसितः, अवसितवान्। **(मा)** मितः, मितवान्। **(स्था)** स्थितः, स्थितवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(द्यतिस्यतिमास्थाम्) द्यति=दो अवखण्डने स्यति=षो अन्तकर्मणि, मा, स्था इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(द्यति) **निर्दितः, निर्दितवान्।** उसने अवखण्डित किया, कतरा। **(स्यति) अवसितः, अवसितवान्।** उसने समाप्त किया। **(मा) मितः, मितवान्।** उसने मापा। **(स्था) स्थितः, स्थितवान्।** वह ठहरा।*

*सिद्धि-(१) **निर्दितः।** यहां निस्-उपसर्गपूर्वक **'दो अवखण्डने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दा' के आकार को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। **'आदेच उपदेशेऽशिति'** (६।१।४५) से आकारादेश होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**निर्दितवान्।***

*(२) **अवसितः।** अव-उपसर्गपूर्वक **'षो अन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **मितः।** **'मा माने'** (अदा०प०)। **'माङ् माने शब्दे च'** (जु०आ०)। **'मेङ् प्रणिदाने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। **'गामादाग्रहणेष्वविशेषः'** इस परिभाषा से 'मा' रूपवाली सब धातुओं का ग्रहण किया जाता है।*

*(४) **स्थितः।** **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०)।*

इत्-आदेशविकल्पः--

(२१) शाच्छोरन्यतरस्याम्।४१।

प०वि०-शाच्छोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-शाश्च छाश्च तौ शाच्छौ, तयोः-शाच्छोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इत्, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-शाच्छोरङ्गयोस्ति किति अन्यतरस्याम् इत्।

अर्थः-शाच्छोरङ्गयोस्तकारादौ किति प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०-(**शा**) निशितम्, निशातम्। निशितवान्, निशातवान्। (**छा**) अवच्छितम्, अवच्छातम्। अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(शाच्छोः) शा, छा, इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(शा) **निशितः, निशातः। निशितवान्, निशातवान्।** उसने पतला किया, छीला। (छा) **अवच्छितः, अवच्छातः। अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।** उसने छेदन किया, काटा।*

*सिद्धि-**निशितः।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक '**शो तनूकरणे**' (दि०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। '**आदेच उपदेशेऽशिति**' (६।१।४५) से ओकार को आकारादेश होता है-(शा)। इस सूत्र से 'शा' के आकार को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**निशातः।** क्तवतु प्रत्यय में-**निशितवान्, निशातवान्।** ऐसे ही अव-उपसर्गपूर्वक 'छो छेदने' (दि०प०) धातु से-**अवच्छितः, अवच्छातः।** क्तवतु प्रत्यय में-**अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।***

हि-आदेशः-

(२२) दधातेर्हिः।४२।

प०वि०-दधातेः ६।१ हिः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-दधातेरङ्गस्य ति किति हिः।

अर्थः-दधातेरङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतो हिरादेशो भवति।

उदा०-हितः, हितवान्। हित्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(दधातेः) दधाति=धा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (हिः) हि-आदेश होता है।*

*उदा०-**हितः, हितवान्।** उसने धारण-पोषण किया। **हित्वा।** धारण-पोषण करके।*

*सिद्धि-(१) **हितः।** यहां 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'धा' धातु को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'हि' आदेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**हितवान्।***

*(२) **हित्वा।** यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

हि-आदेशः–

(२३) जहातेश्च क्त्वि।४३।

प०वि०–जहातेः ६।१ च अव्ययपदम्, क्त्वि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, हिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–जहातेरङ्गस्य च क्त्वि हिः।

अर्थः–जहातेरङ्गस्य च क्त्वा-प्रत्यये परतो हिरादेशो भवति।

उदा०–हित्वा राज्यं वनं गतः। दयानन्दो गृहं हित्वा गतः। स हित्वा गच्छति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(जहातेः) जहाति=ओहाक् त्यागे इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर (हिः) हि-आदेश होता है।*

*उदा०-**हित्वा राज्यं वनं गतः।** राम राज्य को छोड़कर वन में चला गया। **दयानन्दो गृहं हित्वा गतः।** दयानन्द घर-परिवार को छोड़कर चला गया। **स हित्वा गच्छति।** वह छोड़कर जाता है।*

*सिद्धि-**हित्वा।** यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हा' धातु को 'क्त्वा' प्रत्यय परे होने पर 'हि' आदेश होता है।*

हि-आदेशविकल्पः–

(२४) विभाषा छन्दसि।४४।

प०वि०–विभाषा १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, हिः, जहातेः, क्त्वीति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि जहातेरङ्गस्य क्त्वि विभाषा हिः।

अर्थः–छन्दसि विषये जहातेरङ्गस्य क्त्वा-प्रत्यये परतो विकल्पेन हिरादेशो भवति।

उदा०–हित्वा शरीरं यातव्यम् (द्र०-तै०ब्रा० २।५।६।५)। हात्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (जहातेः) जहाति=ओहाक् त्यागे इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (हिः) हि-आदेश होता है।*

उदा०-हित्वा शरीरं यातव्यम् (द्र०-तै०ब्रा० २।५।६।५)। शरीर को छोड़कर जाना है। हात्वा। छोड़कर।

सिद्धि-'हित्वा' इस पद की सिद्धि पूर्ववत् (७।४।४३) है। विकल्प-पक्ष में हि-आदेश नहीं है-हात्वा। यहां 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (६।४।६६) से छन्द में ईकारादेश नहीं होता है।

निपातनम्-

(२५) सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च।४५।

प०वि०-सुधित-वसुधित-नेमधित-धिष्व-धिषीय १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-सुधितं च वसुधितं च नेमधितं च धिष्व च धिषीय च एतेषां समाहारः सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयमिति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयपदानि निपात्यन्ते।

उदा०-**(सुधितम्)** गर्भं माता सुधितम् (ऋ० १०।२७।१६)। सुहितमिति प्राप्ते। **(वसुधितम्)** वसुधितमग्नौ जुहोति। वसुहितमिति प्राप्ते। **(नेमधितम्)** नेमधिता न पौंस्या (ऋ० १०।९३।१३)। नेमहिता इति प्राप्ते। **(धिष्व)** स्तोमं धिष्व महामह (ऋ० ८।३३।१५)। धत्स्वेति प्राप्ते। **(धिषीय)** धिषीय (तै०सं० १।६।४।४)। धासीयेति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुधित०) सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व, धिषीय ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-(सुधित) **सुधितं माता गर्भम्** (ऋ० १०।२७।१६)। सुहितम् यह रूप प्राप्त था। **सुधितम्।** धारण-पोषण किया। (वसुधित) **वसुधितमग्नौ जुहोति।** वसुहितम् यह रूप प्राप्त था। **वसुधितम्।** वसुओं के द्वारा धारण-पोषण की हुई हवि। (नेमधित) **नेमधिता न पौंस्या** (ऋ० १०।९३।१३)। नेमहिता यह रूप प्राप्त था। **नेमहिता।** अर्धांश में धारण-पोषण की हुई। (धिष्व) **स्तोमं धिष्व महामह** (ऋ० ८।३३।१५)। धत्स्व यह रूप प्राप्त था। **धिष्व।** तू धारण-पोषण कर। (धिषीय) **धिषीय** (तै०सं० १।६।४।४)। धासीय यह रूप प्राप्त था। **धिषीय।** मैं धारण-पोषण करूं।*

*सिद्धि-(१) **सुधितम्**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयो:' (जु०उ०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'धा' धातु को 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश अथवा 'क्त' प्रत्यय को इडागम निपातत है। ऐसे ही वसु-उपपद 'धा' धातु से-**वसुधितम्**। नेम-उपपद 'धा' धातु से-**नेमधितम्**।*

*(२) **धिष्व**। यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से '**लोट् च**' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'थास्' आदेश, '**सवाभ्यां वामौ**' (३।४।९१) से एकार को वकारादेश है। इस सूत्र से 'धा' धातु को इकारादेश अथवा थास् (से) प्रत्यय को इडागम और '**श्लौ**' (६।१।१०) से प्राप्त द्विर्वचन का अभाव निपातित है।*

*(३) **धिषीय**। यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से '**आशिषि लिङ्लोटौ**' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय, '**लिङः सीयुट्**' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और लकार के स्थान में इट् (उत्तमपुरुष एकवचन) आदेश है। इस सूत्र से 'धा' को इकारादेश अथवा सीयुट् प्रत्यय को इडागम निपातित है।*

दद्-आदेशः--

(२६) दो दद् घोः।४६।

प०वि०-दः ६।१ दद् १।१ घोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-घोर्दोऽङ्गस्य ति किति दद्।

अर्थः-घु-संज्ञकस्य दा-अङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतो ददाऽऽदेशो भवति।

उदा०-दत्तः, दत्तवान्। दत्तिः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(घोः) घु-संज्ञक (दः) दा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (दद्) दद् आदेश होता है।*

उदा०-दत्तः, दत्तवान्। उसने दिया। दत्तिः। दान करना।

*सिद्धि-(१) दत्तः। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दा' धातु को तकारादि, कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'दद्' आदेश होता है। '**खरि च**' (८।४।५४) से दकार के स्थान में चर् तकारादेश है। क्तवतु प्रत्यय में-**दत्तवान्**।*

*(२) दत्तिः। यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से '**स्त्रियां क्तिन्**' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

त-आदेशः–

(२७) अच उपसर्गात्तः ।४७।

प०वि०–अचः ५ ।१ उपसर्गात् ५ ।१ तः १ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, ति, किति, दः, घोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अच उपसर्गाद् घोर्दोऽङ्गस्य ति किति तः ।

अर्थः–अजन्ताद् उपसर्गाद् उत्तरस्य घु-संज्ञकस्य दा-अङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति ।

उदा०–(**प्र**) प्रत्तम् । (**अव**) अवत्तम् । (**नि**) नीत्तम् । (**परि**) परीत्तम् ।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अचः) अजन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (घोः) घु-संज्ञक (दः) दा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है ।*

*उदा०–(प्र) **प्रत्तम्** । उसने प्रदान किया । (अव) **अवत्तम्** । उसने अवदान किया । (नि) **नीत्तम्** । उसने निदान किया । (परि) **परीत्तम्** । उसने परिदान किया ।*

*सिद्धि–**प्रत्तम्** । प्र+दा+क्त । प्र+दत्+त । प्र+त्त्+त । प्र+त्०+त । प्रत्त+सु । प्रत्तम् ।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३ ।२ ।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है । इस सूत्र से अजन्त उपसर्ग 'प्र' से उत्तर 'दा' धातु के आकार को तकारादि कित् 'त' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है । 'त' में अकार मुखसुखार्थ (उच्चारण-सुविधा के लिये) है । **'खरि च'** (८ ।४ ।५४) से दकार को चर् तकारादेश और **'झरो झरि सवर्णे'** (८ ।४ ।६५) से मध्यवर्ती तकार का लोप होता है । ऐसे ही अव-उपसर्गपूर्वक से–**अवत्तम्** । नि-उपसर्गपूर्वक से–**नीत्तम्** । **'दस्ति'** (६ ।३ ।१२३) से इगन्त उपसर्ग 'नि' को दीर्घ होता है । परि-उपसर्गपूर्वक से **परीत्तम्** । पूर्ववत् दीर्घ है ।*

त-आदेशः–

(२८) अपो भि ।४८।

प०वि०–अपः ५ ।१ भि ७ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, त इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अपोऽङ्गस्य भि तः ।

अर्थः–अपोऽङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति ।

उदा०–अद्भिः । अद्भ्यः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपः) अप् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (भि) भकारादि प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०-**अद्भिः।** जल के द्वारा। **अद्भ्यः।** जल के लिये/से।*

सिद्धि-अद्भिः। *अप्+भिस्। अत्+भिस्। अद्+भिस्। अद्भिः।*

*यहां 'अप्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अप्' के अन्त्य पकार को भकारादि 'भिस्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को जश् दकारादेश होता है। ऐसे ही 'भ्यस्' प्रत्यय में-**अद्भ्यः।***

त-आदेशः--

(२६) सः स्यार्धधातुके।४६।

प०वि०-सः ६।१ सि ७।१ आर्धधातुके ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोऽङ्गस्य सि आर्धधातुके तः।

अर्थः-सकारान्तस्याऽङ्गस्य सकारादावाऽऽर्धधातुके प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-स वत्स्यति। अवत्स्यत्। विवत्सति। स जिघत्सति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) सकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (सि) सकारादि (आर्धधातुके) आर्धधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०-**स वत्स्यति।** वह निवास करेगा। **अवत्स्यत्।** यदि वह निवास करता। **विवत्सति।** वह निवास करना चाहता है। **स जिघत्सति।** वह खाना चाहता है।*

सिद्धि-(१) वत्स्यति। *यहां **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'वस्' धातु के सकार को सकारादि आर्धधातुक 'स्य' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। ऐसे ही लृङ् लकार में-**अवत्स्यत्।***

*(२) **विवत्सति।** यहां पूर्वोक्त 'वस्' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वस्' के सकार को सकारादि, आर्धधातुक 'सन्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास को इकारादेश होता है।*

*(३) **जिघत्सति।** यहां **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'लुङ्सनोर्घस्लृ'** (२।४।३७) से 'घस्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। इस सूत्र से*

'घस्' के सकार को सकारादि, आर्धधातुक 'सन्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास-घकार को जकार और 'सन्यतः' (७।४।७९) से इकारादेश होता है।

सकारलोपः–

(३०) तासस्त्योर्लोपः ।५०।

प०वि०–तास्-अस्त्योः ६।२ लोपः १।१।

स०–तास् च अस्तिश्च तौ तासस्ती, तयोः-तासस्त्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, सः, सीति चानुवर्तते।

अन्वयः–तासस्त्योरङ्गयोः सः सि लोपः।

अर्थः–तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य सकारादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०–**(तास्)** त्वं कर्तासि, कर्तासे। **(अस्तिः)** त्वम् असि। त्वं सुखं व्यतिसे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार का (सि) सकारादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–(तास्) **त्वं कर्तासि, कर्तासे।** तू कल करेगा। (अस्ति) **त्वम् असि।** तू है। **त्वं सुखं व्यतिसे।** तू परस्पर सुखपूर्वक रहता है।*

*सिद्धि-(१) **कर्तासि।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तासि' विकरण-प्रत्यय होता है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार का सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही थास् (से) प्रत्यय में-**कर्तासे।***

*(२) **असि।** यहां 'अस भुवि' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।३।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'अस्' धातु के सकार का सकारादि 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। अस्+सि। अ०+सि। असि। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **व्यतिसे।** यहां वि+अतिपूर्वक 'अस्' धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'थास्' आदेश और 'थासः से'*

*(३।४।८०) से 'थास्' को 'से' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' के सकार का, सकारादि 'से' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**श्नसोरल्लोपः**' (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है। '**कर्तरि कर्मव्यतिहारे**' (१।३।१४) से आत्मनेपद होता है। पूर्ववत् 'शप्' का लुक् होता है।*

सकारलोपः–

(३१) रि च।५१।

प०वि०–रि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, सः, तासस्त्योः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तासस्त्योरङ्गयोः सो रि च लोपः।

अर्थः–तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य रेफादौ प्रत्यये परतश्च लोपो भवति।

उदा०–**(तास्)** कर्तारौ, कर्तारः। अध्येतारौ, अध्येतारः। **(अस्ति) अस्**–ते सुखं व्यतिरे।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार का (रि) रेफादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**(तास्) कर्तारौ।** वे दोनों कल करेंगे। **कर्तारः।** वे सब कल करेंगे। **अध्येतारौ।** वे दोनों कल पढ़ेंगे। **अध्येतारः।** वे सब कल पढ़ेंगे। **(अस्ति) अस्–ते सुखं व्यतिरे।** वे परस्पर सुखपूर्वक रहे।*

*सिद्धि–(१) **कर्तारौ।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**अनद्यतने लुट्**' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और '**लुटः प्रथमस्य डारौरसः**' (२।४।८५) से 'तस्' के स्थान में 'रौ' आदेश है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से तासि विकरण प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार का रेफादि 'रौ' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही झि (रस्) प्रत्यय में–**कर्तारः।** ऐसे ही नित्य अधि-पूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से–**अध्येतारौ, अध्येतारः।***

*(२) **व्यतिरे।** व्यति+अस्+लिट्। व्यति+अस्+झ। व्यति+अस्+इरेच्। व्यति+अस्+रे। व्यति+अ०+रे। व्यति+०+रे। व्यतिरे।*

*यहां वि+अतिपूर्वक '**अस भुवि**' (अदा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झ' आदेश, '**लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३।४।८१) से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश और '**इरयो रे**'*

*(६ ।४ ।७६) से 'इरेच्' के स्थान में 'रे' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' के सकार का रेफादि 'रे' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**श्नसोरल्लोपः**' (६ ।४ ।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है।*

ह-आदेशः–

(३२) ह एति ।५२ ।

प०वि०–हः १ ।१ एति ७ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, सः, तासस्त्योरिति चानुवर्तते। लोप इति च नानुवर्तनीयम् ।

अन्वयः–तासस्त्योरङ्गयोः स एति हः ।

अर्थः–तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य स्थाने एकारादौ प्रत्यये परतो हकारादेशो भवति ।

उदा०–अहं कर्ताहे। अहं सुखं व्यतिहे।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार के स्थान में (एति) एकारादि प्रत्यय परे होने पर (हः) हकारादेश होता है।*

*उदा०–**अहं कर्ताहे।** मैं कल करूंगा। **अहं सुखं व्यतिहे।** मैं परस्पर सुखपूर्वक रहा।*

***सिद्धि**–(१) **कर्ताहे।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुट्' प्रत्यय है। '**तिप्तसझि०**' (३ ।४ ।७८) से लकार के स्थान में 'इट्' (उत्तमपुरुष एकवचन) आदेश है। '**टित आत्मनेपदानां टेरे**' (३ ।४ ।७९) से 'इट्' के टि-भाग (इ) को एकारादेश होता है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३ ।१ ।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार को एकारादि 'ए' प्रत्यय परे होने पर हकारादेश होता है।*

*(२) **व्यतिहे।** यहां वि+अति उपसर्गपूर्वक '**अस भुवि**' (अदा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३ ।२ ।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। '**श्नसोरल्लोपः**' (६ ।४ ।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है।*

लोपादेशः–

(३३) यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ।५३ ।

प०वि०–यि-इवर्णयोः ७ ।२ दीधी-वेव्योः ६ ।२ ।

स०–यिश्च इवर्णश्च तौ यीवर्णौ, तयोः–यीवर्णयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यकारे इकार उच्चारणार्थः। दीधीश्च वेवीश्च तौ दीधीवेव्यौ, तयोः–दीधीवेव्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीधीवेव्योरङ्गयोर्यीवर्णयोर्लोपः।

अर्थः-दीधीवेव्योरङ्गयोर्यकारादाविकारादौ च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(दीधी) यकारादौ-आदीध्य गतः। आदीध्यते। **इकारादौ**-आदीधिता। आदीधीत। **(वेवी) यकारादौ**-आवेव्य गतः। आवेव्यते। **इकारादौ**-आवेविता। आवेवीत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दीधीवेव्योः) दीधी, वेवी इन (अङ्गस्योः) अङ्गों का (यीवर्णयोः) यकारादि और इकारादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(दीधी) यकारादि में-**आदीध्य गतः।** वह प्रसिद्ध होकर गया। **आदीध्यते।** उसके द्वारा प्रसिद्ध हुआ जाता है। **इकारादि में-आदीधिता।** प्रसिद्ध होनेवाला। **आदीधीत।** वह प्रसिद्ध होवे। **(वेवी) यकारादि में-आवेव्य गतः।** वह आकर गया। **आवेव्यते।** उसके द्वारा आया जाता है। **इकारादि में-आवेविता।** आनेवाला। **आवेवीत।** वह आये।*

*सिद्धि-(१) **आदीध्य।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः'** (अदा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय और इसके स्थान में **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से 'दीधी' के ईकार का यकारादि ल्यप् (य) प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही **'वेवीङ् वेतिना तुल्ये'** (अदा०आ०) धातु से-**आवेव्य।***

*(२) **आदीध्यते।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'दीधी' धातु से भाव-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वेवी' धातु से-**आवेव्यते।***

*(३) **आदीधिता।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'दीधी धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'तृच्' को इडागम होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वेवी' धातु से-**आवेविता।***

*(४) **आदीधीत।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'दीधी' धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'त' को सुट् आगम होता है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से सकारों का लोप होता है। इस सूत्र से 'दीधी' के ईकार का इकारादि 'ईय्' (सीयुट्) प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही 'वेवी' धातु से-**आवेवीत।***

इस्-आदेशः–

(३४) सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्।५४।

प०वि०- सनि ७।१ मी-मा-घु-रभ-लभ-शक-पत-पदाम् ६।३ अचः ६।१ इस् १।१।

स०-मीश्च माश्च घुश्च रभश्च लभश्च शकश्च पतश्च पद् च ते मीमाघुरभलभशकपतपदः, तेषाम्-मीमाघुरभलभशकपतपदाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सीति चानुवर्तते।

अन्वयः-मीमाघुरभलभशकपतपदामऽङ्गानामऽचः सि सनि इस्।

अन्वयः-मीमाघुरभलभशकपतपदामऽङ्गानामऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत इसादेशो भवति। **उदाहरणम्–**

धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थ
(१) मी		
(मीञ्)	मित्सति	वह हिंसा करना चाहता है।
(डुमिञ्)	प्रमित्सति	वह फैंकना चाहता है।
(२) मा		
(मा)	मित्सति	वह मांपना चाहता है।
(माङ्)	मित्सते	वह मांपना/शब्द करना चाहता है।
(मेङ्)	अपमित्सते	वह प्रदान करना चाहता है।
(३) घु		
(दा)	दित्सति	वह दान करना चाहता है।
(धा)	धित्सति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
(४) रभ	आरिप्सते	वह आरम्भ करना चाहता है।
(५) लभ	आलिप्सते	वह प्राप्त करना चाहता है।
(६) शक	शिक्षति	वह शक्त (समर्थ) होना चाहता है।
(७) पत	पित्सति	वह गिरना चाहता है।
(८) पद	प्रपित्सते	वह चलना चाहता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(मीमा०) मी, मा, घु=घु-संज्ञक, रभ, लभ, शक, तप, पद इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय होने पर (इस्) इस् आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) मित्सति। मी+सन्। म् इस्+स। मित्+स। मित्-मित्+स। ०-मित्+स। मित्स+लट्। मित्सति।

यहां **'मीञ् हिंसायाम्'** (क्र्या०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मी' के अच् ईकार के स्थान में सकारादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर 'इस्' आदेश होता है। सकारादि 'सन्' का तात्पर्य इडादि 'सन्' न हो। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्वित्व और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। **'सः स्यार्धधातुके'** (७।४।४९) से 'इस्' के सकार को तकारादेश होता है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुमिञ् प्रक्षेपणे'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रमित्सति।** **'मा माने'** (अदा०प०) धातु से-**मित्सति।** **'माङ् माने'** (दि०आ०) धातु से-**मित्सते।** **'मेङ् प्रणिदाने'** (भ्वा०आ०) धातु से-**अपमित्सते।** **'गामादाग्रहणेष्वविशेषः'** इस परिभाषा से 'मा' रूप तीनों धातुओं का ग्रहण किया जाता है। **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से-**दित्सति।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से-**धित्सति।**

(२) आरिप्सते। आङ्+रभ्+सन्। आ+र् इस् भ्+स। आ+र् इ०म्+स। आ+रिभ्-रिभ्+सन्। आ+०-रिभ्+सन्। आ+रिप्+स। आरिप्स+लट्। आरिप्सते।

यहां आङ्- उपसर्गपूर्वक **'रभ राभस्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रभ्' के अच् (अ) के स्थान में इस् आदेश होता है। **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से 'इस्' के सकार का लोप होता है। **'खरि च'** (८।४।५४) से 'रभ्' के भकार को चर् पकार होता है। **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। ऐसे ही **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**अलिप्सते।** **'शक्लृ शक्तौ'** (स्वा०प०) धातु से-शक्षति। **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**पित्सति।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'पद गतौ'** (दि०आ०) धातु से-**प्रपित्सति।**

ईत्-आदेशः-

(३५) आप्ज्ञप्यृधामीत्।५५।

प०वि०-आप्-ज्ञपि-ऋधाम् ६।३ ईत् १।१।

स०-आप् च ज्ञपिश्च ऋध् च ते-आप्ज्ञप्यृधः, तेषाम्-आप्ज्ञप्यृधाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचः, सि, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आप्ज्ञप्यृधामऽङ्गानामऽचः सि सनि ईत्।

अर्थः-आप्ज्ञप्यृधामऽङ्गानामऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-(आप्) स ईप्सति। **(ज्ञपि)** स ज्ञीप्सति। **(ऋध्)** स ईर्त्सति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आप्ज्ञप्यृधाम्) आप्, ज्ञपि, ऋध् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (ईत्) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-(आप्) **स ईप्सति।** वह प्राप्त करना चाहता है। (ज्ञपि) **स ज्ञीप्सति।** वह मारना चाहता है। (ऋध्) **स ईर्त्सति।** वह बढ़ना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **ईप्सति।** आप्+सन्। आप्+स। आ+प्स-प्स। आ+०+प्स। ई+प्स। ईप्स+लट्। ईप्सति।*

*यहां **'आप्लृ व्याप्तौ'** (स्वा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) के नियम से द्वितीय एकाच् अवयव (प्स-प्स) को द्वित्व होता है। **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास (प्स) का लोप होता है। इस सूत्र से 'आप्' के अच् (आ) को ईकारादेश होता है।*

*(२) **ज्ञीप्सति।** ज्ञा+णिच्। ज्ञा+पुक्+इ। ज्ञ+प्+इ। ज्ञप्+इ+सन्। ज्ञप्+०+सन्। ज्ञप्स्-ज्ञप्स। ०+ज्ञप्स। ज्ञीप्स+लट्। ज्ञीप्सति।*

*यहां प्रथम **'ज्ञा अवबोधने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'अर्तिह्रीव्ली०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम होता है। **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वादि-गणसूत्र) से इसकी मित् संज्ञा होकर **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व होता है (ज्ञपि)। तत्पश्चात् 'ज्ञपि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'ज्ञप्स्' को द्वित्व और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास (ज्ञप्स्) का लोप होता है। इस सूत्र से 'ज्ञप्स्' के अच् को इकारादेश होता है।*

*(३) **ईर्त्सति।** यहां **'ऋधु वृद्धौ'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ऋध्' के अच् (ऋ) को ईकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५) से रपरत्व और **'खरि च'** (८।४।५५) से धकार को चर् तकार होता है। शेष कार्य 'ईप्सति' के समान है।*

इत्-आदेशश्च–

(३६) दम्भ इच्च।५६।

प०वि०–दम्भः ६।१ इत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, अचः, सि, सनि, ईदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–दम्भोऽङ्गस्याऽचः सि सनि इत्, ईच्च।

अर्थः–दम्भोऽङ्गस्याऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत इकारादेश ईकारादेशश्च भवति।

उदा०–स धिप्सति, धीप्सति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दम्भः) दम्भ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (च) और (ईत्) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-**स धिप्सति, धीप्सति।** वह ठगना चाहता है।*

सिद्धि-धिप्सति। *दम्भ्+सन्। दभ्+स। दभ्स्-दभ्स। ०+दभ्स। दिभ्स। धिभ्स। धिप्स। धिप्स+लट्। धिप्सति।*

*यहां **'दम्भु दम्भने'** (स्वा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'हलन्ताच्च'** (१।२।१०) से 'सन्' को किद्वत् होकर **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होकर **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। इस सूत्र से 'दम्भ्' के अच् (अ) को इकारादेश होता है। **'एकाचो बशो भष् झशन्तस्य स्ध्वोः'** (८।२।३७) से 'दम्भ्' के बश् दकार को भष् धकार और **'खरि च'** (८।४।४४) से 'दम्भ्' के भकार को चर् पकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में ईकारादेश होता है-**धीप्सति।***

गुणविकल्पः–

(३७) मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा।५७।

प०वि०–मुचः ६।१ अकर्मकस्य ६।१ गुणः १।१ वा अव्ययपदम्।

स०–न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्य-अकर्मकस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, सि, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्मकस्य मुचोऽङ्गस्य सि सनि वा गुणः।

अर्थः-अकर्मकस्य मुचोऽङ्गस्य सकारादौ सनि प्रत्यये परतो विकल्पेन गुणो भवति।

उदा०-मोक्षते वत्सः स्वयमेव। मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकर्मकस्य) अकर्मक (मुचः) मुच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**मोक्षते वत्सः स्वयमेव, मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव।** बछड़ा स्वयं ही बन्धन (खूंटा) से छूटना चाहता है।*

सिद्धि-मोक्षते। *यहां 'मुच्लृ मोचने' (तु०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अकर्मक 'मुच्' धातु को सकारादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर गुण (ओ) होता है। गुणपक्ष में **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप हो जाता है। **'हलन्ताच्च'** (१।२।१०) से झलादि 'सन्' प्रत्यय के ङिद्वत् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'मुच्' के चकार को कवर्ग ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**मुमुक्षते।** यहां अभ्यास का लोप नहीं है। गुण-पक्ष में ही अभ्यास का लोप होता है।*

***मोक्षते वत्सः स्वयमेव** और **मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव,** ये कर्मकर्तृवाच्य के प्रयोग हैं क्योंकि कर्मकर्तृवाच्य में ही 'मुच्' धातु अकर्मक होती है। **'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः'** (३।१।८७) से कर्मवद्भाव होकर **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद होता है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६७) से कर्मवाच्य में 'यक्' विकरण-प्रत्यय प्राप्त है अतः वा०-**'भूषाकर्म-किरादि-सनां चान्यत्रात्मनेपदात्'** (महा० ३।१।८७) से सन् में आत्मनेपद को छोड़कर यक्, चिण् और चिणवद्भाव का प्रतिषेध होता है।*

{अभ्यासकार्यप्रकरणम्}

अभ्यासस्य लोपः-

(१) अत्र लोपोऽभ्यासस्य।५८।

प०वि०-अत्र अव्ययपदम्, लोपः १।१ अभ्यासस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अत्राऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लोपः।

अर्थः-अत्र='**सनि मीमाघुरभलभशकपतपदमच इस्**' (७।४।५४) इत्यारभ्य '**मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा**' (७।४।५७) इत्यत्र पर्यन्तम् अङ्गस्याऽभ्यासस्य लोपो भवति।

उदा०-स मित्सति। मोक्षते वत्सः स्वयमेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अत्र) यहां अर्थात् **'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदमच इस्'** (७।४।५४) से लेकर **'मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा'** (७।४।५७) इस सूत्र तक (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-स **मित्सति।** वह मांपना चाहता है। **मोक्षते वत्सः स्वयमेव** इत्यादि उदाहरण हैं।*

__सिद्धि-मित्सति__ आदि पदों की सिद्धि उक्त प्रकरण में यथास्थान लिखी गई है। उनमें अभ्यास का लोप स्पष्ट है।

ह्रस्वादेशः-

(२) ह्रस्वः।५६।

वि०-ह्रस्वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ह्रस्वः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-स डुढौकिषते। स तुत्रौकिषते। स डुढौके। स तुत्रौके। सोऽडुढौकत्। सोऽतुत्रौकत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-स **डुढौकिषते।** वह गमन करना चाहता है। स **तुत्रौकिषते।** वह गमन करना चाहता है। स **डुढौके।** उसने गमन किया। स **तुत्रौके।** उसने गमन किया। **सोऽडुढौकत्।** उसने गमन कराया। **सोऽतुत्रौकत्।** उसने गमन कराया।*

*सिद्धि-(१) **डुढौकिषते।** यहां **'ढौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'पूर्वोऽभ्यासः'** (६।१।४) से द्विरुक्त में पूर्वभाग की अभ्यास संज्ञा है। इस सूत्र से अभ्यास (ढौक्स्) को ह्रस्वादेश होता है-**ढुक्स्।** 'हलादि शेषः' (७।४।६०) से अभ्यास का आदि हल् (ढु) शेष रहकर **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास के झल् ढकार को जश् डकारादेश होता है। ऐसे ही **'त्रौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**तुत्रौकिषते।***

*(२) **डुढौके।** यहां **'ढौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'त्रौकृ' धातु से-**तुत्रौके।***

*(३) अडुढौकत्। यहां प्रथम 'ढौकृ' धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और पश्चात् णिजन्त 'ढौकि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। '**चङि**' (६।१।१२) से धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

आदिहलः शेषत्वम्–

(३) हलादिः शेषः।६०।

प०वि०–हल् १।१ आदिः १।१ शेषः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शेषः।

अर्थः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शेषो भवति, अन्यो हल् च लुप्यते।

उदा०–स जग्लौ। स मम्लौ। स पपाच। स पपाठ। आट, आटतुः, आटुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास का (आदिः) आदिम (हल्) हल् वर्ण (शेषः) शेष रहता है और अन्य हल्मात्र का लोप हो जाता है।*

*उदा०–**स जग्लौ**। उसने ग्लानि की। **स मम्लौ**। उसने ग्लानि की। **स पपाच**। उसने पकाया। **स पपाठ**। उसने पढ़ा। **आट**। उसने अटन (भ्रमण) किया। **आटतुः**। उन दोनों ने अटन किया। **आटुः**। उन सब ने अटन किया। अटन=भ्रमण।*

*सिद्धि–**जग्लौ**। यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और '**आत औ णलः**' (७।१।३४) से 'णल्' के स्थान में 'औ' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-ग्ला-ग्ला+अ। इस सूत्र से अभ्यास का आदिम हल् 'ग्' शेष रहता है अन्य हल् (ल्) का लोप हो जाता है। आ 'अच्' शेष रहा रहता है। गा-ग्ला+अ। इस स्थिति में '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (ग) होता है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास-गकार को चवर्ग जकारादेश होता है। '**म्लै हर्षक्षये**' (भ्वा०प०) धातु से–**मम्ले**। ऐसे ही '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से–**पपाच**। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से–**पपाठ**। '**अट गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से–**आट, आटतुः, आटुः**।*

खयः शेषत्वम्–

(४) शर्पूर्वाः खयः ।६१।

प०वि०-शर्पूर्वाः १।३ खयः १।३।

स०-शर् पूर्वो येषां ते शर्पूर्वाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, शेष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शेषाः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ये शर्पूर्वाः खयो वर्णास्तत्र खयः शेषा भवन्ति, न तु शरः।

उदा०-स चुश्च्योतिषति। स तिष्ठासति। स पिस्पन्दिषते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के जो (शर्पूर्वाः) शर्पूर्वक (खयः) खय् वर्ण हैं उनमें (खयः) खय् वर्ण (शेषाः) शेष रहते हैं, शर् वर्ण नहीं।*

*उदा०-**स चुश्च्योतिषति।** वह सींचना चाहता है। **स तिष्ठासति।** वह ठहरना चाहता है। **स पिस्पन्दिषते।** वह कुछ चलना चाहता है।*

*सिद्धि-**चुश्च्योतिषति।** यहां **'श्च्युतिर् क्षरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इसके शर्पूर्वी अभ्यास (श्च्युत्) का खय् वर्ण 'च्' शेष रहता है, 'हलादि शेषः' (६।४।६०) से प्राप्त आदि हल् शकार शेष नहीं रहता है। चु-श्च्योतिष। चुश्च्योतिष+लट्। चुश्च्योतिषति। ऐसे ही **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (स्था) (भ्वा०प०) धातु से-**तिष्ठासति। 'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। **'स्पदि किञ्चिच्चलने'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिस्पन्दिषते।** 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को नुम् आगम होता है।*

चु-आदेशः–

(५) कुहोश्चुः ।६२।

प०वि०-कुहोः ६।२ चुः १।१।

स०-कुश्च ह् च तौ कुहौ, तयोः-कुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य कुहोश्चुः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य कवर्गस्य हकारस्य च स्थाने चवर्गादेशो भवति।

उदा०-(कवर्गः) कृ-स चकार। खन्-स चखान। गम्-स जगाम। अद् (घस्लृ)-स जघास। (हकारः) हन्-स जघान। हृ-स जहार। ओहाक्-स जहौ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (कुहोः) कवर्ग और हकार के स्थान में (चुः) चवर्ग आदेश होता है।

*उदा०-(कवर्ग) कृ-स **चकार**। उसने किया। खन्-स **चखान**। उसने अवदारण किया, खोदा। गम्-स **जगाम**। वह गया। अद् (घस्लृ)-स **जघास**। उसने भक्षण किया, खाया। (हकार) हन्-स **जघान**। उसने हिंसा/गति की। हृ-स **जहार**। उसने हरण किया, चुराया। ओहाक्-स **जहौ**। उसने त्याग दिया, छोड़ दिया।*

सिद्धि-चकार। *यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-कृ+कृ+अ। इस सूत्र से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०) धातु से-**चखान**। यहां खकार को चवर्ग छकार और इसे '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से चर् चकार होता है। '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**जगाम**। '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से-**जघास**। '**लिट्यन्तरस्याम्**' से अद् के स्थान में घस्लृ आदेश होता है। '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से-**जघान**। '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**जहार**। **ओहाक् त्यागे** {हा} (जु०प०) धातु से-**जहौ**। यहां हकार को चवर्ग झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

चु-आदेशप्रतिषेधः-

(६) न कवतेर्यङि।६३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कवतेः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि चुर्न।

अर्थः-कवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि प्रत्यये परतश्चवर्गादेशो न भवति।

उदा०-कोकूयते उष्ट्रः। कोकूयते खरः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-(कवतेः) कवति=कु इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (चुः) चवर्ग-आदेश (न) नहीं होता है।

*उदा०-**कोकूयते उष्ट्रः**। ऊंट पुनः-पुनः/अधिक शब्द विशेष करता है। **कोकूयते खरः**। गधा पुनः-पुनः/अधिक शब्द विशेष करता है।*

सिद्धि-कोकूयते। यहां 'कुङ् शब्दार्थः' (भ्वा०आ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इससे अभ्यास-ककार को चवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से चवर्ग आदेश प्राप्त था। 'अकृत्सार्वधातुकयोः' (७।४।२५) से 'कु' को दीर्घ और 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण (ओ) होता है।

विशेषः *सूत्रपाठ में 'कवति' में शप्-विकरण का निर्देश होने से 'कूङ् शब्दे' (तु०आ०) और 'कु शब्दे' (अदा०प०) धातु का ग्रहण नहीं किया जाता है।*

चु-आदेशप्रतिषेधः–

(७) कृषेश्छन्दसि।६४।

प०वि०–कृषेः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चुः, न, यङीति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि कृषेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि चुर्न।

अर्थः–छन्दसि विषये कृषेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि प्रत्यये परतश्चवर्गादेशो न भवति।

उदा०–करीकृष्यते यज्ञकुणपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृषेः) कृषि इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (चुः) चवर्ग आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-करीकृष्यते यज्ञकुणपः। यज्ञ का पाक पुनः-पुनः/अधिक आकृष्ट करता है।

सिद्धि-करीकृष्यते। यहां 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'कृष्' धातु के अभ्यास को चवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से चवर्ग आदेश प्राप्त था।

निपातनम्–

(८) दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च।६५।

प०वि०– दाधर्ति-दर्धर्ति-दर्धर्षि-बोभूतु-तेतिक्ते-अलर्षि-आपनी-फणत्-संसनिष्यदत्-करिक्रत्-कनिक्रदत्-भरिभ्रत्-दविध्वतः-दविद्युतत्-

तरित्रतः-सरीसृपतम्-वरीवृजत्-मर्मृज्य-आगनीगन्ति १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०-दाधर्तिश्च दर्धर्तिश्च दधर्षिश्च बोभूतुश्च तेतिक्तेश्च अलर्षिश्च आपनीफणच्च संसनिष्यदच्च, करिक्रच्च दविद्युतच्च तरित्रतश्च सरीसृपतं च वरीवृजच्च मर्मज्यं च आगनीगन्ति च एतेषां समाहारः--दार्धर्ति०आगनी-गन्ति (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसीत्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दाधर्ति०आगनीगन्तीति च निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तितिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य, आगनीगन्तीत्येतानि अष्टादश शब्दरूपाणि च निपात्यते। **उदाहरणम्**-

शब्दः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) दार्धर्ति	दाधर्ति	वह धारण/अवस्थान/ अवध्वंस करता है।
(२) दर्धर्ति	दर्धर्ति	पूर्ववत्।
(३) दर्धर्षि	दर्धर्षि (ऋ० ५।८४।३)	पूर्ववत्।
(४) बोभूतु	बोभूतु	वह पुनः-पुनः/अधिक होवे।
(५) तेतिक्ते	तेतिक्ते	वह पुनः-पुनः/अधिक तीक्ष्ण करता है।
(६) अलर्षि	अलर्षि दक्षः (ऋ० ८।४८।४)	वह प्राप्त करता है।
(७) आपनीफणत्	आपनीफणत् (ऋ० ४।४०।४)	वह पुनः-पुनः/अधिक आगमन करता है।
(८) संसनिष्यदत्	संसनिष्यदत्	वह मिलकर प्रस्रवित होता हुआ, प्रवाहित होता हुआ।
(९) करिक्रत्	करिक्रत् (ऋ० १।१३१।३)	वह पुनः-पुनः/अधिक करता हुआ।

शब्दः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१०) करिक्रदत्	करिक्रदत् (ऋ० १।१२८।३)	वह आह्वान/रोदन करता हुआ।
(११) भरिभ्रत्	भरिभ्रत् (ऋ० १०।४५।७)	वह पुनः-पुनः/अधिक धारण-पोषण करता हुआ।
(१२) दविध्वतः	दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य ऋ० ४।१३।४)	नष्ट करनेवाले की।
(१३) दविद्युतत्	दविद्युतत् (ऋ० ६।१६।४५)	वह पुनः-पुनः/अधिक प्रदीप्त होता हुआ।
(१४) तरित्रतः	सहोर्जा तरित्रतः (ऋ० ४।४०।३)	उस पुनः-पुनः/अधिक तैरते हुये का।
(१५) सरीसृपतम्	सरीसृपतम्	उस पुनः-पुनः/अधिक सर्पण करनेवाले को।
(१६) वरीवृजत्	वरीवृजत् (ऋ० ७।२४।४)	वह पुनः-पुनः/अधिक वर्जन (निषेध) करता हुआ।
(१७) मर्मृज्य	मर्मृज्य	उसने पुनः-पुनः/अधिक शुद्धि की।
(१८) आगनीगन्ति	वक्ष्यन्ती वेदा-गनीगन्ति कर्णम् (ऋ० ६।७५।३)	वे आगमन करते हैं, आते हैं।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दाधर्ति०) दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य, आगनीगन्ति (इति) ये अठारह शब्द (च) भी निपातित हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) दाधर्ति। *यहां **'धृञ् धारणे'** (भ्वा०उ०), **'धृङ् अवस्थाने'** (तु०आ०), **'धृङ् अवध्वंसने'** (भ्वा०आ०) इन धातुओं से प्रथम **हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण-प्रत्यय और **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७३) से 'शप्' को श्लु और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। निपातन से णिच् का लोप और अभ्यास को दीर्घ होता है।*

अथवा-पूर्वोक्त 'धृञ्' आदि धातुओं से यहां प्रथम पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इन धातुओं के णिजन्त में अनेकाच् होने से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अतः यह निपातन से होता है। उपधा ह्रस्वत्व भी निपातित है। **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७६) से 'यङ्' का लुक् होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप और **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है।

(२) **दर्धर्ति।** यहां पूर्वोक्त 'धृञ्' आदि धातुओं से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रुक्' आगम और 'णिच्' प्रत्यय का लोप निपातन से होता है। 'सिप्' प्रत्यय में-**दर्धर्षि।** यङ्लुक् पक्ष में **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) प्राप्त अभ्यास दीर्घत्व का अभाव निपातित है।

(३) **बोभूतु।** यहां **'भू सत्तायाम्'** धातु से प्रथम पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'एरुः'** (३।४।८६) से इकार को उकार आदेश है। **'चर्करितं च'** (अदादि गणसूत्र) से यङ् लुगन्त धातु अदादिगण के अन्तर्गत होती है। अतः **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त इगन्त लक्षण गुण का अभाव निपातित है।

(४) **तेतिक्ते।** यहां **'तिज निशाने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। यङ् के ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद सिद्ध है, पुनः आत्मनेपद निपातन से यह ज्ञापक होता है कि अन्यत्र यङ् लुगन्त धातु से आत्मनेपद नहीं होता है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'तिज्' के जकार को कवर्ग गकार और **'खरि च'** (८।४।५४) से गकार को चर् ककार होता है।

(५) **अलर्षि।** यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से शप् को श्लु और **'श्लौ'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। ऋ-ऋ+सि। **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व (अर्) होता है। इस अभ्यास के रेफ को निपातन से लत्व होता है। **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से आदिहल् का शेषत्व नहीं होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'ऋ' को गुण और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। **'अर्तिपिपर्त्योश्च'** (७।४।७७) से प्राप्त अभ्यास को इत्व निपातन से नहीं होता है।

(६) **आपनीफणत्।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'फण गतौ'** धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'लटः शतृशानचा०'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। आ+प-पण्+शतृ। आ+प नीक्-फण्+अत्। आपनीफणत्। इस सूत्र से अभ्यास को 'नीक्' आगम निपातित है।

(७) संसनिष्यदत्। यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'स्यन्दू प्रस्रवणे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। पुन: यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। सम्+स-स्यन्द्+शतृ। सम्+निक्-ष्यद्+अत्। संसनिष्यदत्। अभ्यास को 'निक्' आगम और धातुस्थ सकार को षत्व निपातित है। 'अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है।

(८) करिक्रत्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुन: यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् शतृ प्रत्यय है। कृ-कृ+शतृ। कर्+कृ+अत्। क रिक्-कृ+अत्। करि+कृ+अत्। करिक्रत्। अभ्यास को 'रिक्' आगम और 'कुहोश्चु:' (७।४।६२) से प्राप्त चुत्व का अभाव निपातित है।

(९) कनिक्रदत्। यहां 'क्रदि आह्वाने रोदने च' (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश, धातु को द्वित्व, अभ्यास को चुत्व का अभाव और 'निक्' आगम निपातित है।

(१०) भरिभ्रत्। यहां 'डुभृञ् धारणपोषणयो:' (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। पुन: यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। अभ्यास को 'रिक्' आगम निपातित है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) प्राप्त अभ्यास-जश्त्व का अभाव और 'भृञामित्' (७।४।७६) से प्राप्त अभ्यास को इत्त्व का अभाव भी निपातित है।

(११) दविध्वत:। यहां 'ध्वृ हिंसायाम्' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और इसका लुक् है। पुन: यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। अभ्यास को 'विक्' आगम और 'ध्वृ' धातु के ऋकार का लोप निपातित है। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो:' (७।१।७०) से प्राप्त 'नुम्' आगम का 'नाभ्यस्ताच्छतु:' (७।१।७८) से प्रतिषेध होता है। यह षष्ठी-एकवचन (ङस्) का रूप है।

(१२) दविद्युतत्। यहां 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और इसका लुक् है। पुन: यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। 'द्युतिस्वाप्यो: सम्प्रसारणम्' (७।४।६७) से प्राप्त अभ्यास के सम्प्रसारण का अभाव, अभ्यास को अत्व और 'विक्' आगम निपातित है। द्युत्-द्युत्+शतृ। दु+द्युत्+अत्। द विक्+द्युत्+अत्। द वि-द्युत्+अत्=दविद्युतत्।

(१३) तरित्रत:। यहां 'तॄ प्लवनसन्तरणयो:' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश और अभ्यास को 'रिक्' आगम निपातित है। यह षष्ठी एकवचन (ङस्) का रूप है।

(१४) सरीसृपतम्। यहां 'सृप्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रीक्' आगम निपातित है। यह द्वितीया-एकवचन (अम्) का रूप है।

*(१५) **वरीवृजत्।** यहां 'वृत्री वर्जने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रीक्' आगम निपातित है।*

*(१६) **मर्मृज्य।** यहां 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। अभ्यास को 'रुक्' आगम और धातु को 'युक्' आगम निपातित है। 'युक्' आगम होने पर 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि नहीं होती है।*

*(१७) **आगनीगन्ति।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' को 'श्लु' होता है। अभ्यास को 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से प्राप्त चुत्व का अभाव और 'नीक्' आगम निपातित है। आ+ग नीक्-गम्+ति। आ+ग नी-गन्+ति। आगनीगन्ति। 'गम्' के मकार को 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से अनुस्वारादेश और इसे 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से परसवर्ण नकार होता है।*

अत्-आदेशः–

(६) उरत्।६६।

प०वि०–उः ६।१ अत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–उरङ्गस्याऽभ्यासस्याऽत्।

अर्थः–उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्याऽकारादेशो भवति।

उदा०–स ववृते। स ववृधे। स शशृधे। सा नर्नर्ति। सा नरिनर्ति। सा नरीनर्ति।

__आर्यभाषाः अर्थ__–(उः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अत्) अकारादेश होता है।

*उदा०–**स ववृते।** उसने वर्ताव (व्यवहार) किया। **स ववृधे।** उसने वृद्धि की। **स शशृधे।** उसने निन्दित शब्द किया। **सा नर्नर्ति। सा नरिनर्ति। सा नरीनर्ति।** वह पुनः-पुनः/अधिक नाचती है।*

*__सिद्धि__–(१) **ववृते।** यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान 'त' आदेश और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-वृत्-वृत्+ए। वृ-वृत्+ए। इस सूत्र से अभ्यास-ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से-ववृधे। 'शृधु शब्दकुत्सायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-शशृधे।*

(२) नर्नर्ति। यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुनः यङ् लुगन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदिम हल् शेष होकर 'रुग्रिकौ च लुकि' (७।४।९१) से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। रिक्-आगम पक्ष में-नरिनर्ति। रीक्-आगम पक्ष में-नरीनर्ति।

सम्प्रसारणम्–

(१०) द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्।६७।

प०वि०-द्युति-स्वाप्योः ६।२ सम्प्रसारणम् १।१।

स०-द्युतिश्च स्वापिश्च तौ द्युतिस्वापी, तयोः-द्युतिस्वाप्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्युतिस्वाप्योरङ्गयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थः-द्युतिस्वाप्योरङ्गयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-**(द्युतिः) लिट्**-स विदिद्युते। **लुङ् (चङ्)** स व्यदिद्युतत्। **सन्**-विदिद्योतिषते, विदिद्युतिषते। **यङ्**-विदेद्युत्यते। **(स्वापिः)** स सुष्वापयिषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्युतिस्वाप्योः) द्युति, स्वापि इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-(द्युति) लिट्-स **विदिद्युते**। वह प्रकाशित (प्रसिद्ध) हुआ। लुङ् (चङ्) स **व्यदिद्युतत्**। वह प्रकाशित हुआ। सन्-**विदिद्योतिषते, विदिद्युतिषते**। वह प्रकाशित होना चाहता है। (यङ्) **विदेद्युत्यते**। वह पुनः-पुनः/अधिक प्रकाशित होता है। (स्वापि) स **सुष्वापयिषति**। वह सुलाना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **विदिद्युते**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। वि+द्युत्-द्युत्+ए। वि+द् इ उ-द्युत्+ए। वि+दि-द्युत्+ए। विदिद्युते। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को इकार सम्प्रसारण और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।८) से उकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है।*

*(२) **व्यदिद्युतत्**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, पुनः णिजन्त 'द्योति' धातु से 'लुङ्', 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि*

चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप, **'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'** (७।४।१) से उपधा को ह्रस्व, **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण और पूर्ववत् पूर्वरूप एकादेश होता है।

(३) **विदिद्युतिषते।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से 'सन्' प्रत्यय है। **'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च'** (१।२।२६) से 'सन्' प्रत्यय विकल्प से किद्वत् होता है। कित्त्व-पक्ष में **'क्ङिति च'** (१।१।५) से लघूपधलक्षण गुण का प्रतिषेध होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व और इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण होता है। विकल्प-पक्ष में **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है-**विदिद्योतिषते।**

(४) **विदेद्युत्यते।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण इकारादेश होकर **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास (इ) को गुण (ए) होता है।

(५) **सुस्वापयिषति।** यहां प्रथम **'ञिष्वप् शये'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। पुनः णिजन्त 'स्वापि' धातु से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व करते समय **'णौ कृतं स्थानिवद् भवति'** (महा० १।१।५७) से अद्विर्वचन निमित्तक णिच् के अच् (इ) परे होने पर भी रूपातिदेश होकर द्वित्व होता है-**स्वप्-स्वापि।** इस सूत्र से अभ्यास-वकार को उकार सम्प्रसारण और **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०८) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (उ) होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। **'सुष्वापयिष'** णिजन्त पूर्वक सनन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) से अभ्यास-इण् से उत्तर आदेश-सकार को षत्व होता है।

सम्प्रसारणम्–

(११) व्यथो लिटि।६८।

प०वि०-व्यथः ६।१ लिटि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, सम्प्रसारणमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-व्यथोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि सम्प्रसारणम्।

अर्थः-व्यथोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-स विव्यथे। तौ विव्यथाते। ते विव्यथिरे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्यथः) व्यथ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**स विव्यथे।** वह भयभीत/संचलित हुआ। **तौ विव्यथाते।** वे दोनों भयभीत/संचलित हुये। **ते विव्यथिरे।** वे सब भयभीत/संचलित हुये।*

*सिद्धि-**विव्यथे।** यहां '**व्यथ भयसंचलनयोः**' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और 'त' के स्थान में '**लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३।४।८१) से 'एश्' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'व्यथ' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को इकार सम्प्रसारण और '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०८) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है। '**न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्**' (६।१।३७) से 'व्यथ्' के वकार को सम्प्रसारण नहीं होता है। आताम् प्रत्यय में-**विव्यथाते।** 'झ' (इरेच्) प्रत्यय में-**विव्यथिरे।***

दीर्घादेशः–

(१२) दीर्घ इणः किति।६६।

प०वि०-दीर्घः १।१ इणः ६।१ किति ७।१।

स०-क् इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वयः-इणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य किति लिटि दीर्घः।

अर्थः-इणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य किति लिटि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-तौ ईयतुः। ते ईयुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इणः) इण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (किति) कित् (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) होता है।*

*उदा०-**तौ ईयतुः।** वे दोनों गये। **ते ईयुः।** वे सब गये।*

*सिद्धि-**ईयतुः।** इ+लिट्। इ+तस्। इ+अतुस्। य्+अतुस्। इ-इय्+अतुस्। ई-य्+अतुस्। ईयतुः।*

*यहां '**इण् गतौ**' (अदा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश है। यह '**असंयोगाल्लिट् कित्**' (१।२।५) से किद्वत् होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से द्वित्व करते समय प्रथम '**इणो यण्**' (६।४।८१) से यणादेश होता है। पश्चात् '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५८) से रूपातिदेश होकर इण् को द्वित्व होता है-इ-य्+अतुस्। इस सूत्र से अभ्यास को दीर्घ होता है-ई-य्+अतुस्=ईयतुः। ऐसे ही झि (उस्) प्रत्यय में-**ईयुः।***

दीर्घादेशः–

(१३) अत आदेः ।७०।

प०वि०–अतः ६ ।१ आदेः ६ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदेरतो लिटि दीर्घः ।

अर्थः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदेरकारस्य लिटि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति ।

उदा०–स आट। तौ आटतुः । ते आटुः ।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (आदेः) आदिम (अतः) अकार को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**स आट।** उसने अटन (भ्रमण) किया। **तौ आटतुः।** उन दोनों ने अटन किया। **ते आटुः।** उन सब ने अटन किया।*

सिद्धि–आट। *यहां 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६ ।१ ।८) से धातु को द्वित्व होता है। अट्-अट्+अ। अ-अट्+अ। आ-आट्+अ। आट। यहां **'अतो गुणे'** से पररूप एकादेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आटतुः।** झि (उस्) प्रत्यय में-**आटुः।***

नुट्-आगमः–

(१४) तस्मान्नुड् द्विहलः ।७१।

प०वि०–तस्मात् ५ ।१ नुट् १ ।१ द्विहलः ६ ।१ ।

स०–द्वौ हलौ यस्मिन् स द्विहल्, तस्य-द्विहलः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्माद् अतोऽभ्यासाद् द्विहलोऽङ्गस्य लिटि नुट्।

अर्थः–तस्माद् दीर्घीभूताद् आकाराद् अभ्यासाद् उत्तरस्य द्विहलोऽङ्गस्य लिटि परतो नुडागमो भवति।

उदा०–स आनङ्ग। तौ आनङ्गतुः । ते आनङ्गुः । स आनञ्ज। तौ आनञ्जतुः । ते आनञ्जुः ।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्मात्) उस दीर्घीभूत (अतः) अकार (अभ्यासात्) अभ्यास से परे (द्विहलः) दो हलोंवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट्-प्रत्यय परे होने पर (नुट्) नुट् आगम होता है।

उदा०-**स आनङ्ग।** वह गया। **तौ आनङ्गतुः।** वे दोनों गये। **ते आनङ्गुः।** वे सब गये। **स आनञ्ज।** वह प्रकट हुआ। **तौ आनञ्जतुः।** वे दोनों प्रकट हुये। **ते आनञ्जुः।** वे सब प्रकट हुये।

सिद्धि-आनङ्ग। यहां प्रथम 'अगि गतौ' (भ्वा०प०) धातु को **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। पश्चात् 'अङ्ग्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-अङ्ग्-अङ्ग+अ। अ-अङ्ग+अ। आ-अङ्ग्+अ। इस स्थिति में **'अत आदेः'** (७।४।७०) से दीर्घीभूत आकार-अभ्यास से परे दो हल्वाले 'अङ्ग्' को 'नुट्' आगम होता है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आनङ्गतुः।** झि (उस्) प्रत्यय में-**आनङ्गुः।** **'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु'** (रुधा०प०) धातु से-**आनञ्ज, आनञ्जतुः, आनञ्जुः।**

नुट्-आगमः-

(१५) अश्नोतेश्च।७२।

प०वि०-अश्नोतेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अतः, तस्मात्, नुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्माद् अतोऽभ्यासाद् अश्नोतेरङ्गस्य च लिटि नुट्।

अर्थः-तस्माद् दीर्घीभूताद् आकाराद् अभ्यासाद् उत्तरस्याऽश्नोतेरङ्गस्य लिटि प्रत्यये परतो नुडागमो भवति।

उदा०-स व्यानशे। तौ व्यनशाते। ते व्यानशिरे। अद्विहलार्थोऽयमारम्भः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्मात्) उस दीर्घीभूत (अतः) आकार (अभ्यासात्) अभ्यास से परे (अश्नोतेः) अश्नोति=अश् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (नुट्) नुडागम होता है।

उदा०-**स व्यानशे।** उसने व्याप्त किया। **तौ व्यनशाते।** उन दोनों ने व्याप्त किया। **ते व्यानशिरे।** उन सब ने व्याप्त किया।

सिद्धि-व्यानशे। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'अशूङ् व्याप्तौ'** (स्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व

*होता है-वि+अश्-अश्+ए। वि+आ-अश्+ए। वि+आ नुट्+अश्+ए। वि+आन्+अश्+ए। व्यानशे। 'अतः आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। 'अश्' धातु के दो हल्वाली न होने से 'तस्मान्नुड् द्विहलः' (७।४।७१) से नुट् आगम प्राप्त नहीं था, अतः यह विधान किया गया है। आताम् प्रत्यय में-**व्यानशाते**। झ (इरेच्) प्रत्यय में-**व्यानशिरे**।*

अ-आदेशः–

(१६) भवतेरः।७३।

प०वि०–भवतेः ६।१ अः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वयः–भवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि अः।

अर्थः–भवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०–स बभूव। तौ बभूवतुः। ते बभूवुः। तेन अनुबभूवे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भवतेः) भवति=भू इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है।*

*उदा०–**स बभूव**। वह हुआ। **तौ बभूवतुः**। वे दोनों हुये। **ते बभूवुः**। वे सब हुये। **तेन अनुबभूवे**। उसके द्वारा अनुभव किया गया।*

*सिद्धि-(१) **बभूव**। यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'भुवो वुग् लुङ्लिटोः'** (६।४।८८) से 'भू' को 'वुक्' आगम होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-भूव्-भूव्+अ। भू-भूव्+अ। इस स्थिति में 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास (भू) को ह्रस्व होकर इस सूत्र से अभ्यास-उकार को अकारादेश होता है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से अभ्यास-भकार को जश् बकारादेश है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**बभूवतुः**। झि (उस्) प्रत्यय में-**बभूवुः**।*

*(२) **अनुबभूवे**। यहां अनु-उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से कर्मवाच्य अर्थ में 'लिट्' प्रत्यय है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद होता है। अतः लकार के स्थान में 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

निपातनम्–

(१७) ससूवेति निगमे।७४।

प०वि०–ससूव क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, निगमे ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे ससूवेति निपातनम् {अङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि अः}।

अर्थः-निगमे=वेदविषये ससूवेति पदं निपात्यते, अर्थात्-ससूव इत्यत्राऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति, धातोः परस्मैपदं वुगागमश्च निपात्यते।

उदा०-गृष्टिः ससूव स्थविरम् (ऋ० ४।१८।१०)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(निगमे) वेदविषय में (ससूव) ससूव (इति) यह पद निपातित है, अर्थात्-इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है। 'षूङ्' धातु से परस्मैपद और उसे वुक् आगम निपातन से होता है।*

*उदा०-**गृष्टिः ससूव स्थविरम्** (ऋ० ४।१८।१०)। ससूव=उत्पन्न किया।*

***सिद्धि-ससूव।** यहां **'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'** (अदा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में निपातन से 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। 'सू' धातु को निपातन से 'वुक्' आगम और इसके अभ्यास-उकार को अकारादेश होता है।*

गुणादेशः-

(१८) निजां त्रयाणां गुणः श्लौ।७५।

प०वि०-निजाम् ६।३ त्रयाणाम् ६।३ गुणः १।१ श्लौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-निजां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ गुणः।

अर्थः-निजादीनां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ सति गुणो भवति।

उदा०-**(निज्)** स नेनेक्ति। **(विज्)** स वेवेक्ति। **(विष्)** स वेवेष्टि।

णिजिर् शौचपोषणयोः। विजिर् पृथग्भावे। विष्लृ व्याप्तौ इति त्रयो निजादयः पाणिनीयधातुपाठस्य जुहोत्यादिगणे पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(निजाम्) निज् आदि (त्रयाणाम्) तीन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(निज्) स नेनेक्ति।** वह शोधन/पोषण करता है। **(विज्) स वेवेक्ति।** वह पृथक् होता है। **(विष्) स वेवेष्टि।** वह व्यापक होता है।*

*'**णिजिर् शौचपोषणयोः**' (जु०प०) इत्यादि तीन धातु पाणिनीय धातुपाठ के जुहोत्यादि गण में पठित हैं।*

सिद्धि-नेनेक्ति। यहां 'णिजिर् शौचपोषणयोः' (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से शप् विकरण-प्रत्यय होता है उसको 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से श्लु (लोप) आदेश हो जाता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है-निज्-निज्+०+ति। नि-निज्+ति। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-इकार को गुण (ए) होता है। ऐसे ही 'विजिर् पृथग्भावे' (जु०प०) धातु से-वेवेक्ति। 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से-वेवेष्टि।

इत्-आदेशः-

(१६) भृञामित्।७६।

प०वि०-भृञाम् ६।३ इत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, त्रयाणाम्, श्लाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-भृञां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ इत्।

अर्थः-भृञादीनां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ सति इकारादेशो भवति।

उदा०-(**डुभृञ्**) स बिभर्ति। (**माङ्**) स मिमीते। (**ओहाङ्**) स जिहीते।

डुभृञ् धारणपोषणयोः (जु०उ०) माङ् माने शब्दे च (जु०आ०) ओहाङ् गतौ (जु०आ०) इत्येते त्रयो भृञादयो धातवः पाणिनीयधातुपाठस्य जुहोत्यादिगणे पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भृञाम्) भृञ् आदि (त्रयाणाम्) तीन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(भृ) **स बिभर्ति**। वह धारण-पोषण करता है। (मा) **स मिमीते**। वह मापता/शब्द करता है। (हा) **स जिहीते**। वह गमन करता है।*

'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) इत्यादि तीन धातु पाणिनीय धातुपाठ के जुहोत्यादिगण में पठित हैं।

*सिद्धि-**बिभर्ति**। यहां 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से इसको श्लु (लोप) आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। भृ-भृ+०+ति। भ-भर्+ति।*

इस स्थिति में 'उरत्' (७।४।५६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होकर इस सूत्र से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से अभ्यास-भकार को जश् बकार होता है। ऐसे ही ***'माङ् माने शब्दे च'*** *(जु०आ०) धातु से-****मिमीते।*** ***'ई हल्यघोः'*** *६।४।११३) से 'मा' के आकार को ईकारादेश होता है।* ***'ओहाङ् गतौ'*** *(जु०आ०) धातु से-****जिहीते।*** *'हा' को पूर्ववत् ईकारादेश है।* ***'कुहोश्चुः'*** *(७।४।६२) से अभ्यास-हकार को चवर्ग झकार और* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

इत्-आदेशः–

(२०) अर्तिपिपर्त्योश्च।७७।

प०वि०–अर्ति-पिपर्त्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-अर्तिश्च पिपर्तिश्च तौ अर्तिपिपर्ती, तयोः-अर्तिपिपर्त्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, श्लौ, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अर्तिपिपर्त्योरङ्गयोऽभ्यासस्य च श्लौ इत्।

अर्थः–अर्तिपिपर्त्योरङ्गयोऽभ्यासस्य च श्लौ सति इकारादेशो भवति।

उदा०–**(अर्तिः)** इयर्ति धूमम्। **(पिपर्तिः)** स पिपर्ति सोमम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अर्तिपिपर्त्योः) अर्ति=ऋ और पिपर्ति=पॄ इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (च) भी (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

उदा०-(अर्ति) ***इयर्ति धूमम्।*** *धूमां निकलता है। (पिपर्ति)* ***स पिपर्ति सोमम्।*** *वह सोम का पालन-पूरण करता है।*

सिद्धि-(१) इयर्ति। *यहां* ***'ऋ गतौ'*** *(जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है।* ***'कर्तरि शप्'*** *(३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और* ***'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'*** *(२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' (लोप) होता है।* ***'श्लौ'*** *(६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है-ऋ-ऋ+०+ति। अर्-ऋ+ति। अ-ऋ+ति। इ-ऋ+ति। इयङ्-अर्+ति। इय्-अर्+ति। इयर्ति। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश और इस अकार को इस सूत्र से इकारादेश होकर* ***'अभ्यासस्यासवर्णे'*** *(६।४।७८) से इसे 'इयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही* ***'पॄ पालनपूरणयोः'*** *(जु०प०) धातु से-****पिपर्ति।***

इत्-आदेशः (बहुलम्)–

(२१) बहुलं छन्दसि।७८।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, श्लौ, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गस्याऽभ्यासस्य श्लौ बहुलम् इत्।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गस्याऽभ्यासस्य श्लौ सति बहुलमिकारादेशो भवति।

उदा०–पूर्णां विवष्टि (ऋ० ७।१६।११)। जनिमा विवक्ति (ऋ० १।९७।७)। वत्सं न माता सिषक्ति (ऋ० १।३८।८)। जिघर्ति सोमम्। न च भवति–ददातीत्येवं ब्रूयात्। जजनदिन्द्रम् (मै०सं० १।९।१)। माता यद्वीरं दधनद् धनिष्ठा (ऋ० १०।७३।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लु) शप् को श्लु आदेश होने पर (बहुलम्) प्रायशः (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०–**पूर्णां विवष्टि** (ऋ० ७।१६।११)। विवष्टि=वह कामना करता है। **जनिमा विवक्ति** (ऋ० १।९७।७)। विवक्ति=वह कहता है। **वत्सं न माता सिषक्ति** (ऋ० १।३८।८)। सिषक्ति=वह समवेत (संयुक्त) होता है। **जिघर्ति सोमम्।** वह गन्ध ग्रहण करता है, सूंघता है। बहुलवचन से कहीं ईकारादेश नहीं होता है–**ददातीत्येवं ब्रूयात्।** ददाति=वह देता है। **जजनदिन्द्रम्** (मै०सं० १।९।१)। जजनत्=उसने उत्पन्न किया। **माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा** (ऋ० १०।७३।१)। दधनत्=उत्पन्न किया।*

*सिद्धि–(१) **विवष्टि।** यहां 'वश कान्तौ' (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'वश्' धातु को द्वित्व होकर इस सूत्र से अभ्यास को इकारादेश होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से शकार को षकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टकारादेश है। ऐसे ही 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से–**विवक्ति।** 'षच समवाये' (भ्वा०उ०) धातु से–**सिषक्ति।** 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) धातु से–**जिघ्रति।***

*(२) **ददाति।** यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लट्' आदि कार्य पूर्ववत् हैं। बहुल-वचन से अभ्यास को इकारादेश नहीं होता है।*

(३) जजनत्। यहां 'जन जनने' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'जन्' धातु को द्वित्व होता है। बहुल-वचन से अभ्यास को इकारादेश नहीं होता है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से अडागम का अभाव है। ऐसे ही 'धन धान्ये' (जु०प०) धातु से-दधनत्।

इत्-आदेशः–

(२२) सन्यतः।७६।

प०वि०-सनि ७।१ अतः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽतोऽभ्यासस्य सनि इत्।

अर्थः-अङ्गस्याऽकारान्तस्याऽभ्यासस्य सनि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-स पिपक्षति। स यियक्षति। स तिष्ठासति। स पिपासति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-स **पिपक्षति।** वह पकाना चाहता है। **स यियक्षति।** वह यज्ञ करना चाहता है। **स तिष्ठासति।** वह ठहरना चाहता है। **स पिपासति।** वह पान करना चाहता है।*

*सिद्धि-**पिपक्षति।** यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-पच्स्-पच्स। प-पच्स। इस स्थिति में इस सूत्र से अकारान्त अभ्यास को इकारादेश होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से चकार को ककार और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से सकार को षकारादेश होता है। ऐसे ही '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से-**यियक्षति।** 'व्रश्चभ्रस्जयज०' (८।२।३६) से जकार को षकारादेश '**षढोः कः सि**' (८।२।४१) से षकार को ककारादेश और सकार को पूर्ववत् षत्व होता है। '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**तिष्ठासति।** '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से-**पिपासति।***

इत्-आदेशः–

(२३) ओः पुयण्ज्यपरे।८०।

प०वि०–ओः ६।१ पुयण्जि ७।१ अपरे ७।१।

स०–पुश्च यण् च ज् च एतेषां समाहारः पुयण्ज्, तस्मिन्–पुयण्जि (समाहारद्वन्द्वः)। अः परो यस्मात् सः–अपरः, तस्मिन्–अपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इत्, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्य ओरभ्यासस्याऽपरे पुयण्जि सनि इत्।

अर्थः–अङ्गस्य उकारान्तस्याऽभ्यासस्याऽवर्णपरके पवर्गे यणि जकारे च सति सनि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०–अवर्णपरके पवर्गे–स पिपविषते। स पिपावयिषति। स बिभावयिषति। **अवर्णपरके यणि**–स यियविषति। स यियावयिषति। स रिरावयिषति। स लिलावयिषति। **अवर्णपरके जकारे**–स जिजावयिषति। 'जु' इत्ययं सौत्रो धातुर्वर्तते।

***आर्यभाषाः अर्थ**–(अङ्गस्य) अङ्ग के (ओः) उकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अपरे) अवर्ण-परक (पुयण्जि) पवर्ग, यण्-वर्ग और जकार परे होने पर (सनि) सन् प्रत्यय परे रहते (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०–**अवर्णपरक पवर्ग–स पिपविषते।** वह पवित्र करना चाहता है। **स पिपावयिषति।** वह पवित्र कराना चाहता है। **स बिभावयिषति।** वह सत्ता में रखना चाहता है। **अवर्णपरक यण्–स यियविषति।** वह मिश्रण-अमिश्रण करना चाहता है। **स यियावयिषति।** वह मिश्रण-अमिश्रण कराना चाहता है। **स रिरावयिषति।** वह शब्द (शोर) कराना चाहता है। **स लिलावयिषति।** वह छेदन (कटाई) कराना चाहता है। **अवर्णपरक जकार–स जिजावयिषति।** वह गमन कराना चाहता है।*

*सिद्धि–(१) **पिपविषते।** यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। '**स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि**' (७।२।७४) से 'सन्' को इडागम होता है। पू+सन्। पू+इट्+स। पो+इ+स। पविष। इस स्थिति में– '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से अजादेश (पव्) को स्थानिवत् मानकर 'पू' को द्विर्वचन होता है–पू-**पविष।** इस स्थिति में प्रथम '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्वादेश होकर इस सूत्र से अवर्णपरक पवर्ग (प्) परे होने पर अभ्यास-उकार को इकारादेश होता है। पि+पविष। पिपवष+लट्=पिपविषति।*

*(२) **पिपावयिषति।** यहां 'पूङ्' धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है-पू+णिच्। पौ+इ। पावि। तत्पश्चात् णिजन्त 'पावि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् स्थानिवद् भाव होकर 'पू' को द्विर्वचन होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही णिजन्त '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से-**बिभावयिषति।***

*(३) **यियविषसति।** यहां अवर्णपरक यण् की अवस्था में-'**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। णिजन्त 'यु' धातु से-**यियावयिषति।** णिजन्त 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-**लिलावयिषति।***

*(४) **जिजावयिषति।** णिजन्त '**जुगतौ**' (सौत्रधातु) से अवर्णपरक जकार की अवस्था में पूर्ववत्।*

ईत्-आदेशविकल्पः-

(२४) स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा।८१।

प०वि०- स्रवति-शृणोति-द्रवति-प्रवति-प्लवति-च्यवतीनाम् ६।३ वा अव्ययपदम्।

स०-स्रवतिश्च शृणोतिश्च द्रवतिश्च प्रवतिश्च प्लवतिश्च च्यवतिश्च ते स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतयः, तेषाम्-स्रवतिशृणोतिद्रवति-प्रवतिप्लवतिच्यवतीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इत्, सनि, ओः, यणि, अपरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनामऽङ्गानाम् ओरभ्यासस्याऽपरे यणि सनि वा इत्।

अर्थः- स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनामऽङ्गानाम् उकारान्तस्याऽभ्यासस्याऽवर्णपरके यणि सति, सनि प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) स्रवति	सिस्रावयिषति	वह स्राव (बहाव) कराना चाहता है।
	सुस्रावयिषति	-सम-
(२) शृणोति	शिश्रावयिषति	वह सुनाना चाहता है।
	शुश्रावयिषति	-सम-

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(३) द्रवति	दिद्रावयिषति	वह दौड़ कराना चाहता है।
	दुद्रावयिषति	-सम-
(४) प्रवति	पिप्रावयिषति	वह उछालना चाहता है।
	पुप्रावयिषति	-सम-
(५) प्लवति	पिप्लावयिषति	-सम-
	पुप्लावयिषति	-सम-
(६) च्यवति	चिच्यावयिषति	वह हटाना चाहता है।
	चुच्यावयिषति	-सम-

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्रवति०) स्रवति, शृणोति, द्रवति, प्रवति, प्लवति, च्यवति इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (ओः) उकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अपरे) अवर्ण-परक (यणि) यण्-वर्ण परे रहते (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-सिस्रावयिषति। *यहां 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। स्रु+णिच्=स्रावि। पश्चात् णिजन्त 'स्रावि' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्विर्वचन करते समय **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से अजादेश (स्राव्) को स्थानिवद्भाव होकर 'स्रु' को द्विर्वचन होता है-स्रु-स्राविष। सु-स्राविष। इस स्थिति में अभ्यास-उकार से व्यवधानरहित तो अवर्णपरक यण्-वर्ण (रा) नहीं है किन्तु मध्य में सकार का व्यवधान है पुनरपि इस सूत्रवचन से उकारान्त अभ्यास (सु) को इकारादेश होता है-**सिस्रावयिषति।** विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**सुस्रावयिषति।** ऐसे ही **'श्रु श्रवणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**शिश्रावयिषति, शिश्रावयिषति।** **'द्रु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**दिद्रावयिषति, दिद्रावयिषति।** **'प्रुङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिप्रावयिषति, पिप्रावयिषति।** **'प्लुङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिप्लावयिषति, पुप्लावयिषति।** **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**चिच्यावयिषति, चुच्यावयिषति।***

गुणादेशः—

(२५) गुणो यङ्लुकोः।८२।

प०वि०-गुणः १।१ यङ्-लुकोः ७।२।

स०-यङ् च लुक् च तौ यङ्लुकौ, तयो:-यङ्लुको: (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्गुणः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो गुणो भवति।

उदा०-(यङ्) स चेचीयते। स लोलूयते। **(यङ्लुक्)** स जोहवीति। स चोक्रुशीति।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (गुणः) गुण होता है।

उदा०-(यङ्) ***स चेचीयते।*** *वह पुनः-पुनः चयन करता है।* ***स लोलूयते।*** *वह पुनः-पुनः छेदन (कटाई) करता है।* ***(यङ्लुक्) स जोहवीति।*** *वह पुनः-पुनः हवन करता है।* ***स चोक्रुशीति।*** *वह पुनः-पुनः आक्रोश करता है, चिल्लाता है।*

सिद्धि-(१) ***चेचीयते।*** *यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से* ***'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'*** *(३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है।* ***'सन्यङोः'*** *(६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-चिय्-चिय। चि-चिय। इस स्थिति में इस सूत्र से इगन्त अभ्यास को गुण होता है। चेचीय+लट्। चेचीयते।* ***'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'*** *(७।४।२५) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-* ***लोलूयते।***

(२) ***जोहवीति।*** *हु+यङ्। हु+य। हुय्-हुय। हु+हुय। हु-हुय+लट्। हु-हु०+तिप्। हु-हु+शप्+ति। हु-हु+०+ति। हु-हु+ईट्+ति। हु-हु+ई+ति। हो+हो+इ+ति। झो-हव्+ई+ति। जो+हव्+ई+ति। जोहवीति।*

यहां 'हु दानादनयोः' (जु०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। ***'सन्यङोः'*** *(६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। यङन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।* ***'यङोऽचि च'*** *(२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। इस सूत्र से यङ्लुक् होने पर इगन्त अभ्यास (हु) को गुण होता है।* ***'यङो वा'*** *(७।३।९४) से ईट् आगम होता है।* ***'कुहोश्चुः'*** *(७।४।६२) से हकार को चवर्ग झकार और* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

(३) ***चोक्रुशीति।*** *यहां* ***'क्रुश आह्वाने'*** *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। 'यङो वा' (७।३।९४) से ईट् आगम है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से प्राप्त गुण का* ***'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके'*** *(७।३।८७) से प्रतिषेध होता है।*

दीर्घादेशः–

(२६) दीर्घोऽकितः ।८३।

प०वि०-दीर्घः १ ।१ अकितः ६ ।१ ।

स०-क् इद् यस्य स कित्, न किदिति अकित्, तस्य-अकितः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानवर्तते ।

अन्वयः-अङ्गस्याऽकितोऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्दीर्घः ।

अर्थः-अङ्गस्य किद्वर्जितस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो दीर्घो भवति ।

उदा०-**(यङ्)** स पापच्यते । स यायज्यते । **(यङ्लुक्)** स पापचीति । स यायजीति ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अङ्ग के (अकितः) कित्-आगम से रहित (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् और यङ्लुक् परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(यङ्) **स पापच्यते।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **स यायज्यते।** वह पुनः-पुनः यज्ञ पकाता है। **(यङ्लुक्) स पापचीति।** अर्थ पूर्ववत् है। **स यायजीति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-पापच्यते। *यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-पच्-पच्य। इस स्थिति में इस सूत्र से कित्-आगम से रहित अभ्यास को दीर्घ होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**पापचीति। 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से-**यायज्यते।** यङ्लुक् में-**यायजीति।***

नीक्-आगमः–

(२७) नीग् वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ।८४।

प०वि०- नीक् १ ।१ वञ्चु-स्रंसु-ध्वंसु-भ्रंसु-कस-पत-पद-स्कन्दाम् ६ ।३ ।

स०-वञ्चुश्च स्रंसुश्च ध्वंसुश्च भ्रंसुश्च कसश्च पतश्च पदश्च स्कन्द् च ते-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दः, तेषाम्-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसु-कसपतपदस्कन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दामऽङ्गानामऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्नीक्।

अर्थः-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दामऽङ्गानामऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो नीगागमो भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) वञ्चु	वनीवच्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः ठगता है।
	वनीवञ्चीति (लुक्)	-सम-
(२) स्रंसु	सनीस्रस्यते (यङ्)	वह पुनः गिरता है, खिसकता है।
	सनीस्रंसीति (लुक्)	-सम-
(३) ध्वंसु	दनीध्वस्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः नष्ट होता है।
	दनीध्वंसीति (लुक्)	-सम-
(४) भ्रंसु	बनीभ्रस्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः पतित होता है।
	बनीभ्रंसीति (लुक्)	-सम-
(५) कस	चनीकस्यते (यङ्)	वह पुनः हिलता/कांपता है।
	चनीकसीति (लुक्)	-सम-
(६) पत	पनीपत्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः गिरता है।
	पनीपतीति (लुक्)	-सम-
(७) पद	पनीपद्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः जाता है।
	पनीपदीति (लुक्)	-सम-
(८) स्कन्द	चनीस्कद्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः जाता/सूखता है।
	चनीस्कन्दीति (लुक्)	-सम-

आर्यभाषाः *अर्थ-(वञ्चु०) वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद, स्कन्द इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नीक्) नीक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) वनीवच्यते। *यहां 'वञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-व-वञ्च्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'नीक्' आगम होता है। '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**वनीवञ्चीति।** यहां यङ् प्रत्यय का लुक् हो जाने से '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप नहीं होता है। '**प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**' (१।१।६२) से भी प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं किया जा सकता है क्योंकि '**न लुमताऽङ्गस्य**' (१।१।६३) अर्थात् लुमान् (लुक्-श्लु-लुप्) के द्वारा किये गये प्रत्यय-लोप में प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं होता है।*

*(२) **सनीस्रस्यते।** 'स्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **दनीध्वंस्यते।** 'ध्वंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०)।*

*(४) **बनीभ्रस्यते।** 'भ्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०)।*

*(५) **चनीकस्यते।** 'कस गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(६) **पनीपत्यते।** 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(७) **पनीपद्यते।** 'पद गतौ' (दि०आ०)।*

*(८) **चनीस्कद्यते।** स्कन्दिर् {स्कन्द्} (भ्वा०आ०)।*

नुक्-आगमः-

(२८) नुगतोऽनुनासिकान्तस्य।८५।

प०वि०-नुक् १।१ अतः १।१ अनुनासिकान्तस्य ६।१।

स०-अनुनासिकोऽन्ते यस्य तद् अनुनासिकान्तम्, तस्य-अनुनासिकान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुनासिकान्तस्याऽङ्गस्याऽतोऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्नुक्।

अर्थः-अनुनासिकान्तस्याऽङ्गस्याऽकारान्तस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) तन्	स तन्तन्यते	वह पुनः-पुनः विस्तृत करता है।
	स तन्तनीति	-सम-
(२) गम्	जङ्गम्यते	वह पुनः-पुनः गमन करता है।
	जङ्गमीति	-सम-
(३) यम्	स यंयम्यते	वह पुनः-पुनः उपरत होता है।
	स यंयमीति	-सम-
(४) रम्	स रंरम्यते	वह पुनः-पुनः रमण करता है।
	स रंरमीति	-सम-

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुनासिकान्तस्य) अनुनासिक वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-तन्तन्यते। *यहां 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। त-तनय्। इस स्थिति में इस सूत्र से इस अनुनासिकान्त अभ्यास के अकार को 'नुक्' आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से परसवर्ण नकार होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**तन्तनीति।** 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**जङ्गम्यते, जङ्गमीति।** 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से-**यंयम्यते, यंयमीति।***

*यह नुक्-आगम अनुस्वार का उपलक्षण है, अतः यहां अनुस्वार ही आगम होता है, नुक् नहीं, क्योंकि 'नुक्' आगम करने पर यहां **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से परसवर्ण नहीं हो सकता क्योंकि झल्-वर्ण (य्) परे नहीं है। वा०- **'पदान्तवच्च'** (८।४।५८) से इस उक्त नुक् (अनुस्वार) आगम को पदान्तवत् मानकर **'वा पदान्तस्य'** (८।४।५९) से विकल्प से परसवर्ण होता है-**यंयम्यते।** परसवर्ण पक्ष में-**यंयम्यते।** **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आत्मनेपद) धातु से-**रंरम्यते, रंरमीति।** यहां परसवर्ण नहीं होता है, क्योंकि **"रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति"** (पा०शिक्षा)।*

नुक्-आगमः-

(२६) जपजभदहदशभञ्जपशां च।८६।

प०वि०-जप-जभ-दह-दश-भञ्ज-पशाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-जपश्च जभश्च दहश्च भञ्जश्च पश् च ते जपजभदहदशभञ्ज-पशः, तेषाम्-जपजभदहदशभञ्जपशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुको: अत:, नुगिति चानुवर्तते।

अन्वय:-जपजभदहदशभञ्जपशामऽङ्गानां चाभ्यासस्यातो यङ्-लुकोर्नुक्।

अर्थ:-जपजभदहदशभञ्जपशामऽङ्गानां चाऽभ्यासस्याऽकारस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति। **उदाहरणम्**--

धातु:	उदाहरणम्	भाषार्थ:
(१) जप	स जञ्जप्यते	वह निन्दित विधि से जप करता है।
	स जञ्जपीति	-सम-
(२) जभ	स जञ्जभ्यते	वह निन्दित विधि से जंभाई लेता है।
	स जञ्जमीति	-सम-
(३) दह	स दन्दह्यते	वह निन्दित विधि से भस्म करता है।
	स दन्दहीति	-सम-
(४) दश	स दन्दश्यते	वह निन्दित विधि से डसता करता है।
	स दन्दशीति	-सम-
(५) भञ्ज	स बम्भज्यते	वह पुन:-पुन: तोड़ता है।
	स बम्भजीति	-सम-
(६) पश	स पम्पश्यते	वह पुन:-पुन: बांधता है।
	स पम्पशीति	-सम-

आर्यभाषा: *अर्थ-(जप०) जप, जभ, दी, दश, भञ्ज, पश इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास के (अत:) अकार को (यङ्लुको:) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) जञ्जप्यते। *यहां **'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च'** (भ्वा०प०) धातु से **'लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम्'** (३।१।२४) से भाव-गर्हा अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है, क्रियासमभिहार में नहीं। 'सन्यङो:' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-ज-जप्य। इस स्थिति में अभ्यास-अकार को नुक् आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण:'** (८।४।५७) से परसवर्ण ञकार होता है। यङ्लुक् में-**जञ्जपीति।** ऐसे ही **'जभी गात्रविनामे'***

(भ्वा०आ०) धातु से-जञ्जभ्यते, जञ्जभीति। 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से-दन्दह्यते, दन्दहीति। 'दशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०) धातु से-दन्दश्यते, दन्दशीति। यह धातु सूत्रपाठ में 'दश' पठित है, अतः यङ्लुक् में भी अनुनासिक का लोप होता है।

(२) बम्भज्यते। 'भञ्जो आमर्दने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) पम्पश्यते। 'पश बन्धने' (चु०उ०)।

नुक्-आगमः—

(३०) चरफलोश्च।८७।

प०वि०-चर-फलोः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-चरश्च फल् च तौ चरफलौ, तयोः-चरफलोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोः, अतः, नुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-चरफलोरङ्गयोश्चाऽभ्यासस्याऽतो यङ्लुकोर्नुक्।

अर्थः-चरफलोरङ्गयोश्चाऽभ्यासस्याऽकारस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति।

उदा०-(चर) स चञ्चूर्यते, स चञ्चूरीति। (फल) स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (अतः) अकार को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

*उदा०-(चर) **स चञ्चूर्यते, स चञ्चूरीति।** वह निन्दित विधि से चलता है अथवा खाता है। (फल) **स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।** वह पुनः-पुनः सफल होता है।*

*सिद्धि-(१) **चञ्चूर्यते।** यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-च-चुर्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-अकार को नुक् आगम होता है। पूर्ववत् नकार को अनुस्वार और उसे परसवर्ण आदेश होता है। 'उत्परस्यातः' (७।४।८८) से अभ्यास से परवर्ती चर् के अकार को उकारादेश और इसे 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। यङ्लुक् में-**चञ्चुरीति।** ऐसे ही 'फल निष्पत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-**पम्फुल्यते।** यङ्लुक् में-**पम्फुलीति।***

उत्-आदेशः–

(३१) उत्परस्यातः ।८८।

प०वि०–उत् १।१ परस्य ६।१ अतः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोः, चरफलोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–चरफलोरङ्गयोरभ्यासात् परस्यातो यङ्लुकोरुत्।

अर्थः–चरफलोरङ्गयोरभ्यासात् परस्याऽकारस्य स्थाने यङि यङ्लुकि च परत उकारादेशो भवति।

उदा०–(चर) स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति। **(फल)** स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्ग के (अभ्यासात्) अभ्यास से (परस्य) परवर्ती (अतः) अकार के स्थान में (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (उत्) उकारादेश होता है।*

*उदा०–**(चर) स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति।** वह निन्दित विधि से चलता है अथवा खाता है। **(फल) स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।** वह पुनः-पुनः सफल होता है।*

सिद्धि–चञ्चूर्यते। *यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है–च-चर्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास से परवर्ती चर् के अकार को उकार आदेश होता है और 'हलि च' (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। यङ्लुक् में–**चञ्चुरीति।** 'चरफलोश्च' (७।४।८७) से अभ्यास-अकार को 'नुक्' आगम होता है। ऐसे ही 'फल निष्पत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से–**पम्फुल्यते।** यङ्लुक् में–**पम्फुलीति।***

उत्-आदेशः–

(३२) ति च ।८९।

प०वि०–ति ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, चरफलोः, उत्, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चरफलोरङ्गयोरतस्ति च उत्।

अर्थः–चरफलोरङ्गयोरकारस्य स्थाने तकारादौ प्रत्यये परतश्च उकारादेशो भवति।

उदा०-(चर) चरणं चूर्तिः। ब्रह्मणश्चूर्तिः। (फल) प्रफुल्तिः। प्रफुल्ताः सुमनसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अतः) अकार के स्थान में (ति) तकारादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (उत्) उकारादेश होता है।*

*उदा०-(चर) **चरणं चूर्तिः।** चलना वा खाना। **ब्रह्मणश्चूर्तिः।** ब्राह्मण का चलना वा खाना। (फल) **प्रफुल्तिः।** सुसफल होना। **प्रफुल्ताः सुमनसः।** सुसफल पण्डितजन।*

*सिद्धि-चूर्तिः। यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' प्रत्यय है। प्र+चर्+ति। इस स्थिति में इस सूत्र से तकारादि 'क्तिन्' प्रत्यय परे होने पर 'चर्' के अकार को उकारादेश होता है और इसे 'हलि च' (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। ऐसे ही **'फल निष्पत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**प्रफुल्तिः।** क्त प्रत्यय में-**प्रफुल्ताः।***

विशेषः *यहां अभ्यासस्य और यङ्लुकोः इन पदों की अनुवृत्ति है किन्तु उनका अर्थवश सम्बन्ध नहीं होता है।*

रीक्-आगमः-

(३३) रीगृदुपधस्य च।९०।

प०वि०-रीक् १।१ ऋदुपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-ऋद् उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्य-ऋदुपधस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकोरीक्।

अर्थः-ऋकारोपधस्याऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो रीगागमो भवति।

उदा०-(वृतु) स वरीवृत्यते, वरीवृतीति। (वृधु) स वरीवृध्यते, वरीवृधीति। (नृत्) स नरीनृत्यते, नरीनृतीति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋदुपधस्य) ऋकार-उपधावाले (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (रीक्) रीक् आगम होता है।*

उदा०-(वृतु) स वरीवृत्यते, वरीवृतीति। वह पुन:-पुन: वर्ताव (व्यवहार) करता है। (वृधु) स वरीवृध्यते, वरीवृधीति। वह पुन:-पुन: बढ़ता है। (नृत्) स नरीनृत्यते, नरीनृतीति। वह पुन:-पुन: नाचती है।

सिद्धि-वरीवृत्यते। यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। वृ-वृत्य। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। व-वृत्य। इस स्थिति में इस सूत्र से ऋकार-उपधावान् 'वृतु' धातु के अभ्यास को रीक् आगम होता है-वरीक्+वृत्य। वरी-वृत्य। वरीवृत्य+लट्। वरीवृत्यते। यङ्लुक् में-वरीवृतीति। ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से-वरीवृध्यते। यङ्लुक् में-वरीवृधीति। 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से-नरीनृत्यते। यङ्लुक् में-नरीनृतीति।

रुक्-रिक्-रीक्-आगमः-

(३४) रुग्रिकौ च लुकि।६१।

प०वि०-रुक्-रिकौ १।२ च अव्ययपदम्, लुकि ७।१।

स०-रुक् च रिक् च तौ रुग्रिकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, रीक्, ऋदुपधस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकि रुग्रिकौ रीक् च।

अर्थः-ऋकारोपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकि सति रुग्रिकौ रीक् चाऽऽगमो भवति।

उदा०-(नृत्) **रुक्**-नर्नर्ति। **रिक्**-नरिनर्ति। **रीक्**-नरीनर्ति। (वृतु) **रुक्**-वर्वर्ति। **रिक्**-वरिवर्ति। **रीक्**-वरीवर्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋदुपधस्य) ऋकार उपधावाले (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकि) यङ्लुक् परे होने पर (रुग्रिकौ) रुक्, रिक् (च) और (रीक्) रीक् आगम होता है।*

उदा०-(नृत्) रुक्-नर्नर्ति। रिक्-नरिनर्ति। रीक्-नरीनर्ति। वह पुन:-पुन: नाचती है। (वृतु) रुक्-वर्वर्ति। रिक्-वरिवर्ति। रीक्-वरीवर्ति। वह पुन:-पुन: वर्ताव (व्यवहार) करता है।

सिद्धि-नर्नर्ति। यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) इस ऋकार-उपधावान् धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। न+नृत्। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है-नरुक्+नृत्। नर+नृत। नर्नृत्+लट्। नर्नर्तीति। रिक् आगम में-नरिनृतीति। रीक् आगम में-नरीनृतीति। ऐसे ही 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से-वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति।

रुक्-रिक्-रीक्-आगमः--

(३५) ऋतश्च।६२।

प०वि०-ऋतः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, रीक्, रुग्रिकौ, लुकीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङ्लुकि रुग्रिकौ रीक् च।

अर्थः-ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङ्लुकि परतो रुग्रिकौ रीक् चाऽऽगमो भवति।

उदा०-(कृ) **रुक्**-चर्कर्ति। **रिक्**-चरिकर्ति। **रीक्**-चरीकर्ति। (हृ) **रुक्**-जर्हर्ति। **रिक्**-जरिहर्ति। **रीक्**-जरीहर्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकि) यङ्लुक् परे होने पर (रुग्रिकौ) रुक्, रिक् और (रीक्) रीक् आगम होता है।*

*उदा०-(कृ) रुक्-**चर्कर्ति**। रिक्-**चरिकर्ति**। रीक्-**चरीकर्ति**। वह पुनः-पुनः बनाता है। (हृ) रुक्-**जर्हर्ति**। रिक्-**जरिहर्ति**। रीक्-**जरीहर्ति**। वह पुनः-पुनः हरण करता है।*

सिद्धि-चर्कर्ति। *यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। क-कृ। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। क रुक्-कृ। कर्-कृ। चर्-कृ। चर्कृ+लट्। चर्कर्ति। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। रिक् आगम में-**चरिकर्ति**। रीक् आगम में-**चरीकर्ति**। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०प०) धातु से-**जर्हर्ति, जरिहर्ति, जरीहर्ति**।*

सन्वद्भावः--

(३६) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे।६३।

प०वि०-सन्वत् अव्ययपदम्, लघुनि ७।१ चङ्परे ७।१ अनग्-लोपे ७।१

तद्धितवृत्तिः-सनि इवेति सन्वत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-चङ्परो यस्मात् तत्-चङ्परम्, तस्मिन्-चङ्परे (बहुव्रीहिः)। अको लोप इति अग्लोपः, न विद्यतेऽग्लोपो यस्मिँस्तत्-अनग्लोपम्, तस्मिन्-अनग्लोपे (षष्ठीगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघुनि अङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परे णौ, अनग्लोपे सन्वत्।

अर्थः-लघुनि धात्वक्षरे परतोऽङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य चङ्परके णौ परतोऽनग्लोपे च सति सन्वत् कार्यं भवति। **उदाहरणम्**-

(१) **'सन्यतः'** (७।४।७९) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-अचीकरत्, अजीकरत्।

(२) **'ओः पुयण्ज्यपरे'** (७।४।८०) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-अपीपवत्, अलीलवत्। अजीजवत्।

(३) **'स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा'** (७।४।८१) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-**(स्रवति)** असिस्रवत्, असुस्रवत्। **(शृणोति)** अशिश्रवत्, अशुश्रवत्। **(द्रवति)** अदिद्रवत्, अदुद्रवत्। **(प्रवति)** अपिप्रवत्, अपुप्रवत्। **(प्लवति)** अपिप्लवत्, अपुप्लवत्। **(च्यवति)** अचिच्यवत्, अचुच्यवत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(लघुनि) लघु धातु-अक्षर परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग का जो (अभ्यासस्य) अभ्यास है, उसको (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर तथा (अनग्लोपे) अक्-वर्ण का लोप न होने पर (सन्वत्) सन् प्रत्यय परे होने पर जो अभ्यास-कार्य होता है, वह यहां भी होता है। उदाहरण-*

(१) 'सन्यतः' (७।४।७९) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। ***अचीकरत्।*** *उसने कराया, बनवाया।* ***अजीकरत्।*** *उसने हरण कराया।*

(२) 'ओः पुयण्ज्यपरे' (७।४।८०) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। ***अपीपवत्।*** *उसने पवित्र कराया।* ***अलीलवत्।*** *उसने छेदन (कटाई) कराया।* ***अजीजवत्।*** *उसने गमन कराया।*

(३) 'स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा' (७।४।८१) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। ***(स्रवति) असिस्रवत्, असुस्रवत्।*** *उसने स्राव (बहाव) कराया।* ***(शृणोति) अशिश्रवत्, अशुश्रवत्।***

*उसने सुनवाया। (द्रवति) **अदिद्रवत्, अदुद्रवत्।** उसने दौड़ कराई, भगाया। (प्रवति) **अपिप्रवत्, अपुप्रवत्।** उसने उछलवाया। (प्लवति) **अपिप्लवत्, अपुप्लवत्।** उसने प्लवन कराया। (च्यवति) **अचिच्यवत्, अचुच्यवत्।** उसने हटवाया।*

*सिद्धि-**अचीकरत्।** यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में चङ् आदेश और 'चङि' से द्वित्व करते समय 'द्विर्वचनेऽचि' (१।१।५९) से स्थानिवद्भाव होकर-कृ-कारि द्वित्व होता है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (७।४।१) से उपधा को ह्रस्वादेश होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। क-कर्+अ। इस स्थिति में इस सूत्र से सन्वद्भाव होने से 'सन्यतः' (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है और 'दीर्घो लघोः' (७।४।९४) से इसे दीर्घ होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**अजीहरत्।** ऐसे ही 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) आदि धातुओं से '**अपीपवत्**' आदि पदों की सिद्धियां समझें।*

दीर्घादेशः--

(३७) दीर्घो लघोः।६४।

प०वि०-दीर्घः १।१ लघोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लघुनि, चङ्परे, अनग्लोपे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघुनि अङ्गस्याऽभ्यासस्य लघोश्चङ्परे णौ, अनग्लोपे दीर्घः।

अर्थः-लघुनि धात्वक्षरे परतोऽङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य लघोर्वर्णस्य चङ्परके णौ परतोऽनग्लोपे च सति दीर्घो भवति।

उदा०-अचीकरत्, अजीहरत्, अलीलवत्, अपीपवत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लघुनि) लघु धातु अक्षर परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग का जो (अभ्यासस्य) अभ्यास है उसके (लघोः) लघु वर्ण को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर तथा (अनग्लोपे) अक्-वर्ण का लोप न होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**अचीकरत्।** उसने कराया, बनवाया। **अजीहरत्।** उसने हरण कराया। **अलीलवत्।** उसने लवन (कटाई) कराया। **अपीपवत्।** उसने पवित्र कराया।*

*सिद्धि-**अचीकरत्।** आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् (७।४।९३) हैं। अभ्यास के लघु-वर्ण को दीर्घादेश का कथन विशेष है।*

अत्-आदेशः-

(३८) अत् स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्।६५।

प०वि०-अत् १।१ स्मृ-दृ-त्वर-प्रथ-म्रद-स्तृ-स्पशाम् ६।३।

स०-स्मृश्च दृश्च त्वरश्च प्रथश्च म्रदश्च स्तृश्च स्पश् च ते-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशः, तेषाम्-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशामऽङ्गानामऽभ्यासस्य चङ्परे णौ अत्।

अर्थः-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशामऽङ्गानामभ्यासस्य चङ्परे णौ परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-(**स्मृ**) असस्मरत्। (**दृ**) अददरत्। (**त्वर**) अतत्वरत्। (**प्रथ**) **अपप्रथत्**। (**म्रद**) अमम्रदत्। (**स्तृ**) अतस्तरत्। (**स्पश**) अपस्पशत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्मृ०) स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तृ, स्पश इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०-(स्मृ) **असस्मरत्**। उसने स्मरण कराया। (दृ) **अददरत्**। उसने डराया। (त्वर) **अतत्वरत्**। उसने सम्भ्रम (तकाजा) कराया। (प्रथ) **अपप्रथत्**। उसने प्रख्यात कराया। (म्रद) **अमम्रदत्**। उसने मर्दन कराया। (स्तृ) **अतस्तरत्**। उसने आच्छादित कराया, ढकवाया। (स्पश) **अपस्पशत्**। उसने बाधित/स्पर्श कराया।*

*सिद्धि-(१) **असस्मरत्**। यहां प्रथम 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०उ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'स्मारि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है-स्मृ-स्मारि। स्म-मर्+अ। इस स्थिति में 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होकर इस सूत्र से इसे अकारादेश होता है। 'सन्वतः' (७।४।७९) से इकारादेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

(२) अददरत्। 'दॄ भये' (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) अतत्वरत्। 'ञित्वरा सम्भ्रमे' (भ्वा०आ०)।

(४) अपप्रथत्। 'प्रथ प्रख्याने' (भ्वा०आ०)।

(५) अमम्रदत्। 'म्रद मर्दने' (भ्वा०आ०)।

(६) अतस्तरत्। 'स्तॄञ् आच्छादने' (स्वा०उ०)।

(७) अपस्पशत्। 'स्पश बाधनस्पर्शयोः' (भ्वा०उ०)।

अत्-आदेशविकल्पः–

(३६) विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः।६६।

प०वि०–विभाषा १।१ वेष्टि-चेष्ट्योः ६।२।

स०–वेष्टिश्च चेष्टिश्च तौ वेष्टिचेष्टी, तयोः वेष्टिचेष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे, अदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–वेष्टिचेष्ट्योरङ्गयोरभ्यासस्य चङ्परे णौ विभाषाऽत्।

अर्थः–वेष्टिचेष्ट्योरङ्गयोरभ्यासस्य चङ्परके णौ परतो विकल्पेनाऽकारादेशो भवति।

उदा०–**(वेष्टि)** अववेष्टत्, अविवेष्टत्। **(चेष्टि)** अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(वेष्टिचेष्ट्योः) वेष्टि, चेष्टि इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०–(वेष्टि) **अववेष्टत्, अविवेष्टत्।** उसने वेष्टन (लपेटना) कराया। **(चेष्टि) अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।** उसने चेष्टा (प्रयत्न) कराई।*

*सिद्धि–**अववेष्टत्।** यहां प्रथम 'वेष्ट वेष्टने' (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'वेष्टि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश और **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। वि-वेष्टि। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-इकार को अकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में अकारादेश नहीं है-**अविवेष्टत्।** ऐसे ही 'चेष्ट चेष्टायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-**अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।***

ईकार-अकारादेशौ—

(४०) ई च गणः।६७।

प०वि०–ई १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, गणः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे, अदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–गणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परे णौ ईः, अच्च।

अर्थः–गणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परके णौ परत ईकारोऽकारश्चाऽऽदेशो भवति।

उदा०–अजीगणत्, अजगणत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गणः) गण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकार (च) और (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०–**अजीगणत्, अजगणत्।** उसने गणना की।*

सिद्धि-अजीगणत्। *यहां प्रथम **'गण संख्याने'** (चु०उ०) धातु से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'गणि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४७) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश और **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है-ग-गणि। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को ईकारादेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से गकार को चवर्ग जकारादेश होता है। अकारादेश पक्ष में-**अजगणत्।***

{इति अभ्यासकार्यप्रकरणम्}

।। इति अङ्गाधिकारः समाप्तः ।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चायं सप्तमोऽध्यायः।।

अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः

द्विर्वचनप्रकरणम्

द्विर्वचनाधिकारः–

(१) सर्वस्य द्वे।१।

प०वि०–सर्वस्य ५।१ द्वे १।२।

अर्थः–सर्वस्य द्वे भवतः इत्यधिकारोऽयम्। **'पदस्य'** (८।१।१६) इत्यस्मात्–प्राक्, यदितोऽग्रे वक्ष्यति तत्र सर्वस्य द्वे भवत इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति–**'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) इति, तत्र सर्वस्य स्थाने द्वे भवतः।

उदा०–पचति पचति। ग्रामो ग्रामो रमणीय इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(सर्वस्य, द्वे) 'सर्वस्य द्वे' यह अधिकार सूत्र है। **'पदस्य'** (८।१।१६) इस सूत्र से पहले पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वहां सबके स्थान में द्वित्व होता है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे–**'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) अर्थात् नित्य और वीप्सा अर्थ में (सर्वस्य) सब को (द्वे) द्वित्व होता है।*

*उदा०–**पचति पचति।** वह पुनः–पुनः पकाता है। **ग्रामो ग्रामो रमणीयः।** ग्राम-ग्राम (प्रत्येक ग्राम) सुन्दर है।*

आम्रेडित-संज्ञा–

(२) तस्य परमाम्रेडितम्।२।

प०वि०–तस्य ६।१ परम् १।१ आम्रेडितम् १।१।

अर्थः–तस्य द्विरुक्तस्य यत् परं शब्दरूपं तदाऽऽम्रेडितसंज्ञकं भवति।

उदा०–चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

आर्यभाषाः अर्थ–*(तस्य) उस द्वित्व किये हुये शब्द के (परम्) परवर्ती शब्द की (आम्रेडितम्) आम्रेडित संज्ञा होती है।*

*उदा०–**चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।** हे चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बन्धवाऊंगा।*

सिद्धि-चौर चौर३। यहां 'वाक्यादेरामन्त्रितस्य०' (८।१।८) से भर्त्सन-अर्थ में द्विर्वचन होता है। इससे परवर्ती अर्थात् द्वितीय 'चौर' शब्द की आम्रेडित संज्ञा होती है। 'आम्रेडितं भर्त्सने' (८।२।९५) से आम्रेडित के टि-भाग (अ) को प्लुत होता है। ऐसे ही-वृषल वृषल३। दस्यो दस्यो३।

अनुदात्तस्वरः-

(३) अनुदात्तं च।३।

प०वि०-अनुदात्तम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आम्रेडितमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-आम्रेडितमनुदात्तं च।

अर्थः-यदाऽऽम्रेडितं शब्दरूपं तदनुदात्तं च भवति।

उदा०-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। पशून् पशून्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आम्रेडितम्) जो आम्रेडित-संज्ञक शब्द है वह (अनुदात्तम्) अनुदात्त (च) भी होता है।*

उदा०-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। वह पुनः-पुनः खाता है। पशून् पशून्। सब पशुओं को, पशुमात्र को।

सिद्धि-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से नित्य अर्थ में 'भुङ्क्ते' शब्द को द्विर्वचन होता है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से परवर्ती 'भुङ्क्ते' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है और इस सूत्र से इसे अनुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही पशून् पशून्। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में द्विर्वचन होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

द्विर्वचनम्-

(४) नित्यवीप्सयोः।४।

प०वि०-नित्य-वीप्सयोः ७।२।

स०-नित्यं च वीप्सा च ते नित्यवीप्से, तयोः-नित्यवीप्सयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सर्वस्य, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नित्यवीप्सयोः सर्वस्य द्वे।

अर्थः-नित्ये वीप्सायां चार्थे यः शब्दस्तस्य सर्वस्य द्वे भवतः।

उदा०-नित्ये-पचति पचति। जल्पति जल्पति। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति। लुनीहि लुनीहि इत्येवमयं लुनाति। **वीप्सायाम्**-ग्रामो ग्रामो रमणीयः। जनपदो जनपदो रमणीयः। पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति।

केषु नित्यता ? तिङ्क्षु अव्ययेषु कृत्सु च नित्यता भवति। कुत एतत् ? आभीक्ष्ण्यमिह नित्यता कथ्यते। आभीक्ष्ण्यं च क्रियाधर्मो वर्तते। कर्ता यां क्रियां प्राधान्येनाऽनुपरमन् सन् कुरुते तन्नित्यमित्युच्यते।

अथ केषु वीप्सा ? सुप्सु वीप्सा भवति। का पुनर्वीप्सा भवति ? प्रयोक्तुर्व्याप्तिविशेषविषया येच्छा सा वीप्सेत्यभिधीयते। नानावाचिनां द्रव्याणां क्रियागुणाभ्यां प्रयोक्तुर्युगपद्व्याप्तुमिच्छा वीप्सेत्याख्यायते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नित्यवीप्सयोः) नित्य और वीप्सा अर्थ में जो शब्द है उस (सर्वस्य) सबको (द्वे) द्विर्वचन होता है।*

*उदा०-**नित्य-पचति पचति।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **जल्पति जल्पति।** वह पुनः-पुनः बकता है। **भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति।** वह पुनः-पुनः खाकर जाता है। **भोजं भोजं व्रजति।** वह पुनः-पुनः खाता हुआ जाता है। **वीप्सा-ग्रामो ग्रामो रमणीयः।** इस हरयाणा प्रदेश का ग्राम-ग्राम सुन्दर है। **जनपदो जनपदो रमणीयः।** इस भारतवर्ष का जनपद-जनपद (प्रदेश) सुन्दर है। **पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति।** जन-जन (प्रत्येक) मृत्यु को प्राप्त होता है।*

सिद्धि-(१) पचति पचति। *यहां नित्य अर्थ में इस सूत्र से 'पचति' शब्द को द्विर्वचन होता है। **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती 'पचति' शब्द की आम्रेडित-संज्ञा होकर **'अनुदात्तं च'** (८।१।३) से इसे अनुदात्तस्वर होता है। ऐसे ही-**जल्पति जल्पति।***

*(२) **भुक्त्वा भुक्त्वा।** यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **भोजं भोजम्।** यहां 'भुज' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से आभीक्ष्ण्य=पुनः पुनर्भाव अर्थ में 'णमुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही वीप्सा अर्थ में-**ग्रामो ग्रामो रमणीयः** आदि।*

नित्यता धर्म किन शब्दों में रहता है ? तिङन्त, अव्यय और कृदन्त शब्दों में नित्यता धर्म रहता है। ऐसा क्यों है ? क्योंकि यहां नित्यता का अर्थ आभीक्ष्ण्य है और यह क्रिया का धर्म है। कर्ता जिस क्रिया को प्रमुख रूप में विराम रहित होकर करता है, उसे 'नित्य' कहते हैं।

वीप्सा धर्म किन शब्दों में रहता है ? सुबन्त शब्दों में वीप्सा धर्म रहता है। शब्द के प्रयोक्ता की व्याप्तिविशेष विषयक जो इच्छा है वह 'वीप्सा' कहाती है। नाना अर्थवाले द्रव्यों का क्रिया और गुण के द्वारा प्रयोक्ता की एक साथ जो व्याप्त करने की इच्छा है, उसे 'वीप्सा' कहते हैं।

द्विर्वचनम्–

(५) परेर्वर्जने।५।

प०वि०–परे: ६।१ वर्जने ७।१।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–वर्जने परेर्द्वे।

अर्थ:–वर्जनेऽर्थे वर्तमानस्य परिशब्दस्य द्वे भवत:।

उदा०–परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:। परि परि सौवीरेभ्यो वृष्टो देव:। परि परि सर्वसेनेभ्यो वृष्टो देव:। वर्जनम्=परिहार:।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(वर्जने) परिहार अर्थ में विद्यमान (परे:) परि शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है।*

*उदा०–**परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव:।** त्रिगर्त (कांगड़ा) देश को छोड़कर बादल बरसा। **परि परि सौवीरेभ्यो वृष्टो देव:।** सौवीर (रोड़ी) देश को छोड़कर बादल बरसा। **परि परि सर्वसेनेभ्यो वृष्टो देव:।** सर्वसेन (मरुस्थल) देश को छोड़कर बादल बरसा।*

***सिद्धि–परि परि त्रिगर्तेभ्य:।** यहां वर्जन अर्थ में 'परि' शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। पूर्ववत् परवर्ती 'परि' शब्द की आम्रेडित संज्ञा होकर इसे अनुदात्त स्वर होता है। **'अपपरी वर्जने'** (१।४।८७) से 'परि' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर **'पञ्चम्यपाङ्परिभि:'** (२।३।१०) से **'त्रिगर्तेभ्य:'** पद में पञ्चमी विभक्ति होती है। यहां **'नित्यवीप्सयो:'** (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन प्राप्त था, अत: इस सूत्र से वर्जन अर्थ में द्विवर्चन का कथन किया गया है।*

द्विर्वचनम्–

(६) प्रसमुपोद: पादपूरणे।६।

प०वि०–प्र-सम्-उप-उद: ६।१ पादपूरणे ७।१।

स०–प्रश्च सम् च उपश्च उत् च एतेषां समाहार: प्रसमुपोत्, तस्य-प्रसमुपोद: (समाहारद्वन्द्व:)। पादस्य पूरणमिति पादपूरणम्, तस्मिन्-पादपूरणे (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पादपूरणे प्रसमुपोदां द्वे।

अर्थः-पादपूरणेऽभिधेये प्रसमुपोदां शब्दानां द्वे भवतः।

उदा०-**(प्र)** प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे (ऋ० ७।८।४)। **(सम्)** संसमिद्युवसे वृषन् (ऋ० १०।१९१।१)। **(उप)** उपोप मे परामृश (ऋ० १।१२६।७)। **(उत्)** किं नोदुदु हर्षसि दातवा उ (ऋ० ४।२१।९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पादपूरणे) वेदमन्त्र के पाद=चरण की पूर्ति करने में (प्रसमुपोदाम्) प्र, सम्, उप, उत् शब्दों को (द्वे) द्विर्वचन होता है।*

उदा०-(प्र) ***प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे*** *(ऋ० ७।८।४) इत्यादि पादपूर्ति विषयक सब वैदिक उदाहरण संस्कृत-भाग में देखें।*

सिद्धि-'प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे' *यह ऋग्वेद के मन्त्र का त्रिष्टुप् छन्द का प्रथम चरण है। त्रिष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में ११ ग्यारह वर्ण होते हैं। यहां पादपूर्ति अर्थात् चरण के वर्णों को पूरा करने के लिये 'प्र' शब्द को द्विर्वचन किया गया है। सम्पूर्ण ऋचा यह है-*

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे
वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः।
अभि यः पुरुं पृतनासु तस्थौ
द्युतानो दैव्योऽअतिथिः शुशोच।। (ऋ० ७।८।४)

इसके सहाय से अन्य उदाहरणों का अभिप्राय भी समझ लेवें।

द्विर्वचनम्--

(७) उपर्यध्यधसः सामीप्ये।७।

प०वि०-उपरि-अधि-अधसः ६।१ सामीप्ये ७।१।

स०-उपरिश्च अधिश्च अधश्च एतेषां समाहारः-उपर्यध्यधः, तस्य-उपर्यध्यधसः (समाहारद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-समीपस्य भाव इति सामीप्यम्, तस्मिन्- सामीप्ये। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०-द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सामीप्ये उपर्यध्यधसां द्वे।

अर्थः-सामीप्येऽर्थे विवक्षिते उपर्यध्यधसां शब्दानां द्वे भवतः। सामीप्यं देशकृतं कालकृतं चेति द्विविधं भवति।

उदा०-(**उपरि**) उपर्युपरि ग्रामम्। उपर्युपरि दुःखम्। (**अधि**) अध्यधि ग्रामम्। (**अधः**) अधोऽधो नगरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सामीप्ये) समीपता अर्थ की विवक्षा में (उपर्यध्यधसाम्) उपरि, अधि, अधस् इन शब्दों को (द्वे) द्विर्वचन होता है। समीपता देश और काल के भेद से दो प्रकार की होती है।*

*उदा०-(उपरि) **उपर्युपरि ग्रामम्**। ग्राम के समीपवर्ती उपरिभाग में। **उपर्युपरि दुःखम्**। आगामी समीपवर्ती समय में दुःख है। (अधि) **अध्यधि ग्रामम्**। ग्राम के समीपवर्ती ऊपर के भाग में। (अधः) **अधोऽधो नगरम्**। ग्राम के समीपवर्ती अधोभाग में।*

*सिद्धि-**उपर्युपरि ग्रामम्**। यहां सामीप्य अर्थ में 'उपरि' शब्द को इस सूत्र से दिर्वचन होता है और अधोलिखित कारिकावचन से द्वितीया विभक्ति होती है-*

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। (अष्टा० २।३।२)।

*ऐसे ही-**अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधः ग्रामम्।***

द्विर्वचनम्-

(८) वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनेषु।८।

प०वि०-वाक्यादेः ६।१ आमन्त्रितस्य ६।१ असूया-सम्मति-कोप-कुत्सन-भर्त्सनेषु ७।३।

स०-वाक्यस्य आदिरिति वाक्यादिः, तस्य-वाक्यादेः (षष्ठीतत्पुरुषः)। असूया च सम्मतिश्च कोपश्च कुत्सनं च भर्त्सनं च तानि असूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनानि, तेषु-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे।

अर्थः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेष्वर्थेषु वर्तमानस्य वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे भवतः। **उदाहरणम्**-

(१) **असूया** (परगुणानामसहनम्) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

(२) **सम्मतिः** (पूजा) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।

(३) **कोपः** (क्रोधः) माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

(४) **कुत्सनम्** (निन्दनम्) शक्तिके३ शक्तिके, यष्टिके३ यष्टिके रिक्ता ते शक्तिः।

(५) **भर्त्सनम्** (अपकारशब्दैर्भयोत्पादनम्) चौर चौर३ वृषल वृषल३ धातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(असूया०) असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन और भर्त्सन अर्थ में विद्यमान (वाक्यादेः) वाक्य के प्रारम्भ में (आमन्त्रितस्य) आमन्त्रित=सम्बोधनवाची शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है। उदाहरण-*

*(१) **असूया** (दूसरे के गुणों को सहन न करना) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक तेरा सौन्दर्य खाली है, अपूर्ण है।*

*(२) **सम्मति** (पूजा) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक तू निश्चय से सोहणा है।*

*(३) **कोप** (क्रोध) माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक तुझे अब पता चलेगा।*

*(४) **कुत्सन** (निन्दा) शक्तिके३ शक्तिके, यष्टिके३ यष्टिके तेरी शक्ति खाली है, अपूर्ण है।*

*(५) **भर्त्सन** (अपकारवाची शब्दों से भय उत्पन्न करना) चौर चौर३ वृषल वृषल३ मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बंधवाऊंगा।*

सिद्धि-माणवक३ माणवक। *यहां असूया शब्द में विद्यमान तथा वाक्य के प्रारम्भ में आमन्त्रितवाची 'माणवक' शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन और भर्त्सन अर्थ में **'स्वरितमाऽऽम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु'** (८।२।१०३) से पूर्वपद को प्लुत होता है और भर्त्सन अर्थ में **'आम्रेडितं भर्त्सने'** (८।२।९५) से आम्रेडित पद को प्लुत होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में दिखाया गया है।*

द्विर्वचनं बहुव्रीहिवद्भावश्च–

(६) एकं बहुव्रीहिवत्।६।

प०वि०–एकम् १।१ बहुव्रीहिवत् अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्ति:–बहुव्रीहेरिवेति बहुव्रीहिवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–एकं द्वे बहुव्रीहिवच्च।

अर्थ:–एकमित्येत्येतस्य शब्दस्य द्वे भवतः, बहुव्रीहिवच्च कार्यं भवति।

उदा०–एकैकमक्षरं पठति। एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(एकम्) एक इस शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है और (बहुव्रीहिवत्) बहुव्रीहि समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०–**एकैकमक्षरं पठति।** वह एक-एक अक्षर पढ़ता है। **एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति।** वह एक-एक आहुति से यज्ञ करता है।*

सुप् प्रत्यय का लोप और पुंवद्भाव ये बहुव्रीहिवद्भाव के प्रयोजन हैं।

*सिद्धि-(१) **एकैकम्।** एकम्+एकम्। एक-एक। एकैक+सु। एकैक+अम्। एकैकम्।*

*यहां 'एक' शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है। इस सूत्र से बहुव्रीहिवद्भाव होने से **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् होता है। पश्चात् **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।४।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर **'स्वौजस०'** (१।४।२) से 'सु' उत्पत्ति और **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'सु' को 'अम्' आदेश होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८५) से वृद्धिरूप एकादेश और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०७) से पूर्वरूप एकादेश होता है।*

*(२) **एकैकया।** एका+एका। एक+एक। एकैक+टाप्। एकैके+आ। एकैक् अय्+आ। एकैकया।*

*यहां एका शब्द का पूर्ववत् वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन होता है। बहुव्रीहिवद्भाव से **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३३) से पुंवद्भाव होता है। पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' और तृतीया-एकवचन की विवक्षा में 'टा' प्रत्यय, **'आङि चापः'** (७।३।१०५) से एकारादेश और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से अय्-आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

द्विर्वचनं बहुव्रीहिवद्भावश्च–

(१०) आबाधे च।१०।

प०वि०–आबाधे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–द्वे बहुव्रीहिवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आबाधे च शब्दस्य द्वे, बहुव्रीहिवत्।

अर्थः–आबाधेऽर्थे च वर्तमानस्य शब्दस्य द्वे भवतः, बहुव्रीहिवच्चास्य कार्यं भवति।

उदा०–गतगतः। नष्टनष्टः। पतितपतितः। गतगता। नष्टनष्टा। पतितपतिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आबाधे) पीडा अर्थ में विद्यमान शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है और इसे (बहुव्रीहिवत्) बहुव्रीहि समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०–**गतगतः**। कोई व्यक्ति अपने प्रिय के चले जाने पर आबाधित (पीडित) हुआ वियोग में कहता है कि-वह चला गया। **नष्टनष्टः**। वह अदृष्ट होगया। **पतितपतितः**। वह गिर गया। **गतगता**। वह चली गई। **नष्टनष्टा**। वह अदृष्ट होगई। **पतितपतिता**। वह गिर गई।*

सिद्धि-'गतगतः' आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

कर्मधारयवद्भावः–

(११) कर्मधारयवदुत्तरेषु।११।

प०वि०–कर्मधारयवत् अव्ययपदम्, उत्तरेषु ७।३।

तद्धितवृत्तिः–कर्मधारस्येव कर्मधारयवत्। 'तत्र तस्येव' (५।१।११६) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत्।

अर्थः–इत उत्तरेषु प्रोच्यमानेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत् कार्यं भवतीति वेदितव्यम्। सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि कर्मवद्भावस्य प्रयोजनानि।

उदा०–(**सुब्लोपः**) पटुपटुः। मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः (**पुंवद्भावः**) पटुपट्वी। मृदुमृद्वी। कालककालिका। (**अन्तोदात्तः**) पटुपटुः पटुपट्वी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्तरेषु) इससे आगे कहे जानेवाले द्विर्वचनों में (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान कार्य होता है। सुब्लोप, पुंवद्भाव और अन्तोदात्तत्व ये कर्मवद्भाव के प्रयोजन हैं।*

उदा०-(सुब्लोप) ***पटुपटुः।*** *पटु (चतुर) के सदृश।* ***मृदुमृदुः।*** *मृदु (कोमल) के सदृश।* ***पण्डितपण्डितः।*** *पण्डित के सदृश। (पुंवद्भाव)* ***पटुपट्वी।*** *पट्वी (चतुरा) नारी के सदृश।* ***मृदुमृद्वी।*** *मृदु नारी के सदृश।* ***कालककालिका।*** *कालिका नारी के सदृश। (अन्तोदात्त)* ***पटुपटुः। पटुपट्वी।***

सिद्धि-(१) ***पटुपटुः।*** *यहां 'पटु' शब्द को* ***'प्रकारे गुणवचनस्य'*** *(८।१।१२) से प्रकार (सदृश) अर्थ में द्विर्वचन होता है। कर्मवद्भाव से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है।* ***'कृत्तद्धितसमासाश्च'*** *(१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से सु-उत्पत्ति होती है। ऐसे ही-***मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः।***

(२) ***पटुपट्वी।*** *यहां 'पट्वी' शब्द को पूर्ववत् प्रकार-अर्थ में द्विर्वचन होता है। 'पटु' शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में* ***'वोतो गुणवचनात्'*** *(४।१।४४) से 'ङीष्' प्रत्यय है। इस सूत्र से कर्मवद्भाव होने से* ***'स्त्रियाः पुंवत्०'*** *(६।३।३४) से पुंवद्भाव होकर पूर्वपद का 'ङीष्' प्रत्यय निवृत्त हो जाता है। ऐसे ही-***मृदुमृद्वी। कालककालिका।*** *यहां* ***'न कोपधायाः'*** *(६।३।३७) से पुंवद्भाव का प्रतिषेध होता है, किन्तु इस सूत्र से कर्मधारयवद्भाव होकर* ***'पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशेषु'*** *(६।३।४२) से पुंवद्भाव होता है।*

(३) ***पटुपटुः।*** *यहां इस सूत्र से कर्मवद्भाव होने से* ***'समासस्य'*** *(६।१।१२०) से अन्तोदात्तस्वर होता है। ऐसे ही स्त्रीत्व-विवक्षा में-***पटुपट्वी।***

द्विर्वचनम्-

(१२) प्रकारे गुणवचनस्य।१२।

प०वि०-प्रकारे ७।१ गुणवचनस्य ६।१।

स०-गुणमुक्तवानिति गुणवचनः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारे गुणवचनस्य द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-प्रकारेऽर्थे वर्तमानस्य गुणवचनस्य शब्दस्य द्वे भवतः, कर्मधारयवच्चास्य कार्यं भवति।

उदा०-पटुपटुः। मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः। अपूर्णगुण इत्यर्थः। प्रकारः-भेदः सादृश्यं च। तदिह सादृश्यं प्रकारो गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारे) सादृश्य अर्थ में विद्यमान (गुणवचनस्य) गुणवाची शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है और (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान इसे कार्य होता है।*

*उदा०-**पटुपटुः।** पटु (चतुर) के सदृश। **मृदुमृदुः।** मृदु (कोमल) के सदृश। **पण्डितपण्डितः।** पण्डित के सदृश।*

*सिद्धि-**पटुपटुः।** यहां 'पटु' शब्द को इस सूत्र से प्रकार (सदृश) अर्थ में (द्वे) द्विर्वचन होता है। कर्मवद्भाव होने से **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से 'सु' का लोप होता है। **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः 'सु' उत्पत्ति होती है। ऐसे ही-**मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः।***

प्रकार शब्द के भेद और सादृश्य ये दो अर्थ हैं। यहां सादृश्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है।

द्विर्वचन-विकल्पः--

(१३) अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्।१३।

प०वि०-अकृच्छ्रे ७।१ प्रिय-सुखयोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-कृच्छ्रम्=दुःखम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्, तस्मिन्-अकृच्छ्रे (नञ्तत्पुरुषः)। प्रियं च सुखं च ते प्रियसुखे, तयोः-प्रियसुखयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्यां द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-अकृच्छ्रे=दुःखभावे द्योत्ये प्रियसुखयोः शब्दयोर्विकल्पेन द्विर्वचनं भवति, कर्मधारयवच्च तत्र कार्यं भवति।

उदा०-**(प्रियम्)** प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण ददाति। **(सुखम्)** सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति। अत्यन्तदयितमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकृच्छ्रे) सुख अर्थ प्रकाशित होने पर (प्रियसुखयोः) प्रिय और सुख शब्दों को (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (द्वे) द्विर्वचन होता है और (कर्मधारयवत्) वहां कर्मधारय समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०-(प्रिय) **प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण ददाति।** वह अत्यन्त प्रिय वस्तु को भी आराम से प्रदान करता है। (सुख) **सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**प्रियप्रियेण ददाति।** यहां अकृच्छ्र अर्थ में प्रिय शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है और कर्मवद्भाव होने से '**सुपो धातुप्रातिपदिकयोः**' (२।४।७१) से 'टा' विभक्ति का लोप होता है। '**कृत्तद्धितसमासाश्च**' (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः 'टा' प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। विकल्प-पक्ष में द्विर्वचन नहीं है-**प्रियेण ददाति।** ऐसे ही-**सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति।***

निपातनम्–

(१४) यथास्वे यथायथम्।१४।

प०वि०-यथास्वे ७।१ यथायथम् १।१।

स०-यो यः स्वः=आत्मा, यद्यद् आत्मीयं तद् यथास्वम्, तस्मिन् यथास्वे। '**यथाऽसादृश्ये**' (२।१।७) इति वीप्सायामऽव्ययीभावसमासः।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अर्थः-यथास्वेऽर्थे यथायथमिति निपात्यते, कर्मधारयवच्चाऽत्र कार्यं भवति। यथाशब्दस्य द्विर्वचनं नपुंसकलिङ्गता च निपातनेन विधीयते।

उदा०-ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथम्। यथास्वभावमित्यर्थः। सर्वेषां तु यथायथं ज्ञातम्। यथात्मीयमित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यथास्वे) यथास्व अर्थ में (यथायथम्) यथायथ शब्द निपातित हैं (कर्मधारयवत्) और यहां कर्मधारय समास के समान कार्य होता है। 'यथा' शब्द को द्विर्वचन और नपुंसकलिङ्गता निपातन से होती है।*

*उदा०-**ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथम्।** मैंने सब पदार्थों के स्वभाव को जान लिया है। **सर्वेषां तु यथायथं ज्ञातम्।** मैंने सब की आत्मीयता को जान लिया है।*

*सिद्धि-**यथायथम्।** यहां 'यथा' शब्द को यथास्व अर्थ में द्विर्वचन और नपुंसकलिङ्गता निपातित है। नपुंसकलिङ्ग होने से '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से ह्रस्वादेश होता है, कर्मवद्भाव होने से '**समासस्य**' (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**यथायथम्।***

निपातनम्–

(१५) द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्र-प्रयोगाभिव्यक्तिषु।१५।

प०वि०-द्वन्द्वम् १।१ रहस्य-मर्यादावचन-व्युत्क्रमण-यज्ञपात्रप्रयोग-अभिव्यक्तिषु ७।३।

स०-रहस्यं च मर्यादावचनं च व्युत्क्रमणं च यज्ञपात्रप्रयोगश्च अभिव्यक्तिश्च ता रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तयः, तासु-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु द्वन्द्वम्, द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिष्वर्थेषु द्वन्द्वमिति पदं निपात्यते, कर्मधारयवच्चात्र कार्यं भवति।

द्वन्द्वमित्यत्र द्विशब्दस्य द्विर्वचनम्, द्विर्वचने कृते पूर्वपदस्याऽम्भाव उत्तरपदस्य चात्त्वं निपात्यते। **उदाहरणम्**-

(१) **रहस्यम्**-ते द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते।

(२) **मर्यादावचनम्**-मर्यादा स्थित्यनतिक्रमः। आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनयन्ति। माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण, तत्पुत्रेणापीति मर्यादार्थः।

(३) **व्युत्क्रमणम्**-व्युत्क्रमणं भेदः, पृथगवस्थानम्। द्विवर्गसम्बन्धेन पृथगवस्थिता द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ता इत्युच्यन्ते।

(४) **यज्ञपात्रप्रयोगः**-द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति (द्र० आप०श्रौत० १।११।४)।

(५) **अभिव्यक्तिः**-द्वन्द्वं नारदपर्वतौ। द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रहस्य०) रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति अर्थ में (द्वन्द्वम्) द्वन्द्व यह पद निपातित है और यहां (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान कार्य होता है।*

'द्वन्द्व' इस पद में 'द्वि' शब्द को द्विर्वचन, द्विर्वचन करने पर पूर्वपद को अम् आदेश और उत्तरपद को अकारादेश निपातन से होता है। उदाहरण-

*(१) **रहस्य**-वे द्वन्द्व अर्थात् दो-दो मिलकर रहस्य पर मन्त्रणा करते हैं।*

*(२) **मर्यादावचन**-स्थिति का अतिक्रमण न करना मर्यादा कहाती है। ये पशु चार द्वन्द्व अर्थात् मर्यादा पर्यन्त मिथुन करते हैं। माता-पुत्र, पौत्र और उसके पुत्र के साथ मैथुन करती है। इतनी ही पशुओं की आयु है।*

*(३) **व्युत्क्रमण**-व्युत्क्रमण का अर्थ भेद अर्थात् पृथग् रहना है। दो वर्गों के सम्बन्ध से पृथग् रहनेवाले पुरुष द्वन्द्व व्युत्क्रान्त कहाते हैं, अर्थात् वे दो-दो वर्ग बनाकर पृथक् अवस्थित हैं।*

*(४) **यज्ञपात्रप्रयोग**-धीरपुरुष न्यग्भूत=अधोमुख यज्ञपात्रों को दो-दो करके वेदि पर रखता है। एक स्फ्य और दूसरा कपाल।*

*(५) **अभिव्यक्ति**-नारद और पर्वत का द्वन्द्व है अर्थात् दोनों साहचर्य से अभिव्यक्त हुये। संकर्षण और वासुदेव का द्वन्द्व है अर्थात् दोनों साहचर्य से अभिव्यक्त हुये।*

*सिद्धि-**द्वन्द्वम्।** द्वि-द्वि। द्व् अम्-द्व् अ। द्वन्द्व+सु। द्वन्द्व+अम्। द्वन्द्वम्।*

*यहां रहस्य आदि अर्थों में 'द्वि' शब्द को द्विर्वचन, पूर्वपद को अम्भाव और उत्तरपद को अकारादेश निपातित है। कर्मधारयवद्भाव से '**समासस्य**' (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**द्वन्द्वम्।***

।। इति द्विर्वचनप्रकरणम्।।

पदकार्यप्रकरणम्

पदस्याधिकारः-

(१) पदस्य।१६।

वि०-पदस्य ६।१।

अर्थः-पदस्येत्यधिकारोऽयम्, प्राक् '**अपदान्तस्य मूर्धन्यः**' (८।३।५५) इत्यपदान्ताधिकारात्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति पदस्येत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-'**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) इति।

उदा०-पचन्। यजन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पदस्य) पदस्य यह अधिकार सूत्र है, '**अपदान्तस्य मूर्धन्यः**' (८।३।५५) इस अपदान्त-अधिकार से पहले-पहले 'पदस्य' का अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वह 'पदस्य' अर्थात् पद के स्थान में जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) अर्थात् संयोगान्त पद का लोप होता है।*

*उदा०-**पचन्।** वह पकाता हुआ। **यजन्।** वह यज्ञ करता हुआ।*

*सिद्धि-**पचन्।** यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**लटः शतृशानचा०**' (३।२।१२४) से लकार के स्थान में 'शतृ' आदेश और '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'शतृ' को 'नुम्' आगम होता है। पच्+अ+अनुम्त्।*

*पच्+अ+अन्त्+सु। इस स्थिति में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप होकर 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त पद के तकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से-**यजन्।***

पदात्-अधिकारः-

(२) पदात्।१७।

वि०-पदात् ५।१।

अर्थः-पदादित्यधिकारोऽयम्, प्राक् **'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ'** (८।१।६९) इत्यस्मात्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति 'पदात्' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) इति। आमन्त्रितस्य पदस्य पदात् परस्याऽनुदात्तादेशो भवति।

उदा०-पचसि देवदत्त !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पदात्) 'पदात्' यह अधिकार सूत्र है। 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' (८।१।६९) इस सूत्र से पहले-पहले 'पदात्' का अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वह 'पदात्' अर्थात् पद से परे जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे 'आमन्त्रितस्य च' (८।१।१९) अर्थात् पद से परे आमन्त्रित पद को अनुदात्त आदेश होता है।*

*उदा०-**पचसि** देवदत्त ! हे देवदत्त तू पकाता है।*

*सिद्धि-**पचसि** देवदत्त ! यहां 'पचसि' इस पद से परे देवदत्त आमन्त्रित पद को 'आमन्त्रितस्य च' (८।१।१९) से अनुदात्त स्वर होता है।*

{सर्वानुदात्तप्रकरणम्}

अनुदात्त-अधिकारः-

(१) अनुदात्तं सर्वमपादादौ।१८।

प०वि०-अनुदात्तम् १।१ सर्वम् १।१ अपादादौ ७।१।

स०-पादस्याऽऽदिरिति पादादिः, न पादादिरिति अपादादिः, तस्मिन्-अपादादौ (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदादपादादौ पदस्य सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-पदाद् उत्तरस्याऽपादादौ वर्तमानस्य पदस्य सर्वमनुदात्तं भवतीत्यधिकारोऽयम्, **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) इति यावत्। यथा वक्ष्यति-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) इति।

उदा०-पचसि देवदत्तः। पादशब्देनात्र ऋक्पादः श्लोकपादश्च गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पदात्) पद से परे (अपादादौ) पाद के आदि में अविद्यमान (पदस्य) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्व-अनुदात्त स्वर होता है, यह **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) तक अधिकार सूत्र है। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) अर्थात् पद से परे पाद के अविद्यमान आमन्त्रित पद को सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

*उदा०-**पचसि देवदत्त !** हे देवदत्त तू पकाता है।*

***सिद्धि-पचसि देवदत्त !** यहां 'पचति' इस शब्द से परे पाद के आदि में अविद्यमान आमन्त्रित 'देवदत्त' पद को **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

सर्वमनुदात्तम्--

(२) आमन्त्रितस्य च।१६।

प०वि०-आमन्त्रितस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादिविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदादाऽऽमन्त्रितस्य पदस्य च सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानस्य पदाद् उत्तरस्याऽऽमन्त्रितस्य पदस्य च सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-पचसि देवदत्त! यजसि यज्ञदत्त! अपादादाविति किम्? यत्ते नियानं रजसं मृत्योऽनवधर्ष्यम् (शौ०सं० ८।२।१०)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि अविद्यमान (पदात्) पद से परे (आमन्त्रितस्य) आमन्त्रित-संज्ञक (पदस्य) पद को (च) भी (सर्वम् अनुदात्तम्) सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

*उदा०-**पचसि देवदत्त !** हे देवदत्त ! तू पकाता है। **यजसि यज्ञदत्त !** हे यज्ञदत्त ! तू यज्ञ करता है।*

सिद्धि-पचसि देवदत्त !** यहां पाद के आदि में अविद्यमान, 'पचसि' इस पद से परे आमन्त्रित-संज्ञक 'देवदत्त' पद को इस सूत्र से सर्व-अनुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही- **यजसि यज्ञदत्त !

वाम्नावादेशौ–

(३) युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाम्नावौ।२०।

प०वि०–युष्मद्-अस्मदोः ६।२ षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयास्थयोः ६।२ वाम्नावौ १।२।

स०–युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। षष्ठी च चतुर्थी च द्वितीया च ताः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु यौ तिष्ठतस्तौ षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थौ, तयोः-षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितोपपदतत्पुरुषः)। वां च नौ च तौ-वाम्नावौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः वाम्नावौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं वाम्नावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०–**(युष्मद्) षष्ठी**–ग्रामो वां स्वम्। **चतुर्थी**–ग्रामो वां दीयते। **द्वितीया**–ग्रामो वां पश्यति। **(अस्मद्) षष्ठी**–ग्रामो नौ स्वम्। **चतुर्थी**–ग्रामो नौ दीयते। **द्वितीया**–ग्रामो नौ पश्यति। अपादादाविति किम्?

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता।
स एव नाथो भगवानस्माकं शत्रुमर्दनः।।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अपादादौ) पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०–(युष्मद्) षष्ठी–**ग्रामो वां स्वम्।** यह ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है। **चतुर्थी–ग्रामो वां दीयते।** यह ग्राम तुम दोनों को दिया जाता है। **द्वितीया–ग्रामो वां पश्यति।** यह ग्राम तुम दोनों को देखता है। (अस्मद्) षष्ठी–**ग्रामो नौ स्वम्।** यह ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति है। **चतुर्थी–ग्रामो नौ दीयते।** यह ग्राम हम दोनों को दिया जाता है। **द्वितीया–ग्रामो नौ पश्यति।** यह ग्राम हम दोनों को देखता है।*

*सिद्धि-**ग्रामो वां स्वम्।** यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, युष्मद्-पद अर्थात् 'युवयोः' के स्थान में इस सूत्र से 'वाम्' सर्वानुदात्त आदेश होता है। चतुर्थी विभक्ति युवाभ्याम् में-**ग्रामो वां दीयते।** द्वितीया विभक्ति युवाम् में-**ग्रामो वां पश्यति।** ऐसे ही अस्मद् शब्द से षष्ठीविभक्ति 'आवयोः' के स्थान में-**ग्रामो नौ स्वम्।** चतुर्थी विभक्ति 'आवाभ्याम्' में-**ग्रामो नौ दीयते।** द्वितीया विभक्ति 'आवाम्' में-**ग्रामो नौ पश्यति।***

वस्नसावादेशौ-

(४) बहुवचनस्य वस्नसौ।२१।

प०वि०-बहुवचनस्य ६।१ वस्-नसौ १।२।

स०-वस् च नस् च तौ वस्नसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्बहुवचनयोर्युष्मद-स्मदोः पदयोर्वस्नसौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो-र्बहुवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं वस्नसावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामो वः स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो वो दीयते। **द्वितीया**-ग्रामो वः पश्यति। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामो नः स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो नो दीयते। **द्वितीया**-ग्रामो नः पश्यति।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (बहुवचनयोः) बहुवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (वस्नसौ) वस्, नस् आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-**ग्रामो वः स्वम्।** यह ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है। चतुर्थी-**ग्रामो वो दीयते।** यह ग्राम तुम सब को दिया जाता है। द्वितीया-**ग्रामो वः पश्यति।** यह ग्राम तुम सब को देखता है। (अस्मद्) षष्ठी-**ग्रामो नः स्वम्।** यह ग्राम हम सब की सम्पत्ति है। चतुर्थी-**ग्रामो नो दीयते।** यह ग्राम हम सब को दिया जाता है। द्वितीया-**ग्रामो नः पश्यति।** यह ग्राम हम सब को देखता है।*

सिद्धि-ग्रामो वः स्वम्। यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, बहुवचनान्त युष्मद्-पद अर्थात् 'युष्माकम्' के स्थान में इस सूत्र से 'वस्' सर्वानुदात्त आदेश होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और इसे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से सर्लक्षण विसर्जनीयादेश है। चतुर्थी विभक्ति 'युष्मभ्यम्' में-**ग्रामो वो दीयते।** द्वितीया विभक्ति 'अस्मान्' में-**ग्रामो वः पश्यति।** ऐसे ही अस्मद् शब्द से षष्ठीविभक्ति 'अस्माकम्' में-**ग्रामो नः स्वम्।** चतुर्थी विभक्ति 'अस्मभ्यम्' में-**ग्रामो नो दीयते।** द्वितीया विभक्ति 'अस्मान्' में-**ग्रामो नः पश्यति।**

तेमयावादेशौ-

(५) तेमयावेकवचनस्य।२२।

प०वि०-ते-मयौ १।२ एकवचनस्य ६।१।

स०-तेश्च मेश्च तौ तेमयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीस्थयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीस्थयोरेकवचनयोर्युष्मदस्मदोः पदयोस्तेमयौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीस्थयोरेक-वचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्य तेमयावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामस्ते स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामस्ते दीयते। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामो मे स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो मे दीयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीस्थयोः) षष्ठी, और चतुर्थी विभक्ति में अवस्थित (एकवचनयोः) एकवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (तेमयौ) ते, मे आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-**ग्रामस्ते स्वम्।** यह ग्राम तेरी सम्पत्ति है। **चतुर्थी-ग्रामस्ते दीयते।** यह ग्राम तेरे लिये दिया जाता है। **(अस्मद्) षष्ठी-ग्रामो मे स्वम्।** यह ग्राम मेरी सम्पत्ति है। **चतुर्थी-ग्रामो मे दीयते।** यह ग्राम मेरे लिये दिया जाता है।*

सिद्धि-ग्रामस्ते स्वम्। यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, एकवचनान्त युष्मद्-पद 'तव' के स्थान में इस सूत्र से

*सर्वानुदात्त ते' आदेश होता है। चतुर्थी विभक्ति 'तुभ्यम्' में-**ग्रामस्ते दीयते।** ऐसे ही अस्मद्-पद के षष्ठीविभक्ति 'मम' में-**ग्रामो मे स्वम्।** चतुर्थी विभक्ति 'तुभ्यम्' में-**ग्रामो मे दीयते।***

***विशेषः** आगामी सूत्र में द्वितीया विभक्ति में त्वा, मा आदेश का विधान किया गया है अतः यहां षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति की अनुवृत्ति की जाती है, द्वितीया विभक्ति की नहीं।*

त्वामावादेशौ–

(६) त्वामौ द्वितीयायाः।२३।

प०वि०-त्वा-मौ १।२ द्वितीयायाः ६।१।

स०-त्वाश्च माश्च तौ त्वामौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, एकवचनस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् द्वितीयाया एकवचनयोर्युष्मदस्मदोः पदयोस्त्वामौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोर्द्वितीयास्थयोरेकवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं त्वामावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) द्वितीया-ग्रामस्त्वा पश्यति। **(अस्मद्) द्वितीया**-ग्रामो मा पश्यति।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(अपादा०) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (द्वितीयास्थयोः) द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (एकवचनयोः) एकवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (त्वामौ) त्वा, मा आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **द्वितीया-ग्रामस्त्वा पश्यति।** यह ग्राम तुझको देखता है। (अस्मद्) **द्वितीया-ग्रामो मा पश्यति।** यह ग्राम मुझको देखता है।*

सिद्धि-ग्रामस्त्वा पश्यति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, द्वितीया विभक्ति में अवस्थित, एकवचनान्त युष्मद्-पद के 'माम्' के स्थान में इस सूत्र से सर्वानुदात्त 'त्वा' आदेश होता है। ऐसे ही अस्मद्-पद के एकवचनान्त 'माम्' के स्थान में 'मा' आदेश है-**ग्रामो मा पश्यति।

उक्तादेशप्रतिषेधः–

(७) न चवाहाहैवयुक्ते।२४।

प०वि०–न अव्ययपदम्, च–वा–अह–एवयुक्ते ७।१।

स०–चश्च वाश्च हश्च अहश्च एवश्च ते चवाहाहैवाः, तैश्चवाहाहैवैर्युक्तमिति चवाहाहैवयुक्तम्, तस्मिन्–चवाहाहैवयुक्ते (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः वान्नावौ, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाच्चवाहाहैवयुक्तयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोर्न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोश्चवाहाहैवयुक्तयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने पूर्वोक्ता वाम्नावादय आदेशा न भवन्ति। **उदाहरणम्–**

स्थानी	योगः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(युष्मद्)			
(१) षष्ठी	च	ग्रामस्तव च स्वम्	ग्राम तेरी भी सम्पत्ति है।
		ग्रामो युवयोश्च स्वम्	ग्राम तुम दोनों की भी सम्पत्ति है।
		ग्रामो युष्माकं च स्वम्	ग्राम तुम सब की भी सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यं च दीयते	ग्राम तेरे लिये भी दिया जाता है।
		ग्रामो युवाभ्यां च दीयते	ग्राम तुम दोनों के लिये भी दिया जाता है।
		ग्रामो युष्मभ्यं च दीयते	ग्राम तुम सब के लिये भी दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वा च पश्यति	ग्राम तुझको भी देखता है।
		ग्रामो युवां च पश्यति	ग्राम तुम दोनों को भी देखता है।
		ग्रामो युष्माँश्च पश्यति	ग्राम तुम सब को भी देखता है।
(२) षष्ठी	वा	ग्रामस्तव वा स्वम्	ग्राम तेरी सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामो युवयोर्वा स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामो युष्माकं वा स्वम्	ग्राम तुम सब की सम्पत्ति के समान है।

	स्थानी	योगः	उदाहरणम्	भाषार्थः
	चतुर्थी	वा	ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते	ग्राम तुझे दानसा किया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यां वा दीयते	ग्राम तुम दोनों को दानसा किया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यं वा दीयते	ग्राम तुम सब को दानसा किया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वां वा पश्यति	ग्राम तुझे देखता-सा है।
			ग्रामो युवां वा पश्यति	ग्राम तुम दोनों को देखता-सा है।
			ग्रामो युष्मान् वा पश्यति	ग्राम तुम सब को देखता-सा है।
(३)	षष्ठी	ह	ग्रामस्तव ह स्वम्	ग्राम तेरी निश्चित सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोर्ह स्वम्	ग्राम तुम दोनों की निश्चित सम्पत्ति है।
			ग्रामो युष्माकं ह स्वम्	ग्राम तुम सब की निश्चित सम्पत्ति है।
	चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते	ग्राम तुझे निश्चित दिया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यां ह दीयते	ग्राम तुम दोनों को निश्चित दिया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यं ह दीयते	ग्राम तुम सब को निश्चित दिया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वां ह पश्यति	ग्राम तुझे निश्चित देखता है।
			ग्रामो युवां ह पश्यति	ग्राम तुम दोनों को निश्चित देखता है।
			ग्रामो युष्मान् ह पश्यति	ग्राम तुम सब को निश्चित देखता है।
(४)	षष्ठी	अह	ग्रामस्तवाह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तेरी सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोरह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।
			ग्रामो युष्माकमह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है।
	चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुझे दिया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यामह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों को दिया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुम सब को दिया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुझे देखता है।
			ग्रामो युवामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों को देखता है।
			ग्रामो युष्मानह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुम सब को देखता है।
(५)	षष्ठी	एव	ग्रामस्तवैव स्वम्	ग्राम तेरी ही सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोरेव स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।

स्थानी	योगः	उदाहरणम्	भाषार्थः
	एव	ग्रामो युष्माकमेव स्वम्	ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते	ग्राम तुझे ही दिया जाता है।
		ग्रामो युवाभ्यामेव दीयते	ग्राम तुम दोनों को ही दिया जाता है।
		ग्रामो युष्मभ्यमेव दीयते	ग्राम तुम सब को ही दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो त्वामेव च पश्यति	ग्राम तुझे ही देखता है।
		ग्रामो युवामेव पश्यति	ग्राम तुम दोनों को ही देखता है।
		ग्रामो युष्मानेव पश्यति	ग्राम तुम सब को ही देखता है।
(अस्मद्)			
(१) षष्ठी	च	ग्रामो मम च स्वम्	ग्राम तेरी भी सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोश्च स्वम्	ग्राम हम दोनों की भी सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकं च स्वम्	ग्राम हम सब की भी सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं च दीयते	ग्राम मुझे भी दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां च दीयते	ग्राम हम दोनों को भी दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं च दीयते	ग्राम हम सब को भी दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां च पश्यति	ग्राम मुझे भी देखता है।
		ग्राम आवां च पश्यति	ग्राम हम दोनों को भी देखता है।
		ग्रामोऽस्माँश्च पश्यति	ग्राम हम सब को भी देखता है।
(२) षष्ठी	वा	ग्रामो मम वा स्वम्	ग्राम मेरी सम्पत्ति के समान है।
		ग्राम आवयोर्वा स्वम्	ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामोऽस्माकं वा स्वम्	ग्राम हम सब की सम्पत्ति के समान है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं वा दीयते	ग्राम मुझे दानसा किया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां वा दीयते	ग्राम हम दोनों को दानसा किया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं वा दीयते	ग्राम हम सब को दानसा किया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां वा पश्यति	ग्राम मुझे देखता-सा है।
		ग्राम आवां वा पश्यति	ग्राम हम दोनों को देखता-सा है।
		ग्रामोऽस्मान् वा पश्यति	ग्राम हम सब को देखता-सा है।

स्थानी	योग:	उदाहरणम्	भावार्थ:
(३) षष्ठी	ह	ग्रामो मम ह स्वम्	ग्राम मेरी निश्चित सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोर्ह स्वम्	ग्राम हम दोनों की निश्चित सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकं ह स्वम्	ग्राम हम सब की निश्चित सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं ह दीयते	ग्राम मुझे निश्चित दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां ह दीयते	ग्राम हम दोनों को निश्चित दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं ह दीयते	ग्राम हम सब को निश्चित दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां ह पश्यति	ग्राम मुझे निश्चित देखता है।
		ग्राम आवां ह पश्यति	ग्राम हम दोनों को निश्चित देखता है।
		ग्रामोऽस्मान् ह पश्यति	ग्राम हम सब को निश्चित देखता है।
(४) षष्ठी	अह	ग्रामो ममाह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम मेरी सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोरह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकमह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम हम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम मुझे दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यामह दीयते	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों को दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम हम सब को दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम मुझे देखता है।
		ग्राम आवामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों को देखता है।
		ग्रामोऽस्मानह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम हम सब को देखता है।
(५) षष्ठी	एव	ग्रामो ममैव स्वम्	ग्राम तेरी ही सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोरेव स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकमेव स्वयम्	ग्राभ तुम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यमेव दीयते	ग्राम मुझे ही दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यामेव दीयते	ग्राम हम दोनों को ही दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यमेव दीयते	ग्राम हम सब को ही दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मामेव पश्यति	ग्राम मुझे ही देखता है।
		ग्राम आवामेव पश्यति	ग्राम हम दोनों को ही देखता है।
		ग्रामोऽस्मानेव पश्यति	ग्राम हम सब को ही देखता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चवाहाहैवयुक्ते) च, वा, ह, अह, एव इनसे संयुक्त (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् (पदयोः) पदों के स्थान में पूर्वोक्त (वान्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (न) नहीं होते हैं।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-ग्रामस्तव च स्वम्। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान. ग्राम पद से परवर्ती, 'च' के योग में षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, युष्मद्-पद 'तव' के स्थान में इस सूत्र से 'ते' आदेश का प्रतिषेध होता है।* ***'तवममौ ङसि'*** *(७।२।७६) से 'युष्मद्' के स्थान में 'तव' आदेश होता है। ऐसे ही समस्त उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।*

उक्तादेशप्रतिषेधः-

(८) पश्यार्थैश्चानालोचने।२५।

प०वि०-पश्यार्थैः ३।३ च अव्ययपदम्, अनालोचने ७।१।

स०-पश्योऽर्थो येषां ते पश्यार्थाः, तैः-पश्यार्थैः (बहुव्रीहिः)। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) इत्यस्माद् धातोः **'पाघ्राध्माधेट्दृशः शः'** (३।१।१३७) इत्यनेनाऽस्मादेव निपातनाद् भावेऽर्थे शः प्रत्ययः। **'पाघ्रास्था०'** (७।३।७८) इत्यनेन दृशः स्थाने पश्यादेशः। पश्यार्थैः=दर्शनार्थैः। दर्शनमिह ज्ञानं गृह्यते। न आलोचनमिति अनालोचनम्, तस्मिन्-अनालोचने (नञ्तत्पुरुषः)। आलोचनम्=चक्षुर्विज्ञानम्, तत्प्रतिषेधः-अनालोचनम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः, वाम्नावौ, न, युक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अनालोचने पश्यार्थैर्युक्तयोश्च षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोर्वाम्नावौ न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः, पदात् परयोः, अनालोचनेऽर्थे पश्यार्थैर्धातुभिर्युक्तयोश्च षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने वाम्नावादय आदेशा न भवन्ति।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः। **चतुर्थी-**ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः। **द्वितीया-**ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः।

(अस्मद्) षष्ठी-ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः। **चतुर्थी**-ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः। **द्वितीया**-ग्रामो मां समीक्ष्यागतः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अनालोचने) चक्षुर्विज्ञान से भिन्न (पश्यार्थैः) पश्यार्थक धातुओं से (युक्तयोः) संयुक्त (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (न) नहीं होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **षष्ठी-ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः।** ग्राम तेरा धन जानकर आया है। **चतुर्थी-ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।** ग्राम तुझे दीयमान पदार्थ को जानकर आया है। **द्वितीया-ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः।** ग्राम तुझे जानकर आया है। (अस्मद्) **षष्ठी-ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः।** ग्राम मेरा धन जानकर आया है। **चतुर्थी-ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।** ग्राम मुझे दीयमान पदार्थ को जानकर आया है। **द्वितीया-ग्रामो मां समीक्ष्यागतः।** ग्राम मुझे जानकर आया है, इत्यादि।*

*सिद्धि-**ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परे, अनालोचन=दर्शन अर्थ से भिन्न पश्यार्थक (ज्ञानार्थक) 'ईक्ष' धातु से युक्त, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित युष्मद्-पद के 'तव' के स्थान में इस सूत्र से सर्वानुदात्त 'ते' आदेश का प्रतिषेध होता है। इस प्रकार समस्त उदाहरणों की सिद्धियों की स्वयं ऊहा कर लेवें।*

उक्तादेशविकल्पः–

(६) सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा।२६।

प०वि०-सपूर्वायाः ५।१ प्रथमायाः ५।१ विभाषा १।१।

स०-सह=विद्यमानं पूर्वं यस्याः सा सपूर्वा, तस्याः-सपूर्वायाः। **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (२।२।२८) इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः। **'वोपसर्जनस्य'** (६।३।८०) इत्यनेन च सहस्य स्थाने सादेशः।

अनु०-पदस्य, पदात्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः, वाम्नावौ, न।

अन्वयः-अपादादौ सपूर्वायाः प्रथमायाः पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थ-योर्युष्मदस्मदोर्वाम्नावौ विभाषा न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोर्विद्यमानपूर्वात् प्रथमान्तात् पदात् षष्ठी-चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने वाम्नावादय आदेशा विकल्पेन न भवन्ति।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामे कम्बलस्ते दीयते, ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते। **द्वितीया**-ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, ग्रामे कम्बलो मम स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामे कम्बलो मे दीयते, ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते। **द्वितीया**-ग्रामे छात्रा मा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रा मां पश्यन्ति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (सपूर्वायाः) विद्यमानपूर्वी (प्रथमायाः) प्रथमान्त (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (विभाषा) विकल्प से (न) नहीं होते हैं, अर्थात् विकल्प से होते हैं।*

उदा०-(युष्मद्) ***षष्ठी-ग्रामे कम्बलस्ते/तव स्वम्।*** *ग्राम में कम्बल तेरा धन है।* ***चतुर्थी-ग्रामे कम्बलस्ते/तुभ्यम् दीयते।*** *ग्राम में कम्बल तुझे प्रदान किया जाता है।* ***द्वितीया-ग्रामे छात्रास्त्वा/त्वां पश्यन्ति।*** *ग्राम में छात्र तुझे देखते हैं।* ***(अस्मद्) षष्ठी-ग्रामे कम्बलो मे/मम स्वम्।*** *ग्राम में कम्बल मेरा धन है।* ***चतुर्थी-ग्रामे कम्बलो मे/मह्यं दीयते।*** *ग्राम में कम्बल मुझे प्रदान किया जाता है।* ***द्वितीया-ग्रामे छात्रास्त्वा/त्वां पश्यन्ति।*** *ग्राम में छात्र मुझे देखते हैं।*

सिद्धि-ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, प्रथमान्त 'कम्बल' शब्द से 'ग्रामे' इस पूर्वपदवाले कम्बल पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित युस्मद्-पद (तव) के स्थान में इस सूत्र से 'ते' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'ते' आदेश नहीं है-* ***ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्।*** *ऐसे ही-* ***ग्रामे कम्बलस्ते दीयते*** *आदि।*

सर्वमनुदात्तम्-

(१०) तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः।२७।

प०वि०-तिङः ५।१ गोत्रादीनि १।३ कुत्सन-आभीक्ष्ण्ययोः ७।२।

स०-गोत्रम् आदिर्येषां तानि गोत्रादीनि (बहुव्रीहिः)। कुत्सनं च आभीक्ष्ण्यं च ते कुत्सनाभीक्ष्ण्ये, तयोः-कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोस्तिङः पदात् गोत्रादीनि पदानि सर्वाण्यानुदात्तानि।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानानि कुत्सने आभीक्ष्ण्ये चार्थे तिङन्तात् पदात् पराणि गोत्रादीनि पदानि सर्वानुदात्तानि भवन्ति।

उदा०-**(कुत्सनम्)** पचति गोत्रम्। जल्पति गोत्रम्। पचति ब्रुवम्। जल्पति ब्रुवम्। **(आभीक्ष्ण्यम्)** पचति पचति गोत्रम्। जल्पति जल्पति गोत्रम्, इत्यादिकम्।

गोत्र। ब्रुव। प्रवचन। प्रहसन। प्रकथन। प्रत्ययन। प्रचक्षण। प्राय। विचक्षण। अवचक्षण। स्वाध्याय। भूयिष्ठ। वा नाम। इति गोत्रादीनि।। (नाम इत्येतद् वा निहन्यते)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः) कुत्सन=निन्दा और आभीक्ष्ण्ये=पुनः पुनर्भाव अर्थ में विद्यमान (तिङः) तिङन्त (पदात्) पद से परे (गोत्रादीनि) गोत्र आदि (पदानि) पद (सर्वाण्यनुदात्तानि) सर्वानुदात्त=निघात होते हैं।*

*उदा०-(कुत्सन) **पचति गोत्रम्। जल्पति गोत्रम्। पचति ब्रुवम्। जल्पति ब्रुवम्।** जो पुरुषार्थ को छोड़कर अपने गोत्र की उच्चता आदि बतलाकर जीवन-यापन करता है वह-**पचति गोत्रम्**, जल्पति **गोत्रम्** कहा जाता है। यहां 'पच्' धातु व्यक्तीकरण (प्रसिद्धि) अर्थ में है, पकाने अर्थ में नहीं। **पचति ब्रुवम्।** वह निन्दित पकाता है। **जल्पति ब्रुवम्।** वह निन्दित तर्क करता है। (आभीक्ष्ण्य) **पचति पचति गोत्रम्।** वह अपने गोत्र को पुनः पुनः प्रकट करता है। **जल्पति जल्पति गोत्रम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**पचति गोत्रम्।** यहां 'पचति' इस तिङन्त पद से परे कुत्सन (निन्दा) अर्थ में 'गोत्रम्' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात होता है। ऐसे ही-**जल्पति गोत्रम्।** आभीक्ष्ण्य अर्थ में-**पचति पचति गोत्रम्। जल्पति जल्पति गोत्रम्।***

अपना गोत्र बतलाकर जीविका करना धर्मशास्त्र के अनुसार निन्दित है। मनुस्मृति में लिखा है-

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत्।
भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशीत्युच्यते बुधैः।। (मनु० ३।१०९)

सर्वमनुदात्तम्–

(११) तिङ्ङतिङः ।२८।

प०वि०–तिङ् १।१ अतिङः ५।१।

स०–न तिङ् इति अतिङ्, तस्मात्–अतिङः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादावतिङः पदात् तिङ्पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानमतिङन्तात् पदात् परं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०–देवदत्तः पचति। यज्ञदत्तो यजति।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अतिङः) तिङन्त–भिन्न (पदात्) पद से परे (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वम्, अनुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०–देवदत्तः **पचति**। देवदत्त पकाता है। **यज्ञदत्तो यजति**। यज्ञदत्त यज्ञ करता है।*

*सिद्धि–देवदत्तः **पचति**। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान अतिङन्त (सुबन्त) देवदत्त' पद से परे तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात स्वर होता है। ऐसे ही–**यज्ञदत्तो यजति**।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(१२) न लुट् ।२९।

प०वि०–न अव्ययपदम्, लुट् १।१।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाल्लुट् तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं लुडन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–स श्वः कर्ता। तौ श्वः कर्तारौ। ते मासेन कर्तारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पर से परवर्ती (लुट्) लुट्–प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त स्वर (न) नहीं होता है।*

उदा०-स श्वः कर्ता। वह कल करेगा। तौ श्वः कर्तारौ। वे दोनों कल करेंगे। ते मासेन कर्तारः। वे सब एक मास में करेंगे।

सिद्धि-श्वः कर्ता। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान 'श्वः' पद से पदवर्ती लुट्-प्रत्ययान्त, तिङन्त 'कर्ता' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर का प्रतिषेध होता है।

'कर्ता' यहां 'डुकृञ् करणे' धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में 'डा' आदेश होता है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से तासि विकरण-प्रत्यय है। वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'तास्' के टि-भाग (आ) का लोप होता है। इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात स्वर का प्रतिषेध होने पर 'तास्यनुदात्तेन्ङित्०' (६।१।१८०) से तासि को सर्वोदात्त स्वर होता है-श्वः कर्तारौ, कर्तारः। और जहां टि-भाग का लोप होता है वहां 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (६।१।१६१) से ल-सार्वधातुक प्रत्यय ही उदात्त होता है-श्वः कर्ता।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(१३) निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्-कच्चिद्यत्रयुक्तम्।३०।

प०वि०- निपातैः ३।३ यत्-यदि-हन्त-कुवित्-नेत्-चेत्-चण्-कच्चित्-यत्रयुक्तम् १।१।

स०-यच्च यदिश्च हन्तश्च कुविच्च नेच्च चेच्च चण् च कच्चिच्च यत्रश्च ते-यद्०यत्राः, तैर्युक्तमिति-यद्०यत्रोक्तम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्-कच्चिद्यत्रयुक्तं तिङ् पदं सर्वम् अनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चे-च्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। **उदाहरणम्-**

निपातः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) यत्	स यत् करोति।	वह जब करता है।
	स यत् पचति।	वह जब पकाता है।
(२) यदि	स यदि करोति।	वह अगर करता है।
	स यदि पचति।	वह अगर पकाता है।
(३) हन्त	स हन्त करोति।	वह सहर्ष करता है।
	स हन्त पचति।	वह सहर्ष पकाता है।
(४) कुवित्	स कुवित् करोति।	वह अच्छा करता है।
	स कुवित् पचति।	वह अच्छा पकाता है।
(५) नेत्	नेजिह्मायन्त्यो नरके पतेम (खि० १०।१०६)	हम कुटिल कर्म करती हुई कभी नरक में न गिर जायें।
(६) चेत्	स चेद् भुङ्क्ते।	वह यदि खाता है।
	स चेदधीते।	वह यदि पढ़ता है।
(७) चण्	अयं च मरिष्यति।	यह यदि मरेगा।
(८) कच्चित्	स कच्चिद् भुङ्क्ते।	क्या वह खाता है।
	स कच्चिदधीते।	क्या वह पढ़ता है।
(९) यत्र	स यत्र भुङ्क्ते।	वह जहां खाता है।
	स यत्राधीते।	वह जहां पढ़ता है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातैः) निपात-संज्ञक (यद०) यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित्, यत्र से संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-स यत् करोति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यत् पद से परवर्ती तथा इस निपात से युक्त तिङन्त 'करोति' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त निघात नहीं होता है। अतः **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से विहित 'उ' विकरण-प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से उदात्त होता है। ऐसे ही-**स यत् पचति।** यहां 'शप्' विकरण-प्रत्यय **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त होकर **'उदात्तादनुदात्तस्य***

स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित होता है। 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से परवर्ती अनुदात्त को एकश्रुति स्वर होता है। ऐसे ही शेष उदाहरणों में स्वराङ्कन करें।

यद् यदार्थे च हेतौ च विचारे यदि चेच्चणः।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः।।
कच्चित्प्रश्ने नेन्निषेधे प्रशंसायां कुवित्स्मृतम्।
यत्राधारे निपातत्वं यदादीनां विशेषणम्।। (पदमञ्जरी)

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः—

(१४) नह प्रत्यारम्भे।३१।

प०वि०-नह अव्ययपदम्, प्रत्यारम्भे ७।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रत्यारम्भे नह-निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं प्रत्यारम्भेऽर्थे नह इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-त्वं नह भोक्ष्यसे। त्वं नह अध्येष्यसे।

"चोदितस्यावधीरणे उपलिप्सया प्रतिषेधयुक्तः प्रत्यारम्भः क्रियते" (काशिका)। प्रत्यारम्भः=पुनरारम्भ इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (प्रत्यारम्भे) पुनरारम्भ-अर्थ में (नह) नह इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**त्वं नह भोक्ष्यसे।** क्या तू भोजन नहीं करेगा? **त्वं नह अध्येष्यसे।** क्या तू अध्ययन नहीं करेगा?*

कोई व्यक्ति किसी को भोजन आदि क्रिया के लिये प्रेरित करता है किन्तु वह उसकी उपेक्षा कर देता है तब उसे भोजन आदि कराने की इच्छा से जो पुनः निषेधात्मक कथन किया जाता है, वह 'प्रत्यारम्भ' कहाता है।

*सिद्धि-**नह भोक्ष्यसे।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, प्रत्यारम्भ वाची 'नह' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का*

*प्रतिषेध होता है। अतः 'भोक्ष्यसे' पद में **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से उदात्त होता है। शेष स्वराङ्कन पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्वं नह अध्येष्यसे।***

'नह' शब्द चादिगण में पठित होने से 'चादयोऽसत्त्वे' (१।४।५८) से निपात-संज्ञक है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१५) सत्यं प्रश्ने।३२।

प०वि०-सत्यम् अव्ययपदम्, प्रश्ने ७।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रश्ने सत्यं निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं प्रश्नेऽर्थे सत्यमित्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-त्वं सत्यं भोक्ष्यसे ? त्वं सत्यमध्येष्यसे ? प्रश्ने इति किम् ? सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (प्रश्ने) प्रश्न अर्थ में (सत्यम्) सत्यम् इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**त्वं सत्यं भोक्ष्यसे** ? क्या तू भोजन करेगा ? **त्वं सत्यमध्येष्यसे** ? क्या तू अध्ययन करेगा ? प्रश्न अर्थ से अन्यत्र-**सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।** मैं सत्य कहूंगा, झूठ नहीं।*

सिद्धि-सत्यं भोक्ष्यसे।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'सत्यम्' इस पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'भोक्ष्यसे' पद पूर्ववत् मध्योदात्त होता है। ऐसे ही-**त्वं सत्यमध्येष्यसे।

'सत्यम्' शब्द चादिगण में पठित होने से निपात-संज्ञक है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१६) अङ्गाप्रातिलोम्ये।३३।

प०वि०-अङ्ग अव्ययपदम्, अप्रातिलोम्ये ७।१।

स०-प्रातिलोम्यम्=प्रातिकूल्यम् (प्रतिकूलता)। न प्रातिलोम्यमिति अप्रातिलोम्यम्, तस्मिन्-अप्रातिलोम्ये (नञ्तत्पुरुषः)। अप्रातिलोम्यम्-आनुकूलमित्यर्थः।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रातिलोम्ये सत्यं निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमप्रातिलोम्ये गम्यमानेऽङ्गेत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-अङ्ग कुरु। अङ्ग पर्च। अङ्ग पठ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अप्रातिलोम्ये) अनुकूलता अर्थ की प्रतीति में (अङ्ग) अङ्ग इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अङ्ग कुरु।** अच्छा बेटा कर। **अङ्ग पर्च।** अच्छा बेटा पका। **अङ्ग पठ।** अच्छा बेटा पढ़।*

सिद्धि-अङ्ग कुरु। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, अङ्ग पद से परवर्ती तथा अप्रातिलोम्य अर्थ की प्रतीति में 'अङ्ग' इस निपात से संयुक्त तिङन्त 'कुरु' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त (निघात) का प्रतिषेध होता है। अतः 'कुरु' पद पूर्ववत् प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-**अङ्ग पर्च।** 'पच' पद में 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है और इसे '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६६) से स्वरित होता है। ऐसे ही-**अङ्ग पठ।***

'अङ्ग' शब्द चादिगण में पठित होने से निपात-संज्ञक है। यह यहां आज्ञार्थक होने से, अप्रातिलोम्य=अनुकूलता अर्थ की अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(१७) हि च।३४।

प०वि०-हि अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, अप्रातिलोम्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रातिलोम्ये हि निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमप्रातिलोम्ये गम्यमाने हि इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-स हि त्वं कुरु। स हि त्वं पच। स हि त्वं पठ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अप्रातिलोम्ये) अनुकूलता अर्थ की अभिव्यक्ति (हि) हि इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**स हि त्वं कुरु।** वह (देवदत्त) तू ही कर। **स हि त्वं पच।** वह (यज्ञदत्त) तू ही पका। **स हि त्वं पठ।** वह (ब्रह्मदत्त) तू ही पढ़।*

*सिद्धि-**स हि त्वं कुरु।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'त्वम्' इस पद से परवर्ती, अप्रातिलोम्य (अनुकूलता) अर्थ की अभिव्यक्ति में 'हि' इस निपात से संयुक्त तिङन्त 'कुरु' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्ववत् प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-**स हि त्वं पच। स हि त्वं पठ।***

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१८) छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्।३५।

प०वि०- छन्दसि ७।१ अनेकम् १।१ अपि अव्ययपदम्, साकाङ्क्षम् १।१।

स०-न एकमिति अनेकम् (नञ्तत्पुरुषः)। सहाऽऽकाङ्क्षया वर्तते इति साकाङ्क्षम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, निपातैः, हीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदात् हि निपातेन युक्तम् अनेकमपि साकाङ्क्षं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमानं पदात् परं हीत्यनेन निपातेन युक्तमनेकमपि साकाङ्क्षं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। अनेकमपि कदाचिदेकं कदाचिदनेकमित्यर्थः।

उदा०-(अनेकम्) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति। अत्र तिङन्तद्वयमपि न निहन्यते। **(एकम्)** अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्। तिङन्तद्वयमप्येतद् हिनिपातेन युक्तम्, अत्रैकम् 'उदजयत्' इत्याद्युदात्तम्, अपरञ्चानुदात्तम्। अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽअपश्यज्जनितारमग्रे (तै०सं० ४।२।१०।४)। अत्र 'अजनिष्ट' इत्याद्युदात्तम्, 'अपश्यत्' इति चानुदात्तम्।

आर्यभाषाः अर्थ- *(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (हि) हि इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (अनेकम्, अपि) एक तथा अनेक भी (साकाङ्क्षम्) व्यपेक्षा सहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है। 'अनेकमपि' का तात्पर्य यह है कि कभी एक तिङन्त पद और कभी अनेक तिङन्त पद।*

*उदा०-**(अनेक) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति।** यहां अनेक=दोनों तिङन्तपदों को सर्वानुदात्त नहीं होता है। **(एकम्) अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्।** यहां दोनों तिङन्त पद 'हि' इस निपात से संयुक्त हैं। इनमें एक 'उदजयत्' तिङन्त पद आद्युदात्त है और दूसरा 'अनूदजयत्' यह अनुदात्त है। **अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽपश्यज्जनितारमग्रे** (तै०सं० ४।२।१०।४)। यहां 'अजनिष्ट' यह तिङन्त पद आद्युदात्त है और दूसरा 'अपश्यत्' यह अनुदात्त है।*

सिद्धि-(१) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति। *यहां वदति और विपुनाति ये दोनों तिङन्त पद हेतुहेतुमद्भाव होने से साकाङ्क्ष हैं और दोनों पद 'हि' निपात से संयुक्त है। अर्थ यह है-क्योंकि मत्त (पागल) झूठ बोलता है अतः पाप्मा (पागलपन) उसे शुद्ध करता है अर्थात् वह मत्तता के कारण अनृत भाषण के दोष का भागी नहीं होता है। अतः 'वदति' पद आद्युदात्त और विपुनाति पद प्रत्यय स्वर से मध्योदात्त होता है। 'वि' उपसर्ग **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) से निघात होता है।*

(२) अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्। *यहां उदजयत् और अनूदजयत् दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं और पूर्ववत् हेतुहेतुमद्भाव से साकाङ्क्ष हैं। अर्थ यह है-क्योंकि अग्नि ने पहले जय को प्राप्त किया और इन्द्र पश्चात् विजय को प्राप्त हुआ। यहां भी दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं किन्तु इस सूत्रवचन से प्रथम तिङन्त पद 'उदजयत्' को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है और दूसरा 'अनूदजयत्' पद **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से निघात होता है।*

*'उदजयत्' पद में उत्-उपसर्गपूर्वक **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से उदात्त अडागम होता है। अतः यह आद्युदात्त है। अनूदजयत्। अनु और उत् उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु से पूर्ववत्।*

(३) अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽपश्यज्जनितारमग्रे। *यहां 'अजनिष्ट' और 'अपश्यत्' दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं और साकाङ्क्ष भी हैं। अर्थ यह है-क्योंकि अजा (प्रकृति) अग्नि के गर्भ से उत्पन्न हुई और उसने अपने जनक को प्रथम देखा। इस सूत्रवचन से प्रथम 'अजनिष्ट' पद को निघात का प्रतिषेध होता है और द्वितीय 'अपश्यत्' को नहीं।*

*'अजनिष्ट' पद में **'जनी प्रादुर्भावे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और 'अपश्यत्' पद में **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। **'पाघ्राध्मा०'** (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(१६) यावद्यथाभ्याम्।३६।

प०वि०-यावत्-यथाभ्याम् ५।२।

स०-यावच्च यथाश्च तौ यावद्यथौ, ताभ्याम्-यावद्यथाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-**(यावत्)** यावद् भुङ्क्ते। यावदधीते। देवदत्तः पचति यावत्। **(यथा)** यथा भुङ्क्ते। यथा अधीते। देवदत्तः पचति यथा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा शब्दों से परे (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(यावत्) **यावद् भुङ्क्ते।** वह जितना खाता है। **यावदधीते।** वह जितना अध्ययन करता है। **देवदत्तः पचति यावत्।** देवदत्त जब तक पकाता है। (यथा) **यथा भुङ्क्ते।** वह जैसे खाता है। **यथा अधीते।** वह जैसे अध्ययन करता है। **देवदत्तः पचति यथा।** देवदत्त जैसे पकाता है।*

सिद्धि-यावद् भुङ्क्ते। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'यावत्' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है। अतः 'तास्यनुदात्तेन्०' (६।१।१८६) से 'त' प्रत्यय अनुदात्त है और 'श्नम्' प्रत्ययस्वर से उदात्त है 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'श्नम्' के अकार का लोप होने से 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (६।१।१६२) से 'त' प्रत्यय आद्युदात्त होता है। ऐसे ही-यावदधीते। देवदत्तः पचति यावत्। यहां परवर्ती 'यावत्' शब्द के योग में भी सर्वानुदात्त का प्रतिषेध है। 'शप्' प्रत्यय के 'पित्' होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त और इसे 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से इसे स्वरित हो जाता है। ऐसे ही 'यथा भुङ्क्ते' आदि।

अनुदात्तमेव-

(२०) पूजायां नानन्तरम्।३७।

प०वि०-पूजायाम् ७।१ न अव्ययपदम्, अनन्तरम् १।१।

स०-न विद्यतेऽन्तरं यस्मिंस्तत्-अनन्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, यावद्यथाभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङ् पदं अनन्तरं पूजायाम्, न सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पदं पूजायां विषये न सर्वमनुदात्तं न भवति, अनुदात्तमेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-(यावत्) यावत् पचति शोभनम्। यावत् करोति चारु। **(यथा)** यथा पचति शोभनम्। यथा करोति चारु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा इनसे (युक्तम्) संयुक्त (अनन्तरम्) व्यवधानरहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (न सर्वमनुदात्तम्) नहीं सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है अर्थात् सर्वानुदात्त ही होता है।*

*उदा०-(यावत्) **यावत् पचति शोभनम्।** वह जितना पकाता है, सोहणा पकाता है। **यावत् करोति चारु।** वह जितना करता है, सुन्दर करता है (बनाता है)। **(यथा) यथा पचति शोभनम्।** वह जैसा पकाता है, सोहणा पकाता है। **यथा करोति चारु।** वह जैसे करता है, सुन्दर करता है।*

सिद्धि-यावत् पचति शोभनम्। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यावत् पद से परवर्ती तथा इस संयुक्त 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त ही होता है। ऐसे ही-*यावत् करोति चारु। यथा पचति शोभनम्। यथा करोति चारु।*

अनुदात्तमेव–

(२१) उपसर्गव्यपेतं च।३८।

प०वि०-उपसर्गव्यपेतम् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-व्यपेतम्=व्यवहितमित्यर्थः। उपसर्गेण व्यपेतमिति उपसर्गव्यपेतम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, यावद्यथाभ्याम्, पूजायाम्, न, अनन्तरमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं उपसर्गव्यपेतं च तिङ् पदं पूजायां न सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं उपसर्गव्यपेतं च तिङन्तं पदं पूजायां विषये न सर्वमनुदात्तं न भवति, अनुदात्तमेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-(यावत्) यावत् प्रपचति शोभनम्। यावत् प्रकरोति चारु। **(यथा)** यथा प्रपचति शोभनम्। यथा प्रकरोति चारु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (अनन्तरम्) व्यवधान से रहित (च) और (उपसर्गव्यपेतम्) उपसर्ग से व्यवहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (न सर्वमनुदात्तम्) नहीं सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, अर्थात् सर्वानुदात्त ही होता है।*

*उदा०-(यावत्) **यावत् प्रपचति शोभनम्।** वह जितना प्रकृष्ट पकाता है, सोहणा पकाता है। **यावत् प्रकरोति चारु।** वह जितना प्रकृष्ट करता है, सुन्दर करता है (बनाता है)। **(यथा) यथा प्रपचति शोभनम्।** वह जैसा प्रकृष्ट पकाता है, सोहणा पकाता है। **यथा प्रकरोति चारु।** वह जैसा प्रकृष्ट करता है, सुन्दर करता है।*

*सिद्धि-**यावत् प्रपचति शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यावत् पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त, व्यवधान से रहित और 'प्र' उपसर्ग से व्यवहित 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त ही होता है। ऐसे ही-**यावत् प्रकरोति चारु। यथा प्रपचति शोभनम्। यथा प्रकरोति चारु।***

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(२२) तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्।३६।

प०वि०-तु-पश्य-पश्यत-अहैः ३।३ पूजायाम् ७।१।

स०-तुश्च पश्यश्च पश्यतश्च अहश्च ते तुपश्यपश्यताहाः, तैः-तुपश्यपश्यताहैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातैस्तुपश्यपश्यताहैर्युक्तं तिङ् पदं पूजायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातैस्तुपश्यपश्यताहैर्युक्तं तिङन्तं पदं पूजायां विषये सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-**(तु)** माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्। **(पश्य)** पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। **(पश्यत)** पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। **(अह)** अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातैः) निपात-संज्ञक (तुपश्यपश्यताहैः) तु, पश्य, पश्यत, अह इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(तु) माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्।** यह बालक तो शोभन विधि से खाता है। **(पश्य) पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** तू देख, यह बालक शोभन विधि से खाता है। **(पश्यत) पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** तुम सब देखो, यह बालक शोभन विधि से खाता है। **(अह) अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** आश्चर्य है, यह बालक शोभन विधि से खाता है।*

*सिद्धि-**माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'तु' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है अपितु पूर्ववत् अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही **'पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्'** आदि।*

विशेषः *(१) यहां 'तु' और 'अह' निपात हैं अतः निपात-विशेषण का इन्हीं के साथ सम्बन्ध है, 'पश्य' और 'पश्यत' पदों के साथ नहीं।*

(२) 'पूजायाम्' पद की अनुवृत्ति में पुनः 'पूजायाम्' पद का ग्रहण सर्वानुदात्त-प्रतिषेध के लिये किया गया है। अनुवर्तमान 'पूजायाम्' पद निघात-प्रतिषेध के प्रतिषेध से सम्बद्ध था, अतः उसकी अनुवृत्ति नहीं की गई है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(२३) अहो च ।४०।

प०वि०-अहो अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, पूजायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन अहो च युक्तं तिङ् पूजायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेनाऽहो इत्यनेन च युक्तं तिङन्तं पदं पूजायां विषये सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-अहो देवदत्तः पचति शोभनम्। अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (अहो) अहो इस शब्द (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अहो देवदत्तः पचति शोभनम्।** आश्चर्य है, देवदत्त शोभन विधि से पकाता है। **अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।** आश्चर्य है, विष्णुमित्र शोभन विधि से करता (बनाता) है।*

*सिद्धि-**अहो देवदत्तः पचति शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त' पद से परवर्ती, 'अहो' निपात से संयुक्त 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है, अपितु पूर्ववत् स्वर होता है। ऐसे ही-**अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।***

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(२४) शेषे विभाषा ।४१।

प०वि०-शेषे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, अहो इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन अहो युक्तं तिङ् पदं शेषे विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेनाऽहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं पदं शेषे विषये विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-कटमहो करिष्यसि। कटमहो करिष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि। यदन्यत् पूजायाः स शेषो वेदितव्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (अहो) अहो इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (शेषे) शेष अर्थात् पूजा से भिन्न विषय में (विभाषा) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-कटमहो **करिष्यसि**। कटमहो **करिष्यसि**। आश्चर्य है कि तू चटाई बनावेगा। **मम गेहमहो एष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि।** आश्चर्य है कि तू मेरे घर जायेगा। यह निन्दावचन है, पूजावचन नहीं।*

पूजा अर्थ से भिन्न जो निन्दा अर्थ है वह शेष है।

सिद्धि-कटमहो करिष्यसि।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'अहो' इस पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त 'करिष्यसि' यह तिङन्त पद शेष अर्थात् पूजा अर्थ से भिन्न, निन्दा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है विकल्प पक्ष में सर्वानुदात्त है-कटमहो **करिष्यसि**। ऐसे ही-**मम गेहमहो एष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि।

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(२५) पुरा च परीप्सायाम्।४२।

प०वि०-पुरा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, परीप्सायाम् ७।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन पुरा च युक्तं तिङ् पदं परीप्सायां विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेन पुरा इत्यनेन च युक्तं तिङन्तं पदं परीप्सायामर्थे विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्/विद्योतते। पुरास्तनयति स्तनयित्नुः/स्तनयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (पुरा) पुरा शब्द से (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (परीप्सायाम्) त्वरा=शीघ्रता अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्।** रे बालक ! तू अध्ययन कर क्योंकि शीघ्र ही बिजली चमकनेवाली है। **अधीष्व माणवक ! पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः।** हे बालक ! तू अध्ययन कर क्योंकि बादल शीघ्र गर्जनेवाला है। अमावस्या आदि पर्वों के समान विद्युत्-द्योतन आदि में अध्ययन करना वर्जित है।*

*सिद्धि-**अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'पुरा' पद से परवर्ती और इससे संयुक्त तिङन्त 'विद्योतते' पद परीप्सा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है, विकल्प पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-**विद्योतते।** ऐसे ही-**पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः/स्तनयति।***

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(२६) नन्वित्यनुज्ञैषणायाम्।४३।

प०वि०-ननु अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, अनुज्ञैषणायाम् ७।१।

स०-एषणा=प्रार्थनेत्यर्थः। अनुज्ञाया एषणेति अनुज्ञैषणा, तस्याम्-अनुज्ञैषणायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। अनुज्ञा-प्रार्थनेत्यर्थः।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन ननु इति युक्तं तिङ् पदम् अनुज्ञैषणायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेन ननु इत्यनेन युक्तं तिङन्तं पदम् अनुज्ञैषणायामर्थे सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-ननु करोमि भोः। ननु गच्छामि भोः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (ननु) ननु (इति) इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (अनुज्ञैषणायाम्) अनुज्ञा=आज्ञा की प्रार्थना अर्थ में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-ननु क॒रोमि॑ भोः। अरे ! मुझे करने की आज्ञा दो। **ननु गच्छामि भोः।** अरे ! मुझे जाने की आज्ञा दो।*

सिद्धि-ननु क॒रोमि॑ भोः। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ननु' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'करोमि' पद को अनुज्ञैषणा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-ननु गच्छामि भोः।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(२७) किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम्।४४।

प०वि०-किम् अव्ययपदम्, क्रियाप्रश्ने ७।१ अनुपसर्गम् १।१ अप्रतिषिद्धम् १।१।

स०-क्रियायाः प्रश्न इति क्रियाप्रश्नः, तस्मिन्-क्रियाप्रश्ने (षष्ठीतत्पुरुषः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य तत्-अनुपसर्गम् (बहुव्रीहिः)। प्रतिषिद्धम्=प्रतिषेधः। **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।१।११४) इति भावे क्तः प्रत्ययः। न प्रतिषिद्धं यस्य तत्-अप्रतिषिद्धम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् क्रियाप्रश्ने निपातेन किम् युक्तम् अनुपसर्गम् अप्रतिषिद्धं तिङ् पदम् सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं क्रियाप्रश्नेऽर्थे वर्तमानेन निपातेन किमित्यनेन युक्तम् उपसर्गवर्जितं प्रतिषेधवर्जितं च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-किं देवदत्तः पचति, आहोस्विद् भु॒ङ्क्ते। किं देवदत्तः शेते॑, आहोस्विद् अ॒धी॒ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (क्रियाप्रश्ने) क्रिया के पूछने अर्थ में वर्तमान (निपातेन) निपात-संज्ञक (किम्) किम् इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (अनुपसर्गम्) उपसर्ग से रहित और (अप्रतिषिद्धम्) प्रतिषेध से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-किं देवदत्तः पचति आहोस्विद् भुङ्क्ते। क्या देवदत्त पकाता है अथवा भोजन करता है। किं देवदत्तः शेते आहोस्विद् अधीते। क्या देवदत्त सोता है अथवा पढ़ता है।

सिद्धि-किं देवदत्तः पचति आहोस्विद् भुङ्क्ते। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती 'किम्' इस निपात से युक्त, उपसर्गरहित और प्रतिषेध वर्जित तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-किं देवदत्तः शेते आहोस्विद् अधीते।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(२८) लोपे विभाषा।४५।

प०वि०-लोपे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, किम्, क्रियाप्रश्ने, अनुपसर्गम्, अप्रतिषिद्धमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् क्रियाप्रश्ने निपातस्य किमो लोपे अनुपसर्गम् अप्रतिषिद्धं तिङ् पदं विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं क्रियाप्रश्नेऽर्थे निपातस्य किमो लोपे सति उपसर्गवर्जितं प्रतिषेधवर्जितं च तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (क्रियाप्रश्ने) क्रिया के पूछने अर्थ में वर्तमान (निपातस्य) निपात-संज्ञक (किमः) किम् शब्द का (लोप) हो जाने पर (अनुपसर्गम्) उपसर्ग से रहित और (अप्रतिषिद्धम्) प्रतिषेध से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। क्या देवदत्त पकाता है अथवा पढ़ता है?

सिद्धि-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती, क्रियाप्रश्न अर्थ में वर्तमान 'किम्' शब्द के लोप में, उपसर्ग और प्रतिषेध से रहित तिङन्त 'पचति' और 'पठति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त स्वर है। ऐसे ही-देवदत्तः पचति आहोस्वित् पठति।

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(२६) एहिमन्ये प्रहासे लृट्।४६।

प०वि०-एहिमन्ये १।१ प्रहासे ७।१ लृट् १।१।

स०-एहिश्च मन्येश्च एतयोः समाहारः-एहिमन्ये (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् एहिमन्ये युक्तं लृट् तिङ् पदं प्रहासे सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं एहिमन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं तिङन्तं पदं प्रहासे गम्यमाने सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-कश्चित् कञ्चित् प्रहसन् प्राह-एहि त्वं मन्येऽहम् ओदनं भोक्ष्यसे, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (एहिमन्ये) एहि-मन्ये शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (लृट्) लृट् प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (प्रहासे) परिहास अर्थ में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-कोई किसी का परिहास करता हुआ कहता है-**एहि त्वं मन्येऽहम् ओदनं भोक्ष्यसे, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।** आओ मित्र ! तू समझता है कि मैं चावल खाऊंगा, तू चावल नहीं खायेगा, उसे तो अतिथि लोग खा गये। **एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।** आओ मित्र ! तू समझता है कि मैं रथ से जाऊंगा, तू रथ से नहीं जायेगा, उससे तो तुम्हारे पिताजी चले गये।*

सिद्धि-एहि त्वं मन्येऽहमोदनं भोक्ष्यसे। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ओदन पद से परवर्ती, 'एहिमन्ये' से संयुक्त लृट्-प्रत्ययान्त, तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को प्रहास अर्थ में सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-**एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।***

*यहां **'प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च'** (४।१।१०६) से युष्मद्-शब्द उपपद होने पर मन्यति-धातु से उत्तमपुरुष और एकवचन होता है और मन्य-उपपद 'भुज्' धातु से मध्यमपुरुष होता है। मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष की प्राप्ति में प्रहास में उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष किया जाता है।*

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३०) जात्वपूर्वम्।४७।

प०वि०-जातु अव्ययपदम्, अपूर्वम् १।१।

स०-अविद्यमानं पूर्वं यस्मात् तद्-अपूर्वम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अविद्यमानपूर्वं जातु निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमऽविद्यमानपूर्वेण जातु इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-जातु भोक्ष्यसे। जातु करिष्यामि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वम्) अविद्यमानपूर्वी (जातु) जातु इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**जातु भोक्ष्यसे।** तू कब भोजन करेगा। **जातु करिष्यामि।** मैं कब करूंगा।*

सिद्धि-जातु भोक्ष्यसे।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, जातु पद से परवर्ती तथा अपूर्वी जातु निपात से संयुक्त तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**जातु करिष्यामि।

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३१) किंवृत्तं च चिदुत्तरम्।४८।

प०वि०-किंवृत्तम् १।१ च अव्ययपदम्, चिदुत्तरम् १।१।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

वृत्तमित्यत्र **'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः'** (३।४।७६) इति ध्रौव्यलक्षणोऽधिकरणे क्तः प्रत्ययः, तेन **'अधिकरणवाचिनश्च'** (२।३।६८) इत्यनेन 'किमः' इत्यत्र षष्ठी **'अधिकरणवाचिना च'** (२।२।१३) इत्यनेन समासप्रतिषेधे प्राप्तेऽस्मादेव निपातनात् समासो वेदितव्यः।

चिद् उत्तरं यस्मात् तत्-चिदुत्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, अपूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वेण चिदुत्तरेण किंवृत्तेन च युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परम् अविद्यमानपूर्वेण चिदुत्तरेण किंवृत्तेन शब्देन च युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-कश्चिद् भोजयति। कश्चिदधीते। केनचित् करोति। कस्मैचिद् ददाति। कतरश्चित् करोति। कतमश्चिद् भुङ्क्ते।

"किंवृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात् कतरकतमौ च प्रत्ययौ" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वम्) अविद्यमानपूर्वी (चिदुत्तरेण) चित् शब्द जिसके उत्तर में है उस (किंवृत्तेन) किम् शब्द के विभक्त्यन्त तथा डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कश्चिद् भोजयति।** कोई भोजन कराता है। **कश्चिदधीते।** कोई अध्ययन करता है। **केनचित् करोति।** वह किसी साधन से बनाता है। **कस्मैचिद् ददाति।** वह किसी को देता है। **कतरश्चित् करोति।** दोनों में से कोई करता है। **कतमश्चिद् भुङ्क्ते।** बहुतों में से कोई भोजन करता है।*

'किंवृत्त' शब्द से यहां 'किम्' शब्द के विभक्त्यन्त शब्द और उसके डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है (काशिका)।

सिद्धि-कश्चिद् भोजयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, कश्चित् पद से परवर्ती, चिद्-उत्तरी किंवृत्त 'कश्चित्' शब्द से संयुक्त तिङन्त 'भोजयति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-**कश्चिदधीते** आदि।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३२) आहो उताहो चानन्तरम्।४६।

प०वि०-आहो अव्ययपदम्, उताहो अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, अनन्तरम् १।१।

स०-अविद्यमानमन्तरम्=व्यवधानं यस्य तत्-अनन्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युक्तम्, अपूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं च अनन्तरं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं अविद्यमानपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां च युक्तम् अनन्तरम्=व्यवधानरहितं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(**आहो**) आहो भुङ्क्ते। आहो पठति। (**उताहो**) उताहो भुङ्क्ते। उताहो पठति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (आहो-उताहोभ्याम्) आहो, उताहो इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (च) भी (अनन्तरम्) व्यवधान से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(आहो) **आहो भुङ्क्ते।** अथवा वह भोजन करता है। **आहो पठति।** अथवा वह पढ़ता है। (उताहो) उताहो **भुङ्क्ते।** अथवा वह भोजन करता है। **उताहो पठति।** अथवा वह पढ़ता है।*

सिद्धि-आहो भुङ्क्ते। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, आहो पद से परवर्ती, अविद्यमानपूर्वी आहो निपात से संयुक्त, अनन्तर=व्यवधानरहित तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**आहो पठति** आदि।*

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(३३) शेषे विभाषा।५०।

प०वि०-शेषे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, अपूर्वम्, आहो, उताहो, अनन्तरमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं शेषे तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परम् अविद्यमानपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं शेषे विषये तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(आहो) आहो देवदत्तः पचति। आहो देवदत्तः पचति। **(उताहो)** उताहो देवदत्तः पठति। उताहो देवदत्तः पठति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वाभ्याम्) अविद्यमानपूर्वी (आहो-उताहोभ्याम्) आहो, उताहो शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (शेष) शेष अर्थात् व्यवधान विषय में (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(आहो) आहो देवदत्तः **पचति।** आहो देवदत्तः **पचति।** अथवा देवदत्त पकाता है। (उताहो) उताहो देवदत्तः **पठति।** उताहो देवदत्तः **पठति।** अथवा देवदत्त पढ़ता है।*

*सिद्धि-**आहो देवदत्तः पचति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती, अविद्यमानपूर्वी आहो निपात से संयुक्त, देवदत्त शब्द से व्यवहित, तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-आहो देवदत्तः पचति। ऐसे ही-**उताहो देवदत्तः पठति। उताहो देवदत्तः पठति।***

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(३४) गत्यर्थलोटा लृण् न चेत् कारकं सर्वान्यत्।५१।

प०वि०-गत्यर्थलोटा ३।१ लृट् १।१ न अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्, कारकम् १।१ सर्वान्यत् १।१।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, गत्यर्थानां लोडिति गत्यर्थलोट्, तेन-गत्यर्थलोटा (बहुव्रीहिगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। सर्वं च तदन्यच्चेति सर्वान्यत् (कर्मधारयः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् गत्यर्थलोटा युक्तं लृट् तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं लृडन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन् कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट्, तस्मिन्नेव कारके यदि लृडपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्। आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे। **(कर्म)** उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (लृट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्म कारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो।*

*उदा०-(कर्ता) **आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्।** हे देवदत्त ! तू गांव आ, तू इसे देखेगा। **आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे।** हे देवदत्त ! तू गांव आ, तू भात खायेगा। (कर्म) **उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते।** देवदत्त के द्वारा शालि (चावल) ढोये जायें, वे उसके द्वारा ही खाये जायेंगे। **उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते।** देवदत्त के द्वारा शालि ढोये जायें, वे यज्ञदत्त के द्वारा खाये जायेंगे।*

सिद्धि-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान,ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार 'आगच्छ' से संयुक्त, लृट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'द्रक्ष्यसि' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। यहां आगच्छ पद कर्ता कारक में है और द्रक्ष्यसि पद भी कर्ता कारक में है अतः कारक सर्व-अन्य (न) नहीं है। ऐसे ही-**आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे।

***उह्यन्तां देवदत्तेन शालयस्तेनैव भोक्ष्यन्ते** आदि प्रयोग कर्मकारक के हैं। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३५) लोट् च।५२।

प०वि०-लोट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, गत्यर्थलोटा, न चेत्, कारकम्, सर्वान्यदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् गत्यर्थलोटा युक्तं लोट् तिङ् पदं च सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं लोडन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन् कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट् तस्मिन्नेव कारके यदि लोडपि भवति।

उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं पश्य। आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि। **(कर्म)** आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (लोट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (च) भी (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्मकारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो।*

*उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! **ग्रामं पश्य**। हे देवदत्त ! आ, तू गांव को देख। आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि। हे विष्णुमित्र ! आ, तू गांव को शिक्षा कर।(कर्म) **आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन।** देवदत्त के द्वारा आया जाये, यज्ञदत्त के द्वारा गांव देखा जाये।*

सिद्धि-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं पश्य। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार के 'आगच्छ' पद से संयुक्त लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'पश्य' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि।** कर्मकारक में-**आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन।** यहां आगच्छ और पश्य पद कर्ताकारक में है और आगम्यताम् और दृश्यताम् पद कर्म कारक में है, अतः कारक सर्व-अन्य नहीं है।*

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३६) विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम्।५३।

प०वि०-विभाषितम् १।१ सोपसर्गम् १।१ अनुत्तमम् १।१।

स०-उपसर्गेण सह वर्तते इति सोपसर्गम् (बहुव्रीहिः)। न उत्तममिति अनुत्तमम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, गत्यर्थलोटा, न चेत्, कारकम्, सर्वान्यत्, लोडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् गत्यर्थलोटा सोपसर्गमऽनुत्तमम् लोट् तिङ् पदं विभाषितं सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं सोपसर्गम् उत्तमपुरुषवर्जितं लोडन्तं तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन्नेव कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट् तस्मिन्नेव कारके यदि लोडपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (सोपसर्गम्) उपसर्गरहित (अनुत्तमम्) उत्तमपुरुष से भिन्न (लोट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (विभाषितम्) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्म कारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो, अर्थात् जिस कर्ता वा कारक में लोट् है, उसी कारक में यदि लोट् हो।*

*उदा०-**आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश।** हे देवदत्त ! आ, तू ग्राम में प्रवेश कर। **आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि।** हे देवदत्त ! आ, तू ग्राम पर प्रशासन कर।*

सिद्धि-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार के 'आगच्छ' पद से संयुक्त प्र-उपसर्ग सहित तथा उत्तमपुरुष से रहित लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'प्रविश' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'प्र' को **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) से सर्वानुदात्त=निघात स्वर और विश् धातु से लोट् लकार में **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय और **'अतो हेः'** (६।४।१०५) से हि (सिप्) का लोप हो जाने पर 'प्रविश' पद में 'विश' को सर्वानुदात्त होकर **'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्'** (फिट्० ४।१३) से 'प्र' उपसर्ग के उदात्त होने से **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६६) से स्वरित होता है-**प्रविश।** ऐसे ही-**आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि/प्रशाधि।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(३७) हन्त च।५४।

प०वि०-हन्त अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, लोट्, विभाषितम्, सोपसर्गम्, अनुत्तममिति चानुवर्तते। गत्यर्थलोटेति च निवृत्तम्।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् हन्त युक्तं च सोपसर्गमऽनुत्तमं लोट् तिङ् पदं विभाषितं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं हन्त इत्यनेन च युक्तं सोपसर्गम् उत्तमपुरुषवर्जितं लोडन्तं तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-हन्त प्रविश। हन्त प्रविश। हन्त प्रशाधि। हन्त प्रशाधि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (हन्त) हन्त इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (च) भी (सोपसर्गम्) उपसर्गसहित (अनुत्तमम्) उत्तमपुरुष से रहित (लोट्) लोट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (विभाषितम्) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-हन्त **प्रविश**। हन्त **प्रविश**। हर्ष है, प्रवेश कर। हन्त **प्रशाधि**। हन्त **प्रशाधि**। हर्ष है, प्रशासन कर।*

*सिद्धि-हन्त **प्रविश**। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, हन्त पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त, प्र-उपसर्गसहित और उत्तमपुरुष से रहित लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'प्रविश' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**प्रविश**। ऐसे ही-हन्त **प्रशाधि/ प्रशाधि**।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३८) आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके।५५।

प०वि०- आमः ५।१ एकान्तरम् १।१ आमन्त्रितम् १।१ अनन्तिके ७।१।

स०-एकम् {पदम्} अन्तरं यस्य तत्-एकान्तरम् (बहुव्रीहिः)। न अन्तिकमिति अनन्तिकम्, तस्मिन्-अनन्तिके (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ वाऽऽमः पदात् परमेकान्तरमनन्तिके आमन्त्रितं पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानम् आमः पदात् परमेकपदान्तरमनन्तिके विद्यमानमाऽऽमन्त्रितान्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-आम् पचसि देवदत्त ! आम् भो देवदत्त !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (आमः) आम् इस (पदात्) पद से परवर्ती (एकान्तरम्) एक पद के अन्तर=व्यवधानवाला*

(अनन्तिके) अति निकट से भिन्न विषय में (आमन्त्रितम्) आमन्त्रितान्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।

उदा०-आम् पचसि देवदत्त! हां! देवदत्त! तू पकाता है। आम् भो देवदत्त! हां रे! देवदत्त! तू पकाता है।

सिद्धि-(१) आम् पचसि देवदत्त! यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, आम् पद से परवर्ती, पचसि इस एक पद के अन्तरवाला, आमन्त्रितान्त देवदत्त' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'आमन्त्रितस्य च' (६।१।१९२) से आद्युदात्त स्वर होता है।

(२) आम् भो देवदत्त! यहां 'भोः' और देवदत्त' दोनों पद आमन्त्रितान्त है। अतः 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' (८।१।७२) से पूर्ववर्ती 'भोः' पद को अविद्यमानवद्भाव होने से उत्तरवर्ती आमन्त्रितान्त देवदत्त' शब्द एकपदान्तरित नहीं रहता है। अतः 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' (८।१।७३) से अविद्यमानवद्भाव का प्रतिषेध होने से एकपदान्तरितत्व बना रहता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः नैव वा पुनरत्रैकश्रुत्यं प्राप्नोति। किं कारणम्? अनन्तिक इत्युच्यते। अन्यच्च दूरमन्यदनन्तिकम्। यद्येवं प्लुतोऽपि तर्हि न प्राप्नोति, प्लुतोऽपि 'दूराद्' इत्युच्यते। इष्टमेवैतत् संगृहीतम्-'आम् भो देवदत्त' इत्येव भवितव्यम्।

(महाभाष्यम् ८।१।५५)।

अर्थ-यहां एकश्रुति स्वर प्राप्त नहीं होता है। क्या करण है? सूत्रपाठ में 'अनन्तिके' यह कहा गया है। दूर अन्य होता है और अनन्तिक अन्य होता है। अनन्तिक का अर्थ है-न बहुत निकट न दूर। 'एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ' (१।२।३३) से दूर से सम्बोधन करने में एकश्रुति स्वर होता है, अनन्तिक से नहीं। यदि ऐसी बात है तो यहां प्लुत भी प्राप्त नहीं होता है क्योंकि प्लुत भी 'दूराद्धूते च' (८।२।८४) से दूर से आहूत करने में प्लुत होता है, अनन्तिक से नहीं। अतः पाणिनि मुनि ने ठीक ही यहां 'अनन्तिके' पद ग्रहण किया है अतः 'आम्' भो देवदत्त' यही प्रयोग होना चाहिये।

काशिकावृत्ति में इस महाभाष्य-वचन के विरुद्ध यहां प्लुत उदाहरण दिया है-आम् भो देवदत्त३।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(३६) यद्धितुपरं छन्दसि।५६।

प०वि०-यत्-हि-तुपरम् १।१ छन्दसि ७।१।

स०-यच्च हिश्च तुश्च ते-यद्धितवः, यद्धितवः परे यस्मात् तत्-यद्धितुपरम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदाद् यद्धितुपरं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमानं पदात् परं यत्परं हिपरं तुपरं च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-**(यत्परम्)** गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः (ऋ० २।२३।१८)। **(हिपरम्)** इन्द्रवो वामुशन्ति हि (ऋ० १।२।४)। **(तुपरम्)** आख्यास्यामि तु ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (यद्धितुपरम्) यत्परक, हिपरक और तुपरक (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-(यत्परक) गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः (ऋ० २।२३।१८)। (हिपरक) इन्द्रवो वामुशन्ति हि (ऋ० १।२।४)। (तुपरक) आख्यास्यामि तु ते।

सिद्धि-(१) गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः। यहां छन्द विषय में ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उत्-पद से परवर्ती, यत्परक तिङन्त 'असृजः' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-हिपरक-इन्द्रवो वामुशन्ति हि। तुपरक-आख्यास्यामि तु ते।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(४०) चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः।५७।

प०वि०- चन-चित्-इव-गोत्रादि-तद्धित-आम्रेडितेषु ७।३ अगतेः ५।१।

स०-चनश्च चिच्च इवश्च गोत्रादयश्च तद्धितश्च आम्रेडितं च तानि-चन०आम्रेडितानि, तेषु-चन०आम्रेडितेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न गतिरिति अगतिः, तस्य-अगतेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादावगतेः पदाच्चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेषु तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गतिवर्जितात् पदात् परं चनचिदिव-गोत्रादितद्धिताम्रेडितेषु परतस्तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। **उदाहरणम्**-

परतः		उदाहरणम्	भाषार्थः
(१)	चन	देवदत्तः पचति चन	देवदत्त अल्प पकाता है।
(२)	चित्	देवदत्तः पचति चित्	देवदत्त अच्छा पकाता है।
(३)	इव	देवदत्तः पचतीव	देवदत्त पकाता-सा है।
(४)	गोत्रादि	देवदत्तः पचति गोत्रम्	देवदत्त अपने गोत्र को प्रसिद्ध करता है।
	,,	देवदत्तः पचति ब्रुवम्	देवदत्त निन्दित पकाता है।
	,,	देवदत्तः पचति प्रवचनम्	देवदत्त अपने अध्यापन की प्रसिद्धि करता है।
(५)	तद्धितः	देवदत्तः पचति कल्पम्	देवदत्त कुछ कम पकाता है।
	,,	देवदत्तः पचति रूपम्	देवदत्त प्रशस्त पकाता है।
(६)	आम्रेडितम्	देवदत्तः पचति पचति	देवदत्त पुनः-पुनः पकाता है।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अगतेः) गति-संज्ञक से भिन्न (पदात्) पद से परवर्ती (चन०) चन, चित्, इव, गोत्रादि, तद्धितप्रत्यय और आम्रेडित परे होने पर (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **देवदत्तः पचति चन।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गति-संज्ञक से भिन्न 'देवदत्त' पद से परवर्ती तिङन्त 'पचति' पद को 'चन' शब्द से परे इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति चित्, देवदत्तः पचतीव।***

*(२) **देवदत्तः पचति गोत्रम्।** यहां **'तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः'** (८।१।२७) इस परिभाषा से कुत्सन (निन्दा) और आभीक्ष्ण्य (पुनः-पुनर्भाव) अर्थ में ही सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। कोई भोजन आदि की प्राप्ति हेतु अपने गोत्र को पकाता है, उसे प्रसिद्ध करता है, यह उसकी निन्दा है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति ब्रुवम्।** देवदत्त निन्दित पकाता है। **देवदत्तः पचति प्रवचनम्।** देवदत्त अपने प्रवचन=अध्यापन को पकाता है, प्रसिद्ध करता है। अपने अध्यापन कार्य की स्वयं प्रसिद्धि करना निन्दनीय है।*

(३) देवदत्तः पचतिकल्पम्। यहां 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति=ईषत्-असम्पूर्णता अर्थ में तद्धित-संज्ञक 'कल्पप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-पचतिरूपम्। यहां 'प्रशंसायां रूपप्' (५।३।६६) से तद्धित-संज्ञक 'रूपप्' प्रत्यय है।

(४) देवदत्तः पचति पचति। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से नित्य-अर्थ में 'पचति' शब्द को द्विर्वचन होता है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से परवर्ती 'पचति' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४१) चादिषु च।५८।

प०वि०-च-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-च आदिर्येषां ते चादयः, तेषु-चादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, अगतेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादावगतेः पदाच्चादिषु च तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गतिवर्जितात् पदात् परं चादिषु शब्देषु परतश्च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। **'न चवाहाहैवयुक्ते'** (८।१।२४) इत्यत्र ये चादयः शब्दा निर्दिष्टास्ते एवात्र गृह्यन्ते।

उदाहरणम्–

परतः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) च	देवदत्तः पचति च खादति च	देवदत्त पकाता है और खाता है।
(२) वा	देवदत्तः पचति वा खादति वा	देवदत्त पकाता है अथवा खाता है।
(३) ह	देवदत्तः पचति ह खादति ह	देवदत्त निश्चित पकाता है और निश्चित खाता है।
(४) अह	देवदत्तः पचत्यह खादत्यह	आश्चर्य है देवदत्त पकाता है, आश्चर्य है खाता है।
(५) एव	देवदत्तः पचत्येव खादत्येव	देवदत्त पकाता ही है, खाता ही है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (अगतेः) गति-संज्ञक से भिन्न (पदात्) पद से परवर्ती, (चादिषु) च-आदि शब्दों के परे होने पर (च) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

'न चवाहाहैवयुक्ते' (८।१।२४) इस सूत्र में जो च-आदि शब्द निर्दिष्ट हैं वे ही यहां चादि-वचन से ग्रहण किये जाते हैं।

सिद्धि-देवदत्तः पचति च खादति च। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गति-संज्ञक शब्द से भिन्न 'देवदत्त' पद से परवर्ती तिङन्त 'पचति' पद को 'च' शब्द परे होने पर इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति वा खादति वा** आदि।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४२) चवायोगे प्रथमा।५६।

प०वि०-च-वायोगे ७।१ प्रथमा १।१।

स०-चश्च वाश्च तौ चवौ, ताभ्यां चवाभ्यां योग इति चवायोगः, तस्मिन्-चवायोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाच्चवायोगे प्रथमा तिङ् सर्वाऽनुदात्ता न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानापदात् परा चवाभ्यां योगे सति प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वाऽनुदात्ता न भवति।

उदा०-(चयोगः) स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति। **(वायोगः)** स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चवायोगे) च और वा का योग होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।*

*उदा०-(चयोगः) **स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति।** वह गदहों को गिनता है और वीणा बजाता है। (वायोगः) **स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।** वह गदहों को गिनता है अथवा वीणा बजाता है।*

सिद्धि-स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'च' पद से परवर्ती और इसके योग में तिङन्त प्रथमा विभक्ति 'कालयति' सर्वानुदात्त नहीं होती है। ऐसे ही 'वा' के योग में-**स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।***

यहां प्रथम तिङन्त पद के सर्वानुदात्त का प्रतिषेध है, द्वितीय तिङन्त पद को 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से सर्वानुदात्त होता है।

'कालयति' पद में 'कल गतौ संख्याने च' (चु०प०) धातु से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से णिजन्त 'कालि' शब्द की धातु संज्ञा है अतः यह 'धातोः' (६।१।१६२) से अन्तोदात्त होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। यह 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से इसे स्वरित होता है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(४३) हेति क्षियायाम्।६०।

प०वि०- ह अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, क्षियायाम् ७।१।

अनु०- पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः- अपादादौ पदाद् ह इति योगे क्षियायां प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न।

अर्थः- अपादादौ वर्तमाना पदात् परा ह इत्यनेन योगे सति क्षियायां गम्यमानायां प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०- स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (ह इति) ह इस शब्द के (योगे) संयोग में (क्षिया) निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।*

उदा०- ***स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति।*** *वह स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है।* ***स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।*** *वह स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है।*

सिद्धि-स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'रथेन' पद से परवर्ती, ह-शब्द के योग में तथा क्षिया अर्थात् आचार-उल्लङ्घन स्वरूप निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में प्रथमा तिङन्त 'याति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-* ***स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।***

याति और भुङ्क्ते पदों में 'क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्' (८।२।१०४) से स्वरित प्लुत होता है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४४) अहेति विनियोगे च।६१।

प०वि०- अह अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, विनियोगे ७।१। च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, क्षियायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अहेति योगे विनियोगे क्षियायां च प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमाना पदात् पराऽहेत्यनेन योगे सति विनियोगे क्षियायां च गम्यमानायां प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति। नानाप्रयोजनो योगो विनियोग इति कथ्यते।

उदा०-(विनियोगः) त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ। **(क्षिया)** स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। स स्वयमहौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।

आर्यभाषाः अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अह इति) अह इस शब्द का (योगे) संयोग होने पर (क्षियायाम्) निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

उदा०-(विनियोग) ***त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ।*** *तू तो गांव जा और तू वन में जा। (क्षिया)* ***स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति।*** *वह स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है।* ***स स्वयमहौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।*** *वह स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है।*

सिद्धि-त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ग्राम' पद से परवर्ती, अह-शब्द के संयोग में तथा विनियोग अर्थ की अभिव्यक्ति में प्रथमा तिङन्त 'गच्छ' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही क्षिया अर्थ में-* ***स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति,*** *इत्यादि। यहां याति और भुङ्क्ते पदों को पूर्ववत् (८।२।१०४) से स्वरित प्लुत होता है।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४५) चाहलोप एवेत्यवधारणम्।६२।

प०वि०–च-अहलोपे ७।१ एव अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, अवधारणम् १।१।

स०–चश्च अहश्च तौ चाहौ, तयोश्चाहयोर्लोप इति चाहलोपः, तस्मिन्-चाहलोपे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाच्चाहलोपे प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न, एवेत्यवधारणम्।

अर्थः–अपादादौ वर्तमाना पदात् परा चलोपेऽहलोपे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति, एवेत्येतच्चेदवधारणार्थं प्रयुज्यते।

क्व चाऽस्य लोपः ? यत्रार्थो गम्यते न च प्रयुज्यते, तत्राऽस्य लोपो भवति। तत्र च शब्दः समुच्चयार्थः, अहशब्दश्च केवलार्थो भवति। समानकर्तृके चलोपः, नानाकर्तृके चाहलोपो वेदितव्यः।

उदा०–**(चलोपः)** देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गच्छतु। देवदत्तो ग्रामं चारण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। **(अहलोपः)** देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवलम्, अरण्यं केवलं गच्छत्विर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चाहलोपे) च और अह शब्द का लोप होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है यदि वहां (एव) एव (इति) यह शब्द (अवधारणम्) निश्चय अर्थ के लिये प्रयोग किया गया हो।*

च और अह शब्द का कहां लोप होता है ? जहां इनका अर्थ समझा जाता है किन्तु इनका वहां प्रयोग नहीं किया जाता वहां इनका लोप होता है। वहां 'च' शब्द समुच्चयार्थक और 'अह' शब्द केवलार्थक होता है। समानकर्तृक वाक्य में 'च' का लोप और नानाकर्तृक वाक्य में 'अह' का लोप होता है।

उदा०-(चलोप) देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गुच्छतु। देवदत्त ही गांव जावे और वह देवदत्त ही जङ्गल में जावे। (अहलोप:) देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गुच्छतु। देवदत्त ही केवल गांव जाये और यज्ञदत्त ही केवल जङ्गल में जाये।

सिद्धि-देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गुच्छतु। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ग्राम' पद से परवर्ती, 'च' का लोप होने पर प्रथमा 'गच्छतु' तिङन्त विभक्ति को अवधारणार्थक 'एव' शब्द के प्रयोग में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही 'अह' शब्द के लोप में-देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गुच्छतु। स्वराङ्कन विधि पूर्ववत् है।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४६) चादिलोपे विभाषा।६३।

प०वि०-च-आदिलोपे ७।१ विभाषा १।१।

स०-च आदिर्येषां ते चादयः, तेषां चादीनां लोप इति चादिलोपः, तस्मिन्-चादिलोपे (बहुव्रीहिगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाच्चादिलोपे प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमाना पदात् परा चादिलोपे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेन सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०-(चलोपः) शुक्ला व्रीहयो भवन्ति/भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति/दुहन्ति। (वालोपः) व्रीहिभिर्यजेत/यजेत। यवैर्यजेत/यजेत। एवं शेषेष्वपि यथाप्रयोगदर्शनमुदाहार्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती, (चादिलोपे) च, वा, ह, अह, एव इन शब्दों का लोप होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।*

उदा०-(चलोप) शुक्ला व्रीहयो भवन्ति/भवन्ति। और सफेद चावल होते हैं। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति/दुहन्ति। और सफेद गौओं को घी के लिये दुहते हैं।

(चालोप) व्रीहिभिर्यजेत/यजेत। अथवा चावलों से यज्ञ करें। यवैर्यजेत/यजेत। अथवा जौओं से यज्ञ करे।

सिद्धि- शुक्ला व्रीहयो भवन्ति। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'व्रीह्यः' पद से परवर्ती, 'च' शब्द का लोप होने पर प्रथमा 'भवन्ति' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'तास्यनुदात्तेन्ङिदुपदेशाल्लसार्वधातुक-मनुदात्तमन्हिविङोः' (६।१।१८०) से ल-सार्वधातुक को अनुदात्त करने पर धातु को उदात्त होकर आद्युदात्त होता है। विकल्प-पक्ष में 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से 'भवन्ति' पद सर्वानुदात्त होता है। ऐसे ही वालोप में-व्रीहिभिर्यजेत/यजेत।

विशेषः *यहां चलोप और अहलोप के उदाहरण दर्शाये हैं। हलोप अहलोप और एवलोप के उदाहरण यथाप्रयोग समझ लेवें।*

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४७) वैवावेति च च्छन्दसि।६४।

प०वि०-वैवाव १।१ (सु-लुक्) इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-वैश्च वावश्च एतयोः समाहारः-वैवाव। **'सुपां सुलुक्०'** (७।१।३९) इत्यनेन सुलोपः।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदाद् वैवावेति योगे च प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमाना पदात् परा वै वावेत्येतयोर्योगे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेनाऽनुदात्ता न भवति।

उदा०-(वैयोगः) अहर्वै देवानामासीद्रात्रिरसुराणाम् (तै०सं० १।५।९।२)। आसीत्। बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत्, शण्डामर्कावसुराणाम् (तै०सं० ६।४।१०।१) (आस्ताम्)। **(वावयोगः)** अयं वाव हस्त आसीत् (काठ०सं० ३६।७)। नेतर आसीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (वैवाव) वै, वाव (इति) इन शब्दों का (योगे)*

योग होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

*उदा०-(वैयोग) **अहर्वै देवानामासीद्रात्रिरसुराणाम्** (तै०सं० १।५।९।२)। **आसीत्।** दिन निश्चय से देवताओं का था और रात्रि असुरों की थी। **बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत्, शण्डामर्कावसुराणाम्** (तै०सं० ६।४।१०।१)। **(आस्ताम्)।** बृहस्पति निश्चय से देवताओं का पुरोहित था और शण्ड तथा मर्क असुरों के पुरोहित थे। (वावयोग) **अयं वाव हस्त आसीत्** (काठ०सं० ३६।७)। यह प्रसिद्ध हाथ था। **नेतर आसीत्।** दूसरा नहीं था।*

*सिद्धि-**अहर्वै देवानाभासीत्।** यहां छन्द विषय में, ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवानाम्' पद से परवर्ती, 'वै' शब्द के योग में प्रथमा 'आसीत्' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः यथाप्राप्त स्वर होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**आसीत्।** ऐसे ही वावयोग में-**अयं वाव हस्त आसीत्।** विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**नेतर आसीत्।***

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४८) एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्।६५।

प०वि०-एक-अन्याभ्याम् ५।२ समर्थाभ्याम् ५।२।

स०-एकश्च अन्यश्च तौ एकान्यौ, ताभ्याम्-एकान्याभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समोऽर्थो ययोस्तौ समर्थौ, ताभ्याम्-समर्थाभ्याम् (बहुव्रीहिः)। **वा०-'शकन्ध्वादिषु पररूपम्'** (६।१।९१) इत्यनेनाऽकारस्य पररूपत्वम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, विभाषा, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदात् समर्थाभ्यामेकान्याभ्यां योगे च प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमाना पदात् परा समर्थाभ्यामेकान्याभ्यां शब्दाभ्यां योगे सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेन सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०-**(एकयोगः)** प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् (शौ०सं० ८।९।१३) जिन्वति। **(अन्ययोगः)** तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति (ऋ० १।१६४।२०) अत्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (समर्थाभ्याम्) समानार्थक (एकान्याभ्याम्) एक और अन्य शब्द के (योगे) योग में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

उदा०-(एकयोग) प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् (शौ०सं० ८।९।१३) **जिन्वति।** देवों के इच्छुक जनों की एकशक्ति प्रजा को और बल-प्राण को तृप्त करती है और एक राष्ट्र की रक्षा करती है। **(अन्ययोग) तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति** (ऋ० १।१६४।२०) **अत्ति।** ईश्वर और जीव इन दोनों में से एक इस जगद्वृक्ष के स्वादु फल को खाता है और एक स्वादु फल न खाता हुआ इसे देखता रहता है।

सिद्धि-प्रजामेका जिन्वति०। यहां छन्द विषय में ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'एका' पद से परवर्ती तथा इसके योग में प्रथमा 'जिन्वति' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-**जिन्वति।** ऐसे ही अन्य शब्द के में-**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति।** विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-**अत्ति।**

एक और अन्य शब्द व्यवस्था अर्थ में समानार्थक हैं; अन्य अर्थ में नहीं।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४६) यद्वृत्तान्नित्यम्।६६।

प०वि०-यद्वृत्तात् ५।१ नित्यम् १।१।

स०-यदो वृत्तमिति यद्वृत्तम्, तस्मात्-यद्वृत्तात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ यद्वृत्तात् पदात् तिङ् पदं नित्यं सर्वानुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं यद्वृत्तात् पदात् परं तिङन्तं पदं नित्यं सर्वानुदात्तं न भवति।

"यदो वृत्तमिति यद्वृत्तम्। यत्र पदे यच्छब्दो वर्तते तत्सर्वं यद्वृत्तम्। इह वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात्, डतरडतमौ च प्रत्ययौ इत्येतद् नाश्रीयते" (काशिका)।

उदा०-यो भुङ्क्ते। यं भोजयति। येन भुङ्क्ते। यस्मै ददाति। यत्कामास्ते जुहुमः (ऋ० १०।१५१।१०)। यद्रियङ् वायुर्वाति (तै०सं० ५।५।१।१)। यद्वायुः पवते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (यद्वृत्तात्) यत् शब्द से निष्पन्न (पदात्) पद से परवर्ती (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (नित्यम्) सदा (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

"जिस पद में 'यत्' शब्द है वह सब यद्वृत्त कहाता है। यहां किंवृत्त शब्द के समान उसके विभक्त्यन्त और 'यत्' के डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण नहीं किया जाता है" (काशिका)।

*उदा०-**यो भुङ्क्ते।** जो खाता है। **यं भोजयति।** जिसे खिलाता है। **येन भुङ्क्ते।** जिस साधन से खाता है। **यस्मै ददाति।** जिसके लिये दान करता है। **यत्कामास्ते जुहुमः** (ऋ० १०।१५१।१०)। जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग तेरी स्तुति करते हैं। **यद्रियङ् वायुर्वाति** (तै०सं० ५।५।१।१)। जिस ओर का वायु चलता है। **यद्वायुः पवते।** जिसे वायु पवित्र करता है।*

*सिद्धि-(१) **यो भुङ्क्ते।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यद्वृत्त 'यः' पद से परवर्ती तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**यं भोजयति** आदि।*

*(२) **यत्कामास्ते जुहुमः।** यहां यत् और काम शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है।*

*(३) **यद्रियङ् वयुर्वाति।** यहां यत्-उपपद **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से क्विन्' प्रत्यय है। **'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये'** (६।३।९२) से 'यत्' के टि-भाग (अत्) को अद्रि-आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।*

अनुदात्तम्–

(५०) पूजनात् पूजितमनुदात्तं {काष्ठादिभ्यः}।६७।

प०वि०-पूजनात् ५।१ पूजितम् १।१ अनुदात्तम् १।१ {काष्ठादिभ्यः ५।३}।

स०-काष्ठ आदिर्येषां ते काष्ठादयः, तेभ्यः-काष्ठादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः पदेभ्यः पूजितं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थ:-अपादादौ वर्तमानेभ्य: पूजनवाचिभ्य: काष्ठादिभ्य: पदेभ्य: परं पूजितवाचि पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-काष्ठाध्यापक:। काष्ठाभिरूपक:। दारुणाध्यापक:, इत्यादिकम्।

काष्ठ। दारुण। अमातापुत्र। अयुत। अद्भुत। अनुक्त। भृश। घोर। परम। सु। अति। इति काष्ठादय:।।

अनुदात्तमित्यनुवर्तमाने पुनरनुदात्तग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (पूजनेभ्य:) पूजनवाची (काष्ठादिभ्य:) काष्ठ-आदि (पदेभ्य:) पदों से परवर्ती (पूजितम्) पूजितवाची (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-**काष्ठाध्यापक:**। अद्भुत अध्यापक। **काष्ठाभिरूपक:**। अद्भुत सुन्दर। **दारुणाध्यापक:**। कठोर अध्यापक, इत्यादि।*

सिद्धि-काष्ठाध्यापक:। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, पूजनवाची काष्ठ पद से परवर्ती पूजितवाची अध्यापक पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। काष्ठ शब्द अद्भुत पर्याय होने से पूजनवाची है। काष्ठबुद्धि छात्र को भी पढ़ानेवाला। ऐसे ही-काष्ठाभिरूपक:, दारुणाध्यापक: आदि।*

विशेष: *महाभाष्य में 'पूजनात् पूजितमनुदात्तम्' यह सूत्रपाठ है। वहां 'काष्ठादिभ्य:' वचन का समर्थन किया गया है। अत: यह पद कोष्ठक में लिखा है।*

अनुदात्तम्-

(५१) सगतिरपि तिङ्।६८।

प०वि०-सगति: १।१ अपि १।१ तिङ् १।१।

स०-गतिना सह वर्तते इति सगति: (बहुव्रीहि:)। **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (२।२।२८) इत्यनेन समास:।

अनु०-पदस्य, पदात्, सर्वम्, अनुदात्तम्, अपादादौ, पूजनात्, पूजितम्, काष्ठादिभ्य: इति चानुवर्तते।

अन्वय:-अपादादौ पूजनेभ्य: काष्ठादिभ्य: पदेभ्य: परं सगतिरपि तिङ् पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थ:-अपादादौ वर्तमानं पूजनवाचिभ्य: काष्ठादिभ्य: पदेभ्य: परं सगति अगति अपि च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-(**अगति**) यत् काष्ठं पचति। यद् दारुणं पचति। (**सगति**) यत् काष्ठं प्रपचति। यद् दारुणं प्रपचति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (पूजनेभ्यः) पूजनवाची (काष्ठादिभ्यः) काष्ठ-आदि (पदेभ्यः) पदों से परवर्ती (सगति) गति=उपसर्गसहित और (अगति) उपसर्गरहित (अपि) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-(अगति) **यत् काष्ठं पचति।** जब वह अद्भुत पकाता है। **यद् दारुणं पचति।** जब वह कठोर पकाता है। (सगति) **यत् काष्ठं प्रपचति।** जब वह अद्भुत प्रकृष्ट पकाता है। **यद् दारुणं प्रपचति।** जब वह कठोर प्रकृष्ट पकाता है, इत्यादि।*

सिद्धि-यत् काष्ठं पचति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, पूजनवाची काष्ठ पद से परवर्ती अगति=उपसर्गरहित तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**यद् दारुणं पचति।***

*यहां प्रथम **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से सर्वानुदात्त प्राप्त था किन्तु **'निपातैर्यद्यदि०'** (८।१।३०) से निपात यत्-शब्द के योग में प्रतिषेध किया गया है, अतः इस सूत्र से पुनः सर्वानुदात्त का विधान किया है।*

*सगति पक्ष में-**यत् काष्ठं प्रपचति। यद् दारुणं प्रपचति,** इत्यादि।*

अनुदात्तम्-

(५२) कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ।६६।

प०वि०-कुत्सने ७।१। च अव्ययपदम्, सुपि ७।१ अगोत्रादौ ७।१।

स०-गोत्र आदिर्यस्य स गोत्रादिः, न गोत्रादिरिति अगोत्रादिः, तस्मिन्-अगोत्रादौ (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, सगतिः, अपि, तिङ् इत्यनुवर्तते। **'पदात्'** (८।१।४) इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-अपादादावगोत्रे कुत्सने सुपि च सगतिरपि तिङ् पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गोत्रादिवर्जिते कुत्सनवाचिनि सुबन्ते परतश्च सगति अगति अपि च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-(**अगति**) पचति पूति। पचति मिथ्या। (**सगति**) प्रपचति पूति। प्रपचति मिथ्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अगोत्रादौ) गोत्र आदि शब्दों से भिन्न (कुत्सने) निन्दावाची (सुपि) सुबन्त पद परे होने पर (च) भी (सगति) गति=उपसर्गसहित और (अगति) उपसर्गरहित (अपि) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-(अगति) **पचति पूति।** वह गन्दा पकाता है। **पचति मिथ्या।** वह व्यर्थ पकाता है। (सगति) **प्रपचति पूति।** वह गन्दा अधिक पकाता है। **प्रपचति मिथ्या।** वह व्यर्थ अधिक पकाता है।*

*सिद्धि-**पचति पूति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गोत्रादि शब्दों से भिन्न, कुत्सनवाची, सुबन्त 'पूति' शब्द से परे अगति तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**पचति मिथ्या।** 'पदात्' (८।१।२४) इस अधिकार की निवृत्ति हो जाने से 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से सर्वानुदात्त की प्राप्ति नहीं थी और सगति तिङन्त पद में तिङन्तमात्र को 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) सर्वानुदात्त प्राप्त था। अतः यह विधान किया गया है। ऐसे ही सगति में-**प्रपचति** पूति। **प्रपचति मिथ्या।***

अनुदात्तम्-

(५३) गतिर्गतौ।७०।

प०वि०-गतिः १।१ गतौ ७।१।

अनु०-पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ गतिर्गतौ सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गतिः पदं गतौ परतः सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-अभ्युद्धरति। समुदानयति। अभिसम्पर्याहरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (गतिः) उपसर्ग (पदम्) पद (गतौ) उपसर्ग परे होने पर (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-**अभ्युद्धरति।** वह प्रत्यक्ष उद्धार करता है। **समुदानयति।** वह मिलकर उत्थान करता है। **अभिसम्पर्याहरति।** वह प्रत्यक्षतः मिलकर सब ओर से आहरण करता है।*

*सिद्धि-**अभ्युद्धरति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उत् गति (उपसर्ग) परे होने पर अभि गति पद (उपसर्ग) को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से 'अभि' को छोड़कर सब उपसर्ग आद्युदात्त है*

और 'अभि' उपसर्ग 'फिषोऽन्तोदात्त:' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है किन्तु इस सूत्र से 'उत्' गति परे होने पर 'अभि' गति अनुदात्त होता है। ऐसे ही-सम्+उत्+आ+नयति= समुदानयति। अभि+सम्+परि+आ+हरति=अभिसम्पर्याहरति।

अनुदात्तम्–

(५४) तिङि चोदात्तवति।७१।

प०वि०-तिङि ७।१ च अव्ययपदम्, उदात्तवति ७।१।

तद्धितवृत्तिः-उदात्तोऽस्मिन्नस्तीति उदात्तवान्, तस्मिन्-उदात्तवति। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।७४) इत्यनेन मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ गतिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादावुदात्तवति तिङि च गतिः पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानम् उदात्तवति तिङन्ते पदे परतश्च गतिः पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-यत् प्रपचति। यत् प्रकरोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (उदात्तवति) उदात्त गुणवाला (तिङि) तिङन्त पद परे होने पर (च) भी (गतिः) गति-संज्ञक=उपसर्ग (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-**यत् प्रपचति**। जब वह प्रकृष्ट पकाता है। **यत् प्रकरोति**। जब वह प्रकृष्ट करता है (बनाता) है।*

*सिद्धि-**यत् प्रपचति**। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उदात्त-गुणवान्, तिङन्त 'पचति' पद परे होने पर 'प्र' गति=उपसर्ग को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**यत् प्रकरोति**।*

यहां 'निपातैर्यद्यदि०' (८।१।३०) से 'पचति' और 'करोति' पद उदात्तवान् हैं। अतः इनके परे रहने पर 'प्र' इस गति को अनुदात्त होता है। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त नहीं है।

।। इति सर्वानुदात्तस्वरप्रकरणम्।।

अविद्यमानवद्भावप्रकरणम्

अविद्यमानवत्–

(१) आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्।७२।

प०वि०--आमन्त्रितम् १।१ पूर्वम् १।१ अविद्यमानवत् अव्ययपदम्।

स०-न विद्यमानमिति अविद्यमानम्, तेनाऽविद्यमानेन तुल्यं वर्तते इति अविद्यमानवत्। नञ्तत्पुरुषस्ततस्तद्धितवृत्तिः। **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'** (५।१।११५) इति तुल्यार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वमाऽऽमन्त्रितं पदमऽविद्यमानवत्।

अर्थः-पूर्वमाऽऽमन्त्रितं पदमऽविद्यमानवद् भवति। तस्मिन् सति यत् कार्यं प्राप्नोति तन्न भवति, असति च यत् तद् भवति।

कानि पुनरविद्यमानवद्भावे प्रयोजनानि ? आमन्त्रिततिङ्निघात-युष्मदस्मदादेशाभावाः प्रयोजनम्। **उदाहरणम्-**

(१) **आमन्त्रितम्**-देवदत्त ! यज्ञदत्त !

(२) **तिङ्निघातः**-देवदत्त ! पचसि।

(३) **युष्मदस्मदादेशाभावः**-देवदत्त ! तव ग्रामः स्वम्। देवदत्त ! मम ग्रामः स्वम्।

(४) **पूजायामनन्तरप्रतिषेधः प्रयोजनम्**-यावद् देवदत्त ! पचसि।

(५) **जात्वपूर्वम्**-देवदत्त ! जातु पचसि।

(६) **आहो उताहो चानन्तरम्**-आहो देवदत्त ! पचसि। उताहो देवदत्त ! पचसि।

(७) **आम एकान्तरमामन्त्रिते**-आम् भोः पचसि देवदत्त !

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (आमन्त्रितम्) आमन्त्रित-संज्ञक (पदम्) पद (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के तुल्य हो जाता है, अर्थात् उसके रहने पर जो कार्य प्राप्त होता है और जो न रहने पर होता है, वह कार्य हो जाता है।*

इस अविद्यमानवद्भाव के क्या प्रयोजन हैं ? आमन्त्रित, तिङनिघात और युष्मद्-अस्मद् शब्दों के स्थान में विहित आदेशों का अभाव प्रयोजन है। उदाहरण-

*(१) आमन्त्रित-देवदत्त ! यज्ञदत्त ! हे देवदत्त ! हे यज्ञदत्त ! यहां 'यज्ञदत्त' पूर्ववर्ती 'देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से '**आमन्त्रितस्य च**' (८।१।१९) से पद से उत्तरवर्ती आमन्त्रित 'यज्ञदत्त' पद को अनुदात्त स्वर नहीं होता है, अपितु षष्ठाध्याय में प्रोक्त '**आमन्त्रितस्य च**' (६।१।१९) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

*(२) **तिङ्निघात-देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! तू पकाता है। यहां 'पचति' से देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से तिङन्त 'पचति' पद को सर्वानुदात्त=निघात नहीं होता है।*

*(३) **युष्मद-अस्मद्विषयक आदेशाभाव-देवदत्त ! तव ग्रामः स्वम् ।** हे देवदत्त ! ग्राम तेरा धन (सम्पत्ति) है। **देवदत्त ! मम ग्रामः स्वम् ।** हे देवदत्त ! ग्राम मेरा धन है। यहां 'तव' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **तेमयावेकवचनस्य'** (८।१।२२) से पद से परे युष्मद्-अस्मद् के स्थान में ते, मे आदेश नहीं होते हैं।*

*(४) **यावद् देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! तू जितना पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'पूजायां नानन्तरम्'** (८।१।३७) से अनन्तर=व्यवधानरहित तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है।*

*(५) **देवदत्त ! जातु पचसि ।** हे देवदत्त ! तू जितना पकाता है। यहां 'जातु' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'जात्वपूर्वम्'** (१।८।४७) से विहित अपूर्ववर्ती जातु निपात से युक्त तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है।*

*(६) **आहो देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! अथवा तू पकाता है। **उताहो देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! अथवा तू पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'आहो उताहो चानन्तरम्'** (८।१।४९) से तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है।*

*(७) **आम् भोः पचसि देवदत्त !** रे देवदत्त ! तू पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती 'भोः' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से देवदत्त' आमन्त्रित पद 'पचसि' पद से एकपदान्तरित हो जाता है। अतः **'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके'** (८।१।५५) से सर्वानुदात्त नहीं होता है अपितु **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९८) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

अविद्यमानवत् प्रतिषेधः--

(२) नामन्त्रिते समानाधिकरणे {सामान्यवचनम्}।७३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, आमन्त्रिते ७।१ समानाधिकरणे ७।१ {सामान्यवचनम् १।१}।

स०-समानम् अधिकरणं यस्य तत्-समानाधिकरणम्, तस्मिन्-समानाधिकरणे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, आमन्त्रितम्, पूर्वम्, अविद्यमानवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वमामन्त्रितं सामान्यवचनं पदं समानाधिकरणे आमन्त्रितेऽविद्यमानवन्न।

अर्थः-पूर्वमामन्त्रितान्तं सामान्यवचनं पदं समानाधिकरणे आमन्त्रितान्ते पदे परतोऽविद्यमानवन्न भवति, विद्यमानवदेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-अग्ने गृहपते (तै०सं० २।४।५।२)। माणवक जटिलकाध्यापक।

आर्यभाषाः अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (आमन्त्रितम्) आमन्त्रितान्त (सामान्यवचनम्) सामान्यवाची (पदम्) पद (समानाधिकरणे) एक अधिकरणवाला (आमन्त्रिते) आमन्त्रितान्त पद परे होने पर (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के तुल्य (न) नहीं होता है, अपितु विद्यमानवत् ही होता है।

*उदा०-अग्ने **गृहपते** (तै०सं० २।४।५।२)। हे गृहपति अग्ने! माणवक **जटिलकाध्यापक**। हे बालक जटिलक (जटाधारी) अध्यापक।*

सिद्धि-अग्ने गृहपते! *यहां 'गृहपते' पद से पूर्ववर्ती सामान्यवाची आमन्त्रित 'अग्ने' पद समानाधिकरणवाले आमन्त्रितान्त 'गृहपते' पद के परे होने पर विद्यमानवत् होता है। अतः **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से 'अग्ने' पद से परवर्ती 'गृहपते' पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**माणवक जटिलकाध्यापक**।*

विशेषः *महाभाष्य में **'नामन्त्रिते समानाधिकरणे'** (८।१।७३) **'विभाषितं विशेषवचने'** (८।१।७४) ऐसा सूत्रपाठ है। योग विभाग में **'नामन्त्रिते सामनाधिकरणे सामान्यवचनम्'** यह पाठ स्वीकार किया है।*

अविद्यमानद्विकल्पः-

(३) विभाषितं विशेषवचने {बहुवचनम्}।७४।

प०वि०-विभाषितम् १।१ विशेषवचने ७।१ बहुवचनम् १।१।

स०-सामान्यस्य वचनमिति सामान्यवचनम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। विशेषस्य वचनमिति विशेषवचनम्, तस्मिन्-विशेषवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, आमन्त्रितम्, पूर्वम्, अविद्यमानवत्, आमन्त्रिते, समानाधिकरणे, सामान्यवचनमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वं बहुवचनमाऽऽमन्त्रितं पदं विशेषवचने समानाधिकरणे आमन्त्रिते विभाषितमऽविद्यमानवत्।

अर्थः-पूर्वं बहुवचनमाऽऽमन्त्रितं विशेषवाचिनि समानाधिकरणे आमन्त्रिते पदे परतो विकल्पेनाऽविद्यमानवद् भवति।

उदा०-देवाः शरण्याः। देवाः शरण्याः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (बहुवचनम्) बहुवचनान्त (आमन्त्रितम्) आमन्त्रित (पदम्) पद (विशेषवचने) विशेषवाची (समानाधिकरणे) एक अधिकरणवाला (आमन्त्रिते) आमन्त्रितान्त पद परे होने पर (विभाषितम्) विकल्प से (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के समान होता है।*

उदा०-देवाः शरण्याः। देवाः शरण्याः। हे शरण के योग्य देवजनो! ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः। हे वैयाकरण ब्राह्मणो!

सिद्धि-देवाः शरण्याः। यहां 'शरण्याः' पद से पूर्ववर्ती, बहुवचनान्त, 'देवाः' आमन्त्रितान्त पद विशेषवाची, समानाधिकरणवाले 'शरण्याः' पद के परे होने पर इस सूत्र से अविद्यमान के समान होता है। अतः ***'आमन्त्रितस्य च'*** *(८।१।१९) से पद से परवर्ती आमन्त्रित 'शरण्याः' पद को सर्वानुदात्त नहीं होता है, अपितु* ***'आमन्त्रितस्य च'*** *(६।१।१९८) से आद्युदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में विद्यमान के समन होता है, अतः* ***'आमन्त्रितस्य च'*** *(८।१।१९) से पद से परवर्ती 'शरण्याः' आमन्त्रित पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है-देवाः शरण्याः। ऐसे ही-ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः।*

विशेषः *महाभाष्य में-* ***'विभाषितं विशेषवचने'*** *ऐसा सूत्रपाठ है। वहां* ***'बहुवचने'*** *पद पठित नहीं है। काशिकावृत्ति में इसका विस्पष्टार्थ पाठ स्वीकार किया है।*

।। इति अविद्यमानवद्भावप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः
{अथ त्रिपादी प्रारभ्यते}
असिद्धप्रकरणम्

असिद्धाधिकारः-

(१) पूर्वत्रासिद्धम्।१।

प०वि०-पूर्वत्र अव्ययपदम्, असिद्धम् १।१।

स०-न सिद्धमिति असिद्धम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः-पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकारोऽयम्, आ अष्टमाध्यायपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे यद् वक्ष्यति पूर्वत्राऽसिद्धमित्येवं तद् वेदितव्यम्।

अत्र येयं सपादसप्ताध्याय्यनुक्रान्ता, एतस्यामयं पादोनाऽध्यायोऽसिद्धो भवति। इत उत्तरं चोत्तरोत्तरो योगः पूर्वत्र पूर्वत्रासिद्धो भवति, असिद्धवद् भवति, सिद्धकार्यं न करोतीत्यर्थः। तदेतदसिद्धत्ववचनमादेशलक्षण-प्रतिषेधार्थम्, उत्सर्गलक्षणभावार्थं च वेदितव्यम्।

उदा०-अस्मा उद्धर। द्वा अत्र। असा आदित्यः। इत्यत्र व्यलोपस्या-सिद्धत्वाद् **'आद्गुणः'** (६।१।८६) इति गुणरूपैकादेशः, **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) इति च दीर्घरूपैकादेशो न भवति। अमुष्मै, अमुष्मात्, अमुष्मिन् इत्यत्र **'अदसोऽसेर्दादु दो मः'** (८।२।८०) इत्युत्वस्यासिद्धत्वात् **स्मै**-आदय आदेशा भवन्ति।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(*पूर्वत्रासिद्धम्*) *'पूर्वत्रासिद्धम्' यह अधिकारसूत्र है। इसका अष्टम अध्याय की समाप्तिपर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह पूर्वत्र=पूर्वोक्त में असिद्ध जानना चाहिये।*

इस पाणिनीय अष्टाध्यायी में जो ये सवा सात अध्याय पीछे उपदेश किये गये हैं उनमें यह पौण-अध्याय (त्रिपादी) असिद्ध होता है और इससे आगे अगला-अगला सूत्रकार्य पहले-पहले सूत्रकार्य करने में असिद्ध के तुल्य हो जाता है। यह असिद्ध-वचन आदेश-लक्षण कार्य के प्रतिषेध के लिये और उत्सर्ग-लक्षण कार्य की विधि के लिये किया गया है।

*उदा०-**अस्मा उद्धर।** तू इसके लिये निकाल। **द्वा अत्र।** दो यहां हैं। **असा आदित्यः।** वह सूर्य है। **अमुष्मै।** उसके लिये। **अमुष्मात्।** उससे। **अमुष्मिन्।** उसमें।*

*सिद्धि-(१) **अस्मा उद्धर।** असौ+उद्धर। अस्माय्+उद्धर। अस्मा०+उद्धर। अस्मा उद्धर।*

*यहां '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७६) से ऐकार के स्थान में 'आय्' आदेश है। '**लोपः शाकल्यस्य**' (८।३।१९) से यकार का लोप होता है। 'अस्मा+उद्धर' इस स्थिति में '**आद्गुणः**' (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश प्राप्त होता है, वह यलोप के असिद्धवत् होने से नहीं होता है। ऐसे ही-द्वौ+अत्र=द्वा अत्र। असौ+आदित्यः=असा आदित्यः। यहां '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९८) से प्राप्त दीर्घरूप एकादेश नहीं होता है।*

*(२) **अमुष्मै।** अदस्+ङे। अदस्+ए। अद अ+ए। अद+ए। अमु+ए। अमु+स्मै। अमुस्मै।*

*यहां 'अदस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से अकार अन्तादेश, '**अतो गुणे**' (६।१।९५) से पररूप एकादेश **और** '**अदसोऽसेर्दादु दो मः**' (८।२।८०) इस त्रिपादीय सूत्र से अकार को उकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। इस त्रिपादीय कार्य के असिद्धवत् होने से '**सर्वनाम्नः स्मै**' (७।१।१४) से इसे 'अद+ए' ऐसा अकारान्त ही मानकर 'स्मै' आदेश किया जाता है। ऐसे ही ङसि प्रत्यय में-**अमुष्मात्।** 'ङि' प्रत्यय में-**अमुष्मिन्।** यहां पूर्वोक्त उत्व के असिद्ध होने से '**ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ**' (७।१।१५) से स्मात् और स्मिन् आदेश किये जाते हैं।*

असिद्धत्वम्--

(२) नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति।२।

प०वि०-नलोपः १।१ सुप्-स्वर-संज्ञा-तुग्विधिषु ७।३ कृति ७।१।

स०-नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। सुप् च स्वरश्च संज्ञा च तुक् च ते सुप्स्वरसंज्ञातुकः, तेषाम्-सुप्स्वरसंज्ञातुकाम्, तेषां विधय इति सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधयः, तेषु-सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-असिद्धमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुप्स्वरसंज्ञाविधिषु तुग्विधौ च कृति नलोपोऽसिद्धः।

अर्थः-सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ तुग्विधौ च कृति नलोपोऽसिद्धो भवति।

उदा०-(**सुब्विधिः**) राजभिः। तक्षभिः। राजभ्याम्। तक्षभ्याम्। राजसु। तक्षसु। (**स्वरविधिः**) राजवती। पञ्चार्मम्। दशार्मम्। पञ्चदण्डी। (**संज्ञाविधिः**) पञ्च ब्राह्मण्यः। दश ब्राह्मण्यः। (**तुग्विधिः**) वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति) सुप्-विधि, स्वर-विधि, संज्ञा-विधि और कृत्-प्रत्यय विषय में तुक्-विधि करने में (नलोपः) नकार का लोप (असिद्धः) असिद्धवत् होता है।*

उदा०-(सुब्विधि) ***राजभिः।*** *राजाओं के द्वारा।* ***तक्षभिः।*** *तक्षाओं के द्वारा। तक्षा=बढ़ई।* ***राजभ्याम्।*** *दो राजाओं के द्वारा।* ***तक्षभ्याम्।*** *दो तक्षाओं के द्वारा।* ***राजसु।*** *सब राजाओं में।* ***तक्षसु।*** *सब तक्षाओं में। (स्वरविधि)* ***राजवती।*** *राजावाली।* ***पञ्चार्मम्।*** *पांच ऊजड़ खेड़े।* ***दशार्मम्।*** *दश ऊजड़ खेड़े।* ***पञ्चदण्डी।*** *पांच दण्डीजनों का संग्रह। (संज्ञाविधि)* ***पञ्च ब्राह्मण्यः।*** *पांच ब्राह्मणियां।* ***दश ब्राह्मण्यः।*** *दश ब्राह्मणियां। (तुग्विधि)* ***वृत्रहभ्याम्।*** *दो इन्द्रों के द्वारा।* ***वृत्रहभिः।*** *सब इन्द्रों के द्वारा।*

सिद्धि-(१) राजभिः। राजन्+भिस्। राज०+भिस्। राजभिस्। रजभिः।

यहां 'राजन्' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है।* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। राज+भिस्-इस स्थिति में* ***'अतो भिस ऐस्'*** *(७।१।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त होता है। इस सूत्र से सुप्-विधि में नकार-लोप के असिद्ध होने से उक्त 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। ऐसे ही 'तक्षन्' शब्द से-**तक्षभिः।***

(२) ***राजभ्याम्।*** *यहां नलोप के असिद्ध होने से* ***'सुपि च'*** *(७।३।१०२) से अङ्ग को दीर्घ नहीं होता है। ऐसे ही-**तक्षभ्याम्।***

(३) ***राजसु।*** *यहां नलोप के असिद्ध होने से* ***'बहुवचने झल्येत्'*** *(७।३।१०३) से अङ्ग को एकारादेश नहीं होता है। ऐसे ही-**तक्षसु।***

(४) ***राजवती।*** *राजन्+मतुप्। राजन्+वत्। राज०+वत्। राजवत्+ङीप्। राजवत्+ई। राजवती+सु। राजवती।*

यहां 'राजन्' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय है। ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'उगितश्च'*** *(४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्वरविधि में उक्त नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः* ***'अन्तोऽवत्याः'*** *(६।१।२१४) से अन्तोदात्त स्वर नहीं होता है।*

(५) ***पञ्चार्मम्।*** *यहां 'पञ्चन्' और 'अर्म' शब्दों का* ***'दिक्संख्ये संज्ञायाम्'*** *(२।१।५०) से द्विगुतत्पुरुष समास है। पूर्ववत् नकार का लोप होता है। इस सूत्र से*

स्वरविधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः 'अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच्' (६।२।९०) से पूर्वपद के अकारान्त न रहने से पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर नहीं होता है, अपितु 'समासस्य' (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**पञ्चार्मम्।** ऐसे ही-**दशार्मम्।**

(६) **पञ्चदण्डी। पञ्चानां दण्डिनां समाहार इति पञ्चदण्डी।**

यहां 'पञ्चन्' और 'दण्डिन्' शब्दों का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। 'दण्डिन्' शब्द में 'अत इनिठनौ' (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'दण्डिन्' के नकार का लोप होता है। इस सूत्र से स्वरविधि में यह नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' (६।२।२९) से इगन्तत्व न रहने से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं होता है, अपितु 'समासस्य' (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**पञ्चदण्डी।** 'द्विगोः' (४।१।२१) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।

(७) **पञ्च ब्राह्मण्यः।** यहां 'पचन्' शब्द का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार लोप हो जाने से 'ष्णान्ता षट्' (१।१।२४) से षट्-संज्ञा प्राप्त नहीं होती है। इस सूत्र से संज्ञाविधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है अतः षट्-संज्ञा हो जाती है और 'न षट्स्वस्रादिभ्यः' (४।१।१०) से स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाता है, 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय प्राप्त होता था। ऐसे ही-**दश ब्राह्मण्यः।**

(८) **वृत्रहभ्याम्।** वृत्रहन्+भ्याम्। वृत्रह०+भ्याम्। वृत्रहभ्याम्।

यहां 'वृत्रहन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। पुनः 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (६।१।७०) से तुक् आगम प्राप्त होता है। 'वृत्रहन्' शब्द में 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (३।२।८७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से तुग्विधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः ह्रस्वाभाव से तुक् आगम नहीं होता है। ऐसे ही-**वृत्रहभिः।**

असिद्धत्वप्रतिषेधः-

(३) न मु ने।३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, मु १।१ ने ७।१।

स०-मश्च उश्च एतयोः समाहारः मु (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-असिद्धमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-ने मु असिद्धं न।

अर्थः-नाऽऽदेशे कर्तव्ये मु-आदेशोऽसिद्धो न भवति, किं तर्हि सिद्ध एव।

उदा०-अमुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नि) ना-आदेश करने में (मु) मु-आदेश (असिद्धः) असिद्ध (न) नहीं होता है, किन्तु सिद्ध ही होता है।*

*उदा०-**अमुना।** उसके द्वारा।*

*सिद्धि-**अमुना।** अदस्+टा। अद अ+आ। अद+आ। अमु+आ। अमु+ना। अमुना।*

*यहां 'अदस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' (आङ्) प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से अकार अन्तादेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश और **'अदसोऽसेर्दादु दो मः'** (८।२।८०) से अकार को उकार और दकार को मकार इस प्रकार 'मु' आदेश होता है। **'आङो नाऽस्त्रियाम्'** (७।३।११८) से उकारान्त अङ्ग से परे टा (आङ्) को ना-आदेश करने में 'मु' आदेश इस सूत्र से असिद्ध नहीं होता है। यदि यह मु-आदेश असिद्ध हो जाये तो उकारान्त-अभाव से ना-आदेश नहीं हो सकता है। मु-आदेश के असिद्ध होने पर जो **'सुपि च'** (७।३।१०२) से दीर्घ प्राप्त होता है, वह **'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य'** इस परिभाषा से दीर्घ नहीं होता है, अर्थात् ह्रस्व सन्निपात से ही टा (आङ्) को ना-आदेश हुआ है और वह ना-आदेश ही उस ह्रस्वत्व का विघात कर देवे, ऐसा नहीं होता है।*

{आदेशप्रकरणम्}

स्वरितादेशः-

(१) उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।४।

प०वि०-उदात्त-स्वरितयोः ६।२ यणः ५।१ स्वरितः १।१ अनु-दात्तस्य ६।१।

स०-उदात्तश्च स्वरितश्च तौ-उदात्तस्वरितौ, तयोः-उदात्तस्वरितयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-उदात्तस्वरितयोर्यणोऽनुदात्तस्य स्वरितः।

अर्थः-उदात्तस्य स्वरितस्य च स्थाने यो यण्, ततः परस्यानुदात्तस्य स्थाने स्वरितादेशो भवति।

उदा०-(उदात्तयणः) कुमार्यौ, कुमार्यः। **(स्वरितयणः)** सकूल्ल्वाशा। खलप्वाशा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उदात्तस्वरितयोः) उदात्त और स्वरित के स्थान में जो (यणः) यण् आदेश है उससे परवर्ती (अनुदात्तस्य) अनुदात्त के स्थान में (स्वरितः) स्वरित आदेश होता है।*

उदा०-(उदात्तयण) ***कुमार्यौं।*** *दो कुमारियां।* ***कुमार्यः।*** *सब कुमारियां।* ***(स्वरितयण) सकृल्ल्वाशा।*** *एक बार छेदन करनेवाले में, इच्छा।* ***खलप्वाशा।*** *खलिहान को शुद्ध करनेवाले में, इच्छा।*

सिद्धि-(१) ***कुमार्यौं।*** *कुमार+ङीष्। कुमार्+ई। कुमारी। कुमारी+औ। कुमार्य्+औ। कुमार्यौं।*

यहां 'कुमार' शब्द से ***'वयसि प्रथमे'*** *(४।१।२०) से 'ङीप्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय पित् होने से* ***'अनुदात्तौ सुप्पितौ'*** *(३।१।४) से अनुदात्त है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है। अतः* ***'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'*** *(६।१।१५८) इस उदात्तनिवृत्तिस्वर से 'कुमारी' शब्द अन्तोदात्त है।* ***'इको यणचि'*** *(६।१।७६) से उदात्त यण्-आदेश होता है। इस सूत्र से उदात्तयण् से परवर्ती 'औ' अनुदात्त प्रत्यय को स्वरित आदेश होता है।* ***'अनुदात्तौ सुप्पितौ'*** *(३।१।४) से 'औ' प्रत्यय सुप्-लक्षण अनुदात्त है। ऐसे ही जस् प्रत्यय में-***कुमार्यः।***

(२) ***सकृल्ल्वाशा।*** *यहां सकृत्-उपपद 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से* ***'क्विप् च'*** *(३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है।* ***'वेरपृक्तस्य'*** *(६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। सकृत् और लू शब्दों को* ***'उपपदमतिङ्'*** *(२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। अतः 'सकृल्लू' शब्द* ***'गतिकारकोपदात् कृत्'*** *(६।।२।१३८) से अन्तोदात्त है। 'सकृल्लू' शब्द से 'ङि' प्रत्यय है-***सकृल्ल्वि।*** *'ङि' प्रत्यय* ***'अनुदात्तौ सुप्पितौ'*** *(३।१।४) से सुप्-लक्षण अनुदात्त है। इसे* ***'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'*** *(८।४।६६) से स्वरित होता है। 'आशा' शब्द परे होने पर* ***'एचोऽयवायावः'*** *(६।१।७७) से 'यण्' आदेश होता है। इस स्वरित यण् से परवर्ती अनुदात्त को इस सूत्र से स्वरित आदेश होता है।* ***'आशाया अदिगाख्या चेत्'*** *(फिट्० १।१८) से दिशा-अर्थ से भिन्न 'आशा' शब्द अन्तोदात्त है, अतः* ***'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'*** *(६।१।१५२) से इसका आदिम आकार अनुदात्त है-***आशा।*** *ऐसे ही खल-उपपद* ***'पूञ् पवने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से-***खलप्वाशा।***

उदात्तः (एकादेशः)-

(२) एकादेश उदात्तेनोदात्तः।५।

प०वि०-एकादेशः १।१ उदात्तेन ३।१ उदात्तः १।१।

स०-एकश्चासावादेशश्चेति एकादेशः (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०-अनुदात्तस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उदात्तेनाऽनुदात्तस्यैकादेश उदात्तः ।

अर्थः-उदात्तेन सहाऽनुदात्तस्य य एकादेश स उदात्तो भवति ।

उदा०-अ॒ग्नी । वा॒यू । वृ॒क्षैः । प्ल॒क्षैः ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उदात्तेन) उदात्त के साथ जो (अनुदात्तस्य) अनुदात्त का (एकादेशः) एक-आदेश है, वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-अ॒ग्नी । दो अग्नि देवता। वा॒यू । दो वायु देवता। वृ॒क्षैः । सब वृक्षों से। प्ल॒क्षैः । सब पिलखणों से।

सिद्धि-अ॒ग्नी । *अग्नि+औ। अग्नी+०। अग्नी।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। 'अग्नि' शब्द **'फिषोऽन्तोदात्तः'** (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है और 'औ' प्रत्यय **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से सुप्-लक्षण अनुदात्त है। इसे **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश (ई) होता है। इस सूत्र से यह उदात्त और अनुदात्त का एकादेश, उदात्त होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वा॒यू ।** 'वृक्ष' शब्द से 'भिस्' प्रत्यय में-**वृ॒क्षैः ।** 'प्लक्ष' शब्द से-**प्ल॒क्षैः ।***

वा स्वरितः (एकादेशः)-

(३) स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ।६।

प०वि०-स्वरितः १।१ वा अव्ययपदम्, अनुदात्ते ७।१ पदादौ ७।१ ।

स०-पदस्याऽऽदिरिति पदादिः, तस्मिन्-पदादौ (षष्ठीतत्पुरुषः) ।

अनु०-एकादेशः, उदात्तेन, अनुदात्तस्येति चानुवर्तते ।

अन्वयः-उदात्तेनाऽनुदात्तस्यैकादेशः पदादावनुदात्ते वा स्वरितः ।

अर्थः-उदात्तेन सहानुदात्तस्य य एकादेशः, स पदादावनुदात्ते परतो विकल्पेन स्वरितो भवति । पक्षे च पूर्वेण प्राप्त उदात्तो भवति ।

उदा०-सु+उत्थितः=सूत्थितः, सूत्थितः । वि+ईक्षते=वीक्षते, वीक्षते । वसुकः+असि=वसुकोऽसि, वसुकोऽसि ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उदात्तेन) उदात्त के साथ जो (अनुदात्तस्य) अनुदात्त का (एकादेशः) एक-आदेश है, वह (पदादावनुदात्ते) पदादि-अनुदात्त परे होने पर (वा) विकल्प से (स्वरितः) स्वरित होता है। पक्ष में पूर्वसूत्र से प्राप्त उदात्त होता है।*

*उदा०-सूत्थितः, सूत्थितः । बहुत उठा हुआ। **वीक्षते, वीक्षते ।** वह विशेषतः देखता है। **वसुकोऽसि, वसुकोऽसि ।** तू लघु वसु है।*

सिद्धि-(१) सूत्थितः। यहां 'सु' और 'उत्थित' शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'सुः पूजायाम्' (१।४।९३) से 'सु' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है, 'गतिश्च' (१।४।६०) से प्राप्त गतिसंज्ञा का यह अपवाद है। 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाः कृत्याः' (६।२।२) से तत्पुरुष समास में पूर्वपदवर्ती 'सु' को अव्ययलक्षण प्रकृतिस्वर होता है। 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४।१२) से 'सु' आद्युदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है- सु-उत्थितः, इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश होता है। इस सूत्र से यह उदात्त और पदादि अनुदात्त का एकादेश स्वरित होता है-सूत्थितः। विकल्प-पक्ष में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (८।२।५) से एकादेश उदात्त होता है-सूत्थितः।

(२) वीक्षते। वि+ईक्षते=वीक्षते। यहां 'तिङ्ङतिङः' (८।१।५८) से 'ईक्षते' पद सर्वानुदात्त है-ईक्षते। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-वसुकः+असि=वसुकोऽसि।

नलोपादेशः--

(४) न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य।७।

प०वि०-न ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) लोपः १।१ प्रातिपदिक ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) अन्तस्य ६।१।

अनु०-'पदस्य' (८।१।१६) इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकस्य पदस्यान्तस्य नस्य लोपः।

अर्थः-प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्त्यो नकारस्तस्य लोपो भवति।

उदा०-राजा। राजभ्याम्। राजभिः। राजता। राजतरः। राजतमः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक (पदस्य) पद का जो (अन्तस्य) अन्त्य (नस्य) नकार है, उसका (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**राजा**। भूपति। **राजभ्याम्**। दो राजाओं से। **राजभिः**। सब राजाओं से। **राजता**। राजभाव (राजपना) **राजतरः**। दोनों में से अतिशायी राजा। **राजतमः**। बहुतों में से अतिशायी राजा।*

*सिद्धि-**राजा**। राजन्+सु। राजान्+स्। राजान्+०। राजा०। राजा।*

*यहां 'राजन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ और 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से 'राजन्' प्रातिपदिक पद के अन्त्य नकार का लोप होता है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' (१।४।१४) से पद-संज्ञा है। ऐसे ही 'भ्याम्' प्रत्यय में-**राजभ्याम्**। यहां 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से पद-संज्ञा है। 'भिस्' प्रत्यय में-**राजभिः**। 'तस्य भावस्त्वतलौ' (५।१।११९) से 'तल्' प्रत्यय*

में-राजता। 'तलन्तः' (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय में-राजतरः। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' (५।३।५५) से इष्ठन् प्रत्यय में-राजतमः।

नलोपप्रतिषेधः-

(५) न ङिसम्बुद्ध्योः।८।

प०वि०-न अव्ययपदम्, ङि-सम्बुद्ध्योः ७।२।

स०-ङिश्च सम्बुद्धिश्च ते ङिसम्बुद्धी, तयोः-ङिसम्बुद्ध्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-नस्य, लोपः, प्रातिपदिकस्य, अन्तस्य, पदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकस्य पदस्याऽन्तस्य नस्य ङिसम्बुद्ध्योर्लोपो न।

अर्थः-प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्त्यो नकारस्तस्य ङौ सम्बुद्धौ च परतो लोपो न भवति।

उदा०-(ङि) आर्द्रे चर्मन् (तै०सं० ७।५।९।३)। लोहिते चर्मन् (काठ०सं० २४।२)। **'सुपां सुलुक्०'** (७।१।३९) इति ङेर्लुक्। **(सम्बुद्धिः)** हे राजन्! हे तक्षन्!

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक (पदस्य) पद के (अन्तस्य) अन्त्य (नस्य) नकार का (ङिसम्बुद्ध्योः) ङि और सम्बुद्धि-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(ङि) आर्द्रे चर्मन्** (तै०सं० ७।५।९।३)। गीले चर्म पर। यहां 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से 'ङि' प्रत्यय का लुक् है। **लोहिते चर्मन्** (काठ०सं० २४।२)। लाल चर्म पर। पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय का लुक् है। **(सम्बुद्धि) हे राजन्!** हे भूपते! **हे तक्षन्!** हे बढ़ई।*

*सिद्धि-(१) **चर्मन्।** चर्मन्+ङि। चर्मन्+०। चर्मन्।*

यहां 'चर्मन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से 'ङि' प्रत्यय का लुक् होता है। इस सूत्र से 'ङि' प्रत्यय में 'चर्मन्' प्रातिपदिक पद के नकार लोप का प्रतिषेध होता है।

*(२) **हे राजन्!** राजन्+सु। राजन्+स्। राजन्+०। राजन्।*

ये 'राजन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' (२।३।४९) से 'सु' की सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से सम्बुद्धि में 'राजन्' प्रातिपदिक पद के नकार लोप का प्रतिषेध होता है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार लोप प्राप्त था।

वकारादेशः–

(६) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ।६।

प०वि०– मात् ५।१ उपधायाः ५।१ च अव्ययपदम्, मतोः ६।१ वः १।१ अयवादिभ्यः ५।१।

स०–मश्च अश्च एतयोः समाहारो मम्, तस्मात्-मात् (समाहारद्वन्द्वः)। यव आदिर्येषां ते यवादयः, न यवादय इति अयवादयः, तेभ्यः-अयवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, प्रातिपदिकस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–माद् उपधायाश्च प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः, अयवादिभ्यः।

अर्थः–मकारान्ताद् मकारोपधाद् अकारान्ताद् अकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परस्य न भवति।

उदा०–**(मकारान्तात्)** किंवान्। शंवान्। **(मकारोपधात्)** शमीवान्। दाडिमीवान्। **(अकारान्तात्)** वृक्षवान्। प्लक्षवान्। खट्वावान्। मालावान्। **(अकारोपधात्)** पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्।

यव। दल्मि। ऊर्मि। भूमि। कृमि। क्रुञ्चा। वशा। द्राक्षा। ध्रजि। सञ्जि। हरित्। ककुत्। गरुत्। इक्षु। मधु। द्रुम। मण्ड। धूम। इति यवादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(माद् उपधायाश्च) मकारान्त और मकार-उपधावाले तथा अकारान्त और अकार उपधावाले (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के मकार को (वः) वकारादेश होता है (अयवादिभ्यः) यवादि **शब्दों** से परे तो वकारादेश नहीं होता है।*

*उदा०–(मकारान्त) **किंवान्**। किम्-किम् करनेवाला किङ्कर (नौकर)। **शंवान्**। शान्तिवाला। (मकारोपध) **शमीवान्**। शमी (जांटी) वृक्षवाला। **दाडिमीवान्**। छोटी इलायचीवाला। (अकारान्त) **वृक्षवान्**। वृक्षवाला। **प्लक्षवान्**। पिलखणवाला। **खट्वावान्**। खाटवाला। **मालावान्**। मालावाला। (अकारोपध) **पयस्वान्**। दूधवाला। **यशस्वान्**। यशवाला (यशस्वी)। **भास्वान्**। दीप्तिवाला (सूर्य)।*

सिद्धि-किंवान्। किम्+मतुप्। किम्+मत्। किम्+वत्। किंवत्+सु। किंवनुम्त्+स्। किंवन्त्+स्। किंवन्०+स्। किंवान्+०। किंवान्।

यहां 'किम्' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से मकारान्त 'किम्' शब्द से परे 'मतुप्' के मकार को वकारादेश होता है और यह **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) के नियम से मतुप् के आदिम मकार को किया जाता है। **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से तकार का लोप, **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही 'शंवान्' आदि।

वकारादेशः—

(७) झयः ।१०।

वि०-झयः ५।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-झयः प्रातिपदिकस्य पदस्य मतोर्वः।

अर्थः-झयन्तात् प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-अग्निचित्वान् ग्रामः। उदश्वित्वान् घोषः। विद्युत्वान् बलाहकः। इन्द्रो मरुत्वान् (आ०श्रौ० २।११।१०)। दृषद्वान् देशः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-(झयः) झय् वर्ण जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।

उदा०-**अग्निचित्वान् ग्रामः।** अग्न्याधान करनेवाला ग्राम। **उदश्वित्वान् घोषः।** लस्सीवाला शब्दविशेष। **विद्युत्वान् बलाहकः।** बिजलीवाला बादल। **इन्द्रो मरुत्वान्** (आ०श्रौ० २।११।१०)। मरुत् देवतावाला इन्द्र। **दृषद्वान् देशः।** पत्थरवाला (पथरीला) देश।

सिद्धि-अग्निचित्वान्। अग्निचित्+मतुप्। अग्निचित्+वत्। अग्निचित्वत्+सु। अग्निचित्वान्।

यहां 'अग्निचित्' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झयन्त (त्) अग्निचित् शब्द से परे 'मतुप्' प्रत्यय के मकार को वकारादेश होता है। शेष कार्य **'किंवान्' (८।२।९) के तुल्य है। ऐसे ही 'उदश्वित्वान्' आदि।**

वकारादेशः–

(८) संज्ञायाम्।११।

वि०-संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायां प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः।

अर्थः-संज्ञायाम् विषये प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-अहीवती। कपीवती। ऋषीवती। मुनीवती।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।*

*उदा०-**अहीवती।** सांपोंवाली नदी। **कपीवती।** बन्दरोंवाली नदी। **ऋषीवती।** ऋषियोंवाली नदी। **मुनीवती।** मुनियोंवाली नदी।*

*सिद्धि-**अहीवती।** अहि+मतुप्। अहि+मत्। अहि+मत्। अही+वत्। अहीवत्+ङीप्। अहीवत्+ई। अहीवती+सु। अहीवती।*

*यहां 'अहि' शब्द से **'नद्यां मतुप्'** (४।२।८४) से नदी-अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। यहां 'शरादीनां च' (६।२।१२०) से अङ्ग को दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'अहि' प्रातिपदिक पद से परे 'मतुप्' के मकार को वकारादेश होता है। 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। यह नदीविशेष की संज्ञा है। ऐसे ही-**कपीवती** आदि।*

निपातनम्–

(६) आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती।१२।

प०वि०- आसन्दीवत्-अष्ठीवत्-चक्रीवत्-कक्षीवत्-रुमण्वत्-चर्मण्वती १।१।

स०-आसन्दीवच्च अष्ठीवच्च चक्रीवच्च कक्षीवच्च रुमण्वच्च चर्मण्वती च एतेषां समाहार आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती। समाहारे छान्दसमह्रस्वत्वम्। छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति (महाभाष्यम्)।

अनु०-संज्ञायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायाम् आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती इति निपातनम्।

अर्थः-संज्ञायां विषये आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती इति पदानि निपात्यन्ते।

उदा०-आसन्दीवान् ग्रामः। अष्ठीवान् शरीरैकदेशः। चक्रीवान् राजा। कक्षीवान् नाम ऋषिः। रुमण्वती नाम नदी। चर्मण्वती नाम नदी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (आसन्दीवत्०) आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वती, चर्मण्वती ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-**आसन्दीवान् ग्रामः।** आसन (कुर्सी) वाला ग्राम। **अष्ठीवान्।** अस्थि=हड्डीवाला शरीरका एक भाग। **चक्रीवान् राजा।** चक्रवाला राजा। **कक्षीवान् नाम ऋषिः।** कक्षीवान् नामक ऋषि। **रुमण्वती नाम नदी।** लवणवाली नदी (लूणी)। **चर्मण्वती नाम नदी।** चर्मण्वती नामक नदी। (लूणी) सांभर झील से निकलनेवाली।*

*सिद्धि-**(१) आसन्दीवान्।** यहां 'आसन' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'आसन' शब्द के स्थान में 'आसन्दी' आदेश निपातित है। **'संज्ञायाम्'** (८।२।११) से मतुप् को वकारादेश सिद्ध है।*

*(२) **अष्ठीवान्।** यहां 'अस्थि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'अस्थि' शब्द के स्थान में 'अष्ठी' आदेश निपातित है।*

*(३) **चक्रीवान्।** यहां 'चक्र' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'चक्र' शब्द के स्थान में 'चक्री' आदेश निपातित है।*

*(४) **कक्षीवान्।** यहां 'कक्ष्या' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'कक्ष्या' शब्द को सम्प्रसारण निपातित है। 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है।*

*(५) **रुमण्वती।** यहां 'लवण' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'लवण' शब्द के स्थान में 'रुमण्' आदेश निपातित है।*

*(६) **चर्मण्वती।** यहां 'चर्मन्' शब्द से **'नद्यां मतुप्'** (४।२।८४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। यहां **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से प्राप्त नकार लोप का अभाव और **'पदान्तस्य'** (८।४।३६) से प्राप्त णत्वप्रतिषेध का भी अभाव निपातित है। **'उगितश्च'** (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।*

निपातनम्–

(१०) उदन्वानुदधौ च।१३।

प०वि०-उदन्वान् १।१ उदधौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संज्ञायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायामुदधौ च उदन्वान् इति निपातनम्।

अर्थः-संज्ञायामुदधौ च विषये उदन्वानिति पदं निपात्यन्ते।

उदा०-(संज्ञा) उदन्वान् नाम ऋषिर्यस्य औदन्वतः पुत्रः। **(उदधिः)** यस्मिन्नुदकं धीयते स उदन्वान् उदधिः (समुद्रः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा (च) और (उदधौ) समुद्र विषय में (उदन्वान्) उदन्वान् यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-(संज्ञा) **उदन्वान् नाम ऋषिर्यस्य औदन्वतः पुत्रः।** उदन्वान् नामक एक ऋषि था, जिसका पुत्र औदन्वत कहलाया। (उदधि) **उदन्वान् उदधिः।** उदन्वान् का अर्थ समुद्र है कि जिसमें उदक रखा जाता है।*

*सिद्धि-(१) **उदन्वान्।** उदक+मतुप्। उदक+मत्। उदन्+मत्। उदन्+वत्। उदन्वत्+सु। उदन्वनुम्त्+स्। उदन्वन्त्+स्। उदन्वान्त्+स्। उदन्वान्त्+०। उदन्वान्०। उदन्वान्।*

यहां 'उदक' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा और उदधि विषय में उदक शब्द के स्थान में 'उदन्' आदेश निपातित है। शेष कार्य 'किंवान्' (८।२।९) के समान है।

निपातनम्-

(११) राजन्वान् सौराज्ये।१४।

प०वि०-राजन्वान् १।१ सौराज्ये ७।१।

स०-शोभनो राजा यस्मिन् स सुराजा, तस्य भावः-सौराज्यम्। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति भावे ष्यञ् प्रत्ययः, **'नस्तद्धिते'** (६।४।१२४) इत्यनेन टेर्लोपः।

अन्वयः-सौराज्ये राजन्वानिति निपातनम्।

अर्थः-सौराज्ये गम्यमाने राजन्वानिति पदं निपात्यते।

उदा०-शोभनो राजा यस्मिन् स राजन्वान् देशः। राजन्वती पृथ्वी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सौराज्ये) श्रेष्ठ राजा होना अर्थ की अभिव्यक्ति में (राजन्वान्) राजन्वान् यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-**राजन्वान् देशः।** श्रेष्ठ राजावाला देश। **राजन्वती पृथ्वी।** श्रेष्ठ राजावाली भूमि।*

*सिद्धि-**राजन्वान्।** यहां 'राजन्' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से जो नकार लोप प्राप्त होता है, इस सूत्र से उसका अभाव निपातित है।*

निपातनम्—

(१२) छन्दसीरः।१५।

प०वि०–छन्दसि ७।१ इरः ५।१।

स०–इश्च र् च एतयोः समाहार इर्, तस्मात्–इरः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि इरः प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः।

अर्थः–छन्दसि विषये इकारान्ताद् रेफान्ताच्च प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०–(**इकारान्तः**) त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति। हरिवो मेदिनं त्वा (तै०सं० ५।७।१४।४)। अधिपतिवती जुहोति। चरुरग्निवाँ इव (ऋ० ७।१०४।२)। आ रेवानेतु मा विशत्। सरस्वतीवान् भारतीवान् (मै०सं० ३।१०।६)। दधिवाँश्चरुः (शौ०सं० १८।४।१७)। (**रेफान्तः**) गीर्वान्। धूर्वान्। आशीर्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इरः) इकारान्त और रेफान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।*

उदा०–(इकारान्त) ***त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति।*** *त्रिवती=तीनवाली।* ***हरिवो मेदिनं त्वा*** *(तै०सं० ५।७।१४।४)। हरिवन्=हे हरिवाले!।* ***अधिपतिवती जुहोति।*** *अधिपतिवती=अधिपतिवाली।* ***चरुरग्निवाँ इव*** *(ऋ० ७।१०४।२)। अग्निवान्=अग्निवाला।* ***आ रेवानेतु मा विशत्।*** *रेवान्=रयि (धनवाला)।* ***सरस्वतीवान् भारतीवान्*** *(मै०सं० ३।१०।६)। सरस्वतीवान्=विद्यावाला। भारतीवान्=विद्यावाला।* ***दधिवाँश्चरुः*** *(शौ०सं० १८।४।१७)। दधिवान्=दहीवाला। (रेफान्त)* ***गीर्वान्।*** *वाणीवाला।* ***धूर्वान्।*** *जुएवाला बैल।* ***आशीर्वान्।*** *इच्छावाला।*

सिद्धि-त्रिवती। यहां *'त्रि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वेदविषय में इकारान्त 'त्रि'* ***शब्द*** *से परे 'मतुप्' को वकारादेश होता है। 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। ऐसे ही हरि शब्द से-* ***हरिवान्।*** *सम्बुद्धि में-* ***हरिवन्।*** *'मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि' (८।३।१) से नकार को रुत्व, 'हशि च' (६।१।११०) से रेफ को उत्व और 'आद्गुणः' (६।१।१७४) से गुणरूप एकादेश होकर-* ***हरिवो मेदिनम्।*** *अधिपति शब्द से-* ***अधिपतिवती*** *(स्त्रीलिङ्ग)। अग्नि शब्द से-* ***अग्निवान्।*** *रयि शब्द से-* ***रेवान्। वा०- 'रयेर्मतौ बहुलम्'*** *(६।१।३६) से 'रयि'*

*शब्द को 'मतुप्' प्रत्यय परे होने पर सम्प्रसारण होता है-रयि+मतुप्। रयि+मत्। र इ इ+वत्। र इ+वत्। रे+वत्। रेवत्+सु। रेवान्। सरस्वती शब्द से-**सरस्वतीवान्।** भारती शब्द से-**भारतीवान्।** रेफान्त 'गिर्' शब्द से-**गीर्वान्।** धुर् शब्द से-**धूर्वान्।** आशिर् शब्द से-**आशीर्वान्।** '**र्वोरुपधाया दीर्घ इकः**' (८।२।७६) से दीर्घ होता है।*

{आगम-विधिः}

नुट्-आगमः

(१) अनो नुट्।१६।

प०वि०-अनः ५।१ नुट् १।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, वः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अनः प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽनन्तात् पदात् परस्य मतोर्नुडागमो भवति।

उदा०-अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः (ऋ० १०।७१।७)। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति (ऋ० १।१६४।४)। अक्षण्वता लाङ्गलेन (पै०सं० ९।८।१)। शीर्षण्वती (शौ०सं० १०।१।२)। मूर्धन्वती (तै०सं० २।६।२।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः** (ऋ० १०।७१।७)। **अक्षण्वन्तः।** आंखोंवाले। **अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति** (ऋ० १।१६४।४)। **अस्थन्वन्तम्।** अस्थि (हड्डी) वाले को। **अक्षण्वता लाङ्गलेन** (पै०सं० ९।८।१)। **अक्षण्वता।** आंखोंवाले से। **शीर्षण्वती** (शौ०सं० १०।१।२)। शिरवाली। **मूर्धन्वती** (तै०सं० २।६।२।२)। मूर्धावाली।*

*सिद्धि-**अक्षण्वन्तः।** अक्षि+मतुप्। अक्षि+मत्। अक्ष् अनङ्+मत्। अक्षन्+नुट्+वत्। अक्ष०+न्+वत्। अक्षण्वत्+जस्। अक्षण्वन्तः।*

*यहां 'अक्षि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। '**छन्दस्यपि दृश्यते**' (७।१।७६) से 'अक्षि' को 'अनङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से अनन्त 'अक्षन्' शब्द से परे 'मतुप्' को 'नुट्' आगम होता है। '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। '**मादुपधायाश्च०**' (८।२।९) से 'मतुप्' को वकारादेश है। ऐसे ही 'अस्थि' शब्द से द्वितीया एकवचन में-**अस्थन्वन्तम्।** 'अक्षि' शब्द से तृतीया एकवचन में-**अक्षण्वता।***

*'शीर्षन्' शब्द से-**शीर्षण्वती**। 'शीर्षँश्छन्दसि' (६।१।५९) से वेद में 'शिरस्' के स्थान में 'शीर्षन्' आदेश होता है। 'मूर्धन्' शब्द से-**मूर्धन्वती**। 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।*

नुट्-आगमः-

(२) नाद्घस्य।१७।

प०वि०-नात् ५।१ घस्य ६।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, छन्दसि, नुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नात् प्रातिपदिकात् पदाद् घस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये नकारान्तात् प्रातिपदिकात् पदात् परस्य घ-संज्ञकस्य प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-सुपथिन्तरः। दस्युहन्तमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नात्) नकारान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (घस्य) घ-संज्ञक प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**सुपथिन्तरः**। दोनों में से अति उत्तम पथ। **दस्युहन्तमः**। बहुतों में से अतिशायी अनार्यों का हनन करनेवाला।*

*सिद्धि-**सुपथिन्तरः**। सुपथिन्+तरप्। सुपथिन्+नुट्+तर। सुपथि०+न्+तर। सुपथिन्तर+सु। सुपथिन्तरः।*

*यहां 'सुपथिन्' शब्द से '**द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ**' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। इसकी 'तरप्तमपौ घः' (१।१।२२) से घ-संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त 'पथिन्' प्रातिपदिक पद से परे 'तरप्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से 'सुपथिन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही 'वृत्रहन्' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय में-वृत्रहन्तमः।*

{आदेशप्रकरणम्}

ल-आदेशः-

(१) कृपो रो लः।१८।

प०वि०-कृपः ६।१ रः ६।१ लः १।१।

अर्थः-कृपो धातो रेफस्य स्थाने लकारादेशो भवति।

उदा०-कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः। चिक्लृप्सति। क्लृप्तः, क्लृप्तवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृपः) कृप् धातु के (रः) रेफ के स्थान में (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**कल्प्ता।** वह समर्थ होगा। **कल्प्तारौ।** वे दोनों समर्थ होंगे। **कल्प्तारः।** वे सब समर्थ होंगे। **चिक्लृप्सति।** वह समर्थ होना चाहता है। **क्लृप्तः, क्लृप्तवान्।** समर्थ हुआ।*

*सिद्धि-(१) **कल्प्ता।** यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तासि' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश और 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में 'डा' आदेश है। 'लुटि च क्लृपः' (१।३।९३) से परस्मैपद होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण (अर्) होकर इस सूत्र से रेफ के स्थान में लकारादेश होता है। ऐसे ही तस् (रौ) प्रत्यय में-**कल्प्तारौ।** झि (रस्) प्रत्यय में-**कल्प्तारः।***

*(२) **चिक्लृप्सति।** यहां 'कृप्' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से झलादि सन् के किद्वत् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपधलक्षण गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। अतः इस सूत्र से 'कृप्' धातु से ऋकार में जो रेफश्रुति है, उसे लश्रुति रूप आदेश होता है। ऐसे ही 'क्त' प्रत्यय में-**क्लृप्तः।** क्तवतु प्रत्यय में-**क्लृप्तवान्।***

विशेषः *'कृप्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होकर जो रेफ उपलब्ध होता है अथवा 'कृप्' धातु के ऋकार में जो रेफश्रुति है, वहां इस सूत्र से रेफ के स्थान में लकारादेश होता है।*

ल-आदेशः–

(२) उपसर्गस्यायतौ।१६।

प०वि०-उपसर्गस्य ६।१ अयतौ ७।१।

अनु०-र, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गस्य रोऽयतौ लः।

अर्थः-उपसर्गस्थस्य रेफस्य स्थानेऽयतौ परतो लकारादेशो भवति।

उदा०-(प्र) स प्लायते। **(परा)** स पलायते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्गस्य) उपसर्ग में विद्यमान (रः) रेफ के स्थान में **(अयतौ)** अयति शब्द परे होने पर (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**(प्र) स प्लायते।** वह भागता है। **(परा) स पलायते।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**प्लायते।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'अय गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अयते' शब्द परे होने पर 'प्र' उपसर्ग में विद्यमान रेफ के स्थान में लकारादेश होता है। परा-उपसर्गपूर्वक में-**पलायते।***

ल-आदेशः--

(३) ग्रो यङि।२०।

प०वि०-ग्रः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-रः, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रो रो यङि लः।

अर्थः-गॄ इत्येतस्य धातो रेफस्य स्थाने यङि प्रत्यये परतो लकारादेशो भवति।

उदा०-स निजेगिल्यते। तौ निजेगिल्येते। ते निजेगिल्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रः) गॄ इस धातु के (रः) रेफ के स्थान में **(यङि)** यङ् प्रत्यय परे होने पर (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**स निजेगिल्यते।** वह बुरी तरह निगलता है। **तौ निजेगिल्येते।** वे दोनों बुरी तरह निगलते हैं। **ते निजेगिल्यन्ते।** वे सब बुरी तरह निगलते हैं।*

*सिद्धि-**निजेगिल्यते।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) धातु से **'लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम्'** (३।१।२४) से धात्वर्थ निन्दा में 'यङ्' प्रत्यय है। **'ऋत इद्धातोः'** (७।१।१००) से 'गॄ' के ॠकार को इकार आदेश और इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व है। इस सूत्र से इस रेफ को लकारादेश होता है। गॄ-गिर्=गिल्। धातु को द्वित्व और अभ्यास कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही द्विवचन में-**निजेगिल्येते।** बहुवचन में-**निजेगिल्यन्ते।***

लकारादेशविकल्पः--

(४) अचि विभाषा।२१।

प०वि०-अचि ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-रः, लः, ग्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रो रोऽचि विभाषा लः।

अर्थः-गॄ इत्येतस्य धातो रेफस्य स्थानेऽजादौ प्रत्यये परतो विकल्पेन लकारादेशो भवति।

उदा०-स निगिरति, निगिलति। निगरणम्, निगलनम्। निगारकः, निगालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रः) गॄ इस धातु के (रः) रेफ के स्थान में (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**स निगिरति, निगिलति।** वह निगलता है। **निगरणम्, निगलनम्।** निगलना। **निगारकः, निगालकः।** निगलनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **निगिरति।** नि+गॄ+लट्। नि+गॄ+तिप्। नि+गॄ+श+ति। नि+गिर्+अ+ति। निगिरति।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से अजादि 'श' (अ) विकरण-प्रत्यय है। **'ॠत इद्धातोः'** (७।१।१००) से 'ॠ' के स्थान में इकारादेश और यह **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपर होता है। विकल्प-पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगिलति।***

*(२) **निगरणम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ' धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में अजादि 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'गॄ' धातु को इगन्तलक्षण गुण और पूर्ववत् रपरत्व होता है। विकल्प-पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगलनम्।***

*(३) **निगारकः।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ' धातु से **'ण्वुलतृचौ'** (३।१।१३३) से अजादि 'ण्वुल्' (अक) प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'गॄ' धातु को अजन्तलक्षण वृद्धि और पूर्ववत् रपरत्व होता है। विकल्प पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगालकः।***

लकारादेशविकल्पः-

(५) परेश्च घाङ्कयोः।२२।

प०वि०-परेः ६।१ च अव्ययपदम्, घ-अङ्कयोः ७।२।

स०-घश्च अङ्कश्च तौ घाङ्कौ, तयोः-घाङ्कयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-रः, लः, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः-परेश्च रो घाङ्कयोर्विभाषा लः।

अर्थ:-परि इत्येतस्य शब्दस्य च रेफस्य स्थाने घशब्देऽङ्कशब्दे च परतो विकल्पेन लकारादेशो भवति।

उदा०-(घ:) परिघ:, पलिघ:। **(अङ्क:)** पर्यङ्क:, पल्यङ्क:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(परे:) परि इस शब्द के (र:) रेफ के स्थान में (च) भी (घाङ्कयो:) घ और अङ्क शब्द परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (ल:) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**(घ) परिघ:, पलिघ:।** सब ओर मार करनेवाला शस्त्र (लोहे का मुद्गर)। **(अङ्क) पर्यङ्क:, पल्यङ्क:।** पलंग।*

*सिद्धि--**(घ) परिघ:।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'हन हिंसागत्यो:' (तु०प०) धातु से 'परौ घ:' (३।३।८४) से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सर्वादेश है। इस सूत्र से 'घ' शब्द परे होने पर 'परि' शब्द के रेफ को विकल्प से लकारादेश होता है-**पलिघ:।** ऐसे ही 'अङ्क' शब्द परे होने पर-**पर्यङ्क:, पल्यङ्क:।***

लोपादेश:--

(६) संयोगान्तस्य लोप:।२३।

प०वि०-संयोगान्तस्य ६।१ लोप: १।१।

स०- संयोगोऽन्ते यस्य तत् संयोगान्तम्, तस्य-संयोगान्तस्य (बहुव्रीहि:)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वय:-संयोगान्तस्य पदस्य लोप:।

अर्थ:-संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति।

उदा०-गोमान्। यवमान्। कृतवान्। हतवान्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संयोगान्तस्य) संयोग जिसके अन्त में है उस (पदस्य) पद के अन्त्य अक्षर का (लोप:) लोप होता है।*

*उदा०-गोमान्। गौओंवाला। **यवमान्।** जौवाला। **कृतवान्।** उसने किया। **हतवान्।** उसने हत्या की (मार डाला)।*

*सिद्धि-**गोमान्।** गो+मतुप्। गो+मत्। गोमत्+सु। गोम नुम्त्+स्। गोमन्त्+स्। गोमान्त्+०। गोमान्०। गोमान्।*

*यहां 'गो' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो:' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम और **'सर्वनामस्थाने***

*चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और इस सूत्र से संयोगान्त तकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यव' शब्द से-**यवमान्**। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' (८।२।९) से यवादि शब्दों से परे 'मतुप्' को वकारादेश का प्रतिषेध है। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्तवतु' प्रत्यय में-**कृतवान्**। 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से-**हतवान्**। 'अनुदात्तोपदेश०' (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है।*

स-लोपः–

(७) रात् सस्य।२४।

प०वि०–रात् ५।१ सस्य ६।१।

अनु०–पदस्य, संयोगान्तस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संयोगान्तस्य पदस्य रात् सस्य लोपः।

अर्थः–संयोगान्तस्य पदस्य रेफात् परस्य सकारस्य लोपो भवति।

उदा०–मातुः। पितुः। गोभिरक्षाः (ऋ० ९।१०७।९)। प्रत्यञ्चमत्साः (ऋ० १०।२८।४)।

'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) इत्यनेनैव सिद्धे नियमार्थोऽयमारम्भः, रेफादुत्तरस्य सकारस्यैव लोपो भवति, नान्यस्य।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संयोगान्तस्य) संयोग जिसके अन्त में है उस (पदस्य) पद के (रात्) रेफ से परे (सस्य) सकार का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**मातुः**। माता से/का। **पितुः**। पिता से/का। **गोभिरक्षाः** (ऋ० ९।१०७।९)। अक्षाः=तू क्षरित हुआ। **प्रत्यञ्चमत्साः** (ऋ० १०।२८।४)। अत्साः=तू कुटिल चाल चला।*

*सिद्धि-**मातुः**। मातृ+ङसि। मातृ+अस्। मात् उर्+स्। मातुर्+०। मातुः।*

*यहां 'मातृ' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। 'ऋत उत्' (६।१।१०७) से ऋ और अकार के स्थान में उकार एकादेश और इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। इस सूत्र से इस रेफ से परवर्ती सकार का लोप होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है। 'ङस्' (६।१) प्रत्यय में भी-**मातुः**। 'पितृ' शब्द से-**पितुः**।*

*(२) **अक्षाः**। यहां 'क्षर सञ्चलने' (तु०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है।*

*'अतो ल्रान्तस्य' (७।२।२) से 'क्षर्' को रेफान्तलक्षण वृद्धि होती है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप और इस सूत्र से रेफ से परवर्ती 'सिच्' के सकार का लोप होता है। रेफ को पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश है। ऐसे ही 'त्सर छद्मगतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**अत्साः**।*

स-लोपः-

(८) धि च।२५।

प०वि०-धि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-धि च सस्य लोपः।

अर्थः-धकारादौ प्रत्यये परतश्च सकारस्य लोपो भवति।

उदा०-यूयम् अलविध्वम्, अलविढ्वम्। यूयम् अपविध्वम्, अपविढ्वम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(धि) धकारादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (सस्य) सकार का (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-**यूयम् अलविध्वम्, अलविढ्वम्।** तुम सब ने छेदन किया, काटा। **यूयम् अपविध्वम्, अपविढ्वम्।** तुम सब ने पवित्र किया।*

***सिद्धि-अलविध्वम्।** लू+लुङ्। अट्+लू+च्लि+ल्। अ+लू+सिच्+ध्वम्। अ+लू+इट्+स्+ध्वम्। अ+लो+इ+०+ध्वम्। अ+लव् इ+ध्वम्। अलविध्वम्।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में ध्वम् आदेश और 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से धकारादि 'ध्वम्' प्रत्यय परे होने पर 'सिच्' के सकार का लोप होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से इगन्तलक्षण गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से 'अव्' आदेश होता है। 'विभाषेटः' (८।३।७९) से विकल्प-पक्ष में 'ध्वम्' को मूर्धन्य होकर-**अलविढ्वम्।** 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**अपविध्वम्, अपविढ्वम्।***

स-लोपः-

(९) झलो झलि।२६।

प०वि०-झलः ५।१ झलि ७।१।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-झलः सस्य झलि लोपः ।

अर्थः-झलः परस्य सकारस्य झलादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-सोऽभित्त। त्वम् अभित्थाः। सोऽछित्त। त्वम् अच्छित्थाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(झलः) झल् वर्ण से परवर्ती (सस्य) सकार का (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**सोऽभित्त।** उसने विदारण किया, फाड़ा। **त्वम् अभित्थाः।** तूने विदारण किया। **सोऽछित्त।** उसने छेदन किया, काटा। **त्वम् अच्छित्थाः।** तूने छेदन किया।*

सिद्धि-अभित्त। *भिद्+लुङ्। अट्+भिद+च्लि+ल्। अ+भिद्+सिच्+त। अ+भिद्+०+त। अभित्त।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'त' आदेश और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **इस** सूत्र से झल् वर्ण (द्) से परवर्ती 'सिच्' के सकार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**अभित्थाः।** **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०उ०) धातु से-**अच्छित्त, अच्छित्थाः।***

स-लोपः-

(१०) ह्रस्वादङ्गात्।२७।

प०वि०-ह्रस्वात् ५।१ अङ्गात् ५।१।

अनु०-लोपः, सस्य, झलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वादङ्गात् सस्य झलि लोपः।

अर्थः-ह्रस्वान्ताद् अङ्गात् परस्य सकारस्य झलादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-सोऽकृत। त्वम् अकृथाः। सोऽहृत। त्वम् अहृथाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (सस्य) सकार का (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) **लोप** होता है।*

*उदा०-**सोऽकृत।** उसने किया। **त्वम् अकृथाः।** तूने किया। **सोऽहृत।** उसने हरण किया। **त्वम् अहृथाः।** तूने हरण किया।*

*सिद्धि-**अकृत**। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+त्। अ+कृ+सिच्+त। अ+कृ+स्+त। अ+कृ+०+त। अकृत।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'त' आदेश और 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से ह्रस्वान्त अङ्ग 'कृ' से परवर्ती सकार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**अकृथाः**। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-अहृत, अहृथाः।*

स-लोपः–

(११) इट ईटि।२८।

प०वि०-इटः ५।१ ईटि ७।१।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-इटः सस्य ईटि लोपः।

अर्थः-इटः परस्य सकारस्य इडादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इटः) इट् से परवर्ती (सस्य) सकार का (ईटि) इडादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**अदेवीत्**। उसने क्रीडा आदि की। **असेवीत्**। उसने सिलाई की। **अकोषीत्**। उसने बाहर निकाला। **अमोषीत्**। उसने चोरी की।*

*सिद्धि-(१) **अदेवीत्**। यहां **'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिगतिषु'** (दि०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इसे इडागम और 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से अपृक्त त् (तिप्) प्रत्यय को ईट् आगम होता है। इस सूत्र से 'इट्' से परवर्ती 'सिच्' के सकार का ईडादि तिप् प्रत्यय परे होने पर लोप होता है।*

*(२) **असेवीत्**। **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०)।*

*(३) **अकोषीत्**। **'कुष निष्कर्षे'** (क्रया०प०)।*

*(४) **अमोषीत्**। **'मुष स्तेये'** (क्रया०प०)।*

यहां 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) सूत्र से प्राप्त वृद्धि का 'नेटि' (७।२।४) से प्रतिषेध होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है।

सकार-ककारलोपः--

(१२) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च।२९।

प०वि०-स्कोः ६।२ संयोगाद्योः ६।२ अन्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-सश्च कश्च तौ स्कौ, तयोः-स्कोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। संयोगस्य आदी इति संयोगादी, तयोः-संयोगाद्योः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, लोपः, झलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदस्याऽन्ते झलि च संयोगाद्योः स्कोर्लोपः।

अर्थः-पदस्याऽन्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च वर्तमानयोः संयोगाद्योः सकारककारयोर्लोपो भवति।

उदा०-**(पदान्ते)** संयोगादिसकारः-साधुलक्। **(झलि)** संयोगादि-सकारः-लग्नः, लग्नवान्। **(पदान्ते)** संयोगादिककारः-काष्टतट्। **(झलि)** संयोगादिककारः-तष्टः, तष्टवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में (च) और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर विद्यमान (संयोगाद्योः) संयोग के आदिभूत (स्कोः) सकार और ककार वर्ण का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(पदान्त) **संयोगादि सकार-साधुलक्।** यथोचित व्रीड़ा (लज्जा) करनेवाला। (झलि) संयोगादि सकार-लग्नः, लग्नवान्। उसने लज्जा की। **(पदान्त) संयोगादि ककार-काष्टतट्।** यथोचित छीलनेवाला तक्षक। (झलि) **संयोगादि ककार-तष्टः, तष्टवान्।** उसने छीला।*

*सिद्धि-(१) **साधुलक्।** साधु+लस्ज्+क्विप्। साधु+लस्ज+वि। साधु+लस्ज्+०। साधुलस्ज्+सु। साधुलस्ज्+०। साधु+ल०ज्। साधुलग्। साधुलक्।*

*यहां साधु-उपपद **'ओलस्जी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में संयोग के आदि में विद्यमान 'लस्ज्' के सकार का लोप होता है। **'चोः कुः'** (७।२।३०) से जकार को कवर्ग गकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से गकार को चर् ककार होता है।*

*(२) **लग्नः।** लस्ज्+क्त। लस्ज्+त। ल०ज्+त। लज्+न। लग्+न। लग्नः।*

*यहां **'ओलस्जी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर 'लस्ज्' के संयोगादि सकार का लोप*

होता है। 'ओदितश्च' (८।२।४५) से निष्ठा-तकार को नकार और 'चो: कु:' (८।२।३०) से जकार को कवर्ग गकार होता है 'क्तवतु' प्रत्यय में-**लग्नवान्।**

(३) **काष्ठतट्।** काष्ठ+तक्ष्+क्विप्। काष्ठ+तक्ष्+वि। काष्ठ+तक्ष्+०। काष्ठ+तक्ष्+सु। काष्ठ+तक्ष्+०। काष्ठ+त०ष्। काष्ठ+त ड्। काष्ठतट्।

यहां काष्ठ-उपपद **'तक्षू तनूकरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में संयोग के आदि में विद्यमान 'तक्ष्' के ककार का लोप होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (७।२।३९) से षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है।

(४) **तष्ट:।** तक्ष्+क्त। तक्ष्+त। त०ष्+ट। तष्ट+सु। तष्ट:।

यहां **'तक्षू तनूकरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तक्ष्' के संयोगादि ककार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। **'ष्टुना ष्टु:'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। क्तवतु प्रत्यय में-**तष्टवान्।**

कवर्गादेश:--

(१३) चो: कु:।३०।

प०वि०-चो: ६।१ कु: १।१।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते इति चानुवर्तते।

अन्वय:-चो: पदस्यान्ते झलि च कु:।

अर्थ:-चवर्गस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) ओदनपक्। वाक्। **(झलि)** पक्ता, पक्तुम्, पक्तव्यम्। वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम्।

आर्यभाषा: **अर्थ-**(चो:) चवर्ग के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (कु:) कवर्गादेश होता है।

उदा०-**(पदान्त) ओदनपक्।** चावल पकानेवाला। **वाक्।** वाणी। **(झल्) पक्ता।** पकानेवाला। **पक्तुम्।** पकाने के लिये **पक्तव्यम्।** पकाना चाहिये। **वक्ता।** बोलनेवाला। **वक्तुम्।** बोलने के लिये। **वक्तव्यम्।** बोलना चाहिये।

सिद्धि-(१) ओदनपक्। यहां ओदन-उपपद **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'क्विप्** च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप् का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है।

*(२) **वाक्।** यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से '**क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च**' (उणा० २।५८) से 'क्विप्' प्रत्यय, दीर्घ और '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का प्रतिषेध है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'वच्' के चकार को ककार आदेश होता है।*

*(३) **पक्ता।** यहां 'पच्' धातु से '**ण्वुलतृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है। '**वच परिभाषणे**' (अदा०प०) धातु से-**वक्ता।***

*(४) **पक्तुम्।** यहां 'पच्' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। 'वच्' धातु से-**वक्तुम्।***

*(५) **पक्तव्यम्।** यहां 'पच्' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से '**तव्यत्**' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। 'वच्' धातु से-**वक्तव्यम्।***

ढ-आदेशः-

(१४) हो ढः।३१।

प०वि०-हः ६।१ ढः १।१।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हः पदस्यान्ते झलि च ढः।

अर्थः-हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ च प्रत्यये परतो ढकारादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) जलाषाट्। प्रष्ठवाट्। दित्यवाट्। **(झलि)** सोढा, सोढुम्, सोढव्यम्। वोढा, वोढुम्, वोढव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (ढः) ढकारादेश होता है।*

*उदा०-**(पदान्त)** जलाषाट्। जल=सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। **प्रष्ठवाट्।** हल में जोतने योग्य बैल। **दित्यवाट्।** गौ। **(झलि) सोढा।** सहन करनेवाला। **सोढुम्।** सहन करने के लिये। **सोढव्यम्।** सहन करना चाहिए। **वोढा।** वहन करनेवाला। **वोढुम्।** वहन करने के लिये। **वोढव्यम्।** वहन करना चाहिये।*

***सिद्धि-(१) जलाषाट्।** यहां जल-उपपद '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**छन्दसि सहः**' (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'ण्वि' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'सह्' के हकार को ढकारादेश*

होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ढकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'सह्' को उपधावृद्धि 'सहेः साडः सः' (८।३।५६) से षत्व और 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से दीर्घ होता है।

(२) प्रष्ठवाट्। यहां प्रष्ठ-उपपद 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से 'वहश्च' ३।२।६४) से 'ण्वि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दित्य-उपपद 'वह्' धातु से-दित्यवाट्।

(३) सोढा। यहां 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'सह्' के हकार को ढकारादेश होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार और 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप हो जाता है। 'सहिवहोरोदवर्णस्य' (६।३।११०) से 'सह' के अवर्ण को ओकारादेश होता है। 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से-वोढा।

(४) सोढुम्। यहां 'सह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'वह्' धातु से-वोढुम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) सोढव्यम्। यहां 'सह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। 'वह्' धातु से-वोढव्यम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

घ-आदेशः–

(१५) दादेर्धातोर्घः।३२।

प०वि०–दादेः ६।१ धातोः ६।१ घः १।१।

स०–द आदिर्यस्य स दादिः, तस्य-दादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पदस्य, झलि, अन्ते, ह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दादेर्धातोर्हः पदस्यान्ते झलि च घः।

अर्थः–दकारादेर्धातोर्हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ च प्रत्यये परतो घकारादेशो भवति।

उदा०-**(पदान्ते) दह्**–काष्ठधक्। **दुह्**–गोधुक्। **(झलि) दह्**–दग्धा, दग्धुम्, दग्धतव्यम्। **दुह्**–दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(दादेः) दकार जिसके आदि में है उस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (घः) घकारादेश होता है।

उदा०-(पदान्त) दह्-काष्ठधक्। लक्कड़ जलानेवाला। दुह्-गोधुक्। गौ को दुहनेवाला। (झल्) दह्-दग्धा। जलानेवाला। दग्धुम्। जलाने के लिये। दग्धव्यम्। जलाना चाहिये। दुह्-दोग्धा। दुहनेवाला। दोग्धुम्। दुहने के लिये। दोग्धव्यम्। दुहना चाहिये।

सिद्धि-(१) काष्ठधक्। यहां काष्ठ-उपपद 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान दकारादि 'दह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से 'दह्' के दकार को भष् धकारादेश होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से घकार को जश् गकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से गकार को चर् ककार होता है।

(२) गोधुक्। यहां गो-उपपद दकारादि 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) दग्धा। यहां 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर दकारादि 'दह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकारादेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घकार को जश् गकार होता है। 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से-दोग्धा।

(४) दग्धुम्। यहां 'दह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'दुह्' धातु से-दोग्धुम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) दग्धवान्। यहां 'दह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। 'दुह्' धातु से-दोग्धव्यम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

घकारादेश-विकल्पः–

(१६) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्।३३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, द्रुह-मुह-ष्णुह-ष्णिहाम् ६।३।

स०-द्रुहश्च मुहश्च ष्णुहश्च ष्णिह् च ते द्रुहमुहष्णुहष्णिहः, तेषाम्-द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, झलि, हः, धातोः, घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्रुहमुहष्णुहष्णिहां धातूनां हः पदस्यान्ते झलि च वा घः।

अर्थः-द्रुहमुहष्णुहष्णिहां धातूनां हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च विकल्पेन घकारादेशो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं ढकारादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) द्रुह्-मित्रध्रुक्, मित्रध्रुट्। (झलि) द्रोग्धा, द्रोढा। (पदान्ते) मुह्-उन्मुक्, उन्मुट्। (झलि) उन्मोग्धा, उन्मोढा। (पदान्ते) ष्णुह्-उत्स्नुक्, उत्स्नुट्। (झलि) उत्स्नोग्धा, उत्स्नोढा। (पदान्ते) ष्णिह्-स्निक्, स्निट्। (झलि) स्नेग्धा, स्नेढा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्रुह०) द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह इन (धातूनाम्) धातुओं के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (घः) घकारादेश होता है और पक्ष में यथाप्राप्त ढकारादेश होता है।*

*उदा०-(पदान्त) द्रुह्-**मित्रध्रुक्, मित्रध्रुट्।** मित्र से द्रोह करनेवाला। द्रोह= अभिजिघांसा (मारने की इच्छा)। (झल्) **द्रोग्धा, द्रोढा।** द्रोह करनेवाला। (पदान्त) मुह्-**उन्मुक्, उन्मुट्।** उन्मुग्ध करनेवाला। (झल्) **उन्मोग्धा, उन्मोढा।** उन्मुग्ध करनेवाला। (पदान्त) ष्णुह्-**उत्स्नुक्, उत्स्नुट्।** वमन करनेवाला। (झल्) उत्-**उत्स्नोग्धा, उत्स्नोढा।** वमन करनेवाला। (पदान्त) ष्णिह्-**स्निक्, स्निट्।** प्रीति करनेवाला। (झल्) **स्नेग्धा, स्नेढा।** प्रीति करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **मित्रध्रुक्।** यहां मित्र-उपपद '**द्रुह अभिजिघांसायाम्**' (दि०प०) धातु से '**क्विप् च**' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'द्रुह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से घकार को जश् गकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५६) से गकार को चर् ककार होता है। '**एकाचो बशो भष्०**' (८।२।३७) से 'द्रुह्' के दकार को धकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में-**मित्रध्रुट्।** यहां '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकर को ढकारादेश और पूर्ववत् जश्त्व डकार और चर्त्व टकार होता है।*

*(२) **द्रोग्धा।** यहां 'द्रुह्' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'द्रुह्' के हकार को घकारादेश होता है। '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४) से तकार को धकार और '**खरि च**' (८।४।५५) से घकार को गकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'द्रुह्' धातु के हकार को 'हो ढः' (८।२।३१) से ढकारादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **उन्मुक्** आदि उत्-उपसर्गपूर्वक '**मुह वैचित्ये**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **उत्स्नुक्** आदि उत्-उपसर्गपूर्वक '**ष्णुह उद्गिरणे**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **स्निक्** आदि '**ष्णिह प्रीतौ**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

ध-आदेशः–

(१७) नहो धः।३४।

प०वि०–नहः ६।१ धः १।१

अनु०–पदस्य, झलि, अन्ते, हः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–नहो धातोर्हः पदस्यान्ते झलि च धः।

अर्थः–नहो धातोर्हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च धकारादेशो भवति।

उदा०–**(पदान्ते)** उपानत्, परीणत्। **(झलि)** नद्धम्, नद्धुम्, नद्धव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नहः) नह् इस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (धः) धकारादेश होता है।*

*उदा०-(पदान्त) उपानत्। जूता। **परीणत्।** परिबन्धक। (झल्) **नद्धम्।** बंधा हुआ। **नद्धुम्।** बांधने के लिये। **नद्धव्यम्।** बांधना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **उपानत्।** यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'णह बन्धने'** (दि०उ०) धातु से वा०- **'सम्पदादिभ्यः क्विप्'** (३।३।९४) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से क्विप् का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पद के अन्त में विद्यमान 'नह्' के हकार को धकारादेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३८) से धकार को जश् दकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होता है। **'नहिवृतिवृषि०'** (६।३।११६) से दीर्घ होता है।*

*(२) **परीणत्।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'नह्' धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।७५) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **नद्धम्।** यहां 'नह्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'नह्' के हकार को धकारादेश होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार होता है।*

*(४) **नद्धुम्।** यहां 'नह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है।*

*(५) **नद्धव्यम्।** यहां 'नह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

थ-आदेशः—

(१८) आहस्थः ।३५।

प०वि०-आहः ६ ।१ थः १ ।१ ।

अनु०-झलि, हः, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-आहो धातोर्हो झलि थः ।

अर्थः-आहोर्धातोर्हकारस्य स्थाने झलादौ प्रत्यये परतस्थकारादेशो भवति ।

उदा०-त्वं किमात्थ ? त्वमिदमात्थ ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आहः) आह् इस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (थः) थकारादेश होता है।*

*उदा०-त्वं **किमात्थ** ? तू क्या कहता है। **त्वमिदमात्थ**। तू यह कहता है।*

*सिद्धि-**आत्थ**। ब्रू+लट्। ब्रू+सिप्। ब्रू+थल्। आह्+थ। आथ्+थ। आत्+थ। आत्थ।*

यहां 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश तथा 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' (३ ।४ ।८४) से 'ब्रू' के स्थान में 'आह' आदेश होता है। 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से 'आह्' के हकार के स्थान में झलादि 'थल्' प्रत्यय परे होने पर थकारादेश होता है। 'खरि च' (८ ।४ ।५५) से थकार को चर् तकार होता है।

ष-आदेशः—

(१६) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ।३६।

प०वि०- व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-छ-शाम् ६ ।३ षः १ ।१ ।

स०-व्रश्चश्च भ्रस्जश्च सृजश्च मृजश्च यजश्च राजश्च भ्राजश्च छश्च श् च ते-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशः, तेषाम्-व्रश्चभ्रस्ज-सृजमृजयजराजभ्राजच्छशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः- व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां पदस्यान्ते झलि च षः ।

अर्थ:-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजां छकारान्तानां शकारान्तानां च धातूनां पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये च परतः षकारादेशो भवति।

उदाहरणम्-

	धातुः	पदान्ते	झलि	भाषार्थः
१.	व्रश्च्	मूलवृट्	—	मूल को काटनेवाला।
			व्रष्टा	काटनेवाला।
			व्रष्टुम्	काटने के लिये।
			व्रष्टव्यम्	काटना चाहिये।
२.	भ्रस्ज्	धानाभृट्	—	धान को भूननेवाला।
			भ्रष्टा	भूननेवाला।
			भ्रष्टुम्	भूनने के लिये।
			भ्रष्टव्यम्	भूनना चाहिये।
३.	सृज्	रज्जुसृट्	—	रस्सी बनानेवाला।
			स्रष्टा	बनानेवाला।
			स्रष्टुम्	बनाने के लिये।
			स्रष्टव्यम्	बनाना चाहिये।
४.	मृज्	कंसपरिमृट्	—	कांसा का परिमार्जन करनेवाला।
			मार्ष्टा	शुद्धि करनेवाला।
			मार्ष्टुम्	शुद्धि करने के लिये।
			मार्ष्टव्यम्	शुद्धि करनी चाहिये।
५.	यज्	उपयट्	—	देवपूजा, संगतिकरण, दान करनेवाला।
			यष्टा	यज्ञ करनेवाला।
			यष्टुम्	यज्ञ करने के लिये।
			यष्टव्यम्	यज्ञ करना चाहिये।
६.	राज्	सम्राट्	—	राजा।
		स्वराट्	—	स्वप्रकाशस्वरूप (ईश्वर)।
		विराट्	—	विविध जगत् को प्रकाशित करनेवाला (ईश्वर)

धातुः	पदान्ते	झलि	भाषार्थः
७. भ्राज्	विभ्राट्	—	विविध जगत् को प्रकाशित करनेवाला (ईश्वर)
{छकारान्त}			
८. प्रछ्	शब्दप्राट्	—	शब्द पूछनेवाला।
		प्रष्टा	पूछनेवाला।
		प्रष्टुम्	पूछने के लिये।
		प्रष्टव्यम्	पूछना चाहिये।
{शकारान्त}			
९. लिश्	लिट्	—	अल्पभावी।
		लेष्टा	अल्प होनेवाला।
		लेष्टुम्	अल्प होने के लिये।
		लेष्टव्यम्	अल्प होना चाहिये।
१०. विश्	विट्	—	देशदेशान्तर में प्रवेश करनेवाला (वैश्य)
		वेष्टा	प्रवेश करनेवाला।
		वेष्टुम्	प्रवेश करने के लिये।
		वेष्टव्यम्	प्रवेश करना चाहिये।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्रश्च०) व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, छकारान्त और शकारान्त (धातूनाम्) धातुओं को (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (षः) षकारान्त होता है।*

उदा०-उदाहरण और भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) मूलवृट्। यहां मूल-उपपद 'ओव्रश्चू छेदने' (तु०प०) धातु से '**क्विप् च**' (२।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'व्रश्च्' के चकार को षकारादेश है। '**स्कोः संयोगाद्योरन्ते च**' (८।२।२९) से 'व्रश्च्' संयोगादि सकार (श्) का लोप होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है। ऐसे ही '**धानाभृट्**' आदि।*

*(२) **व्रष्टा**। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टकारादेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **व्रष्टुम्**। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) व्रष्टव्यम्। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत्।

(५) धानाभृट् आदि 'भ्रस्ज पाके' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(६) रज्जसृट् आदि 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(७) कंसपरिमृट्। कंस और परि-उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'मार्ष्टा' आदि में 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से 'मृज्' को वृद्धि होती है।

(८) उपयट् आदि उप-उपसर्गपूर्वक यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(९) सम्राट्। सम्-उपसर्गपूर्वक 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। 'मो राजि समः क्वौ' (८।३।२५) से 'सम्' के मकार को मकारादेश होता है। 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से अनुस्वारादेश का अपवाद है। ऐसे ही-स्वराट्, विराट्।

(१०) विभ्राट्। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'भ्राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिप्रावस्तुवः क्विप्' (३।२।१७७) से तच्छील आदि अर्थों में 'क्विप्' प्रत्यय है।

राज और भ्राज धातु का सूत्रपाठ में पदान्तार्थ ग्रहण किया गया है, अतः झलादि प्रत्यय का उदाहरण नहीं है।

(११) शब्दप्राट्। यहां शब्द-उपपद 'प्रछ ज्ञीप्सायाम्' (भ्वा०प) छकारान्त धातु से वा०- 'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतोर्जिप्रावस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' (३।२।७८) से 'क्विप्' प्रत्यय, दीर्घ और सम्प्रसारण का अभाव है। 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण प्राप्त था। 'प्रष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच्' आदि प्रत्यय हैं।

(१२) लिट्। 'लिश अल्पीभावे' (दि०आ०) शकारान्त धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'लेष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच् आदि प्रत्यय हैं।

(१४) विट्। यहां 'विश प्रवेशने' (तु०प०) शकारान्त धातु से पूर्ववत् (३।२।१७८) 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच्' आदि प्रत्यय हैं।

भष्-आदेशः-

(२०) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः।३७

प०वि०- एकाचः ६।१ बशः ६।१ भष् १।१ झषन्तस्य ६।१ स्ध्वोः ७।२।

स०-एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्, तस्य-एकाचः (बहुव्रीहिः)। झष् अन्ते यस्य स झषन्तः, तस्य-झषन्तस्य (बहुव्रीहिः)। सश्च ध्वश्च तौ स्ध्वौ, तयोः-स्वध्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरेकाचो झषन्तस्य बशः पदस्यान्ते झलि स्ध्वोश्च भष्।

अर्थः-धातोरवयवो य एकाच् झषन्तस्तदवयवस्य बशः स्थाने पदान्ते झलादौ सकारे ध्वशब्दे च परतो भषादेशो भवति।

उदा०-(बुध्) पदान्ते-अर्थभुत्। सकारे-भोत्स्यते। ध्वम्शब्दे-अभुद्ध्वम्। (गुह्) पदान्ते-पर्णघुट्। सकारे-निघोक्ष्यते। ध्वम्शब्दे-न्यगूढ्वम्। (दुह्) पदान्ते-गोधुक्। सकारे-धोक्ष्यते। ध्वम्शब्दे-अधुग्ध्वम्। अजर्घाः। गर्धप्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धातोः) धातु का अवयव जो (एकाचः) एक अच् अन्तवाला तथा (झषन्तस्य) झष् अन्तवाला है, उसके अवयव (बशः) बश् के स्थान में (पदस्य) पद के अन्त में, (झलि) झलादि (स्ध्वमोः) सकार और ध्वम् शब्द परे होने पर (भष्) भष् आदेश होता है।*

*उदा०-(बुध्) पदान्त-**अर्थभुत्**। अर्थ को समझनेवाला। सकार-**भोत्स्यते**। वह समझेगा। ध्वम्शब्द-**अभुद्ध्वम्**। तुम सब ने समझा। (गुह्) पदान्त-**पर्णघुट्**। पंखों को ढकनेवाला। सकार-**निघोक्ष्यते**। वह ढकेगा। ध्वम्शब्द-**न्यगूढ्वम्**। तुम सब ने ढका। (दुह्) पदान्त-**गोधुक्**। गौ को दुहनेवाला। सकार-**धोक्ष्यते**। वह दुहेगा। ध्वम्शब्द-**अधुग्ध्वम्**। तुम सब ने दुहा। **अजर्घाः**। तूने पुनः-पुनः आकाङ्क्षा (इच्छा) की। **गर्धप्**। गर्दभ (गधा) बनानेवाला (मूर्ति)।*

सिद्धि-(१) अर्थभुत्। *यहां अर्थ-उपपद '**बुध अवगमने**' (दि०आ०) धातु से '**क्विप् च**' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान एक अच्वाले, झषन्त 'बुध्' धातु के अवयव बश् (ब्) के स्थान में भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(२) **भोत्स्यते**। यहां 'बुध्' धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१५) से 'लृट्' प्रत्यय है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'बुध्' धातु से सकार परे होने पर पूर्ववत् बश् (ब्) को भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(२) **भोत्स्यते**। यहां 'बुध्' धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१५) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'बुध्' धातु से सकार परे होने पर पूर्ववत् बश् (ब्) को भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(३) **अभुद्ध्वम्**। यहां 'बुध्' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय और लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'ध्वम्' आदेश है। '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि'*

के स्थान में 'सिच्' आदेश और यह 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' (१।२।११) से किद्वत् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से अङ्ग को गुण का प्रतिषेध होता है। 'धि च' (८।२।२५) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'ध्वम्' परे होने पर 'बुध्' के (ब्) के स्थान में भष् (भ्) आदेश होता है।

(४) **पर्णघुट्।** यहां पर्ण-उपपद 'गुहू संवरणे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और उसका सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान झषन्त गुढ् के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, ढकार को जश्त्व डकार और डकार को चर्त्व टकार होता है।

(५) **निघोक्ष्यते।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गुह्' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और स्य विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सकार परे होने पर झषन्त 'गुढ्' के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, **षढोः कः सि'** (८।२।४१) से ढकार को ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(६) **न्यघूढ्ध्वम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गुह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। 'धि च' (८।२।२५) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'ध्वम्' परे होने पर झषन्त 'गुढ्' के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से 'गुह्' के हकार को ढकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से 'ध्वम्' के धकार को ढकार, **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से अण् (उ) को दीर्घ होता है।

(७) **गोधुक्।** यहां गो-उपपद 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से 'दुह्' के हकार को घकारादेश होता है। इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' धातु को पदान्त में बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है। घकार को जश्त्व गकार और गकार को चर्त्व ककार होता है।

(८) **धोक्ष्यते।** यहां 'दुह्' धातु से पूर्ववत् लृट् और स्य विकरण-प्रत्यय है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से हकार को घकारादेश और इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' को सकार परे होने पर बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है।

(९) **अधुग्ध्वम्।** यहां 'दुह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और 'धि च' (८।२।२५) से सिच् के सकार का लोप होता है। पूर्ववत् 'दुह्' के हकार को घकारादेश होकर इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' को 'ध्वम्' परे होने पर बश् (द्) को भष् (ध्) आदेश होता है।

(१०) अजर्घाः।

गृध्-यङ्।	अट्+जर्-गृध्+सिप्।	अ+जर्-घर् रु।
गृध्-गृध्+य।	अ+जर्-गृध्+शप्+स्।	अ+जर्-घर् र्।
गृ-गृध्+०।	अ+जर्-गर्ध्+०+स्।	अ+जर्-घ०र्।
जर्-गृध्+०।	अ+जर्-घर्ध्+स्।	अ+जर्-घार्।
ज रुक्-गृध्+०।	अ+जर्+घर ध्+०।	अ+जर्-घाः।
जर्-गृध्+लङ्।	अ+जर्-घर द्।	अजर्घाः।

यहां 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व, **'यङोऽचि च'** (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक्, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास को अकारादेश, **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास को चुत्व जकार, 'हलादिः **शेषः'** (७।४।६०) से अभ्यास का आदिहल् शेष, **'रुग्रिकौ च लुकि'** (७।४।९१) से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। यङ्लुगन्त 'जर्गृध्' धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, अट्-आगम, लकार के स्थान में सिप्-आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। **'चर्करीतं च'** (अदा०गणसूत्र) से यङ्लुगन्त के अदादिगण में परिगणित हाने से **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से धातु के एकाच् अवयव, झषन्त, गर्ध्' को सकार परे होने पर बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है।

'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से धकार को जश् दकार **'दश्च'** (८।२।७५) से दकार को रुत्व, **'रो रि'** (८।३।१४) से पूर्ववर्ती रेफ का लोप, **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१०९) से दीर्घ और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।

'अजर्घाः' की इस क्लिष्ट सिद्धि को ध्यान में रखकर वैयाकरण लोग कहते हैं-**'अजर्घा यो न जानाति तस्मै कन्या न दीयते'।**

(११) गर्धप्। गर्दभ+णिच्। गर्दभ्+इ+क्विप्। गर्दभ्+०+०। गर्दभ्। गर्धब्। गर्धप्।

यहां 'गर्दभ' शब्द से **'तत्करोति तदाचष्टे०'** (३।१।२६) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। वा०-**'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य'** (६।४।१५५) से गर्दभ के टिभाग (अ) का लोप होता है। णिजन्त 'गर्दभि' धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का भी लोप होता है। 'गर्दभ्' इस स्थिति में इस सूत्र से धातु के एकाच् झषन्त अवयव **(दभ्)** के बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से भकार को जश् बकार और बकार को **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से चर् पकार होता है।

विशेषः *बश्=ब ग ड द के स्थान में क्रमशः भष्=भ घ ढ ध आदेश किये जाते हैं। डकार स्थानी न होने से ढकारादेश नहीं होता है। यहां स्थानकृत आन्तर्य से आदेश व्यवस्था होती है।*

भष-आदेशः-

(२१) दधस्तथोश्च।३८।

प०वि०-दधः ६।१ तथोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-तश्च थश्च तौ तथौ, तयोः-तथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-झलि, धातोः, बशः, भष्, झषन्तस्य, स्ध्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-झषन्तस्य दधो धातोर्बशस्तथोर्झलि स्ध्वोश्च भष्।

अर्थः-झषन्तस्य दधो धातोर्बशः स्थाने तकारथकारयोर्झलादौ सकारे ध्वशब्दे च परतो भषादेशो भवति।

दध इति दधातिः=डुधाञ् धारणपोषणयोरिति कृतद्विर्वचनो धातुरुपदिश्यते।

उदा०-(तकारे) तौ धत्तः। **(थकारे)** युवां धत्थः। **(झलादिसकारे)** त्वं धत्स्व। **(झलादिध्वशब्दे)** यूयं धद्ध्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(झषन्तस्य) झष् जिसके अन्त में है उस (दधः) दध् (धातोः) धतु के (बशः) बश् के स्थन में (तथोः) तकार, थकार और (झलि) झलादि (स्ध्वोः) सकार और ध्वशब्द परे होने पर (भष्) भष् आदेश होता है।*

*'दध' यह '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) इस कृतद्विवचन धातु का उपदेश किया गया है।*

*उदा०-(तकार) **तौ धत्तः।** वे दोनों धारण-पोषण करते हैं। (थकार) **युवां धत्थः।** तुम दोनों धारण-पोषण करते हो। (झलादि सकार) **त्वं धत्स्व।** तू धारण-पोषण कर। (झलादि ध्वशब्द) **यूयं धद्ध्वम्।** तुम सब धारण-पोषण करो।*

*सिद्धि-(१) **धत्तः।** धा+लट्। धा+तस्। धा+शप्+तस्। धा+०+तस्। धा-धा+तस्। ध-ध्+तस्। द-ध्+तस्। ध-त्+तस्। धत्तस्। धत्तः।*

*यहां '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तस्' आदेश है। '**कर्तरि शप्**' (३।२।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (४।२।७५) से शप् को श्लु (लोप) होता है। '**श्लौ**' (६।१।१०)*

से धातु को द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से अभ्यास के धकार को जश् दकारादेश और 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से आकार का लोप होता है। इस सूत्र से तकार परे होने पर झषन्त 'दध्' धातु के बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है।

यहां पाणिनि मुनि के वचनसामर्थ्य से 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' (१।१।५७) से आकार लोप स्थानिवत् नहीं होता है और भष् आदेश करते समय 'अभ्यासे चर्च' (८।४।५४) से विहित जश् आदेश असिद्ध नहीं होता है। 'खरि च' (८।४।५५) से धातु-धकार को चर् तकारादेश है।

ऐसे ही-'थस्' प्रत्यय में-धत्थः। थास् (से) प्रत्यय में-धत्स्व। लोट् लकार में 'थासः से' (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश और 'स्वाभ्यां वामौ' (३।४।९१) से एकार को वकारादेश है। ध्वम् प्रत्यय में-धद्ध्वम्।

जश्-आदेशः-

(२२) झलां जशोऽन्ते।३६।

प०वि०-झलाम् ६।३ जशः १।३ अन्ते ७।१।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पदस्याऽन्ते झलां जशः।

अर्थः-पदस्यान्ते वर्तमानानां झलां स्थाने जश आदेशा भवन्ति।

उदा०-जश्=ज, ब, ग, ड, द। **(ज)** अच्+अन्तः=अजन्तः। **(ब)** त्रिष्टुप्+अत्र=त्रिष्टुबत्र। **(ग)** वाक्+अत्र=वागत्र। **(ड)** श्वलिट्+अत्र=श्वलिडत्र। **(द)** अग्निचित्+अत्र=अग्निचिदत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ*-(पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में विद्यमान (झलाम्) झल वर्णों के स्थान में (जशः) जश् वर्ण आदेश होते हैं।

उदा०-जश्=ज, ब, ग, ड, द। (ज) अच्+अन्तः=अजन्तः। अच् जिसके अन्त में है। (ब) त्रिष्टुप्+अत्र=त्रिष्टुबत्र। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है। (ग) वाक्+अत्र=वागत्र। वेदवाणी यहां है। (ड) श्वलिट्+अत्र=श्वलिडत्र। कुत्ते चाटनेवाला (घोरी) यहां है। (द) अग्निचित्+अत्र=अग्निचिदत्र। अग्न्याधान करनेवाला (अग्निहोत्री) यहां है।

सिद्धि-अजन्तः। आदि उदाहरणों में झल् वर्णों के स्थान में जश् (ज, ब, ग, ड, द) वर्ण आदेश स्पष्ट हैं। यहां क, च, ट, त, प इन वर्गों के प्रथम वर्णों के स्थान में स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से क्रमशः वर्गों के तृतीय वर्ण ग, ज, ड, द, ब आदेश होते हैं।

ध-आदेशः—

(२३) झषस्तथोर्धोऽधः ।४०।

प०वि०–झषः ५ ।१ तथोः ६ ।२ धः ६ ।१ अधः ५ ।१ ।

स०–तश्च थश्च तौ तथौ, तयोः-तथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । न धा इति अधाः, तस्मात्-अधः (नञ्तत्पुरुषः) ।

अन्वयः–झषस्तथोर्धः, अधः ।

अर्थः–झषः परयोस्तकारथकारयोः स्थाने धकारादेशो भवति, अधः=दधाति-परयोस्तु न भवति ।

उदा०–**(लभ्)** तः-लब्धा, लब्धुम्, लब्धव्यम् । अलब्ध । **थः**-अलब्धाः । **(दुह्)** तः-दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । अदुग्ध । **थः**-अदुग्धाः । **(लिह्)** **तः**-लेढा, लेढुम्, लेढव्यम् । अलीढ । **थः**-अलीढाः । **(बुध्)** **तः**-बोद्धा । बोद्धुम् । बोद्धव्यम् । अबुद्ध । **थः**-अबुद्धाः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(झषः) झष् वर्ण से परवर्ती (तथोः) तकार और थकार के स्थान में (धः) धकारादेश होता है (अधाः) धा-धातु से परे तो नहीं होता है ।*

*उदा०-(लभ्) त-**लब्धा** । प्राप्त करनेवाला । **लब्धुम्** । प्राप्त करने के लिये । **लब्धव्यम्** । प्राप्त करना चाहिये । **अलब्ध** । उसने प्राप्त किया । थ-**अलब्धाः** । तूने प्राप्त किया । (दुह्) त-**दोग्धा** । दुहनेवाला । **दोग्धुम्** । दुहने के लिये । **दोग्धव्यम्** । दुहना चाहिये । **अदुग्ध** । उसने दुहा । थ-**अदुग्धाः** । तूने दुह । (लिह्) त-**लेढा** । चाटनेवाला । **लेढुम्** । चाटने के लिये । **लेढव्यम्** । चाटना चाहिये । **अलीढ** । उसने चाटा । थ-**अलीढाः** । तूने चाटा । (बुध्) त-**बोद्धा** । समझनेवाला । **बोद्धुम्** । समझने के लिये । **बोद्धव्यम्** । समझना चाहिये । **अबुद्ध** । उसने समझा । थ-**अबुद्धाः** । तूने समझा ।*

*सिद्धि-(१) **लब्धा** । यहां '**डुलभष् प्राप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है । इस सूत्र से झषन्त 'लभ्' धातु से परे 'तृच्' के तकार को धकारादेश होता है । पूर्ववत् भकार के जश् बकारादेश है । 'तुमुन्' प्रत्यय में-**लब्धुम्** । 'तव्यत्' प्रत्यय में-**लब्धव्यम्** ।*

*(२) **अलब्ध** । यहां 'लभ्' धातु से 'लुङ्' **प्रत्यय है** । '**च्लेः सिच्**' (३ ।१ ।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश **और** '**झलो झलि**' (८ ।२ ।२६) से सिच् का लोप होता है । शेष कार्य पूर्ववत् है । '**थास्**' प्रत्यय में-**अलब्धाः** ।*

*(३) **दोग्धा** । यहां यहां '**दुह प्रपूरणे**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है । '**दादेर्धातोर्घः**' (८ ।२ ।३२) से 'दुह्' के हकार को घकारादेश होता है । इस सूत्र से*

*झषन्त 'दुघ्' **धातु से प्रत्यय** 'तृच्' तकार को धकारादेश होता है। '**झलां जश् झशि**' (८।४।५३) से घकार को गकार जश् आदेश है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**दोग्धुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**दोग्धव्यम्**।*

*(४) **अदुग्ध**। यहां 'दुह' धातु से 'लुङ् प्रत्यय है। '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और '**झलो झलि**' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'थास्' प्रत्यय में-**अदुग्धाः**।*

*(५) **लेढा**। यहां '**लिह आस्वादने**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकारादेश होता है। इस सूत्र से झषन्त 'लिढ्' धातु से परे 'तृच्' के तकार को धकारादेश और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को ढकारादेश और '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**लेढुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**लेढव्यम्**।*

*(६) **अलीढ**। यहां 'लिह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सिच् का लोप, हकार को ढकार, तकार को धकार, धकार को ढकार, पूर्ववर्ती ढकार का लोप और '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से दीर्घ (ई) होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**अलीढाः**। ऐसे ही 'बुध अवगमने' (दि०आ०) धातु से-**बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्**। 'लुङ्' लकार में-**अबुद्ध** (त)। **अबुद्धाः** (थास्)।*

क-आदेशः–

(२४) षढोः कः सि।४१।

प०वि०–षढोः ६।२ कः १।१ सि ७।१।

स०–षश्च ढश्च तौ षढौ, तयोः–षढोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–षढोः सि कः।

अर्थः–षकारढकारयोः स्थाने सकारे परतः **ककारादेशो** भवति।

उदा०–**(पिष्) षकारः**–पेक्ष्यति। अपेक्ष्यत्। पिपिक्षति। **(लिह्) ढकारः**–लेक्ष्यति। अलेक्ष्यत्। लिलिक्षति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(षढोः) षकार और ढकार के स्थान में (सि) सकार परे होने पर (कः) ककारादेश होता है।*

*उदा०–**(पिष्) षकार**–**पेक्ष्यति**। वह पीसेगा। **अपेक्ष्यत्**। यदि वह पीसता। **पिपिक्षति**। वह पीसना चाहता है। **(लिह्) ढकार**–**लेक्ष्यति**। वह चाटेगा। **अलेक्ष्यत्**। यदि वह चाटता। **लिलिक्षति**। वह चाटना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **पेक्ष्यति।** यहां 'पिष्लृ पेषणे' (रुधा०प०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र के 'पिष्' के षकार को सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर ककारादेश होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) **अपेक्ष्यत्।** यहां 'पिष्' धातु से **'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ'** (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पिपिक्षति।** यहां 'पिष्' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **लेक्ष्यति।** यहां **'लिह आस्वादने'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकारादेश होता है। इस सूत्र से सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर 'लिढ्' के ढकार को ककारादेश होता है। 'लृङ्' लकार में-**अलेक्ष्यत्।** 'सन्' प्रत्यय में-**लिलिक्षति।***

{निष्ठातकारादेशप्रकरणम्}

न-आदेशः-

(१) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः।४२।

प०वि०-रदाभ्याम् ५।२ निष्ठातः६।१ नः १।१ पूर्वस्य ६।१ च अव्ययपदम्, दः ६।१।

स०-रश्च दश्च तौ रदौ, ताभ्याम्-रदाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। निष्ठायास्तकार इति निष्ठात्, तस्य-निष्ठातः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः-रदाभ्यां निष्ठातो नः, पूर्वस्य च दो नः।

अर्थः-रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठा-तकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति, पूर्वस्य च दकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-**(रेफात्)** आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। निगीर्णम्। अवगूर्णम्। **(दकारात्)** भिन्नः, भिन्नवान्। छिन्नः, छिन्नवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रदाभ्याम्) रेफ और दकार से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है (च) और (पूर्वस्य) उससे पूर्ववर्ती (दः) दकार के स्थान में भी (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(रेफ) **आस्तीर्णम्।** बिछाना। **विस्तीर्णम्।** फैलाना। **विशीर्णम्।** बिखरना। **निगीर्णम्।** निगलना। **अवगूर्णम्।** निन्दा करना। (दकारात्) **भिन्नः, भिन्नवान्।** उसने फाड़ा। **छिन्नः, छिन्नवान्।** उसने काटा।*

*सिद्धि-(१) आस्तीर्णम्। यहां 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्रया०उ०) धातु से **नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। **'क्तक्तवतू निष्ठा'** (३।२।१०२) से इसकी निष्ठा-संज्ञा है। **'ॠत इद्धातोः'** (७।१।१००) से ॠकार को इकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

*(२) **विशीर्णम्।** वि-उपसर्गपूर्वक 'शॄ हिंसायाम्' (क्रया०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **निगीर्णम्।** नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ निगरणे' (क्रया०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **अवगूर्णम्।** अव्-उपसर्गपूर्वक 'गूरी उद्यमने' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*'आस्तीर्णम्' आदि में **'श्र्युकः किति'** (७।१।११) से और 'अवगूर्णम्' में **'श्वीदितो निष्ठायाम्'** (७।१।१४) से इडागम का प्रतिषेध होता है।*

*(६) **भिन्नः।** यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से दकार से परवर्ती निष्ठा-तकार को नकारादेश और 'भिद्' धातु के पूर्ववर्ती दकार को भी नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**भिन्नवान्।** 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से-**छिन्नः, छिन्नवान्।***

न-आदेशः–

(२) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः।४३।

प०वि०-संयोगादेः ६।१ आतः ६।१ धातोः ६।१ यण्वतः ६।१।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

तद्धितवृत्तिः-यण् अस्मिन्नस्तीति यण्वान्, तस्मात्-यण्वतः। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-निष्ठातः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगादेर्यण्वत आतो धातोर्निष्ठातो नः।

अर्थः-संयोगादेर्यण्वत आकारान्ताद् धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(द्रा) प्रद्राणः, प्रद्राणवान्। **(म्ला)** म्लानः, म्लानवान्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(संयोगादेः) संयोग जिसके आदि में है और (यण्वतः) जिसमें यण् (य व र ल) वर्ण विद्यमान है उस (आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(द्रा) प्रद्राणः, प्रदाणवान्। वह भाग गया। (म्ला) म्लानः, म्लानवान्। उसने ग्लानि की।

सिद्धि-प्रद्राणः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'द्रा कुत्सायां गतौ' (अदा०प०) से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से संयोगादि, यण्वान्, आकारान्त 'द्रा' धातु से परवर्ती निष्ठा-तकार को नकारादेश और 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-प्रदाणवान्। 'म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से-म्लानः, म्लानवान्।

न-आदेशः--

(३) ल्वादिभ्यः।४४।

वि०-लू-आदिभ्यः ५।३।

स०-लू आदिर्येषां ते ल्वादयः, तेभ्यः-ल्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ल्वादिभ्यो धातुभ्यो निष्ठातो नः।

अर्थः-लू-आदिभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-**(लू)** लूनः, लूनवान्। **(धू)** धूनः, धूनवान् **(ज्या=जी)** जीनः, जीनवान्।

ल्वादयो धातवः **'लूञ् छेदने'** इत्यस्मात् प्रभृति **'प्ली गतौ'** इति वृत्करणपर्यन्तं पाणिनीयधातुपाठस्य क्र्यादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लू-आदिभ्यः) लू-आदि (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(लू) लूनः, लूनवान्। उसने काटा। (धू) धूनः, धूनवान्। उसने कपाया, हिलाया। (ज्या=जी) जीनः, जीनवान्। वह वृद्ध हो गया।

लू-आदि धातु 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) से लेकर 'प्ली गतौ' यहां वृत्करणपर्यन्त पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में पठित हैं।

सिद्धि-(१) लूनः। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लू' से परवर्ती निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-लूनवान्। 'धूञ् कम्पने' (क्र्या०उ०) धातु से-धूनः, धूनवान्।

(२) जानः। ज्या+क्त। ज्या+त। जि आ+त। जी+न। जान+सु। जानः।

*यहां 'ज्या वयोहानौ' (क्र्याoपo) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**प्रहिज्याo**' (६।१।१६) से सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-जीनवान्।*

न-आदेशः–

(४) ओदितश्च।४५।

विo–ओदितः ५।१ च अव्ययपदम्।

सo–ओद् इद् यस्य स ओदित्, तस्मात्-ओदितः (बहुव्रीहिः)।

अनुo–निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–ओदितो धातोश्च निष्ठातो नः।

अर्थः–ओकारेतो धातोश्च परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदाo–**(ओलस्जी)** लग्नः, लग्नवान्। **(ओविजी)** उद्विग्नः, उद्विग्नवान्। **(ओप्यायी)** आपीनः, आपीनवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ओदितः) ओकार जिसका इत् है उस (धातोः) धातु से (च) भी परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

*उदाo-**(ओलस्जी) लग्नः, लग्नवान्।** उसने व्रीडा (लज्जा) की। **(ओविजी) उद्विग्नः, उद्विग्नवान्।** वह व्याकुल हुआ। **(ओप्यायी) आपीनः, आपीनवान्।** वह बढ़ा (स्थूल हुआ)।*

सिद्धि-लग्नः। *लस्ज्+क्त। लस्ज्+त। ल०ज्+त। लग्+त। लग्+न। लग्न+सु। लग्नः।*

*यहां '**ओलस्जी व्रीडायाम्**' (तुoआo) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। '**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**' (१।३।२) से धातुस्थ ओकार और ईकार की इत् संज्ञा होकर '**तस्य लोपः**' (१।३।९) से लोप होता है। '**स्कोः संयोगाद्योरन्ते च**' (८।२।९) से संयोगादि सकार का लोप और '**चोः कुः**' (८।२।३०) से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। इस सूत्र से ओदित् 'ओलस्जी' धातु से परवर्ती निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में लग्नवान्। उत्-उपसर्गपूर्वक '**ओविजी भयचलनयोः**' (तुoआo) धातु से-उद्विग्नः, **उद्विग्नवान्। 'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वाoआo) धातु से-**आपीनः, आपीनवान्।***

न-आदेशः–

(५) क्षियो दीर्घात् ।४६।

वि०–क्षियः ५ ।१ दीर्घात् ५ ।१ ।

अनु०–निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–दीर्घात् क्षियो धातोर्निष्ठातो नः ।

अर्थः–दीर्घात् क्षियो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति ।

उदा०–(क्षी) क्षीणाः क्लेशाः । क्षीणो जाल्मः । क्षीणस्तपस्वी ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(दीर्घात्) दीर्घान्त (क्षियः) क्षी (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०–(क्षी) ***क्षीणाः क्लेशाः ।*** *अविद्या आदि क्लेश क्षय होगये।* ***क्षीणो जाल्मः ।*** *यह नीच निर्बल होगया है (आक्रोश)।* ***क्षीणस्तपस्वी ।*** *यह बेचारा तपस्वी निर्बल होगया है (दैन्य)।*

सिद्धि–क्षीणः । यहां 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) धातु से ***'निष्ठा'*** *(३ ।२ ।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है।* ***'निष्ठायामण्यदर्थे'*** *(६ ।४ ।६०) से तथा* ***'वाऽऽक्रोशदैन्ययोः'*** *(६ ।४ ।६१) से 'क्षि' धातु को आक्रोश (भर्त्सना) और दीनता अर्थ में दीर्घ होता है। इस सूत्र से इस दीर्घ 'क्षी' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है।* ***'अट्कुप्वाङ्०'*** *(८ ।४ ।२) से णत्व होता है।*

न-आदेशः–

(६) श्योऽस्पर्शे ।४७।

प०वि०–श्यः ५ ।१ अस्पर्शे ७ ।१ ।

स०–न स्पर्श इति अस्पर्शः, तस्मिन्–अस्पर्शे (नञ्तत्पुरुषः) ।

अनु०–निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अस्पर्शे श्यो धातोर्निष्ठातो न ।

अर्थः–स्पर्शवर्जितेऽर्थे वर्तमानात् श्यायतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति ।

उदा०–(श्या) शीनं घृतम् । शीनं मेदः । शीना वसा ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्पर्शे) स्पर्श अर्थ से भिन्न (श्यः) श्या (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-**(श्या) शीनं घृतम्।** जमा हुआ घी। **शीनं मेदः।** जमी हुई चरबी। **शीना वसा।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-शीनम्। *श्या+क्त। श्या+त। श् इ आ+त। शि+न। शी+न। शीन+सु। शीनम्।*

*यहां 'श्यैङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः'** (६।१।२४) से सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से इकार को दीर्घ होता है। इस सूत्र से स्पर्श अर्थ से भिन्न (द्रवमूर्ति) अर्थ में 'श्या' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। स्पर्श अर्थ में-**शीतं जलम्।** ठण्डा जल।*

न-आदेशः--

(७) अञ्चोऽनपादाने।४८।

प०वि०-अञ्चः ५।१ अनपादाने ७।१।

स०-न अपादानमिति अनपादानम्, तस्मिन्-अनपादाने (नञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अञ्चो धातोर्निष्ठातो नः, अनपादाने।

अर्थः-अञ्चतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति, न चेत् तत्रापादानं कारकं भवति।

उदा०-**(अञ्च्)** समक्नौ शकुनेः पादौ। सङ्गतावित्यर्थः। तस्मात् पशवो न्यक्नाः। अपादाने इति किम्? उदक्तमुदकं कूपात्।

आर्यभाषाः ***अर्थ**-(अञ्चः) अञ्च् (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है (अनपादाने) यदि वहां अपादान कारक का विषय न हो।*

*उदा०-**(अञ्च्) समक्नौ शकुनेः पादौ।** पक्षी के पांव परस्पर मिले हुये हैं। **तस्मात् पशवो न्यक्नाः।** उससे पशु अधोमुख हैं। अपादान कारक में-**उदक्तमुदकं कूपात्।** कूए से निकाला हुआ जल।*

सिद्धि-समक्नः । सम्+अञ्चु+क्त । सम्+अञ्च्+त । सम्+अच्+त । सम्+अक्+त । सम्+अक्+न । समक्न+सु । समक्नः ।

यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३ ।२ ।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६ ।४ ।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। 'चोः कुः' (८ ।२ ।३०) से चकार को कवर्ग गकारादेश है। इस सूत्र से 'अञ्च्' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। नि-उपसर्ग से-न्यक्नः। 'उदितो वा' (७ ।२ ।५६) से क्त्वा प्रत्यय को विभाषा इट् कहा है, अतः 'यस्य विभाषा' (७ ।२ ।१५) के नियम से निष्ठा में इडागम का प्रतिषेध होता है।

न-आदेशः–

(८) दिवोऽविजिगीषायाम् ।४९।

प०वि०-दिवः ५ ।१ अविजिगीषायाम् ७ ।१ ।

स०-विजेतुमिच्छा विजिगीषा। न विजिगीषेति अविजिगीषा, तस्याम्-अविजिगीषायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविजिगीषायां दिवो धातोर्निष्ठातो नः।

अर्थः-विजिगीषार्थवर्जिताद् दिवो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(दिव्) आद्यूनः=औदरिकः। परिद्यूनः=क्षीणः। अविजिगीषायामिति किम्? द्यूतं वर्तते। द्यूतक्रीडायां विजिगीषयाऽक्षपातनादिकं क्रियते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अविजिगीषायाम्) विजिगीषा=विजय की इच्छा से भिन्न अर्थ में (दिवः) दिव् (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार को (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(दिव्) आद्यूनः। औदरिक, पेटू। परिद्यूनः। क्षीण (निर्बल)।

सिद्धि-आद्यूनः। आ+दिव्+क्त। आ+दिव+त। आ+दि ऊठ्+त। आ+दि ऊ+त। द्यू+न। द्यून+सु। द्यूनः।

यहां 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से 'निष्ठा' (३ ।२ ।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६ ।४ ।१९) से 'दिव्' के वकार को 'ऊठ्' आदेश और 'इको यणचि' (६ ।१ ।७६) से यणादेश है। इस सूत्र से विजिगीषा अर्थ से अन्यत्र 'दिव्' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। विजिगीषा अर्थ में-द्यूतं वर्तते। द्यूतक्रीडा में विजय की इच्छा से पासे डाले जाते हैं।

निपातनम्–

(९) निर्वाणोऽवाते।५०।

प०वि०–निर्वाण: १।१ अवाते ७।१।

स०–न वात इति अवात:, तस्मिन्–अवाते (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०–निष्ठात:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:–अवाते निर्वाणो निपातनम्।

अर्थ:–अवाते=वाताधिकरणवर्जितेऽर्थे निर्वाण इति पदं निपात्यते।

अत्र निस्–पूर्वाद् वाति–धातो: परस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो निपात्यते, न चेद् वात्यर्थो वाताधिकरणो भवति।

उदा०–**(वा)** निर्वाणोऽग्नि:। निर्वाण: **प्रदीप**:। एष निर्वाणो भिक्षु:। अवाते इति किम्? निर्वातो वात:। वातो निरुद्ध इत्यर्थ:।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अवाते) वायु-अधिकरण से भिन्न अर्थ में (निर्वाण:) निर्वाण यह पद निपातित है।*

*यहां निस्–उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयो:'** (अदा०प०) धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश निपतित है, यदि वह 'वा' धातु का अधिकरण=आधार वात (वायु) न हो।*

*उदा०–(वा) **निर्वाणोऽग्नि:**। अग्नि उपशान्त होगया। **निर्वाण: प्रदीप:**। दीपक बुझ गया। **एष निर्वाणो भिक्षु:**। यह साधु राग आदि से उपरत है। 'अवाते' का कथन इसलिये है कि यहां नकारादेश न हो–**निर्वातो वात:**। वायु बन्द होगया है।*

***सिद्धि–निर्वाण:**। यह निस्–उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयो:'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वात से भिन्न अधिकरण में 'वा' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातित है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

क-आदेश:–

(१०) शुष: क:।५१।

प०वि०–शुष: ५।१ क: १।१।

अनु०–निष्ठात:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:–शुषो धातोर्निष्ठात: क:।

अर्थः-शुषो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने ककारादेशो भवति।

उदा०-(शुष्) शुष्कः, शुष्कवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शुषः) शुष् इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (कः) ककारादेश होता है।*

उदा०-(शुष्) शुष्कः, शुष्कवान्। वह सूख गया।

सिद्धि-शुष्कः। यहां 'शुष शोषणे' (दि०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में ककारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-शुष्कवान्।

व-आदेशः-

(११) पचो वः।५२।

प०वि०-पचः ५।१ वः १।१।

अनु०-निष्ठातः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पचो धातोर्निष्ठातः वः।

अर्थः-पचो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-(पच्) पक्वः, पक्ववान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पचः) पच् इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।*

उदा०-(पच्) पक्वः, पक्ववान्। उसने पकाया।

सिद्धि-पक्वः। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में वकारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-पक्ववान्।

म-आदेशः-

(१२) क्षायो मः।५३।

प०वि०-क्षायः ५।१ मः १।१।

अनु०-निष्ठातः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षायो धातोर्निष्ठातः मः।

अर्थः-क्षायो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-(क्षै) क्षामः, क्षामवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षायः) क्षै इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**(क्षै) क्षामः, क्षामवान्।** वह क्षीण होगया।*

*सिद्धि-**क्षामः।** यहां **'क्षै क्षये'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातुस्थ एच् (ऐ) को आकारादेश होता है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में मकारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-**क्षामवान्।***

मादेश-विकल्पः—

(१३) प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-प्रस्त्यः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-प्रपूर्वः स्त्या इति प्रस्त्याः, तस्मात्-प्रस्त्यः (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, धातोः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रस्त्यो धातोर्निष्ठातोऽन्यतरस्यां मः।

अर्थः-प्रपूर्वात् स्त्यायतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने विकल्पेन मकारादेशो भवति।

उदा०-(प्रस्त्या) प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रस्त्या) प्र-उपसर्गपूर्वक स्त्या इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**(प्रस्त्या) प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्।** उसने शब्द किया/सङ्घात बनाया। **प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**प्रस्तीमः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ष्ट्यै शब्दसंघातयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातुस्थ एच् (ऐ) को आकारादेश होता है। स्त्यः प्रपूर्वस्य' (६।१।२३) से प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्त्या' धातु को सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**प्रस्तीमवान्।** विकल्प-पक्ष में मकारादेश नहीं है-**प्रस्तीतः, प्रस्तीवान्।** यहां प्रथम **'स्त्यः प्रपूर्वस्य'** (६।१।२३) से सम्प्रसारण होने पर यह धातु आकारान्त नहीं रहती है। क्तवतु प्रत्यय में-**प्रस्तीतवान्।***

निपातनम्–

(१४) अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः।५५।

प०वि०–अनुपसर्गात् ५।१ फुल्ल-क्षीब-कृश-उल्लाघाः १।३।

स०–न उपसर्ग इति अनुपसर्गः, तस्मात्–अनुपसर्गात् (नञ्तत्पुरुषः)। फुल्लश्च क्षीबश्च कृशश्च उल्लाघश्च ते–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघा अनुपसर्गान्निपातनम्।

अर्थः–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः शब्दा निपात्यन्ते, न चेदेते उपसर्गाद् उत्तरा भवन्ति।

उदा०–फुल्लः, फुल्लवान्। क्षीबः। कृशः। उल्लाघः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(फुल्ल०) फुल्ल, क्षीब, कृश, उल्लाघ ये शब्द निपातित हैं (अनुपसर्गात्) यदि ये शब्द उपसर्ग से परवर्ती न हों।*

*उदा०–**फुल्लः, फुल्लवान्।** उसने तोड़ा। **क्षीबः।** वह मस्त हुआ। **कृशः।** वह पतला हुआ। **उल्लाघः।** वह समर्थ हुआ।*

*सिद्धि–(१) **फुल्लः।** फला+क्त। फल्+त। फुल्+ल। फुल्ल+सु। फुल्लः।*

*यहां '**ञिफला विशरणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। '**आतो लोप इटि च**' (६।४।६४) से धातुस्थ आकार का लोप होता है। '**आदितश्च**' (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध और '**उत्परस्यातः**' (७।४।८८) से धातुस्थ अकार को उकारादेश होता है। इस सूत्र से निष्ठा के तकार को लकारादेश निपातित है। क्तवतु प्रत्यय में भी लकारादेश अभीष्ट है–**फुल्लवान्।***

*(२) **क्षीबः।** क्षीब्+क्त। क्षीब्+त। क्षीब्+०अ। क्षीब+सु। क्षीबः।*

*यहां '**क्षीबृ मदे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय के तकार (त्) का लोप निपातित है। तकार लोप को असिद्ध मानकर '**आर्धधातुकस्येड्वलादेः**' (७।२।३५) से इडागम प्राप्त होता है, अतः इट् का अभाव भी निपातित है।*

*(३) कृशः। '**कृश तनूकरणे**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) उल्लाघः। उत्-उपसर्गपूर्वक '**लाघृ सामर्थ्ये**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

नादेश-विकल्पः–

(१५) नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०–नुद-विद-उन्द-त्रा-घ्रा-ह्रीभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-नुदश्च विदश्च उन्दश्च त्राश्च घ्राश्च ह्रीश्च ते नुदविदोन्द-त्राघ्राह्रियः, तेभ्यः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यः ।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तनीयम् ।

अन्वयः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यो धातुभ्यो निष्ठातोऽन्यतरस्यां नः ।

अर्थः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने विकल्पेन नकारादेशो भवति ।

उदा०-**(नुद)** नुन्नः, नुत्तः । **(विद्)** विन्नः, वित्तः । **(उन्द)** समुन्नः, समुत्तः । **(त्रा)** त्राणः, त्रातः । **(घ्रा)** घ्राणः, घ्रातः । **(ह्री)** ह्रीणः, ह्रीतः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नुद०) नुद, विद, विन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(नुद) **नुन्नः, नुत्तः ।** प्रेरित किया गया। (विद्) **विन्नः, वित्तः ।** विचार किया गया। (उन्द) **समुन्नः, समुत्तः ।** गीला किया गया। (त्रा) **त्राणः, त्रातः ।** पालन किया गया। (घ्रा) **घ्राणः, घ्रातः ।** सूंघा गया। (ह्री) **ह्रीणः, ह्रीतः ।** लज्जित हुआ।*

सिद्धि-(१) नुन्नः । *यहां 'णुद प्रेक्षणे' (तु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार को और **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में-**नुत्तः ।***

*(२) **विन्नः ।** 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु से-**विन्नः ।** विकल्प-पक्ष में-**वित्तः ।***

*(३) **समुन्नः ।** सम्-उपसर्गपूर्वक **'उन्दी क्लेदने'** (रु०प०) धातु से-**समुन्नः ।** विकल्प-पक्ष में-**समुत्तः ।** **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से धातुस्थ अनुनासिक (न्) का लोप होता है।*

*(४) **त्राणः ।** 'त्रैङ् पालने' (भ्वा०आ०) धातु से-**त्राणः ।** **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**त्रातः ।***

*(५) **घ्राणः ।** 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) धातु से-**घ्राणः ।** पूर्ववत् णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**घ्रातः ।***

*(६) **ह्रीणः ।** 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०) धातु से-**ह्रीणः ।** पूर्ववत् णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**ह्रीतः ।***

विशेषः *वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।*
विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च वित्तो भोगेषु विन्दतेः।।

अर्थः- 'विद ज्ञाने' (अ०प०) धातु से निष्ठा में-वित्तः, 'विद सत्तायाम्' (दि०आ०) धातु से-विन्नः, 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु से-विन्नः और वित्तः, 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) धातु से भोग और प्रत्यय (प्रसिद्धि) अर्थ में-वित्तः, यह रूप बनता है। यहां 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु का ग्रहण किया जाता है।

नकारादेश-विकल्पः—

(१६) न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम्।५७।

प०वि०- न अव्ययपदम्, ध्या-ख्या-पृ-मूर्च्छि-मदाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-ध्याश्च ख्याश्च पृश्च मूर्च्छिश्च मद् च ते-ध्याख्यापृमूर्च्छिमदः, तेषाम्-ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ध्याख्यापृमूर्च्छिमदिभ्यो धातुभ्यो निष्ठातो नो न।

अर्थः-ध्याख्यापृमूर्च्छिमदिभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो न भवति।

उदा०-(ध्या) ध्यातः, ध्यातवान्। **(ख्या)** ख्यातः, ख्यातवान्। **(पॄ)** पूर्तः, पूर्तवान्। **(मूर्छा)** मूर्तः, मूर्तवान्। **(मद)** मत्तः, मत्तवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ध्या०) ध्या, ख्या, पृ, मूर्च्छि, मद इन (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(ध्या) **ध्यातः, ध्यातवान्।** उसने चिन्तन किया। (ख्या) **ख्यातः, ख्यातवान्।** उसने प्रकथन किया। (पॄ) **पूर्तः, पूर्तवान्।** उसने पालन-पूरण किया। (मूर्छा) **मूर्तः, मूर्तवान्।** वह मूर्च्छित हुआ। (मद) **मत्तः, मत्तवान्।** वह हर्षित हुआ।*

*सिद्धि-(१) **ध्यातः।** यहां **'ध्यै चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः'** (८।२।४३) से निष्ठा-तकार को नकारादेश प्राप्त है। अतः इस सूत्र से नकारादेश का प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**ध्यातवान्।***

*(२) **ख्यातः।** यहां **'ख्या प्रकथने'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**ख्यातवान्।***

(३) पूर्त:। यहां 'पॄ पालनपूरणयो:' (जु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'श्र्युक: किति' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध है। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' (७।१।१०२) से ॠकार के स्थान में उकारादेश, 'उरण् रपर:' (१।१।५१) से इसे रपरत्व और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। 'रदाभ्यां निष्ठातो न: पूर्वस्य च द:' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अत: इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-पूर्तवान्।

(४) मूर्त:। यहां 'मूर्छा मोहसमुच्छ्राययो:' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'राल्लोप:' (६।४।२१) से च्छकार का लोप और 'आदितश्च' (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध है। 'रदाभ्यां निष्ठातो न: पूर्वस्य च द:' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अत: इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-मूर्तवान्।

(५) मत्त:। यहां 'मदी हर्षे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'श्वीदितो निष्ठायाम्' (७।२।१४) से इडागम का प्रतिषेध है। 'रदाभ्यां निष्ठातो न: पूर्वस्य च द:' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अत: इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-मत्तवान्।

निपातनम्—

(१७) वित्तो भोगप्रत्यययो:।५८।

प०वि०-वित्त: १।१ भोग-प्रत्यययो: ७।२।

स०-भोगश्च प्रत्ययश्च तौ भोगप्रत्ययौ, तयो:-भोगप्रत्यययो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-निष्ठात:, न:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-भोगप्रत्यययोर्वित्त इति निपातनम्।

अर्थ:-भोगे प्रत्यये चाभिधेये वित्त इति पदं निपात्यते।

उदा०-(भोग:) वित्तमस्य बहु। अस्य धनं बह्वित्यर्थ:। धनं हि भुज्यतेऽतस्तद् भोग इत्यभिधीयते। **(प्रत्यय:)** वित्तोऽयं मनुष्य:। प्रतीत:=प्रसिद्ध इत्यर्थ:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(भोगप्रत्यययो:) भोग और प्रत्यय अर्थ अभिधेय में (वित्त:) वित्त यह पद निपातित है।*

उदा०-(भोग) वित्तमस्य बहु। इसके पास बहुत धन है। धन का ही भोग किया जाता है, अतः वह भोग कहलाता है। (प्रत्यय) वित्तोऽयं मनुष्यः। यह मनुष्य प्रतीत=प्रसिद्ध है।

सिद्धि-(१) वित्तः। यहां 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकारादेश प्राप्त है, अतः इस सूत्र से भोग और प्रत्यय अर्थ में 'वित्त' शब्द में नत्व का अभाव निपातित किया गया है।

निपातनम्--

(१८) भित्तं शकलम्।५६।

प०वि०-भित्तम् १।१ शकलम् १।१।

अन्वयः-भित्तमिति निपातनम्, शकलं चेत्।

अर्थः-भित्तमिति पदं निपात्यते, श्कलं चेत् तद् भवति।

उदा०-भित्तं तिष्ठति। भित्तं प्रपतति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भित्तम्) भित्त यह पद निपातित है (शकलम्) यदि वह शकलवाची है। शकल=खण्ड (टुकड़ा)।*

*उदा०-**भित्तं तिष्ठति।** टुकड़ा है। **भित्तं प्रपतति।** टुकड़ा गिरता है।*

*सिद्धि-**भित्तम्।** यहं 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (९८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से शकल अर्थ में उसका प्रतिषेध निपातित किया गया है।*

निपातनम्--

(१६) ऋणमाधमर्ण्ये।६०।

प०वि०-ऋणम् १।१ आधमर्ण्ये ७।१।

स०-ऋणेऽधम इति अधमर्णः, अधमर्णस्य भाव इति आधमर्ण्यम्, तस्मिन्-आधमर्ण्ये सप्तमीतत्पुरुषस्ततः **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (।१।१२४) इति भावेऽर्थे **ष्यञ्** प्रत्ययः।

'अधमर्णः' इत्यत्र **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।४०) इत्यत्र योगविभागात् सप्तमीतत्पुरुषः समासः। **अस्मादेव** वचनादधमशब्दस्य पूर्वनिपातो वेदितव्यः।

अन्वयः-आधमर्ण्ये ऋणमिति निपातनम्।

अर्थः-आधमर्ण्ये विषये ऋणमिति पदं निपात्यते।

उदा०-ऋणं ददाति। ऋणं धारयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अधमर्ण्ये) अधमर्ण=कर्जदार विषय में (ऋणम्) **ऋण** यह पद निपातित है।*

*उदा०-**ऋणं ददाति।** साहूकार कर्जा देता है। **ऋणं धारयति।** कर्जदार कर्ज को धारण करता है।*

अधमर्ण के द्वारा कालान्तर में देय और उत्तमर्ण के द्वारा कालन्तर में प्राप्य द्रव्य 'ऋण' कहलाता है।

***सिद्धि-ऋणम्।** यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) अथवा **'ऋ गतिप्रापणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से आधमर्ण्य अर्थ में निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातित है। वा०- **'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

निपातनम्-

(२०) नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि।६१।

प०वि०-नसत्त-निषत्त-अनुत्त-प्रतूर्त-सूर्त-गूर्तानि १।३ छन्दसि ७।१।

स०-नसत्तं च निषत्तं च अनुत्तं च प्रतूर्तं च सूर्तं च गूर्तं च तानि-नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-छन्दसि नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानीति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानीत्येतानि पदानि निपात्यन्ते।

उदा०-**(नसत्तम्)** नसत्तमञ्जसा। **(निषत्तम्)** निषत्तः (ऋ० १।५८।३)। **(अनुत्तम्)** उनुत्तमा ते मघवन् (ऋ० १।१६५।९)। **(प्रतूर्तम्)** प्रतूर्त वाजिन् (तै०सं० ४।१।२।१)। **(सूर्तम्)** सूर्ता गावः। **(गूर्तम्)** गूर्ता अमृतस्य (यजु० ६।३४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नसत्त०) नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त, गूर्त ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-**(नसत्तम्) नसत्तमञ्जसा।** नसत्तम्=पृथक् न हुआ। भाषा में-**नसन्नम्। (निषत्त) निषत्तः** (ऋ० १।५८।३)। निषत्तः=बैठा हुआ। भाषा में-**निषण्णः। (अनुत्त) उनुत्तमा ते मघवन्** (ऋ० १।१६५।९)। अनुत्तम्=आर्द्र कोमल। भाषा में-**अनुन्नम्।***

*(प्रतूर्त) प्रतूर्त वाजिन् (तै०सं० ४।१।२।१)। प्रतूर्त=अत्यन्त गतिशील। भाषा में-**प्रतूर्णम्**। (सूर्त) सूर्ता गावः। सूर्त=गतिशील। भाषा में-सृतम्। (गूर्त) गूर्ता अमृतस्य (यजु० ६।३४)। गूर्ता=उठे हुये। भाषा में-गूर्णम्।*

*सिद्धि-(१) **नसत्तम्**। यह नञ्-पूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**रदाभ्यां निष्ठातो०**' (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकारादेश और पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार के भी नकारादेश प्राप्त है। इस सूत्र से वेदविषय में नकारादेश का अभाव निपातित है।*

*(२) **निषत्तम्**। नि-उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से पूर्ववत्। 'सदिरप्रतेः' (६।३।६६) से षत्व होता है।*

*(३) **अनुत्तम्**। यहां नञ्-पूर्वक 'उन्दी क्लेदने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से धातुस्थ अनुनासिक (न्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **प्रतूर्तम्**। प्र-उपसर्गपूर्वक '**त्वरा सम्भ्रमे**' (भ्वा०आ०) अथवा '**तुर्वी गत्यर्थः**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् नत्वाभाव निपातित है।*

*(५) **सूर्तम्**। यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और धातुस्थ ऋकार को उकारादेश और नत्वाभाव निपातित है। इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है।*

*(६) **गूर्तम्**। यहां 'गूरी उद्यमने' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (८।४।४२) से नकारादेश प्राप्त है, अतः इस सूत्र से नकारादेश का अभाव निपातित है।*

।। इति निष्ठातकारादेशप्रकरणम् ।।

आदेशप्रकरणम्

कु-आदेशः–

(१) क्विन्प्रत्ययस्य कुः।६२।

प०वि०-क्विन्प्रत्ययस्य ६।१ कुः १।१।

स०-क्विन् प्रत्ययो यस्माद् धातोः स क्विन्प्रत्ययः, तस्य-क्विन्-प्रत्ययस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्विन्प्रत्ययस्य धातोः पदस्य कुः।

अर्थः-क्विन्प्रत्ययस्य धातोः पदस्यान्ते कवर्गादेशो भवति।

उदा०-'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) घृतस्पृक्। हलस्पृक्। मन्त्रस्पृक्।

***आर्यभाषाः* अर्थ-(क्विन्प्रत्ययस्य) जिससे क्विन् प्रत्यय किया गया है उस धातु को (पदस्य) पद के अन्त में (कुः) कवर्गादेश होता है।**

*उदा०-'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) **घृतस्पृक्**। घृत का स्पर्शमात्र करनेवाला (अल्पमात्रा में सेवन करनेवाला)। हलस्पृक्। हल का स्पर्श करनेवाला। **मन्त्रस्पृक्**। मन्त्रपूर्वक अङ्गस्पर्श करनेवाला (उपासक)।*

सिद्धि-घृतस्पृक्।** यहां घृत-उपपद 'स्पृश संस्पर्शने' (तु०प०) धातु से 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्ययान्त 'स्पृश्' धातु को पद के अन्त में कवर्गादेश होता है। विवृतकरण, श्वासानुप्रदान, अघोष शकार को तादृश ही कवर्ग खकारादेश किया जाता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से खकार को जश् गकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से गकार को चर् ककार होता है। ऐसे ही-हलस्पृक्, **मन्त्रस्पृक्।

कु-आदेशविकल्पः--

(२) नशेर्वा।६३।

प०वि०-नशेः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, धातोः कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नशेर्धातोः पदस्य वा कुः।

अर्थः-नशेर्धातोः पदस्यान्ते विकल्पेन कवर्गादेशो भवति।

उदा०-सा वै जीवनगाहुतिः। सा वै जीवनडाहुतिः (मै०सं० १।४।१३)।

***आर्यभाषाः* अर्थ-(नशेः) नश् इस (धातोः) धातु को (पदस्य) पद के अन्त में (वा) विकल्प से (कुः) कवर्गादेश होता है।**

*उदा०-सा वै जीवनगाहुतिः। सा वै **जीवनडाहुतिः** (मै०सं० १।४।१३)। वह आहुति तो जीव का नाश करनेवाली है।*

***सिद्धि-(१) जीवनक्।** यहां जीव-उपपद **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से वा०-'सम्पदादिभ्यः क्विप्' (३।३।९४) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'नश्' धातु को पद के अन्त में कवर्गादेश होता है। पूर्ववत् शकार को कवर्ग खकार, खकार को जश् गकार और गकार को चर् ककार होता*

है। विकल्प-पक्ष में-जीवनट्। यहां 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से नश् धातु के शकार को षकार, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है।

न-आदेशः–

(३) मो नो धातोः।६४।

प०वि०-मः ६।१ नः १।१ धातोः ६।१।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मो धातोः पदस्य नः।

अर्थः-मकारान्तस्य धातोः पदस्य नकारादेशो भवति।

उदा०-(शम्) प्रशान्। (तम्) प्रतान्। (दम्) प्रदान्।

आर्यभाषाः अर्थ-(मः) मकार जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु के (पदस्य) पद के अन्त में (न) नकारादेश होता है।

*उदा०-**(शम्) प्रशान्।** शान्त करनेवाला। **(तम्) प्रतान्।** तमन्ना (इच्छा) करनेवाला। **(दम्) प्रदान्।** दमन करनेवाला।*

*सिद्धि-**प्रशान्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'शम्' धातु के मकार को पद के अन्त में नकारादेश होता है। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (६।४।१५) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। नकारादेश के असिद्ध होने से 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

न-आदेशः–

(४) म्वोश्च।६५।

प०वि०-म्वोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-मश्च वश्च तौ म्वौ, तयोः-म्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-मः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-मो धातो म्वोश्च नः।

अर्थः-मकारान्तस्य धातोर्मकारे वकारे च परतश्च नकारादेशो भवति।

उदा०-(मः) अगन्म तमसः पारम् (यजु० १२।७३)। (वः) अगन्व। जगन्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मः) मकार जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु को (म्वोः) मकार और वकार परे होने पर (च) भी (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(म) **अगन्म तमसः पारम्** (यजु० १२।७३)। हम सब अन्धकार से पार चले गये। (व) **अगन्व**। हम दोनों गये। **जगन्वान्**। वह गया।*

*सिद्धि-(१) **अगन्म**। गम्+लङ्। अट्+गम्+ल्। अ+गम्+शप्+मस्। अ+गम्+०+म०। अ+गन्+म। अगन्म।*

*यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'मस्' आदेश, **कर्तरि शप्** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से इसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'गम्' धातु के मकार को मकार परे होने पर नकारादेश होता है। 'वस्' प्रत्यय में-**अगन्व**।*

*(२) **जगन्वान्**। गम्+लिट्। गम्+क्वसु। गम्+वस्। गम्-गम्+वस्। ग-गम्+वस्। ज-गन्+वस्। जगान्वस्+सु। जगन्व नुम् स्+स्। जन्वान् स्+०। जगान्वान्०। जगन्वान्।*

*यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'क्वसुश्च'** (३।२।१०७) से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश, **'विभाषा गमहनविदविशाम्'** (७।२।६८) से पक्ष में 'वसु' को इडागम का अभाव, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप, **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप और **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से दीर्घ होता है।*

{रु-आदेशप्रकरणम्}

रु-आदेशः-

(१) ससजुषो रुः।६६।

प०वि०-स-सजुषोः ६।१ रुः १।१।

स०-सश्च सजुष् च एतयोः समाहारः ससजुष्, तस्य-ससजुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ससजुषः पदस्य रुः।

अर्थः-सकारान्तस्य सजुष् इत्येतस्य च पदस्य रुरादेशो भवति।

उदा०-(सकारान्तः) अग्निरत्र। वायुरत्र। (सजुष्) सजूर्ऋषिभिः (ऋ०मै०सं० २।८।१)। सजूर्देवेभिः (ऋ० ७।३४।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ससजुषः) सकारान्त और सजुष् (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (रुः) रु आदेश होता है।*

उदा०-(सकारान्त) ***अग्निरत्र।*** *यहां अग्नि है।* ***वायुरत्र।*** *यहां वायु है।* ***(सजुष्) सजूर्ऋषिभिः*** *(ऋ०मै०सं० २।८।१)। ऋषियों के साथ।* ***सजूर्देवेभिः*** *(ऋ० ७।३४।१५)। देवों के साथ। देव=विद्वान्।*

सिद्धि-(१) अग्निरत्र। *अग्नि+सु। अग्नि+स्। अग्निस्+अत्र। अग्निरु+अत्र। अग्निर्+अत्र। अग्निरत्र।*

यहां 'अग्नि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' (१।३।२) से उकार की इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' (१।३।९) उसका लोप होता है। इस सूत्र से सकारान्त 'अग्निस्' शब्द के अन्त्य सकार के स्थान में 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् उकार की इत्संज्ञा होकर उसका लोप होता है। ऐसे ही- ***वायुस्+अत्र=वायुरत्र।***

(२) ***सजूर्ऋषिभिः।*** *'सजुष्' शब्द में सह-उपपद 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' (तु०आ०) धातु से वा०-'सम्पदादिभ्यः क्विप्' (३।३।९४) से भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय है। इसका सर्वहारी लोप होता है। 'सह जुषते इति सजूः। वा०- 'उपपदमतिङ्' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष है। 'सहस्य सः संज्ञायाम्' (६।३।७८) से 'सह' को 'स' आदेश होता है। यह सह-अर्थ का वाचक है। इस सूत्र से सजुष् इस पद के अन्त्य षकार के स्थान में रु-आदेश होता है। यह सूत्र 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) का अपवाद है।*

निपातनम्—

(२) अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च।६७।

प०वि०- अवयाः १।१ (सम्बुद्धिः)। श्वेतवाः १।१ (सम्बुद्धिः)। पुरोडाः १।१ (सम्बुद्धिः)। च अव्ययपदम्।

अन्वयः-अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्चेति निपातनम्।

अर्थः-अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडा इत्येते **शब्दाश्च** निपात्यन्ते।

उदा०-हे अवयाः ! (मा०सं० ३।४६)। हे श्वेतवाः ! हे पुरोडाः ! (ऋ० ३।२८।२)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अवयाः०) अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः ये* ***शब्द (च)*** *भी निपातित हैं।*

*उदा०-हे **अवयाः** ! (मा०सं० ३।४६)। अवयाः=विरुद्ध कर्म न करनेवाला ईश्वर। हे **श्वेतवाः** ! श्वेतवाः=श्वेत घोड़े जिसके वाहन हैं वह इन्द्र=राजा। हे **पुरोडाः** ! (ऋ० ३।२८।२)। विधिपूर्वक संस्कृत अन्नविशेष जिसकी पहले आहुति दी जाती है और पश्चात् उसका भक्षण किया जाता है।*

*सिद्धि-अवयाः ! अव-उपसर्गपूर्वक '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से '**अवे यजः**' (३।२।७२) से 'ण्विन्' प्रत्यय है। वा०-'**श्वेतावहादीनां डस् पदस्य च**' (३।२।७१) से 'ण्विन्' के स्थान में 'डस्' आदेश होता है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।४३) से 'यज्' के टि-भाग (अज्) का लोप होता है। अवयजस्+सु। इस स्थिति में '**अत्वसन्तस्य चाधातोः**' (६।४।१४) से दीर्घ होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से 'अवयास्' को '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से रुत्व और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। '**अत्वसन्तस्य चाधातोः**' (६।४।१४) में 'असम्बुद्धि' की अनुवृत्ति है। इसका सम्बुद्धि में भी दीर्घत्व के लिये निपातन किया गया है।*

*(२) श्वेतवाः। यहां श्वेत-उपपद '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**मन्त्रे श्वेतवहो०**' (३।२।७१) से 'ण्विन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) पुरोडाः। यहां पुरस्-उपपद '**दाशृ दाने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ण्विन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

रु-आदेशः–

(३) अहन्।६८।

वि०-अहन् ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्)।

अनु०-पदस्य, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहन् इति पदस्य रुः।

अर्थः-अहन् इत्येतस्य पदस्य रुरादेशो भवति।

उदा०-(अहन्) अहोभ्याम्। अहोभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहन्) अहन् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (रुः) रु आदेश होता है।*

*उदा०-(अहन्) **अहोभ्याम्**। दो दिनों से। **अहोभिः**। सब दिनों से।*

*सिद्धि-**अहोभ्याम्**। अहन्+भ्याम्। अहरु+भ्याम्। अहर्+भ्याम्। अह उ+भ्याम्। अहो+भ्याम्। अहोभ्याम्।*

यहां 'अहन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) की 'अहन्' की पद संज्ञा है। इस सूत्र से 'अहन्' पद के अन्त्य वर्ण नकार के स्थान में रु आदेश होता है। 'हशि च' (६।१।१११) से रु के रेफ को उकारादेश और 'आद्गुणः' (६।१।८५) से गुणरूप (अ+उ=ओ) एकादेश है। भिस्-प्रत्यय में-अहोभिः।

यहां 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप प्राप्त था, अतः यह रु-आदेश का विधान किया गया है।

र-आदेशः–

(४) रोऽसुपि।६६।

प०वि०–रः १।१ असुपि ७।१।

स०–न सुप् इति असुप्, तस्मिन्–असुपि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, अहनिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अहनिति पदस्यासुपि रः।

अर्थः–अहनित्येतस्य पदस्याऽसुपि परतो रेफादेशो भवति।

उदा०–(**अहन्**) अहर्ददाति। अहर्भुङ्क्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहन्) अहन् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण के स्थान पर (रः) रेफादेश होता है।*

*उदा०-(अहन्) **अहर्ददाति**। वह दिन भर दान करता है। **अहर्भुङ्क्ते**। वह दिन भर खाता-पीता है।*

*सिद्धि-**अहर्ददाति**। अहन्+अम्। अहन्+०। अहर्+ददाति=अहर्ददाति।*

यहां 'अहन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। 'स्वमोर्नपुंसकात्' (७।२।२३) से 'अम्' का लुक् होता है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' (१।४।१४) से इसकी पद संज्ञा है। इस सूत्र से 'अहन्' पद को 'सुप्' प्रत्यय परे न होने पर रेफादेश होता है। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (२।३।५) से अत्यन्त संयोग में द्वितीया विभक्ति है।

उभयथा (रुः+रः)–

(५) अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि।७०।

प०वि०–अम्नर्-ऊधर्-अवः ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्), इति अव्ययपदम्, उभयथा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-अम्नश्च ऊधश्च अवश्च एतेषां समाहार:-अम्नरूधरव: (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-पदस्य, रु:, रेफ इति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि अम्नरूधरवरिति पदानां रू रेफो वा उभयथा।

अर्थ:-छन्दसि विषयेऽम्नस्, ऊधस्, अवस् इत्येतेषां पदानां रुर्वा रेफो वेत्युभयथा भवति।

उदा०-**(अम्नस्)** अम्न एव (मै०सं० १।६।१०)। अम्नरेव। **(ऊधस्)** ऊध एव (काठ० ७।५)। ऊधरेव। **(अवस्)** अव एव (शौ०सं० २०।२५।२)। अवरेव।

आर्यभाषा: *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अम्न०) अम्नस्, ऊधस्, अवस् (इति) इन (पदानाम्) पदों को (रु:, रेफ:) रु-आदेश और रेफादेश (उभयथा) दोनों प्रकार होते हैं।*

उदा०-(अम्नस्) अम्न एव (मै०सं० १।६।१०) ***अम्नरेव।*** *अम्न:। (ऊधस्) ऊध एव (काठ० ७।५)* ***ऊधरेव।*** *ऊध:=रात्रि-नाम (निघण्टु १।७)।* ***(अवस्) अव एव*** *(शौ०सं० २०।२५।२)* ***अवरेव।*** *अव:=अन्न-नाम (निघण्टु २।७)।*

सिद्धि-अम्न *एव। अम्नस्+एव। अम्नरु+एव। अम्नर्+एव। अम्नय्+एव। अम्न०+एव। अम्न एव।*

यहां 'अम्नस्' पद के अन्त्य सकार को इस सूत्र से 'रु' आदेश है। ***'भो भगो अघो अपूर्वपूर्वस्य योऽशि'*** *(८।३।१७) से 'रु' के रेफ को यकारादेश और* ***'लोप: शाकल्यस्य'*** *(८।३।१९) से यकार का लोप होता है। द्वितीय प्रकार में रेफादेश है-****अम्नरेव।*** *ऐसे ही-उध एव,* ***ऊधरेव। अव एव, अवरेव।***

उभयथा (रु:+र:)-

(६) भुवश्च महाव्याहृते।७१।

प०वि०-भुव: अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, महाव्याहृते: ६।१।

अनु०-पदस्य, रु:, र:, उभयथा, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि महाव्याहृतेर्भुर्वरिति रू रेफो वा उभयथा।

अर्थ:-छन्दसि विषये महाव्याहृतेर्भुवरित्येतस्य पदस्य च रुर्वा रेफो वेत्युभयथा भवति।

उदा०-(**भुवस्**) भुव इत्यन्तरिक्षम्, भुवरित्यन्तरिक्षम्।

'भुवः' इत्येतदव्ययमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (महाव्याहृतेः) महाव्याहृतिसंज्ञक (भुवः) भुवस् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (च) भी (रुः, रः) रु-आदेश और रेफादेश (उभयथा) दोनों प्रकार के होते हैं।*

*उदा०-(भुवस्) **भुव इत्यन्तरिक्षम्, भुवरित्यन्तरिक्षम्।** 'भुवः' यह अन्तरिक्षवाची अव्यय महाव्याहृति कहलाता है।*

सिद्धि-भुव इति। *यहां इस सूत्र से 'भुवस्' के अन्त्य सकार को 'रु' आदेश है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को यकारादेश और उसका लोप होता है। द्वितीय प्रकार में रेफादेश है-**भुवरित्यन्तरिक्षम्।***

द-आदेशः--

(७) वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः।७२।

प०वि०-वसु-स्रंसु-ध्वंसु-अनडुहाम् ६।३ दः १।१।

स०-वसुश्च स्रंसुश्च ध्वंसुश्च अनड्वाँश्च ते वसुस्रंसुध्वंस्वनड्वाहः, तेषाम्-वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) इत्यस्माच्च 'सः' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-सो वसोर्वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां पदानां च दः।

अर्थः-सकारान्तस्य वस्वन्तस्य स्रंसुध्वंस्वनडुहां च पदानां दकारादेशो भवति।

उदा०-(**वसुः**) विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः। (**स्रंसु**) उखास्रद्भ्याम्, उखास्रद्भिः। (**ध्वंसु**) पर्णध्वद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः। (**अनडुह्**) अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) सकारान्त (वसु) वसु-अन्त (स्रंसुध्वस्वनडुहाम्) स्रंसु, ध्वंसु, अनडुह् इन (पदानाम्) पदों के अन्त्य वर्ण को (दः) दकारादेश होता है।*

*उदा०-(वसु) **विद्वद्भ्याम्।** दो विद्वानों से। **विद्वद्भिः।** सब विद्वानों से। **(स्रंसु) उखास्रद्भ्याम्।** उखा (हण्डिया) से गिरनेवाले दो पदार्थों से। **उखास्रद्भिः।** उखा से गिरनेवाले सब पदार्थों से। (ध्वंसु) **पर्णध्वद्भ्याम्।** पत्तों को गिरानेवाले दो पुरुषों से। **पर्णध्वद्भिः।** पत्तों को गिरानेवाले सब पुरुषों से। (अनडुह्) **अनडुद्भ्याम्।** दो बैलों से। **अनडुद्भिः।** सब बैलों से।*

सिद्धि-(१) विद्वद्भ्याम्। विद्वस्+भ्याम्। विद्वद्+भ्याम्। विद्वद्भ्याम्।

यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से 'शतृ' प्रत्यय और 'विदेः शतुर्वसुः' (७।१।३६) से 'शतृ' को 'वसु' आदेश होता है। 'विद्वस्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से 'विद्वस्' की पद-संज्ञा है। इस सूत्र से सकारान्त 'विद्वस्' पद के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'भिस्' प्रत्यय में-विद्वद्भिः।

यहां 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'स' पद की अनुवृत्ति की जाती है उसका सम्बन्ध केवल 'वसु' के साथ है, अर्थात् सकारान्त वसु-प्रत्ययान्त पद को दकारादेश होता है। अतः यहां दकारादेश नहीं है-विद्वान्।

(२) उखास्रद्भ्याम्। यहां उखा-उपपद 'स्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इसका सर्वहारी लोप होता है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से 'स्रंसु' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है। उखास्रस्+भ्याम्-इस स्थिति में इस सूत्र से 'स्रस्' के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'भिस्' प्रत्यय में-उखास्रद्भिः।

(३) पर्णध्वद्भ्याम्। यहां पर्ण-उपपद 'ध्वसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। 'भिस्' प्रत्यय में-पर्णध्वद्भिः।

(४) अनडुद्भ्याम्। 'अनडुह्' शब्द से पूर्ववत्। 'भिस्' प्रत्यय में-अनडुद्भिः।

द-आदेशः-

(८) तिप्यनस्तेः।७३।

प०वि०-तिपि ७।१ अनस्तेः ६।१।

स०-न अस्तिरिति अनस्तिः, तस्य-अनस्तेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, सः, द इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनस्तेः सः पदस्य तिपि दः।

अर्थः-अस्तिवर्जितस्य सकारान्तस्य पदस्य तिपि प्रत्यये परतो दकारादेशो भवति।

उदा०-(चकास्) अचकाद् भवान्। **(शास्)** अन्वशाद् भवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनस्तेः) अस्ति से भिन्न (सः) सकारान्त (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (तिपि) तिप् प्रत्यय परे होने पर (दः) दकारादेश होता है।*

*उदा०-**(चकास्) अचकाद् भवान्।** आप प्रकाशित हुये, चमके। **(शास्) अन्वशाद् भवान्।** आपने शिक्षा की।*

*सिद्धि-**अचकात्।** यहां 'चकासृ दीप्तौ' (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका **'अदिप्रभृतिभ्यः** शपः' (२।४।७२) से लुक् होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से **अपृक्त** त् (तिप्) का लोप होता है। अट्+चकास्-इस स्थिति में इस सूत्र से सकारान्त **'चकास्'** के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से दकार को चर् तकार होता है। अनु-उपसर्गपूर्वक **'शासु अनुशिष्टौ'** (अदा०प०) धातु से-**अन्वशात्।***

रु-आदेशविकल्पः–

(६) सिपि धातो रुर्वा।७४।

प०वि०-सिपि ७।१ धातोः ६।१ रुः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सः पदस्य धातोः सिपि वा रुः।

अर्थः-सकारान्तस्य पदस्य धातोः सिपि प्रत्यये परतो विकल्पेन रुरादेशो भवति, पक्षे च दकारादेशो भवति।

उदा०-**(चकास्)** अचकास्त्वम्, अचकात् त्वम्। **(शास्)** अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) सकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु के अन्त्य वर्ण को (सिपि) सिप् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (रुः) रु आदेश होता है और पक्ष में दकारादेश होता है।*

*उदा०-**(चकास्) अचकास्त्वम्, अचकात् त्वम्।** तू प्रकाशित हुआ, चमका। (शास्) **अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।** तूने शिक्षा की।*

*सिद्धि-**अचकाः।** यहां **'चकासृ दीप्तौ'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका लुक् होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त स् (सिप्) का लोप होता है। अट्-चकास्+०। इस स्थिति में इस सूत्र से सकारान्त पद चकास् धातु के पद को 'सिप्' प्रत्यय परे हेने पर 'रु' आदेश होता है। **'सुप्तिङन्तं पदम्'** (१।४।१४) से पद संज्ञा है। **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। 'अचकास्त्वम्' यहां **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में दकारादेश है-**अचकात् त्वम्।** अनु-उपसर्गपूर्वक 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) धातु से-**अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।***

रु-आदेशविकल्पः–

(१०) दश्च ।७५।

प०वि०–दः ६ ।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–पदस्य, सिपि, धातोः, रुः, वा, द इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दः पदस्य धातोश्च सिपि वा रुः।

अर्थः–दकारान्तस्य पदस्य धातोश्च सिपि प्रत्यये परतो विकल्पेन रुरादेशो भवति, पक्षे च दकारादेशो भवति।

उदा०–**(भिद्)** अभिनस्त्वम्, अभिनत् त्वम्। **(छिद्)** अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दः) दकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु को (च) भी (सिपि) सिप् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (रुः) रु आदेश होता है। पक्ष में दकारादेश होता है।*

*उदा०-**(भिद्) अभिनस्त्वम्, अभिनत् त्वम्।** तूने भेदन किया, फाड़ा। **(छिद्) अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।** तूने छेदन किया, काटा।*

*सिद्धि-**अभिनः।** यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय है और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। **'रुधादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त स् (सिप्) प्रत्यय का लोप होता है। इस सूत्र से 'भिद्' धातु के दकार को रु आदेश होता है। **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है। **अभिनस्त्वम्**-यहां **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में दकरादेश है-**अभिनत् त्वम्। 'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकारादेश है। **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०प०) धातु से-**अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।***

।। इति रु-आदेशप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

दीर्घादेशः–

(१) र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ।७६।

प०वि०–र्वोः ६ ।२ उपधायाः ६ ।१ दीर्घः १ ।१ इकः ६ ।१।

स०–रश्च वश्च तौ र्वौ, तयोः–र्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-र्वः पदस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः।

अर्थः-रेफान्तस्य वकारान्तस्य च पदस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति।

उदा०-(रेफान्तः) गीः, धूः, पूः, आशीः। **(वकारान्तः)** वकारग्रहण-मुत्तरार्थम्, अतस्तत्रैवोदाहरिष्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(र्वः) रेफान्त और वकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु के (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**(रेफान्त) गीः।** वाणी। **धूः।** जूआ। **पूः।** नगरी। **आशीः।** इच्छा। **(वकारान्त)** वकार का ग्रहण उत्तरार्थ है, अतः इसका उदाहरण आगे लिखा जायेगा।*

सिद्धि-(१) गीः। *गॄ+क्विप्। गॄ+वि। गॄ+०। गिर्-सु। गिर्+०। गीर्। गीः।*

*यहां **'गॄ शब्दे'** (क्र्या०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **'ॠत इद्धातोः'** (७।१।१०७) से ॠकार **को** इकारादेश और इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'गिर्' पद के धातु के उपधाभूत इकार को दीर्घ होता है।*

*(२) **पूः। 'पॄ पालनपूरणयोः'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से ॠकार को उकरादेश और इसे पूर्ववत् रपरत्व होता है। इस सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आशीः।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'आङः शासु इच्छायाम्'** (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। **वा०-'शास इत्त्व आशासः क्वावुपसंख्यानम्'** (महाभाष्य ६।४।३४) से 'आशास्' को इकारादेश होता है-**आशिस्। 'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से रुत्व होकर इस सूत्र से रेफान्त पद के धातु के उपधाभूत इवर्ण को दीर्घ होता है।*

दीर्घादेशः-

(२) हलि च।७७।

प०वि०-हलि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातोः, र्वोः, उपधायाः, दीर्घः, इक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-र्वो धातोरुपधाया इको हलि च दीर्घः।

अर्थः-रेफान्तस्य वकारान्तस्य च धातोरुपधाया इको हलि परतश्च दीर्घो भवति।

उदा०-(रेफान्त:) आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। अवगूर्णम्। (वकारान्त:) स दीव्यति। स सीव्यति।

आर्यभाषाः अर्थ-(र्वो:) रेफान्त और वकारान्त (धातो:) धातु के (उपधाया:) उपधाभूत (इक:) इक् वर्ण को (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (च) भी (दीर्घ:) दीर्घ होता है।

*उदा०-(रेफान्त) **आस्तीर्णम्।** बिछाना। **विस्तीर्णम्।** फैलाना। **विशीर्णम्।** तोड़ना। **अवगूर्णम्।** निन्दा करना। **(वकारान्त) स दीव्यति।** वह क्रीडा आदि करता है। **स सीव्यति।** वह सिलाई करता है।*

*सिद्धि-(१) **आस्तीर्णम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्त:'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। **'ॠत इद् धातो:'** (७।१।१००) से ॠकार को इकारादेश और इसे **'उरण् रपर:'** (१।१।५१) से रपरत्व होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'आस्तिर्' धातु को हल् वर्ण (ण) परे होने पर दीर्घ होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो०'** (८।२।४२) से निष्ठा तकार को नकारादेश और **'रषाभ्यां नो ण: समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। वि-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄ' धातु से-**विस्तीर्णम्।***

*(२) **विशीर्णम्।** वि-उपसर्गपूर्वक **'शॄ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०)।*

*(३) **निगीर्णम्।** नि-उपसर्गपूर्वक **'गूरी उद्यमने'** (दि०आ०)।*

*(४) **दीव्यति।** यहां **'दिवु क्रीडायाम्'** (दि०प०) धातु से लट् प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'दिवादिभ्य: श्यन्'** (३।१।६९) से श्यन् विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से वकारान्त 'दिव्' धातु के उपधाभूत इकार को हल् वर्ण (य) परे होने पर दीर्घ होता है। **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से-**सीव्यति।***

दीर्घादेश:-

(३) उपधायां च।७८।

प०वि०-उपधायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातो:, र्वो:, उपधाया:, दीर्घ:, इक:, हलीति चानुवर्तते।

अन्वय:-धातोरुपधायां च र्वोर्हलि उपधाया इको दीर्घ:।

अर्थ:-धातोरुपधायां च वर्तमानौ यौ रेफवकारौ हल्परौ तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति।

उदा०-**(हुर्छा)** हूर्छिता। **(मुर्छा)** मूर्च्छिता। **(उर्वी)** ऊर्विता। **(धुर्वी)** धूर्विता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धातोः) धातु की (उपधायाम्) उपधा में (च) भी विद्यमान (र्वोः) रेफ और वकार (हलि) हल्परक हैं, उनके (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(हुर्छा) **हूर्छिता।** कुटिलता करनेवाला। (मुर्छा) **मूर्च्छिता।** मूर्च्छित होनेवाला। (उर्वी) **ऊर्विता।** हिंसा करनेवाला। (धुर्वी) **धूर्विता।** हिंसा करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **हूर्छिता।** यहां **'हुर्छा कौटिल्ये'** (भ्वा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हुर्छ्' धातु की उपधा में विद्यमान रेफ के उपधाभूत इक् वर्ण (उ) को हल्वर्ण (छ्) परे होने पर दीर्घ होता है।*

*(२) **मूर्छिता।** **'मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः'** (भ्वा०प०)।*

*(३) **ऊर्विता।** **'उर्वी हिंसार्थः'** (भ्वा०प०)।*

*(३) **धूर्विता।** **'धुर्वी हिंसार्थः'** (भ्वा०प०)।*

दीर्घादेशप्रतिषेधः-

(४) न भकुर्छुराम्।७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, भ-कुर्-छुराम् ६।३।

स०-भं च कुर् च छुर् च ते-भकुर्छुरः, तेषाम्-भकुर्छुराम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, र्वोः, उपधायाः, दीर्घः, इकः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-र्वोर्भकुर्छुरामुपधाया दीर्घो न।

अर्थः-रेफान्तस्य वकारान्तस्य च भस्य, कुर् छुर् इत्येतयोश्च धात्वोरुपधाया इको दीर्घो न भवति।

उदा०-(भम्) धुरं वहतीति धुर्यः। धुरि साधुरिति धुर्यः। **(कुर्)** कुर्यात्। **(छुर्)** छुर्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(र्वः) रेफान्त और वकारान्त (भ-कुर्-छुराम्) भ-संज्ञक और कुर् तथा छुर् इन (धात्वोः) धातुओं के (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ (न) होता है।*

*उदा०-(भम्) **धुर्यः।** धुर् (जुआ) को वहने करनेवाला अथवा जुआ में जोतने के लिये समुचित बैल। (कुर्) **कुर्यात्।** वह करे। (छुर्) **छुर्यात्।** वह छेदन करे, कतरे।*

*सिद्धि-(१) **धुर्यः।** यहां 'धुर्' शब्द से **'धुरो यड्ढकौ'** (४।४।७७) से वहति अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। **'यचि भम्'** (४।१।१८) से धुर् शब्द की 'भ' संज्ञा है। इस सूत्र से रेफान्त तथा भ-संज्ञक 'धुर्' शब्द की उपधा को दीर्घत्व का प्रतिषेध होता है।*

(२) कुर्यात्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से लिङ् प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिपप्' आदेश है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से धातु को गुण, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, 'अत उत् सार्वधातुके' से उकारादेश है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।३।१०३) से यासुट् आगम है। 'ये च' (६।४।१०९) से उकार का लोप होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'कुर्' शब्द के उपधाभूत इक् (उ) वर्ण को दीर्घत्व का प्रतिषेध होता है। 'छुर छेदने' (तु०प०) धातु से-छुर्यात्।

उकार-मकारादेशौ—

(५) अदसोऽसेर्दादु दो मः।८०।

प०वि०-अदसः ६।१ असेः ६।१ दात् ५।१ उ १।१ (सु-लुक्) दः ६।१ मः १।१।

स०-अविद्यमानः **सिः=सकारो यस्य** सोऽसिः, तस्य-असेः (बहुव्रीहिः)। असिरित्यत्रेकार उच्चारणार्थः।

अन्वयः-असेरदसो दाद् उः, दो मः।

अर्थः-असेः=असकारान्तस्यादसो दकारात्परस्य वर्णस्य स्थाने उकारादेशो भवति, दकारस्य स्थाने च मकारादेशो भवति।

उदा०-**(अदस्)** अमुम्, अमू, अमून्। अमुना, अमुभ्याम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(असेः) असकारान्त (अदसः) अदस् शब्दों के (दात्) दकार से परवर्ती वर्ण के स्थान में (उः) उकारादेश होता है और (दः) दकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**(अदस्) अमुम्**। उसको। **अमू**। उन दोनों को। **अमून्**। उन सबको। **अमुना**। उससे। **अमुभ्याम्**। उन दोनों से।*

*सिद्धि-(१) **अमुम्**। अदस्+अम्। अद अ+अम्। अद+अम्। अदु+अम्। अमु+म्। अमुम्।*

*यहां 'अदस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से अन्त्य सकार को अकारादेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। इस सूत्र से इस असकारान्त 'अद' शब्द के दकार से परवर्ती अकार को उकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वरूप*

*एकादेश होता है। 'औट्' प्रत्यय में-**अमू**। दीर्घ औकार को दीर्घ ऊकारादेश होता है। 'शस्' प्रत्यय में-**अमून्**। 'तस्माच्छसो नः पुंसि' (६।१।१०१) से सकार को नकारादेश है। 'टा' प्रत्यय में-**अमुना**। 'शेषो घ्यसखि' (१।४।७) से घि-संज्ञा होकर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' (७।३।१२०) से टा (आङ्) के 'ना' आदेश होता है। 'न मु ने' (८।२।३) से ना-आदेश करते समय इस सूत्र से विहित 'मु' आदेश असिद्ध नहीं होता है, अपितु सिद्ध ही रहता है। 'भ्याम्' प्रत्यय में-**अमूभ्याम्**। 'सुपि च' (७।३।१०२) से दीर्घ होता है।*

ईत्-आदेशः--

(६) एत ईद् बहुवचने।८१।

प०वि०-एतः ६।१ ईत् १।१ बहुवचने ७।१।

अनु०-अदसः, असेः, दात्, उः, दः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असेरदसो दाद् एतो बहुवचने ईत्, दो मः।

अर्थः-असेः=असकारान्तस्यादसो दकारात् परस्यैकारस्य स्थाने बहुवचने ईकारादेशो भवति, दकारस्य स्थाने च मकारादेशो भवति।

उदा०-(अदस्) अमी। अमीभिः। अमीभ्यः। अमीषाम्। अमीषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(असेः) असकारान्त (अदसः) अदस् शब्द के (दात्) दकार से परवर्ती (एतः) एकार के स्थान में (बहुवचने) बहुवचन में (ईत्) ईकारादेश होता है और (दः) दकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-(अदस्) **अमी**। वे सब। **अमीभिः**। उन सबसे। **अमीभ्यः**। उन सबके लिये/से। **अमीषाम्**। उन सबका। **अमीषु**। उन सब में।*

***सिद्धि-(१) अमी**। अदस्+जस्। अद अ+शी। अद+ई। अद्+ए। अद्+ई। अम्+ई। अमी।*

*यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अदस् के सकार को अकारादेश और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' को 'शी' आदेश और 'आद्गुणः' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश एकार होता है। इस सूत्र से एकार को ईकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। ऐसे ही 'भिस्' प्रत्यय में-**अमीभिः**। 'बहुवचने झल्येत्' (७।३।१०३) से अकार को एकारादेश होता है। 'भ्यस्' प्रत्यय में-**अमीभ्यः**। 'आम्' प्रत्यय में-**अमीषाम्**। 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' (७।१।५२) से 'सुट्' आगम होता है। 'सुप्' प्रत्यय में-**अमीषु**।*

{प्लुतादेशप्रकरणम्}

अधिकारः–

(१) वाक्यस्य टेः प्लुत उदत्तः।८२।

प०वि०–वाक्यस्य ६।१ टेः ६।१ प्लुतः १।१ उदात्तः १।१।

अर्थः–वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्त इत्यधिकारोऽयम्, आ पादपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे वक्ष्यति–'**वाक्यस्य टेः प्लुदात्त उदात्तः**' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति–'**प्रत्यभिवादेऽशूद्रे**' (८।२।८२) इति। अभिवादये देवदत्तोऽहम्, भो आयुष्मानेधि देवदत्त३।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(वाक्यस्य०) 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' यह अधिकार सूत्र है। इसका इस पाद की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे–वह (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि–भाग को (प्लुतः) प्लुत (उदात्तः) उदात्त होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे–'**प्रत्यभिवादेऽशूद्रे**' (८।२।८२) अर्थात् गुरु प्रत्यभिवादन में जब आशीर्वाद देता है तब शूद्र–विषय को छोड़कर उस वाक्य के टि–भाग को प्लुत उदात्त होता है। जैसे–**अभिवादये देवदत्तोऽहम, भो आयुष्मानेधि देवदत्त३**। हे गुरुवर ! मैं देवदत्त आपको अभिवादन करता हूं, हे देवदत्त३ तू आयुष्मान् हो।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(२) प्रत्यभिवादेऽशूद्रे।८३।

प०वि०–प्रत्यभिवादे ७।१ अशूद्रे ७।१।

स०–न शूद्र इति अशूद्रः, तस्मिन्–अशूद्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अशूद्रे प्रत्यभिवादे वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–शूद्रविषयवर्जिते प्रत्यभिवादे यद् वाक्यं वर्तते, तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अभिवादये देवदत्तोऽहम्, आयुष्मानेधि भो देवदत्त३।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अशूद्रे) शूद्र विषय से भिन्न (प्रत्यभिवादे) गुरु और शिष्य को प्रत्यभिवादन में अपने शिष्य को जिस वाक्य से आशीर्वाद देता है उस (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि–भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**अभिवादये देवदत्तोऽहम्, आयुष्मानेधि भो देवदत्त३**। हे गुरुवर ! मैं देवदत्त आपको **अभिवादन करता हूं, हे** देवदत्त३ तू आयुष्मान् हो।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(३) दूरद्धूते च।८४।

प०वि०–दूरात् ५।१ हूते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दूराद् धूते च वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–दूराद् हूते=आह्वाने च यद् वाक्यं वर्तते, तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–आगच्छ भो माणवक देवदत्त३। आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त३।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दूरात्) दूर से (हूते) आह्वान करने में (च) भी जो (वाक्यस्य) वाक्य है, उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**आगच्छ भो माणवक देवदत्त३।** हे बालक देवदत्त तू आ जा। **आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त३।** हे बालक यज्ञदत्त तू आ जा।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(४) हैहेप्रयोगे हैहयोः।८५।

प०वि०–है-हेप्रयोगे ७।१ है-हयोः ६।२।

स०–हैश्च हेश्च तौ हैहयौ, तयोः प्रयोग इति हैहेप्रयोगः, तस्मिन्-हैहेप्रयोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। हैश्च हेश्च तौ हैहयौ, तयोः हैहयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वाक्यस्य, प्लुतः, उदात्तः, दूरात्, हूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दूराद्धूते हैहेप्रयोगे वाक्यस्य हैहयोः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–दूराद्धूते=आह्वाने हैहेप्रयोगे यद् वाक्यं वर्तते, तत्र हैहयोरेव प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–(है) है३ देवदत्त! देवदत्त है३। (हे) हे३ देवदत्त ! देवदत्त हे३।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दूरात्) दूर से (हूते) आह्वान करने में (हैहेप्रयोगे) है और हे शब्दों के प्रयोग में जो (वाक्यस्य) वाक्य है, वहां (हैहयोः) है औ हे शब्दों को ही (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-(है) है३ देवदत्त ! देवदत्त है३। हे देवदत्त ! (हे) हे३ देवदत्त ! देवदत्त है३। हे देवदत्त !

प्लुतः (उदात्तः)–

(५) गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्।८६।

प०वि०–गुरोः ६।१ अनृतः ६।१ अनन्त्यस्य ६।१ अपि अव्ययपदम्, एकैकस्य ६।१ प्रचाम् ६।३।

स०–न ऋद् इति अनृत्, तस्य–अनृतः (नञ्तत्पुरुषः)। अन्ते भव इति अन्त्यः, न अन्त्य इति अनन्त्यः तस्य–अनन्त्यस्य (नञ्तत्पुरुषः)। एकम् एकमिति एकैकम्, तस्य–एकैकस्य। **'एकं बहुव्रीहिवत्'** (८।१।९) इत्यनेन वीप्सायां द्विर्वचनं बहुव्रीहिभावश्च।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वाक्यस्यानृतोरनन्त्यस्यैकैकस्य गुरोः, अपिवचनादन्त्यस्यापि टेः प्राचां प्लुत उदात्तः।

अर्थः–वाक्यस्य ऋकारवर्जितस्यैकैकस्य गुरुवर्णस्य, अपिवचनादन्त्यस्यापि टेः प्राचामाचार्याणां मतेन प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–आयुष्मानेधि दे३वदत्त ! देवद३त्त ! देवदत्त३ ! आयुष्मानेधि य३ज्ञदत्त ! यज्ञद३त्त ! यज्ञदत्त३ !

'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३) इत्येवमादिना यः प्लुतो विहितस्तस्यायं स्थानविशेष उपदिश्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वाक्यस्य) वाक्य के (अनृतः) ऋवर्ण से भिन्न (अन्त्यस्य) अन्त में अविद्यमान (एकैकस्य) एक-एक (गुरोः) गुरु वर्ण को और (अपि) अपि-वचन से अन्त्य (टेः) टि-भाग को भी (प्राचाम्) प्राच्य भारत के आचार्यों के मत में (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-आयुष्मानेधि दे३वदत्त ! देवद३त्त ! देवदत्त३ ! हे देवदत्त ! तू दीर्घायु हो। आयुष्मानेधि य३ज्ञदत्त ! यज्ञद३त्त ! यज्ञदत्त३ ! हे यज्ञदत्त ! तू दीर्घायु हो।

'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३) इत्यादि से जो प्लुत विधान किया गया है उसका यह स्थानविशेष का उपदेश है।

प्लुतः (उदात्तः)-

(६) ओमभ्यादाने।८७।

प०वि०-ओम् अव्ययपदम्, अभ्यादाने ७।१।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यादाने ओम् प्लुत उदात्तः।

अर्थः-अभ्यादाने वर्तमानस्य ओमित्येतस्य पदस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

अभ्यादानम्=प्रारम्भः। स च वेदस्वाध्यायादेः प्रारम्भो वेदितव्यः।

उदाहरणम्-

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यादाने) वेद-स्वाध्याय आदि के प्रारम्भ में (ओम्) ओम् इस (पदस्य) पद को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदाहरण-

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)

प्लुतः (उदात्तः)-

(७) ये यज्ञकर्मणि।८८।

प०वि०-ये ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) यज्ञकर्मणि ७।१।

स०-यज्ञस्य कर्मेति यज्ञकर्म, तस्मिन्-यज्ञकर्मणि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञकर्मणि ये पदस्य प्लुत उदात्तः।

अर्थः-यज्ञकर्मणि ये इत्येतस्य पदस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–(**ये**) ये३यजामहे। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन (ऋ० ८।४४।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ*-*(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (ये) इस (पदस्य) पद को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-*(ये)* ***ये३यजामहे। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैबोधयतातिथिम्। आस्मिन्*** *हव्या जुहोतन (ऋ० ८।४४।१)।*

विशेषः *श्रौत यज्ञ-कर्म में याज्या अर्थात् जिस मन्त्र से आहुति दी जाती है, उसके प्रारम्भ में 'ये३यजामहे' उच्चारण किया जाता है।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(८) प्रणवष्टेः।८६।

प०वि०–प्रणवः १।१ टेः ६।१।

अनु०–पदस्य, वाक्यस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि वाक्यस्य पदस्य टेः प्रणवः।

अर्थः–यज्ञकर्मणि वाक्यस्य पदस्य टेः प्रणवादेशो भवति, स च प्लुत उदात्तश्च भवति।

उदा०–अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ० ८।४४।१६)। देवान् जिगाति सुम्नयो३म् (ऋ० ३।२७।१)।

"क एष प्रणवो नाम ? पादस्य वाऽर्धर्चस्य वाऽन्त्यमक्षरमुपसंगृह्य तदाद्यक्षरशेषस्य स्थाने त्रिमात्रमोकारम् ओङ्कारं वा विदधति तं प्रणवमित्याचक्षते" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ*-*(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (वाक्यस्य) वाक्य विशेष के (पदस्य) पद के (टेः) टि-भाग को (प्रणवः) ओङ्कार आदेश होता है।*

उदा०-***अपां रेतांसि जिन्वतो३म्*** *(ऋ० ८।४४।१६)।* ***देवान् जिगाति सुम्नयो३म्*** *(ऋ० ३।२७।१)।*

"यह प्रणव क्या है ? पाद के अथवा अर्धर्च के अन्त्य स्वर को लेकर तदादि शेष व्यञ्जन के स्थान में त्रैमात्रिक ओकार अथवा ओङ्कार आदेश करते हैं, उसे प्रणव कहते हैं" (काशिका)।

विशेषः *सामिधेनी आदि ऋचाविशेषों में ही टि को प्रणव (ओङ्कार) यज्ञकर्म में होता है, सभी मन्त्रों में नहीं। अतः सभी मन्त्रों के अन्त में 'टि' को ओ३म् करके यज्ञकर्म में बोलना, अवैदिक क्रिया है, ऐसा समझना चाहिये। यह ओ३म् आदेश वहीं होता है, जहां ऋक्समूह का पाठमात्र होता है, वौषट् वा स्वाहा शब्द का प्रयोग नहीं होता। यह श्रौतकर्म का नियम है (अष्टाध्यायीप्रथमावृत्ति पृ० ५४५)।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(६) याज्यान्तः।६०।

प०वि०–याज्याऽन्तः १।१।

स०–याज्यानामन्त इति याज्यान्तः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि याज्यानामन्तष्टिः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–यज्ञकर्मणि ये याज्याः=याज्यानुवाक्याकाण्डे ये मन्त्राः पठ्यन्ते तेषामन्त्यष्टिः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–स्तोमैर्विधेमाग्नये३। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाह३म्।

"याज्या नाम ऋचः काश्चिद् वाक्यसमुदायरूपाः, तत्र यावन्ति वाक्यानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति। सर्वान्तस्यैवेष्यते। तदर्थमन्तग्रहणम्" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में जो (याज्यान्तः) याज्या अनुवाक्या काण्ड में मन्त्र पढ़े हैं उनके अन्तिम मन्त्र के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**स्तोमैर्विधेमाग्नये३। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाह३म्।***

"याज्या नामक कुछ ऋचायें वाक्यसमुदाय आत्मक हैं। उनमें सब वाक्यों के टि-भाग को प्लुत प्राप्त होता है। सबसे अन्तिम वाक्य को ही प्लुत अभीष्ट है, अतः यहां अन्त पद का ग्रहण किया गया है" (काशिका)।

विशेषः *(१) अन्य संहिताओं में याज्यानुवाक्या मन्त्र बिखरे हुये हैं, परन्तु मैत्रायणी संहिता (४।१०-१४) में सब मन्त्र एक स्थान पर पठित हैं, यह याज्यानुवाक्य काण्ड ही कहाता है। (२) याज्या वे मन्त्र कहाते हैं जिनसे श्रौतकर्म में यजन=आहुति प्रदान किया जाता है (अष्टाध्यायीप्रथमावृत्ति पाद टिप्पणी पृ० ५४५)।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१०) ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः।६१।

प०वि०–ब्रूहि-प्रेष्य-श्रौषट्-वौषट्-आवहानाम् ६।३ आदेः ६।१।

स०–ब्रूहिश्च प्रेष्यश्च श्रौषट् च वौषट् च आवहश्च ते ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहाः, तेषाम्-ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानां पदानामादेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–यज्ञकर्मणि ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानां पदानामादेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–**(ब्रूहि)** अग्नयेऽनुब्रू३हि (श०ब्रा० २।५।३।१२)। **(प्रेष्य)** अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य। **(श्रौषट्)** अस्तु श्रौ३षट् (तै०सं० १।६।११।१)। **(वौषट्)** सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट् (ऐ०ब्रा० ३।५।६)। **(आवह)** अग्निमा३ वह (तै०ब्रा० ३।५।३।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (ब्रूहि०) ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट्, आवह इन (पदानाम्) पदों के (आदेः) आदिम अच् को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–(ब्रूहि) **अग्नयेऽनुब्रू३हि** (श०ब्रा० २।५।३।१२)। अनुब्रूहि यह लोट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन है। (प्रेष्य) **अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य**। प्रेष्य यह प्र-उपसर्गपूर्वक 'इषु गतौ' (दि०प०) धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से श्यन् विकरण प्रत्यय है। प्रेष्य=प्रदान कर। (श्रौषट्) **अस्तु श्रौ३षट्** (तै०सं० १।६।११।१)। श्रौषट् यह स्वाहावाची निपात है। (वौषट्) **सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट्** (ऐ०ब्रा० ३।५।६)। वौषट् यह स्वाहावाची निपात है। (आवह) **अग्निमा३ वह** (तै०ब्रा० ३।५।३।२)। यह आङ्-उपसर्गपूर्वक 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन है। आवह=प्राप्त कर।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(११) अग्नीत्प्रेषणे परस्य च।६२।

प०वि०–अग्नीत्प्रेषणे ७।१ परस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-अग्निमीन्धे इति अग्नीत्=ऋत्विग्विशेषः । अग्नीधः प्रेषणमिति अग्नीत्प्रेषणम्, तस्मिन्-अग्नीत्प्रेषणे (षष्ठीतत्पुरुषः) । प्रेषणम्=नियोजनम् ।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणि, आदेरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-यज्ञकर्मणि अग्नीत्प्रेषणे पदस्यादेः परस्य च प्लुत उदात्तः ।

अर्थः-यज्ञकर्मणि अग्नीत्प्रेषणेऽर्थे वर्तमानस्य पदस्यादेस्तत्परस्य चाऽचः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति ।

उदा०-आ३श्रा३वय । ओ३श्रा३वय ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (अग्नीत्प्रेषणे) अग्नीत् नामक ऋत्विक् के यज्ञ-कर्म में नियुक्त करने अर्थ में वर्तमान (पदस्य) पद के (आदेः) आदिम अच् को (च) और उससे (परस्य) परवर्ती अच् को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है ।*

उदा०-आ३श्रा३वय । ओ३श्रावय ।

***विशेषः** अग्नीध् (ऋत्विक्) कचरे के स्थान या उत्कर के समीप स्फ्य नामक तलवार लेकर बैठता था । उसे अध्वर्यु द्वारा जो आज्ञा दी जाती उसे अग्नीत्प्रेषण या आश्रवण कहते थे । उसका यह रूप था-आ३श्रा३वय, कुछ शाखाओं में इसे ओ३श्रा३वय कहा गया है । इस प्रैष का अभिप्राय था-कृपा करके देवता तक यज्ञ की सूचना पहुंचा दें कि सब ठीक-ठाक है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ३६८) ।*

अग्नीत् ऋत्विक् ब्रह्मा का सहायक होता है और असुरों से यज्ञ की रक्षा करता है ।

प्लुतः (उदात्तः)–

(१२) विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ।६३ ।

प०वि०-विभाषा १ ।१ पृष्टप्रतिवचने ७ ।१ हेः ६ ।१ ।

स०-पृष्टस्य प्रतिवचनमिति पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्-पृष्टप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः) ।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्तः इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-पृष्टप्रतिवचने हेः पदस्य विभाषा प्लुत उदात्तः ।

अर्थः-पृष्टस्य प्रतिवचने=प्रत्युत्तरेऽर्थे वर्तमानस्य हि-पदस्य विकल्पेन प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति ।

उदा०-अकार्षीः कटं देवदत्त ? अकार्षं हि३, अकार्षं हि । अलावीः केदारं देवदत्त ? अलाविषं हि३, अलाविषं हि ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने अर्थ में विद्यमान (हि:) हि इस (पदस्य) पद को (विभाषा) विकल्प से (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (उदात्त:) उदात्त होता है।*

*उदा०-अकार्षी: कटं देवदत्त ? **अकार्षं हि३, अकार्षं हि।** हे देवदत्त ! क्या तूने चटाई बना ली है ? हां बना ली है। **अलावी: केदारं देवदत्त ? अलाविषं हि३, अलाविषं हि।** हे देवदत्त ! क्या तूने खेत काट लिया है ? हां काट लिया है।*

प्लुतः (उदात्तः)-

(१३) निगृह्यानुयोगे च।६४।

प०वि०-निगृह्य अव्ययपदम् (ल्यप्प्रत्ययान्तमेतत्) अनुयोगे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वाक्यस्य, टे:, प्लुत:, उदात्त: विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वय:-निगृह्यानुयोगे च वाक्यस्य टे: प्लुत उदात्त:।

अर्थ:-निगृह्यानुयोगेऽर्थे च यद् वाक्यं वर्तते तस्य टे: प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति। स्वमतात् प्रच्यावनम्=निग्रह:। अनुयोग:=तस्य मतस्याविष्करणम्।

उदा०-अनित्य: शब्द इति केनचित् प्रतिज्ञातम्, तं युक्तिभिर्निगृह्योपालिप्सु: प्रतिवादी सासूयमनुयुङ्क्ते-अनित्य: शब्द इत्यात्थ३, अनित्य: शब्द इत्यात्थ। अद्य श्राद्धमित्यात्थ३, अद्य श्राद्धमित्यात्थ। अद्यामावास्येत्यात्थ३, अद्यामावस्येत्यात्थ। अद्य अमावस्येत्येवं वादी युक्त्या स्वमतात् प्रचाव्यैवमनुयुज्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निगृह्यानुयोगे) किसी वादी को उसके मत से प्रच्युत करनेवाले प्रतिवादी के द्वारा असूयापूर्वक उसके मत को प्रकाशित करने अर्थ में विद्यमान (च) भी (वाक्यस्य) वाक्य के (टि:) टि-भाग को (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (उदात्त:) उदात्त होता है।*

*उदा०-'शब्द अनित्य है' ऐसी किसी ने प्रतिज्ञा की। प्रतिवादी युक्तियों से उसके अपने मिथ्या मत से प्रच्युत करके असूयापूर्वक उसके मत को प्रकाशित करता है-**अनित्य: शब्द इत्यात्थ३, अनित्य: शब्द इत्यात्थ।** शब्द अनित्य है ऐसा तू कहता है ? **अद्य श्राद्धमित्यात्थ३, अद्य श्राद्धमित्याथ।** आज श्राद्ध है ऐसा तू कहता है ? **अद्यामावास्येत्यात्थ३, अद्यामावास्येत्यात्थ।** आज अमावस्या है ऐसा तू कहता है ?*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१४) आम्रेडितं भर्त्सने।६५।

प०वि०–आम्रेडितम् १।१ भर्त्सने ७।१।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भर्त्सने आम्रेडितं पदं प्लुत उदात्तः।

अर्थः–भर्त्सनेऽर्थे यदाऽऽम्रेडितं पदं तस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–चौर चौर३, वृषल वृषल३, दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भर्त्सने) भर्त्सन=धमकाने अर्थ में विद्यमान जो (आम्रेडितम्) आम्रेडित (पदम्) पद है उसको (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**चौर चौर३, वृषल वृषल३, दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।** हे चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बन्धवाऊंगा।*

*यहां **'वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु'** (८।१।८) से वाक्य के आदि में विद्यमान आमन्त्रित चौर आदि पदों को द्वित्व होता है, **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती आमन्त्रित पद की आम्रेडित संज्ञा है। इस सूत्र से यह प्लुत और उदात्त होता है।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१५) अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्।६६।

प०वि०–अङ्गयुक्तम् १।१ तिङ् १।१ आकाङ्क्षम् १।१।

स०–अङ्ग इत्यनेन युक्तमिति अङ्गयुक्तम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, भर्त्सने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भर्त्सनेऽङ्गयुक्तम् आकाङ्क्षं तिङ् पदं प्लुत उदात्तः।

अर्थः–भर्त्सनेऽर्थे वर्तमानमङ्गयुक्तं साकाङ्क्षं यत् तिङन्तं पदं तस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अङ्ग कूज३, अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भर्त्सने) धमकाना अर्थ में विद्यमान (अङ्गयुक्तम्) 'अङ्ग' शब्द से युक्त (आकाङ्क्षम्) साकाङ्क्ष जो (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद है, उसको (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**अङ्ग कूज३, अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।** अङ्ग=प्रिय ! तू चहचा ले, बक ले, इसका फल तुझे अब ज्ञात होगा। यहां अङ्ग शब्द अमर्ष (भर्त्सन) का द्योतक है।*

प्लुतः (उदात्तः)--

(१६) विचार्यमाणानाम् ।६७।

प०वि०-विचार्यमाणानाम् ६ ।३ ।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुत उदात्तः ।

अर्थः-विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति ।

उदा०-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ। तिष्ठेद् यूपा३इ। अनुहरेद् यूपा३इ। प्रमाणेन वस्तुपरीक्षणं विचार इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विचार्यमाणानाम्) प्रमाण से वस्तु की परीक्षा करने विषयक (वाक्यानाम्) वाक्यों के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।** यह विचारणीय है कि दीक्षित के घर में हवन करना चाहिये वा नहीं। **तिष्ठेद् यूपा३इ।** वह यज्ञीय स्तम्भ पर ठहरे वा नहीं। **अनुहरेद् यूपा३इ।** वह यूप पर अनुहरण करे वा नहीं।*

*गृहे आदि पदों में इस सूत्र से एच् वर्ण को प्लुत-विधान किया गया है। अतः '**एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ**' (८।२।१०७) से एच् अर्थात् एकार के पूर्वांश आकार को प्लुत होता है और शेष उत्तरांश को इकारादेश होता है।*

प्लुतः (उदात्तः)--

(१७) पूर्वं तु भाषायाम् ।६८।

प०वि०-पूर्वम् १ ।१ तु अव्ययपदम्, भाषायाम् ७ ।१ ।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः, विचार्यमाणानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां विचार्यमाणानां वाक्यानां पूर्वं तु प्लुत उदात्तः ।

अर्थः-भाषायां विषये विचार्यमाणानां वाक्यानां यत् पूर्वं वाक्यं तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-अहिर्नु३ रज्जुर्नु? लोष्टो नु३ कपोतो नु? प्रयोगापेक्षं वाक्यस्य पूर्वत्वं बोद्ध्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भाषायाम्) लौकिक भाषा के विषय में (विचार्यमाणानाम्) प्रमाण से वस्तु की परीक्षा करने विषयक (वाक्यानाम्) वाक्यों में से (तु) तो जो (पूर्वम्) पूर्वोक्त वाक्य है उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**अहिर्नु३ रज्जुर्नु** ? यह सर्प है वा रस्सी है ? **लोष्टो नु३ कपोतो नु** ? यह ढेला है वा कबूतर है ?*

प्रयोग=उच्चारण की अपेक्षा से वाक्य का पूर्वत्व समझें।

प्लुतः (उदात्तः)-

(१८) प्रतिश्रवणे च।९९।

प०वि०-प्रतिश्रवणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रतिश्रवणे च वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः-प्रतिश्रवणेऽर्थे च यद् वाक्यं वर्तते तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-**(अभ्युपगमः)** गां मे देहि भोः, अहं ते ददामि३। **(श्रवणाभिमुख्यम्)** नित्यः शब्दो भवितुमर्हति, देवदत्त भोः किमात्थ३ ?

प्रतिश्रवणम्=अभ्युपगमः, प्रतिज्ञानम्, श्रवणाभिमुख्यं चोच्यते। अत्र यथासम्भवं सर्वेऽर्था गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रतिश्रवणे) अभ्युपगमः=स्वीकार करना, प्रतिज्ञा करना और श्रवणाभिमुख होने अर्थ में जो (वाक्यस्य) वाक्य है उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-(अभ्युपगम) **गां मे देहि भोः, अहं ते ददामि३**। आप मुझे गोदान करें, मैं तुझे गोदान करता हूं। (श्रवणाभिमुख) **नित्यः शब्दो भवितुमर्हति, देवदत्त भोः किमात्थ३** ? शब्द नित्य हो सकता है, हे देवदत्त ! तू इस विषय में क्या कहता है ?*

प्लुतः (अनुदात्तः)–

(१६) अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ।१००।

प०वि०–अनुदात्तम् १।१ प्रश्नान्त-अभिपूजितयोः ७।२।

स०–अत्र प्रश्नार्थे वाक्ये प्रश्नशब्दो वर्तते। प्रश्नस्य अन्त इति प्रश्नान्तः, प्रश्नान्तश्च अभिपूजितश्च तौ प्रश्नान्ताभिपूजितौ, तयोः-प्रश्नान्ताभिपूजितयोः (षष्ठीगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रश्नान्ताभिपूजितयोर्वाक्यस्य टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः–प्रश्नान्तेऽभिपूजिते चार्थे वर्तमानस्य वाक्यस्य टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०–**(प्रश्नान्ते)** अगमं३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।

अग्निभूते, पटो इत्येतयोः पदयोः प्रश्नान्ते वर्तमानयोरनुदात्तः प्लुतो भवति, 'अगमः' इत्येवमादीनां पदानां तु **'अनन्त्यस्य प्रश्नाख्यानयोः'** (८।२।१०५) इत्यनेन स्वरितः प्लुतो विधीयते।

अभिपूजिते–शोभनः खल्वसि माणवक३।

आर्यभाषाः अर्थ–*(प्रश्नान्ताभिपूजितयोः) प्रश्नार्थक वाक्य के अन्तिम पद के तथा अभिपूजित अर्थ में (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०–**(प्रश्नान्त) अगमं३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो ! क्या तू पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था ?*

*यहां अग्निभूते और पटो इन प्रश्नान्त में विद्यमान पदों को इस सूत्र से अनुदात्त प्लुत होता है और 'अगमः' इत्यादि पदों को **'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः'** (८।२।१०५) से स्वरित प्लुत होता है।*

*अभिपूजित–**शोभनः खल्वसि माणवक३।** हे बालक तू वस्तुतः अच्छा है।*

विशेषः *'**अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः**' (८।२।१०५) से वाक्य के अन्त्य और अनन्त्य सभी पदों के टि-भाग को स्वरित प्लुत कहा गया है किन्तु इस वचनप्रमाण से प्रश्नवाक्य के अन्तिम पद को प्लुत अनुदात्त और पक्ष में प्लुत स्वरित भी होता है–**अगमं३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।***

अभिपूजित अर्थ में 'दूराद्धूते च' (८।२।८४) से उदात्त प्लुत प्राप्त था। इस सूत्र से अनुदात्त प्लुत का विधान किया गया है।

'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ' (८।२।१०७) से एच् (ए-ओ) के पूर्वांश अकार को आकारादेश होकर इस सूत्र से इसे अनुदात्त प्लुत होता है और उत्तरांश इकार-उकार उदात्त रहते हैं।

प्लुतः (अनुदात्तः)–

(२०) चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने।१०१।

प०वि०–चित् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, उपमार्थे ७।१ प्रयुज्यमाने ७।१।

स०–उपमाऽर्थो यस्य स उपमार्थः, तस्मिन्–उपमार्थे (बहुव्रीहिः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, अनुदात्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः–चिदित्येतस्मिन् निपाते उपमार्थे प्रयुज्यमाने सति वाक्यस्य टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०–अग्निचिद् भाया३त्। राजचिद् भाया३त्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चित्) चित् (इति) इस निपात का (च) भी (उपमार्थे) उपमा अर्थ में (प्रयुज्यमाने) प्रयोग होने पर (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०-**अग्निचिद् भाया३त्।** वह अग्नि के समान प्रकाशित होवे। **राजचिद् भाया३त्।** वह राजा के समान प्रकाशित होवे। यहां चित् निपात उपमा अर्थ में प्रयुक्त है।*

प्लुतः (अनुदात्तः)–

(२१) उपरि स्विदासीदिति च।१०२।

प०वि०–उपरि अव्ययपदम्, स्वित् अव्ययपदम्, आसीत् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, अनुदात्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपरि स्विदासीदिति वाक्यस्य च टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः-उपरि स्विदासीर्दित्येतस्य च टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०-अधःस्विदासी३त्, उपरि स्विदासी३त् (ऋ० १० ।१२९ ।५)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपरि०) उपरि स्विदासीत् (इति) इस (वाक्यस्य) वाक्य के (च) भी (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०-**अधःस्विदासी३त्, उपरि स्विदासी३त्** (ऋ० १० ।१२९ ।५)। इस जगत् उत्पन्न होने से पूर्व जो तमस् (प्रकृति) था, क्या वह उस जगत्स्रष्टा से नीचे था अथवा ऊपर था अर्थात् कम था अथवा अधिक था, यह विचार किया जारहा है।*

*यहां '**उपरि स्विदासी३त्**' इस वाक्य में इस सूत्र से टि-भाग को अनुदात्त प्लुत होता है और '**अधःस्विदासी३त्**' इस वाक्य में 'विचार्यमाणानाम्' (८ ।२ ।९७) से वाक्य के टि-भाग को उदात्त प्लुत होता है। यहां 'स्वित्' शब्द वितर्कवाची है।*

प्लुतः (स्वरितः)-

(२२) स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु।१०३।

प०वि०-स्वरितम् १।१ आम्रेडिते ७।१ असूया-सम्मति-कोप-कुत्सनेषु ७।३।

स०-असूया च सम्मतिश्च कोपश्च कुत्सनं च तानि-असूयासम्मति-कोपकुत्सनानि, तेषु-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु आम्रेडिते वाक्यस्य टेः प्लुतः स्वरितः।

अर्थः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु आम्रेडिते परतः प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति।

'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' (८।१।८) इत्यनेन यत्र द्विर्वचनमुक्तं तत्रायं प्लुतो विधीयते। **उदाहरणम्**-

(१) **असूयायाम्**-माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

(२) **सम्मतौ**-माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।

(३) **कोपे**-माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

(१) **कुत्सने**-शाक्तीक३ शाक्तीक, याष्टीक३ याष्टीक रिक्ता ते शक्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(असूया०) असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन इन अर्थों में (आम्रेडिते) आम्रेडित-संज्ञक शब्द परे होने पर पूर्ववर्ती शब्द को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (स्वरितः) स्वरित होता है।*

'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' (८।१।८) इस सूत्र से जहां द्विर्वचन का कथन किया गया है, वहां यह प्लुत विधान है। उदाहरण-

*(१) असूया (निन्दा)-**माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।** हे बालक ! अभिरूपक तेरा रूप खाली है।*

*(२) सम्मति (पूजा)-**माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।** हे बालक ! अभिरूपक तू निश्चय से सुन्दर है।*

*(३) कोप (क्रोध)-**माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।** हे बालक ! अविनीतक (ढीठ) नीच तुझे अब पता चलेगा।*

*(१) कुत्सन (निन्दा)-**शाक्तीक३ शाक्तीक, याष्टीक३ याष्टीक रिक्ता ते शक्तिः।** हे शक्ति शस्त्रधारिन्, यष्टि शस्त्रधारिन् तेरी शक्ति खाली है।*

प्लुतः (स्वरितः)-

(२३) क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्।१०४।

प०वि०-क्षिया-आशीःप्रैषेषु ७।३ तिङ् १।१ आकाङ्क्षम् १।१।

स०-क्षिया च आशीश्च प्रैषश्च ते क्षियाशीःप्रैषाः, तेषु-क्षियाशीःप्रैषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आकाङ्क्षतीति आकाङ्क्षम् (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, स्वरितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षियाशीःप्रैषेषु अकाङ्क्षं तिङ् पदं प्लुतः स्वरितः।

अर्थः-क्षियाशीःप्रैषेषु गम्यमानेषु साकाङ्क्षं तिङन्तं पदं प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति। **उदाहरणम्**-

(१) **क्षिया (आचारभेद:)**–स्वयं ह रथेन याति३ उपध्यायं पदातिं गमयति। स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते३ उपध्यायं सक्तून् पाययति। अत्र पूर्वं तिङन्तं (याति) उत्तरं तिङन्तम् (गमयति) अकाङ्क्षति।

(२) **आशी: (प्रार्थनाविशेष:)**–सुताँश्च लप्सीष्ट३ धनं च तात! छन्दोऽध्येषीष्ट३ व्याकरणं च भद्र!

(३) **प्रैष: (शब्देन व्यापारणम्)**–कटं कुरु३ ग्रामं च गच्छ। यवान् लुनीहि३ सक्तूँश्च पिब।

आर्यभाषा: *अर्थ-(क्षिया०) क्षिया, आशी:, प्रैष इन अर्थों की अभिव्यक्ति में (आकाङ्क्षम्) आकाङ्क्ष से युक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (स्वरित:) स्वरित होता है। उदाहरण–*

*(१) क्षिया (शिष्टाचार का उल्लङ्घन)–**स्वयं ह रथेन याति३ उपध्यायं पदातिं गमयति।** स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है। **स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते३ उपध्यायं सक्तून् पाययति।** स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है। यहां पूर्व तिङन्त (याति) उत्तर तिङन्त (गमयति) की अकाङ्क्षा रखता है।*

*(२) आशी: (आशीर्वाद)–**सुताँश्च लप्सीष्ट३ धनं च तात!** हे प्रिय! तू पुत्रों को और धन को प्राप्त कर। **छन्दोऽध्येषीष्ट३ व्याकरणं च भद्र!** हे भद्र! तू छन्द:शास्त्र और व्याकरणशास्त्र का अध्ययन कर।*

*(३) प्रैष: (आज्ञा देना)–**कटं कुरु३ ग्रामं च गच्छ।** तू चटाई बना और गांव जा। **यवान् लुनीहि३ सक्तूँश्च पिब।** तू जौ काट और सत्तू पी।*

प्लुत: (स्वरित:)–

(२४) अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो:।१०५।

प०वि०–अनन्त्यस्य ६।१ अपि अव्ययपदम्, प्रश्न-आख्यानयो: ७।२।

स०–अन्ते भवमिति अन्त्यम्, न अन्त्यमिति अनन्त्यम्, तस्य-अनन्त्यस्य (नञ्तत्पुरुष:)। प्रश्नश्च आख्यानं च ते प्रश्नाख्याने, तयो:-प्रश्नाख्यानयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–पदस्य, वाक्यस्य, टे:, प्लुत:, स्वरितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रश्नाख्यानयोर्वाक्यस्यानन्त्यस्यान्त्यस्यापि च पदस्य टेः प्लुतः स्वरितः।

अर्थः-प्रश्ने आख्याने चार्थे वर्तमानस्य वाक्यस्यानन्त्यस्यान्त्यस्यापि च पदस्य टेः प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति।

उदा०-(**प्रश्नः**) अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ। (**आख्यानम्**) अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् **भोः**।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रश्नाख्यानयोः) प्रश्न और आख्यान=उत्तर अर्थ में विद्यमान (अनन्त्यस्य) अनन्त्य और अन्त्य (पदस्य) पद के (टेः) टि-भाग को (अपि) भी (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (स्वरितः) स्वरित होता है।*

*उदा०-(**प्रश्न**) **अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो क्या तू पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था? (**आख्यानम्**) उत्तर-**अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् भोः।** भाई! मैं पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था।*

*यहां प्रश्नवाक्य में अन्तिम पद के टि-भाग को पक्ष में 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' (८।२।१००) से अनुदात्त प्लुत भी होता है-**अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।***

प्लुतविधिमाह-

(२५) प्लुतावैच इदुतौ।१०६।

प०वि०-प्लुतौ १।१ ऐचः ६।१ इदुतौ १।२।

स०-इच्च उच्च तौ-इदुतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-'**दूराद्धूते च**' (८।२।८४) इत्येवमादिषु यः प्लुतो विहितस्तत्रैचः प्लुतप्रसङ्गे इकारोकारौ प्लुतौ भवतः।

उदा०-(**ऐ**) ऐ३तिकानयन! (**औ**) औ३पमन्यव!

***आर्यभाषाः** अर्थ-'दूराद्धूते च' (८।२।८४) इत्यादि सूत्रों से जो प्लुत-विधान किया गया है वहां (ऐचः) ऐच् (ऐ-औ) वर्ण को प्लुत के प्रसङ्ग में (इदुतौ) इकार और उकार को (प्लुतौ) प्लुत होता है।*

*उदा०-(**ऐ**) **ऐ३तिकायन! (औ) औ३पमन्यव!** हे ऐतिकायन! हे औपमन्यव!*

विशेषः *ऐच् अर्थात् ऐ और औ ये सन्ध्यक्षर हैं। अ+इ=ए। अ+ए=ऐ। अ+उ=ओ। अ+ओ=औ। ‘दू ‛द्धूते च’ (८।२।८४) इत्यादि सूत्रों से जो प्लुत-विधान किया गया है वहां ऐच् (ए-औ) वर्ण को प्लुत-विधान के प्रसङ्ग में ऐच् वर्ण के अवयवभूत इकार और उकारवर्ण को प्लुत होता है, अवयवभूत अकार वर्ण को नहीं। ऐ, औ वर्ण द्वैमात्रिक हैं वे प्लुत अर्थात् त्रैमात्रिक नहीं हो सकते अतः एकमात्रिक इकार और उकार को प्लुत होता है।*

ऐ३तिकायन!, औ३पमन्यव! *इन पदों में* ***‘गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्’*** *(८।२।८६) से प्लुत-विधान किया गया है। इस सूत्र में उक्त प्लुतविधि का उपदेश है।*

प्लुतविधिमाह—

(२६) एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्या-दुत्तरस्येदुतौ।१०७।

प०वि०–एचः ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अदूराद्धूते ७।१ पूर्वस्य ६।१ अर्धस्य ६।१ आत् १।१ उत्तरस्य ६।१ इदुतौ १।२।

स०–न प्रगृह्यमिति अप्रगृह्यम्, तस्य अप्रगृह्यस्य (नञ्तत्पुरुषः)। न दूरमिति अदूरम्, तस्मात्–अदूरात्। न दूराद्धूते इति अदूराद्धूते (नञ्तत्पुरुषः)। इच्च उच्च तौ–इदुतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्लुत इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अप्रगृह्यस्याऽदूराद्धूते प्लुतस्यैचः पूर्वस्यार्धस्यात् प्लुतः, उत्तरस्येदुतौ।

अन्वयः–अप्रगृह्यवर्जितस्याऽदूराद्धूते च विषये वर्तमानस्य प्लुतविषय-स्यैचो पूर्वस्यार्धस्य स्थाने आकारादेशो भवति, स च प्लुतो भवति, उत्तरस्य चेदुतावादेशौ भवतः। **उदाहरणम्**—

(१) **प्रश्नान्ते**–अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ, पटा३उ।

(२) **अभिपूजिते**–भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूता३इ, पटा३उ।

(३) **विचार्यमाणे**–होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ (तै०सं० ६।१।४।५)।

(४) **प्रत्यभिवादे**-आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ, पटा३इ।

(५) **याज्यान्ते**-उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ (ऋ० ८।४३।११)।

सोऽयं प्लुतेऽकारो यथाविषयमुदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च वेदितव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अप्रगृह्यस्य) प्रगृह्य संज्ञा से भिन्न और (अदुराद्धूते) दूराद्धूते विषय को छोड़कर प्लुतविषयक (एचः) एच् वर्ण के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अर्धस्य) अर्धांश को (आत्) आकारादेश होता है और वह (प्लुतः) प्लुत होता है और (उत्तरस्य) उत्तरवर्ती अर्धांश को (इदुतौ) इकार और उकार आदेश होते हैं। उदाहरण-*

*(१) **प्रश्नान्त-अगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो क्या तू पूर्व दिशा के ग्रामों को गया था? यहां **'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः'** (८।२।१००) प्लुत अनुदात्त होता है।*

*(२) **अभिपूजित-भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो बालक तू सुखदायक कर्म करता है। यहां भी पूर्ववत् प्लुत अनुदात्त होता है।*

*(३) विचार्यमाण-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ (तै०सं० ६।१।४।५)। दीक्षित के घर में हवन करना चाहिये अथवा नहीं यह विचारणीय है। यहां **'विचार्यमाणानाम्'** (८।२।९७) प्लुत उदात्त होता है।*

*(४) प्रत्यभिवाद-**आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ, पटा३इ।** हे अग्निभूते/पटो! तू दीर्घायु हो। यहां **'प्रत्ययभिवादेऽशूद्रे'** (८।२।८३) से प्लुत उदात्त होता है।*

*(५) याज्यान्त-उक्षान्नाय वशान्नाय **सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ** (ऋ० ८।४३।११)। यहां 'याज्यान्तः' (८।२।९०) से प्लुत उदात्त होता है।*

यवावादेशौ-

(२७) तयोर्य्वावचि संहितायाम्।१०८।

प०वि०-तयोः ६।२ य्वौ १।२ अचि ७।१ संहितायाम् ७।१।

स०-यश्च वश्च तौ य्वौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-संहितायां तयोरिदुतोरचि य्वौ।

अर्थः-संहितायां विषये तयोरिदुतोः स्थानेऽचि परतो यथासंख्यं यकारवकारावादेशौ भवतः।

उदा०-(इ) अग्ना३इ+आशा=अग्ना३याशा। अग्ना३इ+इन्द्रम्= अग्ना३यिन्द्रम्। (उ) पटा३उ+आशा=पटा३वाशा। पटा३उ+उदकम्= पटा३वुदकम्।

'संहितायाम्' इत्यधिकारोऽयम् आ अध्यायपरिसमाप्तेः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तयोः) उन पूर्वोक्त इकार और उकार के स्थान में (अचि) अच् वर्ण परे होने पर यथासंख्य (य्वौ) यकार और वकार आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में लिखे हैं।

*अग्ना३याश आदि उदाहरणों में **'इको यणचि'** (६।१।७६) से विहित यणादेश के असिद्ध होने से यह अकारादेश का विधान किय गया है। अग्ना३यिन्द्रम् आदि में **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९७) से प्राप्त दीर्घरूप एकादेश के असिद्ध होने से इस सूत्र से विहित यकारादेश ही होता है। ऐसे ही-**पटा३ वाशा, पटा३वुदकम्।***

*'**संहितायाम्**' इस पद का अष्टम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह संहिता (सन्धि) विषय में जानना चाहिये।*

।। इति प्लुतादेशप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।
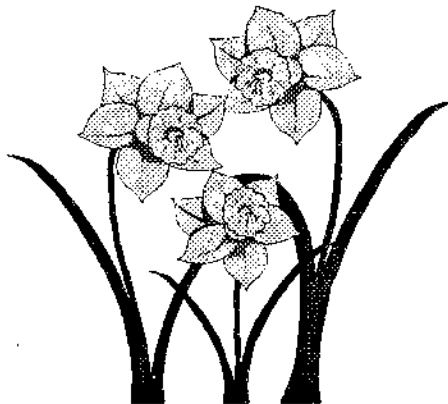
अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः
पूर्वसंहिताप्रकरणम्
{रु-आदेशप्रकरणम्}

रु-आदेशः-

(१) मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि।१।

प०वि०-मतुवसोः ६।१ रु १।१ (सु-लुक्) सम्बुद्धौ ७।१ छन्दसि ७।१

स०-मतुश्च वसुश्च एतयोः **समाहारः**-मतुवसु, तस्य-मतुवसोः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि मतुवसोः पदस्य सम्बुद्धौ रुः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये मत्वन्तस्य वस्वन्तय च पदस्य सम्बुद्धौ परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-**(मत्वन्तम्)** इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम् (तै०सं० १।४।१८।१)। हरिवो मेदिनं त्वा (तै०सं० ४।७।१४।४)। **(वस्वन्तम्)** मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ (ऋ० २।३३।१४)। इन्द्र साह्वः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (मतुवसोः) मतुबन्त और वस्वन्त (पदस्य) पद को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**(मत्वन्त) इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम्** (तै०सं० १।४।१८।१)। **मरुत्व**=हे मरुतोंवाले इन्द्र! **हरिवो मेदिनं त्वा** (तै०सं० ४।७।१४।४)। हरिवः=हे हरियोंवाले। हरि=किरण। **(वस्वन्त) मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ** (ऋ० २।३३।१४)। **मीढ्वः**=हे सेचन करनेवाले। **इन्द्र साह्वः। साह्वः**=हे मर्षण करनेवाले इन्द्र।*

*सिद्धि-(१) **मरुत्वः।** मरुत्+मतुप्। मरुत्+वत्। मरुत्व नुम्त्+सु। मरुत्वन्त्+०। मरुत्वन्०। मरुत्वरु। मरुत्वर्। मरुत्वः।*

यहां 'मरुत्' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'झय:' (८।२।१०) से मतुप् के मकार को वकारादेश, 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो:' (७।१।७०) से नुम् आगम, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।५७) से 'सु' का लोप और 'संयोगान्तस्य लोप:' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। इस सूत्र से वेदविषय में सुबुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'मरुत्वन्' पद के नकार को रु-आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीय:' (८।३।१५) से अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।

*(२) **हरिव:।** यहां 'हरि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'छन्दसीर:' (८।२।१५) से मतुप् के मकार को वकारादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **मीढ्व:।** यहां 'मिह सेचने' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय और 'क्वसुश्च' (३।२।१०७) से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। 'दाश्वान् साह्वान् मीढ्वाँश्च' (६।१।१२) से द्वित्व का अभाव, इडागम का अभाव और उपधा को दीर्घत्व और हकार को ढकारादेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'मीढ्वन्' इस स्थिति में इस सूत्र से नकार को रुत्व और पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(३) **साह्व:।** यहां 'षह मर्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'साह्वन्' इस स्थिति में इस सूत्र से नकार को रुत्व और पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश होता है।*

अनुनासिकादेशाधिकार:–

(२) अत्रानुनासिक: पूर्वस्य तु वा।२।

प०वि०–अत्र अव्ययपदम्, अनुनासिक: १।१ पूर्वस्य ६।१ तु अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वय:–संहितायामत्र पूर्वस्य तु वाऽनुनासिक:।

अर्थ:–संहितायां विषयेऽत्र अस्मिन् रुविधौ यस्य स्थाने रुरादेशो विधीयते, तत: पूर्वस्य तु वर्णस्य विकल्पेनाऽनुनासिकादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्। यथा वक्ष्यति–**'सम: सुटि'** (८।३।५) इति। सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्।

आर्यभाषा: *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रु-विधि में जिसके स्थान में रु-आदेश का विधान किया जाता है, उससे (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती वर्ण को (तु)*

*तो (वा) विकल्प से (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे 'समः सुटि' (८।३।५) अर्थात् 'सम्' के मकार को 'सुट्' परे होने पर रु-आदेश होता है। **सँस्कर्ता।** संस्कार करनेवाला। **सँस्कर्तुम्।** संस्कार करने के लिये। **सँस्कर्तव्यम्।** संस्कार करना चाहिये।*

***सिद्धि-सँस्कर्ता** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

नित्यमनुनासिकः-

(३) आतोऽटि नित्यम्।३।

प०वि०-आतः ६।१ अटि ७।१ नित्यम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, रुः, अत्र, अनुनासिक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विषयेऽत्र रोः पूर्वस्यातोऽटि नित्यमनुनासिकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽत्र रुविधौ रोः पूर्वस्याकारस्याऽटि परतो नित्यमनुनासिक आदेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-महाँ असि (ऋ० ३।४६।१)। महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ० ८।६।१)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० ३।१।१)।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रुविधि में (रोः) रु से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (आतः) आकार को (अटि) अट् वर्ण परे होने पर (नित्यम्) सदा (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

***उदा०-महाँ असि** (ऋ० ३।४६।१)। तू महान् है। **महाँ इन्द्रो य ओजसा** (ऋ० ८।६।१)। जो ओज से महान् है वह इन्द्र है। **देवाँ अच्छा दीद्यत्** (ऋ० ३।१।१)।*

***सिद्धि-महाँ असि।** महान्+असि। महाँ रु+असि। महाँर्+असि। महाँय्+असि। महाँ०+असि। महाँ असि।*

*यहां 'महान्' शब्द के नकार को **'दीर्घादटि समानपादे'** (८।३।९) से 'रु' आदेश है। इस सूत्र से 'रु' से पूर्ववर्ती आकार को अनुनासिक आदेश होता है। **'भो भगो०'** (८।३।१७) से रेफ को यकारादेश और **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**महाँ इन्द्रो य ओजसा, देवाँ अच्छा दीद्यत्।***

अनुस्वारादेशः-

(४) अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः।४।

प०वि०-अनुनासिकात् ५।१ परः १।१ अनुस्वारः १।१।

अनु०-संहितायाम्, रुः, अत्रेति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामत्र रुविधावनुनासिकात् परोऽनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽत्र रुविधावनुनासिकात् परोऽन्यो यो वर्णो यस्यानुनासिको न विहितस्तस्यानुस्वारादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) इत्यनेन विकल्पेनानुनासिकादेशो विहितः। यस्मिन् पक्षेऽनुनसिकादेशो न भवति, तस्मिन् पक्षेऽनेन सूत्रेणाऽनुस्वारादेशो विधीयते।

यथा वक्ष्यति-**'समः सुटि'** (८।३।५) इति। संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्। **'पुमः खय्यम्परे'** (८।३।६) इति। पुंस्कामा। **'नश्छव्यप्रशान्'** (८।३।७) इति। भवांश्चिनोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रुविधि में (अनुनासिकात्) अनुनासिक आदेश से (परः) अन्य जो वर्ण है जिसे अनुनासिक नहीं किया गया है उसको (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) इस सूत्र से विकल्प से अनुनासिक आदेश विधान किया गया है। जिस पक्ष में अनुनासिक आदेश नहीं होता है, उस पक्ष में इस सूत्र से अनुस्वार आदेश का विधान किया गया है।

*जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'समः सुटि'** (८।३।५) अर्थात् 'सुट्' परे होने पर 'सम्' को 'रु' आदेश होता है। **संस्कर्ता।** संस्कार करनेवाला। **संस्कर्तुम्।** संस्कार करने के लिये। **संस्कर्तव्यम्।** संस्कार करना चाहिये। 'पुमः खय्यम्परे' (८।३।६) अर्थात् अम्परक खय् वर्ण परे होने पर 'पुम्' को 'रु' आदेश होता है। **पुंस्कामा।** पुरुष की कामना करनेवाली नारी। 'नश्छव्यप्रशान्' (८।३।७) प्रशान् से भिन्न नकारान्त शब्द को छव् वर्ण परे होने पर 'रु' आदेश होता है। **भवांश्चिनोति।** आप चुनते हैं।*

सिद्धि-संस्कर्ता आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

रु-आदेशः-

(५) समः सुटि।५।

प०वि०-समः ६।१ सुटि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्य सुटि रुः।

अर्थः-संहितायां विषये समः पदस्य सुटि परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्। **अनुस्वारपक्षे**-संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समः) सम् इस (पदस्य) पद को (सुटि) सुट् आगम परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

*उदा०-**सँस्कर्ता।** संस्कार करनेवाला। **सँस्कर्तुम्।** संस्कार करने के लिये। **सँस्कर्तव्यम्।** संस्कार करना चाहिये। अनुस्वार पक्ष में-**संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**सँस्कर्ता।** सम्+सुट्+कर्ता। सम्+स्+कर्ता। स रु+स्+कर्ता। सँर्+स्कर्ता। सँः+स्+कर्ता। सँस्+स्+कर्ता। सँ०+स्+कर्ता। सँस्कर्ता।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय है। '**सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे**' (६।१।१३५) से 'सुट्' आगम है। इस सूत्र से 'सुट्' परे होने पर 'सम्' के मकार को 'रु' आदेश होता है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय और '**वा शरि**' (८।३।३६) में व्यवस्थित **विभाषा मानकर** विसर्जनीय को सकार ही आदेश होता है। वा०-'**अयोगवाहानामट्सु**' (हयवरट्) इस भाष्य वार्तिक से अयोगवाह (अँ) का 'अट्' में उपदेश होने से उसे हल् मानकर '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६४) से सकार का लोप होता है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**सँस्कर्तुम्।** 'तव्यत्' प्रत्यय में-**सँस्कर्तव्यम्।** अनुस्वार-पक्ष में-**संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्।***

रु-आदेशः-

(६) पुमः खय्यम्परे।६।

प०वि०-पुमः ६।१ खयि ७।१ अम्परे ७।१।

स०-अम् {प्रत्याहारः} परो यस्मात् सः-अम्परः, तस्मिन्-अम्परे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्याम्परे खयि रुः।

अर्थः-संहितायां विषये पुमः पदस्याम्परके खयि वर्णे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-पुँस्कामा, पुंस्कामा। पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः। पुँस्फलम्, पुंस्फलम्। पुँश्चली, पुंश्चली।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पुमः) पुम् इस (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-प्रत्याहार परक (खयि) खय् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**पुँस्कामा, पुंस्कामा।** पुरुष की कामना रखनेवाली नारी। **पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः।** पुरुष के नाम से प्रसिद्ध पुत्र। **पुँस्फलम्, पुंस्फलम्।** पुरुषभाव का फल। **पुँश्चली, पुंश्चली।** कुलटा नारी (चालू)।*

सिद्धि-पुँस्कामा। *पुम्+कामा। पुरु+कामा। पुर्+कामा। पुँः+कामा। पुँस्+कामा। पुँस्कामा।*

*यहां 'पुम्' और 'कामा' शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से अम्परक (आ) खय् वर्ण (का) वर्ण परे होने पर 'पुम्' के मकार को 'रु' आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रु के रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय और **'वा शरि'** (८।३।३६) में व्यवस्थित विभाषा मानकर विसर्जनीय को सकारादेश ही होता है। **'कुप्वोः ≍क ≍पौ च'** (८।३।३७) से प्राप्त ≍ जिह्वामूलीय आदेश नहीं होता है। 'रु' से पूर्ववर्ती वर्ण को पूर्ववत् अनुनासिक आदेश होता है। अनुस्वार पक्ष में-**पुंस्कामा।** ऐसे ही-**पुँस्पुत्रः** आदि।*

वा०-'अयोगवाहानामट्सु' *(हयवरट्) इस भाष्यवार्तिक से अयोगवाह (अँ) को **अचों में** परिगणित करके **'अनचि च'** (८।४।४६) से सकार को द्वित्व होता है-**पुँस्स्कामा।** और पूर्वोक्त वार्तिक से ही अयोगवाह को हल् में परिगणित करके **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६४) से सकार का लोप होता है-**पुँस्कामा।** ऐसे ही-**पुंस्स्पुत्रः, पुँस्पुत्रः** आदि।*

रु-आदेशः--

(७) नश्छव्यप्रशान्।७।

प०वि०-नः ६।१ छवि ७।१ अप्रशान् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-न प्रशानिति अप्रशान् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुः, अम्परे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अप्रशान् नः पदस्याम्परे छवि रुः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽप्रशान्=प्रशान्वर्जितस्य नकारान्तस्य पदस्याम्परके छवि परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति। भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति। भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते। भवाँस्तरति, भवांस्तरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रशान्) प्रशान् शब्द से भिन्न (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-प्रत्याहार परक (छवि) छव् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति।** आप ढकते हैं। **भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति।** आप चुनते हैं। **भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते।** आप जाते हैं। **भवाँस्तरति, भवांस्तरति।** आप तैरते हैं।*

*सिद्धि-**भवाँश्छादयति।** भवान्+छादयति। भवारु+छादयति। भवाँर्+छादयति। भवाँः+छादयति। भवाँस्+छादयति। भवाँश्+छादयति। भवाँश्छादयति।*

*यहां नकारान्त भवान् पद से अम्परक (आ) छव् वर्ण (छ्) है। अतः इस सूत्र से नकार को 'रु' आदेश होता है। 'रु' के रेफ को पूर्ववत् खर्लक्षण विसर्जनीय, **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और **'स्तोः श्चुनाश्चुः'** (८।४।४०) से सकार को शकारादेश होता है। पूर्ववत् 'रु' से पूर्ववर्ती अच् को अनुनसिक आदेश होता है। अनुस्वार पक्ष में-**भवांश्छादयति।** ऐसे ही-**भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति। भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते।** यहां **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से सकार को षकारादेश है। **भवाँस्तरति, भवांस्तरति।** प्रशान्=प्रशान्त रहनेवाला।*

ऋक्षु उभयथा (रु+न्)–

(८) उभयथर्क्षु।८।

प०वि०-उभयथा अव्ययपदम्, ऋक्षु ७।३।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुः, अम्परे, छवि, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् ऋक्षु नः पदस्याम्परे छवि उभयथा (रुः, नः)।

अर्थः-संहितायाम् ऋचि च विषये नकारान्तस्य पदस्याम्परके छवि परत उभयथा भवति, रुर्वा नकारो वा भवतीत्यर्थः।

उदा०-तस्मिँस्त्वा दधाति, तस्मिंस्त्वा दधाति, तस्मिन्त्वा दधाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ऋक्षु) ऋक् विषय में (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-परक (छवि) छव् वर्ण परे होने पर (उभयथा) दोनों प्रकार से कार्य होता है अर्थात् रु-आदेश भी होता है।*

*उदा०-**तस्मिँस्त्वा दधाति, तस्मिंस्त्वा दधाति, तस्मिन्त्वा दधाति।** उसमें तुझे रखता है।*

विशेषः *ऋक् शब्द से पादबद्ध मन्त्रों का ग्रहण होता है, केवल ऋग्वेद का ही नहीं। ऋक् का लक्षण जैमिनि ने-**'यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्'** (मी०द० २।१।३५) अर्थात् जिन मन्त्रों में अर्थानुकूल पादव्यवस्था होती है, वे ऋक् शब्द वाच्य होते हैं; किया है (अष्टाध्यायी-प्रथमावृत्तिः पृ० ५५९)।*

रु-आदेशः–

(९) दीर्घादटि समानपादे।९।

प०वि०–दीर्घात् ५।१ अटि ७।१ समानपादे ७।१।

स०–समानश्चासौ पादश्चेति समानपादः, तस्मिन् समानपादे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋक्षु दीर्घात् पदस्य नोऽटि रुः, समानपादे।

अर्थः–संहितायाम् ऋचि च विषये दीर्घात्परस्य पदान्तस्य नकारस्याटि परतो रुरादेशो भवति, तौ चेत्, निमित्तनिमित्तिनौ समानपादे भवतः।

उदा०–परिधीँरति (ऋ० ९।१०७।१९)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० ३।१।१) महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ० ८।६।१)।

अत्र ऋक्षु इति प्रकृतत्वात् पादशब्देन ऋक्पाद एव गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (ऋक्षु) ऋक् विषय में (दीर्घात्) दीर्घ वर्ण से परवर्ती (पदस्य) पदान्त (नः) नकार को (अटि) अट् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है (समानपादे) यदि वे सूत्रोक्त कारण और कार्य एक पाद में ही विद्यमान हों।*

*उदा०–**परिधीँरति** (ऋ० ९।१०७।१९)। परिधियों का अतिक्रमण करके। **देवाँ अच्छा दीद्यत्** (ऋ० ३।१।१)। देवों को अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हुआ अग्नि। **महाँ इन्द्रो य ओजसा** (ऋ० ८।६।१)। जो ओज से महान् है वह इन्द्र है।*

यहां ऋक् का प्रकरण होने से पाद शब्द से ऋक् पाद का ही ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-परिधीँरति। *यहां परिधीन्+अति। इस स्थिति में इस सूत्र से दीर्घ ईकार से परवर्ती नकार को 'रु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

देवाँ अच्छा दीद्यत् *और* ***महाँ इन्द्रो य ओजसा*** *में 'आतोऽटि नित्यम्' (८।३।३) से नित्य अनुनासिक आदेश होता है; अनुस्वार नहीं।*

रु-आदेशः–

(१०) नॄन् पे।१०।

प०वि०–नॄन् २।३ पे ७।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, **न इति** चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां नॄन् पदस्य नः पे रुः।

अर्थः-संहितायां विषये नॄन् इत्येतस्य पदस्य नकारस्य पकारे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-नॄँः पाहि, नॄंः पाहि। नॄँ ᳲ पाहि, नॄं ᳲ पाहि। नॄँः प्रीणीहि, नॄंः प्रीणीहि। नॄँ ᳲ प्रीणीहि, नॄं ᳲ प्रीणीहि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नॄन्) नॄन् इस (पदस्य) पद के (नः) नकार को (पे) पकार वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**नॄँः पाहि** (ऋ० ८।८४।३), **नॄंः पाहि। नॄँ ᳲ पाहि, नॄं ᳲ पाहि।** तू नरों की रक्षा कर। **नॄँः प्रीणीहि, नॄंः प्रीणीहि। नॄँ ᳲ प्रीणीहि, नॄं ᳲ प्रीणीहि।** तू नरों को तृप्त कर, प्रसन्न कर।*

***सिद्धि-नॄँः पाहि।** नॄन्+पहि। नॄरु+पाहि। नॄँर्+पाहि। नॄँः+पाहि। नॄँः पाहि।*

*यहां 'नॄन्' इस पद के नकार को पकार परे होने पर इस सूत्र से 'रु' आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) से 'रु' से पूर्ववर्ती अच् को अनुनासिक आदेश है। विकल्प पक्ष में 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' (८।३।४) से अनुस्वार आदेश है-**नॄंः पाहि।** 'कुप्वोः ᳲ क ᳲ पौ च' (८।३।३७) से विसर्जनीय को ᳲ उपध्मानीय भी होता है-**नॄँ ᳲ पाहि। नॄं ᳲ पाहि।** ऐसे ही-**नॄँः प्रीणीहि** आदि।*

रु-आदेशः-

(११) स्वतवान् पायौ।११।

प०वि०-स्वतवान् १।१ पायौ ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्वतवान् पदस्य नः पायौ रुः।

अर्थः-संहितायां विषये स्वतवान् इत्येतस्य पदस्य नकारस्य पायुशब्दे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-स्वतवाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्वतवान्) स्वतवान् इस **(पदस्य)** पद के नकार को (पायौ) पायु शब्द परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**स्वतवाँः पायुरग्ने** (ऋ० ४।२।६)। स्वतवान्=अपने गुणों से वृद्ध राजा।*

***सिद्धि-स्वतवाँः पायुः।** यहां इस सूत्र से स्वतवान् पद के नकार को पायु शब्द परे होने पर 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को विसर्जनीय और अनुनासिक आदेश है।*

रु-आदेशः–

(१२) कानाम्रेडिते।१२।

प०वि०–कान् २।३ आम्रेडिते ७।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां कान् पदस्य न आम्रेडिते रुः।

अर्थः–संहितायां विषये कान् इत्येतस्य पदस्य नकारस्याऽऽम्रेडिते परतो रुरादेशो भवति।

उदा०–काँस्कान् आमन्त्रयति, कांस्कान् आमन्त्रयति। काँस्कान् **भो**जयति, कांस्कान् भोजयति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कान्) कान् इस (पदस्य) पद के (नः) नकार को (आम्रेडिते) आम्रेडित पद परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०–**काँस्कान् आमन्त्रयति, कांस्कान् आमन्त्रयति।** वह किन-किन को आमन्त्रित करता है। **काँस्कान् भोजयति, कांस्कान् भोजयति।** वह किन-किन को भोजन कराता है।*

सिद्धि–काँस्कान्। *यहां 'कान्' शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा-अर्थ में द्वित्व है और **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती 'कान्' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त 'कान्' पद के नकार को आम्रेडित पद परे होने पर 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को विसर्जनीय और अनुनासिक आदेश है। **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। इसका कस्कादिगण (८।३।४८) में पाठ मानकर **कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च'** (८।३।३७) से विसर्जनीय को जिह्वामूलीय आदेश नहीं होता है। विकल्प पक्ष में अनुस्वार आदेश है–**कांस्कान्।***

।। इति रु-आदेशप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

लोपादेशः–

(१) ढो ढे लोपः।१३।

प०वि०–ढः ६।१ ढे ७।१ लोपः १।१।

नु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

यः–संहितायां ढो ढे लोपः।

अर्थः-संहितायां विषये ढकारस्य ढकारे परतो लोपो भवति।

उदा०-लीढम्। उपगूढम्।

"सत्यपि पदाधिकारे तस्यासम्भवादपदान्तस्य ढकारस्यायं लोपो विज्ञायते" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ढः) ढकार का (ढि) ढकार वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है।

*उदा०-**लीढम्।** चाटना। **उपगूढम्।** आच्छादित करना, छुपाना।*

"पद का अधिकार होते हुये भी पदान्त में ढकार के सम्भव न होने से यह अपदान्त ढकार का ही लोप समझा जाता है (काशिका)।

सिद्धि-लीढम्। *लिह्+क्त। लिह्+त। लिढ्+त। लिढ्+ध। लिढ्+ढ। लि०+ढ। ली+ढ। लीढ+सु। लीढम्।*

*यहां **'लिह आस्वादने'** (अदा०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार होता है। इस सूत्र से ढकार परे होने पर पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। यह ढकार का लोप ष्टुत्व पर आश्रित है अतः **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से ढकार का लोप करते समय **'पूर्वत्रासिद्धम्'** (८।२।१) से ष्टुत्व असिद्ध नहीं होता है। **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही उप-उपसर्गपूर्वक **'गुहू संवरणे'** (भ्वा०आ०) धातु से-**उपगूढम्।***

लोपादेशः-

(२) रो रि।१४।

प०वि०-रः ६।१ रि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदस्य रो रि लोपः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति।

उदा०-नीरक्तम्। दूरक्तम्। अग्नी रथः। इन्दू रथः। पुना रक्तं वासः। प्राता राजक्रयः।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (रः) रेफ का (रि) रेफ परे ***होने पर (लोपः) लोप होता है।***

*उदा०-**नीरक्तम्।** निश्चित रंगा हुआ। **दूरक्तम्।** खराब रंगा हुआ। **अग्नी रथः।** अग्नि, रथ। **इन्दू रथः।** इन्दु=चन्द्र, रथ। **पुना रक्तं वासः।** दूसरी बार रंगा हुआ कपड़ा। **प्राता राजक्रयः।** प्रातः, राजक्रय।*

***सिद्धि-नीरक्तम्।** यहां निर्-उपसर्गपूर्वक **'रञ्ज रागे'** (भ्वा०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से धातुस्थ नकार का लोप होता है। इस सूत्र से रेफ परे होने पर 'निर्' पद के रेफ का लोप होता है। **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घ होता है। ऐसे ही दुर्+रक्तम्=दूरक्तम्। अग्निर्+रथः=अग्नी रथः। इन्दुर्+रथः=इन्दू रथः। यहां **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व है। पुनर्+रक्तम्=पुना रक्तम्। प्रातर्+राजक्रयः=प्राता राजक्रयः।*

विसर्जनीयादेशः-

(३) खरवसानयोर्विसर्जनीयः।१५।

प०वि०-खर्-अवसानयोः ७।२ विसर्जनीयः १।१।

स०-खर् च अवसानं च ते खरवसाने, तयोः-खरवसानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, पदस्य, र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां रः पदस्य खरवसानयोर्विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये रेफान्तस्य पदस्य खरि परतोऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-(खरि) वृक्षश्छादयति, प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति, प्लक्षस्तरति। **(अवसाने)** वृक्षः, प्लक्षः।

***आर्यभाषाः** **अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रः) रेफान्त (पदस्य) पद को (खरवसानयोः) खर् वर्ण परे होने पर तथा अवसान में (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०- (खर्) **वृक्षश्छादयति।** पेड़ ढकता है। **प्लक्षश्छादयति।** पिलखण ढकता है। **वृक्षस्तरति।** पेड़ तैरता है। **प्लक्षस्तरति।** पिलखण तैरता है। **(अवसाने) वृक्षः।** पेड़। **प्लक्षः।** पिलखण।*

***सिद्धि-वृक्षश्छादयति।** वृक्ष+सु। वृक्ष+स्। वृक्ष+रु। वृक्ष्+र्। वृक्षर्+छादयति। वृक्षः+छादयति। वृक्षस्+छादयति। वृक्षश्+छादयति। वृक्षश्छादयति।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'स्' को 'रु' आदेश होता है। इस सूत्र से खर् वर्ण (छ) परे होने पर*

रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। 'विसर्जनीयस्य सः' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से सकार को शकारादेश होता है। ऐसे ही-प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति, प्लक्षस्तरति। वृक्षः। प्लक्षः। यहां रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है।

विसर्जनीयादेशः–

(४) रोः सुपि।१६।

प०वि०–रोः ६।१ सुपि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, रः, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां रो रः सुपि विसर्जनीयः।

अर्थः–संहितायां विषये रु इत्येतस्य रेफास्य सुपि प्रत्यये परतो विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०–पयःसु। यशःसु। सर्पिःषु। धनुःषु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रोः) रु इसके (रः) रेफ को (सुपः) सुप् {७।३} प्रत्यय परे होने पर (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-**पयःसु**। नाना दूधों में। यशःसु। नाना यशों में। **सर्पिःषु**। नाना घृतों में। **धनुःषु**। नान धनुषों में।*

*सिद्धि-**पयःसु**। यहां 'पयस्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश है। इस सूत्र से सुप् {७।३} प्रत्यय परे होने पर 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।*

यहां 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से खर्-लक्षण विसर्जनीय आदेश सिद्ध था। इसका यह पुनर्वचन नियमार्थ है कि 'सुप्' प्रत्यय परे होने पर 'रु' के रेफ को ही विसर्जनीय आदेश होता है, अन्यत्र नहीं, जैसे-गीर्षु, धूर्षु।

'सर्पिःषु' आदि में 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' (८।३।५८) से विसर्जनीय व्यवाय-लक्षण षत्व होता है।

विशेषः *यहां 'सुपि' से सप्तमी बहुवचन का ही ग्रहण किया जाता है; सुप्-संज्ञक २१ प्रत्ययों का नहीं।*

य-आदेशः–

(५) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि।१७।

प०वि०–भोभगोअघोअपूर्वस्य ६।१ यः १।१ अशि ७।१।

स०-भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्च ते-भोभगोअघोआः, एते पूर्वा यस्य सः-भोभगोअघोअपूर्वः, तस्य-भोभगोअघोअपूर्वस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)। भोः, भगोः, अघोः, इत्येते विभक्तिरूपका निपाताः।

अनु०-संहितायाम्, रः, रोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां भोभगोअघोअपूर्वस्य रो रोऽशि यः।

अर्थः-संहितायां विषये भोपूर्वस्य, भगोपूर्वस्य, अघोपूर्वस्य अवर्णपूर्वस्य च रो रेफस्याऽशि परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-**(भोः)** भो अत्र। भो ददाति। **(भगोः)** भगो अत्र। भगो ददाति। **(अघोः)** अघो अत्र। अघो ददाति। **(अपूर्वः)** क आस्ते। ब्राह्मणा ददति। पुरुषा ददति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भो०) भोः, भगोः, अघोः और अवर्ण जिसके पूर्व है उस (रोः) रु के (रः) रेफ के स्थान में (अशि) अश् वर्ण परे होने पर (यः) यकारादेश होता है।*

*उदा०-**(भोः) भो अत्र।** हे ! यहां। **भो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(भगोः) भगो अत्र।** हे ! यहां। **भगो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(अघोः) अघो अत्र।** हे ! यहां। **अघो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(अवर्णपूर्व) क आस्ते।** कौन बैठता है। **ब्राह्मणा ददति।** ब्राह्मण दान करते हैं। **पुरुषा ददति।** पुरुष दान करते हैं।*

***सिद्धि-(१) भो अत्र।** भोस्+अत्र। भोरु+अत्र। भोर्+अत्र। भो य्+अत्र। भो०+अत्र। भो अत्र।*

*यहां 'भोस्' शब्द के सकार को **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'रु' आदेश है। इस सूत्र से इस 'रु' के रेफ को अश् वर्ण (अ) परे होने पर यकारादेश होता है। **'ओतो गार्ग्यस्य'** (८।३।२०) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भगो अत्र, अघो अत्र। भो** ददाति और **ब्राह्मणा** ददति आदि में **'हलि सर्वेषाम्'** (८।३।२२) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **क आस्ते।** यहां इस सूत्र से रेफ का यकारादेश होता है। **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से शाकल्य आचार्य के मत में यकार का लोप होता है-**क आस्ते।***

***विशेषः** कात्यायन के मत में-वा०-**'भवद्भगवदघवतामोच्चावस्य'** (८।३।१) से भवत्, भगवत्, अघवत् शब्दों को 'रु' आदेश और इनके 'अव्' को ओकारादेश होकर भोः, भगो, अघोः शब्द सिद्ध होते हैं। पतञ्जलि के मत में ये विभक्ति प्रतिरूपक निपात (अव्यय) हैं (महाभाष्य ८।३।१)।*

लघुप्रयत्नतरादेशः–

(६) व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।१८।

प०वि०–व्योः ६।२ लघुप्रयत्नतरः १।१ शाकटायनस्य ६।१।

स०–वश्च यश्च तौ व्यौ, तयोः-व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। लघुः प्रयत्नो यस्य सः-लघुप्रयत्नः, अतिशयेन लघुप्रयत्न इति लघुप्रयत्नतरः (बहुव्रीहिः, ततस्तद्धितस्तरप्प्रत्ययः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, भोभगोअघोअपूर्वस्य, अशीति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां भोभगोअघोअपूर्वयोः पदयोर्व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।

अर्थः–संहितायां विषये भोभगोअघोअपूर्वयोः पदान्तयोर्वकारयकारयोः स्थाने लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०–(भोः) भोयुत्र (शाकटयनः)। भो अत्र (गार्ग्यः)। **(भगोः)** भगोयुत्र। भगो अत्र। **(अघोः)** अघोयुत्र। अघो अत्र। **(अपूर्वः)** कयास्ते (शाकटायनः)। क आस्ते (शाकल्यः)। अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर। आसावादित्यः। असा आदित्यः। द्वावत्र (शा०)। द्वा अत्र। द्वावानय। द्वा आनय।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (भो०) भोः, भगोः, अघोः और अवर्ण जिनके पूर्व हैं, उन (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (व्योः) वकार और यकार के स्थान में (लघुप्रयत्नतरः) अतिशय लघुप्रयत्नवाला वकार और यकार आदेश होता है, (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के मत में।

*उदा०-**(भोः) भोयुत्र** (शाकटयन)। **भो अत्र** (गार्ग्य)। हे! यहां। **(भगोः) भगोयुत्र। भगो अत्र।** हे! यहां। **(अघोः) अघोयुत्र। अघो अत्र।** हे! यहां। **(अवर्णपूर्व) कयास्ते** (शाकटायनः)। **क आस्ते** (शाकल्यः)। कौन बैठता है। **अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर।** इसके लिये उद्धृत कर, निकाल। **आसावादित्यः। असा आदित्यः।** वह सूर्य। **द्वावत्र (शा०)। द्वा अत्र।** दोनों यहां। **द्वावानय। द्वा आनय।** दोनों को ला।*

***सिद्धि-भोयुत्र।** यहां भोपूर्व 'रु' के स्थान में 'भो भगो०' (८।३।१७) से यकारादेश है। शाकटायन आचार्य के मत में इस यकार के स्थान में अतिशय लघुप्रयत्नवाला*

यकार आदेश होता है। 'ओतो गार्ग्यस्य' (८।३।२०) से इस यकार का लोप होता है- ***भो अत्र।*** *ऐसे ही-**भगोयुत्र, भगो अत्र** आदि। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

विशेषः *ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्थाः (पा०शि०) के अनुसार अन्तस्थ वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। वर्णों के उच्चारण में तालु आदि स्थान और जिह्वामूल आदि करणों की शिथिलता को लघुप्रयत्नतर कहते हैं।*

लोपादेशः–

(७) लोपः शाकल्यस्य।१६।

प०वि०–लोपः १।१ शाकल्यस्य ६।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, अपूर्वस्य, अशि, व्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामपूर्वयोः पदयोर्व्योरशि लोपः, शाकल्यस्य।

अर्थः–संहितायां विषयेऽवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्वकारयकारयोरशि परतो लोपो भवति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०–कयास्ते (पाणिनिः)। क आस्ते (शाकल्यः)। काकयास्ते। काक आस्ते। अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर। द्वावत्र। द्वा अत्र। असावादित्यः, असा आदित्यः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपूर्वयोः) जिनके पूर्व में अवर्ण है उन (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (व्योः) वकार और यकारों का (लोपः) लोप होता है (शाकल्यस्य) **शाकल्य** आचार्य के मत में।*

*उदा०–**कयास्ते** (पाणिनि)। **क आस्ते** (शाकल्य)। कौन बैठता है। **काकयास्ते। काक आस्ते।** कौवा बैठता है। **अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर।** इसके लिये उद्धृत कर, निकाल। **द्वावत्र। द्वा अत्र।** दोनों यहां हैं। **असावादित्यः, असा आदित्यः।** वह सूर्य है।*

*सिद्धि–**कयास्ते।** क+सु। क+स्। क+रु। क+र्। क+य्+आस्ते। कयास्ते।*

*यहां अवर्णपूर्वी 'रु' के रेफ को पाणिनि मुनि के मत में-**'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि'** (८।३।१७) से यकारादेश होता है। इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में इस यकार का लोप होता है–**क आस्ते।** ऐसे ही–**काकयास्ते, काक आस्ते** इत्यादि।*

लोपादेशः–

(८) ओतो गार्ग्यस्य।२०।

प०वि०–ओतः ५।१ गार्ग्यस्य ६।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, अशि, व्योः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्योतो व्योरशि लोपो गार्ग्यस्य।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य ओकारात् परयोर्वकारयकारयोरशि परतो लोपो भवति, गार्ग्यस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-(**भोः**) भो अत्र। भोयुत्र। (**भगोः**) भगो अत्र, भगोयुत्र। (**अघोः**) अघो अत्र, अघोयुत्र। ओकारात्परो वकारो न सम्भवति, अतस्तस्य नास्त्युदाहरणम्।

अत्र गार्ग्यग्रहणं पूजार्थं वेदितव्यम्। '**लोपः शाकल्यस्य**' (८।३।१९) इत्यनेनालघुप्रयत्नतरस्य यकारस्य विकल्पेन लोपो विधीयते सोऽनेन निवर्त्यते। नित्यार्थोऽयमारम्भः। लघुप्रयत्नतरस्तु भवत्येव यकारः-भगोयत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (ओतः) ओकार से परवर्ती (व्योः) वकार और यकार का (अशि) अश् वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है (गार्ग्यस्य) गार्ग्य आचार्य के मत में।*

उदा०-(भोः) ***भो अत्र। भोयुत्र।*** *(भगोः)* ***भगो अत्र, भगोयुत्र।*** *(अघोः)* ***अघो अत्र, अघोयुत्र।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

*यहां गार्ग्य का ग्रहण पूजा के लिये किया गया है अर्थात् पाणिनि मुनि का भी यही मत है। '**लोपः शाकल्यस्य**' (८।३।१९) से अलघुप्रयत्नतर यकार का शाकल्य के मत से विकल्प से लोप विधान किया गया है, वह इस सूत्र से निवृत्त हो जाता है। अतः यह सूत्र नित्य यकार लोप के लिये आरम्भ किया गया है। '**व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य**' (८।३।१८) से जो यकार को लघुप्रयत्नतर यकारादेश कहा है वह तो बना ही रहता है-**भोयुत्र।***

*सार यह है कि पाणिनि मुनि और गार्ग्य आचार्य के मत में-**भो अत्र** और शाकटायन आचार्य के मत में-**भोयत्र** प्रयोग होता है।*

भोः आदि में ओकार से परवर्ती वकार सम्भव नहीं है, अतः उसका उदाहरण नहीं दिया गया है।

लोपादेशः-

(६) उञि च पदे।२१।

प०वि०-उञि ७।१ च अव्ययपदम्, पदे ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, अपूर्वस्य, व्योः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामपूर्वयोः पदयोर्व्योरुञि पदे च लोपः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्वकारयकारयोरुञि **पदे** च परतो लोपो भवति।

उदा०-स उ एकविंशवर्तनिः (मै०सं० २।७।२०)। स उ एकाग्निः। वकारस्य नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपूर्वयोः) जिनके पूर्व में अवर्ण है उन (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (व्योः) वकार और यकार वर्णों का (उञि) उञ् यह (पदे) पद परे होने पर (च) भी (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-स उ **एकविंशवर्तनिः** (मै०सं० २।७।२०)। स उ **एकाग्निः**। वकार का उदाहरण नहीं है।*

***सिद्धि**-स उ। यहां 'सः' के 'रु' के रेफ को **'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि'** (८।३।१७) से यकारादेश होता है। इस सूत्र से इस यकार का उञ् पद परे होने पर लोप होता है। **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से विकल्प से लोप प्राप्त था, इस सूत्र से नित्य यकार का लोप होता है।*

लोपादेशः--

(१०) हलि सर्वेषाम्।२२।

प०वि०-हलि ७।१ सर्वेषाम् ६।३।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, भोभगोअघोअपूर्वस्य, यः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां भोभगोअघोअपूर्वस्य पदस्य यो हलि लोपः, सर्वेषाम्।

अर्थः-संहितायां विषये भोभगोअघोअपूर्वस्याऽवर्णपूर्वस्य च पदान्तस्य हलि परतो लोपो भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-(**भोः**) भो हसति, भो याति। (**भगोः**) भगो हसति, भगो याति। (**अघोः**) अघो हसति, अघो याति। (**अपूर्वः**) बाला हसन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (भो०) भोः, भगोः, अघो और अवर्ण जिसके पूर्व में है उस (पदस्य) पदान्त (यः) यकार का (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है (सर्वेषाम्) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-(भोः) **भो हसति**। अरे ! वह हंसता है। **भो याति**। अरे ! वह जाता है। (भगोः) भगो हसति, **भगो याति**। (अघोः) **अघो हसति, अघो याति**। अर्थ पूर्ववत् है। **(अवर्णपूर्वः) बाला हसन्ति**। बालक हंसते हैं।*

*सिद्धि-**भो हसति**। यहां 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' (८।३।१७) से 'रु' के रेफ को यकारादेश होता है और इस सूत्र से इसका हल् वर्ण परे होने पर सब आचार्यों के मत में लोप हो जाता है। ऐसे ही-**भो याति** आदि।*

अनुस्वारादेशः-

(११) मोऽनुस्वारः।२३।

प०वि०-मः ६।१ अनुस्वारः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मो हलि अनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य हलि परतोऽनुस्वारादेशो भवति।

उदा०-कुण्डं हरति। वनं हरति। कुण्डं याति। वनं याति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार को (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है।*

*उदा०-**कुण्डं हरति**। वह कुण्ड को हरण करता है। **वनं हरति**। वह वन (लकड़ी आदि) हरण करता है। **कुण्डं याति**। वह कुण्ड को प्राप्त करता है। **वनं याति**। वह वन को प्राप्त करता है।*

*सिद्धि-**कुण्डं हरति**। यहां इस सूत्र से 'कुण्डम्' के मकार को हल्वर्ण (ह) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है। ऐसे ही-**वनं हरति** आदि।*

अनुस्वारादेशः-

(१२) नश्चापदान्तस्य झलि।२४।

प०वि०-नः ६।१ च अव्ययपदम्, अपदान्तस्य ६।१ झलि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, मः, अनुस्वार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अपदान्तस्य नो मश्च झलि अनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽपदान्तस्य नकारस्य मकारस्य च झलि परतोऽनुस्वारादेशो भवति।

उदा०-(नकारः) पयांसि। यशांसि। सर्पींषि। धनूंषि। **(मकारः)** आक्रंस्यते। आचिक्रंसते। अधिजिगांसते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपदान्तस्य) पदान्त में अविद्यमान (नः) नकार (च) और (मः) मकार को (झलि) झल् वर्ण परे होने पर (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है।*

*उदा०-(नकार) **पयांसि**। नाना दूध। **यशांसि**। नाना यश। **सर्पींषि**। नाना घृत। **धनूंषि**। बहुत धनुष। (मकार) **आक्रंस्यते**। वह उदय होगा। **आचिक्रंसते**। वह उदय होना चाहता है। **अधिजिगांसते**। वह अध्ययन करना चाहता है।*

***सिद्धि-(१) पयांसि**। पयस्+जस्। पयस्+शि। पयस्+इ। पय नुम् स्+इ। पयन् स्+इ। पयान्स्+इ। पया ं स्+इ। पयांसि।*

*यहां 'पयस्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय है। '**जश्शसोः शिः**' (७।१।२०) से जस् को 'शि' आदेश होता है। '**नपुंसकस्य झलचः**' (७।१।७२) से 'नुम्' आगम है। '**सान्तमहतः संयोगस्य**' (६।४।१०) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से झल् वर्ण (स) परे होने पर नकार को अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही-**यशांसि** आदि।*

*(२) **आक्रंस्यति**। यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**क्रमु पादविक्षेपे**' (भ्वा०प०) धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्रम्' के मकार को झलादि (स) वर्ण परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है। '**आङ उद्गमने**' (१।३।४०) से आत्मनेपद होता है।*

*(३) **आचिक्रंसते**। यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**क्रमु पादविक्षेपे**' (भ्वा०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्रम्' के मकार को झल् वर्ण (स) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **अधिजिगांसते**। यहां अधि-उपसर्गपूर्वक '**इङ् अध्ययने**' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। '**इङश्च**' (२।४।४८) से 'इङ्' के स्थान में 'गम्' आदेश है। '**अज्झनगमां सनि**' (६।४।१६) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'गम्' के मकार को झल् वर्ण (स) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है।*

म-आदेशः--

(१३) मो राजि समः क्वौ।२५।

प०वि०-मः १।१ राजि ७।१ समः ६।१ क्वौ ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्य मः, क्वौ राजि मः।

अर्थः-संहितायां विषये समः पदस्य मकारस्य, क्विप्प्रत्ययान्ते राजतौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-सम्राट्। साम्राज्यम्।

मकारस्य स्थाने मकारादेशवचनमनुस्वारादेशनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समः) सम् इस (पदस्य) पद के (मः) मकार को (क्वौ) क्विप्-प्रत्ययान्त (राजि) राज् धातु परे होने पर (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**सम्राट्।** राजा। **साम्राज्यम्।** सम्राट् का राज्य।*

सिद्धि-(१) सम्राट्। *यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'सत्सूद्विष०' (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से क्विप्-प्रत्ययान्त 'राज्' परे होने पर 'सम्' के मकार को मकारादेश होता है। मकार को मकारादेश का कथन **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२१) से प्राप्त अनुस्वारादेश की निवृत्ति के लिये है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से 'राज्' के जकार को षकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से डकार को चर् टकारादेश होता है।*

*(२) **साम्राज्यम्।** यहां 'सम्राज्' शब्द से **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) से भाव अर्थ में ब्राह्मणादि-लक्षण 'ष्यञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

मकारादेशविकल्पः–

(१४) हे मपरे वा।२६।

प०वि०–हे ७।१ मपरे ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०–मः परो यस्मात् स मपरः, तस्मिन्–मपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, मः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पदस्य मो, मपरे हे वा मः।

अर्थः–संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य स्थाने, मकारपरके हकारे परतो विकल्पेन मकारादेशो भवति।

उदा०–किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति। कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार के स्थान में (मपरे) मकारपरक (हि) हकार परे होने पर (वा) विकल्प से (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।** वह क्या संचालित करता है। **कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।** वह कैसे संचालित करता है।*

सिद्धि-किं ह्मलयति। यहां इस सूत्र से 'किम्' के पदान्त मकार को मकरपरक हकार वर्ण परे होने पर मकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में *'मोऽनुस्वारः'* (८।३।२३) से मकार को अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।

'ह्मलयति' पद में *'ह्मल सञ्चलने'* (भ्वा०प०) धातु से *'हेतुमति च'* (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। *'ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद् वा'* (भ्वा० गणसूत्र) से 'ह्मल' की मित्संज्ञा होकर *'मितां ह्रस्वः'* (८।४।९२) से ह्रस्वादेश होता है।

नकारादेशविकल्पः–

(१५) नपरे नः।२७।

प०वि०-नपरे ७।१ नः १।१।

स०-नः परो यस्मात् स नपरः, तस्मिन्-नपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, मः, हे, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मो नपरे हे वा नः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य नकारपरके हकारे परतो विकल्पेन नकारादेशो भवति।

उदा०-किन् ह्नुते, किं ह्नुते। कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार के स्थान में (नपरे) नकारपरक (हे) हवर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-**किन् ह्नुते, किं ह्नुते।** वह क्या हटाता है? **कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।** वह कैसे हटाता है?*

सिद्धि-किन् ह्नुते। यहां इस सूत्र से 'किम्' के पदान्त मकार को नकारपरक हवर्ण परे होने पर नकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में *'मोऽनुस्वारः'* (८।३।२३) से अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही-*कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।*

'ह्नुते' पद मे *'ह्नुङ् अपनयने'* (अदा०आ०) धातु से *'वर्तमाने लट्'* (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

{आगमप्रकरणम्}

कुक्टुगागमविकल्पः-

(१) ङ्णोः कुक्टुक् शरि।२८।

प०वि०-ङ्णोः ६।२ कुक्टुक् १।१ शरि ७।१।

स०-ङश्च णश्च तौ ङ्णौ, तयोः-ङ्णोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कुक् च टुक् च एतयोः समाहारः-कुक्टुक् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् पदस्य ङ्णोः शरि वा कुक्टुक्।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तयोर्ङकारणकारयोः शरि परतो विकल्पेन यथासंख्यं कुक्टुकावागमौ भवतः।

उदा०-**(ङकारः) कुक्**-प्राङ्क् शेते, प्राङ् शेते। प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः। प्राङ्क् साये, प्राङ् साये। **(णकारः)** टुक्-वण्ट् शेते। वण् शेते।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (ङ्णोः) ङकार और णकार को (शरि) शर् वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से यथासंख्य (कुक्टुक्) कुक् और टुक् आगम होते हैं।

*उदा०-(ङकार) कुक्-**प्राङ्क् शेते, प्राङ् शेते।** वह पहले सोता है। **प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः।** पहला छठा। **प्राङ्क् साये, प्राङ् साये।** पहले समाप्त होने पर। (णकार) टुक्-**वण्ट् शेते। वण् शेते।** कोलाहल करनेवाला सोता है।*

*सिद्धि-(१) **प्राङ्क् शेते।** यहां इस सूत्र से 'प्राङ्' के पदान्त ङकार को शर् वर्ण (श्) परे होने पर 'कुक्' (क्) आगम होता है। विकल्प पक्ष में कुक् आगम नहीं है-**प्राङ् शेते।** ऐसे ही-**प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ्ग् षष्ठः। प्राङ्क् साये, प्राङ्ग् साये।** 'साये' पद में '**षोऽन्तकर्मणि**' (दि०प०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से घञ् प्रत्यय है।*

*(२) **वण्ट् शेते।** यहां इस सूत्र से 'वण्' के पदान्त णकार को शर् वर्ण (श्) परे होने पर 'टुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'टुक्' आगम नहीं है-**वण् शेते।** 'वण्' पद में 'वण शब्दार्थः' (भ्वा०प०) धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है।*

धुडागमविकल्पः-

(२) डः सि धुट्।२६।

प०वि०-डः ५।१ सि ७।१ धुट् १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां डः पदात् सः पदस्य वा धुट्।

अर्थः-संहितायां विषये डकारान्तात् पदात् परस्य सकारादेः पदस्य विकल्पेन धुडागमो भवति।

उदा०-श्वलिट्त्साये, श्वलिट् साये। मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (डः) डकारान्त (पदात्) पद से परवर्ती (सः) सकारादि (पदस्य) पद को (वा) विकल्प से (धुट्) धुट् आगम होता है।*

*उदा०-**श्वलिट्त्साये, श्वलिट् साये।** श्वलिट् अन्त में। श्वलिट्=कुत्तों को चाटनेवाला (घोरी)। **मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।** मधुलिट् अन्त में। मधुलिट्=मधु (शहद) चाटनेवाला।*

*सिद्धि-**श्वलिट्त्साये।** यहां इस सूत्र से 'श्वलिड्' के पदान्त डकार को सकारादि 'साये' पद परे होने पर 'धुट्' आगम होता है। 'खरि च' (८।४।५५) से धकार को चर् तकार और डकार को भी चर् टकार होता है। विकल्प-पक्ष में 'धुट्' आगम नहीं है-**श्वलिट् साये।** ऐसे ही-**मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।***

धुडागमविकल्पः-

(३) नश्च।३०।

प०वि०-नः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा, सि, धुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां नः पदाच्च सः पदस्य वा धुट्।

अर्थः-संहितायां विषये नकारान्तात् पदात् परस्य च सकारादेः पदस्य विकल्पेन धुडागमो भवति।

उदा०-भवान्त्साये, भवान् साये। महान्त्साये, महान् साये।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नः) नकारान्त (पदात्) पद से (च) भी परवर्ती (सः) सकारादि (पदस्य) पद को (वा) विकल्प से (धुट्) धुट् आगम होता है।*

*उदा०-**भवान्त्साये, भवान् साये।** आप अन्त में। **महान्त्साये, महान् साये।** महान् अन्त में।*

*सिद्धि-**भवान्त्साये।** यहां इस सूत्र से 'भवान्' के पदान्त नकार से परे सकारादि 'साये' पद परे होने पर 'धुट्' आगम होता है। 'खरि च' (८।४।५५) से धकार को चर् तकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'धुट्' आगम नहीं है-**भवान् साये।** ऐसे ही-**महान्त्साये, महान् साये।***

तुक्-आगमः–

(४) शि तुक्।३१।

प०वि०–शि ७।१ तुक् १।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, वा, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां नः पदस्य शि वा तुक्।

अर्थः–संहितायां विषये नकारान्तस्य पदस्य शकारे परतो विकल्पेन तुगागमो भवति।

उदा०–भवाञ्च्छेते, भवाञ् छेते। भवाञ्च्शेते, भवाञ् शेते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (शि) श वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (तुक्) तुक् आगम होता है।*

*उदा०–**भवाञ्च्छेते, भवाञ् छेते। भवाञ्च्शेते, भवाञ् शेते।** आप सोते हैं।*

सिद्धि-भवाञ्च्छेते। *भवान्+शेते। भवान्+छेते। भवान्+तुक्+छेते। भवान्+त्+छेते। भवान्+च्+छेते। भवाञ्+च्+छेते। भवाञ्च्छेते।*

*यहां प्रथम 'भवान्' नकारान्त पद से परवर्ती शकार को 'शश्छोऽटि' (८।४।६२) से छकारादेश होता है। **'पूर्वत्रासिद्धम्'** (८।२।१) से उसे असिद्ध मानकर इस सूत्र से नकारान्त 'भवान्' पद को **तुक् आगम** होता है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से तकार को चकार और नकार को ञकार भी होता है। विकल्प पक्ष में तुक्-आगम नहीं है-**भवाञ् शेते।** पूर्ववत् नकार को चवर्ग ञकार आदेश होता है।*

*'शश्छोटि' (८।४।६३) से शकार को विकल्प से छकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में छकारादेश नहीं है-भवाञ्च् शेते (तुक्)। **भवाञ् शेते** (तुक नहीं)।*

ङमुट्-आगमः–

(५) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्।३२।

प०वि०– ङमः ५।१ ह्रस्वात् ५।१ अचि ७।१ ङमुट् १।१ नित्यम् १।१।

अनु०–पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां ह्रस्वाद् ङमः पदादचो नित्यं ङमुट्।

अर्थः–संहितायां विषये ह्रस्वात् परो यो ङम्, तदन्तात् पदात् परस्याऽचो नित्यं ङमुडागमो भवति। ङणनेभ्यः परा यथासंख्यं ङणना भवन्तीत्यर्थः।

उदा०-ङकारान्ताद् ङुट्-प्रत्यङ्ङास्ते। णकारान्ताद् णुट्-वण्णास्ते। वण्णवोचत्। नकारान्ताद् नुट्-कुर्वन्नास्ते, कुर्वन्नवोचत्। कृषन्नास्ते, कृषन्नवोचत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण से परे जो (ङम्) ङम् वर्ण है तदन्त (पदात्) पद से परवर्ती (अचः) अच् वर्ण को (नित्यम्) सदा (ङमुट्) ङमुट् आगम होता है। अर्थात् ङम्=ङ, ण्, न् आगम होते हैं।*

उदा०-(ङकारान्त) ***ङुट्-प्रत्यङ्ङास्ते।*** *वह पीछे बैठता है। (णकारान्त)* ***णुट्-वण्णास्ते।*** *शब्द करनेवाला बैठता है।* ***वण्णवोचत्।*** *शब्द करनेवाले ने कहा। (नकारान्त)* ***नुट्-कुर्वन्नास्ते।*** *कार्य करता हुआ बैठता है।* ***कुर्वन्नवोचत्।*** *कार्य करते हुये न कहा।* ***कृषन्नास्ते।*** *हल चलाता हुआ बैठता है।* ***कृषन्नवोचत्।*** *हल चलाते हुये ने कहा।*

सिद्धि-प्रत्यङ्ङास्ते। *यहां इस सूत्र से ह्रस्व अकार से परे जो ङकार है तदन्त पद से परवर्ती अच् (आ) को ङुट् (ङ्) आगम होता है। ऐसे ही* ***वण्णास्ते*** *में णुट् (ण्) आगम है। 'वण्' पद में 'वण शब्दार्थः' (भ्वा०प०) धातु से* ***'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'*** *(३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है।* ***कुर्वन्नास्ते*** *आदि में नुट् (न्) आगम है।*

{आदेशप्रकरणम्}

वकारादेशविकल्पः—

(१) मय उञो वो वा।३३।

प०वि०-मयः ५।१ उञः ६।१ वः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, अचीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मय उञो वा वः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य मयः परस्य उञः स्थाने विकल्पेन वकारादेशो भवति।

उदा०-शम्वस्तु वेदिः (द्र०-ऋ० ७।३५।७) शमु अस्तु वेदिः। तद्वस्य परेतः, तदु अस्य परेतः। किम्वावपनम् (यजु० २३।९) किमु आवपनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (मयः) मय् वर्ण से परे (उञः) उञ् को (वा) विकल्प से (वः)* ***वकारादेश होता है।***

उदा०-शम्वस्तु वेदिः (द्र०-ऋ० ७।३५।७) शमु अस्तु वेदिः। यज्ञकुण्डादि हमारे लिए सुख ही हों। तद्वस्य परेतः। तदु अस्य परेतः। क्या वह इससे दूर है। किम्वावपनम्, किमु आवपनम् (यजु० २३।९)। आवपन (बोना) का आधार क्या है ?

सिद्धि-शम्वस्तु। शम्+उ+अस्तु। यहां इस सूत्र से मय् वर्ण (म्) से परवर्ती उञ् के उकार को अच् वर्ण परे होने पर वकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में वकारादेश नहीं है-शमु अस्तु वेदिः।

'उञः ऊँ' (१।१।१७) से 'उञ्' के प्रगृह्य संज्ञा होने से 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' (६।१।१२१) से प्रकृतिभाव प्राप्त था, अतः यह वकारादेश क विधान किया गया है। 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से वकारादेश के पूर्वत्र कार्य में असिद्ध होने से 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से हल् (व्) परे होने पर मकार के अनुस्वार आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-तद्वस्य परेतः, किम्वावपनम्।

स-आदेशः-

(२) विसर्जनीयस्य सः।३४।

प०वि०-विसर्जनीयस्य ६।१ सः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते। **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) इत्यस्मान्मण्डूकोत्प्लुत्या 'खरि' इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य खरि सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य खरि परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-देवश्छादयति। देवष्ठक्कुरः। देवस्थुडति। देवश्चिनोति। देवष्टीकते। देवस्तरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय को (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

उदा०-देवश्छादयति। देव आच्छादित करता है, ढकता है। देवष्ठक्कुरः। देव ठाकुर है। देवस्थुडति। देव ढकता है। देवश्चिनोति। देव चुनता है। देवष्टीकते। देव जाता है। देवस्तरति। देव तैरता है।

सिद्धि-देवश्छादयति। यहां 'देव' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। इस विसर्जनीय को इस सूत्र से खर् वर्ण (छ्) परे होने पर सकारादेश होता है और इसे 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से शकारादेश

हो जाता है। ऐसे ही-देवष्ठक्कुरः। यहां 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से सकार को षकारादेश है। देवस्थुडतिः। देवश्चिनोति। पूर्ववत् शकारादेश है। देवष्टीकते। पूर्ववत् षकारादेश है-देवस्तरति।

विसर्जनीयादेशः--

(३) शर्परे विसर्जनीयः।३५।

प०वि०-शर्परि ७।१ विसर्जनीयः १।१।

स०-शर् परो यस्मात् स शर्परः, तस्मिन्-शर्परि (बहुव्रीहि)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, खरि, विसर्जनीयस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य शर्परि खरि विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने शर्परके खरि परतो विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-पयः क्षरति। अद्भिः प्सातम्। वासः क्षौमम्। दृढः त्सरुः। घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् (ऋ० १०।१०३।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (शर्परि) शर् वर्णपरक (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-**पयः क्षरति**। दूध झरता है। **अद्भिः प्सातम्**। उसने जल के साथ भक्षण किया। **वासः क्षौमम्**। रेशमी वस्त्र। **दृढः त्सरुः**। तलवार की मूठ दृढ़ है। **घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्** (ऋ० १०।१०३।१)। इन्द्र दुष्टजनों को क्षुब्ध एवं नष्ट करनेवाला है।*

सिद्धि-पयः क्षरति। *यहां इस सूत्र से शर्वर्णपरक (ष) शर् वर्ण (क्) होने पर 'पयः' पद के विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**अद्भिः प्सातम्**। यहां शर्परक (स) खर् प् वर्ण है। **वासः क्षौमम्**। यहां शर्परक (ष) खर् क् वर्ण है। **दृढः त्सरुः**। यह शर्परक (स) खर् त् वर्ण है। **घनाघनः क्षोभणः**। यहां शर्परक (स) खर् क् वर्ण है।*

विसर्जनीयादेशविकल्पः--

(४) वा शरि।३६।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, शरि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य शरि वा विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने शरि परतो विकल्पेन विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-पुरुषः शेते, पुरुषश्शेते। रसाः षट्, रसाष्षट्। सर्पः सरति, सर्पस्सरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (शरि) शर् वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-पुरुषः शेते, **पुरुषश्शेते।** पुरुष सोता है। **रसाः षट्, रसाष्षट्।** रस छः हैं। सर्पः सरति, **सर्पस्सरति।** सांप सरकता है, पेट के बल चलता है।*

सिद्धि-पुरुषः शेते। *यहां 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को शर् वर्ण (श) परे होने पर विसर्जनीय आदेश है। विकल्प पक्ष में **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और इसे **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से शकारादेश होता है। ऐसे ही-रसाः षट्, **रसाष्षट्।** यहां **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से सकार को षकारादेश होता है। सर्पः सरति, **सर्पस्सरति।***

ᳲकᳲ पावादेशौ-

(५) कुप्वोः ᳲकᳲ पौ च।३७।

प०वि०-कुप्वोः ७।२ ᳲकᳲ पौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-कुश्च पुश्च तौ कुपू, तयोः-कुप्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ᳲकश्च ᳲपश्च तौ- ᳲकᳲ पौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोःᳲकᳲपौ विसर्जनीयश्च।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने कवर्गे पवर्गे च परतो यथासंख्यंᳲकᳲपौ जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ विसर्जनीयश्चादेशो भवति।

उदा०-**(कुः)** पुरुषᳲकरोति, पुरुषः करोति। पुरुषᳲखनति, पुरुषः खनति। **(पुः)** पुरुषᳲपचति, पुरुषः पचति। वृक्षᳲफलति, वृक्षः फलति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग परे होने पर (ᳲकᳲपौ) जिह्वामूलीय वर्ण और उपध्मानीय (च) और (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

उदा०-(कु) पुरुष ⫕करोति, पुरुषः करोति। पुरुष करता है। पुरुष ⫕खनति, पुरुषः खनति। पुरुष खोदता है। (पु) पुरुष ⫕पचति, पुरुषः पचति। पुरुष पकाता है। वृक्ष ⫕फलति, वृक्षः फलति। वृक्ष फलता है, फल देता है।

सिद्धि-(१) पुरुष ⫕करोति। यहां इस सूत्र से 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर ⫕क जिह्वामूलीय आदेश होता है। दूसरे पक्ष में विसर्जनीय आदेश भी होता है-पुरुषः करोति। ऐसे ही-पुरुष ⫕खनति, पुरुषः खनति।

(२) पुरुष ⫕पचति। यहां इस सूत्र से 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को पवर्ग (प) परे होने पर ⫕प उपध्मानीय आदेश होता है। दूसरे पक्ष में विसर्जनीय आदेश भी होता है-पुरुषः पचति। ऐसे ही-वृक्ष ⫕फलति, वृक्षः फलति।

स-आदेशः-

(६) सोऽपदादौ।३८।

प०वि०-सः १।१ अपदादौ ७।१।

स०-पदस्य आदिरिति पदादिः, तस्मिन्-अपदादौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्याऽपदाद्योः कुप्वोः सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽपदाद्योः कुप्वोः परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(कु) पयस्कल्पम्, यशस्कल्पम्। पयस्कम्, यशस्कम्। पयस्काम्यति, यशस्काम्यति। **(पु)** पयस्पाशम्, यशस्पाशम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य)पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अपदाद्योः) अपदादि (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(कु) **पयस्कल्पम्**। दूध के सदृश। **यशस्कल्पम्**। यश के सदृश। **पयस्कम्**। थोड़ा दूध। **यशस्कम्**। थोड़ा यश। **पयस्काम्यति**। वह दूध की इच्छा करता है। **यशस्काम्यति**। वह यश की इच्छा करता है। (पु) **पयस्पाशम्**। निन्दित दूध। **यशस्पाशम्**। निन्दित यश, अपयश।*

*सिद्धि-(१) **पयस्कल्पम्**। यहां 'पयस्' शब्द से **'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'** (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति=थोड़ी अपूर्णता अर्थ में 'कल्पप्' प्रत्यय है। 'पयस्' के सकार को **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'रु' आदेश और इसे **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से विसर्जनीय होता है। इस सूत्र से कल्पप् प्रत्यय का अपदादि कवर्ग (क) परे होने पर विसर्जनीय को सकारादेश होता है। ऐसे ही-**यशस्कल्पम्**।*

*(२) **पयस्कम्।** यहां 'पयस्' शब्द से **'अल्पे'** (५।३।८५) से अल्प-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्कम्।***

*(३) **पयस्काम्यति** यहां 'पयस्' शब्द से **'काम्यच्च'** (३।१।९) से 'काम्यच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्काम्यति।***

*(४) **पयस्पाशम्।** यहां 'पयस्' शब्द से **'याप्ये पाशप्'** (५।३।४७) से कुत्सित-अर्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्पाशम्।***

स-आदेशः–

(७) इणः षः।३६।

प०वि०-इणः ५।१ षः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, अपदादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्येणो विसर्जनीयस्याऽपदाद्योः कुप्वोः षः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्येणः परस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽपदाद्योः कुप्वोः परतः षकारादेशो भवति।

उदा०-(कुः) सर्पिष्कल्पम्, यजुष्कल्पम्। सर्पिष्कम्, यजुष्कम्। सर्पिष्काम्यति, यजुष्काम्यति। **(पुः)** सर्पिष्पाशम्, यजुष्पाशम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अपदाद्योः) अपदादि (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (षः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(कु) **सर्पिष्कल्पम्।** घृत के सदृश। **यजुष्कल्पम्।** याजुष मन्त्र के सदृश। **सर्पिष्कम्।** थोड़ा घृत। **यजुष्कम्।** थोड़ा याजुष मन्त्र। **सर्पिष्काम्यति।** वह घृत की इच्छा करता है। **यजुष्काम्यति।** वह याजुष मन्त्रों के उच्चारण की इच्छा करता है। (पु) **सर्पिष्पाशम्।** निन्दित घृत। **यजुष्पाशम्।** निन्दित याजुष मन्त्र (अशुद्ध उच्चारित)।*

*सिद्धि-(१) **सर्पिष्कल्पम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'** (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति (थोड़ी अपूर्णता) अर्थ में 'कल्पप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सर्पिस्' पद के इण् से परवर्ती विसर्जनीय को अपदादि 'कल्पप्' (प्रत्यय) का कवर्ग (क) परे होने पर विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**यजुष्कल्पम्।***

*(२) **सर्पिष्कम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अल्पे'** (५।३।८५) से अल्प-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्कम्।***

*(३) **सर्पिष्काम्यति** यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**काम्यच्च**' (३।१।९) से इच्छा-अर्थ में 'काम्यच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्काम्यति**।*

*(४) **सर्पिष्पाशम्**। यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**याप्ये पाशप्**' (५।३।४७) से याप्य=कुत्सित-अर्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्पाशम्**।*

स-आदेशः--

(८) नमस्पुरसोर्गत्योः।४०।

प०वि०-नमस्-पुरसोः ६।२ गत्योः ६।२।

स०-नमश्च पुरश्च तौ नमस्पुरसौ, तयोः-नमस्पुरसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां गत्योर्नमस्पुरसोः पदयोर्विसर्जनीयस्य कुप्वोः सः।

अर्थः-संहितायां विषये गतिसंज्ञकयोर्नमस्पुरसोः पदयोर्विसर्जनीयस्य स्थाने, कुप्वोः परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(**नमः**) नमस्कर्ता, नमस्कर्तुम्, नमस्कर्तव्यम्। (**पुरः**) पुरस्कर्ता, पुरस्कर्तुम्, पुरस्कर्तव्यम्। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (गत्योः) गति-संज्ञक (नमस्पुरसोः) नमस्, पुरस् इन (पदयोः) पदों के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(नमः) **नमस्कर्ता**। नमस्कार करनेवाला। **नमस्कर्तुम्**। नमस्कार करने के लिये। **नमस्कर्तव्यम्**। नमस्कार करना चाहिये। (पुरः) **पुरस्कर्ता**। पुरस्कृत करनेवाला। **पुरस्कर्तुम्**। पुरस्कृत करने के लिये। **पुरस्कर्तव्यम्**। पुरस्कृत करना चाहिये। पवर्ग का उदाहरण नहीं है।*

*सिद्धि-**नमस्कर्ता**। यहां नमस्-उपपद '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से गतिसंज्ञक 'नमस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर सकारादेश होता है। ऐसे ही 'तुमुन्' प्रत्यय में-**नमस्कर्तुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**नमस्कर्तव्यम्**। **पुरः** शब्द से 'तृच्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्ता**। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्तुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्तव्यम्**।*

*'नमस्' पद की '**साक्षात्प्रभृतीनि च**' (१।४।७३) से और 'पुरस्' पद की '**पुरोऽव्ययम्**' (१।४।६६) से गतिसंज्ञा है।*

ष-आदेशः–

(६) इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य।४१।

प०वि०–इदुदुपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्, अप्रत्ययस्य ६।१।

स०–इच्च उच्च तौ इदुतौ, तावुपधे यस्य स इदुदुपधः, तस्य-इदुदुपधस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। न प्रत्यय इति अप्रत्ययः, तस्य-अप्रत्ययस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, षः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामप्रत्ययस्य इदुदुपधस्य च पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोः षः।

अर्थः–संहितायां विषये प्रत्ययवर्जितस्य इदुपधस्य उदुपधस्य च पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने च कुप्वोः परतः षकारादेशो भवति।

उदा०–(इदुपधः) **निस्**–निष्कृतम्, निष्पीतम्। **बहिस्**–बहिष्कृतम्, बहिष्पीतम्। **आविस्**–आविष्कृतम्, आविष्पीतम्। (उदुपधः) **दुस्**–दुष्कृतम्, दुष्पीतम्। **चतुर्**–चतुष्कृतम्, चतुष्कपालम्। चतुष्कण्टकम्। चतुष्कलम्। **प्रादुस्**–प्रादुष्कृतम्, प्रादुष्पीतम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रत्ययस्य) प्रत्यय से भिन्न (इदुदुपधस्य) इकार उपधा और उकार उपधावाले (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (च) भी (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०–(इकारोपध) निस्–**निष्कृतम्**। बदला चुकाना। **निष्पीतम्**। निश्चित पान। बहिस्–**बहिष्कृतम्**। बाहर करना, निकालना। **बहिष्पीतम्**। पीत पदार्थ को बाहर निकालना, वमन करना। आविस्–**आविष्कृतम्**। प्रकट करना। **आविष्पीतम्**। प्रकट रूप में पीना। (उकारोपध) दुस्–**दुष्कृतम्**। बुरा करना। **दुष्पीतम्**। सुरादि निकृष्ट पान करना। चतुर्–**चतुष्कृतम्**। चार बार करना। **चतुष्कपालम्**। चार कपालों में संस्कृत अन्न। **चतुष्कण्टकम्**। चार कण्टकों (शत्रु) वाला। **चतुष्कलम्**। चार कलाओंवाला। प्रादुस्–**प्रादुष्कृतम्**। प्रकट करना। **प्रादुष्पीतम्**। प्रकट रूप में पान करना।*

*सिद्धि–**निष्कृतम्**। यहां निस्-उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से भाव-अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इकार उपधावाले 'निस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर षकारादेश होता है। ऐसे ही–**निष्पीतम्** आदि।*

स-आदेशविकल्पः–

(१०) तिरसोऽन्यतरस्याम्।४२।

प०वि०–तिरसः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते। **'नमस्पुरसोर्गत्योः'** (८।३।४०) इत्यस्माच्च मण्डूकोत्प्लुत्या गतिरिति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः–संहितायां गतेस्तिरसः पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोरन्यतरस्यां सः।

अर्थः–संहितायां विषये गतिसंज्ञकस्य तिरसः पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने च कुप्वोः परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०–तिरस्कर्ता, तिरस्कर्तुम्, तिरस्कर्तव्यम्। **पक्षे–**तिरःकर्ता, तिरःकर्तुम्, तिरःकर्तव्यम्। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषाः* *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (गतेः) गति-संज्ञक (तिरसः) तिरस् इस (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (च) भी (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (सः) सकारादेश होता है।

*उदा०–**तिरस्कर्ता।** छुपानेवाला। **तिरस्कर्तुम्।** छुपाने के लिये। **तिरस्कर्तव्यम्।** छुपाने चाहिये। विकल्प पक्ष में–**तिरःकर्ता, तिरःकर्तुम्, तिरःकर्तव्यम्।** अर्थ पूर्ववत् है। पवर्गपरक का उदाहरण नहीं है।*

सिद्धि–तिरस्कर्ता। *यहां तिरस्-उपपद **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से गति-संज्ञक 'तिरस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क्) वर्ण परे होने सकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में सकारादेश नहीं है–**तिरःकर्ता।***

*'तुमुन्' प्रत्यय में–**तिरस्कर्तुम्, तिरःकर्तुम्।** 'तव्यत्' प्रत्यय में–**तिरस्कर्तव्यम्, तिरःकर्तव्यम्।** 'तिरस्' शब्द की **'विभाषा कृञि'** (१।४।७१) से गति-संज्ञा है। यहां **'कुप्वोः ≍क≍पौ च'** (८।३।३७) से ≍क जिह्वामूलीय आदेश प्राप्त था।*

स-आदेशविकल्पः–

(११) द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे।४३।

प०वि०–द्विस्त्रिश्चतुः १।१ इति अव्ययपदम्, कृत्वोऽर्थे ७।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च चतुश्च एतेषां समाहारः–द्विस्त्रिश्चतुः (समाहारद्वन्द्वः)। कृत्वसुचोऽर्थ इति कृत्वोऽर्थः, तस्मिन्–कृत्वोऽर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, षः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां कृत्वोऽर्थे द्विस्त्रिश्चतुरिति पदानां विसर्जनीयस्य कुप्वोरन्यतरस्यां षः।

अर्थः-संहितायां विषये कृत्वोऽर्थे वर्तमानानां द्विस्त्रिश्चतुरित्येतेषां पदानां विसर्जनीयस्य स्थाने कुप्वोः परतो विकल्पेन षकारादेशो भवति।

उदा०-**(द्विः) कुः**-द्विष्करोति, द्विः करोति। **पुः**-द्विष्पचति, द्विः पचति। **(त्रि) कुः**-त्रिष्करोति, त्रिः करोति। **पुः**-द्विष्पचति, त्रिः पचति। **(चतुर्) कुः**-चतुष्करोति, चतुः करोति। **पुः**-चतुष्पचति, चतुः पचति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कृत्वोऽर्थे) कृत्सुच् प्रत्यय के अर्थ में विद्यमान (द्विस्त्रिश्चतुः) द्विः, त्रिः, चतुर् इन (पदानाम्) पदों के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०-(द्विः) कु-**द्विष्करोति, द्विः करोति।** वह दो बार करता है। पु-**द्विष्पचति, द्विः पचति।** वह दो बार पकाता है। (त्रिः) कु-**त्रिष्करोति, त्रिः करोति।** वह तीन बार करता है। पु-**द्विष्पचति, त्रिः पचति।** वह तीन बार पकाता है। (चतुर्) कु-**चतुष्करोति, चतुः करोति।** वह चार बार करता है। पु-**चतुष्पचति, चतुः पचति।** वह चार बार पकाता है।*

सिद्धि-द्विष्करोति। *यहां 'द्वि' शब्द से **'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्'** (५।४।१८) से कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ (क्रिया की अभ्यावृत्ति की गणना) में 'सुच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'द्विः' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर षकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में षकारादेश नहीं है-**द्विः करोति।** पवर्गपरक में-**द्विष्पचति, द्विः पचति।***

*'त्रिः' पद में-**त्रिष्करोति, त्रिः करोति।** पवर्गपरक में-**त्रिष्पचति, चतुःपचति।** यहां 'रात्सस्य' (८।२।२४) से 'सुच्' के सकार का लोप होता है और 'चतुर्' के रेफ को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।*

ष-आदेशविकल्पः--

(१२) इसुसोः सामर्थ्ये।४४।

प०वि०-इससोः ६।२ सामर्थ्ये ७।१।

स०-इस् च उस् च तौ इसुसौ, तयोः-इसुसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-समर्थस्य भावः सामर्थ्यम्, तस्मिन्-सामर्थ्ये **'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादिलक्षणः ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, षः, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदयोरिसुसोर्विसर्जनीयस्य सामर्थ्ये कुप्वोरन्यतरस्यां षः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तयोरिसुसोर्विसर्जनीयस्य स्थाने सामर्थ्ये सति कुप्वोः परतो विकल्पेन षकारादेशो भवति।

उदा०-(इस्) कुः-सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति। (उस्) कुः-यजुष्करोति, यजुः करोति। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (इसुसोः) इस् और उस् के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (सामर्थ्ये) परस्पर एकार्थी-भाव होने तथा (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (षः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(इस्) कु-**सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति।** वह घृत बनाता है। (उस्) कु-**यजुष्करोति, यजुः करोति।** वह याजुष मन्त्रों का उच्चारण करता है।*

सिद्धि-सर्पिष्करोति। *यहां इस सूत्र से इसन्त 'सर्पिस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर परस्पर एकार्थी-भाव में षकारादेश होता है। सामर्थ्य का तात्पर्य यह है कि दोनों पदों का परस्पर अर्थ संगत होना चाहिये। विकल्प-पक्ष में षकारादेश नहीं है-**सर्पिः करोति।** ऐसे ही-**यजुष्करोति, यजुः करोति।***

नित्यं षकारादेशः-

(१३) नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य।४५।

प०वि०-नित्यम् १।१ समासे ७।१ अनुत्तरपदस्थस्य ६।१।

स०-उत्तरपदे तिष्ठतीति उत्तरपदस्थः, न उत्तरपदस्थ इति अनुत्तरपदस्थः, तस्य-अनुत्तरपदस्थस्य (उपपदगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, षः, इसुसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे पदयोरिसुसोरनुत्तरपदस्थस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोर्नित्यं षः ।

अर्थः-संहितायां विषये समासे वर्तमानयोः पदान्तयोरिसुसोरनुत्तर-पदस्थस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, कुप्वोः परतो नित्यं षकारादेशो भवति।

उदा०-**(इस्) कुः**-सर्पिषः कुण्डिकेति सर्पिष्कुण्डिका। **(उस्) कुः**-धनुषः कपालमिति धनुष्कपालम्। **(इस्) पुः**-सर्पिषः पानमिति सर्पिष्पानम्। **(उस्) पुः**-धनुषः फलमिति धनुष्फलम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समासे) समास में तथा (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (इसुसोः) इस् और उस् के (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (नित्यम्) सदा (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०-(इस्) कु-**सर्पिष्कुण्डिका**। घृत की कुण्डी। (उस्) कु- **धनुष्कपालम्**। धनुष रखने का पात्रविशेष। (इस्) पु-**सर्पिष्पानम्**। घृत का पान। (उस्) पु-**धनुष्फलम्**। धनुष की सिद्धि।*

*सिद्धि-(१)**सर्पिष्कुण्डिका**। यहां 'सर्पिस्' और 'कुण्डिका' शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'सर्पिस्' पद के उत्तरपद में अनवस्थित विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर नित्य षकारादेश होता है। ऐसे ही-**धनुष्कपालम्**। पवर्ग में-**सर्पिष्पानम्, धनुष्फलम्**।*

नित्यं सकारादेशः-

(१४) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य।४६।

प०वि०-अतः ५।१ कृ-कमि-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीषु ७।३ अनव्ययस्य ६।१।

स०-कृश्च कमिश्च कंसश्च कुम्भश्च पात्रं च कुशा च कर्णी च ताः कृ०कर्ण्यः, तासु-कृ०कर्णीषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अव्ययमिति अनव्ययम्, तस्य अनव्ययस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, नित्यम्, समासे, अनुत्तरपदस्थस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्यातः समासेऽनुत्तरपदस्थस्यानव्ययस्य विसर्जनीयस्य कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु नित्यं सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्याऽकारात्परस्य समासे वर्तमानस्याऽनुत्तर-पदस्थस्याऽनव्ययस्य विसर्जनीयस्य स्थाने कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु परतो नित्यं सकारादेशो भवति।

उदा०-**(कृः)** अयस्कारः, पयस्कारः। **(कमिः)** अयस्कामः, पयस्कामः। **(कंसः)** अयस्कंसः, पयस्कंसः। **(कुम्भः)** अयस्कुम्भः, पयस्कुम्भः। **(पात्रम्)** अयस्पात्रम्, पयस्पात्रम्। **(कुशा)** अयस्कुशा, पयस्कुशा। **(कर्णी)** अयस्कर्णी, पयस्कर्णी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (अतः) अकार से परवर्ती (समासे) समास में विद्यमान (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (अनव्ययस्य) अव्यय से भिन्न शब्द के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कृ०) कृ, कमि, कंस, कुम्भपात्र, कुशा, कर्णी इन शब्दों के परे होने पर (नित्यम्) सदा (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(कृ) **अयस्कारः**। सुवर्णकार/लोहार। **पयस्कारः**। **दुग्धकार/जलकार**। **(कमि) अयस्कामः**। सुवर्ण/लोह की कामना करनेवाला। **पयस्कामः**। दुग्ध/जल की कामना करनेवाला। (कंस) **अयस्कंसः**। सोना/लोहे का गिलास। **पयस्कंसः**। दूध/जल का गिलास। (कुम्भ) **अयस्कुम्भः**। सुवर्ण/लोहे का कलश (घड़ा)। **पयस्कुम्भः**। दूध/जल का कलश। (पात्र) **अयस्पात्रम्**। सुवर्ण/लोहा का पात्र। **पयस्पात्रम्**। दूध/जल का पात्र। (कुशा) **अयस्कुशा**। सुनहरी दर्भ। **पयस्कुशा**। जलसेचनी कुशा (दर्भ)। **(कर्ण) अयस्कर्णी**। सुनहरे कानोंवाली। **पयस्कर्णी**। श्वेत कानोंवाली।*

सिद्धि-अयस्कारः आदि समस्त पदों में विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है। यहां 'कुप्वोः ᳲकᳲपौ च' (८।३।३७) से क जिह्वामूलीय आदेश प्राप्त था। यही उसका अपवाद है।

स-आदेशः-

(१५) अधःशिरसी पदे।४७।

प०वि०-अधःशिरसी १।२ (षष्ठ्यर्थे) पदे ७।१।

स०-अधश्च शिरश्च ते अधःशिरसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, समासे, अनुत्तर-पदस्थस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां अधःशिरसी इति पदयोः समासेऽनुत्तरपदस्थस्य विसर्जनीयस्य पदे सः।

अर्थः-संहितायां विषये अधःशिरसी इत्येतयोः पदयोः समासेऽनुत्तर-पदस्थस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पदे उत्तरपदे परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(**अधः**) अधस्पदम्, अधस्पदी। (**शिरः**) शिरस्पदम्, शिरस्पदी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अधःशिरसी) अधस्, शिरस् इन (पदयोः) पदों के (समासे) समास में (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पदे) पद शब्द उत्तरपद में होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(अधः) **अधस्पदम्।** नीच पद (स्थान)। **अधस्पदी।** नीचे पदवाली। (शिरः) **शिरस्पदम्।** ऊंचा पद। **शिरस्पदी।** ऊंचे पदवाली।*

सिद्धि-अधस्पदम् आदि समस्त पदों में विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है। यहां 'कुप्वोः ≍क≍पौ च' (८।३।३७) से ≍प उपध्मानीय आदेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।

सकारः षकारो वाऽऽदेशः-

(१६) कस्कादिषु च।४८।

प०वि०-कस्कादिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-कस्क आदिर्येषां ते कस्कादयः, तेषु-कस्कादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, समासे, कुप्वोः, ष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां कस्कादिषु पदेषु विसर्जनीयस्य कुप्वोः सः षो वा।

अर्थः-संहितायां विषये कस्कादिषु पदेषु विसर्जनीयस्य स्थाने कुप्वोः परतो यथायोगं सकारः षकारो वाऽऽदेशो भवति।

उदा०-कस्कः, कौतस्कुतः, भ्रातुष्पुत्र इत्यादिकम्।

कस्कः। कौतस्कुतः। भ्रातुष्पुत्रः। शुनस्कर्णः। सद्यस्कालः। सद्यस्क्रीः। **सद्यस्कः**। काँस्कान्। सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम्। बर्हिष्पूलम्। यजु-**ष्पात्रम्। अयस्काण्डः। मेदस्पिण्डः। इति कस्कादयः। आकृतिगणोऽयम्।।**

आर्यभाषाः अर्थ- *(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कस्कादिषु) कष्कः इत्यादि* ***(पदेषु)*** *पदों में (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर यथायोग (सः) सकार अथवा (षः) षकारादेश होता है।*

उदा०- ***कस्कः।*** *कौन-कौन।* ***कौतस्कुतः।*** *कहां-कहां से आया हुआ।* ***भ्रातुष्पुत्रः।*** *भाई का पुत्र (भतीजा)।*

सिद्धि-(१) *कस्क-आदि गण में पठित शब्दों में विसर्जनीय के स्थान में सकार वा षकार आदेश स्पष्ट है।* ***'नित्यवीप्सयोः'*** *(८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है।*

(२) कौतस्कुतः। *'कुतस्कुतः' शब्द से* ***'तत आगतः'*** *(४।३।७४) से आगत-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् द्विर्वचन है।*

(३) भ्रातुष्पुत्रः। *यहां भातृ और पुत्र शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है।* ***'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः'*** *(६।३।२१) से षष्ठी का अलुक् होता है। इस सूत्र से षत्व होता है।*

यहां 'कुप्वोः ≍क ≍पौ च' (८।३।३७) से ≍क जिह्वामूलीय अथवा ≍प उपध्मानीय आदेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।

सकारादेशविकल्पः-

(१७) छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः।४६।

प०वि०- छन्दसि ७।१ वा अव्ययपदम्, अप्राम्रेडितयोः ७।२।

स०- प्रश्च आम्रेडितं च ते प्राम्रेडिते, न प्राम्रेडिते इति अप्राम्रेडिते, तयोः-अप्राम्रेडितयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०- पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः- संहितायां छन्दसि पदस्य विसर्जनीयस्याऽप्राम्रेडितयोः कुप्वोर्वा सः।

अर्थः- संहितायां छन्दसि च विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने प्र-आम्रेडितवर्जितयोः कुप्वोः परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०- अयःपात्रम्, अयस्पात्रम् (शौ०सं० ८।१३।२)। विश्वतःपात्रम्, विश्वतस्पात्रम्। उरुणःकारः, उरुणस्कारः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में* ***(पदस्य)*** *पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अप्राम्रेडितयोः) प्र और आम्रेडित पद से भिन्न (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-अयःपात्रम्, अयस्पात्रम् (शौ०सं० ८।१३।२)। सुवर्ण/लोह का पात्र। **विश्वतःपात्रम्, विश्वतस्पात्रम्।** सब ओर से पात्र (योग्य)। उरुणःकारः, **उरुणस्कारः।** उरु बहुनाम (निघण्टु ३।१)। बहुत कार्य करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **अयःपात्रम्।** यहां अयस् और पात्र शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। **'अतः कृकमि०'** (८।३।४६) से विसर्जनीय के स्थान में नित्य सकारादेश प्राप्त था। इस सूत्र से छन्द में विकल्प विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में सकारादेश है-**अयस्पात्रम्।***

*(२) उरुणःकारः। यहां उरु पद से परे 'अस्मद्' शब्द के स्थान में **'बहुवचनस्य वस्नसौ'** (८।१।२१) से नस् (नः) आदेश है। **'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः'** (८।४।२६) से णत्व होता है। इस सूत्र से विसर्जनीय के स्थान में विसर्जनीय आदेश है। विकल्प-पक्ष में सकारादेश है-**उरुणस्कारः।***

सकारादेशः--

(१८) कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः।५०।

प०वि०-कः-करत्-करति-कृधि-कृतेषु ७।३ अनदितेः ६।१।

स०-कश्च करच्च करतिश्च कृधिश्च कृतं च तानि कः०कृतानि, तेषु-कः०कृतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अदितिरिति अनदितिः, तस्याः-अनदितेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि अनदितेः पदस्य विसर्जनीयस्य कःकरत्-करतिकृधिकृतेषु सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषयेऽदितिवर्जितस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, कःकरत्करतिकृधिकृतेषु परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(कः) विश्वतस्कः। **(करत्)** विश्वतस्करत्। **(करति)** पयस्करति। **(कृधि)** उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। **(कृतम्)** सदस्कृतम्। अनदितेरिति किम्? यथा नो अदितिः करत् (ऋ० १।४३।२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (अनदितेः) अदिति से भिन्न (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कः०) कः, करत्, करति, कृधि, कृत इन शब्दों के परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(**कः**) **विश्वतस्कः**। उसने सर्वतः किया। (**करत्**) **विश्वतस्करत्**। उसने सर्वतः किया। (**करति**) **पयस्करति**। वह दूध/जल बनाता है। (**कृधि**) उरु **णस्कृधि** (ऋ० ८।७५।११)। (**कृतम्**) **सदस्कृतम्**। सभा में किया हुआ निर्णय आदि।*

***सिद्धि-विश्वतस्कः**। यहां 'कः' शब्द में '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**च्लि लुङि**' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और इसका '**मन्त्रे घस०**' (२।४।८०) से लुक् हो जाता है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'कृ' धातु को गुण और इसे '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व (कर्) '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६६) से अपृक्त त् (तिप्) का लोप और रेफ को विसर्जनीय आदेश है। '**बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि**' (६।४।७५) से अट् आगम का अभाव है। इस 'कः' शब्द के परे होने पर 'विश्वतः' के विसर्जनीय को सकारादेश होता है।*

*(२) **करत्**। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। '**कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि**' (३।१।५९) से 'अङ्' विकरण-प्रत्यय और '**ऋदृशोऽङि गुणः**' (७।४।१६) से गुण होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम का अभाव है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **करति**। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से छन्द में 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **कृधि**। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लोट्' प्रत्यय है। '**सेर्ह्यपिच्च**' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश और इसे '**श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि**' (६।४।१०२) से 'धि' आदेश और '**बहुलं छन्दसि**' (२।४।७३) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **सदस्कृतम्**। यहां '**सप्तमी शौण्डैः**' (२।१।४०) में 'सप्तमी' इस योगविभाग से सप्तमीतत्पुरुष समास है-**सदसि कृतमिति सदस्कृतम्**। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

सकारादेशः-

(१६) पञ्चम्याः परावध्यर्थे।५१।

प०वि०-पञ्चम्याः ६।१ परौ ७।१ अध्यर्थे ७।१।

स०-अधेरर्थ इति अध्यर्थः, तस्मिन्-अध्यर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि पञ्चम्याः पदस्य विसर्जनीयस्याऽध्यर्थे परौ सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पञ्चम्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽध्यर्थके परिशब्दे परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-दिवस्परि प्रथमं जज्ञे (ऋ० १० ।४५ ।१)। अग्निर्हिमवतस्परि (शौ०सं० ४ ।९ ।९)। दिवस्परि (ऋ० १ ।१२१ ।१०)। महस्परि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अध्यर्थे) अधि-अर्थक (परौ) परि शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-**दिवस्परि प्रथमं जज्ञे** (ऋ० १० ।४५ ।१)। द्युलोक से ऊपर। **अग्निर्हिमवतस्परि** (शौ०सं० ४ ।९ ।९)। हिमवान् के ऊपर। **दिवस्परि** (ऋ० १ ।१२१ ।१०)। द्युलोक से ऊपर। **महस्परि**। महः नामक लोक से ऊपर।*

सिद्धि-दिवस्परि *आदि शब्दों में अधि-अर्थक 'परि' शब्द परे होने पर पञ्चम्यन्त 'दिवः' के विसर्जनीय को सकारादेश स्पष्ट है। ऐसे ही-**हिमवतस्परि, महस्परि**।*

बहुलं सकारादेशः-

(२०) पातौ च बहुलम् ।५२।

प०वि०-पातौ ७ ।१ च अव्ययपदम्, बहुलम् १ ।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसि, पञ्चम्या इति चानुवतति।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि पञ्चम्याः पदस्य विसर्जनीयस्य पातौ च बहुलं सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पञ्चम्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पातौ परतश्च बहुलं सकारादेशो भवति।

उदा०-दिवस्पातु (ऋ० १० ।१५८ ।९)। राज्ञस्पातु। बहुलवचनान्न च भवति-परिषदः पातु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पातौ) पातु शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-**दिवस्पातु** (ऋ० १० ।१५८ ।९)। सूर्य हमारी द्युलोक से रक्षा करे। **राज्ञस्पातु**। वह राजा से रक्षा करे। बहुलवचन से कहीं सकारादेश नहीं भी होता है-**परिषदः पातु**। वह परिषद् से रक्षा करे।*

सिद्धि-दिवस्पातु *आदि में पञ्चम्यन्त 'दिवः' आदि के विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है।*

सकारादेशः--

(२१) षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु।५३।

प०वि०-षष्ठ्याः ६।१ पति-पुत्र-पृष्ठ-पार-पद-पयस्-पोषेषु ७।३।

स०-पतिश्च पुत्रश्च पृष्ठं च पारं च पदं च पयश्च पोषश्च ते-पति०पोषाः, तेषु-पति०पोषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि षष्ठ्याः पदस्य विसर्जनीयस्य पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये षष्ठ्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-**(पतिः)** वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये (ऋ० १०।८१।७)। **(पुत्रः)** दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत (ऋ० १०।३७।१)। **(पृष्ठम्)** दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम् (शौ०सं० १३।२।३७)। **(पारम्)** अगन्म तमसस्पारमस्य (यजु० १२।७३)। **(पदम्)** इडस्पदे समिध्यसे (ऋ० १०।१९१।१)। **(पयः)** सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः। **(पोषम्)** रायस्पोषं यजमानेषु धारय (ऋ० १०।१२२।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पति०) पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(पति) **वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये** (ऋ० १०।८१।७)। हम लोग वेदविद्या के पति विश्वकर्मा को रक्षा के लिये पुकारें। (पुत्र) **दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत** (ऋ० १०।३७।१)। हे मनुष्यो! तुम द्युलोक के पुत्र सूर्य की स्तुति करो। (पृष्ठ) **दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम्** (शौ०सं० १३।२।३७)। द्युलोक की पीठ पर दौड़ते हुये सुपर्ण (सूर्य) को। (पार) **अगन्म तमसस्पारमस्य** (यजु० १२।७३)। हम इस अन्धकार के पार चले गये हैं। (पद) **इडस्पदे समिध्यसे** (ऋ० १०।१९१।१)। हे अग्ने! तू संसार के मध्य में प्रकाशित है। (पयः) **सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः**। दिवस्पयः=द्युलोक का जल। (पोष) **रायस्पोषं यजमानेषु धारय** (ऋ० १०।१२२।८)। हे अग्ने! तू धन की पुष्टि को यजमानों में स्थापित कर।*

*सिद्धि-**वाचस्पतिम्**। यहां षष्ठ्यन्त 'वाचः' पद के विसर्जनीय को पति शब्द परे होने पर सकारादेश स्पष्ट है। ऐसे ही-**दिवस्पुत्राय, दिवस्पृष्ठे, तमस्पारम्, इडस्पदे,** इडः शब्द 'इट्' शब्द का षष्ठ्यन्त रूप है। **दिवस्पयः, रायस्पोषम्।** 'रायः' रै शब्द का षष्ठी-एकवचन है।*

सकारादेशविकल्पः–

(२२) इडाया वा।५४।

प०वि०-इडायाः ६ ।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसि, षष्ठ्याः, पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि षष्ठ्या इडायाः पदस्य विसर्जनीयस्य पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु वा सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये षष्ठ्यन्तस्य इडायाः पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०-**(पतिः)** इडायास्पतिः, इडायाः पतिः। **(पुत्रः)** इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः। **(पृष्ठम्)** इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्। **(पारम्)** इडायास्पारम्, इडायाः पारम्। **(पदम्)** इडायास्पदम्। इडायाः पदम्। **(पयः)** इडायास्पयः, इडायाः पयः। **(पोषम्)** इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (इडायाः) इडा इस (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पति०) पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष शब्द परे होने पर (वा) विकल्प से (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(पति) **इडायास्पतिः, इडायाः पतिः।** वेदवाणी/पृथिवी का पति। (पुत्र) **इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः।** पृथिवी का पुत्र, देशभक्त। (पृष्ठम्) **इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्।** पृथिवी की पीठ। (पार) **इडायास्पारम्, इडायाः पारम्।** पृथिवी के पार। (पद) **इडायास्पदम्। इडायाः पदम्।** पृथिवी का पद (स्थानविशेष)। (पयः) **इडायास्पयः, इडायाः पयः।** पृथिवी का जल। (पोष) **इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।** पृथिवी का पोषण।*

'इडा' शब्द निघण्टु (१।१) में पृथिवी नामों में (१।११) में, वाङ्नामों में (२।७) में अन्न नामों में (२।१) और (५।५) पद नामों में पठित है। अतः यथा प्रकरण अर्थ की संगति करें।

***सिद्धि-इडायास्पतिः,** इडायाः पतिः आदि उदाहरणों में 'इडायाः' इस षष्ठ्यन्त पद के विसर्जनीय को सकारादेश और विकल्प पक्ष में विसर्जनीय आदेश स्पष्ट है।*

।। इति पदाधिकारः समाप्तः ।।

मूर्धन्यादेशप्रकरणम्

अधिकारः–

(१) अपदान्तस्य मूर्धन्यः।५५।

प०वि०–अपदान्तस्य ६।१ मूर्धन्यः ६।१।

स०–पदस्य अन्त इति पदान्तः, न पदान्त इति अपदान्तः, तस्य-अपदान्तस्य (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

तद्धितवृत्तिः–मूर्धनि भव इति मूर्धन्यः **'शरीरावयवाच्च'** (४।३।५५) इति मूर्धशब्दाद् भवार्थे यत् प्रत्ययः।

अर्थः–अपदान्तस्य मूर्धन्य इत्यधिकारोऽयम्, आपादपरिसमाप्तेः। वक्ष्यति–**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) इति। सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(अपदान्तस्य) अपदान्त वर्ण को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है। जैसे कि पणिनि मुनि कहेंगे- **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) अर्थात् आदेश और **प्रत्यय** के अपदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सिषेव**। उसने सिलाई की। **सुष्वाप**। वह सोया। **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में।*

***सिद्धि-सिषेव** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

मूर्धन्यादेशः–

(२) सहेः साडः सः।५६।

प०वि०–सहेः ६।१ साडः ६।१ सः ६।१।

अनु०–संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां सहेः साडोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये सहिधातोः साड्रूपस्याऽपदान्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-जलाषाट्। तुराषाट्। पृतनाषाट्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सहेः) सह् धातु के (साडः) साड्-रूप के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**जलाषाट्।** जल अर्थात् सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। **तुराषाट्।** तुर=शीघ्रकारी शत्रुओं का विनाश करनेवाला-इन्द्र। **पृतनाषाट्।** पृतना=सेना को नष्ट करनेवाला शूरवीर योद्धा।*

*सिद्धि-**जलाषाट्।** यहां जल-उपपद **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से **'छन्दसि सहः'** (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'ण्वि' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से ढकार को जश् डकार और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से सह् धातु के इस 'साड्' रूप के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३५) से दीर्घ होता है। ऐसे ही तुर-उपपद होने पर-**तुराषाट्।** पृतना-उपपद होने पर-**पृतनाषाट्।***

अधिकारः--

(३) इण्कोः।५७।

वि०-इण्कोः ५।१।

स०-इण् च कुश्च एतयोः समाहारः-इण्कु, तस्मात्-इण्कोः (समाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-इण्कोरित्यधिकारोऽयम्, आपादपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे यद् वक्ष्यति इणः कवर्गाच्च परं तद् भवतीति वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) इति।

उदा०-सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। गीर्षु। धूर्षु। वाक्षु। त्वक्षु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इण्कोः) 'इण्कोः' यह अधिकार सूत्र है, इस पाद की समाप्ति पर्यन्त। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह इण् और कवर्ग से परे होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) अर्थात् इण् और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सिषेव**। उसने सिलाई की। **सुष्वाप**। वह सोया। **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में। **कर्तृषु**। कर्ताओं में। **गीर्षु**। वाणियों में। **धूर्षु**। जुओं में। **वाक्षु**। वाणियों में। **त्वक्षु**। त्वचाओं में।*

सिद्धि-सिषेव आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

***विशेषः** 'इण्' में परवर्ती 'लण्' के णकार से प्रत्याहार ग्रहण किया जाता है। इण्=इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, य, व, र, ल। 'कु' का अर्थ कवर्ग है-क, ख, ग, घ, ङ।*

मूर्धन्यादेशः-

(४) नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।५८।

प०वि०-नुम्-विसर्जनीय-शर्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-नुम् च विसर्जनीयश्च शर् च ते नुम्विसर्जनीयशरः, तैः-नुम्-विसर्जनीयशर्भिः, तैर्व्यवाय इति नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायः, तस्मिन्-नुम्-विसर्जनीयशर्व्यवाये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, सः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणकोरपदान्तस्य सो नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण्कोरुत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने नुम्विसर्जनीयशरव्यवायेऽपि मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(नुम्)** सर्पींषि। हवींषि। यजूंषि। **(विसर्जनीयः)** सर्पिःषु। हविःषु। यजुःषु। **(शर्)** सर्पिष्षु। हविष्षु। यजुष्षु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवाये) नुम्, विसर्जनीय और शर्वर्ण के व्यवधान में (अपि) भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(नुम्) **सर्पींषि**। बहुत घृत। **हवींषि**। बहुत आहुतियां। **यजूंषि**। बहुत याजुष मन्त्र। (विसर्जनीय) **सर्पिःषु**। नाना घृतों में। **हविःषु**। नाना आहुतियों में। **यजुःषु**। याजुष मन्त्रों में। (शर्) **सर्पिष्षु**। नाना घृतों में। **हविष्षु**। नाना आहुतियों में। **यजुष्षु**। याजुष मन्त्रों में।*

*सिद्धि-(१) **सर्पींषि**। यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। 'जश्शसोः' (७।१।२०) से 'जस्' को 'शि' आदेश और '**नपुंसकस्य झलचः**' (७।१।७२) से 'नुम्' आगम होता है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा 'नुम्' से*

*व्यवहित सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'सान्तमहतः संयोगस्य' (६।४।१०) से दीर्घ और 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश होता है। ऐसे ही 'हविस्' शब्द से-**हवींषि**। 'यजुस्' शब्द से-**यजूंषि**।*

*(२) **सर्पिःषु**। यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा विसर्जनीय से व्यवहित 'सुप्' के सकार को मूर्धन्यादेश होता है। ऐसे ही-**हविःषु**। **यजुःषु**।*

*(३) **सर्पिष्षु**। यहां 'वा शरि' (८।३।३६) से विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश होता है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा शर् (स्) से व्यवहित 'सुप्' के सकार को मूर्धन्यादेश होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से पूर्ववर्ती सकार को षकारादेश है। ऐसे ही-**हविष्षु**। **यजुष्षु**।*

मूर्धन्यादेशः-

(५) आदेशप्रत्यययोः।५६।

प०वि०-आदेश-प्रत्यययोः ६।२।

स०-आदेशश्च प्रत्ययश्च तौ आदेशप्रत्ययौ, तयोः-आदेशप्रत्यययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणकोरादेशप्रत्यययोरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण्कोरुत्तरस्य आदेशो यः सकारः, प्रत्ययस्य च यः सकारस्तस्यापदान्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**आदेशः**) सिषेव। सुष्वाप। (**प्रत्ययः**) अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। हर्तृषु।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ__-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती (आदेशप्रत्यययोः) आदेश रूप और प्रत्यय के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार को (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।

*उदा०-(**आदेश**) **सिषेव**। उसने सिलाई। **सुष्वाप**। वह सोया। (**प्रत्यय**) **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में। **कर्तृषु**। कर्ताओं में। **हर्तृषु**। हरण करनेवालों में।*

*__सिद्धि__-(१) **सिषेव**। यहां '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप्'*

*के स्थान में 'णल्' आदेश है। '**धात्वादेः षः सः**' (६।१।६४) से धातुस्थ षकार को सकारादेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'सिव्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से इण् से परवर्ती 'सिव्' के आदेश रूप सकार को मूर्धन्यादेश होता है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है। '**ञिष्वप् शये**' (अदा०प०) धातु से-**सुष्वाप**।*

*(२) **अग्निषु**। यहां 'अग्नि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इण् वर्ण से परवर्ती प्रत्ययस्थ सकार को मूर्धन्यादेश होता है। ऐसे ही-**वायुषु**। **कर्तृषु**। **हर्तृषु**।*

मूर्धन्यादेशः-

(६) शासिवसिघसीनां च।६०।

प०वि०-शासि-वसि-घसीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-शासिश्च वसिश्च घसिश्च ते शासिवसिघसयः, तेषाम्-शासि-वसिघसीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां शासिवसिघसीनां च इण्कोरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये शासिवसिघसीनां धातूनां च इण्कोरुत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(शासि)** अन्वशिषत्, अन्वशिषताम्, अन्वशिषन्। शिष्टः, शिष्टवान्। **(वसि)** उषितः, उषितवान्, उषित्वा। **(घसि)** जक्षतुः, जक्षुः। अक्षन्नमीमदन्त पितरः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शासिवसिघसीनाम्) शासि, वसि, घसि इन धातुओं के (इण्को) इण् और कवर्ग से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(शासि) **अन्वशिषत्**। उसने शिक्षा दी। **अन्वशिषताम्**। उन दोनों ने शिक्षा दी। **अन्वशिषन्**। उन सब ने शिक्षा दी। **शिष्टः, शिष्टवान्**। उसने शिक्षा दी। (वसि) **उषितः, उषितवान्, उषित्वा**। उसने निवास किया। (घसि) **जक्षतुः**। उन दोनों ने खाया। **जक्षुः**। उन सबने खाया। **अक्षन्नमीमदन्त पितरः**। **अक्षन्**। उन्होंने खाया।*

सिद्धि-(१) अन्वशिषत्। *यहां अनु-उपसर्गपूर्वक '**शासु अनुशिष्टौ**' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। '**सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च**'*

(३।१।५६) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'शास इदङ्हलोः' (६।४।३४) से इकारादेश है। इस सूत्र से इण् (इ) से परवर्ती 'शास्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अन्वशिषताम्**। झि (अन्) प्रत्यय में-**अन्वशिषन्**।

(२) **शिष्टः**। यहां पूर्वोक्त 'शास्' धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शास्' को इकारादेश है। इस सूत्र से इण् (इ) से परवर्ती 'शास्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**शिष्टवान्**।

(३) **उषितः**। यहां '**वस निवासे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्वोक्त 'क्त' प्रत्यय है। '**वसतिक्षुधोरिट्**' (७।२।५२) से प्रत्यय को इडागम है। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश है। इस सूत्र से इण् (उ) से परवर्ती 'वस्' के षकार को मूर्धन्य अदेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**उषितवान्**। 'क्त्वा' प्रत्यय में-**उषित्वा**।

(४) **जक्षतुः**। यहां '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और इसके स्थान में '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।) से 'अतुस्' आदेश है। '**लिट्यन्तरस्याम्**' (२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। '**गमहन०**' (६।४।९८) से 'घस्' की उपधा का लोप, '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से इस लोपादेश को स्थानिवत् मानकर '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'घस्' को द्विर्वचन, '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास घकार को चुत्व झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है। घकार को '**खरि च**' (८।४।५५) से चर् ककार होकर इस सूत्र से कवर्ग (क्) से परवर्ती 'क्स' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। झि (उस्) प्रत्यय में-**जक्षुः**। यहां 'घसि' से '**घस्लृ अदने**' (भ्वा०प०) धातु का भी ग्रहण किया जाता है।

(५) **अक्षन्**। यहां '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में झि (अन्ति) आदेश है। '**बहुलं छन्दसि**' (२।४।३९) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। '**मन्त्रे घसह्वरणश०**' (२।४।८०) से 'च्लि' का लुक्, '**घसिभसोर्हलि च**' (६।४।१००) से उपधा का लोप '**खरि च**' (८।४।५५) से घकार को 'चर्' ककार होता है। इस सूत्र से कवर्ग (क्) से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।

मूर्धन्यादेशः--

(७) स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्।६१।

प०वि०- स्तौति-ण्योः ६।२ एव अव्ययपदम्, षणि ७।१ अभ्यासात् ५।१।

स०-स्तौतिश्च णिश्च तौ स्तौतिणी, तयोः-स्तौतिण्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्तौतिण्योरेवाभ्यासादिणोऽपदान्तस्य सः षणि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये स्तौतेर्ण्यन्तानामेव च धातूनामभ्यासाद् इण उत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, षण्भूते सनि परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**स्तौतिः**) स तुष्टूषति। (**ण्यन्तः**) सिषेवयिषति। सिषञ्ज-यिषति। सुष्वापयिषति।

सिद्धे सति सूत्रारम्भो नियमार्थो वेदितव्यः। स्तौतेर्ण्यन्तानामेव चाभ्यासादिण उत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो यथा स्यात्, अन्यस्य मा भूत्-सिसिक्षति। सुसूषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्तौतिण्योः) स्तौति और णिजन्त धातुओं के (एव) ही (अभ्यासात्) अभ्यास के (इणः) इण् से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (षणि) षण् रूप 'सन्' प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(स्तौति) स्तु-स **तुष्टूषति।** वह स्तुति करना चाहता है। **(ण्यन्त) सिषेवयिषति।** वह सिलाई कराना चाहता है। **सिषञ्जयिषति।** वह आलिङ्गन कराना चाहता है। **सुष्वापयिषति।** वह सुलाना चाहता है।*

*'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से आदेश सकार को मूर्धन्य आदेश सिद्ध था फिर इस सूत्र का आरम्भ इस नियम के लिये किया गया है कि केवल 'स्तु' धातु और णिजन्त धातुओं के ही अभ्यास के इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश हो; अन्यत्र न हो जैसे-**सिसिक्षति।** वह सींचना चाहता है। **सुसूषति।** वह प्रेरणा करना चाहता है (षू प्रेरणे)।*

*सिद्धि-(१) **तुष्टूषति।** यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'स्तु' धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'स्तु' धातु के अभ्यास के इण् (उ) से परवर्ती आदेश सकार को षण् (सन्) परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टकार आदेश है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ होता है।*

(२) सिषेवयिषति। यहां प्रथम 'षिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'सेवि' धातु से पूर्ववत् इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।

*'षिञ्ज सङ्गे' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से-**सिषञ्जयिषति**। 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) इस णिजन्त धातु से-**सुष्वापयिषति**।*

सकारादेशः--

(८) सः स्विदिस्वदिसहीनां च।६२।

प०वि०-सः १।१ स्विदि-स्वदि-सहीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्विदिश्च स्वदिश्च सहिश्च ते स्विदिस्वदिसहयः, तेषाम्-स्विदिस्वदिसहीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोः, णेः, षणि, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्विदिस्वदिसहीनां ण्यन्तानां चाभ्यासाद् इणोऽपदान्तस्य सः षणि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये स्विदिस्वदिसहीनां ण्यन्तानां धातूनां चाभ्यासाद् इण उत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, षण्भूते सनि परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-**(स्विदि)** सिस्वेदयिषति। **(स्वदि)** सिस्वादयिषति। **(सहि)** सिसाहयिषति।

सकारस्य स्थाने सकारादेशवचनं मूर्धन्यादेशनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्विदिस्वदिसहीनाम्) स्विदि, स्वदि, सहि इन (ण्यन्तानाम्) णिजन्त के धातुओं के (च) भी (अभ्यासात्) अभ्यास के (इणः) इण् से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (षणि) षण् रूप 'सन्' प्रत्यय परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(स्विदि) **सिस्वेदयिषति**। वह पसीना दिलाना चाहता है। **(स्वदि) सिस्वादयिषति**। वह आस्वादन (चखाना) कराना चाहता है। **(सहि) सिसाहयिषति**। वह मर्षण (सहन) कराना चाहता है।*

*सिद्धि-**सिस्वेदयिषति**। यहां प्रथम 'ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे' (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्वेदि' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है।*

'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से इस धातु के अभ्यास के इण् (इ) से परवर्ती सकार को षण् (सन्) परे होने पर सकारादेश होता है। ***'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'*** *(८।३।६१) से षकारादेश प्राप्त था, अतः यह सकार के स्थान में सकारादेश का विधान किया गया है। ऐसे ही-* ***'स्वद आस्वादने'*** *(भ्वा०आ०) धातु से-* ***सिस्वादयिषति।*** ***'षह मर्षणे'*** *(भ्वा०आ०) धातु से-* ***सिसाहयिषति।***

अधिकारः-

(६) प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि।६३।

प०वि०-प्राक् १।१ सितात् ५।१ अड्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्-अड्व्यवाये (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सः सितात् प्राग् (८।३।७०) अड्व्यवायेऽपि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण उत्तरस्य सकारस्य स्थाने, सितात् प्राग् अड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि मूर्धन्यादेशो भवतीत्यधिकारोऽयम्। यथा वक्ष्यति-**'उपसर्गात् सुनोतिसुवति०'** (८।३।६५) इति।

उदा०-अभिषुणोति, परिषुणोति, विषुणोति, निषुणोति। **अड्व्यवाये-**अभ्यषुणोत्, पर्यषुणोत्, व्युषुणोत्, न्यषुणोत्।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (सितात्) सित शब्द (७।३।७०) से (प्राक्) पहले-पहले (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान और अट्-आगम के अव्यवधान में भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- **'उपसर्गात् सुनोति-सुवति०'** (८।३।६५) अर्थात् उपसर्गस्थ निमित्त से परे सुनोति आदि धातुओं के सकार को मूर्धन्यादेश होता है।

उदा०-अट् आगम के अव्यवधान में- ***अभिषुणोति।*** *वह रस निचोड़ता है।* ***परिषुणोति।*** *वह सर्वतः रस निचोड़ता है।* ***विषुणोति।*** *वह विशेषतः रस निचोड़ता है।* ***निषुणोति।*** *वह निकृष्टतः रस निचोड़ता है। अट्-आगम के व्यवधान में-* ***अभ्यषुणोत्।*** *उसने रस निचोड़ा।* ***पर्यषुणोत्।*** *उसने सर्वतः रस निचोड़ा।* ***व्युषुणोत्।*** *उसने विशेषतः रस निचोड़ा।* ***न्यषुणोत्।*** *उसने निकृष्टतः रस निचोड़ा।*

सिद्धि-अभिषुणोति *आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

अधिकारः–

(१०) स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य।६४।

प०वि०– स्था-अदिषु ७।३ अभ्यासेन ३।१ च अव्ययपदम्, अभ्यासस्य ६।१।

स०–स्था आदिर्येषां ते स्थादयः, तेषु-स्थादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, प्राक्, सितात्, व्यवाये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां स्थादिषु प्राक् सिताद् इणः सोऽभ्यासेन व्यवाये मूर्धन्यः, अभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये स्वादिषु धातुषु प्राक् सिताद् इण उत्तरस्य सकारस्य स्थानेऽभ्यासेन व्यवाये सति मूर्धन्यादेशो भवति, अभ्यासस्य चापि मूर्धन्यः, इत्यधिकारोऽयम्।

अभ्यासेन व्यवाये, अषोपदेशार्थम्, अवर्णान्ताभ्यासार्थम्, षणि प्रतिषेधार्थं चेदं वचनं वेदितव्यम्।

उदा०–अभ्यासेन व्यवाये-परितष्ठौ। अषोपदेशार्थम्–अभिषिषेणयिषति। परिषिषेणयिषति। अवर्णान्ताभ्यासार्थम्–अभितष्ठौ। षणि प्रतिषेधार्थम्–अभिषिषिक्षति। परिषिषिक्षति।

आर्यभाषाः अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (**स्थादिषु**) स्था आदि धातुओं में (सितात्) सित शब्द से (प्राक्) पहले-पहले (इणः) इण् **वर्ण** से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (च) और (अभ्यासस्य) को भी मूर्धन्य आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।

अभ्यास के व्यवधान, अषोपदेश, अवर्णान्त अभ्यास और षण्-प्रतिषेध में भी मूर्धन्यादेश के विधान के लिये यह कथन किया गया है।

*उदा०–अभ्यास-व्यवाय-**परितष्ठौ।** वह परितः स्थित हुआ। अषोपदेश–**अभिषिषेणयिषति।** वह अभितः सेना से जाना चाहता है। **परिषिषेणयिषति।** वह परितः सेना से जाना चाहता है। अवर्णान्त अभ्यास-**अभितष्ठौ।** वह अभितः स्थित हुआ। **षण्-प्रतिषेध–अभिषिषिक्षति।** वह अभितः सींचना चाहता है। **परिषिषिक्षति।** वह परितः सींचना चाहता है।*

सिद्धि- 'परितष्ठौ' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

'स्था' आदि धातु 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) सूत्र में पठित हैं। यहां ***'अभ्यासस्य'*** *पद का ग्रहण नियमार्थ किया गया है कि स्था-आदि धातुओं में ही अभ्यास-सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अन्यत्र नहीं।*

मूर्धन्यादेशः–

(११) उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्था-सेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्।६५।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ सुनोति-सुवति-स्यति-स्तौति-स्तोभति-स्था-सेनय-सेध-सिच-सञ्ज-स्वञ्जाम् ६।३।

स०–सुनोतिश्च सुवतिश्च स्यतिश्च स्तौतिश्च स्तोभतिश्च स्थाश्च सेनयश्च सेधश्च सिचश्च सञ्जश्च स्वञ्ज् च ते-सुनोति०स्वञ्जः, तेषाम्-सुनोति०स्वञ्जाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्व्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौति-स्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जामपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्ताद् उपसर्गात् परेषां सुनोतिसुवति-स्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु धातुषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति। **उदाहरणम्**–

	धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	सुनोति	अभि	अभिषुणोति	वह रस निचोड़ता है।
		परि	परिषुणोति	वह परितः रस निचोड़ता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषुणोत्	उसने रस निचोड़ा।
		परि ,,	पर्यषुणोत्	उसने परितः रस निचोड़ा।

धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(२) सुवति	अभि	अभिषुवति	वह अभितः प्रेरणा करता है।
	परि	परिषुवति	वह परितः प्रेरणा करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यषुवत्	उसने अभितः प्रेरणा की।
	परि ,,	पर्यषुवत्	उसने परितः प्रेरणा की।
(३) स्यति	अभि	अभिष्यति	वह अभितः समाप्त करता है।
	परि	परिष्यति	वह परितः समाप्त करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्यत्	उसने अभितः समाप्त किया।
	परि ,,	पर्यष्यत्	उसने परितः समाप्त किया।
(४) स्तौति	अभि	अभिष्टौति	वह अभितः स्तुति करता है।
	परि	परिष्टौति	वह परितः स्तुति करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्टौत्	उसने अभितः स्तुति की।
	परि ,,	पर्यष्टौत्	उसने परितः स्तुति की।
(५) स्तोभति	अभि	अभिष्टोभते	वह अभितः थामता है।
	परि	परिष्टोभते	वह परितः थामता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्टोभत	उसने अभितः थामा।
	परि ,,	पर्यष्टोभत	उसने परितः थामा।
(६) स्था	अभि	अभिष्ठास्यति	वह अभितः ठहरेगा।
	परि	परिष्ठास्यति	वह परितः ठहरेगा।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्ठात्	उसने अभितः ठहरा।
	परि ,,	पर्यष्ठात्	उसने परितः ठहरा।
	अभ्यासव्यवायः		
	अभि	अभितष्ठौ	वह अभितः ठहरा।
	परि	परितष्ठौ	वह परितः ठहरा।
(७) सेनय	अभि	अभिषेणयति	वह अभितः सेना से जाता है।
	परि	परिषेणयति	वह परितः सेना से जाता है।

	धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
		अड्व्यवायः	अभ्यषेणयत्	उसने अभितः सेना से गया।
		परि ,,	पर्यषेणत्	उसने परितः सेना से गया।
		षण्भूतः (सन्)	अभिषिषेणयिषति	वह अभितः सेना से जाना चाहता है।
		,,	परिषिषेणयिषति	वह परितः सेना से जाना चाहता है।
(८)	सेध	अभि	अभिषेधति	वह अभितः शासन करता है।
		परि	परिषेधति	वह परितः शासन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषेधत्	उसने अभितः शासन किया।
		परि ,,	पर्यषेधत्	उसने परितः शासन किया।
(९)	सिचं	अभि	अभिषिञ्चति	वह अभितः सेचन करता है।
		परि	परिषिञ्चति	वह परितः सेचन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषिञ्चत्	उसने अभितः सेचन किया।
		परि ,,	पर्यषिञ्चत्	उसने परितः सेचन किया।
		षण्भूतः (सन्)	अभिषिषिक्षति	वह अभितः सेचन करना चाहता है।
		,,	परिषिषिक्षति	वह परितः सेचन करना चाहता है।
(१०)	सञ्ज	अभि	अभिषजति	वह अभितः आलिङ्गन करता है।
		परि	परिषजति	वह परितः आलिङ्गन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषजत्	उसने अभितः आलिङ्गन किया।
		परि ,,	पर्यषजत्	उसने परितः आलिङ्गन किया।
		षण्भूतः (सन्)	अभिषिषङ्क्षति	वह अभितः आलिङ्गन करना चाहता है।
		,,	परिषिषङ्क्षति	वह परितः आलिङ्गन करना चाहता है।
(११)	स्वञ्ज	अभि	अभिष्वजते	वह अभितः आलिङ्गन करता है।
		परि	परिष्वजते	वह परितः आलिङ्गन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यष्वजत	उसने अभितः आलिङ्गन किया।
		परि ,,	पर्यष्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
		षण्भूतः (सन्)	अभिषिष्वङ्क्षते	वह अभितः आलिङ्गन करना चाहता है।
		,,	परिषिष्वङ्क्षते	वह परितः आलिङ्गन करना चाहता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण जिसके अन्त में है उस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (सुनोति०) सुनोति, सुवति, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज, स्वञ्ज इन धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अट्-आगम के अव्यवधान में भी (च) और (स्था) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन व्यवाये) अभ्यास के व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) अभिषुणोति। यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त अभि उपसर्ग से परे 'सु' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिषुणोति।**

(२) **अभ्यषुणोत्।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'सु' धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। **'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'** (६।४।७१) से अडागम होता है। इस सूत्र से इणन्त अभि-उपसर्ग से परे अडागम के व्यवधान में भी 'सु' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**पर्यषुणोत्।**

(३) **अभिषुवति।** **'षु प्रेरणे'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) **अभिष्यति।** **'षो अन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। **'ओतः श्यनि'** (७।३।७१) से ओकार का लोप होता है।

(५) **अभिष्टौति।** **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। **'उतो वृद्धिर्लुकि हलि'** (७।३।८९) से वृद्धि होती है।

(६) **अभिष्ठास्यति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिष्ठास्यति।** अड्व्यवाय में-**अभ्यष्ठात्, पर्यष्ठात्।** अभ्यास व्यवाय में-**अभितष्ठौ।** **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'स्था' धातु को द्वित्व होता है। **'आत औ णलः'** (७।१।३४) से णल् के स्थान में 'औ' आदेश है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परितष्ठौ।**

(७) **अभिषेणयति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'सेना' शब्द से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से **'सेनयाऽभियाति'** अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'वा०-'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य०'** (६।४।१५५) से 'सेना' के टि-भाग (आ) का लोप होता है। तत्पश्चात् अभि+सेनि धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से सकार को मूर्धन्य होता है। 'सेना' में आदेश-सकार न होने से षत्व प्राप्त नहीं था, अतः यह कथन किया गया है। अड्व्यवाय में-**अभ्यषेणयत्, पर्यषेणयत्।** षणभूत सन् में-**अभिषिषेणयिषति, परिषिषेणयिषति।**

'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' (८।३।६१) से षण्भूत सन् में अभ्यासस्थ इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः यह कथन किया गया है।

*(८) **अभिषेधति।** 'षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(९) **अभिषिञ्चति।** 'षिच क्षरणे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्। **'शे मुञ्चादीनाम्'** (७।१।५९) से 'नुम्' आगम होता है।*

*(१०) **अभिषजति।** 'सञ्ज सङ्गे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। **'दंशसञ्जस्वञ्जां शपि'** (६।४।२५) से नकार का लोप होता है।*

*(११) **अभिस्वजते।** 'स्वञ्ज परिष्वङ्गे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

मूर्धन्यादेशः--

(१२) सदिरप्रतेः।६६।

प०वि०-सदिः १।१ अप्रतेः ५।१।

स०-न प्रतिरिति अप्रतिः, तस्मात्-अप्रतेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्भ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अप्रतेरिण उपसर्गात् सदेरपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये प्रतिवर्जिताद् इणन्ताद् उपसर्गात् परस्य सदेर्धातिरपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु धातुषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(सदिः) निषीदति, विषीदति। **अड्व्यवाये**-न्यषीदत्, व्यषीदत्। निषसाद, विषसाद।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रतेः) प्रति से भिन्न (इणः) इणन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (सदेः) सद् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(सदि) **निषीदति।** वह बैठता है। **विषीदति।** वह खिन्न होता है। **अड्व्यवाये-न्यषीदत्।** वह बैठ गया। **व्यषीदत्।** वह खिन्न हुआ। **निषसाद।** वह बैठा था। **विषसाद।** वह खिन्न हुआ था।*

*सिद्धि-(१) **निषीदति।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। '**पाघ्राध्मा०**' (७।३।७८) से 'सद्' को 'सीद' आदेश होता है। इस सूत्र से इणन्त 'नि' उपसर्ग से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**सात्पदाद्योः**' (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, यह उसका पुरस्ताद् अपवाद है। वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषीदति।** अड्व्यवाय में-**न्यषीदत्, व्यषीदत्।***

*(२) **निषसाद।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्विर्वचन होता है। '**सदेः परस्य लिटि**' (८।३।११८) से अभ्यास से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से मूर्धन्य आदेश होता है।*

*'अप्रतेः' का कथन इसलिये है कि यहां आदेश न हो-**प्रतिसीदति।***

मूर्धन्यादेशः-

(१३) स्तम्भेः।६७।

वि०-स्तम्भेः ६।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अडभ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण उपसर्गात् स्तम्भेरपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् उपसर्गात् परस्य स्तम्भेरपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(स्तभिः)** अभिष्टभ्नाति, परिष्टभ्नाति। **अड्व्यवाये**-अभ्यष्टभ्नात्, पर्यष्टभ्नात्। **अभ्यासव्यवाये**-अभितष्टम्भ, परितष्टम्भ।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्तम्भेः) स्तम्भ धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(स्तभिः) अभिष्टभ्नाति।** वह अभितः रोकता है। **परिष्टभ्नाति।** वह परितः रोकता है। **अड्व्यवाये-अभ्यष्टभ्नात्।** उसने अभितः रोका। **परिष्टभ्नात्।** उसने*

*परितः रोका। **अभ्यासव्यवाये-अभितष्टम्भ।** उसने अभितः रोका था। **परितष्टम्भ।** उसने परितः रोका था।*

*सिद्धि-(१) **अभिष्टभ्नाति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'स्तम्भु प्रतिबन्धे'** (प०सौत्रधातु) से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'स्तम्भुस्तुम्भु०'** (३।१।८२) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप होता है। इस सूत्र से इणन्त अभि-उपसर्ग से परवर्ती धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिष्टभ्नाति।** अड्व्यवाय में-**अभ्यष्टभ्नात्, पर्यष्टभ्नात्।** अभ्यास-व्यवाय में-**अतिष्टम्भ, परितष्टम्भ।***

मूर्धन्यादेशः-

(१४) अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः।६८।

प०वि०-अवात् ५।१ च अव्ययपदम्, आलम्बन-आविदूर्ययोः ७।२।

स०-आलम्बनम्=आश्रयणम्। विदूरम्=विप्रकृष्टम्। न विदूरमिति अविदूरम्। अविदूरस्य भाव इति आविदूर्यम्। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादिलक्षणः ष्यञ् प्रत्ययः। आलम्बनं च आविदूर्यं च ते आलम्बनाविदूर्ये, तयोः-आलम्बनाविदूर्ययोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, उपसर्गात्, स्तम्भेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विषयेऽवाद् उपसर्गात् स्तम्भेरपदान्तस्य स आलम्बनाविदूर्ययोर्मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवाद् उपसर्गात् परस्य स्तम्भेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, आलम्बनाविदूर्ययोरर्थयोर्मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(आलम्बनम्)** अवष्टभ्यास्ते, अवष्टभ्य तिष्ठति। **(आविदूर्यम्)** अवष्टब्धा सेना, अवष्टब्धा शरत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवात्) अव इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्तम्भेः) स्तम्भ धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (आलम्बनाविदूर्ययोः) आलम्बन=आश्रयण और आविदूर्य=समीप्य अर्थ में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(आलम्बन) **अवष्टभ्यास्ते।** वह पकड़कर बैठता है। **अवष्टभ्य तिष्ठति।** वह आश्रय लेकर ठहरता है। (आविदूर्य) **अवष्टब्धा सेना।** सेना समीप है। **अवष्टब्धा शरत्।** शरदृतु समीप है।*

*सिद्धि-(१) **अवष्टभ्यास्ते।** यहां अव-उपसर्गपूर्वक '**स्तम्भु प्रतिबन्धे**' (प०सौत्रधातु) से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्**' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से अव-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तम्भ' के सकार को आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में मूर्धन्य आदेश होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश होता है।*

*(२) **अवष्टब्धा।** यहां अव-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तम्भ्' धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से भकार को जश् बकार आदेश है। 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः-

(१५) वेश्च स्वनो भोजने।६६।

प०वि०-वेः ५।१ च अव्ययपदम्, स्वनः ६।१ भोजने ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्भ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्य, उपसर्गात्, अवादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो वेरवाच्च उपसर्गाद् भोजने स्वनोऽपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् वेरवाच्चोपसर्गात् परस्य भोजनेऽर्थे स्वनोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्वन्) **वि-**विष्वणति। **अड्व्यवाये-**व्यष्वणत्। **अभ्यास-व्यवाये-**विषष्वाण। **अव-**अवष्वणति। **अड्व्यवाये-**अवाष्वणत्। **अभ्यास-व्यवाये-**अवषष्वाण।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि-उपसर्ग (च) और (अवात्) अव इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती, (भोजने) खाना-पीना अर्थ में विद्यमान (स्वनः) स्वन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान और अव्यवधान में तथा (स्थादिषु) स्था आदि*

धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

*उदा०-(स्वन्) वि-**विष्वणति**। वह सशब्द खाता-पीता है। अड्व्यवाय में-**व्यष्वणत्**। उसने सशब्द खाया-पीया। अभ्यासव्यवाय में-**विषष्वाण**। उसने सशब्द खाया-पीया था। अव-**अवष्वणति**। वह सशब्द खाता-पीता है। अड्व्यवाय में-**अवाष्वणत्**। उसने सशब्द खाया-पीया। अभ्यासव्यवाय में-**अवषष्वाण**। उसने सशब्द खाया-पीया था।*

***सिद्धि-विष्वणति**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'स्वन शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'वि' उपसर्ग से परवर्ती 'स्वन' धातु के सकार को भोजन अर्थ में मूर्धन्य आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। अड्व्यवाय में-**व्यष्वणत्** (लङ्)। अभ्यासव्यवाय में-**विषष्वाण** (लिट्)। अव-उपसर्गपूर्वक में-**अवष्वणति**। अड्व्यवाय में-**अवाष्वणत्**। अभ्यासव्यवाय में-**अवषष्वाण**।*

***विशेषः** 'स्वन' धातु शब्दार्थक है। इसमें भोजन अर्थ के मिश्रण से यह अर्थ होता है कि वह मुख चलाने का शब्द करता हुआ खाता-पीता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(१६) परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्।७०।

प०वि०-परि-नि-विभ्यः ५।३ सेव-सित-सय-सिवु-सह-सुट्-स्तु-स्वञ्जाम् ६।३।

स०-परिश्च निश्च विश्च ते परिनिवयः, तेभ्यः-परिनिविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सेवश्च सितश्च सयश्च सिवुश्च सहश्च सुट् च स्तुश्च स्वञ्ज् च ते-सेव०स्वञ्जः, तेषाम्- सेव०स्वञ्जाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, प्राक्, सितात्, अड्व्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जामपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन चाभ्यासस्य मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः परेषां सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदाहरणम्-

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) सेव	परि	परिषेवते।	वह परितः सेवा करता है।
	नि	निषेवते।	वह निम्नतः सेवा करता है।
	वि	विषेवते।	वह विशेषतः सेवा करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषेवत।	वह परितः सेवा की।
	नि	न्यषेवत।	वह निम्नतः सेवा की।
	वि	व्यषेवत।	वह विशेषतः सेवा की।
	षण्भूतः(सन्)		षण्भूत (सन्)
	परि	परिषिषेविषते	वह परितः सेवा करना चाहता है।
	नि	निषिषेविषते	वह निम्नतः सेवा करना चाहता है।
	वि	विषिषेविषते	वह विशेषतः सेवा करना चाहता है।
(२) सितः	परि	परिषितः	परितः बंधा हुआ।
{क्तान्तः}	नि	निषितः	निम्नतः बंधा हुआ।
	वि	विषितः	विशेषतः बंधा हुआ।
(३) सयः	परि	परिषयः	परितः बंधन।
	नि	निषयः	निम्नतः बंधन।
	वि	विषयः	विशेषतः बंधन।
(४) सिवु	परि	परिषीव्यति	वह परितः सिलाई करता है।
	नि	निषीव्यति	वह निम्नतः सिलाई करता है।
	वि	विषीव्यति	वह विशेषतः सिलाई करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषीव्यत्	उसने परितः सिलाई की।
	नि	न्यषीव्यत्	उसने निम्नतः सिलाई की।
	वि	व्यषीव्यत्	उसने विशेषतः सिलाई की।
(५) सह	परि	परिषहते	वह परितः सहन करता है।
	नि	निषहते	वह निम्नतः सहन करता है।
	वि	विषहते	वह विशेषतः सहन करता है।

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषहत	उसने परितः सहन किया।
	नि	न्यषहत	उसने निम्नतः सहन किया।
	वि	व्यषहत	उसने विशेषतः सहन किया।
(६) सुट्	परि	परिष्करोति	वह परिष्कार करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्करोत्	उसने परिष्कार किया।
(७) स्तु	परि	परिष्टौति	वह परितः स्तुति करता है।
	नि	निष्टौति	वह निम्नतः स्तुति करता है।
	वि	विष्टौति	वह विशेषतः स्तुति करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्टौत्	उसने परितः स्तुति की।
	नि	न्यष्टौत्	उसने निम्नतः स्तुति की।
	वि	व्यष्टौत्	उसने विशेषतः स्तुति की।
(८) स्वञ्ज	परि	परिष्वजते	वह परितः आलिङ्गन करता है।
	नि	निष्वजते	वह निम्नतः आलिङ्गन करता है।
	वि	विष्वजते	वह विशेषतः आलिङ्गन करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
	नि	न्यष्वजत	उसने निम्नतः आलिङ्गन किया।
	वि	व्यष्वजत	उसने विशेषतः आलिङ्गन किया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (परिनिविभ्यः) परि, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (सेव०) सेव, सित, सय, वु, सह, सुट्, स्तु, स्वञ्ज् इनके (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०–उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) **परिषेवते।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'सेवृ सेवने'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'परि' उपसर्ग से परवर्ती 'सेव' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषेवते।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषेवते।** अड्व्यवाय में-**पर्यषेवत, न्यषेवत, व्यषेवत।** णिजन्त से षण्भूत सन् में-**परिषिषेविषते, निषिषेविषते, विषिषेविषते।** **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) से मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह कथन किया गया है।

(२) **परिषितः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिञ् बन्धने'** (स्वा०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषितः।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषितः।**

विशेषः **'प्राक् सितादड्व्यवायेऽपि'** (८।३।६३) से इस 'सित' शब्द से पहले-पहले की धातुओं को अड्व्यवाय में भी मूर्धन्य आदेश होता है और **'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'** (८।३।६४) से स्था आदि धातुओं में अभ्यासव्यवाय में भी मूर्धन्य आदेश होता है। **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।६५) में पठित 'स्था' धातु से लेकर इस 'सित' शब्द पर्यन्त के धातु स्थादि कहलाते हैं।

(३) **परिषयः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिञ् बन्धने'** (स्वा०उ०) धातु से **'एरच्'** (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषयः।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषयः।**

(४) **परिषीव्यति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) **परिषहते।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षह मर्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(६) **परिष्करोति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'** (६।१।१३२) से 'सुट्' आगम होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परि-उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु को 'सुट्' आगम होता है, अतः नि और वि उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु के उदाहरण नहीं हैं।

(७) **परिष्टौति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'उतो वृद्धिर्लुकि हलि'** (७।३।८९) से वृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश होता है।

*(८) परिष्वजते। परि-उपसर्गपूर्वक **'ष्वञ्ज परिष्वङ्गे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। **'दंशसञ्जस्वञ्जां शपि'** (६।४।२५) से अनुनासिक का लोप होता है।*

विशेषः *स्तु और स्वञ्ज धातु को **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।६५) से ही मूर्धन्य आदेश सिद्ध है। पुनः इनको यहां आगामी सूत्र **'सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि'** (८।३।७१) से विकल्प से मूर्धन्य विधान के लिये ग्रहण किया गया है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः–

(१७) सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि।७१।

प०वि०–सिवादीनाम् ६।३ वा अव्ययपदम्, अड्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०–सिव् आदिर्येषां ते सिवादयः, तेषाम्-सिवादीनाम् (बहुव्रीहिः)। अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्-अड्व्यवाये (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, परिनिविभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इण्भ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्य सिवादीनाम-पदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि वा मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्तेभ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः परेषां सिवादीनां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽपि विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

अत्र **'सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्'** इत्यत्र पूर्वसूत्रे सन्निविष्टाः सिवादयो धातवो गृह्यन्ते, न तु धातुपाठे पठिताः। **उदाहरणम्**–

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) सिवु	परि	पर्यषीव्यत्/पर्यसीव्यत्	उसने परितः सिलाई की।
	नि	न्यषीव्यत्/न्यसीव्यत्	उसने निम्नतः सिलाई की।
	वि	व्यषीव्यत्/व्यसीव्यत्	उसने विशेषतः सिलाई की।
(२) सह	परि	पर्यषहत/पर्यसहत	उसने परितः सहन किया।
	नि	न्यषहत/न्यसहत	उसने निम्नतः सहन किया।
	वि	व्यषहत/व्यसहत	उसने विशेषतः सहन किया।

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(३) स्तु	परि	पर्यष्टौत्/पर्यस्तौत्	उसने परितः स्तुति की।
	नि	न्यष्टौत्/न्यस्तौत्	उसने निम्नतः स्तुति की।
	वि	व्यष्टौत्/व्यस्तौत्	उसने विशेषतः स्तुति की।
(४) स्वञ्ज	परि	पर्यष्वजत/पर्यस्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
	नि	न्यष्वजत/न्यस्वजत	उसने निम्नतः आलिङ्गन किया।
	वि	व्यष्वजत/व्यस्वजत	उसने विशेषतः आलिङ्गन किया।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (परिनिविभ्यः) परि, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (सिवादीनाम्) सिव् आदि धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवाये) अट्-आगम के व्यवधान में (अपि) भी (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-पर्यषीव्यत्/पर्यसीव्यत् आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। मूर्धन्य आदेश-विकल्प विशेष है।

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(१८) अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु।७२।

प०वि०- अनु-वि-परि-अभि-निभ्यः ५।३ स्यन्दतेः ६।१ अप्राणिषु ७।३।

स०-अनुश्च विश्च परिश्च अभिश्च निश्च ते-अनुविपर्यभिनयः, तेभ्यः-अनुविपर्यभिनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्राणिन इति अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्योऽनुविपर्यभिनिभ्य उपसर्गेभ्योऽप्राणिषु स्यन्दतेरपदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्योऽनुविपर्यभिनिभ्य उपसर्गेभ्यः परस्या-ऽप्राणिषु वर्तमानस्य स्यन्दतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्यन्द्) **अनु**-अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते। **वि**-विष्यन्दते, विस्यन्दते। **परि**-परिष्यन्दते, परिस्यन्दते। **अभि**-अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते। **नि**-निष्यन्दते, निस्यन्दते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (अनुविपर्यभिनिभ्यः) अनु, वि, परि, अभि, नि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (स्यन्दतेः) स्यन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(स्यन्द्) अनु-अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते।** अनुकूल बहता है। **वि-विष्यन्दते, विस्यन्दते।** विशेषतः बहता है। **परि-परिष्यन्दते, परिस्यन्दते।** परितः बहता है। **अभि-अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते।** अभितः बहता है। **नि-निष्यन्दते, निस्यन्दते।** निम्नतः बहता है।*

*सिद्धि-**अनुष्यन्दते।** यहां अनु-उपसर्गपूर्वक **'स्यन्दू प्रस्रवणे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'अनु' उपसर्ग से परवर्ती 'स्यन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**अनुस्यन्दते।** ऐसे ही-**विष्यन्दते, विस्यंन्दते** आदि।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः--

(१६) वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्।७३।

प०वि० -वेः ५।१ स्कन्देः ५।१ अनिष्ठायाम् ७।१।

स०-न निष्ठा इति अनिष्ठा, तस्याम्-अनिष्ठायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो वेरुपसर्गात् स्कन्देरपदान्तस्य सोऽनिष्ठायां वा मूर्धन्यः।

अर्थः--संहितायां विषये इणन्ताद् वेरुपसर्गात् परस्य स्कन्देरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, निष्ठावर्जिते प्रत्यये परतो विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्कन्द्) वि-विष्कन्ता, विस्कन्ता। विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्। विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्कन्देः) स्कन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः)*

सकार के स्थान में (अनिष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

*उदा०-(स्कन्द्) वि-**विष्कन्ता, विस्कन्ता।** विशेषतः गमन/शोषणकर्ता। **विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्।** विशेषतः गमन/शोषण केलिये। **विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्।** विशेषतः गमन/शोषण करना चाहिये।*

*__सिद्धि-विष्कन्ता।__ यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्कन्द्' धातु के सकार को निष्ठा से भिन्न 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**विस्कन्ता।** यहां **'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होकर उसका **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६४) से लोप हो जाता है। तुमुन् प्रत्यय में-**विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्।** तव्यत् प्रत्यय में-**विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२०) परेश्च।७४।

प०वि०-परेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा, स्कन्देरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः परेरुपसर्गाच्च स्कन्देरपदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तात् परेरुपसर्गाच्च परस्य स्कन्देर-पदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्कन्द्) परि-परिष्कन्ता, परिस्कन्ता। परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्। परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (परेः) परि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से (च) भी परवर्ती (स्कन्देः) स्कन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्कन्द्) परि-**परिष्कन्ता, परिस्कन्ता।** परितः गमन/शोषणकर्ता। **परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्।** परितः गमन/शोषण केलिये। **परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्।** परितः गमन/शोषण करना चाहिये।*

*सिद्धि-**परिष्कन्ता**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्कन्द्' धातु से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त परि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्कन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**परिस्कन्ता**। तुमुन् प्रत्यय में-**परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्**।*

***विशेषः** पृथक् सूत्र रचना से यहां '**अनिष्ठायाम्**' की अनुवृत्ति नहीं है। अतः निष्ठा में भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है-**परिष्कण्णः, परिस्कन्नः**। परितः गत/शोषित।*

निपातनम्-

(२१) परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु।७५।

प०वि०-परिस्कन्दः १।१ प्राच्यभरतेषु ७।३।

स०- प्राच्याश्च ते भरताश्चेति प्राच्यभरताः, तेषु-प्राच्यभरतेषु (कर्मधारयः)।

अन्वयः-प्राच्यभरतेषु परिस्कन्दो निपातनम्।

अर्थः-प्राच्यभरतेषु प्रयोगविषयेषु परिस्कन्द इत्यत्र मूर्धन्याभावो निपात्यते।

उदा०-परिस्कन्दः। अन्यत्र परिष्कन्दः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्राच्यभरतेषु) प्राच्य देश अन्तर्गत भरत देश के प्रयोग विषय में (परिस्कन्दः) परिस्कन्द इस पद में सकार को मूर्धन्य आदेश का अभाव निपातित है।*

*उदा०-**परिस्कन्दः**। सर्वतः गमन/शोषणकर्ता।*

*सिद्धि-**परिस्कन्दः**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्कन्द्' धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से पचादिलक्षण 'अच्' प्रत्यय है। '**परेश्च**' (८।३।७४) से सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्राच्य-भरतदेशीय प्रयोग विषय में मूर्धन्याभाव निपातित किया गया है।*

***विशेषः** (१) परिस्कन्द उन दो सैनिकों को कहते थे जो रथ के दोनों ओर पहियों के साथ रहकर दोनों ओर के हमले से रथी का बचाव करते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५५)।*

(२) दक्षिण-पूर्वी पंजाब में थानेश्वर-कैथल-करनाल-पानीपत का भूभाग भरत जनपद था। इसी का दूसरा नाम प्राच्य भरत भी था क्योंकि यहीं से देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो खण्डों में सीमायें बंटती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५५)।

(३) इस उक्त प्राच्य भरत देश में आज भी षकार के स्थान में सकार का उच्चारण प्रचलित है।

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२२) स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ।७६।

प०वि०-स्फरति-स्फुलत्योः ६ ।२ निर्-नि-विभ्यः ५ ।३ ।

स०-स्फुरतिश्च स्फुलतिश्च तौ स्फुरतिस्फुलती, तयोः-स्फुरति-स्फुलत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। निर् च निश्च विश्च ते निर्निवयः, तेभ्यः निर्निविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यो निर्निविभ्य उपसर्गेभ्यः स्फुरतिस्फुलत्योर-पदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः ।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः निर्निविभ्य उपसर्गेभ्यः परयोः स्फुरतिस्फुलत्योरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**स्फुर**) **निर्**-निष्ष्फुरति, निस्स्फुरति। **नि**-निष्फुरति, निस्फुरति। **वि**-विष्फुरति, विस्फुरति। (**स्फुल**) **निर्**-निष्ष्फुलति, निस्स्फुलति। **नि**-निष्फुलति, निस्फुलति। **वि**-विष्फुलति, विस्फुलति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (**निर्निविभ्यः**) निर्, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (स्फुरतिस्फुलत्योः) स्फुर, स्फुल इन धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्फुर) **निर्-निष्ष्फुरति, निस्स्फुरति।** निश्चय से सूझता है। **नि-निष्फुरति, निस्फुरति।** निम्नतः सूझता है। **वि-विष्फुरति, विस्फुरति।** विशेषतः सूझता है। (स्फुल) निर्-**निष्ष्फुलति, निस्स्फुलति।** वह निश्चय से कांपता है। नि-**निष्फुलति, निस्फुलति।** वह निम्नतः कांपता है। वि-**विष्फुलति, विस्फुलति।** वह विशेषतः कांपता है।*

*सिद्धि-(१) **निष्ष्फुरति।** यहां निर्-उपसर्गपूर्वक '**स्फुर स्फुरणे**' (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तुदादिभ्यः श' (३ ।१ ।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'निर्' उपसर्ग से परवर्ती 'स्फुरति' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८ ।३ ।१५) से 'निर्' के रेफ को विसर्जनीय, 'विसर्जनीयस्य सः' (८ ।३ ।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और '**ष्टुना ष्टुः**'*

*(८।४।४१) से सकार को षकारादेश है। विकल्प-पक्ष में-**निस्स्फुरति**। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निष्फुरति, निस्फुलति**। वि-उपसर्गपूर्वक से-**विस्फुलति, विस्फुलति**।*

*(२) **निष्फुलति**। निर्-उपसर्गपूर्वक 'स्फुल संचलने' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

नित्यं मूर्धन्यादेशः–

(२३) वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्।७७।

प०वि०-वेः ५।१ स्कभ्नातेः ६।१ नित्यम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो वेः स्कभ्नातेरपदान्तस्य सो नित्यं मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् वेरुपसर्गात् परस्य स्कभ्नातेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, नित्यं मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्कम्भ्) वि-विष्कभ्नाति। विष्कम्भिता, विष्कम्भितुम्, विष्कम्भितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्कभ्नातेः) स्कम्भ् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (नित्यम्) सदा (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्कम्भ्) वि-**विष्कभ्नाति**। वह विशेषतः रोकता। **विष्कम्भिता**। विशेषतः रोकनेवाले। **विष्कम्भितुम्**। विशेषतः रोकने के लिये। **विष्कम्भितव्यम्**। विशेषतः रोकना चाहिये।*

***सिद्धि-विष्कभ्नाति**। यहां 'स्कम्भ् प्रतिबन्धे' (सौत्रधातु ३।१।८२) से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'स्तम्भुस्तुम्भु०' (३।१।८२) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। तृच् प्रत्यय में-**विष्कम्भिता**। तुमुन् प्रत्यय में-**विष्कम्भितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**विष्कम्भितव्यम्**।*

मूर्धन्यादेशः–

(२४) इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्।७८।

प०वि०-इणः षीध्वम्-लुङ्-लिटाम् ६।३ धः ६।१ अङ्गात् ५।१।

स०-षीध्वं च लुङ् च लिट् च ते-षीध्वंलिङ्लिटः, तेषाम्-षीध्वं-लुङ्लिटाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणोऽङ्गात् षीध्वंलुङ्लिटां धो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् अङ्गात् परेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्याऽपदान्तस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(षीध्वम्) यूयं च्योषीढ्वम्। यूयं प्लोषीढ्ध्वम्। **(लुङ्)** यूयम् अच्योढ्वम्, यूयम् अप्लोढ्वम्। **(लिट्)** यूयं चकृढ्वे। यूयं ववृढ्वे।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (षीध्वंलुङ्लिटाम्) षीध्वम्, लुङ् और लिट् का जो (धः) धकार है उस (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) धकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-(षीध्वम्) ***यूयं च्योषीढ्वम्।*** *तुम सब गिरो।* ***यूयं प्लोषीढ्वम्।*** *तुम सब कूदो। (लुङ्)* ***यूयम् अच्योढ्वम्।*** *तुम सब गिरे।* ***यूयम् अप्लोढ्वम्।*** *तुम सब कूदे। (लिट्)* ***यूयं चकृढ्वे।*** *तुम सबने किया था।* ***यूयं ववृढ्वे।*** *तुम सब ने वरण किया था।*

सिद्धि-(१) ***च्योषीढ्वम्।*** *यहां 'च्युङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से लिङ् को सीयुट् आगम है। लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।४।६४) से 'सीयुट्' के यकार का लोप, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होकर इस सूत्र से 'षीध्वम्' के धकार को ढकार मूर्धन्य आदेश होता है। 'प्लुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से-प्लोषीढ्वम्। लुङ् लकार में-अच्योढ्वम्, अप्लोढ्वम्। लिट् लकार में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से-चकृढ्वे। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से-ववृढ्वे। 'कृसृभृवृ०' (७।२।१३) से इडागम का प्रतिषेध है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२५) विभाषेटः।७९।

प०वि०-विभाषा १।१ इटः ५।१।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, षीध्वंलुङ्लिटाम्, धः, अङ्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणोऽङ्गात् इटः षीध्वंलुङ्लिटां धो विभाषा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्माद् इटः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्याऽपदान्तस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(षीध्वम्) यूयं लविषीढ्वम्, लविषीध्वम्। यूयं पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्। **(लुङ्)** यूयम् अलविढ्वम्, अलविध्वम्। **(लिट्)** यूयं लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे जो (इट्) इट् है उससे परवर्ती (षीध्वंलुङ्लिटाम्) षीध्वम्, लुङ् और लिट् इनका जो (धः) धकार है उसके स्थान में (विभाषा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(षीध्वम्) **यूयं लविषीढ्वम्, लविषीध्वम्।** तुम सब काटो। **यूयं पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्।** तुम सब पवित्र करो। (लुङ्) **यूयम् अलविढ्वम्, अलविध्वम्।** तुम सबने काटा। (लिट्) **यूयं लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।** तुम सबने काटा था।*

***सिद्धि-(१) लविषीढ्वम्।** यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सीयुट् आगम और लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सीयुट्' को 'इट्' आगम है। इस सूत्र से इणन्त (लो) अङ्ग से उत्तर इट् से परवर्ती 'षीध्वम्' के धकार को ढकार मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**लविषीध्वम्।** लुङ् में-**अलविढ्वम्, अलविध्वम्।** लिट् में-**लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।** 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से उवङ् आदेश है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२६) समासेऽङ्गुलेः सङ्गः।८०।

प०वि०-समासे ७।१ अङ्गुलेः ५।१ सङ्गः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् समासे इणोऽङ्गुलेः सङ्गोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् अङ्गुलेः शब्दात् परस्य सङ्ग इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-अङ्गुलेः सङ्ग इति अङ्गुलिषङ्गः। अङ्गुलिषङ्गा यवागूः। अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गुलेः) अङ्गुलि शब्द से परवर्ती (सङ्गः) सङ्ग इस शब्द को (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**अङ्गुलिषङ्गः।** अङ्गुलि का सङ्ग। **अङ्गुलिषङ्गा यवागूः।** अङ्गुलि को लग जानेवाली यवागू (लापसी)। **अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति।** अङ्गुलि के सङ्ग शस्त्रविशेष रखनेवाला पुरुष बैलों को चलाता है, हांकता है।*

*सिद्धि-(१) **अङ्गुलिषङ्गः।** यहां अङ्गुलि और सङ्ग शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष अथवा **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इणन्त अङ्गुलि शब्द से परवर्ती सङ्ग के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२७) भीरोः स्थानम्।८१।

प०वि०-भीरोः ५।१ स्थानम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे इणो भीरोः स्थानमपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् भीरोः शब्दात् परस्य स्थानमित्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-भीरोः स्थानमिति भीरुष्ठानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (भीरोः) भीरु इस शब्द से परवर्ती (स्थानम्) इस स्थान शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**भीरुष्ठानम्।** भीरु (डरपोक) पुरुष का स्थान (आवास)।*

*सिद्धि-**भीरुष्ठानम्।** यहां भीरु और स्थान शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त 'भीरु' शब्द से परवर्ती 'स्थान' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। पश्चात् 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकारादेश होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२८) अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः।८२।

प०वि०-अग्नेः ५।१ स्तुत्-स्तोम-सोमाः १।३ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-स्तुश्च स्तोमश्च सोमश्च ते-स्तुत्स्तोमसोमाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे इणोऽग्नेः स्तुत्स्तोमसोमा अपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् अग्निशब्दात् परेषां स्तुत्स्तोमसोमा इत्येतेषामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(स्तुत्)** अग्निं स्तौतीति अग्निष्टुत्। **(स्तोमः)** अग्नेः स्तोम इति अग्निष्टोमः। **(सोमः)** अग्निश्च सोमश्च तौ अग्नीषोमौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (अग्नेः) अग्नि शब्द से परवर्ती (स्तुत्स्तोमसोमाः) स्तुत्, स्तोम, सोम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्तुत्) **अग्निष्टुत्।** अग्नि देवता की स्तुति करनेवाला। (स्तोम) **अग्निष्टोमः।** यज्ञविशेष। इस में तीन सवन और द्वादश स्तोत्र होते हैं। (सोम) **अग्नीषोमौ।** अग्नि और सोम देवता, दोनों।*

*सिद्धि-(१) **अग्निष्टुत्।** यहां अग्नि उपपद 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७०) से 'तुक्' आगम है। इस सूत्र से इणन्त अग्नि शब्द से परवर्ती 'स्तुत्' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।३।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश है। **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपद समास है।*

*(२) **अग्निष्टोमः।** यहां अग्नि और स्तोम शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अग्नीषोमौ।** यहां अग्नि और सोम शब्दों का **चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। **'ईदग्नेः सोमवरुणयोः'** (६।३।२७) से ईकारादेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*यहां **'सात्पदाद्योः'** (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह **मूर्धन्य** आदेश विधान किया गया है।*

मूर्धन्यादेशः–

(२९) ज्योतिरायुषः स्तोमः।८३।

प०वि०–ज्योतिरायुषः ५।१ स्तोमः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–ज्योतिश्च आयुश्च एतयोः समाहारो ज्योतिरायुः, तस्मात्-ज्योतिरायुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां समासे च इण्भ्यां ज्योतिरायुर्भ्यां स्तोमोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां ज्योतिरायुर्भ्यां शब्दाभ्यां परस्य स्तोम इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(ज्योतिर्)** ज्योतिषः स्तोम इति ज्योतिष्टोमः। **(आयुर्)** आयुषः स्तोम इति आयुष्टोमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (ज्योतिरायुर्भ्याम्) ज्योतिर् और आयुर् इन शब्दों से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(ज्योतिर्) ज्योतिष्टोमः।** यज्ञविशेष। **(आयुर्) आयुष्टोमः।** यज्ञविशेष।*

सिद्धि-ज्योतिष्टोमः। *यहां ज्योतिर् और स्तोम शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त ज्योतिर् से परवर्ती 'स्तोम' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। ऐसे ही-**आयुष्टोमः।***

मूर्धन्यादेशः–

(३०) मातृपितृभ्यां स्वसा।८४।

प०वि०–मातृ-पितृभ्याम् २।२ स्वसा १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–माता च पिता च तौ मातृपितरौ, ताभ्याम्-मातृपितृभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे च इण्भ्यां मातृपितृभ्यां स्वसाऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां मातृपितृभ्यां परस्य स्वसा इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(मातृ)** मातुः स्वसेति मातृष्वसा। **(पितृ)** पितुः स्वसेति पितृष्वसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (मातृपितृभ्याम्) मातृ, पितृ इन शब्दों से परवर्ती (स्वसा) स्वसा इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(मातृ) **मातृष्वसा।** माता की बहिन-मां-सी। (पितृ) **पितृष्वसा।** पिता की बहिन-बुआ।*

सिद्धि-मातृष्वसा। *यहां मातृ और स्वसा शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त मातृ-शब्द से 'स्वसा' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**पितृष्वसा।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(३१) मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्।८५।

प०वि०-मातुः-पितुर्भ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-मातुश्च च पितुश्च च तौ मातुःपितरौ, ताभ्याम्-मातुपितुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे, स्वसा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे च इण्भ्यां मातुःपितुर्भ्यां स्वसाऽपदान्तस्य सोऽन्यतरस्यां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां मातुःपितुर्भ्यां शब्दाभ्यां परस्य स्वसा इत्येतस्य शब्दस्यापदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(मातुः)** मातुः स्वसेति मातुःष्वसा, मातुःस्वसा। **(पितुः)** पितुः स्वसेति पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (मातुःपितुर्भ्याम्) मातुर्, पितुर् इन शब्दों से परवर्ती (स्वसा) स्वसा इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(मातुः) मातुःष्वसा, मातुःस्वसा।** माता की बहिन-मां-सी। **(पितुः) पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।** पिता की बहिन-बुआ।*

*सिद्धि-**मातुःष्वसा।** यहां मातुः और स्वसा शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'विभाषा स्वसृपत्योः' (६।३।२२) से षष्ठीविभक्ति का अलुक् होता है। इस सूत्र से इणन्त 'मातुर्' शब्द से परवर्ती स्वसा शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**मातुःस्वसा।** ऐसे ही-**पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(३२) अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्।८६।

प०वि०- अभिनिसः ५।१ स्तनः ६।१ शब्द-संज्ञायाम् ७।१।

स०-अभिश्च निस् च एतयोः समाहारः-अभिनिस्, तस्मात्-अभिनिसः (समाहारद्वन्द्वः)। शब्दस्य संज्ञा इति शब्दसंज्ञा, तस्याम्-शब्दसंज्ञायाम् (षष्ठीत्तपुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते। समासे इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्याम् अभिनिर्भ्यां स्तनोऽपदान्तस्य सोऽन्यतरस्यां मूर्धन्यः, शब्दसंज्ञायाम्।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्याम् अभिनिर्भ्यां परस्य स्तनोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति, शब्दसंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अभिनिष्टानो वर्णः (विसर्जनीयः)। अभिनिष्तानो वर्णः **(विसर्जनीयः)**।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में इन (इणः) इणन्त (अभिनिसः) अभि, निर् इनसे परवर्ती (स्तनः) स्तन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (शब्दसंज्ञायाम्) यदि वहां व्याकरणशास्त्र की किसी संज्ञा की प्रतीति हो।*

*उदा०-**अभिनिष्टानो वर्णः । अभिनिष्तानो वर्णः ।** यह व्याकरणशास्त्र के एक वर्ण विसर्जनीय की संज्ञा है।*

सिद्धि-अभिनिष्टानः । *यहां अभि और निर् उपसर्गपूर्वक 'ष्टन शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से समुदित इणन्त अभिनिर् से परवर्ती 'स्तन्' धातु के सकार को शब्दसंज्ञा की अभिव्यक्ति में मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्यादेश नहीं है-**अभिस्तानो वर्णः ।***

विशेषः ***'घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्टानान्तं द्व्यक्षरम्'*** *(आश्व० १।१५।५) अर्थात् बालक का नाम ऐसा रखे कि जिसके आदि में घोष (वर्गों के तीसरे-चाथे-पांचवें) वर्ण हों और मध्य में अन्तःस्थ (य र ल व) वर्ण हों और अन्त में अभिनिष्ठान=विसर्जनीय हो। जैसे-भद्रसेनः, देवदत्तः आदि यहां अभिनिष्टान शब्द विसर्जनीयवाची है।*

मूर्धन्यादेशः–

(३३) उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ।८७।

प०वि०- उपसर्ग-प्रादुर्भ्याम् ५।२ अस्तिः १।१ (षष्ठ्यर्थे) यच्परः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-उपसर्गश्च प्रादुश्च तौ उपसर्गप्रादुसौ, ताभ्याम्-उपसर्गप्रादुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यश्च अच् च तौ यचौ, तौ परौ यस्मात् सः-यच्परः ।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्याम् उपसर्गप्रादुर्भ्यां यच्परस्यास्तेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः ।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्याम् उपसर्गप्रादुभ्याम् उत्तरस्य यकार-परस्याच्परस्य चास्तेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(उपसर्गः) यकारपरः**-अभिष्यात्, निष्यात्, विष्यात्। **(प्रादुर्)** प्रादुःष्यात्। **(उपसर्गः) अच्परः**-अभिषन्ति, निषन्ति, विषन्ति। **(प्रादुर्)** प्रादुःषन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्याम्) इणन्त (उपसर्ग-प्रादुर्भ्याम्) उपसर्ग और प्रादुर् शब्दों से परवर्ती (यच्परः) यकारपरक और अच्परक (अस्तिः) अस्ति इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(उपसर्ग) यकारपरक-अभिष्यात्।** वह अभितः होवे। **निष्यात्।** वह निम्नतः होवे। **विष्यात्।** वह विशेषतः होवे। **(प्रादुर्) प्रादुःष्यात्।** वह प्रकट होवे। **(उपसर्ग) अच्परक-अभिषन्ति।** वे अभितः होते हैं। **निषन्ति।** वे निम्नतः होते हैं। **विषन्ति।** वे विशेषतः होते हैं। **(प्रादुर्) प्रादुःषन्ति।** वह प्रकट होते हैं।*

सिद्धि-अभिष्यात्।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'अस् भुवि'** (अदा०प०) धातु से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से लुक् होता है। 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का लोप होता है। इस सूत्र से इणन्त 'अभि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती तथा यकारपरक 'अस्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**निष्यात्, विष्यात्।** लट् लकार में-**अभिषन्ति, निषन्ति, विशन्ति।

मूर्धन्यादेशः--

(३४) सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः।८८।

प०वि०-सु-वि-निर्-दुर्भ्यः ५।३ सुपि-सूति-समाः १।३ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-सुश्च विश्च निस् च दुस् च ते-सुविनिर्दुसः, तेभ्यः-सुविनिर्दुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सुपिश्च सूतिश्च समश्च ते-सुपिसूतिसमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यः सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमा अपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः सुविनिर्दुर्भ्यः परेषां सुपिसूतिसमा इत्येतेषामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(सुपिः) सु-सुषुप्तः। **वि-**विषुप्तः। **निर्-**निःषुप्तः। **दुर्-**दुःषुप्तः। **(सूतिः) सु-**सुषूतिः। **वि-**विषूतिः। **निर्-**निःषूतिः।

दुर्-दुःषूतिः। (समः) सु-सुषमम्। वि-विषमम्। निर्-निःषमम्। दुर्-दुःषमम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (सुविनिर्दुर्भ्यः) सु, वि, निर्, दुर् इनसे परवर्ती (सुपिसूतिसमाः) सुपि, सूति, सम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(सुपिः) सु-**सुषुप्तः**। सुख से सोया हुआ। वि-**विषुप्तः**। विशेषतः सोया हुआ। निर्-**निःषुप्तः**। निश्चय से सोया हुआ। दुर्-**दुःषुप्तः**। दुःख से सोया हुआ। (सूतिः) सु-**सुषूतिः**। सुख से प्रसव होना। वि-**विषूतिः**। विशेषतः प्रसव होना। निर्-**निःषूतिः**। निश्चित प्रसव होना। दुर्-**दुःषूतिः**। दुःख से प्रसव होना। (समः) सु-**सुषमम्**। सर्वथा समान। वि-**विषमम्**। विगत समान। निर्-**निःषमम्**। निश्चित समान। दुर्-**दुःषमम्**। कठिनता से समान।*

*सिद्धि-(१) **सुषुप्तः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक **'ञिष्वप् शये'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'स्वप्' को सम्प्रसारण और **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सुप्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषुप्तः, निःषुप्तः, दुःषुप्तः**।*

*(२) **सुषूतिः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक **'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'** (अदा०आ०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सूति' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषूतिः। निःषूतिः। दुःषूति**।*

*(३) **सुषमः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक **'षम अवैक्लव्ये'** (भ्वा०प०) धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से पचादिलक्षण 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सम' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषमम्, निःषमम्, दुःषमम्**।*

मूर्धन्यादेशः-

(३५) निनदीभ्यां स्नातेः कौशले।८६।

प०वि०-नि-नदीभ्याम् ५।२ स्नातेः ६।१ कौशले ७।१।

स०-निश्च नदी च ते निनद्यौ, ताभ्याम्-निनदीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-कुशलस्य भाव इति कौशलम्, तस्मिन्-कौशले। **'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्'** (५।१।१३०) इति भावेऽर्थेऽण् प्रत्ययः।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यां निनदीभ्यां स्नातेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः, कौशले।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्यां निनदीभ्यां परस्य स्नातेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति, कौशले गम्यमाने।

उदा०-(स्नातिः) नि-निष्णातः कटकरणे। निष्णातो रज्जुवर्तने। **नदी**-नद्यां स्नातीति नदीष्णः। नदीस्नाने कुशल इत्यर्थः। कवयस्तु कुशलमात्रे प्रयुञ्जते-विद्यानदीष्ण इति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्याम्) इणन्त (निनदीभ्याम्) नि, नदी इनसे परवर्ती (स्नातेः) स्ना धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (कौशले) यदि वहां कुशलता अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(स्नातिः) नि-निष्णातः कटकरणे।** चटाई बनाने में कुशल। **निष्णातो रज्जुवर्तने।** रस्सी बांटने में कुशल। **नदी-नदीष्णः।** नदी-स्नान में कुशल। कविजन कुशलमात्र अर्थ में इसका प्रयोग करते हैं-**विद्यानदीष्णः।** विद्या में कुशल।*

सिद्धि-निष्णातः। *यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'ष्णा शौचे'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'नि' से परवर्ती 'स्ना' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार आदेश है। नदी-उपपद में-**नदीष्णः।** यहां **'सुपि स्थः'** (३।२।४) में योगविभाग से 'स्ना' धातु से 'क' प्रत्यय है।*

निपातनम्-

(३६) सूत्रं प्रतिष्णातम्।६०।

प०वि०-सूत्रम् १।१ प्रतिष्णातम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्रतिष्णातं सूत्रमिति निपातनम्।

अर्थः-संहितायां विषये प्रतिष्णातमित्यत्रापदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते, सूत्रं चेत् तद् भवति।

उदा०-प्रतिष्णातं सूत्रम्। शुद्धं सूत्रमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतिष्णातम्) प्रतिष्णात इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है (सूत्रम्) जो प्रतिष्णात है यदि वह सूत हो।*

*उदा०-**प्रतिष्णातं सूत्रम्।** शुद्ध सूत।*

*सिद्धि-**प्रतिष्णातम्।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक **'ष्णा शौचे'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त प्रति-उपसर्ग से परवर्ती 'स्ना' धातु के सकार को सूत्र अर्थ अभिधेय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार आदेश होता है।*

निपातनम्–

(३७) कपिष्ठलो गोत्रे।६१।

प०वि०-कपिष्ठलः १।१ गोत्रे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां गोत्रे च कपिष्ठलो निपातनम्।

अर्थः-संहितायां गोत्रे च विषये कपिष्ठल इत्यत्रापदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-कपिष्ठलो नाम ऋषिः। तस्यापत्यम्-कापिष्ठलिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (गोत्रे) गोत्र विषय में (कपिष्ठलः) कपिष्ठल इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

उदा०-कपिष्ठल नामक ऋषि की सन्तान कापिष्ठलि कहलाती है।

*सिद्धि-**कपिष्ठलः।** यहां कपि और स्थल शब्दों का 'उपमितं व्याघ्रादिभिर्-सामान्यप्रयोगे' (२।१।५६) से कर्मधारय समास है-**कपिरिव स्थल इति कपिष्ठलः।** यह शब्द की व्युत्पत्तिमात्र है। अवयवार्थ नहीं है। इस सूत्र से इणन्त 'कपि' शब्द से परवर्ती 'स्थल' शब्द के सकार को गोत्र विषय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश है।*

*यहां लोकप्रसिद्ध गोत्र का ग्रहण किया जाता है, **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस परिभाषिक गोत्रक नहीं। लोक में अपत्य-सन्तति के प्रवर्तक पुरुष **'गोत्र'** नाम से कहे जाते हैं।*

निपातनम्–

(३८) प्रष्ठोऽग्रगामिनि।६२।

प०वि०–प्रष्ठः १।१ अग्रगामिनि ७।१।

स०–अग्रे गन्तुं शीलं यस्य सः–अग्रगामी (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां प्रष्ठोऽग्रगामिनि निपातनम्।

अर्थः–संहितायां विषये प्रष्ठ इत्यत्राग्रगामिनि वाच्येऽपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०–प्रतिष्ठते इति प्रष्ठोऽश्वः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रष्ठः) प्रष्ठ इस पद में (अग्रगामिनि) अग्रगामी अर्थ अभिधेय में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

उदा०–प्रष्ठोऽश्वः। आगे चलनेवाला घोड़ा।

***सिद्धि**–प्रष्ठोऽश्वः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'सुपि स्थः'** (३।२।४) से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से धातु के आकार का लोप होता है। इस सूत्र से अनिणन्त प्र-उपसर्ग से परवर्ती 'स्था' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश निपातित है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश होता है।*

निपातनम्–

(३९) वृक्षासनयोर्विष्टरः।६३।

प०वि०–वृक्ष-आसनयोः ७।२ विष्टरः १।१।

स०–वृक्षश्च आसनं च ते वृक्षासने, तयोः–वृक्षासनयोः (इतरेयोग-द्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां विष्टरो वृक्षासनयोर्निपातनम्।

अर्थः–संहितायां विषये विष्टर इत्यत्र वृक्षासनयोरभिधेययोरपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-विष्टरो वृक्षः। विष्टरम् आसनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (विष्टरः) विष्टर इस पद में (वृक्षासनयोः) वृक्ष और आसन अर्थ अभिधेय में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

उदा०-विष्टरः। वृक्ष, आसन।

*सिद्धि-विष्टरः। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **स्तृञ् आच्छादने** (क्र्या०उ०) धातु से **'ऋदोरप्'** (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तृ' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश निपातित है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है।*

विशेषः *विष्टर शब्द वृक्ष और आसन अर्थ में रूढ है। इसकी यथासम्भव व्युत्पत्ति की जाती है। **'ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्'** (पार०गृह्य० १।३।४)। यह उत्तम आसन है, आप ग्रहण कीजिये।*

निपातनम्—

(४०) छन्दोनाम्नि च।६४।

प०वि०-छन्दोनाम्नि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-छन्दसो नाम इति छन्दोनाम, तस्मिन्-छन्दोनाम्नि (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, विष्टर इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दोनाम्नि च विष्टरः=विष्टार इति निपातनम्।

अर्थः-संहितायां छन्दोनाम्नि च विषये विष्टरः=विष्टार इत्यत्रा-पदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहती छन्दः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दोनाम्नि) छन्दोनाम विषय में (च) भी (विष्टरः) विष्टर=विष्टार इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

*उदा०-**विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः।** विष्टार पंक्ति नामक एक वैदिक छन्द है। **विष्टारबृहती छन्दः।** विष्टार बृहती नामक एक वैदिक छन्द है।*

*सिद्धि-**विष्टारः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तृ' धातु से **'छन्दोनाम्नि च'** (३।३।३४) से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तृ' धातु के सकार को छन्दोनाम*

विषय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है।

विशेषः *यहां 'विष्टर' शब्द की अनुवृत्ति में 'विष्टर' शब्द से 'विष्टार' शब्द का ग्रहण किया जाता है क्योंकि छन्दोनाम पूर्वोक्त घञ्-प्रत्ययान्त 'विष्टार' है; विष्टर नहीं। 'विष्टारपङ्क्तिरन्तः' (छन्दःशास्त्र ३।३)।*

मूर्धन्यादेशः–

(४१) गवियुधिभ्यां स्थिरः।६५।

प०वि०–गवि-युधिभ्याम् ५।२ स्थिरः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–गविश्च युधिश्च तौ गवियुधी, ताभ्याम्–गवियुधिभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इण्भ्यां गवियुधिभ्यां स्थिरोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्ताभ्यां गवियुधिभ्यां परस्य स्थिर इत्येत-स्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(गवि)** गविष्ठिरः। **(युधि)** युधिष्ठिरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्याम्) इणन्त (गवि-युधिभ्याम्) गवि, युधि इन शब्दों से परवर्ती (स्थिरः) स्थिर इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०–(गवि) गविष्ठिरः। संज्ञाविशेष है। (युधि) युधिष्ठिरः। संज्ञाविशेष है।

*सिद्धि-**गविष्ठिरः।** गवि तिष्ठतीति गविष्ठिरः। यहां गो और स्थिर शब्दों का सप्तमीतत्पुरुष समास है। '**हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्**' (६।३।८) में हलन्त शब्द से सप्तमी का अलुक् कहा गया है; गो शब्द अजन्त है। अतः यहां इस सूत्रोक्त निपातन से सप्तमी का अलुक् समझना चाहिये। 'युधि' शब्द से-**युधिष्ठिरः।** यहां 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६।३।८) से संज्ञाविषय में सप्तमी का अलुक् है।*

यहां 'सात्पदाद्योः' (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, अतः मूर्धन्यादेश का विधान किया गया है।

मूर्धन्यादेशः–

(४२) विकुशमिपरिभ्यः स्थलम्।६६।

प०वि०–वि-कु-शमि-परिभ्यः ५।३ स्थलम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-विश्च कुश्च शमिश्च परिश्च ते विकुशमिपरय:, तेभ्य:-विकुशमिपरिभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-संहितायाम्, स:, अपदान्तस्य, मूर्धन्य:, इण इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् इण्भ्यो विकुशमिपरिभ्य: स्थलमपदान्तस्य सो मूर्धन्य:।

अर्थ:-संहितायां विषये इणन्तेभ्यो विकुशमिपरिभ्य: परस्य स्थलमित्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(स्थलम्)** वि-विष्ठलम्। **कु**-कुष्ठलम्। **शमि**-शमिष्ठलम्। **परि**-परिष्ठलम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्य:) इणन्त (विकुशमिपरिभ्य:) वि, कु, शमि, परि इन शब्दों से परवर्ती (स्थलम्) स्थल इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (स:) सकार के स्थान में (मूर्धन्य:) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्थलम्) वि-**विष्ठलम्**। विशेष स्थल। कु-**कुष्ठलम्**। कुत्सित स्थल। **शमि-शमिष्ठलम्**। शमी वृक्षों का स्थल। **परि-परिष्ठलम्**। सर्वत: प्रसृत स्थल।*

*सिद्धि-(१) **विष्ठलम्**। यहां वि और स्थल शब्दों का '**कुगतिप्रादय:**' (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्थल' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**ष्टुना ष्टु:**' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकारादेश होता है। ऐसे ही-**कुष्ठलम्, परिष्ठलम्**।*

*(२) **शमिष्ठलम्**। यहां शमी और स्थल शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। '**ङ्यापो: संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्**' (६।३।६१) से 'शमी' शब्द को संज्ञाविषय में ह्रस्व होता है। सूत्रपाठ में 'शमी' शब्द को ह्रस्व इसलिये पढ़ा है कि जहां 'शमी' शब्द को ह्रस्व हो वहीं मूर्धन्य आदेश होता है, अन्यत्र नहीं। बहुलवचन से दीर्घान्त में षत्व नहीं होता है।*

मूर्धन्यादेश:-

(४३) अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्य: स्थ:।६७।

प०वि०-अम्बा-आम्ब-गो-भूमि-सव्य-अप-द्वि-त्रि-कु-शङ्कु- अङ्गु-मञ्जि-पुञ्जि-परमे-बर्हि:-दिवि-अग्निभ्य: ५।३ स्थ: १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-अम्बश्च आम्बश्च गौश्च भूमिश्च सव्यश्च अपश्च द्विश्च त्रिश्च कुश्च शेकुश्च शङ्कुश्च अङ्गुश्च मञ्जिश्च पुञ्जिश्च परमेश्च

बर्हिश्च दिविश्च अग्निश्च ते अम्ब०अग्नयः, तेभ्यः-अम्ब०अग्निभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अम्बा०अग्निभ्यः स्थोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेङ्कुङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्य इणन्तेभ्यो विकुशमिपरिभ्यः परस्य स्थ इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

	पूर्वपदम्	उत्तरपदम्	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	अम्बा	स्थः	अम्बष्ठः	महावत।
(२)	आम्बः	,,	आम्बष्ठः	लाहौर और उसके आस-पास का प्रदेश।
(३)	गौः	,,	गोष्ठः	गोशाला।
(४)	भूमिः	,,	भूमिष्ठः	भूमि पर रहनेवाला।
(५)	सव्यः	,,	सव्येष्ठः	रथ पर बांई ओर बैठनेवाला सारथि।
(६)	अपः	,,	अपष्ठः	दूर रहनेवाला।
(७)	द्विः	,,	द्विष्ठः	दो पर आश्रित।
(८)	त्रिः	,,	त्रिष्ठः	तीन पर आश्रित।
(९)	कुः	,,	कुष्ठः	पापरोग (कोढ़)।
(१०)	शेकुः	,,	शेकुष्ठः	समर्थ पर आश्रित।
(११)	शङ्कुः	,,	शङ्कुष्ठः	खूंटे पर रहनेवाला (पशु)।
(१२)	अङ्गुः	,,	अङ्गुष्ठः	अंगूठा।
(१३)	मञ्जिः	,,	मञ्जिष्ठः	मजीठ।
(१४)	पुञ्जिः	,,	पुञ्जिष्ठः	राशि पर अवस्थित।
(१५)	परमे	,,	परमेष्ठः	परमधाम में अवस्थित (ईश्वर)।
(१६)	बर्हिः	,,	बर्हिष्ठः	यज्ञ में बैठनेवाला।
(१७)	दिवि	,,	दिविष्ठः	द्युलोक में अवस्थित।
(१८)	अग्निः	,,	अग्निष्ठः	अग्नि देवता पर आश्रित।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अम्ब०अग्निभ्यः) अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिः, दिवि, अग्नि इन शब्दों से परवर्ती (स्थः) स्थः इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***अम्बष्ठः।*** *यहां अम्ब सुबन्त उपपद* ***'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से* ***'सुपि स्थः'*** *(३।१।४) से 'क' प्रत्यय है।* ***'आतो लोप इटि च'*** *(६।४।६४) से धातु के आकार का लोप होता है। इस सूत्र से अम्ब से परवर्ती 'स्थः' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश है। ऐसे ही-***आम्बष्ठः*** *आदि।*

(२) ***गोष्ठः।*** *यहां गो-उपपद 'स्था' धातु से वा०-* ***'घञर्थे कविधानम्'*** *(३।३।५८) से 'क' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***सव्येष्ठः।*** *यहां सव्य-उपपद 'स्था' धातु से* ***'सुपि स्थः'*** *(३।२।४) से 'क' प्रत्यय है।* ***'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्'*** *(६।३।७) से सप्तमी का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-***परमेष्ठः, दिविष्ठः, अग्निष्ठः।***

मूर्धन्यादेशः-

(४४) सुषामादिषु च।६८।

प०वि०-सुषामा-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-सुषामा आदिर्येषां ते सुषामादयः, तेषु-सुषामादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सुषामादिषु चापदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये सुषामादिषु शब्देषु चाऽपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-शोभनं साम यस्य स सुषामा ब्राह्मणः। दुष्षामा। निष्षामा, इत्यादिकम्।

सुषामा। दुष्षामा। निष्षामा। निष्षेधः। दुष्षेधः। सुषन्धि। दुषन्धि। निषन्धि। सुष्ठु। दुष्ठु। गौरिषक्थः संज्ञायाम्। प्रतिष्णिका। जलाषाहम्। नौषेवणम्। दुदुभिषेवणम्। इति सुषामादयः।। अविहितलक्षणो मूर्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सुषामादिषु) सुषामा आदि शब्दों में (च) भी (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सुषामा ब्राह्मणः।** सामवेद के उत्तम-गान का ज्ञाता ब्राह्मण। **दुष्षामा।** सामवेद का निकृष्ट गान करनेवाला। **निष्षामा।** सामगान से अनभिज्ञ, इत्यादि।*

*सिद्धि-**सुषामा।** यहां सु और सामन् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सु' शब्द से 'सामन्' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। दुर्-पूर्वपद में-**दुष्षामा।** यहां **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश, **'वा शरि'** (८।३।१५) से इसे सकारादेश और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से इसे षकारादेश है। निर्-पूर्वपद में-**निष्षामा।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः--

(४५) एति संज्ञायामगात्।९९।

प०वि०-एति ७।१ संज्ञायाम् ७।१ अगात् ५।१।

स०-न ग इति अगः, तस्मात्-अगात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां चाऽगाद् इण्कोरपदान्तस्य स एति मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जिताद् इण्कोरुत्तरस्याऽ-पदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकारे परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-हरयः सेना यस्य सः-हरिषेणः। वारिषेणः। जानुषेणः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा-विषय में (अगात्) गकार से भिन्न (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती शब्द से (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एति) एकार परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**हरिषेणः।** हरि=वानरों की सेनावाला। **वारिषेणः।** जल-सेनावाला। **जानुषेणी।** घुटने के बल चलनेवाली सेनावाला। ये संज्ञाविशेष हैं।*

*सिद्धि-**हरिषेणः।** यहां हरि और सेना शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से गकार से भिन्न कवर्ग एवं इणन्त 'हरि' शब्द से परवर्ती तथा एकारपरक 'सेना' शब्द के सकार को संज्ञाविषय में मूर्धन्य आदेश होता है। **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से उपसर्जन 'सेना' शब्द को ह्रस्वादेश होता है। ऐसे ही-**वारिषेणः, जानुषेणी।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(४६) नक्षत्राद् वा।१००।

प०वि०-नक्षत्रात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोः, एति, संज्ञायाम्, अगादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां चाऽगाद् इण्कोर्नक्षत्रादपदान्तस्य स एति मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जिताद् इण्कोर्नक्षत्रवाचिनः शब्दात् परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकारे परतो विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-रोहिणीषेणः, रोहिणीसेनः। भरणीषेणः, भरणीसेनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा-विषय में (अगात्) गकार से भिन्न (इण्कोः) इणन्त और कवर्गान्त (नक्षत्रात्) नक्षत्रवाची शब्द से उत्तरवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एति) एकार परे होने पर (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**रोहिणीषेणः**, रोहिणीसेनः। **भरणीषेणः**, **भरणीसेनः**। ये संज्ञाविशेष हैं।*

*सिद्धि-**रोहिणीषेणः**। यहां रोहिणी और सेना शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है-**रोहिणीव सेना यस्य स रोहिणीषेणः**। इस सूत्र से इणन्त नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से उत्तरवर्ती सेना शब्द के एकारपरक सकार के स्थान में संज्ञाविषय में मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**रोहिणीसेनः**। ऐसे ही-**भरणीषेणः**, **भरणीसेनः**।*

विशेषः *'एति संज्ञायामगात्' और 'नक्षत्राद् वा' ये दोनों काशिकावृत्ति में 'सुषामादिषु च' (८।३।९८) की वृत्ति में सुषामादिगण में गणसूत्र के रूप में पठित हैं। अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में इनका सूत्र के रूप में पाठ मिलता है। अतः इनका तदनुरूप ही प्रवचन किया गया है।*

मूर्धन्यादेशः-

(४७) ह्रस्वात्तादौ तद्धिते।१०१।

प०वि०-ह्रस्वात् ५।१ तादौ ७।१ तद्धिते ७।१।

स०-तकार आदिर्यस्य स तादिः, तस्मिन्-तादौ (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां ह्रस्वाद् इणः सस्तादौ तद्धिते मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये ह्रस्वाद् इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादौ तद्धिते परतो मूर्धन्यादेशो भवति। तरप्-तमप्-तय-तल्-तस्-त्यप्प्रत्ययाः प्रयोजयन्ति। उदाहरणम्-

शब्दः	प्रत्ययः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
सर्पिस्	तरप्	सर्पिष्टरम्	दोनों में अतिशायी सर्पि (घृत)।
यजुस्	,,	यजुष्टरम्	दोनों में अतिशायी यजुःपाठ।
सर्पिस्	,,	सर्पिष्टमम्	बहुतों में अतिशायी सर्पि (घृत)।
यजुस्	,,	यजुष्टमम्	बहुतों में अतिशायी यजुःपाठ।
चतुस्	तयप्	चतुष्टयम्	चार प्रकार का।
सर्पिस्	त्व	सर्पिष्ट्वम्	सर्पिभाव (घृतपन)।
यजुस्	,,	यजुष्ट्वम्	यजुर्भाव (यजुःपन)।
सर्पिस्	तल्	सर्पिष्टा	घृतता।
यजुस्	,,	यजुष्टा	यजुर्भाव।
सर्पिस्	तस्	सर्पिष्टः	घृत से।
यजुस्	,,	यजुष्टः	यजुः से।
आविस्	त्यप्	आविष्ट्यः	अभिव्यक्त होनेवाला।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ह्रस्वात्) ह्रस्व (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (तादौ) तकारादि (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है। तरप्, तमप्, तय, तल्, तस्, त्यप् प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश करना प्रयोजन है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) सर्पिष्टरम्। *यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ह्रस्व इण् वर्ण (इ) से परवर्ती 'सर्पिस्' शब्द के सकार को तकारादि तद्धित 'तरप्' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टरम्।***

'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (८।३।५५) से विहित अपदान्त के अधिकार में यहां पदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश का विधान किया गया है।

*(२) **सर्पिष्टमम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टमम्।***

*(३) **चतुष्टयम्।** यहां 'चतुस्' शब्द से **'संख्याया अवयवे तयप्'** (५।२।४२) से 'तयप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **सर्पिष्ट्वम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'तस्य भावस्त्वतलौ'** (५।१।११९) से 'त्व' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्ट्वम्।***

*(५) **सर्पिष्टा।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से पूर्ववत् 'तल्' प्रत्यय है। 'तलन्तः' (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टा।***

*(६) **सर्पिष्टः।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अपादाने चाहीयरुहोः'** (५।४।४५) से 'तसि' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टः।***

*(७) **आविष्ट्यः।** यहां 'आविस्' शब्द से **'अव्ययात् त्यप्'** (५।१।१०४) सूत्र पर पठित **'आविसश्छन्दसि'** इस वार्तिक से 'त्यप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः—

(४८) निसस्तपतावनासेवने।१०२।

प०वि०-निसः ६।१ तपतौ ७।१ अनासेवने ७।१।

स०-आसेवनम्=पुनः पुनः करणम्। न आसेवनमिति अनासेवनम्, तस्मिन्-अनासेवने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां निसः सोऽनासेवने तपतौ मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये निसः सकारस्य स्थानेऽनासेवनेऽर्थे तपतौ परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-निष्टपति सुवर्णं सुवर्णकारः। सकृदग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (निसः) निस् इसके (सः) सकार के स्थान में (अनासेवने) बार-बार न तपाने अर्थ में (तपतौ) तप धातु के परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(तप) **निष्टपति सुवर्णं सुवर्णकारः।** सुनार एक बार सुवर्ण को अग्नि-स्पर्श देता है।*

सिद्धि-निष्टपति। यहां निस्-उपसर्गपूर्वक 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से अनासेवन-अर्थक 'तप' धातु के परे होने पर 'निस्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है।

विशेषः *'अपदान्तस्य मूर्धन्यः'* (८।३।५५) से विहित अपदान्त के अधिकार में यहां पदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश का विधान किया गया है।

मूर्धन्यादेशः-

(४६) युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम्।१०३।

प०वि०-युष्मत्-तत्-ततक्षुःषु ७।३ अन्तःपादम् अव्ययपदम्।

स०-युष्मच्च तच्च ततक्षुश्च ते युष्मत्तत्ततक्षुषः, तेषु-युष्मत्तत्ततक्षुःषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पादस्य अन्त इति अन्तःपादम्। **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) इत्यनेन विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावसमासः।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इण इत्यनुवर्तते। **'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते'** (८।३।९९) इत्यस्मात् 'तादौ' इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सस्तादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु मूर्धन्यः, अन्तःपादम्।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादिषु युष्मत् तत्ततक्षुःषु परतो मूर्धन्यादेशो भवति, स चेत् सकारोऽन्तःपादं भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-त्वम्, त्वाम्, ते, तव। **(त्वम्)** अग्निष्ट्वं नामासीत्। **(त्वा)** अग्निष्ट्वा वर्धयामसि। **(ते)** अग्निष्टे विश्वमानय। **(तव)** अप्स्वग्ने सधिष्टव (ऋ०८।४३।९)। **(तत्)** अग्निष्ट द्विश्वमापृणाति (ऋ० १०।२।४)। **(ततक्षुः)** द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः (ऋ० १०।३१।७)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (तादिषु) तकारादि (युष्मत्तत्ततक्षुःषु) युष्मत्, तत्, ततक्षुः ये शब्द परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (अन्तःपादम्) यदि वह सकार मन्त्र के-चरण के मध्य में हो।*

*उदा०-युष्मद्-आदेश-त्वम्, त्वाम्, ते, तव। (त्वम्) **अग्निष्ट्वं नामासीत्।** तू अग्नि नामक था। (त्वा) **अग्निष्ट्वा वर्धयामसि।** तुझ अग्नि को हम बढ़ाते हैं। (ते) **अग्निष्टे विश्वमानय।** अग्नि तेरे लिये सब सुख पहुंचाता है। (तव) **अप्स्वग्ने सधिष्टव** (ऋ०८।४३।९)। सधिः+तव=तेरे साथ। (तत्) **अग्निष्टद्विश्वमापृणाति** (ऋ० १०।२।४)। विद्वान् अग्नि उस समस्त व्रत को पूरा करता है। (ततक्षुः) **द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः** (ऋ० १०।३१।७)। वह कौन-सा वन वा वृक्ष है जिससे द्युलोक पृथिवीलोक को बनाया गया है।*

*सिद्धि-**अग्निष्ट्वं नामासीत्** आदि प्रयोगों में युष्मद्-आदेश त्व, त्वा, ते, तव और तत् तथा ततक्षुः शब्द परे होने पर इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश स्पष्ट है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(५०) यजुष्येकेषाम्।१०४।

प०वि०-यजुषि ७।१ एकेषाम् ६।३।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इणः, तादौ, युष्मत्तत्ततक्षुःषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् यजुषि च इणः सस्तादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु परत एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-(त्वम्) अर्चिभिष्ट्वम् (यजु० १२।३२)। अर्चिभिस्त्वम्। **(ते)** अग्निष्टेऽग्रम्, अग्निस्तेऽग्रम् (तै०सं० ३।५।६।२)। **(तत्)** अग्निष्टत् (तै०सं० १।१।१४।५)। अग्निस्तत् (तै०सं० ३।२।५।४)। **(ततक्षुः)** अर्चिभिष्टतक्षुः। अर्चिभिस्ततक्षुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (तादिषु) तकारादि (युष्मत्तत्ततक्षुःषु) युष्मत्, तत्, ततक्षुः इन शब्दों के परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-युष्मद्-आदेश-(त्वम्) **अर्चिभिष्ट्वम्** (यजु० १२।३२)। **अर्चिभिस्त्वम्।** तू किरणों के द्वारा। (ते) **अग्निष्टेऽग्रम्, अग्निस्तेऽग्रम्** (तै०सं० ३।५।६।२)। अग्नि तेरे आगे है। (तत्) **अग्निष्टत्** (तै०सं० १।१।१४।५)। **अग्निस्तत्** (तै०सं० ३।२।५।४)।*

अग्नि, वह। (ततक्षुः) अर्चिभिष्टतक्षुः। अर्चिभिस्ततक्षुः। उन्होंने किरणों के द्वारा सूक्ष्म किया (छीला)।

सिद्धि-अर्चिभिष्ट्वम्, अर्चिभिस्त्वम् *इत्यादि पदों में इण् वर्ण से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है और अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(५१) स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि।१०५।

प०वि०-स्तुत-स्तोमयोः ६।२ छन्दसि ७।१।

स०-स्तुतं च स्तोमश्च तौ स्तुतस्तोमौ, तयोः-स्तुतस्तोमयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, एकेषामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च इणः स्तुतस्तोमयोरपदान्तस्य स एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये इणः परयोः स्तुतस्तोमयोरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-(स्तुतम्) त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य (मै०सं० १।३।३९)। नृभिष्टुतस्य, नृभिस्तुतस्य। **(स्तोमः)** गोष्टोमं षोडशिनम् (द्र०-तै०सं० ७।४।११।१), गोस्तोमं षोडशिनम् (तु०-आ०श्रौ० ९।५।९)।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (स्तुतस्तोमयोः) स्तुत, स्तोम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एकेषाम्) कुछ एक अचार्यों के मत में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**युष्मद्-आदेश-(स्तुतम्) त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य** (मै०सं० १।३।३९)। तीन पुरुषों के द्वारा स्तुति किये गये का। **नृभिष्टुतस्य, नृभिस्तुतस्य**। नरों के द्वारा स्तुति किये गये का। **(स्तोमः) गोष्टोमं षोडशिनम्** (द्र०-तै०सं० ७।४।११।१), **गोस्तोमं षोडशिनम्** (तु०-आ०श्रौ० ९।५।९)। गोस्तोमम्=गौओं के समूह को।*

सिद्धि-त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य *आदि प्रयोगों में इण् से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है और अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः–

(५२) पूर्वपदात्।१०६।

वि०–पूर्वपदात् ५।१।

स०–पूर्वं च तत् पदं चेति पूर्वपदम्, तस्मात्–पूर्वपदात् (कर्मधारय-तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, एकेषाम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च पूर्वपदाद् इणोऽपदान्तस्य स एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–द्विषन्धिः, द्विसन्धिः। त्रिषन्धिः (मै०सं० ३।८।२)। त्रिसन्धिः। मधुष्ठालम् (मै०सं० १।११।७) मधुस्थालम्। मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्। द्विषाहस्रं चिन्वीत (तै०सं० ५।६।८।२) द्विसाहस्रं चिन्वीत।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एकेषाम्) कुछ एक अचार्यों के मत में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–**द्विषन्धिः, द्विसन्धिः।** दो जनों की सन्धि (मेल)। **त्रिषन्धिः** (मै०सं० ३।८।२)। **त्रिसन्धिः।** तीन जनों की सन्धि। **मधुष्ठालम्** (मै०सं० १।११।७) **मधुस्थालम्।** मिठाई का थाल। **मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्।** मिष्टान्न भण्डार। **द्विषाहस्रं चिन्वीत** (तै०सं० ५।६।८।२) **द्विसाहस्रं चिन्वीत।** दो सहस्र कार्षापणों में होनेवाले कार्य का चयन करे।*

सिद्धि–(१) द्विषन्धिः, द्विसन्धिः *आदि पदों में पूर्वपद में विद्यमान इण् वर्ण से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है, अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

*(२) **द्विषाहस्रम्।** 'द्वयोः सहस्रयोर्भवं द्विसाहस्रम्।' यहां 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है और 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। 'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च' (७।३।१५) से उत्तरपद को वृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः–

(५३) सुञः ।१०७।

वि०–सुञः ६ ।१ ।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्त्तते ।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च पूर्वपदाद् इणोऽपदान्तस्य सुञः सो मूर्धन्यः ।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्य सुञोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति ।

उदा०–(**सुञ्**) अभी षु णः सखीनाम् (ऋ० ४ ।३१ ।३) । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये (ऋ० १ ।३६ ।१३) ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सुञः) सुञ् शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–(सुञ्) **अभी षु णः सखीनाम्** (ऋ० ४ ।३१ ।३)। इन्द्र हमारे मित्रों का प्रत्यक्षतः उत्तम रक्षक है। **ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (ऋ० १ ।३६ ।१३)। अग्नि हमारी रक्षा के लिये ऊर्ध्व दिशा में अवस्थित है।*

सिद्धि–अभी षु णः सखीनाम्। *यहां 'अभि' शब्द के इण् वर्ण से परवर्ती 'सु' निपात के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'इकः सुञि' (६ ।३ ।१३४) से 'अभि' के इकार को दीर्घ और 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' (८ ।४ ।२७) से 'नः' को णत्व होता है। ऐसे ही–**ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (उ सु नः)।*

मूर्धन्यादेशः–

(५४) सनोतेरनः ।१०८।

प०वि०–सनोतेः ६ ।१ अनः ६ ।१ ।

स०–अविद्यमानो नकारो यस्य सः–अन्, तस्य–अनः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च पूर्वपदादिणोऽनः सनोतेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्याऽनकारान्तस्य सनोतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(सनोतिः) गोषाः (ऋ० ९।२।१०)। नृषाः (ऋ० ९।२।१०)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अनः) अनकारान्त (सनोतेः) सन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-(सनोतिः) ***गोषाः*** *(ऋ० ९।२।१०)। गोदान करनेवाला पवमान सोम।* ***नृषाः*** *(ऋ० ९।२।१०)। नरदान करनेवाला पवमान सोम।*

सिद्धि-गोषाः। *यहां गो-उपपद* ***'षणु दाने'*** *(त०उ०) धातु से* ***'जनसनखनक्रमगमो विट्'*** *(३।२।६७) से 'विट्' प्रत्यय है। 'विट्' का सर्वहारी लोप होता है।* ***'विड्वनोरनुनासिकस्यात्'*** *(६।४।४१) से 'सन्' धातु के नकार को आकारादेश होता है। इस सूत्र से पूर्वपद 'गो' शब्द के इण् (ओ) वर्ण से परवर्ती अनकारान्त 'सन्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। नृ-उपपद में-* ***नृषाः।***

मूर्धन्यादेशः-

(५५) सहेः पृतनर्ताभ्यां च।१०६।

प०वि०-सहेः ६।१ पृतना-ऋताभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-पृतना च ऋतं च ते पृतनार्ते, ताभ्याम्-पृतनर्ताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदाभ्यां पृतनार्ताभ्यां च सहेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदाभ्यां पृतनार्ताभ्यां परस्य च सहेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(पृतना) पृतनाषाहम् (६।७२।२)। **(ऋतम्)** ऋताषाहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदाभ्याम्) पूर्वपद रूप (पृतनार्ताभ्याम्) पृतना, ऋत इन शब्दों से परवर्ती (सहेः) सह धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(पृतना) पृतनाषाहम्** (६।७२।२)। पृतना=सेना को सहन करनेवाले बल को। **(ऋत) ऋताषाहम्।** सत्य व्यवहार को सहन करनेवाले राजा को।*

सिद्धि-पृतनाषाहम्। *यहां पृतना-उपपद **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'छन्दसि सहः' (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'ण्वि' का सर्वहारी लोप होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि है। इस सूत्र से पृतना-पूर्वपद से परवर्ती 'सह' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऋत-पूर्वपद में-**ऋताषाहम्। 'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३७) से पूर्वपद को दीर्घ होता है।*

मूर्धन्यादेशः–

(५६) न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्।११०।

प०वि०- न अव्ययपदम्, रपर-सृपि-सृजि-स्पृशि-स्पृहि-सवना-दीनाम् ६।३।

स०-रः परो यस्मात् स रपरः। सवनमादिर्येषां ते सवनादयः। रपरश्च सृपिश्च सृजिश्च स्पृशिश्च स्पृहिश्च सवनादयश्च ते रपरसृपिसृजि-स्पृशिस्पृहिसवनादयः, तेषाम्-रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् (बहुव्रीहि-गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम-पदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण उत्तरस्य रेफपरस्य सकारस्य रपरसृपि-सृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनां चाऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदाहरणम्–

शब्दः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) रपरः	विस्रंसिकायाः काण्डाभ्यां जुहोति (मै०सं० २।६।१)।	विस्रंसिका के काण्डों से हवन करता है।
	विस्रब्धः कथयति।	वह विश्वासपूर्वक कहता है।

शब्दः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(२) सृपिः	पुरा क्रूरस्य विसृपः। (यजु० १।२८)।	क्रूर के विसर्पण से पूर्व।
(३) सृजिः	वाचो विसर्जनात्।	वाणी के विसर्जन से।
(४) स्पृशिः	दिविस्पृशम् (ऋ० १।१४२।८)	द्युलोक में स्पर्श करनेवाले को।
(५) स्पृहिः	निस्पृहं कथयति।	निष्कामभाव से कहता है।
(६) सवनादयः	सवने सवने।	प्रत्येक सदन में।
	सूते सूते।	प्रत्येक प्रसव में।
	सामे सामे।	प्रत्येक साम में।

सवने सवने। सूते सूते। सोमे सोमे। सवनमुखे सवनमुखे। किंस्यतीति किंसंकिंसम्। अनुसवनमनुसवनम्। गोसनिंगोसनिम्। अश्वसनिमश्वसनिम्।

क्वचिदेवं गणपाठः-सवने सवने। अनुसवनेऽनुसवने। संज्ञायां बृहस्पतिसवः। शकुनिसवनम्। सोमे सोमे। सूते सूते। संवत्सरे संवत्सरे। किंसंकिंसम्। बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्। गोसनिमश्वसनिम्। सवनादिः।। (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से उत्तर (रपर०) रेफ जिससे परे है उस सकार के स्थान में तथा सृपि, सृजि, स्पृशि, स्पृहि और सवनादिगण में पठित शब्दों के (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*(१) **विस्रंसिका।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्रंसु अधःपतने'** (भ्वा०आ०) धातु से **'संज्ञायाम्'** (३।३।१०९) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्कात्०'** (७।३।४४) से इकारादेश है। इस सूत्र से 'वि' के 'इण्' वर्ण से परवर्ती रेफपरक 'स्रंसिका' के अपदान्त (पदादि) सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **विस्रब्धः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्रम्भु विश्वासे'** (भ्वा०आ०) से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'झलां जश्***

झशि' (८।४।५३) से भकार को जश् बकार आदेश है। 'यस्य विभाषा' (७।२।१५) से इडागम का प्रतिषेध है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **विसृपः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'सृप्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'सृपितृदोः कसुन्' (३।४।१७) से 'कसुन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **विसर्जनम्।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **दिविस्पृशम्।** यहां 'स्पृश संस्पर्शे' (तु०प०) धातु से 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। स्पृश्+अम्=स्पृशम्। 'दिविस्पृशम्' यहां 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६।३।१२) से सप्तमी-विभक्ति का अलुक् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **निस्पृहम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'स्पृह ईप्सायाम्' (चु०प०) धातु से प्रथम 'सत्यापपाश०' (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'णिजन्त स्पृहि' धातु से 'एरच्' (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय और 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) **सवने सवने।** यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। सप्तमी विभक्ति में-**सवने।** 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्वित्व होकर-सवने सवने। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(८) **सूते सूते।** यहां 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् सप्तमी विभक्ति और वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है।*

*(९) **सोमे सोमे।** यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से 'अर्तिस्तुसु०नीभ्यो मन्' (उणा० १।१४०) से 'मन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सप्तमी विभक्ति और वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५७) सात्पदाद्योः।१११।

प०वि०-सात्-पदाद्योः ६।२।

स०-पदस्यादिरिति पदादिः। साच्च पदादिश्च तौ सात्पदादी, तयोः-सात्पदाद्योः (षष्ठीगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सात्पदाद्योः सो मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायाम् विषये इणः परस्य साद् इत्येतस्य पदादेश्च सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**सात्**) अग्निसात्, दधिसात्, मधुसात्। (**पदादिः**) दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सात्पदाद्योः) सात् और पद के आदिम सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(सात्) ***अग्निसाद् भवति शस्त्रम्।*** *शस्त्र अग्निरूप होता है।* ***दधिसात्।*** *दधिरूप।* ***मधुसात्।*** *मधुरूप। (पदादि)* ***दधि सिञ्चति।*** *वह ओदन आदि में दधि (दही) को सींचता है।* ***मधु सिञ्चति।*** *वह औषध आदि में मधु (शहद) को सींचता है।*

सिद्धि-(१) ***अग्निसात्।*** *यहां 'अग्नि' शब्द से* ***'विभाषा साति कात्स्न्र्ये'*** *(५।४।५२) से 'साति' प्रत्यय है।* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से प्रत्ययलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-* ***दधिसात्, मधुसात्।***

(२) ***दधि सिञ्चति।*** *यहां* ***'षिच क्षरणे'*** *(तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है।* ***'शे मुचादीनाम्'*** *(७।१।५९) से 'नुम्' आगम होता है।* ***'धात्वादेः षः सः'*** *(६।१।६३) से धातु के आदिम षकार को सकारादेश है। अतः* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(५।४।५९) से सकार को आदेशलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-* ***मधु सिञ्चति।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५८) सिचो यङि।११२।

प०वि०-सिचः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सिचोऽपदान्तस्य सो यङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य सिचोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, यङि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**सिच्**) स परिसेसिच्यते। सोऽभिसेसिच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सिचः) सिच् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सिच्) स **परिसेसिच्यते**। वह पुनः-पुनः परितः सींचता है। **सोऽभिसेसिच्यते**। वह पुनः-पुनः अभितः सींचता है।*

*सिद्धि-**परिसेसिच्यते**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक '**षिच क्षरणे**' (तु०प०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से पौनःपुन्य अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व और '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। परि-उपसर्ग से परवर्ती 'सिच्' धातु के सकार को '**उपसर्गात् सुनोति०**' (८।३।६५) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। अभि-उपसर्गपूर्वक से-**अभिसेसिच्यते**। '**सेसिच्यते**' पद में '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से आदेशलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध होता है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५६) सेधतेर्गतौ।११३।

प०वि०-सेधतेः ६।१ गतौ ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो गतौ सेधतेरपदान्तस्य सो यङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य गत्यर्थे वर्तमानस्य सेधतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-स परिसेधयति गाः। सोऽभिसेधयति गाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (गतौ) गति-अर्थ में विद्यमान (सेधतेः) सिध् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-स **परिसेधयति गाः**। वह गौओं को परितः चलाता है, घुमाता है। **सोऽभिसेधयति गाः**। वह गौओं को अभितः चलाता है।*

*सिद्धि-**परिसेधयति**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक '**षिधु गत्याम्**' (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'सेधि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सेधति' धातु के अपदान्त (पदादि) सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्ग में-**अभिसेधयति**।*

***विशेषः** यहां गत्यर्थक सेधति धातु के कथन से '**षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च**' (भ्वा०प०) धातु का ग्रहण नहीं होता है।*

निपातनम्–

(६०) प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च।११४।

प०वि०–प्रतिस्तब्ध-निस्तब्धौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–प्रतिस्तब्धश्च निस्तब्धश्च तौ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः– प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च निपातनम्।

अर्थः–संहितायां विषये प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ इत्यत्र मूर्धन्याभावो निपात्यते। इणः परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०–प्रतिस्तब्धः। निस्तब्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ) प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध इन शब्दों में भी (च) मूर्धन्य आदेश का अभाव निपातित है, अर्थात् (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०– **प्रतिस्तब्धः।** प्रतिबन्धित किया हुआ। **निस्तब्धः।** निबन्धित किया हुआ।*

*सिद्धि–**प्रतिस्तब्धः।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक **'स्तम्भु प्रतिबन्धे:'** (प०सौत्रधातु०) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश और **'झलां जश् झशि'** ८।४।५३) से भकार को जश् बकारादेश होता है। **'स्तम्भेः'** (८।३।६७) से सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र में निपातन किया गया है। नि-उपसर्ग में-**निस्तब्धः।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः–

(६१) सोढः।११५।

वि०–सोढः ६।१।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इणः सोढोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यो न।

अर्थः–संहितायां विषये इणः परस्य सोढोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(सोढ्) परिसोढः । परिसोढुम् । परिसोढव्यम् ।

अत्र सोढ इति वचनेन सहधातोः सोढ्रूपं गृह्यते ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सोढः) 'सह' धातु के 'सोढ्' रूप के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(सोढ्) परिसोढः।** सर्वतः सहन किया हुआ। **परिसोढुम्।** सर्वतः सहन करने केलिये। **परिसोढव्यम्।** सर्वतः सहन करना चाहिये।*

*सिद्धि-**(सोढ्) परिसोढः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** ८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार और **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। **'सहिवहोरोदवर्णस्य'** (६।३।११२) से 'सह' के 'अ' वर्ण को ओकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सह्' धातु के 'सोढ्' रूपस्थ सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। **'परिनिविभ्यः सेवसित०'** (८।३।७०) से **मूर्धन्य** आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। तुमुन् **प्रत्यय** में-**परिसोढुम्।** तव्यत् प्रत्यय में-**परिसोढव्यम्।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(६२) स्तम्भुसिवुसहां चङि।११६।

वि०-स्तम्भु-सिवु-सहाम् ६।३ चङि ७।१।

स०-स्तम्भुश्च सिवुश्च सह् च ते स्तम्भुसिवुसहः, तेषाम्-स्तम्भुसिवुसहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः स्तम्भुसिवुसहामपदान्तस्य सश्चङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परेषां स्तम्भुसिवुसहां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, चङि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(स्तम्भु) स पर्यतस्तम्भत्। सोऽभ्यतस्तम्भत्। **(सिवु)** स पर्यसीषिवत्। स न्यसीषिवत्। **(सह)** स पर्यसीषहत्। स व्यसीषहत्।

आर्यभाषाः **अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (स्तम्भुसिवुसहाम्) स्तम्भु, सिवु, सह इन धातुओं (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (चङि) चङ् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।

उदा०-(स्तम्भु) **स पर्यतस्तम्भत्।** उसने सर्वतः प्रतिबन्धित कराया। **सोऽभ्यतस्तम्भत्।** उसने अभितः प्रतिबन्धित कराया। (सिवु) **स पर्यसीषिवत्।** उसने सर्वतः सिलाई कराई। **स न्यसीषिवत्।** उसने निम्नतः सिलाई कराई। (सह) **स पर्यसीषहत्।** उसने सर्वतः मर्षण कराया। **स व्यसीषहत्।** उसने विशेषतः मर्षण कराया। मर्षण=तितिक्षा-सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना।

सिद्धि-(१) **पर्यतस्तम्भत्।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक '**स्तम्भु प्रतिबन्धे**' (प०सौत्रधातु) से प्रथम '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्तम्भि' धातु से '**लुङ्**' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। '**चङि**' (६।१।११) से धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'स्तम्भ' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां '**स्तम्भेः**' (८।३।६७) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। उपसर्ग से उत्तर अभ्यास के सकार को '**स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य**' (८।३।६४) से और '**सवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि**' (८।३।७१) से अट् के व्यवधान में भी मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से मूर्धन्य होता ही है। अभि-उपसर्गपूर्वक में-**अभ्यतस्तम्भत्।**

(२) **पर्यसीषिवत्।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'लुङ्' प्रत्यय है। यहां '**परिनिविभ्यः सेवसित०**' (८।३।७०) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से धातु को लघूपधलक्षण गुण होकर '**णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः**' (७।४।१) से ह्रस्वादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्ग में-**न्यसीषिवत्।**

(३) **पर्यसीषहत्।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'लुङ्' प्रत्यय है। यहां '**परिनिविभ्यः सेवसित०**' (८।३।७०) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। '**सन्वल्लघुनि चङ्परेऽग्लोपे**' (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर '**सन्यतः**' (७।४।७९) से 'सह' धातु के अभ्यास को इकारादेश और उसे '**दीर्घो लघोः**' (७।४।९४) से दीर्घ होता है। वि-उपसर्ग में-**व्यसीषहत्।**

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः–

(६३) सुनोतेः स्यसनोः।११७।

वि०–सुनोतेः ६।१ स्य-सनोः ७।२।

स०–स्यश्च सँश्च तौ स्यसनौ, तयोः–स्यसनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इणः सुनोतेरपदान्तस्य सः स्यसनोर्मूर्धन्यो न।

अर्थः–संहितायां विषये इणः परस्य सुनोतेर्धातोरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, स्यसनोः परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०–(**सुनोतिः**) **स्यः**–सोऽभिसोष्यति। स परिसोष्यति (लृट्)। सोऽभ्यसोष्यत् स पर्यसोष्यत् (लृङ्)। **सन्**–अभिसुसूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सुनोतेः) सुञ् धातु (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (स्यसनोः) स्य और सन् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०–(सुञ्) स्य-**सोऽभिसोष्यति।** वह निचोड़कर रस निकालेगा। **स परिसोष्यति।** वह सर्वतः निचोड़कर रस निकालेगा (लृट्)। **सोऽभ्यसोष्यत्।** यदि वह निचोड़कर रस निकालता। **स पर्यसोष्यत्।** (लृङ्)। यदि वह सर्वतः निचोड़कर रस निकालता। **सन्-अभिसुसूः।** निचोड़कर रस निकालने का इच्छुक।*

सिद्धि-(१) सोऽभिसोष्यति। *यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अभि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सूञ्' धातु के सकार को 'स्य' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।८५) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। परि-उपसर्ग में-**परिसोष्यति।** लृङ् लकार में-**अभ्यसोष्यत्, पर्यसोष्यत्।***

*(२) **अभिसुसूः।** अभि+सू+सन्। अभि+सू+स। अभि+सू-सू+स। अभि+सू+सू+ष। अभि+सुसूष+क्विप्। अभिसुसूष+०। अभिसुषूस्। अभिसुसूर्। अभिसुसूः।*

*यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय **है। 'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन होता है। तत्पश्चात् सनन्त 'अभिसुसूष' **धातु से 'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से **'सन्' के अकार** का लोप और*

*'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **'ससजुषो रु:'** (८।३।६६) से रुत्व करते समय 'सन्' के षकार को असिद्ध मानकर रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीय:'** (८।३।१५) से अवसानलक्षण रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

विशेष: *'अभिसुसूषति' इस सनन्त पद में **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) के नियम से मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध सिद्ध है, अत: **'अभिसुसू:'** यह क्विबन्त उदाहरण दिया गया है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेध:–

(६४) सदे: परस्य लिटि।११८।

प०वि०–सदे: ६।१ परस्य ६।१ लिटि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, स:, अपदान्तस्य, मूर्धन्य:, इण:, न इति चानुवर्तते।

अन्वय:–संहितायाम् इण: सदेरपदान्तस्य परस्य सो लिटि मूर्धन्यो न।

अर्थ:–संहितायां विषये इण उत्तरस्य सदेरपदान्तस्य परस्य सकारस्य स्थाने, लिटि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०–(सद्) **अभि**–अभिषसाद। **परि**–परिषसाद। **नि**–निषसाद। **वि**–विषसाद।

आर्यभाषा: ***अर्थ***–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण:) इण् वर्ण से उत्तरवर्ती (सदे:) सद् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (परस्य) परवर्ती (स:) सकार के स्थान में (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्य:) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०–(सद्) **अभि–अभिषसाद।** वह अभित: गया। **परि–परिषसाद।** वह सर्वत: गया। **नि–निषसाद।** वह बैठ गया। **वि–विषसाद।** वह खिन्न हुआ।*

*सिद्धि–**अभिषसाद।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'सद्' धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'सद्' धातु के अभ्यास से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। **'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'** (८।३।६४) के वचन से अभ्यास के व्यवधान में भी **'सदिरप्रते:'** (८।३।६६) से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अत: यह प्रतिषेध किया गया है। 'सद्' धातु के पूर्ववर्ती सकार को **'सदिरप्रते:'** (८।३।६६) से मूर्धन्य होता है क्योंकि पर-सकार का प्रतिषेध किया है। परि-उपसर्ग में–**परिषसाद।** नि-उपसर्ग में–**निषसाद।** वि-उपसर्ग में–**विषसाद।***

विशेषः *इस सूत्र पर 'सदो लिटि प्रतिषेधे चाञ्जेरुपसङ्ख्यानम्' यह वार्तिक पाठ है। काशिकावृत्ति में सूत्रपाठ में वार्तिक का मिश्रण करके* ***'सदिस्वञ्ज्योः परस्य लिटि'*** *यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है। 'सदेः परस्य लिटि' यह महाभाष्य-पाठ है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(६५) निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि।११६।

प०वि०-नि-वि-अभिभ्यः ५।३ अड्व्यवाये ७।१ वा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-निश्च विश्च अभिश्च ते निव्यभयः, तेभ्यः-निव्यभिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्-अड्व्यवाये (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् छन्दसि च इण्भ्यो निव्यभिभ्योऽपदान्तस्य सोऽड्व्यवाये वा मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये इणन्तेभ्यो निव्यभिभ्य उपसर्गेभ्यः परस्यापदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवाये विकल्पेन मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(नि) न्यषीदत् पिता नः, न्यसीदत्। न्यष्टौत्, न्यस्तौत्। **(वि)** व्यषीदत् पिता नः, व्यसीदत्। **(अभि)** अभ्यषीदत् पिता नः, अभ्यसीदत्। अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (निव्यभिभ्यः) नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवाये) अट्-आगम के व्यवधान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नि) ***न्यषीदत् पिता नः, न्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी बैठ गये।* ***न्यष्टौत्, न्यस्तौत्।*** *उसने निम्न स्तुति की। (वि)* ***व्यषीदत् पिता नः, व्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी खिन्न (उदास) हो गये। (अभि)* ***अभ्यषीदत् पिता नः, अभ्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी अभितः चले गये।* ***अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्।*** *उसने अभितः (सम्मुख) स्तुति की।*

*सिद्धि-**न्यषीदत्**। यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'सद्' के स्थान में 'सीद' आदेश होता है। इस सूत्र से नि-उपसर्ग के इण् वर्ण से परवर्ती तथा अट्-आगम के व्यवधान में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। यहां 'सदिरप्रतेः' (८।३।६६) से नित्य मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से यह विकल्प विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में-**न्यसीदत्**।*

*वि-उपसर्ग में-**व्यषीदत्, व्यसीदत्**। अभि-उपसर्ग में-**अभ्यषीदत्, अभ्यसीदत्**। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से-**न्यष्टौत्, न्यस्तौत्**। यहां 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से नित्य मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से यह विकल्प-विधान किया गया है।*

*अभि-उपसर्ग में-**अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्**। यहां 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् और 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' (७।३।८९) से वृद्धि होती है।*

{इति मूर्धन्यादेशप्रकरणम्}

।। इति पूर्वसंहिताप्रकरणं समाप्तम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।
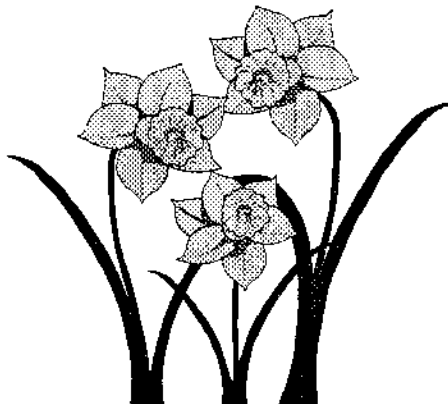
अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

उत्तरसंहिताप्रकरणम्

तत्र

{णकारादेशप्रकरणम्}

णकारादेशः—

(१) रषाभ्यां नो णः समानपदे।१।

प०वि०—रषाभ्याम् ५।२ नः ६।१ णः १।१ समानपदे ७।१।

स०—रश्च षश्च तौ रषौ, ताभ्याम्-रषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समानं च तत् पदं चेति समानपदम्, तस्मिन्-समानपदे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०—संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः—संहितायाम् समानपदे रषाभ्यां नो णः।

अर्थः—संहितायां विषये समानपदे वर्तमानाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०—**(रेफः)** आस्तीर्णम्, विस्तीर्णम्। **(षकारः)** कुष्णाति, पुष्णाति, मुष्णाति।

वा०—रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्-तिसृणाम्। चतसृणाम्। मातृणाम्। पितृणाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समानपदे) एक ही पद में विद्यमान (रषाभ्याम्) रेफ और सकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(रेफ) ***आस्तीर्णम्।*** *ढकना।* ***विस्तीर्णम्।*** *फैलाना।* ***(षकार) कुष्णाति।*** *वह बाहर निकलता है।* ***पुष्णाति।*** *वह पुष्टि करता है।* ***मुष्णाति।*** *वह चोरी करता है।*

वा०- ***रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्***-*इस वार्तिक से ऋ-वर्ण से परवर्ती नकार को भी णकार आदेश होता है। जैसे-* ***तिसृणाम्।*** *तीन स्त्रियों का।* ***चतसृणाम्।*** *चार स्त्रियों का।* ***मातृणाम्।*** *माताओं का।* ***पितृणाम्।*** *पितरों का।*

*सिद्धि-(१) **आस्तीर्णम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्त:'** (३।३।११४) स भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'ॠत इद्धातो:'** (७।१।१००) से 'ॠकार' को ईकार आदेश और इसे 'उरण् रपर:' (१।१।५१) से रपरत्व तथा 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो न: पूर्वस्य च द:'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार आदेश होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती नकार को णकार आदेश होता है। वि-उपसर्ग में-**विस्तीर्णम्।***

*(२) **कुष्णाति।** यहां 'कुश निष्कर्षे' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'क्र्यादिभ्य: श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से धातुस्थ षकार से परवर्ती 'श्ना' के नकार को णकार आदेश होता है। **'पुष पुष्टौ'** (क्र्या०प०) धातु से-**पुष्णाति।** **'मुष स्तेये'** (क्र्या०प०) धातु से-**मुष्णाति।***

*(३) **तिसृणाम्।** यहां 'तिसृ' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से ह्रस्वलक्षण 'नुट्' आगम है। इस सूत्र से 'तिसृ' के ऋकार से परवर्ती 'नाम्' के नकार को **'वा०-रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्'** से णकार आदेश होता है। 'चतसृ' शब्द से-**चतसृणाम्।** मातृ शब्द से-**मातॄणाम्।** **'नामि'** (६।४।३) से अङ्ग को दीर्घ होता है। 'पितृ' शब्द से-**पितॄणाम्।***

***विशेष:** कई आचार्य ऋकार में रेफश्रुति मानकर नकार को णकार आदेश करते हैं।*

णकारादेश:-

(२) अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।२।

प०वि०-अट्-कु-पु-आङ्-नुम्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अट् च कुश्च पुश्च आङ् च नुम् च ते-अट्कुप्वाङ्नुम:, तै:-अट्कुप्वाङ्नुम्भि:, तैर्व्यवाय इति अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाय:, तस्मिन्-अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, न:, ण:, समानपदे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायां समानपदे रषाभ्यां नोऽट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ण:।

अर्थ:-संहितायां विषये समानपदे वर्तमानाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थानेऽट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि णकारादेशो भवति।

उदा०-अड्व्यवाय:-करणम्, हरणम्, किरिणा, गिरिणा, कुरुणा, गुरुणा। **कवर्गव्यवाय:-**अर्केण, मूर्खेण, गर्गेण, अर्घेण। **पवर्गव्यवाय:-**दर्पेण,

रेफेण, गर्भेण, चर्मणा, वर्मणा। **आङ्व्यवायः**-पर्याणद्धम्, निराणद्धम्। **नुम्व्यवायः**-बृंहणम्, बृंहणीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समानपदे) एक ही पद में विद्यमान (रषाभ्याम्) रेफ और सकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये) अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनके व्यवधान में (अपि) भी (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-अट्-**व्यवाय-करणम्**। करना। हरणम्। चोरी करना। **किरिणा**। बाण से। **गिरिणा**। पहाड़ से। **कुरुणा**। कुरु से। **गुरुणा**। गुरु से। **कवर्ग-व्यवाय-अर्केण**। सूर्य से। **मूर्खेण**। मूर्ख से। **गर्गेण**। गर्ग से। **अर्घेण**। मुख-प्रक्षालन के जल से। **पवर्ग-व्यवाय-दर्पेण**। अभिमान से। **रेफेण**। रेफ से। **गर्भेण**। गर्भ से। **चर्मणा**। चाम से। **वर्मणा**। कवच से। **आङ्-व्यवाय-पर्याणद्धम्**। सर्वत आबद्ध करना। **निराणद्धम्**। बन्धन से रहित। **नुम्व्यवाय-बृंहणम्**। वीर्यवर्धक। **बृंहणीयम्**। बढ़ाने योग्य।*

*अट्-अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र। **कु**-क, ख, ग, घ, ङ। **पु**-प, फ, ब, भ, म। **आङ्**-आ। **नुम्**- ं।*

सिद्धि-(१) करणम्।। *यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण (अर्) होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (अ) नकार को णकार आदेश होता है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**हरणम्**।*

*(२) **किरिणा**। यहां 'किरि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। '**आङो नाऽस्त्रियाम्**' (७।३।१२०) से 'टा' को 'ना' आदेश है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (इ) नकार को णकार आदेश होता है। गिरि शब्द से-**गिरिणा**। कुरु शब्द से-**कुरुणा**। गुरु शब्द से-**गुरुणा**।*

*(३) **अर्केण**। यहां 'अर्क' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। '**टाङसिङसामिनात्स्याः**' (७।१।१२) से 'टा' को 'इन' आदेश है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती कवर्ग-व्यवायी (क) और अट्-व्यवायी (ए) नकार को णकार आदेश होता है। मूर्ख शब्द से-**मूर्खेण**। गर्ग शब्द से-**गर्गेण**। अर्घ शब्द से-**अर्घेण**।*

*पगवर्ग और अट्-व्यवाय में दर्प शब्द से-**दर्पेण**। रेफ शब्द से-**रेफेण**। गर्भ शब्द से-**गर्भेण**। चर्मन् शब्द से-**चर्मणा**। वर्मन् शब्द से-**वर्मणा**।*

*(४) **पर्याणद्धम्**। यहां परि और आङ् उपसर्गपूर्वक '**णह बन्धने**' (दि०उ०) धातु से '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। '**नहो धः**' (८।२।३४) से हकार को धकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार*

*और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार आदेश है। इस सूत्र से परि के रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (इ) और आङ्व्यवायी 'नह्' के नकार को णकार आदेश होता है। निर् और आङ् उपसर्ग में-**निराणद्धम्**।*

*(५) **बृंहणम्**। यहां **'बृहि वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय और 'यु' को 'अन' आदेश है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश है। इस सूत्र से ऋकार में रेफश्रुति को मानकर नुम् (अनुस्वार) व्यवाय तथा अट्-व्यवाय (ह्+अ) में 'अन' के नकार को णकार आदेश होता है। अनीयर् प्रत्यय में-**बृंहणीयम्**।*

णकारादेशः-

(३) पूर्वपदात् संज्ञायामगः।३।

प०वि०-पूर्वपदात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१ अगः ५।१।

स०-पूर्वं च तत् पदं चेति पूर्वपदम्, तस्मात्-पूर्वपदात् (कर्मधारय-तत्पुरुषः)। न विद्यते गकारो यस्मिन् सः-अग्, तस्मात्-अगः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां चाऽगः पूर्वपदाद् रेफात् षकाराच्च नो णः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जितं यत् पूर्वपदं तत्स्थाद् रेफात् षकाराच्च परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-द्रुणसः। वार्ध्रीणसः। खरणसः। शूर्पणखा। अग इति किम्-ऋगयनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अगः) गकार से रहित (पूर्वपदात्) जो पूर्वपद है उसके (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-द्रुणसः। **द्रुरिव दीर्घा नासिका यस्य स द्रुणसः।** द्रु अर्थात् वृक्ष की शाखा के समान लम्बी नासिकावाला पुरुष। **वार्ध्रीणसः। वार्ध्रीव नासिका यस्य स वार्ध्रीणसः।** वह बधिया बकरा जिसका रंग सफेद हो और कान इतने लम्बे हों कि पानी पीते समय पानी से छू जायें। एक पक्षी का नाम। गैंडा (शब्दार्थकौस्तुभ)। **खरणसः। खर इव नासिका यस्य स खरणसः।** गधे के समान नासिकावाला पुरुष। **शूर्पणखा। शूर्पमिव नखानि यस्याः सा शूर्पणखा।** छाज के समान बड़े नाखूनों वाली नारी। रामायण में वर्णित रावण की बहिन।*

*सिद्धि-(१) द्रुणसः। यहां द्रु और नासिका शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। **'अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्'** (५।४।११८) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'नासिका' के स्थान में 'नस' आदेश है। इस सूत्र से 'द्रु' पूर्वपद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ) 'नस' उत्तरपद के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-**वार्ध्रीणसः, खरणसः।***

*(२) **शूर्पणखा।** यहां शूर्प और नख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। **'नखमुखात् संज्ञायाम्'** (४।१।५८) से संज्ञा विषय में 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'शूर्प' पद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा पवर्ग और अट्व्यवायी (अ) 'नख' उत्तरपद के नकार को णकार आदेश होता है।*

*यहां 'अगः' से गकारवान् पूर्वपद का इसलिये प्रतिषेध किया गया है कि यहां णकार आदेश न हो-**ऋगयनम्।***

***'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) तथा **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से समानपद=एक पद में ही णकारादेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से पूर्वपद से परवर्ती उत्तरपद के नकार को णकार आदेश विधान किया गया है।*

णकारादेशः-

(४) वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः।४।

प०वि०-वनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), पुरगा-मिश्रका-सिध्रका-शारिका-कोटरा-अग्रेभ्यः ५।३।

स०-पुरगाश्च मिश्रकाश्च सिध्रकाश्च शारिकाश्च कोटराश्च अग्रे च ते-पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रयः, तेभ्यः-पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां च पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यो वनं नो णः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः पूर्वपदेभ्यः परस्य वनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(**पुरगा**) पुरगावणम्। (**मिश्रका**) मिश्रकावणम्। (**सिध्रका**) सिध्रकावणम्। (**शारिका**) शारिकावणम्। (**कोटरा**) कोटरावणम्। (**अग्रे**) अग्रेवणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (पुरगा०) पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे इन (पूर्वपदेभ्यः) पूर्वपदों से उत्तरवर्ती (वनम्) वन शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(पुरगा) **पुरगावणम्।** (मिश्रका) **मिश्रकावणम्।** (सिध्रका) **सिध्रकावणम्।** (शारिका) **शारिकावणम्।** (कोटरा) **कोटरावणम्।** (अग्रे) **अग्रेवणम्।** ये वनविशेषों की संज्ञायें। इनकी व्याख्या अष्टाध्यायी-प्रवचन के तृतीय भाग की अनुभूमिका (पृ० ११) में लिखी हैं, वहां देख लेवें।*

सिद्धि-(१) पुरगावणम्। *यहां पुरग और वन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। '**वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्**' (६।३।११६) से पूर्वपद को दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'पुरग' पूर्वपद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (अ-ग्-आ-व्-अ) 'वन' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-**मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, शारिकावणम्, कोटरावणम्।***

*(२) **अग्रेवणम्।** यहां वन और अग्रे शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। वनस्याऽग्रे इति **अग्रवणम्।** '**राजदन्तादिषु परम्**' (२।२।३१) से समास में 'वन' शब्द का पर निपात होता है और '**हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्**' (६।३।९) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् है।*

*यहां '**अट्कुप्वाङ्व्यवायेऽपि**' (८।३।२) से णकार आदेश प्राप्त था, पुनः इस सूत्र से आरम्भ इस नियम के लिये किया गया है कि इन पुरगा आदि शब्दों से परवर्ती 'वन' शब्द के नकार को णकार आदेश हो; अन्यत्र नहीं जैसे-**कुबेरवनम्** आदि।*

णकारादेशः-

(५) प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि।५।

प०वि०- प्र-निर्-अन्तर्-शर-ईषु-प्लक्ष-आम्र-कार्ष्य-खदिर-पीयूक्षाभ्यः ५।३ असंज्ञायाम् ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-प्रश्च निश्च अन्तश्च शरश्च इक्षुश्च प्लक्षश्च आम्रं च कार्ष्यं **च खदिरश्च पीयूक्षा च** ताः-प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाः,

ताभ्य:-प्रनिरन्त:शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, न:, ण:, पूर्वपदात्, वनमिति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् असंज्ञायां संज्ञायामपि प्रनिरन्त:शरेक्षुप्लक्षाम्र-कार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्य: पूर्वपदेभ्यो वनं नो ण:।

अर्थ:-संहितायां संज्ञायामसंज्ञायामपि च विषये प्रनिरन्त:शरेक्षुप्लक्षाम्र-कार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्य: पूर्वपदेभ्य: परस्य वनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(प्र) प्रवणे यष्टव्यम्। **(निर्)** निर्वणे प्रतिधीयते। **(अन्तर्)** अन्तर्वणे। **(शर:)** शरवणम्। **(इक्षु:)** इक्षुवणम्। **(प्लक्ष)** प्लक्षवणम्। **(आम्रम्)** आम्रवणम्। **(कार्ष्यम्)** कार्ष्यवणम्। **(पीयूक्षा)** पीयूक्षावणम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम् अपि) संज्ञा और असंज्ञा-विषय में भी (प्र०) प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा इन (पूर्वपदेभ्य:) पूर्वपदों से परवर्ती (वनम्) वन शब्द के (न:) नकार के स्थान में (ण:) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(प्र) ***प्रवणे यष्टव्यम्।*** *प्रकृष्ट वन में यज्ञ करना चाहिये। (निर्)* ***निर्वणे प्रतिधीयते।*** *वनरहित प्रदेश में परस्पर धारण-पोषण रूप व्यवहार किया जाता है। (अन्त:)* ***अन्तर्वणे।*** *वन के मध्य में (शर)* ***शरवणम्।*** *सरकण्डों का वन। (इक्षु:)* ***इक्षुवणम्।*** *ईख का वन। (प्लक्ष)* ***प्लक्षवणम्।*** *पिलखण का वन। (आम्र)* ***आम्रवणम्।*** *आम का वन। (कार्ष्य)* ***कार्ष्यवणम्।*** *कृषि योग्य वन। (पीयूक्षा)* ***पीयूक्षावणम्।*** *पीयूक्षा का वन। पीयूक्षा=पिलखण (पाकर) का भेद।*

सिद्धि-(१) प्रवणम्। *यहां प्र और वन शब्दों का 'कुगतिप्रादय:' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'प्र' पूर्वपद के रेफ से परवर्ती अट्व्यवायी (अ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश होता है।*

*निर्-पूर्वपद में-****निर्वणम्।*** *अन्तर्-पूर्वपद में-****अन्तर्वणम्।*** *यहां* ***'अव्ययं विभक्ति०'*** *(२।१।६) से विभक्ति-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। शर-पूर्वपद में-****शरवणम्।*** *इक्षु-पूर्वपद में-****इक्षुवणम्।*** *यहां 'इक्षु' पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश है। प्लक्ष-पूर्वपद में-****प्लक्षवणम्।*** *पीयूक्षा-पूर्वपद में-****पीयूक्षावणम्।***

णकारादेशः–

(६) विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः।६।

प०वि०–विभाषा १।१ ओषधि-वनस्पतिभ्यः ५।३।

स०–ओषधयश्च वनस्पतयश्च ते ओषधिवनस्पतयः, तेभ्यः–ओषधि-वनस्पतिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, वनमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ओषधिवनस्पतीनां रषाभ्यां नो विभाषा णः।

अर्थः–संहितायां विषये ओषधिवाचिनां वनस्पवाचिनां च पूर्वपदानां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०–(ओषधिः) दूर्वावणम्, दूर्वावनम्। मूर्वावणम्, मूर्वावनम्। **(वनस्पतिः)** शिरीषवणम्, शिरीषवनम्। बदरीवणम्, बदरीवनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ओषधिवनस्पतीनाम्) ओषधिवाची और वनस्पतिवाची (पूर्वपदानाम्) पूर्वपदों के (रषाभ्याम्) रेफ आर षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०–(ओषधि) ***दूर्वावणम्, दूर्वावनम्।*** *दूब नामक घास का जङ्गल।* ***मूर्वावणम्, मूर्वावनम्।*** *मरोड़फली नामक लताओं का वन।* ***(वनस्पति) शिरीषवणम्, शिरीषवनम्।*** *सिरस नामक वनस्पतियों का वन।* ***बदरीवणम्, बदरीवनम्।*** *बड़बेरी नामक वनस्पतियों का वन।*

सिद्धि–दूर्वावणम्। *यहां दूर्वा और वन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ओषधिवाची दूर्वा पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (व्-आ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है–* ***दूर्वावनम्।*** *मूर्वा-पूर्वपद में–* ***मूर्वावणम्। मूर्वावनम्।*** *शिरीष-पूर्वपद में–* ***शिरीषवणम्।*** *यहां वनस्पतिवाची शिरीष पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (ऊ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश है। विकल्प-पक्ष में–* ***शिरीषवनम्।*** *बदरी-पूर्वपद में–* ***बदरीवणम्, बदरीवनम्।***

विशेषः *फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः।*
ओषध्यः फलपाकान्ता लतागुल्माश्च वीरुधः।।

अर्थः–फलवाला पेड़ वनस्पति, पुष्प और फलवाले पेड़ वृक्ष कहलाते हैं। फल के पकने के पश्चात् नष्ट हो जानेवाली ओषधि कहलाती है। लता और झाड़ियों को वीरुध् कहते हैं।

वनस्पति और वृक्ष में उपरिलिखित भेद है किन्तु यहां वनस्पति और वृक्ष दोनों का अभेदभाव से ग्रहण किया जाता है।

णकारादेशः–

(७) अह्नोऽदन्तात्।७।

प०वि०–अह्नः १।१ (षष्ठ्यर्थे) अदन्तात् ५।१।

स०–अद् अन्ते यस्य सः–अदन्तः, तस्मात्–अदन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अदन्तस्य पूर्वपदस्य रषाभ्याम् अह्नो नः णः।

अर्थः–संहितायां विषयेऽदन्तस्य पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्याह्नो नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–अह्नः पूर्वमिति पूर्वाह्णः। अह्नोऽपरमिति अपराह्णः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अदन्तस्य) अकारान्त (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ आर षकार से परवर्ती (अह्नः) शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पूर्वाह्णः।** दिन का पूर्व-भाग। **अपराह्णः।** दिन का पश्चिम-भाग।*

*सिद्धि-**पूर्वाह्णः।** यहां पूर्व और अहन् शब्दों का **'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे'** (२।२।१) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय और **'अह्नोऽह्न एतेभ्यः'** (५।४।८८) से 'अहन्' के स्थान में 'अह्न' आदेश है। इस सूत्र से अकारान्त 'पूर्व' पूर्वपद से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (व्-अ-अ) 'अह्न' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। अपर-पूर्वपद में-**अपराह्णः***

णकारादेशः–

(८) वाहनमाहितात्।८।

प०वि०–वाहनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), आहितात् ५।१।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् आहितस्य पूर्वपदस्य रषाभ्यां वाहनं नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये आहितवाचिनः पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य वाहनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–इक्षुवाहणम्। शरवाहणम्। दर्भवाहणम्।

वाहने यदाऽऽरोपितमुह्यते तदाहितमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आहितस्य) आहितवाची (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इक्षुवाहणम्।** ईख की गाड़ी। **शरवाहणम्।** सरकण्डों की गाड़ी। **दर्भवाहणम्।** डाभ की गाड़ी।*

गाड़ी में जो पदार्थ डालकर ढोया जाता है वह इक्षु आदि 'आहित' कहलाता है।

*सिद्धि-**इक्षुवाहणम्।** यहां इक्षु और वाहन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से आहितवाची 'इक्षु' पूर्वपद से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ-व्-आ-ह्) 'वाहन' के नकार को णकार आदेश होता है। शर-पूर्वपद में-**शरवाहणम्।** दर्भ-पूर्वपद में-**दर्भवाहणम्।***

णकारादेशः-

(६) पानं देशे।६।

प०वि०-पानम् १।१ देशे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां पानं नो देशे णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य पानमित्येतस्य नकारस्य स्थाने देशेऽभिधेये णकारादेशो भवति।

उदा०-पीयते इति पानम्। क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः। सुरापाणा प्राच्याः। सौवीरपाणा बाह्लीकाः। कषायपाणा गन्धाराः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (पानम्) पान शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**क्षीरपाणा उशीनराः।** उशीनर प्रदेश के लोग दुग्धपान के शौकीन हैं। **सुरापाणा प्राच्याः।** प्राच्य भारत के लोग सुरापान के शौकीन हैं। **सौवीरपाणा बाह्लीकाः।** बाह्लीक प्रदेश के लोग सौवीर (खट्टी कांजी) पीने के शौकीन हैं। **कषायपाणा गन्धाराः।** गन्धार प्रदेश के लोग कषाय (कसैला) पान के शौकीन हैं।*

*सिद्धि-**क्षीरपाणाः।** यहां क्षीर और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है-**क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणाः।** 'पानम्' शब्द में **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है-**पीयते यत् तत्-पानम्।** इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग व्यवायी (अ-प्-आ) 'पान' के नकार को देश अभिधेय में णकार आदेश होता है।*

*सुरा-पूर्वपद में-**सुरापाणाः**। सौवीर पूर्वपद में-**सौवीरपाणाः**। कषाय-पूर्वपद में-**कषायपाणाः**।*

विशेषः *उशीनर-पंजाब देश का एक जनपद। **बाह्लीक**-कंबोज के पश्चिम, वंक्षु के दक्षिण और हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का प्रदेश। गन्धार-काश्कर (कुनड़) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ प्रदेश।*

णकारादेशविकल्पः-

(१०) वा भावकरणयोः।१०।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, भाव-करणयोः ७।२।

स०-भावश्च करणं च ते भावकरणे, तयोः-भावकरणयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, पानमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां भावकरणयोः पानं नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य भावे करणे चार्थे वर्तमानस्य पानमित्येतस्य नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-**(भावः)** क्षीरपाणम्, क्षीरपानं वर्तते। कषायपाणम्, कषाय-पानं वर्तते। सुरापाणम्, सुरापानं वर्तते। **(करणम्)** क्षीरपाणः कंसः, क्षीरपानः कंसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (भावकरणयोः) भाव और करण अर्थ में विद्यमान (पानम्) पान शब्द के (नः) नकार के स्थान में (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(भाव) **क्षीरपाणम्, क्षीरपानं वर्तते**। दुग्धपान चल रहा है। **कषायपाणम्, कषायपानं वर्तते**। कसैलापान चल रहा है। **सुरापाणम्, सुरापानं वर्तते**। मदिरापान चल रहा है। (करण) **क्षीरपाणः कंसः, क्षीरपानः कंसः**। दूध पीने का गिलास।*

*सिद्धि-(१) **क्षीरपाणम्**। यहां क्षीर और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'पान' शब्द में '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव-अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्गव्यवायी (अ-प्-आ) 'पान' के नकार को*

*णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**क्षीरपानं वर्तते।** ऐसे ही-**कषायपाणम्, कषायपानम्। सुरापाणम्, सुरापानम्।***

*(२) **क्षीरपाणः कंसः।** यह क्षीर पूर्वपद 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' (३।३।११७) से करण-कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है-क्षीरं पीयते येन सः-**क्षीरपाणः।** सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**क्षीरपानः कंसः।***

णकारादेशविकल्पः-

(११) प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च।११।

प०वि०-प्रातिपदिकान्त-नुम्-विभक्तिषु ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-प्रातिपदिकस्य अन्त इति प्रातिपदिकान्तः। प्रातिपदिकान्तश्च नुम् च विभक्तिश्च ताः प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तयः, तासु-प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिषु (षष्ठीगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य च नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(प्रातिपदिकान्तः) माषवापिणौ, माषवापिनौ। **(नुम्)** माषवापाणि, माषवापानि कुलानि। व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि कुलानि। **(विभक्तिः)** माषवापेण, माषवापेन। व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (प्रातिपदिकान्त०) प्रातिपदिक के अन्त में, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (च) भी (नः) नकार के स्थान में (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(प्रातिपदिकान्तः) **माषवापिणौ, माषवापिनौ।** उड़द बोनेवाले दो पुरुष। (नुम्) **माषवापाणि, माषवापानि कुलानि।** उड़द बोनेवाले कुल। **व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि कुलानि।** धान बोनेवाले कुल। (विभक्ति) **माषवापेण, माषवापेन।** उड़द बोनेवाले से। **व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।** धान बोनेवाले से।*

*सिद्धि-(१) **माषवापिणौ।** यहां माष-उपपद '**डुवप बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०प०) धातु से '**बहुलमाभीक्ष्ण्ये**' (३।२।८१) से -णिनि' प्रत्यय है। माषवापिन्+औ इस स्थिति में प्रातिपदिक के अन्त में नकार है अतः इस सूत्र से माष पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट् और पवर्गव्यवायी (अ-व्-आ-प्-इ) 'वापिन्' को नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापिनौ।***

*(२) **माषवापाणि।** यहां माष-उपपद पूर्वोक्त 'वप्' धातु से '**कर्मण्यण्**' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है-**माषान् वपन्तीति माषवापाणि कुलानि।** 'जश्शसोः' (७।१।२०) से 'जस्' के स्थान में नपुंसक में 'शि' आदेश, '**नपुंसकस्य झलचः**' (७।१।७२) से 'नुम्' आगम और '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से दीर्घ है। इस सूत्र से 'नुम्' के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापानि।** ऐसे ही-**व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि।***

*(३) **माषवापेण।** यहां 'माषवाप' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। '**टाङसिङसामिनात्स्याः**' (७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश है। इस सूत्र से 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापेन।** ऐसे ही-**व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।***

णकारादेशः--

(१२) एकाजुत्तरपदे णः।१२।

प०वि०-एकाजुत्तरपदे ७।१ णः १।१।

स०-एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्। एकाज् उत्तरपदं यस्य स एकाजुत्तरपदः, तस्मिन्-एकाजुत्तरपदे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, पूर्वपदात्, प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां एकाजुत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य, एकाजुत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(प्रातिपदिकान्तः) वृत्रहणौ, वृत्रहणः। **(नुम्)** क्षीरपाणि कुलानि, सुरापाणि कुलानि। **(विभक्तिः)** क्षीरपेण, सुरापेण।

ण इत्यनुवर्तमाने पुनरत्र णग्रहणं विकल्पनिवारणार्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती, (एकाजुत्तरपदे) एकाच् उत्तरपदवाले समास में (प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु) प्रातिपदिक के अन्त, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(प्रातिपदिकान्त) **वृत्रहणौ।** वृत्र को मारनेवाले दो इन्द्र। **वृत्रहणः।** वृत्र को मारनेवाले सब इन्द्र। (नुम्) **क्षीरपाणि कुलानि।** दूध पीनेवाले कुल। **सुरापाणि कुलानि।** शराब पीनेवाले कुल। (विभक्ति) **क्षीरपेण।** दूध पीनेवाले से। **सुरापेण।** शराब पीनेवाले से।*

यहां 'णः' की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः 'णः' का ग्रहण विकल्प की अनुवृत्ति के निवारण के लिये किया गया है।

*सिद्धि-(१) **वृत्रहणौ।** यहां वृत्र-उपपद 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से **'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'** (३।२।८७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। वृत्रहन्+औ इस स्थिति में इस सूत्र से वृत्र पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (अ-ह्-अ) प्रातिपदिक के अन्त में विद्यमान एकाच् हन्' के नकार को णकार आदेश होता है। 'जस्' प्रत्यय में-**वृत्रहणः।***

*(२) **क्षीरपाणि।** यहां क्षीर-उपपद **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से आकार का लोप होता है। क्षीरप+जस्। क्षीरप+शि। क्षरप नुम्+इ।, इस स्थिति में इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग व्यवायी (अ-प्-आ) एकाच् 'प' के नुम् के नकार को णकार आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से नुम् आगम और **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ होता है। सुरा-पूर्वपद में-**सुरापाणि।***

*(३) **क्षीरपेण।** यहां 'क्षीरप' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'टा' को 'इन' आदेश है। इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग के व्यवायी (अ-प-अ-इ) एकाच् 'प' की 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। सुरा-पूर्वपद में-**सुरापेण।***

णकारादेशः-

(१३) कुमति च।१३।

प०वि०-कुमति ७।१ च अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्तिः-कुरस्मिन्नस्तीति कुमान्, तस्मिन्-कुमति। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु, उत्तरपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां कुमत्युत्तरपदे च प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य, कुमति=कवर्गवत्युत्तरपदे च प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-**(प्रातिपदिकान्तः)** वस्त्रयुगिणौ, वस्त्रयुगिणः। स्वर्गकामिणौ, वृषगामिणौ। **(नुम्)** वस्त्रयुगाणि, खरयुगाणि **(विभक्तिः)** वस्त्रयुगेण, उष्ट्रयुगेण।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती, (कुमति) कवर्गवान् उत्तरपदवाले समास में (प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु) प्रातिपदिक के अन्त, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(प्रातिपदिकान्त) ***वस्त्रयुगिणौ।*** *वस्त्र के जोड़ेवाले (धोती-कुर्ता) दो पुरुष।* ***वस्त्रयुगिणः।*** *वस्त्र के जोड़ेवाले सब पुरुष।* ***(नुम्) वस्त्रयुगाणि।*** *वस्त्रों के जोड़े।* ***खरयुगाणि।*** *गधों के जोड़े।* ***(विभक्ति) वस्त्रयुगेण।*** *वस्त्र के जोड़े से।* ***उष्ट्रयुगेण।*** *ऊंटों के जोड़े से।*

सिद्धि-(१) वस्त्रयुगिणौ। *यहां प्रथम वस्त्र और युग शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'वस्त्रयुग' शब्द से* ***'अत इनिठनौ'*** *(५।२।११५) से मतुप् अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है। वस्त्रयुगिन्+औ, इस स्थिति में 'वस्त्र' पूर्वपद रेफ से परवर्ती तथा अट् और कवर्ग-व्यवायी (अ-य्-उ-ग्-इ) तथा कवर्गवान् उत्तरपद, प्रातिपदिकान्त 'युगिन्' के नकार को इस सूत्र से णकार आदेश होता है। जस्-प्रत्यय में-* ***वस्त्रयुगिणः।***

(२) वस्त्रयुगाणि। *यहां 'वस्त्रयुग' शब्द से पूर्ववत् जस् प्रत्यय, जस् को शि आदेश, नुम् आगम और दीर्घ है। इस सूत्र से वस्त्र पूर्वपद के रेफ से परवर्ती, कवर्गवान् उत्तरपद 'युग' के 'नुम्' को णकार आदेश होता है। खर-पूर्वपद में-* ***खरयुगाणि।***

(३) वस्त्रयुगेण। *यहां 'वस्त्रयुग' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय और इसके स्थान में 'इन' आदेश है। इस सूत्र से 'वस्त्र' पूर्वपद के रेफ से परवर्ती, कवर्गवान् उत्तरपद 'युग' की 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। उष्ट्र-पूर्वपद में-* ***उष्ट्रयुगेण।***

णकारादेशः–

(१४) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य।१४।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ असमासे ७।१ अपि अव्ययपदम्, णोपदेशस्य ६।१।

स०–न समास इति असमासः, तस्मिन्–असमासे (नञ्तत्पुरुषः)। णकार उपदेशे यस्य स णोपदेशः, तस्य-णोपदेशस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां णोपदेशस्य नोऽसमासेऽपि णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य णोपदेशस्य धातोर्नकारस्य स्थानेऽसमासे समासेऽपि च णकारादेशो भवति।

उदा०–**(प्र) असमासे**–स प्रणमति। स परिणमति। **समासे**–प्रणायकः, परिणायकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (णोपदेशस्य) उपदेश में णकार वाले धातु के (नः) नकार के स्थान में (असमासेऽपि) असमास में और समास में भी (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०–(प्र) असमास में–**स प्रणमति।** वह प्रणाम (नमस्ते) करता है। **स परिणमति।** वह बदलता है। समास में–**प्रणायकः।** प्रणेता, प्रथमकर्ता। **परिणायकः।** विवाह करनेवाला।*

सिद्धि**–(१) **प्रणमति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णम प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'णम्' धातु उपदेश में णकारवान् है। **'णो नः'** (६।१।६४) से इसके णकार को नकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती णोपदेश 'नम्' धातु के नकार को असमास में णकार आदेश होता है। यहां 'प्र' और नमति का क्रियायोग है, समास नहीं है अतः **'उपसर्गाः क्रियायोगे'** (१।४।५९) से 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा है। परि-उपसर्ग में–**परिणमति।

*(२) **प्रणायकः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश है। 'णीञ्' धातु उपदेश में णकारवान् है। इसके णकार को पूर्ववत् नकार आदेश होता है। इस*

*सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती णोपदेश 'नी' धातु के नकार को समास में णकार आदेश होता है। यहां 'कुगतिप्रादय:' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है।-**प्रगतो नायक इति प्रणायकः।** परि-उपसर्ग में-**परिणायकः।***

णकारादेशः–

(१५) हिनुमीना।१५।

प०वि०–हिनुमीना १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–हिनुश्च मीनाश्च एतयोः समाहारः–हिनुमीना (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां उपसर्गस्य रषाभ्यां हिनुमीना नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्थ रेफषकाराभ्यां परयोर्हिनु, मीना इत्येतयोर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–(हिनु) प्र–प्रहिणोति, प्रहिणुतः। **(मीना)** प्र–प्रमीणाति, प्रमीणीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (हिनुमीना) हिनु और मीना शब्दों के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(हिनु) प्र-प्रहिणोति।** वह भेजता है। **प्रहिणुतः।** वे दोनों भेजते हैं। **(मीना) प्र-प्रमीणाति।** वह हिंसा करता है। **प्रमीणीतः।** वे दोनों हिंसा करते हैं।*

सिद्धि-(१) प्रहिणोति। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'हि गतौ' (स्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। प्र+हि+नु+ति, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हिनु' के नकार को णकार आदेश होता है। तस्-प्रत्यय में-**प्रहिणुतः।***

*(२) **प्रमीणाति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'मीञ् हिंसायाम्'** (क्र्या०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। प्र+मी+ना+ति, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'मीना' के नकार को णकार आदेश होता है। तस्-प्रत्यय में-**प्रमीणीतः।** **'ई हल्यघोः'** (६।४।११३) से ईकार आदेश है।*

णकारादेशः–

(१६) आनि लोट्।१६।

प०वि०–आनि १।१ (षष्ठ्यर्थे), लोट् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां लोट आनि नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य लोडादेशस्य आनि-इत्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(**आनि**) अहं प्रवपाणि, परिवपाणि। अहं प्रयाणि, परियाणि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (लोटः) लोट् के (आनि) आनि इस आदेश के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(आनि) **अहं प्रवपाणि।** मैं बीज बोऊं/काटूं। **परिवपाणि।** अर्थ पूर्ववत् है। **अहं प्रयाणि।** मैं प्रस्थान करूं। **परियाणि।** सर्वतः गमन करूं।*

*सिद्धि-(१) **प्रवपाणि।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'डुवप **बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश और '**मेर्निः**' (३।४।८९) से 'मिप्' के स्थान में 'नि' आदेश है। '**आडुत्तमस्य पिच्च**' (३।४।९२) से इसे 'आट्' आगम होता है। प्र+वप+आ+नि, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग-व्यवायी (अ-व्-अ-प्-अ-आ) 'आनि' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में-**परिवपाणि।***

*(२) **प्रयाणि।** प्र-उपगार्सपूर्वक '**या प्रापणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परियाणि।***

णकारादेशः-

(१७) नेर्गदनदपतपदघुमास्थास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च।१७।

प०वि०-नेः ६।१ गद-नद-पत-घु-मा-स्था-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-गदश्च नदश्च पतश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिश्च शाम्यतिश्च चिनोतिश्च देग्धिश्च ते गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहति-शाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु-गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्साति-वपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां ने नो गद०देग्धिषु च णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य नेर्नकारस्य स्थाने गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यति-चिनोतिदेग्धिषु परतश्च णकारादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

	उपसर्गः	निः	परतः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
१.	प्र	नि	गद	प्रणिगदति	बोलता है।
२.	परि	,,	गद	परिणिगदति	,,
३.	प्र	,,	नद	प्रणिनदति	बजता है।
४.	परि	,,	नद	परिणिनदति	,,
५.	प्र	,,	पत	प्रणिपतति	गिरता है।
६.	परि	,,	पत	परिणिपतति	,,
७.	प्र	,,	पद	प्रणिपद्यते	प्राप्त होता है।
८.	परि	,,	पद	परिणिपद्यते	,,
९.	प्र	,, (घु)	दा	प्रणिददाति	देता है।
१०.	परि	,, ,,	दा	परिणिददाति	,,
११.	प्र	,, ,,	धा	प्रणिदधाति	समर्पण करता है।
१२.	परि	,, ,,	धा	परिणिदधाति	,,
१३.	प्र	,, (माङ्)	मा	प्रणिमीमिते	मापता है।
१४.	परि	,, ,,	मा	परिणिमीमिते	,,
१५.	प्र	,, (मेङ्)	मा	प्रणिमयते	प्रदान करता है।
१६.	परि	,, ,,	मा	परिणिमयते	,,
१७.	प्र	,,	स्यति	प्रणिष्यति	अन्त करता है।
१८.	परि	,,	स्यति	परिणिष्यति	,,
१९.	प्र	,,	हन्ति	प्रणिहन्ति	मारता है।
२०.	परि	,,	हन्ति	परिणिहन्ति	,,
२१.	प्र	,,	याति	प्रणियाति	जाता है।
२२.	परि	,,	याति	परिणियाति	,,

उपसर्गः	निः	परतः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
२३. प्र	,,	वाति	प्रणिवाति	बहता है।
२४. परि	,,	वाति	परिणिवाति	,,
२५. प्र	,,	द्राति	प्रणिद्राति	निन्दित चलता है।
२६. परि	,,	द्राति	परिणिद्राति	,,
२७. प्र	,,	प्साति	प्रणिप्साति	खाता है।
२८. परि	,,	प्साति	परिणिप्साति	,,
२९. प्र	,,	वपति	प्रणिवपति	बोता है/काटता है।
३०. परि	,,	वपति	परिणिवपति	,,
३१. प्र	,,	वहति	प्रणिवहति	ढोता है।
३२. परि	,,	वहति	परिणिहपति	,,
३३. प्र	,,	शाम्यति	प्रणिशाम्यति	शान्त होता है।
३४. परि	,,	शाम्यति	परिणिशाम्यति	,,
३५. प्र	,,	चिनोति	प्रणिचिनोति	चुनता है।
३६. परि	,,	चिनोति	परिणिचिनोति	,,
३७. प्र	,,	देग्धि	प्रणिदेग्धि	बढ़ता है।
३८. परि	,,	देग्धि	परिणिदेग्धि	,,

*यहां **प्रणिगदति** आदि का धातुलभ्य अर्थ किया गया है। प्र, परि और नि उपसर्ग के योग में अन्य अर्थ भी सम्भव है-**उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।***

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (निः) नि शब्द को (गद०) गद, नद, पत, पद, घु {दा, धा आदि} मा, स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, वहति, शाम्यति, चिनोति, देग्धि इन धातुओं के परे होने पर (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) प्रणिगदति।** यहां प्र और नि-उपसर्गपूर्वक 'गद **व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नि' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में-**परिणिगदति।

(२) प्रणिनदति। णद अव्यक्ते शब्दे (भ्वा०प०)।

(३) प्रणिपतति। पत्लृ गतौ (भ्वा०प०)।

(४) प्रणिपद्यते। पद गतौ (दि०प०)।

(५) प्रणिददाति। डुदाञ् दाने (जु०उ०) 'दाधा घ्वदाप्' (१।१।२०) से 'दा' धातु की 'घु' संज्ञा है।

(६) प्रणिदधाति। डुधाञ् धारणपोषणयोः (जु०उ०)। 'धा' धातु की पूर्ववत् 'घु' संज्ञा है।

(७) प्रणिमिमीते। 'माङ् माने शब्दे च' (जु०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्विर्वचन, 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इकार अदेश और 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से ईकार आदेश है।

(८) प्रणिमयते। 'मेङ् प्रणिदाने' (भ्वा०आ०)।

(९) प्रणिष्यति। 'षो अन्तकर्मणि' (दि०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से श्यन् विकरण-प्रत्यय है। 'ओतः श्यनि' (७।३।७१) से धातुस्थ ओकार का लोप और 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से षत्व होता है।

(१०) प्रणिहन्ति। हन हिंसागत्योः (अदा०प०)।

(११) प्रणियाति। या प्रापणे (अदा०प०)।

(१२) प्रणिद्राति। द्रा कुत्सायां गतौ च (अदा०प०)।

(१३) प्रणिप्साति। प्सा भक्षणे (अदा०प०)।

(१४) प्रणिवपति। डुवप बीजसन्ताने छेदने च (भ्वा०प०)।

(१५) प्रणिवहति। वह प्रापणे (भ्वा०प०)।

(१६) प्रणिशाम्यति। शमु उपशमे (दि०प०) 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) से दीर्घ है।

(१७) प्रणिचिनोति। चिञ् चयने (स्वा०उ०)।

(१८) प्रणिदेग्धि। दिह उपचये (अदा०उ०) धातु से 'लट्' लकार, लकार के स्थान 'तिप्' आदेश और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से हकार को घकार अदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश ओर 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से घकार को जश् गकार आदेश होता है।

णकारादेशविकल्पः--

(१८) शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे।१८।

प०वि०-शेषे ७।१ विभाषा १।१ अकखादौ ७।१ अषान्ते ७।१ उपदेशे ७।१।

स०-कश्च खश्च तौ कखौ, कखावादी यस्य कखादिः, न कखादिरिति अकखादिः, तस्मिन्-अकखादौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। षोऽन्ते यस्य स षान्तः, न षान्त इति अषान्तः, तस्मिन्-अषान्ते (बहुव्रीहि-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, नेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां नेर्न उपदेशेऽकखादावषन्ते शेषे विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्थ रेफषकाराभ्यां परस्य नेर्नकारस्य स्थाने, उपदेशे ककारखकारादिवर्जिते षकारान्तवर्जिते च शेषे धातौ परतो विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(पच्) प्र-प्रणिपचति, प्रनिपचति। **(भिद्)** प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति।

अकखादाविति किम् ? प्रनिकरोति, प्रनिखनति। अषान्ते इति किम् ? प्रनिपिनष्टि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (निः) नि के (नः) नकार के स्थान में, (उपदेश) पाणिनि मुनि के धातुपाठ रूप उपदेश में (अकखादौ) ककारादि और खकारादि धातु से भी भिन्न धातु परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(पच्) प्र-**प्रणिपचति, प्रनिपचति।** वह अति निकृष्ट पकाता है। (भिद्) **प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति।** वह अति निकृष्ट फाड़ता है।*

सिद्धि-प्रणिपचति।** यहां प्र और नि-उपसर्गपूर्वक 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नि' के नकार को, ककारादि, खकारादि और षकारान्त धातु से भिन्न 'पच्' धातु परे होने पर णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रनिपचति।** 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से-**प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति।

णकारादेशः–

(१६) अनितेरन्तः।१६।

प०वि०–अनितेः ६।१ अन्तः १।१ (सप्तम्यर्थे)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अन्तोऽनितेर्नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य पदान्ते वर्तमानस्याऽनितेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–**(अन्)** प्र–हे प्राण्! **परा**–हे पराण्!

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि–विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अन्तः) पद के अन्त में विद्यमान (अनितेः) अनिति=अन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०–**(अन्)** प्र–हे **प्राण्**! हे जीव! परा–हे **पराण्**! हे निर्जीव!*

*सिद्धि–**प्राण**! यहां प्र–उपसर्गपूर्वक '**अन प्राणने**' (अदा०प०) धातु से '**क्विप् च**' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से प्र–उपसर्ग के रेफ से परवर्ती तथा अट्–व्यवायी (अ–अ) 'अन्' धातु के नकार को णकार आदेश होता है। '**न ङिसम्बुद्ध्योः**' (८।२।८) से सम्बुद्धि में प्रातिपदिकान्त नकार का लोप नहीं होता है। '**पदान्तस्य**' (८।४।३६) से पदान्त नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध है। यह उसका पुरस्ताद् अपवाद है। परा–उपसर्ग में–**पराण्**।*

विशेषः *काशिकावृत्ति में–**अनितेः**।। **अन्तः**।। इस प्रकार योगविभाग करके सूत्रव्याख्या की है। **अनितेः**।। उपसर्ग के रेफ से परवर्ती अनिति धातु के नकार को णकार आदेश होता है। पश्चात्–**अन्तः**।। इसकी व्याख्या पूर्वोक्त है। महाभाष्य के अनुसार '**अनितेरन्तः**' यह सूत्रपाठ है।*

*उदा०–**प्राणिति**। वह श्वास लेता है। **पराणिति**। वह श्वास से दूर होता है।*

णकारादेशः–

(२०) उभौ साभ्यासस्य।२०।

प०वि०–उभौ १।२ (षष्ठ्यर्थे), साभ्यासस्य ६।१।

स०– अभ्यासेन सह वर्तते इति साभ्यासः, तस्य–साभ्यासस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, अनितेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां साभ्यासस्यानितेरुभयोर्नयोर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य साभ्यासस्याऽनितेरुभयोर्नकारयोः स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(अन्) **प्र**-स प्राणिणिषति। स प्राणिणत्। **परा**-स पराणिणिषति। स पराणिणत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (साभ्यासस्य) अभ्यास से युक्त (अनितेः) अनिति धातु के (उभयोः) दोनों (नयोः) नकारों के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(अन्) प्र-स **प्राणिणिषति**। वह श्वास लेना चाहता है। स **प्राणिणत्**। उसने श्वास दिलाया। परा-स **पराणिणिषति**। वह श्वास को दूर करना चाहता है। **स पराणिणत्**। उसने श्वास को दूर कराया, मरवाया।*

*सिद्धि-(१) **प्राणिणिषति**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'अन प्राणने'** (अदा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सन्' को इडागम है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) के नियम **'सन्यडोः'** (६।१।९) से 'नि' शब्द को द्विर्वचन होता है। प्र+नि-नि+ष, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती साभ्यास अन् धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश होता है। परा-उपसर्ग में-**पराणिणिषति**।*

*सिद्धि-(२) **प्राणिणत्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अन्' धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'आनि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णि' का लोप होता है। **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्विर्वचन करते समय, उसे **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवत् मानकर पूर्वोक्त नियम से अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन करने में 'नि' शब्द को द्विर्वचन होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**पराणिणत्**।*

णकारादेशः-

(२१) हन्तेरत्पूर्वस्य।२१।

प०वि०-हन्तेः ६।१ अत्पूर्वस्य ६।१।

स०-अत् पूर्वो यस्मात् सः-अत्पूर्वः, तस्य-अत्पूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अतत्पूर्वस्य हन्तेर्नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्याऽकारपूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(हन्) **प्र**-प्रहण्यते। **परि**-परिहण्यते। **प्र**-प्रहणनम्। **परि**-परिहणनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(हन्) प्र-**प्रहण्यते**। प्रहार किया जाता है। परि-**परिहण्यते**। परिहार किया जाता है। प्र-**प्रहणनम्**। प्रहार करना। परि-**परिहणनम्**। परिहार करना।*

*सिद्धि-(१) **प्रहण्यते**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'हन **हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय है। '**भावकर्मणोः**' (१।३।१३) से लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश और '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हन्' धातु के अकारपूर्वी नकार को णकार आदेश होता है।*

*(२) **प्रहणनम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से '**ल्युट् च**' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**पराहणनम्**।*

णकारादेशविकल्पः-

(२२) वमोर्वा।२२।

प०वि०-वमोः ७।२ वा अव्ययपदम्।

स०-वश्च मश्च तौ वमौ, तयोः-वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, हन्तेः, अत्पूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अत्पूर्वस्य हन्तेर्नो वमोर्वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्यात्पूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने वकारमकारयोः परतो विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(हन्) **प्र (व:)**-आवां प्रहण्वः, प्रहन्वः। **परि**-आवां परिहण्वः, परिहन्वः। **प्र (म:)**-वयं प्रहण्मः, प्रहन्मः। **परि**-वयं परिहण्मः, परिहन्मः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (वमोः) वकार और मकार परे रहने पर (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(हन्) प्र (व)-आवां प्रहण्वः, प्रहन्वः। हम दोनों प्रहार करते हैं। **परि-आवां परिहण्वः, परिहन्वः।** हम दोनों परिहार करते हैं। **प्र (म)-वयं प्रहण्मः, प्रहन्मः।** हम सब प्रहार करते हैं। **परि-वयं परिहण्मः, परिहन्मः।** हम सब परिहार करते हैं।*

*सिद्धि-**प्रहण्वः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'वस्' आदेश है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हन्' धातु के अकारपूर्वी नकार के स्थान में वकार परे रहते णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रहन्वः।** परि-उपसर्ग में-**परिहण्वः, परिहन्वः।** मस्-प्रत्यय में-**प्रहण्मः, प्रहन्मः। परिहण्मः, परिहन्मः।***

णकारादेशः-

(२३) अन्तरदेशे।२३।

प०वि०-अन्तः अव्ययपदम्, अदेशे ७।१।

स०-न देश इति अदेशः, तस्मिन्-अदेशे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, हन्तेः, अत्पूर्वस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अन्तर्-राद् अत्पूर्वस्य हन्तेर्नो णः, अदेशे।

अर्थः-संहितायां विषयेऽन्तःशब्दस्य रेफात् परस्याऽत्पूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति, अदेशेऽभिधेये।

उदा०-(हन्) अन्तः-अन्तर्हण्यते। अन्तर्हणनं वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अन्तः) अन्तर् शब्द के (रात्) रेफ परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०-**(हन्) अन्तर्-अन्तर्हण्यते।** वह मध्य में बाधित किया जाता है। **अन्तर्हणनं वर्तते।** बीच में बाधा है।*

*सिद्धि-(१) **अन्तर्हण्यते।** यहां अन्तर्-पूर्वक 'हन्' धातु से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से आत्मनेपद है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से यक् आगम है। इस सूत्र से अन्तर् शब्द के रेफ से परवर्ती तथा अकारपूर्वी 'हन्' धातु के नकार को अदेश अर्थ में णकार आदेश होता है।*

*(२) **अन्तर्हणनम्।** यहां अन्तर्-उपपद 'हन्' धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। **'अन्तरपरिग्रहे'** (१।४।६५) से अन्तर् शब्द की गति-संज्ञा होकर **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गतितत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*देश अभिधेय में **'अन्तर्घनो देशे'** (३।३।७८) से **'अन्तर्घनः'** प्रयोग होता है।*

णकारादेशः–

(२४) अयनं च।२४।

प०वि०–अयनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, अन्तः, अदेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अन्तर्-राद् अयनं च नो णः, अदेशे।

अर्थः–संहितायां विषयेऽन्तःशब्दस्य रेफात् परस्य अयनमित्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति, अदेशेऽभिधेये।

उदा०–(अयनम्) अन्तः–अन्तरयणं वर्तते। अन्तरयनं शोभनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अन्तः) अन्तर् शब्द के (रात्) रेफ से परवर्ती (अयनम्) अयन शब्द के (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०-(अयनम्) **अन्तः-अन्तरयणं वर्तते।** मध्य-मार्ग है। **अन्तरयनं शोभनम्।** मध्य-मार्ग अच्छा है।*

*सिद्धि-**अन्तरयणम्।** यहां अन्तर् और अयन शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गतितत्पुरुष समास है। **'अन्तरपरिग्रहे'** (१।४।६५) से अन्तर् शब्द की गति-संज्ञा है। इस सूत्र से अन्तर् शब्द के रेफ से परवर्ती अयन शब्द के नकार को णकार आदेश होता है।*

यहां 'कृत्यचः' (८।४।२८) से णकार आदेश सिद्ध है। देश के प्रतिषेध के लिये यह कथन किया गया है।

णकारादेशः–

(२५) छन्दस्यृदवग्रहात्।२५।

प०वि०–छन्दसि ७।१ ऋत्-अवग्रहात् ५।१।

स०–ऋच्चासावग्रहश्चेति ऋदवग्रहः, तस्मात्–ऋदवग्रहात् (कर्मधारयतत्पुरुषः)। अवगृह्यते=विच्छिद्य पठ्यते इति अवग्रहः।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते। **'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'** (८।४।३) इत्यस्माद् मण्डूकोत्प्लुत्या 'पूर्वपदात्' इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च ऋदवग्रहात् पूर्वपदाद् नो णः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये ऋदवग्रहात् पूर्वपदाद् परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–नृमणाः (यजु० १२।२०)। **अवग्रहः**–नृ मना इति नृऽमनाः। पितृयाणम्। **अवग्रहः**–पितृयानमिति पितृऽयानम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (ऋदवग्रहात्) ऋकारान्त अवगृह्यमाण (पूर्वपदात्) पूर्वपद से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०–**नृमणाः** (यजु० १२।२०)। अवग्रह–**नृ मना इति नृऽमनाः**। नर=प्रजा में मन रखनेवाला श्रेष्ठ राजा। **पितृयाणम्**। अवग्रह–**पितृयानमिति पितृऽयानम्**। पितरजनों का मार्ग।*

***सिद्धि–नृमणाः**। यहां नृ और मनस् शब्दों का बहुव्रीहि समास है। नृषु=प्रजाजनेषु मनो यस्य सः–नृमणाः। इस सूत्र से पदपाठ में अवगृह्यमाण ऋकरान्त 'नृ' पूर्वपद से परवर्ती 'मनस्' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही–**पितृयाणम्**।*

यहां अवग्रह का अभिप्राय यह है कि जिस पूर्वपद में ऋकार वर्ण पर, अवग्रह (पदच्छेद) किया जाता है उस ऋकारान्त पूर्वपद से उत्तरवर्ती पद के नकार को णकार आदेश होता है, अवग्रह अवस्था में नहीं।

णकारादेशः–

(२६) नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः।२६।

प०वि०–नस् १।१ (षष्ठ्यर्थे), च अव्ययपदम्, धातुस्थ-उरु-षुभ्यः ५।३।

स०-धातौ तिष्ठतीति धातुस्थः। धातुस्थश्च उरुश्च षुश्च ते धातुस्थोरुषवः, तेभ्यः-धातुस्थोरुषुभ्यः (उपपदगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च धातुस्थोरुषूणां रषाभ्यां नश्च नो णः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये धातुस्थस्य उरु-शब्दस्य षु-शब्दस्य च रेफषकाराभ्यां परस्य नस् इत्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-**(धातुस्थः)** अग्ने रक्षा णः (ऋ० ७।१५।३)। शिक्षा णोऽस्मिन् (ऋ० ७।३२।२६)। **(उरु)** उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। **(षु)** अभी षु णः सखीनाम् (ऋ० ४।३१।३)। ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये (ऋ० १।३६।१३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (धातुस्थोरुषूणाम्) धातु में अवस्थित, उरु और षु शब्दों के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नस् इस शब्द के (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(धातुस्थ) अग्ने रक्षा णः** (ऋ० ७।१५।३)। हे अग्ने (ईश्वर)! तू हमारी रक्षा कर। **शिक्षा णोऽस्मिन्** (ऋ० ७।३२।२६)। हे इन्द्र! तू इस संसार मार्ग में हमें शिक्षा कर। **(उरु) उरु णस्कृधि** (ऋ० ८।७५।११)। हे अग्ने! तू हमें बहुत धनी बना। **(षु) अभी षु णः सखीनाम्** (ऋ० ४।३१।३)। **ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (ऋ० १।३६।१३)। हे अग्ने! तू हमारी रक्षा के लिये सदा अवस्थित रह।*

*सिद्धि-(१) **रक्षा णः।** यहां 'रक्ष्' धातुस्थ षकार से परवर्ती 'नस्' के नकार को णकार आदेश है। **'बहुवचनस्य वस्नसौ'** (८।१।२१) से अस्मद् के षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में नस् आदेश होता है। ऐसे ही-**शिक्षा णः। 'द्व्यचोऽतस्तिङः'** (६।३।१३३) से तिङन्त रक्ष, शिक्ष पदों को दीर्घ होता है-रक्षा, **शिक्षा।** उरु-शब्द के रेफ से परवर्ती-उरु **णः।** उरु शब्द यास्कीय निघण्टु (३।१) में बहु-नामों में पठित है। षु-शब्द के षकार से परवर्ती-**षु णः।** 'सु' यह निपात है। 'सुञः' (८।३।१०७) से षत्व होता है।*

णकारादेशः-

(२७) उपसर्गादनोत्परः।२७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ अनोत्परः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–ओकारात् पर इति ओत्परः, न ओत्पर इति अनोत्परः (पञ्चमीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, रात्, नः, णः, नस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां विषये उपसर्गस्य राद् अनोत्परस्य नसो नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफाद् उत्तरस्य ओकारपरवर्जितस्य नस् इत्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–**(नस्)** प्रणः शूद्रः। प्रणसः पुरुषः। प्रणो राजा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (अनोत्परस्य) ओकारपरक से रहित (नस्) नस् इस शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(नस्) **प्रणः शूद्रः।** हम प्रकृष्ट जनों का सेवक। **प्रणसः पुरुषः।** लम्बी नासिकावाला पुरुष। **प्रणो राजा।** हम प्रकृष्ट जनों का राजा।*

*सिद्धि-(१) **प्रणः।** यहां प्र और अस्मद् शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। **'बहुवचनस्य वस्नसौ'** (८।१।२१) से 'अस्मत्' के स्थान में 'नस्' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग से परवर्ती ओकारपरक से भिन्न 'नस्' (नो) के नकार को णकार आदेश होता है।*

*प्र-आदि शब्दों की **'उपसर्गाः क्रियायोगे'** (१।४।५९) से क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा है, किन्तु यहां अस्मद् के योग में व्यपदेशिवद्भाव से 'प्र' को उपसर्ग कहा गया है। **अमुख्ये मुख्यवद् व्यवहारो व्यपदेशिवद्भावः।***

*(२) **प्रणसः।** यहां प्र और नासिका शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। **प्रगता नासिका यस्य स प्रणसः।** **'उपसर्गाच्च'** (५।४।११८) से 'नासिका' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'नासिका' के स्थान में 'नस' आदेश है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नस्' के नकार को णकार आदेश होता है।*

विशेषः *(१) महाभाष्य में **'उपसर्गादनोत्परः'** ऐसा सूत्रपाठ है। पतञ्जलि मुनि ने इस सूत्रपाठ में दोष दिखलाकर **'उपसर्गाद् बहुलम्'** यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है। अतः काशिकावृत्ति में **'उपसर्गाद् बहुलम्'** यह सूत्र मानकर व्याख्या की गई है।*

(२) यहां सम्भव प्रमाण से 'रषाभ्याम्' पद से रेफ की अनुवृत्ति की जाती है, षकार का नहीं।

णकारादेशः–

(२८) कृत्यचः ।२८।

प०वि०–कृति ७।१ अचः ५।१।

अनु०–संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपसर्गस्य राद् अचः कृति नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, अच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य स्थाने, णकारादेशो भवति। अन–मान–अनीय–अनि–इनि–निष्ठादेशाः प्रयोजयन्ति।

उदा०–**(अन)** प्रयाणम्, परियाणम्। प्रमाणम्, परिमाणम्। **(मान)** प्रयायमाणम्, परियायमाणम्। **(अनीय)** प्रयाणीयम्, परियाणीयम्। **(अनि)** अप्रयाणिः, अपरियाणिः। **(इनि)** प्रयायिणौ, परियायिणौ। **(निष्ठादेशः)** प्रहीणः, परिहीणः। प्रहीणवान्, परिहीणवान्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ और (षकार) से परवर्ती (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत् प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है। यहां अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्ठादेश के नकार को णकार आदेश करना प्रयोजन है।*

उदा०–(अन) ***प्रयाणम्।*** *प्रस्थान करना।* ***परियाणम्।*** *सर्वतः गमन करना।* ***प्रमाणम्।*** *लम्बाई मापना।* ***परिमाणम्।*** *तोलना। (मान)* ***प्रयायमाणम्।*** *प्रस्थान करता हुआ कुल।* ***परियायमाणम्।*** *सर्वतः गमन करता हुआ कुल। (अनीय)* ***प्रयाणीयम्।*** *प्रस्थान करना चाहिये।* ***परियाणीयम्।*** *सर्वतः गमन करना चाहिये। (अनि)* ***अप्रयाणिः।*** *प्रस्थान न हो (आक्रोश)।* ***अपरियाणिः।*** *सर्वतः गमन न हो (आक्रोश)। (इनि)* ***प्रयायिणौ।*** *प्रस्थानशील दो पुरुष।* ***परियायिणौ।*** *सर्वतः गमनशील दो पुरुष। (निष्ठादेश)* ***प्रहीणः।*** *अति हीन।* ***परिहीणः।*** *सर्वतः हीन।* ***प्रहीणवान्, परिहीणवान्।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि–(१) प्रयाणम्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक* ***'या प्रापणे'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'ल्युट् च'*** *(३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है।* ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती और अच् उत्तरवर्ती कृत्-प्रत्यय 'अन' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में–***परियाणम्।***

(२) ***प्रमाणम्।*** *प्र-उपसर्गपूर्वक* ***'मा माने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'करणाधिकरणयोश्च'*** *(३।३।११७) से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। परि-उपसर्ग में–***परियाणम्।***

*(३) **प्रयायमाणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु कर्मवाच्य में 'शानच्' प्रत्यय है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से आत्मनेपद और **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। **'आने मुक्'** (७।२।८२) से मुक् आगम है। परि-उपसर्ग में-**परियायमाणम्।***

*(४) **प्रयाणीयम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है। परि-उपसर्गपूर्वक में-**परियाणीयम्।***

*(५) **अप्रयाणिः।** यहां नञ्-उपपद तथा प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'आक्रोशे नञ्यनिः'** (३।३।११२) से आक्रोश (कोसना) अर्थ में अनि प्रत्यय है। जैसे कि-**अकरणिस्ते वृषल भूयात्।** हे नीच ! तेरी अणहोणी हो। परि-उपसर्ग में-**अपरियाणिः।***

*(६) **प्रयायिणौ।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से णिनि (इनि) प्रत्यय है। परि-उपसर्ग में-**परियायिणौ।***

*(७) **प्रहीणः।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। **'ओदितश्च'** (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश और **'घुमास्था०'** (६।४।६६) से ईकार आदेश है। परि-उपसर्ग में-**परिहीणः।** क्तवतु-प्रत्यय में-**प्रहीणवान्, परिहीणवान्।***

णकारादेशविकल्पः–

(२६) णेर्विभाषा।२६।

प०वि०-णेः ५।१ विभाषा १।१।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् णेरचः कृति नो विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य ण्यन्ताद् धातोर्विहितस्य, अच उत्तरस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(अन) प्रयापणम्, प्रयापनम्। **(मान)** प्रयाप्यमाणम्, प्रयाप्यमानम्। **(अनीय)** प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्। **(अनि)** अप्रयापणिः, अप्रयापनिः। **(इनि)** प्रयापिणौ, प्रयापिनौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (णेः) णिजन्त धातु से विहित, (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृतिः) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(अन) प्रयापणम्, प्रयापनम्। बिताना। (मान) प्रयाप्यमाणम्, प्रयाप्यमानम्। बिताया जाता हुआ। (अनीय) प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्। बिताना चाहिये। (अनि) अप्रयापणिः, अप्रयापनिः। तेरा समय यापन आदि न हो (आक्रोश)। (इनि) प्रयापिणौ, प्रयापिनौ। समय आदि यापनशील दो पुरुष।

सिद्धि-प्रयापणम्। यहां प्रथम प्र-उपसर्गपूर्वक 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से 'या' को पुक् आगम है। तत्पश्चात् णिजन्त 'यापि' धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप होता है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग से परवर्ती णिजन्त प्र+यापि धातु से विहित कृत्-संज्ञक 'अन' प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है।

'प्रयाप्यमाणम्' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। केवल 'या' धातु से णिच् प्रत्यय और पुक् आगम विशेष है।

णकारादेशविकल्पः-

(३०) हलश्चेजुपधात्।३०।

प०वि०-हलः ५।१ च अव्ययपदम्, इजुपधात् ५।१।

स०-इज् उपधा यस्य स इजुपधः, तस्मात्-इजुपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अचः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् इजुपधात् हलोऽचः कृति नो विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्माद्, इजुपधद् हलदेर्धातोर्विहितस्याचः परस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-प्रकोपणम्, प्रकोपनम्। परिकोपणम्, परिकोपनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (इजुपधात्) इच् उपधावाले (हलादेः) हलादि धातु से भी उत्तरवर्ती (अचः) अच्-परक से (कृतिः) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रकोपणम्, प्रकोपनम्।** अति क्रोध करना। **परिकोपणम्, परिकोपनम्।** सर्वतः क्रोध करना।*

*सिद्धि-**प्रकोपणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'कुप क्रोधे' (दि०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से 'कुप्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, इच् (ओ) उपधावाले हलादि 'कुप्' धातु से भी उत्तरवर्ती, अच् पूर्ववाले 'अन' कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रकोपनम्।** परि-उपसर्ग में-**परिकोपणम्, परिकोपनम्।***

'कृत्यचः' (८।४।२८) से नित्य णकार आदेश प्राप्त था, अतः यह विकल्प-विधान किया गया है।

णकारादेशः-

(३१) इजादेः सनुमः।३१।

प०वि०-इजादेः ५।१ सनुमः ५।१।

स०-इज् आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्-इजादेः (बहुव्रीहिः)। नुमा सह वर्तति इति सनुम्, तस्मात्-सनुमः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अचः, हल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् सनुम इजादेर्हलोऽचः कृति नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, सनुम इजादेर्हलन्ताद् धातोर्विहितस्याचः परस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-प्रेङ्खणम्, परेङ्खणम्। प्रेङ्गणम्, परेङ्गणम्। प्रोम्भणम्, परोम्भणम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (सनुमः) नुम्-सहित (इजादेः) इजादि (हलः) हलन्त धातु से विहित (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रेङ्खणम्**। प्रगति करना। **परेङ्खणम्**। दूर हटना। **प्रेङ्गणम्**। प्रगति करना। **परेङ्गणम्**। दूर हटना। **प्रोम्भणम्**। पूरा भरना। **परोम्भणम्**। खाली करना।*

*सिद्धि-**प्रेङ्खणम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'इखि गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**इदितो नुम् धातोः**' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, नुम्-आगम वाले, इजादि और हलन्त 'ईङ्ख्' धातु से विहित 'अन' इस कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। परा-उपसर्ग में-**परेङ्खणम्**।*

*(२) **प्रेङ्गणम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'इगि गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**परेङ्गणम्**।*

*(३) **प्रोम्भणम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'उम्भ पूरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**परोम्भणम्**। 'उम्भ' धातु पाणिनीय धातुपाठ में 'सनुम्' ही पठित है।*

णकारादेशविकल्पः-

(३२) वा निंसनिक्षनिन्दाम्।३२।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, निंस-निक्ष-निन्दाम् ६।३।

स०-निंसश्च निक्षश्च निन्द् च ते निंसनिक्षनिन्दः, तेषाम्-निंसनिक्षनिन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् निंसनिक्षनिन्दां नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परेषां, निंसनिक्षनिन्दां धातूनां विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(निंस्) प्रणिंसनम्, प्रनिंसनम्। **(निक्ष्)** प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्। **(निन्द्)** प्रणिन्दनम्, प्रनिन्दनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (निंसनिक्षनिन्दाम्) निंस, निक्ष, निन्द इन धातुओं के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(निंस्) प्रणिंसनम्, प्रनिंसनम्**। अति चुम्बन करना। **(निक्ष्) प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्**। अति चुम्बन करना। **(निन्द्) प्रणिन्दनम्, प्रनिन्दनम्**। अति निन्दा करना।*

*सिद्धि-(१) **प्रणिंसणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णिसि चुम्बने'** (अदा०आ०) धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, धातु के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रनिंसनम्।***

*(२) **प्रणिक्षणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णिक्ष चुम्बने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में-**प्रनिक्षणम्।***

*(३) **प्रणिन्दनम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **णिदि कुत्सायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में-**प्रनिन्दनम्।***

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३३) न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम्।३३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, भा-भू-पू-कमि-गमि-प्यायी-वेपाम् ६।३।

स०-भाश्च भूश्च पूश्च कमिश्च गमिश्च प्यायीश्च वेप् च ते भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपः, तेषाम्-भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रेफाद् भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपिभ्योऽचः कृति नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परेभ्यो भाभूपूकमिगमि-प्यायीवेपिभ्यो धातुभ्यो विहितस्याच उत्तरस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति। **उदाहरणम्–**

	धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
१.	भा	प्र	प्रभानम्	अति चमकना।
		परि	परिभानम्	सर्वतः चमकना।
२.	भू	प्र	प्रभवनम्	उत्पन्न होना।
		परि	परिभवनम्	सर्वत्र होना।

धातुः		उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
३.	पू	प्र	प्रपवनम्	अति पवित्र करना।
		परि	परिपवनम्	सर्वतः पवित्र करना।
४.	कमि	प्र	प्रकमनम्	अति कामना करना।
		परि	परिकमनम्	सर्वतः कामना करना।
५.	गमि	प्र	प्रगमनम्	प्रस्थान करना।
		परि	परिगमनम्	सर्वत्र गमन करना।
६.	प्यायी	प्र	प्रप्यायनम्	अति बढ़ना।
		परि	परिप्यायनम्	सर्वतः बढ़ना।
७.	वेप	प्र	प्रवेपनम्	अति कांपना।
		परि	परिवेपनम्	सर्वतः कांपना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (भा०) भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी, वेप् इन धातुओं से विहित (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) प्रभानम्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'भा दीप्तौ'** (अदा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, 'अन' कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-**परिभानम्।***

*(२) **प्रभवनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिभवनम्।***

*(३) **प्रपवनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'पूञ् पवने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिपवनम्।***

*(४) **प्रकमनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'कमु कान्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिकमनम्।***

*(५) **प्रगमनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिकमनम्।***

*(६) **प्रप्यायनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिप्यायनम्।***

*(७) **प्रवेपनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'टुवेपृ कम्पने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिवेपनम्।***

यहां सर्वत्र 'कृत्यचः' (८।४।२८) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

णकारादेशप्रतिषेधः--

(३४) षात् पदान्तात्।३४।

प०वि०-षात् ५।१ पदान्तात् ५।१।

स०-पदेऽन्त इति पदान्तः, तस्मात्-पदान्तात् (सप्तमीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदान्तात् षाद् नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तात् षकारात् परस्य, नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०-निष्पानम्, दुष्पानम्, सर्पिष्पानम्, यजुष्पानम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पद परे होने पर जो अन्तिम (षात्) षकार है उससे परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**निष्पानम्।** निर्धारित पानविशेष। **दुष्पानम्।** सुरा आदि निन्दित पान। **सर्पिष्पानम्।** घृत पान। **यजुष्पानम्।** याजुष मन्त्रों से सोमपान।*

सिद्धि-निष्पानम्।** यहां निस्-उपसर्गपूर्वक **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'निस्' के सकार को **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'रु' आदेश, 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय और **'इदुपधस्य चाप्रत्ययस्य'** (८।३।४१) से विसर्जनीय को षकार आदेश है। इस 'निष्' के पदान्त से परवर्ती 'पान' के नकार को इस सूत्र से णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। 'पानम्' पद के परे होने पर 'निष्' का षकार पदान्त है-**पदेऽन्तः पदान्तः।** **'कृत्यचः'** (८।४।२८) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। दुस्-उपसर्ग में-**दुष्पानम्।

*(२) **सर्पिष्पानम्।** यहां सर्पिस् और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है-**सर्पिषः पानमिति सर्पिष्पानम्।** **'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य'** (८।३।४५) से 'सर्पिः' के विसर्जनीय को नित्य षकार आदेश है। **'वा भावकरणयोः'** (८।४।१०) से भावलक्षण में णकार आदेश की प्राप्ति थी। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

(२) सर्पिष्पानम्। यहां यजुष् और पान शब्दों का 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' (२।१।३१) तृतीयातत्पुरुष समास है। 'वा भावकरणयोः' (८।४।१०) से करणलक्षण में णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

विशेषः *यहां 'पदेऽन्त इति पदान्तः' ऐसे सप्तमी तत्पुरुष करने से सर्पिष्केण, सुयजुष्केण आदि प्रयोगों में णकार आदेश का प्रतिषेध नहीं होता है। यहां 'शेषाद्विभाषा' (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। षष्ठीसमास से सर्पिष्केण आदि में णत्व-प्रतिषेध प्राप्त नहीं होता है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३५) नशेः षान्तस्य।३५।

प०वि०-नशेः ६।१ षान्तस्य ६।१।

स०-षोऽन्ते यस्य स षान्तः, तस्य-षान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रात् षान्तस्य नशेर्नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, षकारान्तस्य नशेर्धातोर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०–प्रनष्टः, परिनष्टः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (षान्तस्य) षकारान्त (नशे) नश् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०–प्रनष्टः। अति नष्ट हुआ। परिनष्टः। सर्वतः नष्ट हुआ।

सिद्धि-प्रनष्टः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'णश अदर्शने' (दि०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। 'मस्जिनशोर्झलि' (७।१।६०) से नुम् आगम, 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से शकार को षकार, 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, षकारान्त नश् (नष्) धातु के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-परिनष्टः।

यहां 'उपसर्गादसमासेऽपि' (८।४।१४) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३६) पदान्तस्य।३६।

वि०–पदान्तस्य ६।१।

स०–पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां रषाभ्यां पदान्तस्य नो णो न।

अर्थः–संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परस्य पदान्तस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०–वृक्षान्, प्लक्षान्, अरीन्, गिरीन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**वृक्षान्।** वृक्षों को। **प्लक्षान्।** पिलखणों को। **अरीन्।** शत्रुओं को। **गिरीन्।** पर्वतों को।*

सिद्धि**–**वृक्षान्।** यहां 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। '**प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**' (६।१।१०२) से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर '**तस्माच्छसो नः पुंसि**' (६।१।१०३) से 'शस्' के सकार को नकार आदेश है। इस सूत्र से 'वृक्षान्' पद में षकार से परवर्ती पदान्त षकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। 'प्लक्ष' शब्द से–**प्लक्षान्।** अरि-शब्द से–**अरीन्।** गिरि-शब्द से–**गिरीन्।

*यहां '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३७) पदव्यवायेऽपि।३७।

प०वि०–पदव्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०–पदेन व्यवाय इति पदव्यवायः, तस्मिन्–पदव्यवाये (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् रषाभ्यां नः पदव्यवायेऽपि णो न।

अर्थः–संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने पदव्यवायेऽपि सति णकारादेशो न भवति।

उदा०–माषकुम्भवापेन, चतुरङ्गयोगेन, प्रावनद्धम्, पर्यवनद्धम्, प्र गां नयामः, परि गां नयामः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (पदव्यवाये) पद का व्यवधान होने पर (अपि) भी (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**माषकुम्भवापेन।** उड़द का कुम्भ-परिमाण बोनेवाले से। **चतुरङ्गयोगेन।** चार अङ्गोंवाले योग से (यम, नियम, आसन, प्राणायाम)। **प्रावनद्धम्।** अत्यन्त बंधा हुआ। **पर्यवनद्धम्।** सर्वथा बंधा हुआ। **प्र गां नयामः।** हम गौ को यथावत् ले जाते हैं। **परि गां नयामः।** हम गौ को सर्वथा पहुंचाते हैं।*

*सिद्धि-**(१) माषकुम्भवापेन।** यहां माषकुम्भ उपपद **'डुवप बीजसन्ताने छेदने च'** (भ्वा०प०) धातु से **'कर्मण्यण्'** (३।१।१) से 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र 'माष' के षकार से परवर्ती 'कुम्भ' पद के व्यवधान में 'वापेन' के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **चतुरङ्गयोगेन।** चत्वारि अङ्गानि **यस्य स** चतुरङ्गः, तेन **योग** इति चतुरङ्गयोगः, तेन-**चतुरङ्गयोगेन।** 'चतुर्' के रेफ से परवर्ती, अङ्ग पद के व्यवधान में 'योगेन' के नकार को णकार आदेश नहीं होता है। यहां **'कुमति च'** (८।४।१३) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*(३) **प्रावनद्धम्।** यहां प्र और अव उपसर्गपूर्वक **'णह बन्धने'** (दि०प०) धातु से **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, 'अव' पद के व्यवधान में 'नद्धम्' के नकार को णकार का प्रतिषेध होता है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है। परि-उपसर्ग में-**पर्यवनद्धम्।***

*(४) **प्र गां नयामः** यहां प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, गाम् पद के व्यवधान में 'नयामः' के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-**परि गां नयामः।** यह छान्दस प्रयोग है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३८) क्षुभ्नादिषु च।३८।

प०वि०–क्षुभ्ना-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्षुभ्ना आदिर्येषां ते क्षुभ्नादयः, तेषु-क्षुभ्नादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां रषाभ्यां क्षुभ्ना-आदिषु नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परेषु क्षुभ्नादिषु शब्देषु नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०-स क्षुभ्नाति। तौ क्षुभ्नीतः। ते क्षुभ्नन्ति। नॄन् (मनुष्यान्) नमयतीति नॄनमन इत्यादिकम्।

क्षुभ्नाति। क्षुभ्नीतः। क्षुभ्नन्ति। नॄनमन। नन्दिन्। नगर। नरीनृत्यते। तृप्नु। नर्तन। गहन। नन्दन। निवेश। निवास। अग्नि। अनूप। आचार्यादणत्वं च। आचार्यानी। हायन। इरिकादिभ्यो वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम्। इरिका। तिमिर। समीर। कुबेर। हरि। कर्मार। इति क्षुभ्नादिराकृतिगणः। अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु द्रष्टव्यः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (क्षुभ्नादिषु) क्षुभ्ना आदि शब्दों में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-स **क्षुभ्नाति**। वह क्रोध करता है। तौ **क्षुभ्नीतः**। वे दोनों क्रोध करते हैं। ते **क्षुभ्नन्ति**। वे सब क्रोध करते हैं। **नॄनमन**। नर=नेता जनों का सत्कार करनेवाला, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **क्षुभ्नाति**। यहां 'क्षुभ सञ्चलने' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्षुभ्' के षकार से परवर्ती 'ना' प्रत्यय के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। तस्-प्रत्यय में-**क्षुभ्नीतः**। **'ई हल्यघोः'** (६।३।११३) से ईकार आदेश है-**क्षुभ्नन्ति**। **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से आकार का लोप है।*

*यहां **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र स प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **नॄनमनः**। यहां नृ उपपद **'णम प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) से नन्द्यादिलक्षण 'ल्यु' प्रत्यय और **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। ऋकार में रेफश्रुति मानकर **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से अथवा वा०-**'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

विशेषः *क्षुभ्नाति आकृतिगण है। सूत्र से अविहित णकारादेश का प्रतिषेध क्षुभ्नादि गण में समझना चाहिये।*

।। इति णकारादेशप्रकरणम् ।।

{आदेशप्रकरणम्}

शकारचवर्गौ–

(१) स्तोः श्चुना श्चुः ।३६।

प०वि०–स्तोः ६ ।१ श्चुना ३ ।१ श्चुः १ ।१ ।

स०–सश्च तुश्च एतयोः समाहारः स्तुः, तस्य–स्तोः (समाहारद्वन्द्वः)। शश्च चुश्च एतयोः समाहारः श्चुः, तेन–श्चुना (समाहारद्वन्द्वः)। शश्च चुश्च एतयोः समाहारः श्चुः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायामित्यनुवर्तते ।

अन्वयः–संहितायां स्तोः श्चुना श्चुः ।

अर्थः–संहितायां विषये सकारतवर्गयोः स्थाने, शकारचवर्गाभ्यां सह योगे सति, शकारचवर्गावादेशौ भवतः ।

'स्तोः श्चुना' इत्यत्र यथासंख्यं योगो नेष्यते। सकारस्य शकारेण चवर्गेण च सह योगे सति शकारादेशो भवति। तवर्गस्यापि शकारेण चवर्गेण च सह योगे सति चवर्गादेशो भवति। आदेशे तु यथासंख्यं विधिरिष्यते–सकारस्य शकारः, तवर्गस्य च चवर्ग आदेशो भवति।

उदा०–(१) **सकारस्य शकारेण सह योगे**–रामश्शेते, देवश्शेते।

(२) **सकारस्य चवर्गेण**–रामश्चिनोति, देवश्चिनोति। रामश्छादयति, देवश्छादयति ।

(३) **तवर्गस्य शकारेण**–अग्निचिच्छेते, सोमसुच्छेते ।

(४) **तवर्गस्य चवर्गेण**–अग्निचिच्चिनोति, सोमसुच्चिनोति। अग्निचिच्छादयति, सोमसुच्छादयति। अग्निचिज्जयति, सोमसुज्जयति। अग्निचिज्झटिति, सोमसुज्झटिति। अग्निचिञ्ञमङ्गणनम्। सोमसुञ्ञमङ्गणनम्।

(५) **मस्जेः**–मज्जति। **भ्रस्जेः**–भृज्जति। **व्रश्चेः**–वृश्चति। **यजेः**–यज्ञः। **याचेः**–याच्ञा।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (श्चुना) शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर (श्चुः) शकार और चवर्ग आदेश होता है।*

यहां सकार-तवर्ग का शकार-चवर्ग के साथ यथासंख्य योग अभीष्ट नहीं है। सकार का शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर शकार आदेश होता है। तवर्ग का भी शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर चवर्ग आदेश होता है। आदेश में तो यथासंख्य विधि अभीष्ट है। सकार के स्थान में शकार और तवर्ग के स्थान में चवर्ग आदेश होता है।

उदा०-(१) **सकार का शकार के साथ योग में-रामस्+शेते=रामश्शेते।** राम सोता है। **देवस्+शेते=देवश्शेते।** देव सोता है।

(२) **शकार का चवर्ग के साथ-रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति।** राम चुनता है। **देवस्+चिनोति=देवश्चिनोति।** देव चुनता है। **रामस्+छादयति=रामश्छादयति।** राम आच्छादित करता है। **देवस्+छादयति=देवश्छादयति।** देव आच्छादित करता है।

(३) **तवर्ग का शकार के साथ-अग्निचित्+शेते=अगिचिच्छेते।** अग्निचित् सोता है। **सोमसुत्+शेते=सोमसुच्छेते।** सोमसुत् सोता है।

(४) **तवर्ग का चवर्ग के साथ-अग्निचित्+चिनोति=अग्निचिच्चिनोति।** अग्निचित् चुनता है। **सोमसुत्+चिनोति=सोमसुच्चिनोति।** सोमसुत् चुनता है। **अग्निचित्+छादयति=अग्निचिच्छादयति।** अग्निचित् आच्छादित करता है। **सोमसुत्+छादयति=सोमसुच्छादयति।** सोमसुत् आच्छादित करता है। **अग्निचित्+जयति=अग्निचिज्जयति।** अग्निचित् जीतता है। **सोमसुत्+जयति=सोमसुज्जयति।** सोमसुत् जीतता है। **अग्निचित्+झटिति=अग्निचिज्झटिति।** अग्निचित् जल्दी {आ}। **सोमसुत्+झटिति=सोमसुज्झटिति।** सोमसुत् जल्दी {आ}। **अग्निचित्+ञमङ्णनम्=अग्निचिञ्ञमङ्णनम्।** अग्निचित् ञमङ्णनम् {पढ़ता है}। **सोमसुत्+ञमङ्णनम्=सोमसुञ्ञमङ्णनम्।** सोमसुत् ञमङ्णनम् {पढ़ता है}।

(५) **मस्जि-मज्जति।** शुद्ध होता है, स्नान करता है। **भ्रस्जि-भृज्जति।** पकाता है। **व्रश्चि-वृश्चति।** काटता है। **यजि-यज्ञः।** देवपूजा, संगतिकरण और दान करना। **याचि-याच्ञा।** मांगना।

सिद्धि-(१) रामश्शेते। यहां 'राम' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश, **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश और **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश है। इस सूत्र से सकार के स्थान में शकार के साथ योग में शकार आदेश होता है। ऐसे ही-**देवश्शेते।** चवर्ग के योग में-**रामश्चिनोति, देवश्चिनोति। रामश्छादयति, देवश्छादयति।**

(२) **अग्निचिच्छेते।** अग्निचित्+शेते। अग्निचित्+छेते। अग्निचिच्+छेते। अग्निचिच्छेते।

यहां **'शश्छोऽटि'** (८।४।६३) से शकार को छकार आदेश होकर इस सूत्र से तकार को चवर्ग चकार आदेश होता है। ऐसे ही-**सोमसुच्छेते।**

*(३) **अग्निचिज्जयति।** यहां **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को चवर्ग जकार आदेश होता है।*

*(४) **अग्निचिञ्ञमङ्गणनम्।** यहां **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को दकार आदेश होकर इस सूत्र से दकार को चवर्ग अनुनासिक ञकार आदेश होता है।*

*(५) **मज्जति।** यहां **'टुमस्जो शुद्धौ'** (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। मस्ज्+अ+ति, इस स्थिति में **'झलां जश् झशि'** (८।४।५२) से सकार को जश् दकार और इस सूत्र से दकार को चवर्ग जकार आदेश होता है। ऐसे ही **'भ्रस्ज पाके'** (तु०उ०) धातु से-**भृज्जति। 'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से रेफ को ऋ-सम्प्रसारण है। **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से-**व्रश्चति।***

*(६) **यज्ञः।** यहां यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु च' (भ्वा०उ०) धातु से **'यज-याचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्'** (३।३।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रत्यय के नकार को चवर्ग ञकार आदेश होता है-यज्+ञ+सु=यज्ञः। **'टुयाचृ याच्ञायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से-**याच्ञा। 'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। **'याच्ञा स्त्रियाम्'** (लिङ्गानुशासन २।६) से 'याच्ञा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है।*

षकारटवर्गौ–

(२) ष्टुना ष्टुः।४०।

प०वि०–ष्टुना ३।१ ष्टुः १।१।

स०–षश्च टुश्च एतयोः समाहारः ष्टुः, तेन-ष्टुना (समाहारद्वन्द्वः)। षश्च टुश्च एतयोः समाहारः ष्टुः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, स्तोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां स्तोः ष्टुना ष्टुः।

अर्थः–संहितायां विषये सकारतवर्गयोः स्थाने, षकारटवर्गाभ्यां सह योगे सति, षकारटवर्गावादेशौ भवतः।

'स्तोः ष्टुना' इत्यत्र यथासंख्यं योगो नेष्यते। सकारस्य षकारेण टवर्गेण च सह योगे सति षकारादेशो भवति। तवर्गस्यापि षकारेण टवर्गेण च सह योगे सति टवर्गादेशो भवति। आदेशे तु यथासंख्यं विधिरिष्यते-सकारस्य षकारः, तवर्गस्य च टवर्ग आदेशो भवति।

उदा०–(१) सकारस्य षकारेण सह योगे–वृक्षाष्षट्, प्लक्षाष्षट्।

(२) **सकारस्य टवर्गेण**-रामष्टीकते, देवष्टीकते। रामष्ठक्कुरः, देवष्ठक्कुरः।

(३) **तवर्गस्य षकारेण**-पेष्टा, पेष्टुम्, पेष्टव्यम्। स कृषीष्ट। त्वं कृषीष्ठाः।

(४) **तवर्गस्य टवर्गेण**-अग्निचिट्टीकते, सोमसुट्टीकते। अग्निचिट्ठक्कुरः, सोमसुट्ठक्कुरः। अग्निचिड्डयते, सोमसुड्डयते। अग्निचिड्ढौकते, सोमसुड्ढौकते। अग्निचिण्णकारः, सोमुसुण्णकारः।

(५) अट्टते। अड्डति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संधि-विषय में (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (ष्टुना) षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर (ष्टुः) षकार और टवर्ग आदेश होता है।*

यहां सकार-टवर्ग का षकार-टवर्ग के साथ यथासंख्य योग अभीष्ट नहीं है। सकार का षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर षकार आदेश होता है। तवर्ग का भी षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर टवर्ग आदेश होता है। आदेश में तो यथासंख्य विधि अभीष्ट है। सकार के स्थान में षकार और तवर्ग के स्थान में टवर्ग आदेश होता है।

*उदा०-(१) सकार का षकार के साथ योग में-**वृक्षाष्षट्**। छः वृक्ष हैं। **प्लक्षाष्षट्**। छः पिलखण हैं।*

*(२) सकार का टवर्ग के साथ-**रामष्टीकते**। राम जाता है। **देवष्टीकते**। देव जाता है। **रामष्ठक्कुरः**। राम देवता-प्रतिमा रूप है। **देवष्ठक्कुरः**। देव प्रतिमा रूप है।*

*(३) तवर्ग का षकार के साथ-**पेष्टा**। पीसनेवाला। **पेष्टुम्**। पीसने के लिये। **पेष्टव्यम्**। पीसना चाहिये। **स कृषीष्ट**। वह करे। **त्वं कृषीष्ठाः**। तू कर।*

*(४) तवर्ग का टवर्ग के साथ-**अग्निचिट्टीकते**। अग्निचित् जाता है। **सोमसुट्टीकते**। सोमसुत् जाता है। **अग्निचिट्ठक्कुरः**। अग्निचित् ठाकुर है। **सोमसुट्ठक्कुरः**। सोमसुत् ठाकुर है। **अग्निचिड्डयते**। अग्निचित् विमान से उड़ता है। **सोमसुड्डयते**। सोमसुत् विमान से उड़ता है। **अग्निचिड्ढौकते**। अग्निचित् जाता है। **सोमसुड्ढौकते**। सोमसुत् जाता है, ढुका करता है। **अग्निचिण्णकारः**। अग्निचित् कल्याणकारी है। **सोमुसुण्णकारः**। सोमसुत् कल्याणकारी है। णः=शिवः।*

*(५) **अट्टते**। वह अतिक्रमण करता है। **अड्डति**। वह संयोजन करता है।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षाष्षट्**। वृक्षास्+षट्, इस स्थिति में '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से खर्लक्षण*

विसर्जनीय आदेश होकर 'विसर्जनीयस्य सः' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। इस सूत्र से षकार के योग में सकार को षकार आदेश होता है। ऐसे ही-प्लक्षाष्षट्।

(२) रामष्टीकते। रामस्+टीकते, इस स्थिति में इस सूत्र से सकार को टवर्ग के योग में षकार आदेश होता है। ऐसे ही-देवष्टीकते। रामष्ठक्कुरः, देवष्ठक्कुरः।

(३) पेष्टा। यहां 'पिष्लृ पेषणे' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से षकार के योग में तकार को टकार आदेश होता है। तुमुन्-प्रत्यय में-पेष्टुम्। तव्यत्-प्रत्यय में-पेष्टव्यम्।

(४) कृषीष्ट। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लिङ्' प्रत्यय, लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश, 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से सीयुट् और 'सुट् तिथोः' (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से उभयत्र षत्व होता है। इस सूत्र से षकार के योग में तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। 'थास्' प्रत्यय में-कृषीष्ठाः।

(५) अग्निचिट्टीकते। अग्निचित्+टीकते, इस स्थिति में इस सूत्र से टकार के योग में तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। सोमसुत्+टीकते=सोमसुट्टीकते।

(६) अग्निचिट्ठक्कुरः। अग्निचित्+ठक्कुरः, इस स्थिति में इस सूत्र से ठकार के योग में तकार को टवर्ग ठकार आदेश होता है। सोमसुत्+ठक्कुरः=सोमसुट्ठक्कुरः।

(७) अग्निचिड्डयते। अग्निचित्+डयते, इस स्थिति में प्रथम 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को टवर्ग डकार आदेश होता है। सोमसुत्+डयते=सोमसुड्डयते। अग्निचित्+ढौकते=अग्निचिड्ढौकते। सोमसुत्+ढौकते=सोमसुड्ढौकते। अग्निचित्+णकार। अग्निचिद्+णकार=अग्निचिण्णकारः। यहां प्रथम 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को टवर्ग णकार आदेश होता है। सोमसुत्+णकार। सोमसुद्+णकार=सोमसुण्णकारः।

(८) अट्टत्ते। यहां अट्ट {अत्ट} 'अतिक्रमणहिंसनयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। धातुपाठ में पठित 'अट्ट' धातु मूलतः 'अत्ट्' है। इस सूत्र से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। ऐसे ही 'अड्ड (अत्ड) अभियोगे' (भ्वा०प०) धातु से-अड्डति।

षकारटवर्गप्रतिषेधः-

(३) न पदान्ताट्टोरनाम्।४१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, पदान्तात् ५।१ टोः ६।१ अनाम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्मात्-पदान्तात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। न नाम् इति अनाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, स्तोः, ष्टुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदान्ताट्टोरनाम् स्तोः ष्टुर्नः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्ताट्टवर्गात् परस्य, नाम्वर्जितस्य सकारस्य तवर्गस्य च स्थाने, षकारटवर्गावादेशौ न भवतः।

उदा०-श्वलिट् सरति। मधुलिट् तरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पद के अन्त में विद्यमान (टोः) टवर्ग से परवर्ती (अनाम्) नाम् से भिन्न (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (ष्टुः) षकार और टवर्ग आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**श्वलिट् सरति।** कुत्ते चाटनेवाला (घोरी) पड़ा-पड़ा सरकता है। **मधुलिट् तरति।** मधु चाटनेवाला तैरता है।*

*सिद्धि-**श्वलिट् सरति।** श्वलिट् के पदान्त टकार से परवर्ती 'सरति' के सकार को इस सूत्र से षकार आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही **मधुलिट् तरति** में तकार को टकार आदेश का प्रतिषेध है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से षकार और टकार आदेश प्राप्त था। अतः यह प्रतिषेध किया गया है।*

*'नाम्' का निषेध इसलिये किया है कि यहां प्रतिषेध न हो-षड्+नाम्=**षण्णाम्।***

टवर्गप्रतिषेधः-

(४) तोः षि।४२।

प०वि०-तोः ६।१ षि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां तोः षि न।

अर्थः-संहितायां विषये तवर्गस्य स्थाने, षकारे परतो यदुक्तं तन्न भवति। टवर्गादेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०-अग्निचित्षण्डः। भवान् षण्डः। महान् षण्डः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तोः) तवर्ग के स्थान में (षि) षकार परे रहने पर (न) जो कहा है वह नहीं होता है, अर्थात् टवर्ग आदेश नहीं होता है।*

उदा०-अग्निचित्षण्डः । अग्निचित् नपुंसक है। भवान् षण्डः । आप नपुंसक हैं। महान् षण्डः । बड़ा नपुंसक।

सिद्धि-अग्निचित्षण्डः । यहां अग्निचित् के तकार को षण्ड के षकार के योग में इस सूत्र से टवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से टवर्ग आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-भवान् षण्डः, महान् षण्डः ।

उक्तप्रतिषेधः-

(५) शात् ।४३।

वि०-शात् ५।१।

अनु०-संहितायाम्, न, तोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां शात् तोर्न।

अर्थः-संहितायां विषये शकारात् परस्य तवर्गस्य स्थाने यदुक्तं तन्न भवति। 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) इति चवर्गादेशो न भवतीत्यर्थः ।

उदा०-प्रश्नः । विश्नः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शात्) शकार से परवर्ती (तोः) तवर्ग के स्थान में (न) जो कहा है, वह नहीं होता है, अर्थात् 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से प्राप्त चवर्ग आदेश नहीं होता है।*

उदा०-प्रश्नः । पूछना। विश्नः । गति करना।

सिद्धि-प्रश्नः । यहां 'प्रछ ज्ञीप्सायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'यजयाचयतविच्छ-प्रच्छरक्षो नङ्' (३।३।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६।४।१९) से छकार को शकार आदेश है। प्रश्+न, इस स्थिति में इस सूत्र से शकार के योग में तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार आदेश का प्रतिषेध होता है। 'विछ गतौ' (तु०प०) धातु से-विश्नः ।

अनुनासिकादेशविकल्पः-

(६) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ।४४।

प०वि०-यरः ६।१ अनुनासिके ७।१ अनुनासिकः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते। 'न पदान्ताट्टोरनाम्' (८।४।४१) इत्यस्माच्च पदान्तादिति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वय:-संहितायां पदान्तस्य यरोऽनुनासिके वाऽनुनासिक:।

अर्थ:-संहितायां विषये पदान्तस्य यर: स्थानेऽनुनासिके परतो विकल्पेन अनुनासिकादेशो भवति।

उदा०-वाग्नयति, वाङ्नयति। श्वलिड् नयति, श्वलिण्नयति। अग्निचिद् नयति, अग्निचिन्नयति। त्रिष्टुब् नयति, त्रिष्टुम् नयति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (यर:) यर् वर्ण के स्थान में (अनुनासिके) अनुनासिक वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (अनुनासिक:) अनुनासिक आदेश होता है।*

*उदा०-**वाग्नयति, वाङ्नयति।** वेदवाणी सन्मार्ग पर ले जाती है। **श्वलिड् नयति, श्वलिण् नयति।** कुत्ते चाटनेवाला ले जाता है। **अग्निचिद् नयति, अग्निचिन्नयति।** अग्निचित् ले जाता है। **त्रिष्टुब् नयति, त्रिष्टुम् नयति।** त्रिष्टुप् ले जाता है।*

*सिद्धि-**वाग्नयति।** यहां वाग्+नयति, इस स्थिति में इस सूत्र से यर् वर्ण (ग्) को अनुनासिक वर्ण (न) परे होने पर अनुनासिक आदेश नहीं है-**वाङ्नयति।** गकार को 'स्थानेऽन्तरतम:' (१।१।५०) से स्थानकृत आन्तर्य से ङकार अनुनासिक होता है। 'ञमङणनमा: स्वस्थाननासिकास्थाना:' (पा०शि० १।२०)। ऐसे ही-**श्वलिड् नयति, श्वलिण्नयति** आदि।*

द्विर्वचनम्-

(७) अचो रहाभ्यां द्वे।४५।

प०वि०-अच: ५।१ रहाभ्याम् ५।२ द्वे १।२।

स०-रश्च हश्च तौ रहौ, ताभ्याम्-रहाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-संहितायाम्, यर इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् अचो रहाभ्यां यरो द्वे।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽच: पराभ्यां रेफहकाराभ्याम् उत्तरस्य यरो द्वे भवत:।

उदा०-अर्क्क:। मर्क्क:। आर्य्य:। ब्रह्म्मा। अपह्न्नुते।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अच:) अच् वर्ण से परवर्ती (रहाभ्याम्) रेफ और हकार वर्ण से उत्तर जो (यर:) यर् वर्ण है उसे (द्वे) द्वित्व होता है।*

उदा०–अर्क्कः। सूर्य/आक। मर्क्कः। बन्दर। आर्य्यः। ईश्वरपुत्र। ब्रह्म्मा। प्रजापति। अपह्न्नुते। वह हटाता है।

सिद्धि–अर्क्कः। यहां अकार अच् वर्ण से परवर्ती रेफ से उत्तर जो यर् वर्ण (क्) है उसे इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। ऐसे ही–मर्क्कः आदि।

द्विर्वचनम्–

(८) अनचि च।४६।

प०वि०–अनचि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०–न अज् इति अनच्, तस्मिन्–अनचि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, यरः, अचः, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अचो यरोऽनचि च द्वे।

अर्थः–संहितायां विषयेऽचः परस्य यरोऽनचि परतश्च द्वे भवतः।

उदा०–दद्ध्यत्र। मद्ध्वत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचः) अच् वर्ण से परवर्ती (यरः) यर् वर्ण को (अनचि) अच् से भिन्न (हल्) वर्ण परे होने पर (च) भी (द्वे) द्वित्व होता है।*

उदा०–दद्ध्यत्र। दही यहां है। मद्ध्वत्र। मधु यहां है।

सिद्धि–दद्ध्यत्र। यहां अकार अच् वर्ण से परवर्ती धकार यर् वर्ण को अनच् (हल्) वर्ण (य्) परे होने पर द्वित्व होता है–दध्ध् यत्र। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को धकार झश् वर्ण परे होने पर जश् दकार आदेश है–दद्ध्यत्र। ऐसे ही–मधु+अत्र=मद्ध्वत्र।

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(९) नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य।४७।

प०वि०–न अव्ययपदम्, आदिनी १।१ (सप्तम्यर्थे), आक्रोशे ७।१ पुत्रस्य ६।१।

अनु०–संहितायाम्, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पुत्रस्याऽऽदिनी द्वे न, आक्रोशे।

अर्थः–संहितायां विषये पुत्रशब्दस्याऽऽदिनीशब्दे परतो द्वे न भवतः, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०-पुत्रादिनी त्वमसि पापे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पुत्रस्य) पुत्र शब्द को (आदिनी) आदिनी शब्द परे रहने पर (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है, (आक्रोशे) यदि वहां निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति हो।*

*उदा०-**पुत्रादिनी त्वमसि पापे।** हे पापिनी ! तू पुत्रों को खानेवाली (डाण) है।*

*सिद्धि-**पुत्रादिनी।** यहां 'पुत्र' शब्द में अच् वर्ण (उ) से परवर्ती यर् वर्ण (त्) को अनच् वर्ण (र्) परे रहते द्विर्वचन नहीं होता है। '**अनचि च**' (८।४।४६) से द्विर्वचन प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

*'**पुत्रादिनी**' शब्द में पुत्र-उपपद '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**' (३।२।७८) से तच्छील अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

द्विर्वचनप्रतिषेधः—

(१०) शरोऽचि।४८।

प०वि०-शरः ६।१ अचि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां शरोऽचि द्वे न।

अर्थः-संहितायां विषये शरोऽचि परतो द्वे न भवतः।

उदा०-आदर्शः, अक्षदर्शः। कर्षति, वर्षति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शरः) शर् वर्ण को (अचि) अच् वर्ण परे रहने पर (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**आदर्शः।** दर्पण (शीशा)। **अक्षदर्शः।** पासे को देखनेवाला। **कर्षति।** वह खैंचता है। **वर्षति।** वह बरसता है।*

*सिद्धि-**आदर्शः।** यहां इस सूत्र से अच् वर्ण (अ) परक शर् वर्ण (श्) को द्वित्व का प्रतिषेध होता है। '**अचो रहाभ्यां द्वे**' (८।४।४५) से द्विर्वचन प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**अक्षदर्शः, कर्षति, वर्षति।***

द्विर्वचनप्रतिषेधः—

(११) त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य।४९।

प०वि०-त्रिप्रभृतिषु ७।३ शाकटायनस्य ६।१।

स०-त्रयः प्रभृतिर्येषां ते त्रिप्रभृतयः, तेषु-त्रिप्रभृतिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य द्वे न।

अर्थः–संहितायां विषये त्रिप्रभृतिषु संयुक्तेषु वर्णेषु परतः, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन द्वे न भवतः।

उदा०–इन्द्रः, चन्द्रः, उष्ट्रः, राष्ट्रम्, भ्राष्ट्रम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (त्रिप्रभृतिषु) तीन-आदि संयुक्त वर्णों में (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के मत में (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**इन्द्रः**। राजा। **चन्द्रः**। चांद। **उष्ट्रः**। ऊंट। **राष्ट्रम्**। राज्य। **भ्राष्ट्रम्**। भाड़।*

***सिद्धि**–**इन्द्रः**। यहां न् द् र् ये तीन संयुक्त वर्ण हैं। इस सूत्र से इन संयुक्त-वर्णों में द्वित्व का प्रतिषेध होता है। शाकटायन का ग्रहण पूजा के लिये किया गया है, अतः पाणिनि मुनि और शाकटायन आचार्य का इस विषय में समान मत है। ऐसे ही–**चन्द्रः** आदि।*

यहां 'अनचि च' (८।४।४६) से द्वित्व प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(१२) सर्वत्र शाकल्यस्य।५०।

प०वि०–सर्वत्र अव्ययपदम्, शाकल्यस्य ६।१।

अनु०–संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां सर्वत्र शाकल्यस्य द्वे न।

अर्थः–संहितायां विषये सर्वत्र शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन द्वे न भवतः।

उदा०–अर्कः, मर्कः, आर्यः, ब्रह्मा, अपह्नुते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सर्वत्र) सब स्थानों में (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**अर्कः**। सूर्य। **मर्कः**। बन्दर। **आर्यः**। ईश्वरपुत्र। **ब्रह्मा**। प्रजापति। **अपह्नुते**। वह हटाता है।*

***सिद्धि**–**अर्कः**। यहां अच् वर्ण से परवर्ती रेफ और उससे उत्तरवर्ती ककार को इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में द्वित्व नहीं होता है। **'अचो रहाभ्यां द्वे'** (८।४।४५) से द्विर्वचन प्राप्त था। अतः इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में प्रतिषेध किया गया है।*

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(१३) दीर्घादाचार्याणाम्।५१।

प०वि०–दीर्घात् ५।१ आचार्याणाम् ६।३।

अनु०–संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां दीर्घाद् आचार्याणां द्वे न।

अर्थः–संहितायां विषये दीर्घात् परस्य वर्णस्याचार्याणां मतेन द्वे न भवतः।

उदा०–दात्रम्, पात्रम्, सूत्रम्, मूत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (दीर्घात्) दीर्घ से परवर्ती वर्ण को (आचार्याणाम्) पाणिनि मुनि के आचार्य (गुरुवरवर्ष) के मत में (द्वे) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**दात्रम्**। दाती। **पात्रम्**। बर्तन। **सूत्रम्**। सूत। **मूत्रम्**। पेशाब।*

सिद्धि-दात्रम्। *यहां दीर्घ आकार से परवर्ती यर् तकार को अनच् (हल्) रेफ वर्ण परे होने पर पाणिनि मुनि के आचार्यप्रवरवर्ष के मत में द्वित्व नहीं होता है। ऐसे ही-**पात्रम्**, आदि।*

विशेषः *पाणिनीय अष्टाध्यायी में 'आचार्याणाम्' इस पद से पाणिनि मुनि के गुरुवर (वर्ष आचार्य) का ग्रहण किया जाता है। बहुवचन में निर्देश आदर का द्योतक है-**आदरार्थं बहुवचनम्**।*

जशादेशः–

(१४) झलां जश् झशि।५२।

प०वि०–झलाम् ६।३ जश् १।१ झशि ७।१।

अनु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां झलां झशि जश्।

अर्थः–संहितायां विषये झलां स्थाने झशि परतो जशादेशो भवति।

उदा०–लब्धा, लब्धुम्, लब्धव्यम्। दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्। बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (झशि) झश् वर्ण परे रहने पर (जश्) जश् आदेश होता है।*

*उदा०-**लब्धा**। प्राप्त करनेवाला। **लब्धुम्**। प्राप्त करने के लिये। **लब्धव्यम्**। प्राप्त करना चाहिये। **दोग्धा**। दुहनेवाला। **दोग्धुम्**। दुहने के लिये। **दोग्धव्यम्**। दुहना चाहिये। **बोद्धा**। जाननेवाला। **बोद्धुम्**। जानने के लिये। **बोद्धव्यम्**। जानना चाहिये।*

***सिद्धि-(१)** लब्धा। यहां '**डुलभष् प्राप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से '**ण्वुलतृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से 'तृच्' के तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से 'लभ्' के झल् भकार को जश् बकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-लब्धुम्। तव्यत् प्रत्यय में-लब्धव्यम्।*

*(२) **दोग्धा**। यहां '**दुह प्रपूरणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। '**दादेर्धातोर्घः**' (८।२।३२) से 'दुह' धातु के हकार को घकार और पूर्ववत् तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से झल् घकार को जश् गकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-दोग्धुम्। तव्यत् प्रत्यय में-दोग्धव्यम्।*

*(३) **बोद्धा**। यहां '**बुध अवगमने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से झल् धकार को जश् दकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-बोद्धुम् तव्यत् प्रत्यय में-बोद्धव्यम्।*

***विशेषः** झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ये २४ वर्ण झल् हैं। इनके स्थान में झश् अर्थात् झ, भ, घ, द, ध वर्ण परे रहने पर जश् अर्थात् ज, ब, ग, ड, द वर्ण आदेश होते हैं। यहां झल् वर्णों के स्थान में उनके स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से जश् वर्ण आदेश किये जाते हैं। जैसे कि 'लब्धा' पद में भकार के स्थान में जश् बकार किया गया है। भकार और बकार दोनों का स्थान '**उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः**' (पा०शि० १।१४) से ओष्ठ है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

चर्+जश्-

(१५) अभ्यासे चर्च।५३।

प०वि०-अभ्यासे ७।१ चर् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, झलाम्, जश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अभ्यासे झलां चर् जश् च।

अर्थः-संहितायां विषयेऽभ्यासे वर्तमानानां झलां स्थाने चर् जश् च आदेशो भवति।

उदा०-(चर्) स चिखनिषति। स चिच्छित्सति। स टिठक्कुरयिषति। स तिष्ठासति। स पिफलिषति। स बुभूषति। स जिघत्सति। स डुढौकिषते।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अभ्यासे) अभ्यास में विद्यमान (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (जश्) जश् (च) और (चर्) चर् आदेश होता है।

उदा०-(चर्) स **चिखनिषति**। वह खोदना चाहता है। स **चिच्छित्सति**। वह काटना चाहता है। स **टिठक्कुरयिषति**। वह देवता की प्रतिमा बनाना चाहता है। स **तिष्ठासति**। वह ठहरना चाहता है। स **पिफलिषति**। (जश्) स **बुभूषति**। वह सत्ता में रहना चाहता है। स **जिघत्सति**। वह हिंसा करना चाहता है। स **डुढौकिषते**। वह गति (ढुकाव) करना चाहता है।

सिद्धि-(१) **चिखनिषति**। यहां 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'खन्' धातु को द्वित्व होता है। प्रथम '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से कवर्ग खकार को चवर्ग छकार आदेश होकर इस सूत्र से 'खन्' धातु के अभ्यास छकार को चर् चकार आदेश होता है।

(२) **चिच्छित्सति**। यहां '**छिदिर् द्वैधीकरणे**' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् सन् प्रत्यय और 'छिद्' धातु को द्वित्व है। इस सूत्र से 'छिद्' धातु के अभ्यास छकार को चर् चकार आदेश होता है।

(३) **टिठक्कुरयिषति**। यहां प्रथम 'ठक्कुर' शब्द से **वा०- 'तत्करोति तदाचष्टे०'** (३।१।२६) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'ठक्कुरि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व है। इस सूत्र से 'ठक्कुरि' धातु के अभ्यास ठकार को चर् टकार आदेश होता है।

(४) **तिष्ठासति**। यहां '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'स्था' धातु को द्वित्व है। '**शर्पूर्वाः खयः**' (७।४।६१) से 'स्था' अभ्यास का खय् 'थ' शेष रहता है। इस सूत्र से अभ्यास थकार को चर् तकार आदेश होता है।

(५) **पिफलिषति**। यहां '**फल निष्पत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और फल धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास के फकार को चर् पकार आदेश होता है।

(६) **बुभूषति**। यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास के भकार को जश् बकार आदेश होता है।

(७) **जिघत्सति**। यहां '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। प्रथम '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से 'हन्' धातु के अभ्यास हकार को चवर्ग झकार होकर इस सूत्र से झकार को जश् जकार आदेश होता है।

(८) **डुढौकिषते**। यहां '**ढौकृ गतौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और फल धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से धातु के अभ्यास ढकार को जश् डकार आदेश होता है।

विशेषः *(१) यहां विद्वानों का यह विवेचन है कि खय् वर्णों को चर् और झश् वर्णों को जश् आदेश होता है (खयां चरो झशां जशः)–*

	खय्	चर्	झश्	जश्
१.	ख	च	झ	ज
२.	फ	प	भ	ब
३.	छ	च	घ	ग
४.	ठ	ट	ढ	ड
५.	थ	त	ध	द
६.	च	च	ज	ज
७.	ट	ट	ब	ब
८.	त	त	ग	ज
९.	क	च	ड	ड
१०.	प	प	द	द

कवर्ग और हकार वर्ण को 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से प्रथम चवर्ग आदेश होकर इस सूत्र से यथाप्राप्त चर् अथवा जश् आदेश होता है।

*(२) यहां पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति से-प्रकृति चर् को चर् ही आदेश होता है। जैसे-(च) **चिचीषति। (ट) टिटीकषते। (त) तितनिषति।** और प्रकृति जश् को जश् ही आदेश होता है। जैसे-(ज) **जिजनिषते। (ब) बुबुधे। (द) ददौ। (ड) डिड्ये।** 'डीङ् विहायसा गतौ' (भ्वा०आ०)।*

चरादेशः–

(१६) खरि च।५४।

प०वि०–खरि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, झलाम्, चर् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् झलां खरि च चर्।

अर्थः–संहितायां विषये झलां स्थाने खरि परतश्च चरादेशो भवति।

उदा०–(भिद्) भेत्ता, भेत्तुम्, भेत्तव्यम्। **(युध्)** स युयुत्सते। **(रभ्)** स आरिप्सते। **(लभ्)** स आलिप्सते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (च) भी (चर्) चर् आदेश होता है।*

*उदा०-(भिद्) **भेत्ता**। फाड़नेवाला। **भेत्तुम्**। फाड़ने के लिये। **भेत्तव्यम्**। फाड़ना चाहिये। (युध्) **स युयत्सते**। वह प्रहार करना चाहता है। (रभ्) **स आरिप्सते**। वह आरम्भ करना चाहता है। (लभ्) **स आलिप्सते**। वह प्राप्त करना चाहता है।*

***सिद्धि**-(१) **भेत्ता**। यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से 'भिद्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। इस सूत्र से झल् दकार को खर् तकार परे होने पर चर् तकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**भेत्तुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**भेत्तव्यम्**।*

*(२) **युयुत्सते**। यहां '**युध सम्प्रहारे**' (दि०आ०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छाया वा**' (३।१।७) से सन्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से झल् धकार को, खर् सकार परे होने पर, चर् तकार आदेश होता है।*

*(३) **आरिप्सते**। यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**रभ राभस्ये**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् सन्' प्रत्यय और धातु को द्विर्वचन है। '**अत्र लोपोऽभ्यासस्य**' (७।४।५८) से अभ्यास का लोप और '**सनि मीमाघु०**' (७।४।५४) से 'रभ्' के अच् (अ) के स्थान में 'इस्' आदेश है। '**स्कोः संयोगाद्योरन्ते च**' (८।२।२९) से 'इस्' के सकार का लोप है। इस सूत्र से झल् भकार को, खर् सकार परे होने पर, चर् पकार आदेश होता है।*

*(४) **आलिप्सते**। आङ्-उपसर्गपूर्वक '**डुलभष् प्राप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

चरादेशविकल्पः-

(१७) वाऽवसाने।५५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, अवसाने ७।१।

अनु०-संहितायाम्, झलाम्, चर् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अवसाने झलां वा चर्।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवसाने वर्तमानां झलां स्थाने विकल्पेन चरादेशो भवति।

उदा०-**वाच्**-वाक्, वाग्। **त्वच्**-त्वक्, त्वग्। **श्वलिड्**-श्वलिट्, श्वलिड्। **त्रिष्टुभ्**-त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवसाने) विराम में विद्यमान (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (वा) विकल्प से (चर्) चर् आदेश होता है।*

उदा०-वाच्-वाक्, वाग्। वाणी। त्वच्-त्वक्, त्वग्। त्वचा (खाल)। श्वलिड्-श्वलिट्, श्वलिड्। कुत्तों को चाटनेवाला (घोरी)। त्रिष्टुभ्-त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्। एक वैदिक छन्द का नाम है।

सिद्धि-वाक्। यहां 'वाच्' शब्द के चकार को 'चो: कु:' (८।२।३०) से कवर्ग ककार आदेश है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ककार को जश् गकार आदेश होता है। इस सूत्र से गकार को चर् ककार आदेश होता है और विकल्प-पक्ष में पूर्वोक्त गकार आदेश भी बना रहता है-वाक्। ऐसे ही-त्वक्, त्वग् आदि। यहां 'विरामोऽवसानम्' (१।४।१०९) से अवसान-संज्ञा है।

चरादेशविकल्पः-

(१८) अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः।५६।

प०वि०-अण: ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अनुनासिक: १।१।

स०-न प्रगृह्यमिति अप्रगृह्यम्, तस्य-अप्रगृह्यस्य (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायाम्, वा, अवसाने इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् अवसानेऽप्रगृह्यस्याणो वाऽनुनासिक:।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽवसाने वर्तमानस्य प्रगृह्यवर्जितस्याणो विकल्पेनानुनासिकादेशो भवति।

उदा०-दधि, दधिँ। मधु, मधुँ। कुमारी, कुमारीँ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवसाने) विराम में विद्यमान (अप्रगृह्यस्य) प्रगृह्य संज्ञा से भिन्न (अण:) अण् वर्ण को (वा) विकल्प से (अनुनासिक:) अनुनासिक आदेश होता है।*

उदा०-दधि, दधिँ। दही। मधु, मधुँ। शहद। कुमारी, कुमारीँ। कन्या।

सिद्धि-दधि। यहां इस सूत्र से दधि के अण् (इ) वर्ण को अनुनासिक आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में अनुनासिक आदेश है-दधिँ। ऐसे ही-मधु, मधुँ। यहां 'विरामोऽवसानम्' (१।४।१०९) से अवसान-संज्ञा है।

परसवर्णादेशः-

(१९) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।५७।

प०वि०-अनुस्वारस्य ६।१ ययि ७।१ परसवर्ण: १।१।

स०-परस्य सवर्ण इति परसवर्ण: (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽनुस्वारस्य स्थाने, ययि परतः परसवर्णादेशो भवति।

उदा०-शङ्किता, शङ्कितुम्, शङ्कितव्यम्। उञ्छिता, उञ्छितुम्, उञ्छितव्यम्। कुण्डिता, कुण्डितुम्, कुण्डितव्यम्। नन्दिता, नन्दितुम्, नन्दितव्यम्। कम्पिता, कम्पितुम्, कम्पितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अनुस्वारस्य) अनुस्वार वर्ण { ं } के स्थान में (ययि) यय् वर्ण परे रहने पर (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**शङ्किता**। शङ्का करनेवाला। **शङ्कितुम्**। शङ्का करने केलिये। **शङ्कितव्यम्**। शङ्का करनी चाहिये। **उञ्छिता**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करनेवाला। **उञ्छितुम्**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करने के लिये। **उञ्छितव्यम्**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करना चाहिये। **कुण्डिता**। कुण्ठित करनेवाला। **कुण्डितुम्**। कुण्ठित करने के लिये। **कुण्डितव्यम्**। कुण्ठित करना चाहिये। **नन्दिता**। समृद्ध होनेवाला। **नन्दितुम्**। समृद्ध होने केलिये। **नन्दितव्यम्**। समृद्ध होना चाहिये। **कम्पिता**। कांपनेवाला। **कम्पितुम्**। कांपने के लिये। **कम्पितव्यम्**। कांपना चाहिये।*

सिद्धि-(१) शङ्किता। *यहां **'शकि शङ्कायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। 'शकि' धातु के इदित् होने से **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नुम्' के नकार को अनुस्वार आदेश होता है। इस सूत्र से इस अनुस्वार को यय् ककार परे रहने पर परसवर्ण ङकार आदेश होता है। **'वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः'** (पा०शि० ६।१०) से अनुस्वार को कवर्गीय परसवर्ण ङकार होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**शङ्कितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**शङ्कितव्यम्**।*

*(२) **उञ्छिता। 'उछि उञ्छे'** (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण ञकार आदेश है।*

*(३) **कुण्डिता। 'कुडि वैकल्ये'** (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण णकार आदेश है।*

*(४) **नन्दिता। 'टुनदि समृद्धौ'** (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण नकार आदेश है।*

*(५) **कम्पिता। 'कपि चलने'** (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण मकार आदेश है।*

*'**अनुस्वारयमा नासिक्याः**' (पा०शि० १।१५) से अनुस्वार का स्थान नासिका है और '**ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः**' (पा०शि० १।२०) से ङ, ञ, ण, न, म वर्णों का अपने-अपने कण्ठादि स्थानों के सहित नासिका भी स्थान है। अतः अनुस्वार को इस स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से ङकार आदि परसवर्ण आदेश होते हैं।*

परसवर्णादेशविकल्पः–

(२०) वा पदान्तस्य।५८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, पदान्तस्य ६।१।

स०-पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, अनुस्वारस्य, ययि, परसवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परसवर्णः।

अर्थः–संहितायां विषये पदान्ते वर्तमानस्याऽनुस्वारस्य स्थाने, ययि परतो विकल्पेन परसवर्णादेशो भवति।

उदा०–तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्। तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (अनुस्वारस्य) अनुस्वार के स्थान में (ययि) यय् वर्ण परे रहने पर (वा) विकल्प से (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्।** उस विचित्र पंखोंवाले उड़ते हुये आकाशस्थ पक्षी का पुरुष ने कैसे वध किया। **तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्।** इस वाक्य में इस सूत्र से अनुस्वार को यय् वर्ण परे रहने पर परसवर्ण आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में पूर्वोक्त नियम से अनुस्वार को परसवर्ण आदेश है-**तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।***

परसवर्णादेशः–

(२१) तोर्लि।५६।

प०वि०–तोः ६।१ लि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, परसवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां तोर्लि परसवर्णः।

अर्थः–संहितायां विषये तवर्गस्य स्थाने लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति।

उदा०–अग्निचिल्लुनाति, सोमसुल्लुनाति। भवाँल्लुनाति, महाँल्लुनाति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तोः) तवर्ग के स्थान में (लि) लकार परे होने पर (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**अग्निचिल्लुनाति।** अग्निचित् काटता है। **सोमसुल्लुनाति।** सोमसुत् काटता है। **भवाँल्लुनाति।** आप काटते हो। **महाँल्लुनाति।** महान् पुरुष काटता है।*

सिद्धि-(१) अग्निचिल्लुनाति।** यहां इस सूत्र से अग्निचित् के तवर्ग तकार को लुनाति का लकार वर्ण परे रहने पर परसवर्ण लकार आदेश होता है। ऐसे ही-**सोमसुत्+लुनाति=सोमसुल्लुनाति।

*(२) **भवाँल्लुनाति।** यहां इस सूत्र से भवान् के तवर्ग नकार को लुनाति का लकार वर्ण परे होने पर परसवर्ण अनुनासिक लकार आदेश होता है। **'अन्तस्था द्विप्रभेदाः सानुनासिका निरनुनाकिाश्च'** (पा०शि० ६।८) से अन्तस्थ (य व र ल) वर्ण सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से दो प्रकार के हैं। अतः यहां सानुनासिक तवर्ग नकार को सानुनासिक परसवर्ण लकार (लँ) आदेश होता है। 'स्थानेऽन्तरतमः' (१।१।४९) से किसी के स्थान में विधीयमान आदेश अन्तरतम (सदृशतम) ही किया जाता है। ऐसे ही-**महान्+लुनाति=महाँल्लुनाति।***

पूर्वसवर्णादेशः-

(२२) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य।६०।

प०वि०-उदः ५।१ स्था-स्तम्भोः ६।२ पूर्वस्य ६।१।

स०-स्थाश्च स्तम्भ् च तौ स्थास्तम्भौ, तयोः-स्थास्तम्भोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये उदः परयोः स्थास्तम्भोर्धात्वोः पूर्वसवणदिशो भवति।

उदा०-(स्था) उत्थाता, उत्थितुम्, उत्थितव्यम्। **(स्तम्भ)** उत्तम्भिता, उत्तम्भितुम्, उत्तम्भितव्यम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदः) उत्-उपसर्ग से परवर्ती (स्थास्तम्भोः) स्था और स्तम्भ धातुओं का (पूर्वस्य सवर्णः) पूर्व सवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-(स्था) **उत्थाता**। उठनेवाला। **उत्थितुम्**। उठने के लिये। **उत्थितव्यम्**। उठना चाहिये। **(स्तम्भ) उत्तम्भिता**। रोकनेवाला। **उत्तम्भितुम्**। रोकने के लिये। **उत्तम्भितव्यम्**। रोकना चाहिये।*

***सिद्धि-(१) उत्थाता**। उत्+स्थाता। उत्+थ् थाता। उत्+०थाता। उत्+थाता। उत्थाता।*

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से '**आदेः परस्य**' (१।१।५३) के नियम से उत्-उपसर्ग से परवर्ती 'स्थाता' के सकार को पूर्वसवर्ण आदेश होता है। अतः अघोष तथा महाप्राण प्रयत्न वाले सकार को उसका अन्तरतम (सदृशतम) अर्थात् उसी प्रयत्नवाला थकार पूर्वसवर्ण होता है। '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६४) से पूर्ववर्ती थकार का विकल्प से लोप होता है। विकल्प-पक्ष में थकार का लोप नहीं होता है-**उत्थ्थाता**।*

कई आचार्य बाह्य प्रयत्न के सादृश्य को न मानकर सकार को पूर्वसवर्ण तकार आदेश करते हैं। उनके मत में उत्थाता अथवा उत्त्थाता प्रयोग बनता है।

*तुमुन् प्रत्यय में-**उत्थातुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**उत्थातव्यम्**।*

*(२) **उत्तम्भिता**। उत्-उपसर्ग '**स्तम्भु प्रतिबन्धे**' (प०सौत्रधातु) से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। तुमुन् प्रत्यय में-**उत्तम्भितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**उत्तम्भितव्यम्**।*

पूर्वसवर्णादेशविकल्पः-

(२३) झयो होऽन्यतरस्याम्।६१।

प०वि०-झयः ५।१ हः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, सवर्णः, पूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां झयो होऽन्यतरस्यां पूर्वस्य सवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये झयः परस्य हकारस्य स्थाने, विकल्पेन पूर्वसवणादिशो भवति।

उदा०-प्राग् हसति, प्राग्घसति। मधुलिड् हसति, मधुलिड्ढसति। अग्निचिद् हसति, अग्निचिद्धसति। त्रिष्टुब् हसति, त्रिष्टुब्भसति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झयः) झय् वर्ण से परवर्ती (हः) हकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (पूर्वस्य सवर्णः) पूर्व सवर्ण **आदेश** होता है।*

*उदा०-**प्राग् हसति, प्राग्घसति।** वह पहले हंसता है। **मधुलिड् हसति, मधुलिड्ढसति।** मधुलिट् हंसता है। **अग्निचिद् हसति, अग्निचिद्धसति।** अग्निचित् हंसता है। **त्रिष्टुब् हसति, त्रिष्टुब्भसति।** त्रिष्टुप् हंसता है।*

*सिद्धि-**प्राग् हसति।** यहां 'प्राक्' शब्द के ककार को 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से जश् गकार आदेश है। यहां हकार को पूर्वसवर्ण आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में पूर्वसवर्ण आदेश है-**प्राग्घसति।** 'स्थानेऽन्तरतमः' (८।२।३९) के नियम से गकार से परवर्ती महाप्राण हकार को उसका अन्तरतम महाप्राण घकार पूर्वसवर्ण होता है। '**हकारेण चतुर्थाः**' (पा०शि० ४।१०) से हकार के साथ वर्ग के चतुर्थ वर्ण (घ, झ, ढ, ध, भ) का आन्तर्य (सादृश्य) है। ऐसे ही-**मधुलिड्ढसति, अग्निचिद्धसति, त्रिष्टुब्भसति।** यहां हकार के स्थान में उसके अन्तरतम क्रमशः ढकार, धकार और भकार पूर्वसवर्ण हैं।*

छकारादेशविकल्पः-

(२४) शश्छोऽटि।६२।

प०वि०-शः ६।१ छः १।१ अटि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, झयः, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां झयः शोऽटि अन्यतरस्यां छः।

अर्थः-संहितायां विषये झयः परस्य शकारस्य स्थानेऽटि परतो विकल्पेन छकारादेशो भवति।

उदा०-प्राक् शेते, प्राक्छेते। अग्निचित् शेते, अग्निचिच्छेते। मधुलिट् शेते। मधुलिट्छेते। त्रिष्टुप् शेते, त्रिष्टुप्छेते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झयः) झय् वर्ण से परवर्ती (शः) शकार के स्थान में (अटि) अट् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (छः) छकार आदेश होता है।*

*उदा०-**प्राक् शेते, प्राक्छेते।** वह पहले सोता है। **अग्निचित् शेते, अग्निचिच्छेते।** अग्निचित् सोता है। **मधुलिट् शेते। मधुलिट्छेते।** मधुलिट् सोता है। **त्रिष्टुप् शेते, त्रिष्टुप्छेते।** त्रिष्टुप् सोता है।*

*सिद्धि-**प्राक् शेते।** यहां इस सूत्र से झय् ककार वर्ण से परवर्ती शेते के शकार को अट् वर्ण (ए) परे होने पर छकार आदेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में छकार आदेश है-**प्राक्छेते।** ऐसे ही-**अग्निचिच्छेते, मधुलिट्छेते, त्रिष्टुप्छेते।** छकार आदेश के पश्चात् '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।४०) से तकार को चवर्ग चकार आदेश है।*

लोपादेशः–

(२५) हलो यमां यमि लोपः ।६३।

प०वि०–हलः ५ ।१ यमाम् ६ ।३ यमि ७ ।१ लोपः ।

अनु०–संहितायाम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–संहितायां हलो यमां यमि अन्यतरस्यां लोपः ।

अर्थः–संहितायां विषये हलः परेषां यमां यमि परतो विकल्पेन लोपो भवति ।

उदा०–शय्या, शय्य्या । आदित्यः, आदित्य्यः । आदित्यः, आदित्य्यः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (हलः) हल् वर्ण से परवर्ती (यमाम्) यम् वर्णों का (यमि) यम् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**शय्या, शय्य्या** । सेज। **आदित्यः, आदित्य्यः** । सूर्य। **आदित्यः, आदित्य्यः** । सूर्य।*

सिद्धि-(१) शय्या *। शीङ्+क्यप्। शी+य। श्अयङ्+य। शय्+य। शय्य+टाप्। शय्या।*

*यहां **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०प०) धातु से **'संज्ञायां समजनिषद०'** (३।३।९९) से **'क्यप्'** प्रत्यय है। **'अयङ् यि क्ङिति'** (७।४।२२) से धातु को अयङ् आदेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। **'अनचि च'** (८।४।४६) से यर् (य्) को द्वित्व होकर 'शय्य्या' प्रयोग बनता है। इस सूत्र से हल् यकार से परवर्ती यम् यकार का यम् यकार वर्ण परे होने पर लोप हो जाता है। विकल्प पक्ष में यकार का लोप नहीं है, यहां तीन यकार का श्रवण होता है-**शय्य्या**।*

(२) आदित्यः *। अदिति+ण्य। अदिति+य। आदित्+य। आदित्य+सु। आदित्यः।*

*यहां 'अदिति' शब्द से **'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः'** (४।१।८५) से 'ण्य' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से इकार का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है। **आदित्यः**, इस स्थिति में वा०-**'यणो मयो द्वे भवतः'** (८।४।४६) से मय् तकार से परवर्ती यण् यकार को द्वित्व होता है-**आदित्य्यः**। इस प्रकार यहां एक यकार अथवा दो यकारों का श्रवण होता है।*

(३) आदित्य्यः *। यहां पूर्वोक्त 'आदित्य' शब्द से **'साऽस्य देवता'** (४।१।८५) से देवता अर्थ में यथाविहित 'ण्य' प्रत्यय है-आदित्य+ण्य। आदित्य्+य। आदित्य्य+सु।*

*आदित्य्यः, इस स्थिति में वा०-'**यणो मयो द्वे भवतः**' (८।४।४६) से यकार को द्वित्व होकर-**आदित्य्य्यः**। जब विकल्प-पक्ष में यकार को द्विर्वचन नहीं होगा तब इस सूत्र से एक यकार का लोप होकर-**आदित्यः** रूप बनता है।*

लोपादेशविकल्पः-

(२६) झरो झरि सवर्णे।६४।

प०वि०-झरः ६।१ झरि ७।१ सवर्णे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, अन्यतरस्याम्, हलः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां हलो झरः सवर्णे झरि अन्यतरस्यां लोपः।

अर्थः-संहितायां विषये हलः परस्य झरः, सवर्णे झरि परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-प्रत्तम्, प्रत्त्तम्। अवत्तम्, अवत्त्तम्। मरुत्तम्, मरुत्त्तम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (हलः) हल् वर्ण से परवर्ती (झरः) झर् वर्ण का (सवर्णे) तुल्य प्रयत्नवाला (झरि) झर् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**प्रत्तम्, प्रत्त्तम्**। उसने प्रदान किया। **अवत्तम्, अवत्त्तम्**। उसने अवदान किया। **मरुत्तम्, मरुत्त्तम्**। मरुत् देवताओं के द्वारा दान किया हुआ।*

*सिद्धि-**प्रत्तम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। 'अचः उपसर्गात्तः' (७।४।४७) स अजन्त 'प्र' उपसर्ग से उत्तरवर्ती 'दा' धातु के आकार को तकार आदेश है। 'खरि च' (८।४।५४) से दकार को चर् तकार आदेश होता है। इस सूत्र से हल् तकार से परवर्ती झर् तकार का सवर्ण झर् तकार परे होने पर लोप होता है। विकल्प-पक्ष में लोप नहीं है-**प्रत्त्तम्**। इस स्थिति में 'अनचि च' (८।४।५८) से यर् तकार को द्विर्वचन करने पर-**प्रत्त्त्तम्**। इस सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर-**प्रत्त्तम्**। पुनः इसी सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर-**प्रत्तम्** रूप बनता है।*

*(२) **मरुत्तम्**। मरुत्+दा+क्त। मरुत्+द्त्+त। मरुत्+त्त्+त। मरुत्त्त्त+सु। मरुत्त्त्तम्।*

*यहां मरुत्-उपपद 'दा' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। वा०-'**मरुच्छब्दस्य चोपसङ्ख्यानम्**' (१।४।५८) से 'मरुत्' शब्द की उपसर्ग संज्ञा की गई है, अतः उपसर्ग संज्ञा के विधान सामर्थ्य से '**अच उपसर्गात्तः**' (७।४।४७) से 'मरुत्' के अजन्त न होने*

*पर भी 'दा' धातु के आकार को तकार आदेश हो जाता है। **'अनचि च'** (८।४।५८) से यर् तकार को द्विर्वचन करने पर पांच तकार हो जाते हैं-**मरुत्त्त्त्तम्।** इस सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर चार तकार, पुनः एक तकार का लोप हो जाने पर तीन तकार और पुनः एक तकार का लोप हो जाने पर दो तकार शेष रहते हैं-**मरुत्तम्।** हल् से उत्तर झर् तकार का सवर्ण झर् तकार की प्राप्ति रहने पर इस सूत्र की तीन बार प्रवृत्ति होती है।*

स्वरितादेशः-

(२७) उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।६५।

प०वि०-उदात्तात् ५।१ अनुदात्तस्य ६।१ स्वरितः १।१।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।

अर्थः-संहितायां विषये उदात्तात् परस्यानुदात्तस्य स्थाने, स्वरितादेशो भवति।

उदा०-गार्ग्यः, वात्स्यः, पचति, पठति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदात्तात्) उदात्त स्वर से उत्तरवर्ती (अनुदात्तस्य) अनुदात्त स्वर के स्थान में (स्वरितः) स्वरित आदेश होता है।*

*उदा०-**गार्ग्यः।** गर्ग का पौत्र। **वात्स्यः।** वत्स का पौत्र। **पचति।** वह पकाता है। **पठति।** वह पढ़ता है।*

सिद्धि-(१) गार्ग्यः। *यहां 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अकार का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि है। 'यञ्' प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५५) से यह अन्तानुदात्त होकर इस सूत्र से उदात्त से परवर्ती अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही 'वत्स' शब्द से-**वात्स्यः।***

*(२) **पचति।** यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'तिप्' और 'शप्' प्रत्ययों के पित् होने से ये **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त हैं। 'पच्' धातु **'धातोः'** (६।१।१५९) से अन्तोदात्त है। अतः इस सूत्र से 'पच्' धातु के उदात्त स्वर से परवर्ती 'शप्' प्रत्यय के अनुदात्त अकार को स्वरित आदेश होता है।*

*'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से स्वरित से परवर्ती 'तिप्' प्रत्यय के अनुदात्त को एकश्रुति स्वर होता है। ऐसे ही **'पठ व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से-पठति।*

स्वरितादेशप्रतिषेधः-

(२८) नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्।६६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, उदात्तस्वरितोदयम् १।१ अगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम् ६।३।

स०-उदात्तश्च स्वरितश्च तौ उदात्तस्वरितौ, तौ उदयौ यस्मात् तत्-उदात्तस्वरितोदयम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। गार्ग्यश्च काश्यपश्च गालवश्च ते-गार्ग्यकाश्यपगालवाः, न गार्ग्यकाश्यपगालवा इति अगार्ग्यकाश्यपगालवाः, तेषाम्-अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अनुदात्तस्य, स्वरित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदात्तोदयस्य स्वरितोदयस्य चानुदात्तस्याऽगार्ग्य-काश्यपगालवानां स्वरितो न।

अर्थः-संहितायां विषये उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य स्थाने गार्ग्यकाश्यपगालववर्जितानामाचार्याणां मतेन स्वरितादेशो न भवति।

उदा०-**(उदात्तोदयः)** गार्ग्यस्तत्र। वात्स्यस्तत्र। **(स्वरितोदयः)** गार्ग्यः क्व। वात्स्यः क्व।

"उदात्तस्वरितपरस्य इति वक्तव्य उदयग्रहणं मङ्गलार्थम्, अनेका-चार्यसङ्कीर्तनं पूजार्थम्" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदात्तस्वरितोदयस्य) उदात्तपरक और स्वरितपरक (अनुदात्तस्य) अनुदात्त स्वर के स्थान में (अगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्) गार्ग्य, काश्यप, गालव इन आचार्यों को छोड़कर शेष आचार्यों के मत में (स्वरितः) स्वरित आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(उदात्तपरक) **गार्ग्यस्तत्र**। गार्ग्य वहां है। **वात्स्यस्तत्र**। वात्स्य वहां है। **(स्वरितपरक) गार्ग्यः क्व**। गार्ग्य कहां है? **वात्स्यः क्व**। वात्स्य कहां है?*

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यस्तत्रं**। यहां गार्ग्य शब्द **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ्-प्रत्ययान्त **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त और **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५५) से अनुदात्त होकर अन्तानुदात्त है। 'तत्र' शब्द में 'तत्' शब्द से **'सप्तम्यास्त्रल्'** (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है, अतः प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१९०) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से 'तत्र' का उदात्त स्वर परे होने पर गार्ग्य के अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश का प्रतिषेध होता है। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से स्वरित आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**वात्स्यस्तत्रं**।*

*(२) **गार्ग्यः क्वं**। यहां 'क्व' में 'किम्' शब्द से **'किमोऽत्'** (५।३।१२) से 'अत्' प्रत्यय है। **'कुतिहोः'** (७।२।१०४) से 'किम्' को 'कु' आदेश है। 'अत्' प्रत्यय के तित् होने से यह **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८५) से स्वरित है। इस सूत्र से स्वरित 'क्व' शब्द के परे रहने पर गार्ग्य के अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**वात्स्यः क्वं**।*

***विशेषः** (१) महर्षि पतञ्जलि आदि आचार्यों का मत है कि पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के प्रारम्भ में **'वृद्धिरादैच्'** (१।१।१) सूत्र में संज्ञी से पूर्व संज्ञावाची वृद्धि शब्द का प्रयोग पाठकों की मङ्गल कामना से किया है कि इस शास्त्र के अध्येता सदा बढ़ते रहें और इस सूत्र में भी परवाची 'उदय' शब्द का प्रयोग मङ्गल भावना से किया गया है कि इस शास्त्र के अध्यापक और अध्येता जनों का सदा उदय होता रहे, वे कभी समाप्त न हों।*

(२) गार्ग्य, काश्यप और गालव आचार्यों का नाम-कीर्तन उनके सम्मान के लिये किया गया है।

संवृतादेशः-

(२६) अ अ इति।६७।

प०वि०-अ अव्ययपदम् (षष्ठ्यर्थे), अ अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अ अ इति।

अर्थः-संहितायां विषये विवृताकारस्य स्थाने संवृताकारादेशो भवति।

एकोऽत्र विवृतः, अपरश्च संवृतः। तत्र विवतस्य संवृतः क्रियते। विवृतोऽकारः संवृतो भवतीत्यर्थः।

उदा०-वृक्षः। प्लक्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अ) विवृत अकार के स्थान में (अ) संवृत अकार आदेश होता है (इति) ऐसा जानें।*

उदा०-वृक्षः। पेड़। प्लक्षः। पिलखण।

सिद्धि-वृक्षः। *पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि **'विवृतकरणाः स्वराः'** (पा०शि० ३।८) अर्थात् अकारादि स्वरों का विवृत प्रयत्न है किन्तु **'संवृतस्त्वकारः'** (पा०शि० ३।९) से केवल अकार का संवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अकार और दीर्घ तथा प्लुत अकार का उक्त प्रयत्नभेद होने से इनकी **'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्'** (१।१।९) से सवर्ण संज्ञा सिद्ध नहीं होती है, अतः पाणिनि मुनि ने 'अइउण्' (प्रत्याहार १) में अकार को विवृत प्रतिज्ञात किया था कि इस व्याकरणशास्त्रविषयक सवर्ण आदि कार्यों में यह 'अकार' विवृत ही समझना।*

अब यह शब्द शास्त्र समाप्त होगया है। अतः पाणिनि मुनि ने उस विवृत प्रतिज्ञात अकार का संवृत आदेश प्रतिपादन किया है कि लोक में 'वृक्षः' आदि शब्दों में अकार का संवृत ही उच्चारण होता है, विवृत नहीं। ऐसे ही-प्लक्षः आदि।

(इति आदेशप्रकरणं संहिताप्रकरणं च समाप्तम्)

।। इति त्रिपादी समाप्ता।।

६ ५ ० २
ऋतुप्राणखनेत्राब्दे श्रावणे पुण्यपर्वणि।
पूर्णिमायां गुरौ वारे ग्रन्थः पूर्णतां गतः।।

अर्थः-*यह ग्रन्थ श्रावण पूर्णिमा (श्रावणी उपाकर्म) संवत् २०५६ वि० बृहस्पतिवार को पूर्ण हुआ (२६ अगस्त १९९९ ई०)।*

इति हरयाणाप्रान्तीयरोहितकमण्डलानन्तर्गतबालन्दग्रामनिवासिनः श्रीमन्महाशय-शिवदत्तार्यस्य प्रियपुत्रेण श्रीमतीरजकांदेवी सूनुना परिव्राजकाचार्याणां श्रीमद् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण झज्जरगुरुकुलाधिगतविद्येन पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायी-प्रवचनेऽष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। सम्पूर्णश्चायं ग्रन्थः।।

।। इति षष्ठो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

षष्ठभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
७६७	अ अ	८।४।६७
४२३	अकृच्छ्रे प्रियसुखयो०	८।१।१३
३४३	अकृत्सार्वधातुकयो०	७।४।२५
५७०	अग्नीत्प्रेषणे परस्य च	८।२।९२
६६१	अग्नेः स्तुतस्तोमसोमाः	८।३।८२
५७३	अङ्युक्तं तिङाकाक्षम्	८।२।९६
४४५	अङ्गात्प्रातिलोम्ये	८।१।३३
३६२	अच उपसर्गात्तः	७।४।४७
१६५	अचस्तास्वत्०	७।२।६१
१९८	अचि र ऋतः	७।२।१००
५०६	अचि विभाषा	८।२।२१
२१०	अचो ञ्णिति	७।२।११५
७४८	अचो रहाभ्यां द्वे	८।४।४५
३२२	अच्च घेः	७।३।११९
२७३	अजिव्रज्योश्च	७।३।६०
१५७	अञ्चेः पूजायाम्	७।२।५३
५३६	अञ्चोऽनपादाने	८।२।४८
१७४	अञ्चेः सिचि	७।२।७१
७००	अट्कुप्वाङ्०	८।४।२
३०७	अङ् गार्ग्यगालवयोः	७।३।९९
७५७	अणोऽप्रगृह्यस्या०	८।४।५६
३८६	अत आदेः	७।४।७०
२११	अत उपधायाः	७।२।११६
६२१	अतः कृकमिकंस०	८।३।४६
३०८	अतो दीर्घो यञि	७।३।१०१
०९	अतो भिस् ऐस्	७।१।९
२२	अतोऽम्	७।१।२४
१८२	अतो येयः	७।२।८०
१००	अतो ल्रान्तस्य	७।२।२
१०५	अतो हलादेर्लघोः	७।२।७
३७२	अत्र लोपोऽभ्यासस्य	७।४।५८
५८६	अत्रानुनासिकः०	८।३।२
४१०	अत् स्मृदृत्वरप्रथ०	७।४।९५
३०८	अदः सर्वेषाम्	७।३।१००
०५	अदभ्यस्तात्	७।१।४
२०४	अदस औ सुलोपश्च	७।२।१०७
५६२	अदसोऽसेर्दादुदो मः	८।२।८०
२३	अदड् डतरादिभ्यः०	७।१।२५
६२२	अधःशिरसी पदे	८।३।४७
८९	अनङ् सौ	७।१।७३
७४९	अनचि च	८।४।४६
५८०	अनन्त्यस्यापि०	८।२।१०५
२०८	अनाप्यकः	७।२।११२
७२१	अनितेरन्तः	८।४।१९
४२७	अनुदात्तं सर्वमपादादौ	८।१।१८
४१४	अनुदात्तं च	८।१।३
५७६	अनुदात्तं प्रश्नान्ता०	८।२।१००
५८७	अनुनासिकात् परो०	८।३।४
५४१	उपसर्गात् फुल्ल०	८।२।५५
६५३	अनुविपर्यभि०	८।३।७२
२३५	अनुशतिकादीनां च	७।३।२०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
७५७	अनुस्वारस्य ययि०	८।४।५७
५०३	अनो नुट्	८।२।१६
७२४	अन्तरदेशे	८।४।२४
१३१	अपचितश्च	७।२।३०
६३०	अपदान्तस्य मूर्धन्यः	८।३।५५
१३२	अपरिह्वृताश्च	७।२।३२
३६२	अपो भि	७।४।४८
१६१	अभाषितपुंस्काच्च	७।३।४८
६६५	अभिनिसः स्तन०	८।३।८६
१२५	अभेश्चाविदूर्ये	७।२।५५
२६८	अभ्यासाच्च	७।३।५५
७५३	अभ्यासे चर्च	८।४।५३
३८	अमो मश्	७।१।४०
५५३	अम्नरुधरव०	८।२।७०
६७४	अम्बाम्बगोभूमि०	८।३।९७
३१२	अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः	७।३।१०७
९४	अम् सम्बुद्धौ	७।१।९९
३४१	अयङ् यि क्ङिति	७।४।२२
७२५	अयनं च	८।४।२५
३९१	अर्तिपिपर्त्योश्च	७।४।७७
२५१	अर्तिह्रीव्लीरी०	७।३।३६
१२४	अर्देः सन्निविभ्यः	७।२।२४
२४१	अर्धात् परिमाणस्य०	७।३।२६
२२५	अवयवादृतोः	७।३।११
५५१	अवयाः श्वेतवाः०	८।२।६७
६४६	अवाच्चाविलम्बना०	८।३।६८
३५१	अशनायोदन्य०	७।४।३४
३८७	अश्नोतेश्च	७।४।७२
४९	अश्वक्षीरवृष०	७।१।५१
३५४	अश्वाघस्यात्	७।४।३७
१८५	अष्टन आ विभक्तौ	७।२।८४
२०	अष्टाभ्य औश्	७।१।२१
३०३	अस्तिसिचोऽपृक्ते	७।३।९६
७३	अस्थिदधिसक्थ्य०	७।१।७५
३४०	अस्य च्वौ	७।४।३२
३३८	अस्यतेस्थुक्	७।४।१७
५५२	अहन्	८।२।६८
४७३	अहेति विनियोगे च	८।१।६१
४५३	अहो च	८।१।४०
७०७	अह्नोऽदन्तात्	८।४।७
	(आ)	
३११	आङि चापः	७।३।१०५
३२३	आङो नास्त्रियाम्	७।३।१२०
६३	आङो यि	७।१।६५
७८	आच्छीनद्योर्नुम्	७।१।८०
४८	आज्जसेरसुक्	७।१।५०
३१६	आण् नद्याः	७।३।११२
३१	आत औ णलः	७।१।३४
१८२	आतो ङितः	७।२।८१
५८७	आतोऽटि नित्यम्	८।३।३
२४७	आतो युक् चिण्कृतोः	७।३।३३
०६	आत्मनेपदेष्वनतः	७।१।५
२६४	आदाचार्याणाम्	७।३।४९
११७	आदितश्च	७।२।१६
६३३	आदेशप्रत्यययोः	८।३।५९
७१५	आनि लोट्	८।४।१६
१८३	आने मुक्	७।२।८२
३३६	आपोऽन्यतरस्याम्	७।४।१५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३६९	आप्ज्ञप्यृधामीत्	७।४।५५
४२१	आबाधे च	८।१।१०
४६६	आम एकान्तरमा०	८।१।५५
४८३	आमन्त्रितं पूर्वम०	८।१।७२
४२८	आमन्त्रितस्य च	८।१।१९
५०	आमि सर्वनाम्नः सुट्	७।१।५२
५७३	आम्रेडितं भर्त्सने	८।२।९५
०२	आयनेयीनीयियः०	७।१।२
१३६	आर्धधातुकस्येड्वलादेः	७।२।३५
४९९	आसन्दीवदष्ठीवच्च०	८।२।१२
५२०	आहस्थः	८।२।३५
४६०	आहो उताहो०	८।१।४९
	(इ)	
७०	इकोऽचि विभक्तौ	७।१।७३
७३२	इजादेः सनुमः	८।४।३२
५१२	इट ईटि	८।२।२८
१४१	इट् सनि वा	८।२।५४
१६९	इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्	७।२।६६
६२९	इडाया वा	८।३।५४
६१५	इणः षः	८।३।३९
६५८	इणः षीध्वंलुङ्लिटां०	८।३।७८
६३१	इण्कोः	८।३।५७
१४९	इण्निष्ठायाम्	७।२।४७
८४	इतोऽत् सर्वनामस्थाने	७।१।८६
४५	इदन्तो मसि	७।१।४६
२०५	इदमो मः	७।२।१०८
५६	इदितो नुम् धातोः	७।१।५८
६१७	इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य	८।३।४१
३२१	इदुद्भ्याम्	७।३।११७
२०७	इदोऽय् पुंसि	७।२।१११
२८६	इषुगमियमां छः	७।३।७७
४६	इष्ट्वीनमिति च	७।१।४८
२६४	इसुसुक्तान्तात् कः	७।३।५१
६१९	इसुसोः सामर्थ्ये	८।३।४४
	(ई)	
३४९	ई घ्राध्मोः	७।४।३१
४१२	ई च गणः	७।४।९४
७६	ई च द्विवचने	७।१।७७
१८०	ईडजनोर्ध्वे च	७।२।७८
१८४	ईदासः	७।२।८३
१७९	ईशः से	७।२।७७
	(उ)	
६९	उगिदचां सर्वनामस्थाने०	७।१।७०
६०१	उञि च पदे	८।३।२१
२९७	उतो वृद्धिर्लुकि हलि	७।३।८९
२२४	उत्तरपदस्य	७।३।१०
४०४	उत्परस्यातः	७।४।८८
७६०	उदः स्थास्तम्भोः०	८।४।६०
५००	उदन्वानुदधौ च	८।२।१३
४९२	उदात्तस्वरितयोर्यणः०	८।२।४
७६५	उदात्तादनुदात्तस्य०	८।४।६६
१६०	उदितो वा	७।२।५६
२५८	उदीचामातः स्थाने०	७।३।४६
९६	उदोष्ठ्यपूर्वस्य	७।१।१०२
१६६	उपदेशेऽत्वतः	७।२।६२
५६०	उपधायां च	८।२।७८
९६	उपधायाश्च	७।१।१०१
५७७	उपरिस्विदासीदि०	८।२।१०२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४१७	उपर्यध्यधसः सामीप्ये	८।१।७
६६६	उपसर्गप्रादुर्भ्यामि०	८।३।८७
४५१	उपसर्गव्यपेतं च	८।१।३८
५०५	उपसर्गस्यायतौ	८।२।१९
६४	उपसर्गात् खल्घञोः	७।१।६७
६४०	उपसर्गात् सुनोति०	८।३।६५
७१४	उपसर्गादसमासे०	८।४।१४
३४२	उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः	७।४।२३
७२७	उपसर्गादनोत्परः	८।४।२८
६४	उपात् प्रशंसायाम्	७।१।६६
५९१	उभयथर्क्षु	८।३।८
७२१	उभौ साभ्यासस्य	८।४।२१
३८२	उरत्	७।४।६६
३३०	उरृत्	७।४।७
	(ऊ)	
१०४	ऊर्णोतेर्विभाषा	७।२।६
२९८	ऊर्णोतेर्विभाषा	७।३।९०
	(ऋ)	
३३३	ऋच्छत्यृताम्	७।४।११
५४५	ऋणमाधमर्ण्ये	८।२।६०
४०७	ऋतश्च	७।४।९२
१४४	ऋतश्च संयोगादेः	७।२।४३
३३२	ऋतश्च संयोगादेर्गुणः	७।४।१०
३१४	ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः	७।३।११०
१६७	ऋतो भारद्वाजस्य	७।२।६३
८९	ऋदुशनस्पुरुदंसो०	७।१।९४
३३६	ऋदृशोऽङि गुणः	७।४।१६
१७३	ऋद्धनोः स्ये	७।२।७०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(ॠ)	
९५	ॠत इद्धातोः	७।१।१००
	(ए)	
४२०	एकं बहुव्रीहिवत्	८।१।९
२९	एकवचनस्य च	७।१।३२
१०९	एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्	७।२।१०
५२३	एकाचो बशो भष्०	८।२।३७
७११	एकाजुत्तरपदे णः	८।४।१२
४९३	एकादेश उदात्तेनोदात्तः	८।२।५
४७७	एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्	८।१।३५
५८२	एचोऽप्रगृह्यस्या०	८।२।१०७
५६३	एत ईद् बहुवचने	८।२।८१
६७७	एति संज्ञायामगात्	८।३।९९
३४३	एतेर्लिङि	७।४।२४
४५८	एहि मन्ये प्रहासे लृट्	८।१।४६
	(ओ)	
३९४	ओः पुयण्ज्यपरे	७।४।८०
२७६	ओक उचः के	७।३।६४
२८१	ओतः श्यनि	७।३।७१
६००	ओतो गार्ग्यस्य	८।३।२०
५३४	ओदितश्च	८।२।४५
५६७	ओमभ्यादाने	८।२।८७
३१०	ओसि च	७।३।१०४
	(औ)	
१७	औङ आपः	७।१।१८
३२१	औत्	७।३।११८
	(क)	
६२५	कः करत्करति०	८।३।५०
६७२	कपिष्ठलो गोत्रे	८।३।९१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४२१	कर्मधारयवदुत्तरेषु	८।१।११
३५५	कव्यध्वरपृतनस्य०	७।४।३९
६२३	कस्कादिषु च	८।३।४८
५९४	कानाम्रेडिते	८।३।१२
४५९	किंवृत्तं च चिदुत्तरम्	८।१।४८
४५६	किं क्रियाप्रश्ने०	८।१।४४
२१३	किति च	७।२।११८
२०२	किमः कः	७।२।१०३
१७७	किरश्च पञ्चभ्यः	७।२।७५
१०३	कु तिहोः	७।२।१०४
४८१	कुत्सने च सुप्यगोत्रा०	८।१।६९
६१३	कुप्वोः ≍क≍पौ च	८।३।३७
७१२	कुमति च	८।४।१३
३७५	कुहोश्चुः	७।४।६२
१२२	कृच्छ्रगहनयोः कषः	७।२।२२
७२६	कृत्यचः	८।४।२९
५०४	कृपो रो लः	८।२।१८
३७७	कृषेश्छन्दसि	७।४।६४
११३	कृसृभृवृस्तु०	७।२।१३
२१६	केकयमित्रयु०	७।३।२
३३५	केऽणः	७।४।१३
३५	क्त्वापि छन्दसि	७।१।३८
४६	क्त्वो यक्	७।१।४७
३५०	क्यचि च	७।४।३३
२८५	क्रमः परस्मैपदेषु	७।३।७६
१५५	क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः	७।२।५०
२०४	क्वाति	७।२।१०५
५४९	क्विन्प्रत्ययस्य कुः	८।२।६२
५३९	क्षायो मः	८।२।५३
५७९	क्षियाशीःप्रैषेषु०	८।२।१०४
५३५	क्षियो दीर्घात्	८।२।४६
११८	क्षुब्धस्वान्तध्वान्त०	७।२।१८
७३९	क्षुभ्नादिषु च	८।४।३८
२८२	क्सस्याचि	७।३।७२
	(ख)	
५९६	खरवसानयोर्विसर्जनीयः	८।३।१५
७५५	खरि च	८।४।५४
	(ग)	
४८२	गतिर्गतौ	८।१।७०
४६२	गत्यर्थलोटा०	८।१।५१
१६२	गमेरिट् परस्मैपदेषु	७।२।५८
६७३	गवियुधिभ्यां०	८।३।९५
२९८	गुणोऽपृक्ते	७।३।९१
३९६	गुणो यङ्लुकोः	७।४।८२
३४७	गुणोऽर्तिसंयोगा०	७।४।२९
५६६	गुरोरनृतो०	८।२।८६
५५	गोः पादान्ते	७।१।५१
८७	गोतो णित्	७।१।९०
१३३	ग्रसितस्कभित०	७।२।३४
१३८	ग्रहोऽलिटि दीर्घः	७।२।३७
५०६	ग्रो यङि	८।२।२०
	(घ)	
१२३	घुषिरविशब्दने	७।२।२३
३१५	घेर्ङिति	७।३।१११
२८०	घोर्लोपो लेटि वा	७।३।७०
	(ङ)	
६०९	ङमो ह्रस्वादचि०	८।३।३२
१४	ङसिङ्योः स्मात्०	७।१।१५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२६	ङेप्रथमयोरम्	७।१।२८
३२०	ङेराम्नद्याम्नीभ्यः	७।३।११६
१३	ङेर्यः	७।१।१३
६०६	ङ्णोः कुक्टुक् शरि	८।३।२८
	(च)	
२६५	चजोः कु घिण्ण्यतोः	७।३।५२
९३	चतुरनडुहोरामु०	७।१।९८
४६८	चनचिदिव०	८।१।५७
४०३	चरफलोश्च	७।४।८७
४७१	चवायोगे प्रथमा	८।१।५९
४७५	चादिलोपे विभाषा	८।१।६३
४७०	चादिषु च	८।१।५८
४७४	चाहलोप [illegible]	८।१।६२
५७७	चिदिव चोपमार्थे०	८।२।१०१
५१४	चोः कुः	८।२।३०
३४५	च्वौ च	७।४।२६
	(छ)	
६२४	छन्दसि वा प्रा०	८।३।४९
५०२	छन्दसीरः	८।२।१५
४४७	छन्दस्यनेकमपि०	८।१।३५
७४	छन्दस्यपि दृश्यते	७।१।७६
७२६	छन्दस्यृदवग्रहात्	८।४।२६
६७२	छन्दोनाम्नि च	८।३।९४
	(ज)	
१९	जश्शसोः शिः	७।१।२०
२३९	जङ्गलधेनुबलजा०	७।३।२५
२४९	जनिवध्योश्च	७।३।३५
४०१	जपजभदह०	७।४।८६
२००	जराया जरस०	७।२।१०१
१७	जसः शी	७।१।१७
३१४	जसि च	७।३।१०९
३५९	जहातेश्च क्त्वि	७।४।४३
२९३	जाग्रोऽविचिण्०	७।३।८५
४५९	जात्वपूर्वम्	८।१।४७
३२९	जिघ्रतेर्वा	७।४।६
२९१	जुसि च	७।३।८३
१५९	जृव्रश्च्योः क्त्वि	७।२।५५
२३३	जे प्रोष्ठपदानाम्	७।३।१८
२८८	ज्ञाजनोर्जा	७।३।७९
६६३	ज्योतिरायुषः०	८।३।८३
	(झ)	
४९८	झयः	८।२।१०
७६३	झयो होऽन्यतरस्याम्	८।४।६१
७६४	झरो झरि सवर्णे	८।४।६४
७५२	झलां जश् झशि च	८।४।५२
५२८	झलां जशोऽन्ते	८।२।३९
५१०	झलो झलि	८।२।२६
५२९	झषस्तथोर्धोऽधः	८।२।४०
०३	झोऽन्तः	७।१।३
	(ट)	
१२	टाङसिङसामिं०	७।१।१२
	(ठ)	
२६३	ठस्येकः	७।३।५०
	(ड)	
६०७	डः सि धुट्	८।३।२९
	(ढ)	
५९४	ढो ढे लोपः	८।३।१३
८७	णलुत्तमो वा	७।१।९१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३८९	णिजां त्रयाणां०	७।४।७५
१२५	णेरध्ययने वृत्तम्	७।२।२६
७३०	णेर्विभाषा	८।४।३०
३२४	णौ चङ्युपधाया०	७।४।१
२७७	ण्य आवश्यके	७।३।६५
	(त)	
२४३	तत्प्रत्ययस्य च	७।३।२९
२०४	तदोः सः साव०	७।२।१०६
२१२	तद्धितेष्वचामादेः	७।२।११७
४३	तप्तनप्तनथनाश्च	७।१।४५
५८३	तयोर्य्वावचि०	८।२।१०८
१९४	तवममौ ङसि	७।२।९६
३८६	तस्मान्नुड् द्विहलः	७।४।७१
४२	तस्य तात्	७।१।४४
४१३	तस्य परमाम्रेडितम्	८।१।२
३६४	तासस्त्योर्लोपः	७।४।५०
१६४	तासि च क्लृपः	७।२।६०
४८३	तिङि चोदात्तवति	८।१।७१
४३९	तिङो गोत्रादीनि०	८।१।२७
४४१	तिङ्ङतिङः	८।१।२८
४०४	ति च	७।४।८९
१०७	तितुत्रतथसिसुर०	७।२।९
५५६	तिप्यनस्तेः	८।२।७३
६१८	तिरसोऽन्यतरस्याम्	८।३।४२
३२८	तिष्ठतेरित्	७।४।५
१४९	तीषसहलुभ०	७।२।४८
४५२	तुपश्यपश्यताहैः०	८।१।३९
१९३	तुभ्यमह्यौ ङयि	७।३।९५
३०२	तुरुस्तुशम्यमः०	७।३।९५
३२	तुह्योस्तातङा०	७।१।३५
६०	तृज्वत् क्रोष्टुः	७।१।९५
२९९	तृणह इम्	७।३।९२
७१	तृतीयादिषु भा०	७।१।७४
४३१	तेमयावेकवचने	८।१।२२
७४६	तोः षि	८।४।४२
७५९	तोर्लि	८।४।५९
२०१	त्यदादीनामः	७।२।१०२
१९८	त्रिचतुरोः स्त्रियां०	७।२।९९
७५०	त्रिप्रभृतिषु शा०	८।४।३५५
५१	त्रेस्त्रयः	७।१।५३
१९४	त्वमावेकवचने	७।२।९७
४३२	त्वामौ द्वितीयायाः	८।१।२३
१९२	त्वाहौ सौ	७।२।९४
	(थ)	
८४	थो न्थः	७।१।८७
	(द)	
५२७	दधस्तथोश्च	८।२।३८
३५८	दधातेर्हिः	७।४।४२
३७१	दम्भ इच्च	७।४।५६
३३१	दयतेर्दिगि०	७।४।९
२०६	दश्च	७।२।१०९
५५८	दश्च	८।२।७५
५१६	दादेर्धातोर्घः	८।२।३२
३७७	दाधर्तिदर्धर्ति०	७।४।६५
८२	दिव औत्	७।१।८४
५३७	दिवोऽविजिगीषायाम्	८।२।४९
२२७	दिशोऽमद्राणाम्	७।३।७३
३८५	दीर्घ इणः किति	७।४।६९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२३८	दीर्घाच्च वरुणस्य	७ ।३ ।२३
५९२	दीर्घादटि समान०	८ ।३ ।९
७५२	दीर्घादाचार्याणाम्	८ ।४ ।५२
३९८	दीर्घोऽकितः	७ ।४ ।८३
४०९	दीर्घो लघोः	७ ।४ ।९४
३५३	दुरस्युद्रविण०	७ ।४ ।३६
५६५	दूराद्धूते च	८ ।२ ।८४
८१	दृक्स्ववस्त०	७ ।१ ।८३
१२१	दृढः स्थूलबलयोः	७ ।२ ।२०
२३६	देवताद्वन्द्वे च	७ ।३ ।२१
३५५	देवसुम्नयो०	७ ।४ ।३८
२१५	देवकाशिंशपा०	७ ।३ ।१
३६१	दो दद्घोः	७ ।४ ।४६
३५६	द्यतिस्यतिमा०	७ ।४ ।४०
३८३	द्युतिस्वाप्योः०	७ ।४ ।६७
४२४	द्वन्द्वं रहस्य०	८ ।१ ।१५
२१९	द्वारादीनां च	७ ।३ ।४
१८६	द्वितीयायां च	७ ।२ ।८७
६१८	द्विस्त्रिचतुरि०	८ ।३ ।४३
	(ध)	
५१०	धि च	८ ।२ ।२५
२२०	धृषिशसी वैयात्ये	७ ।२ ।१९
४१	ध्मो ध्वात्	७ ।१ ।४२
	(न)	
३३५	न कपि	७ ।४ ।१४
२२१	न कर्मव्यतिहारे	७ ।३ ।६
३७६	न कवतेर्यङि	७ ।४ ।६३
२७२	न क्वादेः	७ ।३ ।५९
६७८	नक्षत्राद् वा	८ ।३ ।१००
४९६	न ङिसम्बुद्ध्योः	८ ।२ ।८
४३३	न चवाहाहैवयुक्ते	८ ।१ ।२४
३५२	नच्छन्दस्यपुत्रस्य	७ ।४ ।३५
२४४	नञः शुचीश्वरः०	७ ।३ ।३०
५४३	न ध्याख्यापृ०	८ ।२ ।५७
४५५	नन्वित्यनुज्ञै०	८ ।१ ।४३
७४५	न पदान्ताट्टो०	८ ।४ ।४१
६०६	नपरे नः	८ ।३ ।२७
६९	नपुंसकस्य झलचः	७ ।१ ।७२
१८	नपुंसकाच्च	७ ।१ ।१९
५६१	न भकुर्छुराम्	८ ।२ ।७९
७३४	न भाभूपूकमि०	८ ।४ ।३४
६१६	नमस्पुरसोर्गत्योः	८ ।३ ।४०
४९१	न मु ने	८ ।२ ।३
२५७	न यासयोः	१० ।३ ।४५
२१८	न य्वाभ्यां पदा०	७ ।३ ।३
६८७	न रपरसृपिसृ०	८ ।३ ।११०
१४०	न लिङि	७ ।२ ।३९
४४१	न लुट्	८ ।१ ।२९
४९५	नलोपः प्रातिपदि०	८ ।२ ।७
४८९	नलोपः सुप्स्वर०	८ ।२ ।२
१६३	न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः	७ ।२ ।५९
७३७	नशेः षान्तस्य	८ ।४ ।३६
५५०	नशेर्वा	८ ।२ ।६३
६०८	नश्च	८ ।३ ।३०
७२६	नश्च धातुस्थो०	८ ।४ ।२७
६०३	नश्चापदान्तस्य०	८ ।३ ।२३
५९०	नश्छव्यप्रशान्	८ ।३ ।७
५४६	नसत्तनिषत्ता०	८ ।२ ।६१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६५	न सुदुर्भ्यां०	७।१।६८
४४४	नह प्रत्यारम्भे	८।१।३१
५१९	नहो धः	८।२।३४
३२५	नाग्लोपिशास्वृ०	७।४।२
२४१	नातः परस्य	७।३।२७
७४९	नादिन्याक्रोशे०	८।४।४७
५०४	नाद्घस्य	८।२।१७
२९५	नाभ्यतस्या०	७।३।८७
७६	नाभ्यस्ताच्छतुः	७।१।७८
४८५	नामन्त्रिते०	८।१।७३
५७२	निगृह्यानुयोगे च	८।२।९४
३८९	निजां त्रयाणां०	७।४।७५
३३१	नित्यं छन्दसि	७।४।८
६२०	नित्यं समासे०	८।३।४५
४१४	नित्यवीप्सयोः	८।१।४
६६८	निनदीभ्यां०	८।३।८९
४४२	निपातैर्यद्यदि०	८।१।३०
१४८	निरः कुषः	७।२।४६
५३८	निर्वाणोऽवाते	८।२।५०
६९७	निव्यभिभ्यो०	८।३।११९
६८०	निसस्तपताव०	८।३।१०२
३९८	नीग्वञ्चुस्रंसु०	७।४।८४
३४०	नुगतोऽनुनासिक०	७।४।८५
५४१	नुदविन्दोन्द०	८।२।५६
६३२	नुम्विसर्जनीय०	८।३।५८
५९२	नॄन् पे	८।३।१०
१०१	नेटि	७।२।४
६०	नेट्यलिटि रधेः	७।१।६२
१०६	नेड्वशि कृति	७।२।८
२४	नेतराच्छन्दसि	७।१।२६
११	नेदमदसोरकोः	७।१।११
२३७	नेन्द्रस्य परस्य	७।३।२२
७१८	नेर्गदनदपत०	८।४।१७
७६६	नोदात्तस्वरितो०	८।४।६७
२४८	नोदात्तोपदेश०	७।३।३४
२२०	न्यग्रोधस्य च०	७।३।५
२६६	न्यङ्क्वादीनां च	७।३।५३
	(प)	
५३९	पचो वः	८।२।५२
२६	पञ्चम्या अत्	७।१।३१
६२६	पञ्चम्याः पराव०	८।३।५१
३३९	पतः पुम्	७।४।१९
८३	पथिमथ्यृभुक्षा०	७।१।८५
७३८	पदव्यवायेऽपि	८।४।३७
४२६	पदस्य	८।१।१६
४२७	पदात्	८।१।१७
७३८	पदान्तस्य	८।४।३७
२२४	पदान्तस्यान्यतरस्याम्	७।३।९
६४८	परिनिविभ्यः०	८।३।७०
२३१	परिमाणान्तस्या०	७।३।१७
६५६	परिस्कन्दः प्राच्य०	८।३।७५
४१६	परेर्वर्जने	८।१।५
६५५	परेश्च	८।३।७
५०७	परेश्च घाङ्कयोः	८।२।२२
४३७	पश्यार्थैश्चाना०	८।१।२५
२८७	पाघ्राध्मास्था०	७।३।७८
६२७	पातौ च बहुलम्	८।३।५२
७०८	पानं देशे	८।४।९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
८६	पुंसोऽसुङ्	७।१।८९
२९४	पुगन्तलघूपधस्य च	७।३।८९
५८९	पुमः खय्यम्परे	८।३।६
४५४	पुरा च परीप्सा०	८।१।४२
१५५	पूङश्च	७।२।५१
४७९	पूजनात्पूजित०	८।१।६७
४५०	पूजायां नान्तरम्	८।१।३७
४८८	पूर्वत्रासिद्धम्	८।२।१
५७४	पूर्वं तु भाषायाम्	८।२।९८
६८४	पूर्वपदात्	८।३।१०६
७०२	पूर्वपदात्संज्ञा०	८।४।३
१५	पूर्वादिभ्यो नव०	७।१।१६
४२२	प्रकारे गुणवचनस्य	८।१।१२
५६८	प्रणवष्टेः	८।२।८९
५७४	प्रतिश्रवणे च	८।२।९९
६९२	प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ०	८।३।११४
५६४	प्रत्यभिवादे०	८।२।८३
२५६	प्रत्ययस्थात्कात्०	७।३।४४
१९५	प्रत्ययोत्तरपद०	७।२।९८
१८७	प्रथमयाश्च०	७।२।८८
७०४	प्रनिरन्तःशरेक्षु०	८।४।५
१२२	प्रभौ परिवृढः	७।२।२१
२७४	प्रयाजानुयाजौ०	७।३।६२
२८१	प्रयोज्यनियोज्य०	७।३।६८
२४२	प्रवाहणस्य ढे	७।३।२८
६७१	प्रष्ठोऽग्रगामिनि	८।३।९२
४१६	प्रसमुपोदः पादपूरणे	८।१।६
५४०	प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्	८।२।५४
६३८	प्राक्सितादड्०	८।३।६३
२२८	प्राचां ग्रामनगराणाम्	७।३।१४
२३९	प्राचां नगरान्ते	७।३।१४
६१०	प्रातिपदिकान्त०	८।४।११
५८१	प्लुतावैच इदुतौ	८।२।१०६
२८९	प्वादीनां ह्रस्वः	७।३।८०
	(ब)	
१६७	बभूथाततन्थ०	७।२।६४
०८	बहुलं छन्दसि	७।१।८
१०	बहुलं छन्दसि	७।१।१०
९७	बहुलं छन्दसि	७।१।१०३
३०४	बहुलं छन्दसि	७।३।९७
३९२	बहुलं छन्दसि	७।४।७८
४३०	बहुवचनस्य०	८।१।२१
३१०	बहुवचने झल्येत्	७।३।१०३
३००	ब्रुव ईट्	७।३।९३
५७०	ब्रूहिप्रैष्यश्रौषड्०	८।२।९१
	(भ)	
३८८	भवेतरः	७।३।७३
२५९	भस्त्रैषाजाज्ञा०	७।३।४७
८५	भस्य टेर्लोपः	७।१।८८
५४५	भित्तं शकलम्	८।२।५९
२५४	भियो हेतुभये०	७।३।४०
६६१	भीरोः स्थानम्	८।३।८१
२७४	भुजन्युब्जौ०	७।३।६१
५५४	भुवश्च महा०	८।२।७१
२९६	भूसुवोस्तिङि	७।३।८८
३९०	भृञामित्	७।४।७६
२७९	भोज्यं भक्ष्ये	७।३।६९
५९७	भो भगो अघो०	८।३।१७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
२८	भ्यसोऽभ्यम्	७।१।३०
३२६	भ्राजभासभाष०	७।४।३
	(म)	
५८५	मतुवसो रु सम्बुद्धौ०	८।३।१
१६१	मपर्यन्तस्य	७।२।९१
६१०	मय उञो वो वा	८।३।३३
५७	मस्जिनशोर्झलि	७।१।६०
६६४	मातुःपितुर्भ्यामं०	८।३।८५
६६३	मातृपितृभ्यां०	८।३।८४
४९७	मादुपधायाश्च०	८।२।९
२९०	मिदेर्गुणः	७।३।८२
२९०	मीनातेर्निगमे	७।३।८१
३७१	मुचोऽकर्मकस्य०	७।४।५७
२१०	मृजेर्वृद्धिः	७।२।११४
६०३	मोऽनुस्वारः	८।३।२३
५४९	मो नो धातोः	८।२।६४
६०४	मो राजि समः०	८।३।२५
५४९	म्वोश्च	८।२।६५
	(य)	
२०७	यः सौ	७।२।११०
३४८	यङि च	७।४।३०
३०१	यङो वा	७।३।९४
४१	यजध्वैनमिति च	७।१।४३
२७७	यजयाचरुच०	७।३।६६
६८२	यजुष्येकेषाम्	८।३।१०४
२४५	यथातथायथापुर०	७।३।३१
४२४	यथास्वे यथायथम्	८।१।१४
४६७	यद्धितुपरं छन्दसि	८।१।५६
४६८	यद्वृत्तान्नित्यम्	८।१।६६
१७५	यमरमनमातां०	७।२।७३
७४७	यरोऽनुनासिके०	८।४।४४
११५	यस्य विभाषा	७।२।१५
५६९	याज्यान्तः	८।२।९०
३१७	याडापः	७।३।११३
४४९	यावद्यथाभ्याम्	८।१।३६
३६६	यीवर्णयोर्दीधी०	७।४।५३
६९	युजेरसमासे	७।१।७१
१९१	युवावौ द्विवचने	७।२।९२
०१	युवोरनाकौ	७।१।१
६८१	युष्मत्तत्ततक्षु०	८।३।१०३
१८६	युष्मदस्मदो०	७।२।८६
४२९	युस्मदस्मदोः षष्ठी०	८।१।२०
२५	युष्मदस्मदभ्यां०	७।१।२७
१९२	यूयवयौ जसि	७।२।९३
५६७	ये यज्ञकर्मणि	८।२।८८
१८८	योऽचि	७।२।८९
	(र)	
५३१	रदाभ्यां निष्ठातो०	८।२।४२
१४६	रधादिभ्यश्च	७।२।४५
५९	रधिजभोरचि	७।१।६१
६१	रभेरशब्लिटोः	७।१।६३
६९९	रषाभ्यां नो णः०	८।४।१
५०१	राजन्वान् सौराज्ये	८।२।१४
५०९	रात्सस्य	८।२।२४
१८५	रायो हलि	७।२।८५
३४६	रिङ् शयग्लिङ्क्षु	७।४।२८
३६५	रि च	७।४।५१
४०५	रीगृदुपधस्य च	७।४।९०

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३४५	रीङृतः	७।४।२७
४०६	रुग्रिकौ च लुकि	७।४।९१
३०६	रुदश्च पञ्चभ्यः	७।३।९८
१७८	रुदादिभ्यः सार्वधातुके	७।२।७६
१२८	रुष्यमत्वरसंघु०	७।२।२८
२५६	रुहः पोऽन्यतरस्याम्	७।३।४३
५९७	रोः सुपि	८।३।१६
५९५	रो रि	८।३।१४
५५३	रोऽसुपि	८।२।६९
५५८	र्वोरुपधाया०	८।२।७६
	(ल)	
६२	लभेश्च	७।१।६४
१८०	लिङः सलोपो०	७।२।७९
१४२	लिङ्सिचोरात्मनेपदे०	७।२।४२
२५३	लीलोर्नुग्लुकाव०	७।३।३९
२८२	लुग्वा दुहदिह०	७।३।७३
१५८	लुभो विमोहने	७।२।५४
४६३	लोट् च	३।३।१६२
३२७	लोपः पिबतेरीच्चा०	७।४।४
६००	लोपः शाकल्यस्य	८।३।१९
३९	लोपस्त आत्मनेपदेषु	७।१।४१
४५७	लोपे विभाषा	८।१।४५
५३३	ल्वादिभ्यः	८।२।४४
	(व)	
३३९	वच उम्	७।४।२०
२७८	वचोऽशब्दसंज्ञायाम्	७।३।६७
२७५	वञ्चेर्गतौ	७।३।६३
१००	वदव्रजहलन्त०	७।२।३
७०३	वनं पुरगामिश्रका०	८।४।४
७२३	वमोर्वा	८।४।२३
२३१	वर्षस्याभविष्यति	७।३।१६
१५६	वसतिक्षुधोरिट्	७।२।५२
५५५	वसुस्रंसुध्वंस्व०	८।२।७२
१७०	वस्वेकाजाद्घसाम्	७।२।६७
५६४	वाक्यस्य टेः प्लुत०	८।२।८२
४१८	वाक्यादेरामन्त्रित०	८।१।८
१२६	वा दान्तशान्त०	७।२।२७
५१७	वा द्रुहमुहष्णुह०	८।२।३३
७७	वा नपुंसकस्य	७।१।७९
७३३	वा निंसनिक्षनिन्दाम्	८।४।३३
७५९	वा पदान्तस्य	८।४।५८
७०९	वा भावकरणयोः	८।४।१०
७५६	वाऽवसाने	८।४।५५
६१२	वा शरि	८।३।३६
७०७	वाहनमाहितात्	८।४।८
६७३	विकुशमिपरिभ्यः०	८।३।९६
५७४	विचार्यमाणानाम्	८।२।९७
५४४	वित्तो भोगप्रत्यययोः	८।२।५८
३३	विदेः शतुर्वसुः	७।१।३६
१७२	विभाषा गमहन०	७।२।६८
६६	विभाषा चिण्णमुलोः	७।१।६९
२७१	विभाषा चेः	७।३।५८
३५९	विभाषा छन्दसि	७।४।४४
९१	विभाषा तृतीया०	७।१।९७
३१९	विभाषा द्वितीया०	७।३।११५
५७१	विभाषा पृष्टप्रतिवचने०	८।२।९३
११७	विभाषा भावादि०	७।२।१७
४११	विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः	७।४।९६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१६९	विभाषा सृजिदृशोः	७।२।६५
४८६	विभाषितं विशेष०	८।१।७४
४६४	विभाषितं सोपसर्गा०	८।१।५३
६५९	विभाषेटः	८।३।७९
७०६	विभाषौषधि०	८।४।६
६११	विसर्जनीयस्य सः	८।३।३४
६७१	वृक्षासनयोर्विष्टरः	८।३।९३
१३९	वृतो वा	७।२।३८
६५४	वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्	८।३।७३
६५८	वेः स्कभ्नातेः०	८।३।७७
०७	वेत्तेर्विभाषा	७।१।७
६४७	वेश्च स्वनो भोजने	८।३।६९
४७६	वैवावेति च	८।१।६४
२५३	वो विधूनने जुक्	७।३।३८
३८४	व्यथो लिटि	७।४।६८
५९९	व्योर्लघुप्रयत्नतरः०	८।३।१८
५२०	व्रश्चभ्रस्जसृज०	८।२।३६
	(श)	
२५५	शदेरगतौ तः	७।३।४२
७९	शप्श्यनोर्नित्यम्	७।१।८१
२८४	शमामष्टानां दीर्घः०	७।३।७४
७५०	शरोऽचि	८।४।४८
६१२	शर्परे विसर्जनीयः	८।३।३५
३७५	शर्पूर्वाः खयः	७।४।६१
७६२	शश्छोऽटि	८।४।६२
२७	शसो न	७।१।२९
२५२	शाच्छासाह्वा०	७।३।३७
३५७	शाच्छोरन्यतरस्याम्	७।४।४१
७४७	शात्	८।४।४३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६३४	शासिवसिघसीनां च	८।३।६०
६०९	शि तुक्	८।३।३१
३४०	शीङः सार्वधातुके०	७।४।२१
०७	शीङो रुट्	७।१।६
५३८	शुषः कः	८।२।५१
३३४	शृदृप्रां ह्रस्वो वा	७।४।१२
५७	शे मुचादीनाम्	७।१।५९
१८६	शेषे लोपः	७।२।९०
४५३	शेषे विभाषा	८।१।४१
४६१	शेषे विभाषा	८।१।५०
७२०	शेषे विभाषा०	८।४।१८
५३५	श्योऽस्पर्शे	८।२।४७
५४	श्रीग्रामण्योश्छन्दसि	७।१।५६
११०	श्र्युकः किति	७।४।११
३३८	श्वयतेरः	७।४।१८
२२३	श्वादेरिञि	७।३।८
११४	श्वीदितो निष्ठायाम्	७।२।१४
	(ष)	
६३	षट्चतुर्भ्यश्च	७।१।५५
२१	षड्भ्यो लुक्	७।१।२२
५३०	षढोः कः सि	८।२।४१
६२८	षष्ठ्याः पतिपुत्र०	८।३।५३
७३६	षात्पदान्तात्	८।४।३५
७४३	ष्टुना ष्टुः	८।४।४०
२८५	ष्ठिवुक्लमुचमां शिति	७।३।७५
	(स)	
३६३	सः स्यार्धधातुके	७।४।४९
६३७	सः स्विदिस्वदि०	८।३।६२
५३२	संयोगादेरातो०	८।२।४३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५०८	संयोगान्तस्य लोपः	८।२।२३
८८	सख्युरसम्बुद्धौ	७।१।९२
४८०	सगतिरपि तिङ्	८।१।६८
२३०	संख्यायाः संवत्सर०	७।३।१५
४९९	संज्ञायाम्	८।२।११
४४५	सत्यं प्रश्ने	८।१।३२
६४४	सदिरप्रतेः	८।३।६६
६९६	सदेः परस्य लिटि	८।३।११८
१७२	सनिंसनिवांसम्	७।२।६९
११२	सनिग्रहगुहोश्च	७।२।१२
३६८	सनि मीमाघु०	७।४।५४
१५०	सनीवन्तर्धभ्रस्ज०	७।२।४९
६८५	सनोतेरनः	८।३।१०८
३९३	सन्यतः	७।४।७९
२७०	सन्लिटोर्जेः	७।३।५७
४०७	सन्वल्लघुनि०	७।४।९३
४३८	सपूर्वायाः प्रथमाया०	८।१।२६
५८८	समः सुटि	८।३।५
६६०	समासेऽङ्गुलेः सङ्गः	८।३।८०
३४	समासेऽनञ्पूर्वे०	७।१।३७
३१२	सम्बुद्धौ च	७।३।१०६
७५१	सर्वत्र शाकल्यस्य	८।४।५०
१३	सर्वनाम्नः स्मै	७।१।१४
३१८	सर्वनाम्नः स्याड्०	७।३।११४
४१३	सर्वस्य द्वे	८।१।१
५५०	ससजुषो रुः	८।२।६६
३८८	ससूवेति निगमे	७।४।७४
६८६	सहेः पृतनर्ताभ्यां च	८।३।१०९
६३०	सहेः साडः सः	८।३।५६
६८९	सात्पदाद्योः	८।३।१११
३०	साम आकम्	७।१।३३
२९२	सार्वधातुकार्धधातुकयोः	७।३।८४
८०	सावनडुहः	७।१।८२
१४०	सिचि च परस्मैपदेषु	७।२।४०
९९	सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु	७।२।१
६९०	सिचो यङि	८।३।११२
५५७	सिपि धातो रुर्वा	८।२।७४
६५२	सिवादीनां वाऽड्०	८।३।७१
६८५	सुञः	८।३।१०७
३६०	सुधितवसुधित०	७।४।४५
६९५	सुनोतेः स्यसनोः	८।३।११७
३६	सुपां सुलुक्०	७।१।३९
३०९	सुपि च	७।३।१०२
६६७	सुविनिर्दुर्भ्यः०	८।३।८८
६७६	सुषामादिषु च	८।३।९८
२२६	सुसर्वार्धाज्जनपदस्य	७।३।१२
६६९	सूत्रं प्रतिष्णातम्	८।३।९०
६९१	सेधतेर्गतौ	८।३।११३
१६०	सेऽसिचि कृतचृत०	७।२।५७
६९२	सोढः	८।३।११५
६१४	सोऽपदादौ	८।३।३८
१३३	सोमे ह्वरितः	७।२।३३
५१३	स्कोः संयोगाद्योरन्ते च	८।२।२९
६९३	स्तम्भुसिवुसहां०	८।३।११६
६४५	स्तम्भेः	८।३।६७
६८३	स्तुतस्तोमयो०	८।३।११५
१७५	स्तुसुधूञ्भ्यः०	७।२।७२
७४१	स्तोः श्चुनाश्चुः	८।४।३९

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
६३५	स्तौतिण्योरेव०	८।३।६१
९१	स्त्रियां च	७।१।९६
६३९	स्थादिष्वभ्यासेन०	८।३।६४
४७	स्नात्व्यादयश्च	७।१।४९
१३७	स्नुक्रमोरनात्मनेपद०	७।२।३६
२५५	स्फायो वः	७।३।४१
६५७	स्फुरतिस्फुलत्यो०	८।३।७६
१७६	स्मिपूङ्रञ्ज्वशां०	७।२।७४
३९५	स्रवतिशृणोति०	७।४।८१
५९३	स्वतवान् पायौ	८।३।११
२२	स्वमोर्नपुंसकात्	७।१।२३
१४५	स्वरतिसूतिसूयति०	७।२।४४
५७८	स्वरितात्म्रेडिते०	८।२।१०३
४९४	स्वरितो वाऽनुदात्ते०	८।२।६
२२२	स्वागतादीनां च	७।३।७
	(ह)	
३६६	ह एति	७।४।५२
२४८	हनस्तोऽचिण्णलोः	७।३।३२
४६५	हन्त च	८।१।५४
७२२	हन्तेरत्पूर्वस्य	८।४।२२
७३१	हलश्चेजुपधात्	८।४।३१
३७४	हलादिः शेषः	७।४।६०
५५९	हलि च	८।२।७७
२१३	हलि लोपः	७।२।११३
६०२	हलि सर्वेषाम्	८।३।२२
७६३	हलो यमां यमि लोपः	८।४।६३
४४६	हि च	८।१।३४
७१५	हिनुमीना	८।४।१५
२३४	हृद्भगसिन्ध्वन्ते०	७।३।१९
१३०	हृषेर्लोमसु	७।२।२९
४७२	हेति क्षियायाम्	८।१।६०
६०५	हे मपरे वा	८।३।२६
२६९	हेरचङि	७।३।५६
५६५	हैहेप्रयोगे हैहयोः	८।२।८५
५१५	हो ढः	८।२।३१
२६७	हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु	७।३।५४
१०२	ह्म्यन्तक्षणश्वस०	७।२।५
३७३	ह्रस्वः	७।४।५९
५१	ह्रस्वनद्यापो नुट्	७।१।५४
३१३	ह्रस्वस्य गुणः	७।३।१०८
६७८	ह्रस्वात्तादौ तद्धिते	८।३।१०१
५११	ह्रस्वादङ्गात्	८।२।२७
१३१	ह्रुह्वरेश्छन्दसि	७।२।३१

॥ इति षष्ठभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका ॥

सम्मति

डा० सुदर्शनदेव आचार्य द्वारा लिखित **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक अष्टाध्यायी की व्याख्या देखने को मिली। संस्कृत भाषा अपने नाम के अनुरूप संस्कृत अर्थात् देवों की भाषा है। यह समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। इस भाषा का ज्ञान बिना व्याकरणशास्त्र के नहीं होता है। व्याकरणशास्त्र नव्य-विधाओं में विभक्त होकर भी पाणिनीय मूलक ही है अर्थात् महर्षि पाणिनि द्वारा निर्मित व्याकरणशास्त्र ही मुख्य है और सर्वोपरि है। उसके आद्योपान्त समझने के लिये अष्टाध्यायी का क्रमशः अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याकरणशास्त्र को सरल तथा सूत्रशैली से समझाकर विद्वान् लेखक ने छात्रों का परमहित सम्पादन किया है जिसके विषय में यह कहा गया है कि **'कष्टं व्याकरणम्, कष्टतराणि च सामानि'** अर्थात् व्याकरणशास्त्र का पढ़ना अतीव कठिन है और साम का पढ़ना तो उससे भी अधिक कठिन है।

इस ग्रन्थ में सूत्र, पदच्छेद, विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ, उदाहरण, संस्कृतभाषा में लिखे गये हैं। आर्यभाषा नामक टीका में सूत्रों और उदाहरणों का अर्थ हिन्दी भाषा में दिया गया है। उदाहरणों की कच्ची सिद्धि देकर उन्हें समझाया गया है। इस शैली से सूत्रार्थ सरलतया हृदयंगम हो जाता है।

विद्वान् लेखक ने अपने विद्यार्थीकाल में जो प्रशस्य श्रम किया था, उस समय छात्रों के सामने जो कठिनाइयां आती रही हैं, उन सभी को सुसरल बना दिया है।

आशा है व्याकरणशास्त्र के छात्र तथा जिज्ञासु इससे अवश्य लाभान्वित होंगे और इससे अवश्य लाभ उठाकर लेखक का भी उत्साहवर्धन करेंगे।

—राजवीर शास्त्री

भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर,

गाजियाबाद (उ०प्र०)